DUE DATE SLIP

GOVT. COLLEGE, LIBRARY

KOTA (Raj.)

Students can retain library books only for two weeks at the most.

BORROWER'S No.	DUE DTATE	SIGNATURE

साप्ताहिक

दिनमान

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

मयंक और मनुष्य • राजनैतिक वंशवृद्धि • मुसलमान कहाँ जायेंगे ?

मम्मी के लिए तो ऐसी रोशनी चाहिए जिससे आँखों को तकलीफ़ न हो

हमारी मम्मी को तो सिलाई-बुनाई का बड़ा शौक़ है। काफ़ी रात गए तक वे इसी में जुटी रहती हैं। हम उनसे कहते हैं कि वे अपनी आँखों पर ज़्यादा ज़ोर न डालें। लेकिन उनका कहना यह है कि वे तो फ़िलिप्स आर्जेन्टा बल्ब की रोशनी में काम करती हैं, इसलिए उनकी आँखों को ज़रा भी तकलीफ़ नहीं होती।
फ़िलिप्स आर्जेन्टा बल्ब में अन्दर की तरफ़ एक ख़ास क़िस्म की सफ़ेद कोटिंग होती है जिससे

□ आँखें चुँधियाती नहीं □ गहरी परछाइयाँ पड़ती नहीं □ रोशनी हर तरफ़ एक-सी फैलती है

फ़िलिप्स आर्जेन्टा बल्ब से सिर्फ़ मम्मी को ही नहीं बल्कि घर के सभी लोगों को सही क़िस्म की रोशनी मिलती है। ये बल्ब ४०, ६० और १०० वॉट के आते हैं।

फ़िलिप्स कंपनी आर्जेन्टा के अलावा बिना सफ़ेद कोटिंग के बल्ब तथा हर काम के लिए उपयुक्त फ़्लोरेसेन्ट, मर्क्युरी वेपर और दूसरी कई तरह के लैम्प भी बनाती है।

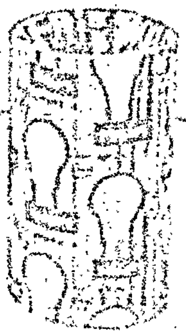

फ़िलिप्स इंडिया लिमिटेड

फ़िलिप्स आर्जेन्टा

घरेलू रोशनी के लिए सही बल्ब

मत और सम्मत

दिनमान : १५ दिसंबर : संपादकीय में 'हिंदी की राह के रोड़े' वास्तविकता का सजीव चित्रण है. समष्टि-व्यष्टि एवं सरकारों (केंद्रीय-प्रांतीय) को ले कर त्रिकोणात्मक दृष्टिकोण न केवल प्रशंसनीय है अपितु अनुकरणीय भी है.

—केशवप्रसाद दुबे, जबलपुर (म.प्र.)

असली रोड़े स्वयं हिंदीभाषी हैं, क्यों कि इस की वजह है हिंदीभाषी ही 'राष्ट्रकवि' का चुनाव करते हैं. राष्ट्रभाषा, राष्ट्रप्रेम और अन्य विषयों पर उन के ही विचार सब से सही हैं. हिंदी के संबंध में अहिंदी-भाषियों द्वारा की गयी आलोचना उन के ही विचार में राष्ट्रविरोधी है. सारे देश में हिंदीभाषी ही सब से अच्छे लेखक हैं कि उन्होंने राष्ट्रभाषा की पाठ्य-पुस्तकों, प्रदर्शनी और आम जलसों में राष्ट्रभाषा की दुहाई दे कर अपना अड्डा जमाया है, क्यों कि कश्मीर से ले कर कन्याकुमारी तक छाये हुए भारतीयों में संकुचित आदमियों में ये 'हिंदीभाषी' ही सब से अच्छे उदार दिल वाले समझे जाते हैं. वैसे तो हजारों बातें हैं, आखिर इन का कितना बखान किया जाए.

—लि. वी. जे. सांघानी, जूनागढ़

'हिंदी की राह के रोड़े' संपादकीय बहुत ही सामयिक व उचित है. हिंदी के ऊपर अखिल भारतीय दृष्टि के ओढ़न का विरोध होना ही चाहिए. इसी की आड़ में हिंदी के स्वाभाविक विकास में भी रोड़ा अटकाया जा रहा है. किंतु क्या कारण है कि बंकिम, शरत् और रवींद्र के साथ-साथ हम शंकर को भी उसी आदर से ग्रहण कर रहे हैं. बंगला के शंकर और हिंदी के गुरुदत्त और गुलशन नंदा में पार्थक्य करने में तो मुझे बहुत कष्ट होता है. दूसरी तरफ़ बहुसंख्यक बंगला भाषा-भाषी हिंदी के किसी साहित्यकार को जानता भी नहीं है और जिन्हें थोड़ा बहुत ज्ञान भी है उन्हें यह मनवाने में बहुत ही कष्ट होता है कि तुलसीदास के बाद भी हिंदी में साहित्य रचा जा रहा है.

—नरेंद्रप्रताप सिंह, गाचलिया

समाचार संदर्भ वाले पृष्ठ में 'परामर्श के दो स्वर' में अमेरिकी पत्र 'शिकागो न्यूज़' के संवाददाता का लेख पढ़ा. जिस को आपने [illegible] की संज्ञा दी है. विदेशों में अभी भी भारत के प्रति इसी प्रकार की उपेक्षा और [illegible] विद्यमान है. यह भी स्पष्ट हुआ है कि विदेशी भारत के बारे में तो कोई भी बात जानने से नहीं चूकते, लेकिन वे [illegible] को नहीं देखते हैं.

—धर्मसिंह नेगी, [illegible]

समाचार संदर्भ में [illegible]

कुछ प्रश्नों के बारे में मेरी राय से ब्रितानी पत्रकार सेरिलडन का नजरिया ब्रितानी न हो कर रोडेसिया या दक्षिण अफ्रीका के पत्रकार का है. वह पत्रकार की अपेक्षा रोडेसिया की गोरी सरकार के एजेंट ज्यादा नजर आते हैं. वह अपनी लेखनी के द्वारा हम भारतीयों को ही नहीं अपने उन बंधुओं को भी दोषी ठहराते हैं जो ब्रिटेन में रह कर या अमेरिका में निग्रो लोगों को अधिकार देने के लिए शांतिपूर्वक जुलूस निकालते हैं. शायद अपने उन बंधुओं का अहिंसावादी होना या अहिंसा में विश्वास रखना उन की नजर में कोई बहुत बड़ा पाप ही है. सेरिलडन साहब सब मसलों का हल हिंसा द्वारा ही करना चाहते हैं. ऐसे पत्रकार की इतनी नीची धारणा देख कर निराशा ही हुई.

—ओमप्रकाश खरे, शिवगंज, रांची (बिहार)

चंद्रशेखर से भेंट-वार्ता के संदर्भ में उल्लिखित "कांग्रेस में वामपंथ : किधर" पढ़ कर भी मन में यह विश्वास नहीं जम पाता है कि अपेक्षित वामपंथी चरित्र-निष्ठा के अभाव में कभी यह संगठन सामाजिक शक्तियों का ध्रुवीकरण करने में सफल हो पायेगा और वह भी सत्ता में चिपके रह कर ?

—गौरीशंकर, बरौनी (बिहार)

सत्याग्रह : चौ० चरण सिंह (भूतपूर्व मुख्यमंत्री) ने अभूतपूर्व ढंग से बिजनौर की एक सभा में कहा "सत्याग्रह, घेराव, हड़ताल और धरना प्रजातांत्रिक व्यवस्था के विरुद्ध हैं, क्यों कि क़ानून तोड़ना प्रजातंत्र व क़ानून की सत्ता को ही भंग करना है. सरकार से असंतुष्ट हो तो उसे पाँच वर्ष के बाद मताधिकार द्वारा बदल दो." प्रजातंत्र की यह व्याख्या अभूतपूर्व है. पाँच साल तक जनता जहर के घूंट पीती रहे. सरकार चुनाव घोषणापत्र पर व्यवहार न करे, जिस के आधार पर वह सत्तारूढ़ हुई, भले ही पाँच वर्ष तक एड़ियाँ रगड़ कर लोग अकाल से, पुलिस और सरकारी कर्मचारियों के अत्याचार से तबाह हो कर क़ानून के नाम पर अल्लाह को प्यारे हो जायें. क्या यह मान लें कि शांतिपूर्ण ढंग के सत्याग्रह आदि पर रोक लगाने वाले यदि उ० प्र० में सत्तारूढ़ हुए तो जनता को मूक पशु की भांति उन के क़ानून को पुलिस के डंडे के ज़ोर पर मानने के लिए अपनी पीठ को ठोक-बजा कर देख लेना चाहिए.

—विक्रम, मुज़फ़्फ़र नगर (उ. प्र.)

राष्ट्रपति-शासन में विश्वविद्यालय और पुलिस के संबंध जितने खराब हैं उतने अंग्रेजी राज में भी नहीं थे. विद्यापीठ राष्ट्रीय आंदोलन का केंद्र था और तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की वक्रदृष्टि का भाजन था. फिर भी कभी तत्कालीन पुलिस और सी. आई. डी. के ऊँचे से ऊँचे अफ़सरों ने भी बिना अनुमति के विद्यापीठ में तलाशी लेने या गिरफ़्तारी करने के लिए भी प्रवेश तक नहीं किया. सन् '४२ के विद्रोह के दिनों में भी ऐसा अनाधिकार प्रवेश नहीं हुआ. या तो यह सब राज्यपाल की जानकारी में हुआ है या फिर अगर उन्हें इस की जानकारी तक नहीं है तो ऐसे अक्षम राज्यपाल के हाथ में उत्तरप्रदेश का शासन नहीं रहने दिया जा सकता. विद्यापीठ के स्नातक, भारत सरकार के मंत्री डॉ. रामसुभग सिंह तथा विद्यापीठ परिवार के अन्य संसद्-सदस्यों से मैं विशेष रूप से अनुरोध करूँगा कि अपनी मातृसंस्था पर ऐसे निंदनीय प्रहार को हरगिज बर्दाश्त न करें, राज्यपाल की भर्त्सना कर उन्हें हटाने की माँग करें, अपने प्रभाव का प्रयोग कर पुलिस और इस प्रशासन के अधिकारियों को मुअत्तल करायें, पूरी घटना की न्यायिक जाँच कराएँ और इस परंपरा को फिर से प्रतिष्ठित करें कि पुलिस का प्रवेश विश्वविद्यालय के अधिकारियों की अनुमति बिना नहीं हो. और जब ऐसी नौबत आये कि बिना पुलिस, पी. ए. सी. के विश्वविद्यालय न चल सकता हो तो विश्वविद्यालय कुछ दिनों के लिए बंद कर दिया जाये.

मैं विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों से अपील करता हूँ कि पेरिस, लखनऊ, इलाहाबाद और अन्य विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों की तरह जब तक विश्वविद्यालय के अहाते में पी.ए. सी. है तब तक पढ़ने से जैसे अभी इनकार कर रहे हैं वैसे ही आगे भी इनकार करें. अभिभावक अपने लड़के-लड़कियों को विश्वविद्यालय में पढ़ने न भेजें. अध्यापक छात्रों के शिकार में अफ़सरों का हाथ न बटाएँ, नम्रता किंतु दृढ़ता के साथ जब तक पुलिस और पी. ए. सी.

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

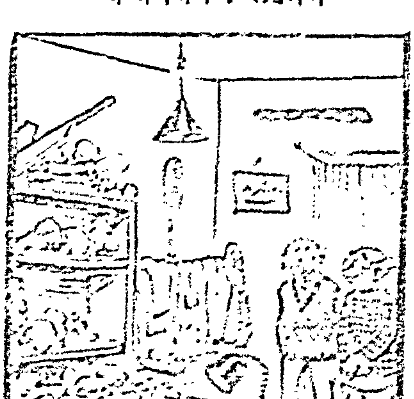

'नहीं, मेरा पुत्र भू-गर्भ शास्त्र का नहीं राजनीति का अध्ययन कर रहा है.'

विश्वविद्यालय से निकाल बाहर न कर दी जाये तब तक पढ़ाने से इनकार कर दें. इस प्रकार विश्वविद्यालय को विद्या का केंद्र बनाने में सहायक बनें, पी. ए. सी. की छावनी बनाने में बाधक.

—कृष्णनाथ, काशी विद्यापीठ

हिंदी का प्रयोग : केंद्र सरकार के कर्मचारी भाई निडर हो कर अगर चाहें तो हिंदी का दैनिक व्यवहार कार्यालय में आज से ही प्रारंभ कर सकते हैं. भारत में अधिकांश लोग ऐसे हैं कि वे हिंदी में काम करना चाहते हैं, परंतु उन्हें करने नहीं दिया जाता तथा इस बारे में पूरा दिग्दर्शन नहीं मिलता.

—राज गौड़, अंबाला छावनी

छात्र आंदोलन : कुलपति डॉ. जोशी की सहानुभूति एक राजनैतिक वर्ग के विद्यार्थियों के साथ है. डॉ. जोशी का यह कहना गलत है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के छात्रों की संख्या चालीस या पचास है. जोशी जी के आने के पूर्व विश्वविद्यालय में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की चार शाखाएँ चलती थीं, जोशी जी के काल में उन की संख्या बढ़ कर आठ हो गयी. अन्य छात्र-संगठनों की तरह संघ की कोई सदस्यता तो होती नहीं पर इन शाखाओं में भाग लेने वाले छात्रों की संख्या तीन सौ से चार सौ तक है और अध्यापकों की चालीस से पचास तक.

मध्यावधि चुनाव को छात्र-आंदोलन का कारण बताना हास्यासद है. छात्रों, अध्यापकों और कर्मचारियों में आज गहरा असंतोष है और उस का एक मात्र कारण है विश्वविद्यालय के कुलपति श्री जोशी की पक्षपातपूर्ण नीति. उन का कुलपति के पद पर बने रहना निष्पक्ष जाँच को बाधित करेगा, क्यों कि उन के ही ऊपर गंभीर आरोप है. बनारस हिंदू विश्वविद्यालय अधिनियम के अनुसार विजिटर द्वारा नियुक्त जाँच आयोग में विश्वविद्यालय का एक प्रतिनिधि भी पर्यवेक्षक के रूप में रहेगा. श्री जोशी के कुलपति बने रहने से उन के विरुद्ध विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के समक्ष गवाही देने में अध्यापकों और कर्मचारियों को हिचक हो सकती है और गवाहों को प्रभावित करने का प्रयास भी जोशी जी के द्वारा किया जायेगा, यह उन के प्रेस वक्तव्य से ही स्पष्ट है. केंद्रीय सरकार और विजिटर से मेरा अनुरोध है कि यदि श्री जोशी इस्तीफ़ा न दें तो ऐसी पद्धति अपनायी जाये जिस से श्री जोशी जाँच को प्रभावित करने की स्थिति में न रहें.

आनंदेश्वरप्रसाद सिंह
सदस्य, काशी हिंदू विश्वविद्यालय कोर्ट

छात्र-असंतोष के अजगर के विस्तार का स्वीकार दिनमान समेत समस्त राष्ट्र कर रहा है. लेकिन निदान की इच्छा देश के, संसद् के या शिक्षा के लिए तनख्वाह पा रहे लोगों (शिक्षामंत्री, उप कुलपति आदि) के मन में नहीं है, अन्यथा मूल्यों में बदलाव और वर्त्तमान व्यवस्थाओं की सड़न तथा जड़ता को स्वीकारने और विकल्पों को स्थापित करने से छात्र-समस्याओं का जड़ से समाधान संभव है. अपने आंदोलन और जेल की क़ैद के दौरान यह सब हमने बहुत तीखे ढंग से महसूस किया है.

छात्रों ने "दमन-विरोधी दिवस" पर माँग की है कि छात्र-समस्याओं—पाठ्यक्रमों में समूल बदलाव, मातृभाषाओं में शिक्षा, अंग्रेज़ी के खात्मे, फ़ीस वृद्धि, शिक्षा-प्रबंध में छात्रों को स्थान, सस्ती शिक्षा, भर्त्ती पर लगी रोक के खात्मे, शिक्षा के प्रसार, प्राथमिक पढ़ाई के राष्ट्रीयकरण, छात्रों में संतुलित राजनैतिक चेतना के प्रसार आदि माँगों के समाधान के लिए संसद् की विशेष वार्षिक बैठकें सितंबर-अक्तूबर के महीनों में की जायें. इन बैठकों में पूरी बहस के बाद राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त समस्या विद्यार्थी-समस्याओं का हल तय कर के फ़ैसलों को राष्ट्रीय फ़ैसले पर लागू किया जाये. इन विशेष बैठकों में देश की प्रतिनिधिसभा में छात्र-प्रतिनिधियों को भी अपना पक्ष रखने के लिए निमंत्रित किया जाया करे. इस से छात्रों के आंदोलनों का स्थानीय और संकीर्ण स्वरूप, फलस्वरूप नकारात्मक विध्वंस, अकारण शक्ति-व्यय और फिर माँगों को जस का तस छोड़ कर गिरफ़्तार छात्रों की रिहाई पर समझौता कर के मूल असंतोष में और ज्यादा घुटते हुए अपनी-अपनी कक्षाओं में जाने की मजबूरियाँ समाप्त हो कर छात्रों की विशाल सेना को राष्ट्रीय निर्माण—दाम बाँधो, जाति तोड़ो, चोरबाज़ारी के खात्मे, सीमाओं की रक्षा, भ्रष्टाचार पर अंकुश, बेरोजगारी के खात्मे, सांप्रदायिकता की समाप्ति आदि के लिए प्रोत्साहित करेंगी और यह तो सच ही है कि यदि ऐसे क़दम न लिये गये तो सारे देश के छात्र काशी विश्वविद्यालय के छात्रों की तरह ही अहिंसक रास्तों के प्रति सरकार व समाज की असहनीय उपेक्षा से ऊब कर अपने-अपने दायरों में हिंसा की आराधना प्रारंभ कर देंगे, क्यों कि अभी मात्र हिंसा और अराजकता ही ध्यानाकर्षण में सक्षम हैं और अनशन, प्रदर्शन, सभा, हड़ताल जैसे अहिंसक-जनतांत्रिक तरीक़ों की उपेक्षा तो अपने-आप में ही बहुत खतरनाक बात है.

—नरेंद्रप्रसाद सिन्हा, प्रवीणकुमार घोष (का. वि. वि.) आनंद कुमार (का. वि. वि.), विजयशंकर पांडेय (संस्कृत विश्वविद्यालय), मारकंडेय सिंह (का. वि. वि.), रामनरेश (का. वि. वि.), चंद्रिकाप्रसाद पाठक (का. वि. वि.) गुलाम हुसेन शास्त्री (काशी विद्यापीठ), सैयद सिब्ते मोहम्मद जाफ़री (उपाध्यक्ष, काशी विद्यापीठ), वीरेंद्र प्रताप (काशी विद्यापीठ)

—जिला कारागार, वाराणसी

प्रश्न-चर्चा—५०

निर्णायक का प्रतिवेदन

यह पहली प्रश्न-चर्चा है जिस के लिए हम किसी को भी पुरस्कार देने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं. हमारा प्रश्न था : "विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इस वर्ष (जनवरी १९६८ से अब तक) प्रकाशित कई पुस्तक-समीक्षाएँ आपने पढ़ी होंगी. इन में सब से घटिया आप को कौन-सी लगी और क्यों?' घटिया का चुनाव करते समय हमारे संवादी यह नहीं सिद्ध कर सके कि उन की दृष्टि स्वस्थ है. समीक्षाओं पर जिस राजनीति, संकीर्णता और व्यक्तिगत रुचि-अरुचि, मतवाद उठा-पटक का आरोप उन्होंने लगाया है वही हमें किसी समीक्षा को घटिया कहने की उन की स्थापना में भी मिला है. किसी साहित्यिक कसौटी द्वारा वह किसी समीक्षा को घटिया सिद्ध नहीं कर सके हैं. ऐसा तो नहीं है कि समीक्षा की कोई साहित्यिक कसौटी का ज्ञान उन्हें न हो, लेकिन लगता है जिन समीक्षाओं का उल्लेख उन्होंने किया है उन के घटियापन से उन में इतना आक्रोश था कि उस कसौटी का इस्तेमाल करना वह भूल गये. व्यक्तिगत प्रीत और द्वेष अनेक संवादियों के उत्तरों से साफ़ प्रकट होता है. घटिया कहने के लिए घटिया स्वर जरूरी नहीं है, न ही **दिनमान** इसे उचित मानता है.

जिन समीक्षाओं को घटिया कहा गया है उन में कुछ ये है : करमजली (कथा-संग्रह), डॉ. विश्वनाथ, समीक्षक : **डॉ. बच्चनसिंह**, प्यास की आग (काव्य-संग्रह) सरदार जाफ़री, समीक्षक : **राही मयसूम रजा**, पाषाण पंक्तियाँ (काव्य-संग्रह) अनुरंजनप्रसाद सिंह, समीक्षक : **भवानीप्रसाद मिश्र** सीधी सच्ची बातें (उपन्यास) भगवतीचरण वर्मा, समीक्षक : **दिनमान**. माया दर्पण (काव्य-संग्रह) श्रीकांत वर्मा, समीक्षक : **रमेशचंद्र सिन्हा** सुरंग से लौटते हुए (काव्य-संग्रह) दूधनाथ सिंह, समीक्षक : **डॉ. रामाधार शर्मा.**

संवादियों के असंतोषजनक उत्तरों पर और पुरस्कार न दे पाने पर हमें खेद है. आशा है यह स्थिति जो पहली बार उत्पन्न हुई है अंतिम होगी और साहित्यिक प्रश्नों पर साहित्यिक कसौटी अपना कर ही वह सुतर्कित पुष्ट उत्तर भविष्य में देंगे.

संवादी **दुर्गावती डियंडी** पिथौरागढ़ के अनुसार:

"अपारे काव्य संसारे कवि रे व प्रजापतिः।
यथास्मे रौचते विश्वं तथेदं परिकल्पते॥

इस सिद्धांत के अनुसार कोई लेख घटिया नहीं हो सकता है". यह निष्कर्ष हम कैसे मान लें?

पिछला वर्ष

देश

१ जनवरी : पंजाब में ज़िला-स्तर पर पंजाबी भाषा लागू.

२ जनवरी : शेख़ अब्दुल्ला रिहा.

९ जनवरी : केंद्रीय संसदीय बोर्ड द्वारा पश्चिम बंगाल कांग्रेस पार्टी को घोष मंत्रिमंडल में शामिल होने की अनुमति.

१० जनवरी : भारत सरकार द्वारा आपत्कालीन स्थिति समाप्त करने की घोषणा.

१३ जनवरी : मद्रास में हिंदी-विरोधी प्रदर्शन पुनः शुरू.

१७ जनवरी : भारत सरकार द्वारा मिज़ो नेशनल फ्रंट पर प्रतिबंध.

२२ जनवरी : युगोस्लाविया के राष्ट्रपति मार्शल टीटो का भारत आगमन.

२९ जनवरी : पालम हवाई अड्डे पर ईरान के शाह और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी में अंतरराष्ट्रीय मसलों पर बातचीत.

१ फ़रवरी : नयी दिल्ली में अंकटैड का प्रधानमंत्री द्वारा उद्घाटन. विंदेश्वरी प्रसाद मंडल द्वारा बिहार के मुख्यमंत्री-पद की शपथ-ग्रहण.

८ फ़रवरी : संयुक्तराष्ट्र महासचिव ऊ थां और भोटान के नरेश का भारत आगमन.

११ फ़रवरी : जनसंघ के अध्यक्ष दीनदयाल उपाध्याय का शव मुग़लसराय स्टेशन के पास बरामद.

१२ फ़रवरी : संसद् का बजट अधिवेशन शुरू.

१३ फ़रवरी : अटलबिहारी वाजपेयी जनसंघ के नये अध्यक्ष निर्वाचित.

१७ फ़रवरी : चरणसिंह मंत्रिमंडल का त्यागपत्र स्वीकृत.

१९ फ़रवरी : १९६८-६९ का रेल बजट लोकसभा में पेश.

२० फ़रवरी : पश्चिम बंगाल में राष्ट्रपति-शासन लागू.

२५ फ़रवरी : उत्तरप्रदेश में राष्ट्रपति-शासन लागू.

२९ फ़रवरी : लोकसभा में आम बजट पेश.

४ मार्च : कच्छ पंच फ़ैसले के अमल के बारे में भारत तथा पाकिस्तान के अधिकारियों में दिल्ली में बातचीत.

७ मार्च : पंजाब विधानसभा के अध्यक्ष मान द्वारा दो माह के लिए बजट अधिवेशन स्थगित.

१५ मार्च : बर्मा की क्रांतिकारी परिषद् के सभापति ने विन का दिल्ली आगमन.

२२ मार्च : लोकसभा द्वारा पश्चिम बंगाल में राष्ट्रपति-शासन का अनुमोदन.

९ मई : संसद्-भवन के सामने कच्छ सत्याग्रहियों द्वारा प्रदर्शन करने का प्रयास.

१० मई : पंजाब और हरयाणा उच्च न्यायालय द्वारा पंजाब विधानसभा का बजट तथा राज्यपाल के अध्यादेश असंवैधानिक क़रार.

१२ मई : हरयाणा में मध्यावधि चुनाव के पहले चरण में मतदान.

१६ मई : हरयाणा के मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त.

२१ मई : बंसीलाल द्वारा हरयाणा के मुख्यमंत्री-पद की शपथ-ग्रहण.

२३ मई : वीरेंद्र पाटील मैसूर कांग्रेस विधानमंडल पार्टी के नये नेता निर्वाचित.

२५ मई : ऑल पार्टी हिल लीडर्स कांफ्रेंस के सभी ९ सदस्यों द्वारा असम विधानसभा से त्यागपत्र.

२७ मई : स्वर्गीय डॉ० मार्टिन लूथर किंग को दूसरा नेहरू शांति पुरस्कार.

२५ जून : बिहार की भोला पासवान सरकार का त्यागपत्र.

२९ जून : बिहार में राष्ट्रपति-शासन लागू.

३० जुलाई : सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पंजाब विधानसभा का बजट और राज्यपाल के अध्यादेश संवैधानिक क़रार.

३१ जुलाई : श्रीपाद दामोदर सातवलेकर का पूना के निकट देहांत.

२ अगस्त : विद्रोही नगा नेता जनरल कैतो सुखई की हत्या.

९ अगस्त : कांग्रेस कार्यसमिति...

९ अगस्त : कांस्टेशिया का अधिवेशन शुरू.

२३ अगस्त : पंजाब में राष्ट्रपति-शासन लागू.

२५ अगस्त : दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय से १० लाख रुपये मूल्य के दुर्लभ और क़ीमती ज़ेवरात चोरी.

१२ सितंबर : असम के पहाड़ी इलाक़े को एक स्वायत्त राज्य का दर्जा देने की बात स्वीकार.

१९ सितंबर : केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों द्वारा एक दिन की सांकेतिक हड़ताल. पांडिचिरी में राष्ट्रपति-शासन.

२६ सितंबर : ६०० मिज़ो विद्रोहियों का आत्मसमर्पण.

२ अक्तूबर : विश्व भर में गांधी शताब्दी संबंधी समारोहों का आयोजन.

३ अक्तूबर : चंद्रमा की परिक्रमा करने वाला रूसी जोंद-५ का बंबई आगमन.

५ अक्तूबर : उत्तर बंगाल में भयंकर वर्षा के कारण १५० व्यक्तियों की मृत्यु.

७ अक्तूबर : संत अकाली दल और मास्टर अकाली दल का विलय.

८ अक्तूबर : निरेन डे भारत के नये अटॉर्नी जनरल नियुक्त.

१४ अक्तूबर : राजमाता सिंधिया द्वारा मध्यप्रदेश लोक सेवक दल से त्यागपत्र.

१६ अक्तूबर : केंद्रीय कर्मचारियों द्वारा सामूहिक रूप से भूख-हड़ताल.

१९ अक्तूबर : भारत स्थित मेक्सिको के राजदूत आक्तेवियो पॉज़ द्वारा त्यागपत्र.

२२ अक्तूबर : कलकत्ता में एक लाख रुपये की दिन दहाड़े डकैती.

२४ अक्तूबर : जलपाईगुड़ी में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का क्रुद्ध भीड़ से साक्षात्कार.

२७ अक्तूबर : ओडिसा के कई भागों में भयंकर तूफ़ान के कारण संचार-व्यवस्था अस्तव्यस्त.

३१ अक्तूबर : नक्सलबाड़ी के नेता कानू सान्याल गिरफ़्तार.

१ नवंबर : मध्यप्रदेश मंत्रिमंडल के २० मंत्रियों का त्यागपत्र.

५ नवंबर : पणजी में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में १९७६ तक मद्य-निषेध करने का फ़ैसला.

७ नवंबर : दिल्ली के संग्रहालय से चोरी गयीं कुछ अमूल्य चीज़ें बरामद.

१७ नवंबर : विश्वबैंक के प्रधान रॉबर्ट मैक्नमारा की भारतीय नेताओं से बातचीत.

२४ नवंबर : नक्सलवादियों द्वारा तीसरी कम्युनिस्ट पार्टी की घोषणा.

२७ नवंबर : श्रीलंका के प्रधानमंत्री डडले सेनानायक की भारतीय प्रतिनिधियों से बातचीत.

२ दिसंबर : ब्रिटेन के विदेशमंत्री माइकेल स्टुअर्ट का दिल्ली आगमन.

४ दिसंबर : उत्तरप्रदेश में विद्रोही कांग्रेसितों द्वारा नयी पार्टी का गठन.

९ दिसंबर : हरयाणा के १५ असंतुष्ट कांग्रेसियों द्वारा कांग्रेस पार्टी से त्यागपत्र.

१४ दिसंबर : राष्ट्रपति द्वारा बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की घटनाओं की जाँच का आदेश.

२१ दिसंबर : पंजाब के कांग्रेसी नेता ज्ञानसिंह राड़ेवाला का पार्टी से त्यागपत्र.

विदेश

१ जनवरी : नववर्ष के युद्ध-विराम के दौरान वीएतनाम युद्ध में १४० अमेरिकी और उत्तर वीएतनामी सैनिकों की मृत्यु.

२ जनवरी : केप्टाउन में प्रोफ़ेसर क्रिश्चेन बर्नार्ड द्वारा नक़ली दिल लगाने का तीसरा ऑपरेशन सफल. गिनी के राष्ट्रपति सेकू तूरे पुनः निर्वाचित

७ जनवरी : अमेरिका द्वारा सर्वेयर-७ का छोड़ा जाना.

१० जनवरी : सेनेटर गोर्टन द्वारा ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री-पद की शपथ-ग्रहण.

१२ जनवरी : पूर्व पाकिस्तान को अलग करने के षड्यंत्र में ढाका में ६ सौ व्यक्ति गिरफ़्तार.

१५ जनवरी : सिसली के भूकंप में ६ सौ व्यक्तियों की मृत्यु.

१६ जनवरी : ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विलसन द्वारा स्वेज़ पूर्व से अपने सैनिक अड्डे समाप्त करने की घोषणा.

१७ जनवरी : ग्वातेमाला में आपत्कालीन स्थिति की घोषणा.

१८ जनवरी : उत्तर कोरिया द्वारा अमेरिका के प्यूब्लो जासूसी जहाज़ का पकड़ा जाना.

२८ जनवरी : घना सरकार द्वारा लोकप्रिय शासन बहाल करने के बारे में संविधान प्रकाशित.

३१ जनवरी : दक्षिण वीएतनाम में मार्शल लॉ की घोषणा.

८ फ़रवरी : सूडान के प्रधानमंत्री द्वारा असेंबली भंग.

१३ फ़रवरी : अमेरिका द्वारा १०,५०० सैनिक वीएतनाम मे भेजने का फ़ैसला.

२० फ़रवरी : भारत और न्यूज़ीलैंड के पहले टेस्ट में भारत पाँच विकेट से विजयी.

२५ फ़रवरी : केन्या से सैकड़ों एशियाइयों का निष्कासन.

२९ फ़रवरी : ब्रितानी हाउस ऑफ़ कॉमंस द्वारा अप्रवासी विधेयक पास.

३ मार्च : कच्छदीव के संबंध में श्रीलंका में भारतीय राजदूत गणदेविया और प्रधान-मंत्री सेनानायके मे बातचीत.

६ मार्च : रोडेसिया मे ३ राष्ट्रवादी अफ़्रीकियों को फाँसी.

७ मार्च : वार्सा संधि के सात राष्ट्रों का शिखर सम्मेलन सोफ़िया में शुरू.

१२ मार्च : मॉरिशस का स्वाधीन देश के रूप में अभ्युदय.

१५ मार्च : लंदन का सराफ़ा बाज़ार बंद.

२२ मार्च : चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपति नोवोत्नी का त्यागपत्र.

२३ मार्च : वेस्टमोरलैंड अमेरिका के नये सेनापति नियुक्त.

२७ मार्च : जनरल सुहर्त्त इंदोनेसिया के राष्ट्रपति निर्वाचित.

५ अप्रैल : निग्रो नेता डॉ. मॉर्टिन लूथर किंग की केनेसी के पास हत्या.

१८ अप्रैल : सिएरालिओन में सैनिक विद्रोह.

२० अप्रैल : शो शोकिय अन्वेषकों की टीम उत्तरी ध्रुव पहुँचने में सफल.

२ मई : इस्राइल के २०वें स्वाधीनता-दिवस पर यरूशलम में सैनिक परेड.

३ मई : अमेरिका और उत्तर वीएतनाम पेरिस में शांति-वार्त्ता के लिए सहमत.

५ मई : जिब्राल्टर की तरफ़ जाने वाले सभी स्थल-मार्ग स्पेन द्वारा बंद.

७ मई : तूनिसिया द्वारा सीरिया से राजनयिक संबंध विच्छेद.

११ मई : पेरिस के लातीनी मोहल्ले में छात्रों के दंगे.

१३ मई : उत्तर वीएतनाम और अमेरिकी प्रतिनिधिमंडलों में पेरिस में प्रारंभिक शांति-वार्त्ता शुरू.

१८ मई : लंदन में ब्रितानी प्रधानमंत्री विल्सन द्वारा महात्मा गांधी की मूर्ति का अनावरण.

३० मई : फ़्रांस के राष्ट्रपति द गॉल द्वारा नेशनल असेंबली भंग कर नये चुनाव कराने की घोषणा.
चेकोस्लोवाकिया की कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा नोवोत्नी मुअत्तल.

५ जून : केलिफ़ोर्निया में सिनेटर रॉबर्ट केनेडी पर गोली चला कर हत्या का प्रयास.

६ जून : रॉबर्ट केनेडी का देहांत.

९ जून : चेकोस्लोवाकिया के २५० सुरक्षा अधिकारी बर्ख़ास्त.

२० जून : अमेरिका के राष्ट्रपति जॉनसन द्वारा अपराध विधेयक पर हस्ताक्षर.

२६ जून : कैनेडा के आम चुनाव में लिबरल पार्टी पुनः सत्तारूढ़.

२८ जून : दहोमे में ग़ैर-सैनिक शासन बहाल.

१ जुलाई : फ़्रांस की असेंबली के चुनावों में द गॉल समर्थकों का भारी बहुमत

१० जुलाई : मुर्विल फ़्रांस के नये प्रधानमंत्री नियुक्त.

८ अगस्त : रिपब्लिकन पार्टी द्वारा अमेरिका के राष्ट्रपति-पद के चुनाव के लिए रिचर्ड निक्सन का चुनाव.

२१ अगस्त : सोवियत रूस और वार्सा संधि के देशों की फ़ौजों द्वारा चेकोस्लोवाकिया पर हमला.

२९ अगस्त : डेमोक्रेटिक पार्टी द्वारा अमेरिका के राष्ट्रपति-पद के लिए ह्यूबर्ट हंफ़्री उम्मीदवार नियुक्त.

१ सितंबर : उत्तरी ईरान में भयंकर भूकंप के कारण २०,००० व्यक्तियों की मृत्यु.

२० सितंबर : सबाह के मामले को ले कर मलयेसिया द्वारा फ़िलिपीन से राजनयिक संबंध-विच्छेद.

३ अक्तूबर : पेरू में सैनिक क्रांति.

१० अक्तूबर : संयुक्त अरब गणराज्य द्वारा इस्राइल का ९ सूत्रीय शांति-प्रस्ताव अस्वीकृत.

१२ अक्तूबर : पनामा की रक्तहीन क्रांति में सेना द्वारा सत्ता प्राप्त. मेक्सिको में १९वें ओलिंपिक खेल शुरू.

१३ अक्तूबर : रोडेसिया समस्या पर ब्रितानी प्रधानमंत्री विल्सन और रोडेसिया के प्रधानमंत्री स्मिथ की वार्त्ता विफल.

१५ अक्तूबर : चीन के राष्ट्रपति ल्यू शाओ ची सभी पदों से मुक्त.

१६ अक्तूबर : भारतीय वैज्ञानिक डॉ० हरगोविंद खुराना को दो अमेरिकी वैज्ञानिकों के साथ नोबेल पुरस्कार प्राप्त.

१७ अक्तूबर : सिंगापुर में दो इंदोनेसियाई नाविकों को फाँसी दिये जाने के विरोध में जैकर्त्ता में विद्यार्थियों द्वारा सिंगापुर दूतावास पर हमला.
जापान के यासुनारी कावाबाता को १९६८ का साहित्य में नोबेल पुरस्कार.

१८ अक्तूबर : चेक राष्ट्रीय असेंबली द्वारा रूस के साथ की गयी संधि का अनुमोदन.

२० अक्तूबर : जाक्लीन केनेडी का इस्कारपीयस (यूनान) के ओनासिस से विवाह.

२२ अक्तूबर : अमेरिका के अंतरिक्ष-यान अपोलो–७ तीन अंतरिक्ष-यात्रियों सहित सकुशल वापस.

२४ अक्तूबर : मेक्सिको ओलिंपिक हॉकी सेमीफ़ाइनल में भारत ऑस्ट्रेलिया से पराजित.

२४ अक्तूबर : अभूतपूर्व सेवाओं के लिए चेक कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रधान डुबचेक सम्मानित.

३० अक्तूबर : नेपाल के भूतपूर्व प्रधानमंत्री बी. पी. कोयराला की ८ वर्ष की नजरबंदी के बाद रिहाई.

३१ अक्तूबर : २२ नेपाली कांग्रेसियों को महाराजा महेंद्र द्वारा क्षमादान.

१ नवंबर : अमेरिका के राष्ट्रपति जॉनसन द्वारा उत्तर वीएतनाम में पुनः बमबारी बंद करने की घोषणा.

२ नवंबर : दक्षिण वीएतनाम के राष्ट्रपति थिउ द्वारा पेरिस शांति-सम्मेलन में भाग लेने से इनकार.

५ नवंबर : नये राष्ट्रपति के चुनाव के लिए अमेरिका में मतदान.

६ नवंबर : रिपब्लिकन पार्टी के रिचर्ड निक्सन अमेरिका के नये राष्ट्रपति निर्वाचित.

७ नवंबर : प्राग में रूसी झंडे का जलाया जाना.

१० नवंबर : पेशावर में राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ पर गोली का चलाया जाना.

१३ नवंबर : ज़ुल्फ़िक़ार अली भुट्टो लाहौर में गिरफ़्तार.

१६ नवंबर : गोमुल्का पोलैंड के कम्युनिस्ट पार्टी के पुनः नेता निर्वाचित.

१९ नवंबर : माली में रक्तहीन क्रांति. इटली की सरकार का इस्तीफ़ा.

२३ नवंबर : फ़्रांस के राष्ट्रपति द गॉल द्वारा मुद्रा-अवमूल्यन न करने का निर्णय.

२८ नवंबर : दक्षिण वीएतनाम पेरिस शांति-वार्त्ता में अपना प्रतिनिधिमंडल भेजने को तैयार.

४ दिसंबर : राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा द्वारा दक्षिण वीएतनाम का तीन सूत्रीय प्रस्ताव अस्वीकार.

१२ दिसंबर : अमेरिका के नव निर्वाचित राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन द्वारा अपने १२ मंत्रियों के नामों और विभागों की घोषणा.

१६ दिसंबर : स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद गुयाना में प्रथम आम चुनाव.

१७ दिसंबर : लंदन-सिडनी कार रेस में स्कॉटलैंड के एंड्रू कोवोन विजयी.

२४ दिसंबर : अमेरिका के अपोलो–८ के तीन अंतरिक्ष-यात्री चंद्रमा की सतह पर पहुँचने में सफल.

प्रतिरोध का सांस्कृतिक संबल

'राष्ट्र जीवित रहता है जब तक उस में सांस्कृतिक मूल्यों का सृजन करने की क्षमता रहती है...*हमारे राष्ट्र की जनसंख्या बहुत कम* है और जब भी हमें कुचलने का प्रयत्न किया गया हम ने संस्कृति का सहारा ले कर अपनी रक्षा की और हमने विजय प्राप्त की तो सब से पहले संस्कृति के क्षेत्र में.' इन शब्दों के साथ चेकोस्लोवाक लेखक संघ के नये मुखपत्र **लिस्टी** का पहला अंक ७ नवंबर १९६८ का प्रकाशित हुआ. उस ने अपने पाठकों को विश्वास दिलाया कि वह अपने पूर्ववर्ती पत्रों की परंपरा को ले कर ही आगे बढ़ेगा. उस को उन की कड़ी में ही माना जाये. नयी स्थिति में (अर्थात् सोवियत दवाव को देखते हुए) यह संभव है कि संपूर्ण सत्य कहा न जा सके, किंतु असत्य नहीं कहा जायेगा. साहित्य अपने ही ढंग से सत्य का उद्घाटन करता है; उस में कोई बाधा नहीं आयेगी.

साप्ताहिक लिस्टी का आकार और साज-सज्जा वैसी ही है जैसी कि उस के पूर्ववर्ती **लितराश्नी लिस्टी** की थी, जो सोवियत फ़ौजी हस्तक्षेप के बाद (सोवियत माँग पर) पाबंदी का शिकार हो गया था. लितराश्नी लिस्टी में शीर्ष पर पत्रिका के नाम के लिए दो 'लि. लि.' लिखे जाते थे (रोमन में एल. एल.) और नयी लिस्टी में एक 'लि' है और दूसरे का स्थान ख़ाली रखा गया है, जिस से एक ओर *यह बोध होता है कि यह पहले वाली ही* पत्रिका है और दूसरी ओर यह भी कि इस को पढ़ते हुए पंक्तियों के बीच की ख़ाली जगह का अर्थ भी समझा जाना चाहिए, अर्थात् निहित अर्थ पर भी ध्यान देना चाहिए, क्यों कि इस समय कई बातें सुन कर नहीं कही जा सकतीं. नाम के बगल में ही एक पदक का रेखा-चित्र है, जिस पर लिखा है 'क्षमा-२' और इस तरह एक ओर पाठकों से क्षमा माँगी गयी है, दूसरी ओर यह भी स्मरण करा दिया गया है कि एक बार नोवोतनी काल में **लितराश्नी नोविनी** पर पाबंदी लगायी गयी थी और दूसरी बार **लितराश्नी लिस्टी** पर सोवियत हस्तक्षेप के बाद.

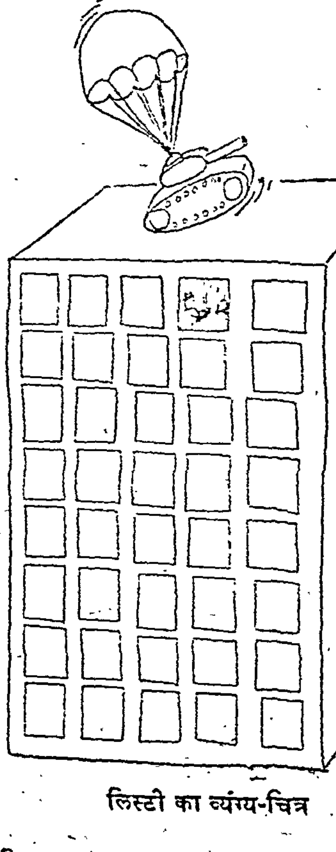

लिस्टी का व्यंग्य-चित्र

लिस्टी के नये संपादक हैं मिलान युंगमान, जो लितराश्नी नोविनी के संपादक थे.

फ़ौजों के साये में किये गये मॉस्को समझौते के अनुसार चेकोस्लोवाक समाचारपत्रों ने कोई सोवियत विरोधी सामग्री प्रकाशित न करने का *अहद किया है, लेकिन वे अपने* मनोभाव नहीं छिपाते और प्रत्यक्षत: नहीं तो अपरोक्ष रूप से सोवियत रीति-नीति का विरोध कर रहे हैं. **लिस्टी** के प्रथम अंक में अंतिम पृष्ठ पर सोवियत सरकार की एक १९१७ की घोषणा का प्रकाशन इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है. १९१७ में रूस की समाजवादी क्रांति के तुरंत बाद लेनिन और स्तालिन के हस्ताक्षरों से एक सरकारी घोषणा प्रकाशित हुई थी, जिस में पुराने ज़ारशाही साम्राज्य से सभी जातियों की मुक्ति की घोषणा की गयी थी और सभी जनता की समानता, प्रभुसत्ता तथा आत्मनिर्णय के अधिकार को—जिस में सोवियत संघ राज्य से अलग होने का निर्णय तक लेने का अधिकार भी शामिल है—स्वीकार किया गया था.

इस संदर्भ में मुखपृष्ठ पर ही प्रकाशित दार्शनिक कारेल कोसिक (जिन को डुबचेक ने कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति का नया सदस्य मनोनीत किया है) का लेख भी उल्लेखनीय है. शीर्षक है 'भ्रांति और यथार्थ'. इस में उन्होंने बताया है कि आधुनिक चेकोस्लोवाक राजनीति कई भ्रांतियों का शिकार रही है. यूरोप में चेकोस्लोवाकिया की विशेष स्थिति को देखते हुए एक यथार्थपरक नीति की आवश्यकता है. उन्होंने एक पुराने लेखक मारेक की यह उक्ति उद्धृत की है : 'राजनीति में शैतान से भी हाथ मिलाना संभव है, किंतु यह देखना आवश्यक है कि तुम उस की गर्दन पर सवार हो सको, वह तुम्हारे कंधों पर सवार न हो.'

आज की स्थिति का व्यंग्यात्मक और परिहासपूर्ण चित्र मिलता है पेतर ख़ुदोज़िलोव के रिपोर्ताज '२८ अक्तूबर को प्राग में क्या देखा' में. उस दिन चेकोस्लोवाकिया गणतंत्र की स्थापना की पचासवीं वर्षगाँठ मनायी गयी थी और प्राग में छात्रों ने सोवियत विरोधी *प्रदर्शन करते हुए सोवियत झंडे जलाये थे.*

स्तंभ 'अंकेत' एक प्रकार से प्रतिरोध-स्तंभ बन गया है. इस स्तंभ में लेखकों से पूछा गया है कि वे क्या लिख रहे हैं, या उन की क्या योजना है. लगभग चालीस लेखकों ने अपने उत्तर में सोवियत हस्तक्षेप के प्रति कटुता व्यक्त की है और बताया है कि वे एक मानसिक तनाव से गुज़रे हैं, जिस में लेखन-कार्य लगभग बंद हो गया.

लातनी और स्काला की कविताएँ इसी प्रकार का तनाव व्यक्त करती हैं. इस अंक में प्रमुख कवियों की कविताओं का न होना यही स्पष्ट करता है कि वे अभी नयी स्थिति के साक्षात्कार की जड़ता से उबर नहीं पाये हैं. महाकवि सेइफ़र्त ने लेख लिखा है, जिस में घोषणा की गयी है कि लेखक सदा से जनता के साथ रहा है और रहेगा.

कैमरे से आँख चुराते संसद

हाल ही में जिनेवा में आयोजित एक अंतर-राष्ट्रीय विचार-गोष्ठी में संसदीय गतिविधियों की रिपोर्ट तैयार करने से संबद्ध तौर-तरीक़ों पर विचार-विमर्श किया गया. गोष्ठी में ख़ास तौर से इस प्रश्न पर विचार किया गया कि संसदीय कार्यवाही के बारे में रेडियो और टेलीविज़न पर प्रसारण किया जाये, अथवा नहीं. अध्यक्ष श्री फ़्रेड पियार्ट ने काफ़ी विस्तार से इस सिलसिले में अपनी शंकायें प्रकट कीं कि संसद् की कार्यवाही को रेडियो तथा टेलीविज़न जैसे समाचार जानने के सार्वजनिक माध्यम द्वारा सब को बतला देना कहाँ तक उचित है. श्री रोबिन डे ने बी. बी. सी. की ओर से नहीं, व्यक्तिगत हैसियत से आवेश में आ कर रेडियो और टेलीविज़न द्वारा संसदीय कार्यवाही को प्रसारित करने के अधिकार का समर्थन किया. बाद में बी. बी. सी. व आई. टी. वी. के आधिकारिक प्रवक्ता भी बहस में शामिल हुए, किंतु उन्होंने तटस्थता की नीति बरती. उन का यह मत था कि यदि संसदीय कार्रवाई को प्रसारित करने के हक़ में निर्णय लिया गया तो बी. बी. सी. पूर्ण तकनीकी निर्णय पर बल देगा, यानी तब कार्यक्रम-निर्माताओं को यह अधिकार मिलना चाहिए कि वे जो उचित समझें उसी को प्रसारित करें, हालाँकि तब भी संतुलन और निष्पक्षता की नीति को हर हालत में बरक़रार रखा जायेगा.

जिनेवा में उक्त विचार-गोष्ठी का आयोजन अंतरसंसदीय यूनियन द्वारा किया गया, जिस में अनेक देशों के संसदज्ञ, पत्रकार और प्रसारण अधिकारी शामिल हुए.

पर्दा उठाओ : बहस के दौरान संसदीय लोकतंत्र अपनाने वाले देशों के अनेक वक्ताओं ने संसदीय गतिविधियों के प्रति जनता की उदासीनता और जनसंपर्क के माध्यमों को पुनः सामर्थ्य प्रदान करने की युक्तियों को अक्सर दुहराया. कम्युनिस्ट जगत् द्वारा इस विचार-गोष्ठी की उपेक्षा से यह तथ्य जाहिर हो गया कि उस के संसदों में विचाराभिव्यक्ति पर किस तरह पर्दा पड़ा रहता है. रेडियो और टेलीविज़न के प्रयोग पर की गयी बहस के दौर में यह बात बार-बार उभर कर सामने आयी कि माइक्रोफ़ोन और टेलीविज़न के प्रवेश पर प्रतिबंध लगा कर संसद अपने निर्वाचकों (जनता) से अपने को जुदा नहीं रख सकता. फिर भी श्री पीयार्ट के विचार तकनीकी पेचीदगी और राजनैतिक बंदिशों से संबद्ध उन के पूर्वग्रहों के कारण सब से अलग थे. बहस की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए अंतरसंसदीय यूनियन ने ५० देशों के उन ज़रियों का अध्ययन किया था जिन से उन देशों की जनता को संसदीय कार्रवाई की जानकारी दी जाती है. सिर्फ़ २९ देशों में ही रोज़ाना संसदीय बहसों को रिकॉर्ड किया जाता है. २० देशों में टेलीविज़न इस सबब से इस्तेमाल किया जाता है. लेकिन संसदीय कार्रवाई का पूरा लेखाजोखा थोड़े ही देशों में किया जाता है.

अधिकतर देशों में केवल संसद् में विचारित महत्त्वपूर्ण मसलों को ही टिप्पणी सहित सविस्तार प्रसारित किया जाता है.

ऑस्ट्रेलिया और कैनाडा के अलावा ब्रिटेन भी अपने संसदों में टेलीविज़न के प्रवेश की संभावना पर विचार कर रहे हैं. अंतरसंसदीय यूनियन के अनुसार इन तीनों देशों के संसदज्ञों को यह शंका है कि टेलीविज़न प्रवेश से संसदीय व्यवहार की परंपरागत शिष्टता बरक़रार नहीं रह पायेगी, क्यों कि टेलीविज़न कैमरा में तो संसद-सदस्यों की तमाम भाव-भंगिमाओं (हरकतें भी कह लीजिए) का अक्स खिंच आयेगा, जिस से संसदीय संस्थाओं के बारे में जनता के मन में क़ायम शिष्ट धारणाओं पर आघात पहुँचेगा.

प्रतिष्ठा का प्रश्न : राष्ट्रसंघ में रेडियो विभाग के प्रमुख अधिकारी श्री जॉन डी आर्क ने काफ़ी दिलचस्प बात कही. उन्होंने कहा कि संसदों को भी अब इलक्ट्रॉनिक युग के अनुकूल ढल जाना चाहिए. राष्ट्रसंघ के एक पर्यवेक्षण से ज्ञात हुआ है कि इन दिनों लोग समाचारपत्र पढ़ने के बजाय रेडियो और टेलीविज़न से जानकारी हासिल करना ज्यादा पसंद करते हैं. उन्होंने कहा इस टेलीविज़न युग में प्रचार-प्रसार के प्रमुख साधनों से पृथक रह कर विचार-विमर्श के प्रमुख स्थल के रूप में कोई भी संसद् अपना अस्तित्व क़ायम नहीं रख सकता और इस युग में, जब १२ में से ११-व्यक्ति टेलीविज़न देखते हैं, यह कहना अपने-आप में बहुत बड़ा अजूबा है कि किसी अदृश्य और मूक संसद ने अपनी प्रतिष्ठा खो दी है.

राजनीतिक समीक्षा

अपरिभाषित कालांश की परिभाषा

जनवरी, १९६७ में जब समाजवादी नेता और विचारक **डॉ. राममनोहर लोहिया** ने **दिनमान** के इस प्रतिनिधि से अपनी विशेष भेंट के दौरान न्यूनतम कार्यक्रमों के आधार पर "सत्ता पर कांग्रेस के एकाधिकार को सीमित करने के लिए ग़ैर-कांग्रेसी दलों की एकता" की बात की थी तब से जनवरी १९६९ के बीच, जब भारतीय लोकतंत्र अपने अस्तित्व के इक्कीस साल के सब से व्यापक मध्यावधि चुनाव के दरवाज़े पर खड़ा है जिस में देश की एक-तिहाई जनता अपने विश्वास और अविश्वास की दिशा का संकेत देगी, पूरे दो साल का अपरिमापित राजनैतिक कालांश बिखरा पड़ा है. संसदीय राजनीति की सीमाओं में,

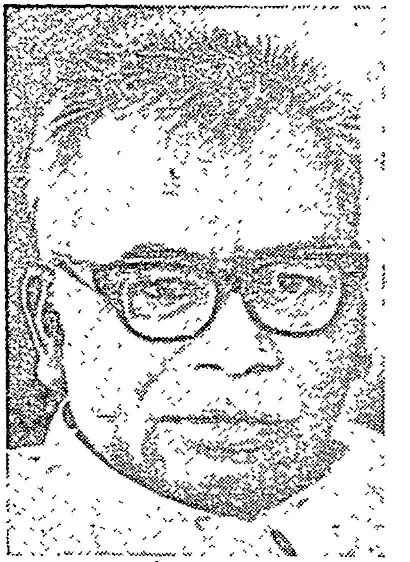

स्वर्गीय डॉ. लोहिया : स्थिति-चिंतन

डॉ. लोहिया के राजनैतिक स्थिति-चिंतन में न केवल फ़रवरी के चौथे आम चुनाव में कांग्रेस के एकाधिकार को शिथिल करने के कार्यक्रम थे बल्कि कांग्रेस के विकल्प के रूप में विभिन्न प्रदेशों में उभरने वाली ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों के चलाने के भी कार्यक्रम थे. चौथे आम चुनाव के साथ अस्तित्व में आये राजनैतिक पुनर्गठन की सैद्धांतिक कल्पना कांग्रेसवाद बनाम ग़ैर-कांग्रेसवाद के रूप में करने के अलावा इस के व्यावहारिक पक्ष पर उन्होंने कहा था : "एक-पक्षीय सरकार को उस की लिखी और बिना लिखी मान्यतायें सहारा देती हैं और विरोधी दलों को चाहिए कि वे अभी से अपने कार्यक्रम बनायें. यह काम सर्वदलीय मिलेजुले कार्यक्रमों से नहीं हो सकता, क्यों कि ये ठोस नहीं होते, इस में सरकार चलाने की शक्ति नहीं होती. इस लिए मैं तो कहूँगा कि स्थापित होने के ६ महीने के अंदर कोई न कोई ऐसा क़ानून ग़ैर-कांग्रेसी सरकार को बना लेना चाहिएं कि जिस से **कांग्रेस और जनराज का अंतर** स्पष्ट हो जाये..... मैं कहूँगा कि जो सरकार यह न कर सके उसे हटा देना होगा. यदि संसपा उस में शामिल है तो भी वह उसे समर्थन न दे, ऐसा मैं चाहता हूँ". सितंबर १९६७ के आखिरी सप्ताह में डॉ. लोहिया ने **दिनमान** के इसी प्रतिनिधि से अपनी आखिरी विशेष भेंट के दौरान क्रांतिकारिता के भारतीय संदर्भो को परिवर्त्तन की राजनीति के सहारे परिमापित करते हुए न्यूनतम कार्यक्रमों के आधार पर चलायी जा रही ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों की परिवर्त्तन-विरोधी प्रवृत्तियों का प्रसंग उठाया था और इस के खतरों पर प्रकाश डाला था. ६ महीने का यह समय पूरा होते-न-होते संसदीय राजनीति की सीमाओं में परिवर्त्तन की, इस राजनीति की सीमाओं और संभावनाओं के व्याख्याकार डॉ. लोहिया का निधन हो गया; १९६७ से १९६९ के बीच बिखरा राजनैतिक कालांश अपरिमापित होता गया और अब वह भयावह हो उठा है. इस राजनैतिक कालांश में कांग्रेस संगठित नहीं हुई है, लेकिन ग़ैर-कांग्रेसी शक्तियाँ विघटित हुई हैं; कांग्रेसी अतीत और लोकप्रियता की वापसी नहीं हुई है, लेकिन ग़ैर-कांग्रेसी सरकार और संगठन कांग्रेस और जनराज के अंतर को स्पष्ट कर सकने में विफल रहे हैं. ग़ैर-कांग्रेसवाद के उत्थान-काल में बंगाल, बिहार, मद्रास, केरल, ओडिसा, उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरयाणा और मध्यप्रदेश में (देश के ९ प्रदेशों में, जिन में यहाँ की दो-तिहाई जनता बसती है) ग़ैर-कांग्रेसी सरकारें थीं, जब कि १९६९ तक पहुँचते-पहुँचते बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश और पंजाब में (देश के चार प्रदेशों में, जिन में यहाँ की एक-तिहाई जनता बसती है) राष्ट्रपति-शासन हो गया, जो व्यवहार में सत्ताधारी दल की नौकरशाही का शासन होता है.

दूसरा दौर : कांग्रेसवाद बनाम ग़ैर-कांग्रेसवाद की राजनीति के दूसरे दौर का आरंभ ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों और संगठनों की बढ़ती सुरक्षात्मकता और कांग्रेसी केंद्र की स्फीत आक्रामकता से हुआ. कांग्रेसी केंद्र की आक्रामकता के सब से प्रखर संकेत कांग्रेस महासमिति के **हैदराबाद अधिवेशन** में मिले, जब कांग्रेस के नये अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा ने कांग्रेसी सरकारों के खिलाफ़ **राजनैतिक जेहाद** की घोषणा की. इस राजनैतिक जेहाद के कालांश में प्रदेशों में कांग्रेस-समर्थित अल्पसंख्यक सरकारें क़ायम होने का दौर शुरू हुआ, जिस की परिणति सम्बद्ध प्रदेशों में राष्ट्रपति-शासन की स्थापना में हुई. २० फ़रवरी को पश्चिम बंगाल में, २५ फ़रवरी को उत्तरप्रदेश में,

२९ जून को विहार में और २३ अगस्त १९६८ को पंजाब में राष्ट्रपति-शासन लागू कर दिया गया. इस राजनैतिक कालांश में ही क्रमश: विहार में **विंदेश्वरीप्रसाद मंडल, भोला पासवान शास्त्री**, वंगाल में **प्रफुल्लचंद घोष**, पंजाब में **लक्ष्मणसिंह गिल** की पर-समर्थन जीवी सरकारों का पतन हुआ तथा मध्यप्रदेश में संविद सरकार का गठन तथा २१ मई, १९६८ को **वंसीलाल** द्वारा मुख्यमंत्री-पद की शपथ-ग्रहण के साथ कांग्रेस की वापसी (जो अब भगवद्‌दयाल शर्मा और उन के समर्थकों के कांग्रेस छोड़ने से अस्थिर हो चुकी है) की घटनायें भी घटित हुईं. यह इसी अपरिभाषित और फिर सहसा भयावह हो उठे राजनैतिक कालांश की ही विशेषता है कि नयी दिल्ली में जब **कांग्रेस महासमिति विशेष अधिवेशन** हुआ तो उस में पार्टी और सरकार के सत्ता-सामंतों ने हरयाणा में कांग्रेस की वापसी को कांग्रेसी अतीत की वापसी के साथ जोड़ कर देखने की कोशिश की, जिस का विरोध कांग्रेस के अंदर रह कर उस की प्रखर आलोचना में विशेष योग्यता हासिल करने वाले कांग्रेसियों ने किया था. परिधि में इस विरोध के सब से प्रखर प्रवक्ता कांग्रेस संसदीय दल के उप-नेता **श्यामनंदन मिश्र** सावित हुए, जिन्होंने "मेरा पैग़ाम विरोध है, जहाँ तक पहुँचे" की नीति में आस्था का परिचय दिया. इस राजनैतिक कालांश की एक विशेषता यह भी रही कि यद्यपि **श्यामनंदन मिश्र** और उन जैसे शल्य-चिकित्सकों ने समय-समय पर कांग्रेस संस्था और सरकार के वीमार जिस्म की शल्य-परीक्षा जारी रखी लेकिन कांग्रेस संस्था और सरकार के तथा कांग्रेस संस्था के दोहरे अन्तर्द्वन्द्व बने रहे. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का प्रधानमंत्रित्व सुरक्षित रहा, लेकिन हैदरावाद में कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों के निर्वाचन के समय और वाद में नयी दिल्ली में केंद्रीय निर्वाचन समिति के सदस्यों के चुनाव के समय पार्टी के सत्ता-सामंतों ने उन्हें अपनी अरक्षा का तीखा अहसास कराया.

५ नवंबर, १९६८ को जब गोवा में विशेष तौर पर बुलाये गये अधिवेशन में कांग्रेस महा-समिति ने इस अपरिभाषित कालांश को परि-भाषित करने की कोशिश को शरावबंदी पर चलायी गयी वहस से निष्प्राण कर दिया तो राजनैतिक पर्यवेक्षकों को इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए वाध्य होना पड़ा कि सत्ताधारी दल जिस अंधेरे से गुजर रहा है, उस के पार-दर्शक होने की कल्पना भी केवल कल्पना है.

विरोध के अन्तर्विरोध: इस दो वर्षों में बिखरे राजनैतिक कालांश में, जो ग़ैर-कांग्रेसी संगठनों और सरकारों के संगठन और विघटन का काल है, सही मायने में राजनैतिक शक्तियों के नये ध्रुवीकरण की कोई तस्वीर सामने नहीं आयी है. जब ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों का संगठन शुरू ही हुआ था दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के श्री **भूपेश गुप्त** ने **दिनमान** के प्रतिनिधि से अपनी विशेष भेंट के दौरान यह मौलिक उद्‌घोषणा की थी कि **"इस नये दौर के राजनैतिक यथार्थ को ध्यान में रखते हुए हम किसी भी ग़ैर-कांग्रेसी दल के साथ राजनैतिक अस्पृश्यता बरतने की स्थिति में नहीं हैं"**. दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष **श्रीपाद अमृत डांगे** ने भी ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों के अस्तित्व के शुरू के दिनों में इस प्रतिनिधि को बताया था कि "यद्यपि अभी भी मैं प्रतिक्रियावादी को देश का दुश्मन नं. १ मानता हूँ लेकिन कार्यक्रमों के आधार पर ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों में अपनी पार्टी की साझेदारी का मैं विरोधी नहीं हूँ". मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता **ए. के. गोपालन** ने ग़ैर-कांग्रेसवाद के प्रारंभिक चरण में **दिनमान** के इसी प्रति-निधि से अपनी विशेष भेंट के दौरान **सौ-फ़ी-सदी कांग्रेस-विरोध** में अपनी आस्था व्यक्त की थी, यद्यपि उन्होंने जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी की चौथे आम चुनाव के वाद शक्ति-वृद्धि को लोकतंत्र के भविष्य के लिए खतरनाक

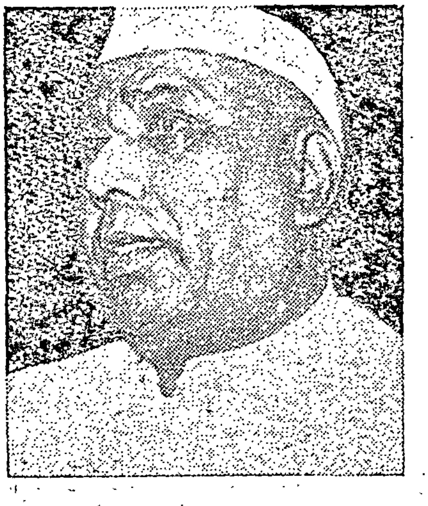

चव्हाण : सत्ता-चिंतन

बताते हुए इन के प्रति सतर्क रहने की मासूम आकांक्षा व्यक्त कर दी थी. जब प्रतिनिधि ने उन से जानना चाहा था कि जब आप जनसंघ और स्वतंत्र को "प्रतिक्रियावादी कांग्रेस का ही विकल्प" मानते आये हैं तो विहार और उत्तर-प्रदेश तथा पंजाब के ग़ैर-कांग्रेसी मोर्चों में, जिन में ये दल भी हैं, अपने पार्टी के विधायकों को शामिल ही क्यों होने देते हैं; तो वह यह कह कर इस सवाल को टाल गये थे कि "यह कांग्रेस-विरोधी जनमत की आकांक्षा" का स्वागतमात्र है. स्वागत या साझेदारी, जिस रूप में भी इसे देखा जाये, यह इस राजनैतिक कालांश की विशेषता रही है. संयुक्त समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष **श्रीधर महादेव जोशी**, जनसंघ के अध्यक्ष **अटलविहारी वाजपेयी**; प्रजा समाज-वादी पार्टी के नेता **सुरेंद्रनाथ द्विवेदी** और स्वतंत्र पार्टी के अध्यक्ष **प्रोफ़ेसर एन. जी. रंगा** ने भी **दिनमान** के प्रतिनिधि से अपनी विशेष भेंटों के दौरान, ग़ैर-कांग्रेसवाद के आरंभिक दिनों में कांग्रेस-विरोध की राजनीति को उस दौर की संसदीय राजनीति का मुहावरा माना था. श्री अटलविहारी वाजपेयी ने तो दिनमान के इसी प्रतिनिधि से अपनी एक और विशेष भेंट के दौरान ग़ैर-कांग्रेसी संगठनों और सरकारों की स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए **केंद्रीय स्तर पर एक ग़ैर-कांग्रेसी संयोजन समिति** के गठन की वात की थी. इसी तरह लोकसभा में द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के उप-नेता **कृष्णन् मनोहरन्** ने भी, प्रतिनिधि से अपनी विशेष भेंट के दौरान, **कांग्रेसी शक्ति की वापसी के भय** के इर्द-गिर्द ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों के संगठन पर ज़ोर दिया था. लेकिन इधर हाल में जब जनवरी १९६७ से जनवरी १९६९ के बीच बिखरे राजनैतिक कालांश को परिभाषित करने के प्रयास में **दिनमान** के प्रतिनिधि ने इन नेताओं से मुलाकात की तो उन्हें मोह-भंग की मन:स्थिति में पाया. दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के श्री **भूपेश गुप्त** और अध्यक्ष **अमृतपाद डांगे** ग़ैर-कांग्रेसवाद की सीमित उपयोगिता को स्वीकार करने के वावजूद चौथे आम चुनाव के पूर्व के अपने उन निष्कर्षों की ओर लौटते नज़र आये जिन के अधीन एक साथ ही दो मोर्चों पर लड़ने की स्थिति सहज मानी गयी थी. इसी तरह मार्क्स-वादी कम्युनिस्ट पार्टी के श्री **ए. के. गोपालन्** और श्री **सत्यनारायण सिंह** कांग्रेस को "दुश्मन नंवर एक" मानने के वावजूद दो वर्षों के इस राजनैतिक कालांश में "विकसित एक नयी समझदारी का" ज़िक्र करना ज़्यादा पसंद करते हैं. इन दोनों नेताओं ने "कांग्रेस और उस के प्रतिक्रियावादी विकल्पों स्वतंत्र पार्टी और जनसंघ के विरुद्ध समाजवादी और प्रगतिशील, लोकतंत्री दलों की एकता" पर ज़ोर दिया. संयुक्त समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष **श्रीधर महादेव जोशी** ने मध्यावधि चुनाव के पूर्व परिभाषित कार्यक्रमों के आधार पर ग़ैर-कांग्रेसी संयुक्त मोर्चों की उपयोगिता को स्वीकार किया, लेकिन विहार और उत्तर-प्रदेश में इस की सफलता के कोई आसार न देख कर लोकतंत्री समाजवादी दलों के संयुक्त मोर्चे का विकल्प ठुकरा बैठने को ज़ल्दवाज़ी क़रार दिया. जनसंघ के **अटलविहारी वाजपेयी** और स्वतंत्र पार्टी के **एन. जी. रंगा** कांग्रेस-विरोध के साथ-साथ कम्युनिस्ट हिंसात्मकता और आक्रामकता के विरोध पर भी ज़ोर देते पाये गये. **नगरक्वाय** के उप-निर्वाचन में संयुक्त मोर्चा समर्थित स्वतंत्र पार्टी के उम्मीदवार का समर्थन न कर के अलग से अपना उम्मीदवार खड़ा करने के लिए मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की तीखी आलोचना करने के वावजूद **द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के श्री कृष्णन् मनोहरन्** ने प्रतिनिधि से अपनी हाल की विशेष भेंट के दौरान कांग्रेस को सत्ता से दूर रखने तथा "वैलट वॉक्स क्रांति की संभावनाओं को निखारने के लिए" ग़ैर-कांग्रेसी संगठनों की

उपयोगिता मोह-भंग की शैली में स्वीकार की. अगर जनवरी १९६७ से जनवरी १९६९ के बीच कांग्रेस सरकार और संगठन के अंतःद्वंद्व तीखे हुए हैं तो प्रतिपक्ष के अंतःद्वंद्व भी कम तीखे नहीं हुए हैं, यह बात इस से भी साफ़ हो गयी कि प्रतिपक्ष के नेताओं ने आसन्न मध्यावधि चुनाव के बारे में कोई निश्चित मत व्यक्त नहीं किया.

यथा-स्थिति और व्यथा स्थिति : २ जनवरी, १९६८ को जब केंद्रीय सरकार ने विवादास्पद कश्मीरी नेता **शेख मोहम्मद अब्दुल्ला** की नज़रबंदी समाप्त कर दी तो समझा गया था कि शायद शेख की नीतियों में कोई परिवर्त्तन आया हो जिस का संकेत उन्होंने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को दिया हो. रिहाई के बाद शेख अब्दुल्ला ने विभिन्न दलों के नेताओं से मिलने का जो अभियान चलाया, उस से भी इस बात की आशा बंधी थी कि शायद वह कश्मीर समस्या के बदले यथार्थ से साक्षात्कार कर रहे हों. विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों से मिलने के बाद जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने **कोटला फ़िरोज़शाह लेन के कमरा नं. ३** में शेख अब्दुल्ला से बातचीत की तो पाया कि शेख अब्दुल्ला के दृष्टिकोण में कोई बुनियादी परिवर्त्तन नहीं आया है, कि अभी भी शब्दावली बदल कर वह आज़ाद कश्मीर के संदर्भ में ही सोचते हैं लेकिन रचनात्मक समाधान के वह विरोधी नहीं हैं. २ जनवरी १९६८ और जनवरी १९६९ का काल कुल मिला कर शेख अब्दुल्ला और भारत सरकार दोनों के लिए ही यथा-स्थिति से व्यथा-स्थिति और फिर यथा-स्थिति में वापसी का काल रहा, यद्यपि इस बीच भारत सरकार ने शेख से न मिलने और शेख ने उस की लोकतांत्रिक काट के रूप में **सात दिवसीय** सम्मेलन का आयोजन किया. सम्मेलन शेख की अध्यक्षता में श्रीनगर में हुआ जिस में सर्वोदयी विचारक **जयप्रकाश नारायण** ने पहली बार साफ़ शब्दों में शेख और उन के समर्थकों पर स्पष्ट कर दिया कि कश्मीर समस्या का कोई समाधान भारतीय संविधान की सीमा में ही निकाला जा सकता है. दूसरे सम्मेलन के आयोजन के लिए जम्मू को उपयुक्त समझा गया. सम्मेलन की **१२ सदस्यीय संचालन समिति** ने दूसरे सम्मेलन के लिए प्राप्त सुझावों का सारांश तैयार करने के लिए **तीन सदस्यों की एक उपसमिति** का गठन भी किया. जनवरी १९६९ के आखिरी सप्ताह में इस उपसमिति के प्रस्तावों पर संचालन समिति के सदस्यों द्वारा विचार किया जायेगा. इस बीच बंबई में प्रेस गिल्ड को संबोधित करते हुए कश्मीर के मुख्यमंत्री **सादिक** ने **जनमत-संग्रह मोर्चा** के कमज़ोर पड़ने की बात की तो शेख अब्दुल्ला ने उस के उत्तर में २२ दिसंबर १९६८ को श्रीनगर में एक लाख कश्मीरी जनता की उपस्थिति से गदगद हो कर यह घोषणा की कि जनमत-संग्रह मोर्चे के कमज़ोर पड़ने की बात करना तथ्यों की अवहेलना करना है. **१३ दिसंबर** को लोकसभा में निर्दलीय संसद सदस्य श्री **प्रकाशवीर शास्त्री** के एक प्रश्न के उत्तर में जब गृहमंत्री **यशवंतराव चव्हाण** ने सदन को बताया कि सरकार फ़िलहाल जनमत संग्रह मोर्चा के खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं करने जा रही है तो राजनैतिक पर्यवेक्षकों को इस निष्कर्ष को सही न मानने का कोई कारण नहीं मिला कि शेख और उन के समर्थकों के बारे में सरकार की नीति में अभी कोई परिवर्त्तन नहीं होने जा रहा है.

१० जनवरी, १९६८ को जब केंद्रीय सरकार ने **आपात्कालीन स्थिति** को समाप्त करने की घोषणा की, तो यह समझा गया कि वह जनवरी १९६७ से जनवरी. १९६९ के बीच बिखरे और अपरिभाषित हो कर भयावह हो उठे राजनैतिक कालांश की उपलब्धि नहीं

जयप्रकाश नारायण : स्पष्ट चिंतन

है बल्कि एक ऐसा निर्णय है जो अनिर्णय के बेहद लंबे खिंचे दौर से गुज़रा है. **ग़ैर-कानूनी गतिविधि निरोधक अधिनियम** से लैस सरकार आपात्कालीन अधिकारों के बिना असाधारण अधिकारों का उपयोग कर सकती है और जिसे भारत के भूतपूर्व एटार्नी जनरल **श्री सेतलवाड़** ने **"संवैधानिक तानाशाही"** कहा है, उसे कार्यान्वित कर सकती है. १७ जनवरी, १९६८ को जब केंद्रीय सरकार ने मिज़ो नेशनल फ्रंट पर प्रतिबंध लगाया तो इस निर्णय का स्वागत किया गया लेकिन इस से पूर्वोत्तर भारत के उलझते राजनैतिक समीकरण को सुलझाने में सफलता नहीं मिल सकी. असम के पुनर्गठन को ले कर केंद्रीय मंत्रिमंडल जिस अनिर्णय का बंदी रहा और जिस तरह मंत्रिमंडल के अंदर का शक्ति-संतुलन और संगठन तथा सरकार के संबंधों का समीकरण उलझता रहा, उसे देखते हुए इस राजनैतिक कालांश को, एक सीमित अर्थ में, **कांग्रेस की दहशत का कालांश** भी कहा जा सकता है. २५ मई, १९६८ को जब ऑल पार्टी हिल लीडर्स कांफ्रेंस के सभी ९ सदस्यों ने असम विधानसभा से त्यागपत्र दे दिया तो पुनर्गठन को राष्ट्रीय एकता के व्यापक संदर्भ में देखने की ज़रूरत महसूस की गयी और बाद में वह विधेयक सामने आया जिस में असम के पहाड़ी राज्यों को उपराज्यों का दर्जा देने की बात स्वीकार की गयी. नगालैंड में जनवरी के महीने में आम चुनाव होने हैं और यद्यपि भारत सरकार ने युद्ध-विराम की मियाद बढ़ा दी है, लेकिन वहाँ युद्धविराम के बावजूद विराम-युद्ध का माहौल बना रहा.

अपरिभाषित असंतोष : संसद् के बाहर अपरिभाषित असंतोष का दौर अगर अपने आप को उजागर करता रहा तो संसद् के अंदर अविश्वास प्रस्तावों की दिशाहीनता का तीखा अहसास सदस्यों को होता रहा. राष्ट्रव्यापी छात्र-आंदोलनों की परिभाषा तलाशने का प्रयास केवल राजनैतिक पार्टियों पर छोड़ दिया गया. १९ सितंबर, १९६८ को केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों की राष्ट्रव्यापी एक-दिवसीय सांकेतिक हड़ताल और उस के बाद प्रदर्शन और दमन का जो दौर शुरू हुआ उसे भी इस राजनैतिक कालांश की घटना समझा जाना चाहिए जो अपरिभाषित हो कर किस्तों में भयावह होती गयी है. केंद्र-राज्य संबंध, कांग्रेसवाद बनाम ग़ैर-कांग्रेसवाद के रूप में राजनैतिक शक्तियों के पुनर्गठन के दबाव से प्रभावित होता रहा और न केवल द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के नेताओं ने इस के लिए संविधान में संशोधन की माँग की, बल्कि अपनी हाल की बैठक में भारतीय जनसंघ की कार्य-समिति ने भी एक प्रस्ताव पास कर के यह घोषित किया कि यह संबंध बेहद असंतोष-प्रद है. कार्य-समिति ने संविधान की धारा २६३ के अधीन राष्ट्रपति से यह आग्रह किया कि वह एक परिषद् का गठन करें जो केंद्र और राज्य-संबंधों को सुनियंत्रित कर सके. केरल के मुख्यमंत्री श्री **ई. एम. एस. नंबूदिरिपाद** ने कांग्रेसी केंद्र और ग़ैर-कांग्रेसी राज्यों की राजनैतिक स्थिति के संदर्भ में केंद्र-राज्य संबंधों को परिभाषित करने की माँग तेज़ की है. केंद्रीय कर्मचारियों की सांकेतिक हड़ताल के दौरान श्री नंबूदिरिपाद ने अपनी इस माँग को एक नया रूप दिया जब उन्होंने केंद्रीय अध्यादेश के बावजूद हड़तालियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई न करने का फ़ैसला किया. नंबूदिरिपाद ने गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण को समय-समय पर लिखे गये अपने पत्रों में कांग्रेसी केंद्र के असंवैधानिक रवैये की आलोचना की है और संविधान की धारा २६३ के अधीन राष्ट्रपति से आग्रह किया है कि वह एक परिषद् का गठन करें. दिसंबर के आखिरी सप्ताह में जब केरल के मुख्यमंत्री ने यह घोषित किया कि

विवादास्पद केंद्रीय अध्यादेश के अधिनियम बनने के बावजूद हड़ताली कर्मचारियों के खिलाफ़ कार्रवाई न करने का उन का निर्णय अपनी जगह है और जब केरल के एक न्यायालय ने २८४ केंद्रीय कर्मचारियों के खिलाफ़ चलाये गये मुक़द्दमों को वापस लेने से इनकार कर दिया तो एक अच्छा-खासा राजनैतिक और संवैधानिक विवाद सतह पर आ गया. इस के विपरीत, ६ सितंबर, १९६७ को जब मद्रास के खाद्यमंत्री **श्री मथियाघगन** ने तमिषनाडु दिवस के सिलसिले में आयोजित एक समारोह में यह घोषणा की कि द्रविड़नाड की हमारी माँग बनी हुई है तो राजनैतिक क्षेत्रों में कोई खास आश्चर्य नहीं हुआ. समझा गया कि मद्रास के खाद्यमंत्री का यह भाषण राज्यों को अधिकाधिक स्वशासन दिये जाने के उद्देश्य से प्रेरित था और इस के समर्थन में उन के बिलकुल समानांतर दिये गये मुख्यमंत्री **अन्नादोरै** के उस भाषण का ज़िक्र किया गया जिस में उन्होंने राष्ट्रीय एकता को ठोस आधार देने की माँग की थी. चौथे आम चुनाव के बाद गठित चौथी लोकसभा भी कांग्रेसवाद बनाम गैर-कांग्रेसवाद के पुनर्गठन का दबाव महसूस करती रही. अध्यक्ष **नीलम संजीव रेड्डी** ने लोकसभा के इस नये पुनर्गठन की सीमाओं और संभावनाओं से साक्षात्कार करते हुए संसदीय प्रक्रिया और आचार-संहिता को परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस की लेकिन परिभाषा का संकट अभी तक टला नहीं है. प्रश्नकाल से संबद्ध नियमों में कुछ अनियमितताओं के दर्शन भी इस राजनैतिक लाभांश में हुए जब कि व्यवस्था का प्रश्न, विशेषाधिकार प्रस्ताव और यहाँ तक कि अविश्वास प्रस्ताव चौथी लोकसभा की सामान्य घटनाएँ बनने के बावजूद साधारण से अधिक कुछ हासिल करने में सफल नहीं हो सकीं.

जिस तरह जनवरी, १९६७ से जनवरी, १९६९ के बीच बिखरा यह राजनैतिक कालांश संसद् के बाहर परिभाषा का संकट खड़ा करता रहा उसी तरह संसद् के अंदर भी परिभाषा के बढ़ते संकट का एहसास कराता रहा. जब प्रसपा के संसद् सदस्य श्री **नाथ पै** ने लोकसभा में संविधान में संशोधन का अपना विधेयक पेश किया तो शीतकालीन संसद् में अतिरिक्त गर्मी का संचार हुआ. **नाथ पै** के विधेयक ने, जिस का संबंध मौलिक अधिकारों से है, न केवल सत्ताधारी दल के अंतर्विरोधों को उजागर किया, बल्कि विरोधी दलों के अंतर्विरोधों को भी सतह पर ला दिया. यह विधेयक जहाँ एक ओर कार्यपालिका और न्यायपालिका के संबंधों के अपरिभाषित संदर्भ को छूता है, वहाँ दूसरी ओर संसद् और संविधान की सापेक्ष सर्वोपरिता के अपरिभाषित संदर्भ को भी झकझोरता है.

राजनैतिक तंत्र

नया, मतलब गया नया

भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति ने गत सप्ताह राष्ट्रीय समस्याओं के साक्षात्कार के दौरान केंद्र-राज्य संबंध, कांग्रेसी केंद्र अनियमितता, उग्रपंथी कम्युनिस्टों की हिंसात्मक गतिविधियाँ, मध्यप्रदेश सरकार के अंतरविरोधों और संघात्मक संविधान की सीमाएँ—लगभग सभी मसलों पर काम चलाऊ ढंग से विचार किया. सरगर्म बहस के बाद प्रस्ताव के रूप में जो निष्कर्ष सामने आये, उन में नये के नाम पर गये नये की भरमार थी. कार्यसमिति के नज़दीकी सूत्रों ने **दिनमान** के इस प्रतिनिधि को बताया कि प्रस्ताव को आखिरी रूप मिलने के पहले मौजूदा अध्यक्ष अटलविहारी वाजपेयी और भूतपूर्व अध्यक्ष बलराज मधोक के सैद्धांतिक मतभेद भी खुलकर सामने आये. यद्यपि पार्टी के वर्तमान मंत्री जगन्नाथराव जोशी ने संवाददाताओं को यह कह कर आश्वस्त किया कि अप्रैल के दूसरे सप्ताह में जब पार्टी का वार्षिक सम्मेलन बंबई में होगा तब श्री अटलविहारी वाजपेयी को सर्वसम्मति से दोबारा अध्यक्ष चुन लिया जायेगा, लेकिन पार्टी के कुछ अन्य सूत्रों से ज्ञात हुआ कि बलराज मधोक और उन के समर्थक श्री वाजपेयी के चुनाव को सर्वसम्मत न होने देने की कोशिश में लगे हुए हैं.

प्रस्ताव में केंद्र और राज्यों के मौजूदा संबंध को असंतोषप्रद बताया गया और संविधान की धारा २६३ के अधीन राष्ट्रपति से यह आग्रह किया गया है कि वह एक परिषद् का गठन करें. परिषद् के गठन के अपने सुझाव के पक्ष में कार्यसमिति ने मुख्यरूप से दो तर्क दिये हैं. पहला तर्क यह कि चौथे आम चुनाव के बाद बीस माह के अनुभव यह बताते हैं कि कांग्रेसी केंद्र और ग़ैर-कांग्रेसी राज्यों के संबंधों को सुसंगठित करने का वक़्त अब आ गया है. दूसरा तर्क यह दिया गया है कि आर्थिक स्रोतों के बटवारे के प्रश्न पर केंद्र का रवैया पक्षपातपूर्ण होने से उन प्रदेशों की सरकारों को गहरी निराशा का अनुभव करना पड़ा है जो कांग्रेस-विरोधी हैं. प्रस्ताव में जनसंघ का वह पुराना आग्रह भी दोहराया गया है जिस में संघात्मक व्यवस्था को एक कमज़ोर व्यवस्था बता कर एकात्मक संवैधानिक व्यवस्था की माँग की जाती रही है.

कार्यसमिति ने राजनैतिक घटनाओं के अपने समीक्षा-अभियान के दौरान यह पाया कि उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, हरयाणा और केरल के मामलों में कांग्रेसी केंद्र ने दूरदर्शिता का परिचय नहीं दिया है. हरयाणा में मुख्यमंत्री बंसीलाल के मंत्रिमंडल का बहुमत खो देने के बावजूद उसने ग़लत तरीक़ों से बहुमत को फिर से हासिल करने के प्रयास को बढ़ावा दिया है जब कि पहले पश्चिमी बंगाल में और बाद में केरल के सिलसिले में उसने वामपंथियों की चुनौती को संवैधानिक संकट के रूप में लेना गवारा नहीं किया है. कार्यसमिति ने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि जब पश्चिमी बंगाल से नक्सलवाड़ीवादी कम्युनिस्टों की हिंसात्मक गतिविधियों के समाचार प्राप्त हो रहे थे तब केंद्र हाथ पर हाथ धरे बैठा था और वही रुख आज वह केरल के मामले में अपना रहा है—बावजूद इस कटु सत्य के कि मुख्यमंत्री नंबूदिरीपाद ने न केवल हिंसात्मक गतिविधियों को नियंत्रित करने में विफलता का परिचय दिया है बल्कि १९ दिसंबर की राष्ट्रव्यापी सांकेतिक हड़ताल के लिए जिम्मेदार कर्मचारियों को क्षमादान दे कर केंद्रीय अध्यादेश की स्पष्ट अवहेलना की है.

कार्यसमिति ने केरल में उग्रपंथी कम्युनिस्टों की गतिविधियों के अलावा बिहार और आंध्रप्रदेश में भी उन की गतिविधियों का हवाला दिया है. उस के निष्कर्षों का आधार उस की प्रादेशिक समितियों के संरक्षण में प्रस्तुत की गयी वे रिपोर्टें हैं जिन में उग्रपंथियों की गतिविधियों को ग़ैरसंवधानिक और ग़ैरक़ानूनी बताया गया है. कार्यसमिति ने समय रहते इन हिंसात्मक गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए केंद्र से एक उच्चस्तरीय जाँच समिति के गठन का आग्रह किया जिस के माने जाने की उसे कोई उम्मीद नहीं है. कार्यसमिति ने गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण के इस तर्क को स्वीकार नहीं किया है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के उग्रपंथियों का इन गतिविधियों से कोई संबंध नहीं है. इस के विपरीत उस का कहना है कि दरअसल मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ही उग्रपंथियों की गतिविधियों के मूल में है, यद्यपि चिर परिचित कम्युनिस्ट रणनीति का अनुसरण करते हुए वह इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर रहे हैं.

इसी तरह कार्यसमिति ने चौथे आम चुनाव के बाद के बीस मास के अपने अनुभव में यह नया अनुभव जोड़ दिया है कि ग़ैरकांग्रेसवाद व्यवहार में गुज़रे ज़माने की राजनीति का पर्याय बन चुका है. दूसरे दौर की राजनीति में राजनैतिक शक्तियों के ध्रुवीकरण को अब वह केवल कांग्रेस बनाम ग़ैरकांग्रेसवाद के रूप में न देख कर कम्युनिस्ट बनाम ग़ैर-कम्युनिस्टवाद के रूप में भी देखने लगी है. इस नयी चेतना को, जिसे चौथे आम चुनाव के पूर्व की चेतना समझा जा रहा है, पार्टी के अंदर श्री बलराज मधोक की वामपंथ-विरोधी नीतियों की विजय कहा जा सकता है.

उपयोगिता मोह-भंग की शैली में स्वीकार की. अगर जनवरी १९६७ से जनवरी १९६९ के बीच कांग्रेस सरकार और संगठन के अंत:द्वंद्व तीखे हुए हैं तो प्रतिपक्ष के अंत:द्वंद्व भी कम तीखे नहीं हुए हैं, यह बात इस से भी साफ़ हो गयी कि प्रतिपक्ष के नेताओं ने आसन्न मध्यावधि चुनाव के बारे में कोई निश्चित मत व्यक्त नहीं किया.

यथा-स्थिति और व्यथा स्थिति : २ जनवरी, १९६८ को जब केंद्रीय सरकार ने विवादास्पद कश्मीरी नेता **शेख मोहम्मद अब्दुल्ला** की नज़रबंदी समाप्त कर दी तो समझा गया था कि शायद शेख की नीतियों में कोई परिवर्तन आया हो जिस का संकेत उन्होंने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को दिया हो. रिहाई के बाद शेख अब्दुल्ला ने विभिन्न दलों के नेताओं से मिलने का जो अभियान चलाया, उस से भी इस बात की आशा बंधी थी कि शायद वह कश्मीर समस्या के बदले यथार्थ से साक्षात्कार कर रहे हों. विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों से मिलने के बाद जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने **कोटला फ़िरोजशाह लेन के कमरा नं. ३** में शेख अब्दुल्ला से बातचीत की तो पाया कि शेख अब्दुल्ला के दृष्टिकोण में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया है, कि अभी भी शब्दावली बदल कर वह आज़ाद कश्मीर के संदर्भ में ही सोचते हैं लेकिन रचनात्मक समाधान के वह विरोधी नहीं हैं. २ जनवरी १९६८ और जनवरी १९६९ का काल कुल मिला कर शेख अब्दुल्ला और भारत सरकार दोनों के लिए ही यथा-स्थिति से व्यथा-स्थिति और फिर यथा-स्थिति में वापसी का काल रहा, यद्यपि इस बीच भारत सरकार ने शेख से न मिलने और शेख ने उस की लोकतांत्रिक काट के रूप में **सात दिवसीय** सम्मेलन का आयोजन किया. सम्मेलन शेख की अध्यक्षता में श्रीनगर में हुआ जिस में सर्वोदयी विचारक **जयप्रकाश नारायण** ने पहली बार साफ़ शब्दों में शेख और उन के समर्थकों पर स्पष्ट कर दिया कि कश्मीर समस्या का कोई समाधान भारतीय संविधान की सीमा में ही निकाला जा सकता है. दूसरे सम्मेलन के आयोजन के लिए जम्मू को उपयुक्त समझा गया. सम्मेलन की **१२ सदस्यीय संचालन समिति** ने दूसरे सम्मेलन के लिए प्राप्त सुझावों का सारांश तैयार करने के लिए **तीन सदस्यों की एक उपसमिति** का गठन भी किया. जनवरी १९६९ के आखिरी सप्ताह में इस उपसमिति के प्रस्तावों पर संचालन समिति के सदस्यों द्वारा विचार किया जायेगा. इस बीच बंबई में प्रेस गिल्ड को संबोधित करते हुए कश्मीर के मुख्यमंत्री **सादिक** ने **जनमत-संग्रह मोर्चा** के कमज़ोर पड़ने की बात की तो शेख अब्दुल्ला ने उस के उत्तर में २२ दिसंबरी १९६८ को श्रीनगर में एक लाख कश्मीरी जनता की उपस्थिति से गदगद हो कर यह घोषणा की कि जनमत-संग्रह मोर्चे के कमज़ोर पड़ने की बात करना तथ्यों की अवहेलना करना है. **१३ दिसंबर** को लोकसभा में निर्दलीय संसद सदस्य श्री **प्रकाशवीर शास्त्री** के एक प्रश्न के उत्तर में जब गृहमंत्री **यशवंतराव चव्हाण** ने सदन को बताया कि सरकार फ़िलहाल जनमत संग्रह मोर्चा के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं करने जा रही है तो राजनैतिक पर्यवेक्षकों को इस निष्कर्ष को सही न मानने का कोई कारण नहीं मिला कि शेख और उन के समर्थकों के बारे में सरकार की नीति में अभी कोई परिवर्तन नहीं होने जा रहा है.

१० जनवरी, १९६८ को जब केंद्रीय सरकार ने **आपात्कालीन स्थिति** को समाप्त करने की घोषणा की, तो यह समझा गया कि वह जनवरी १९६७ से जनवरी १९६९ के बीच बिखरे और अपरिभाषित हो कर भयावह हो उठे राजनैतिक कालांश की उपलब्धि नहीं

जयप्रकाश नारायण : स्पष्ट चिंतन

है बल्कि एक ऐसा निर्णय है जो अनिर्णय के बेहद लंबे खिंचे दौर से गुज़रा है. **ग़ैर-कानूनी गतिविधि निरोधक अधिनियम** से लैस सरकार आपात्कालीन अधिकारों के बिना असाधारण अधिकारों का उपयोग कर सकती है और जिसे भारत के भूतपूर्व एटार्नी जनरल **श्री सेतलवाड़** ने **"संवैधानिक तानाशाही"** कहा है, उसे कार्यान्वित कर सकती है. १७ जनवरी, १९६८ को जब केंद्रीय सरकार ने मिज़ो नेशनल फ्रंट पर प्रतिबंध लगाया तो इस निर्णय का स्वागत किया गया लेकिन इस से पूर्वोत्तर भारत के उलझते राजनैतिक समीकरण को सुलझाने में सफलता नहीं मिल सकी. असम के पुनर्गठन को ले कर केंद्रीय मंत्रिमंडल जिस अनिर्णय का बंदी रहा और जिस तरह मंत्रिमंडल के अंदर का शक्ति-संतुलन और संगठन तथा सरकार के संबंधों का समीकरण उलझता रहा, उसे देखते हुए इस राजनैतिक कालांश को, एक सीमित अर्थ में, **कांग्रेस की दहशत का कालांश** भी कहा जा सकता है. २५ मई, १९६८ को जब ऑल पार्टी हिल लीडर्स कांफ्रेंस के सभी ९ सदस्यों ने असम विधानसभा से त्यागपत्र दे दिया तो पुनर्गठन को राष्ट्रीय एकता के व्यापक संदर्भ में देखने की ज़रूरत महसूस की गयी और बाद में वह विधेयक सामने आया जिस में असम के पहाड़ी राज्यों को उपराज्यों का दर्जा देने की बात स्वीकार की गयी. नगालैंड में जनवरी के महीने में आम चुनाव होने हैं और यद्यपि भारत सरकार ने युद्ध-विराम की मियाद बढ़ा दी है, लेकिन वहां युद्धविराम के बावजूद विराम-युद्ध का माहौल बना रहा.

अपरिभाषित असंतोष : संसद् के बाहर अपरिभाषित असंतोष का दौर अगर अपने आप को उजागर करता रहा तो संसद् के अंदर अविश्वास प्रस्तावों की दिशाहीनता का तीखा अहसास सदस्यों को होता रहा. राष्ट्रव्यापी छात्र-आंदोलनों की परिभाषा तलाशने का प्रयास केवल राजनैतिक पार्टियों पर छोड़ दिया गया. १९ सितंबर, १९६८ को केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों की राष्ट्रव्यापी एक-दिवसीय सांकेतिक हड़ताल और उस के बाद प्रदर्शन और दमन का जो दौर शुरू हुआ उसे भी इस राजनैतिक कालांश की घटना समझा जाना चाहिए जो अपरिभाषित हो कर किस्तों में भयावह होती गयी है. केंद्र-राज्य संबंध, कांग्रेसवाद बनाम ग़ैर-कांग्रेसवाद के रूप में राजनैतिक शक्तियों के पुनर्गठन के दबाव से प्रभावित होता रहा और न केवल द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के नेताओं ने इस के लिए संविधान में संशोधन की माँग की, बल्कि अपनी हाल की बैठक में भारतीय जनसंघ की कार्य-समिति ने भी एक प्रस्ताव पास कर के यह घोषित किया कि यह संबंध बेहद असंतोष-प्रद है. कार्य-समिति ने संविधान की धारा २६३ के अधीन राष्ट्रपति से यह आग्रह किया कि वह एक परिषद् का गठन करें जो केंद्र और राज्य-संबंधों को सुनियंत्रित कर सके. केरल के मुख्यमंत्री श्री **ई. एम. एस. नंबूदिरिपाद** ने कांग्रेसी केंद्र और ग़ैर-कांग्रेसी राज्यों की राजनैतिक स्थिति के संदर्भ में केंद्र-राज्य संबंधों को परिभाषित करने की माँग तेज़ की है. केंद्रीय कर्मचारियों की सांकेतिक हड़ताल के दौरान श्री नंबूदिरिपाद ने अपनी इस माँग को एक नया रूप दिया जब उन्होंने केंद्रीय अध्यादेश के बावजूद हड़तालियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई न करने का फ़ैसला किया. नंबूदिरिपाद ने गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण को समय-समय पर लिखे गये अपने पत्रों में कांग्रेसी केंद्र के असंवैधानिक रवैये की आलोचना की है और संविधान की धारा २६३ के अधीन राष्ट्रपति से आग्रह किया है कि वह एक परिषद् का गठन करें. दिसंबर के आखिरी सप्ताह में जब केरल के मुख्यमंत्री ने यह घोषित किया कि

विवादास्पद केंद्रीय अध्यादेश के अधिनियम बनने के बावजूद हड़ताली कर्मचारियों के खिलाफ़ कार्रवाई न करने का उन का निर्णय अपनी जगह है और जब केरल के एक न्यायालय ने २८४ केंद्रीय कर्मचारियों के खिलाफ़ चलाये गये मुक़द्दमों को वापस लेने से इनकार कर दिया तो एक अच्छा-खासा राजनैतिक और संवैधानिक विवाद सतह पर आ गया. इस के विपरीत, ६ सितंबर, १९६७ को जब मद्रास के खाद्यमंत्री **श्री मथियाषगन** ने तमिषनाडु दिवस के सिलसिले में आयोजित एक समारोह में यह घोषणा की कि द्रविड़नाड की हमारी माँग बनी हुई है तो राजनैतिक क्षेत्रों में कोई खास आश्चर्य नहीं हुआ. समझा गया कि मद्रास के खाद्यमंत्री का यह भाषण राज्यों को अधिकाधिक स्वशासन दिये जाने के उद्देश्य से प्रेरित था और इस के समर्थन में उन के बिलकुल समानांतर दिये गये मुख्यमंत्री **अन्नादोरै** के उस भाषण का ज़िक्र किया गया जिस में उन्होंने राष्ट्रीय एकता को ठोस आधार देने की माँग की थी. चौथे आम चुनाव के बाद गठित चौथी लोकसभा भी कांग्रेसवाद बनाम ग़ैर-कांग्रेसवाद के पुनर्गठन का दबाव महसूस करती रही. अध्यक्ष **नीलम संजीव रेड्डी** ने लोकसभा के इस नये पुनर्गठन की सीमाओं और संभावनाओं से साक्षात्कार करते हुए संसदीय प्रक्रिया और आचार-संहिता को परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस की लेकिन परिभाषा का संकट अभी तक टला नहीं है. प्रश्नकाल से संबद्ध नियमों में कुछ अनियमितताओं के दर्शन भी इस राजनैतिक लाभांश में हुए जब कि व्यवस्था का प्रश्न, विशेषाधिकार प्रस्ताव और यहाँ तक कि अविश्वास प्रस्ताव चौथी लोकसभा की सामान्य घटनाएँ बनने के बावजूद साधारण से अधिक कुछ हासिल करने में सफल नहीं हो सकीं.

जिस तरह जनवरी, १९६७ से जनवरी, १९६९ के बीच बिखरा यह राजनैतिक कालांश संसद् के बाहर परिभाषा का संकट खड़ा करता रहा उसी तरह संसद् के अंदर भी परिभाषा के बढ़ते संकट का एहसास कराता रहा. जब प्रसपा के संसद् सदस्य श्री **नाथ पै** ने लोकसभा में संविधान में संशोधन का अपना विधेयक पेश किया तो शीतकालीन संसद् में अतिरिक्त गर्मी का संचार हुआ. **नाथ पै** के विधेयक ने, जिस का संबंध मौलिक अधिकारों से है, न केवल सत्ताधारी दल के अंतर्विरोधों को उजागर किया, बल्कि विरोधी दलों के अंतर्विरोधों को भी सतह पर ला दिया. यह विधेयक जहाँ एक ओर कार्यपालिका और न्यायपालिका के संबंधों के अपरिमापित संदर्भ को छूता है, वहाँ दूसरी ओर संसद् और संविधान की सापेक्ष सर्वोपरिता के अपरिमापित संदर्भ को भी झकझोरता है.

राजनैतिक तंत्र

नया, मतलब गया नया

भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति ने गत सप्ताह राष्ट्रीय समस्याओं के साक्षात्कार के दौरान केंद्र-राज्य संबंध, कांग्रेसी केंद्र अनियमितता, उग्रपंथी कम्युनिस्टों की हिंसात्मक गतिविधियाँ, मध्यप्रदेश सरकार के अंतरविरोधों और संघात्मक संविधान की सीमाएँ—लगभग सभी मसलों पर काम चलाऊ ढंग से विचार किया. सरगर्म बहस के बाद प्रस्ताव के रूप में जो निष्कर्ष सामने आये, उन में नये के नाम पर गये नये की भरमार थी. कार्यसमिति के नज़दीकी सूत्रों ने **दिनमान** के इस प्रतिनिधि को बताया कि प्रस्ताव को आखिरी रूप मिलने के पहले मौजूदा अध्यक्ष अटलबिहारी वाजपेयी और भूतपूर्व अध्यक्ष बलराज मधोक के सैद्धांतिक मतभेद भी खुलकर सामने आये. यद्यपि पार्टी के वर्तमान मंत्री जगन्नाथराव जोशी ने संवाददाताओं को यह कह कर आश्वस्त किया कि अप्रैल के दूसरे सप्ताह में जब पार्टी का वार्षिक सम्मेलन बंबई में होगा तब श्री अटलबिहारी वाजपेयी को सर्वसम्मति से दोबारा अध्यक्ष चुन लिया जायेगा, लेकिन पार्टी के कुछ अन्य सूत्रों से ज्ञात हुआ कि बलराज मधोक और उन के समर्थक श्री वाजपेयी के चुनाव को सर्वसम्मत न होने देने की कोशिश में लगे हुए हैं.

प्रस्ताव में केंद्र और राज्यों के मौजूदा संबंध को असंतोषप्रद बताया गया और संविधान की धारा २६३ के अधीन राष्ट्रपति से यह आग्रह किया गया है कि वह एक परिषद् का गठन करें. परिषद् के गठन के अपने सुझाव के पक्ष में कार्यसमिति ने मुख्यरूप से दो तर्क दिये हैं. पहला तर्क यह कि चौथे आम चुनाव के बाद बीस माह के अनुभव यह बताते हैं कि कांग्रेसी केंद्र और ग़ैर-कांग्रेसी राज्यों के संबंधों को सुसंगठित करने का वक़्त अब आ गया है. दूसरा तर्क यह दिया गया है कि आर्थिक स्रोतों के बटवारे के प्रश्न पर केंद्र का रवैया पक्षपातपूर्ण होने से उन प्रदेशों की सरकारों को गहरी निराशा का अनुभव करना पड़ा है जो कांग्रेस-विरोधी हैं. प्रस्ताव में जनसंघ का वह पुराना आग्रह भी दोहराया गया है जिस में संघात्मक व्यवस्था को एक कमज़ोर व्यवस्था बता कर एकात्मक संवैधानिक व्यवस्था की माँग की जाती रही है.

कार्यसमिति ने राजनैतिक घटनाओं के अपने समीक्षा-अभियान के दौरान यह पाया कि उत्तरप्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, हरयाणा और केरल के मामलों में कांग्रेसी केंद्र ने दूरदर्शिता का परिचय नहीं दिया है. हरयाणा में मुख्यमंत्री बंसीलाल के मंत्रिमंडल का बहुमत खो देने के बावजूद उसने ग़लत तरीक़ों से बहुमत को फिर से हासिल करने के प्रयास को बढ़ावा दिया है जब कि पहले पश्चिमी बंगाल में और बाद में केरल के सिलसिले में उसने वामपंथियों की चुनौती को संवैधानिक संकट के रूप में लेना गवारा नहीं किया है. कार्यसमिति ने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि जब पश्चिमी बंगाल से नक्सलवाड़ीवादी कम्युनिस्टों की हिंसात्मक गतिविधियों के समाचार प्राप्त हो रहे थे तब केंद्र हाथ पर हाथ धरे बैठा था और वही रुख आज वह केरल के मामले में अपना रहा है—बावजूद इस कटु सत्य के कि मुख्यमंत्री नंबूदिरीपाद ने न केवल हिंसात्मक गतिविधियों को नियंत्रित करने में विफलता का परिचय दिया है बल्कि १९ दिसंबर की राष्ट्रव्यापी सांकेतिक हड़ताल के लिए जिम्मेदार कर्मचारियों को क्षमादान दे कर केंद्रीय अध्यादेश की स्पष्ट अवहेलना की है.

कार्यसमिति ने केरल में उग्रपंथी कम्युनिस्टों की गतिविधियों के अलावा बिहार और आंध्रप्रदेश में भी उन की गतिविधियों का हवाला दिया है. उस के निष्कर्षों का आधार उस की प्रादेशिक समितियों के संरक्षण में प्रस्तुत की गयी वे रिपोर्टें हैं जिन में उग्रपंथियों की गतिविधियों को ग़ैरसंवैधानिक और ग़ैरक़ानूनी बताया गया है. कार्यसमिति ने समय रहते इन हिंसात्मक गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए केंद्र से एक उच्चस्तरीय जाँच समिति के गठन का आग्रह किया जिस के माने जाने की उसे कोई उम्मीद नहीं है. कार्यसमिति ने गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण के इस तर्क को स्वीकार नहीं किया है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के उग्रपंथियों का इन गतिविधियों से कोई संबंध नहीं है. इस के विपरीत उस का कहना है कि दरअसल मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ही उग्रपंथियों की गतिविधियों के मूल में है, यद्यपि चिर परिचित कम्युनिस्ट रणनीति का अनुसरण करते हुए वह इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर रहे हैं.

इसी तरह कार्यसमिति ने चौथे आम चुनाव के बाद के बीस मास के अपने अनुभव में यह नया अनुभव जोड़ दिया है कि ग़ैरकांग्रेसवाद व्यवहार में गुज़रे ज़माने की राजनीति का पर्याय बन चुका है. दूसरे दौर की राजनीति में राजनैतिक शक्तियों के ध्रुवीकरण को अब वह केवल कांग्रेस बनाम ग़ैरकांग्रेसवाद के रूप में न देख कर कम्युनिस्ट बनाम ग़ैर-कम्युनिस्टवाद के रूप में भी देखने लगी है. इस नयी चेतना को, जिसे चौथे आम चुनाव के पूर्व की चेतना समझा जा रहा है, पार्टी के अंदर श्री बलराज मधोक की वामपंथ-विरोधी नीतियों की विजय कहा जा सकता है.

चरचे और चरखे

उड़न तश्तरियाँ

आर्जेंतीना के एक अनुसंधानकर्त्ता पेट्रो रोमान्यूक ने बताया है कि सोवियत संघ और अमेरिका दोनों के पास वाह्य अंतरिक्ष से आयी हुई क्षतिग्रस्त उड़न तश्तरियाँ हैं. उन्होंने यह सूचना जॉन केनेडी विश्वविद्यालय के एक भाषण-माला के अंतर्गत हाल में ही दी है. उन का कहना है कि सोवियत संघ के पास अंतरिक्ष का एक परिचारिका-यान है, जिस का अध्ययन वैज्ञानिक विशेषज्ञों का एक दल कर रहा है. लेकिन उन्होंने अपनी स सूचना का आधार नहीं बताया है. उन्होंने यह बताया कि अमेरिका ने न्यू मेक्सिको के पास एलामो गोर्दो में गिरा हुआ एक अंतरिक्ष-यान पाया है. उस के भीतर बिना किसी जोड़ या दरार के किसी सख्त धातु के बने हुए एक घेरे में ६ छोटे-छोटे शव है, जो कुछ-कुछ मनुष्य से मिलते जुलते हैं. संभवतः उड़न तश्तरी के एक दरवाज़े के बिगड़ जाने के कारण वाह्य वातावरण से उन की मृत्यु हुई. डॉ. रोमान्यूक ने यह भी कहा है कि यह उड़न तश्तरी ब्रह्मांडीय शक्ति से चालित थी, जिस के बारे में अधिक विस्तार से उन्होंने कुछ नहीं बताया. उड़न तश्तरी के भीतर पाया गया है कि ये शव किसी धातु के पारदर्शी नीले परिधान में लिपटे हुए हैं, जिन्हें न तो कैंचियों से काटा जा सकता है और न इस्पात गलाने वाली किरणों से ही गलाया जा सकता है.

इस सूचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार हम बाह्य अंतरिक्ष की विजय का स्वप्न देख रहे है और दूसरे नक्षत्रों में पहुँचने की योजना बना रहे हैं उसी तरह दूसरे नक्षत्र वाले भी हमारे गृह पर धावा बोलने की तैयारी कर रहे हैं.

कविता और बंदूक

एटा में ३ दिसंबर १९६८ को रात्रि में कवि-सम्मेलन की समाप्ति पर गोली चल गयी. अखबारों ने केवल यह छापा कि गोली चलाने वाले व्यक्ति चाहते थे कवि-सम्मेलन अभी जारी रहे. पर अंतिम कवि महोदय काव्य-पाठ से विरक्त हो चुके थे. विरक्ति के कारण की खोज करते-करते पता चला कि कवि-सम्मेलन मे महिलाओ की उपस्थिति में अशोभन अभिव्यक्ति की कवितायें चल रही थीं, जो रोष उत्पन्न कर रही थी. महिलाएँ उठ के चली गयी थीं और कवि महोदय फिर आग्रह करने पर भी कविताएँ सुनाने के 'मूड' में नही रहे.

मूल प्रश्न यह है कि आज के कवि-सम्मेलनों में कुछ अश्लील रचनाओं का और उन से अधिक अश्लील और निम्न स्तर की गद्य टिप्पणियों का, विशेष कर महिलाओं पर कटाक्ष करते हुए, पाठ करना एक रिवाज-सा हो गया है. जहाँ कुछ लोगों को यह भद्दा कविता-पाठ कुत्सित आनंद देता है वहाँ महिलाओं और संभ्रांत नागरिकों को वह असह्य हो उठता है. परिणाम जो एटा में हुआ वह तो असाधारण है, पर कानपुर में मेडिकल ऐसोसिएशन हॉल मे सुना था कि एक महिला चप्पल ले कर कवि महोदय को डाँटती हुई खड़ी हो गयी थी और उन्हें क्षमा माँग कर कविता बंद करनी पड़ी थी. आगरे में भी वही कविता उन्होंने एक बार उसी भौंडेपन से चालू रखी और आपत्ति करने पर उसे बंद किया गया.

यहाँ शील-अश्लील का प्रश्न साहित्य में शील-अश्लील के प्रश्न की तरह नही उठाया जा रहा है. उठ भी नही सकता. साहित्य अश्लील नही होता, जो अश्लील है वह साहित्य नही है. पर कवि-सम्मेलन में पढी जाने वाली इस तरह की रचनाओं में अश्लीलता का प्रश्न इस लिए उठता है कि वे काव्येतर प्रयोजन से लिखी जाती है. उन का उद्देश्य सस्ते स्तर के लोगों का मनोरंजन करना ही नही, उन के स्तर पर उतर कर उन का समर्थन पाना होता है. बाज़ारूपन और अश्लीलता वहाँ पनप सकती है. उस से बचा जाना चाहिए.

पांडुलिपियों की बिक्री

अभी तक जो लेखक इस संसार में नहीं रहता था उस की ही पांडुलिपियाँ बहुधा बिका करती थी. लेकिन अब दिन-प्रतिदिन जीवित लेखक भी अपनी पांडुलिपियाँ बेचने की दिशा में सक्रिय होते जा रहे है. इतना ही नहीं कि केवल प्रतिष्ठित लेखक ही अपनी पांडुलिपियाँ बेच सकते हैं, कभी-कभी नवोदित लेखकों से भी, जिन में प्रतिभा का सूत्र दिखाई देता है, अमेरिकी विश्वविद्यालय जैसी अनेक संस्थाएँ पांडुलिपियाँ खरीद लेती हैं. कुछ लोगों को इस बात से बहुत चिंता है कि अमेरिका में दिन-प्रतिदिन पत्रों और पांडुलिपियों की जो बाढ़ आयी हुई है वह बढ़ती जा रही है. वहाँ के विश्वविद्यालयों के पुस्तकालय और अन्य संस्थाएँ, जिन के पास पर्याप्त धन है, इस तरह के पत्र और पांडुलिपियाँ भारी संख्या में खरीद रही है. कहा जाता है कि ब्रिटेन को चाहिए कि ऐसी पांडुलिपियों का निर्यात बंद कर दे, क्यों कि ये पांडुलिपियाँ राष्ट्रीय संपत्ति है. लेकिन अमेरिकी विश्वविद्यालय, जिन के पास प्रचुर क्षमता है, विद्वानों को यह सुविधा दे रहे है कि वे किसी साहित्यिक सामग्री पर कार्य करें और बाद में उसे अमेरिकी विश्वविद्यालय को दे दे.

किंग्सले एमिस अपने प्रकाशित कृतियों की मूल टंकित पांडुलिपियाँ पिछले वर्ष तक बेचते रहे हैं. अन्य लेखक भी अपने पत्र और पांडुलिपियाँ बेच रहे हैं. सब से अधिक क़ीमत बेकेट जैसे लेखकों की पांडुलिपियों की लगायी जा रही है.

स्टीनबेक की मृत्यु

१९६२ के साहित्य नोबेल पुरस्कार और पुलित्ज़र पुरस्कार-विजेता जॉन स्टीनबेक का २० दिसंबर को ६६ वर्ष की आयु मे देहांत हो गया. कई महीनों से उन्हें दिल की बीमारी थी. सोते-सोते ही उन की हृदय-गति रुक गयी. स्टीनबेक अमेरिका के प्रसिद्ध लेखकों में से थे और संसार की ३३ से अधिक भाषाओं में उन के उपन्यासों का अनुवाद हो चुका है. नोबेल पुरस्कार ग्रहण करते समय स्टीनबेक ने कहा था 'लेखक का काम यह बताना है कि मनुष्य हृदय और आत्मा से महान् है. उस में साहस, करुणा और प्रेम के अद्वितीय गुण हैं और वह कभी पराजित नहीं होता'.

स्टीनबेक का जन्म २७ फ़रवरी १९०२ में कैलीफ़ोर्निया में हुआ था. वह सामाजिक आस्था और सुधारवादी दृष्टिकोण के उपन्यासकार थे. उन के उपन्यास मानव-नियति से बँधे हुए

स्टीनबेक : अद्वितीय

उपन्यास थे. उन की मान्यता थी कि आदमी नैतिक अपराध तभी करता है जब उस की ज़रूरतें पूरी नही होती या जब आदमी की आत्मा के बीच व्यवस्था या अन्य शक्तियाँ दीवार खड़ा कर देती है. वह मनुष्य के पतन के कारण मनुष्य के भीतर नहीं बल्कि समाज के भीतर देखते थे. उन की रचनाओं का उद्देश्य मानव-कल्याण था. अनेक समीक्षक उन की दृष्टि से सहमत नही थे, लेकिन यह सभी मानते हैं कि अमेरिकी लेखन में उन का योगदान काफ़ी बड़ा है. कल्पनाशीलता, आवेश और यथार्थ-चित्रण ने उन के उपन्यासों को महाकाव्य जैसा रूप दिया है. उन के उपन्यासों में "ग्रेप्स ऑफ़ राथ" और "ईस्ट ऑफ ईडन" प्रमुख हैं. 'ग्रेप्स ऑफ़ राथ' को २०वीं शताब्दी का महान् आशावादी अमेरिकी महाकाव्य कहा जा सकता है.

स्टीनबेक के उपन्यासों में मानव-समाज सहज और खुला हुआ है. यहीं वह अपने अन्य समकालीन लेखको से अद्वितीय ठहरते है.

प्रधानमंत्री : संवाद और विवाद की स्थितियाँ

लगभग एक साल बाद, नये साल के पहले दिन, अपने प्रेस सम्मेलन में प्रधानमंत्री ने सम्मेलन की शुरूआत समाचारपत्रों की आलोचना से की और आशा व्यक्त की कि अगले साल समाचारपत्रों में उन के विषय में सही विवरण छपेंगे. विषय पर आते हुए श्रीमती गांधी ने विदेश-नीति की उन समस्याओं पर रोशनी डाली जो कि भारत की प्रभुसत्ता के लिए चुनौती बनी हुई हैं. चीन और पाकिस्तान के साथ भारत के विवाद के अलावा ब्रिटेन, अमेरिका और रूस के साथ संवाद पर भी उन्होंने अपने विचार व्यक्त किये. **यह पूछे जाने पर कि भारत कॉमनवेल्थ में बना रह कर कब तक गोरे आदमी का बोझ उठाता रहेगा, श्रीमती गांधी ने उत्तर दिया कि कॉमनवेल्थ की नियति बहुत कुछ अफ्रीकी और एशियाई देशों के निर्णय पर निर्भर करती है जो कि कॉमनवेल्थ के सदस्य हैं. श्रीमती गांधी का कहना था कि कॉमनवेल्थ की उपयोगिता अभी नष्ट नहीं हुई है—इस में विभिन्न देशों के प्रधानमंत्रियों से मुलाक़ात का एक अवसर मिलता है—लेकिन जब यह उपयोगिता नहीं रहेगी, तब, भारत कॉमनवेल्थ का सदस्य नहीं रहेगा. इस पर एक ब्रितानी संवाददाता ने उन से प्रश्न किया कि वे कौन सी परिस्थितियाँ हैं जिन से विवश हो कर भारत कॉमनवेल्थ छोड़ सकता है ? श्रीमती गांधी ने इन परिस्थितियों के बारे में कुछ कहना उचित नहीं समझा.** ५ जनवरी को वह कॉमनवेल्थ प्रधानमंत्री सम्मेलन में हिस्सा लेने लंदन जा रही हैं और इस सम्मेलन के बारे में संवाददाताओं में पर्याप्त जिज्ञासा थी. श्रीमती गांधी ने उन की जिज्ञासा को समझते हुए बताया कि सम्मेलन में रोडेसिया के प्रश्न पर विचार किया जायेगा. लेकिन उन्होंने इस बात से इनकार किया कि सम्मेलन में भारत और पाकिस्तान के आपसी प्रश्नों पर विचार किया जा सकता है. उन्होंने कहा कि इस तरह की कोई भी वार्त्ता द्विपक्षीय ही हो सकती है. उस पर सम्मेलन में विचार करने की कोई उपयोगिता नहीं है.

चीन के संबंध में बोलते हुए उन्होंने कहा कि हम चीन से संवाद की स्थिति चाहते हैं और यही हमारा अंतिम लक्ष्य होना चाहिए. लेकिन वास्तविकता यह है कि अभी तक विवाद की स्थिति बनी हुई है. उन्होंने इस के लिए बहुत हद तक चीन को दोषी ठहराया. उन्होंने कहा कि चीन के रवैये में कोई परिवर्त्तन नहीं दिखायी पड़ता. उन का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया कि पिछले दिनों नयी दिल्ली में चीनी दूतावास का प्रतिनिधि भारत के दक्षिणी एशिया के राजदूतों को दिये गये भोज में उपस्थित था. श्रीमती गांधी ने इस उपस्थिति को बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं माना. पाकिस्तान के बारे में भी श्रीमती गांधी ने यह स्पष्ट कहा कि दोनों देशों के आपसी झगड़े सुलझने चाहिए और यह जितना भारत पर निर्भर करता है उस से अधिक पाकिस्तान पर.

हाल में ब्रिटेन, अमेरिका और रूस की आंतरिक और बाहरी नीतियों में जो परिवर्तन आया है उसे उन्होंने भारत के संदर्भ में किसी परिवर्त्तन का सूचक नहीं माना. उन का विश्वास था कि श्री निक्सन के प्रेज़िडेंट चुने जाने के बावजूद भारत और अमेरिका के संबंधों में कोई खास फ़र्क नहीं आयेगा.

भीतरी मामलों पर बात करते हुए श्रीमती गांधी ने यह आशा व्यक्त की कि १९६९ का वर्ष भारत की तरक्की का वर्ष होगा. उन्होंने कहा कि पिछले साल भी कुछ उन्नति हुई है जो कि अपने आप में काफ़ी महत्त्वपूर्ण है. जब उन का ध्यान देश के राजनैतिक परिवेश की ओर आकर्षित किया गया तब उन्होंने यह कहा कि कांग्रेस की स्थिति पहले से मज़बूत हुई है और यह आशा की जा सकती है कि अगले कुछ महीनों में वह और भी बेहतर होगी. **श्रीमती गांधी से यह पूछा गया था कि देश में व्याप्त हिंसा और नक्सलबाड़ी विस्फोटों को वह किस बात का सूचक मानती हैं. कहीं ऐसा तो नहीं कि यह लोकतंत्र की संस्था की विफलता के आरंभिक आसार हों ? श्रीमती गांधी ने कहा कि सारे संसार में हिंसा व्याप्त है और अगर लोकतंत्र हिंसा के अर्थों में नष्ट हो रहा है तो वह सभी जगह नष्ट हो रहा है.** छात्र आंदोलन के विषय में भी उन की धारणा थी कि यह एक विश्वव्यापी आंदोलन है. लेकिन भारत के संदर्भ में फ़र्क इतना है कि राजनैतिक पार्टियाँ छात्रों का इस्तेमाल करती हैं—यह अलग बात है कि कुछ छात्र यह अनुभव करते हैं कि वे राजनैतिक पार्टियों का इस्तेमाल कर रहे हैं. भाषा की समस्या के बारे में उन्होंने बताया कि किसी संपर्क भाषा का होना आवश्यक है और मैं त्रिभाषा फ़ार्मूले को अब भी सही मानती हूँ. श्रीमती गांधी ने बताया कि कुछ दिनों पहले उन्होंने मद्रास के मुख्यमंत्री अन्नादोरै से इस संबंध में बात की थी और आगे भी बात करेंगी.

जब एक संवाददाता ने श्रीमती गांधी से यह पूछा कि अगर उन की सरकार का बहुमत नहीं रहा तो वह दक्षिणपंथ में शामिल होंगी या कि वामपंथ में, तब श्रीमती गांधी नें क्रोध में भर कर कहा कि मुझे अपने आदर्श सब से अधिक प्यारे हैं और उन के लिए मैं कोई भी कुर्बानी देने को तैयार हूँ.

दिनमान

समाचार-साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — ५ जनवरी, १९६९

अंक १ — १५ पौष, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट — १३

*

मत और सम्मत — ३
प्रश्न-चर्चा — ४
पिछला वर्ष — ५
चरचे और चरखे — १२

*

राष्ट्रीय समाचार — १५
प्रदेशों के समाचार — २१
विश्व के समाचार — ३७
समाचार-भूमि : ईरान — ३५
खेल और खिलाड़ी : पराजय का साल — ३१

*

प्रेस-जगत् : प्रतिरोध का सांस्कृतिक संबल — ७
राजनीतिक समीक्षा — ८
राजनैतिक तंत्र — ११
भेंट-वार्त्ता : डॉ० फ़रीदी — १९
राजनैतिक वंशवृद्धि — २६
विज्ञान : अपोलो—८ — २९
परिचर्चा : : नेहरू और समाजवाद — ४१
साहित्य : संवाद और विवाद का वर्ष — ४३
राष्ट्रभाषा : राजर्षि टंडन — ४४
कला : कला-वर्ष—६८ — ४४
रंगमंच : पिछला साल — ४६
संगीत : १९६८, संतोषप्रद — ४८
फ़िल्म : एक नया अध्याय — ४९

*

आवरण-चित्र : चाँद से पृथ्वी की ओर

*

संपादक

सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान

टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का दिवा-स्वप्न

भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने तीस साल पहले खंडित भारत का स्वप्न देखा था जो कि बाद में सार्थक हुआ. पिछले दिनों उन्होने कश्मीर के विषय में अपना जो दिवा-स्वप्न सामने रखा उस ने खुद उन के प्रशंसकों और अनुयायियों को चौंका दिया है. श्री राजगोपालाचारी ने सुझाव दिया है कि कश्मीर समस्या के हल के लिए कश्मीर को १० वर्षों के लिए अमेरिका, सोवियत रूस और ब्रिटेन की संयुक्त परिषद् को सौंप देना चाहिए. श्री राजगोपालाचारी का यह ख्याल है कि इस से स्थिति की परीक्षा हो सकेगी और यह संभव है कि भारत और पाकिस्तान के बहुत से जटिल प्रश्न इस से हल हो जायें.

श्री राजगोपालाचारी के वक्तव्य पर अभी तक स्वतंत्र पार्टी ने कोई टिप्पणी नही की है लेकिन इस संवाददाता की जानकारी के मुताबिक स्वतंत्र पार्टी के केंद्रीय नेताओ में राजा जी के वक्तव्य की अनुकूल प्रतिक्रिया नही हुई है. इस के बहुत से कारण है जिन में प्रमुख यह है कि स्वतंत्र पार्टी यह मानने को तैयार नही है कि कश्मीर जैसे मसले पर सोवियत रूस और अमेरिका का एका हो सकता है. इस के अतिरिक्त स्वतंत्र पार्टी की कश्मीर संबंधी नीति मे पिछले दो वर्षो मे परिवर्तन हुआ है. पार्टी अब यह मानने लगी है कि अगर उसे उत्तर भारत में अपनी जड़े जमानी है तो, विशेष रूप से विदेश नीति के प्रश्नों पर जनमत के अनुकूल रवैया अख्तियार करना पड़ेगा. कश्मीर एक नाजुक प्रश्न है जिस पर उत्तर भारत का जनमत कोई समझौता करने को तैयार नही है. स्वतंत्र पार्टी के केंद्रीय नेताओं की राय है कि श्री राजगोपालाचारी की स्थिति सुविधाजनक है. वह दक्षिण में रहते है और अपने उत्तर भारत द्वेष की परंपरा मे कोई भी ऐसा वक्तव्य दे सकते हैं जो कि हिंदी राज्यो की जनता को पसंद न आये लेकिन इन राज्यों के स्वतंत्र नेताओं को यही रह कर काम करना है और चुनाव लड़ना है अतः वे जनमत को नाराज करने की स्थिति में नही है. यही कारण है कि राजा जी के सुझाव को उन्होने अपने लिए उलझन से भरा हुआ पाया. पार्टी की अगली बैठक में, बहुत संभव है श्री राजगोपालाचारी के कश्मीर संबंधी वक्तव्य की तीव्र आलोचना हो.

जहाँ तक अन्य पार्टियों का प्रश्न है उन्होंने श्री राजगोपालाचारी के सुझाव को गंभीरता से नही लिया है. जिन लोगों के मन में श्री राजगोपालाचारी के प्रति इज्जत है उन्होने यह कह कर टाल दिया कि राजाजी सठिया गये है हालांकि श्री राजगोपालाचारी तीस साल पहले ही ६० के हो चुके थे. केवल एक व्यक्ति ने श्री राजगोपालाचारी के वक्तव्य का खुल कर स्वागत किया और वह है कश्मीर की अवामी कार्रवाई समिति के अध्यक्ष मीर वायज मौलवी फ़ारूक़. उन्होने श्री राजगोपालाचारी के सुझाव को 'अत्यंत व्यावहारिक' करार देते हुए यह आशा व्यक्त की है कि श्री जयप्रकाश नारायण भी जल्द ही सही रास्ते पर आयेंगे और राजा जी के सुझाव का अनुमोदन करेंगे. कुछ समय पहले तक श्री जयप्रकाश नारायण कश्मीर के जनमत संग्रह मोर्चे के 'हीरो' थे लेकिन कुछ महीने पहले कश्मीर सम्मेलन में उन्होने जिस तरह दो टूक बातें की उस से जनमत संग्रह मोर्चे का मोह भंग हो गया और जयप्रकाश नारायण का नाम काली सूची में दर्ज कर दिया गया. शेख़ अब्दुल्ला ने अभी श्री राजगोपालाचारी के सुझाव पर कोई प्रतिक्रिया नही की है. उन के साथियों का कहना है कि शेख़ अब्दुल्ला कश्मीर के मसले को इस स्तर पर अंतरराष्ट्रीय समस्या नही बनाना चाहते. वह कश्मीर का अंतरराष्ट्रीयकरण जरूर करना चाहते हैं मगर अपनी शर्तो के मुताबिक यानी कि कश्मीर के भाग्य को वह अमेरिका या रूस किसी को सौंपने को तैयार नही है.

कश्मीर के मुख्यमंत्री गुलाम मुहम्मद सादिक ने श्री राजगोपालाचारी के सुझाव को अजीबो-गरीब करार देते हुए कहा है कि मेरे लिए यह सोच सकना ही मुश्किल है कि कश्मीर की तकदीर कुछ और देशो को कैसे सौंपी जा सकती है. श्री सादिक ने कहा कि कश्मीर का भाग्य भारत के भाग्य से अलग नही है और भारतीय जनता के प्रश्नों के संदर्भ में ही कश्मीर के प्रश्न को निपटाया जा सकता है.

श्री राजगोपालाचारी का सुझाव न केवल नितांत अव्यावहारिक है बल्कि खुद कश्मीर के हितों के विरुद्ध है. मगर उन्होने जो कुछ कहा है उसे केवल आकस्मिक कह देना या कि यह मान लेना कि बुढापे में उन की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है उन के साथ अन्याय होगा. श्री राजगोपालाचारी अब भी बहुत कुछ सोचते-विचारते है और कश्मीर की समस्या पर भी उन्होंने, ऐसा लगता है पिछले दिनों काफ़ी सोचा-विचारा है—खास कर के ब्रिटेन के विदेश सचिव माइकेल स्टुअर्ट की मद्रास यात्रा के बाद से. श्री राजगोपालाचारी भारत में ब्रितानी हितों के सब से बड़े प्रवक्ता रहे है. हालांकि एक दूसरे स्तर पर वह देशभक्त भी है और राष्ट्रीय आंदोलन से उन का गहरा संबंध रहा है. वह राजनीति के आधुनिक तंत्र के समर्थकों मे से है और उन का यह दृढ निश्चय है कि राजनैतिक दृष्टि से भारत की नियति पश्चिमी राष्ट्रों के साथ जुडी हुई है. कश्मीर के बारे में श्री राजगोपालाचारी का वक्तव्य उन की उसी चिंतन-प्रक्रिया के अनुरूप है जिस ने कि उन्हें एक दिन यह कहने के लिए बाध्य किया था कि भारत का दो राष्ट्रों में विभक्त होना, उस की राजनैतिक समस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है. यही भारत के बारे में ब्रिटेन की भी राय थी और यह आकस्मिक हो सकता है कि श्री राजगोपालाचारी भारत के आखिरी गवर्नर जनरल हुए लेकिन यह एक संयोग नही कि भारत के भविष्य के बारे में उन के और सर स्टेफर्ड क्रिप्स के विचारों में अनोखा साम्य था.

कश्मीर के प्रश्न पर भी श्री हैराल्ड विलसन और श्री राजगोपालाचारी की धारणाओं मे अनोखा साम्य है. श्री हैराल्ड विलसन भी कश्मीर को केवल भारत का प्रश्न नहीं मानते बल्कि उसे तीन बड़ी सत्ताओं के हित के संदर्भ मे रख कर देखते है. भारत और पाकिस्तान के १९६५ के संघर्ष के दौरान श्री हैराल्ड विलसन ने कश्मीर को एक अंतरराष्ट्रीय प्रश्न में परिणत करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया और इस में उन्हें कुछ हद तक सफलता भी मिली. यही नही बल्कि अब भी वह यह मानते है कि कश्मीर को केवल भारत की तकदीर से नहीं जोड़ा जा सकता. ब्रिटेन के विदेश सचिव श्री माइकेल स्टुअर्ट ने अपनी भारत यात्रा के दौरान नयी दिल्ली के प्रेस क्लब में अपने प्रेस सम्मेलन में यह स्पष्ट रूप से कहा कि हमारे लिए यह कतई जरूरी नही है कि हम कश्मीर के प्रश्न पर भारत की राय को मान्यता दें. हमारी राय बिल्कुल अलग है और श्री हैराल्ड विलसन ने कश्मीर के संबंध मे जो बातें कही थी वे इस जटिल समस्या का समुचित हल हो सकती हैं. श्री राजगोपालाचारी ने एक दूसरी शब्दावली में लगभग यही बातें कही हैं. वह भी कश्मीर के प्रश्न को एक अंतरराष्ट्रीय प्रश्न मे परिणत करना चाहते हैं.

ऐसा क्यों ? इस का कारण शायद यह है कि श्री राजगोपालाचारी के मन में कभी भी विशाल भारत का चित्र नही रहा बल्कि वह हिंदुस्तान को कई टुकड़ों में बाँट कर देखते रहे है; उत्तर भारत और दक्षिण भारत, खंडित भारत और अखंडित भारत, उत्तर भारत के विरुद्ध दक्षिण भारत में द्वेष पैदा करने का सब से अधिक श्रेय मद्रास के मुख्यमंत्री श्री अन्नादोरै और उन की पार्टी को नही बल्कि केवल एक व्यक्ति श्री राजगोपालाचारी को है. हिंदुस्तान धीरे-धीरे अनेक सांस्कृतिक इकाइयों मे बँटता जा रहा है. लेकिन श्री राजगोपालाचारी को केवल इतने से संतोष नही है वह भारत को अनेक राजनैतिक और भौगोलिक इकाइयों मे देखना चाहते है. १९४७ में भारतवर्ष दो इकाइयो में विभक्त हुआ. श्री राजगोपालाचारी की यह इच्छा है कि १९७० तक भारत एक तीसरी इकाई में विभक्त हो जाये. किसी जमाने में श्री राजगोपालाचारी जंबू द्वीप के उपासक थे आज वह देश के विघटन के सब से बड़े मसीहा हैं.

—विशेष संवाददाता

राष्ट्र

राष्ट्रकुल

'टु बी इन इंग्लैंड'

अगले हफ़्ते विदेशमंत्रालय के अधिकारियों के साथ प्रधानमंत्री इंग्लैंड में होंगी. लंदन में वह राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन में भाग लेंगी. राष्ट्रकुल और उस के सम्मेलन की अब कितनी आवश्यकता रह गयी है इस की ओर स्वयं प्रधानमंत्री ने यह कह कर इशारा कर दिया है कि मौक़ा पड़ने पर भारत राष्ट्रकुल को छोड़ सकता है. मगर यह बात उन्होंने अपने उत्तर-प्रदेश के चुनाव दौरे के बीच कही थी और चुनाव के आसपास कही गयी बातें अक्सर केवल आकस्मिक होती हैं. पिछले महीने ब्रिटेन के विदेश सचिव माइकेल स्टुअर्ट भारत के साथ टूटते हुए संबंधों को फिर से जोड़ गये हैं और भारत राष्ट्रकुल छोड़ने की निर्णायक मन:स्थिति में है, यह मानने का कोई कारण नज़र नहीं आता. गोरे आदमी का बोझ हिंदुस्तान में अभी सलामत है और उस की सलामती के लिए विदेशमंत्रालय में ब्रिटेन के ख़ैरख़्वाह दुआ कर रहे हैं.

यात्रा का उद्देश्य : मगर प्रधानमंत्री ब्रिटेन में केवल दुआबंदगी नहीं करेंगी. उन की यात्रा का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रकुल के उन देशों के साथ संबंधों को दोहराना है, जिन के प्रधानमंत्रियों से उन का साक्षात्कार अभी तक या तो नहीं हुआ है या कम हुआ है. ऐसे देशों में मुख्य रूप से अफ़्रीकी देश आते हैं. भारत की बदलती हुई मन:स्थिति में दक्षिण एशिया और अफ़्रीका के देशों का महत्त्व बढ़ गया है और श्रीमती गांधी यह महसूस करने लगी हैं कि यूरोपीय देशों से संबंध बढ़ाने से बेहतर उन अफ़्रीकी और एशियाई देशों के साथ अपने रिश्तों को गहरा करना होगा जिन की नियति के साथ भारत की नियति जुड़ी हुई है. श्रीमती गांधी की यह भी धारणा है कि यद्यपि ये देश नवस्वाधीन हैं लेकिन उन के नेताओं में पर्याप्त बुद्धिमत्ता है और उन की संगठित दृष्टि से भारत फ़ायदा उठा सकता है. श्रीमती गांधी कैनाडा के प्रधानमंत्री से भी मिलने को उत्सुक हैं. पिछले साल अपनी लातीनी अमेरिकी यात्रा की समाप्ति पर उन्हें ओटावा में कैनाडा के प्रधानमंत्री से मिलना था. लेकिन बाद में उन की यात्रा का कार्यक्रम बदल गया और यह संभव नहीं हुआ. रोडेसिया का प्रश्न भारतीय चित्त को उद्विग्न करता रहा है. यह आशा की जा सकती है कि श्रीमती गांधी भारतीय जनता की भावनाओं को समझते हुए रोडेसिया के प्रश्न पर ब्रिटेन के साथ दो टूक बात करेंगी.

अनौपचारिक : जब यह निर्णय किया गया था कि श्रीमती गांधी राष्ट्रकुल सम्मेलन में हिस्सा लेंगी तब तक तस्वीर यही थी कि प्रेज़िडेंट अय्यूब भी उस समारोह में लंदन में होंगे. लेकिन बाद में प्रेज़िडेंट अय्यूब की जगह पाकिस्तान के विदेशमंत्री अर्शाद हुसेन के राष्ट्रकुल सम्मेलन में जाने की बात तय हुई और स्थिति बदल गयी, अन्यथा यह आशा की गयी थी कि भारत और पाकिस्तान के संबंधों को ले कर लंदन में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और प्रेज़िडेंट अय्यूब के बीच कोई अनौपचारिक बातचीत हो सकेगी. यह बातचीत इस संदर्भ में और भी महत्त्वपूर्ण होगी कि पिछले दिनों प्रेज़िडेंट अय्यूब ने भारत के साथ 'कोई युद्ध नहीं' की घोषणा की थी. प्रधानमंत्री, प्रेज़िडेंट अय्यूब से इस का स्पष्टीकरण माँग सकती थीं और इस घोषणा के बारे में जो बातें अस्पष्ट थीं वे स्पष्ट हो सकती थीं. लेकिन अब उन की जगह उन के विदेशमंत्री की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण साबित होगी, इस की आशा कम दिखती है. श्रीमती गांधी के साथ विदेश राज्यमंत्री श्री बलिराम भगत भी होंगे और अधिक से अधिक यही हो सकता है कि दोनों विदेशमंत्रियों के बीच दोनों देशों के संबंधों को लेकर कोई अनौपचारिक चर्चा हो.

इंदिरा गांधी : नये साक्षात्कार

बिड़ला उद्योग

बात कुछ ऐसी ही है कि चुप हूँ

बिड़ला उद्योगों की जाँच के विषय में सरकार की चुप्पी ने राज्य सभा को उलझन में डाल दिया. सदन में औद्योगिक विकास और कंपनी विषयक मंत्रालय की तीव्र आलोचना हुई. अनेक सदस्यों ने कहा कि राज्य सभा के अध्यक्ष ने सरकार को यह आदेश दिया था कि राज्य सभा के प्रस्तुत अधिवेशन की समाप्ति के पहले जाँच आयोग की नियुक्ति के बारे में वक्तव्य दें. लेकिन वक्तव्य अभी तक नहीं दिया गया है. सदस्यों की भावना का समर्थन करते हुए उपाध्यक्ष **श्रीमती वॉयलेट अल्वा** ने भी सरकार के कान खींचे. उन्होंने कहा कि सदन ज़रा भी संतुष्ट नहीं है. अध्यक्ष के आदेश के बाद सरकार को वक्तव्य देना चाहिए. सरकार इस ढंग से काम नहीं करती है. श्रीमती अल्वा ने कहा कि अब मंत्री महोदय को कम से कम इतना तो वक्तव्य देना ही चाहिए कि अगले अधिवेशन के दौरान वह वक्तव्य देंगे या नहीं.

जो इच्छा : औद्योगिक विकास और कंपनी विषयक मंत्रालय में राज्यमंत्री **श्री रघुनाथ रेड्डी** ने इस सारे मामले पर केवल इतनी ही टिप्पणी की कि मैं माननीय सदस्यों की यह इच्छा कि सरकार जाँच आयोग की नियुक्ति करे, मंत्रिपरिषद् तक पहुँचा दूंगा. इस के पहले अनेक सदस्यों ने यह आग्रह किया था कि सरकार को राज्य सभा के अगले अधिवेशन के पहले ही दिन इस संबंध में वक्तव्य देना चाहिए.

इस के कुछ दिनों पहले ५ दिसंबर को राज्य सभा के अध्यक्ष **श्री वी. वी. गिरि** ने सदन में यह इच्छा व्यक्त की थी कि सरकार को सदन स्थगित होने के पहले इस संबंध में वक्तव्य देना चाहिए. लेकिन सरकार ने इस बारे में जो चुप्पी साधी उस से सदन के इन सभी सदस्यों का चिंतित और आक्रामक होना स्वाभाविक ही था जो कि बिड़ला उद्योग के मामले को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते रहे हैं. उन के अगुवा **श्री चंद्रशेखर** ने सरकार से पूछा कि क्या केंद्रीय गुप्तचर विभाग ने कोई ऐसी फ़ाइल तैयार की की है जिस में कि केंद्रीय मंत्रियों के साथ बिड़लों के संबंधों पर रोशनी डाली गयी है. **श्री चंद्रशेखर ने केंद्रीय गुप्तचर विभाग के कार्यों की सराहना करते हुए कहा कि अगर मंत्री महोदय चाहते हैं तो मेरे पास जो भी दस्तावेज़ हैं मैं उन्हें सदन में पेश कर सकता हूँ.** श्री चंद्रशेखर ने आरोप लगाया कि सरकार वक्तव्य देने में इस लिए देरी कर रही है कि मंत्रियों पर बिड़ले हावी हैं. इस के उत्तर में श्री रघुनाथ रेड्डी ने कहा कि अधिकारियों पर इस तरह आरोप लगाना उचित नहीं है हालाँकि मुझे यह पता नहीं कि केंद्रीय गुप्तचर विभाग ने कोई

फ़ाइल तैयार की है या नहीं. दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के श्री भूपेश गुप्त ने सरकार पर सीधा-सीधा हमला करते हुए कहा कि और उद्योग-समूहों के लिए जाँच आयोग की स्थापना करते समय सरकार को कोई झिझक नहीं हुई, लेकिन बिड़ला उद्योगों की जाँच के लिए कोई समिति नियुक्त करने में उसे संकोच हो रहा है. कहीं ऐसा तो नहीं कि बिड़ले सचिवालयों और मंत्रालयों के भीतर सक्रिय हैं और सरकार उन की मुट्ठी में है. उन्होंने कहा कि मैं सरकार पर यह आरोप लगाता हूँ और मैं इस सदन के सामने यह दावा कर रहा हूँ कि जब तक पश्चिमी बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश और पंजाब में मध्यावधि चुनाव नहीं हो जाते, सरकार बिड़लों का बाल भी बाँका नहीं करेगी. कांग्रेस पार्टी के श्री मोहन धारिया ने कहा कि सरकार की ओर से जो विलंब हो रहा है उस का पूरा-पूरा फ़ायदा उठाते हुए बिड़ले दस्तावेज़ों को नष्ट कर रहे हैं. श्री कृष्णकांत ने पूछा कि क्या यह सही है कि पिछले दिनों कुछ खास चाय बागान प्राप्त करने के लिए बिड़लों को ५० लाख रुपया दिया गया है.

श्री रघुनाथ रेड्डी ने अपने उत्तर में बताया कि बिड़ला उद्योग-समूह के विरुद्ध ९७ मामले हैं. २४ आरोपों को छोड़ अन्य मामलों में जाँच क़ायम की जा चुकी है. जहाँ भी इन आरोपों की ज़रा भी सत्यता प्रमाणित होती है, क़ानून के मुताबिक कार्रवाई की जाती है. जाँच आयोग की नियुक्ति के विषय में उन्होंने बताया कि इस प्रश्न पर मंत्रिपरिषद् शीघ्र ही निर्णय करेगी.

राजगोपालाचारी

सनसनीखेज़ की प्रतिद्वंद्विता

९० वर्षीय चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने अपनी पार्टी के मुखपत्र **स्वराज** के सब से हाल के अंक में कश्मीर-समस्या के समाधान के एक सूत्र का आविष्कार किया है. राजा जी ने अपनी देसी अंग्रेजी में इस समस्या का जो विदेशी समाधान उछाला है, उस के अधीन कश्मीर का प्रशासन आगामी १० वर्षों के लिए उस नियंत्रण-बोर्ड को सौंप दिया जाना चाहिए जिस की नियुक्ति अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत संघ मिल कर करें. उन के अनुसार, दस साल की अवधि के बीतने के बाद इस नियंत्रण-बोर्ड द्वारा कश्मीर में जनमत-संग्रह कराया जाना चाहिए. जनमत-संग्रह के परिणामों के अनुसार ही कश्मीर के भविष्य का अंतिम फ़ैसला किया जाना चाहिए. तर्क-स्वतंत्र राजा जी का तर्क यह है कि भारत और पाकिस्तान के बीच कोई सैद्धांतिक विवाद नहीं है, इस लिए स्फीत अभिमान को दोनों देशों के बीच सहअस्तित्व में बाधक नहीं बनने देना चाहिए. उन का दूसरा तर्क, जो पहले तर्क का ही परिशिष्ट है, यह है कि इस से दोनों देशों की संयुक्त सुरक्षा व्यवस्था बन सकेगी जो जहाँ एक ओर आर्थिक अपव्यय को रोकेगी, वहाँ दूसरी ओर उन्हें अपने समान शत्रु का मुकाबला करने की क्षमता भी देगी.

श्री राजगोपालाचारी के इस सनसनीखेज़ सुझाव ने परस्पर-विरोधी प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया है. एक वर्ग का कहना है कि अपनी भारत-यात्रा के दौरान ब्रिटेन के विदेशमंत्री माइकेल स्टुअर्ट ने जब मद्रास में राजा जी से मुलाक़ात की थी और उन की बौद्धिक क्षमता की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी तब शायद उसका एक कारण यह भी था कि राजा जी ने कश्मीर-समस्या पर अपनी इस नयी सोच से उन्हें चमत्कृत किया था. दूसरे वर्ग की, जिस का प्रतिनिधित्व कश्मीर के जनमत संग्रह मोर्चा के अध्यक्ष मिर्ज़ा अफ़ज़ल बग जैसे राजनीतिज्ञ करते हैं, प्रतिक्रिया यह है कि चक्रवर्ती राजगोपालाचारी का सुझाव न केवल तथ्य-परक

राजा जी : तर्क-स्वतंत्र

है बल्कि ऐसा सुझाव दे कर उन्होंने महान नैतिक साहस और गहन सूझ-बूझ का परिचय दिया है. मिर्ज़ा अफ़ज़ल बेग ने राजधानी में एक बयान जारी किया जिस में उन्होंने यह आशा व्यक्त की है कि लंदन में आयोजित राष्ट्रकुल के प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में कश्मीर-समस्या के समाधान के लिए व्यापक आधार तैयार करने का मौक़ा हाथ से नहीं निकलने दिया जायेगा—और शायद श्री बेग की नजर में राजगोपालाचारी का सब से ताजा सुझाव इस तथाकथित व्यापक आधार के आधार का काम कर सकता है. वैसे, प्रसंग-वश श्री बेग ने श्री जयप्रकाश नारायण के उस बयान का भी उल्लेख किया है जिस में सर्वोदयी नेता ने पाकिस्तान के प्रेज़िडेंट अय्यूब खाँ की दोनों देशों के बीच अनाक्रमण संधि की शर्त-बोझिल बात को संबंध-सुधार की दिशा में एक शुभ संकेत कहा है. प्रतिक्रिया के तीसरे वर्ग में क्रमशः कश्मीर प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष सैय्यद मीर कासिम, प्रदेश प्रजा समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष धनराज और प्रदेश जनसंघ के नेता प्रेमनाथ डोगरा आते हैं जो अपनी-अपनी दृष्टियों से श्री राजगोपालाचारी के सुझाव को "दुर्भाग्यपूर्ण" और "अव्यावहारिक" मानते हैं. अवामी संघर्ष समिति के अध्यक्ष मौलवी फ़ारूक जो अपने-आप में प्रतिक्रिया के एक वर्ग का निर्माण करते हैं, राजगोपालाचारी के सुझावों के समर्थन में जनमत संग्रह मोर्चे के अध्यक्ष अफ़ज़ल बेग से भी दो कदम आगे निकल गये हैं. श्रीनगर में जारी किये गये अपने एक बयान में मौलवी फारूक ने कहा है कि श्री राजगोपालाचारी का सुझाव जनमत-संग्रह की तात्कालिकता का विकल्प बन सकता है. जैसे इतना ही पर्याप्त न हो उन्होंने आशा व्यक्त की है कि श्री जयप्रकाश नारायण, जिन्होंने कुछ पहले शेख अब्दुल्ला द्वारा आयोजित एक सम्मेलन में कश्मीर-समस्या को भारतीय संविधान की सीमाओं में हल करने का सुझाव दिया था, अपना विचार बदलेंगे और राजगोपालाचारी के सुझाव में निहित यथार्थ से साक्षात्कार करेंगे.

(कश्मीर पर पाकिस्तानी दृष्टि के लिए देखिए, विश्व, पृष्ठ ३८)

अनिवार्य सेवा अधिनियम

विरोध के बावजूद

पूरे सात दिन तक लोकसभा के शीतकालिक अधिवेशन में अतिरिक्त गरमी का संचार कर के, और जैसा कि खुद अध्यक्ष नीलम संजीव रेड्डी ने विनोद भरे लहजे में स्वीकार किया, "इस विधेयक को ले कर न केवल कुछ सदस्यों को छोड़ कर सारा सदन उत्तेजित पाया गया बल्कि मैं भी उत्तेजना से अप्रभावित न रह सका," जब अनिवार्य सेवा विधेयक १३५ के विरुद्ध १४ मतों के अनुपात से अधिनियम बन गया तो उस की कटुता का तीखा अहसास सदन के बाहर भी हुआ. भारतीय मज़दूर संघ के महामंत्री, संसद् सदस्य श्री दत्तोपंत थेंगरी ने इस अधिनियम के ख़िलाफ़ जनमत को सुगठित करने के उद्देश्य से राष्ट्रव्यापी आंदोलन चलाने की घोषणा की. उन्होंने १९ सितंबर की सांकेतिक हड़ताल के सिलसिले में सरकारी यंत्रणा के शिकार कर्मचारियों को अभियोग-मुक्त करने का आग्रह किया और संवाददाताओं को यह सूचना दी कि ४-५ जनवरी को दिल्ली में "इंटक" को छोड़ कर सभी मज़दूर संघों की राष्ट्रीय कार्यकारिणियों की बैठक होगी जिस में भविष्य में सरकारी दमन का मुक़ाबला करने के

लिए कार्यक्रम तैयार किये जायेंगे. असंतोष की धार को कुंठित करने के उद्देश्य से केंद्रीय सरकार ने यह आश्वासन ज़रूर दिया कि मज़दूरों और मालिकों की संयुक्त सलाहकार समिति को पुनर्जीवित किया जायेगा और फिर देखते-देखते २७-२८ दिसंबर को समिति की बैठक भी आयोजित कर दी गयी लेकिन सरकारी आश्वासनों के बिलकुल समानांतर एक आक्रोश अपने-आप को उजागर करता रहा. पिछले सप्ताह राज्यसभा में भी इस विधेयक को प्रतिपक्ष और कांग्रेस के कुछ सदस्यों के तीखे विरोध का सामना करना पड़ा. दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के श्री भूपेश गुप्त ने बहस के दूसरे दिन एक प्रस्ताव के ज़रिये विधेयक पर विचार-विमर्श को फ़िलहाल स्थगित करने का आग्रह किया ताकि उस प्रस्ताव पर बहस हो सके जिस में सितंबर में जारी किये गये अध्यादेश की आलोचना की गयी थी. श्री भूपेश गुप्त ने मत-विभाजन की माँग की जिस के दौरान उन का प्रस्ताव ७४ के विरुद्ध २६ मतों से पराजित हो गया. कांग्रेस के श्री अर्जुन अरोड़ा ने विधेयक को विसंगत बताया और कहा कि हड़तालों को तब तक नहीं रोका जा सकता जब तक लोगों को न्यूनतम आर्थिक सुरक्षा नहीं मिलती. स्वतंत्र पार्टी के श्री दयाभाई पटेल ने सरकार के रवैये की आंशिक आलोचना की लेकिन उन्होंने हड़तालों के ज़रिये "देश में विघटन के बीज बो रही कम्युनिस्ट पार्टियों पर प्रतिबंध" लगाने की माँग की. कम्युनिस्ट पार्टियों के प्रवक्ताओं श्री बालचंद्र मेनन, श्री भद्रन और ए. पी. चैटर्जी ने सदन को बताया कि विधेयक के बावजूद मज़दूर अपनी न्यायोचित माँगों को कार्यान्वित कराने के लिए हड़ताल करते रहेंगे जब कि जनसंघ के श्री थेंगरी और संयुक्त समाजवादी पार्टी के श्री रेवती कांत सिन्हा ने विधेयक को ग़ैर-संवैधानिक और तानाशाही पूर्ण क़दम बताया. सरगर्म बहस के बाद जब विधेयक राज्यसभा में ६९ के विरुद्ध १४ मतों से पास हो गया तो संसपा, प्रसपा, जनसंघ और कम्युनिस्ट पार्टी के संसद् सदस्यों ने सदन से बहिर्गमन कर के अपना सांकेतिक विरोध व्यक्त किया.

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय

जाँच समिति और डॉ० जोशी

संयुक्त समाजवादी पार्टी के श्री राजनारायण सिंह और प्रजा समाजवादी पार्टी के श्री बाँका बिहारी दास ने शुक्रवार को जब राज्यसभा में केंद्रीय शिक्षामंत्री डॉ० त्रिगुण सेन का ध्यान इस तथ्य पर केंद्रित करना चाहा कि विश्वविद्यालय के विज़िटर की हैसियत से राष्ट्रपति डॉ० ज़ाकिर हुसेन ने जिस जाँच समिति के गठन की घोषणा की है, उस की सदस्यता के लिए विश्वविद्यालय के विवादास्पद उपकुलपति डॉ० ए. सी. जोशी का नाम सुझा कर उस की कार्यकारिणी समिति ने ग़लत क़दम उठाया है, तब कुछ क्षणों के लिए शिक्षामंत्री अजीबो-ग़रीब आत्म-संकट से गुज़रते पाये गये. संसपा और प्रसपा के इन संसद् सदस्यों का तर्क था कि क्योंकि विश्वविद्यालय के छात्रों ने डॉ० जोशी पर पक्षधरता का आरोप लगाया है इस लिए, उन का इस जाँच समिति से संबद्ध होना उचित नहीं लगता. डॉ० सेन का तर्क था कि राष्ट्रपति द्वारा गठित जाँच समिति में विश्वविद्यालय के प्रतिनिधित्व के लिए वहाँ के उपकुलपति डॉ० जोशी का नाम प्रस्तावित कर के वहाँ की कार्यकारिणी परिषद् ने अपनी अधिकार-सीमा का अतिक्रमण नहीं किया है. लेकिन प्रसपा के श्री बाँका बिहारी दास की इस आपत्ति को कि इस से स्वस्थ परंपरा क़ायम नहीं होती, ख़ुद शिक्षा मंत्री ने स्वीकार किया—ख़ास कर आपत्ति के उस अंश को जिस का संबंध विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति के उस निर्णय से था जिस में कहा गया था कि अगर किसी ख़ास कारण से डॉ० जोशी समिति की कार्यवाहियों में भाग लेने में असमर्थ रहे तो उन की जगह उन का प्रतिनिधि भाग लेगा. डॉ० त्रिगुण सेन ने विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी परिषद् के इस निर्णय को विवादास्पद बताया और कहा कि क़ानून मंत्रालय ने मुझे बताया है कि इस निर्णय को उप-प्रतिनिधित्व के आधार पर चुनौती दी जा सकती है. दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के श्री भूपेश गुप्त ने शिक्षामंत्री से यह जानना चाहा कि क्या वह विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० जोशी द्वारा अपने आप को जाँच समिति पर लादने के निर्णय को उचित मानते हैं. थोड़ा सोचने के बाद शिक्षामंत्री ने सदन को बताया कि मुझे इस बात की चिंता नहीं है कि मेरी या मेरे मंत्रालय की क्या आलोचना की जाती है, मुझे इस बात की चिंता ज़्यादा है कि इस निर्णय का छात्रों के मन पर क्या असर पड़ेगा. यह तथ्य अब किसी से छिपा नहीं है कि बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के छात्रों के एक बड़े वर्ग ने उपकुलपति डॉ० जोशी पर यह आरोप लगाया था कि वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के साथ हमदर्दी दिखाते रहे हैं.

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी

समयवाद का आग्रह

एर्णाकुलम रवाना होने के पूर्व दिनमान के प्रतिनिधि से अपनी बातचीत के दौरान मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के शीर्षस्थ नेता श्री ए. के. गोपालन ने यह संकेत दिया था कि १९६४ के कम्युनिस्ट-विघटन के पूरे चार साल बाद आयोजित आठवीं पार्टी-कांग्रेस अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण होगी लेकिन जो बात सब से महत्त्वपूर्ण होगी वह यह होगी कि कुल मिला कर पार्टी सदस्यों का प्रतिनिधि-मंडल नेतृत्व की सैद्धांतिक व्याख्या और उसकी कार्यान्वयन-पद्धति को पूर्ण समर्थन देगा. श्री गोपालन की आशा निराशा में नहीं बदली और अब तक प्राप्त समाचारों के अनुसार एर्णाकुलम में एकत्र ४०० पार्टी-प्रतिनिधियों ने सर्व-सम्मति से वह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जिस में पिछले चार वर्षों की गतिविधियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है. "मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की इस कांग्रेस ने केंद्रीय समिति और पॉलित्ब्यूरो द्वारा १९६४ में ७वीं कांग्रेस के आयोजन के दौरान किये गये नीति-संबंधी निर्णयों और कार्यान्वयनों को अपनी स्वीकृति दी है," इन नपे-तुले शब्दों में प्रतिनिधि ने श्री गोपालन की भविष्यवाणी को साकार होते पाया. जब पिछले सप्ताह को मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के उस वर्ग ने जो चीन के रास्ते पर चल कर भारत में क्रांति का रास्ता बनाना चाहता है अपनी सैद्धांतिक व्याख्या से संबद्ध संशोधन को मुख्य राजनैतिक प्रस्ताव में शामिल किये जाने के लिए मतदान का आग्रह किया तो पार्टी-प्रतिनिधियों के बहुसंख्यक वर्ग ने इस का विरोध किया. सरगर्म बहस के दौरान संशोधन-संबंधी जो ५ या ६ दूसरे प्रस्ताव आये उन को भी भारी बहुमत से पराजित होना पड़ा. उग्र माओवादी वर्ग ने जिस तरह अपनी पराजय को स्वीकार किया उस से राजनैतिक क्षेत्रों में इस धारणा को ज़ोर मिला कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी जहाँ एक ओर सोवियत संघ और साम्यवादी चीन की पार्टियों का अंधानुकरण नहीं करना चाहती वहाँ दूसरी ओर वह यह भ्रम भी पैदा करना चाहती है कि वह राष्ट्रीय यथार्थ के आइने में अपने राजनैतिक जिस्म को निहारने की कोशिश कर रही है.

एर्णाकुलम रवाना होने के पूर्व श्री गोपालन ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी भारत से बाहर की कम्युनिस्ट पार्टियों के अनुभवों से तो लाभ उठाना चाहती है लेकिन प्रेरणा वह भारतीय परिस्थितियों से ही ग्रहण करना चाहती है. गोपालन ने सोवियत संघ और साम्यवादी चीन की कम्युनिस्ट पार्टियों के के उस रवैये की आलोचना की थी जो रवैया "एक ऐसे बड़े भाई का रवैया लगता है जो अपने छोटे भाई को अपने आकार में गढ़ना चाहता है और इस तरह उस के स्वाभाविक विकास को अवरुद्ध करता है." पार्टी के एक अन्य सदस्य और उत्तरप्रदेश कम्युनिस्ट-आंदोलन के प्रमुख सूत्रधार श्री सत्यनारायण सिंह ने भी दिनमान के प्रतिनिधि से अपनी बातचीत के दौरान "एक नयी समझदारी के विकास" का ज़िक्र किया. संसद् सदस्य श्री सत्यनारायण सिंह की

राय में इस नयी समझदारी के विकास के राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संदर्भ हैं. "राष्ट्रीय संदर्भ यह है कि चौथे आम चुनाव के बाद ग़ैर-कांग्रेसवाद की कार्य-पद्धति ने जनता में एक नयी समझदारी का विकास किया है और अब वह प्रतिक्रियावाद के सब से प्रमुख गढ़ कांग्रेस और उस के संभाव्य विकल्पों, मसलन जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी, दोनों से ही अलग एक प्रगतिशील समाजवादी संगठन की आवश्यकता को समझने लगी है. अंतरराष्ट्रीय संदर्भ यह है कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को सोवियत संघ और साम्यवादी चीन के अनुभवों के अलावा क्यूबा, उत्तर वीएतनाम और कोरिया जैसे देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के अनुभवों से भी लाभ उठाना चाहिए और इस देश की परिस्थितियों के अनुरूप उन की परख करनी चाहिए."

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के इन दोनों नेताओं की बातों से स्पष्ट हो गया था कि एर्णाकुलम में आयोजित पार्टी-प्रतिनिधियों की ८वीं कांग्रेस १९६४ की ७वीं कांग्रेस की राजनैतिक व्याख्या और उस के कार्यान्वयन में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं करने जा रही है. मतलब यह कि संसदीय सीमाओं में, चिर-परिचित कम्युनिस्ट-रणनीति के अधीन पार्टी की केंद्रीय समिति और पॉलितब्यूरो पार्टी के प्रभाव-क्षेत्र के विस्तार के लिए हर संभव साधनों का इस्तेमाल करेंगे और साथ ही साथ "मजदूरों की तानाशाही पर आधारित राज्य की स्थापना के माध्यम से" समाजवाद और साम्यवाद के अपने बहु-प्रचारित उद्देश्यों की ओर अग्रसर होने की बात भी करेंगे. इस तरह, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी एक ओर जहाँ नक्सलवादी कम्युनिस्टों की आक्रामकता और हिंसात्मकता को "बचकानी क्रांतिकारिता" कहने का सुख भोगती रहेगी, वहाँ दूसरी ओर वह दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व वर्ग को "संशोधनवादियों की जमात" भी ऊँचे स्वर में क़रार देती रहेगी. २७ दिसंबर को एर्णाकुलम में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के महामंत्री पी. सुंदरैय्या ने संवाददाताओं को जहाँ एक ओर यह बताया कि पार्टी की शीर्षस्थ समिति ने ८१ संशोधन प्रस्तावों में से २७ को स्वीकार किया है और अस्वीकृत प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव वह भी है जिस में चीन की शब्दावली में मौजूदा भारतीय शासक वर्ग को अमेरिकी साम्राज्यवाद का दलाल कहा गया है, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने दोनों प्रकार की अवसरवादिता, वाम और दक्षिण के खिलाफ़ धर्म-युद्ध के तेज़ किये जाने की सूचना भी दी.

अवसरवादिता की श्री सुंदरैया की अपनी व्याख्या है. कुछ पहले दिनमान के प्रतिनिधि से अपनी बातचीत के दौरान उन्होंने स्वीकार किया था कि "मेरी पार्टी के अंदर भी ऐसे तत्त्व हो सकते हैं जिन्हें वामपंथी अवसरवादियों की कोटि में रखा जा सकता है." जब प्रतिनिधि ने उन से अवसरवादिता के इन दोनों प्रकारों को परिभाषित करने का आग्रह किया तो उन्होंने यह कह कर इस प्रश्न को टाल दिया था कि "जरूरत इस के स्वरूप को पहचानने की है, इसे परिभाषित तो बहुत बार किया जा चुका है."

आयोजन

क़िस्तों में

भारत की अर्थनीति भी उसी तरह रास्ते की तलाश में दीख रही है जिस तरह कि भारतीय राजनीति. दरअसल राजनीति और अर्थनीति एक-दूसरे पर इतने आश्रित हैं कि एक चीज़ डूबे तो दूसरी भी डूबने लगती है. भारत में दोनों ने एक-दूसरे को इस क़दर उलझा दिया है कि साधारण सूझ-बूझ या परिवर्तन से स्थिति सँभलती नहीं दीखती. चौथे पंचवर्षीय आयोजन को ले कर नेताओं के दिमाग़ में जो पसोपेश है उसी का नमूना है कि आयोजन का स्वरूप बनाये रखने के लिए १४,८०० करोड़ रुपये के मसौदे पर आयोजना आयोग की मुहर लगा ही दी गयी है.

गाडगील : दुविधा की मुसकान

इस मसौदे पर राष्ट्रीय विकास परिषद् की सही होनी है. परिषद् की बैठक इसी महीने होगी, पर वह केंद्र सरकार और आयोजना आयोग के ऊहापोह को अपने गले आसानी से उतार लेगी, इस की संभावना कम ही नज़र आती है. राज्यों के अधिकतर मुख्यमंत्री जैसा वे पहले भी कह चुके हैं नये कर उगाह कर १५०० करोड़ रुपये का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए तैयार नहीं हैं. शायद वे इस स्थिति में हैं भी नहीं—अनिश्चित राजनैतिक वातावरण में मतदाताओं पर अतिरिक्त बोझ कौन डाले जब कि पहले की ही लादी छोटी नहीं है. अर्थरचना के कुछ क्षेत्रों से अधिक वसूलने की गुंजाइश हो सकती है, जैसे मोटे किसानों से, लेकिन राजनीति का तकाजा कुछ और ही है.

इधर केंद्र सरकार—खासकर देसाई जी का वित्त मंत्रालय ८,३०० करोड़ रुपये जुटा सकने के बारे में शंकित है. पाँच साल में इतनी रक़म जुटाने के लिए केंद्र को लगभग २३ अरब रुपये के बराबर राजस्व बढ़ाना होगा. वित्तमंत्री की राय में यह संभव नज़र नहीं आता.

फिर भी राजनैतिक दृष्टि से और विकास को निरंतरता प्रदान करने के लिहाज़ से आयोजन बहुत आवश्यक है. विकास की गति रुक जाने पर भारी इंजीनियरी कारखानों की उपयोगिता घट जायेगी. फिर बढ़ती हुई आबादी के लिए रोज़गार और अन्य सुविधाओं के लिए व्यवस्था भी नहीं हो सकेगी.

इन सब प्रश्नों का एक ही जवाब हो सकता है—बड़ा पंचवर्षीय आयोजन ! क्यों कि यह संभव नहीं है—आर्थिक साधन उपलब्ध नहीं हैं—इस लिए इंदिरा सरकार एक मसौदा अंगीकार कर के अपनी साख बनाये रखना चाहती है—भले ही वह आयोजन वार्षिक किस्तों में क्यों न लागू किया जाये. किस्तों में आयोजन पर अमल करने का मतलब है वह जो पिछले दो वर्षों से हो रहा है. फ़र्क़ सिर्फ़ इतना होगा कि अभी तक पंचवर्षीय आयोजन की ग़ैर-मौजूदगी के बावजूद वार्षिक आयोजन लागू किये जा रहे थे और अब पंचवर्षीय आयोजन के बावजूद ऐसा होता रहेगा. पड़ोसी चीन 'भारत दुर्दशा' पर मुस्करा रहा होगा—उस की एक हरकत ने ही प्रतिरक्षा का बोझ बढ़ा कर भारत की आर्थिक और राजनैतिक दिशा मोड़ दी है.

राज्य कर्मचारी

महँगाई भत्ता

राष्ट्रीय संयुक्त परामर्श व्यवस्था परिषद् ने दिसंबर के अंतिम सप्ताह में महँगाई के मारे केंद्रीय कर्मचारियों को राहत देने के लिए फ़ैसला किया: सूचक-अंक १७५ होने पर जितना महँगाई भत्ता कर्मचारियों को मिलता था वह १ दिसंबर १९६८ से मूल वेतन में जोड़ दिया जाये. इस से कर्मचारियों को कई लाभ होंगे—पेंशन की राशि में वृद्धि हो जायेगी, मकान किराया भत्ता बढ़ जायेगा, यात्रा-भत्ता अधिक हो जायेगा और नगर मुआवज़ा भत्ता अधिक मिलने लगेगा.

मूल वेतन की राशि बढ़ जाने पर केंद्र सरकार का १७.३५ करोड़ रुपये का खर्च बढ़ जायेगा. बाद में प्रतिवर्ष १.४ करोड़ रुपये की देनदारी बढ़ जायेगी.

परिषद् की बैठक में एक मुख्य बात यह भी उठायी गयी कि महँगाई भत्ता देने का फ़ार्मूला बदला जाये क्यों कि यह कर्मचारियों के हितों के प्रतिकूल पड़ता है. यह प्रश्न अगली बैठक के लिए टाल दिया गया. लेकिन एक-आध बातों पर निर्णय भी किया गया—भविष्य-निधि की जगह पेंशन का चुनाव करने की तिथि ३१ दिसंबर से बढ़ा कर ३१ मार्च १९६९ कर दी गयी.

डॉ. फ़रीदी की 'अछूत समस्याएँ'

(मुस्लिम मजलिस-नेता से 'दिनमान' की विशेष भेंट)

अब्दुल जलील फ़रीदी के व्यक्तित्व का गठन उन राजनैतिक नीतियों का परिणाम है जो प्रजातंत्र के तात्कालिक फ़ायदों पर ही अपनी दृष्टि केंद्रित रखती हैं: जिन्हें देश के व्यापक पैमाने पर सोचने और उस के मुताबिक़ काम करने की न फ़ुर्सत है और न स्वेच्छा. ऐसे राजनैतिक नेता तरह-तरह की जोड़-तोड़ में लगे हुए हैं और अपने दिमाग़ में ऐसा नक़्शा परिकल्पित कर रहे हैं जिस के सहारे वे सत्तारूढ़ हो सकें. हाल में होने वाला उत्तरप्रदेश का आम चुनाव सब राजनैतिक दलों और नेताओं को तरह-तरह की जोड़-तोड़ (या तोड़-फोड़) का अवसर दे रहा है. डॉ० फ़रीदी के भी दिमाग़ में एक नक़्शा है.

गत सप्ताह इस रूप-रेखा से उन्होंने **दिनमान-संवाददाता** को विस्तार से परिचित कराया. "मुसलमान, पिछड़ी जातियाँ और अछूत मिला कर ९४ प्रतिशत हैं—क़रीब ६ प्रतिशत उच्च वर्ग के हिंदू उन पर शासन करते चले आ रहे हैं. इस लिए ज़रूरत इस बात की है कि इन सभी पिछड़े वर्गों को एक दल के अंतर्गत इकट्ठा किया जाये. इस दल में सिखों और क्रिश्चियनों को भी शामिल किया जाये क्यों कि वे भी अल्पसंख्यक हैं." यह पूछने पर कि क्या मुसलमानों में ऊँचे और नीचे लोग नहीं हैं, उन्होंने कहा "मुसलमानों में कोई वंशानुक्रम से पुजारी वर्ग नहीं होता. कोई भी इमाम हो सकता है, किरदार उस का अच्छा हो. यदि किसी वक़्त कोई आलिम पहुँच जाता है तो इमाम उस को अपनी जगह दे देता है."

डॉ० फ़रीदी का कहना है कि ज़मींदारी खत्म हो जाने के बाद मुसलमानों में संपन्न-वर्ग नहीं रहा है. उन्होंने बताया कि जहाँ वह गुरु गोलवलकर की हर बात ग़लत समझते हैं वहाँ वह उन की एक बात से इत्तफ़ाक़ भी रखते हैं—वह यह है कि मुसलमानों का ज़्यादातर हिस्सा निम्न वर्ग से आया है.

मरीज एक, इलाज दो : जब उन से कहा गया कि इस सारी नक़्क़ाशी में तर्कसंगति का अभाव है क्यों कि उन्होंने वर्ण और वर्ग में किसी प्रकार का भेद नहीं किया, तो उन्होंने कहा 'हमारे देश में आर्थिक स्थिति समाजिक स्थिति पर निर्भर है और सामाजिक स्थिति जाति और वर्ण पर. यह भी है कि पिछड़ी जातियों में पढ़े-लिखे लोग बहुत कम हैं.

जब आप यह मानते हैं कि पिछड़े वर्गों को इकट्ठा करना है तो ऐसे संगठन में क्यों नहीं जाते जो आर्थिक पहलुओं पर महत्त्व देता हो ?

छोड़ दूंगा : डॉ० फ़रीदी ने जो उत्तर दिया उस में दंभ का स्वर था, "बीस वर्ष में समाजवादी एकता की कोशिश जितनी मैं ने की उतनी किसी ने नहीं की. कम्युनिस्ट पार्टी का सारा धंधा 'होक्स' है: चीन और रूस की ओर देखना और अपना रास्ता न बनाना: ज़ेड. ए. अहमद से कई बार कहा, कुछ करो, वह भी पावर और असेंबली की मेंबरशिप के ही पीछे रहे." संयुक्त समाजवादी पार्टी के बारे में उन्होंने कहा "डॉ० लोहिया के बाद अब वहाँ क्या रहा. उन की मैं इज्ज़त करता था: लेकिन उन का दिमाग़ भी जात-पात के ढाँचे में सोचता था." एक शख़्स के बारे में उन्होंने कहा कि किस कायस्थ के चक्कर में पड़े हो. और राजनारायण—"उन्होंने १९६४ में हर कमरों में जा कर एक मिले-जुले समाजवादी दल को नहीं बनने दिया." और जहाँ तक जयप्रकाश का सवाल है "वह भूदान के चक्कर में पड़े हैं." लेकिन डॉ० फ़रीदी ने साथ-साथ यह भी घोषणा की कि अगर जयप्रकाश सारा काम—यानी मुसलमानों को समानता दिलाने का काम—अपने हाथ में ले लें तो मैं सारी राजनीति—जिस से उन का मतलब मुस्लिम राजनीति से था—छोड़ दूंगा. ज़ाहिर है कि यह शर्त मानने के पहले हर समझदार आदमी को सोचना पड़ेगा.

कितने गरज़मंद : पिछले आम चुनाव में मजलिसे मुशावरत का समर्थन पाने के लिए क़रीब-क़रीब सभी राजनैतिक दलों और नेताओं ने मेरे नौ-सूत्रीय प्रोग्राम पर हस्ताक्षर किये थे, ऐसा डॉ० फ़रीदी ने बताया, "हर आदमी, जिसे हमारी ज़रूरत थी, हमारे प्लेज पर दस्तखत कर गया—चाहे वह राजनारायण हो, या डॉ० लोहिया, इशहाक़ संबली, झारखंडेराय या रुस्तम साटिन; और हुआ क्या ? किसी ने उस पर अमल नहीं किया." उदाहरण के रूप में उन्होंने उर्दू को उत्तरप्रदेश की सह-राज्यभाषा बनाये जाने की माँग का हवाला दिया. "हम उर्दू का वही दर्जा चाहते हैं जो हिंदू पंजाब में हिंदी का चाहते हैं." स्पष्ट है कि देश के एक व्यापक नक़्शे से बिलकुल अलग पृथकता की भावना को बनाये रखने की प्रवृत्ति से उपजी माँगों की परवरिश और वोट इकट्ठा करने के लिए हर सिद्धांतहीन समझौते की ललक ऐसी ही स्थिति पैदा करती है जिस में डॉक्टर फ़रीदी अपने को कभी सहर्ष और कभी अनचाहे पाते हैं.

सहर्ष इस लिए क्यों कि उन के दिमाग़ में एक ख़्वाब है कि मुसलमानों का नेतृत्व करने के साथ पिछड़ी जातियों को साथ में रख कर वह इतनी बड़ी शक्ति का संचालन कर सकेंगे जो किसी न किसी समय निर्णायक हो जायेगी. उन के सोचने का तरीक़ा इस प्रकार है—उत्तरप्रदेश में ११० निर्वाचन क्षेत्रों में २०,००० या अधिक मुसलमान रहते हैं. यदि दस हज़ार ने भी उन की बात सुन ली तो इन निर्वाचन क्षेत्रों में अधिकांश में उन के ही 'आदमी' जीत कर आयेंगे. यदि पिछड़ी जातियों, सिखों आदि का भी समर्थन मिला तो वह राजनैतिक स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन कर सकेंगे.

दिनमान ने डॉ० फ़रीदी से पूछा—आप अलग-अलग जातियों और वर्गों के अलग-अलग अस्तित्व की बजाय उन को एक ही सामाजिक संगठन का अभिन्न अंग बनाने की कोशिश क्यों नहीं करते और हिंदू और मुसलमानों के समान सिविल क़ानूनों के लिए क्यों नहीं लड़ते.

डॉ० फ़रीदी ने कहा "समान क़ानूनों की माँग का समय आया ही नहीं है और फिर कोई यह क्यों चाहता है कि मुसलमान छिन्न-भिन्न कर दिये जायें और पीस कर मेजोरिटी (बहुसंख्यकों) का हिस्सा बना दिये जायें. जब तक देश के चार प्रतिशत के हाथ में देश की सारी संपत्ति है, समान क़ानूनों की समस्या बहुत छोटी कही जायेगी."

डॉ० फ़रीदी दोनों स्तर के तर्क देते हैं—संप्रदाय और वर्ण के भी और आर्थिक समानता के भी—दोनों तर्क मुसलमानों को समाज का हर दृष्टि से सक्रिय अंग बनाने में रुकावट डालते हैं.

आत्मरक्षा : इसी बात को वह दूसरी तरह से कहते हैं, "इलाहाबाद में हाल में सांप्रदायिक दंगे हुए—समाजवादी कहलाने वाले दलों के नेताओं ने वही गंदा काम किया जो औरों ने किया. **कम्युनिस्ट नेताओं के हाथ साफ़ नहीं थे, कुछ पुराने संसपा नेताओं को छोड़ कर उस दल के अन्य लोग वहाँ पहुँचे नहीं. इसलिए हम लोगों को 'सेल्फ़ डिफ़ेंस' (स्वरक्षा) में इकट्ठा होना पड़ता है.** एक बार मैंने च. भा. गुप्त से पूछा कि आपने जनसंघ के खिलाफ़ सरकार की ओर से कितने पैंफ़्लेट निकलवाये हैं. हम लोग अपने को सैकूलर कहते हैं. (स्वर तेज़ करते हुए) हम से कहा जाता है कि हम मुसलमानों को एग्रेसिव (आक्रामक) बना रहे हैं. कुत्ते और बिल्ली में मज़लूम और जालिम कौन हो सकता है ?" डॉ. फ़रीदी इस के साथ यह भी कहते हैं कि तरकारी या दूध बेचने वाले, नाई या अन्य **पेशा करने वाले समान रूप से हिंदू और मुसलमान होते हैं.**

अब प्रश्न यह है कि किस तरह से सारा संप्रदाय हिंदू और मुसलमान, मज़लूम और जालिम हो सकता है. और संगठित आत्म-रक्षा किस के खिलाफ़ होनी है? इस का डॉ. फ़रीदी के पास उत्तर नहीं है.

अच्छे भले आदमी : जहाँ तक डॉक्टर फ़रीदी के रहन-सहन का सवाल है, वह किसी क़दर पृथक मुसलमान नहीं मालूम पड़ते. उन का लड़का विलायत मे शिक्षा ग्रहण कर रहा है. उस ने उन्हीं स्कूलों में शिक्षा पायी थी जहाँ प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के पुत्रों ने पायी. उन का दामाद भारतीय विदेशी सेवा (आई. एफ. एस.) मे है और मरक्को के भारतीय दूतावास में द्वितीय सचिव है. **'मेरे लड़के और मेरी बच्चियों को हिंदुस्तान में ही रहना है. और उसी तरह रहना है जिस तरह भारत के अन्य 'संभ्रांत' कुल के बच्चे रहते हैं.'** जब वह बताने लगे कि भारत के चार प्रतिशत अधिकांश संपत्ति के मालिक है, तो अपने को भी उसी चार प्रतिशत का अंश माना (वही चार प्रतिशत जिस से उन की लड़ाई है) और स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा कि वे चाहते है कि उन के बच्चे, उन के बाद वैसा ही सुविधामय जीवन व्यतीत करें.

उतना पहुँचा नहीं : जब डॉ. फ़रीदी यह बता रहे थे अधिकांश मुसलमान पिछड़े वर्गो से आये हैं तो उन्होंने निज़ामुद्दीन औलिया तथा सूफ़ी फ़कीरों का नाम लिया. जब उन को स्मरण दिलाया गया कि इन फ़कीरों ने जात-पात, असमानता व रूढ़ियों का विरोध किया था और हर प्रकार के त्याग के लिए तैयार रहे थे तो उन्होंने केवल यह कह कर बात को टाला "मैं वहाँ तक नही पहुँच पाया हूँ."

डॉक्टर फ़रीदी स्पष्ट रूप से चाहते हैं कि एक ओर वह शोषण आदि के नारे देते रहें, दूसरी ओर मुसलमानों की रूढ़ियां बनी रहें और वह उन के नेता बने रहें. यही नहीं इस वस्तुस्थिति से—कि भारतीय समाज में वर्णवाद को महत्त्व दिया जाता है—वे फ़ायदा उठाते रहें. वे सभी चीजें, जिन से लड़ाई आवश्यक है, डॉक्टर फ़रीदी के लिए राजनीति करने का माध्यम हैं.

सांठगांठ : यह बात अब राजनैतिक दलों को भी मालूम है कि इधर भारतीय क्रांति दल और डॉक्टर फ़रीदी के बीच बातचीत का कुछ औपचारिक, कुछ अनौपचारिक क्रम चल रहा है. भारतीय क्रांति दल के मंत्री सैय्यद मोहम्मद जाफ़र ने बताया कि मुझे बातचीत करने के लिए नामजद किया गया था पर मैंने अपनी असमर्थता प्रकट की है. जाफ़र ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जाति और वर्ण आज की राजनीति की वास्तविकता हो गये है और सभी राजनैतिक दल इस का फायदा उठा रहे है. यह दुखद स्थिति है. लेकिन इस के अलावा कोई रास्ता नही है. जहां तक नवनिर्मित मुसलमानों, पिछड़ी जातियों, अल्पसंख्यकों के फ़ेडरेशन की आम अपील का सवाल है, सभी राजनैतिक दलों का मत है कि डॉ. फरीदी और उन के सहयोगी मध्यावधि निर्वाचन में विशेष दरार नहीं डाल पायेंगे. कारण भी यही बताया जाता है कि सभी राजनैतिक दलों में यह होड़ लगी है कि वे अपने को इन वर्गों में अधिक ग्राह्य बना सकें. हाल में हुए विभिन्न दलों के सम्मेलन इस का प्रमाण हैं. डॉ. फ़रीदी भी यह जानते हैं और वे भी चाहते हैं कि कुछ राजनैतिक समझौते किये जा सकें.

व्यक्ति पूजा : इन सभी समझौतों के दौरान वह मुसलमानों के 'पूज्य' बने रहना चाहते हैं. उन्होंने भारतीय राजनीति की एक विशेषता यह बतायी कि यहाँ की आम जनता किसी न किसी की पूजा करना चाहती है. महात्मा गांधी से संबंध रखने वाली एक ४५ वर्ष पुरानी घटना उन्होंने बतायी—"महात्मा गांधी फिरंगी महल में ठहरते थे. वह मौलाना बाहरी के सामने केवल लुंगी पहन कर आ गये. मौलाना ने कहा, 'नंगे मेरे सामने न आया करो'. दूसरी बार वह आये तो चादर ओढ़ कर आये. जब वह लौट गये तो उन्होंने मौलाना को एक पत्र में लिखा कि जब तक मैं हिंदुस्तान वालों की तरह नहीं रहता, वह मेरी पूजा नहीं करेंगे. डॉ. फ़रीदी ने यह भी बताया कि किसी भी मुसलमान देश में पत्थरों, पेड़ों की पूजा नहीं होती. हिंदुस्तान में मुसलमान भी पूजा करते हैं. वह जानते हैं कि अशिक्षित मुसलमान उन की पूजा तभी तक करेंगे जब तक वह कोई ऐसी बात न कहें जो उन के रीति-रिवाज़ों, अंधविश्वासों को चोट पहुँचाये. उन्होंने स्वयं बताया कि कुछ मुसलमानों ने उन से दाढ़ी रखने को कहा. उस के उत्तर में उन्होंने उन से कहा "आप लोग सभी यह दुआ करें कि मुझ को यह समझ आ जाये कि दाढ़ी रखना ज़रूरी है." यानी दाढ़ी न रखने की सुविधा भी बनी रहे और लोग इबादत भी करते रहें!

खंडित व्यक्तित्व : डॉ. फ़रीदी आरंभ में समाजवादी दलों से किसी न किसी रूप में संबद्ध रहे फिर कुछ कारणों से उन्होंने मुसलिम-मजलिस बनायी और जब उन की इस मजलिस ने अंततोगत्वा जनसंघ को ही फ़ायदा पहुँचाया तो उन्होंने मुसलमानों के साथ अन्य लोगों को शरीक़ करने की कोशिश की. 'पहले मुसलिम मजलिस क्यों बनायी ?' के उत्तर में उन्होंने कहा "पहले ग़ैर-मुसलमान मेरी बात सुनने को तैयार न थे". इस के आगे वह अब यह भी कहने लगे हैं कि "यदि कोई मुझे ठीक रास्ता सुझा दे, तो मैं उस पर चलने को तैयार हूँ." **डॉ. फ़रीदी का आज का व्यक्तित्व खंडित व्यक्तित्व है. एक ओर वह नये सिरे से सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की आधारभूत लड़ाई लड़ने के लिए असमर्थ हैं क्यों कि वह उन के कई सुविधाजनक विश्वासों के विरुद्ध पड़ती है, क्यों कि, जैसा कि स्वयं कहते हैं, वह कुछ अर्जित सुविधाओं को तज देने को तैयार नहीं हैं. इस लिए भी कि जिस वर्ग का विश्वास उन्हें मिला हुआ है, वह हर प्रकार की प्रतिक्रियावादी समझ (या नासमझी) का शिकार है. साथ-साथ, जैसा कि इस संवाददाता को स्पष्ट मालूम पड़ा कि कहीं उन के मन के किसी कोने में यह लालसा बनी हुई है कि समाज का अधिक व्यापक वर्ग उन को सहमति प्रदान करे.** लेकिन दुर्भाग्य से उस के लिए वह वही तरीक़े काम में ला रहे हैं जो जिन्ना ने तब अपनाये थे जब वह अछूत नेताओं से संवाद स्थापित कर रहे थे. अंतर केवल इतना है कि उस बात में अब जान नहीं रही है—तब से अब तक राजनैतिक चेतना और राजनैतिक चतुराई दोनों में बहुत वृद्धि हो चुकी है.

फ़ेडरेशन : ५३ प्रतिशत पिछड़े वर्गों, २२ प्रतिशत अछूतों, १५ प्रतिशत मुसलमानों और ४ प्रतिशत अन्य ग़ैर-हिंदुओं (सिख, क्रिश्चिन, बुद्ध आदि) को एक जगह लाने के लिए जिस फ़ेडरेशन को पैदा किया गया है, उस के प्रमुख अंग हैं रिपब्लिकन पार्टी और मुस्लिम मजलिस. उस रिपब्लिकन पार्टी ने अपने उम्मीदवारों को बिना फ़ेडरेशन की सहमति के घोषित कर दिया है और यह सारी सूची डॉ. फ़रीदी के अनुसार "मुकम्मिल और आखिरी नहीं है". और फिर इस पार्टी में भी अलग-अलग गुट हैं—और पिछली असेंबली में इन की संख्या पार्टियों में न्यूनतम थी. डॉ. फ़रीदी इस फ़ेडरेशन के ज़रिए क़रीब १०० प्रत्याशी नामांकित करेंगे. इन प्रत्याशियों के माध्यम से "९४ प्रतिशत" की ओर से लड़ाई लड़ी जायेगी.

अछूत-समस्याएं : जहां तक राष्ट्रीय एकता या समग्रता का प्रश्न है, डॉक्टर फ़रीदी का यह निश्चित मत है कि इन की समस्याओं को छुआ ही न जाये. हज़ार साल से जो हो रहा है उसे होने दिया जाये. जो भी प्रयत्न किये जायेंगे, डॉ. फ़रीदी के अनुसार, मुसलमानों का अस्तित्व मिटाने के लिए होंगे. यह उन्हें नापसंद है. इस दिशा में कोई भी क़दम "राजनैतिक ग़ैर-जिम्मेदारी" होगी. डॉ. फ़रीदी की स्थिति यह है कि ९६ प्रतिशत लोगों की समस्या से जो अपने को जोड़ता है, वही सारे देश की सूत्र-बद्धता को भी अस्वीकार करता है, साथ ही व्यापक सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक क्रांति या रद्दोबदल का भी हामी नहीं है.

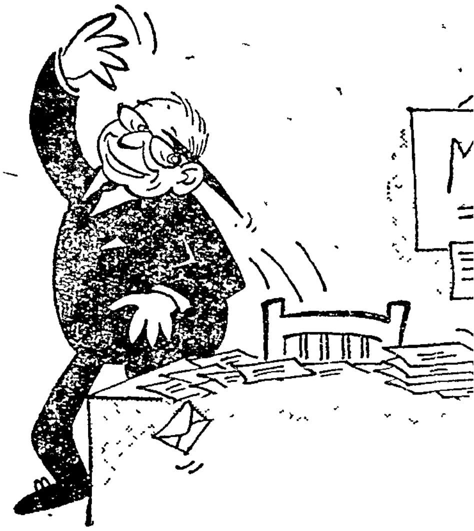

पत्र-लेखक गृह सचिव—राज्यों को सांप्रदायिकता, नक्सलवादिता आदि आदि खतरों से सचेत कर दिया; चलो छुट्टी हुई

प्रदेश

मध्यप्रदेश

लघु उपचुनाव और पुनर्गठन

७३ नगरपालिकाओं के आम चुनाव के बाद जिन ७१ जगहों के परिणाम सामने आये हैं उन से एक बात यह स्पष्ट हो जाती है कि उन में ६७ के आम चुनाव की कहानी दोहरायी गयी है और कांग्रेस का ही पलड़ा भारी पड़ा है. चुनावों के परिणाम यह सिद्ध करते हैं कि कांग्रेस का प्रभाव कम होने का जनसंघी दावा खोखला है. प्रसोपा और क़म्युनिस्ट दल का प्रभाव लगभग समाप्त है, संसोपा का प्रभाव धुँधला रहा है. यदि शहरी क्षेत्र के इन चुनावों को जन-मानस का प्रतीक माना जाये तो कहा जा सकता है कि अब राज्य में केवल दो ही राजनैतिक दल रह गये हैं और वे हैं कांग्रेस तथा जनसंघ.

७१ नगरपालिकाओं में से ३० में कांग्रेस का और १० में जनसंघ का बहुमत है. दो पर नागरिक मोर्चा हावी हुआ है और १४ में बहुमत निर्दलीयों का है. १५ ऐसे हैं जिन में किसी भी एक दल को बहुमत नहीं मिला है. निर्वाचित हुए कुल ८९६ उम्मीदवारों में कांग्रेस के ३९४, जनसंघ के २१०, संसोपा के ३२, प्रसोपा और क्रांतिदल के ८-८, कम्युनिस्टों के २, विभिन्न मोर्चों के २४ और २०५ निर्दलीय हैं.

इस में कोई शक नहीं कि जनसंघ की शक्ति बढ़ी है लेकिन सफलता उसे उम्मीदों के अनुसार नहीं मिली है. इसी लिए आघात कहीं ज्यादा बड़ा है. इस चुनाव के अवसर पर राजनैतिक स्थिति भी भिन्न रही है. जनसंघ सत्ता की एक प्रभावशाली इकाई रहा है और उस ने अपनी सारी शक्ति लगायी भी थी. लोगों का ख्याल था कि इन चुनावों में उस की सफलता व्यापक होगी लेकिन वैसा कुछ हुआ नहीं. राजमाता और जनसंघ ने यह चुनाव परस्पर सहयोग से लड़ा मगर विडंबना यह है कि ग्वालियर संभाग में ही, जिसे राजमाता का गढ़ माना जाता है, दोनों के समझौते पूर्णतया असफल हो गये. पिछले आम चुनाव में इस क्षेत्र से कांग्रेस का पत्ता कट गया था. लेकिन इस दौरान इस क्षेत्र की जिन ८ नगरपालिकाओं में चुनाव हुआ उन में से एक में भी जनसंघ को बहुमत नहीं मिला. इतना ही नहीं राजमाता और जनसंघ के कई उम्मीदवारों को करारी हार मिली. मुरैना, गुना, सबलगढ़, महगाँव, अंबाह, कोलारस, शिवपुरी, राघेगढ़ क्षेत्र में राजमाता को प्रभावी समझा जाता रहा है. इन में कांग्रेस को ३८ और जनसंघ को १७ स्थान मिले हैं. ५ जगहों पर जनसंघ का एक भी उम्मीदवार नहीं जीता. यों यह सही है कि इस क्षेत्र में कांग्रेस को सिर्फ़ एक नगरपालिका में बहुमत मिला है. यहाँ पर कांग्रेस की विजय उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी महत्त्वपूर्ण राजमाता और जनसंघ की पराजय है. ग्वालियर राज्य के अन्य क्षेत्रों में भी राजमाता और जनसंघ प्रभावशाली समझे जाते थे किंतु उन में भी सिर्फ़ मंदसौर की नगरपालिका में जनसंघ को बहुमत मिल सका है. शाजापुर, विदिशा, शुजालपुर, बड़नगर आदि में कांग्रेस जनसंघ और राजमाता के मुक़ाबले में अधिक सफल सिद्ध हुई है. एक बात और है कि जनसंघ को मंदसौर के अलावा अपेक्षाकृत छोटी और कम महत्त्वपूर्ण नगरपालिकाओं में बहुमत मिला है जब कि कांग्रेस ने न केवल बिलासपुर जैसी महत्त्वपूर्ण नगरपालिका जनसंघ से छीन ली बल्कि रतलाम, खंडवा, बुरहानपुर और मुख्यमंत्री गोविंदनारायण सिंह के निवास के पास की सतना, खरगोन, देवास (जहाँ पिछले आम चुनाव में कांग्रेस बुरी तरह हारी थी) और बीना आदि बड़ी महत्त्वपूर्ण नगरपालिकाओं पर भी अधिकार कर लिया है.

जनसंघ ने आँकड़े दे कर यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि इस चुनाव में उसे भारी सफलता मिली है. आंकड़ों के हिसाब से उस की शक्ति सचमुच बढ़ी है किंतु इन आंकड़ों को १० वर्ष पहले की तुलना में देखने की बजाय सन् ६७ के आम चुनाव के संदर्भ में देखने से ही सही स्थिति का अंदाज़ा लगाया जा सकता है. मूल्यांकन यदि सन् ६७ के आम चुनाव के संदर्भ में हो तो पता चलेगा कि उस ने पाने की बजाय खोया है. कांग्रेस की सफलता इस बात में भी है कि उस की शक्ति घटी नहीं है. यदि प्रदेश में मध्यावधि चुनाव हों तो आज की हवा देख कर यह उम्मीद की जा सकती है कि शायद कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हो जाये. शायद इन्हीं परिणामों के कारण जनसंघ मध्यावधि चुनाव का खतरा उठाने को अब तैयार नहीं है. इस का एक परिणाम यह है कि अब गोविंदनारायण सिंह तथा दल-बदलू कांग्रेसियों के प्रति विष उगलने की उस की रफ़्तार काफ़ी धीमी हो गयी है. जनसंघ के कई कार्यकर्त्ताओं ने **दिनमान** के प्रतिनिधि के सामने यह स्वीकार किया कि नगरपालिका के चुनाव परिणाम जनसंघ की प्रतिष्ठा गिर जाने के परिचायक हैं. शायद इस का कारण जनसंघ की कुर्सी से चिपके रहने की प्रवृत्ति भी है. इस समय जनसंघ दो खेमों में बँटा है. एक शासन में बना रहना चाहता है और दूसरा उस से अलग होना चाहता है. चुनाव परिणामों को दोनों ही अपने-अपने मत की पुष्टि मानते हैं. कुर्सी समर्थक गुट कहता है कि चुनाव परिणाम यह संकेत देते हैं कि उन्हें सत्तारूढ़ रहना चाहिए क्यों कि यदि मध्यावधि चुनाव हुआ तो कांग्रेस जीत जायेगी. दूसरा गुट कहता है कि पद-लिप्सा का ही यह परिणाम हुआ है. यदि जनसंघ कुर्सी से चिपका रहा तो वह और कमज़ोर होगा. यदि वह शासन से अलग हो जाये तो मध्यावधि चुनाव में उसे लाभ मिलेगा.

पुनर्गठन कब तक : शिवपुरी की गोलमेज़ परिषद्, दिल्ली की मंत्रणाएँ और समन्वय समिति की बैठक के बाद भी अभी तक मंत्रिमंडल का पुनर्गठन नहीं हुआ है. दिल्ली में जनसंघ के अटलबिहारी वाजपेयी ने पन्ना नरेश नरेंद्र सिंह का हवाला देते हुए बताया था कि मुख्यमंत्री कुछ मंत्रियों को मंत्रिमंडल में न लेने के लिए राज़ी हो गये हैं. भोपाल पहुँचने पर नरेंद्र सिंह ने श्री वाजपेयी के कथन का खंडन कर दिया था. वैसे मुख्यमंत्री को नये लोगों को मंत्रिमंडल में लेने में आसानी भी हो गयी है. भूतपूर्व मंत्री गणेशराम अनंत कांग्रेस में चले गये हैं, विपिन पटेल की मृत्यु हो गयी और रामेश्वर शर्मा तथा रामचरण राय संविद विरोधी वक्तव्य दे कर अपनी वापसी का दरवाज़ा पहले से ही बंद कर चुके हैं. अब सिर्फ़ ऐसे ४ ही व्यक्ति रह जाते हैं जिन्हें जनसंघ मंत्रिमंडल में वापस नहीं आने देना चाहता. ये हैं नर्मदा प्रसाद श्रीवास्तव, धर्मपाल सिंह गुप्त, शारदा चरण तिवारी और धन्ना लाल चौधरी. धर्मपाल सिंह को यदि शिक्षाविभाग के बदले अन्य विभाग दे दिया जाता है तो जनसंघ तुष्ट हो जायेगा. नर्मदा प्रसाद श्रीवास्तव को भी वह सहन कर लेगा. शेष दो में से एक को न लेने और दूसरे का विभाग बदल देने की स्थिति जनसंघ को स्वीकार्य हो सकती है. इस बीच फिर राजा नरेशचंद्र के नाम की चर्चा चली है और कोशिश की जा रही है कि वह एक मंत्री के रूप में मंत्रिमंडल में शामिल हो जायें. राजा साहब को मुख्यमंत्री बनाने के सब्ज़बाग दिखाये गये थे. अब वह महज़ मंत्री बनना पसंद करेंगे या नहीं इस में शंका है. गोविंदनारायण सिंह के सामने एक और समस्या है. अगर कुछ मंत्रियों को नहीं लिया गया तो वह विद्रोही हो सकते हैं. भूतपूर्व मंत्रियों का एक बड़ा वर्ग इस बात की कोशिश कर रहा है कि या तो सभी को मंत्रिमंडल में ले लिया जाये नहीं तो मुख्यमंत्री खुद भी बाहर आ जायें. फ़िलहाल पुनर्गठन का प्रश्न इसी सारे चक्कर में टलता जा रहा है.

राजस्थान

अकाल, असुरक्षा और आंदोलन

सरकारी तौर पर राहत कार्यों का प्रचार तेज़ी से किया जा रहा है और यह सिद्ध करने की कोशिश जारी है कि सब कुछ ठीक और संतोषजनक ढंग से चल रहा है. मगर वास्तविक स्थिति क्या है ? प्रादेशिक संसोपा के राज्य

मंत्री परमानंद त्रिपाठी ने बताया कि बाड़मेर की शिव और जैसलमेर की बाप और सम तहसीलें बुरी तरह अकालग्रस्त हैं और वहाँ राहत कार्यों की स्थिति असंतोषजनक है. श्री त्रिपाठी अकाल के इलाक़ों का कई बार दौरा कर चुके हैं. उन्होंने विस्तार से इस प्रतिनिधि को वे सब सच्ची कहानियाँ सुनायीं जो उन्हीं के शब्दों में 'रोंगटे खड़े कर देने वाली' हैं. उदयपुर जिले के कोलियारी गाँव के भूखे भीलों ने काफ़ी लूटमार मचायी और अपने हक़ को इस 'प्रणाली' से हासिल करने का प्रयत्न किया, पर जैसलमेर सब कुछ सहता हुआ चुपचाप अकाल-प्रेत से जूझता रहा है. बीठूजी का वह दोहा याद आता है जिस में उन्होंने कहा है कि—

घोड़ा कीजै काठ का, पिंड कीजै पाषाण
लोहै तणिया लूगड़ा, जोई जै जेसाण.

अर्थात् हे पथिक, यदि तुम जाना चाहते हो तो काठ का घोड़ा तैयार करो, शरीर को पत्थर के समान मज़बूत बनाओ और लोहे के वस्त्र पहनो—फिर तुम जैसलमेर देखो.

संघर्ष करते-करते जैसलमेर के लोग इतने कठोर हो गये हैं कि उन्हें किसी से कोई शिकायत नहीं.

जैसलमेर और बाड़मेर के सीमावर्ती गाँव लगभग ख़ाली हो चुके हैं. चारों ओर उजड़ी हुई बस्तियों के दृश्य नजर आते हैं. किंतु कुछ समय से वहाँ पाकिस्तानी जासूसों की गति-विधियाँ बढ़ गयी हैं. १९६५ के पाकिस्तानी आक्रमण के दिनों में इस सीमा के अठारह हजार से भी अधिक भारतीय पाकिस्तान चले गये थे. राज्य सरकार ने तीन वर्ष बाद उन के विरुद्ध मुक़द्दमे बनाये, पर कुछ हो नहीं पाया. अब खाली पड़े गाँवों में वे ही लोग आ-आ कर बस रहे हैं और अपना कारोबार जमा रहे हैं. त्रिपाठी कहते हैं कि उन्हें वहाँ के विधायक अब्दुल हादी का जिन्हें पाक-आक्रमण के समय भारत रक्षा क़ानून के अंतर्गत गिरफ़्तार किया गया था, समर्थन प्राप्त है और वे खुल कर तस्कर व्यापार करते हैं. म्याजलार, सोमडार, बावड़ी, ब्राह्मणों की ढाणी, रत्ता का तल्ला आदि गाँव इन मुजाहिदों के अड्डे हैं. बीड़ी, मिश्री, चाय और गुड़ पाकिस्तान भेजा जाता है. कुछ गाँवों में विचित्र स्थितियाँ देखने को मिलती हैं. मसलन **सोमडार में एक घर के बीचों-बीच सीमा का खंभा गड़ा है. घरवाला सोता हिंदुस्तान में है लेकिन खाना-पीना पाकिस्तान में करता है क्योंकि रसोई उस तरफ पड़ती है. इसी तरह बावड़ी गाँव में एक कुआँ हिंदुस्तान में है पर उस का पानी निकालने का फेरा पाकिस्तान में.** २९ जुलाई, १९६८ को ब्राह्मणों की ढाणी के निकट एक छोटी बस्ती में अस्सी प्रतिशत कौली लोगों को सामूहिक रूप से मुसलमान बनाया गया और १४ अगस्त, १९६८ पाक स्वतंत्रता दिवस पर उन में आपस में ब्याह-शादियाँ करायी गयीं. सांडला से आगे रेत का रास्ता है और वहाँ सुरक्षा-व्यवस्था बहुत कमज़ोर है. अब तीस-पैंतीस मील अंदर तक उन लोगों को बसाया जा रहा है जो पाक-समर्थक हैं. त्रिपाठी का कहना है कि वहाँ पाकिस्तान के झंडे लगाये हुए लोगों को आसानी से देखा जा सकता है. वे बेरोक-टोक घूमते हैं और ओछी जातियों के लोगों को डराते-धमकाते रहते हैं.

चौहटन के हमीरसिंह, जिन्होंने पाकिस्तान के हमले के समय भारतीय सेनाओं की बड़ी मदद की थी, लकवे से ग्रस्त हैं और बताते हैं कि बाकासर के अधिकांश मुस्लिम पुराने मेघवाल हैं. उन से ज़बरन इस्लाम धर्म स्वीकार कराया गया है.

पांचलसर के उपसरपंच रावलखाँ अकाल और भारत-विरोधी तत्वों से बड़े चिंतित हैं. उन्होंने रोष से कहा कि मैं कुओं की खुदाई के लिए बार-बार सरकार को अर्ज़ियाँ दे चुका हूँ, पर वे सब फ़ाइलों में दबी पड़ी हैं. अपनी मेहनत से मैंने चार कुएँ खुदवाये हैं, पर उन का पानी अपर्याप्त है. भूतपूर्व विधायक उमराव सिंह ढाबरिया यह मान कर चलते हैं कि सीमावर्ती इलाक़ों में ऊन और कपड़े की कताई के उद्योग चालू किये जा सकते हैं. आक इतनी बहुतायत से मिलता है कि उस से बढ़िया क़िस्म की रुई तैयार की जा सकती है. लूनी नदी के पानी के उपयोग पर भी पुनर्विचार होना चाहिए.

मद्रास

आगजनी के शिकार

तंजौर ज़िले के क्विलूर गाँव की भयंकर आगजनी और उस के परिणाम से ४३ निर्दोष लोगों की मौत अपने-आप में एक ऐसी घटना है जो बर्बरता की सारी सीमाएँ लाँघ गयी है. आग जब छोटी झोपड़ियों में लगायी गयी तो उस में रहने वाले स्त्री, पुरुष और बच्चे शरण पाने के लिए एक बड़े मकान में छिप गये. आक्रमण-कारियों ने उस मकान की कुंडी बाहर से बंद कर दी और उस में आग लगा दी. फल यह हुआ कि उस में छिपे हुए सारे लोग ज़िंदा जल गये. उत्तेजना की यह स्थिति उस गाँव या उस पूरे क्षेत्र के लिए नयी नहीं, दो महीने पहले भी मज़दूरों में तनाव पैदा हुआ था: इस क्षेत्र की एक स्थिति यह है कि बड़े ज़मींदार ग़रीब तबक़े के किसानों और मज़दूरों को हर मौक़े पर अपनी ज़्यादती का शिकार बनाते हैं और दूसरी स्थिति यह है कि कम्युनिस्ट निरंतर उस तबक़े को भड़काने और धनी तबक़े के लोगों के ख़िलाफ़ विद्रोह करने के लिए उकसाते रहते हैं. इस बार की घटना भी इन दोनों ही स्थितियों की प्रतिक्रिया में घटित हुई. किसी जमींदार ने बाहर के कुछ मज़दूरों को धान की कटाई और दँवाई के लिए बुलाया. वे काम कर के लौट रहे थे. रास्ते में मार्क्सवादी कम्युनिस्टों के नेतृत्व में कुछ किसानों और मज़दूरों ने उन पर हमला कर दिया. मार-पीट की घटना में देशी बंदूक तक का इस्तेमाल हुआ और उस में पकिर स्वामी नाम का एक व्यक्ति मर गया और ४ घायल हो गये. ज़मींदार के किराये के मजदूर भाग कर अपनी रहने की जगह पर गये और वहाँ से कुछ साथियों को ले कर लौटे. फिर उन्होंने क्विलूर की जहाँ पर कि मार्क्सवादी कम्युनिस्टों के प्रभाव में रहने वाले मज़दूर रहते हैं निहायत नृशंसता के साथ झोंपड़ियों में आग लगा दी. सब कुछ जब आग की लपटों में भस्म हो गया तब पुलिस भी पहुँची और सतर्कता की दूसरी कार्यवाहियाँ भी की गयीं. स्थिति फ़िलहाल नियंत्रण में है.

संघर्ष का कारण: तंजौर का पूर्वी क्षेत्र पिछले कुछ महीनों से उत्पात का केंद्र बना हुआ है. ज़मींदारों और किसानों के संघर्ष और विवाद के छिट-पुट किस्से अक्सर सुनने में आते रहे हैं. मार्क्सवादी कम्युनिस्टों के नेतृत्व में मजदूरों का एक वर्ग यह माँग करता रहा है कि प्रति ४८ लि. पैदावार पर उन्हें मज़दूरी में ६ लि. दिया जाए. जब कि ज़मींदार तबक़ा साढ़े चार लि. देने को राज़ी था. ज़मींदारों ने उतनी ही मज़दूरी पर काम करने के लिए तंजौर के बाहर के किसानों को बुलाना शुरू किया. मार्क्सवादी कम्युनिस्टों के नेतृत्व में स्थानीय किसानों ने बाहर से मज़दूर बुलाने का विरोध किया. लेकिन इस विरोध का कोई नतीजा नहीं निकला. जहाँ तक इस घटना का सवाल है यह कहा जा सकता है कि वह मार्क्सवादी कम्युनिस्टों के आक्रमण की प्रतिक्रिया में हुई. लेकिन यह प्रतिक्रिया कैसी थी. अराजकता की इस तरह की स्थिति प्रशासन की कमज़ोरी का सब से बड़ा प्रमाण है. मुमकिन है कि इस के पीछे ज़मींदार तबक़े की शह भी रही हो क्यों कि उन्हीं का सब से अधिक नुक़सान मार्क्सवादी तबक़ों द्वारा होता है. ज़मींदार तबक़े की मज़दूरों और निचले वर्ग के लोगों के प्रति उपेक्षा इस क्षेत्र में बहुत होती है. अग्नि-कांड के सिलसिले में अपराधी पाये जाने वाले व्यक्तियों के साथ क़ानून सही व्यवहार तो करेगा ही. ज़मींदार वर्ग की साज़िशों पर भी नज़र रखने की ज़रूरत है. इस बात की जाँच ज़रूर की जानी चाहिए कि उत्तेजना फैलाने में इस तबक़े ने कैसी भूमिका अदा की थी.

द्रमुक सरकार ने कम्युनिस्टों के साथ समझौता ज़रूर किया है लेकिन वह तंजौर क्षेत्र में आए दिन की हरकतों से अक्सर परेशान होती रही है. कुछ नेता तो खुल कर यह बात कहने भी लगे हैं कि कम्युनिस्टों के साथ संबंध खत्म कर दिया जाए. दोनों का मोह-भंग लगभग हो भी चुका है. कुछ कम्युनिस्ट भी यह कहते हुए पाये जाते हैं कि द्रमुक से उन की अपेक्षाएँ पूरी नहीं हुईं. मोह-भंग का यह संकेत नागरकोल के चुनाव के संदर्भ में भी सामने आया है जिस में द्रमुक की लाख कोशिशों के बावजूद कांग्रेस के ख़िलाफ़ संयुक्त मोर्चा नहीं बन सका.

केरल

परिवहन कर्मचारी : विरोधी दावे

केरल परिवहन कर्मचारियों की संयुक्त संघर्ष परिषद् ने राज्य के मार्ग परिवहन निगम के अध्यक्ष श्री एम. एम. चेरियन के इस प्रस्ताव को मानने से 'साफ़ इंकार' कर दिया है कि यदि कर्मचारी तुरंत काम शुरू कर दें तो उनकी वैध छुट्टियों के एवज में हड़ताल की अवधि का वेतन दे दिया जायेगा. श्री चेरियन ने कहा कि कर्मचारियों की माँगों में से एक अपील बोर्ड के गठन और केरल जन-सेवा आयोग द्वारा कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति को छोड़ कर अन्य सभी २०७ माँगें पंच-निर्णय के लिए सौंप दी जायेंगी. निगम की सहिष्णुता की सफ़ाई देते हुए श्री चेरियन ने बताया कि निगम ने प्रत्यक्ष समझौते के आधार पर कर्मचारियों की अनेक माँगों को स्वीकार कर लिया है, जिस में ८ लाख रु० की राशि को वेतन के रूप में वितरित करने का आश्वासन भी शामिल है. उन्होंने कहा कि पहले से ही एक पंच-निर्णय की सिफ़ारिशों के अनुसार वेतन-वृद्धि के भारी खर्च का दबाव बर्दाश्त करने के बावजूद निगम यह अतिरिक्त भार भी वहन करने के लिए तैयार है. *श्री चेरियन ने दावा किया कि इंटक* के अलावा अन्य सभी यूनियन इस माँग को त्यागने के लिए तत्पर हैं कि कर्मचारियों की नियुक्ति जन-सेवा आयोग द्वारा होनी चाहिए.

केरल मार्ग परिवहन निगम के कुल ८ हज़ार में से ६० प्रतिशत कर्मचारी १९ दिसंबर से अनिश्चित काल के लिए हड़ताल पर हैं, जिस से राज्य भर में और खास कर त्रिवेंद्रम और कोट्टायम शहर में बस सेवा अस्त-व्यस्त हो गयी है. कुछ अप्रिय घटनाओं को छोड़ कर यह हड़ताल शांतिपूर्ण है. हड़ताल का आह्वान तीन ग़ैर-मार्क्सवादी और एक दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट यूनियन द्वारा किया गया था. यूनियन के नेताओं का दावा है कि कट्टरपंथियों द्वारा नियंत्रित यूनियन के मार्क्सवादी भी हड़ताल में शामिल हो गये हैं. हड़तालियों की माँग है कि शीघ्र ही सेवा करने की स्थितियों में एकरूपता स्थापित की जाये, एक अपील बोर्ड गठित की जाये और कर्मचारियों की नियुक्ति जन-सेवा आयोग द्वारा की जाये. बस सेवा को जारी रखने के इरादे से नयी नियुक्तियों के विरोध में त्रिवेंद्रम में कर्मचारियों ने भूख-हड़ताल भी की. अनेक स्थान पर मार-पीट और तोड़-फोड़ की घटनाएँ भी हुईं और इस सिलसिले में अब तक करीब ७० हड़तालियों को गिरफ़्तार किया गया है.

दावे : हड़ताली कर्मचारियों के नेताओं का दावा है कि केवल १० प्रतिशत से भी कम कर्मचारी ही काम पर गये हैं. किंतु मार्क्सवादी परिवहन मंत्री श्री इम्बीची बावा ने इस दावे का खंडन किया है; उन का अनुमान है कि क़रीब ७५ प्रतिशत बसों को वफ़ादार कर्मचारी चला रहे हैं यद्यपि उन्होंने स्वीकार किया कि त्रिवेंद्रम और कोट्टायम में बस-सेवा की स्थिति बहुत नाजुक है. उन्होंने इस आरोप का भी खंडन किया कि वह समझौता संपन्न कराने में बाधा डाल रहे हैं, क्यों कि 'यूनियन नेता ही इस के लिए इच्छुक नहीं दीखते.'

हड़ताली कर्मचारियों के प्रतिनिधि श्री वर्धराजन नायर ने निगम अधिकारियों की टाल-मटोल की नीति की भर्त्सना करते हुए कहा कि यदि उन्होंने पहले से ही कर्मचारियों की विशेष माँगों के प्रति सहिष्णुता बरती होती तो हड़ताल रद्द हो सकती थी. श्रमायुक्त द्वारा आयोजित पाँच घंटे तक चलने वाली त्रिपक्षीय वार्त्ता की असफलता का ज़िक्र करते हुए श्री नायर ने कहा कि वार्त्ता के दौर में यूनियन नेताओं ने शर्त रखी थी कि यदि उन की खास माँगें पूरी की गयीं तो हड़ताल समाप्त कर दी जायेगी. ये खास माँगें थीं : (१) अपील बोर्ड का गठन, (२) सभी कर्मचारियों को बराबर छुट्टियाँ दी जायें और (३) २४० दिनों तक काम करने के बाद कर्मचारियों को स्थायी रूप से नियुक्त किया जाये. श्री नायर ने कहा कि अन्य माँगें पंच-निर्णय के लिए सौंपी जा सकती थीं. जहाँ तक जन-सेवा आयोग द्वारा कर्मचारियों की नियुक्ति का प्रश्न है, यूनियन नेता चाहते थे कि निगम सैद्धांतिक रूप से यह स्वीकार कर ले कि यह कार्य किसी स्वतंत्र संस्था द्वारा संपन्न हो किंतु निगम अधिकारियों ने इस सुझाव को नामंज़ूर कर दिया. बहरहाल निगम अधिकारी यह जतला कर हड़तालियों का हौसला तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं कि डीलक्स आदि लंबी दूरी की बस-सेवा नियमित रूप से जारी है कि केवल त्रिवेंद्रम आदि नगरों में ही बस-सेवा नियमित रखने में कठिनाई हो रही है. इस जोड़-तोड़ की व्यावहारिकता को व्यंग्यात्मक ढँग से झुठलाते हुए दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी की राज्य कार्यकारिणी के अधिकारी ने मार्क्सवादी परिवहन मंत्री और निगम पर आरोप लगाया है कि वे हड़ताल को नाक़ामयाब करने के लिए दमनकारी नीति अपना रहे हैं; सरकार और निगम अपनी झूठी प्रतिष्ठा के मोह से मुक्त हो कर ही मतभेद दूर कर सकते हैं.

हरयाणा

नये साल का नया घोल

मुख्यमंत्री बंसीलाल, जो पिछले दिनों अपनी स्थिति अपनी पार्टी में गिरी-गिरी अनुभव करते थे, अब काफ़ी संभले से नज़र आते हैं. उन्होंने बड़े ही आत्मविश्वास से यह दावा किया है कि वह विधानसभा का अधिवेशन २७ जनवरी से पहले बुलाने के पक्ष में नहीं हैं. यदि तब संयुक्त मोर्चे के नेता चाहेंगे तो शक्ति-परीक्षा हो सकती है. यह बात निर्विवाद है कि कुछ केंद्रीय कांग्रेसी नेता, कुछ देवीलाल और कुछ श्री गुलज़ारीलाल नंदा की दौड़धूप से बंसीलाल की स्थिति, में भगवतद्याल शर्मा और उन के समर्थकों के कांग्रेस छोड़ देने के कारण जो संकट पैदा हो गया था, वह फ़िलहाल टल गया है. लेकिन यह बात भी बेबुनियाद नहीं है कि संयुक्त मोर्चे के नेता अपनी संभलती और फिर बिगड़ती हुई स्थिति को पुनः संभालने की जी-जान से कोशिश कर रहे हैं. जाटुसाना के उप-चुनाव में विशाल हरयाणा पार्टी के उम्मीदवार की विजय उन के नैतिक मनोबल को बढ़ावा देती है. पं. भगवद्दयाल शर्मा के कुछ समर्थकों द्वारा उन का साथ छोड़ देने से उन की हिम्मत पस्त हुई. अब निराशा के दायरे से निकल उन्हें आशा के बिखरे-बिखरे सूत्र दिखाई देने लगे हैं. अपने इन बिखरे सूत्रों को आत्म-विश्वासी लहजे में पिरो कर वह कहने लगे हैं कि विधायकों की यह खरीद-फ़रोख्त अब ज़्यादा दिन चलने की नहीं. विधानसभा की बैठक में यह तय हो जायेगा कि किस का पलड़ा कितना भारी है. ऐसे ही आत्मविश्वास की बात राव बीरेंद्रसिंह भी करते हैं और राज्य जनसंघ के अध्यक्ष मुख्तियारसिंह भी.

अध्यक्ष का चुनाव : कांग्रेस की बाहरी स्थिति जैसी भी हो लेकिन बंसीलाल को यह जरूर विश्वास है कि प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव, जो पिछले एक साल से स्थगित होता आ रहा है, वह जनवरी के पहले या दूसरे सप्ताह में संपन्न हो जायेगा. इस चुनाव का लगातार स्थगित होते रहने का कारण पं. भगवद्दयाल शर्मा की वह ज़िद थी कि इस पद का उम्मीदवार उन्हें या उन के किसी समर्थक को बनाया जाये. यह बात न बंसीलाल को मंजूर थी और न ही उन के राजनैतिक गुरु गुलज़ारीलाल नंदा को ही. लेकिन यह बात अभी भी संदेह के घेरे में घिरी हुई है कि मौजूदा अध्यक्ष रामकृष्ण गुप्त को पुनः यह कुर्सी सौंपी जाये या उन का कोई विकल्प ढूँढ़ा जाये. रामकृष्ण गुप्त को अधिकतर सदस्य पसंद नहीं करते और अब यह लगभग तय है कि यह कुर्सी या तो बंसीलाल के किसी समर्थक को जायेगी या देवीलाल के किसी चहेते को. इधर देवीलाल में जो पुनः राजनैतिक सक्रियता आयी है उस को देखते हुए केंद्रीय नेता यह सोचने पर मजबूर हो गये हैं कि इस पुराने जाट नेता की सेवाएँ कांग्रेस के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं. भगवद्दयाल द्वारा जो संकट खड़ा किया गया था उस से बंसीलाल को उबारने का श्रेय देवीलाल और रिज़कराम को ही है.

नया साल हरयाणा की राजनीति के लिए कुछ नयी आशाओं और निराशाओं का घोल ले कर आया है. यह घोल किस पार्टी के लिए अमृत होगा और किस के लिए विष, इस का पता २७ जनवरी की हरयाणा विधानसभा की बैठक से चलेगा.

सन् ६७ चुनाव : दलगत स्थिति

प्रदेश	कांग्रेस		जनसंघ		संसोपा		प्रसोपा		स्वतंत्र		भारतीय-कम्युनिस्ट		मार्क्सवादी		रिपब्लिकन	
	उम्मीदवार	प्राप्त जगहें	उम्मीदवार	प्राप्त जगहें	उम्मीदवार	प्राप्त जगहें	उम्मीदवार	प्राप्त जगहें	उम्मीदवार	प्राप्त जगहें	उम्मीदवार	प्राप्त जगहें	उम्मीदवार	प्राप्त जगहें	उम्मीदवार	प्राप्त जगहें
विहार कुल मतदाता २,१५,२७,२१९	३१८	१२८	२७१	२६	१९९	६८	१८२	१८	१२६	३	९७	२४	३२	४	२	१
पंजाव कुल मतदाता ४९,२०,१४३	१००	४७	४९	९	८	१	९	—	१०	—	२०	५	१२	३	१७	३
उत्तरप्रदेश कुल मतदाता ४,२५,३७,८७१	४२५	१९९	४०२	९८	२५५	४४	१६७	११	२१२	१२	९८	१४	५६	१	१६५	९
पश्चिम बंगाल कुल मतदाता १,५२,९६,४१२	२८०	१२७	५८	१	२६	७	२६	७	२१	१	८२	१६	१३५	४३	१	—

मध्यावधि

विभिन्न दलों की तैयारियाँ

उत्तरप्रदेश, विहार, पंजाव और वंगाल में फ़रवरी में होने वाले मध्यावधि चुनाव के सिलसिले में एक तरफ़ सरकार की तैयारियाँ जारी हैं और दूसरी तरफ़ विभिन्न राजनैतिक दलों की. इन चारों प्रदेशों में इस वार लगभग १ लाख १६ हज़ार चुनाव स्टेशन होंगे और उस में पूरे देश के मतदाताओं की संख्या का लगभग एक-तिहाई हिस्सा लेगा. फ़रवरी ६७ के आम चुनाव में मतदाताओं की संख्या विहार में: २,१५,२७,२१९, पंजाव में: ४९,२०,१४३, पश्चिम वंगाल में १,५२,९६,४१२ और उत्तरप्रदेश में ४,२५,३७,८७१ थी. उम्मीद की जाती है कि इस चुनाव में मतदाताओं की संख्या पिछले आम चुनाव की तुलना में लगभग ५ प्रतिशत अधिक होगी. यों तो विभिन्न दलों के चुनाव-प्रचार अभी शांतिपूर्ण ढंग से ही चल रहे हैं लेकिन गड़वड़ियों की कुछ घटनाएँ वंगाल में शुरू हो गयी हैं. सरकार इस वात के लिए पूरी तौर पर प्रयत्नशील है कि चुनाव के दौरान ऐसी घटनाएँ होने न पायें. पिछले आम चुनाव में मतदाताओं को भड़काने और वरगलाने की अनेक घटनाएँ प्रकाश में आयीं थीं. इस वार सरकार उस दिशा में भी सतर्क है. उत्तरप्रदेश की सरकार ने इस सिलसिले में विशेष व्यवस्था की है. इस प्रदेश में पिछली वार समाज के कमज़ोर वर्गों के मतदाताओं, विशेष कर हरिजनों को वड़ी संख्या में मतदान-केंद्रों तक पहुँचने नहीं दिया गया था. आगामी चुनाव में मजिस्ट्रेट के साथ सशस्त्र पुलिस के ३ जवानों की ड्यूटी लगायी गयी है, जो उस क्षेत्र के प्रत्येक मतदान-केंद्र पर मतदान के दौरान १० वार पहुँचेंगे. असाधारण स्थितियों के नियंत्रण के लिए भी अलग से पुलिस की व्यवस्था की गयी है. मुख्य चुनाव आयुक्त सेन वर्मा ने लखनऊ में राज्यपाल से मुलाकात के दौरान शांतिपूर्ण मतदान की व्यवस्था पर संतोष व्यक्त करते हुए राजनैतिक दलों से अपील की है कि वे मतदान के सिलसिले में आचार संवंधी उन पाँचों नियमों का पालन करें जिन का सुझाव दिया गया है. उन नियमों के अनुसार चुनाव-प्रचार के सिलसिले में गालीगलौज की भाषा का इस्तेमाल नहीं होगा. किसी भी उम्मीदवार को ऐसी वात नहीं कही जायेगी जिस से उत्तेजना फैलने का खतरा हो. जाति, धर्म, वर्ग और भाषा के आधार पर मत माँगने की कोशिश नहीं की जायेगी. उत्तरप्रदेश में मतदान ९ फ़रवरी तक समाप्त हो जायेंगे. ४२० मतदान-केंद्रों में से १५० में ५ फ़रवरी को, १३५ में ७ फ़रवरी को और १३५ में ९ फ़रवरी को चुनाव होंगे. शेष ५ मतदान-केंद्रों के चुनाव २० फ़रवरी को होंगे. पिछले आम चुनाव में विभिन्न दलों के उम्मीदवारों की संख्या तालिका में दी गयी है.

वंगाल: इस प्रदेश में कुछ मायनों में आज की स्थिति सन् ६७ के आम चुनाव की स्थिति से थोड़ी भिन्न है. कारण इस चुनाव के वक्त मैदान में २५ दल हैं. उम्मीद की जाती है कि निर्दलीय ढंग से क़िस्मत आज़माने वालों की संख्या इस वार इस लिए कम होगी क्यों कि उन्हें किसी न किसी दल का टिकट मिल जायेगा. पिछले चुनाव में कम्युनिस्ट दल वँटा हुआ था. इस वार चुनाव-समझौते के अंतर्गत मंच का सूत्रधार संयुक्त मोर्चा है. शंकरदास वैनर्जी, काज़िम अली मिर्ज़ा और जगदीश सिन्हा जैसे प्रदेश कांग्रेस के मशहूर नेता दल से अलग हो कर निर्दलीय के रूप में सामने आये हैं. आशु घोष के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय गणतांत्रिक मोर्चा, हुमायुन कविर के नेतृत्व में लोकदल और जहाँगीर कविर के नेतृत्व में राष्ट्रीय दल भी अस्तित्व में आये हैं. आशु घोष ने सन् ६७ और ६८ के राज्य मंत्रिमंडलों को गिराने में एक वड़ी भूमिका अदा की थी और उन्हें कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया था. उन्होंने पिछले हफ़्ते अपने दल (भारतीय राष्ट्रीय गणतांत्रिक मोर्चा) की ओर से २५३ उम्मीदवारों की सूची प्रकाशित की. उन के दल ने सभी सीटों पर (२८०) अपने उम्मीदवार खड़े करने का निश्चय किया है. मध्यावधि चुनाव के डेढ़ महीने वाद कलकत्ता नगर निगम के भी चुनाव होने हैं. श्री घोष ने घोषणा की है कि निगम के चुनाव में भी वह सभी जगहों पर अपने उम्मीदवार खड़े करेंगे.

१९६७ में हुमायुन कविर और जहाँगीर कविर कांग्रेस से अलग हो कर वंगला कांग्रेस में चले गये. उन के अलग होने से कम से कम दो ज़िलों—चौवीस परगना और नदिया में कांग्रेस की स्थिति कमज़ोर हो सकती है. वाद में हुमायुन कविर ने प्रफ़ुल्लचंद्र घोष के नेतृत्व में प्रगतिशील जनतांत्रिक मोर्चे का गठन किया. अव जव कि श्री घोष उस से अलग हो कर कांग्रेस में शामिल हो गये हैं लोकदल ने उन के खिलाफ़ अपना उम्मीदवार खड़ा करने का निश्चय किया है.

संयुक्त मोर्चे की इकाइयों में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट ने अव तक १०० उम्मीदवारों की घोषणा की है. असलियत यह है कि संयुक्त

लॉवेल, ऐंडर्स और बोर्मैन : चांद के कोलंबस

विज्ञान

अपोलो-८ : धूसर चंद्र

चंद्रमा, जिसे प्रेमियों का सम्मोहन, ज्वार-भाटे का नियंता और आदिकाल से ही एक आश्चर्यजनक वस्तु माना जाता रहा है, वास्तव में खड़िया अथवा भूरे रेतीले समुद्रतट जैसा दिखाई पड़ता है. विवरों से भरपूर चंद्रलोक एक बीहड़, सुनसान और कठोर भू-प्रदेश जैसा है. चंद्रमा के धरातल पर जो असंख्य विवर हैं वे शायद अनवरत उल्कापात के परिणाम हैं. जीवन ! संभवत: चंद्रमा पर जीवन जैसी कोई वस्तु नहीं है. अमेरिकी अंतरिक्ष-यात्रियों कर्नल फ्रैंक बोर्मैन, कप्तान जिम लॉवेल और मेजर विलियम ऐंडर्स ने गत सप्ताह अपने चंद्र-यान से पृथ्वी पर स्थित नियंत्रण-कक्ष को जो संदेश भेजा उस से चंद्रमा के उस रूप की पुष्टि हुई जो अपोलो-८ से पूर्व अमेरिका और रूस द्वारा भेजे गये अंतरिक्ष-यानों से प्राप्त चित्रों से वैज्ञानिकों ने जाना था. चंद्रमा की इस वास्तविकता को जान कर भावी साहित्यकार अपनी रचनाओं में चंद्रमुखी, शशिवदना जैसे शब्दों को कोई स्थान नहीं देगा और न ही माताएँ अपने बच्चों को यह कह कर बहला सकेंगी कि चाँद में एक बुढ़िया बैठी चरखा कात रही है, इसी कारण उस में काला धब्बा नजर आता है. अब चंद्रमा न तो बच्चों का चंदामामा रह जायेगा और न ही उसे गुरु-पत्नी के साथ सहवास करने के कारण कलंकधारी बने रहना पड़ेगा. समुद्र से निकले चौदह रत्नों में भी उस की गणना नहीं हो सकेगी, क्यों कि निकट भविष्य में ही वैज्ञानिक यह पता लगा लेंगे कि चंद्रमा का जन्म किस प्रकार हुआ. अब उस की प्रतिष्ठा पृथ्वी के निकटतम एक ऐसे पड़ोसी ग्रह के रूप में होगी जिस का अधिकांश रेगिस्तान है, जिस पर सूर्योदय तथा सूर्यास्त होता है और रंग के नाम पर जहाँ अंधकार और प्रकाश के अलावा शायद और कुछ नहीं है.

केनेडी का सपना : अमेरिका के दिवंगत राष्ट्रपति केनेडी ने २१ मई, १९६१ को यह विश्वास व्यक्त किया था कि अमेरिकी अंतरिक्ष-यात्री इस दशाब्दी के अंत से पूर्व चाँद पर पहुँच जायेंगे. उस समय उन के इस कथन की सत्यता पर शायद ही किसी को विश्वास हुआ हो. तब अंतरिक्ष-विज्ञान इतना उन्नत नहीं था और इसी कारण कुछ लोगों ने राष्ट्रपति केनेडी के कथन की आलोचना भी की. किंतु अपोलो-८ की चंद्र-यात्रा ने अब राष्ट्रपति केनेडी के आलोचकों का मुँह बंद कर दिया. दशाब्दी के अभी दो वर्ष शेष हैं, परंतु अपोलो-८ की सफलता के आधार पर यह संभावना व्यक्त की जाने लगी है कि अगले कुछ महीनों में ही मानव को चंद्रमा पर उतारा जा सकता है. अपोलो-८ की यात्रा से पहले यह विश्वास तो व्यक्त किया गया कि निकट भविष्य में मानव चंद्रमा पर उतर सकेगा, किंतु वह दिन इतनी जल्दी आ जायेगा इस का पता अपोलो-८ के चांद्र-कक्षा में पहुँचने से पूर्व शायद ही किसी को रहा हो. अपोलो-८ ने फ्रांसीसी विज्ञान-गल्प लेखक जूल्स वर्न की सौ वर्ष पुरानी यह भविष्यवाणी भी सत्य सिद्ध कर दी कि एक दिन तीन व्यक्तियों से युक्त एक रॉकेट अपनी २,३८,८३३ मील की चंद्र-यात्रा २५,००० मील प्रति घंटा की गति से तय कर के चंद्रमा के चारों ओर चक्कर काटेगा.

यात्रा का आरंभ : अपोलो-८ ने अपनी चंद्र-यात्रा २१ दिसंबर को आरंभ की. पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण-शक्ति से मुक्त होने के लिए उसे २५,००० मील प्रति घंटा की रफ़्तार अपनानी पड़ी. २२ दिसंबर को उसने पूर्व निर्धारित समय पर अपनी यात्रा की आधी दूरी सकुशल तय कर ली. इस यात्रा के दौरान अंतरिक्ष-यात्रियों को कोई कष्ट नहीं हुआ. किंतु इस के बाद यान के कमांडर बोर्मैन और मेजर ऐंडर्स को मितली तथा वमन की शिकायत हुई. ऐसी आशंका व्यक्त की गयी कि इन दोनों को 'एशियाई फ़्लू' हो गया है. परंतु दूसरे दिन दोनों अंतरिक्ष-यात्री स्वस्थ हो गये और उन्होंने चंद्र-यात्रा पूरी करने के लिए अपने तीसरे साथी कप्तान लॉवेल का हाथ बँटाना शुरू कर दिया.

पृथ्वी से ५०,००० मील की दूरी पर पहुँचने के बाद कप्तान लॉवेल ने पृथ्वी पर स्थित नियंत्रण-कक्ष को भेजे गये अपने पहले संदेश में बताया कि 'मुझे चंद्रमा के चारों ओर नीला आकाश नजर आता है, जो शायद यान में लगे शीशों द्वारा प्रकाश के परावर्तन के कारण हो. २२ दिसंबर की प्रात: अंतरिक्ष-यात्रियों ने सूचना दी कि बर्फ़ीले तूफ़ान ने यान की कुछ खिड़कियों को बेकार कर दिया है. इस सब के बावजूद उन की यात्रा निर्विघ्न चलती रही. उन्होंने निर्धारित कार्यक्रमानुसार आराम भी किया. यान में हो रहे शोर के कारण ऐंडर्स को नींद नहीं आयी. उसे नींद की गोलियाँ लेनी पड़ीं. २३ दिसंबर को यान पृथ्वी से १,६४,००० मील की दूरी पर पहुँच गया. कार्यक्रमानुसार २४ दिसंबर को यान ने चंद्रमा की परिधि में प्रवेश किया. जब यान चंद्रमा के अंधकारपूर्ण पिछले भाग में था तो कोई ३६ मिनट के लिए उस का पृथ्वी से संबंध टूट गया. किंतु जैसे ही वह पृष्ठभाग से निकल कर सामने आया नियंत्रण कक्ष के अधिकारी ने सूचना दी कि 'हमने उसे पा लिया है. अब यान चंद्रमा की परिधि में है.' जब यान चंद्रमा के पृष्ठभाग में था उसी समय अंतरिक्ष-यात्रियों ने उस के उस पेचीदे इंजिन को दागा जिस की सफलता उन्हें चंद्र-परिधि में ले गयी. यदि किसी कारणवश यह इंजिन न दगता तो यान और उस में बैठे तीन यात्रियों का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता. किंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ. मुख्य इंजिन के दगते ही यान को नयी शक्ति मिल गयी और जैसे ही वह चंद्रमा के पृष्ठभाग से निकल कर सामने आया उस ने स्वयं को चंद्र-परिधि में पाया. स सफलता पर तीनों अंतरिक्ष-यात्री हर्ष-विभोर हो उठे. उन्होंने नियंत्रण-कक्ष को सूचना दी कि उन का इंजिन लगभग निर्धारित समय पर ही दग गया और अब यान चंद्रमा से कुल ६० मील की दूरी पर है. किंतु उन्होंने इतनी ऊँचाई पर पहुँच कर चंद्रमा का जो रूप देखा उस से उन्हें निराशा हुई. उन्हें कवियों का प्रिय उपमान चंद्र धूसर रेतीले समुद्र तट-सा नज़र आया.

चंद्र-परिधि में पहुँचने के तुरंत बाद अपोलो-८ ने चंद्रमा की परिक्रमा शुरू कर दी. पहली परिक्रमा के दौरान तीनों अंतरिक्ष-यात्री यान की तकनीकी जाँच-पड़ताल में व्यस्त रहे. दो परिक्रमाओं के बाद उन्होंने यान के इंजिन को निर्धारित समय पर पुन: दागा, जिस से वह चंद्रमा के धरातल से ६९ मील की दूरी पर

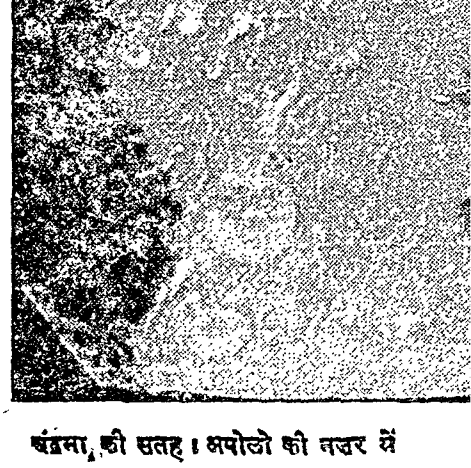

चंद्रमा की सतह । अपोलो की नजर में

पहुँच कर परिक्रमा करने लगा. इंजिन दागने से पूर्व अंतरिक्ष-यात्रियों ने दो घंटे विश्राम किया, जो उन के निर्धारित कार्यक्रम का अंग नहीं था. क्रिसमस की पूर्व संध्या को अंतरिक्ष-यात्रियों ने प्रार्थना की. उन्होंने परिक्रमाओं के दौरान चंद्रमा के अनेक चित्र खींचे. चंद्रमा की सतह पर उस स्थान का चुनाव भी किया जहाँ पर मानव को सकुशल उतारा जा सकेगा. यान में बाहर की ओर लगे कैमरे के खराब हो जाने के कारण वे पृथ्वी के चित्र नहीं खींच सके. अंतरिक्ष के अनंत विस्तार में पृथ्वी उन्हें एक नखलिस्तान जैसी लगी.

यान ने पूर्व निर्धारित समय के भीतर चंद्रमा की १० परिक्रमाएँ कीं. चंद्र-परिधि में २० घंटे बिताने के बाद अंतरिक्ष-यात्रियों ने यान का एक और इंजिन दागा, ताकि वे पृथ्वी की अपनी वापसी की यात्रा शुरू कर सकें. उन का प्रयास सफल रहा और २५ दिसंबर को यान पृथ्वी की ओर लौटने लगा. इस समय तक अंतरिक्ष-यात्री बुरी तरह थक चुके थे, किंतु अपनी सफलता के कारण वे थकावट के बावजूद काफ़ी प्रसन्न थे. वापसी की यात्रा आरंभ करने के बाद उन्होंने लंबा विश्राम किया.

दुर्गम पथ : अपोलो-८ चंद्र-परिधि में पहुँच गया और चंद्रमा की १० परिक्रमाएँ करने के बाद पृथ्वी की ओर रवाना हो गया—यह सब कहने में बड़ा आसान-सा काम प्रतीत होता है. परंतु वस्तुस्थिति यह है कि यह यात्रा बड़ी ही जोखिम-भरी थी. यान का विक्षेप-पथ पूर्व निर्धारित था. उस के इंजिनों को भी पूर्व निर्धारित समय पर ही दागा जाना था. यदि इस क्रम में गड़बड़ी होती तो यान नष्ट हो सकता था. यही नहीं, उसे एक पूर्व निर्दिष्ट कोण से चांद्र-कक्षा में प्रवेश करना था. यदि यह कोण बदल जाता, अथवा यान में कोई मशीनी गड़बड़ी पैदा हो जाती तो वह चंद्रमा की सतह से टकरा कर चकनाचूर हो सकता था. इसी प्रकार वापसी के समय यदि उस का इंजिन न दगता तो वह सदैव के लिए चांद्र-कक्षा में ही फँस जाता. पृथ्वी के वायुमंडल में भी उसे एक निर्धारित कोण से प्रवेश करना था. कोण के बड़ा होने पर वह २५,००० मील प्रति घंटा की चाल से दौड़ कर पृथ्वी की सतह से टकरा कर नष्ट हो सकता था और कोण के छोटा होने पर वह वापस अंतरिक्ष में जा सकता था.

धरा पर वापसी : जब तक चंद्र-यान पृथ्वी पर नहीं उतरा लोग एक अदृश्य भय से भीत बने रहे. जहाँ भी दो व्यक्ति इकट्ठे होते वे यान की वापसी की चर्चा करते. उन की शुभ कामनाएँ अंतरिक्ष-यात्रियों के साथ होतीं. सभी को यह आशंका बनी रही कि कहीं दुर्भाग्यवश यान अपने कोण से विचलित न हो जाये और चंद्र-यात्रा से लौट रहे व्यक्ति अपने परिवारों से सदैव के लिए बिछुड़ न जायें. यान के विक्षेप-पथ की दुर्गमता को देखते हुए यह आशंका निराधार नहीं थी. किंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ. चंद्र-यान अपने पूर्व निर्धारित समय पर (भारतीय समय के अनुसार रात्रि के ९ बज कर २१ मिनट पर) प्रशांत महासागर में निर्दिष्ट स्थान पर उतरा. यान के उतरने से पहले यह संभावना व्यक्त की गयी थी कि यान शायद निर्दिष्ट स्थान से हट कर कहीं दूर समुद्र में उतरे. इस स्थिति का सामना करने के लिए भी पर्याप्त व्यवस्था कर ली गयी. नौसेना के पोत और विमान प्रशांत महासागर के तल पर दूर-दूर तक नज़र रखे हुए थे. परंतु अपनी यात्रा के अंतिम चरण में भी यान पूर्व निर्धारित कार्यक्रम से विचलित नहीं हुआ. वह अपने स्वागत के लिए तैनात अमेरिकी नौसेना के विशाल पोत से कुल चार मील की दूरी पर समुद्र में उतरा. यान के उतरते ही तीनों अंतरिक्ष-यात्रियों को जल से ऊपर उठा लिया गया और उन्हें नौसेना के पोत पर ले जाया गया, जहाँ उन का भव्य स्वागत किया गया.

चंद्रमा की परिक्रमा कर के अपोलो-८ की निर्विघ्न वापसी पर संसार में हर्ष की लहर दौड़ गयी. लोग देश, जाति और विचारधारा के भेद को भुला कर मानव की इस सफलता पर फूले नहीं समाये. समाते भी कैसे ? मानव जाति का एक चिरकालीन सपना साकार होने जा रहा है.

दो प्रतिद्वंद्वी : चंद्र-यात्रा की इस होड़ में अमेरिका और रूस दो प्रबल प्रतिद्वंद्वी हैं. अपोलो-८ की सफलता से ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका बाज़ी मार ले गया है. परंतु वास्तव में यह बात नहीं है. यह ठीक है कि रूस अब तक मानवयुक्त यान को चांद्र-कक्षा में भेजने में सफल नहीं हुआ है, किंतु उस के लिए वह भी ज़ोर-शोर से तैयारी कर रहा है. पिछले एक वर्ष में तीन रूसी वैज्ञानिक बाहरी दुनिया से अलग एक ऐसे कक्ष में चंद्र-यात्रा के लिए स्वयं को तैयार करते रहे हैं जिस में हवा भी प्रवेश नहीं पा सकती है. इन वैज्ञानिकों ने पानी के स्थान पर अपने मूत्र को पुनः शुद्ध कर के पिया और कक्ष के एक भाग में उगायी गयी सब्ज़ियों तथा निर्जलित आहार पर गुज़र किया है. रूसी वैज्ञानिकों का एक प्रयास यह भी है कि अंतरिक्ष-यात्रियों को यान चलाने का काम न करना पड़े. यान पूर्णतया स्वचालित हो, जिस से यदि किसी दुर्घटनावश अंतरिक्ष-यात्री संज्ञाहीन हो जायें तो वह उन्हें पृथ्वी पर वापस ला सके. अपोलो-८ की स्थिति रूस के प्रस्तावित यान से भिन्न थी. उस की मशीनी गड़बड़ियों को ठीक करने, इंजिन दागने जैसे कार्य उस में बैठे यात्रियों को ही करने पड़े. यही कारण है कि रूसी अंतरिक्ष-प्रयोगों के लिए विज्ञानपीठ की अकादेमी के निर्देशक जार्जी पित्रोव ने अपोलो-८ के अंतरिक्ष-यात्रियों के साहस की प्रशंसा करते हुए कहा कि यदि उन की यात्रा सफल रही तो वह अंतरिक्ष-अनुसंधान में एक नयी खोज होगी. परंतु श्री पेत्रोव ने उन की यात्रा को असामयिक बताया. उन का तर्क है कि यात्रा ऐसे समय में आरंभ की गयी है जब कि सौरमंडल की गतिविधियाँ अधिक तीव्र हो जाती हैं. उन्होंने यान का पूरा नियंत्रण अंतरिक्ष-यात्रियों के ऊपर छोड़ने की भी आलोचना की.

कुछ भी सही, अपोलो-८ ने अपनी चंद्र-यात्रा द्वारा अंतरिक्ष-अनुसंधान के क्षेत्र में एक नया अध्याय जोड़ा है. यात्रा के दौरान सारे संसार ने उस की सफलता के लिए शुभ कामनाएँ कीं. उस की सफलता पर सभी को प्रसन्नता हुई. अपोलो-८ ने चंद्र-लोक की यात्रा का मार्ग प्रशस्त कर के मानव के युग-युग के सपनों को साकार किया है.

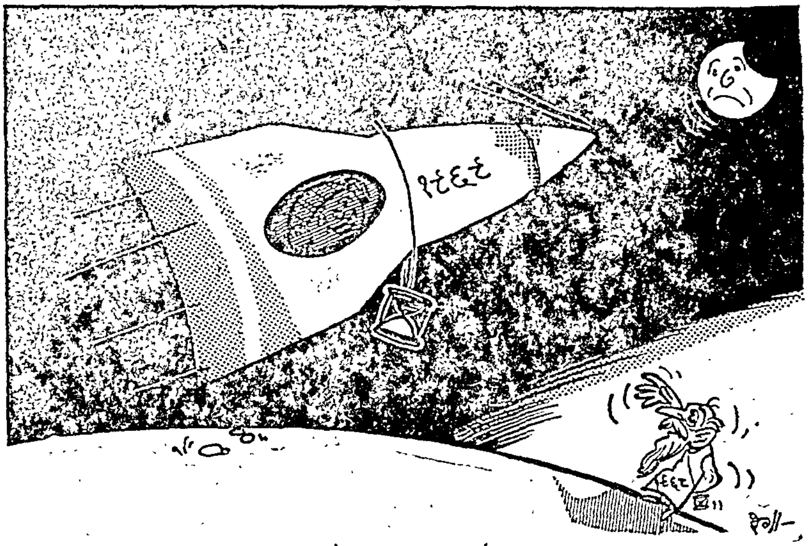

बच्चे, यह तो आरंभ मात्र है, आगे बढ़ते रहो, तुम शीघ्र ही चाँद पर पहुँच जाओगे.

सन् १९६८ : पराजय का साल

नये साल की शुभ संध्या के अवसर पर गत वर्ष को अलविदा और आगामी वर्ष के लिए एक-दूसरे को शुभकामनाएँ देने की परंपरा है. राजनीति का क्षेत्र हो या खेल-कूद का, साल खत्म होने के बाद अक्सर लोग एक-दूसरे से यह प्रश्न करते हैं कि पिछले साल की सब से महत्त्वपूर्ण घटना कौन-सी रही. जहाँ तक भारतीय खेल-कूद का संबंध है, कहा जा सकता है कि पिछला साल पराजय का साल था अतः साल भर में कुछ भी ऐसा नहीं हुआ जिसे महत्त्वपूर्ण कहा जा सके, क्योंकि पराजय महत्त्वपूर्ण नहीं, कष्टपूर्ण और समस्यापूर्ण होती है. कुछ घाव ऐसे होते हैं जो जल्दी भर जाते हैं मगर कुछ ऐसे होते हैं जिन को भरने में वर्षों लग जाते हैं. मेक्सिको ओलिंपिक खेलों में भारतीय हॉकी की हार का दुख अभी भी कम नहीं हुआ. लोगों ने उस दुख को भुलाने की बहुत कोशिशें कीं मगर उन के दर्द में कुछ कमी नहीं हुई.

महत्त्वपूर्ण वर्ष : यों खेल-कूद की दृष्टि से हर ओलिंपिक वर्ष अपने आप में महत्त्वपूर्ण होता है—केवल खेल-कूद की दृष्टि से ही नहीं बल्कि परस्पर सद्भाव की दृष्टि से भी. मेक्सिको ओलिंपिक खेलों के अवसर पर पोप पाल ने खिलाड़ियों के नाम अपने संदेश में कहा था कि आप लोग धन्य हैं, आप लड़ाई के मैदान को खेल के मैदान में बदल देते हैं यानी घृणा के बदले प्यार बाँटते हैं.

मन को समझाने के लिए ग़ालिब यह ख्याल अच्छा है के अनुसार कुछ भारतीय खेल-प्रेमी अपने मन को यह कह कर भी समझा, बहला या झुठला सकते हैं कि खेल-कूद में हार-जीत का कोई महत्त्व नहीं होता. मगर सवाल तो यह है कि हर जन-साधारण इतना दार्शनिक नहीं होता. जब देश के नेता ही हार-जीत के साथ अपनी या अपने देश की प्रतिष्ठा जोड़ लें तो बेचारी प्रजा क्या कर सकती है. 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत काफ़ी पुरानी है. मेक्सिको ओलिंपिक खेलों में भारतीय हॉकी की हार के तुरंत बाद ही भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने दुःखी हो कर झट से अपना फरमान जारी करते हुए कहा था कि हमारी हार का मुख्य कारण खिलाड़ियों में अनुशासन और एकाग्रता की कमी है. लेकिन इंदिरा गांधी की जगह यदि जवाहरलाल नेहरू होते तो वह शायद कुछ और ही कहते. १९६० में भी भारतीय खेल-प्रेमियों को ऐसी ही दुखद मनःस्थिति का सामना करना पड़ा था. तब फ़ाइनल में पाकिस्तान ने भारत को हरा कर स्वर्ण पदक प्राप्त किया था और भारत के हाथ केवल रजत पदक ही लगा था. तब नेहरू जी ने, जो कि स्वयं एक खिलाड़ी थे, लोगों को मायूसी की मुद्रा में देख कर कहा था कि इस में इतना परेशान होने की क्या बात है. पाकिस्तान ने हमें हराया है, हमें उन को जीत की मुबारकबाद देनी चाहिए और उन की पीठ थपथपानी चाहिए.

यह ठीक है कि पारसाल, यानी १९६८ का साल १९६७ की तुलना में और भी ज्यादा निराशापूर्ण रहा क्यों तब हम फ़ाइनल में हारे थे और इस बार हम फ़ाइनल में भी नहीं पहुँच पाये. इतना ही नहीं; तब हम पाकिस्तान से हारे थे और इस बार ऑस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड से और वह भी क्रिकेट में नहीं बल्कि हॉकी में, जिस में हमें वर्षों से जगतगुरु होने का गौरव प्राप्त था.

यह तो हुई नेताओं की खेल-भावना की बात. अब ज़रा भारतीय खेल-प्रेमियों और खिलाड़ियों की भी सुनिए. इस बार जब पराजित भारतीय हॉकी टीम के सदस्य पालम हवाई अड्डे पर पहुँचे तो वहाँ पर राजधानी का कोई भी हॉकी अधिकारी या हॉकी-प्रेमी उन के स्वागत या अस्वागत के लिए नहीं पहुँचा. खिलाड़ियों के प्रति ऐसा उपेक्षा भाव, मानो वह खेल कर नहीं बल्कि किसी का खून कर के लौटे हों, और हमारे खिलाड़ी भी इतने संवेदनशील, ज़रा-ज़रा सी बात पर रूठने वाले और अधैर्यवान निकले कि उन्होंने झट से हॉकी से संन्यास लेने की घोषणा कर दी. सब से पहले भारतीय हॉकी टीम के संयुक्त कप्तान गुरबख्शसिंह ने संन्यास की घोषणा की और फिर उन का अनुकरण करते हुए कप्तान पृथीपाल सिंह ने भी एक दिन संन्यास या अवकाश की घोषणा कर दी. उन के दिल की बात तो वही जानें मगर उन्होंने जो बात सब से कही वह यह थी कि उन की उम्र अब काफ़ी हो गयी है. मेक्सिको ओलिंपिक में

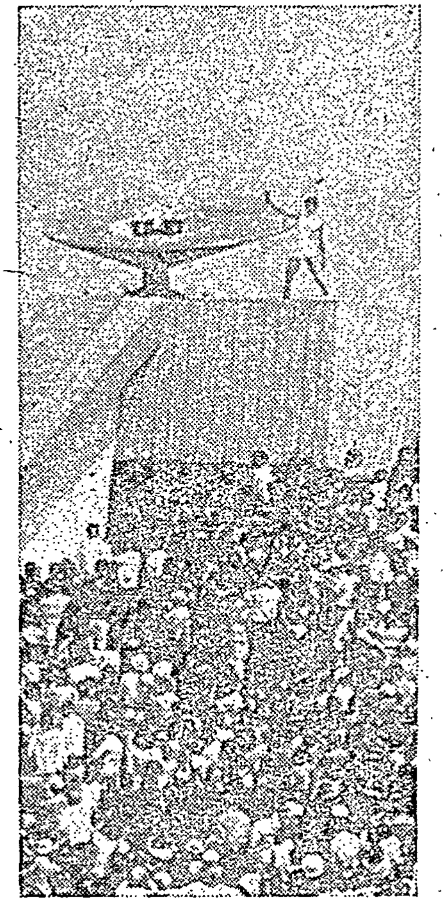

एनरिक्वेटा बेसिलिओ (मेक्सिकी खिलाड़िन) के हाथ में ओलिंपिक मशाल : इतिहास में पहली बार

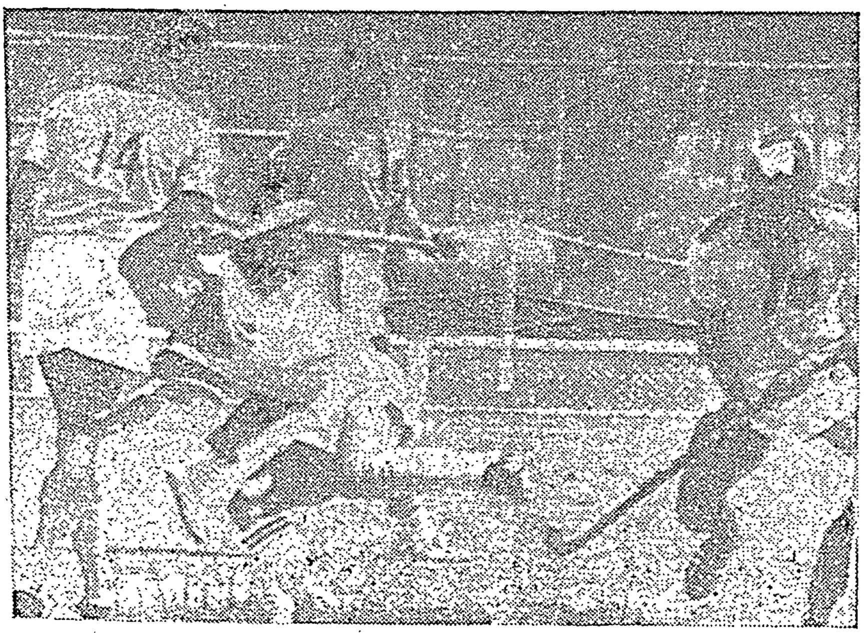

मेक्सिको में भारत बनाम जापान : खेल-खेल में तनाव

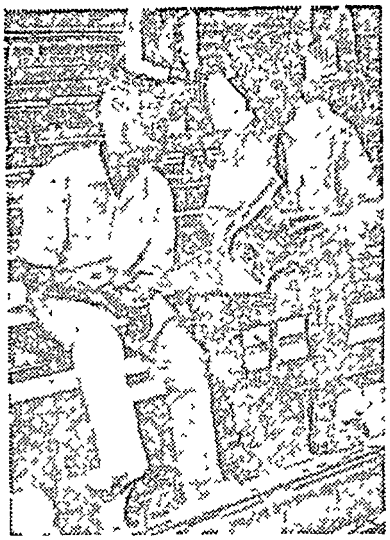

भारतीय स्कूली छात्रों की टीम के कप्तान राजा मुकर्जी आस्ट्रेलियाई अधिकारी रे कोरोल के साथ: पुराने उस्तादों की पहचान

वही सब से ज्यादा उम्र के हॉकी के खिलाड़ी थे, दूसरे शब्दों में यह कि वही सब से ज्यादा अनुभवी खिलाड़ी थे. ख़ैर, यह तो अपने-अपने सोचने का ढंग है. पृथीपाल सिंह ने केवल एक बार हारने पर हिम्मत हार दी और भारतीय लॉन टेनिस के मशहूर खिलाड़ी रामनाथन कृष्णन् ने इतनी बार हार कर भी हिम्मत नहीं हारी. अब भी जब कोई रामनाथन कृष्णन् से खेल से अवकाश लेने की बात करता है तो वह यही कहते है कि जब तक मेरे देशवासी चाहेंगे मैं खेलता रहूँगा. हाँ, विल्सन जोंस के संन्यास या अवकाश लेने की बात तो समझ में आती है. क्रिकेट के खेल से बाबू नाडकर्णी ने भी संन्यास की घोषणा की.

क्रिकेट : जहाँ तक क्रिकेट का सवाल है, पिछले साल भारतीय क्रिकेट टीम ने भी कोई कमाल या चमत्कार नहीं किया. भारत-ऑस्ट्रेलियाई टेस्ट शृंखला में ऑस्ट्रेलिया ने चारों टेस्ट जीत लिये और भारत अपनी लाख कोशिशों के बावजूद एक भी टेस्ट नहीं जीत पाया. ब्रिस्बेन और सिडनी में खेले गये टेस्टों में भारतीय खिलाडियों को जीत का अच्छा मौक़ा मिला था मगर उन के खेल ने, या कहिए कि उन की तक़दीर ने उन का साथ नहीं दिया. हाँ, पिछला साल भारतीय क्रिकेट टीम के कप्तान के लिए काफी अच्छा रहा. एक तो उन की विदेशी भूमि पर टेस्ट जीतने की तीव्र मनोकामना पूरी हो गयी. अब तक यही कहा जाता था कि किसी विदेशी भूमि पर भारत कोई टेस्ट जीतने में सफल नहीं हो सका, मगर पिछले वर्ष आस्ट्रेलिया का दौरा पूरा करने के बाद भारतीय टीम जब न्यूज़ीलैंड गयी तो विदेशी भूमि पर टेस्ट जीतने का तिलक नवाब पटौदी के माथे लगा. तब लोगों ने इतना जरूर कहा कि नवाब पटौदी खेल के धनी भले हों या न हों, मगर क़िस्मत के धनी जरूर हैं. पिछला साल नवाब पटौदी के लिए इसलिए भी महत्त्वपूर्ण रहा कि उन की मनपसंद प्रेमिका (शर्मिला टैगोर) मिल गयी.

इंग्लैंड की क्रिकेट टीम भारत आते-आते रह गयी. इंग्लैंड का जब दक्षिण अफ़्रीका का प्रस्तावित दौरा रद्द हो गया तो उन्होंने भारत और पाकिस्तान में संयुक्त दौरे का प्रस्ताव रखा. भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के अधिकारियों ने बिना शिक्षामंत्रालय या वित्तमंत्रालय से बातचीत किये अपनी ओर से उस की हामी भर दी. मगर ऐन मौक़े पर विदेशी मुद्रा के संकट के कारण इंग्लैंड की टीम का दौरा भी रद्द कर दिया गया.

भारतीय स्कूली छात्रों की क्रिकेट टीम इन दिनों ऑस्ट्रेलिया का दौरा कर रही है. भारतीय छात्रों की टीम का प्रदर्शन कुल मिला कर बहुत ही उत्साहवर्द्धक रहा है. भारतीय स्कूलों की टीम अब तक १५ मैच खेल चुकी है. पहले १० मैचों में भारतीय टीम की स्थिति इस प्रकार रही : ३ मैच जीते, १ हारा, ५ बराबर और एक मैच पूरा नहीं हो सका.

उधर वेस्टइंडीज की क्रिकेट टीम ऑस्ट्रेलिया के दौरे पर गयी है. ब्रिस्बेन में खेले गये पहले टेस्ट में वेस्ट इंडीज़ की टीम १२५ रनों से जीत गयी. पहले टेस्ट में वेस्ट इंडीज की टीम के कप्तान गैरी सोबर्स का प्रदर्शन इतना चमत्कारपूर्ण रहा कि वेस्ट इंडीज़ की जनता ने उनकी पिछली सारी ग़लतियाँ माफ़ कर दीं. यहाँ यह बता देना उचित होगा कि पोर्ट ऑफ़ स्पेन में खेले गये वेस्ट इंडीज-इंग्लैंड टेस्ट शृंखला के चौथे टेस्ट में सोबर्स की जरा-सी भूल के कारण विश्व विजेता वेस्ट इंडीज़ की टीम इंग्लैंड से हार गयी थी. उस टेस्ट में सोबर्स ने एक प्रकार का जुआ खेला था और वह उस जुए में हार गया था.

फ़ुटबाल : बर्मा, मलयेसिया, इस्राइल, दक्षिण कोरिया और बैंकॉक, एशिया के ये सभी देश भारत की तुलना में बहुत छोटे हैं, जनसंख्या और क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत एक विशाल देश है मगर जहाँ तक फुटबाल का सवाल है ये सभी छोटे-छोटे देश भारत से काफी आगे निकलते जा रहे है. फुटबाल में भारत को कभी एशियाई चैंपियन होने का गौरव प्राप्त था मगर अब वह छोटे-छोटे देशों से भी शुरू-शुरू के राउंडों में ही हार जाता है. सिओल में हुई १०वी एशियाई युवक फ़ुटबाल प्रतियोगिता में पिछले साल भारत मलयेसिया से २-१ से हार गया. जहाँ तक फुटबाल की राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं का सवाल है डी. सी. एम. फुटबाल प्रतियोगिता बंबई की मफ़तलाल टीम ने जीती. दिल्ली के कारपोरेशन स्टेडियम में खेले गये फ़ाइनल में मफ़तलाल ने लीडर्स क्लब जालंधर को २-१ से हरा दिया. डी. सी. एम. के बाद सुब्रत मुखर्जी प्रतियोगिता, जिसे छोटा डूरैंड भी कहा जाता है, शुरू हुई. कलकत्ता की पाइकपाड़ा कुमार आशुतोष इंस्टिट्यूट और नगालैंड की मोकोकचुंग की टीम के बीच खेले गये फ़ाइनल मैच में अतिरिक्त समय में कलकत्ता की टीम के सेंटर फ़ारवर्ड कोलन मुखर्जी ने, जो कि इस टीम के कप्तान भी हैं, निर्णायक गोल कर दिया लगातार दो वर्ष तक यह कप जीतने वाली कार निकोबार की टीम इस बार फ़ाइनल में भी नहीं पहुँच पायी.

जहाँ तक रोवर्स कप का सवाल है, उस में इस बार उत्तर भारत की जनता की काफ़ी दिलचस्पी रही. कारण यह कि यह पहला अवसर था जब उत्तर भारत की किसी टीम को रोवर्स कप के फ़ाइनल में पहुँचने का मौक़ा मिला था. जालंधर की लीडर्स क्लब की गणना अब चोटी के इने-गिने फुटबाल क्लबों में होने लगी है. रोवर्स कप के फ़ाइनल में पहुँची दोनो टीमों—मोहन बागान और लीडर्स क्लब—को दो बार फ़ाइनल मैच खेलना पड़ा, जिस में मोहन बागान ने लीडर्स क्लब को ३-० से हरा दिया. अब देखें इस बार डूरैंड कप पर कौन-सी टीम अपना अधिकार जमाती है.

विंबलडन कप : पिछले वर्ष लॉन टेनिस के क्षेत्र में काफ़ी हलचल रही. विंबलडन प्रतियोगिताओं को पहली बार खुली प्रतियोगिता का रूप दिया गया जिस में पुरुषों की सिंगल्स प्रतियोगिता जीतने का गौरव ऑस्ट्रेलिया के पेशेवर खिलाड़ी राड लेवर को प्राप्त हुआ. फ़ाइनल में राड लेवर ने अपने ही देशवासी टानी रोश को ६-३, ६-४ और ६-२ से हराया. स्त्रियों के सिंगल्स में अमेरिका की बिली जीन किंग ने ऑस्ट्रेलिया की कुमारी जूडी टेगार्ड को ९-७, ७-५ से हराया. पुरुषों के डबल्स में आस्ट्रेलिया के जान न्यूकोंब और टानी रोश ने अपनी ही देशवासी जोडी केन रोजवाल और फ़्रेड स्टोल को हराया. जहाँ तक विंबलडन का

रोवर्स कप: टक्कर कभी फुटबाल से, कभी सिर से

सवाल है उसमें ऑस्ट्रेलिया का ही बोलवाला रहा मगर जहाँ तक डेविस कप की प्रतियोगिताओं का सवाल है उसमें इस बार ऑस्ट्रेलिया पिछड़ गया.

डेविस कप : डेविस कप में ऑस्ट्रेलिया और अमेरिका की प्रतिद्वंद्विता काफ़ी पुरानी है. ऑस्ट्रेलिया अब तक इस कप पर २२ बार अधिकार जमा चुका है और अमेरिका १९ बार. लेकिन पिछले तीन वर्षों से अमेरिका डेविस कप के चुनौती मुक़ाबले में भी नहीं पहुँच पाया. अब, जब कि ऑस्ट्रेलिया के सभी खिलाड़ी पेशेवर खिलाड़ी बन गये, ऑस्ट्रेलिया का डेविस कप पर अधिकार जमाना काफ़ी मुश्किल होता जा रहा है. एडिलेड (ऑस्ट्रेलिया) में २६, २७ और २८ दिसंबर को खेले गये डेविस कप के चुनौती मुक़ाबले में जीत अमेरिका की ही होगी, लॉन टेनिस के पंडितों ने यह भविष्यवाणी बहुत पहले से ही कर दी थी.

अमेरिका के आर्थर एश को इस समय दुनिया का सर्वश्रेष्ठ शौक़िया (ग़ैर-पेशेवर) खिलाड़ी माना जाता है, पहले दिन खेले गये दोनों सिंगल्स मैच में जब अमेरिका ने दोनों सिंगल्स मैच जीत लिये तो अमेरिका की जीत एक प्रकार से निश्चित ही हो गयी.

भारत और डेविस कप : जहाँ तक भारत का सवाल है डेविस कप से भारत का नाता भी काफ़ी पुराना और गहरा है. वैसे १९६६ में भारत को पहली बार डेविस कप के चुनौती मुक़ाबले (चैलेंज राउंड) में पहुँचने का गौरव भी प्राप्त हुआ था मगर पिछले साल भारत डेविस कप के अंतर्क्षेत्रीय फ़ाइनल में अमेरिका से हार गया.

तोक्यो में हुए डेविस कप के पूर्वी क्षेत्रीय फ़ाइनल में भारत ने जापान को ४-१ से हराया था. उस के बाद ४, ५ और ६ अक्तूबर को म्यूनिख में हुए डेविस कप के अंतरक्षेत्रीय सेमि-फ़ाइनल मुक़ाबले में भारत ने पश्चिमी-जर्मनी को ३-२ से हराया.

एशियाई खेल : भगवान का लाख-लाख शुक्र है कि १९७० में होने वाले एशियाई खेलों पर जो अनिश्चय के बादल छाये हुए थे वे अब छंट गये हैं. पूर्व कार्यक्रमानुसार १९७० के छटे एशियाई खेलों का आयोजन सिओल (दक्षिण कोरिया) में किया जाना था. मगर पिछले साल दक्षिण कोरिया ने जब कुछ आर्थिक कारणों से अपने यहाँ एशियाई खेलों का आयोजन कराने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो एशिया के कुछ देश भी इन खेलों के प्रति कुछ उदासीनता दिखाने लगे. ऐसी स्थिति या व्यथा-स्थिति में भारत का दुःखी और परेशान होना स्वाभाविक ही था. भारत को एशियाई खेलों का जन्मदाता माना जाता है. आखिर एशियाई खेल संघ के अध्यक्ष यंग चांग के प्रयत्नों से अब आशंका की स्थिति नहीं रही. बैंकॉक जहाँ कि १९६६ में एशियाई खेलों का आयोजन किया गया था, १९७० में भी अपने यहाँ एशियाई खेलों के आयोजन कराने के लिए राज़ी हो गया है. उस ने केवल इतना ही कहा है कि एशियाई खेलों में होने वाली विभिन्न खेल-प्रतियोगिताओं की संख्या १६ से घटा कर १० कर दी जानी चाहिए. इन में से कौन-कौन-सी प्रतियोगिताएँ हटायी या घटायी जायेंगी इस बारे में अभी कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिली है मगर सुनने में आ रहा है कि शायद हॉकी की प्रतियोगिताओं का भी आयोजन न हो सके. यदि ऐसा हुआ तो ज़ाहिर है कि भारत और पाकिस्तान को यह अच्छा नहीं लगेगा. पहले एशियाई खेलों का आयोजन १९५१ में नयी दिल्ली में, दूसरी बार १९५४ में मनीला में, तीसरी बार १९५८ में तोक्यो में, चौथी बार १९६२ में जैकर्त्ता में, और पाँचवीं बार बैंकॉक में १९६६ में हुआ था.

लंदन-सिडनी कार रेस : इस प्रतियोगिता को पिछले साल की सब से महत्त्वपूर्ण घटना तो नहीं, हाँ, सब से दिलचस्प घटना ज़रूर कहा जा सकता है. दुनिया में कुछ खेल ऐसे होते हैं जिन्हें ख़तरों का खेल माना जाता है. उन में एक खेल मोटर रेस भी है. २४ नवंबर को लंदन से ९८ कारों ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया जिन में से कुछ रास्ते में रह गयीं और कुछ दुर्घटनाग्रस्त हो गयीं. बिछायीं, जो बड़ी-बड़ी मुसीबतों से अपनी कार बचा लाये थे मंज़िल के पास पहुँच कर दुर्घटनाग्रस्त हो गये और जिन की जीत का किसी को ख़याल या ख़्वाब भी नहीं था वह बाज़ी मार गये—इंग्लैंड के एंड्रयू कोवन को इस रेस का विजेता घोषित किया गया.

यह सारी कहानी पिछले साल की कहानी है, उस साल की जिसे हम अलविदा कर चुके हैं. आगामी वर्ष भारतीय खेल-कूद के लिए शुभ हो ऐसा कह देने भर से काम नहीं चलेगा. यह समय केवल सोचने का नहीं बल्कि संकल्प करने का है, चिंतनशील बनने का नहीं बल्कि कर्मशील बनने का है.

लंदन-सिडनी कार रेस : क़िस्मत की दौड़

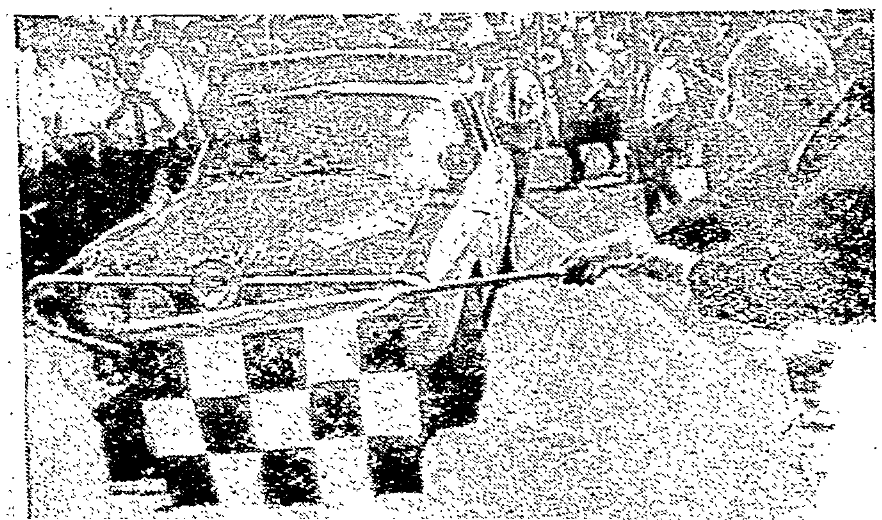

संक्षिप्त समाचार

क्रिकेट : मेलबोर्न में खेले गये दूसरे टेस्ट में आस्ट्रेलिया ने वेस्ट इंडीज़ को एक पारी और ३० रनों से हरा दिया. यह खेल आशा और निराशा के बीच शुरू हुआ. आस्ट्रेलिया ने टॉस जीत लिया लेकिन कप्तान बिल लारी ने मैदान को अपने अनुकूल न पा कर वेस्ट इंडीज को बल्लेबाजी के लिए न्योता दिया. लारी की यह चाल कामयाब साबित हुई. वेस्ट इंडीज की टीम पहली पारी में केवल २०० रन ही बना सकी. आस्ट्रेलिया की पहली पारी की पहली विकेट १४ रन पर ज़रूर गिरी किंतु दूसरी विकेट गिराने के लिए वेस्ट इंडीज के गेंदबाज़ों को एड़ी-चोटी का जोर लगाना पड़ा और दूसरी विकेट ३१२ रन पर गिरी. आस्ट्रेलिया ने पहली पारी में ५१० रन बनाये.

वर्ष का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी : अमेरिका के लंबी कूद के विश्व चैंपियन बाब बीमन और मेक्सिको ओलिंपिक में एक साथ चार स्वर्ण पदक प्राप्त करने वाली चेकोस्लोवाकिया की जिम्नास्टिक खिलाड़िन वीर चस्लवस्का को इस वर्ष का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी और खिलाड़िन घोषित किया गया है. जर्मनी द्वारा आयोजित इस चुनाव समिति में विभिन्न देशों के २८ खेल अधिकारियों ने भाग लिया. इस वर्ष के खेल प्रदर्शन के आधार पर दुनिया के जिन प्रथम दस खिलाड़ियों को चुना गया उन का क्रम से नाम और उन के प्राप्तांक इस प्रकार हैं :—

१—बाब बीमन (अमेरिका) २६८ अंक, २—अल ओएर्टर (अमेरिका) १७७ अंक, ३—जीन क्लाउडे किली (फ़्रांस) ११३ अंक, ४—डेविड हेमेरी (ब्रिटेन) १०७ अंक, ५—माइकेल वेनडेन (ऑस्ट्रेलिया) ९० अंक, ६—किपचोग केइनो (केन्या) ७४ अंक, ७—जिम हाइंस (अमेरिका) ७१ अंक, ८—ली इवान्स (अमेरिका) ६३ अंक, ९—डिक फोस्बरी (अमेरिका) ५७ अंक, १०—टीमी स्मिथ (अमेरिका) ५६ अंक.

स्त्री खिलाड़ियों में वीरा चस्लवस्का (चेकोस्लोवाकिया) ने ११७ अंक प्राप्त करके प्रथम स्थान पाया.

विश्व के राजनैतिक रंगमंच पर पिछला वर्ष

१९६८ में विश्व के राजनैतिक रंगमंच पर तरह-तरह के उतार-चढ़ाव देखने को मिले. यह तो सर्वविदित है कि संसार में सब से अधिक हत्याएँ अमेरिका में होती हैं लेकिन पिछले वर्ष जिन दो हत्याओं ने विश्व की सारी मानव-जाति को झकझोर कर रख दिया, वे थीं निग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग की टैनिसी में हत्या और राष्ट्रपति-पद के उम्मीदवार सेनेटर रॉबर्ट केनेडी की कैलिफ़ोर्निया में हत्या. इन दो युवक नेताओं की इतनी कम उम्र में हत्या के कारण न केवल निग्रो लोगों ने अपने-आप को असहाय अनुभव किया बल्कि अमेरिका का उदारवादी और युवक तबक़ा भी अपने आप को बे-पनाह पाने लगा. वक़्त सरकने के साथ बेवक़्त की इन मौतों पर इनसान ने सब्र का घूँट भरा और राष्ट्रपति जॉनसन द्वारा हथियार रखने पर पाबंदी लगाये जाने संबंधी बिल पर हस्ताक्षर ने आम जनता में व्याप्त असुरक्षा की भावना को आत्मरक्षा की भावना में बदला. राष्ट्रपति जॉनसन द्वारा इस तरह के क़दम उठाने का कारण शायद यह भी था कि उन्ही के काल में केनेडी परिवार के दो भाइयों की हत्या हुई—एक राष्ट्रपति था और दूसरा राष्ट्रपति-पद का उम्मीदवार. जॉनसन यह बहुत पहले निश्चय कर चुके थे कि वह स्वयं राष्ट्रपति-पद का चुनाव नहीं लड़ेंगे और लोगों में उन के प्रति जो भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गयी थीं उन भ्रांतियों को निर्मूल साबित करने के लिए वह सुधारवादी कार्यों में जुट गये. इन सुधारवादी कार्यों से कहीं राष्ट्रपति-पद के उन के समर्थित उम्मीदवार ह्यूबर्ट हंफ़्री का पलड़ा भारी न हो जाये, उन्होंने हंफ़्री के पक्ष में बयान न दे कुछ समय तक चुप्पी साधे रखी. और जब उन्होंने हंफ़्री की उम्मीदवारी का समर्थन किया तब तक हंफ़्री, रिपब्लिकन पार्टी के उम्मीदवार और भूतपूर्व उप-राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन से प्रसिद्धि के मामले में काफी पीछे था. केनेडी की वीएतनाम-नीति की आलोचना कमतर करने के लिए ही उन्होंने वीएतनाम पर आंशिक बमबारी की घोषणा की थी. जब वह घोषणा कारगर साबित नहीं हुई, तब अपनी सद्भावना जतलाने के लिए अंततः उन्होंने पूर्ण बमबारी की घोषणा कर दी. इस से हंफ़्री का भला नहीं हुआ और पूर्ण बमबंदी के बाद जब पेरिस की शांति-वार्ता में वीएतनामी प्रतिनिधियों के भाग लेने की बात चली तब दक्षिण वीएतनाम के राष्ट्रपति थिउ पहले तो मुक्ति मोर्चे के साथ बैठने को तैयार नहीं हुए और जब तैयार हुए तो उन्हें मेज का आकार नहीं भाया. राष्ट्रपति जॉनसन के राष्ट्रपतिकाल के अंतिम दिनों की उपलब्धि का रूप अपोलो-७ और अपोलो-८ की चंद्रमा-यात्रा है जो उन के कार्यकाल के साथ इतिहास के सुनहरे पन्नों में जायेगी. इस के साथ अमेरिकी जासूसी जहाज़ प्वेब्लो का उत्तर कोरिया द्वारा पकड़ा जाना अमेरिका के लिए एक कटु अनुभव रहा और जिन शर्तों पर प्वेब्लो जहाज के अधिकारी रिहा किये गये (जहाज ज़ब्त कर लिया गया) उस से भी जॉनसन की स्थिति अधिक सुधरी नहीं. जॉनसन राष्ट्रपति-पद से हटने के पहले रूस के प्रधानमंत्री कोसीगिन से मिलना चाह रहे थे लेकिन रूस द्वारा चेकोस्लोवाकिया में हस्तक्षेप से और जॉनसन के वक्तव्यों से उनकी कोसीगिन से मिलने की इच्छा पूरी नहीं हो सकी. अमेरिका के नव-निर्वाचित राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने चुनावों से पहले लोगों से बहुत से इकरार किये थे और राष्ट्रपति जॉनसन से दो बार मुलाक़ात कर इस बात का भी इज़हार किया कि उन की विदेश-नीति जॉनसन की विदेश-नीति से अधिक भिन्न नहीं होगी. अपने मंत्रिमंडल के १२ साथियों का उन्होंने जिस नाटकीय ढंग से टेलीविज़न पर परिचय कराया, अमेरिका के इतिहास में वह भी अपने क़िस्म का एक नया उदाहरण है. निक्सन के विशेष प्रतिनिधि स्क्रैंटन द्वारा पश्चिमी एशिया के नेताओं से बातचीत करना, निक्सन की ऊ थाँ से भेंट तथा उन के अन्य प्रतिनिधियों द्वारा एशिया के देशों का दौरा और सोवियत संघ से संबंध सुधारने के लिए उन की बातचीत से यह लग रहा है कि जॉनसन की जगह अब निक्सन और कोसीगिन की बातचीत के आसार अधिक उज्ज्वल हो गये हैं.

इस समय बेशक आसार अच्छे दीखते हैं लेकिन ध्यान उस तरफ़ भी जाता है जब रूसी और वारसाऊ संधि के देशों की सेनाओं ने चेकोस्लोवाकिया पर हमला कर वहाँ के लोगों के दिलों को जीतने की बजाय उन्हें ठेस पहुँचायी थी. कहने को तो रूसी नेता यह कहते हैं कि चेकोस्लोवाकिया में उन का दखल जायज था क्योंकि अगर वह ऐसा नहीं करते तो चेकोस्लोवाकिया की आंतरिक स्थिति अधिक बिगड़ जाती. रूस, जो अपने आप को कम्युनिस्ट देशों का अभिभावक मानता है, उस की इस कार्रवाई की विश्व भर में जोरदार आलोचना हुई. यहाँ तक कि यह भी अफ़वाह फैल चली थी कि चेकोस्लोवाकिया के मौजूदा नेता डुबचेक, स्वोबोदा और चेरनिक अपने आप को असुरक्षित महसूस करने लगे थे. उन का एक पैर प्राग में और दूसरा मास्को में रहता था. अंततः दोनों देशों के बीच समझौता हो गया और रूसी सेनाएँ चेकोस्लोवाकिया से बाहर निकल गयीं लेकिन चेकोस्लोवाकिया में जो उदारवाद की लहर शुरू हुई थी, वह कमतर होती चली गयी और चेकवासियों में रूस के प्रति जो आदर की भावना थी, वह भी जाती रही. ५०वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में तो प्राग में रूसी झंडा तक जलाया गया. रूस के इस हस्तक्षेप से यूगोस्लाविया और रोमानिया की सरकार भी खतरा महसूस करने लगी लेकिन यूगोस्लाविया के राष्ट्रपति टीटो और रोमानिया के राष्ट्रपति चेचेस्कू ने दृढ़ता से इस स्थिति को सँभाले रखा. पूर्व यूरोपीय इन देशों की अस्थिरता की लहर पश्चिम जर्मनी में भी पहुँची और रूस ने पश्चिम जर्मनी को इस आशय का एक विरोधपत्र भी दिया कि उस के अधिकारी चेकोस्लोवाकिया में विद्रोहियों से हिलते-मिलते देखे गये हैं. लेकिन पश्चिम जर्मनी के अधिकारियों ने यह साफ़ कर दिया कि उन का प्रतिनिधिमंडल शुद्ध व्यापारिक तौर पर ही चेकोस्लोवाकिया गया था.

यह सही है कि पश्चिम जर्मनी ने अपनी राजनैतिक और आर्थिक तौर से स्थिति काफ़ी मज़बूत बना ली है और उस की मुद्रा मार्क दिन-ब-दिन दृढ़ होती गयी है. लेकिन रूस की एक धमकी से तो ऐसा लगा था कि तीसरा विश्व-युद्ध संसार का किवाड़ खटखटा रहा है. रूस की धमकी तब सद्भावना में बदल गयी जब विली ब्रांट और ग्रोमिको संयुक्तराष्ट्र में मिले थे. लेकिन अपने आप को तगड़ा, बड़ा और सुरक्षित महसूस करने वाले बूढ़े शेर द गॉल की कमर तो साल शुरू होते ही दंगे-फसादों, हड़तालों, प्रदर्शनों ने तोड़ दी थी, जिस के फलस्वरूप उन्हें राष्ट्रीय असेंबली भंग करनी पड़ी. तदुपरांत चुनावों में द गॉलवादियों को बेशक निर्णायक बहुमत मिल गया लेकिन उन की लड़खड़ाती अर्थ-व्यवस्था पायेदार साबित न हो सकी. मौजदा प्रधानमंत्री मूर्विल ने स्थिति को संभालने की कोशिश की और जब फ़्रांस फ़्रांक के अवमूल्यन का निर्णय लिया ही चाहता था, राष्ट्रपति द गॉल ने साहसपूर्ण एलान किया—'फ़्रांस फ़्रांक का अवमूल्यन नहीं करेगा'. तब लगा था कि फ़्रांस संकट से उबर गया लेकिन इस समय फ़्रांस की स्थिति संकट से उबरी नहीं दीखती है. छात्रों का असंतोष फिर सामने आ गया है.

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विल्सन ने रोडेसिया के प्रधानमंत्री इयान स्मिथ से रोडेसिया के मसले पर बातचीत की जो विफल सिद्ध हुई. ब्रिटेन की कंजरवेटिव पार्टी के नेता हीथ को अपने साथी इनोक पावेल के आव्रजन संबंधी वक्तव्यों से काफ़ी कोफ़्त हुई. ब्रिटेन द्वारा स्वेज़पूर्व से अपने सैनिक अड्डे समाप्त करने की घोषणा से दक्षिण-पूर्वेशिया में काफ़ी खलबली मची और यहाँ तक कि सिंगापुर के प्रधानमंत्री को लंदन भी जाना पड़ा.

दक्षिणपूर्वेशिया की इस खलबली के साथ ही पश्चिमेशिया का मसला समाधान से दूर रहा. वहाँ कुछ दिनों के अस्थायी युद्ध-विराम के बाद इस्राइल और युर्दान के सैनिकों की तोपें फिर से तन गयीं. इस्राइल के सैनिकों ने संयुक्त अरब गणराज्य के तेल शोधक कारखाने पर गोलाबारी की जिस के फलस्वरूप वहाँ काफ़ी क्षति हुई. फ़ारस की खाड़ी में ब्रितानी सैनिक अड्डों की समाप्ति पर ईरान के शाह के वक्तव्य से

यमन तथा अन्य आसपास के छोटे-मोटे शेखों के साम्राज्यों को काफ़ी चिंता हुई और यह चिंता तब और बढ़ गयी जब रूस के प्रधानमंत्री कोसीगिन ने ईरान का दौरा किया. कोसीगिन द्वारा ईरान की अर्थ-व्यवस्था को मजबूत बनाने और एक इस्पात के कारखाने की स्थापना में सहायता देने के फ़ैसले से दोनों देशों के बीच आशंका का झीना पर्दा उठ गया. ईरान की अर्थ-व्यवस्था को एक सितंबर के भूकंप ने जितना झटकाया उतना ही पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब को प्रतिपक्ष के नेताओं और विद्यार्थियों की भीड़ ने झटकाया. राष्ट्रपति अय्यूब तब बड़े ही परेशान नज़र आये जब पेशावर में उन पर किसी व्यक्ति ने गोली चलायी तथा उन की जान और शान को मिटा देना चाहा. उन के भूतपूर्व सहयोगी भुट्टो, असगर खाँ, आज़म खाँ आज उन के विरोधी हैं.

लातीनी अमेरिका के ग्वातेमाला में इस वर्ष के शुरू में आपत्कालीन स्थिति की घोषणा की गयी. सियरा लिओन, पेरू और पनामा में क्रांतियाँ हुईं. भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी, जो लातीनी अमेरिका के देशों के दौरे पर गयी थीं, पेरू में क्रांति के कारण वहाँ का दौरा नहीं कर सकीं. लातीनी अमेरिका में इस तरह की उथल-पुथल आम है और पिछले दिनों ब्राज़ील के राष्ट्रपति आर्थर द कोस्ता इ सिल्वा ने सभी अधिकारों को अपने हाथों में ले कर संसद को मुअत्तल कर दिया. गुयाना के पीपुल्स प्रोग्रेसिव पार्टी के नेता डॉ. छेदी जगन इस बार सत्तारूढ़ होने के जो सपने देख रहे थे वे बिखर गये और मौजूदा प्रधानमंत्री बर्नहम पुनः निर्वाचित घोषित कर दिये गये.

अफ़्रीका महाद्वीप में १२ मार्च को मॉरिशस को स्वाधीनता मिली. वहाँ आज़ादी से पूर्व कुछ दंगे-फ़साद ज़रूर हुए, लेकिन बाद में सामान्य स्थिति पैदा हो गयी. माली में एक सरकार का तख़्ता पलटा गया लेकिन बिना किसी ख़ून-ख़राबे के दूसरी सरकार वजूद में आ गयी. घना के नेताओं ने देश में लोकतांत्रिक व्यवस्था बहाल करने का लोगों को यकीन दिलवाया तो केन्या में एशियावासियों के जीवन पर बन आयी. वे मारे-मारे कभी भारत पहुँचे तो कभी ब्रिटेन का किवाड़ खटखटाया. नाइजीरिया और बिअफ़्रा में गृह-युद्ध ज़ोरों पर है. नव-वर्ष के अवसर पर बिअफ़्रा ने जो एक सप्ताह के युद्ध-विराम की घोषणा की थी, वह नाइजीरिया को मंजूर नहीं हुई. बिअफ़्रा में भुखमरी के कारण लाखों लोगों ने प्राण गँवाये. जाम्बिया के दूसरे आम चुनाव में केनेथ काउंडा पुनः राष्ट्रपति चुन लिये गये. दक्षिण अफ़्रीका के डॉ० क्रिश्चन बर्नार्ड ने ब्लेवर्ग के हृदय प्रतिरोपण किया. वह ही विश्व में एकमात्र सफल ऑपरेशन करार दिया गया. जंजीबार में क्रांति हुई लेकिन स्थिति पर वक़्त से क़ाबू पा लिया गया.

ईरान : पुश्तैनी संबंधों का नवीकरण

ईरान के शाह मोहम्मद रज़ा शाह पहलवी शहंशाह आर्यमेहर अपनी मलिका फ़र्राह के साथ १२ साल बाद भारत की १२ दिनों की यात्रा पर २ जनवरी से हैं. वैसे इस से पूर्व पिछले साल जनवरी को भी शहंशाह और मलिका थाईलैंड से होते हुए जब पालम हवाई-अड्डे पर दो घंटे के लिए रुके थे तब उन का वैसा ही इस्तक़बाल किया गया था जैसा राजकीय यात्रा पर आने पर किया जाता है. उस अवसर पर शहंशाह ने भारतवासियों और भारत सरकार के नेताओं के दिल में ईरान के प्रति जो सद्भावना और प्रेम की लहर देखी थी उस से उन का वह वक्तव्य कि "भारत और ईरान के पुश्तैनी संबंध हैं और अगर कहीं बीच में ज़रा-सा खटका पैदा हो गया है तो इस का यह मतलब नहीं होता कि

मोहम्मद रजा शाह पहलवी

दरार हमेशा के लिए पड़ जाती है. दरारें पाटी जा सकती हैं. यही वजह है कि १९६५ में भारत और ईरान के संबंधों में जो एक झीनी-सी दरार पैदा हो गयी थी, वह अब पट चुकी है." जब शाह ने बड़े ही आत्मविश्वास के साथ यह कहा था कि पाकिस्तान के साथ ईरान के संबंधों का यह कभी भी मतलब नहीं लगाया जाना चाहिए कि ईरान के भारत के साथ संबंध मैत्रीपूर्ण नहीं हैं, क्यों कि भारत के संबंध संयुक्त अरब गणराज्य के साथ वैसे ही मित्रतापूर्ण हैं जैसे हमारे पाकिस्तान के साथ. ईरान से भारत की यात्रा पर चलने से पूर्व शाह ने भारतीय पत्रकारों को बताया था कि भारत और ईरान एशियाई देशों के उद्योगीकरण के लिए एक अहम रोल अदा कर सकते हैं. अपनी बातचीत के दौरान मितभाषी, संयत और संतुलित विचारों के उदारवादी शाह ने बताया कि वह सभी क्षेत्रों में द्विपक्षीय या बहुपक्षीय सहयोग की हामी भरते हैं. १९७१ में जब ब्रितानी सैनिक अड्डा फ़ारस की खाड़ी से समाप्त हो जायेगा तब वह उस की सुरक्षा के लिए अन्य अपने पड़ोसी देशों के साथ मिल कर क़दम उठायेंगे. वह ब्रिटेन को भी यह बता चुके हैं कि फ़ारस की खाड़ी की सुरक्षा की फ़िक्र करने की उन्हें ज़रूरत नहीं है. शाह को इस बात का ज़रूर अफ़सोस है कि ब्रिटेन सरकार कहने को तो सैनिक अड्डों की समाप्ति की बात करती है लेकिन परोक्ष रूप में वह अपने प्रभुत्व को क़ायम रखना चाहती है. फ़ारस की खाड़ी के आसपास की सभी शक्तियों को और छोटे-बड़े शेखों को ब्रिटेन की इस चाल से शाह ने आगाह कराना चाहा. जहाँ तक बहरीन का सवाल है, बहरीन ईरान का एक अविभाज्य अंग है और इस बात को ब्रिटेन भी स्वीकारता है और अन्य देश भी. शाह अपने उन सुधारों का अक्सर बखान करते हैं जिन्हें उन्होंने 'श्वेत क्रांति' के नाम से प्रचारित किया है. यह क्रांति उन्होंने १९६२ में शुरू की थी और उस के अंतर्गत देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति में जो दृढ़ता आयी थी, वह सर्वविदित है.

यात्रा से पहले : अपनी भारत-यात्रा शुरू करने से पहले ईरान के शाह ने कराची में पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब और तुर्की के प्रधानमंत्री से क्षेत्रीय सहयोग के बारे में दो दिन की शिखर वार्त्ता की. इस में उन्होंने आपसी सहयोग के अलावा अंतरराष्ट्रीय विषयों पर विचार-विमर्श किया जिस में कश्मीर भी शामिल था. एक सम्मेलन में ईरान के शाह ने बताया कि वह भारत और पाकिस्तान को नज़दीक लाने का भरसक प्रयास करेंगे, क्यों कि मौजूदा हालात में दो पड़ोसियों का और खास कर भारत और पाकिस्तान का मिल कर रहना न सिर्फ़ इन दोनों देशों के लिए ही हितकर है बल्कि पूरे एशिया महाद्वीप के लिए भी फ़ायदेमंद साबित होगा. भारतवासियों के दिल में ईरान के प्रति जो संदेह की लीक पड़ गयी थी, वह अब काफ़ी हद तक मद्धिम पड़ चुकी है लेकिन इस शिखर सम्मेलन में पुन: कश्मीर के सवाल के उठने और उस पर तीनों देशों के सहमत होने से यह बात फिर तूल पकड़ सकती है कि ईरान का नज़रिया पाकिस्तान से कोई बहुत अधिक अलग नहीं है. लेकिन इस बात की पुष्टि, खंडन या स्पष्टीकरण शाह की भारतीय नेताओं से बातचीत से ही हो सकेगा.

स्थिति और परिस्थिति : ढाई करोड़ की आबादी का यह छोटा-सा मुसलमानी देश उत्तर में सोवियत रूस, पूर्व में अफ़ग़ानिस्तान और पाकिस्तान, दक्षिण में फ़ारस और ओमान की खाड़ी और पश्चिम में तुर्की और इराक़ से घिरा हुआ है. ईरान का पठार खुश्क पहाड़ों का पठार है. यहाँ के निवासी सुंदर और हट्टे-कट्टे हैं जो कि मेहनती लोगों की कोटि में आते हैं

और उन की इसी मेहनत के फलस्वरूप ईरान के शाह अपनी प्रजा पर नाज़ करते हुए कहते हैं कि उन्होंने जिस तरह 'श्वेत क्रांति' में निहित सुधारों को अंगीकार किया वह लोगों की दूरदर्शिता, सज्जनता और ईमानदारी का प्रतीक है. एक वक़्त था जब सामंतशाही ईरान में एक आदमी के पास सैकड़ों और हज़ारों एकड़ भूमि थी और दूसरे बे-पनाह थे. लेकिन धीरे-धीरे स्थिति यह हो गयी कि अब ईरान में हर किसी के पास भूमि है. भूमि-सुधार के पहले चरण में यह आदेश जारी किया गया कि कोई ज़मींदार अपने पास एक से अधिक गांव नहीं रख सकता. इस आदेश से १४,२२६ गांवों की १८ प्रतिशत कृषि-योग्य भूमि ५,८१,००० लोगों में बांट दी गयी. दूसरे चरण में एक आदमी को ३० से १५० हेक्टर रखने की छूट थी. इस से ५२ हज़ार ८१८ गांव भूमिहीनों को मिल गये. देश के सभी वनों पर राज्य का अधिकार है. वनों पर एकाधिकार का कारण यह है कि लोगों में तकरार न हो और लकड़ी बेकार न जाये, इस लिए वनों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया.

ईरान में पिछली बार चुनाव क़ानूनों में परिवर्तन किया गया जिस के फलस्वरूप वहां स्त्रियों को भी मतदान का अधिकार मिल गया. इस के अलावा वहां की स्त्रियां सभी राष्ट्रीय कामों में बिना किसी भेद-भाव के भाग ले सकती हैं. एक समय था कि ईरान में निरक्षरता बहुत थी और कोई विरला घर ही ऐसा मिलता था जहां कोई पढ़ा-लिखा आदमी मिलता हो अब वहां एक साक्षर सेना तैयार की गयी है जिस का काम लोगों को साक्षर बनाना है. इस समय तक ४० हज़ार साक्षर सैनिक गांवों में भेजे जा चुके हैं जिन की बदौलत १२,६३,००० स्कूल जाने वाले बच्चों को स्कूल भेजा जा चुका है और चार लाख प्रौढ़ों को पढ़ने और लिखने के क़ाबिल बनाया जा सका है. इस व्यवस्था से वहां पर परंपरागत पढ़ाई की अपेक्षा कम पैसा खर्च होता है.

पश्चिमी एशिया में ईरान पहला देश है जहां तेल की खोज हुई और उस का विदेशों में निर्यात किया जाने लगा. ईरान के पास तेल और प्राकृतिक गैस का अथाह भंडार है. इस के अलावा वहां कोयला, लोहा, क्रोमाइट, तांबा, सीसा, जस्ता, मैंगनीज़, गंधक जैसे कुछ बढ़िया क़िस्म के खनिज पदार्थ पाये जाते हैं. लेकिन ईरान का मुख्य व्यापार तेल ही है. फ़ारस की खाड़ी के आस-पास तेल के छोटे-मोटे बहुत से कुएं हैं. १९६६ में कंसोर्टियम की देख-रेख में २,०१७,०९७ बैरल रोज़ाना के हिसाब से १६४ कुओं से तेल निकला करता था जो १२,३०० बैरल प्रति कुआं आता है. इस तरफ़ इस क्षेत्र में वृद्धि हुई है. कंसोर्टियम का मुख्य क्षेत्र अगाजारी है जहां से कुल क्षेत्र का आधा तेल निकलता है. दूसरा गच्चशरण है जहां अगाजारी का आधा तेल निकलता है. दिन-ब-दिन इस का उत्पादन बढ़ रहा है और उत्पादन के लिहाज़ से क़ीमत कम होती जा रही है. क़ीमत कम होने का कारण स्तर का बने रहना और वितरण का कुशलतापूर्ण तरीका है. कंसोर्टियम द्वारा जो तेल निकाला जाता है वह फ़ारस की खाड़ी के खरग द्वीप के पास नल द्वारा ले जाया जाता है. ४२ इंच मोटी यह नल-लाइन संसार में सब से बड़ी है. यहां से अगाजारी और दो छोटी जगहों पर तेल ले जाया जाता है. यहां से जो तेल बच जाता है वह कंसोर्टियम अबादान तेल शोधक कारखाने को भेज देता है. इस साल के अंत तक तेहरान तेल शोधक कारखाने के बन जाने से कंसोर्टियम का कुछ तेल यहां आना शुरू हो जायेगा. अबादान तेल शोधक कारखाना संसार के उन दो या तीन बड़े तेल शोधक कारखानों में से एक है जिन की उत्पादन-क्षमता ४,२०,००० बैरल प्रतिदिन है. ईरान से कच्चे तेल का निर्यात दिनोंदिन बढ़ रहा है. पश्चिम यूरोप के देश उस के बड़े गाहकों में से हैं. पिछले साल स्वेज से पश्चिम में भी ईरान का ५० प्रतिशत तेल गया था. इधर जापान में भी ईरान से तेल का निर्यात १९५७ के ४ प्रतिशत से बढ़ कर ३१ प्रतिशत हो गया है, क्यों कि ईरान के कच्चे तेल में गंधक की मात्रा कम होती है इस लिए जापानी ईंधन के वह ज्यादा काम आ सकता है. पिछले दस सालों में ईरान के तेल का व्यापार पांच गुना हो गया है.

इस के अलावा ईरान में प्राकृतिक गैस का भी काफ़ी बड़ा भंडार है. अबादान तेल शोधक कारखाने द्वारा ७ करोड़ ७० लाख क्यूबिक फ़ुट अगाजारी गैस का इस्तेमाल ईंधन के रूप में किया जाता है. ईरानी गैस का इस्तेमाल रूसी सरकार भी करना चाहती है और पिछले साल जब प्रधानमंत्री कोसीगिन ईरान पधारे थे तब एक समझौते पर इस बारे में हस्ताक्षर भी हुए जिस के अंतर्गत रूस प्राकृतिक गैस लेने के लिए अस्तारा से रूसी सीमा तक ७५० मील लंबी एक पाइप लाइन बिछायेगा. इस के अलावा रूस इस्फहान के पास एक इस्पात कारखाना लगाने के लिए भी सहमत हो गया है. प्राकृतिक गैस के अलावा ईरान में पेट्रोकेमिकल का उत्पादन भी बहुत होता है और अगले दो सालों के दौरान एक हज़ार टन के हिसाब से अमोनियम का उत्पादन भी होने लगेगा. ईरान का तेल उद्योग इस के लिए ६० प्रतिशत विदेशी मुद्रा जुटाता है और इसी उद्योग के सहारे आज ईरान की प्रति व्यक्ति आय भारत के प्रति व्यक्ति आय से दुगुनी है.

भारत और ईरान के बीच पहले व्यापार समझौते पर २ मई १९६१ को हस्ताक्षर हुआ था जिस के फलस्वरूप १९६१-६२ में भारत ने ४ करोड़ ४५ लाख रुपये का जहां ईरान को निर्यात किया वहां ईरान से आयात ४७ करोड़ ३५ लाख रुपये का हुआ. लेकिन १९६७-६८ के खाते को देखने से पता चलता है कि भारत का निर्यात जहां १४ करोड़ २० लाख रुपये का हुआ है वहां ईरान से आयात घट कर ३२ करोड़ ८९ लाख रुपये का रह गया है. भारत ईरान को चाय और पटसन का सामान, परिवहन-उपकरण, बिजली और गरम मसाले आदि देता है. इस के अलावा सिनेमोटोग्राफ़ी फ़िल्म आदि का सामान, कागज़ और इंजीनियरिंग सामान भी ईरान को निर्यात किया जाता है. ईरान ने पिछले दिनों अपना चौथा पंचवर्षीय आयोजन लागू किया है जिस का मक़सद ९.३ प्रतिशत की वार्षिक दर से आय को बढ़ाना है. इस से ईरान के उद्योगों का विकास होगा.

भारत और ईरान के संबंध बहुत पुराने हैं. भारतीय बुद्धिजीवियों के दिमाग़ में उमर ख़ैयाम की रुबाइयां, हफ़ीज़, सादी, रूमी और फ़िरदौसी के ग्रंथ अपनी बड़ी अहमियत रखते हैं. इस से भारतवासियों को इस बात का ख्याल बना रहता है कि ईरान और भारत की संस्कृति, कला, साहित्य, इतिहास, भूगोल में कितना नैकट्य है और उसी निकटता को बढ़ाने के लिए शाह ईरान का यह दौरा प्रारंभ हुआ है, जो दोनों देशों के पुश्तैनी संबंधों को और पुख्ता करने की तरफ़ एक अहम क़दम साबित हो सकता है.

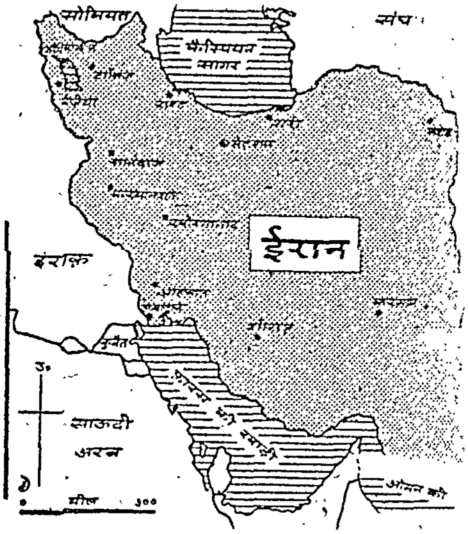

मलका फर्राह

विश्व

पश्चिम एशिया

महती शक्तियों के नये पैंतरे

जब इस्राइली हेलीकॉप्टर धीरे-धीरे अरब क्षेत्र की सीमा का उल्लंघन करते हुए लेबनान की राजधानी बेरूत में उतरे तब पहले तो लेबनानी अधिकारियों को यह विश्वास ही नहीं हुआ कि ये दुश्मन के हेलीकॉप्टर हैं और जब विश्वास हुआ, तब तक बहुत देर हो चुकी थी. बेरूत अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर उतरते ही इस्राइली सैनिकों ने धड़ाधड़ गोलियाँ चलानी शुरू कर दीं और वहाँ पर खड़े १३ व्यापारी जहाज़ों को तहस-नहस कर दिया. अपनी जान को जोखिम में पा कर सभी यात्री सुरक्षा का स्थान ढूँढ़ने लगे और इस दौड़-धूप में किसी को अपनी सुध-बुध न रही. इन १३ जहाज़ों में ७ जहाज़ पश्चिमी एशियाई हवाई कंपनियों के थे. इन जहाज़ों का मूल्य साढ़े तीन करोड़ डालर आँका गया है. लेबनान ने जून, १९६७ में पश्चिम एशिया के ६-दिवसीय युद्ध में इस्राइल के खिलाफ़ हथियार नहीं उठाये थे और वह तटस्थ बना रहा. लेबनानी अधिकारियों को इसी लिए इस बात का अधिक दुख है. बिना किसी उकसाहट के इस्राइलियों ने उस पर हमला कर यह जतला दिया है कि इस्राइली लेबनान को भी अन्य अरब राष्ट्रों की तरह अपना शत्रु ही समझते हैं.

आलोचना और भर्त्सना : इस्राइल के इस हमले की खबर आग की तरह सारे विश्व के राजनैतिक मंच पर फैल गयी और सभी ने एक स्वर से इस्राइल के इस हमले की भर्त्सना की. संयुक्त अरब गणराज्य के नेताओं ने इस्राइल की इस कार्रवाई को 'डकैती' क़रार दिया. यहाँ तक कि ब्रिटेन और अमेरिकी अधिकारियों ने भी इस्राइल के इस कृत्य की कटु शब्दों में आलोचना की. पिछले दिनों अमेरिका ने इस्राइल को जो ५० फैंटम लड़ाकू जहाज़ देने का फ़ैसला किया था, उस पर भी अमेरिकी अधिकारी पुनर्विचार कर रहे हैं. लड़ाकू जहाज़ देने की बात को ले कर अरब राष्ट्रों का अमेरिका के प्रति रवैया पहले ही काफ़ी उग्र हो चला था और अब उन्होंने खुल कर कहना शुरू कर दिया था कि अमेरिका द्वारा इस्राइल को फैंटम बमवर्षक देने का मतलब अरबों को कुचलने के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता. सोवियत संघ ने इस्राइल के इस हमले को उकसाने और भड़काने वाली कार्रवाई बताते हुए कहा है कि इस्राइल और अन्य पश्चिमी देश एशिया की स्थिति को बदस्तूर बनी रहने देना चाहते हैं और वे वहाँ तनाव कम करने के पक्ष में नहीं हैं. फ़्रांस के विदेशमंत्री माइकेल देब्रे का खयाल है कि पश्चिम एशिया की स्थिति का हल तीन बड़े पश्चिमी राष्ट्र और सोवियत संघ एक साथ बैठ कर ही ढूँढ़ सकते हैं. रूस ने भी फ़्रांस के इस सुझाव का समर्थन किया है. इस्राइल के इस हमले को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् में भी उठाया गया. पहले दो घंटे ४० मिनट इस बहस-मुबाहसे में निकल गये कि कार्य-सूची में लेबनानी शिकायत पहले दर्ज की जाये या इस्राइली. सोवियत संघ लेबनान की शिकायत को प्राथमिकता देने के पक्ष में था जब कि ब्रिटेन समेत अन्य सदस्य इस पक्ष में थे कि दोनों देशों की शिकायतों को एक साथ लिया जाये. लिहाज़ा यह तय हुआ कि दोनों देशों की शिकायतों को एक साथ कार्य-सूची में रखा जाये.

तनाव : लेबनान में तनाव बना हुआ है. लेबनान के राष्ट्रपति चार्ल्स हेलो ने क्षतिग्रस्त इलाक़े का दौरा किया और लोगों को शांत रहने की सलाह दी. लेकिन लोग उद्विग्न हो उठे हैं. राजनैतिक क्षेत्रों का ख्याल है कि लेबनानी टैंक बेरूत की सड़कों पर आ गये हैं और लोगों में बदला लेने की भावना उमड़ पड़ी है. बेशक हवाई जहाज़ों का आना-जाना बेरूत में फिर शुरू हो गया है लेकिन उन १३ जहाज़ों के पिंजर इस्राइल के हमले की कहानी अपनी ज़बानी कह रहे हैं.

ग्रोमिको की यात्रा : पिछले दिनों रूस के विदेशमंत्री आंद्रेय ग्रोमिको ने पश्चिम एशिया में शांति स्थापना का हल ढूँढ़ने के लिए संयुक्त अरब गणराज्य के राष्ट्रपति नासिर और विदेशमंत्री रियाद से काफ़ी लंबी बातचीत की. इस बातचीत से इस बात के कुछ आसार नज़र आने लगे थे कि संयुक्त राष्ट्र का नवंबर ६७ का प्रस्ताव कारगर साबित होगा. संयुक्त अरब गणराज्य के नेताओं ने ग्रोमिको को यह यकीन सा दिलाया होना चाहिए कि वह अपनी तरफ़ से उकसाने वाली कोई भी कार्रवाई नहीं करेंगे जिस से स्थिति बिगड़ती हो. लेकिन इस्राइल के मौजूदा हमले ने सभी आशाओं को निराशाओं के दायरे में ला कर खड़ा कर दिया है. इस्राइल के विदेशमंत्री अब्बा एबन ने भी इस बात की पुष्टि कर दी थी कि रूसी राजनयिक इस्राइल से संपर्क स्थापित कर रहे हैं ताकि पश्चिम एशिया-विवाद का हल ढूँढ़ा जा सके. लेकिन यह बात अभी साफ़ नहीं हुई है और रूसी नेता क्या इस्राइल के साथ राजनयिक संबंध पुन: स्थापित करने के पक्ष में हैं? इस बात का तो उन्होंने कोई संकेत नहीं दिया, लेकिन इस बात के ज़रूर संकेत मिले हैं कि पश्चिम एशिया-समस्या का हल ढूँढ़ने के लिए रूस और अमेरिका मिल कर कोई ऐसा हल ढूँढ़ना चाहते हैं जो इस्राइल और अरब राष्ट्रों को स्वीकार हो. यह बात भी सही है कि इस्राइल हथियाई हुई भूमि को छोड़ना नहीं चाहता और अरब राष्ट्र यह बार-बार दावा करते हैं कि वह इस्राइल

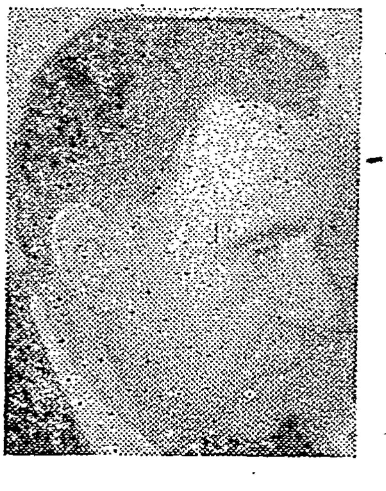

ग्रोमिको : ख़तरा

के हाथों से अपनी चप्पा-चप्पा भूमि ले कर ही दम लेंगे. ग्रोमिको की इस यात्रा का मकसद अमेरिका के नव-निर्वाचित राष्ट्रपति निक्सन के विशेष दूत स्क्रैंटन की उस बातचीत की सूँघ लेना है जो उस ने अरब राष्ट्रों के प्रतिनिधियों से की थी और शायद यही वजह है कि ग्रोमिको की बातचीत लंबी खिंचती गयी थी. ऐसा भी ख़याल है कि ग्रोमिको अरब राष्ट्रों को और खास कर राष्ट्रपति नासिर को यह आगाह करने आये थे कि फ़िलहाल इस्राइल के ख़िलाफ़ उन का हथियार उठाना ख़तरे से खाली नहीं है, लिहाज़ा वे सावधानी से काम करें.

यह बात तब तक सही थी जब तक इस्राइल ने बेरूत के अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर हमला नहीं किया था. लेकिन इस्राइल के बेरूत पर हमले के कारण स्थिति अब बदल गयी है. बेशक अमेरिका ने अभी इस्राइल को ५० फैंटम बम-

वर्षक देने का एलान किया है लेकिन मौजूदा हालात में अगर अमेरिका अपने निर्णय पर अडिग रहा, जिस की आशा नहीं, तो संभवतः रूस भी अरब राष्ट्रों की सहायता के लिए कुछ आधुनिक लड़ाकू जहाज़ और अन्य अस्त्र दे सकता है. फ़िलहाल युर्दान और इस्राइल में फिर से गोलाबारी शुरू हो गयी है और स्थिति सँभलने की बजाय बिगड़ती ही नजर आ रही है. सुरक्षा परिषद् द्वारा इस्राइल के मौजूदा हमले और लेबनान की शिकायत पर विचार से क्या परिणाम निकलते हैं, यह बात अगले कुछ दिनों में साफ़ हो जायेगी.

पाकिस्तान

सब कुछ और कुछ भी नहीं

दिनमान के प्रतिनिधि से अपनी बातचीत के दौरान भारत में पाकिस्तानी उच्चायुक्त, ४८ वर्षीय, मितभाषी और हँसमुख **सज्जाद हैदर** ने भारत-पाक संबंधों से ले कर पाकिस्तान की मौजूदा राजनैतिक स्थिति के बीच बिखरे पड़े लगभग सभी प्रश्नचिन्हों से साक्षात्कार की कोशिश की लेकिन अनेक दृष्टियों से दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण इस विचार-विनिमय के बाद प्रतिनिधि को लगा कि 'अनकहा कुछ' भी इतना अधिक रह गया कि प्रश्नचिन्ह पहले से अधिक टहकार हो उठे हैं. मसलन, प्रतिनिधि के इस सवाल से कि क्या प्रेजिडेंट अय्यूब द्वारा किये गये शर्त्त-बोझिल अनाक्रमण प्रस्ताव का ठोस राजनतिक धरातल पर कोई महत्त्व है, उच्चायुक्त सज्जाद हैदर का मात्र यह कह कर बच निकलना कि 'प्रेजिडेंट अय्यूब का प्रस्ताव ताशकंद-संधि की भावना को आगे बढ़ाता है और भारत-पाक उपमहाद्वीप में शांति के आधारों को एक नया आधार देता है', पाकिस्तानी सेना और नागरिक सेवा से लंबे अर्से तक जुड़े रहे उच्चायुक्त की 'कुछ मौलिक न कहते हुए भी बहुत कुछ कहने' की क्षमता का भ्रम पैदा करता है, लेकिन शायद राजनैतिक बहस को आगे नहीं बढ़ाता. इसी तरह, पाकिस्तान की मौजूदा राजनैतिक स्थिति से संबद्ध प्रश्न को केवल यह कह कर हल करने का दावा करना कि 'पाकिस्तान में इधर जो कुछ हो रहा है वह कुछ देशों में चलाये जा रहे इस प्रचार का पर्दाफ़ाश करता है कि वहाँ लोकतंत्र नहीं है,' उच्चायुक्त की सुचिंतित पटुता का प्रमाण तो पेश करता है लेकिन इस कथन के आधार पर पूर्वाग्रह से अलग हट कर वहाँ की राजनैतिक स्थिति की मुख्य प्रवृत्तियों को रेखांकित नहीं किया जा सकता. **दिनमान** के प्रतिनिधि से अपनी बातचीत के दौरान उच्चायुक्त सज्जाद हैदर ने पाकिस्तानी राजनैतिक व्यवस्था के अंतर्विरोधों और इन अंतर्विरोधों से उभरने वाली चुनौतियों की व्याख्या करने से इनकार कर दिया. हां, कामचलाऊ-से लहजे में उच्चायुक्त का यह कहना कि 'न केवल प्रेजिडेंट अय्यूब ने अपने विरोध को उजागर होने दिया है बल्कि अपने विरोधियों के रचनात्मक तर्कों और आग्रहों को स्वीकार करने का आश्वासन भी दिया है' अवश्य ही महत्त्वपूर्ण दीखता है. उच्चायुक्त ने जनवरी १९७० में होने वाले राष्ट्रपति-पद के लिए चुनाव के बारे में विदेशों में चलायी जा रही बहस को 'अनुमान और कल्पना' पर आधारित बताया लेकिन जब प्रतिनिधि ने उन का ध्यान इन तथ्य पर केंद्रित करना चाहा कि न केवल पाकिस्तान की पीपुल्स पार्टी के कार्यकारी अध्यक्ष श्री जे. ए. रहीम ने इस पद के लिए भूतपूर्व विदेशमंत्री जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो की उम्मीदवारी का संकेत दिया है, बल्कि पूर्व पाकिस्तान के भूतपूर्व लोकप्रिय मुख्य न्यायाधीश श्री एस. एम. मुर्शीद की प्रत्याशित उम्मीदवारी की चर्चा भी हवा में है, तो उन्होंने आहिस्ते से अपनी लकदक टाई को ठीक करते हुए सिर्फ़ यह प्रतिक्रिया व्यक्त की कि "यह फिर इस बात का सबूत है कि पाकिस्तान का बुनियादी लोकतंत्र विरोध के सियासी अधिकारों की इज्जत करता है".

महत्त्वपूर्ण क्या है ? : जब ३० मिनट के संवाद के दौरान कोई राजनेता लगभग सभी विषयों पर बहुत कुछ कह रहा हो, तो इस धारणा का बनना स्वाभाविक ही है कि शायद महत्त्वपूर्ण पर कहने के लिए कुछ नहीं है. शायद इस का एक कारण और महत्त्वपूर्ण कारण यह रहा हो कि १९४७ में पाकिस्तानी सेना में कमिशंड अफ़सर का पद छोड़ने के बाद सीधे विदेश सेवा में दीक्षित होने के कारण उच्चायुक्त को दोहरे अनुशासन से गुजरने का मौक़ा मिला है. वह इस के पहले भी भारत में पाकिस्तान के उच्चायुक्त रह चुके हैं और जब १९६५ तक संयुक्त अरब गणराज्य में उच्चायुक्त रह चुकने के बाद श्री अरशाद हुसैन के विदेशमंत्री बनने पर उन्हें फिर भारत भेजा गया तो इस पूर्ण विश्वास के साथ ही कि वह इस दोहरे अनुशासन का समूचा उपयोग करेंगे. जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने उन का ध्यान पूर्वी पाकिस्तान में श्री मुजिबुर्रहमान के नेतृत्व में चलाये जा रहे स्वशासन-आंदोलन पर केंद्रित किया तो वह अचानक कुछ चौकन्ने हो गये. 'कोई भी इन आंदोलनों के लोकतांत्रिक पक्ष की अवहेलना नहीं करना चाहता लेकिन मेरी राय में पूर्वी पाकिस्तान के स्वशासन का आंदोलन पाकिस्तान राष्ट्र के विघटन का आंदोलन है', इन शब्दों में श्री सज्जाद हैदर ने इस आंदोलन की अपनी शल्य-परीक्षा प्रस्तुत की. जब प्रतिनिधि ने कश्मीर विवाद पर सब से ताज़ा जानकारी लेनी चाही और इस उद्देश्य से उस ने श्री सज्जाद हैदर का ध्यान प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के इस कथन पर केंद्रित किया कि इधर पाकिस्तान ने कश्मीर समस्या की प्राथमिकता को अपनी सूची से अलग कर दिया है तो वह कुछ देर के लिए अजीबो-ग़रीब असमंजस में पड़ गये. 'जहाँ तक मेरी जानकारी है, मैं समझता हूँ कि कश्मीर के बारे में हमारी प्राथमिकता बनी हुई है और हम मानते हैं कि कश्मीर समस्या का व्यावहारिक और राजनैतिक समाधान वहाँ जनमत-संग्रह करा के ही निकाला जा सकता है'.

पृष्ठभूमि : भारत-पाक संबंधों को ले कर प्रतिनिधि से उच्चायुक्त की यह वार्त्ता एक नया संदर्भ ग्रहण करती है जब ज्यूरिख के एक समाचार-पत्र की इस सूचना को ध्यान में रखा जाता है कि पाकिस्तान को बहुत शीघ्र सोवियत संघ से १७० मिग और ४० यूलिशियन-२८ युद्धक विमान मिलने जा रहे हैं. यद्यपि इस रिपोर्ट को अभी विवादास्पद माना जा रहा है लेकिन कुछ राजनैतिक क्षेत्रों में यह भी समझा जा रहा है कि सोवियत संघ पाकिस्तान के पीकिङ-प्रेम को कम करने के उद्देश्य से, अगर इतने बड़े पैमाने पर नहीं तो कुछ सीमित पैमाने पर उसे सैनिक सहायता दे सकता है. १९६५ के पाकिस्तानी आक्रमण के बाद अस्तित्व में आयी ताशकंद घोषणा का सूत्रधार होने के कारण सोवियत संघ पाकिस्तान को सहायता देने में उस हद तक नहीं जायेगा जिस से भारतीय प्रतिरक्षा पर इसका प्रतिकूल असर पड़े. गत सप्ताह पाकिस्तान में जिन्ना दिवस के सिलसिले में जो प्रदर्शन और दमन की आतशबाज़ियां सामने आयीं, उन से सोवियत संघ पूरी तरह अवगत होने के कारण वहां की प्रशासनिक और राजनैतिक अस्थिरता की भाषा न समझ रहा हो, सो बात नहीं.

अय्यूब-प्रशासन-विरोधी-अभियान उस समय अपने एक निर्णायक दौर में प्रविष्ट होता जान पड़ा जब पाकिस्तान की पीपुल्स पार्टी के अध्यक्ष श्री जे. ए. रहीम ने लाहौर में यह घोषित किया कि १९७० के चुनाव में श्री भुट्टो निश्चित रूप से राष्ट्रपति-पद के लिए उम्मीदवार होंगे. उम्मीदवारी के इस प्रश्न को एक झटके में अय्यूब-प्रशासन के व्यापक राजनैतिक विरोध से जोड़ते हुए श्री रहीम ने यह घोषित किया कि हम ने हर संभव अवसर पर और हर संभव क़ानूनी साधनों से अय्यूब-प्रशासन के विरोध का फ़ैसला कर लिया है. पूर्वी पाकिस्तान के विरोधी दलों के प्रतिनिधियों ने पश्चिमी पाकिस्तान के सौतेले व्यवहार की आलोचना करते हुए अलग से अपना उम्मीदवार खड़ा करने का संकेत दिया है. इसी तरह, पाकिस्तान के राजनैतिक क्षेत्रों में पूर्वी पाकिस्तान के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश एस. एम. मुर्शीद की भी उम्मीदवारी को ले कर चर्चा चल रही है. गत सप्ताह पाकिस्तान के भूतपूर्व वायुसेनाध्यक्ष श्री असग़र ख़ाँ और सैयद महबूब मुर्शीद ने प्रेजिडेंट के अलावा अलग से प्रधानमंत्री का एक पद बनाये जाने का सुझाव दे कर और इन पदों को क्रमशः पश्चिमी और पूर्वी पाकिस्तान में बँटवारे से जोड़ कर अय्यूब-प्रशासन का सिरदर्द और तेज़ कर दिया २६ दिसंबर को, पाकिस्तान रेडियो की घोषणा के अनुसार जब पाकिस्तान सरकार ने आग़ा

सोरिश कश्मीरी को स्वास्थ्य के आधार पर नज़रबंदी से रिहा करने की घोषणा की तो राजनैतिक क्षेत्रों में इसे लगभग उसी तरह नज़रअंदाज़ किया गया जिस तरह उस की उस घोषणा को जिस के अधीन रावलपिंडी और कराची में राजनैतिक प्रदर्शनों पर एक सप्ताह से चले आ रहे प्रतिबंध को उठाये जाने की घोषणा को नज़रअंदाज किया गया. जिस दिन यह घोषणा हुई उस दिन छात्रों का एक जुलूस निकला जिस में उन्होंने हाल की गोलीबारी में मारे गये व्यक्तियों की क़बर पर फूल चढ़ाये. कुशल प्रेज़िडेंट अय्यूब ने छात्रों का असंतोष कम करने के लिए कायदेआज़म जिन्नाह के जन्म दिवस के अवसर पर प्रसारित अपने संदेश में उन्हें राजनैतिक दलों और 'आत्मरति-ग्रस्त राजनीतिज्ञों' के बहकावे में न आने की सलाह दी लेकिन न केवल छात्रों का असंतोष अपने आप को प्रदर्शनों और जुलूसों के माध्यम से उजागर करता रहा बल्कि मुल्लाओं और पुलिस के बीच संघर्ष के समाचार भी रावलपिंडी से मिलते रहे हैं.

जांबिया

बुलंद हौसला

पिछले दिनों ज़ांबिया के ४४ वर्षीय राष्ट्रपति केनेथ काउंडा का पुन: निर्वाचन उन की लोकप्रियता का प्रतीक है. चारों तरफ़ से उग्रपंथियों और विद्रोहियों से घिरे हुए ज़ांबिया में लोकतांत्रिक व्यवस्था देख कर विश्व के अलावा अफ़्रीका के अन्य देशों को भी हैरत होती है. ज़ांबिया के एक तरफ़ पुर्त्तगाल और दक्षिण अफ़्रीका है और दूसरी तरफ़ रोडेसिया. ज़ांबिया की सीमाओं पर रोज़मर्रा की छिटपुट घटनाओं और गेरिला आतंकवादियों की राहगुज़र ने काउंडा को बहुत सहनशील बना दिया है. रोडेसिया तथा अंगोला और मोज़ांबीक के गेरिले अपनी राह ज़ांबिया के इलाक़े से ही ढूँढ़ते हैं, जिस की वजह से यहाँ के सीमावर्त्ती क्षेत्रों के निवासी अपने आप को असुरक्षित पाते हैं. जब काउंडा से यह सवाल किया गया कि वह इस तरह की छापामार और आतंकवादी कार्रवाइयों पर रोक क्यों नहीं लगाते तो उन के चौड़े चेहरे पर एक भरी-सी मुस्कान तिरेर गयी और उन्होंने धीमे लहज़े में कहा कि ऐसा करने से मानवता पर हमारा जो विश्वास है वह ढह जायेगा.

ज़ांबिया के दूसरे राष्ट्रीय चुनाव में काउंडा का विरोध उन्हीं के एक भूतपूर्व सहयोगी हैरी नकुंबूला ने किया, लेकिन उन के लाख कोशिश करने पर और क़ाउंडा के शासन को पुलिस राज्य कहने के बावजूद उन की यूनाइटेड नेशनल इंडिपेंडेंस पार्टी को १०५ स्थानों में से ७९ स्थान मिल गये और काउंडा अगले ५ सालों के लिए फिर से राष्ट्रपति चुन लिये गये. जब उन से यह पूछा गया कि क्या वह अपने विरोधियों का सफ़ाया करेंगे तब उन्होंने कहा था कि ज़ांबिया के लोगों की भलाई के लिए मैं कुछ भी कर सकता हूँ. लेकिन यह बात खुलेआम कही जा रही है कि काउंडा आजकल एक पार्टी सरकार के शासन की ही हिमायत करते हैं और निश्चित रूप से वह पार्टी उन की अपनी यूनाइटेड नेशनल इंडिपेंडेंस पार्टी होगी.

काउंडा का यह ख़याल है कि रोडेसिया की समस्या का हल पश्चिमी राष्ट्र जान-बूझ कर नहीं ढूँढ़ रहे हैं, क्यों कि वहाँ उन का बहुत सारा धन लगा हुआ है. और धन के सामने कोई भी नैतिक भावना नहीं काम करती. अफ़्रीकियों का अगर कोई ख़ैरख़्वाह है तो वह पूर्वी गुट के देश हैं. यदि ब्रिटेन ने रोडेसिया में सैनिक हस्तक्षेप नहीं किया तो उस के वैसे ही, बल्कि उस से भी भयंकर, परिणाम निकल सकते हैं जो ब्रिटेन के हस्तक्षेप के कारण निकलते. काउंडा को इस बात का डर है कि दक्षिण अफ़्रीका और रोडे-

काउंडा : आत्म-सम्मान और स्वाभिमान

सिया में जाति-भेद को क़ायम रखने के लिए पश्चिमी देश उस को स लिए शह देते रहेंगे ताकि वहाँ पर साम्यवादी पनप न सकें. और अगर यही हालात जारी रहे तब वहाँ पर एक और वीएतनाम की स्थिति आ जायेगी. ऐसी स्थिति में काले अफ़्रीकी एक तरफ़ होंगे और गोरे अफ़्रीकी पश्चिमी देशों की शह पर दूसरी तरफ़. काउंडा का मत है कि पश्चिमी देशों के हथियार स्थिति को भयावह बना रहे हैं. उन का ख़याल है कि राजनैतिक दबाव स्थिति को बिगाड़ने की अपेक्षा संभाल सकते हैं. उदाहरण के लिए उन्होंने बताया कि ज़ांबिया के इलाक़े में आये दिन जो दुर्घटनाएँ होती हैं और संपत्ति तबाह होती है उस का कारण नैटो के हथियार हैं. उन की पकड़ में बहुत से ऐसे हथियार आये हैं जिन पर नैटो की मुहर है.

४० लाख की आबादी के इस देश का फैलाव दो लाख ९० हज़ार वर्गमील का है. अच्छी सड़कों और हवाई अड्डों का अभाव है और संचार के साधन भी अधिक उत्तम नहीं हैं. इस छोटे-से देश को चारों ओर से ख़तरा होने की वजह से उन्होंने लामबंदी करने की भी योजना बनायी है. देश में इस क़िस्म के आदेश जारी हैं कि हर जवान लड़के और लड़की को सैनिक शिक्षा लेनी होगी. क्यों कि वह नहीं चाहते कि निर्दोष ग्रामीणों की हत्या सुरक्षा के अभाव में होती रहे. जब उन से यह पूछा गया कि वह अमेरिका तथा अन्य पश्चिमी देशों से अनाज का आयात क्यों करते हैं जब कि रोडेसिया तथा अन्य पड़ोसी देशों का अनाज उन्हें सस्ता पड़ सकता है तो काउंडा ने कहा कि प्रश्न सस्ते और महँगे का नहीं अपनी साख का है. ज़ांबिया तांबे में धनाढ्य समझा जाता है और तांबे के आधार पर ही उस की लगभग ७० करोड़ डालर सालाना आमदनी है.

बाहरी और अंदरूनी जद्दो-जहद जारी है. अभी तक काउंडा ने दोनों स्थितियों का दृढ़ता से सामना किया है और इस निर्णायक बहुमत से यह विश्वास कुछ और पुख़्ता हो जाता है कि काउंडा का मनोबल दिन-ब-दिन बढ़ेगा, घटेगा नहीं.

चेकोस्लोवाकिया

चैक या स्लोवाक ?

नये वर्ष के पहले दिन नयी सरकार के सत्तारूढ़ होने पर चेकोस्लोवाकिया संघ की विधिवत् स्थापना हो जायेगी. प्राप्त समाचारों के अनुसार चेकोस्लोवाकिया के वर्त्तमान प्रधानमंत्री ओल्डरिच चेर्निक संघीय सरकार के प्रधानमंत्री और श्री स्वोबोदा राष्ट्रपति होंगे. स्लोवाक नेता और प्रधानमंत्री हुसाक ने क्रिसमस के दिन अपने भाषण में स्पष्ट कर दिया कि स्लोवाकी जनता इन दोनों नेताओं का आदर करती है, और उसे देश के दो उच्च पदों पर इन की नियुक्ति सहर्ष स्वीकार है. किंतु उन्होंने यह माँग कर के कि संघीय सरकार का संसदीय अध्यक्ष कोई स्लोवाक नागरिक होना चाहिए, एक पेचीदा स्थिति पैदा कर दी है. चेकोस्लोवाकिया के वर्त्तमान संसदीय अध्यक्ष श्री स्मर्कोवस्की हैं और उन्हें ही इस पद पर बनाये रखने की संभावना है. श्री स्मर्कोवस्की चेक हैं. श्री चेर्निक और श्री स्वोबोदा भी चेक हैं. श्री हुसाक का तर्क है कि यदि अध्यक्ष पद पर किसी स्लोवाक नेता को नियुक्त किया जाता है तो स्लोवाकी जनता को अधिक न्याय मिल सकेगा. किंतु चेकोस्लोवाकिया के श्रमिकों, छात्रों, पत्रकारों तथा सभी प्रकार की संस्थाओं से स्मर्कोवस्की को जो समर्थन मिल रहा है उसे देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपने पद पर बने रहेंगे. परंतु इस से चेक और स्लोवाक के बीच संदेह की दरार पड़ सकती है जिस से रूस निश्चय ही लाभ उठायेगा. रूस का प्रयास है कि नयी सरकार में उन व्यक्तियों को स्थान न मिले जो 'मुखर प्रगतिशील' हैं. इस उद्देश्य

की सिद्धि के लिए एक रूसी प्रतिनिधिमंडल इन दिनों प्राग पहुँचा हुआ है.

सुधार का विरोध : इधर श्री दुबचेक की सुधारवादी नीतियों का विरोध बहुत बढ़ गया है. रूसी प्रचार-साहित्य उस विरोध को और भी मुखर बना रहा है. गत सप्ताह श्री दुबचेक ने ब्रातिस्लावा में अपने एक भाषण के दौरान स्थिति पर चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि यदि सरकार की रूसी आक्रमण से पूर्व की नीतियों का विरोध जारी रहा तो कुछ 'अनिवार्य क़दम' उठाने पड़ सकते हैं. ये क़दम अलोकतंत्री हो सकते है किंतु उन को उठाये बिना हालात पर क़ाबू नहीं पाया जा सकता है. यदि सरकार का विरोध इसी प्रकार जारी रहा तो देश की हालत उस से भी बुरी हो जायेगी जो भूतपूर्व राष्ट्रपति नोवोत्नी को सत्ताच्युत किये जाने के कुछ समय पहले थी. श्री दुबचेक ने कहा कि 'यह एक कटु सत्य है किंतु इसे छिपाया नहीं जा सकता है'. श्री दुबचेक की इस चेतावनी में काफ़ी वज़न है. गत वर्ष अगस्त के आक्रमण के बाद रूस जिस तरह चेकोस्लोवाकिया में हस्तक्षेप कर रहा है उसे देखते हुए यदि सरकार ने रूसी प्रचार का मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए कारगर उपाय नहीं किये तो उस का और उस के सुधारवादी प्रयासों का अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ जायेगा.

इटली

दोतरफ़ा चुनौती

मध्यमार्गी-वामपंथी दलों की नयी सरकार का विधिवत् गठन हो गया और जैसी कि संभावना थी सोशलिस्ट नेता श्री नेन्नी को विदेशमंत्री नियुक्त किया गया (देखिए **दिनमान** २२ दिसंबर, १९६८). नयी सरकार के सत्तारूढ़ होने के बाद संसद् का जो अधिवेशन बुलाया गया उस में कोई विशेष गड़बड़ी नहीं हुई. श्री रूमोर के नेतृत्व में संसद का विश्वास प्राप्त कर के मिली-जुली सरकार ने यह सिद्ध कर दिया है कि फ़िलहाल उस की स्थिति सुदृढ़ है. इसी विश्वास को ले कर वह आने वाले तूफ़ान का सामना करने के लिए तैयारी कर रही है.

साम्यवादी माँग : नयी सरकार के गठन से सब से अधिक असंतोष इटली की कम्युनिस्ट पार्टी को है. उसे इस बात का बड़ा दुःख है कि मिली-जुली सरकार में उसे शामिल नहीं किया गया. उस का कहना है कि गत आम चुनाव में उस के उम्मीदवार बड़ी संख्या में निर्वाचित हुए अतः सरकार में भी उस का वर्चस्व होना चाहिए. कम्युनिस्ट पार्टी का दावा है कि मध्यमार्गी-वामपंथी फ़ार्मूला समयातीत है. उस ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि गत ५ दिसंबर से हड़तालों और प्रदर्शनों का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह अनिश्चित काल तक जारी रहेगा. नयी सरकार ने कर्मचारियों की पेंशन में नाममात्र की वृद्धि तो कर दी है किंतु हड़तालों के दबाव के आगे झुकने का उस का कोई इरादा नहीं है. पिछले दिनों रोम की सड़कों पर छात्रों ने जो प्रदर्शन किये उन्हें नियंत्रित करने के लिए जिस तरह पुलिस तैनात की गयी उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सरकार स्थिति पर क़ाबू पाने के लिए यदि आवश्यकता पड़ी तो बल-प्रयोग करने में भी नहीं चूकेगी.

कम्युनिस्ट पार्टी ने विदेशमंत्री के पद पर श्री नेन्नी की नियुक्ति का भी विरोध किया है. उस का तर्क है कि श्री नेन्नी अपनी पार्टी में ही विवादास्पद व्यक्ति हैं और दल का एक बड़ा भाग उन का विरोधी है. कम्युनिस्ट पार्टी ने सरकार को चेतावनी दी है कि संकट की मूर्तिमत्ता उस का समाधान नहीं है. वह वर्तमान मिली-जुली सरकार को अपदस्थ करने और एक वामपंथी मोर्चा बनाने के लिए प्रयत्नरत हैं. देखना यह है कि साम्यवादी नेता आने वाले दिनों में स्थिति को कब तक विस्फोटक बनाये रख सकते हैं. परिस्थितियाँ उन के सर्वथा अनुकूल नहीं तो प्रतिकूल भी नहीं हैं. छात्र-असंतोष और मज़दूर-आंदोलन को बढ़ावा दे कर वे नयी सरकार के लिए संकट पैदा कर चुके हैं. श्री रूमोर की सरकार हालात का कारगर ढंग से सामना कर सकेगी इस की संभावना कम ही नज़र आती है क्यों कि सरकार में शामिल दलों में भी सभी विषयों पर मतैक्य नहीं है. यह मतभेद कुछ मामलों में तो दलीय स्तर पर भी देखा जा सकता है. यथा, प्रदर्शनकारियों के साथ चलने वाली पुलिस को निरस्त्र कर दिया जाये या नहीं, इस मसले पर क्रिश्चियन डेमोक्रेट पार्टी में तीव्र मतभेद है. इसी प्रकार कम्युनिस्ट पार्टी को सरकार में शामिल करने के प्रश्न पर सोशलिस्ट पार्टी बँटी हुई है. एक पक्ष का कहना है कि मध्यमार्गी-वामपंथी गठबंधन को अब और अधिक आजमाने की ज़रूरत नहीं है. उस के स्थान पर वामपंथी मोर्चे का गठन किया जाना चाहिए जिस में कम्युनिस्ट पार्टी को भी शामिल किया जाये. दूसरे पक्ष का मत है कि 'वामपंथी एकता' का अभी समय नहीं आया है अतः सोशलिस्ट पार्टी को चाहिए कि वह क्रिश्चियन डेमोक्रेट पार्टी को एक और मौक़ा दे ताकि वह देश की खुशहाली के लिए कुछ ठोस क़दम उठा सके.

सुदृढ़ अर्थ-व्यवस्था : इस में कोई संदेह नहीं है कि कम्युनिस्ट पार्टी ने जो आंदोलन छेड़ रखा है उस से मिली-जुली सरकार को काफ़ी परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है. हो सकता है कि इस वर्ष नवंबर में होने वाले स्थानीय चुनावों में उसे कम्युनिस्ट पार्टी का कड़ा सामना करना पड़े. किंतु एक बात उस के पक्ष में है जो कम्युनिस्ट चुनौती का सामना करने में उस की सहायक सिद्ध होगी. इटली की अर्थ-व्यवस्था सुदृढ़ है. भुगतान संतुलन इस हद तक उस के पक्ष में है कि गत वर्ष यूरोप में आये मुद्रा-संकट पर विचार करने के लिए बॉन में जो बैठक हुई उस में अमेरिका ने सुझाव दिया था कि मार्क (पश्चिम जर्मनी की मुद्रा) के साथ लीरा (इटली की मुद्रा) का भी पुनर्मूल्यन किया जाना चाहिए. सफल निर्यात, पर्यटन और विदेशों में काम कर रहे इटलीवासी श्रमिकों के ज़रिए इटली को भरपूर आमदनी हो रही है. लीरा की सुदृढ़ स्थिति से उद्योगपतियों की भी बन आयी है. वे राजनैतिक स्थायित्व और सुरक्षा की गारंटी चाहते हैं जिस के न मिलने पर उन के द्वारा अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर दिये जाने का ख़तरा है. साम्यवादियों और उद्योगपतियों की दोतरफ़ा चुनौतियों का सामना करने में नयी सरकार कहाँ तक सफल होती है, इसी पर उस का भविष्य निर्भर होगा.

चीन

क़िस्तों में बढ़ती आक्रामकता

हाल में ही हाइड्रोजन बम का सफल परीक्षण कर के साम्यवादी चीन ने पारमाणविक राष्ट्रों की मंडली में बराबरी के स्तर पर बैठने की क्षमता और आकुलता का परिचय ज़रूर दिया है लेकिन साथ ही साथ उस ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि शांतिपूर्ण-सह-अस्तित्व में उस की कोई आस्था नहीं है. चीन के पश्चिमी इलाके में किए गए इस परीक्षण को नव चीन समाचार एजेंसी ने "चेयरमैन माओ त्से-तुंग की शिक्षाओं की विजय" बताया है और नायक-पूजा की शब्दावली में ७५ वर्षीय चेयरमैन की व्याख्याओं और नीतियों को शाश्वत घोषित किया है. हाङकाङ से प्राप्त हो रहे समाचारों के अनुसार, साम्यवादी चीन शीघ्र ही अपनी अंतर्द्वीपीय प्रक्षेपास्त्री व्यवस्था को पूर्णता प्रदान करने जा रहा है जिस से न केवल हिंद महासागर का वर्तमान सामरिक संतुलन बिगड़ सकता है, बल्कि समूचे एशिया के शक्ति-संतुलन पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है. जापानी सरकार ने एक बयान जारी कर के चीन द्वारा हाइड्रोजन बम के विस्फोट को "मानव समाज की शांतिपूर्ण इच्छाओं की अवहेलना" पर आधारित बता कर जब इस की तीखी आलोचना की तो एक झटके में इस साम्यवादी विस्फोट का सवाल शक्ति-संतुलन के सवाल से जुड़ गया. विश्व साम्यवादी क्रांति के केंद्र का संचालक बनने का चीनी स्वप्न अमेरिका के लिए भी इधर नयी चिंता का कारण बना है. हाल ही में चीन के एक सैनिक प्रतिनिधि-मंडल ने अल्बानिया की राजकीय यात्रा कर के इस चिंता को और सकारण बनाया है. विश्वस्त राजनैतिक सूत्रों के अनुसार अल्बानिया में साम्यवादी चीन के प्राविधिज्ञों की वर्तमान संख्या ५,००० है और इस में किस्तों में वृद्धि हो रही है. अमेरिका को यह भय भी सता रहा है कि चीन अल्बानिया में अपने प्रक्षेपास्त्र अड्डे कायम कर रहा है जिस से बालकन राष्ट्र-समूहों का शक्ति-संतुलन बिगड़ सकता है.

"नेहरू और समाजवाद : १९१९-१९३९"

पिछले दिनों नयी दिल्ली में तीनमूर्त्ति भवन में भारत के २७ राजनीति तथा इतिहास के विशेषज्ञों ने "समाजवाद का आरंभ", "रूसी क्रांति और समाजवाद", "एम. एन. राय और समाजवाद", "कांग्रेस की समाजवाद के प्रति प्रतिक्रिया" और "नेहरू और समाजवाद" विषयों पर एक विचारगोष्ठी की. उद्‌घाटन भाषण डॉ. वी. के. आर. वी. राव ने तथा विषय-निरूपण वी. आर. नंदा ने किया.

श्री नंदा ने वर्त्तमान दौर की समस्याओं की चर्चा करते हुए ब्रितानी लेबर पार्टी और सोवियत रूस की उन धाराओं की ओर संकेत किया जिन के कारण भारतीय समाजवाद के निष्पक्ष मूल्यांकन में कठिनाई हुई. गांधी के बाद नेहरू युग में युवक कांग्रेस असंतोष के शिकार हुए. उन्होंने कहा कि यह जानने की ज़रूरत है कि आंदोलन और विचारधारा के बीच जो दरार पैदा हुई वह क्यों हुई और उस का रूप कैसा रहा.

श्री राव का कहना था कि भारत में समाजवाद का नाम लेने वाले साम्यवादियों ने भारतीय विचार-भित्ति को नहीं अपनाया. अतः वे राष्ट्रीय आंदोलन के साथ नहीं चल पाये. आज उस विचार की तीन धाराएँ हो गयी हैं : मॉस्कोमुखी, पीकिङ्मुखी और दिल्लीमुखी. कांग्रेस समाजवादी पार्टी के पहले अधिवेशन में अपनी उपस्थिति की बात कह कर श्री राव ने बताया कि कैसे बाबू संपूर्णानंद बाद में ज्योतिष (गणित और फलित) में खो गये. और यहाँ भी समाजवादी आदर्श आदर्श मात्र रहे. तीसरी धारा गांधीवादियों और भूदानियों की थी, जो देश के औद्योगीकरण और नागरीकरण का महत्त्व ही नहीं समझ पाये. उन के विचार से सच्चा समाजवादी सपना या दर्शन (विज़न) नेहरू ने दिया.

'समाजवाद का आरंभ' गोष्ठी का आरंभ किया डॉ. विमांतविहारी मजूमदार ने. समाजवाद का सब से पहला उल्लेख १८६७ में लिखी हुई गिणु बुवा ब्रह्मचारी की 'सुखदायक राज्य-संचालक प्रणाली' नामक ४० पृष्ठों की पुस्तक में है जिसकी एक प्रति फार्युसन कॉलेज पूना में है. इस पुस्तक में लिखा गया है कि सारी ज़मीन जनता की होनी चाहिए. स्त्रियों को अपने आभूषण और क़ीमती साड़ियाँ अलग-अलग न खरीदकर गाँव में एक भंडारे में रखनी चाहिए—जिसे शादी-ब्याह में जाना हो, वह पहन कर जाये, वापस वहाँ जमा कर दे. पाँच बरस से ऊपर की उम्र के बच्चों की शिक्षा और परवरिश का भार राज्य उठाये. ध्यान देने की बात है कि १८६७ में ही कार्ल मार्क्स ने 'दास कापिटाल' (पूँजी) की रचना की थी. समाजवाद का दूसरा उल्लेख लाला लाजपतराय के लेखन में मिलता है. १९१६ में एम. एन. राय ने उन से किताबें पढ़ने को उधार माँगी. वही पहली भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सभापति बने. उन्होंने पहली बार लेनिन का उल्लेख अपने भाषण में किया. श्री राव के इस कथन का कि "कांग्रेस समाजवादियों का किसानों में कार्य काफ़ी नहीं था, वह निरी 'मध्यमवर्गीय शहराती पार्टी' बनी रही", खंडन करते हुए डॉ० मजूमदार ने कहा कि १९३८ के वी. आर. वार्षिक रिपोर्ट में यह उल्लेख है कि 'किसान सभा के चार लाख सदस्य' थे.

जे. बंदोपाध्याय ने कहा कि समाजवाद के बीज गांधी के 'हिंद स्वराज्य' (१९०८) में, अरविंद घोष के 'इंदु प्रकाश' में १८९३ में लिखे लेखों में, दादाभाई नौरोजी के लंदन में पार्लियामेंट में दिये भाषण में और सुब्रह्मण्य भारती ऐरर के रूसी क्रांति के स्वागत गीत में मिलते हैं.

श्री विमला प्रसाद ने कहा कि इस प्रसंग में स्वामी विवेकानंद का नाम नहीं भूलना चाहिए.

श्री एल. पी. सिन्हा ने फेबियन प्रभावों की चर्चा करते हुए १९१८ से पूर्व 'मद्रास के समाजवादियों' की सभा का उल्लेख किया, जिस के वी. पी. वाडिया अध्यक्ष थे. 'इस सिलसिले में हमें विपिनचंद्र पाल के इस विधान को नहीं भूलना चाहिए कि 'हम भारतीय प्रोलेतेरियत हैं और ब्रिटिश साम्राज्यवादी-पूँजीवादी हैं."

प्रोफ़ेसर डी. सी. ग्रोवर ने दूसरे कमिंटर्न की सभा में लेनिन और एम. एन. राय के मतभेद की चर्चा की और बताया कि कैसे राय की भविष्यवाणी सच हुई कि बुर्जुवा (पूँजीवादी) शक्तियाँ अंततः समझौता कर लेती हैं और क्रांति के मूल उद्देश्य को धोखा देती हैं—स्वतंत्रता के बाद भारत के नेताओं में कई ऐसे 'भूतपूर्व' क्रांतिकारी मिलेंगे.

डॉ. प्रभाकर माचवे ने कहा कि सन् '३४ से ले कर आज तक के बीच कितने समाजवादी व्यक्तिवादी बन गये. जयप्रकाश, विनोबा के भक्त हुए. अच्युत पटवर्द्धन कृष्णमूर्ति के शिष्य और अशोक मेहता मंत्री. समाजवाद उधार का दर्शन बन कर आया. सुविधानुसार लोगों ने इस 'पैरहन' को भी उतार कर रख दिया. एम. एन. राय ज़रूर कड़ुई बातें कहते रहे. **डॉ. पी. सी. जोशी** बोले—'राय की जड़ें भारतीय नहीं थीं.'

लोहिया के अनुयायी देवदत्त ने आज की समस्याओं से इस चर्चा को संदर्भित करने के आग्रह के साथ कहा, 'या तो हमारे चिंतन में ही कोई दोष है या चरित्र में कि जहाँ कोई नयी भयावनी विराट समस्या उठ खड़ी होती है कि हम अपने घोंघे में छिप जाते हैं, समस्या को नज़रअंदाज़ करने या टालने या दूर ठेलने की निरर्थक कोशिश करते हैं. यों धीरे-धीरे हमारे भीतर का आदर्शवाद सूख जाता है. गांधीवाद का यही हुआ, नेहरूवाद का भी यही हो रहा है.'

ज़फ़र इमाम ने 'रूसी क्रांति और भारतीय समाजवाद' पर अपना निबंध प्रस्तुत करते हुए बताया कि भारत में धर्मनिरपेक्षता का वातावरण बनाने में उसने क्या योग दिया तथा भारतीय मुस्लिम राष्ट्रवादियों की उस में क्या भूमिका रही.

डॉ. बुधराज का तर्क था कि भारतीय कम्युनिस्टों के अंतरराष्ट्रीय कम्युनिस्टों से बँधे रहने से गड़बड़ी हुई. श्री राय ने गत महायुद्ध को फ़ासिस्ट-विरोधी बताया और उस के दस महीने बाद कम्युनिस्टों ने उसे जनयुद्ध घोषित कर दिया.

पार्थसारथी गुप्त ने तर्कपूर्ण ढंग से यह सिद्ध किया कि भारतीय समाजवाद पर ब्रितानी लेबर नीति का बहुत असर पड़ा.

प्रोफ़ेसर सी. पी. मांत्री के अनुसार नेहरू पर मार्क्सवाद का असर था और उसी के कारण समाजवाद आया.

प्रोफ़ेसर रणधीर सिंह ने कहा कि यहाँ समाजवाद की जितनी व्याख्याएँ प्रस्तुत की

'नेहरू और समाजवाद' : विचार गोष्ठी

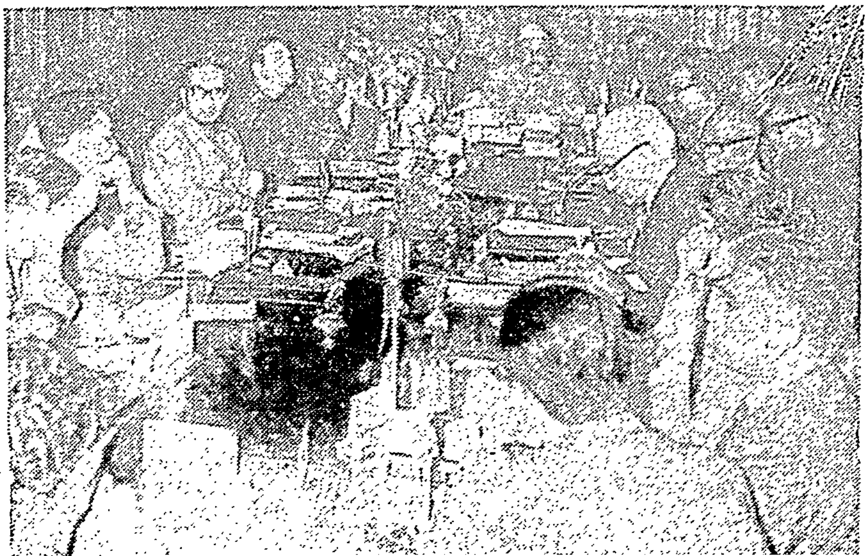

जा रही हैं, मानो हर एक का समाजवाद अलग-अलग है. गांधी और नेहरू ने समाजवाद को कोरे सपने में बदल दिया.

डॉ. गणेश प्रसाद के अनुसार नेहरू में समाजवाद को भारत की धरती पर और यहाँ की परिस्थितियों में समाहित करने की एक भव्य महाकवि-जैसी कल्पनाशीलता थी.

डॉ. पी. सी. जोशी ने ज़फ़र इमाम के प्रतिपादन में कई दोष दिखाये, 'मार्क्स का भारत संबंधी ज्ञान अधूरा था. रूसी राज्य-क्रांति खुद में मार्क्स के कथन का एक विरोधी उदाहरण था—मार्क्स का कहना था कि समाजवाद औद्योगिक देश में पूँजीवाद के अंतर्विरोध से संभव होगा; रूस में जब क्रांति हुई तब कौन-से उद्योग विकसित थे? और भारत का 'पश्चिमीकरण' होने पर भी क्रांति यहाँ क्यों नहीं आयी? इस प्रकार दो तरह के समाजवाद हैं: एक क्लासिकी (जिसे साम्यवादी मानते हैं और मार्क्स-वाक्यम् प्रमाणम उन का आदर्श वाक्य है). दूसरा अ-क्लासिकी है, जिस में गांधी-नेहरू आते हैं, बल्कि गांधी अधिक चूँकि अंततः वे राज्य संस्था के संपूर्ण विलयन की संभावना मानते हैं, नेहरू उद्योगों के राष्ट्रीयकरण में विश्वास करते हैं. ये दोनों प्रकार के समाजवाद एक बात पर सहमत हैं कि दोनों पूँजीवाद-विरोधी हैं, श्रमसत्ता का महत्त्व मानते हैं. बल्कि आज के चीनी नेता भी आरंभ में सनयात सेन के गुण गाते रहे थे. आज भी यह समस्या ज्यों कि त्यों है कि समाजवाद को कार्यरूप में अवतरित करते समय, उस की मूल कल्पनाओं को कहाँ तक बदलना होगा?'

बिहार के आर. एन. प्रसाद ने कहा कि सोवियत रूस में जो भयानक दमन और संशोधन हुए, उन का बहुत बुरा असर भारतीय राष्ट्रवादियों पर हुआ.

शांतिनिकेतन के ए. सी. बोस ने कहा कि भारतीय क्रांतिकारियों की रूसी क्रांतिकारियों के प्रति जो बंधु-भावना थी वह भावुकतापूर्ण थी. नवंबर १९२० में कैंनेनोफ, वीरेंद्र, चट्टोपाध्याय १४ और क्रांतिकारियों से रूस में मिले थे. मार्च १९२१ से सितंबर तक ये बर्लिन से आये हुए भारतीय क्रांतिकारी रूस में रहे. सितंबर १९२१ में रूस वालों को अकेले एम. एन. राय सब से विश्वसनीय और संभ्रांत जान पड़े. विडमिली और ओवरस्ट्रीट (भारत में कम्युनिस्ट ग्रंथ के अमेरिकी लेखक) के अनुसार वीरेंद्र चट्टोपाध्याय सरोजिनी नायडू के भाई थे इस लिए उन पर लेनिनवादियों का रूस में अधिक विश्वास रहा होगा, यह खयाल झूठा है. क्रांति और समाजवाद का साम्राज्यवादी देशों में रूप भिन्न होता है यह हम न भूलें.

वी. एस. बुधराज के अनुसार एम. एन. राय के भारत आने तक यानी १९३५ तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में कोई बहुत महत्त्वपूर्ण समाजवादी वैचारिक मोड़ नहीं आया था. भारतीयों की आदत है कि वे अपनी छोटी-सी बात को भी बढ़ा-चढ़ा कर देखते और बताते हैं. १९१९ में जब महेंद्र प्रताप और बरकतुल्ला लेनिन से मिले तो उन्होंने कहा—"भारत क्रांति के लिए एकदम तैयार है. बरकतुल्ला १९०६ में भारत छोड़ कर गये थे और उन्हें भारत में क्या हालात थे कुछ भी पता नहीं था. १९१९ के इज्वेस्तिया (रूसी पत्र) में लिखा था कि 'भारतीय स्थिति रूसी स्थिति की तरह है.' हाँ, एम. एन. राय १९१५ में भारत छोड़ कर गये थे और उन के कथन में अगर कोई ग़लती हो तो वह प्रामाणिक ग़लती हो सकती है. डॉ० आइ. एस. सुलेमानोव ने अपने लेख "ताशकंद में भारतीय कम्युनिस्टों की शिक्षा" में लिखा है कि १६ नवंबर, १९२० को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की ताशकंद में स्थापना हुई जिस के एन. पी. तिरुमलराव अध्यक्ष और एम. एन. राय सेक्रेटरी थे. और तब तक विदेश-स्थित भारतीय क्रांतिकारियों में सारे भेदभाव समाप्त हो चुके थे.

'एम. एन. राय और भारतीय समाजवाद' पर चर्चा बहुत ही गर्मागर्म रही. श्री गोपाल कृष्ण ने कहा कि भारतीय राष्ट्रवाद के विकास या समाजवादी चेतना के विकास की चर्चा के सिलसिले में राय पर दो मिनट भी विचार करना ज़रूरी नहीं है. दूसरी ओर प्रो० ग्रोवर और शिवैया ने राय के कार्य को बड़ा महत्त्व दिया. ग्रोवर के अनुसार समाजवादी संघर्ष में एशिया पर बल राय के कारण दिया गया. मार्क्स ने "भौगोलिक धरती को आर्थिक धरती" मान कर जो भूल की थी वह राय ने बतायी और सिद्ध किया कि भौतिकवादी होने के लिए मार्क्सवादी होना जरूरी नहीं है. हाँ, राय हिंसा के प्रश्न पर उसे नैतिक-अनैतिक नहीं मानते थे और अहिंसा को केवल साधन मानते थे. यह आरंभिक साम्यवादी राय बाद के राय से बहुत भिन्न है. परवर्ती राय तो एकदम गांधी के निकट आ जाते हैं जब वे व्यक्ति-विवेक पर जोर देते हैं. वे लोकतंत्र और समाजवाद को प्रायः अनमिल मानने लगते हैं. वे 'रिवीजनिस्ट' (सुधारवादी) लगते हैं.

जे. बंदोपाध्याय का आग्रह था कि हमें क्रांतिकारी राय और विचारक राय में अंतर करना चाहिए. क्रांतिकारी राय रूसी कम्युनिस्टों से भिन्न नहीं थे. परंतु परवर्ती विचारक राय हमारे लिए यों अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्यों कि वह वामपंथियों को मूढ़ग्राहिता से बचाते रहे. पर राय का भारतीय जनता से सीधा संपर्क बहुत कम था, यह सही है.

"नेहरू और समाजवाद" पर अपने निबंध में डॉ० पी. सी. जोशी ने डॉ० राव की आलोचना करते हुए कहा कि उन्होंने नेहरूवाद की सीमाएँ और दोष नहीं गिनाये. डॉ० जोशी ने कहा कि पश्चिमीकरण की चुनौती के आगे भारतीयता की खोज की ओर नेहरू ने उस समय जनसाधारण और पढ़े-लिखे बौद्धिकों का ध्यान गहरी पैठ से खींचा. यदि गांधी पश्चिम-विरोधी समाज चाहते थे तो कुछ उदारपंथी पूरी पश्चिम की नक़ल. नेहरू ने समन्वय और संतुलन दिया. सहकार और सेवाकार्य पर बल दिया. उन की कमज़ोरी मूल भारतीयता को समझ न पाने की थी.

मांग्री और विपनचंद्र ने साम्यवादी मार्क्सवादी दृष्टि से नेहरू की आलोचना की और कहा कि वे सदा भारतीय साम्यवादियों की आलोचना करते रहे. कांग्रेस के अनुयायियों में सब वर्गों के लोग थे. नेहरू ने उन में से एक वर्ग को क्यों नहीं उभारा. गांधी के लिए ठीक था: वर्गभेद उन्हें अप्रिय था. पर नेहरू एक ओर समाजवाद चाहते थे, दूसरी ओर बिरला-बजाज के सूत्रों में कांग्रेस का संचालन देखते रहे. विपिनचंद्र ने नेहरू की असफलता संगठन के स्तर पर बतायी. उसी कारण से नेहरू की 'मिश्रित अर्थनीति' शुद्ध पूँजीवाद बन गयी. नेहरू के अर्थशास्त्र में नया क्या है? इंग्लैंड-अमेरिका की ही मर्ज़ी से देश की अर्थनीति बनी. नेहरू अस्पष्ट थे, इसी लिए महत्त्वपूर्ण हो गये. १९४७ और बाद में तो कांग्रेस पार्टी अ-समाजवादियों का गढ़ बन गयी. नेहरू के समता के मधुर वचन जनता के लिए अफ़ीम साबित हुए. धर्मांतर [illegible] के वचन बोलते हुए वह देश को सांप्रदा[illegible] की खुली स्थिति में धकेल गये.

पार्थसारथी गुप्त ने कहा कि राज[illegible] संभवनीयता की कला है. और नेहरू की दृ[illegible] एक लंबी सामाजिक क्रांति की ओर थी. [illegible] के कारण भूमि-सुधार के प्रस्ताव कांग्रेस स[illegible] में आने पर ला सकी.

अंतिम चर्चा हुई "कांग्रेस की समाजव[illegible] के प्रति प्रतिक्रिया" पर. गोपाल कृष्ण अपना निबंध पढ़ा जिस का सारांश था कांग्रेस ने वैसे थोड़े से समाजवादियों को भर लिया, पर कभी समाजवाद को पूरी त[illegible] अपनाया नहीं.

जे. बंदोपाध्याय ने कहा कि मैं यह न[illegible] मानता कि राजनैतिक चिंतन के नाते नेह[illegible] के पास कोई समाजवादी आदर्श नहीं था. [illegible] राष्ट्रीय आंदोलन के नेता के नाते उन्हें क[illegible] समझौते करने पड़े. परंतु सुभाष बोस क[illegible] तरह उन्होंने साम्यवाद और नाज़ीवाद [illegible] मिश्रण का अद्भुत स्वप्न नहीं देखा.

गणेश प्रसाद ने कहा—नेहरू ने का[illegible] पूजा, दुर्गा पूजा, खिलाफ़त, रामराज जैस[illegible] रहस्यवादी शब्दावली से राष्ट्रवाद को पु[illegible] किया. वे अ-मार्क्सवादी समाजवादी थे. वे बुद्धिवादी थे.

विपिनचंद्र का कहना था कि उनकी राष्ट्रीयता पर कोई शंका नहीं कर रहा है. हमें उनके समाजवाद पर आपत्ति है.

साहित्य

संवाद और विवाद का वर्ष

१९६७ नयी कहानी की मृत्यु और नयी कविता की पुनर्स्थापना का वर्ष कहा गया है. साहित्य के क्षेत्र में जीवन और मृत्यु इतनी जल्दी नहीं होती, फिर भी यदि इस टिप्पणी को आगे बढ़ायें तो १९६८ नयी कहानी की अंत्येष्टि का वर्ष है—तात्पर्य नयी कहानी आंदोलन से है. १९६८ काव्य-रचना का वर्ष कम काव्य-चर्चा का वर्ष अधिक रहा. जिन महत्त्वपूर्ण संग्रहों पर इस वर्ष चर्चा होती रही वे सब १९६६-६७ में प्रकाशित हो चुके थे—**आत्महत्या के विरुद्ध, माया दर्पण, मछलीघर, देहांत से हट कर.** इन संग्रहों के आते ही अकविता का शोर दब गया था और १९६८ में उस का हाल पूछने वाला भी कोई नहीं रहा. महत्त्वपूर्ण काव्य-संग्रह कोई इस वर्ष नहीं निकला, लेकिन कुछ उल्लेखनीय नये कवियों के संग्रह आये हैं, जिन में **अतुकांत** (लक्ष्मीकांत वर्मा) **खंड खंड पाखंड पर्व** (मणि मधुकर) का नाम लिया जा सकता है. वर्ष समाप्त होते-होते **खुले हुए आसमान के नीचे** (कीर्ति चौधरी) **कविता संभव** (प्रयाग शुक्ल) और **कटती प्रतिमाओं की आवाज** (बच्चन) के काव्य-संग्रह भी देखने को मिले. नयी कहानी का झंडा गिरते ही कुछ पेशेवर समीक्षकों ने लपक कर नयी कविता का झंडा उठाया और उस में 'प्रतिबद्धता' की जगह 'राजनीतिक संदर्भ' (कवि की दृष्टि से नहीं अपनी ज़रूरत की दृष्टि से और अपना अस्तित्व प्रमाणित करने के लिए) ढूंढ़ने लगे और उस का शोर मचाने लगे, जिस की चरम सीमा **आलोचना** द्वारा आयोजित **कविता और राजनीति** पर (अज्ञेय की अध्यक्षता में) गोष्ठी थी, जिस में इन अवसरवादी समीक्षकों को मुँह की खानी पड़ी और जिन कवियों के आधार पर वह कविता में राजनीति की अपनी शतरंज खेलना चाहते थे उन्होंने साफ़-साफ़ उन का माध्यम बनने और उन के द्वारा इस तरह प्रयोग किये जाने से इनकार कर दिया. इस प्रकार १९६९ सही कवियों के लिए सही कविता लिखने का और झूठे समीक्षकों के लिए झूठा विवाद न खड़ा करने की संभावना लेकर उपस्थित है.

कोई महत्त्वपूर्ण कहानी-संग्रह १९६८ में नहीं प्रकाशित हुआ. वर्ष के प्रारम्भ में **बगैर तराशे हुए** (सुधा अरोड़ा) और वर्ष के अंत में **घिराव** (महीप सिंह) के संग्रह का उल्लेख किया जा सकता है.

उपन्यास के क्षेत्र में अवश्य गर्मी रही है. रचनात्मक साहित्य की दृष्टि से १९६८ को उपन्यास का ही वर्ष कहा जा सकता है. जिस उपन्यास ने इस वर्ष सब से अधिक ध्यान आकर्षित किया वह है **राग दरबारी** (श्रीलाल शुक्ल). कुछ और अच्छे उपन्यास भी आये हैं: **अलग अलग वैतरणी** (डा. शिवप्रसाद सिंह) **दूसरी बार** (श्रीकांत वर्मा) **कुछ जिंदगियाँ बेमतलब** (ओमप्रकाश दीपक). कुछ पुराने लेखकों के भी उपन्यास आये हैं, जिन में **सात घूंघट वाला मुखड़ा** (अमृतलाल नागर) और **ऋतु चक्र** (इलाचंद्र जोशी) उल्लेखनीय हैं. इलाचंद्र जोशी ने लंबे अंतराल के बाद क़लम उठायी है, यह खुशी की बात है उपन्यास क्षेत्र में सब से अधिक प्रसन्नता विविधता देख कर होती है. एक ओर यदि मानव-संबंधों की सूक्ष्मता पर दृष्टि गयी है तो दूसरी ओर सामाजिक यथार्थ का चित्रण हुआ है. **राग दरबारी** और **दूसरी बार** इस विविधता के दो छोर हैं और दोनों की भाषा और शैली सराहनीय है. **अलग-अलग वैतरणी** अपनी वस्तु-परिधि के कारण विशेष महत्त्व का है.

समीक्षा के क्षेत्र में अनेक पुस्तकें लिखी गयीं, जिन में **अज्ञेय और आधुनिक रचना संसार** (रामस्वरूप चतुर्वेदी) तथा **कविता के नये प्रतिमान** (नामवर सिंह) प्रमुख हैं.

१९६८ में पत्र-पत्रिकाएँ अनेक निकलीं, पर उन में **अकथ** और **आवेश** दो छोर पर दिखायी देती हैं. दोनों ही अव्यावसायिक पत्रिकाएँ हैं और दोनों ही के सामने अपने-अपने ढंग से आगे प्रकाशन का संकट है. एक ने सही साहित्य सामने रखना चाहा तो दूसरे ने चौंकाने का रास्ता अख़्तियार किया और दोनों का ही मनोरथ पूरा हुआ.

सब से अधिक शोर १९६८ में कुछ विवादों को लेकर रहा. साहित्य-क्षेत्र में विवाद कभी न रहे हों ऐसा तो याद नहीं पड़ता, झूठे विवाद भी हुए, पर कायरतापूर्ण विवाद का वर्ष यही था. छद्मनाम से **विप्र गोस्वामी** का चक्र चला, जिस की लपेट में अकारण अनेक लेखक आये. समस्याएँ बजाय सुलझने के और उलझ गयीं. झूठे समीक्षक के ही हाथ इस से मजबूत हुए. संवाद विवाद में बदल गया, ऐसे झूठे विवाद में जिस के प्रतिवाद का भी कोई अर्थ नहीं रह गया. सही रूप छद्मवेश में कैसे छिपाया जाता है, इस की पहचान १९६८ के इन विवादों से होती है. संवाद की चिंता एक के लिए प्रतिवाद की चिंता बनती है, तो दूसरे के लिए विवाद का साधन. १९६८ इस दृष्टि से दुर्भाग्य का वर्ष रहा है. सही बातें सही ढंग से न रख कर उसे उलझाने का ही काम हर समीक्षाधर्मी ने किया है और रचनाकार के मार्ग में रुकावट ही डालनी चाही है.

किताबें

अर्थहीन जीवन की कथा

ऐसा क्यों है कि जो पेशेवर उपन्यास-लेखक नहीं हैं उन के उपन्यासों की चर्चा, यदि वे अच्छे भी बन पड़े हों तो भी, हिन्दी समीक्षा-जगत् में नहीं होती? यह प्रश्न **ओमप्रकाश दीपक** के उपन्यास **कुछ जिंदगियाँ बेमतलब** पढ़ कर अनायास ही उठता है. उपन्यास शहर में रहने वाले निम्न वर्ग की जिंदगी पर लिखा गया है. इस विषय पर हिन्दी में संभवतः कोई दूसरा उपन्यास नहीं है. किसी अच्छे लेखक ने तो इस ज़िंदगी पर क़लम नहीं ही उठायी है. ग्रामीण जीवन और निम्न मध्यवर्ग का चित्रण, सतही ही सही, हिंदी उपन्यासों में मिल जायेगा, पर शहर के निम्न वर्ग का, जो हर ओर से कटा हुआ और हर तरह से टूटा हुआ है, उस का चित्रण नहीं. दीपक ने इस वर्ग को उठा कर साहस का परिचय दिया है. उपन्यास पढ़ कर इस बात की बेहद खुशी होती है कि लेखक को इस वर्ग की जिंदगी का घनिष्ट परिचय है. उस की जिंदगी के यथार्थ का जैसा चित्रण इस उपन्यास में हुआ है. वह पेशेवर उपन्यासकारों के लिए स्पर्धा का विषय होना चाहिए.

सच तो यह है कि हिन्दी उपन्यासों में नक़ली आधुनिकता का तेवर तो मिल जायेगा, लेकिन आधुनिक समस्याएँ उठायी ही नहीं जा रही हैं. लेखकों का अनुभव-क्षेत्र और उन की संवेदना का क्षेत्र दोनों ही बेहद सीमित है. प्रस्तुत उपन्यास निम्न वर्ग के आर्थिक संकट का ही सवाल नहीं उठाता बल्कि इस वर्ग के सामने जो भयावह सामाजिक असुरक्षा है उस का भी नग्न चित्रण करता है. देश की न्याय-व्यवस्था, पुलिस की अकर्मण्यता और तानाशाही, जेल-जीवन की यंत्रणा—सब जैसे इस वर्ग के लिए दूसरा ही रूप रख कर खड़ी हैं और उस की जिंदगी को अर्थहीन बना रही है—उसे चोर, उचक्का, जुआरी, गुंडा, भिखमंगा बना बेमतलब जीने और मरने के लिए छोड़ देती हैं. राजधानी में ऐसे वर्ग की एक बस्ती का चित्रण इस में है. जिद्दा, महमूद, मक़बूल और नायक सभी अपनी तीखी छाप छोड़ते हैं. पुलिस की सुविधा नायक को चोर बना देती है; शेष गुंडे, जुआरी और गिरहकट हैं. जेल की यातना भोगने को अभिशप्त हैं.

विषय की अद्वितीयता के साथ-साथ भाषा और शिल्पगत कसाव इस उपन्यास को महत्त्वपूर्ण बनाते हैं. जो लोग पुराने ढंग से चरित्रों के विकास को ध्यान में रख कर इसे पढ़ेंगे उन से इतना ही कहना है कि इस वर्ग के चरित्र का विकास होता ही कहाँ है. सभी असमय ही बेमतलब ज़िंदगी जीते रहते हैं या मर जाते हैं.

कुछ जिंदगियाँ बेमतलब : ओमप्रकाश दीपक; राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली. मूल्य ६ रुपये.

राष्ट्रभाषा

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन

इलाहाबाद के साहित्य सम्मेलन भवन के सामने कामताप्रसाद कक्कड़ रोड और क्रॉस्थेट रोड (जो २० दिसंबर से सम्मेलन मार्ग घोषित कर दिया गया है) के चौरस्ते पर स्वर्गीय श्री पुरुषोत्तमदास टंडन की सजीव कांस्य-प्रतिमा की २०-१२-६८ को प्राण-प्रतिष्ठा की गयी. गुजरात के राज्यपाल श्री **श्रीमन्नारायण अग्रवाल** ने समारोह की अध्यक्षता की और कांस्य-प्रतिमा का अनावरण किया **आचार्य विनोबा भावे** ने. सम्मेलन शासन-निकाय के अध्यक्ष **सेठ गोविंद दास** ने इस अवसर पर कहा : 'यह अवसर कई अर्थो में बडे महत्त्व का है, क्यो कि यह प्रतिमा न केवल हिंदी के प्रेमियों की प्रतीक है वरन् समूची राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक है.'

आचार्य विनोबा ने अपने वक्तव्य मे मूर्ति-अनावरण न कह कर उसे मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा का अवसर कहा. उन्होंने कहा 'राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन उतने ही गहरे स्तर पर सत्यनिष्ठ व्यक्ति थे जितने कि गांधी जी थे. राजर्षि की सत्यनिष्ठा ही मुझे यहाँ खीच कर लायी है.' आचार्य विनोवा ने कहा 'यह बडी लज्जा की वात है कि स्वयं हिंदी भाषा-भाषी प्रदेशो मे अभी तक अंग्रेजी क़ायम है. अंग्रेजी को तो यहाँ होना ही नही चाहिए. अब तक सारा काम-काज हिंदी में हो जाना चाहिए था. हिंदी की प्रतिष्ठा यदि इन प्रदेशो मे हो जाती है तो अंग्रेजी का प्राबान्य अपने-आप चला जायेगा. विनोबा ने कहा 'दक्षिण भारत के लोग हिंदी-विरोधी नही है, लेकिन जितना भी हिंदी का विरोध दीखता है उस का कारण हिंदी के प्रदेशों का आलस्य है.' राष्ट्रभाषा की उपयोगिता किसी राष्ट्र मे क्या होती है, इस पर उन्होंने कहा 'एक समय था जब संस्कृत भाषा देश की राष्ट्रभाषा थी. उस राष्ट्रभाषा का प्रयोग शंकराचार्य ने किया. रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य जैसे लोगों ने किया और उन के द्वारा प्रतिष्ठित धर्म समस्त उत्तर भारत में समान रूप से फैला, पनपा और बढ़ा. राष्ट्रभाषा के माध्यम से ही पूरे भारत को पुनः अपना विचार और दर्शन दे सकते है, लेकिन इस के लिए एक राष्ट्रभाषा का महत्त्व उन्हे स्वीकार करना पड़ेगा. बिना इस राष्ट्रभाषा की स्वीकृति के वह अपनी इनिंग का उपयोग नही कर सकेंगे.'

विनोबा जी ने कहा कि 'संसार में जितनी भी लिपियाँ है उन सब मे सब से अधिक वज्ञानिक लिपि नागरी है. यदि नागरी लिपि को स्वीकार कर लिया जाये और समस्त भारतीय भाषाओं का साहित्य नागरी लिपि में हो तो बहुत-सी कठिनाइयों और पूर्वाग्रहों का समाधान मिल सकता है.

लक्ष्मण गौड़ : रेखांकन

कला

कला-वर्ष '६८ : अपनी भूमि की खोज

प्रत्येक कला-वर्ष अधिकाधिक प्रदर्शनीपूर्ण होता जाता है. ६८ का कला-वर्ष न केवल प्रदर्शनियों की संख्या के लिहाज़ से उल्लेखनीय है प्रदर्शित चित्रों व चित्रकारों के लिहाज से भी उल्लेखनीय है. हेब्बर, रामकुमार, लक्ष्मण पै, जेराम पटेल, हिम्मत शाह, स्वामीनाथन्, अंबादास, विमल दास गुप्ता, राजेश मेहरा, गुला, रसूल संतोष, रामगुप्त, शमशाद हुसेन जतीन दास आदि कितने ही चित्रकारों की प्रदर्शनियाँ अकेले दिल्ली में ही आयोजित हुई. नये व अन्य युवा नाम भी अनेकों है. त्रिवार्षिकी कला-प्रदर्शनी, राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, ललित कला महाविद्यालय की प्रदर्शनी, अंतरराष्ट्रीय बाल-चित्र प्रदर्शनी की याद करें तो न सिर्फ़ अनेकानेक चित्र आँखों के सामने तैर जायेंगे इस बात का एहसास भी होगा कि कला-मौसम अब कुछ महीनों में ही सिमटा न रह कर लगभग पूरे वर्ष भर में फैल गया है. राजधानी की अधिकांश संध्याएँ अब कला-संध्याएँ भी है. यही पर यह भी जोड़ा जा सकता है कि स्थानीय चित्रकारों के अलावा बाहर के कई चित्रकारों के भी चित्र इस वर्ष राजधानी मे प्रदर्शित हुए. अकेले हैदराबाद से तीन भिन्न प्रदर्शनियों में १५ चित्रकारों के चित्र प्रदर्शित हुए. इस से पहले इन मे से दो-तीन ही चित्र राजधानी में प्रदर्शित हुए थे. इस से इस बात का अंदाज भी होता है कि छोटे-बड़े शहरों में कितने ही चित्रकार कार्यरत हैं, जिन में से बहुतों का काम तो अभी शायद अपने शहर के बाहर नही गया.

अधिक काम और उस के प्रदर्शन से इतना तो प्रकट होता ही है कि अब कला-संसार फैल रहा है और यह भी सही है कि जितना ही वह फैल रहा है प्रेक्षक-समीक्षक के लिए उसे समेट लेना कठिन होता जाता है. प्रवृत्तियों की पहचान और पकड़ कही अधिक कठिन हो गयी है. लेकिन कला-वर्ष ६८ की याद शायद इस लिए भी की जायेगी कि इस वर्ष नये-पुराने चित्रकारों के काम में आकृतियाँ फिर वापस लौटती दिखायी दी. दूसरे यह कि अमूर्त संरचनाओं के लगभग एक से रूपाकार, जो अलग-अलग चित्रकारों के चित्रों मे प्रकट होते थे, या तो प्रकट ही नहीं हुए या प्रकट हुए भी तो अपनी निजी विशिष्टताओं के साथ. लोककला व उस के रंगों के प्रति चित्रकारों का आकर्षण बढा है. पश्चिमी कला के प्रभाव से अपने को मुक्त करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती हुई मालूम पड़ी. संकीर्ण अर्थो मे राष्ट्रीय या भारतीय कला की बात तो व्यर्थ होगी, लेकिन इतना तो है ही कि अपने आस-पास की वस्तुओं व रंगों के प्रति चाव बढ रहा है. सब से बड़ी बात तो यह है कि अमूर्त कला का भी अगर कोई देसी आग्रह नही है तो इतना आग्रह तो बढ़ ही रहा है कि वह पश्चिमी अमूर्त्त कला के रूपाकारों व रंगों से अलग कुछ रच सके. त्रिवार्षिकी कला-प्रदर्शनी में प्रदर्शित भारतीय चित्रकारों के काम मे इस आग्रह की सहजता-स्वाभाविकता झलकती थी. **स्वामीनाथन्, रज़ा** आदि चित्रकारो के नाम इस संदर्भ में विशेष रूप से लिये जा सकते है. कला-वर्ष, ६८ में प्रदर्शित नये व युवा चित्रकारों के काम को भी देख कर यह लगा कि वे अपने पूर्ववर्त्ती चित्रकारों के काम के ढाँचे व ढंग को छोड़ कर अपनी निजी शैलियाँ विकसित करना चाहते हैं. इस से उन के काम में एक अनगढ़ता व दूसरे क़िस्म

का पुरानापन भले ही झलका हो, फिर भी वह रुचिकर लगा है.

लेकिन कला-वर्ष '६८ की प्रदर्शनियाँ भी यही बताती हैं कि हमारे यहाँ के कला-संसार में कोई बड़ी हलचल नहीं है. अपेक्षाकृत पुराने चित्रकार अपनी शैलियों में अंतिम रूप से व्यवस्थित और संतुष्ट हो गये लगते हैं. और नये चित्रकार भी अपनी छिटपुट कोशिशों में उलझे मालूम पड़ते हैं. रेखाचित्रों व काली स्याही के रेखांकनों की ओर भी कुछ चित्रकार प्रवृत्त हुए हैं. इस क्षेत्र में हैदराबाद के **लक्ष्मा गौड़** का काम कुछ अलग नजर आया. उन की रेखाओं की बारीकी और उस बारीकी द्वारा बुनी गयी सघनता शक्तिशाली है.

छोटे जीव-जंतुओं के संसार वाले रूपाकारों की **जेराम पटेल** की प्रदर्शनी भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण थी. सात-आठ वर्षों के उन के रेखांकनों की प्रदर्शनी में ये रूपाकार प्रेक्षक के लिए बिंबों का एक ढेर लगाते थे—ये बिंब आज के मनुष्य के भय, तनाव, अकेलेपन और उस के लगातार बनते-मिटते संसार के हैं. अगर ऐसा कोई शब्द गढ़ा जा सकता हो तो उन के इन रेखांकनों के लिए हम **बिंब-आकृतियों** का प्रयोग कर सकते हैं.

ग्राफ़िकों, उत्खननों, उकेरनों, काष्ठशिल्प, मूर्तिशिल्प की भी कई प्रदर्शनियाँ आयोजित हुईं. कला-वर्ष '६८ ने पात्रों के प्रति एक नया रुझान देखा. **प्रमिला पंडित, किरण गुजराल** आदि की पात्राकृतियों में गहरा आकर्षण था. कला वर्ष ६८ में ही **मकबूल फिदा हुसेन** ने कक्षों की भीतरी छत पर चित्रकारी की ओर अपनी प्रदर्शनी में प्रेक्षकों के सामने ही चित्र-रचना का प्रयोग किया.

कला वर्ष '६८ ने कला-संसार को जो वैविध्य दिया है वह महत्त्वपूर्ण है और आशा की जा सकती है कि आने वाले वर्षों में यह वैविध्य न केवल अधिक जीवंत होगा, अधिक समृद्ध भी होगा.

मूर्तिशिल्प : कैनवास और काठ पर

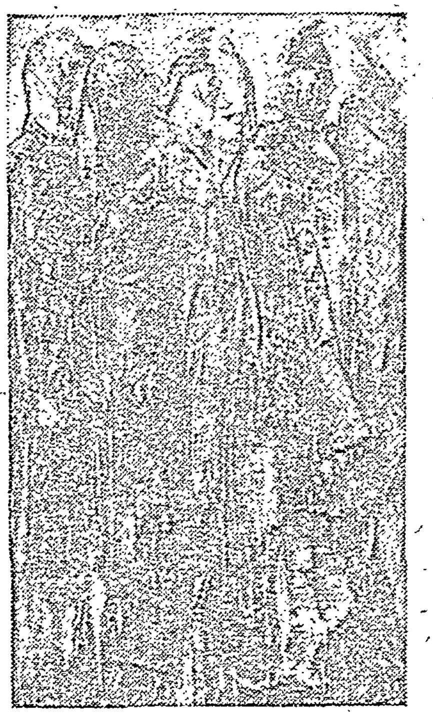

बातचीत : ज० र० यादव

आइफैक्स कला दीर्घा में प्रदर्शित युवा चित्रकार **ज. र. यादव** के कुछ चित्र गुफा-मूर्तियों व मंदिर-मूर्तियों के छाया चित्र लगते हैं—विशेष ढंग से खींचे गये छाया चित्र. ऐसा आभास उन के चित्रों के प्रति आकर्षित करता है. लेकिन उन्होंने अपने अन्य चित्रों में चित्र-विषयों का अति सरलीकरण कर डाला है. 'ज्वार' चित्र में हहराता हुआ ज्वार है और 'निकट' चित्र में निकट लायी हुई दो आकृतियाँ. ऐसा नहीं कि शीर्षकों के कारण सरलीकरण का यह एहसास होता है. अगर शीर्षक हटा दें या उन्हें भूल जायें तब भी उन के चित्रों में यही सरलीकरण झलकेगा. कुल मिला कर उन के विषय सीमित हैं. 'जंगल की आग' चित्र में जरूर एक-दूसरे में आग लगाते से रंग हैं—ऐसा लगता है जैसे कई रंग-छायाएँ एक लपट की तरह कुछ रंग-सतहों पर भाग रही हों. रंग-चयन व रंग-प्रयोग के मामले में यह चित्र जरूर आकर्षित करता है. मूर्ति शिल्प और काष्ठ मूर्ति शिल्प को कैनवास पर उतारने, फिर उन्हें रंगों से चमकाने के प्रयोग को वह और सार्थक बना सकते हैं.

आइफैक्स कला दीर्घा में ही मूर्तिशिल्पकार **चिंतामणि कर** के मूर्तिशिल्पों की प्रदर्शनी आयोजित हुई. इन में से एक मूर्तिशिल्प 'शक्ति' की चर्चा पहले (**दिनमान १० नवंबर, ६८**) में हो चुकी है. यह मूर्तिशिल्प कलकत्ता की एक प्रदर्शनी में प्रदर्शित हुआ था. उन के अन्य मूर्तिशिल्पों में भी इसी की सी लयात्मकता व तराश है. उन के अधिकांश मूर्तिशिल्प काठ के ही हैं. उड़ान भरती-सी उन की 'अप्सराएँ' उन के मूर्ति शिल्प का मूल-स्वर मालूम पड़ती हैं. तराशी हुई गोलाइयों की उन की मूर्ति-आकृतियों के आकार-प्रकार लगभग एक जैसे हैं. उन के मूर्तिशिल्पों में न तो विषय वैविध्य हैं, न शिल्प वैविध्य. इस लिए उन का प्रत्येक मूर्तिशिल्प आकर्षित नहीं करता. इस प्रदर्शनी में मूर्तिशिल्पों के लिए तैयार किये गये उन के कुछ रेखांकन भी प्रदर्शित थे. 'माँ और बच्चा' मूर्तिशिल्प में उन्होंने माँ-बेटे को इकाई में मूर्तिमान किया है—एक-दूसरे से अविभाज्य काठ का यह मूर्तिशिल्प उन के अच्छे मूर्ति-शिल्पों में गिना जायेगा.

एक विरल प्रतिमा

हाल में **लारेंस युनिवर्सिटी** में भारत और थाई देश की शिल्पकृतियों की एक प्रदर्शनी आयोजित की गयी जिस में कई विलक्षण मूर्त्तियाँ थीं. अपस्मार पर तांडव करते हुए शिव की कांस्य प्रतिमाएँ तो 'नटराज' नाम से सुपरिचित्र हैं, परंतु ऊर्ध्व-तांडव में पैर ऊँचे कर के नृत्यरत प्रतिमाएँ विरल हैं. ऐसी एक विरल प्रतिमा (विलसन के संग्रह से) का चित्र नीचे दिया जा रहा है. थाई बुद्ध प्रतिमाओं में द्वारावती, श्रीविजय और ख्मेर शैलियों की प्रतिमाएँ अनोखी हैं. चतुर्मुखी शिवलिंग की भी एक प्रतिमा वहाँ दिखायी गयी. यह प्रदर्शनी बहुत ही सुंदर थी. यह कांस्य प्रतिमा मद्रास के पास शिल्पियों के एक प्रसिद्ध परिवार गोपालन से प्राप्त की गयी है. इस पर उस परिवार के हस्ताक्षर हैं.

मिलवाकी (अमेरिका) में **जान एडम्स टेरी** और **नैंक टर्नर विलसन** दो भारतीय कला-प्रेमी हैं जिन्होंने भारतीय और दक्षिण-पूर्वी एशिया के प्रस्तर, काष्ठ, कांस्य शिल्पों का अद्भुत व्यक्तिगत संग्रह किया है. विलसन के पास नेपाल से प्राप्त एक चार फ़ुट ऊँची वाम-शुंड वाली नृत्यरत गणश-मूर्ति है. जान टेरी एक बड़े उद्योग संस्थान के क़ानूनी सलाहकार हैं, परंतु कला का इतिहास उन का प्रिय विषय है. उन की पत्नी मेरी टेरी चित्रकर्त्री हैं.

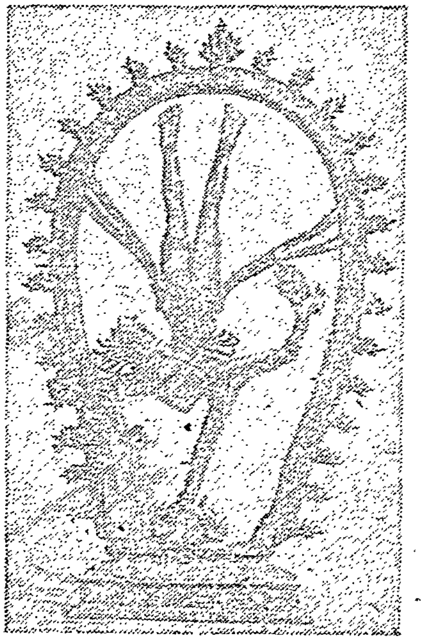

ऊर्ध्व तांडव

[कांस्य : ताँबा, टिन, लोहा
और चाँदी में निर्मित
ऊँचाई ३३¼ इंच
दक्षिण भारत में १९वीं शताब्दी में,
मद्रास के निकट गोपालन परिवार की कृति]

पिछला साल : यह भी ठीक; वह भी ठीक

रंगमंच को ले कर तरह-तरह की और तरह-तरह से अटकलें लगायी जाने लगी हैं—**भारतीय रंगमंच** को एक शब्द-युग्म बना कर उसे विश्व रंगमंच और फिर एशियाई रंगमंच या पूरब का रंगमंच और भी जाने क्या-क्या वाक्य या नारे गढ़ कर उस की गोष्ठी अक्सर मनायी गयी है, राजधानी में या अन्य नगरों महानगरों में. इन सारे वाक्यों को एकत्र रख देखें तो भी कोई अर्थ या अर्थ के प्रति चिंता का भाव गोचर नहीं होता. १९६८ में अपेक्षाकृत यह गोष्ठियाँ कम मनायी गयीं . 'गोष्ठी' के प्रसंग में 'मनाया जाना' का प्रयोग जान-बूझ कर इस लिए किया जा रहा है कि प्रायः लोगों को लगा जैसे किसी पार्टी या भोज में आये हों. कभी-किसी ने कुछ तुक की बात की भी (उस से अनजाने या योजनाबद्ध, नीतिवश या विश्वासपूर्वक) तो गोष्ठी के अंत में कुछ प्रशंसक—'भई वाह! बहुत अच्छा बोले तुम! . . . पते की बात है पर इतना कुढना नहीं . . .' कुछ समीक्षक— 'हमें सहानुभूति है इस स्थिति से . . . अच्छा धीरे-धीरे कुछ होगा ही . . . मगर हाँ फलाने तो सिर्फ 'ग्रांट' (अनुदान) को कोसते रहे—क्या चाहते है वह? . . . हाँ तो देखो बंधु इन ए प्ले लैंग्वेज मे वो . . . वो जान होनी चाहिए और फिर 'एक्टर' अच्छा हो तो सब ठीक. लगन नहीं है जो हुआ करती थी.' और पलट कर किसी हाथ मिलाते बत्तीसी दिखाते किसी वक्ता की पीठ थपथपाते चल दिये . . . यह किसी भी गोष्ठी (मंच से भिन्न भी यही हाल है) के समापन के बाद का शब्द-चित्र हो सकता है. जिस में कुछ लोग जो इमानदारी से कुछ बोलते हैं—बाद में इन प्रशंसाओं और बत्तीसियों में बहल कर अपने अनजाने ही बेइमान खूसटों में तबदील होते जाते है. माथे की लकीरें गहरा जाती है—जरूर साथ ही आँखों पर चश्मा भी चढ़ जाता है.

कोई भी सोचे इस चित्र की ओट कुछ रंग-चेतना सक्रिय भी है तो उसका मूल्यांकन किस संदर्भ मे हो? उस की सापेक्षता किस से है? यह सही है कि १९६८ में राजधानी एवं सामान्यतया सर्वत्र ही रंग गतिविधियाँ बढ गयी है. भिन्न प्रयोग होने लगे है. लोक-नाट्य का प्रवेश 'नेशनल स्कूल आॅफ़ ड्रामा' में भी हुआ है जहाँ से **जसमा ओढ़न** भरपूर रूप से उठ कर उभरा है. स्कूल पर विदेशीपन का आक्षेप था. जैसे स्कूल इस की सफ़ाई देने लगा है कि यह गलत था. स्कूल के कुछ पुराने छात्रों ने कुछ स्थानीय कलाकारों (स्कूलेतर के अर्थ में) के तात्कालिक सहयोग से एक संस्था बनायी—**दिशांतर**—नाम में जो ध्वनि है वह काम भी आई किंतु थोड़ी ही अवधि के लिए. दिनमान को आशा हुई कुछ होगा . . . पर आर्थिक अड़चनें और 'दिशांतर' वर्ष के उत्तरार्द्ध में चुप रह गया. अब जनवरी-फ़रवरी १९६९ में श्री रंग के नाटक 'रंग भारत' , राकेश के नाटक 'आधे-अधूरे' और विजय तेंडूलकर के नाटक— 'खामोश! . अदालत जारी है' को दिशांतर मंचित करेगा. कोई मंडली राजधानी से इतनी विविधता ले कर बंगाल नहीं गयी थी— **गणदेवता, तुगलक, सुनो जनमेजय,** और **कंजूस,** पर ऐसी मंडली किसी भी कारण एक ऋतु भर चुप रह जाये यह खटकने वाली बात है. एक और गंभीर संस्था बनी **अभियान** —१९६७ में बनी पर इस का स्वरूप भी निखरा १९६८ में 'एक शून्य बाजीराव' और 'बाकी इतिहास' की प्रस्तुति के बाद. यों अभियान की **हत्या एक आकार की** प्रस्तुति ही श्रेष्ठ थी. नाट्य रचना की दृष्टि से भी हिंदी के मौलिक नाट्य-लेखन में **ललित सहगल** की इस रचना का विशेष महत्त्व होगा. किंतु अभियान नियोजित रूप से ही वर्ष में शायद दो नाटक करना चाहता है. इधर 'यूथ ऑफ़ इंडिया' में जब से **वीरेंद्र शर्मा** हिंदी प्रस्तुति करने लगे थे—यह संस्था अंग्रेजी मोह से थोड़ी देर के लिए छूटी-सी लगने लगी. अब वीरेंद्र गये नाट्य प्रभाग में नौकरी पर 'यूथ ऑफ़ इंडिया' को कामेडीज और अंग्रेजी के बीच छोड़ कर. इसी प्रकार स्कूलों और कालेजों में मंच के प्रति हिलोर उठने लगी है—पर हिलोर ही तो है. फिर भी **मार्डन स्कूल** के विद्यार्थियों में **ओम शिवपुरी** के अधीन विविध प्रयोगात्मक नाट्यों की प्रस्तुतियाँ आगे की पीढ़ी पर प्रभाव जरूर डालेंगी. अतः इस स्तर पर स्कूल की इस गतिविधि का भी मंचीय महत्त्व है. जयपुर में राजस्थान संगीत नाटक की ओर से नाट्य प्रशिक्षण शिविर लगा है—**मोहन महर्षि** के निर्देशन में.

मराठी से हिंदी, बंगला से गुजराती, बंगला से हिंदी—कन्नड़ से हिंदी—इस तरह क्षेत्रीय भाषाओं में नाटकों का लेने-देन बढ़ रहा है जो विदेशी लेन-देन से अधिक स्वस्थ है. कुछ हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार भी 'हिंदी नाटक' लिखने की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं— यह शुभ है. मजा यह है कि फिर भी नाट्य-कृतियों का अभाव इतना झुंझलाने वाला है कि कोई कभी यह भी कह देता है—अर्मा हिंदी में तो ड्रामे ही नहीं. और प्रसंग निकल सकता है कि ब्रेख्त का **काकेशियन चाक सर्किल** का प्रस्तुतिकरण अपने आप में एक घटना थी. सच है. पर इस प्रतिक्रिया स्वरूप ही इसे यदि महत्त्व दिया जाना है तो वह समस्या को उलझाना भी है और ब्रेख्त या किसी भी सार्वजनीन कृति की अवहेलना भी. क्यों कि उस का महत्त्व विशुद्ध रूप से उस की अपनी समृद्धि के कारण ही माना जाना चाहिए. और यह अभी तक नहीं हो पा रहा है—इस लिए इस का हो जाना भी उपलब्धि नहीं कहा जा सकता.

इतने सारे भिन्न छोरों को बढ़ाते हुए अपने-अपने स्थान से भिन्न संस्थाएँ या व्यक्ति कार्यरत है बंबई में **श्री दूबे** और कलकत्ते में **अनामिका** जो इस बीच इंद्रजित के साथ उत्तरप्रदेश तक आयी. 'इंद्रजित' **बादल सरकार** और इंद्रजित की भिन्न प्रस्तुतियाँ पिछले वर्ष की सर्वाधिक गतिवान मंच-चर्चाओं का कारण रही है.

नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा ने पिछले वर्ष एक संध्याकालीन संक्षिप्त पाठ्यक्रम आरंभ किया मंच प्रशिक्षण के लिए. जिस का उल्लेखनीय फल **लोर्का** की कृति **यर्मा** की अंग्रेजी प्रस्तुति मात्र है. अन्य भाषाओं में होने वाली प्रस्तुतियाँ सीमित रहीं—कारण...? सारी भाषाओं की प्रस्तुतियों पर शायद उतना ध्यान नहीं दिया जा सकता. जो भी हो ऐसे संक्षिप्त पाठ्यक्रमों की शुरुआत शुभ लक्षण है.

इस सब के होने के साथ या न हो पाने के पीछे आये दिन जो कारण बताये गये हैं—वे अपने स्थान पर ज्यों के त्यों है— ६७ हो या ६८ अंतर न के बराबर रहा. जैसे (१) भारतीय विशेषकर हिंदी के मंच को किसी भी प्रकार के संरक्षण की आवश्यकता है, (२) अच्छे, विशेषकर हास्य नाटकों का अभाव है, (३) कलाकारों में पारस्परिक सहयोग—इसे क्या कहे?, (४) अच्छे समीक्षक नहीं है, या रंगकर्मी ही समीक्षक होते जा रहे हैं—कुछ शौक से, कुछ महत्त्वप्राप्ति हेतु और कुछ समीक्षा की सेवा (?) के लिए, फलतः समीक्षाओं का निरपेक्ष होना या उन्हें मानना कठिन होता जा रहा है,

फिर से :—(१) मंच में लोगों की रुचि बढ़ रही है, (२) करने वाले ही निष्ठावान नहीं वरना सब साधन जुट सकते है, (३) देखिये इस बार कितनी अच्छी प्रस्तुतियाँ हुई है. कितनी प्रेरक योजनाएँ बनी है, (४) अकादेमी ने नाट्य लेखन पर नक़द पुरस्कार देना आरंभ कर दिया है, (५) प्रसादजी का स्कंदगुप्त स्कूल द्वारा गंभीरता पूर्वक . . . नयी दिशा— (यह सचमूच महत्त्वपूर्ण बात है)

एक बार और **फिर से** : (१) इस बार गोष्ठियाँ कम हुई है क्योंकि बोलने वाले नहीं होते हैं और दुहरा कर थक गये है. उन्हें नहीं तो लोगों में इतनी बुद्धि आ गयी कि नये वर्ष भी इसका मध्यांतर लंबा रखें.

सब का समापनः इस लिए इस नये साल में पिछले साल से कुछ बेहतर होगा क्यों कि शायद यह पता चल जायेगा कि रंगमंच एक माध्यम है (मनोरंजन भी) उद्देश्य नहीं.

'एक और दिन' का दृश्य

एक संदर्भ और दो दृष्टियाँ

इस वर्ष के शरद सत्र में **इलाहाबाद आर्टिस्ट एसोसियेशन** ने दो नाटक प्रस्तुत किये. पहला नाटक माइकेल क्लेटन हंटन द्वारा लिखित 'राउंड एवाउट' का हिंदी रूपांतर **पहचाना चेहरा** था. तीन अंक के इस नाटक का रूपांतर **श्री केशवचंद्र शर्मा** ने और निर्देशन **डॉ० सुधीर चंद्र** ने किया था. दूसरा **श्रीमती शांति मेहरोत्रा** द्वारा लिखित मौलिक, सामाजिक नाटक **एक और दिन** था, जिस का निर्देशन **कु० हीरा चड्ढा** ने किया था.

पहचाना चेहरा नाटक में एक घरेलू जीवन में पति-पत्नी के व्यक्तिगत जीवन की कई झाँकियाँ बड़ी रोचक और मानवीय संदर्भों से पूर्ण दिखायी गयी थीं. पति विनोद के एक संकेत से पत्नी रमा के मन में अपने पति के बारे में एक शंका उठती है और उसी शंका के रूप में उस की कल्पित प्रेमिका गौरा चटर्जी का चित्र और घर आता है. इस चित्र में केवल एक मानसिक कल्पना को मूर्त्त रूप में मंच पर साकार किया गया था. इस परिकल्पना के क्षेपक के बाद पुन: नाटक तीसरे एक्ट में प्रथम से जुड़ जाता है और कथानक की तारतम्यता फिर स्थापित हो जाती है. कल्पना में बने हुए संसार में यही पात्र एक शंकाग्रस्त पति-पत्नी या दंपति के रूप में प्रस्तुत होते हैं. नाटक का विषय-वस्तु अपनी सीमा को देखते हुए केवल एक वृत्तात्मक कथा का नाटकीय निरूपण है. जे. बी. प्रिस्टले के नाटकों में भी इस प्रकार के आरोपित तथ्यों द्वारा नाटकीय स्थितियों को प्रस्तुत करने की चेष्टा है. इस नाटक में भी ऐसा प्रयोग है, यद्यपि रूपांतरण में उसे काफ़ी भारतीय बनाने की चेष्टा की गयी है.

नाटक बिना अतिरिक्त प्रयास के केवल कुछ परिवर्त्तनों द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जो नाटक को कमज़ोर बना देता है. निर्देशन में इस प्रकार की कमियाँ थीं कि जिस के कारण पूरे नाटक की गति स्वभावत: धीमी हो जाती थी. अभिनय में यथार्थवादी पैटर्न का अनुकरण कर के उसे नितांत हल्का बना दिया गया था. **श्री जीवनलाल गुप्त**, जिन्होंने प्रयाग में लगभग दर्जनों नाटकों में अभिनय किया है, इस में सफलता का परिचय देने में असमर्थ रहे. **श्री सुरेशचंद्र सक्सेना** महँगू की भूमिका में और **श्रीमती कांति गुलवाड़ी** चमेली की भूमिका में काफ़ी सफल रहे. **हीरा चड्ढा** गौरा चटर्जी की भूमिका में सफल रहीं.

एक और दिन में श्रीमती शांति मेहरोत्रा ने आज के परिवारों के विघटन की समस्या उठायी है. यंत्रचालित महानगरों में जो एक तनाव की अनुभूति परिवारों में प्रवेश कर रही है उस का मार्मिक चित्रण इस नाटक में हुआ है.

इस प्रस्तुति की निर्देशिका **कु० हीरा चड्ढा** ने पूरे नाटक के कथ्य को व्यक्त करने के लिए जिस प्रकार के 'कट आउट्स' के सेट का प्रयोग किया था वह भी प्रयोग की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था. निर्देशक की ज़रा भी असावधानी के कारण पूरा नाटक एक अतिभावुकतावादी रोमानी नाटक हो सकता था. कु. हीरा चड्ढा ने जिस संयमित अभिनय का प्रयोग इस नाटक के निर्देशन में किया है उस से कथ्य के साथ तो न्याय हुआ ही है, साथ ही अनुशासित अभिनय की लाक्षणिकता (अंडर स्टेटमेंट) में कितना कुछ गहरे स्तर पर कहा है, यह भी स्थापित हो सका.

स्वयं हीरा चड्ढा की माँ की भूमिका बड़ी गहराई के साथ उभर कर आयी है. पिता की भूमिका में **विजय श्रीवास्तव** सर्वाधिक योग्यता और क्षमता का परिचय दे सके हैं. पुत्र की भूमिका में **अतुल सकलानी** और पुत्री की भूमिका में **कुमारी कमल सकलानी** के अभिनय में भी किशोरावस्था की समस्त जटिल संवेदनाओं का परिचय मिलता है. अतुल सकलानी का अभिनय यद्यपि अंत तक आते-आते एक ठंडे युवक की घुटती हुई विद्रोही आत्मा की न हो कर एक भावुक युवक का हो गया है लेकिन बावजूद इस के वह पूरे संदर्भ को प्रस्तुत करने में सफल रहा है. कुमारी कमल सकलानी का अभिनय अपेक्षाकृत अधिक जीवंत रहा और उस में आज के किशोरावस्था की बेचैनी अधिक उभर कर आयी है.

कुल मिला कर इन दोनों प्रस्तुतियों ने पारिवारिक जीवन के दो विभिन्न पक्षों को विभिन्न शैलियों में प्रस्तुत किया हैं.

तीन मनोरंजक एकांकी

सप्रू हाउस दिल्ली में **श्री संतोषनारायण नौटियाल** के तीन एकांकी—**नये कुबेर, झगड़े की जड़ और पास-पड़ोस**—**लिटिल थियेटर ग्रुप** द्वारा प्रस्तुत किये गये. इन तीनों एकांकी नाटकों के लेखक ही नहीं वरन् निर्देशक भी श्री संतोष नौटियाल ही थे. लेखक के निर्देशक होने में एक आसानी होती है. क्यों कि उस के पात्र उस के ही द्वारा निर्मित्त होते हैं अत: वह उन के मनोभावों और भूमिकाओं को अधिक अच्छी तरह समझने में समर्थ होता है. किंतु इसी के साथ जो कठिनाई उत्पन्न होती है वह यह कि दर्शक उस से कहीं अधिक अच्छे निर्देशक की अपेक्षा करने लगते हैं. संतोष की बात है कि इस उत्तरदायित्व के निर्वाह में श्री नौटियाल प्राय: सफल हुए, बावजूद इस के कि इन तीनों नाटकों में काम करने वाले अभिनेताओं में कई ऐसे थे जो अपनी भूमिकाओं का अच्छा अध्ययन न कर सकने के कारण अपने अभिनय को मार्मिक न बना सके.

यह बात सही है कि नाटक का स्थान एकांकी नहीं ले सकता, पर साहित्य में इन तीनों ने अपना स्थान बना लिया है और अब इन्हें कोई अपदस्थ नहीं कर सकता. आज जीवन कई प्रकार की शारीरिक और मानसिक यातनाओं से भी पिस रहा है. इस लिए उसे क्षणिक सुख भी अधिक आकर्षण और शांति प्रदान करते हैं. छोटे-छोटे चुटकलों में उसे आनंद भी आता है और पारितोष भी होता है. श्री नौटियाल के इन तीन एकांकियों को भी इसी पृष्ठभूमि में देखना चाहिए. रोज़ के जीवन में बहुत-सी विषादपूर्ण घटनाएँ घटती रहती हैं. मनुष्य यदि उन पर हँसने की कला सीख ले तो उन से निपटने की ताक़त भी पा सकता है. **नये कुबेर** में सेठ जी, **'झगड़े की जड़'** में चंदा और सुधा तथा **'पास-पड़ोस'** में राजेंद्र और प्रतिभा अपने आचार-व्यवहार में इसी प्रकार का प्रयत्न करते दिखाई देते हैं. इन एकांकियों से इस से अधिक पाने की आशा ग़लत धारणा पर आधारित होगी. मनोरंजन को मूल उद्देश्य बना कर ही ये लिखे गये थे और इसी उद्देश्य से अभिनीत भी हुए और अपने उस उद्देश्य में सफल भी हुए, इस में संदेह नहीं.

अभिनय की दृष्टि से **श्री नौटियाल, ठाकुर प्रसाद झुनझुनवाला, शकुन सक्सेना** और **संतोष लता** तथा **रेणु पाठक** विशेष रूप से सफल अभिनेता कहे जा सकते हैं.

'नये कुबेर' में ठाकुरप्रसाद झुनझुनवाला और संतोषनारायण नौटियाल

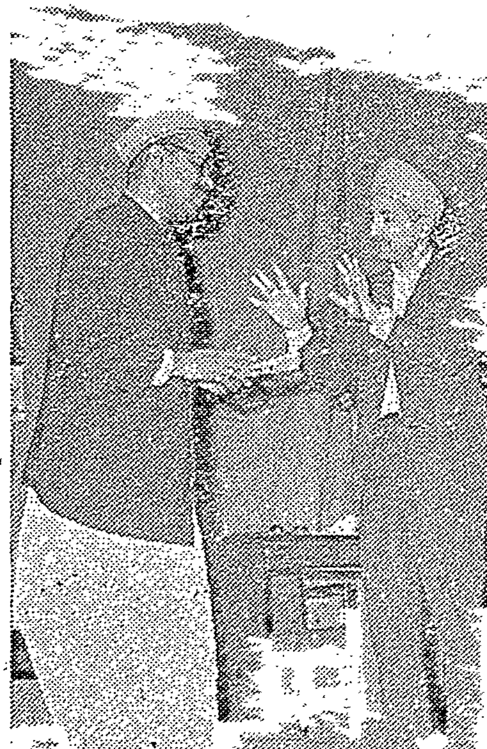

१९६८—संतोषप्रद

संगीत संसार के लिए ६८ का उदय दुख की काली छाया लिये हुए रहा. वर्ष का आरंभ हुआ ही था कि स्वर-सम्राट् **पं. ओंकारनाथ ठाकुर** नहीं रहे. कुछ ही समय बाद **ख़ाँन साहब उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ** की आवाज़ से भी संगीत महफ़िलें सूनी हो गयीं.

संगीत-समारोह : पिछले वर्षों की भाँति गत वर्ष भी **भारतीय कला केंद्र, राग रंग, इंडियन कल्चरल सोसाइटी, सरस्वती समाज, गंधर्व महाविद्यालय, प्राण पिया संगीत समिति, किराना म्यूज़िक सोसाइटी** तथा **आकाशवाणी** आदि जानी-मानी और **हिंदी संगीत विद्यालय, संगीत भारती, शास्त्रीय संगीत समाज, संगीत महाविद्यालय, स्वर संस्कार** आदि अन्य संस्थाओं के अतिरिक्त **संगीत विहार, नग़मा, आर्ट एंड कल्चर सोसाइटी** आदि नयी संस्थाएँ (जो इसी वर्ष स्थापित हुई) भी सक्रिय रहीं. आज उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय संगीत-क्षेत्र में तीन पीढ़ियाँ समान रूप से सक्रिय हैं; पहली ५० से ऊपर, दूसरी ३०-४५ के बीच और तीसरी कल के कलाकारों की—इन तीनों की पीढ़ियों का राजधानी में आयोजित कार्यक्रमों में प्रतिनिधित्व रहा. विभिन्न समारोहों में गायन एवं वादन के प्रदर्शनों में स्मरणीय एवं आनंददायक रहे **उस्ताद अमीर ख़ाँ** द्वारा मालकोस, तराना तोड़ी, और हंस ध्वनि (संगीत नाटक अकादेमी), **उस्ताद निसार हुसेन ख़ाँ** का छायानट, तराना तिलक कामोद, **भीमसेन जोशी** की मियाँ की तोड़ी, **निर्मला अरुण** ठुमरी पहाड़ी, **उस्ताद विलायत ख़ाँ**—कान्हड़ा का एक प्रकार और ठुमरी भैरवी और **देवेंद्र मुरडेश्वर** की ठुमरी पीलू (शंकर लाल संगीत-समारोह में). प्रेस क्लब द्वारा आयोजित **पं. रविशंकर** का सितार-वादन राग कामेश्वरी और पूरिया कल्याण स्मरणीय रहा तो इंडियन कल्चरल आरगनाइज़ेशन द्वारा तानसेन की बरसी के आयोजन में उस्ताद **बिसमिल्ला ख़ाँ** की मधुवंती और कनिष्क डागर बंधुओं की मुलतानी भी याद आती है. विष्णु दिगंबर जयंती इस बार जब संपन्न हुई प्रेस में हड़ताल रही. पर इस समारोह में दो नये नाम सामने आये, जिन का उल्लेख आवश्यक है. **पं. नारायण राव व्यास** के सुपुत्र बंबई के **वी. एन. व्यास** तथा आगरा गायकी के **यशपालसिंह** दोनों ही युवा गायक प्रतिभा-संपन्न रहे. इसी समारोह में बलराम पाठक सितार पर अहीरी तथा पं. हुस्नलाल की वायलन) पर रामकली भी कानों में अभी तक है. उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ तथा मुश्ताक़ हुसैन ख़ाँ को राग रंग के प्रोग्राम में श्रद्धांजलियाँ तो बहुत कलाकारों ने दीं, पर **उस्ताद अहमद रज़ा और अमजद अली ख़ाँ** को क्रमशः वीणा तथा सरोद पर एमन मिश्र गारा दरबारी के साथ-साथ **लक्ष्मण मिश्र** पंडित का एमन तथा **सरफ़राज़ ख़ाँ** के मालकोस की ही याद रह गयी है. आफ़तावे मौसीकी उस्ताद फ़ैय्याज़ ख़ां (प्रेम पिया) और उस्ताद विलायत ख़ाँ (प्राण पिया) की बरसी गत वर्ष साथ ही मनायी गयी, जिस में उस्ताद शराफ़त हुसैन ख़ाँ द्वारा राग रागेश्वरी में विस्तृत आलाप और दो ख़्याल बार-बार याद आते हैं साथ ही **युनस ख़ाँ** का 'हुसैनी कान्हड़ा' और सुघरई में उस्ताद फ़ैय्याज़ की बंदिश भी उल्लेखनीय रही.

आकाशवाणी : वार्षिक कार्यक्रमों में रेडियो संगीत-सम्मेलन और आकाशवाणी के ही तानसेन समारोह पर भी दृष्टि डालना अनुचित न होगा. **रेडियो संगीत-सम्मेलन** की दिल्ली में तथा अन्यत्र आयोजित सभायें अधिकांशतः फीकी रहीं, पर फिर भी दो-तीन नाम और राग बरबस याद आ जाते हैं. सर्व प्रमुख उस्ताद शराफ़त हुसैन ख़ाँ का गारा और सोहनी पंचम, फ़हीम रहीम डागर की बागेश्वरी, एन. राजन का वायलन पर अहीर भैरव और हरिप्रसाद चौरसिया की ठुमरी पीलू. तानसेन संगीत-समारोह के २० से अधिक कलाकारों के विभिन्न प्रदर्शनों की आकाशवाणी के अधिकारियों ने ऐसी काट-छाँट की कि किसी का भी मूल रूप क़ायम न रह सका, जिस से कलाकारों के साथ-साथ श्रोताओं को भी जिन्होंने घर बैठकर रेडियो से यह कार्यक्रम सुना, विशेष आनंद नहीं प्रदान कर सका. फिर भी पं. जसराज की रामकली, गंगूबाई हँगल का आभोगी तथा नैना देवी की ठुमरी भैरवी को सहज ही भुलाया नहीं जा सकता. आकाशवाणी की चर्चा आ ही गयी तो प्रति सप्ताह **आकाशवाणी** द्वारा आयोजित 'संगीत के अखिल भारतीय कार्यक्रमों पर भी निगाह डाल ही ली जाये. गत वर्ष के नेशनल प्रोग्रामों में शायद ही (एक-दो को छोड़ कर) कोई प्रेरणादायक एवं नेशनल प्रोग्राम कहलाने का अधिकारी रहा हो. वर्षों पहले जब यह कार्यक्रम आरंभ हुआ था अत्यंत उत्सुकता से हर शनिवार इस की प्रतीक्षा रहती थी और रुचि से सुना जाता था. पर अब इस में कोई आकर्षण शेष नहीं रह गया है, जिस का मुख्य कारण है आकाशवाणी के अधिकारियों द्वारा घुमा फिरा कर इनेगिने कुछ कलाकारों को ही सुनवाना और अपने कार्य की इतिश्री समझ लेना. यदि वैसा ही है तो बेहतर होगा इस कार्यक्रम को बंद ही कर दिया जाये और यदि नहीं तो कम-से-कम नेशनल प्रोग्राम तो इसे न ही कहा जाये.

रेकॉर्ड : संगीत-समारोहों तथा आकाशवाणी के अतिरिक्त आज-कल "लॉग प्लेइंग" रेकार्ड भी संगीत-आनंद के लिए अच्छे साधन हैं. गत वर्ष अनेकों नये रिकार्ड प्रकाश में आये, जिन में गायकी की विभिन्न शैलियों और विविध वाद्यों के संग्रहणीय रिकार्ड रहे. किराना शैली के प्रमुखतम **उस्ताद अमीर ख़ाँ और पं. भीमसेन जोशी** द्वारा क्रमशः राग मेघ में ख़याल-तराना और ललित तथा दरबारी छाया और ललित, उस्ताद निसार हुसैन ख़ाँ की गोवर्धन तोड़ी, अभोगी, कनिष्क डागर नसीर ज़हीरउद्दीन-नसीर फ़ैय्याज़ उद्दीन ख़ां की जयजयवंती में आलाप-ध्रुपद तथा अभोगी में धमार, **कुमार गंधर्व** की लगन गांधार के साथ-साथ बेग़म अख़्तर और निर्मला देवी की ठुमरियाँ भी आकर्षक रहीं. वाद्य-संगीत में उस्ताद अली अकबर ख़ाँ द्वारा नटभैरव, देश मल्हार, अमजद अली ख़ाँ का मियाँ मल्हार और **शरण रानी** द्वारा हेमंत-भैरवी सभी सरोद वादन के अच्छे रेकॉर्ड रहे तथा शहनाई में उस्ताद **बिसमिल्ला ख़ाँ** की कलावती-धुन भी आकर्षक है. गत वर्ष सितार वादन के सब से अधिक रेकार्ड निकले. उन में भी सब से अधिक **पं. रविशंकर** के रहे. सितार वादन में उस्ताद विलायत ख़ाँ की दरबारी कान्हड़ा, निखिल बैनर्जी की हेम ललित और मालकौस, **बलराम पाठक** की भैरवी और चारुकेशी तथा पं. रविशंकर के ६-७ में से मटियार-किरवानी, कीर्त्तन धुन, मारवा और परज आदि सजीव रहे. अन्य वाद्य-कारों में **पं. रामनारायण** की सारंगी पर मारु बिहाग और **जिया मोहिनुद्दीन डागर** की वीना पर तोड़ी और पूरिया भी संग्रहणीय हैं. जुगल-बंदियाँ भी इधर काफ़ी आयीं—उल्लेखनीय प्रयोग की दृष्टि से रही पं. रविशंकर और यहूदी मेनुहिन की सितार-वायलन पर पूरिया कल्याण और प्रभाती में.

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी भारत सरकार तथा संगीत नाटक अकादेमी ने कलाकारों का सम्मान किया—पुरस्कार दिये तथा विदेशों में भी हमारे कलाकार सम्मानित हुए. उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली ख़ाँ को संगीत नाटक अकादेमी ने अपना फ़ेलो चुना और साथ ही उस्ताद अमीर ख़ाँ तथा अयोध्या प्रसाद को हिंदुस्तानी संगीत के लिए पुरस्कृत किया. भारत सरकार की ओर से गणराज्य दिवस पर शहनाई के जादूगर उस्ताद बिसमिल्ला ख़ाँ पद्मभूषण के एकमात्र अधिकारी रहे तथा बेग़म अख़्तर, शरण रानी, निखिल बैनर्जी और अयोध्याप्रसाद को पद्मश्री से विभूषित किया गया. पं. रविशंकर को अमेरिका में "रूमरी एवार्ड" (सब में अधिक रेकार्डों की बिक्री के लिए) मिला, तो उस्ताद बिसमिल्ला ख़ाँ को नेपाल राज दरबार से पुरस्कार प्राप्त हुआ.

गंधर्व महाविद्यालय और फिर वर्ष का अंत होते-होते **राग-रंग** के आदित्य भवन का शिलान्यास भी ६८ की उल्लेखनीय घटना है. इस तरह भारतीय कला केंद्र के अतिरिक्त इन दो संस्थाओं के भी अपने भवन हो जायेंगे. इस के अतिरिक्त लॉस एंजलीस, अमेरिका में पं. रविशंकर ने सन् ६८ में ही संगीत स्कूल **किन्नर** की स्थापना भी की, जो प्रगति के पथ पर है.

एक नया अध्याय

३८ वर्षीय जॉन कैसेवेटस ने पहले जॉनी स्टकाटो के नाम से टेलीविजन फ़िल्मों में अभिनय कर के ख्याति अर्जित की. वह अब भी अपने को मूल रूप से अभिनेता ही मानते हैं और 'द डर्टी डजन' व पोलांस्की की 'रोज़मेरीज़ बेबी' जैसी फ़िल्मों में उन का अभिनय इस मान्यता का प्रमाण है. ८ वर्ष पूर्व उन्होंने बहुत कम लागत से फ़ीचर फ़िल्म 'शैडोज़' का निर्देशन किया, जिस से अमेरिकी सिनेजगत् में एक नया आंदोलन शुरू हो गया. 'शैडोज़' के बाद 'टू लेट वल्यूज़' और 'ए चाइल्ड इज़ वेटिंग' का भी निर्देशन किया जो ज़्यादा सफल नहीं रहीं. लेकिन स्वतंत्र रूप से 'फ़ेसेज़' फ़िल्म का निर्माण कर के कैसेवेटस ने अमेरिकी फ़िल्मों के इतिहास में एक नया अध्याय शुरू कर दिया है. २ लाख डॉलर की लागत से बनी इस फ़िल्म में एक तथाकथित महान् समाज (अमेरिका) की अंदरूनी खरौंच और खराश की पूरी बारीकी से क्रूर परीक्षा की गयी है. 'फ़ेसेज़' में एक व्यवसायी के विवाहित जीवन की सिर्फ़ एक दिन से थोड़ा अधिक समय की उन घटनाओं का समावेश है, जो उस के विवाह के संबंध-विच्छेद का कारण बनीं. कई नीरस प्रसंगों का सिलसिला इस फ़िल्म की विशेष ख़ामी है किंतु जॉन मोर्ले, लिन कार्लिन, जेना रोलैंड्स (कैसेवेटस की पत्नी) और सेमूर कैसेल के शानदार अभिनय ने इस ख़ामी को भी ढक दिया है.

अपनी इस फ़िल्म तथा निर्देशन के दौर में अपने अनुभवों तथा फ़िल्म-निर्माण के संबंध में अपनी धारणाओं के बारे में कसेवेटस का मत है कि "जब लोग १६ मिलीमीटर की सादी फ़िल्म को ३५ मि. मी. में पेश किया हुआ देखते हैं तो उन के मन में यही धारणा क़ायम होती है कि यह काम किसी शौकिये निर्देशक का ही है. लेकिन हमारे विचार से सुपर-ग्लॉस फ़िल्मों की तुलना में इस पद्धति से दर्शकों से अधिक निकटता क़ायम की जा सकती है. वस्तुत: 'फ़ेसेज' एक बौद्धिकता-विरोधी फ़िल्म है, यह उन सब का विरोधी है जो 'जानते' हैं और उन लोगों के लिए बनी है जो सिर्फ़ 'महसूस' करते हैं. और वह इस लिए कि आज समाज में वास्तविक एहसासों के लिए कोई जगह नहीं है और इस फ़िल्म के ठोस चरित्रों की भावनाएँ तो इतनी तीव्र हैं कि अमेरिका की मौजूदा समाजी ज़िंदगी में उन के लिए कोई स्थान ही नहीं.

"वर्षों से हमारे जीवन में व्यावसायिकों का कुछ ऐसा स्थान बना दिया गया है कि जैसे वे भावनात्मक दृष्टि से बिल्कुल कोरे हैं हालाँकि सच्चाई यह है कि वे भी वही व्याकुलता महसूस करते रहे हैं और उन की भावनाएँ भी उतनी ही तीव्र हैं जितनी और किसी की हो सकती हैं.

ऐसे लोगों को नज़रअंदाज़ किया गया है जिन के पास न तो संपत्ति है और न सामाजिक प्रतिष्ठा ही और जो जीवन की विकृतियों को ही जैसे-तैसे झेल रहे हैं. हमारा समाज उन की भावनाओं और आकांक्षाओं की क़द्र ही नहीं करता.

"एक तरह से इस फ़िल्म के सभी कार्यकर्त्ता शौकिया थे. मैं परंपरागत स्टूडियो पद्धति से दूर रह कर शौकिये के रूप में ही अच्छा काम कर सकता हूं. मैं समझता हूँ कि मुझ जैसे बहुत से लोग शौकिया के रूप में काम करना ज़्यादा पसंद करते हैं, क्यों कि 'पेशेवर' होने का मतलब है कि आप को अमुक कार्य करना ही है जब कि शौकिया का मतलब है कि किसी कार्य के प्रति आप का विशेष रुझान है.

" 'फ़ेसेज़' की पटकथा तैयार करने और फ़िल्मांकन में काफ़ी दिक़्क़त पेश आई क्यों कि इस फ़िल्म के अधिकांश चरित्र प्रौढ़ हैं और प्रौढ़ों का व्यक्तित्व युवकों की तुलना में कहीं अधिक जटिल होता है, वे अधिक असुरक्षित महसूस करते हैं, क्यों कि उन के सम्मुख जीवन का कोई निश्चित और खुला हुआ रास्ता नहीं होता. चुनाँचे मुझे हर दृश्य पर बहस कर के ही उसे लिखना पड़ा—चेतना-प्रवाह के रूप में जो कुछ मेरे मस्तिष्क में आता गया उसी को मैं ने पटकथा का रूप दिया."

'फ़ेसेज़' पहले साढ़े ६ घंटों तक चलने वाली फ़िल्म बनी थी किंतु बाद में काट-छाँट कर उसे काफ़ी छोटा कर दिया गया. परंपरागत पद्धति से हट कर फ़िल्म बनाना अपने आप में बहुत ही श्रमसाध्य सिलसिला है फिर भी कैसेवेटस का विचार है कि उन की फ़िल्म परंपरागत ढंग से स्टूडियो में बनी किसी भी फ़िल्म से कम लागत में तैयार हुई है.

विशेष रूप से अभिनय की दृष्टि से अपनी फ़िल्म की अभूतपूर्व सफलता के बारे में कैसेवेटस ने बताया कि "निर्देशक की हैसियत से मैं ने अभिनेताओं के लिए केवल वह वातावरण तैयार कर दिया जिस में वे अपने मनोभावों को खुल कर अभिव्यक्ति दे सकें, बजाय इस के कि मैं उन से 'पेशेवर' अभिनेताओं की तरह अपना दायित्व निपटाने का आग्रह करूँ." और नतीजा जो सामने आया है उसे देख कर एक प्रच्छन्न व्यक्ति की तरह "मैं कह सकता हूँ कि 'फ़ेसेज़' में अभिनय देख कर मैं आश्चर्यचकित हो गया."

SOBHAGYA

डोबीडट के
शानदार औज़ार
दुनिया के बाज़ार
पर छा गये

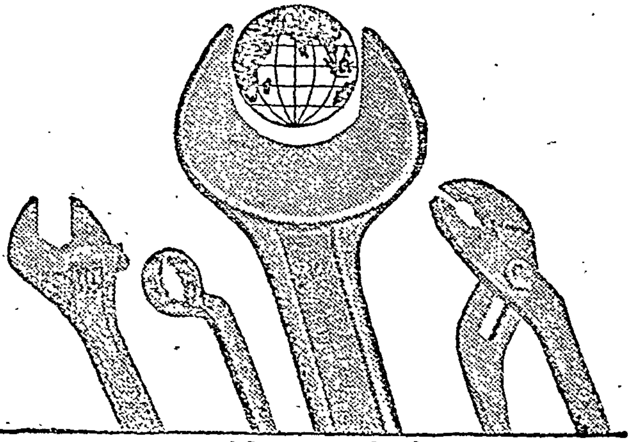

हिंदुस्तान डोबिडट टूल्स लिमिटेड
यूनाइटेड कमर्शियल बैंक बिल्डिंग, दूसरी मंजिल
पार्लियामेन्ट स्ट्रीट, नई दिल्ली-१
वितरकः— मैसर्स सुमन कारपोरेशन,
न्यू एशियाटिक बिल्डिंग, एच ब्लाक, कनाट सर्कस, नई दिल्ली-१

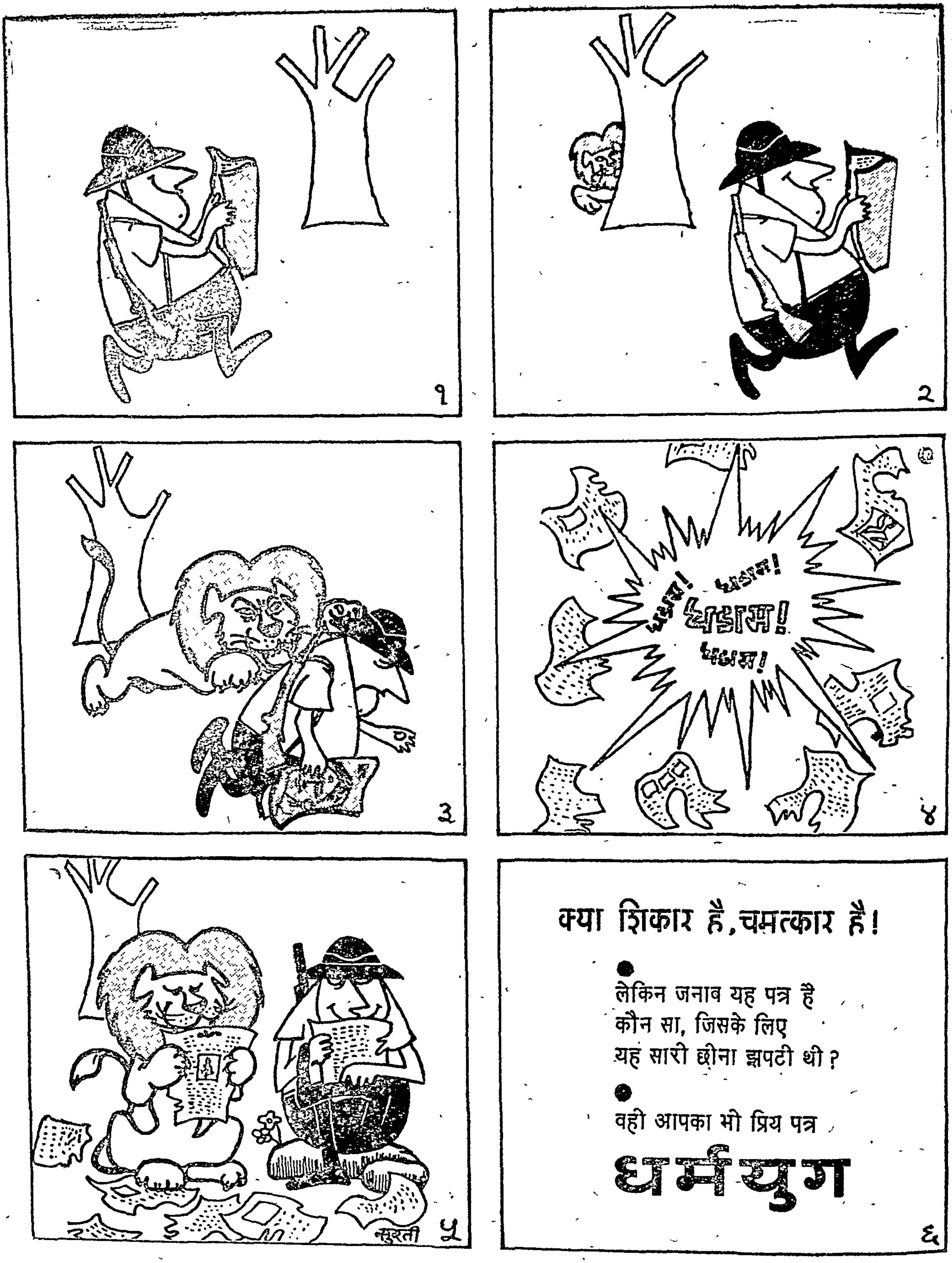
धड़ाम!
क्या शिकार है, चमत्कार है!
लेकिन जनाब यह पत्र है
कौन सा, जिसके लिए
यह सारी छीना झपटी थी?
वही आपका भी प्रिय पत्र
धर्मयुग

डी.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

हिन्दी में अपने ढंग का नया विश्वकोश

सचित्र विश्वकोश

1. पृथ्वी • आकाश • खनिज
2. जीव-जन्तु • पेड़-पौधे
3. मनुष्य • विकास • स्वास्थ्य • खेलकूद
4. राजनीति • प्रशासन • धर्म
5. कृषि • उद्योग • व्यापार • शिल्प
6. आविष्कार • खोज • हॉबी • पर्यटन
7. विज्ञान • वैज्ञानिक • आविष्कारक
8. साहित्य • कला • दर्शन • पुराणकथा
9. इतिहास : प्रमुख व्यक्ति • घटनाएं
10. देश और निवासी • प्रमुख नगर

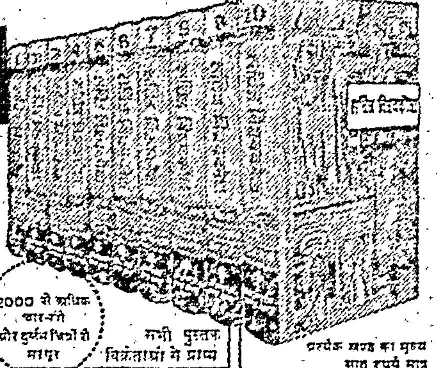

2000 से अधिक चार-रंगी और दुर्लभ चित्रों से भरपूर

सभी पुस्तक विक्रेताओं से प्राप्य

प्रत्येक खण्ड का मूल्य मात्र रुपये मात्र

दस खंडों का पूरा सेट मंगाने पर डाक-खर्च माफ़

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

किस्तों में ट्रांज़िस्टर मंगायें सिर्फ १०) रु० मासिक पर

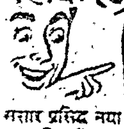

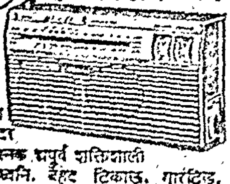

संसार प्रसिद्ध नया जापानी अति सुन्दर मॉडल आश्चर्यजनक अपूर्व शक्तिशाली अद्भुत आकर्षक ध्वनि, हैवी टिकाऊ, गारंटिड, डायललाईट व सर्वाधिक खूबियों का अपना मनपसन्द वर्ल्ड वायस ३ बैन्ड आलवर्ल्ड ट्रांज़िस्टर ही मंगायें मूल्य 165/- रु० । हर शहर व गांव में भेजते हैं

आज ही ज़रूर पत्र लिखें।

आलवर्ल्ड एजेन्सी
(स) कल्याणपुरा दिल्ली६

किस्तों पर ट्रांजिस्टर

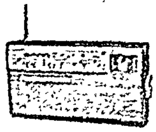

सर्वत्र विख्यात "एस्कोर्ट" ३ बैंड आल वर्ल्ड पोर्टेबल ट्रांजिस्टर, मूल्य १६५ रुपये मासिक किस्त रुपये १०) भारत के प्रत्येक गांव और शहर में भेजा जा सकता है। लिखें:—

जापान एजेंसीज (D.W.N.D.—10)
पोस्ट बाक्स ११९४, दिल्ली—६

मुफ्त उपहार

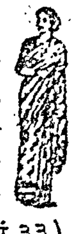

३ महीने तक स्त्रियों का सौन्दर्य काश्मीरी और बंगलौरी आर्ट सिल्क की साड़ियों में खिलता है। आधुनिक डिजाइनों और रंगों में नया माल आ गया है। केवल हमारे यहां ही प्राप्य है। एक डीलक्स साड़ी १२) दो साड़ियां २३) तीन साड़ियां ३३) चार साड़ियां ४०) दो या अधिक साड़ियों के आर्डर पर ब्लाउजपीस मुफ्त। आर्डर पोस्ट पार्सल से भेजे जायेंगे।

ATLAS CO. (D.W.N. D.-25)
P.O. Box 1329, DELHI-6

विद्युत एवं रेडियो

अभियन्त्रण पाठ्यक्रम

विद्युत अभियन्त्रण, रेडियो मरम्मत, एसेम्बलिंग, विद्युत सुपरवाइजरी, वायरिंग आदि (८०० चित्र) रु० १२.५० वी. पी. डाक व्यय २/- सुलेखा बुक डिपो (इ) अलीगढ़

नवभारत टाइम्स

हिन्दी दैनिक

बम्बई और दिल्ली से प्रकाशित

"नवभारत टाइम्स" आधुनिक और अपटुडेट हिन्दी दैनिक समाचारपत्र है

और

इसके पाठकों की संख्या बहुत विस्तृत है।

दोनों ही संस्करणों में व्यावसायिक, स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारों के साथ-साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और आर्थिक विषयों पर विशेष सामग्री ही तो इसकी विशेषता है।

समाचारों की भाषा सरल है, और

सम्पादकीय अग्रलेख सन्तुलित और उच्च साहित्यिक स्तर के होते हैं।

पंजीयित संख्या डी० १५०१

नियमित उपयोग से फ़ोरहन्स टूथपेस्ट मसूढ़ों के कष्ट और दंत-क्षय को रोकता है

जवानों और बूढ़ों द्वारा अपने आप भेजे गये प्रमाणपत्रों में मसूढ़ों की तकलीफ़ और दांतों की ख़राबी को रोकने के लिए फ़ोरहन्स टूथपेस्ट के गुणों की समान रूप से प्रशंसा की गयी है। ये प्रमाणपत्र जेफ़्री मैनर्स एण्ड कंपनी लि. के किसी भी कार्यालय में देखे जा सकते हैं।

"मै दाँतों के रोगों से पीडित था. . मैने आपका फ़ोरहन्स इस्तेमाल किया। ...अब मै उनमें से किसी भी रोग से पीडित नहीं हूँ। लगभग २०-२५ आदमी फोरहन्स इस्तेमाल करने लगे हैं। और मेरे परिवार मे तो फोरहन्स सभी को बेहद प्रिय है।

—उदयशकर तिवारी, पटना

आपके वैज्ञानिक ढंग से तैयार किये गये फोरहन्स टूथपेस्ट ने, जिसे मैं पिछले दस साल से इस्तेमाल कर रहा हूं, मेरे मसूढों की सारी तकलीफों को दूर कर दिया। अब हमारे परिवार के सभी लोग नियमित रूप से फ़ोरहन्स टूथपेस्ट से ही दांत साफ करते हैं।

—एस. एम. लाल, नयी दिल्ली।

फ़ोरहन्स

—एक दाँतों के डाक्टर द्वारा निर्मित टुथपेस्ट

दांतो की समुचित देखभाल के लिए फोरहन्स टुथपेस्ट और दोहरे असरवाला फ़ोरहन्स टुथब्रश हर रोज रात में और सवेरे इस्तेमाल कीजिए.. और अपने दाँत के डाक्टर से नियमित मिलते रहिए।

मुफ्त "दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" संबंधी रंगीन पुस्तिका

यह पुस्तिका हिन्दी और अंग्रेजी में मिलती है। इसे मँगवाने के लिये इस कूपन के साथ १५ पैसे के टिकट (डाक-खर्च के वास्ते) इस पते पर भेजिए: मैनर्स डेण्टल एडवाइजरी ब्यूरो, पोस्ट बॅग न १००३१, बम्बई १

नाम ______________ आयु ______

पता ______________________

भाषा ______________________ D 18

54 F-203 HN

बेनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे एम. डिसूजा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

१२ जनवरी, १९६९
२२ पौष, १८९०

वोट के पहले वायदे • राष्ट्रकुल: बेचारों का भाईचारा • आर्य-अतिथि

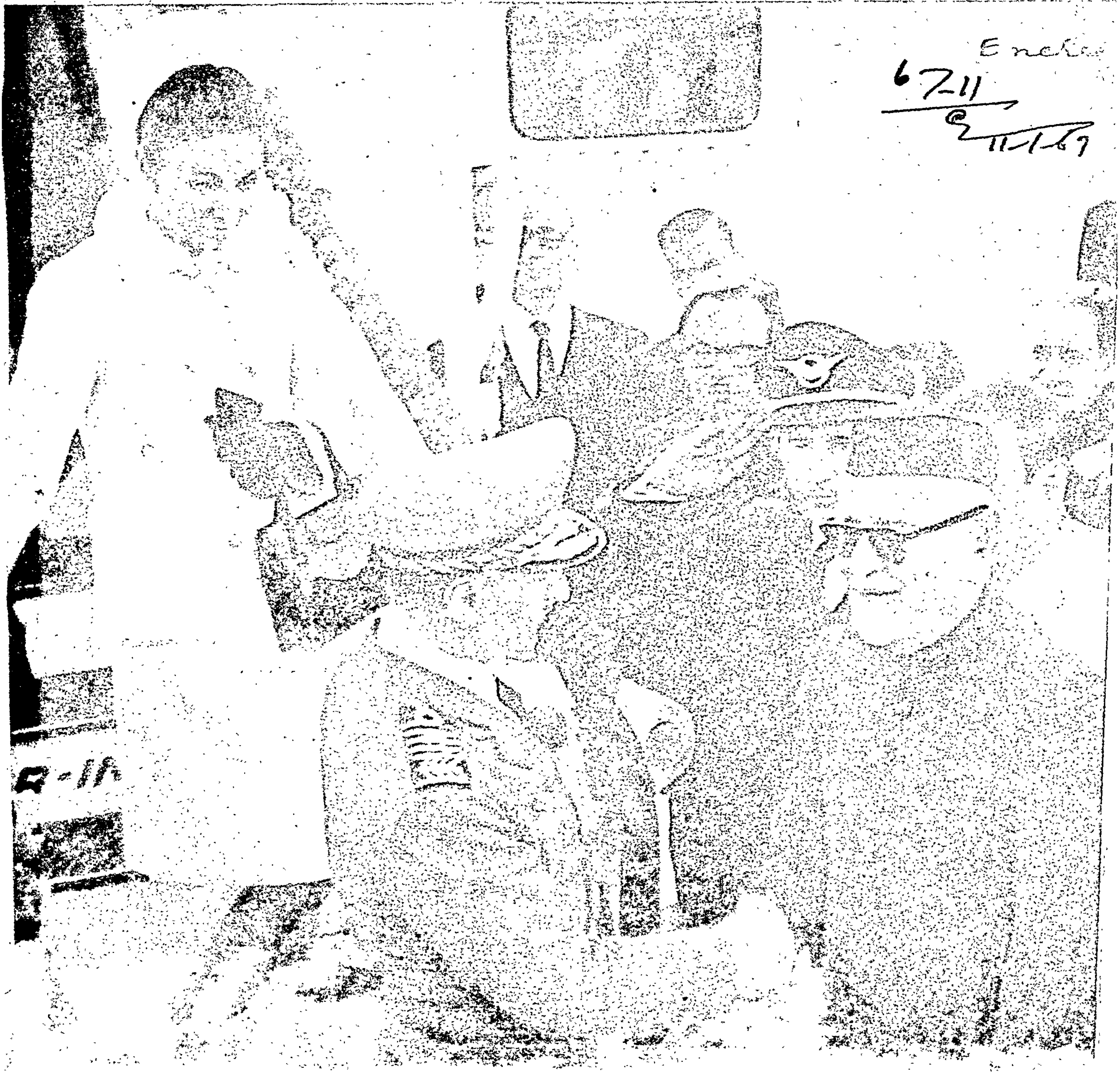

Encl.

67-11
11-1-69

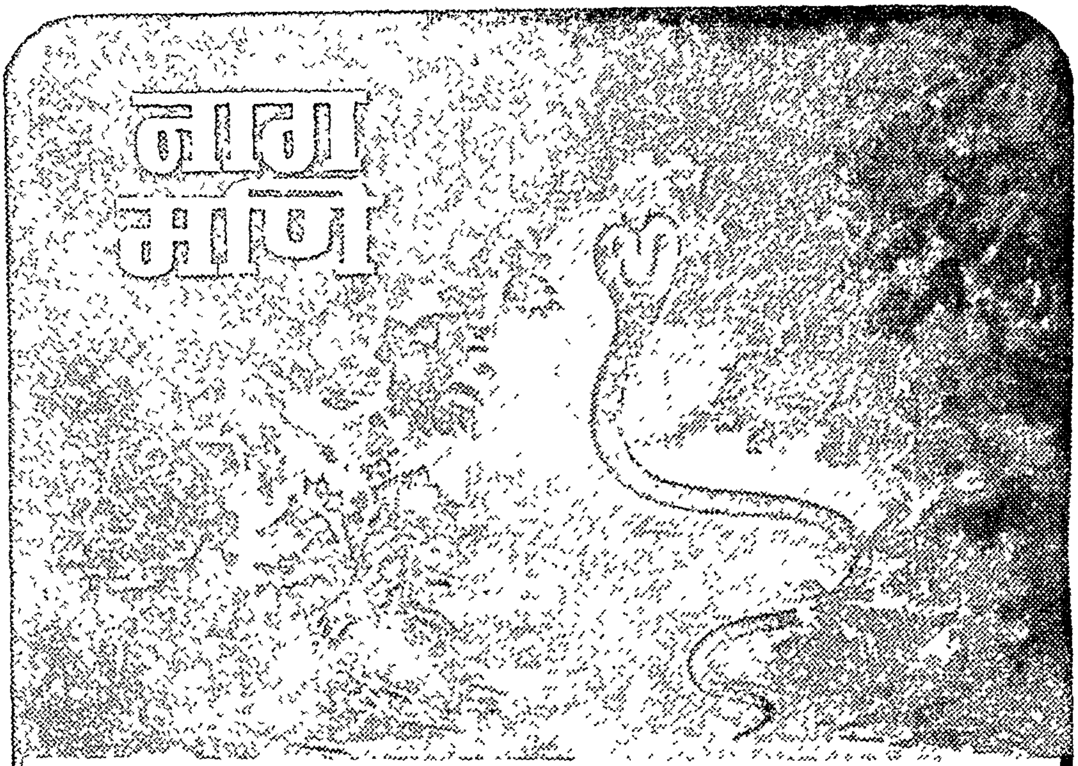

नागराज

तान्त्रिको के कथनानुसार नागराज सौ वर्ष की आयु पूर्ति के पश्चात् इच्छा धारी नाग बन जाता है। तब वह स्वयं कोई भी रूप धारण कर सकता है- मनुष्य, पशु अथवा किसी भी स्थूल वस्तु का। वह नागमणि रत्न भी ग्रहण कर लेता है, जिसे अपने मुंह में रखता है और अन्धेरी रातों में उस से खेलता है। यह रत्न उज्जवल प्रकाश देता है और भाग्यवश यदि यह किसी व्यक्ति के हाथ लग जाय तो उसकी सारी भौतिक इच्छाएं पूर्ण कर सकता है। हम नहीं जानते कि तान्त्रिकों के इस कथन में कितना सत्य है

लेकिन यह सत्य है कि

हरियाणा स्टेट लॉटरीज़

(दूसरा ड्रा) का

१ रु० का भाग्यशाली टिकट

आप के लिए नागमणि हो सकता है।

और सम्भव है कि आप १,००,००० रु० का प्रथम पुरस्कार अथवा १०,०००, रु० से ५० रु० तक प्रति के ४९९ अन्य पुरस्कारों में से कोई एक प्राप्त कर सकें।

ड्रा तिथि ३० - ९ - १९६९

आज ही अपना १ रु० का भाग्यशाली टिकट किसी भी निम्न पते से प्राप्त करें :–

सभी अधिकृत एजेन्ट,

ज़िला कोषाधिकारी, हरियाणा राज्य, कोषाधिकारी, गुड़गाँव
मार्फ़त हरियाणा इम्पोरियम, थियेटर कम्युनिकेशन बिल्डिंग,
कनाट प्लेस, नई दिल्ली-१ या ४५, ख़ान मार्केट, नई दिल्ली-११

डाएरेक्टर, हरियाणा स्टेट लॉटरीज से सीधी ख़रीद के लिए अपना पता लिखा (स्पष्ट शब्दों में), टिकट लगा लिफ़ाफ़ा, प्रति टिकट १ रु० के पोस्टल आर्डर के दर से भेजिए (मनीआर्डर स्वीकार नहीं किए जाएंगे)।

डाएरेक्टर, हरियाणा स्टेट लॉटरीज़
३०-बे, बिल्डिंग, सेक्टर-१७, चंडीगढ़।

Newfields

मत और सम्मत

उत्तराखंड : औचित्य की कसौटी पर : सभी वक्ताओं ने यह खुले आम महसूस किया था कि उत्तराखंड राज्य के निर्माण के बिना उत्तराखंड के पहाड़ियों का विकास क़तई संभव नहीं है. पिछले वर्ष पर्वतीय विकास बोर्ड, इस वर्ष गढ़वाल और कुमाऊँ कमिश्नरियाँ नाममात्र के लिए स्थापित की गयी हैं. पिछले दिनों दैनिक पत्रों में कुमाऊँ विश्वविद्यालय स्थापित करने की खबर भी तब छपी जब नैनीताल के छात्रों ने भूख-हड़ताल आरंभ की. लेकिन यह सब पहाड़ी जनता को भुलावे में डालने के लिए काग़ज़ी कार्रवाई मात्र है. इन भुलावों से पहाड़ी जनता अब चुप नहीं रह सकती. बीस वर्षों तक वह चुप रह चुकी है और अब स्वतंत्र देश में उसे भी जीना है. आज भी उत्तराखंड के नवयुवक, बच्चे-बूढ़े पेट-पूर्ति की तलाश में बंबई, कलकत्ता, दिल्ली से ले कर रांची, खरखोदा, यमुनानगर तक भटकते हैं और बड़ी मुश्किल से होटलों में बर्तन माँजने की नौकरी प्राप्त कर पाते हैं. आज भी मैदानी इलाक़े के ठेकेदार पहाड़ की भोली और ग़रीब जनता का शोषण करने पर तुले हैं. वहाँ से औरतों को फुसला कर शहरों में लाया जाता है और उन से वेश्यावृत्ति करवायी जाती है. क्या ये सब कुत्सित कार्य सरकार नहीं रोक सकती ?

—उमाशंकर सतीश, नयी दिल्ली

उत्तराखंड के लिए एक स्वतंत्र राज्य की माँग एक चुनाव स्टंट है. इस माँग के द्वारा गुमराह न हों, अन्यथा यहाँ भी कुछ नगालैंड या नक्सलवाड़ी बन जाएगा. महाराजा मानवेंद्र शाह में सामंतवाद अभी बाक़ी है. वह उत्तराखंड के प्रतिनिधि कम हैं और अपने हितों के प्रतिनिधि अधिक. यदि पर्वतीय जनता की समस्याओं के प्रति वह इतने जागरूक हैं तो जो प्रिवी पर्स उन्हें मिलता है उस से कोई नयी प्राविधिक संस्था बनवाने की माँग कर सकते थे. उन के शासन-काल (यानी उन के पिता के) में संपूर्ण टिहरी राज्य में केवल एक उच्चतर माध्यमिक विद्यालय था. यह जान-बूझ कर जनता को अधिकार में रखने की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति नहीं थी क्या ? पाँच वर्षों के अंतराल में केवल अपने सीज़न (चुनाव के समय) में ही महाराजा के दर्शन अपने क्षेत्र में होते हैं. पर्वतीय क्षेत्र की कई महत्त्वपूर्ण समस्याएँ मुँह बाय खड़ी हैं; उन की तरफ़ से वह विमुख हैं. क्यों न हो ? स्वतंत्र राज्य की माँग करना और दल बदलना ही तो प्रसिद्धि की खुराक है. शायद प्रेरणा उन्हें भारत सरकार के असम स्वायत्त राज्य की स्थापना के सिद्धांत-रूप में स्वीकार करने की घोषणा से मिली है.

—गोविंदप्रसाद बहुगुणा, उत्तरकाशी

गांधी जी संबंधी पोस्टर और बिड़ला भवन के चित्र : बिड़ला भवन में बने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी से संबंधित पाँच ऐसे अश्लील और घृणित चित्र प्रकाशित हुए हैं जिन्हें देख कर प्रत्येक भारतीय का मस्तक लज्जा से नत हो जाएगा. आश्चर्य तो इस बात का है कि ऐसे चित्र न तो सर्वसेवा संघ से प्रकाशित गांधी चित्रावली में हैं और न केंद्रीय सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित चित्रावली में ही हैं. महात्मा गांधी का सच्चा अपमान ये तस्वीरें हैं.

—सीताराम सिंह, वाराणसी

महात्मा गांधी के जीवन से संबंधित भित्ति-चित्रों में ऐसे विवाद उठने का मुख्य कारण हम भारतीयों की मनोवृत्ति है. वास्तविकता तो यह है कि हम भारतवासी हर सच्चे इनसान को ईश्वर या अवतार बना देना चाहते हैं. अब हम बापू को अवतार बनाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे हैं. उन की इच्छा और आदर्शों के विरुद्ध उन के अनुयायी उन की स्मृति संजोये रखने हेतु बापू की दीर्घकाय प्रतिमाएँ बनवा रहे हैं—गांधी युग पुराण की सृष्टि हो रही है, उन के सिक्के गढ़े जा रहे हैं.

—भास्कर तैलंग, बालाघाट (म०प्र०)

मूषिक-तर्पण : प्रधानमंत्री बहुत क्षुब्ध हैं कि एक मंदिर में चूहों को अन्न डाला जाता है और जर्मनी के एक समाचार-पत्र द्वारा इस पर व्यंग्य करने से वह लज्जित हैं. हमारे प्रबुद्ध संसद्-सदस्यों और समाचारपत्रों ने भी इस पर रोष प्रकट किया है. किंतु मुझे चूहों का तर्पण करने वालों से क़तई कोई शिकायत नहीं. चूहों के तर्पण में एक पौराणिक अर्थ की समृद्धि निहित है. इस में अनुपयुक्तता केवल इतनी ही है कि यह आज के भोजों और उद्घाटनों आदि पर होने वाले अपव्ययों में किस अर्थ की गरिमा है ? इस अर्थहीन अपव्यय के लक्षवा अधिक होने पर भी कोई इस से लज्जित और क्षुब्ध नहीं है; यह कैसी विडंबना है?

—यशदेव शल्य, जयपुर

वोट की क़ीमत-अन्न पानी : २२ दिसंबर : राजस्थान सरकार के राहतमंत्री परसुराम मदेरणा से ले कर जनसंघी भैरोंसिंह शेखावत तक एवं क्रांतिदल के चौधरी कुंभाराम से ले कर संसोपा के रामकिशन तक—सभी राजनीतिज्ञ की करनी और कथनी का स्पष्ट और विस्मृत अंतर आपने बड़ी सजीवता से दर्शाया है.

—केशवप्रसाद दुबे, जबलपुर

स्वाधीनता के बाद योजनाओं के लिए कर्ज़े, सहायता, अनुदान या धर्मादा लेते-लेते शायद हमारा राष्ट्रीय चरित्र ही भिखमंगेपन का बन गया है और यही कारण है कि जब भी कोई संकट आता है हमारे शासक व नेता और सब काम छोड़ कर झोली ले कर घूमना शुरू कर देते हैं. आज पैसे वाले के लिए इस देश में देश-भक्ति व दानवीरता का प्रमाण-पत्र प्राप्त करना कितना सुलभ हो गया है. अंत में एक बात और. इस दुष्काल के लिए जितना दुर्दैव ज़िम्मेदार है नामधारी मुख्यमंत्री जी एवं कांग्रेस सरकार उस से कम हर्गिज़ नहीं. जो सरकार बीस साल के शासन में पीने के पानी की भी व्यवस्था न कर पाये उस सरकार को क्या कहा जाए ?

—हीरालाल जैन, कोटा

सरपंच, पटवारी, मंत्री के जो चित्र आप के संवाददाता ने प्रस्तुत किये या हक़ीक़त वह आज के इस जनतंत्र के जीते-जागते चित्र हैं !

राजेंद्रप्रसाद जैन, भवानीमंडी (राज.)

हमारे भाई भूख और प्यास से मर रहे हैं और हमारे नेता इस के लिए कर रहे हैं केवल दौरे या खाली प्रचार.

—पदमकुमार, लुधियाना

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ : दिनमान के पिछले अंकों में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उस की अंध राष्ट्रभक्ति का जो यथार्थ चित्रण किया गया है वह निष्पक्ष और सराहनीय है. व्यवहार में संघ की राष्ट्रीयता के पीछे निहित है पिछड़ापन, पुनरुत्थानवादी दृष्टि, सांस्कृतिक विद्वेष, आधुनिक जीवन-दृष्टि और वसुधैव कुटुंबकम् वाली महान् परंपरा का सक्रिय विरोध. संघ मुस्लिम विरोधी ही नहीं है बल्कि तमाम उदारचेता और आधुनिक दृष्टि वाले भारतवासियों का भी विरोधी है. इस की राय में विद्वेष भरी संस्कृति और पिछड़ेपन का विरोध करने वाले सभी लोग अराष्ट्रीय और देशद्रोही हैं.

—कुँवरपाल सिंह, अलीगढ़

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

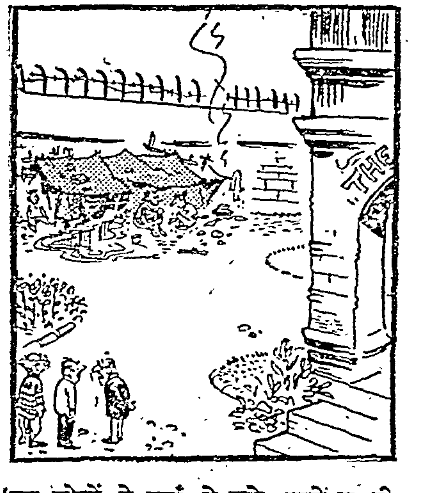

'हम लोगों ने यहाँ से चले जाने का ही फ़ैसला किया है. यह झोंपड़ा सिर-दर्द है. उसे यहाँ से हटाना असंभव है.'

सुरक्षा : "२१ सितंबर १९६८ को शहडोल से ७० मील दूर एक घने जंगल में दो लकड़हारों को एक पेड़ पर टँगा हुआ पैराशूट जैसी शक्ल का कोई कपड़ा मिला. पास ही एक दूसरे पेड़ की डाल पर एक बॉक्स भी टँगा हुआ था. उन्होंने चीज़ों को नीचे उतारने पर पाया कि बक्से से टिकटिक की आवाज़ आ रही थी. २९ सितंबर को ये चीज़ें जीतपुर थाने में लायी गयीं. फिर शहडोल के थाने में उन की जांच की गयी. बक्से में एक यंत्र और एवरेडी की दो बैटरियाँ थी, जिन पर 'अमेरिका में निर्मित' लिखा हुआ था. इसी के साथ दो छोटे-छोटे टिन के डिब्बे भी थे, जिन में संभवत: तेल था. डिब्बे से लगा हुआ एक मोड़ा जा सकने वाला औज़ार भी था, जिस में कमानी और तार था, जो एरियल की तरह लगता था. बक्से में कुछ रंगीन तस्वीरें, जो कि कार्टून की तरह की लगती थीं और कुछ चीनी परचे भी थे. पुलिस के उप-कप्तान (रेडियो) के प्रारंभिक निरीक्षण के बाद यह पता लगा कि वे औज़ार रेडियो ट्रांसमीटर या रिसीवर नहीं थे. चीज़ों की विस्तृत जांच-पड़ताल की जा रही है."

लोकसभा में २० दिसंबर सन् ६८ को केंद्रीय गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण ने उपर्युक्त सूचना जनसंघी संसद्-सदस्य शारदा नंद के दो महीने पहले के एक प्रश्न के उत्तर में दी थी. क्यों कि यह प्रश्न प्रश्नों की उस सूची में था जिस का उत्तर उस दिन ज़बानी ही दिया जाने वाला था इसी लिए इस की कोई चर्चा समाचारपत्रों में नहीं आ सकी. प्रेस दीर्घा में बैठे हुए संवाददाता भी इस की ओर ध्यान नहीं दे सके. ऐसी स्थिति का नतीजा यह होता है कि इस तरह के उत्तर संसद् में हर रोज रखे जाने वाले कागजों की फ़ाइल में दब कर रह जाते हैं और इन की ओर किसी का ध्यान नहीं जा पाता.

अगले अधिवेशन में इस विषय पर और भी प्रश्न पूछे जा सकते हैं और उन का तथ्यात्मक या अस्पष्ट उत्तर भी सरकार दे सकती है. अगर इस प्रश्न की किस्मत जगी तो उस में भी ज़बानी उत्तर सुनने को मिल सकेंगे और उसी के साथ यह प्रसंग समाप्त हो जायेगा. भारत सरकार को छोड़ कर दुनिया में अन्य किसी भी देश की सरकार राष्ट्रीय सुरक्षा के इस तरह के प्रश्नों पर इस तरह का काम-चलाऊ दृष्टिकोण नहीं अपनाती, हालांकि सरकारी नेता कुछ व्यक्तियों और समूहों को अराष्ट्रीय कहने में कभी-कभी अतिरिक्त उत्साह का परिचय देते हैं. सीमा-सुरक्षा तथा उस से मिलतेजुलते अनेक प्रश्नों का उत्तर यह कह कर टाल दिया जाता है कि उन की वजह से राष्ट्रीय हित खतरे का शिकार हो सकता है.

३ महीने से अधिक हो गया जब एक घने जंगल में दो लकड़हारों को उस तरह की अजीब-सी न पहचानी जा सकने वाली लेकिन चौंकाने वाली चीजें मिलीं. लेकिन आज तक देश को यह पता नहीं चला कि उन के पीछे किन लोगों का हाथ है. गृहमंत्री ने जो वक्तव्य दिया उस से निम्न लिखित प्रश्न सामने आते हैं.

(१) इन चीज़ों को हवाई जहाज़ से किस ने गिराया ?

(२) वे चीज़ें किस के लिए गिरायी गयीं ?

(३) अगर प्रारंभिक जांच से इतनी जानकारी मिल गयी कि वे औज़ार रेडियो ट्रांसमीटर या रिसीवर नहीं है तब वे फिर क्या हैं ? क्या वे विस्फ़ोटक थे ?

(४) जिस यंत्र से टिकटिक की आवाज़ आ रही थी वह क्या था ? उस की पहचान अब तक क्यों नहीं की गयी ?

(५) चीनी भाषा के जो परचे मिले थे उन में क्या लिखा हुआ है और उस में किस को संबोधित किया गया है ?

(६) कार्टून की तरह दिखने वाले चित्र किस के हैं ?

लेकिन इस विषय में सरकार के उदासीन और चलताऊ दृष्टिकोण के कारण कुछ बड़े प्रश्न भी सामने आते हैं. क्या वह हमारे शत्रु का जहाज़ था, जिस ने हमारी सीमा में १००० मील तक उड़ कर वे चीज़ें गिरायीं और लौट गया ?

क्या वह जहाज़ इस उद्देश्य से आया था कि विभिन्न जगहों पर विभिन्न लोगों के लिए उस तरह की चीज़ें गिराये ?

अगर चीज़ों को गिराने का काम दुश्मन के जहाज़ ने ही किया तो सवाल यह उठता है कि वह आया कैसे और कैसे नज़र बचा कर वापस लौट गया और उस पर ग़ौर नहीं किया जा सका ?

अगर चीज़ें हवाई जहाज़ से इस तरह गिरायी जाती रही हैं तब यह पूछा जा सकता है कि क्या इस देश में अब तक जहाज़ों से अस्त्र-शस्त्र भी गिराये गये है ?

सरकार को इन प्रश्नों का तत्काल उत्तर देना चाहिए, ताकि इस विषय में जो शंकाएँ पैदा हुई है उन का शीघ्र निवारण हो सके.

—जॉर्ज फ़र्नांडिस, दिल्ली

पुण्य तिथि : आगामी ३० जनवरी को पंडित माखनलाल जी चतुर्वेदी की प्रथम पुण्य तिथि है. यह एक बड़ी सच्चाई है कि माखनलाल जी पहले हिंदी शायर थे जिन्होंने साम्राज्यवाद के खिलाफ़ खुली बगावत की. न वह भारत-भारती के शायर की तरह तारीख की आड़ में छुपे और न सरस्वती पत्रिका की तरह राजनीति से बचे. आज़ाद, भगतसिंह और काकोरी के क्रांतिकारी स्वर उन की कविताओं को झूम-झूम कर गाते थे.

इस अकेले आदमी ने जबरदस्त काम किया था. क्या यह मौज़ू न होगा कि राजधानी में माखन लाल जैसे शायरों को याद किया जाए ?

—मिर्ज़ा मुज़फ़्फ़र, तोपखाना, इंदौर

पिछले सप्ताह

(२६ दिसंबर, १९६८ से १ जनवरी, १९६९)

देश

२६ दिसंबर : तंजौर में किसानों के दो गुटों की लड़ाई के कारण ४३ व्यक्तियों की मृत्यु. ज्ञानसिंह राड़ेवाला अकाली दल में शामिल.

२७ दिसंबर : राज्यसभा द्वारा अत्यावश्यक सेवाओं संबंधी बिल पास. केंद्रीय कर्मचारियों के महँगाई-भत्ते का बड़ा भाग मूल वेतन में शामिल करने का निर्णय.

२८ दिसंबर : नगा विद्रोहियों से चीनी हथियार बरामद. भारत-नेपाल की योजनाओं को और सहायता देने के लिए सहमत.

२९ दिसंबर : उत्तरप्रदेश के चुनाव-दौरे से प्रधानमंत्री दिल्ली लौटे.

३० दिसंबर : राजधानी में चीनी दूतावास के सम्मुख तिब्बती शरणार्थियों द्वारा उग्र प्रदर्शन.

३१ दिसंबर : बिहार और पंजाब के लिए सभी कांग्रेसी उम्मीदवारों के अंतिम रूप से चयन की घोषणा.

१ जनवरी : मध्यप्रदेश में संविद मंत्रिमंडल का पुनर्गठन.

विदेश

२६ दिसंबर : पेशावर में पुलिस तथा छात्रों में मुठभेड़ के कारण एक व्यक्ति की मृत्यु और १२ ज़ख्मी.

२७ दिसंबर : अपोलो-८ के तीनों अंतरिक्ष-यात्री निश्चित समय पर धरती पर सकुशल वापस. अमेरिका डेविस कप के चुनौती राउंड में विजयी.

२८ दिसंबर : इस्राइली हेलिकॉप्टरों के हमलों से बेरूत के हवाई अड्डे पर १३ अरब जहाज़ क्षतिग्रस्त. पाकिस्तान के भूतपूर्व विदेशमंत्री भुट्टो १९७० के राष्ट्रपति-पद के लिए चुनाव लड़ेंगे.

२९ दिसंबर : चेक प्रधानमंत्री चेर्निक द्वारा राष्ट्रपति स्वोबोदा को इस्तीफ़ा दिया गया.

३० दिसंबर : राष्ट्रसंघ के भूतपूर्व महासचिव त्रिग्वे लाई की मृत्यु. पश्चिमी एशिया के मसले पर चार बड़ों की बैठक के फ़्रांसीसी प्रस्ताव का रूस द्वारा समर्थन. दूसरे क्रिकेट टेस्ट में वेस्ट इंडीज़ ऑस्ट्रेलिया से पराजित.

३१ दिसंबर : बेरूत हवाई अड्डे पर हमले के लिए इस्राइल को चेतावनी देने के मसले पर रूस और अमेरिका सहमत. पोर्टहेड लैंड की विमान-दुर्घटना में २६ यात्रियों की मृत्यु.

१ जनवरी : बेरूत पर हमला करने के लिए सुरक्षा परिषद् द्वारा इस्राइल को गंभीर चेतावनी.

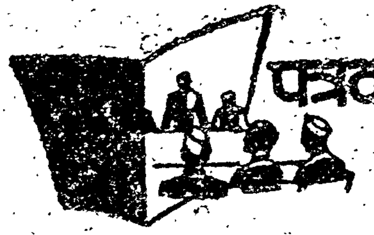

पत्रकार संसद

जॉनसन, निक्सन और रूस : भारत और अरब

रूसी-अमेरिकी संबंध के बारे में ब्रितानी पत्र क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर ने टिप्पणी की है:

इस समय अमेरिकी-रूसी संबंधों में तीन प्रमुख मसले एक दूसरे से जुड़े हुए हैं. (१) अणु-अस्त्रों के प्रसार को सीमित करने के लिए उस समझौते का समर्थन, जिस पर गत १ जुलाई को हस्ताक्षर किये गये थे. अणु-शक्तिसंपन्न राष्ट्रों में अब तक केवल ब्रिटेन ने ही उस का समर्थन किया है. (२) प्रक्षेपास्त्रों पर नियंत्रण पर वाशिंगटन और मॉस्को की बातचीत के सिलसिले की शुरूआत करना, जिस की ख्वाहिश दोनों देशों में है. (३) जॉनसन के व्हाइट हाउस छोड़ने से पहले वह रूसी प्रधानमंत्री कोसिगिन से अंतिम शिखर सम्मेलन के लिए मिलेंगे नहीं.

अंतिम मसले के बारे में प्रतिरक्षा सचिव क्लिफ़र्ड ने एक टेलीविज़न भेंट के दौरान बताया कि सत्ता के हस्तांतरित होने से पहले दो सरकारों के नेताओं के बीच बातचीत की संभावना पूरी तरह खत्म नहीं हुई है, यद्यपि ऐसी बातचीत के बिना जितने भी अधिक दिन गुज़रते जाते हैं यह संभावना धूमिल पड़ती जाती है. बड़े दिन के अवसर पर बोलते हुए जॉनसन ने शांति के लिए संघर्ष करने की बात कही थी, जिस से यह संकेत मिलता है कि २० जनवरी से पहले वह नाटकीय कुछ करने की बात नहीं सोच रहे हैं.

यदि ऐसा ही है तो ठीक ही है—यदि जॉनसन कोसीगिन के साथ एक अंतिम सम्मेलन की बात सोच रहे थे तो. एक स्तंभकार जेम्स रेस्टन ने संकेत दिये हैं कि रूसी इस मामले के प्रति क़ाफ़ी उदासीन हैं—क्यों कि उन की दिलचस्पी सत्ता छोड़ने वाले व्यक्ति की अपेक्षा सत्ता पाने वाले व्यक्ति में अधिक है. एक अन्य स्तंभकार स्टुवर्ट ऐलसाप का कहना है कि इस में कोई संदेह नहीं कि रूसी, सत्ता के हस्तांतरित होने से पहले, एक शिखर सम्मेलन का स्वागत करेंगे.—कम से कम इस लिए ज़रूर कि चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार करने के बाद उन की प्रतिष्ठा को जो काले धब्बे लगे उन में से कुछ तो मिट ही जायें. ये विचार शायद एक ही सिक्के के दो तरफ़ हैं. पर तथ्य चाहे कुछ भी हों जॉनसन अब शिखर सम्मेलन में भाग लेने को राज़ी हो जायेंगे, जिस से अमेरिका को कुछ महत्वपूर्ण लाभ होंगे, ऐसी संभावना लगभग मिट चुकी है.

फिर भी जॉनसन की निराशा की भावना को हम समझते हैं कि वह अमेरिका द्वारा अणु अस्त्र-निरोध संधि का पुन: समर्थन या प्रक्षेपास्त्र पर नियंत्रण के बारे में रूसियों से बातचीत की शुरूआत देखने से पहले ही उन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ेगा. उन्हीं की सरकार को—अमेरिकी दृष्टिकोण से—यह श्रेय है कि उस ने रूसी-अमेरिकी संबंधों को उस बिंदु पर पहुँचा दिया है जहाँ संधि का समर्थन और प्रक्षेपास्त्र संबंधी बातचीत कम से कम पहुँच के भीतर है और जॉनसन के लिए और भी मधुर होता यदि वह इन में से एक या दोनों के हक़दार होते.

आवश्यक तो यह है कि नये राष्ट्रपति निक्सन भी इसी पथ पर चलें. दिलचस्प बात है कि जब से उन का चुनाव हुआ है तब से रूसी उन के साथ उतनी ही हमदर्दी दिखा रहे हैं जितनी यूरोप के किसी अन्य व्यक्ति के साथ. प्रथम दृष्टि में यह बात कुछ आश्चर्यजनक लग सकती है, क्यों कि बीते दिनों में रूसियों ने उन के बारे में इतनी कड़ी बातें कहीं जितनी कि स्वयं निक्सन ने रूसियों के बारे में नहीं कही थीं. पर स्पष्ट ही है कि वे उन स्थानों में अमेरिका के साथ सहअस्तित्व बनाये रखना चाहते हैं जहाँ दोनों बड़ी शक्तियों के हित आपस में टकराते हैं. पर इस में अमेरिका को पक्की तरह जान लेना होगा कि जो छूट दिये जायेंगे, वे एकतरफ़ा न हो कर दोनों के फ़ायदे में हों.

पुराने बंधन

दमास्कस के साप्ताहिक अल तालिया में 'भारत से हमारा संबंध' शीर्षक के अंतर्गत लिखा गया है :

अरब राष्ट्र सभ्यता और प्राचीन संस्कृति के बंधन से भारत के साथ जुड़ा हुआ है. साम्राज्यवाद के खिलाफ़ संघर्ष भी दोनों के बीच एक ऐसा बंधन है जो इस देश को भारत के लोगों से जोड़े हुए हैं.

भारत ने आधिकारिक और लोकप्रिय स्तर पर हमारे मसलों का साथ दिया है, चाहे वे मसले संयुक्तराष्ट्र में उठाये गये हों चाहे अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में. जून के आक्रमण के तत्काल बाद दिल्ली में जो सम्मेलन हुआ उस से भारत के मैत्रीभावपूर्ण लोगों और सरकार की हमारे विषयों के प्रति गंभीर सजगता और सच्ची सहानुभूति का परिचय मिला है.

दिसंबर के आरंभ में इब्राहीम सुलेमान सईद की अध्यक्षता में भारत का एक संसदीय प्रतिनिधिमंडल सीरिया पहुँचा. यह प्रतिनिधिमंडल विदेशी मामलों के मंत्री से मिला और दोनों देशों के आपसी संबंध के बारे में बातचीत की. इस के अलावा उन्होंने कुछ अरब के और अंतरराष्ट्रीय मसलों पर भी बातचीत की. बाद में प्रतिनिधिमंडल ने विस्थापितों के कैंपों का भी दौरा किया और अरब लोगों की साम्राज्यवाद के खिलाफ़ उचित लड़ाई को पूर्ण समर्थन देने की घोषणा की.

इस दौरान अर्थमंत्रालय के कमाल याक़ूब के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल जल्द ही भारत जायेगा. इस प्रतिनिधिमंडल में अन्य संस्थाओं के प्रतिनिधि भी शामिल किये जायेंगे. वे दोनों देशों के आर्थिक संबंधों के विस्तार के बारे में बातचीत करेंगे.

बाल-विवाह

अमेरिकी पत्र शिकागो ट्रिब्यून ने भारत की निरंतर बढ़ती जनसंख्या का एक कारण बालविवाह बताते हुए लिखा है :

चंद्रप्रसाद का दो वर्ष पहले विवाह हो चुका है, पर परिवार की ज़िम्मेदारियाँ अभी तक उस पर नहीं पड़ी हैं. शायद इसी लिए कि चंद्र अभी नौ ही वर्ष का है.

जब उस से उस की पत्नी का नाम पूछा गया तो वह धूल से भरे अपनी पाठशाला के आँगन में एक टाँग से दूसरी टाँग पर फुदकता रहा. वह भारत के सब से पिछड़े प्रदेश बिहार के दक्षिण-पश्चिम कोने में स्थित एक गाँव का रहने वाला है. उस की ज़बान पर कोई नाम नहीं आया.

. . . . . भारत में पिछले ३० वर्षों से बाल विवाह अवैध है. अंग्रेज़ों ने लड़कियों के विवाह के लिए कम से कम उम्र १४ वर्ष निर्धारित की थी. यह उम्र, स्वतंत्र भारत में, १९५५ के हिंदु

विश्व की बढ़ती जनसंख्या पर ल' पेली का क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर में व्यंग्य
'हाय राम, एक तो जलना भी शुरू हो गया'

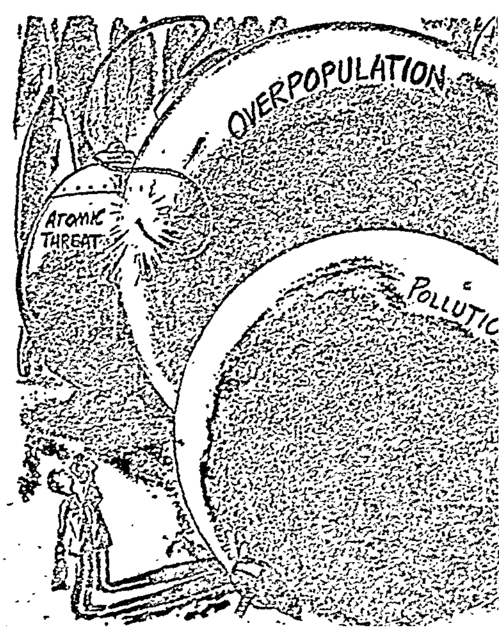

विवाह अधिनियम के अंतर्गत, १५ कर दी गयी और दहेज-प्रथा भी खत्म कर दी गयी.

यह इतना बताने के लिए काफ़ी है कि नयी दिल्ली में बैठ कर क़ानून बनाने वालों की आशा के अनुरूप बनने के लिए यह प्राचीन देश कितना धीरे-धीरे करवट ले रहा है.

अमेरिका और विश्व

अमेरिका में बदलती परिस्थितियों का ब्योरा देते हुए **क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर** ने अपने एक संपादकीय में लिखा:

कुछ वर्ष पहले यह स्पष्ट हो गया था कि अमेरिका में पृथकत्ववाद की ओर झुकाव बढ़ रहा है. इस बात के प्रमाण कई दिशाओं से आये. इस का सब से पहला संकेत शायद कांग्रेस के भीतर ही देश की विदेशी सहायता की योजना के प्रति विरोध की भावना थी. एक और अधिक महत्त्वपूर्ण संकेत राष्ट्रव्यापी घोर निराशा थी, जो कि अमेरिका के लोगों के यह महसूस करने के बाद और बढ़ती गयी कि वीएतनाम का युद्ध एक कठिन और लंबा युद्ध होगा.

पिछले वर्षों में कई बार इस पत्र ने इस रुख के संभावित भयंकर परिणामों की ओर ध्यान आकर्षित किया. अब जाने वाले गृहसचिव डीन रस्क ने भी इन्ही खतरो की आशंका की है. उन्होने अपने सहकर्मियों को यह बता दिया है कि वह महसूस करते है कि अमेरिका की वर्त्तमान मन:स्थिति पृथक्तावाद के एक नये काल में बदल जाने का खतरा है, जो कि विदेशों को सहायता देना बंद करने, विदेशी मामलो से दूर रहने और राष्ट्र की एकत्रित सुरक्षा के वचनो से स्पष्ट ही झलकता है. इस तरह की मन.स्थिति आने वाली सरकार के लिए एक बड़ी समस्या हो सकती है, विशेष रूप से जब कि रिचर्ड निक्सन विदेशों को दी जाने वाली सहायता या वचनों के प्रति अपेक्षाकृत कम भावुक हैं. फिर भी वह विदेशी मामलों मे अपनी रुचि और जानकारी के बारे में गर्व अनुभव करते हैं. ऐसा व्यक्ति अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में अपने देश की भूमिका को कम महत्त्व देने के बारे में सहमत होने से पहले और गंभीर चिंतन करेगा. इस का यदि कोई और कारण न भी हो फिर भी एक कारण तो यह है ही कि उस से वह क्षेत्र सीमित हो जायेगा जिस मे उस की दिलचस्पी सब से अधिक है.

फिर भी श्री निक्सन को हाल की कटौतियों की नीयत के आगे बाध्य हो कर सिर झुकाना ही पड़ा. बहुत अवसरो पर, चुनाव अभियान के दौरान, उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि अब और वीएतनाम नही होंगे.

ठीक ही है, अमेरिकियों का एक बड़ा बहुमत निश्चित् ही उन से सहमत होगा—वे भी सहमत होगे जो महसूस करते हैं कि यह अभियान पूरी तरह असफल नही हुआ है. पर महत्त्वपूर्ण अनुत्तरित प्रश्न है : 'वीएतनाम' है क्या? उस की कल्पना कैसे की जाये और क्या अमेरिका विश्व में एक बड़ा शांति-स्थापक और शांति बनाये रखने वाले की भूमिका निभा सकता है यदि वह पृथ्वी पर होने वाली सारी लड़ाइयों से इस आधार पर मुँह छिपा ले कि कहीं वह एक और 'वीएतनाम' न बन जाये? स्पष्ट ही है कि वीएतनाम में अमेरिका के अनुभव इस बात पर जोर देते है कि विदेशी मामलो मे उसे और समझदारी की आवश्यकता है. पर आज खतरा इस बात से है कि कुछ लोगों को दब्बूपन ही समझदारी लग सकती है.

प्रेस जगत

असमय मृत्यु

स्वर्गीय मानवेंद्रनाथ राय द्वारा स्थापित रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी के सक्रिय सदस्य और जाने-माने पत्रकार अमियकांत मुकर्जी की हाल ही में मोटर दुर्घटना से मृत्यु हो गयी. वह सपरिवार खुजराहो घूमने गये थे, जहाँ से लौटते समय उन की गाड़ी एक ट्रक से टकरा गयी और यह दुर्घटना उन के लिए जानलेवा साबित हुई.

स्वर्गीय अमियकांत मुकर्जी का छात्र-जीवन और कार्य-जीवन दोनों ही असाधारण रहे. उन का जन्म १९०९ में सहारनपुर मे हुआ. इलाहाबाद विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में स्नातकोत्तर उपाधि हासिल करने के बाद वह डॉक्टरेट उपाधि के लिए शोध-ग्रंथ लिखने के उद्देश्य से बंबई आये. उन के शोध का विषय था मजदूर-समस्या. पर इसी समय राजनीति में उन की रुचि विशेष रूप से जाग उठी और वह राजनैतिक कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेने लगे. उस समय शोध का काम ढीला पड़ गया और अंततः उन्होंने उसे अधूरा छोड़ कर ही राजनीति को अपना पूरा समय देने का निश्चय किया. १९४१ में जब स्वर्गीय मानवेंद्र राय ने रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी की स्थापना की तो युवा अमियकांत इस नव गठित राजनैतिक दल के पहले पाँच सदस्यों में से एक थे. ऑल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस से अलग हो कर जब मानवेंद्र राय ने इंडियन फ़ेडरेशन ऑफ़ लेबर नाम से एक नयी मजदूर-संस्था की नींव डाली तो अमियकांत मुकर्जी उस के पहले सचिव चुने गये. १९४४ में लंदन में एक सम्मेलन हुआ, जिस में अमियकांत ने अपने राजनैतिक दल रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी और मजदूर-संस्था इंडियन फ़ेडरेशन ऑफ़ लेबर का प्रतिनिधित्व किया. इसी समय के आसपास पेरिस में वर्ल्ड फ़ेडरेशन ऑफ़ ट्रेड यूनियन नामक अंतरराष्ट्रीय संस्था का जन्म हुआ, जिस में भारत के प्रतिनिधि अमियकांत मुकर्जी ही थे.

राजनैतिक क्षेत्र के अलावा पत्रकारिता के क्षेत्र में भी स्वर्गीय मुकर्जी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं. कुछ समय के लिए उन्होने हिंदुस्तान टाइम्स के संपादकीय विभाग में काम किया. रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी का मुखपत्र दैनिक वैनगार्ड के संचालन का भार जब उन्ही को सौंपा गया तो उन्हें हिंदुस्तान टाइम्स की नौकरी छोड़ कर सारा समय अपने दल के प्रकाशन को देना पड़ा. वह लंदन में भी इस पत्र का प्रतिनिधित्व करते रहे. इस के बाद उन के राजनैतिक जीवन की हलचल कुछ कम होती दिखाई दी और वह **थॉट** साप्ताहिक के संयुक्त संपादक के पद पर काम करने लगे. यहाँ पर उन की पदोन्नति हुई और वह इस साप्ताहिक पत्र के संपादक बने. १९६२ के अंत में उन्होने थॉट छोड़ा और पश्चिमी जर्मनी की एक समाचार एजेंसी के विशेष संवाददाता का कार्यभार सँभाला. फिर यहाँ से वह फिर अपने पुराने कार्यस्थल हिंदुस्तान टाइम्स के संपादकीय विभाग में पहुँचे, जहाँ ६ महीने तक सह-संपादक रहे. मृत्यु से पूर्व वह बर्मा के एक समाचारपत्र के भारत में विशेष संवाददाता थे.

अमियकांत मुकर्जी : व्यस्त जीवन

स्वर्गीय अमियकांत का राजनैतिक और पत्रकारिता के क्षेत्रों से अलग भी एक अस्तित्व था, जिसे सामाजिक कहना ठीक होगा. राजधानी की प्रेस क्लब के विकास में उन का योगदान, उन के न रहने के बाद भी, सदा याद किया जायगा. समाचार की दुनिया से संबंधित लगभग सभी व्यक्तियों को, जिन का इस क्लब मे नियमित आना-जाना रहता है, निश्चित ही श्री मुकर्जी का अभाव खटकेगा. वह अंतिम समय तक इस क्लब के अधिकांश कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेते रहे और बहुत समय तक प्रेस क्लब के उपाध्यक्ष और महासचिव के पदों पर बने रहे. संसद की प्रेस दीर्घा में आने-जाने वालों को भी स्वर्गीय मुकर्जी की याद निश्चित ही आयेगी. प्रेस सूचना विभाग के सम्मेलनों में उन की शांत और गंभीर मुद्रा के कारण वह औरों से अलग ही दिखाई पड़ते थे. अल्पभाषी अमियकांत मुकर्जी अपने में वे सारे गुण सँजोये हुए थे जो एक पत्रकार के लिए निहायत ही जरूरी है. उन की कम उम्र में असामयिक मृत्यु से भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में एक अभाव हो गया है.

निष्पक्षता की ख़ातिर

कई राज्यों में मध्यावधि चुनाव होने जा रहे हैं. इन के संपन्न हो जाने पर उन राज्यों में राष्ट्रपति-शासन का अंत हो जायेगा, ऐसी आशा की जा सकती है. लेकिन उत्तरप्रदेश अथवा हरयाणा की पुनरावृत्ति फिर भी हो सकती है. मध्यावधि चुनाव के वावजूद हरयाणा की स्थिति स्थिर या संतोषजनक नहीं हो पायी है. विधायकों की निगाह में पार्टियाँ नहीं, मतदाता नहीं वल्कि निजी तात्कालिक लाभ महत्त्व का हो उठा है और शायद मतदाता भी प्रायः पार्टी से अधिक उम्मीदवार को महत्त्व देता है, हालाँकि समय-समय पर ख़ास पार्टी का विरोध भी उस के ज़ेहन में हो सकता है. एक वार वह ग़ैर-कांग्रेसवाद का हामी हो, तो दूसरी वार पुराने रास्ते पर भी लौट सकता है. नहीं तो पूरी तरह उदासीन भी हो जा सकता है. वार-वार 'मोह-भंग' की यह स्थिति उसे और भारतीय राजनीति को कहाँ पहुँचा देगी, यह अधिक से अधिक क़यास का ही विषय हो सकता है.

चुनाव-पद्धति में परिवर्त्तन की माँग भी पिछले चुनाव के वाद हवा में उछली थी. लेकिन पद्धति में परिवर्त्तन से दल-विघटन की प्रवृत्ति रुक जायेगी, या ध्रुवीकरण शुरू हो जायेगा, यह नहीं कहा जा सकता. इस लिए पहले इसी व्यवस्था को क्यों न निर्दोष वना लिया जाये.

चुनाव कराने की वर्त्तमान व्यवस्था में कई दोष ऐसे हैं जिन्हें तुरंत दूर किया जाना चाहिए. एक ओर मतदान को गोपनीय रखने के तौर-तरीक़े अपनाये जाते हैं, तो दूसरी तरफ़ मतदाता-सूची में वोट डालने के लिए आये हुए व्यक्ति के नाम के सामने मतपत्र का क्रमांक अंकित किया जाता है. यदि कोई पोलिंग एजेंट चुपचाप सव की नज़रें वचा कर कुछ नंवर लिख ले और काउंटिंग एजेंट वन कर स्वयं अथवा अन्य किसी सहयोगी द्वारा गणना के समय उस जानकारी का उपयोग करे तो यह वात अच्छी तरह विदित हो सकती है कि किस ने किस के पक्ष में मतदान किया. ऐसी सूरत में गोपनीयता की रक्षा नहीं हो सकती. यदि ऐसा इस लिए किया जाता है कि कितने मतपत्र इस्तेमाल हुए तो उस के लिए मतपत्र के विना नंवर वाले काउंटरफ़ॉइल रखे जा सकते हैं.

क्यों कि मतपत्र पर उम्मीदवारों के नाम अकारादि क्रम से छापे जाते हैं इस लिए वता देने पर वोटर प्रायः समझ जाता है कि नीचे से कितनी सीढ़ियाँ चढ़ कर और ऊपर से कितनी मंज़िल उतर कर उसे अभीष्ट प्रत्याशी का घर मिल जायेगा. अपढ़ मतदाता फिर भी गड़वड़ा सकता है. ऊपर-नीचे नाम होने से प्राथमिकता के वारे में ग़लतफ़हमी भी पैदा हो सकती है. इस के लिए **दिनमान** के एक विचारशील पाठक का सुझाव है कि आयताकार मतपत्र का स्वरूप वदल कर गोलाकार कर दिया जाये. हर एक उम्मीदवार का नाम समान व्यास के वृत्त में चुनाव-चिह्न सहित छापा जाये और ये तमाम वृत्त परिधि पर रखे जायें, जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है. मतपत्र का क्रमांक पुश्त पर अंकित किया जाये.

एक वृत्त और दूसरे वृत्त के वीच चिन्ह लगाने वाली गोलाकार मुहर के व्यास के वरावर रिक्त स्थान छोड़ा जाये, ताकि अगर किनारे पर भी उस का स्पर्श होता है तो द्विविधा का अवसर उत्पन्न न हो. मतदाता जिस वृत्त पर मुहर लगा दे उसी में लिखित नाम वाले व्यक्ति के पक्ष में उस का वोट समझा जाये. इस विधि से वह झंझट जाता रहेगा कि चिह्नांकन का ज़्यादा भाग किस ख़ाने में पड़ा है और कम किस ख़ाने में. इस व्यवस्था में जव तक मतदाता जान-वूझ कर एक से अधिक चिह्न नहीं लगाता उस के एक वार मुहर लगाने पर या तो एक ही व्यक्ति को निश्चित रूप से मत प्राप्त होगा अथवा विना द्विविधा में पड़े किसी को नहीं. निर्वाचन-अधिकारी को अपने विवेक से मतपत्र ख़ारिज करने का जो अधिकार दिया जाता है उस के दुरुपयोग की गुंजाइश नहीं रह जायेगी.

चिह्नांकन के लिए रवड़ की मुहर होनी चाहिए, जो आकार में उम्मीदवार के नाम वाले गोले से छोटी हो. चिह्न में मतदान-केंद्र की संख्या रहे, परंतु मतपत्र के मोड़े जाने पर स्याही से दूसरा निशान पड़ कर गड़वड़ होने की आशंका को दूर करने के लिए अंग्रेज़ी का अक्षर 'पी' अथवा देवनागरी का 'म' केंद्र-संख्या के दायें या वायें अथवा ऊपर या नीचे रख दिया जाये. ऐसा करने से उलट-फेर का पता चल जायेगा और मत की सही गणना हो सकेगी.

मतपत्र के ऊपर उम्मीदवारों के नाम तथा उन के चुनाव-चिह्नों के अतिरिक्त किसी चीज़ की छपाई अथवा लिखाई वर्जित होनी चाहिए. मुहर, क्रमांक, हस्ताक्षर आदि उस की पुश्त पर दिये जायें.

चुनाव-व्यवस्था से संवद्ध एक ज़िम्मेदार अधिकारी का कहना है कि मतदान-केंद्र की परिभाषा में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि उस की सीमाएँ क्या होंगी. कहाँ से वह दूरी नापी जायेगी जिस के भीतर प्रचार करने की मनाही होगी? कौन-सा वह क्षेत्र होगा जिस के भीतर मतदान का समय समाप्त होने पर उपस्थित लोगों को मतदान की सुविधा दी जायेगी? अक्सर मतदान-केंद्रों पर इन वातों के वारे में विवाद उत्पन्न होता है और जव कोई पक्ष हठ-धर्मी पर उतर आता है तो शांति-सुरक्षा की समस्या उठ खड़ी होती है. मतदान-केंद्र से क्या तात्पर्य है, इसे अच्छी तरह समझाया जाना आवश्यक है.

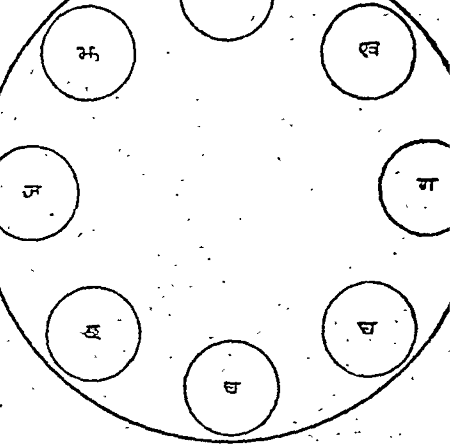

चुनाव-नियमों के अनुसार जव एक मतपेटी भर जाये तो उसे मुहरवंद किये विना दूसरी मतपेटी प्रयोग में नहीं लायी जा सकती. नये आदेशों के अनुसार पेटी को कपड़े में सिल कर ऊपर से उस की मुहरवंदी भी करनी है. उम्मीदवार अथवा उन के अधिकृत अभिकर्त्ताओं को अपनी-अपनी मुहरें लगाने की अनुमति है. इस का मतलव यह हुआ कि एक पेटी को क़ायदे से वंद करने में दस-पंद्रह मिनट से कम नहीं लग सकते. जिन मतपेटियों का इस्तेमाल किया जाता है वे जल्दी-जल्दी भर जाती हैं. इस प्रकार मतदान-अवधि के भीतर कई मर्तवा मतदान की कार्यवाही को स्थगित करना पड़ेगा. क्यों नहीं एक पेटी के भर जाने पर दूसरे का प्रयोग आरंभ कर दिया जाये—एक ओर मतदान होता रहे और दूसरी तरफ़ भरे हुए पेटी की मुहरवंदी आदि की कार्यवाही. कदाचित मतदान का स्थगन अपने-आप में स्वयं अवैधानिक है.

इस समय मतदाता-सूचियों पर मतपत्र के क्रमांक डालने का रिवाज़ है, जो गोपनीयता की दृष्टि से वांछनीय नहीं. इस का ज़िक्र ऊपर भी आ चुका है. मतदाता-सूची पर यदि वोट डालने के लिए उपस्थित होने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर अथवा अँगूठे का निशान ले लिया जाये तो प्रत्यक्ष में कोई हानि नहीं दीखती—इस से धोखाधड़ी की गुंजाइश कम हो सकती है.

जिन मतपेटियों का इस्तेमाल किया जाता है वे मतदान की प्रचलित व्यवस्था के अनुकूल नहीं हैं. अव मतपत्र का आकार दिनोंदिन वढ़ता जा रहा है. उसे मोड़ कर पेटी के अंदर डालना उतना आसान नहीं रहा है जितना आरंभ में होता था. पेटी भर भी वहुत जल्दी जाती है. अच्छा यह हो कि वड़े आकार की हल्की और चौड़े स्लिट वाली मतपेटी प्रयोग में लाने के वारे में विचार किया जाये. उस के खोलने-वंद करने का ढंग भी ज़्यादा वखेड़े का न हो, क्यों कि अंत में उसे कपड़े में सी कर मुहरवंद करना ही पड़ेगा.

अज्ञात प्रदेशों की खोज

बस्तर के एक लड़के की दुम है, जो बराबर बढ़ रही है. अखबारों में यह खबर नये साल के दिन निकली, वर्ना (बीते साल के अंतिम तीन दिन नयी दिल्ली के चिकित्साविज्ञानों के अखिल भारत संस्थान में अनुष्ठित भारत शारीर समाज के सतरहवें वार्षिक सम्मेलन में इस अजूबे के बारे में भी कुछ दिलचस्प विज्ञान-चर्चा जरूर हुई होती. सम्मेलन में प्रस्तुत कोई पौन सौ शोध-पत्रों में सामान्य मानव-देह या जीव-देह के भीतरी लोकों के कितने ही नये आविष्कृत प्रदेशों, उन के घटक अंगों, लक्षणों, क्रियाओं आदि की चर्चा तो थी ही, उस लड़के की दुम जैसे कुछेक असामान्य प्रकृति-संयोगों के विश्लेषण भी थे. शारीर का अधिक काम देह-लोक की बनावट की बारीकियों का पता लगाना है. इस तरह से उस की प्रकृति भूगोल की सी है.

सम्मेलन में कई खोजों की खासी गर्म चर्चा रही. तहलका मचाने वाली खोजें सम्मेलनों की बाट जोहती बैठी नहीं रहतीं. पर शारीर जैसी विद्याओं में ऐसा अवसर देखा गया है कि आज नगण्य लगने वाली जानकारी कल अग्रगण्य और मूलगण्य हो-हो उठी है. प्रस्तुत शोधपत्रों में सब से मार्के की खोजें तंत्रिकाविद्या की लगीं. स्तनी जीवों की दृक्-तंत्रिका में मौजूद लव-तरुकाओं को केंद्रीय तंत्रिका-तंत्र में मज्जा-रस (म्येलिन) के पैदा होने और बने रहने का कारण माना गया था. यह खोज पिछले दशाब्द की थी. इस पर कुछ आपत्तियाँ थीं. इधर वाराणसी के दो विज्ञानियों ने स्तनी मस्तिष्क-तंतुओं के टीके लगा कर कुत्तों में प्रायोगिक मस्तिष्क-प्रदाह की हालतें पैदा की है और ऐसी हालतों में बार-बार यह देखा है कि इस से पूरे तंत्र में फोकसी मज्जा-रस लोप होने लगते हैं और क्षतों के अंदर और उन के गिर्द लव-तरुकाएँ भी मिट जाती हैं. प्रारंभिक रिपोर्ट से यह आशा बँध चली है कि खोज इसी तपाक से जारी रही तो आँखों के संवेदन की नियामक दृक्-तंत्रिका की दुनिया के कई अँधेरे कोने उजागर कर देगी. प्रदुग्ध-रस (प्रोलैक्टिन) के काम नाना-विध हैं. तल-निलंबी भेजे वाली मछलियों में मीठे पानी के अंदर भी जी लेने की लत डालना और उस लत को बनाये रखना इसी रस का काम है. उभचरों में यह पानी के जीवन की गति और देह के रूपांतर का कारण बनता है. पक्षियों में यह जनक-जननी की हैसियत के बरतावों और देशांतर-गमन के बरतावों का नियामक है. स्तनियों में चर्बी और कार्बोहाइड्रेटों का गति-दाता, दूध पैदा करने की क्रिया का प्रवर्त्तक और कई दूसरी रस-क्रियाओं और देह-क्रियाओं का कारक है. मगर अभी तक यह पता नहीं चल पाया था कि सरीसृपों में इस की भूमिका आखिर ठीक क्या होती है. गिर-गिटों को विविध अवधियों का अनशन करा के तिरुवनंतपुरम् के दो विज्ञानियों ने पता लगाया है कि सरीसृपों में यह तंत्रिका-रस भूख, वृद्धि और जनन-क्रियाओं को प्रभावित करता है. छिपकिलियों, छछूंदरों, चूहों, बंदरों, भैंसों आदि पर तरह-तरह के प्रयोग और मानव-रोगियों के परीक्षण कर के तंत्रिका-तंत्र के विविध पहलुओं के बारे में की गयी उक्त दो की सी ही बारह और खोजों की रिपोर्टें सम्मेलन में प्रस्तुत हुईं. इन खोजों में आम लोगों की उतनी रुचि भले ही न हो; शारीर, चिकित्सा, जीव-विज्ञान, प्राकृतिक इतिहास आदि के विज्ञानियों के लिए ये सब की सब बड़े काम की साबित हो सकती हैं.

गो-जाति के दिल को लहू की रसद दायीं-बायीं कपाल-धमनियाँ या डिल्ला-धमनियाँ पहुँचाती हैं. रसद की मात्रा और बँटवारे के क्षेत्र, दोनों ही मामलों में बायी दायीं की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी भूमिका निभाती हैं. दायी दिल की स्वस्तिका को पार नहीं करतीं. वहन-तंत्र संबंधी सात खोज रिपोर्टों में से एक पांडीचेरी के दो विज्ञानियों की है, जिस में उन्होंने इन्हीं दोनों की बनावट, काम आदि का ब्योरेवार विवरण दिया है और गो-जाति की रक्त-पूर्त्ति-व्यवस्था की तुलना आदमी और कुत्ते के वहन-तंत्रों में मौजूद पूर्त्ति-व्यवस्था के साथ की है. सामान्य भारतीय मानव-हृदय के अंतःकपाल शाखा-मिलनों के रेडियमी परीक्षणों और चीर-फाड़ों की कथा और उन से हासिल हुए नतीजों की रिपोर्ट में पुणे के दो विज्ञानियों ने इन शाखा-मिलनों के स्वरूप, स्वभाव, आकार, आपतन, रक्तहीनता के रोग से संबंध, रक्त-गतिकी से संबंध, महत्त्वों आदि की विस्तृत चर्चा की है. वहन-तंत्र संबंधी अन्य खोज रिपोर्टें भी चिकित्सा की दृष्टि से बड़े महत्त्व की साबित हो सकती हैं. एक में मानव-नाभि-रज्ज की वाहिकाओं को पहले-पहल इतने विस्तार से मानचित्रित किया गया है. एक में गंभीर शिरा-तंत्र का अध्ययन है, जो बिचले उप-वल्कुट क्षेत्र की गिल्टियों (अर्बुदों) के निदान में योग दे सकता है. इस में सामने की, मध्य-कपाल की, दोनों शंखों की और अधिसेलों की गिल्टियों से हुए परिवर्त्तनों के बारे में भी बहस की गयी है. बताया गया है कि एक रोगी के मामले में इस खोज ने वल्कुट-शिराओं के रक्त-तंच के निदान में बड़ी मदद की. निदान करने वालों को इस नयी खोज की जानकारी न होती तो प्रमस्तिष्क के शोथ के कारण उस तंच को प्रमस्तिष्क का अर्बुद मान लिया गया होता.

भ्रूणविद्या और शारीरिक नृतत्त्व से संबद्ध बाईस खोज रिपोर्टें शारीर की और-और शाखाओं से संबद्ध खोज रिपोर्टों से बिल्कुल भिन्न प्रकार की रोचकता लिये हुए हैं. कान की सब से भीतरी रकाब-नुमा कन्हाड़ी (कर्णा-स्थिका) के उद्भव के बारे में अब तक एक-दो नहीं बल्कि पूरे पाँच मत मैदान में थे. पटियाला के दो विज्ञानियों ने पता लगाया है कि इस रकाब-नुमा कन्हाड़ी की आधार-हड्डी और दोनों 'क्रूरा, का विकास परिकर्णिक तंतु से हुआ है और उस के केवल गल-भाग और शिरोभाग ही 'दूसरे चाप' से विकसित हुए हैं. एक खोज रिपोर्ट में दो सौ तीस अमेरिकी गोरे और अस्सी निग्रो वयस्क कंकालों के जत्रुकों (क्लैविक्ल) की लंबाई, भार, बिचले व्यास आदि के नाप-जोख से मिली तथ्यावलि के विविध-विध सांख्यिकीय विश्लेषणों के साथ पंजाबी जत्रुकों और वाराणसी क्षेत्र के जत्रुकों से हासिल की गयी तथ्यावलि के विश्लेषणों का मिलान कर के जत्रुकों से लिंग-निर्धारण की विधि निकाली गयी है. इसी तरह चूजे के पैरों और डैनों के विकास की प्रक्रियाओं का पता लगाना एक और खोज का विषय बना. चार खोजों ने दक्षिण-एशियाई खोपड़ियों के चार तरह के परीक्षणों से रोचक जानकारियाँ हासिल की हैं. कुछ खोजों में आलथी-पालथी बैठने की आदत की बदौलत विकसित हुई शारीरीय विशेष-ताओं के ब्योरे हैं. कुछ में लंबी हड्डियों के वर्द्धमान छोरों की रूपांतर-प्रक्रियाओं का विश्लेषण है, तो कुछ में प्रगंडिका (ह्यूमेरस), ऊर्विका (फ़ीमर) और कूल्हे की हड्डियों के बनने (अस्थीभवन) में लिंग-भेद के सूचक और कारक शारीर विकास-भेदों की चर्चा है. कई में रीढ़धारियों के घुटने के जोड़ों को अध्ययन का विषय बनाया गया है, तो एकाध में भारतीयों के प्रगंड-मरोड़ों की विशेषताओं की छान-बीन भी की गयी है. 'हरि अनंत हरि-कथा अनंता' की ही तरह शारीर कथाओं का भी सचमुच कोई ओर-छोर शायद नहीं है.

जनन-शरीर से संबद्ध खोजों और इलेक्ट्रॉन अणुवीक्षण और उस की तकनीकों से संबद्ध खोजों की रिपोर्टें दो अलग-अलग विषय-विभागों में बाँट कर अलग-अलग बैठकों में प्रस्तुत हुईं. जनन-शारीर की खोजें बार-बार के गर्भपात के रोग, वर्ण-पिंडों, वंशागत बीमारियों, लिंग-निर्धारण आदि से संबद्ध हैं. इलेक्ट्रॉन अणुवीक्षण वाले विभाग की खोजों में शोध की इस नयी विधि का शरीर में उपयोग करने की विविध संभावनाओं, अभ्यासों और उन से मिली अपूर्व सुविधाओं की चर्चाएँ हैं. उक्त पाँच विभागों के अतिरिक्त बचीखुची रिपोर्टें एक मिश्र विभाग में डाल कर एक अलग बैठक में विचारी गयीं. उन में से अधिकतर चिकित्सा में काम आने वाली बहुमूल्य जानकारियों से भरपूर हैं.

सम्मेलन के औपचारिक अधिवेशनों से सर्वथा स्वतंत्र रूप से अनुष्ठित हुए इन छह वैज्ञानिक अधिवेशनों की उपलब्धि विज्ञान-जगत् में कोई सनसनी भले न पैदा करे, यह तोष जरूर दे गयी है कि शारीर के क्षेत्र में भी भारत का विज्ञान कर्मठता के साथ आगे बढ़ रहा है और ज्ञान के दिगंतों का विस्तार करने में मूल्यवान् योगदान कर रहा है.

नैनी जेल में लाठी चार्ज

लगभग एक महीने और पाँच दिन के शांतिपूर्ण आंदोलन के बाद माध्यमिक शिक्षक संघ ने १५,००० अध्यापकों को सत्याग्रह द्वारा जेल में भेज दिया है. यद्यपि माध्यमिक शिक्षक संघ का कहना है कि उनकी सदस्यता ५६,००० है किंतु सरकार के कथनानुसार उन की सदस्यता केवल ४६,००० है. माध्यमिक शिक्षक संघ का दावा है कि इस समय पूरे उत्तर प्रदेश में लगभग सभी स्कूल बंद हैं. सरकार का कहना है कि उत्तर प्रदेश के ५४ ज़िलों में से केवल ३२ या ३४ ज़िलों में स्कूल बंद हैं. इस में संदेह नहीं तथ्य विवादास्पद हो, पर इतना स्पष्ट है कि नौकरशाही की सरकार जनमत का आदर करना नहीं जानती अन्यथा जो संस्था अपने ४६,००० सदस्यों में से १५,००० की संख्या तक सत्याग्रही पैदा कर सकती है उस के सामर्थ्य को सरकार को स्वीकार कर लेना चाहिए था. अपनी नौकरशाही इतनी जड़ विवेकहीन और कठमुल्लेपने की है कि उस में कुछ भी परिवर्तन ला सकना असंभव है. यह नौकरशाही की क्रूरता और अमानुपिकता ही है कि केंद्रीय मंत्री त्रिगुण सेन की भी बात वह मानने को तैयार नहीं है.

हिंसा किस की : पूरे आंदोलन में एक भी जगह किसी प्रकार की हिंसा या उपद्रव नहीं नहीं हुआ फिर भी ग़ैर-ज़िम्मेदार उत्तर प्रदेश की सरकार ने इस आंदोलन को भी कलंकित करने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी है. अध्यापकों में से अधिकांश अब भी सी क्लास में बंदी बना कर रखे गये हैं. जिन बी. ए. पास अध्यापकों को बी क्लास मिला भी है उन को पेट भर खाना और जेल मैनुअल के अनुसार सुविधाएँ नहीं दी गयी हैं.

लाठी वर्षा : अपनी इस योजना के अनुसार वर्तमान नौकरशाही ने गत २२-१२-६८ को ५-३० बजे प्रयाग के २०८ नज़रबंद अध्यापकों को जेल में २५० लठैत वार्डरों से बुरी तरह पिटवाया है. लगभग ८० अध्यापक और एक विद्यार्थी घायल हुए हैं. इन में से चार अध्यापक और एक विद्यार्थी तो बुरी तरह घायल हालत में प्रयाग के सर तेज बहादुर सप्रू अस्पताल में बेहोश पड़े हैं. दिनमान के प्रतिनिधि ने सूचना पाते ही जेल के अधिकारियों और जिला अधिकारियों से मिलने की चेष्टा की लेकिन कोई नहीं मिला, इस लिए यह कह सकना कि जेल के अस्पताल में कितने अध्यापक घायल हो कर पड़े हैं, संभव नहीं है लेकिन दिनमान के प्रतिनिधि ने २३-१२-६८ को जब सर तेज बहादुर सप्रू अस्पताल में प्रवेश किया तो पाया कि पाँच घायल व्यक्तियों में से तीन की हालत बड़ी खराब है. सुरेश कुमार **विद्यार्थी** का सर फूटा है, आँख के भौंह के ऊपर इतनी गहरी लाठी पड़ी है कि दाहिनी आँख में चोट आ गयी है. बायाँ हाथ टूट कर दो टुकड़े हो गया है और उस पर प्लास्टर चढ़ा है. पीठ की हड्डियों में और भी गहरी चोट लगी है. स्थानीय मऊआयमा के एक स्कूल के अध्यापक **मोहन चंद्र मना** को भी इसी प्रकार बुरी तरह पीटा गया है. उस के दोनों पैरों को दो लाठियों के बीच दबा कर भरता बना दिया गया है. बायाँ हाथ भी टूटा है और उस पर भी पट्टी बँधी है. **मोहन चंद्र मना** यद्यपि दर्द से कराह रहे थे लेकिन उन्हें होश था. **दिनमान के प्रतिनिधि** ने जब उस ने हाल पूछा तो वे बोले—'मैं तो बेकार में मारा गया. मैं अपने कमरे में लेटा था और मुझे वार्डर कमरे से घसीट कर बाहर ले गये और वहाँ बुरी तरह पीटा. यही नहीं मेरे पैरों को लाठियों के बीच रख कर ऐसा कुचल दिया गया है कि मुझे हाथ टूटने से ज्यादा दर्द पैरों में है. कमर पर लाठी के हूलों से मारा गया है.' **दिनमान के प्रतिनिधि** ने जब यह पूछा कि आखिर जेल अधिकारियों ने ऐसा क्यों किया तो **मार्कंडेय काटजू** ने बताया—'रोज़ की भाँति २२-१२-६८ को सायंकाल सारे अध्यापक बैठ कर एक विचार-गोष्ठी में भाग ले रहे थे. यह विचार-गोष्ठी नयी चीज़ नहीं थी. शाम को जब हम लोगों को अखबार मिलता था तो हम लोग पढ़ते थे. बाहर जो कुछ घटनाएँ होती थीं उस पर विचार-विनिमय करते थे. कभी-कभी सांस्कृतिक एवं सामाजिक विचार भी हम करते थे लेकिन इस विवाद का केवल एक ही अर्थ होता था और वह यह कि हम आपस में एक-दूसरे को समझें. उस दिन भी यही हो रहा था लेकिन मैं किन्हीं कारणों से अपने कमरे में ही पड़ा रहा. सहसा पीली वर्दी वालों ने सीटियाँ बजानी शुरू कीं और हम सब को वार्ड के भीतर जाने का आदेश दिया. यद्यपि अभी समय नहीं हुआ था फिर भी अध्यापक भीतर जाने लगे. प्रवेश द्वार ऐसा था कि उस में से एक या दो से ज्यादा लोग नहीं जा सकते थे लेकिन पीली वर्दी वाले वार्डरों ने ज़बर्दस्ती करनी शुरू कर दी. २०० अध्यापकों के भीतर प्रवेश करने के साथ ही लाठियाँ बरसने लगीं. कारण किसी ने नहीं बताया. आगाह भी नहीं किया और सारे अध्यापकों को बुरी तरह पीटना शुरू किया. दरवाज़े के भीतर से और बाहर से लाठियाँ चलने लगीं और जब अध्यापकों ने इधर-उधर भागना शुरू किया तो खदेड़ कर बुरी तरह पीटा.' **श्री मार्कण्डेय काटजू जो कि स्वर्गीय कैलाशनाथ काटजू के पौत्र और जस्टिस शिवनाथ काटजू के सुपुत्र हैं, अपनी योजना के अनुसार एम. ए. पास करने के बाद एक गाँव के स्कूल के अध्यापक हैं और वह भी घायल हैं. उन्होंने ही बताया कि लगभग ७० या ८० अध्यापक जेल के अस्पताल में पड़े हैं जिन में से राम गोपाल संड को अधिक चोट लगी है.**

विनोद चंद्र दुबे : विनोद चंद्र दुबे जिन्होंने अभी पिछले कई दिन हुए पुलिस और पी. ए. सी. को विश्वविद्यालय से हटाये जाने की माँग के साथ दफ़ा १४४ तोड़ी थी और जो विद्यार्थी आंदोलन के आरोप में बंदी बनाये गये हैं सख्त घायल हैं. कुछ समय तक अस्पताल में रहने के बाद उन्हें दोबारा गिरफ़्तार कर लिया गया है.

दिनमान के प्रतिनिधि ने दो बार सर तेज बहादुर सप्रू अस्पताल जा कर इस विद्यार्थी नेता से कुछ बात करनी चाही लेकिन दो बार में से एक बार भी उन्हें होश में नहीं पाया. लोगों ने कहा कि **विनोद चंद्र दुबे** से वैसे भी पुलिस और जेल अधिकारी नाराज़ थे. ऐसा है कि जेल अधिकारियों ने यह सारी मार-पीट प्रतिशोधात्मक नीति से की.

सरकारी वक्तव्य : ज़िलाधीश ने इस सारी घटना को जेल अधिकारियों और अध्यापकों के बीच का दंगा घोषित किया है ज़िलाधीश ने सरकारी आफ़िसर और वार्डर के बीच अलगाव पैदा करके यह साबित करने की कोशिश की है कि जैसे उस में जेल अधिकारियों का कोई हाथ नहीं है. ज़िलाधीश ने अपने वक्तव्य में कहा है :

"यह सारी घटना राज्यपाल के पुतले को जलाने से हुई है. अध्यापकों ने जेल के वार्डरों और ओवरसीयरों को (अपनी शक्ति से जब पराजित कर दिया) या ओवर पावर कर लिया तब सुपरिंटेंडेंट भी पहुँचे और उन्होंने दोनों को अलग करने की चेष्टा की—जनता की सूचना के लिए यह बताना आवश्यक है कि जेल के वार्डर और ओवरसीयर जेल की व्यवस्था के अंग नहीं हैं."

पतितावस्था : अध्यापकों ने ज़िलाधीश के वक्तव्य का खंडन करते हुए कहा है कि पिटाई अधिकारियों ने जान-बूझ कर करवायी है. ऐसा लगता है जैसे राज्य शासन इस खोज में था कि कोई ऐसा अवसर मिले जहाँ यह अहिंसात्मक शांतिपूर्ण आंदोलन एक हिंसात्मक स्थिति में बदल दिया जाये. आश्चर्य है कि किसी भी अध्यापक ने गवर्नर के पुतले को जलाये जाने की सूचना को सही नहीं बताया.

जनमत क्षुब्ध : यह सूचना मिलते ही कि जेल में अध्यापकों को पीटा गया है जनमत क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर व्यक्त हुआ है. राष्ट्रपति और शिक्षामंत्री को श्री प्रकाशनारायण सप्रू, डॉ॰ ताराचंद रत्नकुमार नेहरू आदि ने तार दिया है. प्रायः सभी राजनैतिक पार्टियों ने जिन में जनसंघ, कम्युनिस्ट पार्टी, संयुक्त **सोशलिस्ट पार्टी** भी शामिल हैं, इस की निंदा की है. नगर कांग्रेस पार्टी ने भी क्षोभ का प्रस्ताव पास किया है. नगर के वकील वर्ग 'लायर्स एसोसिएशन' ने अपने प्रस्ताव में गवर्नर गोपाल रेड्डी के त्यागपत्र की माँग की है.

चरचे और चरखे

ग़ालिब शताब्दी समारोह

इस वर्ष ग़ालिब शताब्दी समारोह बड़े धूमधाम से दुनिया के अनेक देशों में मनाया जा रहा है. ग़ालिब के बारे में यह कहा जाता है कि वह दक्षिण एशिया के उर्दू और फ़ारसी के सर्वाधिक प्रिय कवियों में से हैं. लंदन के प्राच्य और अफ़्रीकी विद्या के स्कूल (स्कूल ऑफ ओरियंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज़) ग़ालिब शताब्दी समारोह मना रहा है. इस समारोह के अंतर्गत ६ जनवरी से एक विचार-गोष्ठी की भी योजना है जिस में डा. स्पीयर 'ग़ालिब की दिल्ली' पर, डा. हार्डी *'ग़ालिब के काल में अंग्रेजों की स्थिति पर'*, प्रो. बौसानी 'ग़ालिब की फ़ारसी कविता' पर और श्री आर. रसेल 'ग़ालिब की उर्दू कविता' पर अपने निबंध पढ़ेंगे. इस विचार-गोष्ठी में इन विषयों से संबंधित क्षेत्रों के अनेक विद्वानों को भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया है. स्कूल में १२ फ़रवरी को एक सार्वजनिक सभा करने की योजना बनाई गयी है जिस में आर. रसेल ग़ालिब का खाका उन की ही कृतियों के आधार पर प्रस्तुत करेंगे और ग़ालिब की ग़ज़लें गायी जायेंगी. विचार-गोष्ठी में पढ़े गये लेख पुस्तकाकार प्रकाशित किये जायेंगे जो कि अंतरराष्ट्रीय पैमाने पर ग़ालिब शताब्दी समारोह में ब्रिटेन का योगदान होगा.

ग़ालिब के देश भारत में भी उन की शताब्दी समारोह की योजना बनायी गयी है. **फ़खरुद्दीन अली अहमद** इस योजना के सूत्रधार हैं लेकिन अभी तक योजना की पूरी रूपरेखा जनता के सामने नहीं है. सुना जाता है कि विदेशों से भी अनेक विद्वानों को आमंत्रित किया गया है लेकिन अभी तक यह निश्चय नहीं हो पाया है कि उन के आने-जाने का खर्च भारत सरकार देगी या वे स्वयं अपना खर्च कर के इस समारोह में भाग लेंगे या किसी तीसरी संस्था के सामने हाथ फैलाना पड़ेगा. खेद की बात है कि इस समारोह को जिस पर २२ लाख रुपया खर्च करने का सरकार का विचार है, सुनियोजित ढंग से राष्ट्रीय स्तर पर मनाने की दिशा में कोई प्रयत्न अभी साफ़-साफ़ दिखायी नहीं देता. ग़ालिब उर्दू के ही नहीं राष्ट्रीय कवि थे और उन के द्वारा ईरान ही नहीं आस-पास के अनेक पड़ोसी देशों के साथ हम अपने राजनैतिक सूत्र मज़बूत कर सकते हैं क्यों कि ईरान, तज़ाकिस्तान, उज़बेकिस्तान सभी जगह ग़ालिब अत्यंत प्रिय हैं. ग़ालिब के महत्त्व को कवि के रूप में तो देखा ही जाना चाहिए. अनेक पड़ोसी देशों के संपर्क सूत्र के रूप में भी उन की उपादेयता अनुभव की जानी चाहिए.

'ब्लिट्ज़' क़ैदखाने में

पश्चिम जर्मनी में क़ैदी अपनी एक पत्रिका निकालने जा रहे हैं. इस पत्रिका को वित्तीय सहायता बंदी सहायता समाज, जिस की स्थापना इन गर्मियों में हुई थी, के दस हज़ार सदस्यों से प्राप्त होगी. पत्रिका केवल क़ैदियों तक ही सीमित नहीं होगी बल्कि आम जनता के लिए भी होगी. इस पत्रिका का नाम ब्लिट्ज़ रखा गया है और इस के प्रधान संपादकों में लेखक **एलफ्रोंस विटरवुल्फ़** होंगे. १० हज़ार प्रतियों का पूर्वरंग संस्करण प्रकाशित हो चुका है, वह क़ैदियों में वितरित कर दिया गया है. इस साल की पहली जुलाई से पत्रिका का सचित्र संस्करण देश के समाचार पत्र विक्रेताओं के पास आम जनता के लिए भी उपलब्ध हो सकेगा. विटरवुल्फ़ का कहना है कि प्रतिष्ठित सचित्र पत्रिकाओं की तरह इस पत्रिका की सामग्री अच्छी रखनी होगी. हमें आशा है कि १९६९ के मध्य तक इस पत्रिका की कोई ३ लाख प्रतियां छपने लगेंगी. यह आशा उन्होंने विज्ञापन और पत्रिका की फुटकर बिक्री के ही आधार पर की है. संपादक ने सगर्व घोषणा की है कि हमें वित्तीय सहायता की कोई बहुत लालसा नहीं है. हम वित्तीय रूप से भी स्वतंत्र रहना चाहते हैं. हर अंक में दो या तीन पृष्ठ जेलखानों के सुधार पर और क़ैदियों की पुनर्वास समस्या पर होंगे. विटरवुल्फ़ का कहना है कि हम अपने पाठकों के परिचय का संसार व्यापक बनाए रखना चाहते हैं, उन की दुनिया को छोटा नहीं करना चाहते. पत्रिका में पाठकों के पत्रों का स्तंभ पर्याप्त मजेदार होगा क्यों कि इस में जेल-जीवन की समस्याओं पर विचार व्यक्त किये जायेंगे. इस स्तंभ में क़ैदी अपने विचार रखेंगे. 'वकीलों से प्रश्न' तथा 'ज़िम्मेदार आदमियों से सवाल-जवाब' जैसे क़ैदियों के पत्र बिना किसी काँट-छाँट तथा प्रतिबंध के प्रकाशित किये जायेंगे.

साथ ही इस शताब्दी के प्रसिद्ध अदालती मामलों का भी लेखा-जोखा इस पत्रिका में होगा. पत्रिका को क़ैदियों के बीच में वितरित करने की पूरी व्यवस्था की जा चुकी है. हाल ही में अदालत ने एक घोषणा की है कि हर क़ैदी को संचार साधनों से अपने समय के राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मामलों की पूरी सूचना पाने का अधिकार है. राष्ट्र के न्यायमंत्री ने भी इस पर्चा में रुचि ली है. इतना ही नहीं पत्रिका के संपादक विटरवुल्फ़ बंदी समाज सहायता की तरफ से बंदियों के पुनर्वास के लिए एक संस्था भी खोल रहे हैं जिस में ७० बंदियों के रहने की प्रारंभ में व्यवस्था की गयी है. उन का कहना है कि पुनर्वास ही बंदियों की सब से बड़ी समस्या है. जेल से निकल कर वह कहीं रह कर काम कर सकें इस की ओर तत्काल ध्यान दिया जाना चाहिए. बंदी सहायता समाज उन्हें नया जीवन शुरू करने के लिए ढाई हज़ार मार्क की आर्थिक सहायता भी देगा. उन्होंने एक हज़ार मोटर गाड़ियाँ भी इन क़ैदियों को उधार दिलाने की व्यवस्था की है.

हाथ मिलाना

हाथ मिलाना दोस्ती का प्रतीक है लेकिन आज के जमाने में यह बेमतलब हो गया है. देहातों में जब दो किसान एक-दूसरे का हाथ थामते हैं और एक-दूसरे को वचन देते हैं तो उस की वही गुरुता होती है जितनी किसी वकील के सामने दिये गये वचन की. कारण शायद यही है कि वे सच्चे होते हैं इस लिए उन का हाथ मिलाना भी सच्चाई का सबूत बन जाता है. एक पुरानी कहावत है जिस में हाथ मिलाने वालों को सावधान किया गया है कि वह संदिग्ध व्यक्तियों से हाथ मिलाने के बाद अपनी उंगलियां गिन लें कि कहीं कम तो नहीं हो गयी हैं.

सारे संसार में हाथ मिलाने वाले राष्ट्र के रूप में जर्मनी प्रसिद्ध है. शायद दुनिया में कहीं भी लोग इतनी तपाक से दूसरे से हाथ मिलाने के मौक़े की और अधिक से अधिक देर तक उसे पकड़े रहने की तलाश में नहीं रहते जितने कि जर्मनी में. अधिकतर यूरोपीय देशों में यह स्वीकृत नियम है कि विशेष अवसरों पर ही हाथ मिलाया जाय. सामान्य अवसरों पर एक हाथ उठा कर 'हलो' कहना ही यथेष्ठ माना जाता है.

१८वीं शताब्दी के जर्मन शिष्टाचार विशेषज्ञ **एडोल्फ निगे** ने यह कहा था कि जर्मनवासियों को हाथ मिलाने के लिए इतना उत्सुक नहीं रहना चाहिए. उन का यह कहना व्यावहारिक और स्वच्छता संबंधी नियमों के कारण था. कभी-कभी तो इस हाथ मिलाने की आदत के कारण अजीबो-ग़रीब परिस्थितियां सामने आ जाती हैं. कल्पना कीजिए कि कोई आदमी किसी दावत में देर से पहुँचता है और खाने के सामान से लदी मेज़ों और लोगों की भीड़ के बीच प्रथानुसार किसी से हाथ मिलाने के लिए तपाक से हाथ बढ़ाता है जिस का नतीजा यह भी हो सकता है कि कुछ शीशे के गिलास ज़मीन पर गिर कर चूर-चूर नज़र आयेंगे. ऐसे मौक़े पर 'हलो' कह देने से ही कितनी आसानी से काम चल सकता है. दिन में अगर आप १० बार मिलते हैं तो एक बार हाथ मिलाना काफ़ी है दूसरी बार सिर्फ़ सिर हिलाने से ही काम चल सकता है. निगे का कहना है कि साथ-साथ रहने वालों के लिए यह जरूरी नहीं है कि वे हाथ मिलायें. न ही अपने पड़ोसियों के साथ हाथ मिलाना ज़रूरी है. अगर बहुत से लोग किसी हाल में एकत्रित हैं किसी एक से हाथ मिलाना इस बात का प्रतीक मान लिया जाना चाहिए कि सब से हाथ मिलाया जा रहा है जिस तरह से एक आर्केस्ट्रा का संचालक पहले नंबर के वायलन वादक से हाथ मिलाता है जिस का अर्थ यह होता है कि वह आर्केस्ट्रा के सभी सदस्यों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त कर रहा है.

राष्ट्रकुल सम्मेलन : बेचारों का भाईचारा

लंदन में २८ देशों के राष्ट्रपतियों, प्रधानमंत्रियों और उन के वरिष्ठ प्रतिनिधियों के सम्मेलन के लिए रवाना होने के एक दिन पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने **दिनमान** के प्रतिनिधि से अपनी विशेष भेंट के दौरान यह तो स्वीकार किया कि "कुल मिला कर राष्ट्रकुल का एक विचार-विनिमय मंच से अधिक महत्व नहीं है", लेकिन इस से भारत के बाहर निकल आने के प्रश्न को उन्होंने इस के बहुसंख्य "अफ्रेशियायी देशों के सर्वमत की शर्त" से जोड़ दिया. प्रतिनिधि ने श्रीमती गांधी का ध्यान, नयी दिल्ली की एक प्रेस कांफ्रेंस में 'राष्ट्रकुल और भारत की सदस्यता' के सिलसिले में उन के द्वारा व्यक्त किए गये उन विचारों पर केंद्रित करना चाहा जिन का सीधा संबंध राष्ट्रकुल के अस्तित्व से था. "१९४४ से चले आ रहे इस अंतरराष्ट्रीय संगठन के विघटन की ज़िम्मेदारी हम नहीं लेना चाहते लेकिन अगर अफ्रेशियायी देशों को यह महसूस होने लगता है कि इस की उपयोगिता खत्म हो चुकी है तो भारत सरकार इस में बने रहना भी नहीं चाहेगी", प्रधानमंत्री ने इस प्रतिनिधि को बताया और अंतरराष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित हो रही इस संस्था की उपयोगिता-अनुपयोगिता पर "यदि और लेकिन" की शब्दावली से हट कर विशेष कुछ कहने से इनकार कर दिया. राष्ट्रमंडल की सदस्यता के प्रश्न पर उच्च राजनैतिक क्षेत्रों की विचार-पद्धति से गहराई में परिचित होने की इच्छा से जब प्रतिनिधि ने केंद्रीय मंत्रिमंडल के पाँच अन्य वरिष्ठ सदस्यों से (उन के आग्रह को ध्यान में रख कर यहाँ उन के नाम नहीं दिए जा रहे हैं) विशेष भेंट आयोजित की तो पाया कि उन में से तीन मंत्री राष्ट्रकुल में भारत के बने रहने के विरोधी हैं. इन में से एक मंत्री ने, जो केंद्रीय मंत्रिमंडल के सब से पुराने सदस्य हैं, इस प्रतिनिधि को बताया कि "एक हद तक राष्ट्रमंडल की सदस्यता भारत की स्वतंत्र प्रभुसत्ता के सिद्धांत से बेमेल पड़ती है." दूसरे ने इस की निरर्थकता के पक्ष में यह दलील पेश की कि "ब्रितानी प्रधानमंत्री हेराल्ड विलसन ने १९६५ के पाकिस्तानी आक्रमण के समय जो भारत-विरोधी बयान दिया, उसे देखते हुए अब इसे विशिष्ट व्यक्तियों के एक क्लब से ज़्यादा महत्वपूर्ण नहीं समझा जाना चाहिए." तीसरे केंद्रीय मंत्री ने राष्ट्रकुल को "एक औपचारिक संगठन" क़रार दिया और उस व्यापक मोहभंग की स्थिति का उल्लेख किया जो "रोडेसिया जैसे महत्वपूर्ण मसलों पर इस की निरर्थकता से पैदा हुई है." शेष दो मंत्रियों ने मोट तौर पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की व्याख्या से सहमति व्यक्त की और न केवल विचार-विनिमय मंच के रूप में राष्ट्रकुल की उपयोगिता स्वीकार की, बल्कि "तब तक सीमित आर्थिक सहयोग के मंच के रूप में भी" इसे उपयोगी माना, जब तक "ब्रिटेन पूर्ण रूप से अपनी किस्मत को यूरोपीय साझा बाज़ार के मुल्कों की किस्मत से जोड़ने में सफल नहीं हो जाता."

इस तरह, पाँच जनवरी को जब लंदन हवाई अड्डे पर संवाददाताओं के इस प्रश्न के उत्तर में कि "क्या भारत राष्ट्रकुल से अलग होने की संभावना पर सोच रहा है", प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने यह कहा कि समाचारपत्रों ने उन के कथन को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किया है तो इस प्रतिनिधि के लिए इस निष्कर्ष पर पहुँचना लाज़िमी हो गया कि अपनी विशेष भेंट के दौरान, राष्ट्रकुल की सदस्यता के प्रश्न पर श्रीमती गांधी ने "लेकिन और यदि" की जिस शब्दावली का इस्तेमाल किया उस का संबंध राष्ट्रकुल की सार्थकता और निरर्थकता से उतना नहीं था जितना कि केंद्रीय मंत्रिमंडल के उन अंतर्विरोधों से था जिन से सीमित, किंतु निजी साक्षात्कार की कोशिश प्रतिनिधि ने की थी. प्रतिनिधि से अपनी बातचीत के दौरान प्रधानमंत्री ने यह संकेत भी दिया था कि राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन के लिए जो कार्य-सूची २८ देशों के वरिष्ठ अधिकारियों के सम्मिलित प्रयास से तैयार की जायेगी, उस में "भारतीय अधिकारियों की कोशिश तो यही रहेगी कि रोडेसिया के मसले को प्राथमिकता दी जाए", लेकिन लंदन हवाई अड्डे की प्रेस कांफ्रेंस में उन का यह कहना कि "मैं आशा करती हूँ कि सम्मेलन का विचार-विनिमय-क्षेत्र व्यापक होगा और केवल एक मसला—मसलन रोडेसिया का मसला ही—उस पर हावी नहीं हो जायेगा", श्रीमती गांधी के चाहे-अनचाहे इस भ्रम को बढ़ावा देता है कि भारत सरकार एक अजीबोग़रीब अनिर्णय की बंदी है जिस का नतीजा यह हुआ है कि एक ओर जहाँ रोडेसिया के सवाल पर अफ्रेशियायी देशों के प्रतिनिधियों को नाराज़ न करने के लिए विवश अनुभव करती है, वहाँ दूसरी ओर वह राष्ट्रकुल के सत्रहवें सम्मेलन के अध्यक्ष ब्रितानी प्रधानमंत्री हेराल्ड विलसन को भी खुश रखने की बाध्यता महसूस करती है.

दिनमान के प्रतिनिधि को केंद्रीय मंत्रालय के कुछ विश्वस्त सूत्रों से इस आशय के संकेत भी मिले हैं कि रोडेसिया की समस्या को प्राथमिकता देने न देने का सवाल जाने-अनजाने महती विश्व शक्तियों की मौजूदा सत्ता-राजनीति की व्यावहारिक समझदारी और समझौता-वृत्ति से जुड़ गया है. लंदन पहुँचने से पहले प्रधानमंत्री का पड़ाव मास्को था, जहाँ

दिनमान
समाचार-साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — १२ जनवरी, १९६९
अंक २ — २२ पौष, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट	११
*	
मत और सम्मत	३
पिछला सप्ताह	४
पत्रकार-संसद्	५
चरचे और चरखे	१०
परचून	४२
*	
राष्ट्रीय समाचार	१३
प्रदेशों के समाचार	१९
विश्व के समाचार	३०
समाचार-भूमि : राष्ट्रकुल	२८
खेल और खिलाड़ी	२६
*	
प्रेस-जगत् : अमियकांत मुकर्जी	६
मतदान : निष्पक्षता की ख़ातिर	७
शारीर : भारत शारीर समाज का वार्षिक सम्मेलन	८
आंदोलन : नैनी जेल में लाठी चार्ज	९
राजनैतिक दल	१६
मध्यावधि	१८
संदर्भ : सीमापार व्यापार	३५
पुरातत्व : ईंट, रोड़े और मूर्तियाँ	३६
विज्ञान : मस्तिष्क की गहराइयों की खोज	३८
स्वांग : लादिस्लाव फियालका	३९
किताबें : सीलन	३९
कला : मक़बूल फ़िदा हुसैन, सूरज सदन	४०

*

आवरण चित्र : ईरान के शहंशाह और शाहबानू का राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन द्वारा स्वागत
(फ़ोटो : गुरुदत्त)

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

सोवियत प्रधानमंत्री श्री कोसीगिन की अनुपस्थिति में श्रीमती गांधी के स्वागत में प्रथम उप-प्रधानमंत्री मोजुरोव और सोवियत आयोजन आयोग के अध्यक्ष श्री वैवकोव उपस्थित थे. नई दिल्ली और मास्को के सामान्य राजनैतिक क्षेत्रों में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और सोवियत स्वागतार्थी नेताओं की बातचीत के केंद्र में "सोवियत-भारत आर्थिक संबंधों" को रखा जा रहा है—खुद प्रधानमंत्री ने 'वी. आई. पी. लाउंज' में पूरे चालीस मिनट की बातचीत की समाप्ति के बाद संवाददाताओं की अनेक जिज्ञासाओं का उत्तर सिर्फ़ यह कह कर दिया कि "पश्चिमेशिया की स्थिति पर सरसरी तौर पर विचार हुआ, लेकिन भारत-पाक-स्थिति पर विचार न हो कर सोवियत संघ और भारत के आर्थिक संबंधों पर ध्यान केंद्रित किया गया." लेकिन इस प्रतिनिधि को केंद्रीय मंत्रालय के विश्वस्त सूत्रों ने बताया कि सोवियत पक्ष ने प्रधानमंत्री से अपनी बातचीत के दौरान राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन की कार्य-सूची के बारे में भी कुछ सुझाव दिए. सोवियत पक्ष का आग्रह यह नहीं था कि रोडेसिया की समस्या को ले कर ब्रिटेन को कटघरे में न खड़ा कराया जाय; उन का आग्रह शायद यह था कि भारतीय पक्ष इस बात का ध्यान रखे कि रोडेसिया की बहस कहीं पश्चिमेशिया की बहस को एकदम बेमानी न कर दे. क्यों कि अगर ऐसा होता है तो लेबनान के हवाई अड्डे पर हाल की इस्राइली बमबारी की निंदा में महती विश्व शक्तियों का जो सर्वमत तैयार हुआ है, उस की धार कुंठित-सी हो जायेगी.

महत्त्वपूर्ण की महत्त्वहीनता : प्रत्याशित ही था, बहस के बाद राष्ट्रकुल के २८ देशों के प्रतिनिधि-मंडल ने १९४४ से अब तक के सब से भीड़भरे इस सम्मेलन की कार्यसूची में वरीयता के क्रम से रोडेसिया की समस्या पर विचार-विनिमय को दूसरे नंबर पर डाल दिया. ब्रिटेन, सिंगापुर, मलयेसिया, मलावी और राष्ट्रकुल के कुछ प्राचीन सदस्य-राष्ट्रों के अधिकारियों का आग्रह था कि कार्य-सूची को अंतिम रूप देते वक़्त इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि रोडेसिया की समस्या को ले कर होने वाली बहस समूचे विचार-विमर्श को ही कहीं तिक्त और रिक्त न कर डाले. इस के विपरीत, जांबिया, तांजानिया और उगांडा जैसे देशों के प्रतिनिधि-मंडल के नेतृत्व में कुछ अफ़्रीकी और कैरिबियन देशों के प्रतिनिधि-मंडल का आग्रह था कि रोडेसिया की समस्या से संबद्ध बहस को प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्यों कि कहीं ऐसा न हो कि यह बहस समय-सीमा का शिकार हो जाये और इस बार इस पर मुक्त विचार-विनिमय संभव न हो सके. इस तरह, ६ जनवरी को लंदन में राष्ट्रकुल के महासचिव श्री अर्नोल्ड स्मिथ की अध्यक्षता में जब सत्रहवें सम्मेलन की कार्य-सूची संबद्ध देशों के प्रतिनिधि-मंडलों ने ९० मिनट की माथा-पच्ची के बाद तैयार की तो 'विश्व-स्थिति पर सामान्य बहस' को पहला स्थान, 'रोडेसिया की समस्या पर बहस' को दूसरा स्थान और इस वरीयता-क्रम में 'विश्व आर्थिक स्थिति पर बहस' को तीसरा स्थान मिला. आर्थिक स्थिति पर बहस को सामान्य से थोड़ा अलग ले जाने के उद्देश्य से इस के दायरे में व्यापार और सहायता-पद्धति, यूरोपीय साझा बाज़ार, स्टर्लिंग का भविष्य तथा कुछ अन्य मुद्रा-समस्याओं को भी ले लिया गया. कार्य-सूची में इस बात की व्यवस्था कर दी गयी है कि बहस के पहले दौर में वीएतनाम, पश्चिमेशिया, दक्षिण अफ़्रीका, दक्षिण-पूर्वेशिया और कैरिबियन देशों से संबद्ध समस्याओं पर विचार हो सके.

सितंबर १९६६ के सम्मेलन और उस के लगभग २८ माह बाद जनवरी १९६९ के इस सम्मेलन के बीच जो अपरिभाषित अंतरराष्ट्रीय राजनैतिक कालांश बिखरा पड़ा है, उस को परिभाषित करने की आशा ७ जनवरी से १५ जनवरी तक लंदन के 'मार्लबरो हाउस' में विचार-विनिमय में तल्लीन देशों के प्रधानमंत्रियों और राष्ट्रपतियों तथा ४ देशों—पाकिस्तान, केन्या, नाइजीरिया और घाना के प्रधानों का प्रतिनिधित्व कर रहे वरिष्ठ मंत्रियों से सहज ही की जा सकती थी. लेकिन सितंबर १९६६ के सम्मेलन की, जिस में अफ़्रीकी देशों के प्रतिनिधियों का यह आग्रह भी नहीं माना गया कि ब्रिटेन समय-सीमा में भले ही न बंधे, इस बात की सामान्य घोषणा ज़रूर कर दे कि रोडेसिया में बहुमत का शासन क़ायम करने में वह बल-प्रयोग भी कर सकता है; अनुपलब्धियों को देखते हुए यह आशा निराशा की सरहद-सी लगने लगी है. फिर भी, 'ज़िम्बाब्वे सालिडैरिटी ऐक्शन कमेटी' और 'ब्लैक पीपुल्स एलाएंस' द्वारा मार्लबरो हाउस के—जिस के वातानुकूलित कक्ष में, सॉनफ्रांसिस्को में १९४५ में आयोजित संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलन से ले कर अब तक के किसी सम्मेलन में उपस्थित होने वाले प्रधानमंत्रियों की संख्या से अधिक संख्या में उपस्थित प्रधानमंत्री विचार-विमर्श कर रहे होंगे—सामने धरने और प्रदर्शनों की घटनाएँ अपने मूल में इसी आशा को सँजोये हुई हैं, वे मानव-गौरव के लिए लड़ी गयीं और लड़ी जा रही उन लड़ाइयों की अभिव्यक्तियाँ हैं जिन्हें जारी रखने की घोषणाएँ संयुक्त राष्ट्र की ओर से अक्सर की जाती रही हैं और इस के घोषणा-पत्र में आस्था का इज़हार राष्ट्रकुल के २८ देशों के प्रतिनिधि भी करते रहते हैं. इन प्रदर्शनों के बिलकुल समांतर लेकिन कुछ अपवादों को छोड़ कर इन के समीप वे स्मरण-पत्र, विरोध-प्रदर्शन भी हैं जिन का संबंध ब्रिटेन में बसे अफ़्रेशियायी नस्ल के लोगों तथा अफ़्रीका में ब्रितानी पारपत्रधारी एशियायी नस्ल के उन लोगों से है जिन्हें संबद्ध देशों से निर्वासित किया जा रहा है लेकिन जिन्हें ब्रिटेन की मौजूदा लेबर सरकार द्वारा लागू किए गए आव्रजन अधिनियम के कारण वहाँ प्रवेश नहीं करने दिया जा रहा है या कि प्रति वर्ष १५०० आव्रजन दर की ओट से उखड़े लोगों की ज़िंदगी बसर करने पर मजबूर किया जा रहा है. नाइजीरिया की संघीय सरकार के जनरल गोवोन की नाराज़ी को देखते हुए बिअफ़्रा के नागरिकों की सामूहिक हत्या के प्रश्न को भी मानव-गौरव की इसी लड़ाई के प्रश्न से जोड़ कर देखा जाना चाहिए था लेकिन कार्य-सूची में उस का शामिल न किया जाना इस आलोचना को महत्त्वपूर्ण बनाता है, महामंत्री अर्नोल्ड स्मिथ की इस चेतावनी के बावजूद कि सत्रहवें सम्मेलन की विशिष्टता को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, कि राष्ट्रकुल के देशों के प्रतिनिधि मानव नियति से साक्षात्कार करने का साहस नहीं बटोर पा रहे हैं. बहुत संभव है कि तांजानिया और जांबिया के प्रधान, जिन्होंने बिअफ़्रा की स्वतंत्र राष्ट्रीय प्रभुसत्ता स्वीकार की है, 'विश्व-स्थिति पर सामान्य बहस' के दौरान इस समस्या पर भी बोलें, लेकिन शायद ही वह विषयांतर से अधिक कुछ बन सकेगा. इसी तरह, पाकिस्तानी विदेशमंत्री श्री अर्शाद हुसेन कश्मीर और फरक्का का सवाल भी उठा सकते हैं जो सही मायने में विषयांतर होगा.

अब तक प्राप्त समाचारों के अनुसार, ब्रितानी प्रधानमंत्री श्री हैरल्ड विल्सन अपना संक्षिप्त स्वागत भाषण दे चुके हैं. ब्रितानी विदेशमंत्री माइकेल स्टुअर्ट की अध्यक्षता में विश्व राजनीति की सामान्य स्थिति पर बहस शुरू हो गयी है. लंदन से प्राप्त एक समाचार के अनुसार, इस बहस का समय कुछ घटाने के लिए प्रयास चलाया जा रहा है ताकि भूतपूर्व राष्ट्रकुल सचिव और अब बिना विभाग के मंत्री जार्ज टामसन के भाषण के साथ रोडेसिया की समस्या पर बहस शुरू की जा सके. इस बीच नैरोबी से यह समाचार भी प्राप्त हुआ है कि पूर्व अफ़्रीका से हज़ारों की संख्या में ब्रिटेन पहुँचने की घड़ी का बेसब्री और दहशत से इंतज़ार कर रहे आप्रवासियों में अपने मूल देश में बसने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देने के लिए ब्रितानी सरकार ने आर्थिक सहायता देने के इर्द-गिर्द सोचना शुरू कर दिया है. लंदन में गृह मंत्रालय के अधिकारियों ने इस समाचार को निराधार बताया है लेकिन एक समाचार के अनुसार ब्रिटेन के राजनैतिक क्षेत्रों में इस संभावना पर विचार किया जा रहा है.

गणराज्य विशेषांक

दिनमान के गणराज्य विशेषांक (२६ जनवरी) में देश की वर्तमान राजनैतिक अवस्था के संदर्भ में विद्यार्थियों के राजनैतिक उपयोग का विश्लेषण किया गया है. आप चाहे एजेंट हों या विद्यार्थी अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करा लें.

राष्ट्र

भारत-ईरान

विशिष्ट अतिथि : स्पष्ट दृष्टि

दुनिया का राजनैतिक नक़्शा तेज़ी से बदल रहा है. जो देश सैनिक संधियों के ज़रिये किसी वाहरी शक्ति के दामन से चिपके हुए थे उन में से अनेक, ख़ास कर 'स्वतंत्र' दुनिया के कुछ देश, राजनैतिक गुलामी का जुआ उतार कर फेंक रहे हैं. इसे नये सिरे से अपना वजूद पहचानने की कोशिश कहा जा सकता है. ईरान एक ऐसा ही मुल्क है जिस के शाह दूर के दोस्तों पर निर्भर न रह कर पड़ोसियों से स्वतंत्र संवंध क़ायम कर रहे हैं. ईरान के शहंशाह रज़ा पहलवी आर्य मेहर का भारत-आगमन इसी तलाश का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है जिसे ईरान और भारत दोनों देशों में उचित महत्त्व दिया जा रहा है.

अमेरिकी दोस्ती वरक़रार रखते हुए शहंशाह ने पहले अपने वड़े पड़ोसी रूस की दोस्ती का हाथ पकड़ा और अब पाकिस्तान से अपने निकट संवंध के वावजूद भारत की दोस्ती के लिए हाथ वढ़ाया है. खनिज तेल की रायल्टी ईरान को आर्थिक दृष्टि से आगे वढ़ाने में सहायक रही है और सोवियत संघ ईरान में इस्पात कारख़ाना वनाने जा रहा है, फिर भी ईरान को ऐसे दोस्त की तलाश है जो ईरानी उत्पादन के लिए वाज़ार भी मुहैया करे और जो सामान्य औद्योगिक विकास में ईरान की सहायता भी कर सके. भारत उस की ये दोनों ज़रूरतें पूरी कर सकता है. उसे ईरान के तेल और तेल-जनित पदार्थों की आवश्यकता है और वह उद्योगों की स्थापना में, ख़ास कर इंजीनियरी उद्योग के मामले में ईरान की सहायता कर सकता है.

भारत आने पर पालम हवाई अड्डे पर शहंशाह और मलका शाहवानू फ़र्रा का शानदार स्वागत हुआ. उन्हें तोपों की सलामी दी गयी, और हवाई अडडे से राष्ट्रपति भवन तक मार्ग के दोनों ओर जुड़े लोगों ने उन का जय-जयकार किया. पहला दिन औपचारिक वातचीत और भोज-समारोह में गुज़र गया. अगले दिन लगभग ४५ मिनट तक प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और शहंशाह की अकेले में वात हुई. उस के वाद दोनों पक्षों के सलाहकार भी आ गये. फिर सभी लोग कोई डेढ़ घंटे तक साथ रहे. दोनों देशों के समान हितों से ले कर अंतरराष्ट्रीय प्रश्नों पर वातचीत हुई और ख़याल है कि १३ जनवरी को शहंशाह की विदाई से पहले तकनीकी सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर हो जायेंगे. ईरान और भारत के प्रतिनिधि इस वात पर सहमत हो गये हैं कि ईरान भी भारत से लगभग उतना ही माल मँगाये जितना कि वह भेजे (भारत अभी आयात की अपेक्षा निर्यात कम करता है). टाटा उद्योग समूह द्वारा प्रस्तावित मीठापुर उर्वरक कारख़ाने के वारे में भी वातचीत हुई. विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि प्रस्तावित योजना में कुछ परिवर्त्तन कर के उसे जल्द ही अंतिम रूप दे दिया जायेगा जिस से कि शहंशाह यह ख़ुशी ले कर लौट सकें कि भारत को ईरान के द्रव अमोनिया की सचमुच ज़रूरत है. (प्रस्तावित कारख़ाने के लिए ईरान से द्रव अमोनिया मँगाने की वात थी; इस समय ईरान की वहुत-सी प्राकृतिक गैस जला दी जाती है क्यों कि अमोनिया द्रव की माँग उतनी नहीं है.)

इधर प्रधानमंत्री राष्ट्रकुल सम्मेलन के के लिए रवाना हुईं और उधर शहंशाह पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार शिकार और औद्योगिक तीर्थों के लिए रवाना हो गये. वह और मलका शाहवानू १३ जनवरी को स्वदेश रवाना हो जायेंगे.

ईरान के शहंशाह काफ़ी सुलझे हुए व्यक्तित्व के स्वामी हैं. नपे-तुले शब्दों में नपी-तुली वातें करना उन का ख़ास गुण है. शनिवार को संवाददाता सम्मेलन में उन्होंने जिस तरह नपे-तुले और सधे हुए जवाव दिये उस से उन के व्यक्तित्व की एक झलक मिल ही जाती है.

भारत-कश्मीर: ईरान के शाह ने नयी दिल्ली में अपने प्रेस-सम्मेलन में भारत-पाकिस्तान संवंधों को एक नये सिरे से पकड़ने का प्रयत्न किया. उन्होंने कहा कि भारत और पाकिस्तान के आपसी संवंध दोनों देशों की निजी समस्याएँ हैं जिन का हल भी केवल उन्हीं पर निर्भर करता है. लेकिन अगर दोनों देश यह चाहते हैं कि मैं कोई मध्यस्थता करूँ तो मैं इस के लिए तैयार हूँ. ईरान के शाह के इस कथन के वहुत-से अर्थ लगाये जा रहे हैं. एक अनुमान यह है कि महीना-भर पहले जव वह पाकिस्तान के प्रेज़िडेंट अय्यूव के मेहमान थे तव उन से प्रज़िडेंट ने यह इच्छा ज़ाहिर की थी कि वह भारत

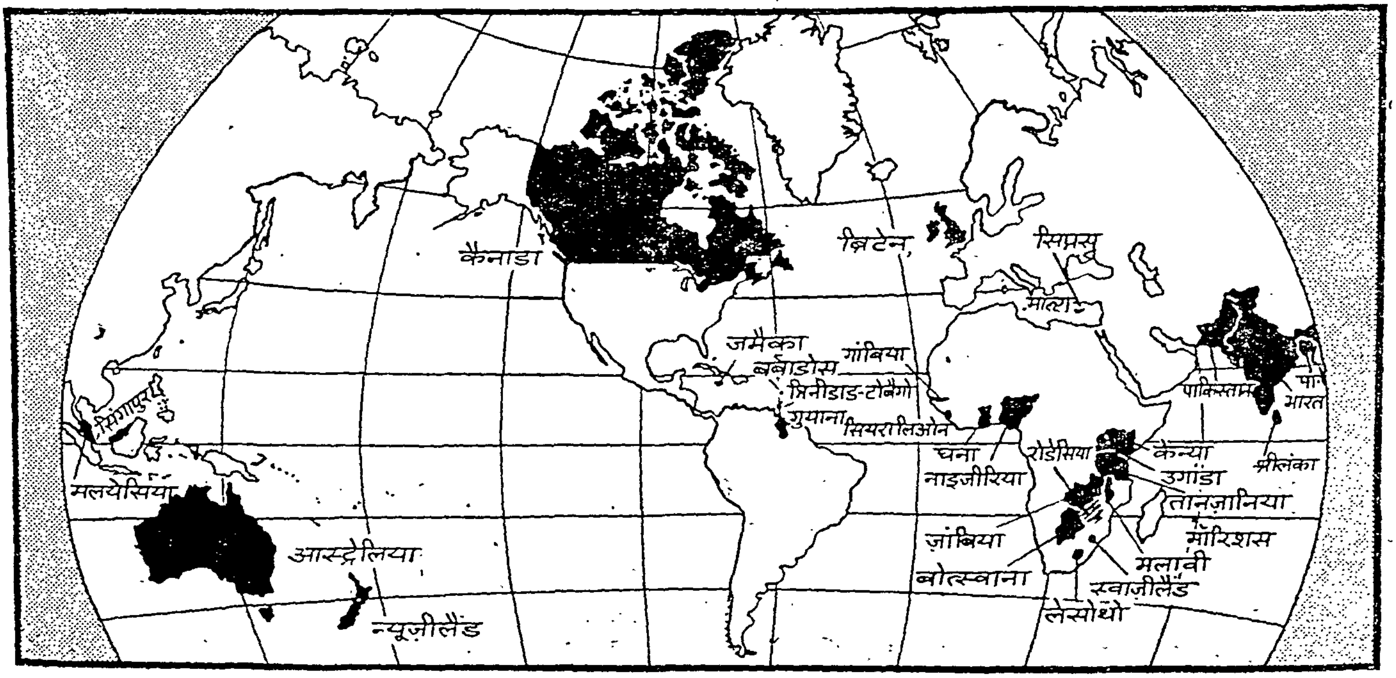

राष्ट्रकुल के सदस्य-देश (देखिए : विशेष रिपोर्ट और समाचार-भूमि)

पालम हवाई अड्डे पर शाह और मलका की अगवानी

और पाकिस्तान के बिगड़ते हुए संबंधों को सुधारने मे सहायता करें. लेकिन यह केवल एक अनुमान ही है क्यों कि ईरान के शाह ने मध्यस्थता की बहुत अधिक इच्छा नहीं दिखायी. बल्कि उन का आग्रह यही था कि दोनों देश अपनी समस्या मिल कर स्वयं सुलझाएँ. एक और प्रश्न के पूछे जाने पर उन्होंने भारत और पाकिस्तान के बारे में अपनी तटस्थता का इजहार करते हुए कहा कि ईरान संयुक्त-राष्ट्र संघ के प्रस्तावों को उचित मानता है. संयुक्तराष्ट्र संघ ने समय-समय पर भारत और पाकिस्तान के बारे मे अनेक प्रस्ताव पास किये है जिन में से कुछ भारत के विरुद्ध पडते है; केवल एक, १९४८ के प्रस्ताव मे, संयुक्तराष्ट्र ने पाकिस्तान से यह कहा था कि वह उन कश्मीरी इलाकों को खाली करे जिन पर कि उस ने क़ब्जा कर लिया है. लेकिन बाद में सुरक्षा परिषद् में कश्मीर की समस्या पर कई बार विचार हुआ और पिछले ७ वर्षों में इस संबंध में जो भी मंतव्य व्यक्त किये गये है वे भारत के लिए बहुत सहायक नहीं है. इस लिए यह मानने का कोई कारण नहीं कि ईरान के शाह पाकिस्तान के प्रति अपनी मैत्री को शिथिल करने के लिए तत्पर है. यह जरूर है कि वह भारत की मैत्री भी हासिल करने के लिए उत्सुक जान पड़े. उन्होंने कहा कि पाकिस्तान से हमारे संबंध अच्छे है, इस का यह मतलब नहीं कि भारत के साथ हमारा बिगाड़ हो. उन से पाकिस्तान, तुर्की और ईरान के प्रादेशिक संघ के बारे में प्रश्न किया गया था. उन्होंने कहा कि यह प्रादेशिक संघ केवल आर्थिक हितों के लिए गठित किया गया है और यह किसी अन्य देश के विरुद्ध उन्मुख नही है, चाहें तो और भी देश इस प्रादेशिक संघ में शामिल हो सकते है.

समाचारपत्र : प्रेस सम्मेलन की शुरुआत में ही ईरान के शाह ने अपनी आधुनिक दृष्टि और शिक्षित पृष्ठभूमि का परिचय दिया. उन्होंने लोकतंत्र और प्रेस दोनों को एक-दूसरे का पर्याय बताते हुए कहा कि स्वाधीन समाचारपत्रों के बिना लोकतंत्र की कल्पना भी नही की जा सकती, लेकिन प्रेस की स्वाधीनता और प्रेस की निरंकुशता दो अलग-अलग चीज़ें है. शाह ने कुछ पश्चिमी देशों के समाचारपत्रों की निरंकुशता की ओर इशारा करते हुए कहा कि दरअस्ल वहाँ लोकतंत्र और समाज दोनों एक गहरे संकट में से गुजर रहे है—प्रेस की निरंकुशता वहाँ की स्थिति का ही प्रतिफलन है. भारतीय समाचारपत्रों की सराहना करते हुए उन्होंने कहा कि मैं भारतीय समाचारपत्रों से परिचित हूँ. उन का स्वरूप गंभीर है और उन में गहरी अर्थवत्ता है. बहुत हद तक वे तटस्थ और जिम्मेदार पत्र हैं. शाह की यह सराहना संवाददाताओं के लिए विशेष रूप से विस्मयकारी थी, क्यों कि इस के तीन दिन पहले ही अपने प्रेस सम्मेलन में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी भारतीय समाचारपत्रों की तीखी आलोचना कर चुकी थी और उन्होंने संवाददाताओं को सलाह दी थी कि वे अच्छी रिपोर्टिंग करें.

जीविका का साधन : एक और प्रश्न के उत्तर में भी ईरान के शाह ने अपनी आधुनिक दृष्टि का परिचय दिया. शाह से पूछा गया था कि भारत के भूतपूर्व नरेशों के प्रिवी पर्स के विषय में उन की क्या राय है. शाह ने उत्तर दिया कि जमाना बदल गया है और शासकों को यह समझना चाहिए कि साधारण आदमी और शासक के बीच अंतर जितना ही कम होगा उतना ही शासक के लिए अच्छा होगा. शाह ने बताया कि मैं ने अपनी संपत्ति राष्ट्र को दे दी है. उन्होंने कहा कि अगर भारत के भूतपूर्व नरेश स्वेच्छा से अपनी संपत्ति देश को दे दें तो यह ज़्यादा अच्छा होगा—मगर बहुत कुछ इस पर निर्भर करता है कि क्या उन के पास जीविका का कोई और साधन है. शाह का इशारा इस ओर था कि भारत के भूतपूर्व नरेशों को प्रिवी पर्स पर निर्भर न कर कुछ और उद्योग करना चाहिए और लोकतंत्र के सामान्य नागरिक की हैसियत से हिस्सा अदा करना चाहिए.

बहरीन : बहरीन के विवादास्पद प्रश्न पर ईरान के शाह ने पहली बार नीति-वक्तव्य दिया. उन्होंने कहा कि डेढ़ सौ साल पहले बहरीन ईरान का हिस्सा था. बाद में अंग्रेजों ने उसे अलग कर दिया. अब अंग्रेज वहाँ से खुले दरवाजे से बाहर चले गये है लेकिन चोर दरवाजे से वापस आना चाहते हैं. उन्होंने कहा कि मैं इसे अच्छी स्थिति नही मानता. न्याय तो यही कहता है कि बहरीन ईरान का है, लेकिन मैं किसी भी इलाक़े को जोर-जबर्दस्ती अपने देश में शामिल करने का पक्षपाती कभी नहीं रहा. अगर बहरीन की जनता ईरान में शामिल नही होना चाहती तो हमारा इस पर कोई आग्रह नही. उस भू-भाग को ले कर हम करेंगे भी क्या जहाँ जनता हमारे विरुद्ध हो. ऐसे भू-भाग पर क़ब्जा करना स्वयं अपने लिए सिरदर्द मोल लेना है. हमारी सारी शक्ति वहाँ की जनता को दबाने और कुचलने में ही लगी रहेगी. मैं लोगों की भावनाओं और इच्छाओं को कुचलने मे यकीन नही रखता.

चीन : चीन के विषय में शाह ने कहा कि ईरान की राय यह है कि चीन को संयुक्तराष्ट्र संघ में शामिल किया जाना चाहिए, यद्यपि अभी तक चीन और ईरान के बीच राजनयिक संबंध नहीं है. एक संवाददाता ने पूछा कि चीन की विस्तारवादी नीति के बारे में आप की क्या राय है ? शाह ने उत्तर दिया कि इस संबंध मे आप मुझ से ज्यादा अच्छी तरह जानते है. उन्होंने कहा कि चीनी नीति के अंतरराष्ट्रीय प्रतिफलन उस की राष्ट्रीय नीतियों के ही प्रतिफलन है. शाह का मतलब यह था कि चीन अपने राष्ट्रीय हितों को दृष्टि में रख कर ही विस्तारवादी मंसूबे बना रहा है. ईरान के शाह ने सोवियत रूस के साथ अपने बदले हुए संबंधों की भी चर्चा की. उन्होंने कहा कि सोवियत रूस के साथ हम ने अपनी सीमा समस्याएँ सुलझा ली हैं और सोवियत रूस ने ईरान में एक इस्पात कारखाना भी बनाया है. यह पूछे जाने पर कि कुछ वर्ष पहले ईरान की प्रति व्यक्ति आय १२० डॉलर थी और आज २७५ डॉलर है—इस समृद्धि का कारण क्या है ? शाह ने उत्तर दिया कि ईरान ने तेल से अर्जित अपनी आय विदेश नहीं जाने दी है. यद्यपि हम जितना अर्जित करते है उतना खर्च हो जाता है, लेकिन हमारा धन विदेश नही जाता. इस कारण हमारी आर्थिक समृद्धि की गति तेज हो सकी है.

जनरल बख़्तियार : ईरान के शाह ने जनरल बख़्तियार के सवाल पर भी पहली बार प्रकाश

नागरिक अभिनंदन समारोह में दिल्ली के मेयर हंसराज गुप्त, आर्यमेहर और शाहबानू : स्वागत संगीत

डाला. कुछ साल पहले जनरल बख्तियार ईरान के शाह के बहुत विश्वासपात्र थे और उन्होंने ईरान में साम्यवादी क्रांति का दमन किया था. लेकिन थोड़े ही दिनों बाद वह ईरान से भाग निकले और लेबनान में जा बसे. शाह से पूछा गया था कि ऐसा क्या कुछ हुआ कि जनरल बख्तियार को देश छोड़ना पड़ा और ईरान की सरकार ने उन पर मुक़द्दमा चलाने का निर्णय किया. शाह ने बताया कि जनरल बख्तियार अपनी सफलता पर मुग्ध हो कर खुद शाह का तख्ता उलटने की साजिश कर रहे थे. जब शाह को यह पता चला तो वह लेबनान भाग गये. जनरल बख्तियार के पास बहुत पैसा है और उन्होंने धन के बल पर लेबनानी समाचारपत्रों का सहयोग हासिल कर लिया है. यद्यपि लेबनान की सरकार उन को अपराधी मानती है वहाँ के समाचारपत्र उन का समर्थन करते हैं. अब मैं ने लेबनान की सरकार से यह आग्रह किया है कि वह जनरल बख्तियार को ईरान सरकार के हवाले कर दे ताकि उन के विरुद्ध कार्रवाई की जा सके.

भारत-चीन

सद्भावना, हाँ; समाधान, नहीं

"ज़िंदगी में सवालों का सीधा जवाब नहीं हो सकता". प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने नये वर्ष की अपनी पहली प्रेस कांफ्रेंस में संवाददाताओं की अनेक जिज्ञासाओं के उत्तर में कहा और फिर हर्षध्वनि के बीच उन के लिए नये वर्ष के बेहतर संवाद-वर्ष की कामना के साथ उन की कार्य-प्रणाली की आलोचना भी प्रस्तुत कर दी. "प्रेस हमेशा सीधे जवाबों पर नज़र रखता है और ग़लत जवाब उस के हाथ आते हैं". शीत लहरी में डूबी राजधानी की इस नये वर्ष की प्रेस कांफ्रेंस में गरमी उस समय आयी जब प्रधानमंत्री ने संवाददाताओं को यह सूचना दी कि भारत चीन के साथ अपने विवाद सुलझाने के लिए प्रयास करने को तैयार है बशर्ते इस से उस के राष्ट्रीय सम्मान और हितों पर आँच न आये. "विवाद के समाधान का तरीक़ा क्या हो सकता है, मैं नहीं जानती", प्रधानमंत्री ने कुछ अपने को और कुछ संवाददाताओं को संबोधित करते हुए कहा. जब एक संवाददाता ने जानना चाहा कि क्या प्रधानमंत्री के कथन का यह अर्थ लगाया जाये कि भारत अब चीन के साथ अपने विवाद सुलझाने के लिए कोलंबो-प्रस्ताव की पूर्व-स्वीकृति की शर्त पर ज़ोर नहीं देने जा रहा है, तो उन्होंने हाज़िरजवाबी की मुद्रा में कहा कि मेरे कथन का यह आशय नहीं है. जहाँ तक मैं समझती हूँ इस प्रश्न का सीधा उत्तर चाहना ग़लत होगा. "न केवल इस से चीन के के साथ हमारे विवाद नहीं सुलझेंगे, बल्कि इस से उन प्रयासों को भी धक्का लगेगा जिन का संबंध इस विवाद के समाधान से हो सकता है".

प्रेस कांफ्रेंस को प्रश्नोत्तर की परिधि से जिज्ञासा के केंद्र में ले जाते हुए जब एक अन्य संवाददाता ने प्रधानमंत्री के इस कथन को फिर कोलंबो-प्रस्ताव के संदर्भ से जोड़ना चाहा तो श्रीमती गांधी ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत-चीन-विवाद पर हमारे विचार सब को ज्ञात हैं, लेकिन यदि हम किसी समस्या का समाधान निकालना चाहते हैं तो हमें पूर्वग्रह को सतह पर नहीं आने देना चाहिए. प्रधानमंत्री के इस कथन से खिन्न हो कर जब एक संवाददाता ने साम्यवादी चीन को भारत का 'सब से बड़ा शत्रु' घोषित किया तो उसे यह सलाह मिली कि "मैं नहीं समझती कि इस प्रकार की बहस से समस्या के समाधान में कोई मदद मिलती है".

संवाद बनाम शक्ति-परीक्षण : नये वर्ष की इस महत्त्वपूर्ण प्रेस कांफ्रेंस में उस समय अतिरिक्त गरमी भर आयी जब एक संवाददाता ने प्रधानमंत्री से जानना चाहा कि भारत और चीन के संबंध में वह संवाद की संभावना अधिक देखती हैं या कि शक्ति-परीक्षण की संभावना को अधिक बुनियादी मानती हैं. प्रधानमंत्री ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह शक्ति-परीक्षण शब्द के प्रयोग के पक्ष में नहीं हैं. क्यों कि एक तो यह शब्द अपरिभाषित है और दूसरे अंतर-राष्ट्रीय संदर्भों से अलग उठा कर इस पर कोई बहस नहीं चलाई जा सकती. क्यों कि प्रधानमंत्री ने इस प्रेस कांफ्रेंस में स्वीकार नहीं किया था कि रावलपिंडी और पीकिङ-स्थित अपने दूतावासों के ज़रिये भारत पाकिस्तान और चीन की सरकारों से वार्त्ता के ज़रिये महत्त्वपूर्ण विवादों के समाधान के लिए प्रयास करता रहा है और उन्होंने केवल इस बात का संकेत दिया था कि पाकिस्तान से संवाद चलाने के लिए कोई उपयुक्त व्यवस्था की बात सोची जा सकती है, इस लिए कुछ संवाददाताओं ने जानना चाहा कि क्या भारत सरकार इस दृष्टि से चीन में अपने मौजूदा प्रतिनिधि का स्तर राजदूत के स्तर पर ले जाने की दिशा में सोच रही है. श्रीमती गांधी का उत्तर नकारात्मक था. इसी तरह नगा और मिज़ो विद्रोहियों को चीन से प्राप्त हो रही सहायता के संदर्भ पर जब उन का ध्यान केंद्रित किया गया तो उन्होंने इसे वर्त्तमान स्थिति का अंग बताया और समस्या को उस के समूचे संदर्भ में देखे जाने का आग्रह किया. जब एक संवाददाता ने यह सवाल किया कि क्या अतीत की घटनाओं को भुला कर वह चीन के साथ संवाद चलाये जाने के पक्ष में हैं तो उन्होंने कहा कि अतीत की अवहेलना नहीं की जा सकती लेकिन समस्या के समाधान के लिए उपाय तो सोचे ही जाने चाहिएँ.

राजनैतिक क्षेत्रों में प्रधानमंत्री के चीन-संबंधी कथन को इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण समझा जा रहा है कि इस से नीति की नयी दिशा का संकेत मिलता है. वैसे चीन के संबंध में अपेक्षाकृत अधिक "उदार दृष्टिकोण" अपनाने की बात प्रधानमंत्री ने इस के पहले भी कई बार कही है. **नवंबर के महीने में दिनमान के प्रतिनिधि से अपनी विशेष भेंट के दौरान उन्होंने यह स्वीकार किया कि भारत और चीन के बीच १९६२ के चीनी आक्रमण से पैदा की गयी समस्या का सामरिक हल नहीं हो सकता. उन्होंने प्रतिनिधि को यह भी बताया कि क्यों कि भारत चीन और पाकिस्तान दोनों को ही आक्रामक मानता है और क्यों कि वह इस तथ्य के बावजद पाकिस्तान से बातचीत चला रहा है, इस लिए चीन से भी बातचीत चलाने में उसे कोई आपत्ति नहीं है—बशर्ते कि चीन भी दिलचस्पी दिखाये और आक्रामकता में गिरावट का परिचय दे.** (देखिए दिनमान, २४ नवंबर ६८, पृष्ठ ८-९) प्रतिनिधि से प्रधानमंत्री की बातचीत और नये

वर्ष की उन की इस प्रेस कांफ्रेंस के बीच लगभग डेढ़ माह का समय बिखरा पड़ा है और अब चीन की प्रतिक्रिया भी सामने आ चुकी है. एक रिपोर्ट के अनुसार पीकिङ के हाल के तीन प्रसारणों में नयी दिल्ली-स्थित चीनी दूतावास पर तिब्बती शरणार्थियों के हमले की तीखी आलोचना की गयी है और यह मत व्यक्त किया गया है कि "प्रतिक्रियावादी भारत सरकार हाल में चीन से अपने विवाद सुलझाने के लिए जो घोषणाएँ करती रही है वे छलपूर्ण हैं". राजनैतिक क्षेत्रों में चीन की इस प्रतिक्रिया का यह अर्थ लगाया जाना संभव ही है कि प्रधान-मंत्री इंदिरा गांधी द्वारा नये वर्ष के अवसर पर संबंध-सुधार की दिशा में की गयी घोषणा का चीन की दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है क्यों कि शायद वह सीमा-विवाद को सामरिक स्तर पर हल करने की अनिवार्यता में यकीन करने लगा है. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के महामंत्री श्री पी. सुंदरैय्या और दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के श्रीपाद अमृत डांगे ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की इस नयी पहल का स्वागत किया है लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया है कि चीन की सहज आक्रमकता को देखते हुए इस पहल का राजनैतिक स्तर पर क्या महत्त्व हो सकता है.

उद्योग

विकास की तस्वीर

उद्योगों के बारे में केंद्रीय सलाहकार परिषद् की बीसवीं बैठक का उद्घाटन करते हुए औद्योगिक विकासमंत्री फखरुद्दीन अली अहमद ने जब औद्योगिक और कृषि के क्षेत्रों में होने वाली लगातार प्रगति और अर्थ-व्यवस्था पर संतोष व्यक्त किया, तब उन के चेहरे की अनोखी आभा देखते ही बनती थी. उन्होंने घोषणा की कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था में निश्चित रूप से यह आगे बढ़ने वाला क़दम है. पिछले साल की अपेक्षा इस वर्ष औद्योगिक उत्पादन में ६ प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो काफ़ी तो नहीं कही जा सकती लेकिन इस से हौसला जरूर बुलंद होती है. मशीनी पुर्जो और सीमेंट आदि के निर्यात में इधर वृद्धि जरूर हुई है लेकिन इस इजाफ़े को यथेष्ठ नहीं माना जा सकता. देश की प्रगति के लिए यह जरूरी है कि कृषि और उद्योग का साथ-साथ सुधार हो. यह तभी संभव है जब लोगों को आधुनिक साज-सामान, उर्वरक आदि मुहैया किये जायें और कपास तथा जूट आदि की फ़सलों को व्यावसायिक फ़सलों का दर्जा दिया जाये. भारतीय चेंबर ऑफ़ कामर्स संघ के अध्यक्ष श्री जी. एम. मोदी श्री अहमद की आशावादिता के क़ायल जरूर हुए लेकिन उन्होंने धीमी आवाज में यह शिकायत भी दर्ज कर दी कि इस्पात के पाइप और ट्यूब आदि उद्योग काफ़ी दिनों से ढीले पड़े हुए हैं. इस बात को और आगे बढ़ाते हुए श्री जे. आर. डी. टाटा ने महसूस किया कि उद्योगों में अपेक्षाकृत विकास सरकारी ढिलाई के कारण नहीं हो पा रहा है. अगर सरकारी कर्मचारियों की फ़ाइलें आसानी से आगे सरकती जायें तब देश के औद्योगिक विकास में अभूतपूर्व वृद्धि हो सकती है. अन्न और कृषिमंत्री जगजीवनराम की उम्मीदी श्री अहमद की निस्बत दो क़दम आगे बढ़ गयी और उन्होंने बड़े ही दृढ़ लहजे में कहा कि इस बार कृषि का उत्पादन अच्छी मानसून के कारण ही नहीं हुआ बल्कि उस में भारतीय किसानों की अधिक मेहनत भी जुड़ी हुई है. जहाजरानी मंत्री श्री वी. के. आर. वी. राव का विश्वास था कि सरकारी और ग़ैर-सरकारी औद्योगिक क्षेत्रों में यथोचित विकास तभी संभव है जब देहाती बाजार को खूब बढाया जाये. श्री कांतिलाल जहाँ कूड़े और रद्दी चीज़ों के खाद रूप में उपयोग के पक्ष में थे वहाँ श्री जी. एल. बंसल का मत था कि औद्योगिक वृद्धि उस हद तक जरूर की जानी चाहिए जहाँ तक विदेशी मुद्रा की जरूरत महसूस न होती हो.

माध्यमिक शिक्षक

पंद्रह से चालीस

उत्तरप्रदेश के मुख्य सचिव और शिक्षकों के प्रतिनिधियों में हुए समझौते के फलस्वरूप अनुदान प्राप्त उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों की ३५ दिन पुरानी अनिश्चित-कालीन हड़ताल ५ जनवरी को समाप्त हो गयी. मुख्य सचिव से वार्त्ता के बाद माध्यमिक शिक्षक संघ की राज्य कार्यकारिणी तथा संघर्ष समिति की संयुक्त बैठक में समझौते की शर्तों पर विचार किया गया और सरकार के सद्-भावनापूर्ण रुख को देखते हुए हड़ताल बिना शर्त वापस लेने का निर्णय किया गया.

उत्तर प्रदेश सरकार ने भी बन्दीगृहों में बंद शिक्षकों की रिहाई का फ़ैसला कर लिया है. रिहाई शुरू भी हो गयी है और इलाहाबाद के छात्र नेता विनोद दुबे (देखिए पृष्ठ ९) भी मुक्त कर दिये गये हैं.

माध्यमिक शिक्षकों के साथ ही प्राथमिक शिक्षकों व के प्रतिनिधियों तथा मुख्य सचिव के बीच बातचीत हुई और सरकार ने अप्रशिक्षित तथा प्रशिक्षित शिक्षकों के वेतन में क्रमश: १० रुपये और १५ रुपये प्रतिमाह की वृद्धि करने का प्रस्ताव किया. उत्तरप्रदेश प्राथमिक शिक्षक संघ की संघर्ष समिति तथा ज़िला इकाइयों के पदाधिकारियों की आपत्कालीन बैठक में इस प्रस्ताव पर विचार किया गया जिस में सरकार के निर्णय का स्वागत करते हुए कहा गया कि यह वृद्धि अपेक्षा से कहीं कम है. अत: जब तक १५० रुपये प्रतिमाह न्यूनतम मूल वेतन तथा समुचित दर पर महँगाई भत्ते की माँग स्वीकार नहीं की जाती तब तक प्राथमिक शिक्षकों का ९६ दिन पुराना आंदोलन जारी रखने का निर्णय किया गया.

अखिल. भारतीय प्राइमरी शिक्षक संघ के अध्यक्ष हीरालाल पटवारी ने आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए २८ जनवरी के पहले दिल्ली में राष्ट्रीय ऐक्शन कमेटी की बैठक आयोजित करने का ऐलान किया है.

बढ़ा वेतन : माध्यमिक शिक्षक संघ और सरकार के बीच हुए समझौते के अनुसार माध्यमिक शिक्षकों, मुख्याध्यापकों और और प्रधानाचार्यों को तत्काल १५ रुपये से ले कर ४० रुपये तक लाभ होगा. उन के वेतनक्रम संशोधित किये जायेंगे. संशोधित वेतनक्रमों के अनुसार उन्हें राजकीय विद्यालयों के शिक्षकों के बराबर ही उच्चतम वेतन मिलेगा. समझौते के अनुसार ६० रुपये मूल वेतन पाने वाले जे. टी. सी. ग्रेड के शिक्षकों को आरंभ में २० रुपये का और अवकाश प्राप्त करने के समय ६० रुपये का लाभ होगा. सी. टी. ग्रेड के शिक्षकों को अब आरंभ में ७५ रुपये के बजाय १०० रुपये मूल वेतन मिलेगा और अवकाशप्राप्ति के समय उन्हें ५० रुपये अधिक मिलेंगे. प्रशिक्षित स्नातकों और एल. टी. ग्रेड के शिक्षकों को १२० रुपये के स्थान पर १३८ रुपये मूल वेतन मिलेगा और अधिकतम वेतन में उन्हें ५० रुपये का लाभ होगा. लेक्चरर ग्रेड के शिक्षकों को मूल वेतन में ४० रुपये अधिक मिलेंगे जब कि २२५ रुपये पाने वाले मुख्याध्यापकों को अब २४० रुपये प्रति माह मूल वेतन दिया जायेगा. प्रधानाचार्यों का मूल वेतन २५० रुपये से बढ़ा कर २७५ रुपये कर दिया जायेगा. इस के अतिरिक्त उन्हें महँगाई भत्ता भी पहले से अधिक मिलेगा.

राजनैतिक दल

दो पाटन के बीच में...

- मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं कांग्रेस के पूरे एक सप्ताह के विचार-मंथन की समाप्ति के बाद श्री ई. एम. एस. नंबूदिरिपाद ने कोचीन में एक विशाल रैली में इस बात पर हर्ष व्यक्त किया कि "अब पार्टी से दक्षिणपंथी संशोधनवाद और वामपंथी मतवाद की गंदगी छँट गयी है". नंबूदिरिपाद की आशावादिता को आगे बढ़ाते हुए पश्चिम बंगाल के प्रमुख साम्यवादी नेता श्री ज्योति बसु ने भी आठवीं कांग्रेस के बाद पार्टी के अधिक सुदृढ़ होने की घोषणा की और तुमुल हर्ष ध्वनि से गद्गद् होते हुए उन्होंने कहा कि पश्चिम बंगाल में केंद्रीय सरकार की नीतियों के विरुद्ध अपनी लड़ाई में अब मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी अकेली नहीं रह गयी है. श्री पी. सुंदरैय्या, जिन्हें फिर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का महामंत्री चुन लिया गया है, पार्टी के नये रणनीति के व्याख्याकार के रूप में सामने आये. उन्होंने

कांग्रेसी केंद्र के विरुद्ध अपने धर्मयुद्ध को तेज़ करते हुए संवाददाताओं को बताया कि मेरी पार्टी का उद्देश्य कांग्रेस-विरोधी लोकतांत्रिक दलों से सहयोग करना और उन्हें नेतृत्व देना है. आक्रामकता की साम्यवादी शैली में अपने सहयोगियों से किसी भी हालत में उन्नीस न पड़ने की गर्ज़ से भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन की जानी-मानी हस्ती श्री बी. टी. रणदिवे ने कांग्रेसी केंद्र पर चौतरफ़ा हमला किया और यह मत व्यक्त किया कि जब तक केंद्र से कांग्रेस को हटाया नहीं जाता, राज्यों में विरोधी दलों की सरकारें जनहित की दृष्टि से कोई उपयोगी कार्य नहीं कर सकतीं.

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं की इस स्फीत आक्रामकता और आठवीं कांग्रेस पार्टी के प्रस्तावों में, बड़ी बारीकी से दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी और नक्सलवादी कम्युनिस्टों के बीच—मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया है. एक ओर जहाँ दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी की कांग्रेसानुरक्ति और जन-आंदोलन-विरोधी प्रवृत्तियों को अचानक मुखर किया गया है, वहाँ दूसरी ओर अपने बिछड़े सहोदरों, नक्सलवादी कम्युनिस्टों की क्रांतिकारिता की हवाई प्रवृत्ति पर ज़ोर दिया गया है. प्रस्ताव में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि संसदीय लोकतंत्र की सीमाओं में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की तथाकथित क्रांतिकारिता का सैद्धांतिक और व्यावहारिक आधार क्या है. इसी तरह, पार्टी के शीर्षस्थ नेताओं का यह कहना कि दूसरे देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के अनुभवों से लाभ उठाने के अलावा उन के अंधानुकरण की कोई आकांक्षा पार्टी की नहीं है, इस सवाल को अनुत्तरित छोड़ा जाता है कि इधर हाल में दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी की तरह ही उस की भी विदेशी कम्युनिस्ट पार्टियों की नज़र में प्रतिष्ठित होने का प्रयास भारतीय क्रांतिकारिता के संदर्भों की तलाश की घोषणा से कहाँ तक मेल खाता है. अंतर्विरोध उस समय कुछ अधिक टहकार हो उठता है जब राजनैतिक पर्यवेक्षकों की दृष्टि पार्टी के हाल के प्रस्तावों में निहित उन विसंगतियों पर रुकती है, जिन में जहाँ एक ओर दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी को कांग्रेस और प्रतिक्रियावादी शक्तियों का सहचर करार दिया गया है वहाँ दूसरी ओर, उस के साथ कार्यक्रमों के आधार पर एकता की आवश्यकता पर भी ज़ोर दिया गया है. यह आकस्मिक नहीं है कि केरल के एक उग्रपंथी कम्युनिस्ट नेता के. आर. पी. गोपालन ने, जिन्होंने प्रदेश के विभिन्न उग्रपंथी गुटों को मिला कर शीघ्र ही एक नयी संयुक्त क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के गठन की घोषणा की, नंबूदिरिपाद पर सैद्धांतिक हमला बोल दिया और संवाददाताओं को बताया कि केरल के मुख्यमंत्री का यह दावा कि आठवीं कांग्रेस के बाद मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के अंदर से दक्षिणपंथी संशोधनवाद और वामपंथी मतवाद की गंदगी छंट गयी है, निराधार बताया और यह मत व्यक्त किया कि श्री नंबूदिरिपाद की पार्टी में संशोधनवादी इस क़दर जमे पड़े हैं कि उन की सारी क्रांतिकारिता शब्दों के अभ्यास से ऊपर नहीं उठ पाती. इस के बिलकुल समानांतर लगने वाली वह प्रतिक्रिया है जो दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के केंद्रीय सचिवालय के सदस्य श्री एन. के. कृष्णन् द्वारा व्यक्त की गयी है. श्री कृष्णन् ने मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की आठवीं कांग्रेस के प्रस्तावों की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि मार्क्सवादी नेताओं ने इधर वामपंथी मतवाद का अपना आग्रह कुछ छोड़ा है और इस तरह वह "मेरी पार्टी की सैद्धांतिक व्याख्या के अधिक पास आए हैं". **जब दिनमान के प्रतिनिधि ने श्री कृष्णन् से जानना चाहा कि क्या इस से निकट भविष्य में दोनों पार्टियों के समीप आने की संभावना बढ़ी है तो उन्होंने गुरु-गंभीर मुद्रा में कहा कि "भविष्य की बात भविष्य के लिए छोड़िए, लेकिन आठवीं कांग्रस के प्रस्तावों से इतना तो स्पष्ट हो गया है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और मेरी पार्टी के बीच कोई बुनियादी सैद्धांतिक मतभेद नहीं बच रहा है. बहुत संभव है कि इस से कार्यक्रम के आधार पर दोनों दलों में सहयोग की संभावना बढ़े."**

दिनमान के प्रतिनिधि ने मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ प्रमुख नेताओं से विचारों के आदान-प्रदान के दौरान पाया कि यद्यपि आठवीं कांग्रेस में पार्टी के शीर्षस्थ नेताओं की राजनैतिक व्याख्या को पार्टी प्रतिनिधियों का भारी समर्थन प्राप्त हुआ, लेकिन पार्टी के अंदर के उग्रपंथियों ने इस का विरोध भी कम नहीं किया. पार्टी के इन उग्रपंथियों में पंजाब के श्री रणजीत सिंह लयालपुरी, तमिलनाडु के श्री शंकरैय्या, पश्चिम बंगाल के संसद् सदस्य श्री गणेश घोष और काली बैनर्जी, केरल के श्री ए. यू. आर्यन और कर्नाटक के श्री एन. एल. उपाध्याय के नाम का खास तौर पर उल्लेख किया गया. इस दृष्टि से मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की नयी केंद्रीय समिति में श्री लयालपुरी, श्री शंकरैय्या और श्री एन० एल० उपाध्याय का न लिया जाना ही महत्त्वपूर्ण हो उठता है.

प्रजा समाजवादी पार्टी

हताशा की राजनीति

प्रजा समाजवादी पार्टी के सचिव श्री प्रेम भसीन ने अपनी पार्टी के संसदीय बोर्ड और केंद्रीय समिति द्वारा मध्यावधि चुनाव के सिलसिले में किये गये निर्णयों के संदर्भ को ध्यान में रखते हु **दिनमान** के प्रतिनिधि से अपनी विशेष भेंट के दौरान यह स्वीकार किया कि प्रजा समाजवादी पार्टी को इस बात की कोई ग़लतफ़हमी नहीं है कि वह उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल और पंजाब में पहले की तुलना में कमज़ोर हुई है. प्रतिनिधि को आश्वस्त करते हुए प्रजा समाजवादी नेता ने कहा कि मध्यावधि चुनाव में उत्तरप्रदेश, बिहार, पंजाब और बंगाल के एक हज़ार स्थानों में से मेरी पार्टी ने सीमित स्थानों पर ही अपने उम्मीदवार खड़े करने का फ़ैसला कर के इस व्यावहारिक समझ का परिचय दिया है. अपनी हाल की बैठकों में पार्टी के संसदीय बोर्ड और केंद्रीय समिति ने चौथे आम चुनाव की तुलना में मध्यावधि चुनाव के लिए अपने उम्मीदवारों की संख्या में २० प्रतिशत कमी कर दी है. पार्टी के नेताओं का विचार है कि भारतीय राजनीति के अगले दस साल संयुक्त मोर्चों की राजनीति के साल साबित होंगे. उन का तर्क है कि इस दशा में जनता के सामने कांग्रेस का विकल्प कोई एक पार्टी प्रस्तुत नहीं कर सकेगी और उस की बाध्यता यह होगी कि उसे एक साथ ही कई दलों के प्रतिनिधियों को मत देना होगा. श्री प्रेम भसीन ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि "इस दशक की राजनीति को मैं संक्रमण काल की राजनीति मानता हूँ. मैं यह भी मानता हूँ कि मध्यावधि चुनाव के बाद भी संयुक्त संगठनों और सरकारों का दौर जारी रहेगा". जब प्रतिनिधि ने यह जानना चाहा कि क्या मध्यावधि चुनाव के साथ राजनैतिक शक्तियों के किसी नये पुनर्गठन की कल्पना उन के दिमाग़ में है तो वह आहिस्ते से मुस्करा पड़े, "नये ध्रुवीकरण या पुनर्गठन तो क्या ही होना है, हाँ यह हो सकता है कि राजनैतिक शक्तियों का पुनर्गठन तीन रूपों में हो. एक तरफ़ कांग्रेस हो, दूसरी तरफ़ लोकतांत्रिक समाजवादी संगठन हो तथा तीसरी तरफ कम्युनिस्ट पार्टियाँ हों". प्रतिनिधि से बातचीत के दौरान वह बीच-बीच में रुक जाते थे और संक्रमण काल की राजनीति की प्रवृत्तियों का उल्लेख करते हुए हताशा की राजनीति की प्रवृत्तियों का उल्लेख करने लग जाते थे. नये राजनैतिक पुनर्गठन के लिए उन्हें बिहार की मिसाल सब से उपयोगी जान पड़ी. उन्होंने इस बात पर हर्ष व्यक्त किया कि बिहार में कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टियों से अलग एक संयुक्त मोर्चा अस्तित्व में आया है जिस में लोकतांत्रि दल, प्रजा समाजवादी पार्टी और संयुक्त समाजवादी पार्टी के लोग शामिल हैं. जब प्रतिनिधि ने यह जानना चाहा कि उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल और पंजाब में इस तरह की लोकतांत्रिक एकता का आधार क्यों नहीं तैयार हो सका तो प्रसोपा के महासचिव प्रेम भसीन ने कुछ सोचते हुए कहा कि "इन प्रदेशों में मेरी पार्टी ने अकेले चलने का जो फ़ैसला किया है उस के लिए वह जिम्मेदार नहीं है. हम ने इस बात की पूरी कोशिश की कि कांग्रेस, कम्युनिस्टों और सांप्रदायिकतावादियों से अलग एक संयुक्त मोर्चा इन प्रदेशों में भी आकार ग्रहण कर सके लेकिन भारतीय क्रांतिदल जैसे कुछ दलों के हवाई आग्रहों के कारण ऐसा संभव नहीं हो सका".

संगठन और विघटन

चुनाव प्रचार के सिलसिले में एक तरफ़ श्रीमती इंदिरा गांधी का देशव्यापी दौरा जारी है जिस में वह स्थायी सरकार बनाम अस्थायी सरकार के नारे के साथ-साथ कांग्रेस की खूबियाँ और विरोधी पार्टियों की आलोचना के साथ मतदाताओं को कांग्रेस की ओर आकर्षित करने की कोशिश कर रही हैं और दूसरी ओर की स्थिति यह है कि अन्य अनेक दल प्रचार कार्य के साथ-साथ अभी भी उम्मीदवारों के चयन आदि के काम से मुक्त नहीं हो पाये हैं. कांग्रेस ने अपने अधिकृत उम्मीदवारों की घोषणा करने में जिस तरह की पहल की थी उसी तरह की पहल उसने अपने प्रचार के अभियान में भी की है. शेष दल उस के चरणचिन्हों की नक़ल करते हुए उस से आगे बढ़ जाने की भाग-दौड़ कर रहे हैं. **उत्तरप्रदेश** में कांग्रेस के अलावा जनसंघ और भारतीय क्रांति दल ने विधानसभा की सभी (४२५) सीटों पर अकेले चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया था अब संसोपा भी उस फ़ैसले में शामिल हो गया है. इस के बावजूद मज़ेदार बात यह है कि कांग्रेस के अलावा अभी भी सभी सीटों पर चुनाव लड़ने वाला कोई दल सभी सीटों के लिए अपने उम्मीदवार खड़े करने में कामयाब नहीं हो सका. चौथे आम चुनाव के साथ-साथ रिपब्लिकन पार्टी की शक्ति काफ़ी घटी, इस तथ्य के बावजूद उस ने अपने ३०० उम्मीदवार खड़े करने की घोषणा की है. लेकिन इसी के साथ उसने यह भी कहा है कि यदि अन्य दलों से समझौता हो गया तो वह सिर्फ़ १०० उम्मीदवार खड़े करने पर सहमत हो सकती है. यह पार्टी भी आपसी मतभेदों का शिकार है. प्रदेशीय शाखा और केंद्रीय कार्यकारिणी के बीच मनमुटाव पैदा हो चुका है. प्रदेशीय शाखा ने अपने तीन वरिष्ठ केंद्रीय नेताओं: बुद्धप्रिय मौर्य, बी. के. गायकवाड़ और बी. डी. खोबरागड़े पर आरोप लगाया है कि ये नेता पार्टी के निर्णयों की परवाह न कर के पार्टी के नाम पर निजी फ़ैसलों को महत्त्वपूर्ण बनाने की कोशिश करते रहे हैं. संघप्रिय गौतम और गयाप्रसाद प्रशांत का गुट अंबेडकर के अनुयायी छेदीलाल का समर्थन करता है. मुसलिम मजलिस के अब्दुल जलील फ़रीदी ने संघप्रिय गौतम और छेदीलाल को एक करने की कोशिश की है लेकिन उन्हें भी अभी तक कोई सफलता नहीं मिली. इस समय फ़रीदी की स्थिति यह है कि अगर किसी वजह से संघप्रिय गौतम और छेदीलाल से उन के मतभेद की स्थिति पैदा हो गयी तो बुद्धप्रिय मौर्य के माध्यम से उन्हें गायकवाड़ आदि का समर्थन प्राप्त हो सकेगा. फ़रीदी की मुसलिम मजलिस अनुसूचित जातियों, अल्पसंख्यकों, पिछड़े वर्गों के संघ का एक महत्त्वपूर्ण भाग है. रिपब्लिकन दल की प्रादेशिक इकाई संघ से संबद्ध भी है और अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी बनाये हुए है. संघ की ओर से १०७ उम्मीदवारों के नाम प्रकाशित किये गये हैं. इस में लगभग दो दर्जन उम्मीदवार मजलिस के हैं. रिपब्लिकन दल की जो सूची प्रकाशित हुई है उस में ऐसे बहुत-से उम्मीदवार हैं जिन के नाम संघ की सूची में भी शामिल है.

चरणसिंह प्रशासन के शिकार और राज्य कर्मचारी आंदोलन में मशहूर हो गये नेताओं की **मजदूर पार्टी** भी अपने अनेक उम्मीदवारों को ले कर चुनाव के मैदान में कूद पड़ी है. मैदान में आने से पहले इन नेताओं का हौसला काफ़ी बढा हुआ था लेकिन अब यथार्थ का बोध उन्हें हो गया है और इसीलिए वह महसूस कर रहे हैं कि उन्होंने निर्णय में जल्दबाज़ी की. इन नेताओं ने जिन निर्वाचन क्षेत्रों से खड़े होने का निश्चय किया है वहाँ पर सीधी टक्कर प्रभावशाली कांग्रेसी और जनसंघी नेताओं में होगी. कांग्रेस की स्थिति के कुछ नाज़ुक हो जाने का कारण चरणसिंह और शिब्बनलाल सक्सेना का कांग्रेस से अलग हो जाना था. दूसरी ओर गुप्त-त्रिपाठी गुटबंदी के आधार पर जो अंतिम सूची तैयार की गयी उस से बहुत से कांग्रेसियों को असंतोष भी हुआ है. कांग्रेसी क्षेत्रों में इस बात को ले कर भी काफ़ी क्षोभ है कि ५ विद्रोही कांग्रेसियों की पत्नियों को टिकट क्यों दिया गया. पर्वतीय राज्यों में कांग्रेस की स्थिति ज्यादा नाज़ुक हो गयी है. चंद्रभानु गुप्त को संदेह और अनिश्चयता का शिकार होना पड़ा है और कहा जाता है कि वह अपना निर्वाचन क्षेत्र रानीखेत की बजाय लखनऊ को बनाना चाहते हैं. बताया जाता है कि इस का कारण अधिक सर्दी और हिमपात है लेकिन असलियत यह है कि रानीखेत में सभी विरोधी दलों ने भारतीय क्रांति दल के उम्मीदवार गोविंद सिंह मेहरा को समर्थन देने का निश्चय किया है. यहाँ पर श्री गुप्त का श्री मेहरा से सीधा संघर्ष था. पिछले आम चुनाव में श्री गुप्त श्री मेहरा के विरुद्ध सिर्फ़ ७१ मतों से विजयी हुए थे.

बिहार में संदेह और अनिश्चयता की स्थिति प्रायः सभी दलों के साथ है. अखिल भारतीय स्तर के ६-७ राजनैतिक दलों के साथ ही इस प्रदेश में अन्य अनेक छोटे-मोटे दल भी अस्तित्व में आ गये हैं. केंद्रीय कांग्रेस ने उम्मीदवारों की सूची तैयार करते वक़्त जिन ५ विवादास्पद नेताओं को चुनाव से अलग रखा उस के संदर्भ में कुछ लोगों का ख्याल यह है कि कांग्रेस की स्थिति प्रदेश में इस चुनाव में अच्छी होगी. पिछले दिनों रामलखन सिंह यादव ने अपने असंतोष को अभिव्यक्त करते हुए कांग्रेस हाई कमान की आलोचना की थी. श्री यादव उन पाँच विवादास्पद नेताओं में से एक हैं जिन्होंने इस चुनाव में अपने लिए टिकट नहीं लिये. उन का कहना है कि यदि हाई कमान ने ग़लत नीतियाँ न अपनायी होतीं तो कांग्रेस को बहुत सफलता मिलती क्यों कि जनता संयुक्त मोर्चे के खोखलेपन से परिचित हो चुकी है. हाई कमान द्वारा चुनाव कार्य की निगरानी के लिए डी. संजीवैया को भेजने का निश्चय भी श्री यादव को प्रीतिकर नहीं लगा. उन्होंने कहा कि कांग्रेस संसदीय बोर्ड ने कुछ संसद् सदस्यों को भेजने का जो निश्चय किया है उस के परिणाम भी अपेक्षित नहीं होंगे. निजलिंगप्पा ने भी खुले ढंग से प्रदेश के नेताओं की निंदा की थी और उस का भी असर कांग्रेस के पक्ष में नहीं पड़ सकता. संयुक्त मोर्चे की स्थिति भी बहुत अच्छी फ़िलहाल नहीं कही जा सकती. संयुक्त समाजवादी पार्टी ने एक त्रिदलीय समझौता ज़रूर किया है लेकिन उसी के साथ भारतीय कम्युनिस्ट दल के अब तक के सारे प्रयत्न विशेष लाभकर नहीं सिद्ध हो सके हैं. जनसंघ एक ऐसा दल अवश्य है जिस में एकता और संगठन दोनों के दर्शन होते हैं. पिछले आम चुनाव में उसे २६ जगहें मिली थीं. इस बार वह ३१८ स्थानों में से ३१५ पर अपने उम्मीदवार खड़े कर रहा है. छोटा नागपुर क्षेत्र में जनसंघ और कम्युनिस्ट दोनों ने अपने-अपने प्रभाव का विस्तार करने की कोशिश की और इस जगह पर दोनों के बीच कठिन संघर्ष की भी संभावनाएँ हैं. इस राज्य में संयुक्त समाजवादी दल दूसरा सब से बड़ा दल था. पिछले चुनाव में उसे ६८ जगह मिली थीं. जहाँ तक प्रसोपा और लोकतांत्रिक दल के साथ उस के समझौते का प्रश्न है उस का कुछ सामूहिक लाभ मिल सकता है. कम्यूनिस्ट दल के दोनों गुटों ने पिछली ग़लतियों को ध्यान में रखते हुए इस बार एकबद्ध हो कर चुनाव लड़ने का निश्चय किया है. भारतीय क्रांति दल का भी कोई विशेष प्रभाव इस राज्य में नहीं है और वह ले-दे कर महामाया प्रसाद सिन्हा की अकेले की नाव है. रामगढ़ के राजा के अलग होने और जनता पार्टी के पुनर्गठन करने के कारण भी भारतीय क्रांति दल की शक्ति क्षीण हुई है. यों क्रांति दल ने १०० जगहों पर अपने उम्मीदवार खड़े करने की घोषणा की है. छोटा नागपुर के आदिवासी क्षेत्र में झारखंड पार्टी का पुनर्गठन हुआ है. यह दल धीरे-धीरे अखिल भारतीय रूप ले लेने की दिशा में भी अग्रसर है. कांग्रेस को अगला कोई बड़ा खतरा हो सकता है तो इस क्षेत्र में झारखंड पार्टी से ही. इस दल ने एक झारखंड राज्य की माँग की आवाज़ बुलंद की थी और जनसंघ ने इस का कड़ा विरोध किया था. जनता पार्टी रामगढ़ के राजा के नेतृत्व में सक्रिय है और हज़ारीबाग क्षेत्र में उस का प्रभाव भी है. शोषित दल की स्थिति

लोकतांत्रिक कांग्रेस दल की स्थिति से अच्छी नहीं है. हिंदू महासभा को यद्यपि इस राज्य में पिछले किसी भी चुनाव में एक जगह भी नहीं मिल पायी लेकिन इस चुनाव में उस के भी २०० उम्मीदवार खड़े हो रहे हैं. इसी बीच प्रजा समाजवादी दल के ७६ उम्मीदवारों की सूची भी प्रकाशित की गयी है. प्रसोपा, संसोपा और लोकतांत्रिक दल के साथ एक समझौते में बँधा है. दल के ६१ उम्मीदवार उन्हीं मतदान केंद्रों से चुनाव लड़ेंगे जो समझौते के अनुसार उन्हें दिये गये हैं. १५ उम्मीदवार ऐसी जगहों से खड़े हो रहे हैं जहाँ त्रिदल का कोई उम्मीदवार नहीं है.

पंजाब में कांग्रेसी उम्मीदवारों की सूची लगभग पूरी हो चुकी है केवल ४-५ नाम और जोड़े जाने हैं. इस बीच महाराजा पटियाला ने यह घोषणा कर दी है कि वह चुनाव में हिस्सा नहीं लेंगे. प्रदेश कांग्रेस का एक चुनाव घोषणा-पत्र भी सामने आया है जिस में हिंदू मतदाताओं को फुसलाने की कोशिश की गयी है. प्रादेशिक कांग्रेस के अध्यक्ष ज़ैलसिंह ने एक मीटिंग में, जिस का संबोधन कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने किया था, यह माँग की कि हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया जाये. घोषणा-पत्र में कहा गया है कि 'पंजाबी राज्य' की सरकारी भाषा है. पंजाब कांग्रेस हिंदी को राज्य में सम्मानपूर्ण स्थान देने का प्रयत्न करेगी. युवकों के अखिल भारतीय नौकरियों संबंधी भविष्य को ध्यान में रखते हुए इस बात की कोशिश की जायेगी कि स्कूलों और कॉलेजों में उस के शिक्षण का विस्तार किया जाये. घोषणा-पत्र में संयुक्त मोर्चे की आलोचना करते हुए कहा गया है कि उस के शासनकाल में तरह-तरह की अव्यवस्था पैदा हुई और राज्य आर्थिक दिवालियेपन का शिकार हो गया हालांकि कांग्रेस द्वारा समर्थित गिल सरकार के बारे में कुछ नहीं कहा गया. अगर संयुक्त मोर्चे की सरकार अव्यवस्था और असफलता के लिए ज़िम्मेदार है तो गिल सरकार पर भी वही आरोप लगाये जा सकते हैं. घोषणा-पत्र में अकाली दल का नाम तो नहीं दिया गया है लेकिन यह ज़रूर कहा गया है कि 'बहुत-सी प्रतिक्रियावादी और विदेशी शक्तियाँ राष्ट्र को बर्बाद करने पर तुली हुई हैं.'

अकाली दल ने मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और स्वतंत्र दल से चुनाव समझौता किया है. समझौते के अनुसार अकाली दल १४ जगहों पर अपने उम्मीदवार खड़े नहीं करेगा. उन में १० जगहों पर मार्क्सवादी और ४ जगहों पर स्वतंत्र दल के उम्मीदवार चुनाव लड़ेंगे. दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट दल से भी समझौते की बातचीत अभी चल रही है. एक स्थिति यह भी है कि सीट के बँटवारे को ले कर अकाली दल और जनसंघ में कुछ तनाव का लक्ष्य स्पष्ट हो गया है. पंजाब जनसंघ के मंत्री बलराम टंडन ने कहा कि 'अकाली दल ने जालंधर छावनी मतदान केंद्र के लिए जिस स्वेच्छा के साथ अपने उम्मीदवार का नामांकन किया वह हम सभी के लिए आश्चर्य का विषय लगता है.' जनसंघ ने वह जगह मेजर जनरल राजेंदर सिंह के लिए खाली की थी. अगर अकाली दल राजेंद्र सिंह को समर्थन नहीं देता है तो पारस्परिक समझौते के अनुसार उस पर जनसंघ के ही उम्मीदवार को खड़ा किया जाना चाहिए. वह इस जगह से अपना ही उम्मीदवार खड़ा करेगा. श्री टंडन को अकाली दल के रवैये पर काफ़ी असंतोष था.

बंगाल में राजनैतिक हवा अच्छी नहीं है. हिंसात्मक घटनाएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं और वे लोगों को चिंतित करने के लिए काफ़ी हैं. इस बीच केंद्रीय गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण से ले कर संयुक्त समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष श्री श्रीधर महादेव जोशी तक कलकत्ता आये. श्री चव्हाण ने विभिन्न सभाओं में अपने भाषणों के दौरान वही बातें कीं जो चुनाव को दृष्टि में रखते हुए कांग्रेस के अन्य नेता कह रहे हैं. समाजवादी दल के श्री जोशी ने **दिनमान** से बात चीत के दौरान संयुक्त मोर्चे द्वारा संसोपा के प्रति अपनाये जा रहे रुख पर चिंता व्यक्त की. उन्होंने कहा कि अभी से यह कहना मुश्किल है कि अगर संयुक्त मोर्चा चुनाव में विजयी हुआ तो संसोपा सरकार में शामिल होगा ही. उस की अपनी शर्तें होंगी. अगर उन शर्तों को स्वीकार नहीं किया गया तो वह सरकार से बाहर रहेगा.

मतदाता और मतदान केंद्र : मतदाताओं की जो सूची प्रकाशित की गयी है उस के अनुसार २ करोड़ ६ लाख व्यक्ति चुनाव में हिस्सा लेंगे. सन् ६७ के चुनाव में यह संख्या २ करोड़ २ लाख थी. मतदान केंद्रों की संख्या २२,०५० से बढ़ा कर २४,००० कर दी गयी है. प्रत्येक मतदान केंद्र पर मतदाताओं की अनुमानित संख्या ८०० है जब कि पिछली बार वह संख्या ९०० थी. २४००० मतदान केंद्रों के लिए मतदान के सिलसिले में ९६,००० अधिकारियों-कर्मचारियों और ४००० अतिरिक्त व्यक्तियों की आवश्यकता होगी. फ़रवरी में होने वाले इस चुनाव में इस बार इस राज्य में २५ से अधिक राजनैतिक दल मैदान में उतर रहे हैं. कांग्रेस, कम्युनिस्ट, संसोपा, प्रसोपा आदि अखिल भारतीय दलों के अतिरिक्त जो दल अस्तित्व में आये हैं उन में प्रमुख हैं : बंगला कांग्रेस, फ़ारवर्ड ब्लाक, क्रांतिकारी सोशलिस्ट पार्टी, समाजवादी एकता केंद्र, भारतीय राष्ट्रीय गणतांत्रिक मोर्चा, लोकदल क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी, वर्कर्स पार्टी, मार्क्सवादी फ़ारवर्ड ब्लाक, लोकसेवक संघ, बंगला जातीय दल, मार्क्सवादी मक्तम, गोरखा लीग और प्रगतिशील मुस्लिम लीग.

प्रदेश

मध्यप्रदेश

राजनैतिक सम्मेलन

रायपुर में छत्तीसगढ़ के कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं का जो दो दिवसीय सम्मेलन हुआ उस में उद्घाटनकर्त्ता केंद्रीय गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण से ले कर विद्याचरण शुक्ल तथा प्रकाशचंद्र सेठी और प्रदेश के अन्य अनेक नेताओं ने हिस्सा लिया. स्वागताध्यक्ष और अन्य वक्ताओं के भाषण में मुख्य स्वर संयुक्त विधायक दल की सरकार के प्रति विरोध का था. सांप्रदायिकता और सामंतवाद का ज़ोरदार शब्दों में विरोध किया गया. बाद में सभी ने अपनी-अपनी बात का समापन राष्ट्रीय एकता की अपील से किया. श्री चव्हाण ने कांग्रेसियों को संबोधित करते हुए महत्त्वपूर्ण बात यह कही कि उन्हें अपनी पोशाक से कांग्रेसी होने की बजाय परंपरा से कांग्रेसी होना चाहिए. क़ानूनी रूप से देश एक हो गया है लेकिन व्यावहारिक रूप में विलगाव की प्रवृत्तियाँ निरंतर बढ़ रही हैं. जब तक सांप्रदायिकता और सामंतवाद का वातावरण रहेगा, एकता स्थापित नहीं हो पायेगी. उन के ख़याल से मध्यप्रदेश के कांग्रेसी संघर्ष के दरवाज़े पर खड़े हैं. उन्हें चुनौती दी गयी है. इस चुनौती का मुक़ाबला करने के लिए बुनियादी ताक़त की ज़रूरत है. कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को जनता के पास रह कर अपने अंदर उन के वास्तविक प्रतिनिधित्व की शक्ति लानी चाहिए. जब तक ऐसा नहीं होगा, न तो हम चुनौती का मुक़ाबला कर पायेंगे न विघटनकारी शक्तियों को पराजित कर के जनतंत्र के वास्तविक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जा सकेगा. श्री चव्हाण ने सम्मेलन से अलग एक विशाल जनसभा में भी भाषण दिया. यह अलग बात है कि जहाँ एक ओर उन का स्वागत हुआ था वहीं दूसरी ओर कुछ दलों ने काले झंडों के साथ उन का विरोध किया.

प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष मिश्रीलाल गंगवाल का कहना था कि प्रदेश में व्याप्त दूषित राजनैतिक वातावरण को दूर कर के वास्तविक प्रजातंत्र की स्थापना करने का संवैधानिक तरीक़ा केंद्र के पास है लेकिन हम चाहते हैं कि प्रजातंत्र की स्थापना शांतिपूर्ण आंदोलन के ज़रिये करें. प्रदेश में सामंतवादी तथा शोषण करने वाला शासन पनप रहा है, उस का अंत करना कांग्रेस का कर्त्तव्य है. विधायक दल के नेता और भूतपूर्व मुख्यमंत्री द्वारकाप्रसाद मिश्र का मूल आक्रोश संविद सरकार पर था जिस की तरफ़ उन्होंने बहुत ही आक्रामक ढंग से इशारा किया. उन्होंने भ्रष्टाचार का ज़िक्र

रायपुर में चव्हाण : काले झंडे से स्वागत

करते हुए कहा कि संविद सरकार अपने मंत्रियों तथा घटकों को खुश करने के लिए क़ानूनी और ग़ैर-क़ानूनी हर तरीक़े का बिना लिहाज के इस्तेमाल करती है. उन्होंने जनता से सहयोग देने की तथा कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं से सक्रिय होने की अपील के साथ घोषणा की कि २८ जनवरी से उन का सत्याग्रह शुरू हो जायेगा.

प्रमुख प्रस्ताव : सम्मेलन में मुख्य रूप से ४ प्रस्ताव पारित किये गये. पहला प्रस्ताव राजनैतिक था जिस पर शुरू से आखीर तक चर्चा चलती रही. शेष तीन प्रस्ताव सम्मेलन के आख़िरी दो घंटों में ही पास कर लिये गये. राजनैतिक प्रस्ताव में इस बात पर विशेष रूप से ज़ोर दिया गया कि संविद शासन में भ्रष्टाचार पनप रहा है. आदिवासियों तथा हरिजनों पर अत्याचार हो रहे हैं. बहस के ही दौरान सतनामी संघ के महामंत्री नयनदास कुर्रे ने मुंगेली क्षेत्र की भागवली की हत्या का उल्लेख किया और उसे प्रस्ताव में शामिल कराया. उन्होंने उस मामले की केंद्र द्वारा जाँच कराने की भी माँग की. उन का यह भी कहना था कि चश्मदीद गवाहों को जेल में बंद कर दिया गया और उन्हें यातनाएँ दी जा रही हैं. प्रस्ताव में छत्तीसगढ़ की जनता से अनुरोध किया गया कि संविद सरकार के अत्याचारों और जन-विरोधी कार्यों के विरुद्ध कांग्रेस जो आंदोलन शुरू कर रही है उसे जनता समर्थन दे. ज़िला कांग्रेस के अध्यक्ष भोपालराव पवार ने प्रस्ताव रखते हुए जनसंघ के अत्याचारों का लंबा-चौड़ा विवरण भी प्रस्तुत किया. दूसरे प्रस्ताव के ज़रिये छत्तीसगढ़ क्षेत्र में छोटी-बड़ी सिंचाई योजनाओं को कार्यान्वित करने और उस के लिए किसानों को बिजली देने की माँग की गयी. इस प्रस्ताव में संविद शासन पर यह आरोप भी था कि वह छत्तीसगढ़ की उपेक्षा करती रही है. तीसरे प्रस्ताव में यह कहा गया था कि छत्तीसगढ़ में जो उद्योग स्थापित होते हैं उन में स्थानीय व्यक्तियों की उपेक्षा की जाती है. इस प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि बेलाडिला, भिलाई, कोरबा जैसे औद्योगिक नगर तथा विभिन्न ख़निज पैदा करने वाली विभिन्न जगहें इसी क्षेत्र में हैं लेकिन इन जगहों में स्थानीय व्यक्तियों को नौकरी नहीं दी जाती. इस सिलसिले में एक निश्चित नीति निर्धारित की जानी चाहिए. चौथे प्रस्ताव के ज़रिये गांधी जी का समर्थन किया गया और गांधी शताब्दी को सफल बनाने की कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं से अपील की गयी.

समस्याएँ और सुझाव : सम्मेलन में राज्य और केंद्र के नामी नेताओं के अलावा छत्तीसगढ़ के रायपुरा, बिलासपुर, दुर्ग, सर्गुजा, बस्तर तथा रायगढ़ के प्रायः सभी कांग्रेसी उपस्थित थे. संविद की स्थापना के बाद सत्ताविहीन कांग्रेस का यह पहला अधिवेशन इस क्षेत्र में था. कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं ने अपनी समस्याएँ विस्तार से सामने रखीं और उस पर राजनैतिक स्तर पर विचार-विमर्श हुआ. संसद् सदस्य शंभुनाथ शुक्ल ने प्रदेश की वर्त्तमान स्थिति और उस के नेतृत्व पर व्यंग्य किया और कांग्रेस की कमज़ोरियों पर भी प्रहार किया और कहा कि बहुमत तो जनता ने उसे दिया था लेकिन वह उस की रक्षा नहीं कर सकी. उन्होंने कहा कि सामंतवाद का विरोध करने वाले लोगों को अपने भीतर झाँक कर यह देख लेना चाहिए कि वे खुद कितने सामंतवादी प्रवृत्ति के हैं. विधायक दल के उपनेता श्यामाचरण शुक्ल ने भी सामंतवाद और संप्रदायवाद से लड़ने की आवश्यकता महसूस की और प्रदेश के वर्त्तमान नेतृत्व के प्रति आक्रोश व्यक्त किया. उन का कहना था कि युवक तवक़े को सामने लाना चाहिए. प्रकारांतर से उन का इशारा दो बुज़ुर्ग नेताओं - द्वारकाप्रसाद मिश्र और शंभूनाथ शुक्ल की ओर था जो उन के खयाल से युवक तवक़े को आगे बढ़ने देने में बाधक रहे हैं. संसद् सदस्या मिनी माता के भाषण का अधिकांश हरिजनों पर होने वाले अत्याचार पर केंद्रित रहा. उन्होंने हरिजनों के हिंदू वर्ग से अलग होने की प्रवृत्ति को ख़तरनाक बताते हुए कांग्रेसी नेताओं से ही यह पूछना चाहा कि क्या हरिजन और सतनामी हिंदू नहीं हैं? बिलासपुर के मथुरा प्रसाद दुबे का सारा ज़ोर इस बात पर था कि गांधी-दर्शन को जीवन में उतारा जाये. देश का भविष्य गांधी-दर्शन के कार्यान्वियन से ही संभव है. गौतम शर्मा का कहना था कि क्यों कि वे ग्वालियर के ही निवासी हैं अतः उन्होंने सामंतवाद का नंगा नाच बहुत देखा है. उन का कहना था कि सामंतवादी समाजवाद प्रजातंत्र और जनचेतना की पीठ में छुरा भोंकता है. उन के अनुसार मिश्र मंत्रिमंडल का पतन भी सामंतवाद के ही कारण हुआ. भाषणों के ज़ोर-शोर और प्रदेश के नेताओं की एकता की अपील के बीच द्वारकाप्रसाद मिश्र और श्यामाचरण शुक्ल के विरोध कोशिशों के बावजूद छिपे नहीं रह सके. सम्मेलन में दोनों के ही समर्थक नेता उपस्थित थे और वे स्पष्ट तौर पर अपने-अपने गुटों के साथ किसी भी कोण से देखे जा सकते थे.

नयी नियुक्तियाँ : आख़िरकार मुख्यमंत्री गोविंदनारायण सिंह ने मंत्रिमंडल के पुनर्गठन की जो घोषणा कुछ दिनों पहले की थी उसे पूरा कर ही दिया और इस प्रकार अटकल और अनुमान पर ज़िंदा रहने वालों की ज़बान बंद हो गयी. दो महीने पहले जिन २० दलबदलू मंत्रियों ने एक साथ इस्तीफ़ा दिया था उन में से १५ को वापस ले लिया गया है. कैबिनेट स्तर के मंत्रियों में गोपालशरणसिंह, रामचरण राय, नर्मदा प्रसाद श्रीवास्तव, वीरेंद्र बहादुर सिंह, ब्रजलाल वर्मा, धर्मपाल सिंह गुप्त, नरेंद्र सिंह देव, महेंद्र सिंह किलेदार, शशिभूषण सिंह, फ़तहभान सिंह चव्हाण और पन्नालाल चौधरी हैं. राज्यमंत्रियों में हेतराम दुबे, प्रेमसिंह, विश्वेश्वर प्रसाद, देवीलाल शर्मा और प्रताप लाल हैं. दृगपाल शाह को उपमंत्री बनाया गया है. इस्तीफ़े के पहले मंत्रिमंडल में ३५ मंत्री थे. इस पुनर्गठन के साथ उन की संख्या ३२ हो गयी है. नये मंत्रियों में ३ भूतपूर्व राज्यमंत्री हैं जिन्हें कैबिनेट स्तर का मंत्री बनाया गया है. ३ उपमंत्रियों को राज्यमंत्री बनाया गया है. इन

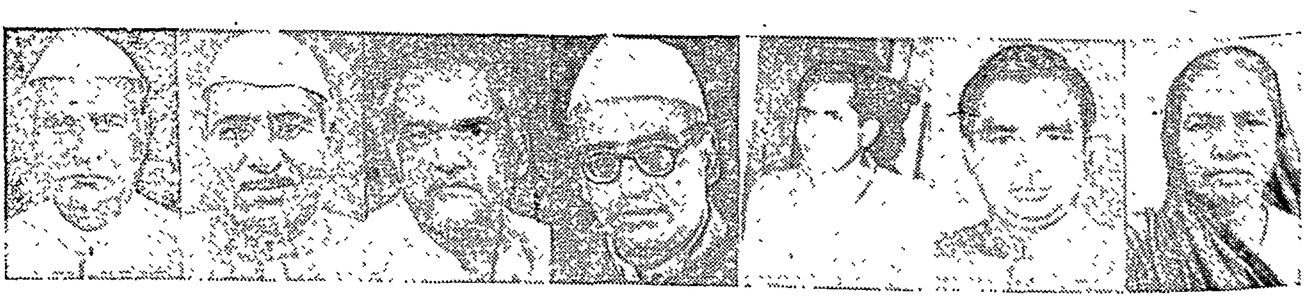

शंभुनाथ शुक्ल मिश्रीलाल गंगवाल गौतम शर्मा मथुराप्रसाद दुबे श्यामाचरण शुक्ल नंदवास कुर्रे मिनी माता

नियुक्ति से यह बात भी साफ़ हो गयी है कि जिन ५ मंत्रियों को भ्रष्टाचार आदि के आरोप लगा कर राजमाता और जनसंघ अलग रखना चाहते थे उन में से ३ को मंत्रिमंडल में पुनः ले लिया गया है. जिन ५ भूतपूर्व मंत्रियों को नहीं लिया गया उन में एक नाम शारदाचरण तिवारी का है, जिन के बारे में यह कहा जाता है कि उन्होंने मंत्रिमंडल में शामिल होने से इनकार कर दिया. गणेशराम अनंत कांग्रेस में चले गये हैं. कन्हैया लाल मेहता और बलवंत सांगले के संबंध संविद सरकार से अच्छे नहीं थे और अब वे भारतीय क्रांति दल के सदस्य हो गये हैं. पाँचवें भूतपूर्व मंत्री रामेश्वरप्रसाद शर्मा हैं. उन्होंने संविद सरकार के खिलाफ़ वक्तव्य दे कर अपनी स्थिति साफ़ कर ली थी. मुख्यमंत्री का कहना है कि श्री शर्मा ने क्योंकि संविद सरकार की योग्यता पर ही शंका प्रकट की थी उन्हें मंत्रिमंडल में लेने का सवाल ही नहीं पैदा होता. उन के हिसाब से अब किसी प्रकार की अस्थिरता की आशंका नहीं है. उन्होंने यह बात भी ज़ोर दे कर कही कि बजट सत्र में उन की सरकार के गिरने का कोई खतरा नहीं है.

मद्रास

नया साल : पुराना राग

नये वर्ष के शुभावसर पर मद्रास के मुख्यमंत्री अन्नादोरै ने अपने एक संदेश में कहा कि गत वर्ष के अंत में तंजौर में जो अमानवीय आगज़नी की दुर्घटनाएँ घटीं उन की अब कभी पुनरावृत्ति न हो, यही मेरी कामना है. हर इनसान का यह कर्त्तव्य है कि वह हर किसी से मानवता का व्यवहार करे. उन्होंने कहा कि जहाँ तक तमिलनाड का प्रश्न है हमारा नव वर्ष पोंगल (१४ जनवरी) से शुरू होता है, लेकिन पहली जनवरी का भी अपने-आप में विशेष महत्त्व है, क्योंकि अब अंग्रेजी और अंग्रेजी परंपरा हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गयी है.

हिंदी-अंग्रेजी विवाद : नया वर्ष शुरू होते ही हिंदी-अंग्रेजी का विवाद फिर शुरू हो गया है. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने नव वर्ष पर एक संवाददाता सम्मेलन में कहा था कि मैं त्रिभाषा फ़ॉर्मूले के पक्ष में हूँ और यह मानती हूँ कि देश की एक संपर्क-भाषा होनी ही चाहिए. ज़ाहिर है कि उन का इशारा हिंदी की ही ओर था. मगर उस के ठीक दूसरे दिन मद्रास के मुख्यमंत्री ने अपना वही पुराना राग अलापते हुए एक बयान जारी किया और कहा कि इस देश की संपर्क-भाषा अंग्रेजी ही हो सकती है. प्रधानमंत्री के इस कथन पर कि वह शीघ्र ही मद्रास के मुख्यमंत्री से इस संबंध में बातचीत करेंगी अन्नादोरै ने कहा कि यदि कोई बातचीत करना चाहे तो उसे 'न' कैसे कहा जा सकता है—'मैं उन से बातचीत करने को तैयार हूँ, पर मैं जानता हूँ कि उस में कोई नयी बात नहीं होगी.', जहाँ तक एन. सी. सी. का सवाल है उन्होंने कहा कि जब तक एन. सी. सी. में हिंदी आदेशों और निर्देशों को अंग्रेजी में नहीं बदला जाता तब तक वह अपने राज्य में एन. सी. सी. को फिर से शुरू करने के पक्ष में नहीं है.

जाँच कमीशन : अन्नादोरै यह तो चाहते हैं कि तंजौर ज़िले में हुई बर्बरतापूर्ण घटनाओं की पुनरावृत्ति न हो, मगर वह यह बिलकुल नहीं चाहते कि उस की न्यायिक जाँच हो. द्रमुक सरकार के आलोचकों को वर्त्तमान सरकार की आलोचना करने का अच्छा मौक़ा मिल गया है. उन का कहना है कि कांग्रेस राज्य में इतना जुल्म या इतनी अंधेरगर्दी कभी नहीं हुई.

पिछले कुछ दिनों से तंजौर की स्थिति काफ़ी तनावपूर्ण हो गयी है. ज़मींदार, किसान और धान की कटाई करने वाले मज़दूर सभी एक दूसरे को मरने-मारने पर तुले हुए हैं. कुछ लोगों का यह भी कहना है कि सारी शरारत की जड़ मार्क्सवादी कम्युनिस्ट हैं. खैर, राज्य के मुख्यमंत्री ने एक आयोग (एक सदस्यीय) की नियुक्ति कर दी है, जो तंजौर में हुई आगज़नी की घटनाओं पर मार्च के अंत तक अपनी रिपोर्ट राज्य सरकार को प्रस्तुत करेगा. राज्य सरकार ने इस जाँच कमीशन का दायित्व मद्रास हाई कोर्ट के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश एस. गणपथाई पिलाई को सौंपा है. यह कमीशन घटनाओं की जाँच के साथ-साथ खेतिहर मज़दूरों की समस्याओं और ज़मींदारों और किसानों के संबंधों पर भी विचार करेगा.

हरयाणा

नये अध्यक्ष

काफ़ी अर्से से बार-बार टलता आ रहा हरयाणा प्रदेश कांग्रेस समिति के अध्यक्ष-पद का चुनाव आखिरकार संपन्न हो ही गया. पिछली गतिविधियों को देखते हुए हर किसी के लिए यह अनुमान लगाना बहुत मुश्किल था कि रामशरणचंद मित्तल इस पद के लिए सर्वसम्मति से चुने जायेंगे. चुनाव के एक रोज़ पूर्व तक जिन उम्मीदवारों का नाम इस पद के लिए लिया जा रहा था उन में श्री मित्तल का ज़िक्र तक नहीं था. इस के पहले तक उद्योगपति श्री डी. डी. पुरी, संसद्-सदस्य दलबीर सिंह और श्री बनारसी दास गुप्त ही संभावित उम्मीदवार समझे जा रहे थे.

पिछले साल भर से भगवद्दयाल शर्मा सर्वसम्मति से अध्यक्ष-पद के लिए चुने जाने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे थे, पर उन्हें अपने इरादे में कामयाबी नहीं मिल पायी. कुछ मतभेद के कारण उन्होंने पिछले महीने कांग्रेस को ही त्याग दिया. उन के मैदान से हटते ही चुनाव का माहौल तैयार हो गया. श्री मित्तल के चुनाव के प्रति भगवद्दयाल गुट का विरोध इस रूप में

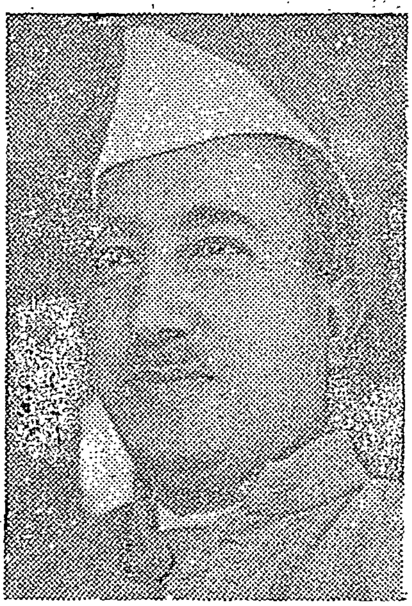

रामशरण मित्तल : गुदड़ी के लाल

सामने आया कि अवकाश ग्रहण करने वाले दो महासचिव रामचंद्र शर्मा और गुलाब सिंह जैसे उन के समर्थकों ने अनुपस्थित रह कर चुनाव का बहिष्कार किया. भगवद्दयाल समर्थक जयनारायण वशिष्ठ, हुकम सिंह और बनवारी लाल भी चुनाव में शामिल नहीं हुए. लेकिन भगवद्दयाल के अन्य समर्थक (उन का दावा है कि हरयाणा प्रदेश कांग्रेस में २५ सदस्य उन के समर्थक हैं) बैठक में शामिल हुए. बेशक़ अंबाला के साबूराम ने, जो भगवद्दयाल के समर्थक हैं, यह कह कर श्री मित्तल के नामांकन का विरोध किया कि वह सदन के सदस्य नहीं हैं. मुख्यमंत्री बंसीलाल ने तुरंत ही साबूराम के मत का खंडन किया कि सदस्य की हैसियत से श्री मित्तल का नामांकन विधायकों के कोटे में से किया गया है. भगवद्दयाल के एक और समर्थक ने सुझाव दिया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के लिए प्रतिनिधि चुनने के प्रदेशाध्यक्ष के अधिकार पर अंकुश लगाया जाये. उन्होंने कहा कि परंपरा के अनुसार इस तरह का नामांकन सानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर ही होता है. बंसीलाल ने इस सुझाव की काट प्रस्तुत करते हुए कहा कि सदन ने पहले से ही अध्यक्ष को ये अधिकार दे दिये हैं—अब उलट-फेर संभव नहीं. भगवद्दयाल गुट के एक प्रमुख सदस्य बाऊदयाल शर्मा भी इस बैठक में शरीक़ हुए, जो कभी उन के मंत्रिमंडल के सदस्य थे. इस से आभास मिलता है कि भगवद्दयाल गुट में भी अस्थिरता की संभावना है.

विवादहीन व्यक्तित्व : सर्वसम्मत चुनाव के बाद नये अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया कि वह उपाध्यक्ष, दो महासचिव, कोषाध्यक्ष और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रतिनिधि सहित कार्यकारिणी समिति के २१ सदस्यों का चुनाव करें. बंसीलाल ने बताया कि बैठक में प्रदेश कांग्रेस समिति के ८१ में से ७५ सदस्य

शामिल थे. बाकी ६ में से ५ सदस्यों—भगवद्दयाल शर्मा, रामधारी गौड़, महावीर सिंह, कमलदेव कपिल और सुरेशचंद्र को दल त्यागने के आरोप में मुअत्तल कर दिया गया है. अगर भगवद्दयाल समर्थकों के रुख पर ध्यान दिया जाये तो कहा जा सकता है कि श्री मित्तल सर्वसम्मति के द्योतक नहीं हैं, लेकिन अपने विवादरहित व्यक्तित्व के कारण श्री मित्तल के चुने जाने से अधिकतर कांग्रेसी संतुष्ट हैं. श्री मित्तल १९५२ में विधायक बने और १९५४ में विधानसभा के अध्यक्ष बने. वह कैरों और भार्गव दोनों मंत्रिमंडलों में शामिल हुए थे. नये अध्यक्ष की हैसियत से श्री मित्तल ने संवाददाताओं से कहा कि उन का चुनाव कांग्रेस की एकता का परिचायक है.

अध्यक्ष-पद ग्रहण करने के बाद उन्होंने उपाध्यक्ष पद के लिए डी. ई. पुरी को चुना है. संसद्-सदस्य रिज़क राम और बनारसी दास गुप्त महासचिव और ओमप्रकाश गर्ग कोषाध्यक्ष चुने गये हैं. श्री मित्तल ने प्रदेश चुनाव समिति, कार्यकारिणी समिति और स्थायी प्रतिनिधि पद के लिए ९ सदस्यों के नामों की भी घोषणा कर दी है. कार्यकारिणी समिति के सदस्य हैं : रिज़करास, बनारसी दास गुप्त, बंसीलाल, दया किशन, खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ, प्रोफेसर शेर सिंह, दलबीर सिंह, रामकृष्ण गुप्त, डी. आनंद, जगदीश चंद्र, श्रीमती चंद्रावती, बनवारी लाल, सूरत सिंह, रूपलाल मेहता, नेकी राम, ग्राम प्रकाश, प्रसन्नी देवी, राव निहाल सिंह, देवीसिंह तेवातिया, इंद्रराज और राजेंद्रपाल सिंह. चुनाव-समिति के सदस्य हैं : बंसीलाल, प्रोफ़ेसर शेर सिंह, रामकिशन गुप्त, रिजक राम, बनारसी दास गुप्त, दलबीर सिंह, मोहिंदरसिंह चत्ता, अतरसिंह और श्रीमती चंद्रावती.

राजस्थान

चोरों के पहरेदार

राज्य खादी ग्रामोद्योग बोर्ड के अध्यक्ष माणिक्यलाल वर्मा ने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया है. श्री वर्मा मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया के राजनैतिक गुरू कहे जाते हैं. अध्यक्ष होने के पहले उन्होंने सुखाड़िया गुट की तीखी आलोचना करते हुए कहा था कि इन भ्रष्ट लोगों ने राजस्थान को बर्बाद कर दिया. श्री सुखाड़िया ने अपनी कूटनीति से श्री वर्मा का ज्वार शांत कर दिया. इस के लिए उन्होंने श्री वर्मा को खादी बोर्ड के अध्यक्ष की कुर्सी दी और उस के साथ-साथ मंत्रिस्तर की सारी सुविधाएँ भी. श्री वर्मा कुछ दिनों तक तो शांत रहे, लेकिन उन का असंतोष फिर उभर आया और 'दो बीघा जमीन' के मामले को ले कर उन्होंने अपने दामाद और तत्कालीन शिक्षामंत्री शिवचरण माथुर से त्यागपत्र ही दिलवा दिया. उन्होंने यह भी कोशिश की कि किसी तरह श्री सुखाड़िया का प्रभाव खत्म किया जाये और माथुर मुख्यमंत्री बन जायें. लेकिन इस प्रयत्न में उन्हें सफलता नहीं मिली.

गोलमाल की राजनीति : त्यागपत्र के कारणों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा 'बोर्ड में ४० लाख रुपये से अधिक का गोलमाल है और मुझे इस पद पर चोरों का पहरेदार बना कर बिठा दिया गया है. इसे मैं ठीक नहीं समझता'. लेकिन शायद एकमात्र और असली कारण यही नहीं है. पिछले दिनों मंत्रिमंडल का विस्तार हुआ. उस में शिवचरण माथुर को बिजली-विभाग दिया गया, जब कि श्री माथुर शिक्षा-विभाग चाहते थे. शिक्षाविभाग इस समय बरकतुल्ला खाँ के पास है. यह सही है कि श्री खाँ को ले कर न केवल प्रतिपक्ष बल्कि कांग्रेस के भी लोगों के मन में बड़ी शिकायतें हैं, लेकिन इस के बावजूद श्री सुखाड़िया कोई भी परिवर्तन करने के पक्ष में नहीं हैं. कुछ लोगों का कहना यह भी है कि श्री वर्मा ने त्यागपत्र केवल सुखाड़िया पर दबाव डालने के लिए दिया है, ताकि वह श्री माथुर को शिक्षा या कोई अन्य महत्त्वपूर्ण विभाग दे दें.

फूट के बीज : एक तरफ़ सर्वोच्च न्यायालय ने प्रदेश कांग्रेस के महामंत्री पी. के. चौधरी का चुनाव वैध घोषित किया है और उन्हें एक विधायक के रूप में स्वीकृति दी है, दूसरी ओर गंगानगर ज़िला कांग्रेस के दो मंत्रियों—राम विलास और गौरी शंकर ने जिला कांग्रेस को भंग करने और उस के अध्यक्ष रामस्वरूप बिशनोई को संगठन से निष्कासित करने की माँग की है. उन की इस माँग का समर्थन राज्य सरकार के दो उप-मंत्रियों—बृजप्रकाश गोयल और मुल्कराज थिंद ने भी किया है. एक अन्य विधायक हंसराज आर्य भी समर्थकों की सूची में शामिल हैं, हालाँकि उन की स्थिति कुछ लोगों के ख़्याल से विश्वसनीय नहीं मानी जाती. प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष नाथूराम मिर्धा भी इन दिनों कुछ धर्म-संकट की स्थिति में बताये जाते हैं. कुछ ही दिनों पहले उन के बारे में भी यह खबर उड़ी थी कि श्री सुखाड़िया उन पर इस्तीफ़ा देने का दबाव डाल रहे हैं. कुंभाराम आर्य के कांग्रेस से अलग होने के बाद जाट भाइयों का नेतृत्व श्री मिर्धा के ही हाथ में आ गया. दिक़्क़त यह है कि श्री सुखाड़िया और उन के दोस्तों की न जाट भाइयों से पटरी नहीं बैठती. इसी वजह से गंगानगर ज़िला कांग्रेस के बारे में कोई स्वतंत्र निर्णय ले सकना श्री मिर्धा के लिए कठिन है. कुछ लोगों की शिकायत अगर यह है कि बृजप्रकाश गोयल श्री सुखाड़िया के रिश्तेदार हैं तो कुछ लोग इस तथ्य को भी शंका की दृष्टि से देखते हैं कि रामस्वरूप बिशनोई राज्य सिंचाईमंत्री और युवा संगठनों के प्रभावशाली नेता मनफूलसिंह के कट्टर समर्थक और दाहिने हाथ समझे जाते हैं. श्री बिशनोई ने राम विलास और गौरी शंकर को उन के पदों से निलंबित कर दिया है.

विधानसभा के अध्यक्ष निरंजननाथ आचार्य को राजनैतिकों का एक वर्ग शुरू से ही विवाद का विषय मानता रहा है. कुछ लोगों का कहना यह है कि वह अपने वर्त्तमान पद से संतुष्ट नहीं हैं. मानसिक तुष्टि के लिए उन्हें राजस्थान साहित्य अकादेमी का अध्यक्ष बनाया गया है. पिछले दिनों राजधानी के लेखकों, पत्रकारों और राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं ने एक संयुक्त वक्तव्य में यह माँग की है कि साहित्य अकादेमी का अध्यक्ष-पद किसी राजनैतिक नेता को न दे कर किसी साहित्यकार को दिया जाना चाहिए. श्री आचार्य की एक दिक़्क़त यह भी है कि उन का विरोध करने वाले उन्हीं के घर में मौजूद हैं. एक तरफ़ उदयपुर के अधिसंख्य कांग्रेसी उन्हें प्रतिपक्ष का व्यक्ति समझते हैं, दूसरी तरफ़ स्थिति यह है कि प्रतिपक्ष के लोग उन पर विश्वास नहीं करते.

राम-झरोखा

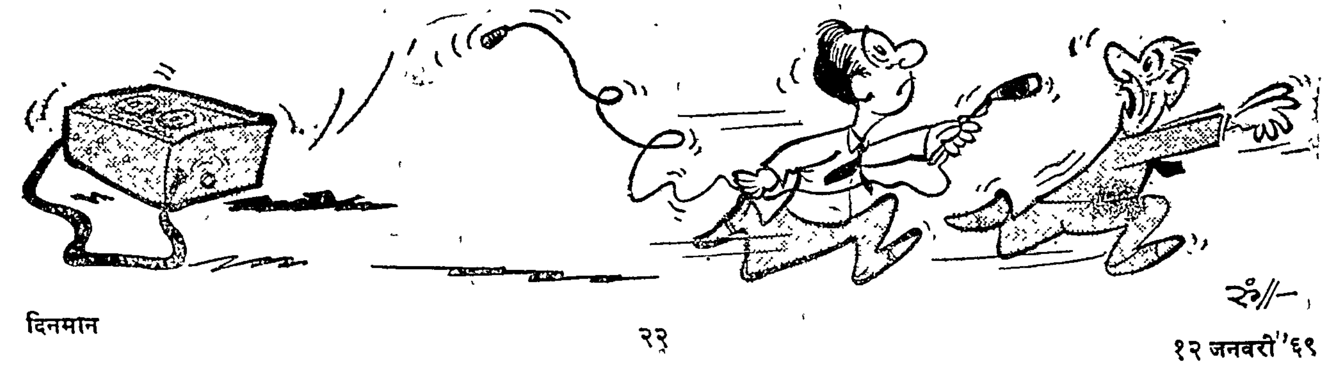

नये वायदे

मध्यावधि चुनाव में खड़े होने वाले दल अगर सरकार बना पाये तो
१—क्या बढ़ते दाम बाँधेंगे ?
२—क्या विश्वविद्यालयों की खोयी शक्ति वापस करेंगे ?
ये प्रश्न दिनमान ने कई दलों के प्रवक्ताओं से पूछा. उत्तर यहाँ दिये जा रहे हैं.
अगले अंकों में कुछ और प्रश्न और कुछ और उत्तर पढ़िए.

दाम

नाना जी देशमुख (जनसंघ) : 'क़ीमतें बढ़ने के दो कारण हैं, मुद्रा-स्फीति और देश की बहुत बड़ी धन-राशि का काले बाज़ार में जमा हो जाना. मुद्रा-स्फीति के कुप्रभावों को अधिक उत्पादन के द्वारा समाप्त किया जा सकता है और काले बाज़ार का रुपया डरा-धमका कर नहीं **केवल चतुरता** से उत्पादक कार्यों में लगवाया जा सकता है. इस के लिए अधिक उत्पादन बढ़ाओ का वातावरण बनाना होगा.'

प्रश्न : ये दोनों काम कैसे पूरे होंगे ?

नाना जी : 'अधिक उत्पादन बढ़ाने की समस्या बिजली-उत्पादन के विस्तार से संबंधित है. यदि हम सस्ते दरों पर बिजली गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचा सकें और उस के प्रयोग के द्वारा हर परिवार को एक छोटे-मोटे कारख़ाने में परिणत कर सकें तो उत्पादन स्वयं बढ़ जायेगा. इस से खेतों को पानी भी समय से और उचित मात्रा में पहुँच सकेगा और धरती की पैदावार भी बढ़ सकेगी. अतः मुख्य बात बिजली है. इस के लिए जनसंघ का कार्यक्रम यह है कि बड़े-बड़े बिजली-उत्पादन के कारख़ानों के बजाय छोटे-छोटे कारख़ाने स्थापित किये जायें. हम समझते हैं कि ५ साल के अंदर हम गाँव-गाँव को बिजली दे सकेंगे.'

प्रश्न : इस काम के वास्ते क्या राज्य सरकार धन का प्रबंध कर सकेगी ?

नाना जी : 'हम यह प्रयत्न करेंगे कि जिन लोगों के पास काले बाज़ार का रुपया दबा हुआ है और जो क़ानूनी दिक़्क़तों के कारण इस्तेमाल नहीं हो पा रहा है वे लोग निःसंकोच **अपने-अपने नाम से** बिजली बनाने के कारख़ाने खड़े करें और अन्य उद्योग-धंधे शुरू करें. इस तरह से उन का **काला रुपया सफ़ेद रुपये में बदल जायेगा.**'

प्रश्न : किंतु इस से तो व्यापार में एकाधिकारवादिता बढ़ेगी. इस के कारण भी चीज़ों की काला बाज़ारी बढ़ती है और उन के दाम भी बढ़ते हैं. इस की रोक-थाम का क्या प्रबंध होगा ?

नाना जी : 'इस प्रकार से जो कारख़ाने बनेंगे उन का **संचालन सरकार द्वारा किया जायेगा.** सरकार लागत और लागत का सूद देगी और फिर कारख़ाने सरकारी हो जायेंगे. दबा हुआ रुपया बाहर आ जायेगा और उत्पादन बढ़ने से बिगड़ी हुई आर्थिक व्यवस्था आप ही आप सुधर जायेगी.'

प्रश्न : क्या आप का विचार है कि चोर बाज़ारी का रुपया इतनी आसानी से निकल सकेगा और यदि निकल भी आये तो पैदावार के वितरण की समस्या तो बनी रहेगी. इस के कारण भी चीज़ों के दाम बढ़ते हैं.

नाना जी : 'चोर बाज़ारी का रुपया आसानी से निकल आयेगा, क्यों कि जिन के पास यह है उन के लिए बवालेजान बन गया है. जहाँ तक वितरण का प्रश्न है उस को हम **सहकारी समितियों के माध्यम से** ठीक करेंगे. यह समितियाँ आज-कल भली भाँति काम नहीं कर रहीं, लेकिन हम उन को पुनर्गठित कर के दुरुस्त कर सकते हैं. आप कहेंगे कि यह समितियाँ भ्रष्टाचार के अड्डे बन चुके हैं और ठीक नहीं की जा सकतीं. मैं कहता हूँ कि आज भ्रष्टाचार कहाँ नहीं है. इस के लिए **ईमानदारी का वातावरण बनाना होगा.** जनसंघ सत्ता में आने के बाद इस का पूरा-पूरा प्रयास करेगा और एक बार वातावरण बन जाने पर सहकारी समितियाँ भी ईमानदारी से काम करने लगेंगी.'

प्रश्न : यदि मान भी लिया जाये कि ऐसा हो सकेगा तब भी उत्पादन की क़ीमतें तो निर्धारित करनी ही होंगी. नहीं तो वे मनमाना स्तर स्थापित करेंगी.

नाना जी : **जनसंघ का प्रथम प्रयास तो यह होगा कि चीज़ों के दाम स्वतंत्र बाज़ार में माँग और पूर्ति के सिद्धांत पर निर्धारित हों.** वे इस विषय में कोई बाधा नहीं चाहेंगे. किंतु यदि कृत्रिम रूप से किन्हीं वर्गों ने बाधा उत्पन्न की तो जनसंघ उचित मूल्यों का निर्धारण करेगी, यदि आवश्यक हुआ तो मूल्य निर्धारण के पश्चात् उन चीज़ों के वितरण का प्रबंध भी करेगी और दोनों विषयों में अपनी नीतियों का कठोरता से पालन करेगी.

अर्जुनसिंह भदौरिया (संसपा) : 'खेतों की पैदावार में एक फ़सल और दूसरी फ़सल के मूल्यों के बीच २० प्रतिशत से अधिक का अंतर नहीं रहने दिया जायेगा. इसी प्रकार मिलों की पैदावार का मूल्य लागत खर्चे से डेढ़ गुने से अधिक न किया जायेगा. इन दोनों सीमाओं के अंदर ही दोनों प्रकार के उत्पादनों के मूल्यों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जायेगा. जहाँ तक बड़े मिल उद्योगों का संबंध है संसपा उन के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में है और सत्ता में जाने पर वह चीनी की मिलों और दूसरी इसी प्रकार की मिलों का राष्ट्रीयकरण करेगा.'

रमेश सिन्हा (कम्युनिस्ट) : 'हमारी आर्थिक दुर्व्यवस्था का एक कारण देश की मुद्रा के प्रायः बराबर ही चोरबाज़ार का दबा हुआ रुपया है, जो विकास-कार्यों में नहीं लग पा रहा. दूसरा कारण पूँजीपतियों का एकाधिकार है. इन पूँजीपतियों का बैंकों पर पूरा कब्ज़ा है. इस में जमा हुए धन का उपयोग यह पूँजीपति सट्टे बाज़ार और वादे के व्यापार के लिए करते हैं और आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को अपनी रुचि के अनुसार बढ़ाते रहते हैं. वैसे भी एकाधिकार के कारण जब यह चाहते हैं मिलों की पैदावार की क़ीमतें बढ़ा देते हैं—जैसे डालडा, साबुन और सिगरेट आदि. इस लिए आवश्यक है कि **बैंकों का राष्ट्रीयकरण** किया जाये, सट्टा और वादे का व्यापार बंद किया जाये, क़ानून इस प्रकार से बदला जाये कि मिलों के उत्पादन पर किया जाने वाला मुनाफ़ा नियंत्रित किया जा सके. इन पूँजीपतियों को आयात और निर्यात के लिए दिये जाने वाले लाइसेंसों को एकदम रोका जाये. पूँजीपतियों के एकाधिकार को समाप्त कर **उत्पादन का विकेंद्रीकरण** किया जाये और इस प्रकार इन के साम्राज्य का अंत कर के इन के चंगुल में फँसे खेतों में लगे लोगों को छुटकारा दिया जाये. वे इस समय कृषि-उत्पादन-क्षेत्र पर हावी हैं. इस के पश्चात कृषि-क्षेत्र के उद्योगों को सस्ते दरों पर उचित आर्थिक सहायता दी जाये. उन के मूल्यों का उचित निर्धारण किया जाये और उन की पैदावार को सरकार स्वयं ख़रीद कर उन के वितरण का प्रबंध करे. कम्युनिस्ट दल इन सब की आवश्यकता महसूस करता है, इन सब नीतियों में विश्वास करता है **और सत्ता में आने के बाद इन को तुरंत कार्यान्वित करेगा.**'

रामकरण सिंह (प्रसपा) : 'मूल्यों की वृद्धि

नाना जी : लागत और लागत का सूद

रोकने का काम विशेषत: और मुख्यत: केंद्रीय सरकार का है. राज्य सरकारें इस दिशा में कुछ अधिक नहीं कर सकतीं. उदाहरणार्थ कपड़ा या चीनी के मूल्य तो केंद्रीय नीति से ही निर्धारित होंगे. राज्य सरकार गल्ले के मूल्यों के निर्धारण में ही सहायक हो सकती हैं. इस क्षेत्र में स्थिति यह है कि अनाजों के दाम पिछले दिनों में तेज़ी से गिरे हैं, किंतु कपड़े, चीनी और तेल के दाम नहीं गिरे. किसान, जो गल्ले को ऊँचे दामों पर बेचने का आदी हो गया है, यह माँग कर रहा है कि इन चीज़ों के दाम गिरने चाहिए, जिस से वह अपनी व्यवस्था चला सके. अत: गल्ले और दूसरी आवश्यक चीज़ों के दामों में कोई न कोई अनुपात तो बनाये रखना होगा, नहीं तो खेतों का उत्पादन गिर जायेगा और अन्न की कमी बनी रहेगी. इतना ही नहीं, यह कमी बढ़ भी सकती है. यह रोकना होगा और इस के लिए गल्ले की सरकार द्वारा उगाही आवश्यक हो सकती है. गल्ले की क़ीमतों को बहुत नीचे गिरने से भी बचाना हो सकता है. उन के दामों के बहुत अधिक बढ़ने पर भी रोक लगानी हो सकती है और इस सब को आर्थिक बनाने के वास्ते गल्ले के वितरण को भी अपने हाथ में लेना हो सकता है.'

विश्वविद्यालय

नाना जी : 'कांग्रेसी शासन में विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता उत्तरोत्तर घटती रही है. शासनतंत्र के हाथ में आने पर जनसंघ का प्रथम कार्य विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता को अकलुषित रूप में पुन: स्थापित करना होगा.'

प्रश्न : स्वायत्तता का अकलुषित रूप क्या है ?

नाना जी : 'विश्वविद्यालयों में हर प्रकार की विचारधारा को स्थान है, किंतु किसी **एक विशेष विचारधारा** का अत्यधिक प्रभाव उस की मानसिक स्वतंत्रता को अपहृत कर के उस के विचार-स्वातंत्र्य का अवरोधक हो सकता है. जनसंघ शिक्षा-पद्धति और शिक्षा-व्यवस्था को हर शासकीय अंकुश से **उस सीमा और उस समय तक पूरी तरह स्वतंत्र रखेगा जब तक और जहाँ तक कि विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता राष्ट्रहित के विरुद्ध और राष्ट्रीय प्रगति में बाधक सिद्ध न हो.'**

प्रश्न : क्या विश्वविद्यालयों के आज के गठन में किसी परिवर्त्तन की आवश्यकता होगी ?

नाना जी : 'विश्वविद्यालयों के गठन की समस्या उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी स्वयं विश्वविद्यालय के संचालकों में अपनी स्वायत्तता को सर्वांगीण बना कर उस का सदुपयोग करने की प्रवृत्ति और सरकार द्वारा उन की स्वायत्तता में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने की मनोवृत्ति. यदि यह दोनों कार्य साथ-साथ संपादित हो सकें तो **गठन का प्रश्न गौण हो जाता है.** इस के एक अंग का समाधान विश्वविद्यालय से संबद्ध सभी व्यवस्थाओं में प्रतिभासंपन्न शिक्षाविदों का समावेश है, **जो राजनैतिक दलों और राजनैतिक दलों की सरकारों के प्रभाव से सर्वथा मुक्त हो.** दूसरे अंग का समाधान मंत्रिमंडल और राज्य अधिकारियों की नीति और कार्य-विधि पर निर्भर है. **जनसंघ** विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता की सुरक्षा की दृष्टि से इन दोनों पक्षों पर **दल और राजनीति की आवश्यकताओं के ऊपर उठ कर क्रियाशील होगा.'**

प्रश्न : शिक्षा-माध्यम क्या रहेगा ?

नानाजी : 'अंग्रेजी किसी भी स्तर पर शिक्षा का माध्यम नहीं रहेगी. शिक्षा का माध्यम हिंदी ही होगी और इस नीति के कार्यान्वयन में जनसंघ को **एक वर्ष से अधिक का समय नहीं लगेगा.**

रमेश सिन्हा : विकेंद्रीकरण

'यदि हिब्रू, दो हज़ार वर्ष पुरानी भाषा, इस्राइल की सशक्त राष्ट्रभाषा बन सकती है तब हिंदी, उतनी ही सशक्त, हमारी राष्ट्रभाषा क्यों नहीं हो सकती ?'

अर्जुनसिंह भदौरिया : 'विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता नष्ट-भ्रष्ट हो गयी है. और संसपा मध्यावधि चुनाव के बाद किसी भी बनने वाली ग़ैर-कांग्रेसी सरकार में इस शर्त पर ही सम्मिलित होगी कि विश्वविद्यालयों की शत-प्रतिशत स्वायत्तता अविलंब वापस की जाये. कांग्रेसी सरकारों के अतिरिक्त कांग्रेसी राजनीति ने भी विश्वविद्यालय की स्वायत्तता को बहुत क्षति पहुँचायी है और यह संसपा का प्रयत्न होगा कि उन्हें कांग्रेस की दबोच से छुटकारा दिलाया जाये.

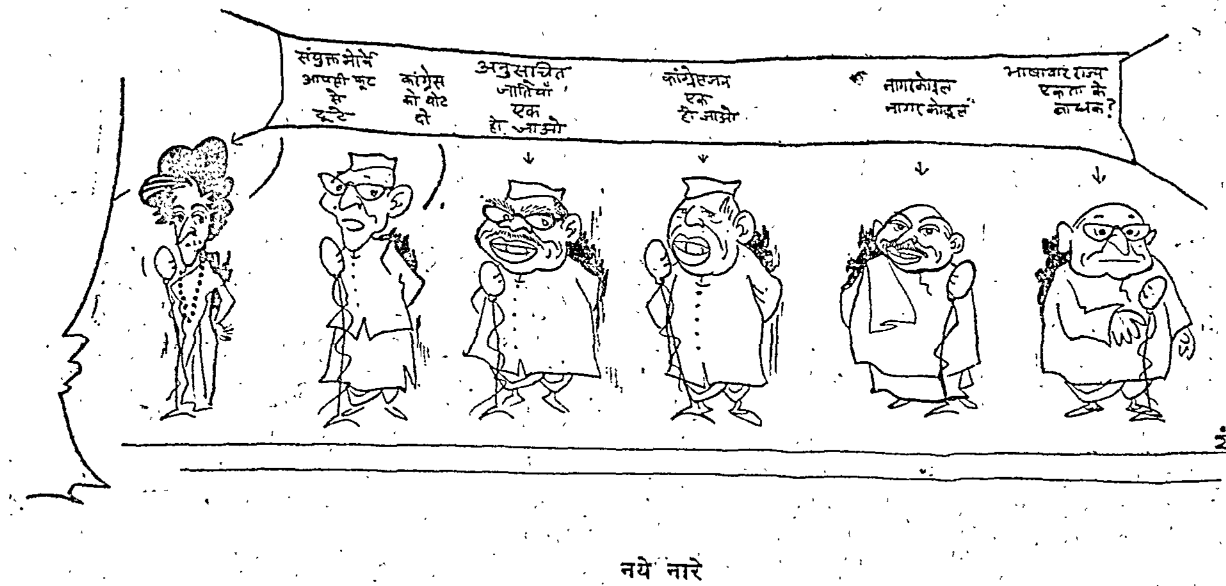

नये नारे

संसपा ने दलीय स्तर पर अभी तक यह विचार नहीं किया कि स्वायत्तता की पुनर्स्थापना के हेतु विश्वविद्यालयों के गठन में किसी परिवर्तन की आवश्यकता है कि नहीं. शिक्षाविदों के परामर्श से स्वस्थ शैक्षिक वातावरण को बनाने के लिए और विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता को अक्षुण्ण रखने के लिए जो भी प्रस्ताव किये जायेंगे, संसपा उन का समर्थन करेगी.

प्रश्न : शिक्षा माध्यम ?

भदौरिया : संसपा हिंदी को ही माध्यम रखेगी. **संसपा की हिंदी वह भाषा है जो प्रदेश में प्रतिदिन के व्यवहार और व्यापार में काम आती है.** हिंदी में उच्च शिक्षा देने के लिए संसपा वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य का अनुवाद शीघ्र से शीघ्र कराने का प्रबंध करेगी. भदौरिया के अनुसार संसपा अनुवाद का सारा कार्य अधिक से **अधिक दो शैक्षिक सत्रों के अंदर पूर्ण करा सकेगी और तीसरे सत्र से अंग्रेज़ी को माध्यम के रूप में नहीं रखेगी.**

रमेश सिन्हा : विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता सर्वप्रथम और सर्वाधिक हताहत हुई है. शिक्षा जगत् के प्रसिद्ध और प्रतिभावान व्यक्तियों के स्थान पर मोटर कंपनियों और कारखानों के धनाढ्य सेठ और ठेकेदारी से मोटे हुए लोग राजनैतिक और सरकारी प्रभाव के द्वारा कार्यकारिणी में प्रवेश पाते हैं. अवकाश प्राप्त पुलिस के उच्च अधिकारी कोषाध्यक्ष बना दिये जाते हैं. उपकुलपति के नामांकन से ले कर विद्यार्थियों को प्रवेश दिलाने तक में सरकारी स्तर से हस्तक्षेप होता है.

किंतु जब विद्यार्थियों की संख्या के अनुरूप उन की शैक्षिक आवश्यकता और साधारण व्यक्तिगत सुविधाओं की पूर्त्ति के लिए अतिरिक्त धनराशि की माँग होती है, तब सरकार साधनहीनता के तर्क का आश्रय लेकर उन्हें पूरा नहीं करती. परिणामतः छात्र-असंतोष उत्पन्न होता है और उसे दबाने के लिए वह पुलिस और पी. ए. सी. की लाठियों का सहारा लेती है. इस दयनीय स्थिति की तुलना में रमेश सिन्हा ने १९३६-३७ के वे दिन याद किये जब वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे. उस समय भी उन का संबंध कम्युनिस्ट पार्टी से था और सी. आई. डी. उन के पीछे लगी थी. एक नहीं अनेकों बार उन्होंने छात्रावासों की परिधि में घुस कर पुलिस से जान बचायी और वही शिक्षक जो सिन्हा की राजनैतिक गतिविधियों से असहमत थे, उस के कारण अप्रसन्न और रुष्ट रहते थे, उन की रक्षा करते थे. सी. आई. डी. और पुलिस के लोग छात्रावास में घुस नहीं सकते थे. तब विदेशी सरकार थी और अब अपनी सरकार के समय जो स्थिति है वह सामने है. कम्युनिस्ट दल विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता को देश की स्वतंत्रता का अविभाज्य अंग मानता है और उस **स्वतंत्रता को क्रियात्मक रूप से** अर्थपूर्ण बनाने के लिए विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता को पुनर्जीवित करना अपना कर्त्तव्य समझता है. शासन में आने पर कम्युनिस्ट दल इस कर्त्तव्य को पूरा करेगा. विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता के मायने हैं हर तरह से स्वतंत्र, न कोई शर्त्त, न कोई अंकुश. विश्वविद्यालयों के गठन में वह इस बात का ध्यान अवश्य रखेगा कि उस में किसी प्रकार का राजनैतिक प्रभाव न हो.

प्रश्न : और शिक्षा माध्यम ?

वह प्रदेश की भाषा हिंदी और उर्दू होगा. उर्दू हिंदी के समकक्ष है. अंग्रेज़ी को किसी न किसी रूप में जारी रखना होगा. अंग्रेज़ी ने तो अब देश की एक भाषा का रूप धारण कर लिया है. नगालैंड ने अपनी राज्य भाषा अंग्रेज़ी ही रखी है. और **नगालैंड भारत का एक भाग है, अतः अंग्रेज़ी अब हमारे लिए उतनी विदेशी नहीं रही, जितनी पहले कभी समझी जाती थी.**

डॉ. फ़रीदी : निर्जीव लोकतंत्र

प्रश्न : अंग्रेज़ी के स्थान पर हिंदी और उर्दू का माध्यम पूर्ण रूप से कब स्थापित हो सकेगा ?

रमेश सिन्हा : स्थितियाँ ही इस के काल और अवधि का निर्धारण करेंगी.

डा. अब्दुल जलील फ़रीदी (मुसलिम मजलिस) : 'दलगत राजनीति और सरकारी हस्तक्षेप से स्वायत्तता यथेष्ट मात्रा में नष्ट हुई है', उन का मत है कि यदि कभी मेरा दल शासन प्राप्त कर सका तो वह विश्वविद्यालयों को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करेगा. यहाँ तक कि जो सरकारी अनुदान विश्वविद्यालयों को दिया जाता है वह भी बंधन-मुक्त होगा.

विश्वविद्यालयों के गठन में कोई खराबी नहीं है. उस ढाँचे में ऐसे लोगों का प्रवेश पा जाना जिनका शिक्षा से कोई सरोकार नहीं, उग्र **राजनीति का परिणाम** है जिस के कारण कि हमारी विधान सभाओं और विधान परिषदों में योग्य, विद्वान, देश और समाज की समस्याएँ समझने वाले, निर्भीक और स्वतंत्र वृत्ति के लोग अधिक से अधिक संख्या में नहीं पहुँच पाते. प्रदेश और देश की सुशिक्षित और सचेत विधानसभाएँ, विधानपरिषद् और राज्य सभा लोकतंत्र की रीढ़ हैं. यदि यह निर्जीव और निःशक्त हुई तो यहाँ का लोकतंत्र भी निर्जीव और निःशक्त होगा. इस का असर मंत्रिमंडलों की रचना पर भी होना अनिवार्य है और अंततः फल यह होगा कि हमारी हर प्रकार की लोकतंत्रीय स्वतंत्रता दिन-प्रतिदिन कम होती जायेगी और बाद में ग़ायब हो जायेगी. **यदि हमारी विधानसभाओं, विधान परिषदों का स्तर ऊँचा उठ जाये तो विश्वविद्यालयों की कार्यपालिकाओं आदि में भी उस का प्रभाव पड़ेगा और वे स्वस्थ हो सकेंगी.**

प्रश्न : किंतु शिक्षा-माध्यम ?

फ़रीदी : उच्च शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी ही रखना होगा. विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के लिए हिंदी सक्षम नहीं.

रामकरण सिंह (प्रसोपा) : २० वर्ष में विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता बहुत अंशों में क्षतिग्रस्त हुई है. यदि प्रसोपा को कभी सत्ता मिली तो वह विश्वविद्यालयों को **पूर्ण रूप से स्वायत्त** बनायेगी.

प्रश्न : प्रसोपा सत्ता पाने के बाद सशर्त अनुदान देगी या अशर्त और क्या विश्वविद्यालयों के विभिन्न अंगों का पुनर्गठन आवश्यक होगा. ?

रामकरण सिंह : इन दोनों प्रश्नों का हाँ या नहीं में सीधा उत्तर देना अव्यावहारिक होगा. **अशर्त अनुदान देने की बात कुछ संभव नहीं प्रतीत होती** क्यों कि सरकारी रुपये का पूरा हिसाब विधानसभा को देना होता है और सरकारी खज़ाने से किये गये पाई-पाई के खर्च का औचित्य देना होता है. यह जरूर है कि **अनावश्यक शर्त्तों को अविलंब हटा देना चाहिए.** समष्टि में यह मसला **गहरायी से विचार** करने का है. पुनर्गठन का विषय भी जानने का है. **यह मामला विशेषज्ञों के तय करने का** है. प्रसोपा इस के विषय में एक **समिति गठित** करेगी और फिर देखेगी कि क्या किया जाना आवश्यक है. यह कहा जा सकता है कि पुनर्गठन किसी भी प्रकार हो, प्रसोपा विश्वविद्यालयों में लोकतंत्रीय पद्धति को अवश्य ही बनाये रखेगी.

प्रश्न : तो फिर शिक्षा का माध्यम ?

रामकरण सिंह : अंग्रेज़ी माध्यम के रूप में नहीं रह सकती. माध्यम तो हिंदी भाषा ही होगी. प्रसोपा यह काम जल्द से जल्द करना चाहेगी किंतु कितने समय में यह काम पूरा हो सकेगा यह नहीं कहा जा सकता. इस विषय में **विश्वविद्यालयों की सुविधाओं का ध्यान रखना होगा** जिस से शिक्षा के स्तर पर बुरा प्रभाव न पड़े.

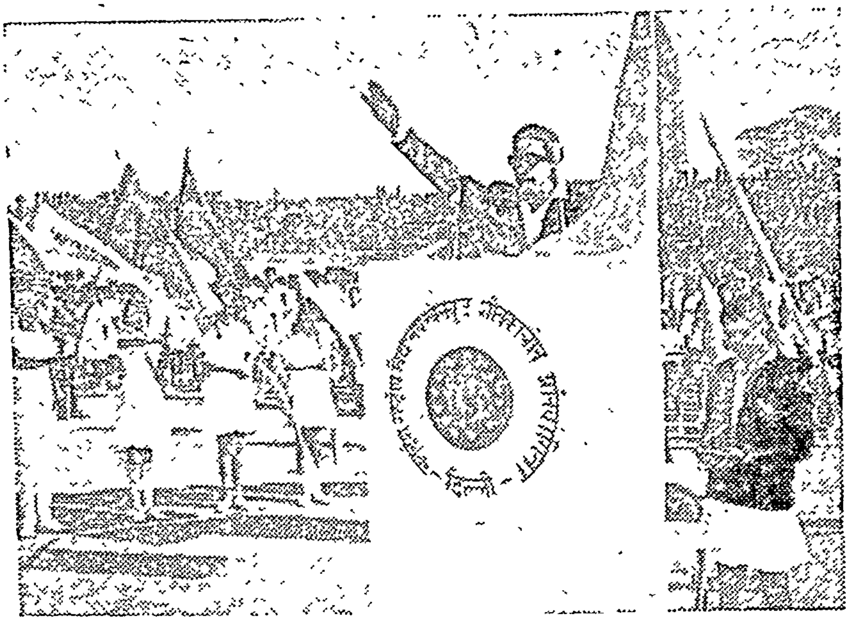

नेशनल स्टेडियम में १४वीं राष्ट्रीय स्कूली खेल प्रतियोगिता आरंभ : शपथ ग्रहण

खेल और खिलाड़ी

चतुर्दश राष्ट्रीय स्कूली खेल प्रतियोगिता

भारतवर्ष कभी अपने यहाँ ओलिंपिक खेलों का आयोजन करने में सफल हो सकेगा इस की निकट भविष्य में कोई आशा दिखायी नहीं देती लेकिन पिछले दिनों दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में हुई १४वीं राष्ट्रीय स्कूली खेल प्रतियोगिता के दौरान ओलिंपिक खेलों का एक प्रतिरूप-सा दिखायी दिया. मशाल जलायी गयी, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया, १४ बार बिगुल बजा, कबूतर और गुब्बारे उड़ाये गये और बाक़ायदा ओलिंपिक परंपरा के अनुसार (और कुछ-कुछ वैसी ही शब्दावली में) दिल्ली के कार्यकारी पार्षद् विजय कुमार मल्होत्रा ने कहा—'मैं चतुर्दश राष्ट्रीय शीतकालीन स्कूली खेल-कूद प्रतियोगिता का उद्घाटन करता हूँ'. इस प्रकार स्टेडियम में बैठे २०,००० से अधिक दर्शकों ने, जिन में से अधिकांश स्कूली छात्र थे, छोटे-छोटे खिलाड़ियों का एक छोटा-सा ओलिंपिक मेला देखा. सभी खेल-प्रेमियों और खेल-समीक्षकों ने एक स्वर से कहा कि १९५१ के प्रथम एशियाई खेलों के बाद नेशनल स्टेडियम में इतनी रौनक और चहल-पहल कभी नहीं रही.

इस पाँच दिवसीय प्रतियोगिता में २२ राज्यों (इकाइयों) के १५०० छात्रों ने भाग लिया. हर काम पूर्व-निर्धारित कार्यक्रमानुसार-यानी ठीक घड़ी की सुई के हिसाब से हुआ. यदि उद्घाटन समारोह के लिए ६० मिनट निश्चित किये गये थे तो उस में ६१ मिनट नहीं लगे. विजयकुमार मल्होत्रा ने अपने उद्घाटन भाषण में कहा कि दिल्ली के लिए आज का दिन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है. देश के कोने-कोने से छात्र यहाँ उपस्थित हुए हैं. खेल-कूद की दृष्टि में भारत को अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में जो मान और सम्मान मिलना चाहिए था वह नहीं मिल पा रहा है. संसार में कोई भी कार्य बिना लगन, उत्साह और संकल्प के पूरा नहीं किया जा सकता है. जिस प्रकार विज्ञान, शिक्षा, संगीत के क्षेत्रों में बिना साधना और तपस्या के अंतरराष्ट्रीय ख्याति अर्जित नहीं की जा सकती उसी प्रकार खेल-कूद में भी बिना परिश्रम, साधना और तपस्या के कुछ हासिल नहीं किया जा सकता. आज की दुनिया में खेल-कूद का अपना एक विशेष महत्त्व है. उन्होंने यह भी कहा कि स्कूली छात्राओं को भी अधिक से अधिक संख्या में खेल-कूद में हिस्सा लेना चाहिए. लोगों की यह धारणा एकदम ग़लत है कि खिलाड़िनों का गृहस्थ जीवन पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता. ख़ैर, पुरानी पीढ़ी को तो नहीं बदला जा सकता पर नयी पीढ़ी से ज़रूर कुछ आशा की जा सकती है. आप लोग पूरे लगन और उत्साह से खेल-कूद में जुट जायें और बाक़ी हम सब पर छोड़ दें. श्री मल्होत्रा की इस घोषणा कि 'दिल्ली के जिन छात्रों या छात्राओं का प्रदर्शन बहुत उत्साह-वर्धक रहेगा उन्हें दिल्ली प्रशासन की ओर से विशेष छात्रवृत्तियाँ और वज़ीफ़े दिये जायेंगे' का सभी ने स्वागत किया.

राजधानी में मशाल : पुराने सचिवालय में वैदिक मंत्र और हवन का कार्यक्रम पूरा हो जाने के बाद महानगर परिषद् के अध्यक्ष लाल कृष्ण अडवानी ने मशाल जलायी और उसे सब से पहले कुमारी कुसुम चटवाल को, जो कि राष्ट्रीय चैंपियन कमलेश चटवाल की छोटी बहन है, सौंपा. पुराने सचिवालय से नेशनल स्टेडियम के बीच लगभग १०० खिलाड़ियों ने उस पवित्र मशाल को दौड़ते हुए नेशनल स्टेडियम तक पहुँचाया. मशाल अलीपुर रोड, राज निवास, न्यूकोर्ट, चांदनी चौक, दरियागंज, मिंटो रोड और कर्ज़न रोड से होती हुई नेशनल स्टेडियम पहुँची.

इस प्रतियोगिता में देश के जिन चोटी के खिलाड़ियों को आमंत्रित किया गया, उन के नाम हैं मिल्खा सिंह, अजमेर सिंह, लाला अमर नाथ और कुंवर दिग्विजय सिंह बाबू.

पांडिचेरी को छोड़ राष्ट्रीय स्कूली खेल संघ के सभी सदस्यों ने इस में भाग लिया. देखें, अब 'कौन कहाँ रहा' की सूची में कौन-सा प्रदेश सब से आगे रहता है.

महानगर परिषद् के अध्यक्ष श्री अडवानी और धावक कुमारी कुसुम चटवाल : मशाल ग्रहण

हॉकी

नया मैदान : नया कार्यक्रम

नव वर्ष की शुभ संध्या को भारत के गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण ने नयी दिल्ली में हॉकी के नवनिर्मित स्टेडियम 'शिवाजी स्टेडियम' का उद्घाटन करते हुए कहा था कि ओलिंपिक खेलों में भारत हॉकी में नीचे खिसकते-खिसकते तीसरे स्थान पर पहुँच गया है. अव और नीचे जाने की कोई गुंजाइश नहीं है. अब हमें आगे और आगे ही बढ़ना है और इस के लिए जी-जान से पूरी कोशिश की जानी चाहिए. उन्होंने कहा कि भारतीय हॉकी के स्तर के विकास में इस नवनिर्मित स्टेडियम का काफ़ी योगदान रहेगा ऐसा मेरा विश्वास है और मैं आशा करता हूँ कि हम शीघ्र ही अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुन: प्राप्त करने में सफल हो जायेंगे. चव्हाण का यह भी कहना था कि हमारे यहाँ खेल के मैदानों की कमी है या कि प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं, यह सब बेमतलब की बातें हैं. अच्छा खिलाड़ी बनने के लिए अच्छे खेल के मैदान का होना इतना आवश्यक नहीं है जितना कि खिलाड़ी के अच्छे गुणों का. तीन लाख रुपये से बने इस स्टेडियम में ८,००० दर्शकों के बैठने की व्यवस्था है और इस के बनते ही राजधानी में पाँचवीं अखिल भारतीय जवाहरलाल नेहरू स्मारक हॉकी प्रतियोगिता शुरू हो गयी.

अश्विनीकुमार की चिंता : उधर भारतीय हॉकी फ़ेडरेशन के अध्यक्ष अश्विनीकुमार ने एक मजबूत और तगड़ी भारतीय हॉकी टीम तैयार करने के लिए एक नये और आकर्षक कार्यक्रम की घोषणा की है. उन का कहना है कि मार्च के प्रथम सप्ताह में इर्नाकुलम में होने वाले राष्ट्रीय हॉकी प्रतियोगिता के बाद देश के ३६ अच्छे खिलाड़ियों को चुना जायेगा जिन्हें मई-जून के महीनों में होने वाले प्रशिक्षण शिविर में भेजा जायेगा. उस के बाद उन में से २० खिलाड़ी छाँट लिये जायेंगे जिन्हें सारे देश का दौरा करना होगा और देश के कई महत्त्वपूर्ण मैचों में हिस्सा लेना होगा. नवंबर-दिसंबर १९६९ में इस राष्ट्रीय टीम को कड़े प्रशिक्षण के दौर से गुजरना होगा ताकि वह जनवरी १९७० में भारत में होने वाले अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले में भाग लेने के लिए पूरी तरह तैयार हो सके. भारत में होने वाले इस अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले के लिए स्थान का चुनाव अभी नहीं किया गया. अनुमान है कि इस में १० विदेशी टीमें भाग लेंगी. पाकिस्तान को भी इस में आमंत्रित किया जायेगा. बहुत मुमकिन है कि मार्च १९६९ में पाकिस्तान में होने वाले अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले में भारत भी भाग ले. अश्विनीकुमार को इस बात का पूरा विश्वास है कि इस प्रकार के कड़े परिश्रम और प्रशिक्षण के बाद तैयार की गयी भारतीय टीम १९७० में बैंकॉक में एशियाई चैंपियनशिप और १९७२ में म्युनिख ओलिंपिक खेलों में स्वर्ण पदक प्राप्त करने में सफल हो जायेगी.

नये वर्ष के अवसर पर हॉकी के जादूगर ध्यानचंद ने अपनी पुरानी यादों को ताज़ा करते हुए कहा कि १९३५ में भारतीय हॉकी खिलाड़ी दर्जनों के हिसाब से गोल किया करते थे. १९३५ में जब भारतीय हॉकी टीम ने न्यूज़ीलैंड का दौरा किया तब भारतीय हॉकी टीम क्रिकेट के रनों की तरह गोल किया करती थी. और अब भारतीय टीम ओलिंपिक में उसी टीम से हार गयी है. स्पष्ट है कि इन ३३ वर्षों में न्यूज़ीलैंड के स्तर में जितना विकास हुआ है भारतीय टीम में उतना ही ह्रास हुआ है. ध्यानचंद ने कहा कि भारत में हॉकी के नवोदित खिलाड़ियों की कोई कमी नहीं है, कमी केवल सही आयोजन और सही प्रशिक्षण की है. उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि भारत में हॉकी साल के बारहों महीनों खेली जानी चाहिए.

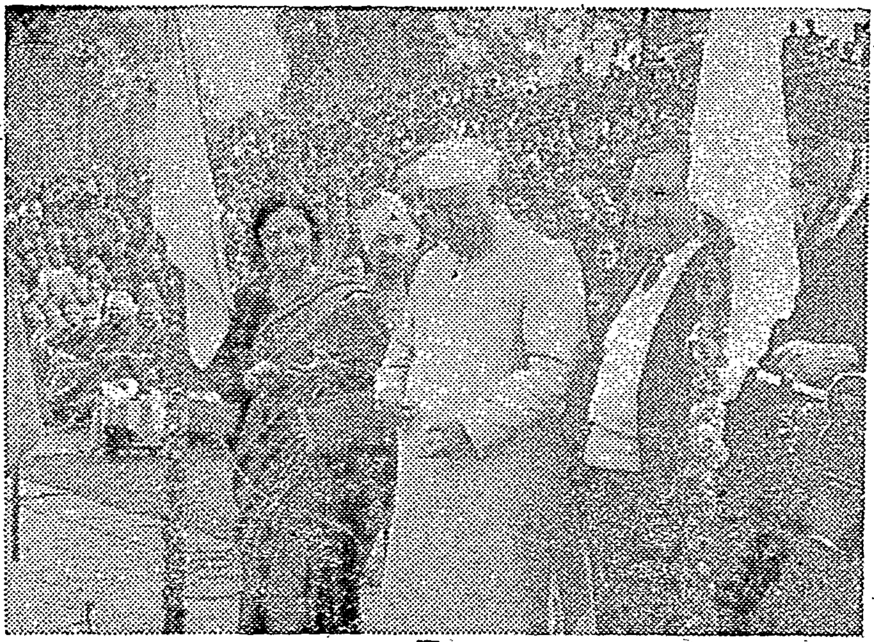

यशवंतराव चव्हाण : शिवाजी स्टेडियम का उद्घाटन

डेविस कप

शौकिया बनाम पेशेवर

अब किसी भी दिन यह खबर सुनने में आ सकती है कि डेविस कप प्रतियोगिताओं को भी विंबलडन की ही तरह 'खुली प्रतियोगिता' का रूप दे दिया गया है. डेविस कप पर अब आस्ट्रेलिया का एकाधिकार समाप्त हो गया है. लगातार पाँच साल तक डेविस कप को अपने पास रखने के कारण आस्ट्रेलियावासियों का इस कप से बेहद लगाव और मोह हो गया था. हार के आत्मस्पष्टीकरणस्वरूप आस्ट्रेलिया का कहना है कि क्यों कि उस के सभी चोटी के टेनिस खिलाड़ी (राय एमर्सन, न्यूकांब, फ़्रेड स्टोल आदि) पेशेवर बन गये हैं इसलिए उस के पास अब कोई अच्छा खिलाड़ी नहीं है. दुनिया की लगभग सभी महत्त्वपूर्ण टेनिस प्रतियोगिताओं को अब खुली प्रतियोगिता का रूप दे दिया गया है. शुद्ध या विशुद्ध शौकिया (ग़ैर-पेशेवर) खिलाड़ियों की ले-देकर यही एक प्रतियोगिता बची थी, लगता है कि अब वह भी उन के हाथ से जाती रहेगी.

विंबलडन प्रतियोगिता को खुली प्रतियोगिता का रूप दिये जाने के बाद से अंतरराष्ट्रीय लॉन टेनिस फ़ेडरेशन डेविस कप का अलग और स्वतंत्र अस्तित्व खत्म करने की जी-तोड़ कोशिश करता रहा. लगता है कि अब आस्ट्रेलिया डेविस कप को पुन: हासिल करने के लिए कुछ भी बलिदान करने को तैयार है. हारने के केवल २४ घंटे बाद ही आस्ट्रेलियाई लॉन टेनिस एसोसिएशन ने अपना विचार बदल दिया और खुले डेविस कप का समर्थन शुरू कर दिया. जहाँ तक भारत का सवाल है वह डेविस कप को खुली प्रतियोगिता का रूप दिये जाने का कभी समर्थन नहीं करेगा क्यों कि इतना तो निश्चित ही है कि यदि डेविस कप को भी खुली प्रतियोगिता का रूप दे दिया गया, जिस की संभावना दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है, तो भारत के लिए पूर्वी क्षेत्र के फ़ाइनल से आगे बढ़ना मुश्किल हो जायेगा.

दौरा रद्द : डेविस कप के चुनौती मुक़ाबले (चैलेंज राउंड) में ऑस्ट्रेलिया को ४-१ से हराने वाली अमेरिकी टीम जो भारत आने वाली थी अब उस का प्रस्तावित दौरा रद्द हो गया है. उस टीम के सदस्य थे—आर्थर एश, चार्लस पसरेल, बॉब लुत्ज और स्टेन स्मिथ.

राष्ट्रकुल : बिखरा कुल

भारत और राष्ट्रकुल के संबंधों को ले कर संसद् और उस के बाहर काफ़ी विवाद चल रहा है. हाल में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने उत्तरप्रदेश के अपने दौरे के दौरान यह कहा था कि आवश्यकता पड़ने पर भारत राष्ट्रकुल से अलग हो सकता है. उसे ऐसा करने से कोई रोक नही सकता. वह समय कब आयेगा जब भारत को राष्ट्रकुल से अलग होने का निर्णय करना पड़े कहना मुश्किल है, लेकिन एक बात स्पष्ट है कि राष्ट्रकुल के कार्यो से न केवल भारत में असंतोष है बल्कि कुछ अन्य सदस्य देश, जिन में अधिकतर कैरेबियन और अफ्रीकी देश हैं, भी असंतुष्ट हैं. यदि यह असंतोष इसी प्रकार बना रहा तो राष्ट्रकुल की स्थापना का उद्देश्य ही नष्ट हो जायेगा. जिस समय राष्ट्रकुल की स्थापना की गयी थी, इस बात को ध्यान में रखा गया था कि संबद्ध देशों के ब्रितानी सरकार के प्रति संबंधों तथा उन के आपसी विवादों को निपटाने की दिशा मे वह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा. संक्षेप मे सदस्य देशों के लिए वह एक ऐसा मंच साबित होगा जिस पर एकत्र हो कर वे अपनी आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं के समाधान खोज सकेगे. किंतु राष्ट्रकुल की उपलब्धियों को देखते हुए यह नही कहा जा सकता है कि उस ने अपने इस लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है. जातीय असहिष्णुता, नव-पृथकतावाद और धनी तथा निर्धन देशों के बीच बढ़ती हुई खाई ऐसी समस्याएँ है जो राष्ट्रकुल की बुनियाद को ही खोखला बना रही है.

उद्भव और विकास : राष्ट्रकुल के उद्भव का इतिहास लार्ड डरहम के उस प्रतिवेदन में खोजा जा सकता है जो उन्होने १८३९ में कैनाडा के उपनिवेशों में व्याप्त असंतोष के कारणों के बारे मे ब्रितानी सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया था. इस प्रतिवेदन में उन्होंने कहा था कि भविष्य में गवर्नर को ऐसे मंत्री नियुक्त करने चाहिए जिन्हें स्थानीय जनता का विश्वास प्राप्त हो अन्यथा ये उपनिवेश भी उत्तरी अमेरिकी उपनिवेशों का रास्ता अपना सकते है. उल्लेखनीय है कि ब्रिटेन के अमेरिकी उपनिवेशों ने १८वी शताब्दी के अंत में संगठित रूप से ब्रितानी सरकार के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम छेड़ दिया था जिस के फलस्वरूप संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थापना हुई. लार्ड डरहम के प्रतिवेदन की सिफ़ारिशों को ब्रितानी सरकार ने महत्त्व दिया और १८४७ में कैनाडा में उत्तरदायी सरकार की स्थापना कर दी गयी. उस के तुरंत बाद आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, उत्तरी अमेरिका के उपनिवेश और दक्षिण अफ्रीका में भी यह व्यवस्था लागू की गयी. इस प्रकार स्वशासी अधिराज्यों की स्थापना हुई. इन अधिराज्यों की स्थापना के बाद एक ऐसे माध्यम की आवश्यकता का अनुभव किया गया जो ब्रितानी सरकार से इन के संबंधों की देख-माल कर सके. १९वी शताब्दी के अंत और २० वी शताब्दी के आरंभ में इन अधिराज्यों की पूर्ण स्वतन्त्रता पर लगे प्रतिबंध भी हटा दिये गये. १९१४ के विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटेन ने कैनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि अधिराज्यों को बराबरी का दर्जा प्रदान किया. १९२६ के शाही सम्मेलन मे ब्रिटेन और अधिराज्यों को ब्रितानी साम्राज्य के अंतर्गत ऐसा स्वायत्तशाही समुदाय कह कर परिभाषित किया गया जिस के सभी राज्यों का दर्जा समान था और जो घरेलू या विदेशी किसी भी मामले में किसी भी प्रकार से एक-दूसरे के अधीन नही थे किंतु एक सामान्य निष्ठा द्वारा ब्रितानी ताज के प्रति संगठित थे और वे ब्रितानी राष्ट्रकुल के सदस्य के रूप में स्वेच्छा से एक सूत्र मे बंधे हुए थे. किंतु इस के बावजूद अधिराज्यों की संसदों के अधिकारों पर कुछ प्रतिबंध बना रहा जिन्हें १९३१ मे ब्रितानी संसद् ने एक अधिनियम बना कर समाप्त कर दिया. यह अधिनियम कैनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड, दक्षिण अफ़्रीका, एयरे, न्यूफाउंडलैंड से संबंधित था. इन में से न्यूफाउंडलैंड अप्रैल १९४९ में कैनाडा का प्रदेश बन गया. इसी वर्ष एयरे ने आयरलैंड गणतंत्र बनने पर राष्ट्रकुल को छोड़ दिया तथा मई १९६१ में गणतंत्र बनने के बाद दक्षिण अफ्रीका भी राष्ट्रकुल से अलग हो गया.

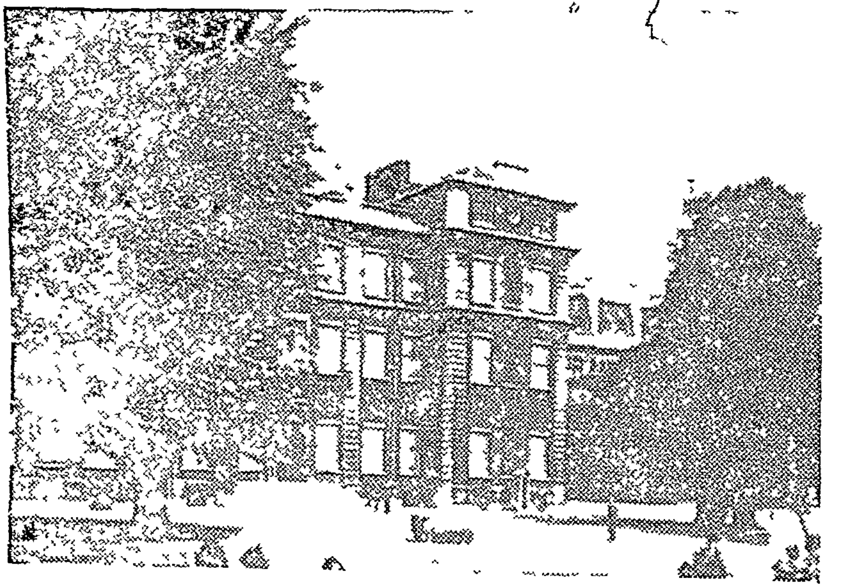

मारलोबोरो भवन स्थित राष्ट्रकुल सचिवालय : वाद, संवाद और विवाद का केंद्र

वर्त्तमान स्वरूप : राष्ट्रकुल का वर्त्तमान स्वरूप १९४७ में भारतीय उप-महाद्वीप की स्वाधीनता के बाद सामने आया. स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद भारत और पाकिस्तान ने राष्ट्रकुल में बने रहने का निश्चय किया. १९५० में गणतंत्र बन जाने पर भी भारत ने राष्ट्रकुल से अलग न होने का फ़ैसला किया और ब्रितानी सम्राट को राष्ट्रकुल के प्रधान के रूप में तथा स्वाधीन सदस्य देशों के स्वेच्छित सहयोग के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया. बाद में पाकिस्तान, श्रीलंका, घाना, नाइजीरिया, सिप्रस, सियरा लिओन, जमैका, तांजानिया, त्रिनीदाद, टोबैगो, उगांडा, कीनिया, मलावी, माल्टा, ज़ांबिया, गुयाना, लेसोथो, मारिशश आदि ने भी भारत सरकार की भांति ही राष्ट्रकुल को मान्यता दी. १९४७ के बाद राष्ट्रकुल का तेज़ी से विस्तार हुआ. जो भी ब्रितानी उपनिवेश स्वतंत्र हुए वे राष्ट्रकुल के सदस्य बनते गये. केवल बर्मा इस का अपवाद रहा. इस समय राष्ट्रकुल के सदस्य देशों की संख्या २८ है जिन के नाम है—ब्रिटेन, कैनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, भारत, पाकिस्तान, श्रीलंका, घाना, नाइजीरिया, सिप्रस, सियरा लिओन, जमैका, त्रिनीदाद, टोबैगो, उगांडा, कीनिया, मलयेसिया, तांज़ानिया, मलावी, माल्टा, ज़ाबिया, गांबिया, सिंगापुर, गुयाना, बोत्स्वाना, लेसोथो, बर्बाडोस, मारिशश और स्वाजीलैंड. इन के अलावा रोडेसिया, हांगकांग, जिब्राल्टर, फ़ाकलैंड द्वीप, ब्रितानी होंडूज, फ़िज़ी, गिलबर्ट आदि भी राष्ट्रकुल से संबद्ध हैं. ये सभी ब्रिटेन के संरक्षित अथवा आश्रित प्रदेश है. राष्ट्रकुल स्वाधीन सदस्य देशों की कुल जनसंख्या ८० करोड़ से भी अधिक है और ये एक करोड़ वर्गमील से भी अधिक भू-भाग पर फैले हुए हैं.

प्रशासनिक ढांचा : जुलाई १९२५ तक ब्रितानी साम्राज्य के उपनिवेशों के मामलात

अश्वेत आप्रवासियों के विरोधी इनोच पावेल, जो अनुपस्थित रह कर भी सम्मेलन में अपरोक्ष रूप से उपस्थित रहेंगे

औपनिवेशिक कार्यालय से संबद्ध थे. १९२५ में ब्रिटेन तथा राष्ट्रकुल के स्वाधीन सदस्यों के संबंधों के लिए अधिराज्य मामलों के एक अलग मंत्री की नियुक्ति की गयी. जुलाई १९४७ में अधिराज्य मामलों के मंत्री और कार्यालय के नाम वदल कर क्रमश: राष्ट्रकुल मंत्री और राष्ट्रकुल संबंध कार्यालय रख दिये गये. अगस्त १९६६ में औपनिवेशिक कार्यालय का राष्ट्रकुल संबंध कार्यालय में विलय कर दिया गया और राष्ट्रकुल कार्यालय की स्थापना की गयी. गत वर्ष १७ अक्तूवर को ब्रिटेन के विदेश-मंत्रालय में राष्ट्रकुल कार्यालय को भी मिला दिया गया. यह प्रशासनिक समस्याओं को दूर करने की दृष्टि से किया गया.

जुलाई १९६४ के राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन के वाद प्रकाशित विज्ञप्ति में राष्ट्रकुल सचिवालय की स्थापना के लिए प्रस्ताव तैयार करने के निर्देश दिये गये थे. जून १९६५ के सम्मेलन में ये प्रस्ताव स्वीकार कर लिये गये. फलस्वरूप राष्ट्रकुल सचिवालय का विधिवत गठन हुआ. कैनाडा के आर्नोल्ड स्मिथ राष्ट्रकुल के पहले महासचिव वने जिन्होंने १७ अगस्त को कार्यभार सँभाला.

परामर्श और सहयोग : लंवी प्रक्रिया के वाद राष्ट्रकुल का जो स्वरूप आज हमारे सामने है उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि राष्ट्रकुल आर्थिक और वैदेशिक मामलों से संबंधित केंद्रीय नीति के निर्धारण की भूमिका तैयार करता है. इस वात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि १९४४ से ले कर अव तक जो १६ राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन हुए हैं उन में अंतरराष्ट्रीय, राजनैतिक और आर्थिक मामले ही चर्चा का मुख्य विषय रहे हैं. वैसे सदस्य देशों के वीच सहयोग पर भी विचार-विमर्श होता रहा है. जहाँ तक राष्ट्रकुल के कार्यक्षेत्र का संवंध है वह आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक और स्वास्थ्य जैसे अनेक क्षेत्रों में फैला हुआ है. राष्ट्रकुल में विकसित और विकासोन्मुख दोनों ही प्रकार के देश हैं जिन में परस्पर आर्थिक सहयोग ऋण आदि के रूप में चल रहा है. शिक्षा के विकास के लिए भी राष्ट्रकुल की अपनी एक योजना है. इस प्रकार स्वास्थ्य और विज्ञान की प्रगति के लिए भी राष्ट्रकुल एक निश्चित योजना के साथ कार्य कर रहा है परंतु इस सब के बावजूद राष्ट्रकुल का राजनैतिक पक्ष ही अधिक उजागर हुआ है. कभी दक्षिण अफ्रीका और दूसरे अफ्रीकी देशों की जातीय असहिष्णुता और कभी रोडेशिया की समस्या का राजनैतिक रूप इस पर हावी रहा है. यद्यपि राष्ट्रकुल सदस्य देशों के आपसी झगड़ों में संवंधित देशों की सहमति के विना हस्तक्षेप नहीं करता है फिर भी कभी कश्मीर की समस्या और कभी नाइजीरिया के गृहयुद्ध को ले कर उसे उलझना पड़ता है. १९६५ के भारत-पाकिस्तान युद्ध के समय ब्रितानी प्रधानमंत्री ने जो वक्तव्य दिया वह आपसी झगड़ों में राष्ट्रकुल की हस्तक्षेप न करने की नीति के विरुद्ध था. भारत में तो इस वक्तव्य को ले कर सरकार से माँग की गयी कि वह राष्ट्र-मंडल से संबंध-विच्छेद कर ले क्यों कि उस से उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो सकती जिस के लिए उस की स्थापना की गयी.

यह ठीक है कि राष्ट्रकुल अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में पूर्ण सफल नहीं रहा है फिर भी संयुक्तराष्ट्र संघ के वाद यह ऐसा सब से बड़ा मंच है जिस पर उस के सदस्य देशों को आपसी मतभेद के वावजूद इकट्ठा वैठने और अंतर-राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श करने का अवसर मिलता है. वस्तुत: राष्ट्रकुल सम्मेलनों का उद्देश्य कोई एक आम नीति तैयार करना अथवा संयुक्त कार्रवाई की योजना बनाना नहीं है वल्कि इस वात की अभिव्यक्ति करना है कि सभी राष्ट्रकुल सरकारें किसी एक प्रश्न विशेष पर समान दृष्टि से सोचती हैं और वे प्रत्येक सदस्य राष्ट्र की नीतियों में निहित सिद्धांतों और उद्देश्यों का सम्मान करती हैं. संक्षेप में राष्ट्रकुल की वैठकों का उद्देश्य आपसी समझ-दारी के उच्चतम पैमाने तैयार करना रहा है न कि समझौते करना.

भारत और राष्ट्रकुल : राष्ट्रकुल की सदस्यता को ले कर सब से अधिक विवाद भारत में है—उस भारत में जिस के प्रथम प्रधानमंत्री को आधुनिक राष्ट्रकुल का पिता माना जाता है. गणतंत्र वनने के वाद नेहरू के भारत ने राष्ट्रकुल में वने रहने का जो ऐतिहासिक निर्णय किया उस से प्रभावित हो कर ही ब्रिटेन के अन्य उपनिवेश स्वाधीन होने के वाद राष्ट्रकुल में शामिल हुए और उसे विशाल संगठन का रूप दिया. जिस समय पंडित जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रकुल में वने रहने का फ़ैसला किया उस समय उन के सामने अन्य उद्देश्यों के साथ शायद एक उद्देश्य यह भी रहा होगा कि इस मंच के द्वारा भारत नवोदित अफ्रीकी और एशियाई देशों का सरगना वन सकता है. स्वाधीनता की तरह दूसरे मामलों में भी उन का मार्गदर्शन कर सकता है. किंतु इसे भारत का दुर्भाग्य कहिए अथवा नेहरू की नीतियों की विफलता कि ऐसा नहीं हो सका. और आज स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि न केवल विरोधी पक्षों की ओर से राष्ट्रकुल छोड़ने की माँग की जाती है वल्कि प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी भी परोक्ष रूप से यह स्वीकार करने लगी हैं कि हो सकता कि ऐसा समय आये जव कि भारत को राष्ट्रकुल से अलग होना पड़े. किंतु यदि ऐसा हुआ तो उस के लिए भारत सरकार की विदेश-नीति ही अधिक उत्तरदायी होगी. यह ठीक है कि ब्रिटेन ने अव तक राष्ट्रकुल के प्रति अपने दायित्वों को भली प्रकार नहीं निभाया और उस के इस रवैये के कारण कई सदस्य देश असंतुष्ट हैं, परंतु प्रश्न उठता है कि राष्ट्रकुल को सही दिशा देने के लिए भारत ने ही क्या किया है ? राष्ट्रकुल के सदस्य देशों के प्रति यदि भारत प्रभावी नीति अपनाता तो कोई कारण नहीं था कि राष्ट्रकुल में उस की आवाज ब्रिटेन से कहीं अधिक वुलंद न होती. किंतु पिछले २० वर्षों में वह ऐसा कुछ नहीं कर

प्रधानमंत्री विलसन : राष्ट्रीय खेल फ़ुटवाल के शौक़ीन

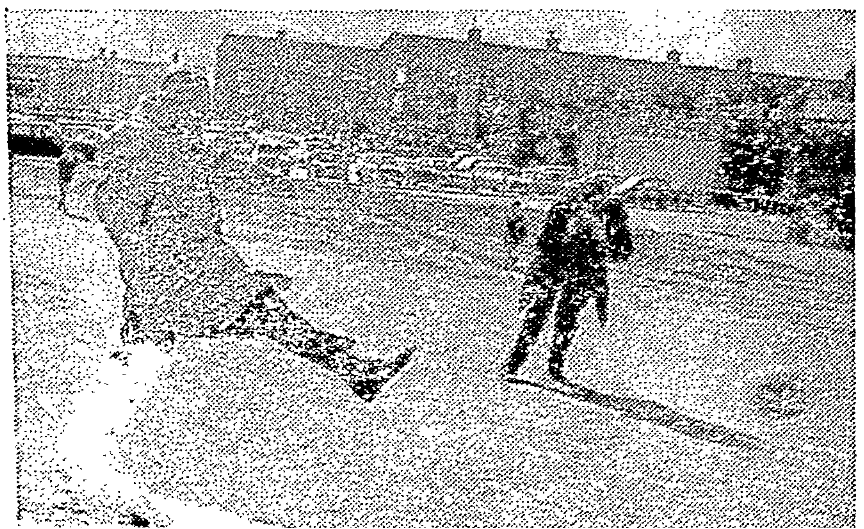

पाया. वर्त्तमान सम्मेलन जिन परिस्थितियों में हो रहा है उन्हें देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि भारत कुछ ठोस सुझाव ले कर सम्मेलन में शामिल होता तो उसे राष्ट्रकुल का नेतृत्व करने का गौरव मिल सकता था. परंतु ऐसा कुछ होता नहीं दीखता. प्रधानमंत्री सम्मेलन में भाग लेने अवश्य गयी है किंतु ऐसा कोई संकेत नही है कि वह लंदन में जो चार दिन वितायेंगी उन का उपयोग कुछ सदस्य देशों के प्रधानमंत्रियों से मुलाक़ातों के अतिरिक्त इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भी करेंगी.

परिस्थितियां हावी : जैसा कि राष्ट्रकुल महासचिव आर्नोल्ड स्मिथ ने १९६६-६८ के प्रतिवेदन में लिखा है किसी जातीय असहिष्णुता, नवपृथकतावाद और धनी तथा निर्धन राष्ट्रों के बीच की बढ़ती हुई खाई कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो विश्व के सुख-शांति के लिए अभिशाप वनी हुई हैं, राष्ट्रकुल के वर्त्तमान १७वें सम्मेलन में भी इन प्रवृत्तियों के कारण उत्पन्न समस्याएँ ही मुख्य रूप से हावी रहेंगी. सम्मेलन शुरू होने से पहले ही जमैका, त्रिनीदाद आदि ने यह प्रस्ताव रखा था कि लंदन में एक ऐसा विशेष व्यूरो स्थापित किया जाये जो राष्ट्रकुल सचिवालय के अंग के रूप में सदस्य देशों की जातीय और आप्रवासीय समस्याओं का निदान करे. कुछ एशियाई और अफ़्रीकी देशों का समर्थन भी उन्हें प्राप्त है. राष्ट्रकुल के सदस्य देशों के बीच आर्थिक सहायता को ले कर यद्यपि गत वर्ष सितंवर के वित्तमंत्री सम्मेलन में संतोष व्यक्त किया गया था किंतु उस के बावजूद यह भावना वनी हुई है कि विकसित देश विकासमान देशों को समुचित आर्थिक सहायता नही दे रहे है. वर्त्तमान सम्मेलन में इन प्रश्नों के अलावा रोडेसिया का प्रश्न भी चर्चा का मुख्य विषय वना हुआ है. जैसा कि पाकिस्तान के विदेशमंत्री ने संकेत किया कश्मीर का प्रश्न भी उठाया जा सकता है. जहाँ तक नाइजीरिया का प्रश्न है वर्त्तमान सम्मेलन में उस पर विचार-विमर्श न करने का फ़ैसला किया गया. परंतु हो सकता है कि परोक्ष रूप से नाइजीरिया का गृहयुद्ध भी चर्चा का विषय बने. इन सारे प्रश्नों के समाधान खोजने में राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन कहाँ तक सफल होता है इस का पता सम्मेलन की समाप्ति पर ही चल सकेगा. किंतु एक बात निश्चित है कि यदि यह सम्मेलन रोडेसिया की समस्या का समाधान नही कर सका अथवा उस ने कश्मीर प्रश्न पर अनावश्यक चर्चा की तो राष्ट्रकुल के विघटन की प्रक्रिया शुरू हो सकती है. यह ठीक है कि राष्ट्रकुल ब्रिटेन की बपौती नही है परंतु इतना ही सच यह भी है कि आज भी ब्रिटेन का ताज राष्ट्रकुल का प्रधान माना जाता है और इस दृष्टि से राष्ट्रकुल की समस्याओं के निराकरण में ब्रिटेन की ही जिम्मेदारी सब से अधिक है. ब्रिटन इस जिम्मेदारी को कहाँ तक और किस प्रकार निभाता है इस पर राष्ट्रकुल का भविष्य निर्भर करता है.

विश्व

पश्चिम एशिया

गतिरोध और प्रतिशोध के बीच

बेरूत हवाई अड्डे पर इस्राइली आक्रमण की निंदा अरब-जगत् से सहानुभूति रखने वाले लोगों ने तो की ही है इस्राइल के परंपरागत मित्रों ने भी इस प्रतिशोधात्मक कार्रवाई को 'अविवेकपूर्ण और अनावश्यक' वताया है. संयुक्त राज्य अमेरिका को इस बात का डर है कि इस प्रकार के उग्र प्रतिशोध का परिणाम पश्चिम एशिया समस्या को और भी जटिल कर देगा और इस क्षेत्र में विश्व की महाशक्तियों के संघर्ष का ख़तरा पैदा कर देगा. ब्रिटेन ने इस आक्रमण की निंदा राजनैतिक कारणों से तो की ही है मगर आर्थिक कारणों से भी ब्रिटेन के लिए यह आक्रमण अहितकर सिद्ध हुआ है क्यों कि एक ब्रितानी कंपनी को बेरूत में नष्ट जहाज़ों के लिए बीमे का मुआवज़ा देना पड़ेगा. प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या इस्राइली अधिकारियों को इस बात का अंदाजा नहीं था कि इस प्रकार के प्रतिशोध की अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया इस्राइल के हक़ में नहीं होगी ? जहाँ तक इस्राइली मामलों को समझने वाले व्यक्तियों का संबंध है वह यह मानते हैं कि इस्राइल ने सभी प्रकार के ख़तरों को समझने के बाद जान-बूझ कर इस प्रकार की कार्रवाई की. इस्राइली सरकार का तर्क यह रहा है कि यदि छापामारों की कार्रवाइयों का बदला नहीं लिया जाये तो वह उत्साहित हो जायेंगे तथा अपनी विध्वंसक कार्रवाइयों में वृद्धि करेंगे. इस्राइल चारों ओर से शत्रु देशों से घिरा हुआ है इस लिए उस के लिए इस प्रकार की षड्यंत्रकारी कार्रवाइयाँ विनाशकारी भी सिद्ध हो सकती हैं. यह छापामार संयुक्त अरब गणराज्य, युर्दान, सीरिया और लेबनान से अपनी कार्रवाई करते हैं. लेबनान के प्रतिनिधि ने संयुक्तराष्ट्र में इस्राइल की शिकायत करते हुए इस बात से इनकार कर दिया कि वह छापामार जिन्होंने एथेंस में इस्राइली वायुसेवा के एक वायुयान को नष्ट करने का प्रयत्न किया जिस में एक इस्राइली की मृत्यु हुई, लेबनान से अपनी कार्रवाई करते हैं. उन्होंने केवल लेबनान के हवाई अड्डे में थोड़ी देर के लिए शरण ली थी, इस लिए उन की किसी भी कार्रवाई का उत्तरदायित्व लेबनान सरकार पर नहीं डाला जा सकता. प्रतिनिधि ने पूछा "यदि इन छापामारों ने किसी पश्चिमी देश के हवाई अड्डे में शरण ली होती तो क्या इस्राइल उस हवाई अड्डे को भी नष्ट कर देता ?"

अरबों का उत्तरदायित्व : तस्वीर का दूसरा पहलू भी है. यदि लेबनान के सरकारी प्रवक्ता और उस से पहले युर्दान के प्रवक्ताओं का यह दावा सही है कि इस्राइली सीमा में विस्फोट करने वाले छापामारों का संबंध अरब सरकारों के साथ नहीं है तो यह पूछा जा सकता है कि क्या यह सच नहीं कि अरब सरकारों ने फ़िलिस्तीन मुक्ति मोर्चे और अन्य इस्राइल विरोधी छापामार संस्थाओं को नैतिक और आर्थिक सहायता नहीं दी है ? कुछ समय पहले संयुक्त अरब गणराज्य की राजधानी में ही इस वात की घोषणा की गयी कि सरकार युर्दान में काम करने वाली छापामार

ग्रोमिको : रूस का साया

संस्थाओं की निंदा नहीं कर सकती. पश्चिमी समाचारपत्रों के अनुसार इस्राइली वायुयान पर आक्रमण करने की योजना एक व्यापक षड्यंत्र था. इस के अनुसार इस छापामार दल ने इस्राइल की वायुसेवा को नष्ट करने की कोशिश की थी, क्यों कि ईसाइयों और यहूदियों के बड़े दिन के उपलक्ष्य में कई लोग विभिन्न देशों से यरूशलम के धार्मिक स्थानों की यात्रा के लिए आ रहे थे. छापामारों का यह उद्देश्य था कि वायुसेवा को नष्ट कर के यात्रियों में आतंक पैदा कर दिया जाये ताकि वह यरूशलम जाने का इरादा ही छोड़ दें. मगर ऐसा करने में वह सफल नहीं हुए और उन के दल को अपना उद्देश्य पूरा करने से पहले ही गिरफ़्तार कर लिया गया. इस लिए

उन के लिए इस के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहा कि वह क्रिसमस के बाद अपने आक्रमण को कार्यरूप दें. इस आक्रमण के तुरंत बाद लेबनान के समाचारपत्रों में इन छापामारों के प्रशंसा-भरे वृत्तांत प्रकाशित किये गये जिन में उन्हें अरब-जगत् का सूरमा घोषित कर दिया गया. स्वयं लेबनान के प्रधानमंत्री ने भी कहा था कि इन छापामारों की उपस्थिति लेबनान में 'क़ानूनी और पवित्र है'. इस लिए अरब प्रवक्ताओं का यह दावा उचित नहीं दिखाई देता कि अरब सरकारों का छापामारों की कार्रवाइयों से कोई संबंध नहीं. मगर इन आतंकवादियों की कार्रवाइयों को रोकने के लिए इस्राइल ने जो रास्ता अपना लिया है उसकी नैतिकता की ओर न जाते हुए भी यह कहा जा सकता है कि वह असामयिक और हानिकारक है. हानिकारक वह अरबों के लिए ही नहीं, स्वयं इस्राइल के लिए भी है. लेबनान अभी तक इस्राइल विरोधी अभियान में अधिक उत्साह नहीं दिखाता था. कई बार संयुक्त अरब गणराज्य और सीरिया के नेताओं ने लेबनान पर यह आरोप लगाया है कि वह अरब-जगत् की एकता में कोई दिलचस्पी नहीं रखता. सैनिक दृष्टि से भी लेबनान सब से कमज़ोर शत्रु था. मगर इस्राइल के आक्रमण ने वहाँ की जन-भावनाओं को उत्तेजित कर दिया है और यह प्रायः निश्चित-सा है कि वहाँ की सरकार अपने हवाई अड्डे और अन्य आवश्यक केंद्रों की सुरक्षा के लिए अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि करेगी. इस तरह इस्राइल ने आक्रमण कर के किसी हद तक अपने शत्रुओं की एकता में योगदान दिया है. इस के अतिरिक्त पश्चिम एशिया समस्या में जो गतिरोध पैदा हो गया था उसे तोड़ने की आशाएँ अब दूर खिसक गयीं हैं. ऐसा लगता है कि इस्राइल ने बेरूत हवाई अड्डे पर आक्रमण कर के अपनी शक्ति का नहीं बेबसी का परिचय दिया दिया है. इस्राइली अधिकारियों की समझ में यह बात नहीं आ पा रही है कि छापामारों की कार्रवाइयों को कैसे रोका जाये. अरब सरकारें उन्हें रोकना नहीं चाहती, उन के अड्डों तक इस्राइल की पहुँच नहीं और अरब सीमाओं में आक्रमण करने की राजनैतिक प्रतिक्रिया निश्चित रूप से इस्राइल विरोधी होती है. यह समस्याओं की ऐसी शृंखला है जिस ने इस्राइली अधिकारियों को परेशान कर दिया है. वास्तव में अपनी विजय के बावजूद इस्राइली इस वक़्त घबराये हुए से दिखाई दे रहे हैं.

सोवियत प्रस्ताव : इस्राइल की घबराहट का एक बड़ा कारण यह भी है कि उसे इस बात का विश्वास हो गया है कि महाशक्तियाँ इस्राइल की सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं दे सकतीं और इस लिए प्रधानमंत्री एशकोल और विदेशमंत्री एबन ने चार बड़े राष्ट्रों की बैठक के प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाया. एक पश्चिमी समाचारपत्र के प्रतिनिधि को विशेष भेंट में अब्बा एबन ने कहा कि '१९६७ के आक्रमण में चार बड़ी शक्तियाँ इकट्ठे और अलग-अलग इस प्रकार की कार्रवाई करने में असफल हुईं जिस से संयुक्त अरब गणराज्य द्वारा इस्राइल के व्यापार को बाधित करना और अरबों द्वारा उस के घेराव को रोका जा सकता था. इस का परिणाम अंत में युद्ध हुआ. इस लिए इस्राइल के मन में चार महाशक्तियों के फ़ार्मूले की अनुपयोगिता बिलकुल स्पष्ट है' एबन के अनुसार "शांति संबंधित देशों की इच्छा और स्वीकृति उसे स्वयं पता हो जानी चाहिए. उसे ऊपर से नहीं थोपा जा सकता?" हाल ही में सोवियत संघ के विदेशमंत्री ग्रोमिको क़ाहिरा गये थे और इस बात का अनुमान लगाया जाता है कि उन्होंने किसी ऐसे प्रस्ताव पर राष्ट्रपति नासिर से बातचीत की जिस में पश्चिमी एशिया की समस्या का क्रमिक हल था. संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेशमंत्री डीन रस्क ने भी एक पत्रकार सम्मेलन में यह स्वीकार किया कि सोवियत संघ ने इस प्रकार का एक प्रस्ताव दिया है और पश्चिम एशिया के संबंध में बातचीत करने की उत्सुकता दिखाई है. यद्यपि उन्होंने प्रस्ताव की विभिन्न शर्तों को व्यक्त नहीं किया फिर भी उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि अभी चार महाशक्तियों की बैठक का कोई प्रस्ताव नहीं रखा है. ऐसा लगता है कि सोवियत संघ ने यह महसूस किया है कि पश्चिम एशिया में शांति स्थापित करना न केवल अरबों और इस्राइलियों के लिए उपयुक्त होगा बल्कि उस से स्वयं सोवियत संघ के हितों को भी लाभ होगा. साथ ही वह इस प्रकार का कोई समझौता करवाना चाहता है जिस में सोवियत संघ का विशेष योगदान हो ताकि अमेरिका के नये राष्ट्रपति निक्सन के कुछ कर सकने के पहले ही पश्चिम एशिया की समस्या को सुलझाने का श्रेय सोवियत संघ को मिले. एबन के अनुसार ग्रोमिको ने क़ाहिरा को अधिक नरम रुख़ अपनाने की सलाह दी है. अरबों और इस्राइलियों की स्थिति के अतिरिक्त पश्चिम एशिया समस्या में गतिरोध पैदा करने वाला एक तत्त्व स्वयं संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के राष्ट्रीय हित हैं. सोवियत संघ भूमध्य सागर में अमेरिकी उपस्थिति से चिंतित है और इस सिलसिले में वह इस क्षेत्र में अपना प्रभाव जमाने का प्रयास कर रहा है. दूसरे शब्दों में अपनी समस्याओं की जटिलता के अतिरिक्त अरबों और इस्राइलियों को दो महाशक्तियों के अंतरराष्ट्रीय शतरंज का मोहरा बनाया गया है!

पाकिस्तान

विरोध के अंतर्विरोध

इधर हाल में अपने राजनैतिक विरोधियों के प्रति नरमी से पेश आने के संकेत देने के बावजूद प्रेज़िडेंट अय्यूब की समस्या सुलझी नहीं है और न केवल पूर्वी पाकिस्तान में बल्कि पश्चिमी पाकिस्तान में भी आंदोलनों और प्रदर्शनों का सिलसिला जारी है. कोई दो महीने पहले अय्यूब प्रशासन विरोधी जो आंदोलन शुरू हुआ वह प्रशासन की दमन-पद्धति के बावजूद अपने को उजागर करता जा रहा है. पिछले सप्ताह नवगठित वामपंथी पीपुल्स पार्टी के आवाहन पर रावलपिंडी में स्त्रियों ने एक जुलूस निकाला, जिस में अय्यूब प्रशासन और उस की 'निरंकुशता' के ख़िलाफ़ नारे लगाये गये और भूतपूर्व विदेशमंत्री जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो की रिहाई की माँग की गयी. पाकिस्तान की चार दक्षिणपंथी पार्टियों के संयुक्त मोर्चे के १०० सदस्यों ने रावलपिंडी की गलियों में प्रदर्शन किये और संसदीय लोकतंत्र को स्थापित करने, राजनैतिक बंदियों को रिहा करने तथा समाचारपत्रों पर से नियंत्रण हटाने के पक्ष में नारे लगाये. रावलपिंडी से ९७ मील दूर इस मोर्चे के कुछ कार्यकर्त्ताओं ने एक जमावड़ा किया जिस में उन्होंने राजनैतिक बंदियों की रिहाई की माँग की. भुट्टो की पीपुल्स पार्टी के सदस्यों ने भी रावलपिंडी से ९० मील दूर, कोहाट में विरोध प्रदर्शन किया और अपने नज़रबंद अध्यक्ष के रिहा किये जाने की माँग की. धार्मिक संगठन भी अय्यूब प्रशासन के विरोध में असंतोष क़िस्तों में उजागर करते रहे. पेशावर से २० मील दूर चरसद्दा नामक स्थान स्थान पर पाकिस्तान के एक धार्मिक संगठन के सदस्यों ने अय्यूब-विरोधी आम सभा का आयोजन किया और धार्मिक नेताओं पर से प्रतिबंध के हटा लिये जाने की माँग की. अय्यूब प्रशासन के विरोध में अपनी स्थिति को किसी भी हालत में उन्नीस न होने देने की ललक से छात्रों का एक जुलूस डेरा इस्माइल ख़ाँ की गलियों से भुट्टो की रिहाई के पक्ष में नारे लगाते हुए गुज़रा. पश्चिमी पाकिस्तान अभी भी अशांत है और उस के ६ अन्य शहरों से भी विरोध-प्रदर्शन के समाचार मिलते रहे हैं. कराची में प्रदर्शनकारी छात्रों ने एक सरकारी बस की खिड़कियाँ तोड़ दीं और इसे अय्यूब-प्रशासन की गिरती साख का प्रतीक बताया. पूर्वी पाकिस्तान की विधानसभा में प्रतिपक्ष के सदस्यों को यह शिकायत करते हुए सुना गया कि अय्यूब सरकार ने जनता की आकांक्षाओं को कुचला है और दस साल के अपने निरंकुश शासन के दौरान संपत्ति को कुछ घरानों में केंद्रित हो जाने दिया है. पश्चिमी पाकिस्तान की विधानसभा में सरगर्म बहस के बाद अध्यक्ष ने उस अविश्वास प्रस्ताव पर बहस की अनुमति दे दी है जिस के ज़रिये प्रतिपक्ष के नेताओं ने दो मास से चल रहे आंदोलनों के दौरान क़ानून और व्यवस्था की विफलताओं के लिए तथा सेना की मदद लेने के लिए अय्यूब प्रशासन की आलोचना का फ़ैसला किया है. प्रस्ताव की सूचना अध्यक्ष को प्रतिपक्ष के नेता

ख्वाजा मुहम्मद सरदार ने दी थी और उस के स्वीकृत होने का विरोध गृहमंत्री और क़ानून मंत्री द्वारा किया गया. इन दोनों मंत्रियों ने सदन में यह स्वीकार किया कि सरकार को सेना की मदद लेनी पड़ी क्यों कि स्थिति नियंत्रित नहीं हो पा रही थी, लेकिन उन्होंने प्रतिपक्ष के नेताओं के इस तर्क का विरोध किया कि नागरिक प्रशासन सर्वथा असफल साबित हुआ है. श्री मलिक मुहम्मद अख्तर ने एक निजी विधेयक के जरिये पश्चिमी पाकिस्तान विश्वविद्यालय अधिनियम (१९६७) को समाप्त करने के लिए बहस की इजाज़त माँगी जिसे सदन ने अस्वीकार कर दिया. शिक्षामंत्री श्री मुहम्मद अली खाँ ने सदन को आश्वस्त किया कि चालू अधिवेशन में वह खुद एक विधेयक लायेंगे जिस के जरिये विश्वविद्यालय अधिनियम में संशोधन की व्यवस्था की जा सकेगी.

पिछले सप्ताह पीपुल्स पार्टी के कार्यकारी अध्यक्ष श्री रहीम ने १९७० में प्रेजिडेंट पद के लिए होने वाले चुनाव में श्री भुट्टो की उम्मीदवारी की घोषणा कर के अय्यूब-विरोधी प्रतिपक्ष के सामने एक अजीबोग़रीब स्थिति पैदा कर दी. श्री रहीम की इस घोषणा के तत्काल बाद पाकिस्तानी वायुसेना के भूतपूर्व अध्यक्ष असग़र खाँ द्वारा १९७० के प्रेजिडेंट पद के लिए पूर्व पाकिस्तान से किसी व्यक्ति को प्रतिपक्ष का उम्मीदवार बनाने की बात को पाकिस्तान के राजनैतिक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण समझा जा रहा है और कहा जा रहा है कि एयर-मार्शल का संकेत पूर्व पाकिस्तान के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश सैयद महमूद मुर्शीद की ओर था. जमायती इस्लामी पार्टी के मौलाना मौदूदी तथा निजामी इस्लाम पार्टी के प्रमुख प्रवक्ताओं के द्वारा भी भुट्टो की उम्मीदवारी को शंका की निगाह से देखे जाने के समाचार प्राप्त हुए हैं. पाकिस्तान लोकतांत्रिक आदोलन के दो अन्य संघटकों, काउंसिल मुस्लिम लीग और नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट के नेता भुट्टो की उम्मीदवारी को प्रतिपक्ष की एकता के साथ जोड़ कर अवश्य देखते है लेकिन पाकिस्तान के राजनैतिक क्षेत्रों में यह मत व्यक्त किया जा रहा है कि इस से प्रतिपक्ष के अंतर्विरोध और और अधिक उभर कर सामने आयेंगे जिन का फ़ायदा अय्यूब प्रशासन को मिलेगा. ढाका कार्यकारिणी के तीन दिवसीय सम्मेलन में श्री भुट्टो की संभावित उम्मीदवारी पर विचारों का आदान-प्रदान जरूर हुआ लेकिन अभी तक कोई निश्चित मत सामने नहीं आ सका है. प्रेजिडेंट अय्यूब के समर्थकों को इस बात की प्रसन्नता है कि शुरू से ही विभाजित और कई मोर्चों पर एक साथ लड़ रहा पाकिस्तानी प्रतिपक्ष शायद ही किसी सर्वसम्मत उम्मीदवार के चयन में सफल हो सकेगा. पाकिस्तान के राजनैतिक क्षेत्रों में प्रेज़िडेंट अय्यूब के इस कथन को भी महत्त्वपूर्ण समझा जा रहा है कि वह १९७० में प्रेजिडेंट पद के लिए चुनाव लड़ें या नहीं, इस का फ़ैसला उन की पार्टी को करना है. प्रेजिडेंट अय्यूब संशोधन को सीधे अपने ऊपर केंद्रित नहीं होने देना चाहते. इस लिए तीसरी बार प्रेजिडेंट बनने के पहले वह अपने पक्ष में एक सीमित जनमत भी तैयार करना चाह रहे है. कुशल अय्यूब ने प्रतिपक्ष के अंतर्विरोधों को ध्यान में रखते हुए, हाल में अपने एकाधिक भाषणों में आंदोलन के उन तरीक़ों की आलोचना की है और इसे सभ्य व्यवहार की कोटि में रखने से इंकार कर दिया है. अपने विरोधियों की इस माँग को कि पाकिस्तान में राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष पद्धति से हो और वहाँ संसदीय लोकतंत्र कायम किया जाये, अस्वीकार करते हुए प्रेजिडेंट अय्यूब ने अपने तथाकथित बुनियादी लोकतंत्र की इस आधार पर सराहना की है कि इस के अधीन भी ५ साल के बाद जनता अपने प्रतिनिधि का चुनाव कर सकती है. इसी तरह, प्रेज़िडेंट अय्यूब अपने विरोधियों के उत्तर मोटे तौर पर दो रूपों में देते रहे हैं. उन का एक उत्तर यह रहा है कि बुनियादी लोकतंत्र की सीमाओं में प्रतिपक्षी नेता अपने रचनात्मक सुझाव पेश कर सकते हैं. उन के दूसरे उत्तर का संबंध असंतोष से ध्यान हटाने से रहा है और इस के लिए उन्होंने इधर हाल में अपने भारत-विरोधी भाषणों मे वृद्धि की है. पाकिस्तानी रेडियो के एक प्रसारण के अनुसार लाहौर मे मुस्लिम लीग के कार्यकर्त्ताओं की एक सभा में प्रेजिडेंट अय्यूब खाँ ने कहा कि "दुश्मन की ३० डिवीजन सेनाएँ पाकिस्तान पर आक्रमण करने का कोई अवसर गँवाने की स्थिति में नही है". फिर एक झटके में अपने राजनैतिक विरोधियों की विरोधी पद्धति को ग़ैर संवैधानिक और ग़ैर लोकतांत्रिक क़रार देते हुए उन्होंने यह चेतावनी भी दे डाली कि इन आंदोलनो से देश की सुरक्षा खतरे में पड़ती है.

चेकोस्लोवाकिया

नया मंत्रिमंडल

'मुझे दृढ़ विश्वास है कि भविष्य हम सभी के लिए अच्छा होगा.' इन शब्दों के साथ चैक और स्लोवाक समाजवादी गणराज्य के राष्ट्रपति श्री स्वोबोदा ने देशवासियों को नव वर्ष की शुभकामनाएँ देते हुए नये मंत्रिमंडल के सदस्यों के नामों की घोषणा की. जैसी की आशा थी (देखिए **दिनमान** ५ जनवरी '६९), ओल्डरिच चेर्निक प्रधानमंत्री नियुक्त किये गये. मंत्रिमंडल में मामूली-सा हेर-फेर किया गया. पहले यह संभावना व्यक्त की गयी थी कि रूसी दबाव के कारण नये मंत्रिमंडल में काफ़ी रद्दोबदल किया जायेगा, परंतु जो रद्दोबदल हुआ उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि मंत्रियों की नियुक्ति में रूस की इच्छा का आदर किया गया. मंत्रिमंडल में कुल तीन नये चेहरे हैं, जो सभी स्लोवाक हैं. स्लोवाकिया के अलग राज्य बन जाने पर ये नियुक्तियाँ स्वाभाविक ही थीं. इन में से दो——सैमुएल फ़ाल्टन और वाक्लाव वेल्स——को उपप्रधानमंत्री नियुक्त किया गया. विवादास्पद संसदीय अध्यक्ष-पद पर नियुक्ति के बारे में राष्ट्रपति स्वोबोदा ने फ़िलहाल कोई निर्णय नहीं किया है.

एक और घोषणा : नव वर्ष के अपने संदेश में राष्ट्रपति ने यह घोषणा भी की है कि नयी सरकार में कुछ महत्त्वपूर्ण पदों पर नवयुवकों को नियुक्त किया जायेगा. उन्होंने यह आश्वासन भी दिया कि रूसी आक्रमण से पूर्व के कुछ सुधार कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया जायेगा. इस के बावजूद प्रगतिशील गुट को आशंका है कि नयी सरकार का गठन रूस के इशारे पर हुआ है. अतः वे सुधार कार्यक्रम का क्षरण रोकने के लिए संघर्ष की योजना तैयार कर रहे हैं.

वतन को वापसी : इसी बीच अनेक चेकोस्लोवाक लेखकों और पत्रकारों के स्वदेश लौटने के समाचार मिले है. उन्होंने यह निर्णय इस लिए किया कि सुधारवादी कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए उन का स्वदेश में रहना आवश्यक है. प्रसिद्ध नाटककार तथा पत्रकार इवान क्लीमा ने तीन सप्ताह की अमेरिका-यात्रा से लौटने के बाद बताया कि प्रायः सभी लेखक और पत्रकार या तो स्वदेश लौट आये हैं या निकट भविष्य में लौट आयेंगे. कुछ यहूदी

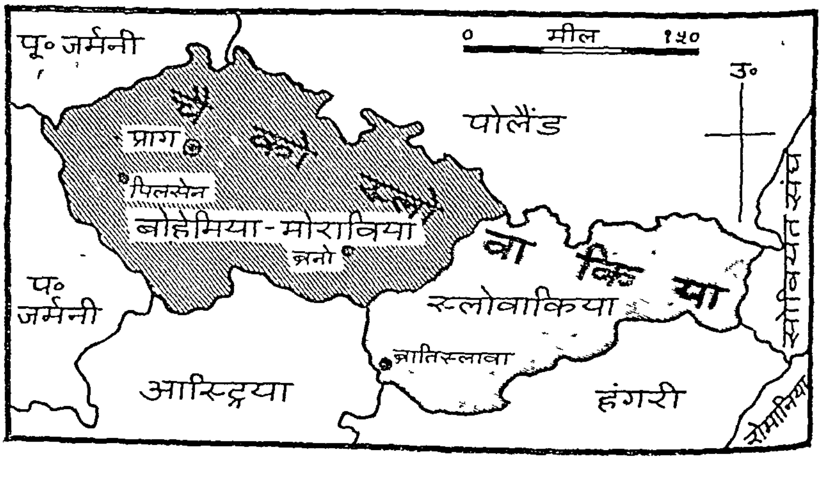

लेखक तथा धन कमाने के उद्देश्य से विदेश गये बुद्धिजीवी ही स्वदेश नहीं लौटेंगे.

इटली की एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक पत्रिका ने अपने सर्वेक्षण के आधार पर चेकोस्लावाक नेता अलाक्सांद्र डुबचेक को 'वर्ष का व्यक्ति' घोषित किया है. अपने नेता के सम्मानित होने से चेकोस्लोवाकिया की जनता का मनोबल निश्चय ही ऊँचा होगा.

फ़िलिपीन

लेन-देन की विदेश-नीति

मनीला में फ़िलिपीन के नये विदेशमंत्री जनरल कार्लोस रोमुलो ने अपने देश की नयी विदेश-नीति की व्याख्या करते हुए कहा, "फ़िलिपीन की यह सामान्य नीति होगी कि वह आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक मामलों में किसी एक देश या गुट पर निर्भर नहीं रहेगा और इस में संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान या और कोई विकसित और शक्तिशाली देश भी शामिल है". संयुक्त राज्य अमेरिका का नाम तो इस प्रकार की विदेश-नीति में आना स्वाभाविक है किंतु जापान का संभवत: इस लिए आया है कि जापान ही एक ऐसा विकसित देश है जो फ़िलिपीन द्वीप समूह का पड़ोसी कहा जा सकता है और इसलिए न केवल राजनैतिक और आर्थिक रूप से मनीला पर प्रभाव डाल सकता है बल्कि फ़िलिपीन संस्कृति को प्रभावित करने की भी क्षमता जापान में है. रोमुलो की नीति का उद्देश्य अपने देश को विदेशी निर्भरता से मुक्त करना तो है किंतु वह यह नहीं चाहते कि दूसरे देशों के मैत्रीपूर्ण सहयोग से वह वंचित रहे. इस लिए रोमुलो के शब्दों में "हमारा मतलब यह नहीं कि फ़िलिपीन ऐसे देशों के साथ संबंध स्थापित करने से इनकार करेगा, जो हम से इस प्रकार के संबंध स्थापित करना चाहें. जो हमारी इच्छाओं को हानि न पहुँचायें और जो हमारी प्रभुसत्ता और स्वतंत्रता का सम्मान करते हों". रोमुलो की विदेश-नीति में एशिया और यूरोप के देशों के साथ सक्रिय सहयोग का सिद्धांत शामिल है.

चीन का महत्त्व : इस नयी विदेश-नीति में नयापन केवल इस बात का है कि फ़िलिपीन अपने संबंधों को किसी एक ही दिशा में सीमित नहीं रखना चाहता इसलिए उस ने पश्चिमी देशों से सहायता की आकांक्षा करते हुए भी यह स्पष्ट कर दिया है कि "हम उन के हितों के उत्तरदायी वहीं तक होंगे जहाँ तक वे हमारे हितों के साथ मेल खाते हों". इसी के साथ-साथ उन्होंने साम्यवादी चीन के प्रति भी मित्रता का हाथ बढ़ाया है. यह मित्रता की नीति फ़िलिपीन की एशियाई नीति का एक अंग है, जिस के अंतर्गत वह एशिया के अर्द्ध-विकसित या विकासशील देशों के साथ आर्थिक और राजनैतिक संपर्कों में घनिष्ठता लाने की कोशिश करेंगे. "हम सब में यह भावना सामान्य है कि हम अपने राष्ट्रों की सहयोगी कार्रवाई को पुन: चालू करना चाहते हैं जो यदि विदेशी साम्राज्य नहीं स्थापित हुआ होता तो, एक अधिक स्पष्ट और विकासशील एशियाई एकता संस्कृति और सभ्यता में विकसित हो गयी होती'. इस सिलसिले में उन्होंने चीन को एक विशेष महत्त्व का स्थान दिया है. उन के अनुसार फ़िलिपीन एक ऐसी नीति पर कार्य करेगा जो स्वतंत्र मित्रता और स्पष्टता की नीति होगी. 'हमारी एशियाई नीति के अंतर्गत हमें वक्त की आवश्यकताओं को समझना चाहिए और इस बात पर विचार करना चाहिए कि साम्यवादी चीन तथा अन्य एशियाई समाजवादी देशों के साथ हम किस प्रकार सहयोगी संबंध स्थापित करेंगे". फ़िलिपीन के नये विदेशमंत्री को इस बात का एहसास है कि चीन और अन्य साम्यवादी देशों के साथ सहयोगी संबंध स्थापित करना केवल फ़िलिपीन की इच्छा पर ही निर्भर नहीं करता.

रोमुलो : आर्थिक राजनय

वास्तव में चीन के साथ घनिष्ठ व्यापारिक या राजनैतिक संपर्क स्थापित करना "जनवादी चीन के अपने व्यवहार पर निर्भर करता है". यदि चीन विभिन्न आर्थिक और राजनैतिक सिद्धांतों पर चलने वाले देशों के साथ सहयोग करने के लिए तैयार हो तो इस प्रकार के संबंध स्थापित करने में कोई कठिनाई पैदा नहीं हो सकती. फ़िलिपीन की ओर से मित्रता का हाथ बढ़ाना उस के अपने हितों को दृष्टि में रख कर एक उपयोगी क़दम है. यद्यपि रोमुलो की नीति में पश्चिमी यूरोप, अफ्रीका और लातीनी अमेरिकी देशों के साथ भी संबंध स्थापित करने की बात कही गयी है फिर भी यह स्पष्ट है कि फ़िलिपीन जैसे देश के लिए इस प्रकार के संपर्क फ़िलहाल अधिक महत्त्व के नहीं हैं. क्यों कि फ़िलिपीन का मुख्य उद्देश्य "आर्थिक राजनय द्वारा आर्थिक विकास की बाधाओं को दूर करना है". जिन को "पुराणपंथी राजनैतिक राजनय ने खड़ा किया था". वास्तव में रोमुलो की नयी विदेश-नीति का सिद्धांत उन्हीं के शब्दों में "हम भय और पूर्वाग्रह द्वारा उस व्यापार से दूर हटने के सिद्धांत पर विश्वास नहीं करते, जो हमारे लिए लाभप्रद हो.'

वीएतनाम

वहाँ के वहाँ

कौन कहाँ बैठे के प्रश्न को ले कर पिछले दस सप्ताह से पेरिस-वार्त्ता खटाई में पड़ी हुई है. दोनों पक्ष अपनी-अपनी ज़िद पर अड़े हुए हैं. हानोई आज भी अपनी यह माँग दुहरा रहा है कि जब तक राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे के प्रतिनिधिमंडल को वार्त्ता की मेज़ पर समान और स्वतंत्र स्तर प्रदान नहीं किया जाता तब तक वह पेरिस शांति-वार्त्ता में भाग नहीं लेगा. उधर अमेरिका राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे के प्रतिनिधिमंडल को वार्त्ता में भाग लेने देने के लिए तो तैयार हो गया किंतु वह और सैगॉन सरकार उस का पृथक् अस्तित्व मानने के लिए तैयार नहीं हैं. उन का कहना है कि राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा उत्तरी वीएतनाम के प्रतिनिधिमंडल के एक अंग के रूप में ही वार्त्ता में भाग ले सकता है. वार्त्ता में ४ पक्ष हों अथवा दो इस का निर्णय हुए बिना वार्त्ता में प्रगति की कोई उम्मीद नहीं की जा सकती. हानोई के प्रतिनिधिमंडल के प्रवक्ता न्गुएन थान्ह ली ने ६ जनवरी को पेरिस में स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि उन की सरकार शांति-वार्त्ता को चार पक्षों से संबद्ध मानती है और वह ऐसे किसी भी फ़ार्मूले को मानने के लिए तैयार नहीं है जिस में उस की इस बात को मान्यता न दी जाये. उन्होंने शांति-वार्त्ता में गतिरोध के लिए सैगॉन और अमेरिका को उत्तरदायी ठहराया. इस बीच अमेरिका ने हानोई का यह सुझाव तो स्वीकार कर लिया है कि वार्त्ता की मेज़ गोल हो किंतु साथ ही यह शर्त भी लगा दी है कि मेज़ दो भागों में बँटी हो जिस की एक ओर उत्तरी वीएतनाम और राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा के प्रतिनिधिमंडल और दूसरी ओर अमेरिकी और दक्षिणी वीएतनामी प्रतिनिधिमंडल बैठें. किंतु उत्तर वीएतनाम ऐसी किसी शर्त को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है.

पेरिस-सैगॉन-पेरिस : इसी बीच दक्षिणी वीएतनामी प्रतिनिधिमंडल के परामर्शदाता उपराष्ट्रपति एयर मार्शल न्गुएन काओ की दो अन्य सदस्यों के साथ पेरिस से सैगॉन लौट गये. सैगॉन पहुँचने पर उन्होंने अमेरिका पर यह आरोप लगाया कि जब तक वह पेरिस में रहे अमेरिकी प्रतिनिधिमंडल ने वार्त्ता में भाग लेने के लिए उन पर काफ़ी दबाव डाला. अब वह वार्त्ता शुरू होने पर पुन: पेरिस जायेंगे. प्रतिनिधिमंडल के जो दो अन्य सदस्य सैगॉन लौट गये उन के बारे में समाचार है कि वे अपनी सरकार से कुछ आवश्यक निर्देश प्राप्त कर के शीघ्र ही पेरिस लौट जायेंगे. किंतु पेरिस लौटने पर गतिरोध टूटेगा ऐसी कोई संभावना नहीं दीखती. ऐसा लगता है कि जब तक अमेरिका के नव-निर्वाचित राष्ट्रपति निक्सन पद ग्रहण नहीं कर लेते तब तक यह गतिरोध ऐसा ही

बना रहेगा. १३ मई ६८ को जब दोनों पक्ष पहली बार पेरिस बातचीत के लिए आमने-सामने बैठे थे तो यह उम्मीद बँध गयी थी कि शीघ्र ही वीएतनाम-समस्या का कोई-न-कोई सर्वमान्य हल निकल आयेगा किंतु पिछले २४५ दिन में स्थिति जैसी की तैसी बनी हुई है.

नवां वर्ष : नये वर्ष के साथ वीएतनाम संघर्ष ने नवें वर्ष में प्रवेश किया है. इस बीच अनेक उतार-चढ़ाव आये. किंतु वास्तविकता यह है कि ज्यों-ज्यों समय बीतता गया वीएतनाम की समस्या और भी उलझती गयी. अब स्थिति यह है कि जहाँ जनवरी १९६१ में अमेरिका के मुट्ठी भर सैनिक परामर्शदाता ही दक्षिण वीएतनाम में थे वहाँ उन के अब कोई ५ लाख सैनिक मोर्चा सँभाले हुए हैं. आस्ट्रेलिया, दक्षिण कोरिया, थाई देश और न्यूज़ीलैंड के सैनिक इन के अतिरिक्त हैं. ८ वर्ष की इस लंबी अवधि में दोनों पक्षों को काफ़ी हानि उठानी पड़ी. अनुमान है कि अब तक अकेले अमेरिका के ३०५०० सैनिक युद्ध की भेंट चढ़ चुके हैं जिन में से आधे से भी अधिक अकेले गत वर्ष युद्ध के शिकार हुए. इस के अलावा बेतहाशा सैनिक सामग्री बर्बाद हुई. हज़ारों वीएतनामी नागरिक युद्ध के शिकार हुए. करोड़ों रुपयों की संपत्ति बमबारी में स्वाहा हुई फिर भी अजीब बात है कि कोई पक्ष झुकने के लिए तैयार नहीं है. हालांकि संघर्ष में फँसे सभी पक्ष यह महसूस करने लगे हैं कि समस्या का समाधान राजनैतिक स्तर पर ही किया जा सकता है.

लेखा-जोखा : १९६८ वीएतनामी युद्ध का सब से महत्त्वपूर्ण वर्ष रहा है. इसी वर्ष कम्युनिस्ट छापामारों ने दक्षिणी वीएतनाम की गली-गली में गेरिला लड़ाई लड़ी और अमेरिका ने उन की शक्ति को कुचलने के लिए उत्तर वीएनाम के सनिक और नागरिक सभी ठिकानों पर अंधाधुंध बमबारी की. जहां तक उत्तर वीएतनाम की सफलता का प्रश्न है उस ने अमेरिकी सरकार और जनता के अंतिम विजय तक युद्ध करने के संकल्प को तोड़ दिया, यद्यपि वह सैगॉन सरकार को उखाड़ फेंकने के राजनैतिक उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सका. उधर हज़ारों टन बम गिराने के बाद अमेरिका केवल इतनी ही सफलता प्राप्त कर सका कि अंततः उत्तर वीएतनाम शांति-वार्त्ता के लिए तैयार हो गया. जहां तक सैगॉन सरकार का प्रश्न है पिछले वर्ष भी उस की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ बल्कि वह भ्रष्टाचार और कुप्रशासन की और अधिक शिकार हुई. पहले की तरह आज भी उस का संबल अमेरिकी सहायता बना हुआ है. यही कारण है कि ऊपर से सैगॉन सरकार कुछ भी कहे किंतु वह आज भी वही सब कुछ करने के लिए विवश है जो अमेरिका चाहता है.

नयी नियुक्ति : नव-निर्वाचित राष्ट्रपति निक्सन द्वारा हेनरी कैबेट लाज को अमेरिकी प्रतिनिधिमंडल का अध्यक्ष मनोनीत किये जाने के साथ ही वह सारी अटकलें समाप्त हो गयी हैं जो प्रतिनिधिमंडल के भावी अध्यक्ष के बारे में अब तक राजनैतिक क्षेत्रों में व्याप्त थीं. श्री कैबेट लाज इन दिनों पश्चिमी जर्मनी में अमेरिका के राजदूत हैं. इस से पूर्व वह १९६३-६४ और फिर १९६५-६७ तक दक्षिणी वीएतनाम में अमेरिकी राजदूत के पद पर कार्य कर चुके हैं. वह अमेरिका में नयी सरकार के सत्तारूढ़ होने के बाद यथाशीघ्र अपना नया कार्यभार सँभाल लेंगे. प्रतिनिधिमंडल के उपाध्यक्ष सायरस वांस अभी कुछ समय तक अपने पद पर बने रहेंगे. बाद में लारेंस वाल्श उन का स्थान लेंगे. प्रतिनिधिमंडल में और कोई परिवर्त्तन नहीं किया गया. आशा है कि हेनरी कैबेट लाज के नेतृत्व में अमेरिकी प्रतिनिधिमंडल शांति वार्त्ता में पहले से ठोस भूमिका निभा सकेगा.

अंतरिक्ष अनुसंधान

शुक्रतल पर एक और जासूस

प्रति १० वर्ष में विश्व और सौरमंडल के संबंध में मनुष्य की जानकारी दुगुनी हो जाती है क्यों कि मनुष्य की उत्सुकता और अपने ज्ञान में वृद्धि करने की आकांक्षा का कोई अंत नहीं. अपने निकटतम पड़ोसी चाँद पर मानव के क़दम पड़ने वाले हैं किंतु विश्व के वैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधान को वहीं तक सीमित नहीं रखा है.

सौरमंडल के अन्य ग्रहों और उपग्रहों के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के प्रयास चल रहे हैं. हाल ही में सोवियत संघ ने एक अंतरिक्ष यान सौरमंडल के रहस्यमय ग्रह शुक्र की ओर भेज दिया है. इस से पहले भी शुक्र-४ नाम से एक अंतरिक्ष यान भेजा गया था जिस ने ९० मिनट तक लगातार इस ग्रह के संबंध में काफ़ी जानकारी भेजी थी. ऐसा लगता है कि इस अंतरिक्ष यान ने थोड़े समय के बाद संकेत भेजना बंद कर दिया था इस लिए सोवियत संघ ने कुछ संशोधनों के बाद एक नये प्रयोगात्मक अंतरिक्ष यान को अधूरा काम पूरा करने के लिए प्रेषित किया है. ११३० किलोग्राम का यह यान मई में इस रहस्यमय ग्रह तक पहुँच जायेगा और वहाँ धीरे से उतरने के बाद वैज्ञानिक जानकारी भेजता रहेगा. अंतरिक्ष में उछाले जाने के चार घंटे बाद ही यह यान २५,००० किलोमीटर ऊपर चला गया था. २५ करोड़ किलोमीटर दूर स्थित शुक्र ग्रह पर धीरे से उतारने के लिए वैज्ञानिक इस दिशा को ठीक करने का भी प्रयास करेंगे.

जीवन की संभावनाएँ : शुक्र सौरमंडल का एक ग्रह है जो आकार में पृथ्वी के आकार के निकट है मगर यह चारों ओर से गहरे बादलों के एक आवरण से ढका हुआ है जिस के कारण यह लंबी आवृत्तियों के रेडियो संकेतों को वापस भूमि तक नहीं पहुँचने देता. यहाँ नाइट्रोजन, कार्बन डायक्साइड, कार्बन मोनोक्साइड, वाष्प और अन्य गैस तो मौजूद हैं मगर अभी तक मुक्त आक्सीजन का पता नहीं लगा है इस लिए यहाँ बुद्धिमान जीवों के विकास की बहुत कम संभावनाएँ हैं मगर यह संभव है कि इस में जीवन के अत्यंत आरंभिक रूप मिल जायें. सोवियत संघ के अन्वेषक यान से प्राप्त संकेतों से इस के आकार और रचना के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त होने की आशा है.

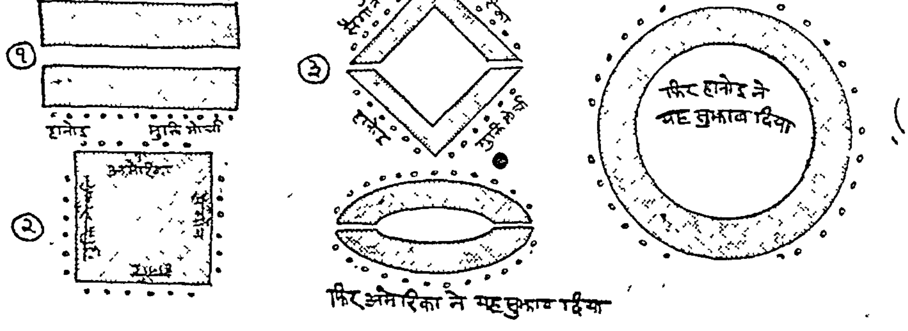

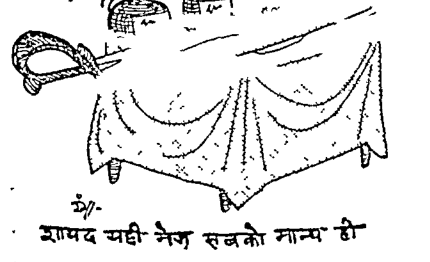

संदर्भ

सीमापार व्यापार

पिछले २४ दिसंबर से २८ दिसंबर तक नेपाल सरकार के एक प्रतिनिधिमंडल ने वित्त-मंत्री **श्री खेम बहादुर थापा** के नेतृत्व में भारत सरकार के प्रतिनिधिमंडल से वार्त्ता की. इस वार्त्ता में भारत -नेपाल सहकार योजनाओं की प्रगति पर संतोष प्रकट किया गया तथा भारत की ओर से भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता भारतीय विदेशमंत्रालय के सचिव श्री कोहली ने आश्वासन दिया कि भारत नेपाल के सर्वांगीण विकास में सहायता देगा.

नेपाल भारत के दो राज्यों—विहार व उत्तरप्रदेश के उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में स्थापित है. इस के उत्तर में चीन का तिव्वत प्रदेश तथा पूर्व में सिक्किम व भारत का पश्चिमी वंगाल राज्य है. हिमालय की मुख्य शाखा के अंतर तथा अंचल में वसा नेपाल शताब्दियों से भारत के साथ संवंधित रहा है. नेपाल में जनकपुर है, जहाँ राजा जनक की राजधानी थी, राजा रामचंद्र की ससुराल थी और लुंबिनी है, जहाँ भगवान बुद्ध पैदा हुए थे और अशोक ने स्तूप तथा स्तंभ बनवाये थे. नेपाल की काठमाँडो घाटी में स्वयंभूनाथ का मन्दिर है, जो दो हज़ार वर्ष पुराना कहा जाता है, पाटन में अशोक का बनवाया स्तूप है और पशुपतिनाथ का मन्दिर है,जो हज़ारों वर्षों से उत्तर भारत की तीर्थ-यात्रा में सव से कठिन व पवित्र यात्रा-स्थल माना जाता है. जलंधर के नाथ संप्रदाय के संत वावा मछिंदर नाथ यहाँ अवलोकतेश्वर बुद्ध के अवतार माने जाते हैं और उन की पूजा होती है. संभवत: यहीं पर उन के प्रसिद्ध शिष्य गोरखनाथ ने भी अपने चमत्कार दिखाये थे और जिस काष्ट-मंडप में वह ठहरे थे उसीने नगर काठमांडो को नाम दिया. नेपाल में कई राजवंशों ने राज किया और १७७४ से पूर्व जव गोरखा जाति के शाही राजवंश ने नेपाल को एक देश के रूप में संगठित कर काठमांडो को राजधानी बनाया नेपाल कई राज्यों में विभक्त था. पाटन और भक्तपुर विभिन्न समयों में यहाँ पर राजधानी रहे. भक्तपुर से सोलहवीं शताब्दी में राजा भूपतिंद्र मल्ल ने न्यायटोल नामक एक सुंदर पचमंज़िला मंदिर बनवाया था,जिस में सब से नीचे मेवाड़ के वीर जयमल व फत्ता की मूर्त्ति है. वहाँ की जनता परम आस्तिक है और इन देवताओं और देवियों के साथ बुद्ध और तारा, अवलोकितेश्वर व अमिताभ की भी पूजा करती है.

नेपाल का क्षेत्रफल ५४६६२ वर्गमील है. यह लंवाई में वसा देश है, जिस की चौड़ाई अधिकतम १५० मील और कम से कम ८९ मील है. परंतु १९५१ तक, जव कि यहाँ पर १११ वर्षों से नेपाल के राजा-परिवार ने प्रधानमंत्री का पद तथा राजनीतिक सत्ता अपने हाथ में ली थी, केवल २० मील लंवी पक्की सड़कें थीं. सन् १९५१ में नेपाल नरेश **त्रिभुवन** नेपाल छोड़ कर भारत आये और नेपाल के राजा-वंश की समाप्ति पर नेपाल लौटे. उसी समय से ही भारत व नेपाल का सहयोग व सहकार प्रारंभ हुआ. सन् १९५१ में भारत ने काठमांडो में गोचर हवाई अड्डा बनाया और काठमांडो तथा पटना व कलकत्ता के बीच पहली हवाई उड़ान प्रारम्भ की. इस प्रकार नेपाल के संचार-साधनों का विकास भारतीय सहायता से प्रारम्भ हुआ और वह क्रम अभी जारी है.

पिछली जून तक भारत से नेपाल को ५८ करोड़ रुपये (नेपाली मुद्रा में ८० करोड़ रुपये) की सहायता मिल चुकी है. यह कहने से भारत व नेपाल के सहकार का कोई रूप प्रकट नहीं होता. जव हम इस का विवरण देखेंगे तो पता लगेगा कि किस प्रकार इस सहायता ने नेपालियों के जीवन की ही काया-पलट कर दी है.एक समय था जव कि नेपाल के इन एक करोड़ निवासियों में से ९५ प्रतिशत को मलेरिया का शिकार होना पड़ता था और वावजूद इस धारणा के कि नेपाल में पारस पत्थर मौजूद है, जिस के छूने से लोहा सोना हो जाता है, नेपाल में जो सोना भरा पड़ा है उन का भी किसी को पता नहीं था. भारत में व वाहर भी नेपाल के गोरखाओं की वीरता ही नेपाल की विशेषता मानी जाती थी, परंतु इसे प्रकट करने के लिए उन्हें दूर-दूर नौकरी पर जाना पड़ता था. नेपाल की समृद्धि कतिपय राजप्रासादों तक सीमित थी.

सन १९५१ से ले कर १९६८ तक भारत ने नेपाल के साथ सहयोग और सहकार के ५८ समझौतों पर हस्ताक्षर किये हैं. इस वीच १०९ परियोजनाएँ पूरी हो चुकी हैं और पच्चीस योजनाओं पर काम चालू है. इस वर्ष के अंत तक उन में से भी अधिकांश को पूर्ण हो जाना था. ये परियोजनाएँ जीवन के सभी पहलुओं से संवंधित हैं. इन में सड़कों का निर्माण सम्मिलित है, रेलवे लाइन के विस्तार व नवीकरण की योजनायें हैं, हवाई अड्डों का निर्माण है, डाक-तार,टेलीफ़ोन व टेलीप्रिंटर लगाने की योजनाएँ हैं. सिंचाई व विजली-निर्माण से ले कर साधारण पेय जल संवंधी अनेकों योजनाएँ हैं, वनों के विकास व उद्यान-प्रगति से ले कर ग्राम-विकास, औद्योगिक विकास, शिक्षा के विकास व प्राविधिक प्रशिक्षण का कार्य है. नेपाल के भूगर्भ-सर्वेक्षण तथा नक्शा-निर्माण तक का कार्य भारतीय सहकार मिशन ने हाथ में लिया है.

सन् १९५४ तक काठमांडो में दो जल विजली योजनाएँ—सुंदरी जल व फेरपिंग की थीं, जिस से १४०० किलोवॉट विजली उपलब्ध होती थी. माँग वढ़ने के कारण जव नदियों में पानी कम होता था तो चार महीने विजली कम हो जाती थी. सन् १९५३ में नेपाल सरकार ने विजली उत्पादन के संवंध में भारत सरकार का सहयोग माँगा. सितंवर १९५३ में दो भारतीय इंजीनियर त्रिशूली नदी की परियोजना तैयार करने गये और यह निर्णय किया गया कि त्रिशूली वाज़ार से ३ मील दूर एक वाँध वाँधा जाये. सन् १९६६ में इस परियोजना का प्रथम चरण समाप्त हो गया और १२,००० किलोवॉट उत्पादन वाले चार एंजिन लगा दिये गये. अव इस योजना के दूसरे चरण से ९,००० किलोवॉट विजली पैदा करने वाले तीन एंजिन और लगाये जा रहे हैं, जिस से कुल २१,००० किलोवॉट विजली तैयार हो सकेगी. प्रारंभ में अनुमान किया गया था कि इस परियोजना पर कुल ३ करोड़ रुपया खर्च होगा. परंतु अव इस योजना पर १८.४ करोड़ रुपया व्यय होगा. इस योजना से न केवल काठमांडो घाटी की विजली की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो गयी हैं वल्कि अव यहाँ से हिटौरा तक विजली की लाइनें डाली जा रही हैं. इस योजना के अन्य लाभ भी हुए. यद्यपि त्रिशूली वाज़ार काठमांडो से कुल ९ मील है परंतु उसे संवंधित करने के लिए काठमांडो से परियोजना-क्षेत्र तक एक ४५ मील लंवी सड़क भी वनायी गयी, जिस पर ११ करोड़ रुपया व्यय हुआ. काठमांडो के पास वालाजू से विजली वितरण-केंद्र के पास ही भारतीय सहायता से एक औद्योगिक वस्ती का भी निर्माण किया गया, जिस पर ४२ लाख रु. व्यय हुआ.

गोचर हवाई अड्डे का निर्माण १९५१ से प्रारंभ हुआ था, परंतु उस को त्रिभुवन हवाई अड्डे के रूप में पहले १९५२ में, फिर १९५४ में और उस के वाद १९६८ में इतना विकसित कर दिया गया कि पिछली ४ दिसंवर को थाई एयरवेज़ के जेट विमान वहाँ उतरने लगे. भारत ने नेपाल के छह हवाई अड्डों भैरवा, विराट नगर, जनकपुर, पोखरा और सिमरा का विकास और निर्माण किया है, जिस के परिणामस्वरूप नेपाल अपने आंतरिक अंचलों और देश-विदेश से संवद्ध हो गया. नेपाल में विमान-सेवा का प्रारंभ भी एक भारतीय कंपनी 'इंडियन नेशनल वेज़' ने किया था और उस की आंतरिक सेवाएँ दूसरी भारतीय कंपनी 'हिमालियन एवीएशन' ने विकसित कीं. जुलाई १९५८ तक यह कार्य 'इंडियन एयरलाइंस निगम' करती रही, जिस के वाद यह काम 'शाही नेपाल एयरलाइंस कॉरपोरेशन' को सौंप दिया गया. आज नेपाल में १३ हवाई अड्डे हैं

भारत ने नेपाल की जिन वड़ी योजनाओं को पूरा किया उन में सव से वड़ी दो सड़क योजनाएँ हैं. एक त्रिभुवन राजपथ—जिस पर ७ करोड़ ९६ लाख रु. खर्च हुआ और जो रक्सोल और काठमांडो की ७९ मील लंवी नेपाल का प्रथम राजमार्ग है. दूसरा मार्ग सोनाली-पोखरा सड़क है, जो १३१ मील लंवी है और जिस पर १४ करोड़ ५७ लाख रु. खर्च हुआ है. नेपाल का सव से वड़ा राजमार्ग महेंद्र राजमार्ग महत्त्व का है. यह मार्ग ९९० कि. मी. लंवा होगा, जिस का

६२४ किलोमीटर मार्ग भारत की सहायता से बनाया जायगा. इस मार्ग पर १३ बड़े पुल और ९७ छोटे पुल होंगे.

नेपाल की सब से बड़ी परियोजनाओं, त्रिशूली के अतिरिक्त, पोखरा जल विजली योजना भारत की सहायता से तैयार हो रही है और कोसी बिजलीघर से राजबिराज तथा बिराट नगरों को विजली दी गयी है. ऐसी ही व्यवस्था गंडक जल बिजली योजना के संबंध में भी होगी. इन के अतिरिक्त नेपाल की सब से बड़ी छत्रा योजना को भारत ने लगभग पूरा कर दिया है. छत्रा योजना में १० करोड़ ३४ लाख रु. व्यय होगा और इस से १,८२,००० एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी. इस परियोजना में २४६ नहरें और उन की प्रशाखाएँ तैयार हो सकेंगी. इस के अतिरिक्त भारत ने १५ अन्य सिंचाई-योजनाओं के लिए लगभग २ करोड़ २० लाख रु. व्यय किया है. इन से १,१०,००० एकड़ भूमि की सिंचाई होगी. कोसी परियोजना की पश्चिमी नहर से १३३४ लाख एकड़ में सिंचाई होगी और उस के पूर्वी नगर पर स्थित बिजली घर से निकलने वाली ५० प्रतिशत बिजली नेपाल को दी जायगी. गंडक परियोजना से १.४३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और भैसलोटन से १५ हजार किलोवॉट की शक्ति का जो बिजलीघर बनाया जायेगा वह नेपाल की संपत्ति हो जायेगी. भारत ने जो परियोजनाएँ बनायी हैं उन पर १९७१ तक नेपाल मुद्रा से १२५ करोड़ रु. व्यय होगा. नेपाली के १३५ रु. १०० भारतीय रुपयों के बराबर होते है. इन के अतिरिक्त भारत ने नेपाल के २३०० व्यक्तियों को प्राविधिक प्रशिक्षण दिया है, जिन में से १६०० नेपाल में लौट कर काम करने लगे है. इस का सारा खर्च भारत ने वहन किया है. इन के अतिरिक्त भारतीय विशेषज्ञ नेपाल विश्वविद्यालय, त्रिचंद्र कॉलेज और त्रिभुवन आदर्श विद्यालय, इंजीनियरिंग स्कूल, रूरल इंस्टिट्यूट, पुरातत्त्व विभाग, डाक व तार घर आदि विभिन्न कार्यों में लगे हुए है.

भारत और नेपाल के बीच से आवागमन के लिए पासपोर्ट या वीसा की कोई आवश्यकता नहीं है. व्यापार के संबंध में भी यह व्यवस्था है कि नेपाली माल भारत में बिना किसी प्रतिबंध के आ सकता है. आज से १५-२० वर्ष पूर्व नेपाल में भारत से माल जाता ही था, वहाँ से आने वाले माल के रूप में स्थानीय दस्तकारी का काम, ऊन तथा अन्य कच्चा माल ही था. परंतु जब नेपाल का विकास हुआ, नेपाल सड़कों से संबद्ध हुआ और नेपाल में अन्य देशों का माल आना प्रारंभ हुआ तो नेपाल और भारत की व्यापार-समस्याएँ कुछ पेचीदा हो गयीं. पिछले नवंबर मास में भारत का एक व्यापार प्रतिनिधिमंडल काठमांडू गया था और उस ने उन समस्याओं को हल करने के लिए कुछ उपाय सुझाये, जिन के परिपालन के संबंध में भी दिसंबर की वार्त्ता में कुछ जानकारी प्राप्त हुई. नेपाल में सन् १९४८ तक २० मील लंबी सड़क थी. जब भारत ने नेपाल के लिए सड़कें बनाना प्रारंभ किया तो चीन ने भी कोडारी से काठमांडू तक सड़क बनाने का प्रस्ताव किया और अब एक ऐसी सड़क बना दी है जो काठमांडू से १४० किलोमीटर तक जाती है और उसे ल्हासा से संबंधित करती है. सड़क के बन जाने के बाद चीन नेपाल को जो सहायता देता है वह तैयार माल की शक्ल से भेजता है, जिस को बेच कर नेपाल की राष्ट्रीय निगम उस रु. को अपनी परियोजनाओं में लगाती है. चीन द्वारा माल के रूप में सहायता देने का मुख्य कारण भले ही यह हो कि चीन के पास विदेशी मुद्रा की कमी है, परंतु उस का प्रभाव भारत-नेपाल संबंधों को बिगाड़ने से भी पड़ा है. कारण यह है कि उस सारे चीनी माल की अधिक खपत संभव नहीं है. यदि वह नेपाल से बाहर भेजा जा सके तो उस के अच्छे दाम मिलते हैं. चूंकि काठमांडू सड़कों के जाल द्वारा अब भारत की सीमा पर स्थित नगरों से संबद्ध हो गया है इस लिए वह माल सीमा तक बड़ा आसानी से आ जाता है और फिर चोरी-छिपे भारत के गाँवों और नगरों में प्रवेश कर जाता है. इस कार्य में नेपाली व्यापारियों और भारतीय सीमा-अधिकारियों की होड़ रहती है. दूसरी बात यह है कि नेपाल में जापान, हाङ्काङ्ग आदि देशों से जो माल आता है उस पर नेपाल में चुंगी बहुत कम है. फलतः स्टेनलेस स्टील और कृत्रिम रेशम के धागे वहाँ सस्ते मिलते हैं. हाल ही में नेपाल ने एक हजार रु. तक के भेंट पार्सल बिना सीमा-शुल्क लेने की अनुमति दे दी है. इन पर २१ प्रतिशत कर, बिक्री व आय-कर के रूप में लिया जाता है और अनेक व्यक्ति हाङ्काङ्ग से इस प्रकार के पार्सल पाते हैं. हाङ्काङ्ग से इन पार्सलों को भेजने वाले कुछ भारतीय भी हैं, जो वहाँ से विदेशी मुद्रा भारत में नहीं भेज पाते. इन सब कारणों से नेपाल में आयात किया हुआ बहुत सा सामान प्राप्त होता है और नेपाल में अब कुछ ऐसे उद्योग स्थापित हो रहे हैं जो आयातित स्टेनलेस स्टील या टेरालीन धागे का प्रयोग कर उन से ऐसा माल तैयार करते हैं जो भारतीय माल का प्रतिद्वंद्वी हो सकता है. इसी लिए भारत की ओर से यह प्रस्ताव किया गया था, जो नेपाल ने मान लिया, कि इस प्रकार के तैयार किये हुए माल का भारत में निर्यात उतना ही रखा जाये जितना पिछले वर्ष था और नेपाल सरकार अपने यहाँ उपभोक्ता-कर लगाए जिस का लाभ नेपाल को हो. इस का भी परिपालन प्रारंभ हो गया है, परंतु यह व्यवस्था नेपाल के व्यापारियों तथा कुछ अधिकारियों को पसंद नहीं आती और नेपाल तथा भारत के बीच व्यापार-संबंधों को प्रभावित कर सकती है. आगामी फ़रवरी मास में भारत में इस संबंध में पुनः वार्त्ता होगी, जिस में व्यापार तथा यातायात संबंधी समस्याओं पर पुनर्विचार होगा.

पुरातत्त्व

ईंट, रोड़े और मूर्त्तियाँ

कानपुर के पास भितर गाँव नामक स्थान में एक गुप्तकालीन मंदिर है. यह गाँव कानपुर-हमीरपुर मार्ग पर स्थित है. कानपुर से कोई १८ मील २ फ़र्लांग पर बामपुर बंबा नामक नहर मिलती है. इस के किनारे-किनारे कोई चार मील कच्ची सड़क पर चलना पड़ता है. फिर कोई २ मील बायीं तरफ़ घूम कर कच्ची पगडंडी पर. यह पगडंडी सीधे भितर गाँव में जाती है.

मंदिर बाजार के दूसरे ओर दाहिने मार्ग पर स्थित है. इस मंदिर की विशेषता है कि यह ईंटों का बना हुआ है, जब कि भारत भर में अन्य समकालीन मंदिर पत्थरों द्वारा ही बनाये गये हैं, विशेषकर मूर्त्तियाँ तो पत्थरों पर ही उत्कीर्ण हुई है.

लगता है इस मंदिर का बाहरी भाग अधिकांशतः नष्ट कर दिया गया है. वहाँ पर अब भी कुछ मूर्त्तियाँ बची हुई है. इन मूर्त्तियों को, जो मंदिर की बाहर पृष्ठभूमि पर लगी हुई हैं, देख कर यही लगा कि उन का विनाश काल के कारण नहीं वरन उपेक्षा अथवा ईर्ष्यावश किया गया है, क्यों कि मूर्त्तियों के शेष अंग अब भी उतने ही अधिक सौंदर्यपूर्ण एवं मज़बूत हैं जैसे कभी रहे होंगे.

इस मंदिर में जो कुछ भी मूर्त्तियाँ हैं वह सब भवन के बाहर भाग पर है, अंदर कुछ नहीं. केवल एक गोल गुंबदनुमा छत वाला चौकोर कमरा है, जिस का अधिकांश भाग मरम्मत कराया गया है. ऐसी स्थिति में पर्यटकों की इस उत्सुकता का हल नहीं हो पाता है कि आखिर यह किस देवता का मंदिर था.

मंदिर का एक स्तंभ

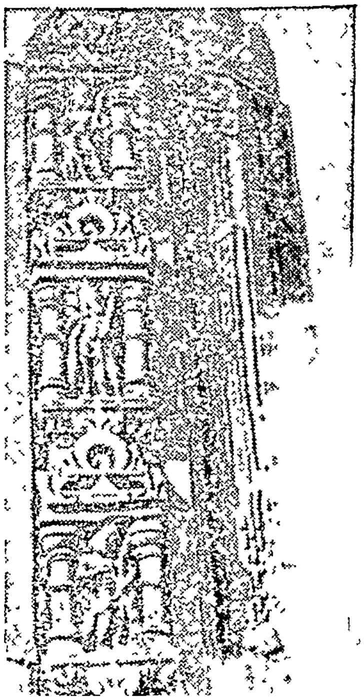

खेत में बिखरी शिव गणेश और देवियों की मूर्तियाँ

इस मंदिर के इतिहास की जानकारी उस गाँव में नहीं मिल सकती है; अनेक प्रकार की अफ़वाहें अवश्य ही सुनने को मिल सकती हैं, जिस के कारण संभव है कि इस मंदिर के मूल इतिहास पर पर्दा पड़ सकता है. उत्तरप्रदेश के पुरातत्त्वविभाग के अनुसार इस मंदिर के निर्माण का समय छठी शताब्दी गुप्त काल है, जब कि वहाँ पर फैली स्थानीय अफ़वाहों के अनुसार इस का निर्माण लगभग २००० वर्ष पूर्व हुआ है. लेकिन वहाँ की मूर्त्तियों की कला-शैली यह स्पष्ट करती है कि इस मंदिर का निर्माण-काल गुप्त काल ही है. मि. कनिंघम की दृष्टि से भी इस मंदिर का निर्माण-काल छठी एवं सातवीं शताब्दी है, लेकिन मि. बागेल के अनुसार इस मंदिर का निर्माण-काल कनिंघम द्वारा निर्धारित समय से भी ३ शताब्दी पूर्व का होना चाहिए. इस मंदिर के विषय में जो भी अधिकृत जानकारी उपलब्ध है वह मि. कनिंघम एवं मि. बागल के लेखों में ही है. कनिंघम ने इस स्थान की यात्रा सन् १८७५-७६ में की थी. इस के १२ वर्ष पश्चात मि. बागल भी यहीं आये थे.

कनिंघम की दृष्टि में भितर गाँव का ईंटों द्वारा निर्मित यह मंदिर गुप्त काल की एक अद्भुत देन है. उन का कथन है कि रायपुर (म. प्र.) और फ़तेहपुर ज़िले में भी कई ईंटों के मंदिर हैं. लेकिन भितर गाँव के मंदिर की ईंटें इन अन्य स्थानों की ईंटों की अपेक्षा अधिक बड़ी है, जब कि इन सब का निर्माण-काल गुप्त-काल ही है. अन्य स्थानों की ईंटों का आकार है १३"×८"×२".

मि. कनिंघम और बागल के अनुसार इस मंदिर का 'विनाश' मुसलमान आक्रमणकारियों तथा ब्रिटिश फ़ौजियों के अनियंत्रित आचरणों के कारण हुआ, मंदिर की मूर्त्तियाँ नष्ट हुई. क्यों कि ब्रिटिश समय में भितर गाँव इलाहाबाद-कन्नौज-लखनऊ के मुख्य मार्ग पर पड़ता था, जिस के परिणामस्वरूप हर तरफ़ से आने वाली एवं जाने वाली फ़ौजों की छावनी यहीं बनती थी. मि. कनिंघम की दृष्टि में इस मंदिर की पीछे की दीवार पर जो टेराकोटा है वह विष्णु का 'वराह अवतार' का है. उत्तर की दीवार पर दुर्गा की मूर्त्ति है तथा दक्षिण की तरफ़ वाली दीवार पर चार भुजा वाले गणेश की मूर्त्ति है.

प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता कनिंघम के अनुसार यह मंदिर विष्णु का होना चाहिए, अर्थात् यह वैष्णव संप्रदाय वालों के लिए ही निर्मित किया गया है. इस तथ्य की बहुत कुछ पुष्टि उन मूर्त्तियों के विषयों द्वारा हो जाती है. एक मूर्त्ति-खंड को देख कर ऐसा लगता है कि कोई देवी (पार्वती) अपने अष्टभुज के अस्त्रों द्वारा किन्हीं जानवरों (राक्षसों) का दमन कर रही है. एक अन्य 'टेराकोटा' में एक मगरमच्छ किसी पैर को खींच रहा है (मगरमच्छ और हाथी की पौराणिक कथा) एक अन्य में पौराणिक कथाओं की पंक्तियों के साथ नारी मूर्त्तियों की एक माला मंदिर के चारों तरफ़ चली जाती है, जिन को देखने से यह ज्ञात होता है कि इन पंक्तियों का विषय खजुराहो की भाँति काम है.

जिन ईंटों से इस मंदिर का निर्माण हुआ है उन का आकार १७½"×१०½"×३" है. जिस रंग की मिट्टी की ये ईंटें बनी हैं उस का रंग है "बर्न्ट साइना". ईंटों का बना होना ही इस मंदिर की अधिक विशेषता है. इस से भी अधिक विशेषता है उन मूर्त्तियों का मिट्टी का निर्मित होना. विशेष रूप से तैयार की गयी इस मिट्टी की ही विशेषता है कि ये मूर्त्तियाँ हवा-पानी और युग के अनेकों प्राकृतिक परिवर्तनों को १४०० वर्षों से सहती आ रही हैं.

इस मंदिर से २०० गज़ पूर्व की ओर एक चबूतरा है. वहाँ कुछ पत्थरों की मूर्त्तियों को देख कर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है. प्रश्न उठता है क्या एक ही काल में यहाँ विभिन्न माध्यमों का उपयोग होता रहा, अथवा यह विभिन्न युगों की देन है. उस चबूतरे पर एक गणेश जी की कुछ खंडित मूर्त्ति थी. अन्य तीन नर्त्तकियों की थीं. ये मूर्त्तियाँ काले-भूरे रंग के पत्थरों द्वारा बनायी गयी हैं.

इस मंदिर की कला-शैली और श्रावस्ती की कला-शैली में बहुत अधिक समानता पायी जाती है. यह भी एक सत्य है कि इन दोनों की कला का रचना-काल गुप्त काल है. दोनों की मिट्टी की बनावट में कोई विशेष अंतर दिखाई नहीं पड़ता.

पुरातत्त्व की दृष्टि से भितर गाँव अत्यंत महत्त्वपूर्ण है. जब भी यहाँ कोई नया कुआँ खोदा जाता है अथवा खेत की जोताई गहरी हो जाती है, कहीं-न-कहीं पुराने बर्त्तन, सिक्के और मूर्त्तियाँ निकल आती हैं. इस लिए इस क्षेत्र की खोज और अध्ययन आवश्यक हो जाता है.

भितरगाँव से २ मील आगे है बहेटा नामक गाँव है. यहाँ पर भी एक मंदिर है जिस की मूर्त्तिकला कनिंघम के अनुसार सातवीं-आठवीं शताब्दी है. यहाँ पर मूर्त्तियाँ सफ़ेद पत्थरों पर उभारी गयी हैं. यहाँ का सब से अधिक दुःखद पहलू यह है कि यहाँ भी मूर्त्तियों का 'विनाश' बहुत निर्दयतापूर्वक हुआ दिखायी देता है. मंदिर के क्षेत्र में ही लोगों ने एक 'दीवार' का निर्माण किया है. उस में अन्य ईंटों के साथ 'भग्न' मूर्त्तियाँ भी 'चिन' दी गयी हैं, मानो ये अन्य सामान्य ईंटों की भाँति हैं, कला-रत्न नहीं.

मंदिर का मुख्य भाग

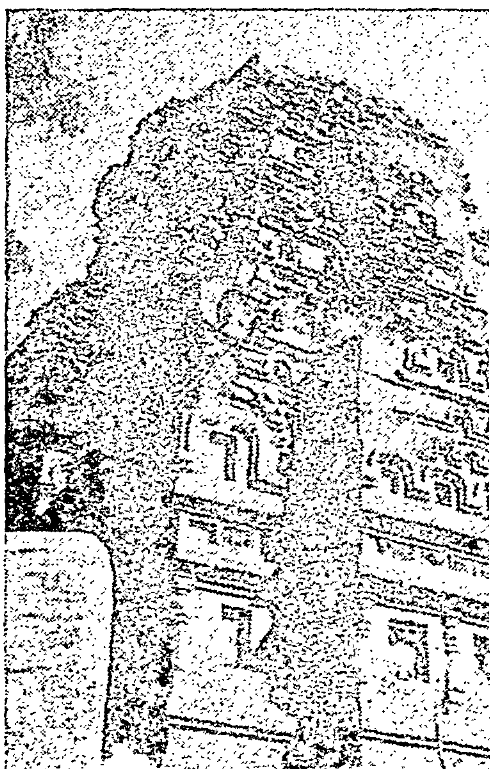

मस्तिष्क की गहराइयों की खोज

मानव-मस्तिष्क की मोटी और काफ़ी लंबाई में फैली हुई अंतस्त्वचिका के भीतर विशिष्ट प्रकार की तंत्रिकाएँ पायी जाती हैं. जिस स्थल में ये तंत्रिकाएँ फली रहती हैं उसे एक खंड की संज्ञा दी जा सकती है. मनश्चिकित्सक मस्तिष्क के इस भाग को 'भावात्मक मस्तिष्क' कहते है और उन का मत है कि भय, क्रोध, ख़ुशी, उदासी, सुख, सामाजिकता और कामुकता के लिये मस्तिष्क का यह भाग ही उत्तरदायी है. स्तनपायी को यह भाग अपने पूर्वज से प्राप्त होता है. अमेरिका की राष्ट्रीय स्वास्थ्य अनुसंधान संस्था से संबंधित डॉ. पॉल मैकलीन का कहना है कि इस प्रकार के दाय के कारण ही विकसित प्राणी अपने को अविकसित प्राणियों से पृथक् कर पाये है. उन का यह भी कहना है कि आदि काल में स्तनपायी तो आसपास के वातावरण के कारण ही भावोत्तेजक वन गया है. यदि ऐसा न होता तो अंतस्त्वचिका शरीर का एक मामूली-सा अंग वन कर रह जाती और उस पर किसी प्रकार के भाव का प्रभाव नही पड़ता. पाया तो यह गया है कि छल्ले के रूप में अंतस्त्वचिका में फैले इस भाग का किसी भी प्रकार के भाव ग्रहण करने का ढंग आज तक पुरातन ही है. मनुष्य में 'भावात्मक मस्तिष्क', विशेषतया याददाश्त, संबंधों और मुख्य रूप से भाषा से संबंधित है.

कुछ मनुष्य अत्यधिक आवेगी, विकीर्ण और उन्मादग्रस्त रहा करते हैं और उन में मानव-वध की भावना पायी जाती है. इन उदाहरणों ने चिकित्सकों का ध्यान आकर्षित किया है और उन की धारणा है कि 'भावात्मक मस्तिष्क' की शल्य-चिकित्सा कर के ऐसे व्यक्तियों को निरोग किया जा सकता है. जानवरों के 'भावात्मक मस्तिष्क' के विषय में बहुत जानकारी प्राप्त कर ली गयी है, किंतु मनुष्य के 'उस विशिष्ट भाग के बारे में अभी उतना ज्ञान नही प्राप्त किया जा सका है. वानर के शरीर के विभिन्न भागों की तंत्रिका कोशिकाओं में विद्युदग्र निरोपित किये गये थे और विद्युत-संचार के पश्चात् पाया गया था कि वानर शीघ्र कई भावों को प्रदर्शित करने की क्षमता प्राप्त कर लेते थे. वे शीघ्र क्रोधित और शांत हो जाते थे. साँडों और अन्य पशुओं में भी यह पाया गया है. मिर्गी, पक्षाघात आदि रोगों में मनुष्य के 'भावात्मक मस्तिष्क' की शल्य-क्रिया कर के अपेक्षित परिणाम प्राप्त हुए है. विद्युदग्रों का निरोपण प्रभावित तंत्रिका का पता दे देता है, जिसे पृथक् किया जा सकता है.

मस्तिष्क की शल्य-चिकित्सा : पिछले दिनों अमेरिका में शल्य-चिकित्सकों तथा मनोरोग-चिकित्सकों के एक दल ने मिर्गी के रोगियों की जाँच के दौरान पाया था कि यदि उन के 'भावात्मक मस्तिष्क' में विद्युदग्र निरोपित कर दिये जायें तो उन के क्रिया-कलापों का अध्ययन सरल हो जाता है. यह भी पाया गया था कि सभी रोगियों के 'भावात्मक मस्तिष्क' विकारग्रस्त थे, या उन्हें कभी सांघातिक चोट पहुँची थी. यहाँ उन्होंने यह प्रश्न किया था कि उन व्यक्तियों के विषय में क्या निष्कर्ष निकाला जायेगा जो इस रोग से ग्रसित नहीं हैं, फिर भी मनोविकार से आक्रांत पाये जाते हैं. प्रयोगों के आधार पर यह घोषणा की गयी थी कि ऐसे व्यक्तियों के मस्तिष्क भी विकारग्रस्त रहते है, किंतु यह विकार कम मात्रा में रहता है और बड़े क्षेत्र में फैला रहता है. इन दिनों टोकियो, कोपेनहैगन तथा अमेरिका के कई नगरों में ऐसे चिकित्सालय हैं जिन में मनोविकारग्रसित रोगियों को परीक्षण हेतु रखा गया है. चिकित्सक आश्वस्त हो चुके है कि इन रोगियों का इलाज किसी भी औषधि या शल्य-क्रिया से नही किया जा सकता. अब उन की धारणा यह हो गयी है कि सारे खतरों को समझते हुए भी इन रोगियों के मस्तिष्क की चीर-फाड़ की जाये और संभावित बीमारी का पता लगाया जाये. यह भी जानने हेतु वे इच्छुक हैं कि इस एकांगी मनोविकार का क्या कारण है. इस दिशा में मानवीय पक्ष बाधक हो रहा है, क्यों कि उन के मस्तिष्क की शल्य-चिकित्सा उन के लिये प्राण-घातक भी हो सकती है.

शल्य-चिकित्सकों के सम्मुख प्रश्न यह नहीं है कि उन्मादग्रस्त रोगियों की चिकित्सा की जा सकती है या नहीं, बल्कि वे इस तथ्य को समझना चाहते है कि क्या इन रोगियों की चिकित्सा इतने सहज ढंग से की जा सकती है ? एक बार यह तय हो जाने पर मस्तिष्क-संबंधी रोगों का इलाज निश्चित रूप से सरल हो जायेगा. डॉ. इरविन इसी तथ्य की खोज में संलग्न हैं.

प्रमस्तिष्कीय यंत्र : बोस्टन के एक चिकित्सालय में एक व्यक्ति इलाज हेतु भरती हुआ था. उस की शिकायत थी कि अनचाहे ही वह पिछले बरसों में ३० बार मानव-वध के लिये तैयार हो गया था. उस ने कार चलाना छोड़ दिया था, क्यों कि उसे यह आशंका थी कि ज़रा-सी उत्तेजना से ही वह मार्ग अवरुद्ध करने वाले को अपनी कार से पीस कर रख देगा. इस प्रकार के सरल रोगों में औषधियों ने कल्पनातीत लाभ पहुँचाया है. इस बात की संभावना बढ़ गयी है कि शल्य-चिकित्सक मस्तिष्क-संबंधी रोगों में अब विद्युदग्र निरोपित करने लगेंगे. इस निरोपण का एक लाभ तो यह होगा कि विक्षिप्तता की हद तक पहुँचे हुए रोगी निश्चित रूप से लाभान्वित होंगे. यह इस लिए सही है क्यों कि विद्युदग्र उन की मानसिक क्रियाओं में अपेक्षित संतुलन बनाये रखेंगे. यह सुझाव येल विश्वविद्यालय के डॉ. जोसे डैलगेडो ने दिया है. इस कार्य के लिये उन्होंने रेडियो संकेतों से संचालित विद्युदग्रों का निर्माण भी किया है. ये विद्युदग्र रोगी को भविष्य के अमानवीय व्यवहारो की पूर्व सूचना देने में सक्षम हैं. दूसरे वे चिकित्सकों को आवश्यक आँकड़े उपलब्ध करा देते हैं. डॉ. डैलगेडो ने एक खतरे की ओर संकेत किया है. वह खतरा है- सभी मानसिक विकारों से ग्रसित रोगियों की चिकित्सा के विषय में एक-सी धारणा बना लेना. उन का मत है कि 'भावात्मक मस्तिष्क' की शल्य-चिकित्सा मिर्गी जैसे रोगों में जहाँ एक ओर लाभ पहुँचा सकती है वहीं विक्षिप्त रोगियों की आक्रामक प्रवृत्ति एकाएक और कारगर ढंग से नहीं रोक सकती.

ख़तरे : डॉ. डैलगेडो की धारणा है कि मानसिक रोगों में आवश्यकता है प्रमस्तिष्कीय कार्य-पद्धति समझने की. यहीं से समस्त गड़बडी और शांति की भावना उत्पन्न होती है. यदि एक बार यह समझ में आ जाता है कि हमारे भावों का मस्तिष्क में किस प्रकार का संबंध है तो रोगों का उपचार कठिन नही रहेगा. डॉ. डैलगेडो ने तो यहाँ तक कहा है कि यदि कोई बालक पाँच वर्ष की उम्र से पहले दोनों नेत्रों का उपयोग नही सीख जाता तो वह दोनों नेत्रों का उपयोग जीवन भर नहीं सीख पायेगा. इसी प्रकार यह भी संभावित है कि एक विशेष उम्र में ही मस्तिष्क सामाजिक भावनाओं को ग्रहण करने की क्षमता रखता होगा. यदि यह संभावना सच निकलती है तो फिर जानना चाहिये कि वह कौन-सी उम्र है. दूसरे चिकित्सकों ने डॉ. डैलगेडो के सुझावों को अभी मान्यता नही दी है. उन का मत है कि विद्युदग्रों का निरोपण मानसिक बीमारियों में एक सीमा तक लाभ पहुँचा सकता है. किंतु मस्तिष्क से संबंधित सभी बीमारियों मे उन से लाभान्वित नहीं हुआ जा सकता. फिर विद्युदग्रों से दूसरी व्याधियाँ उत्पन्न हो सकती हैं. उन के कारण रक्त-स्राव भी हो सकता है और वे संक्रामक रोगों को खुला निमंत्रण भी दे सकते हैं. एक बार उन का निरोपण हो जाने पर शरीर में उन की सही स्थिति कठिनाई से जानी जा सकती है और यह भी आशंका व्यक्त की गयी है कि वे मस्तिष्क को क्षति भी पहुँचा सकते है. जो हो, यह तो निश्चित है कि चिकित्सक चाहे शल्य-क्रिया करें, विद्युदग्रों का निरोपण करें या औषधियाँ दें मस्तिष्क संबंधी रोगों के निराकरण का नवीन युग प्रारंभ हो चुका है और आने वाली पीढ़ियाँ मस्तिष्क की सारी अस्पष्ट और गूढ़ बीमारियों का सही ज्ञान प्राप्त कर के ही रहेंगी.

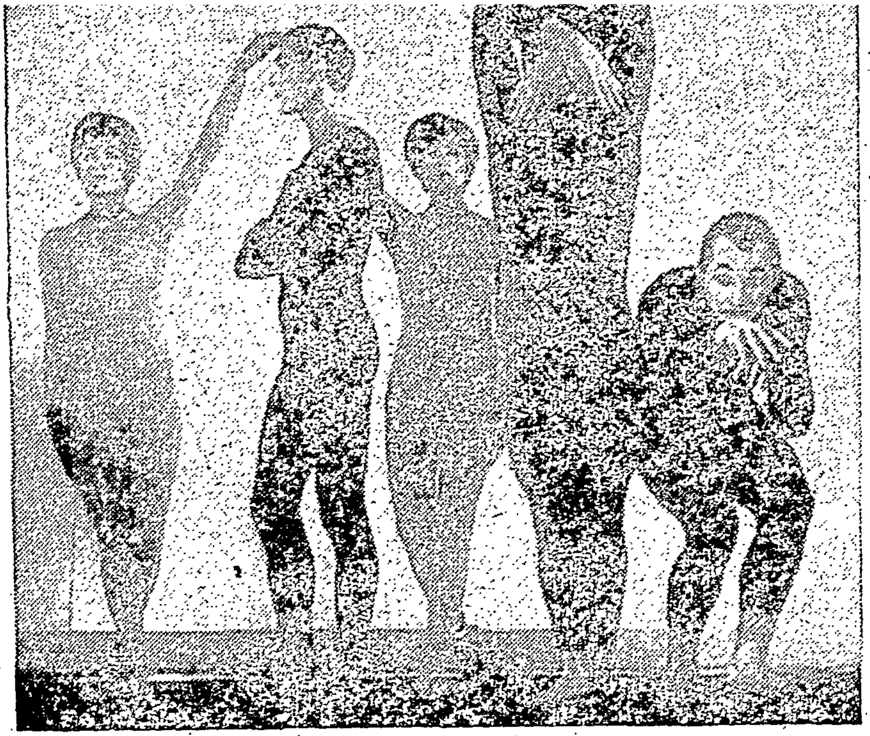

स्वांग

भाषा और भड़ैती के बीच

लादिस्लाव फ़ियालका का काम उन के आदर्श मार्सेल मार्स्यू से बहुत अलग है. हालांकि यह भी सच है कि फ़ियालका का सर्वश्रेष्ठ काम वही है जो मार्सेल मार्स्यू ने उस से भी अच्छा कर दिखाया है. चित्र में सब से दायें वह मार्स्यू के 'जीवन' अभिनय-वृत्त की पुनस्सृष्टि कर रहे हैं. चित्र उन की किसी प्रयोजना का नहीं है, उन की मंडली के एक संपुजन का है परंतु यह वृत्त उन्होंने दिल्ली के अमाशिकस भवन में दिखाया था. वह अपने संपूर्ण शरीर का इस्तेमाल करते हैं. दर्शक को लगता है शायद आत्मा का भी कर रहे हैं और जीवन के जाने हुए काल-खंड—शिशुत्व, यौवन, जरा, मरण—परस्पर इस तरलता से तिरोहित होते जाते हैं कि फ़ियालका का शरीर कालातीत हो जाता है और दर्शक का मन भी.

इन की मंडली के दूसरे काम अपेक्षया अधिक सांसारिक हैं और अधिक क्षणभंगुर मानवीय तनावों के खेल हैं—इसी लिए वे अधिक रोचक भी हैं. 'सर्कस' में जब विदूषक सब सर्कसियों को उस रस्सी से खींचता लाता है जो नहीं है तो दृश्य केवल माइम की अत्यंत प्रवीणता ही नहीं दिखाता, वह बिना रस्सी के खिंचे चले जाने का व्यंग्य भी दिखाता है. 'यात्री' में मानवीय अनुभव, संसार की दृष्टि से कई दर्जा औरनीचे की कोटि का भरी बैलगाड़ी के एक ऐसे मुसाफ़िर का है जिस की हाजत रफ़ा नहीं हो पा रही है—पर उस की यंत्रणा और फ़ियालका ने स्वयं इसे किया है—दर्शक के लिए समस्त मानव-जीवन की असहायता की अनुभूति बन जाती है.

शायद भाषा की अनुपस्थिति फ़ियालका के—या किसी के भी—माइम की सफलता का सब से बड़ा कारण है. 'यात्री' ने अपनी व्यथा शब्दों में कही और वह हँसी का सामान बनी, जो *अभीष्ट नहीं है...परंतु फ़ियालका* से कम कुशल व्यक्ति के हाथ में भाषा का स्थान भड़ैती भी ले सकती है. माइम की अक्सर भारतीय नृत्य की मुद्राओं से तुलना की गयी है. पर दोनों में समानता सतही है, भेद गहरा है. मुद्राएँ प्रतीक हैं. माइम शुद्ध अभिनय है और १९६१ में मार्सेल मार्स्यू के दिल्ली आगमन पर शिक्षा-मंत्रालय उन के साथ गुरु गोपीनाथ (कथकली) को मंच पर उतार कर इन दोनों का अंतर न समझने की भोंडी भूल कर चुका है.

यूरोप के कई देशों में पैंटोमाइम की प्राचीन परंपरा है, परंतु वह लुप्त होती जा रही है. सौभाग्य से उस का पुनरुत्थान और आधुनिकी-करण हुआ है चेकोस्लोवाकिया में, जब कि इस क्षेत्र में स्वयं इस देश की अपनी कोई प्राचीन परंपरा नहीं है.

चेकोस्लोवाकिया में इस कला के पुनरुत्थान के साथ लादिस्लाव फ़ियालका का नाम जुड़ा हुआ है. फ़ियालका ने प्राग की संगीत-नाटक अकादेमी में शिक्षा प्राप्त करते हुए ही इस कला को पुनर्जीवित करने का निश्चय कर लिया था और अपने कई साथी छात्रों को इस के लिए तैयार कर लिया था. अंततः १९५८ में उन्होंने बालुस्ट्रेड थियेटर की स्थापना की, जिस ने केवल पेंटोमाइम कला तक ही अपने को सीमित रखा.

गत दस वर्षों में इस थियेटर ने न केवल चेकोस्लोवाकिया में बल्कि दुनिया के अन्य देशों में भी कला-प्रदर्शनों द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त की. अब यह पहली बार भारत आया है. इस को भारत-चेकोस्लोवाक सांस्कृतिक संधि के अनुसार भारत सरकार ने निमंत्रित किया था. नयी दिल्ली में दिसंबर में इस के तीन प्रदर्शन हुए और उस के बाद उस ने मद्रास और बंबई की यात्रा की.

किताबें

अधूरी लड़ाई

नया उपन्यास लिखना बहुत कठिन है. केवल भाषा और शिल्प में नयेपन के लिए लड़-कर भी यह कार्य पूरा नहीं हो सकता. लड़ाई अधूरी ही रहेगी. संवेदना के स्तर पर अपने साथ-साथ अपने पात्रों को, जो इस रूढ़िग्रस्त समाज के अंग हैं, ऊपर उठा लेना कठिन काम है. इस में कभी लेखक फिसलता है कभी उस के पात्र और कुल मिला कर उपन्यास कहीं का नहीं रहता. आधुनिक उपन्यास लिखने के लिए दूर जाने की ज़रूरत नहीं है. वर्तमान समाज के अंतर्मन और बहिर्मन के यथार्थ-अंकन से यह काम पूरा हो सकता है, लेकिन इस ओर नये उपन्यास-लेखक खुल कर नहीं आ रहे हैं.

कवयित्री ***नीलमसिंह*** *का प्रथम उपन्यास* **सीलन** नये आधुनिक विचार और पुरानी रूढ़िग्रस्त भावुकता का अद्भुत मिश्रण है. नायक 'वह' और नायिका नीता दोनों अति भावुक हैं. स्वीकार-अस्वीकार, समर्पण और विद्रोह सब के मूल में तटस्थ विवेक नहीं, अंधी भावुकता है. उन के माध्यम से लेखिका अनेक नये विचारों और नयी दृष्टियों का ताना-बाना बुनने का प्रयास करती है. पर सूत्र उस के हाथ से फिसल जाते हैं. पूरा उपन्यास कुछ सुंदर सूक्तियों का संग्रहमात्र रह जाता है, पुराने पात्र नयी दृष्टि ग्रहण नहीं कर पाते, अपने को उस के योग्य सिद्ध नहीं करते.

प्रथम उपन्यास में लेखिका से यह नाज़ुक संतुलन निभा लेने की आशा करना शायद उचित नहीं है. लेकिन यह आशा इस उपन्यास में लेखिका की सामर्थ्य देख कर ही जगती है. उपन्यास की भाषा समर्थ है और बीच-बीच में अनेक स्थलों से लेखिका की आधुनिक दृष्टि और विचारों की खरी पहचान मिलती है. लगता है विचारशीलता के इसी आग्रह ने कहानी को खींच कर उपन्यास का कलेवर देने को बाध्य किया है. उपन्यास में एक पढ़े-लिखे वकील पेशा विधुर नायक के दिल-दिमाग़ में झाँकने का प्रयत्न है और उस के भाव और विचार-प्रक्रिया के चित्रण द्वारा ही उपन्यास को आगे बढ़ाया गया है. इस कठिन शैली का निर्वाह संतोषजनक है, पर फिसलन भी कम नहीं है. अच्छा होता यदि उपन्यास नायिका के भावों और विचारों के चित्रण की प्रक्रिया से लिखा गया होता. तब नायिका का साहस और विद्रोह (जो नायक के पास सब कुछ छोड़ कर चली जाती है) अधिक अर्थवान होता और शायद नारी-मन का अधिक सूक्ष्म चित्रण भी मिलता. उपन्यास में पुरुष और नारी के आदिम मन का सुंदर चित्रण है. केवल इस के लिए ही यह उपन्यास पढ़ा जा सकता है.

सीलन: नीलम सिंह, पारपथ प्रकाशन, दिल्ली-७. मूल्य साढ़े चार रुपये.

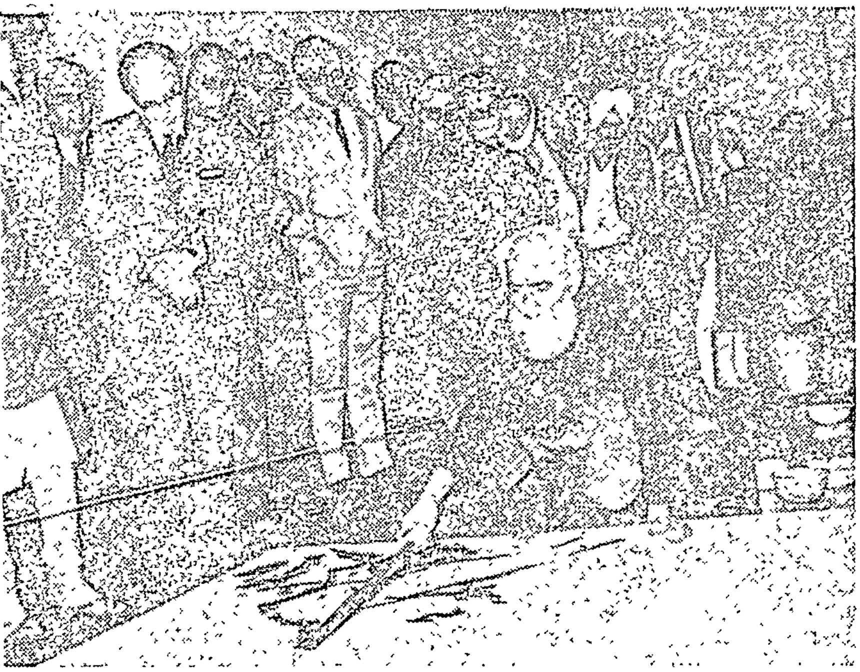

जितनी आँखें उतने रूप

कला

प्रदर्शनी में चित्रों की प्रतीक्षा

एक ऐसी प्रदर्शनी जिस में प्रतीक्षा है बनते हुए चित्रों की. नयी दिल्ली की श्रीधरानी कला-दीर्घा में पिछले दिनों **मक़बूल फ़िदा हुसेन** ने अपनी प्रदर्शनी की शुरुआत पूर्ण चित्रों से न कर के कुछ खाली कैनवास रख कर की. ६ दिनों तक शाम ६ से ८ के बीच वह इन कैनवासों पर चित्र-रचना करते रहे. इस चित्र-रचना को आशु कविता की तरह आशु चित्र की संज्ञा दी जा सकती है. अंतर केवल यही है कि आशु कविता का युग खत्म हो गया है, आशु चित्र का शायद शुरू होने वाला है. इस प्रदर्शनी-प्रयोग के पीछे बात प्रेक्षकों को—सामान्य प्रेक्षकों को—चित्र-रचना की प्रक्रिया से परिचित कराने की थी. जिन प्रेक्षकों ने यह प्रदर्शनी देखी उन का अलग-अलग अनुभव क्या रहा, यह तो शायद न जाना जा सके. यह अनुमान जरूर लगाया जा सकता है कि प्रदर्शनी अपने उद्देश्य में बहुत सफल नहीं रही. हुसेन के काम शुरू करते ही फ़ोटोग्राफ़रों, टी वी कैमरामैनों के 'घेराव' के कारण दृश्य बहुत कुछ फ़िल्म की शूटिंग का-सा हो जाता था और इन के बीच चित्रकार की तन्मयता कितनी भंग होती थी, यह तो अलग बात है; प्रेक्षक की दृष्टि जरूर चित्रों मात्र पर नहीं ठहर पाती थी.

हुसेन के चित्रों में जो गतिमयता है वह उन के काम करने के ढंग में भी मिली. लेकिन शायद उन के काम करने के ढंग की तेजी का ही यह प्रभाव था कि प्रेक्षक रचना-प्रक्रिया की बारीकियों को पकड़ नहीं पाता था. एक चित्रकार को, नाम परिचित चित्रकार को काम करते हुए देखने की बात तक तो इस प्रदर्शनी का सुख हो सकता था, लेकिन उस की रचना-प्रक्रिया को समझाने का कोई आश्वासन यह प्रदर्शनी नहीं देती थी.

काले के बीच सफ़ेद और फिर सफ़ेद पर उभरवाँ नील—रंगों का परिवर्तन तो प्रेक्षक की दृष्टि में उभरता था, लेकिन रूपाकारों और तूलिका-स्पर्शों का पीछा करना उस के लिए मुश्किल हो जाता था.

काम करने के लिए हुसेन ने छोटे-बड़े ६ कैनवास चुने थे और वह एक साथ दो या अधिक चित्रों पर भी काम करते रहे. प्रायः प्रत्येक चित्र का रंग-चयन भिन्न था.

कुछ लोगों का यह भी अनुभव रहा कि अगर हुसेन गली-नुक्कड़ों पर इस तरह से काम करें तो वह आम आदमी या आम प्रेक्षक को भी चित्रों के निकट ला सकते हैं. कला-दीर्घाओं में तो प्रायः वही प्रेक्षक पहुँचते हैं जो चित्र की रचना-प्रक्रिया से थोड़ा-बहुत परिचित होते हैं. यों हुसेन इतने लोगों की उपस्थिति में और फ़्लैश बल्बों की चकाचौंध में भी अपना ध्यान चित्रों तक ही केंद्रित रखते रहे. नियत समय पर चित्र रचना का यह प्रयोग बहुत समझ में नहीं आया. नगरों-महानगरों के चित्रकार तो एक प्रकार से लोगों और नगर-आवाजों में घिरे रह कर भी काम करते हैं—लेकिन नियत समय की रचना का बंधन शायद ही कोई स्वीकार करना चाहे. स्टूडियो में रोज़ काम करने के प्रयत्न का नियम तो शायद संभव है, लेकिन इस प्रदर्शनी की नियमबद्धता की 'रचना' को रचना कितना कहेंगे यह निश्चित रूप से विवाद और संदेह का विषय है.

अमूर्त्त की सज्जा-कृतियाँ

सूरज सदन कुछ वर्ष पूर्व तक केवल आकृतिमूलक काम करना पसंद करते थे. पिछले दिनों **त्रिवेणी कला संगम** में प्रदर्शित उन के चित्रों से न केवल आकृतियाँ बिल्कुल ग़ायब थीं किसी दूसरे रूप में भी उन की उपस्थिति नहीं थी. कुछ दिनों तक पेरिस में रह कर व पश्चिम के अन्य कई नगरों की कला-कृतियाँ देख कर वह निश्चित रूप से प्रभावित हुए मालूम पड़ते हैं. इस प्रभाव को तो बुरा नहीं कहेंगे, लेकिन उन के अमूर्त्त चित्रों के पीछे अपना कोई रचनात्मक आग्रह नहीं झलकता. कुछ गोलाकार, कुछ चतुष्कोण प्रायः काली रेखाओं की डोरी से एक दूसरे में उलझा दिये गये हैं—इन रूपाकारों में भिन्न रंगों को एक-दूसरे के सामने ला खड़ा किया गया है, जो अक्सर अपने चयन में प्रभावी

चित्र-संख्या-१४ : सूरज सदन

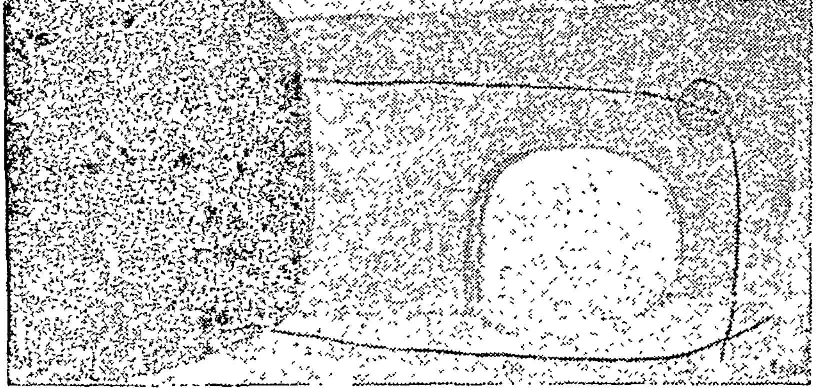

नहीं हैं और एक रंग-तड़कमड़क की सृष्टि ही करते हैं. छोटे-बड़े रूपाकारों के कुछ गझिन चित्रों में वे ज़रूर रंग-रूपाकारों के माध्यम से कुछ प्रकृति-बिंबों को उजागर करते हैं. उन के कैनवास लघु हैं. जिन्हें बड़े कैनवासों की पृष्ठभूमि में प्रदर्शित किया गया था. चाँद, रिकॉर्ड जैसे गोलाकार और गोल पूजा-पत्थरों की तरह के रूपाकार ज़रूर आकर्षक बन पड़े हैं और उन की रंग-छायाएँ अनायास ही मन में कुछ चित्र बनाती हैं.

लेकिन सज्जा-कृतियों की ओर प्रवृत्त उन के अमूर्त्त चित्र कुल मिला कर उन्हें बिंब व वातावरणरहित बनाते हैं—मनःस्थितियाँ उन्हें अपने से जोड़ नहीं पातीं. उन के इन चित्रों को देख कर यह लगा कि चित्र-रचना की कुशलता तो उन के पास है, रचनात्मक अनगढ़ता इन्हें अभी मिलनी है.

परिचित मुहावरे

एन. एन. राय (लखनऊ) के कैनवास इधर अभिव्यक्ति की कुछ खास ज़रूरतों से आकार में 'लघु' हो गये हैं. दैनिक जीवन के साधारण अनुभवों को एकत्रित कर के एक 'नया मूड' बनाने के लिए छोटे कैनवास पर रंगों, चीज़ों

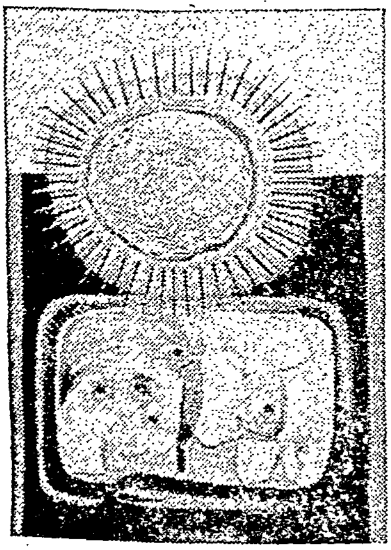

मणिहारा : एन० एन० राय

(माचिस की तीलियाँ, ताश के पत्ते, पन्नी वगैरह) को कोलाज से मिलताजुलता रूप देना निश्चित ही पेचीदा तथा पच्चीकारी के निकट है. यह अलग बात है कि राय के इन चित्रों के विषय 'रचना' की कोई बड़ी ज़रूरत न हो कर कला-परिचित मुहावरे हैं.

मोटे तौर पर एन. एन. राय की चित्रकला अभी तक 'व्यक्तिगत' रही है. लगता है वह इन दिनों कैनवास को परिचित संसार के निकट ले जा कर सार्वजनिक बना देना चाहते हैं. संक्षेप में उन्हें मोहक कहा जा सकता है. राजस्थानी और राजपूत कथा-शैली को आत्मसात करते हुए राय का विश्वास परंपरा को स्वाभाविक विकास देने में है, लेकिन इस तथ्य को ध्यान में रख कर कि ये लघुचित्र संग्रहालयों के लिए नहीं, आत्मसुख के लिए उन की रचना-प्रक्रिया का विशिष्ट अंग बन रहे हैं.

मूक कलाकार : बोलते चित्र

ओरल स्कूल फ़ॉर डेफ़ चिल्ड्रन, कलकत्ता के बहरे बाल कलाकारों की चित्र तथा हस्तशिल्प-प्रदर्शनी से गुज़रने के बाद एहसासे-बेहतरी के लोग भी एहसासे-कमतरी के शिकार हो सकते हैं. चित्रों की बोलती रेखाओं और सशक्त रंग-योजना को देख कर इस सच्चाई को स्वीकार करने में दिक़्क़त होती है कि ये कृतियाँ ३ से १२ साल के बच्चों की हैं. इसी स्कूल के तीन बच्चे **दिनाज़ एडेनवाला, अली हुसेन** और **कविता पीपलिया**, 'कॉमनवेल्थ सोसायटी फ़ॉर द डेफ़' द्वारा लंदन में आयोजित अंतरराष्ट्रीय बधिर बाल कला-प्रदर्शनी में पुरस्कृत किये जा चुके हैं. दिनाज़ एडेनवाला ने तो ८-१२ वर्ष के आयु-समूह में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया.

क्रिसमस पर आयोजित इस प्रदर्शनी में चित्र, क्रिसमस कार्ड और विभिन्न आकार-प्रकार के रंगबिरंगे हस्तशिल्प प्रदर्शित थे, जिन में **सरिता सेठ, सोना गांगुली, अली हुसेन, फ़ुक च्यांग, अरुणाभ मित्रा** और **दीपा गुप्ता** की कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं. पाँच साल के अरुणाभ ने रंगों का चुनाव और संयोजन प्रौढ़ कलाकारों जैसा किया है. प्रदर्शित चित्रों से एक बात विशेष रूप से उभर कर सामने आती है और वह यह कि बच्चों में कल्पनाशीलता का प्राचुर्य है, जिस के कारण उन के चित्रों में रंग तथा रेखाएँ बोलती-सी लगती हैं. जैसा कि स्कूल की संस्थापिका और प्रिंसिपल **श्रीमती एडेनवाला** ने दिनमान के प्रतिनिधि को बताया प्रदर्शनी में रखे गये नब्बे प्रतिशत चित्र बच्चों की स्वतंत्र कल्पना के परिणाम थे. चित्रांकन की पद्धति यह रही कि उन्हें कुछ दृश्य दो-दो चार-चार बार दिखाये गये और फिर देखे हुए को तूलिका एवं रंगों की सहायता से कागज़ पर उतार देने के लिए कहा गया. ऐसे दृश्यांकनों में हुगली का ज्वार-भाटा विशेष है. वही दृश्य एक ही समय तथा एक साथ बच्चों ने उसे देखा. लेकिन अभिव्यक्ति सब की अलग ढंग की, एक वैयक्तिक स्पर्श लिये हुए. स्कूल की खिड़की से दिखाई देने वाले दृश्य का अंकन उन की कल्पनाशीलता का दूसरा प्रमाण था, जिन में रंगों की अपेक्षा रेखाएँ अधिक महत्त्वपूर्ण हैं. ईसा के जन्म को विषय बना कर कई बच्चों ने प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत किये हैं. दया और ममता के इस मसीहा का अवतरण चित्रित करने के लिए जिस गंभीर एवं प्रशांत रंग-योजना की आवश्यकता थी उस का उपयोग इन बाल कलाकारों ने पूरे अधिकार के साथ किया है. दुर्गा-पूजा की छुट्टियों के बाद स्कूल खुला, तो बच्चे विभिन्न पंडालों में देखी हुई भगवती दुर्गा की मूर्त्तियों और विसर्जन-यात्रा के दृश्यों को अंकित करने के लिए आतुर दिखाई पड़े और जो चित्र उन्होंने बनाये उन में रंग तथा रेखाओं के सशक्त प्रयोग के साथ उन की कुतूहल-वृत्ति अधिक मुखर हुई है.

प्रदर्शनी के साथ ही साथ बच्चों ने एक छोटा-सा नाटक 'सिंड्रेला' भी मंचस्थ किया, जिस की विशेषता, श्रीमती एडेनवाला के अनुसार, यह थी कि इस के निर्देशन में स्कूल की अध्यापिकाओं का योगदान नहीं के बराबर था. उन्होंने केवल रूप-सज्जा और वेश-भूषा में बच्चों की सहायता की थी. बाकी सब-कुछ बच्चों का अपना था और फिर भी अद्भुत.

इस स्कूल की स्थापना जुलाई १९६४ में हुई थी. फ़िलहाल इस में १८ छात्र हैं और छात्रों की भर्त्ती इस लिए नहीं की जा रही है कि उन की शिक्षा के लिए उचित व्यवस्था कर पाना सहज नहीं है. सामान्यतया प्रतिछात्र एक सौ रुपये महीने का औसत ख़र्च स्कूल को वहन करना पड़ता है और इतनी बड़ी राशि भारत जैसे ग़रीब देश के बच्चे फ़ीस के रूप में नहीं दे सकते. फलतः अनुदानों एवं आर्थिक सहायताओं पर ही स्कूल को अवलंबित रहना पड़ता है, जिन की प्राप्ति की भी एक सीमा है.

कला का सट्टा बाज़ार

कला के क्षेत्र में बढ़ती व्यावसायिकता ने इतना ज़ोर मारा है कि कला और व्यापार में अंतर करना कई बार मुश्किल लगता है. लंदन की ब्रूटोन स्ट्रीट में 'लंदन फ़ाइन आर्ट एक्स्चेंज' नाम की एक दुकान खुली है, जो खुल्लमखुल्ला अपने को कला के सट्टा बाज़ार की जगह बताती है. बताती ही नहीं बाक़ायदा कला-कृतियों का सट्टा बाज़ार करती है. अपने द्वारा ही बेची गयी कला-कृतियों को साल या तीन साल बाद कुछ अधिक प्रतिशत लाभ दे कर ख़रीदने जैसी कितनी ही लुभावनी शर्तें उस ने रखी हैं. कला-बाज़ार की तेज़ी-मंदी के अनुरूप सौदेबाज़ी तो ख़ैर होगी ही.

ऑस्कर वाइल्ड की एक प्रसिद्ध उक्ति है कि 'लोग हर चीज़ की क़ीमत तो जानते हैं, लेकिन मूल्य किसी चीज़ का नहीं.' लगता है कि ऐसा कला-व्यापार करने वालों की स्थिति भी बहुत-कुछ ऐसी है, या ऐसी होने वाली है. कला-कृतियों व कला की क़ीमत बढ़े और कला-व्यवसाय भी बढ़े, तो इस में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? लेकिन वह कला-व्यापारियों द्वारा किये जाने वाले उतार-चढ़ाव का शिकार हो, ऐसा कला-प्रेमी कम से कम नहीं चाहेंगे.

प्रसून

ब्रितानी संग्रहालय का भार

ब्रितानी संग्रहालय के पुस्तकालय में काम करने वालों की शिकायत है कि 'हमारा संग्रह बस फटने ही वाला है...' इस पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या गिनना अब संभव नहीं रहा, बल्कि किताबें रखने के ताकों की लंबाई नापी जाती है. मुख्य पुस्तकालय, जहाँ सिर्फ़ छपी हुई किताबें ही रहती हैं, अब लगभग अस्सी मील जगह घेरे हुए है और हर वर्ष स लंबाई में एक मील और जोड़ी जाती है. संग्रहालय के विस्तार और पुनर्गठन पर विचार-विमर्श तो पिछले २० वर्षों से चल रहा है. पर इस समय इस की आशा कम ही नज़र आ रही है, क्योंकि व्हाइट हॉल का इस को दूसरे किसी स्थान पर ले जाने के सुझाव का विरोध संग्रहालय के कार्यकर्त्ता, छात्र और लेखक कर रहे हैं, जिन का इस पुस्तकालय से रोज़मर्रा का संबंध है और जो इस में उपलब्ध दुर्लभ सामग्री से ज्ञान प्राप्त करने के लिए दूर-दूर से आते हैं.

ब्रिटेन में कोई राष्ट्रीय पुस्तकालय नहीं है, बल्कि संग्रहालय के एक विभाग में किताबें और पांडुलिपियां जमा हैं. संग्रहालय के सचिव बेंटले ब्रिजवॉटर ने कहा कि इस का कारण ऐच्छिक नहीं है, बल्कि खुद-ब-खुद ही ऐसा हो गया है. संग्रहालय का विचार सब से पहले १८वीं शताब्दी के धनी और सफल चिकित्सक सर हैंस स्लोआन को आया, जिन्होने अपनी सारी उम्र प्राचीन वस्तुएँ, प्राकृतिक इतिहास के नमूने, किताबें और पांडुलिपियाँ जमा करने में बितायी और अपने घर को उन्होने संग्रहालय में बदल दिया. वसीयतनामे में, मृत्यु के बाद, वह अपना सारा संग्रह राष्ट्र के नाम पर कर गये. ब्रितानी संसद् ने १७३५ में एक विधेयक के द्वारा उन का सारा संग्रह सरकार को सौंप दिया. साथ ही कई और प्रसिद्ध निजी संग्रह भी उस के हाथ लगे. तब से पुस्तकालय के आकार में बड़ी तेज़ी से वृद्धि हुई है. १९११ के विधेयक के अनुसार ब्रितानी साम्राज्य में जो कुछ भी छपता है उस की एक प्रति ब्रितानी संग्रहालय को निश्चित ही भेजी जाती है. इस से विद्वानों और छात्रों को हर पुस्तक उपलब्ध रहती है. पर छपी हुई किताबों के अलावा भी कई दुर्लभ सामग्रियाँ इस संग्रहालय की संपत्ति हैं. इन प्रदर्शित वस्तुओं में मैग्ना कार्टा भी शामिल है, जिस से ब्रिटेन में मुक्ति की नींव पड़ी थी. इस से भी अधिक रोचक बीते दिन के स्वर हैं, जिन में नेलसन का ट्रफ़ेलगर में युद्ध का आदेश, एंटार्टिक की वर्फ़ों के बीच मौत का सामना करते हुए कप्तान स्कॉट के संस्मरण भी शामिल हैं. प्राच्य विभाग में छपाई का पहला नमूना देखने को मिलता है, जो ९वीं शताब्दी के एक चीनी लेखन-पट्टी के रूप में है. एक विशेष कमरे में दुर्लभ छपी पुस्तकें प्रदर्शित हैं, जिन में १९५६ में छपी बाइबल की प्रति और शेक्सपिअर के नाटकों का पहला संस्करण है.

पुस्तकालय में सब से प्रसिद्ध उस का अध्ययन-कक्ष है, जिस का इस्तेमाल ब्रिटेन के प्रत्येक प्रमुख लेखक ने कभी-न-कभी किया है. टॉमस कार्लाइल तो नियमित रूप से यहाँ आते थे और बर्नार्ड शॉ ने यहाँ की सेवा से संतुष्ट हो कर अपनी संपत्ति से आने वाले ब्याज का एक-तिहाई इस संग्रहालय के नाम कर दिया है. इंग्लैंड के विश्वविद्यालयों में पढ़ाने वालों में से लगभग सब ही वर्ष का कुछ हिस्सा इसी पाठागार में बिताते हैं. इसी लिए जो भी आगंतुक यहाँ आयेगा वह यही महसूस करेगा कि महानों के स्थान पर वह पहुँच गया है.

भविष्यवाणी

कोलोन, जर्मनी के एक विशेषज्ञ आर्थर बुखहोल्ज़ का कहना है कि इस शताब्दी के अंत तक संसार में हर पाँच व्यक्तियों में से एक वैज्ञानिक होगा. उस समय लगभग सभी वैज्ञानिक रचनाएँ अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा की जायेंगी, किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं. वह सामूहिक अनुसंधान का युग होगा.

शिक्षा, आयोजना और नीतिशास्त्र को भी उस युग में बहुत महत्व दिया जायेगा और मानवीय या धार्मिक भावनाओं की विशेष क़द्र नहीं की जायेगी.

जिन तथ्यों पर यह अनुमान आधारित हैं उन के अनुसार १६६५ और १८०० के बीच वैज्ञानिक प्रकाशनों की संख्या दस गुना और १६६५ और १९०० के बीच हज़ार गुना हो गयी है. १९५० में १५,००० वैज्ञानिक थे, जब कि १९६६ में इन की संख्या दो लाख हो गयी. उन्नत देशों में विज्ञान के विकास पर खर्च निरंतर बढ़ रहा है.

श्री बुखहोल्ज़ के अनुसार सन् २००० तक मनुष्य प्रतिवर्ष पृथ्वी के २० टन साधनों का उपभोग करेगा, जिन में धातु, रसायन और मिश्रण भी शामिल होंगें. इस समय यह मात्रा केवल ८ टन है.

मीनार में नगर

निरंतर बढ़ती हुई आबादी के लिए रहने का स्थान जुटाने की समस्या के कई समाधान सुझाये गये हैं, जिन में से सब से हाल का सुझाव जर्मनी से आया है. वहाँ की एक प्रदर्शनी में एक मीनार का नमूना पेश किया गया, जिस में २५,००० व्यक्तियों के रहने का बंदोबस्त किया जा सकता है. इस मीनार की कुल ऊँचाई ११४ किलोमीटर होगी और इस में ३५६ मंज़िलें होंगी. हर मंज़िल पर २५ मकान होंगे.

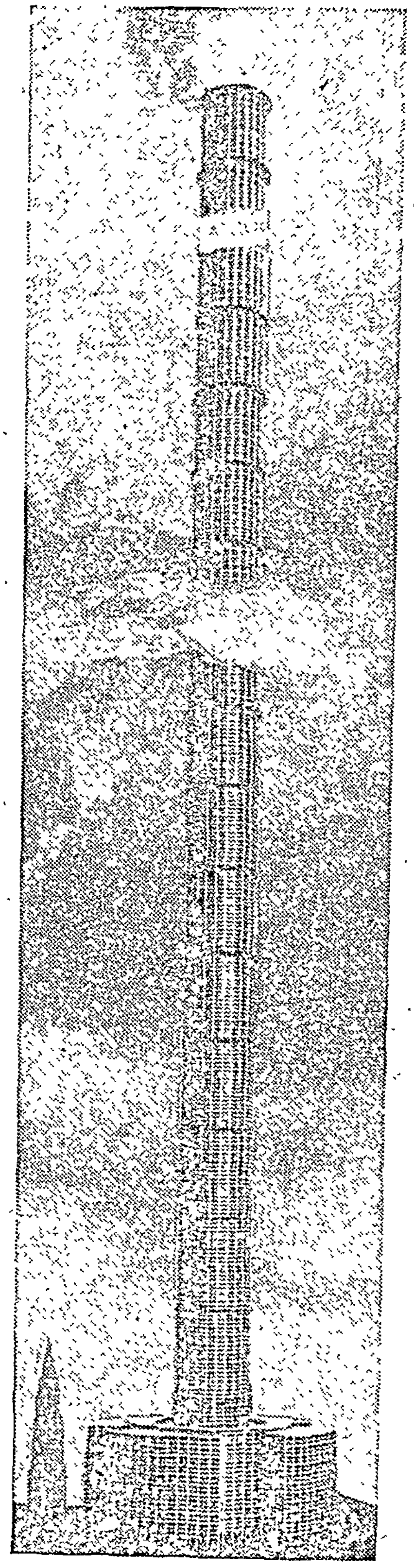

वी.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

संगीत और नृत्य की पुस्तकें

बाल संगीत शिक्षा तीनों भाग रु. ३.००, हाई स्कूल संगीत शास्त्र रु.२.००, गांधर्व संगीत प्रवेशिका रु. ३.५०, संगीत विशारद रु. ६.००, संगीत सागर रु. ७.००, रवीन्द्र संगीत रु. ३.५०, वेला विज्ञान रु. ४.००, सितार शिक्षा रु. ४.००, सूर संगीत दोनों भाग रु. ४.००, भारतीय संगीत का इतिहास रु. ५.००, ठुमरी गायकी रु. ३.५०, राग कोष रु. १.२५, सहगल संगीत रु. ३.००, ताल अंक रु. ५.००, मधुर चीजें रु. २.५०, सन्त संगीत अंक रु. ३.५०, राष्ट्रीय संगीत रु. ३.५०, वाद्य संगीत अंक रु. ३.५०, लोक संगीत अंक रु. ४.००, गजल अंक रु. ४.००, तराना अंक रु. ५.००, कथक नृत्य रु. ८.००, गिटार मास्टर रु. २.००, बैन्जो मास्टर रु. २.००, म्यूजिक मास्टर रु.२.५०, आवाज सुरीली कैसे करें रु. ३.५०, संगीत निबन्धावली रु. २.५०, पाश्चात्य संगीत शिक्षा रु. ७.००, संगीत मासिक रु. १०.००, फिल्म-संगीत त्रैमासिक रु. १०.०० (पत्रों का मूल्य जनवरी से दिसम्बर तक है)।

प्रकाशक : संगीत कार्यालय (१५) हाथरस (उ. प्र.)

किस्तों पर ट्रांजिस्टर

सर्वत्र विख्यात "एस्कोर्ट" ३ बैंड आल वर्ल्ड पोर्टेबल ट्रांजिस्टर, मूल्य १६५ रुपये मासिक किस्त रुपये १०) भारत के प्रत्येक गांव और शहर में भेजा जा सकता है। लिखें:—

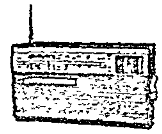

जापान एजेंसीज (D.W.N.D.—10)
पोस्ट बाक्स ११९४, दिल्ली–६

मुफ्त उपहार

३ महीने तक स्त्रियों का सौन्दर्य काश्मीरी और बंगलोरी आर्ट सिल्क की साड़ियों में खिलता है। आधुनिक डिजाइनों और रंगों में नया माल आ गया है। केवल हमारे यहां ही प्राप्य है। एक डीलक्स साड़ी १२) दो साड़ियां २३) तीन साड़ियां ३३) चार साड़ियां ४०) दो या अधिक साड़ियों के आर्डर पर ब्लाउजपीस मुफ्त। आर्डर पोस्ट पार्सल से भेजे जायेंगे।

ATLAS CO (D.W.N. D.-25)
P.O Box 1329, DELHI-6

विद्युत एवं रेडियो

अभियन्त्रण पाठ्यक्रम

विद्युत अभियन्त्रण, रेडियो मरम्मत, एसेम्बलिंग, विद्युत सुपरवाइजरी, वायरिंग आदि (८०० चित्र) रु० १२.५० वी. पी. डाक व्यय २/- सुलेखा बुक डिपो (ह) अलीगढ़

नवभारत टाइम्स

हिन्दी दैनिक

बम्बई और दिल्ली से प्रकाशित

"नवभारत टाइम्स" आधुनिक और अपटूडेट हिन्दी दैनिक समाचारपत्र है

और

इसके पाठकों की संख्या बहुत विस्तृत है।

दोनों ही संस्करणों में व्यावसायिक, स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारों के साथ-साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और आर्थिक विषयों पर विशेष सामग्री ही तो इसकी विशेषता है।

समाचारों की भाषा सरल है, और

सम्पादकीय अग्रलेख सन्तुलित और उच्च साहित्यिक स्तर के होते हैं।

पंजीयित संख्या डी० १५०१

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित.

दिनमान

टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन

संपूर्णानंद • चुनाव-राज्यों के दौरे • लंदन में हंगामा

जनवरी, १९६९
पौष, १८९०

धर्मयुग
गणतंत्र दिवस अंक
२६ जनवरी, १९६९

० पिछले आम चुनावों ने शासन तंत्र में एक अनिश्चय और अस्थायित्व का जो बीज वो दिया था उसी का परिणाम है मध्यावधि चुनाव. लेकिन इन चुनावों के पीछे की राजनीति क्या है, इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर धर्मयुग एक परिचर्चा आयोजित कर रहा है, गणतंत्र दिवस अंक के लिए विशेष रूप से. जिस में विचार प्रस्तुत कर रहे है **उपमंत्री सिद्धेश्वर प्रसाद** (कांग्रेस), स्वतंत्र दल के नेता तथा राजनीति के पितामह **राजगोपालाचारी**, सोशलिस्ट नेता **श्रीमती मणाल गोरे** तथा जनसंघ के नेता **श्री बच्छराज व्यास**.

० **जनता का मौलिक अधिकार और संसद का अधिकार क्षेत्र :** विषय संवैधानिक है और इस का सटीक विवेचन कर रहे हैं प्रख्यात विधि-शास्त्री **डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी.**

० **पुलिस और प्रदर्शनकारी :** देश मे प्रदर्शन भी होते रहेंगे और पुलिस अपना कर्त्तव्य भी निभायेगी ही : लेकिन दोनों के बीच स्वस्थ और सहानुभूतिपूर्ण रिश्ते क्या कभी संभव हो पायेंगे, इस संभावना पर विचार किया है **श्री रामनंदन तिवारी** ने

० बात आयी है कि राजभाषा के लिए उर्दू को क्यों नहीं सोचा जाता, लेकिन दिक्कतें क्या है, उस की सीमाएँ और उस की संभावनाएँ क्या है, एक विशेष विचारोत्तेजक लेख **अमृत राय** द्वारा

छात्र असंतोष : शिक्षा के क्षेत्र में एक ज्वलंत प्रश्न है छात्रों का व्यापक आंदोलन. धर्मयुग इस के कारणों पर गण्यमान्य विद्वानों के विचार प्रस्तुत करता रहा है. इस बार इस समस्या पर पुनर्विचार काशी हिंदू विश्वविद्यालय के **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** द्वारा : एक महत्त्वपूर्ण लेख इसी अंक के लिए

० **संन्यास, राष्ट्रीय भावना और अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व :** प्रवासी भारतीयों के लिए मारीशस मे मार्गदर्शन करनेवाले है स्वामी कृष्णानंद के कार्यो का परिचय **लल्लन प्रसाद व्यास** द्वारा : रंगीन चित्र के साथ.

० **गणतंत्र के १९ वें वर्ष की प्रगति का लेखा जोखा :** बैठे ठाले के अंतर्गत **शरद जोशी** की चुटीली कलम से आप को क्या अपेक्षित है, और कैसा, आप जानते नहीं क्या ?

० **चलते हुए घर :** गाडिया लोहार यानी गाड़ी पर पूरी की पूरी गृहस्थी : एक रोचक रिपोर्ताज **भीमसेन त्यागी** द्वारा, साथ में **हरिपाल त्यागी** के रेखांकन.

० खान-पान की चीजों में मिलावट और नकली दवाइयों का बड़े पैमाने पर निर्माण—दोनों ही देश के स्वास्थ्य के लिए घातक समस्याएँ है : दोनों के विभिन्न पहलुओं पर लेख क्रमश: **श्री रिषभदास रांका** तथा **चिरंजीलाल 'जोशी** द्वारा.

० **शिक्षा राज्य मंत्री भागवत झा आज़ाद से विशेष भेंट : क्रीड़ा जगत् और भारतीय शिक्षण संस्थाएं : रणवीर सिंह राठौर** द्वारा

० **हिंदुस्तानी फिल्में विदेशों में : कई खूबसूरत मुगालते :** फ़िल्म संसार के अंतर्गत **इंद्रसेन जोहर** शव-परीक्षा कर रहे है हिंदी फिल्मों की कि उन का बाहर क्या प्रभाव पड़ता है.

० **मेरी इच्छोगिल यात्रा : कामिनी कौशल :** भारत-पाक युद्ध के बाद के मार्मिक संस्मरण.

गांधी शताब्दी वर्ष में गांधी पुण्य तिथि के अवसर पर

- चित्रकार यामिनी राय द्वारा संग्रहणीय चित्र : गांधी जी तथा रवि बाबू, शांति निकेतन में
- गांधी जी की प्रतिमा लंदन में : डा. उर्मिला जैन का विवरण : रंगीन चित्र के साथ
- अमरीकी नीग्रो और गांधी : गांधी दर्शन के परिपार्श्व में रंगभेद की समस्या की मीमांसा अनंत गोपाल शेवडे द्वारा
- गांधी साहित्य : नये प्रकाशनो की समीक्षा किशन पटनायक द्वारा.

इसके अतिरिक्त :

- मोहन राकेश के नाटक : आधे-अधूरे' की अगली किस्त
- डा. हंसमुख धीरजलाल सांकलिया की प्रागैतिहासिक भारत की खोज' लेखमाला मे इस बार महाराष्ट्र के आदिकाल की खोज का विवरण, रंगीन चित्रों के साथ
- सुरेंद्र तिवारी, बनारसीदास चतुर्वेदी, नरेंद्र कोहली, देवेंद्र कुमार, मुद्राराक्षस, दिनकर सोनवलकर, भवानीप्रसाद मिश्र, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, डा. हरिकृष्ण देवसरे, आरसीप्रसाद सिंह आदि की रचनाएं.

और इस विशेषांक के लिए खास तौर पर तैयार किये गये अत्यंत भावपूर्ण मुखपृष्ठ तथा मध्यवर्ती पृष्ठ

तथा अन्य सभी स्थायी स्तंभ

अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करा लीजिए

२६ जनवरी
१९६९

धर्मयुग

मत और सम्मत

इनसानियत के लिए : पाकिस्तान के पत्रकारों, वकीलों, छात्रों और उन नेताओं के हाथों को बार-बार चूमना चाहता हूँ, जो लाठी, गोली खा कर भी इनसानी आज़ादी की लड़ाई लड़ रहे हैं. मगर ऐसे लोगों से आशा करना जो अय्यूब के शासन को दीर्घायु होने का शुभ संदेश रावलपिंडी भेजते हैं भारी भूल होगी कि वे भारत के भीतर स्वस्थ परंपराओं का उदय होने देंगे. अब तक भारत की जनतंत्री व्यवस्था में एक लाख चक्र से ऊपर गोलियाँ चल चुकी हैं निहत्थे किसानों, मज़दूरों और छात्रों पर और कोई चार हज़ार लोग इस के शिकार हो चुके हैं. क्या जनतंत्र में भी पलटनी शासन की तरह से ही अंधाधुंध गोली चलनी चाहिए ? जो जनतंत्री सरकार इस तरह गोली चला कर जीवित रहना चाहती है वही सरकार अपने मुल्क के बाहर पलटनी शासन को मज़बूत देखना चाहती है और उस के दीर्घायु की कामना करती है. अगर भारत की सरकार पलटनी व्यवस्था की समर्थक नहीं होती तो वह चेकोस्लोवाकिया का पक्ष राष्ट्रसंघ में प्रस्तुत करती और सोवियत रूस की निंदा करती. मगर भारत की सरकार का दिमाग़ तो जनतंत्री है नहीं. इसी लिए उसने चेकोस्लोवाकिया का साथ नहीं दिया. इस प्रकार दिल्ली के शासक आज पलटनी शासकों से भी ज़्यादा क्रूर बन चुके हैं, जो यह नहीं चाहते हैं कि जनतंत्र में कोई समूह अपनी उचित माँग के लिए मुँह खोले. पाकिस्तान में जो कुछ भी हो रहा है वह ज़माने की माँग है, परंतु भारत के भीतर जो हो रहा है वह ज़माने के खिलाफ़ है. हम १९४६ के उस हिंदुस्तान की तसवीर बनावें जिसे मुसलिम लीग और कांग्रेस ने गद्दी के लोभ में तोड़ा था. भारत-पाकिस्तान तभी जुड़ेंगे जब उभय देशों में स्वस्थ जनतंत्री सरकारें पैदा होंगी.

—गुंजेश्वरी प्रसाद, गोरखपुर

दिनमान : २२ दिसंबर : सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कच्छ के प्रश्न पर श्री मधु लिमये, श्री ढकोलिया एवं श्री पटेल की याचिका का निर्णय-स्थगन एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है. यह प्रश्न है हमारी राष्ट्रीय प्रभुसत्ता एवं देश की अखंडता का. श्री हिदायतुल्ला एवं श्री दफ़्तरी की बातचीत से भारतीय कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का इस प्रश्न पर एकमत न होना ही झलकता है. ऐसा लगता है कि भारत सरकार इतने गंभीर प्रश्न से बच निकलने के लिए भी शब्द-जाल का ही सहारा लेती है. भारत सरकार का यह कहना सर्वथा बेमानी है कि कच्छ का प्रश्न भूमि-स्थानांतरण का न हो कर सीमा-विवाद है, यानी जितनी ज़मीन पाकिस्तान को दी जा रही है वह भारतीय शासन के अंतर्गत नहीं है, जब कि अंतरराष्ट्रीय न्यायाधिकरण ने उक्त ज़मीन पर भारत का शासन स्वीकार किया है. श्री दफ़्तरी का यह कथन तो विचित्र-सा लगता है कि भारत सरकार को सीमा का ठीक-ठीक पता नहीं था. आज़ादी के २० वर्ष बाद भी अगर हमारे देश की सीमा हमें न मालूम हो तो ऐसी स्थिति अत्यंत खतरनाक है. खैर, उक्त भू-खंड के स्थानांतरण का प्रश्न संविधान के संशोधन से संबद्ध है या नहीं, यह तो न्यायविद् ही जानेंगे. देखें उच्च न्यायालय का निर्णय क्या होता है.

—अरुणकुमार गौड़, मुज़फ़्फ़रपुर

ठेकेदार : लगता है कि भारत के सभी पार्टियों के नेता, भारतवासी नहीं—राहु, केतु, शनि और मंगल ग्रह के निवासी हैं. नवल धवल पोशाक में भारत और भारतवासियों के विनाश के लिए इस धरती पर अवतरित हु हैं. उदाहरण के लिए कांग्रेस का नाम लिया जा सकता है, कि जिसने देश की धरती को बिना दाम बेचने का जैसे ठेका लिया है. पहले बंगाल, असम, पंजाब और सिंध को बेचा, फिर कश्मीर की बारी आयी, बाद में नेफ़ा और लद्दाख़ का हज़ार मील बिका, कल कच्छ का रण बिका और कच्छादीव की बाज़ी भी लग चुकी है. फ़रक्का के बहाने गंगा का भी मोल-तोल हो रहा है. कुछ ही दिनों में न भारत रहेगा न भारतवासी.

'—परशुराम मिश्र, मुंगेर

दिनमान ८-१२-६८ में पृष्ठ संख्या ८ पर मेरे विषय में 'असंतोष का अजगर (२) मिलताजुलता रूप संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी,' शीर्षक में यह छपा था कि 'इतिहास में एम. ए. एक व्यक्ति को पुराण इतिहास विभाग का अध्यक्ष बनाया गया है, जो पूर्णत: असत्य है. इस का खंडन निम्न है :

मैं मारबुर्ग विश्वविद्यालय, पश्चिम जर्मनी में ३ वर्ष तक पुराण के प्रोफ़ेसर पद पर कार्य करने के पश्चात् संस्कृत विश्वविद्यालय में पुराणेतिहास का अध्यक्ष नियुक्त किया गया हूँ. मेरी योग्यता निम्न है : बी. ए. (ऑनर्स) संस्कृत के साथ—प्रथम श्रेणी १९४९, एम. ए. (संस्कृत) प्रथम श्रेणी १९५१ (पुराण विषय के साथ) तथा डॉक्टर ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी १९६२ में 'पद्मपुराण का एक अध्ययन' विषय पर उपाधि प्राप्त किया है. मैंने काव्यतीर्थ, व्याकरण-तीर्थ, वेद-तीर्थ, पुराण-तीर्थ, एवं धर्मशास्त्र-तीर्थ (सभी प्रथम श्रेणी) में उत्तीर्ण किया है तथा ३ भाषाओं—संस्कृत, अंग्रेज़ी तथा जर्मन में पुराण विषय में तीन ग्रंथों की रचना भी की है.

—अशोक शास्त्री, वाराणसी

बाधक : हम नहीं चाहते कि विकास की 'अखिल भारतीय दृष्टि के नाम पर हिंदी की अपनी अस्मिता खो जाये. यह हिंदी के प्रति अन्याय होगा. असल में यही दृष्टि हिंदी के विकास में बाधक बनी हुई है, क्यों कि इस से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अंग्रेज़ी का स्थान हिंदी को लेना है. यह ग़लत है और हिंदी विरोध को बढ़ावा देना है. इस का नतीजा यह होगा कि राष्ट्रभाषा हिंदी 'परायी' लगने लगेगी और एक जनभाषा के रूप में नहीं, मात्र एक अफ़सरी भाषा के रूप में परिणत होगी.

—त. माची रेड्डी, कडपा (आ० प्र०)

महत्त्वपूर्ण प्रश्न : यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि हमारी सेनाएँ आवश्यकता पड़ने पर चीन को रोक सकेंगी या नहीं, संभवत: चीन कभी आक्रमण नहीं करेगा और यदि करेगा और हमारी सेनाएँ नहीं रोक सकेंगी तब हमारे हारने के बहुत से ऐसे कारण मिल जायेंगे जो हमारी 'पूरी तैयारी' के बावजूद हमारे हाथ से बाहर थे. महत्त्वपूर्ण यह प्रश्न है कि क्यों चीन हमारे से बहुत पिछड़ी हुई अवस्था से आरंभ कर के भी आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टि से हमारे से इतना आगे है—जब कि हमें संसार भर से ऋण और दान मिल रहा है और चीन ने दोनों प्रकार के दानों और दाताओं को भगा दिया है ? यह मूल प्रश्न है, जिसे कोई नहीं पूछता और जिस का कोई उत्तर मंत्रियों के पास नहीं है. इन राजनीतिज्ञों ने हमारे देश को भी आज इस हीन स्थिति में ला पटका है. हमारा देश आज रोटी, विज्ञान या दर्शन सब में भिखमंगा है—हमें अमेरिकी या रूसी

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

यदि मैं चुन लिया गया तो मैं वचन देता हूँ कि ऐसे मंत्रालय की स्थापना करूँगा जो केवल लोगों के हितों की देखभाल का काम करेगा.

प्रश्न चर्चा–५२

राष्ट्रभाषा-समर्थकों के लिए विशेष

अंग्रेज़ी हटा कर हिंदी को सरकार के काम-काज का माध्यम बनाने के आश्वासन हिंदीभाषी प्रदेश के सत्ताधारी नेता हर वर्ष देते रहे है, परंतु अंग्रेज़ी हट नही रही है. हिंदी केवल उस की अनुवादी बन कर आ रही है.

सरकार से अंग्रेजी को पूर्णत: हटाने के लिए आप कितनी मोहलत भावी मुख्य-मंत्रियो को देना चाहेंगे ?

तर्क-सहित उत्तर पर ५०) पुरस्कार (शब्द-सीमा ३००). उत्तर २ फ़रवरी ६९ तक **दिनमान**, बहादुर शाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली-१ के पते पर आ जाना चाहिए. पुरस्कार की घोषणा १६ फ़रवरी के **दिनमान** में की जायेगी.

अन्न चाहिए, हमें उन से मशीनें या मशीन बनाने और चलाने वाले चाहिएँ. है कोई चीन से हमारी तुलना ? मेरी नक्सलाइटों से कोई सहानुभूति नही है, जिन के हाथों मे वे खेल रहे है. उन का उन से या देश से कोई सरोकार नही है. किंतु तब भी वे एक आदर्श से तो परिचालित हैं ही. वे उस के लिए त्याग और तपस्या भी करते हैं. उन्हें सही आदर्श मिलने की जरूरत है. किंतु उन का क्या किया जाये जिन्होंने आदर्शो को ताक पर रख दिया है, जो देश को अपनी लोलुपता के लिए गर्त में डाल रहे है ?

—यशदेव शल्य, जयपुर

चुनाव-यात्रा : श्रीमती इंदिरा गांधी की बिहार चुनाव-यात्रा स्पष्टत: दो बातों को प्रकट करती है. पहली भारत मे किसी भी प्रांत मे कांग्रेस के सिवा दूसरी पार्टी की सरकार उन्हे रुचती-पचती नही है; दूसरी वह मान बैठी हैं कि कांग्रेस के सिवा अन्य दल मे अच्छा व्यक्ति है ही नही, क्यों कि कभी तो वह योग्य व्यक्ति को मत देने को कहती है और फिर कहती हैं कि कांग्रेस को 'वोट' दो. ऐसा लगता है कि प्रधानमंत्री के पवित्र पद-प्राप्ति के बाद भी वह जनमानस को दल के दलदल से ऊपर की सार्वभौम दृष्टि नही देखने का संकल्प ले बैठी है.

—'विश्वेश्वर' बख्शी, मुंगेर

प्रार्थना : राजस्थान के बच्चे अकाल मे काल-कवलित होने के पहले भारत के प्रधानमंत्री और गृहमंत्री से प्रार्थना करते हैं—'हे भारत की ममतामयी प्रधानमंत्री ! आप के वात्सल्य-पूर्ण आँचल के एक भाग—राजस्थान में—सैकडों बच्चे अन्न-जल एवं पोषक तत्वों के अभाव मे दम तोडते जा रहे हैं. आप का माता-हृदय इन अभागे बच्चों के लिए क्यों सोचता है? हे भारत के जननायक गृहमंत्री ! केवल कुछ दल-बदलुओं के कारण बंगाल से पंजाब तक मध्यावधि चुनाव में करोडो रुपये, सरकारी और निजी संपत्ति फूंका जा रहा है. क्या इस का अंश मात्र ही सही, राजस्थान की जनता के पिपासित एवं क्षुधित हृदय को शांत नही कर पाता ? कहीं लाखों भूखें मरें और कहीं खोखले लोकतंत्र के नाम पर लाखों नही करोडों फूंके जायें, कहाँ तक उचित है ? यहाँ की राजनैतिक पार्टियाँ तो मानवता के लिए नही, राष्ट्रीयता के लि[illegible] भी नही, वोट के लिए मदद के नाम पर धोखा देती हैं.

—मनोहरप्रसाद वर्मा,
भीमनारायण सिंह
फ़लची, हज़ारी बाग

ललित कला महाविद्यालय (दिल्ली) : १० नवंबर : आलेख भ्रामक हो गया है. वास्तविकता यह है कि महाविद्यालय के छात्र वर्षो से जिन अधिकारों और सुविधाओं के लिए लड़ते रहे हैं वे अब सुनी जाने लगी हैं और दिल्ली प्रशासन के कान पर भी जूँ रेंगने लगी है. इस तथाकथित 'क्लब' को डिप्लोमा मान्यता मिल गयी है और प्राध्यापक अब अध्यापन मे अधिक दिलचस्पी लेने लगे हैं. स्टेशनरी के नाम पर ली जानेवाली फ़ीस ३५ रुपये से घट कर ८ रु० रह गयी है. पहले तीन वर्षो मे सैद्धांतिक और अंतिम दो वर्षो मे 'सेल्फ़-स्टाइल वर्क' पर ज़ोर दिया जाने लगा है.

—आर्ट स्टूडेंट्स एसोसिएशन की कार्यकारिणी के सदस्य, दिल्ली

सलाह : राजगोपालाचारी की यह सलाह कि कश्मीर पर दस वर्षों तक अमेरिका, ब्रिटेन तथा रूस का संयुक्त शासन हो और इस शासन की समाप्ति के पश्चात् जनमत-संग्रह हो सर्वथा अप्रत्याशित और तर्कहीन है. क्या इस का स्पष्ट अर्थ यह नही कि भारत के अंतिम गवर्नर जनरल और भारतीय देश-भक्तों में अग्रगण्य राजगोपालाचारी कश्मीर को भारत का अभिन्न और अविभाज्य अंग नहीं मानते? फिर उन में और शेख साहब मे अंतर ही क्या?

—परमानंद, दरभंगा

मुझे भय है कि यदि राजाजी के सोचने की दिशा मे किंचित परिवर्तन न हुआ तो वह कही अगले वक्तव्य मे कश्मीर समस्या के स्थायी समाधान के लिए कश्मीर को तीन भागो में विभाजित कर उसे संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन तथा रूस को दे डालने का सुझाव प्रस्तुत न कर दें. इस प्रकार के भौंडे समाधान प्रस्तुत करने से कश्मीर, जो भारत का अखंड और अविभाज्य अंग है; पर हमारा पक्ष निर्बल होगा तथा यह समस्या, जो देश के दुर्भाग्य से उलझ गयी है और उलझती जायेगी.

—किरण चतुर्वेदी, वाराणसी

पिछले सप्ताह

(२ जनवरी से ८ जनवरी, १९६९ तक)

देश

२ जनवरी : ईरान के शहंशाह आर्यमेहर और शाहबानू का दिल्ली पहुँचने पर भव्य स्वागत. रामसरनचंद मित्तल हरयाणा प्रदेश कांग्रेस समिति के नये अध्यक्ष निर्वाचित. मध्यप्रदेश मंत्रिमंडल के मंत्रियों के विभागों मे परिवर्तन.

३ जनवरी : विलासी चीज़ों पर तस्करी रोकने के लिए चुंगी अधिनियम मे संशोधन. श्रीमती इंदिरा गांधी का पंजाब का चुनाव-दौरा.

४ जनवरी : ईरान के शहंशाह द्वारा एशिया की सुरक्षा के लिए भारत-पाक मित्रता को आवश्यक बताना. उत्तरप्रदेश के अध्यापकों के वेतनमानों के बारे में समझौता.

५ जनवरी : नागरकोइल संसदीय उप-चुनाव में तनाव कम करने के लिए सशस्त्र पुलिस तैनात.

६ जनवरी : उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा गिरफ़्तार अध्यापकों की रिहाई के आदेश.

७ जनवरी : १९ सितंबर की सरकारी कर्मचारियों की हडताल के बारे में केंद्र सरकार द्वारा कुछ रियायतों की घोषणा.

८ जनवरी : नागरकोइल संसदीय उप-चुनाव शांतिपूर्वक संपन्न.

विदेश

२ जनवरी : इस्राइली विमानों की युर्दान के गाँवों पर बमबारी.

३ जनवरी : ब्रिटेन द्वारा युर्दान को प्रक्षेपास्त्र बेचने का फ़ैसला.

४ जनवरी : पश्चिम एशिया समस्या सुलझाने के लिए संयुक्त राष्ट्र महासचिव ऊ थाँ द्वारा चार बड़े राष्ट्रों के शिखर-सम्मेलन का समर्थन.

५ जनवरी : लंदन के निकट एक अफ़ग़ान वायुयान के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने से अनेक भारतीय नागरिक दुर्घटना के शिकार. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का राष्ट्रकुल सम्मेलन मे भाग लेने के लिए लंदन आगमन.

६ जनवरी : राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन की कार्यसूची पर सहमति. लेबनान सरकार का त्यागपत्र.

७ जनवरी : फ़्रांस द्वारा इस्राइल को हथियार भेजना बंद. राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों का १७वाँ सम्मेलन लंदन में शुरू.

८ जनवरी : वेस्ट इंडीज़ और ऑस्ट्रेलिया के तीसरे क्रिकेट टेस्ट मैच में ऑस्ट्रेलिया १० विकेट से विजयी.

पत्रकार संसद

भारत-ईरान मैत्री : राष्ट्रकुल सम्मेलन

ईरान के शाह मोहम्मद रजा शाह पहलवी शहंशाह आर्यमेहर और मलिका फ़राह की भारत यात्रा दोनों देशों के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण है. १२ साल बाद भारत की १२ दिनों की यात्रा से भारत और ईरान के पुश्तैनी संबंधों में सुधार होगा, इस में रत्ती भर भी संदेह नहीं है. इस अवसर पर तेहरान के सभी प्रमुख पत्रों ने यह आशा व्यक्त की कि कुछ समय पहले इन दोनों देशों में जो मनमुटाव की दरार पड़ गयी थी वह अब पट जायेगी. तेहरान के एक महत्त्वपूर्ण पत्र **तेहरान जर्नल** में 'उत्तेजना के समय का दौर' शीर्षक के अंतर्गत यह लिखा गया :

कुछ समय पहले दोनों देशों में थोड़ा मतभेद और मनमुटाव हो गया था परंतु इन दोनों देशों का एक ऐसा ऐतिहासिक गठबंधन है कि इस छोटी-सी दरार से उस में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ सकता. परस्पर सहयोग के अन्य क्षेत्रों की चर्चा करते हुए इस में कहा गया कि मद्रास के तेलशोधक कारखाना, एस्फाहन मिल के लिए तकनीकी प्रशिक्षण और भारत-ईरान के प्रस्तावित पेट्रोल रासायनिक कारखाने के अतिरिक्त और भी विकास के कुछ ऐसे कार्यक्रम हैं जिन में दोनों देशों के समान हित जुड़े हुए हैं.

एक दूसरे अखबार **काइहान इंटरनेशनल** ने अपने संपादकीय में लिखा है :

ईरान के शाह का भारत का यह दौरा बहुत ही अर्थपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण है. भारत और ईरान की दो परियोजनाएं—मद्रास का तेलशोधक कारखाना और ईरान का इमिनोको तेल कारखाना—इन दोनों देशों के संयुक्त प्रयास का ही फल है. इस के अतिरिक्त शहंशाह अपने इस दौरे में और भी कई महत्त्वपूर्ण योजनाओं पर विचार-विमर्श करेंगे. भारत में बने भारी उद्योगों के साज-सामान की ईरान में काफ़ी खपत की गुंजाइश है. ईरान के औद्योगिक विकास में भारत के गैर-सरकारी क्षेत्रों की भी काफ़ी दिलचस्पी हो सकती है. दूसरी तरफ़ ईरान को अपने पेट्रोल रासायनिक के लिए भारत में अच्छा बाजार मिल सकता है. भारत और ईरान का यह रिश्ता केवल आर्थिक और औद्योगिक ही नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक भी है. दोनों देशों की विदेश-नीति में भी काफ़ी समानता है और जो मतभेद हैं वे भी कोई ज्यादा पेचीदे नहीं हैं.

फ़ारसी के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पत्रों ने अपने संपादकीय लेखों में कहा कि भारत एशिया का एक महत्त्वपूर्ण देश है—केवल जनसंख्या की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि इस लिए भी कि द्वितीय महायुद्ध और उस के बाद भारत ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है. सभी पत्रों ने एक मत और एक स्वर हो कर यह आशा व्यक्त की कि शहंशाह की इस यात्रा से भारत और ईरान सभी क्षेत्रों—राजनैतिक, आर्थिक, व्यापार-वाणिज्य और सांस्कृतिक—में एक-दूसरे के और निकट आयेंगे. ईरान रेडियो ने भी भारत-ईरान संबंधों पर विशेष कार्यक्रम प्रसारित किये.

राष्ट्रकुल सम्मेलन

राष्ट्रकुल के महत्त्व और उस की उपयोगिता को ले कर पिछले दिनों काफ़ी हो-हल्ला हुआ. भारत-राष्ट्रकुल संबंधों पर भी काफ़ी चर्चा की गयी. राष्ट्रकुल के महत्त्व और उस की महत्त्वहीनता को ले कर लंदन के **ऑब्ज़र्वर** ने अपने संपादकीय में लिखा :

लंदन में हो रहे राष्ट्रकुल सम्मेलन में जिन दो विषयों पर मुख्यतः चर्चा की जायेगी वे हैं रोडेसिया का प्रश्न और ब्रिटेन की आव्रजन-नीति. इस के अतिरिक्त इस सम्मेलन में यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि राष्ट्रकुल का भविष्य क्या हो.

राष्ट्रकुल के अफ़्रीकी और एशियाई सदस्यों के मन-मस्तिष्क में यही दोनों प्रश्न घूम रहे हैं. उन का यह भी कहना है कि रोडेसिया और आव्रजन-नीति पर ब्रिटेन की नीयत साफ़ नहीं है, तब ऐसे राष्ट्रकुल सम्मेलन का क्या महत्त्व रह जाता जब उस का प्रतिनिधि सदस्य ही अपने सिद्धांतों की कसौटी पर खरा न उतरे. यह एक कटु सत्य है कि रोडेसिया के मामले में ब्रिटेन अपने दायित्वों या कि अपने वादों का पालन नहीं कर रहा है. इस का कारण भले कुछ भी रहा हो. आव्रजकों (आप्रवासियों) पर लगाये गये प्रतिबंधों पर भी इंग्लैंड वाले एकमत नहीं हैं. लेकिन इस सब से कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता. इंग्लैंड यदि कुछ मामलों में कमजोर हो गया है तो इस का यह अर्थ कदापि नहीं कि राष्ट्रकुल कमजोर, अर्थहीन या महत्त्वहीन हो गया है. इंग्लैंड यदि अपने-आप को इस से अलग भी कर ले तो भी भारत, केन्या, साइप्रस, कैनाडा, मलयेसिया और ऑस्ट्रेलिया आदि देश इस मंच पर अपने कई राजनैतिक विवादों को सुलझा सकते हैं.

प्रेस जगत

चेक तथ्य और रूखा सत्य

चेकोस्लोवाकिया के विरुद्ध अपनी शर्मनाक फ़ौजी कार्यवाही को सही ठहराने के लिए सोवियत संघ की ओर से एक पुस्तक प्रकाशित की गयी थी, जिस का अब सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद सुलभ है. शीर्षक है "चेकोस्लोवाकिया की घटनाएं". अच्छे कागज़ पर १६० पृष्ठों और १६ चित्र-पृष्ठों की यह पुस्तक केवल आठ आने में दी जा रही है. स्पष्ट ही आठ आना केवल पुस्तक-विक्रेता का कमीशन है; प्रकाशन-व्यय सोवियत सरकार ने ही उठाया है. यों भी इसे बेचा कम जा रहा है, अधिकतर मुफ़्त बांटा जा रहा है.

उप-शीर्षक में दावा किया गया है कि पुस्तक में "तथ्य, दस्तावेज़, समाचारपत्रों की रिपोर्ट और आंखों देखा हाल" संकलित हैं. लेकिन इस के संकलन और निष्कर्षों की जिम्मेदारी न तो सोवियत सरकार ने ली है और न सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने. इस को "सोवियत पत्रकारों की एक टोली द्वारा प्रस्तुत" बताया गया है और उन पत्रकारों के नाम भी गुप्त रखना ठीक समझा गया है.

मुख्य रूप से यह पुस्तक कम्युनिस्टों को प्रभावित करने के लिए तैयार की गयी है और इस लिए यह स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है कि चेकोस्लोवाकिया में समाजवाद को उखाड़ने की तैयारी हो रही थी. प्रतिक्रांतिकारी कम्युनिस्ट विरोधी वातावरण पैदा कर रहे थे. पश्चिम से हथियार और आर्थिक सहायता पा रहे थे. उन्होंने अखबार और रेडियो हथिया लिये थे और अगर वारसा संधि की फ़ौजें न पहुंचती तो चेकोस्लोवाकिया समाजवादी खेमे से बाहर हो जाता.

एक "तथ्य" देखिए. चेकोस्लोवाक युवक संघ के मुखपत्र म्लादा फ्रोंता में कहा गया :

रूसी पुस्तक में यह चित्र चेक युवजन के हिटलर प्रभावित होने के प्रमाणरूप छापा गया है, जब कि चेक जनता इस में आक्रामक क्रेमलिन के तारे और हिटलर के स्वास्तिक का समन्वय देखती है.

"हम चेकोस्लोवाकिया में कम्युनिस्ट पार्टी की तमाम गतिविधियों पर प्रतिबंध लगा देंगे और उसे भंग कर देंगे... हम कम्युनिस्ट सिद्धान्तकारों—मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन की किताबों को आग की भेंट करेंगे.. . . ," (पृ. ५३)

युवक संघ के दैनिक ने ऐसा लिखा तो सचमुच जघन्य अपराध किया. किन्तु वस्तु स्थिति कुछ और ही थी. चेकोस्लोवाक संसद के प्रधान श्री स्मटकोवस्की ने एक वक्तव्य दिया, जिस में समाजवाद-विरोधी तत्त्वों की निंदा की गयी थी और जनता को उन से सावधान रहने का आवाहन किया गया था. समाजवाद-विरोधी तत्त्वों की कारगुज़ारियों की मिसाल के तौर पर एक पर्चे का हवाला दिया गया था, जिस में "किताबों को आग की भेंट" करने की घोषणा की गयी थी. स्पष्ट ही अगर किसी बात की निंदा छापी जा रही है तो पाठकों को यह बताना होगा कि निंदनीय तथ्य क्या है. व्लादा फ्रांता ने यही किया और रूसी तथ्य-संग्रहकर्त्ता को मौक़ा मिल गया.

यह अकेला उदाहरण नहीं है. तथ्य-संग्रह के लिए यही विधि सभी जगह अपनायी गयी है. चेकोस्लोवाक लेखकों, अर्थशास्त्रियों, पत्रकारों आदि ने जहाँ कहीं नोवोत्नी शासन की निंदा की और "परिवर्त्तन" की माँग की उन अंशों में से कोई एक वाक्य-खंड उठा कर विस्तृत उद्धरण कहीं नहीं दिया गया—उन को समाजवाद-विरोधी और पूँजीवाद वापस लाने की माँग करने वाला ठहरा दिया गया.

क्यों कि जनवरी से अगस्त १९६८ तक के काल में चेकोस्लोवाकिया के अंदर वाद-विवाद और विचार-विनिमय की स्वतंत्रता थी इस लिए बहुत-सी ऐसी स्थापनाएँ सामने आयीं जिन को कम्युनिस्ट समाजवादी सिद्धान्ततः ग़लत समझते हैं. इन स्थापनाओं के विरोध में कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेताओं ने लेख भी लिखे. लेकिन रूसी तथ्य-संग्रहकर्त्ताओं के लिए अविकृत कम्युनिस्ट नेताओं के लेखों से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ व्यक्तियों के मत हैं, क्यों कि उन से उन्हें "प्रतिक्रांति" का अस्तित्व सिद्ध करने में सहायता मिलती है. इस का एक उदाहरण है चेकोस्लोवाकिया की विदेश-नीति संबंधी. किसी ने कहीं "तटस्थ" या "गुट-निरपेक्षपता" की बात कह दी तो रूसी पत्रकारों के लिए वह चेकोस्लोवाकिया की अविकृत राय बन गयी और सरकार तथा पार्टी के नेता समाजवादी खेमे में बने रहने की नीति घोषित करते रहे तो वह एक "भूल" बन गया.

इस तथ्य-संग्रह विधि को सही ठहराया गया है "खामोश प्रतिक्रांति" का सिद्धान्त बघार कर. इस सिद्धांत का लाभ यह है कि प्रतिक्रांति का साक्षात या प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं भी मिलने पर उस का होना किसी बाहरी "प्रमाण" से सिद्ध किया जा सकता है. उदाहरण के लिए अनाम सोवियत पत्रकारों ने पश्चिमी पत्र-पत्रिकाओं से बेशुमार उद्धरण जमा किये हैं और उन से सिद्ध किया है कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ चेकोस्लोवाकिया के अंदर प्रतिक्रांतिकारी दल संगठित करने के लिए पैसा और हथियार दे रहे थे. साम्राज्यवादी शक्तियाँ ऐसा किस राष्ट्र में नहीं करतीं—क्या स्वयं सोवियत संघ में नहीं और अगर सोवियत पत्रकार इस को देख-समझ सकते हैं तो क्या जासूसी तथा सुरक्षा-साधनों से लैस चेकोस्लोवाकिया सरकार इस से अनजान रह सकती थी?

चकोस्लोवाकिया में ४०,००० सशस्त्र प्रतिक्रांतिकारी थे, इस तथ्य को रूसी पत्रकारों ने २७ अगस्त के लंदन **संडे टाइम्स** की एक खबर से सिद्ध किया है. इस अखबार के प्रतिनिधि ने प्राग में सोवियत फ़ौजों और जासूसों के साये में (जो प्रतिक्रांतिकारियों पर नज़र रखने के लिए आये थे) किस प्रकार एक प्रतिक्रांतिकारी नेता से मुलाकात की, इस का रहस्य तो सोवियत नेता ही जानते होंगे. स्पष्ट यही होता है कि सनसनीखेज़ समाचारों के भूखे ब्रिटिश संवाददाता को अगर यह "मौक़ा" मिला तो रूसी अधिकारियों की साँठगाँठ से——रूसी अधिकारी ही ऐसा समाचार छपवाने में दिलचस्पी रखते थे, ताकि वे फ़ौजी हस्तक्षेप सही ठहरा सकें.

प्रतिक्रांतिकारियों को विदेशी हथियार मिलने के प्रमाणस्वरूप जुलाई १९६८ में एक जगह नाले के अंदर बीस सब-मशीनगनें और तीस पिस्तौलें तथा गोलियाँ प्राप्त होने का उदाहरण दिया गया है. इस पर चेकोस्लोवाक अधिकारियों की रिपोर्ट से उद्धरण दिया गया है, लेकिन इस में वह अंश छोड़ दिया गया है जिस में बताया गया था कि ये हथियार दूसरे विश्वयुद्ध के काल के थे. वस्तुतः इन हथियारों की सूचना किसी ने अपना नाम बताये बिना पुलिस को दी थी और यह शक़ किया जाता है कि प्रतिक्रांति के कथित उभार को नाटकीय रूप देने के लिए किन्हीं नोवोत्नी समर्थकों ने ये हथियार छिपा कर रखे थे और पुलिस को सूचना दी थी. ध्यान देने योग्य है कि प्राग के अखबारों को इस की अविकृत सूचना मिलने के पहले ही यह खबर मॉस्को के अखबारों में छप चुकी थी. इस लिए किसी सोवियत अधिकारी की साँठगाँठ के होने का भी संदेह किया जाता है.

यह भी बताया गया है कि सोवियत सेनाओं ने प्राग में कई सरकारी भवनों से और पत्रकार-भवन से (जिस में कुछ अंतरराष्ट्रीय संगठनों के कार्यालय भी हैं) हथियार बरामद किये, जो प्रतिक्रांतिकारियों के हथियार थे. लेकिन अब प्राग में यह सिद्ध किया जा चुका है कि ये हथियार इन इमारतों की रक्षा करने वाली जन-मिलीशिया के हथियार हैं और इस जन-मिलीशिया ने (जिस की प्रशंसा सोवियत पत्रकारों ने की है) उन को प्रतिक्रांतिकारियों के हथियार बताने के सोवियत प्रचार का प्रतिवाद किया है.

सोवियत पत्रकार क्रुद्ध हैं कि सोवियत मित्र सेनाओं के "प्रवेश के कुछ ही घंटे के भीतर पूरे चेकोस्लोवाकिया में एक दर्जन से अधिक गुप्त रेडियो स्टेशन प्रसारण का काम करने लगे थे. इस को भी एक प्रतिक्रांतिकारी संगठन का काम बताया गया है और एक जगह इन को पश्चिमी जर्मनी से चोरी से लाया बताया गया है. चेकोस्लोवाक सरकार ने हाल में इन रेडियो स्टेशनों के काम की सराहना की है. सच यह है कि अगर ये गुम रेडियो स्टेशन न होते तो प्राग रेडियो स्टेशन पर सोवियत अधिकार के बाद जनता से चेकोस्लोवाक सरकार के संबंध बने रहने का कोई साधन न होता और तब शायद जनता अनुशासित ढंग से शांत न रह पाती. ये गुप्त रेडियो केन्द्र शत्रु के हमले के समय इस्तेमाल करने के लिए स्थापित किये गये थे—दुर्भाग्य ही है कि उन को ऐसे देशों की कार्यवाही के विरुद्ध इस्तेमाल करना पड़ा जिन को चेकोस्लोवाक जनता अपना मित्र मानती थी.

सोवियत पत्रकारों के "आँखों देखे हाल" का हाल यह है कि पुस्तक के पृष्ठ १३१ पर प्रतिक्रांतिकारियों द्वारा जन-मिलीशिया के जिस चीफ़ के मारे जाने की चर्चा की गयी है उस को उस क्षेत्र की प्रशासन-परिषद ने जीवित पाया और सोवियत अधिकारियों के सामने पेश किया. इसी क्षेत्र में एक सोवियत हेलीकॉप्टर को मशीनगन से मार गिराये जाने और दो सोवियत पत्रकारों की मृत्यु की हृदय-विदारक घटना का ज़िक्र (पृ. १४२) किया गया है; लेकिन अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में क्षेत्रीय चेकोस्लोवाक अधिकारियों और सोवियत पक्ष की जाँच से सिद्ध हो गया है कि यह खबर बिलकुल मनगढ़न्त है. हेलिकॉप्टर दुर्घटना का शिकार हुआ स्वयं अपनी ही खराबी या चालक की ग़लती के कारण. इसी प्रकार बताया गया है कि प्रतिक्रांतिकारियों ने बच्चों को एक सोवियत टैंक के सामने लेट जाने के लिए भेजा और जब टैंक चालक ने बच्चों को बचाने का प्रयत्न किया तो टैंक उलट गया और पुल के नीचे नाले में गिर कर तबाह हो गया. यह घटना भी गढ़ी हुई पायी गयी. उस समय वहाँ कोई बच्चा न था; चालक की मूर्खता से पुल की एक मुंडेर तोड़ कर टैंक नाले में गिर गया. सोवियत अधिकारियों ने यह नहीं बताया कि २१ अगस्त के उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन भी चेकोस्लोवाक अस्पताल के डॉक्टरों ने उन मरणासन्न सोवियत सिपाहियों की चिकित्सा कर के अपना मानवतावादी कर्त्तव्य निभाया

इन थोड़े से उाहरणों से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि पुस्तक रत्ती भर भी विश्वसनीय नहीं है. सोवियत पत्रकारों की हेराफेरी की प्रतिमा अवश्य सिद्ध होती है.

चिराग तले अँधेरा

१९६९ का अवतरण अपेक्षया शांत वातावरण में हुआ. पिछले साल की तरह नव वर्ष की पूर्व संध्या का जशन मनाने वालों को कनॉट सर्कस में हुल्लड़बाज़ी मचाने का सुभीता नहीं था—रेस्तराओं के सामने और प्रमुख नाकों पर तैनात पुलिस संदेहास्पद व्यक्तियों की धर-पकड़ भी करती जा रही थी और जनसंघ प्रशासन ने ३१ दिसंबर को मंगलवार होने के नाते 'ड्राई' रहने दिया था.

बहुत कुछ इसी तरह का सयानापन महानगरी का बाह्य कलेवर सँवारने में दिखाया जा रहा है : पार्कों की हरियाली, सड़कों के किनारे की पटरियाँ, गमले लटका अथवा पौधे रोप कर मार्गों को नयनाभिराम बनाने का जतन, जगह-जगह सुंदर अक्षरों में अंकित नामपट्ट, गंदी बस्तियों का सफ़ाया—यह अभियान दूने जोश से चल रहा है. नागरिक सुविधाओं की बेहतरी की ओर भी तवज्जो है—जहाँ-तहाँ आंशिक सुधार अवश्य हुआ है. लेकिन 'दिल्ली स्वर्ग नहीं है, फिर भी बेहतर अवश्य हो गयी है' का दावा नारे की स्थिति से ज्यादा आगे नहीं बढ़ सका है. निकट भविष्य में वह एक सीमा से आगे बढ़ सकेगा, इस की संभावना धूमिल ही नज़र आती है : न यथेष्ट आर्थिक साधन ही नज़र आते हैं, न समन्वित प्रयास की संभावना ही.

दिन दूनी आबादी : राजधानी की समस्याएँ जटिल हैं : न केवल हर साल डेढ़ लाख की रफ़्तार से बढ़ती आबादी की सुख-सुविधा की व्यवस्था होती रहनी है बल्कि मौजूदा व्यवस्था को बेहतर बनाने की अजीर्ण समस्या भी पूर्ववत् मौजूद है. २५ साल के अर्से में दिल्ली की आबादी ६-७ गुना बढ़ गयी है और १९७४ तक वह ३७ लाख से बढ़ कर ५० लाख हो जायेगी. इस अयाचित स्थिति से निपटने के लिए किसी के पास स्पष्ट योजना नहीं है : महानगर परिषद् ने चौथे पंचवर्षीय आयोजन के लिए ४०० करोड़ रुपये जो तखमीना लगाया वह हवाई किला ही साबित हो रहा है, क्यों कि आयोजना आयोग १५५ करोड़ रु. से अधिक देने की स्थिति में नहीं है. (अब महानगर परिषद् ने २२५ करोड़ रुपया अनिवार्य बताया है). जो कुछ मिलेगा भी उस का अधिकतम उपयोग एक-दूसरे से ३ और ६ का नाता रखने वाले प्रशासन कैसे कर पायेंगे, समझ के बाहर है. एक सत्ता केंद्रोन्मुखी उप-राज्यपाल की है (क़ानून-व्यवस्था, सेवाएँ, भूमि-विकास), एक महानगर परिषद् की है (हस्तांतरित विषय—उद्योग, शिक्षा, सहकार आदि, वह भी वित्तीय और विधायन के नहीं). एक सत्ता नगर निगम की है, जो बिजली, पानी, परिवहन की स्वायत्त संस्थाओं, राजनैतिक अखाड़ियों और भ्रष्ट अमलों के बीच में बिखरी हुई है. एक ओर नयी दिल्ली नगरपालिका समिति (मुख्यत: केंद्र से मनोनीत) है, तो दिल्ली कैंट बोर्ड की भी अलग हस्ती है. फिर केंद्रीय मंत्रालयों का भी दखल कम नहीं रहता.

ज़िम्मेदारी : लगभग दो वर्ष से नगर निगम पर और महानगर परिषद् पर, जो अभी प्रयोग की अवस्था में ही है, जनसंघ का कब्ज़ा है. कांग्रेसियों का कहना है कि दिल्ली के दुख-दर्दों की सारी ज़िम्मेदारी जनसंघी नेताओं पर है, जब कि जनसंघ नेता विरासत में मिली खस्ता हालत का रोना रोते रहते हैं. जनसंघ का कथन अधिक ग़लत नहीं है, क्यों कि आज़ादी के बाद से पिछले आम चुनाव तक तो सारी दिल्ली का बोझा कांग्रेसी सँभाले हुए थे. यह उन की 'कार्यकुशलता' का ही परिणाम है कि उन्हें नगर निगम से बेआबरू हो कर निकलना पड़ा. बीच में विधानसभा का जो तोहफ़ा उन्हें मिला था उस को सँजो नहीं सके. कांग्रेसी कहते हैं कि तब भी साधनों का अभाव था और दिल्ली तेज़ी से बढ़ रही थी कि ज्यादा कुछ कर गुजरना मुश्किल था. अब यही तर्क किसी हद तक जनसंघ का भी कवच बन रहा है. ३० दिसंबर से ३ जनवरी तक महानगर परिषद् का शीतकालीन सत्र हुआ. पुराने सचिवालय के असेंबली हॉल में विट्ठलभाई पटेल की तसवीर को साक्षी बना कर महानगर परिषद् के सदस्यों ने दिल्ली की समस्याओं पर विचार किया. अधिवेशन में जो बहसें हुईं वे बहुत कुछ बेमानी थीं, क्यों कि ज्यादातर मसले नगर निगम के कार्यक्षेत्र से संबंधित थे. चौथे पंचवर्षीय आयोजन के बारे में बहस भी एक अर्थ में अधिक सार्थक नहीं थी, क्यों कि केंद्र शासित प्रदेश होने के नाते दिल्ली राज्य का कोई भी अपना समेकित कोश नहीं है और उसे इस क्षेत्र से उगाही गयी राशि में से हिस्सा नहीं मिलता. केंद्र-शासित प्रदेशों के लिए जो राशि निर्धारित की जाती है उसी का एक हिस्सा दिल्ली के नाम डाल दिया जाता है. यह पैसा भी एक मुश्त या एक जगह से नहीं मिलता, विभिन्न मंत्रालयों की मार्फ़त मिलता है और प्राय: ७-८ महीने बीत जाने पर चालू वर्ष की रक़म प्रशासन के हाथ लगती है. इस बीच कोई कटौती हो गयी तो उस से भी गये. दिनमान के प्रतिनिधि को मुख्य कार्यकारी पार्षद विजयकुमार मल्होत्रा ने बताया कि पिछले तीन वर्षों में केंद्र से ९३ करोड़ रुपये मिलने चाहिए थे, लेकिन मिले कुल ७३ करोड़.

न्यूनतम राशि : महानगर परिषद् में आयोजन पर बहस के बाद यह प्रस्ताव पारित हुआ कि (१) अगले पाँच वर्षों के लिए कम से कम २२५ करोड़ रुपये निर्धारित किये जायें; (२) दिल्ली प्रदेश में प्रस्तावित राशि से जितनी अधिक उगाही हो वह भी प्रशासन को मिले (३) जिस तरह अन्य राज्यों को केंद्र से आर्थिक साधन उपलब्ध होते हैं उसी तरह दिल्ली को भी हों. सत्ताधारी दल के इस प्रस्ताव के अलावा विपक्षी दल के प्रस्ताव का यह खंड भी स्वीकार कर लिया गया कि केंद्र सरकार के कर्ज़ों की अदायगी के लिए दिल्ली प्रशासन अपने साधन बढ़ाये. इस का सीधा मतलब होता है करों में वृद्धि की जाये. सत्ताधारी दल ने प्रतिपक्ष का यह सुझाव शायद इस लिए स्वीकार किया है कि जो भी कर उसे लगाने पड़ेंगे उस की ज़िम्मेदारी से कांग्रेस अपने को मुक्त न कह सके. प्रस्तावों पर बहस के दौरान मुख्य कार्यकारी पार्षद ने कहा कि दिल्ली की दो समस्याओं का विस्तार देखते हुए इस से कम राशि पूर्णतया अपर्याप्त होगी. इस नगर की समस्याओं पर राजधानी की हैसियत से विचार किया जाना चाहिए.

श्री मल्होत्रा ने आगे बताया कि नगालैंड को केंद्र से प्रतिव्यक्ति लगभग ७०० रुपया सालाना मिलता है और पांडिचेरी के लिए यह राशि ६०० रुपये से ऊपर बैठती है, लेकिन दिल्ली में यह राशि ३९० रुपये से अधिक नहीं. फिर सभी केंद्र-शासित प्रदेश घाटे में हैं, जब कि दिल्ली प्रशासन नहीं है.

दिल्ली के निवासियों की सब से बड़ी समस्या है : मकान, परिवहन, पानी, बिजली और स्वास्थ्य-सेवा. भूमि-विकास और भवन-निर्माण की ज़िम्मेदारी दिल्ली विकास अधिकरण की है, जो ६ वर्ष बाद अब जाग रहा है. पिछले साल इस अधिकरण ने १०,००० रिहायशी प्लॉट तथा ४ हज़ार औद्योगिक और व्यावसायिक प्लॉट और १४ हज़ार छोटे-बड़े फ़्लैट तैयार किये हैं. मास्टर प्लान के अनुसार अब तक इन की संख्या लाखों में होनी चाहिए थी. परिवहन की समस्या-अलंघ्य साबित हो रही है. महानगर परिषद् में दिये गये आँकड़ों के अनुसार इस वर्ष के आरंभ में ९६२ बसें चालू हालत में थीं (चलीं कुल ९५४). इस के अलावा कोई १६३ निजी मोटरें भी चल रही हैं. इतनी बसें कम हैं, लेकिन २२ साल में अभी तक परिवहन-नीति के नाम पर किसी के पास कोई खाका नहीं है. मुख्य कार्यकारी पार्षद ने अब सुझाया है कि नगर निगम की परिवहन समिति नगर निगम दिल्ली ट्रांसपोर्ट अथारिटी और दिल्ली प्रशासन के लोग मिल कर तय करें कि दिल्ली को इस समय कितनी बसों की आवश्यकता है और पाँच साल बाद कितनी बसों की दरकार होगी. श्री मल्होत्रा के विचार से इस समय कम से कम १,५०० बसें चालू हालत में होनी चाहिए, जिस से हर समय पर्याप्त बसें उपलब्ध रहें. 'दिल्ली परिवहन' की आर्थिक स्थिति हमेशा ही खस्ता रहती है, बावजूद इस के कि समय-समय पर किराये बढ़ते रहते हैं. इस का सब से बड़ा कारण बदइंतज़ामी और भ्रष्टाचार है.

जब जनसंघ सत्ता में आया तो सुना गया कि एक रुपये की जाली टिकटों की बिक्री और स्टोर से सामान ग़ायब होने के मामलों की छान-बीन हो रही है. नतीजे के बारे में जनता को कोई जानकारी नहीं है. बिना टिकट सफ़र करने वालों और उस में कंडक्टरों की साँठगाँठ से भी अधिकारीगण अपरिचित नहीं हैं. ऐसी हालत में दिल्ली परिवहन की वित्तीय स्थिति डाँवाडोल रहे और दिल्ली परिवहन केंद्र के कर्ज़ अदा न करे तब केंद्र सरकार नये कर्ज़ देने की उत्सुकता न दिखाये अथवा आमदनी बढ़ाने की शर्त रखे तो उस का दोष नहीं.

नगर निगम में भ्रष्टाचार के बारे में जनसंघ के एक नेता ने इस प्रतिनिधि से असलियत क़बूल की—'हम करें क्या ? जिधर हाथ डालो उधर गंदगी. कहाँ तक लोगों को मुअत्तल किया जाये... ज़्यादा करें तो सारा काम ही ठप्प हो जाये... दरअसल आवाँ का आवाँ ही बिगड़ा हुआ है. कुछ लोग तो लहर गिनने के भी पैसे ले लेते हैं.' कुछ शासकों की व्यावहारिक मजबूरियाँ हो सकती हैं और कुछ राजनैतिक भी.

नगर निगम की एक खूबी और है, जो पहले भी थी और अब भी है. स्थायी समिति में पेश होने के पहले बिजली, परिवहन और पानी की समितियों के बजट घाटे के होते हैं, लेकिन काग़ज़ी हेरा-फेरी के बाद 'संतुलित' कर दिये जाते हैं. बिजली समिति ने घाटा पूरा करने के लिए बिजली की दरों में एक और दो पैसे प्रति यूनिट वृद्धि करने का फ़ैसला किया है, लेकिन जलपूर्ति और मलनिपटान समिति ने निगम से सार्वजनिक नलकों का शुल्क देने का आग्रह कर के बजट सही कर लिया. परिवहन समिति ने वादा किया कि वह खर्च में किफ़ायत करेगी और आमदनी बढ़ायेगी. बस १९६९-७० का बजट दुरुस्त हो गया.

दिल्ली प्रशासन अपने सीमित क्षेत्र में सक्रिय है और सत्ताधारी दल के लोग अपनी 'दूकान' जमाने के फेर में बहुत उत्साह दिखा रहे हैं. महानगर परिषद् की व्यवस्था से कोई पक्ष खुश नहीं है. महानगर परिषद् के अधिवेशन में एक कांग्रेसी सदस्य ने नगर निगम और महानगर परिषद् की जगह एक शक्तिशाली व्यवस्था की माँग की रखी. प्रतिपक्ष के नेता शिवचरण लाल (कांग्रेस) ने सीधे विधानसभा की वकालत की. लेकिन सत्ताधारी पक्ष जानता है कि विधानसभा मिलने से रही, इस लिए क्यों न बीच का रास्ता अख्तियार किया जाये. अतः उस का प्रस्ताव, जो अंततः अंगीकार हो गया, यह था कि नागरिक व्यवस्थाओं और प्रशासनिक कार्यों के लिए एक नयी निर्वाचित संस्था क़ायम की जाये, जिस की रूप-रेखा निश्चित करने के लिए ११ सदस्यों की एक समिति बने. समिति के लिए किसी नयी रूप-रेखा की परिकल्पना कर सकना मुश्किल नहीं होगा, क्यों कि जनसंघ और स्थानीय कांग्रेसी अधिक अधिकार हथियाने के पक्ष में हैं. असली मुश्किल केंद्र सरकार के सामने आयेगी, जिसे किसी न किसी बहाने राजधानी में दखल बनाये रखने का मोह है. दूसरा सवाल यह भी है कि क्या वह केंद्र में प्रतिपक्षी पार्टी के लोगों को राजधानी के मामलों में अधिक अधिकार देना पसंद करेगी ! एक उदाहरण : केंद्र ने सुपर बाज़ार खोला और उस की प्रबंध समिति में संसद्-सदस्य भी नामज़द किये, लेकिन इन में दिल्ली का एक भी नहीं है.

जहाँ तक महानगर परिषद् का सवाल है आम धारणा यही है कि कार्यकारी पार्षद दिल्ली को स्वच्छ बनाने के लिए ही नहीं प्रशासन को भी स्वच्छ रखने की कोशिश में हैं. मुख्य कार्यकारी पार्षद से एक भेंट में मालूम हुआ कि महानगर परिषद् को 'प्रयोग' की कसौटी पर

विजयकुमार मल्होत्रा

खरा उतारना चाहते हैं. उन की कोशिश यह मालूम होती है कि भ्रष्टाचार के लिए परिषद् की ओर उँगली न उठायी जा सके. उन का कहना है कि शिक्षाविभाग में अस्थायी नियुक्तियाँ बंद कर के श्रेणी और योग्यता के आधार पर तैनाती करने के नियम बना दिये गये हैं, कोटे-परमिट बाँटने की भी व्यवस्था सुधारी जा रही है, जिस से लोगों को शिकायत का मौक़ा न मिले.

छिट-पुट प्रयत्नों से दिल्ली की हालत नहीं सुधरेगी. अंतरराष्ट्रीय प्रतिमानों से दिल्ली महानगरी वैसे भी नहीं है, लेकिन मौजूदा रफ़्तार रही तो दस-पंद्रह वर्षों में दिल्ली एक विशाल गंदी बस्ती बन कर रह जायेगी. दरअसल दिल्ली को अधिक धन-राशि ही नहीं चाहिए, उसे एक सुविचारित योजना और उस पर ईमानदारी से अमल करने वाले लोग भी चाहिएँ. क्या ये तीनों शर्तें एक साथ पूरी हो सकेंगी ?

सम्मेलन

चिकित्सा : तनाव और

भारत के पिछड़े हुए संदर्भ में भारतीय चिकित्सा का भी पिछड़ा होना पूरे देश की अनेक विसंगतियों में से एक है. यद्यपि चौथी योजना की तालिका के अनुसार पूरे देश में ५८०० आदमियों पर एक डॉक्टर का औसत आता है और पूरे राष्ट्रीय बजट में जितना पैसा खर्च किया जाता है उस के अनुसार सरकार फ़ी भारतीय की दवा पर कुल एक नये पैसे से भी कम खर्च करती है. फिर भी डॉक्टरों का वर्ग हमारे समाज का एक विशिष्ट वर्ग है. खास कर अंग्रेज़ी दवाओं का डॉक्टर तो और भी विशिष्ट है, क्यों कि वह प्रायः १० प्रतिशत संपन्न लोगों का डॉक्टर होता है और शेष तो भगवान के नाम पर जीते-मरते रहते हैं. फिर भी देश है तो डॉक्टर है और डॉक्टर है तो उन का एक सम्मेलन भी होना ज़रूरी है. इन सम्मेलनों से कुछ और होता या न होता हो इतना तो अवश्य ही होता है कि सामान्य और स्वतंत्र रूप से चिकित्सा का व्यवसाय करने वाले और सरकारी अस्पतालों में काम करने वाले डॉक्टरों के बीच जो एक सरकारी और ग़ैर सरकारी डॉक्टरी होड़ का तनाव रहता है वह स्पष्ट हो जाता है. **अखिल भारतीय मेडिकल कांफ़्रेंस** इस तनाव को झंझोड़ कर प्रस्तुत करता है.

अखिल भारतीय स्तर पर काम करने वाली अखिल भारतीय मेडिकल कांफ़्रेंस संस्था, जो कि भारतवर्ष की सब से पुरानी संस्था है और डॉक्टरों का एकमात्र प्रतिनिधित्व करती है, उस के बावजूद सरकार ने १९५६ में मेडिकल काउंसिल एक्ट पारित कर के एक नयी संस्था **मेडिकल काउंसिल ऑफ़ इंडिया** बना डाली है. इसी प्रकार **सट्रल काउंसिल ऑफ़ हेल्थ** की भी स्थापना हुई है, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य की नीति पर सरकार को समय-समय पर सलाह देती रहती है. मेडिकल काउंसिल ऑफ़ इंडिया राज्य में पंजीकृत डॉक्टरों को नियंत्रित भी करती है. ऐसी स्थिति में **अखिल भारतीय मेडिकल एसोसिएशन** की हैसियत स्वतः सामान्य हो जाती है. चौवालीसवें अखिल भारतीय मेडिकल कांफ़्रेंस के अध्यक्ष **डॉ. जी. एस. वाग्ले** ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस तनाव और संघर्ष को बड़े स्पष्ट वाक्यों में व्यक्त करते हुए कहा है—"कुछ विशेषज्ञों का व्यंग्यात्मक रूप में यह कहना है कि आई. एम. ए. (**अखिल भारतीय मेडिकल एसोसियेशन**) जनरल प्रैक्टिशनर्स की संस्था है. लेकिन वह यह भूल जाते हैं कि आई. एम. ए. उन समस्त डॉक्टरों की संस्था है जिन के पास मान्य सनद डॉक्टरी की है. हम एक राजनैतिक संस्था के रूप में आचरण नहीं करना चाहते और न इसे ट्रेड

ैराशा का क्षेत्र

यूनियन का रूप देना चाहते हैं. हम इस संस्था को सीधी और सच्ची संस्था बनाना चाहते हैं, जो देश-सेवा के आदर्शों का पालन कर सके." स्पष्ट है कि आज यह तनाव पैदा करने में सरकारी संस्थाएँ भी ज़िम्मेदार हैं, क्यों कि वे सरकारी और ग़ैर-सरकारी वातावरण पैदा करती हैं.

सब से अधिक सारगर्भित और महत्त्वपूर्ण वक्तव्य स्वागत-समिति के अध्यक्ष डॉ. प्रीतम दास का था. अपने वक्तव्य में **डॉ. प्रीतम दास** (प्रधानाचार्य, मोतीलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज, इलाहाबाद) ने कहा—"यद्यपि भारत में हम बड़ी तेज़ी के साथ विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में प्रगति करना चाहते हैं फिर भी दुनिया में प्रगति इतनी तेज़ी के साथ बढ़ रही है कि हम उस गति से आगे बढ़ने में असमर्थ हैं. चिकित्सा के क्षेत्र में यह अंतराल लंबा हो गया है. अभी हमारी प्रयोगशालाओं और चिकित्सालयों में बहुत थोड़ी-सी मशीनें और यंत्रों का निर्माण हो पाया है. जहाँ अन्य देशों में आज इलक्ट्रॉनिक यंत्रों का प्रयोग बड़ी तेज़ी के साथ किया जा रहा है और उन के अस्पतालों और चिकित्सालयों में ये यंत्र सुलभ हैं हमें अभी पुराने तरीक़ों को ही अपनाना पड़ता है." फ़ीज़ियोलॉजी और एनोटोमी के क्षेत्र में इन इलक्ट्रॉनिक यंत्रों ने जो क्रांतियाँ पैदा की हैं उन का उल्लेख करते हुए डॉ. प्रीतम दास ने कहा, "हमारे देश में बायोकेमेस्ट्री की बहुत कम अनुसंधानशालाएँ हैं. हम जब संसार की प्रगति की तुलना अपने देश से करते हैं तो हमें लगता है कि यह अंतराल भविष्य में बढ़ता ही जायेगा. इन समस्याओं के निदान के बारे में उन्होंने कहा : हमारे देश के जो डॉक्टर प्रत्येक वर्ष हज़ारों की संख्या में विदेश चले जाते हैं उन्हें सख़्ती के साथ रोकना है और उन को देश में रोक कर ही दीक्षित करना है. मेडिकल कॉलेज के अध्यापकों और डॉक्टरों को कम से कम चौगुना बढ़ाना है और उन को अनुसंधान के काम में लगाना है. यही नहीं हमारे देश में चिकित्सा का अध्ययन-अध्यापन तभी संभव हो सकता है जब 'केवल भारतीयों द्वारा लिखी पुस्तकों से हमारे विद्यार्थी पढ़ेंगे. विदेशी पुस्तकों की संख्या कम कर देनी चाहिए और कुछ सीमित विषयों की ही ऐसी पुस्तकें बाहर से मँगवानी चाहिएँ जिन के भारतीय लेखक उपलब्ध न हों. अस्पतालों में मृत मरीज़ों के पोस्ट मॉर्टम को अनिवार्य कर देना चाहिए; वैज्ञानिक यंत्रों और प्रयोगशालाओं के लिए सामानों के विकास के लिए 'पेटेंट' संबंधी क़ानून को ढीला कर के अधिकाधिक सुविधा इस दिशा में दे कर इस का विकास करना चाहिए.' डॉ. प्रीतम दास ने अंत में कहा—"आज आवश्यकता है अपनी प्रयोगशालाओं के भीतर क्रांति पैदा करने की. मैं जानता हूँ कि यह सब संभव हो सकता है. देश के काफ़ी नवयुवक डॉक्टर देश को आगे ले जाने के लिए तत्पर हैं. उन की आकांक्षा वह सब करने की है जो दूसरे देशों में हो रहा है. हमें ऐसे नवयुवकों को निराश नहीं करना चाहिए."

वैज्ञानिक गोष्ठियाँ : डॉ. बी. एल. अग्रवाल ने इन गोष्ठियों की अध्यक्षता की और कई मूल्यवान आलेख इन गोष्ठियों में पढ़े गये. उद्घाटन **डॉ. बी. के. दुराईस्वामी**, निदेशक मेडिकल हेल्थ सर्विसेज़, नयी दिल्ली ने किया. जो आलेख पढ़े गये उन में से 'ट्यूबरक्यूलर मेनेनजाइटिस' पर **डॉ. आर. के. थापर**, चर्म-रोगों पर **प्रो. बी. एन. बेहल** (स्किन इंस्टीट्यूट, नयी दिल्ली) का लेख महत्त्वपूर्ण था. **डॉ. जी. पी. एलहैन्स** (एस. एन. मेडिकल कॉलेज, आगरा) ने टाइफ़ॉइड के रोग पर अपने आधुनिकतम अनुसंधान को प्रस्तुत किया.

पिछड़ेपन के नमूने : इस पूरे सम्मेलन में ऐसे भी नमूने मिले जिस से यह स्पष्ट पता चलता था कि पीढ़ियों की वह लड़ाई जो बाहर राजनैतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में विद्यमान है वह हमारे देश के डॉक्टरों में भी समान रूप से मौजूद है. पूरे सम्मेलन में जितने भी नयी उम्र वाले डॉक्टर आये थे वे या तो सम्मेलन के खुले अधिवेशन, उस के चुनाव और पदाधिकारियों के नोच-खसोट से वीतराग थे या जो उस में दिलचस्पी रखते थे वे खुल कर विरोध भी कर रहे थे. इस क्षेत्र में भी नये रक्त को केवल पीछे रहने का आदेश दे कर बूढ़ों को पद सँभाले रहने का मोह उतना ही दिया गया जितना कि देश की किसी और संस्था में. **दिनमान के प्रतिनिधि** ने जब बंगलौर-मसूर और दक्षिण के दो-एक नौजवान डॉक्टरों से बातचीत की तो वह काफ़ी तैश में थे और इस बात से नाराज़ थे कि बावजूद इस के कि वे अपने-अपने विषय के विशेषज्ञ हैं फिर भी उन्हें अभी नाबालिग़ समझा जाता है. **दिनमान के प्रतिनिधि** ने कहा कि फिर वे अधिकार की लड़ाई क्यों नहीं लड़ते, तो उन डॉक्टरों के साथ कुछ उत्तरप्रदेश के डॉक्टरों ने कहा—"इस लिए कि हमारे पेशे में सीनियर और जूनियर का संबंध बड़ी तेज़ी के साथ जम गया है. हम अपने अग्रजों के ख़िलाफ़ बोल नहीं सकते. यह लड़ाई एक सड़े-गले 'बॉसिज़म' की है, जो अभी चली आ रही है." पिछड़े हुए देश का पिछड़ापन और भी भयंकर हो जाता है जब प्रतिभा की अपेक्षा आयु, कृतित्व की अपेक्षा शॉर्टकट आज के रूप में प्रयुक्त होने लगते हैं. इसी पिछड़े दिमाग़ का दूसरा नमूना यह भी था कि कार्रवाई का पूरा उपचार अंग्रेज़ी में किया गया था. प्रो. हाल्डेन ने एक जगह लिखा है कि किसी भी पिछड़े हुए देश में तथाकथित बौद्धिक वर्ग ही सब से बड़ा शोषक वर्ग होता है. यद्यपि यह स्पष्ट नहीं दीख पड़ता किंतु यह सत्य है कि पिछड़े हुए देश का पिछड़ा हुआ डॉक्टर प्रायः यह शोषण करता आया है. सारे डॉक्टर इस दृष्टि से १९वीं शताब्दी के विक्टोरियन जैसे लग रहे थे.

(बायें से दायें) डॉ० प्रीतमदास, अवधबिहारी लाल, इंदिरा गांधी, पी० आर० त्रिवेदी

प्रस्तावों के प्रस्ताव : फिर भी इस सम्मेलन ने कुछ प्रस्ताव काफ़ी अच्छे पारित किये हैं. **पहले प्रस्ताव** में इस सम्मेलन ने भारत सरकार से यह माँग की है कि सरकार वैज्ञानिक अनुसंधान एवं प्रयोगशालाओं को अधिक आधुनिक बनाने के दायित्व को पूरा-पूरा वहन करे और महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों के संपूर्ण आर्थिक भार को वहन करे. **दूसरे प्रस्ताव** में इस सम्मेलन ने माँग की है कि राष्ट्रीय बजट का १५ प्रतिशत स्वास्थ्य संबंधी शीर्षक को प्रदान करे, ताकि पूरे स्वास्थ्य के प्रश्न पर उचित समय देने के लिए डॉक्टरों को उचित सुविधा मिल सके. **तीसरे प्रस्ताव** में समस्त मेडिकल कॉलेजों को सरकार द्वारा अनुशासित न किया जाये. इस के विरोध में यह भी कहा गया है कि मेडिकल कॉलेजों की व्यवस्था विश्वविद्यालयों को सौंप दी जाये. **चौथे प्रस्ताव** में सम्मेलन ने डॉक्टरों से एक व्यापक अपील की है कि वह गाँवों में ग्रामीण जनता की सेवा और उपचार का दायित्व वहन करें. **पाँचवें प्रस्ताव** में सम्मेलन ने प्रादेशिक और केंद्रीय सरकार की उन नीतियों का खंडन किया है जो डॉक्टरों की सेवाओं का उपयोग नेशनल प्लानिंग आदि महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में नहीं लेती. **छठे प्रस्ताव** में सम्मेलन ने यह शिकायत की है कि वर्तमान प्रादेशिक और केंद्रीय सरकार डॉक्टरों को मूलभूत महत्त्वपूर्ण दवायें सुलभ कराने में कुछ भी सहयोग नहीं देती. प्रस्ताव में यह भी शिकायत है कि डॉक्टरों को 'मोरफ़ीन', पेथीड्रीन स्प्रिट जैसी निहायत ज़रूरी चीज़ें भी नहीं दे पाती. दवाओं के बढ़ते हुए दामों के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए सम्मेलन ने कहा है कि **"सम्मेलन सरकार की इस नीति के प्रति क्षोभ प्रकट करता है कि और तो और देशी दवाएँ भी महँगी होती जा रही हैं और सरकार उन पर रोक लगाने में असमर्थ है."**

चर्चे और चरखे

चीन में चिकित्सा-क्रांति

हिंदुस्तान के गाँवों में आज भी वैद-वैद की आवाज़ सुनाई देती है और भारी पग्गड़ बाँधे मैले-कुचैले कपड़ों में नंगे पैर गली-गली घूमते इस वैद को देखा जा सकता है. इसे पिछड़ेपन की निशानी मानने वालों के लिए यह सूचना उपयोगी होगी कि चीन में नयी सर्वहारा क्रांति के सूत्रधार माओ ने अपने देश में ऐसे वैद यानी डॉक्टरों का सपना देखा है. सांस्कृतिक क्रांति की भाँति चिकित्सा-क्षेत्र में भी क्रांति का नारा माओ ने लगाया है. जिस के फलस्वरूप डॉक्टर किसान बन रहे हैं और किसान डॉक्टर. पेशेवर बड़े डॉक्टर, माओ के अनुसार, वर्ग-संघर्ष के शत्रु हैं, क्यों कि उन का सर्वहारा से कोई संपर्क नहीं रह गया है. इस सिद्धांत के कारण हज़ारों डॉक्टर अपने शहरी दवाखानों से हटा कर गाँव में भेज दिये गये हैं. साथ ही डॉक्टरी पढ़ने वाले विद्यार्थियों से भी कहा गया है कि वे बड़े शहरों के बड़े अस्पतालों के बड़े डॉक्टर बनने का स्वप्न न देखें. बल्कि अपनी पढ़ाई समाप्त कर के आसपास के ग्रामीण दवाखानों में छोटे डॉक्टर बनने की कोशिश करें.

शहरी डॉक्टरों पर यह आरोप लगाया गया है कि वे संभ्रांत लोगों की बीमारियों की ही जानकारी रखते हैं और उन के ही इलाज की सुविधा उन के पास है. ऐसे डॉक्टर गाँव के किसान की बीमारियों के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं. चीन के समाचारपत्रों और रेडियो द्वारा ऐसे डॉक्टरों पर हल्ला बोला गया है और उन के मुक़ाबले में अर्द्ध-शिक्षित किसानों के लड़कों को, जिन की एक जेब में माओ की लाल पुस्तिका और दूसरी जेब में शल्य-चिकित्सा की पुस्तिका होती है, अधिक महत्त्वपूर्ण ठहराया गया है. माओ का कहना है कि डॉक्टरी के लिए ३ वर्ष का समय काफ़ी है. पश्चिमी ढंग से डॉक्टरी की शिक्षा देने में बहुत समय लगता है. चीन में कुछ वर्षों से ढाई वर्ष की शिक्षा के बाद छोटे डॉक्टरों को तैयार करने का काम शुरू कर दिया गया था और उन्हें गाँवों में भेजा जाने लगा था. अब तथाकथित नंगे पैरों वाले ये डॉक्टर माओ के विचार और दस महीने की डॉक्टरी शिक्षा लेने के बाद प्राथमिक सहायता, स्वास्थ्य संबंधी नियम, जड़ी-बूटियों और ग्रामीण ढंग की चीनी जर्राही में माहिर हो कर गाँव से रोग का उन्मूलन करने के लिए निकल पड़े हैं. इन का चुनाव आम तौर से सर्वहारा वर्ग के लोगों में से किया जाता है. इन्हें गाँव में फैलने वाली कोई ७५ बीमारियों के बारे में जानकारी दे दी जाती है और यह शरीर की ३६५ जगहों में से कोई १६० जगहों की जर्राही सीख लेते हैं. इन्हें एक 'स्टेथिस्कोप', एक प्राथमिक सहायता का बक्स, जिस में २० दवाएँ होती हैं, दे दिया जाता है और वह करुणामय उपचार के रास्ते पर अपने नंगे पैरों से चल पड़ते हैं. अक्सर ऐसे दस डॉक्टर मिल कर गाँव के कम्यून में बारी-बारी से काम करते हैं. इन में से दो की डॉक्टरी ड्यूटी होती है बाकी ८ गाँव के खेतों में काम करते हैं.

पश्चिमी देशों के आलोचक इस चिकित्सा-क्रांति को लगभग पागलपन ही मानते हैं. लेकिन चीन में माओ के पागलपन में भी एक सिलसिला है. अनुमानतः वहाँ साढ़े ११ लाख पश्चिमी ढंग के डॉक्टर हैं, जब कि वहाँ की जनसंख्या कुल ७४ करोड़ है और जिन में अधिकतर सीधे-सादे किसान हैं. यह अर्द्ध-शिक्षित डॉक्टर, जिसे स्वास्थ्य कर्मचारी कह लीजिए, वहाँ की जनता के लिए एक बहुत उपयोगी व्यक्ति और कभी-कभी जीवनदाता भी हो सकता है.

पिकासो की प्रतिमा

शिकागो की भाँति न्यूयार्क में भी अब पिकासो की बनायी हुई एक विशाल प्रतिमा लगायी गयी है. १९६७ के अंत में पिकासो ने छायाचित्रों के आधार पर यह स्थान, जहाँ प्रतिमा स्थापित की गयी है, पसंद किया और उस का नमूना तय किया था. यह प्रतिमा कंकरीट की है. इस में नॉर्वे के कलाकार कार्ल नेसज़ार ने पिकासो का हाथ बँटाया है. पिकासो ने इस का मूल पहले टीन, गत्ते पर और बाद में एक भारी धातु से छोटे आकार में बनाया था. नेसज़ार ने इसे कंकरीट में ढाला, जिस पर कि मौसम का असर नहीं पड़ सकता.

इस प्रतिमा का नाम 'साइलवेते की अर्द्ध प्रतिमा' है. यह एक ४०-५० साल की पोनीटेल बनाये हुए एक औरत की प्रतिमा है. उस के बाल और उस की आकृति मोटी धातु की रेखाओं में कंकरीट पर बनायी गयी है. प्रतिमा के दोनों तरफ़ इस स्त्री का एक-एक चेहरा है. यह प्रतिमा ३६ फ़ुट ऊँची और २० फ़ुट लंबी है. मोटाई साढ़े १२ इंच है. इस के चारों तरफ़ ५० मंज़िली इमारतें हैं. यह प्रतिमा घास में स्थापित की गयी और चारों तरफ़ के इन मकानों में न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय के लोग रहते हैं. विभिन्न कोणों से इस प्रतिमा को देखा और सराहा जा सकता है. इस के चारों तरफ़ घूमने पर प्रतिमा का भाव बदलता दिखाई देता है, क्यों कि इस के चेहरे पर कई तरह की रोशनियाँ पड़ती हैं.

ध्यान आकर्षण विधि

४८ वर्षीय केंजो ओक्ज़ाकी को जापान के शाही रक्षकों ने, सम्राट हिरोहितो पर गुलेल द्वारा लोहे की गोली चलाने के आरोप में, गिरफ़्तार कर लिया है. निशाना चूक जाने के कारण यह गोली सम्राट को नहीं लगी.

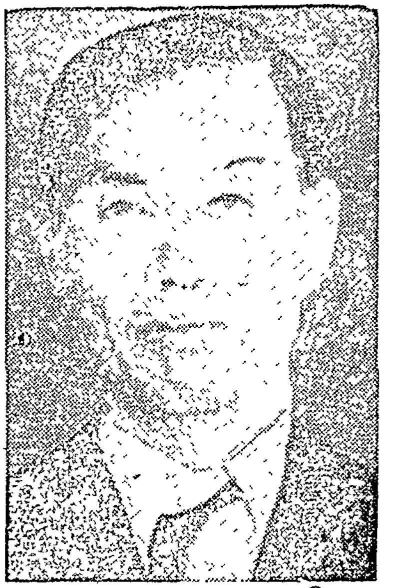

केंजो ओक्ज़ाकी

ओक्ज़ाकी ने गुलेल उस समय चलायी जब कि शाही परिवार अपने महल के छज्जे पर जनता को नये वर्ष की शुभकामनाएँ स्वीकार करने के लिए आया था. ओक्ज़ाकी का कहना है कि उन्होंने सम्राट पर गुलेल इस लिए चलायी ताकि वह अपनी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कर सके.

नया वर्ष

यूरोप, अमेरिका और रूस सभी जगह नया वर्ष बड़ी धूमधाम से इस वर्ष भी मनाया गया. कड़ाके की ठंड में भी मॉस्को में अंडों, खिलौनों और फलों की दुकानों के आगे ग्राहकों की लंबी-लंबी क़तारें देखी जा सकती थीं. नये वर्ष की पार्टी का सब से प्रिय पेय सोवियत शंपैन मामूली दुकानों में मिलनी मुहाल थी. बच्चों के खिलौने भी बाज़ार से ग़ायब हो गये थे. शिकागो में नया वर्ष पेरिस शैली में मनाया गया. सब से अधिक पागलपन के साथ नया वर्ष रोम में मनाया जाता है. ३१ दिसंबर की रात में रोम की सड़कों पर मोटर चलाना ख़तरे से खाली नहीं. लोग अपने-अपने घरों की पुरानी और बेकार की चीज़ें इकट्ठी कर लेते हैं और आधी रात होते ही उन्हें अपनी खिड़कियों से बाहर फेंकना शुरू कर देते हैं. यदि किसी की मोटर गाड़ी किसी के घर के सामने खड़ी है तो उस की ख़ैर नहीं. उस के ऊपर पुरानी बोतलें, टूटी-फूटी मेज़-कुर्सियाँ और तमाम अंगड़-खंगड़ फेंका हुआ पाया जा सकता है. कुछ वर्ष पहले तो एक आदमी ने, जो रोम की सड़कों पर मोटर चला रहा था, अपनी गाड़ी की छत पर एक टूटा हुआ नहाने का टब गिरता पाया, जो किसी खिड़की से उस की मोटर पर फेंक दिया गया था. रोम में इस बार नया वर्ष और पिछले वर्षों की अपेक्षा कुछ अधिक संयत ढंग से मनाया गया.

राजधानी से : विशेष रिपोर्ट

प्रगति या परिक्रमा

राजधानी में राजनैतिक पर्यवेक्षकों की बातचीत की प्रिय शिकायत आजकल है कि राजनीति रेंग रही है और मध्यावधि चुनाव के नतीजे आने के बाद ही शायद फ़ुर्ती दिखाये. ऐसा कहने वालों का मतलब चार राज्यों में समाज परिवर्तनकारी शासन की स्थापना से उतना नहीं होता जितना केंद्र में प्रधानमंत्री की स्थिति से होता है. इसी तरह कामराज के लोकसभा सदस्य बनने का कोई राजनैतिक अभिप्राय लोकसभा में उन के संभाव्य योगदान से नहीं बल्कि प्रधानमंत्री की स्थिति पर उस प्रभाव, बहुत कर के कुप्रभाव, से जोड़ा जाता है जो वह मंत्रिमंडल में या खाली कांग्रेस संसदीय दल में रह कर डाल या नहीं डाल सकते हैं. यह भी माना जाता है कि कोई पेशीनगोई मध्यावधि के नतीजे आने तक सविश्वास नहीं की जा सकती क्यों कि प्रत्येक चुनाव-राज्य में प्रधानमंत्री का साथ देने या न देने वाले कांग्रेस-स्तंभों के चमत्कारी उदय या सांघातिक अवसान पर ही केंद्रीय सौरमंडल में नये ग्रह-उपग्रहों की सृष्टि संभव है. प्रधानमंत्री की स्थिति ही सारे देश की (या कम से कम उस अंश की जहाँ जनता अपने शासक चुन रही है) नियति हो जाये यह अपने-आप में वर्त्तमान राजनीति की सड़ांध का सूचक है. हाल ही में कांग्रेस धुरंधरों ने चुनाव-बाद दूसरे दलों से शासन में हिस्सा बाँट के सवाल पर जिस तरह तड़प कर न न किया है वह दिखाता है कि उन्हें इसी की सब से अधिक आशंका है.

नामज़दगी के बाद की तस्वीर में तीन तत्व स्पष्ट हैं. एक, बहुत अधिक पार्टियाँ मैदान में हैं; दो, सभी पार्टियों में पहले से अधिक फूट है और तीन, सब पार्टियाँ कांग्रेस को हटाने के १९६७ के संकल्प में पूरी तरह शामिल नहीं हैं. इस से कांग्रेस क्षेत्रों में सांस ज़रा खुल कर आने लगी है लेकिन वहाँ ज़रूरत अभी भी दम साधे बैठे रहने की समझी जाती है (खास कर उत्तर प्रदेश में), क्यों कि स्थायित्व की बहु-विज्ञापित साकार प्रतिमा कांग्रेस को अकेले स्थायी सरकार बनाने के लिए पूर्ण बहुमत मिलना हलवा नहीं है. दूसरे दलों से मिल कर सरकार नहीं बनायेंगे यह चीत्कार कांग्रेस अध्यक्ष करते रह सकते हैं क्यों कि उन्हें सरकारें नहीं बनानी हैं परंतु राज्य प्रधानों को सरकार न बनाने का विकल्प भी सोचना होगा. आखिर राजनीति सत्ता या विरोध दोनों में से किसी में रहने का ही नाम है : विरोध पक्ष का लोकतंत्रीय क़र्त्तव्य निभाने में राज्य कांग्रेसों ने जिस लीचड़पन का सबूत गत दो वर्षों में दिया है उस से सिद्ध है कि उन के प्रतिनिधि विरोधी-कुर्सियों पर बिना बार-बार आसन बदले बैठ नहीं सकते. मध्यावधि के बाद ज़रा-सी ज़रूरत पड़ने पर दूसरे दलों से सरकार बनाने के समझौते करने के लिए उन्हें स्वभावतः दौड़ कर जाना होगा. वे दायें जायेंगे या बायें इस का तेजस्वी उत्तर प्रधानमंत्री प्रेस सम्मेलन में दे चुकी हैं : 'कांग्रेस की नीतियाँ स्पष्ट हैं' (उत्तर का अर्थ कितना ही अस्पष्ट क्यों न हो).

बड़े कांग्रेस ढिंढोरचियों के चुनाव-अभियानों से एक बात स्पष्ट है. यह कि कांग्रेस-क्षेत्रों में विश्वास बढ़ रहा है कि जिस जनता की आंतरिक आकांक्षा ने हमें एक बार हटाया था वह परास्त हो चुकी है; उसे पश्चात्ताप सहित स्वीकार करना चाहिए कि वह हम से अच्छे नेतृत्व की अधिकारी नहीं है. १९६७ के बाद की राजनीति में किसी परिवर्त्तनकारी जन-आंदोलन का या किसी भी नीति-संबंधी प्रगति का श्रेय लेने की कोशिश कांग्रेस बड़ी ईमानदारी से नहीं कर रही है. वह जो कुछ कह रही है उस का सारांश है कि कांग्रेस के विरोध में संयुक्त होने वाले संयुक्त नहीं रह सके.

आगे सरकारें कोई भी बनाये यह समझना ज़रूरी है कि इस नकारात्मक नारे का योगदान राष्ट्र की राजनीति में स्वस्थ नहीं हो सकता. चुनाव के बाद राजनीति रेंगना छोड़ कर कुछ ग्रहों-उपग्रहों को केंद्रीय सूर्य की कक्षा में नचाने लगे—यह एक चीज़ है और समाज-परिवर्त्तनकारी कार्यक्रमों पर अमल कराये—वह बिल्कुल दूसरी चीज़ है.

राज्य	जगहों की संख्या	प्रत्याशियों की संख्या ('६९ मध्यावधि चुनाव)	प्रत्याशियों की संख्या ('६७ के चुनाव में)
उत्तरप्रदेश	४२५	२८७०	३६८०
बिहार	३१८	२५००	२६१९
बंगाल	२८०	१०१९	१०५८
पंजाब	१०४	४७०	६०२

दिनमान
समाचार – साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — १९ जनवरी, १९६९
अंक ३ — २९ पौष, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट ११

*

मत और सम्मत ३
पिछला सप्ताह ४
पत्रकार-संसद् ५
चर्चे और चरखे १०
परचून ४६

*

राष्ट्रीय समाचार १३
प्रदेशों के समाचार १९
विश्व के समाचार ३४
समाचार-भूमि : क्यूबा ३२
खेल और खिलाड़ी : डूरंड कप, क्रिकेट ३०

*

प्रेस-जगत् : चेक तथ्य और रूसी सत्य ५
दिल्ली की चिट्ठी ७
सम्मेलन : अखिल भारतीय मेडिकल कांफ़्रेंस ८
शिक्षक आंदोलन : ग़ैर-कांग्रेसी मोड़ १७
मध्यावधि : नामांकन २१
चुनाव-पूर्व सर्वेक्षण : पंजाब, पश्चिमी उत्तरप्रदेश; पूर्वी उत्तरप्रदेश २३
संदर्भ : रासायनिक उर्वरक 'फ़ैक्ट' ३९
विज्ञान कांग्रेस ४०
पुरातत्त्व : प्राचीन भारत का इतिहास और प्रचलित लिपि ब्राह्मी ४१
साहित्य : पी. ई. एन., मराठी साहित्य सम्मेलन ४२
कला : रमेश बिष्ट, संतोष मनचंदा, शैल चोयल ४५

*

आवरण-चित्र : डॉ. संपूर्णानंद

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन
दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

केंद्रीय शस्त्रीकरण

खबर है कि प्रधानमंत्री ने नक्सलवादियों की गतिविधि देशव्यापी होते देख गृहमंत्रालय से कहा है कि वह अब अपने विचार बदलने की कोशिश करे. गृहमंत्रालय के काग़ज़ों के अनुसार नक्सलवादी जैसी हरकतों पर कार्रवाई करने का केंद्र के पास कोई क़ानूनी साधन नहीं है. ऐसी हरकतों पर सजा देने की व्यवस्था अवैध गतिविधि विवेयक के मसविदे में शामिल की गयी थी लेकिन प्रतिपक्षी दलों के आग्रह पर उसे बाद देना पड़ा. गृहमंत्रालय को नहीं मालूम कि वह किस तरह से प्रधानमंत्री की कथित इच्छा पूरी करे. केंद्र सरकार के बुद्धिमान सलाहकारों की भाषा में कहा जाये तो छिट-पुट उपद्रवों के खिलाफ़ कार्रवाई केंद्र को नहीं बल्कि राज्य को करनी चाहिए और केंद्र को तभी हाथ-पाँव हिलाने चाहिएँ जब कार्रवाई भी किसी दूसरे केंद्रीय संगठन से आरंभ हुई हो. नक्सलवादी कार्रवाइयों को मुखियो और वकीलों की नजर से देखने पर इस से ज्यादा और कुछ केंद्रीय सलाहकार देख भी नहीं सकते किंतु यहाँ प्रश्न इन की असमर्थता का उतना नहीं जितना उन की नीयत का है.

विश्वस्त रूप से मालूम हुआ है कि गृहमंत्री को उन के नौकरशाहों ने केरल में कोई साहसिक उपाय न करने की सलाह दी थी और मंत्रिमंडल ने इस नीति मसविदे को मंजूर किया था. ज़ाहिर है कि प्रधानमंत्री की मंजूरी भी मंत्रिमंडल की मंजूरी मे शामिल है. गृहमंत्री ने अपने सलाहकारों के तर्क माने थे इस लिए यह भी जाहिर है कि ये तर्क मानने के तर्क गृहमंत्री के पास रहे होंगे. जो आम आदमी को जाहिर नहीं है वह यह है कि नौकरशाहों के और केंद्रीय राजनैतिक नेताओं के तर्क जो कि बिलकुल अलग-अलग कोटि के चिंतन से उत्पन्न होने चाहिए आजकल एक हो गये हैं. राजनैतिक उपयोगिता के मुक़ाबले अच्छी राजनीति अनुपयोगी मानने वाले मंत्री सचिव की राय चुपचाप मान लेते हैं.

केरल के मामले में केंद्र सरकार की नीति अभी कुछ न करने की बतायी जाती है. इस का सीधा मतलब यह है कि केरल के मामले में कुछ करना केरल सरकार को केंद्रीय कोशिश से हटाने के बराबर माना जाता है. ऐसी हालत मे मंत्री को जब बताया जाये कि केरल में परि-स्थितियाँ बिगड़ रही है और आप तब तक प्रतीक्षा कीजिए जब तक कि केरल के मुख्यमंत्री स्वयं आप से केरल सरकार तुड़वा देने की फ़रमाइश न करें तो यह बहुत उपयोगी सलाह मालूम होती है. इस के पीछे नौकरशाही दृष्टि है जो राजनीति को सत्तालोलुप व्यक्तियों के उखाड़-पिछाड़ से अधिक कुछ नहीं मानती. इस दृष्टि से देखने पर केरल में मुसलमानों को संतुष्ट करने के लिए नये जिले बनाना और उस की प्रतिक्रिया राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के उग्र मानस पर होना केंद्र सरकार के लिए एक शुभ लक्षण दिखायी देता है. ऐसी दृष्टि स्पष्ट ही नतीजा निकालती है कि इन दोनों सांप्रदायिक तत्वों की अभिव्यक्ति शीघ्र ही केरल की राज्य सरकार के लिए परेशानी का कारण बनेगी. इस के आगे सलाहकार यह भी जोड़ सकते है कि उधर कम्युनिस्टों में भी फूट पड़ी हुई है हुजूर, इस लिए जब नंबूदिरीपाद एक ओर पार्टी की फूट और दूसरी ओर जनता में अशांति से एकदम घिर जायेंगे तब उन के खिलाफ़ कार्रवाई आसान होगी.

वह केरल के मामले को सारे भारत से अलग कर के सिर्फ़ इस दृष्टि से देखता है कि आखिर केरल पर केंद्र को क़ब्जा करना ही होगा. इस दृष्टि से देखने मे नक्सलवादी प्रवृत्तियाँ खाली क़ानून के उल्लं-घन की घटनाएँ ही दिखायी देंगी और ऐसी शक्ल में मंत्रियों के सामने पेश कर दी जायेंगी. मंत्री जिन का राजनैतिक भविष्य केंद्र को और अधिक सत्तासंकुल बनाने में ही सुरक्षित रह सकता है यह जानते है कि नक्सलवादी प्रवृ-त्तियाँ आतंक और अव्यवस्था फैलाती हैं. आतंक और अव्यवस्था की स्थिति में यदि केंद्र राजदंड का इस्तेमाल केंद्रीय राज्यतंत्र आसानी से कर सकता है तो इस से अच्छी बात केंद्रीय सत्ता के लिए और क्या होगी? इस प्रकार नक्सलवादी प्रवृत्तियों का केंद्रीय सत्ताधारियों के लिए एक उपयोगी रूप भी प्रकट हो रहा है. क्या इस उपयोगी रूप को अच्छी राजनीति के चक्कर में अनदेखा कर दिया जाये?

गृहमंत्रालय के पास नक्सलवादी हरकतों के जो वृत्तांत उस के अपने सूत्रों से आये है उन में कम्युनिस्ट पार्टी की फूट का इतना मजा ले कर वर्णन किया गया है जैसे पार्टी की आपसी लड़ाई से देश की राजनीति को कोई खतरा नहीं खुद उन पार्टियों को ही खतरा है और यह भी कि उन के लड़ते रहने में ही केंद्र की भलाई है. यह दृष्टिकोण देख कर केंद्रीय सरकार पर तरस आता है. बिहार, पश्चिमी बंगाल, उत्तरप्रदेश में राज्य सरकारें (यानी केंद्र) गृहमंत्रालय के अनुसार नक्सल-वादियों के खिलाफ़ जम कर कार्रवाई कर रही है और बिहार के आदिवासी क्षेत्रों मे तथा उत्तरी इलाक़ों में राज्य सरकार के (यानी अपने) काम से केंद्र को पूरा संतोष है. इतना ही संतोष केंद्र को आंध्र के मुख्यमंत्री की कुछ समय पहले की 'पद-यात्रा' और 'स्पष्ट-घोषणा' से है कि आंध्र सरकार उग्रपंथियों का दमन करेगी. उग्रपंथियों का 'संगठनात्मक ढाँचा' अभी काफ़ी 'ढीला' है, यह सोच कर गृहमंत्रालय ने शायद नतीजा निकाला है कि वह देश के 'संगठित राजनैतिक जीवन' में हिस्सा नहीं लेना चाहता. उग्रपंथी गेरिल्ला-पद्धति को समझने का इस से अधिक बाबूआना तरीक़ा और कोई नहीं हो सकता. यह तो स्पष्ट है ही कि 'संगठित राजनैतिक जीवन' से यहां मंत्रालय का अभि-प्राय कांग्रेस, प्रजासमाजवादी, स्वतंत्र आदि दलों जैसी चीजों से है लेकिन वह नहीं समझ रहा है कि यह संगठित राजनैतिक जीवन इस समय मौलिक परिवर्त्तन के दौर से गुजरने लगा है. इस समय दकियानूसी और अत्यंत प्रगतिशील दोनों ही तत्व टूटते हुए राज्यतंत्र का फ़ायदा उठाने की कोशिश कर रहे है. नक्सल-वादी भी इन्हीं तत्वों में से एक है और पुराने ढंग के संगठित राजनैतिक जीवन को बदलना उन का अभिप्राय है. यदि केंद्र सरकार राष्ट्र के राजनैतिक तंत्र में हो रही हलचल को इस दृष्टि से देखे कि वह एक राष्ट्रीय हलचल है जिस के नतीजे जो भी होंगे राष्ट्रव्यापी होंगे तब शायद वह राष्ट्र को कोई दिशा दे सकेगी. अभी तो वह इस हलचल को यों ही चलने दे कर उस के खिलाफ़ केवल अपनी सत्ता बढ़ाने की सोच रही है. होगा यह कि गृहमंत्रालय शीघ्र ही प्रधानमंत्री के कथित आदेश पर नक्सलवादियों के संबंध में अपनी पुरानी सिफ़ारिशों पर फिर विचार करेगा और मंत्रिमंडल के सामने प्रस्ताव रखेगा कि केंद्र को और अधिक अधिकार मिलने पर ही वह कुछ कारगर हो सकता है.

क़ानून के अंदर केंद्र केवल उन 'संगठनों' को दुरुस्त कर सकता है जो देश से अलग होने की आवाज उठाये. इतना ही नहीं माओ संबंधी दस्तावेजों और पोस्टरों के प्रचार पर भी कोई कार्रवाई केंद्र नहीं कर सकता. पोस्टर लगाने वाले और आग लगाने वाले दोनों ही संगठन नहीं है. इसी थोदे तर्क से खिन्न हो कर, कहा जाता है कि प्रधानमंत्री ने दोबारा सोच-विचार की जरूरत बतायी है परंतु दोबारा सोच-विचार गृहमंत्री की भी जरूरत है और अगर उस का उद्देश्य और अधिक अधिकार हथियाना है तो इस से कोई अंतर नहीं पड़ता कि यह उद्देश्य प्रधानमंत्री का है या गृहमंत्री का. दोनों एक दूसरे के हित का पूरा ध्यान रख कर ही चल सकते हैं और चल रहे है. वर्त्तमान मे दोनों का हित सारे देश को तरह-तरह की दुष्प्रवृत्तियों से आगाह कर के उन के सामने निहत्था छोड़ देना है और खुद और अधिक हथियारबद्ध हो जाना है. कई बार और कई तरह से सांप्रदायिकता, नक्सलवादिता और अन्य बिल्लों के अंतर्गत उन प्रवृत्तियों की डरावनी तस्वीर केंद्रीय नेताओं ने हाल में खींची है जो पिछले २० वर्षों के कांग्रेसी शासन की दिशाहीनता की प्रत्यक्ष उपज और खाद दोनों रही है. अब यह संदेह केवल संदेह नहीं रह गया है कि विघटनकारी प्रवृत्तियों का इलाज कांग्रेस की राजनीति के पास वही है जो केंद्रीय नौकरशाही अपने नुस्खे में लिखती है—नौकरशाही सत्ता की और अधिक अभिवृद्धि और परिवर्त्तनकारी राजनीति का और अधिक परित्याग.

राष्ट्र

संपूर्णानंद : मर्यादा-पुरुष का अंत

काशी स्तंभित थी एक दिन पूर्व से ही. संपूर्णानंद जी की गहराती हुई बीमारी के आत्यंतिक रूप लेने का समाचार ९ तारीख को ही मिल चुका था किंतु काशी ही नहीं, जहाँ-जहाँ भी समाचार पहुँचा वहाँ सब लोग स्तब्ध हो गये थे उन के निधन को सुन कर. १० बज कर ५ मिनट पर उन्होंने शरीर छोड़ा. उन के परिवार के लोग उन के घर पर पहले से ही एकत्र हो रहे थे. काशी नगर के निवासी इस दुखद समाचार को सुनते ही काशी विद्यापीठ की ओर उमड़ पड़े. दिन के दो बजे अर्थी उठी. तब तक विद्यापीठ का ांगण और उन का निवासस्थान जन-समुदाय से भर उठा. चरण-पादुका पर ५ बजे के बाद उन का शरीर चंदन की चिता पर रखा गया. किसी सार्वजनिक नेता के लिए इतनी लोक-विह्वलता काशी के निकट अतीत में लोगों को स्मरण नहीं हो रही थी. छज्जों पर, सड़कों के किनारे, खिड़कियों से, यहाँ तक कि सवारी गाड़ियों की छतों पर बैठ कर लोगों ने अपने नेता के अंतिम दर्शन करने की चेष्टा की. चौक कोतवाली से उन की अर्थी शव-यान से उतार ली गयी थी. गली में उस का जाना संभव नहीं था. मणिकर्णिका घाट पर पहुँच ऐसा मालूम होता था कि अर्थी कंधों से फिसलती हुई अपने आप चली जा रही थी. जाने कितने अनजाने लोगों की आँखों से आँसू बह रहे थे. काशी भगवान् शंकर की नगरी है. काशी किसी-किसी को ही हरहर महादेव के नारे से सम्मान देती है. संपूर्णानंद जी की चिता प्रज्वलित होने पर अनगिनत कंठों से अनायास यह नारा फूटा था. शंकर के पुजारी संपूर्णानंद जी उन की भस्म में विलीन हुए. उन्होंने भगवान् शंकर के प्रति अपने जीवन में जिस प्रकार की निष्ठा रखी थी उस की झलक उन के ही शब्दों में "जगदभर्त्ताऽपियो भिक्षुः भूतवासोऽपि निकेतन, विश्वगोप्ताऽपि दिग्वासा तस्मै कस्मै नमोनमः".

राजस्थान में ५ वर्षों तक संपूर्णानंद जी राज्यपाल के पद पर रहे थे. इस पद पर काम करते हुए आखिर में चल कर उन की पुरानी गठिया की बीमारी आर्थाइटिस का रूप ग्रहण करने लगी थी. इस बीमारी से वह एक बार अत्यधिक पीड़ित भी हुए और कई महीने तक रोग-शैय्या पर पड़े रहे. किंतु अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति और चिकित्सा की सहायता से एक बार पुनः खड़े हो गये और अपना सामान्य कार्य करने लगे थे. वहाँ से हटने के बाद काशी आने पर भी कुछ दिनों तक वह स्वस्थ रहे किंतु सन् १९६८ के मार्च महीने में जब वह बीमार पड़े तो १० जनवरी सन् १९६९ को इतनी ताक़त पा ली कि इस लोक को ही छोड़ कर चले गये. १० महीने की इस लंबी बीमारी में **दिनमान** के प्रतिनिधि से उन की कई बार भेंट हुई थी. वह शरीर से भी कृष होते जा रहे थे और उन की व्याधियाँ भी बढ़ती जा रही थीं. ऐसा लग रहा था कि वृद्धावस्था में शरीर को कमजोर पा कर व्याधियाँ उसे अपना घर बनाने के लिए दौड़ रहीं थीं. पुराना पौरुष उन्हें आने से ोक रहा था. इस युद्ध के ही कारण संभवतः १० महीने लग गये. स्यात् दूसरा शरीर होता तो कब का गिर चुका होता. इस लंबी बीमारी के बीच मित्रों के आग्रह पर कुछ दिनों के लिए वह लखनऊ भी चिकित्सा के लिए आये. उन की बढ़ती हुई बीमारी का समाचार जब दिल्ली पहुँचा तो प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने चिंता प्रकट की और इस बात का प्रयत्न किया कि या तो वह चिकित्सा के लिए दिल्ली आ जायें या वहीं देश में उपलब्ध विशेषज्ञों को उन की चिकित्सा के लिए भेजा जाये. किंतु इसी बीच उत्तरप्रदेश के राज्यपाल के आग्रह पर वह लखनऊ लाये जा चुके थे और चिकित्सा का समुचित बंध देख कर दिल्ली लाने का यत्न छोड़ दिया गया था. वहाँ के डाक्टरों को ऐसा विश्वास था कि वे उन्हें एक बार पुनः खड़ा कर ेंगे. किंतु लखनऊ आने के थोड़े दिनों बाद ही संपूर्णानंद जी इस बात का आग्रह करने लगे थे कि उन्हें काशी भेज दिया जाये. जब लखनऊ में वह अपनी चेतना भी खोने लगे तो वहाँ के चिकित्सकों ने यह सोच कर कि इन्हें बचाना संभव नहीं होगा काशी जाने के लिए अपनी सहमति दे दी. बड़ी चिंता के साथ वह काशी ले जाये गये. किंतु काशी पहुँचते ही थोड़े दि ों के लिए न केवल उन्होंने पुनः अपनी चेतना प्राप्त कर ली वरन् ऐसा लगा जैसे वह हल्के-हल्के स्वस्थ भी हो रहे हैं. इन्हीं दिनों उन्होंने वेदांत दर्शन की एक पुस्तक भी लिखना प्रा भ कर दिया था. वह वेदांत प्रवेशिका हिंदी साहित्य को उन की अंतिम देन है. भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से प्रकाशित कर के इसे उन के अंतिम जन्मदिन पौष शुक्ल एकादशी तदनुसार ३० दिसंबर १९६८ को उन्हें भेंट किया गया.

संपूर्णानंद जी का जन्म अंग्रेज़ी तिथि से **पहली जनवरी १८९०** में काशी के एक असामान्य परिवार में हुआ था. असामान्य इस लिए नहीं कि यह परिवार बहुत समृद्ध था बल्कि इस लिए कि इस परिवार के पास एक ऐसी पूंजी थी जो कदाचित् ही किसी गृहस्थ परिवार के पास होती है. यों इन के पितामह बक्शी सदानंद जी राजा चेत सिंह के दरबार में प्रतिष्ठित थे और इन के पिता विजयानंद जी भी सरकारी कर्मचारी थे, किंतु संपूर्णानंद जी को विरासत के रूप में अपने ितामह से उन के एक योग्य मित्र बाबा कीनाराम का आशीर्वाद मिला था. संपूर्णानंद जी के मामा प्रतापगढ़ के रहने वाले थे किंतु वह बंगाल के एक प्रसिद्ध योगी की शिष्य परंपरा में स्वयंसिद्ध महात्मा थे. बाल्यावस्था में ही संपूर्णानंद जी की विलक्षण बुद्धि और तीव्र मेधा ने न केवल इन्हें अध्यवसाय की ओर प्रेरित किया वरन् अपने मामा की शरण में दीक्षित होने के लिए भी प्रेरित किया. एक बार इन के माता-पिता को इस बात का भी भय हो चला था कि बालक संपूर्णानंद संभवतः बाल्यावस्था में ही योगमार्गी संन्यासी हो जायेगा. संपूर्णानंद जी घर में सब से बड़े लड़के थे, अतः माता-पिता की ओर से भी उन की चिंता स्वाभाविक जान पड़ती थी.

काशी की भूमि पर अंतिम यात्रा

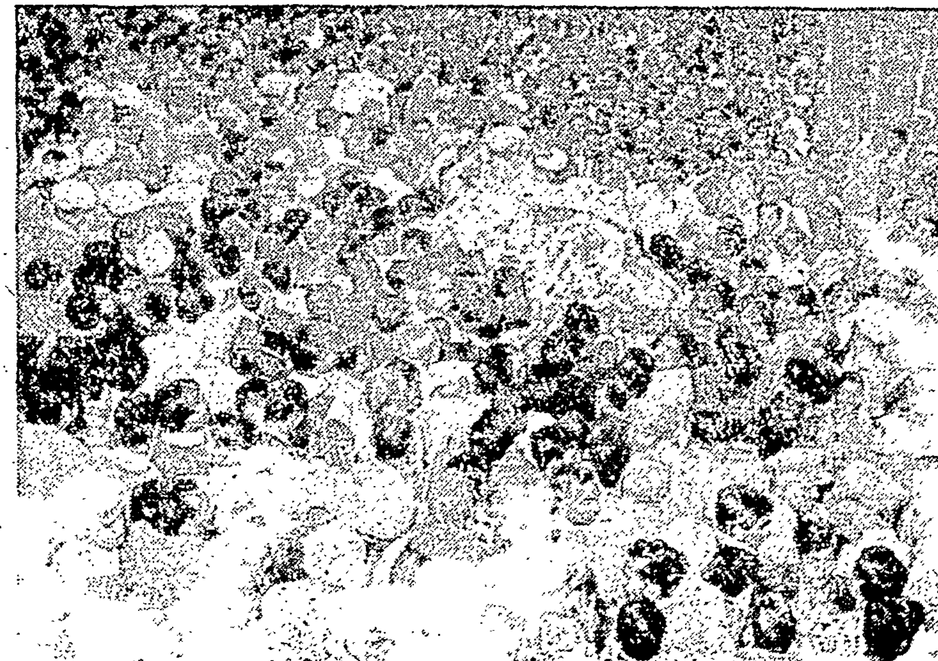

उन्होंने इन के मामा से जा कर इन्हें वापस करने का आशीर्वाद माँगा. कुछ सोच-समझ कर इन के गुरु ने इन्हें गृहस्थाश्रम में वापस जाने का आदेश दिया. यही से इन का गृहस्थ-जीवन, दूसरे शब्दों में लोकजीवन प्रारंभ होता है.

संपूर्णानंद जी की शिक्षा काशी के प्रसिद्ध हरिश्चद्र हाई स्कूल में प्रारंभ हुई थी और प्रयाग विश्वविद्यालय से उन्होंने अपनी बी. एस. सी. डिग्री की उपाधि ली थी. उन दिनों बनारस का क्वींस कालेज डिग्री कालेज था और उस की उपाधि प्रयाग विश्वविद्यालय की उपाधि होती थी. अन्यथा वे प्रयाग विश्व-विद्यालय में पढ़ने के लिए कभी नही आये थे. बी. एस. सी. करने के बाद उन्होने शिक्षक का जीवन बिताने के लिए अध्यापन का प्रशिक्षण लिया. बाल्यावस्था से ही अध्ययन में निष्ठा होने के कारण ये अपने समवयस्क विद्यार्थियों से हमेशा आगे रहते थे. स्वर्गीय डॉ० हफ़ीज सैयद कहा करते थे कि इन के अंग्रेज़ी प्रिंसिपल इन के द्वारा लिखी अंग्रेजी इन से ऊपर के दर्जे के विद्यार्थियों को आदर्श के रूप में दिखाया करते थे. अंग्रेजी पर इन्हें बहुत अच्छा अधिकार था और इन के अंग्रेजो के लिखे लेखों में अंग्रेजी की एक मोहक शैली देखने को मिलती है. किंतु इन का जीवन-व्रत था कि ये अपनी कोई मौलिक पुस्तक अंग्रेज़ी में नहीं लिखेंगे. मूलतः इन्होने जो कुछ भी लिखा हिंदी और संस्कृत में लिखा. इन के मौलिक ग्रंथों का अनुवाद भले ही अंग्रेजी में मिले किंतु लेखादि को छोड़ कर इन्होंने अपना कोई भी ग्रंथ अभारतीय भाषा में नही लिखा. यह इन का दृष्टि-संकोच नहीं था वरन् मातृभाषा हिंदी के प्रति इन की दृढ़ निष्ठा का परिचायक था. यदि इन में दृष्टि-संकोच होता तो यह उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, बंगला और मराठी जैसी भाषाओं का अध्ययन नही करते. इन भाषाओं में लिखे गये ग्रंथों को मूल में पढ़ने का इन्हें शौक था. उर्दू शायरी से इन्हे कितना प्रेम था यह इन के मित्र और न के साथ रहने वाले लोग भली-भाँति जानते है. अपने घर पर अक्सर उर्दू कवियों और लेखकों को आमंत्रित करते रहते थे और गयी रात तक उन के काव्य का आनंद लेते थे. स्वयं उर्दू और फ़ारसी में कविता करते थे. यह सब होते हुए भी संपूर्णानंद जी का अंत तक यह विश्वास बना रहा कि भारतीय प्रतिभा का विकास भारतीय भाषाओं द्वारा ही हो सकता है. उन्होंने भारतीय भाषाओं में कभी कोई विभेद नहीं किया और कभी भी एक को दूसरे से अधिक बड़ी या छोटी मानने की कोशिश नहीं की. यह सब होते हुए भी उन का यह विश्वास था कि इन तमाम भारतीय भाषाओं में हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो अखिल भारतीय स्तर पर जन-संपर्क, विचारों के आदान-प्रदान और राज-कार्य की भाषा बन सकती है. इस दृष्टि से हिंदी को समृद्ध बनाने के लिए इन्होंने अथक परिश्रम किया.

अध्यापन के सिलसिले में न का संबंध बनारस के हरिश्चंद्र और कटिंग मेमोरियल हाई स्कूल से प्रारंभ हुआ था. पीछे चल कर ये डेली कॉलेज इंदौर और डूंगरपुर कालेज बीकानेर में रहने लगे. किंतु अध्यापन को छोड़ कर जब उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया तो इन के अध्यापक श्री मेकेंजी ने कहा था, "एक अच्छा आदमी गलत रास्ते चला गया". मालूम नहीं इन के अध्यापक की राय सही मानी जायेगी या नही किंतु संपूर्णानंदजी जहाँ भी रहे और जिस भी क्षेत्र मे इन्होंने काम किया इन के अच्छा आदमी होने में कोई खोंच नही लगी. इन की मर्यादाएँ थीं और उन मर्यादाओं को छोड़ना इन्होंने कभी उचित नही माना. मर्यादा पुरुष होने के कारण इन की आस्थाएँ कठोर अनुशासन की अपेक्षाएँ रखती थी. अक्सर ऐसा हुआ है कि इन के अनुशासन से थोड़े समय के लिए लोगों को कष्ट पहुँचा हो किंतु निरपेक्ष बुद्धि से विचार करने पर सदा इन के विरोधी भी इन के आदर्शो के प्रति नत-मस्तक हुए है. शिक्षक की हैसियत से विद्यार्थियों के साथ इन्हीं आदर्शों और मर्यादाओं की रक्षा के लिए इन्होंने कठोरता के साथ व्यवहार किया, राजनेता के रूप मे भी यही भावना इन्हें अपने साथ और सहयोगियों के प्रति सदा गंभीर और कठोर अनुशासक के रूप में बनाये रखती थी. और परिवार में भी यही अनुशासन सब को व्यवस्थित रखता था और सदा आदर्श की ओर प्रेरित करता रहता था. इन के साथ प्रातःकाल जलपान के लिए बिना स्नान किये हुए छोटे-से-छो बालक का भी बैठना संभव नहीं था. और इन का भोजन सदा भगवान के प्रति समर्पण और अर्घ्यदान से प्रारंभ होता था. ये घर में हों, यात्रा पर हों, देश में हों, विदेश में हों, इन की मान्यताओं और उन के प्रति व्यवहार में कभी अंतर नहीं पड़ा.

संपूर्णानंद जी को यह देश इने-गिने विद्वानों में मानता है. सन् १९४८ में जब उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ़ फ़िलासाफी की उपाधि दी गयी थी तो इन के गुणों का बखान करते हुए **श्रीमती** सरोजिनी नायडू ने कहा, "संपूर्णानंद जी विद्वानों में विद्वान् है, हमें उन पर गर्व है". इसी प्रकार की बात काशी पटदर्श विद्वान् **गोस्वामी जी** ने भी इन के 'चिदविलास' के प्रकाशन पर कही थी. उन की मान्यता थी कि दर्शन का इन्हें अभूतपूर्व ज्ञान है. वेदों, उपनिषदों और पुराणों का इन्होंने बड़ा गहरा अध्ययन किया था किंतु एक वाक्य में कहा जाये तो इन के अध्ययन की सीमा नहीं थी. ऐसी थोड़ी-सी ही विद्याएँ होंगी जिन में इन की गति नहीं थी अन्यथा ज्ञान-विज्ञान का कोई क्षेत्र क्यों न हो यह किसी को भारी पत्थर मान कर छोड़ने के लिए कभी प्रस्तुत नही हुए. इन की सारी दिनचर्या का अधिकांश स्वाध्याय से बाधित था. इन के पांडित्य पर यदि इस देश और हिंदी भाषा को गर्व हो तो यह नितांत उचित है.

राजनीति के क्षेत्र में और प्रशासक के रूप में इन्होंने जो कार्य किया है उस को थोड़े में समेटना सभव नहीं है. इन के सभी कार्य दृढ़ संकल्प के साथ होते थे. केवल ो उदाहरण इस समय पर्याप्त होंगे. उत्तरप्रदेश के मुख्य-मंत्रित्व से इस्तीफ़ा देने के लिए यह किन कारणों से कृत-संकल्प हुए इस का उल्लेख यद्यपि यहाँ उचित नही है फिर भी उन के इस संकल्प पर डटे रहने के कारण उत्तरप्रदेश में जो परिवर्त्तन हुआ वह सब के सामने है. किंतु बात कह देने के बाद उस से विरत होना अमर्यादित होता और यह जानते हुए और लोगों के बार-बार परामर्श देने के बावजूद कि उन के शासन की बागडोर छोड़ देने पर उत्तरप्रदेश की नाव बिना पतवार के हो जायेगी, वह अपनी बात से पीछे नहीं मुड़े. राजस्थान में सिद्धांत की बात थी. कांग्रेस सब से बड़ा राज-नैतिक दल इन्हें प्रतीत हुआ और इस बात का विश्वास कर लेने के बाद उन्होंने जो बयान दिया और जिस प्रकार राजस्थान में व्यवस्थित शासन की स्थापना की भले ही उसमे इन्हें थोड़े दिनों के लिए विरोधियों के बीच अप्रिय सत्य कहने के कारण निंदा का पात्र बना दिया हो किंतु इन का निश्चय अपना अंतिम निश्चय था.

संपूर्णानंद के न रहने पर भारतीय मज़दूर ने एक विचारवान नेता खोया है, भारत के ग़रीबों ने समाजवाद का ऐसा व्याख्याता खोया है जो भारत को समृद्ध देखना चाहता था किंतु जो उस के समाज को विकलांग नही करना चाहता था, शासनतंत्र ने ऐसा प्रशासक खोया है जो इस तंत्र को तमाम आधुनिक साधनों से संपन्न करते हुए भी भारतीय आचार-विचार और नैतिकता पर आधारित रख सकता था और भारतीय राजनीति ने ऐसा द्रष्टा खोया है जो भविष्य को पहचानता था, जो आगे की सोच सकता था और जो राजनीति में दलगत भेदों से ऊपर उठ कर देश के हित के लिए नैतिकता और आदर्श पर आधारित राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण के गठन पर ज़ोर देता था. आज ऐसे संपूर्णानंद जी के न रहने पर यह देश बहुत दिनों तक अपने बीच एक ऐसे अभाव का अनुभव करता रहेगा जिस की पूर्ति कब होगी कौन जाने. संपूर्णानंद जी का जीवन ज़रूर समाप्त हुआ है किंतु उन का जीवन चरित प्रारंभ हुआ है. उन के जीवन चरित की बहुत-सी बातें आगे आयेंगी. वह अपने यशः शरीर से सदा जीवित रहेंगे.

ताशकंद वर्षगाँठ

सद्भाव के अथक प्रयत्न

ललिता शास्त्री : आराध्य की आराधना

ताशकंद समझौते की तीसरी वर्षगाँठ भारत ने पाकिस्तान के सामने आपसी संबंध सुधारने की ठोस योजना रख कर मनायी तो पाकिस्तान में राष्ट्रपति अय्यूब खाँ के विरोधियों ने लाहौर और कराची में इस अवसर पर प्रदर्शन कर ताशकंद घोषणा की तो निंदा की ही साथ ही सोवियत संघ को संशोधनवादी बता कर उस के विरुद्ध भी नारे लगाये. इन प्रदर्शनों में छात्रों और भूतपूर्व विदेशमंत्री श्री भुट्टो की वामपंथी पीपुल्स पार्टी के लोगों ने मुख्य रूप से भाग लिया. लाहौर में जहाँ कि ताशकंद समझौते पर दस्तखत होते ही उपद्रव हुए थे जुलूस निकाला गया, भुट्टो के समर्थकों और पाकिस्तान के दक्षिणपंथी लोकतंत्र आंदोलनकारियों के बीच मुठभेड़ हुई जिस में एक छात्र के घायल होने का समाचार भी मिला है.

भारत के प्रयत्न : भारत ने इस अवसर के महत्त्व को समझते हुए सभी आपसी मतभेदों को दूर करने और अंत में दोनों देशों के बीच युद्ध वर्जन की घोषणा की संभावनाओं का पता लगाने के लिए अपनी ओर से संयुक्त व्यवस्था का सुझाव पाकिस्तान के सामने रखा. इस से पहले भारत के राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसेन और प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने ताशकंद की तीसरी वर्षगाँठ के अवसर पर राष्ट्रपति अय्यूब खाँ को संदेश भेज कर पाकिस्तान की सुख-समृद्धि की कामना की थी. भारत स्थित पाकिस्तान के उच्चायुक्त सज्जाद हैदर को भारत के विदेशमंत्रालय के सचिव केवलसिंह ने जो पत्र दिया उस के साथ ही इस विषय पर श्रीमती गांधी के हाल ही के संवाददाता-सम्मेलन में व्यक्त विचार की एक प्रामाणिक प्रति भी ी गयी जिस से कि इस प्रश्न पर भारत का रवैया और भी स्पष्ट हो जाय.

भारत ने अपनी ओर से इस बात की सहमति दे ी है कि पाकिस्तान जिस स्तर पर भी चाहे उसी स्तर पर संयुक्त व्यवस्था की स्थापना हो सकती है लेकिन भारत के विचार में इस संयुक्त व्यवस्था का सब से पहला काम यह होगा कि ोनों देशों की ओर से युद्ध का त्याग करने के बारे में समय समय पर जो विचार प्रकट किये जाते रहे हैं, उन का भली प्रकार अध्ययन कर उन्हें वास्तविकता का रूप दिया जाये. भारत अब भी यही समझता है कि यदि ोनों देश युद्ध के त्याग की प्रतिज्ञा कर लें तो उन के आपसी मतभे ों की समस्याओं के समाधान का मार्ग सुगम हो जायेगा.

पाक रवैये में कुछ परिवर्त्तन : भारत ने संयुक्त व्यवस्था का यह ताजा प्रस्ताव पाक रवैये में कुछ परिवर्त्तन का आभास मिलने पर ही रखा है. पिछले वर्ष २७ अक्तूबर को राष्ट्रपति अय्यूब खाँ ने अपने एक भाषण में यह सुझाव रखा था कि अन्य प्रश्नों पर मतभेद तय करने के साथ-साथ ही युद्ध का त्याग करने की घोषणा के आदान-प्रदान की बातचीत भी दोनों देशों में होनी चाहिए जब कि इस से पहले श्रीमती गांधी ने १५ अगस्त '६८ के अपने संदेश में युद्धवर्जन की घोषणा के आदान-प्रदान का जो प्रस्ताव दोहराया था उस पर राष्ट्रपति अय्यूब की प्रतिक्रिया यह थी कि कश्मीर का मामला तय किये बिना इस तरह का प्रस्ताव रखना दुनिया को धोखे में डालना है. इस संदर्भ में राष्ट्रपति अय्यूब का अक्तूबर में रखा गया सुझाव उन के रवैये में परिवर्त्तन का स्पष्ट संकेत है. एक बड़ा परिवर्तन तो यह कि राष्ट्रपति अय्यूब युद्धवर्जन प्रस्ताव के लिए अन्य मतभेदों के निबटारे को एक शर्त नहीं बना रहे हैं. दूसरे वे यह स्वीकार कर रहे हैं कि मतभेद दोनों देशों में सीधी वार्त्ता से तय होने चाहिए किसी तीसरे पक्ष की मध्यस्थता से नहीं. अपने नव वर्ष संदेश में श्रीमती गांधी ने राष्ट्रपति अय्यब के रवैये में इस परिवर्तन पर प्रतिक्रियास्वरूप यह अनुभव किया कि युद्धवर्जन घोषणा के आदान-प्रदान के समझौते और मतभेद वाले अन्य मामलों को निबटाने का कार्य एक साथ करने के लिए संयुक्त व्यवस्था स्थापित की जा सकती है.

भारत ताशकंद-समझौते पर क़ायम : पाकिस्तान की इस समझौते के प्रति उदासीनता के बावजूद भारत ने ताशकंद समझौते की अनेक व्यवस्थाओं को मूर्त्त रूप दिया है. पाक-भारत संघर्ष के दौरान सैनिक टैंकों को छोड़ अधिकार में लिया गया समूचा साज़-सामान भारत ने लौटा दिया. वीसा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के मामलों में नियमों को अधिकाधिक उदार बनाने का अनुरोध भी भारत बराबर करता रहा है. इस के अलावा कश्मीर सहित अन्य मामलों पर बिना कोई शर्त लगाये बातचीत के सुझाव भी भारत की ओर से बराबर रखे जाते रहे हैं.

एक और चाल : अपनी भारत यात्रा के दौरान शाह ईरान ने ोनों देशों को आपसी सहयोग और बातचीत से मतभेद दूर करने का सुझाव दिया. मगर पाकिस्तान ने इस की ग़लत व्याख्या करते हुए एक नया राजनयिक दाँव खेलना आरंभ किया है. शाह ईरान ने अपने पत्रकार सम्मेलन में यह प्रस्ताव कभी नहीं रखा कि वह भारत-पाकिस्तान के मतभेदों को दूर करने के लिए मध्यस्थ का कार्य करने के लिए उत्सुक हैं. उन से जब पूछा गया कि क्या वह इस मामले को सुलझाने में सहायता देंगे तो उन्होंने कहा 'कि ऐसा उसी स्थिति में हो सकता है जब कि दोनों पक्ष मुझ से ऐसा करने को कहें और वह कह भी दें तब भी मैं कोई क़दम तभी उठा सकता हूँ जब मुझे स्पष्ट रूप से मालूम हो जाय कि वह चाहते क्या हैं.' उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि इन दो राष्ट्रों को मेरे बिना ही मतभेद दूर करना चाहिए. भारत की नीति भी यही रही है कि भारत पाकिस्तान की समस्या ही इस प्रकार की है कि उस का हल दोनों पक्षों की आपसी बातचीत से ही निकाला जा सकता है. भारत सरकार के एक प्रवक्ता ने कहा कि भारत किसी तीसरे की मध्यस्थता के पक्ष में नहीं है. भारत-ईरान संयुक्त विज्ञप्ति में भी मध्यस्थता के प्रस्ताव का कोई जिक्र नहीं है, बल्कि ईरान के शाह ने भारत के उन प्रयत्नों की सराहना की है जो वह पाकिस्तान से अपने संबंध सुधारने के लिए कर रहा है, इस संबंध में जहाँ कुछ राजनैतिक दलों ने भारत के युद्ध न करने के प्रस्ताव का स्वागत किया है वहीं जनसंघ के नेता बाजपेयी ने घोषणा की है कि उन का दल स प्रस्ताव का विरोध करेगा क्यों कि पाकिस्तान ने शाह के श ों को तोड़-मरोड़ कर भारत पर एक नया राजनयिक वार किया है . राजनैतिक हल्कों में पाकिस्तान के इस प्रस्ताव के दोहरे उद्देश्य की चर्चा है. यह कह कर कि पाकिस्तान, शाह ईरान के मध्यस्थता के प्रस्ताव (जो उन्होंने दिया नहीं था) को स्वीकार करता है उस ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि पाकिस्तान शांति के लिए प्रयत्नशील है मगर दूसरा उद्देश्य अधिक गंभीर और कुटिलतापूर्ण है. स प्रस्ताव का वि ोध करवा कर पाकिस्तान ईरान और भारत की मित्रता में दरार पैदा करना चाहता है. ताशकंद-समझौते के बाद सभी देशों ने यह महसूस किया कि कश्मीर की समस्या का हल केवल भारत और पाकिस्तान ही निकाल सकते हैं, तीसरा कोई नहीं.

कच्छ निर्णय

न्यायालय के मंच से

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कच्छ-प्रश्न पर अपना निर्णय दे कर इस संबंध के समूचे विवाद और आंदोलन की संभावनाओं को समाप्त कर दिया. अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के कच्छ संबंधी निर्णय को ले कर भारत में बहुत उत्तेजना फैली थी और संसद् में तथा संसद् से बाहर इस पर तीव्र विवाद उठ खड़ा हुआ था.

न्यायालय के द्वार पर : आंदोलनों और प्रदर्शनों का रास्ता छोड़ कर इस के लिए न्यायालय का द्वार खटखटाया गया और अनेक नागरिकों ने न्यायालय में इस आशय की याचिकाएँ पेश कीं कि संसद् की स्वीकृति के बिना केंद्र सरकार भारत का कोई भी इलाक़ा पाकिस्तान को हस्तांतरित नहीं कर सकती, इस लिए भारत सरकार को अंतरराष्ट्रीय अदालत द्वारा दिया गया कच्छ-निर्णय लागू करने से रोका जाये.

अंतिम निर्णय : अपना अंतिम निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय को लागू करने के लिए दोनों सरकारों ने पत्र व्यवहार द्वारा जो फ़ैसले किये हैं वे सरकार के कार्यकारी पक्ष के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं. इस के लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता नहीं है. सर्वोच्च न्यायालय की दृष्टि से यह भारत के किसी प्रदेश को दूसरे देश को सौंपने का मामला नहीं है बल्कि दोनों देशों के बीच पहले से निर्धारित सीमा में कुछ फेर बदल का मामला है, जो कार्यकारी पक्ष के पूर्ण रूप से अधिकार-क्षेत्र में है. दो देशों के बीच सीमा का फेर-बदल जो अंतरराष्ट्रीय क़ानून की दृष्टि से आवश्यक हो, कार्यकारी पक्ष के अधिकार की चीज है और यह तब तक उसी का अधिकार है जब तक संसद् से इस के विपरीत कोई स्पष्ट आदेश न लिया गया हो.

सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार इस न्यायालय को नहीं है, इस लिए इसे अपील नहीं माना जाना चाहिए. तथ्य यह है कि भारत अंतरराष्ट्रीय न्यायालय का निर्णय मानने के लिए वचनबद्ध है और यह निर्णय लागू होना ही चाहिए था. सर्वोच्च न्यायालय का कहना था कि कच्छ का रण्ण समूचा भारतीय प्रदेश है, इस के पक्ष में कोई ठोस और स्पष्ट सबूत नहीं मिला, इस लिए इसे सीमा-विवाद ही समझना चाहिए मुख्य न्यायाधीश का कहना था कि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय से पहले स्थिति यह थी कि संघर्ष शुरू हुआ. फिर युद्ध-विराम हुआ, और पंच फ़ैसले द्वारा झगड़ा तय होना था. दोनों पक्षों ने अपने-अपने दावे पेश किये और सीमा पर ऐसे निशान नहीं थे जिन्हें दोनों पक्ष स्वीकार करते हों. नक़्शे में इस क्षेत्र की कोई निरंतर सीमा अंकित नहीं रही और अलग-अलग ऋतुओं में इस प्रदेश की स्थिति अलग-अलग रहती है. वर्ष में कभी यह जलयुक्त तो कभी खुश्क होता है. ऐसी स्थिति में इसे सीमा के पार का प्रदेश मानने या न मानने का प्रश्न नहीं है. सर्वोच्च न्यायालय ने अंत में कहा है कि सुनवाई में जो काग़ज़ात पेश किये गये उन से सीमा-निर्धारण में सहायता मिली पर स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर शास्त्री का यह कहना कि कच्छ का समचा रण्ण भारत का है, न्यायालय के लिए कोई सबूत नहीं होसकता.

प्रतिरक्षा

दूसरी पनडुब्बी

रूस ने १९६५ में भारत के साथ एक समझौता किया था जिस के अंतर्गत उस ने भारत को ४ पनडुब्बियाँ देने का इक़रार किया था. कलवरी नाम की पहली पनडुब्बी ६ जुलाई १९६८ को जब विशाखापत्तनम् नौसैनिक अड्डे पर पहुँची थी, तब उस के स्वागत के लिए लगभग सारा नौसैनिक अमला वहाँ मौजूद था. कंदेरी नाम की दूसरी पनडुब्बी रूस मई में भारत को देगा और शेष दो पनडुब्बियाँ एक साल के भीतर दे दी जायेंगी. कंदेरी पनडुब्बी को दो सप्ताह पूर्व बल्टिक सागर के रीगा नौसैनिक अड्डे पर संचालन के लिए उतारा गया यहीं ७० भारतीय सैनिकों ने प्रशिक्षण लिया. कंदेरी को भारत लाने के लिए भारतीय नौसैनिकों का एक दल मार्च में रीगा पहुँचेगा और कंदेरी केप ऑफ़ गुड होप से १२,००० मील का सफ़र दो महीने में तय कर मई में विशाखापत्तनम् पहुँच अपना स्थान कलवरी के साथ ग्रहण करेगी. यह पनडुब्बी 'एफ़' प्रकार की होगी, जैसे कि कलवरी पनडुब्बी थी. इस का चालन डीज़ल से होगा और आकार ३०० फ़ुट × २७ फ़ुट × १९ फ़ुट होगा और इस पर २००० टन तक भार लादा जा सकेगा. यह पनडुब्बी २० टारपीडो और ७० चालकों के स्थान पर भार वहन कर सकती है.

आधुनिकीकरण : अपनी नौसेना का आधुनिकीकरण करने की इच्छा पहले-पहल भारत ने १९६५ में पाकिस्तान के हमले के बाद महसूस की. इस के पूर्व भारत यह समझता था कि उस की नौसैनिक शक्ति खासी है और वह अपने १२ मील के क्षेत्रीय समुद्र जो अंदमान निकोबार, मिनिकाय और लकादीवी द्वीपों के आसपास है की रक्षा बखूबी कर सकता है. लेकिन बहुत जल्दी भारत का यह मोहभंग हो गया और उस ने यह महसूस किया कि उस की नौसेना काफ़ी शक्तिशाली नहीं है, जब तक उस के पास आधुनिक पनडुब्बियाँ नहीं होंगी, तब तक उसे चीन या पाकिस्तान से हमले का संभावित खतरा बना रह सकता है. भारतीय अमले में इस समय एक विमान-वाहक, दो जंगी जहाज़, ३ विनाशक, १४ फ़्रिगेड और कई छोटे-छोटे जहाज़ हैं. इन में से बहुत से लड़ाकू जहाज या तो बहुत पुराने हो चुके हैं, या पुर्ज़ों के अभाव के कारण नाकाम पड़े हुए हैं. आधुनिकीकरण करने के इस दौर में भारत ने रूस के अलावा ब्रिटेन से भी संबंध क़ायम किये और ब्रितानी 'लीडर' क़िस्म के फ़्रिगेड बंबई में बनाने के लिए एक ब्रितानी संस्था से सहयोग की बात की थी. इस क़िस्म के एक फ़्रिगेड का संचालन पिछले साल किया गया है और आशा की जा रही है कि १९७० तक यह फ़्रिगेड अपना काम चालू कर देगी.

नौसैनिक शक्ति : जहाँ तक भारत की प्रतिरक्षा का संबंध है भारत के पास जहाँ ९ लाख सेना है वहाँ नौसैनिकों की संख्या केवल १७,००० है जब कि इंदोनेसिया की नौसैनिक शक्ति ४०,००० है और उस के पास १२ पनडुब्बियाँ, ७ विनाशक और १२ फ़्रिगेड हैं. इस्राइल जैसे छोटे से देश के पास भी ४ पनडुब्बियाँ हैं. पाकिस्तान के पास एक पनडुब्बी और दो बड़े विनाशक हैं जब कि चीन के पास २३ बढ़िया क़िस्म की पनडुब्बियाँ और ७ रूसी पनडुब्बियाँ हैं. उस के ज़खीरे में विनाशकों की संख्या १० और १५० मोटर टारपीडो नौकाएँ हैं.

उप-चुनाव

विरुधू नगर से नागर-कोल तक

सन् ६७ के आम चुनाव में विरुधूनगर से कांग्रेस के जो कामराज एक मामूली छात्र नेता से पराजित हो गये थे वही कामराज इस उप-चुनाव में द्रमुक सरकार की सारी शक्ति के प्रतीक मथाई को एक लाख २८ हज़ार मतों से पराजित करने में सफल हो गये. पिछले महीने भर में नागरकोल क्षेत्र में मद्रास सरकार के सारे मंत्रियों के कैंप लगे रहे. ग़ैर कांग्रेसी विभिन्न दलों की ओर से जन और धन की जो वर्षा होती रही वह सब बेकार हो गयी. क्यों कि यह चुनाव प्रतिष्ठा का चुनाव था इस लिए कांग्रेस ने भी प्रचार में कोई कसर नहीं उठा रखी थी. दोनों ओर की कोशिशों के बाद जो नतीजा निकला उस से यह बात साफ़ हो गयी कि सन् ६७ की राजनैतिक हवा में कांग्रेस का जो विरोध था वह ६९ के प्रारंभ में वैसा ही नहीं रह गया था. द्रमुक सरकार के मंत्री विशेष कर करुणानिधि वग़ैरह असली कारणों को नज़रअंदाज कर के यह कह कर खुद को बहलाने की कोशिश कर रहे हैं कि चुनाव जातीयता के आधार पर हुआ उस में रुपये ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की. द्रमुक के कुछ लोगों को यह भी शिकायत है कि कम्यु-

निस्टों ने उन का साथ ईमानदारी से नहीं दिया. असलियत यह है कि कामराज को जितने वोट मिले वे सभी विरोधी उम्मीदवारों को मिले मतों से कहीं ज्यादा हैं. इसी लिए किसी क का साथ देने का कोई महत्त्व कामराज के लिए नहीं रह जाता. नागरकोल की सीट पिछले दो चुनावों से कांग्रेस की परंपरागत सीट रही. वह ए. नेसामणि के निधन के बाद रिक्त हुई थी. नेसामणि उस क्षेत्र के बहुत ही लोकप्रिय नेता थे. इस चुनाव में कामराज को अपनी निजी प्रतिष्ठा के अलावा कांग्रेस और नेसामणि के नाम का लाभ भी मिला. राजनैतिक हवा के बदल जाने का एक संकेत पिछले दिनों के मद्रास-नगर निगम के चुनाव में भी मिला था जिस में कांग्रेस बहुमत में तो नहीं आ सकी थी लेकिन उस की प्रतिष्ठा ज़रूर बढ़ गयी थी.

मतभेद और असफलता : द्रमुक सरकार की इकाइयों में मतभेद के संकेत पहले भी मिले थे. इस उपचुनाव के अवसर पर वे स्पष्ट हो कर सामने आ गये. संयुक्त मोर्चे ने स्वतंत्र दल के डॉ. मथाई को समर्थन देने का फ़ैसला किया लेकिन वामपंथी उस से सहमत नहीं हुए और उन्होंने अपना उम्मीदवार अलग से खड़ा किया. आम चुनाव के पहले द्रमुक ने जनता से जो वायदे किये थे उन्हें पूरा करने में उसे सफलता नहीं मिली. शासक के रूप में द्रमुक सरकार ने जो कट्टरपंथी नीति अपनाई उस से लाभ की बजाय हानि हुई. इस का क प्रमाण तो यही है कि रेडियो से सुबह के ८ बजे हिंदी का समाचार पहले प्रसारित किये जाने के विरोध में द्रमुक ने जो उत्तेजना फैलाने की कोशिश की थी उस का नागरकोल चुनाव क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं देखा गया. उस की लोकप्रियता में भी निरंतर कमी आई है. नगर निगम के चुनावों में उस की प्रतिष्ठा गिरी, आर्थिक मंच पर उस ने जनहित का कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया. भाषा-संबंधी दृष्टिकोण ने एक वर्ग को शंका का शिकार बनाया, कृषि क्षेत्र में भी जनता को आकर्षित करने के लिए कोई काम नहीं हुआ. इस चुनाव के ठीक पहले राजा जी और स्वतंत्र दल ने भी द्रमुक को यह सुझाव दिया कि वह वामपंथी कम्युनिस्टों से अपना संबंध तोड़ ले. लेकिन उस ने ऐसा नहीं किया. संभावना इस बात की भी है कि आने वाले दिनों में करुणानिधि और उन के समर्थक भी द्रमुक को इसी तरह का दबाव दे सकते हैं.

कामराज की विजय में कांग्रेस की एकता का भी बहुत बड़ा हाथ है. सुब्रह्मण्यम और टी. टी. कृष्णमाचारी ने जिस उत्साह और ईमानदारी से प्रचार-आंदोलन को गति देने की कोशिश की उस से यह स्पष्ट था कि दल के भीतर के मन-मुटाव समाप्त हो गये हैं. एकता की यह स्थिति यदि वास्तविक अर्थों में भविष्य में भी बनी रही तो उस से कांग्रेस की स्थिति बेहतर होगी. मद्रास राज्य में कांग्रेस के आपसी मन-मुटाव की प्रवृत्ति काफ़ी गंभीर रूप ले चुकी थी. अगर इस चुनाव के साथ-साथ वह खत्म हो गयी तो उस से भी द्रमुक को काफी आघात लगेगा.

इस चुनाव ने कामराज की उस शर्मिंदगी को भी खत्म किया है जो उन्हें सन् '६७ के आम चुनाव में पराजित हो जाने के बाद मिली थी. निश्चय ही संसद् सदस्य के रूप में अब वह प्रधानमंत्री और उत्तर भारत दोनों के नजदीक रहेंगे. चर्चा तो यह भी है कि उन्हें केंद्रीय मंत्रिमंडल में रखा जा सकता है. ऐसा न हो तब भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. कामराज संगठन में सक्षम और दूरदर्शी हैं. उन की एक विशेषता यह भी है कि वह विरोधी गुटों को किसी न किसी तरह एक बिंदु पर ला कर समझौते की स्थिति पैदा करने में भी सक्षम हैं. उन के संसद् में आ जाने से उत्तर और दक्षिण का संपर्क-सूत्र कुछ अधिक जीवंत होगा और बहुत मुमकिन है कि मद्रास और केंद्र के बीच रस्साकशी की जो स्थितियाँ यदा-कदा पैदा होती रही हैं उन में भी कमी आये. द्रमुक सरकार के शासनकाल में मद्रास राज्य निरंतर केंद्र से अलग होने की प्रवृत्ति को उकसाता रहा है और इस की वजह से राष्ट्रीय एकता की धारा भी बाधित होती दिखाई देती रही है. कामराज का राष्ट्रीय मंच पर उद्भव इन सारी चीज़ों को सही दिशा देने में सहायक हो सकेगा.

शिक्षक आंदोलन

ग़ैर-कांग्रेसी मोड़

माध्यमिक शिक्षकों का आंदोलन अधिक उग्र होने के कारण उन्हें प्राथमिक शिक्षकों की अपेक्षा समझौते से अधिक लाभ मिला है. बंदी शिक्षकों को रिहा करने और आंदोलन में भाग लेने के कारण उन के विरुद्ध किसी प्रकार की क़ानूनी या अनुशासनात्मक कार्यवाही न करने के लिए शासन को वचन-बद्ध कराया गया है. फलतः ग़ैर-सरकारी माध्यमिक शिक्षकों को कम से कम १५ रु० और अधिक से अधिक ४० रु० प्रतिमास का वेतन में लाभ होगा. महँगायी भत्ते के रूप में अतिरिक्त मिलने वाली क़िश्त अलग है.

सरकार को प्राथमिक शिक्षकों के कारण ६ करोड़ २५ लाख रु० का अतिरिक्त भार वहन करना होगा. माध्यमिक शिक्षकों के कारण यह भार १ करोड़ ४० लाख रु० होगा और व्यय की यह रक़म हर साल बढ़ती जायेगी. कम लाभ मिलने पर भी प्राथमिक शिक्षकों का खर्चा इस लिए अधिक हो गया है क्यों कि माध्यमिक शिक्षकों की अपेक्षा उन की संख्या अत्यधिक है.

'९६ दिन के आंदोलन के बाद भी उ. प्र. सरकार ने जो कुछ प्राथमिक शिक्षकों को दिया है, वह अपनी समझ और स्वेच्छा से नहीं, विभिन्न प्रकार के दबावों से मजबूर हो कर. यही कारण है कि प्राथमिक शिक्षकों ने अपने अनशन का कार्यक्रम तो समाप्त कर दिया है किंतु आंदोलन जारी रखा है. इस समय वे अपने आंदोलन की नयी रूप-रेखा बना रहे हैं और अति शीघ्र यह आंदोलन शुरू कर दिया जायेगा'. अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक संघ के अध्यक्ष हीरालाल पटवारी ने ये शब्द **दिनमान** के इस प्रश्न के उत्तर में कहे कि उत्तरप्रदेश के प्राथमिक शिक्षक आंदोलन का उन का अपना अनुभव क्या रहा.

'आर्थिक स्थिति तो प्रायः सभी राज्य सरकारों की डावाँडोल है, कम से कम राज्य सरकारें कहती यही हैं. किंतु प्रश्न मनोवृत्ति का है. उत्तरप्रदेश की सरकार में वांछित मनोवृत्ति का अभाव है वरना मिलजुल कर, एक-दूसरे की आवश्यकताओं को समझ कर ऐसे उपाय निकाले जा सकते हैं जिन से पारस्परिक टकराव की नौबत न आये. बातचीत में राज्यपाल का रुख ही ठीक न था. २७ सितंबर को मुख्य सचिव भी समस्याओं पर बात चलाने को इस कारण तैयार नहीं हुए क्यों कि कोठारी आयोग की रिपोर्ट में प्राथमिक शिक्षकों के लिए कोई वेतन-क्रम निर्धारित नहीं किया गया है.'

श्री पटवारी का कहना है कि जहाँ-जहाँ शिक्षण संस्थाएँ जिला परिषदों के अंतर्गत

हैं, वहां-वहां राजनीति है और उत्तरप्रदेश में भी है. अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक संघ का मत है कि प्राथमिक शिक्षा को स्वस्थ बनाने के लिए इन शिक्षण संस्थाओं और इनके शिक्षकों को जिला परिषदों से छुटकारा दिलाना होगा. उस का यह भी निश्चित मत है कि प्राथमिक शिक्षा—हर स्तर की शिक्षा—केंद्रीय विषय होना चाहिए. संघ अपनी तरह से इसके लिए प्रयत्नशील है. यह एक बात अपनी जगह बिलकुल अलग है, किंतु उत्तरप्रदेश में, जहां प्राय: सभी जिला परिषद् कांग्रेस दल के प्रभाव में हैं, इन जिला परिषदों के अध्यक्षों द्वारा प्राथमिक शिक्षकों के वेतन से जबरन कांग्रेस-चुनाव कोष के लिए रुपया काटा जाता है. श्री पटवारी का कहना है कि क़ानून के खिलाफ़ यह अनैतिक कार्य प्रदेश भर में होता है. उन को बताया गया है कि राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में भी प्राथमिक शिक्षकों से लिया गया धन कहीं-कहीं नहीं जमा किया गया या उस का हिसाब-किताब ठीक से नहीं रखा गया. इस के अलावा पटवारी को सूचना मिली है कि कांग्रेस नेताओं के जन्म-दिवस मनाने के लिए भी शिक्षकों की तनख़्वाह काट कर जबरन चंदा वसूल किया गया है. इस प्रकार प्राथमिक शिक्षक कांग्रेस दल की गाय बन गये हैं, जब चाहो दुहने के लिए. इस से अधिक अफ़सोस की बात यह है कि जब कांग्रेस विधाताओं को यह सब बताया गया तो एक ने कहा, 'यह नहीं होना चाहिए, पर इस की चर्चा करने से कांग्रेस बदनाम होती है.' दूसरे ने कहा, 'इस में क्या हुआ, यह तो बराबर होता ही रहा है.' श्री पटवारी इस से बिलकुल सहमत नहीं हैं. 'मैं भारत के प्राय: सभी प्रदेशों में गया हूं और वहां की स्थिति का अध्ययन किया है, किंतु कहीं पर ऐसा नहीं पाया. नि:संदेह यह उत्तरप्रदेश की ही विशेषता है. एक ओर तो यह स्थिति है और दूसरी ओर जब शिक्षकों के वेतन या महगाई भत्ता बढ़ाने का प्रश्न होता है तब इसी कांग्रेस के एक प्रभावशाली मुख्यमंत्री ने तरह-तरह से इस का विरोध किया है. यह बी. जी. खेर कमेटी के सामने हुआ था जब वह उत्तरप्रदेश में आयी थी. प्राथमिक शिक्षकों की दशा सुधारने के काम में सभी प्रदेशों में कुछ न कुछ अड़चनें सामने आती हैं किंतु इस संबंध में उत्तरप्रदेश के मेरे अनुभव कटु तो क्या कहूं, प्रिय, सुखद और उत्साहवर्धक नहीं रहे. पर मैं हतोत्साह नहीं हूं. संघर्ष हमारी प्रयोगशाला है. परीक्षा के पर्चे कठिन और सरल हुआ ही करते हैं.'

अखिल भारतीय स्तर पर प्राथमिक शिक्षकों की समस्याएं क्या हैं और केंद्र उन से किस प्रकार संबद्ध है, इस संबंध में पटवारी ने कहा कि जिला परिषदों के प्राथमिक शिक्षकों को समय से वेतन नहीं मिलता. और इस हेतु मिलने वाला सरकारी अनुदान अन्य कार्यों में लगा दिया जाता है; जो शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए भेजे जाते हैं उन की सेवाएं समाप्त कर दी जाती हैं और उन को नाममात्र के लिए प्रशिक्षण काल में स्टाइपेंड दिया जाता है—वेतन नहीं; शिक्षकों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर नहीं की जाती और स्थानांतरण के बहाने उन्हें सताया जाता है; महिला शिक्षकों की विशेष दुर्गति होती है; शिक्षकों से भविष्य निधि के लिए उगाही गयी धनराशि का कोई हिसाब नहीं रखा जाता, शिक्षकों को उस का कोई ब्यौरा नहीं दिया जाता और ऐसे दृष्टांत भी नज़र आये हैं जिन में संपूर्ण भविष्य निधि गोल हो गयी है. उदाहरण के लिए उन्होंने असम के डिबरूगढ़ का नाम लिया जहां शिक्षकों की भविष्य निधि में गड़बड़-घोटाला किया गया और बाद में राज्य सरकार को वह रक़म अपने पास से भरनी पड़ी. फिर भी अब तक यह पता नहीं चल पाया कि किस शिक्षक के खाते में कितनी रकम जानी चाहिए. पटवारी के अनुसार ये गड़बड़ियां प्राय: सभी प्रदेशों में चल रही हैं. इन का निराकरण आवश्यक है. जिला परिषद् सभी जगह भ्रष्टाचार के केंद्र हैं, उन की छत्र-छाया में प्राथमिक शिक्षा का विकास नहीं हो सकता. प्राथमिक शिक्षक खुश नहीं रह सकते. इस दिशा में राज्य कोई दिलचस्पी नहीं लेते और यदि वे यह विषय पूर्णत: अपने अधिकार में ले भी लें अर्थात् ज़िला परिषदों को इस भार से सर्वथा मुक्त कर दें तब भी हर राज्य अपने क्षेत्र में अपनी तरह से काम करेगा. प्राथमिक शिक्षा का देश में एक स्तर नहीं बन पायेगा और न उस की समानगति से देशव्यापी प्रगति हो सकेगी. इस कारण समस्या का सीधा संबंध केंद्र से हो जाता है. यह तो समस्या का केंद्र से मूल संबंध हुआ. वैसे भी कोठारी आयोग, जिसने प्राथमिक शिक्षा व शिक्षकों के बारे में सिफ़ारिशें की हैं, केंद्र द्वारा नियुक्त किया गया था अत: उस की स्वीकृत सिफ़ारिशों को राज्यों द्वारा लागू कराने का उत्तरदायित्व केंद्रीय सरकार का है. अ. भा. प्राथमिक संघ कोठारी आयोग की सिफ़ारिशों को अपर्याप्त समझता है और घोषित राष्ट्रीय शिक्षा-नीति को प्राथमिक शिक्षा के संबंध में घोर निराशाजनक.

प्राथमिक शिक्षकों के दारुलशफ़ा में हुए एक विशेष अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय किया गया है कि मध्यावधि चुनाव में कांग्रेसी प्रत्याशियों का खुल कर विरोध किया जाये, उन्हें हराया जाये. इस प्रस्ताव की पृष्ठभूमि बताते हुए अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक संघ के अध्यक्ष हीरा लाल पटवारी ने कहा कि कांग्रेस चुनाव कोष में प्राथमिक शिक्षकों से जबरन पैसा वसूल करने के कारण कांग्रेस-दल के प्रति अति तीव्र असंतोष उत्पन्न हुआ है. दूसरे, कांग्रेस दल के किसी प्रतिनिधि ने ९६ दिन के लम्बे अनशन-कार्यक्रम में अनशनकारियों से न कोई सम्पर्क स्थापित किया और न कोई सहानुभूति प्रदर्शित की जब कि अन्य राजनैतिक नेतागण बराबर उन से सम्पर्क स्थापित किये रहे. इतना ही नहीं, मोरारजी देसाई और चव्हाण ऐसे नेता बराबर यही कहते रहे कि प्राथमिक शिक्षकों की मांगें पूरी नहीं की जा सकतीं. इन सब कारणों से कांग्रेस दल ने प्राथमिक शिक्षकों की सहानुभूति खो दी है और वे इस का विरोध करने पर मजबूर हो गये हैं. पटवारी ने पूछने पर इस बात से इनकार किया कि इस प्रक्रिया से उन के आंदोलन का स्वरूप राजनैतिक हो जाता है.

उक्त प्रस्ताव से प्राथमिक शिक्षकों का बहुत छोटा-सा कांग्रेस भक्त अंग क्षुब्ध हुआ है वह किंतु चढ़ती हुई नदी की धारा को रोकने में असमर्थ है. उधर कांग्रेसी क्षेत्रों में इस प्रस्ताव से बड़ी चिंता उत्पन्न हो गयी है और नेताओं की समझ में नहीं आ रहा कि वे क्या करें. गैर-कांग्रेसी दल इस प्रस्ताव से बहुत खुश हुए हैं. बातचीत से अभी केवल यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षक किसी दल विशेष की राजनीति से प्रभावित नहीं हैं. उन का विचार प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में उस गैर-कांग्रेसी प्रत्याशी को समर्थन देना है जिस के जीतने की सब से अधिक संभावना प्रतीत होती हो. कुछ शिक्षकों से यह पूछने पर कि यदि किसी क्षेत्र में कांग्रेसी प्रत्याशी की ही जीत अनिवार्य प्रतीत होती हो तो वे क्या करेंगे, उत्तर मिला कि हारते हुए गैर-कांग्रेसी उम्मीदवार को वोट दे देंगे लेकिन कांग्रेस को वोट न देंगे.

प्राथमिक शिक्षकों के आंदोलन की परणति यह होगी, इस को कभी भी केंद्र में सत्ताधीश कांग्रेसी सरकार, राज्यपाल और प्रदेशीय कांग्रेसी नेतृत्व ने नहीं सोचा होगा. अब इस के राजनैतिक परिणाम कुछ भी हों, विश्वविद्यालय और माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के खुल जाने से शिक्षा-जगत् पुनर्जागरित हो रहा है. राष्ट्रपति शासन के अंतिम चरण में यह कार्य ऐसा हुआ जिस के कारण कम से कम यह तो लोग न कह सकेंगे कि एक शासन ने स्कूल और विश्वविद्यालय बंद करवाये और दूसरे शासन के आने पर ही वे खुल सके. राष्ट्रपति शासन काल के एक वर्ष में प्रशासन ने जिस पुलिस मनोवृत्ति के साथ शिक्षकों और विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार किया है और शिक्षण-संस्थाओं को चलाने की पद्धति का सूत्रपात किया है उस के कारण लोकतंत्रीय इतिहास में यह वर्ष अविस्मरणीय रहेगा. जन सरकार बन जाने के पश्चात् शायद उपकुलपतियों के सम्मेलन में गृह सचिव और पुलिस-महा-निरीक्षक को आगे स्थान न मिल सके. यदि इसका निदान न किया गया तो अभी तक तो किसी-किसी विश्वविद्यालय में अवकाश-प्राप्त पुलिस-महानिरीक्षक कोषाध्यक्ष ही बन पाते हैं, फिर वे उपकुलपति भी बन बैं तो ताज्जब की बात न होगी.

प्रदेश

केरल

सांप्रदायिकता के नये आयाम

६-७ महीने पहले जब राज्य के संयुक्त मोर्चे की सरकार ने दो नये मुस्लिम बहुल ज़िलों के निर्माण की बात उठायी थी तो न केवल राज्य के भीतर बल्कि पूरे देश में जगह-जगह विरोध की बात उठायी गयी थी. उम्मीद यह थी कि राज्य सरकार जनमत के दबाव में अपने राजनैतिक स्वार्थ को नज़रअंदाज़ करेगी और निर्माण का विचार बदल देगी लेकिन इस बीच राज्यपाल विश्वनाथन् ने विधानसभा के उद्घाटन के वक़्त जो भाषण दिया उस में यह स्पष्ट संकेत था कि २६ जनवरी को इन ज़िलों के निर्माण की घोषणा कर दी जायेगी. राजस्व-मंत्री गोवरी का दावा है कि कांग्रेस को छोड़ कर शेष सभी दलों ने न केवल प्रस्ताव का समर्थन किया बल्कि लिखित रूप से अपनी सहमति भी दी थी. दोनों ज़िले कोझइकोड और पालघाट के कुछ ताल्लुक़ों में से बनाये जा रहे हैं. जनता का एक बड़ा समुदाय प्रस्तावित पालघाट ज़िले की अपेक्षा मलप्पुरम ज़िले का अधिक विरोध करता रहा है. वैसे, मलप्पुरम ज़िले का सुझाव पुराना है. पालघाट ज़िले के कुछ क्षेत्रों में मोपला लोगों की बहुत बड़ी बस्ती है. हज़रत मुहम्मद से बहुत पहले अरब व्यापारी यहाँ आ कर बसने लगे थे. उन व्यापारियों में से कुछ ने स्थानीय स्त्रियों से विवाह भी किया और धीरे-धीरे उन का समाज बनता गया. ये लोग मोपला कहलाने लगे. १९२० और १९३० के बीच इन लोगों ने जो हिंसात्मक रुख अपनाया वह तत्कालीन ढंग से देशव्यापी चर्चा का कारण बना था. जिन दिनों भारत-विभाजन की बात चल रही थी मोपला लोगों ने मोपलिस्तान की माँग रखी थी.

इधर बहुत दिनों से मोपला लोगों की शिकायत थी कि पालघाट ज़िले के उन हिस्सों का विकास रुका हुआ है जहाँ उनकी संख्या अधिक है. अगर उस हिस्से को एक ज़िले के रूप में संगठित किया जाये तो विकास कार्यों में अधिक गति आयेगी. इन लोगों पर मुस्लिम लीग का अच्छा प्रभाव है. कांग्रेस भी उस की उपेक्षा नहीं कर सकती थी. उस ने भी मुस्लिम लीग से मिल कर कुछ समय तक प्रदेश का शासन किया था. कम्युनिस्ट पार्टी का वर्तमान मंत्रिमंडल भी मुस्लिम लीग के समर्थन से बना है. संयुक्त मोर्चे के नेता मुस्लिम नेताओं के आग्रहों को टाल नहीं सकते.

स्थिति : केरल एक छोटा-सा प्रांत है. मलप्पुरम इस छोटे-से राज्य का सब से छोटा ज़िला होगा. आबादी १६ लाख ७ हज़ार और क्षेत्रफल १९५४ वर्गमील है. मलप्पुरम और मलनाड में ज़िलाधीश, पुलिस अधीक्षक, चिकित्सा और शिक्षा अधिकारी के अलावा सत्रीय न्यायालय की स्थापना भी होगी.

तर्क और कुतर्क : माँग को स्वीकार करते हुए राज्य सरकार की तरफ़ से यह तर्क दिया गया था कि नये ज़िले का निर्माण प्रशासनिक दृष्टि से सुविधाजनक होगा. वास्तविकता यह नहीं है. अगर वह इलाक़ा पिछड़ा हुआ है तो उस के विकास की गति बिना नया ज़िला बनाये हुए भी तेज़ की जा सकती है. इस से राज्य सरकार पर खर्चा भी अधिक पड़ेगा. नंबूदिरीपाद का एक तर्क यह भी रहा है कि यदि भारतीय संघ में कश्मीर जैसा एक मुस्लिम बहुमत का राज्य हो सकता है तो फिर केरल में मुस्लिम बहुमत का एक ज़िला क्यों नहीं हो सकता है. वह यह भूल गये कि कश्मीर की स्थिति ऐतिहासिक कारणों से है जब कि मलप्पुरम का निर्माण एक सांप्रदायिक माँग के रूप में सामने आया है. इन ज़िलों के बन जाने से निश्चित रूप से सांप्रदायिकता की भावना को बल मिलेगा. इन दो ज़िलों के रूप में क ऐसा चौखटा तैयार होगा जिस में अंधी धार्मिकता की भावना ज़ोर पकड़ेगी और उस में रहने वाले ग़ैर-मुस्लिम अपने को सुरक्षित महसूस नहीं कर सकेंगे. इस का एक परिणाम यह होगा कि क्यों कि वे राजनैतिक दृष्टि से उस क्षेत्र में प्रभावशाली होंगे अतः हर वक़्त सौदेबाज़ी की स्थिति में रहेंगे. एक सुरक्षित चौखटे में अपनी स्थिति को निरापद बनाये रखने का एक परिणाम यह भी होगा कि वे अपने को राष्ट्रीय धारा से अलग भी महसूस कर सकते हैं. मुस्लिम लीग की माँग का उद्देश्य भी यही रहा है कि ऐसा ज़िला बनने पर सांप्रदायिक स्थिति अधिक सुदृढ़ होगी और वह बिना किसी शंका के विधान सभा और संसद् में अपने सदस्य भेजती रह सकेगी.

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और संयुक्त मोर्चे की आलोचना करने वाले उग्रपंथी कम्युनिस्टों ने भी यह आरोप लगाया है कि मार्क्सवादी सरकार ने माँग को स्वीकार कर के मुस्लिम सांप्रदायिकता को ही बढ़ावा दिया है.

मद्रास

विरोध का नशा

८ दिसंबर '६८ को केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने एक आदेश जारी किया कि भारतीय रेडियो स्टेशनों से हिंदी की जो समाचार सुबह सवा ८ बजे प्रसारित किया जाता था वह ८ बजे से किया जायेगा. देश के बड़े भाग में इस का स्वागत किया गया लेकिन दक्षिण के एक छोटे-से कोने अर्थात् मद्रास में विरोध की लहर उठनी शुरू हो गयी. इस सामान्य-सी घटना को भी बहुत तूल दिया गया और द्रमुक के नेताओं ने यह कहना शुरू किया कि अंग्रेज़ी समाचार को बाद में प्रसारित करने के पीछे केंद्र की मंशा हिंदी को अधिक महत्त्व देने की है. विरोध का यह सिलसिला पिछले कुछ दिनों में आंदोलन और हिंसात्मक दृश्यों में भी परिवर्तित हुआ. रेलगाड़ियाँ रोकी गयीं, स्कूल-कॉलेज में हड़तालें रहीं और जगह-जगह पत्थरबाज़ी की घटनाएँ शुरू हुईं. द्रमुक सरकार के नेता इस विद्रोह को अपने विषैले भाषण से अधिक तीव्र बनाने की कोशिश करते रहे. राज्य सरकार ने केंद्र से आदेश को वापस लेने की माँग की. इसी बीच हैदराबाद में राज्यों के सूचना मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ और उस में द्रमुक सरकार की सूचनामंत्री श्रीमती मुथु ने यह कह दिया कि केंद्र ने आदेश रद्द करने का निर्णय कर लिया है. बाद में केंद्रीय मंत्रालय द्वारा उस का प्रतिवाद करते हुए कहा गया कि प्रसारण के समय में परिवर्तन नहीं किया गया है. अलबत्ता यह ज़रूर सोचा जा रहा है कि मद्रास रेडियो स्टेशन से मुख्य ट्रांसमीटर की जगह पर दूसरे ट्रांसमीटर से उस समाचार का प्रसारण हो.

प्रतिक्रिया और वक्तव्य : सूचनामंत्री के. के. शाह ने एक जगह कहा कि हिंदी समाचार अंग्रेज़ी से पहले प्रसारित करने का कारण हिंदी क्षेत्र को तुष्ट करना था. दूसरी तरफ़ मद्रास के नेताओं की यह आम प्रवृत्ति रही है कि किसी भी निर्णय के परिणामों पर बिना सोच-विचार किये हुए वे हिंदी के नाम पर पैदा हुई किसी चीज़ को ले कर विरोध के लिए खड़े हो जाते रहे हैं. सही मायनों में हिंदी समाचार को पहले प्रसारित करने का एक नुक़सान तो यह है कि उस में वे सभी समाचार नहीं आ सकेंगे जो बाद के प्रसारण में आयेंगे. इस दृष्टि से वह प्रसारण अधूरा कहा जायेगा. जहाँ तक तुष्टीकरण की नीति का सवाल है उस से कुछ नेताओं के खोखले अहं की ही तुष्टि हो सकती है. उस से हिंदी का कोई व्यावहारिक लाभ नहीं हो सकेगा. यदि हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं को प्रतिष्ठा देनी ही है तो उस के लिए कुछ व्यावहारिक क़दम उठाये जाने चाहिएँ. सूचना या प्रसारण मंत्रालय ने या कि केंद्र के किसी अन्य मंत्रालय ने हिंदी को बढ़ावा देने के लिए व्यावहारिक क़दम उठाने में हमेशा उदासीनता दिखाई है. किसी भी भाषा को समुन्नत करने के लिए उस के अधिकाधिक उपयोग की आवश्यकता होती है. यदि समाचारों के संदर्भ में अंग्रेज़ी और अनुवाद का सहारा न ले कर उन के संयोजन और एकत्रण की व्यवस्था सीधे हिंदी से होती तो वह अधिक उपयोगी होती. ऐसी स्थिति में हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं की कोई माँग अनुचित नहीं लगती और उन के विकास की भी दिशाएँ निरंतर साफ़ होती जातीं. इन व्यावहारिक मसलों पर सरकार ख़ामोश रहती है और विभिन्न राजनैतिक हल्क़ों के तुष्टीकरण के लिए कुछ ऐसी नीतियाँ अपना लेती है जिन का लाभ तो कुछ नहीं होता

लेकिन तात्कालिक ढंग से उत्तेजना खूब फैलती है.

जहाँ तक मद्रास का सवाल है उस की वर्त्तमान सरकार के नेता यह मान कर चलते है कि हिंदी के हर संदर्भ में वे उस का विरोध ही करेंगे. इसे उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न वना लिया है. अभी कुछ ही दिनों पहले उन्होंने मद्रास की आकाशवाणी का नाम वदल कर वनोली निलयम् कर देने के लिए दवाव डाला था. तर्क यह दिया गया था कि इस से तमिल की उन्नति में सहायता मिलेगी. जिस तरह से नाम परिवर्तन में द्रमुक के नेताओं को उन्नति की संभावना दिखाई देती है उसी तरह से हिंदी वाले भी यह मानते है कि प्रसारण में हिंदी को पहला स्थान देने से हिंदी का विकास हो जायेगा. लेकिन यह दोनों ही बातें वहुत ही सतही हैं. समझ में नहीं आता कि हिंदी समाचार को पहले प्रसारित कर देने से तमिल का विकास किस रूप में वाधित होता है. सच्चाई यह है कि मद्रास राज्य के रेडियो स्टेशन इस वक़्त तमिल में जितने कार्यक्रमों का प्रसारण करते हैं उतने पहले कभी नही हुए थे. दिल्ली से तमिल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रसारण में भी अधिक समय दिया जाने लगा है. मुख्यमंत्री अन्नादोरै ने हिंदी-विरोध का एक शगूफ़ा पिछले दिनों यह कह कर छोड़ा था कि एन. सी. सी. का प्रशिक्षण तव तक स्थगित रखा जायेगा जब तक कि उस के हिंदी 'कमान' बदल नहीं दिये जाते. इस का अर्थ यह होता है कि द्रमुक के नेता तमिल के विकास और संवर्धन के लिए उतने चिंतित नही है जितने कि अपने राज्य से हिंदी को खत्म कर देने के लिए हैं. इस वक़्त स्थिति यह है कि मद्रास में हिंदी शिक्षण की प्राइवेट कक्षाएँ भी इस डर से नही चल पा रही हैं कि कहीं द्रमुक के कार्यकर्ता उन पर हमला न कर दें.

हरयाणा

ख़तरा अभी टला नहीं

इस माह की २८ तारीख को हरयाणा विधानसभा की पहले दिन की बैठक गर्मजोशी के साथ शुरू होगी. आश्वस्त मुख्यमंत्री बंसीलाल अपने सभी सहयोगियों और हिमायतियों को संशय की नज़र से देख रहे हैं. उन के दिमाग़ में बार-बार यह बात चक्कर काट रही है कि जिस तेज़ी के साथ भगवद्दयाल शर्मा के समर्थक उन का साथ छोड़ कर पुन: कांग्रेस में शामिल हो गये हैं उसी बल्कि उस से भी तेजी के साथ पुन: उन का साथ छोड़ कर भगवद्दयाल और राव वीरेंद्रसिंह के घेरे में घिर सकते हैं. इस घेरेबंदी को तोड़ने के लिए मुख्यमंत्री बंसीलाल अपने भूतपूर्व गुरु भगवद्दयाल शर्मा की चालें चलने लगे है. लेकिन उन में वह राजनैतिक प्रौढ़ता नहीं जो भगवद्दयाल शर्मा में पायी जाती है. उन्होंने राव वीरेंद्रसिंह से कभी भूले से कांग्रेस में पुन: लौटने की बात का ज़िक्र किया और इस बात ने इतनी तूल पकड़ ली कि वह राव और बंसीलाल के बीच की बात न रह कर कांग्रेस और संयुक्त मोर्चे की बात हो गयी. राव को स्पष्ट रूप से यह बयान देना पड़ा कि वह पुन: कांग्रेस में शामिल होने की तनिक भी इच्छा नहीं रखते.

यह बात तो सही है कि हरयाणा कांग्रेस के सदस्यों में आत्मविश्वास दिन-ब-दिन घटता जा रहा है और वह कोई न कोई ऐसा शोशा छेड़ देते हैं जिस से उन की अहमियत हमेशा बरक़रार रहे. चंडीगढ़ में **दिनमान** के प्रतिनिधि से बात करते हुए मुख्यमंत्री बंसीलाल ने जाटों जैसे लहजे में कहा कि कांग्रेस अभी भी बहुत मज़बूत है और उस की दृढ़ता पर हमें बिलकुल कोई शक नहीं करना चाहिए. विधान सभा की अगली बैठक में यदि संयुक्त विधायक दल सरकार को परास्त करने का कोई 'षड्यंत्र' रचता है तो उसे मुंह की खानी पड़ेगी. और फिर ज़रा फुंकारते हुए उन्होंने कहा कि यह आप देख ही रहे है कि प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव में कांग्रेस पार्टी की एकता कैसी बनी हुई है. बंसीलाल आत्मविश्वासी लहजे का प्रदर्शन करते हैं लेकिन उन के दिल की हूक और खिसियाहट भी उन के चेहरे पर आ जाती है. उन्होंने बताया कि बेशक अभी भी कुछ लोग ऐसे हैं जिन का हम से मतभेद है और वे हमारे लिए कोई ख़तरा बन सकते हैं लेकिन ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है. संख्या कम हो या ज़्यादा लेकिन ख़तरा अभी बिलकुल टला नहीं है और कांग्रेस सरकार की स्थिति अभी भी डाँवाडोल ही है.

कितने जाट और ! कांग्रेस के लिए आजकल रीढ़ की हड्डी का काम जाट नेता चौधरी देवीलाल कर रहे हैं. लोगों का विश्वास है कि देवीलाल को प्रदेश कांग्रेस समिति में स्थान न मिलने के कारण उन का रोष मौजूदा ढाँचे के प्रति उग्र हो जायेगा और शायद भीतर ही भीतर उन्होंने ऐसा महसूस किया भी, लेकिन कुछ बड़े नेताओं के कहने पर उन्होंने यह वक्तव्य ज़रूर जारी कर दिया है कि बंसीलाल का वह पूरी तरह समर्थन करते हैं. फिर उन्होंने कहा कि यह जरूरी नहीं कि प्रदेश कांग्रेस समिति के सभी ओहदे जाटों के हाथ में ही हों. आखिर हरयाणा में ग़ैर-जाट भी तो बसते हैं. बेशक ग़ैर-जाट बसते है लेकिन ग़ैर-जाटों की बंसीलाल के प्रति कोई अधिक आस्था नहीं, क्यों कि मुख्यमंत्री में सहिष्णुता नाम की कोई चीज बहुत कम देखने में आती है. वह तानाशाही की भी बातें करते हैं और उन की जबान से गालियाँ भी बेसाख़्ता निकलती हैं. लिहाज़ा उन के समर्थकों की संख्या उन की अपनी ही पार्टी में बढ़ने की बजाय घट सकती है. अगर ऐसा हुआ और अगले अधिवेशन में कांग्रेस सरकार का तख़्ता पलट गया तो इस की सारी ज़िम्मेदारी और किसी पर नहीं, बंसीलाल पर होगी और उन के व्यवहार के प्रति लोगों में नाराज़ी का इज़हार ही समझा जायेगा.

महाराष्ट्र

शिवसेना और साम्यवाद

बंबई शहर में इन दिनों जनता को बिजली और पानी दोनों की कमी का एहसास हो रहा है. शासन ने पहले उद्योगों को दी जाने वाली बिजली में कटौती की और बाद में घरेलू उपयोग की बिजली में कटौती भी कर दी गयी. आय घट जाने की आशंका से बिजली कंपनी ने न्यूनतम चार्ज लागू करने की घोषणा की और स्थिति यह है कि बिजली की कटौती के नाम पर श्रमिक को कामहीन घोषित किया जा रहा है. नगर निगम के पिछले आम चुनाव में क्यों कि शिवसेना प्रभाव में आई अत: उस ने अपनी राजनैतिक गतिविधियों को दूसरी दिशाएँ भी देना शुरू कर दिया है. श्रमिक क्षेत्रों में अपना प्रभाव विस्तृत करने की उस की कोशिशें जारी हैं. एक तरफ़ उस ने बिजली की कटौती के खिलाफ़ आंदोलन चलाने की घोषणा की है और दूसरी तरफ़ माओवाद के विरोध और श्रमिक संघों की स्थापना का काम हो रहा है. भारतीय कामगार सेना के नाम से एक संस्था स्थापित कर दी गयी है. पिछले ३ महीनों से एक रबड़ फ़ैक्ट्री में वामपंथियों के नेतृत्व में जो हड़ताल चल रही थी उसे शिवसेना के नेताओं ने बातचीत के जरिये ख़त्म करा दिया. हड़ताल ख़त्म हो गयी तो वामपंथियों ने यह शिकायत करनी शुरू की कि शिवसेना वाले न केवल हड़ताल तोड़ रहे हैं बल्कि मजदूरों में आतंक भी फैला रहे हैं. मुक़ाबला करने के लिए वामपंथियों ने कामगार सुरक्षा दल की स्थापना की है. कामगार सेना के युवक नेता अरुण मेहता ने कहा है कि ८० कारखानों में उस की यूनियनें बन गयी हैं. उन के अनुसार वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत पुराना पड़ गया है. मालिक और मज़दूर दोनों ही उद्योग की गाड़ी के दो पहिये है. यदि उन में एक भी खराब हुआ तो प्रगति रुक जायेगी. दोनों एक-दूसरे के लिए अनिवार्य हैं. इसी लिए जरूरी है कि उद्योग के प्रति ईमानदारी बनी रहे और अनुशासनपूर्वक काम कर के उत्पादकता की वृद्धि की जाये. उद्योगपतियों का भी कर्तव्य है कि वे अपने लाभ का प्रतिशत कम कर के एक तरफ़ ग्राहकों को कम क़ीमत में सामान द और दूसरी तरफ़ मजदूरों के वेतन में वृद्धि करें. यंत्र तोड़ने और काम ठप्प करने का कोई मतलब नहीं होता है. उस का सही उपयोग कर के उत्पादकता भी बढ़ाई जा सकती है और काम भी मिल सकता है. शिवसेना ने बंबई क्षेत्र में साम्यवादियों के प्रभाव को कम किया. अब वह इस कोशिश में है कि श्रमिक क्षेत्रों में भी उसे पराजित करे.

नामांकन के बाद

नामांकन पत्रों के दाखिले के साथ-साथ बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश और पंजाब की मध्यावधि चुनाव संबंधी तैयारियों का पहला चरण समाप्त हुआ. विधानसभा की १,१६७ जगहों के लिए चारों राज्यों से लगभग १०,००० लोगों ने चुनाव के मैदान में क़दम रखा है. इसी के साथ-साथ नगालैंड विधानसभा की ४० जगहों के लिए १५० उम्मीदवारों ने भी अपने परचे दाखिल किये हैं. नामांकन पत्रों की संख्या राज्यानुसार यों है :—बिहार में ३१८ जगहों के लिए २,५००, पंजाब में १०४ जगहों के लिए ८७९, उत्तरप्रदेश में ४२५ जगहों के के लिए ६,००० और पश्चिमबंगाल में २८० जगहों के लिए १,४००. सन् '६७ के आम चुनाव में नामांकन की स्थिति नीचे की तालिका में दी गयी है.

नगालैंड विधानसभा में ५२ जगहें हैं जिन में से ४० का चुनाव मतदाता करते हैं. ह्वेनसांग ज़िले से १२ उम्मीदवारों का चुनाव वहाँ की क्षेत्रीय परिषद् करती है. नगालैंड के सत्तावारी राष्ट्रीय संघ ने सभी ४० जगहों से चुनाव लड़ने का निश्चय किया है. विरोधी दल अर्थात् संयुक्त नगा संघ ने ३० उम्मीदवार खड़े किये हैं.

सन् '६७ की तुलना में आज की बदली हुई राजनैतिक स्थिति में इन चारों राज्यों में जो चुनाव होने जा रहे हैं वे कई दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं. सन् '६७ के चुनाव में जनता के मोह-भंग की एक तस्वीर सामने आयी थी और उस में उस ने कांग्रेस का पल्ला छोड़ कर दूसरी पार्टियों का हाथ पकड़ा था लेकिन कुछ ही दिनों की संयुक्त विधायक दलों की सरकार ने उस की आशाओं पर पानी फेर दिया और तब वह इन दलों के साथ भी भ्रम-भंग की स्थिति में आ गयी. आज वह वास्तविकता की कठोर चट्टान पर खड़ी हो कर अपने भविष्य का फ़ैसला करने जा रही है. यह अलग बात है कि इस चुनाव के अवसर पर भी विभिन्न दलों ने अपने-अपने चुनाव घोषणापत्रों के माध्यम से उसे बहकाने, बहलाने और फुसलाने की पूरी कोशिश की है. एक विचित्र बात यह है कि इस चुनाव के अवसर पर ज्यादातर राजनैतिक दलों में अपनी शक्ति और सामर्थ्य के प्रति विश्वास कम दिखाई दे रहा है और उस के बल पर वह जनता के सामने जाने का साहस नहीं कर रहे हैं.

सभी एक-दूसरे की कमजोरियों पर छींटाकशी कर रहे हैं और उस के माध्यम से जनता में अपने को छोड़ कर दूसरे सभी दलों के प्रति विश्वास और अनास्था पैदा कर के उस का फ़ायदा उठाने की कोशिश में हैं. बंगाल की स्थिति इस मायने में सर्वाधिक अनिश्चय की है. इस में किसी भी दल के किसी नेता ने अपना चुनाव-क्षेत्र नहीं बदला है. यहाँ के तीन भूतपूर्व मुख्यमंत्री प्रफुल्लचंद्र सेन, प्रफुल्लचंद्र घोष और अजय मुखर्जी मैदान में उतरे हैं. विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष विजय कुमार बनर्जी भी पंक्ति में ही हैं. प्रफुल्लचंद्र सेन और अजय मुखर्जी हुगली ज़िले के आरामबाग क्षेत्र में एक-दूसरे के मुकाबले में हैं हालांकि अजय मुखर्जी ने मिदिनापुर ज़िले के तामलुक क्षेत्र से भी चुनाव लड़ने के लिए परचा दाखिल किया है. कम्युनिस्ट नेता ज्योति वसु बड़ानगर क्षेत्र से चुनाव लड़ रहे हैं. इस क्षेत्र से वह शुरू से ही जीतते रहे हैं. इस बार उन के खिलाफ़ एक अध्यापक और एक कांग्रेसी उम्मीदवार है जिसे उन्होंने सन् '६७ के चुनाव में ३,००० मतों से पराजित किया था. प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष प्रताप चंद्र चुंदर सियालदह से तथा फ़ारवर्ड ब्लाक के अध्यक्ष हेमंत कुमार वसु काशी से लड़ रहे हैं.

श्री वसु के खिलाफ़ कलकत्ता निगम के महापौर गोविंद राय खड़े हैं जो कांग्रेस के उम्मीदवार हैं. प्रफुल्लचंद्र घोष ने अपना परचा झारग्राम क्षेत्र से चुनाव लड़ने के लिए दाखिल किया है. भारतीय गणतांत्रिक मोर्चे के संस्थापक आशु घोष और राष्ट्रीय बंगाल पार्टी के संस्थापक जहाँगीर कबिर भी मैदान में हैं. विजय कुमार बनर्जी ने निर्दलीय उम्मीदवार की हैसियत से कलकत्ता के रास बिहारी चुनाव क्षेत्र से अपना परचा दाखिल किया है और उन्हें संयुक्त मोर्चे का समर्थन मिला है. कुल मिला कर कांग्रेस के २८० और १२ दलों के संयुक्त मोर्चे ने २६० उम्मीदवार खड़े किये हैं.

यदि बंगाल में कांग्रेस की स्थिति आशु घोष के दल-परिवर्त्तन से कमज़ोर हुई है तो बिहार में विनोदानंद झा और लक्ष्मी नारायण सुधांशु की वजह से. यह दोनों ही नेता कांग्रेसी क्षेत्रों में शुरू से ही बहुत प्रभावशाली रहे हैं लेकिन अब वे लोकतांत्रिक कांग्रेस के मंच से कांग्रेस का विरोध कर रहे हैं. जिन २,५०० उम्मीदवारों ने ३१८ जगहों के लिए अपने परचे दाखिल किये हैं उन में से बहुत-सी जगहों पर बहुकोणीय संघर्ष है. कृष्णवल्लभ सहाय, सत्यनारायण सिंह, महेशप्रसाद सिंह, अंबिका शरण मिश्र, रामलखन सिंह यादव आदि कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं ने अपने को चुनाव से अलग रखा है और कहा यही जा रहा है कि वे अपना पूरा सहयोग कांग्रेसी प्रत्याशियों को जिताने में देंगे. हालांकि उन के आश्वासन कुछ लोगों की दृष्टि में संदेह से खाली नहीं हैं. इस राज्य में कांग्रेस ने सभी ३१८ जगहों के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं, जब कि जनसंघ ने ३१५, प्रसपा, संसोपा और लोकतांत्रिक कांग्रेस के त्रिदल ने सभी जगहों पर अपना उम्मीदवार खड़ा किया है.

जनता पार्टी ने १९०, भारतीय कम्युनिस्ट दल ने १६० और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट दल ने ३० उम्मीदवार खड़े किये हैं. विंदेश्वरी प्रसाद मंडल के नेतृत्व में तथाकथित पिछड़ी जातियों के शोषित दल ने भी यह उम्मीद ज़ाहिर की है कि उन का दल बड़ी मात्रा में अपने उम्मीदवार भेजने में सफल होगा. समाजवादी एकता केंद्र, फ़ारवर्ड ब्लाक, क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी

पिछले चुनावों की तुलनात्मक स्थिति

राज्य	चुनाव क्षेत्रों की संख्या		नामांकन पत्रों की संख्या		नामांकन पत्रों की वापसी की संख्या		रद्द किये गये नामांकन पत्र		मतदाता संख्या	मतों का प्रतिशत	
	'६२	'६७	'६२	'६७	'६२	'६७	'६२	'६७	'६७	'६२	'६७
उत्तरप्रदेश	४३०	४२५	३४१८	३७१४	७७४	६६८	२४	३२	४२१४८०९९	५१.४४%	५४.५५%
बिहार	३१८	३१८	२०२०	२६१९	४६१	५५७	३०	३७	२७७४३१९०	४६.९८%	५१.५१%
बंगाल	२८०	२५२	११२७	१२१९	१६१	१५१	५	१०	२०२४००९८	५५.५५%	६६.१०%
पंजाब	१५४	१०४	१२७४	१०७६	४९२	४४८	२६	२६	६३११०६३	६५.४६%	७१.१८%

भी मैदान में हैं. इन्हें अपने भविष्य का पता है, लेकिन उस के बावजूद अपने अस्तित्व को साबित करते रहने के लिए उन्होंने भी चुनाव-संघर्ष में अपने उम्मीदवारों को खड़ा किया है. स्वतंत्र दल के ५० उम्मीदवार हैं. सन् ६७ के चुनाव में विभिन्न दलों और व्यक्तियों में जो समझौते हुए थे वे छिन्न-भिन्न हो चुके हैं. पुराना संयुक्त मोर्चा टूट चुका है. कुछ नये दल सामने आ गये हैं. पिछले चुनाव में कांग्रेस को १२८ जगहें मिली थीं, लेकिन बाद के दिनों में विनोदानंद झा, डॉ. सुधांशु और भोला पासवान शास्त्री ने कांग्रेस से विद्रोह कर दिया, तब कांग्रेस की संख्या केवल १०५ रह गयी. त्रिदल के आपसी समझौते के अनुसार २०० जगहों पर उन में कोई एक-दूसरे का विरोध नहीं करेगा.

शेष ११८ जगहों पर भी कोशिश यही रहेगी कि आपसी टकराव न होने पाये. इन सब में अगर कोई दल वास्तविक रूप में अकेला है तो वह है जनसंघ, जो बड़ी-बड़ी उम्मीदें बाँधे हुए है. पिछले आम चुनाव में जिन २७२ जगहों पर उस ने चुनाव लड़ा था उस में १९१ पर उस के उम्मीदवार की जमानतें ज़ब्त हो गयी थीं. लगभग १ करोड़ ३५ लाख मतों में से उसे कुल १५ लाख मत मिले थे, जिस का मतलब यह होता है कि उसे कुल मत का १०.३५ प्रतिशत मिला था. संसोपा, प्रसपा और लोकतांत्रिक दल को २४.५७ प्रतिशत और कांग्रेस को ३३.०८ प्रतिशत मत मिले थे. स्वतंत्र दल को २.३ और रिपब्लिकन दल को २४ प्रतिशत से अधिक नहीं मिल सके. जन क्रांति दल, झारखंड पार्टी आदि को २१.२७ प्रतिशत मत मिले थे, जिस का मतलब यह था कि समाजवादी दलों की तुलना में उन्हें केवल ३ प्रतिशत कम मत मिले थे.

वर्तमान स्थिति में जनता पार्टी या शोषित दल बड़ी शक्ति के रूप में उभरने में कामयाब नहीं होगा, हालाँकि कुछ ऐसे क्षेत्र अवश्य हैं जहाँ इन का भाव बहुत अच्छा है. भोला पासवान मंत्रिमंडल के पतन के साथ-साथ जनता पार्टी को बदनामी का शिकार होना पड़ा था, क्यों कि उन्हीं का सहयोग न मिलने के कारण मंत्रिमंडल अल्पमत का शिकार हुआ था. आदिवासी क्षेत्रों में शोषित दल का प्रभाव बहुत अच्छा है और वहाँ पर वह किसी भी दल के लिए चुनौती का कारण बनेगा. पिछले चुनाव में महामायाप्रसाद सिंह (भा. क्रां. द.) और रामगढ़ के राजा (जनता पार्टी) दोनों ने जन क्रांति दल के अंतर्गत २५ जगहों पर विजय पाने में सफलता प्राप्त की थी. आज दोनों अलग-अलग हैं. स्वतंत्र दल की स्थिति बहुत मज़बूत नहीं है. पिछले चुनाव में उसे सिर्फ़ ३ जगहें मिली थीं, हालांकि उस ने भी कुछ चुनाव-समझौते किये हैं. कांग्रेस की स्थिति आदिवासी क्षेत्रों में बहुत नाजुक है और वहाँ उस के सामने कई तरह की कठिनाइयाँ हैं. ख़ास तौर से इस लिए भी कि उस के नेता जयपालसिंह ने इस बीच फिर झारखंड राज्य के गठन की माँग उठायी है. आदिवासी क्षेत्र में जनसंघ ने भी हिंदू आदिवासी के नारे के नाम पर मतदाताओं का ध्यान आकर्षित किया है. उस के नेताओं का ख़्याल है कि छोटा नागपुर और संथाल परगना में उसे ७९ जगह मिल जायेंगी. पिछले आम चुनाव में उसे ११ जगहें मिली थीं.

जहाँ तक कांग्रेस का सवाल है राज्य के बहुत से मशहूर नेताओं की प्रतिष्ठा गिर चुकी है. जातिवाद यहाँ अपनी पराकाष्ठा पर है. इस में से कुछ नेताओं के बारे में यह भी कहा जाता है कि वह मन से या तो दक्षिणपंथी हैं या वामपंथी. जहाँ तक भारतीय क्रांति दल का सवाल है वह महामायाप्रसाद सिंह तक ही सीमित है. उन्होंने दो जगहों से अपना नामांकन-पत्र दाखिल किया है. पश्चिमी पटना चुनाव-क्षेत्र से उन के ख़िलाफ़ कम्युनिस्ट पार्टी के डॉ. सेन खड़े हैं. सामाजिक कार्यकर्त्ता होने के कारण डॉक्टर सेन की लोकप्रियता उस क्षेत्र में काफ़ी है. प्रसपा के दो भूतपूर्व मंत्री बसावन सिंह और हबीबुर्रहमान भी दो-दो जगहों से चुनाव लड़ रहे हैं. कांग्रेस दल, समाजवादी दल के दो नेताओं—रामानंद तिवारी और कर्पूरी ठाकुर को पराजित करने में अपनी सारी शक्ति लगा रहा है. कर्पूरी ठाकुर के ख़िलाफ़ उस ने एक भूतपूर्व समाजवादी को खड़ा किया है, जो पिछले चुनाव में केंद्रीय स्वास्थ्यमंत्री सत्य नारायण सिंह से केवल १०,००० मतों से पराजित हुआ था. इस चुनाव में **आनंद मार्ग** भी अस्तित्व में आया है. यह दल प्रउती फ्रंट के मंच से चुनाव लड़ रहा है और इस के उम्मीदवार भोजपुरी समाज, मैथिली समाज और मगधी समाज के प्रतिनिधि के रूप में सामने आ रहे हैं.

उत्तरप्रदेश में ४२५ जगहों के लिए जिन मुख्य दलों ने अपने उम्मीदवारों के परचे दाखिल किये हैं उन की स्थिति यों है : कांग्रेस ५८२, जनसंघ ४१४, भारतीय क्रांति दल ३२९, संयुक्त समाजवादी ३००, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी १२२, स्वतंत्र ९२ और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी २१. कुल मिला कर २७ दलों ने अपने परचे दाखिल कराये हैं. प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष कमलापति त्रिपाठी ने बनारस ज़िले के चंदौली से, चंद्रभानु गुप्त ने अल्मोड़ा के रानीखेत और लखनऊ के सरोजनी नगर क्षेत्र से, भारतीय क्रांति दल के चरणसिंह ने मेरठ ज़िले के छपरौली क्षेत्र से अपने नामांकन-पत्र दाखिल किये हैं. लखनऊ के सरोजनी नगर क्षेत्र से ही सब से अधिक उम्मीदवार खड़े हुए हैं. इस एक जगह के लिए चंद्रभानु गुप्त को शामिल कर के १७ उम्मीदवार हैं. लखनऊ की ८ जगहों पर ८७ उम्मीदवारों के नाम हैं. इन में २५ निर्दलीय हैं. बाराबंकी की ८ जगहों के लिए ५२ उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ने की घोषणा की है. लखनऊ ज़िले से चंद्रभानु गुप्त के अलावा त्रिलोकी सिंह, एम. सिद्धू और एक छात्र-नेता डी. पी. बोरा के नाम महत्त्वपूर्ण हैं. लखनऊ से ही राज्य कर्मचारियों के नेता पी. एन. शुक्ल ने भी अपना परचा दाखिल किया था, लेकिन क्यों कि अभी वह अपने पद से केवल निलंबित माने जा रहे हैं अतः उन का नामांकन रद्द कर दिया गया.

चंद्रभानु गुप्त के नामांकन को ले कर पिछले २ हफ़्तों से पूरे राज्य में तरह-तरह की चर्चाएँ हैं. रानीखेत के साथ-साथ सरोजनी नगर से भी चुनाव लड़ने के उन के निश्चय को कई अर्थ दिये गये हैं. पिछले आम चुनाव में रानीखेत में उन का संघर्ष श्री मेहरा से हुआ था और वह केवल ७० मतों से जीत सके थे. इस बार ग़ैर-कांग्रेसी सभी दलों ने श्री मेहरा को समर्थन देने की घोषणा की है. श्री गुप्त की यह आशंका कि वह इस चुनाव में हार सकते हैं निर्मूल नहीं है. शायद इसी पराजय से बचने के लिए उन्होंने सरोजनी नगर का क्षेत्र चुना.

इस सूचना के साथ ही साथ ग़ैर-कांग्रेसी क्षेत्रों में काफ़ी उत्तेजना का अनुभव किया गया और कई दिनों तक यह निर्णय करने की असफल कोशिश की जाती रही कि उन के ख़िलाफ़ किसी प्रभावशाली उम्मीदवार को खड़ा किया जाये. कांग्रेस के कुछ स्थानीय नेताओं का ख़्याल है कि श्री गुप्त के इस निश्चय से कांग्रेस को क्षति पहुँचेगी. ध्यान देने की बात यह है कि सन् १९५७ में श्री गुप्त त्रिलोकीसिंह से लखनऊ में ही पराजित हुए थे. सन् १९५८ के एक उप-चुनाव में भी उन्हें लखनऊ से ही पराजय का मुँह देखना पड़ा था. संविद सरकार के भूतपूर्व मंत्री अख़्तरअली ख़ाँ रायपुर से, अर्जक संघ के संस्थापक रामस्वरूप वर्मा कानपुर के राजपुर क्षेत्र से और भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्री मुज़फ़्फ़रहसन ने इलाहाबाद के प्रतापपुर क्षेत्र से अपना नामांकनपत्र दाखिल किया है. दो भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्री : राममूर्त्ति और नवल किशोर बरेली जिले के बहेड़ी और आलमपुर क्षेत्रों से खड़े हो रहे हैं.

इसी के साथ फूलपुर (इलाहाबाद) से संसद् की सीट के लिए नामांकनपत्रों का भी दाखिला हुआ. यह जगह श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के त्यागपत्र से रिक्त हुई थी. कांग्रेस ने भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री केशवदेव मालवीय को अपने उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया है. जिन अन्य दलों ने इस जगह के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं उन में संयुक्त समाजवादी दल के जनेश्वर मिश्र, भारतीय क्रांति दल के संगमलाल पांडेय और जनसंघ के भोला नाथ के नाम उल्लेखनीय हैं. चार सदस्य निर्दलीय हैं.

चुनाव-पूर्व सर्वेक्षण

मध्यावधि चुनाव के लिए नामज़दगी का दौर समाप्त होते न होते **दिनमान** के संवाददाता प्रदेशों में पहुँच गये हैं—वहाँ की राजनैतिक परिस्थितियों का जायज़ा लेने के लिए.

वे इस अंक में पूरे पंजाब का और उत्तरप्रदेश के दो छोरों का हाल प्रस्तुत कर रहे हैं.

पंजाब में अकाली पार्टी और जनसंघ का समझौता और दूसरे छोटे-मोटे समझौते तथा आपसी मतभेद काफ़ी महत्त्वपूर्ण साबित होंगे.

पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जातिवाद और अल्पसंख्यकों के मत का विकर्षण-निर्णायक सिद्ध होने के आसार नज़र आ रहे हैं.

पूर्वी उत्तरप्रदेश में दो प्रबल प्रतिद्वंद्वी हैं. उम्मीदवारों का दृष्टांत स्वरूप उन के एक उम्मीदवार से **दिनमान** का साक्षात्कार प्रस्तुत किया जा रहा है.

पंजाब

५ जनवरी १९६९. लगभग ३ बजे का समय. स्वर्ण मंदिर पर सूर्य की स्वर्णिम किरणों की आभा सामने के अकाल तख़्त पर भी पड़ रही थीं, जहाँ एक ऊँचे मंच पर गुरु ग्रंथ साहब विराजमान था. उस से थोड़ी दूर ऊपर पाँच हवनकुंडों में से ३ हवनकुंड भी दीख रहे थे, जहाँ १९६५ में अकाली नेता संत फ़तेहसिंह ने चंडीगढ़ और माखड़ा नंगल पंजाब में न मिलाये जाने की दशा में आत्मोत्सर्ग करने का निश्चय किया था. अकाल तख़्त के नीचे संगमरमर के सफ़ेद और काले पत्थर पर आम जनता, जिसे 'सिख संगत' कहते हैं, विराजमान थी और उस भीड़ में अकाली दल के ५६ उम्मीदवारों में से ४२ उपस्थित थे. अकाली नेता संत फ़तेहसिंह के पिलियाये चेहरे पर सभी लोगों की आँखें बार-बार टिक रही थीं, जो बड़ी गंभीर मुद्रा में सारे जिस्म को अच्छी तरह से ढँक कर बैठे थे. उसी भीड़ में भूतपूर्व मुख्यमंत्री गुरनामसिंह, कांग्रेस विधानमंडल पार्टी के भूतपूर्व नेता ज्ञानसिंह राड़ेवाला, स्वर्गीय मुख्यमंत्री कैरों के सुपुत्र सुरेंद्रसिंह कैरों, कई भूतपूर्व मंत्री, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के अध्यक्ष संत चन्ननसिंह और महासचिव जीवनसिंह उमरांगल भी थे. समारोह था अकाली उम्मीदवारों द्वारा शपथ-ग्रहण. इस का प्रयोजन बताते हुए अस्वस्थ अकाली नेता संत फ़तेहसिंह ने धीमे किंतु दृढ़ लहजे में कहा कि हमें यह रस्म अदायगी मजबूरन करनी पड़ रही है. अनुभवों ने हमें सिखा दिया है कि हम टिकट उन्हीं उम्मीदवारों को दें जिन में पार्टी के साथ मरने और जीने का दमख़म हो. अकाल तख़्त वह स्थान है जहाँ महाराजा रणजीतसिंह की फ़ौजें यह हलफ़ लेती थीं कि वह जी-जान से लड़ाई लड़ेंगी और कभी भी पीठ नहीं दिखायेंगी. जो ग़द्दारी करता था उस का क्या हश्र होता था, यह सर्वविदित है. हश्र वाली बात बार-बार दोहरायी गयी और सभी नेताओं ने उम्मीदवारों को याद दिलाया कि हलफ़ लेने से पहले वह बार-बार और कई बार सोचें. शायद इसी का फल था कि ५६ उम्मीदवारों में से केवल ४२ उम्मीदवारों ने ही हलफ़ उठाया. ग़ैर-हाज़िर उम्मीदवारों में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के वरिष्ठ उपाध्यक्ष सरदार कपूरसिंह, मलेरकोटला के नवाब इफ़्तियार अली खाँ तथा अन्य व्यक्ति थे. इस ग़ैर-हाज़री से अकाली नेता के चेहरे पर चिंता की रेखाएँ साफ़ दीख रही थीं और खीझ भरे स्वर में संत फ़तेहसिंह ने कहा कि जो उम्मीदवार १० जनवरी तक हलफ़नामे पर दस्तख़त नहीं करेगा उसे पार्टी का टिकट नहीं दिया जायेगा.

प्रतिज्ञापत्र को पढ़े-लिखे लोग तो रवानी के साथ पढ़ गये, लेकिन कई अँगूठा-छाप उम्मीदवार केवल हाथ हिलाने और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने के और कुछ नहीं कर सके. उस समय ऐसा लगा कि चुनाव जीतने के बाद अगर यही सदस्य सरकार बनायेंगे तो आम जनता का कितना भला हो सकेगा. ख़ैर, प्रतिज्ञा के बाद पीली पगड़ीधारी राड़ेवाला चुपके से खिसकते नज़र आये; शायद उन्हें अकाली पार्टी का यह रवैया अधिक पसंद नहीं आया था. लेकिन गहरी नीली पगड़ीधारी सुरेंद्रसिंह कैरों बैठे रहे और उन की गर्दन नीचे ही झुकी रही—शायद वह अपने-आप को लोगों की नज़रों में शरीफ़ साबित करना चाहते थे, अथवा दिल ही दिल में उन्हें अकाली पार्टी में शामिल होने पर शर्म महसूस हो रही थी. लेकिन गुरनाम सिंह ख़ूब सक्रिय थे और उन के आसपास कई छोटे-मोटे नेता मँडरा रहे थे. **दिनमान** के घुमंतू संवाददाता को गुरनामसिंह ने बताया कि उन के दल को स्पष्ट बहुमत मिलेगा और अगली सरकार उन्हीं की बनेगी. बाद में उन्होंने अपनी बात को साफ़ करते हुए कहा कि दल का मतलब अकाली पार्टी नहीं, संयुक्त मोर्चा है. लंबा रेशमी कुर्त्ता पहने संत चन्ननसिंह ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बड़े ही दृढ़ लहजे में बताया कि उन्हें कम से कम ६५ स्थान प्राप्त होंगे. यानी समझौते हो जाने पर हम कम से कम इतने स्थानों की उम्मीद तो कर ही सकते हैं. संत फ़तेहसिंह ने बड़ी ही सादगी से संत-वाणी में कहा कि 'वाहे गुरु जो भी करेगा ठीक करेगा.' फिर शायद अचानक उन के दिमाग़ में राजनैतिक समझौतेबाज़ी का चित्र कौंध गया और उन्होंने कहा, 'हमें निश्चित और स्पष्ट बहुमत मिलेगा और अगली सरकार संयुक्त मोर्चे की सरकार होगी. इस बार हमारी संख्या विघटनकारी साबित नहीं होगी.' संत फ़तेहसिंह के बारे में यह बात खुले तौर पर कही जाती है कि उन्होंने यदि एक बार तय कर लिया कि दल छोड़ने वाले को किसी सूरत में दल में वापस नहीं लेना है तो फिर वह टस-से-मस नहीं होंगे. यही वजह है कि बुद्धिराजा, हुडियारा और गिल के लिए उन के दरवाज़े सदा के लिए बंद हो चुके हैं.

प्रदेश के दौरे के बाद यह संवाददाता इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि **पंजाब में लोग अब भी संयुक्त मोर्चे के कार्यों की सराहना करते हैं. लोगों के मन में हिंदू-सिख एकता की छाप अभी भी साफ़ और उजली दिखायी दे रही थी.** संयुक्त मोर्चे के प्रति आस्था का कारण शायद यह था कि गिल सरकार का समर्थन करने के कारण कांग्रेस की स्थिति को काफ़ी धक्का पहुँचा है और दूसरे प्रदेश और केंद्रीय चुनाव-समिति द्वारा कांग्रेसी उम्मीदवारों के निर्वाचन-क्षेत्रों में हेरफेर करने के कारण जहाँ उम्मीदवारों की निराशा हुए हैं वहाँ जनता की आस्था में भी उम्मीदवारों और कांग्रेस के प्रति फ़र्क आया है. ज्ञानसिंह राड़ेवाला अकाली दल में शामिल हो गये हैं, सुरजीतसिंह मजीठिया और सुरजीतसिंह अटवल के निर्वाचन-क्षेत्रों को ले कर बहुत कहा-सुनी हुई है. यह बात ज़रूर सही है कि अकाली दल, जनसंघ और कम्युनिस्ट पार्टियों की अपनी निजी तौर पर जो धाक और साख बनी हुई थी उस में भी अब वह बात नहीं रह गयी है. अकाली दल ऊपर से जितना संगठित नज़र आता है भीतर से उतना नहीं है, क्यों कि अकाली दल के ३ मुख्य नेता गुरनामसिंह, ज्ञानसिंह राड़ेवाला और कपूर सिंह भीतर ही भीतर एक-दूसरे को पसंद नहीं करते. **दिनमान** के प्रतिनिधि को इस बारे में गुरनामसिंह ने नपे-तुले शब्दों में बताया, 'ऐसी तो कोई बात नहीं, अगर कोई है भी तो छँटनी अपने-आप हो जायेगी.' निर्विवाद है कि यदि अकाली और जनसंघ स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लेते हैं तो वह गुरनाम सिंह को ही अपना नेता स्वीकारेंगे. कपूरसिंह संयुक्त मोर्चे के सदस्यों को इस लिए रास नहीं आयेंगे क्यों कि वह सिक्खिस्तान के हिमायती हैं और ज्ञानसिंह राड़ेवाला की पृष्ठभूमि में कांग्रेसी बीज भरा पड़ा है. **दिनमान** के प्रतिनिधि से अकाली दल के संत चन्ननसिंह और जनसंघ के डॉ. बलदेव

गुरनामसिंह लछमनसिंह गिल ज्ञानसिंह राड़ेवाला वृषभान ज्ञानी ज़ैलसिंह हरचरणसिंह बरबारासिं

ार अली खाँ   बलदेव प्रकाश   सत्यपाल डांग   प्रकाश कौर   बलरामजी दास टंडन   राजेंद्रसिंह स्पैरो   प्रेमसिंह 'प्रे

प्रकाश और बलरामजी दास टंडन ने यह साफ़ तौर पर कहा कि लोग चाहे जितना बवंडर मचायें, अकाली-जनसंघ समझौते में किसी तरह की दरार नहीं पड़ने दी और अकाली-जनसंघ समझौते की वजह से ही राज्य की राजनैतिक स्थिति में बड़े पैमाने पर स्थिरता आयी है. कुछ दिन पहले की कांग्रेसियों की खुशी तब ग़मी में बदल गयी जब अकाली-जनसंघ नेता एक समझौते पर हस्ताक्षर कर पत्रकारों से मिले. प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष ज्ञानी ज़ैलसिंह ऊपर से काफ़ी आश्वस्त हैं, लेकिन **दिनमान** के प्रतिनिधि की नज़रों में उन की खिसियाहट छिपी नहीं रह सकी. उन का खयाल है कि शायद किसी को भी पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होगा. लेकिन उन के एक चेले श्री ओंकार ने बताया कि कांग्रेस की स्थिति पहले की अपेक्षा बहुत अच्छी है और निश्चित रूप से उन की ही सरकार बनेगी. राड़ेवाला के जाने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता, क्योंकि पेप्सु का इलाक़ा पहले ही कांग्रेस के पास नहीं था. उन्हें उम्मीद है कि जालंधर, लुधियाना, गुरुदासपुर, होशियारपुर, अमृतसर, और फ़िरोज़पुर में उन की स्थिति पहले से अधिक अच्छी रहेगी. कांग्रेस के दो भूतपूर्व मुख्यमंत्री कॉमरेड रामकिशन और ज्ञानी गुरुमुखसिंह मुसाफ़िर अपने-अपने चुनाव-विश्लेषण में काफ़ी साफ़ और ईमानदार नज़र आये. रामकिशन यह मानते हैं कि कांग्रेस को ३० और ३५ स्थानों से अधिक नहीं मिलेंगे, लेकिन अकाली दल को भी ३०-३५ स्थान ही मिल पायेंगे. इस प्रकार किसी भी एक पार्टी की सरकार वहाँ बन पाना मुश्किल है. बक़ौल रामकिशन के अन्य पार्टियों की स्थिति इस प्रकार हो सकती है—रिपब्लिकन पार्टी २ या ३, जनसंघ ७ से ९, कम्युनिस्ट ६ से ८, जनता पार्टी ३ से ४, प्रसपा १, स्वतंत्र पार्टी १, कांग्रेस ३२ से ३८ और अकाली ३० से ३५. उन के अनुसार अमृतसर, गुरुदासपुर, होशियारपुर, जालंधर, कपूरथला और रोपड़ कांग्रेसी गढ़ हैं, जहाँ उन की स्थिति ६७ के आम चुनाव की अपेक्षा सुदृढ़ है. उन का यह भी विश्वास है कि फ़िरोज़पुर, भटिंडा, संगरूर और पटियाला में जहाँ उन की स्थिति अच्छी नहीं है, अच्छे कांग्रेसी उम्मीदवारों के आ जाने से स्थिति बेहतर हो सकती है. दूसरे भूतपूर्व मुख्यमंत्री **ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफ़िर** का ख्याल है कि कांग्रेस को २५ और ३० से अधिक स्थान नहीं मिलेंगे. इस का कारण कांग्रेस की आपसी गुटबंदी है. स्वर्णसिंह और ज़ैलसिंह गुटों ने अपने-अपने हित को और अपने-अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए कांग्रेस पार्टी की नैया डुबोयी है.

आम जनता के विभिन्न वर्गों के लोगों से भी **दिनमान** के प्रतिनिधि की मुलाक़ात हुई. सरकारी नौकर **बलदेवसिंह** का कहना था कि मतदान पार्टी के चिह्न को देख कर ही नहीं होंगे, बल्कि उम्मीदवार की अपनी अहमियत और उस के काम करने की लगन ही किसी के जीतने या हारने में सहायक होगी. उदाहरण के लिए उन्होंने राजपुरा और बनूड़ के इलाक़े में शांतिप्रकाश और प्रेमसिंह 'प्रेम' (कांग्रेसी) के जीतने की संभावना इस लिए की है कि लोगों के मन में उन के प्रति श्रद्धा और आस्था है. ६ फुट के एक देहाती जाट **जागीरसिंह** का कहना है कि 'पंथ' की तरफ़ से जो हुकुम होगा वही सिर माथे पर. एक किसान **रविंदरसिंह** यह सोचते हैं कि बाहर से थोपे गये उम्मीदवारों के जीतने का सवाल ही पैदा नहीं होता. हम तो उसी उम्मीदवार को अपनायेंगे जो हमारे इलाक़े का है, हमारी सहायता करता है और 'मेंबर' या 'मंत्री' बन जाने पर हमारे काम आ सकता है. एक ताँगेवाले **बेअंतसिंह** सोचते हैं कि संयुक्त मोर्चे की सरकार काफ़ी कामयाब रही. यही वजह है कि आज हिंदुओं और सिखों में भ्रातृभाव है और वह कंधे से कंधा मिला कर काम कर रहे हैं. लिहाज़ा उन्हीं के जीतने के आसार अच्छे नज़र आते हैं. एक रिक्शावाला सोचता है—चाहे जो भी जीते, सभी अपना-अपना पेट भरते हैं. जब तक मेंबर नहीं होते तब तक उन के घर में एक खटिया और एक-दो टूटे-फूटे ट्रंक होते हैं. मेंबर बन जाने के बाद उन की झोंपड़ी कोठी बन जाती है और उस में वे सब चीज़ें आ जाती हैं जिन की कभी वे कल्पना भी नहीं करते थे.

इन प्रतिक्रियाओं का घोल अपने दिमाग़ में घोलते हुए **दिनमान** प्रतिनिधि पटियाला की सँकरी और भीड़भाड़ वाली सड़क से गुज़रते हुए और आगे शहर में बढ़ा तो उसे बहुत से खेमे और तंबू नज़र आये, जहाँ कई पार्टियों के ऑफ़िस थे. पटियाला ज़िले में ९ निर्वाचन-क्षेत्र हैं—बनूड़, राजपुरा, रायपुर, पटियाला, डकाला, समाना, नाभा, अमलोह और सरहिंद. मुग़लकाल का शानदार नगर बनूड़ अब एक क़स्बा बन गया है. स निर्वाचन-क्षेत्र से कांग्रेस के भूतपूर्व मंत्री प्रेमसिंह 'प्रेम' की टक्कर मुख्य रूप से क्रांतिकारी बाबा पृथ्वीसिंह के साथ होगी. पिछले आम चुनाव में प्रेमसिंह 'प्रेम' ने बाबा पृथ्वीसिंह को ५०९ मतों से हराया था. इस बार भी मुख्य रूप से इन दोनों का ही मुक़ाबला होगा. बनूड़ में हिंदुओं की आबादी ५६ प्रतिशत है और यह हरयाणा और पंजाब की सीमा पर स्थित है. कांग्रेस की स्थिति इस लिए और पुख्ता हो गयी है क्योंकि बाबा पृथ्वीसिंह को प्रेमसिंह 'प्रेम' के खिलाफ़ चुनाव-याचिका दायर करने के लिए लोगों ने धन एकत्र कर के दिया था, लेकिन वह सारा धन खुद ही डकार गये और चुनाव-याचिका दाखिल नहीं की, जिस से वह समर्थकों की निगाह में गिर गये.

पटियाला शहर कांग्रेसी इलाक़ा है और यहाँ मुक़ाबला पंजाब उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश और महाधिवक्ता जगन्नाथ कौशल (कांग्रेस) और रवेल सिंह (अकाली) का है. वैसे मैदान में ओम् प्रकाश लांबा (जनसंघ) भी हैं. अकाली नेता रवेलसिंह के नामांकन से खुश नहीं हैं. वह नगरपालिका सदस्य मनमोहन सिंह के समर्थक थे, लेकिन अकाली पार्टी ने उन्हें टिकट नहीं दिया. रवेलसिंह बाहरी आदमी है, जब कि जगन्नाथ कौशल स्थानीय हैं. स्थानीय अकाली कार्यकर्त्ताओं का उम्मीदवार अमरीकसिंह माता, पार्टी के उम्मीदवार की मुखालफ़त करेगा. **डकाला** से पिछले आम चुनाव में पटियाला के महाराजा यादवेंद्रसिंह खड़े हुए थे. स बार वह चुनाव नहीं लड़ेंगे. कांग्रेस ने श्रीमती वीर पाल कौर को, जो कर्नल रघुबीरसिंह की पत्नी हैं, नामांकित किया है. पहले यहाँ अकाली उम्मीदवार जसदेवसिंह सिंधू थे, लेकिन अकालियों का स्वतंत्र पार्टी से समझौता हो जाने से वे स्वतंत्र पार्टी के प्रधान बसंतसिंह का समर्थन करने के लिए सहमत हो गये हैं. इस से अकालियों में मनमुटाव हो गया है. नगर में यह भी अफ़वाह है कि महाराजा पटियाला ने अकाली पार्टी को ३ लाख रुपया दे कर ५ सीटें स्वतंत्र पार्टी के लिए ली हैं. बसंतसिंह महाराजा के उम्मीदवार हैं, लिहाज़ा उन का पलड़ा कुछ भारी लगता है. **नाभा** में रामप्रताप गर्ग (कांग्रेस) और दारासिंह एडवोकेट (अकाली) की टक्कर होगी. गर्ग बाहर के आदमी हैं. दारासिंह स्वर्ण सिंह के समधी हैं. एक और उम्मीदवार गुरदर्शनसिंह हैं, जिन्हें प्रदेश कांग्रेस समिति ने अपना उम्मीदवार घोषित किया था, लेकिन केंद्रीय चुनाव-समिति ने उन्हें नहीं अपनाया है. पिछली बार राजा नरेंद्र सिंह गुरदर्शनसिंह से लगभग दस हज़ार मतों से जीते थे. इस बार कांग्रेस की स्थिति यहाँ पतली है. सरहिंद में लोकप्रिय अकाली रणधीरसिंह चीमा और भूपिंदरसिंह मान का

मुक़ाबला है. यहाँ अकालियों की स्थिति मज़बूत है. पिछले आम चुनाव में जोगिंदरसिंह मान (अकाली-मास्टर गुट) कोई दो हज़ार मतों से जीते थे, मज़बूत नहीं दीख रहे हैं. **रायपुर** में सत्यपाल कपूर (कांग्रेस) और हरदमसिंह (अकाली) मुख्य उम्मीदवार हैं. यों १४ और उम्मीदवार मैदान में हैं. हरदमसिंह की स्थिति अच्छी है—एक तो वह ज़मींदार है, दूसरे कंबोज जाति के लोग उन के पक्ष में हैं, तीसरे काली कमलीवाले बाबा आजकल कांग्रेस के विरुद्ध हैं और चौथे महारानी महिंदर कौर ने इस इलाक़े में ख़ास दिलचस्पी लेना छोड़ दिया है.

पंजाब के सब से गंदे लेकिन औद्योगिक दृष्टि से संपन्न नगर **लुधियाना** में **दिनमान** प्रतिनिधि की मुलाक़ात भूतपूर्व मुख्यमंत्री **गुरनामसिंह** से हो गयी. उन्होंने बताया कि यहाँ कांग्रेस को एक भी जगह मिलने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए, क्यों कि अभी तक ४ स्थानों के लिए कांग्रेस अपने उम्मीदवार तय नहीं कर पायी है. उन के ख़िलाफ़ जो कांग्रेसी उम्मीदवार जगजीतसिंह ढिल्लो थे उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया है. लुधियाना ज़िले से पंजाब और पेप्सू के तीन भूतपूर्व मुख्यमंत्री चुनाव लड़ रहे हैं. **पायल** से ज्ञानसिंह राड़ेवाला (अकाली) का मुक़ाबला बेअंत सिंह (निर्दल) से होगा. दोनों का अपना-अपना दबदबा है. बेअंतसिंह ज़मींदार हैं, राड़ेवाला के मत बाँट सकते हैं, लेकिन जीतने की संभावना अपने निजी प्रभुत्व और सम्मान के कारण ज्ञानसिंह राड़ेवाला की है. पहले कांग्रेस बेअंतसिंह का समर्थन करने की सोच रही थी किंतु उसने अब उनके मुक़ाबले में अपने एक कार्यकर्ता ओमप्रकाश को खड़ा किया है. बेअंतसिंह पिछले आम चुनाव में अकाली टिकट पर खड़े हुए थे. **समराला** में अकाली पार्टी के वरिष्ठ उपाध्यक्ष कपूरसिंह आई. सी. एस. (अकाली) का मुक़ाबला पंजाब विधान परिषद् के भूतपूर्व सभापति सरदार कपूरसिंह के बीच होगा. कांग्रेसी कपूरसिंह का अकाली कपूरसिंह की अपेक्षा जनता में सम्मान अधिक है, लिहाज़ा कांग्रेस की स्थिति यहाँ अच्छी है. **जगरांव** में अकाली उम्मीदवार दलीपसिंह तलवंडी है. जब कांग्रेस के सुरजीतसिंह मजीठिया ने यहाँ चुनाव लड़ने में अपनी असमर्थता ज़ाहिर कर दी तो उन का स्थान अत्र नाहर सिंह को दिया गया है. तलवंडी उन पाँच ज़िंदा शहीदों में से हैं जिन्होंने चंडीगढ़ और भाखड़ा नंगल की प्राप्ति के लिए १९६५ में संत फ़तेहसिंह के साथ जल मरने की क़सम खायी थी. **जगरांव** एक ऐतिहासिक इलाक़ा है और अकालियों का गढ़ है. लोग अधिक पढ़े-लिखे नहीं, लेकिन धर्मभीरु हैं. लछमनसिंह गिल ने यहाँ काफ़ी नाम कमाया है और जनता समिति कालेज के निर्माण का श्रेय भी उन्हीं को है, फिर भी अकाली उम्मीदवार के जीतने की संभावना है. यहाँ जैन मुनियों का काफ़ी रसूक है और अगर लछमनसिंह गिल यहाँ से खड़े होते, जैसी कि पहले संभावना भी थी, तो उन का जीतना लगभग तय था. **उत्तरी लुधियाना** से सरदारी लाल कपूर (कांग्रेस) का मुक़ाबला भूतपूर्व जनसंघी विधायक कपूरचंद्र जैन से है. सरदारी लाल कपूर अपने ४१ साल के राजनैतिक जीवन में पहली बार चुनाव लड़ रहे हैं. मुक़ाबला डट कर होगा. **लुधियाना दक्षिण** में योगेंद्रपाल पांडे (कांग्रेस), जगदीशचंद्र प्रसाद लुंबा (जनसंघ) और दौलतराम टंडन (संसपा) का मुक़ाबला है. पांडे आम चुनाव में जनसंघ के विश्वनाथन् से हारे थे. मुक़ाबला जम कर होगा. योगेंद्रपाल पांडे का पलड़ा भारी है. **किला रायपुर** से पंजाब के दो भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों की टक्कर है—गुरनामसिंह (अकाली) और लछमनसिंह गिल (जनता पार्टी). लछमनसिंह गिल पिछले डेढ़ महीने से यहाँ पद-यात्रा कर रहे हैं. यहाँ ग्रेवाल मत

नरोन्हा : शांति के रक्षक

ज़्यादा है और गुरनामसिंह का दबदबा बहुत है. कांग्रेसी उम्मीदवार जगजीतसिंह ढिल्लो मैदान से हट गये हैं और वह गुरनामसिंह के समर्थन में चुनाव-प्रचार कर रहे हैं. गुरनाम सिंह के जीतने की अधिक संभावना है. अब कांग्रेस ने अपने एक भूतपूर्व विधायक मंगल सिंह गिल को अपना उम्मीदवार नामज़द किया है. **रायकोट** में जगदेवसिंह अकाली और बाल सिंह रूमी (कांग्रेस) का मुक़ाबला है. पिछली बार यहाँ से अकाली उम्मीदवार जगदेवसिंह १२ हज़ार मतों से जीते थे, लेकिन तब कांग्रेसी उम्मीदवार कमज़ोर था. **कूम कलाँ** में शमशेर सिंह टंडारी (अकाली) का काफ़ी दबदबा है. औद्योगिक और कृषि-क्षेत्रों में एक जैसी पहुँच है और उन के जीतने की पूरी उम्मीद है. पिछली बार यहाँ से कांग्रेस के जनरल मोहन सिंह जीते थे, जो अब मैदान में नहीं हैं.

लुधियाना में जनसंघ का ज़ोर बहुत अधिक है और शहर की तीन सीटों में से दो जनसंघ और एक निर्दल उम्मीदवार को मिलने की पूरी उम्मीद है. **जलंधर शहर उत्तर** में भूतपूर्व विधायक लालचंद सब्बरवाल (जनसंघ) का मुक़ाबला उद्योगपति गुरदयाल सैनी (कांग्रेस) के बीच होगा. जनसंघ के प्रति लोगों के मन में अभी भी कुछ आदर है और हिंदुओं की संख्या ख़ासी है. लिहाज़ा यह स्थान जनसंघ को मिलेगा. **जलंधर दक्षिण** में मनमोहन कालिया (जनसंघ) के मुक़ाबले में नगरपालिका के सदस्य करतारसिंह मैना हैं. मनमोहन कालिया ने पिछली बार यहाँ से यशपाल को ५ हज़ार से अधिक मतों से पराजित किया था और इस बार भी उन की स्थिति काफ़ी अच्छी है. यशपाल अब होशियारपुर संसदीय उप-चुनाव से चुनाव लड़ रहे हैं. **जलंधर छावनी** से भूतपूर्व विधायक और राजस्वमंत्री जनरल राजेंद्र सिंह 'स्पैरो' संयुक्त मोर्चे के उम्मीदवार हैं. अकाली दल ने अब उन का समर्थन करने का निश्चय किया है. कांग्रेस की तरफ़ से स्वरूप सिंह खड़े किये गये हैं. राजेंद्रसिंह स्पैरो के ख़िलाफ़ यह प्रचार किया जा रहा है कि वह 'पतित सिख' हैं, क्यों कि वह दाढ़ी काटते हैं और उन के दोनों बच्चे सिख नहीं हैं. फिर भी स्पैरो की स्थिति सुदृढ़ है. **नूर महल** से भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्री दरबारासिंह की टक्कर भूतपूर्व अकाली मंत्री जसवंतसिंह से होगी. कम्युनिस्ट पार्टी ने अकाली दल का समर्थन करने का निश्चय किया है. मुक़ाबला डट कर होगा. **बड़ा पिंड** में कम्युनिस्ट पार्टी के नेता हरकिशन सिंह 'सुरजीत' का मुक़ाबला उमरावसिंह (कांग्रेस) से है. यह स्थान कम्युनिस्टों का है. कांग्रेस के उम्मीदवारों में आपसी मनमुटाव के कारण यह सीट सुरजीतसिंह के हाथ लगने की उम्मीद है. **आदमपुर** में करमसिंह कीर्त्ति (कांग्रेस) के मुक़ाबले में कम्युनिस्ट पार्टी के कुलवंतसिंह हैं. कुलवंत को अकालियों का समर्थन प्राप्त है. कीर्त्ति स्वर्णसिंह का आदमी है और पुराने देश-भक्तों में उन की गिनती है. मुक़ाबला जम कर होगा. **फिल्लौर** से सुरजीत सिंह अटवल (कांग्रेस) का मुक़ाबला बलदेव सिंह (अकाली) के साथ होगा. इस इलाक़े से पहले अमरसिंह दोसज निर्वाचित हुए थे जिन्होंने पंजाब में दल-बदल की शुरुआत की थी. अटवल की स्थिति अधिक मज़बूत है. **जमशेर** से दर्शन सिंह केपी (कांग्रेस) के मुक़ाबले मोहिंदरसिंह (रिपब्लिकन) और नाज़रसिंह (अकाली) का मुक़ाबला है. नाज़रसिंह 'बाहरी' हैं और रिपब्लिकन पार्टी दो गुटों में—गायकवाड़ और अंबेडकर—बँटी है. अतः दर्शनसिंह केपी की स्थिति अधिक मज़बूत है. **करतारपुर** में मास्टर गुरबंतासिंह (कांग्रेस)-का मुक़ाबला प्याराराम धन्नोवाली से होगा. पिछले आम चुनाव में मास्टर गुरबंता के ख़िलाफ़ हरिजनों को भड़काया गया था, लेकिन इस

बार प्याराराम की स्थिति बराबर दल बदलने के कारण कमज़ोर हो गयी है.

पंजाब के धार्मिक नगर **अमृतसर** में, जहाँ जगह-जगह गुरुद्वारे और मंदिर हैं, वहाँ की राजनीति भी बड़ी अजीब है. मंदिर और गुरुद्वारों के सामीप्य के कारण अकालियों और जनसंघियों की निकटता भी बहुत बढ़ गयी है और अब कांग्रेस को यह डर लग रहा है कि अमृतसर में अब उस की दाल नहीं गलेगी. अमृतसर केंद्रीय इलाक़े से भूतपूर्व जनसंघी विधायक बलरामजी दास टंडन और चंदन लाल जौड़ा (कांग्रेसी) के बीच सीधी टक्कर है. अकालियों के साथ समझौते और अपने व्यक्तित्व के कारण बलरामजी दास टंडन का जीतना प्रायः निश्चित है. **अमृतसर दक्षिण** से हीरालाल कपूर (कांग्रेस), हरबंसलाल खन्ना (जनसंघ) और कृपाल सिंह (प्रसपा) का मुक़ाबला है. पहले अकाली कृपालसिंह समर्थक थे, लेकिन अब उन का समर्थन हरबंस लाल खन्ना के पक्ष में है. **अमृतसर पूर्व** से पंजाब के भूतपूर्व उप-मुख्यमंत्री जनसंघ के डॉ. बलदेव प्रकाश अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण कांग्रेसी उम्मीदवार ज्ञानचंद खरबंदा के मुक़ाबले तगड़े पड़ते हैं और उन की जीत भी प्रायः निश्चित है. **अमृतसर पश्चिम** से कांग्रेस के जयइंदरसिंह की टक्कर कम्युनिस्ट नेता सत्यपाल डांग से है. पिछले आम चुनाव में डांग ने भूतपूर्व मुख्यमंत्री मुसाफ़िर को हराया था. मंत्री होने से डांग की कई खामियाँ लोगों के सामने आयीं, लेकिन फिर भी उन का दबदबा काफ़ी है और उन के जीतने की संभावना है. **पट्टी** में एक खानदान के ही उम्मीदवार प्रतिद्वंद्वी हैं, ये हैं जसवंतसिंह कैरों (कांग्रेस), सुरेंद्र सिंह कैरों (अकाली) और हरदीपसिंह संधू (निर्दल). सुरेंद्रसिंह कैरों भूतपूर्व मुख्यमंत्री प्रतापसिंह कैरों के बड़े लड़के हैं और जसवंतसिंह के भतीजे. हरदीप सिंह संधू जसवंत सिंह के नज़दीकी रिश्तेदार हैं. सभी धनवान हैं और पट्टी में इस समय चुनाव-प्रचार ज़ोरों पर है. **खडूरपुर साहब** में हरभजनसिंह एडवोकेट, (कांग्रेस) का मुक़ाबला जत्थेदार मोहनसिंह तुड़ (अकाली) से है. यहाँ अकालियों की स्थिति बहुत मज़बूत है. तुड़ स्वर्गीय कैरों से ३९ मत से हारे थे. इस बार उन का जीतना निश्चित-सा है. **मजीठा** में डॉ. प्रकाश कौर (कांग्रेस), शीषपाल सिंह (अकाली) और प्रकाशसिंह मजीठा (जनता) की टक्कर है. शीषपाल सिंह कभी कांग्रेस के सदस्य थे और डॉ. प्रकाश कौर की अपेक्षा तगड़े उम्मीदवार पड़ते हैं. सुरजीतसिंह मजीठिया इस निर्वाचन-क्षेत्र के दावेदार थे, लेकिन उन की इच्छा पूरी नहीं की गयी. लिहाज़ा यह स्थान अकालियों को मिल सकता है.

इस के अलावा कांग्रेस के एक प्रभावशाली सदस्य हरचरणसिंह बराड़ को कोटकपूरा से टिकट दे दिया गया है. पहले इन की राह में लक्ष्मी नारायण आ गये थे, लेकिन उन्होंने अब अपना नाम वापस लिया है. बराड़ कैरों परिवार से संबद्ध हैं और अभी तक कांग्रेस में ही बने हुए हैं, जब कि अन्य लोग अकाली पार्टी में शामिल हो गये हैं. भूतपूर्व प्रतिरक्षामंत्री सरदार बलदेवसिंह के सुपुत्र सुरजीतसिंह (अकाली) खरड़ से एक कांग्रेसी उम्मीदवार नरिंजनसिंह तालिब के मुक़ाबले में हैं. कदायाँ में बजवा जाति के लोगों की सीधी टक्कर है. कांग्रेसी उम्मीदवार गुरबचनसिंह बजवा और अकाली सतनामसिंह बजवा का मुक़ाबला है. सतनामसिंह बजवा की स्थिति दृढ़ है.

पंजाब विधानसभा के १०४ स्थानों के लिए ८७६ उम्मीदवार हैं. इन में आठ स्त्रियाँ हैं, जिन में से चार कांग्रेस की तरफ़ से, एक अकाली पार्टी और तीन बतौर निर्दल उम्मीदवार के चुनाव में भाग ले रही हैं : लछमनसिंह गिल दो निर्वाचन-क्षेत्रों—किला रायपुर और धर्मकोट से चुनाव लड़ रहे हैं. किला रायपुर में उन का मुक़ाबला गुरनामसिंह और धर्मकोट में उन का मुक़ाबला संसद्-सदस्य सोहनसिंह बस्सी से होगा.

चुनाव-संचालक **श्री नरोन्हा** ने, जो राज्यपाल के सलाहकार भी हैं, **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि चुनाव शांतिपूर्वक संपन्न कराने के लिए पुलिस, आरक्षित पुलिस तथा बाहर से पाँच बटालियन पुलिस बुलायी गयी है. यहाँ के मतदाताओं की संख्या पिछले आम चुनाव की अपेक्षा तीन लाख ६० हज़ार बढ़ी है.

चुनाव की गरमागरमी शुरू है. संयुक्त मोर्चा पुनः क़ायम हो चुका है और सभी ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों ने अपने-अपने उम्मीदवार-मैदान में उतार दिये हैं. जनता पार्टी के जन्मदाता गिल की लाख कोशिश के बावजूद सभी क्या एक बटा छह सीटों के लिए भी उम्मीदवार नहीं मिल पाये हैं.

पश्चिमी उत्तरप्रदेश

पश्चिमी उत्तरप्रदेश में विभिन्न राजनैतिक दलों ने मतदाता को आकर्षित करने के लिए अपने-अपने नारे और तर्क खड़े किये हैं. कांग्रेस का एकमात्र प्रभावशाली नारा है प्रदेश में स्थिर और मज़बूत सरकार देने में केवल कांग्रेस ही समर्थ है. इस सिलसिले में वे कांग्रेसी सरकार की स्थिरता पर कम मगर विरोधी दलों की सरकार की अस्थिरता पर अधिक ज़ोर देते हैं. इस प्रकार जनसंघ का 'हर खेत को पानी, हर हाथ को काम' वाला नारा भी कहीं-कहीं अपना प्रभाव दिखा रहा है. भारतीय क्रांति दल का सब से बड़ा नारा 'चरणसिंह' है, जिस का चित्र हर विज्ञापन के साथ रहना जरूरी हो गया है. यों तो उन के कार्यक्रम में 'धुँआ रहित चूल्हे' उपलब्ध कराना भी शामिल है मगर भारतीय क्रांति दल के नाम और कार्यक्रम से लोगों को गर्ज़ नहीं, चरणसिंह का नाम उन के लिए पर्याप्त है. **दिनमान** के प्रतिनिधि को मुरादाबाद नगर में भारतीय क्रांति दल के कार्यालय का पता कई लोगों से पूछने पर भी नहीं मिला. चरणसिंह की पार्टी को यहाँ कोई नहीं जानता. "अच्छा वो, उस का कार्यालय तो पास में ही है, वहाँ", यह उस व्यक्ति ने कहा जो भारतीय क्रांति दल को नहीं जानता था.

इस क्षेत्र से चुनाव में चरणसिंह को छोड़ कर किसी व्यक्ति का महत्त्व नहीं. वह जाटों के एकमात्र नेता बन गये हैं. अगर इस के अतिरिक्त कोई महत्त्वपूर्ण तत्त्व है तो संप्रदाय और जाति. यहाँ के ४० प्रतिशत मतदाता मुसलमान हैं और यही वर्ग चुनाव का अंतिम फ़ैसला कर सकता है. राजनैतिक दल स बात को समझते हैं. जनसंघ को छोड़ कर सभी दल इसी कोशिश में हैं कि उन्हें इस वर्ग के अधिक से अधिक मत प्राप्त हो सकें. धर्म-निरपेक्षता और समाजवाद का स्थान दूसरा है. एक संयुक्त समाजवादी प्रत्याशी का ध्यान जब इस ओर दिलाया गया तो उन्होंने कहा 'अब जब यह वातावरण बन गया है तो इस से लाभ न उठाने का मतलब होगा पराजय.' बहती गंगा में हाथ धोने की नीति कांग्रेस की नहीं है. वह तो गंगा को अपने ही घर की तरफ़ मोड़ने के प्रयत्न में है. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने अलीगढ़ कांग्रेस के ज़िला मंत्री से पूछा कि यह आरोप कहाँ तक उचित है कि कांग्रेस अल्पसंख्यकों के मत प्राप्त करने के लिए अनुचित रूप से उन की हिमायत कर रही है. तो वह बोले 'हिमायत हम ज़रूर करते हैं, मगर इस में अनुचित क्या है ? हम जानते हैं कि १९६७ के निर्वाचन में बहुत से मुसलमानों ने हमें मत नहीं दिया. हमारे प्रत्याशी (रवींद्र ख्वाजा) को जनसंघी प्रत्याशी इंद्रपालसिंह ने ५००० मतों से पराजित किया. इस लिए हमारे लिए अल्पसंख्यकों के हितों का विशेष ध्यान रखना ज़रूरी है.' इस सिलसिले में उन्होंने बताया कि अलीगढ़ ही कांग्रेस के नेता चंद्रभानु गुप्त का असली घर है. 'मगर यह हमारी बदनसीबी है कि हम उन्हें यहाँ से खड़ा नहीं कर सके.'

पश्चिमी उत्तरप्रदेश में चुनाव को प्रभावित करने वाली अनेक बातें हैं, मगर जाति और संप्रदाय अब भी सब से शक्तिशाली तत्त्व हैं. यह संघर्ष अग्रवालों और बारासैनियों, जाटों और ब्राह्मणों, निम्न वर्ग के लोगों और उच्च वर्गों, अंसारियों और अन्य मुस्लिम वर्गों का तो है ही मगर मुख्य प्रतिद्वंद्वी हिंदू और मुसलमान बनते जा रहे हैं और इस में सभी दल—समाजवादी, धर्म-निरपेक्षतावादी और सांप्रदायिक अपना-अपना योगदान दे रहे हैं. किसी ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया है कि भारतीय समाज को इस वस्तुस्थिति से किसी प्रकार मुक्त किया जाए. उन के अनुसार 'अभी तो इस स्थिति को बदला नहीं जा सकता. अधिसंख्य हिंदुओं को जनसंघ अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो गया है और किसी हद तक हिंदूपन की भावना जातिवाद से अधिक प्रभाव-

चौथे आम चुनाव के बाद

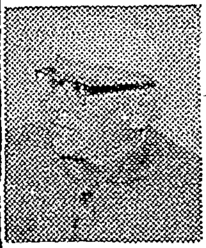

चंद्रभानु गुप्त

उत्तरप्रदेश (कुल विधायक—४२५)

पहला मंत्रिमंडल

मुख्यमंत्री : चंद्रभानु गुप्त (कांग्रेस)
कार्यकाल : १२-३-६७ से १-४-६७ तक
कांग्रेसी विधायक : (शपथ ग्रहण के समय) १९८

मंत्रियों की संख्या : ११

*

दूसरा मंत्रिमंडल

मुख्यमंत्री : चौधरी चरणसिंह (संविद)
कार्यकाल : ३-४-६७ से १७-२-६८ तक
मंत्रियों की संख्या : २८

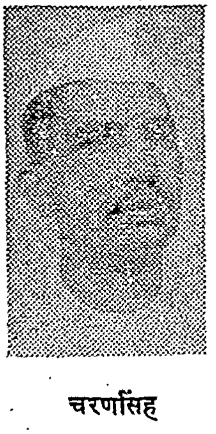

चरणसिंह

शाली शस्त्र सिद्ध हो रही है. —अलीगढ़ में बनियों की जनसंख्या सब से अधिक है, फिर भी जनसंघी प्रत्याशी इंद्रपालसिंह ठाकुर हैं. हिंदुओं के इस रुख का स्पष्ट परिणाम यह हो रहा है कि अन्य दल अपनी आशाएँ अल्पसंख्यकों पर टिकाये हुए हैं. यदि अल्पसंख्यक एक गुट के रूप में किसी दल विशेष के पक्ष में जायें तो उस के जीतने की आशा है अन्यथा नहीं.

दिनमान के प्रतिनिधि को बरेली नगर में भारतीय क्रांति दल के ज़िला मंत्री और साप्ताहिक **बंधन** के संपादक सरस्वतीसहाय त्यागी ने विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि इस बार भारतीय क्रांति दल ज़िले में सब से अधिक स्थान—११ में से ८—जीत लेगा; उन के अनुसार किसानों के लिए जो स्थान पहले कांग्रेस का था वही अब भारतीय क्रांति दल का हो गया है. "प्रमाण यह है कि बड़े-बड़े प्रभावशाली कांग्रेसी कार्यकर्त्ता भारतीय क्रांति दल में शामिल हो रहे हैं." इस सिलसिले में उन्होंने **फ़रीदपुर** से अपने दल के प्रत्याशी का उदाहरण दिया, जो कांग्रेस से टिकट न मिलने पर अपने २५०० कार्यकर्त्ताओं के साथ कांग्रेस छोड़ कर भारतीय क्रांति दल में शामिल हो गये हैं.

बात घूम-फिर कर अल्पसंख्यकों पर टिक गयी. दल के एक मुसलमान कार्यकर्ता ने दावा किया कि ८० प्रतिशत मुसलमान हमारे दल को मत देंगे, क्यों ? क्यों कि कांग्रेस से वे निराश हो चुके हैं और जनसंघ को वह मत नहीं देंगे. जनसंघ मुसलमान विरोधी दल है. बेशक चुनाव के दिनों में वह हमारा हमदर्द बन जाता है.' बरेली नगर में मुसलमानों की आबादी ४० प्रतिशत है. ३५ हज़ार मुसलमान मतदाताओं में से यदि २८ हज़ार (८० प्रतिशत) मत डालें और इन में से ८० प्रतिशत भारतीय-क्रांति दल के प्रत्याशी रामसिंह खन्ना के लिए पड़ें तो उन्हें मुसलमानों के २२ हज़ार से भी अधिक मत मिलेंगे. रामसिंह खन्ना और चरणसिंह की व्यक्तिगत लोकप्रियता से हिंदुओं के ५ हज़ार मत भी मिल गये तो बहुपक्षीय संघर्ष में उन की जीत निश्चित है.'

आँकड़े बहुत ही सरल और स्पष्ट हैं. वास्तव में वे इतने सरल हैं कि उन की वास्तविकता पर विश्वास करना कठिन हो जाता है. अति सरल होना ही उन की सब से बड़ी कमज़ोरी है. यह बात **दिनमान** के संवाददाता की समझ में नहीं आयी कि भारतीय क्रांति दल के नेता किस आधार पर यह मान बैठे हैं कि मुसलमान मतदाता केवल उन्हीं के समर्थन में मत डालेंगे और न ही दल के नेताओं ने इस सिलसिले में समझाने का कोई प्रयास किया है. ठीक है कि मुसलमानों को कांग्रेस से जो आशाएँ थीं वे पूरी नहीं हुईं और इस लिए उन के मन में कांग्रेस के प्रति उतना लगाव नहीं है जितना था. मगर इस स्थिति का अतिरंजित रूप पेश करना या उस से यह मान लेना कि उत्तरप्रदेश के किसी एक क्षेत्र के मुसलमान अचानक भारतीय क्रांति दल के भक्त हो गये हैं उचित नहीं दिखाई देता. बरेली के ही एक कांग्रेसी नेता के शब्दों में 'ये लोग (भारतीय क्रांति दल) मुसलमानों में यह वहम पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं कि यदि उन्होंने भारतीय क्रांति दल को मत नहीं दिया तो उत्तरप्रदेश में जनसंघ का राज्य हो जायेगा और ऐसी स्थिति में मुसलमानों का भविष्य ख़तरे में पड़ जायेगा.'

प्रश्न : कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के अनुसार मुसलमान मतदाता कांग्रेस का साथ नहीं छोड़ सकता, क्यों कि उत्तरप्रदेश में यदि कहीं वास्तविक संघर्ष है तो परस्पर जनसंघ में और 'असांप्रदायिक' कांग्रेस में ही है. मगर **बरेली** नगर के संदर्भ में ये कांग्रेसी कार्यकर्त्ता **दिनमान** के संवाददाता को नहीं समझा पाये कि वह यह दावा कैसे करते हैं कि कांग्रेस इस बार बरेली नगर में और ज़िले के अन्य स्थानों में पहले से भी अधिक मत प्राप्त करेगी. यदि यह मान लें कि अधिसंख्य मुसलमान अब भी कांग्रेस के ही साथ हैं और कांग्रेस को हिंदुओं के उतने ही मत मिलेंगे जितने पहले मिले थे तो उस से इस दल की स्थिति कैसे सुधर जाती है ? कां. कार्यकर्त्ताओं को आशा है कि भारतीय क्रांति दल जनसंघ के मत काटेगा, क्यों कि दोनों दल कांग्रेस विरोधी भावना को ही अपनी पूंजी समझते हैं. मगर इस संवाददाता को शहर के वातावरण में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं मिला कि मतदाता के मन में भारतीय क्रांति दल और जनसंघ के बीच में कोई दुविधा है. कुछ भी हो कांग्रेस का यह अनुमान ठीक नहीं लगता कि भारतीय क्रांति दल उस के भविष्य पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकता. सच तो यह है कि भारतीय क्रांति दल कांग्रेस के लिए जनसंघ से भी बड़ा ख़तरा है.

जनसंघ के प्रत्याशी और साप्ताहिक **बरेली** समाचार के संपादक सत्यप्रकाश अग्रवाल को विश्वास है कि उन का दल पहले से कहीं अधिक संगठित और लोकप्रिय है. कारण उस में ऐसे मतभेद पैदा नहीं हुए हैं जिन से अवसरवादिता का शक हो. 'हमारे समर्थक जानते हैं कि हम व्यक्तियों के नहीं सिद्धांतों के आधार पर लड़ते हैं. हमारे लिए इस का महत्त्व नहीं कि दल किस को टिकट देता है, किस को नहीं.' **दिनमान** के संवाददाता ने उन का ध्यान कुछ तथ्यों की ओर दिलाया जिन से सिद्ध होता है कि कुछ जनसंघी कार्यकर्त्ता और विधायक विरोधी शिविर में जा मिले हैं. उदाहरण के लिए भोजीपुरा चुनाव-क्षेत्र से जनसंघ के भूतपूर्व विधायक भानुप्रतापसिंह कांग्रस की ओर से खड़े हुए हैं. किंतु भोजीपुरा क्षेत्र में जनसंघ के प्रत्याशी भूतपूर्व विधायक हरीशकुमार गंगवार के संबंध में जनसंघ को कोई चिंता नहीं. बल्कि विश्वास है कि गंगवार को अपने क्षेत्र के अधिसंख्य मतदाताओं का विश्वास प्राप्त है. उन का प्रभाव इसी से सिद्ध है कि इस सर्वेक्षण के समय तक भारतीय क्रांति दल का कोई भी प्रभावशाली प्रत्याशी इस क्षेत्र में नहीं खड़ा हुआ था.

अलीगढ़ में कांग्रेस को इस बात का सब से ज़्यादा अहसास है कि अल्पसंख्यकों के मत उन के भाग्य का निर्णय कर सकते हैं. इस लिए कांग्रेस ने अलीगढ़ से एक पुराने नवाब अहमद ख़ाँ को खड़ा किया है. अलीगढ़ कांग्रेस कमेटी के मंत्री रामनंदन वशिष्ठ के अनुसार अहमद लुत ख़ाँ का चयन इस लिए किया गया कि वह एक राष्ट्रीय मुसलमान हैं और अलीगढ़ के मुसलमानों को इस बात का अहसास न हो कि इतनी बड़ी संख्या में होते हुए भी उन का कोई प्रतिनिधि नहीं चुना गया. कांग्रेसी नेता अल्पसंख्यकों को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अगर वे कांग्रेसी प्रत्याशी का समर्थन न करेंगे तो जनसंघ की विजय निश्चित है. इस बात का अहसास अलीगढ़ के अल्पसंख्यकों को हो भी गया है, जिस का प्रमाण यह है कि इस बार मैदान में अधिक मुसलमान प्रत्याशी नहीं हैं. पर एक राय यह है कि अल्पसंख्यकों के मत यदि बँटेंगे तो केवल कांग्रेस और भारतीय क्रांति दल में. रामनंदन वशिष्ठ का दावा है कि मुसलमानों के ९० प्रतिशत मत कांग्रेस के हक़ में पड़ेंगे और २० प्रतिशत मतों का बँटवारा

भारतीय क्रांति दल, संयुक्त समाजवादी पार्टी और मौर्यवादी रिपब्लिकन पार्टी के बीच हो जायेगा. हिंदुओं का रुख कांग्रेस के प्रति क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर वशिष्ठ ने कुछ सोच कर दिया. 'यदि पिछले चुनाव की भाँति इस बार भी चुनाव से पहले हिंदुओं में यह भावना पैदा हो गयी कि जनसंघ को छोड़ कर और कोई हिंदू नहीं होता तो हमें हिंदुओं के अधिक मत मिलने की आशा नहीं है.' इस का मतलब यह भी हो सकता है कि अलीगढ़ में अधिसंख्य हिंदू जनसंघ के समर्थक हैं और अधिसंख्य मुसलमान कांग्रेस के. बात कुछ ऐसी ही है. हाँ, भारतीय क्रांति दल बीच में आ पड़ा है और स्पष्ट रूप से दो सशक्त प्रतिद्वंद्वियों के बीच एक बाधा पैदा कर रहा है. कांग्रेसियों को डर है कि भारतीय क्रांति दल हिंदुओं के मत ले जायेगा और जनसंघी आशा लगाये बैठे हैं कि उस दल को मुसलमानों के अधिक मत मिलेंगे. मगर भारतीय क्रांति दल के कार्यकर्त्ता दावा करते हैं कि वे दोनों संप्रदायों के मत ले जायेंगे.

भारतीय क्रांति दल के प्रत्याशी कांग्रेस के एक वरिष्ठ सदस्य थे, मगर बहुत समय तक कांग्रेस में रहने के बाद भी उन्हें कोई राजनैतिक लाभ नहीं मिला. इस लिए वह भारतीय क्रांति दल में आ गये. उन के चुनाव-कार्यालय में मंत्री का कार्य करने वाले एक कार्यकर्त्ता के शब्दों में 'लोगों की प्रतिक्रिया तो ठीक है, मगर अभी कार्यकर्ताओं की समस्या हल नहीं हो रही है.' ऐसी स्थिति में मालूम नहीं कि दो शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वियों में स्पष्ट विभाजित समर्थकों में से दल कितना छीन सकेगा.

अलीगढ़ में स्पष्ट रूप से संघर्ष कांग्रेस और जनसंघ में है. संसोपा की स्थिति यहाँ कुछ अधिक अच्छी दिखाई नहीं देती. इस संवाददाता को संसोपा के कार्यालय में इस बात का आश्वासन दिलाने का प्रयास किया गया कि अलीगढ़ शहर न सही कम से कम गंगेरी, अतरौली, चंडोस और हाथरस चार देहाती चुनाव-स्थानों में विजय निश्चित है. अपने प्रत्याशियों के चयन में संसोपा ने तीन का ध्यान रखा है: शिक्षक, छात्र और मज़दूर. इसी लिए उस ने एक भूतपूर्व अध्यापक, मुस्लिम विश्वविद्यालय छात्र संघ के एक भूतपूर्व अध्यक्ष, हाथरस सूती मिल मजदूर पंचायत के मंत्री और अलीगढ़ के दैनिक सच के संपादक नंदकिशोर पंडित को अपना प्रत्याशी नियुक्त किया है.

नंदकिशोर पंडित : संसोपा की आशा

उन्होंने कहा, 'संसोपा एक ओर कांग्रेस की भ्रष्ट नीतियों का विरोध करेगी और दूसरी ओर प्रतिक्रियावादियों के विषैले प्रचार से मतदाता को बचाने का प्रयास जारी रहेगा.' अलीगढ़ ज़िले में उसे कहीं जीतने की आशा है तो नंदकिशोर पंडित के चुनाव-क्षेत्र चंडोस में. कांग्रेस की साख अब उतनी नहीं रही जितनी पहले थी और जनसंघ का कार्य भी इस क्षेत्र में उस व्यापक स्तर पर नहीं है कि वह गंभीर चुनौती दे सके. अलीगढ़ की राजनीति का एक और पहलू रिपब्लिकन पार्टी के नेता बुद्धप्रिय मौर्य की राजनीति है. मौर्य ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में ही शिक्षा प्राप्त की और राजनैतिक जीवन आरंभ किया. रिपब्लिकन पार्टी के अंबेदकर गुट के जिला मंत्री कंचनसिंह दास के अनुसार मौर्य की ग़लत नीतियों के कारण ही रिपब्लिकन पार्टी अलीगढ़ में कमजोर पड़ गयी है. "उन्होंने निम्न वर्गों और परिगणित जातियों में यह भावना पैदा कर दी कि वे हिंदू नहीं हैं. इस वर्ग के उत्थान का उन के पास एक ही रास्ता है—ऊँचे वर्गों का विरोध करो. इस प्रकार की कटुता पैदा कर के वह अपना राजनैतिक हित साधना चाहते हैं." कंचनसिंह दास ने दावा किया कि मौर्य के ही नेतृत्व में रिपब्लिकन पार्टी ने १९६७ के चुनाव-घोषणा पत्र में कश्मीर का आधा हिस्सा पाकिस्तान को देने का सुझाव दिया था. परिणाम यह हुआ कि १९६७ के चुनाव में एक भी नहीं रह गया.

मुरादाबाद में भारतीय क्रांति दल के प्रत्याशी मुहम्मद अय्यूब ख़ाँ अंसारी का पता पूछते-पूछते **दिनमान** का प्रतिनिधि एक चाय वाले की दूकान में जा बैठा. "अंसारी साहब का पता तो मुझे मालूम नहीं, मगर क्या वह चुनाव लड़ रहे हैं ?" चाय वाले के अनुसार अगर अंसारी साहब चुनाव में खड़े हुए हैं तो इस बात से कोई संबंध नहीं कि वह भारतीय क्रांति दल से खड़े हुए हैं या कांग्रेस से, मत तो उन्हें मिल ही जायेगा. शहर में कुछ ऐसा लगा कि धीरे-धीरे दो बड़े संप्रदाय अलग-अलग शिविरों में बँटते जा रहे हैं. संभवतया राजनैतिक नेताओं को इस बात का अहसास नहीं है या उन्हें चिंता नहीं. भारतीय क्रांति दल के अध्यक्ष ने जो आँकड़े प्रस्तुत किये उस से बिलकुल स्पष्ट है कि डॉ. मुहम्मद अय्यूब अंसारी को इस लिए खड़ा किया गया है कि वह अल्पसंख्यक संप्रदाय के हैं और अल्पसंख्यकों में भी अंसारी हैं. अध्यक्ष के अनुसार 'अंसारियों के बीस हजार मत हैं, जिन में से १७ हजार मिलने का विश्वास है. तीन-चार हज़ार मुसलमानों के अन्य वर्गों से मिल जायेंगे और पाँच हजार हिंदुओं के मत मिला कर विजय के लिए पर्याप्त हो जाते हैं.'

कांग्रेस के ज़िला अध्यक्ष और ज़िला परिषद् के अध्यक्ष प्रो. रामशरण भारतीय क्रांति दल को कोई महत्त्वपूर्ण प्रतिद्वंद्वी नहीं मानते. हाँ, जनसंघ की शक्ति को पहचानते हैं. इस लिए इसी दिशा में संपूर्ण विरोध और प्रचार-शक्ति लगा दी गयी है. टिकट के मामले में मुरादाबाद कांग्रेस में कई लोगों को असंतोष है मगर रामशरण के अनुसार इस का प्रभाव 'हमारे लिए खतरनाक साबित नहीं होगा.' भारतीय क्रांति दल और कांग्रेस की समान नीतियों और उन के एक प्रकार के मतदाताओं को जनसंघ अपनी पूँजी मानता है.

कितनी क्रांति, किसनी क्रांति

एक जनसंघी प्रत्याशी के शब्दों में 'भारतीय क्रांति दल तो भगोड़े कांग्रेसियों का 'ट्रांज़िट कैंप' (अस्थायी शिविर) है.'

और अंतिम पड़ाव ?

—यह तो उन्हें भी मालूम नहीं. थोड़ा समय एक जगह बिताने दीजिए—मौसम का रुख देख कर फ़ैसला करेंगे कि उन्हें किधर मुँह करना है. हो सकता है वह वापस घर लौटने का फ़ैसला करें.

एक कांग्रेसी नेता के अनुसार 'भारतीय क्रांति दल क्या है ? चरणसिंह का व्यक्तिगत मोर्चा है. अगर आज हम फ़ैसला कर लें कि चरणसिंह को मुख्यमंत्री बना दिया जायेगा तो आप को इस दल के सदस्य ढूँढे भी नहीं मिलेंगे.'

× × ×

भारतीय क्रांति दल के एक प्रत्याशी ने अनपढ़ किसान को विशेष रूप से दल के चुनाव-चिह्न (हल लिये हुए किसान) का महत्त्व समझाया. मगर किसान उत्साहित होने के बदले गंभीर सोच में पड़ गया. उस ने पूछा : 'कांग्रेस का चुनाव-चिह्न बैलों की जोड़ी है ना ?'

प्रत्याशी : 'हाँ है, तो क्या हुआ ?'

किसान : 'कुछ नहीं, बाबूजी सोच रहा हूँ कि कहीं ऐसा न हो कि चुनाव के बाद आप का यह किसान हल को बैलों की जोड़ी में लगा दे.'

× × ×

पश्चिमी उत्तरप्रदेश के एक क़स्बे में एक दल ने बड़े-बड़े विज्ञापन निकाले हैं जिन में मतदाता को बहुत से आश्वासन दिये गये हैं. एक व्यक्ति दूसरे को आश्वासन पढ़ कर सुना रहा था कि अचानक बीच में ही रुक गया.

'रुक क्यों गये ?'

'इस में लिखा है कि गाँव में ऐसे चूल्हे चालू करवाये जायेंगे जिन से धुँआँ न निकलता हो.'

'तो इस में बुरा क्या है ?'

'सवाल यह है कि (सर खुजला कर) अगर धुँआँ न मिला तो हम वे मच्छर कैसे भगायेंगे जो पिछली सरकार की नालियों में पैदा हुए हैं ?'

पूर्वी उत्तरप्रदेश

जनसंघ मध्यावधि चुनाव में उत्तरप्रदेश के लगभग हर विधान सभा क्षेत्र से चुनाव लड़ रहा है. इस से पूरे सूबे में जनसंघ वातावरण में व्याप्त रहेगा; एक क्षेत्र का असर दूसरे क्षेत्र पर पड़ेगा; जनता के मन में कांग्रेस के विकल्प के रूप में जनसंघ का स्थान मजबूत हो जायेगा. इस लिहाज से हर क्षेत्र में जनसंघ का चुनाव-प्रचार चल रहा है. दीपक निशान के केसरिया झंडे साइकिलों पर, जीपों पर लगे हुए कस्बों, शहरों, कहीं-कहीं गाँवों में भी, चुनाव प्रचार करते दिखायी दे जाते हैं.

भारतीय जनसंघ के गोरखपुर जिला मंत्री श्री राजाराम गुप्त का सारा समय—प्रातः काल ६-७ बजे से लेकर रात से १२-१ बजे तक आजकल राजनीतिक कार्य या चुनाव कार्य में ही लग रहा है. "पहले कपड़े की दूकान थी, पर वहाँ बैठ नहीं पाते थे. दूकान बंद कर देनी पड़ी. अब जीविका के लिए बीमा-एजेंट का काम करते हैं लेकिन इन दिनों उस की भी फ़ुर्सत नहीं मिल रही है." राजाराम जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के भी स्वयंसेवक हैं—गत २१-२२ बरसों से नियमित संघ की शाखा में जाते रहे हैं. राजाराम जी ने बताया कि **"आजकल चुनाव में जनता सब से पहले उम्मीदवार के व्यक्तित्व को देखती है इसी लिए भारतीय जनसंघ ने अपने उम्मीदवार चुनने में उम्मीदवारों के व्यक्तित्व का विशेष ध्यान रखा है. ऐसे व्यक्ति को उम्मीदवार बनाया गया है जिस की क्षेत्र में पहले से प्रतिष्ठा हो, जो चुनाव लड़ने में दस-पांच हजार रुपये भी खर्च कर सके. हाँ, किसी क्षेत्र में यदि जनसंघ का कोई कार्यकर्त्ता एक अरसे से काम करता रहा है और वह चुनाव लड़ने का इच्छुक हो गया, तो उसे अवश्य टिकट दिया गया, अन्य तरीकों से उस के चुनाव जीतने की संभावना चाहे क्षीण भी रही हो."**

गोरखपुर जिले के फरेंदा विधानसभा क्षेत्र से जनसंघ के एक कार्यकर्त्ता श्री मिश्रीलाल निषाद चुनाव लड़ते रहे हैं—उन्होंने जनसंघ प्रभावित नाविक-जल-मजदूर संघ के अंतर्गत इस क्षेत्र के केवट जाति के लोगों में काफ़ी दिनों तक काम किया है. केवट आबादी के इलाक़ों से उन्हें वोट भी मिलता रहा है पर वह वोट कभी भी इतना अधिक नहीं हुआ कि वे चुनाव जीत सकें. फिर भी भारतीय जनसंघ उन्हें बराबर टिकट देती आ रही है. इसी की तुलना में फरेंदा चुनाव क्षेत्र से सटा हुआ ही लछमीपुर विधानसभा चुनाव-क्षेत्र है. उस क्षेत्र में जनसंघ का कोई प्रमुख-कार्यकर्त्ता नहीं रहा है. पिछले आम चुनाव में भारतीय जनसंघ ने वहाँ से श्री रघुराज सिंह को अपना उम्मीदवार बनाया. श्री रघुराज सिंह ने इस क्षेत्र में राजनीतिक कार्य कभी किया हो या न किया हो, वह इस इलाक़े में शराब की भट्टियों के सब से बड़े ठेकेदार हैं और आमदनी का कुछ हिस्सा चुनाव लड़ने में भी खर्च कर सकते हैं. यदि क्षेत्र में पार्टी के कार्यकर्त्ता नहीं हैं तो चुनाव कार्य के लिए वेतनभोगी कार्यकर्त्ता बन सकते हैं. चुनाव लड़ने के राजनैतिक हथकंडे बताने का कार्य पार्टी के सिद्धहस्त लोग करते ही रहते हैं. इस क्षेत्र में मुसलमान वोटरों की तादाद २० प्रतिशत से कुछ अधिक है. संयोगवश गत आम चुनाव में एक उम्मीदवार श्री अब्दुल रऊफ़ लारी मुसलमान थे. मुसलमान वोटर श्री लारी को वोट दे रहे हैं, यह जान कर अप्रतिबद्ध हिंदू वोटर आसानी से हिंदू उम्मीदवार की ओर खिंच गया. वेतनभोगी कार्यकर्त्ताओं ने काफ़ी ईमानदारी से अपने उम्मीदवार को वोट दिलवाये. श्री रघुराज सिंह विधानसभा सदस्य हो गये. जनसंघ के सदस्यों की तादाद विधानसभा में एक और ज्यादा हो गयी. इस मध्यावधि चुनाव में भी इस क्षेत्र से जनसंघ के उम्मीदवार श्री रघुराज सिंह ही हैं.

पिछले आम चुनाव में जनसंघ के उम्मीदवार इस जिले में दो विधानसभा क्षेत्रों में जीते थे. एक तो उपर्युक्त लछमीपुर विधानसभा क्षेत्र में श्री रघुराज सिंह और दूसरे गोरखपुर शहर से श्री उदय प्रताप दूबे, वकील. शहर की नगरपालिका में भी एक अरसे से जनसंघ का ही बहुमत रहता आया है. गोरखपुर नगरपालिका ने शहर की जमीनों, मकानों पर लगने वाले करों को समाप्त कर दिया.

दो महीने पहले ही गोरखपुर की संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का जिला सम्मेलन हुआ, उस में अगले वर्ष के लिए ज़िला मंत्री श्री गुंजेश्वरी प्रसाद चुने गये. उन्होंने बताया कि गत आम चुनाव में इस ज़िले के ६ विधानसभा क्षेत्रों से पार्टी के उम्मीदवार विजयी हुए थे. 'अब क्षेत्र में जाने पर गाँव के लोग सब से पहले एम. एल. ए. साहब का दर्शन करना चाहते हैं. अगर एम. एल. ए. साहब ने दर्शन दिया तो जनता उन से सब के सामने ट्यूब-वेल की, गाँव के रास्ते के बाबत शिकायतें करेगी फिर कोई भलामानुस उन्हें अकेले में ले जा कर अपने पढ़े-लिखे बेकार लड़के की नौकरी लगवाने के लिए कहेगा.' एम. एल. ए. साहब को इन मतदाताओं से अपनी असमर्थता जता कर इन्हें अपने से विमुख नहीं करना चाहिए अतः वे कहेंगे—'अच्छा ठीक है, देखा जायेगा.' राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के पास समाधान के लिए बिलकुल निजी मसले भी आते हैं. पासी जाति का एक ससुर कार्यकर्त्ता के पास इस लिए आया कि उस की पतोहू ने घर से भाग कर दूसरी शादी कर ली है. असल में ऐसे मामले पहले पासी जाति की अपनी पंचायत के लोग निपटाते थे लेकिन बिरादराना रिश्तों-धंधों के कमजोर होने से बिरादरी की पंचायत भी टूट रही है और उस का काम भी एम. एल. ए. साहब को या राजनैतिक कार्यकर्त्ता को करना पड़ता है.

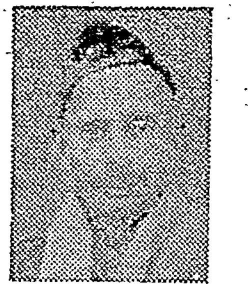

राजाराम गुप्त

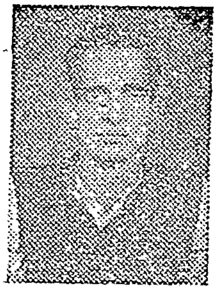

गुंजेश्वरी प्रसाद

संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की भी बेकारों को रोजगार दिलाने, हर खेत को सिंचाई के नीचे लाने के साथ-साथ भूमिहीनों को जमीन दिलाने जैसी माँगें हैं. पिछले कई महीनों में इन्हीं माँगों को ले कर ज़िले में सत्याग्रह हुआ जिस में कोई ५०० सत्याग्रही जेल गये. ज़िले में सत्याग्रह के खास लक्ष्य थे सरदार नगर फ़ार्म, खुरहन जंगल, ताल नदोर, निचलोल आदि जगहें, जहाँ तमाम ज़मीन बंजर पड़ी हुई थी. समाजवादी युवजन सभा ने बेकारों को रोज़गार दिलाने के सवाल को मुख्य लक्ष्य बनाया था. रोज़गार दफ़्तर के सामने सत्याग्रह कर के गिरफ़्तारी दी. अलाभकर जोतों पर से लगान हटाना पार्टी की एक पुरानी माँग है और १९६७ के अंत में संविद के शासन काल में बाँसगाँव विधानसभा क्षेत्र के उप-चुनाव में यह माँग चुनाव की लड़ाई का मुख्य आधार बन गयी थी. तब जनसंघ के राज्य संगठन मंत्री ने इस माँग का विरोध करते हुए यह भाषण किया कि लगान खत्म होने पर काश्तकार का खेत भी निकल जायेगा—क्षेत्र में वोट माँगने जाते हुए इस तरह के दुष्प्रचार का भी सामना करना पड़ता है और सच-झूठ की कलई खोलनी पड़ती है.

सत्याग्रह केवल औपचारिक आंदोलन ही हो कर रह जाता है या उस का खास तौर पर चुनाव की दृष्टि से कुछ नतीजा भी निकलता है—यह पूछने पर श्री गुंजेश्वरी प्रसाद ने बताया: 'ताल नदोर में ५०० एकड़ से ज्यादा ज़मीन बंजर पड़ी हुई थी. क़ायदन वह गाँव-समाज की ज़मीन थी लेकिन ज़िले के प्रमुख कांग्रेसी नेताओं ने, जिन में ज़िला बोर्ड के कांग्रेसी अध्यक्ष और अभी एक विधानसभा क्षेत्र के उम्मीदवार डॉ० हरिप्रसाद शाही, मंडल कांग्रेस कमेटी के एक भूतपूर्व अध्यक्ष किशन सिंह और खंड प्रमुख अरविंदपति त्रिपाठी जैसे लोग थे, इस ज़मीन पर वर्ग ४ में अपना नाम दर्ज करवा लिया. वहाँ के लेखपाल को इस कार्य के लिए शायद लाखों रुपये रिश्वत दी गयी. इस बात को ले कर संसोपा के विधानसभा सदस्य अश्विनीकुमार शुक्ल ने विधानसभा में सवालात किये तो उस लेखपाल की मुअत्तली हुई. लेकिन उस की पीठ पर कांग्रेस के बड़े नेता थे, जिन की संविद सरकार के तत्कालीन मंत्री तक भी

पहुँच थी. इन लोगों ने कोशिश कर के संबंधित महकमे के सचिव की आज्ञा से उस लेखपाल की मुअत्तली भी रुकवा दी. बहुत अधिक आंदोलन करने और विधानसभा में शोर मचाने पर कहीं उस लेखपाल की गिरफ़्तारी हुई. १५ मई १९६८ को उसी ज़मीन पर सत्याग्रह हुआ और भूमिहीनों ने वहाँ कब्ज़ा किया. अब उस जमीन पर ये भूमिहीन ही काबिज है. इस तरह सत्याग्रह का लक्ष्य भी सफल हुआ, चुनाव की दृष्टि से भी अनुकूल वातावरण बना. इसी कछार के क्षेत्र में पहले नदी के कटाव में आने वाली ज़मीन के लिए धुर-धारा का सिद्धांत लागू था अर्थात् ज़मीन कट कर जिस गाँव की ओर चली गयी उस गाँव की हो जाती थी. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ने आंदोलन कर के, विधानसभा में सवाल उठा कर स्थायी सीमाबंदी का नियम लागू करवाया.'

चुनाव-प्रचार के दौरान भी समस्याएँ उठा करती है. "उपर्युक्त क्षेत्र के विधानसभा उम्मीदवार अश्विनीकुमार शुक्ल प्रचार-कार्य के लिए जब महेवा गाँव में गये तो उन्होंने देखा कि एक खेत से, जिस पर अरहर की फ़सल खड़ी है, मिट्टी काट कर नहर के किनारे की सड़क पर डाली जा रही है. पूछने पर पता चला कि इस ज़मीन का कोई आधिकारिक अधिग्रहण नहीं हुआ है. सड़क पर मिट्टी डालने की दर प्रायः १८ रु० प्रति हज़ार घन फ़ुट होती है पर यहाँ यह सोच कर कि किनारे के खेतों की फ़सल बचाने के लिए काफ़ी दूर से मिट्टी लानी पड़ेगी, ठेकेदार को ११४ रु० प्रति हज़ार घन फ़ुट की दर से ठेका दिया गया. फिर भी ठेकेदार और ओवरसियर ने किसानों को भय दिखाया कि मिट्टी सरकारी काम के लिए ली जा रही है और खड़ी फ़सल बरबाद कर के सड़क के सब से निकट के खेत से मिट्टी निकाली. ठेकेदार अपना भुगतान भी ११४ रु० प्रति हज़ार घन फ़ुट की दर से ही २ लाख रुपये महकमे से ले चुका है. अब वहाँ उम्मीदवार ने गाँव के किसानों को इकट्ठा किया, उन से दरख्वास्त लिखवायी, नहर महकमे के इंजीनियर के दफ़्तर में जा कर दरख्वास्त दी, मिट्टी का निकालना रुकवाया तब कुछ जाँच का काम शुरू हुआ."

"इसी तरह जनता पुलिस महकमे से भी परेशान रहती है. गगहा थाने का थानेदार अपने दलालों के ज़रिये गाँवों का तस्कर व्यापार और तरह-तरह की रिश्वतखोरी किया करता था. अपने एक दलाल को बचाने के लिए उस ने गजपुर गाँव के एक किसान के घर में खुद देसी पिस्तौल रखवायी और उसे गिरफ़्तार किया. एक गाँव में एक किसान की झोपड़ी उजाड़ दी. इस थानेदार के खिलाफ़ प्रदर्शन करना पड़ा तब वह मुअत्तल हुआ और इलाक़े की जनता को कुछ राहत मिली."

खेल और खिलाड़ी

डूरैंड कप : पंजाब में

भारतीय फुटबाल में कलकत्ता की दो टीमों (मोहन बागान और ईस्ट बंगाल) की धाक, साख या दबदबा अब धीरे-धीरे कम होता जा रहा है और जालंधर (पंजाब) की दो टीमें (सीमांत सुरक्षा दल और लीडर्स क्लब) बड़ी तेज़ी के साथ आगे बढ़ रही है. डी. सी. एम. प्रतियोगिता का फ़ाइनल हो या रोवर्स का या कि डूरैंड का, अब पंजाब की इन दोनों टीमों में से एक फ़ाइनल में जरूर पहुँच जाती है. शुक्रवार, १० जनवरी को दिल्ली कारपोरेशन स्टेडियम में डूरैंड १९६८ का फ़ाइनल मैच बंगाल की ईस्ट बंगाल और पंजाब के सीमांत सुरक्षा दल (जो पहले पंजाब पुलिस के नाम से जानी जाती थी) के बीच रहा. इस मैच को खेल की दृष्टि से तो नहीं बल्कि कुछ और कारणों से ज़रूर महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है. जहाँ तक खेल का सवाल है यह मैच बहुत ही नीरस और बेजान रहा लेकिन जहाँ तक खेल के अतिरिक्त कुछ अन्य पहलुओं का सवाल है यह मैच काफ़ी जानदार, शानदार और दिलचस्प रहा.

मैच से पहले की कहानी : यह मैच ठीक तीन बजे शुरू होना था लेकिन स्टेडियम एक घंटे पहले ही भर चुका था. स्टेडियम से बाहर हज़ारों लोग हाथों में टिकटें, प्रेस पास और निमंत्रण-पत्र थामे खड़े थे और स्टेडियम का द्वार बंद था. इतना ही नहीं सीमांत सुरक्षा दल की टीम के खिलाड़ी भी मैदान से बाहर ही खड़े थे और उन्हें अंदर जाने की इजाज़त नहीं मिल रही थी. सब्र की एक सीमा होती है. जब खेल शुरू होने में केवल १५ मिनट का समय रह गया तो बी. एस. एफ. खिलाड़ियों ने हिम्मत कर के १९ फ़ुट ऊँची दीवार फांदनी शुरू कर दी और इस प्रकार वह मैदान के अंदर पहुँच पाये. दिल्ली फुटबाल एसोसिएशन के प्रधान भी जब किसी तरह भीड़ के ज़ोर से अंदर धकेले गये तो उन्होंने ठंडी सांस भरते हुए कहा कि 'भगवान का लाख-लाख शुक्र है कि मैं ठीक-ठाक अंदर पहुँच गया हूँ.' सैकड़ों खेल-प्रेमी हाथ में पाँच-पाँच रुपये की टिकटें थामे बाहर खड़े चिल्लाते रहे मगर डूरैंड फुटबाल कमेटी के अधिकारियों ने किसी की एक न सुनी. डूरैंड के फ़ाइनल के लिए अब यह मैदान बहुत छोटा पड़ने लगा है.

बेजान मैच : जहाँ तक खेल का सवाल है उसे देख कर यही कहा जा सकता है कि उस में फ़ाइनल मैच का-सा मजा बिलकुल नहीं था. डूरैंड के फ़ाइनल में पहुँची इन दोनों टीमों का यदि स्तर है तो कहा जा सकता है कि भारत फुटबाल के क्षेत्र में अभी दुनिया से (दुनिया से क्या एशिया से भी) अभी बहुत पीछे है. वैसे तो ईस्ट बंगाल की टीम में सभी अनुभवी और चोटी के खिलाड़ी थे मगर मैदान में वे सब यों उखड़े-उखड़े से लग रहे थे मानो सभी नौसिखिया खिलाड़ी हों. ईस्ट बंगाल की टीम के पास वही अपना एक पुराना घिसापिटा-सा तरीक़ा है और उसी के अनुसार वह हमेशा खेलती है. मोहन बागान की टीम के, जो सेमीफ़ाइनल में बी. एस. एफ. से हारी थी, खिलाड़ियों में यह खूबी ज़रूर है कि वह समय, मैदान या हवा के रुख के अनुसार अपने खेल के ढँग को भी बदल सकते हैं. पूर्वार्द्ध बहुत ही नीरस

डूरैंड कप अब सीमांत सुरक्षादल के पास : खेल खत्म, भंगड़ा शुरू

डूरंड कप : ताक़त और तरीक़े की लड़ाई

सा रहा. कभी दर्शकों का शोर, कभी रैफ़री का विरोध, किसी खिलाड़ी के लिए हाय-हाय, किसी के लिए 'हो-हो.' इस के अलावा कुछ भी उल्लेखनीय नहीं था. इसी बीच यह तय हो गया कि यदि आज कोई टीम कोई गोल नहीं कर सकी तो यह फ़ाइनल मैच रविवार को दुबारा खेला जायेगा और कोई अतिरिक्त समय नहीं दिया जायेगा. कारण स्पष्ट ही था. एक तो उस दिन राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन कुछ अस्वस्थ होने के कारण मैदान में उपस्थित नहीं हो सके थे और दूसरे यह कि मैच दुबारा खेले जाने में डूरंड कमेटी का ही भला (एक दिन के मैच से कम से कम २० हज़ार की आमदनी तो होती ही) था.

ज्यों-ज्यों खेल खत्म होने का समय नज़दीक आने लगा त्यों-त्यों दर्शकों का उत्साह और दिलचस्पी कम होती गयी. बीच-बीच में दोनों टीमों को गोल करने के लगभग समान अवसर मिले मगर हर बार गोल-रक्षक की होशियारी और निशानेबाज़ की लापरवाही के कारण सब प्रयास विफल होते रहे. खेल खत्म होने में केवल छः मिनट का समय रह गया था तभी सीमांत सुरक्षा दल के खिलाड़ियों में थोड़ी तेज़ी आ गयी: ईस्ट बंगाल के गोल के पास पहुंच कर बी. एस. एफ. के लेफ्ट आउट नज़रसिंह ने कोने से गेंद को गोल की ओर फेंका, सेंटर फारवर्ड अर्जुनसिंह ने उसे रोक कर तुरंत सुरजीत सिंह (राइट आउट) को दिया और सुरजीत ने बिना एक पल खोये गेंद को ईस्ट बंगाल के गोल में डाल दिया और यह सब कुल दो सैकिंडों में हो गया. ईस्ट बंगाल का गोली थंगराज देखता का देखता रह गया. बस फिर क्या था इधर दर्शकों की तालियों की गूंज से सारा स्टेडियम गूंज उठा, उधर मैदान में सीमांत सुरक्षा दल के खिलाड़ियों ने सुरजीत को घेर लिया, चार-पाँच साथियों ने उस का चुंबन भी किया (अपनी बेहद खुशी का इज़हार करने का यह पुराना पंजाबी स्टाइल है). खेल में थोड़ी तेज़ी आयी मगर पाँच मिनट में हो ही क्या सकता था. भारतवर्ष में कोई ब्राज़ील का पेले या इंग्लैंड के स्टेनले मैथ्यू जैसा खिलाड़ी तो है नहीं कि जो तीन मिनटों में ही तीन गोल कर सकने की क्षमता रखता हो. मैदान में बैठे ईस्ट बंगाल के समर्थकों का चेहरा जितना उतरा पंजाब के समर्थकों और दर्शकों का चेहरा उतना ही खिल उठा. मैदान में बैठे एयर मार्शल अर्जुनसिंह ने भी तुरंत अपने पास बैठे अश्विनी कुमार को बधाई दी.

डूरंड कप: कुछ पुराने विजेता

१९४०—मोहम्मडन स्पोर्टिंग
१९४१ से १९४९ : प्रतियोगिताओं का आयोजन नहीं हुआ.
१९५०—हैदराबाद पुलिस
१९५१-५२—ईस्ट बंगाल
१९५३—मोहन बागान
१९५४—हैदराबाद पुलिस
१९५५—मद्रास रेजिमेंटल सेंटर
१९५६—ईस्ट बंगाल
१९५७—हैदराबाद पुलिस
१९५८—मद्रास रेजिमेंटल सेंटर
१९५९—मोहन बागान
१९६०—मोहन बागान और ईस्ट बंगाल (संयुक्त विजेता).
१९६१—आंध्र पुलिस
१९६२—प्रतियोगिता का आयोजन नहीं हुआ.
१९६३-६५—मोहन बागान
१९६६—गोरखा ब्रिगेड
१९६७—ईस्ट बंगाल

सुरजीत सिंह : 'जित के ल्यांदा कप'

खेल तो खत्म हो गया मगर दूसरा नज़ारा शुरू हो गया. बी. एस. एफ. के खिलाड़ियों ने अपने रहनुमा अश्विनीकुमार को कंधों पर उठा लिया. राष्ट्रपति की अनुपस्थिति के कारण एयर मार्शल अर्जुनसिंह ने, जो कि डूरंड फुटबाल कमेटी के अध्यक्ष भी हैं, खिलाड़ियों को पुरस्कार वितरित किये. डूरंड के ८० वर्ष के इतिहास में यह पहला अवसर है जब डूरंड कप उत्तर भारत (पंजाब) की यात्रा कर रहा है. इस पर उत्तर भारत की जनता का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है. सीमाओं की सुरक्षा करने वाले हमारे वीर सैनिक बधाई के पात्र हैं.

क्रिकेट

आस्ट्रेलिया बनाम वेस्ट इंडीज़

जब से ऑस्ट्रेलिया ने लगातार दो टेस्ट मैचों (मेल्बॉर्न और सिडनी) में विश्व विजेता

भारतीय क्रिकेट टीम के कप्तान नवाब पटौदी और फ़िल्म अभिनेत्री शर्मिला टैगोर के विवाह के उपलक्ष्य में आयोजित एक समारोह में राजकपूर शर्मिला को शुभकामना देते हुए: शर्मिला से क्या शर्म ?

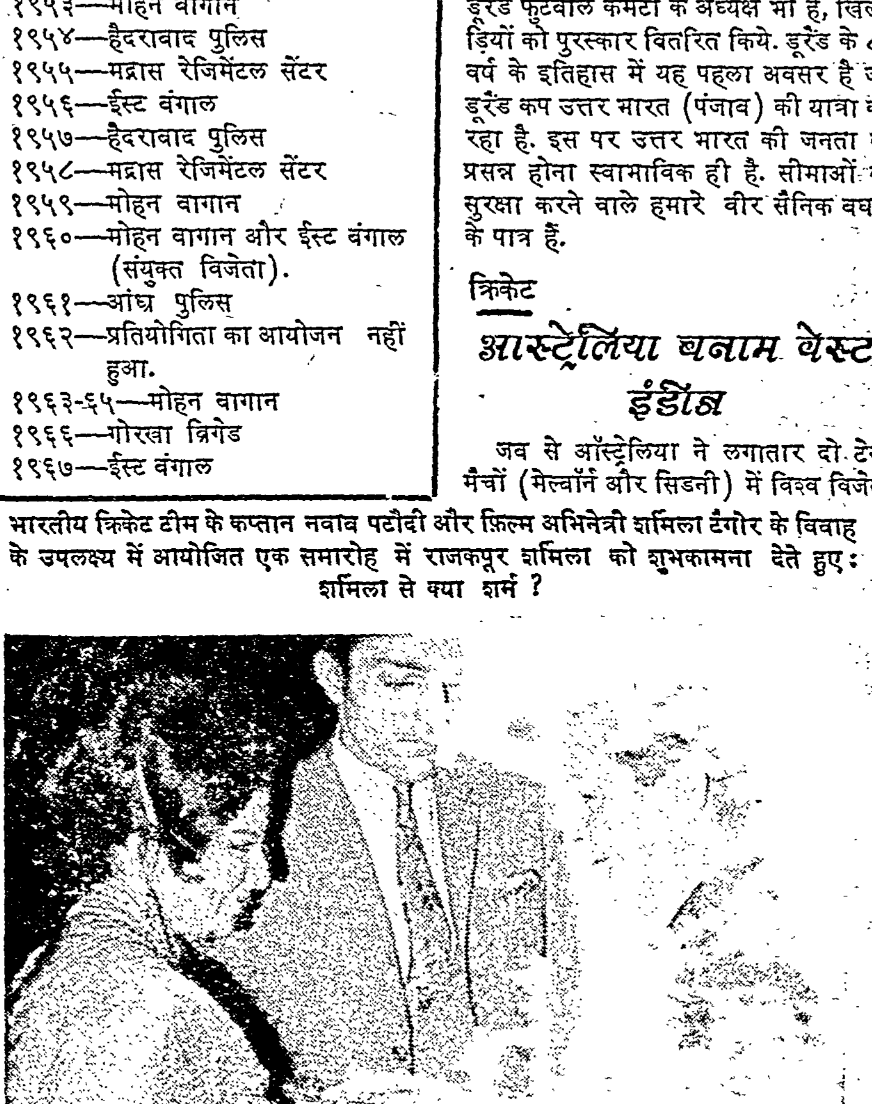

वेस्ट इंडीज़ की क्रिकेट टीम को हराया है-तब से वेस्ट इंडीज़ के कप्तान गैरी सोवर्स और कुछ अन्य खिलाड़ियों के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही हैं. क्रिकेट के क्षेत्र में वेस्ट इंडीज़ का दवदवा अब उसी तरह कम होता जा रहा है जैसे कि भारत में फुटवाल के क्षेत्र में मोहन वागान या कि ईस्ट वंगाल का दवदवा कम होता जा रहा है. इस हार से सोवर्स का, जिन्हें दुनिया का सर्वश्रेष्ठ आल राउंडर और सफल कप्तान माना जाता है, चिंतित होना स्वाभाविक ही है. वेस्ट इंडीज़ की जनता कुछ भी वर्दाश्त कर सकती है मगर क्रिकेट के खेल में हार के गम को वर्दाश्त नहीं कर सकती. यों तो इस वर्तमान टेस्ट शृंखला में दो टेस्ट अभी बाकी हैं, मगर इस समय ऑस्ट्रेलिया २-१ से आगे है और आसार कुछ वेस्ट इंडीज की हार के ही दिखाई दे रहे हैं. वेस्ट इंडीज के क्रिकेट पंडितों और पदाधिकारियों में कुछ इस प्रकार की चर्चा वड़े ज़ोरों से है कि टीम के कुछ खिलाड़ी जल्दी ही सन्यास लेने यानी अवकाश लेने की घोषणा कर देंगे. सुनने में आ रहा है कि वेस्ट इंडीज़ ीम के कप्तान गैरी सोवर्स और उप-कप्तान लेंस गिब्स ने क्रिकेट से अवकाश लेने की इच्छा ज़ाहिर की है. और यह भी कहा जा रहा है कि सोवर्स पर यह दवाव डाला जा रहा है कि वह स साल के अंत तक वेस्ट इंडीज का नेतृत्व ज़रूर करें.

आलोचना : कुछ क्षेत्रों में सोवर्स की इस लिए आलोचना की जा रही है कि सिडनी टेस्ट का मैदान तेज़ गेंदबाज़ों के काफ़ी अनुकूल था मगर टॉस जीतने के बावजूद सोवर्स ने गेंद की बजाय वल्ला थामा और पहली पारी स्वयं शुरू की. सोवर्स का यह निर्णय 'अपने लिए मुसीवत मोल लेने' के वरावर था.

चौथा टेस्ट : इस टेस्ट शृंखला का चौथा टेस्ट एडिलेड में २४ जनवरी से शुरू होगा. ऑस्ट्रेलियाई टीम के कप्तान विल लारी ने अपने खिलाड़ियों का उत्साह बढ़ाते हुए कहा कि इस टेस्ट को जीतने के लिए हमें जी-जान से कोशिश करनी होगी.

उधर सोवर्स ने गंभीरतापूर्वक अपनी टीम का आत्म-विश्लेषण करते हुए कहा कि हमारी वल्लेवाज़ी का पक्ष काफी कमजोर रहा है और वाकी दोनों टेस्ट मैचों में हमें इस पर काफ़ी ध्यान देना होगा. सिडनी के तीसरे टेस्ट में हमें अपनी पहली पारी में २६४ रन से काफ़ी ज्यादा रन बनाने चाहिए थे मगर हमारे खिलाड़ियों ने इस पक्ष पर ज्यादा ज़ोर नहीं दिया. लेकिन दूसरी ओर यह भी मानना होगा कि ऑस्ट्रेलिया की गेंदबाज़ी और क्षेत्ररक्षण काफ़ी शानदार थी. फिर उन्होंने यह भी कहा कि हमारा मनोवल और आत्मविश्वास अभी नहीं टूटा है और मेरा ख्याल है कि हम चौथा टस्ट जीतने की पूरी कोशिश करेंगे. यहाँ यह वता देना उचित होगा कि ऑस्ट्रेलिया ने तीसरा टेस्ट १० विकेट से जीता था.

समाचार-भूमि

क्यूबा : पुनर्विवाह के बाद

एक सौ साल पहले क्यूबा के एक क्रांतिकारी ने पहली बार परंपरागत शासन-प्रणाली के विरुद्ध वगावत का झंडा वुलंद किया था. यह व्यक्ति कार्लोस मैनुएल द केस्पीडीस अपने उद्देश्य में सफल तो नहीं हुआ किंतु अपने देश को गुलामी और शोषण से मुक्त करने के लिए उसने अपना बलिदान दे दिया. उस के बाद समय-समय पर क्यूबा में इस किस्म की बगावतें होती रहीं जब कि एक दिन फ़िडेल कास्त्रो और बहादुर छापामारों ने क्रांति का अंतिम अध्याय लिख दिया. कास्त्रो की क्रांतिकारी सरकार के १० वर्ष पूरे हो चुके है लेकिन कमज़ोर आर्थिक स्थिति, राजनैतिक एकाकीपन और विरोधी शक्तियों के जबर्दस्त दबाव के कारण अब भी क्यूबा की वर्त्तमान सरकार उसी स्थिति मे है जिस में उस समय थी जब कि कास्त्रो ने पहली वार क्रांतिकारी सरकार की नींव डाली थी. अब यह मानी हुई बात है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभावक्षेत्र में इस्राइल की तरह रहते हुए भी क्यूवा उस का प्रवल विरोधी है तथा इस प्रकार का अस्तित्व बनाये रखने का उसे पूरा अधिकार है. इस संदर्भ में लातीनी अमेरिका के अधिसंख्य देशों ने यद्यपि कास्त्रो-सकार को उसी प्रकार की मान्यता नहीं दी है जिस प्रकार की एक पड़ोसी देश को दी जानी चाहिए फिर भी उन्होंने क्यूबा की सरकार की विरोधी नीति को एक स्थायी तत्व के रूप में स्वीकार किया है. कुछ लातीनी अमेरिकी देशों ने तो सीमित रूप से क्यूबा को राजनैतिक मान्यता भी दी है. पेरू ने क्यूबा के राजनयिक प्रतिनिधिमंडल को स्थायी प्रतिनिधि की हैसियत से ही स्वीकार किया है. इस लिए इस प्रकार के वातावरण में रहते हुए भी क्यूबा को हर समय इस बात का भय रहता है कि कही किसी छोटी ग़लती के कारण अनेक बलिदानों द्वारा प्राप्त क्रांति असफल न हो जाये.

रौनक और प्रगति : क्रांति की दसवी वर्ष-गाँठ के अवसर पर क्यूबा में अनेक देशों के प्रतिनिधि आये मगर उन में से अनेक प्रतिनिधियों के मन में क्यूबा की प्रगति का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा क्यों कि आज भी हवाना के बाजारों में लातीनी अमेरिकी नगरों के बाजारों जैसी रौनक नहीं है. आज भी खूबसूरत मकानों और वाटिकाओं का अभाव है बल्कि सच तो यह है कि क्रांति से पहले जो खूबसूरती राजधानी की थी वह भी अब नहीं रह गयी है. क्यूबा बहुत ही आकर्षक द्वीप है जो न केवल अमेरिकी बल्कि यूरोपीय पर्यटकों का भी एक मुख्य आकर्षण स्थल बना हुआ था मगर आज वह संपूर्ण आकर्षण नष्ट हो चुका है. जहाँ कुछ प्रतिनिधियों के मन पर इस बेरौनकी का बहुत असर पड़ा वहीं अधिसंख्य प्रतिनिधि इस बात से सहमत थे कि कास्त्रो के शासनकाल में क्यूबा ने अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रति ठोस कदम उठाया है. कास्त्रो अपने देश में एक नये प्रकार के सामाजिक जीवन को लागू करने का प्रयास कर रहा है. यह ऐसा समाज है जो न तो चीनी या रूसी साम्यवाद द्वारा निर्धारित नियमों और शर्तों पर अक्षरश: चलता है और न ही पूँजीवादी तथाकथित स्वतंत्र जीवन से उस का कोई संबंध है. कास्त्रो के शब्दों में वह एक 'सच्चे भ्रातृभावपूर्ण मानववादी साम्यवाद' की स्थापना करना चाहते हैं. इस प्रकार के साम्यवाद में एक प्रकार का सामूहिक जीवन जीने का प्रयास किया जा रहा है. क्यूबा के लिए यह अत्यंत आवश्यक है क्यों कि उस की आर्थिक स्थिति साधारण तरीकों से नहीं सुधर सकती. क्यूबा के पास वेचने के लिए तंवाकू और चीनी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है. और इस लिए कृषि ही उस की आर्थिक प्रगति का एकमात्र आधार बनी हुई है. यद्यपि आरंभिक दिनों में क्रांतिकारी सरकार ने देश में औद्योगीकरण का एक अभियान चलाया था फिर भी औद्योगिक दृष्टि से क्यूबा बहुत पीछे है. औद्योगीकरण का अभियान इस लिए सफल नहीं हो सका कि एक तो उस के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य विकसित देशों के साथ प्रतियोगिता करना अत्यंत कठिन कार्य था और निर्यात के लिए उत्पादन बढ़ाने के कार्यक्रम में इस लिए प्रगति नहीं हो सकी क्यों कि उत्पादन के लिए कच्ची सामग्री का क्यूबा में अभाव था. इस असफल अभियान के बाद फिर से कृषि की ओर ध्यान दिया गया. नेताओं के अनुसार 'क्रांति के लिए कृषि उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना छापामारों के लिए पर्वत.' कास्त्रो का उद्देश्य १९७० तक एक करोड़ टन चीनी पैदा करने का है किंतु यह लक्ष्य अभी पूरा होता नहीं दिखाई देता. पिछले वर्ष कुल ५२ लाख टन चीनी का उत्पादन हो सका जब कि १९६० में ७२ लाख से भी अधिक चीनी पैदा हो गयी थी. हर व्यक्ति कृषि उत्पादन में किसी-न-किसी प्रकार योगदान देता है, क्यों कि संपूर्ण टापू गन्ने का बहुत बड़ा फ़ार्म-सा दिखाई देने लगा है. शहरों की संख्या कम नहीं है मगर वह केवल नाम के शहर हैं. बड़े-बड़े होटल गायब हो गये हैं. सड़कों पर बहुत थोड़ी मोटरकारें चलती हैं, बाजारों में चमकदार नामपट्ट इक्के-दुक्के ही दिखाई देंगे, जलपान गृहों में कुछ एक खाने-पीने की चीजें ही प्राप्त हो सकती हैं.

कृषि-कार्यक्रम : यह सब होते हुए भी यह नहीं समझना चाहिए कि पिछले दस वर्षों में क्यूबा ने कोई प्रगति नहीं की है. जब कास्त्रो

ने शासन सँभाला तो अचानक क्यूबा का आर्थिक आवार ही समाप्त हो गया और इस लिए आरंभिक वर्षों में शहरों और कस्बों में एकदम ग़रीबी के वादल छा गये. सफ़ाई का कोई प्रवंध नहीं था. वैंकों का कार्य ठप्प हो गया था. व्यापार में गतिरोध आ गया था. चंद वसें यात्रियों को ले कर चल रही थीं मगर वैल-गाड़ियाँ उन से ज्यादा आरामदेह सिद्ध हो रही थीं: कोई भी वस ऐसी नहीं थी जिस में धुएँ और भीड़ की वजह से यात्रियों को परेशानी न उठानी पड़ती हो. भवन-निर्माण ऐसी अविवेक-पूर्ण नीतियों के आधार पर होने लगा था जिस से शहरों की रही-सही खूवसूरती भी तेज़ी से नष्ट होने लगी थी. मगर पिछले दस वर्षों में क्यूवा के शासक ने असफलताओं से अनुभव प्राप्त किया और आज शहरों में रौनक तो नहीं मगर नागरिक सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में उप-लव्ध हैं. परिवहन का अच्छा प्रवंध है. भवन और नगर-निर्माण उचित और आकर्षक योजनाओं के अंतर्गत हो रहा है तथा लोगों में असंतोष और अव्यवस्था समाप्त हो गयी है. उत्पादन वढ़ाने के लिए छोटी-छोटी समितियों का गठन हो रहा है जो खेतों में काम करने की योजना वनाती हैं. समितियों के सदस्य जीवन में कुछ भी हो सकते हैं—ड्राइवर, सिपाही, दूकानदार, सरकारी कर्मचारी—मगर एक निश्चित समय के लिए उन्हें गन्ने के खेतों में, तंवाकू या काफ़ी के फ़ार्मों में काम करना पड़ता है. कास्त्रो के प्रसिद्ध छापामार साथी अर्नेस्टो चे ग्वेवारा की मृत्यु ने क्यूवा के क्रांति-कारियों में एक नया जोश पैदा कर दिया है.

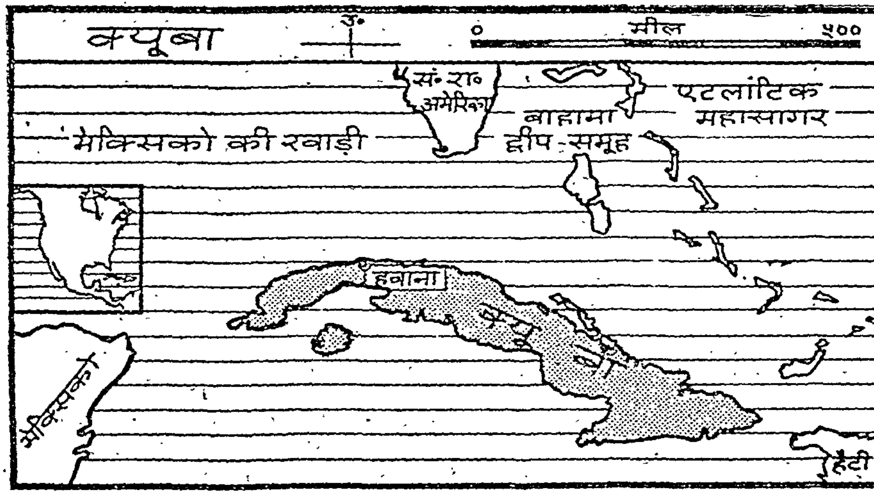

लोग चे को एक आदर्श वीर क्रांतिकारी मानने लगे हैं.

चे ग्वेवारा : चे ग्वेवारा क्यूवा के नागरिक नहीं थे. किंतु फ़िदेल कास्त्रो से मिलने के वाद आर्जेंटीना निवासी युवक के मन में क्यूवा के क्रांतिकारियों से सहयोग करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई. उन्हीं के शब्दों में 'मैं उन से (कास्त्रो से) मेक्सिको में एक वहुत ठंडी शाम को मिला और मुझे याद है कि हमारी पहली वातचीत अंतरराष्ट्रीय राजनीति के संवंध में हुई. कुछ ही घंटों में—सुवह सवेरे तक मैं उन का एक मुख्य अभियान संचालक वन गया.' १९५४ में चे ने ग्वाटेमाला छोड़ा और मेक्सिको पहुँच गये क्यों कि ग्वाटेमाला में उन के विरुद्ध षड्यंत्र और विद्रोह के आरोप में गिरफ़्तार करने के लिए वारंट जारी हो चुका था. सौभाग्य से कास्त्रो भी अपने मित्रों के साथ मेक्सिको में ही थे क्यों कि वह किसी ऐसे स्थान की तलाश में थे जहाँ से वह क्यूवा में क्रांति लाने के लिए तैयारी कर सकते. कुछ तैयारी कर के जव वह आगे वढ़ने के लिए तैयार हुए तो अचानक सरकारी पुलिस ने उन्हें आ घेरा और अधिसंख्य विद्रो-हियों को गिरफ़्तार कर लिया गया जिन में चे ग्वेवारा भी थे. जेल से छूटने के वाद उन्होंने दुवारा अपने वर्ग से शिकायत करनी शुरू कर दी क्यों कि उन के अनेक सहयोगी घवरा कर भाग गये थे. अंत में २५ नवंवर १९५६ को क्रांतिकारियों का एक दल एक छोटे-से जहाज़ में वैठ कर क्यूवा की ओर चल पड़ा. यह जहाज़ अत्यंत धीमी गति से चल रहा था और इस दल के पास खाने-पीने का सामान भी काफ़ी नहीं था.

५ दिनों की इस यात्रा में अधिसंख्य सदस्य वीमार हो गये और जव वह क्यूवा के तट पर पहुँचे तो उस समय वे लोग वहुत वुरी अवस्था में थे. क्यूवा की पुलिस को किसी प्रकार पता चल गया और सरकारी सेना के जहाज़ इस की खोज में निकल पड़े थे. मगर ऊँचे-घने पेड़ों के कारण उन का पता नहीं चल पाया. यह सौभाग्य अधिक देर तक नहीं रह पाया. क्यों कि कुछ ही समय वाद सरकारी सैनिक उस स्थल पर पहुँच गये और उन्होंने गोलियाँ चलानी आरंभ कर दीं. ९ दिन तक यह दल क्यूवा के जंगलों में और गन्ने के खेतों में घूमता फिरा. अपने हथियार और फटे-पुराने कपड़ों के अतिरिक्त उन के पास कुछ भी नहीं वचा था. भूख ने उन्हें इतना व्याकुल कर दिया कि उन के एक नेता कैमिलो ने कच्चे केंकड़े खाने शुरू कर दिये. कास्त्रो उन से पहले ही क्यूवा पहुँच गये थे और अपने दल के साथ उन्होंने जगह-जगह विद्रोह और हड़तालें आरंभ कर दी थीं. विद्रोह इतनी तेज़ी के साथ फैल गया कि कैमिलो, चे ग्वेवारा और कास्त्रो के योजनावद्ध आक्रमण को सामंतवादी अधिनायक नहीं सह सके और यह छोटा-सा टापू क्रांति-

फ़िदेल कास्त्रो : निरंतर तत्पर

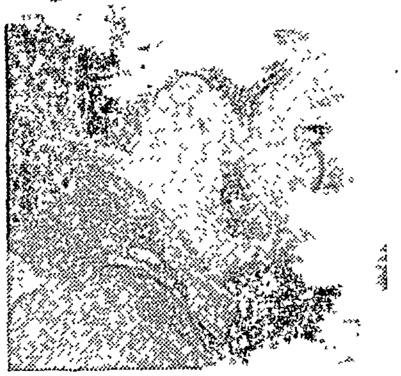

चे ग्वेवारा : अधूरा सपना

कारियों के हाथ में जा पहुँचा. जिस समय क्यूबा में क्रांतिकारी सरकार बनी उस समय क्यूबा पूर्ण रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका पर निर्भर था किंतु वह आधार समाप्त होने के बाद कास्त्रो के लिए यह बहुत कठिन परीक्षा का समय सिद्ध हुआ जिस में उन्हें न केवल क्रांतिकारी भावना को बनाये रखना था बल्कि देश की आर्थिक स्थिति को भी सुधारना था.

राजनैतिक भविष्य : क्यूबा की तुलना इस्राइल के साथ की जाती है क्यों कि दोनों देश अपने विरोधियों से घिरे हुए हैं और दोनों अपनी कमज़ोर आर्थिक स्थिति को सुधारने का भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं. इन दोनों देशों में एक ऐसे समाज की रचना हो रही है जो व्यक्तिगत आकांक्षाओं की अपेक्षा सामूहिक लाभ को दृष्टि में रख कर काम करता है. मगर दोनों देशों में बहुत बड़ा अंतर भी है. इस्राइल एक राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हो कर जहाँ सामूहिक लाभ को दृष्टि में रखता है वहीं व्यक्तिगत स्वातंत्र्य और सुविधाओं को भी वह नज़रअंदाज़ नहीं करता. इस्राइलियों को एक सूत्र में बाँधने के लिए अधिनायकवाद की ज़रूरत महसूस नहीं होती और न ही इस्राइल किसी देश पर इतना निर्भर करता है कि उस देश की इच्छा-अनिच्छा से इस्राइली विदेश या आंतरिक नीतियों का निर्धारण होता हो. कास्त्रो के क्यूबा में स्थिति दूसरी है. उन के दर्शन में क्यूबा की जनता को बौद्धिक लाभ या धन संबंधी सुविधाओं की कोई आशा नहीं करनी चाहिए. अधिक काम का मतलब अधिक सुविधाएँ नहीं. इस दशा में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की कोई क़ीमत नहीं. वास्तव में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का अभाव तो क्यूबा में अन्य दृष्टियों से भी महसूस किया जाता है. हाल ही में क्यूबा की सरकार ने लेखकों के विचार-स्वातंत्र्य पर प्रतिबंध लगाया है. देश के अर्ध-सरकारी लेखक संगठन और स्वतंत्र कलाकार संघ के बीच मतभेद पैदा हो गया है जिस के कारण अनेक लेखकों और पत्रकारों को प्रतिक्रियावादी और क्रांति-विरोधी कह कर दबाया जाने लगा है. इस दमन का शिकार क्यूबा के प्रसिद्ध कवि हरबर्टो पाहिला और नाटककार ऐंटन हरुंफ़त भी हुए हैं. इस का स्पष्ट परिणाम यह हो गया कि यहाँ जो साहित्य रचा जायेगा वह सरकारी सूचना विभाग के साहित्य से बहुत भिन्न नहीं हो सकता.

क्यूबा की स्थिति बहुत कठिन है. क्रांति से पहले अमेरिका यहाँ की ८० प्रतिशत चीनी खरीदता था और चीनी का मूल्य अंतरराष्ट्रीय मूल्य से कहीं अधिक चुकाया जाता था. मगर क्रांति के बाद जब संयुक्त राज्य अमेरिका ने पूर्ण रूप से क्यूबा पर आर्थिक प्रतिबंध लगाया तो सोवियत संघ क्यूबा की सहायता के लिए आगे बढ़ा. आज क्यूबा का आर्थिक ढाँचा सोवियत संघ की सहायता पर इतना आधारित है कि आर्थिक दृष्टि से क्यूबा सोवियत संघ का एक प्रदेश बन गया है. यह अनुमान लगाया गया है कि इस समय सोवियत संघ को क्यूबा में १० लाख डालर प्रतिदिन खर्च करना पड़ता है क्यों कि सोवियत संघ क्यूबा की चीनी बहुत ऊँचे दामों पर खरीदता है मगर तेल और तेल के अन्य उत्पादन कास्त्रो की सरकार को सस्ते दामों पर मिलते हैं. क्यूबा में जितना भी तेल इस्तेमाल किया जाता है वह सब रूस या साम्यवादी शिविर के देशों से जाता है. जो तकनीकी सहायता रूस से प्राप्त होती है उस के लिए भी क्यूबा के निवासियों के मन में कोई विशेष अनुराग नहीं है क्यों कि उन्हें यह महसूस होता है कि क्रांति के बाद देश की आर्थिक स्थिति में केवल इतना ही परिवर्तन आया है कि पहले उस का भाग्य नियंता संयुक्त राज्य अमेरिका था और अब सोवियत संघ है. मालिक बदलने की इस प्रक्रिया से स्वयं कास्त्रो भी प्रसन्न नहीं इस लिए वह अन्य ग़ैर-साम्यवादी देशों से व्यापार करने की फ़िक्र में है. इस संदर्भ में कैनाडा, फ़्रांस और स्पेन से थोड़ा-बहुत व्यापार होने लगा है. आर्थिक स्थिति की विकटता का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि क्यूबा में मोटर-कार चलाना या खरीदना अत्यंत कठिन है क्यों कि उस के लिए तेल मिलना संभव नहीं है. इस वर्ष के वार्षिक उत्सव के अवसर पर भी शस्त्रों या अन्य झाँकियों का प्रदर्शन नहीं हुआ क्यों कि सरकार तेल की हर बूँद बचाना चाहती है. पिछले दिनों क्रिसमस के लिए खाने-पीने की वस्तुओं का राशन तो था ही बच्चों के खिलौनों का भी राशन हो गया था. एक बच्चे के लिए अधिक से अधिक ३ खिलौने खरीदे जा सकते थे. इस से भी विकट समस्या राजनैतिक है. यदि संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच इस क़िस्म का कोई समझौता हो गया कि वे एक-दूसरे के प्रभाव-क्षेत्रों में दखलंदाज़ी नहीं करेंगे तो कास्त्रो के लिए यह समस्या हो जायेगी कि वह संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ कैसा बर्ताव करे. इस लिए राजनैतिक क्षेत्रों में यह पूछा जा रहा है कि क्रांतिकारी कास्त्रो के सपनों को कब तक ज़िंदा रहने दिया जायेगा.

विश्व

अमेरिका

दायित्व के दायरे

केनेडी भाइयों में सब से छोटे और अंतिम भाई एडवर्ड मूर केनेडी, जिन्हें टेडी और टेड केनेडी भी कहा जाता है, की राजनैतिक सक्रियता से न केवल सेनेट में ही गर्मी आयी है, बल्कि नव-निर्वाचित राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन के खेमे में भी हलचल हुई है. ९१वीं कांग्रेस के अधिवेशन से पूर्व सेनेट की बहुमत डेमाक्रेटिक पार्टी ने अपने सचेतक (व्हिप) का चुनाव किया. इस चुनाव ने पिछली पंक्ति के सेनेटर टेड केनेडी को अगली पंक्ति में ला कर बिठा दिया. उन का नाम अब डेमाक्रेटिक पार्टी के लीडर मांसफ़ील्ड के बाद आया करेगा. दरअसल, डेमाक्रेटिक पार्टी में यह बहुत दिनों से महसूस किया जा रहा था कि पार्टी का आधुनिकीकरण करने और उस में उदार रवैये की लहर भरने का काम कोई उदार व्यक्तित्व ही कर सकता है. जब सचेतक के चुनाव का सवाल उठा तो अधिकतर उदार सेनेटरों ने यह महसूस किया कि भूतपूर्व सचेतक लांग का उतना आदर, रुतबा और दबदबा नहीं है जितना कि सचेतक का नेता के रहते और उस की ग़ैर-हाज़िरी में होना चाहिए. इस पद के लिए टेड पहले पहल खुद तैयार नहीं थे और वह चाहते थे कि सेनेटर एडमंड मस्की, जो कि डेमाक्रेटिक पार्टी के उपराष्ट्रपति-पद के उम्मीदवार भी थे, चुनाव लड़ें. उपराष्ट्रपति-पद के चुनाव ने यह सिद्ध कर दिया था कि मस्की की मतदाताओं में खासी इज़्ज़त और अहमियत है, लिहाज़ा सेनेटर भी उन्हें सचेतक मान सकते हैं. अपनी छुट्टियों के दौरान जब टेड ने मस्की से कहा 'आप इस पद के लिए अपने आप को प्रस्तुत कर' तो मस्की ने पहले सोचने के लिए समय माँगा और सोचने के बाद उन्होंने नकारात्मक उत्तर दे दिया. इस पर

केनेडी : दृढ़ता में शर्म नहीं

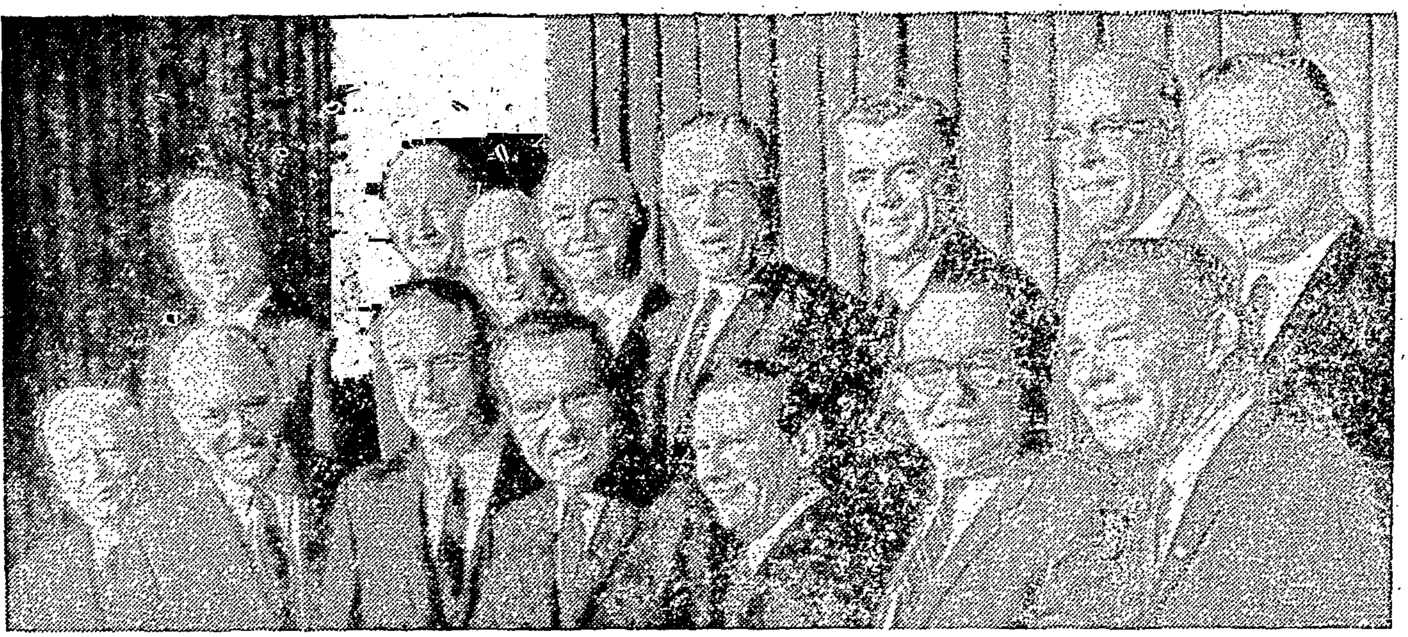

नव-निर्वाचित राष्ट्रपति निक्सन, उप-राष्ट्रपति एगन्यू और उन के मंत्रिमंडल के सदस्य : पद-ग्रहण से पूर्व की मुस्कान

केनेडी ने मस्की से कहा, 'यदि आप का निर्णय अपरिवर्त्तनीय है तो मुझे आशीर्वाद दीजिए.' मस्की ने हामी भर दी. चुनाव के चार दिन पहले टेड अपने चुनाव-प्रचार में स्वयं ही जुट गये. समय कम था, हरेक से उन्होंने टेलीफ़ोन पर ही बात की जिन में मैरीलैंड के सेनेटर जोसेफ़ टाईडिंग्स, वॉशिंग्टन के हैनरी जैक्सन और बॉबी (रॉबर्ट कैनेडी) के पुराने दोस्त और सहयोगी दक्षिण डकोटा के जॉर्ज मैकगवर्न भी थे. सभी को टेड केनेडी के इस निर्णय पर अचंभा हुआ और उस के सवाल का मतलब 'क्यों, किस लिए और क्यों नहीं' के प्रश्न वाचकों से दरियाफ़्त किया गया. टेड ने अपने इस फ़ैसले की खबर ह्यूबर्ट हंफ़्री को भी दी और उन का भी आशीर्वाद प्राप्त किया. टेडी में एक ऐसी खासियत है, जो उस के दो बड़े भाइयों जॉन और बॉब में नहीं थी. वह अपने बुजुर्गों का बहुत सम्मान करते हैं, बेशक उन का दृष्टिकोण और उन के विचार उन बुजुर्गों से मेल न खाते हों. यही वजह है कि टेड सेनेटर यूजीन मैकार्थी के पास भी गये. मैकार्थी ने, जो बॉब की हत्या के बाद टेडी के राष्ट्रपति-पद के लिए उम्मीदवार खड़े होने की दशा में अपने प्रतिनिधियों का समर्थन देने को तैयार थे, टेड से उल्टा सवाल किया, 'लेकिन क्यों?' मैकार्थी के दिमाग़ में केनेडी परिवार के विरुद्ध विचारों का गुच्छा उन पर पुन: हावी हो गया और टेडी मैकार्थी के यहां से खाली हाथ लौट आये.

लोकप्रियता : जैसा कि केनेडी परिवार में प्रसिद्ध है कि जो एक बार ठान ली, उसे ले कर ही दम लेंगे. वही बात टेड पर भी लागू होती है. बेशक वह स्वभाव से शर्मीले, लजीले और विनीत हैं लेकिन जॉन और बॉब जैसी दृढ़ता भी उन में है. वह दिन-रात अपनी मुहिम में डटे रहे और सचेतक पद के लिए जब गुप्त मतदान हुआ तो कुल ५७ मतों में से ३१ मत टेडी को मिले और २६ लांग को. बहुमत पार्टी के नेता मांसफ़ील्ड लांग से छुटकारा पाना चाहते थे, फिर भी उन्होंने लांग के विरुद्ध कोई प्रचार तो नहीं किया लेकिन टेड की पीठ वह अवश्य थपथपाते रहे. जब टेडी निर्वाचित घोषित हो गये तो सब से खुश व्यक्तियों में मांसफ़ील्ड थे. अपनी पराजय स्वीकार करते हुए लांग ने कहा कि अगर उन के विरुद्ध एडवर्ड मूर केनेडी की जगह केवल एडवर्ड मूर होते तो उन के जीतने का सवाल ही नहीं उठता था. केनेडी परिवार से हारना शान से हारने के बराबर है. लेकिन प्रतिनिधिसभा में ४६ वर्षीय उडाल ७७ वर्षीय अध्यक्ष मैक कार्मेक के आसन को नहीं हिला सके, और वहां उन्हें मुंह की खानी पड़ी. लिहाज़ा अगले दो वर्षों के लिए मैक कार्मेक प्रतिनिधिसभा के अध्यक्ष-पद पर पुन: प्रतिष्ठित हो गये.

ज़िम्मेदारियां : टेडी के चुनाव को ले कर लोगों में तरह-तरह के विचार तूल पकड़ रहे थे. एक हलके का कहना है कि टेडी के लिए सचेतक का यह मामूली पद बेमानी है और इस से उन की प्रतिष्ठा में कोई वृद्धि नहीं हुई. लेकिन दूसरे हलके की, उतने ही ज़ोरदार शब्दों में यह मान्यता है कि टेडी के सचेतक बनने से मनोवैज्ञानिक रूप से लोगों को यह कहने और सोचने का मौक़ा मिल गया है कि डेमोक्रेटिक पार्टी को जिस उदार और युवा नेता की तलाश थी वह उसे मिल गया है. मिला तो वह बहुत पहले से ही था, लेकिन बात स्वीकारने की थी. टेडी पहले किसी पद को स्वीकारते नहीं थे, अब जब स्वीकारने लगे हैं तो लोग यह कहने लगे हैं कि १९७२ के राष्ट्रपति-पद के चुनाव के लिए निक्सन का मुक़ाबला शायद टेडी ही करें. वैसे टेडी से पहले हंफ़्री और मस्की भी अपने-अपने दावे पेश कर सकते हैं, लेकिन अनुशासन और लोकप्रियता के नाम पर डेमोक्रेटिक पार्टी को टेड अधिक रास आ सकते हैं. टेड में धैर्य, निष्ठा और लगन का खासा सम्मिश्रण है जिस की वजह से वह उत्तर और दक्षिण दोनों भागों में समान रूप से सम्माने जाते हैं. जहां तक राजनैतिक सक्रियता का सवाल है, एक बार स्वर्गीय जॉन केनेडी ने मज़ाक-मज़ाक में कहा था कि टेड केनेडी सब से अच्छा और कुशल प्रशासक साबित होगा. राजनीति में सक्रिय बने रहने की जो लीक बड़े भाई जो केनेडी ने डाली थी उस का अनुसरण जॉन केनेडी ने किया, जॉन के अधूरे काम को बॉबी ने पूरा करना चाहा और अब बॉबी भी नहीं रहा लिहाज़ा उस के काम को पूरा करना राजनैतिक और पारिवारिक तौर पर टेड केनेडी की ज़िम्मेदारी है. पारिवारिक तौर पर इस लिए ज़रूरी है कि वह अपने परिवार का सब से छोटा और अंतिम भाई है. अपने बूढ़े मां-बाप के अलावा १६

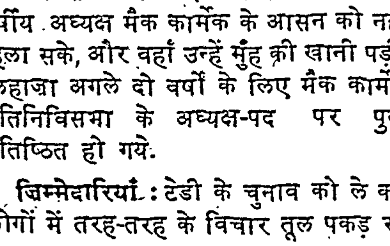

हंफ़्री : आशीर्वाद

'बच्चों का दायित्व, जिन में ३ उस के अपने, ११ रॉबर्ट केनेडी के और दो जॉन के है, उस पर है. बेशक जॉन के बच्चों को सौतेला बाप 'मिल गया है लेकिन मुख्य रूप से जवाबदारी टेडी पर ही पड़ती है.

मांसफ़ील्ड जो लांग से बहुत कुछ उखड़े हुए से नजर आते थे अब बड़े आश्वस्त हैं और यह बात भी कही जाने लगी है कि वृद्ध मांसफ़ील्ड अपनी सभी जिम्मेदारियों का भार टेडी पर डाल कर चैन की बंसी बजाना चाहते हैं क्यों कि वह जिस तरह के सहयोगी की तलाश में थे वह उन्हें मिल गया है. टेड के बढ़ते हुए प्रभाव से निक्सन का चिंतित होना स्वाभाविक ही है लेकिन फ़िलहाल वह २० जनवरी से ह्वाइट हाउस में पूरी रस्म के साथ प्रवेश करने की तैयारी कर रहे हैं. उन के दिमाग में यह बात जरूर चक्कर काट रही है कि उग्र कांग्रेस का समर्थन अधिक से अधिक कितना प्राप्त किया जा सकता है. फ़िलहाल निक्सन अपने कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने में लग हुए है. उन्होंने उपविदेशमंत्री के पद पर विदेशमंत्री रोजर्स की तरह अनजान रिचर्डसन को नियुक्त किया है जो कुछ समय तक आइजनहावर प्रशासन में भी काम कर चुके हैं. प्रतिरक्षामंत्रालय में उप-प्रतिरक्षामंत्री डेविड पैकर्ड को नियुक्त किया गया है. अपना मंत्रिमंडल उदार दिखने की गरज से नव-निर्वाचित राष्ट्रपति ने एक निग्रो महिला श्रीमती एलिजाबेथ कूंत्ज को श्रममंत्रालय में निदेशक के रूप में नियुक्त किया है. निक्सन का यह भी कहना है कि कैबेट लॉज फ़रवरी के शुरू में पेरिस में हैरीमैन की जगह लेंगे लेकिन वह यह भी चाहते है कि दक्षिण वीएतनाम में राजदूत के पद पर बंकर ही बने रहें. निक्सन के सामने इस समय सब से अहम मसला सोवियत संघ द्वारा पश्चिम एशिया में इस्राइल और अरब राष्ट्रों के बीच समझौता कराने के मामले में पहल करना है. जॉनसन ने साफ़ तौर पर कह दिया है कि वह अब इस पचड़े में नही पड़ेंगे और निक्सन को ही इस का समाधान ढूंढ़ना होगा. पिछले दिनों सोवियत समाचार-पत्रों में निक्सन-विरोधी बहुत से समाचार प्रकाशित हुए थे जिन में कहा गया था कि निक्सन यूरोप में किसी भी तरह तनाव कम होने देने के पक्ष में नहीं दीखते, बहरहाल २० जनवरी को निक्सन जिस ताज को पहनने जा रहे हैं वह कांटों का ताज है और उन के सामने केवल वीएतनाम और पश्चिम एशिया की समस्याएँ ही नहीं बल्कि बहुत-सी घरेलू समस्याएँ भी हैं जिन में निग्रो समस्या, आणविक प्रसार विरोधी संधि को मान्यता प्रदान करने का मसला, प्रतिरक्षा व्यय में कटौती करने की मांग, शहरों को आदर्श नगर प्रस्तुत करने की समस्या के अलावा लोगों पर लगाये गये बहुत से कर भी हैं जो अमेरिका के वीएतनाम से अधिक उलझते जाने के कारण लोगों पर लगाये गये थे. इस से निक्सन लोगों को कितनी राहत दिला पायेंगे, उन के उद्घाटनभाषण से ही पता चलेगा. वैसे निक्सन यह बार-बार कहते है कि उन्हें अपने सहयोगियों पर पूरी आस्था है और उन के कुशल और योग्य सहयोगी अमेरिका की जनता के सामने एक नयी तस्वीर पेश करेंगे जो अपने आप मे आदर्श होगी.

पश्चिम एशिया

सोवियत प्रस्ताव और इस्राइल

जहाँ एक ओर राजनैतिक क्षेत्रों में यह आशा व्यक्त की जा रही है कि विश्व की दो महान् शक्तियों ने यह महसूस किया है कि पश्चिम एशिया की समस्या का हल निकालना अत्यंत ज़रूरी है और इस दिशा में आपसी मतभेदों को दूर करने की पूरी कोशिश की जा रही है, वहीं कुछ लोगों को यह महसूस हो रहा है कि हाल ही में अरब आतंकवादियों द्वारा इस्राइली क्षेत्रों में आक्रमण करने और एथीन्स में इस्राइली जहाज़ को नष्ट करने के प्रयास के फलस्वरूप इस्राइल की प्रतिशोधात्मक कार्यवाही से हल की आशा कम हो गयी है. बेरुत हवाई अड्डे पर इस्राइल के आक्रमण की निंदा विश्व के अनेक देशों ने की मगर इसका परिणाम इस्रइली जनता पर अच्छा नहीं पड़ रहा है. इस्राइल के विदेशमंत्री अब्बा एबन से जब यह पूछा गया कि विश्व के अनेक राष्ट्रों द्वारा बेरुत आक्रमण की निंदा करने से इस्राइल की नीति में कोई परिवर्त्तन आएगा कि नहीं तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'हमारे पास प्रतिशोध की कोई नीति नही है. हम केवल अस्तित्व की नीति पर चलते हैं अगर प्रतिशोध से अस्तित्व बनाए रखने में सहायता मिलती है तो हम वह करेंगे. अगर कोई यह साबित कर दे कि अरबों की हिंसा के बावजूद हम स्वतंत्र शासन चलाते हुए अपना अस्तित्व बनाए रख सकते है तो हम वह भी मान लेते. मगर किसी ने अभी तक यह सिद्ध नहीं किया.' एबन के अनुसार युद्ध का खतरा बेरुत की घटना से नही एथीन्स की घटना से बढ़ गया है क्यों कि बेरुत तो केवल प्रतिक्रिया है.

द गॉल की नीति : संघर्ष को समाप्त करने के उद्देश्य से द गॉल की सरकार ने यह फ़ैसला किया था कि वह इस्राइल को हथियार बेचना बंद कर देगी. मगर ऐसा नहीं लगता कि इस से इस्राइल में कुछ परेशानी पैदा हो गयी है. यह कहना उचित होगा कि इस से इस्राइल में फ्रांस के विरुद्ध एक गुस्से की भावना पैदा हो गयी है. प्रतिरक्षा मंत्री जनरल डायन ने घोषणा की है कि वह फ्रांसीसी प्रतिबंध का मुकाबला करेंगे. 'राष्ट्रपति द गॉल की नयी नीति हमें वह कुछ स्वीकार कराने पर मजबूर नहीं कर सकेगी जिस का हम विरोध करते हैं.' यह केवल गर्वोक्ति ही नहीं है इस दिशा में काम भी बहुत तेज़ गति से हो रहा है. इस्राइल के सैनिक उद्योगों के निदेशक के अनुसार 'जब फ्रांस ने पूर्ण रूप से शस्त्रों पर प्रतिबंध लगाने की घोषणा की तो हमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ.' यह अनुमान लगाया जा रहा है कि फ्रांस के शस्त्र प्रतिबंध का प्रभाव इस्राइल की सैनिक शक्ति पर नगण्य है. इस्राइल के पास फ्रांस में बने लड़ाकू जहाज माइरेज-५ की बड़ी संख्या है मगर इन के हिस्से और पुर्ज स्विटजरलैंड, ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अमरीका से भी प्राप्त किये जा सकते हैं. इस के अतिरिक्त इस्राइल का सैनिक उद्योग भी बहुत द्रुत गति से आगे बढ़ रहा है. यद्यपि इस बात का कोई प्रमाण नही कि इस्राइल के पास परमाणु शस्त्र हैं या वह शीघ्र ही परमाणु शस्त्रों का निर्माण करने जा रहा है फिर भी इस बात में कोई संदेह नहीं कि इस्राइल थोड़े ही समय में फ्रांसीसी शस्त्रों के बंधन से स्वतंत्र हो जायेगा. उस ने फ्रांस से १० करोड़ डालर वापस करने के लिए कहा है. यह धन इस्राइल ने ५० माइरेज-५ जेट खरीदने के लिए अग्रिम के रूप में दिया था. फ्रांसीसी कार्यवाही के विरोध में यहूदियों की अंतरराष्ट्रीय समिति ने फ्रांस की व्यावहारिक नाकाबंदी करने का फ़ैसला कर लिया है. हाल ही में संयुक्त राज्य से बहुत से यहूदी पेरिस जाने वाले थे मगर उन्होंने अपनी यात्रा को रद्द कर दिया है.

सोवियत प्रस्ताव : सोवियत संघ ने पश्चिम एशिया की इस विकट समस्या के हल के लिए एक प्रस्ताव पास किया था मगर इस्राइल ने प्रस्ताव प्रकाशित होने से पहले ही उसे अमान्य कर दिया. ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि सोवियत संघ के विदेशमंत्री ग्रोमिको और राष्ट्रपति नासिर की बातचीत के बाद संयुक्त अरब गणराज्य ने सोवियत संघ के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था. इस प्रस्ताव के अनुसार पिछले वर्ष सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव को कई स्तरों में कार्यान्वित करने का एक कार्यक्रम दिया गया था. इस कार्यक्रम में दोनों पक्षों को एक दूसरे का विरोध करने की भावना के साथ ही सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव को स्वीकार करने का सुझाव दिया गया था. इस के बाद इस्राइली सेनाएँ अधिकृत क्षेत्र से भी हट जाती, और एक मास के अंतर्गत ही संयुक्त अरब गणराज्य स्वेज नहर को खोलने के प्रति क़दम उठाता. इस्राइलियों के वापस आ जाने और स्वेज़ नहर के खुल जाने के बाद सुरक्षा परिषद् एक संयुक्तराष्ट्र सेना इस क्षेत्र में भेजता ताकि दोनों पक्षों को संघर्ष से बचाया जाये. मगर इस्राइल ने इस कार्यक्रम को अव्यावहारिक बताया है. उन के अनुसार संयुक्तराष्ट्र की सेना का कोई अर्थ नही क्यों कि गत १९६७ के अरब-इस्राइली युद्ध में भी इस क्षेत्र में संयुक्त

राष्ट्र ने युद्ध की घोषणा कर दी तो २४ घंटे के अंदर-अंदर उन सेनाओं को पीछे हटना पड़ा. इस्राइली अधिकारी किसी ऐसे हल को व्यावहारिक नहीं मानते जो निकट भविष्य में इस्राइल की सत्ता को सुरक्षित नहीं बनाता. उधर राष्ट्रपति जॉनसन ने भी यह फ़ैसला किया है कि सोवियत प्रस्ताव पर यदि कुछ करना है तो नये राष्ट्रपति निक्सन ही करेंगे.

राष्ट्रकुल सम्मेलन

निष्फल मिलन

सम्मेलन आरंभ होने से पहले ही यह संभावना व्यक्त की गयी थी कि पिछले सम्मेलनों की तरह इस बार भी उस से कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं होगी और यह कि उस में भारत कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर सकेगा (देखिए **दिनमान**, १२ जनवरी, १९६९). सम्मेलन के पहले दिन जब आतिथेय ब्रिटेन के प्रधानमंत्री हेरल्ड विलसन को सर्वसम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित किया गया और उस के बाद केवल एक घंटे के अल्प समय में कार्य-सूची भी निर्विरोध पारित कर दी गयी तो यह उम्मीद बंधी थी कि संभवत: पूर्वानुमान मिथ्या सिद्ध हो और प्रस्तुत समस्याओं का न्यायसंगत समाधान खोजने में सम्मेलन को सफलता मिले, किंतु कभी ठंडी और कभी गर्म बहसों के बाद जो परिणाम अब तक सामने आया है उस से स्पष्ट हो जाता है कि यह राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन न तो रोडेसिया की समस्या का कोई सर्वसम्मत हल खोज सका और न ही जातिवाद तथा आप्रवासियों की समस्याओं का निराकरण कर सका. विश्व स्थिति पर उस में बहस तो हुई किंतु उस बहस के दौरान सम्मेलन यह तय नहीं कर पाया कि वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रकुल की भूमिका क्या होनी चाहिए. सदस्य देशों की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति के बारे में भी सम्मेलन ने कोई ठोस निर्णय नहीं किये.

रोडेसिया और रोडेसिया : जैसी कि संभावना थी रोडेसिया का प्रश्न पूरे सम्मेलन पर छाया रहा और उस पर निर्धारित समय से अधिक देर तक बहस हुई. पिछले दिनों शाही नौसेना के युद्धपोत 'फ़ीयरलैस' पर ब्रितानी प्रधानमंत्री विलसन और रोडेसिया के विद्रोही शासक इयान स्मिथ के बीच हुई वार्ता में ब्रिटेन ने जो छह-सूत्री प्रस्ताव समझौते के लिए प्रस्तुत किया उस की प्राय: सभी वक्ताओं ने कटु आलोचना की. जांबिया के राष्ट्रपति काउंडा ने यह जानना चाहा कि आखिर प्रधानमंत्री विलसन ने किस आधार पर फ़ीयरलैस प्रस्ताव प्रस्तुत किया और उन्होंने क्यों कर 'निबमार' (बहुसंख्यक शासन से पहले स्वाधीनता नहीं) प्रस्ताव से हट कर समझौते का क्या रास्ता तलाश किया. उन्होंने दृढ़ शब्दों में कहा कि रोडेसिया की समस्या का समाधान बल प्रयोग से ही किया जा सकता है. श्री काउंडा की इस दलील के बावजूद बहस संयत रही. तानजानिया के राष्ट्रपति न्यरेरे ने बल प्रयोग की दलील से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि ब्रिटेन को 'फ़ीयरलैस प्रस्ताव' वापस ले लेने चाहिए. उन्होंने आग्रह किया कि ब्रिटेन पूर्ववत् 'निबमार' प्रस्ताव का समर्थन करे और रोडेसिया की आर्थिक नाकेबंदी के लिए अन्य देशों से मिल कर दृढ़ क़दम उठाये. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने राष्ट्रपति न्यरेरे के प्रस्तावों का समर्थन करते हुए कहा कि रोडेसिया की समस्या का न्यायसंगत हल शीघ्र ही ढूंढा जाना चाहिए. पाकिस्तान के विदेश मंत्री अर्शाद हुसेन ने भी इन प्रस्तावों का समर्थन किया. उन्होंने रोडेसिया की तुलना कश्मीर से कर के कश्मीर समस्या को बहस में घसीटने का असफल प्रयास भी किया. प्रधानमंत्री विलसन की तत्परता से उन का उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ. श्री हुसेन ने सम्मेलन में चीन की वकालत यह कह कर की कि उस का रवैया अपने पड़ोसी देशों के साथ विनम्र है. किंतु उन की यह चाल भी विफल रही. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने अपने भाषण में भारत के प्रति चीन के व्यवहार का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत कर के यह सिद्ध कर दिया कि श्री हुसेन जो कुछ कह रहे हैं वह उन के बारे में ही सच हो सकता है. मलयेसिया के प्रधानमंत्री टुंकु अब्दुलरहमान ने यह कह कर कि दक्षिण पूर्व एशिया में अशांति के लिए चीन उत्तरदायी है श्री हुसेन के उद्देश्य को पूर्णत: विफल कर दिया. बहस घूम फिर कर फिर रोडेसिया की समस्या पर आ टिकी. सिंगापुर के प्रधानमंत्री ली कुआन यी ने निबमार सिद्धांत का समर्थन किया. जब कि मलावी के राष्ट्रपति बांडा ने फ़ीयरलैस प्रस्तावों के पक्ष में दलील दी.

ब्रिटेन के प्रतिनिधिमंडल द्वारा फ़ीयरलैस प्रस्तावों का बचाव किया जाना स्वाभाविक ही था. रोडेसिया के मामलों से संबद्ध निर्विभागीय मंत्री जार्ज टामसन ने अफ़्रीकी देशों की इस दलील को कि ब्रिटेन को रोडेसिया में अपना सीधा शासन स्थापित करना चाहिए यह कह कर ठुकरा दिया कि रोडेसिया में कभी भी ब्रिटेन का सीधा शासन नहीं रहा. यदि ब्रिटेन अब ऐसा कोई क़दम उठाता है तो रोडेसिया के गोरे नागरिक भी इस का विरोध करेंगे. प्रधानमंत्री विलसन ने बल प्रयोग की माँग को ठुकराते हुए कहा कि ब्रिटेन अब भी निबमार सिद्धांत की क़दर करता है. उसने रोडेसिया के प्रधानमंत्री इयान स्मिथ के समक्ष जो नया प्रस्ताव प्रस्तुत किया है उस का उद्देश्य केवल समस्या का व्यावहारिक समाधान ही है. इस में कोई संदेह नहीं कि ब्रिटेन को सम्मेलन में रोडेसिया के प्रश्न पर व्यापक समर्थन नहीं मिला किंतु इस बार की बहस से यह आभास अवश्य मिला कि अफ़्रीकी देशों ने ब्रिटेन की कठिनाई और क्षमता को समझा है. शायद यही कारण रहा कि रोडेसिया पर हुई बहस उतना उग्र रूप धारण नहीं कर सकी जितनी कि संभावना थी.

प्रदर्शन और प्रदर्शन : सम्मेलन के पहले दिन से ही प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हो गया. पहले दिन के प्रदर्शनकारी पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब खां और बिआफ़्रा के राष्ट्रपति ओजुकवू के विरोध में नारे लगाते सुने गये. उन्होंने मार्लबोरो भवन की ओर आने वाले मार्गों को काफ़ी देर तक अवरुद्ध रखा जिस के फलस्वरूप अनेक प्रतिनिधि सम्मेलन में भाग लेने के लिए देर से पहुँचे. रोडेसिया के इयान स्मिथ सरकार के विरोध में रोडेसिया हाउस पर कोई पाँच हजार रोडेसिया-विरोधी प्रदर्शनकारियों ने प्रदर्शन किया. उन्होंने अपने इस प्रदर्शन को **प्रतिष्ठा के लिए अभियान** की संज्ञा दी. प्रदर्शनकारियों ने गोरे फासिस्टों और ब्रितानी संसद में विपक्षी सदस्य पावेल के विरुद्ध नारे लगाये. शुरू में यह प्रदर्शन शांतिपूर्ण रहा किंतु जब प्रदर्शनकारियों ने दक्षिण अफ़्रीका के दूतावास पर पथराव किया

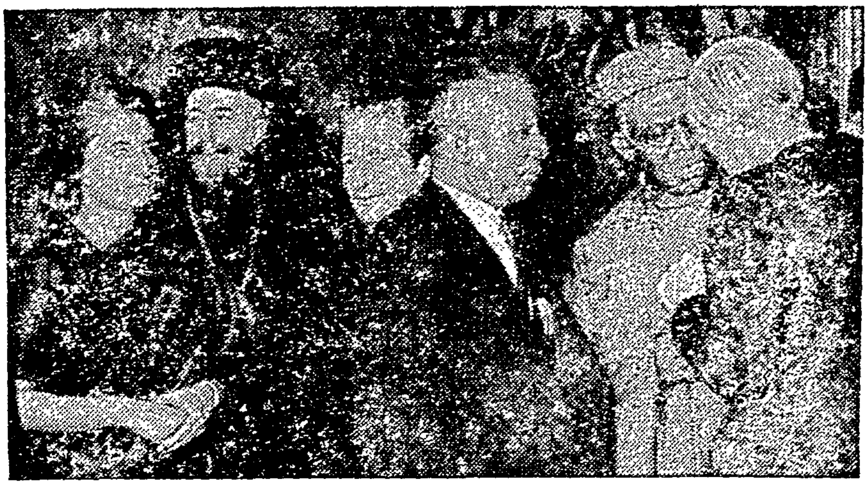

लंदन में राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी तथा अन्य प्रतिनिधि

तो उसने उग्र रूप धारण कर लिया: फलस्वरूप पुलिस से मुठभेड़ें हुई जिन में कई पुलिसमैन और प्रदर्शनकारी घायल हुए. बीस से अधिक प्रदर्शनकारियों को बंदी बनाया गया: अगले दिन दो युवक प्रदर्शनकारियों ने रोडेसिया हाउस पर यूनियन जैक फहरा कर पुलिस को भी अचंभे में डाल दिया.

विश्व स्थिति : सम्मेलन के पहले दिन अपरान्ह में प्रतिनिधियों ने विश्व की राजनैतिक स्थिति पर विचार विमर्श किया. वीएतनाम से लेकर चेकोस्लोवाकिया तक कई प्रश्नों पर चर्चा हुई. वीएतनाम के प्रश्न पर स्पष्टत: दो मत व्यक्त किये गये. ब्रिटेन और उस के समर्थकों का कहना था कि समस्या का न्यायोचित हल तो अवश्य खोजा जाना चाहिए किंतु इस के लिए वहाँ से विदेशी सेनाओं की वापसी को आवश्यक शर्त के रूप में पेश नहीं किया जा सकता. आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री जान गोर्टन ने कहा कि वीएतनाम की समस्या पर होने वाला समझौता न्यायोचित तथा टिकाऊ हो और उस से दक्षिण वीएतनामी जनता को स्वतंत्र चुनाव द्वारा सरकार चुनने का अधिकार प्राप्त हो. चेकोस्लोवाकिया पर रूसी आक्रमण को लेकर जो बहस हुई उस में ब्रिटेन ने अपने पहले के दृष्टिकोण को ही दोहराया जब कि कुछ अफ्रीकी देशों ने यह आशंका व्यक्त की कि दक्षिण अफ्रीका भी अपने कुछ पड़ोसी देशों के प्रति रूस जैसा रवैया अपना सकता है. पश्चिम एशिया की स्थिति पर भी विचार विमर्श हुआ. बहस के दौरान प्राय: सभी वक्ताओं ने भारत के इस दृष्टिकोण का समर्थन किया कि अरब देशों को इस्राइल का अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए. किंतु इस्राइल ने जो आक्रामक रवैया अपना रखा है वह निंदनीय है.

एक और समिति : राष्ट्रकुल के आप्रवासियों का प्रश्न इस बार कार्यसूची में नहीं था किंतु समस्या की व्यापकता को देखते हुए यह तय किया गया कि आपसी बातचीत द्वारा एक ऐसी समिति का गठन किया जाये जो आप्रवासियों की समस्याओं का अध्ययन करे और उस के समाधान के लिए सुझाव दे. सम्मेलन के पाँचवें दिन २८ में से १७ सदस्य देशों के प्रतिनिधियों ने इस बारे में बातचीत भी की जिस में पूर्वी अफ्रीकी देशों से एशियाइयों के निष्क्रमण का प्रश्न ही हावी रहा. ब्रितानी गृहमंत्री कैलाघान ने यह स्वीकार किया कि ब्रितानी पारपत्र वाले एशिया निवासियों की जिम्मेदारी ब्रिटेन पर है किंतु उन्होंने कहा कि वर्तमान परिस्थितियों में ब्रिटेन इस स्थिति में नहीं है कि वह पूर्वी अफ्रीकी देशों से आने वाले सभी आप्रवासियों को अपने यहाँ बसा सके. उन्होंने अपील की कि दूसरे देशों को भी इस समस्या के समाधान में ब्रिटेन का साथ देना चाहिए. केन्या और उगांडा के प्रतिनिधियों ने यह मत व्यक्त किया कि इस प्रकार की समिति में वे तभी भाग ले सकते हैं जब कि वह इन देशों के आप्रवासियों की समस्या पर ही विचार करे. अगर समिति का उद्देश्य कुछ और है तो उन का भाग लेना निरर्थक ही होगा. समिति की दूसरे दिन की बैठक से केन्या, उगांडा, तानजानिया और जांबिया के प्रतिनिधि उठ कर चले गये. उन्होंने तीसरे दिन भी बैठक का बहिष्कार किया। उन्होंने यह क़दम ब्रिटेन के आप्रवासियों संबंधी विधेयक के विरोध में उठाया. आप्रवासियों की समस्या से यद्यपि भारत का संबंध बहुत नज़दीक का है फिर भी वह कोई ऐसा सुझाव समिति के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर सका जिस से कि उस का कोई स्थायी हल ढूंढा जा सकता. उस ने अपने इस आश्वासन को फिर दोहराया कि यदि ब्रिटेन थोड़े से समय में ही सभी आप्रवासियों को अपने यहाँ बुलाने को तैयार हो तो फिलहाल भारत उन आप्रवासी भारतीयों को अपने यहाँ शरण देने के लिए तैयार है जिन्हें निकट भविष्य में ही केन्या और उगांडा सरकारों की नयी नीति के कारण इन देशों को छोड़ना पड़ेगा.

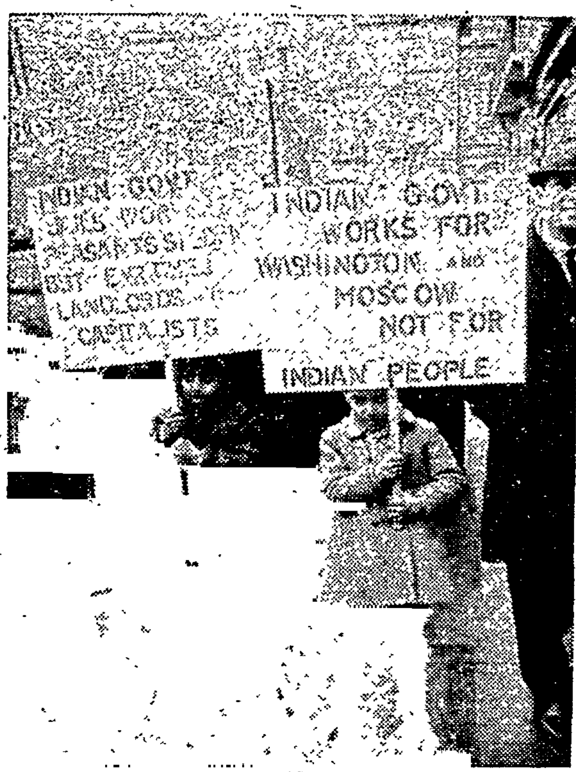

मार्लबोरो भवन के बाहर : प्रदर्शन ही प्रदर्शन

सहयोग की आकांक्षा : सम्मेलन के दौरान प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने पारस्परिक सहयोग पर एकाधिक बार बल दिया. किंतु ठोस प्रस्तावों के अभाव में आगे चल कर उन का यह अनुरोध कितना कारगर साबित होगा इस का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है. पारस्परिक सहयोग के आधार पर ही राष्ट्रकुल का गठन हुआ अत: उस के लिए कोरी दलील देना कोई माने नहीं रखता. सहयोग किन क्षेत्रों में हो और उस का आधार क्या हो इस का निर्णय हो जाने पर ही सहयोग की दलील कारगर सिद्ध हो सकती है. कभी विश्व शांति के संदर्भ में और कभी राष्ट्रकुल के संदर्भ में आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में सहयोग करने की दलील तो आज फ़ैशन बन चुकी है. आज तक इस दलील का किसी ने विरोध नहीं किया है. फिर भी सहयोग न हो पाने के कारण समस्याओं का समुचित समाधान नहीं हो पा रहा है.

इन पंक्तियों के लिखे जाने तक सम्मेलन के अभी दो दिन बाक़ी हैं और इन दो दिनों में प्रतिनिधिमंडल कई मसलों पर विचार कर सकते हैं. वे राष्ट्रकुल के सदस्य देशों के आर्थिक और व्यापारिक क्षेत्र में आपसी संबंधों पर भी विचार करेंगे, सामाजिक और राजनैतिक संबंधों को लेकर भी चर्चा होगी और उस के बाद एक संयुक्त विज्ञप्ति भी प्रकाशित की जायेगी किंतु सब के बाद भी सम्मेलन का जो परिणाम निकलेगा वह इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा कि सम्मेलन में जिन प्रश्नों पर विचार हुआ उन पर (रोडेसिया के प्रश्न को छोड़कर) आम सहमति पायी गयी. ऐसे सभी सम्मेलनों का प्राय: यही परिणाम निकलता है. समस्याओं का समाधान करने के लिए कोई ठोस क़दम नहीं उठाये जाते क्योंकि ऐसा करने से सम्मेलन में भाग लेने वाले किसी न किसी पक्ष का नाराज़ हो जाना स्वाभाविक ही होता है. राष्ट्रकुल सम्मेलन में भारत की सफलता अथवा विफलता के बारे में कुछ कहने को शेष नहीं रह जाता क्योंकि वह न तो अफ्रेशियाई देशों का नेतृत्व कर सका और न ही विचारित समस्याओं पर कोई सुझाव दे सका. प्रधानमंत्री की नयी दिल्ली लौटने पर दी गयी यह दलील ठीक हो सकती है कि राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन में भाग लेने वाले नेताओं में विचाराधीन समस्याओं के समाधान के लिए 'वास्तविक आकांक्षा' थी किंतु उस आकांक्षा को फलित बनाने के लिए कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय नहीं कर सके, इस तथ्य को भी स्वीकारना होगा. प्रधानमंत्री ने राष्ट्रकुल को विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक उपयोगी मंच तो अवश्य स्वीकारा है किंतु उन्होंने यह नहीं बताया कि भारत ने इस मंच का कितना उपयोग किया है.

रासायनिक उर्वरक 'फ़ैक्ट' : प्रगति का प्रतीक

फ़र्टीलाइज़र एंड केमीकल्स, त्रावनकोर लिमिटेड (फ़ैक्ट) प्रतिष्ठान की स्थापना की योजना तब बनी थी जब तत्कालीन त्रावनकोर राज्य विकट खाद्य-संकट से ग्रस्त था. त्रावनकोर के तत्कालीन दीवान डॉ. सी. पी. रामस्वामी अय्यर ने यह महसूस किया कि केवल रासायनिक उर्वरक के उत्पादन से ही राज्य की खाद्य-समस्या हल हो सकती है. उन्हीं के प्रयत्नों से "फ़ैक्ट" की स्थापना संभव हो सकी और कार्यारंभ का भार दक्षिण भारत की एक औद्योगिक संस्था मेसर्स सेशासेयी ब्रदर्स लिमिटेड को सौंपा गया. सन् १९४४ में पेरियार नदी के तट पर स्थित उद्योगमंडल नामक स्थान में यह प्रतिष्ठान स्थापित हुआ और सन् १९४७ से इस ने उत्पादन शुरू कर दिया था.

ब्रितानी फ़र्म मेसर्स पावर-गैस कॉर्पोरेशन और अमेरिकी फ़र्म सिंगमास्टर ब्रेयर ने इस परियोजना की रूप-रेखा तैयार करने और इंजीनियरी का कार्यभार सँभाला. उत्पादन के लिए जो प्रक्रिया अपनायी गयी वह अपने-आप में एक नया प्रयोग था. इस क्षेत्र में क्यों कि कोयला और गैस अप्राप्य था अत: अमोनिया के उत्पादन के लिए जलाने की लकड़ी का उपयोग किया गया. आरंभ में इस की उत्पादन-क्षमता ५० हज़ार टन अमोनियम सल्फ़ेट की थी. त्रिची की खानों से प्राप्य जिप्सम और जलाने की लकड़ी से बने अमोनिया से अमोनियम सल्फ़ेट तैयार किया गया. कुछ ही समय बाद एक सुपरफ़ॉस्फ़ेट कारखाने की भी स्थापना की गयी, जिस की उत्पादन-क्षमता ४४ हज़ार टन थी और तब एक सल्फ़रिक ऐसिड कारखाना बनाना भी ज़रूरी हो गया, जो प्रतिदिन ७५ टन सल्फ़रिक ऐसिड तैयार करता था.

विस्तार और परिष्कार : प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौर में सिंद्री में एक विशाल उर्वरक कारखाने की स्थापना के बाद उर्वरक-निर्माण और उस के उपयोग के क्षेत्र में एक नया अध्याय शुरू हो गया और तब 'फ़ैक्ट' के लिए भी यह अनिवार्य हो गया कि वह अपना विस्तार कर के अपने अस्तित्व की रक्षा करे. तब तक इस ने कॉस्टिक सोडे का निर्माण भी शुरू कर दिया था. चुनांचे यह महसूस किया गया कि एक पृथक इकाई क़ायम कर के ही कॉस्टिक सोडे का उत्पादन अधिक फ़ायदेमंद रहेगा और तब 'द त्रावनकोर-कोचीन केमीकल लिमिटेड' नामक एक नयी कंपनी अस्तित्व में आयी, जिसे त्रावनकोर-कोचीन सरकार, 'फ़ैक्ट' और मितुर केमिकल एंड इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन ने संयुक्त रूप से गठित किया. कॉस्टिक सोडे के निर्माण की प्रक्रिया से उपजे हाइड्रोजन क्लोराइड से 'फ़ैक्ट' ने एक और पदार्थ का उत्पादन शुरू किया और वह था अमोनियम क्लोराइड. तब तक देश की आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह पदार्थ बाहर से मँगाया जाता था. 'फ़ैक्ट' द्वारा निर्मित अमोनियम क्लोराइड के बाज़ार में पहुँचते ही उसे बाहर से मँगाने की ज़रूरत नहीं रही.

समय के सरकने के साथ-साथ 'फ़ैक्ट' के विस्तार की आवश्यकता बढ़ती गयी. विस्तार के प्रथम दौर (सन् १९५०) में नाइट्रोजन और भारत में पहली बार बने अमोनियम फ़ॉस्फ़ेट नामक नये उर्वरक का उत्पादन दुगना करने के लिए ३ करोड़ रु. की राशि निर्धारित की गयी. इसी दौर में एक विद्युत-चालित हाइड्रोजन और एक फ़ॉस्फ़ोरिक ऐसिड कारखाने भी स्थापित किये गये. २ करोड़ रु. की लागत से 'फ़ैक्ट' के विस्तार का दूसरा दौर शुरू हुआ. तब तक जलाने की लकड़ी से गैस तैयार करने की पद्धति पुरानी और अलाभकर साबित होने लगी थी. अत: 'फ़ैक्ट' ने तेल से गैस तैयार करने के लिए एक नया कारखाना स्थापित किया, जिस में कच्चा नफ़्था प्रयुक्त होता है. इस आधुनिकीकरण से 'फ़ैक्ट' की उत्पादन-क्षमता बढ़ कर ३० हज़ार टन नाइट्रोजन और १५ हज़ार टन पी२ओ५ हो गयी. ११ करोड़ रु. की लागत से 'फ़ैक्ट' के विस्तार का तीसरा दौर शुरू हुआ, जिस में की उत्पादन-क्षमता ७० हज़ार टन नाइट्रोजन और ३३ हज़ार टन पी२ओ५ हो गयी और वह २ लाख टन अमोनियम सल्फ़ेट, १ लाख ३५ हज़ार टन अमोनियम फ़ॉस्फ़ेट, ४५ हज़ार टन सुपरफ़ॉस्फ़ेट तथा २५ हज़ार टन अमोनियम् क्लोराइड तैयार करने लगी. विस्तार के तीसरे दौर में 'फ़ैक्ट' की सब से बड़ी उपलब्धि थी प्रतिदिन ३ सौ टन अमोनियम सल्फ़ेट तैयार करने वाले कारखाने की स्थापना, जिस में जिप्सम नामक उच्छिष्ट का प्रयोग होता था. 'फ़ैक्ट' अब विस्तार के चौथे दौर से गुज़र रहा है. विद्युत-शक्ति पर आधारित उस की कई इकाइयाँ अपने उत्पादन-सामर्थ्य का पूर्ण उपयोग नहीं कर पा रही थीं, क्यों कि केरल राज्य में हर साल विद्युत की कमी बनी रहती है. परिणामस्वरूप कंपनी को काफ़ी नुकसान उठाना पड़ा.

अत: विद्युत-शक्ति पर निर्भरता से कंपनी को मुक्त रखने के लिए आवश्यक हो गया कि विद्युत-चालित हाइड्रोजन कारखाने के बदले कोई और विकल्प ढूँढ़ा जाये. विस्तार के चौथे दौर में विद्युत-कोषों को बदल कर अन्य अनुषंगी प्रक्रिया को अपनाने के कार्यक्रम को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, जिस से कि कंपनी की नाइट्रोजन उत्पादन-क्षमता ७० हज़ार टन से बढ़ कर ९२ हज़ार टन और पी२ओ५ की उत्पादन-क्षमता ३३ हज़ार ५ सौ टन से ४५ हज़ार ७ सौ टन हो जाये. इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए ५ करोड़ रु. निर्धारित किया गया है और काम भी शुरू हो गया है. चौथे दौर में उद्योगमंडल में कुल २७ करोड़ रु. विस्तार-कार्यों पर खर्च किया जायेगा और यह कार्य इस वर्ष पूरा हो जायेगा. विस्तार के तृतीय दौर के अंत में 'फ़ैक्ट' को अनुमानत: ५१ हज़ार किलोवॉट बिजली की ज़रूरत पड़ती थी, किंतु चतुर्थ दौर में केवल ३६ हज़ार किलोवॉट बिजली की ही ज़रूरत पड़ेगी. चतुर्थ दौर की एक और विशिष्ट उपलब्धि यह होगी कि एक अमोनियम फ़ॉस्फ़ेट (२०:२० स्तर का) कारखाना भी स्थापित किया जायेगा.

उक्त विस्तार-योजनाओं की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि 'फ़ैक्ट' ने निरंतर आत्मविश्वास पूर्वक यह कोशिश की कि वह कारखानों की रूप-रेखा तैयार करने और फिर निर्माण-कार्य संपन्न करने का उत्तरदायित्व अपने ही व्यवस्थापकों, इंजीनियरों और कर्मचारियों को सौंपे. विदेशी विशेषज्ञों को केवल तैयार माल के स्तर की परीक्षा के लिए ही बुलाया जाता है.

'फ़ीडो' : 'फ़ैक्ट' का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विभाग है इंजीनियरी और डिज़ाइन संगठन, जिस का संक्षिप्त नाम 'फ़ीडो' है. यह विभाग कोचीन और दुर्गापुर परियोजनाओं के गैस प्रभाग की प्ररचना और अभियंत्रण के कार्य में जुटा हुआ है. इस उद्देश्य से 'फ़ैक्ट' ने मशहूर ब्रितानी फ़र्म मेसर्स पावर गैस कॉर्पोरेशन से सहयोग स्थापित किया है. इन दोनों परियोजनाओं की उत्पादन-क्षमता प्रतिवर्ष २ लाख टन अमोनिया और ३ लाख ३० हज़ार टन यूरिया होगी.

खपत-मोर्चा : भारत में उर्वरक-कारखानों के कर्त्तव्य की इतिश्री केवल इसी में नहीं है कि वे अधिकाधिक उर्वरक तैयार करें, बल्कि उसे किसानों तक, ठीक समय पर, पर्याप्त मात्रा में और उचित क़ीमत पर पहुँचा सकना भी उन के लिए एक चुनौती है. अभी भी अधिकतर भारतीय किसान रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल की विधि और उस की उपयोगिता से अनभिज्ञ हैं. अत: 'फ़ैक्ट' पिछले ५-६ वर्षों से इस दिशा में भी काफ़ी प्रयत्नशील है. समय-समय पर विभिन्न राज्यों में 'उर्वरक-मेला' आयोजित कर के 'फ़ैक्ट' ने रासायनिक उर्वरकों की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए प्रशंसनीय प्रयास किया है. वर्तमान समय में 'फ़ैक्ट' द्वारा नियुक्त क़रीब १०० कृषिविद् देश के विभिन्न भागों में जा कर किसानों को रासायनिक उर्वरकों के उपयोग का प्रशिक्षण दे रहे हैं और साथ ही उन्हें कृषि की आधुनिक तकनीक की जानकारी भी दे रहे हैं.

विज्ञान कांग्रेस

वैज्ञानिक भावना कहाँ है

१९६० के विज्ञान कांग्रेस के संबंध में प्रसिद्ध वैज्ञानिक जे. वी. एस. हाल्टडेन ने कहा था 'बंबई में मुझे लगा कि विज्ञान कांग्रेस भारतीय विज्ञान की मौलिकता के विरुद्ध एक आयोजित षड्यंत्र है.' उस समय जो वेदना हाल्डेन को हुई थी वह हर उस वैज्ञानिक का दर्द है जो वास्तव में भारतीय विज्ञान की प्रगति में रुचि रखता है और अपने धंधे से अधिक वैज्ञानिक अनुसंधान को महत्त्व देता है. हाल्डेन के शब्दों में 'विज्ञान कांग्रेस का उद्देश्य भारत में वैज्ञानिक प्रगति को प्रोत्साहन देना होना चाहिए. मेरे विचार में इस काम में यह कांग्रेस सफल हो गयी है. इसे राष्ट्र के लिए उपयोगी बनाने में अधिक कठिनाई पेश नहीं आयेगी. हाँ, इसे कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों के प्रति थोड़ा अशिष्ट होना पड़ेगा. विज्ञान में शिष्टाचार से अधिक महत्त्वपूर्ण दक्षता है. १९६० में भारतीय विज्ञान कांग्रेस की जो निराशाजनक स्थिति थी उस से वह बहुत आगे नहीं बढ़ पायी है. लाखों पये के व्यय से आयोजित इस वैज्ञानिक सम्मेलन का उद्देश्य बुरा नहीं है. वास्तव में इस प्रकार के सम्मेलन वैज्ञानिक प्रगति के लिए आवश्यक हैं.

वैज्ञानिक भावना : आरंभ में जब विज्ञान कांग्रेस की योजना बनायी गयी थी तो इसी दृष्टिकोण को सामने रखा गया था कि विभिन्न विषयों में काम आने वाले वैज्ञानिकों को एक मंच मिल जाये जहाँ वे अपने वैज्ञानिक अनुसंधान के संबंध में अपने कार्य का विवरण दे सकें और उस की समचित आलोचना हो. विज्ञान की इतनी शाखाएँ निकल आयी हैं कि यह आवश्यक हो गया है कि हर एक शाखा का अलग-अलग अनुसंधान केंद्र स्थापित हो जाये. किंतु साथ ही यह सब शाखाएं एक दूसरे के साथ संबद्ध होने के कारण एक ही योजना के अंतर्गत विकसित होनी चाहिएं. शीघ्र ही आयोजकों को महसूस हुआ कि सभी प्रकार के वैज्ञानिक विषयों पर एक साथ विचार-विमर्श नहीं किया जा सकता, इस लिए अलग अलग विषयों को ले कर समितियों का गठन हुआ, जिन में ऐसे विषयों पर अलग से बातचीत होने लगी. जो काम एक अच्छे उद्देश्य से आरंभ हुआ था वह कुछ ही वर्षों में एक ऐसी स्थिति में आ गया जहाँ यह स्पष्ट हो गया कि उस का प्रबंध और आयोजन अफ़सरशाही ढंग से हो रहा है. देश की हजारों संस्थाओं की भाँति वह भी एक जमघट-सा बनने लगा. अधिकांश स्थानों के लिए चुनाव और प्रचार, दबाव और धमकियाँ सब का प्रयोग किया जाने लगा तथा गंभीर प्रकार के अनुसंधान संबंधी कार्य का दिन-प्रतिदिन ह्रास होने लगा. यह कहना उचित नहीं होगा कि विज्ञान कांग्रेस के आयोजकों ने इन कमज़ोरियों को दूर करने की कोशिश नहीं की, मगर बाधाओं को दूर करने का जो ढंग अपनाया गया उस में भी अफ़सरशाही की झलक मिलती थी. विज्ञान कांग्रेस के आयोजकों का दृष्टिकोण ही अभारतीय रहा है. अभारतीय इस दृष्टि में कि इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण सम्मेलन की योजनाएँ केवल पश्चिमी संस्थाओं के आदर्श पर बनायी गयीं और उन्हीं मापदंडों से मापी गयीं, जिस का सब से बुरा परिणाम यह हुआ कि इस देश और समाज से संबंधित समस्याओं को धीरे-धीरे विज्ञान कांग्रेस के मंच से बहिष्कृत किया गया और आज भी जितने शोधपत्र विज्ञान कांग्रेस में पढ़े जाते हैं उन में से बहुत कम ऐसे होते हैं जिन का संबंध भारतीय जीवन और भारत की आर्थिक समस्याओं के सुधार से हो. देश में जो कुछ शोध-कार्य हुआ है या नये वैज्ञानिक तथ्यों का पता लगा है वह अभी शोधपत्रों या पुस्तकों में ही सीमित पड़ा हुआ है. उन का व्यावहारिक उपयोग अभी तक बहुत कम मात्रा में हुआ है.

कार्य या पद : विज्ञान कांग्रेस एक सांस्कृतिक सम्मेलन न हो कर वैज्ञानिक मंच हो, जो देश में वैज्ञानिक भावना पैदा करने के लिए उपयुक्त और तर्कसंगत रास्ते खोज सकता है. इस सिलसिले में अलग-अलग विभागों की बैठकों में अनेक छोटी-बड़ी समस्याओं पर बातचीत हो सकती है और निष्कर्षों को प्रकाशित किया जा सकता है. वैज्ञानिक अनसंधान के कुछ ऐसे क्षेत्र है जिन पर विशष ध्यान देने की

वैज्ञानिकों की टोली

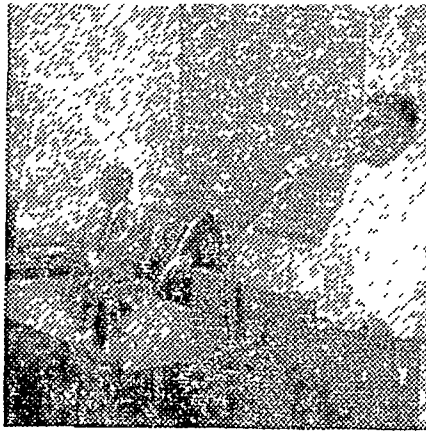

डॉ० चंद्रशेखर

ज़रूरत है. प्रत्येक विकासलशील देश में इन को काफ़ी महत्त्व दिया जा रहा है. इंजीनियरिंग, अंतरिक्ष-अनुसंधान और आणविक प्राणिशास्त्र में काफ़ी प्रगति हुई है और इस प्रगति को व्यावहारिक रूप देने का पश्चिम में पूरा-पूरा प्रयास हो रहा है. भारतीय वैज्ञानिकों को भी इस दिशा में ध्यान देना चाहिए, अन्यथा विज्ञान कांग्रेस वाद-विवाद का एक मंच बन कर रह जायेगा और देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति में उस को कोई भी योगदान नहीं रहेगा. राजनीति और अफ़सरशाही वैज्ञानिक अनुसंधान का सब से बड़ा शत्रु है और ५६वीं भारतीय विज्ञान परिषद् भी इन चीजों से मुक्त दिखाई नहीं देती.

यह नहीं मान लेना चाहिए कि विज्ञान कांग्रेस बिलकुल असफल रहा है. कुछ विशेषज्ञों के भाषण काफ़ी प्रभावशाली और उपयोगी थे. दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर शेषाद्रि ने प्राकृतिक औषधियों तथा बुढ़ापे और खराब स्वास्थ्य के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया. बंबई के प्रसिद्ध डॉक्टर जे. पी. देवरस के अनुसार प्रतिवर्ष भारत में एक लाख व्यक्तियों को विषैले जानवर काटते हैं, जिन में से २० हज़ार से ३० हज़ार तक मर जाते हैं. इस सिलसिले में यह बताया गया कि साँपों का विष सोने से भी महँगा हो गया है. सोने का मूल्य १२५ रुपये प्रति ग्राम है किंतु सर्प-विष के एक ग्राम को २५० रुपये में बेचा जा सकता है. डॉ० पी० के० सेन ने हृदय-प्रतिरोपण के संबंध में जानकारी दी. डॉ० सेन पहले भारतीय चिकित्सक हैं जिन्होंने हृदय का प्रतिरोपण किया था. उन के अनुसार मरे हुए व्यक्ति के हृदय को अधिक समय तक जीवित रखने के संबंध में महत्त्वपूर्ण अनुसंधान हो रहा है. यह तथ्य भी सामने आया कि दक्षिण भारतीयों में उत्तर भारतीयों की अपेक्षा हृदय की बीमारियाँ १५ गुना अधिक होती हैं, क्यों कि दक्षिण भारतीय बीजों के तेल अधिक इस्तेमाल करते है. डॉ० विक्रम साराभाई ने पृथ्वी की चुंबकीय परिधि और सौर आंधी के संबंध में विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया. उन के अनुसार ग्रहों के बीच अंतरिक्ष में भी उसी प्रकार मौसम बदलता रहता है जैसे पृथ्वी पर बदलता है.

प्राचीन भारत का इतिहास और प्रचलित लिपि ब्राह्मी

भारतीय और विदेशी इतिहासकारों के मध्य सिंवु घाटी और आर्ययुगीन सम्यता और संस्कृति के संवंध में जो मतभेद हैं उन का स्पष्टीकरण नवीन खोज-बीन के आवार पर हो रहा है.

इस मतभेद के संवंध में एक प्रकाशित समाचार में कहा गया है कि दक्षिण ताजकिस्तान के पुरातत्त्व विभाग के तत्त्वावधान में होने वाली खंडहरों की खुदाई में कपिरकला (?) स्थान पर एक मंदिर मिला है, जिस का आठवीं शताब्दी में निर्माण किया गया होगा, ऐसा अनुमान है. इस मंदिर के निचले भाग में स्थापित तहखाने में एक पुस्तक मिली है, जिस के पृष्ठों पर अनेक अक्षर विद्यमान हैं. इस पुस्तक में कागज के स्थान पर एक चिकने और मुलायम छिलके का प्रयोग किया गया है और विशेष स्याही द्वारा उन पर अक्षर अंकित किये गये हैं. इस मुलायम छिलके के वारे में यह वताया गया है कि यह छिलका उत्तर दिशा के जंगल में पाये जाने वाले वृक्ष की शाखा और टहनी का ऊपरी भाग है, जो उन्हें ढके रखता है. इस छिलके पर अंकित सामग्री स्थायी होती है और सदियों तक उस का कुछ नहीं विगड़ता.

विशेषज्ञों का मत है कि इस छिलके पर अंकित लिपि प्राचीन भारत में प्रचलित लिपि ब्राह्मी है और लिखी गयी सामग्री ईसा के ७ वीं शताब्दी का वौद्धकालीन साहित्य है. इस खुदाई के पूर्व इसी प्रकार की सामग्री, जो संस्कृत लिपि में है, उजवेकिस्तान और तुर्कमानिया स्थानों पर भी उपलव्ध हुई थी, जो वौद्धकालीन है.

प्राप्त सामग्री के आवार पर इतिहासकारों में प्रचलित यह मतभेद कि सिंवु घाटी तथा आर्ययुगीन सम्यता और संस्कृति की कोई लिपि नहीं थी और वे लोग लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे निराधार सावित हो सकेगा.

आर्यों के इतिहास, उन की सम्यता और संस्कृति के संवंध में प्रामाणिक सामग्री के अभाव में जो कुछ विदेशी इतिहासकारों ने कल्पना के आधार पर लिखा उस का खंडन सिंवु घाटी की सम्यता की खोज-बीन के पश्चात् उपलव्ध सामग्री से किया जा रहा है. सिंवु घाटी की सम्यता और संस्कृति का अपना महत्त्व है. आर्यों की सम्यता और संस्कृति के साथ उस का सूत्र जोड़ना उचित नहीं है. वर्तमान इतिहासकार विदेशी इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत सामग्री को सत्य मान कर सिंवु घाटी की सम्यता और संस्कृति की जो भी प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं वे या तो उस काल की सामग्री नहीं हैं अथवा मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के विषय में प्राप्त जानकारी से वे अनभिज्ञ हैं. अतः निर्विवाद सिद्ध है कि आर्यों का इतिहास लिखने के पहले सिंधु घाटी का इतिहास जानना अनिवार्य है.

सिंधु घाटी की सम्यता और संस्कृति का शनैः शनैः जो स्पष्टीकरण किया जा रहा है उस से ऐतिहासिक तथ्यों को पूरा वल प्राप्त हो रहा है. भले ही लिपिवद्ध साहित्य का अभाव है, पर जहाँ तक आर्यों के विषय में जानकारी प्राप्त हो रही है उस में अधिकांश क्षपक हैं और जो कुछ पौराणिक किंवदंतियों के आधार पर संग्रहीत किया जा रहा है वह इतिहासकार को मान्य नहीं है. प्रश्न यह है कि आर्यों के इतिहास के संवंध में, उन की सम्यता और संस्कृति के प्रादुर्भाव के विषय में लिपिवद्ध सामग्री का अभाव क्यों रहा है ? क्या आर्यों की अपनी कोई लिपि नहीं थी ? अथवा वे लिखित से मौखिक को अविक महत्ता प्रदान करते थे? जव हम मेसोपोटामिया और यूनान की सम्यता और संस्कृति की ओर दृष्टि उठाते हैं तो हमारे सामने ामाणिक सामग्री लिखित रूप में उपस्थित हो जाती है. अतः उन के इतिहास, सम्यता और संस्कृति के संवंध में संशय का प्रश्न ही नहीं उठता. पर जव हम सिंधु घाटी की सम्यता और संस्कृति के वारे में कल्पना करते हैं तो हम किसी निश्चित लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाते. हमारे सामने कोई लिपिवद्ध सामग्री नहीं होती. खुदाई में जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई है उन में कुछ मोहरे हैं, जिन पर सांकेतिक भाषा में खुदाई की गयी है. पर उस सांकेतिक लिपि का स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हो सका है. इतना अवश्य माना गया है कि वे मोहरे व्यापार संवंधी हैं और शहर विशेष से उन का घनिष्ट संवंध है. इतिहासका ों ने जो कुछ तथ्य निकाला है वह यह है कि सिंवु घाटी की सम्यता और संस्कृति के संवंध में प्रामाणिक तथ्यों का जो अभाव पाया जा रहा है उस का मुख्य कारण यह है कि उस काल की लिपिवद्ध सामग्री अपना स्थायी प्रभाव न छोड़ सकी और शनैः शनैः नष्ट हो गयी.

खुदाई में जो मोहरें प्राप्त हुई हैं उन की संख्या २६० के लगभग है और उन पर जो चिह्न हैं वे एक-दूसरे से भिन्न हैं. पर यह कहना कि भारत में रहने वाली जातियों का अपना इतिहास न हो, सम्यता और संस्कृति न हो अथवा लिपि का जन्म न हुआ हो उपयुक्त नहीं. यह ठी क है कि इतिहासकार असंदिग्ध अवश्य हैं, पर उन्हें स्पष्ट रूप से विश्वास है कि ईसा की तीसरी शताब्दी के पूर्व रहने वाले भारत के निवासियों की अपनी सम्यता थी और लिपि का भी प्रचलन था. ये जातियाँ आर्यों से हर रूप में अलग थीं, सम्यता की चोटी पर उन की संस्कृति थी और उन्होंने विश्व की सम्यता में अपना योग दिया है. यह भी निश्चित है कि समय के साथ-साथ खोज-बीन की प्रथा अवश्य प्रचलित रहेगी और एक-न-एक दिन हमें प्राचीन भारत की इतिहास संवंधी सामग्री, लिपि और सम्यता तथा संस्कृति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जायेगा.

विदेशी साहित्यकारों ने मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के पश्चात् प्राप्त की हुई सामग्री को सिंवु घाटी सम्यता की अंतिम सामग्री समझा था, पर मथुरा के निकट सोख स्थान पर जो खुदाई जर्मन पुरातत्त्व विभाग की देखरेख में की गयी है वह सिंधु घाटी की सम्यता और संस्कृति के साथ ही कुषाण काल के इतिहास पर भी विस्तृत प्रकाश डालने में समर्थ हुई है.

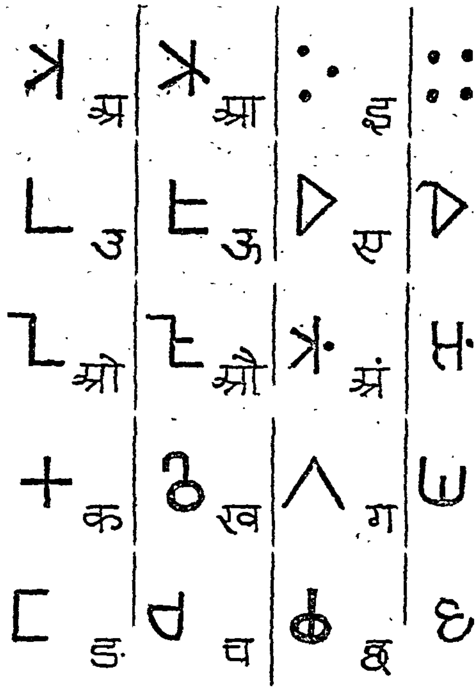

सम्राट अशोकयुगीन ब्राह्मी लिपि

आर्यों के भारत आगमन, उन के वसने तथा उन की सम्यता और संस्कृति के संवंध में प्रामाणिक तथ्यों का अभाव है, इस पर दो मत नहीं हो सकते. ऋग्वेद केवल हमारे सम्मुख एक ऐसा तथ्य है जिस के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आर्य सिंघ के प्रांत में २००० वर्ष ई.पू. आ कर वसे थे और ऋग्वेद का अविकांश भाग उसी काल का है. जव इतिहासकार ऋग्वेद में वर्णित सामग्री की तुलना सिंधु घाटी की सम्यता के माणव से करते हैं तो विदित होता है कि जातियाँ विलकुल भिन्न थीं. सम्यता का अंश किंचित मात्र भी नहीं था. अतः सिंवु घाटी की सम्यता और संस्कृति के नष्ट-भ्रष्ट करने का दोषारोपण जो आर्यों पर लगाया जाता है वह इस से सिद्ध नहीं हो पाता. कारण? आर्यों के आने के पहिले ही सिंधु घाटी की सम्यता नष्ट हो चुकी थी, अन्यथा ऋग्वेद में उस सम्यता का वर्णन अवश्य होता

अथवा नष्ट होने की चर्चा भी होती. विदेशी इतिहासकार और अर्थशास्त्री मार्शल ने इस संबंध में जो एक विस्तृत रिपोर्ट पेश की है उस में बताया है कि २००० सदी पश्चात् सिंध के शहरों का पतन हुआ और उस पतन में अधिक से अधिक हाथ आर्यों का था. मार्शल के बाद श्री वीलर ने लिखा है कि सिंध के शहरों का पतन यद्यपि शुरू हो चुका था पर अति शीघ्र समाप्ति में आर्यों का हाथ अधिक था. श्री वीलर का कथन है कि ऋग्वेद में जिन शहरों के पतन का वर्णन किया गया है वे वही शहर हैं जो आर्यों ने स्वयं नष्ट किये थे. पर जहाँ तक समय का प्रश्न है वीलर के कथन में सत्यता का अधिक अंश पाया जाता है. उस ने शहरों के पतन के बारे में कहा है कि वह समय १५ वीं सदी के मध्य का था. दूसरे इतिहासकार श्री वीलर के कथन से सहमति नहीं प्रकट करते. उन का कहना है कि न तो २००० वर्ष ईसा पूर्व का कोई प्रामाणिक तथ्य हमारे सम्मुख है और न ही १५ वीं सदी के मध्य का, अतः जो कुछ भी लिखा गया है उस में सत्य का अंश नहीं के बराबर ही है.

ऋग्वेद अथवा उस के बाद के समय के बारे में यही कहा जा सकता है कि आर्य गंगा नदी की घाटियों में आ कर बसे और वहाँ पर उन्होंने अपना पूर्ण अधिकार कर लिया था. साहित्य समाज का दर्पण है, इस उक्ति को ले कर यदि हम आगे बढ़ते हैं तो ऋग्वेद में साहित्य तो है ही, उस में वर्णित तथ्य इतिहास की सामग्री के लिए प्रामाणिक सूत्र हैं. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने लेख 'साहित्य की महत्ता' में लिखा है :—

"ज्ञान-राशि के संचित कोष का ही नाम साहित्य है." ज्ञान-राशि से उन का अभिप्राय और दृष्टिकोण काफ़ी विस्तृत था. हम दूसरे रूप में यह भी कह सकते हैं कि जो कुछ हम देखते हैं, सुनते हैं, पढ़ते हैं, लिखते हैं अथवा अनुभव करते हैं उन का लिपिबद्ध प्रकटीकरण ही साहित्य कहलाता है. अतः ऋग्वेद में रची गयी ऋचाएँ, उन का मौखिक प्रसार, शुद्ध रूप में उच्चारण साहित्य के अंतर्गत आते हैं और साहित्य समाज का दर्पण है, ऐसी धारणा है तो समाज में प्रचलित जो भी रीति है वह मानव-इतिहास की सामग्री है. मानव का सामाजिक वृत्तांत इतिहास की सामग्री के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? आर्यों ने लिपि का सहारा क्यों नहीं लिया, यह दूसरा प्रश्न हमारे सम्मुख है. इस का उत्तर यह है कि आर्यों ने अपनी नीति अथवा साहित्य का लिपिकरण इस लिए नहीं किया कि ऋग्वेद की ऋचाएँ ईश्वरीय हैं और उन का लिपिकरण करने के स्थान पर कंठस्थ करने की क्रिया शुद्ध और पवित्र मानी गयी होगी, इस लिए लिपि का आश्रय नहीं लिया गया. आर्यों की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास न हो, इसे बुद्धिजीवी मानने को तैयार नहीं हैं.

ईसा पूर्व छठी सदी का इतिहास एक विचित्र समस्या का प्रतीक है. इस समय का इतिहास और उस के आगे की ऐतिहासिक सामग्री पौराणिक सूत्रों से संबंधित है, अतः संदेह की गुंजाइश अधिक है. इस आधारभूत तत्त्व को ले कर इतिहास की रचना प्रामाणिकता की कसौटी पर खरी उतरे, यह धारणा भ्रामक ही होगी. जब हम इस के दूसरे रूप के संबंध में विचार करते हैं तो हमें विदित होता है कि जैन और बौद्ध धर्म की धार्मिक परंपरा इतिहास की सामग्री के लिए दस्तावेज़ से कम नहीं हैं. वे विश्सनीय हैं और इतिहास की सामग्री के लिए प्रामाणिक स्मृति हैं, क्यों कि इन पुस्तकों में प्रथम बार लिपिकरण दिखाई देता है और लेखन-कला तथा अन्य वस्तुओं का जो प्रयोग हुआ है वह सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक ही हैं. एक ओर जहाँ हम इन्हें ऐतिहासिक सामग्री मानते हैं दूसरी ओर हमें यह शंका होती है कि लिपि का प्रयोग न कर के प्रस्तर अथवा शिलालेखों पर खुदाई कर के उन का प्रचार करना क्यों अनिवार्य माना गया. इतिहास के संबंध में जो प्रामाणिक सामग्री हमारे सम्मुख है वह मौर्य वंश के महाराज अशोक, जो कि चंद्रगुप्त मौर्य का पोता है, के समय ई. पूर्व (२६९-२३२) की है. राज्य-आज्ञा उस समय प्रस्तर और चट्टानों पर अंकित की जाती थी. इस का प्रचलन राज्य के भीतर और आश्रित राज्यों तक होता था. चंद्रगुप्त मौर्य और अशोक के समय में लिपि का प्रयोग इतिहास की सामग्री के लिए एक वरदान है. यह भी सत्य है कि जो लिपि प्रयोग की गयी थी उस में भी बड़ी विभिन्नता थी. उस समय चार लिपि प्रचलित थीं: ब्राह्मी, खरोष्टी, अरीमिक और यूनानी. इन चारों में सब से अधिक ब्राह्मी लिपि प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी थी. इस का प्रयोग एक छोर से दूसरे छोर तक होता था और अधीनस्थ राज्य में भी इसी लिपि में कार्य किया जाता था. खरोष्ठी लिपि केवल उत्तर-पश्चिम सीमा तक ही अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकी थी. अरीमिक और यूनानी लिपि विदेशी होने के कारण उत्तर-पश्चिम इलाक़ों तक ही सीमित रही और वे वहीं प्रधान थीं जहाँ विदेशी हुकूमतें थीं. कुछ सदियों पश्चात् भारत में खरोष्ठी लिपि का प्रभुत्व नष्ट हो गया. संस्कृत और प्राकृत लिपि खरोष्ठी लिपि में अपना स्थान बनाने में असमर्थ थी. ब्राह्मी लिपि सदियों तक दक्षिण पूर्व एशिया में आधुनिक लिपियों की सिरमौर बन कर पनपती रही. यूनानी और अरीमिक लिपि भारत भूमि पर अपनी जड़ें न जमा सकीं. थोड़े समय पश्चात् इन का प्रयोग कम होने लगा और लोग इन्हें भूलने लगे. पर ब्राह्मी का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, जो इतिहास की एक प्रमुख अंग मानी जाती है.

साहित्य

स्थविर पी. ई. एन.

पी. ई. एन. (अंतरराष्ट्रीय लेखक सम्मेलन की भारतीय शाखा) का नौवाँ अधिवेशन दिसंबर के अंत में अहमदाबाद में हुआ. इस की कार्यकारिणी के १७ सदस्य हैं, जिन में से ११ बंबई से ही हैं. इन की आयु का अंदाज़ यहाँ दिये नामों के साथ कोष्ठक में दी हुई संख्याओं से पता चलेगा. इस के अधिकांश सदस्य कृती लेखक कम, अंग्रेज़ी समर्थक लेखकेतर लोग, पत्रकार आदि अधिक हैं. इस संस्था की दिल्ली शाखा के मंत्री माधोसिंह 'दीपक' हैं. भारत भर में इस की सदस्य-संख्या दो सौ से अधिक नहीं है. कार्यकारिणी के सदस्य हैं :

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (८०), डॉ. के. एम. मुंशी (८४), श्री मस्ति वेंकटेश अय्यंगार (७६), मदाम सोफ़िया वाडिया, अध्यक्ष (६७), अनंत काणेकर, मंत्री (६३), गुलाबदास ब्रोकर (५९), ए. ए. फ़ैज़ी (७०), डॉ. जे. एफ़. बलसारा (६० से ऊपर), निस्सीम ईज़ीकेल (४४), डॉ. प्रेमानंद कुमार (३०), उमाशंकर जोशी (५८), खुशवंत सिंह (५४), लीला राय (५९), एम. आर. मसानी (६४), गोपी गौबा (४० से ऊपर), प्रो. एम. एम. झवेरी (६२), श्री एम. आर. जंबूनाथन् (७३).

यानी प्रेमानंद कुमार और निस्सीम ईज़ीकेल को छोड़ कर यह एक वृद्ध लेखक संघ है. आश्चर्य नहीं कि उसने राज्यपाल श्रीमन्नारायण और काका साहब कालेलकर (८४) से उद्घाटन कराया. डॉ. मुल्कराज आनंद (६४) ने, आधुनिकता की चर्चा में, गांधी जी के आश्रम में रह कर उन्होंने नियम कैसे तोड़े और शराब पीने पर वहाँ से निकाले गये इस महान 'असत्य के प्रयोग' की चर्चा की. काका साहब और मुल्कराज आनंद ने कहा कि वे पहली बार इस पी. ई. एन. कांफ़्रेंस में आये. सारी कार्रवाई अंग्रेज़ी में हुई. गुजराती के तरुण लेखक भी वहाँ थे. पर किसी ने कोई भाग नहीं लिया, सिवाय चंद्रकांत बक्शी और दिगीश मेहता के. सब कुछ एक नक़ली वातावरण में नक़ली ढंग से भारतीय साहित्य को पकड़ने का यत्न था.

गुजराती के श्री जयंती दलाल ने युद्धोत्तर गुजराती साहित्य की चर्चा करते हुए कहा कि गुजरात के बाहर के लेखकों को अहमदाबाद आये मात्र ५० घंटे हुए होंगे. उतने समय में उन्होंने गांधी शताब्दी वर्ष का १५ से २० बार उल्लेख सुना होगा. लेकिन हम गुजरात के लोग गत २० वर्षों से रोज़ २० बार गांधी जी का नाम सुना करते हैं. गुजरात में आज कोई ऐंग्री मैन नहीं हैं. हम शांति वाले हैं. उमाशंकर जी के प्रति आदर होने पर भी मुझे कहना पड़ रहा है कि दो दिन पूर्व अमेरिकियों ने चंद्रमा

वृद्ध लेखक संघ

की प्रदक्षिणा की, तो उस पर 'कवियों का चांद चला गया' कह कर उन्होंने दुख व्यक्त किया. यह हैं हमारी स्वतंत्रता के स्वातंत्र्य वाद के कवि. गुजराती के कई लेखकों ने दलाल के कथन का विरोध किया, उन्हें वक्र द्रष्टा भी कहा. अन्य भाषाओं के साहित्य की चर्चा में ऐसी आकर्षक चर्चा नहीं हुई. कारण विभिन्न विचारधारा वाले एक ही भाषा के साहित्यिकों का उतनी संख्या में न होना था. विभिन्न भाषाओं के साहित्य की चर्चा करते समय विभिन्न साहित्यिकों ने जो कुछ कहा उस का निष्कर्ष यही था कि भारतीय साहित्य में एक तरह की नव जागृति की हवा उठी है, परंपरा से मुक्त होने की जागृति सभी लेखकों में दिखायी देती थी.

गांधीवादी विचारक **काका साहब कालेलकर** ने उद्घाटन-समारोह की अध्यक्षता करते हुए अपने भाषण में अंग्रेज़ी के अनावश्यक समाज-विरोधी प्रभुत्व की कड़ी आलोचना की. उन के अनुसार पहले के ज़माने में जैसे समाज पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व रहता था, वैसे आज अंग्रेज़ी लिखे-पढ़े वर्ग की सत्ता किसी न किसी तरह मज़बूत बनी हुई है. यदि देश का प्रशासन उस भाषा में होना जारी रहा जिसे ८० प्रतिशत जनता न समझती हो तो भारत में कभी लोक़-शाही सफल होने वाली नहीं.

दूसरे दिन अर्वाचीन साहित्य में आधुनिकता और भारतीय साहित्य में अनुवाद—इन दो विषयों पर चर्चा हुई. प्रथम चर्चा की अध्यक्षता डॉ. मुल्कराज आनंद ने की और दूसरी बैठक की अध्यक्षता मस्तिवेंकटेश आयंगार ने की. अर्वाचीन साहित्य में आधुनिकता के बारे में गुजराती के **गुलाबदास ब्रोकर** ने कहा कि हर युग अपने को आधुनिक युग मानता है. भारत में आधुनिक युग का प्रारंभ ब्रिटिश शासन की समाप्ति से और अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य के संपर्क में जब से हम आये तब से हुआ. परंतु साहित्य में आधुनिकता का अर्थ कला की दृष्टि से पैदा हुए एक नये विचार-प्रवाह पर आधारित है. गुजराती के **चंद्रकांत बक्शी** के अनुसार गुजराती भाषा में गांधीवाद आधुनिक युग बन गया और गांधीवादी लेखकों ने गुजराती साहित्य में दूध में पानी डाले जाने की तरह की वृद्धि की. परंतु १९५५ के बाद की पीढ़ी ने उस का अंत कर दिया. **डॉ. मुल्कराज** के अनुसार भारतीय साहित्य में जो आधुनिकता दीख पड़ती है उस पर पश्चिम के साहित्य का प्रभाव है. भारतीय लेखक अपने सृजन के स्वरूप में नये-नये प्रयासों द्वारा जो प्रयोग करते रहते हैं वे स्वागत-योग्य हैं. जीवन की असमंजसता और विद्रोही आतंक के कारण नये परिवर्तन साहित्य में भी देखने को मिलते हैं.

अंतिम, तीसरे दिन **स्वातंत्र्य के बाद का साहित्य** पर चर्चा हुई. अध्यक्षता खुशवंतसिंह, ज्योतींद्र दवे और प्रभाकर माचवे ने की. बैठक में अंग्रेज़ी, असमी, बंगाली, हिंदी, कन्नड़, तमिल, उर्दू, मराठी, उड़िया, पंजाबी और संस्कृत साहित्य के निबंध पढ़े गये.

खुशवंतसिंह का कहना था कि आज़ादी के पूर्व कुछ भारतीय अंग्रेज़ी लेखकों ने भारत के प्रति अमर्यादित सहानुभूति और विदेशियों के प्रति घृणा व्यक्त की. आज़ादी के बाद विद्यमान **नीरद चौधरी** जैसे लेखक भारतीय परंपराओं की क्षतियों पर अधिक ज़ोर देने लगे हैं. ये दोनों आत्यांतिक दृष्टि उचित नहीं हैं.

इंडोऐंग्लिकन साहित्य के बारे में चर्चा करते समय **के. आर. श्रीनिवास आयंगार** ने कहा: जिस देश और जनता की भावी आशाएँ संतति-नियमन, प्रवास, योजना, पी. एल. ४८० का धन पाने और विदेशी ऋणों का ब्याज अदा करने पर लगी हों उस देश और जनता को अपने लेखकों से शक्ति की विविधता की और श्रद्धा की कमी की फ़रियाद करने का क्या अधिकार है?

श्री चुनीलाल मड़िया वहाँ के इस सारे वातावरण पर क्षुब्ध थे. वह कह रहे थे कि यहाँ भी प्रोफ़ेसरों का ही अधिकार है, कृती लेखक कम हैं. दुर्भाग्य से इस कांफ़्रेंस से लौटते समय हृदय-गति बंद हो जाने से उन की अहमदाबाद से बंबई आने वाली गाड़ी में मृत्यु हो गयी. हम इस विख्यात और लोकप्रिय उपन्यासकार, कहानी लेखक, साहित्यिक पत्रिका 'रुचि' के संपादक के परिवार को **दिनमान** की ओर से संवेदनाएँ भेजते हैं.

पुरस्कार और प्रकाशन

वर्धा में जनवरी के प्रथम सप्ताह में ४८वाँ मराठी साहित्य सम्मेलन संपन्न हुआ. अध्यक्ष थे **श्री पुरुषोत्तम शिवराम रेगे**, मराठी में नयी कविता के प्रारंभकर्ता, उपन्यासकार, नाटककार और 'छंद' नामक साहित्यिक लघु-पत्रिका के ६ वर्ष तक संचालक. उन्होंने अपने भाषण में कुछ नये विचार रखे, जिन के कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं:

"साहित्यकार कई अर्थों में एक मुक्त प्राणी होता है. वह किसी भी चीज़ से बाँधा नहीं जाता. यद्यपि व्यक्ति के नाते उस की अनुभूतियों की प्रतिगूँज उस के साहित्य में गूँजती है फिर भी जितना अनुभव अधिक और उत्कट हो उतना ही उस का साहित्य श्रेष्ठ होगा, यह मानना गलत है. सभी खलासी (जहाज़ी) कॉनरड नहीं बनते. इस का अर्थ यह है कि कॉनरड जो अनुभव लेता है, जो यथार्थ वह झेलता है वह केवल निमित्त है. साहित्यकार के बारे में साहित्यिक कृति ही उस का मुख्य अनुभव होता है. प्रत्यक्ष अनुभव की अपेक्षा अनुभव ग्रहण करने की प्रक्रिया या पद्धति साहित्यकार के बारे में बहुत महत्त्वपूर्ण है. साहित्यिक की संवेदनाएँ मुक्त होती हैं, इस लिए वह कहीं भी समभाव स्थापित कर सकता है. अलग-अलग अनुभवों का महत्त्व नहीं होता. यदि अनुभव को वह पूर्णतः आत्मसात् करता है तो यह उस का स्वभाव बन जाता है. उस के माध्यम से वह विविध दर्शन कर सकता है.

"कुछ व्यावहारिक बातों पर मैं विचार करना चाहता हूँ. साहित्यिक को पुरस्कार देना उस के प्रोत्साहन के लिए काफ़ी नहीं है. साहित्य का प्रसार भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है. स्वतंत्रता के बाद राज्य शासन और केंद्रीय शासन ने पुरस्कार-अनुदान आदि योजनाएँ चलायी हैं; साहित्य अकादेमी, महाराष्ट्र के साहित्य-संस्कृति मंडल आदि ने कुछ प्रकाशन भी किया. यह सब आज की संक्रमणावस्था में उपयोगी होगा, यह मान कर मैं चलता हूँ. परंतु हम यह न भूलें कि साहित्य का सही प्रसार पाठक-संख्या बढ़ाने से होता है. उस के लिए शिक्षा का प्रसार और इयत्ता भी बढ़ानी चाहिए. जीवनमान सुधरना चाहिए. आज-कल इस सब के लिए जो हो रहा है उसे देख कर लगता है कि हम मूल बात को भूल रहे हैं. पुरस्कार देने से बेहतर साहित्य-निर्मिति होगी, यह मानना ग़लत होगा. लेखक से वस्तुतः अन्य कोई भी गारंटी नहीं ले सकता, जहाँ तक उस के अगले लेखन के गुण का सवाल है. **पुरस्कार बाँट कर आप कितने लेखकों के प्रतिशत को समृद्ध बनायेंगे. इस से तो अच्छा हो कि शासन अच्छी किताबें चुन कर ख़रीदे और ग्रंथालयों को वे बाँटें.** लेखकों को इसी से अधिक पाठक और रॉयल्टी भी मिलेगी. अच्छा पाठक-वर्ग यों निर्मित होगा.

"अनुदान आज-कल गंभीर, गवेषणात्मक शोध-ग्रंथ, कोश आदि को दिये जाते हैं. इन का भी पुनर्विचार होना चाहिए. युवक लेखकों की अच्छी कला-कृतियाँ समय पर प्रकाशित न होने से कुछ लेखक लिखना बंद कर देते हैं. यह साहित्य की बहुत बड़ी हानि है. आज-कल साहित्यिक संस्थाएँ किताबें अनुवाद करा कर या लिखा कर केवल गोदाम भरती हैं. साहित्य अकादेमी में लाखों का माल यों ही पड़ा है. किताबों की बिक्री नहीं के बराबर होती है. यह राष्ट्रीय पूँजी को अटका कर रखने जैसा अपराध है. सृजनशील लेखकों को अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए. उन के लिए कुछ शिष्य-वृत्तियाँ होनी चाहिएँ. केवल प्रतिष्ठित लेखक (एस्टैब्लिशमेंट) की ही पूजा करने से कुछ नहीं होगा, प्रयोगशीलों की ओर भी हमें ध्यान देना चाहिए. कुछ लोग कहते हैं कि यों सरकारी रुपया बिगड़ेगा. मैं कहता हूँ कि घर में अपने बच्चों पर जो रुपया ख़र्च करते हैं वह सब वापस मिलेगा क्या आप इसी प्रयोजन से ख़र्च करते हैं? नये लेखकों के साथ सौतेला या मानों वे घर के बाहर के हों, ऐसा व्यवहार हमारे साहित्य को कहीं का नहीं रहने देगा."

कविता कहाँ ?

केदारनाथ कोमल के काव्य-संग्रह चौराहे पर में हजारीप्रसाद द्विवेदी की भूमिका और नरेंद्र शर्मा तथा भवानीप्रसाद मिश्र की शुभाशंसाएँ हैं. लेकिन यह समीक्षक शुभाशंसा देकर छुट्टी नहीं पा सकता. चेतना के स्तर पर कवि के जागरूक रहने और एक नागरिक के जागरूक रहने में जो अंतर है वह कविता के ही कारण है. कविता इस संग्रह में नहीं मिलती; बातें मिलती हैं; दर्द और व्यंग्य भी मिलता है—चाहे वह आधुनिक सभ्यता पर हो चाहे देश के लचर प्रशासन पर. अतः इतना ही कहा जा सकता है कि कवि की दृष्टि खुली हुई है, संवेदना का क्षेत्र भी खुला हुआ है, पर नयी कविता की पकड़ उस की ढीली और कमजोर है.

चौराहे पर; केदारनाथ कोमल, समकालीन प्रकाशन, सी० १४।१६० बी० २, सत्याग्रह मार्ग, वाराणसी. मूल्य तीन रुपया.

भारतीय डाक व तार

अपने १,००,००० डाकघरों
१०,००० तारघरों और
१०,००,००० टेलीफोनों के जरिये

राष्ट्रीय एकता और
अन्तर्राष्ट्रीय समझ-बूझ
बढ़ाने में कार्यरत है

डाक-तार विभाग को यह गर्व है
कि यह ५० करोड़ भारतवासियों और
दुनिया के ३०० करोड़ लोगों के बीच
सम्पर्क का साधन बनता है।

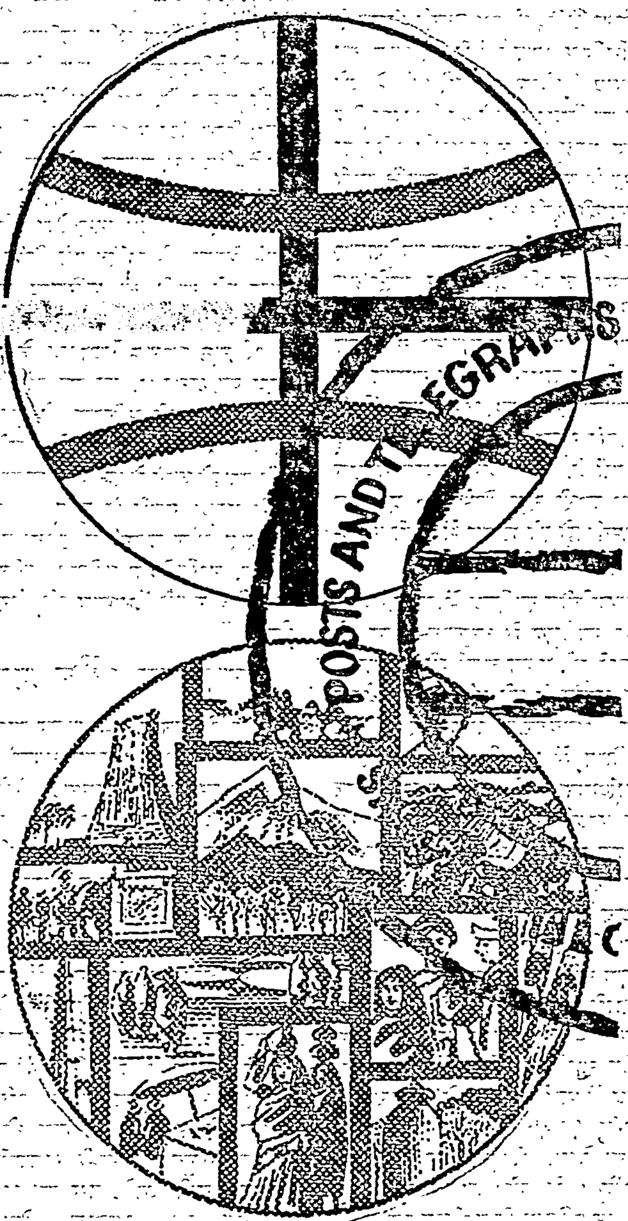

भारतीय डाक व तार

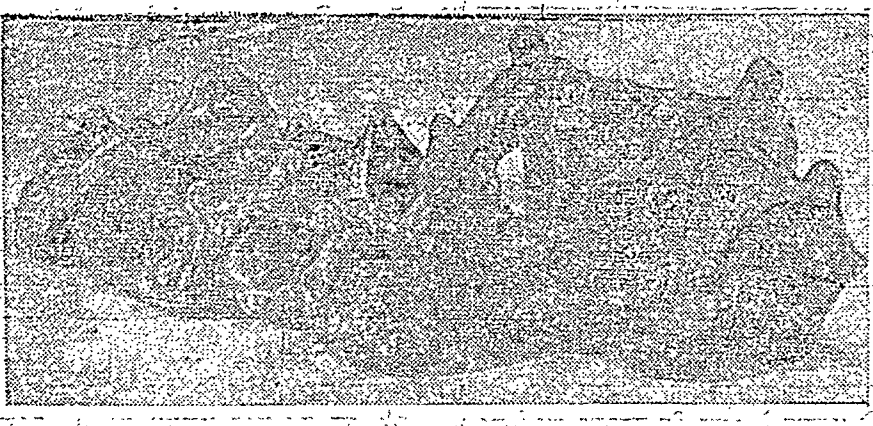

'एकता' : रमेश विष्ट

कला

कुछ मूर्त्ति शिल्प और रंग गुबार

युवा मूर्तिशिल्पी रमेश विष्ट के मूर्ति-शिल्पों (त्रिवेणी कला संगम) में अभी प्रारंभ की बातें हैं लेकिन लघु आकार की उन की दो मूर्ति-संरचनाएँ यह बताती हैं कि वह प्रारंभिक विषयों को छोड़ कर अन्य दिशाओं की ओर जाने को उत्सुक हैं. पात्र-रचना में भी दीक्षित रमेश विष्ट के मूर्ति-शिल्पों का आकर्षण इस बात में है कि उन की कृतियाँ पात्र-ढाँचों के निकट लगती हैं और हमें पात्राकृतियों और मूर्तिशिल्पों से एक साथ ही जोड़ती मालूम पड़ती हैं. गुँथी हुई गोलाइयों और सर्पिल गतियों की उन की संरचनाएँ और 'एकता' जैसे मूर्तिशिल्प यह बताते हैं कि वह मूर्ति-रचना की जटिलताओं से उलझना चाहते हैं. उन का 'घायल घोड़ा' व 'भैंसे' अपनी निर्मिति में मिट्टी के रूप-गुण स्पर्श करते लगते हैं. 'चार आकृतियाँ' मूर्तिशिल्प एक प्रकार की 'आकृति संरचना' के कारण अलग नजर आता है. उन की संरचनाओं व कुछेक मूर्तिशिल्पों के आकार मन में कँटीले पौधों या झाड़ियों का-सा बिंब बनाते हैं. 'विश्वास' व खिलौने-नुमा कुछ मूर्तिशिल्पों को छोड़ दें, जो सरलीकरण के कारण सपाट लगते हैं, तो उन के मूर्तिशिल्पों की अब तक की विशेषता यही है कि वे अलग-अलग संदर्भों और अलग-अलग बिंबों की निकटता प्राप्त करना चाहते हैं. उन के प्रायः सभी मूर्तिशिल्प लघु आकार के हैं, जिन्हें पत्थर, मृत्तिका आदि में तराशा व गढ़ा गया है.

रंग-धुंआ, रंग-गुबार : अमूर्त्त कला में रंगों का प्रयोग कई बार शैलियाँ निर्मित करने के लिए किया गया है—इसी प्रक्रिया में कैनवास को रंगों पर थोपा, लीपा, यहाँ तक कि फेंका गया है. लेकिन कई चित्रकारों ने इस प्रक्रिया को अपने लिए सरलीकृत कर लिया है. आइफैक्स कला दीर्घा में प्रदर्शित **संतोष मनचंदा** के चित्रों को देख कर लगता है कि उन के चित्र भी इसी सरलीकरण का शिकार हुए हैं. चित्रों में रंगों का प्रयोग इस रूप में हुआ है कि उन से रंग-धुंआ या रंग-गुबार उठता मालूम पड़ता है. कैनवास पर बहुत-से रंग किसी मनःस्थिति से जुड़ नहीं पाते. रंगों को काटते रंग निरुद्देश्य अलग-अलग दिशाओं को भाग निकलते हैं. केवल दो-तीन चित्रों में जमीन के छाया-चित्र का-सा प्रभाव या शाम को पेड़ों की छाया के बीच धूप जैसे कुछ रंग हल्का-सा आकर्षित करते हैं.

संतोष मनचंदा

दिल्ली शिल्पी-चक्र में प्रदर्शित उदयपुर के युवा चित्रकार **शैल चोयल**, जिन्हें चित्र-रचना, पैतृक देन के रूप में भी मिली है, के कुछ चित्र भी इस रंग-गुबार से ढँके दीखते हैं. लेकिन उन के चित्रों में कहीं ज्यादा वैविध्य है. यह अलग बात है कि यह वैविध्य शिल्प या विषय-वस्तु के पूरी तरह से न पकने के कारण बन पड़े हैं, रचनात्मक वैविध्य के कारण नहीं. रंग-धब्बे और रंग-फेन उन के यहाँ भी हैं. उन के ग्राफ़िक्स अपेक्षाकृत अधिक सुथरे हैं. यहाँ यह कहने की इच्छा होती है कि युवा चित्रकार, जिन में संभावनाएँ दीखती हैं, अगर अपना सारा काम समय से पहले प्रदर्शित करने का मोह छोड़ दें तो बेहतर हो. इस से वह अपने लिए एक प्रकार का विरोधी वातावरण बनाते हैं—इस से उन्हें कोई आर्थिक लाभ भी होता नहीं दीखता.

श्रीधराणी कला दीर्घा में प्रदर्शित रीतेन मजूमदार के ज़मीन पर बिछाने वाले आसनों व दीवार पर लटकाने वाले (टाँगने वाले नहीं) चित्रों की प्रदर्शनी हुई. कंबलों पर सूर्याकार काटे गये या चित्रित किये गये उन के इन चित्रों का अपना आकर्षण है. कंबलों पर रंगों व ऊन से उन्होंने कुछ रूपाकार उभारे हैं, जिन में एक प्रकार के रंग-संतुलन व रूपाकार संतुलन और सुमेल का ध्यान रखा गया है. शीतऋतु में प्रदर्शित इन ऊनी-चित्रों का आकर्षण और भी बढ़ जाता है. सज्जा और उपयोगिता दोनों के लिहाज़ से ये चित्र अच्छे लगते हैं. यों इन्हें देख कर यह भी लगता है कि इस चित्र-माध्यम की कलात्मक व रचनात्मक संभावनाएँ और अधिक हैं.

शैल चोयल : 'कैक्टस पर अचल जीवन'

ऐसा लगता है कि अब चित्रकार व मूर्तिकार भी प्रचलित काम से हट कर कुछ करने को उत्सुक हैं. पिछली पात्र-प्रदर्शनियाँ व रीतेन मजूमदार की यह प्रदर्शनी इस बात का उदाहरण हो सकती है लेकिन कई बार यह डर भी लगता है कि यह मात्र नये के लिए ललक बन कर फ़ैशन न बन जाए. इस लिए यह जरूरी है कि इस तरह के किसी काम को अतिरिक्त रचनात्मक सजगता दी जाए. ऐसा करने पर ही इस तरह का काम कला के घेरे में आ सकेगा और बदलाव का कारण भी बन सकेगा.

परचून

दवा के बदले दावा

अक्सर लोगों को यह शिकायत रहती है कि डॉक्टर का नुस्खा आसानी से नहीं पढ़ा जाता, पर औषधि-विक्रेताओं से इस मामले में कम ही भूल होती है. किंतु पश्चिमी जर्मनी के केलिंगहुसें नामक स्थान के एक डॉक्टर के नुस्खे ने साफ़-साफ़ लिखा होने के बावजूद अजीब गुल खिला दिया. अधिक बच्चों से आजिज़ आ कर पाँच बच्चों की माँ श्रीमती फ़्राउ नेक जब गर्भ-निरोधक दवा लेने के इरादे से उक्त डॉक्टर के पास गयीं तो उन्होंने गोलियाँ लिख कर दे दीं. औषधि-विक्रेता ने डॉक्टर साहब के सुलेख को अपने ढंग से पढ़ कर श्रीमती नेक को गर्भ-निरोधक गोलियों के बदले पेट के रोग की गोलियाँ दे दीं. डॉक्टर की नेक सलाह, दवा और आवश्यक परहेज़ के बावजूद श्रीमती नेक को गर्भ ठहर गया और ठीक वक़्त पर एक अनचाहे शिशु ने इस दुनिया में क़दम रख ही दिया.

नेक दंपति ने इस अनचाहे शिशु के आगमन के लिए औषधि-विक्रेता की असावधानी को ज़िम्मेदार ठहराया और शिशु के भरण-पोषण के ख़र्च के लिए उस पर न्यायालय में मुक़द्दमा दायर कर दिया. न्यायाधीश ने औषधि-विक्रेता को शिशु के आगमन के लिए पचास प्रतिशत दोषी ठहरा कर आदेश दिया कि वह अठारह वर्ष की आयु तक शिशु के भरण-पोषण का आधा व्यय वहन करे. ग़लती को आधा-आधा बाँटते हुए न्यायाधीश ने श्रीमती नेक को भी कसूरवार ठहराया, कि उन्हें औषधि की सत्यता परख कर ही उसे इस्तेमाल करना चाहिए था. औषधि-विक्रेता न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध अब अपील करने की सोच रहा है.

हरे रंग का पिल्ला

जर्मनी में एक कुतिया ने पाँच पिल्लों को जन्म दिया, जिन में से एक पिल्ले का रंग हरा है. इस रंग का पिल्ला विश्व भर में शायद ही कभी पैदा हुआ होगा. बहरहाल आशा की जाती है कि धीरे-धीरे इस का रंग बदल कर भूरा हो जायेगा और अगर पिल्ले का रंग हरा ही बना रहा तो मुमकिन है कि कुदरत की यह कृति भी पिकासो के चित्रों की तरह ही बहुमूल्य निधि समझी जाये.

खिलौनों का मेला

"हम बड़ों की दुनिया से बच्चों के खिलौनों की काल्पनिक दुनिया का सत्य कहीं अधिक बोधगम्य और अर्थवान होता है". ये उद्‌गार प्रकट किये हैं, क्रिसमस के अवसर पर बच्चों के लिए ब्राइटन खिलौनों के मेले से खिलौने खरीदने वाले, जो एवरक ने. ब्राइटन में विभिन्न रंगों, आकारों, क़दों और तरह-तरह की आवाज़ करने वाले खिलौनों का कुंभ मेला-सा लग गया था. इस मेले में ऐसे खिलौने भी शामिल थे जो खुद-ब-खुद बैठ जाते हैं, हाथ-पैर हिलाते हैं और 'मम्मी' कह कर पुकारते हैं. इस मेले में खेलते, झूलते, तरह-तरह की हरकतें करते नये-पुराने खिलौनों के अलावा ऐसे खिलौने भी शामिल थे जो 'मैं अभी से नहीं सोता' जैसी अपनी बाल-सुलभ हठ से बच्चों के अलावा बड़े-बूढ़ों का भी मन मोह लेते हैं. जो एवरक ने कहा कि ब्राइटन का मेला न केवल एक काल्पनिक विश्व का खुशनुमा नमूना था वरन् वह हमें व्यावहारिक, यांत्रिक और वैज्ञानिक जगत् की भी याद दिलाता था. उन्होंने बताया कि इस मेले में खास कर ट्रॉलियों और लॉरियों के नये-पुराने नमूने देख कर वह मुग्ध हो गये. ये नमूने माचिस की डिबिया के बराबर भी थे और इतने बड़े भी थे कि श्री एवरक भी उन में आसानी से बठ सकें. ब्राइटन मेला इस तथ्य का परिचायक है कि ब्रिटेन खिलौनों के उद्योग को कितना महत्त्व देता है और उस के विस्तार के लिए कितना प्रयत्नशील है. पिछले वर्ष ब्रिटेन ने लगभग १ अरब ६ करोड़ रु. के खिलौने तैयार किये थे, जिस का तिहाई हिस्सा बाहर भेजा गया. इस वर्ष और भी ख़ूबसूरत नतीजे की उम्मीद है.

फ़राओं का अभिशाप

मिस्र के बादशाह तुतानखामेन की संरक्षित देह को जब तीन दिन के 'परीक्षण के बाद दोबारा सोने की शव-पेटिका में बंद कर के क़ब्र में दबा दिया गया तो अंधविश्वासों में आस्था रखने वाले यह सोच कर घबराये कि तुतानखामेन का अभिशाप कहीं फिर से क़हर न ढा दे. ऐसा माना गया है कि जो भी फ़राओं की क़ब्र को छेड़ता है उसे बदले में मौत मिलती है. वर्षों से पलने वाले इस अंधविश्वास का आधार यह तथ्य है कि १९२० में जब ब्रितानी अभियान द्वारा यह क़ब्र खोज निकाली गयी तब से लगभग बीस व्यक्ति, जिन का इस क़ब्र से कुछ न कुछ संबंध रहा, अचानक ही मृत्यु के शिकार हो गये.

इस बार ब्रिटेन के जिस अभियान-दल ने इस क़ब्र को हाथ लगाया वह यह जानना चाहता था कि ३ हज़ार वर्ष से भी पहले इस बालक राजा की मृत्यु का कारण क्या था. दल के नेता डॉ० जॉर्ज हैरिसन ने कहा कि मैं प्राचीन अभिशापों की कहानी जानता तो हूँ, पर वह हमारे लिए चिंता का कारण नहीं है. लिवरपूल विश्वविद्यालय में शरीर-विज्ञान के प्राध्यापक ने अपने ८ सहकर्मियों के सहयोग से तुतानखामेन की ममी का परीक्षण एक्स-रे के ज़रिये किया. मिस्र का यह बादशाह १२ वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठा और १८ वर्ष की उम्र में उस की मृत्यु हुई. उस ने ईसा से लगभग १३ शताब्दी पूर्व ऐसे समय में शासन किया जब राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में उथल-पुथल मची हुई थी और आम धारणा रही है कि इस युवा शासक की हत्या कर दी गयी थी.

डॉ० हैरीसन अपने परीक्षण के बाद कुछ और ही नतीजे पर पहुँचे हैं. उन का ख़्याल है कि मस्तिष्क का ट्यूमर उस की मृत्यु का कारण बना. इस बारे में अपने वक्तव्य को और पक्का बनाने के लिए उन्होंने संरक्षित शरीर के इंफ्रा-लाल फ़िल्म और चित्र लिए हैं.

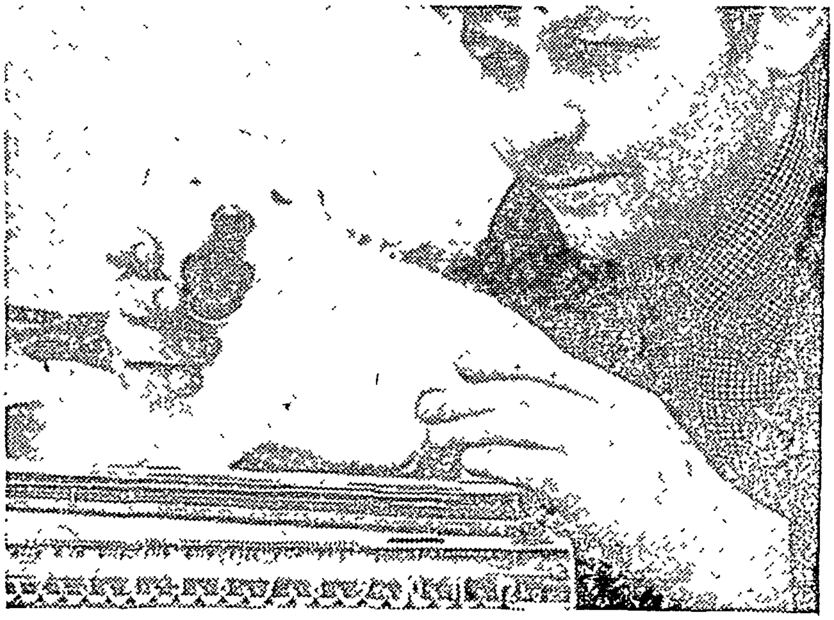

पिल्ला : कुदरत का नया प्रयोग

वी.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

किस्तों पर ट्रांजिस्टर

सर्वत्र विख्यात "एस्कोर्ट" ३ बैंड आल वर्ल्ड पोर्टेबल ट्रांजिस्टर, मूल्य १६५ रुपये मासिक किस्त रुपये १०) भारत के प्रत्येक गांव और

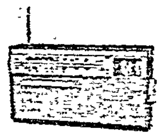

शहर में भेजा जा सकता है। लिखें:—

जापान एजेंसीज (D.W.N.D.—10)

पोस्ट बाक्स ११९४, दिल्ली–६

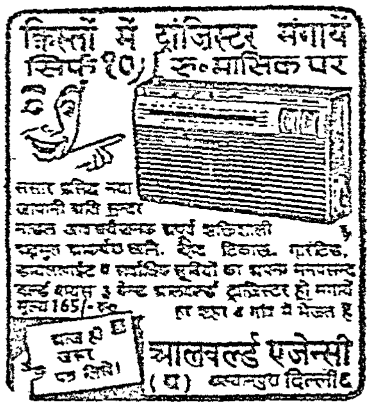

मोना की नई गुड़िया

४२ सें० मी० लंबी

प्लास्टिक का टोप लगाये

मास्टर राजू

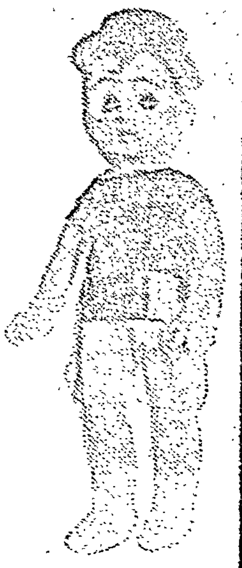

मोना टॉयज इण्डस्ट्रीज

डी–३४, राजौरी गार्डन्स, नई दिल्ली–१५

फोन : ५६६८३६

एकमात्र वितरक:—गुप्ता सेल्स कार्पोरेशन
२७९/१४, पोस्ट ऑफिस स्ट्रीट,
सदर बाजार, दिल्ली।

मुफ्त उपहार

३ महीने तक स्त्रियों का सौन्दर्य काश्मीरी और बंगलोरी आर्ट सिल्क की साड़ियों में खिलता है। आधुनिक डिजाइनों और रंगों में नया माल आ गया है। केवल हमारे यहां ही प्राप्य है। एक डीलक्स साड़ी १२) दो साड़ियां २३) तीन साड़ियां ३३) चार साड़ियां ४०) दो या अधिक साड़ियों के आर्डर पर ब्लाउजपीस मुफ्त। आर्डर पोस्ट पार्सल से भेजे जायेंगे।

ATLAS CO. (D.W.N. D.-25)

P.O. Box 1329, DELHI-6

विद्युत एवं रेडियो

अभियन्त्रण पाठ्यक्रम

विद्युत अभियन्त्रण, रेडियो मरम्मत, एसेम्बलिंग, विद्युत सुपरवाइजरी, वायरिंग आदि (८०० चित्र) रु० १२.५० वी. पी. डाक व्यय २/- सुलेखा बुक डिपो (इ) अलीगढ़

नवभारत टाइम्स

हिन्दी दैनिक

बम्बई और दिल्ली से प्रकाशित

"नवभारत टाइम्स" आधुनिक और अपटूडेट हिन्दी दैनिक समाचारपत्र है

और

इसके पाठकों की संख्या बहुत विस्तृत है।

दोनों ही संस्करणों में व्यावसायिक, स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारों के साथ-साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और आर्थिक विषयों पर विशेष सामग्री ही तो इसकी विशेषता है।

समाचारों की भाषा सरल है, और

सम्पादकीय अग्रलेख सन्तुलित और उच्च साहित्यिक स्तर के होते हैं।

पंजीयित संख्या डी० १५०१

जैसे ही खतरे की जंजीर खींची जाती है एक लगातार प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, सैंकड़ों यात्रियों सहित रेलगाड़ी खड़ी हो जाती है, पीछे आने वाली अधिकतर गाड़ियों का समय अनियमित हो जाता है, आगे वाले स्टेशनों पर यात्रियों को अत्यधिक असुविधा होती है ।

सम्भवत: रोकी गई गाड़ियों में से किसी में आपत्कालीन कार्य के लिए मनुष्य और माल ले जाया जा रहा हो या पीड़ित क्षेत्रों के लिए दवाएं तथा भोजन भेजा जा रहा हो ।

आपके अविवेकपूर्ण कार्य से गाड़ियों के चलने में बाधा के कारण आवश्यक राष्ट्रीय कार्यों में देर हो सकती है ।

इसलिए उत्तरदायी बनिये ।

सुरक्षा उपकरण का प्रयोग न करें यदि आप ऐसा करने पर बाध्य न हों । केवल आपत्काल में ही प्रयोग करें ।

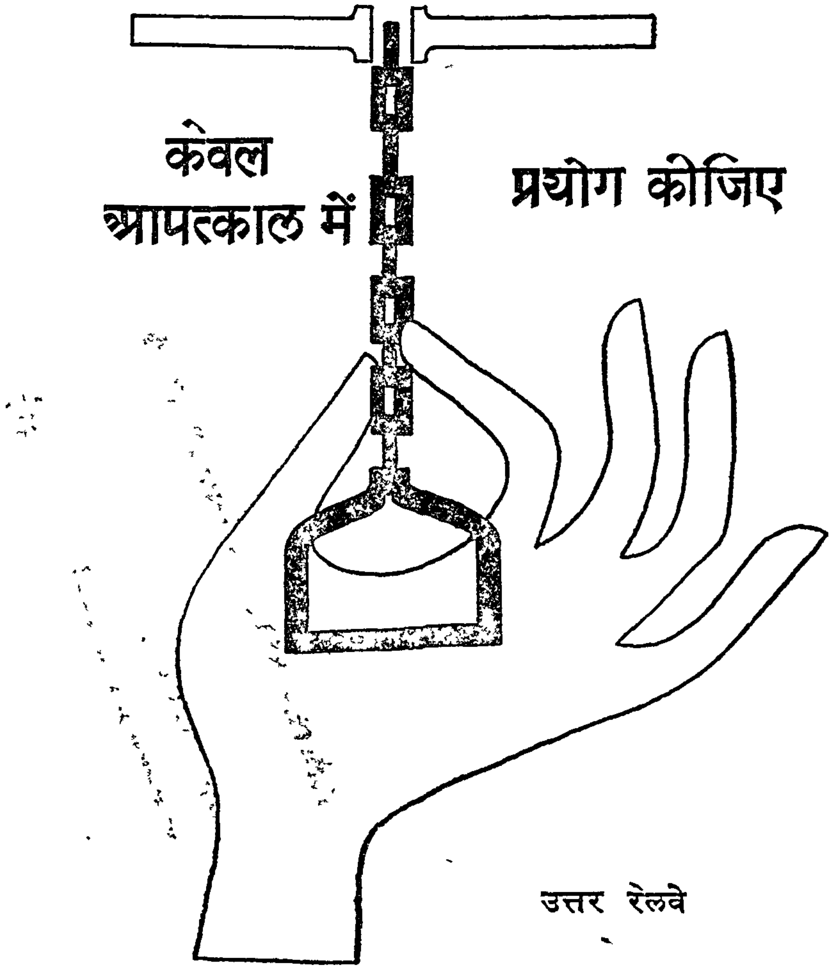

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूजा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित.

साप्ताहिक
दिनमान
टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन

५० पैसे

१९ जनवरी, १९६९
२९ पौष, १८९०

सपूर्णानंद • चुनाव-राज्यों के दौरे • लंदन में हंगामा

धर्मयुग

गणतंत्र दिवस अंक

२६ जनवरी, १९६९

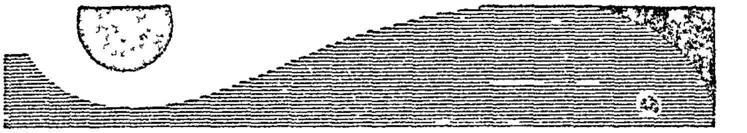

○ पिछले आम चुनावों ने शासन तंत्र मे एक अनिश्चय और अस्थायित्व का जो बीज बो दिया था उसी का परिणाम है मध्यावधि चुनाव. लेकिन इन चुनावों के पीछे की राजनीति क्या है, इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर धर्मयुग एक परिचर्चा आयोजित कर रहा है, गणतंत्र दिवस अंक के लिए विशेष रूप से. जिस मे विचार प्रस्तुत कर रहे है **उपमंत्री सिद्धेश्वर प्रसाद** (काग्रेस), स्वतंत्र दल के नेता तथा राजनीति के पितामह **राजगोपालाचारी**, सोशलिस्ट नेता **श्रीमती मणाल गोरे** तथा जनसंघ के नेता **श्री बच्छराज व्यास.**

○ **जनता का मौलिक अधिकार और संसद का अधिकार क्षेत्र :** विषय संवैधानिक है और इस का सटीक विवेचन कर रहे है प्रख्यात विधि-शास्त्री **डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी.**

○ **पुलिस और प्रदर्शनकारी :** देश मे प्रदर्शन भी होते रहेंगे और पुलिस अपना कर्त्तव्य भी निभायेगी ही : लेकिन दोनो के बीच स्वस्थ और सहानुभूतिपूर्ण रिश्ते क्या कभी संभव हो पायेंगे, इस संभावना पर विचार किया है **श्री रामनंदन तिवारी** ने

○ बात आयी है कि राजभाषा के लिए उर्दू को क्यों नही सोचा जाता, लेकिन दिक्कते क्या है, उस की सीमाएँ और उस की संभावनाएँ क्या है, एक विशेष विचारोत्तेजक लेख **अमृत राय** द्वारा

छात्र असंतोष : शिक्षा के क्षेत्र में एक ज्वलंत प्रश्न है छात्रों का व्यापक आदोलन. धर्मयुग इस के कारणों पर गण्यमान्य विद्वानों के विचार प्रस्तुत करता रहा है. इस बार इस समस्या पर पुर्नविचार काशी हिंदू विश्वविद्यालय के **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** द्वारा : एक महत्त्वपूर्ण लेख इसी अंक के लिए

○ **संन्यास, राष्ट्रीय भावना और अंतर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व :** प्रवासी भारतीयों के लिए मारीशस मे मार्गदर्शन करनेवाले है स्वामी कृष्णानंद के कार्यो का परिचय **लल्लन प्रसाद व्यास** द्वारा : रंगीन चित्र के साथ.

○ **गणतंत्र के १९ वें वर्ष की प्रगति का लेखा जोखा :** बैठे ठाले के अंतर्गत शरद जोशी की चुटीली कलम से आप को क्या अपेक्षित है, और कैसा, आप जानते नही क्या ?

○ **चलते हुए घर :** गाडिया लोहार यानी गाड़ी पर पूरी की पूरी गृहस्थी : एक रोचक रिपोर्ताज **भीमसेन त्यागी** द्वारा, साथ में **हरिपाल त्यागी** के रेखांकन.

○ खान-पान की चीजों में मिलावट और नकली दवाइयों का बडे पैमाने पर निर्माण—दोनों ही देश के स्वास्थ्य के लिए घातक समस्याएँ है : दोनों के विभिन्न पहलुओं पर लेख क्रमश: **श्री रिषभदास रांका** तथा **चिरंजीलाल जोशी** द्वारा.

○ **शिक्षा राज्य मंत्री भागवत झा आज़ाद से विशेष भेंट :** क्रीड़ा जगत् और भारतीय शिक्षण संस्थाएं : **रणवीर सिंह राठौर** द्वारा

○ **हिंदुस्तानी फिल्में विदेशों में : कई खूबसूरत मुगालते :** फ़िल्म संसार के अंतर्गत **इंद्रसेन जौहर** शव-परीक्षा कर रहे है हिंदी फिल्मों की कि उन का बाहर क्या प्रभाव पडता है.

○ **मेरी इच्छोगिल यात्रा : कामिनी कौशल :** भारत-पाक युद्ध के बाद के मार्मिक संस्मरण.

गांधी शताब्दी वर्ष में गांधी पुण्य तिथि के अवसर पर

○ चित्रकार यामिनी राय द्वारा संग्रहणीय चित्र : गांधी जी तथा रवि बाबू, शाति निकेतन में

○ गांधी जी की प्रतिमा लदन में : डा. उर्मिला जैन का विवरण : रंगीन चित्र के साथ

○ अमरीकी नीग्रो और गांधी : गांधी दर्शन के परिपार्श्व में रंगभेद की समस्या की मीमांसा अनंत गोपाल शेवडे द्वारा

○ गाधी साहित्य : नये प्रकाशनों की समीक्षा किशन पटनायक द्वारा.

इसके अतिरिक्त :

○ मोहन राकेश के नाटक : आधे-अधूरे' की अगली किस्त

○ डा. हंसमुख धीरजलाल सांकलिया की प्रागैतिहासिक भारत की खोज' लेखमाला मे इस बार महाराष्ट्र के आदिकाल की खोज का विवरण, रंगीन चित्रो के साथ

○ सुरेंद्र तिवारी, बनारसीदास चतुर्वेदी, नरेंद्र कोहली, देवेंद्र कुमार, मुद्राराक्षस, दिनकर सोनवलकर, भवानीप्रसाद मिश्र, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर, डा. हरिकृष्ण देवसरे, आरसीप्रसाद सिंह आदि की रचनाएं.

और इस विशेषांक के लिए खास तौर पर तैयार किये गये अत्यंत भावपूर्ण मुखपृष्ठ तथा मध्यवर्ती पृष्ठ

तथा अन्य सभी स्थायी स्तंभ

अपनी प्रति अभी से सुरक्षित करा लीजिए

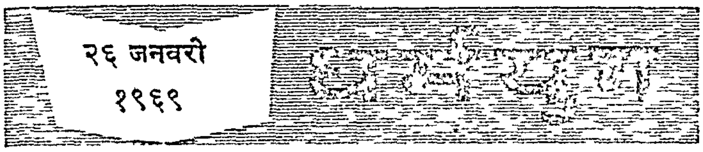

मत और सम्मत

इनसानियत के लिए : पाकिस्तान के पत्रकारों, वकीलों, छात्रों और उन नेताओं के हाथों को बार-बार चूमना चाहता हूँ, जो लाठी, गोली खा कर भी इनसानी आज़ादी की लड़ाई लड़ रहे हैं. मगर ऐसे लोगों से आशा करना जो अय्यूब के शासन को दीर्घायु होने का शुभ संदेश रावलपिंडी भेजते हैं भारी भूल होगी कि वे भारत के भीतर स्वस्थ परंपराओं का उदय होने देंगे. अब तक भारत की जनतंत्री व्यवस्था में एक लाख चक्र से ऊपर गोलियाँ चल चुकी हैं निहत्थे किसानों, मज़दूरों और छात्रों पर और कोई चार हज़ार लोग इस के शिकार हो चुके हैं. क्या जनतंत्र में भी पलटनी शासन की तरह से ही अंधाधुंध गोली चलनी चाहिए ? जो जनतंत्री सरकार इस तरह गोली चला कर जीवित रहना चाहती है वही सरकार अपने मुल्क के बाहर पलटनी शासन को मज़बूत देखना चाहती है और उस के दीर्घायु की कामना करती है. अगर भारत की सरकार पलटनी व्यवस्था की समर्थक नहीं होती तो वह चेकोस्लोवाकिया का पक्ष राष्ट्रसंघ में प्रस्तुत करती और सोवियत रूस की निंदा करती. मगर भारत की सरकार का दिमाग़ तो जनतंत्री है नहीं. इसी लिए उसने चेकोस्लोवाकिया का साथ नहीं दिया. इस प्रकार दिल्ली के शासक आज पलटनी शासकों से भी ज्यादा क्रूर बन चुके हैं, जो यह नहीं चाहते हैं कि जनतंत्र में कोई समूह अपनी उचित माँग के लिए मुँह खोले. पाकिस्तान में जो कुछ भी हो रहा है वह ज़माने की माँग है, परंतु भारत के भीतर जो हो रहा है वह ज़माने के खिलाफ़ है. हम १९४६ के उस हिंदुस्तान की तसवीर बनावें जिसे मुसलिम लीग और कांग्रेस ने गद्दी के लोभ में तोड़ा था. भारत-पाकिस्तान तभी जुड़ेंगे जब उभय देशों में स्वस्थ जनतंत्री सरकारें पैदा होंगी.

—गुंजेश्वरी प्रसाद, गोरखपुर

दिनमान : २२ दिसंबर : सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कच्छ के प्रश्न पर श्री मधु लिमये, श्री ढकोलिया एवं श्री पटेल की याचिका का निर्णय-स्थगन एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है. यह प्रश्न है हमारी राष्ट्रीय प्रभुसत्ता एवं देश की अखंडता का. श्री हिदायतुल्ला एवं श्री दफ़्तरी की बातचीत से भारतीय कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का इस प्रश्न पर एकमत न होना ही झलकता है. ऐसा लगता है कि भारत सरकार इतने गंभीर प्रश्न से बच निकलने के लिए भी शब्द-जाल का ही सहारा लेती है. भारत सरकार का यह कहना सर्वथा बेमानी है कि कच्छ का प्रश्न भूमि-स्थानांतरण का न हो कर सीमा-विवाद है, यानी जितनी ज़मीन पाकिस्तान को दी जा रही है वह भारतीय शासन के अंतर्गत नहीं है, जब कि अंतरराष्ट्रीय न्यायाधिकरण ने उक्त ज़मीन पर भारत का शासन स्वीकार किया है. श्री दफ़्तरी का यह कथन तो विचित्र-सा लगता है कि भारत सरकार को सीमा का ठीक-ठीक पता नहीं था. आज़ादी के २० वर्ष बाद भी अगर हमारे देश की सीमा हमें न मालूम हो तो ऐसी स्थिति अत्यंत ख़तरनाक है. ख़ैर, उक्त भू-खंड के स्थानांतरण का प्रश्न संविधान के संशोधन से संबद्ध है या नहीं, यह तो न्यायविद् ही जानेंगे. देखें उच्च न्यायालय का निर्णय क्या होता है.

—अरुणकुमार गौड़, मुज़फ़्फ़रपुर

ठेकेदार : लगता है कि भारत के सभी पार्टियों के नेता, भारतवासी नहीं—राहु, केतु, शनि और मंगल ग्रह के निवासी हैं. नवल धवल पोशाक में भारत और भारतवासियों के विनाश के लिए इस धरती पर अवतरित हु हैं. उदाहरण के लिए कांग्रेस का नाम लिया जा सकता है, कि जिसने देश की धरती को बिना दाम बेचने का जैसे ठेका लिया है. पहले बंगाल, असम, पंजाब और सिंध को बेचा, फिर कश्मीर की बारी आयी, बाद में नेफ़ा और लद्दाख का हज़ार मील बिका, कल कच्छ का रण बिका कौर कच्छादीव की बाज़ी भी लग चुकी है. फ़रक्का के बहाने गंगा का भी मोल-तोल हो रहा है. कुछ ही दिनों में न भारत रहेगा न भारतवासी.

—परशुराम मिश्र, मुंगेर

दिनमान ८-१२-६८ में पृष्ठ संख्या ८ पर मेरे विषय में 'असंतोष का अजगर (३) मिलताजुलता रूप संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी,' शीर्षक में यह छपा था कि 'इतिहास में एम. ए. एक व्यक्ति को पुराण इतिहास विभाग का अध्यक्ष बनाया गया है, जो पूर्णतः असत्य है. इस का खंडन निम्न है :

मैं मारबुर्ग विश्वविद्यालय, पश्चिम जर्मनी में ३ वर्ष तक पुराण के प्रोफ़ेसर पद पर कार्य करने के पश्चात् संस्कृत विश्वविद्यालय में पुराणेतिहास का अध्यक्ष नियुक्त किया गया हूँ. मेरी योग्यता निम्न है : बी. ए. (ऑनर्स) संस्कृत के साथ—प्रथम श्रेणी १९४९, एम. ए. (संस्कृत) प्रथम श्रेणी १९५१ (पुराण विषय के साथ) तथा डॉक्टर ऑफ़ फ़िलॉसफ़ी १९६२ में 'पद्मपुराण का एक अध्ययन' विषय पर उपाधि प्राप्त किया है. मैंने काव्यतीर्थ, व्याकरण-तीर्थ, वेद-तीर्थ, पुराण-तीर्थ, एवं धर्मशास्त्र-तीर्थ (सभी प्रथम श्रेणी) में उत्तीर्ण किया है तथा ३ भाषाओं—संस्कृत, अंग्रेज़ी तथा जर्मन में पुराण विषय में तीन ग्रंथों की रचना भी की है.

—अशोक शास्त्री, वाराणसी

बाधक : हम नहीं चाहते कि विकास की 'अखिल भारतीय दृष्टि के नाम पर हिंदी की अपनी अस्मिता खो जाये. यह हिंदी के प्रति अन्याय होगा. असल में यही दृष्टि हिंदी के विकास में बाधक बनी हुई है, क्यों कि इस से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अंग्रेज़ी का स्थान हिंदी को लेना है. यह ग़लत है और हिंदी विरोध को बढ़ावा देना है. इस का नतीजा यह होगा कि राष्ट्रभाषा हिंदी 'परायी' लगने लगेगी और एक जनभाषा के रूप में नहीं, मात्र एक अफ़सरी भाषा के रूप में परिणत होगी.

—त. माची रेड्डी, कडपा (आ० प्र०)

महत्त्वपूर्ण प्रश्न : यह इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है कि हमारी सेनाएँ आवश्यकता पड़ने पर चीन को रोक सकेंगी या नहीं, संभवतः चीन कभी आक्रमण नहीं करेगा और यदि करेगा और हमारी सेनाएँ नहीं रोक सकेंगी तब हमारे हारने के बहुत से ऐसे कारण मिल जायेंगे जो हमारी 'पूरी तैयारी' के बावजूद हमारे हाथ से बाहर थे. महत्त्वपूर्ण यह प्रश्न है कि क्यों चीन हमारे से बहुत पिछड़ी हुई अवस्था से आरंभ कर के भी आर्थिक और वैज्ञानिक दृष्टि से हमारे से इतना आगे है—जब कि हमें संसार भर से ऋण और दान मिल रहा है और चीन ने दोनों प्रकार के दानों और दाताओं को भगा दिया है ? यह मूल प्रश्न है, जिसे कोई नहीं पूछता और जिस का कोई उत्तर मंत्रियों के पास नहीं है. इन राजनीतिज्ञों ने हमारे देश को भी आज इस हीन स्थिति में ला पटका है. हमारा देश आज रोटी, विज्ञान या दर्शन सब में भिखमंगा है—हमें अमेरिकी या रूसी

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

यदि मैं चुन लिया गया तो मैं वचन देता हूँ कि ऐसे मंत्रालय की स्थापना करूँगा जो केवल लोगों के हितों की देखभाल का काम करेगा.

प्रश्न चर्चा—५२

राष्ट्रभाषा-समर्थकों के लिए विशेष

अंग्रेज़ी हटा कर हिंदी को सरकार के काम-काज का माध्यम बनाने के आश्वासन हिंदीभाषी प्रदेश के सत्ताधारी नेता हर वर्ष देते रहे हैं, परंतु अंग्रेज़ी हट नहीं रही है. हिंदी केवल उस की अनुवादी बन कर आ रही है.

सरकार से अंग्रेज़ी को पूर्णतः हटाने के लिए आप कितनी मोहलत भावी मुख्य-मंत्रियों को देना चाहेंगे ?

तर्क-सहित उत्तर पर ५०) पुरस्कार (शब्द-सीमा ३००). उत्तर २ फ़रवरी ६९ तक **दिनमान**, बहादुर शाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली-१ के पते पर आ जाना चाहिए. पुरस्कार की घोषणा १६ फ़रवरी के **दिनमान** में की जायेगी.

अन्न चाहिए, हमें उन से मशीनें या मशीन बनाने और चलाने वाले चाहिएँ. है कोई चीन से हमारी तुलना ? मेरी नक्सलाइटों से कोई सहानुभूति नहीं है, जिन के हाथों में वे खेल रहे हैं. उन का उन से या देश से कोई सरोकार नहीं है. किंतु तब भी वे एक आदर्श से तो परिचालित हैं ही. वे उस के लिए त्याग और तपस्या भी करते हैं. उन्हें सही आदर्श मिलने की ज़रूरत है. किंतु उन का क्या किया जाये जिन्होंने आदर्शों को ताक पर रख दिया है, जो देश को अपनी लोलुपता के लिए गर्त्त में डाल रहे हैं ?

—यशदेव शल्य, जयपुर

चुनाव-यात्रा : श्रीमती इंदिरा गांधी की बिहार चुनाव-यात्रा स्पष्टतः दो बातों को प्रकट करती है. पहली भारत में किसी भी प्रांत में कांग्रेस के सिवा दूसरी पार्टी की सरकार उन्हें रुचती-पचती नहीं है; दूसरी वह मान बैठी हैं कि कांग्रेस के सिवा अन्य दल में अच्छा व्यक्ति है ही नहीं, क्यों कि कभी तो वह योग्य व्यक्ति को मत देने को कहती हैं और फिर कहती हैं कि कांग्रेस को 'वोट' दो. ऐसा लगता है कि प्रधानमंत्री के पवित्र पद-प्राप्ति के बाद भी वह जनमानस को दल के दलदल से ऊपर की सार्वभौम दृष्टि नहीं देखने का संकल्प ले बैठी हैं.

—'विश्वेश्वर' बक्षी, मुंगेर

प्रार्थना : राजस्थान के बच्चे अकाल में काल-कवलित होने के पहले भारत के प्रधानमंत्री और गृहमंत्री से प्रार्थना करते हैं—'हे भारत की ममतामयी प्रधानमंत्री ! आप के वात्सल्य-पूर्ण आँचल के एक भाग—राजस्थान में—सैकड़ों बच्चे अन्न-जल एवं पोषक तत्वों के अभाव में दम तोड़ते जा रहे हैं. आप का माता-हृदय इन अभागे बच्चों के लिए क्यों सोचता है? हे भारत के जननायक गृहमंत्री ! केवल कुछ दल-बदलुओं के कारण बंगाल से पंजाब तक मध्यावधि चुनाव में करोड़ों रुपये, सरकारी और निजी संपत्ति फूँका जा रहा है. क्या इस का अंग मात्र ही सही, राजस्थान की जनता के पिपासित एवं क्षुधित हृदय को शांत नहीं कर पाता ? कहीं लाखों भूखे मरें और कहीं खोखले लोकतंत्र के नाम पर लाखों नहीं करोड़ों फूँके जायें, कहाँ तक उचित है ? यहाँ की राजनैतिक पार्टियाँ तो मानवता के लिए नहीं, राष्ट्रीयता के लिए भी नहीं, वोट के लिए मदद के नाम पर धोखा देती हैं.

—मनोहरप्रसाद वर्मा,
भीमनारायण सिंह
फ़लची, हज़ारी बाग

ललित कला महाविद्यालय (दिल्ली) : १० नवंबर : आलेख भ्रामक हो गया है. वास्तविकता यह है कि महाविद्यालय के छात्र वर्षों से जिन अधिकारों और सुविधाओं के लिए लड़ते रहे हैं वे अब सुनी जाने लगी हैं और दिल्ली प्रशासन के कान पर भी जूँ रेंगने लगी है. इस तथाकथित 'क्लब' को डिप्लोमा मान्यता मिल गयी है और प्राध्यापक अब अध्यापन में अधिक दिलचस्पी लेने लगे हैं. स्टेशनरी के नाम पर ली जानेवाली फ़ीस ३५ रुपये से घट कर ८ रु० रह गयी है. पहले तीन वर्षों में सैद्धांतिक और अंतिम दो वर्षों में 'सेल्फ़-स्टाइल वर्क' पर ज़ोर दिया जाने लगा है.

—आर्ट स्टूडेंट्स एसोसिएशन की कार्यकारिणी के सदस्य, दिल्ली

सलाह : राजगोपालाचारी की यह सलाह कि कश्मीर पर दस वर्षों तक अमेरिका, ब्रिटेन तथा रूस का संयुक्त शासन हो और इस शासन की समाप्ति के पश्चात् जनमत-संग्रह हो सर्वथा अप्रत्याशित और तर्कहीन है. क्या इस का स्पष्ट अर्थ यह नहीं कि भारत के अंतिम गवर्नर जनरल और भारतीय देश-भक्तों में अग्रगण्य राजगोपालाचारी कश्मीर को भारत का अभिन्न और अविभाज्य अंग नहीं मानते? फिर उन में और शेख साहब में अंतर ही क्या?

—परमानंद, दरभंगा

मुझे भय है कि यदि राजाजी के सोचने की दिशा में किंचित परिवर्त्तन न हुआ तो वह कहीं अगले वक्तव्य में कश्मीर समस्या के स्थायी समाधान के लिए कश्मीर को तीन भागों में विभाजित कर उसे संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन तथा रूस को दे डालने का सुझाव प्रस्तुत न कर दें. इस प्रकार के भौंडे समाधान प्रस्तुत करने से कश्मीर, जो भारत का अखंड और अविभाज्य अंग है, पर हमारा पक्ष निर्बल होगा तथा यह समस्या, जो देश के दुर्भाग्य से उलझ गयी है और उलझती जायेगी.

—किरण चतुर्वेदी, वाराणसी

पिछले सप्ताह

(२ जनवरी से ८ जनवरी, १९६९ तक)

देश

२ **जनवरी :** ईरान के शहंशाह आर्यमेहर और शाहबानू का दिल्ली पहुँचने पर भव्य स्वागत. रामसरनचंद मित्तल हरयाणा प्रदेश कांग्रेस समिति के नये अध्यक्ष निर्वाचित. मध्यप्रदेश मंत्रिमंडल के मंत्रियों के विभागों में परिवर्त्तन.

३ **जनवरी :** विलासी चीज़ों पर तस्करी रोकने के लिए चुंगी अधिनियम में संशोधन. श्रीमती इंदिरा गांधी का पंजाब का चुनाव-दौरा.

४ **जनवरी :** ईरान के शहंशाह द्वारा एशिया की सुरक्षा के लिए भारत-पाक मित्रता को आवश्यक बताना. उत्तरप्रदेश के अध्यापकों के वेतनमानों के बारे में समझौता.

५ **जनवरी :** नागरकोइल संसदीय उप-चुनाव में तनाव कम करने के लिए सशस्त्र पुलिस तैनात.

६ **जनवरी :** उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा गिरफ़्तार अध्यापकों की रिहाई के आदेश.

७ **जनवरी :** १९ सितंबर की सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल के बारे में केंद्र सरकार द्वारा कुछ रियायतों की घोषणा.

८ **जनवरी :** नागरकोइल संसदीय उप-चुनाव शांतिपूर्वक संपन्न.

विदेश

२ **जनवरी :** इस्राइली विमानों की युर्दान के गाँवों पर बमबारी.

३ **जनवरी :** ब्रिटेन द्वारा युर्दान को प्रक्षेपास्त्र बेचने का फ़ैसला.

४ **जनवरी :** पश्चिम एशिया समस्या सुलझाने के लिए संयुक्तराष्ट्र महासचिव ऊ थाँ द्वारा चार बड़े राष्ट्रों के शिखर-सम्मेलन का समर्थन.

५ **जनवरी :** लंदन के निकट एक अफ़ग़ान वायुयान के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने से अनेक भारतीय नागरिक दुर्घटना के शिकार. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का राष्ट्रकुल सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन आगमन.

६ **जनवरी :** राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन की कार्यसूची पर सहमति. लेबनान सरकार का त्यागपत्र.

७ **जनवरी :** फ़्रांस द्वारा इस्राइल को हथियार भेजना बंद. राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों का १७वाँ सम्मेलन लंदन में शुरू.

८ **जनवरी :** वेस्ट इंडीज़ और ऑस्ट्रेलिया के तीसरे क्रिकेट टेस्ट मैच में ऑस्ट्रेलिया १० विकेट से विजयी.

पत्रकार संसद

भारत-ईरान मैत्री : राष्ट्रकुल सम्मेलन

ईरान के शाह मोहम्मद रज़ा 'शाह पहलवी शहंशाह आर्यमेहर और मलिका फर्राह की भारत यात्रा दोनों देशों के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण है. १२ साल बाद भारत की १२ दिनों की यात्रा से भारत और ईरान के पुश्तैनी संबंधों में सुधार होगा, इस में रत्ती भर भी संदेह नहीं है. इस अवसर पर तेहरान के सभी प्रमुख पत्रों ने यह आशा व्यक्त की कि कुछ समय पहले इन दोनों देशों में जो मनमुटाव की दरार पड़ गयी थी वह अब पट जायेगी. तेहरान के एक महत्त्वपूर्ण पत्र तेहरान जर्नल में 'उत्तेजना के समय का दौर' शीर्षक के अंतर्गत यह लिखा गया :

कुछ समय पहले दोनों देशों में थोड़ा मतभेद और मनमुटाव हो गया था. परंतु इन दोनों देशों का एक ऐसा ऐतिहासिक गठबंधन है कि इस छोटी-सी दरार से उस में कोई विशेष अंतर नहीं पड़ सकता. परस्पर सहयोग के अन्य क्षेत्रों की चर्चा करते हुए इस में कहा गया कि मद्रास के तेलशोधक कारखाना, एस्फाइन मिल के लिए तकनीकी प्रशिक्षण और भारत-ईरान के प्रस्तावित पेट्रोल रासायनिक कारखाने के अतिरिक्त और भी विकास के कुछ ऐसे कार्यक्रम हैं जिन में दोनों देशों के समान हित जुड़े हुए हैं.

एक दूसरे अखबार काइहाल इंटरनेशनल ने अपने संपादकीय में लिखा है :

ईरान के शाह का भारत का यह दौरा बहुत ही अर्थपूर्ण और उद्देश्यपूर्ण है. भारत और ईरान की दो परियोजनाएँ—मद्रास का तेलशोधक कारखाना और ईरान का इमिनोको तेल कारखाना—इन दोनों देशों के संयुक्त प्रयास का ही फल है. इस के अतिरिक्त शहंशाह अपने इस दौरे में और भी कई महत्त्वपूर्ण योजनाओं पर विचार-विमर्श करेंगे. भारत में बने भारी उद्योगों के साज-सामान की ईरान में काफ़ी खपत की गुंजाइश है. ईरान के औद्योगिक विकास में भारत के ग़ैर-सरकारी क्षेत्रों की भी काफ़ी दिलचस्पी हो सकती है. दूसरी तरफ़ ईरान को अपने पेट्रोल रासायनिक के लिए भारत में अच्छा बाजार मिल सकता है. भारत और ईरान का यह रिश्ता केवल आर्थिक और औद्योगिक ही नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक भी है. दोनों देशों की विदेश-नीति में भी काफ़ी समानता है और जो मतभेद हैं वे भी कोई ज़्यादा पेचीदे नहीं हैं.

फ़ारसी के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पत्रों ने अपने संपादकीय लेखों में कहा कि भारत एशिया का एक महत्त्वपूर्ण देश है—केवल जनसंख्या की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि इस लिए भी कि द्वितीय महायुद्ध और उस के बाद भारत ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है. सभी पत्रों ने एक मत और एक स्वर हो कर यह आशा व्यक्त की कि शहंशाह की इस यात्रा से भारत और ईरान सभी क्षेत्रों—राजनतिक, आर्थिक, व्यापार-वाणिज्य और सांस्कृतिक—में एक-दूसरे के और निकट आयेंगे. ईरान रेडियो ने भी भारत-ईरान संबंधों पर विशेष कार्यक्रम प्रसारित किये.

राष्ट्रकुल सम्मेलन

राष्ट्रकुल के महत्त्व और उस की उपयोगिता को ले कर पिछले दिनों काफ़ी हो-हल्ला हुआ. भारत-राष्ट्रकुल संबंधों पर भी काफ़ी चर्चा की गयी. राष्ट्रकुल के महत्त्व और उस की महत्त्वहीनता को ले कर लंदन के ऑब्ज़र्वर ने अपने संपादकीय में लिखा :

लंदन में हो रहे राष्ट्रकुल सम्मेलन में जिन दो विषयों पर मुख्यतः चर्चा की जायेगी वे हैं रोडेसिया का प्रश्न और ब्रिटेन की आव्रजन-नीति. इस के अतिरिक्त इस सम्मेलन में यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि राष्ट्रकुल का भविष्य क्या हो.

राष्ट्रकुल के अफ़्रीकी और एशियाई सदस्यों के मन-मस्तिष्क में यही दोनों प्रश्न घूम रहे हैं. उन का यह भी कहना है कि रोडेसिया और आव्रजन-नीति पर ब्रिटेन की नीयत साफ़ नहीं है, तब ऐसे राष्ट्रकुल सम्मेलन का क्या महत्त्व रह जाता जब उस का प्रतिनिधि सदस्य ही अपने सिद्धांतों की कसौटी पर खरा न उतरे. यह एक कटु सत्य है कि रोडेसिया के मामले में ब्रिटेन अपने दायित्वों या कि अपने वादों का पालन नहीं कर रहा है. इस का कारण भले कुछ भी रहा हो. आव्रजकों (आप्रवासियों) पर लगाये गये प्रतिबंधों पर भी इंग्लैंड वाले एकमत नहीं हैं. लेकिन इस सब से कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता. इंग्लैंड यदि कुछ मामलों में कमज़ोर हो गया है तो इस का यह अर्थ कदापि नहीं कि राष्ट्रकुल कमज़ोर, अर्थहीन या महत्त्वहीन हो गया है. इंग्लड यदि अपने-आप को इस से अलग भी कर ले तो भी भारत, केन्या, साइप्रस, कैनाडा, मलयेसिया और ऑस्ट्रेलिया आदि देश इस मंच पर अपने कई राजनैतिक विवादों को सुलझा सकते हैं.

प्रेस जगत्

चेक तथ्य और रूसी सत्य

चेकोस्लोवाकिया के विरुद्ध अपनी शर्मनाक फ़ौजी कार्यवाही को सही ठहराने के लिए सोवियत संघ की ओर से एक पुस्तक प्रकाशित की गयी थी, जिस का अब सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद सुलभ है. शीर्षक है "चेकोस्लोवाकिया की घटनाएं". अच्छे काग़ज़ पर १६० पृष्ठों और १६ चित्र-पृष्ठों की यह पुस्तक केवल आठ आने में दी जा रही है. स्पष्ट ही आठ आना केवल पुस्तक-विक्रेता का कमीशन है; प्रकाशन-व्यय सोवियत सरकार ने ही उठाया है. यों भी इसे बेचा कम जा रहा है, अधिकतर मुफ़्त बाँटा जा रहा है.

उप-शीर्षक में दावा किया गया है कि पुस्तक में "तथ्य, दस्तावेजें, समाचारपत्रों की रिपोर्ट और आँखों देखा हाल" संकलित हैं. लेकिन इस के संकलन और निष्कर्षों की ज़िम्मेदारी न तो सोवियत सरकार ने ली है और न सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी ने. इस को "सोवियत पत्रकारों की एक टोली द्वारा प्रस्तुत" बताया गया है और उन पत्रकारों के नाम भी गुप्त रखना ठीक समझा गया है.

मुख्य रूप से यह पुस्तक कम्युनिस्टों को प्रभावित करने के लिए तैयार की गयी है और इस लिए यह स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है कि चेकोस्लोवाकिया में समाजवाद को उखाड़ने की तैयारी हो रही थी. प्रतिक्रांतिकारी कम्युनिस्ट विरोधी वातावरण पैदा कर रहे थे. पश्चिम से हथियार और आर्थिक सहायता पा रहे थे. उन्होंने अखबार और रेडियो हथिया लिये थे और अगर वारसा संधि की फ़ौजें न पहुंचती तो चेकोस्लोवाकिया समाजवादी खेमे से बाहर हो जाता.

एक "तथ्य" देखिए. चेकोस्लोवाक युवक संघ के मुखपत्र म्लादा फ़्रांता में कहा गया :

रूसी पुस्तक में यह चित्र चेक युवजन के हिटलर प्रभावित होने के प्रमाणरूप छापा गया है, जब कि चेक जनता इस में आक्रामक क्रेमलिन के तारे और हिटलर के स्वास्तिक का समन्वय देखती है.

"हम चेकोस्लोवाकिया में कम्युनिस्ट पार्टी की तमाम गतिविधियों पर प्रतिबंध लगा देंगे और उसे भंग कर देंगे... हम कम्युनिस्ट सिद्धान्तकारों—मार्क्स, एंगेल्स और लेनिन की किताबों को आग की भेंट करेंगे.. . ," (पृ. ५३)

युवक संघ के दैनिक ने ऐसा लिखा तो सचमुच जघन्य अपराध किया. किन्तु वस्तु स्थिति कुछ और ही थी. चेकोस्लोवाक संसद के प्रधान श्री स्मटकोवस्की ने एक वक्तव्य दिया, जिस में समाजवाद-विरोधी तत्त्वों की निंदा की गयी थी और जनता को उन से सावधान रहने का आवाहन किया गया था. समाजवाद-विरोधी तत्त्वों की कारगुज़ारियों की मिसाल के तौर पर एक पर्चे का हवाला दिया गया था, जिस में "किताबों को आग की भेंट" करने की घोषणा की गयी थी. स्पष्ट ही अगर किसी बात की निंदा छापी जा रही है तो पाठकों को यह बताना होगा कि निंदनीय तथ्य क्या है. वलादा फ्रांता ने यही किया और रूसी तथ्य-संग्रहकर्त्ता को मौक़ा मिल गया.

यह अकेला उदाहरण नहीं है. तथ्य-संग्रह के लिए यही विधि सभी जगह अपनायी गयी है. चेकोस्लोवाक लेखकों, अर्थशास्त्रियों, पत्रकारों आदि ने जहाँ कहीं नोवोत्नी शासन की निंदा की और "परिवर्त्तन" की माँग की उन अंशों में से कोई एक वाक्य-खंड उठा कर विस्तृत उद्धरण कहीं नहीं दिया गया—उन को समाजवाद-विरोधी और पूँजीवाद वापस लाने की माँग करने वाला ठहरा दिया गया.

क्यों कि जनवरी से अगस्त १९६८ तक के काल में चेकोस्लोवाकिया के अंदर वाद-विवाद और विचार-विनिमय की स्वतंत्रता थी इस लिए बहुत-सी ऐसी स्थापनाएँ सामने आयीं जिन को कम्युनिस्ट समाजवादी सिद्धान्ततः ग़लत समझते हैं. इन स्थापनाओं के विरोध में कम्युनिस्ट पार्टी के वरिष्ठ नेताओं ने लेख भी लिखे. लेकिन रूसी तथ्य-संग्रहकर्त्ताओं के लिए अधिकृत कम्युनिस्ट नेताओं के लेखों से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ व्यक्तियों के मत हैं, क्यों कि उन से उन्हें "प्रतिक्रांति" का अस्तित्व सिद्ध करने में सहायता मिलती है. इस का एक उदाहरण है चेकोस्लोवाकिया की विदेश-नीति संबंधी. किसी ने कहीं "तटस्थ" या "गुट-निरपेक्षपता" की बात कह दी तो रूसी पत्रकारों के लिए वह चेकोस्लोवाकिया की अधिकृत राय बन गयी और सरकार तथा पार्टी के नेता समाजवादी खेमे में बने रहने की नीति घोषित करते रहे तो वह एक "भूल" बन गया.

इस तथ्य-संग्रह विधि को सही ठहराया गया है "खामोश प्रतिक्रांति" का सिद्धान्त बघार कर. इस सिद्धांत का लाभ यह है कि प्रतिक्रांति का साक्षात या प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं भी मिलने पर उस का होना किसी बाहरी "प्रमाण" से सिद्ध किया जा सकता है. उदाहरण के लिए अनाम सोवियत पत्रकारों ने पश्चिमी पत्र-पत्रिकाओं से बेशुमार उद्धरण जमा किये हैं और उन से सिद्ध किया है कि साम्राज्यवादी शक्तियाँ चेकोस्लोवाकिया के अंदर प्रतिक्रांतिकारी दल संगठित करने के लिए पैसा और हथियार दे रहे थे. साम्राज्यवादी शक्तियाँ ऐसा किस राष्ट्र में नहीं करतीं—क्या स्वयं सोवियत संघ में नहीं और अगर सोवियत पत्रकार इस को देख-समझ सकते हैं तो क्या जासूसी तथा सुरक्षा-साधनों से लैस चेकोस्लोवाकिया सरकार इस से अनजान रह सकती थी?

चकोस्लोवाकिया में ४०,००० सशस्त्र प्रतिक्रांतिकारी थे, इस तथ्य को रूसी पत्रकारों ने २७ अगस्त के लंदन **संडे टाइम्स** की एक खबर से सिद्ध किया है. इस अखबार के प्रतिनिधि ने प्राग में सोवियत फ़ौजों और जासूसों के साये में (जो प्रतिक्रांतिकारियों पर नज़र रखने के लिए आये थे) किस प्रकार एक प्रतिक्रांतिकारी नेता से मुलाकात की, इस का रहस्य तो सोवियत नेता ही जानते होंगे. स्पष्ट यही होता है कि सनसनीखेज़ समाचारों के भूखे ब्रिटिश संवाददाता को अगर यह "मौक़ा" मिला तो रूसी अधिकारियों की साँठगाँठ से——रूसी अधिकारी ही ऐसा समाचार छपवाने में दिलचस्पी रखते थे, ताकि वे फ़ौजी हस्तक्षेप सही ठहरा सकें.

प्रतिक्रांतिकारियों को विदेशी हथियार मिलने के प्रमाणस्वरूप जुलाई १९६८ में एक जगह नाले के अंदर बीस सब-मशीनगनें और तीस पिस्तौलें तथा गोलियाँ प्राप्त होने का उदाहरण दिया गया है. इस पर चेकोस्लोवाक अधिकारियों की रिपोर्ट से उद्धरण दिया गया है, लेकिन इस में वह अंश छोड़ दिया गया है जिस में बताया गया था कि ये हथियार दूसरे विश्वयुद्ध के काल के थे. वस्तुतः इन हथियारों की सूचना किसी ने अपना नाम बताये बिना पुलिस को दी थी और यह शक़ किया जाता है कि प्रतिक्रांति के कथित उभार को नाटकीय रूप देने के लिए किन्हीं नोवोत्नी समर्थकों ने ये हथियार छिपा कर रखे थे और पुलिस को सूचना दी थी. ध्यान देने योग्य है कि प्राग के अखबारों को इस की अधिकृत सूचना मिलने के पहले ही यह खबर मॉस्को के अखबारों में छप चुकी थी. इस लिए किसी सोवियत अधिकारी की साँठगाँठ के होने का भी संदेह किया जाता है.

यह भी बताया गया है कि सोवियत सेनाओं ने प्राग में कई सरकारी भवनों से और पत्रकार-भवन से (जिस में कुछ अंतरराष्ट्रीय संगठनों के कार्यालय भी हैं) हथियार बरामद किये, जो प्रतिक्रांतिकारियों के हथियार थे. लेकिन अब प्राग में यह सिद्ध किया जा चुका है कि ये हथियार इन इमारतों की रक्षा करने वाली जन-मिलीशिया के हथियार हैं और इस जन-मिलीशिया ने (जिस की प्रशंसा सोवियत पत्रकारों ने की है) उन को प्रतिक्रांतिकारियों के हथियार बताने के सोवियत प्रचार का प्रतिवाद किया है.

सोवियत पत्रकार क्रुद्ध हैं कि सोवियत मित्र सेनाओं के "प्रवेश के कुछ ही घंटे के भीतर पूरे चेकोस्लोवाकिया में एक दर्जन से अधिक गुप्त रेडियो स्टेशन प्रसारण का काम करने लगे थे. इस को भी एक प्रतिक्रांतिकारी संगठन का काम बताया गया है और एक जगह इन को पश्चिमी जर्मनी से चोरी से लाया बताया गया है. चेकोस्लोवाक सरकार ने हाल में इन रेडियो स्टेशनों के काम की सराहना की है. सच यह है कि अगर ये गुम रेडियो स्टेशन न होते तो प्राग रेडियो स्टेशन पर सोवियत अधिकार के बाद जनता से चेकोस्लोवाक सरकार के संबंध बने रहने का कोई साधन न होता और तब शायद जनता अनुशासित ढंग से शांत न रह पाती. ये गुप्त रेडियो केन्द्र शत्रु के हमले के समय इस्तेमाल करने के लिए स्थापित किये गये थे——दुर्भाग्य ही है कि उन को ऐसे देशों की कार्यवाही के विरुद्ध इस्तेमाल करना पड़ा जिन को चेकोस्लोवाक जनता अपना मित्र मानती थी.

सोवियत पत्रकारों के "आँखों देखे हाल" का हाल यह है कि पुस्तक के पृष्ठ १३१ पर प्रतिक्रांतिकारियों द्वारा जन-मिलीशिया के जिस चीफ़ के मारे जाने की चर्चा की गयी है उस को उस क्षेत्र की प्रशासन-परिषद ने जीवित पाया और सोवियत अधिकारियों के सामने पेश किया. इसी क्षेत्र में एक सोवियत हेलीकॉप्टर को मशीनगन से मार गिराये जाने और दो सोवियत पत्रकारों की मृत्यु की हृदय-विदारक घटना का ज़िक्र (पृ. १४२) किया गया है; लेकिन अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में क्षेत्रीय चेकोस्लोवाक अधिकारियों और सोवियत पक्ष की जाँच से सिद्ध हो गया है कि यह खबर बिलकुल मनगढ़न्त है. हेलिकॉप्टर दुर्घटना का शिकार हुआ स्वयं अपनी ही खराबी या चालक की ग़लती के कारण. इसी प्रकार बताया गया है कि प्रतिक्रांतिकारियों ने बच्चों को एक सोवियत टैंक के सामने लेट जाने के लिए भेजा और जब टैंक चालक ने बच्चों को बचाने का प्रयत्न किया तो टैंक उलट गया और पुल के नीचे नाले में गिर कर तबाह हो गया. यह घटना भी गढ़ी हुई पायी गयी. उस समय वहाँ कोई बच्चा न था; चालक की मूर्खता से पुल की एक मुंडेर तोड़ कर टैंक नाले में गिर गया. सोवियत अधिकारियों ने यह नहीं बताया कि २१ अगस्त के उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन भी चेकोस्लोवाक अस्पताल के डॉक्टरों ने उन मरणासन्न सोवियत सिपाहियों की चिकित्सा कर के अपना मानवतावादी कर्त्तव्य निभाया

इन थोड़े से उाहरणों से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि पुस्तक रत्ती भर भी विश्वसनीय नहीं है. सोवियत पत्रकारों की हेराफेरी की प्रतिभा अवश्य सिद्ध होती है.

दिल्ली की चिट्ठी

चिराग तले अँधेरा

१९६९ का अवतरण अपेक्षया शांत वातावरण में हुआ. पिछले साल की तरह नव वर्ष की पूर्व संध्या का जशन मनाने वालों को कनॉट सर्कस में हुल्लड़बाज़ी मचाने का सुभीता नहीं था—रेस्तराओं के सामने और प्रमुख नाकों पर तैनात पुलिस संदेहास्पद व्यक्तियों की धर-पकड़ भी करती जा रही थी और जनसंघ प्रशासन ने ३१ दिसंबर को मंगलवार होने के नाते 'ड्राई' रहने दिया था.

बहुत कुछ इसी तरह का सयानापन महानगरी का वाह्य कलेवर सँवारने में दिखाया जा रहा है : पार्कों की हरियाली, सड़कों के किनारे की पटरियाँ, गमले लटका अथवा पौधे रोप कर मार्गों को नयनाभिराम बनाने का जतन, जगह-जगह सुंदर अक्षरों में अंकित नाम-पट्ट, गंदी बस्तियों का सफ़ाया—यह अभियान दूने जोश से चल रहा है. नागरिक सुविधाओं की बेहतरी की ओर भी तवज्जो है—जहाँ-तहाँ आंशिक सुधार अवश्य हुआ है. लेकिन 'दिल्ली स्वर्ग नहीं है, फिर भी बेहतर अवश्य हो गयी है' का दावा नारे की स्थिति से ज्यादा आगे नहीं बढ़ सका है. निकट भविष्य में वह एक सीमा से आगे बढ़ सकेगा, इस की संभावना धूमिल ही नज़र आती है : न यथेष्ट आर्थिक साधन ही नज़र आते हैं, न समन्वित प्रयास की संभावना ही.

दिन दूनी आबादी : राजधानी की समस्याएँ जटिल हैं : न केवल हर साल डेढ़ लाख की रफ़्तार से बढ़ती आबादी की सुख-सुविधा की व्यवस्था होती रहनी है बल्कि मौजूदा व्यवस्था को बेहतर बनाने की अजीर्ण समस्या भी पूर्ववत् मौजूद है. २५ साल के अर्से में दिल्ली की आबादी ६-७ गुना बढ़ गयी है और १९७४ तक वह ३७ लाख से बढ़ कर ५० लाख हो जायेगी. इस अयाचित स्थिति से निपटने के लिए किसी के पास स्पष्ट योजना नहीं है : महानगर परिषद् ने चौथे पंचवर्षीय आयोजन के लिए ४०० करोड़ रुपये जो तखमीना लगाया वह हवाई किला ही साबित हो रहा है, क्यों कि आयोजना आयोग १५५ करोड़ रु. से अधिक देने की स्थिति में नहीं है. (अब महानगर परिषद् ने २२५ करोड़ रुपया अनिवार्य बताया है). जो कुछ मिलेगा भी उस का अधिकतम उपयोग एक-दूसरे से ३ और ६ का नाता रखने वाले प्रशासन कैसे कर पायेंगे, समझ के बाहर है. एक सत्ता केंद्रोन्मुखी उप-राज्यपाल की है (क़ानून-व्यवस्था, सेवाएँ, भूमि-विकास), एक महानगर परिषद् की है (हस्तांतरित विषय—उद्योग, शिक्षा, सहकार आदि, वह भी वित्तीय और विधायन के नहीं). एक सत्ता नगर निगम की है, जो बिजली, पानी, परिवहन की स्वायत्त संस्थाओं, राजनैतिक अखाड़ियों और भ्रष्ट अमलों के बीच में बिखरी हुई है. एक ओर नयी दिल्ली नगरपालिका समिति (मुख्यत: केंद्र से मनोनीत) है, तो दिल्ली कैंट बोर्ड की भी अलग हस्ती है. फिर केंद्रीय मंत्रालयों का भी दखल कम नहीं रहता.

ज़िम्मेदारी : लगभग दो वर्ष से नगर निगम पर और महानगर परिषद् पर, जो अभी प्रयोग की अवस्था में ही है, जनसंघ का कब्ज़ा है. कांग्रेसियों का कहना है कि दिल्ली के दुख-दर्दों की सारी ज़िम्मेदारी जनसंघी नेताओं पर है, जब कि जनसंघ नेता विरासत में मिली खस्ता हालत का रोना रोते रहते हैं. जनसंघ का कथन अधिक ग़लत नहीं है, क्यों कि आज़ादी के बाद से पिछले आम चुनाव तक तो सारी दिल्ली का बोझा कांग्रेसी सँभाले हुए थे. यह उन की 'कार्यकुशलता' का ही परिणाम है कि उन्हें नगर निगम से बेआबरू हो कर निकलना पड़ा. बीच में विधानसभा का जो तोहफ़ा उन्हें मिला था उस को सँजो नहीं सके. कांग्रेसी कहते हैं कि तब भी साधनों का अभाव था और दिल्ली तेज़ी से बढ़ रही थी कि ज्यादा कुछ कर गुज़रना मुश्किल था. अब यही तर्क किसी हद तक जनसंघ का भी कवच बन रहा है. ३० दिसंबर से ३ जनवरी तक महानगर परिषद् का शीतकालीन सत्र हुआ. पुराने सचिवालय के असेंबली हॉल में विट्ठलभाई पटेल की तसवीर को साक्षी बना कर महानगर परिषद् के सदस्यों ने दिल्ली की समस्याओं पर विचार किया. अधिवेशन में जो बहसें हुईं वे बहुत कुछ बेमानी थीं, क्यों कि ज्यादातर मसले नगर निगम के कार्यक्षेत्र से संबंधित थे. चौथे पंचवर्षीय आयोजन के बारे में बहस भी एक अर्थ में अधिक सार्थक नहीं थी, क्यों कि केंद्र शासित प्रदेश होने के नाते दिल्ली राज्य का कोई भी अपना समेकित कोश नहीं है और उसे इस क्षेत्र से उगाही गयी राशि में से हिस्सा नहीं मिलता. केंद्र-शासित प्रदेशों के लिए जो राशि निर्धारित की जाती है उसी का एक हिस्सा दिल्ली के नाम डाल दिया जाता है. यह पैसा भी एक मुश्त या एक जगह से नहीं मिलता, विभिन्न मंत्रालयों की मार्फ़त मिलता है और प्राय: ७-८ महीने बीत जाने पर चालू वर्ष की रक़म प्रशासन के हाथ लगती है. इस बीच कोई कटौती हो गयी तो उस से भी गये. दिनमान के प्रतिनिधि को मुख्य कार्यकारी पार्षद विजयकुमार मल्होत्रा ने बताया कि पिछले तीन वर्षों में केंद्र से ९३ करोड़ रुपये मिलने चाहिए थे, लेकिन मिले कुल ७३ करोड़.

न्यूनतम राशि : महानगर परिषद् में आयोजन पर बहस के बाद यह प्रस्ताव पारित हुआ कि (१) अगले पाँच वर्षों के लिए कम से कम २२५ करोड़ रुपये निर्धारित किये जायें; (२) दिल्ली प्रदेश में प्रस्तावित राशि से जितनी अधिक उगाही हो वह भी प्रशासन को मिले (३) जिस तरह अन्य राज्यों को केंद्र से आर्थिक साधन उपलब्ध होते हैं उसी तरह दिल्ली को भी हों. सत्ताधारी दल के इस प्रस्ताव के अलावा विपक्षी दल के प्रस्ताव का यह खंड भी स्वीकार कर लिया गया कि केंद्र सरकार के कर्ज़ों की अदायगी के लिए दिल्ली प्रशासन अपने साधन बढ़ाये. इस का सीधा मतलब होता है करों में वृद्धि की जाये. सत्ताधारी दल ने प्रतिपक्ष का यह सुझाव शायद इस लिए स्वीकार किया है कि जो भी कर उसे लगाने पड़ेंगे उस की ज़िम्मेदारी से कांग्रेस अपने को मुक्त न कह सके. प्रस्तावों पर बहस के दौरान मुख्य कार्यकारी पार्षद ने कहा कि दिल्ली की दो समस्याओं का विस्तार देखते हुए इस से कम राशि पूर्णतया अपर्याप्त होगी. इस नगर की समस्याओं पर राजधानी की हैसियत से विचार किया जाना चाहिए.

श्री मल्होत्रा ने आगे बताया कि नगालैंड को केंद्र से प्रतिव्यक्ति लगभग ७०० रुपया सालाना मिलता है और पांडिचेरी के लिए यह राशि ६०० रुपये से ऊपर बैठती है, लेकिन दिल्ली में यह राशि ३९० रुपये से अधिक नहीं. फिर सभी केंद्र-शासित प्रदेश घाटे में हैं, जब कि दिल्ली प्रशासन नहीं है.

दिल्ली के निवासियों की सब से बड़ी समस्या है : मकान, परिवहन, पानी, बिजली और स्वास्थ्य-सेवा. भूमि-विकास और भवन-निर्माण की ज़िम्मेदारी दिल्ली विकास अधिकरण की है, जो ६ वर्ष बाद अब जाग रहा है. पिछले साल इस अधिकरण ने १०,००० रिहायशी प्लॉट तथा ४ हज़ार औद्योगिक और व्यावसायिक प्लॉट और १४ हज़ार छोटे-बड़ फ़्लैट तैयार किये हैं. मास्टर प्लान के अनुसार अब तक इन की संख्या लाखों में होनी चाहिए थी. परिवहन की समस्या-अलंघ्य साबित हो रही है. महानगर परिषद् में दिये गये आँकड़ों के अनुसार इस वर्ष के आरंभ में ९६२ बसें चालू हालत में थीं (चलीं कुल ९५४). इस के अलावा कोई १६३ निजी मोटरें भी चल रही हैं. इतनी बसें कम हैं, लेकिन २२ साल में अभी तक परिवहन-नीति के नाम पर किसी के पास कोई खाका नहीं है. मुख्य कार्यकारी पार्षद ने अब सुझाया है कि नगर निगम की परिवहन समिति नगर निगम दिल्ली ट्रांसपोर्ट अथारिटी और दिल्ली प्रशासन के लोग मिल कर तय करें कि दिल्ली को इस समय कितनी बसों की आवश्यकता है और पाँच साल बाद कितनी बसों की दरकार होगी. श्री मल्होत्रा के विचार से इस समय कम से कम १,५०० बसें चालू हालत में होनी चाहिए, जिस से हर समय पर्याप्त बसें उपलब्ध रहें. 'दिल्ली परिवहन' की आर्थिक स्थिति हमेशा ही खस्ता रहती है, बावजूद इस के कि समय-समय पर किराये बढ़ते रहते हैं. इस का सब से बड़ा कारण बदइंतज़ामी और भ्रष्टाचार है.

जब जनसंघ सत्ता में आया तो सुना गया कि एक रुपये की जाली टिकटों की बिक्री और स्टोर से सामान ग़ायब होने के मामलों की छान-बीन हो रही है. नतीजे के बारे में जनता को कोई जानकारी नहीं है. बिना टिकट सफ़र करने वालों और उस में कंडक्टरों की साँठगाँठ से भी अधिकारीगण अपरिचित नहीं हैं. ऐसी हालत में दिल्ली परिवहन की वित्तीय स्थिति डाँवाडोल रहे और दिल्ली परिवहन केंद्र के कर्ज़ अदा न करे तब केंद्र सरकार नये कर्ज़ देने की उत्सुकता न दिखाये अथवा आमदनी बढ़ाने की शर्त रखे तो उस का दोष नहीं.

नगर निगम में भ्रष्टाचार के बारे में जनसंघ के एक नेता ने इस प्रतिनिधि से असलियत क़बूल की—'हम करें क्या ? जिधर हाथ डालो उधर गंदगी. कहाँ तक लोगों को मुअत्तल किया जाये... ज़्यादा करें तो सारा काम ही ठप्प हो जाये... दरअसल आवाँ का आवाँ ही बिगड़ा हुआ है. कुछ लोग तो लहर गिनने के भी पैसे ले लेते हैं.' कुछ शासकों की व्यावहारिक मजबूरियाँ हो सकती हैं और कुछ राजनैतिक भी.

नगर निगम की एक खूबी और है, जो पहले भी थी और अब भी है. स्थायी समिति में पेश होने के पहले बिजली, परिवहन और पानी की समितियों के बजट घाटे के होते हैं, लेकिन काग़ज़ी हेरा-फेरी के बाद 'संतुलित' कर दिये जाते हैं. बिजली समिति ने घाटा पूरा करने के लिए बिजली की दरों में एक और दो पैसे प्रति यूनिट वृद्धि करने का फ़ैसला किया है, लेकिन जलपूर्त्ति और मलनिष्टान समिति ने निगम से सार्वजनिक नलकों का शुल्क देने का आग्रह कर के बजट सही कर लिया. परिवहन समिति ने वादा किया कि वह खर्च में किफ़ायत करेगी और आमदनी बढ़ायेगी. बस १९६९-७० का बजट दुरुस्त हो गया.

दिल्ली प्रशासन अपने सीमित क्षेत्र में सक्रिय है और सत्ताधारी दल के लोग अपनी 'दूकान' जमाने के फेर में बहुत उत्साह दिखा रहे हैं. महानगर परिषद् की व्यवस्था से कोई पक्ष खुश नहीं है. महानगर परिषद् के अधिवेशन में एक कांग्रेसी सदस्य ने नगर निगम और महानगर परिषद् की जगह एक शक्तिशाली व्यवस्था की माँग की रखी. प्रतिपक्ष के नेता शिवचरण लाल (कांग्रेस) ने सीधे विधानसभा की वकालत की. लेकिन सत्ताधारी पक्ष जानता है कि विधानसभा मिलने से रही, इस लिए क्यों न बीच का रास्ता अख्तियार किया जाये. अतः उस का प्रस्ताव, जो अंततः अंगीकार हो गया, यह था कि नागरिक व्यवस्थाओं और प्रशासनिक कार्यों के लिए एक नयी निर्वाचित संस्था क़ायम की जाये, जिस की रूप-रेखा निश्चित करने के लिए ११ सदस्यों की एक समिति बने. समिति के लिए किसी नयी रूप-रेखा की परिकल्पना कर सकना मुश्किल नहीं होगा, क्यों कि जनसंघ और स्थानीय कांग्रेसी अधिक अधिकार हथियाने के पक्ष में हैं. असली मुश्किल केंद्र सरकार के सामने आयेगी, जिसे किसी न किसी बहाने राजधानी में दखल बनाये रखने का मोह है. दूसरा सवाल यह भी है कि क्या वह केंद्र में प्रतिपक्षी पार्टी के लोगों को राजधानी के मामलों में अधिक अधिकार देना पसंद करेगी ! एक उदाहरण : केंद्र ने सुपर बाज़ार खोला और उस की प्रबंध समिति में संसद्-सदस्य भी नामज़द किये, लेकिन इन में दिल्ली का एक भी नहीं है.

जहाँ तक महानगर परिषद् का सवाल है आम धारणा यही है कि कार्यकारी पार्षद दिल्ली को स्वच्छ बनाने के लिए ही नहीं प्रशासन को भी स्वच्छ रखने की कोशिश में हैं. मुख्य कार्यकारी पार्षद से एक भेंट में मालूम हुआ कि महानगर परिषद् को 'प्रयोग' की कसौटी पर

विजयकुमार मल्होत्रा

खरा उतारना चाहते हैं. उन की कोशिश यह मालूम होती है कि भ्रष्टाचार के लिए परिष् की ओर उँगली न उठायी जा सके. उन का कहना है कि शिक्षाविभाग में अस्थायी नियुक्तियाँ बंद कर के श्रेणी और योग्यता के आधार पर तैनाती करने के नियम बना दिये गये हैं, कोटे-परमिट बाँटने की भी व्यवस्था सुधारी जा रही है, जिस से लोगों को शिकायत का मौक़ा न मिले.

छिट-पुट प्रयत्नों से दिल्ली की हालत नहीं सुधरेगी. अंतरराष्ट्रीय प्रतिमानों से दिल्ली महानगरी वैसे भी नहीं है, लेकिन मौजूदा रफ़्तार रही तो दस-पंद्रह वर्षों में दिल्ली एक विशाल गंदी बस्ती बन कर रह जायेगी. दरअसल दिल्ली को अधिक धन-राशि ही नहीं चाहिए, उसे एक सुविचारित योजना और उस पर ईमानदारी से अमल करने वाले लोग भी चाहिएँ. क्या ये तीनों शर्तें क साथ पूरी हो सकेंगी ?

सम्मेलन

चिकित्सा : तनाव औ

भारत के पिछड़े हुए संदर्भ में भारतीय चिकित्सा का भी पिछड़ा होना पूरे देश की अनेक विसंगतियों में से एक है. यद्यपि चौथी योजना की तालिका के अनुसार पूरे देश में ५८०० आदमियों पर एक डॉक्टर का औसत आता है और पूरे राष्ट्रीय बजट में जितना पैसा खर्च किया जाता है उस के अनुसार सरकार फ़ी भारतीय की दवा पर कुल एक नये पैसे से भी कम खर्च करती है. फिर भी डॉक्टरों का वर्ग हमारे समाज का एक विशिष्ट वर्ग है. ख़ास कर अंग्रेज़ी दवाओं का डॉक्टर तो और भी विशिष्ट है, क्यों कि वह प्रायः १० प्रतिशत संपन्न लोगों का डॉक्टर होता है और शेष तो भगवान के नाम पर जीते-मरते रहते हैं. फिर भी देश है तो डॉक्टर है और डॉक्टर है तो उन का एक सम्मेलन भी होना ज़रूरी है. इन सम्मेलनों से कुछ और होता या न होता हो इतना तो अवश्य ही होता है कि सामान्य और स्वतंत्र रूप से चिकित्सा का व्यवसाय करने वाले और सरकारी अस्पतालों में काम करने वाले डॉक्टरों के बीच जो एक सरकारी और ग़ैर सरकारी डॉक्टरी होड़ का तनाव रहता है वह स्पष्ट हो जाता है. **अखिल भारतीय मेडिकल कांफ़्रेंस** इस तनाव को झंझोड़ कर प्रस्तुत करता है.

अखिल भारतीय स्तर पर काम करने वाली अखिल भारतीय मेडिकल कांफ़्रेंस संस्था, जो कि भारतवर्ष की सब से पुरानी संस्था है और डॉक्टरों का एकमात्र प्रतिनिधित्व करती है, उस के बावजूद सरकार ने १९५६ में मेडिकल काउंसिल एक्ट पारित कर के एक नयी संस्था **मेडिकल काउंसिल ऑफ़ इंडिया** बना डाली है. इसी प्रकार **सट्रल काउंसिल ऑफ़ हेल्थ** की भी स्थापना हुई है, जो सार्वजनिक स्वास्थ्य की नीति पर सरकार को समय-समय पर सलाह देती रहती है. मेडिकल काउंसिल ऑफ़ इंडिया राज्य में पंजीकृत डॉक्टरों को नियंत्रित भी करती है. ऐसी स्थिति में **अखिल भारतीय मेडिकल एसोसिएशन** की हैसियत स्वतः सामान्य हो जाती है. चौवालीसवें अखिल भारतीय मेडिकल कांफ़्रेंस के अध्यक्ष **डॉ. जी. एस. वाग्ले** ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस तनाव और संघर्ष को बड़े स्पष्ट वाक्यों में व्यक्त करते हुए कहा है—"कुछ विशेषज्ञों का व्यंग्यात्मक रूप में यह कहना है कि आई. एम. ए. (**अखिल भारतीय मेडिकल एसोसियेशन**) जनरल प्रैक्टिशनर्स की संस्था है. लेकिन वह यह भूल जाते हैं कि आई. एम. ए. उन समस्त डॉक्टरों की संस्था है जिन के पास मान्य सनद डॉक्टरी की है. हम एक राजनैतिक संस्था के रूप में आचरण नहीं करना चाहते और न इसे ट्रेड

निराशा का क्षेत्र

यूनियन का रूप देना चाहते हैं. हम इस संस्था को सीधी और सच्ची संस्था बनाना चाहते हैं, जो देश-सेवा के आदर्शों का पालन कर सके." स्पष्ट है कि आज यह तनाव पैदा करने में सरकारी संस्थाएँ भी जिम्मेदार हैं, क्यों कि वे सरकारी और ग़ैर-सरकारी वातावरण पैदा करती हैं.

सब से अधिक सारगर्भित और महत्त्वपूर्ण वक्तव्य स्वागत-समिति के अध्यक्ष डॉ. प्रीतम दास का था. अपने वक्तव्य में **डॉ. प्रीतम दास** (प्रधानाचार्य, मोतीलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज, इलाहाबाद) ने कहा—"यद्यपि भारत में हम बड़ी तेज़ी के साथ विज्ञान और चिकित्सा के क्षेत्र में प्रगति करना चाहते हैं फिर भी दुनिया में प्रगति इतनी तेज़ी के साथ बढ़ रही है कि हम उस गति से आगे बढ़ने में असमर्थ हैं. चिकित्सा के क्षेत्र में यह अंतराल लंबा हो गया है. अभी हमारी प्रयोगशालाओं और चिकित्सालयों में बहुत थोड़ी-सी मशीनें और यंत्रों का निर्माण हो पाया है. जहाँ अन्य देशों में आज इलक्ट्रॉनिक यंत्रों का प्रयोग बड़ी तेज़ी के साथ किया जा रहा है और उन के अस्पतालों और चिकित्सालयों में ये यंत्र सुलभ हैं हमें अभी पुराने तरीक़ों को ही अपनाना पड़ता है." फ़ीजियोलॉजी और एनोटोमी के क्षेत्र में इन इलक्ट्रॉनिक यंत्रों ने जो क्रांतियाँ पैदा की हैं उन का उल्लेख करते हुए डॉ. प्रीतम दास ने कहा, "हमारे देश में बायोकेमेस्ट्री की बहुत कम अनुसंधानशालाएँ हैं. हम जब संसार की प्रगति की तुलना अपने देश से करते हैं तो हमें लगता है कि यह अंतराल भविष्य में बढ़ता ही जायेगा. इन समस्याओं के निदान के बारे में उन्होंने कहा : हमारे देश के जो डॉक्टर प्रत्येक वर्ष हज़ारों की संख्या में विदेश चले जाते हैं उन्हें सख़्ती के साथ रोकना है और उन को देश में रोक कर ही दीक्षित करना है. मेडिकल कॉलेज के अध्यापकों और डॉक्टरों को कम से कम चौगुना बढ़ाना है और उन को अनुसंधान के काम में लगाना है. यही नहीं हमारे देश में चिकित्सा का अध्ययन-अध्यापन तभी संभव हो सकता है जब 'केवल भारतीयों द्वारा लिखी पुस्तकों से हमारे विद्यार्थी पढ़ेंगे. विदेशी पुस्तकों की संख्या कम कर देनी चाहिए और कुछ सीमित विषयों की ही ऐसी पुस्तकें बाहर से मँगवानी चाहिएँ जिन के भारतीय लेखक उपलब्ध न हों. अस्पतालों में मृत मरीज़ों के पोस्ट मॉर्टम को अनिवार्य कर देना चाहिए; वैज्ञानिक यंत्रों और प्रयोगशालाओं के लिए सामानों के विकास के लिए 'पेटेंट' संबंधी क़ानून को ढीला कर के अधिकाधिक सुविधा इस दिशा में दे कर इस का विकास करना चाहिए.' डॉ. प्रीतम दास ने अंत में कहा—"आज आवश्यकता है अपनी प्रयोगशालाओं के भीतर क्रांति पैदा करने की. मैं जानता हूँ कि यह सब संभव हो सकता है. देश के काफ़ी नवयुवक डॉक्टर देश को आगे ले जाने के लिए तत्पर हैं. उन की आकांक्षा वह सब करने की है जो दूसरे देशों में हो रहा है. हमें ऐसे नवयुवकों को निराश नहीं करना चाहिए."

वैज्ञानिक गोष्ठियाँ : डॉ. बी. एल. अग्रवाल ने इन गोष्ठियों की अध्यक्षता की और कई मूल्यवान आलेख इन गोष्ठियों में पढ़े गये. उद्घाटन **डॉ. बी. के. दुराईस्वामी**, निदेशक मेडिकल हेल्थ सर्विसेज, नयी दिल्ली ने किया. जो आलेख पढ़े गये उन में से 'ट्यूबरक्यूलर मेनेनजाइटिस' पर **डॉ. आर. के. थापर**, चर्म-रोगों पर **प्रो. बी. एन. बेहल** (स्किन इंस्टीट्यूट, नयी दिल्ली) का लेख महत्त्वपूर्ण था. **डॉ. जी. पी. एलहैन्स** (एस. एन. मेडिकल कॉलेज, आगरा) ने टाइफ़ॉइड के रोग पर अपने आधुनिकतम अनुसंधान को प्रस्तुत किया.

पिछड़ेपन के नमूने : इस पूरे सम्मेलन में ऐसे भी नमूने मिले जिस से यह स्पष्ट पता चलता था कि पीढ़ियों की वह लड़ाई जो बाहर राजनैतिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में विद्यमान है वह हमारे देश के डॉक्टरों में भी समान रूप से मौजूद है. पूरे सम्मेलन में जितने भी नये उम्र वाले डॉक्टर आये थे वे या तो सम्मेलन के खुले अधिवेशन, उस के चुनाव और पदाधिकारियों के नोच-खसोट से वीतराग थे या जो उस में दिलचस्पी रखते थे वे खुल कर विरोध भी कर रहे थे. इस क्षेत्र में भी नये रक्त को केवल पीछे रहने का आदेश दे कर बूढ़ों को पद सँभाले रहने का मोह उतना ही दिया गया जितना कि देश की किसी और संस्था में. **दिनमान के प्रतिनिधि** ने जब बंगलौर-मसूर और दक्षिण के दो-एक नौजवान डॉक्टरों से बातचीत की तो वह काफ़ी तैश में थे और इस बात से नाराज़ थे कि बावजूद इस के कि वे अपने-अपने विषय के विशेषज्ञ हैं फिर भी उन्हें अभी नाबालिग़ समझा जाता है. **दिनमान के प्रतिनिधि** ने कहा कि फिर वे अधिकार की लड़ाई क्यों नहीं लड़ते, तो उन डॉक्टरों के साथ कुछ उत्तरप्रदेश के डॉक्टरों ने कहा—"इस लिए कि हमारे पेशे में सीनियर और जूनियर का संबंध बड़ी तेज़ी के साथ जम गया है. हम अपने अग्रजों के खिलाफ़ बोल नहीं सकते. यह लड़ाई एक सड़े-गले 'बॉसिज़्म' की है, जो अभी चली आ रही है." पिछड़े हुए देश का पिछड़ापन और भी भयंकर हो जाता है जब प्रतिभा की अपेक्षा आयु, कृतित्व की अपेक्षा शॉर्टकट आज के रूप में प्रयुक्त होने लगते हैं. इसी पिछड़े दिमाग़ का दूसरा नमूना यह भी था कि कार्रवाई का पूरा उपचार अंग्रेज़ी में किया गया था. प्रो. हाल्डेन ने एक जगह लिखा है कि किसी भी पिछड़े हुए देश में तथाकथित बौद्धिक वर्ग ही सब से बड़ा शोषक वर्ग होता है. यद्यपि यह स्पष्ट नहीं दीख पड़ता किंतु यह सत्य है कि पिछड़े हुए देश का पिछड़ा हुआ डॉक्टर प्राय: यह शोषण करता आया है. सारे डॉक्टर इस दृष्टि से १९वीं शताब्दी के विक्टोरियन जैसे लग रहे थे.

(बायें से दायें) डॉ० प्रीतमदास, अवधबिहारी लाल, इंदिरा गांधी, पी० आर० त्रिवेदी

प्रस्तावों के प्रस्ताव : फिर भी इस सम्मेलन ने कुछ प्रस्ताव काफ़ी अच्छे पारित किये हैं. **पहले प्रस्ताव** में इस सम्मेलन ने भारत सरकार से यह माँग की है कि सरकार वैज्ञानिक अनुसंधान एवं प्रयोगशालाओं को अधिक आधुनिक बनाने के दायित्व को पूरा-पूरा वहन करे और महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों के संपूर्ण आर्थिक भार को वहन करे. **दूसरे प्रस्ताव** में इस सम्मेलन ने माँग की है कि राष्ट्रीय बजट का १५ प्रतिशत स्वास्थ्य संबंधी शीर्षक को प्रदान करे, ताकि पूरे स्वास्थ्य के प्रश्न पर उचित समय देने के लिए डॉक्टरों को उचित सुविधा मिल सके. **तीसरे प्रस्ताव** में समस्त मेडिकल कॉलेजों को सरकार द्वारा अनुशासित न किया जाये. इस के विरोध में यह भी कहा गया है कि मेडिकल कॉलेजों की व्यवस्था विश्वविद्यालयों को सौंप दी जाये. **चौथे प्रस्ताव** में सम्मेलन ने डॉक्टरों से एक व्यापक अपील की है कि वह गाँवों में ग्रामीण जनता की सेवा और उपचार का दायित्व वहन करें. **पाँचवें प्रस्ताव** में सम्मेलन ने प्रादेशिक और केंद्रीय सरकार की उन नीतियों का खंडन किया है जो डॉक्टरों की सेवाओं का उपयोग नेशनल प्लानिंग आदि महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में नहीं लेती. **छठे प्रस्ताव** में सम्मेलन ने यह शिकायत की है कि वर्तमान प्रादेशिक और केंद्रीय सरकार डॉक्टरों को मूलभूत महत्त्वपूर्ण दवायें सुलभ कराने में कुछ भी सहयोग नहीं देती. प्रस्ताव में यह भी शिकायत है कि डॉक्टरों को 'मोरफ़ीन', पेथीड्रीन स्प्रिट जैसी निहायत जरूरी चीजें भी नहीं दे पाती. दवाओं के बढ़ते हुए दामों के प्रति चिंता व्यक्त करते हुए सम्मेलन ने कहा है कि **"सम्मेलन सरकार की इस नीति के प्रति क्षोभ प्रकट करता है कि और तो और देशी दवाएँ भी महँगी होती जा रही हैं और सरकार उन पर रोक लगाने में असमर्थ है."**

चर्चे और चरखे

चीन में चिकित्सा-क्रांति

हिंदुस्तान के गांवों में आज भी वैद-वैद की आवाज़ सुनाई देती है और भारी पग्गड़ बांधे मैले-कुचैले कपड़ों में नंगे पैर गली-गली घूमते इस वैद को देखा जा सकता है. इसे पिछड़ेपन की निशानी मानने वालों के लिए यह सूचना उपयोगी होगी कि चीन में नयी सर्वहारा क्रांति के सूत्रधार माओ ने अपने देश में ऐसे वैद यानी डॉक्टरों का सपना देखा है. सांस्कृतिक क्रांति की भांति चिकित्सा-क्षेत्र में भी क्रांति का नारा माओ ने लगाया है. जिस के फलस्वरूप डॉक्टर किसान बन रहे हैं और किसान डॉक्टर. पेशेवर बड़े डॉक्टर, माओ के अनुसार, वर्ग-संघर्ष के शत्रु हैं, क्यों कि उन का सर्वहारा से कोई संपर्क नहीं रह गया है. इस सिद्धांत के कारण हज़ारों डॉक्टर अपने शहरी दवाखानों से हटा कर गांव में भेज दिये गये हैं. साथ ही डॉक्टरी पढ़ने वाले विद्यार्थियों से भी कहा गया है कि वे बड़े शहरों के बड़े अस्पतालों के बड़े डॉक्टर बनने का स्वप्न न देखें. बल्कि अपनी पढ़ाई समाप्त कर के आसपास के ग्रामीण दवाखानों में छोटे डॉक्टर बनने की कोशिश करें.

शहरी डॉक्टरों पर यह आरोप लगाया गया है कि वे संभ्रांत लोगों की बीमारियों की ही जानकारी रखते हैं और उन के ही इलाज की सुविधा उन के पास है. ऐसे डॉक्टर गांव के किसान की बीमारियों के बारे में अनभिज्ञ रहते हैं. चीन के समाचारपत्रों और रेडियो द्वारा ऐसे डॉक्टरों पर हल्ला बोला गया है और उन के मुक़ाबले में अर्द्ध-शिक्षित किसानों के लड़कों को, जिन की एक जेब में माओ की लाल पुस्तिका और दूसरी जेब में शल्य-चिकित्सा की पुस्तिका होती है, अधिक महत्त्वपूर्ण ठहराया गया है. माओ का कहना है कि डॉक्टरी के लिए ३ वर्ष का समय काफ़ी है. पश्चिमी ढंग से डॉक्टरी की शिक्षा देने में बहुत समय लगता है. चीन में कुछ वर्षों से ढाई वर्ष की शिक्षा के बाद छोटे डॉक्टरों को तैयार करने का काम शुरू कर दिया गया था और उन्हें गांवों में भेजा जाने लगा था. अब तथाकथित नंगे पैरों वाले ये डॉक्टर माओ के विचार और दस महीने की डॉक्टरी शिक्षा लेने के बाद प्राथमिक सहायता, स्वास्थ्य संबंधी नियम, जड़ी-बूटियों और ग्रामीण ढंग की चीनी जर्राही में माहिर हो कर गांव से रोग का उन्मूलन करने के लिए निकल पड़े हैं. इन का चुनाव आम तौर से सर्वहारा वर्ग के लोगों में से किया जाता है. इन्हें गांव में फैलने वाली कोई ७५ बीमारियों के बारे में जानकारी दे दी जाती है और यह शरीर की ३६५ जगहों में से कोई १६० जगहों की जर्राही सीख लेते हैं. इन्हें एक 'स्टेथिस्कोप', एक प्राथमिक सहायता का बक्स, जिस में २० दवाएं होती हैं, दे दिया जाता है और वह करुणामय उपचार के रास्ते पर अपने नंगे पैरों से चल पड़ते हैं. अक्सर ऐसे दस डॉक्टर मिल कर गांव के कम्यून में बारी-बारी से काम करते हैं. इन में से दो की डॉक्टरी ड्यूटी होती है बाकी ८ गांव के खेतों में काम करते हैं.

पश्चिमी देशों के आलोचक इस चिकित्सा-क्रांति को लगभग पागलपन ही मानते हैं. लेकिन चीन में माओ के पागलपन में भी एक सिलसिला है. अनुमानतः वहां साढ़े ११ लाख पश्चिमी ढंग के डॉक्टर हैं, जब कि वहां की जनसंख्या कुल ७४ करोड़ है और जिन में अधिकतर सीधे-सादे किसान हैं. यह अर्द्ध-शिक्षित डॉक्टर, जिसे स्वास्थ्य कर्मचारी कह लीजिए, वहां की जनता के लिए एक बहुत उपयोगी व्यक्ति और कभी-कभी जीवनदाता भी हो सकता है.

पिकासो की प्रतिमा

शिकागो की भांति न्यूयार्क में भी अब पिकासो की बनायी हुई एक विशाल प्रतिमा लगायी गयी है. १९६७ के अंत में पिकासो ने छायाचित्रों के आधार पर यह स्थान, जहां प्रतिमा स्थापित की गयी है, पसंद किया और उस का नमूना तय किया था. यह प्रतिमा कंकरीट की है. इस में नॉर्वे के कलाकार कार्ल नेसज़ार ने पिकासो का हाथ बंटाया है. पिकासो ने इस का मूल पहले टीन, गत्ते पर और बाद में एक भारी धातु से छोटे आकार में बनाया था. नेसज़ार ने इसे कंकरीट में ढाला, जिस पर कि मौसम का असर नहीं पड़ सकता.

इस प्रतिमा का नाम 'साइलवेते की अर्द्ध प्रतिमा' है. यह एक ४०-५० साल की पोनीटेल बनाये हुए एक औरत की प्रतिमा है. उस के बाल और उस की आकृति मोटी धातु की रेखाओं में कंकरीट पर बनायी गयी है. प्रतिमा के दोनों तरफ़ इस स्त्री का एक-एक चेहरा है. यह प्रतिमा ३६ फ़ुट ऊंची और २० फ़ुट लंबी है. मोटाई साढ़े १२ इंच है. इस के चारों तरफ़ ५० मंज़िली इमारतें हैं. यह प्रतिमा घास में स्थापित की गयी और चारों तरफ़ के इन मकानों में न्यूयॉर्क विश्वविद्यालय के लोग रहते हैं. विभिन्न कोणों से इस प्रतिमा को देखा और सराहा जा सकता है. इस के चारों तरफ़ घूमने पर प्रतिमा का भाव बदलता दिखाई देता है, क्यों कि इस के चेहरे पर कई तरह की रोशनियां पड़ती हैं.

ध्यान आकर्षण विधि

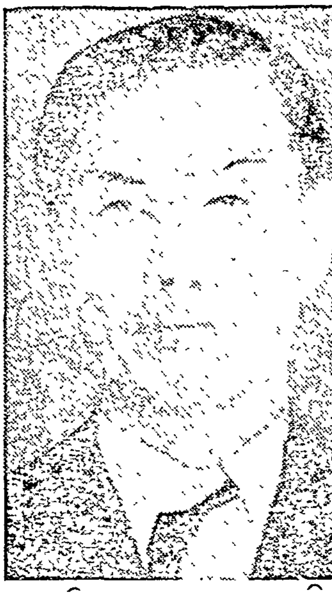
केंजो ओक्ज़ाकी

४८ वर्षीय केंजो ओक्ज़ाकी को जापान के शाही रक्षकों ने, सम्राट हिरोहितो पर गुलेल द्वारा लोहे की गोली चलाने के आरोप में, गिरफ़्तार कर लिया है. निशाना चूक जाने के कारण यह गोली सम्राट को नहीं लगी. ओक्ज़ाकी ने गुलेल उस समय चलायी जब कि शाही परिवार अपने महल के छज्जे पर जनता को नये वर्ष की शुभकामनाएं स्वीकार करने के लिए आया था. ओक्ज़ाकी का कहना है कि उन्होंने सम्राट पर गुलेल इस लिए चलायी ताकि वह अपनी ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कर सके.

नया वर्ष

यूरोप, अमेरिका और रूस सभी जगह नया वर्ष बड़ी धूमधाम से इस वर्ष भी मनाया गया. कड़ाके की ठंड में भी मॉस्को में अंडों, खिलौनों और फलों की दुकानों के आगे ग्राहकों की लंबी-लंबी क़तारें देखी जा सकती थीं. नये वर्ष की पार्टी का सब से प्रिय पेय सोवियत शैंपेन मामूली दुकानों में मिलनी मुहाल थी. बच्चों के खिलौने भी बाजार से ग़ायब हो गये थे. शिकागो में नया वर्ष पेरिस शैली में मनाया गया. सब से अधिक पागलपन के साथ नया वर्ष रोम में मनाया जाता है. ३१ दिसंबर की रात में रोम की सड़कों पर मोटर चलाना खतरे से खाली नहीं. लोग अपने-अपने घरों की पुरानी और बेकार की चीजें इकट्ठी कर लेते हैं और आधी रात होते ही उन्हें अपनी खिड़कियों से बाहर फेंकना शुरू कर देते हैं. यदि किसी की मोटर गाड़ी किसी के घर के सामने खड़ी है तो उस की खैर नहीं. उस के ऊपर पुरानी बोतलें, टूटी-फूटी मेज़-कुर्सियां और तमाम अंगड़-खंगड़ फेंका हुआ पाया जा सकता है. कुछ वर्ष पहले तो एक आदमी ने, जो रोम की सड़कों पर मोटर चला रहा था, अपनी गाड़ी की छत पर एक टूटा हुआ नहाने का टब गिरता पाया, जो किसी खिड़की से उस की मोटर पर फेंक दिया गया था. रोम में इस बार नया वर्ष और पिछले वर्षों की अपेक्षा कुछ अधिक संयत ढंग से मनाया गया.

दिनमान
समाचार-साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ १९ जनवरी, १९६९
अंक ३ २९ पौष, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट ११

*

मत और सम्मत ३
पिछला सप्ताह ४
पत्रकार-संसद् ५
चरचे और चरखे १०
परचन ४६

*

राष्ट्रीय समाचार १३
प्रदेशों के समाचार १९
विश्व के समाचार ३४
समाचार-भूमि : क्यूबा ३२
खेल और खिलाड़ी : डूरेंड कप, क्रिकेट ३०

*

प्रेस-जगत् : चेक तथ्य और रूसी सत्य ५
दिल्ली की चिट्ठी ७
सम्मेलन : अखिल भारतीय मेडिकल कांफ्रेंस ८
शिक्षक आंदोलन : ग़ैर-कांग्रेसी मोड़ १७
मध्यावधि : नामांकन २१
चुनाव-पूर्व सर्वेक्षण : पंजाब, पश्चिमी उत्तरप्रदेश; पूर्वी उत्तरप्रदेश २३
संदर्भ : रासायनिक उर्वरक 'फ़ैक्ट' ३९
विज्ञान-कांग्रेस ४०
पुरातत्व : प्राचीन भारत का इतिहास और प्रचलित लिपि ब्राह्मी ४१
साहित्य : पी. ई. एन., मराठी साहित्य सम्मेलन ४२
कला : रमेश विष्ट, संतोष मनचंदा, शैल चोयल ४५

*

आवरण-चित्र : डॉ॰ संपूर्णानंद

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन
दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

राजधानी से : विशेष रिपोर्ट

प्रगति या परिक्रमा

राजधानी में राजनैतिक पर्यवेक्षकों की बातचीत की प्रिय शिकायत आजकल है कि राजनीति रेंग रही है और मध्यावधि चुनाव के नतीजे आने के बाद ही शायद फ़ुर्ती दिखाये. ऐसा कहने वालों का मतलब चार राज्यों में समाज परिवर्त्तनकारी शासन की स्थापना से उतना नहीं होता जितना केंद्र में प्रधानमंत्री की स्थिति से होता है. इसी तरह कामराज के लोकसभा सदस्य बनने का कोई राजनैतिक अभिप्राय लोकसभा में उन के संभाव्य योगदान से नहीं बल्कि प्रधानमंत्री की स्थिति पर उस प्रभाव, बहुत कर के कुप्रभाव, से जोड़ा जाता है जो वह मंत्रिमंडल में या खाली कांग्रेस संसदीय दल में रह कर डाल या नहीं डाल सकते हैं. यह भी माना जाता है कि कोई पेशीनगोई मध्यावधि के नतीजे आने तक सविश्वास नहीं की जा सकती क्यों कि प्रत्येक चुनाव-राज्य में प्रधानमंत्री का साथ देने या न देने वाले कांग्रेस-स्तंभों के चमत्कारी उदय या सांघातिक अवसान पर ही केंद्रीय सौरमंडल में नये ग्रह-उपग्रहों की सृष्टि संभव है. प्रधानमंत्री की स्थिति ही सारे देश की (या कम से कम उस अंश की जहाँ जनता अपने शासक चुन रही है) नियति हो जाये यह अपने-आप में वर्तमान राजनीति की सड़ांध का सूचक है. हाल ही में कांग्रेस धुरंधरों ने चुनाव-बाद दूसरे दलों से शासन में हिस्सा बाँट के सवाल पर जिस तरह तड़प कर न न किया है वह दिखाता है कि उन्हें इसी की सब से अधिक आशंका है.

नामज़दगी के बाद की तस्वीर में तीन तत्व स्पष्ट हैं. एक, बहुत अधिक पार्टियाँ मैदान में हैं; दो, सभी पार्टियों में पहले से अधिक फूट है और तीन, सब पार्टियाँ कांग्रेस को हटाने के १९६७ के संकल्प में पूरी तरह शामिल नहीं हैं. इस से कांग्रेस क्षेत्रों में साँस ज़रा खुल कर आने लगी है लेकिन वहाँ ज़रूरत अभी भी दम साधे बैठे रहने की समझी जाती है (ख़ास कर उत्तर प्रदेश में), क्यों कि स्थायित्व की बहु-विज्ञापित साकार प्रतिमा कांग्रेस को अकेले स्थायी सरकार बनाने के लिए पूर्ण बहुमत मिलना हलुवा नहीं है. दूसरे दलों से मिल कर सरकार नहीं बनायेंगे यह चीत्कार कांग्रेस अध्यक्ष करते रह सकते हैं क्यों कि उन्हें सरकारें नहीं बनानी हैं परंतु राज्य प्रधानों को सरकार न बनाने का विकल्प भी सोचना होगा. आखिर राजनीति सत्ता या विरोध दोनों में से किसी में रहने का ही नाम है : विरोध पक्ष का लोकतंत्रीय कर्तव्य निभाने में राज्य कांग्रेसों ने जिस लीचड़पन का सबूत गत दो वर्षों में दिया है उस से सिद्ध है कि उन के प्रतिनिधि विरोधी-कुर्सियों पर बिना बार-बार आसन बदले बैठ नहीं सकते. मध्यावधि के बाद ज़रा-सी ज़रूरत पड़ने पर दूसरे दलों से सरकार बनाने के समझौते करने के लिए उन्हें स्वभावतः दौड़ कर जाना होगा. वे दायें जायेंगे या बायें इस का तेजस्वी उत्तर प्रधानमंत्री प्रेस सम्मेलन में दे चुकी हैं : 'कांग्रेस की नीतियाँ स्पष्ट हैं' (उत्तर का अर्थ कितना ही अस्पष्ट क्यों न हो).

बड़े कांग्रेस ढिंढोरचियों के चुनाव-अभियानों से एक बात स्पष्ट है. यह कि कांग्रेस-क्षेत्रों में विश्वास बढ़ रहा है कि जिस जनता की आंतरिक आकांक्षा ने हमें एक बार हटाया था वह परास्त हो चुकी है; उसे पश्चात्ताप सहित स्वीकार करना चाहिए कि वह हम से अच्छे नेतृत्व की अधिकारी नहीं है. १९६७ के बाद की राजनीति में किसी परिवर्त्तनकारी जन-आंदोलन का या किसी भी नीति-संबंधी प्रगति का श्रेय लेने की क़ोशिश कांग्रेस बड़ी ईमानदारी से नहीं कर रही है. वह जो कुछ कह रही है उस का सारांश है कि कांग्रेस के विरोध में संयुक्त होने वाले संयुक्त नहीं रह सके.

आगे सरकारें कोई भी बनाये यह समझना ज़रूरी है कि इस नकारात्मक नारे का योगदान राष्ट्र की राजनीति में स्वस्थ नहीं हो सकता. चुनाव के बाद राजनीति रेंगना छोड़ कर कुछ ग्रहों-उपग्रहों को केंद्रीय सूर्य की कक्षा में नचाने लगे—यह एक चीज़ है और समाज-परिवर्त्तनकारी कार्यक्रमों पर अमल कराये—वह बिल्कुल दूसरी चीज़ है.

राज्य	जगहों की संख्या	प्रत्याशियों की संख्या ('६९ मध्यावधि चुनाव)	प्रत्याशियों की संख्या ('६७ के चुनाव में)
उत्तरप्रदेश	४२५	२८७०	३६८०
बिहार	३१८	२५००	२६१९
बंगाल	२८०	१०१९	१०५८
पंजाब	१०४	४७०	६०२

केंद्रीय शस्त्रीकरण

खबर है कि प्रधानमंत्री ने नक्सलवादियों की गतिविधि देशव्यापी होते देख गृहमंत्रालय से कहा है कि वह अब अपने विचार बदलने की कोशिश करे. गृहमंत्रालय के काग़ज़ों के अनुसार नक्सलवादी जैसी हरकतों पर कार्रवाई करने का केंद्र के पास कोई क़ानूनी साधन नहीं है. ऐसी हरकतों पर सजा देने की व्यवस्था अवैध गतिविधि विवेयक के मसविदे में शामिल की गयी थी लेकिन प्रतिपक्षी दलों के आग्रह पर उसे बाद देना पड़ा. गृहमंत्रालय को नहीं मालूम कि वह किस तरह से प्रधानमंत्री की कथित इच्छा पूरी करे. केंद्र सरकार के बुद्धिमान सलाहकारों की भाषा में कहा जाये तो छिटपुट उपद्रवों के खिलाफ़ कार्रवाई केंद्र को नहीं बल्कि राज्य को करनी चाहिए और केंद्र को तभी हाथ-पाँव हिलाने चाहिएँ जब कार्रवाई भी किसी दूसरे केंद्रीय संगठन से आरंभ हुई हो. नक्सलवादी कार्रवाइयों को मुंशियों और वकीलों की नजर से देखने पर इस से ज़्यादा और कुछ केंद्रीय सलाहकार देख भी नहीं सकते किंतु यहाँ प्रश्न इन की असमर्थता का उतना नहीं जितना उन की नीयत का है.

विश्वस्त रूप से मालूम हुआ है कि गृहमंत्री को उन के नौकरशाहों ने केरल में कोई साहसिक उपाय न करने की सलाह दी थी और मंत्रिमंडल ने इस नीति मसविदे को मंजूर किया था. जाहिर है कि प्रधानमंत्री की मंजूरी भी मंत्रिमंडल की मंजूरी में शामिल है. गृहमंत्री ने अपने सलाहकारों के तर्क माने थे इस लिए यह भी जाहिर है कि ये तर्क मानने के तर्क गृहमंत्री के पास रहे होंगे. जो आम आदमी को जाहिर नहीं है वह यह है कि नौकरशाहों के और केंद्रीय राजनैतिक नेताओं के तर्क जो कि बिलकुल अलग-अलग कोटि के चिंतन से उत्पन्न होने चाहिए आजकल एक हो गये है. राजनैतिक उपयोगिता के मुक़ाबले अच्छी राजनीति अनुपयोगी मानने वाले मंत्री सचिव की राय चुपचाप मान लेते है.

केरल के मामले में केंद्र सरकार की नीति अभी कुछ न करने की बतायी जाती है. इस का सीधा मतलब यह है कि केरल के मामले में कुछ करना केरल सरकार को केंद्रीय कोशिश से हटाने के बराबर माना जाता है. ऐसी हालत में मंत्री को जब बताया जाये कि केरल में परिस्थितियाँ बिगड़ रही हैं और आप तब तक प्रतीक्षा कीजिए जब तक कि केरल के मुख्यमंत्री स्वयं आप से केरल सरकार तुड़वा देने की फ़रमाइश न करें तो यह बहुत उपयोगी सलाह मालूम होती है. इस के पीछे नौकरशाही दृष्टि है जो राजनीति को सत्तालोलुप व्यक्तियों के उखाड़-पिछाड़ से अधिक कुछ नहीं मानती. इस दृष्टि से देखने पर केरल में मुसलमानों को संतुष्ट करने के लिए नये जिले बनाना और उस की प्रतिक्रिया राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के उग्र मानस पर होना केंद्र सरकार के लिए एक शुभ लक्षण दिखायी देता है. ऐसी दृष्टि स्पष्ट ही नतीजा निकालती है कि इन दोनों सांप्रदायिक तत्वों की अभिव्यक्ति शीघ्र ही केरल की राज्य सरकार के लिए परेशानी का कारण बनेगी. इस के आगे सलाहकार यह भी जोड़ सकते है कि उधर कम्युनिस्टों में भी फूट पड़ी हुई है हुजूर, इस लिए जब नंबूदिरीपाद एक ओर पार्टी की फूट और दूसरी ओर जनता में अशांति से एकदम घिर जायेंगे तब उन के खिलाफ़ कार्रवाई आसान होगी.

वह केरल के मामले को सारे भारत से अलग कर के सिर्फ़ इस दृष्टि से देखता है कि आखिर केरल पर केंद्र को क़ब्जा करना ही होगा. इस दृष्टि से देखने मे नक्सलवादी प्रवृत्तियाँ खाली क़ानून के उल्लंघन की घटनाएँ ही दिखायी देंगी और ऐसी शक्ल में मंत्रियों के सामने पेश कर दी जायेंगी. मंत्री जिन का राजनैतिक भविष्य केंद्र को और अधिक सत्तासंकुल बनाने में ही सुरक्षित रह सकता है यह जानते है कि नक्सलवादी प्रवृत्तियाँ आतंक और अव्यवस्था फैलाती है. आतंक और अव्यवस्था की स्थिति में यदि केंद्र राजदंड का इस्तेमाल केंद्रीय राज्यतंत्र आसानी से कर सकता है तो इस से अच्छी बात केंद्रीय सत्ता के लिए और क्या होगी ? इस प्रकार नक्सलवादी प्रवृत्तियों का केंद्रीय सत्ताधारियों के लिए एक उपयोगी रूप भी प्रकट हो रहा है. क्या इस उपयोगी रूप को अच्छी राजनीति के चक्कर में अनदेखा कर दिया जाये ?

गृहमंत्रालय के पास नक्सलवादी हरकतों के जो वृत्तांत उस के अपने सूत्रों से आये है उन में कम्युनिस्ट पार्टी की फूट का इतना मजा ले कर वर्णन किया गया है जैसे पार्टी की आपसी लड़ाई से देश की राजनीति को कोई खतरा नहीं खुद उन पार्टियों को ही खतरा है और यह भी कि उन के लड़ते रहने में ही केंद्र की भलाई है. यह दृष्टिकोण देख कर केंद्रीय सरकार पर तरस आता है. बिहार, पश्चिमी बंगाल, उत्तरप्रदेश में राज्य सरकारें (यानी केंद्र) गृहमंत्रालय के अनुसार नक्सलवादियों के खिलाफ़ जम कर कार्रवाई कर रही हैं और बिहार के आदिवासी क्षेत्रों में तथा उत्तरी इलाक़ों में राज्य सरकार के (यानी अपने) काम से केंद्र को पूरा संतोष है. इतना ही संतोष केंद्र को आंध्र के मुख्यमंत्री की कुछ समय पहले की 'पद-यात्रा' और 'स्पष्ट-घोषणा' से है कि आंध्र सरकार उग्रपंथियों का दमन करेगी. उग्रपंथियों का 'संगठनात्मक ढाँचा' अभी काफ़ी 'ढीला' है, यह सोच कर गृहमंत्रालय ने शायद नतीजा निकाला है कि वह देश के 'संगठित राजनैतिक जीवन' में हिस्सा नहीं लेना चाहता. उग्रपंथी गेरिल्ला-पद्धति को समझने का इस से अधिक बाबूआना तरीक़ा और कोई नहीं हो सकता. यह तो स्पष्ट है ही कि 'संगठित राजनैतिक जीवन' से यहाँ मंत्रालय का अभिप्राय कांग्रेस, प्रजासमाजवादी, स्वतंत्र आदि दलों जैसी चीजों से है लेकिन वह नहीं समझ रहा है कि यह संगठित राजनैतिक जीवन इस समय मौलिक परिवर्त्तन के दौर से गुजरने लगा है. इस समय दकियानूसी और अत्यंत प्रगतिशील दोनों ही तत्व टूटते हुए राज्यतंत्र का फ़ायदा उठाने की कोशिश कर रहे है. नक्सलवादी भी इन्हीं तत्वों में से एक हैं और पुराने ढंग के संगठित राजनैतिक जीवन को बदलना उन का अभिप्राय है. यदि केंद्र सरकार राष्ट्र के राजनैतिक तंत्र में हो रही हलचल को इस दृष्टि से देखे कि वह एक राष्ट्रीय हलचल है जिस के नतीजे जो भी होंगे राष्ट्रव्यापी होंगे तब शायद वह राष्ट्र को कोई दिशा दे सकेगी. अभी तो वह इस हलचल को यों ही चलने दे कर उस के खिलाफ़ केवल अपनी सत्ता बढाने की सोच रही है. होगा यह कि गृहमंत्रालय शीघ्र ही प्रधानमंत्री के कथित आदेश पर नक्सलवादियों के संबंध में अपनी पुरानी सिफ़ारिशों पर फिर विचार करेगा और मंत्रिमंडल के सामने प्रस्ताव रखेगा कि केंद्र को और अधिक अधिकार मिलने पर ही वह कुछ कारगर हो सकता है.

क़ानून के अंदर केंद्र केवल उन 'संगठनों' को दुरुस्त कर सकता है जो देश से अलग होने की आवाज उठायें. इतना ही नहीं माओ संबंधी दस्तावेज़ों और पोस्टरों के प्रचार पर भी कोई कार्रवाई केंद्र नहीं कर सकता. पोस्टर लगाने वाले और आग लगाने वाले दोनों ही संगठन नहीं है. इसी बोदे तर्क से खिन्न हो कर, कहा जाता है कि प्रधानमंत्री ने दोबारा सोच-विचार की जरूरत बतायी है परंतु दोबारा सोच-विचार गृहमंत्री को भी जरूरत है और अगर उस का उद्देश्य और अधिक अधिकार हथियाना है तो इस से कोई अंतर नहीं पड़ता कि यह उद्देश्य प्रधानमंत्री का है या गृहमंत्री का. दोनों एक दूसरे के हित का पूरा ध्यान रख कर ही चल सकते हैं और चल रहे है. वर्त्तमान में दोनों का हित सारे देश को तरह-तरह की दुष्प्रवृत्तियों से आगाह कर के उन के सामने निहत्था छोड़ देना है और खुद और अधिक हथियारबद्ध हो जाना है. कई बार और कई तरह से सांप्रदायिकता, नक्सलवादिता और अन्य बिल्लों के अंतर्गत उन प्रवृत्तियों की डरावनी तस्वीर केंद्रीय नेताओं ने हाल में खींची है जो पिछले २० वर्षों के कांग्रेसी शासन की दिशाहीनता की प्रत्यक्ष उपज और खाद दोनों रही है. अब यह संदेह केवल संदेह नहीं रह गया है कि विघटनकारी प्रवृत्तियों का इलाज कांग्रेस की राजनीति के पास वही है जो केंद्रीय नौकरशाही अपने नुस्खे में लिखती है—नौकरशाही सत्ता की और अधिक अभिवृद्धि और परिवर्त्तनकारी राजनीति का और अधिक परित्याग.

राष्ट्र

संपूर्णानंद : मर्यादा-पुरुष का अंत

काशी स्तंभित थी एक दिन पूर्व से ही. संपूर्णानंद जी की गहराती हुई बीमारी के आत्यंतिक रूप लेने का समाचार ९ तारीख को ही मिल चुका था किंतु काशी ही नहीं, जहाँ-जहाँ भी समाचार पहुँचा वहाँ सब लोग स्तब्ध हो गये थे उन के निधन को सुन कर. १० बज कर ५ मिनट पर उन्होंने शरीर छोड़ा. उन के परिवार के लोग उन के घर पर पहले से ही एकत्र हो रहे थे. काशी नगर के निवासी इस दुखद समाचार को सुनते ही काशी विद्यापीठ की ओर उमड़ पड़े. दिन के दो बजे अर्थी उठी. तब तक विद्यापीठ का ांगण और उन का निवासस्थान जन-समुदाय से भर उठा. चरण-पादुका पर ५ बजे के बाद उन का शरीर चंदन की चिता पर रखा गया. किसी सार्वजनिक नेता के लिए इतनी लोक-विह्वलता काशी के निकट अतीत में लोगों को स्मरण नहीं हो रही थी. छज्जों पर, सड़कों के किनारे, खिड़कियों से, यहाँ तक कि सवारी गाड़ियों की छतों पर बैठ कर लोगों ने अपने नेता के अंतिम दर्शन करने की चेष्टा की. चौक कोतवाली से उन की अर्थी शव-यान से उतार ली गयी थी. गली में उस का जाना संभव नहीं था. मणिकर्णिका घाट पर पहुँच ऐसा मालूम होता था कि अर्थी कंधों से फिसलती हुई अपने आप चली जा रही थी. जाने कितने अनजाने लोगों की आँखों से आँसू बह रहे थे. काशी भगवान् शंकर की नगरी है. काशी किसी-किसी को ही हरहर महादेव के नारे से सम्मान देती है. संपूर्णानंद जी की चिता प्रज्वलित होने पर अनगिनत कंठों से अनायास यह नारा फूटा था. शंकर के पुजारी संपूर्णानंद जी उन की भस्म में विलीन हुए. उन्होंने भगवान् शंकर के प्रति अपने जीवन में जिस प्रकार की निष्ठा रखी थी उस की झलक उन के ही शब्दों में "जगदभर्त्ताऽपियो भिक्षुः भूतवासोऽपि निकेतन, विश्वगोप्ताऽपि दिग्वासा तस्मै कस्मै नमोनमः".

राजस्थान में ५ वर्षों तक संपूर्णानंद जी राज्यपाल के पद पर रहे थे. इस पद पर काम करते हुए आखिर में चल कर उन की पुरानी गठिया की बीमारी आर्थाइटिस का रूप ग्रहण करने लगी थी. स बीमारी से वह एक बार अत्यधिक पीड़ित भी हुए और कई महीने तक ोग-शैय्या पर पड़े रहे. किंतु अपनी दृढ़ इच्छा-शक्ति और चिकित्सा की सहायता से एक बार पुनः खड़े हो गये और अपना सामान्य कार्य करने लगे थे. वहाँ से हटने के बाद काशी आने पर भी कुछ दिनों तक वह स्वस्थ रहे किंतु सन् १९६८ के मार्च महीने में जब वह बीमार पड़े तो १० जनवरी सन् १९६९ को इतनी ताक़त पा ली कि इस लोक को ही छोड़ कर चले गये. १० महीने की इस लंबी बीमारी में दिनमान के प्रतिनिधि से उन की कई बार भेंट हुई थी. वह शरीर से भी कृप होते जा रहे थे और उन की व्याधियाँ भी बढ़ती जा रही थीं. ऐसा लग रहा था कि वृद्धावस्था में शरीर को कमजोर पा कर व्याधियाँ उसे अपना घर बनाने के लिए दौड़ रही थीं. पुराना पौरुष उन्हें आने से ोक रहा था. स युद्ध के ही कारण संभवतः १० महीने लग गये. स्यात् दूसरा शरीर होता तो कब का गिर चुका होता. स लंबी बीमारी के बीच मित्रों के आग्रह पर कुछ दिनों के लिए वह लखनऊ भी चिकित्सा के लिए आये. उन की बढ़ती हुई बीमारी का समाचार जब दिल्ली पहुँचा तो धानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने चिंता प्रकट की और इस बात का प्रयत्न किया कि या तो वह चिकित्सा के लिए दिल्ली आ जायें या वहीं देश में उपलब्ध विशेषज्ञों को उन की चिकित्सा के लि भेजा जाये. किंतु इसी ीच उत्तरप्रदेश के राज्यपाल के आग्रह पर वह लखनऊ लाये जा चुके थे और चिकित्सा का समुचित बं देख कर दिल्ली लाने का यत्न छोड़ दिया गया था. वहाँ के डाक्टरों को ऐसा विश्वास था कि वे उन्हें एक बार पुनः खड़ा कर ेंगे. किंतु लखनऊ आने के थोड़े दिनों बाद ही संपूर्णानंद जी स बात का आग्रह करने लगे थे कि उन्हें काशी भेज दिया जा . जब लखनऊ में वह अपनी चेतना भी खोने लगे ो वहाँ के चिकित्सकों ने यह सोच कर कि इन्हें बचाना संभव नहीं होगा काशी जाने के लि अपनी सहमति दे दी. बड़ी चिंता के साथ वह काशी ले जाये गये. किंतु काशी पहुँचते ही थोड़े दि ों के लि न केवल उन्होंने पुनः अपनी चेतना प्राप्त कर ली वरन् ऐसा लगा जैसे वह हल्के-हल्के स्वस्थ भी हो रहे हैं. न्हीं दिनों उन्होंने वेदांत दर्शन की एक पुस्तक भी लिखना प्रा भ कर दिया था. वह वेदांत प्रवेशिका हिंदी साहित्य को उन की अंतिम देन है. भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से प्रकाशित कर के से उन के अंतिम जन्मदिन पौष शुक्ल एकादशी तदनुसार ३० दिसंबर १९६८ को उन्हें भेंट किया गया.

संपूर्णानंद जी का जन्म अंग्रेजी तिथि से पहली जनवरी १८९० में काशी के एक असामान्य परिवार में हुआ था. असामान्य इस लिए नहीं कि यह परिवार बहुत समृद्ध था बल्कि इस लिए कि इस परिवार के पास एक ऐसी पूँजी थी जो कदाचित् ही किसी गृहस्थ परिवार के पास होती है. यों इन के पितामह बक्शी सदानंद जी राजा चेत सिंह के दरबार में प्रतिष्ठित थे और इन के पिता विजयानंद जी भी सरकारी कर्मचारी थे, किंतु संपूर्णानंद जी को विरासत के रूप में अपने पितामह से उन के एक योग्य मित्र बाबा कीनाराम का आशीर्वाद मिला था. संपूर्णानंद जी के मामा प्रतापगढ़ के रहने वाले थे किंतु वह बंगाल के एक प्रसिद्ध योगी की शिष्य परंपरा में स्वयंसिद्ध महात्मा थे. बाल्यावस्था में ही संपूर्णानंद जी की विलक्षण बुद्धि और तीव्र मेधा ने न केवल इन्हें अध्यवसाय की ओर प्रेरित किया वरन् अपने मामा की शरण में दीक्षित होने के लिए भी प्रेरित किया. एक बार इन के माता-पिता को इस बात का भी भय हो चला था कि बालक संपूर्णानंद संभवतः बाल्यावस्था में ही योगमार्गी संन्यासी हो जायेगा. संपूर्णानंद जी घर में सब से बड़े लड़के थे, अतः माता-पिता की ओर से भी उन की चिंता स्वाभाविक जान पड़ती थी.

काशी की भूमि पर अंतिम यात्रा

उन्होंने इन के मामा से जा कर इन्हें वापस करने का आशीर्वाद माँगा. कुछ सोच-समझ कर इन के गुरू ने इन्हें गृहस्थाश्रम में वापस जाने का आदेश दिया. यहीं से इन का गृहस्थ-जीवन, दूसरे शब्दों में लोकजीवन प्रारंभ होता है.

संपूर्णानंद जी की शिक्षा काशी के प्रसिद्ध हरिश्चंद्र हाई स्कूल में प्रारंभ हुई थी और प्रयाग विश्वविद्यालय से उन्होंने अपनी बी. एस. सी. डिग्री की उपाधि ली थी. उन दिनों बनारस का क्वींस कालेज डिग्री कालेज था और उस की उपाधि प्रयाग विश्वविद्यालय की उपाधि होती थी. अन्यथा वे प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए कभी नहीं आये थे. बी. एस. सी. करने के बाद उन्होंने शिक्षक का जीवन बिताने के लिए अध्यापन का प्रशिक्षण लिया. बाल्यावस्था से ही अध्ययन में निष्ठा होने के कारण ये अपने समवयस्क विद्यार्थियों से हमेशा आगे रहते थे. स्वर्गीय डॉ० हफ़ीज सैयद कहा करते थे कि इन के अंग्रेजी प्रिंसिपल इन के द्वारा लिखी अंग्रेजी इन से ऊपर के दर्जे के विद्यार्थियों को आदर्श के रूप में दिखाया करते थे. अंग्रेज़ी पर इन्हें बहुत अच्छा अधिकार था और इन के अंग्रेज़ी के लिखे लेखों में अंग्रेज़ी की एक मोहक शैली देखने को मिलती है. किंतु इन का जीवन-व्रत था कि ये अपनी कोई मौलिक पुस्तक अंग्रेज़ी में नहीं लिखेंगे. मूलतः इन्होंने जो कुछ भी लिखा हिंदी और संस्कृत में लिखा. इन के मौलिक ग्रंथों का अनुवाद भले ही अंग्रेजी में मिले किंतु लेखादि को छोड़ कर इन्होंने अपना कोई भी ग्रंथ अभारतीय भाषा में नहीं लिखा. यह इन का दृष्टि-संकोच नहीं था वरन् मातृभाषा हिंदी के प्रति इन की दृढ़ निष्ठा का परिचायक था. यदि इन में दृष्टि-संकोच होता तो यह उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, बंगला और मराठी जैसी भाषाओं का अध्ययन नहीं करते. इन भाषाओं में लिखे गये ग्रंथों को मूल में पढ़ने का इन्हें शौक था. उर्दू शायरी से इन्हें कितना प्रेम था यह इन के मित्र और इन के साथ रहने वाले लोग भली-भाँति जानते हैं. अपने घर पर अक्सर उर्दू कवियों और लेखकों को आमंत्रित करते रहते थे और गयी रात तक उन के काव्य का आनंद लेते थे. स्वयं उर्दू और फ़ारसी में कविता करते थे. यह सब होते हुए भी संपूर्णानंद जी का अंत तक यह विश्वास बना रहा कि भारतीय प्रतिभा का विकास भारतीय भाषाओं द्वारा ही हो सकता है. उन्होंने भारतीय भाषाओं में कभी कोई विभेद नहीं किया और कभी भी एक को दूसरे से अधिक बड़ी या छोटी मानने की कोशिश नहीं की. यह सब होते हुए भी उन का यह विश्वास था कि इन तमाम भारतीय भाषाओं में हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो अखिल भारतीय स्तर पर जन-संपर्क, विचारों के आदान-प्रदान और राज-कार्य की भाषा बन सकती है. इस दृष्टि से हिंदी को समृद्ध बनाने के लिए इन्होंने अथक परिश्रम किया.

अध्यापन के सिलसिले में इन का संबंध बनारस के हरिश्चंद्र और कटिंग मेमोरियल हाई स्कूल से प्रारंभ हुआ था. पीछे चल कर ये डेली कॉलेज इंदौर और डूंगरपुर कालेज बीकानेर में रहने लगे. किंतु अध्यापन को छोड़ कर जब उन्होंने राजनीति में प्रवेश किया तो इन के अध्यापक श्री मेकेंज़ी ने कहा था, "एक अच्छा आदमी गलत रास्ते चला गया". मालूम नहीं इन के अध्यापक की राय सही मानी जायेगी या नहीं किंतु संपूर्णानंदजी जहाँ भी रहे और जिस भी क्षेत्र में इन्होंने काम किया इन के अच्छा आदमी होने में कोई खोंच नहीं लगी. इन की मर्यादाएँ थीं और उन मर्यादाओं को छोड़ना इन्होंने कभी उचित नहीं माना. मर्यादा पुरुष होने के कारण इन की आस्थाएँ कठोर अनुशासन की अपेक्षाएँ रखती थीं. अक्सर ऐसा हुआ है कि इन के अनुशासन से थोड़े समय के लिए लोगों को कष्ट पहुँचा हो किंतु निरपेक्ष बुद्धि से विचार करने पर सदा इन के विरोधी भी इन के आदर्शों के प्रति नत-मस्तक हुए हैं. शिक्षक की हैसियत से विद्यार्थियों के साथ इन्हीं आदर्शों और मर्यादाओं की रक्षा के लिए इन्होंने कठोरता के साथ व्यवहार किया, राजनेता के रूप में भी यही भावना इन्हें अपने साथ और सहयोगियों के प्रति सदा गंभीर और कठोर अनुशासक के रूप में बनाये रखती थी. और परिवार में भी यही अनुशासन सब को व्यवस्थित रखता था और सदा आदर्श की ओर प्रेरित करता रहता था. इन के साथ प्रातःकाल जलपान के लिए बिना स्नान किये हुए छोटे-से-छोटे बालक का भी बैठना संभव नहीं था. और इन का भोजन सदा भगवान के प्रति समर्पण और अर्घ्यदान से प्रारंभ होता था. ये घर में हों, यात्रा पर हों, देश में हों, विदेश में हों, इन की मान्यताओं और उन के प्रति व्यवहार में कभी अंतर नहीं पड़ा.

संपूर्णानंद जी को यह देश इने-गिने विद्वानों में मानता है. सन् १९४८ में जब उन्हें लखनऊ विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ फ़िलासाफी की उपाधि दी गयी थी तो इन के गुणों का बखान करते हुए **श्रीमती** सरोजिनी नायडू ने कहा, "संपूर्णानंद जी विद्वानों में विद्वान् है, हमें उन पर गर्व है". इसी प्रकार की बात काशी पटदर्श विद्वान् **गोस्वामी जी** ने भी इन के 'चिदविलास' के प्रकाशन पर कही थी. उन की मान्यता थी कि दर्शन का इन्हें अभूतपूर्व ज्ञान है. वेदों, उपनिषदों और पुराणों का इन्होंने बड़ा गहरा अध्ययन किया था किंतु एक वाक्य में कहा जाये तो इन के अध्ययन की सीमा नहीं थी. ऐसी थोड़ी-सी ही विद्याएँ होंगी जिन में इन की गति नहीं थी अन्यथा ज्ञान-विज्ञान का कोई क्षेत्र क्यों न हो यह किसी को भारी पत्थर मान कर छोड़ने के लिए कभी प्रस्तुत नहीं हुए. इन की सारी दिनचर्या का अधिकांश स्वाध्याय से बाधित था. इन के पांडित्य पर यदि इस देश और हिंदी भाषा को गर्व हो तो यह नितांत उचित है.

राजनीति के क्षेत्र में और प्रशासक के रूप में इन्होंने जो कार्य किया है उस को थोड़े में समेटना संभव नहीं है. इन के सभी कार्य दृढ़ संकल्प के साथ होते थे. केवल दो उदाहरण इस समय पर्याप्त होंगे. उत्तरप्रदेश के मुख्य-मंत्रित्व से इस्तीफ़ा देने के लिए यह किन कारणों से कृत-संकल्प हुए इस का उल्लेख यद्यपि यहाँ उचित नहीं है फिर भी उन के इस संकल्प पर डटे रहने के कारण उत्तरप्रदेश में जो परिवर्तन हुआ वह सब के सामने है. किंतु बात कह देने के बाद उस से विरत होना अमर्यादित होता और यह जानते हुए और लोगों के बार-बार परामर्श देने के बावजूद कि उन के शासन की बागडोर छोड़ देने पर उत्तरप्रदेश की नाव बिना पतवार के हो जायेगी, वह अपनी बात से पीछे नहीं मुड़े. राजस्थान में सिद्धांत की बात थी. कांग्रेस सब से बड़ा राज-नैतिक दल इन्हें प्रतीत हुआ और इस बात का विश्वास कर लेने के बाद उन्होंने जो बयान दिया और जिस प्रकार राजस्थान में व्यवस्थित शासन की स्थापना की भले ही उसने इन्हें थोड़े दिनों के लिए विरोधियों के बीच अप्रिय सत्य कहने के कारण निंदा का पात्र बना दिया हो किंतु इन का निश्चय अपना अंतिम निश्चय था.

संपूर्णानंद के न रहने पर भारतीय मजदूर ने एक विचारवान नेता खोया है, भारत के ग़रीबों ने समाजवाद का ऐसा व्याख्याता खोया है जो भारत को समृद्ध देखना चाहता था किंतु जो उस के समाज को विकलांग नहीं करना चाहता था, शासनतंत्र ने ऐसा प्रशासक खोया है जो इस तंत्र को तमाम आधुनिक साधनों से संपन्न करते हुए भी भारतीय आचार-विचार और नैतिकता पर आधारित रख सकता था और भारतीय राजनीति ने ऐसा द्रष्टा खोया है जो भविष्य को पहचानता था, जो आगे की सोच सकता था और जो राजनीति में दलगत भेदों से ऊपर उठ कर देश के हित के लिए नैतिकता और आदर्श पर आधारित राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण के गठन पर ज़ोर देता था. आज ऐसे संपूर्णानंद जी के न रहने पर यह देश बहुत दिनों तक अपने बीच एक ऐसे अभाव का अनुभव करता रहेगा जिस की पूर्ति कब होगी कौन जाने. संपूर्णानंद जी का जीवन जरूर समाप्त हुआ है किंतु उन का जीवन चरित प्रारंभ हुआ है. उन के जीवन चरित की बहुत-सी बातें आगे आयेंगी. वह अपने यशः शरीर से सदा जीवित रहेंगे.

ताशकंद वर्षगाँठ

सद्भाव के अथक प्रयत्न

ताशकंद समझौते की तीसरी वर्षगाँठ भारत ने पाकिस्तान के सामने आपसी संबंध सुधारने की ठोस योजना रख कर मनायी तो पाकिस्तान में राष्ट्रपति अय्यूब खाँ के विरोधियों ने लाहौर और कराची में इस अवसर पर प्रदर्शन कर ताशकंद घोषणा की तो निंदा की ही साथ ही सोवियत संघ को संशोधनवादी बता कर उस के विरुद्ध भी नारे लगाये. इन प्रदर्शनों में छात्रों और भूतपूर्व विदेशमंत्री श्री भुट्टो की वामपंथी पीपुल्स पार्टी के लोगों ने मुख्य रूप से भाग लिया. लाहौर में जहाँ कि ताशकंद समझौते पर दस्तखत होते ही उपद्रव हुए थे जुलूस निकाला गया, भुट्टो के समर्थकों और पाकिस्तान के दक्षिणपंथी लोकतंत्र आंदोलनकारियों के बीच मुठभेड़ हुई जिस में एक छात्र के घायल होने का समाचार भी मिला है.

भारत के प्रयत्न : भारत ने इस अवसर के महत्त्व को समझते हुए सभी आपसी मतभेदों को दूर करने और अंत में दोनों देशों के बीच युद्ध वर्जन की घोषणा की संभावनाओं का पता लगाने के लिए अपनी ओर से संयुक्त व्यवस्था का सुझाव पाकिस्तान के सामने रखा. इस से पहले भारत के राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन और प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने ताशकंद की तीसरी वर्षगाँठ के अवसर पर राष्ट्रपति अय्यूब खाँ को संदेश भेज कर पाकिस्तान की सुख-समृद्धि की कामना की थी. भारत स्थित पाकिस्तान के उच्चायुक्त सज्जाद हैदर को भारत के विदेशमंत्रालय के सचिव केवलसिंह ने जो पत्र दिया उस के साथ ही इस विषय पर श्रीमती गांधी के हाल ही के संवाददाता-सम्मेलन में व्यक्त विचार की एक प्रामाणिक प्रति भी दी गयी जिस से कि इस प्रश्न पर भारत का रवैया और भी स्पष्ट हो जाय.

भारत ने अपनी ओर से इस बात की सहमति दे दी है कि पाकिस्तान जिस स्तर पर भी चाहे उसी स्तर पर संयुक्त व्यवस्था की स्थापना हो सकती है लेकिन भारत के विचार में इस संयुक्त व्यवस्था का सब से पहला काम यह होगा कि दोनों देशों की ओर से युद्ध का त्याग करने के बारे में समय समय पर जो विचार प्रकट किये जाते रहे हैं, उन का भली प्रकार अध्ययन कर उन्हें वास्तविकता का रूप दिया जाये. भारत अब भी यही समझता है कि यदि दोनों देश युद्ध के त्याग की प्रतिज्ञा कर लें तो उन के आपसी मतभेदों की समस्याओं के समाधान का मार्ग सुगम हो जायेगा.

पाक रवैये में कुछ परिवर्त्तन : भारत ने संयुक्त व्यवस्था का यह ताज़ा प्रस्ताव पाक रवैये में कुछ परिवर्त्तन का आभास मिलने पर ही रखा है. पिछले वर्ष २७ अक्तूबर को राष्ट्रपति अय्यूब खाँ ने अपने एक भाषण में यह सुझाव रखा था कि अन्य प्रश्नों पर मतभेद तय करने के साथ-साथ ही युद्ध का त्याग करने की घोषणा के आदान-प्रदान की बातचीत भी दोनों देशों में होनी चाहिए जब कि इस से पहले श्रीमती गांधी ने १५ अगस्त '६८ के अपने संदेश में युद्धवर्जन की घोषणा के आदान-प्रदान का जो प्रस्ताव दोहराया था उस पर राष्ट्रपति अय्यूब की प्रतिक्रिया यह थी कि कश्मीर का मामला तय किये बिना इस तरह का प्रस्ताव रखना दुनिया को धोखे में डालना है. इस संदर्भ में राष्ट्रपति अय्यूब का अक्तूबर में रखा गया सुझाव उन के रवैये में परिवर्त्तन का स्पष्ट संकेत है. एक बड़ा परिवर्तन तो यह कि राष्ट्रपति अय्यूब युद्धवर्जन प्रस्ताव के लिए अन्य मतभेदों के निपटारे को एक शर्त नहीं बना रहे हैं. दूसरे वे यह स्वीकार कर रहे हैं कि मतभेद दोनों देशों में सीधी वार्त्ता से तय होने चाहिए किसी तीसरे पक्ष की मध्यस्थता से नहीं. अपने नव वर्ष संदेश में श्रीमती गांधी ने राष्ट्रपति अय्यूब के रवैये में इस परिवर्तन पर प्रतिक्रियास्वरूप यह अनुभव किया कि युद्धवर्जन घोषणा के आदान-प्रदान के समझौते और मतभेद वाले अन्य मामलों को निपटाने का कार्य एक साथ करने के लिए संयुक्त व्यवस्था स्थापित की जा सकती है.

भारत ताशकंद-समझौते पर क़ायम : पाकिस्तान की इस समझौते के प्रति उदासीनता के बावजूद भारत ने ताशकंद समझौते की अनेक व्यवस्थाओं को मूर्त्त रूप दिया है. पाक-भारत संघर्ष के दौरान सैनिक टैंकों को छोड़ अधिकार में लिया गया समूचा साज़-सामान भारत ने लौटा दिया. वीसा और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के मामलों में नियमों को अधिकाधिक उदार बनाने का अनुरोध भी भारत बराबर करता रहा है. इस के अलावा कश्मीर सहित अन्य मामलों पर बिना कोई शर्त लगाये बातचीत के सुझाव भी भारत की ओर से बराबर रखे जाते रहे हैं.

ललिता शास्त्री : आराध्य की आराधना

एक और चाल : अपनी भारत यात्रा के दौरान शाह ईरान ने दोनों देशों को आपसी सहयोग और बातचीत से मतभेद दूर करने का सुझाव दिया. मगर पाकिस्तान ने इस की ग़लत व्याख्या करते हुए एक नया राजनयिक दाँव खेलना आरंभ किया है. शाह ईरान ने अपने पत्रकार सम्मेलन में यह प्रस्ताव कभी नहीं रखा कि वह भारत-पाकिस्तान के मतभेदों को दूर करने के लिए मध्यस्थ का कार्य करने के लिए उत्सुक हैं. उन से जब पूछा गया कि क्या वह इस मामले को सुलझाने में सहायता देंगे तो उन्होंने कहा 'कि ऐसा उसी स्थिति में हो सकता है जब कि दोनों पक्ष मुझ से ऐसा करने को कहें और वह कह भी दें तब भी मैं कोई क़दम तभी उठा सकता हूँ जब मुझे स्पष्ट रूप से मालूम हो जाय कि वह चाहते क्या हैं.' उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि इन दो राष्ट्रों को मेरे बिना ही मतभेद दूर करना चाहिए. भारत की नीति भी यही रही है कि भारत पाकिस्तान की समस्या ही इस प्रकार की है कि उस का हल दोनों पक्षों की आपसी बातचीत से ही निकाला जा सकता है. भारत सरकार के एक प्रवक्ता ने कहा कि भारत किसी तीसरे की मध्यस्थता के पक्ष में नहीं है. भारत-ईरान संयुक्त विज्ञप्ति में भी मध्यस्थता के प्रस्ताव का कोई ज़िक्र नहीं है, बल्कि ईरान के शाह ने भारत के उन प्रयत्नों की सराहना की है जो वह पाकिस्तान से अपने संबंध सुधारने के लिए कर रहा है, इस संबंध में जहाँ कुछ राजनैतिक दलों ने भारत के युद्ध न करने के प्रस्ताव का स्वागत किया है वहीं जनसंघ के नेता वाजपेयी ने घोषणा की है कि उन का दल इस प्रस्ताव का विरोध करेगा क्यों कि पाकिस्तान ने शाह के शब्दों को तोड़-मरोड़ कर भारत पर एक नया राजनयिक वार किया है . राजनैतिक हल्कों में पाकिस्तान के इस प्रस्ताव के दोहरे उद्देश्य की चर्चा है. यह कह कर कि पाकिस्तान, शाह ईरान के मध्यस्थता के प्रस्ताव (जो उन्होंने दिया नहीं था) को स्वीकार करता है उस ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि पाकिस्तान शांति के लिए प्रयत्नशील है मगर दूसरा उद्देश्य अधिक गंभीर और कुटिलतापूर्ण है. इस प्रस्ताव का विरोध करवा कर पाकिस्तान ईरान और भारत की मित्रता में दरार पैदा करना चाहता है. ताशकंद-समझौते के बाद सभी देशों ने यह महसूस किया कि कश्मीर की समस्या का हल केवल भारत और पाकिस्तान ही निकाल सकते हैं, तीसरा कोई नहीं.

कच्छ निर्णय

न्यायालय के मंच से

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने कच्छ-प्रश्न पर अपना निर्णय दे कर इस संबंध के समूचे विवाद और आंदोलन की संभावनाओं को समाप्त कर दिया. अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के कच्छ संबंधी निर्णय को ले कर भारत में बहुत उत्तेजना फैली थी और संसद् में तथा संसद् से बाहर इस पर तीव्र विवाद उठ खड़ा हुआ था.

न्यायालय के द्वार पर : आंदोलनों और प्रदर्शनों का रास्ता छोड़ कर इस के लिए न्यायालय का द्वार खटखटाया गया और अनेक नागरिकों ने न्यायालय में इस आशय की याचिकाएँ पेश कीं कि संसद् की स्वीकृति के बिना केंद्र सरकार भारत का कोई भी इलाक़ा पाकिस्तान को हस्तांतरित नहीं कर सकती, इस लिए भारत सरकार को अंतरराष्ट्रीय अदालत द्वारा दिया गया कच्छ-निर्णय लागू करने से रोका जाये.

अंतिम निर्णय : अपना अंतिम निर्णय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने कहा है कि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय को लागू करने के लिए दोनों सरकारों ने पत्र व्यवहार द्वारा जो फ़ैसले किये हैं वे सरकार के कार्यकारी पक्ष के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं. इस के लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता नहीं है. सर्वोच्च न्यायालय की दृष्टि से यह भारत के किसी प्रदेश को दूसरे देश को सौंपने का मामला नहीं है बल्कि दोनों देशों के बीच पहले से निर्धारित सीमा में कुछ फेर बदल का मामला है, जो कार्यकारी पक्ष के पूर्ण रूप से अधिकार-क्षेत्र में है. दो देशों के बीच सीमा का फेर-बदल जो अंतरराष्ट्रीय क़ानून की दृष्टि से आवश्यक हो, कार्यकारी पक्ष के अधिकार की चीज़ है और यह तब तक उसी का अधिकार है जब तक संसद् से इस के विपरीत कोई स्पष्ट आदेश न लिया गया हो.

सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील सुनने का अधिकार इस न्यायालय को नहीं है, इस लिए इसे अपील नहीं माना जाना चाहिए. तथ्य यह है कि भारत अंतरराष्ट्रीय न्यायालय का निर्णय मानने के लिए वचनबद्ध है और यह निर्णय लागू होना ही चाहिए था. सर्वोच्च न्यायालय का कहना था कि कच्छ का रण्ण समूचा भारतीय प्रदेश है, इस के पक्ष में कोई ठोस और स्पष्ट सबूत नहीं मिला, इस लिए इसे सीमा-विवाद ही समझना चाहिए मुख्य न्यायाधीश का कहना था कि अंतरराष्ट्रीय न्यायालय के निर्णय से पहले स्थिति यह थी कि संघर्ष शुरू हुआ. फिर युद्ध-विराम हुआ, और पंच फ़ैसले द्वारा झगड़ा तय होना था. दोनों पक्षों ने अपने-अपने दावे पेश किये और सीमा पर ऐसे निशान नहीं थे जिन्हें दोनों पक्ष स्वीकार करते हों. नक़्शे में इस क्षेत्र की कोई निरंतर सीमा अंकित नहीं रही और अलग-अलग ऋतुओं में इस प्रदेश की स्थिति अलग-अलग रहती है. वर्ष में कभी यह जलयुक्त तो कभी ख़ुश्क होता है. ऐसी स्थिति में इसे सीमा के पार का प्रदेश मानने या न मानने का प्रश्न नहीं है. सर्वोच्च-न्यायालय ने अंत में कहा है कि सुनवाई में जो काग़ज़ात पेश किये गये उन से सीमा-निर्धारण में सहायता मिली पर स्वर्गीय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और लालबहादुर शास्त्री का यह कहना कि कच्छ का समचा रण्ण भारत का है, न्यायालय के लिए कोई सबूत नहीं होसकता.

प्रतिरक्षा

दूसरी पनडुब्बी

रूस ने १९६५ में भारत के साथ एक समझौता किया था जिस के अंतर्गत उस ने भारत को ४ पनडुब्बियाँ देने का इक़रार किया था. कलवरी नाम की पहली पनडुब्बी ६ जुलाई १९६८ को जब विशाखापत्तनम् नौसैनिक अड्डे पर पहुँची थी, तब उस के स्वागत के लिए लगभग सारा नौसैनिक अमला वहाँ मौजूद था. कंदेरी नाम की दूसरी पनडुब्बी रूस मई में भारत को देगा और शेष दो पनडुब्बियाँ एक साल के भीतर दे दी जायेंगी. कंदेरी पनडुब्बी को दो सप्ताह पूर्व बल्टिक सागर के रीगा नौसैनिक अड्डे पर संचालन के लिए उतारा गया यहीं ७० भारतीय सैनिकों ने प्रशिक्षण लिया. कंदेरी को भारत लाने के लिए भारतीय नौसैनिकों का एक दल मार्च में रीगा पहुँचेगा और कंदेरी केप ऑफ़ गुड होप से १२,००० मील का सफ़र दो महीने में तय कर मई में विशाखापत्तनम् पहुँच अपना स्थान कलवरी के साथ ग्रहण करेगी. यह पनडुब्बी 'एफ़' प्रकार की होगी. जैसे कि कलवरी पनडुब्बी थी. इस का चालन डीज़ल से होगा और आकार ३०० फ़ुट × २७ फ़ुट × १९ फ़ुट होगा और ड्रैस पर २००० टन तक भार लादा जा सकेगा. यह पनडुब्बी २० टारपीडो और ७० चालकों के स्थान पर भार वहन कर सकती है.

आधुनिकीकरण : अपनी नौसेना का आधुनिकीकरण करने की इच्छा पहले-पहल भारत ने १९६५ में पाकिस्तान के हमले के बाद महसूस की. इस के पूर्व भारत यह समझता था कि उस की नौसैनिक शक्ति ख़ासी है और वह अपने १२ मील के क्षेत्रीय समुद्र जो अंदमान निकोबार, मिनिकाय और लकादीवी द्वीपों के आसपास हैं की रक्षा बख़ूबी कर सकता है. लेकिन बहुत जल्दी भारत का यह मोहभंग हो गया और उस ने यह महसूस किया कि उस की नौसेना काफ़ी शक्तिशाली नहीं है, जब तक उस के पास आधुनिक पनडुब्बियाँ नहीं होंगी, तब तक उसे चीन या पाकिस्तान से हमले का संभावित ख़तरा बना रह सकता है. भारतीय अमले में इस समय एक विमान-वाहक, दो जंगी जहाज़, ३ विनाशक, १४ फ़्रिगेड और कई छोटे-छोटे जहाज़ हैं. इन में से बहुत से लड़ाकू जहाज़ या तो बहुत पुराने हो चुके हैं, या पुर्ज़ों के अभाव के कारण नाकाम पड़े हुए हैं. आधुनिकीकरण करने के इस दौर में भारत ने रूस के अलावा ब्रिटेन से भी संबंध क़ायम किये और ब्रितानी 'लीडर' क़िस्म के फ़्रिगेड बंबई में बनाने के लिए एक ब्रितानी संस्था से सहयोग की बात की थी. इस क़िस्म के एक फ़्रिगेड का संचालन पिछले साल किया गया है और आशा की जा रही है कि १९७० तक यह फ़्रिगेड अपना काम चालू कर देगी.

नौसैनिक शक्ति : जहाँ तक भारत की प्रतिरक्षा का संबंध है भारत के पास जहाँ ९ लाख सेना है वहाँ नौसैनिकों की संख्या केवल १७,००० है जब कि इंदोनेसिया की नौसैनिक शक्ति ४०,००० है और उस के पास १२ पनडब्बियाँ, ७ विनाशक और १२ फ़्रिगेड हैं. इस्राइल जैसे छोटे से देश के पास भी ४ पनडुब्बियाँ हैं. पाकिस्तान के पास एक पनडुब्बी और दो बड़े विनाशक हैं जब कि चीन के पास २३ बढ़िया क़िस्म की पनडुब्बियाँ और ७ रूसी पनडुब्बियाँ हैं. उस के ज़ख़ीरे में विनाशकों की संख्या १० और १५० मोटर टारपीडो नौकाएँ हैं.

उप-चुनाव

विरधू नगर से नागर-कोल तक

सन् ६७ के आम चुनाव में विरधूनगर से कांग्रेस के जो कामराज एक मामूली छात्र नेता से पराजित हो गये थे वही कामराज इस उप-चुनाव में द्रमुक सरकार की सारी शक्ति के प्रतीक मथाई को एक लाख २८ हज़ार मतों से पराजित करने में सफल हो गये. पिछले महीने भर में नागरकोल क्षेत्र में मद्रास सरकार के सारे मंत्रियों के कैंप लगे रहे. ग़ैर कांग्रेसी विभिन्न दलों की ओर से जन और धन की जो वर्षा होती रही वह सब बेकार हो गयी. क्यों कि यह चुनाव प्रतिष्ठा का चुनाव था इस लिए कांग्रेस ने भी प्रचार में कोई कसर नहीं उठा रखी थी. दोनों ओर की कोशिशों के बाद जो नतीजा निकला उस से यह बात साफ़ हो गयी कि सन् ६७ की राजनैतिक हवा में कांग्रेस का जो विरोध था वह ६९ के प्रारंभ में वैसा ही नहीं रह गया था. द्रमुक सरकार के मंत्री विशेष कर करुणानिधि वग़ैरह असली कारणों को नजरअंदाज कर के यह कह कर खुद को बहलाने की कोशिश कर रहे हैं कि चुनाव जातीयता के आधार पर हुआ उस में रुपये ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की. द्रमुक के कुछ लोगों को यह भी शिकायत है कि कम्यु-

निस्टों ने उन का साथ ईमानदारी से नहीं दिया. असलियत यह है कि कामराज को जितने वोट मिले वे सभी विरोधी उम्मीदवारों को मिले मतों से कहीं ज्यादा हैं. इसी लिए किसी एक का साथ देने का कोई महत्त्व कामराज के लिए नहीं रह जाता. नागरकोल की सीट पिछले दो चुनावों से कांग्रेस की परंपरागत सीट रही. वह ए. नेसामणि के निधन के बाद रिक्त हुई थी. नेसामणि उस क्षेत्र के बहुत ही लोकप्रिय नेता थे. इस चुनाव में कामराज को अपनी निजी प्रतिष्ठा के अलावा कांग्रेस और नेसामणि के नाम का लाभ भी मिला. राजनैतिक हवा के बदल जाने का एक संकेत पिछले दिनों के मद्रास नगर निगम के चुनाव में भी मिला था जिस में कांग्रेस बहुमत में तो नहीं आ सकी थी लेकिन उस की प्रतिष्ठा ज़रूर बढ़ गयी थी.

मतभेद और असफलता : द्रमुक सरकार की इकाइयों में मतभेद के संकेत पहले भी मिले थे. इस उपचुनाव के अवसर पर वे स्पष्ट हो कर सामने आ गये. संयुक्त मोर्चे ने स्वतंत्र दल के डॉ. मथाई को समर्थन देने का फ़ैसला किया लेकिन वामपंथी उस से सहमत नहीं हुए और उन्होंने अपना उम्मीदवार अलग से खड़ा किया. आम चुनाव के पहले द्रमुक ने जनता से जो वायदे किये थे उन्हें पूरा करने में उसे सफलता नहीं मिली. शासक के रूप में द्रमुक सरकार ने जो कट्टरपंथी नीति अपनाई उस से लाभ की बजाय हानि हुई. इस का क प्रमाण तो यही है कि रेडियो से सुबह के ८ बजे हिंदी का समाचार पहले प्रसारित किये जाने के विरोध में द्रमुक ने जो उत्तेजना फैलाने की कोशिश की थी उस का नागरकोल चुनाव क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं देखा गया. उस की लोकप्रियता में भी निरंतर कमी आई है. नगर निगम के चुनावों में उस की प्रतिष्ठा गिरी, आर्थिक मंच पर उस ने जनहित का कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया. भाषा-संबंधी दृष्टिकोण ने एक वर्ग को शंका का शिकार बनाया, कृषि क्षेत्र में भी जनता को आकर्षित करने के लिए कोई काम नहीं हुआ. इस चुनाव के ठीक पहले राजा जी और स्वतंत्र दल ने भी द्रमुक को यह सुझाव दिया कि वह वामपंथी कम्युनिस्टों से अपना संबंध तोड़ ले. लेकिन उस ने ऐसा नहीं किया. संभावना इस बात की भी है कि आने वाले दिनों में करुणानिधि और उन के समर्थक भी द्रमुक को इसी तरह का दबाव दे सकते हैं.

कामराज की विजय में कांग्रेस की एकता का भी बहुत बड़ा हाथ है. सुब्रह्मण्यम और टी. टी. कृष्णमाचारी ने जिस उत्साह और ईमानदारी से प्रचार-आंदोलन को गति देने की कोशिश की उस से यह स्पष्ट था कि दल के भीतर के मन-मुटाव समाप्त हो गये हैं. एकता की यह स्थिति यदि वास्तविक अर्थों में भविष्य में भी बनी रही तो उस से कांग्रेस की स्थिति बेहतर होगी. मद्रास राज्य में कांग्रेस के आपसी मन-मुटाव की प्रवृत्ति काफ़ी गंभीर रूप ले चुकी थी. अगर इस चुनाव के साथ-साथ वह खत्म हो गयी तो उस से भी द्रमुक को काफी आघात लगेगा.

इस चुनाव ने कामराज की उस शर्मिंदगी को भी खत्म किया है जो उन्हें सन् '६७ के आम चुनाव में पराजित हो जाने के बाद मिली थी. निश्चय ही संसद् सदस्य के रूप में अब वह प्रधानमंत्री और उत्तर भारत दोनों के नज़दीक रहेंगे. चर्चा तो यह भी है कि उन्हें केंद्रीय मंत्रिमंडल में रखा जा सकता है. ऐसा न हो तब भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. कामराज संगठन में सक्षम और दूरदर्शी हैं. उन की एक विशेषता यह भी है कि वह विरोधी गुटों को किसी न किसी तरह एक बिंदु पर ला कर समझौते की स्थिति पैदा करने में भी सक्षम हैं. उन के संसद् में आ जाने से उत्तर और दक्षिण का संपर्क-सूत्र कुछ अधिक जीवंत होगा और बहुत मुमकिन है कि मद्रास और केंद्र के बीच रस्साकशी की जो स्थितियाँ यदा-कदा पैदा होती रही हैं उन में भी कमी आये. द्रमुक सरकार के शासनकाल में मद्रास राज्य निरंतर केंद्र से अलग होने की प्रवृत्ति को उकसाता रहा है और इस की वजह से राष्ट्रीय एकता की धारा भी बाधित होती दिखाई देती रही है. कामराज का राष्ट्रीय मंच पर उद्भव इन सारी चीजों को सही दिशा देने में सहायक हो सकेगा.

शिक्षक आंदोलन

ग़ैर-कांग्रेसी मोड़

माध्यमिक शिक्षकों का आंदोलन अधिक उग्र होने के कारण उन्हें प्राथमिक शिक्षकों की अपेक्षा समझौते से अधिक लाभ मिला है. बंदी शिक्षकों को रिहा करने और आंदोलन में भाग लेने के कारण उन के विरुद्ध किसी प्रकार की क़ानूनी या अनुशासनात्मक कार्यवाही न करने के लिए शासन को वचन-बद्ध कराया गया है. फलत: ग़ैर-सरकारी माध्यमिक शिक्षकों को कम से कम १५ रु० और अधिक से अधिक ४० रु० प्रतिमास का वेतन में लाभ होगा. महँगायी भत्ते के रूप में अतिरिक्त मिलने वाली क़िश्त अलग है.

सरकार को प्राथमिक शिक्षकों के कारण ६ करोड़ २५ लाख रु० का अतिरिक्त भार वहन करना होगा. माध्यमिक शिक्षकों के कारण यह भार १ करोड़ ४० लाख रु० होगा और व्यय की यह रक़म हर साल बढ़ती जायेगी. कम लाभ मिलने पर भी प्राथमिक शिक्षकों का खर्चा इस लिए अधिक हो गया है क्यों कि माध्यमिक शिक्षकों की अपेक्षा उन की संख्या अत्यधिक है.

'९६ दिन के आंदोलन के बाद भी उ. प्र. सरकार ने जो कुछ प्राथमिक शिक्षकों को दिया है, वह अपनी समझ और स्वेच्छा से नहीं, विभिन्न प्रकार के दबावों से मजबूर हो कर. यही कारण है कि प्राथमिक शिक्षकों ने अपने अनशन का कार्यक्रम तो समाप्त कर दिया है किंतु आंदोलन जारी रखा है. इस समय वे अपने आंदोलन की नयी रूप-रेखा बना रहे हैं और अति शीघ्र यह आंदोलन शुरू कर दिया जायेगा'. अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक संघ के अध्यक्ष हीरालाल पटवारी ने ये शब्द **दिनमान** के इस प्रश्न के उत्तर में कहे कि उत्तरप्रदेश के प्राथमिक शिक्षक आंदोलन का उन का अपना अनुभव क्या रहा.

'आर्थिक स्थिति तो प्राय: सभी राज्य सरकारों की डावाँडोल है, कम से कम राज्य सरकारें कहती यही हैं. किंतु प्रश्न मनोवृत्ति का है. उत्तरप्रदेश की सरकार में वांछित मनोवृत्ति का अभाव है वरना मिलजुल कर, एक-दूसरे की आवश्यकताओं को समझ कर ऐसे उपाय निकाले जा सकते हैं जिन से पारस्परिक टकराव की नौबत न आये. बातचीत में राज्यपाल का रुख ही ठीक न था. २७ सितंबर को मुख्य सचिव भी समस्याओं पर बात चलाने को इस कारण तैयार नहीं हुए क्यों कि कोठारी आयोग की रिपोर्ट में प्राथमिक शिक्षकों के लिए कोई वेतन-क्रम निर्धारित नहीं किया गया है.'

श्री पटवारी का कहना है कि जहाँ-जहाँ शिक्षण संस्थाएँ जिला परिषदों के अंतर्गत

हैं, वहाँ-वहाँ राजनीति है और उत्तरप्रदेश में भी है. अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक संघ का मत है कि प्राथमिक शिक्षा को स्वस्थ बनाने के लिए इन शिक्षण संस्थाओं और इनके शिक्षकों को ज़िला परिषदों से छुटकारा दिलाना होगा. उस का यह भी निश्चित मत है कि प्राथमिक शिक्षा—हर स्तर की शिक्षा—केंद्रीय विषय होना चाहिए. संघ अपनी तरह से इसके लिए प्रयत्नशील है. यह एक बात अपनी जगह बिलकुल अलग है, **किंतु उत्तर-प्रदेश में, जहाँ प्रायः सभी ज़िला परिषद् कांग्रेस दल के प्रभाव में हैं, इन ज़िला परिषदों के अध्यक्षों द्वारा प्राथमिक शिक्षकों के वेतन से जबरन कांग्रेस-चुनाव कोष के लिए रुपया काटा जाता है. श्री पटवारी का कहना है कि क़ानून के ख़िलाफ़ यह अनैतिक कार्य प्रदेश भर में होता है. उन को बताया गया है कि राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में भी प्राथमिक शिक्षकों से लिया गया धन कहीं-कहीं नहीं जमा किया गया या उस का हिसाब-किताब ठीक से नहीं रखा गया. इस के अलावा पटवारी को सूचना मिली है कि कांग्रेस नेताओं के जन्म-दिवस मनाने के लिए भी शिक्षकों की तनख्वाह काट कर जबरन चंदा वसूल किया गया है. इस प्रकार प्राथमिक शिक्षक कांग्रेस दल की गाय बन गये हैं, जब चाहो दुहने के लिए. इस से अधिक अफ़सोस की बात यह है कि जब कांग्रेस विधाताओं को यह सब बताया गया तो एक ने कहा, 'यह नहीं होना चाहिए, पर इस की चर्चा करने से कांग्रेस बदनाम होती है.' दूसरे ने कहा, 'इस में क्या हुआ, यह तो बराबर होता ही रहा है.'** श्री पटवारी इस से बिलकुल सहमत नहीं हैं. 'मैं भारत के प्रायः सभी प्रदेशों में गया हूँ और वहाँ की स्थिति का अध्ययन किया है, किंतु कहीं पर ऐसा नहीं पाया. निःसंदेह यह उत्तरप्रदेश की ही विशेषता है. एक ओर तो यह स्थिति है और दूसरी ओर जब शिक्षकों के वेतन या महगाई भत्ता बढ़ाने का प्रश्न होता है तब इसी कांग्रेस के एक प्रभावशाली मुख्य-मंत्री ने तरह-तरह से इस का विरोध किया है. यह बी. जी. खेर कमेटी के सामने हुआ था जब वह उत्तरप्रदेश में आयी थी. प्राथमिक शिक्षकों की दशा सुधारने के काम में सभी प्रदेशों में कुछ न कुछ अड़चनें सामने आती हैं किंतु इस संबंध में उत्तरप्रदेश के मेरे अनुभव कटु तो क्या कहूँ, प्रिय, सुखद और उत्साहवर्धक नहीं रहे. पर मैं हतोत्साह नहीं हूँ. संघर्ष हमारी प्रयोगशाला है. परीक्षा के पर्चे कठिन और सरल हुआ ही करते हैं.'

अखिल भारतीय स्तर पर प्राथमिक शिक्षकों की समस्याएं क्या हैं और केंद्र उन से किस प्रकार संबद्ध है, इस संबंध में पटवारी ने कहा कि ज़िला परिषदों के प्राथमिक शिक्षकों को समय से वेतन नहीं मिलता. और इस हेतु मिलने वाला सरकारी अनुदान अन्य कार्यों में लगा दिया जाता है; जो शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए भेजे जाते हैं उन की सेवाएँ समाप्त कर दी जाती हैं और उन को नाममात्र के लिए प्रशिक्षण काल में स्टाइपेंड दिया जाता है—वेतन नहीं; शिक्षकों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर नहीं की जाती और स्थानांतरण के बहाने उन्हें सताया जाता है; महिला शिक्षकों की विशेष दुर्गति होती है; शिक्षकों से भविष्य निधि के लिए उगाही गयी धनराशि का कोई हिसाब नहीं रखा जाता, शिक्षकों को उस का कोई ब्यौरा नहीं दिया जाता और ऐसे दृष्टांत भी नजर आये हैं जिन में संपूर्ण भविष्य निधि गोल हो गयी है. उदाहरण के लिए उन्होंने असम के डिबरूगढ़ का नाम लिया जहाँ शिक्षकों की भविष्य निधि में गड़बड़-घोटाला किया गया और बाद में राज्य सरकार को वह रक़म अपने पास से भरनी पड़ी. फिर भी अब तक यह पता नहीं चल पाया कि किस शिक्षक के खाते में कितनी रकम जानी चाहिए. पटवारी के अनुसार ये गड़बड़ियाँ प्रायः सभी प्रदेशों में चल रही हैं. इन का निराकरण आवश्यक है. **ज़िला परिषद् सभी जगह भ्रष्टाचार के केंद्र हैं, उन की छत्र-छाया में प्राथमिक शिक्षा का विकास नहीं हो सकता. प्राथमिक शिक्षक खुश नहीं रह सकते. इस दिशा में राज्य कोई दिलचस्पी नहीं लेते** और यदि वे यह विषय पूर्णतः अपने अधिकार में ले भी लें अर्थात् ज़िला परिषदों को इस भार से सर्वथा मुक्त कर दें तब भी हर राज्य अपने क्षेत्र में अपनी तरह से काम करेगा. प्राथमिक शिक्षा का देश में एक स्तर नहीं बन पायेगा और न उस की समानगति से देशव्यापी प्रगति हो सकेगी. इस कारण समस्या का सीधा संबंध केंद्र से हो जाता है. यह तो समस्या का केंद्र से मूल संबंध हुआ. वैसे भी कोठारी आयोग, जिसने प्राथमिक शिक्षा व शिक्षकों के बारे में सिफ़ा-रिशें की हैं, केंद्र द्वारा नियुक्त किया गया था अतः उस की स्वीकृत सिफ़ारिशों को राज्यों द्वारा लागू कराने का उत्तरदायित्व केंद्रीय सरकार का है. अ. भा. प्राथमिक संघ कोठारी आयोग की सिफ़ारिशों को अपर्याप्त समझता है और घोषित राष्ट्रीय शिक्षा-नीति को प्राथमिक शिक्षा के संबंध में घोर निराशाजनक.

प्राथमिक शिक्षकों के दारुलशफ़ा में हुए एक विशेष अधिवेशन में एक प्रस्ताव द्वारा यह निश्चय किया गया है कि मध्यावधि चुनाव में कांग्रेसी प्रत्याशियों का खुल कर विरोध किया जाये, उन्हें हराया जाये. इस प्रस्ताव की पृष्ठ भूमि बताते हुए अखिल भारतीय प्राथमिक शिक्षक संघ के अध्यक्ष हीरा लाल पटवारी ने कहा कि कांग्रेस चुनाव कोष में प्राथमिक शिक्षकों से जबरन पैसा वसूल करने के कारण कांग्रेस-दल के प्रति अति तीव्र असंतोष उत्पन्न हुआ है. दूसरे, कांग्रेस दल के किसी प्रतिनिधि ने ९६ दिन के लम्बे अनशन-कार्यक्रम में अन-शनकारियों से न कोई सम्पर्क स्थापित किया और न कोई सहानुभूति प्रदर्शित की जब कि अन्य राजनैतिक नेतागण बराबर उन से सम्पर्क स्थापित किये रहे. इतना ही नहीं, मोरारजी देसाई और चव्हाण ऐसे नेता बराबर यही कहते रहे कि प्राथमिक शिक्षकों की माँगें पूरी नहीं की जा सकतीं. इन सब कारणों से कांग्रेस दल ने प्राथमिक शिक्षकों की सहानुभूति खो दी है और वे इस का विरोध करने पर मजबूर हो गये हैं. पटवारी ने पूछने पर इस बात से इनकार किया कि इस प्रक्रिया से उन के आंदोलन का स्वरूप राजनैतिक हो जाता है.

उक्त प्रस्ताव से प्राथमिक शिक्षकों का बहुत छोटा-सा कांग्रेस भक्त अंग क्षुब्ध हुआ है वह किंतु चढ़ती हुई नदी की धारा को रोकने में असमर्थ है. उधर कांग्रेसी क्षेत्रों में इस प्रस्ताव से बड़ी चिंता उत्पन्न हो गयी है और नेताओं की समझ में नहीं आ रहा कि वे क्या करें. गैर-कांग्रेसी दल इस प्रस्ताव से बहुत खुश हुए हैं. बातचीत से अभी केवल यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राथमिक शिक्षक किसी दल विशेष की राज-नीति से प्रभावित नहीं हैं. उन का विचार प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में उस गैर-कांग्रेसी प्रत्याशी को समर्थन देना है जिस के जीतने की सब से अधिक संभावना प्रतीत होती हो. कुछ शिक्षकों से यह पूछने पर कि यदि किसी क्षेत्र में कांग्रेसी प्रत्याशी की ही जीत अनिवार्य प्रतीत होती हो तो वे क्या करेंगे, उत्तर मिला कि हारते हुए गैर-कांग्रेसी उम्मीदवार को वोट दे देंगे लेकिन कांग्रेस को वोट न देंगे.

प्राथमिक शिक्षकों के आंदोलन की परणति यह होगी, इस को कभी भी केंद्र में सत्ताधीश कांग्रेसी सरकार, राज्यपाल और प्रदेशीय कांग्रेसी नेतृत्व ने नहीं सोचा होगा. अब इस के राजनैतिक परिणाम कुछ भी हों, विश्वविद्या-लय और माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं के खुल जाने से शिक्षा-जगत् पुनर्जागरित हो रहा है. राष्ट्रपति शासन के अंतिम चरण में यह कार्य ऐसा हुआ जिस के कारण कम से कम यह तो लोग न कह सकेंगे कि एक शासन ने स्कूल और विश्वविद्यालय बंद करवाये और दूसरे शासन के आने पर ही वे खुल सके. राष्ट्रपति शासन काल के एक वर्ष में प्रशासन ने जिस पुलिस मनोवृत्ति के साथ शिक्षकों और विद्यार्थियों के प्रति व्यवहार किया है और शिक्षण-संस्थाओं को चलाने की पद्धति का सूत्रपात किया है उस के कारण लोकतंत्रीय इतिहास में यह वर्ष अविस्मरणीय रहेगा. जन सरकार बन जाने के पश्चात् शायद उपकुल-पतियों के सम्मेलन में गृह सचिव और पुलिस-महा-निरीक्षक को आगे स्थान न मिल सके. यदि इस का निदान न किया गया तो अभी तक तो किसी-किसी विश्वविद्यालय में अवकाश प्राप्त पुलिस-महानिरीक्षक कोषाध्यक्ष ही बन पाते हैं, फिर वे उपकुलपति भी बन बैठें तो ताज्जब की बात न होगी.

प्रदेश

केरल

सांप्रदायिकता के नये आयाम

६-७ महीने पहले जब राज्य के संयुक्त मोर्चे की सरकार ने दो नये मुस्लिम बहुल ज़िलों के निर्माण की बात उठायी थी तो न केवल राज्य के भीतर बल्कि पूरे देश में जगह-जगह विरोध की बात उठायी गयी थी. उम्मीद यह थी कि राज्य सरकार जनमत के दबाव में अपने राजनैतिक स्वार्थ को नज़रअंदाज़ करेगी और निर्माण का विचार बदल देगी लेकिन इस बीच राज्यपाल विश्वनाथन् ने विधानसभा के उद्घाटन के वक़्त जो भाषण दिया उस में यह स्पष्ट संकेत था कि २६ जनवरी को इन ज़िलों के निर्माण की घोषणा कर दी जायेगी. राजस्व-मंत्री गोवरी का दावा है कि कांग्रेस को छोड़ कर शेष सभी दलों ने न केवल प्रस्ताव का समर्थन किया बल्कि लिखित रूप से अपनी सहमति भी दी थी. दोनों ज़िले कोझइकोड और पालघाट के कुछ ताल्लुक़ों में से बनाये जा रहे हैं. जनता का एक बड़ा समुदाय प्रस्तावित पालघाट जिले की अपेक्षा मलप्पुरम ज़िले का अधिक विरोध करता रहा है. वैसे, मलप्पुरम ज़िले का सुझाव पुराना है. पालघाट ज़िले के कुछ क्षेत्रों में मोपला लोगों की बहुत बड़ी बस्ती है. हज़रत मुहम्मद से बहुत पहले अरब व्यापारी यहाँ आ कर बसने लगे थे. उन व्यापारियों में से कुछ ने स्थानीय स्त्रियों से विवाह भी किया और धीरे-धीरे उन का समाज बनता गया. ये लोग मोपला कहलाने लगे. १९२० और १९३० के बीच इन लोगों ने जो हिंसात्मक रुख अपनाया वह तत्कालीन ढंग से देशव्यापी चर्चा का कारण बना था. जिन दिनों भारत-विभाजन की बात चल रही थी मोपला लोगों ने मोपलिस्तान की माँग रखी थी.

इधर बहुत दिनों से मोपला लोगों की शिकायत थी कि पालघाट ज़िले के उन हिस्सों का विकास रुका हुआ है जहाँ उनकी संख्या अधिक है. अगर उस हिस्से को एक ज़िले के रूप में संगठित किया जाये तो विकास कार्यों में अधिक गति आयेगी. इन लोगों पर मुस्लिम लीग का अच्छा प्रभाव है. कांग्रेस भी उस की उपेक्षा नहीं कर सकती थी. उस ने भी मुस्लिम लीग से मिल कर कुछ समय तक प्रदेश का शासन किया था. कम्युनिस्ट पार्टी का वर्तमान मंत्रिमंडल भी मुस्लिम लीग के समर्थन से बना है. संयुक्त मोर्चे के नेता मुस्लिम नेताओं के आग्रहों को टाल नहीं सकते.

स्थिति : केरल एक छोटा-सा प्रांत है. मलप्पुरम इस छोटे-से राज्य का सब से छोटा ज़िला होगा. आबादी १६ लाख ७ हज़ार और क्षेत्रफल १९५४ वर्गमील है. मलप्पुरम और मलनाड में ज़िलाधीश, पुलिस अधीक्षक, चिकित्सा और शिक्षा अधिकारी के अलावा सत्रीय न्यायालय की स्थापना भी होगी.

तर्क और कुतर्क : माँग को स्वीकार करते हुए राज्य सरकार की तरफ़ से यह तर्क दिया गया था कि नये ज़िले का निर्माण प्रशासनिक दृष्टि से सुविधाजनक होगा. वास्तविकता यह नहीं है. अगर वह इलाक़ा पिछड़ा हुआ है तो उस के विकास की गति बिना नया ज़िला बनाये हुए भी तेज़ की जा सकती है. इस से राज्य सरकार पर खर्चा भी अधिक पड़ेगा. नंबूदिरीपाद का एक तर्क यह भी रहा है कि यदि भारतीय संघ में कश्मीर जैसा एक मुस्लिम बहुमत का राज्य हो सकता है तो फिर केरल में मुस्लिम बहुमत का एक ज़िला क्यों नहीं हो सकता है. वह यह भूल गये कि कश्मीर की स्थिति ऐतिहासिक कारणों से है जब कि मलप्पुरम का निर्माण एक सांप्रदायिक माँग के रूप में सामने आया है. इन ज़िलों के बन जाने से निश्चित रूप से सांप्रदायिकता की भावना को बल मिलेगा. इन दो ज़िलों के रूप में एक ऐसा चौखटा तैयार होगा जिस में अंधी धार्मिकता की भावना ज़ोर पकड़ेगी और उस में रहने वाले गैर-मुस्लिम अपने को सुरक्षित महसूस नहीं कर सकेंगे. इस का एक परिणाम यह होगा कि क्यों कि वे राजनैतिक दृष्टि से उस क्षेत्र में प्रभावशाली होंगे अत: हर वक़्त सौदेबाज़ी की स्थिति में रहेंगे. एक सुरक्षित चौखटे में अपनी स्थिति को निरापद बनाये रखने का एक परिणाम यह भी होगा कि वे अपने को राष्ट्रीय धारा से अलग भी महसूस कर सकते हैं. मुस्लिम लीग की माँग का उद्देश्य भी यही रहा है कि ऐसा ज़िला बनने पर सांप्रदायिक स्थिति अधिक सुदृढ़ होगी और वह बिना किसी शंका के विधान सभा और संसद् में अपने सदस्य भेजती रह सकेगी.

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और संयुक्त मोर्चे की आलोचना करने वाले उग्रपंथी कम्युनिस्टों ने भी यह आरोप लगाया है कि मार्क्सवादी सरकार ने माँग को स्वीकार कर के मुस्लिम सांप्रदायिकता को ही बढ़ावा दिया है.

मद्रास

विरोध का नशा

८ दिसंबर '६८ को केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने एक आदेश जारी किया कि भारतीय रेडियो स्टेशनों से हिंदी की जो समाचार सुबह सवा ८ बजे प्रसारित किया जाता था वह ८ बजे से किया जायेगा. देश के बड़े भाग में इस का स्वागत किया गया लेकिन दक्षिण के एक छोटे-से कोने अर्थात् मद्रास में विरोध की लहर उठनी शुरू हो गयी. इस सामान्य-सी घटना को भी बहुत तूल दिया गया और द्रमुक के नेताओं ने यह कहना शुरू किया कि अंग्रेज़ी समाचार को बाद में प्रसारित करने के पीछे केंद्र की मंशा हिंदी को अधिक महत्त्व देने की है. विरोध का यह सिलसिला पिछले कुछ दिनों में आंदोलन और हिंसात्मक दृश्यों में भी परिवर्तित हुआ. रेलगाड़ियाँ रोकी गयीं, स्कूल-कॉलेज में हड़तालें रहीं और जगह-जगह पत्थरबाज़ी की घटनाएँ शुरू हुई. द्रमुक सरकार के नेता इस विद्रोह को अपने विषैले भाषण से अधिक तीव्र बनाने की कोशिश करते रहे. राज्य सरकार ने केंद्र से आदेश को वापस लेने की माँग की. इसी बीच हैदराबाद में राज्यों के सूचना मंत्रियों का एक सम्मेलन हुआ और उस में द्रमुक सरकार की सूचनामंत्री श्रीमती मुथु ने यह कह दिया कि केंद्र ने आदेश रद्द करने का निर्णय कर लिया है. बाद में केंद्रीय मंत्रालय द्वारा उस का प्रतिवाद करते हुए कहा गया कि प्रसारण के समय में परिवर्तन नहीं किया गया है. अलबत्ता यह ज़रूर सोचा जा रहा है कि मद्रास रेडियो स्टेशन से मुख्य ट्रांसमीटर की जगह पर दूसरे ट्रांसमीटर से उस समाचार का प्रसारण हो.

प्रतिक्रिया और वक्तव्य : सूचनामंत्री के. के. शाह ने एक जगह कहा कि हिंदी समाचार अंग्रेज़ी से पहले प्रसारित करने का कारण हिंदी क्षेत्र को तुष्ट करना था. दूसरी तरफ़ मद्रास के नेताओं की यह आम प्रवृत्ति रही है कि किसी भी निर्णय के परिणामों पर बिना सोच-विचार किये हुए वे हिंदी के नाम पर पैदा हुई किसी चीज़ को ले कर विरोध के लिए खड़े हो जाते रहे हैं. सही मायनों में हिंदी समाचार को पहले प्रसारित करने का एक नुक़सान तो यह है कि उस में वे सभी समाचार नहीं आ सकेंगे जो बाद के प्रसारण में आयेंगे. इस दृष्टि से वह प्रसारण अधूरा कहा जायेगा. जहाँ तक तुष्टीकरण की नीति का सवाल है उस से कुछ नेताओं के खोखले अहं की ही तुष्टि हो सकती है. उस से हिंदी का कोई व्यावहारिक लाभ नहीं हो सकेगा. यदि हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं को प्रतिष्ठा देनी ही है तो उस के लिए कुछ व्यावहारिक क़दम उठाये जाने चाहिएँ. सूचना या प्रसारण मंत्रालय ने या कि केंद्र के किसी अन्य मंत्रालय ने हिंदी को बढ़ावा देने के लिए व्यावहारिक क़दम उठाने में हमेशा उदासीनता दिखाई है. किसी भी भाषा को समुन्नत करने के लिए उस के अधिकाधिक उपयोग की आवश्यकता होती है. यदि समाचारों के संदर्भ में अंग्रेज़ी और अनुवाद का सहारा न ले कर उन के संयोजन और एकत्रण की व्यवस्था सीधे हिंदी से होती तो वह अधिक उपयोगी होती. ऐसी स्थिति में हिंदी और क्षेत्रीय भाषाओं की कोई माँग अनुचित नहीं लगती और उन के विकास की भी दिशाएँ निरंतर साफ़ होती जातीं. इन व्यावहारिक मसलों पर सरकार खामोश रहती है और विभिन्न राजनैतिक हल्कों के तुष्टीकरण के लिए कुछ ऐसी नीतियाँ अपना लेती है जिन का लाभ तो कुछ नहीं होता

लेकिन तात्कालिक ढंग से उत्तेजना - खूब फैलती है.

जहाँ तक मद्रास का सवाल है उस की वर्तमान सरकार के नेता यह मान कर चलते हैं कि हिंदी के हर संदर्भ में वे उस का विरोध ही करेंगे. इसे उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया है. अभी कुछ ही दिनों पहले उन्होंने मद्रास की आकाशवाणी का नाम बदल कर वनोली निलयम् कर देने के लिए दवाव डाला था. तर्क यह दिया गया था कि इस से तमिल की उन्नति में सहायता मिलेगी. जिस तरह से नाम परिवर्तन में द्रमुक के नेताओं को उन्नति की संभावना दिखाई देती है उसी तरह से हिंदी वाले भी यह मानते हैं कि प्रसारण में हिंदी को पहला स्थान देने से हिंदी का विकास हो जायेगा. लेकिन यह दोनों ही बातें बहुत ही सतही हैं. समझ में नही आता कि हिंदी समाचार को पहले प्रसारित कर देने से तमिल का विकास किस रूप में बाधित होता है. सच्चाई यह है कि मद्रास राज्य के रेडियो स्टेशन इस वक्त तमिल में जितने कार्यक्रमों का प्रसारण करते है उतने पहले कभी नही हुए थे. दिल्ली से तमिल के सांस्कृतिक कार्यक्रमों के प्रसारण मे भी अधिक समय दिया जाने लगा है. मुख्यमंत्री अन्नादोरै ने हिंदी-विरोध का एक शगूफ़ा पिछले दिनों यह कह कर छोड़ा था कि एन. सी. सी. का प्रशिक्षण तब तक स्थगित रखा जायेगा जब तक कि उस के हिंदी 'काशन' बदल नहीं दिये जाते. इस का अर्थ यह होता है कि द्रमुक के नेता तमिल के विकास और संवर्धन के लिए उतने चिंतित नहीं है जितने कि अपने राज्य से हिंदी को खत्म कर देने के लिए हैं. इस वक्त स्थिति यह है कि मद्रास में हिंदी शिक्षण की प्राइवेट कक्षाएँ भी इस डर से नही चल पा रही है कि कहीं द्रमुक के कार्यकर्ता उन पर हमला न कर दे.

हरयाणा
ख़तरा अभी टला नहीं

इस माह की २८ तारीख को हरयाणा विधानसभा की पहले दिन की बैठक गर्मजोशी के साथ शुरु होगी. आश्वस्त मुख्यमंत्री बंसीलाल अपने सभी सहयोगियों और हिमायतियों को संशय की नज़र से देख रहे हैं. उन के दिमाग में बार-बार यह बात चक्कर काट रही है कि जिस तेज़ी के साथ भगवद्दयाल शर्मा के समर्थक उन का साथ छोड़ कर पुन: कांग्रेस में शामिल हो गये है उसी बल्कि उस से भी तेजो के साथ पुन: उन का साथ छोड़ कर भगवद्दयाल और राव वीरेंद्रसिंह के घेरे में घिर सकते हैं. इस घेरेबंदी को तोड़ने के लिए मुख्यमंत्री बंसीलाल अपने भूतपूर्व गुरु भगवद्दयाल शर्मा की चालें चलने लगे हैं. लेकिन उन में वह राजनैतिक प्रौढता नही जो भगवद्दयाल शर्मा में पायी जाती है. उन्होंने राव वीरेंद्रसिंह से कभी मूले से कांग्रेस में पुन: लौटने की बात का जिक्र किया और इस बात ने इतनी तूल पकड़ ली कि वह राव और बंसीलाल के बीच की बात न रह कर कांग्रेस और संयुक्त मोर्चे की बात हो गयी. राव को स्पष्ट रूप से यह बयान देना पड़ा कि वह पुन: कांग्रेस में शामिल होने की तनिक भी इच्छा नही रखते.

यह बात तो सही है कि हरयाणा कांग्रेस के सदस्यों में आत्मविश्वास दिन-ब-दिन घटता जा रहा है और वह कोई न कोई ऐसा शोशा छेड़ देते हैं जिस से उन की अहमियत हमेशा बरकरार रहे. चंडीगढ में **दिनमान** के प्रतिनिधि से बात करते हुए मुख्यमंत्री बंसीलाल ने जाटों जैसे लहजे में कहा कि कांग्रेस अभी भी बहुत मजबूत है और उस की दृढता पर हमें बिलकुल कोई शक नही करना चाहिए. विधान सभा की अगली बैठक में यदि संयुक्त विधायक दल सरकार को परास्त करने का कोई 'षड्यंत्र' रचता है तो उसे मुँह की खानी पड़ेगी. और फिर जरा फुंकारते हुए उन्होंने कहा कि यह आप देख ही रहे है कि प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष के चुनाव में कांग्रेस पार्टी की एकता कैसी बनी हुई है. बंसीलाल आत्मविश्वासी लहजे का प्रदर्शन करते हैं लेकिन उन के दिल की हूक और खिसियाहट भी उन के चेहरे पर आ जाती है. उन्होंने बताया कि बेशक अभी भी कुछ लोग ऐसे हैं जिन का हम से मतभेद है और वे हमारे लिए कोई खतरा बन सकते हैं लेकिन ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है. संख्या कम हो या ज्यादा लेकिन खतरा अभी बिलकुल टला नही है और कांग्रेस सरकार की स्थिति अभी भी डाँवाडोल ही है.

कितने जाट और! कांग्रेस के लिए आजकल रीढ की हड्डी का काम जाट-नेता चौधरी देवीलाल कर रहे हैं. लोगों का विश्वास है कि देवीलाल को प्रदेश कांग्रेस समिति में स्थान न मिलने के कारण उन का रोष मौजूदा ढाँचे के प्रति उग्र हो जायेगा और शायद भीतर ही भीतर उन्होने ऐसा महसूस किया भी, लेकिन कुछ बड़े नेताओं के कहने पर उन्होंने यह वक्तव्य जरूर जारी कर दिया है कि बंसी लाल का वह पूरी तरह समर्थन करते है. फिर उन्होंने कहा कि यह जरूरी नही कि प्रदेश कांग्रेस समिति के सभी ओहदे जाटों के हाथ में ही हों. आखिर हरयाणा में गैर-जाट भी तो बसते है. बेशक गैर-जाट बसते है लेकिन गैर-जाटों की बंसीलाल के प्रति कोई अधिक आस्था नही, क्यों कि मुख्यमंत्री में सहिष्णुता नाम की कोई चीज़ बहुत कम देखने में आती है. वह तानाशाही की भी बातें करते है और उन की जबान से गालियाँ भी बेसाख्ता निकलती है. लिहाज़ा उन के समर्थकों की संख्या उन की अपनी ही पार्टी में बढ़ने की बजाय घट सकती है. अगर ऐसा हुआ और अगले अधिवेशन में कांग्रेस सरकार का तख्ता पलट गया तो इस की सारी ज़िम्मेदारी और किसी पर नहीं, बंसीलाल पर होगी और उन के व्यवहार के प्रति लोगों में नाराज़ी का इजहार ही समझा जायेगा.

महाराष्ट्र
शिवसेना और साम्यवाद

बंबई शहर में इन दिनों जनता को बिजली और पानी दोनों की कमी का एहसास हो रहा है. शासन ने पहले उद्योगों को दी जाने वाली बिजली में कटौती की और बाद मे घरेलू उपयोग की बिजली में कटौती भी कर दी गयी. आय घट जाने की आशंका से बिजली कंपनी ने न्यूनतम चार्ज लागू करने की घोषणा की और स्थिति यह है कि बिजली की कटौती के नाम पर श्रमिक को कामहीन घोषित किया जा रहा है. नगर निगम के पिछले आम चुनाव में क्यों कि शिवसेना प्रभाव में आई अत: उस ने अपनी राजनैतिक गतिविधियों को दूसरी दिशाएँ भी देना शुरू कर दिया है. श्रमिक क्षेत्रों में अपना प्रभाव विस्तृत करने की उस की कोशिशें जारी है. एक तरफ़ उस ने बिजली की कटौती के खिलाफ़ आंदोलन चलाने की घोषणा की है और दूसरी तरफ़ माओवाद के विरोध और श्रमिक संघों की स्थापना का काम हो रहा है. भारतीय कामगार सेना के नाम से एक संस्था स्थापित कर दी गयी है. पिछले ३ महीनों से एक रबड़ फैक्ट्री में वामपंथियों के नेतृत्व में जो हड़ताल चल रही थी उसे शिवसेना के नेताओं ने बातचीत के ज़रिये खत्म करा दिया. हड़ताल खत्म हो गयी तो वामपंथियों ने यह शिकायत करनी शुरू की कि शिवसेना वाले न केवल हड़ताल तोड़ रहे है बल्कि मजदूरों में आतंक भी फैला रहे है. मुक़ाबला करने के लिए वामपंथियों ने कामगार सुरक्षा दल की स्थापना की है. कामगार सेना के युवक नेता अरुण मेहता ने कहा है कि ८० कारखानों में उस की यूनियनें बन गयी है. उन के अनुसार वर्ग-संघर्ष का सिद्धांत पुराना पड़ गया है. मालिक और मजदूर दोनों ही उद्योग की गाड़ी के दो पहिये है. यदि उन मे एक भी खराब हुआ तो प्रगति रुक जायेगी. दोनों एक-दूसरे के लिए अनिवार्य हैं. इसी लिए जरूरी है कि उद्योग के प्रति ईमानदारी बनी रहे और अनुशासनपूर्वक काम कर के उत्पादकता की वृद्धि की जाये. उद्योगपतियों का भी कर्तव्य है कि वे अपने लाभ का प्रतिशत कम कर के एक तरफ़ ग्राहकों को कम क़ीमत में सामान दे और दूसरी तरफ़ मजदूरों के वेतन में वृद्धि करे. यंत्र तोड़ने और काम ठप्प करने का कोई मतलब नहीं होता है. उस का सही उपयोग कर के उत्पादकता भी बढाई जा सकती है और काम भी मिल सकता है. शिवसेना ने बंबई क्षेत्र में साम्यवादियों के प्रभाव को कम किया. अब वह इस कोशिश में है कि श्रमिक क्षेत्रों में भी उसे पराजित करे.

नामांकन के बाद

नामांकन पत्रों के दाखिले के साथ-साथ बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश और पंजाब की मध्यावधि चुनाव संबंधी तैयारियों का पहला चरण समाप्त हुआ. विधानसभा की १,१६७ जगहों के लिए चारों राज्यों से लगभग १०,००० लोगों ने चुनाव के मैदान में क़दम रखा है. इसी के साथ-साथ नगालैंड विधानसभा की ४० जगहों के लिए १५० उम्मीदवारों ने भी अपने परचे दाखिल किये हैं. नामांकन पत्रों की संख्या राज्यानुसार यों है :—बिहार में ३१८ जगहों के लिए २,५००, पंजाब में १०४ जगहों के लिए ८७९, उत्तरप्रदेश में ४२५ जगहों के के लिए ६,००० और पश्चिमबंगाल में २८० जगहों के लिए १,४००. सन् '६७ के आम चुनाव में नामांकन की स्थिति नीचे की तालिका में दी गयी है.

नगालैंड विधानसभा में ५२ जगहें हैं जिन में से ४० का चुनाव मतदाता करते हैं. ह्वेनसांग ज़िले से १२ उम्मीदवारों का चुनाव वहाँ की क्षेत्रीय परिषद् करती है. नगालैंड के सत्ताधारी राष्ट्रीय संघ ने सभी ४० जगहों से चुनाव लड़ने का निश्चय किया है. विरोधी दल अर्थात् संयुक्त नगा संघ ने ३० उम्मीदवार खड़े किये हैं.

सन् '६७ की तुलना में आज की बदली हुई राजनैतिक स्थिति में इन चारों राज्यों में जो चुनाव होने जा रहे हैं वे कई दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं. सन् '६७ के चुनाव में जनता के मोह-भंग की एक तस्वीर सामने आयी थी और उस में उस ने कांग्रेस का पल्ला छोड़ कर दूसरी पार्टियों का हाथ पकड़ा था लेकिन कुछ ही दिनों की संयुक्त विधायक दलों की सरकार ने उस की आशाओं पर पानी फेर दिया और तब वह इन दलों के साथ भी भ्रम-भंग की स्थिति में आ गयी. आज वह वास्तविकता की कठोर चट्टान पर खड़ी हो कर अपने भविष्य का फ़ैसला करने जा रही है. यह अलग बात है कि इस चुनाव के अवसर पर भी विभिन्न दलों ने अपने-अपने चुनाव घोषणापत्रों के माध्यम से उसे बहकाने, बहलाने और फुसलाने की पूरी कोशिश की है. एक विचित्र बात यह है कि इस चुनाव के अवसर पर ज़्यादातर राजनैतिक दलों में अपनी शक्ति और सामर्थ्य के प्रति विश्वास कम दिखाई दे रहा है और उस के बल पर वह जनता के सामने जाने का साहस नहीं कर रहे हैं.

सभी एक-दूसरे की कमज़ोरियों पर छींटाकशी कर रहे हैं और उस के माध्यम से जनता में अपने को छोड़ कर दूसरे सभी दलों के प्रति विश्वास और अनास्था पैदा कर के उस का फ़ायदा उठाने की कोशिश में हैं. बंगाल की स्थिति इस मायने में सर्वाधिक अनिश्चय की है. इस में किसी भी दल के किसी नेता ने अपना चुनाव-क्षेत्र नहीं बदला है. यहाँ के तीन भूतपूर्व मुख्यमंत्री प्रफुल्लचंद्र सेन, प्रफुल्लचंद्र घोष और अजय मुखर्जी मैदान में उतरे हैं. विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष विजय कुमार बनर्जी भी पंक्ति में ही हैं. प्रफुल्लचंद्र सेन और अजय मुखर्जी हुगली ज़िले के आरामबाग क्षेत्र में एक-दूसरे के मुक़ाबले में हैं हालांकि अजय मुखर्जी ने मिदिनापुर ज़िले के तामलुक क्षेत्र से भी चुनाव लड़ने के लिए परचा दाखिल किया है. कम्युनिस्ट नेता ज्योति बसु बड़ानगर क्षेत्र से चुनाव लड़ रहे हैं. इस क्षेत्र से वह शुरू से ही जीतते रहे हैं. इस बार उन के खिलाफ़ एक अध्यापक और एक कांग्रेसी उम्मीदवार है जिसे उन्होंने सन् '६७ के चुनाव में ३,००० मतों से पराजित किया था. प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष प्रताप चंद्र चुंदर सियालदह से तथा फ़ारवर्ड ब्लाक के अध्यक्ष हेमंत कुमार बसु काशी से लड़ रहे हैं.

श्री बसु के खिलाफ़ कलकत्ता निगम के महापौर गोविंद राय खड़े हैं जो कांग्रेस के उम्मीदवार हैं. प्रफुल्लचंद्र घोष ने अपना परचा झारग्राम क्षेत्र से चुनाव लड़ने के लिए दाखिल किया है. भारतीय गणतांत्रिक मोर्चे के संस्थापक आशु घोष और राष्ट्रीय बंगाल पार्टी के संस्थापक जहाँगीर कबिर भी मैदान में हैं. विजय कुमार बनर्जी ने निर्दलीय उम्मीदवार की हैसियत से कलकत्ता के रास बिहारी चुनाव क्षेत्र से अपना परचा दाखिल किया है और उन्हें संयुक्त मोर्चे का समर्थन मिला है. कुल मिला कर कांग्रेस के २८० और १२ दलों के संयुक्त मोर्चे ने २६० उम्मीदवार खड़े किये हैं.

यदि बंगाल में कांग्रेस की स्थिति आशु घोष के दल-परिवर्तन से कमज़ोर हुई है तो बिहार में विनोदानंद झा और लक्ष्मी नारायण सुधांशु की वजह से. यह दोनों ही नेता कांग्रेसी क्षेत्रों में शुरू से ही बहुत प्रभावशाली रहे हैं लेकिन अब वे लोकतांत्रिक कांग्रेस के मंच से कांग्रेस का विरोध कर रहे हैं. जिन २,५०० उम्मीदवारों ने ३१८ जगहों के लिए अपने परचे दाखिल किये हैं उन में से बहुत-सी जगहों पर बहुकोणीय संघर्ष है. कृष्णवल्लभ सहाय, सत्यनारायण सिंह, महेशप्रसाद सिंह, अंबिका शरण मिश्र, रामलखन सिंह यादव आदि कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं ने अपने को चुनाव से अलग रखा है और कहा यही जा रहा है कि वे अपना पूरा सहयोग कांग्रेसी प्रत्याशियों को जिताने में देंगे. हालांकि उन के आश्वासन कुछ लोगों की दृष्टि में संदेह से खाली नहीं हैं. इस राज्य में कांग्रेस ने सभी ३१८ जगहों के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं, जब कि जनसंघ ने ३१५, प्रसपा, संसोपा और लोकतांत्रिक कांग्रेस के त्रिदल ने सभी जगहों पर अपना उम्मीदवार खड़ा किया है.

जनता पार्टी ने १९०, भारतीय कम्युनिस्ट दल ने १६० और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट दल ने ३० उम्मीदवार खड़े किये हैं. विंदेश्वरी प्रसाद मंडल के नेतृत्व में तथाकथित पिछड़ी जातियों के शोषित दल ने भी यह उम्मीद ज़ाहिर की है कि उन का दल बड़ी मात्रा में अपने उम्मीदवार भेजने में सफल होगा. समाजवादी एकता केंद्र, फ़ारवर्ड ब्लाक, क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी

पिछले चुनावों की तुलनात्मक स्थिति

राज्य	चुनाव क्षेत्रों की संख्या		नामांकन पत्रों की संख्या		नामांकन पत्रों की वापसी की संख्या		रद्द किये गये नामांकन पत्र		मतदाता संख्या	मतों का प्रतिशत	
	'६२	'६७	'६२	'६७	'६२	'६७	'६२	'६७	'६७	'६२	'६७
उत्तरप्रदेश	४३०	४२५	३४१८	३७१४	७७४	६६८	२४	३२	४२१४८०९९	५१.४४%	५४.५५%
बिहार	३१८	३१८	२०२०	२६१९	४६१	५५७	३०	३७	२७७४३१९०	४६.९८%	५१.५१%
बंगाल	२८०	२५२	११२७	१२१९	१६१	१५१	५	१०	२०२४००९८	५५.५५%	६६.१०%
पंजाब	१५४	१०४	१२७४	१०७६	४९२	४४८	२६	२६	६३११०६३	६५.४६%	७१.१८%

भी मैदान में हैं. इन्हें अपने भविष्य का पता है, लेकिन उस के बावजूद अपने अस्तित्व को साबित करते रहने के लिए उन्होंने भी चुनाव-संघर्ष में अपने उम्मीदवारों को खड़ा किया है. स्वतंत्र दल के ५० उम्मीदवार हैं. सन् ६७ के चुनाव में विभिन्न दलों और व्यक्तियों में जो समझौते हुए थे वे छिन्न-भिन्न हो चुके हैं. पुराना संयुक्त मोर्चा टूट चुका है. कुछ नये दल सामने आ गये हैं. पिछले चुनाव में कांग्रेस को १२८ जगहें मिली थीं, लेकिन बाद के दिनों में विनोदानंद झा, डॉ. सुधांशु और भोला पासवान शास्त्री ने कांग्रेस से विद्रोह कर दिया, तब कांग्रेस की संख्या केवल १०५ रह गयी. त्रिदल के आपसी समझौते के अनुसार २०० जगहों पर उन में कोई एक-दूसरे का विरोध नहीं करेगा.

शेष ११८ जगहों पर भी कोशिश यही रहेगी कि आपसी टकराव न होने पाये. इन सब में अगर कोई दल वास्तविक रूप में अकेला है तो वह है जनसंघ, जो बड़ी-बड़ी उम्मीदें बाँधे हुए है. पिछले आम चुनाव में जिन २७२ जगहों पर उस ने चुनाव लड़ा था उस में १९१ पर उस के उम्मीदवार की ज़मानतें ज़ब्त हो गयी थीं. लगभग १ करोड़ ३५ लाख मतों में से उसे कुल १५ लाख मत मिले थे, जिस का मतलब यह होता है कि उसे कुल मत का १०.३५ प्रतिशत मिला था. संसोपा, प्रसपा और लोकतांत्रिक दल को २४.५७ प्रतिशत और कांग्रेस को ३३.०८ प्रतिशत मत मिले थे. स्वतंत्र दल को २.३ और रिपब्लिकन दल को २४ प्रतिशत से अधिक नहीं मिल सके. जन क्रांति दल, झारखंड पार्टी आदि को २१.२७ प्रतिशत मत मिले थे, जिस का मतलब यह था कि समाजवादी दलों की तुलना में उन्हें केवल ३ प्रतिशत कम मत मिले थे.

वर्त्तमान स्थिति में जनता पार्टी या शोषित दल बड़ी शक्ति के रूप में उभरने में कामयाब नहीं होगा, हालाँकि कुछ ऐसे क्षेत्र अवश्य हैं जहाँ इन का प्रभाव बहुत अच्छा है. भोला पासवान मंत्रिमंडल के पतन के साथ-साथ जनता पार्टी को बदनामी का शिकार होना पड़ा था, क्यों कि उन्हीं का सहयोग न मिलने के कारण मंत्रिमंडल अल्पमत का शिकार हुआ था. आदिवासी क्षेत्रों में शोषित दल का प्रभाव बहुत अच्छा है और वहाँ पर वह किसी भी दल के लिए चुनौती का कारण बनेगा. पिछले चुनाव में महामायाप्रसाद सिंह (भा. क्रां. द.) और रामगढ़ के राजा (जनता पार्टी) दोनों ने जन क्रांति दल के अंतर्गत २५ जगहों पर विजय पाने में सफलता प्राप्त की थी. आज दोनों अलग-अलग हैं. स्वतंत्र दल की स्थिति बहुत मज़बूत नहीं है. पिछले चुनाव में उसे सिर्फ़ ३ जगहें मिली थीं, हालाँकि उस ने भी कुछ चुनाव-समझौते किये हैं. कांग्रेस की स्थिति आदिवासी क्षेत्रों में बहुत नाजुक है और वहाँ उस के सामने कई तरह की कठिनाइयाँ हैं. ख़ास तौर से इस लिए भी कि उस के नेता जयपालसिंह ने इस बीच फिर झारखंड राज्य के गठन की माँग उठायी है. आदिवासी क्षेत्र में जनसंघ ने भी हिंदू आदिवासी के नारे के नाम पर मतदाताओं का ध्यान आकर्षित किया है. उस के नेताओं का ख़्याल है कि छोटा नागपुर और संथाल परगना में उसे ७९ जगह मिल जायेंगी. पिछले आम चुनाव में उसे ११ जगहें मिली थीं.

जहाँ तक कांग्रेस का सवाल है राज्य के बहुत से मशहूर नेताओं की प्रतिष्ठा गिर चुकी है. जातिवाद यहाँ अपनी पराकाष्ठा पर है. इस में से कुछ नेताओं के बारे में यह भी कहा जाता है कि वह मन से या तो दक्षिणपंथी हैं या वामपंथी. जहाँ तक भारतीय क्रांति दल का सवाल है वह महामायाप्रसाद सिंह तक ही सीमित है. उन्होंने दो जगहों से अपना नामांकन-पत्र दाखिल किया है. पश्चिमी पटना चुनाव-क्षेत्र से उन के खिलाफ़ कम्युनिस्ट पार्टी के डॉ. सेन खड़े हैं. सामाजिक कार्यकर्त्ता होने के कारण डॉक्टर सेन की लोकप्रियता उस क्षेत्र में काफ़ी है. प्रसपा के दो भूतपूर्व मंत्री बसावन सिंह और हबीबुर्रहमान भी दो-दो जगहों से चुनाव लड़ रहे हैं. कांग्रेस दल, समाजवादी दल के दो नेताओं—रामानंद तिवारी और कर्पूरी ठाकुर को पराजित करने में अपनी सारी शक्ति लगा रहा है. कर्पूरी ठाकुर के खिलाफ़ उस ने एक भूतपूर्व समाजवादी को खड़ा किया है, जो पिछले चुनाव में केंद्रीय स्वास्थ्यमंत्री सत्य नारायण सिंह से केवल १०,००० मतों से पराजित हुआ था. इस चुनाव में **आनंद मार्ग** भी अस्तित्व में आया है. यह दल प्रउती फ्रंट के मंच से चुनाव लड़ रहा है और इस के उम्मीदवार भोजपुरी समाज, मैथिली समाज और मगधी समाज के प्रतिनिधि के रूप में सामने आ रहे हैं.

उत्तरप्रदेश में ४२५ जगहों के लिए जिन मुख्य दलों ने अपने उम्मीदवारों के परचे दाखिल किये हैं उन की स्थिति यों है : कांग्रेस ५८२, जनसंघ ४१४, भारतीय क्रांति दल ३२९, संयुक्त समाजवादी ३००, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी १२२, स्वतंत्र ९२ और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी २१. कुल मिला कर २७ दलों ने अपने परचे दाखिल कराये हैं. प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष कमलापति त्रिपाठी ने बनारस ज़िले के चंदौली से, चंद्रभानु गुप्त ने अल्मोड़ा के रानीखेत और लखनऊ के सरोजनी नगर क्षेत्र से, भारतीय क्रांति दल के चरणसिंह ने मेरठ जिले के छपरौली क्षेत्र से अपने नामांकन-पत्र दाखिल किये हैं. लखनऊ के सरोजनी नगर क्षेत्र से ही सब से अधिक उम्मीदवार खड़े हुए हैं. इस एक जगह के लिए चंद्रभानु गुप्त को शामिल कर के १७ उम्मीदवार हैं. लखनऊ की ८ जगहों पर ८७ उम्मीदवारों के नाम हैं. इन में २५ निर्दलीय हैं. बाराबंकी की ८ जगहों के लिए ५२ उम्मीदवारों ने चुनाव लड़ने की घोषणा की है. लखनऊ ज़िले से चंद्रभानु गुप्त के अलावा त्रिलोकी सिंह, एम. सिद्धू और एक छात्र-नेता डी. पी. बोरा के नाम महत्त्वपूर्ण हैं. लखनऊ से ही राज्य कर्मचारियों के नेता पी. एन. शुक्ल ने भी अपना परचा दाखिल किया था, लेकिन क्यों कि अभी वह अपने पद से केवल निलंबित माने जा रहे हैं अत: उन का नामांकन रद्द कर दिया गया.

चंद्रभानु गुप्त के नामांकन को ले कर पिछले २ हफ़्तों से पूरे राज्य में तरह-तरह की चर्चाएँ हैं. रानीखेत के साथ-साथ सरोजनी नगर से भी चुनाव लड़ने के उन के निश्चय को कई अर्थ दिये गये हैं. पिछले आम चुनाव में रानीखेत में उन का संघर्ष श्री मेहरा से हुआ था और वह केवल ७० मतों से जीत सके थे. इस बार ग़ैर-कांग्रेसी सभी दलों ने श्री मेहरा को समर्थन देने की घोषणा की है. श्री गुप्त की यह आशंका कि वह इस चुनाव में हार सकते हैं निर्मूल नहीं है. शायद इसी पराजय से बचने के लिए उन्होंने सरोजनी नगर का क्षेत्र चुना.

इस सूचना के साथ ही साथ ग़ैर-कांग्रेसी क्षेत्रों में काफ़ी उत्तेजना का अनुभव किया गया और कई दिनों तक यह निर्णय करने की असफल कोशिश की जाती रही कि उन के खिलाफ़ किसी प्रभावशाली उम्मीदवार को खड़ा किया जाये. कांग्रेस के कुछ स्थानीय नेताओं का ख़्याल है कि श्री गुप्त के इस निश्चय से कांग्रेस को क्षति पहुँचेगी. ध्यान देने की बात यह है कि सन् १९५७ में श्री गुप्त त्रिलोकीसिंह से लखनऊ में ही पराजित हुए थे. सन् १९५८ के एक उप-चुनाव में भी उन्हें लखनऊ से ही पराजय का मुँह देखना पड़ा था. संविद सरकार के भूतपूर्व मंत्री अख़्तरअली ख़ाँ रायपुर से, अर्जक संघ के संस्थापक रामस्वरूप वर्मा कानपुर के राजपुर क्षेत्र से और भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्री मुजफ़्फ़रहसन ने इलाहाबाद के प्रतापपुर क्षेत्र से अपना नामांकनपत्र दाखिल किया है. दो भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्री : राममूर्त्ति और नवल किशोर बरेली जिले के बहेड़ी और आलमपुर क्षेत्रों से खड़े हो रहे हैं.

इसी के साथ फूलपुर (इलाहाबाद) से संसद की सीट के लिए नामांकनपत्रों का भी दाखिला हुआ. यह जगह श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के त्यागपत्र से रिक्त हुई थी. कांग्रेस ने भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री केशवदेव मालवीय को अपने उम्मीदवार के रूप में खड़ा किया है. जिन अन्य दलों ने इस जगह के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं उन में संयुक्त समाजवादी दल के जनेश्वर मिश्र, भारतीय क्रांति दल के संगमलाल पांडेय और जनसंघ के भोला नाथ के नाम उल्लेखनीय हैं. चार सदस्य निर्दलीय हैं.

चुनाव-पूर्व सर्वेक्षण

मध्यावधि चुनाव के लिए नामज़दगी का दौर समाप्त होते न होते **दिनमान** के संवाददाता प्रदेशों में पहुँच गये हैं—वहाँ की राजनैतिक परिस्थितियों का जायज़ा लेने के लिए.

वे इस अंक में पूरे पंजाब का और उत्तरप्रदेश के दो छोरों का हाल प्रस्तुत कर रहे हैं.

पंजाब में अकाली पार्टी और जनसंघ का समझौता और दूसरे छोटे-मोटे समझौते तथा आपसी मतभेद काफ़ी महत्त्वपूर्ण साबित होंगे.

पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जातिवाद और अल्पसंख्यकों के मत का विकर्षण-निर्णायक सिद्ध होने के आसार नज़र आ रहे हैं.

पूर्वी उत्तरप्रदेश में दो प्रबल प्रतिद्वंद्वी हैं. उम्मीदवारों का दृष्टांत स्वरूप उन के एक उम्मीदवार से **दिनमान** का साक्षात्कार प्रस्तुत किया जा रहा है.

पंजाब

५ जनवरी १९६९. लगभग ३ बजे का समय. स्वर्ण मंदिर पर सूर्य की स्वर्णिम किरणों की आभा सामने के अकाल तख़्त पर भी पड़ रही थीं, जहाँ एक ऊँचे मंच पर गुरु ग्रंथ साहब विराजमान था. उस से थोड़ी दूर ऊपर पाँच हवनकुंडों में से ३ हवनकुंड भी दीख रहे थे, जहाँ १९६५ में अकाली नेता संत फ़तेहसिंह ने चंडीगढ़ और भाखड़ा नंगल पंजाब में न मिलाये जाने की दशा में आत्मोत्सर्ग करने का निश्चय किया था. अकाल तख़्त के नीचे संगमरमर के सफ़ेद और काले पत्थर पर आम जनता, जिसे 'सिख संगत' कहते हैं, विराजमान थी और उस भीड़ में अकाली दल के ५६ उम्मीदवारों में से ४२ उपस्थित थे. अकाली नेता संत फ़तेहसिंह के पिलियाये चेहरे पर सभी लोगों की आँखें बार-बार टिक रही थीं, जो बड़ी गंभीर मुद्रा में सारे जिस्म को अच्छी तरह से ढँक कर बैठे थे. उसी भीड़ में भूतपूर्व मुख्यमंत्री गुरनामसिंह, कांग्रेस विधानमंडल पार्टी के भूतपूर्व नेता ज्ञानसिंह राड़ेवाला, स्वर्गीय मुख्यमंत्री कैरों के सुपुत्र सुरेंद्रसिंह कैरों, कई भूतपूर्व मंत्री, शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के अध्यक्ष संत चन्नर्नसिंह और महासचिव जीवनसिंह उमरांगल भी थे. समारोह था अकाली उम्मीदवारों द्वारा शपथ-ग्रहण. इस का प्रयोजन बताते हुए अस्वस्थ अकाली नेता संत फ़तेहसिंह ने धीमे किंतु दृढ़ लहजे में कहा कि हमें यह रस्म अदायगी मजबूरन करनी पड़ रही है. अनुभवों ने हमें सिखा दिया है कि हम टिकट उन्हीं उम्मीदवारों को दें जिन में पार्टी के साथ मरने और जीने का दमख़म हो. अकाल तख़्त वह स्थान है जहाँ महाराजा रणजीतसिंह की फ़ौजें यह हलफ़ लेती थीं कि वह जी-जान से लड़ाई लड़ेंगी और कभी भी पीठ नहीं दिखायेंगी. जो ग़द्दारी करता था उस का क्या हश्र होता था, यह सर्वविदित है. हश्र वाली बात बार-बार दोहरायी गयी और सभी नेताओं ने उम्मीदवारों को याद दिलाया कि हलफ़ लेने से पहले वह बार-बार और कई बार सोचें. शायद इसी का फल था कि ५६ उम्मीदवारों में से केवल ४२ उम्मीदवारों ने ही हलफ़ उठाया. ग़ैर-हाज़िर उम्मीदवारों में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक समिति के वरिष्ठ उपाध्यक्ष सरदार कपूरसिंह, मलेरकोटला के नवाब इफ़्तियार अली ख़ाँ तथा अन्य व्यक्ति थे. इस ग़ैर-हाज़री से अकाली नेता के चेहरे पर चिंता की रेखाएँ साफ़ दीख रही थीं और खीझ भरे स्वर में संत फ़तेहसिंह ने कहा कि जो उम्मीदवार १० जनवरी तक हलफ़नामे पर दस्तख़त नहीं करेगा उसे पार्टी का टिकट नहीं दिया जायेगा.

प्रतिज्ञापत्र को पढ़े-लिखे लोग तो रवानी के साथ पढ़ गये, लेकिन कई अँगूठा-छाप उम्मीदवार केवल हाथ हिलाने और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने के और कुछ नहीं कर सके. उस समय ऐसा लगा कि चुनाव जीतने के बाद अगर यही सदस्य सरकार बनायेंगे तो आम जनता का कितना भला हो सकेगा. ख़ैर, प्रतिज्ञा के बाद पीली पगड़ीधारी राड़ेवाला चुपके से खिसकते नज़र आये; शायद उन्हें अकाली पार्टी का यह रवैया अधिक पसंद नहीं आया था. लेकिन गहरी नीली पगड़ीधारी सुरेंद्रसिंह कैरों बैठे रहे और उन की गर्दन नीचे ही झुकी रही—शायद वह अपने-आप को लोगों की नज़रों में शरीफ़ साबित करना चाहते थे, अथवा दिल ही दिल में उन्हें अकाली पार्टी में शामिल होने पर शर्म महसूस हो रही थी. लेकिन गुरनाम सिंह ख़ूब सक्रिय थे और उन के आसपास कई छोटे-मोटे नेता मँडरा रहे थे. **दिनमान** के घुमंतू संवाददाता को गुरनामसिंह ने बताया कि उन के दल को स्पष्ट बहुमत मिलेगा और अगली सरकार उन्हीं की बनेगी. बाद में उन्होंने अपनी बात को साफ़ करते हुए कहा कि दल का मतलब अकाली पार्टी नहीं, संयुक्त मोर्चा है. लंबा रेशमी कुर्ता पहने संत चन्नर्नसिंह ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बड़े ही दृढ़ लहज में बताया कि उन्हें कम से कम ६५ स्थान प्राप्त होंगे. यानी समझौते हो जाने पर हम कम से कम इतने स्थानों की उम्मीद तो कर ही सकते हैं. संत फ़तेहसिंह ने बड़ी ही सादगी से संत-वाणी में कहा कि 'वाहे गुरु जो भी करेगा ठीक करेगा.' फिर शायद अचानक उन के दिमाग़ में राजनैतिक समझौतेबाज़ी का चित्र कौंध गया और उन्होंने कहा, 'हमें निश्चित और स्पष्ट बहुमत मिलेगा और अगली सरकार संयुक्त मोर्चे की सरकार होगी. इस बार हमारी संख्या विघटनकारी साबित नहीं होगी.' संत फ़तेहसिंह के बारे में यह बात खुले तौर पर कही जाती है कि उन्होंने यदि एक बार तय कर लिया कि दल छोड़ने वाले को किसी सूरत में दल में वापस नहीं लेना है तो फिर वह टस-से-मस नहीं होंगे. यही वजह है कि बुद्धिराजा, हुडियारा और गिल के लिए उन के दरवाज़े सदा के लिए बंद हो चुके हैं.

प्रदेश के दौरे के बाद यह संवाददाता इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि **पंजाब में लोग अब भी संयुक्त मोर्चे के कार्यों की सराहना करते हैं. लोगों के मन में हिंदू-सिख एकता की छाप अभी भी साफ़ और उजली दिखायी दे रही थी.** संयुक्त मोर्चे के प्रति आस्था का कारण शायद यह था कि गिल सरकार का समर्थन करने के कारण कांग्रेस की स्थिति को काफ़ी धक्का पहुँचा है और दूसरे प्रदेश और केंद्रीय चुनाव-समिति द्वारा कांग्रेसी उम्मीदवारों के निर्वाचन-क्षेत्रों में हेरफेर करने के कारण जहाँ उम्मीदवारों की निराशा हुए हैं वहाँ जनता की आस्था में भी उम्मीदवारों और कांग्रेस के प्रति फ़र्क आया है. ज्ञानसिंह राड़ेवाला अकाली दल में शामिल हो गये हैं, सुरजीतसिंह मजीठिया और सुरजीतसिंह अटवल के निर्वाचन-क्षेत्रों को ले कर बहुत कहा-सुनी हुई है. यह बात ज़रूर सही है कि अकाली दल, जनसंघ और कम्युनिस्ट पार्टियों की अपनी निजी तौर पर जो धाक और साख बनी हुई थी उस में भी अब वह बात नहीं रह गयी है. अकाली दल ऊपर से जितना संगठित नज़र आता है भीतर से उतना नहीं है, क्यों कि अकाली दल के ३ मुख्य नेता गुरनामसिंह, ज्ञानसिंह राड़ेवाला और कपूर सिंह भीतर ही भीतर एक-दूसरे को पसंद नहीं करते. **दिनमान** के प्रतिनिधि को इस बारे में गुरनामसिंह ने नपे-तुले शब्दों में बताया, 'ऐसी तो कोई बात नहीं, अगर कोई है भी तो छँटनी अपने-आप हो जायेगी.' निर्विवाद है कि यदि अकाली और जनसंघ स्पष्ट बहुमत प्राप्त कर लेते हैं तो वह गुरनाम सिंह को ही अपना नेता स्वीकारेंगे. कपूरसिंह संयुक्त मोर्चे के सदस्यों को इस लिए रास नहीं आयेंगे क्यों कि वह सिक्खिस्तान के हिमायती हैं और ज्ञानसिंह राड़ेवाला की पृष्ठभूमि में कांग्रेसी बीज भरा पड़ा है. **दिनमान** के प्रतिनिधि से अकाली दल के संत चन्नर्नसिंह और जनसंघ के डॉ. बलदेव

नामसिंह | लछमनसिंह गिल | ज्ञानसिंह राड़ेवाला | वृषभान | ज्ञानी ज़ैलसिंह | हरचरणसिंह | दरबारासिंह

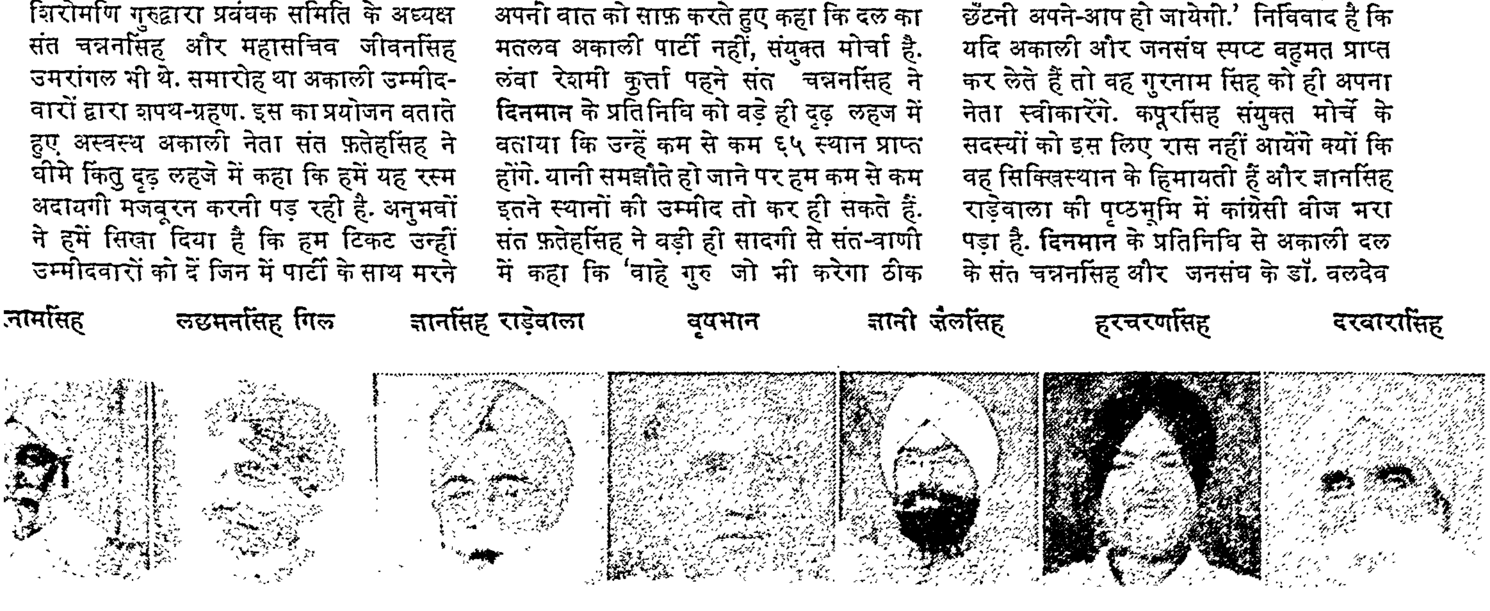

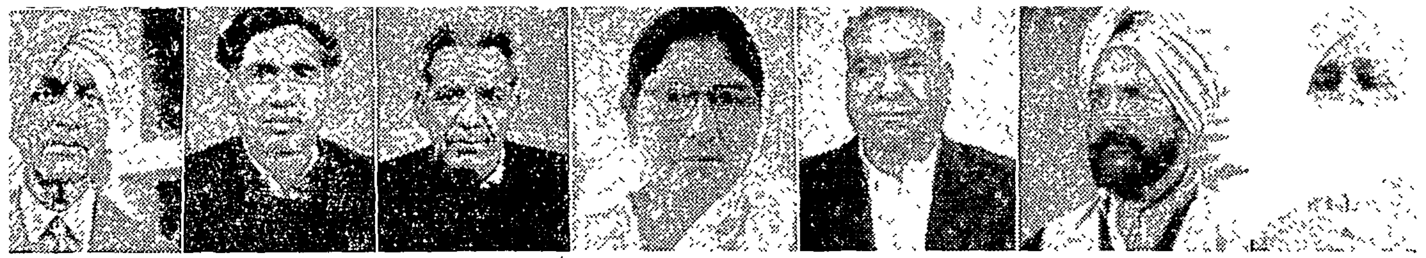

गार अली खाँ बलदेव प्रकाश सत्यपाल डांग प्रकाश कौर बलरामजी दास टंडन राजेंद्रसिंह स्पैरो प्रेमसिंह 'प्रेम'

प्रकाश और बलरामजी दास टंडन ने यह साफ़ तौर पर कहा कि लोग चाहे जितना बवंडर मचायें, अकाली-जनसंघ समझौते में किसी तरह की दरार नहीं पड़ने दी और अकाली-जनसंघ समझौते की वजह से ही राज्य की राजनैतिक स्थिति में बड़े पैमाने पर स्थिरता आयी है. कुछ दिन पहले की कांग्रेसियों की ख़ुशी तब ग़मी में बदल गयी जब अकाली-जनसंघ नेता एक समझौते पर हस्ताक्षर कर पत्रकारों से मिले. प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष ज्ञानी ज़ैलसिंह ऊपर से काफ़ी आश्वस्त हैं, लेकिन **दिनमान** के प्रतिनिधि की नज़रों में उन की खिसियाहट छिपी नहीं रह सकी. उन का ख़याल है कि शायद किसी को भी पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होगा. लेकिन उन के एक चेले श्री ओंकार ने बताया कि कांग्रेस की स्थिति पहले की अपेक्षा बहुत अच्छी है और निश्चित रूप से उन की ही सरकार [illegible] डकाला के जाने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता, [illegible] पेप्सू का इलाक़ा पहले ही कांग्रेस के [illegible] नहीं था. उन्हें उम्मीद है कि जालंधर, लुधियाना, गुरुदासपुर, होशियारपुर, अमृतसर, और फ़िरोजपुर में उन की स्थिति पहले से अधिक अच्छी रहेगी. कांग्रेस के दो भूतपूर्व मुख्यमंत्री कॉमरेड रामकिशन और ज्ञानी गुरमुखसिंह मुसाफ़िर अपने-अपने चुनाव-विश्लेषण में काफ़ी साफ़ और ईमानदार नज़र आये. रामकिशन यह मानते हैं कि कांग्रेस को ३० और ३५ स्थानों से अधिक नहीं मिलेंगे, लेकिन अकाली दल को भी ३०-३५ स्थान ही मिल पायेंगे. इस प्रकार किसी भी एक पार्टी की सरकार वहाँ बन पाना मुश्किल है. बकौल रामकिशन के अन्य पार्टियों की स्थिति इस प्रकार हो सकती है—रिपब्लिकन पार्टी २ या ३, जनसंघ ७ से ९, कम्युनिस्ट ६ से ८, जनता पार्टी ३ से ४, प्रसपा १, स्वतंत्र पार्टी १, कांग्रेस ३२ से ३८ और अकाली ३० से ३५. उन के अनुसार अमृतसर, गुरुदासपुर, होशियारपुर, जालंधर, कपूरथला और रोपड़ कांग्रेसी गढ़ हैं, जहाँ उन की स्थिति ६७ के आम चुनाव की अपेक्षा सुदृढ़ है. उन का यह भी विश्वास है कि फ़िरोज़पुर, भटिंडा, संगरूर और पटियाला में जहाँ उन की स्थिति अच्छी नहीं है, अच्छे कांग्रेसी उम्मीदवारों के आ जाने से स्थिति बेहतर हो सकती है. दूसरे भूतपूर्व मुख्यमंत्री **ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफ़िर** का ख़याल है कि कांग्रेस को २५ और ३० से अधिक स्थान नहीं मिलेंगे. इस का कारण कांग्रेस की आपसी गुटबंदी है. स्वर्णसिंह और ज़ैलसिंह गुटों ने अपने-अपने हित को और अपने-अपने प्रभुत्व को बनाये रखने के लिए कांग्रेस पार्टी की नैया डुबोयी है.

आम जनता के विभिन्न वर्गों के लोगों से भी **दिनमान** के प्रतिनिधि की मुलाक़ात हुई. सरकारी नौकर **बलदेवसिंह** का कहना था कि मतदान पार्टी के चिह्न को देख कर ही नहीं होंगे, बल्कि उम्मीदवार की अपनी अहमियत और उस के काम करने की लगन ही किसी के जीतने या हारने में सहायक होगी. उदाहरण के लिए उन्होंने राजपुरा और बनूड़ के इलाक़े में शांतिप्रकाश और प्रेमसिंह 'प्रेम' (कांग्रेसी) के जीतने की संभावना इस लिए की है कि लोगों के मन में उन के प्रति श्रद्धा और आस्था है. ६ फुट के एक देहाती जाट **जागीरसिंह** का कहना है कि 'पंथ' की तरफ़ से जो हुकुम होगा वही सिर माथे पर. एक किसान **रविंदरसिंह** यह सोचते हैं कि बाहर से थोपे गये उम्मीदवारों के जीतने का सवाल ही पैदा नहीं होता. हम तो उसी उम्मीदवार को अपनायेंगे जो हमारे इलाक़े का है, हमारी सहायता करता है और 'मेंबर' या 'मंत्री' बन जाने पर हमारे काम आ सकता है. एक ताँगेवाले **बेअंतसिंह** सोचते हैं कि संयुक्त मोर्चे की सरकार काफ़ी कामयाब रही. यही वजह है कि आज हिंदुओं और सिखों में भ्रातृभाव है और वह कंधे से कंधा मिला कर काम कर रहे हैं. लिहाज़ा उन्हीं के जीतने के आसार अच्छे नज़र आते हैं. एक रिक्शावाला सोचता है—चाहे जो भी जीते, सभी अपना-अपना पेट भरते हैं. जब तक मेंबर नहीं होते तब तक उन के घर में एक खटिया और एक-दो टूटे-फूटे ट्रंक होते हैं. मेंबर बन जाने के बाद उन की झोंपड़ी कोठी बन जाती है और उस में वे सब चीज़ें आ जाती हैं जिन की कभी वे कल्पना भी नहीं करते थे.

इन प्रतिक्रियाओं का घोल अपने दिमाग़ में घोलते हुए **दिनमान** प्रतिनिधि पटियाला की सँकरी और भीड़भाड़ वाली सड़क से गुज़रते हुए और आगे शहर में बढ़ा तो उसे बहुत से खेमे और तंबू नज़र आये, जहाँ कई पार्टियों के ऑफ़िस थे. पटियाला ज़िले में ९ निर्वाचन-क्षेत्र हैं—बनूड़, राजपुरा, रायपुर, पटियाला, डकाला, समाना, नाभा, अमलोह और सरहिंद. मुग़लकाल का शानदार नगर बनूड़ अब एक क़स्बा बन गया है. स निर्वाचन-क्षेत्र में कांग्रेस के भूतपूर्व मंत्री प्रेमसिंह 'प्रेम' की टक्कर मुख्य रूप से क्रांतिकारी बाबा पृथ्वीसिंह के साथ होगी. पिछले आम चुनाव में प्रेमसिंह 'प्रेम' ने बाबा पृथ्वीसिंह को ५०९ मतों से हराया था. इस बार भी मुख्य रूप से इन दोनों का ही मुक़ाबला होगा. बनूड़ में हिंदुओं की आबादी ५६ प्रतिशत है और यह हरयाणा और पंजाब की सीमा पर स्थित है. कांग्रेस की स्थिति इस लिए और पुख़्ता हो गयी है क्यों कि बाबा पृथ्वीसिंह को प्रेमसिंह 'प्रेम' के ख़िलाफ़ चुनाव-याचिका दायर करने के लिए लोगों ने धन एकत्र कर के दिया था, लेकिन वह सारा धन ख़ुद ही डकार गये और चुनाव-याचिका दाखिल नहीं की, जिस से वह समर्थकों की निगाह में गिर गये.

पटियाला शहर कांग्रेसी इलाक़ा है और यहाँ मुक़ाबला पंजाब उच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश और महाधिवक्ता जगन्नाथ कौशल (कांग्रेस) और रवेल सिंह (अकाली) का है. वैसे मैदान में ओम् प्रकाश लांबा (जनसंघ) भी हैं. अकाली नेता रवेलसिंह के नामांकन से ख़ुश नहीं हैं. वह नगरपालिका सदस्य मनमोहन सिंह के समर्थक थे, लेकिन अकाली पार्टी ने उन्हें टिकट नहीं दिया. रवेलसिंह बाहरी आदमी है, जब कि जगन्नाथ कौशल स्थानीय हैं. स्थानीय अकाली कार्यकर्त्ताओं का उम्मीदवार अमरीकसिंह माता, पार्टी के उम्मीदवार की मुख़ालफ़त करेगा. **डकाला** से पिछले आम चुनाव में पटियाला के महाराजा यादवेंद्रसिंह खड़े हुए थे. स बार वह चुनाव नहीं लड़ेंगे. कांग्रेस ने श्रीमती वीर पाल कौर को, जो कर्नल रघुवीरसिंह की पत्नी हैं, नामांकित किया है. पहले यहाँ अकाली उम्मीदवार जसदेवसिंह सिंधू थे, लेकिन अकालियों का स्वतंत्र पार्टी से समझौता हो जाने से वे स्वतंत्र पार्टी के प्रधान बसंतसिंह का समर्थन करने के लिए सहमत हो गये हैं. इस से अकालियों में मनमुटाव हो गया है. नगर में यह भी अफ़वाह है कि महाराजा पटियाला ने अकाली पार्टी को ३ लाख रुपया दे कर ५ सीटें स्वतंत्र पार्टी के लिए ली हैं. बसंतसिंह महाराजा के उम्मीदवार हैं, लिहाज़ा उन का पलड़ा कुछ भारी लगता है. **नाभा** में रामप्रताप गर्ग (कांग्रेस) और दारासिंह एडवोकेट (अकाली) की टक्कर होगी. गर्ग बाहर के आदमी हैं. दारासिंह स्वर्ण सिंह के समधी हैं. एक और उम्मीदवार गुरदर्शनसिंह हैं, जिन्हें प्रदेश कांग्रेस समिति ने अपना उम्मीदवार घोषित किया था, लेकिन केंद्रीय चुनाव-समिति ने उन्हें नहीं अपनाया है. पिछली बार राजा नरेंद्रसिंह गुरदर्शनसिंह से लगभग दस हज़ार मतों से जीते थे. इस बार कांग्रेस की स्थिति यहाँ पतली है. सरहिंद में लोकप्रिय अकाली रणधीरसिंह चीमा और भूपिंदरसिंह मान का

मुक़ाबला है. यहाँ अकालियों की स्थिति मज़बूत है. पिछले आम चुनाव में जोगिंदरसिंह मान (अकाली-मास्टर गुट) कोई दो हज़ार मतों से जीते थे, मज़बूत नहीं दीख रहे हैं. **रायपुर** में सत्यपाल कपूर (कांग्रेस) और हरदर्मसिंह (अकाली) मुख्य उम्मीदवार हैं. यों १४ और उम्मीदवार मैदान में हैं. हरदर्मसिंह की स्थिति अच्छी है—एक तो वह ज़मींदार है, दूसरे कंबोज जाति के लोग उन के पक्ष में हैं, तीसरे काली कमलीवाले बाबा आजकल कांग्रेस के विरुद्ध हैं और चौथे महारानी महिंदर कौर ने इस इलाक़े में ख़ास दिलचस्पी लेना छोड़ दिया है.

पंजाब के सब से गंदे लेकिन औद्योगिक दृष्टि से संपन्न नगर **लुधियाना** में **दिनमान** प्रतिनिधि की मुलाक़ात भूतपूर्व मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह से हो गयी. उन्होंने बताया कि यहाँ कांग्रेस को एक भी जगह मिलने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए, क्यों कि अभी तक ४ स्थानों के लिए कांग्रेस अपने उम्मीदवार तय नहीं कर पायी है. उन के ख़िलाफ़ जो कांग्रेसी उम्मीदवार जगजीतसिंह ढिल्लों थे उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया है. लुधियाना ज़िले से पंजाब और पेप्सू के तीन भूतपूर्व मुख्यमंत्री चुनाव लड़ रहे हैं. **पायल** से ज्ञानसिंह राड़ेवाला (अकाली) का मुक़ाबला बेअंत सिंह (निर्दल) से होगा. दोनों का अपना-अपना दबदबा है. बेअंतसिंह ज़मींदार हैं, राड़ेवाला के मत बाँट सकते हैं, लेकिन जीतने की संभावना अपने निजी प्रभुत्व और सम्मान के कारण ज्ञानसिंह राड़ेवाला की है. पहले कांग्रेस बेअंतसिंह का समर्थन करने की सोच रही थी किंतु उसने अब उनके मुक़ाबले में अपने एक कार्यकर्त्ता ओमप्रकाश को खड़ा किया है. बेअंतसिंह पिछले आम चुनाव में अकाली टिकट पर खड़े हुए थे. **समराला** में अकाली पार्टी के वरिष्ठ उपाध्यक्ष कपूरसिंह आई. सी. एस. (अकाली) का मुक़ाबला पंजाब विधान परिषद् के भूतपूर्व सभापति सरदार कपूरसिंह के बीच होगा. कांग्रेसी कपूरसिंह का अकाली कपूरसिंह की अपेक्षा जनता में सम्मान अधिक है, लिहाज़ा कांग्रेस की स्थिति यहाँ अच्छी है. **जगरांव** में अकाली उम्मीदवार दलीपसिंह तलवंडी है. जब कांग्रेस के सुरजीतसिंह मजीठिया ने यहाँ चुनाव लड़ने में अपनी असमर्थता ज़ाहिर कर दी तो उन का स्थान अब नाहर सिंह को दिया गया है. तलवंडी उन पाँच ज़िंदा शहीदों में से हैं जिन्होंने चंडीगढ़ और भाखड़ा नंगल की प्राप्ति के लिए १९६५ में संत फ़तेहसिंह के साथ जल मरने की क़सम खायी थी. **जगरांव** एक ऐतिहासिक इलाक़ा है और अकालियों का गढ़ है. लोग अधिक पढ़े-लिखे नहीं, लेकिन धर्मभीरु हैं. लछमनसिंह गिल ने यहाँ काफ़ी नाम कमाया है और जनता समिता कालेज के निर्माण का श्रेय भी उन्हीं को है, फिर भी अकाली उम्मीदवार के जीतने की संभावना है. यहाँ जैन मुनियों का काफ़ी रसूक है और अगर लछमनसिंह गिल यहाँ से खड़े होते, जैसी कि पहले संभावना भी थी, तो उन का जीतना लगभग तय था. **उत्तरी लुधियाना** से सरदारी लाल कपूर (कांग्रेस) का मुक़ाबला भूतपूर्व जनसंघी विधायक कपूरचंद्र जैन से है. सरदारी लाल कपूर अपने ४१ साल के राजनैतिक जीवन में पहली बार चुनाव लड़ रहे हैं. मुक़ाबला डट कर होगा. **लुधियाना दक्षिण** में योगेंद्रपाल पांडे (कांग्रेस), जगदीशचंद्र प्रसाद लुंबा (जनसंघ) और दौलतराम टंडन (संसपा) का मुक़ाबला है. पांडे आम चुनाव में जनसंघ के विश्वनाथन् से हारे थे. मुक़ाबला जम कर होगा. योगेंद्रपाल पांडे का पलड़ा भारी है. **क़िला रायपुर** से पंजाब के दो भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों की टक्कर है—गुरनामसिंह (अकाली) और लछमनसिंह गिल (जनता पार्टी). लछमनसिंह गिल पिछले डेढ़ महीने से यहाँ पद-यात्रा कर रहे हैं. यहाँ ग्रेवाल मत ज़्यादा है और गुरनामसिंह का दबदबा बहुत है. कांग्रेसी उम्मीदवार जगजीतसिंह ढिल्लों मैदान से हट गये हैं और वह गुरनामसिंह के समर्थन में चुनाव-प्रचार कर रहे हैं. गुरनाम सिंह के जीतने की अधिक संभावना है. अब कांग्रेस ने अपने एक भूतपूर्व विधायक मंगल सिंह गिल को अपना उम्मीदवार नामज़द किया है. **रायकोट** में जगदेवसिंह अकाली और बाल सिंह रूमी (कांग्रेस) का मुक़ाबला है. पिछली बार यहाँ से अकाली उम्मीदवार जगदेवसिंह १२ हज़ार मतों से जीते थे, लेकिन तब कांग्रेसी उम्मीदवार कमज़ोर था. **कूम कलाँ** में शमशेर सिंह टंडारी (अकाली) का काफ़ी दबदबा है. औद्योगिक और कृषि-क्षेत्रों में एक जैसी पहुँच है और उन के जीतने की पूरी उम्मीद है. पिछली बार यहाँ से कांग्रेस के जनरल मोहन सिंह जीते थे, जो अब मैदान में नहीं हैं.

नरोन्हा : शांति के रक्षक

लुधियाना में जनसंघ का ज़ोर बहुत अधिक है और शहर की तीन सीटों में से दो जनसंघ और एक निर्दल उम्मीदवार को मिलने की पूरी उम्मीद है. **जलंधर शहर उत्तर** में भूतपूर्व विधायक लालचंद सब्बरवाल (जनसंघ) का मुक़ाबला उद्योगपति गुरदयाल सैनी (कांग्रेस) के बीच होगा. जनसंघ के प्रति लोगों के मन में अभी भी कुछ आदर है और हिंदुओं की संख्या ख़ासी है. लिहाज़ा यह स्थान जनसंघ को मिलेगा. **जलंधर दक्षिण** में मनमोहन कालिया (जनसंघ) के मुक़ाबले में नगरपालिका के सदस्य करतारसिंह मैना हैं. मनमोहन कालिया ने पिछली बार यहाँ से यशपाल को ५ हज़ार से अधिक मतों से पराजित किया था और इस बार भी उन की स्थिति काफ़ी अच्छी है. यशपाल अब होशियारपुर संसदीय उप-चुनाव से चुनाव लड़ रहे हैं. **जलंधर छावनी** से भूतपूर्व विधायक और राजस्वमंत्री जनरल राजेंद्र सिंह 'स्पैरो' संयुक्त मोर्चे के उम्मीदवार हैं. अकाली दल ने अब उन का समर्थन करने का निश्चय किया है. कांग्रेस की तरफ़ से स्वरूप सिंह खड़े किये गये हैं. राजेंद्रसिंह स्पैरो के ख़िलाफ़ यह प्रचार किया जा रहा है कि वह 'पतित सिख' हैं, क्यों कि वह दाढ़ी काटते हैं और उन के दोनों बच्चे सिख नहीं हैं. फिर भी स्पैरो की स्थिति सुदृढ़ है. **नूर महल** से भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्री दरबारासिंह की टक्कर भूतपूर्व अकाली मंत्री जसवंतसिंह से होगी. कम्युनिस्ट पार्टी ने अकाली दल का समर्थन करने का निश्चय किया है. मुक़ाबला डट कर होगा. **बड़ा पिंड** में कम्युनिस्ट पार्टी के नेता हरकिशन सिंह 'सुरजीत' का मुक़ाबला उमरावसिंह (कांग्रेस) से है. यह स्थान कम्युनिस्टों का है. कांग्रेस के उम्मीदवारों में आपसी मनमुटाव के कारण यह सीट सुरजीतसिंह के हाथ लगने की उम्मीद है. **आदमपुर** में करमसिंह कीर्त्ति (कांग्रेस) के मुक़ाबले में कम्युनिस्ट पार्टी के कुलवंतसिंह हैं. कुलवंत को अकालियों का समर्थन प्राप्त है. कीर्त्ति स्वर्णसिंह का आदमी हैं और पुराने देश-भक्तों में उन की गिनती है. मुक़ाबला जम कर होगा. **फिल्लौर** से सुरजीत सिंह अटवल (कांग्रेस) का मुक़ाबला बलदेव सिंह (अकाली) के साथ होगा. इस इलाक़े से पहले अमरसिंह दोसज निर्वाचित हुए थे जिन्होंने पंजाब में दल-बदल की शुरुआत की थी. अटवल की स्थिति अधिक मज़बूत है. **जमशेर** से दर्शन सिंह केपी (कांग्रेस) के मुक़ाबले मोहिंदरसिंह (रिपब्लिकन) और नाज़रसिंह (अकाली) का मुक़ाबला है. नाज़रसिंह 'बाहरी' हैं और रिपब्लिकन पार्टी दो गुटों में—गायकवाड़ और अंबेडकर—बँटी है. अत: दर्शनसिंह केपी की स्थिति अधिक मज़बूत है. **कर्तारपुर** में मास्टर गुरबंतासिंह (कांग्रेस) का मुक़ाबला प्याराराम धन्नोवाली से होगा. पिछले आम चुनाव में मास्टर गुरबंता के ख़िलाफ़ हरिजनों को भड़काया गया था, लेकिन इस

वार प्याराराम की स्थिति बराबर दल बदलने के कारण कमज़ोर हो गयी है.

पंजाब के धार्मिक नगर **अमृतसर** में, जहाँ जगह-जगह गुरुद्वारे और मंदिर हैं, वहाँ की राजनीति भी बड़ी अजीब है. मंदिर और गुरुद्वारों के सामीप्य के कारण अकालियों और जनसंघियों की निकटता भी बहुत बढ़ गयी है और अब कांग्रेस को यह डर लग रहा है कि अमृतसर में अब उस की दाल नहीं गलेगी. अमृतसर केंद्रीय इलाक़े से भूतपूर्व जनसंघी विधायक बलरामजी दास टंडन और चंदन लाल जौड़ा (कांग्रेसी) के बीच सीधी टक्कर है. अकालियों के साथ समझौते और अपने व्यक्तित्व के कारण बलरामजी दास टंडन का जीतना प्रायः निश्चित है. **अमृतसर दक्षिण** से हीरालाल कपूर (कांग्रेस), हरबंसलाल खन्ना (जनसंघ) और कृपाल सिंह (प्रसपा) का मुक़ाबला है. पहले अकाली कृपालसिंह समर्थक थे, लेकिन अब उन का समर्थन हरबंस लाल खन्ना के पक्ष में है. **अमृतसर पूर्व** से पंजाब के भूतपूर्व उप-मुख्यमंत्री जनसंघ के डॉ. बलदेव प्रकाश अपने व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण कांग्रेसी उम्मीदवार ज्ञानचंद खरबंदा के मुक़ाबले तगड़े पड़ते हैं और उन की जीत भी प्रायः निश्चित है. **अमृतसर पश्चिम** से कांग्रेस के जयइंदरसिंह की टक्कर कम्युनिस्ट नेता सत्यपाल डांग से है. पिछले आम चुनाव में डांग ने भूतपूर्व मुख्यमंत्री मुसाफ़िर को हराया था. मंत्री होने से डांग की कई खामियाँ लोगों के सामने आयीं, लेकिन फिर भी उन का दबदबा काफ़ी है और उन के जीतने की संभावना है. **पट्टी** में एक खानदान के ही उम्मीदवार प्रतिद्वंद्वी हैं, ये हैं जसवंतसिंह कैरों (कांग्रेस), सुरेंद्र सिंह कैरों (अकाली) और हरदीपसिंह संधू (निर्दल). सुरेंद्रसिंह कैरों भूतपूर्व मुख्यमंत्री प्रतापसिंह कैरों के बड़े लड़के हैं और जसवंतसिंह के भतीजे. हरदीप सिंह संधू जसवंत सिंह के नज़दीकी रिश्तेदार हैं. सभी धनवान हैं और पट्टी में इस समय चुनाव-प्रचार ज़ोरों पर है. **खडूरपुर साहब** में हरभजनसिंह एडवोकेट, (कांग्रेस) का मुक़ाबला जत्थेदार मोहनसिंह तुड़ (अकाली) से है. यहाँ अकालियों की स्थिति बहुत मज़बूत है. तुड़ स्वर्गीय कैरों से ३९ मत से हारे थे. इस बार उन का जीतना निश्चित-सा है. **मजीठा** में डॉ. प्रकाश कौर (कांग्रेस), शीपपाल सिंह (अकाली) और प्रकाशसिंह मजीठा (जनता) की टक्कर है. शीपपाल सिंह कभी कांग्रेस के सदस्य थे और डॉ. प्रकाश कौर की अपेक्षा तगड़े उम्मीदवार पड़ते हैं. सुरजीतसिंह मजीठिया इस निर्वाचन-क्षेत्र के दावेदार थे, लेकिन उन की इच्छा पूरी नहीं की गयी. लिहाज़ा यह स्थान अकालियों को मिल सकता है.

इस के अलावा कांग्रेस के एक प्रभावशाली सदस्य हरचरणसिंह बराड़ को कोटकपूरा से टिकट दे दिया गया है. पहले इन की राह में लक्ष्मी नारायण आ गये थे, लेकिन उन्होंने अब अपना नाम वापस लिया है. बराड़ कैरों परिवार से संबद्ध हैं और अभी तक कांग्रेस में ही बने हुए हैं, जब कि अन्य लोग अकाली पार्टी में शामिल हो गये हैं. भूतपूर्व प्रतिरक्षामंत्री सरदार बलदेवसिंह के सुपुत्र सुरजीतसिंह (अकाली) खरड़ से एक कांग्रेसी उम्मीदवार नरिंजनसिंह तालिब के मुक़ाबले में हैं. कदायाँ में बजवा जाति के लोगों की सीधी टक्कर है. कांग्रेसी उम्मीदवार गुरुबचनसिंह बजवा और अकाली सतनामसिंह बजवा का मुक़ाबला है. सतनामसिंह बजवा की स्थिति दृढ़ है.

पंजाब विधानसभा के १०४ स्थानों के लिए ८७६ उम्मीदवार हैं. इन में आठ स्त्रियाँ हैं, जिन में से चार कांग्रेस की तरफ़ से, एक अकाली पार्टी और तीन बतौर निर्दल उम्मीदवार के चुनाव में भाग ले रही हैं : लछमनसिंह गिल दो निर्वाचन-क्षेत्रों—किला रायपुर और धर्मकोट से चुनाव लड़ रहे हैं. किला रायपुर में उन का मुक़ाबला गुरनामसिंह और धर्मकोट में उन का मुक़ाबला संसद्-सदस्य सोहनसिंह बस्सी से होगा.

चुनाव-संचालक **श्री नरोन्हा** ने, जो राज्यपाल के सलाहकार भी हैं, **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि चुनाव शांतिपूर्वक संपन्न कराने के लिए पुलिस, आरक्षित पुलिस तथा बाहर से पाँच बटालियन पुलिस बुलायी गयी है. यहाँ के मतदाताओं की संख्या पिछले आम चुनाव की अपेक्षा तीन लाख ६० हज़ार बढ़ी है.

चुनाव की गरमागरमी शुरू है. संयुक्त मोर्चा पुनः क़ायम हो चुका है और सभी ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों ने अपने-अपने उम्मीदवार-मैदान में उतार दिये हैं. जनता पार्टी के जन्मदाता गिल की लाख कोशिश के बावजूद सभी क्या एक बटा छह सीटों के लिए भी उम्मीदवार नहीं मिल पाये हैं.

पश्चिमी उत्तरप्रदेश

पश्चिमी उत्तरप्रदेश में विभिन्न राजनैतिक दलों ने मतदाता को आकर्षित करने के लिए अपने-अपने नारे और तर्क खड़े किये हैं. कांग्रेस का एकमात्र प्रभावशाली नारा है प्रदेश में स्थिर और मज़बूत सरकार देने में केवल कांग्रेस ही समर्थ है. इस सिलसिले में वे कांग्रेसी सरकार की स्थिरता पर कम मगर विरोधी दलों की सरकार की अस्थिरता पर अधिक ज़ोर देते हैं. इस प्रकार जनसंघ का 'हर खेत को पानी, हर हाथ को काम' वाला नारा भी कहीं-कहीं अपना प्रभाव दिखा रहा है. भारतीय क्रांति दल का सब से बड़ा नारा 'चरणसिंह' है, जिस का चित्र हर विज्ञापन के साथ रहना ज़रूरी हो गया है. यों तो उन के कार्यक्रम में 'धुँआ रहित चूल्हे' उपलब्ध कराना भी शामिल है मगर भारतीय क्रांति दल के नाम और कार्यक्रम से लोगों को गर्ज़ नहीं, चरणसिंह का नाम उन के लिए पर्याप्त है. **दिनमान** के प्रतिनिधि को मुरादाबाद नगर में भारतीय क्रांति दल के कार्यालय का पता कई लोगों से पूछने पर भी नहीं मिला. चरणसिंह की पार्टी को यहाँ कोई नहीं जानता. "अच्छा वो, उस का कार्यालय तो पास में ही है, वहाँ", यह उस व्यक्ति ने कहा जो भारतीय क्रांति दल को नहीं जानता था.

इस क्षेत्र से चुनाव में चरणसिंह को छोड़ कर किसी व्यक्ति का महत्त्व नहीं. वह जाटों के एकमात्र नेता बन गये हैं. अगर इस के अतिरिक्त कोई महत्त्वपूर्ण तत्त्व है तो संप्रदाय और जाति. यहाँ के ४० प्रतिशत मतदाता मुसलमान हैं और यही वर्ग चुनाव का अंतिम फ़ैसला कर सकता है. राजनैतिक दल इस बात को समझते हैं. जनसंघ को छोड़ कर सभी दल इसी कोशिश में हैं कि उन्हें इस वर्ग के अधिक से अधिक मत प्राप्त हो सकें. धर्म-निरपेक्षता और समाजवाद का स्थान दूसरा है. एक संयुक्त समाजवादी प्रत्याशी का ध्यान जब इस ओर दिलाया गया तो उन्होंने कहा 'अब जब यह वातावरण बन गया है तो इस से लाभ न उठाने का मतलब होगा पराजय.' बहती गंगा में हाथ धोने की नीति कांग्रेस की नहीं है. वह तो गंगा को अपने ही घर की तरफ़ मोड़ने के प्रयत्न में है. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने अलीगढ़ कांग्रेस के ज़िला मंत्री से पूछा कि यह आरोप कहाँ तक उचित है कि कांग्रेस अल्पसंख्यकों के मत प्राप्त करने के लिए अनुचित रूप से उन की हिमायत कर रही है. तो वह बोले 'हिमायत हम ज़रूर करते हैं, मगर इस में अनुचित क्या है ? हम जानते हैं कि १९६७ के निर्वाचन में बहुत से मुसलमानों ने हमें मत नहीं दिया. हमारे प्रत्याशी (रवींद्र ख्वाजा) को जनसंघी प्रत्याशी इंद्रपालसिंह ने ५००० मतों से पराजित किया. इस लिए हमारे लिए अल्पसंख्यकों के हितों का विशेष ध्यान रखना ज़रूरी है.' इस सिलसिले में उन्होंने बताया कि अलीगढ़ ही कांग्रेस के नेता चंद्रभानु गुप्त का असली घर है. 'मगर यह हमारी बदनसीबी है कि हम उन्हें यहाँ से खड़ा नहीं कर सके.'

पश्चिमी उत्तरप्रदेश में चुनाव को प्रभावित करने वाली अनेक बातें हैं, मगर जाति और संप्रदाय अब भी सब से शक्तिशाली तत्त्व हैं. यह संघर्ष अग्रवालों और बारासैनियों, जाटों और ब्राह्मणों, निम्न वर्ग के लोगों और उच्च वर्गों, अंसारियों और अन्य मुस्लिम वर्गों का तो है ही मगर मुख्य प्रतिद्वंद्वी हिंदू और मुसलमान बनते जा रहे हैं और इस में सभी दल—समाजवादी, धर्म-निरपेक्षतावादी और सांप्रदायिक अपना-अपना योगदान दे रहे हैं. किसी ने इस बात की ओर ध्यान नहीं दिया है कि भारतीय समाज को इस वस्तुस्थिति से किसी प्रकार मुक्त किया जाए. उन के अनुसार 'अभी तो इस स्थिति को बदला नहीं जा सकता. अधिसंख्य हिंदुओं को जनसंघ अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हो गया है और किसी हद तक हिंदूपन की भावना जातिवाद से अधिक प्रभाव-

चौथे आम चुनाव के बाद

उत्तरप्रदेश (कुल विधायक—४२५)

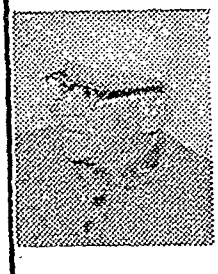

चंद्रभानु गुप्त

पहला मंत्रिमंडल

मुख्यमंत्री : चंद्रभानु गुप्त (कांग्रेस)
कार्यकाल : १२-३-६७ से १-४-६७ तक
कांग्रेसी विधायक : (शपथ ग्रहण के समय) १९८
मंत्रियों की संख्या : ११

*

दूसरा मंत्रिमंडल

मुख्यमंत्री : चौधरी चरणसिंह (संविद)
कार्यकाल : ३-४-६७ से १७-२-६८ तक
मंत्रियों की संख्या : २८

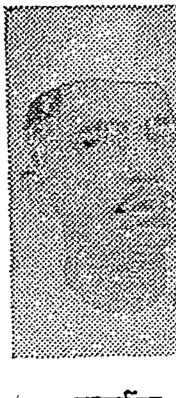

चरणसिंह

शाली शस्त्र सिद्ध हो रही है. —अलीगढ़ में वनियों की जनसंख्या सब से अधिक है, फिर भी जनसंघी प्रत्याशी इंद्रपालसिंह ठाकुर हैं. हिंदुओं के इस रुख का स्पष्ट परिणाम यह हो रहा है कि अन्य दल अपनी आशाएँ अल्पसंख्यकों पर टिकाये हुए हैं. यदि अल्पसंख्यक एक गुट के रूप में किसी दल विशेष के पक्ष में जायें तो उस के जीतने की आशा है अन्यथा नहीं.

दिनमान के प्रतिनिधि को बरेली नगर में भारतीय क्रांति दल के ज़िला मंत्री और साप्ताहिक **बंधन** के संपादक सरस्वतीसहाय त्यागी ने विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि इस बार भारतीय क्रांति दल ज़िले में सब से अधिक स्थान—११ में से ८—जीत लेगा; उन के अनुसार किसानों के लिए जो स्थान पहले कांग्रेस का था वही अब भारतीय क्रांति दल का हो गया है. "प्रमाण यह है कि बड़े-बड़े प्रभावशाली कांग्रेसी कार्यकर्त्ता भारतीय क्रांति दल में शामिल हो रहे हैं." इस सिलसिले में उन्होंने फ़रीदपुर से अपने दल के प्रत्याशी का उदाहरण दिया, जो कांग्रेस से टिकट न मिलने पर अपने २५०० कार्यकर्त्ताओं के साथ कांग्रेस छोड़ कर भारतीय क्रांति दल में शामिल हो गये हैं.

बात घूम-फिर कर अल्पसंख्यकों पर टिक गयी. दल के एक मुसलमान कार्यकर्ता ने दावा किया कि ८० प्रतिशत मुसलमान हमारे दल को मत देंगे, क्यों ? क्यों कि कांग्रेस से वे निराश हो चुके हैं और जनसंघ को वह मत नहीं देंगे. जनसंघ मुसलमान विरोधी दल है. बेशक चुनाव के दिनों में वह हमारा हमदर्द बन जाता है.' बरेली नगर में मुसलमानों की आबादी ४० प्रतिशत है. ३५ हज़ार मुसलमान मतदाताओं में से यदि २८ हज़ार (८० प्रतिशत) मत डालें और इन में से ८० प्रतिशत भारतीय-क्रांति दल के प्रत्याशी रामसिंह खन्ना के लिए पड़ें तो उन्हें मुसलमानों के २२ हज़ार से भी अधिक मत मिलेंगे. रामसिंह खन्ना और चरणसिंह की व्यक्तिगत लोकप्रियता से हिंदुओं के ५ हज़ार मत भी मिल गये तो बहुपक्षीय संघर्ष में उन की जीत निश्चित है.'

आँकड़े बहुत ही सरल और स्पष्ट हैं. वास्तव में वे इतने सरल हैं कि उन की वास्तविकता पर विश्वास करना कठिन हो जाता है. अति सरल होना ही उन की सब से बड़ी कमज़ोरी है. यह बात **दिनमान** के संवाददाता की समझ में नहीं आयी कि भारतीय क्रांति दल के नेता किस आधार पर यह मान बैठे हैं कि मुसलमान मतदाता केवल उन्हीं के समर्थन में मत डालेंगे और न ही दल के नेताओं ने इस सिलसिले में समझाने का कोई प्रयास किया है. ठीक है कि मुसलमानों को कांग्रेस से जो आशाएँ थीं वे पूरी नहीं हुई और इस लिए उन के मन में कांग्रेस के प्रति उतना लगाव नहीं है जितना था. मगर इस स्थिति का अतिरंजित रूप पेश करना या उस से यह मान लेना कि उत्तरप्रदेश के किसी एक क्षेत्र के मुसलमान अचानक भारतीय क्रांति दल के भक्त हो गये हैं उचित नहीं दिखाई देता. बरेली के ही एक कांग्रेसी नेता के शब्दों में 'ये लोग (भारतीय क्रांति दल) मुसलमानों में यह वहम पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं कि यदि उन्होंने भारतीय क्रांति दल को मत नहीं दिया तो उत्तरप्रदेश में जनसंघ का राज्य हो जायेगा और ऐसी स्थिति में मुसलमानों का भविष्य ख़तरे में पड़ जायेगा.' **प्रश्न** : कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं के अनुसार मुसलमान मतदाता कांग्रेस का साथ नहीं छोड़ सकता, क्यों कि उत्तरप्रदेश में यदि कहीं वास्तविक संघर्ष है तो परस्पर जनसंघ में और 'असांप्रदायिक' कांग्रेस में ही है. मगर **बरेली** नगर के संदर्भ में ये कांग्रेसी कार्यकर्त्ता **दिनमान** के संवाददाता को नहीं समझा पाये कि वह यह दावा कैसे करते हैं कि कांग्रेस इस बार बरेली नगर में और ज़िले के अन्य स्थानों में पहले से भी अधिक मत प्राप्त करेगी. यदि यह मान लें कि अधिसंख्य मुसलमान अब भी कांग्रेस के ही साथ हैं और कांग्रेस को हिंदुओं के उतने ही मत मिलेंगे जितने पहले मिले थे तो उस से इस दल की स्थिति कैसे सुधर जाती है ? कां. कार्यकर्त्ताओं को आशा है कि भारतीय क्रांति दल जनसंघ के मत काटेगा, क्यों कि दोनों दल कांग्रेस विरोधी भावना को ही अपनी पूंजी समझते हैं. मगर इस संवाददाता को शहर के वातावरण में इस प्रकार का कोई संकेत नहीं मिला कि मतदाता के मन में भारतीय क्रांति दल और जनसंघ के बीच में कोई दुविधा है. कुछ भी हो कांग्रेस का यह अनुमान ठीक नहीं लगता कि भारतीय क्रांति दल उस के भविष्य पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल सकता. सच तो यह है कि भारतीय क्रांति दल कांग्रेस के लिए जनसंघ से भी बड़ा ख़तरा है.

जनसंघ के प्रत्याशी और साप्ताहिक **बरेली** समाचार के संपादक सत्यप्रकाश अग्रवाल को विश्वास है कि उन का दल पहले से कहीं अधिक संगठित और लोकप्रिय है. कारण उस में ऐसे मतभेद पैदा नहीं हुए हैं जिन से अवसरवादिता का शक हो. 'हमारे समर्थक जानते हैं कि हम व्यक्तियों के नहीं सिद्धांतों के आधार पर लड़ते हैं. हमारे लिए इस का महत्व नहीं कि दल किस को टिकट देता है, किस को नहीं.' **दिनमान** के संवाददाता ने उन का ध्यान कुछ तथ्यों की ओर दिलाया जिन से सिद्ध होता है कि कुछ जनसंघी कार्यकर्त्ता और विधायक विरोधी शिविर में जा मिले हैं. उदाहरण के लिए भोजीपुरा चुनाव-क्षेत्र से जनसंघ के भूतपूर्व विधायक भानुप्रतापसिंह कांग्रेस की ओर से खड़े हुए हैं. किंतु भोजीपुरा क्षेत्र में जनसंघ के प्रत्याशी भूतपूर्व विधायक हरीशकुमार गंगवार के संबंध में जनसंघ को कोई चिंता नहीं. बल्कि विश्वास है कि गंगवार को अपने क्षेत्र के अधिसंख्य मतदाताओं का विश्वास प्राप्त है. उन का प्रभाव इसी से सिद्ध है कि इस सर्वेक्षण के समय तक भारतीय क्रांति दल का कोई भी प्रभावशाली प्रत्याशी इस क्षेत्र में नहीं खड़ा हुआ था.

अलीगढ़ में कांग्रेस को इस बात का सब से ज्यादा अहसास है कि अल्पसंख्यकों के मत उन के भाग्य का निर्णय कर सकते हैं. इस लिए कांग्रेस ने अलीगढ़ से एक पुराने नवाब अहमद खाँ को खड़ा किया है. अलीगढ़ कांग्रेस कमेटी के मंत्री रामनंदन वशिष्ठ के अनुसार अहमद लूत खाँ का चयन इस लिए किया गया कि वह एक राष्ट्रीय मुसलमान हैं और अलीगढ़ के मुसलमानों को इस बात का अहसास न हो कि इतनी बड़ी संख्या में होते हुए भी उन का कोई प्रतिनिधि नहीं चुना गया. कांग्रेसी नेता अल्पसंख्यकों को यह विश्वास दिलाना चाहते हैं कि अगर वे कांग्रेसी प्रत्याशी का समर्थन न करेंगे तो जनसंघ की विजय निश्चित है. इस बात का अहसास अलीगढ़ के अल्पसंख्यकों को हो भी गया है, जिस का प्रमाण यह है कि इस बार मैदान में अधिक मुसलमान प्रत्याशी नहीं हैं. पर एक राय यह है कि अल्पसंख्यकों के मत यदि बँटेंगे तो केवल कांग्रेस और भारतीय क्रांति दल में. रामनंदन वशिष्ठ का दावा है कि मुसलमानों के ९० प्रतिशत मत कांग्रेस के हक़ में पड़ेंगे और २० प्रतिशत मतों का बँटवारा

भारतीय क्रांति दल, संयुक्त समाजवादी पार्टी और मौर्यवादी रिपब्लिकन पार्टी के बीच हो जायेगा. हिंदुओं का रुख कांग्रेस के प्रति क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर वशिष्ठ ने कुछ सोच कर दिया. 'यदि पिछले चुनाव की भांति इस बार भी चुनाव से पहले हिंदुओं में यह भावना पैदा हो गयी कि जनसंघ को छोड़ कर और कोई हिंदू नही होता तो हमे हिंदुओं के अधिक मत मिलने की आशा नही है.' इस का मतलब यह भी हो सकता है कि अलीगढ में अधिसंख्य हिंदू जनसंघ के समर्थक है और अधिसंख्य मुसलमान कांग्रेस के. बात कुछ ऐसी ही है. हाँ, भारतीय क्रांति दल बीच में आ पड़ा है और स्पष्ट रूप से दो सशक्त प्रतिद्वंद्वियों के बीच एक बाधा पैदा कर रहा है. कांग्रेसियों को डर है कि भारतीय क्रांति दल हिंदुओ के मत ले जायेगा और जनसंघी आशा लगाये बैं हैं कि उस दल को मुसलमानो के अधिक मत मिलेंगे. मगर भारतीय क्रांति दल के कार्यकर्त्ता दावा करते हैं कि वे दोनो संप्रदायों के मत ले जायेंगे.

भारतीय क्रांति दल के प्रत्याशी कांग्रेस के एक वरिष्ठ सदस्य थे, मगर बहुत समय तक कांग्रेस में रहने के बाद भी उन्हें कोई राजनैतिक लाभ नही मिला. इस लिए वह भारतीय क्रांति दल मे आ गये. उन के चुनाव-कार्यालय में मंत्री का कार्य करने वाले एक कार्यकर्त्ता के शब्दों मे 'लोगों की प्रतिक्रिया तो ठीक है, मगर अभी कार्यकर्ताओं की समस्या हल नही हो रही है.' ऐसी स्थिति में मालूम नही कि ो शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वियों में स्पष्ट विभाजित समर्थकों में से दल कितना छीन सकेगा.

अलीगढ़ में स्पष्ट रूप से संघर्ष कांग्रेस और जनसंघ मे है. संसोपा की स्थिति यहाँ कुछ अधिक अच्छी दिखाई नही देती. इस संवाददाता को संसोपा के कार्यालय में इस बात का आश्वासन दिलाने का प्रयास किया गया कि अलीगढ़ शहर न सही कम से कम गंगेरी, अतरौली, चडोस और हाथरस चार देहाती चुनाव-स्थानों में विजय निश्चित है. अपने प्रत्याशियों के चयन मे ससोपा ने तीन का ध्यान रखा है: शिक्षक, छात्र और मजदूर. इसी लिए उस ने एक भूतपूर्व अध्यापक, मुस्लिम विश्वविद्यालय छात्र संघ के एक भूतपूर्व अध्यक्ष, हाथरस सूती मिल मजदूर पंचायत के मंत्री और अलीगढ़ के दैनिक **सच** के संपादक नंदकिशोर पंडित को अपना प्रत्याशी नियुक्त किया है.

नंदकिशोर पंडित : संसोपा की आशा

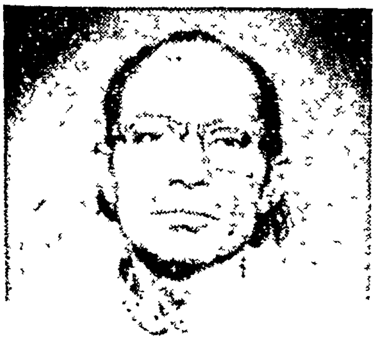

उन्होंने कहा, 'ससोपा एक ओर कांग्रेस की भ्रष्ट नीतियों का विरोध करेगी और दूसरी ओर प्रतिक्रियावादियों के विषैले प्रचार से मतदाता को बचाने का प्रयास जारी रहेगा.' अलीगढ़ जिले में उसे कही जीतने की आशा है तो नंदकिशोर पंडित के चुनाव-क्षेत्र चंडोस में. कांग्रेस की साख अब तनी नही रही जितनी पहले थी और जनसंघ का कार्य भी इस क्षेत्र में उस व्यापक स्तर पर नही है कि वह ंभीर चुनौती दे सके. अलीगढ़ की राजनीति का एक और पहलू रिपब्लिकन पार्टी के नेता बुद्धप्रिय मौर्य की राजनीति है. मौर्य ने अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय मे ही शिक्षा प्राप्त की और राजनैतिक जीवन आरंभ किया. रिपब्लिकन पा ी के अबेदकर गुट के जिला मंत्री कंचनसिंह दास के अनुसार मौर्य की गलत नीतियों के कारण ही रिपब्लिकन पार्टी अलीगढ मे कमजोर पड़ गयी है. "उन्होंने निम्न वर्गो और परिगणित जातियों मे यह भावना पैदा कर दी कि वे हिंदू नही हैं. इस वर्ग के उत्थान का उन के पास एक ही रास्ता है—ऊँचे वर्गो का विरोध करो. इस प्रकार की कटुता पैदा कर के वह अपना राजनैतिक हित साधना चाहते है." कचनसिंह दास ने दावा किया कि मौर्य के ही नेतृत्व में रिपब्लिकन पार्टी ने १९६७ के चुनाव-घोषणा' पत्र में कश्मीर का आधा हिस्सा पाकिस्तान को देने का सुझाव दिया था. परिणाम यह हुआ कि १९६७ के चुनाव मे एक भी नही रह गया.

मुरादाबाद में भारतीय क्रांति दल के प्रत्याशी मुहम्मद अय्यूब खाँ अंसारी का पता पूछते-पूछते **दिनमान** का प्रतिनिधि एक चाय वाले की दूकान में जा बैठा. "अंसारी साहब का पता तो मुझे मालूम नही, मगर क्या वह चुनाव लड़ रहे हैं ?" चाय वाले के अनुसार अगर अंसारी साहब चुनाव में खड़े हुए हैं तो इस बात से कोई संबंध नही कि वह भारतीय क्रांति दल से खड़े हुए हैं या कांग्रेस से, मत तो उन्हे मिल ही जायेगा. शहर में कुछ ऐसा लगा कि धीरे-धीरे दो बड़े संप्रदाय अलग-अलग शिविरों में बँटते जा रहे है. संभवतया राजनैतिक नेताओं को इस बात का अहसास नही है या उन्हें चिंता नही. भारतीय क्रांति दल के अध्यक्ष ने जो आँकड़े प्रस्तुत किये उस से बिलकुल स्पष्ट है कि डॉ. मुहम्मद अय्यूब अंसारी को इस लिए खड़ा किया गया है कि वह अल्पसंख्यक संप्रदाय के हैं और अल्पसंख्यको मे भी अंसारी हैं. अध्यक्ष के अनुसार 'अंसारियों के बीस हज़ार मत हैं, जिन मे से १७ हज़ार मिलने का विश्वास है. तीन-चार हज़ार मुसलमानों के अन्य वर्गो से मिल जायेंगे और पाँच हजार हिंदुओं के मत मिला कर विजय के लिए पर्याप्त हो जाते हैं.'

कांग्रेस के जिला अध्यक्ष और जिला परिषद् के अध्यक्ष प्रो. रामशरण भारतीय क्रांति दल को कोई महत्त्वपूर्ण प्रतिद्वंद्वी नहीं मानते. हाँ, जनसंघ की शक्ति को पहचानते है. इस लिए इसी दिशा मे संपूर्ण विरोध और प्रचार-शक्ति लगा दी गयी है. टिकट के मामले में मुरादाबाद कांग्रेस में कई लोगों को असंतोष है मगर रामशरण के अनुसार इस का प्रभाव 'हमारे लिए खतरनाक साबित नहीं होगा.' भारतीय क्रांति दल और कांग्रेस की समान नीतियों और उन के एक प्रकार के मतदाताओं को जनसंघ अपनी पूंजी मानता है.

कितनी क्रांति, कितनी क्रांति

एक जनसंघी प्रत्याशी के शब्दो मे 'भारतीय क्रांति दल तो भगोड़े कांग्रेसियों का 'ट्रांजिट कैंप' (अस्थायी शिविर) है.'

और अंतिम पड़ाव ?

—यह तो उन्हें भी मालूम नहीं. थोड़ा समय एक जगह बिताने दीजिए—मौसम का रुख देख कर फ़ैसला करेंगे कि उन्हें किधर मुँह करना है. हो सकता है वह वापस घर लौटने का फ़ैसला करें.

एक कांग्रेसी नेता के अनुसार 'भारतीय क्रांति दल क्या है ? चरणसिंह का व्यक्तिगत मोर्चा है. अगर आज हम फ़ैसला कर लें कि चरणसिंह को मुख्यमंत्री बना दिया जायेगा तो आप को इस दल के सदस्य ढूँढे भी नही मिलेंगे.'

× × ×

भारतीय क्रांति दल के एक प्रत्याशी ने अनपढ़ किसान को विशेष रूप से दल के चुनाव-चिह्न (हल लिये हुए किसान) का महत्त्व समझाया. मगर किसान उत्साहित होने के बदले गंभीर सोच में पड़ गया. उस ने पूछा : 'कांग्रेस का चुनाव-चिह्न बैलों की जोड़ी है ना ?'

प्रत्याशी : 'हाँ है, तो क्या हुआ ?'

किसान : 'कुछ नहीं, बाबूजी सोच रहा हूँ कि कही ऐसा न हो कि चुनाव के बाद आप का यह किसान हल को बैलों की जोड़ी में लगा दे.'

× × ×

पश्चिमी उत्तरप्रदेश के एक क़स्बे मे एक दल ने बड़े-बड़े विज्ञापन निकाले हैं जिन में मतदाता को बहुत से आश्वासन दिये गये है. एक व्यक्ति दूसरे को आश्वासन पढ़ कर सुना रहा था कि अचानक बीच में ही रुक गया.

'रुक क्यों गये ?'

'इस में लिखा है कि गाँव में ऐसे चूल्हे चालू करवाये जायेंगे जिन से धुँआँ न निकलता हो.'

'तो इस में बुरा क्या है ?'

'सवाल यह है कि (सर खुजला कर) अगर धुँआँ न मिला तो हम वे मच्छर कैसे भगायेंगे जो पिछली सरकार की नालियों में पैदा हुए हैं ?'

पूर्वी उत्तरप्रदेश

जनसंघ मध्यावधि चुनाव में उत्तरप्रदेश के लगभग हर विधान सभा क्षेत्र से चुनाव लड़ रहा है. इस से पूरे सूबे में जनसंघ वातावरण में व्याप्त रहेगा; एक क्षेत्र का असर दूसरे क्षेत्र पर पड़ेगा; जनता के मन में कांग्रेस के विकल्प के रूप में जनसंघ का स्थान मजबूत हो जायेगा. इस लिहाज़ से हर क्षेत्र में जनसंघ का चुनाव-प्रचार चल रहा है. दीपक निशान के केसरिया झंडे साइकिलों पर, जीपों पर लगे हुए कस्बों, शहरों, कहीं-कहीं गाँवों में भी, चुनाव प्रचार करते दिखायी दे जाते हैं.

भारतीय जनसंघ के गोरखपुर जिला मंत्री श्री राजाराम गुप्त का सारा समय—प्रातः काल ६-७ बजे से लेकर रात से १२-१ बजे तक आजकल राजनीतिक कार्य या चुनाव कार्य में ही लग रहा है. "पहले कपड़े की दूकान थी, पर वहाँ बैठ नहीं पाते थे. दूकान बंद कर देनी पड़ी. अब जीविका के लिए बीमा-एजेंट का काम करते हैं लेकिन इन दिनों उस की भी फ़ुर्सत नहीं मिल रही है." राजाराम जी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के भी स्वयंसेवक हैं—गत २१-२२ बरसों से नियमित संघ की शाखा में जाते रहे हैं. राजाराम जी ने बताया कि **"आजकल चुनाव में जनता सब से पहले उम्मीदवार के व्यक्तित्व को देखती है इसी लिए भारतीय जनसंघ ने अपने उम्मीदवार चुनने में उम्मीदवारों के व्यक्तित्व का विशेष ध्यान रखा है. ऐसे व्यक्ति को उम्मीदवार बनाया गया है जिस की क्षेत्र में पहले से प्रतिष्ठा हो, जो चुनाव लड़ने में दस-पाँच हज़ार रुपये भी खर्च कर सके. हाँ, किसी क्षेत्र में यदि जनसंघ का कोई कार्यकर्त्ता एक अरसे से काम करता रहा है और वह चुनाव लड़ने का इच्छुक हो गया, तो उसे अवश्य टिकट दिया गया, अन्य तरीकों से उस के चुनाव जीतने की संभावना चाहे क्षीण भी रही हो."**

गोरखपुर ज़िले के फरेंदा विधानसभा क्षेत्र से जनसंघ के एक कार्यकर्त्ता श्री निश्रीलाल निषाद चुनाव लड़ते रहे हैं—उन्होंने जनसंघ प्रभावित नाविक-जल-मजदूर संघ के अंतर्गत इस क्षेत्र के केवट जाति के लोगों में काफ़ी दिनों तक काम किया है. केवट आबादी के इलाक़ों से उन्हें वोट भी मिलता रहा है पर वह वोट कभी भी इतना अधिक नहीं हुआ कि वे चुनाव जीत सकें. फ़िर भी भारतीय जनसंघ उन्हें बराबर टिकट देती आ रही है. इसी की तुलना में फरेंदा चुनाव क्षेत्र से सटा हुआ ही लछमीपुर विधानसभा चुनाव-क्षेत्र है. उस क्षेत्र में जनसंघ का कोई प्रमुख कार्यकर्त्ता नहीं रहा है. पिछले आम चुनाव में भारतीय जनसंघ ने वहाँ से श्री रघुराज सिंह को अपना उम्मीदवार बनाया. श्री रघुराज सिंह ने इस क्षेत्र में राजनीतिक कार्य कभी किया हो या न किया हो, वह इस इलाक़े में शराब की भट्टियों के सब से बड़े ठेकेदार हैं और आमदनी का कुछ हिस्सा चुनाव लड़ने में भी खर्च कर सकते हैं. यदि क्षेत्र में पार्टी के कार्यकर्त्ता नहीं हैं तो चुनाव कार्य के लिए वेतनभोगी कार्यकर्त्ता बन सकते हैं. चुनाव लड़ने के राजनैतिक हथकंडे बताने का कार्य पार्टी के सिद्धहस्त लोग करते ही रहते हैं. इस क्षेत्र में मुसलमान वोटरों की तादाद २० प्रतिशत से कुछ अधिक है. संयोगवश गत आम चुनाव में एक उम्मीदवार श्री अब्दुल रऊफ़ लारी मुसलमान थे. मुसलमान वोटर श्री लारी को वोट दे रहे हैं, यह जान कर अप्रतिबद्ध हिंदू वोटर आसानी से हिंदू उम्मीदवार की ओर खिंच गया. वेतनभोगी कार्यकर्त्ताओं ने काफ़ी ईमानदारी से अपने उम्मीदवार को वोट दिलवाये. श्री रघुराज सिंह विधानसभा सदस्य हो गये. जनसंघ के सदस्यों की तादाद विधानसभा में एक और ज्यादा हो गयी. इस मध्यावधि चुनाव में भी इस क्षेत्र से जनसंघ के उम्मीदवार श्री रघुराज सिंह ही हैं.

पिछले आम चुनाव में जनसंघ के उम्मीदवार इस ज़िले में दो विधानसभा क्षेत्रों में जीते थे. एक तो उपर्युक्त लछमीपुर विधानसभा क्षेत्र में श्री रघुराज सिंह और दूसरे गोरखपुर शहर से श्री उदय प्रताप दूबे, वकील. शहर की नगरपालिका में भी एक अरसे से जनसंघ का ही बहुमत रहता आया है. गोरखपुर नगरपालिका ने शहर की ज़मीनों, मकानों पर लगने वाले करों को समाप्त कर दिया.

दो महीने पहले ही गोरखपुर की संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का ज़िला सम्मेलन हुआ, उस में अगले वर्ष के लिए ज़िला मंत्री श्री गुंजेश्वरी प्रसाद चुने गये. उन्होंने बताया कि गत आम चुनाव में इस ज़िले के ६ विधानसभा क्षेत्रों से पार्टी के उम्मीदवार विजयी हुए थे. 'अब क्षेत्र में जाने पर गाँव के लोग सब से पहले एम. एल. ए. साहब का दर्शन करना चाहते हैं. अगर एम. एल. ए. साहब ने दर्शन दिया तो जनता उन से सब के सामने ट्यूबवेल की, गाँव के रास्ते के बाबत शिकायतें करेगी फिर कोई भलामानुस उन्हें अकेले में ले जा कर अपने पढ़े-लिखे बेकार लड़के की नौकरी लगवाने के लिए कहेगा.' एम. एल. ए. साहब को इन मतदाताओं से अपनी असमर्थता जता कर इन्हें अपने से विमुख नहीं करना चाहिए अतः वे कहेंगे—'अच्छा ठीक है, देखा जायेगा.' राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं के पास समाधान के लिए बिलकुल निजी मसले भी आते हैं. पासी जाति का एक श्वसुर कार्यकर्त्ता के पास इस लिए आया कि उस की पतोहू ने घर से भाग कर दूसरी शादी कर ली है. असल में ऐसे मामले पहले पासी जाति की अपनी पंचायत के लोग निपटाते थे लेकिन बिरादराना रिश्तों-बंधों के कमज़ोर होने से बिरादरी की पंचायत भी टूट रही है और उस का काम भी एम. एल. ए. साहब को या राजनैतिक कार्यकर्त्ता को करना पड़ता है.

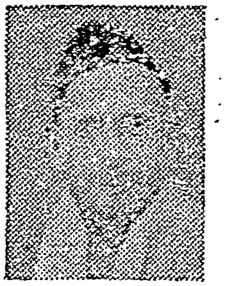

राजाराम गुप्त गुंजेश्वरी प्रसाद

संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की भी बेकारों को रोजगार दिलाने, हर खेत को सिंचाई के नीचे लाने के साथ-साथ भूमिहीनों को जमीन दिलाने जैसी माँगें हैं. पिछले कई महीनों में इन्हीं माँगों को ले कर ज़िले में सत्याग्रह हुआ जिस में कोई ५०० सत्याग्रही जेल गये. ज़िले में सत्याग्रह के खास लक्ष्य थे सरदार नगर फ़ार्म, खुरहन जंगल, ताल नदोर, निचलौल आदि जगहें, जहाँ तमाम ज़मीन बंजर पड़ी हुई थी. समाजवादी युवजन सभा ने बेकारों को रोजगार दिलाने के सवाल को मुख्य लक्ष्य बनाया था. रोज़गार दफ़्तर के सामने सत्याग्रह कर के गिरफ़्तारी दी. अलाभकर जोतों पर से लगान हटाना पार्टी की एक पुरानी माँग है और १९६७ के अंत में संविद के शासन काल में बाँसगाँव विधानसभा क्षेत्र के उपचुनाव में यह माँग चुनाव की लड़ाई का मुख्य आधार बन गयी थी. तब जनसंघ के राज्य संगठन मंत्री ने इस माँग का विरोध करते हुए यह भाषण किया कि लगान खत्म होने पर काश्तकार का खेत भी निकल जायेगा—क्षेत्र में वोट माँगने जाते हुए इस तरह के दुष्प्रचार का भी सामना करना पड़ता है और सच-झूठ की कलई खोलनी पड़ती है.

सत्याग्रह केवल औपचारिक आंदोलन ही हो कर रह जाता है या उस का ख़ास तौर पर चुनाव की दृष्टि से कुछ नतीजा भी निकलता है—यह पूछने पर श्री गुंजेश्वरी प्रसाद ने बताया: 'ताल नदोर में ५०० एकड़ से ज्यादा ज़मीन बंजर पड़ी हुई थी. क़ायदन वह गाँव-समाज की ज़मीन थी लेकिन ज़िले के प्रमुख कांग्रेसी नेताओं ने, जिन में ज़िला बोर्ड के कांग्रेसी अध्यक्ष और अभी एक विधानसभा क्षेत्र के उम्मीदवार डॉ० हरिप्रसाद शाही, मंडल कांग्रेस कमेटी के एक भूतपूर्व अध्यक्ष किशन सिंह और खंड प्रमुख अरविंदपति त्रिपाठी जैसे लोग थे, इस ज़मीन पर वर्ग ४ में अपना नाम दर्ज करवा लिया. वहाँ के लेखपाल को इस कार्य के लिए शायद लाखों रुपये रिश्वत दी गयी. इस बात को ले कर संसोपा के विधानसभा सदस्य अश्विनीकुमार शुक्ल ने विधानसभा में सवालात किये तो उस लेखपाल की मुअत्तली हुई. लेकिन उस की पीठ पर कांग्रेस के बड़े नेता थे, जिन की संविद सरकार के तत्कालीन मंत्री तक भी

पहुँच थी. इन लोगों ने कोशिश कर के संबंधित महकमे के सचिव की आज्ञा से उस लेखपाल की मुअत्तली भी रुकवा दी. बहुत अधिक आंदोलन करने और विधानसभा में शोर मचाने पर कहीं उस लेखपाल की गिरफ़्तारी हुई. १५ मई १९६८ को उसी ज़मीन पर सत्याग्रह हुआ और भूमिहीनों ने वहाँ कब्ज़ा किया. अब उस ज़मीन पर ये भूमिहीन ही काबिज़ हैं. इस तरह सत्याग्रह का लक्ष्य भी सफल हुआ, चुनाव की दृष्टि से भी अनुकूल वातावरण बना. इसी कछार के क्षेत्र में पहले नदी के कटाव में आने वाली ज़मीन के लिए धुर-धारा का सिद्धांत लागू था अर्थात् ज़मीन कट कर जिस गाँव की ओर चली गयी उस गाँव की हो जाती थी. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ने आंदोलन कर के, विधानसभा में सवाल उठा कर स्थायी सीमाबंदी का नियम लागू करवाया.'

चुनाव-प्रचार के दौरान भी समस्याएँ उठा करती हैं. "उपर्युक्त क्षेत्र के विधानसभा उम्मीदवार अश्विनीकुमार शुक्ल प्रचार-कार्य के लिए जब महेवा गाँव में गये तो उन्होंने देखा कि एक खेत से, जिस पर अरहर की फ़सल खड़ी है, मिट्टी काट कर नहर के किनारे की सड़क पर डाली जा रही है. पूछने पर पता चला कि इस ज़मीन का कोई आधिकारिक अधिग्रहण नहीं हुआ है. सड़क पर मिट्टी डालने की दर प्रायः १८ रु० प्रति हज़ार घन फुट होती है पर यहाँ यह सोच कर कि किनारे के खेतों की फसल बचाने के लिए काफ़ी दूर से मिट्टी लानी पड़ेगी, ठेकेदार को ११४ रु० प्रति हज़ार घन फुट की दर से ठेका दिया गया. फिर भी ठेकेदार और ओवरसियर ने किसानों को भय दिखाया कि मिट्टी सरकारी काम के लिए ली जा रही है और खड़ी फ़सल बरबाद कर के सड़क के सब से निकट के खेत से मिट्टी निकाली. ठेकेदार अपना भुगतान भी ११४ रु० प्रति हज़ार घन फुट की दर से ही २ लाख रुपये महकमे से ले चुका है. अब वहाँ उम्मीदवार ने गाँव के किसानों को इकट्ठा किया, उन से दरख़्वास्त लिखवायी, नहर महकमे के इंजीनियर के दफ़्तर में जा कर दरख़्वास्त दी, मिट्टी का निकालना रुकवाया तब कुछ जाँच का काम शुरू हुआ."

"इसी तरह जनता पुलिस महकमे से भी परेशान रहती है. गगहा थाने का थानेदार अपने दलालों के ज़रिये गाँवों का तस्कर व्यापार और तरह-तरह की रिश्वतख़ोरी किया करता था. अपने एक दलाल को बचाने के लिए उस ने गजपुर गाँव के एक किसान के घर में खुद देसी पिस्तौल रखवायी और उसे गिरफ़्तार किया. एक गाँव में एक किसान की झोंपड़ी उजाड़ दी. इस थानेदार के खिलाफ़ प्रदर्शन करना पड़ा तब वह मुअत्तल हुआ और इलाके की जनता को कुछ राहत मिली."

खेल और खिलाड़ी

डूरैंड कप : पंजाब में

भारतीय फुटबाल में कलकत्ता की दो टीमों (मोहन बागान और ईस्ट बंगाल) की धाक, साख या दबदबा अब धीरे-धीरे कम होता जा रहा है और जालंधर (पंजाब) की दो टीमें (सीमांत सुरक्षा दल और लीडर्स क्लब) बड़ी तेज़ी के साथ आगे बढ़ रही हैं. डी. सी. एम. प्रतियोगिता का फ़ाइनल हो या रोवर्स का या कि डूरैंड का, अब पंजाब की इन दोनों टीमों में से एक फ़ाइनल में ज़रूर पहुँच जाती है. शुक्रवार, १० जनवरी को दिल्ली कार्पोरेशन स्टेडियम में डूरैंड १९६८ का फ़ाइनल मैच बंगाल की ईस्ट बंगाल और पंजाब के सीमांत सुरक्षा दल (जो पहले पंजाब पुलिस के नाम से जानी जाती थी) के बीच रहा. इस मैच को खेल की दृष्टि से तो नहीं बल्कि कुछ और कारणों से ज़रूर महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है. जहाँ तक खेल का सवाल है यह मैच बहुत ही नीरस और बेजान रहा लेकिन जहाँ तक खेल के अतिरिक्त कुछ अन्य पहलुओं का सवाल है यह मैच काफ़ी जानदार, शानदार और दिलचस्प रहा.

मैच से पहले की कहानी : यह मैच ठीक तीन बजे शुरू होना था लेकिन स्टेडियम एक घंटे पहले ही भर चुका था. स्टेडियम से बाहर हज़ारों लोग हाथों में टिकटें, प्रेस पास और निमंत्रण-पत्र थामे खड़े थे और स्टेडियम का द्वार बंद था. इतना ही नहीं सीमांत सुरक्षा दल की टीम के खिलाड़ी भी मैदान से बाहर ही खड़े थे और उन्हें अंदर जाने की इजाज़त नहीं मिल रही थी. सब्र की एक सीमा होती है. जब खेल शुरू होने में केवल १५ मिनट का समय रह गया तो बी. एस. एफ़. खिलाड़ियों ने हिम्मत कर के १९ फ़ुट ऊँची दीवार फांदनी शुरू कर दी और इस प्रकार वह मैदान के अंदर पहुँच पाये. दिल्ली फुटबाल एसोसिएशन के प्रधान भी जब किसी तरह भीड़ के ज़ोर से अंदर धकेले गये तो उन्होंने ठंडी सांस भरते हुए कहा कि 'भगवान का लाख-लाख शुक्र है कि मैं ठीक-ठाक अंदर पहुँच गया हूँ.' सैकड़ों खेल-प्रेमी हाथ में पाँच-पाँच रुपये की टिकटें थामे बाहर खड़े चिल्लाते रहे मगर डूरैंड फुटबाल कमेटी के अधिकारियों ने किसी की एक न सुनी. डूरैंड के फ़ाइनल के लिए अब यह मैदान बहुत छोटा पड़ने लगा है.

बेजान मैच : जहाँ तक खेल का सवाल है उसे देख कर यही कहा जा सकता है कि उस में फ़ाइनल मैच का-सा मज़ा बिलकुल नहीं था. डूरैंड के फ़ाइनल में पहुँची इन दोनों टीमों का यदि स्तर है तो कहा जा सकता है कि भारत फुटबाल के क्षेत्र में अभी दुनिया से (दुनिया से क्या एशिया से भी) अभी बहुत पीछे है. वैसे तो ईस्ट बंगाल की टीम में सभी अनुभवी और चोटी के खिलाड़ी थे मगर मैदान में वे सब यों उखड़े-उखड़े से लग रहे थे मानो सभी नौसिखिया खिलाड़ी हों. ईस्ट बंगाल की टीम के पास वही अपना एक पुराना घिसापिटा-सा तरीका है और उसी के अनुसार वह हमेशा खेलती है. मोहन बागान की टीम के, जो सेमीफ़ाइनल में बी. एस. एफ़. से हारी थी, खिलाड़ियों में यह खूबी ज़रूर है कि वह समय, मैदान या हवा के रुख़ के अनुसार अपने खेल के ढंग को भी बदल सकते हैं. पूर्वार्द्ध बहुत ही नीरस

डूरैंड कप अब सीमांत सुरक्षादल के पास : खेल ख़त्म, भंगड़ा शुरू

डूरंड कप : ताक़त और तरीक़े की लड़ाई

सा रहा. कभी दर्शकों का शोर, कभी रैफ़री का विरोध, किसी खिलाड़ी के लिए हाय-हाय, किसी के लिए 'हो-हो.' इस के अलावा कुछ भी उल्लेखनीय नहीं था. इसी बीच यह तय हो गया कि यदि आज कोई टीम कोई गोल नहीं कर सकी तो यह फ़ाइनल मैच रविवार को दुबारा खला जायेगा और कोई अतिरिक्त समय नहीं दिया जायेगा. कारण स्पष्ट ही था. एक तो उस दिन राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन कुछ अस्वस्थ होने के कारण मैदान में उपस्थित नहीं हो सके थे और दूसरे यह कि मैच दुबारा खेले जाने में डूरंड कमेटी का ही भला (एक दिन के मैच से कम से कम २० हज़ार की आमदनी तो होती ही) था.

ज्यों-ज्यों खेल ख़त्म होने का समय नज़दीक आने लगा त्यों-त्यों दर्शकों का उत्साह और दिलचस्पी कम होती गयी. बीच-बीच में दोनों टीमों को गोल करने के लगभग समान अवसर मिले मगर हर बार गोल-रक्षक की होशियारी और निशानेबाज़ की लापरवाही के कारण सब प्रयास विफल होते रहे. खेल ख़त्म होने में केवल छः मिनट का समय रह गया था तभी सीमांत सुरक्षा दल के खिलाड़ियों में थोड़ी तेज़ी आ गयी. ईस्ट बंगाल के गोल के पास पहुँच कर बी. एस. एफ़. के लेफ़्ट आउट नज़रसिंह ने कोने से गेंद को गोल की ओर फेंका, सेंटर फारवर्ड अर्जुनसिंह ने उसे रोक कर तुरंत सुरजीत सिंह (राइट आउट) को दिया और सुरजीत ने बिना एक पल खोये गेंद को ईस्ट बंगाल के गोल में डाल दिया और यह सब कुल दो सैकिंडों में हो गया. ईस्ट बंगाल का गोली थंगराज देखता का देखता रह गया. बस फिर क्या था इधर दर्शकों की तालियों की गूंज से सारा स्टेडियम गूंज उठा, उधर मैदान में सीमांत सुरक्षा दल के खिलाड़ियों ने सुरजीत को घेर लिया, चार-पाँच साथियों ने उस का चुंबन भी किया (अपनी बेहद खुशी का इज़हार करने का यह पुराना पंजाबी स्टाइल है). खेल में थोड़ी तेज़ी आयी मगर पाँच मिनट में हो ही क्या सकता था. भारतवर्ष में कोई ब्राज़ील का पेले या इंग्लैंड के स्टेनले मैथ्यू जैसा खिलाड़ी तो है नहीं कि जो तीन मिनटों में ही तीन गोल कर सकने की क्षमता रखता हो. मैदान में बैठे ईस्ट बंगाल के समर्थकों का चेहरा जितना उतरा पंजाब के समर्थकों और दर्शकों का चेहरा उतना ही खिल उठा. मैदान में बैठे एयर मार्शल अर्जुनसिंह ने भी तुरंत अपने पास बैठे अश्विनी कुमार को बधाई दी.

डूरंड कप: कुछ पुराने विजेता

१९४०—मोहम्मडन स्पोर्टिंग
१९४१ से १९४९ : प्रतियोगिताओं का आयोजन नहीं हुआ.
१९५०—हैदराबाद पुलिस
१९५१-५२—ईस्ट बंगाल
१९५३—मोहन बागान
१९५४—हैदराबाद पुलिस
१९५५—मद्रास रेजिमेंटल सेंटर
१९५६—ईस्ट बंगाल
१९५७—हैदराबाद पुलिस
१९५८—मद्रास रेजिमेंटल सेंटर
१९५९—मोहन बागान
१९६०—मोहन बागान और ईस्ट बंगाल (संयुक्त विजेता).
१९६१—आंध्र पुलिस
१९६२—प्रतियोगिता का आयोजन नहीं हुआ.
१९६३-६५—मोहन बागान
१९६६—गोरखा ब्रिगेड
१९६७—ईस्ट बंगाल

सुरजीत सिंह : 'जित के ल्यांदा कप'

खेल तो ख़त्म हो गया मगर दूसरा नज़ारा शुरू हो गया. बी. एस. एफ़. के खिलाड़ियों ने अपने रहनुमा अश्विनीकुमार को कंधों पर उठा लिया. राष्ट्रपति की अनुपस्थिति के कारण एयर मार्शल अर्जुनसिंह ने, जो कि डूरंड फुटबाल कमेटी के अध्यक्ष भी हैं, खिलाड़ियों को पुरस्कार वितरित किये. डूरंड के ८० वर्ष के इतिहास में यह पहला अवसर है जब डूरंड कप उत्तर भारत (पंजाब) की यात्रा कर रहा है. इस पर उत्तर भारत की जनता का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है. सीमाओं की सुरक्षा करने वाले हमारे वीर सैनिक बधाई के पात्र हैं.

क्रिकेट

आस्ट्रेलिया बनाम वेस्ट इंडीज़

जब से ऑस्ट्रेलिया ने लगातार दो टेस्ट मैचों (मेल्बॉर्न और सिडनी) में विश्व विजेता

भारतीय क्रिकेट टीम के कप्तान नवाब पटौदी और फ़िल्म अभिनेत्री शर्मिला टैगोर के विवाह के उपलक्ष्य में आयोजित एक समारोह में राजकपूर शर्मिला को शुभकामना देते हुए: शर्मिला से क्या शर्म ?

वेस्ट इंडीज़ की क्रिकेट टीम को हराया है तब से वेस्ट इंडीज़ के कप्तान गैरी सोवर्स और कुछ अन्य खिलाड़ियों के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही हैं. क्रिकेट के क्षेत्र में वेस्ट इंडीज़ का दबदबा अब उसी तरह कम होता जा रहा है जैसे कि भारत में फुटबाल के क्षेत्र में मोहन बागान या कि ईस्ट बंगाल का दबदबा कम होता जा रहा है. इस हार से सोवर्स का, जिन्हें दुनिया का सर्वश्रेष्ठ आल राउंडर और सफल कप्तान माना जाता है, चिंतित होना स्वाभाविक ही है. वेस्ट इंडीज की जनता कुछ भी बर्दाश्त कर सकती है मगर क्रिकेट के खेल में हार के गम को बर्दाश्त नही कर सकती. यों तो इस वर्त्तमान टेस्ट शृंखला में दो टेस्ट अभी बाकी हैं, मगर इस समय ऑस्ट्रेलिया २-१ से आगे है और आसार कुछ वेस्ट इंडीज़ की हार के ही दिखाई दे रहे हैं. वेस्ट इंडीज़ के क्रिकेट पंडितों और पदाधिकारियों में कुछ इस प्रकार की चर्चा बड़े जोरों से है कि टीम के कुछ खिलाड़ी जल्दी ही सन्यास लेने यानी अवकाश लेने की घोषणा कर देंगे. सुनने में आ रहा है कि वेस्ट इंडीज टीम के कप्तान गैरी सोवर्स और उप-कप्तान लेंस गिब्स ने क्रिकेट से अवकाश लेने की इच्छा जाहिर की है. और यह भी कहा जा रहा है कि सोवर्स पर यह दबाव डाला जा रहा है कि वह इस साल के अंत तक वेस्ट इंडीज का नेतृत्व जरूर करें.

आलोचना : कुछ क्षेत्रों में सोवर्स की इस लिए आलोचना की जा रही है कि सिडनी टेस्ट का मैदान तेज़ गेंदबाजों के काफ़ी अनुकूल था मगर टॉस जीतने के बावजूद सोवर्स ने गेंद की बजाय बल्ला थामा और पहली पारी स्वयं शुरू की. सोवर्स का यह निर्णय 'अपने लिए मुसीबत मोल लेने' के बराबर था.

चौथा टेस्ट : इस टेस्ट शृंखला का चौथा टेस्ट एडिलेड में २४ जनवरी से शुरू होगा. ऑस्ट्रेलियाई टीम के कप्तान बिल लारी ने अपने खिलाड़ियों का उत्साह बढ़ाते हुए कहा कि इस टेस्ट को जीतने के लिए हमें जी-जान से कोशिश करनी होगी.

उधर सोवर्स ने गंभीरतापूर्वक अपनी टीम का आत्म-विश्लेषण करते हुए कहा कि हमारी बल्लेबाजी का पक्ष काफी कमज़ोर रहा है और बाकी दोनों टेस्ट मैचों में हमें इस पर काफ़ी ध्यान देना होगा. सिडनी के तीसरे टेस्ट में हमें अपनी पहली पारी में २६४ रन से काफ़ी ज्यादा रन बनाने चाहिए थे मगर हमारे खिलाड़ियों ने इस पक्ष पर ज्यादा जोर नहीं दिया. लेकिन दूसरी ओर यह भी मानना होगा कि ऑस्ट्रेलिया की गेंदबाजी और क्षेत्ररक्षण काफ़ी शानदार थी. फिर उन्होंने यह भी कहा कि हमारा मनोबल और आत्मविश्वास अभी नहीं टूटा है और मेरा ख्याल है कि हम चौथा टेस्ट जीतने की पूरी कोशिश करेंगे. यहां यह बता देना उचित होगा कि ऑस्ट्रेलिया ने तीसरा टेस्ट १० विकेट से जीता था.

समाचार-भूमि

क्यूबा : पुनर्विवाह के बाद

एक सौ साल पहले क्यूबा के एक क्रांतिकारी ने पहली बार, परंपरागत शासन-प्रणाली के विरुद्ध बगावत का झंडा बुलंद किया था. यह व्यक्ति कार्लोस मैनुएल द केस्पीडीस अपने उद्देश्य में सफल तो नहीं हुआ किंतु अपने देश को गुलामी और शोषण से मुक्त करने के लिए उसने अपना बलिदान दे दिया. उस के बाद समय-समय पर क्यूबा में इस किस्म की बगावतें होती रहीं जब कि एक दिन फ़िडेल कास्त्रो और बहादुर छापामारों ने क्रांति का अंतिम अध्याय लिख दिया. कास्त्रो की क्रांतिकारी सरकार के १० वर्ष पूरे हो चुके हैं लेकिन कमज़ोर आर्थिक स्थिति, राजनैतिक एकाकीपन और विरोधी शक्तियों के जबर्दस्त दबाव के कारण अब भी क्यूबा की वर्त्तमान सरकार उसी स्थिति में है जिस में उस समय थी जब कि कास्त्रो ने पहली बार क्रांतिकारी सरकार की नींव डाली थी. अब यह मानी हुई बात है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभावक्षेत्र में इस्राइल की तरह रहते हुए भी क्यूबा उस का प्रबल विरोधी है तथा इस प्रकार का अस्तित्व बनाये रखने का उसे पूरा अधिकार है. इस संदर्भ में लातीनी अमेरिका के अधिसंख्य देशों ने यद्यपि कास्त्रो-सकार को उसी प्रकार की मान्यता नहीं दी है जिस प्रकार की एक पड़ोसी देश को दी जानी चाहिए फिर भी उन्होंने क्यूबा की सरकार की विरोधी नीति को एक स्थायी तत्व के रूप में स्वीकार किया है. कुछ लातीनी अमेरिकी देशों ने तो सीमित रूप से क्यूबा को राजनैतिक मान्यता भी दी है. पेरू ने क्यूबा के राजनयिक प्रतिनिधिमंडल को स्थायी प्रतिनिधि की हैसियत से ही स्वीकार किया है. इस लिए इस प्रकार के वातावरण में रहते हुए भी क्यूबा को हर समय इस बात का भय रहता है कि कहीं किसी छोटी ग़लती के कारण अनेक बलिदानों द्वारा प्राप्त क्रांति असफल न हो जाये.

रौनक और प्रगति : क्रांति की दसवीं वर्ष-गाँठ के अवसर पर क्यूबा में अनेक देशों के प्रतिनिधि आये मगर उन में से अनेक प्रतिनिधियों के मन में क्यूबा की प्रगति का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा क्यों कि आज भी हवाना के बाजारों में लातीनी अमेरिकी नगरों के बाजारों जैसी रौनक नही है. आज भी खूबसूरत मकानों और वाटिकाओं का अभाव है बल्कि सच तो यह है कि क्रांति से पहले जो खूबसूरती राजधानी की थी वह भी अब नही रह गयी है. क्यूबा बहुत ही आकर्षक द्वीप है जो न केवल अमेरिकी बल्कि यूरोपीय पर्यटकों का भी एक मुख्य आकर्षण स्थल बना हुआ था मगर आज वह संपूर्ण आकर्षण नष्ट हो चुका है. जहाँ कुछ प्रतिनिधियों के मन पर इस बेरौनकी का बहुत असर पड़ा वहीं अधिसंख्य प्रतिनिधि इस बात से सहमत थे कि कास्त्रो के शासनकाल में क्यूबा ने अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रति ठोस कदम उठाया है. कास्त्रो अपने देश मे एक नये प्रकार के सामाजिक जीवन को लागू करने का प्रयास कर रहा है. यह ऐसा समाज है जो न तो चीनी या रूसी साम्यवाद द्वारा निर्धारित नियमों और शर्तों पर अक्षरशः चलता है और न ही पूंजीवादी तथाकथित स्वतंत्र जीवन से उस का कोई संबंध है. कास्त्रो के शब्दों मे वह एक 'सच्चे भ्रातृभावपूर्ण मानववादी साम्यवाद' की स्थापना करना चाहते है. इस प्रकार के साम्यवाद में एक प्रकार का सामूहिक जीवन जीने का प्रयास किया जा रहा है. क्यूबा के लिए यह अत्यंत आवश्यक है क्यों कि उस की आर्थिक स्थिति साधारण तरीकों से नही सुधर सकती. क्यूबा के पास बेचने के लिए तंबाकू और चीनी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है. और इस लिए कृषि ही उस की आर्थिक प्रगति का एकमात्र आधार बनी हुई है. यद्यपि आरंभिक दिनों में क्रांतिकारी सरकार ने देश में औद्योगीकरण का एक अभियान चलाया था फिर भी औद्योगिक दृष्टि से क्यूबा बहुत पीछे है. औद्योगीकरण का अभियान इस लिए सफल नहीं हो सका कि एक तो उस के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य विकसित देशों के साथ प्रतियोगिता करना अत्यंत कठिन कार्य था और निर्यात के लिए उत्पादन बढाने के कार्यक्रम में इस लिए प्रगति नही हो सकी क्यों कि उत्पादन के लिए कच्ची सामग्री का क्यूबा में अभाव था. इस असफल अभियान के बाद फिर से कृषि की ओर ध्यान दिया गया. नेताओं के अनुसार 'क्रांति के लिए कृषि उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना छापामारों के लिए पर्वत.' कास्त्रो का उद्देश्य १९७० तक एक करोड़ टन चीनी पैदा करने का है किंतु यह लक्ष्य अभी पूरा होता नहीं दिखाई देता. पिछले वर्ष कुल ५२ लाख टन चीनी का उत्पादन हो सका जब कि १९६० में ७२ लाख से भी अधिक चीनी पैदा हो गयी थी. हर व्यक्ति कृषि उत्पादन में किसी-न-किसी प्रकार योगदान देता है, क्यों कि संपूर्ण टापू गन्ने का बहुत बड़ा फ़ार्म-सा दिखाई देने लगा है. शहरों की संख्या कम नही है मगर वह केवल नाम के शहर हैं. बड़े-बड़े होटल गायब हो गये हैं. सड़कों पर बहुत थोड़ी मोटरकारें चलती हैं, बाजारों में चमकदार नामपट्ट इक्के-दुक्के ही दिखाई देंगे, जलपान गृहों में कुछ एक खाने-पीने की चीजें ही प्राप्त हो सकती हैं.

कृषि-कार्यक्रम : यह सब होते हुए भी यह नही समझना चाहिए कि पिछले दस वर्षों में क्यूबा ने कोई प्रगति नही की है. जब कास्त्रो

ने शासन सँभाला तो अचानक क्यूबा का आर्थिक आधार ही समाप्त हो गया और इस लिए आरंभिक वर्षों में शहरों और कस्बों में एकदम ग़रीबी के बादल छा गये. सफ़ाई का कोई प्रबंध नहीं था. बैंकों का कार्य ठप्प हो गया था. व्यापार में गतिरोध आ गया था. चंद बसें यात्रियों को ले कर चल रही थीं मगर बैल-गाड़ियाँ उन से ज़्यादा आरामदेह सिद्ध हो रही थीं. कोई भी बस ऐसी नहीं थी जिस में धुएँ और भीड़ की वजह से यात्रियों को परेशानी न उठानी पड़ती हो. भवन-निर्माण ऐसी अविवेक-पूर्ण नीतियों के आधार पर होने लगा था जिस से शहरों की रही-सही ख़ूबसूरती भी तेज़ी से नष्ट होने लगी थी. मगर पिछले दस वर्षों में क्यूबा के शासक ने असफलताओं से अनुभव प्राप्त किया और आज शहरों में रौनक तो नहीं मगर नागरिक सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं. परिवहन का अच्छा प्रबंध है. भवन और नगर-निर्माण उचित और आकर्षक योजनाओं के अंतर्गत हो रहा है तथा लोगों में असंतोष और अव्यवस्था समाप्त हो गयी है. उत्पादन बढ़ाने के लिए छोटी-छोटी समितियों का गठन हो रहा है जो खेतों में काम करने की योजना बनाती हैं. समितियों के सदस्य जीवन में कुछ भी हो सकते हैं—ड्राइवर, सिपाही, दूकानदार, सरकारी कर्मचारी—मगर एक निश्चित समय के लिए उन्हें गन्ने के खेतों में, तंबाकू या काफ़ी के फ़ार्मों में काम करना पड़ता है. कास्त्रो के प्रसिद्ध छापामार साथी अर्नेस्टो चे ग्वेवारा की मृत्यु ने क्यूबा के क्रांतिकारियों में एक नया जोश पैदा कर दिया है.

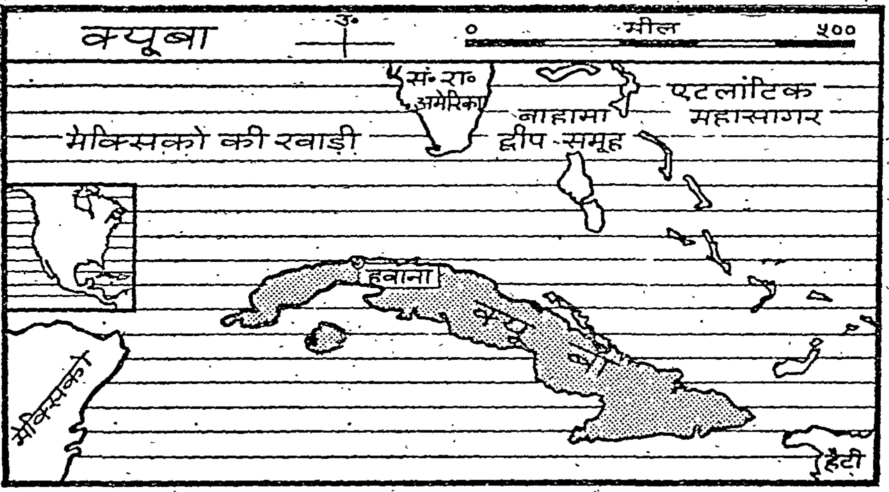

लोग चे को एक आदर्श वीर क्रांतिकारी मानने लगे हैं.

चे ग्वेवारा : चे ग्वेवारा क्यूबा के नागरिक नहीं थे. किंतु फ़िदेल कास्त्रो से मिलने के बाद आर्जेंटीना निवासी युवक के मन में क्यूबा के क्रांतिकारियों से सहयोग करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई. उन्हीं के शब्दों में 'मैं उन से (कास्त्रो से) मेक्सिको में एक बहुत ठंडी शाम को मिला और मुझे याद है कि हमारी पहली बातचीत अंतरराष्ट्रीय राजनीति के संबंध में हुई. कुछ ही घंटों में—सुबह सवेरे तक मैं उन का एक मुख्य अभियान संचालक बन गया.' १९५४ में चे ने ग्वाटेमाला छोड़ा और मेक्सिको पहुँच गये क्यों कि ग्वाटेमाला में उन के विरुद्ध षड्यंत्र और विद्रोह के आरोप में गिरफ़्तार करने के लिए वारंट जारी हो चुका था. सौभाग्य से कास्त्रो भी अपने मित्रों के साथ मेक्सिको में ही थे क्यों कि वह किसी ऐसे स्थान की तलाश में थे जहाँ से वह क्यूबा में क्रांति लाने के लिए तैयारी कर सकते. कुछ तैयारी कर के जब वह आगे बढ़ने के लिए तैयार हुए तो अचानक सरकारी पुलिस ने उन्हें आ घेरा और अधिसंख्य विद्रोहियों को गिरफ़्तार कर लिया गया जिन में चे ग्वेवारा भी थे. जेल से छूटने के बाद उन्होंने दुबारा अपने वर्ग से शिक़ायत करनी शुरू कर दी क्यों कि उन के अनेक सहयोगी घबरा कर भाग गये थे. अंत में २५ नवंबर १९५६ को क्रांतिकारियों का एक दल एक छोटे-से जहाज़ में बैठ कर क्यूबा की ओर चल पड़ा. यह जहाज़ अत्यंत धीमी गति से चल रहा था और इस दल के पास खाने-पीने का सामान भी काफ़ी नहीं था.

५ दिनों की इस यात्रा में अधिसंख्य सदस्य बीमार हो गये और जब वह क्यूबा के तट पर पहुँचे तो उस समय वे लोग बहुत बुरी अवस्था में थे. क्यूबा की पुलिस को किसी प्रकार पता चल गया और सरकारी सेना के जहाज़ इस की खोज में निकल पड़े थे. मगर ऊँचे-घने पेड़ों के कारण उन का पता नहीं चल पाया. यह सौभाग्य अधिक देर तक नहीं रह पाया. क्यों कि कुछ ही समय बाद सरकारी सैनिक उस स्थल पर पहुँच गये और उन्होंने गोलियाँ चलानी आरंभ कर दीं. ९ दिन तक यह दल क्यूबा के जंगलों में और गन्ने के खेतों में घूमता फिरा. अपने हथियार और फटे-पुराने कपड़ों के अतिरिक्त उन के पास कुछ भी नहीं बचा था. भूख ने उन्हें इतना व्याकुल कर दिया कि उन के एक नेता कैमिलो ने कच्चे केंकड़े खाने शुरू कर दिये. कास्त्रो उन से पहले ही क्यूबा पहुँच गये थे और अपने दल के साथ उन्होंने जगह-जगह विद्रोह और हड़तालें आरंभ कर दी थीं. विद्रोह इतनी तेज़ी के साथ फैल गया कि कैमिलो, चे ग्वेवारा और कास्त्रो के योजनाबद्ध आक्रमण को सामंतवादी अधिनायक नहीं सह सके और यह छोटा-सा टापू क्रांति-

फ़िदेल कास्त्रो : निरंतर तत्पर

चे ग्वेवारा : अधूरा सपना

कारियों के हाथ में जा पहुँचा. जिस समय क्यूबा में क्रांतिकारी सरकार बनी उस समय क्यूबा पूर्ण रूप से संयुक्त राज्य अमेरिका पर निर्भर था किंतु वह आधार समाप्त होने के बाद कास्त्रो के लिए यह बहुत कठिन परीक्षा का समय सिद्ध हुआ जिस में उन्हें न केवल क्रांतिकारी भावना को बनाये रखना था बल्कि देश की आर्थिक स्थिति को भी सुधारना था.

राजनैतिक भविष्य : क्यूबा की तुलना इस्राइल के साथ की जाती है क्यों कि दोनों देश अपने विरोधियों से घिरे हुए हैं और दोनों अपनी कमज़ोर आर्थिक स्थिति को सुधारने का भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं. इन दोनों देशों में एक ऐसे समाज की रचना हो रही है जो व्यक्तिगत आकांक्षाओं की अपेक्षा सामूहिक लाभ को दृष्टि में रख कर काम करता है. मगर दोनों देशों में बहुत बड़ा अंतर भी है. इस्राइल एक राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हो कर जहाँ सामूहिक लाभ को दृष्टि में रखता है वहीं व्यक्तिगत स्वातंत्र्य और सुविधाओं को भी वह नज़रअंदाज़ नहीं करता. इस्राइलियों को एक सूत्र में बाँधने के लिए अधिनायकवाद की ज़रूरत महसूस नहीं होती और न ही इस्राइल किसी देश पर इतना निर्भर करता है कि उस देश की इच्छा-अनिच्छा से इस्राइली विदेश या आंतरिक नीतियों का निर्धारण होता हो. कास्त्रो के क्यूबा में स्थिति दूसरी है. उन के दर्शन में क्यूबा की जनता को बौद्धिक लाभ या धन संबंधी सुविधाओं की कोई आशा नहीं करनी चाहिए. अधिक काम का मतलब अधिक सुविधाएँ नहीं. इस दशा में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य की कोई क़ीमत नहीं. वास्तव में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का अभाव तो क्यूबा में अन्य दृष्टियों से भी महसूस किया जाता है. हाल ही में क्यूबा की सरकार ने लेखकों के विचार-स्वातंत्र्य पर प्रतिबंध लगाया है. देश के अर्ध-सरकारी लेखक संगठन और स्वतंत्र कलाकार संघ के बीच मतभेद पैदा हो गया है जिस के कारण अनेक लेखकों और पत्रकारों को प्रतिक्रियावादी और क्रांति-विरोधी कह कर दबाया जाने लगा है. इस दमन का शिकार क्यूबा के प्रसिद्ध कवि हरबर्टो पाडिला और नाटककार ऐंटन हर्रुफ़त भी हुए हैं. इस का स्पष्ट परिणाम यह हो गया कि यहाँ जो साहित्य रचा जायेगा वह सरकारी सूचना विभाग के साहित्य से बहुत भिन्न नहीं हो सकता.

क्यूबा की स्थिति बहुत कठिन है. क्रांति से पहले अमेरिका यहाँ की ८० प्रतिशत चीनी ख़रीदता था और चीनी का मूल्य अंतरराष्ट्रीय मूल्य से कहीं अधिक चुकाया जाता था. मगर क्रांति के बाद जब संयुक्त राज्य अमेरिका ने पूर्ण रूप से क्यूबा पर आर्थिक प्रतिबंध लगाया तो सोवियत संघ क्यूबा की सहायता के लिए आगे बढ़ा. आज क्यूबा का आर्थिक ढाँचा सोवियत संघ की सहायता पर इतना आधारित है कि आर्थिक दृष्टि से क्यूबा सोवियत संघ का एक प्रदेश बन गया है. यह अनुमान लगाया गया है कि इस समय सोवियत संघ को क्यूबा में १० लाख डालर प्रतिदिन ख़र्च करना पड़ता है क्यों कि सोवियत संघ क्यूबा की चीनी बहुत ऊँचे दामों पर ख़रीदता है मगर तेल और तेल के अन्य उत्पादन कास्त्रो की सरकार को सस्ते दामों पर मिलते हैं. क्यूबा में जितना भी तेल इस्तेमाल किया जाता है वह सब रूस या साम्यवादी शिविर के देशों से जाता है. जो तकनीकी सहायता रूस से प्राप्त होती है उस के लिए भी क्यूबा के निवासियों के मन में कोई विशेष अनुराग नहीं है क्यों कि उन्हें यह महसूस होता है कि क्रांति के बाद देश की आर्थिक स्थिति में केवल इतना ही परिवर्तन आया है कि पहले उस का भाग्य नियंता संयुक्त राज्य अमेरिका था और अब सोवियत संघ है. मालिक बदलने की इस प्रक्रिया से स्वयं कास्त्रो भी प्रसन्न नहीं इस लिए वह अन्य ग़ैर-साम्यवादी देशों से व्यापार करने की फ़िक्र में है. इस संदर्भ में कैनाडा, फ़्रांस और स्पेन से थोड़ा-बहुत व्यापार होने लगा है. आर्थिक स्थिति की विकटता का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि क्यूबा में मोटर-कार चलाना या ख़रीदना अत्यंत कठिन है क्यों कि उस के लिए तेल मिलना संभव नहीं है. इस वर्ष के वार्षिक उत्सव के अवसर पर भी शस्त्रों या अन्य झाँकियों का प्रदर्शन नहीं हुआ क्यों कि सरकार तेल की हर बूँद बचाना चाहती है. पिछले दिनों क्रिसमस के लिए खाने-पीने की वस्तुओं का राशन तो था ही बच्चों के खिलौनों का भी राशन हो गया था. एक बच्चे के लिए अधिक से अधिक ३ खिलौने ख़रीदे जा सकते थे. इस से भी विकट समस्या राजनैतिक है. यदि संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के बीच इस क़िस्म का कोई समझौता हो गया कि वे एक-दूसरे के प्रभाव-क्षेत्रों में दख़लंदाज़ी नहीं करेंगे तो कास्त्रो के लिए यह समस्या हो जायेगी कि वह संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ कैसा बर्ताव करे. इस लिए राजनैतिक क्षेत्रों में यह पूछा जा रहा है कि क्रांतिकारी कास्त्रो के सपनों को कब तक ज़िंदा रहने दिया जायेगा.

विश्व

अमेरिका

दायित्व के दायरे

केनेडी भाइयों में सब से छोटे और अंतिम भाई एडवर्ड मूर केनेडी, जिन्हें टेडी और टेड केनेडी भी कहा जाता है, की राजनैतिक सक्रियता से न केवल सेनेट में ही गर्मी आयी है, बल्कि नव-निर्वाचित राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन के ख़ेमे में भी हलचल हुई है. ९१वीं कांग्रेस के अधिवेशन से पूर्व सेनेट की बहुमत डेमाक्रेटिक पार्टी ने अपने सचेतक (व्हिप) का चुनाव किया. इस चुनाव ने पिछली पंक्ति के सेनेटर टेड केनेडी को अगली पंक्ति में ला कर बिठा दिया. उन का नाम अब डेमाक्रेटिक पार्टी के लीडर मांसफ़ील्ड के बाद आया करेगा. दरअसल, डेमाक्रेटिक पार्टी में यह बहुत दिनों से महसूस किया जा रहा था कि पार्टी का आधुनिकीकरण करने और उस में उदार रवैये की लहर भरने का काम कोई उदार व्यक्तित्व ही कर सकता है. जब सचेतक के चुनाव का सवाल उठा तो अधिकतर उदार सेनेटरों ने यह महसूस किया कि भूतपूर्व सचेतक लांग का उतना आदर, रुतबा और दबदबा नहीं है जितना कि सचेतक का नेता के रहते और उस की ग़ैर-हाज़िरी में होना चाहिए. इस पद के लिए टेड पहले पहल ख़ुद तैयार नहीं थे और वह चाहते थे कि सेनेटर एडमंड मस्की, जो कि डेमाक्रेटिक पार्टी के उपराष्ट्रपति-पद के उम्मीदवार भी थे, चुनाव लड़ें. उपराष्ट्रपति-पद के चुनाव ने यह सिद्ध कर दिया था कि मस्की की मतदाताओं में ख़ासी इज़्ज़त और अहमियत है, लिहाज़ा सेनेटर भी उन्हें सचेतक मान सकते हैं. अपनी छुट्टियों के दौरान जब टेड ने मस्की से कहा 'आप इस पद के लिए अपने आप को प्रस्तुत करें' तो मस्की ने पहले सोचने के लिए समय माँगा और सोचने के बाद उन्होंने नकारात्मक उत्तर दे दिया. इस पर

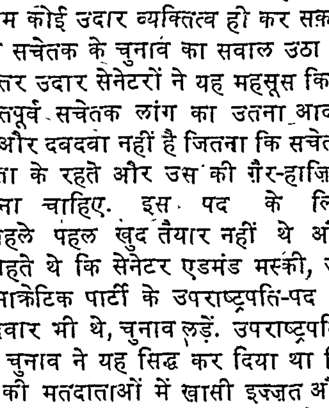

केनेडी : वृद्धता में शर्म नहीं

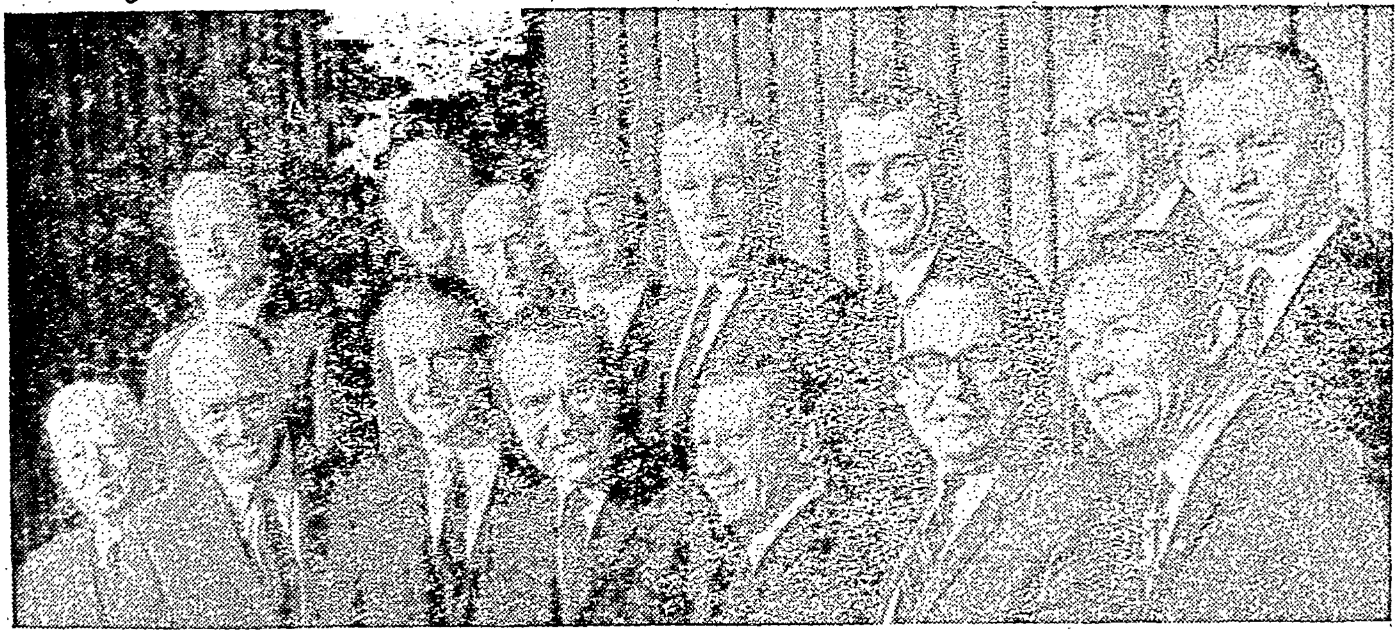

नव-निर्वाचित राष्ट्रपति निक्सन, उप-राष्ट्रपति एगन्यू और उन के मंत्रिमंडल के सदस्य : पद-ग्रहण से पूर्व की मुस्कान

केनेडी ने मस्की से कहा, 'यदि आप का निर्णय अपरिवर्तनीय है तो मुझे आशीर्वाद दीजिए.' मस्की ने हामी भर दी. चुनाव के चार दिन पहले टेड अपने चुनाव-प्रचार में स्वयं ही जुट गये. समय कम था, हरेक से उन्होंने टेलीफ़ोन पर ही बात की जिन में मैरीलैंड के सेनेटर जोसेफ़ टाइडिंग्स, वॉशिंग्टन के हैनरी जैक्सन और बॉबी (रॉबर्ट कैनेडी) के पुराने दोस्त और सहयोगी दक्षिण डकोटा के जॉर्ज मैक्गवर्न भी थे. सभी को टेड केनेडी के इस निर्णय पर अचंभा हुआ और उस के सवाल का मतलब 'क्यों, किस लिए और क्यों नहीं' के प्रश्न वाचकों से दरियाफ़्त किया गया. टेड ने अपने इस फ़ैसले की खबर ह्यूबर्ट हंफ़्री को भी दी और उन का भी आशीर्वाद प्राप्त किया. टेडी में एक ऐसी खासियत है, जो उस के दो बड़े भाइयों जॉन और बॉब में नहीं थी. वह अपने बुजुर्गों का बहुत सम्मान करते हैं, बेशक उन का दृष्टिकोण और उन के विचार उन बुजुर्गों से मेल न खाते हों. यही वजह है कि टेड सेनेटर यूजीन मैकार्थी के पास भी गये. मैकार्थी ने, जो बॉब की हत्या के बाद टेडी के राष्ट्रपति-पद के लिए उम्मीदवार खड़े होने की दशा में अपने प्रतिनिधियों का समर्थन देने को तैयार थे, टेड से उल्टा सवाल किया, 'लेकिन क्यों ?' मैकार्थी के दिमाग में केनेडी परिवार के विरुद्ध विचारों का गुच्छा उन पर पुनः हावी हो गया और टेडी मैकार्थी के यहाँ से खाली हाथ लौट आये.

लोकप्रियता : जैसा कि केनेडी परिवार में प्रसिद्ध है कि जो एक बार ठान ली, उसे ले कर ही दम लेंगे. वही बात टेड पर भी लागू होती है. बेशक वह स्वभाव से शर्मीले, लजीले और विनीत हैं लेकिन जॉन और बॉब जैसी दृढ़ता भी उन में है. वह दिन-रात अपनी मुहिम में डटे रहे और सचेतक पद के लिए जब गुप्त मतदान हुआ तो कुल ५७ मतों में से ३१ मत टेडी को मिले और २६ लांग को. बहुमत पार्टी के नेता मांसफ़ील्ड लांग से छुटकारा पाना चाहते थे, फिर भी उन्होंने लांग के विरुद्ध कोई प्रचार तो नहीं किया लेकिन टेड की पीठ वह अवश्य थपथपाते रहे. जब टेडी निर्वाचित घोषित हो गये तो सब से खुश व्यक्तियों में मांसफ़ील्ड थे. अपनी पराजय स्वीकार करते हुए लांग ने कहा कि अगर उन के विरुद्ध एडवर्ड मूर केनेडी की जगह केवल एडवर्ड मूर होते तो उन के जीतने का सवाल ही नहीं उठता था. केनेडी परिवार से हारना शान से हारने के बराबर है. लेकिन प्रतिनिधिसभा में ४६ वर्षीय उडाल ७७ वर्षीय अध्यक्ष मैक कार्मेक के आसन को नहीं हिला सके, और वहाँ उन्हें मुँह की खानी पड़ी. लिहाजा अगले दो वर्षों के लिए मैक कार्मेक प्रतिनिधिसभा के अध्यक्ष-पद पर पुनः प्रतिष्ठित हो गये.

जिम्मेदारियाँ : टेडी के चुनाव को ले कर लोगों में तरह-तरह के विचार तूल पकड़ रहे थे. एक हलके का कहना है कि टेडी के लिए सचेतक का यह मामूली पद बेमानी है और इस से उन की प्रतिष्ठा में कोई वृद्धि नहीं हुई. लेकिन दूसरे हलके की, उतने ही जोरदार शब्दों में यह मान्यता है कि टेडी के सचेतक बनने से मनोवैज्ञानिक रूप से लोगों को यह कहने और सोचने का मौक़ा मिल गया है कि डेमोक्रेटिक पार्टी को जिस उदार और युवा नेता की तलाश थी वह उसे मिल गया है. मिला तो वह बहुत पहले से ही था, लेकिन बात स्वीकारने की थी. टेडी पहले किसी पद को स्वीकारते नहीं थे, अब जब स्वीकारने लगे हैं तो लोग यह कहने लगे हैं कि १९७२ के राष्ट्रपति-पद के चुनाव के लिए निक्सन का मुक़ाबला शायद टेडी ही करें. वैसे टेडी से पहले हंफ़्री और मस्की भी अपने-अपने दावे पेश कर सकते हैं, लेकिन अनुशासन और लोकप्रियता के नाम पर डेमोक्रेटिक पार्टी को टेड अधिक रास आ सकते हैं. टेड में धैर्य, निष्ठा और लगन का खासा सम्मिश्रण है जिस की वजह से वह उत्तर और दक्षिण दोनों भागों में समान रूप से सम्माने जाते हैं. जहाँ तक राजनैतिक सक्रियता का सवाल है, एक बार स्वर्गीय जॉन केनेडी ने मजाक-मजाक में कहा था कि टेड केनेडी सब से अच्छा और कुशल प्रशासक साबित होगा. राजनीति में सक्रिय बने रहने की जो लीक बड़े भाई जो केनेडी ने डाली थी उस का अनुसरण जॉन केनेडी ने किया, जॉन के अधूरे काम को बॉबी ने पूरा करना चाहा और अब बॉबी भी नहीं रहा लिहाजा उस के काम को पूरा करना राजनैतिक और पारिवारिक तौर पर टेड केनेडी की जिम्मेदारी है. पारिवारिक तौर पर इस लिए जरूरी है कि वह अपने परिवार का सब से छोटा और अंतिम भाई है. अपने बूढ़े माँ-बाप के अलावा १९

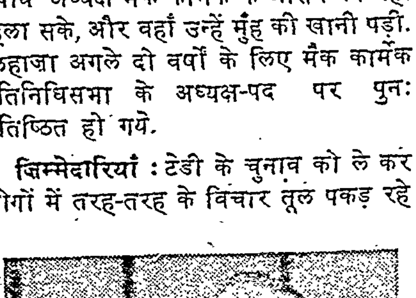

हंफ़्री : आशीर्वाद

बच्चों का दायित्व, जिन में ३ उस के अपने, ११ रॉबर्ट केनेडी के और दो जॉन के है, उस पर है. बेशक जॉन के बच्चों को सौतेला बाप मिल गया है लेकिन मुख्य रूप से जवाबदारी टेडी पर ही पड़ती है.

मांसफ़ील्ड जो लांग से बहुत कुछ उखड़े हुए से नज़र आते थे अब बड़े आश्वस्त हैं और यह बात भी कही जाने लगी है कि वृद्ध मांसफ़ील्ड अपनी सभी जिम्मेदारियों का भार टेडी पर डाल कर चैन की वंसी बजाना चाहते है क्यों कि वह जिस तरह के सहयोगी की तलाश में थे वह उन्हें मिल गया है. टेड के बढ़ते हुए प्रभाव से निक्सन का चिंतित होना स्वाभाविक ही है लेकिन फ़िलहाल वह २० जनवरी से ह्वाइट हाउस में पूरी रस्म के साथ प्रवेश करने की तैयारी कर रहे है. उन के दिमाग़ में यह बात ज़रूर चक्कर काट रही है कि उग्र कांग्रेस का समर्थन अधिक से अधिक कितना प्राप्त किया जा सकता है. फ़िलहाल निक्सन अपने कर्मचारियों की संख्या बढ़ाने में लग हुए है. उन्होंने उपविदेशमंत्री के पद पर विदेशमंत्री रोजर्स की तरह अनजान रिचर्डसन को नियुक्त किया है जो कुछ समय तक आइज़नहावर प्रशासन में भी काम कर चुके हैं. प्रतिरक्षामंत्रालय में उप-प्रतिरक्षामंत्री डेविड पैकर्ड को नियुक्त किया गया है. अपना मंत्रिमंडल उदार दिखने की गरज़ से नव-निर्वाचित राष्ट्रपति ने एक निग्रो महिला श्रीमती एलिज़ाबेथ कूंज को श्रममंत्रालय में निदेशक के रूप में नियुक्त किया है. निक्सन का यह भी कहना है कि कैबट लॉज फ़रवरी के शुरू में पेरिस में हैरीमैन की जगह लेंगे लेकिन वह यह भी चाहते है कि दक्षिण वीएतनाम में राजदूत के पद पर बंकर ही बने रहें. निक्सन के सामने इस समय सब से अहम मसला सोवियत संघ द्वारा पश्चिम एशिया में इस्राइल और अरब राष्ट्रों के बीच समझौता कराने के मामले में पहल करना है. जॉनसन नें साफ़ तौर पर कह दिया है कि वह अब इस पचड़े में नही पड़ेंगे और निक्सन को ही इस का समाधान ढूँढ़ना होगा. पिछले दिनों सोवियत समाचार-पत्रों में निक्सन-विरोधी बहुत से समाचार प्रकाशित हुए थे जिन में कहा गया था कि निक्सन यूरोप में किसी भी तरह तनाव कम होने देने के पक्ष में नहीं दीखते, बहरहाल २० जनवरी को निक्सन जिस ताज को पहनने जा रहे हैं वह कांटों का ताज है और उन के सामने केवल वीएतनाम और पश्चिम एशिया की समस्याएँ ही नहीं बल्कि बहुत-सी घरेलू समस्याएँ भी हैं जिन में निग्रो समस्या, आणविक प्रसार विरोधी संधि को मान्यता प्रदान करने का मसला, प्रतिरक्षा व्यय में कटौती करने की मांग, शहरों को आदर्श नगर प्रस्तुत करने की समस्या के अलावा लोगों पर लगाये गये बहुत से कर भी हैं जो अमेरिका के वीएतनाम से अधिक उलझते जाने के कारण लोगों पर लगाये गये थे. इस से निक्सन लोगों को कितनी राहत दिला पायेंगे, उन के उद्घाटन भाषण से ही पता चलेगा. वैसे निक्सन यह बार-बार कहते है कि उन्हें अपने सहयोगियों पर पूरी आस्था है और उन के कुशल और योग्य सहयोगी अमेरिका की जनता के सामने एक नयी तस्वीर पेश करेंगे जो अपने आप में आदर्श होगी.

पश्चिम एशिया

सोवियत प्रस्ताव और इस्राइल

जहाँ एक ओर राजनैतिक क्षेत्रों में यह आशा व्यक्त की जा रही है कि विश्व की दो महान् शक्तियों ने यह महसूस किया है कि पश्चिम एशिया की समस्या का हल निकालना अत्यंत जरूरी है और इस दिशा में आपसी मतभेदों को दूर करने की पूरी कोशिश की जा रही है, वहीं कुछ लोगों को यह महसूस हो रहा है कि हाल ही में अरब आतंकवादियों द्वारा इस्राइली क्षेत्रों में आक्रमण करने और एथीन्स में इस्राइली जहाज़ को नष्ट करने के प्रयास के फलस्वरूप इस्राइल की प्रतिशोधात्मक कार्यवाही से हल की आशा कम हो गयी है. बेरुत हवाई अड्डे पर इस्राइल के आक्रमण की निंदा विश्व के अनेक देशों ने की मगर इसका परिणाम इस्राइली जनता पर अच्छा नहीं पड़ रहा है. इस्राइल के विदेशमंत्री अब्बा एबन से जब यह पूछा गया कि विश्व के अनेक राष्ट्रों द्वारा बेरुत आक्रमण की निंदा करने से इस्राइल की नीति में कोई परिवर्त्तन आएगा कि नहीं तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'हमारे पास प्रतिशोध की कोई नीति नही है. हम केवल अस्तित्व की नीति पर चलते हैं अगर प्रतिशोध से अस्तित्व बनाए रखने में सहायता मिलती है तो हम वह करेंगे. अगर कोई यह साबित कर दे कि अरबों की हिंसा के बावजूद हम स्वतंत्र शासन चलाते हुए अपना अस्तित्व बनाए रख सकते हैं तो हम वह भी मान लेते. मगर किसी ने अभी तक यह सिद्ध नहीं किया.' एबन के अनुसार युद्ध का खतरा बेरुत की घटना से नहीं एथीन्स की घटना से बढ़ गया है क्यों कि बेरुत तो केवल प्रतिक्रिया है.

द गॉल की नीति : संघर्ष को समाप्त करने के उद्देश्य से द गॉल की सरकार ने यह फ़सला किया था कि वह इस्राइल को हथियार बेचना बंद कर देगी. मगर ऐसा नहीं लगता कि इस से इस्राइल में कुछ परेशानी पैदा हो गयी है. यह कहना उचित होगा कि इस से इस्राइल में फ्रांस के विरुद्ध एक गुस्से की भावना पैदा हो गयी है. प्रतिरक्षा मंत्री जनरल डायन ने घोषणा की है कि वह फ्रांसीसी प्रतिबंध का मुकाबला करेंगे. 'राष्ट्रपति द गॉल की नयी नीति हमें वह कुछ स्वीकार कराने पर मजबूर नहीं कर सकेगी जिस का हम विरोध करते है.' यह केवल गर्वोक्ति ही नहीं है इस दिशा में काम भी बहुत तेज गति से हो रहा है. इस्राइल के सैनिक उद्योगों के निदेशक के अनुसार 'जब फ्रांस ने पूर्ण रूप से शस्त्रों पर प्रतिबंध लगाने की घोषणा की तो हमें कोई आश्चर्य नहीं हुआ.' यह अनुमान लगाया जा रहा है कि फ्रांस के शस्त्र प्रतिबंध का प्रभाव इस्राइल की सैनिक शक्ति पर नगण्य है. इस्राइल के पास फ्रांस में बने लड़ाकू जहाज माइरेज-५ की बड़ी संख्या है मगर इन के हिस्से और पुर्ज स्विट्जरलैंड, ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण अमरीका से भी प्राप्त किये जा सकते है. इस के अतिरिक्त इस्राइल का सैनिक उद्योग भी बहुत द्रुत गति से आगे बढ़ रहा है. यद्यपि इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि इस्राइल के पास परमाणु शस्त्र है या वह शीघ्र ही परमाणु शस्त्रों का निर्माण करने जा रहा है फिर भी इस बात में कोई संदेह नही कि इस्राइल थोड़े ही समय मे फ्रांसीसी शस्त्रों के बंधन से स्वतंत्र हो जायेगा. उस ने फ्रांस से १० करोड़ डालर वापस करने के लिए कहा है. यह धन इस्राइल ने ५० माइरेज-५ जेट खरीदने के लिए अग्रिम के रूप में दिया था. फ्रांसीसी कार्यवाही के विरोध में यहूदियों की अंतरराष्ट्रीय समिति ने फ्रांस की व्यावहारिक नाकाबंदी करने का फ़ैसला कर लिया है. हाल ही में संयुक्त राज्य से बहुत से यहूदी पेरिस जाने वाले थे मगर उन्होंने अपनी यात्रा को रद्द कर दिया है.

सोवियत प्रस्ताव : सोवियत संघ ने पश्चिम एशिया की इस विकट समस्या के हल के लिए एक प्रस्ताव पास किया था मगर इस्राइल ने प्रस्ताव प्रकाशित होने से पहले ही उसे अमान्य कर दिया. ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि सोवियत संघ के विदेशमंत्री ग्रोमिको और राष्ट्रपति नासिर की बातचीत के बाद संयुक्त अरब गणराज्य ने सोवियत संघ के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था. इस प्रस्ताव के अनुसार पिछले वर्ष सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव को कई स्तरों में कार्यान्वित करने का एक कार्यक्रम दिया गया था. इस कार्यक्रम में दोनों पक्षों को एक दूसरे का विरोध करने की भावना के साथ ही सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव को स्वीकार करने का सुझाव दिया गया था. इस के बाद इस्राइली सेनाएँ अधिकृत क्षेत्र से भी हट जातीं, और एक मास के अंतर्गत ही संयुक्त अरब गणराज्य स्वेज नहर को खोलने के प्रति क़दम उठाता. इस्राइलियों के वापस आ जाने और स्वेज़ नहर के खुल जाने के बाद सुरक्षा परिषद् एक संयुक्तराष्ट्र सेना इस क्षेत्र में भेजता ताकि दोनों पक्षों को संघर्ष से बचाया जाये. मगर इस्राइल ने इस कार्यक्रम को अव्यावहारिक बताया है. उन के अनुसार संयुक्तराष्ट्र की सेना का कोई अर्थ नही क्यों कि गत १९६७ के अरब-इस्राइली युद्ध में भी इस क्षेत्र में संयुक्त

राष्ट्र ने युद्ध की घोषणा कर दी तो २४ घंटे के अंदर-अंदर उन सेनाओं को पीछे हटना पड़ा. इस्राइली अधिकारी किसी ऐसे हल को व्यावहारिक नहीं मानते जो निकट भविष्य में इस्राइल की सत्ता को सुरक्षित नहीं बनाता. उधर राष्ट्रपति जॉनसन ने भी यह फ़ैसला किया है कि सोवियत प्रस्ताव पर यदि कुछ करना है तो नये राष्ट्रपति निक्सन ही करेंगे.

राष्ट्रकुल सम्मेलन

निष्फल मिलन

सम्मेलन आरंभ होने से पहले ही यह संभावना व्यक्त की गयी थी कि पिछले सम्मेलनों की तरह इस बार भी उस से कोई उल्लेखनीय उपलब्धि नहीं होगी और यह कि उस में भारत कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर सकेगा (देखिए **दिनमान**, १२ जनवरी, १९६९). सम्मेलन के पहले दिन जब आतिथेय ब्रिटेन के प्रधानमंत्री हेरल्ड विल्सन को सर्व-सम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित किया गया और उस के बाद केवल एक घंटे के अल्प समय में कार्य-सूची भी निर्विरोध पारित कर दी गयी तो यह उम्मीद बंधी थी कि संभवतः पूर्वानुमान मिथ्या सिद्ध हो और प्रस्तुत समस्याओं का न्यायसंगत समाधान खोजने में सम्मेलन को सफलता मिले, किंतु कभी ठंडी और कभी गर्म बहसों के बाद जो परिणाम अब तक सामने आया है उस से स्पष्ट हो जाता है कि यह राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन न तो रोडेसिया की समस्या का कोई सर्वसम्मत हल खोज सका और न ही जातिवाद तथा आप्रवासियों की समस्याओं का निराकरण कर सका. विश्व स्थिति पर उस में बहस तो हुई किंतु उस बहस के दौरान सम्मेलन यह तय नहीं कर पाया कि वर्तमान परिस्थितियों में राष्ट्रकुल की भूमिका क्या होनी चाहिए. सदस्य देशों की आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति के बारे में भी सम्मेलन ने कोई ठोस निर्णय नहीं किये.

रोडेसिया और रोडेसिया : जैसी कि संभावना थी रोडेसिया का प्रश्न पूरे सम्मेलन पर छाया रहा और उस पर निर्धारित समय से अधिक देर तक बहस हुई. पिछले दिनों शाही नौसेना के युद्धपोत 'फ़ीयरलैस' पर ब्रितानी प्रधानमंत्री विल्सन और रोडेसिया के विद्रोही शासक इयान स्मिथ के बीच हुई वार्ता में ब्रिटेन ने जो छह-सूत्री प्रस्ताव समझौते के लिए प्रस्तुत किया उस की प्रायः सभी वक्ताओं ने कटु आलोचना की. जांबिया के राष्ट्रपति काउंडा ने यह जानना चाहा कि आखिर प्रधानमंत्री विल्सन ने किस आधार पर फ़ीयरलैस प्रस्ताव प्रस्तुत किया और उन्होंने क्यों कर 'निवमार' (बहुसंख्यक शासन से पहले स्वाधीनता नहीं) प्रस्ताव से हट कर समझौते का क्या रास्ता तलाश किया. उन्होंने दृढ़ शब्दों में कहा कि रोडेसिया की समस्या का समाधान बल प्रयोग से ही किया जा सकता है. श्री काउंडा की इस दलील के बावजूद बहस संयत रही. तानजानिया के राष्ट्रपति न्यरेरे ने बल प्रयोग की दलील से अपनी असहमति व्यक्त करते हुए कहा कि ब्रिटेन को 'फ़ीयरलैस प्रस्ताव' वापस ले लेने चाहिए. उन्होंने आग्रह किया कि ब्रिटेन पूर्ववत् 'निवमार' प्रस्ताव का समर्थन करे और रोडेसिया की आर्थिक नाकेबंदी के लिए अन्य देशों से मिल कर दृढ़ क़दम उठाये. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने राष्ट्रपति न्यरेरे के प्रस्तावों का समर्थन करते हुए कहा कि रोडेसिया की समस्या का न्यायसंगत हल शीघ्र ही ढूंढ़ा जाना चाहिए. पाकिस्तान के विदेश मंत्री अर्शाद हुसेन ने भी इन प्रस्तावों का समर्थन किया. उन्होंने रोडेसिया की तुलना कश्मीर से कर के कश्मीर समस्या को बहस में घसीटने का असफल प्रयास भी किया. प्रधानमंत्री विल्सन की तत्परता से उन का उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ. श्री हुसेन ने सम्मेलन में चीन की वकालत यह कह कर की कि उस का रवैया अपने पड़ोसी देशों के साथ विनम्र है. किंतु उन की यह चाल भी विफल रही. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने अपने भाषण में भारत के प्रति चीन के व्यवहार का यथातथ्य चित्र प्रस्तुत कर के यह सिद्ध कर दिया कि श्री हुसेन जो कुछ कह रहे हैं वह उन के बारे में ही सच हो सकता है. मलयेसिया के प्रधानमंत्री टुंकु अब्दुलरहमान ने यह कह कर कि दक्षिण पूर्व एशिया में अशांति के लिए चीन उत्तरदायी है श्री हुसेन के उद्देश्य को पूर्णतः विफल कर दिया. बहस घूम फिर कर फिर रोडेसिया की समस्या पर आ टिकी. सिंगापुर के प्रधानमंत्री ली कुआन यी ने निवमार सिद्धांत का समर्थन किया. जब कि मलावी के राष्ट्रपति बांडा ने फ़ीयरलैस प्रस्तावों के पक्ष में दलील दी.

ब्रिटेन के प्रतिनिधिमंडल द्वारा फ़ीयरलैस प्रस्तावों का बचाव किया जाना स्वाभाविक ही था. रोडेसिया के मामलों से संबद्ध निर्विभागीय मंत्री जार्ज टामसन ने अफ़्रीकी देशों की इस दलील को कि ब्रिटेन को रोडेसिया में अपना सीधा शासन स्थापित करना चाहिए यह कह कर ठुकरा दिया कि रोडेसिया में कभी भी ब्रिटेन का सीधा शासन नहीं रहा. यदि ब्रिटेन अब ऐसा कोई क़दम उठाता है तो रोडेसिया के गोरे नागरिक भी इस का विरोध करेंगे. प्रधानमंत्री विल्सन ने बल प्रयोग की मांग को ठुकराते हुए कहा कि ब्रिटेन अब भी निवमार सिद्धांत की क़दर करता है. उसने रोडेसिया के प्रधानमंत्री इयान स्मिथ के समक्ष जो नया प्रस्ताव प्रस्तुत किया है उस का उद्देश्य केवल समस्या का व्यावहारिक समाधान ही है. इस में कोई संदेह नहीं कि ब्रिटेन को सम्मेलन में रोडेसिया के प्रश्न पर व्यापक समर्थन नहीं मिला किंतु इस बार की बहस से यह आभास अवश्य मिला कि अफ़्रीकी देशों ने ब्रिटेन की कठिनाई और क्षमता को समझा है. शायद यही कारण रहा कि रोडेसिया पर हुई बहस उतना उग्र रूप धारण नहीं कर सकी जितनी कि संभावना थी.

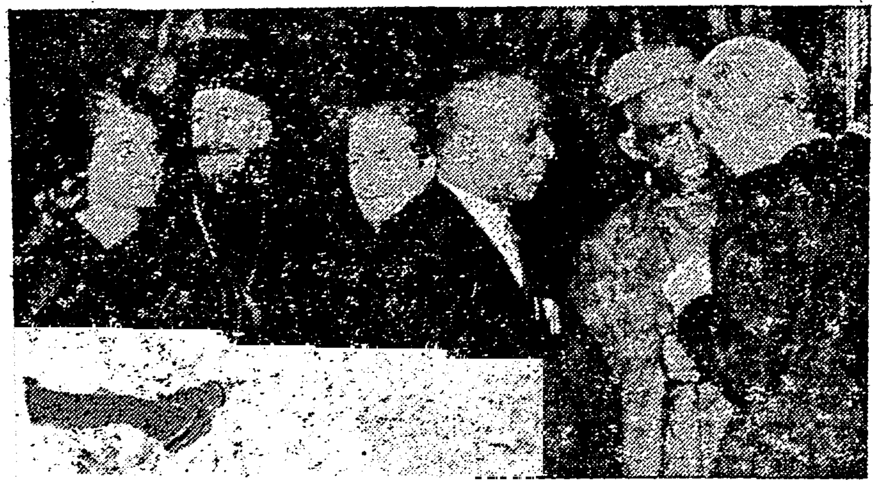

लंदन में राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी तथा अन्य प्रतिनिधि

प्रदर्शन और प्रदर्शन : सम्मेलन के पहले दिन से ही प्रदर्शनों का सिलसिला शुरू हो गया. पहले दिन के प्रदर्शनकारी पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब खां और विआफ़्रा के राष्ट्रपति ओजुकवू के विरोध में नारे लगाते सुने गये. उन्होंने मार्लबोरो भवन की ओर आने वाले मार्गों को काफ़ी देर तक अवरुद्ध रखा जिस के फलस्वरूप अनेक प्रतिनिधि सम्मेलन में भाग लेने के लिए देर से पहुँचे. रोडेसिया के इयान स्मिथ सरकार के विरोध में रोडेसिया हाउस पर कोई पाँच हज़ार रोडेसिया-विरोधी प्रदर्शनकारियों ने प्रदर्शन किया. उन्होंने अपने इस प्रदर्शन को प्रतिष्ठा के लिए अभियान की संज्ञा दी. प्रदर्शनकारियों ने गोरे फ़ासिस्टों और ब्रितानी संसद में विपक्षी सदस्य पावेल के विरुद्ध नारे लगाये. शुरू में यह प्रदर्शन शांतिपूर्ण रहा किंतु जब प्रदर्शनकारियों ने दक्षिण अफ़्रीका के दूतावास पर पथराव किया

तो उसने उग्र रूप धारण कर लिया. फलस्वरूप पुलिस से मुठभेड़ें हुईं जिन में कई पुलिसमैन और प्रदर्शनकारी घायल हुए. बीस से अधिक प्रदर्शनकारियों को बंदी बनाया गया. अगले दिन दो युवक प्रदर्शनकारियों ने रोडेसिया हाउस पर यूनियन जैक फहरा कर पुलिस को भी अचंभे में डाल दिया.

विश्व स्थिति : सम्मेलन के पहले दिन अपरान्ह में प्रतिनिधियों ने विश्व की राजनैतिक स्थिति पर विचार विमर्श किया. वीएतनाम से लेकर चेकोस्लोवाकिया तक कई प्रश्नों पर चर्चा हुई. वीएतनाम के प्रश्न पर स्पष्टतः दो मत व्यक्त किये गये. ब्रिटेन और उस के समर्थकों का कहना था कि समस्या का न्यायोचित हल तो अवश्य खोजा जाना चाहिए किंतु उस के लिए वहाँ से विदेशी सेनाओं की वापसी को आवश्यक शर्त के रूप में पेश नहीं किया जा सकता. आस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री जान गोर्टन ने कहा कि वीएतनाम की समस्या पर होने वाला समझौता न्यायोचित तथा टिकाऊ हो और उस से दक्षिण वीएतनामी जनता को स्वतंत्र चुनाव द्वारा सरकार चुनने का अधिकार प्राप्त हो. चेकोस्लोवाकिया पर रूसी आक्रमण को लेकर जो बहस हुई उस में ब्रिटेन ने अपने पहले के दृष्टिकोण को ही दोहराया जब कि कुछ अफ्रीकी देशों ने यह आशंका व्यक्त की कि दक्षिण अफ्रीका भी अपने कुछ पड़ोसी देशों के प्रति रूस जैसा रवैया अपना सकता है. पश्चिम एशिया की स्थिति पर भी विचार विमर्श हुआ. बहस के दौरान प्रायः सभी वक्ताओं ने भारत के इस दृष्टिकोण का समर्थन किया कि अरब देशों को इस्राइल का अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए. किंतु इस्राइल ने जो आक्रामक रवैया अपना रखा है वह निंदनीय है.

एक और समिति : राष्ट्रकुल के आप्रवासियों का प्रश्न इस बार कार्यसूची में नहीं था किंतु समस्या की व्यापकता को देखते हुए यह तय किया गया कि आपसी बातचीत द्वारा एक ऐसी समिति का गठन किया जाये जो आप्रवासियों की समस्याओं का अध्ययन करे और उस के समाधान के लिए सुझाव दे. सम्मेलन के पाँचवें दिन २८ में से १७ सदस्य देशों के प्रतिनिधियों ने इस बारे में बातचीत भी की जिस में पूर्वी अफ्रीकी देशों से एशियाइयों के निष्क्रमण का प्रश्न ही हावी रहा. ब्रितानी गृहमंत्री कैलाघान ने यह स्वीकार किया कि ब्रितानी पारपत्र वाले एशिया निवासियों की जिम्मेदारी ब्रिटेन पर है किंतु उन्होंने कहा कि वर्तमान परिस्थितियों में ब्रिटेन इस स्थिति में नहीं है कि वह पूर्वी अफ्रीकी देशों से आने वाले सभी आप्रवासियों को अपने यहाँ बसा सके. उन्होंने अपील की कि दूसरे देशों को भी इस समस्या के समाधान में ब्रिटेन का साथ देना चाहिए. केन्या और उगांडा के प्रतिनिधियों ने यह मत व्यक्त किया कि इस प्रकार की समिति में वे तभी भाग ले सकते हैं जब कि वह इन देशों के आप्रवासियों की समस्या पर ही विचार करे. अगर समिति का उद्देश्य कुछ और है तो उन का भाग लेना निरर्थक ही होगा. समिति की दूसरे दिन की बैठक से केन्या, उगांडा, तानजानिया और जांबिया के प्रतिनिधि उठ कर चले गये. उन्होंने तीसरे दिन भी बैठक का बहिष्कार किया। उन्होंने यह क़दम ब्रिटेन के आप्रवासियों संबंधी विधेयक के विरोध में उठाया. आप्रवासियों की समस्या से यद्यपि भारत का संबंध बहुत नज़दीक का है फिर भी वह कोई ऐसा सुझाव समिति के समक्ष प्रस्तुत नहीं कर सका जिस से कि उस का कोई स्थायी हल ढूंढा जा सकता. उस ने अपने इस आश्वासन को फिर दोहराया कि यदि ब्रिटेन थोड़े से समय में ही सभी आप्रवासियों को अपने यहाँ बुलाने को तैयार हो तो फिलहाल भारत उन आप्रवासी भारतीयों को अपने यहाँ शरण देने के लिए तैयार है जिन्हें निकट भविष्य में ही केन्या और उगांडा सरकारों की नयी नीति के कारण इन देशों को छोड़ना पड़ेगा.

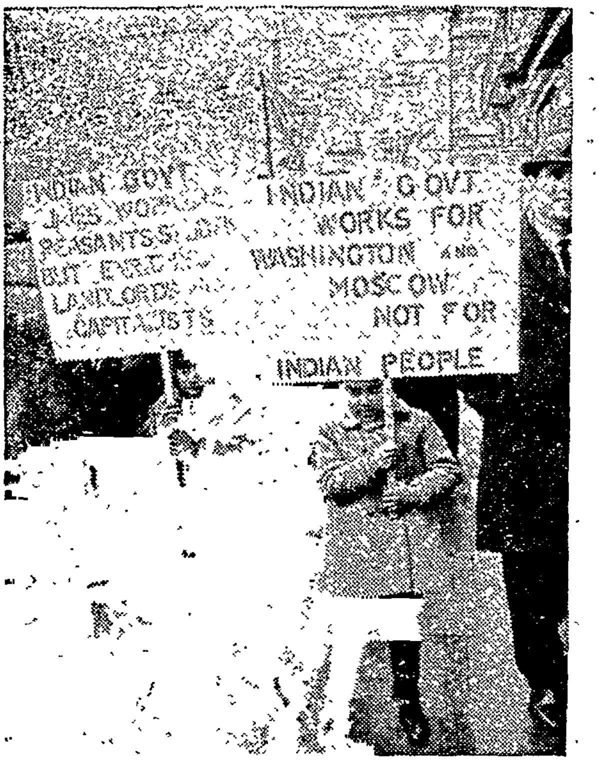

मार्लबोरो भवन के बाहर : प्रदर्शन ही प्रदर्शन

सहयोग की आकांक्षा : सम्मेलन के दौरान प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने पारस्परिक सहयोग पर एकाधिक बार बल दिया. किंतु ठोस प्रस्तावों के अभाव में आगे चल कर उन का यह अनुरोध कितना कारगर साबित होगा इस का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है. पारस्परिक सहयोग के आधार पर ही राष्ट्रकुल का गठन हुआ अतः उस के लिए कोरी दलील देना कोई माने नहीं रखता. सहयोग किन क्षेत्रों में हो और उस का आधार क्या हो इस का निर्णय हो जाने पर ही सहयोग की दलील कारगर सिद्ध हो सकती है. कभी विश्व शांति के संदर्भ में और कभी राष्ट्रकुल के संदर्भ में आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में सहयोग करने की दलील तो आज फ़ैशन बन चुकी है. आज तक इस दलील का किसी ने विरोध नहीं किया है. फिर भी सहयोग न हो पाने के कारण समस्याओं का समुचित समाधान नहीं हो पा रहा है.

इन पंक्तियों के लिखे जाने तक सम्मेलन के अभी दो दिन बाक़ी हैं और इन दो दिनों में प्रतिनिधिमंडल कई मसलों पर विचार कर सकते हैं. वे राष्ट्रकुल के सदस्य देशों के आर्थिक और व्यापारिक क्षेत्र में आपसी संबंधों पर भी विचार करेंगे, सामाजिक और राजनैतिक संबंधों को लेकर भी चर्चा होगी और उस के बाद एक संयुक्त विज्ञप्ति भी प्रकाशित की जायेगी किंतु सब के बाद भी सम्मेलन का जो परिणाम निकलेगा वह इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा कि सम्मेलन में जिन प्रश्नों पर विचार हुआ उन पर (रोडेसिया के प्रश्न को छोड़कर) आम सहमति पायी गयी. ऐसे सभी सम्मेलनों का प्रायः यही परिणाम निकलता है. समस्याओं का समाधान करने के लिए कोई ठोस क़दम नहीं उठाये जाते क्योंकि ऐसा करने से सम्मेलन में भाग लेने वाले किसी न किसी पक्ष का नाराज़ हो जाना स्वाभाविक ही होता है. राष्ट्रकुल सम्मेलन में भारत की सफलता अथवा विफलता के बारे में कुछ कहने को शेष नहीं रह जाता क्योंकि वह न तो अफ्रेशियाई देशों का नेतृत्व कर सका और न ही विचारित समस्याओं पर कोई सुझाव दे सका. प्रधानमंत्री की नयी दिल्ली लौटने पर दी गयी यह दलील ठीक हो सकती है कि राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन में भाग लेने वाले नेताओं में विचाराधीन समस्याओं के समाधान के लिए 'वास्तविक आकांक्षा' थी किंतु उस आकांक्षा को फलित बनाने के लिए कोई महत्वपूर्ण निर्णय नहीं कर सके, इस तथ्य को भी स्वीकारना होगा. प्रधानमंत्री ने राष्ट्रकुल को विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक उपयोगी मंच तो अवश्य स्वीकारा है किंतु उन्होंने यह नहीं बताया कि भारत ने इस मंच का कितना उपयोग किया है.

रासायनिक उर्वरक 'फ़ैक्ट' : प्रगति का प्रतीक

फ़र्टीलाइज़र एंड केमीकल्स, त्रावनकोर लिमिटेड (फ़ैक्ट) प्रतिष्ठान की स्थापना की योजना तब बनी थी जब तत्कालीन त्रावनकोर राज्य विकट खाद्य-संकट से ग्रस्त था. त्रावनकोर के तत्कालीन दीवान डॉ. सी. पी. रामस्वामी अय्यर ने यह महसूस किया कि केवल रासायनिक उर्वरक के उत्पादन से ही राज्य की खाद्य-समस्या हल हो सकती है. उन्हीं के प्रयत्नों से "फ़ैक्ट" की स्थापना संभव हो सकी और कार्यारंभ का भार दक्षिण भारत की एक औद्योगिक संस्था मेसर्स सेशासेयी ब्रदर्स लिमिटेड को सौंपा गया. सन् १९४४ में पेरियार नदी के तट पर स्थित उद्योगमंडल नामक स्थान में यह प्रतिष्ठान स्थापित हुआ और सन् १९४७ से इस ने उत्पादन शुरू कर दिया था.

ब्रितानी फ़र्म मेसर्स पावर-गैस कॉर्पोरेशन और अमेरिकी फ़र्म सिगमास्टर ब्रेयर ने इस परियोजना की रूप-रेखा तैयार करने और इंजीनियरी का कार्यभार सँभाला. उत्पादन के लिए जो प्रक्रिया अपनायी गयी वह अपने-आप में एक नया प्रयोग था. इस क्षेत्र में क्यों कि कोयला और गैस अप्राप्य था अत: अमोनिया के उत्पादन के लिए जलाने की लकड़ी का उपयोग किया गया. आरंभ में इस की उत्पादन-क्षमता ५० हज़ार टन अमोनियम सल्फ़ेट की थी. त्रिची की खानों से प्राप्य जिप्सम और जलाने की लकड़ी से बने अमोनिया से अमोनियम सल्फ़ेट तैयार किया गया. कुछ ही समय बाद एक सुपरफ़ॉस्फ़ेट कारखाने की भी स्थापना की गयी, जिस की उत्पादन-क्षमता ४४ हज़ार टन थी और तब एक सल्फ़रिक ऐसिड कारखाना बनाना भी ज़रूरी हो गया, जो प्रतिदिन ७५ टन सल्फ़रिक ऐसिड तैयार करता था.

विस्तार और परिष्कार : प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौर में सिंद्री में एक विशाल उर्वरक कारखाने की स्थापना के बाद उर्वरक-निर्माण और उस के उपयोग के क्षेत्र में एक नया अध्याय शुरू हो गया और तब 'फ़ैक्ट' के लिए भी यह अनिवार्य हो गया कि वह अपना विस्तार कर के अपने अस्तित्व की रक्षा करे. तब तक इस ने कॉस्टिक सोडे का निर्माण भी शुरू कर दिया था. चुनांचे यह महसूस किया गया कि एक पृथक इकाई क़ायम कर के ही कॉस्टिक सोडे का उत्पादन अधिक फ़ायदेमंद रहेगा और तब 'द त्रावनकोर-कोचीन केमीकल लिमिटेड' नामक एक नयी कंपनी अस्तित्व में आयी, जिसे त्रावनकोर-कोचीन सरकार, 'फ़ैक्ट' और मित्तुर केमिकल एंड इंडस्ट्रियल कॉर्पोरेशन ने संयुक्त रूप से गठित किया. कॉस्टिक सोडे के निर्माण की प्रक्रिया से उपजे हाइड्रोजन क्लोराइड से 'फ़ैक्ट' ने एक और पदार्थ का उत्पादन शुरू किया और वह था अमोनियम क्लोराइड. तब तक देश की आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह पदार्थ बाहर से मँगाया जाता था. 'फ़ैक्ट' द्वारा निर्मित अमोनियम क्लोराइड के बाज़ार में पहुँचते ही उसे बाहर से मँगाने की ज़रूरत नहीं रही.

समय के सरकने के साथ-साथ 'फ़ैक्ट' के विस्तार की आवश्यकता बढ़ती गयी. विस्तार के प्रथम दौर (सन् १९५०) में नाइट्रोजन और भारत में पहली बार बने अमोनियम फ़ॉस्फ़ेट नामक नये उर्वरक का उत्पादन दुगना करने के लिए ३ करोड़ रु. की राशि निर्धारित की गयी. इसी दौर में एक विद्युत-चालित हाइड्रोजन और एक फ़ौस्फ़ोरिक ऐसिड कारखाने भी स्थापित किये गये. २ करोड़ रु. की लागत से 'फ़ैक्ट' के विस्तार का दूसरा दौर शुरू हुआ. तब तक जलाने की लकड़ी से गैस तैयार करने की पद्धति पुरानी और अलाभकर साबित होने लगी थी. अत: 'फ़ैक्ट' ने तेल से गैस तैयार करने के लिए एक नया कारखाना स्थापित किया, जिस में कच्चा नफ़्था प्रयुक्त होता है. इस आधुनिकीकरण से 'फ़ैक्ट' की उत्पादन-क्षमता बढ़ कर ३० हज़ार टन नाइट्रोजन और १५ हज़ार टन पी२ओ५ हो गयी. ११ करोड़ रु. की लागत से 'फ़ैक्ट' के विस्तार का तीसरा दौर शुरू हुआ, जिस में की उत्पादन-क्षमता ७० हज़ार टन नाइट्रोजन और ३३ हज़ार टन पी२ओ५ हो गयी और वह २ लाख टन अमोनियम सल्फ़ेट, १ लाख ३५ हज़ार टन अमोनियम फ़ौस्फ़ेट, ४५ हज़ार टन सुपरफ़ौस्फ़ेट तथा २५ हज़ार टन अमोनियम क्लोराइड तैयार करने लगी. विस्तार के तीसरे दौर में 'फ़ैक्ट' की सब से बड़ी उपलब्धि थी प्रतिदिन ३ सौ टन अमोनियम सल्फ़ेट तैयार करने वाले कारखाने की स्थापना, जिस में जिप्सम नामक उच्छिष्ट का प्रयोग होता था. 'फ़ैक्ट' अब विस्तार के चौथे दौर से गुज़र रहा है. विद्युत-शक्ति पर आधारित उस की कई इकाइयाँ अपने उत्पादन-सामर्थ्य का पूर्ण उपयोग नहीं कर पा रही थीं, क्यों कि केरल राज्य में हर साल विद्युत की कमी बनी रहती है. परिणामस्वरूप कंपनी को काफ़ी नुकसान उठाना पड़ा.

अत: विद्युत-शक्ति पर निर्भरता से कंपनी को मुक्त रखने के लिए आवश्यक हो गया कि विद्युत-चालित हाइड्रोजन कारखाने के बदले कोई और विकल्प ढूंढ़ा जाये. विस्तार के चौथे दौर में विद्युत-कोषों को बदल कर अन्य अनुषंगी प्रक्रिया को अपनाने के कार्यक्रम को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है, जिस से कि कंपनी की नाइट्रोजन उत्पादन-क्षमता ७० हज़ार टन से बढ़ कर ९२ हज़ार टन और पी२ओ५ की उत्पादन-क्षमता ३३ हज़ार ५ सौ टन से ४५ हज़ार ७ सौ टन हो जाये. इस कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिए ५ करोड़ रु. निर्धारित किया गया है और काम भी शुरू हो गया है. चौथे दौर में उद्योगमंडल में कुल २७ करोड़ रु. विस्तार-कार्यों पर खर्च किया जायेगा और यह कार्य इस वर्ष पूरा हो जायेगा. विस्तार के तृतीय दौर के अंत में 'फ़ैक्ट' को अनुमानत: ५१ हज़ार किलोवॉट बिजली की ज़रूरत पड़ती थी, किंतु चतुर्थ दौर में केवल ३६ हज़ार किलोवॉट बिजली की ही ज़रूरत पड़ेगी. चतुर्थ दौर की एक और विशिष्ट उपलब्धि यह होगी कि एक अमोनियम फ़ौस्फ़ेट (२०:२० स्तर का) कारखाना भी स्थापित किया जायेगा.

उक्त विस्तार-योजनाओं की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि 'फ़ैक्ट' ने निरंतर आत्मविश्वास पूर्वक यह कोशिश की कि वह कारखानों की रूप-रेखा तैयार करने और फिर निर्माण-कार्य संपन्न करने का उत्तरदायित्व अपने ही व्यवस्थापकों, इंजीनियरों और कर्मचारियों को सौंपे. विदेशी विशेषज्ञों को केवल तैयार माल के स्तर की परीक्षा के लिए ही बुलाया जाता है.

'फ़ीडो' : 'फ़ैक्ट' का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विभाग है इंजीनियरी और डिज़ाइन संगठन, जिस का संक्षिप्त नाम 'फ़ीडो' है. यह विभाग कोचीन और दुर्गापुर परियोजनाओं के गैस प्रभाग की प्ररचना और अभियंत्रण के कार्य में जुटा हुआ है. इस उद्देश्य से 'फ़ैक्ट' ने मशहूर ब्रितानी फ़र्म मेसर्स पावर गैस कॉर्पोरेशन से सहयोग स्थापित किया है. इन दोनों परियोजनाओं की उत्पादन-क्षमता प्रतिवर्ष २ लाख टन अमोनिया और ३ लाख ३० हज़ार टन यूरिया होगी.

खपत-मोर्चा : भारत में उर्वरक-कारखानों के कर्त्तव्य की इतिश्री केवल इसी में नहीं है कि वे अधिकाधिक उर्वरक तैयार करें, बल्कि उसे किसानों तक, ठीक समय पर, पर्याप्त मात्रा में और उचित क़ीमत पर पहुँचा सकना भी उन के लिए एक चुनौती है. अभी भी अधिकतर भारतीय किसान रासायनिक उर्वरकों के इस्तेमाल की विधि और उस की उपयोगिता से अनभिज्ञ हैं. अत: 'फ़ैक्ट' पिछले ५-६ वर्षों से इस दिशा में भी काफ़ी प्रयत्नशील है. समय-समय पर विभिन्न राज्यों में 'उर्वरक-मेला' आयोजित कर के 'फ़ैक्ट' ने रासायनिक उर्वरकों की लोकप्रियता बढ़ाने के लिए प्रशंसनीय प्रयास किया है. वर्तमान समय में 'फ़ैक्ट' द्वारा नियुक्त क़रीब १०० कृषिविद् देश के विभिन्न भागों में जा कर किसानों को रासायनिक उर्वरकों के उपयोग का प्रशिक्षण दे रहे हैं और साथ ही उन्हें कृषि की आधुनिक तकनीक की जानकारी भी दे रहे हैं.

विज्ञान कांग्रेस

वैज्ञानिक भावना कहाँ है

१९६० के विज्ञान कांग्रेस के संबंध में प्रसिद्ध वैज्ञानिक जे. वी. एस. हाल्डडेन ने कहा था 'बंबई में मुझे लगा कि विज्ञान कांग्रेस भारतीय विज्ञान की मौलिकता के विरुद्ध एक आयोजित षड्यंत्र है.' उस समय जो वेदना हाल्डेन को हुई थी वह हर उस वैज्ञानिक का दर्द है जो वास्तव में भारतीय विज्ञान की प्रगति में रुचि रखता है और अपने धंधे से अधिक वैज्ञानिक अनुसंधान को महत्त्व देता है. हाल्डेन के शब्दों में 'विज्ञान कांग्रेस का उद्देश्य भारत में वैज्ञानिक प्रगति को प्रोत्साहन देना होना चाहिए. मेरे विचार में इस काम में यह कांग्रेस सफल हो गयी है. इसे राष्ट्र के लिए उपयोगी बनाने में अधिक कठिनाई पेश नहीं आयेगी. हाँ, इसे कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों के प्रति थोड़ा अशिष्ट होना पड़ेगा. विज्ञान में शिष्टाचार से अधिक महत्त्वपूर्ण दक्षता है. १९६० में भारतीय विज्ञान कांग्रेस की जो निराशाजनक स्थिति थी उस से वह बहुत आगे नहीं बढ़ पायी है. लाखों रुपये के व्यय से आयोजित इस वैज्ञानिक सम्मेलन का उद्देश्य बुरा नहीं है. वास्तव में इस प्रकार के सम्मेलन वैज्ञानिक प्रगति के लिए आवश्यक हैं.

वैज्ञानिक भावना : आरंभ में जब विज्ञान कांग्रेस की योजना बनायी गयी थी तो इसी दृष्टिकोण को सामने रखा गया था कि विभिन्न विषयों में काम आने वाले वैज्ञानिकों को एक मंच मिल जाये जहाँ वे अपने वैज्ञानिक अनुसंधान के संबंध में अपने कार्य का विवरण दे सकें और उस की समुचित आलोचना हो. विज्ञान की इतनी शाखाएँ निकल आयी हैं कि यह आवश्यक हो गया है कि हर एक शाखा का अलग-अलग अनुसंधान केंद्र स्थापित हो जाये. किंतु साथ ही यह सब शाखाएँ एक दूसरे के साथ संबद्ध होने के कारण एक ही योजना के अंतर्गत विकसित होनी चाहिएँ. शीघ्र ही आयोजकों को महसूस हुआ कि सभी प्रकार के वैज्ञानिक विषयों पर एक साथ विचार-विमर्श नहीं किया जा सकता, इस लिए अलग अलग विषयों को ले कर समितियों का गठन हुआ, जिन में ऐसे विषयों पर अलग से बातचीत होने लगी. जो काम एक अच्छे उद्देश्य से आरंभ हुआ था वह कुछ ही वर्षों में एक ऐसी स्थिति में आ गया जहाँ यह स्पष्ट हो गया कि उस का प्रबंध और आयोजन अफ़सरशाही ढंग से हो रहा है. देश की हज़ारों संस्थाओं की भाँति वह भी एक जमघट-सा बनने लगा. अधिकांश स्थानों के लिए चुनाव और प्रचार, दबाव और धमकियाँ सब का प्रयोग किया जाने लगा तथा गंभीर प्रकार के अनुसंधान संबंधी कार्य का दिन-प्रतिदिन ह्रास होने लगा. यह कहना उचित नहीं होगा कि विज्ञान कांग्रेस के आयोजकों ने इन कमज़ोरियों को दूर करने की कोशिश नहीं की, मगर बाधाओं को दूर करने का जो ढंग अपनाया गया उस में भी अफ़सरशाही की झलक मिलती थी. विज्ञान कांग्रेस के आयोजकों का दृष्टिकोण ही अभारतीय रहा है. अभारतीय इस दृष्टि में कि इस प्रकार के महत्त्वपूर्ण सम्मेलन की योजनाएँ केवल पश्चिमी संस्थाओं के आदर्श पर बनायी गयीं और उन्हीं मापदंडों से मापी गयीं, जिस का सब से बुरा परिणाम यह हुआ कि इस देश और समाज से संबंधित समस्याओं को धीरे-धीरे विज्ञान कांग्रेस के मंच से बहिष्कृत किया गया और आज भी जितने शोधपत्र विज्ञान कांग्रेस में पढ़े जाते हैं उन में से बहुत कम ऐसे होते हैं जिन का संबंध भारतीय जीवन और भारत की आर्थिक समस्याओं के सुधार से हो. देश में जो कुछ शोध-कार्य हुआ है या नये वैज्ञानिक तथ्यों का पता लगा है वह अभी शोधपत्रों या पुस्तकों में ही सीमित पड़ा हुआ है. उन का व्यावहारिक उपयोग अभी तक बहुत कम मात्रा में हुआ है.

कार्य या पद : विज्ञान कांग्रेस एक सांस्कृतिक सम्मेलन न हो कर वैज्ञानिक मंच हो, जो देश में वैज्ञानिक भावना पैदा करने के लिए उपयुक्त और तर्कसंगत रास्ते खोज सकता है. इस सिलसिले में अलग-अलग विभागों की बैठकों में अनेक छोटी-बड़ी समस्याओं पर बातचीत हो सकती है और निष्कर्षों को प्रकाशित किया जा सकता है. वैज्ञानिक अनुसंधान के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर विशेष ध्यान देने की

डॉ० चंद्रशेखर

ज़रूरत है. प्रत्येक विकासशील देश में इन को काफ़ी महत्त्व दिया जा रहा है. इंजीनियरिंग, अंतरिक्ष-अनुसंधान और आणविक प्राणिशास्त्र में काफ़ी प्रगति हुई है और इस प्रगति को व्यावहारिक रूप देने का पश्चिम में पूरा-पूरा प्रयास हो रहा है. भारतीय वैज्ञानिकों को भी इस दिशा में ध्यान देना चाहिए, अन्यथा विज्ञान कांग्रेस वाद-विवाद का एक मंच बन कर रह जायेगा और देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति में उस को कोई भी योगदान नहीं रहेगा. राजनीति और अफ़सरशाही वैज्ञानिक अनुसंधान का सब से बड़ा शत्रु है और ५६वीं भारतीय विज्ञान परिषद् भी इन चीज़ों से मुक्त दिखाई नहीं देती.

यह नहीं मान लेना चाहिए कि विज्ञान कांग्रेस बिलकुल असफल रहा है. कुछ विशेषज्ञों के भाषण काफ़ी प्रभावशाली और उपयोगी थे. दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसर शेषाद्रि ने प्राकृतिक औषधियों तथा बुढ़ापे और ख़राब स्वास्थ्य के संबंध में एक महत्त्वपूर्ण भाषण दिया. बंबई के प्रसिद्ध डॉक्टर जे. पी. देवरस के अनुसार प्रतिवर्ष भारत में एक लाख व्यक्तियों को विषैले जानवर काटते हैं, जिन में से २० हजार से ३० हजार तक मर जाते हैं. इस सिलसिले में यह बताया गया कि साँपों का विष सोने से भी महँगा हो गया है. सोने का मूल्य १२५ रुपये प्रति ग्राम है किंतु सर्प-विष के एक ग्राम को २५० रुपये में बेचा जा सकता है. डॉ० पी० के० सेन ने हृदय-प्रतिरोपण के संबंध में जानकारी दी. डॉ० सेन पहले भारतीय चिकित्सक हैं जिन्होंने हृदय का प्रतिरोपण किया था. उन के अनुसार मरे हुए व्यक्ति के हृदय को अधिक समय तक जीवित रखने के संबंध में महत्त्वपूर्ण अनुसंधान हो रहा है. यह तथ्य भी सामने आया कि दक्षिण भारतीयों में उत्तर भारतीयों की अपेक्षा हृदय की बीमारियाँ १५ गुना अधिक होती हैं, क्यों कि दक्षिण भारतीय बीजों के तेल अधिक इस्तेमाल करते हैं. डॉ० विक्रम साराभाई ने पृथ्वी की चुंबकीय परिधि और सौर आंधी के संबंध में विद्वत्तापूर्ण भाषण दिया. उन के अनुसार ग्रहों के बीच अंतरिक्ष में भी उसी प्रकार मौसम बदलता रहता है जैसे पृथ्वी पर बदलता है.

वैज्ञानिकों की टोली

प्राचीन भारत का इतिहास और प्रचलित लिपि ब्राह्मी

भारतीय और विदेशी इतिहासकारों के मध्य सिंधु घाटी और आर्ययुगीन सभ्यता और संस्कृति के संबंध में जो मतभेद हैं उन का स्पष्टीकरण नवीन खोज-बीन के आधार पर हो रहा है.

इस मतभेद के संबंध में एक प्रकाशित समाचार में कहा गया है कि दक्षिण ताजकिस्तान के पुरातत्त्व विभाग के तत्त्वावधान में होने वाली खंडहरों की खुदाई में कपिरकला (?) स्थान पर एक मंदिर मिला है, जिस का आठवीं शताब्दी में निर्माण किया गया होगा, ऐसा अनुमान है. इस मंदिर के निचले भाग में स्थापित तहखाने में एक पुस्तक मिली है, जिस के पृष्ठों पर अनेक अक्षर विद्यमान हैं. इस पुस्तक में कागज के स्थान पर एक चिकने और मुलायम छिलके का प्रयोग किया गया है और विशेष स्याही द्वारा उन पर अक्षर अंकित किये गये हैं. इस मुलायम छिलके के बारे में यह बताया गया है कि यह छिलका उत्तर दिशा के जंगल में पाये जाने वाले वृक्ष की शाखा और टहनी का ऊपरी भाग है, जो उन्हें ढके रखता है. इस छिलके पर अंकित सामग्री स्थायी होती है और सदियों तक उस का कुछ नहीं बिगड़ता.

विशेषज्ञों का मत है कि इस छिलके पर अंकित लिपि प्राचीन भारत में प्रचलित लिपि ब्राह्मी है और लिखी गयी सामग्री ईसा के ७ वीं शताब्दी का बौद्धकालीन साहित्य है. इस खुदाई के पूर्व इसी प्रकार की सामग्री, जो संस्कृत लिपि में है, उज़बेकिस्तान और तुर्कमानिया स्थानों पर भी उपलब्ध हुई थी, जो बौद्धकालीन है.

प्राप्त सामग्री के आधार पर इतिहासकारों में प्रचलित यह मतभेद कि सिंधु घाटी तथा आर्ययुगीन सभ्यता और संस्कृति की कोई लिपि नहीं थी और वे लोग लिखना-पढ़ना नहीं जानते थे निराधार साबित हो सकेगा.

आर्यों के इतिहास, उन की सभ्यता और संस्कृति के संबंध में प्रामाणिक सामग्री के अभाव में जो कुछ विदेशी इतिहासकारों ने कल्पना के आधार पर लिखा उस का खंडन सिंधु घाटी की सभ्यता की खोज-बीन के पश्चात् उपलब्ध सामग्री से किया जा रहा है. सिंधु घाटी की सभ्यता और संस्कृति का अपना महत्त्व है. आर्यों की सभ्यता और संस्कृति के साथ उस का सूत्र जोड़ना उचित नहीं है. वर्तमान इतिहासकार विदेशी इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत सामग्री को सत्य मान कर सिंधु घाटी की सभ्यता और संस्कृति की जो भी प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करते हैं वे या तो उस काल की सामग्री नहीं हैं अथवा मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के विषय में प्राप्त जानकारी से वे अनभिज्ञ हैं. अतः निर्विवाद सिद्ध है कि आर्यों का इतिहास लिखने के पहले सिंधु घाटी का इतिहास जानना अनिवार्य है.

सिंधु घाटी की सभ्यता और संस्कृति का शनैः शनैः जो स्पष्टीकरण किया जा रहा है उस से ऐतिहासिक तथ्यों को पूरा बल प्राप्त हो रहा है. भले ही लिपिबद्ध साहित्य का अभाव है, पर जहाँ तक आर्यों के विषय में जानकारी प्राप्त हो रही है उस में अधिकांश क्षपक हैं और जो कुछ पौराणिक किंवदंतियों के आधार पर संग्रहीत किया जा रहा है वह इतिहासकार को मान्य नहीं है. प्रश्न यह है कि आर्यों के इतिहास के संबंध में, उन की सभ्यता और संस्कृति के प्रादुर्भाव के विषय में लिपिबद्ध सामग्री का अभाव क्यों रहा है ? क्या आर्यों की अपनी कोई लिपि नहीं थी ? अथवा वे लिखित से मौखिक को अधिक महत्ता प्रदान करते थे? जब हम मेसोपोटामिया और यूनान की सभ्यता और संस्कृति की ओर दृष्टि उठाते हैं तो हमारे सामने प्रामाणिक सामग्री लिखित रूप में उपस्थित हो जाती है. अतः उन के इतिहास, सभ्यता और संस्कृति के संबंध में संशय का प्रश्न ही नहीं उठता. पर जब हम सिंधु घाटी की सभ्यता और संस्कृति के बारे में कल्पना करते हैं तो हम किसी निश्चित लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाते. हमारे सामने कोई लिपिबद्ध सामग्री नहीं होती. खुदाई में जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई है उन में कुछ मोहरे हैं, जिन पर सांकेतिक भाषा में खुदाई की गयी है. पर उस सांकेतिक लिपि का स्पष्टीकरण अभी तक नहीं हो सका है. इतना अवश्य माना गया है कि वे मोहरे व्यापार संबंधी हैं और शहर विशेष से उन का घनिष्ट संबंध है. इतिहासकारों ने जो कुछ तथ्य निकाला है वह यह है कि सिंधु घाटी की सभ्यता और संस्कृति के संबंध में प्रामाणिक तथ्यों का जो अभाव पाया जा रहा है उस का मुख्य कारण यह है कि उस काल की लिपिबद्ध सामग्री अपना स्थायी प्रभाव न छोड़ सकी और शनैः शनैः नष्ट हो गयी.

खुदाई में जो मोहरें प्राप्त हुई हैं उन की संख्या २६० के लगभग है और उन पर जो चिह्न हैं वे एक-दूसरे से भिन्न हैं. पर यह कहना कि भारत में रहने वाली जातियों का अपना इतिहास न हो, सभ्यता और संस्कृति न हो अथवा लिपि का जन्म न हुआ हो उपयुक्त नहीं. यह ठीक है कि इतिहासकार असंदिग्ध अवश्य हैं, पर उन्हें स्पष्ट रूप से विश्वास है कि ईसा की तीसरी शताब्दी के पूर्व रहने वाले भारत के निवासियों की अपनी सभ्यता थी और लिपि का भी प्रचलन था. ये जातियाँ आर्यों से हर रूप में अलग थीं, सभ्यता की चोटी पर उन की संस्कृति थी और उन्होंने विश्व की सभ्यता में अपना योग दिया है. यह भी निश्चित है कि समय के साथ-साथ खोज-बीन की प्रथा अवश्य प्रचलित रहेगी और एक-न-एक दिन हमें प्राचीन भारत की इतिहास संबंधी सामग्री, लिपि और सभ्यता तथा संस्कृति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जायेगा.

विदेशी साहित्यकारों ने मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई के पश्चात् प्राप्त की हुई सामग्री को सिंधु घाटी सभ्यता की अंतिम सामग्री समझा था, पर मथुरा के निकट सोख स्थान पर जो खुदाई जर्मन पुरातत्त्व विभाग की देखरेख में की गयी है वह सिंधु घाटी की सभ्यता और संस्कृति के साथ ही कुषाण काल के इतिहास पर भी विस्तृत प्रकाश डालने में समर्थ हुई है.

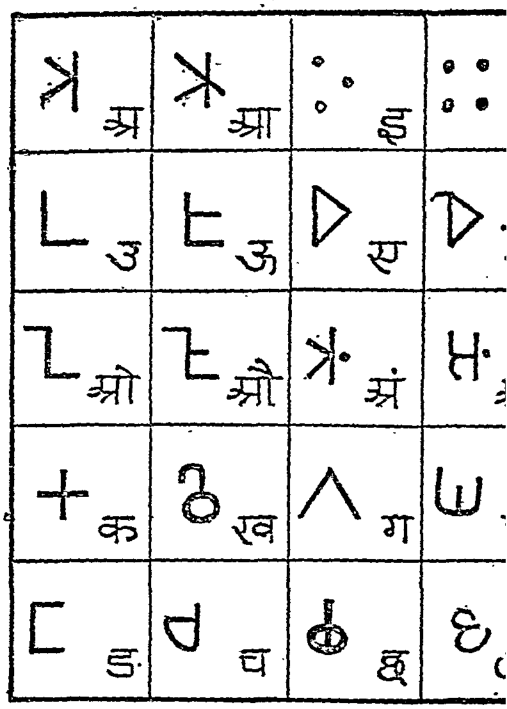

सम्राट अशोकयुगीन ब्राह्मी लिपि

आर्यों के भारत आगमन, उन के बसने तथा उन की सभ्यता और संस्कृति के संबंध में प्रामाणिक तथ्यों का अभाव है, इस पर दो मत नहीं हो सकते. ऋग्वेद केवल हमारे सम्मुख एक ऐसा तथ्य है जिस के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि आर्य सिंध के प्रांत में २००० वर्ष ई. पू. आ कर बसे थे और ऋग्वेद का अधिकांश भाग उसी काल का है. जब इतिहासकार ऋग्वेद में वर्णित सामग्री की तुलना सिंधु घाटी की सभ्यता के मानव से करते हैं तो विदित होता है कि जातियाँ बिलकुल भिन्न थीं. सभ्यता का अंश किंचित मात्र भी नहीं था. अतः सिंधु घाटी की सभ्यता और संस्कृति के नष्ट-भ्रष्ट करने का दोषारोपण जो आर्यों पर लगाया जाता है वह इस से सिद्ध नहीं हो पाता. कारण ? आर्यों के आने के पहिले ही सिंधु घाटी की सभ्यता नष्ट हो चुकी थी, अन्यथा ऋग्वेद में उस सभ्यता का वर्णन अवश्य होता

अथवा नष्ट होने की चर्चा भी होती. विदेशी इतिहासकार और अर्थशास्त्री मार्शल ने इस संबंध में जो एक विस्तृत रिपोर्ट पेश की है उस में बताया है कि २००० सदी पश्चात् सिंध के शहरों का पतन हुआ और उस पतन में अधिक से अधिक हाथ आर्यो का था. मार्शल के बाद श्री वीलर ने लिखा है कि सिंध के शहरों का पतन यद्यपि शुरू हो चुका था पर अति शीघ्र समाप्ति में आर्यो का हाथ अधिक था. श्री वीलर का कथन है कि ऋग्वेद में जिन शहरों के पतन का वर्णन किया गया है वे वही शहर हैं जो आर्यो ने स्वयं नष्ट किये थे. पर जहाँ तक समय का प्रश्न है वीलर के कथन में सत्यता का अधिक अंश पाया जाता है. उस ने शहरों के पतन के बारे में कहा है कि वह समय १५ वीं सदी के मध्य का था. दूसरे इतिहासकार श्री वीलर के कथन से सहमति नहीं प्रकट करते. उन का कहना है कि न तो २००० वर्ष ईसा पूर्व का कोई प्रामाणिक तथ्य हमारे सम्मुख है और न ही १५ वीं सदी के मध्य का, अत: जो कुछ भी लिखा गया है उस में सत्य का अंश नहीं के बराबर ही है.

ऋग्वेद अथवा उस के बाद के समय के बारे में यही कहा जा सकता है कि आर्य गंगा नदी की घाटियों में आ कर बसे और वहाँ पर उन्होंने अपना पूर्ण अधिकार कर लिया था. साहित्य समाज का दर्पण है, इस उक्ति को ले कर यदि हम आगे बढ़ते हैं तो ऋग्वेद में साहित्य तो है ही, उस में वर्णित तथ्य इतिहास की सामग्री के लिए प्रामाणिक सूत्र हैं. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने लेख 'साहित्य की महत्ता' में लिखा है :—

"ज्ञान-राशि के संचित कोष का ही नाम साहित्य है." ज्ञान-राशि से उन का अभिप्राय और दृष्टिकोण काफ़ी विस्तृत था. हम दूसरे रूप में यह भी कह सकते हैं कि जो कुछ हम देखते हैं, सुनते हैं, पढ़ते हैं, लिखते हैं अथवा अनुभव करते हैं उन का लिपिबद्ध प्रकटीकरण ही साहित्य कहलाता है. अत: ऋग्वेद में रची गयी ऋचाएँ, उन का मौखिक प्रसार, शुद्ध रूप में उच्चारण साहित्य के अंतर्गत आते हैं और साहित्य समाज का दर्पण है, ऐसी धारणा है तो समाज में प्रचलित जो भी रीति है वह मानव-इतिहास की सामग्री है. मानव का सामाजिक वृत्तांत इतिहास की सामग्री के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? आर्यो ने लिपि का सहारा क्यों नहीं लिया, यह दूसरा प्रश्न हमारे सम्मुख है. इस का उत्तर यह है कि आर्यो ने अपनी नीति अथवा साहित्य का लिपिकरण इस लिए नहीं किया कि ऋग्वेद की ऋचाएँ ईश्वरीय हैं और उन का लिपिकरण करने के स्थान पर कंठस्थ करने की क्रिया शुद्ध और पवित्र मानी गयी होगी, इस लिए लिपि का आश्रय नहीं लिया गया. आर्यो की सभ्यता, संस्कृति और इतिहास न हो, इसे बुद्धिजीवी मानने को तैयार नहीं हैं.

ईसा पूर्व छठी सदी का इतिहास एक विचित्र समस्या का प्रतीक है. इस समय का इतिहास और उस के आगे की ऐतिहासिक सामग्री पौराणिक सूत्रों से संबंधित है, अत: संदेह की गुंजाइश अधिक है. इस आधारभूत तत्त्व को ले कर इतिहास की रचना प्रामाणिकता की कसौटी पर खरी उतरे, यह धारणा भ्रामक ही होगी. जब हम इस के दूसरे रूप के संबंध में विचार करते हैं तो हमें विदित होता है कि जैन और बौद्ध धर्म की धार्मिक परंपरा इतिहास की सामग्री के लिए दस्तावेज़ से कम नहीं हैं. वे विश्वसनीय हैं और इतिहास की सामग्री के लिए प्रामाणिक स्मृति है, क्यों कि इन पुस्तकों में प्रथम बार लिपिकरण दिखाई देता है और लेखन-कला तथा अन्य वस्तुओं का जो प्रयोग हुआ है वह सभ्यता और संस्कृति के प्रतीक ही हैं. एक ओर जहाँ हम इन्हें ऐतिहासिक सामग्री मानते हैं दूसरी ओर हमें यह शंका होती है कि लिपि का प्रयोग न कर के प्रस्तर अथवा शिलालेखों पर खुदाई कर के उन का प्रचार करना क्यों अनिवार्य माना गया. इतिहास के संबंध में जो प्रामाणिक सामग्री हमारे सम्मुख है वह मौर्य वंश के महाराज अशोक, जो कि चंद्रगुप्त मौर्य का पोता है, के समय ई. पूर्व (२६९-२३२) की है. राज्य-आज्ञा उस समय प्रस्तर और चट्टानों पर अंकित की जाती थी. इस का प्रचलन राज्य के भीतर और आश्रित राज्यों तक होता था. चंद्रगुप्त मौर्य और अशोक के समय में लिपि का प्रयोग इतिहास की सामग्री के लिए एक वरदान है. यह भी सत्य है कि जो लिपि प्रयोग की गयी थी उस में भी बड़ी विभिन्नता थी. उस समय चार लिपि प्रचलित थीं: ब्राह्मी, खरोष्टी, अरीमिक और यूनानी. इन चारों में सब से अधिक ब्राह्मी लिपि प्रसिद्धि प्राप्त कर सकी थी. इस का प्रयोग एक छोर से दूसरे छोर तक होता था और अधीनस्थ राज्य में भी इसी लिपि में कार्य किया जाता था. खरोष्ठी लिपि केवल उत्तर-पश्चिम सीमा तक ही अपना प्रभुत्व स्थापित कर सकी थी. अरीमिक और यूनानी लिपि विदेशी होने के कारण उत्तर-पश्चिम इलाक़ों तक ही सीमित रही और वे वहीं प्रधान थीं जहाँ विदेशी हुकूमतें थीं. कुछ सदियों पश्चात् भारत में खरोष्ठी लिपि का प्रभुत्व नष्ट हो गया. संस्कृत और प्राकृत लिपि खरोष्ठी लिपि में अपना स्थान बनाने में असमर्थ थी. ब्राह्मी लिपि सदियों तक दक्षिण पूर्व एशिया में आधुनिक लिपियों की सिरमौर बन कर पनपती रही. यूनानी और अरीमिक लिपि भारत भूमि पर अपनी जड़ें न जमा सकीं. थोड़े समय पश्चात् इन का प्रयोग कम होने लगा और लोग इन्हें भूलने लगे. पर ब्राह्मी का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, जो इतिहास की एक प्रमुख अंग मानी जाती है.

साहित्य

स्थविर पी. ई. एन.

पी. ई. एन. (अंतरराष्ट्रीय लेखक सम्मेलन की भारतीय शाखा) का नौवाँ अधिवेशन दिसंबर के अंत में अहमदाबाद में हुआ. इस की कार्यकारिणी के १७ सदस्य हैं, जिन में से ११ बंबई से ही हैं. इन की आयु का अंदाज़ यहाँ दिये नामों के साथ कोष्ठक में दी हुई संख्याओं से पता चलेगा. इस के अधिकांश सदस्य कृती लेखक कम, अंग्रेजी समर्थक लेखकेतर लोग, पत्रकार आदि अधिक हैं. इस संस्था की दिल्ली शाखा के मंत्री माधोसिंह 'दीपक' हैं. भारत भर में इस की सदस्य-संख्या दो सौ से अधिक नहीं है. कार्यकारिणी के सदस्य हैं :

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (८०); डॉ. के. एम. मुंशी (८४), श्री मस्ति वेंकटेश अय्यंगार (७६), मदाम सोफ़िया वाडिया, अध्यक्ष (६७), अनंत कार्णकर, मंत्री (६३), गुलाबदास ब्रोकर (५९), ए. ए. फ़ैज़ी (७०), डॉ. जे. एफ़. बलसारा (६० से ऊपर), निस्सीम ईज़ीकेल (४४,), डॉ. प्रेमानंद कुमार (३०), उमाशंकर जोशी (५८), खुशवंत सिंह (५४), लीला राय (५९), एम. आर. मसानी (६४), गोपी गौबा (४० से ऊपर), प्रो. एम. एम. झवेरी (६२), श्री एम. आर. जंबूनाथन् (७३).

यानी प्रेमानंद कुमार और निस्सीम ईज़ीकेल को छोड़ कर यह एक वृद्ध लेखक संघ है. आश्चर्य नहीं कि उसने राज्यपाल श्रीमन्नारायण और काका साहब कालेलकर (८४) से उद्घाटन कराया. डॉ. मुल्कराज आनंद (६४) ने, आधुनिकता की चर्चा में, गांधी जी के आश्रम में रह कर उन्होंने नियम कैसे तोड़े और शराब पीने पर वहाँ से निकाले गये इस महान 'असत्य के प्रयोग' की चर्चा की. काका साहब और मुल्कराज आनंद ने कहा कि वे पहली बार इस पी. ई. एन. कांफ्रेंस में आये. सारी कार्रवाई अंग्रेज़ी में हुई. गुजराती के तरुण लेखक भी वहाँ थे. पर किसी ने कोई भाग नहीं लिया, सिवाय चंद्रकांत बक्षी और दिगीश मेहता के. सब कुछ एक नक़ली वातावरण में नक़ली ढंग से भारतीय साहित्य को पकड़ने का यत्न था.

गुजराती के श्री जयंती दलाल ने युद्धोत्तर गुजराती साहित्य की चर्चा करते हुए कहा कि गुजरात के बाहर के लेखकों को अहमदाबाद आये मात्र ५० घंटे हुए होंगे. उतने समय में उन्होंने गांधी शताब्दी वर्ष का १५ से २० बार उल्लेख सुना होगा. लेकिन हम गुजरात के लोग गत २० वर्षो से रोज़ २० बार गांधी जी का नाम सुना करते हैं. गुजरात में आज कोई ऐंग्री मैन नहीं हैं. हम शांति वाले हैं. उमाशंकर जी के प्रति आदर होने पर भी मुझे कहना पड़ रहा है कि दो दिन पूर्व अमेरिकियों ने चंद्रमा

वृद्ध लेखक संघ

की प्रदक्षिणा की, तो उस पर 'कवियों का चाँद चला गया' कह कर उन्होंने दुख व्यक्त किया. यह हैं हमारी स्वतंत्रता के स्वातंत्र्य वाद के कवि. गुजराती के कई लेखकों ने दलाल के कथन का विरोध किया, उन्हें वक्र द्रष्टा भी कहा. अन्य भाषाओं के साहित्य की चर्चा में ऐसी आकर्षक चर्चा नहीं हुई. कारण विभिन्न विचारधारा वाले एक ही भाषा के साहित्यिकों का उतनी संख्या में न होना था. विभिन्न भाषाओं के साहित्य की चर्चा करते समय विभिन्न साहित्यिकों ने जो कुछ कहा उस का निष्कर्ष यही था कि भारतीय साहित्य में एक तरह की नव जागृति की हवा उठी है, परंपरा से मुक्त होने की जागृति सभी लेखकों में दिखायी देती थी.

गांधीवादी विचारक **काका साहब कालेलकर** ने उद्घाटन-समारोह की अध्यक्षता करते हुए अपने भाषण में अंग्रेज़ी के अनावश्यक समाज-विरोधी प्रभुत्व की कड़ी आलोचना की. उन के अनुसार पहले के ज़माने में जैसे समाज पर ब्राह्मणों का प्रभुत्व रहता था, वैसे आज अंग्रेज़ी लिखे-पढ़े वर्ग की सत्ता किसी न किसी तरह मज़बूत बनी हुई है. यदि देश का प्रशासन उस भाषा में होना जारी रहा जिसे ८० प्रतिशत जनता न समझती हो तो भारत में कभी लोकशाही सफल होने वाली नहीं.

दूसरे दिन अर्वाचीन साहित्य में आधुनिकता और भारतीय साहित्य में अनुवाद—इन दो विषयों पर चर्चा हुई. प्रथम चर्चा की अध्यक्षता डॉ. मल्कराज आनंद ने की और दूसरी बैठक की अध्यक्षता मस्तिवेंकटेश आयंगार ने की. अर्वाचीन साहित्य में आधुनिकता के बारे में गुजराती के **गुलाबदास ब्रोकर** ने कहा कि हर युग अपने को आधुनिक युग मानता है. भारत में आधुनिक युग का प्रारंभ ब्रिटिश शासन की समाप्ति से और अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य के संपर्क में जब से हम आये तब से हुआ. परंतु साहित्य में आधुनिकता का अर्थ कला की दृष्टि से पैदा हुए एक नये विचार-प्रवाह पर आधारित है. गुजराती के **चंद्रकांत बक्षी** के अनुसार गुजराती भाषा में गांधीवाद आधुनिक युग बन गया और गांधीवादी लेखकों ने गुजराती साहित्य में दूध में पानी डाले जाने की तरह की वृद्धि की. परंतु १९५५ के बाद की पीढ़ी ने उस का अंत कर दिया. **डॉ. मुल्कराज** के अनुसार भारतीय साहित्य में जो आधुनिकता दीख पड़ती है उस पर पश्चिम के साहित्य का प्रभाव है. भारतीय लेखक अपने सृजन के स्वरूप में नये-नये प्रयासों द्वारा जो प्रयोग करते रहते हैं वे स्वागत-योग्य हैं. जीवन की असमंजसता और विद्रोही आतंक के कारण नये परिवर्तन साहित्य में भी देखने को मिलते हैं.

अंतिम, तीसरे दिन **स्वातंत्र्य के बाद का साहित्य** पर चर्चा हुई. अध्यक्षता खुशवंतसिंह, ज्योतींद्र दवे और प्रभाकर माचवे ने की. बैठक में अंग्रेज़ी, असमी, बंगाली, हिंदी, कन्नड़, तमिल, उर्दू, मराठी, उड़िया, पंजाबी और संस्कृत साहित्य के निबंध पढ़े गये.

खुशवंतसिंह का कहना था कि आज़ादी के पूर्व कुछ भारतीय अंग्रेज़ी लेखकों ने भारत के प्रति अमर्यादित सहानुभूति और विदेशियों के प्रति घृणा व्यक्त की. आज़ादी के बाद विद्यमान **नीरद चौधरी** जैसे लेखक भारतीय परंपराओं की क्षतियों पर अधिक ज़ोर देने लगे हैं. ये दोनों आत्यांतिक दृष्टि उचित नहीं हैं.

इंडोऐंग्लिकन साहित्य के बारे में चर्चा करते समय **के. आर. श्रीनिवास आयंगार** ने कहा: जिस देश और जनता की भावी आशाएँ संतति-नियमन, प्रवास, योजना, पी. एल. ४८० का धन पाने और विदेशी ऋणों का ब्याज अदा करने पर लगी हों उस देश और जनता को अपने लेखकों से शक्ति की विविधता की और श्रद्धा की कमी की फ़रियाद करने का क्या अधिकार है ?

श्री चुनीलाल मड़िया वहाँ के इस सारे वातावरण पर क्षुब्ध थे. वह कह रहे थे कि यहाँ भी प्रोफ़ेसरों का ही अधिकार है, कृती लेखक कम हैं. दुर्भाग्य से इस कांफ़्रेंस से लौटते समय हृदय-गति बंद हो जाने से उन की अहमदाबाद से बंबई आने वाली गाड़ी में मृत्यु हो गयी. हम इस विख्यात और लोकप्रिय उपन्यासकार, कहानी लेखक, साहित्यिक पत्रिका 'रुचि' के संपादक के परिवार को **दिनमान** की ओर से संवेदनाएँ भेजते हैं.

पुरस्कार और प्रकाशन

वर्धा में जनवरी के प्रथम सप्ताह में ४८वाँ मराठी साहित्य सम्मेलन संपन्न हुआ. अध्यक्ष थे **श्री पुरुषोत्तम शिवराम रेगे**, मराठी में नयी कविता के प्रारंभकर्ता, उपन्यासकार, नाटककार और 'छंद' नामक साहित्यिक लघु-पत्रिका के ६ वर्ष तक संचालक. उन्होंने अपने भाषण में कुछ नये विचार रखे, जिन के कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं :

"साहित्यकार कई अर्थों में एक मुक्त प्राणी होता है. वह किसी भी चीज़ से बाँधा नहीं जाता. यद्यपि व्यक्ति के नाते उस की अनुभूतियों की प्रतिगूँज उस के साहित्य में गूँजती है फिर भी जितना अनुभव अधिक और उत्कट हो उतना ही उस का साहित्य श्रेष्ठ होगा, यह मानना ग़लत है. सभी खलासी (जहाज़ी) कॉनरड नहीं बनते. इस का अर्थ यह है कि कॉनरड जो अनुभव लेता है, जो यथार्थ वह झेलता है वह केवल निमित्त है. साहित्यकार के बारे में साहित्यिक कृति ही उस का मुख्य अनुभव होता है. प्रत्यक्ष अनुभव की अपेक्षा अनुभव ग्रहण करने की प्रक्रिया या पद्धति साहित्यकार के बारे में बहुत महत्त्वपूर्ण है. साहित्यिक की संवेदनाएँ मुक्त होती हैं, इस लिए वह कहीं भी समभाव स्थापित कर सकता है. अलग-अलग अनुभवों का महत्त्व नहीं होता. यदि अनुभव को वह पूर्णतः आत्मसात् करता है तो यह उस का स्वभाव बन जाता है. उस के माध्यम से वह विविध दर्शन कर सकता है.

"कुछ व्यावहारिक बातों पर मैं विचार करना चाहता हूँ. साहित्यिक को पुरस्कार देना उस के प्रोत्साहन के लिए काफ़ी नहीं है. साहित्य का प्रसार भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है. स्वतंत्रता के बाद राज्य शासन और केंद्रीय शासन ने पुरस्कार-अनुदान आदि योजनाएँ चलायी हैं; साहित्य अकादेमी, महाराष्ट्र के साहित्य-संस्कृति मंडल आदि ने कुछ प्रकाशन भी किया. यह सब आज की संक्रमणावस्था में उपयोगी होगा, यह मान कर मैं चलता हूँ. परंतु हम यह न भूलें कि साहित्य का सही प्रसार पाठक-संख्या बढ़ाने से होता है. उस के लिए शिक्षा का प्रसार और इयत्ता भी बढ़ानी चाहिए. जीवनमान सुधरना चाहिए. आज-कल इस सब के लिए जो हो रहा है उसे देख कर लगता है कि हम मूल बात को भूल रहे हैं. पुरस्कार देने से बेहतर साहित्य-निर्मिति होगी, यह मानना ग़लत होगा. लेखक से वस्तुतः अन्य कोई भी गारंटी नहीं ले सकता, जहाँ तक उस के अगले लेखन के गुण का सवाल है. **पुरस्कार बाँट कर आप कितने लेखकों के प्रतिशत को समृद्ध बनायेंगे. इस से तो अच्छा हो कि शासन अच्छी किताबें चुन कर ख़रीदे और ग्रंथालयों को वे बाँटें.** लेखकों को इसी से अधिक पाठक और रॉयल्टी भी मिलेगी. अच्छा पाठक-वर्ग यों निर्मित होगा.

"अनुदान आज-कल गंभीर, गवेषणात्मक शोध-ग्रंथ, कोश आदि को दिये जाते हैं. इन का भी पुनर्विचार होना चाहिए. युवक लेखकों की अच्छी कला-कृतियाँ समय पर प्रकाशित न होने से कुछ लेखक लिखना बंद कर देते हैं. यह साहित्य की बहुत बड़ी हानि है. आज-कल साहित्यिक संस्थाएँ किताबें अनुवाद करा कर या लिखा कर केवल गोदाम भरती हैं. साहित्य अकादेमी में लाखों का माल यों ही पड़ा है. किताबों की बिक्री नहीं के बराबर होती है. यह राष्ट्रीय पूँजी को अटका कर रखने जैसा अपराध है. सृजनशील लेखकों को अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए. उन के लिए कुछ शिष्य-वृत्तियाँ होनी चाहिएँ. केवल प्रतिष्ठित लेखक (एस्टैब्लिशमेंट) की ही पूजा करने से कुछ नहीं होगा, प्रयोगशीलों की ओर भी हमें ध्यान देना चाहिए. कुछ लोग कहते हैं कि यों सरकारी रुपया बिगड़ेगा. मैं कहता हूँ कि घर में अपने बच्चों पर जो रुपया खर्च करते हैं वह सब वापस मिलेगा क्या आप इसी प्रयोजन से खर्च करते हैं ? नये लेखकों के साथ सौतेला या मानों वे घर के बाहर के हों, ऐसा व्यवहार हमारे साहित्य को कहीं का नहीं रहने देगा."

कविता कहाँ ?

केदारनाथ कोमल के काव्य-संग्रह **चौराहे पर** में हजारीप्रसाद द्विवेदी की भूमिका और नरेंद्र शर्मा तथा भवानीप्रसाद मिश्र की शुभाशंसाएँ हैं. लेकिन यह समीक्षक शुभाशंसा देकर छुट्टी नहीं पा सकता. चेतना के स्तर पर कवि के जागरूक रहने और एक नागरिक के जागरूक रहने में जो अंतर है वह कविता के ही कारण है. कविता इस संग्रह में नहीं मिलती, बातें मिलती हैं; दर्द और व्यंग्य भी मिलता है—चाहे वह आधुनिक सभ्यता पर हो चाहे देश के लचर प्रशासन पर. अतः इतना ही कहा जा सकता है कि कवि की दृष्टि खुली हुई है, संवेदना का क्षेत्र भी खुला हुआ है, पर नयी कविता की पकड़ उस की ढीली और कमज़ोर है.

चौराहे पर; केदारनाथ कोमल, समकालीन प्रकाशन, सी० १४।१६० बी० २, सत्याग्रह मार्ग, वाराणसी. मूल्य तीन रुपया.

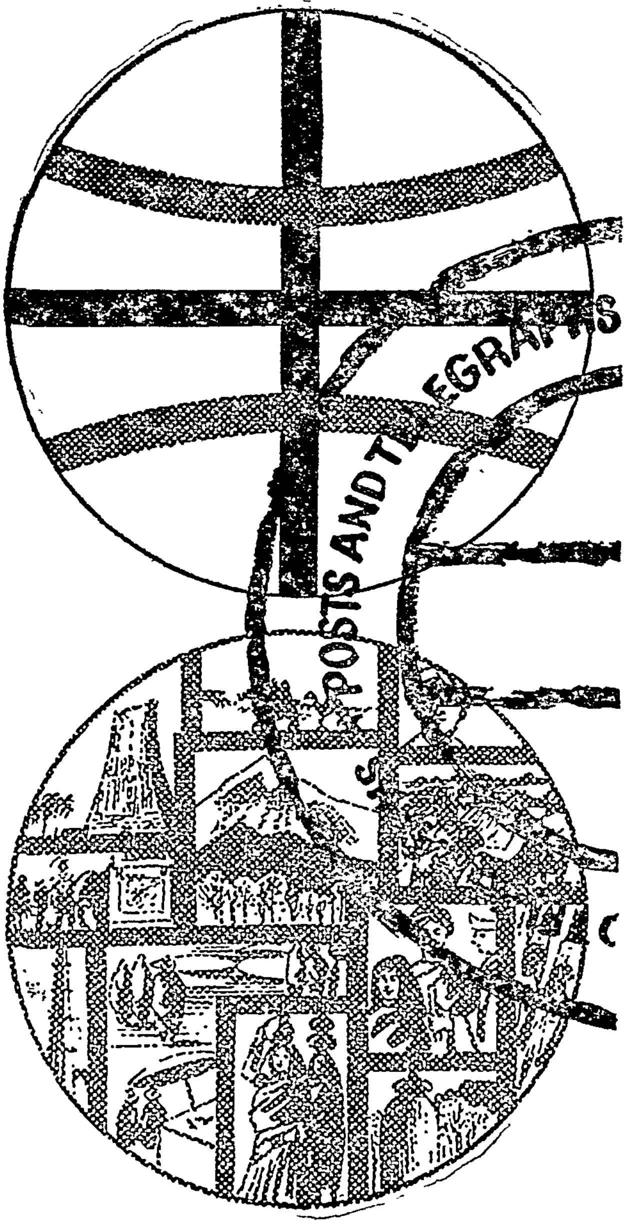

भारतीय डाक व तार

अपने १,००,००० डाकघरों
१०,००० तारघरों और
१०,००,००० टेलीफोनों के जरिये

राष्ट्रीय एकता और
अन्तर्राष्ट्रीय समझ-बूझ
बढ़ाने में कार्यरत है

डाक-तार विभाग को यह गर्व है
कि वह ५० करोड़ भारतवासियों और
दुनिया के ३०० करोड़ लोगों के बीच
सम्पर्क का साधन बनता है।

भारतीय डाक व तार

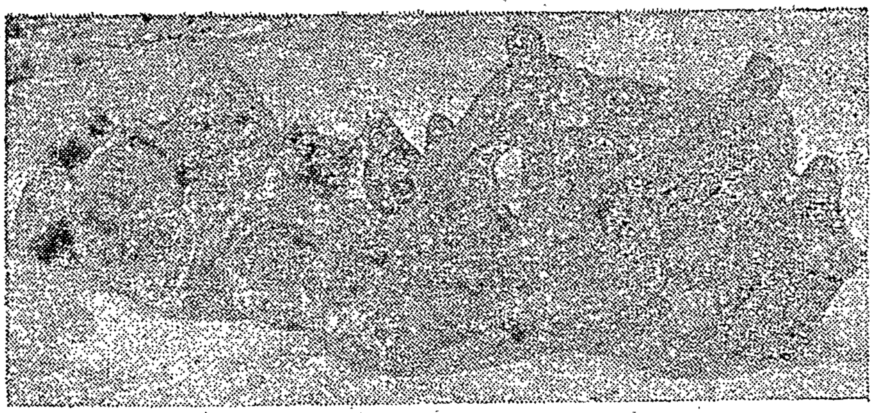

'एकता' : रमेश विष्ट

कला

कुछ मूर्ति शिल्प और रंग गुबार

युवा मूर्तिशिल्पी **रमेश विष्ट** के मूर्ति-शिल्पों (त्रिवेणी कला संगम) में अभी प्रारंभ की बातें हैं लेकिन लघु आकार की उन की दो मूर्ति-संरचनाएँ यह बताती हैं कि वह प्रारंभिक विषयों को छोड़ कर अन्य दिशाओं की ओर जाने को उत्सुक हैं. पात्र-रचना में भी दीक्षित रमेश विष्ट के मूर्ति-शिल्पों का आकर्षण इस बात में है कि उन की कृतियाँ पात्र-ढाँचों के निकट लगती हैं और हमें पात्राकृतियों और मूर्तिशिल्पों से एक साथ ही जोड़ती मालूम पड़ती हैं. गुँथी हुई गोलाइयों और सर्पिल गतियों की उन की संरचनाएँ और 'एकता' जैसे मूर्तिशिल्प यह बताते हैं कि वह मूर्ति-रचना की जटिलताओं से उलझना चाहते हैं. उन का 'घायल घोड़ा' व 'भैंसे' अपनी निर्मिति में मिट्टी के रूप-गुण स्पर्श करते लगते हैं. 'चार आकृतियाँ' मूर्तिशिल्प एक प्रकार की 'आकृति संरचना' के कारण अलग नज़र आता है. उन की संरचनाओं व कुछेक मूर्तिशिल्पों के आकार मन में कँटीले पौधों या झाड़ियों का-सा बिंब बनाते हैं. 'विश्वास' व खिलौने-नुमा कुछ मूर्तिशिल्पों को छोड़ दें, जो सरलीकरण के कारण सपाट लगते हैं, तो उन के मूर्तिशिल्पों की अब तक की विशेषता यही है कि वे अलग-अलग संदर्भों और अलग-अलग बिंबों की निकटता प्राप्त करना चाहते हैं. उन के प्रायः सभी मूर्तिशिल्प लघु आकार के हैं, जिन्हें पत्थर, मृत्तिका आदि में तराशा व गढ़ा गया है.

संतोष मनचंदा

रंग-धुंआ, रंग-गुबार : अमूर्त्त कला में रंगों का प्रयोग कई बार शैलियाँ निर्मित करने के लिए किया गया है—इसी प्रक्रिया में कैनवास को रंगों पर थोपा, लीपा, यहाँ तक कि फेंका गया है. लेकिन कई चित्रकारों ने इस प्रक्रिया को अपने लिए सरलीकृत कर लिया है. आइफैक्स कला दीर्घा में प्रदर्शित **संतोष मनचंदा** के चित्रों को देख कर लगता है कि उन के चित्र भी इसी सरलीकरण का शिकार हुए हैं. चित्रों में रंगों का प्रयोग इस रूप में हुआ है कि उन से रंग-धुंआ या रंग-गुबार उठता मालूम पड़ता है. कैनवास पर बहुत-से रंग किसी मनःस्थिति से जुड़ नहीं पाते. रंगों को काटते रंग निरुद्देश्य अलग-अलग दिशाओं को भाग निकलते हैं. केवल दो-तीन चित्रों में ज़मीन के छाया-चित्र का-सा प्रभाव या शाम को पेड़ों की छाया के बीच धूप जैसे कुछ रंग हल्का-सा आकर्षित करते हैं.

दिल्ली शिल्पी-चक्र में प्रदर्शित उदयपुर के युवा चित्रकार **शैल चोयल**, जिन्हें चित्र-रचना, पैतृक देन के रूप में भी मिली है, के कुछ चित्र भी इस रंग-गुबार से ढँके दीखते हैं. लेकिन उन के चित्रों में कहीं ज़्यादा वैविध्य है. यह अलग बात है कि यह वैविध्य शिल्प या विषय-वस्तु के पूरी तरह से न पकने के कारण बन पड़े हैं, रचनात्मक वैविध्य के कारण नहीं. रंग-धब्बे और रंग-फेन उन के यहाँ भी हैं. उन के ग्राफ़िक्स अपेक्षाकृत अधिक सुथरे हैं. यहाँ यह कहने की इच्छा होती है कि युवा चित्रकार, जिन में संभावनाएँ दीखती हैं, अगर अपना सारा काम समय से पहले प्रदर्शित करने का मोह छोड़ दें तो बेहतर हो. इस से वह अपने लिए एक प्रकार का विरोधी वातावरण बनाते हैं—इस से उन्हें कोई आर्थिक लाभ भी होता नहीं दीखता.

श्रीधराणी कला दीर्घा में प्रदर्शित रीतेन मजूमदार के ज़मीन पर बिछाने वाले आसनों व दीवार पर लटकाने वाले (टाँगने वाले नहीं) चित्रों की प्रदर्शनी हुई. कंबलों पर सूर्याकार काटे गये या चित्रित किये गये उन के इन चित्रों का अपना आकर्षण है. कंबलों पर रंगों व ऊन से उन्होंने कुछ रूपाकार उभारे हैं, जिन में एक प्रकार के रंग-संतुलन व रूपाकार संतुलन और सुमेल का ध्यान रखा गया है. शीतऋतु में प्रदर्शित इन ऊनी-चित्रों का आकर्षण और भी बढ़ जाता है. सज्जा और उपयोगिता दोनों के लिहाज़ से ये चित्र अच्छे लगते हैं. यों इन्हें देख कर यह भी लगता है कि इस चित्र-माध्यम की कलात्मक व रचनात्मक संभावनाएँ और अधिक हैं.

शैल चोयल : 'कैक्टस पर अचल जीवन'

ऐसा लगता है कि अब चित्रकार व मूर्तिकार भी प्रचलित काम से हट कर कुछ करने को उत्सुक हैं. पिछली पात्र-प्रदर्शनियाँ व रीतेन मजूमदार की यह प्रदर्शनी इस बात का उदाहरण हो सकती है लेकिन कई बार यह डर भी लगता है कि यह मात्र नये के लिए ललक बन कर फ़ैशन न बन जाए. इस लिए यह ज़रूरी है कि इस तरह के किसी काम को अतिरिक्त रचनात्मक सजगता दी जाए. ऐसा करने पर ही इस तरह का काम कला के घेरे में आ सकेगा और बदलाव का कारण भी बन सकेगा.

परचून

दवा के बदले दावा

अक्सर लोगों को यह शिकायत रहती है कि डॉक्टर का नुस्खा आसानी से नहीं पढ़ा जाता, पर औषधि-विक्रेताओं से इस मामले में कम ही भूल होती है. किंतु पश्चिमी जर्मनी के केलिंगहुसें नामक स्थान के एक डॉक्टर के नुस्खे ने साफ़-साफ़ लिखा होने के बावजूद अजीब गुल खिला दिया. अधिक बच्चों से आजिज़ आ कर पाँच बच्चों की माँ श्रीमती फ़्राउ नेक जब गर्भ-निरोधक दवा लेने के इरादे से उक्त डॉक्टर के पास गयीं तो उन्होंने गोलियाँ लिख कर दे दीं. औषधि-विक्रेता ने डॉक्टर साहब के सुलेख को अपने ढंग से पढ़ कर श्रीमती नेक को गर्भ-निरोधक गोलियों के बदले पेट के रोग की गोलियाँ दे दीं. डॉक्टर की नेक सलाह, दवा और आवश्यक परहेज़ के बावजूद श्रीमती नेक को गर्भ ठहर गया और ठीक वक़्त पर एक अनचाहे शिशु ने इस दुनिया में क़दम रख ही दिया.

नेक दंपति ने इस अनचाहे शिशु के आगमन के लिए औषधि-विक्रेता की असावधानी को ज़िम्मेदार ठहराया और शिशु के भरण-पोषण के खर्च के लिए उस पर न्यायालय में मुक़द्दमा दायर कर दिया. न्यायाधीश ने औषधि-विक्रेता को शिशु के आगमन के लिए पचास प्रतिशत दोषी ठहरा कर आदेश दिया कि वह अठारह वर्ष की आयु तक शिशु के भरण-पोषण का आधा व्यय वहन करे. ग़लती को आधा-आधा बाँटते हुए न्यायाधीश ने श्रीमती नेक को भी कसूरवार ठहराया, कि उन्हें औषधि की सत्यता परख कर ही उसे इस्तेमाल करना चाहिए था. औषधि-विक्रेता न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध अब अपील करने की सोच रहा है.

हरे रंग का पिल्ला

जर्मनी में एक कुतिया ने पाँच पिल्लों को जन्म दिया, जिन में से एक पिल्ले का रंग हरा है. इस रंग का पिल्ला विश्व भर में शायद ही कभी पैदा हुआ होगा. बहरहाल आशा की जाती है कि धीरे-धीरे इस का रंग बदल कर भूरा हो जायेगा और अगर पिल्ले का रंग हरा ही बना रहा तो मुमकिन है कि कुदरत की यह कृति भी पिकासो के चित्रों की तरह ही बहुमूल्य निधि समझी जाये.

खिलौनों का मेला

"हम बड़ों की दुनिया से बच्चों के खिलौनों की काल्पनिक दुनिया का सत्य कहीं अधिक बोधगम्य और अर्थवान होता है". ये उद्गार प्रकट किये हैं, क्रिसमस के अवसर पर बच्चों के लिए ब्राइटन खिलौनों के मेले से खिलौने खरीदने वाले, जो एवरक ने. ब्राइटन में विभिन्न रंगों, आकारों, क़दों और तरह-तरह की आवाज़ करने वाले खिलौनों का कुंभ मेला-सा लग गया था. इस मेले में ऐसे खिलौने भी शामिल थे जो खुद-ब-खुद बैठ जाते हैं, हाथ-पैर हिलाते हैं और 'मम्मी' कह कर पुकारते हैं. इस मेले में खेलते, झूलते, तरह-तरह की हरकतें करते नये-पुराने खिलौनों के अलावा ऐसे खिलौने भी शामिल थे जो 'मैं अभी से नहीं सोता' जैसी अपनी बाल-सुलभ हठ से बच्चों के अलावा बड़े-बूढ़ों का भी मन मोह लेते हैं. जो एवरक ने कहा कि ब्राइटन का मेला न केवल एक काल्पनिक विश्व का खुशनुमा नमूना था वरन् वह हमें व्यावहारिक, यांत्रिक और वैज्ञानिक जगत् की भी याद दिलाता था. उन्होंने बताया कि इस मेले में खास कर ट्रॉलियों और लॉरियों के नये-पुराने नमूने देख कर वह मुग्ध हो गये. ये नमूने माचिस की डिबिया के बराबर भी थे और इतने बड़े भी थे कि श्री एवरक भी उन में आसानी से बठ सकें. ब्राइटन मेला इस तथ्य का परिचायक है कि ब्रिटेन खिलौनों के उद्योग को कितना महत्त्व देता है और उस के विस्तार के लिए कितना प्रयत्नशील है. पिछले वर्ष ब्रिटेन ने लगभग १ अरब ६ करोड़ रु. के खिलौने तैयार किये थे, जिस का तिहाई हिस्सा बाहर भेजा गया. इस वर्ष और भी खूबसूरत नतीजे की उम्मीद है.

फ़राओं का अभिशाप

मिस्र के बादशाह तुतानखामेन की संरक्षित देह को जब तीन दिन के परीक्षण के बाद दोबारा सोने की शव-पेटिका में बंद कर के क़ब्र में दबा दिया गया तो अंधविश्वासों में आस्था रखने वाले यह सोच कर घबराय कि तुतानखामेन का अभिशाप कहीं फिर से क़हर न ढा दे. ऐसा माना गया है कि जो भी फ़राओं की क़ब्र को छेड़ता है उसे बदले में मौत मिलती है. वर्षों से पलने वाले इस अंधविश्वास का आधार यह तथ्य है कि १९२० में जब ब्रितानी अभियान द्वारा यह क़ब्र खोज निकाली गयी तब से लगभग बीस व्यक्ति, जिन का इस क़ब्र से कुछ न कुछ संबंध रहा, अचानक ही मृत्यु के शिकार हो गये.

इस बार ब्रिटेन के जिस अभियान-दल ने इस क़ब्र को हाथ लगाया वह यह जानना चाहता था कि ३ हज़ार वर्ष से भी पहले इस बालक राजा की मृत्यु का कारण क्या था. दल के नेता डॉ० जॉर्ज हैरिसन ने कहा कि मैं प्राचीन अभिशापों की कहानी जानता तो हूँ, पर वह हमारे लिए चिंता का कारण नहीं है. लिवरपूल विश्वविद्यालय में शरीर-विज्ञान के प्राध्यापक ने अपने ८ सहकर्मियों के सहयोग से तुतानखामेन की ममी का परीक्षण एक्स-रे के ज़रिये किया. मिस्र का यह बादशाह १२ वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठा और १८ वर्ष की उम्र में उस की मृत्यु हुई. उस ने ईसा से लगभग १३ शताब्दी पूर्व ऐसे समय में शासन किया जब राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्रों में उथल-पुथल मची हुई थी और आम धारणा रही है कि इस युवा शासक की हत्या कर दी गयी थी.

डॉ० हैरीसन अपने परीक्षण के बाद कुछ और ही नतीजे पर पहुँचे हैं. उन का ख्याल है कि मस्तिष्क का ट्यूमर उस की मृत्यु का कारण बना. इस बारे में अपने वक्तव्य को और पक्का बनाने के लिए उन्होंने संरक्षित शरीर के इंफ्रा-लाल फ़िल्म और चित्र लिए हैं.

पिल्ला : कुदरत का नया प्रयोग

वी.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

किस्तों पर ट्रांजिस्टर

सर्वत्र विख्यात "एस्कोर्ट" ३ बैंड आल वर्ल्ड पोर्टेबल ट्रांजिस्टर, मूल्य १६५ रुपये मासिक किस्त रुपये १०) भारत के प्रत्येक गांव और शहर में भेजा जा सकता है। लिखें:—

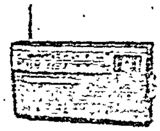

जापान एजेंसीज (D.W.N.D.—10)

पोस्ट बाक्स ११९४, दिल्ली–६

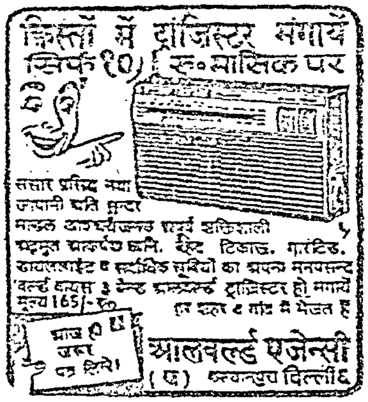

मुफ्त उपहार

३ महीने तक स्त्रियों का सौन्दर्य काश्मीरी और बंगलोरी आर्ट सिल्क की साड़ियों में खिलता है। आधुनिक डिजाइनों और रंगों में नया माल आ गया है। केवल हमारे यहां ही प्राप्य है। एक डीलक्स साड़ी १२) दो साड़ियां २३) तीन साड़ियां ३३) चार साड़ियां ४०) दो या अधिक साड़ियों के आर्डर पर ब्लाउजपीस मुफ्त। आर्डर पोस्ट पार्सल से भेजे जायेंगे।

ATLAS CO. (D.W.N. D.-25)

P.O. Box 1329, DELHI-6

विद्युत एवं रेडियो

अभियन्त्रण पाठयक्रम

विद्युत अभियन्त्रण, रेडियो मरम्मत, एसेम्ब्लिंग, विद्युत सुपरवाइजरी, वायरिंग आदि (८०० चित्र) रु० १२.५० वी. पी. डाक व्यय २/- सुलेखा बुक डिपो (इ) अलीगढ़

मोना की नई गुड़िया

४२ से०मी० लंबी

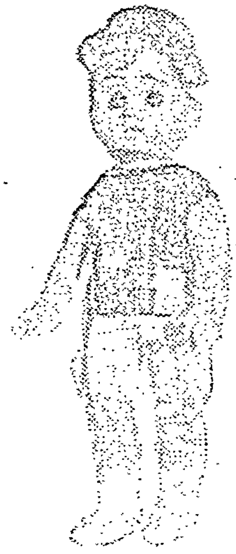

प्लास्टिक का टोप लगाये

मास्टर राजू

मोना टॉयज इण्डस्ट्रीज

डी–३४, राजौरी गार्डन्स, नई दिल्ली–१५

फोन : ५६६८३६

एकमात्र वितरक:—गुप्ता सेल्स कार्पोरेशन २७९/१४, पोस्ट ऑफ़िस स्ट्रीट, सदर बाजार, दिल्ली।

नवभारत टाइम्स

हिन्दी दैनिक

बम्बई और दिल्ली से प्रकाशित

"नवभारत टाइम्स" आधुनिक और अपटूडेट हिन्दी दैनिक समाचारपत्र है

और

इसके पाठकों की संख्या बहुत विस्तृत है।

दोनों ही संस्करणों में व्यावसायिक, स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारों के साथ-साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और आर्थिक विषयों पर विशेष सामग्री ही तो इसकी विशेषता है।

समाचारों की भाषा सरल है, और

सम्पादकीय अग्रलेख सन्तुलित और उच्च साहित्यिक स्तर के होते हैं।

पंजीयित संख्या डी० १५०१

जैसे ही खतरे की जंजीर खींची जाती है एक लगातार प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, सैंकड़ों यात्रियों सहित रेलगाड़ी खड़ी हो जाती है, पीछे आने वाली अधिकतर गाड़ियों का समय अनियमित हो जाता है, आगे वाले स्टेशनों पर यात्रियों को अत्यधिक असुविधा होती है।

सम्भवत: रोकी गई गाड़ियों में से किसी में आपत्कालीन कार्य के लिए मनुष्य और माल ले जाया जा रहा हो या पीड़ित क्षेत्रों के लिए दवाएं तथा भोजन भेजा जा रहा हो।

आपके अविवेकपूर्ण कार्य से गाड़ियों के चलने में बाधा के कारण आवश्यक राष्ट्रीय कार्यों में देर हो सकती है।

इसलिए उत्तरदायी बनिये।

सुरक्षा उपकरण का प्रयोग न करें यदि आप ऐसा करने पर बाध्य न हों। केवल आपत्काल में ही प्रयोग करें।

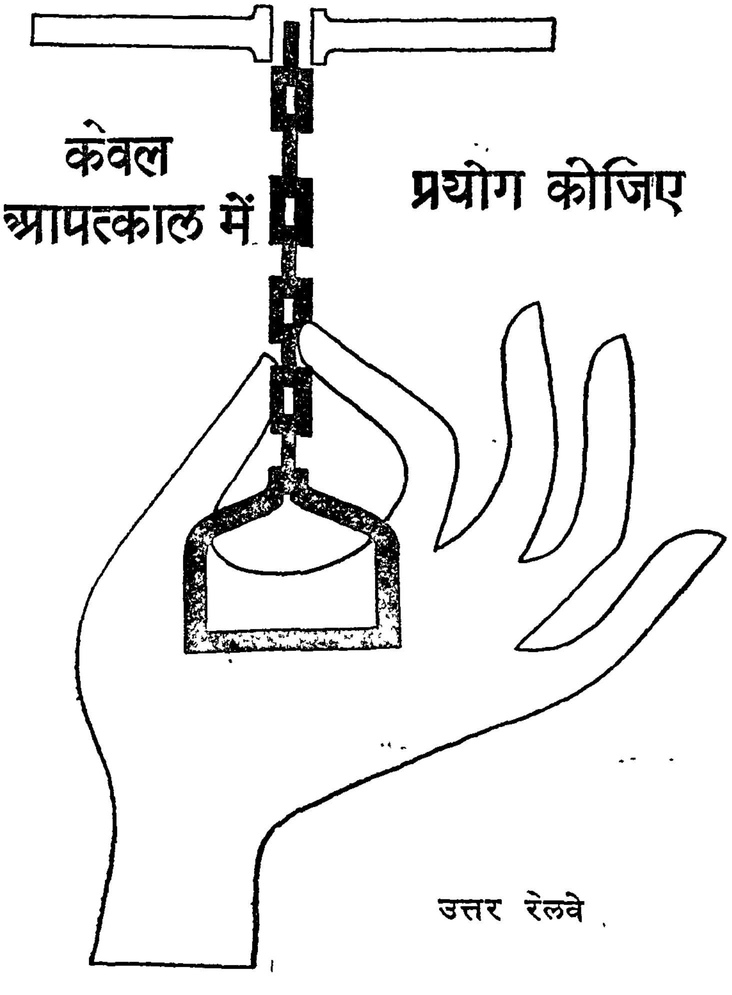

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूजा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित.

गणराज्य

इण्डिया

असंगठित छात्र • मुख्य मुक़ाबिले • देशहीन भारतीय • हथियार ६९

२६ जनवरी, १९६९
६ माघ, १८९०

उत्तर प्रदेश वित्तीय निगम

द्वारा प्रदत्त विशेष सुविधायें :-

१– लघु उद्योग संस्थानों को रु० ३,५०,०००) तक के ऋणों के लिए २५ प्र० श० तक विशेष गुंजाइशें।

२– व्यक्तिगत आवश्यकतानुसार उपयुक्त सहायता।

३– आवेदन पत्र अत्यन्त सरल कर दिए गए हैं।

४– आवेदन-पत्रों का निस्तारण दो तीन-माह के अन्तर्गत।

५– अन्य वित्तीय संस्थानों द्वारा सहायता प्राप्त हेतु विशेष सुविधाएं।

६– मध्यवर्गीय उद्योगों के लिए ४० प्र० श० तक गुंजाइशें घटा दी गई हैं।

७– विशेष भुगतान के तरीके जिससे विलम्ब का निवारण और उपयुक्त समय में सुविधाएं प्राप्त होती हैं।

८– प्रचुर मात्रा में कच्चे माल के लिए विशेष आर्थिक सुविधाएं।

९– लघु उद्योग निगम से क्रय की आकर्षक सुविधाएं।

१०– आवेदन पत्र आदि के पूर्ण कराने में कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग।

११– ऋण की अदायगी की प्रथम किस्त को १॥ वर्ष से बढ़ाकर २ वर्ष कर दी गयी है।

१२– स्नातक, अभियन्ताओं, दक्ष कारीगरों एवं प्रविधिज्ञों को विशेष प्रोत्साहन व छूट।

१३– प्रान्त के पर्वतीय, बुन्देलखण्ड व पूर्वीय जिलों में उद्योगों के स्थापन हेतु उद्योगपतियों को ऋण व अदायगी के लिए विशेष प्रोत्साहन एवं छूट।

विशेष विवरण के लिए प्रबन्ध निदेशक
उ. प्र. वित्तीय निगम
७/१५४, स्वरूप नगर, कानपुर से सम्पर्क स्थापित करें।

टेलीफोन नं० : ३६६५२ एवं ३४७२३

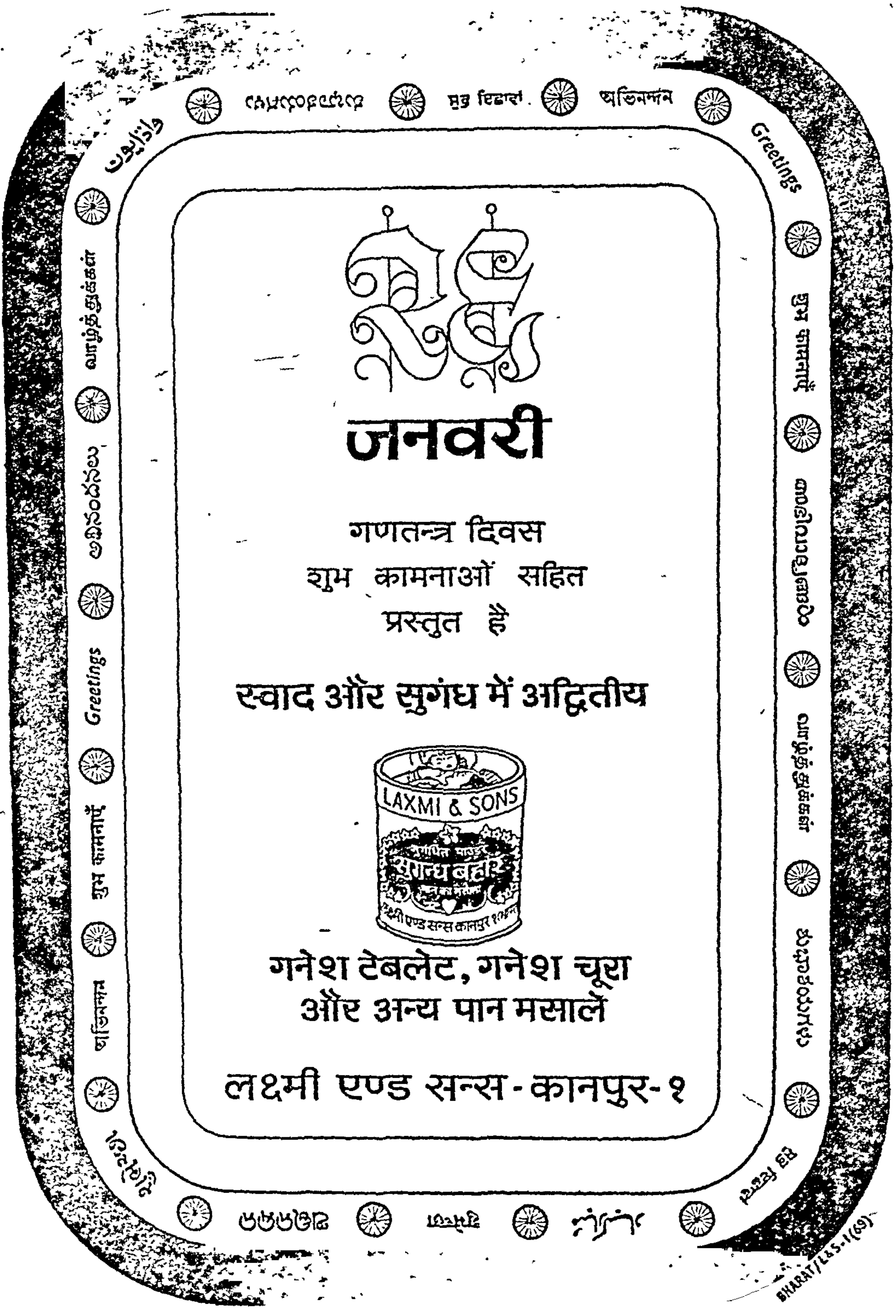
अभिनन्दन
Greetings
शुभ कामनाएँ
२६
जनवरी
गणतन्त्र दिवस
शुभ कामनाओं सहित
प्रस्तुत है
स्वाद और सुगंध में अद्वितीय
LAXMI & SONS
सुगन्ध बहार
गनेश टेबलेट, गनेश चूरा
और अन्य पान मसाले
लक्ष्मी एण्ड सन्स - कानपुर-१

मत और सम्मत

भेंट-वार्ता : ५ जनवरी : संयुक्त समाजवादी पार्टी और डॉ० लोहिया के विषय में डॉ० फ़रीदी की धारणा एकदम ग़लत है. यदि अमर डॉक्टर साहब जात-पांत के ढांचे में सोचते थे तो क्या डॉ० फ़रीदी उस से वंचित हैं? वह भी तो जयप्रकाश जी से केवल मुसलमानों के हक़ की बात करने को कहते हैं. मैं एक साधारण समाजवादी विचारक हूँ. लेकिन मुसलमान नेताओं की इस तरह की धारणाओं से बहुत दुखित हूँ. मेरे जानते भारत में उन का ज्यादा सम्मान है.

—देवपूजन राय, सारण

डॉ० फ़रीदी के इस कथन में कि 'हमारे देश में आर्थिक स्थिति सामाजिक स्थिति पर निर्भर है और सामाजिक स्थिति जाति और वर्ण पर' काफ़ी सत्यता है. परंतु दुख है कि डॉ० फ़रीदी के पास इस जातिगत असमानता को मिटाने के लिए कोई ठोस योजना नहीं.

—जगदीशप्रसाद साहु, रीवा

केवल डॉ० फ़रीदी ही नहीं अन्य पार्टियों के अवसरवादी नेता भी अछूत-समस्या, पिछड़ा वर्ग, शोषित वर्ग आदि की समस्याएँ बिगाड़ रहे हैं. उत्तरप्रदेश के इस मध्यावधि आम चुनाव में सभी राजनैतिक पार्टियाँ जिस ढंग से जातिवाद और वर्गवाद का गंदा नाटक रच कर मैदान मारने में अपने मूल सिद्धांतों को पचा गये हैं उस से जाग्रत जनमानस अनभिज्ञ नहीं है.

—चंद्रविजय, प्रयाग

डॉ० फ़रीदी का दिल-दिमाग़ उस मकड़ी की तरह दीख पड़ा जो किसी आलीशान इमारत के कोने में अपना ताना-बाना बुनने में ही अपनी ज़िंदगी को सार्थक समझती है.

—नसीम अहमद, बारो, बरौनी

घेराव की प्रतीक्षा : डॉ० सेठ गोविंद दास जी ने बड़ी ज़ोरदार घोषणा की थी कि दि० १ जनवरी, सन् १९६९ को हिंदी प्रदेशों—राजस्थान, उत्तरप्रदेश, हरयाणा, बिहार और मध्यप्रदेश के मुख्य-मंत्रियों का घेराव करेंगे और इस के लिए हिंदी सेवक संघ का नेतृत्व स्वयं करेंगे. नये वर्ष के नये दिन के प्रभात के बाद संध्या भी हो गयी और सुनहरी रात्रि भी समाप्त हो गयी, किंतु उन के घेराव का शुभ समाचार रेडियो तथा देश के किसी भी समाचारपत्र में नहीं सुनाई दिया. इस से मुझ जैसे हिंदी प्रेमी को अत्यंत दुख हुआ है.

—मदनलाल शर्मा, कोटा

'चोरों के पहरेदार' : १२ जनवरी : इस टिप्पणी में यह बात बिल्कुल असत्य है कि श्री वर्मा ने खादी बोर्ड में ४० लाख के घोटाले और स्वयं को चोरों का पहरेदार कहने वाली कोई उक्ति की थी. वास्तविकता यह है कि श्री वर्मा ने लगभग २ माह पूर्व अपना त्यागपत्र भेजा था, जिस का कारण यह बताया था कि वह सीमा-क्षेत्र पर अधिक व्यस्त रहते हैं, इस लिए खादी बोर्ड के अध्यक्ष के दायित्वों के साथ न्याय नहीं कर सकेंगे. राजस्थान के खादी बोर्ड में ४० लाख का घोटाला होना तथ्यहीन और असत्य प्रचार है. बोर्ड में घोटाला होने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता, क्यों कि बोर्ड तो राज्य में खादी तथा ग्रामोद्योग कार्य करने वाली संस्थाओं को खादी आयोग से प्राप्त सहायता का वितरण मात्र करता है.

—गजानंद डेरोलिया, सदस्य, राजस्थान खादी एवं ग्रामोद्योग बोर्ड, श्री महावीर जी (राज०)

भाषा : कहते हैं रेडियो भाषाओं के प्रचार का अच्छा साधन है. मैं भी मानता हूँ तथा बात भी उचित और सही है. लेकिन सत्यता में संदेह तो तब होता है जब रेडियो पर हिंदी शब्दों के सदोष उच्चारण सुने जाते हैं.—मध्यावधी, प्रगती, उन्नती, स्वीकृती, भूमी, ज्योती आदि-आदि तथा शतायू, आयू और मृत्यू इत्यादि. भला कौन ऐसा हिंदी प्रेमी होगा जो तत्संबंधी शब्दों के अशुद्ध उच्चारण को स्वीकार करेगा. निश्चय ही यह आकाशवाणी-विभाग की एक बहुत बड़ी भूल है. ऐसी भूलें न केवल अन्य कार्यक्रमों के ही प्रस्तुतकर्त्ता बल्कि प्रादेशिक तथा केंद्रीय समाचार-प्रसारक भी करते रहते हैं. उक्त भूलों का हिंदी का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्यार्थी पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है. मैंने यह पत्र लिखना तब और आवश्यक समझा जब मेरे भतीजे ने रेडियो पर हिंदी समाचार सुनने के पश्चात् मुझ से पूछा, "यह मध्यावधी चुनाव क्या होता है ?"

—श्रीनारायण पांडेय, इलाहाबाद

मैं केवल **दिनमान** का पाठक और प्रशंसक ही नहीं हूँ बल्कि इस पर भरोसा भी रखता हूँ. अभी ५ जनवरी के अंक में मत और सम्मत के अंतर्गत 'हिंदी का प्रयोग' राजगौड़, अंबाला छावनी को पढ़ा और फूला नहीं समाया. परंतु इस में केवल केंद्र सरकार के कर्मचारी-वर्ग का ही संकट दूर किया गया था. वे लोग जो सरकारी कर्मचारी होना चाहते हैं उन का संकट अभी ज्यों का त्यों है. मैं इस सत्र में अर्थात् १९६९ के लोकसेवा आयोग की परीक्षा में बैठने जा रहा हूँ. क्या मैं हिंदी माध्यम से भारतीय लोकसेवा आयोग की परीक्षा में अपना भाव प्रकट कर सकता हूँ ? आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आप इस का स्पष्टीकरण आगामी अंक में करेंगे.

—भोलाराम, काशी विश्वविद्यालय

आधा गाँव : राही मासूम रज़ा के उपन्यास 'आधा गाँव' पर **दिनमान** में कई-कई मुद्दों से अनेक बार चर्चाएँ छपीं. निस्संदेह 'आधा गाँव' सामान्य से कुछ आगे का विशिष्ट उपन्यास है; लेकिन आप और आप की तरह कई लोग 'आधा गाँव' को हिंदी उपन्यास मान कर क्यों सारी बात कर रहे हैं ? राही उर्दू के अदीब, शायर और 'नॉवलिस्ट' हो सकते हैं, होंगे; मगर महज इस कारण कि 'आधा गाँव' पहले हिंदी में छपा (उर्दू में कब प्रकाशित होगा यह राही जानें)—राही और उन के उपन्यास को हिंदी का उपन्यासकार और उपन्यास मान लिया जाये—मेरी मसझ से यह बेमानी है. राजेंद्रसिंह बेदी का उपन्यास 'एक चादर मैली-सी' पहले हिंदी में छपा, बाद में उर्दू में आया, जब कि साहित्य अकादेमी का पुरस्कार बेदी को उर्दू प्रकाशन पर मिला, हिंदी पर नहीं. ज़ाहिर है कि पहले हिंदी में प्रकाशित होने के बावजूद बेदी का उपन्यास उर्दू साहित्य की ही उपलब्धि गिना-माना गया. यह संयोग सर्वथा आकस्मिक नहीं है कि 'आधा-गाँव' भी पहले हिंदी में छपा हुआ है. 'आधा गाँव' में बेशुमार भोजपुरी मुहावरों के प्रयोग के कारण ऐसा होना राही मासूम रज़ा के लिए ज़रूरी भी था और शायद उन की लाचारी भी थी और बताना न होगा कि भोजपुरिया मुहावरों के अलावा राही के 'आधा गाँव' की भाषा केवल और खाटी उर्दू है.

—पद्मधर त्रिपाठी, वाराणसी

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

बड़े पैमाने पर हो रहे दल-बदल की मुझे कोई चिंता नहीं. मैंने स्वयं दल बदल लिया है.

कर्मचारियों की गुटबंदियाँ (जातीय गुटबंदियाँ भी) (५) विद्यार्थियों के सामने किसी रचनात्मक कार्यक्रम का अभाव, निरुद्देश्य शिक्षा तथा अप्रेरणादायक शैक्षणिक वातावरण.

भारत में शिक्षा संबंधी सभी अशांतियों के मूल में अंग्रेज़ीकरण और सरकारीकरण कहीं प्रत्यक्ष और कहीं अप्रत्यक्ष काम कर रहा है. स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी के विद्यार्थियों के लिए यह कितनी बड़ी विडंबना है कि आज उन की शिक्षा का माध्यम एक विदेशी भाषा है. मैं सरकार से दृढ़तापूर्वक यह माँग करता हूँ कि **विश्व-विद्यालय-स्तर पर क्षेत्रीय भाषा का अध्ययन वैकल्पिक न रखा जा कर अनिवार्य बनाया जाये.**

आज-कल सरकार ने विश्वविद्यालयों में ऐसे व्यक्ति को उप-कुलपति बना कर भेजना आरंभ किया है जिन का शैक्षणिक जीवन से कोई संबंध नहीं है. उप-कुलपतियों का चुनाव सत्तारूढ़ दल की गुटबंदियों और जाति के आधार पर होता है. यह विभागाध्यक्षों की नियुक्तियों में भी देखा जा सकता है. अतएव शिक्षा के क्षेत्र में ख्यातिप्राप्त विद्वानों को ही नियुक्त किया जाना चाहिए. समाज के प्रतिनिधियों को केवल समाज के विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करना चाहिए. **उन्हें शैक्षिक मामलों में हस्तक्षेप करने की आज्ञा नहीं दी जानी चाहिए.** विश्वविद्यालयों में ऐसी व्यवस्था की जाये कि **शिक्षकों को प्रशासन के कार्यों से सर्वथा मुक्त रखा जाये.** छात्र-संघ के पदाधिकारियों का चुनाव विश्वविद्यालय के समुदायों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से किया जाना चाहिए. उस का संचालन छात्रों के द्वारा और छात्रों के लिए किया जाना चाहिए. इन के कार्यों में **विश्वविद्यालय के अधिकारियों का हस्तक्षेप न हो.** प्रत्येक महाविद्यालय के प्रत्येक विभाग में छात्रों तथा शिक्षकों की संयुक्त समितियों की स्थापना की जाये, जो **छात्रों की वास्तविक कठिनाइयों का अध्ययन करे.** इन के अतिरिक्त एक केंद्रीय समिति प्रधानाचार्य की अध्यक्षता में नियुक्त की जाये, जो सभी समान समस्याओं एवं कठिनाइयों का अध्ययन करे. विश्वविद्यालय की साहित्यिक परिषदों (एकेडेमिक काउंसिल) तथा सभाओं (कोर्टस्) **में छात्रों के प्रतिनिधियों को उचित स्थान दिया जाये.** आज शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच की दूरी काफ़ी बढ़ गयी है, अतः **ऐसी बैठकों तथा सेमिनारों का आयोजन करना चाहिए** जहाँ विद्यार्थी और अध्यापक निकट आ सकें और एक दूसरे को जान-समझ सकें. असामान्य परिस्थितियों में भी पुलिस को विश्वविद्यालय में **'घुस-पैठ' न करने दिया जाये.** विश्वविद्यालयों का मुख्य कार्य है—अनुसंधान. सरकार **अनुसंधान-केंद्रों की पृथक स्थापना करे.**

—जमील अहमद खान (बी. एस. सी. अंतिम वर्ष) दिग्विजय महाविद्यालय, राजनांदगांव, **पोस्ट : राजनांदगांव, ज़िला : दुर्ग (म० प्र०)**

पत्रकार संसद

मंज़िल की तलाश में आज का पाकिस्तान

ताशक़ंद समझौते की तीसरी वर्षगाँठ के अवसर पर भारत-पाकिस्तान संबंधों के सुधार के प्रसंग के अलावा पाकिस्तान की भीतरी स्थिति पिछले काफ़ी दिनों से विश्व के समाचारपत्रों की प्रमुख चर्चा का विषय बनी हुई है. लोकतंत्र के लिए पाकिस्तानी जनता की आकांक्षा उग्र हो चली है और जगह-जगह सभाएँ, जलूस तथा प्रदर्शनों का बाज़ार गर्म है. राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ के शासन का विरोध ही लोकतंत्र की गारंटी नहीं है. इंदोनेसिया के एक पत्र के विश्लेषण के अनुसार यह विरोध साम्यवाद के बीज बो रहा है. **एंगोकातेन ब्रेसेन** जाता नामक पत्र ने अपने संपादकीय में पाकिस्तान की आंतरिक स्थिति का जो चित्र खींचा है उस से अय्यूब विरोध के कुछ नये तथ्य प्रकाश में आते हैं. पत्र ने लिखा है :

एशियाई देशों में शायद पाकिस्तान ही बचा है जो अब भी कम्युनिस्ट चीन से निकट संपर्क बनाये हुए है. आप को यदि पाकिस्तान में कुछ समय रुकना पड़े और आप से तरह-तरह के ऊलजलूल सवाल अगर किये जायें तो इस से आप को आश्चर्य नहीं होना चाहिए. यह तथाकथित क्रांतिकारी स्थिति वामपक्षीय गुटों के षड्यंत्र के लिए काफ़ी अनुकूल है. भूतपूर्व विदेशमंत्री श्री भुट्टो के विदेशमंत्री-पद से हटाये जाने पर चीनी वामपंथियों को बड़ी निराशा हुई थी. यही बात एयर मार्शल असग़र ख़ाँ के बारे में भी है. श्री भुट्टो, जो पश्चिमी पाकिस्तान के बहुत बड़े ज़मींदार हैं, पाकिस्तान के वामपंथियों के नेता के रूप में सामने आये हैं. अय्यूब ख़ाँ ने भारत के साथ अनाक्रमण-संधि करने की ज़रा बात ही की थी कि कश्मीर प्रश्न को ले कर श्री भुट्टो ने पाकिस्तान के लोगों में जोश पैदा किया. अब यह बात दिन पर दिन स्पष्ट होती जा रही है कि श्री भुट्टो का उद्देश्य अय्यूब ख़ाँ की राजनैतिक विचारधारा में परिवर्तन लाना ही नहीं है, बल्कि पाकिस्तान का शासनतंत्र, जीवन-दर्शन और समूची प्रणाली को बदल कर पीकिङ छाप समाजवाद में ढालना है. पाकिस्तान के वरिष्ठ सैनिक अधिकारियों का एक मिशन जब चीन सरकार के बुलावे पर पीकिंग में था तभी राष्ट्रपति अय्यूब की हत्या का प्रयत्न किया गया. इस से पता चलता है कि इंदोनेसिया के 'गेस्टापो' जैसा कोई जाल है. पीकिङ के साथ मित्रता क्रांति के लिए परिस्थिति तैयार कर रही है. चीन बड़े-बड़े सैनिक अधिकारियों को अपने यहाँ आमंत्रित कर ऐसी हालत पैदा करता है जिस से पीठ में छुरा भोंका जा सके. अब भुट्टो सत्ता हथियाने के लिए वर्तमान शासकों के शत्रु तैयार कर रहे हैं.

इंदोनेसिया में 'गेस्टापो' जाल बिछा कर जिस तरह शुरू में पी. के. आई. यानी कम्युनिस्ट पार्टी बनायी गयी थी ठीक वैसी ही हालत इस समय पाकिस्तान में पैदा की जा रही है. अभी कुछ दिन पहले लाहौर में नेशनल अवामी और पीपुल्स पार्टी को मिला कर 'पाकिस्तानी सोशलिस्ट फ़्रंट' बनाने की जो माँग की जा रही थी वह ठीक वैसी ही थी जैसी कि इंदोनेसिया में यूनाइटेड फ़्रंट बना कर कम्युनिस्टों ने अपने लिए एक साधन ढूँढ लिया था.

हाल ही में प्रकाशित एक अमेरिकी लेखक

एक अक्षर असहमति का

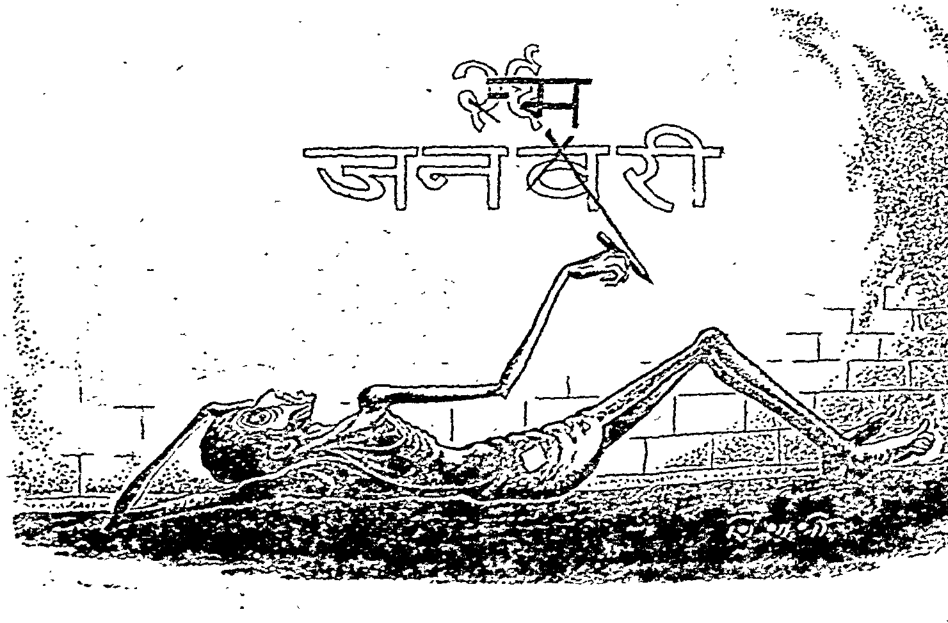

के सर्वेक्षण के अनुसार १९५८ में जब राष्ट्रपति अय्यूब खाँ ने अपने पूर्ववर्त्ती नेताओं से शासन-भार सँभाला था किसी को भी यह आशा नहीं थी कि आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में वह इतने मौलिक परिवर्त्तन लायेंगे. राष्ट्रपति अय्यूब राजनैतिक स्थिरता लाने में भी कुछ हद तक सफल हुए. इस्लामी क़ानून और नियमों को आधुनिक बनाने के अलावा उन्होंने पाकिस्तान में भूमि-सुधार भी लागू किये और भ्रष्टाचार को कम कर के प्रशासन को भी कुशल बनाया. इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि उन के शासन-काल में औद्योगिक प्रगति भी हुई है. हमें आशा करनी चाहिए कि पाकिस्तान सरकार कम्युनिस्ट तोड़-फोड़ से सतर्क रहेगी. चीन के निर्देशन में एशियाई-अफ़्रीकी देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने अभी हाल ही में पाकिस्तान और इंदोनेसिया में १९७० तक कम्युनिज्म ले आने का लक्ष्य निर्धारित किया है. उधर भारत की कम्युनिस्ट पार्टी को चीन से काफ़ी पैसा और साज-सामान मिल रहा है.

तुर्की-पाकिस्तान

इधर तुर्की द्वारा पाकिस्तान को टैंक दिये जाने की तुर्की के पत्रों में कड़ी आलोचना हुई है. इन में कुछ समाचारपत्रों की यह भी राय थी कि पाकिस्तान को वे टैंक दिये जा रहे हैं जो अब तुर्की के काम के नहीं रहे हैं. इस प्रसंग में तुर्की पत्रों में प्रकाशित संपादकीय और टिप्पणियाँ बहुत दिलचस्प थीं. तुर्की के एक प्रमुख पत्रकार और इस्तानबुल के पत्र **येनी इस्तानबुल** के संपादक का कहना था कि तुर्की अमेरिका के कहने पर पाकिस्तान को १०० टैंक देने को राजी हो कर धोखे में आ गया है.

उन्होंने अपने पत्र की इस संपादकीय टिप्पणी का नाम ही यह दिया कि 'हम धोखे में आ गये'. इस में कहा गया है:

इस मामले को चलते दो महीने होने को आये हैं. हम अब तक इस लिए चुप रहे कि हमारे पास इस बारे में काफ़ी जानकारी नहीं थी. पर अब हम कह सकते हैं कि जैसे ही हम पाकिस्तान को टैंक देने को राज़ी हुए वैसे ही हम धोखा खा गये. ये सौ टैंक अमेरिका ने तुर्की को उत्तर एटलांटिक संधि संगठन की सहायता के अंतर्गत दिये थे. उत्तर एटलांटिक सैनिक संगठन के स्तर को देखते हुए तो ये टैंक पुराने ढंग के हैं. नये टैंकों को इन का स्थान लेना है, पर अमेरिका के कहने पर तुर्की यही टैंक पाकिस्तान को देने को राज़ी हो गया. हम पाकिस्तान और भारत दोनों को जानते हैं, जो एक ही महाद्वीप के दो भाग हैं. पर अब एक दूसरे के दुश्मन हो गये हैं. अभी तीन वर्ष पहले वे युद्धरत हो गये थे. ऐसी हालत में किसी अन्य देश का दोनों में से किसी एक को हथियार तथा सैनिक साज-सामान देना दोनों में से एक को तो नागवार गुज़रेगा ही. हम यह भी नहीं चाहते कि हमारा भाई और दोस्त पाकिस्तान भारत की तरफ़ से हमला होने पर बेबस हो कर खड़ा देखता ही रहे. लेकिन यहाँ समस्या दूसरी ही है. यह अमेरिका के हमें धोखे में डालने का सवाल है. बात दरअस्ल यह है कि पाकिस्तान ने अपने सेंटो और सीटो संधियों के मित्र देशों से टैंक माँगे थे. भारत की नाराजी से बचने के लिए अमेरिका ने तुर्की को अपना हथियार बनाया. नतीजा यह हुआ कि भारत को नाराज़ किये बिना अमेरिका ने पाकिस्तान को खुश कर लिया. तुर्की भारत के साथ अपने जो मित्र-संबंध बढ़ा रहा है वे अगर बिगड़ने लगें तो अमेरिका को इस की क्या परवाह है?

इस तरह की बेवकूफ़ी के ख़िलाफ़ विद्रोह करने को जी चाहता है. हमने अपने-आप को अमेरिका के हाथों का खिलौना बनने क्यों दिया? अमेरिका सीधे ये टैंक पाकिस्तान को क्यों नहीं दे सकता था?

ईरान भी हमारी तरह पाकिस्तान का दोस्त है. लेकिन हम भारत के साथ अपने संबंधों में खाई डाल रहे हैं, जब कि शाह ईरान नयी दिल्ली यात्रा से भारत के साथ अपने संबंधों को और भी सुदृढ़ बना रहे हैं और उधर वह पाकिस्तान के साथ भी दोस्ती निभा रहे हैं. अभी ये सौ टैंक पाकिस्तान को पहुँचाये नहीं गये हैं. अभी भी बुद्धि से काम लेने का समय है.

तुर्की के ही एक और पत्र **अक्साम** ने इस प्रश्न पर अपने एक स्तंभ में लिखा:

तुर्की पाकिस्तान को सौ टैंक दे रहा है. सवाल उठता है क्यों? उत्तर एटलांटिक संधि का तुर्की सब से ग़रीब देश है. उस के अपने ही सैनिक साधन सीमित हैं. फिर वह क्यों पाकिस्तान को ये टैंक दे रहा है? दरअसल ये टैंक पुराने चलन के है, कि तुर्की का पाकिस्तान को टैंक देना ऐसा ही है जैसे एक गंजा अपना केश-वर्द्धक तेल दूसरे गंजों को दे रहा हो.

तीस वर्ष पहले

पत्रकारिता तब, यानी कोई तीस वर्ष पूर्व, एक व्यवसाय से अधिक एक आदर्शोन्मुख वैयक्तिक साधना थी. अंग्रेज़ी पत्रकारिता में रामानंद चट्टोपाध्याय, सी. वाई. चिंतामणि, के. नटराजन्, वी. जी. हॉर्नीमन, चलपतिराव प्रभृति नाम और हिंदी पत्रकारिता में गणेश शंकर विद्यार्थी, बाबूराव विष्णु पराडकर, 'नवीन' और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे नाम श्रद्धा और संभ्रम से लिये जाते थे. अधिकांश तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के पीछे उन के संपादकों की गरिमा हुआ करती थी. इस का एक कारण तो शायद यह है कि व्यावसायिकता उन दिनों पत्र-जगत् पर उस प्रकार हावी नहीं हो पायी थी जैसी वह आज है. परंतु इस से भी बड़ा कारण यह होता था कि संपादक तब केवल एक नाम ही नहीं होता था, बल्कि एक संस्था होता था. उस का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व और लेखन होता था. वह स्वाधीनता-संग्राम के चरम उत्कर्ष का युग था और अधिकांश संपादक यदि प्रत्यक्ष नहीं तो अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी सत्ता के प्रतिरोध में सन्नद्ध रहते थे. प्रतिरोध की यह भावना उन की लेखनी पर सान चढ़ाती थी और उन का प्रेरक चिंतन तथा आवेशोन्मुख लेखन पाठकों को आकृष्ट करता था. संपादकीय लेखों को पढ़ने और उन से रोमांचित होने का जो चाव तब पाठक के मन में होता था वह आज नहीं है, हालांकि इस के लिए संपादक उतना ज़िम्मेदार नहीं है जितना समय और परिवेश.

जहाँ तक गंभीर लेखन का संबंध है वह दैनिकों से अधिक साप्ताहिकों में और साप्ताहिकों से अधिक मासिकों में मिलता था. कारण शायद यह है कि आर्थिक और यांत्रिक सुविधाओं का विकास हो ही रहा था और सीमित सुविधाओं के कारण दैनिकों की पृष्ठ-संख्या कम रखनी पड़ती थी, जिस से विज्ञापनों से बचे स्थान को भरने के लिए संवाद और चलताऊ विषयों पर संपादकीय अग्रलेख, टिप्पणियों आदि की ही गुंजाइश रहती थी. कमीकभार विशेषांक अवश्य निकल जाते थे, जिन में विभिन्न सामयिक विषयों पर हस्ताक्षरित लेख पढ़ने को मिल जाते थे. अधिकांश दैनिक पत्रों के साथ साप्ताहिक भी संबद्ध रहते थे.

'प्रताप' का प्रकाशन आरंभ में साप्ताहिक के रूप में ही हुआ, फिर वह दैनिक बना, परंतु साप्ताहिक 'प्रताप' भी काफ़ी समय तक निकलता रहा. इसी प्रकार अन्य साप्ताहिक भी निकले. इन साप्ताहिकों में दैनिकों के मुक़ाबले अधिक चिंतनशील संश्लेषण-विश्लेषणात्मक सामग्री मिलती थी. परंतु उन दिनों वास्तव में गंभीर लेख मासिक पत्रों में ही आया करते थे. 'सरस्वती' ने जो परंपरा काफ़ी पहले से डाल रखी थी, वह तीन दशक पूर्व तक बनी ही नहीं रही, बल्कि पल्लवित-पुष्पित भी हुई. 'विशाल-भारत', 'विश्वमित्र', 'सुधा', 'माधुरी', 'वीणा', 'हिमालय', 'रूपाभ', 'प्रतीक' इस के प्रमाण हैं. सामाजिक और राजनैतिक चेतना जगाने में 'चाँद', विशेषतः उस के विशेषांकों का योगदान अप्रतिम रहा है. इस प्रकार हालांकि हिंदी पत्रों का क्षेत्र लगभग बँटा हुआ था तथापि वे एक-दूसरे के पूरक रहते थे. दैनिकों ने यदि स्वाधीनता-संघर्ष के लिए सामान्य जन को आवेग दिया तो साप्ताहिकों ने गंभीरतर चिंतन के बीज बोये और मासिकों ने उस चिंतन को व्यापकतर—साहित्यिक भी और साहित्येतर भी—परिप्रेक्ष्य दिया.

आज की व्यावसायिक होड़ के युग में इस प्रकार के पूरक योगदान को खोज पाना कठिन होगा. शायद यही कारण है कि राष्ट्र की जो प्रगति होनी चाहिए उस प्रगति में जनमन को जिस प्रकार सक्रिय रूप से अपने-आप को संलग्न पाना चाहिए उस का अभाव है. दैनिक आज संख्या में भले ही अधिक हैं उन में से अधिकांश या तो विपुल साधन और यंत्र-सामर्थ्य के अभाव में किसी प्रकार जीवित हैं और वह सब साधन और सामर्थ्य पाने के तिकड़म में लगे रहते हैं या जो साधन-संपन्न हैं वे व्यवसायेतर किसी प्रबल प्रेरणा के अभाव में तकनीकी दृष्टि से पूर्ण होने पर भी लेखन-संपादन की दृष्टि से स्फूर्ति नहीं दे पाते. साप्ताहिकों में एक समय, कम साधन होते हुए भी, जीवन का क़तई अभाव नहीं था. 'प्रताप' की चर्चा आ चुकी है. गणेशशंकर विद्यार्थी और 'नवीन' जी के संपादन में उत्तर-प्रदेश में ही नहीं पूरे देश में उस की धाक थी. 'योगी', 'समाज', 'संघर्ष', 'सैनिक', 'नवयुग'—सभी ने अपने-अपने उत्कर्ष-काल में सामूहिक बौद्धिक जागरण में योग दिया था. आज ऐसा नहीं कि दो-तीन प्रमुख साप्ताहिकों को पढ़ा नहीं जाता. दरअसल पाठकों की संख्या आज शायद पहले के मुक़ाबले कहीं अधिक है. वह लाख के भी ऊपर पहुँच रही है. परंतु इस का कारण, मेरी अपनी राय में, पठनीय ठोस सामग्री उतनी नहीं जितनी उन की सजधज है. उन में हल्के-फुल्के और उत्तेजक माल-मसाले हैं. इस का एक और कारण साक्षरता में वृद्धि और राजनैतिक चेतना का प्रसार भी है. जनरुचि का परिष्कार आज का उद्देश्य नहीं रह गया है. उद्देश्य है रुचि का पोषण. इस पोषण का सहारा ले कर ही आज की पत्रकारिता आदर्श से अधिक व्यवसाय और व्यवसाय से अधिक व्यवसाय-जगत् के इरादों और गतिविधियों के पृष्ठ-पोषण का माध्यम बन गयी है. पत्रकारिता को यदि समाज और व्यक्ति के विकास में अपना सही योगदान करना है तो उसे इस दुश्चक्र से छूटना होगा और उसे मात्र कौशल न हो कर सृजनात्मक क्रिया बनना होगा. यही आज की पत्रकारिता की सब से बड़ी चुनौती है.

जहाँ तक मासिक पत्रों का ताल्लुक है उन की संख्या आज उंगलियों पर गिनी जा सकती है और उन के स्तर को क्या हो गया है, यह समझ में आसानी से नहीं आ सकता. शायद एक कारण इस का यह है कि तीस वर्ष पूर्व के मुक़ाबले अब विशिष्टता का युग आ गया है. तब विविध विषयता चलती थी, अब अलग-अलग विशिष्ट ही चल सकती है, जैसे कि कोई केवल काव्य-पत्रिका हो, कोई कथा-पत्रिका, कोई राजनीति की, कोई अर्थ-शास्त्र की इत्यादि. पर यह ठीक से हो नहीं पाया और विविध विषयता तो नहीं पर उस का महत्त्व और स्तर समाप्त हो गया. प्रतिरोध ने हिंदी पत्र-पत्रिकाओं को तब जो ओजस्विता या आवेग दिया था वह अब नहीं रह गया. आज की परिस्थितियाँ और आज के संदर्भ लघु पत्रिकाओं के माध्यम से छुट-पुट अभिव्यक्ति अवश्य पा रहे हों, व्यापक और गहन अभिव्यक्ति का अभाव है.

नित प्रति एकत ही रहत, बैस बरन मन एक।
चहियत जुगल किसोर लखि, लोचन जुगल अनेक ॥

काशी के चित्रकार केदारनाथ शर्मा के बनाये बिहारी के दोहों पर व्यंग्य-चित्र में से एक, सरस्वती से उद्धृत (३० वर्ष पहले का व्यंग्य-चित्र)

इस का एक बड़ा कारण शायद यह हो कि संपादक के व्यक्तित्व का आज 'इरोज़न' हो गया है. तीस वर्ष पूर्व हिंदी का संपादक वास्तविक अर्थों में स्वाधीन होता था. तब का पत्र-स्वामी, यदि वह स्वयं संपादक ही नहीं हुआ तो, संपादक का चुनाव सावधानी से करने के बाद उसे पूरे सद्भाव और विश्वास के साथ पत्र सौंप देता था और शायद ही कभी ऐसा हुआ हो कि संपादक ने उस विश्वास का खूबी से निर्वाह न किया हो, साथ ही अपनी लेखनी और संपादक की स्वाधीनता न बनाये रखी हो. आज का संपादक यह नहीं कि स्वाधीनता खो कर ही काम करता है. परंतु अक्सर स्पष्ट और बहुधा अस्पष्ट परिस्थितियाँ उसे विवश करती रहती हैं कि वह मालिक का

मन रखे, अपना या अपने संपादकीय आदर्श का नहीं. यह समस्या कोई इस देश की ही नहीं है, यह सर्वत्र है. विश्व के सम्मुख आज एक ओर तो क्लार्क कॉकवर्न का यह कथन है कि—

"क्रीत पत्रकार को महसूस करना चाहिए कि वह अंशतः मनोरंजन प्रदान करने वाले व्यवसाय में है और अंशतः विज्ञापन-व्यवसाय में, जिस में उसे या तो वस्तु, या उद्देश्य, या सरकार का विज्ञापन करना होता है. पत्रकारिता के क्षेत्र का दंभ और मूर्खता वहाँ से आरंभ होती है जहाँ यह मान लिया जाता है कि समाचारपत्र निष्पक्ष होते हैं."

दूसरा, सी. पी. स्कॉट का यह अभिमत है कि "समाचारपत्र का एक विशिष्ट गुण और शायद एक मात्र गुण उस की स्वाधीनता है. उस की जो भी स्थिति और स्वरूप हो उस की अपनी आत्मा तो होनी ही चाहिए."

इन में से कौन-सा अभिमत प्रतिष्ठित होगा, इसी पर पत्रकारिता का और लोकतंत्र का भविष्य निर्भर करेगा.

पिछले सप्ताह

(९ जनवरी से १५ जनवरी, १९६९ तक)

देश

९ जनवरी : नागरकोइल संसदीय उप-चुनाव में कांग्रेस के के. कामराज भारी बहुमत से विजयी. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कच्छ पर मधु लिमये की याचिका खारिज.

१० जनवरी : राजस्थान के भूतपूर्व राज्यपाल डॉ. संपूर्णानंद का वाराणसी में देहांत. ताशकंद की तीसरी वर्षगाँठ पर भारत की पाकिस्तान को टिप्पणी.

११ जनवरी : राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में भाग लेने के बाद प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी स्वदेश वापस. फ़रवरी के मध्यावधि चुनावों में १० प्रतिशत से अधिक उम्मीदवारों द्वारा अपने नाम वापस. आगरा में पुलिस और भीड़ में मुठभेड़ के कारण कई लोग ज़ख्मी. स्वर्गीय लालबहादुर शास्त्री की तीसरी बरसी पर दिल्ली में समारोह.

१२ जनवरी : भारत और पाकिस्तान समस्याओं के हल के लिए भारत की किसी भी देश की मध्यस्थता पर असहमति.

१३ जनवरी : १२ दिन की राजकीय यात्रा के बाद ईरान के शहंशाह आर्यमेहर और शाहबानू फ़र्राह का स्वदेश प्रस्थान.

१४ जनवरी : गंगा सागर में नौका उलट जाने से १६ स्नानार्थियों की मृत्यु.

१५ जनवरी : सेना-दिवस के अवसर पर जनरल कुमारमंगलम् द्वारा जवानों को आधुनिक हथियारों के इस्तेमाल करने की ताक़ीद.

विदेश

९ जनवरी : राष्ट्रकुल प्रधानमंत्रियों के सम्मेलन में रोडेसिया के मसले पर बहस. लेबनान के राष्ट्रपति द्वारा डॉ. करामी को सरकार बनाने का न्योता.

१० जनवरी : जांबिया के राष्ट्रपति काउंडा द्वारा रोडेसिया समस्या हल करने के लिए ब्रिटेन को सेना के इस्तेमाल की सलाह. तीनों अंतरिक्ष-यात्रियों की अमेरिका के नव निर्वाचित राष्ट्रपति निक्सन से भेंट.

११ जनवरी : इस्राइली सेना द्वारा युर्दान पर बमबारी.

१२ जनवरी : लंदन में रोडेसिया विरोधी लोगों और पुलिस में झड़प.

१३ जनवरी : दिल्ली के छात्र त्रिलोकचंद गुप्त को पाकिस्तान रिहा करने को सहमत.

१४ जनवरी : रूस द्वारा यात्रीयुक्त एक अंतरिक्ष-यान का छोड़ा जाना.

१५ जनवरी : अमेरिका के एक युद्ध-पोत में विस्फोट हो जाने से २५ सैनिकों की मृत्यु. रूस द्वारा तीन यात्रियों का एक और अंतरिक्ष-यान छोड़ना.

भेंट-वार्ता

घटिया राष्ट्रीयता

हम विज्ञान से क्या आशा करते हैं ? यह सवाल वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के अध्यक्ष डॉ० आत्माराम ने **दिनमान** के प्रतिनिधि से तब पूछा जब उसने यह जानना चाहा कि परिषद् के नेतृत्व में भारत में कितना औद्योगिक और वैज्ञानिक अनुसंधान हुआ है. डॉ० आत्माराम ने जवाब भी स्वयं दिया. उन के अनुसार सब से महत्त्वपूर्ण है एक विकासोन्मुख देश के वैज्ञानिक और उद्योगपति को पूरा ज्ञान होना कि उस के सामने किस प्रकार की कच्ची सामग्री है और उस का उपयोग राष्ट्र के हित में कैसे किया जा सकता है. यह तभी संभव हो सकता है जब कि विकासशील राष्ट्र के सामने प्रगति का कुछ लक्ष्य निर्धारित हो, जिस के लिए उसे एक उचित मार्ग की तलाश हो. भारत के संदर्भ में वैज्ञानिक अनुसंधान को आवश्यकताओं के साथ घनिष्ट रूप से जोड़ लेना और भी ज़रूरी है. यह पूछे जाने पर कि क्या ऐसा भी कोई अनुसंधान होता है जो राष्ट्रीय या मानव मात्र की आवश्यकताओं से जुड़ा न हो. डॉ० आत्माराम ने सच कहा है कि वैज्ञानिक अनुसंधान किसी न किसी रूप में उपयोगी होता ही है. मगर प्रश्न प्राथमिकता का है. इस सिलसिले में उन्होंने दो उदाहरण दिये. उन के अनुसार कोयला भारतीय औद्योगिक प्रगति के लिए एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है, विशेष कर जब कि हमारे पास अन्य प्रकार के ईंधन की कमी है. इस लिए हमारे लिए यह सब से महत्त्वपूर्ण अनुसंधान का विषय है. भारतीय वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के तत्त्वावधान में पत्थर के कोयले पर एक शोधपत्र प्रकाशित किया गया है, जो औद्योगिक और वैज्ञानिक दोनों दृष्टियों से बहुत उपयोगी और सामयिक सिद्ध हुआ है. इस के विपरीत एक अन्य महत्त्वपूर्ण विषय को भारतीय वैज्ञानिकों ने छुआ भी नहीं. वह है चाय. चाय हमारे देश के लिए विदेशी मुद्रा कमाती है, मगर अभी तक हमने इस उपभोक्ता वस्तु के संबंध में कोई महत्त्वपूर्ण अनुसंधान नहीं किया है. देश के अनेक विश्वविद्यालयों में इस सिलसिले में काम किया जा सकता था, जिस का उपयोग हम चाय के अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में अपने फ़ायदे के लिए कर सकते थे.

प्रमाणपत्रों की माँग : **दिनमान** के प्रतिनिधि ने पूछा कि 'क्या आप मूल वैज्ञानिक अनुसंधान को प्रोत्साहन देने के पक्ष में नहीं हैं?' डॉ० आत्माराम ने कहा कि यह कार्य अधिकतर विश्वविद्यालयों में होना चाहिए. 'इस सिलसिले में मेरा तो मत यह है कि विश्वविद्यालयों को मज़बूत बनाना चाहिए. उन्हें केवल पुस्तकों से ज्ञानार्जन का केंद्र ही नहीं रहना चाहिए, बल्कि उस कार्य से नयी दिशाओं की प्रवृत्ति भी उन में बढ़नी चाहिए. मेरा यह सदा से सिद्धांत रहा है कि कार्य की उत्पत्ति जितनी महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य का उपयोग भी है'. उन के अनुसार देश की वैज्ञानिक क्षमता बढ़ना ज़रूरी है, क्यों कि इस क्षमता के बिना वास्तविक वैज्ञानिक प्रगति संभव ही नहीं. उन्होंने खेद प्रगट किया कि लोग आज-कल सम्मानपत्र और प्रमाणपत्र के पीछे पड़े हुए हैं. **'आखिर प्रमाणपत्रों को इतना महत्त्व क्यों दिया जाता है? आज-कल एक धारणा बनती जा रही है कि मूल अनुसंधानरत वैज्ञानिक बड़ा है और वैज्ञानिक अध्ययन को उपयोगी बनाने वाला व्यक्ति छोटा है.' आवश्यकता इस बात की है कि हम बीच के स्तर के वैज्ञानिक कार्य करने वालों को प्रोत्साहन दें. समाज की यह प्रवृत्ति बिलकुल ठीक नहीं है, जिस से हम 'कर्म-योगियों को सामाजिक मान्यता नहीं देते.' एक अनुभवी मिस्त्री को एक अनुभवहीन किंतु प्रमाणपत्र प्राप्त ओवरसियर के सामने हेय माना जाता है. 'छोटी मशीन बनाने वाले कारीगर एक वैज्ञानिक स्नातक से अधिक उपयोगी नागरिक है.'**

कछुए की चाल : डॉ० आत्माराम की नज़र में अनुसंधान की दिशा दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं और स्थानीय प्राथमिकता को दृष्टि में रख कर निर्धारित की जानी चाहिए. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने जानना चाहा कि आज की वैज्ञानिक दौड़ में यदि हम मध्यम वर्ग के वैज्ञानिक कार्य करने वालों को प्रोत्साहन दें तो क्या हम प्रगतिशील देशों के साथ क़दम मिला कर चल सकेंगे ? डॉ० आत्माराम एक क्षण के लिए ख़ामोश हो गये फिर धीरे से कहना शुरू किया **'मालूम नहीं हमारे देश में यह क्यों सोचा जाने लगा है कि हम सभी प्रकार की वैज्ञानिक जानकारी का विकास केवल अपने ही देश में कर सकते हैं. मेरी नज़र में यह धारणा ही अवैज्ञानिक है. यह निम्न स्तर की राष्ट्रीयता है.'** उन के अनुसार यह नितांत असंभव है कि कोई देश आधुनिक युग में संपूर्ण वैज्ञानिक जानकारी और अनुसंधान का विकास बिना दूसरे देशों की सहायता के कर सके. वैज्ञानिक प्रगति आदान-प्रदान का ही फल है. आज विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश है जो तकनीकी जानकारी खरीदने के लिए दूसरे देशों को पैसा न दे रहा हो. उदाहरण के लिए तकनीकी विशेषज्ञता में विश्व का नेता अमेरिका भी प्रतिवर्ष २६ अरब डॉलर केवल तकनीकी जानकारी और विशेष प्रकार के औद्योगिक रहस्य खरीदने में खर्च करता है. और ब्रिटेन १० करोड़ पाउंड. वास्तविकता यह है कि अमेरिका को छोड़ विश्व का कोई देश नहीं जो इस प्रकार के रहस्यों को बेचने से भी उतना धन प्राप्त करता हो जितना खरीदने में खर्च करता है. मगर इस से किसी देश की औद्योगिक प्रगति में रुकावट नहीं आती. जापान ने अरबों रुपये वैज्ञानिक और औद्योगिक रहस्य खरीदने में खर्च किये, मगर उन रहस्यों को उसने अपनी आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्धित और परिवर्त्तित किया. परिणाम है कि जिन देशों से जापान ने औद्योगिक रहस्य खरीदे अंतरराष्ट्रीय व्यापार में उन को भी उस ने मात कर दिया. **'तकनीकी जानकारी उत्पन्न करने से तकनीकी जानकारी खरीदना सस्ता और आसान है'.** आवश्यकता केवल तकनीकी दक्षता प्राप्त करने की है और इस प्रकार की दक्षता केवल एकांगी अनुसंधान से प्राप्त नहीं हो सकती. उद्योग के विकास के लिए जितना वैज्ञानिक तथ्य आवश्यक है उतना ही प्रबंध और प्रशासन भी.

डॉ. आत्माराम : कर्मयोगी

अमेरिका में रहने वाले भारतीय वैज्ञानिक डॉ० खुराना को ले कर जो विवाद खड़ा हुआ है उस से डॉ० आत्माराम प्रसन्न नहीं. 'योग्य व्यक्तियों के पलायन की समस्या केवल भारत में ही नहीं है, यह तो एक अंतरराष्ट्रीय समस्या है और इस सिलसिले में यह कहना तर्कसंगत नहीं कि अमुक व्यक्ति को नौकरी या मान्यता नहीं मिली, क्यों कि कौन कब चमकेगा इस की पूर्व सूचना देने वाला यंत्र अभी निर्मित नहीं हुआ है'.

मंद काम : वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसंधान परिषद् के अध्यक्ष के अनुसार गत वर्ष केंद्रीय अनुसंधान और उर्वरक प्रयोगशाला कराईकुडी में मैग्निशियम के उत्पादन के संबंध में महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त की गयी है. यह धातु प्रतिरक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण है. इस के अतिरिक्त अंतरिम रंगों के संबंध में भी मौलिक अनुसंधान हुआ है. **एक और अनुसंधान भी प्रायः पूर्ण हो चुका है, जो चिकित्सा-जगत् के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रगति का सूचक होगा. यह एक ऐसी औषधि के निर्माण के संबंध में है जो मनुष्यों की प्रजनन-क्षमता कम कर देगी. औषधि का इस समय परीक्षण हो रहा है.**

चरचे और चरखे

राजेंद्र-नेहरू लोहिया

१९५६ की सर्दियों की एक शाम हैदराबाद में लोहिया, 'मैनकाइंड' के एक संपादक बदरी विशाल पित्ती, समाजवादी दल के संयुक्त मंत्री लोकनाथ जोशी और ओमप्रकाश दीपक 'मैनकाइंड' की बात कर रहे थे. संपादकीय में कहा गया था कि श्री नेहरू के दादा अर्दली थे, यह तथ्य अगर देश के लोगों के सामने आता तो ग़रीबों की छाती बढ़ती कि उन का बेटा भी ऊँची से ऊँची जगह जा सकता है. उस के बजाय श्री नेहरू ने अपने पिता की तुलना यूरोपीय सामंतों से करते हुए उन्हें पुनर्जागरण कालीन राजकुमार (रेनासाँ प्रिंस) कहा था.

चर्चा चली तो लोहिया हँसे, 'क्या चीज़ वैयक्तिक है, क्या नहीं, यह अभी इन लोगों को सीखना है. देख लेना, विदेश से कोई नहीं लिखेगा कि यह निजी जीवन पर टीका है.

इस घटना के क़रीब ६ साल बाद सितंबर १९६२ में भारत-सरकार के बजट विवरण (१९६०-६१) को देखते श्री दीपक को 'राजधानी के विकास' मद के अंतर्गत यह ब्योरा मिला था कि प्रधानमंत्री-निवास की दरियों-क़ालीनों को बदलने के लिए तीन साल में दो लाख रुपये ख़र्च किये गये. यह सूचना उन्होंने लोहिया को भी दी थी और लोहिया के कहने पर श्री किशन पटनायक ने प्रधानमंत्री पर होने वाले सार्वजनिक ख़र्च को ले कर श्री नेहरू से पत्र-व्यवहार किया. श्री पटनायक ने लिखा था कि प्रधानमंत्री अगर अपने ऊपर होने वाले ख़र्च को मर्यादित कर के एक हज़ार रुपया रोज़ कर दें तो यह घटना एक पवित्र अग्नि की तरह भ्रष्ट समाज का हृदय शुद्ध कर देगी. लेकिन श्री नेहरू का जवाब था कि श्री पटनायक का आरोप 'मूर्खतापूर्ण और फूहड़' है और किसी 'आंतरिक विद्वेष' के कारण है.

लोहिया जानते थे कि विद्वेष का आरोप श्री पटनायक पर नहीं, दरअसल लोहिया पर ही लगाया गया था. एक दिन बैठे-बैठे उन्होंने पूछा, 'तुम्हारा क्या ख़्याल है, नेहरू साहब क्या सोचते हैं ? मुझे उन से क्या विद्वेष हो सकता है ?' दीपक ने कुछ सोच कर अनुमान लगाने का साहस किया, 'ऐसा हो सकता है डॉक्टर साहब कि पंडित नेहरू ख़ुद अपने बारे में तो यही सोचते होंगे कि वह इतिहास में एक बहुत बड़ी भूमिका अदा कर रहे हैं—सारी दुनिया में शांति स्थापित करने की, सभ्यता का संकट दूर करने की. इस में दुनिया के राजनेताओं पर असर डालने के लिए वह मानते होंगे कि उन के साथ ताक़त और शान-शौक़त का जो प्रदर्शन होता है वह दरअसल उन पर होने वाला ख़र्च नहीं, बल्कि हिंदुस्तान की ताक़त और शान-शौक़त का प्रदर्शन है.'

कुछ दिनों बाद लोहिया ने एक वक्तव्य दिया था, जिस में ये वाक्य थे: "मैं नहीं जानता कि अपने हृदय और मस्तिष्क को खोल कर या चीर कर किस तरह यह दिखाऊँ कि इस में कोई दुर्भावना नहीं बसती. मैं तो अपने देश के निवासियों को विलासिता और बर्बादी के ख़िलाफ़ केवल जगाने के विचार से यह काम कर रहा हूँ. शायद प्रधानमंत्री पर मुझे उसी तरह ग़ुस्सा है जिस तरह कि देश के अनेक दूसरे तबके के लोगों पर. लेकिन बात यहीं पर समाप्त हो जाती है, क्यों कि मैंने अपने साथियों की अनेक ग़द्दारियाँ देखी हैं, जो ओछेपन की सीमा लाँघ गयी हैं और ऐसी स्थिति में मैं बुरा बनना पसंद करता हूँ".

एक महीने के अंदर ही चीनी पलटन ने सेला, बोमदिला और वालोंग में श्री नेहरू की ऐतिहासिक भूमिका के चिथड़े कर के इतिहास को कूड़ेख़ाने में डाल दिया.

× × ×

१९६२ में राजेंद्र बाबू चीनी आक्रमण से बेहद क्षुब्ध थे. कई चीन विरोधी सभाओं में बोले, एक में कृपलानी जी और वह एक ही मंच से. एक दूसरी सभा में गये, जो मुख्यतः लोहिया जी के लिए आयोजित थी और उस में बोले भी. दिल्ली के राजभक्त हल्कों में नुक़्ताचीनी शुरू हो गयी. एक नेहरू विरोधी मोर्चा उभर रहा है. राजेन बाबू उस मोर्चे की धुरी बन रहे हैं—तरह-तरह की कानाफूसी, तरह-तरह के भद्दे संकेत. भूतपूर्व राष्ट्रपति के सचिव श्री विश्वनाथ वर्मा को विश्वास था कि ऐसा कोई मोर्चा बनाना या उस में शरीक होना राजेंद्र बाबू की मंशा नहीं है. फिर भी तथ्य जानने के लिए पत्र लिख कर पूछा. जवाब में सदाकत आश्रम, पटना से दिसम्बर ५, १९६२ को लिखे पत्र के कुछ अंश इस प्रकार हैं:

"यह ख़्याल ग़लत है कि मुझ को कोई नेहरू विरोधी मोर्चे में शामिल करना चाहता है. अगर चाहता भी हो तो मैं किसी ऐसे मोर्चे में शामिल नहीं होने जा रहा. जिस सभा का तुमने ज़िक्र किया है उस की बात ऐसी है कि पहले से एक सभा घोषित हुई थी, जिस में मुझे बोलने के लिये जाना था. इत्तेफ़ाक से उस दिन कृपलानी जी यहाँ आये हुए थे. उन की भी इच्छा हुई उस सभा में जाने की और बोलने की. इस लिये वह मेरे साथ गये. उस सभा में जब बोल रहे थे तो रामलखन यादव ने उन का खड़े हो कर विरोध किया. जनता ने उन को चुप रहने के लिये कहा. मैंने कुछ नहीं कहा, चुप रहा. मेरा उस में पड़ना भी ठीक नहीं था. इस के बाद सभा शांत होने पर कृपलानी जी फिर बोले. बात ख़त्म हो गयी. बात इतनी ही थी. कृपलानी जी ने ख़ुद ही जवाब दिया कि वह क्या-क्या कर रहे और क्या कुछ नहीं कर सकते. उस के कुछ दिन बाद चूँकि मैं तिब्बत के संबंध में २४ अक्तूबर को बोल गया था एक मीटिंग गांधी मैदान में रखी गयी. उस में डॉ० राममनोहर लोहिया आने वाले थे, पर प्लेन चलना बन्द हो गया था, इस वजह से वह ख़ुद आ सकने में असमर्थ थे. उन्होंने मुझे कलकत्ता से टेलीफ़ोन किया और मुझ से आग्रह किया कि मैं उस सभा में ज़रूर जाऊँ. वह अपने दल के श्री राजनारायण को ख़बर दे देंगे, पर उन लोगों को टेलीफ़ोन से कोई ख़बर नहीं मिली. सभा होने लगी तो महामाया बाबू ने मेरे दरियाफ़्त करने पर कहा कि मैं अगर सभा में आ जाऊँ तो अच्छा होगा. इस लिये मैं सभा में गया और अपने तरीक़े पर भाषण दे कर चला आया. दूसरे लोग पीछे बोले होंगे. उस के चंद दिन के बाद राजनारायण से मेरी मुलाक़ात हुई, तो मालूम हुआ कि लोहिया का कोई टेलीफ़ोन उन्हें नहीं मिला था और वे लोग जानते भी नहीं कि मैं वहाँ जाने वाला हूँ. मैं चला गया तो ख़ुश ज़रूर हुए होंगे, पर मैं पहले पहल भाषण देकर चला आया. यों तो हवा में कुछ न कुछ विरोध है मगर मुझ से जहाँ तक हो सका है कृपलानी जी को भी कहा कि यह समय एजिटेशनल एटिट्यूड का नहीं है. उन को जो कुछ कहना हो कंस्ट्रक्टिव तरीक़े पर कहें. पर मैं नहीं जानता कि वह क्या और किस तरह सोचते है. उस के बाद मुझे दूसरी सभा में उन को सुनने का मौक़ा नहीं हुआ. वह यह ज़रूर चाहते हैं कि राजा जी और हम मिल कर स्थिति पर विचार करें, पर इस का भी कोई ठिकाना नहीं है कि इस तरह की कोई मुलाक़ात होगी या नहीं. अगर होगी भी तो क्या बातें होंगी. मेरे लिये मद्रास जाना संभव नहीं है और राजा जी के लिये आ सकना मुमकिन नहीं. मुलाकात कैसे संभव हो सकती है और मेरी कोई ख़ास ख़्वाहिश भी नहीं है, क्यों कि वह अपने तरीक़े से काम करते हैं. हमारा दूसरा तरीक़ा है. उन के सम्बन्ध में मेरी भावना आदर और स्नेह की है. मद्रास के "कल्कि" पेपर ने राजा जी के जन्म-दिन पर, जो ८ दिसम्बर को है, उन के सम्बन्ध में कुछ भेजने के लिये लिखा था. मैंने लिख कर भेज दिया, जिस का वह उल्था कर तमिल में छापेंगे.

"तिब्बत के संबंध में मैंने अपने भाषण में कुछ कहा था और बहुतेरे और लोगों ने भी बहुत-कुछ कहा है. जवाहरलाल जी ने ग़ुस्से में आ कर सब लोगों के कहे को 'फ़ेंटेस्टिक नॉनसेंस' कह कर अपनी समझ से बात ख़त्म कर दी, पर वह बात ख़त्म होने वाली नहीं है. अगर मौक़ा हुआ तो मैं और भी कहीं, चाहे फिर लेख के द्वारा अथवा किसी भाषण द्वारा, इस सवाल को छेड़ूंगा. इस को यदि समझा जाये कि मैं विरोध में काम कर रहा हूँ तो मैं मजबूर हूँ. मैं इस सवाल पर बहुत सँभल कर के कुछ बोलूंगा अथवा लिखूंगा, जिस में गवर्नमेंट को कोई परेशानी न हो. पर ग़लती पर ही अड़े रहने का इरादा हो तो बुरा लग भी सकता है."

प्लेटो का गणराज्य

प्लेटो का गणराज्य हवाई माना जाता है. भारतीय गणराज्य के १९ वें वर्ष से गुज़रते हुए देखने पर प्लेटो का संसार भारतीय गणराज्य की तुलना में अधिक वास्तविक जान पड़ता है. भारतीय गणराज्य को वास्तविक बनाने के लिए जनवरी में सरकार उन समस्त समारोहों का आयोजन करती है जिन में कम-से-कम एक दिन के लिए आदमी अपने आप को भूल जाये. गणराज्य दिवस की तैयारियाँ ज़ोरों पर हैं. नयी दिल्ली का तालकटोरा उद्यान लोकलास्य में डूबा हुआ है. फ़ौजी अफ़सर परेड की तैयारियों में व्यस्त हैं. नयी दिल्ली, जो हमेशा ही गुलज़ार रहती है, कुछ और रंगीन लग रही है. गणराज्य की इस से बड़ी सार्थकता और क्या हो सकती है.

जिस समय यह रिपोर्ट लिखी जा रही है उस समय केंद्र के आधे से अधिक मंत्री दिल्ली से बाहर हैं. अधिकतर बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश और पंजाब की चुनाव-यात्रा पर हैं. चुनाव हो या न हो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. चुनाव न होता तो विदेश-यात्रा होती. मंत्रियों की ग़ैरहाज़िरी में नयी दिल्ली का सचिवालय काफ़्का के 'दुर्ग' की तरह होता है जहाँ कौन शासन करता है, किस के आदेश से दुनिया चलती है कुछ पता नहीं होता. मंत्री दिल्ली में हों तब भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. दुर्ग अपनी जगह बना रहता है. मंत्रियों का ज़्यादातर कारोबार उन के निवास-स्थान पर चलता है जहाँ बैठ कर वे अपने-अपने प्रदेशों की छुटभैया राजनीति की समस्या सुलझाते हैं. मंत्री के घर से अधिक रोचक स्थान और कोई नहीं हो सकता. देश का राजनैतिक दिमाग किस स्तर पर चल रहा है इस की वास्तविक झलक मंत्रियों के बैठकखाने के भीतर और बाहर ही मिल सकती है जहाँ हमेशा ही भीड़ होती है.

गणराज्य की शर्तों के मुताबिक लोकतंत्र का सब से बड़ा हिस्सेदार मंत्री को होना चाहिए लेकिन सचाई यह है कि इस लोकतंत्र को मंत्री नहीं नौकरशाही चला रही है. नौकरशाही का विकराल चेहरा नयी दिल्ली की छः मंज़िला इमारतों की किसी भी खिड़की से देखा जा सकता है. कई साल पहले श्रीमती विजया लक्ष्मी पंडित ने इस सरकार को 'अनिर्णय का बंदी' क़रार दिया था. पिछले हफ़्ते स्वतंत्र पार्टी के श्री सी. सी. देसाई ने श्रीमती पंडित के दावे को दुहराते हुए केंद्र की कांग्रेसी सरकार को अनिर्णय का प्रहरी क़रार दिया. श्री देसाई ने ७ महत्वपूर्ण मामलों का उदाहरण दिया जिन पर कि लोकहित में सरकारी निर्णय लेना आवश्यक था लेकिन पिछले साल भर में इन में से किसी भी एक मामले पर कोई निर्णय नहीं लिया गया है, बल्कि, इस के विपरीत जब भी सरकार से यह आग्रह किया गया कि वह इन पर फ़ैसला ले तब उस ने इन मामलों को और भी आगे के लिए स्थगित कर दिया. श्री देसाई आई. सी. एस. अफ़सर रह चुके हैं इस लिए वह ज़्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि निर्णय न लेना किस के हित में होता है.

कुछ समय पहले एक विदेशी पत्रकार ने इस संवाददाता से यह पूछा कि आखिरकार भारतीय नेताओं की व्यस्तता का रहस्य क्या है? कौन-सी चीज़ है जो उन्हें बराबर उलझाये रखती है? फिर उस पत्रकार ने स्वयं ही इस का उत्तर पा लिया. उस ने कहा, शायद उन के अस्तित्व का सवाल उन को बराबर व्यस्त रखता है. सत्ता और अस्तित्व की लड़ाई का जो महाभारत इन दिनों भारत में लड़ा जा रहा है शायद इस से पहले कभी भी नहीं लड़ा था. अपने अस्तित्व को बनाये रखने की चिंता में मंत्री और नेता यह पूरी तरह भूल चुके हैं कि देश में जनता जैसी भी कोई चीज़ है. जनता का खयाल उन्हें केवल चुनाव के कुछ दिनों पहले आता है जब जनता का सामना करते समय उन्हें पत्थरों और काले झंडों का सामना करना पड़ता है. सत्ता के प्रवक्ता इस के लिए 'गुंडों' पर (गुंडा एक अमूर्त शब्द है, गुंडा कौन है इस की कोई पहचान अभी तक नहीं हो सकी है) झल्लाते हैं —उन नौकरशाहों पर नहीं जिन्होंने समूचे देश में शासन और लोकतंत्र की विफलता से हिंसा की स्थिति पैदा कर रखी है. कभी भी यह नहीं सुना गया कि किसी मंत्री ने अपना गुस्सा किसी निकम्मे अफ़सर पर उतारा हो. इस के विपरीत समय-समय पर मंत्रियों को संसद में भ्रष्ट अफ़सरों और निकम्मी नौकरशाही के समर्थन में वक्तव्य देने पड़े हैं. आखिर इस का रहस्य क्या है?

नौकरशाही भारत को ब्रितानी उत्तराधिकार के रूप में मिली. श्री नेहरू की छत्रछाया में उस का पोषण हुआ, श्री शास्त्री उस का कुछ बिगाड़ नहीं कर सके और श्रीमती गांधी के युग में नौकरशाही ने अपना एकछत्र साम्राज्य क़ायम कर लिया. यह नहीं कि प्रधानमंत्री और मंत्री नौकरशाही की माया से परिचित नहीं हैं. लेकिन नौकरशाही का बनाये रखना मंत्रियों के हित में ज़रूरी हो गया है. इस का परिणाम है नीति संबंधी विफलताएँ जो कि आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक तीनों ही क्षेत्रों में भयानक रूप से कारगर हुई हैं.

वक्तव्य और अमल के बीच कितनी बड़ी खाई है इस का एक नमूना है प्रधानमंत्री का पिछली एक जनवरी का चीन के संबंध में दिया गया बयान. श्रीमती गांधी ने नये साल पर अपने प्रेस सम्मेलन में कहा कि भारत-चीन से संवाद की स्थिति चाहता है. श्रीमती गांधी के

दिनमान

समाचार - साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — २६ जनवरी, १९६९

अंक ४ — ६ माघ, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट	१३
*	
मत और सम्मत	४
प्रश्न-चर्चा	५
पत्रकार-संसद	७
पिछला सप्ताह	१०
चरचे और चरखे	१२
*	
राष्ट्रीय समाचार	१५
विश्व के समाचार	४१
समाचार-भूमि : अफ्रीकीकरण का जनून	३९
खेल और खिलाड़ी : खेल प्रतियोगिताएँ	३७
*	
प्रेस-जगत : तीस वर्ष पहले	९
भेंट-वार्त्ता : डॉ. आत्माराम	११
मध्यावधि	१८
परिसंवाद : भारतीय युवा शक्ति शिविर	२३
प्रतिरक्षा : दाँत और पूँछ का अंतर	२८
जनपथ : बंद दुर्ग में दुर्घटना	३१
पुरातत्त्व : पूँजी के पत्थर मिट्टी के मोल	३२
वसंत पंचमी : विये दिव्वी	४५
रंगमंच : एक नाट्य शिविर; मि. अभिमन्यू	४६
कला : १५वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी	४८
छाया-चित्र : ओ. पी. शर्मा	५१
भाषा : संस्कृत सम्मेलन	५३
किताबें	५३

*

आवरण चित्र : महाराष्ट्र का एक नृत्य (फ़ोटो : रविव्रत वेदी)

*

संपादक

सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान

टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन

७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

इस वक्तव्य और विदेश मंत्रालय की फ़ाइलों में ज़बरदस्त दूरी है पूछताछ करने पर संवाददाता को मालूम पड़ा कि विदेश मंत्रालय में इस तथाकथित संवाद की कोई तैयारी नहीं है और न निकट भविष्य में हो सकती है फिर 'चीन से संवाद' का वक्तव्य दे कर प्रधानमंत्री किसे डराना चाहती हैं ? रूस को, अमेरिका को, पाकिस्तान को ? क्या इन में से कोई भी भारत से भयभीत होने की स्थिति में है ? जितनी गंभीरता से श्रीमती गांधी ने चीन संवाद की इच्छा ज़ाहिर की, सीमा संबंधी प्रश्न शायद उस से अधिक गंभीर है. यह सही है कि भारत और चीन के बीच जो कलह है उसे हल करने की जिम्मेदारी केवल भारत पर नहीं चीन पर भी है और इस समस्या को या तो हथियार के ज़रिये हल किया जा सकता है या संवाद के ज़रिये. यह मानने के कोई कारण नहीं हैं कि भारत इन में से कोई भी रास्ता अख्तियार करने की स्थिति में इस समय है.

सीमा के बाद भारत की आर्थिक विफलता स्वाधीन भारत की दूसरी भयानक दुर्घटना है. तीन योजनाओं के बाद भी भारत की आर्थिक स्थिति में क्या फ़र्क़ पड़ा है ? क्या महँगाई में कोई कमी हुई है ? क्या खाने और पहनने की चीजें लोगों को अधिक सुलभ हुई हैं ? क्या प्रति व्यक्ति आय में कोई महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है. फिर योजना का क्या अर्थ है ? यह सही है कि योजनाओं के कारण देश के औद्योगिक उत्पादन में फ़र्क़ पड़ा है, लेकिन क्या इस फ़र्क़ के परिणाम लोगों की रोजमर्रा जिंदगी में दिखायी पड़े हैं ? जितनी तेजी से भारत के 'आदर्श गाँव' में बिजली पहुँचती है उस से अधिक तेज़ी से शेष गाँवों में मिट्टी के तेल की क़ीमत बढ़ती है. जिन पर्यटन केंद्रों पर विदेशी पर्यटक को ले जाया जाता है वहाँ फ़िज़ूल की रोशनी है और जिन करोड़ों जीवन-केंद्रों पर उस की निगाह नहीं पड़ती वहाँ १४ अगस्त १९४७ से अधिक गहरा अँधेरा है. श्री नेहरू की सब से बड़ी विफलता यह थी कि उन्होंने समूचे देश के विकास के लिए कोई योजना न बना कर कुछ 'शो विंडो' बनाये. अगर इस से स्थिति पर पर्दा पड़ सकता तो भी कोई बात थी मगर हालात इस से और भी नंगे हो गये. भारत के लिए इस से अधिक शर्म की और क्या बात हो सकती है कि पश्चिम के लगभग हर देश के समाचारपत्रों में भारत की भुखमरी की रोजमर्रा की खबरें होतीं हैं और इस देश के बच्चों के लिए दूध और अन्न की अपील होती है. सरकार यह कह कर संतोष कर सकती है कि स्थिति इतनी भयावह नहीं और समय-समय पर मंत्री यह कहते भी रहे हैं कि विदेशी समाचारपत्रों ने भारत की दरिद्रता और भुखमरी का अतिरंजित चित्र पेश किया है. हाल में 'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता ने अपने पत्र में कलकत्ते के नारकीय जीवन का विवरण लिखा था. इस पर जब संवाददाता ने कांग्रेस पार्टी के कुछ लोगों से बातचीत की तो उन्होंने कहा कि 'भारत-दुर्दशा' के बारे में कुछ भी लिखते रहना विदेशी पत्रकारों की आदत हो गयी है. वर्त्तमान स्थिति मुग़लशाही की याद दिलाती है. उबल रही ज्वालामुखी पर बैठे हुए राजनेताओं को यह भी पता नहीं कि लावा बह रहा है.

नये साल पर सरकार की ओर से जारी किये गये आँकड़ों में यह बताया गया है कि भारत की खेतिहर स्थिति में सुधार हुआ है और अगले वर्ष देश को अन्न संकट का सामना नहीं करना पड़ेगा. यह पहला मौका नहीं है जब कि सरकार ने देशवासियों को इस तरह का दिवास्वप्न दिखाया है. पिछले पांच वर्षों से लगातार इस तरह के वक्तव्य जारी किये जाते रहे हैं और इस के बावजूद हर साल देश की आबादी का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा अकाल का आहार बनता रहा है. अगर उपज अच्छी होती है तो कहाँ जाती है ? विशेषज्ञ यह कह कर छुट्टी पा सकते हैं कि *सारे अन्न भंडार का एक छठा भाग* चूहे खा जाते हैं मगर वह पाँच बटा छह भाग जो कि परिश्रम और क़ुदरत की मेहरबानी से पैदा होता है कितना है ? क्या वह ५५ करोड़ जनता के लिए काफ़ी है ? भारत की कृषि-नीति की लगातार विफलता दिल दहलाने वाली है और उस ने समूचे भारत को भुखमरी के कगार पर छोड़ दिया है. मगर कौन कह सकता है कि भारत के भीतर ही भीतर अकाल पनप रहा है —कम-से-कम उसे यह नहीं लग सकता है कि भारत भुखमरी की दुनिया में रह रहा है जिस ने बंबई, कलकत्ता और नयी दिल्ली के रोशन-गाहों में विशाल पार्टियाँ देखी हों, जहाँ अन्न मेज़ों पर कूड़े की तरह बचा रहता है.

शिक्षा की दुनिया में क्या परिवर्त्तन हुआ ? क्या बच्चे अपनी भाषा में ज्ञान प्राप्त करने लगे ? क्या उन्हें अपनी ज़बान में सोचने की प्रेरणा मिलने लगी ? क्या भाषा-समस्या हल हो गयी ? क्या केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने हिंदी को इतना समृद्ध बना दिया कि अंग्रेज़ी की ज़रूरत नहीं रही या कि अनुवादों के नाम पर प्रतिभाहीन लोगों को बड़ी-बड़ी नौकरियाँ मिल गयीं, शिक्षा में सुधार के नाम पर शिक्षा को और भी यांत्रिक और बेमानी बना दिया गया. हिंदी के विकास के नाम पर हिंदी के कई लाख दुश्मन पैदा कर दिये गए. राजनेताओं को छात्र-असंतोष से बड़ी चिंता है, मगर इस छात्र-असंतोष के लिए कौन जिम्मेदार है ? किस ने मनमाने इंजीनियरिंग कालेज खोल कर ३० हज़ार बेरोजगार इंजीनियर पैदा किये ? देश की वैज्ञानिक प्रतिभा को कुंठित करने और उसे नौकरशाही का अंग बनाने के लिए कौन ज़िम्मेदार है ?

२० वर्षों में किस समस्या का समाधान हुआ ? अंग्रेज़ जाते समय थोड़ी-सी समस्याएँ छोड़ गये थे. उन के बाद के शासकों ने देश के लिए हज़ारों समस्याएँ पैदा कर दीं, किसी और लोकतंत्र के लिए यह बात सही हो सकती है कि प्रशासन का काम समस्याओं को सुलझाना है, भारत के संदर्भ में सही यह है कि शासन का काम समस्याएँ पैदा करना है.

इस सारी स्थिति की परिणति भीतर-ही-भीतर पनप रही देशव्यापी हिंसा के रूप में हो रही है. जगह-जगह नक्सलवाड़ी उपद्रवों का विस्फोट आकस्मिक नहीं है. साधारण आदमी के भीतर गुस्सा और हिंसा है. उस के आक्रोश का पूरा फ़ायदा वे लोग उठा रहे हैं जो कि लोकतंत्र और देश के सब से बड़े दुश्मन हैं. और चीन जैसे शत्रु देश के हितों को भारत में भीतर संगठित कर रहे हैं देश को इस विस्फोटक स्थिति से बचाने के लिए राजनेताओं ने क्या किया है या क्या कर रहे हैं ? कम-से-कम नयी दिल्ली में इस सारी स्थिति के प्रति किसी तरह की चिंता नज़र नहीं आती.

नयी दिल्ली में नक्सलवाड़ी विस्फोटों को ले कर इतनी चिंता नहीं जितनी कि कामराज को ले कर है. *कामराज का क्या होगा ?* मंत्री बनेंगे या प्रधानमंत्री का सिरदर्द ? अगर मंत्री बनेंगे तो संसद् में बोलेंगे किस भाषा में ? ग़लत हिंदी में या नाकाफ़ी अंग्रेज़ी में ? राज-नैतिक सट्टेबाजी दिल्ली के राजनेताओं और बुद्धिजीवियों का सब से प्रिय व्यसन है. दिल्ली के बाहर की दुनिया में, देश में, दुर्घटना है, अकाल है, हिंसा है, नक्सलवाड़ी है और दलबदल है, मगर ये समस्याएँ भाग्य-विधाताओं के लिए अगर महत्त्वपूर्ण हैं भी तो केवल कागज़ी रूप में, असलियत में उन्होंने इस का साक्षात्कार नहीं किया है और न करना चाहते हैं.

गणराज्य दिवस की परेड की आड़ में इति-हास की एक बहुत बड़ी दुर्घटना छिपी हुई है जिसे सारी दुनिया देख रही है, केवल देश के शासक नहीं देख रहे हैं.

—विशेष संवाददाता

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय
जाँच-समिति

बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी जाँच समिति ने यूनिवर्सिटी की वर्तमान स्थिति और उस में सुधार के उपायों पर व्यक्तियों और संगठनों के विचार आमंत्रित किये हैं.

इस संबंध में विचार अथवा स्मरण-पत्र २८ फ़रवरी, १९६९ से पहले समिति के सचिव श्री आर. के. छाबड़ा को विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग, बहादुरशाह जफ़रमार्ग नयी दिल्ली के पते पर पहुँच जाने चाहिए.

यह समिति हाल ही में राष्ट्रपति ने बंबई यूनिवर्सिटी के उपकुलपति की अध्य-क्षता में नियुक्त की थी.

राष्ट्र

बीजू पटनायक

बाक़ी इतिहास

श्री बीजू पटनायक का नाम इस वार काफ़ी दिनों के वाद सुनाई पड़ा. जस्टिस खन्ना ने अपनी जाँच रिपोर्ट में, जिस का प्रकाशन पिछले हफ़्ते किया गया, श्री पटनायक के बाक़ी इतिहास पर प्रकाश डाला है. श्री पटनायक और उन के कुशल सहयोगी बीरेन मित्र पर सत्ता और संपत्ति का दुरुपयोग से संबंधित ७० आरोप थे. जस्टिस खन्ना ने इन में से १२ आरोपों को सही ठहराते हुए उन्हें सत्ता के दुरुपयोग के लिए दोषी ठहराया है. उन के साथ श्री हरिहर सिंह मरदराज को भी दोषी पाया गया है. श्री मरदराज १९६१ और १९६७ के बीच ओडिसा की कांग्रेस सरकार के एक मंत्री थे. रिपोर्ट पर टिप्पणी करते हुए श्री बीजू पटनायक ने नयी दिल्ली में यह कहा कि समूची रिपोर्ट के केवल एक हिस्से का प्रकाशन किया गया है और इस से तथ्य सामने नहीं आते. शायद श्री पटनायक का आशय यह था कि उन्हें जिन आरोपों से मुक्त किया गया है उन का विवरण क्यों नहीं प्रकाशित किया गया. दूसरे शब्दों में श्री पटनायक यह कहना चाहते थे कि उन्होंने सत्ता का दुरुपयोग किया है और नहीं भी किया है. श्री बीजू पटनायक द्वारा सत्ता के दुरुपयोग का प्रकरण लगभग चार वर्ष पुराना है. लोकसभा और राज्यसभा दोनों में उन की कारवाइयों पर केंद्रीय गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट को ले कर कई वार हंगामे हो चुके हैं. डेढ़ साल पहले प्रजा समाजवादी पार्टी के श्री सुरेंद्रनाथ द्विवेदी ने सदन के पटल पर खुफ़िया विभाग की रिपोर्ट रखी थी और सरकार को चुनौती दी थी कि वह या तो श्री पटनायक के विरुद्ध कार्रवाई करे या फिर स्वयं अपने ही विभाग को झूठा क़रार दे. संसद में कई वार हंगामों को ध्यान में रखते हुए चौथे चुनाव के वाद ओडिसा की ग़ैर-कांग्रेसी सरकार ने श्री पटनायक और श्री बीरेन मित्र तथा उन के सहयोगियों के विरुद्ध जाँच आयोग विठाया था.

'मुनाफ़ा' : आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि यद्यपि विक्रय संबंधी समझौते में कहा गया था कि रक़म मुनाफ़े में से दी जायेगी, 'मुनाफ़ा' शब्द की कोई परिभाषा नहीं की गयी थी हालाँकि योजना और सहकारिता विभाग ने इस संबंध में टिप्पणी की थी. मुनाफ़ा शब्द की अलग-अलग व्याख्याएँ की गयीं. जो रिपोर्ट उपलब्ध है उस से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मुनाफ़े की परिभाषा जानबूझ कर नहीं की गयी ताकि कलिंग उद्योग को जल्दी से जल्दी रक़म देने में किसी कठिनाई का अनुभव न हो. औद्योगिक विकास निगम की सलाह के विना प्लांट के विस्तार के लिए कलिंग उद्योग ने १ मार्च, १९६३ को चार जर्मन कंपनियों को दो करोड़ दस लाख रुपये का आर्डर दिया, हालाँकि इस तिथि के पहले ही यह फ़ैसला लिया जा चुका था कि प्लांट औद्योगिक विकास निगम के नाम कर दिया जायेगा. यह मान लिया गया कि औद्योगिक विकास निगम कलिंग उद्योग की करतूतों पर केवल मुहर का काम करेगा. अपनी रिपोर्ट में आगे आयोग ने कहा है कि कलिंग उद्योग से छड़ों की ख़रीद के वारे में आयोग ने टिप्पणी की है कि यह कंपनी श्री पटनायक द्वारा शुरू की गयी थी. जव श्री पटनायक मुख्यमंत्री वन गये तव श्रीमती पटनायक को इस कंपनी का अध्यक्ष नियुक्त किया गया और यह मानने के कारण हैं कि पटनायक परिवार के सदस्यों के इस कंपनी में न्यस्त स्वार्थ थे. जाँच के दौरान यह पाया गया कि ७७,९१,२१७ रुपयों की छड़ें विभिन्न विभागों तथा ओडिसा सरकार के एक

पटनायक : 'माया महा ठगनि हम जानी'

निगम द्वारा कलिंग उद्योग से ख़रीदी गयीं जव कि श्री पटनायक २३ जून, १९६१ को मुख्यमंत्री हो चुके थे. आयोग ने अपनी रिपोर्ट में यह वताया है कि किस तरह श्री पटनायक ने अपने मुख्यमंत्री-पद का फ़ायदा उठाते हुए कलिंग उद्योग को १६,०५,२५० रुपयों की छड़ों का ठेका दिया. रिपोर्ट में आगे यह भी वताया है कि श्री बीजू पटनायक और श्री बीरेन मित्र ने विभिन्न मंत्रालयों के ज़रिये कलिंग उद्योग तथा पटनायक परिवार के अन्य व्यवसायों को साफ़-साफ़ फ़ायदा पहुँचाया.

विरोधी पार्टियों का स्वागत : जाँच आयोग की रिपोर्ट का विरोधी पार्टियों ने स्वागत किया है और संसद के वजट अधिवेशन में इस की अनुगूंजें दोनों ही सदनों में सुनाई पड़ेंगी. यद्यपि जाँच आयोग की रिपोर्ट का कोई सीधा असर केंद्रीय सरकार पर नहीं पड़ता है तव भी इस से कई नैतिक प्रश्न खड़े होते हैं और उन्हें ले कर संसद में काफ़ी प्रतिक्रियाएँ होंगी. स्वतंत्र पार्टी ने जाँच आयोग की रिपोर्ट का स्वागत करते हुए श्री बीजू पटनायक की करतूतों को लोकहित के विरुद्ध वताया है. जहाँ तक कांग्रेस पार्टी का प्रश्न है उस ने इस रिपोर्ट को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया है वलिक उसे नज़रअंदाज़ कर दिया है, यद्यपि यह एक न्यायाधीश द्वारा की गयी न्यायिक जाँच थी.

जाँच

जयपुर गोली कांड की ज़िम्मेदारी किस पर?

जयपुर में ७ मार्च १९६७ को कई राज्यों की पुलिस ने गोलियाँ चलायी थीं. गोलीकांड की जाँच के लिए नियुक्त न्यायमूर्ति श्री भगवतीप्रसाद वेरी के एक सदस्यीय आयोग ने ९ जनवरी १९६९ को दोपहर वाद अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है, जिसे काफ़ी गुप्त रखा जा रहा है.

खयाल है कि आयोग ने पुलिस की गोलियों से मृतकों के परिवारों तथा घायलों को समुचित मुआवज़ा देने की सिफ़ारिश अलग से की है. यह विषय आयोग के विचार के लिए निश्चित नहीं था. फिर भी वताया जाता है कि इस प्रसंग में न्यायमूर्ति वेरी ने, अलग से लिखा है. राज्य सरकार की ओर से जयपुर के कलक्टर ने मृतकों के परिवारों को अलग-अलग धनराशि सहायतार्थ दी थी. आयोग की इस विषय में कथित दिलचस्पी से यह तो स्पष्ट ही है कि मृतक व घायल कितने निरपराध व निर्दोष थे. पढ़ने वाले वच्चे, वहन की शादी के लिए सामान के ख़रीदार, ताँगेवाले आदि मृतकों व घायलों की सूची में रहे हैं, जिस से तथ्य और भी स्पष्ट है.

गोली-कांड में से हरेक की जाँच के वाद यह अवश्य पता चला है कि पुलिस निर्दोष व निरपराध लोगों को ज़रूर मार डालती है. मनोवैज्ञानिक रूप से यह नतीजा निकाला जाता है कि पुलिस डरपोक होती है. समय पड़ने पर घवरा जाती है. जयपुर के जौहरी वाज़ार में गोली चलाने का आदेश देने का उत्तरदायित्व लेने के लिए वहुत अदने क़िस्म के अफ़सर सामने आये. उन्होंने भी ये आदेश मात्र मौखिक ही दिये. गोली-चालन के सामान्य क़ायदे में सक्षम अफ़सर से पूर्व या पश्चात् में लिखित आदेश होने चाहिए. गोली चलाने जैसी आवश्यकता पड़ जाये और पुलिस को उस का पूर्वाभास नहीं हो और पुलिस समझे कि गोलियाँ चलानी पड़ सकती हैं तथा फिर भी गोली चलाने के लिए आदेश देने के लिए घटना-स्थल पर उपयुक्त अफ़सर नहीं हो तथा गोली चलाने के लिए आवश्यक जवावदारी पूरा करने के लिए पुलिस के पास समय नहीं हो और यह सव एक ऐसे शहर में घटे जहाँ पहले कई वर्षों से कोई ज़ोरदार हुड़दंग ही नहीं हुआ हो तो इस धांधले-

बाज़ी की ज़िम्मेदारी से पुलिस व प्रशासन मुक्त नहीं हो सकते.

गोली-चालन का क़ायदा है—गोलियाँ हवा में नहीं चलायी जायेंगी. पुलिस की हरेक गोली का एक ज्ञात व निश्चित लक्ष्य होगा. पुलिस की बंदूक से चली हुई हर गोली पुरअसर होनी चाहिए. पुलिस की गोली से लगने वाली चोटें कमर से नीचे होंगी. जयपुर के जौहरी बाज़ार में पुलिस द्वारा चलायी हुई गोलियाँ चौथी मंज़िल तक से बरामद हुई हैं. घायल और मृतकों में वे ही मुख्य हैं जिन्हें गोलियाँ सीने में, सिर में और हाथ में लगी हैं. बच्चों और पागलों की पहुँच से दूर हथियार रखे जाते हैं कि कहीं वे अपने आप को या दूसरों को नुक़सान नहीं पहुँचा दें. गोली-चालन के विषय मे पुलिस के लिए बनाये गये क़ायदे का भी यही महत्त्व है, लेकिन यदि उन का पालन नहीं होता है या उस में ढिलाई रह जाती है तो वह दंडनीय क्यों नही? जो जिस आदेश के योग्य नहीं है, उस के आदेश का यदि महत्त्व नही है तो अभी यह पता ही नहीं चल सका है कि जौहरी बाज़ार में गोलियाँ चलीं किस के हुक्म से थीं?

हर गोली-कांड के बाद मृतकों, घायलों और गोली-कांड के बाद से गुमशुदा लोगों की एक संख्या और रह जाती है जिस के बारे में हमेशा बहस चला करती है. ग़ैर-सरकारी आँकड़ों के अनुमानों के प्रति जो बहुत लाल-पीली आँखें करता है वह प्रशासन भी, यदि वे अफ़वाहें हैं तो, उन का संतोषप्रद निवारण करने के लिए सचेष्ट नहीं होता. या यदि वह सचेष्ट होता है तो उस को जानना चाहिए कि उसे सफलता नहीं मिलती. आज कोई नहीं कह सकता कि जयपुर के गोली-कांड में कितने मरे, कितने घायल हुए. सरकार ने कहा था कि ९ मरे हैं. तर्क-वितर्क में आदमी खो जाता है. देश में कई जाँच आयोग नियुक्त हुए हैं, जो लाखों रुपये का ख़र्च करने के बाद भी यह ठीक जवाब नहीं दे पाये हैं कि पुलिस ने कितनी गोलियाँ चलायीं, कितने मरे और कितने घायल हुए. यह भी पुलिस व प्रशासन की ही महिमा है जो प्रश्नों के उत्तर ढूंढ़ने में आयोगों की सफल सहायक नहीं होतीं. मरने व घायल होने वालों का अस्पताल में जो रिकार्ड रखा गया उन का हवाला दे कर एक नागरिक भरत खेतान ने, जो जयपुर में कर-परामर्शी है, बेरी-आयोग के सामने एक अलग पहेली खड़ी कर दी. पुलिस के कथन व रेकार्ड से उन्होंने बताया कि सुना-पढ़ा सच है तो मानना पड़ेगा कि मरने के बाद भी आदमी चल-फिर लेता होगा.

एक डिप्टी सुपरिंटेंडेंट ने बयान दिया कि उस ने दो लाशें सीधे मुर्दाखाने में पहुँचायीं. इन दो लाशों का ज़िक्र अस्पताल के इमरजेंसी रजिस्टर में भी बाद में आ गया. परिस्थिति यह है कि मुर्दाघर से लाश वापस अस्पताल में जाने का क़ायदा नहीं है तो लाशों का ज़िक्र इमरजेंसी रजिस्टर में कैसे आया? या यह है कि डिप्टी सुपरिंटेंडेंट बिना मरे हुए ही दो लोगों को मुर्दाघर में डाल गया था या अस्पताल वालों ने क़ायदा तोड़ा. इन में से कोई बात साबित नहीं है तो फिर तो लाशें ही पैदल चल कर पहुँची होंगी.

अस्पताल के मुर्दाघर के रजिस्टर के पन्ने फटे पाये गये. कहा गया कि भंगी ने फाड़ दिया है. सो क्यों? यह प्रश्न भी सरकार ने आयोग के सामने स्पष्ट करने की तकलीफ़ गवारा नहीं की. किसी भी सभ्य व शिक्षित समाज में रिकार्ड, दस्तावेज़ में अदला-बदली और तोड़-फोड़ से बढ़ कर पाप या अपराध नहीं है और बेरी आयोग के लोगों ने मोटे-मोटे काँचों वाले ख़ुर्दबीन लगा कर देखा कि यह अपराध जगह-जगह और बार-बार हुआ. पुलिस के काग़ज़ों में तो वह उतना असामान्य व आपत्तिजनक नहीं लगा, जितना अस्पताल के दस्तावेज़ में. एमरजेंसी विभाग के रजिस्टर, मुर्दाखाने के रजिस्टर, मरीज़ों के बेड-हेड टिकटों, पोस्टमार्टम की रिपोर्टों, आभ्यंतर और बाह्य मरीज़ों के रिकार्डों, चोटों की रिपोर्टों, जयपुर के कलक्टर की विज्ञप्तियों—इन सब को एक साथ पढ़ कर ही भरत खेतान ने बताया कि मरने वालों व घायलों की संख्या इन रिकार्डों के आधार पर दो सौ से ऊपर है. इस के अलावा रोती हुई महिला का किस्सा है जिस ने न्यायमूर्ति भगवती प्रसाद बेरी से पूछा था कि मेरा पति कहाँ है? ऐसे ही अनेक अनुत्तरित प्रश्न हर गोली-कांड और हर जाँच कार्रवाई के बाद शेष रह जाते हैं. कल बेरी-आयोग भी पुलिस को क्रूर, निर्विवेक बता कर गोली-कांड को अनावश्यक बता देगा तो इन विधवाओं, अनाथों और पुत्रहीनों का क्या उपकार होगा जो इस गोली-कांड की देन हैं?

राष्ट्रकुल

जाति-भेद : अफ्रेशियाई संस्करण

राष्ट्रकुल की बैठक में ब्रिटिश प्रधानमंत्री विलसन को भले ही कुछ मिल गया हो पर सामान्यतया इस सम्मेलन की उपलब्धि बहुत ही कम रही. सम्मेलन की समाप्ति पर २० पृष्ठों वाली संयुक्त विज्ञप्ति में जिन महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन किया गया है उन के संबंध में भी सम्मेलन ने किसी ठोस क़दम की सिफ़ारिश नहीं की है. सच्चाई तो यह है कि यदि इस सम्मेलन की कोई विशेषता रही है तो यह कि सदस्य राष्ट्रों ने एक-दूसरे से मतभेद रखने में रजामंदी व्यक्त की. रोडेसियाई मामले पर तो अफ़्रीकी राष्ट्रों ने काफ़ी मज़बूत रुख अपनाया और यह माँग की कि जब तक रोडेसिया में बहुसंख्यक व्यक्तियों का शासन स्थापित न हो जाए तब तक उस की स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए. मगर ब्रिटेन के रुख से ऐसा लगा कि जैसे वह अफ़्रीकी राष्ट्रों को अपना गुस्सा उतारने का मौक़ा देना चाह रहा हो ताकि आगे चल कर जब ब्रिटेन स्मिथ से कोई वार्ता आरंभ करे तो अफ़्रीकियों के विरोध में अधिक दम न रह पाये. रोडेसियाई समस्या से अधिक राष्ट्रकुल के सब से अधिक देशों को प्रभावित करने वाली समस्या एशियाई मूल के अफ़्रीकी निवासियों की थी. इस संदर्भ में भी समस्या ज्यों की त्यों रही बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि समस्या पहले से अधिक जटिल हो गयी क्यों कि एक ओर से ब्रिटेन उन एशियाई मूल के निवासियों को ब्रिटेन में प्रवेश की अनुमति देने के लिए रजामंद नहीं हो रहा है जिन के पास ब्रितानी पारपत्र हैं और दूसरी ओर अफ़्रीकी सरकारें इस बात पर तुली हुई हैं कि उन के देशों में पूर्ण रूप से अफ़्रीकीकरण हो जाये.

अफ़्रीकी व्यवहार : जातिभेद की समस्या ने अफ़्रीका और एशिया के संदर्भ में एक ऐसा बदसूरत रुख ले लिया है जो अफ़्रीका और एशिया के देशों के बीच एक बहुत बड़ी खाई पैदा कर सकता है. राष्ट्रकुल सम्मेलन की संयुक्त विज्ञप्ति में इस समस्या की ओर संकेत मात्र किया गया था. उस में न कोई हल सुझाया गया था और न ही एशियाई देशों के सुझावों का कहीं वर्णन था. उदाहरण के लिए पाकिस्तान ने यह सुझाव दिया था कि राष्ट्रकुल के देशों में एक-दूसरे देश में आने-जाने के संबंध में समानता का सिद्धांत अपना लिया जाये. मगर विज्ञप्ति में इस का वर्णन नहीं है. जातिभेद की इस समस्या के संबंध में जहाँ ब्रिटेन ने अपने ही सिद्धांतों का खंडन किया है वहीं अफ़्रीकी देशों ने भी अव्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया. ब्रिटेन ने दक्षिण अफ़्रीका और रोडेसिया में सभी जातियों के समान अधिकार की वकालत की है मगर अपने संबंध में वह इस अधिकार को बिना शर्त लागू करने के लिए तैयार नहीं. मगर इस से भी अधिक अप्रत्याशित व्यवहार अफ़्रीकी राष्ट्रों ने किया. उन्होंने इस विषय पर ठंडे दिमाग़ से सोचना ही पसंद नहीं किया और बैठक का बहिष्कार कर दिया. अफ़्रीकियों को यह बात महसूस कर लेनी चाहिए कि ब्रिटिश साम्राज्य के समाप्त हो जाने के बाद अफ़्रीकी देशों में अफ़्रीकी और भारतीय मूल के निवासियों का इकट्ठे और सहयोग के साथ रहना आर्थिक रूप से भी और राजनैतिक रूप से भी अफ़्रीकी राष्ट्रों के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ है और यदि उत्तेजनावश या जल्दबाज़ी के कारण उन्होंने इस प्रकार का क़दम उठाना उचित समझा है कि जिस से एशियाई-मूल के निवासियों में आतंक फैल जाये तो इस से अफ़्रीकी राष्ट्रों को भले ही तात्कालिक आर्थिक लाभ हो जाये, निकट भविष्य में इस के बुरे आर्थिक परिणाम तो निकलेंगे ही. राजनैतिक रूप से भी यह अफ़्रीकियों के हित में

नहीं होगा. यह एक विचित्र बात है कि जिस जातिभेद के विरुद्ध वह रोडेसिया और दक्षिण अफ़्रीका में इतनी उग्रता के साथ लड़ रहे हैं उसी जातिभेद और अविश्वास को वह अपने देशों में आधार बना रहे हैं.

कुछ विवेक भी : एशियाई मूल के निवासियों की गंभीर स्थिति किसी हद तक ग़लतफ़हमी का भी परिणाम है. लंदन जाने से पहले उगांडा के राष्ट्रपति ओबोटे ने भारतीय मूल के निवासियों को यह आश्वासन दिया था कि जिन लोगों ने उगांडा की नागरिकता स्वीकार की है उन्हें अफ़्रीकियों जैसे ही अधिकार प्राप्त होंगे. ब्रितानी पारपत्र वाले एशियाइयों के संबंध में ओबोटे का विचार यह है कि ब्रिटेन स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करे कि वह ब्रितानी नागरिक हैं. उस के बाद उगांडा में उन्हें सम्मानित विदेशी नागरिक के रूप में रहने दिया जायेगा. यद्यपि केनिया और ज़ांबिया में भी सरकारी मत यही है कि ब्रितानी पारपत्र वाले एशियाई मूल के निवासियों का उत्तरदायित्व अफ़्रीकी सरकारों का नहीं है फिर भी वह एशियाई समाज में किसी प्रकार का आतंक फैलाने के विरुद्ध हैं.

निधन

रामचंद्र वर्मा : एक 'शब्दमय जीवन' का अंत

१८ जनवरी को वाराणसी में हिंदी के प्रख्यात कोशकार श्री रामचंद्र वर्मा का लंबी बीमारी के बाद ८० वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया. उन के निधन से हिंदी जगत् ने एक ऐसा माली खो दिया है, जो स्वर्गीय वर्मा के शब्दों में ही 'हिंदी रूपी वृक्ष के मूल अंश की देखरेख' में जीवन भर रत रहा.

'शब्द की चोट लगी मोरे मन में, बेधि गयो तन सारा' की वेदना से दृष्टि हासिल करने वाले स्वर्गीय वर्मा ने १५ वर्ष की आयु से ही अपने सधे हुए हाथों से लेखनी सँभाल ली थी. १९०७ में १९ वर्ष की आयु में वह नागपुर से प्रकाशित 'हिंद केसरी' के संपादक हुए और फिर उन्होंने 'विहार बंधु', और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का भी संपादन किया. १९१० में वह 'हिंदी शब्द-सागर' के संपादकीय विभाग में शामिल किये गये. १९२९ तक 'हिंदी शब्द-सागर' को अपने ज्ञान से समृद्ध करते रहे और फिर 'संक्षिप्त हिंदी शब्द-सागर' के संपादन में जुट गये. 'मानक हिंदी-कोश' के आरंभिक निवेदन में उन्होंने लिखा है, 'आचार्य शुक्ल (रामचंद्र शुक्ल) के निधन के उपरांत तो मानो कोश-रचना मेरा व्यसन-सा बन गया था...'

बंगला, मराठी, गुजराती और उर्दू भाषाओं पर अच्छा अधिकार प्राप्त होने से स्वर्गीय वर्मा ने अनुवादों से भी हिंदी की श्रीवृद्धि की. अनेक आधिकारिक कोशों के अलावा उन्होंने संकलनों, जीवनियों और मौलिक रचनाओं द्वारा भी अपनी ज्ञान-पिपासा शांत की. १९११ में वह बाबू श्यामसुंदर दास की प्रेरणा से नागरी प्रचारणी सभा के कोश-विभाग में आये और यहीं से शब्द-साधना विषयक उन के संकल्प की व्यापक दिशा खुली. ६० ग्रंथों के प्रणेता स्वर्गीय वर्मा का नवीनतम ग्रंथ 'शब्दार्थ दर्शन' है. 'पद्मश्री' से अलंकृत श्री वर्मा हिंदी साहित्य सम्मेलन के 'साहित्य वाचस्पति' भी थे. नागरी प्रचारणी सभा से वह लगभग ६० वर्षों तक संबद्ध रहे.

आंदोलन

मुल्की बनाम ग़ैर-मुल्की

पिछले अक्तूबर में पहली बार करीम नगर, वरंगल और खम्मम ज़िलों में तेलंगाना के हितों की रक्षा के लिए छात्रों ने प्रदर्शन किये. तीन महीनों में कोई घटना नहीं हुई इस का मुख्य कारण यह था कि नवंबर में राज्य के मुख्यमंत्री ने घोषणा की कि तीन पंचवर्षीय आयोजनों में तेलंगाना क्षेत्र की बचत ३० करोड़ ५४ लाख रुपये है. यह राशि चौथे आयोजन में इसी क्षेत्र के विकास के लिए खर्च की जायेगी. तेलंगाना में मुख्यमंत्री की इस घोषणा का स्वागत हुआ था. लेकिन १९६८ के खत्म होते-होते असंतोष फैलने लगा, खम्मम के छात्रों ने एक सरकारी बस जला दी. वरंगल में शैक्षणिक संस्थाएँ बंद हो गयीं, कोत्तागुड्म नामक औद्योगिक क्षेत्र में आंदोलन ने अधिक ज़ोर पकड़ा. वहाँ पर खुल्लम-खुल्ला 'ग़ैर-मुल्की घर को जाओ' के नारे लगे.

इतिहास और भूगोल : वर्तमान आंध्रप्रदेश का संगठन दो राज्यों के हिस्सों से हुआ है. इस राज्य का बहुत बड़ा क्षेत्र पहले मद्रास राज्य में शामिल था. ८ ज़िले विलीन हैदराबाद राज्य द्वारा शासित थे. आंध्रप्रदेश के पुनर्गठन के बाद भी दोनों क्षेत्रों का मिलन पूरी तौर पर नहीं हो पाया. विलीन हैदराबाद राज्य के आठों तेलगू भाषी ज़िले तेलंगाना के नाम से संबोधित होते हैं. शेष भाग आंध्र कहलाता है. राज्य पुनर्गठन के १२ वर्ष बाद भी आंध्रप्रदेश आंध्र और तेलंगाना में बँटा हुआ है.

निज़ाम के शासन काल में तेलंगाना के लोग शैक्षणिक और आर्थिक उन्नति नहीं कर सके. मद्रास के तेलगू भाषी लोग शिक्षा के क्षेत्र में काफ़ी समुन्नत थे. इसी लिए १९५६ में जब आंध्रप्रदेश का पुनर्गठन हुआ तो दोनों क्षेत्रों के लोगों ने मिल कर एक समझौता किया. १९५८ में लोकसभा ने उस समझौते को क़ानून का रूप दिया. समझौते के अनुसार ५ वर्ष के लिए एक मुल्की क़ानून लागू हुआ. क़ानून का मुद्दा यह था कि तेलंगाना की सरकारी नौकरियों में ऐसे ही व्यक्तियों की नियुक्ति होगी जो १५ वर्ष से उस क्षेत्र में निवास करते रहे हों. तेलंगाना के छात्रों में भी मुल्की छात्र ही प्रवेश पा सकते हैं. यह क़ानून १९५९ में लागू हुआ, ६४ में उस की अवधि ५ साल के लिए बढ़ाई गयी. अगली मार्च में यह अवधि समाप्त होने जा रही है. तेलंगाना के जनमत को ध्यान में रखते हुए राज्य शासन ने केंद्र से अनुरोध किया है कि वह लोकसभा में आवश्यक क़ानून पास कराये.

सब से ज्यादा असंतोष तेलंगाना के सरकारी कर्मचारियों में है. सरकारी कर्मचारी दो गुटों में बँटे हुए हैं: (१) आंध्र अधिकारी और (२) तेलंगाना अधिकारी. तेलंगाना के अधिकारी अपने को बेबस और निरीह अनुभव करते हैं. उन की शिकायत यह है कि समझौते का पालन नहीं किया जा रहा है. **दिनमान** के प्रतिनिधि को इस बात की भी अविकृत जानकारी मिली है कि ६०० पदों पर आंध्र के व्यक्ति नियुक्त किये गये हैं जब कि क़ानून के अनुसार उन जगहों पर तेलंगाना के लोगों की नियुक्ति होनी चाहिए. यों मुख्यमंत्री ने यह भी आश्वासन दिया है कि उन व्यक्तियों को शीघ्र ही हटा दिया जायेगा.

दूसरा पहलू : तेलंगाना के असंतोष की प्रतिक्रिया आंध्र के लोगों पर भी हुई है. उन का कहना है कि एक ही राज्य में कुछ लोगों को विशेष सुविधा देना अवैध है. १० वर्ष तक मुल्की होने की सुविधा मिल चुकी है. एक ही भाषा बोलने वाले एक ही राज्य के लोग मुल्की और ग़ैर-मुल्की क्यों कहे जाते हैं. दूसरी ओर तेलंगाना के लोगों का कहना है कि यह क्षेत्र ऐतिहासिक कारणों से पिछड़ा हुआ है. राज्य के सभी अधिकारी आंध्र क्षेत्र के हैं. सचिवालय तथा संचालकों के कार्यालयों में आंध्र तथा तेलंगाना के निवासियों का अनुपात ठीक नहीं.

तेलंगाना के हितों की रक्षा करने वाले लोगों ने इधर तेलंगाना राज्य की स्थापना पर बल देना शुरू किया है. उन की तीन माँगें हैं : (१) तेलंगाना क्षेत्र की बचत का उपयोग उसी क्षेत्र के लिए होना चाहिए; (२) इस क्षेत्र की सरकारी नौकरियों में यहीं के लोगों की नियुक्ति होनी चाहिए; (३) सचिवालय आदि जगहों में दोनों क्षेत्रों के लोगों की आबादी के अनुपात से जगह मिलनी चाहिए. मुल्की क़ानून की अवधि बढ़ानी चाहिए. मुख्यमंत्री ने ये तीनों माँगें स्वीकार कर ली हैं. शिकायत यदि है तो सिर्फ़ यह कि उन के आश्वासन को ईमानदारी से अमल में नहीं लाया जा रहा है. असलियत यह है कि असंतुलन को बनाये रखने के पीछे भी जो प्रवृत्ति काम करती रही है उस की ज़िम्मेदारी राज्य सरकार पर ही जाती है. यदि सिद्धांत रूप में यह स्वीकार कर लिया गया कि तेलंगाना क्षेत्र पिछड़ा हुआ है और उस के विकास के लिए क़दम उठाये जाने चाहिएँ तो जो कुछ भी राशि उस क्षेत्र के विकास के लिए स्वीकार की गयी थी उस का उपयोग क्यों नहीं किया गया.

आकर्षणहीन विकल्प और विभिन्न दल

नामांकन पत्रों के दाखिले के वाद ग़लत पत्रों की अस्वीकृति और किन्हीं कारणों से उदासीन उम्मीदवारों द्वारा अपने पत्रों की वापसी का दौर खत्म हुआ और अब चारों राज्यों में अंतिम रूप से चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार अपनी सारी कोशिशों के साथ जनता के दरवाज़े पर दस्तक देने लगे हैं. जनता में भी चुनाव की हलचलें शुरू हो गयी हैं और वह भी मत-निर्धारण की समस्या से जूझती दिखाई दे रही हैं. हर दल और हर उम्मीदवार अपने श्रेष्ठतम के साथ मत याचना के लिए मतदाता की ओर देख रहा है. कुछ दिनों पहले तक बंगाल में, खास तौर से कलकत्ता की सड़कों और गलियों में बांगला बाचाव, बांगला विभाजनई बांगलार पतनेर कारण जैसे नारे खूब ज़ोर-शोर के साथ सुनाई दे रहे थे. अब वे ढीले पड़ गये हैं और उन की जगह कांग्रेस के वोट दिन और यू. एफ़. के वोट दिन जैसे पोस्टर लग गये हैं. कहीं-कहीं इन्हें मिटाया भी गया है. अति दक्षिणपंथी इन नारों के विपरीत अति-वामपंथी नक्सलवादियों की गतिविधि पूर्ववत् है. उन्होंने निर्वाचन बायकट, नक्सलवाड़ी लाल सलाम, केरलेर वीर कृषक लाल सलाम जैसे नारों के साथ अपना अभियान जारी रखा है. अति वामपंथियों और अति दक्षिणपंथियों: दोनों का अभियान जारी है लेकिन अंतर्विरोधों से भरे वातावरण में जो चुनाव होने जा रहा है उस में शायद जनता गुमराह नहीं हुई है.

इस वार के चुनाव में ६४ जगहों पर सीधी टक्कर हो रही है जब कि पिछले आम चुनावों में ३६ सीटों पर सीधा संघर्ष हुआ था. जिन चुनाव क्षेत्रों में त्रिकोणात्मक संघर्ष होने वाले हैं उन की संख्या ८१ होगी. ५७ निर्वाचन क्षेत्रों में हर सीट के लिए चार उम्मीदवार हैं. ५५ निर्वाचन क्षेत्रों में हर सीट के लिए ५-६ उम्मीदवार हैं. सिर्फ़ पाँच सीटों पर ७ उम्मीद-वार होंगे. एक ऐसी भी सीट है जिस पर एक साथ आठ उम्मीदवार हैं.

मुस्लिम मत : इस राज्य में मुसलमानों की आबादी ७५ लाख है और उन में ३२ लाख मतदाता हैं. ७० निर्वाचन क्षेत्रों में मुस्लिम मतदाताओं का प्रतिशत ३५ है. इन निर्वाचन क्षेत्रों में उम्मीदवारों की विजय बहुत दूर तक मुस्लिम मत पर निर्भर करेगी. मालदह और मुर्शिदावाद में मुसलमानों का बहुमत है. इन क्षेत्रों में हर दल के उम्मीदवार मुसलमान होते हैं. कांग्रेस ने कुल २६ उम्मीदवार खड़े किये हैं. पिछले चुनाव में अधिकांश मुस्लिम मत कांग्रेस के विरुद्ध पड़े थे. भूतपूर्व मुख्यमंत्री प्रफुल्लचंद्र सेन ने कहा था कि अगर मुझे सिर्फ़ मुसलमानों के ९०० वोट मिल गये होते तो मैं नहीं हारता. इस बार भी स्थिति में कुछ खास परिवर्तन नज़र नहीं आता. इतना ज़रूर है कि कांग्रेस को पिछले चुनाव की तुलना में इस बार कुछ अधिक मत मिल सकते हैं. लोकदल, बंगाल जातीय दल और प्रगतिशील मुस्लिम लीग के उम्मीदवारों में भी कुछ मत बँट जायेंगे. क्यों कि इन दोनों दलों के मुख्य कर्णधार मुस्लिम नेता हैं. यह बात दूसरी है कि लोकदल और बंगाल जातीय दल का गठन जाति के आधार पर नहीं हुआ है. बदक़िस्मती यह है कि बंगाल में भी जातीय कट्टरता बढ़ती रही है. समय-

अजय मुखर्जी प्रफुल्लचंद्र सेन

समय पर जो सांप्रदायिक दंगे हुए उन से इस भावना को अधिक बल मिला है. लोकसभा के एक निर्दलीय सदस्य बदरुददज़ा का ख्याल है कि अधिसंख्य मुसलमान कांग्रेस के विरुद्ध हैं.

कमज़ोर मोर्चा : पिछले चुनाव में कांग्रेस के खिलाफ़ दो मोर्चे संगठित हुए थे. एक का नेतृत्व ज्योति वसु ने और दूसरे का अजय मुखर्जी ने किया था. इस बार सिर्फ़ एक मोर्चा है और एक तरह से कांग्रेस का मुक़ाबला करने में अधिक समर्थ है लेकिन नये दलों के आविर्भाव से चुनाव त्रिकोणात्मक ही होगा हालाँकि मुख्य संघर्ष संयुक्त मोर्चा और कांग्रेस के बीच नहीं होगा. यों इस का मतलब यह भी नहीं है कि संयुक्त मोर्चा एक होने के कारण अधिक शक्तिशाली हो गया है. दो दल मोर्चे से निकल चुके हैं और कई दल किसी भी वक़्त निकलने के लिए तैयार बैठे हैं. **दिनमान** के साथ अपनी

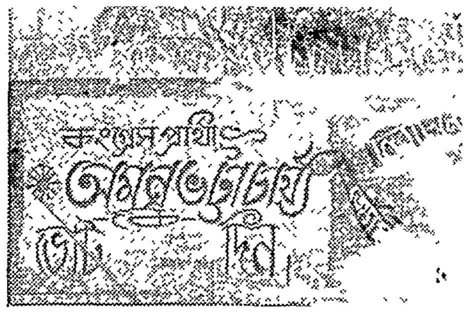

कांग्रेस को वोट दो; मार्क्सवादी कम्यूनिस्ट पार्टी को वोट दो

बात-चीत के दौरान कई दलों के प्रवक्ताओं ने यह संभावना व्यक्त की कि चुनाव के बाद वे संयुक्त मोर्चे से निकल सकते हैं. इस बार का चुनाव पिछले चुनाव की तुलना में इस लिए भी महत्त्वपूर्ण है क्यों कि इस बार पिछले चुनाव से अधिक पार्टियाँ हैं और पहले से अधिक सीधा संघर्ष है. इस बार स्त्री उम्मीदवारों और निर्दलीयों की भी संख्या पिछले चुनाव की तुलना में कम है. **प्रगतिशील मुस्लिम लीग** के आविर्भाव ने इस चुनाव को एक और रंग दिया है जिस का कोई अस्तित्व पिछले चुनाव में नहीं था. नक्सलवादियों का अस्तित्व भी इस चुनाव का एक उल्लेख-नीय पहलू है. यह शुरू से ही जनतांत्रिक तरीक़ों और चुनाव का विरोध करता रहा है. इन के चुनाव-बहिष्कार के आंदोलन ने चुनाव के वातावरण को कुछ तनावपूर्ण ज़रूर बनाया है. इन का विश्वास यह है कि अन्न, आवास और बेरोज़गारी की समस्या का हल केवल सशस्त्र किसान क्रांति के ही ज़रिये संभव हो सकता है, वर्तमान तरीक़े से नहीं. एक अन्य राजनैतिक दल (**आमरा बांगाली**) के नाम से सामने आया है जो क्षेत्रीयता और जातीयता की भावनाओं को उभारने की कोशिश कर रहा है. इसी से मिलती-जुलती एक और संस्था **बंगाल का राष्ट्रीय दल** (एन. पी. वी.) के नाम से सामने आई है जिस के संस्थापक अध्यक्ष जहाँगीर कबीर हैं. उन्होंने दावा किया है कि यदि वह सत्ता में आ गये तो राज्य की नौकरियों में ८० प्रतिशत लोग बंगाल के ही होंगे. इस चुनाव में कांग्रेस के ६ भूतपूर्व मुख्य-मंत्री चुनाव लड़ रहे हैं. कलकत्ता में चौरंगी क्षेत्र से सिद्धार्थ शंकर राय का मुक़ाबला निर्दलीय उम्मीदवार अनंत लाल सिंह से है जिन्हें संयुक्त मोर्चे का समर्थन प्राप्त है. १९३० में चिटगाँव आर्मरी पर जो आक्रमण किया गया था उस में भी श्री सिंह ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी. आशुघोष, जिन्होंने प्रगतिशील जनतांत्रिक मोर्चे की कांग्रेस समर्थक सरकार को अपदस्थ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी एक साथ ही ३ चुनाव क्षेत्रों से लड़ रहे हैं. उन्हें कांग्रेस से निकाल दिया गया था. अजय मुखर्जी और एक भूतपूर्व मंत्री काजिम अली मिर्जा भी दो-दो जगहों से

पोस्टरों की भाषा : चुनाव नहीं, क्रांति; बांगाली बाचाव

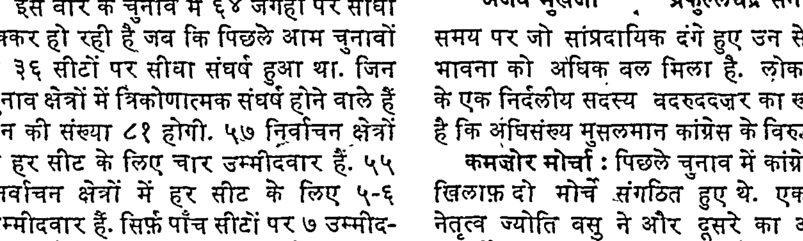

चुनाव लड़ रहे हैं. श्री मिर्जा भी कांग्रेस से निष्कासित कर दिये गये थे. इस बार उन की हैसियत निर्दलीय उम्मीदवार की है हालांकि उन्हें भी संयुक्त मोर्चे ने समर्थन दिया है.

विहार में ३१८ जगहों के लिए चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की संख्या २१४१ है. तीन मुख्यमंत्रियों के अलावा जो अन्य मशहूर उम्मीदवार मैदान में हैं उन में ज्यादातर का संघर्ष वहुकोणीय है. भारतीय क्रांति दल के भूतपूर्व मुख्यमंत्री महामाया प्रसाद सिंह पटना और महाराज गंज दो क्षेत्रों से चुनाव लड़ रहे हैं. पिछले चुनाव में उन्होंने पटना से भूतपूर्व कांग्रेसी मुख्यमंत्री कृष्णवल्लभ सहाय को २२ हजार मतों से हराया था. पटना में श्री सिंह के साथ-साथ ८ उम्मीदवार हैं. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के डॉ. ए. के. सेन, कांग्रेस के मोइनुलहक़, जनसंघ के डॉ. रामप्रसाद लाल, संसपा के नर्मदेश्वर प्रसाद, शोषित दल के छोटेलाल सिन्हा, पिछड़ी जातियों के स्वर्णसिंह तथा दो निर्दलीय उम्मीदवार. महाराज गंज में श्री सिंह का संघर्ष पांच कोणीय है. उन के मुख्य प्रतिद्वंद्वी कांग्रेस के शंकरप्रसाद हैं. अन्य प्रतियोगियों में प्रसोपा के जितेंद्र यादव, जनसंघ के शंभुनाथ सिंह और निर्दलीय रामप्रसाद सिंह हैं. इस चुनाव में महामाया प्रसाद सिंह की स्थिति पटना के मुकावले में कुछ अच्छी है क्यों कि यहां प्रतिद्वंद्वी कम महत्त्व के व्यक्ति हैं. एक अन्य उम्मीदवार सतीश प्रसाद सिंह, जिन्हें शोषित दल की सरकार में चार दिनों तक मुख्यमंत्री बने रहने का मौक़ा मिला था, मुंगेर जिले के परवत्ता क्षेत्र से चुनाव लड़ रहे हैं. लोकतांत्रिक कांग्रेस के भोला पासवान शास्त्री पूर्णिया जिले के कोरहा क्षेत्र से खड़े हैं. पिछले चुनाव में वह कांग्रेस टिकट पर इसी क्षेत्र से विजयी हो कर विधानसभा में आये थे.

विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष धनिकलाल मंडल संयुक्त समाजवादी दल के टिकट पर दरभंगा जिले के फूलपरास क्षेत्र से चुनाव लड़ रहे हैं. उन का भी मुक़ावला कांग्रेस और जनसंघ के अलावा कुछ निर्दलीय उम्मीदवारों से है. संयुक्त मोर्चे के भूतपूर्व समाजवादी उपमुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर दरभंगा जिले के ताजपुर क्षेत्र से लड़ रहे हैं. उन के प्रतिद्वंद्वी कांग्रेस, शोषित दल और जनसंघ के उम्मीदवार हैं. यह संघर्ष चौतरफ़ा है. संसपा के ही एक अन्य मंत्री रामानंद तिवारी शाहावाद जिले के शाहपुर क्षेत्र से खड़े हैं. इन के खिलाफ़ भी भारतीय क्रांति दल, जनसंघ और राम राज्य परिषद् के अलावा कई निर्दलीय सदस्य हैं. प्रसोपा के एक महत्त्वपूर्ण नेता वसावन सिंह डेहरी आनसोन से खड़े हैं. इन के भी कई प्रतिद्वंद्वी हैं. भूतपूर्व संयुक्त मोर्चे के कम्युनिस्ट मंत्री चंद्रशेखर सिंह भी वरौनी में चौतरफ़े संघर्ष में घिरे हुए हैं. शोषित दल के एक उल्लेखनीय उम्मीदवार जगदेव प्रसाद कुरता क्षेत्र से खड़े हैं और उन का विरोध भी कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी कई उम्मीदवार कर रहे हैं. शोषित दल के उम्मीदवार को कांग्रेस ने समर्थन दिया है. जनता पार्टी के नेता कामाख्या नारायण सिंह हजारी बाग़ के छत्ता और मांडु क्षेत्र से खड़े हैं. जिन अन्य कांग्रेसी उम्मीदवारों के नाम महत्त्वपूर्ण हैं उन में से कुछ यों हैं: परसा से दारोगा प्रसाद राय, हैदरघाट से वालेश्वर राम, जीरादेई से जवाहर हुसैन, नौटन से केदार पांडेय और पुरनो से कमल देव नारायण सिंह. इन सभी को ग़ैर-कांग्रेसी उम्मीदवारों से वहुत तीखा मुक़ावला करना होगा.

नामांकन पत्रों की वापसी आदि के वाद उत्तरप्रदेश के चुनाव-मैदान में २८७० उम्मीदवार वाक़ी वचे हैं. इस चुनाव की एक खासियत यह भी है कि ४२५ जगहों में से सिर्फ़ एक जगह यानी अल्मोड़ा में कांग्रेस और जनसंघ के बीच सीधा संघर्ष है. सन् ६७ के चुनाव में दो सीधे संघर्ष हुए थे. एक गोंडा जिले के तुलसीपुर क्षेत्र में और दूसरा हमीरपुर के मौदहा क्षेत्र में, और इन दोनों में जनसंघ के उम्मीदवार विजयी हुए थे. इस वार विभिन्न दलों मुख्यतः कांग्रेस, भारतीय क्रांति दल और जनसंघ, सभी के शीर्षस्थ नेताओं को वहुकोणीय संघर्ष का सामना करना पड़ेगा. ८० जगहों पर ६-६ उम्मीदवार हैं और ३२२ क्षेत्रों में ५ से ले कर ९ उम्मीदवार हैं जब कि पिछले चुनाव में केवल २७२ जगहों पर इस तरह के संघर्ष हुए थे. त्रिकोणीय संघर्ष १६ जगहों पर होगा जब कि ४७ जगहों पर प्रतिद्वंद्विता चार उम्मीदवारों के बीच है. प्रदेश कांग्रेस के महंत चंद्रभानु गुप्त ने रानीखेत और लखनऊ के सरोजनी नगर से अपने चुनाव के लिए नामांकन पत्र दाखिल किया है. विभिन्न ग़ैर कांग्रेसी दलों ने कोशिश की थी कि उन के खिलाफ़ सर्वमत से किसी प्रभावशाली नेता को खड़ा किया जा सके लेकिन उस में सफलता नहीं मिली. परिणाम यह है कि सरोजनी नगर में गुप्त के खिलाफ़ कई उम्मीदवार हैं. मुख्य मुक़ावला जनसंघ के हीरालाल यादव से है जिन्हें भारतीय क्रांति दल ने भी समर्थन देने का वायदा किया है. सरोजनी नगर में जनसंघ और भारतीय क्रांति दल के समझौते के रवैये से शेष ग़ैर कांग्रेसी दलों को काफ़ी असंतोष भी है. भारतीय कम्युनिस्ट दल ने जनसंघ को समर्थन न देने की पहले ही घोषणा की थी और उस का एक उम्मीदवार मैदान में है भी. तीन निर्दलीयों के अलावा संसपा के राम सागर आजाद और मजदूर परिषद के शिवकुमार भी प्रतिद्वंद्वियों में से हैं. यदि श्री गुप्त को सरोजनी नगर में ७ प्रतिद्वंद्वियों से मुक़ावला करना है तो रानीखेत में उन के ३ प्रतिद्वंद्वी हैं. वहां भी उन का मुख्य संघर्ष गोविंद सिंह मेहरा से है जिन्हें श्री गुप्त ने पिछले आम चुनाव में वड़ी मुश्किल से केवल ७० मतों से हराने में सफलता प्राप्त की थी. प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष कमलापति त्रिपाठी वनारस के चंदौली क्षेत्र से खड़े हुए हैं जहां पर उन का मुख्य मुक़ावला संयुक्त समाजवादी पार्टी के चंद्रशेखर से है, श्री चंद्रशेखर ने श्री त्रिपाठी को पिछले चुनाव में मात दी थी. यहां भी ७ प्रतिद्वंद्वी हैं. भारतीय क्रांति दल की तरफ़ से मोतीराम शास्त्री, जनसंघ के गनपत राय जालान, प्रजा समाजवादी पार्टी के राजनाथ सिंह, स्वतंत्र दल के रामजीत सिंह और रिपब्लिकन के रामसूरत. अन्य प्रतिद्वंद्वियों में से हैं. संयुक्त मोर्चे के भूतपूर्व संसपाई वित्तमंत्री रामस्वरूप वर्मा की उम्मीदवारी को ले कर संसपा की प्रादेशिक और केंद्रीय कार्यकारिणी में असहमति रही और केंद्र के निर्देशन के वावजूद प्रादेशिक कार्यकारिणी ने उन्हें अपना चुनाव-चिन्ह नहीं दिया. अव श्री वर्मा कानपुर के राजपुर क्षेत्र से निर्दलीय की हैसियत से चुनाव लड़ रहे हैं. उन्होंने दल से त्यागपत्र भी दे दिया है. प्रदेश कांग्रेस के महामंत्री और चंद्रभानु गुप्त

महामाया प्रसाद सिंह

कर्पूरी ठाकुर

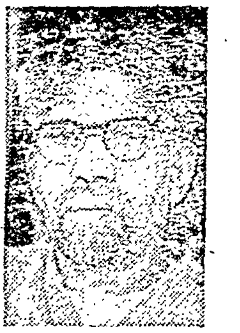
भोला पासवन शास्त्री

हुमायून कविर
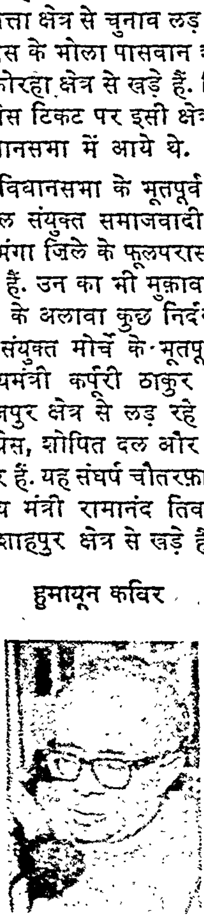

डॉ. प्रफुल्लचंद्र घोष
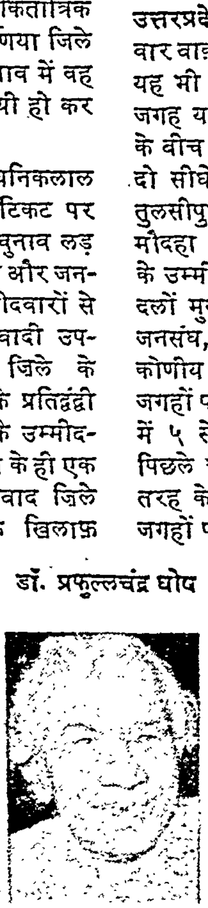

ज्योति वसु
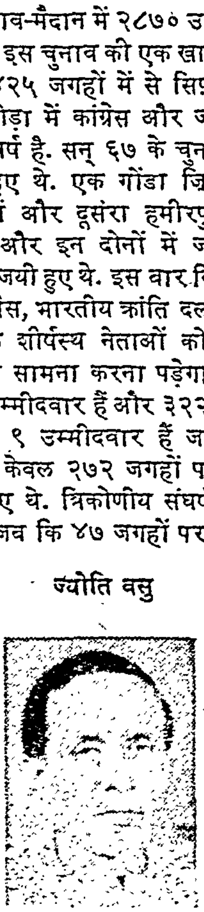

कमलापति त्रिपाठी

प्रभुनारायण सिंह

चंद्रभानु गुप्त

के लेफ़्टिनेंट बनारसी दास एटा के पटियाली क्षेत्र मे ९ उम्मीदवारों से घिरे हुए हैं. पिछला चुनाव उन्होंने बुलंदशहर से लड़ा था. प्रदेश कांग्रेस के ही दूसरे महामंत्री हेमवती नंदन बहुगुण इलाहाबाद के बर्रा चुनाव क्षेत्र में ७ प्रतिद्वंद्वियों के बीच घिरे है. क्रांति दल के चरणसिंह का मुकाबला मेरठ जिले के छपरौली चुनाव क्षेत्र मे, कांग्रेस, रिपब्लिकन और निर्दलीय सदस्य से है. अलीगढ़ ज़िले में कांग्रेस के मोहनलाल गौतम का मुक़ाबला चरणसिंह की पत्नी गायत्री देवी से है. श्रीमती सिंह भारतीय क्रांति दल की उम्मीदवार है और पहली बार चुनाव के मैदान मे आई हैं. नवाबी नगर रामपुर में एक संघर्ष माँ और बेटे के बीच है. कांग्रेस की तरफ़ से रामपुर के भूतपूर्व नवाब मुतर्ज़ा अली ख़ाँ खड़े हैं और उन के विरोध मे उन की माँ जो राजम्मा के नाम से पुकारी जाती हैं निर्दलीय उम्मीदवार की हैसियत से खड़ी हैं. स जगह से मजलिसे मशावरात के एक उम्मीदवार फ़ज़लेहक भी चुनाव लड़ रहे हैं.

कांग्रेस के भूतपूर्व मंत्री जगनप्रसाद रावत को आगरा के खैरागढ़ चुनाव क्षेत्र में त्रिकोणीय संघर्ष का सामना करना पड़ रहा है. संयुक्त मोर्चे के संसपाई मंत्री प्रभुनारायण सिंह का मुक़ाबला गाज़ीपुर के सैदपुर क्षेत्र में कांग्रेस के रामप्रवेश चौबे, जनसंघ के कृष्णशंकर श्रीवास्तव, भारतीय क्रांति दल के रामकरण सिंह यादव, तथा दो निर्दलीय सदस्यों: लालजी और अभयनाथ दुबे से है. पीलीभीत के एक चुनाव क्षेत्र से कांग्रेस के अलीज़हीर खड़े हुए हैं. उन की मुख्य प्रतिद्वन्द्विता जनसंघ के बाबूराम प्रभाती, प्रसपा के वीरेंद्र सहाय और कम्युनिस्ट दल के नफ़ीस अहमद से है. इस क्षेत्र से पिछले चुनाव में बाबूराम प्रभाती विजयी हुए थे. अलीज़हीर के लिए यह क्षेत्र नया है और अभी उन के पाँव जमते नहीं दिखाई दे रहे हैं. देवरिया ज़िले के सिवरही क्षेत्र से कांग्रेस के गेंदासिंह खड़े हैं. उन के प्रतिद्वंद्वी ज़िला परिषद् के अध्यक्ष और पुराने कांग्रेसी मंगलदेव हैं. गेंदासिंह एक ज़माने से इस क्षेत्र के बहुत ही लोकप्रिय नेता रहे हैं. किसानों में उन का अच्छा प्रभाव है. जनसंघ के गंगाभक्त सिंह का मुकाबला, हरदोई में ज़िला कांग्रेस के अध्यक्ष श्रीचंद

अग्रवाल से है. इस क्षेत्र के बहुत से कांग्रेसी भारतीय क्रांति दल में शामिल हो गये हैं. इस ज़िले में कांग्रेस की स्थिति पिछले चुनाव में भी काफ़ी खराब थी. कांग्रेसी शासन में

दलानुसार प्रत्याशी

	उत्तरप्रदेश	बिहार	बंगाल	पंजाब
कुल जगहें	४२५	३१८	२८०	१०४
कुल प्रत्याशी	२८७०	२१४१	१०१९	४७०
राजनैतिक दल				
कांग्रेस	४२४	३१८	२८०	१०३
जनसंघ	३९७	३१५		३२
भाक्रांद	४०८	१०३		
संसोपा	२५२	१९५	१३	७
स्वतंत्र	६८	५०		७
प्रसोपा	१०१	१९		
भा. कम्युनिस्ट	१००	१६०	३६	२८
मार्क्स. कम्युनिस्ट	२८	३०	१००	९
निर्दलीय तथा अन्य छोटे दल	१०९२	११६	४९५	१६७
अकाली				६६
रिपब्लिकन				३३
जनता पार्टी		१५१		१८
लो. कांग्रेस		११४		
पिछड़ी जातियाँ		२३५		
प्राउटिस्ट		२००		
शोषित दल		१३५		
बंगला कांग्रेस			४९	
फ़ारवर्ड ब्लाक			२९	
क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी			१७	

जनसंघ के भूतपूर्व नेता माधो प्रसाद त्रिपाठी, बस्ती ज़िले के बाँसी क्षेत्र से प्रत्याशी हैं. पिछले चुनाव में वह इसी क्षेत्र से पराजित हुए थे. अब की बार उन का मुक़ाबला कांग्रेस के प्रभुदयाल विद्यार्थी से है. इस चुनाव में सब से

चरण सिंह

खस्ता हालत प्रजा समाजवादी दल की है. त्रिलोकी सिंह घबरा कर कांग्रेस में शामिल हो गये थे और इस बार वह लखनऊ के एक चुनाव क्षेत्र से लड़ रहे हैं. प्रसपा के एक दूसरे उम्मीदवार प्रताप सिंह नैनीताल के खातिमा क्षेत्र से खड़े है और उन का मुकाबला ११ उम्मीदवारों से है.

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी जब दूसरी बार पंजाब के चुनाव-दौरे पर गयी तब उन का जो स्वागत हुआ, उसे देख कर कांग्रेसी उम्मीदवारों का सीना एक बालिश्त फूल गया. अब वे महसूस करने लगे हैं कि पंजाब में कांग्रेस पार्टी का स्पष्ट बहुमत अवश्यंभावी है. परंतु भीतर ही भीतर वरिष्ठ स्थानीय नेता यह भली प्रकार जानते है कि प्रधानमंत्री का स्वागत-सत्कार उन के बतौर कांग्रेसी नेता के नहीं, बल्कि देश के प्रधानमंत्री के रूप में किया गया है.

अकाली नेता संतफ़तेहसिंह और गुरनामसिंह के वक्तव्यों ने अकाली दल और जनसंघ के कार्यकर्ताओं को और नज़दीक ला दिया है. संत फ़तेहसिंह ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि अगर अकाली पार्टी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हो भी गया तो भी वह अपनी सरकार जनसंघ से मिल कर ही बनायेगी. उम्मीदवारों की सूची देखने से पता चलता है कि १९६७ के आम चुनाव में जहाँ ६०२ उम्मीदवार मैदान में

गुरनामसिंह

थे वहाँ इस बार केवल ४७० हैं. १५ निर्वाचन-क्षेत्रों में सीधा और २३ में त्रिकोणात्मक मुक़ाबला होगा जब कि पिछले आम चुनाव में क्रमशः १ और ८ निर्वाचन - क्षेत्रों में ही ऐसी स्थिति थी. पिछले आम चुनावों में संत अकाली दल ने ५८ और तारासिंह अकाली दल ने ६२ उम्मीदवार खड़े किये थे जिस में पहले को २४ और दूसरे को केवल २ स्थान मिले थे. अकाली दल और जनसंघ का २०, दल और कम्युनिस्ट (मार्क्सवादी) का ९, दल तथा कम्युनिस्ट पार्टी और स्वतंत्र पार्टी के बीच ४-४ स्थानों के लिए समझौता हुआ है. अकाली दल तथा कम्युनिस्ट पार्टी में शेष स्थानों के चुनाव-समझौते की बातचीत टूट गयी है. आम चुनाव में मालवा इलाक़े से अकाली और कम्युनिस्टों को तीन-चौथाई स्थान प्राप्त हुए थे जब कि इस बार उन का समझौता केवल फ़िरोजपुर ज़िले में ही हो सका है. निर्दल उम्मीदवारों की संख्या इस बार १६७ है जब कि आम चुनावों में २५५ थी.

कांग्रेस लाख कोशिश करने के बावजूद पायल निर्वाचन-क्षेत्र से अपने ही भूतपूर्व नेता ज्ञानसिंह राड़ेवाला के खिलाफ़ कोई उम्मीदवार खड़ा नहीं कर सकी. पिछले दिनों उन्होंने अपने एक कार्यकर्त्ता ओमप्रकाश को जरूर मैदान में उतारना चाहा था लेकिन एक निर्दल उम्मीदवार बेअंत सिंह के पक्ष में वह अखाड़े से हट गये. अब मजबूरन कांग्रेस बेअंत सिंह के साथ सहयोग कर रही है. पिछले आम चुनाव में भी यहाँ से राड़ेवाला और बेअंतसिंह का मुक़ाबला हुआ था. फ़र्क़ केवल इतना था कि तब राड़ेवाला कांग्रेसी थे और बेअंत सिंह अकाली. क़िला रायपुर से दो भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों—गुरनामसिंह (अकाली) और लक्ष्मणसिंह गिल (जनता) का मुक़ाबला है. कांग्रेस की स्थिति यहाँ अच्छी नहीं है, लेकिन लोगों में भ्रम पैदा करने की गरज से उन्होंने एक ऐसे उम्मीदवार का चुनाव किया है जिसका नाम भी गुरनामसिंह है. कांग्रेस की यह चाल कहाँ तक सफल होती है वक़्त ही बतायेगा. गिल फ़िरोजपुर ज़िले के धर्मकोट से भी चुनाव लड़ रहे हैं. वहाँ उन की टक्कर अकाली संसद्-सदस्य बस्ती से है. कम्युनिस्ट और अकाली पार्टी में सभी स्थानों के लिए समझौता नहीं हो पाया है और यही वजह है कि अमृतसर पश्चिम से भूतपूर्व खाद्यमंत्री सत्यपाल डांग के खिलाफ़ अकाली उम्मीदवार अमरसिंह गन्नुपुर काले हैं और अकाली पार्टी फ़िलहाल अपने उम्मीदवार का नाम वापस लेने के पक्ष में नहीं है. जालंधर ज़िले के बड़ापिंड क्षेत्र से दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों ने अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं. कम्युनिस्ट (मार्क्सवादी) के नेता और पोलित ब्यूरो के सदस्य हरकिशन सिंह सुरजीत के खिलाफ़ चैनसिंह (कम्युनिस्ट), दुनीचंद (रिपब्लिकन) और उमरावसिंह (कांग्रेस) खड़े हैं. यहाँ कम्युनिस्टों के मत दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों में विभाजित होंगे. इतना होने पर भी सुरजीत की स्थिति दृढ़ है. 'सुरजीत' कभी नूर महल से दरबारा सिंह से लगातार हारा करते थे. बटाला में कांग्रेस के भूतपूर्व वित्त मंत्री मोहन लाल और जनसंघ के विक्रमजीत सिंह का मुक़ाबला है. टक्कर बराबर की है. गुरुदासपुर से प्रबोधचंद्र और महेंद्रसिंह (अकाली) की टक्कर में प्रबोध का पलड़ा भारी है. लेहड़ा में वृषभान (कां.) और हरचंद सिंह (अकाली) में मुक़ाबला है वरिष्ठ कांग्रेसी उपनेता की स्थिति दृढ़ है.

फूलपुर : कांग्रेस बनाम विरोधी

इलाहाबाद में गंगा पार की तहसील फूलपुर अपने विशेष प्रतिनिधित्व के कारण शुरू से ही बहुत प्रसिद्ध रही है. स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक यह चुनाव क्षेत्र स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू या उन के परिवार के किसी सदस्य का क्षेत्र रहा है. १९५२ में पंडित नेहरू को किसी विशेष विरोध का सामना नहीं करना पड़ा. १९५७ में उन के दो विरोधी थे. प्रोफ़ेसर शिवाधार पांडेय, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी. ब्रह्मचारी जी ने गो-वध की समस्या को ले कर चुनाव लड़ा था. श्री पांडेय जनसंघ के उम्मीदवार थे लेकिन इन दोनों का कोई विशेष प्रभाव नहीं रहा. सन् ६१ में स्वर्गीय डा० राममनोहर लोहिया ने **कांग्रेस के पापों का भंडा फोड़ने के** ख्याल से विरोध के लिए दौड़-धूप शुरू की. उन्होंने प्रयाग की एक सार्वजनिक सभा में एक स्थानीय युवक समाजवादी रजनीकांत वर्मा का नाम प्रस्तावित किया और जब कोशिश कुछ और गंभीर हुई तो फूलपुर की जनता के एक वर्ग ने उन से चुनाव लड़ने का अनुरोध किया. १९६२ में डॉ० लोहिया ने श्री नेहरू के विरोध में अपना नाम सामने रखा. वैसे इस बार कुछ अन्य विरोधी भी मैदान में आए थे. डॉ० लोहिया यद्यपि चुनाव हार गये थे लेकिन उन्हें विरोधियों में सर्वाधिक वोट मिले थे. चुनाव हारने के बाद उन्होंने कहा था "मुझे पराजय का दुख है लेकिन इस बात की खुशी है कि भारतीय जनता में जीवन है और वह अंधी नहीं है. डॉ० लोहिया के साथ-साथ यथास्थितिवाद की चट्टान पहली बार टूटी थी और जनता के मनोभावों में परिवर्त्तन का एक निश्चित संकेत मिला था. श्री नेहरू के निधन के बाद श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित ने यहाँ से चुनाव लड़ा और उस में संसपा के सालिकराम जायसवाल उन के विरोधी थे. श्रीमती पंडित विजयी हुईं लेकिन पहले का नक़्शा बदल गया था और संघर्ष भी जम कर हुआ. १९६७ के चुनाव में श्रीमती पंडित पुनः इस क्षेत्र से मैदान में उतरीं और उनका विरोध युवजन सभा के जनेश्वर मिश्र ने किया. श्री मिश्र ने बड़े धैर्य के साथ उन का मुक़ाबला किया लेकिन वह भी ३६१८३ मतों से श्रीमती पंडित से पराजित हो गये. इधर श्रीमती पंडित के त्यागपत्र के बाद फिर इस क्षेत्र की जनता अपने प्रतिनिधि का चुनाव करने की स्थिति में आ गयी है.

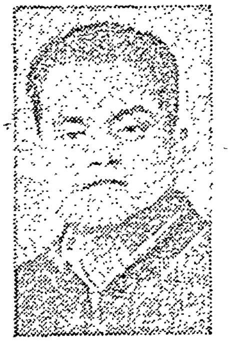

जनेश्वर मिश्र

इस बार के चुनाव में कांग्रेस की ओर से केशवदेव मालवीय को खड़ा किया गया है. उन के अलावा मैदान में कई प्रत्याशी और हैं. मूल संघर्ष जनेश्वर मिश्र के ही साथ है जो सन् ६२ से ही इस क्षेत्र में काम कर रहे हैं. ६२ में डॉ० लोहिया के साथ, ६४ में सालिकराम जायसवाल के साथ और सन् ६७ में अपने ही चुनाव के सिलसिले में उन्होंने इस क्षेत्र में जो काम किया उस से वह एक परिचित व्यक्ति बन गये हैं. कांग्रेस के नये प्रत्याशी केशवदेव मालवीय भी इस क्षेत्र में कई वर्षों तक काम कर चुके हैं. यह अलग बात है कि श्री मालवीय इलाहाबाद के निवासी होने के बावजूद अभी तक इस ज़िले से चुनाव नहीं लड़े थे. उन का क्षेत्र बस्ती ज़िला था. सन् ६७ के चुनाव में उन्हें जनसंघ ने पराजित भी किया था. अब श्री मालवीय अपने घर में वापस आ गये हैं. पुराने नाते-रिश्ते जोड़े जा रहे हैं और टूट गये सूत्रों को फिर से जोड़ने की कोशिश की जा रही है लेकिन कांग्रेस के दृढ़ संगठन के बावजूद श्री मालवीय को कुछ न कुछ कठिनाई का अनुभव हो रहा है. परंपरा के अनुसार पहला काम यह हुआ है कि उच्च न्यायालय के कुछ

हरकिशनसिंह सुरजीत

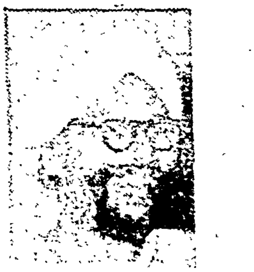

बलदेव प्रकाश

लक्ष्मनसिंह

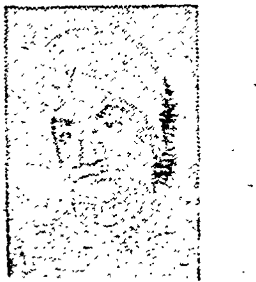

वकीलों ने श्री मालवीय के पक्ष में अपने हस्ताक्षर से एक अपील निकाली है. कांग्रेस संगठन के प्रगतिशील और वामपंथी तत्वों का नेतृत्व करने वाले मालवीय इस क्षेत्र में भी समाजवाद की व्याख्या बहुत मनोयोग के साथ कर रहे हैं मगर दिक़्क़त यह है कि कांग्रेस का ही एक वर्ग दिल खोल कर उन के साथ नहीं आ रहा है.

छोटे लोहिया : इस के विपरीत उस क्षेत्र की जनता जनेश्वर मिश्र को छोटे लोहिया के नाम से संबोधित करती है. पिछले ३-४ चुनावों से ही श्री मिश्र इस क्षेत्र में इसी नाम से प्रसिद्ध रहे हैं. क्यों कि उन्होंने समय-समय पर यहाँ की जनता के बीच काफ़ी काम किया है इस लिए साधनहीन होने के बावजूद उन की स्थिति कुछ दृढ़ है. कुछ लोगों का ख़्याल है कि इस व्यूह को तोड़ना श्री मालवीय के लिए कुछ कठिन ज़रूर होगा. समाजवादी सभा के सदस्यों ने अभी से 'फूलपुर चलो' का नारा देना शुरू कर दिया है.' प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्र संघ के अध्यक्ष मोहन सिंह ने इस नारे को सक्रिय रूप दिया है और लगभग २०० युवक चुनाव प्रचार में मशगूल हो गये हैं. युवजन सभा का सब से नया नारा केंद्रीय मंत्रियों का विरोध है. उन का आंदोलन इस बात को भी ले कर चल रहा है कि केंद्रीय मंत्रियों को क्षेत्र में जाने से रोका जाये. इस के विपरीत कांग्रेस का भी संगठन दृढ़ और जमा हुआ दीखता है. कांग्रेस के युवा संगठन के सदस्यों ने सक्रियता दिखाई है. हृदयनाथ मलहोत्रा, कैलाश नारायण जायसवाल आदि ने युवजन सभा के समांतर प्रचार की योजना बनाई है.

चुनाव के मुद्दे : श्री मालवीय ने क्षेत्र के अपने दौरे के दौरान इस बात की भी घोषणा की है कि देश को दृढ़ प्रशासन देने के लिए कांग्रेस को विजयी बनाना जरूरी है. उन का कहना है कि ६४ वर्षों से कांग्रेस ही आजादी की लड़ाई के साथ-साथ आजादी की स्वायत्तता को निर्धारित करने में लगी रही है. उसी ने देश को समाजवादी व्यवस्था दी और वही देश को उन्नति की ओर ले जा रही है. जब तक केंद्र में सशक्त कांग्रेसी प्रशासन नहीं होगा देश की सुरक्षा असंभव है. श्री मालवीय को स्वर्गीय नेहरू का प्रिय पात्र घोषित करते हुए यह दलील भी दी जा रही है कि इस क्षेत्र से श्री नेहरू के ही प्रतिनिधि को चुनकर भेजना चाहिए.

जनेश्वर मिश्र का मुख्य नारा है : **नीतिविहीन स्वार्थ तोड़ो, परंपरा को सशक्त बनाओ.** उन के अनुसार देश के सामने **यथास्थितिवाद, कलह की राजनीति** और **अनैतिक आचरण** के तीन खतरे हैं. तीनों कांग्रेस में हैं. इसे तोड़ना जरूरी है. सस्ती शिक्षा, विश्वविद्यालय की स्वायत्तता और समान अवसर की चर्चा भी उन के भाषणों में जगह-जगह हुई है. श्री मिश्र ने भाषा-नीति, दामनीति और महँगाई को भी अपने चुनाव भाषणों का विषय बनाया है और आँकड़े देते हुए कांग्रेस की असफलता का भंडा-फोड़ किया है.

जनसंघ के प्रत्याशी भोलानाथ भी इस क्षेत्र में सक्रिय हैं. जनसंघ के मुख्य नारों में **राष्ट्रीय सुरक्षा** और सरकार की नीतियों में **फ़िज़ूल ख़र्ची** और **आर्थिक विपन्नता** आदि की चर्चा की जाती रही है. उन के भाषणों में कांग्रेस को सांप्रदायिकता को प्रश्रय देने वाली संस्था घोषित किया जा रहा है. नौकरशाही की निंदा के साथ-साथ जनसंघ ने महँगाई के कारणों को भी उसी के साथ-साथ जोड़कर देखा है लेकिन उन का मुख्य मुद्दा राष्ट्रीय सुरक्षा और विघटनकारी तत्वों का उन्मूलन है.

केशवदेव मालवीय

श्री संगमलाल पांडेय भारतीय क्रांति दल के उम्मीदवार हैं. उन्होंने पिछला चुनाव विधान सभा के लिए संसोपा के उम्मीदवार की हैसियत से लड़ा था. भारतीय क्रांतिदल इस क्षेत्र में पिछड़ी हुई जातियों के संगठन को लेकर बना है. श्री पांडेय का कहना है कि क्रांति दल ही देश के पिछड़े हुए लोगों का प्रतिनिधित्व कर सकता है. श्री पांडेय दर्शन विभाग के प्राध्यापक हैं अतः व्यवस्था और विवेक के समर्थन में उन का दृष्टिकोण भी दार्शनिक है. अंग्रेज़ी और अन्य मुद्दों पर वह क्रांति दल की नीतियों के दृढ़ समर्थक हैं तथा अपने चुनाव अभियान को पिछड़ी जातीय व्यवस्था और विवेक के तरीक़ों को सामने रख कर संचालित कर रहे हैं.

चार राजनैतिक पार्टियों के अतिरिक्त चार निर्दलीय सदस्य भी इस चुनाव में मैदान में आए है. उन के नाम हैं :—मुबारक मजदूर, भगवती प्रसाद दीक्षित, इंद्रदेव और बद्री विशाल. ये चारों ही अपने-अपने क्षेत्र के आधार पर चुनाव लड़ रहे है. यह मध्यावधि चुनाव ठीक उसी वक़्त हो रहा है जब कि पूरे प्रदेश में विधानसभा के लिए चुनाव हो रहे है. चूंकि इस बार मतदाता भी जागरूक हैं अतः पिछले चुनावों की अपेक्षा इस बार का चुनाव अधिक तीव्र और गहरे स्तर का हो गया है.

देश के सब से छोटे इस राज्य **नगालैंड** में चुनाव की जो गतिविधियाँ इस बीच देखी जा रही हैं वे पहले कभी नहीं देखी गयीं. इस चुनाव के अवसर पर जो कि ६ जनवरी से शुरू होने वाला है कोहिमा की सड़कों पर पोस्टरों की बहार आ गयी है—जीपें और दूसरी तरह की गाड़ियों की रफ़्तार तेज़ हो गयी है और उम्मीदवार दरवाज़े-दरवाज़े घूम कर अपने लिए वोट की याचना करने लगे हैं. प्रत्याशियों की अंतिम सूची के अनुसार ४० जगहों के लिए १७४ उम्मीदवारों के नाम हैः जिन में ७४ निर्दलीय हैं. ह्वेंसांग की १२ जगहों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से वहाँ की क्षेत्रीय समिति द्वारा होता है. सत्ताधारी नगा राष्ट्रीय संघ ने सभी ४० जगहों पर अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं. विरोधी दल अर्थात् नगा संयुक्त मोर्चे के ३० सदस्य है. यह संघ ४ निर्दलीयों का भी समर्थन कर रहा हैं. निर्दलीयों में भूतपूर्व मुख्यमंत्री **शिलुआओ** का नाम बहुत महत्वपूर्ण है. वह नगा राष्ट्रीय संघ के संस्थापक सदस्यों में से है. पिछले चुनाव में कई जगहों से उम्मीदवार निर्विरोध रूप से चुन कर आ गये थे लेकिन इस बार हर सीट पर मुक़ाबला है. इसी लिए उस में हलचल ज़्यादा है. तीन महत्वपूर्ण नेता मैदान में सीधे मुक़ाबले में उतरे हैं : उम्मीद की जाती है कि यदि वित्तमंत्री होकीसे सेमा, विजयी हुए (जिसकी पूरी संभावना है) तो उन्हें ही अगली बार मुख्यमंत्री बनाया जायेगा. नगा संयुक्त मोर्चे के केविचूसा दूसरे महत्वपूर्ण नेता है. एक अन्य प्रत्याशी आकूम इमलांग है. श्री इमलांग को ह्वेंसांग जिले का संपूर्ण समर्थन इसलिए भी प्राप्त है क्यों कि वह वहाँ के मामलों के मंत्री है. होकीसे सेमा को विद्रोही नेताओं के जुंगटी गुट का समर्थन प्राप्त है. नगा जाति का जीवन मुख्यतः वर्गीय है और उन के बहुत सारे निर्णय जातिगत या गोत्रगत विशेषताओं से निर्धारित होते हैं. बहुत दूर तक महत्व व्यक्ति का नहीं होता है. यह अलग बात है कि इस तरह का प्रभाव कुछ विशेष क्षेत्रों में ही उल्लेखनीय परिणाम सामने लायेगा. नगा संयुक्त मोर्चे में जुंगटी गुट और फ़िज़ो गुट दोनों का अस्तित्व है. एक वर्ग का कहना यह है कि फ़िज़ो गुट उस मे अधिक प्रभावशाली है. यदि नया संयुक्त मोर्चा बहुमत प्राप्त कर लेता है तब समझौते के लिए फ़िज़ो गुट को तैयार करने की संभावनाएं बढ़ सकती है. कुछ ही दिनों पहले जुंगटी गुट ने प्रधानमंत्री को बातचीत शुरू कराने के लिए एक तार भी भेजा था. चुनाव के संदर्भ में एक खास बात यह है कि पहली बार केवीचूसा और शिलुआओ सहमति के नजदीक आते दिखाई दे रहे हैं. इस के पहले दोनों के मत भिन्न थे. अब दोनों ही विद्रोही नगाओं से बातचीत करने के पक्ष में हैं हालांकि इन विद्रोही नगाओं में भी दो गुट हो चुके हैं.

भारतीय युवाशक्ति किधर जा रही है

राजनीति और शिक्षा से संबंध रखने वाले पाँच विद्वानों के इस परिसंवाद में गत वर्ष के छात्र-आंदोलनों का विश्लेषण किया गया है. प्रवक्ता हैं प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री भूतपूर्व केंद्रीय शिक्षा सचिव श्री सैयदैन, उड़िया कवि समाजवादी युवजन सभा के अध्यक्ष और भूतपूर्व संसद् सदस्य श्री किशन पटनायक, काशी विद्यापीठ के अर्थशास्त्री प्राध्यापक श्री कृष्णनाथ, राज्य सभा के कांग्रेस सदस्य श्री कृष्णकांत एवं सुपरिचित आलोचक और जन के संपादक श्री ओमप्रकाश दीपक. परिसंवाद दिनमान के इस प्रश्न के उत्तर से आरंभ होता है कि छात्र आंदोलन और राजनैतिक दलों का क्या संबंध है.

दीपक : मैं छात्र-जगत् की स्थिति को कई तरह से देखता हूँ और बहुत-से सवाल दिमाग़ में उठते हैं, जिनमें से ज़्यादातर के जवाब तो मेरे पास अभी नहीं हैं. मैं चाहता हूँ कि विद्यार्थियों के आंदोलनों को आप सारी दुनिया में होने वाली घटनाओं के साथ जोड़ कर देखें. अभी तक इन का अध्ययन काफ़ी सतही ढंग से हुआ है. यूरोप या अमेरिका में ऐसी एक पीढ़ी जवान हो गयी है जिसे अपनी सभ्यता की समस्याओं का समाधान ढूँढने का काम विरासत में मिला; जो बुनियादी प्रेरक सिद्धांत रहे, वे भी विरासत में मिले. परंतु १९४५ के महायुद्ध के पहले की जो लड़ाइयाँ थीं उन से उन का नाता नहीं रहा. **सैयदेन :** यह कैसे ? **दीपक :** कम्युनिज़्म, फ़ासिज़्म, बेकारी या उपनिवेशवाद, ये चीज़ें जो यूरोप की राजनीति को चलाती थीं, इन की शक्ल लड़ाई के बाद बदल गयी. सारे आंदोलन अपनी जगह से हट गये. यहूदी प्रश्न सरक कर इस्राइल में चला गया. साम्यवाद का मामला सारी दुनिया को बदलने से हट कर समाजवादी खेमे की हिफ़ाज़त करने में आ गया. उपनिवेशवाद का मामला कौन कहाँ अपना साम्राज्य बनाये इस से हट कर यहाँ आ गया कि कौन कहाँ अपनी मंडी बनाये. यूरोपीय समाजवाद के पास भी कोई बड़ा लक्ष्य नहीं रहा और वह सुविधा-कल्याण तक सीमित रह गया.

यूरोप के पास तीन-चार सौ साल की विरासत है. हमारे पास हज़ारों साल की विरासत है. **सैयदेन :** उन के पास ग्रीक ज़माने की विरासत भी है. **दीपक :** मैं नहीं मानता कि यूरोप की आधुनिक सभ्यता रोम और यूनान की वारिस है. बहरहाल, हमारी हज़ारों साल की विरासत के जो संस्कार हैं, उन में से बहुत से खराब संस्कार हैं, लेकिन राष्ट्रीय आंदोलन ने जो नये संस्कार बनाने चाहे थे, वे सारे के सारे नयी पीढ़ी को मिले ही नहीं. जो कुछ उन्हें मिला वह सब ग़लत था. यूरोप और अमेरिका में कुछ युवक आंदोलन चल रहे हैं जिन का लक्ष्य उसे हासिल करना है जिसे वे खो चुके हैं. एक मूल्य के रूप में, आधार सूत्र के रूप में वह उसे अपनी सभ्यता का एक अनिवार्य अंग समझते हैं और यह भी समझते हैं कि उस को हासिल करना उन के लिए नितांत आवश्यक है. मिसाल के लिए इन विद्यार्थी आंदोलनों में जो संगठन बने हैं, चाहे यूरोप में, चाहे अमेरिका में, सब का नाम है 'लोकतांत्रिक समाज के छात्र पक्षधर'. अपने उन्हीं मूल्यों को वे प्रतिष्ठित करना चाहते हैं. **सैयदैन :** क्या पहले वे मूल्य प्रतिष्ठित थे ? **दीपक :** मूल्य के रूप में थे, चाहे समाज में न रहे हों. हिंदुस्तान का मामला साफ़ नहीं है. कौन से मूल्य हैं जिन्हें वे प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, इस बारे में युवकों का दिमाग़ साफ़ नहीं है. एक तो पिछले बीस वर्षों में तमाम मूल्यों का विघटन हुआ है. दूसरी तरफ़ उन के खिलाफ़ विरोध भी रहे. **सैयदेन :** जब उन के अपने ही मन में मूल्य साफ़ नहीं हैं तो हम कैसे यह नतीजा निकालें कि वे कुछ मूल्यों को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं ? **दीपक :** मानता हूँ कि आंदोलन के सामने मूल्य स्पष्ट न हों तो बड़ा नुक़सान भी हो सकता है. मिसाल के लिए कुछ नौजवानों के दिमाग़ में यह बात उठ सकती है कि हिंदुस्तान को बनाने के लिए शिवाजी की या औरंगज़ेब की मिसाल सामने रखनी चाहिए. लेकिन जो छात्र-आंदोलन अभी तक हुए हैं उन में कुछ बड़े सवालों को ले कर और कुछ व्यापक लक्ष्य को लेकर हुए हैं.

सैयदैन : आप के ख्याल में युवकों की ये माँगें अपनी हैं या इन के पीछे राजनैतिक दलों का असर है ?

किशन पटनायक : इस के उत्तर में तीन प्रकार के उदाहरण लेना चाहूँगा. चीन और चेकोस्लोवाकिया, पाकिस्तान और भारत और अमेरिका.

तीनों उदाहरणों में आंदोलनों के मार्ग अलग-अलग हैं और राजनीति के साथ जो संपर्क है वह भी अलग-अलग क़िस्म का है. चीन या चेकोस्लोवाकिया में विद्यार्थियों की बेचैनी को वहाँ की राजनैतिक पार्टी या सरकार ने परिवर्तन के लिए इस्तेमाल करना चाहा है. वहाँ जो सरकारी राजनैतिक धारा है उस के साथ विद्यार्थियों के आंदोलन जुड़ गये हैं. **सैयदैन :** चीन में जो तहरीक है वह वहाँ की सरकार ने ही उठायी है. वहाँ सरकार के साथ इन का कोई टकराव नहीं है. टकराव का वहाँ सवाल ही पैदा नहीं होता. **किशन :** यही मैं सोच रहा हूँ. चेकोस्लोवाकिया में भी कुछ हद तक सरकार के साथ टकराव नहीं है और जहाँ तक विद्यार्थियों की माँग है कि रूसी सेना तुरंत हटायी जाये वहाँ दुबचेक की सरकार के साथ बात मिल जाती है. विद्यार्थियों का आंदोलन वहाँ चल ही रहा है. विद्यार्थी का मन जहाँ प्रयोगशाला में और कक्षा में है और अपने देश के विज्ञान में योग देने में है, वहीं देश की राजनीति में आने की इच्छा भी है. **सैयदैन :** चेकोस्लोवाकिया में ज़्यादातर रूस ने जो कुछ किया है उस के खिलाफ़ विरोधी आंदोलन है. उस के अलावा वहाँ कुछ नहीं है. **किशन :** उस की प्रासंगिकता इस में है कि विद्यार्थी राजनीति में दखल दे रहे हैं. पाकिस्तान में जो विद्यार्थी विद्रोह हो रहा है उसे और १९६७ के चुनाव के पहले उत्तरप्रदेश और बिहार में जो विद्यार्थी आंदोलन हुए दोनों को मैं एक पैमाने पर देखता हूँ—सरकार के साथ टकराव होना और विरोधी राजनीति की मुख्य धारा के साथ मन जुड़ना. पाकिस्तान में अय्यूब के खिलाफ़ विद्रोह से विद्यार्थियों को परिवर्तन वाली

ओमप्रकाश दीपक, किशन पटनायक, कृष्णनाथ

राजनीति की एक स्पष्ट दिशा मिल गयी है. उसी तरह उत्तरप्रदेश और बिहार में १९६७ के पहले 'कांग्रेस हटाओ अभियान' में विद्यार्थी आंदोलन स्पष्ट राजनैतिक दिशा के साथ जुड़ गया था जो अमेरिका या फ्रांस में हो रहा है या भारत में अब हो रहा है. उस में विशेषता यह है कि विद्यार्थियों के अंदर हलचल या आंदोलन की तबियत वही है जो पाकिस्तान, चेकोस्लोवाकिया या चीन में है लेकिन भारत और अमेरिका में न सरकार उस का इस्तेमाल कर रही है और न कोई विरोधी राजनैतिक धारा उसे अपने साथ जोड़ पा रही है. सिर्फ़ आंदोलन हो रहा है, हलचल हो रही है. **सैयदैन :** आप ने कहा कि विरोधी दलों के साथ यह तहरीक नहीं जुड़ी हुई है, न वे इस का इस्तेमाल कर रहे हैं. जो आंदोलन आप देख रहे हैं उस के बावजूद आप का ख्याल है कि ऐसा नहीं है ?

किशन : मैं एक क्षण के लिए भी नहीं कहूँगा कि उत्तरप्रदेश या बिहार में जो आंदोलन हो रहा है वह राजनैतिक संस्था के साथ नहीं जुड़ा हुआ है. लेकिन देश में परिवर्त्तन लाने के लिए कोई राजनैतिक धारा हो, स्पष्ट रूप से, उस के साथ नहीं जुड़ा है. इसी लिए १९६७ के चुनाव का उदाहरण मैंने दिया. तब उन की बात स्पष्ट थी कि कांग्रेस को हटाना है. **सैयदैन :** क्या सभी विद्यार्थियों की एक तहरीक थी कि कांग्रेस को हटाना है ? **किशन :** मैं उस आंदोलन की बात कह रहा हूँ. जो उत्तरप्रदेश और बिहार में था. कांग्रेस को छोड़ कर दूसरी पार्टियों से यह आंदोलन जुड़ा हुआ था. इन तीनों उदाहरणों में से मैं एक नतीजा निकालना चाहता हूँ. नतीजा यह है कि विद्यार्थी बेचैन है सब जगह. चेकोस्लोवाकिया में, चीन में और पाकिस्तान में, भारत मे भी, फ्रांस में भी. लेकिन उस बेचैनी को जहाँ साफ़ दिशा मिल जाती है वहाँ तेजी कम दिखाई देती है और वहाँ शायद विद्यार्थियों में निराशा भी कम लगती है. बनारस में, इलाहाबाद में विद्यार्थी जो आंदोलन कर रहे है वे खुद उस से संतुष्ट हों ऐसा नहीं है. किसी हद तक निराश हैं. एक चीज मैं असूलन मानता हूँ कि विद्यार्थी कभी अपना दर्शन नहीं बना सकते. उन्होंने कही नहीं बनाया है. दर्शन उसे बाहर से मिलता है, या राजनैतिक पार्टी से या सरकार से या किसी और से; बाहर से. मैं यह तुलना इस लिए कर रहा था कि पाकिस्तान का हाशिम हो, या कि मोहनसिंह इलाहाबाद का हो, या मजूमदार बनारस का हो, यह सब एक पैमाने पर एक है. उन का मन एक जैसा ही बेचैन मन है जो कि बर्दाश्त नहीं कर सकता. **सैयदैन:** आप के ख्याल में मन बेचैन है या अपने लिए राजनीतिक मंच तैयार करने की ख्वाहिश है. यह आप का यकीन उन से मिलने के कारण है या बातचीत करने के कारण है ? **किशन :** यह मैं इस लिए कह रहा हूँ कि इंद्रदेव, मोहनसिंह, मजूमदार ये तीनों विश्वविद्यालयों के लोग हैं, मेरी संस्था के लोग है. मैं चाहता हूँ कि ये लोग राजनैतिक दिशा की ओर भी चलें. उस तरफ विद्यार्थियों के आंदोलन को मोड़ देना चाहिए और उस हद तक मोहनसिंह, इंद्रदेव और मजूमदार चाहते हैं. लेकिन इस वक़्त जो विद्यार्थियों का आंदोलन हो रहा है कोई बड़े परिवर्त्तन की दिशा में परिचालित नहीं हो पा रहा है.

दीपक : इस सवाल का जवाब जो ये लोग कर रहे है उस में से भी निकलता है. हाशिम अगर अय्यूब पर गोली चलाता है तो वह राजनैतिक नेता बनने के लिए तो ऐसा नहीं करेगा. अगर कुछ लोग जनता के बीच कोई बड़ी ताकत पैदा किये बिना पुलिस स्टेशन पर हमला करते हैं तो राजनैतिक नेता बनने के लिए नहीं करते. या तो मान लें कि ये लोग इतने बेवकूफ है कि समझते हैं कि गोली मार कर के नेता बन जायेंगे. भगतसिंह ने नेता बनने के लिए तो एसेंबली पर बम नही फेंका था. **सयदैन :** भगत सिंह के बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता. वह आजादी की लड़ाई थी. हाशिम के बारे में मैं कुछ नहीं जानता कि उस ने क्यों किया.

कृष्णकांत : हमारे यहाँ राजनैतिक दलों में विद्यार्थियों का आना राष्ट्रीय आंदोलन के बाद ही चला है. आज का विद्यार्थी आंदोलन उसी का प्रसार है. गांधी जी इसे नहीं चाहते थे. विद्यार्थी का आंदोलन में आना हमारे राजनैतिक जीवन का ही प्रतिफलन है. चाहे भ्रष्टाचार हो, चाहे चुनाव के तरीक़े, चाहे आचरण. राजनैतिक दलों ने लोगों तक जाना छोड़ दिया है. विद्यार्थी चूँकि जल्दी उद्वेलित हो जाते हैं, इस लिए सभी पार्टियाँ उन का फ़ायदा उठाना चाहती है. इस चीज ने सब से बड़ा नुक़सान शिक्षा को पहुँचाया है. दो चीजें मेरे ख्याल मे विद्यार्थियों मे असंतोष ला रही हैं. एक तो अच्छी कमाई वाले काम का सवाल है. दूसरी पंचवर्षीय योजना जैसी चली उस से आठ दस साल से आर्थिक प्रगति नहीं हो सकी. अच्छे कैरियर का सवाल हल नहीं हो सका. **सैयदैन :** यह सही है कि कई कमियाँ है, लेकिन जितनी सुविधाएँ आज मौजूद है, वह पहले से कही ज्यादा है, क्या आप यह नहीं मानते? **कृष्णकांत :** सुविधाएँ बढ़ी है लेकिन अनिश्चय भी बढ़ा है. यानी औद्योगीकरण न हो सकने का असर हुआ है. दूसरी चुनौती काम करने के लिए मौक़ों का न मिलना है. विचार का प्रभाव मंद पड़ गया है. गांधीवाद का जो विचार दर्शन कभी हमें प्रेरित करता था, अब असर नहीं करता. कम्युनिज्म की बात दुनिया भर में ख़त्म हो रही है. जो विचार दर्शन है भी उस में एकजुट हो कर लोग काम नहीं करते. सभी दलों में नेतृत्व का स्तर कम हुआ है. गांधी जी और लाजपत राय के पास लोग जाना चाहते थे. अब नेताओं के पास नहीं जाते. इस वक़्त दो चीज़ें हैं जो अपील करती हैं. जो बीच का संतुलित तरीक़ा था, वह कामयाब नहीं हुआ है. **सैयदैन :** जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सिद्धांतों का काफ़ी असर है, भले ही कांग्रेस के अस्पष्ट विचारों का न हो. **कृष्णकांत :** राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जो १९४८ के बाद काफ़ी पीछे पड़ गया था, अब बढ़ रहा है. बनारस में जो हुआ उस से यह साफ़ दीख जाता है. जो चीज बढ़ रही है उस में भी नारेबाज़ी ज्यादा है. वह हमारी सब पार्टियाँ कर रही है. चाहे आप की (किशन पटनायक की) पार्टी हो या कोई और हो. हम ने लोगों में जाना बंद कर दिया है. इस लिए हम विद्यार्थियों को काबू में करना चाहते हैं. दूसरी बुनियादी समस्या है पुराने मूल्यों के आदर की. वैज्ञानिक और प्राविधिक क्रांति हुई है. पहले कहा जाता था कि गुण और मात्रा साथ नहीं चल सकते. लेकिन विज्ञान ने यह कर के दिखा दिया है. इस की मूल्य परिणति समता की दिशा में हुई है. हमारे पुराने मूल्य आध्यात्मिक विश्वास पर आधारित थे लेकिन अब दूसरे आदमी के सामने कोई आदर्श नहीं रख सकते जब तक कि उसे साबित न करें, आज विज्ञान ने आस्था हिला दी है. **सैयदैन :** इतनी दूर तक वे नहीं सोचते. **कृष्णकांत :** हमारे यहाँ श्रेष्ठता की कोई क़दर नहीं रही. जो तोड़ फोड़ कर ले, लोगों में प्रचार कर ले या किन्हीं और तरीकों से अपनी बात मनवा ले, वह चुनाव में आ जाता है. वास्तविकता तो यह है कि विद्यार्थियों को अपने मौजूदा नेतृत्व पर ऐतबार नही है. दिल्ली, अहमदाबाद तथा कुछ अन्य स्थानों पर मैं ने लोगों से विचार किया और इसी नतीजे पर पहुँचा कि उन को नेतृत्व बाहर से नहीं मिल सकता. विश्वविद्यालयों में जो गड़बड़ होती है वह गुटबंदी की वजह से, या विश्वविद्यालयों के प्रति सरकार के व्यवहार के कारण या विश्वविद्यालयों के प्रशासन की ही कुछ गड़बड़ी से पैदा होती है. मेरे विचार से तो जो सब से अच्छे विद्यार्थी हों उन्हीं में से छात्र संघ के अध्यक्ष वगैरह चुने जायें.

किशन : सब से अच्छे विद्यार्थी से क्या आप का मतलब परीक्षा में सब से अधिक नंबर लाने वाले से है ? **कृष्णकांत :** जी हाँ, मेरा मतलब है कि जो होशियार है और जो कुछ करना चाहते है, उन्हें आगे लाया जाये. इस के लिए चुनाव या प्रचार नहीं होना चाहिए. ऐसा अहमदाबाद के कालेजों में हुआ है. वहाँ पर कोई पोस्टरबाजी नहीं हुई, अक्सर देखा गया है कि पोस्टरबाजी से ग़लत आदमी आ जाते हैं जब कि ऐसे विद्यार्थियों को आगे आना चाहिए जिन की रुचि पढाई में है और जो वास्तविक रूप से कुछ सेवा करना चाहते हैं, न कि उपाधि या पद प्राप्त करना. पोस्टरबाज़ी शुरू होती है तो सिर्फ़ पदलोलुप लोग हाथ पसारते है और कार्य करने वाले पीछे रह जाते हैं. इसी तरह अध्यापकों और प्रोफ़ेसरों की भर्ती में भी गड़बड़ होती है. **किशन :** क्या आप इस सिद्धांत को सरकार पर भी लागू करेंगे

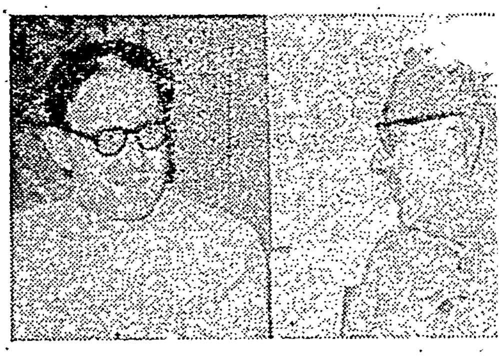

सैयदैन, कृष्णकांत

छात्र-आंदोलन उर्फ़ राजनैतिक शोर-शराबा

कि जो सब से अच्छे नागरिक हों उन्हीं में से प्रधानमंत्री चुना जाये, जनता चुनाव न करे. **कृष्णकांत** : सरकार का मामला दूसरा है.

कृष्णनाथ : मैं आप की बात को बिना चुनौती दिये नहीं रह सकता. आप के सुझाव का नतीजा पूरे जनतंत्र को सीमित करना होगा. थोड़े से सामंत श्रीमानों को ही वोट देने का अधिकार दिलाने की भूमिका आप शुरू करना चाहते हैं. जिन्हें आप सब से अच्छे लड़के कह सकते हैं, विश्वविद्यालयों की शिक्षा के लिए वे सब से बुरे भी साबित हुआ करते हैं. यह जो सारी की सारी अवधारणा है, थोड़े से लड़कों द्वारा चुनाव की, यह बहुत बुरी बात है, इसे हम कभी स्वीकार नहीं कर सकते. **कृष्णकांत** : जो शोर मचा सकते हैं, जो लोगों को इकट्ठा कर सकते हैं, वे जीत जाते हैं. राजनारायण जी जो कुछ कहते हैं वह राजनैतिक है. अगर इस दिशा को मोड़ना है, तो एक ही तरीका है कि जो सब से अच्छा लड़का हो, उसे ही चुना जाये. यह विश्वविद्यालयों में शैक्षिक वातावरण पैदा करने के लिए ज़रूरी है. **दीपक** : आज की यूनिवर्सिटियाँ तमाम ब्राह्मणों, कायस्थ अफ़सरों से भरी हुई हैं और ये सब से अच्छा विद्यार्थी चुनेंगे, तो आज की लोकतांत्रिक पद्धति से होने वाले चुनाव से दस गुना बुरा होगा. मामला बुनियादी तौर पर यह है कि क्या हम तमाम चीज़ों को सुधारना चाहते हैं या उन थोड़े से हाथों में ताक़त दे कर जिन्होंने विश्वविद्यालयों को बिगाड़ा है, लोगों को सुधारना चाहते हैं. अगर ऐसा हो सकता कि जो श्रेष्ठ विद्यार्थी हैं वे ही सुधार लेंगे, तो अध्यापक और प्रोफ़ेसर ही विद्यार्थियों को सुधार लेते. लेकिन ऐसा नहीं हुआ. **कृष्णकांत** : आप श्रेष्ठ आदमी नियुक्त नहीं करते हैं. विद्यार्थी और युवक, केवल यही एक ऐसा वर्ग है जिस का कोई निहित स्वार्थ नहीं है. उस में श्रेष्ठता के लिए आदर हो सकता है. **दीपक** : आप मान रहे हैं कि यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर जिसे ऊँचे नंबर दे कर श्रेष्ठ तय करते हैं, वही श्रेष्ठ है ? जिन लोगों ने विश्वविद्यालयों को बिगाड़ा है वही छात्र संघों को भी बिगाड़ें ? **कृष्णकांत** : यह बहस की बात है, लेकिन मुझे इस में कोई शक नहीं. मैंने इस पर काफ़ी चर्चा की है और इस पर सोचा है.

कृष्णनाथ : हम लोग ऐतिहासिक और मूल्यगत विश्लेषण कर चुके हैं. अब कुछ ठोस चर्चा कर लें. विश्वविद्यालयों की शिक्षा आज के विद्यार्थी के लिए निरर्थक सिद्ध हो गयी है. आयोग ने इस की पुष्टि की है कि सारे का सारा माहौल निरर्थकता का है. वैसे ही जैसे कि राजनीति और राजनैतिक पार्टियाँ, विधान सभा, संसद मौजूदा ज़रूरतों को और भविष्य की आकांक्षाओं को अंजाम देने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं.

फिर आज़ादी के बाद की नयी पीढ़ी आयी जिस के पास इस कमी को पूरा करने के लिए न कोई मँजा हुआ नेतृत्व है, न कोई रास्ता है. यह अपने को अंधी सुरंग में पाती है. इस में शारीरिक परिपक्वता जल्दी आ रही है, लेकिन सामाजिक परिपक्वता नहीं मिल पा रही है. लड़के-लड़कियों के बीच सहज संबंध नहीं हैं. भूख और यौन दोनों मामलों में दरवाज़े बंद हैं. बेचैनी, शारीरिक परिपक्वता और सामाजिक परिपक्वता की कमी से है. विश्वविद्यालयों के प्रशासन में भागीदारी नहीं है. सब से बड़ी दूरी अफ़सरशाही ने पैदा की है—चाहे वह सरकार की हो या विश्वविद्यालयों की. ब्रिटिश ज़माने में विकसित हमारे मध्यम वर्ग ने सामान्य जन को इतना दूर कर दिया कि भागीदारी का अहसास नहीं हो पा रहा है. लेकिन कोई पार्टी इस बेचैनी का कोई नेतृत्व नहीं कर पा रही है. मेरा शिक्षा से और विद्यार्थियों से एक धंधे के नाते संबंध है. मैं जानता हूँ कि मजूमदार, मोहनसिंह, उदय प्रताप तिवारी को नेता ढूँढते हैं कि ये कहाँ मिलेंगे. विद्यार्थी अपनी बेचैनी में कुछ कर गुज़रते हैं, राजनैतिक दल उन के पीछे चल पाने में अभी असमर्थ होते हैं. **सैयदैन** : मुझे तो लगता है कि विद्यार्थियों के पीछे राजनैतिक दलों की आपसी टक्कर है. **कृष्णनाथ** : यह बात ग़लत है. बनारस में बार-बार कहा गया कि तोड़-फोड़ करने के लिए बाहर के आदमी आते हैं जिन का संपर्क राजनैतिक दलों से है. एक ओर तो यह कहा गया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जनसंघ और समाजवादी, इन की टक्कर वहाँ चल रही है लेकिन दूसरी ओर कुछ और ही कहा जाता है. यह तो संभव है कि अगर दो-ढाई हज़ार लड़के विश्वविद्यालयों के हों तो दस-बीस बाहर से आये हों. यह अलग बात है कि वे साम्यवादी दल और रा. स्व. संघ के गुट के हों. लेकिन यह संभव नहीं कि बाहर के लोग ही आ कर विद्यार्थी आंदोलन खड़ा कर दें. बनारस में विद्यार्थियों ने पुलिस के साथ मोर्चे लगाये. साफ़ है कि राजनारायण या अटलबिहारी वाजपेयी में इतनी ताक़त नहीं है. उपकुलपति, जिलाधीश तथा अध्यापकों में कुछ व्यक्ति पदलोलुप हैं और इन्हीं तीन की वजह से मुख्य रूप से बनारस में विद्यार्थी आंदोलन भड़का. **सैयदैन** : आप सब पर ज़िम्मेदारी डालते हैं सिवाय विद्यार्थियों के ? **कृष्णनाथ** : ज़िम्मेदारी, मैं मानता हूँ कि मुख्य रूप से विश्वविद्यालय के प्रशासन पर आती है, विश्वविद्यालय के अफ़सरों-अध्यापकों का बौद्धिक दिवालियापन और बाहरी प्रशासन का हस्तक्षेप ही मुख्य हैं. स्वायत्तता का मतलब एकदम अहस्तक्षेप हो, यह मैं नहीं मानता. इस की आड़ ले कर पुलिस बुलायी जाती है, विद्यार्थियों की हों नहीं, अध्यापकों की भी पिटाई होती है, गोली चलती है. अब राजनैतिक दल इस बारे में सोचें कि इतनी बड़ी जमात का आखिर वे करना क्या चाहते हैं. एक आदमी भी मुझे ऐसा नहीं दीखता जो पूरे देश के भविष्य के बारे में सोचता हो, कि जो साधन उपलब्ध हैं, उन का इस्तेमाल कैसे किया जा सकता है. सोच की भयंकर कमी है, उधार की सोच चल रही है; उस में विद्यार्थी आंदोलन की भूमिका सृजनात्मक ध्वंस की है. अब तो कुछ ध्वंस हो तभी शायद उस में से कुछ बने. मैं नहीं मानता कि जिन्हें अच्छे विद्यार्थी कहा जाता है वे ऐसा वातावरण बना सकते हैं. **सैयदैन** : क्या बुरे विद्यार्थी बना सकते हैं ? **कृष्णनाथ**: बेमानी चीज़ों को ढहाना ही उन को मतलब देना है. अगर यह ध्वंस न होता तो हम यहाँ बैठ कर विचार ही न करते. आज की पढ़ाई और राजनीति का ढाँचा, ये बेकार होते जाते हैं. कुछ ऐसा लगता है कि जो ढाँचा निरर्थक हो चुका है एक बार उस का ध्वंस करना है, तभी उस में से नये अर्थ निकल सकते हैं और राजनैतिक दलों की भी उस में एक भूमिका है. **सैयदैन**: मैं यह कहना चाहता हूँ कि राजनैतिक दल कुछ नहीं चाहते सिवाय इस के कि चुनावों में विद्यार्थियों का इस्तेमाल करें और कोई सिद्धांत मुझे मालूम नहीं देता. **कृष्णनाथ** : यह सही नहीं है, लेकिन दल अगर चाहें तो भी युवा नेताओं का दिमाग़ उस तरह का नहीं. **सैयदैन** : उन की बात बाद में, पर दलों की नीयत साफ़ नहीं है.

कृष्णनाथ : जो ज़िम्मेदार दल हैं जिन में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी वाले हैं, युवजन सभा वाले हैं, वे इन का इस्तेमाल परिवर्तन करने के लिए करना चाहते हैं. लेकिन दूसरी ओर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ बहुत ही गंदी ज़हनियत के लिए इन का इस्तेमाल करना चाह रहा है.

किशन : जहाँ तक ये पार्टियाँ परिवर्तन के लिए विद्यार्थियों का इस्तेमाल करना चाहेंगी कुछ हद तक सफल हो सकती हैं लेकिन सिर्फ़ चुनाव के लिए प्रयत्न करेंगी, तो विद्यार्थियों को अपने साथ लाने में बिलकुल समर्थ नहीं होंगी. **सैयदैन** : इस वक़्त तो जो विद्यार्थी आंदोलन उठते हैं उन में हिंसा का इस्तेमाल

होता है. पुलिस की हिंसा से उसे शह मिलती है. लेकिन जब विद्यार्थियों को हिंसा के लिए जेल भेजा जाता है, तो उन्हें रिहा करने की माँग पार्टियाँ करती हैं. विद्यार्थी अपने अध्यापकों की हत्या कर देते हैं. लेकिन कहा जाता है कि विद्यार्थी कुछ भी करें उन्हें माफ़ कर दिया जाना चाहिए. वे पार्टियाँ इस लिए ये सब कहती हैं कि विद्यार्थियों को बता सकें कि हम हर मौक़े पर तुम्हारी मदद करते रहे हैं. मुझे बताया गया है कि चूँकि अब मध्यावधि चुनाव होने वाले हैं इस लिए इस तरह की ज़हनियत जितनी बढ़ायी जायेगी उस से उतनी ही ज़्यादा मदद मिलेगी. **कृष्णनाथ :** दो तरह की हिंसा विश्वविद्यालयों में हो रही है. कभी लड़कों-लड़कों में मारपीट, कभी लड़के-लड़कियों के रिश्ते को ले कर झगड़े और तीसरे अध्यापकों और अध्यापकों के रिश्तों से निकलने वाले झगड़े. इन तीनों तरह के झगड़ों को बड़े भद्दे ढंग से युनिवर्सिटी के अफ़सरों ने बढ़ावा दिया.

जो लड़के दिन में छात्रावास में लड़की लाये और बलात्कार किया, जिन के निष्कासन का फ़ैसला था, वे सब इन दिनों उन अफ़सरों के अंगरक्षक बने हुए हैं, जो यूनीवर्सिटी में गंदगी फैला रहे हैं. लेकिन जब मजूमदार जैसे लोग भाषा के मामले पर या रोजगार के लिए कोई मीटिंग करने की इजाज़त चाहते हैं, तो उन्हें नहीं मिलती. मैं मानता हूँ कि हिंसा दो क़िस्मों की होती है, निजी गड़बड़ी से पैदा हुई हिंसा और प्रगति के रास्ते में आने वाली रुकावटों के कारण लाचारी में की गयी हिंसा. अगस्त से सितंबर तक ऐसी सूरत पैदा हो गयी थी कि कोई रास्ता नहीं रह गया था. इस तरह जो हिंसा पैदा होती है उस के जिम्मेदार अफ़सर हैं. **सैयदैन :** क्या आप उचित ठहराते हैं कि बसें जलायी जायें, लाइब्रेरियाँ जलायी जायें, छुरे मारे जायें ? अगर हमारे विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में ये सब करते हैं, तो किसी को हक नहीं कि यह कहे कि इन पर क़ानून न लागू किया जाये. यह ठीक है कि विद्यार्थियों की माँगें हैं जो बरसों से पूरी नहीं की गयीं.

विद्यार्थियों ने अपीलें कीं, हाथ जोड़े, पर उस की तरफ़ ध्यान नहीं दिया गया. उन से बातचीत भी नहीं की गयी. इस लिए उन की शिकायत ठीक थी. लेकिन जब उन्होंने हिंसा की तो सब लोग झुक गये. अगर युनिवर्सिटी ने कहा कि हम अपनी बात पर क़ायम रहेंगे तो सरकार ने कहा कि नहीं. तर्क के सामने झुके नहीं, बल के सामने झुक गये. मैं यह नहीं कहता कि तमाम लड़के ग़लत है लेकिन जो विचार सामने आ रहे हैं वे बहुत गलत हैं. गांधी जी को कोई माने या न माने, उन्होंने कहा था कि अच्छा मकसद बुरे तरीक़े से हासिल करना चाहोगे तो अच्छा मकसद अच्छा नहीं रह जायेगा. अब जो हम एक-दूसरे से लड़ते हैं, खुद अपने उस्तादों से लड़ते हैं, अपने स्कूलों पर हमले करते हैं, उस में अहिंसा मुझे कहीं नज़र नहीं आती.

किशन : एक सवाल मैं आप से पूछूं. अगर राजनैतिक पार्टियाँ विद्यार्थियों को ऐसी सामाजिक क्रांति के लिए तैयार करतीं जो हिंसा न अपनातीं और परिवर्त्तनकारी राजनीति को अपनातीं तो क्या आप उस से राज़ी होते ? **सैयदैन :** मेरा विचार है कि जब विद्यार्थी शिक्षा ले रहा है तो उसे हर प्रकार से राजनीतिक शिक्षा मिलनी चाहिए. अंतरराष्ट्रीय संबंधों के बारे में उसे समझाना चाहिए, सियासत के बारे में उसे समझाया जाये, इन चीज़ों की जानकारी से उसे कोई नुक़सान नहीं लेकिन इस के साथ ही वह किसी एक अध्ययन पर ध्यान केंद्रित करे. **किशन :** प्रश्न यह है कि कौन से अध्ययन पर ? **सयदैन :** ज़िंदगी का एक हिस्सा ऐसा होना चाहिए जिस में लोगों को सोचने-समझने, दूसरों की राय से फ़र्क़ करने या अगर कोई कुछ मेरे विरोध में कहता है तो उसे चुपचाप सुनने का माद्दा मेरे अंदर पैदा हो, यदि ऐसा होता है तो आगे चल कर वे मुल्क के लिए कुछ कर सकेंगे. वे सोचें कि वे विश्वविद्यालय में क्यों आये हैं ? **किशन :** वे सिर्फ़ यह चाहते हैं कि आगे चल कर रोज़ी कमा सकें, अपने पैरों पर खड़े हो सकें. साथ ही कुछ समाज को बदलना और सुधारना भी चाहते हैं. एक मुल्क बनाने का और एक अपने आप को बनाने का काम वे करना चाहते हैं. अपना व्यक्तित्व बनाने की उन की इच्छा पूरी होनी चाहिए लेकिन ऐसा होता कुछ भी नहीं है. **सयदैन :** अच्छा ये दोनों बातें मान लीं. लेकिन अगर चरित्र नहीं बनता है तो दिमाग़ को बनाने का उस का हौसला पूरा नहीं होगा. आगे जा कर मुल्क की राजनीति में हिंसा फैलेगी और मालूम होगा कि राजनीति ने विद्यार्थियों में बारूद रख कर भक से उड़ा दिया. **दीपक :** दिमाग़ और चरित्र बनाने की जो बात आप ने कही, क्या किसी एक विद्या-केंद्र में रत्ती भर भी वह हुआ है ? **सैयदैन :** जी मैं समझता हूँ विश्वविद्यालयों में बड़ी हद तक हुआ है. **दीपक :** मैं इसे बिलकुल नहीं मानता. विचारों के साहस का और सोचने-समझने के दायरे को फलाने का काम किसी विश्वविद्यालय में बिलकुल भी नहीं होता.

कृष्णनाथ : लड़ाई के तरीक़े के मामले में मैं आप से सहमत हूँ. पर निष्क्रिय अहिंसा और सक्रिय अहिंसा में फ़र्क करना होगा. अगर कोई बुराई विश्वविद्यालय के प्रशासन या पढ़ाई में है तो उस के खिलाफ़ गुस्से का इजहार करने में सक्रिय अहिंसा में छात्रों की आस्था कम है. उन्हें लगता है कि लाचारी का नाम ही अहिंसा है. वे क्रांति को हिंसा के साथ जोड़ते हैं. मैं चाहूँगा कि ये नेता अहिंसक लड़ाई का जो तरीक़ा चेकोस्लोवाकिया में या निग्रो-समस्या में अपनाया गया है उस पर सोचें. अभी उन का नेतृत्व बहुधा कुछ क्षणों में जीता है. मान लें उस ने तय किया कि उपकुलपति के घर पर घेराव करना है. रास्ते में किसी पुलिस वाले ने रोका तो उस से झगड़ पड़े फिर प्राक्टर मिले तो पुलिस को छोड़ कर उसे पकड़ लिया. इस से कुछ हासिल नहीं होता और कोई दिशा नहीं बनती. दूसरे, मुझे लगता है कि इस नेतृत्व में एक अर्से तक अपनी माँग रखने के धीरज की कमी है. अपने ही तरीक़ों पर उन को बहुत धीरज नहीं रह गया है और इस माने में बहुत हद तक वे अहिंसा का इस्तेमाल तकनीक के तौर पर करते हैं.

सैयदैन : यह तो परमात्मा को मालूम होगा कि उन की तकनीक है या विचारधारा है, यह कैसे पता चल सकता है कि वे विचारधारा के रूप में नहीं तकनीक के रूप में उसे इस्तेमाल कर रहे हैं. **दीपक :** निजी-संबंधों वाले जो झगड़े हैं, और आंदोलन वाली जो स्थितियाँ हैं, मैं उन में एक फ़र्क करना चाहूँगा. गोली से भी वे मारे गये, जेल में भी पीटे गये, लाठियाँ भी खायीं लेकिन किसी आंदोलन में किसी विद्यार्थी ने कोई कत्ल नहीं किया. जिस दिन वह सोच लेंगे कि हिंसा बरतनी है उस दिन कत्ल भी करेंगे. एक संगठित आंदोलन है और दूसरा निजी आचरण की चीज है. लेकिन वे लड़के जो युनिवर्सिटी की शिक्षा-पद्धति या भाषा के बारे में आंदोलन करते हैं उन्होंने न अभी तक कत्ल किया है और न ही करेंगे. हिंसा-अहिंसा में बुनियादी फ़र्क यही है कि आप कत्ल करते है कि नहीं करते. **सैयदैन :** कत्ल न किया हो, पर और कौन-सी चीज है जो नहीं करते. **दीपक :** कत्ल करना या न करना, यह बुनियादी फ़र्क है. होता यह है कि अहिंसा के आधार पर शुरू किया गया आंदोलन पुलिस की हिंसा के सामने बिखर जाता है और छिटपुट पत्थरबाजी की शक्ल ले लेता है.

कृष्णनाथ : हिंसा और आगजनी हम पसंद नहीं करेंगे. जो भी विरोध हिंसा में होगा, राज्य की बड़ी हिंसा उसे दबा देगी. व्यवहार की दृष्टि से मैं छात्रों से कहना चाहूँगा कि यह तरीक़ा उन को छोड़ देना चाहिए. यह बात अलग है कि कोई चीज अपने आप हो जाये, लेकिन की नहीं जानी चाहिए. **सैयदैन :** मैं उतनी ही पुलिस की भी निंदा करता हूँ. यह तरीक़ा तो सरकार को भी छोड़ना होगा. असल में देखा जाये तो पहली हिंसा तो पुलिस की ही है. **दीपक :** पिछले दिनों लखनऊ का वाक़या है. पुलिस ने गिरफ़्तार लड़कों को ढाल बना कर अपने आगे-आगे चलाया कि अगर पत्थरबाजी हो तो लड़के मारे जायें.

त, बेहद गंदी और
नों कभी किसी सभ्य
लेकिन किसी ने उस के
। नहीं कहा. सैयदैन : मेरी
र नहीं आयी. यकीनन यह
क : हर अखबार में छपी थी.
अखबारों ने मजाक के तौर
; जैसे मोहम्मद गोरी ने अपनी
। गायें रखी थीं, वैसे लखनऊ
लड़कों को आगे कर विद्यार्थियों
ा. किशन : दूसरी बार लड़के
गरफ्तार कर के उन्हें ढाल बना

य : पी. ए. सी. की छावनी बना कर
; विश्वविद्यालय को चलाया नहीं जा
ी. ए. सी. के बाद मुमकिन है कि पल-
ायी जाये और विश्वविद्यालय की
ता के नाम पर सरकार पलटन भेज
. सैयदैन : इस से तो मैं सहमत हूँ. सिवाय
के कि वही चीजें जब लड़के करते हैं तो
ठीक नहीं कहा जा सकता.

किशन : एक आखिरी बात कह दूँ कि छात्रों
; बेचैनी हो या न हो यह विकल्प नहीं है,
विकल्प है उसे किसी बड़े परिवर्तन की दिशा
में ले जायें या उपद्रव का रूप दे दें. सैयदैन : कैलिफोर्निया में जब आंदोलन चला तो उस वक्त छात्रों ने कहा था कि अमेरिका में जो विद्यार्थी आंदोलन है उस की एक विशेषता यह है कि उस का संबंध बाज़ बड़े-बड़े मसलों से है, वह जातिभेद या वीएतनाम-नीति या व्यवस्था के खिलाफ़ है. ये तीन बड़ी चीजें हैं, दूसरे उन्होंने इस सारे आंदोलन में किसी एक जगह का फ़र्नीचर जला भी दिया तो आपस में चंदा जमा कर के नुकसान पूरा कर दिया. जो आंदोलन हमारे यहाँ हुए हैं वे किसी भी बड़े उद्देश्य के साथ जुड़े नहीं हैं. व्यवस्था के खिलाफ़ हैं—लेकिन कोई बहुत बड़ा ठोस इलज़ाम नहीं है. हम ऐसा करें—मालूम नहीं कर सकते हैं या नहीं—कि जो उन की निजी शिकायतें हैं उन्हें दूर करने की कोशिश करें. राजनैतिक नेताओं को कोशिश करनी चाहिए कि छात्रों का ताल्लुक एक नयी दुनिया को बनाने के तसव्वुर के साथ क़ायम हो. आदमी जो बढ़ता है हर लिहाज से बढ़ता है. सामाजिक दृष्टि से बढ़ता है, बौद्धिक दृष्टि से बढ़ता है. जो सिर्फ़ अपनी गर्ज़ों के लिए लड़ता है उस का विकास नहीं होता. राजनीतिक अगर समाज की तरफ़ अपने लड़कों की धारा को मोड़ सकें तो बहुत बड़ी चीज़ हो. हिंसा का कोई औचित्य नहीं है, कोई माँग पूरी न हो तो उस का भी हल हिंसा नहीं है. किशन : एक राय आप से माँग लूँ कि बस तो सब की प्रापर्टी है, उन की भी है. उन को यह सलाह क्यों न दी जाये कि वर्गविहीन रेलगाड़ी के लिए आंदोलन करते हुए वातानुकूलित गाड़ियों के डिब्बे जलायें तो बेहतर होगा.

सैयदैन : मैं तो यह नहीं कहूँगा कि वे गाड़ियों के डिब्बे जलायें या कुछ भी जलायें. मैं यह भी नहीं कहना चाहूँगा कि आप एक माँग करें और अगर आप की वह माँग पूरी नहीं हो तो रेलें जला दें. अभी-अभी आप ही ने कहा है कि सरकार ने यह ग़लती की, पुलिस ने यह ज्यादती की. अधिकारी यह करते हैं तो ऐसी हालत में आप का यह कहना कहाँ तक ठीक होगा, मैं नहीं कह सकता. आप ने साफ़ तौर हिंसा की निंदा नहीं की. मैं नहीं जानता हूँ कि विद्यार्थी अगर इस तरह के वातावरण में पलेंगे तो उन का भविष्य क्या होगा. देश के लिए तो दूर शायद वह अपने लिए भी कुछ कर सकने की स्थिति में नहीं रह जायेंगे. दीपक : मैं खुद हिंसा की व्यर्थता को मानता हूँ. लेकिन संगठित हिंसा का विकल्प संगठित अहिंसा है, असंगठित हिंसा-अहिंसा नहीं. मैं चाहूँगा कि विद्यार्थी जो भी करें संगठित रूप से करें.

राज्यतंत्र

सरकारी हिंसा

१९६९ के शुरू में सरकारी हिंसा और भीड़ या संगठित समूह की हिंसा के संदर्भ में जो स्थिति है, वह किसी हद तक उन दिनों की याद दिलाती है जब भारतीय राज्य का जन्म हुआ ही था.

राष्ट्रीय आंदोलन और गांधी जी के बावजूद १९४७-४८ की अवधि व्यापक हिंसा की अवधि थी और गांधी जी की हत्या इस हिंसा का चरम बिंदु, लेकिन भीड़ या संगठित समूह द्वारा छिटपुट हिंसा और पुलिस का लोगों पर गोली चलाना उस के बाद भी जारी रहा था. ऐसा अक्सर होता है कि जब किसी नये राज्य का जन्म होता है तो संक्रमणकालीन अस्थिरता का लाभ उठा कर विभिन्न तत्व उसे हथियाने की कोशिश करते हैं. जनवरी ४८ में ही भारतीय साम्यवादी दल का रणदिवे-काल शुरू हुआ था, जब साम्यवादी समझते थे कि तेजाबी बम, छुरे और तमंचे का इस्तेमाल कर के वे भारतीय राज्य पर कब्जा कर सकते हैं (उस दौर में सभी नये स्वतंत्र हुए देशों में साम्यवादियों ने हथियारी बलवे के द्वारा राज्यसत्ता अपने हाथ में लेने की कोशिश की थी). मुस्लिम लीग के विरोध में बड़ी तेजी से फैली हिंदू सांप्रदायिकता की महत्त्वाकांक्षाएँ भी शायद कुछ ऐसी ही थीं. गांधी जी की हत्या के बाद उन के सफल होने की संभावना नहीं रही—उन के जीवित रहते भी नहीं थी, लेकिन हिंदू-मुस्लिम दंगे उस के बाद भी होते रहे.

आज हम देखते हैं कि इक्कीस साल बाद फिर उस से मिलती-जुलती स्थिति पैदा हो रही है. साम्यवादी आंदोलन और संगठन का बड़ा हिस्सा तो संगठित हिंसा को नहीं अपना रहा, लेकिन उस में से एक छोटी शाखा फूटी है—नक्सलवाड़ी गुट—जो बंगाल, केरल, आंध्र प्रदेश और कहीं-कहीं अन्यत्र भी छिटपुट हिंसा और लूटपाट कर ने लगी है. दूसरी ओर हिंदू-मुस्लिम तनाव और दंगे भी बढ़ रहे हैं—मुख्यतः मध्यक्षेत्र और महाराष्ट्र में, जो १९४७ के पहले भी ऐसे तनावों के केंद्र थे.

लेकिन इस ऊपरी साम्य के पीछे एक मौलिक भेद है. १९४७-४८ में जो परिवर्तन हुआ था उस के पीछे राष्ट्रीय आंदोलन की विशाल जनशक्ति के अलावा ब्रितानी शासन-व्यवस्था और सेना की भी शक्ति थी. साम्यवादी दल या सांप्रदायिकता में भारतीय राज्य को खरोंचने भर की ही शक्ति मुश्किल से थी, राज्य को इन से कोई खतरा नहीं था. आज भी परिवर्तन की एक प्रक्रिया चल रही है. लेकिन आज इस परिवर्तन के पीछे कोई व्यापक और बड़ी संगठित शक्ति नहीं है. परिवर्तन का यह पहला दौर टूट और राजनैतिक विघटन का दौर प्रतीत होता है. इस दौर में से अवश्य ही जल्दी या देर से कोई व्यापक शक्ति निकलेगी जो परिवर्तन और एकता दोनों की वाहक और माध्यम होगी. लेकिन इस प्रक्रिया का लाभ अभी टूट की शक्तियाँ उठा रही हैं. उद्देश्य वही है—संक्रमणकालीन अस्थिरता का लाभ उठा कर राज्यसत्ता पर अधिकार करना. लेकिन अब भी इन के सफल होने की संभावना भले ही न हो, भारतीय राज्य को काफ़ी क्षति पहुँचाने की शक्ति इन में है, क्यों कि पिछले इक्कीस सालों में भारतीय राज्य काफ़ी कमज़ोर हुआ है.

भारतीय राज्य को, राष्ट्रीय आंदोलन की परंपराओं को और लोकतंत्र की आंतरिक शक्ति को कमज़ोर करने वाली एक बड़ी चीज़ रही है सरकारी यानी पुलिस की हिंसा. भारतीय राज्य के जन्म को मुश्किल से डेढ़ साल हुए थे, जब ओडिसा की खरसवाँ रियासत में वह हत्याकांड हुआ जो जलियाँवाला बाग से भी बढ़ कर था. आदिवासियों की एक भीड़ पर रात के अंधेरे में मशीनगनों से गोलियाँ बरसायी गयीं जिस में कम से कम एक हज़ार आदिवासी मारे गये. देश के किसी भी समाचारपत्र में इस के बारे में एक पंक्ति भी नहीं छपी. दस साल बाद, १९५६ में यह घटना प्रकाश में आयी. सरकार ने अब तक भी इस मामले में अपना मौन नहीं तोड़ा है.

इस के बाद तो पुलिस का निहत्थी भीड़ पर गोली चलाना आम बात हो गयी. १९५६ में पूना की श्रीमती इंदुमती केलकर ने पुलिस द्वारा गोली चलाये जाने की घटनाओं का अध्ययन किया तो समाचारपत्रों के अंकों में उन्हें नौ साल के अरसे में इस तरह की तीन हज़ार से अधिक घटनाएँ मिलीं जिन में एक

हज़ार से अधिक व्यक्ति मारे गये थे और तीन हज़ार से अधिक घायल हुए थे. उस में खरसवाँ का हत्याकांड शामिल नहीं था. अन्यथा भी यह सूची पूरी नहीं थी, क्यों कि बहुतेरी घटनाएँ समाचारपत्रों में छपी ही नहीं थीं लेकिन सरकारी प्रवक्ताओं ने उन्हें स्वीकार किया था.

इस तथ्य को देखते हुए कि भारतीय पुलिस में गोली चलाने की प्रवृत्ति बराबर बढ़ती ही रही है. यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि पिछले इक्कीस सालों में पुलिस की गोलियों से लगभग पाँच हज़ार भारतीय तो अवश्य ही मारे गये और लगभग इस के तीन गुने घायल हुए—किसी छोटे-मोटे युद्ध में हताहतों की इतनी संख्या होती है. इन गोलीकांडों में शायद ही कोई ऐसा अवसर था जब किसी पुलिस या अन्य सरकारी कर्मचारी की जान गयी हो. *नक्सलवाड़ी गुट ने भी अभी तक शायद केवल* एक ही पुलिस कर्मचारी की हत्या की है—केरल में एक बेतार-यंत्र के ऑपरेटर की.

इन गोलीकांडों का एक और भी महत्त्वपूर्ण पहलू है. तीन-चौथाई से अधिक अवसरों पर पुलिस ने 'राजनैतिक' प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ चलायीं और पुलिस की गोलियों से मरने वालों में सब से अधिक संख्या विद्यार्थियों, आदिवासियों और रिक्शाचालकों की रही है. यानी एक ओर तो अहिंसा और लोकतंत्र में विश्वास करने वाली विरोधी राजनीति को पुलिस की हिंसा से दबाया गया, दूसरी ओर राज्य की हिंसा के शिकार सब से अधिक वे हुए जो समाज में सब से अधिक पिछड़े, दबे हुए और ग़रीब थे, आदिवासी और रिक्शेवाले, तथा वे जो अन्याय के विरुद्ध सब से जल्दी उत्तेजित हो जाते थे, क्यों कि उन में निर्माण क्षमता सब से अधिक थी—विद्यार्थी. जिन समूहों को सबल बना कर और शक्ति प्रदान कर के भारतीय राज्य खुद अपने को मज़बूत और विकासशील बना सकता था, राज्य की दमन-शक्ति का प्रयोग सब से अधिक उन्हीं के विरुद्ध होता रहा.

यह एक बड़ा कारण—और भी कारण हैं, बड़े कारण भी हैं—कि देश में परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू होने पर शक्तियाँ टूट तो रही हैं, लेकिन उन की जगह लेने के लिए कोई व्यापक शक्ति नहीं है और नक्सलवाड़ी गुट जैसे बचकाने क्रांतिवादियों या सांप्रदायिक विघटन की शक्तियों को यह लोभ हो रहा है कि वे संक्रमणकालीन अस्थिरता का लाभ उठा कर राज्य पर अधिकार कर सकती हैं. सरकारी हिंसा और दमन शक्ति के द्वारा जन-असंतोष को खत्म करने की अदूरदर्शी चेष्टा का परिणाम राष्ट्र को कितने बड़े खतरे में डालने वाला हो सकता है, नगालैंड का पिछले पंद्रह सालों का घटनाक्रम सीमित क्षेत्र में इस की एक मिसाल है.

प्रतिरक्षा

दाँत और पूँछ का अंतर

भारतीय सैनिक विश्व के सब से अधिक अनुशासनप्रिय और सब से अधिक साहसी सैनिकों में से हैं. वह अफ़्रीका की जलती रेत और घने जंगलों में भी लड़ चुका है और चिशूल की रक्त जमा देने वाली सर्दी में भी. हर स्थान पर वह कठिन परीक्षा में सफल हुआ है. १९४२ की मई में उसी ने जर्मन सेनापति जनरल रोमेल के तूफ़ानी आक्रमण का मुक़ाबला मध्य एशिया के **बीर हाचीयम** में किया था. मेजर कुमारमंगलम (आज के सेनापति) के नेतृत्व में ६४ जर्मन टैंक नष्ट करके रोमेल को पीछे हटने पर मजबूर किया गया. वह युद्ध अंग्रेज़ों ने तत्कालीन प्रधानमंत्री चर्चिल के शब्दों में 'भारतीय तोपचियों के शानदार काम' के कारण जीता. और १९४८ में जब पाकिस्तानी सेनाएँ कश्मीर घाटी को लद्दाख से अलग करने वाली थीं तो १८००० फ़ुट की ऊँचाई पर टैंक चढ़ा कर विश्व को चकित करने वाले जनरल थिमैया के रूप में भी भारतीय सैनिक ही था. भारतीय सैनिक की क्षमता पर संदेह करने का कोई कारण नहीं मगर जिस व्यवस्था से वह बँधा है वह ठीक है ? क्या भारत की प्रतिरक्षा तैयारियाँ हर संकटावस्था के लिए पर्याप्त हैं ?

दाँत से पूँछ तक : प्रतिरक्षामंत्री सरदार स्वर्णसिंह का दावा है कि हमारे देश की प्रतिरक्षा व्यवस्था और तैयारियाँ इस प्रकार चल रही हैं कि हम किसी भी आक्रमणकारी का मुक़ाबला कर सकते हैं. यदि प्रतिरक्षा मंत्री जैसे उत्तरदायी वरिष्ठ अधिकारी यह दावा करते हैं तो उस का कोई ठोस आधार होना ही चाहिए. प्रतिरक्षा मंत्रालय का कहना है कि १९६२ के चीनी आक्रमण के पश्चात् भारत में प्रतिरक्षा के संबंध में जो जागृति पैदा हो गयी और उस के फलस्वरूप जो कार्यक्रम अपनाये गये उस का परिणाम यह हुआ है कि आज हमारी स्थल सेनाओं की संख्या ८ लाख २५ हज़ार हो गयी है. उस समय यही लक्ष्य निर्धारित किया गया था. यद्यपि यह बात वह स्वीकार करते हैं कि चीन के पास इस समय भी भारत की अपेक्षा बहुत अधिक सेना है फिर भी उन के तर्क के अनुसार सिपाहियों की संख्या बढ़ाने की अपेक्षा मारक क्षमता बढ़ाना अधिक उपयोगी होगा. भारतीय सेनाओं का प्रशासन और रचना-व्यवस्था अंग्रेज़ों के ज़माने से अपरिवर्तित रही है. इसी लिए एक सामान्य सैनिक डिवीज़न में बीस हज़ार के क़रीब सिपाही और अधिकारी होते हैं.अन्य देशों की तुलना में यह असाधारण रूप से बड़ा डिवीज़न होता है. मगर सब से बड़ी दिक़्क़त इस में यह रही है कि युद्ध के मोर्चे पर लड़ने वालों की संख्या पीछे रहने वाले सदस्यों की संख्या के प्रायः बराबर ही रही है. सैनिक भाषा में 'दाँत और पूँछ' का अनुपात बहुत वैज्ञानिक रखा गया था. अब इस दिशा में परिवर्तन किया गया है. इस समय यह अनुपात ६२:३८ है जब कि पहले ५७:४३ था. इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि इस परिवर्तन से सेना की युद्ध-क्षमता बढ़ गयी और सेना में अनावश्यक कार्य और व्यक्तियों की छँटनी संभव हो गयी है. जहाँ तक शस्त्रों का सवाल है कुछ साल पहले तक भारत दूसरे विश्व युद्ध और किसी-किसी क्षेत्र में इससे भी पहले के शस्त्रों का प्रयोग करता रहा है. मगर नेफ़ा की पहाड़ियों में पहली बार अपनी कमज़ोरी को महसूस करने के बाद भारतीय प्रतिरक्षा संस्था ने शस्त्रों के आधुनिकीकरण की ओर ध्यान दिया. यद्यपि इस बात को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जाना चाहिए कि चीनी आक्रमण से पहले भी इस दिशा में कुछ शुरूआत हो गयी थी. भूतपूर्व प्रतिरक्षामंत्री कृष्ण मेनन के जितने भी दोष रहे

'विक्रांत' : नौसेना का गर्व

हों एक इस बारे में वह उपयोगी सिद्ध हुए कि उन्होंने भारतीय सेना में कुछ नवीनीकरण की प्रवृत्ति आरंभ की थी. आज विश्व की राजनीति इतनी जटिल हो गयी है और राष्ट्रीय हितों को अंतरराष्ट्रीय मानवता और विश्व शांति आदि के सम्मोहक नारों के आवरण में पेश करने की कोशिश की जा रही है कि आसानी से धोखा दिया जा सकता है. इस लिए प्रत्येक राष्ट्र के लिए यह अत्यंत जरूरी हो गया है कि वह प्रतिरक्षा के मामले में इतना स्वतंत्र हो जाये कि संकट की वेला में उस को अपने मित्र पंगु न बना सकें. यह कहना असंगत होगा कि भारत जैसे विकासशील देश अचानक किसी एक क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो जायेंगे. मगर इस बात का ध्यान जरूर रखा जाना चाहिए कि जहाँ देश एक क्षेत्र में दूसरों पर निर्भर रहे वहीं दूसरे भी किसी न किसी रूप में उस की सहायता पर आधारित हों.

विजयंत : इस दृष्टि से भारतीय सेना के लिए नवीनीकरण का सिद्धांत लागू करते हुए यह अत्यंत आवश्यक है कि जहाँ तक संभव हो सके अधिक से अधिक शस्त्र इस देश में बनाये जायें. क्यों कि किसी भी युद्ध की अवस्था में ब्रिटेन, सोवियत संघ, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस या पश्चिम जर्मनी से आये हुए शस्त्र हमारे लिए एक अभिशाप बन सकते हैं. युद्ध की अवस्था में हर समय यह आशंका रहती है कि यदि शस्त्र प्रदान करने वाले राष्ट्र स्पष्ट रूप से किसी का पक्ष न भी लें फिर भी वे शस्त्र देना बंद कर देते हैं, जैसा कि भारत-पाक युद्ध के समय हुआ था और शस्त्रों के लिए पुर्जे मिलना असंभव हो जाता है. भारत ने इस कठिनाई से बचने के लिए कुछ नये शस्त्रों को चालू कर दिया है जो आरंभ में तो दूसरे देशों से आये हैं या विदेशी फर्मों द्वारा बनाये गये हैं मगर बाद में उन्हें भारत में ही बनाने की व्यवस्था संभव हो सकी है. वायुसेना के कुछ लड़ाकू वायुयान इसी वर्ग में आते हैं. कुछ शस्त्रों का निर्माण स्वतंत्र रूप से भारत में ही हुआ है. विजयंत टैंक का नाम बारबार इस सिलसिले में लिया जाता है. क्यों कि टैंक आधुनिक युद्ध के लिए अत्यंत आवश्यक शस्त्र बन गया है. विशेष कर उस का महत्त्व अप्रत्याशित आक्रमण में बहुत अधिक है. परंपरागत युद्ध-प्रणाली में यह कहा जा सकता है कि शत्रु को आश्चर्यचकित और अस्तव्यस्त करने के साधनों में बमवर्षक विमान के बाद टैंक ही सब से महत्त्वपूर्ण हैं. अवाड़ी के कारखाने में प्रतिवर्ष सौ टैंक बनाने का लक्ष्य है. प्रतिरक्षा मंत्री ने इस बात का संकेत दिया कि टैंक प्राप्त करने के लिए अंतरराष्ट्रीय बाज़ार की भी खोज-खबर ली जा रही है. यह माना जा सकता है कि भारतीय सेना के पास शीघ्र ही पर्याप्त टैंक हो जायेंगे. इस के अतिरिक्त भारत में निर्मित अर्द्ध-स्वचालित बंदूक का प्रयोग तो भारत-पाक युद्ध में ही होने लगा था. एक सैनिक विशेषज्ञ के अनुसार कुछ बड़ी तोपों का भी मौलिक आविष्कार होने लगा है. आक्रामक विमानों को गिराने के लिए विमान-विरोधी तोपों में भी उचित संशोधन हुए हैं और अब उन की क्षमता पहले से अधिक हो गयी है.

वायु और सागर : प्रतिरक्षा मंत्रालय की उपलब्धि के दावे का सब से बड़ा आधार वायुसेना बताया जाता है. कुछ समय पूर्व भारत में केवल पुराने प्रकार के विमानों का प्रचलन था. यद्यपि अब भी इन में से **तूफानी** और **वैंपायर** युद्ध विमान भारतीय वायसेना में हैं मगर उन को धीरे-धीरे हटा कर उन का स्थान **मारुत (एच. एफ-२४)**, **नैट** और **मिग** विमानों ने लिया है. ब्रिटेन से **हाकहंटर** और सोवियत संघ से विशेष प्रभावशाली **एस. यू.-७** युद्ध विमानों की भर्ती से भारतीय वायुसेना की शक्ति में बहुत वृद्धि हुई है. इस के अतिरिक्त **मारुत** विमान के लिए एक नये प्रकार का इंजन विकसित किया जा रहा है जो कि इस विमान को अतिस्वन बनायेगा. आरंभ में मारुत का इंजन संयुक्त अरब गणराज्य में बनाने की व्यवस्था थी. इसी प्रकार इस विमान को भी विदेशी सहायता से मुक्त कर दिया गया है. वायुसेना का लक्ष्य पैंतालीस स्क्वाड्रन रखा गया था. आधिकारिक सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि अभी केवल तीस स्क्वाड्रन पूरे हो पाये हैं जिन में कुछ यातायात विमान शामिल नहीं हैं.

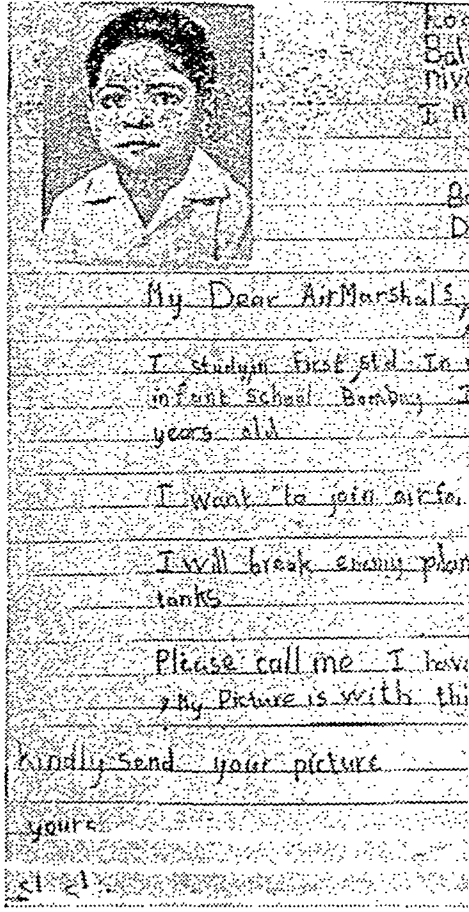

पीढ़ी दर पीढ़ी

यातायात के लिए पहले **लिबरेटर** विमानों का प्रयोग हुआ करता था किंतु अब एवरो ने उस का स्थान लिया है. नौसेना के प्रति भारत सरकार ने बहुत कम ध्यान दिया है. वास्तव में नौसेना के विकास के संबंध में भारतीय प्रतिरक्षा विभाग का विचार बहुत ही अव्यावहारिक और अनुपयुक्त रहा है. फिर भी अब इस दिशा में कुछ प्रगति के क़दम उठाये जा रहे हैं. हाल ही में पहला फ्रिगेट आई. एन. एस. **नीलगिरी** का उद्घाटन हो चुका है. और इसी प्रकार प्रथम सैनिक तेलवाहक **दीपक** को भी चालू कर दिया गया है. सोवियत संघ से भी अभी तक दो पनडुब्बियाँ प्राप्त हो गयी हैं और कुछ शेष हैं. लंबे-चौड़े तट की रक्षा का ध्यान हमें बहुत बाद में आया है और संभवत: इसीलिए इस वर्ष प्रतिरक्षा बजट में नौसेना के बजट को ८० प्रतिशत बढ़ा दिया गया है.

वैज्ञानिक आँखें : वायुसेना की क्षमता बढ़ाने के लिए मिग जहाजों में वायु से वायु में वार करने वाले शस्त्रों को लगाने की योजना चालू की गयी है किंतु प्रक्षेपणास्त्रों के क्षेत्र में अभी भारत विशेष प्रगति नहीं कर सका है. यह ठीक है कि तुंबा संस्थान के प्रयोगों से सैनिक विशेषज्ञों को काफ़ी लाभ प्राप्त हुआ है किंतु उसे अभी तक किसी ठोस कार्य के लिए इस्तेमाल नहीं किया जा सका. शत्रु के टैंकों को नष्ट करने के उपायों में सब से प्रभावशाली उपाय टैंक विरोधक तोप होती है. इस प्रकार की तोपों का विकास शुरू हो गया है. संभवत:

बर्फ़ पर भारतीय सैनिक : बढ़ते क़दम

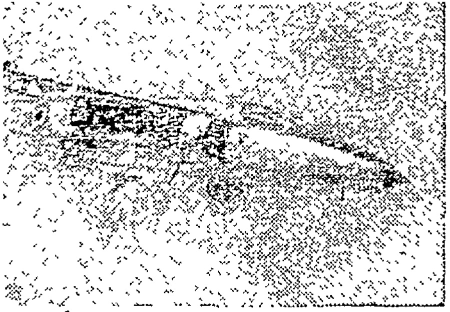

नैट विमान : आत्म-निर्भरता का प्रतीक

यह इसलिए किया गया है कि पाकितान में इस प्रकार की तोप का निर्माण पश्चिम जर्मनी की सहायता से होने वाला है. देश की प्रतिरक्षा के अन्य पहलुओं की प्रगति भी उसी गति से हो रही है जिस गति से सामरिक पक्ष की. इलैक्ट्रानीय उद्योग के विकास के साथ-साथ अधिक सूक्ष्म राडार यंत्र का निर्माण होने जा रहा है. इस सिलसिले में **भारत इलैक्ट्रानिक्स** ने पर्याप्त कार्य किया है और १२ करोड़ रुपये की लागत से इस प्रकार का एक नया कारखाना खोलने की योजना है. इस समय देश में २९ ऐसे कारखाने या प्रयोगशालाएँ हैं जिन में प्रतिरक्षा संबंधी सामान तैयार होता है या अनुसंधान होता है.

वास्तविक क्षमता : साधारणतया प्रतिरक्षा मंत्री स्वर्णसिंह के दावे के लिए प्रमाण ठोस दिखाई देते हैं किंतु कुछ गहराई में झाँकने पर कुछ दूसरा ही दृश्य दिखाई देगा. प्रत्येक देश की प्रतिरक्षा उस के पड़ोसियों के रुख और सैनिक शक्ति के अनुसार ही होती है. चीन और पाकिस्तान बहुत समय तक भारत के मित्र नहीं होने वाले हैं क्योंकि दोनों राष्ट्र यह मान चुके हैं कि एशिया में भारत का सैनिक या आर्थिक रूप से शक्तिशाली बनने का मतलब उन के महत्व में कमी होना है. ऐतिहासिक रूप से ये दोनों देश भारत के परंपरागत शत्रु हैं. जब कभी भी चीन में कोई तानाशाही सरकार बनी है तभी भारत पर आक्रमण हुआ है. इस लिए यह मान लेना कि निकट भविष्य में चीन भारत का मित्र बन सकेगा ऐतिहासिक रूप से अव्यावहारिक बात होगी. प्रतिरक्षा आयोजकों के सामने एक ही शर्त और एक ही परिस्थिति होती है. और वह है किसी शत्रु का आक्रमण. पाकिस्तान अपने निर्माण से ही भारत विरोधी भावना को बढ़ावा देता रहा है. इन दो शक्तिशाली शत्रुओं के साथ भारत को कुछ समय तक रहना होगा. अब यदि हम भारत की सैनिक शक्ति पर एक नजर डालें तो स्पष्ट होगा कि चीन के साथ प्रायः तीन हजार मील लंबी सीमा को सुरक्षित रखने के लिए हमें हर समय अपनी सेनाओं को सतर्क रखना पड़ेगा. यह प्रतिरक्षा मंत्रालय के अधिकारी भी स्वीकार करते हैं कि तिब्बत में चीन ने तेरह से सोलह डिवीज़न सेना रखी है और इस सेना को वह किसी भी समय बढ़ा सकता है. इतनी भारी संख्या में आधुनिक शस्त्रों से लैस सेना को पीछे रखने के लिए भारत को हर समय अपनी पचास प्रतिशत सेना उत्तरी सीमाओं पर तैनात करनी पड़ेगी. जो बाकी बचता है उसे पाकिस्तान की स्थायी सेना और अस्थायी मुजाहिदों के मुकाबिले में पर्याप्त नहीं कहा जा सकता.

अप्रत्याशित : आधुनिक युद्ध की एक और महत्वपूर्ण विशेषता हमारे देश के प्रतिरक्षा आयोजकों की समझ में नहीं आ रही है. वह विशेषता है आश्चर्य की. परंपरागत युद्ध में शत्रु किसी भी ऐसे क्षेत्र से प्रवेश कर सकता है जहाँ से उस के आने की बहुत कम आशा की जा रही हो. भारत-पाक युद्ध में ऐसा ही हुआ था जब कि पाकिस्तान ने राजस्थान में अपनी सेनाएँ प्रविष्ट करा ली थीं. सवा आठ लाख सेना के बल पर यह कभी संभव ही नहीं कि हम हर समय दो-दो, तीन-तीन मील की दूरी पर सैनिक चौकियाँ स्थापित कर सकें. हर समय कुछ ऐसे क्षेत्र ज़रूर रहेंगे जहाँ से शत्रु अचानक प्रवेश कर सकता है. इस संकट अवस्था का मुकाबला करने के लिए भारत के प्रतिरक्षा विभाग के पास क्या है ? यदि अरब-इस्राइली युद्ध की कोई विशेषता थी तो इसी तत्व-आश्चर्य की थी. अरबों को उस क्षेत्र से इस्राइलियों के प्रवेश करने की कोई आशा ही नहीं थी जहाँ से वे अरब देशों में घुस आये. अपनी इस्राइली यात्रा के बाद संसद सदस्य मेजर रणजीत सिंह ने कहा कि १९५६ में जब इस्राइलियों ने सिनाई क्षेत्र से अपनी सेनाएँ हटा ली थीं तो वे इस सारे क्षेत्र का सैनिक रूप से सर्वेक्षण कर चुके थे. इस सर्वेक्षण का पूरा-पूरा लाभ उन्होंने १९६७ के युद्ध में उठाया. जिन स्थलों को अरब और रूसी विशेषज्ञ टैंकों के योग्य नहीं मानते थे वहीं से इस्राइली टैंक घुस आये. इस स्थिति का मुकाबला करने का एक ही मार्ग है और वह है सुरक्षित सेनाएँ स्थापित करना. हम बहुत बड़ी स्थायी सेना नहीं बना सकते. इस लिए यह ज़रूरी है कि हम ऐसी अस्थायी सेना बनायें जो शांति काल में जीवन के सामान्य कार्य करते हुए भी युद्ध में एक सुगठित सेना का रूप ले सके. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने मेजर रणजीत सिंह का ध्यान उन के उस भाषण की ओर दिलाया जिस में उन्होंने माँग की थी कि सीमा क्षेत्रों में लोगों को छापामार युद्ध कला सिखायी जानी चाहिए, तो उन्होंने कहा कि छापामार युद्ध कला सिखाने से मतलब यह कदापि नहीं कि लोगों को अनियमित लुटेरे बनाया जाये जैसा कि स्वर्णसिंह समझते हैं. यदि किसी क्षेत्र में अचानक २०-२५ टैंक लेकर शत्रु घुस आया तो सेना के वहाँ पहुंचने तक वह मीलों अन्दर आ सकता है मगर यदि सीमावर्ती गाँव में केवल तीन चार बजूका हों तो शत्रु की टैंकों को कई घंटे तक अपढ़ और असैनिक किसान रोक सकते हैं.

शासन और प्रशासन : भारतीय सेना के प्रशासन के सम्बन्ध में उन्होंने कहा कि अब भी इस में कोई प्रगतिशील और वैज्ञानिक परिवर्त्तन नहीं हुआ है 'इस में क्या तुक है कि जवान के लिए कम से कम कद ५ फ़ुट ६ इंच हो और अफसर के लिए ५ फ़ुट ४ इंच ?' उन के अनुसार प्रतिरक्षा विभाग के अधिकारियों को सैनिक व्यवस्था और आवश्यकताओं के बारे में प्रारम्भिक ज्ञान भी नहीं है. प्रतिरक्षा अधिकारियों की सैनिक जानकारी सैनिकों में हास्य का विषय बन गया है. **दिनमान** के प्रतिनिधि को एक सैनिक अधिकारी ने सरकारी उदासीनता का उदाहरण देते हुए कहा कि भारत-पाक युद्ध में जब पाकिस्तान की सेनाएं पंजाब पर चढ़ आयीं तो सेना को रसद पहुंचाने और अन्य सामान के लिए गाड़ियों की कई दिन तक व्यवस्था नहीं की गयी. एक मोर्चे पर दो दिन तक ग्रामीण किसानों ने सैनिको को खिलाया जो अपने बच्चों और महिलाओं को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचा कर वापस लौटे थे. सैनिक अफ़सर के अनुसार महत्वपूर्ण सैनिक सामग्री को एक से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिए भी स्थानीय ट्रक ड्राइवरों ने अपना व्यय लगा कर गाड़ियाँ उपलब्ध करायीं.

कुछ सुझाव : भारत की प्रतिरक्षा के लिएं किन नयी बातों की ज़रूरत है ? संसद की प्रतिरक्षा परिषद के सामने रखे गये प्रतिवेदन में सुझाया गया है कि प्रतिरक्षा अधिकारियों को अनिवार्य रूप से सैनिक प्रशिक्षण मिलना चाहिए. इस प्रकार के पुलों का निर्माण होना चाहिए जो शांतिकाल में सामान्य यातायात के उपयुक्त तो हों ही मगर युद्ध में भी वह उपयोगी सिद्ध हों. कई सामान्य कारखानों की व्यवस्था में इस प्रकार का संशोधन हो कि युद्ध में वह सामरिक उत्पादन भी कर सकें.

और अंत में : वायुसेना के अधिकारियों ने प्रतिरक्षा मंत्रालय से कुछ घोड़े उपलब्ध कराने की माँग की. मंत्री चक्कर में पड़ गये. वायु सेना और घोड़े ! उन्होंने एक भूतपूर्व सेनाध्यक्ष से पूछा कि मामला क्या है. अनुभवी जनरल ने सलाह दी कि वायु सेना को घोड़े मिल जाने चाहिएं. क्योंकि शरीर को चुस्त और स्वस्थ रखने के लिए व्यायाम की बहुत ज़रूरत होती है.

'हां, यह तो ठीक है मगर क्या उन के पास ४५ स्क्वाड्रन नहीं हैं?' घोड़ों की एक निश्चित संख्या को भी स्क्वाड्रन कहते हैं.

जनरल मुस्करा कर बोला, "हैं तो ज़रूर मंत्री जी, मगर वह घोड़े नहीं विमान हैं."

मिग–२१ : आधुनिकीकरण की ओर

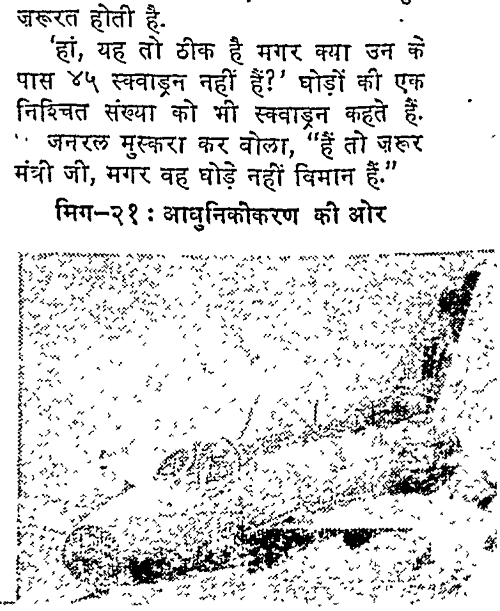

बंद दुर्ग में दुर्घटना

दिल्ली की किसी भी सड़क पर साइकिल पर या पैदल चलते हुए अचानक यदि आप को यह सुनने को मिले —'ओ भाई, देख कर चल, घर में बाल-बच्चे इंतज़ार करते होंगे...' और कोई बस या ट्रक या कार आप को छूती हुई निकल जाये तो एकबारगी आप ऊपर से नीचे तक काँप सकते हैं. यह आवाज़ ट्रैफ़िक के सिपाही की भी हो सकती है और किसी उजड्ड बस ड्राइवर की भी और आप को एक ऐसी सच्चाई का बोध करा जाती है जिसने दिल्ली में स्वतंत्रता के बाद से, विशेष तौर से पिछले दस सालों में, एक गहरी भीति, असुरक्षा और अनिश्चितता की भावना को जन्म दिया है. आख़िर सब को धकेल कर आगे बढ़ने वाला सफल आदमी ही यहाँ कार भी चलाता है.

११०० मील की क़ैद : सुबह के चार बजे से यह शहर जागना शुरू होता है, तो चालीस लाख आबादी में से एक बड़ी संख्या अपनी दिनचर्या के लिए ११०० मील लंबी सड़कों पर भाग-दौड़ शुरू कर देती है. दिल्ली में आज़ादी के बाद सभी चीज़ें फैली हैं, पर सड़कों की कुल लंबाई १९५७ में ९३७ मील थी और आज सिर्फ़ ११०० मील है, जिस में क़रीब ७० मील आसपास के गाँवों में बसती सड़कें हैं. आबादी सन् '५७ में साढ़े बाइस लाख थी, आज ४० लाख है और डॉक्टर की सलाह के बावजूद १९७१ तक ४४ लाख हो जाने को है. ऐसा अनुभव होता है जैसे किसी बंद दुर्ग में आबादी बढ़ रही है, कार्यक्षेत्र बढ़ रहा है, एक उद्वेग को व्यवस्था देने की भरसक चेष्टा हो रही है. पर क्यों कि पैरों के नीचे की धरती सीमित है इस लिए चक्रों की गति ही बढ़ रही है और असुरक्षा ! पर दिल्ली किसी भी भय से कोई छोड़ेगा तो है नहीं. सरकार के इतने पास रहना गौरव की बात भी है और लाभ की भी.

चलती सड़क पर मृत्यु : दिल्ली में चलना-फिरना वास्तव में एक समस्या है. रोज़ अख़बारों के कॉलम पिछले दिन सड़कों पर हताहत लोगों की सूचनाओं से भरे होते हैं. पैदल, साइकिल वाले, रेड़े-ताँगे या स्कूटर और यहाँ तक कि कार वाले तक इन दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं. मारने वालों में अधिकतर बस, ट्रक, टैक्सी और मोटर साइकिल रिक्शावालों का नाम आता है. पर इन लोगों से पूछो तो महसूस होगा कि दोष इन का बिलकुल नहीं, या पैदल और साइकिल सवार आँख मूँद कर सड़क पार करते हैं, या सड़क पर लाइट नहीं होती, या ट्रैफ़िक पुलिस चौराहे पर से नदारद होती है, या अधिकांश सिगनल किसी न किसी कारण से ख़राब रहते हैं. यातायात पुलिस जनता से नाराज़ है, उस का कहना है कि दिल्ली में क़ायदे-क़ानून का महत्त्व न पैदल चलने वाले समझते हैं न सवारी चलाने वाले. उन के एक सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली में हर पाँचवें मिनट पर सड़क नियम-भंग किया जाता है. प्रमाण स्वरूप १९६७ के पहले दस महीनों में ५६५० छोटी सवारियों के चालकों पर नियम-भंग के आरोप में मुक़द्दमे चलाये गये और १९६८ के पहले दस महीनों में १२०९२ चालकों पर. मोटर चालक नियमों की अधिक उपेक्षा करते हैं. १९६७ के पहले दस महीनों में ५५७३७ मोटर चालकों का चालान हुआ और १९६८ के पहले दस महीनों में ६५६०९ का. इन ब्योरों से दोनों ही निष्कर्ष निकलते हैं— चालान करने वालों में सन्नद्धता बढ़ी है और सामान्य जनता में नियमों के प्रति उपेक्षा-भाव.

चार पंक्तियाँ : जो भी हो, सड़क पर मृत्यु की गंभीरता मानवीय स्तर पर पूरे शहर की संवेदना को अस्थिर करती है. फैलते और फूलते हुए शहरों की अनासक्ति और आत्मलीन भाव के बावजूद यह मन-मस्तिष्क पर एक गहरा दबाव डालती है. सुबह से घर के जो बच्चे, किशोर लड़के-लड़कियाँ, जवान पुरुष और स्त्री अपने-अपने धंधे से स्कूल या दफ़्तर या बाज़ार के लिए सड़कों पर उतरते हैं उन की सुरक्षा उन का अपना कर्त्तव्य भी है, मोटर गाड़ी बसवालों का भी और राज्य का भी. अख़बार में निर्मम संवाददाता की चार पंक्ति में लिखी ख़बर का वज़न धीरे-धीरे मन की सभी गतिशील शक्तियों को कुंद कर सकता है.

शब्दभेदी संहार : खोज-बीन से पता चलता है कि दिल्ली में सड़क-दुर्घटनाओं से मरने वालों में सब से अधिक संख्या पैदल, साइकिल वालों की है—१९६७ के ब्योरों के अनुसार ७६ सैकड़ा. अधिकांश दुर्घटनाएँ सर्दी के मौसम में हुईं. ६५ में से ४७ साइकिल सवार अँधेरे में मारे गये. कारण था उन का सर्दी से ठिठुरे होना या गहरे रंग के कपड़े या कंबल पहने होना. अधिकांश को मारने वाले थे दिल्ली परिवहन या प्राइवेट बसों के ड्राइवर. पर केवल अँधेरे और सर्दी को दोष नहीं दे सकते. कोई आँकड़े नहीं हैं कि पोषक ख़ुराक के अभाव में भाग सकने की ताक़त न रहने से कितने मारे गये. हाँ, दिल्ली परिवहन के चालकों का एक विचित्र तथ्य हमारे सामने है. "नेशनल सोसायटी ऑफ़ द प्रिवेंशन ऑफ़ ब्लाइंडनेस" के सर्वेक्षण के अनुसार चालकों की कुल संख्या १६०० में से १२८९ का परीक्षण हुआ, तो ६७२ की बीनाई कमज़ोर मिली और ३५ वर्णांध है, जिन को तत्काल सेवा से मुक्त किया जाना चाहिए. इस के बावजूद ये सब चालक नौकरी में हैं.

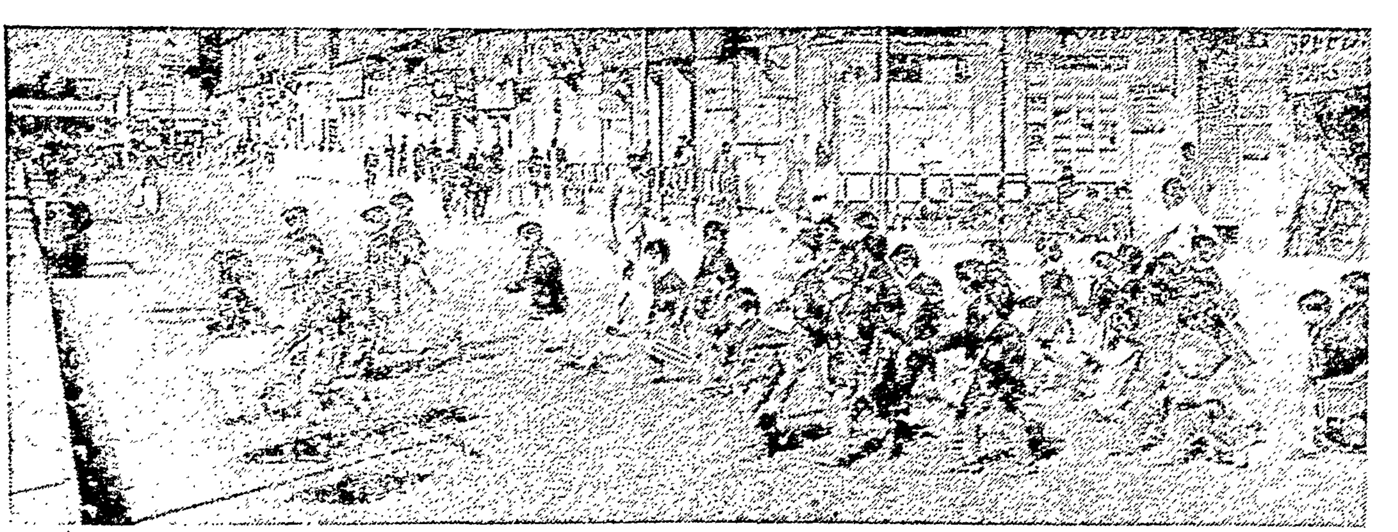

भागो, मौक़ा है

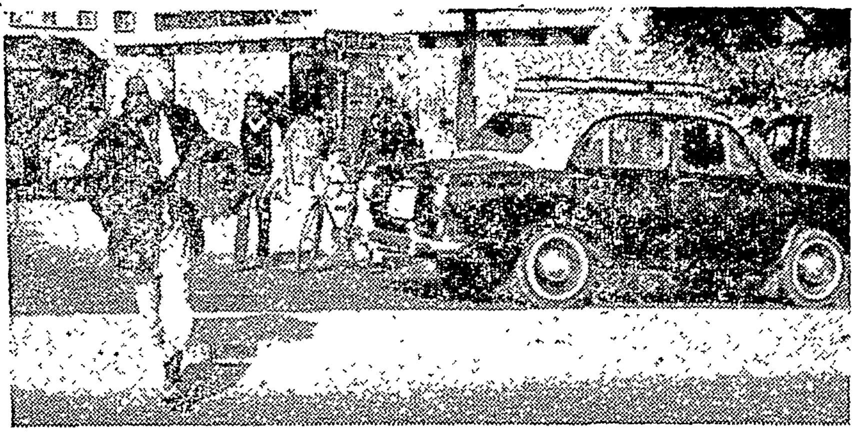

बच निकले

भीड़ में बेहद तेज़ बसें चलाते हैं. ओवरटेक करते हैं. मोड़ काटते हुए सवारियों को हंडिया के चावलों की तरह उलटते-पलटते हैं और कभी-कभी तो खुल कर रेस करते हुए दिखायी देते हैं, रात को कभी-कभी जब सड़क बिलकुल खाली हो तो सड़क पर चलते साइकिल वाले की बाईं तरफ़ से बिना हॉर्न दिये मज़ाक के तौर पर बस निकाल कर अपनी महारत का प्रदर्शन करते हैं.

इस के अलावा दिल्ली में यातायात की समस्या को गंभीर बनाने का श्रेय पैदलों के मुक़ाबले बढ़ती हुई वाहनों को भी है. वृद्धि-दर १५००० गाड़ियाँ और ३५००० साइकिलें प्रतिवर्ष. १९५७ में कुल गाड़ियाँ ३४००० थीं, जिन में ८००० धीरे चलने वाली भी थीं, जैसे ताँगे, रेढ़े, बैलगाड़ियाँ, हाथ-रिक्शे और साइकिल-रिक्शे. कुल साइकिलें थीं ढाई लाख. १९६७ में १,३०,००० गाड़ियाँ हो गयीं, जिन में धीरे चलने वाली १८,३०० साइकिलों की संख्या इन दस सालों में हो गयी ६ लाख.

पहले में : दिल्लीवासी बिना युद्ध और दैवी कोप के नित्य प्रति के जीवन में एक गहरी असुरक्षा निरंतर अनुभव करते हैं. बना-सँवार कर बच्चे को घर से स्कूल भेजेंगे और दिन भर आकुल भाव से उस का इंतज़ार करेंगे. बच्चा कहीं सड़क के किनारे सड़क पार करने की बार-बार कोशिश करता घंटों खड़ा रहेगा. बच्चा जब तक घर नहीं आयेगा सारा घर जैसे सूली पर टँगा रहेगा. १९६७ में सड़क पर ८१ बच्चे मरे और ४२२ घायल हुए. दिन-रात अंग्रेजी बोलने वाले और साहबी ठाठ से ऐंठने वाले दिल्ली के हिंदुस्तानी बच्चों को सड़क पार करने के लिए मोटर धीमी नहीं करना जानते. बीस साल में नगर निगम ने स्कूल के पास बच्चों के विशेष पार-पथ नहीं बनाये.

अनाड़ी और गाड़ी : दिल्ली की सड़कों पर तीन तरह के लोग चलते-फिरते पाये जाते हैं; एक जो दिल्ली के बाशिंदे हैं. दूसरे जो दिल्ली की आसपास की बस्तियों में रहते हैं और यहाँ काम करने आते हैं. तीसरे वे जो दिल्ली घूमने या व्यापार के लिए एक-दो दिन के लिए आये होते हैं. दिल्ली के चौराहों के लाल-हरे सिगनल या लिखित या अलिखित नियम दिल्ली के पहली कोटि के लोगों के लिए काफ़ी हद तक स्वभावगत हो चुके हैं. तेज़ से तेज़ आती गाड़ी की हर संभावित हरकत को वे भाँप लेते हैं. पर शेष दो कोटि वाले दिल्ली यातायात के लिए समस्या हैं. रफ़्तार से दौड़ती गाड़ियों के सामने ये पहले दुविधा में फँस जाते हैं, फिर दुर्घटना में और अक्सर तभी मारे जाते हैं जब क़ायदे से चल रहे होते हैं. नतीजा निकलता है कि शहर में यातायात-व्यवस्था तभी कारगार हो सकती है जब रहने वालों का स्वभाव उसे ग्रहण करे. इस दृष्टि से दिल्ली की यातायात पुलिस असतर्क नहीं है. दिसंबर ६८ में उन्होंने वातावरण बनाने के लिए 'सड़क सुरक्षा सप्ताह' मनाया; या चारों तरफ़ विभिन्न नियमों की याद दिलाते हुए साइन बोर्ड लगाये गये थे; २६ जनवरी, १५ अगस्त व अन्य मेलों के लिए विशेष यातायात पुलिस सिखायी जा रही है; बच्चों के लिए यातायात नियम सीखने के पार्क बन रहे हैं; पुलिस की गश्ती गाड़ियों की संख्या बढ़ायी जा रही है; पीली बत्ती वाले चितकबरे पार-पथ की व्यवस्था हो रही है. पर यह सब उस हालत में अपर्याप्त है जब कि कार, बस और ट्रक चलाने वालों का मनोविज्ञान बदलने के लिए कुछ ठोस क़दम न उठाये जायें. उन में पैदल व साइकिल और स्कूटर सवारों के प्रति उपेक्षा-भाव कम न हो.

रोज़ एक मौत : इस समस्या का सब से असामाजिक पहलू है सड़कों पर गाड़ी-दौड़. इस के लिए तिलक पुल, मथुरा रोड, रिंग रोड, गुड़गाँव रोड और करनाल रोड को मस्त चालक सब से उपयुक्त मानते हैं. १९६८ में ३६५ मृत लोगों में से १२८ की हत्या इन्हीं सड़कों ने की.

पुरातत्त्व

पूँजी के पत्थर मिट्टी के मोल

भारत की छिन्न-भिन्न होती पुरासंपत्ति का विदेशों को निर्यात सर्वथा अवैध कर देने के उद्देश्य से केंद्र सरकार एक विधेयक संसद् में प्रस्तुत करने का औचित्य विचार रही है. दिनमान ने प्रसिद्ध पुरातत्त्वकलापारखी, भारत कला भवन बनारस के संस्थापक-संचालक श्री राय कृष्णदास से पुरा संपत्ति के संरक्षण पर उन के विचार पूछे. वे यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं.

यों तो अपने समाज में पुरातत्व के प्रति जागरूकता किसी न किसी प्रकार में रही, परंतु वैज्ञानिक ज्ञान के अभाव में ठीक-ठीक कोई उपलब्धि नहीं हुई. उदाहरण के लिए फ़ीरोज़ तुग़लक अशोक के दो स्तंभों को उठा लाया और उस ने उन्हें दिल्ली में पुनः गड़वा दिया. जहाँगीर में भी ऐसी जिज्ञासा थी, परंतु शास्त्र के रूप में पुरातत्त्व का प्रयोग हम लोगों को यूरोपियों के संपर्क में आने पर ही ज्ञात हुआ. उस के पहले इन पुराने अवशेषों पर लोक प्रचलित विश्वासों अथवा मान्यताओं को स्थानीय जनता आरोपित किया करती. आज भी किसी प्राचीन ढूहे के बारे में पूछिए तो वहाँ के लोग बतायेंगे यह अमुक राक्षस का गढ़ था, अथवा रामायण-महाभारत के किसी पात्र से संबद्ध स्थान, अथवा किसी लौकिक देवता का वास आदि. काशी में ही बुद्ध की मूर्ति **मुड़कट्टा वीर** के नाम से पूजी जाती है. राजगीर के पास जरासंध का अखाड़ा माना जाता है आदि आदि. कितने ही द्रौपदी कुंड हैं, सीता की रसोई हैं, राजा विराट का किला है—क्यों कि जनमानस इन पात्रों को जीवित रखना चाहता है.

इस दृष्टिकोण से ऐसे प्राचीन स्थानों के प्रति श्रद्धा और आदर का भाव भी मिलता है, फिर भी इन अवशेषों का समुचित रक्षण नहीं हो पाया. कितने ही ऐसे टीलों पर खेती होती है, गाँव के गाँव बसे हैं. सब तो सब वर्त्तमान मथुरा नगर अपने भीतर अपार प्राचीन संपत्ति छिपाये हुए है. नदियों की धारा बदलने से अनेक ऐसे स्थल उन के गर्भ में चले गये. भिन्न-भिन्न प्रकार से पुरातत्त्व संबंधी सामग्रियों को क्षति पहुँची परंतु सब से अधिक मनुष्य ने ही इन्हें क्षति पहुँचायी और आज तक किसी न किसी रूप में पहुँचाता जा रहा है. अपने हज़ारों वर्षों की सुप्तावस्था में पड़े ये टीले पत्थरों और ईंटों के अथाह समुद्र हैं. मकान बनाने के लिए पास-पड़ोस के लोग उन में से पत्थर, ईंटों को निर्ममता से लेते रहे हैं. अट्ठारहवीं शती में बनारस के जगतसिंह ने **सारनाथ** के एक भाग को पूरा का पूरा उजाड़ कर **जगतगंज** का मुहल्ला बसा डाला. फिर इन्हीं अवशेषों की मदद से बरना नदी पर पुल बना. उन्नीसवीं शती में महाराष्ट्र से एक यात्री—**विष्णु भट्ट**

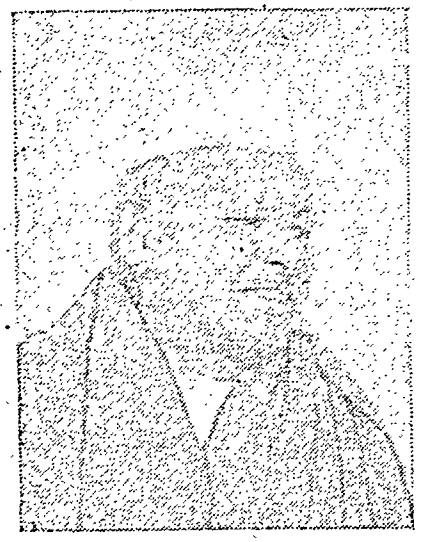

रायकृष्ण दास : पकी पकायी ईंटें छोड़ दो

गोडसे वरसईकर झांसी आये. वे लिखते हैं कि उज्जैनवासियों को ईंटें नहीं पकानी पड़तीं—किसी देवता के प्रसाद से पास-पड़ोस में पकी पकाई ईंटें खोदने से ही प्राप्त हो जाती हैं. उज्जैन के पुरातत्व का इस से बड़ा काल कौन हो सकता है. भरहुत के प्रसिद्ध स्तूप की बहुमूल्य सामग्री प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता सर अलेक्जेंडर कनिंघम को और फिर हाल में मेरे आदरणीय मित्र तथा प्रयाग संग्रहालय के संस्थापक स्व. व्रजमोहन जी व्यास को पड़ोस के गाँवों में, घरों में चिनी हुई मिलीं. तब तक भरहुत का स्तूप ही प्रायः अंतर्धान हो चुका था. हड़प्पा नगर का अधिकांश अवशेष रेल लाइन बैठाने वाले ठेकेदार की 'कृपा' से गिट्टी बन चुका था. अमरावती का प्रसिद्ध स्तूप ऐसे ही किसी ठेकेदार ने फूंक कर चूना बना डाला था. सब तो सब १९४० में जब रेलवे ने बनारस वाला पुल दो मंजिला करना प्रारंभ किया तो अंधाधुंध राजघाट (प्राचीन काशी) कटने लगा. संयोगवश मेरा ध्यान उस ओर गया; मैं ने उसी समय पुरातत्व विभाग के तत्कालीन महानिदेशक श्री के. एन. दीक्षित के पास सूचना भेजी और शीघ्र ही इस विभाग ने उस स्थान को अपने नियंत्रण में ले लिया अन्यथा इस का बहुत कुछ भाग उसी झटके में समाप्त हो जाता.

आज ऐसी घटनाएँ तो नहीं होतीं फिर भी पुरातत्व सामग्री का बहुत बड़ा भाग हमारी नासमझी से नष्ट हो रहा है. उन में से एक बड़ा कारण यह है कि आजकल संसार में भारतीय मूर्त्तियों की बहुत माँग हो गयी है और जनसाधारण इन पुराने स्थानों को मनमाने ढंग से खोद-खोद कर उन के तारतम्य को नष्ट कर रहे हैं. यदि यह प्रवृत्ति बढ़ती गयी तो अनेक महत्त्वपूर्ण प्रमाण सदा के लिए नष्ट हो जायेंगे.

भारतीय पुरातत्व के संबंध में एक भारी कठिनाई यह भी है कि ऐसे प्राचीन स्थल हज़ारों की संख्या में हैं. उदाहरण के लिए गंगा के मैदान में ही, जो प्राचीन संस्कृति का हृदयस्थल रहा है, एक छोर से दूसरे छोर तक हज़ारों ऐसे छोटे-बड़े स्थान हैं. उन सब का संरक्षण, उत्खनन, अध्ययन आदि तात्कालिक परिवेश में असंभव है. यह ऐसी थाती है जो यदि बची रह गयी तो कई सौ वर्षों तक विद्यार्थियों-अध्येताओं को सामग्री देती रहेगी. यह भी संभव नहीं है कि दिल्ली में एक सरकारी विभाग उन सब के लिए समुचित व्यवस्था ही कर सके. न इस के लिए पर्याप्त धन है, न ट्रेनिंग पाये हुए व्यक्ति पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं. एक दृष्टिकोण यह भी है कि यदि इन सभी भूभागों को पुरातत्व के लिए रख लें तो वह वर्त्तमान मानव पर हावी हो जायेगा.

इस प्रश्न की विराटता को देखते हुए पुरातत्व अब केंद्रीय विषय के साथ-साथ प्रांतीय विषय भी हो गया है. अतः अनेक राज्यों ने पुरातत्व विभाग खोल दिये हैं. दोनों में परस्पर स्थिति यह है कि जिन स्थानों को केंद्रीय पुरातत्व विभाग अपने संरक्षण में नहीं रखना चाहता, उन्हें राज्य अपने संरक्षण में कर सकते हैं. अथवा किसी नये खोजे हुए स्थान का यदि राष्ट्रीय महत्त्व न हो तो उन्हें भी अपने संरक्षण में ले सकते हैं. यह स्थिति स्वतंत्रता के बाद क्रमशः राज्यों में आयी. अतः अभी इस का पूर्ण विकास नहीं हो पाया. इस के अतिरिक्त राज्यों को उतने साधन भी उपलब्ध नहीं हैं. उन के पुरातत्व विभाग बहुत छोटे हैं, उन के पास न उतने व्यक्ति हैं, न आवश्यक धन. अतएव स्थिति बहुत कुछ ज्यों की त्यों है.

भारत में पुरातत्व विभाग की गतिविधि मुख्यतः दो काल-विभागों में बँटी है : प्राचीन भारतीय और मुस्लिम काल. वस्तुतः ये ही दो प्रमुख विभाग हैं और इन की अपनी-अपनी अलग-अलग समस्याएँ हैं. मुस्लिम काल की इमारतों में पुरातत्व का बहुत कुछ काम संरक्षण, रख-रखाव, अध्ययन और प्रकाशन ही है. कई दशकों से हम पुरातत्व विभाग का इस ओर ध्यान दिला रहे हैं. यों तो पुरातत्व विभाग ऐसे भी सभी राष्ट्रीय महत्त्व की इमारतों का रख-रखाव आदर्श रूप में कर रहा है, परंतु इसी से इस पक्ष का अंत न होना चाहिए. स्वयं दिल्ली में ही दर्जनों अच्छी इमारतें नष्ट हो रही हैं, उन्हें लोग तोड़-फोड़ रहे हैं. कभी-कभी तो कुछ व्यक्ति उन्हें अपनी खानदानी संपत्ति मान कर उन पर अधिकार भी कर रहे हैं. ऐसे अनेक वास्तुओं को संग्रहालयों में उठा ले जाने की अनुमति देना ज्यादा अच्छा होगा. इस कालांश पर अध्ययन और प्रकाशन भी बहुत कम हो रहा है.

प्राचीन भारतीय विभाग में दो वर्ग आते हैं : एक तो प्रागैतिहासिक वर्ग है और दूसरा ऐतिहासिक. पहले अंग्रेज विद्वानों ने ऐतिहासिक युग सिकंदर के आक्रमण के समय से प्रारंभ हुआ माना था. अब बुद्ध-पूर्व के महाजनपद युग को प्रायः सभी ऐतिहासिक काल में गिनते हैं. मेरी दृष्टि में पौराणिक वंशावलियों के आधार पर वैदिक काल तक को ऐतिहासिक युग, दूसरी ओर पाषाण युगों, ताम्र-पाषाण युगों, ताम्र युगों आदि को प्रागैतिहासिक काल में रखना चाहिए. इन्हीं कालों में मानवता ने सभ्यता की सीढ़ियाँ क्रमशः पार कीं. इन की खोजों से अपने देश की प्राचीनतम सभ्यताओं पर प्रकाश पड़ता है. इधर पुरातत्व विभागों के तथा विश्वविद्यालयों के विद्वानों का ध्यान इस समस्या की ओर बहुत गया. वस्तुतः द्वितीय महायुद्ध काल में सर मार्टिमर ह्वीलर इस विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए. उन्होंने इस ओर भारतीय विद्वानों को प्रवृत्त किया. वह पश्चिमी एशिया में उस युग पर बहुत काम कर चुके थे, उन्होंने इन्हीं नयी प्रणालियों को भारतीय परिवेश में उतारा. भारत में इस दिशा में कार्य भी कम हुआ था. वर्तमान पश्चिमी पाकिस्तान में सिंधु-घाटी की सभ्यता के अवशेष मिले थे. परंतु उन के साथ अनेकानेक समस्याएँ जुड़ी थीं. न तो उन की लिपि ठीक-ठीक पढ़ी जा सकी, न यही निश्चय हो सका कि ये लोग किस जाति के थे अथवा इन का वैदिक आर्यों से क्या संबंध था. इतना ही नहीं, इस सभ्यता और भारतीय ऐतिहासिक युग

भितरगाँव (उ० प्र०) के मंदिर में अनंतशायी विष्णु (यहाँ की मूर्तियों की दुर्दशा का समाचार १२ जनवरी के दिनमान में देखिए.)

वृश्चिक मुद्रा में शिव
अमेरिका के एक संग्रहालय में १९वीं शती की कांस्यमूर्ति

के बीच एक लंबा व्यवधान है; बीच की कड़ियाँ उपेक्षित थीं. अतएव पुरातत्व विभाग- ने जब इस ओर ध्यान दिया तो उस का बहुत स्वागत हुआ. इन वर्षो में पुरातत्व विभाग ने इस काल की सभ्यता की बहुत मार्के की खोजें की : इस का प्रसार अब गुजरात, मध्य-प्रदेश, पूर्वी पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तरप्रदेश में भी मिल गया है. इस प्रकार इस ज्ञान में क्रांतिकारी परिवर्त्तन हुआ. अन्य कई गुत्थियाँ भी निकट भविष्य में खुल सकती हैं.

इन के अतिरिक्त प्रागैतिहासिक काल पर भी बहुत प्रकाश पड़ा जिन से पूर्व-पाषाण, नव-पाषाण युगों के दर्जनों स्थान खोज निकाले गये और उन का तारतम्य स्थापित किया गया. प्रागैतिहासिक भित्ति-चित्रों की नयी-नयी श्रेणियाँ मिली और उन का ठीक-ठीक मूल्यांकन हुआ. हम यह कह सकते हैं कि ऐतिहासिक काल की ओर अभी भी पुरातत्व विभाग का समुचित ध्यान नहीं है. नये विद्वानों का भी अधिक झुकाव प्रागैतिहासिक काल की ओर है फलस्वरूप पुरातत्व संबंधी कई शास्त्रों के अध्ययन पिछड़ रहे हैं. उदाहरण के लिए वास्तु शास्त्र का अध्ययन, मुद्रा शास्त्र, अभिलेख शास्त्र के अध्ययन आदि. इस ओर भी ध्यान अपेक्षित है.

पुरातत्व के साथ इन सामग्रियों के तस्कर व्यापार की ओर ध्यान जाता है. स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व प्राचीन भारतीय कलाकृतियों का अध्ययन भारत और ब्रिटेन के बाहर बहुत कुछ सीमित था. इन दोनों देशों से कलाकृतियाँ सरकारी माध्यम से ही प्राप्त हो जाती अतएव एक प्रकार से इन की कोई अंतरराष्ट्रीय माँग न थी, न ऐसा कोई बाजार था. बहुत हुआ तो लंदन में कुछ मुगल चित्र या गांधार शैली की मूर्तियाँ बिक जाती. स्वतंत्रता के बाद देश-विदेश में अनेक संग्रहकर्ताओं का इस ओर ध्यान गया. यह स्वाभाविक ही था. हर एक देश और युग की कलाओं के विश्वव्यापी अनुग्राहक है फिर भारतीय कला ही क्यों कूपमंडूक बनी रहती. उसे विश्वव्यापी स्तर पर आना ही था. स्वतंत्रता के बाद भारतीय कला का जो अध्ययन और प्रकाशन हुआ उस की स्वाभाविक परिणति यह हुई कि संसार के सभी प्रमुख संग्रहालय ही नहीं, प्रत्येक समाज के व्यक्ति भी भारतीय कला का संग्रह करने लगे. भारतीय कला को यूरोपीय अकेडेमिक कला के गज से न नाप कर उस का अब स्वतंत्र मूल्यांकन प्रारंभ हुआ. यह विषय अनेक देशों में विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में आ गया.

दूसरी ओर स्वतंत्रता के बाद ही भारत सरकार ने इन सामग्रियों के बाहर जाने पर कठोर प्रतिबंध लगा दिया. वर्त्तमान क़ानून के अनुसार सौ वर्ष से अधिक पुरानी वस्तुओं के निर्यात के लिए भारत सरकार की पूर्व स्वीकृति अपेक्षित है. कुछ समय तक तो पुरातत्व विभाग साधारण महत्त्व की वस्तुओं के निर्यात के लिए स्वीकृति देता रहा परंतु सुनने में आता है कि अब वह भी बंद कर दिया गया है.

दूसरी ओर ऐसे समाचार मिलते हैं कि यूरोप, अमेरिका, जापान आदि के बाजार भारतीय कलाकृतियों से भरे पड़े है. कहा जाता है कि प्रतिवर्ष हजारों की संख्या मे ऐसी वस्तुएँ तस्कर व्यापार मे बाहर जा रही है. इन से न तो भारत सरकार को निर्यात-कर मिलता है, न विदेशी मुद्रा, न घर में आयकर. भ्रष्टाचार बढता है घाटे में. विदेशी संग्रहालय और संग्रहकर्त्ता दोनो ही इन वस्तुओं का बहुत अधिक दाम देते है अत: इन का धाराप्रवाह निर्यात हो रहा है. ये वस्तुएँ प्राचीन स्थानों को नष्ट कर के प्राप्त की जाती हैं. उस क्षति का अंदाज करना भी कठिन है. उसे रोकना पुरातत्व विभाग के बूते की बात नहीं. सुना था कि विभाग चाहता है कि वास्तुओं की रक्षा की जिम्मेदारी किसी अन्य विभाग पर सौंप दी जाये परंतु आजकल जो स्थिति है, वही बनी रही तो अपना देश इन सुंदर कृतियों से वीरान हो जायेगा.

यह ऐसी चुनौती है, जिसे हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा.

पुरान्वेषण-परिचय

यद्यपि अंग्रेज विद्वानों के मन में भारतीय पुरातत्व को जानने की अधिक से अधिक इच्छा थी, परंतु इस ओर व्यवस्थित ढंग से सब से पहले प्रवृत्त हुए सर विलियम जोंस. ये कलकत्ता सर्वोच्च न्यायालय के जज थे और इन्होंने १७८४ में प्रसिद्ध एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की जिस का एक उद्देश्य भारत के प्राचीन गौरव का अध्ययन भी था. कुछ विद्वानों ने भारतीय पुरा-लेखों को पढ़ने का असफल प्रयत्न भी किया. संस्कृत पंडितों से कुछ अभिलेख पढ़वाये. इन संस्कृतज्ञों को उस लिपि का ज्ञान कहाँ! उन्होंने मनमाने ढंग से पढ़ कर उन मे पौराणिक कहानियाँ बतला दीं. सर विलियम जोंस इन से भिन्न थे; उन्होंने ही चंद्रगुप्त मौर्य और ग्रीक इतिहास लेखकों के सैंड्राकोट्स की एकरूपता स्थिर की, पाटलिपुत्र को ग्रीक पालिबोथरा से मिलाया और प्राचीन आर्य भाषाओं की एकरूपता सिद्ध की. चार्ल्स विल्किंस ने गुप्तकालीन ब्राह्मी अक्षरों को पढ डाला.

जनरल सर अलेक्जेंडर कनिंघम को भारतीय पुरातत्व का पिता कह सकते है. १८६१ में उन की विज्ञप्ति पर लॉर्ड कैनिंग ने उन्हें इस सर्वेक्षण के लिए नियुक्त किया. यहीं से पुरातत्व विभाग की स्थापना होती है. दो वर्ष बाद भारत सरकार ने एक कानून पास कर प्राचीन इमारतों को हानि पहुँचाना जुर्म क़रार दिया.

इस के बाद साइक और बर्जेस ने पश्चिमी भारत की प्राचीन इमारतों के फ़ोटो तैयार कराये, अनेक ग्रंथ प्रकाशित किये जिन से पाश्चात्य जगत् इन के महत्त्व को ठीक-ठीक समझ सका. इंग्लैंड मे इस आंदोलन के सहायकों ने पुनः कनिंघम को पूरे देश के सर्वेक्षण के लिए नियुक्त कराया. १८७१ मे उन्होंने दोबारा यह भार उठाया. कनिंघम ने १८७२-७३ में फिर एक बार हड़प्पा का अध्ययन किया, इस से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस स्थान पर कोई प्रत्यक् ऐतिहासिक सभ्यता रही होगी. लॉर्ड कर्जन ने भी भारतीय पुरातत्व के प्रतिपालन में अभूतपूर्व रुचि ली.

पुरातत्व विभाग के सामने आज भी अनेक बड़ी-बड़ी समस्यायें हैं. अभी तक शुंगों का इतिहास अस्पष्ट है, गुप्तों का एक भी ऐसा अवशेष नहीं मिला जो उन सम्राटों के व्यक्तिगत जीवन से सबद्ध हो, हर्ष के विषय मे मुख्यत: ग्रंथों से ही ज्ञात है—उस के केवल दो लेख मिले है. यह विराट आयोजन तभी पूरा होगा जब पुरातत्व के विद्वान् बड़े-बड़े प्राचीन नगरों, प्राचीन मथुरा, काशी, पाटलिपुत्र आदि को अथ से इति तक खोद डालें.

खुद के लिये उपहार...

आधुनिक सिलाई मशीन लेने की साध रजनी की खूब लंबे अर्से की साध थी। पर उसके लिये रुपये कहां से आते?

एक सहेली के सुझाने पर रजनी ने पी एन बी में सावधिक जमा खाता खोला व प्रति माह १० रुपये बचाना आरंभ किया। ३६ महीने में यह रकम ३९५ रु. हो गयी–सिलाई मशीन खरीदने के लिये सर्वथा योग्य राशि।

आज वह खुशी से गुनगुनाते हुए अपनी मशीन पर सिलाई करती है।

यह बहुत आसान है! बहुत लाभदायक है!

इस योजना के अंतर्गत प्रति माह ५ रु. अथवा ५ से विभाजित होने वाली कोई भी राशि ३६, ४८ अथवा ६० महिनों की निश्चित अवधि के लिये स्वीकार की जाती है। इस अवधि के अंत में आप अपनी जमा बचत चक्र वृद्धि ब्याज के साथ पायेंगे... भविष्यके लिये बचत करने का आदर्श मार्ग!

अब आप अपने स्वप्न संजो सकते है। वे निश्चित रूपसे साकार होंगे।

अधिक विवरण के लिये पी एन बी की निकटतम शाखा से संपर्क स्थापित करें। सारे भारत में हमारी ५०० से अधिक शाखाएं हैं।

पंजाब नैशनल बैंक

१८९५ से राष्ट्र की सेवा में निरत

अध्यक्ष : एस. सी. त्रिखा

श्री विशालम चिट फण्ड लि०

(स्थापित : ६-१-१९४७)

पंजीकृत कार्यालय---तिरुनलवेली-६ फोन : २७४

केंद्रीय कार्यालय तथा इन्वेस्टमेंट सेंटर

६१ बी, उस्मान रोड, टी. नगर, मद्रास-१७ फोन : ४४४५३२

दि० ३१-३-६८ को

अधिकृत पूँजी	रु. ५ लाख
कुल परिसम्पत्तियां	रु. १.५२ करोड़
चिटों में कार्यरत निधि	रु. ३.०५ करोड़

हम प्रत्याभावित ऋण लेते हैं

रिजर्व बैंक आफ इंडिया के, गैर-बैंकिंग कम्पनीज के विभाग, कलकत्ता द्वारा जारी की गयी, विज्ञप्ति संख्या डी. एन. बी. सी. १/ई. डी. (एस)-६६ दिनांक २९ अक्तूबर १९६६ की उप-धारा (X) परिच्छेद २ (१) (एफ) के अनुसार।

अवधि	वार्षिक ब्याज की दरें	
	रु० ३०० से ५०००	रु० ५००० से अधिक
एक वर्ष	८½ %	९%
दो वर्ष	९%	९½ %

अर्ध वार्षिक ब्याज के बैंक जारी किये जाते हैं तथा जो हमारी किसी भी शाखा से भुनाए जा सकते हैं

व्यवसाय का प्रकार

मासिक, त्रै-मासिक तथा दैनिक समूहों के चिट संचालन करते हैं। १०००० . की लागत तक २७ चिटें हमारे समस्त कार्यालयों में संचालित हैं.

गत तीन वर्षों के कार्यकारी परिणाम तथा घोषित लाभांश

वर्ष	लाभ करनिर्धारण से पूर्व	लाभ कर निर्धारण के पश्चात	घोषित लाभांश
१९६५-६६	६११९०८-७२	२५१७०-७२	१३%
१९६६-६७	७९६८६-४१	२७६८६-४१	१६%
१९६७-६८	८९४६८-५८	२८४६८-५८	१७%

समवाय का प्रवन्ध

प्रबन्ध निदेशक श्री ए. आर. रामास्वामी

निदेशक :

श्री एम. ए. एम. गोविंदन चेट्टियार

श्रीमती आर. एम. मैय्यामयी आछी

केन्द्रीय कार्यालय व्यवस्थापक

श्री के. ए. राम बी. ए. बी. एल.

दि. ३१-३-१९६८ की देयताएं

प्रदत्त पूंजी तथा स्वतंत्र आरक्षित राशि	१,४०,०७५
निश्चित निक्षिप्तयां	३,४२,५७५
अंशदाताओं की ,,	२,७५,०५०
प्रत्याभावित ऋण	१०,३३,४७५
अस्थायी ऋण	१,१५,९११
चिट तथा अन्य देयताएं	१,३३,७९,४१४
योग	१,५२,८६,५८०

२५००० रु. की चिट का नया 'एम' ग्रुप। १२ क्लिडर स्ट्रीट, त्रिचि : फोन : ४२७६ तथा ४३, विश्वनाथ राव रोड, माधव नगर, बंगलौर-१ फोन : ७५९५५ पर चालू है।

लेखा परीक्षित संतुलन पत्र आवेदन करने पर प्राप्य है

के० ए० राम बी. ए. बी. एल.
केन्द्रीय कार्यालय व्यवस्थापक
(टेक्स्ट स्वीकृतितिथि : २८-१०-६८)

ए. आर. रामास्वामी, प्रबन्ध निदेशक

(Paramount)

खेल प्रतियोगिताएँ : मगर खेल कहाँ ?

डूरँड का मैच हो या नेहरू स्मारक हॉकी योगिता का, राष्ट्रीय लॉन टेनिस प्रति-गिता हो या फिर राष्ट्रीय वैडमिंटन प्रति-गिता, मैदान से बाहर निकलते अधिकांश ल-प्रेमी एक-दूसरे से यही शिकायत करते नायी पड़ते हैं कि कुल मिलाकर हमारे ख़लाड़ियों का खेल बड़ा नीरस और बेजान ोता जा रहा है यानी दूसरे शब्दों में यह कि हमारे खिलाड़ियों का खेल स्तर दिन ब दिन गिरता जा रहा है. और यदि कोई खिलाड़ी प्रकाश में आता भी है तो वह भी अपने स्तर को ज्यादा दिनों तक संभाल कर नहीं रख पाता.

लॉन टेनिस : पिछले दिनों राजधानी में लॉन टेनिस की राष्ट्रीय प्रतियोगिता के दौरान दर्शकों की काफ़ी चहल पहल रही. इस बार जिन विदेशी खिलाड़ियों ने इस में भाग लिया वे लगभग सभी नये और अनामी खिलाड़ी थे मगर उन्होंने भारत के अनुभवी और नामी खिलाड़ियों को अपने सामने टिकने नहीं दिया. रूमानिया के नं० २ खिलाड़ी २२ वर्षीय नास्तसे ने न केवल पुरुषों की सिंगल्स प्रतियोगिता जीती बल्कि उन्होंने राष्ट्रीय लॉन टेनिस प्रतियोगिता में एक साथ तीन चैम्पियनशिप प्राप्त कीं. उन्होंने भारत के राष्ट्रीय चैम्पियन प्रेमजीत लाल को सिंगल्स में हराया और उस के बाद उन्होंने डबल्स और साझा डबल्स प्रतियोगिताएँ भी जीत लीं. प्रेमजीत लाल फ़ाइनल में पहुँच गये यों तो यह भी अपने आप में बहुत बड़ी बात है. ज़हाँ तक जयदीप मुखर्जी का सवाल है तो वह तो बहुत पहले ही स्वीडन के मार्टिन कार्लस्टीन से अपनी पराजय स्वीकार कर बैठे थे. प्रेमजीत लाल की कुछ तकदीर ही अच्छी थी कि सेमि-फ़ाइनल में विलियम टिम ने पेट की पीड़ा के कारण अपनी हार स्वीकार कर ली वरना उन के भी हाथ-पैर लड़खड़ाते नज़र आ रहे थे.

जहाँ तक हमारी नं० १ खिलाड़िन कुमार निरुपा बसंत का सवाल है उन का प्रदर्शन भी कोई ज्यादा उत्साहवर्द्धक नहीं रहा. लॉन टेनिस के क्षेत्र में भारत ने कुछ अंतरराष्ट्रीय ख्याति अवश्य प्राप्त की थी मगर अब प्रेमजीत लाल और जयदीप मुखर्जी की जोड़ी से और ज्यादा आशा नहीं की जा सकती.

विबलडन प्रतियोगिता को खुली प्रतियोगिता का रूप दिये जाने के बाद अब यह सुनने में आ रहा है कि डेविस कप प्रतियोगिता को भी खुली प्रतियोगिता का रूप दे दिया जायेगा. यह बात अब लगभग तय ही समझी जानी चाहिए कि १९७० में डेविस कप को खुली प्रतियोगिता का रूप दे दिया जायेगा. तब भारतीय खिलाड़ी इतनी आसानी से पूर्वी क्षत्रीय फाइनल से आगे तक पहुँच पायेंगे, इस की संभावना कम ही दिखायी देती है.

इस वर्ष डेविस कप प्रतियोगिता में भारत का पहले मलयेसिया से और फिर श्रीलंका से मुकाबला होगा.

नेहरू हॉकी प्रतियोगिता : राजधानी में हो रही पाँचवीं अखिल भारतीय जवाहरलाल नेहरू स्मारक हॉकी प्रतियोगिता के सेमि-फ़ाइनल में जो चार टीमें पहुँची हैं उन के नाम है : १—बंबई एकादश, २—इंडियन एयर लाइंस, ३—भारतीय पुलिस और ४—उत्तर रेलवे, इस में कुछ एक मुकाबलों को छोड़ कर बाकी सभी मुकाबले काफ़ी नीरस और बेजान रहे. हाँ इस बीच यह समाचार जरूर सुनने को मिला कि भारत ने ८ मार्च से लाहौर में शुरू होने वाले प्रथम पाकिस्तान अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले में भाग लेना स्वीकार कर लिया है. लेकिन सवाल तो यह है कि क्या किसी अंतरराष्ट्रीय मेले में भाग लेने की हमने अपनी ओर से पूरी तैयारी कर ली है ?

शनिवार (१८ जनवरी) को दोबारा खेले गये सेमि-फ़ाइनलों में से एक (उत्तर रेलवे बनाम अखिल भारतीय पुलिस टीम) मैच ने तो सारे मैच का ही मज़ा किरकिरा या बदमज़ा कर दिया. गत वर्ष की संयुक्त विजेता उत्तर रेलवे और अखिल भारतीय पुलिस का मैच तनाव और तक़रार के सिलसिले से शुरू हुआ. हॉकी के नव निर्मित स्टेडियम 'शिवाजी स्टेडियम' में स्वर्गीय नेहरू का यह मंत्र 'खेल को खेल की भावना से खेलो' तो ज़रूर पढ़ने को मिला मगर उत्तर रेलवे के खिलाड़ियों ने उस मंत्र का रत्ती भर भी पालन नहीं किया.

आठवें मिनट में ही सेंटर हाफ़ अजित पाल सिंह की फ्री हिट पर लेफ़्ट इन तरसेम ने गोल किया. रेलवे खिलाड़ियों ने इस गोल पर भी आपत्ति की. आपत्ति और विरोध का जो सिल-सिला शुरू हुआ वह अंत तक चलता रहा. इसी बीच रेलवे के इंदर को एक अच्छा मौका मिला मगर वह चूक गये लेकिन इस के बाद तरसेम ने एक गोल और कर दिया. मध्यांतर से एक मिनट पहले उत्तर रेलवे ने एक गोल उतार दिया. उत्तरार्द्ध में सेंटर फ़ारवर्ड बलदेव सिंह ने एक गोल फिर किया और इस प्रकार पुलिस ३-१ से आगे हो गयी. उत्तर रेलवे को जब यह लगा कि अब जीतना मुश्किल है तो उस ने हंगामे के लिए एक बहाना ढूंढ़ लिया. अंपायर गुरुदेव सिंह के एक फ़ैसले पर (यानी जहाँ रेलवे को पैनल्टी पुश मिलाना था वहाँ लांग कारनर दिया गया) उत्तर रेलवे खिलाड़ियों ने धरना दे दिया. और इस प्रकार मैदान में तू-तू, मैं-मैं शुरू हो गयी. हाकी के अधिकारियों के समझाने-बुझाने पर ६-७ मिनट बाद फिर खेल लांग कार्नर से शुरू हुआ लेकिन उत्तर रेलवे के खिलाड़ी खेल कहाँ रहे थे. इधर लेफ़्ट आउट करमजीत सिंह ने अकेले गोल कर दिया उधर उत्तर रेलवे की टीम ने 'वाक-आउट' कर दिया. टीम के 'वाक-आउट, करने पर टूर्नामेंट कमेटी के आयोजकों और अंपायरों ने पुलिस की टीम को ४-१ से विजयी घोषित कर दिया.

अंपायर से भूल होना एक बात है और ग़लत अंपायरिंग के प्रति इस प्रकार का विरोध प्रदर्शन करना बिल्कुल दूसरी बात है. जब हम अपनी राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में ही ग़लत अंपायरिंग के प्रति यह रुख अपनायेंगे तो अंत-रराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भी तो हम यही कुछ करेंगे. मैक्सिको ओलिंपिक खेलों में भी जब भारतीय टीम शुरू-शुरू में न्यूज़ीलैंड की टीम से हार गयी थी तब भी हमारी टीम की

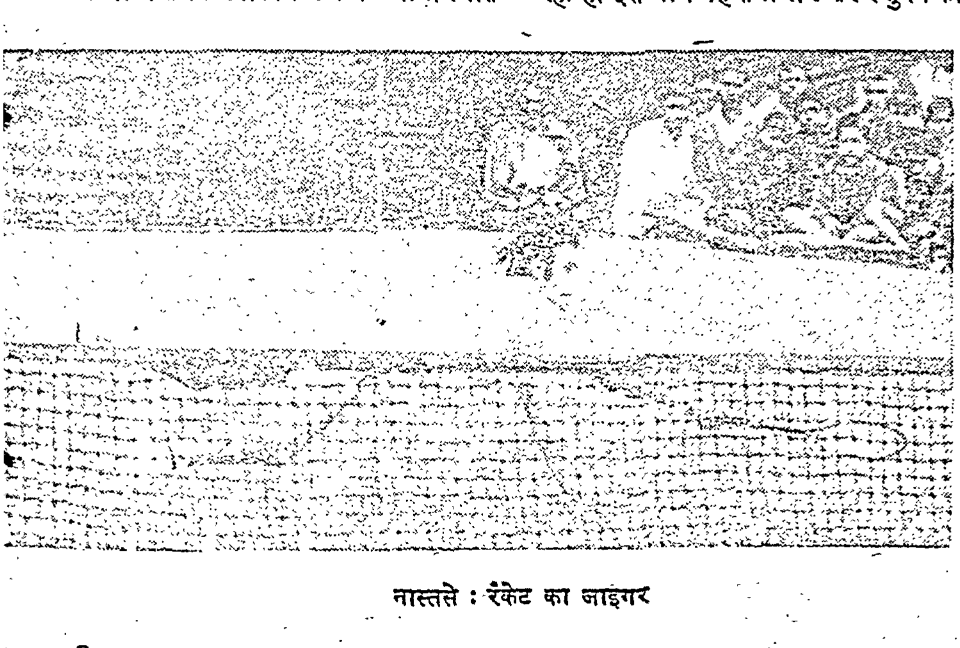

नास्तसे : रैकेट का जादूगर

मैनेजर ने झट से विरोध प्रकट कर दिया था. उत्तर रेलवे की टीम के प्रति भारतीय खेल-प्रेमियों के मन में जो श्रद्धा भाव था वह उन्होंने अपनी इस हरकत (वाक-आउट) से बराबर कर दिया है. अच्छे खिलाड़ियों को यह सब शोभा नहीं देता. इस मैच से पहले खेला गया मैच (एयर लाइंस बनाम बंबई टीम) काफ़ी दिलचस्प रहा. उस में इंडियन एयर लाइंस के सेंटर फारवर्ड ग्रेवाल ने तीसरे मिनट में ही गोल कर दिया.

इस प्रकार अखिल भारतीय पुलिस की टीम और इंडियन एयरलाइंस की टीमें फ़ाइनल में पहुँच गयीं.

भारतीय बैडमिंटन : जहाँ तक भारतीय बैडमिंटन का सवाल है यह कहा जा सकता है कि नंदू नटेकर, ी. एन. से , ए. एल. दीवान, एस. एस. चावला, आदि खिलाड़ियों का युग समाप्त हो गया है. १९५२ में बैडमिंटन के खेल में भारत को दुनिया में तीसरा स्थान प्राप्त था. १९५६ तक भी हमारी स्थिति काफी संतोषजनक रही. फिर देवें मोहन, और काश नाथ का युग शुरू हुआ. लेकिन उसके बाद हमारा स्तर ह्रासोन्मुखी हो गया और १९६२ तक पहुँचते-पहुँचते हम टामस कप की शुरू-शुरू की क्षेत्रीय प्रतियोगिताओं में ही हारने लगे. १९६५-६६ में भारत को आशा की एक किरण (दिनेश खन्ना) दिखायी दी. भारतीय खिलाड़ी दिनेश खन्ना को एशियाई चैंपियन होने का गौरव प्राप्त हुआ. लेकिन दिनेश खन्ना भी ज्यादा दिनों तक अपनी साख या धाक को बरक़रार नहीं रख सके. और सुरेश गोयल और ीपू घोष ने राष्ट्रीय चैंपियन के सुख से ही संतोष कर लिया.

क्रिकेट

कुछ इधर, कुछ उधर की

स्कूली क्रिकेट खिलाड़ियों की टीम आस्ट्रेलिया का आठ सप्ताह का दौरा करने के बाद जब स्वदेश लौटी तो उस का बड़े उत्साह से स्वागत किया गया. इस स्कूली टीम ने आस्ट्रेलिया में कुल मिलाकर १९ मैच खेले जिन में से केवल एक मैच हारा. भारत ने ४ मैच जीते और १२ मैच बराबर रहे और २ मैच वर्षा के कारण बीच में ही छोड़ देने पड़े.

इन स्कूली खिलाड़ियों में बल्लेबाज़ी में लक्ष्मणसिंह और गेंदबाज़ी में मोहिंदर अमरनाथ का खेल-प्रदर्शन सर्वश्रेष्ठ रहा.

ऑस्ट्रेलिया बनाम वेस्ट इंडीज : वेस्ट इंडीज़-आस्ट्रेलियाई टेस्ट शृंखला का चौथा टेस्ट एडिलेड में २४ जनवरी से शुरू हो रहा है. ऑस्ट्रेलिया अब तक २-१ से आगे है. और यदि आस्ट्रेलिया ने चौथा टेस्ट भी जीत लिया तो वारेल कप पर आस्ट्रेलिया का अधिकार हो जायेगा. इस कप के अधिकारी देश को विश्व-विजेता कहलाने का गौरव प्राप्त होता है.

चौथे टेस्ट के हार-जीत के परिणामों पर ही सोबर्स (वेस्ट इंडीज़ के कप्तान) और बिललारी (ऑस्ट्रेलिया के कप्तान) का भविष्य निर्भर करता है.

'मिस्टर रिलायबल' का संन्यास : इसी बीच इंग्लैंड से मशहूर टेस्ट खिलाड़ी के. एफ़. बैरिंगटन ने, जिन्हें इंग्लैंड की क्रिकेट प्रेमी जनता 'मिस्टर रिलायबल' भी कहती है, प्रथम श्रेणी की क्रिकेट से संन्यास लेने की घोषणा कर दी है. ३८ वर्षीय बैरिंगटन को पिछले साल ऑस्ट्रेलिया में खेलते समय हृदय रोग हो गया था. उन्होंने एक टेलिविजन भेंट में बताया कि—'मैं पिछले सप्ताह हृदय रोग के विशेषज्ञ के पास गया और उस ने कहा कि अब मुझे अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट से अवकाश ही लेना होगा.'

बैरिंगटन ने १९५५ में दक्षिण अफ़्रीका के विरुद्ध खेलते हुए अपना टेस्ट-जीवन शुरू किया और तब से लेकर अब तक वह इंग्लैंड की क्रिकेट टीम के स्थायी सदस्य रहे. उन्होंने टेस्ट मैचों में २० शतक बनाये. यानी उन की गणना भी विश्व के चोटी के बल्लेबाज़ों के रूप में की जाने लगी. यहाँ यह बता देना असंगत न होगा कि सर डान ब्रैडमैन ने अपने जीवन-काल में २७ शतक, डब्ल्यू. आर. हैमंड ने २२ शतक, और एम. सी. आउड्रे ने २१ शतक बनाये हैं. बैरिंगटन ने ८२ टेस्ट मैचों में ५८.६७ की औसत रन संख्या से ६,२०६ रन बनाये. उनकी सर्वाधिक रनसंख्या २५६ थी जो उन्होंने १९६४ में मानचेस्टर में आस्ट्रेलिया के विरुद्ध खेलते हुए बनाये.

बैरिंगटन की क्रिकेट से अवकाश लेने की घोषणा के तुरंत बाद इंग्लैंड के कप्तान काउड्रे ने कहा कि हम उन का बहुत सम्मान करते हैं. वह एक अच्छे खिलाड़ी होने के साथ-साथ एक हँसमुख व्यक्ति भी हैं. बैरिंगटन ने १९६१-६२ और १९६४ में इंग्लैंड की टीम के साथ भारत का दौरा किया और भारत के क्रिकेट प्रेमियों ने उन के खेल-प्रदर्शन की मुक्त कंठ से सराहना की. १९६१-६२ के भारत के दौरे के दौरान उन्होंने ५९४ रन (९९ रन की औसत से) और पाँच टेस्टों में तीन शतक बनाये.

१९६३ में उन्होंने वेस्ट इंडीज़ के तूफ़ानी गेंदअंदाज चार्ली ग्रिफिथ पर आरोप लगाया था कि वह गेंद 'थ्रो' करते हैं. उन्होंने कहा कि तब लोगों ने शायद यह समझा था कि मेरी उन से कोई व्यक्तिगत शत्रुता है. पर अब लोगों को यह जानकर थोड़ा ताज्जुब हो सकता है कि हम दोनों गहरे मित्र भी हैं.

फिल्मी सितारों का क्रिकेट मैच : १२ जनवरी (रविवार) को कलकत्ता के ईडन गार्डन में फ़िल्मी सितारों के एक क्रिकेट मैच का आयोजन किया गया. इस आयोजन का उद्देश्य 'उत्तर बंगाल बाढ़ सहायता कोष' के लिए धन राशि इकट्ठा करना था. कुल मिला कर इस मैच में खेल कम और तमाशा (मनोरंजन) ज्यादा था. बंबई की टीम का नेतृत्व राजकपूर ने और बंगाल की टीम का नेतृत्व उत्तम कुमार ने किया.

जाहिर है कि ऐसे मनोरंजन के मैचों में हार-जीत का कोई महत्त्व नहीं होता. इस मैच से लगभग डेढ़ लाख रुपये की धन राशि इकट्ठा हुई. एक बल्ला, जिस में दोनों टीमों के खिलाड़ियों (फ़िल्मी सितारों) के हस्ताक्षर थे, श्रीमती इंदिरा पांडेय ने ६,००० की बोली में खरीदा. नीलामी पश्चिम बंगाल के राज्यपाल ने की थी.

राजकपूर और उत्तमकुमार : बम्बई और बंगाल के कप्तान : खल कम, तमाशा ज्यादा

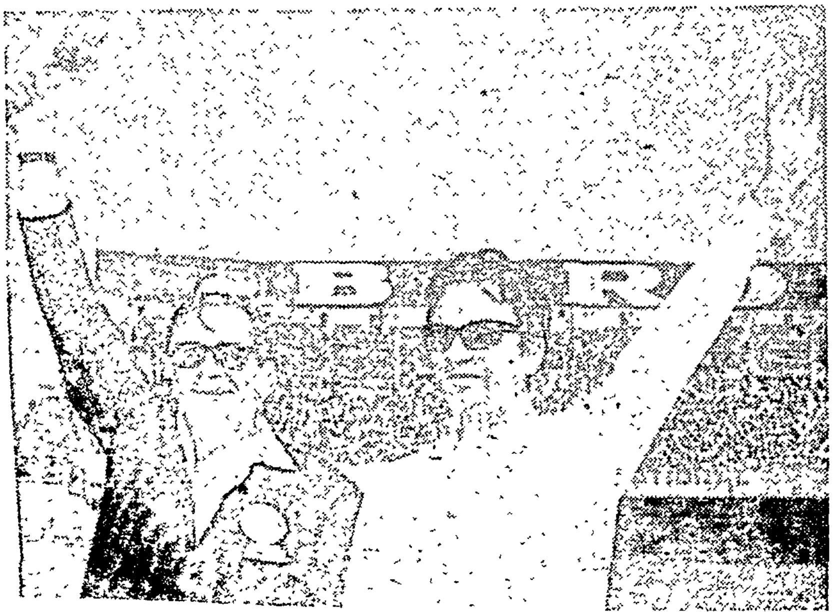

अफ्रीकीकरण का जनून

राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन के दौर में आप्रवासियों की समस्या, विभिन्न जातियों के आपसी संबंध और नागरिक अधिकारों के मसलों पर सतही तौर से चर्चा छेड़ कर सभी प्रधानमंत्री अपने-अपने देशों को लौट गये. इन मसलों को सुलझाने के लिए १७ देशों—केन्या, भारत, बारबाडोस, कैनाडा, जमैका, मॉरिशस, त्रिनिडाड, जांबिया, ब्रिटेन, उगांडा, तानज़ानिया, पाकिस्तान, न्यूज़ीलैंड और सिप्रस—का एक स्थायी राष्ट्रकुल कार्यकारी दल गठित कर के किसी नतीजे तक पहुँचने की योजना बनी लेकिन केन्या, उगांडा और ज़ांबिया के प्रतिनिधियों ने इस दल की बैठकों का बहिष्कार कर के यह ज़ाहिर कर दिया है कि वे 'अफ्रीकीकरण' की अपनी पूर्व-निर्धारित योजना में कोई विशेष रद्दोबदल करने के लिए क़तई तैयार नहीं हैं. अब अगर राष्ट्रकुल कार्यकारी दल अफ्रीका में बसे एशियाई मूल के लोगों (जिन्हें 'अफ्रीकीकरण' की योजना के अंतर्गत अफ्रीका से निष्कासित करने का दौर शुरू हो गया है) का संकट दूर करने की दिशा में अपना प्रयास जारी भी रखे तो बिना संबद्ध अफ्रीकी देशों यानी केन्या, उगांडा और ज़ांबिया की उपस्थिति के वह किसी भी नतीजे तक नहीं पहुँच सकता. बहरहाल, ब्रितानी गृहसचिव जेम्स कलहैगन को अभी भी यह उम्मीद है कि वह केन्या, उगांडा और ज़ांबिया की सरकारों को इस बात के लिए राज़ी कर सकेंगे कि वे इन 'बे-घर' एशियावासियों को अन्य देशों में धीरे-धीरे अपने पुनर्वास की व्यवस्था कर लेने दें और फ़िलहाल अफ्रीकीकरण के जनून पर रोक रखें.

पारपत्र, लेकिन कठिनाइयां : ब्रिटेन ने सैद्धांतिक रूप से तो यह स्वीकार किया है कि वह अफ्रीका में बसे ब्रितानी पारपत्रधारी एशियाइयों को अपने यहाँ शरण देगा किंतु व्यावहारिक कठिनाई यह पेश आ रही है कि वह एक साथ लाखों आप्रवासियों को शरण नहीं दे सकता. लेकिन संबद्ध अफ्रीकी देशों की तरह भारत भी यही चाहता है कि ब्रिटेन पूर्वी अफ्रीका के ब्रितानी पारपत्रधारी एशियाइयों के पुनर्वास की ज़िम्मेदारी बिना शर्त स्वीकार कर ले क्यों कि ये एशियाई क़ानूनन ब्रितानी नागरिक हैं. लंदन में १७ देशों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि बलीराम भगत ने कहा कि ब्रिटेन द्वारा इस मूलभूत तथ्य को स्वीकार कर लेने के बाद ही भारत इन आप्रवासियोंको थोड़े या अधिक समय तक खुद शरण देने के प्रश्न पर विचार-विमर्श करेगा—वार्ता का सिलसिला यहीं तक आ कर उलझ गया है.

(एशियाइयों से): यदि श्रीमती गांधी और विल्सन तुम्हें नहीं रखना चाहते तो मैं ही क्यों रखूं ?
गार्डियन में पापास का व्यंग्य

धंधा बदलो : रोज़गार की तलाश या अधिक धन कमाने की आकांक्षा से तो प्रति वर्ष हज़ारों भारतीय नागरिक विदेश जाते हैं किंतु अफ्रीका में उन्होंने सन् १८६० से बसना शुरू किया, जब अंग्रेज़ शासकों ने ऊँची मज़दूरी का लालच दे कर भारतीय नागरिकों को अफ्रीका जाने के लिए प्रोत्साहित किया था. उस के बाद सन् १८९०, १९१० और १९२० में भी बड़ी संख्या में भारतवासी अफ्रीका गये. बेशक उन्होंने अफ्रीका के विकास में काफ़ी योगदान दिया—रेलों की पटरियां बिछाईं, स्कूल-कॉलेज बनवाये, उद्योग क़ायम किये किंतु अफ्रीकी देशों की आज़ादी के बाद धीरे-धीरे अफ्रीकियों में यह धारणा बल पकड़ती गयी कि वे अपने ही देश में आर्थिक क्षेत्र में अन्य जातियों से बहुत अधिक पिछड़ गये हैं और बिना देश के अर्थतंत्र पर अपनी गिरफ़्त मज़बूत किये अफ्रीकी जनता का उत्थान संभव नहीं है. परिणामस्वरूप ग़ैर-अफ्रीकियों पर अफ्रीका त्यागने या व्यवसाय छोड़ कर अन्य छोटे-मोटे धंधे अपनाने का दबाव पड़ना शुरू हो गया, क्यों कि अफ्रीका में बसे अधिसंख्य एशियाई व्यापार करते हैं. अफ्रीकी देशों में खास कर पंजाबी और गुजराती व्यापारी बहुत अधिक संख्या में बसे हुए हैं. अफ्रीकियों के बदलते तेवर से सचेत हो कर सन् १९६३ और १९६७ में बड़ी संख्या में एशियाई लोग या तो ब्रिटेन चले गये या स्वदेश लौट आये. मौजूदा दौर में भी एशियाई व्यापारियों पर यह दबाव डाला जा रहा है कि या तो वे यथाशीघ्र अन्य धंधे अपना लें या फिर 'बोरिया-बिस्तर लपेट कर' अफ्रीका से चले जायें. प्राय: सभी अफ्रीकी नेताओं द्वारा यह सफ़ाई पेश किये जाने के बावजूद कि इस दबाव की तह में जाति-द्वेष की भावना नहीं है, दक्षिण अफ्रीका के सामुदायिक विकासमंत्री ब्लार कोइट्ज़े के इन शब्दों में निहित एशियाइयों के प्रति नफ़रत साफ़ झलकती है—'मैं इन भारतीय युवकों को हर समय अपनी दूकान में बैठे देख-देख कर आजिज़ आ चुका हूँ—लगता है जैसे दूसरे धंधों के दरवाज़े इन के लिए बिलकुल बंद हों... इन्हें चाहिए कि दूसरे पेशों पर लग जायें, क्लर्क बनें, मज़दूरी करें, फिटर और टर्नर बनें... अब अगर इन्होंने अपना पेशा नहीं बदला तो मैं उचित कार्रवाई करूँगा.'

दबाव : लेकिन इस तरह के मौखिक-दबाव का दौर भी अब खत्म हो चुका है और व्यावसायिक लाइसेंस अधिनियम की आड़ में ग़ैर-अफ्रीकियों को क़ानूनी तौर से व्यवसाय से हटा कर अन्य पेशों में लगाने या अफ्रीका छोड़ देने का दौर शुरू हो गया है. जनवरी से लागू किये गये इस अधिनियम के अनुसार केन्या में ग़ैर-नागरिकों को क़रीब २० प्रमुख वस्तुओं का व्यापार कतई न करने का आदेश दिया गया है और लगभग १ हज़ार ग़ैर-केन्याइयों को व्यवसाय बंद करने का नोटिस भी दिया जा चुका है. केन्या सरकार ने यह घोषणा भी की है कि आगामी छह महीनों के भीतर ३ हज़ार एशियाई व्यापारियों, जिन के ३० हज़ार आश्रित कुटुंबीजन भी हैं, को व्यापार करने का लाइसेंस नहीं दिया जायेगा. केन्या जन-सेवा, कृषि और औद्योगिक क्षेत्र में स्वदेशियों को ही प्राथमिकता देने की योजना भी बना रहा है लेकिन किसी भी क्षेत्र में उन एशियाइयों के प्रति भेद-भाव नहीं बरता जायेगा, जिन्होंने केन्या की नागरिकता स्वीकार कर ली है. अब तक लगभग ४० हज़ार एशियाई जन्म के आधार पर केन्या के नागरिक बन चुके हैं और १० हज़ार एशियाइयों ने केन्या की नागरिकता स्वीकार करने के लिए आवेदनपत्र दिये हैं. केन्या की तरह दक्षिण अफ्रीका में भी १९६० की जनगणना के अनुसार कुल एशियाइयों में से २८.७ प्रतिशत व्यवसाय करते थे, किंतु अब उन्हें व्यापार त्यागने के लिए मजबूर किया जा रहा है. वहाँ अब तक ७०० भारतीय व्यापारियों का लाइसेंस ज़ब्त किया गया है और सन् १९५७ के बाद किसी भी भारतीय व्यापारी को नया लाइसेंस नहीं दिया गया. दक्षिण अफ्रीका के जोहांसबर्ग क्षेत्र से ३७ हज़ार भारतीयों को धीरे-धीरे दूसरे स्थानों को भेज दिया गया, क्यों कि वहाँ के व्यवसाय पर वे पूरी तरह छाये हुए थे.

मुआवज़ा : पहले-पहल जब एशियाइयों से व्यवसाय त्याग कर अन्य धंधे अपनाने या अफ्रीका से बाहर चले जाने की बात कही गयी तो उन्होंने यह माँग की थी कि उन्हें भी वही मुआवज़ा दिया जाये, जो अफ्रीका की आज़ादी के बाद वहाँ बसे ब्रितानी किसानों को दिया गया था. तब उन लोगों के पास ब्रितानी पारपत्र थे और उन्हें यह भरोसा भी था कि वे जब चाहेंगे, तब अपने मूल देश भारत या पाकिस्तान लौट सकेंगे, किंतु अब स्थिति बदल चुकी है. अफ्रीकी देश उन्हें निष्कासित करने पर तुले हुए हैं लेकिन न तो ब्रिटेन उन्हें शरण देने के लिए पूरी तरह राज़ी है और न

भारत और पाकिस्तान ही उन्हें अपनाना चाहते हैं. अनिश्चित भविष्य की दहशत से वे अब अपना असबाब आधे-पौने दामों में बेच कर कहीं भी जाने की तैयारी कर रहे हैं, हालाँकि वे यह निश्चित कर पाने की स्थिति में नहीं हैं कि आखिर वे कहाँ जायेंगे. केन्या में उन की दुकानों पर ग्राहकों की भीड़ पहले से कई गुना बढ़ गयी है.

पुनर्वास की समस्या : ब्रितानी सरकार द्वारा लागू किये गये आव्रजन अधिनियम के अनुसार फ़िलहाल एशियाई आप्रवासियों को ब्रिटेन में पुनर्वासित करने की समस्या काफ़ी उलझ गयी है. भारत की तरह अफ़्रीकी नेता भी ब्रिटेन से आग्रह कर रहे हैं कि वह बिना शर्त निष्कासित एशियाइयों के पुनर्वास की व्यवस्था करें. बताया जाता है कि अफ़्रीका में बसे ४ लाख भारतीय मूल के लोगों में से १ लाख ५० हज़ार लोगों के पास ब्रितानी पारपत्र है, और बाकी के पास भारतीय पारपत्र. ब्रितानी आव्रजन अधिनियम के अनुसार केवल १५०० ब्रितानी पारपत्रधारी एशियाई ही प्रतिवर्ष ब्रिटेन में प्रवेश पा सकते हैं, जिन की संख्या आश्रित कुटुंबीजनों सहित लगभग ७००० हो जाती है. इस से अधिक आप्रवासियों को अपने यहाँ शरण दे सकने के लिए ब्रिटन ने असमर्थता ज़ाहिर की है. इस संदर्भ में उगांडा के राष्ट्रपति मिल्टन ओबोटे ने ब्रिटेन पर यह आरोप लगाया है कि वह आप्रवासी अधिनियम की आड़ में न केवल अपने पारपत्रों की अवमानना कर रहा है, बल्कि ब्रितानी नागरिकता संबंधी आधारभूत नियमों की भी अवहेलना कर रहा है. ब्रिटेन आप्रवासियों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगा कर अपने नागरिकों को दो वर्गों में बाँट रहा है—एक श्वेत और दूसरे अश्वेत नागरिक. श्वेत नागरिक तो विश्व के किसी भी कोने से कभी भी ब्रिटेन आ सकते हैं, किंतु अश्वेत नागरिकों को यह सुविधा नहीं दी जा रही है. पारपत्रों की अवधि समाप्त हो जाने पर ब्रिटेन उन के नवीकरण में आनाकानी कर सकता है. अन्य अफ़्रीकी नेताओं की भी यही राय है कि या तो इन आप्रवासियों को ब्रिटेन स्वीकार करे या फिर वे एशिया लौट जायें. केन्या में शेष एशियाई मूल के १ लाख ३५ हज़ार निवासियों में से ६२ हजार ब्रिटेन के नागरिक है. भारतीय तथा पाकिस्तानी नागरिकों की संख्या क्रमशः ४००० और ५०० है.

व्यवहार : दरअसल एशियाइयों के प्रति अफ़्रीकियों की बेरुखी के मूल में कई कारण निहित हैं. एक मुख्य कारण यह है कि सदियों से अफ़्रीका में रहते हुए भी एशियाइयों ने अफ़्रीकियों के पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय मामलों में कोई दिलचस्पी नहीं ली और न उन की संस्कृति को भी सम्मान की नज़र से देखा. अनेक जातियों और उप-जातियों में बँटे भारतीयों ने अपने पूर्वाग्रहों को अफ़्रीका में भी बरक़रार रखा और उन का प्रमुख उद्देश्य—स्वदेश त्याग और अफ़्रीका में बने रहने का भी—यही रहा है कि वे अधिक से अधिक धन कमायें. कहा जाता है कि इन एशियाइयों का इंग्लैंड के बैंकों में २५० लाख पाउंड जमा हैं. इस संदर्भ में सन् १९६२ में *गोवा-मुक्ति* से पहले *भारत-आमंत्रित अफ़्रीकी* प्रतिनिधियों की उपस्थिति में ही बंबई में स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने भी तैश में आ कर कहा था—'मैं इन हिंदुस्तानियों से कई बार कह चुका हूँ कि सिर्फ़ पैसा कमाने के इरादे से बाहर न जाओ, अफ़्रीका के सांस्कृतिक और राजनैतिक हालातों को भी समझो, अफ़्रीकियों के सुख-दुख में शरीक होना सीखो लेकिन ये मेरी बात कहाँ मानते हैं. सोचते हैं कि जवाहरलाल तो हर मामले में अपनी टाँग अड़ाता है.' समय के सरकने के साथ-साथ नेहरू की झुँझलाहट आज पूरी शिद्दत से सच साबित हो रही है और अफ़्रीका में बसे इन एशियाइयों से 'बोरिया बिस्तर लपेट कर' जाने की बात कही जा रही है. अब अगर ये एशियाई अपना ढर्रा बदलना भी चाहें तो स्थिति सुधरने की कोई गुंजाइश नहीं रह गयी है क्यों कि अफ़्रीकी जानते हैं कि यह सुधार अवसरवादिता का परिचायक है, हृदय-परिवर्तन का नहीं. यही कारण है कि जिन एशियाइयों ने पिछले दिनों अफ़्रीकी नागरिकता स्वीकार करने की कोशिश की उन का यह कह कर मखौल उड़ाया गया कि यह तो सिर्फ़ 'आर्थिक नागरिकता' है, जिसे एशियाई अफ़्रीका में बने रहने की लालसा से स्वीकारना चाहते हैं. भारत, पाकिस्तान और ब्रिटेन से सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार क़ायम रखने के लिए लालायित अनेक अफ़्रीकी नेता भी वर्त्तमान स्थिति पर क़ाबू पा सकने में असमर्थ हैं, क्यों कि अपनी जनता के असंतोष से कतरा कर वे न तो अपनी लोकप्रियता बढ़ा सकते है और न वहाँ की राजनैतिक अस्थिरता पर ही क़ाबू पा सकते हैं. किसी हद तक आर्थिक विकास की दिशा में अपनी नाकामयाबी पर पर्दा डालने के लिए भी वे अफ़्रीकी जनता के स्वर में स्वर मिलाने के लिए विवश हैं.

लेकिन जिस तेज़ी से एशियाई व्यापारियों के अधिकारों पर अफ़्रीका में प्रतिबंध लगाये गये, उसे देखते हुए यह तर्क निराधार ठहरता है कि उन्हें तुरंत व्यवसाय छोड़ कर दूसरे पेशे अपना लेने चाहिएँ और अफ़्रीकियों को अपने अर्थ-तंत्र पर क़ब्ज़ा जमाने का अवसर देना चाहिए. पुश्तैनी कारोबार छोड़ कर नया पेशा अपना लेना इतना आसान नहीं, जितना अफ़्रीकी नेता समझते हैं. नया पेशा अपनाने के लिए या तो प्रशिक्षण की ज़रूरत पड़ती है या फिर पर्याप्त पूंजी की. अब अगर बिना पर्याप्त मुआवज़ा दिये एशियाई व्यापारियों

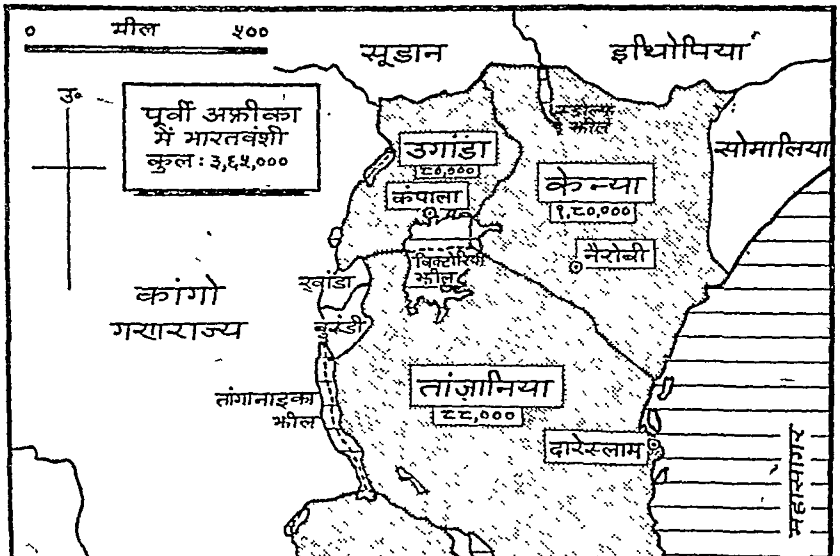

को निष्कासित किया गया तो यह कुछ वैसा ही व्यवहार माना जायेगा, जैसा द्वितीय विश्व-युद्ध के दौर में यहूदी व्यापारियों को जर्मनी से निष्कासित कर के हिटलर ने किया था.

अगर इन एशियाइयों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे अफ़्रीकियों की तरह नहीं सोचते तो अब उन्हें अपना रवैया बदलने के लिए ही अवसर मिलना चाहिए. दिलचस्प बात यह है कि केन्या में तो यह अपेक्षा की जाती है कि ये राजनीति से यथासंभव दूर रहें, किंतु तानज़ानिया में इन की नेकनियती पर इस आधार पर ही यक़ीन किया जाता है कि ये कितने राजनैतिक सम्मेलनों में शरीक़ होते हैं. इस के अलावा बेईमानी के आरोप में भी अनेक एशियाई व्यापारियों के साथ अशोभन व्यवहार किया जाता है. इन अंतर्विरोधों से जूझते हुए एशियाइयों का भविष्य अंधकारमय हो गया है.

रोज़गार की संभावना : भारत और पाकिस्तान में रोज़गार की संभावना काफ़ी निराशाजनक है, अत: अधिसंख्य आप्रवासी स्वदेश लौटने के बजाय ब्रिटेन जाना ज्यादा पसंद करते हैं. ब्रिटेन का यह तर्क भी सर्वथा निर्मूल नहीं कि वह सभी आप्रवासियों के पुनर्वास की तुरंत यथोचित व्यवस्था नहीं कर सकता. आर्थिक बंदिशों के अलावा भौगोलिक बंदिश को देखते हुए भी नागरिकता का हवाला दे-दे कर ब्रिटेन को सभी आप्रवासियों के पुनर्वास की व्यवस्था के लिए मजबूर करना न्यायसंगत नहीं है. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के शब्दों में यदि इन एशियाइयों के प्रति अफ़्रीका में भेदभाव की नीति विशेष रूप से इस लिए बरती जा रही है कि 'केक छोटा होने के कारण सभी को नहीं पहुँच पा रहा है', तो फिर ब्रिटेन से भी यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह सब को संतुष्ट करने लायक़ बड़ा केक तैयार कर सके. आप्रवासियों के प्रति भारत का उत्तरदायित्व भी केवल इतने से ही पूरा नहीं हो जाता कि वह अस्थायी रूप से ही उन्हें शरण देने की टेक निभाता रहे और स्थायी पुनर्वास का दायित्व केवल ब्रिटेन को ही सौंप दे.

आप्रवासियों की समस्या का समाधान तब तक संभव नहीं जब तक सभी संबद्ध पक्ष-ब्रिटेन, भारत, पाकिस्तान और अफ़्रीकी देश एक-दूसरे की दिक़्क़तों को समझ कर आप्रवासियों के भविष्य के बारे में कोई स्थायी और सहिष्णुतापूर्ण निर्णय न कर लें. ब्रिटेन के गृहसचिव जेम्स कैलगहन ने स्वीकार किया है कि पूर्वी अफ़्रीका में बसे अधिसंख्य एशियाई ब्रितानी नागरिक हैं, अत: अब सभी संबद्ध पक्षों को इस समस्या के समाधान में ब्रिटेन को सहयोग देना चाहिए.

विश्व

अंतरिक्ष-अनुसंधान

सोयूज़-श्रृंखला : पांचवाँ पायदान

अभी विश्व के वैज्ञानिक अपोलो-८ की सफलता के मूल्यांकन और अपोलो-श्रृंखला की भावी संभावनाओं पर विचार-विमर्श कर ही रहे थे कि रूस ने सोयूज़-४ और उस के एक दिन बाद सोयूज़-५ को अंतरिक्ष में भेज कर एकबारगी ही उन का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया. अपोलो-८ की चंद्र-यात्रा के समय यह आभास मिला था कि अंतरिक्ष-अनुसंधान की दिशा में रूस चुपचाप बड़ी दूरगामी तैयारी में व्यस्त है (देखिए **दिनमान** ५ जनवरी, १९६९). गत १४ जनवरी को बाइकोनूर कॉस्मोड्रोम से जब सोयूज़-४ अंतरिक्ष-यात्री व्लादीमिर शातालोव को ले कर उड़ा उसी समय यह संभावना व्यक्त की गयी थी कि रूस सोयूज़-श्रृंखला में शीघ्र ही और अंतरिक्ष-यान छोड़ेगा और इस बार शायद उस का प्रयास अंतरिक्ष में एक स्थायी मंच स्थापित करने के लिए होगा.

शातालोव वोलिनोव येलिसेयेव ख्रुनोव

१५ जनवरी को सोयूज़-५ को छोड़ कर रूस ने इस अनुमान की पुष्टि कर दी.

११ साल पहले : ४ अक्तूबर, १९५७ को रूस ने जब विश्व का पहला कृत्रिम भू-उपग्रह छोड़ा उसी समय यह आभास मिल गया था कि अंतरिक्ष-अनुसंधान की होड़ में वह अपनी पूरी शक्ति से अमेरिका को पछाड़ने में लगा हुआ है. तब से ले कर अब तक दोनों देश इस होड़ में एक दूसरे को पछाड़ने में लगे रहे. आरंभ में अनुमान लगाया गया था कि अमेरिका और रूस दोनों ही समानांतर रूप से अंतरिक्ष-अनुसंधान के अपने कार्यक्रमों को चलायेंगे किंतु अब अपोलो-८ और सोयूज़-४-५ के प्रयोगों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि दोनों देशों का लक्ष्य भले ही एक हो, लेकिन रास्ते भिन्न-भिन्न हैं. अमेरिका अपने अपोलो यानों द्वारा सीधे चंद्रमा पर उतरने का प्रयास कर रहा है जब कि रूस चंद्रमा अथवा किसी अन्य ग्रह पर मानव को उतारने से पूर्व अंतरिक्ष में एक चलता-फिरता मंच स्थापित करना चाहता है. सोयूज़-४ और सोयूज़-५ को अंतरिक्ष में भेज कर उस ने इस दिशा में सफल क़दम बढ़ाया है.

सोयूज़-४ और सोयूज़-५ को छोड़ने से पूर्व रूस ने न तो किसी प्रकार का प्रचार किया और न ही यह बताया कि इन यानों को अंतरिक्ष में भेजने के पीछे उस का क्या उद्देश्य है. किंतु उस ने पहली बार अपनी पुरानी परंपरा को तोड़ कर अपने इस ११वें समानव यान की यात्रा का कार्यक्रम टेलीविज़न पर प्रदर्शित किया. अप्रैल १९६१ में रूस ने पहला समानव यान अंतरिक्ष में भेजा था जिस के चालक यूरी गागरिन को विश्व के प्रथम अंतरिक्ष-यात्री होने का गौरव प्राप्त हुआ. पिछले ७ वर्षों में रूस ने थोड़े-थोड़े समय के अंतराल से समानव अंतरिक्ष यान छोड़ने का अपना कार्यक्रम जारी रखा. उस ने अंतरिक्ष-अनुसंधान के लिए अपनी सोयूज़-श्रृंखला कोई दो वर्ष पहले शुरू की थी. सोयूज़ श्रृंखला का पहला यान सोयूज़-१ जब छोड़ा गया उस समय यह अनुमान नहीं लगाया जा सका कि रूस इतनी जल्दी इस दिशा में अपेक्षित सफलता प्राप्त कर लेगा, क्यों कि सोयूज़-१ में जो ख़ामियाँ रह गयी थीं उन के परिणामस्वरूप उन के चालक अंतरिक्ष-यात्री कोमारोव को भूमि पर उतरते समय अपनी जान से हाथ धोना पड़ा था. रूसी वैज्ञानिकों ने सोयूज़-१ की ख़ामियों को समझा और उन्हें दूर करने में जुट गये. सोयूज़-३ में उन्होंने उन सारी ख़ामियों को दूर कर दिया जिन के कारण सोयूज़-१ अंतरिक्ष से वापसी के समय दुर्घटना का शिकार हुआ था. सोयूज़-१ की दुर्घटना ने रूसी वैज्ञानिकों को सुरक्षा की ओर से भी सचेत कर दिया; यानी यह कहा जा सकता है कि उस दुर्घटना ने ही उन्हें अंतरिक्ष-अनुसंधान के क्षेत्र में एक पृथक मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित किया. उन्होंने चंद्रमा या किसी अन्य ग्रह पर सीधे मानव को

उतारने के स्थान पर अंतरिक्ष में एक मंच स्थापित करने का रास्ता अपनाया. निस्संदेह उन का यह रास्ता अंतरिक्ष-अनुसंधान के क्षेत्र में अपना विशिष्ट महत्त्व रखता है. रूसी वैज्ञानिकों का यह विश्वास बहुत हद तक सही है कि अंतरिक्ष में स्थापित चलता-फिरता मंच दूसरे ग्रहों की यात्रा करने वाले अंतरिक्ष-यानों को उन के गंतव्य तक भेजने में अत्यधिक सहायक सिद्ध होगा. इस प्रकार का मंच अंतरिक्ष यानों की चक्करदार या दूसरी अंतरिक्ष-यात्राओं के दौरान शीघ्र मरम्मत करने और उन्हें पुनः अंतरिक्ष में भेजने के कार्य में विशेष रूप से सहायक सिद्ध होगा. इस से अंतरिक्ष-अनुसंधान पर होने वाले खर्च में भी कमी हो जायेगी. अमेरिकी वैज्ञानिक भी इस तथ्य को समझते है और इसीलिए वह अपोलो-११ को चंद्रमा पर भेजने से पूर्व अपोलो-९ और अपोलो-१० को अंतरिक्ष में भेज कर कुछ नये प्रयोग करना चाहते हैं.

अंतरिक्ष में मिलन : सोयूज-४ और सोयूज़-५ की यात्रा की सब से बड़ी उपलब्धि उन का अंतरिक्ष में हुआ साढ़े ४ घंटे का मिलन है. १५ जनवरी को जब सोयूज-५ तीन अंतरिक्ष यात्री बोरिस वोलिनोव, अलेक्सेई येलिसेयेव और येवगेनि ख्रुनोव को ले कर अंतरिक्ष में

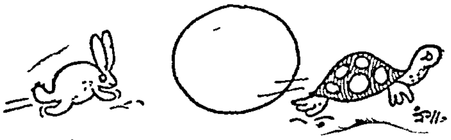

पहुँचा तभी यह संभावना व्यक्त की गयी थी कि वह किसी भी समय अंतरिक्ष में परिक्रमा कर रहे सोयूज-४ से मिल सकता हैं. ये दोनों यान अंतरिक्ष में मिलने से पहले पृथ्वी से क़रीब १५० मील की दूरी पर साथ-साथ परिक्रमा करते रहे और उन में पृथ्वी पर स्थित नियंत्रण कक्ष के साथ ही आपस में भी रेडियो संपर्क बना रहा. उन्होंने ८८.५ मिनट प्रति परिक्रमा की गति से पृथ्वी की परिक्रमाएँ कीं. दोनों अंतरिक्ष यानों का मिलन सोयूज़-४ की ३४ वीं और सोयूज़-५ की १८ वीं परिक्रमा के दौरान हुआ. इस मिलन के दौरान ही सोयूज-५ के दो अंतरिक्ष यात्री अलेक्सेई येलिसेयेव और येवगेनि ख्रुनोव ने अपने यान से सोयूज-४ में प्रवेश कर के अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया. साढ़े चार घंटे के साथ के बाद दोनों यान फिर अलग हो गये. ७२ घंटे में पृथ्वी की ४८ परिक्रमा कर के १७ जनवरी को सोयूज-४ अपने तीन अंतरिक्ष यात्रियों सहित निर्धारित स्थान पर सकुशल पृथ्वी पर उतर आया. और उस के दूसरे दिन सोयूज-५ भी निर्धारित समय और स्थान पर उतरा. सोयूज-४ और सोयूज-५ की सफलता पर रूस को विभिन्न देशों से बधाई संदेश मिले. लंदन की जोड्रेल बैंक वेधशाला के निर्देशक बर्नार्ड लावेल ने तो यहाँ तक कह दिया कि अपनी इस सफलता से रूस अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में अमेरिका से ४ वर्ष आगे बढ़ गया है. भूतपूर्व राष्ट्रपति जॉनसन ने भी अमेरिकी कांग्रेस के समक्ष १९६८ के अंतरिक्ष अनुसंधान की अमेरिकी उपलब्धियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए यह स्वीकार किया कि यदि यही स्थिति बनी रही तो अंतरिक्ष होड़ में रूस अमेरिका को पछाड़ सकता है. उधर रूसी वैज्ञानिक ब्लादीमिर सिफोरोव और अलेक्सांद्र मिखाई-लोव ने सोयूज-श्रृंखला की सफलता के बाद घोषणा की है कि रूस का अगला क़दम अंतरिक्ष में एक चलता-फिरता कास्मोड्रोम स्थापित करना होगा.

सोयूज़-श्रृंखला की रूसी सफलता ने अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में नयी हलचल पैदा कर दी है. किंतु इस का अर्थ यह नहीं माना जा सकता कि इस सफलता से उस का उद्देश्य पूरा हो गया है. फ़िलहाल सोयूज़ यान ३० दिनों तक ही अंतरिक्ष में रह सकता है. इतने थोड़े समय में दूसरे ग्रहों की जाँच-पड़ताल का कार्य किया जा सकता है, इस की संभावना नहीं के बराबर है. ऐसी स्थिति में रूस को अभी ऐसे अंतरिक्ष यानों का निर्माण करना होगा जो अधिक समय तक अंतरिक्ष में ठहर सकें. इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि एक यान उपयोगी मंच का निर्माण नहीं कर सकता. उस के लिए दो यानों को मिला कर मंच बनाना आवश्यक होगा और फिर परीक्षण के लिए तीसरा यान छोड़ना होगा.

इस में कोई संदेह नहीं है कि अपोलो-८ और सोयूज-श्रृंखला की सफलताओं से अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में नयी संभावनाएँ पैदा हो गयी है किंतु इस के साथ ही यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि अमेरिका और रूस अंतरिक्ष अनुसंधान में जो अरबों डॉलर और रूबल खर्च कर रहे हैं उन का महत्त्व भी इन सफलताओं से कम नहीं है. यदि यही धन विकासशील देशों के विकास पर खर्च किया जाता तो करोड़ों लोगों का कल्याण होता और वैसी हालत में मानव-कल्याण के लिए अंतरिक्ष अनुसंधान में जुटे रूस और अमेरिका के दावे अधिक सही सिद्ध होते.

चेकोस्लोवाकिया

नयी सरकार, पुराने प्रश्न

भूतपूर्व संसदीय अध्यक्ष स्मर्कोवस्की के स्थान पर स्लोवाकिया के कानून विशेषज्ञ तथा प्रगतिशील राजनीतिज्ञ पीटर चोलोत्का की नियुक्ति के साथ ही नयी सरकार के गठन का कार्य पूरा हो गया. स्मर्कोवस्की को पदच्युत करने के लिए रूस का दबाव जितना प्रबल था उस से अधिक प्रबल चेकोस्लोवाकिया की जनता का उन्हें पद पर बनाये रखने का आग्रह था. स्मर्कोवस्की को हटाये जाने का रूसी प्रयास तो सफल रहा, किंतु पीटर चोलोत्का की नियुक्ति से उस के उद्देश्यों पर पानी फिर गया. पीटर चोलोत्का, स्मर्कोवस्की जैसे मुखर सुधारवादी भले ही न हों, परंतु वह भी अपने सुधारवादी विचारों के लिए काफ़ी प्रसिद्ध है. फिर, स्मर्कोवस्की संसदीय अध्यक्ष भले ही नहीं बन सके, परंतु कम्युनिस्ट पार्टी के २१ सदस्यीय प्रेसीडियम तथा नीति-निर्धारक ८ सदस्यीय समिति में वह अभी काफ़ी समय तक चेकोस्लोवाकी गणराज्य की राजनीति पर छाये रहेंगे. ऐसी आशंका व्यक्त की जा रही है कि अब रूस उन्हें प्रेसीडियम से हटाने के लिए प्रयत्नशील है. कम्युनिस्ट पार्टी की इस सर्वोच्च समिति में होने वाले संभावित परिवर्तन से स्मर्कोवस्की के साथ ही पार्टी के नेता दुबचेक तथा कुछ अन्य बड़े नेताओं की स्थिति के भी प्रभावित होने की संभावना व्यक्त की जा रही है. ८ जनवरी को स्मर्कोवस्की के समर्थकों से शांत रहने की अपील करते हुए भी दुबचेक ने कहा कि कुछ लोग देश की राजनैतिक स्थिति को दुखद मोड़ देना चाहते हैं. हमें उन से सावधान रहना चाहिए. श्री दुबचेक के इस कथन से उस स्थिति का आभास मिलता है जिसका सामना इन दिनों चेक नेताओं को करना पड़ रहा है.

अर्थ-रचना : नयी सरकारों के गठन का कार्य संपन्न हो जाने के साथ ही चेकोस्लोवाकिया के नेताओं ने अगस्त १९६८ के रूसी आक्रमण के बाद से लड़खड़ाती चली आ रही *अर्थ-व्यवस्था* की ओर ध्यान देना आरंभ कर दिया है. पिछले ६ महीनों में रूसी नेता इस निष्कर्ष पर पहुँच गये लगते है कि चेकोस्लोवाकिया की राष्ट्रीय एकता को भंग करना उन के बस का काम नहीं है और न ही वे वहाँ अपने पिट्ठुओं को सत्तारूढ़ करा सकते हैं. यही कारण है कि अब चेकोस्लोवाकिया के प्रति उन का रुख न्यायसंगत होता जा रहा है, चेकोस्लोवाकिया के पश्चिमी देशों से व्यापारिक तथा तकनीकी संबंध स्थापित करने पर अब रूस को आपत्ति नहीं है बशर्ते कि उन से कोई पश्चिमी देश चेक अर्थव्यवस्था पर हावी न हो. चेकोस्लोवाकिया के आर्थिक सुधार के कार्यक्रम का भी रूस अब पहले जैसा विरोध नहीं कर रहा है.

चेकोस्लोवाकिया ने रूस के साथ अपने व्यापार को बढ़ाने की घोषणा अवश्य की है किंतु उस के आर्थिक विशेषज्ञ का अनुमान है कि पश्चिमी देशों के सहयोग से चेकोस्लोवाकिया को आर्थिक प्रगति के अच्छे अवसर मिल सकते है बशर्ते देश में सुव्यवस्था और राजनैतिक स्थायित्व हो. रूस का दबाव बने रहते, चेकोस्लोवाकिया के नेता इस शर्त को कहाँ तक पूरा कर पाते हैं इसी पर न केवल उस की आर्थिक प्रगति निर्भर होगी बल्कि उस का राजनैतिक भविष्य भी इस से ही निर्धारित होगा.

पश्चिम एशिया

लेबनान : अराजकता का राज्य

लेबनान में अभी तक कोई सरकार नहीं बन पायी है. बेरूत हवाई अड्डे पर इस्राइली हेलिकाप्टरों के आक्रमण ने तटस्थ लेबनान और उस की राजनीति को इस तरह झकझोर दिया है कि बेरूत में एक गंभीर राजनैतिक संकट उत्पन्न हो गया है. इस्राइलियों के आक्रमण के समय लेबनान की प्रतिरक्षा की कमज़ोरी बहुत ही नाटकीय ढंग से प्रकट हुई क्यों कि किसी ने भी आक्रमणकारियों का सांकेतिक मुक़ाबला भी नहीं किया. इस राष्ट्रीय अपमान से सचेत हो कर लेबनान की जनता ने प्रधानमंत्री अबदुल्ला याफ़ी से त्यागपत्र देने की माँग की थी. याफ़ी के त्यागपत्र के बाद लेबनान के राष्ट्रपति हलाउ ने एक विशिष्ट राजनीतिज्ञ रशीद करामी को नयी सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया. मगर इस ४७ वर्षीय सिद्धहस्त राजनीतिज्ञ को शीघ्र ही महसूस हुआ कि लेबनान का राजनैतिक संकट एक असाधारण संकट है. उन्होंने यह कोशिश की कि वह हर प्रकार के विचारों के प्रतिनिधियों को अपने मंत्रिमंडल में शामिल करें मगर विरोधी विचारधाराओं के व्यक्ति इस प्रकार आपस में टकराये कि करामी के लिए हल निकालना मुश्किल हो गया. अब स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी है कि दक्षिणपंथियों और वामपंथियों का अखाड़ा बनने के अतिरिक्त लेबनान का संसद् मुसलमानों और ईसाइयों के संघर्ष का स्थान भी बन रहा है. करामी दक्षिणपंथी कोमीली कमाउन के सहायकों को भी मंत्रिमंडल में लेना चाहते हैं जब कि समाजवादी कमाल जुंबलात ने चेतावनी दी है कि यदि उन के विरोधियों को शामिल किया गया तो समाजवादी मंत्रिमंडल के सदस्य नहीं बनेंगे. वामपंथी सदस्य फ़रीद गीब्रान ने यह आरोप लगाया है कि दक्षिणपंथी दल, जिन में नेशनल लिबरेशन पार्टी भी शामिल है, लेबनान का अंतरराष्ट्रीयकरण चाहते हैं और उस की सीमाओं का संरक्षण विदेशी सेनाओं द्वारा करवाना चाहते हैं. इस प्रकार लेबनान अब ऐसी स्थिति में पहुँच गया है जहाँ किसी भी समय अराजकता का दौर शुरू हो जायेगा. रशीद करामी ने संसद् सदस्यों की इस उत्तरदायित्वहीनता की तीव्र निंदा की है मगर फ़िलहाल लेबनान के राजनीतिकों में किसी प्रकार का स्थायी समझौता होने की कोई गुंजाइश नहीं दिखायी देती.

फ्रांस और इस्राइल : दूसरी ओर से पश्चिम एशिया की संकटावस्था और अधिक जटिल होती जा रही है. फ़्रांस की इस घोषणा से कि वह इस्राइल को किसी प्रकार के शस्त्र नहीं देगा इस्राइल में भारी तनाव की स्थिति पैदा हो गयी है. इस्राइली प्रधानमंत्री ने संसद् में इस स्थिति की जानकारी देते हुए कहा कि 'यह एक अत्यंत दुखद आघात है' क्यों कि इस से सामान्य नियम एक पक्षीय निर्णय के आधार पर तोड़ दिये गये हैं. उन्होंने फ़्रांस के इस आरोप को 'कल्पनाजनित असत्य' बताया कि १९६७ में इस्राइल ने सैनिक तनाव पैदा कर दिया था. इश्कोल ने संसद् को चेतावनी दी कि उसे इस बात की भी आशंका रहनी चाहिए कि कुछ अंतरराष्ट्रीय शक्तियाँ इस्राइली आक्रमण का हौवा खड़ा कर के कृत्रिम संकट पैदा करना चाहती हैं ताकि सोवियत संघ के प्रस्ताव को विश्व की राजधानियों में तुरंत स्वीकार किया जाये. यद्यपि फ़्रांस ने यह बात स्पष्ट कर दी है कि वह लेबनान को किसी प्रकार के शस्त्र नहीं देगा फिर भी एक फ़्रांसीसी प्रवक्ता के अनुसार यदि लेबनान पर संकट आ गया तो फ़्रांस ख़ामोश नहीं रहेगा.

सोवियत प्रस्ताव : संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ व्यापक रूप से इस बात पर सहमत हो गये हैं कि अरबों को सतत विरोध का रुख छोड़ देना चाहिए और वास्तविकताओं को पहचानते हुए इस्राइल के अस्तित्व को स्वीकार कर लेना चाहिए. मगर सोवियत संघ के प्रस्ताव और अमेरिकी विचारधारा में कुछ मौलिक अंतर हैं. रूसी यह चाहते हैं कि इस्राइल अधिकृत क्षेत्र से अपनी सेनाएँ हटा ले और अरब राष्ट्र उस क्षेत्र को अपने अधिकार में ले लें. इस के पश्चात् ही विसैन्यीकरण की बातचीत हो सकती है. मगर अमेरिकी सरकार का मत है कि इस्राइलियों के वापस चले जाने के साथ ही सिनाई गाज़ापट्टी और सीरियाई पहाड़ियों के विसैन्यीकरण का समझौता हो जाना चाहिए; ताकि भविष्य में दोनों पक्षों में संघर्ष की आशंका कम हो जाये. रूसी प्रस्ताव में यह सुझाया गया है कि इस्राइली सैनिकों के वापस चले जाने के पश्चात् सिनाई और गाज़ापट्टी में संयुक्त राष्ट्र की सेनाएँ तैनात कर दी जायें मगर इस्राइल ने पहले ही इस प्रकार के आश्वासन को व्यर्थ बता दिया है क्यों कि उस के अनुसार जब संयुक्त राज्य सेनाएँ १९६७ में युद्ध नहीं रोक सकीं तो आगे किस तरह रोक सकेंगी. इस प्रकार सभी पक्ष अपने-अपने मत और अपनी-अपनी स्थितियों में जमे हुए हैं. जु नि ने रूसी प्रस्ताव को पूर्ण रूप से स्वीकार कर लिया है.

कैनाडा

उदार व्यक्तित्व : उदार नीतियाँ

कैनाडा के प्रधानमंत्री पियेरे त्रूदो का नाम जहाँ रोज-बरोज किसी न किसी स्त्री के साथ जोड़ कर उछाला जाता है वहीं अपने उछाले गये नाम का फ़ायदा उठा कर वह किसी न किसी नयी नीति की घोषणा कर राजनैतिक क्षेत्रों में भी ख़ासी हलचल पैदा कर देते हैं. रूस के चेकोस्लोवाकिया पर हमले के कारण उन्होंने जिस प्रकार चेकोस्लोवाकिया के विस्थापितों को अपने देश में पनाह दे कर अपने आस-पास अच्छा-ख़ासा बवंडर खड़ा कर लिया था कुछ वैसा ही शोर-शराबा तब लंदन की राजनीति में सुनने को मिला जब उन्होंने १७वें राष्ट्रकुल प्रधानमंत्री सम्मेलन के दौरान यह घोषणा की थी कि कैनाडा चीन के संयुक्त-राष्ट्र संघ के सदस्य बनाये जाने के पक्ष में है और असेंबली में जब यह सवाल उठेगा, कैनाडा उस का समर्थन करेगा. त्रूदो के इस फ़ैसले को सुन तब पश्चिमी देशों के नेताओं की आँखों ने पहले एक हलकी-सी झपकी ली और फिर वे पूरी तरह खुल गयीं. लेकिन साथ ही जब उन्होंने यह भी घोषणा की कि कैनाडा नैटो के साथ भी अपने संबंध चिरस्थायी नहीं रखेगा और समय-समय पर उन संबंधों पर स्थिति के अनुसार विचार करेगा तब भी त्रूदो के इस फ़ैसले से पश्चिमी देशों में ख़ासी प्रतिक्रियाँ हुई.

पाबंदी : प्रधानमंत्री त्रूदो ने चेकोस्लोवाकिया के विस्थापितों के लिए अक्तूबर के शुरू में अपने देश के जो द्वार खुले दिल से खोल दिये थे, वे द्वार अब वैसे ही बंद हो रहे हैं. एक वक़्त था जब १५०० चेकोस्लोवाक प्रति सप्ताह के हिसाब से कैनाडा में प्रवेश करते थे और उन का भाड़ा, रहन-सहन, सुरक्षा आदि का प्रबंध भी कैनाडा की सरकार ही करती थी. लेकिन अब स्थिति यह हो गयी है कि सरकार की पहले की ढिलाई अब कसावट में बदलती जा रही है. यह ऐलान किया गया है कि किसी को भी कैनाडा में प्रवेश करने के लिए अब बाक़ायदा सरकारी नियमों का पालन करना होगा. इस समय तक कैनाडा में १० हज़ार से ११ हज़ार तक चेकोस्लोवाक प्रवेश कर चुके हैं. इन में से एक तिहाई लोगों को नौकरियाँ भी दी जा चुकी हैं. इन में से कई लोगों के सामने भाषा की समस्या है तो कइयों को सरकारी ढाँचा आड़े आ रहा है. अब, जब की चेकोस्लोवाकिया के रूस से संबंध सुधर रहे हैं और पलायन करने वाले चेकोस्लोवाक लोगों का दमन भी बंद कर दिया गया है, लोग स्वदेश लौटने लगे हैं. ऐसा भी

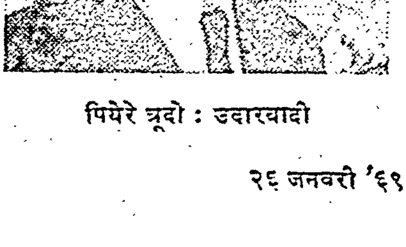

पियेरे त्रूदो : उदारवादी

विश्वास है कि उन लोगों के साथ सद्व्यवहार किया जा रहा है.

कैनाडा न केवल चीन को संयुक्तराष्ट्र संघ का सदस्य बनाने का ही समर्थन करता है बल्कि उस ने चीन को १२,००० टन जस्ता भेजने का भी निश्चय किया है. उस की यह भी इच्छा है कि वह चीन के साथ अपने संबंध मजबूत करे.

गुयाना

विद्रोहियों की बात

गुयाना के छोटे से देश के कुछ मुट्ठी भर लोगों ने पिछले दिनों वि ोह का झंडा उठाया और दक्षिणी गुयाना के बीस हजार वर्गमील रुपुन्नी को कुछ देर के लिए स्वतंत्र घोषित कर दिया. इस इलाक़े का बहुमत अमेरिकी भारतीय है और वे पेशे से पशु पालने का काम करते हैं. उन के अचानक इस हमले से सरकार पहले तो कुछ घबरा-सी गयी लेकिन बाद में उस ने दृढ़ता बरती और उस के ३०० सैनिकों ने जो कुल सेना की तीसरा भाग हैं, कुछ देर पहले हथियाये गये लेथाम इलाक़े को स्वाधीन कराया. इन पशुपालकों की मान्यता है कि रुपुन्नी पर उन का पुश्तैनी अधिकार है, लिहाज़ा यह क्षेत्र एक स्वाधीन क्षेत्र होना चाहिए. वह इस क्षेत्र पर अपना दावा १८९२ से जतलाते आ रहे हैं और यही वजह है कि यहाँ की ो जातियों हार्टमैन और मेलवील्स को गुयाना की राजनैतिक सत्ता को फूटी आँखों नहीं सुहाती. पाँच वर्ष पूर्व गुयाना की स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद प्रधानमंत्री फोबर्स बर्नहम जो कि निग्रो हैं, से ये लोग अपने लिए खतरा महसूस करते रहे हैं. इन लोगों का विचार है कि हो सकता है कि प्रधानमंत्री बर्नहम अपनी जाति की भलाई करने की ग़र्ज़ से उन की बेइंतहा जमीन पर अपनी आँखें गड़ाए. स से पहले कि बर्नहम अपनी संभावित इच्छा की पूर्ति करने पाये, इन लोगों ने अपनी स्वतंत्रता की पताका लहरानी चाही. पिछले महीने बर्नहम के पुनः प्रधानमंत्री निर्वाचित हो जाने से हार्ट न जाति के सब से छोटे मुखिया ३५ वर्षीय जिम ने अपने सहयोगियों से सलाह-मशविरा कर के वि ोह कर दिया और लेथाम पर अपना क़ब्जा कर लिया.

आरोप : लेथाम को अब विद्रोहियों से मुक्त किया जा चुका है, प्रधानमंत्री बर्नहम के दिमाग़ पर खतरे का भूत अभी भी मँडरा रहा है. वह यह महसूस करते हैं कि यह खतरा भीतर से तो उतना नहीं जितना कि पड़ोसी देश वेनेजुएला से है. वेनेजुएला में कई ऐसी जगहें हैं जहाँ गोरिल्ला प्रशिक्षण-केंद्र हैं. इस के अलावा विद्रोहियों से जो हथियार बरामद हुए हैं, वह वेनेजुएला को अमेरिका से प्राप्त हुए थे. इन हथियारों में बाज़ूका और स्वयंचालित बहुत से अस्त्र हैं. प्रधानमंत्री बर्नहम का कहना है कि वेनेजुएला के अधिकारी विद्रोहियों की सहायता कर के अंतरराष्ट्रीय मान्यताओं और नियमों का उल्लंघन कर रहा है, और गुयाना में तनाव की स्थिति पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं. वेनेजुएला के अधिकारियों ने बर्नहम की दलील को बे-बुनियाद बतलाते हुए रुपुन्नी के विस्थापितों को जिस में हैरी और रिचर्ड हार्ट भी शामिल हैं, को अपने देश में पनाह देने की बात स्वीकार कर ली है. दो पड़ोसी देशों में बढ़ते हुए इस तनाव से बर्नहम की स्थिति को खतरा पैदा हो गया है.

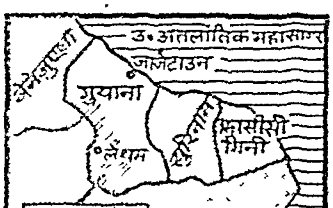

पाकिस्तान

जम्हूरियत का ज़माना

लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए पाकिस्तानी जनता का आंदोलन दिन पर दिन तेज़ और व्यापक होता जा रहा है. पिछले कुछ सप्ताहों से शायद ही कोई ऐसा दिन हो जब पाकिस्तान में प्रदर्शनों, जलूसों, विरोध सभाओं और उन का दमन करने के लिए पुलिस की ज्यादतियों के समाचार पढ़ने को न मिलते हों. ताजा समाचारों में ढाका में पुलिस और छात्रों के बीच मुठभेड़ और झड़पों आदि के अलावा कश्मीर के पाकिस्तान अधिकृत इलाके में भी सरकारी व्यवस्था के ठप्प हो जाने की खबरें हैं जिन से स्पष्ट होता है कि पाकिस्तानी जनता के धैर्य की सीमा अब टूटती जा रही है और जितना ही अधिक दमनचक्र चलता है उतनी ही आग भड़कती है. ढाका में छात्रों ने सभाओं और जुलूसों पर लगी पाबंदी को तोड़ कर पुलिस ज्यादतियों की निंदा करनी चाही और इस सिलसिले में पुलिस और छात्रों के बीच खुल कर लड़ाई शुरू हुई. कुछ लोग घायल हुए, गिरफ़्तारियाँ हुईं और इस की प्रतिक्रिया पूर्व पाकिस्तान पर ही नहीं पाकिस्तान के अन्य भागों पर भी होगी.

देश-व्यापी विरोध की योजना : ढाका में ८ राजनैतिक दलों ने संयुक्त हो कर जन अधिकारों और पूर्व पाकिस्तान में लोकतंत्रीय व्यवस्था की स्थापना के लिए जबर्दस्त आंदोलन की योजना बनाई है. इस के लिए एक लोकतंत्री कार्यवाही समिति बना दी गयी है और जन-आंदोलन की शुरुआत भी हो गयी है. लोकतंत्री अधिकारों के लिए आंदोलन का सब से अधिक ज़ोर पूर्व पाकिस्तान में है. दरअसल पूर्व पाकिस्तान राष्ट्रपति अय्यूब के शासन से भी बहुत पहले से नागरिक अधिकारों के लिए आंदोलन करता रहा है और पाकिस्तान की केंद्रीय सरकार से उस की बराबर यह शिकायत रही कि उस के समस्त साधनों का उपयोग कर पश्चिमी पाकिस्तान को खुशहाल बनाया जा रहा है और पूर्व पाकिस्तान को बदतर हालत में रखा जा रहा है. पाकिस्तान की केंद्रीय सरकार भी शुरू से पूर्व पाकिस्तान के प्रति उपेक्षा बरतती रही और सिर्फ़ वायदों पर ही पूर्व पाकिस्तानी जनता को शांत रखने का प्रयत्न करती रही.

पूर्व पाकिस्तान में जिन अधिकारों के लिए यह जन-आंदोलन शुरू किया गया है वास्तव में वे पूर्व पाकिस्तान में ही नहीं बल्कि समूची पाकिस्तानी जनता के वे अधिकार हैं जिन से वहाँ के लोगों को बराबर वंचित किया जाता रहा है. पूर्व पाकिस्तान की आठ राजनैतिक पार्टियों के इस संयुक्त मोर्चे ने अपनी जिन माँगों की घोषणा की है उन में से कुछ तो समूची पाकिस्तानी जनता की माँगें हैं. यह संयुक्त मोर्चा संघीय संसदीय व्यवस्था, बालिग मताधिकार पर सीधे चुनाव, संकटकालीन स्थिति की समाप्ति जैसी कुछ माँगों के लिए आंदोलन का सूत्रपात कर रहा है और इस में जरा भी संदेह नहीं कि ये सब ऐसी माँगें हैं जिन पर समची पाकिस्तानी जनता संगठित हो कर वर्तमान अय्यूब शासन के लिए एक चुनौती बन सकती है.

आगामी चुनावों के संदर्भ में : पाकिस्तान के राष्ट्रपति पद के लिए आगामी चुनावों के संदर्भ में अनेक राजनैतिक दल और नेताओं ने पूर्व पाकिस्तान की जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए पूर्व पाकिस्तान को ही अपने प्रचार का लक्ष्य माना है. परंतु पूर्व पाकिस्तानी संयुक्त मोर्चे ने आगामी चुनावों के बहिष्कार का निश्चय कर के अन्य विरोधी दलों के लिए एक नयी समस्या पैदा कर दी है. यदि इस निश्चय के अनुसार पूर्व पाकिस्तानी जनता चुनावों में ही भाग नहीं लेती तो इस का सब से अधिक फ़ायदा राष्ट्रपति अय्यूब और उन के समर्थकों को ही पहुँचेगा. विरोध का यह प्रवाह पाकिस्तान के अन्य भागों में भी पूरे ज़ोरों पर है. कराची के राष्ट्रीय छात्र संघ ने सभी छात्रों के नेताओं को तुरंत रिहा करने की माँगें पूरी न होने की स्थिति में आंदोलन की जो धमकी दी थी उस पर उन्होंने अमल शुरू कर दिया है और उन का समर्थन भी पूर्व पाकिस्तान के आंदोलन को मिलना स्वाभाविक है. मजदूर नेताओं ने लाहौर के एक संवाददाता सम्मेलन में पूर्व पाकिस्तान के संयुक्त मोर्चे को अपना समर्थन देने की घोषणा कर ही दी है. इन मजदूर नेताओं का कहना है कि पूर्व पाकिस्तान के नेताओं ने जो माँगें रखी हैं वही माँगें पाकिस्तान के श्रमिकों की भी हैं.

बिद्ये दिब्बी

स्वर्गीय सतीनाथ भादुड़ी के १९४२ की अगस्त क्रांति की पृष्ठभूमि पर लिखे गये प्रसिद्ध उपन्यास 'जागरी' में एक बुढ़िया बिहारी औरत कहती है 'वे बड़े हैं, बंगाली हैं.' बंगाली का यह बड़प्पन मध्य वर्ग के विघटन और सरकार बहादुर के देशी हो जाने के साथ अब नहीं रहा. यों बंगाली मध्य वर्ग का एक छोटा-सा हिस्सा; शासक-वर्ग और देशी-परदेशी 'बड़ लोक' से रिश्ता बनाये रख पाने के कारण पहले से ज्यादा खुशहाल हो गया है और मध्य वर्ग की हद पार कर नियोन बत्ती वाली दुनिया में पहुँच गया है. पर मध्य वर्ग का बहुतांश—निम्न-मध्य वर्ग बीस साल की कमर-तोड़ महँगाई की मार खा-खा कर एक ऐसी दुनिया में पहुँच गया है जहाँ उस के और मज़दूर-वर्ग की दुनिया के बीच सिर्फ़ पतली सफ़ेद तार-तार हुई चादर की आड़ रह गयी है. कलकत्ता की शहरी ज़िंदगी का नर्क यही वर्ग आज भोग रहा है. मज़दूर और श्रमिक बस्तियों में या सड़कों पर हैं और उन का नर्क अलग है. १९४३ के अकाल और १९४७ के पलायन के मध्य चाँपे हुए इस निम्न मध्य वर्ग के मूल्य और प्रतीक अपने पूर्वज मध्यवर्गी भद्र लोक बंगाली के हैं और उसी के द्वैत-दैत्यों का वह शिकार है तलवार और कलम का द्वैत (दुर्गा-काली और सरस्वती का), कथनी और करनी का द्वैत, श्रद्धा और घृणा का द्वैत; भक्ति और क्रांति का द्वैत. मध्यवर्गी बंगाली ने कभी द्वैत के दैत्य का सामना करने की सोची ही नहीं. यह संयोग नहीं कि शरतचंद्र से ले कर एकदम हाल के लेखकों तक, बंगला साहित्य में श्रद्धा भक्ति और घृणा अधिक है, द्वन्द्व और आत्मपरीक्षण कम.

कुलीन क़लम-तलवार : कंपनी-बहादुर के आगमन के पहले के बंगाली पल्ली समाज (देहाती समाज) में ज़मींदारों का आतंक बहुत ज़ोर पर था और शक्तिशाली केंद्रीय सत्ता के अभाव में जीवन एकदम असुरक्षित. सामान्य जीवन उतना ही मारक और दैन्य-भरा था जितना कि सुदूर राजस्थान में. अकुलीन और शूद्र जाति-प्रथा के दबाव में कुछ भी सोच सकने की स्थिति में नहीं थे. पर कुलीन और सवर्ण आगे देखने के लिए प्रतीक गढ़ रहे थे और उन्होंने तलवार (दुर्गा, काली) और क़लम (सरस्वती) के रूप में दो प्रतीक गढ़ भी लिये. संत कवियों की तरह राजनैतिक, सामाजिक दबावों को नज़रअंदाज़ कर अपनाये जाने वाला यह भक्ति-मार्ग था. इस में से सरस्वती प्रतीक वाद में चल कर अंग्रेज़ के लिए बहुत फलदायी साबित हुआ. सवर्ण बंगाली हिंदू रोजगार की आशा में कलकत्ता की ओर बढ़ने लगा. शूद्र और मुसलमान गाँवों में ही रह गये. कलकत्ता में जो कुलीन मध्य-वर्गीय बंगाली संस्कृति पनपने लगी, उस में द्वैत को समझने और दूर करने के बजाय स्वामी देश की नक़ल करने की मात्रा ज्यादा थी. उसे कुछ लोग आज गर्व से बंगाल का रिनेसाँ (पुनर्जागरण) युग कहते हैं. अविभाजित बंगाल में मुसलमान हिंदू से ज्यादा थे, पर उन का इस तथाकथित पुनर्जागरण में कोई हिस्सा नहीं था. शायद इसी लिए आज पूर्व पाकिस्तान में वे बंगला को राज-भाषा करने की माँग करते हैं; उर्दू के स्थान पर अंग्रेज़ी की माँग नहीं करते.

कम्युनिस्ट की सरस्वती : कलकत्ता के मुट्ठी भर सवर्ण कुलीन हिंदू मध्य वर्ग की संस्कृति में आंग्ल-प्रेम के साथ प्रतीकोपासना में दुर्गा और सरस्वती पूजाओं का रूप सार्वजनिक होता गया. वसंत पंचमी का मतलब है कलकत्ता में बड़े पैमाने पर सार्वजनिक सरस्वती पूजा. दुर्गा पूजा की अपेक्षा सरस्वती पूजा ज्यादा स्थानों पर होती है. सरस्वती के प्रति मध्य वर्गी बंगाली की इस शताब्दी के आरंभ में जो श्रद्धा थी वह अब पूजा करने वाले निम्न मध्य वर्गी में नहीं रही है, तब भी प्रतीक रूप में क़ायम है. पहले विद्या का मतलब होता था अच्छा रोज़गार मिलना. अब बढ़ती बेकारी में डिग्रियों का कोई मतलब नहीं रह गया है. पहले बंगाली लड़का रात को पढ़ता रहता, तो माँ आ कर खाना रख जाती थी. अब शायद आ कर बत्ती बुझा जाती है कि नाहक़ बिजली खर्च हो रही है. फिर भी विद्या के प्रति बंगाली की श्रद्धा आज भी मोहक जान पड़ती है. सरस्वती के प्रति वह जितना आदर और श्रद्धा दिखाता है उतना कोई अन्य भारतीय नहीं. वह प्रतीक उस के जीवन में रस-बस गया है. बंगाली लड़के-लड़कियाँ क़सम खाते हैं, तो विद्या छू कर. एक युवक बंगाली कम्युनिस्ट एक अन्य प्रदेश के पढ़ाकू युवक कम्युनिस्ट के यहाँ गया. उस का छोटा कमरा अख़बारों और काग़ज़ों से भरा था और बैठने के लिए कोई कुर्सी नहीं थी. बंगाली कम्युनिस्ट जहाँ भी बैठता उस का पैर काग़ज़ों से छू जाता. काग़ज़ को उठाते और नमस्कार करते उस का हाल बेहाल था. यह देख दूसरे कम्युनिस्ट ने कहा तुम ख़ाक कम्युनिस्ट बनोगे, जो इस तरह हर बार काग़ज़ छू जाने पर तुम्हें प्रणाम करना पड़ता है.

बालकों की देवी : निम्न-मध्य वर्ग के बंगाली बच्चे को यह श्रद्धा और प्रतीकोपासना घुट्टी में मिलती है. जीवन में किसी प्रकार का निजी आनंद और रस न होने के कारण वह दुर्गा पूजा हो जाते ही सरस्वती पूजा की प्रतीक्षा करने लगता है. शिक्षा प्राप्त करना उस के लिए जो रसहीन कर्त्तव्य है सरस्वती पूजा के दौरान उस में रस का समावेश होना उसे आल्हादित करता है. दो महीने पहले से ही हर पाड़े (मुहल्ले) में कमेटी बन जाती है और ९-१० से ले कर १७-१८ वर्ष तक के लड़कों में चंदे की रसीद-बही बँट जाती है. सरस्वती पूजा के १५-२० दिन पहले कलकत्ता के किसी बंगाली मुहल्ले में सुबह-शाम चले जाइए तो यह नहीं हो सकता कि कोई बच्चा आप से चंदा माँगने न आये. दुर्गा पूजा में अपनी बड़ी भूमिका न होने के एहसास में बच्चे और किशोर बहुत ज्यादा सक्रिय हो उठते हैं और कौन ज्यादा चंदा इकट्ठा करता है, इस की ज़बरदस्त होड़ मची रहती है. चंदा इकट्ठा करते हुए एक महीना हो जाने पर आगे का नक्शा उभर आता है; चंदे के अंदाज़ से सरस्वती की प्रतिमा का बायना (पेशगी रक़म) दिया जाता है. बायना देने जाने का काम १४-१८ वर्ष के लड़के करते हैं. बायना दे कर लौटने के बाद छोटे लड़कों के प्रश्नों की झड़ी लग जाती है कि प्रतिमा कैसी है ? जब तक प्रतिमा नहीं आती तब तक लड़के पटुआ पाड़ा और कुमुर टोली (प्रतिमा बनाने के प्रमुख स्थान) के चक्कर लगाते रहते हैं. वसंत पंचमी के एक दिन पहले प्रतिमा मुहल्ले में लायी जाती है. पूजा के पंडाल के बगल वाले मकान में प्रतिमा रख दी जाती है. छोटे लड़के प्रतिमा के रिक्शे या ठेले से उतरते ही उसे देखने को टूट पड़ते हैं, क्यों कि पूजा-मंडप में तो स्थापित प्रतिमा ही दीख सकेगी. प्रतिमा पर तुरंत कपड़ा डाल दिया जाता है और कोई छोटा लड़का लुके-छिपे कपड़ा उघाड़ कर देखने की कोशिश करता है तो उसे बड़े लड़कों की ऐसी फटकार पड़ती है कि सारी सिट्टीपिट्टी गुम हो जाती

प्रतीक-रचना

है. दो-तीन झलक में देखी गयी प्रतिमा के बारे में छोटे लड़के अपना विशेषज्ञी ज्ञान बघारते नहीं थकते 'हाँस टा एक टू वड़ होले बेशी मानातो, मुख टा भारी सुंदर' (हंस कुछ बड़ा होता तो ज्यादा खिलता, मुख किंतु बहुत सुंदर है) सारा ज़ोर मुख पर ही होता है; बंगालियों में मुख ही शायद सब से बड़ा सुख जो है.

वयस्काधिकार : पूजा के पहले दिन प्रतिमा को पंडाल मे सजाने के लिए १४-१८ वर्ष के लड़कों को रात जगने और घर से बाहर रहने की इजाजत मिल जाती है. जाड़े की रात में लड़के मिठाइयों की टोकरियों पर पुराने अखबार चिपका कर और उन्हें काले रंग से रंग कर पहाड़ बनाते हैं और पहाड़ के बीच प्रतिमा को बैठाया जाता है. बचपन में शायद विशिष्टता का कोई भाव नहीं होता. हर पाड़े की सरस्वती पहाड़ के बीच बैठी रहती है. *इस रतजगे में बंगाली लड़का सिगरेट पीने की* प्रेरणा भी प्राप्त करता है. पंडाल में काम करते वक़्त पाड़े की सीमा के बाहर सिगरेट पीने वाले लड़के निर्भय हो सिगरेट के सूटे मारते है, तो न पीने वाले लड़के भी प्रेरित होते है. पहाड बनाने के बाद सजावट की अन्य समस्याएँ खड़ी होती है. पंडाल के सामने सुर्खी अच्छी लगेगी, सोच लड़के याद करते है कि आसपास कहाँ मकान बन रहे है और सुर्खी-चोरी अभियान पर निकल पड़ते हैं. सुर्खी चुराने के बाद साहस बढ़ जाता है, तो याद करते है कि किस 'बड़ लोक' के मकान में फूल है और वहाँ से फूलों की चोरी की जाती है. सरस्वती पूजा के पहले दिन इसी लिए मकानों के चौकीदारों को खूब सतर्क रहना होता है. पूजा के दिन ६-७ वर्ष के बच्चे भी सुबह दस बजे तक मूड़ी और छोले (चने) या रात की बासी रोटी का अपना नितांत अपौष्टिक नाश्ता परित्याग कर अंजलि देने के लिए भूखे रहते हैं, क्यों कि अंजलि बिना खाये ही दी जा सकती है. घर में खाने और जरा-सा भी ज्यादा टुकड़ा पाने के लिए लड़ने वाले ६-७ वर्ष के बच्चे का यह त्याग हिंदी सिनेमा के किसी नाटकीय दृश्य से कम अजीब नही लगता.

लाल किनारी और फल : सरस्वती पूजा का सारा कार्यक्रम निम्न-मध्य वर्ग के बंगाली बच्चे को अपनी संस्कृति के उस पहलू से संपृक्त करता है जो रागात्मक है. इस रागात्मकता को बड़े हो कर निरंतर स्खलित होते देख वह सिर्फ़ राग (बंगला में गुस्सा) करता है. लाल किनारी की तसर की साड़ी पहने, पूजा के प्रसाद के लिए फल काटती मुहल्ले की लड़कियों की छवि बच्चे के मन में एक निजी जगत् बनाती है, जिस में हर लड़की देवी सरीखी नजर आती है. सत्यजित राय की 'देवी' इस छवि के एक रूप को प्रकट करती है और वह काफ़ी पुरानी भाव-भूमि के बावजूद इसी लिए एक अत्यंत आधुनिक भारतीय फ़िल्म है. बड़े होने पर मुहल्ले की देवी सरीखी लड़की देवी-सा आचरण नहीं करती, तो बंगाली लड़का झुंझलाता है और झुंझलाहट में वह घोर हताशा या घोर आशा के झूले में झूलता ही रह जाता है. यह बात शायद बहुत ग़लत नहीं है कि बंगाली वयस्संधि से आगे नहीं बढ़ पाता.

सरस्वती की प्रतिमा के पास बंगाली बच्चा जिस विषय में कमजोर होता है उस की सारी किताबें लगा देता है, कि माँ सरस्वती उसे पास करा देंगी. किंतु स्कूल से निकलते-निकलते उसे पता लग ही जाता है कि अगर वह पास भी हो गया तो कुछ होना-जाना नहीं है. साल के बाद वसंत पचमी आते-जाते माँ सरस्वती की आराधना बेमतलब लगने लगती है— बड़े हो कर प्रतीक रूप में सरस्वती के प्रति वह अपनी श्रद्धा सहेजे रखता है. पर उस के किसी *भी स्थूल रूप में, यहाँ तक कि पूजा के कार्यक्रम* मे भी उस की रुचि नहीं रहती. लिहाजा सरस्वती पूजा ज्यादातर स्कूल के लड़कों का पर्व होता है, कॉलेज का लड़का उस में उतना भाग नही लेता. सरस्वती का विसर्जन कर जब बच्चा मुहल्ले लौटता है तो उसे ऐसा लगता है कि उस की बहिन विदा हो गयी है और वह अब कभी पहले की तरह उस के पास से स्नेह और संरक्षण नहीं प्राप्त कर सकेगा. किंतु निम्न-मध्य वर्गी छोटे बच्चे की सरस्वती-पूजा में सक्रियता मन में अवसाद जगाती है, क्यों कि बहुत जल्द ही उस का मोह भंग होने वाला है और वह उन प्रतीकों को ढोये जा रहा है जो कालक्रम में बेमतलब साबित होते जा रहे है. वह रागात्मकता, जिस का उस ने सरस्वती पूजा के दौरान स्पर्श पाया है, उस की बदलती परिस्थितियों में वह कोई संगति नहीं बैठा पायेगा.

बड़ लोक बेदखल : कलकत्ता में सरस्वती पूजा का स्वरूप तेज़ी से बदल रहा है. अब पर्व और उत्सव सब लोगों को एक साथ नहीं लाते. वे लोगों के बीच की परतों और अंतर को और ज्यादा स्पष्ट करते हैं, कि सब से बड़ा झूठ 'मानुष सत्य' है. मुहल्लों से 'बड़ लोक' हट गये हैं और उन इलाक़ों में बस गये हैं जहाँ फ़िरंगी रहते थे और उठाईगीर तबका मुहल्लों की खाली ज़मीनों को हड़प रहा है और उसे सरस्वती से कोई प्रेम नहीं. अब सरस्वती पूजा के लिए मुहल्लों में कोई खाली ज़मीन नही दीखती. १० साल पहले तक मुहल्लों में जमीन के ऐसे टुकड़े पड़े रहते थे जहाँ मकान नहीं बने होते थे. कलकत्ता में इतने मकान बने हैं, किंतु सड़क पर सोने वालों की संख्या में एक की भी कमी नहीं आयी है, रोज वृद्धि ही होती है. अब सरस्वती पूजा भी किसी माठ (मैदान) में नही होती, सड़क या फुटपाथ पर होती है—सरस्वती सचमुच् सड़क पर आ गयी है.

रंगमंच

एक नाट्य शिविर

राजस्थान संगीत नाटक अकादेमी की ओर से **मोहन महर्षि** के निर्देशन में पिछले महीने के अंत में एक नाट्य प्रशिक्षण-शिविर का आयोजन जयपुर में किया गया. शिविर में अध्ययन के लिए सौ से अधिक प्रार्थनापत्र आये, पर स्थान, समय व धन की सीमाओं के कारण चालीस युवक-युवतियों को ही चुना जा सका. प्रशिक्षण को नाट्य के पाँच प्रमुख तत्त्वों नाट्य विश्लेषण, अभिनय, सेट निर्माण, प्रकाश-संयोजन और मेकअप में बाँट कर मूलतः व्यावहारिक ज्ञान के महत्त्व पर बल दिया गया. नाटक की चर्चा को संघियों और कृतियों के पुस्तकीय विभाजन से बचा कर उस के आंतरिक गठन, कालगत संबंध, चरित्र-चित्रण, भाषा एवं विन्यास में कथ्य के बहाव आदि दृष्टियों में समाहित किया गया.

मोहन राकेश के नाटक **'आधे-अधूरे'** का परीक्षण इस दृष्टि से उल्लेखनीय रहा कि मंचीकरण की प्रक्रिया मे उस की असहनीय खामियों को साफ़-साफ़ देखा जा सका. यह प्रयोग निर्देशक और नाटककार को जोडने में भी सफल रहा. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के दो प्राध्यापकों, जी. एन. दास गुप्ता और इंदु घोष ने क्रमशः प्रकाश-संयोजन व मेकअप का प्रामाणिक प्रशिक्षण दिया. मैक्स म्यूलर भवन के निदेशक कालराइटर ने भारतीय व पाश्चात्य संगीत की विशिष्टताओं और उस के ध्वन्यात्मक प्रभाव को ले कर अपने गंभीर विचार प्रकट किये. सुरेश अवस्थी, देवीलाल सामर, मोहन राकेश आदि ने भी प्रशिक्षार्थियों के समक्ष नाटक व रंगमंच की समस्याओं पर भाषण दिये.

जनवरी के प्रथम सप्ताह में प्रशिक्षार्थियों ने रवींद्र मंच पर **शुतुरमुर्ग** प्रस्तुत किया. **ज्ञानदेव अग्निहोत्री** के इस नाटक के चुनाव के संदर्भ में एक वक्तव्य देते हुए निदेशक महर्षि ने कहा कि मेरे सामने दो प्रश्न थे. एक तो यह कि कथ्य की दृष्टि से सामयिक स्थितियों में नाटक कितना महत्त्वपूर्ण है? दूसरे, तकनीकी दृष्टि से भी वह उपयुक्त है या नही? अर्थात् उस में कही गयी बात मंच की भाषा में तीव्रता से कही जा सकती है या नहीं?

इस में कोई शक नही कि 'शुतुरमुर्ग' का प्रदर्शन काफ़ी सफल रहा और उसे दर्शकों ने दूर तक ग्रहण किया. एक कमज़ोर व्यंग्य-रचना होने के बावजूद कुशल निर्देशन ने नाटक को पूर्ण नाटकीय ढंग से उस के समूचे यथार्थ में रखने की क्षमता प्राप्त की. नाटक का संसार सत्ताधारी राजनीतिज्ञों के खोखलेपन का संसार है. वह बड़ा अस्पष्ट और अविवेकमय है. उस में विद्रोह को तोड़ने और संघर्ष को खत्म करने का छलपूर्ण चातुर्य है. नाटककार ने

शुतुरमुर्ग का एक दृश्य

इस पाखंड का पर्दाफाश करने के लिए व्यंग्य का सहारा लिया है, पर वह पैना होने की बजाय सतही और स्थूल हो गया है. संवाद कहीं-कहीं बहुत लंबे और उकताहट पैदा करने वाले हैं. महर्षि ने इस 'उकताहट' को कम करने का भरसक प्रयत्न किया.

राजा के रूप में **वासुदेव** का अभिनय असमंजस-भरा लगता था. इस की अति-उछल-कूद उसे 'नौकरी' के 'उस्ताद' के निकट ले गयी. पर उसने अपने संवाद बोलने के ढंग से अच्छा प्रभाव उत्पन्न किया. रानी **इला पांडेय** जम नहीं पायीं और भूमिका की गहराई को छू न सकीं. रक्षामंत्री **भानु भारती** शुरू से अंत तक स्वाभाविक रहा. उस की संयत मुद्राओं ने शब्दों को नयी गरिमा दी. विरोधी लाल भारतरत्न थोड़ी देर के लिए आया, पर वह अपनी पहली भंगिमा से ही मंच पर छा गया. अत्यंत तनावपूर्ण वातावरण में उस ने विरोध की राजनीति के उभय पक्ष प्रस्तुत किये. कोरस अंशों की जड़ें नाटक में नहीं थीं. वे नकों के बल पर आगे बढ़ने में असमर्थ रहे और आरोपित से हो कर रह गये.

वेश-विन्यास में **अंजला महर्षि** ने प्रतीकात्मकता को भी अपनाया. इस से पात्रों के परिधान उन के व्यक्तित्व में घनिष्ट हो उठे. मोहन महर्षि प्रयोगों की भूमि पर उठने वाले निर्देशक हैं. 'शुतुरमुर्ग' में प्रयोग के साथ-साथ एक सच्चे रंग-कर्मी पर टूटने वाले जोखिम को झेलने का भी भाव था.

संभावना के संकेत

अभिमन्यु के महाभारतीय प्रसंग से हमारी पीढ़ी कटती जा रही है. संस्कार-निर्माण, शिक्षण और परंपरा के दाय (कोरी जड़ता परंपरा नहीं होती) के प्रति सामाजिक पद्धतियों को सजगता या उसे नियोजित रूप से भ्रष्ट कर देने की दुर्बुद्धि—ये सारे पक्ष **डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल** के नाटक **मिस्टर अभिमन्यु** में कभी प्रच्छन्न और कभी व्यक्त रूप से कठघरे में खड़े किये जाते हैं. डॉ० लाल के अन्य नाटकों की अपेक्षा मिस्टर अभिमन्यु कहीं सशक्त और संपूर्ण है. विषयों के जमघट से उत्पन्न उलझाव तो उन के इस नाटक में नहीं है—फिर भी नाटक जिस ढंग से खुलता है और कथा की पूर्वस्थिति का परिचय देने के लिए जिस खरीद-फ़रोख्त का प्रसंग बुना गया है (लेखक का कहानी-मोह) वह अनावश्यक है. इसी लिए नाटक पकड़ता वहीं से है जहाँ राजन प्रवेश करता है. नाटक के यथार्थवादी दृश्य (जहाँ स्थिति के तीनों कोण एकत्र होते हैं और जो किसी ऐसी ही भेदक पद्धति से संभव था) संपूर्ण नाटक के शिल्प में क्षेपक हो जाते हैं. अतएव इन दृश्यों को शेष से अंधेरे द्वारा काट कर प्रस्तुत करने (यह नाटककार था या निर्देशक?) की बजाय क्रमशः परिणत किया जा सकता था, जैसे कि यथार्थपरक ही अयथार्थपरक में धीरे-धीरे बदल कर और गहरे यथार्थ का संकेत कर जाये. इस से इस की प्रतीकात्मकता साथ-साथ उत्पन्न होती रह सकती थी. अभिनय या निर्देशन के स्तर पर एक स्थल ऐसा था जहाँ राजन (दिनेश) परिवेश की उपस्थिति का अभिनटन करता है—"ये गीता है—ये बीमे की पॉलसी है. . . ." इस ढंग का निर्वाह संतुलित होने से प्रस्तुति का स्तर बहुत ही भिन्न हो सकता था. उस की संभावना इस में दिखी, इस के लिए पूरी संवाद-मंडली को बधाई.

संघर्ष के तनाव से पलायन के रूप में या थोड़ी देर के लिए एक छाँव में सुस्ताने के अंदाज़ में राजन का पत्नी के साथ बहलाव उचित है, किंतु उस प्रसंग में लेखक एवं निर्देशक दोनों ने पुरानी रूमानियतों को याद किया है, जो इस प्रसंग के मूड में अधिक होने के कारण सहसा अतिरंजित एवं अनावश्यक लगने लगती है. यह भी शंका होती है कि इन दृश्यों में दर्शक की सामान्य रुझान का उपयोग किया गया है—पात्रों को अधिक हल्का कर के. स्वतंत्र रूप से ये दृश्य रुमानी फ़िल्म के उद्धरण लगे, जो इस नाटक की योजना में नहीं खपते. राजन की पत्नी विमल का अन्य पदाधिकारी की पत्नी के साथ संलाप और बाह्यता को बड़े सटीक ढंग से निर्देशक (वीरेंद्रनारायण) एवं अभिनेत्रियों (माधवी मंजुला एवं सुषमा शर्मा) ने प्रस्तुत किया है. नाटककार की भाषा एवं संवादों की चुस्ती और चुटीलापन विलक्षण रूप से ताज़ा थे, जिस के लिए डॉ० लाल से प्रायः शिकायत रहती थी. राजनीतिक पेशेवर घाघ गयादत्त का चरित्र-निर्माण इस प्रस्तुति में पूरे व्यंग्य एवं संतुलन के साथ उभरा. **गोपाल माथुर** कभीकभार शौक़ से अभिनय करते हैं. इस भूमिका में उन का अभिनय आश्चर्यजनक रूप से सधा हुआ था. धीमी गति एवं छलपूर्ण चातुरी की सशक्त निकृष्टता का पूरा संपुंजन इस पात्र की प्रस्तुति में हुआ—यह इस प्रदर्शन की महत्त्वपूर्ण बात थी. राजन की भूमिका (अब तक दिल्ली मंच पर पर्याप्त सक्रिय एवं नौजवान) **दिनेश** ने की. दिनेश पात्र की आत्मा समझते हैं और उस के अनुरूप उठने का प्रयत्न करते हैं. हिंदी मंच पर संवाद बोलने की कोई विशेष विकसित पद्धति नहीं है. हाल में ओम शिवपुरी की संवाद-शैली परिचित हो चली है और अपने ढंग से प्रभावशाली भी है. उन की पद्धति का दिनेश पर प्रभाव नज़र आया—किंतु वह अप्रभावपूर्ण नहीं था. लगा कि अभ्यास से वह कभी अपने अभिनय का व्यक्तित्व बना सकेंगे. किंतु तनाव की स्थिति में दिनेश की मुखाकृति में एक विकृति आती है, जो अप्रिय लगती है. चरित्र या मनःस्थिति की विकृति भी नाटक में अप्रिय नहीं हो सकती और यदि वह सामान्य रूप से भिन्न भूमिकाओं में आदतन आने लगे तो और भी बुरा है.

माधवी मंजुला भी उदीयमान अभिनेत्री है और मंच-अभिनय के योग्य तत्परता उस में है. किंतु इस भूमिका में एक प्रगल्भता की आवश्यकता थी, जो उस के चरित्र में नहीं आयी. विवाहिता के स्थान पर वह प्रायः किशोर प्रेम-भाव की संगिनी लगी, जो इस प्रसंग में ग़लत था. कुछ स्थानों पर प्रगल्भ संवादों को भिन्न स्वर में व्यक्त कर के उन्होंने अपनी कुशलता भी दिखायी, पर उस का पूरा उपयोग क्यों नहीं किया गया? आदर्शवादी आत्मन के रूप में **सुधीर आहूजा** ठीक थे.

मंचीय तस्वीरों का कुछ मूल्य होता हो तो कह सकते हैं कि कोई उपयुक्त मंच-तस्वीर नहीं बनायी गयी. अंत के पार्टी वाले दृश्य में भिन्न पात्रों के भिन्न चरित्रों-वस्त्रों से छिछली विविधता की झाँकी दी जा सकती थी, जो आज के अभिमन्यु को महारथियों के बदले घेरती है. इस दृश्य में समूहन आदि की गुंजाइश को भी अनछुआ रहने दिया गया. निर्देशक **वीरेंद्र नारायण** ने सहजता बरतने की कोशिश की. कोई बड़े आरोह या 'क्लाइमेक्स' नहीं बनाये. इस कठिन प्रयत्न के लिए उन्हें सराहा जा सकता है. किंतु उस सहजता का नियोजन बारीकी से न कर सके जिस की उन से इस लिए भी आशा थी कि बहुत अरसे के बाद वह वास्तविक मंच-क्षेत्र में आये हैं. धन का अभाव, अभ्यास या अन्य तकनीकी सुविधा का अभाव और भी बातें जो पर्दे के पीछे होती हैं—शायद इस की ज़िम्मेदार हो सकती हैं—लेकिन उस का प्रभाव भी तो पर्दे के पीछे ही छूट जाना चाहिए.

१५वीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी

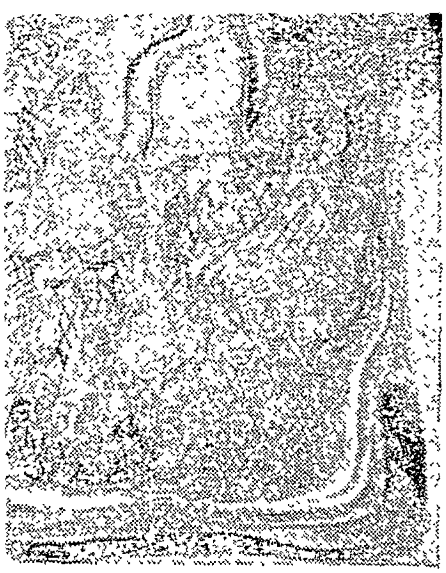

पी. खेमराज : 'सिंफ़नी'

सुनीता फनविंदे : 'संरचना-२'
सुकांत वसु : 'चित्र ३'

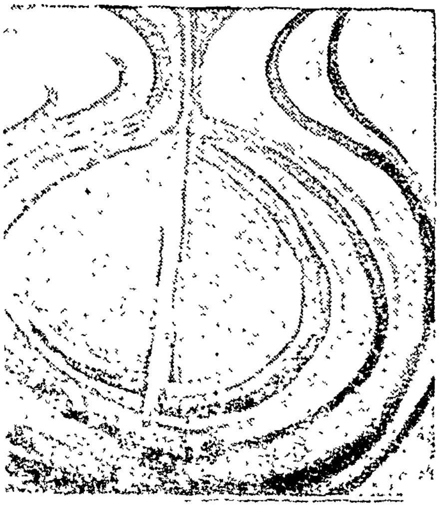

प्रदर्शनी जब एकव्यक्तीय न हो कर १८४ व्यक्तीय हो और भिन्न माध्यमों की २४४ कला-कृतियाँ प्रदर्शित हों तो आँख-मन पर पड़े प्रभावों की संख्या का अंदाज़ लगा पाना मुश्किल है. रवींद्र भवन में ललित कला अकादेमी द्वारा आयोजित **पंद्रहवीं राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी** का वैविध्य केवल संख्या-जन्य नहीं है. १८४ कलाकारों के चित्रों, मूर्तिशिल्पों, रेखांकनों व ग्राफ़िकों के तमाम रंग, कोण, प्रयोग, तकनीक किसी एक या कुछेक बिंदुओं पर ही टिके रहने नहीं देते. यह पुरस्कार प्राप्त **अ० रामचंद्रन** का चित्र 'मूर्ति-शास्त्र' है, जिस में आकृतिमूलकता, ज्यामितिक रूपाकार, तांत्रिक कला के प्रभाव एक साथ ही भिन्न संदर्भों से जोड़ते हैं और फिर यह **ज्योति भट्ट** का छाया-चित्रात्मक ग्राफ़िक 'आदमी' है, जिस में तीखे नाक-नक़्श हैं और सिर के अंदर पंख फैलाये कुछ चुगता हुआ-सा एक मोर है—अपने बारीक विवरणों के काले-सफ़ेद में यह ग्राफ़िक मनुष्य को उस की किसी भी कल्पना-संवेदना से जोड़ने का महत्त्वाकांक्षी प्रयत्न लगता है. ये दो कला-कृतियाँ तो केवल उदाहरण के लिए. अमूर्त्त कृतियाँ, आकृतिमूलक कृतियाँ, तांत्रिक कला व लोकरंगों के प्रभाव वाली कृतियाँ, स्वप्न-प्रतीक व फ़ंतासी की रचना करने वाली कृतियाँ, संरचनाएँ—इस प्रदर्शनी में सभी हैं. पुरस्कार प्राप्त चित्रकारों के काम में भी खासी विविधता है—**बालकृष्ण पटेल** के पुरस्कृत चित्र 'चित्र-१' में बदलती रंग-पृष्ठभूमियों के अंदर बदलते गोल रूपाकार हैं, ऊपर-नीचे से इस प्रकार घिर कर उभरने वाले बीच के अपेक्षाकृत छोटे गोलाकार में गोलियों के से छेद हैं. किन्हीं अनजान लेकिन अनुभूत मनःस्थितियों के बीच रख देने वाले इस चित्र के रंग व उन की छायाएँ जैसे कई परत केंचुलें उतार कर जन्मे हैं. **पी० खेमराज** के पुरस्कृत चित्र 'सिंफ़नी' में वाद्याकार आकृतियाँ हैं, या आकृतिनुमा वाद्य हैं, जिन में मानो कट-कट कर झँझरियाँ-सी बन गयी हैं. इन के बीच ऊपर की ओर नारी-आकृति का धड़ है. चित्र की बुनावट में ही नहीं प्रभाव में भी एक तरह की थिरकन है. **विनोद शाह** के पुरस्कृत चित्र 'संरचना' की दीवारों से घिरे खड़े आदमी और उस के साथ की खाली कुर्सी में अकेलापन, कौतुक-प्रदर्शन हैं, या घिर जाने का भाव. ऐसा कुछ चित्र की स्पष्टता में भी स्पष्ट नहीं है, लेकिन दीवारों की ग-संरचना जल-बुझ का एक अद्‌भुत प्रकाश-खेल खेलती मालूम पड़ती है. अन्य पुरस्कृत चित्रकार हैं **विनोदराय पटेल और ओमप्रकाश.** पुरस्कृत चित्रों व चित्रकारों की बात तो प्रसंगवश.

प्रदर्शनी में प्रदर्शित चित्रों में प्रवृत्तियाँ या समानताएँ दो तरह की मिलीं. एक तो जिसे कुछ दिनों पहले दो-एक प्रदर्शनियों के सिलसिले में इस समीक्षक ने 'आकृतियों की वापसी' कहा था और दूसरी रंगों को लगातार छीलते जाने की. एक समानता काले-लाल के प्रयोग के मामले में भी दीखी. प्रदर्शनी में कई चित्र काली-लाल पृष्ठभूमियों, रूपाकारों या रेखाओं के हैं. **र. स. बिष्ट, सुकांत वसु, सुनीता फनविंदे** आदि के चित्रों को इस समानता के प्रतिनिधि चित्र कह सकते हैं. विशुद्ध आकृतियों वाले चित्र इस प्रदर्शनी में नहीं हैं, लेकिन आकृतियों की उपस्थिति इस प्रदर्शनी के कई चित्रों में है. महत्त्वपूर्ण यह भी है कि आकृतियों के विरूपण की ओर रुझान नहीं है—आकृतियों के ज़रिये संदर्भ गढ़ने या संदर्भों में आकृतियों को परिवर्तित करने का चाव ही अधिक झलकता है. वी. खेमराज के चित्र इस के सब से अच्छे उदाहरण हैं. रंगों को छीलते जाने की दृष्टि से **सूर्यप्रकाश** के चित्रों को उल्लेखनीय कहेंगे—फलों की काटी गयी फाँक की तरह ये बात या विषय की अंदरूनी सतहों को प्रस्तुत करते हैं. सूर्यप्रकाश के चित्र बिखरे रंगों या फैल गये रंगों की भगदड़ का एहसास भी कराते हैं.

रमेश पटेरिया, जिन्हें मूर्ति-शिल्प के लिए पुरस्कार मिला है, का कोलाज चित्र 'विन फ़्रेम का शीर्षक' कैनवास पर स्थापत्य के अकेलेपन के रूप में उभरता है और मानवीय अनुपस्थिति को इस रूप में उपस्थित करता है कि वास्तु संसार और मानव-संसार के रिश्ते

रमेश पटेरिया 'मेरा रूपांतरण'

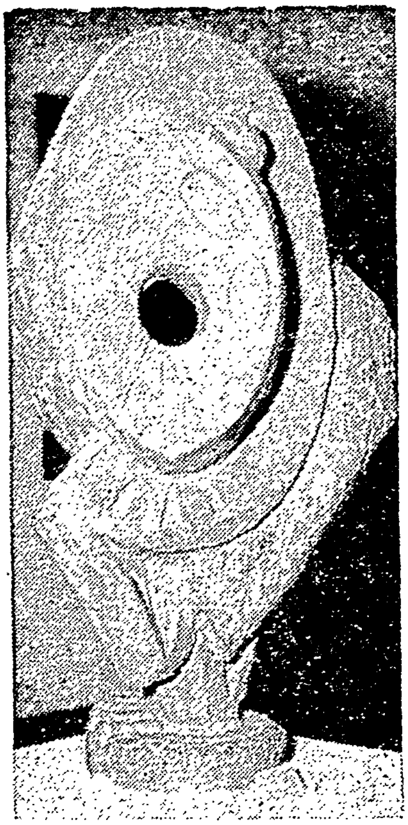

'उत्कीर्णन समानांतर रेखाओं का'
कुलदीपकुमार भल्ला

कई आयामों में खुलने लगते हैं. इसी तरह **वी. डी. चिंचालकर** का चित्र 'काठ कोलाज' कैनवास पर काठ से एक सैरे की रचना करता है, जिस में नदी, नाव, मकान 'बनते' मालूम होते हैं. ये दोनों चित्र इस लिए उल्लेखनीय नहीं हैं कि कैनवास पर पत्थर या काठ से चित्र रचना करते हैं, बल्कि इस लिए उल्लेखनीय हैं कि वे अपने उपकरणों की सार्थकता प्रमाणित करते हैं. **मृदुला कृष्ण** का बातिक भिन्न रचना-माध्यम के कारण ही नहीं अपनी बुनावट व रूपाकारों के कारण भी अलग नज़र आता है.

श्रीमती टी. के. पद्मिनी का चित्र भी वनस्पतियों के अपने जुगनू-रंगों के कारण आकर्षित करता है—बगीचे के बीच कई जलते-बुझते बिंब स्मृति में सहसा ही उभर आते हैं. पुरस्कृत चित्रकार **विनोदराय पटेल** व **भूपेन खक्कर** के चित्रों में चित्र-विचित्र आधुनिकता व फ़ंतासी के रंग हैं. अमूर्त व लोककला के सरलीकरण वाले चित्रों को छोड़ दें तो इस वर्ष के प्रदर्शित चित्रों में टटकापन कहीं अधिक है. लोकरंग वाले चित्रों में **बदरी नारायण**, ज० सुलतान अली आदि के चित्र आकर्षित करते हैं.

मूर्त्ति-शिल्प : प्रदर्शनी के मूर्त्ति-शिल्पों में से सभी अपनी ओर ध्यान नहीं खींचते. उन के चयन-प्रदर्शन में अधिक उदारता बरती गयी लगती है. पुरस्कृत मूर्त्ति-शिल्प केवल सोनी, **रमेश पटेरिया** तथा **म० व० कृष्णन्** के हैं. केवल सोनी का मूर्त्ति शिल्प किसी चिड़िया के डैनों का-सा तीखा चित्र उभारता है—ऐसे डैनों का जो अपने में गति और उड़ान समेटे हैं. अपनी सहजता और गतिमयता में बँधा यह मूर्त्ति-शिल्प एक साथ ही उड़ान, थकान, नींद, संतोष के एहसास मन पर छोड़ता है. रमेश पटेरिया का संगमर्मरी मूर्त्ति-शिल्प 'मेरा रूपांतरण' एक निर्वसना को कई अनुभूतियों-स्थितियों में बदलता है—एक आवेग में; कोमल माँसलता में; सिर रहित होने के बावजूद एक चकित दृष्टि में.

कुलदीपकुमार भल्ला के मूर्त्ति-शिल्प 'उत्कीर्णन समानांतर रेखाओं का' में नाक, कान, मुँह का स्थानांतरण प्रतीत हो कर एक ऐसी पुकार में बदल जाता है जो इंद्रियों की बेचैनी में मानो लगातार बनी रहती है. इस प्रदर्शनी के कुछ मूर्त्ति-शिल्पों में आधुनिक स्थापत्य का प्रभाव भी झलकता है. गोलाइयों की जगह उदग्र आकार हैं—अपनी निर्मिति में प्राय: चतुष्कोण की शक्ल में. **केवल सोनी, सुशेन घोष, रमेश बिष्ट** तथा **देवव्रत चक्रवर्त्ती** के मूर्त्ति-शिल्पों में यह प्रभाव देखा जा सकता है. फिर इन के मूर्त्ति-शिल्पों की विषय-वस्तु चाहे जो भी हो. **विमान दास** का काष्ठ मूर्त्ति-शिल्प 'संरचना' उड़ान भरने वाली संरचना लगता है.

ग्राफ़िक व रेखांकन : प्रदर्शनी के ग्राफ़िकों में अपना और गहरा आकर्षण है. **ज्योति भट्ट, जगमोहन चोपड़ा, जयकृष्ण, लक्ष्मी दत्त, अनुपम सूद, सुहास राय, गौरीशंकर** आदि के ग्राफ़िक तकनीकी कुशलता की दृष्टि से ही नहीं अपनी रचनात्मकता व बिंब उभारने की क्षमता के कारण उल्लेखनीय हैं. जगमोहन चोपड़ा के हवा में टँगे घोड़े जैसे दीखने वाले जानवर या खंडहरों के से दृश्य, लक्ष्मी दत्त के ग्राफ़िकों में झाँकती नारी और प्रकृति, जयकृष्ण की बारिश या कई तरह के बिंब बनाने वाले उन के कीड़ों के-से रूपाकार, गौरीशंकर का चीथड़ों का संसार या प्रपात आदि कुछेक प्राप्त किये गये प्रभाव प्रेक्षक द्वारा अपने लिए गढ़े गये चित्र हो सकते हैं, जो इन के जीवंत होने का प्रमाण तो देते ही हैं. रंगछायाओं के कितने ही बारीक विवरण संभव हैं, यह भी इन ग्राफ़िकों से पता चलता है. सुहास राय का ग्राफ़िक 'टकटकी' व 'नींद में चलने वाला' की रंग-छायाओं का मिश्रण और उभार बेहद आकर्षित करते हैं. निस्संदेह ग्राफ़िकों को इस प्रदर्शनी की उपलब्धि कह सकते हैं.

प्रदर्शनी का प्रदर्शन : प्रदर्शनी में कला-कृतियों को जिस तरह प्रदर्शित किया जाता है उस के बारे में भी एक बात कहने की इच्छा होती है. हर कला-कृति की केवल संख्या भर उस के साथ लिखी होती है, जब कि साथ में चित्रकार का नाम व कला-कृति का शीर्षक दे देने से प्रेक्षकों की परेशानी कई गुना कम हो सकती है.

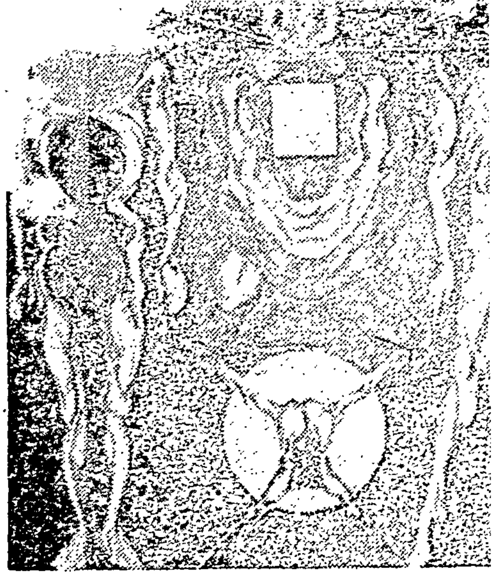

अ० रामचंद्रन : 'मूर्त्ति-शास्त्र'

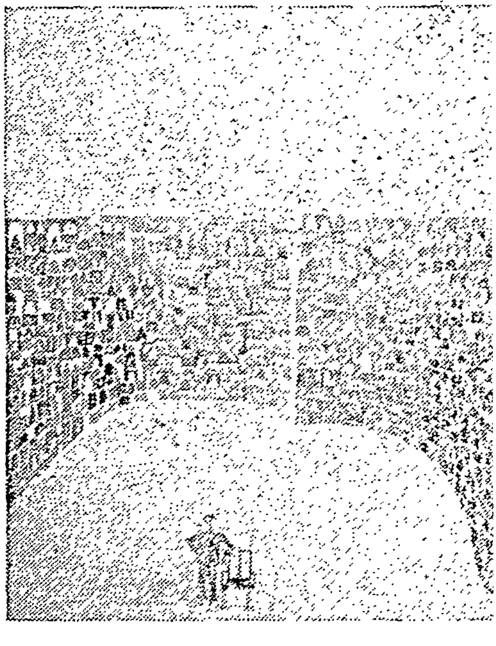

विनोद शाह : 'संरचना'

सूर्यप्रकाश : 'कैनवास ६'

शिल्पकार को राष्ट्रीय पुरस्कार

इस गणतंत्र दिवस के अवसर पर उत्कृष्ट धातु-मूर्ति शिल्प-कला के लिए मध्यप्रदेश के वस्तर जिले के जगदलपुर निवासी मानिक घड़वा का नाम राष्ट्रीय पुरस्कार पाने वाले प्रत्याशियों की सूची में जोड़ कर भारत सरकार ने निस्संदेह एक बड़ा सराहनीय काम किया है. सराहनीय इस लिए कि इस प्रकार के पुरस्कार से एक ओर जहाँ शिल्पियों को प्रेरणा मिलेगी वहीं दूसरी ओर वस्तर जैसे पिछड़े आदिवासी जिले की आदिम कला को भी नष्ट होने से बचाया जा सकेगा.

मानिक घड़वा उन्हीं शिल्पकारों में से एक है जो वस्तर ज़िले मे काँसा, पीतल, अल्यूमिनियम आदि धातुओं को पिघला कर तथा मिट्टी के बने इच्छित साँचे में ढाल कर एक विशेष विधि द्वारा धातु की मूर्तियों का निर्माण करते हैं. ऐसे यह शिल्पकारों की एक विशिष्ट जाति है जिसे यहाँ घडवा कहा जाता है और इन के जीवन-यापन का मुख्य साधन इन्हीं धातु-मूर्तियों का निर्माण करना तथा उन का विक्रय करना है. ये घड़वा जाति के लोग ग़ैर-आदिवासी होते हैं (शासन और प्रभेदात्मक

मानिक घड़वा
साधना और मूर्तियों के सांचे

नीति के कारण वस्तर के आदिम प्रजातियों को आदिवासी और ग़ैर-आदिवासी—इन दो श्रेणियों में बाँट दिया गया है, यद्यपि कुछ मूलभूत संस्कारगत विशेषताओं को छोड़ दोनों में कोई विशेष फ़र्क़ नहीं है). समस्त वस्तर में ऐसे घड़वा जाति के व्यक्तियों के प्रायः १२५ परिवार हैं, जिन में अधिकांश जगदलपुर तहसील में ही-वसते हैं. मानिक घड़वा उन्हीं में से एक है.

इन शिल्पकारों की कला की सब से बड़ी विशेषता यही है कि उन के द्वारा निर्मित मूर्तियों की विषय-वस्तु केवल आदिम कला और आदिम कल्पनाओं पर आधारित रहती है. विषय-वस्तु के रूप में ये प्रमुखतः हाथी, घोडे, जंगली जानवर, कलश, दीपक और वस्तर के सैकड़ों देवी-देवताओं का ही चयन करते हैं. विषय-वस्तु के चयन में इन शिल्पकारों के समक्ष आदिम कला और भावनाएँ जितना महत्त्व रखती है उतना ही महत्त्व रखती है उन की धार्मिक वृत्तियाँ तथा कल्पनाएँ. इस का प्रमुख कारण है इन शिल्पकारों की अशिक्षा, रूढ़िगत मान्यता तथा वंश-परंपरा से एक ढर्रे पर चली आती हुई उन की शिल्प-कला. कला या शिल्प में कोई नवीन प्रयोग करना उन के बूते की बात नही है. पिछले दिनों मानिक घड़वा ने भी प्रायः एक फ़ुट ऊँची हाथी की एक मूर्त्ति बनायी थी, जिस मे बनावट की सूक्ष्मता, स्वच्छता, सौष्ठवता और आदिम कला की छाप इतने जीवंत रूप से मुखरित होती थी कि शिल्प-कला की उत्कृष्टता की दृष्टि से भारत सरकार ने उसे पुरस्कृत किया है.

यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नही होगा कि जगदलपुर के घड़वा जाति के धातु-मूर्त्ति शिल्पकारों द्वारा, जिन का वस्तर जिला उद्योग विभाग के संरक्षण के अंतर्गत एक संघ बना दिया गया है तथा समुचित आर्थिक सहायता भी दी जा रही है, निर्मित धातु मूर्त्तियों का, जिन पर स्पष्ट रूप से वस्तर की आदिम कला की छाप रहती है, प्रचुर मात्रा मे अमेरिका तथा कुछ अन्य यूरोपीय देशों को निर्यात किया जा रहा है. सन् १९६५ से अब तक प्रायः पचास हज़ार से अधिक के मल्यों की मूर्त्तियों का निर्यात किया जा चुका है.

मानिक घड़वा ने **दिनमान** प्रतिनिधि को एक भेंट में बताया कि एक अपढ़, अशिक्षित व्यक्ति होने के नाते न तो वह शिल्प-कला का अर्थ जानते है और न उस में किये जाने वाले किसी नये प्रयोग का. वस्तर उन की जन्मभूमि रही है और उस की धरती के कण-कण से उन का देह बना है. वंश-परंपरा से जिस प्रकार की धातु-मूर्तियों का निर्माण किया जाता रहा है वही उन्हें भी विरासत में मिला और अपनी आठ वर्ष की उम्र से ही वह धातु-मूर्त्ति निर्माण के कार्य से संलग्न हैं. ऐसी दशा में अपनी संस्कृति, अपनी आदिम कला, अपने विचार और भावनाओं को छोड़ वह और कुछ अपने ऊपर नही थोपना चाहते. वस्तर के आदिम कला से उन्हें एक मोह है, आसक्ति है और संभवतः इसी लगन, मोह और आसक्ति का परिणाम है यह राष्ट्रीय पुरस्कार मेरे लिए जितने गर्व की बात होगी उस से कही अधिक गर्व की बात समस्त घड़वा जाति के लिए होगी. उन्होंने यह भी कहा कि उत्कृष्ट धातु-मूर्त्ति-निर्माण के लिए विवेक, मनन, विषय-वस्तु की स्पष्ट कल्पना, लगन, हाथ की बारीकी और निरंतर प्रयत्न की आवश्यकता होती है. इन्हीं बातों को ध्यान में रख कर आदिम लोककला तथा लोकशिल्प को जीवित रखा जा सकता है.

अपने वोट का निर्णय आप ही करेंगे

याद रखिए, आप का वोट निर्णायक हो सकता है

दिनमान
आप का मत स्थिर करने में सहायक हो सकता है

मध्यावधि चुनाव पास आ गये है । नवीनतम राजनैतिक घटनाक्रमों और गतिविधियों से अवगत रहने के लिए दिनमान पढ़िए ।

आप का वोट महत्वपूर्ण है। इसे बिना सोचे - समझे न दे डालिए। दिनमान से चुनाव - रगमंच की सही और पूरी तसवीर हासिल कीजिए।

दिनमान
टाइम्स ऑफ इ डिया प्रकाशन

५० पैसे

*प्रत्येक रविवार को

BC-108

प्रश्न-चर्चा—५१

निर्णायक का प्रतिवेदन

विश्वविद्यालयी छात्रों और उन के नेताओं के लिए विशेष तौर से हमारा प्रश्न था "राजनैतिक दल विश्वविद्यालयी छात्रों को आंदोलन के लिए प्रेरित करते हैं और प्रत्येक आंदोलन लाठी, गोली, दफ़ा १४४ के बाद निःशेष हो जाता है. विश्वविद्यालय की व्यवस्था में कोई परिवर्त्तन नहीं होता. चिंता होती है कि क्या विद्यार्थी विद्यालयों में जो परिवर्त्तन चाहते हैं वही राजनैतिक दल भी चाहते हैं ?

"राजनैतिक दल जब मध्यावधि चुनाव के बाद लोकतंत्री सरकार बनाये तो उन की सरकारों से विश्वविद्यालय की व्यवस्था में किस-किस परिवर्त्तन की आप अपेक्षा करेंगे ? यानी विश्वविद्यालय के स्तर के एक विद्यार्थी के नाते सत्तारूढ़ राजनैतिक दल से आप की माँग क्या है ?"

कई हज़ार छात्रों और छात्र-नेताओं के उत्तर हमें प्राप्त हुए, जो अपने-आप में निर्णायक के लिए एक अनुभव था. अधिकतर उत्तर संतोषजनक ही नहीं अच्छे स्तर के भी थे. प्रश्न के प्रारंभिक अंश पर संवादियों का ज़ोर देना इस बात का सूचक था कि इस समस्या की चोट उन पर कितनी गहरी है. सुझाव भी सब ने दिये, जिन में एक मूलभूत एकता दिखायी दी, जो एक नये प्रकार की आस्था जगाती है. सभी संवादियों ने ज़ोरदार शब्दों में प्रादेशिक भाषाओं में शिक्षा देने का आग्रह किया. कुछ बातें सभी ने कही हैं कि शिक्षा मँहगी न हो, विश्वविद्यालयों से जातिगत, दलगत राजनीति हटे, प्राध्यापकों और उप-कुलपतियों का चुनाव उन की शैक्षिक योग्यता के आधार पर ही हो, प्रशासन में छात्रों और अभिभावकों का योग हो, भविष्य की अनिश्चितता दूर हो, बेकारी हटे, शिक्षा-पद्धति में सुधार हो, देश की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में परिवर्त्तन हो, जिस से कि छात्रों की समस्या जुड़ी हुई है.

सत्तारूढ़ दल तथा अन्य राजनैतिक दलों से संवादियों ने घोर असंतोष व्यक्त किया है—इस हद तक कि उन्होंने बाहरी राजनीति की गंदगी के कारण जितनी राजनीति आवश्यक है उस के प्रति भी आक्रोश या उदासीनता दिखायी है. **इलाहाबाद विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष, मोहनसिंह** का कहना है "हमारी शिकायत है कि भारत का कोई भी राजनैतिक दल छात्रों को आंदोलन के लिए प्रेरित नहीं कर पा रहा है. अफ़सोस है कि आज के छात्र-असंतोष में राजनीति घुस नहीं पा रही है. आज का छात्र-नेतृत्व बड़े-बड़े आंदोलन की अगुवाई तो करता है लेकिन उस की राजनीति से तादात्म्य स्थापित करने से घबराता है. सक्षम राजनेता का कर्तव्य है कि वह छात्रों की चाह को ढूंढ़े. इस देश के राजनैतिक दल छात्रों को इस लिए प्रेरित नहीं कर पा रहे हैं कि छात्र जो चाहते हैं राजनैतिक दल उसे कदापि नहीं चाहते." **गोरखपुर के दिनेशकुमार श्रीवास्तव** लिखते हैं "सरकार प्रजातंत्र में भी छात्रों को राजनीति से दूर रखना चाहती है और स्वयं छात्रों से राजनीति करती है". राजनीति की गंदगी को ध्यान में रख कर अधिकतर उत्तर दिये गये हैं, जिन में इस हद तक निराशा है कि मध्यावधि चुनाव के बाद भी कोई राजनैतिक दल छात्रों के लिए कुछ नहीं करेगा. "छात्र-आंदोलनों के साथ राजनैतिक दलों को जोड़ना छात्रों की समस्याओं की अवहेलना करना है"—(**सशसुद्दीन, जयपुर**). "कोई भी राजनैतिक दल सत्तारूढ़ होने के बाद छात्रों के लिए वही करेगा जो उस के स्वार्थ-साधन में सहायक हो"—(**मुकुंद नीलकंठ जोशी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय**), "राजनैतिक दल परिवर्त्तन करने की बात कौन कहे. वे ऐसा सोचते भी हैं मुझे इस में संदेह है. कांग्रेस के बारे में तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उस की नीतियाँ छात्रों के लिए अनुकूल नहीं रही हैं." (**सतीशचंद्र पांडेय, रांची**), "छात्र-समस्या के प्रति किसी भी राजनैतिक दल का दिमाग़ साफ़ नहीं. वे समाधान नहीं व्यवधान चाहते हैं" (**भूपनारायण राय, रांची**). "मैं किसी विशेष परिवर्त्तन की अपेक्षा नहीं करता. इन पार्टियों का एक ही काम होता है, किसी प्रकार सत्तारूढ़ पार्टी को बदनाम करना या सत्ता हथियाने की कोशिश करना." **विजेंद्रसिंह राठोर, सचिव, विद्यार्थी परिषद, गवर्नमेंट कालेज, रतलाम**). "वे हमारी माँगें कदापि स्वीकार नहीं करेंगे, क्यों कि यहाँ उन के अस्तित्व का सवाल आ जाता है. बलात् हमारे बीच बनाये गये अपने स्थान को त्याग कर वे कुछ दिनों के लिए हमें अपने हाल पर छोड़ दें, हम उन के सामने मुख्य माँग यही रखते हैं, चाहे वे मध्यावधि चुनाव में सफल हों या न हों" (**विभूतिनारायण राय, 'नीरद', काशी विश्वविद्यालय**). आक्रोश यहाँ तक है कि **रांची के प्रभासचंद्र मलिक** लिखते हैं "रही सरकार बदलने पर फ़रमाइश की, यह तो चेतना को कुछ ले-दे कर मार देने के षड़यंत्र जैसा प्रतीत होता है". **आगरा के जगदीशचंद्र शर्मा**, "यह आशा कि वे वह हथियार त्याग देंगे जिसे वे सर्वाधिक असरदार समझते हैं खुद को भुलावे में रखना है."

माँगें : "शिक्षा-व्यवस्था के प्रश्न पर प्रत्येक राजनैतिक दल अपना सुस्पष्ट मत व्यक्त करे" (**कृष्णलाल ग्वाल, जगदलपुर**). "विश्वविद्यालय के अधिकारियों का चयन राजनीतिज्ञों द्वारा नहीं शिक्षाविदों द्वारा हो" (**प्रदीपकुमार उपाध्याय, लखनऊ**) "शिक्षा-विभाग राज्य सरकार के हाथ में न हो, इसे केंद्रीय सरकार के हाथ में सौंप दिया जाये. राज्यपाल कुलपति न हों, कुलपति की नियुक्ति की जाये. भारत के सभी विश्वविद्यालयों की पढ़ाई का स्तर एक हो" (**अरुणकुमार सिन्हा, पटना**). "विश्वविद्यालय की मुख्य समितियों एवं परिषदों में छात्रों का दर्शक के रूप में प्रतिनिधित्व हो" (**बालकृष्ण पंजाबी, ग्वालियर**). "शिक्षण एवं परीक्षण-शुल्क मात्र उन्हीं छात्रों को लगे जिन के अभिभावकों की मासिक आय कम-से-कम एक हज़ार रुपया हो" (**चंद्रकांत राय आलोक, पूर्णिया**) "एक निश्चित प्रतिशत से कम अंक पाने वाले विद्यार्थी को विश्वविद्यालयी शिक्षा न दी जाये". (**अमर रस्तोगी, लखनऊ**). "विश्वविद्यालय में एक पृथक छात्र-सरकार का निर्माण किया जाये" (**प्रभातकुमार जोशी, अल्मोड़ा**). "मतदान की आयु २१ वर्ष से घटा कर १९ वर्ष करने की माँग की जाये, ताकि छात्र सामाजिक संचालन में अपनी ज़िम्मेदारी का अनुभव करे." (**शंकर लाल गुप्ता, मंडला**). "स्थायी हल तब तक नहीं निकल सकता जब तक विश्वविद्यालय के प्रत्येक स्तर पर नैतिक मूल्यों की स्थापना नहीं होती" (**सुरेंद्र अकेला, भरतपुर**) "बेरोज़गारी-भत्ता दिया जाना चाहिए" (**जवाहरलाल भाटिया, जयपुर**). "विश्वविद्यालय में छात्र-शांति-सेना बनायी जाये, पुलिस प्रवेश निषिद्ध हो" (**दुर्गावती ड्यूडी, पिथौरागढ़**). "छात्रों की औचित्यपूर्ण माँगों को सुनने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर एक ट्रिब्यूनल की स्थापना हो." (**वी० सी० ठाकुर, 'श्याम' देवास**). "विश्वविद्यालय को रेज़ीडेंशल बना दिया जाये" (**दिनेशकुमार बागड़ी, भागलपुर**). "उप-कुलपति अपना कुछ समय छात्रों की शिकायतें सुनने में दें" (**शंभू शंकर, जमशेदपुर**). "चार 'अ' की व्यवस्था हो—अध्ययनार्थी, अध्यापक, अभिभावक और अधिकारियों की संयुक्त समिति समान प्रतिनिधित्व के आधार पर विश्वविद्यालयों का प्रबंध करे." (**राकेश, पिथौरागढ़**) "विभिन्न राजनैतिक दलों द्वारा समर्थित युवा संगठनों पर प्रतिबंध लगाया जाये" (**अनंत कुमार पांडेय, रांची**). "विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अंतर्गत एक जाँच ब्यूरो की स्थापना की जाये, जो वित्तीय अनियमितताओं की जल्द-से-जल्द जाँच करे." (**जयवल्लभ पंत, पिथौरागढ़**), "उच्च शिक्षा प्राप्त करना अधिक महँगा न हो, फ़ीस में कमी हो" (**कैलाशचंद्र जैन, इंदौर**) "सरकार को छात्र-संघ भंग करने की घोषणा करनी चाहिए" (**कृपाशंकर त्रिपाठी, बस्तर**). "परीक्षा-प्रणाली को बदला जाये और विद्यार्थियों को प्राध्यापकों के निकट रखा जाये" (**वीरेंद्र बहादुर लाल, बाराणसी**). "सत्तासीन होने के मुहूर्त से प्रत्येक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा देने की माँग पूरी हो." (**शंभूनाथ, कलकत्ता**). "छात्रों को सभी प्रकार के राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय और विश्वविद्यालय की आंतरिक स्थिति पर विचार प्रकट करना अनिवार्य होना चाहिए" (**संतोषकुमार तिवारी, लखनऊ**).

प्रथम पुरस्कार : १०० रु.

शिक्षा की सारी स्वतंत्रता विश्वविद्यालयीन स्तर पर की जाती है. विश्वविद्यालय उस रसोईघर के समान है जहाँ किसी भी देश की बौद्धिकता का खाद्य तैयार होता है. अंग्रेज़ों ने भारत आने के बाद सब से पहला यह काम किया कि इस रसोईघर में युग-युगांतर तक न चुकने वाला ज़हर मिला दिया. चीनी की गोलियों में बंद ज़हर—जिसे बेहिचक खाओ और मरो. यही कारण है कि पिछले कई सौ वर्षों में हिंदुस्तान का आदमी, उस का दिमाग़, उस की प्रगति और उस के राष्ट्राभिमान सब की मृत्यु हो गयी. स्वतंत्र भारत भी अंग्रेज़ों की बनायी रसोईघर को जस का तस स्वीकार कर चला है.

१९४८ में राधाकृष्णन् आयोग से लगा कर १९६६ के कोठारी आयोग इस क्षेत्र में भारी बकवास के दस्तावेज़ मात्र बन कर रह गये हैं. व्यवहार में वही शिक्षा-प्रणाली चल रही है जिसे देश का नेतृत्व, सरकार, विश्वविद्यालय निरर्थक और नुकसानदेह बताते रहे हैं.

परिवर्तन की इच्छा वाले युवकों ने विश्वविद्यालय की शिक्षा की स्थिति को समझा है. अंग्रेज़ी राज के समय १७ के क़रीब और अब ६५ के क़रीब विश्वविद्यालयों में साम्राज्यवादी उपनिवेशवादी शिक्षा की सड़न की धारावाहिकता के ख़िलाफ़ जो जेहाद छेड़ा है वह इसी का परिणाम है. राष्ट्रीय शिक्षा और देशी बौद्धिकता के निर्माण के लिए प्रदर्शन, हड़ताल और घेराव का उपयोग होना चाहिए. एक ऐसी शिक्षा जो न केवल अर्थागम का साधन हो बल्कि श्रेष्ठ आत्मचेता भारत के निर्माण में सहायक हो. इस के लिए संघर्ष करना होगा. विश्वविद्यालयों का यह तथाकथित संकट परिवर्तन की शिक्षा के आत्म संघर्ष का संकट है. आज की शिक्षा ने वर्ण-व्यवस्था के अहंकार को विशिष्टता में बदल दिया है. इस तरह बदलाव की उत्कट अभिलाषा और ठहराव की जड़ता में टकराहट चल रही है. इस लिए ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा की सर्वोपरि आवश्यकता है जो देश की विशिष्ट प्रकृति, परिस्थिति और आकांक्षा के अनुरूप हो.

विश्वविद्यालयीन पत्रक

(१) हर स्तर पर शिक्षा एवं परीक्षा का माध्यम मातृभाषाओं को तत्काल बनाया जाये. (२) पढ़ने के लिए दाखिला चाहने वाले हर विद्यार्थी को भर्त्ती किया जाये. (३) पढ़ाई के बाद या तो रोजगार की व्यवस्था की जाये नहीं तो जब तक काम न मिले बेकारों को भत्ता दिया जाये. (४) देश के बजट का कम से कम ३५ प्रतिशत हिस्सा शिक्षा पर व्यय किया जाये. (५) शिक्षा-संस्थाओं की स्वायत्तता बचाने के लिए सरकार अपने प्रतिनिधियों की नामज़दगी बंद करे और केवल शिक्षा-शास्त्रियों को उच्च पदों पर नियुक्त किया जाये. (६) विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों का पुलिस प्रशासन बंद हो और प्रशासकीय समितियों में छात्रों को प्रतिनिधित्व दिया जाये. (७) शिक्षण-संस्थाओं में बिना उप-कुलपति एवं प्रधानाचार्य की अनुमति के पुलिस प्रवेश रोका जाये. (८) शिक्षक-संस्थाओं से जाति-सूचक तथा संप्रदाय-सूचक शब्द हटाये जायें.

—प्रकाश नारायण सिंह, मु० पो० : रामपुर बघेलान, ज़िला : सतना (म० प्र०)

अतिरिक्त पुरस्कार—प्रत्येक को ३०-३० रुपये

(१)

देश का युवक आज अशांत है. उस के सारे असंतोष का कारण एक तरफ़ असंतोषपूर्ण शिक्षा-पद्धति है, जो छात्रों को अनिश्चयता बेरोज़गारी कुंठा और निराशा का शिकार बनाती है और दूसरी तरफ़ केंद्र से ले कर स्थानीय स्तर तक की संकीर्ण, टुच्ची और घिनौनी राजनीति है, जो छात्रों को अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करने में ज़रूरत से ज़्यादा उत्साह दिखाती रही है. छात्र अक्सर अपनी जायज़ माँगों को ले कर आंदोलन करते रहे हैं. उन की माँगें स्वीकार की जानी चाहिएँ, किंतु छात्र आंदोलन की राजनीति के दलदल में फँस जाते हैं और होता यह है कि छात्रों की माँगों पर बहती गंगा में हाथ धोने की राजनीतिकों की कुचाल हावी हो जाती है. अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए देश के राजनैतिक दल छात्रों का उपयोग करने लगते हैं.

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् से ही देश की जनता सत्तारूढ़ सरकार से बहुत कुछ चाहती रही है, पर उस चाहत का फल तो प्रत्यक्ष ही है. इस के पश्चात् भी इन से कुछ आशा करना 'अरण्य रुदन' ही होगा; पर प्रश्न चूँकि प्रश्न ही है इस लिए उत्तर होना ही चाहिए.

आज की शिक्षा-पद्धति जिस परिस्थिति के लिए हमें प्रशिक्षित कर रही है वह परिस्थिति प्रशिक्षण पूरा होने पर हमें मिलती नहीं है, अतः नयी सरकारों से यह आशा तो की ही जानी चाहिए कि परिस्थिति के अनुसार ही प्रशिक्षण दिया जाये. देश में उसी शिक्षा-पद्धति का आज भी अनुसरण किया जा रहा है जो अंग्रेज़ों ने हमारी दासता की जड़ को पुख़्ता करने के लिए प्रारंभ किया था. अतः देश में अविलंब ही एक राष्ट्रीय शिक्षा-नीति का प्रतिपादन होना चाहिए. संक्षेप में निम्नलिखित प्रमुख माँगें हैं:—

(१) केंद्रीय सेवा आयोग की परीक्षाओं एवं नौकरियों में अंग्रेज़ी के स्थान पर मातृभाषाओं का प्रयोग तत्काल शुरू हो; कम-से-कम प्रादेशिक लोकसेवा आयोगों से अंग्रेज़ी की अविलंब समाप्ति हो. (२) अनिवार्य रूप से अंग्रेज़ी की पढ़ाई किसी भी स्तर पर नहीं होनी चाहिए. अंग्रेज़ी को रूसी, फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं के साथ अतिरिक्त वैकल्पिक भाषा के रूप में पढ़ाया जा सकता है. (३) शिक्षण-संस्थाओं की स्वायत्तता बचाने के लिए उप-कुलपति के पद पर हारे हुए राजनीतिज्ञ या पेंशनशुदा आई. सी. एस. अफ़सरों की जगह केवल शिक्षा-शास्त्रियों को ही नियुक्त किया जाये. (४) 'शिक्षा-संकोचन-नीतियों' का परिहार कर ऐसी व्यवस्था की जाये कि हर इच्छुक व्यक्ति को सुविधा अनायास उपलब्ध हो. (५) विश्वविद्यालयों की कार्य समितियों और प्रॉक्टोरियल बोर्ड में छात्रों का उचित प्रतिनिधित्व हो. (६) आर्थिक अनिश्चयता, बेरोज़गारी की समाप्ति हो, जो सारे असंतोष का मूल कारण है.

—सुरेंद्रप्रताप सिंह, साउथ जूट मिल रोड, गारुलिया, २४ परगना (प० बंगाल)

(२)

आज का छात्र-जगत् विश्वविद्यालय की वर्तमान व्यवस्था से अत्यन्त क्षुब्ध है. मैकॉले की विरासत में मिली शिक्षा-प्रणाली उसे लक्ष्यहीन, दिशाहीन एवं दायित्वहीन बनाये हुए है. यही क्षुब्धता जब विद्रोह व आक्रोश के रूप में फूट पड़ती है तब उसे अनुशासनहीन एवं उद्दंड घोषित कर दिया जाता है. उन की समस्याओं को सुलझाने की बात तो दूर रही, शासक-वर्ग उन्हें समझना तक नहीं चाहता है. राजनैतिक दल अपने चुनाव-प्रचार को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए विद्यार्थियों को 'मोहरे' के रूप में इस्तेमाल करने लगा है, जो उस के आक्रोश को प्रज्वलित करने के लिए 'आग में घी' डालने जैसा कार्य करता है. शायद आज राजनैतिक नेताओं एवं विश्वविद्यालयों के प्रशासकीय अधिकारियों को यह पता नहीं है कि उन का संबंध विद्यार्थियों से लगभग समाप्त हो चुका है.

मध्यावधि चुनाव के पश्चात् सत्तारूढ़ लोकतंत्री सरकार से विश्वविद्यालय की व्यवस्था से संबद्ध मेरी कुछ इस प्रकार की माँगें हैं :—

यदि आधुनिक प्रजातंत्रीय और समाजवादी समाज के उद्देश्यों की प्राप्ति करनी है तो वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली एवं विश्वविद्यालयी व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन करने पड़ेंगे. विश्वविद्यालय 'राजनीति के अखाड़े' बने हुए हैं. विश्वविद्यालयी शिक्षा की स्वतंत्रता निम्नलिखित खतरों से घिर गयी है.

(१) विदेशी भाषा द्वारा सामूहिक शिक्षा के कारण शैक्षणिक गरिमा का ह्रास. (२) विश्वविद्यालयों पर नियंत्रण रखने की वर्तमान शासकों की महत्त्वाकांक्षाएँ. (३) शिक्षण-संस्थाओं में स्वतंत्रता की चेतना और स्वरूप का अभाव. (४) अध्यापकों एवं उच्च प्रशासकीय

'दरवाज़े पर' : गति का सृजन

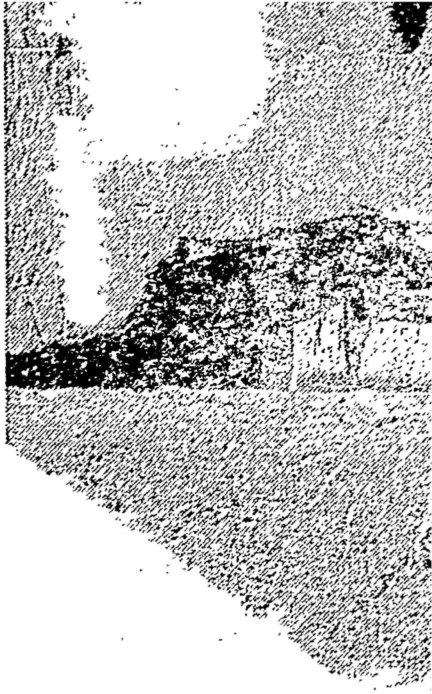

एल्योरा गुफ़ा का चित्र : 'हँसती गुफ़ा'

छाया-चित्र

बाह्य-अंतर-योग

ओ. पी. शर्मा की १५वीं एकल छायाचित्र-प्रदर्शनी सी. जे. हॉल, फ़ोर्ट, बंबई में जनवरी के दूसरे सप्ताह में हुई. जिस में १३० छायाचित्र प्रदर्शित किये गये, जो मशीनी उपलब्धि से कहीं अधिक छविकार की कला-दृष्टि की उपलब्धि होने के कारण सराहनीय और विवेचनीय हैं. ओ. पी. शर्मा की विशेषता उन की कला-दृष्टि का विस्तार है और अपने अंतर की कल्पना को यंत्र और बाह्य जगत के यथार्थ के साथ अद्‌भुत कौशल के साथ जोड़ने की दक्षता है. डार्क रूम और कैमरा दोनों को वह तूलिका और रंगों की तरह इस्तेमाल करते हैं. इसी लिए उन के चित्र छायाचित्र हो कर भी मशीनी सीमाओं और जड़ता से निकल कर चित्र-कला की दुनिया में प्रवेश करते हैं. चाहे दृश्य-चित्र हों, चाहे बच्चों के चित्र, या शबीहें; चाहे अचल जीवन या अमूर्त्त कला, सभी में वह बिल्कुल अलग पहचाने जाते हैं. सोलराइज़ेशन बासरिलीफ़, टोन सेपरेशन या स्वयं उन की 'जी' शैली सभी में उन की निपुणता और प्रत्यंकन गुण मुग्ध करता है. यह लगता है कि कैमरा एक रचनात्मक प्रतिमा के हाथ में है जिस की कोई सीमा नहीं है.

शबीहों में व्यक्ति के भाव को ठीक क्षण में पकड़ने की सूक्ष्म दृष्टि उन में मिलती है. छायाचित्रों में प्रयुक्त होने वाले रासायनिक द्रव्यों का भी रचनात्मक प्रयोग उन्हें 'डार्क-रूम' का अद्वितीय कलाकार बनाता है. जहाँ गति नहीं है वहाँ उन की कल्पना गति का सृजन करती है और जहाँ आकृति नहीं है वहाँ भी आकृति की पहचान करवा कर आप की कल्पना को मुक्त करती है. एल्योरा गुफ़ा का यह चित्र, जो स्वाभाविक प्रकाश में खींचा गया है, जितना और जैसे समेटता है वह एल्योरा की आत्मा का चित्र बन जाता है. 'जो है' उस में 'जो नहीं है' उस को उतार लेने के लिए, जिस कला-प्रतिमा की ज़रूरत है वह ओ. पी. शर्मा में है, यह इस प्रदर्शिनी से और अधिक स्पष्ट हुआ, और यह भी स्पष्ट हुआ कि यदि कला-दृष्टि है तो प्र ोग चुभते नहीं, बल्कि अर्थ को गहरा ही करते हैं. एक के भीतर एक काले चौखटों की अंतिम सीमा में क़ैद मानव-आकृति आधुनिक मानव के दुर्भाग्य की कथा को मुखरित करती है. ओ. पी. शर्मा ने अपने माध्यम से आधुनिक मानव की व्यथा को बड़े सशक्त रूप से व्यक्त किया है. उन का हर प्रयोग सार्थक है,

'संरचना-६९' : रासायनिक प्रयोग

'सज्जन' : सही क्षण में सही भाव

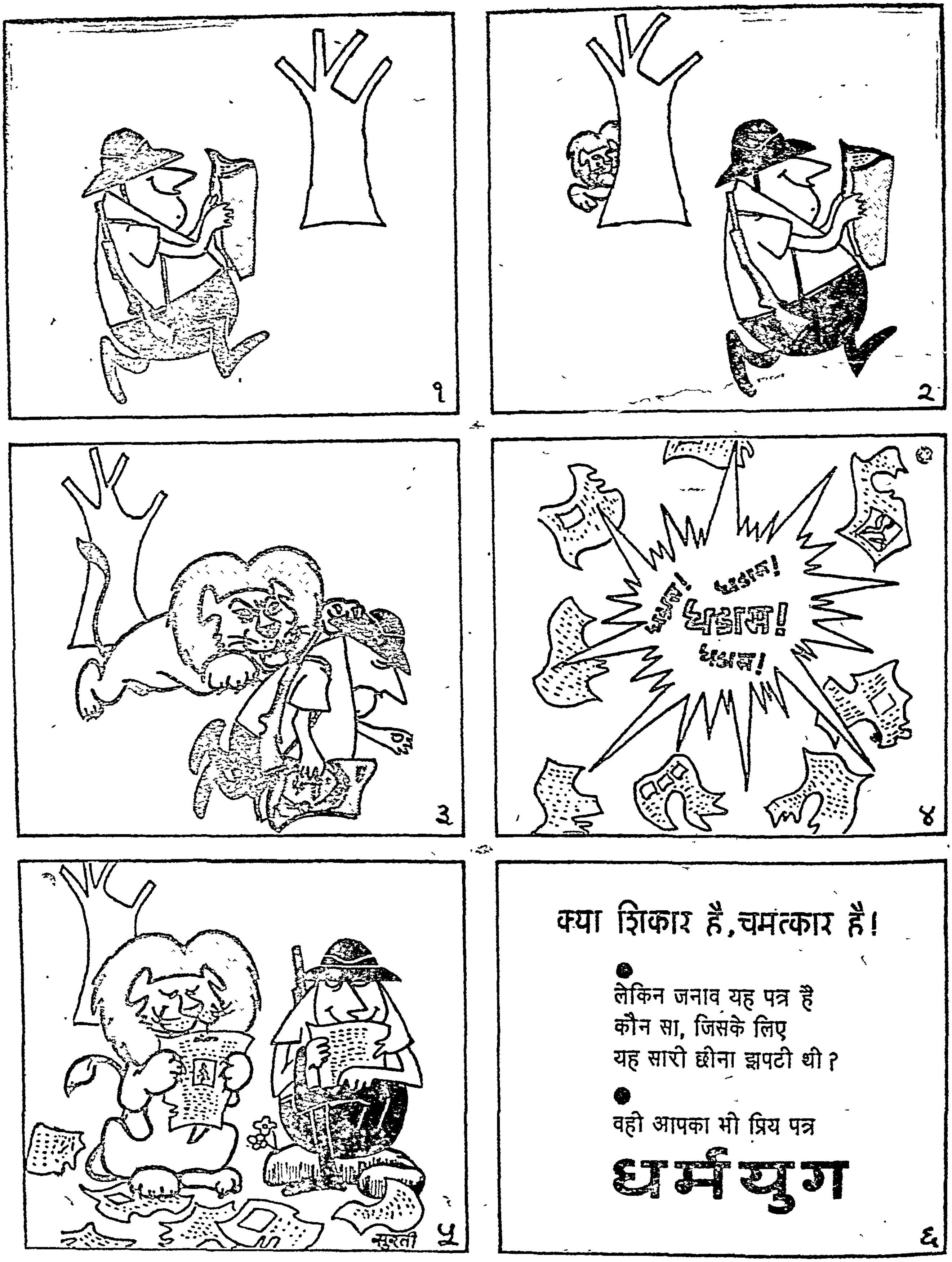

१
२
३
धड़ाम!
४
सूरती
५
क्या शिकार है, चमत्कार है!
लेकिन जनाव यह पत्र है
कौन सा, जिसके लिए
यह सारी छीना झपटी थी?
वही आपका भी प्रिय पत्र
धर्मयुग
६

भाषा

संस्कृत सम्मेलन

वाराणसी में भारत की स्वाधीनता के वर्ष से ही विनम्र पैमाने पर संस्कृत प्रचार के लिए बहुमुखी उद्योग करने वाली एक संस्था है— **सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय.** इस संस्था के संचालक हैं **वासुदेव द्विवेदी.** इस संस्था ने संस्कृत की महिमा के केवल नारे नहीं लगाये हैं, बल्कि संस्कृत भाषा के संस्कार को आबाल-वृद्ध जनसाधारण में उद्‌बुद्ध करने के लिए पुस्तकें छपा कर भारत के विभिन्न भागों में, विभिन्न केंद्रों में वितरित की हैं. इसी संस्था का वार्षिक अधिवेशन जनवरी के प्रथम सप्ताह में संस्कृत विश्वविद्यालय के मुख्य भवन में संपन्न हुआ.

इस अधिवेशन की अध्यक्षता दिल्ली के उप-राज्यपाल **आदित्यनाथ झा** ने की और उद्‌घाटन काशी विद्यापीठ के उप-कुलपति **राजाराम शास्त्री** ने किया. श्री शास्त्री ने अपने उद्‌घाटन-भाषण में इस पर बल दिया कि संस्कृत भाषा में भारत के बौद्धिक विकास का अपनी समग्रता में दिग्दर्शन मिलता है. अतः केवल परंपरा के पोषण के लिए ही संस्कृत भाषा की शिक्षा आवश्यक नहीं है, अपितु भारत की स्वतंत्र चिंतन-पद्धति को अग्रसर करने के लिए भी है. उन्होंने इस पर भी बल दिया कि संस्कृत किसी देश, वर्ग, संप्रदाय तथा जाति की भाषा नहीं है. उस का वाङ्मय बहुत ही विस्तृत तथा उदार है. जो लोग संकीर्ण दृष्टि से संस्कृत की रक्षा की बात सोचते हैं वे लोग संस्कृत के वास्तविक उद्देश्य के साथ खिलवाड़ करते हैं. काशी के अप्रतिम विद्वान **राजेश्वर शास्त्री द्राविड़** ने प्रांजल संस्कृत में अपने तर्कपूर्ण भाषण के द्वारा यह प्रतिपादित किया कि भारतीय राष्ट्र की राजनैतिक विशृंखलता का अगर कोई समाधान है तो एकमात्र संस्कृत ही है, क्यों कि जितनी अनुदारता और परस्पर द्वेष-बुद्धि, अस्वस्थ प्रतिस्पर्धा और क्षुद्रता हमारे सामाजिक जीवन में आ रही है उस का निराकरण संस्कृत के देश-कालातीत विशाल दृष्टि में ही पाया जा सकता है. **आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने अपने सारगर्भित भाषण में कहा कि संस्कृत भाषा एवं साहित्य की यह विशेषता है कि विश्व का जो कोई भी विद्यानुरागी व्यक्ति उस के संपर्क में आया वही उस का रसिक और प्रशंसक बन गया. संस्कृत के काव्य, कथा तथा नाटकों ने विश्व में सर्वत्र सम्मान पाया है और अपने मौलिक गुणों से संस्कृत आज भी विश्व के सभी उच्चतम विद्यापीठों में समादृत है. पर यह हमारी कमी है कि हम ने अब तक उसे विश्वव्यापी बनाने के लिए कुछ भी नहीं किया है. इस दृष्टि से सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय का प्रयास बहुत ही स्तुत्य है. **डा० रामगोविंद चंद्र** ने अपने भाषण में कहा कि संस्कृत का भारतीय संस्कृति से अविच्छिन्न संबंध है. जहाँ जनपदीय संस्कृतियों की जानकारी के लिए विविध भाषाओं एवं साहित्य का अध्ययन उपादेय है वहाँ भारतीय संस्कृति के समग्र रूप की झलक पाने के लिए संस्कृत का अध्ययन अपरिहार्य है. परंतु यह दुःख की बात है कि संस्कृत साहित्य के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ अभी तक शिक्षित समाज के सामने व्यापक रूप में नहीं पहुँचाये जा सके. इस के लिए प्रयत्न होना चाहिए. **आदित्यनाथ झा** ने अपने अध्यक्षीय भाषण में तीन बातों पर विशेष बल दिया. एक तो यह कि संस्कृत के ही द्वारा हम अपने ऐतिहासिक दाय का पूर्ण बोध प्राप्त कर सकते हैं और अपने को निःस्वता से उबार सकते हैं तथा संस्कृत के द्वारा हम अपने भविष्य को अधिक समृद्ध और अपरामुखापेक्षी बना सकते हैं. दूसरी बात यह कि अनुशासनहीनता की व्यापक समस्या का वास्तविक समाधान बच्चों की प्रारंभिक शिक्षा में संस्कृत को प्रमुख स्थान देने से ही होगा, क्यों कि संस्कृत की परंपरा जहाँ अपने अतीत के प्रति आदर का भाव जगाती है वहीं वह विवेक के निरंतर प्रयोग और सत्य के अन्वेषण पर भी बल देती है. वह मर्यादा का पालन करती हुई भी वैचारिक स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त करती है. तीसरी बात यह कि महिलाओं में संस्कृत शिक्षा का प्रचार विशेष रूप से होना चाहिए, जिस से कि हमारे गार्हस्थ्य जीवन में अधिक समरसता आवे और संस्कृत शिक्षित महिलाओं के द्वारा अपने शिशुओं को संस्कृत की ओर उन्मुख करने का नैसर्गिक प्रयत्न प्रवर्तित हो.

इस अधिवेशन के अवसर पर संस्कृत शिक्षण पर एक विचार गोष्ठी हुई, जिस में संस्कृत शिक्षण के क्रम में कौन से परिवर्त्तन किये जायें कि यह अधिक रुचिकर, उपयोगी और दृढ़ संस्कार का प्रवर्त्तक हो सके, इस संबंध में विद्वानों के भाषण हुए. इस गोष्ठी में **सीताराम चतुर्वेदी, करुणापति त्रिपाठी, जगन्नाथ उपाध्याय, विद्यानिवास मिश्र रामअवध पांडेय** ने भाग लिया. विचार-गोष्ठी का संक्षेप में निष्कर्ष यह था कि संस्कृत साहित्य के उदात्त और बौद्धिक रूप को ऐसे ढंग से क्रमिक स्तरों में पाठ्यक्रम में सन्निविष्ट करना चाहिए कि उस के साथ बच्चों का तादात्म्य स्थापित हो और रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन न मिले.

इस अधिवेशन की सफलता की चरम उपलब्धि थी बच्चों और महिलाओं के स्वतंत्र सम्मेलन तथा संस्कृत संगीत सम्मेलन. इन सम्मेलनों ने यह प्रमाणित कर दिया कि संस्कृत प्रचार की इस संस्था का कार्य गहरी जड़ तक पहुँच गया है.

कुल ले कर इस अधिवेशन का बहुत अच्छा प्रभाव काशी के नागरिकों और संस्कृत प्रेमी-समुदाय पर पड़ा है. ऐसे आयोजनों की आवश्यकता का भारत में स्थान-स्थान पर अनुभव किया जा रहा है.

किताबें

चौखटों से कुछ बाहर

अठारहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति, स्वर्गीय डॉ. देवीशंकर अवस्थी का शोध-ग्रंथ है, जो उन के निधन के बाद प्रकाशित हुआ है और जिस पर उन्हें आगरा विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. प्राप्त हुई थी. तथाकथित विश्वविद्यालयी शोध-प्रबंधों से यह भिन्न है. प्रेमाभक्ति साहित्य के विश्लेषण और मूल्यांकन में भी कृति का आंतरिक अध्ययन करने वाली समीक्षा-विधि अपनायी गयी है. केवल रस, अलंकार, छंद, शब्द-शक्ति आदि के बँधे-बँधाये चौखटों में ढाल कर इस साहित्य को परखने की शैली स्वीकार नहीं की गयी है. लेखक का कथन है 'इन स्थूल चौखटों में किसी भी साहित्य को ढाल कर उसे महत्त्वपूर्ण बताया जा सकता है. वास्तव में किसी भी रचना में अभिव्यंजना के उपादान एवं मूल वक्तव्य-वस्तु एक साथ घुले-मिले रहते हैं. वे एक साथ मिल कर ही रचना को प्रभविष्णु बना पाते हैं. इसी कारण हम ने आलोच्य साहित्य की भाव-संपदा का विश्लेषण करते हुए उस के साथ ही काव्य-सौंदर्य का भी विश्लेषण किया है. शास्त्रीय विधि के भेदों-प्रभेदों में न जा कर भी मूलतः रसदृष्टि का आग्रह इस विश्लेषण में बराबर बना रहा है.' लेखक का यह दावा शोध-प्रबंध की ओर उस की सीमाओं के होते हुए भी काफ़ी कुछ सही है. अक्सर यह ग्रंथ पढ़ते समय यह लगेगा कि समीक्षक ने चीर-फाड़ ही नहीं की है, स्वयं काव्य का सुख लेने और उसे दूसरों तक प्रेषित करने का कार्य किया है.

वैसे इस में बहुत ऐसा भी है जो यदि यह विश्वविद्यालयी उपाधि के लिए न लिखा गया होता तो संभवतः न होता. कम से कम देवी शंकर अवस्थी जैसे समीक्षक ने न लिखा होता. लेकिन जो नहीं भी हो सकता था उस का इस में होना ही समीक्षक की पहचान कराता है. भक्तिकालीन प्रवृत्तियों का रीतिकाव्य में संक्रमण, काम और भगवत्प्रेम का अंतर जैसे स्थल नये स्तर पर भी काफ़ी कुछ सोचने को बाध्य करते हैं. वैसे उत्तर भारत में भक्ति के नये आंदोलन से निकले हुए इस साहित्य की अठारहवीं शती तक की परिणतियों, प्रभावों, सैद्धांतिक आग्रहों तथा इस शती की कृतियों, संप्रदायों का संपूर्ण अध्ययन तो इस में है ही. इसी लिए विशेष अध्ययन करने वालों के अतिरिक्त साधारण जिज्ञासु पाठक के हाथों में भी यह उपयोगी सिद्ध होगा.

अठारहवीं शताब्दी के ब्रजभाषा काव्य में प्रेमाभक्ति; डॉ. देवीशंकर अवस्थी; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. २।२६ अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-६. मूल्य २५ रुपया.

गुजरात पधारिये

जो अपनी संस्कृति एवं पुरातत्व संबंधी परम्परा के लिये प्रसिद्ध है

सांस्कृतिक

- सोमनाथ मन्दिर (वेरावल)
- सूर्य मन्दिर (मॉडेहरा)
- हिलती मीनारें एवं खुदी हुई पत्थर की जाली (अहमदाबाद)
- जैन मन्दिर (पालिताना)
- रुद्रमल (सिद्धापुर)
- जंगल के राजा, गिर के शेर (जूनागढ़) केवल एकमात्र एशिया में शेर देखने का स्थान

पुरातत्व संबंधी

- लोथाल में इतिहासेतर खुदाई

औद्योगिक

- काम्बे, अंकलेश्वर एवं कालोल में तेल का क्षेत्र
- गुजरात रिफाइनरी और
- उर्वरक कारखाना (बड़ौदा)
- अमूल डेरी (आनंद)

विस्तृत सूचना के लिये कृपया संपर्क करें :

१. सूचना निदेशक,
गुजरात सरकार, सचिवालय
अहमदाबाद फोन ७६११
एक्सटेन्शन ३०३,३०८

२. गुजरात सूचना केन्द्र
७२, जनपथ नयी दिल्ली
फोन : ४६२४८

३. गुजरात सरकार, पर्यटन कार्यालय
धनराज महल, एपोलो वन्दर, वम्बई
फोन : २५७०३९

व्ही.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

संगीत और नृत्य की पुस्तकें

बाल संगीत शिक्षा तीनों भाग रु. ३.००, हाई स्कूल संगीत शास्त्र रु.२.००, गांधर्व संगीत प्रवेशिका रु. ३.५०, संगीत विशारद रु. ६.००, संगीत सागर रु. ७.००, रवीन्द्र संगीत रु. ३.५०, बेला विज्ञान रु. ४.००, सितार शिक्षा रु. ४.००, सूर संगीत दोनों भाग रु. ४.००, भारतीय संगीत का इतिहास रु. ५.००, ठुमरी गायकी रु. ३.५०, राग कोष रु. १.२५, सहगल संगीत रु. ३.००, ताल अंक रु. ५.००, मधुर चीजें रु. २.५०, सन्त संगीत अंक रु. ३.५०, राष्ट्रीय संगीत रु. ३.५०, वाद्य संगीत अंक रु. ३.५०, लोक संगीत अंक रु. ४.००, गजल अंक रु. ४.००, तराना अंक रु. ५.००, कथक नृत्य रु. ८.००, गिटार मास्टर रु. २.००, बैन्जो मास्टर रु. २.००, म्यूजिक मास्टर रु.२.५०, आवाज सुरीली कैसे करें रु. ३.५०, संगीत निबन्धावली रु. २.५०, पाश्चात्य संगीत शिक्षा रु. ७.००, संगीत मासिक रु. १०.००, फिल्म-संगीत त्रैमासिक रु. १०.०० (पत्रों का मूल्य जनवरी से दिसम्बर तक है)।

प्रकाशक : **संगीत कार्यालय (१५) हाथरस (उ. प्र.)**

चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट
के नये प्रकाशनों में पहली बार

१–अशोक की हरी पतंग	१-५०
२–दो नन्हे चूज़े	१-००
३–जीव-जन्तु और उनके नन्हें मुन्ने	१-००
४–ईमानदार स्वरूप	१-००
५–मोहें-जो-दड़ो की माया के जीवन की एक झाँकी	१-००
६–भारत की लोककथा निधि (भाग १)	४-२५
७–शोभना	१-५०
८–पंचतंत्र की कहानियाँ (भाग तीन)	३-००

पूरे विवरण के लिए बिना मूल्य सूचीपत्र मंगाइये

चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट,
४, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नेहरू हाउस, नई दिल्ली

मोना की नई गुड़िया

४२ से० मी० लंबी

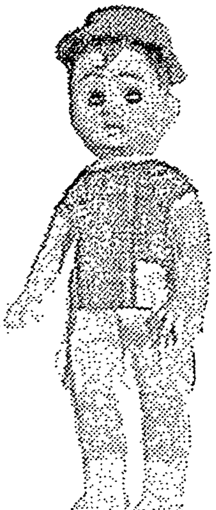

प्लास्टिक का टोप लगाये

मास्टर राजू

मोना टॉयज़ इण्डस्ट्रीज़
डी–३४, राजौरी गार्डन्स, नई दिल्ली–१५
फोन : ५६६८३६

एकमात्र वितरक:—गुप्ता सेल्स कार्पोरेशन
२७३/१४, पोस्ट ऑफिस स्ट्रीट,
सदर बाजार, दिल्ली।

हिन्दी में अपने ढंग का—नया—विश्वकोश

सचित्र विश्वकोश

1. पृथ्वी • आकाश • खनिज
2. जीव-जन्तु • पेड़-पौधे
3. मनुष्य • विकास • स्वास्थ्य • खेलकूद
4. राजनीति • प्रशासन • धर्म
5. कृषि • उद्योग • व्यापार • शिल्प
6. आविष्कार • खोज • हॉबी • पर्यटन
7. विज्ञान • वैज्ञानिक • आविष्कारक
8. साहित्य • कला • दर्शन • पुराणकथा
9. इतिहास : प्रमुख व्यक्ति • घटनाएं
10. देश और निवासी • प्रमुख नगर

2000 से अधिक चार-रंगे और दुर्लभ चित्रों से भरपूर

सभी पुस्तक-विक्रेताओं से प्राप्य

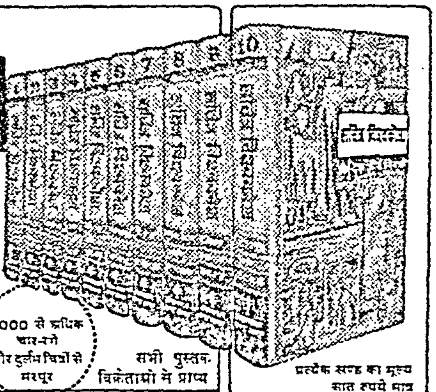

प्रत्येक खण्ड का मूल्य सात रुपये मात्र

दस खंडों का पूरा सेट मंगाने पर डाक-खर्च माफ़

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

विद्युत एवं रेडियो

अभियन्त्रण पाठचक्रम

विद्युत अभियन्त्रण, रेडियो मरम्मत, एसेम्बलिंग, विद्युत सुपरवाइजरी, वायरिंग आदि (८०० चित्र) रु० १२.५० वी. पी. डाक व्यय २/- सुलेखा बुक डिपो (इ) अलीगढ़

मुफ्त उपहार

३ महीने तक स्त्रियों का सौन्दर्य काश्मीरी और बंगलौरी आर्ट सिल्क की साड़ियों में खिलता है। आधुनिक डिजाइनों और रंगों में नया माल आ गया है। केवल हमारे यहां ही प्राप्य है। एक डीलक्स साड़ी १२) दो साड़ियां २३) तीन साड़ियां ३३) चार साड़ियां ४०)। दो या अधिक साड़ियों के आर्डर पर ब्लाउजपीस मुफ्त। आर्डर पोस्ट पार्सल से भेजे जायेंगे।

ATLAS CO (D.W.N.D.-25)
P.O Box 1329, DELHI-6

किस्तों पर ट्रांजिस्टर

सर्वत्र विख्यात "एस्कोर्ट" ३ बैंड आल वर्ल्ड पोर्टेबल ट्रांजिस्टर, मूल्य १६५ रुपये मासिक किस्त रुपये १०) भारत के प्रत्येक गांव और शहर में भेजा जा सकता है। लिखें:—

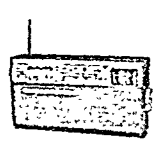

जापान एजेंसीज (D.W.N.D.—10)
पोस्ट बाक्स ११९४, दिल्ली–६

आपकी भाग्य परीक्षा के साथ साथ
एक सत्कार्य में आपका योग

अस्पतालों और अपाहिजों की सहायतार्थ खरीदिये

उ० प्र० राज्य लाटरी

केवल एक रुपये के एक टिकट से आप पा सकते हैं

9,00,000 रु०

अथवा निम्न में से कोई एक

२ दूसरे पुरस्कार प्रत्येक	२०,००० रु०
२ तीसरे पुरस्कार प्रत्येक	५,००० रु०
५ चौथे पुरस्कार प्रत्येक	१,००० रु०
१० पांचवें पुरस्कार प्रत्येक	५०० रु०
१०० छटे पुरस्कार प्रत्येक	१०० रु०
६०० सातवें पुरस्कार	५० रु०

कुल ७२० पुरस्कार
प्रथम ड्रा १६–३–१९६९

टिकटों के बिक्री केन्द्र

- उत्तर प्रदेश के कोषागार, उपकोषागार और अधिकृत एजेण्ट
- गवर्मेन्ट यू० पी० हैण्डीक्रेफ्ट्स एम्पोरियम, हजरतगंज, लखनऊ
- सुपर बाजार, नई दिल्ली
- गवर्मेन्ट यू० पी० हैण्डीक्रेफ्ट्स एम्पोरियम, कनाट प्लेस, नई दिल्ली

एजेन्सी के लिये आवेदन करें

उत्तर प्रदेश के व्यक्ति और संस्थायें : स्थानीय जिलाधीश

अन्यत्र के व्यक्ति और संस्थायें : निदेशक उत्तर प्रदेश राज्य लाटरी तथा गवर्मेन्ट यू० पी० हैण्डीक्रेफ्ट्स एम्पोरियम, कनॉट प्लेस, नई देहली (एजेण्टों को इस एम्पोरियम से टिकट भी मिल सकते हैं)

एजेन्टों को चुकती मूल्य के टिकट दिये जाते हैं

निदेशक उ० प्र० राज्य लाटरी (वित्त विभाग) लखनऊ

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. टिमूजा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

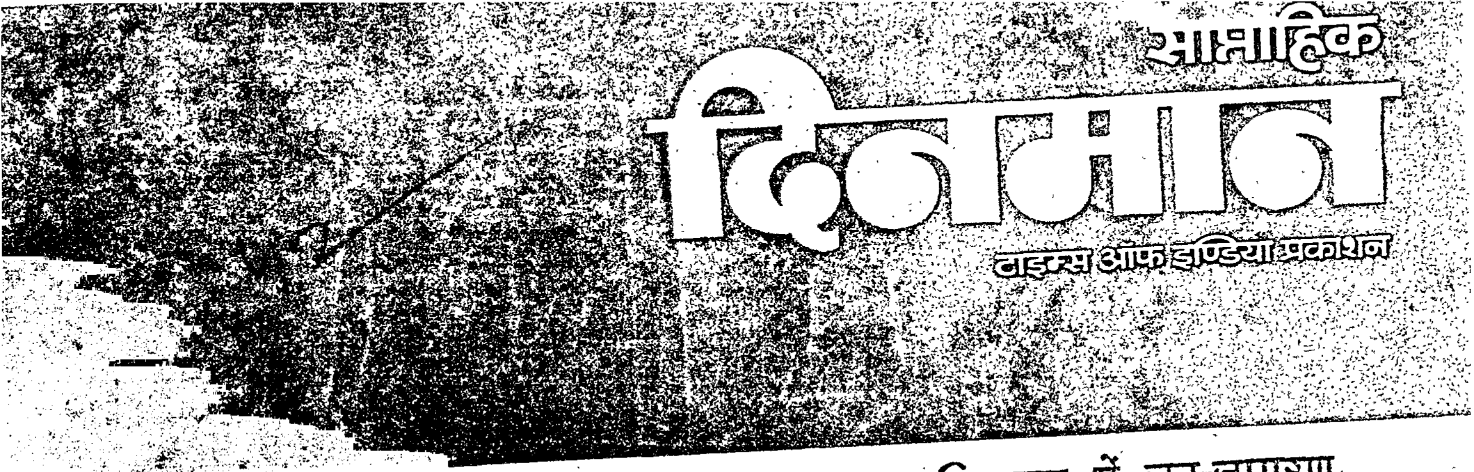

साप्ताहिक दिनमान

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

...री, १९६९
...ाघ, १८९०

बुल्गारी दोस्ती • बंगाल के वोट • पाकिस्तान में जन-जागरण

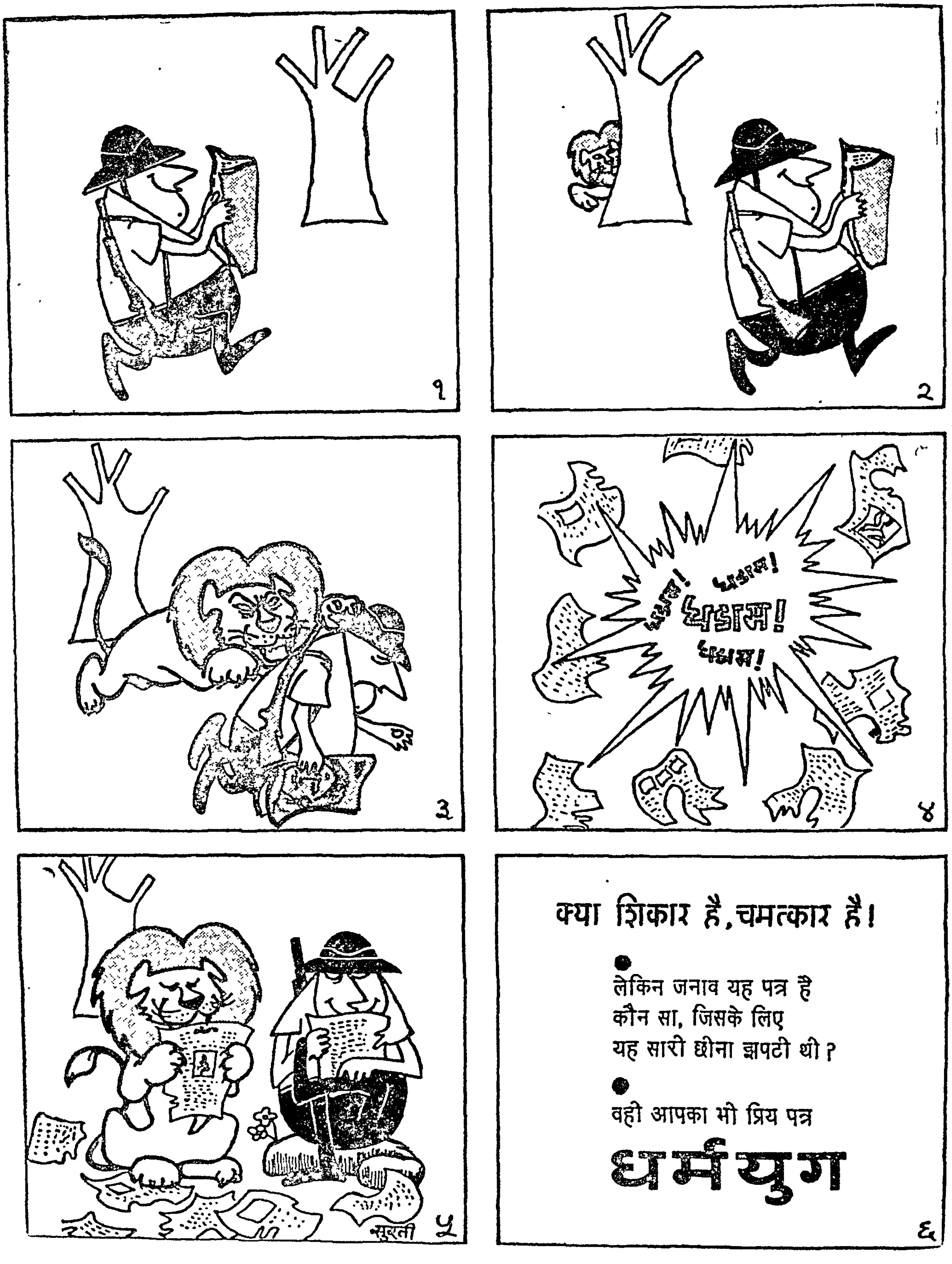

१
२
३
धड़ाम!
धड़ाम!
धड़ाम!
धड़ाम!
४
सूरती
५
क्या शिकार है, चमत्कार है।
लेकिन जनाव यह पत्र है
कौन सा, जिसके लिए
यह सारी छीना झपटी थी?
वही आपका भी प्रिय पत्र
धर्मयुग
६

मत और सम्मत

छात्र-मत

[प्रश्न-चर्चा ५१ के लिए प्राप्त कुछ उल्लेखनीय पत्र क्रमशः यहां प्रकाशित किये जायेंगे.]

मध्यावधि चुनावों के बाद कोई दल सरकार क्यों न बनाये, कुछ बातों के बारे में कोई भ्रम नहीं रहना चाहिए. प्रथम शिक्षक और शिक्षितों के हित एक दूसरे से संबद्ध हैं तथा अधिकांश शिक्षक छात्रों का हित ही सोचते और करते हैं. द्वितीय, मुश्किल से ५ प्रतिशत छात्र ही अनुशासनहीन होते हैं, शेष नारेबाजी, या भीड़-मनोवृत्ति अथवा भय के कारण अपने तथाकथित छात्र-नेताओं का विरोध नहीं कर पाते. अधिकांश छात्रों को विश्वविद्यालय से ऐसी कोई शिकायत नहीं होती जो हड़ताल और आग लगाने की नौबत आ जाये. अतः मेरी माँगें हैं : प्रथम, प्रशासन कठोर हो, अध्यापकों और छात्रों से दुर्व्यवहार को गंभीरतम अपराध माना जाये और सबक सिखाने वाला दंड दिया जाये. यदि आंदोलन हों तो सरकार उन का भी मुक़ाबला करे और छात्रों तथा दलों के मस्तिष्क से यह भ्रम निकालने का प्रयत्न करे कि हिंसा और तोड़-फोड़ से कोई लाभ होगा, प्रशासन बदल दिया जायेगा या छात्र दंडित नहीं किये जायेंगे. अनुशासनहीनता इस लिए और बढ़ रही है कि छात्र जानते हैं कि सरकार झुकेगी, उन को अपराध करने पर भी दंड नहीं दिया जायेगा. छात्रों को विश्वविद्यालय के प्रशासन में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है और किसी को भी क़ानून अपने हाथ में लेने का अधिकार नहीं है. एक ओर तो छात्र मार पीट आग लगाने पर उतर जाते हैं और जब उसे रोकने को पुलिस बुलायी जाती है तो अपनी बेइज़्ज़ती समझते हैं. पर पुलिस बुलाने की स्थिति पैदा तो छात्र ही करते हैं.

शांतिमय आंदोलन कब हिंसक रूप ले लेगा इस का क्या अनुमान लग सकता है ? क्या जब पुस्तकालय और विश्वविद्यालय में आग लग चुके और दो चार कर्मचारी मार डाले जायें तभी पुलिस बुलानी चाहिए ? छात्रों के साथ भी वही व्यवहार किया जाना चाहिए जो एक सैनिक के साथ होता है. अच्छा भोजन-वस्त्र तथा अच्छी शिक्षा पाने का अधिकार हो, पर अनुशासनहीनता को बर्दाश्त न किया जाये. दूसरे जरूरी है कि सत्तारूढ़ दल क़ानून के द्वारा वर्तमान छात्र-संघों को समाप्त कर दे क्यों कि उन के चुनाव के रास्ते से राजनैतिक दल विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाते हैं. हारा हुआ दल सदा उधम मचाता रहता है तथा इन से छात्रों का कोई हित भी नहीं होता, अपितु उल्टे उन में एक वर्ग-संघर्ष की भावना पैदा होती है. छात्र एक वर्ग बन जाते हैं और अध्यापक या अधिकारी या सरकार दूसरा वर्ग मान लिया जाता है और हर संघर्ष प्रतिष्ठा का विषय बन जाता है. तीसरे, शिक्षा-पद्धति और परीक्षा-पद्धति सरकार ऐसी बनाये कि छात्रों को पूरे वर्ष अध्ययन करना पड़े और वह 'शॉर्ट-कट' से परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सके. चौथे, अधिक अनुशासनहीन छात्रों के लिए सरकारी नौकरियों के द्वार बंद कर दिये जायें. पाँचवें, विश्वविद्यालयों में सरकारी हस्तक्षेप कम करने की दिशा में क़दम उठाये जायें.

—कुमारी बिलकीस, इटारसी

चुनाव : संसपा—जो बिहार के त्रिदलीय मोर्चे में हो कर भी उससे अलग है, ने अपने स्वतंत्र चुनाव घोषणापत्र में कई वादे किये हैं. इन में से एक वादा यह भी है कि यदि उस की सरकार बनी तो वह सरकारी विभागों के ६० प्रतिशत पदों पर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं मुसलमानों की नियुक्ति करेगा. यह वादा बड़ा अजीब-सा है. एक ओर ये संसपायी नेतागण अपने-आप को समाजवादी घोषित करते हुए ग़रीबी के नाश एवं वर्ग-विहीन समाज की स्थापना का वादा करते हैं और दूसरी ओर परोक्ष रूप से जातीयता का प्रचार करते हैं.

मैं संसपा के नेताओं से यह पूछना चाहता हूँ कि क्या ग़रीब सिर्फ़ अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं मुसलिम संप्रदाय के लोग ही हैं ? क्या उच्च जातियों में ग़रीब नहीं हैं ? क्या निम्न जातियों में अमीर नहीं हैं ? जाति का संबंध अमीरी या ग़रीबी से नहीं. ग़रीबी का नाश सारे समाज से होना चाहिए, न कि चंद जाति विशेषों से. क्या इस के माध्यम से परोक्ष रूप से संसपायी नेता जाति के आधार पर वोट नहीं माँग रहे हैं ? —रवींद्र डेढ़गवें, पटना

उत्तरप्रदेश के मध्यावधि चुनाव में प्रत्याशियों द्वारा नाम वापस लेने की तारीख गुज़रने के बाद अन्य कई तथ्यों के साथ एक और तथ्य सामने आया है. लखनऊ के सरोजनी नगर चुनाव-क्षेत्र में चंद्रभानु गुप्त के विरुद्ध विरोधी दल संयुक्त मोर्चा नहीं बना पाये. इस का सब से अधिक उत्तरदायित्व संयुक्त समाजवादी दल पर जान पड़ता है.

संसपा ने जनसंघ उम्मीदवार के समर्थन में नाम वापस लेने से इनकार कर दिया है. लगता है लोहिया के बाद की संसपा ने कांग्रेस विरोध का मुखौटा ओढ़ कर अपने-आप को जनसंघ विरोधी की भूमिका में उतार दिया है. सांप्रदायिक शक्तियों का मुक़ाबला आवश्यक है, परंतु क्या संसपा अपनी समस्त आक्रामकता का बस इतना-सा ही उपयोग सीख पायी (या कर पायी) ? इस समय का यह जनसंघ विरोध कांग्रेस समर्थन की श्रेणी में ही रखा जा सकता है. सुंदर सिद्धांतों (सिद्धांत तो कांग्रेस के भी बुरे नहीं) से सुसज्जित यह आक्रामकता क्या कांग्रेस से त्रस्त प्रबुद्ध मध्यम वर्ग को आकर्षित कर सकेगी ?

जहाँ तक जनसंघ और भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी के प्रत्याशियों का संसपा के प्रत्याशी के समर्थन में नाम वापस लेने का प्रश्न है इन दोनों दलों ने कभी अपने आप को पूर्ण कांग्रेस-विरोधी की भूमिका में नहीं उतारा और भारतीय क्रांति दल इस चुनाव क्षेत्र से हट ही चुका है. उग्र कांग्रेस विरोधी या लोहिया की पार्टी होने के कारण संसपा का दायित्व (कम से कम सरोजनी नगर चुनाव क्षेत्र में तो) बहुत बढ़ जाता है हाँ, अगर मध्यावधि चुनाव के समय (वह भी चंद्रभानु गुप्त के विरुद्ध) संसपा को कांग्रेस विरोध के सिद्धांत की अपेक्षा सांप्रदायिकता-विरोध का सिद्धांत रुचिकर लगता है तो मुझे कुछ नहीं कहना.

—नरेंद्र, जयपुर

माखनलाल चतुर्वेदी स्मारक : स्वर्गीय दादा के अस्थि कलश का बावई (दादा की जन्मस्थली) ग्राम में चिर-स्थायी स्मारक निर्माण कर प्रतिष्ठापित करने की व्यापक योजनानुसार लाया जाना साहित्य जगत् में एक गौरवमय और गरिमामय अध्याय है. किंतु साहित्य-देवता का यह जन्म-ग्राम अभी तक उक्त स्मारक के निर्माण के लिए अपेक्षित भावनात्मक शक्ति का संचय नहीं कर पाया है. आवश्यकता है राष्ट्र की इस धरोहर (कलश) को राष्ट्र जागरण के प्रतिनिधि पहरेदारों की आत्म शक्ति और आशीर्वचनों से गरिमा-मंडित होने की. तभी तो वह समस्त साहित्यकारों, समाजसेवियों और राष्ट्र-निर्माताओं की भावनाओं और विचारों का जाज्वल्यमान प्रतिनिधित्व कर सकने की क्षमता प्रकट कर सकेगा.

—रमेश शर्मा,
मंत्री, नवयुवक कला पथिक मंडल, बंबई

आप फ़रमाते हैं :

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

अब दीवारों पर कहीं जगह ही नहीं बची

वयस्क महिलाओं के लिए साड़ियाँ

सभी तरह की साड़ियाँ बॉम्बे डाइंग की दूकानों में मिलती हैं।

मनमोहक डिज़ाइन की अनेकानेक सुन्दर साड़ियाँ हैं—अपनी पसन्द की चुन लीजिए!

बाज़ार जाने के लिए साड़ियाँ

बॉम्बे डाइंग, आकर्षक नयनरम्य रंगछटा की, मनमोहक नये-नये डिज़ाइन की व सिलवटें न पड़नेवाली कितनी ही तरह की असंख्य साड़ियाँ तैयार करते हैं। इन साड़ियों में आपका व्यक्तित्व निखर उठेगा। इतना ही नहीं इनसे आपकी उच्च अभिरुचि की सभी जगह प्रशंसा होगी। अपनी पसन्द की साड़ी आज ही चुन लीजिए।

बॉम्बे डाइंग

पत्रकार संसद

एक को विदाई : दूसरे को बधाई

श्री रिचर्ड निक्सन के नये अमेरिकी राष्ट्रपति का कार्यभार सँभालने के अवसर पर उन के पूर्ववर्ती राष्ट्रपति जॉनसन के कार्यकाल और विश्व की प्रमुख समस्याओं पर निर्धारित उन की नीतियों की समीक्षा गत सप्ताह विश्व के समाचारपत्रों के संपादकीय लेखों का मुख्य विषय था. प्रमुख अमेरिकी पत्र **क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर** ने अपने संपादकीय में कहा—

श्री जॉनसन के कार्यकाल की समाप्ति के रूप में हम एक ऐसे अमेरिकी राष्ट्रपति की पद-निवृत्ति देखेंगे जिस ने अमेरिका पर अपनी अभूतपूर्व छाप छोड़ी है. राष्ट्रपति जॉनसन का कार्यकाल इतिहासज्ञों के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विश्लेषण का विषय है.

हमें यह देख कर प्रसन्नता होती है कि राष्ट्रपति जॉनसन की लोकप्रियता में दिनोंदिन कमी आती जा रही थी हाल ही के कुछ महीनों में उस में वहुत फ़र्क़ पड़ गया था. अपनी अनेक ग़लतियों के बावजूद वह लोकप्रियता प्राप्त करने के अधिकारी तो हैं ही. इस प्रसंग में कोई तुलना तो नहीं की जा सकती. लेकिन श्री जॉनसन के पूर्ववर्तियों में बहुत कम ऐसे थे जिन्हें राष्ट्रपति के रूप में इतने कठिन प्रश्नों पर निर्णय लेने पड़े हों.

एक तरह से देखा जाये तो श्री जॉनसन का राष्ट्रपति-काल अमेरिकी इतिहास की दुखद घटना से आरंभ हुआ. उन्होंने हत्या से उत्पन्न स्थिति के कारण राष्ट्रपति-पद सँभाला और फिर इस पद पर निर्वाचित हो कर अमेरिकी इतिहास में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की. फिर असंतोष की लहर को देख कर राष्ट्रपति-पद के पिछले चुनाव में खड़े न होने का निश्चय भी बहुत नाटकीय ढंग से किया. अपने कार्यकाल में उन्होंने वीएतनाम युद्ध के वारे में ऐसे साहसिक निर्णय भी लिये जिन से संभवत: वीएतनाम युद्ध समाप्त हो कर ही रहेगा. लेकिन अजीब बात यह है कि जॉनसन की राष्ट्रपति के रूप में अधिकाधिक ख्याति ही उन के विरुद्ध पड़ती गयी. जितना ही वे चमकते गये उतना ही अमेरिकी जनता उन पर अविश्वास करने लगी और सब से बड़ी विडंबना तो यह है कि अपने प्रशासन-काल के अंतिम दिनों में वह अपना प्रभाव खोते जा रहे थे और वह भी ऐसे समय जब कि अमेरिकी युवा वर्ग राष्ट्रीय राजनीति में अधिकाधिक रुचि लेने लगा था. फिर भी हमारा यही विश्वास है कि अमेरिकी इतिहास राष्ट्रपति जॉनसन को उन के पूर्ववर्ती राष्ट्रपतियों की अपेक्षा अधिक श्रेय देगा. अमेरिका में सर्वाधिक उपेक्षित नागरिकों के प्रति अमेरिकी जनता के रुख में महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन उन के ही कार्यकाल में आया.

जहाँ तक वीएतनाम का प्रश्न है अमेरिका के वहाँ फँसे रहने के वारे में किसी के कुछ भी विचार हों श्री जॉनसन ने अमेरिकी प्रयत्नों का विस्तार अपने इस सिद्धांत के आधार पर ही किया कि अंतरराष्ट्रीय शांति के प्रति वचनवद्ध होने के कारण अमेरिका को यह सब तो करना ही चाहिए. इन प्रयत्नों में साम्यवाद-विरोध का अंधविश्वास भी परिलक्षित नहीं होता था, क्यों कि वीएतनाम युद्ध जारी रखते हुए भी वह अनेकानेक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर सोवियत संघ से समझौते का प्रयत्न करते रहे.

अब नया प्रशासन आने पर पता चलेगा कि जॉनसन प्रशासन-काल के हाल ही के वर्षों ने नये राष्ट्रपति श्री निक्सन का कार्य कठिन बनाया है या आसान ? जॉनसन प्रशासन ने आशाएँ तो बँधायी, पर उन्हें पूरा नहीं किया और यह स्थिति श्री निक्सन के सामने चुनौती बन कर आयेगी. हमें संदेह है कि श्री निक्सन के बहुत जल्दी में काम न करने के तरीक़े से अमेरिकी जनता राहत महसूस करेगी.

बाहरी दुनिया की श्री निक्सन के बारे में यह धारणा है कि अब तक के सभी राष्ट्रपतियों में श्री निक्सन 'अमेरिकी' अधिक है—हेनरी ट्रूमैन से भी अधिक, लेकिन यह बात श्री निक्सन के पक्ष में ही अधिक पड़ती है.

जर्मन ट्रिब्यून में प्रकाशित वहाँ के एक प्रमुख समाचारपत्र **श्वाट्‌ से त्साईटुंग** की संपादकीय टिप्पणी में गत वर्ष की विश्व की घटनाओं का लेखाजोखा करते हुए अमेरिका की आज की स्थिति का कुछ और ही विवरण पढ़ने को मिलता है, विश्व की घटनाओं की समीक्षा के प्रसंग में अमेरिका पर पत्र में यह टिप्पणी की गयी है—

अमेरिकी निग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग और डेमोक्रेटिक सिनेटर रॉबर्ट केनेडी की हत्या जैसी हिंसात्मक घटनाओं ने अमेरिका में बेहद तनाव की स्थिति उत्पन्न कर दी है. कहाँ तो अमेरिका को पश्चिमी जगत्‌ का सर्वाधिक स्थिर राष्ट्र माना जाता था और कहाँ आज वहाँ सब से अधिक अस्थिरता उत्पन्न हो गयी है. ग़रीब जनता के प्रदर्शनों और जलूसों ने वॉशिंगटन को जनप्रदर्शनों और उपद्रवों का केंद्र बना दिया है.'

ब्रितानी पत्र **गार्डियन** का मत है कि श्री जॉनसन के शासन-काल का अभी मूल्यांकन करना समय से बहुत पहले की बात होगी. वैसे तो कोई भी ऐतिहासिक मूल्यांकन अंतिम नहीं होता, लेकिन इस समय स्थिति यह है कि आज राष्ट्रपति-पद से अवकाश ग्रहण करते समय अमेरिकी जनता में उन के प्रति वह उत्साह नहीं पाया जाता जो उन के यह पद-ग्रहण करने के समय था. जब पहली बार उन्होंने कार्यभार सँभाला था तब अपदस्थ केनेडी अनुयायियों द्वारा प्राय: कहा जाता था कि वह राष्ट्रीय इतने नहीं जितने कि प्रांतीय हैं. उन का रहन-सहन, उन के मित्र तथा कार्यकलाप बिलकुल भी यह स्थिर नहीं करते थे और जो जानते नहीं थे उन पर यह जल्दी ही स्पष्ट हो गया कि जॉनसन प्रादेशिक रहने के बजाय राष्ट्रीय ही अधिक रहे.

श्री जॉनसन ने राष्ट्रपति के रूप में ख्याति अपने कार्यकाल के प्रारंभ में ही पा ली. नागरिक अधिकार विधेयक पारित कराने में उन्होंने अपने पूर्ववर्ती राष्ट्रपतियों की अपेक्षा अधिक कार्य किया. लोककल्याण योजनाओं में उन्होंने संसद्‌ से अधिकाधिक धन की व्यवस्था करायी.

वीएतनाम समस्या का समाधान राष्ट्रपति जॉनसन अपने शासन-काल में नहीं कर सके. अगर वीएतनाम में शांति स्थापित हो गयी अथवा इस समस्या का कोई समाधान निकल आया तो इतिहास में श्री जॉनसन को युद्ध में पराजित व्यक्ति के रूप में और श्री निक्सन को शांति स्थापित करने वाले व्यक्ति के रूप में याद किया जायेगा. यह कहना तो अनुचित होगा कि अमेरिका की वीएतनाम नीति श्री जॉनसन के प्रशासन-काल में निर्धारित की गयी, क्यों कि श्री रस्क, श्री बंडी और श्री रोस्तोव, जिन का संबंध मुख्यत: इस नीति से था, केनेडी के कार्यकाल के लोग थे. वीएतनाम के बारे में सैनिक सलाहकारों की संख्या बढ़ाने का नाटकीय निर्णय केनेडी प्रशासन का ही था, ठीक वैसे ही जैसे इस से पहले विदेशमंत्री श्री डलेस ने साम्यवाद का अंधाधुंध विरोध करने के लिए सैनिक तानाशाहों से भी संधि कर ली थी.

'ऐ बहादुर खिलाड़ी जवाब में तुम मत मारना' इस्राइल और अरब देशों की लड़ाई में संयुक्त-राष्ट्र की स्थिति पर पापास का व्यंग्य

साम्यवाद और सांप्रदायिकता

भारत की गत सप्ताह की घटनाओं में ब्रितानी पत्र **इकॉनॉमिस्ट** ने दक्षिण भारत में तंजौर के एक गाँव की दुर्घटना को उल्लेखनीय माना. इस दुर्घटना में कुल मिला कर ४३ व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी थी. अपनी लंबी टिप्पणी में ब्रितानी पत्र ने इस घटना का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला है कि आर्थिक और सांप्रदायिक कारणों से इसी तरह की घटनाओं की पुनरावृत्ति की संभावनाओं के प्रति सजग रहते हुए भी भारत सरकार ऐसी घटनाएँ न होने देने के लिए जल्दी ही कोई कारगर क़दम नहीं उठा सकती. टिप्पणी है—

'ठीक क्रिसमस के दिन दक्षिण भारत के एक गाँव तंजौर में गृह-युद्ध की एक घटना घटी, जिस में ४३ व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी. उन में अधिकांश निरपराध बालक और स्त्रियाँ थीं. विडंबना यह है कि यह दुखद घटना समृद्धि का परिणाम थी. नये बीजों की सहायता से धान की उपज बढ़ाने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई. फ़सल अच्छी होने से भूमिहीन खेतिहर अधिक मज़दूरी पाने के लिए ज़मींदारों से संघर्ष कर रहे थे. इस संघर्ष ने धीरे-धीरे राजनैतिक रुख ले लिया. कम्युनिस्ट, जो देश में अपनी स्थिति मज़बूत करने के लिए उत्सुक हैं, इसे एक अच्छा अवसर मान कर तंजौर के गाँवों की ओर मुड़े. ज़ाहिर है कि ज़मींदार कम्युनिस्टों को कोई ऐसा मौक़ा नहीं देना चाहते. ज़मींदार लोग कम्युनिस्टों से अव्वल तो कोई समझौता नहीं कर सकते और करेंगे भी तो उस का उद्देश्य यही मालूम होता है कि किसी न किसी तरह कम्युनिस्टों का प्रभाव खत्म किया जाये—इन ज़मींदारों का यह भी कहना था कि अगर एक जगह खेतिहर मज़दूरों की अधिक मज़दूरी का दावा मान लिया गया तो फिर दूसरी जगह भी मानना होगा और इस तरह एक सिलसिला ही शुरू हो जायेगा.

प्रेस जगत

पाकिस्तानी समाचारपत्र

पिछले कुछ महीनों से पाकिस्तान की राजनैतिक उथलपुथल के समाचार विश्व के समाचारपत्रों में प्रमुख स्थान पाते रहे हैं. कुछ विदेशी समाचारपत्रों के विशेष संवाददाता वहाँ जा कर स्थिति का अध्ययन करने के बाद अपने पत्रों को विवरण भेजते हैं, जिन से पाकिस्तान की वर्त्तमान स्थिति के अनेक पहलू सामने आते हैं. इस संदर्भ में पाकिस्तान के समाचारपत्रों में प्रकाशित विवरणों से वास्तविक स्थिति की जानकारी मिलने के साथ-साथ यह भी पता चल सकेगा कि पाकिस्तान के समाचारपत्र कहाँ तक स्वतंत्र हैं और वे तेज़ी से बदलती हुई स्थिति पर क्या राय रखते हैं. भले ही इस समीक्षा में पाकिस्तानी पत्रों की संपादकीय टिप्पणियाँ नहीं हैं, पर समाचारों को प्रस्तुत करने के ढंग और चयन से घटनाओं पर उन के मत की स्पष्ट छाप मिलती है.

एयर मार्शल असग़र ख़ाँ के बयानों को पाकिस्तानी समाचारपत्रों में व्यापक रूप से स्थान मिला. विरोध-पक्ष के पत्रों ने उन के बयानों और भाषणों के वे अंश प्रकाशित किये जिन में सरकार की कड़ी आलोचना की गयी थी.

पाकिस्तान ऑब्ज़र्वर ने असग़र ख़ाँ के बयान का यह अंश प्रकाशित किया 'वर्तमान-सरकार का दमन-चक्र आज की बुराइयों को दूर नहीं कर सकता.' **डॉन** ने लाहौर से प्राप्त यह समाचार प्रकाशित किया—'विरोधी पार्टियों के कार्यकर्त्ताओं के सामने भाषण करते हुए एयर मार्शल असग़र ख़ाँ ने कहा, आज हम देश में वैसी ही जागृति देख रहे हैं जैसी कि आज़ादी के वक़्त भारत के मुसलमानों में पायी गयी थी. उन्होंने कहा, आज ज़रूरत इस बात की है कि जम्हूरियत की तहरीक़ में हिस्सा लेने वाले लोग एक हो जायें और मक़सद हासिल करने में अपनी सारी ताक़त लगा दें. प्रेज़िडेंट अय्यूब ने दस साल से भी ज़्यादा वक़्त तक मुल्क की खिदमत कर ली. अब उन्हें खुद ही रिटायर होने का ऐलान कर देना चाहिए, जिस से कि और लोग आगे आयें. श्री असग़र ख़ाँ ने आगे कहा—हुक़मत करने वाली पार्टी की तरफ़ से आम तौर पर दलील दी जाती है कि मुखालिफ़ पार्टियों में कोई भी ऐसा नहीं है जो अय्यूब की जगह हुकूमत की बाग-डोर सँभाल ले, लेकिन मैं पूछता हूँ कि हुकूमत करने वाली पार्टी में क्या कोई ऐसा है ? वाक़या यह है कि इन्होंने आगे की लीडरशिप की बात सोची ही नहीं और यही इन की सब से बड़ी नाकामयाबी है. **पाकिस्तान टाइम्स** ने इस बारे में यह समाचार प्रकाशित किया—'पाकिस्तानी वायुसेना के भूतपूर्व कमांडर इन चीफ़ एयर मार्शल असग़र ख़ाँ ने अपने प्रांत के गृहसचिव को पत्र लिख कर जेल में श्री भुट्टो से एकांत में मिलने की माँग की है. यह पत्र समाचारपत्रों को प्रकाशन के लिए दे दिया गया था. पत्र में उन्होंने लिखा था कि मैंने ३ दिसंबर '६८ को टेलीफ़ोन पर गृहसचिव से कहा कि मुझे श्री भुट्टो से अकेले मिलने की इजाजत दी जाये, पर जवाब मिला कि एक पुलिस अफ़सर की मौजूदगी ज़रूरी है. श्री असग़र ख़ाँ ने कहा है :

'राष्ट्रपति अय्यूब यह कहते आ रहे हैं कि विरोध पक्ष को विकल्प के रूप में अपना राजनैतिक कार्यक्रम रखना चाहिए, लेकिन विरोध पक्ष के नेताओं को आपस में जब मिलने ही नहीं दिया जायेगा तो वे कार्यक्रम का विचार कैसे कर सकेंगे ? मेरा श्री भुट्टो से मिलने का यही मक़सद था और पुलिस अफ़सर के मौजूद होने से यह मक़सद पूरा नहीं होता'.

पिछले सप्ताह

(१६ जनवरी से २२ जनवरी, १९६९ तक)

देश

१६ जनवरी : तेलंगाना समर्थक भीड़ द्वारा गाड़ियों पर हमला.

१७ जनवरी : ओडिसा के दो भूतपूर्व कांग्रेसी मुख्यमंत्री बीजू पटनायक और बिरेन मित्र को १२ आरोपों में खन्ना आयोग द्वारा दोषी ठहराया जाना. अकाली-कम्युनिस्ट चुनाव-समझौता विफल.

१८ जनवरी : उस्मानिया के छात्रों पर क़ाबू पाने के लिए अश्रु गैस का प्रयोग.

१९ जनवरी : सीतापुर के पास संसपा नेता रामसेवक यादव दुर्घटनाग्रस्त. तेलंगाना की रक्षा के लिए सभी राजनैतिक पार्टियों में सहमति.

२० जनवरी : तेलंगाना के मामले को ले कर आंध्रप्रदेश में जगह-जगह आंदोलन. दिल्ली नगर निगम के लाल दरवाज़ा उप-चुनाव में कांग्रेस की विजय.

२१ जनवरी : अमेरिकी निग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग की पत्नी श्रीमती कोरेटा किंग का दिल्ली आगमन.

२२ जनवरी : बुल्गारिया के प्रधानमंत्री टोडोर जिवकोव का भारत पहुँचने पर भव्य स्वागत. हरयाणा में कांग्रेसी विधायक द्वारा दल-बदल.

विदेश

१६ जनवरी : रूस के दो अंतरिक्ष-यानों का चाँद के निकट मिलन. छात्रों को लेबनान की नयी सरकार अमान्य.

१७ जनवरी : रूस के दोनों अंतरिक्ष-यान सोयूज़-४ और सोयूज़-५ धरती पर सकुशल वापस. ढाका में एक जुलूस पर लाठी चार्ज. इस्राइल का युर्दान घाटी पर हमला.

१८ जनवरी : पेरिस में वीएतनाम शांति-वार्त्ता शुरू. तोक्यो विश्वविद्यालय में पुलिस और छात्रों में मुठभेड़.

१९ जनवरी : सेंसरशिप पुनः लागू करने के विरोध में आत्महत्या करने वाले चेक युवक का देहांत. छः मास के छात्र-कब्ज़े के बाद तोक्यो विश्वविद्यालय पर पुलिस का अधिकार. बोलीविया में आपत्कालीन स्थिति की घोषणा.

२० जनवरी : अमेरिका के ३७वें राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन द्वारा पद-ग्रहण.

२१ जनवरी : चेकोस्लोवाकिया में एक और युवक द्वारा आत्महत्या.

२२ जनवरी : रावलपिंडी में छात्रों पर गोलीबारी. निक्सन के मंत्रियों द्वारा शपथ-ग्रहण.

वायदों के सब्ज़ बाग़

भारतीय जनता को 'बहकाने' और 'फुसलाने' का जो सिलसिला बीस साल पहले कांग्रेस ने सत्ता के मोह में शुरू किया था वह सन् १९६९ में भी वैसा ही बना हुआ है. पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश और पंजाब में मध्यावधि चुनावों के अवसर पर विभिन्न राजनैतिक दलों ने अपने-अपने जो घोषणापत्र प्रकाशित किये है उन में बहकावे की इस प्रवृत्ति के दर्शन बहुत साफ़-साफ़ होते है. मजेदार बात यह है कि अखिल भारतीय दलों में से केवल संसपा, प्रसोपा और स्वतंत्र दल ने अपने घोषणापत्र केंद्रीय कार्यालय से निकाले हैं, शेष दलों की केवल प्रांतीय शाखाओं ने अपने घोषणापत्र प्रकाशित किये है और इन में से अधिसंख्य में राष्ट्रीय समस्याओं पर बहुत कम विचार किया गया है. उन की सारी कोशिश क्षेत्रीय जनता को आकर्षित करने के लिए थी, इसी लिए वायदों के सब्ज बाग़ राज्य विशेष की जनता को ध्यान मे रख कर घोषणापत्रों में उगाये गये हैं. देश में और प्रकारांतर से प्रदेशों की बहुत सारी समस्याएँ, यथा कृषि, शिक्षा, बेरोजगारी, ग़रीबी, उद्योग, भाषा-नीति और महंगाई, पिछड़ी जातियाँ, स्त्रियाँ, अल्पसंख्यक और सांप्रदायिक दंगे आदि को ध्यान में सभी ने रखा है. लेकिन इन में से किसी ने भी इन पर कोई बहुत ही स्पष्ट रुख नहीं अपनाया है, जिस से कि समस्याओं का वास्तविक निवारण हो सके. जनता का वोट सभी के लिए मूल्यवान हैं, इस लिए सभी की कोशिश यही है कि कुछ ऐसा कहा जाये कि जो एक तरफ़ किसी तरह के खतरे से बचाये और दूसरी तरफ़ जनता को अधिक से अधिक तीव्रता के साथ प्रभावित कर सके. वायदे भी पढते वक़्त बहुत अच्छे लगते है, लेकिन उन के कार्यक्रमों की रूप-रेखा स्पष्ट नहीं हैं. अस्पष्टता इन का विशेष गुण है. इन घोषणा-पत्रों की एक विशेषता यह भी है कि इन में अपने सामर्थ्य पर आत्मविश्वास कम किया गया है और प्राय: हर दल ने दूसरे सभी दलों की कमजोरियों को ही ज्यादा सफ़ाई के साथ उभारने की कोशिश की है. इन घोषणापत्रों का एक दिलचस्प पहलू यह है कि आज के भयंकर छात्र-असंतोष की स्थिति पर किसी ने टीका-टिप्पणी करने की ज़हमत नहीं उठायी. राजनैतिक दल छात्र-वर्ग की शक्ति को जानते हैं—जानते ही नहीं उन का राजनैतिक उपयोग करने में शुरू से ही बहुत सक्रिय रहे है. इसी लिए उन्होंने इस विषय पर कुछ कहने का खतरा मोल लेना ठीक नहीं समझा. घोषणापत्रों में केवल दक्षिणपंथियों और वामपंथियों की नीतियाँ स्पष्ट हैं. वामपंथी दल, विशेष कर कम्युनिस्टों ने देश की तबाही की सारी जिम्मेदारी कांग्रेस पर डाली है और कहा है कि सरकारी नीतियाँ पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों द्वारा निर्धारित होती रही हैं. उन्हें खत्म किया जायेगा; उद्योगों का राष्ट्रीयकरण होगा, जब कि दक्षिण-पंथी दल तथा स्वतंत्र और जनसंघ मिश्रित अर्थ-व्यवस्था में विश्वास करते है, हालाँकि विक्षोभ कांग्रेस के प्रति उन के मन में भी है.

कांग्रेस के प्रांतीय घोषणापत्रों में देश की वर्त्तमान दयनीय स्थिति को स्वीकार तो किया गया है, लेकिन इस की जिम्मेदारी सन् '६२ और '६७ के चीनी, पाकिस्तानी युद्ध को, अनावृष्टि और बाढ़ को दी गयी है. कांग्रेस इस के पहले के चुनावों में लोकतंत्र, धर्म-निरपेक्षता और समाजवाद का नारा देती थी, लेकिन इस बार उस ने स्थायी सरकार का नारा दिया है. उस के पास भी जनता को आश्वस्त करने के लिए कुछ खास नहीं है. अगर कुछ है तो बस इतना ही कि ग़ैर-कांग्रेसी दल या विभिन्न दलों के संयुक्त मोर्चे आपसी फूट का शिकार हुए हैं और वे स्थायी शासन नहीं दे सकते. कांग्रेस ने इस बार भी अपने इतिहास की और कांग्रेस की परंपराओं की दुहाई देते हुए महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल, मौलाना अबुलक़लाम आजाद आदि के पवित्र नामों का जनता को स्मरण कराया है. यों उस ने वायदा यह भी किया है कि अल्पसंख्यकों के लिए स्थायी कमीशन की नियुक्ति होगी, निष्पक्ष, स्वच्छ और सुदृढ़ शासन दिया जायेगा, भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान चलाया जायेगा, शिक्षा-व्यवस्था की खामियों को दूर किया जायेगा, कृषि की उन्नति के लिए निश्चित क़दम उठाये जायेंगे, हरिजनों की कठिनाइयों का निवारण होगा, श्रम-क़ानूनों का कड़ाई के साथ पालन होगा, न्याय और व्यवस्था की मर्यादा को सुरक्षित रखा जायेगा. इस तरह के वायदे कर के कांग्रेस ने यह तो स्वीकार किया है कि ऊपरी सारी चीज़ों में अव्यवस्था है और उसे वह अपने बीस साल के शासन में दूर नहीं कर सकी है.

संयुक्त समाजवादी पार्टी भोग और भ्रष्टाचार के युग को समाप्त कर के सादगी, कर्त्तव्य-पालन और पुनर्निर्माण का युग शुरू करना चाहती है. उस के घोषणापत्र में कुछ बातें बहुत ही साफ़ ढंग से कही गयी है: "कांग्रेस पार्टी में नीतिविहीनता, स्वार्थ और भ्रष्टाचार के रोग ने उस के मर्म को सड़ा डाला है. उस मे किसी चुनौती का सामना करने की क्षमता नहीं है. उस के शासन में अकाल नियमित रूप से पड़ता है. उस ने तीन सौ वर्ग मील ज़मीन पाकिस्तान को सौंपना मंजूर किया है. अंग्रेज़ी को अनिश्चित काल तक बनाये रखने का क़ानून पास कराया है, हरिजन, आदिवासी, विद्यार्थी, शिक्षक और सरकारी कर्मचारी उस के दमन और गोलीकांड का शिकार हुए है." यह दल, जहाँ तक संभव हो सकेगा, सभी ग़ैर-कांग्रेसी दलों से तालमेल की कोशिश करेगा. आग्रह ऐसी नीतियों पर होगा जिस से संस्थापित व्यवस्था बदले, समाज के दबे-पिछड़े समूह उठें, लोगों को एक नयी जिंदगी मिले और पुनर्निर्माण के रास्ते खुलें. उस ने वचन दिया है कि वह जिस सरकार में शामिल होगा वह शपथ लेने के तीस दिन के अंदर ही बेमुनाफ़े की खेती पर से लगान खत्म करने और सार्वजनिक जीवन से अंग्रेजी हटाने का प्रयत्न करेगा. उस के साथ ही निम्न लिखित कामों में से किसी एक को छह महीने के अंदर पूरा करने का भी आग्रह होगा. ये काम हैं: प्राथमिक शिक्षा में पूर्ण समानता, सभी स्तरों पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा, शहरी मकानों की मल्कियत और सरकारी जमीनों के दाम और किराये में कमी और मंत्रियों, सरकारी कर्मचारियों और सेठों के ग़लत तरीक़े से इकट्ठा किये धन की जाँच के लिए एक स्थायी आयोग. निजी खर्च पर १५००) की सीमा, हर परिवार को मकान बनाने भर की ज़मीन और परती ज़मीन को हरिजनों और भूमिहीनों में बाँटने की व्यवस्था. पुलिस पर लोकतांत्रिक अंकुश और समान कार्य के लिए समान वेतन का सिद्धांत. घोषणापत्र में कहा गया है कि इन सब में से छह महीने के अंदर कम से कम एक काम जरूर हो जाना चाहिए.

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी कृषि के विकास पर सर्वाधिक बल देगी, भूमि वितरण की व्यवस्था करेगी, नये क्षेत्रों में तीन वर्ष तक मुफ़्त सिंचाई की व्यवस्था और नयी जमीनों को खेती-योग्य बनाने के लिए भूमि-सेना का संगठन होगा. वह भी भूमिहीनों में जमीन बाँटने के लिए वचनबद्ध है. पूँजीपतियों की लूटखसोट पर अंकुश लगायेगी, क़ीमतों को संचालित करेगी, महँगाई कम की जायेगी, मजदूरों के अधिकारों की समुचित रक्षा की जायेगी. प्रजा समाजवादी पार्टी सार्वजनिक क्षेत्रों के उचित प्रबंध के लिए आर्थिक सिविल सर्विस का आयोजन करेगी. राष्ट्रीयकृत और सहकारी उद्योगों के प्रबंध में मजदूरों का सक्रिय सहयोग होगा. घोषणापत्र में अल्पसंख्यक समुदाय, अनुसूचित और पिछड़ी जातियों तथा स्त्रियों के विकास का भी वायदा किया गया है. शिक्षा के क्षेत्र में सुधार आवश्यक है. वह शिक्षा का नियोजन इस प्रकार करेगी

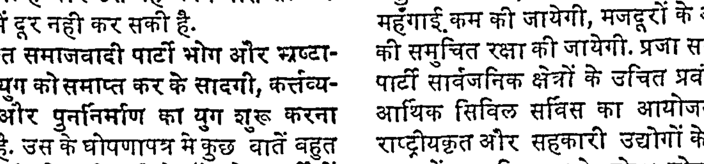

कांग्रेस, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, संसपा

जिस से लोकतांत्रिक चरित्र का निर्माण हो सके. घोषणा में यह स्वीकार किया गया है कि मुद्रा-स्फीति के कारण महँगाई बढ़ गयी है, पुरानी क़ीमतों का लौटना असंभव है, इस लिए उस ने वादा किया है कि १९६८ के महँगाई-भत्ते की रक़म वेतन के साथ जोड़ कर उस का स्थायी अंग बना दिया जायेगा. भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए सत्ता-संपन्न सतर्कता आयोग की नियुक्ति होगी. वृद्धावस्था के लिए आवश्यक पेंशन की व्यवस्था की जायेगी.

भारतीय क्रांति दल की दृष्टि में प्रत्येक क्षेत्र में निराशा का वातावरण व्याप्त है. देश का चित्र काला और निपट है और इस के लिए जनता नहीं राजनैतिक नेतृत्व दोषी है. दल का ख़याल है कि जनता को यथार्थ और वास्तविकता की राह पर लाने की आवश्यकता है. विश्व को माया-जाल मानने के भ्रम ने जनता को भाग्यवादी बना डाला है. क्रांतिदल यह बताने की कोशिश करेगा कि विश्व एक वास्तविक सत्ता है और मनुष्य ही स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है. इस दल के घोषणापत्र में सब से अधिक आक्रोश प्रशासन पर व्यक्त किया गया है और कहा गया है कि यदि यह दल सत्ता में आया तो स्वच्छ और कुशल प्रशासन देगा, जिस में विलंब, अपव्यय और भ्रष्टाचार को ख़त्म करने की सख़्ती के साथ कोशिश की जायेगी. कृषि को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए कहा गया है कि क्यों कि क्षेत्रफल की वृद्धि असंभव है इस लिए पैदावार को ही बढ़ाने की सारी कोशिश की जायेगी. उस के लिए भूमि में अधिक पूँजी लगाने और नयी वैज्ञानिक जानकारियों के माध्यम से विकासशील खेती की योजना क्रियान्वित की जायेगी. भारतीय क्रांति दल सहकारिता के लाभ में तो विश्वास करता है, लेकिन उसे सरकारी विभाग के उपयुक्त विषय नहीं मानता. वह सहकारी और औद्योगिक समितियों के पक्ष में तो है, लेकिन सहकारी खेती और सहकारी उद्योग के पक्ष में नहीं. इस दल के घोषणापत्र में भी पिछड़ी जातियों से ले कर बेरोज़गारी और महँगाई तक के विचार व्यक्त किये गये हैं, लेकिन जो आश्वासन दिये गये हैं वे बहुत व्यावहारिक नहीं लगते. दल तोड़-फोड़ और विघटनकारी प्रवृत्तियों का सख़्ती से दमन करने में विश्वास करता है. वह आमरण अनशन, धरना, घेराव आदि में विश्वास नहीं करता. इस लिए उस का कोई महत्त्व उस के लिए नहीं है. कृषि को प्राथमिकता देने के साथ साथ वह छोटे उद्योगों पर बल देता है और उसे ही आर्थिक विकास की रीढ़ मानता है. छोटे उद्योगों वाली अर्थ-व्यवस्था में मालिक-मज़दूर विवाद की गुंजाइश कम रहेगी. औद्योगिक लागत को कम कर के महँगाई पर नियंत्रण किया जा सकेगा, रोज़गार के अवसर बढ़ाये जायेंगे. वह वर्तमान खाद्य-क्षेत्रों को तोड़ कर पूरे देश को बाज़ार की एक इकाई का रूप देने के पक्ष में है. अनुसूचित और पिछड़ी जातियों के लिए भी दल के पास योजनाएँ हैं. स्वास्थ्य की

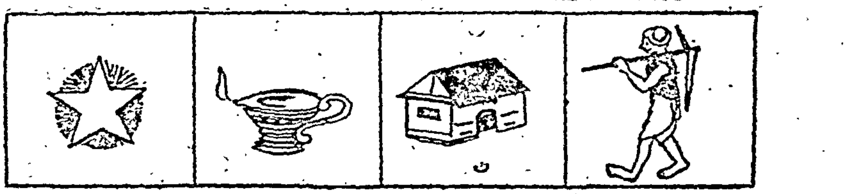

स्वतंत्र, जनसंघ, प्रसोपा, भारतीय क्रांतिदल

दिशा में वह गाँवों में स्त्रियों के लिए सार्वजनिक शौचालय खुलवाने की व्यवस्था करेगा, गाँवों की सफ़ाई पर ध्यान दिया जायेगा और बिना गैस के चूल्हों की भी व्यवस्था की जायेगी, परिवार-नियोजन और नशाबंदी भी उस की दृष्टि में आवश्यक हैं. भाषा के मामले में क्रांति दल की नीति बहुत स्पष्ट है. राज्यों में वह उर्दू के विकास में योग अवश्य देगा, लेकिन उसे दूसरी भाषा के रूप में स्वीकार नहीं करेगा. वैदेशिक नीति में राष्ट्रीय हित पर विशेष बल देने की बात मंज़ूर की गयी है. दल विद्यालयों में राजनीति के प्रवेश को ख़तरनाक मानता है. शिक्षा संस्थाएँ सरस्वती का मंदिर हैं, अतः उन का उपयोग केवल स्वतंत्र अध्ययन, अनुसंधान और विवेचन के रूप में होगा. घोषणापत्र में स्वचालित यंत्रों तथा बिजली से चलने वाले संगणकों के प्रयोग का भी विरोध है. उस का प्रयोग केवल ऐसी ही दिशा में संभव होगा जहाँ शीघ्रता और अशुद्धता अनिवार्य होगी.

स्वतंत्र दल यह मान कर चलता है कि कांग्रेस की राजनैतिक, आर्थिक, लोकतांत्रिक और योजनात्मक सभी नीतियाँ दोषपूर्ण रही हैं और उन में परिवर्तन और संशोधन की आवश्यकता है. उस की वजह से राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विघटन पैदा हुए हैं. देश को इस विघटन और बर्बादी से बचाने के लिए स्वतंत्र दल की भी छटपटाहट काफ़ी तीखी है. वह **ईश्वर निर्मित धर्म की सत्ता** में विश्वास करता है और आत्मा की आवाज़ को वह महत्त्वपूर्ण मानता है. उस के घोषणापत्र में विदेश-नीति से ले कर देश की विभिन्न समस्याओं पर चर्चा की गयी है और स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि विदेश-नीति में सैनिक समझौता अनिवार्य है, तटस्थता की नीति का कोई मतलब नहीं है. दल उद्योग के क्षेत्र में संतुलित विकास के पक्ष में है, उत्पादन के लिए श्रम-प्रधान उद्योगों को प्राथमिकता दी गयी है. पूँजीवादी उद्योगों को उस के बाद रखा गया है. घाटे के बजट की समाप्ति पर भी बल दिया गया है. यह दल किसी भी तरह के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में नहीं है, यानी उस के अनुसार भी मिश्रित अर्थ-व्यवस्था ही देश की प्रगति में सहायक हो सकती है. यों वह उद्योगों में एकाधिकार के पक्ष में नहीं है. विदेशी पूँजी की फ़िज़ूलख़र्ची से वह क्षुब्ध ज़रूर है लेकिन उस के साथ ही वह यह मान कर चलता है कि विदेशों की इस पूँजी का उपयोग उद्योग-धंधों के लिए होना चाहिए, जिस में लगाने वाला जोख़िम उठाने के लिए स्वयं तैयार हो. मानव-मूल्यों की समझदारी और राष्ट्रीय एकता के बोध के लिए उस ने आध्यात्मिक विषयों की शिक्षा पर बल दिया है और कहा है कि विज्ञान तथा प्रविधि की शिक्षा के साथ-साथ आध्यात्मिक शिक्षा भी दी जानी चाहिए. घोषणापत्र के अनुसार इस दल के कार्यक्रम बहुत ठोस हैं. वे कार्यक्रम 'आत्मविकास के मूल सिद्धांत पर आधारित हैं और आत्मविकास होने पर ही चतुर्दिक विकास होता है". गांधीवादी सिद्धांतों की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए धर्म के शासन को सर्वोच्च स्थान दिया गया है, क्यों कि उस के अनुसार धर्म का शासन भी आत्मिक और बौद्धिक समृद्धि का सच्चा आधार है.

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा-पत्रों में सब से ज़्यादा रोष सरकार के प्रति है और सर्वाधिक स्नेह पिछड़े तबके के लोगों के लिए है. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का आरोप है कि कांग्रेस ने पूँजीपतियों के साथ समझौता कर के देश को नवउपनिवेशवाद की मंजिल की तरफ़ बढ़ा दिया १९४८ में देश में ३०० करोड़ रुपये की विदेशी पूँजी थी, आज वह बढ़ कर १००० करोड़ रुपया हो गयी . उद्योग के क्षेत्र में बैंकों आदि के मुनाफ़ों पर व्यक्तिगत आय की अधिकतम सीमा निर्धारित कर के अधिक आय को विकास ऋण के रूप में ले कर सार्वजनिक क्षेत्र में लगाने की बात कही गयी है. इस में जीवन बीमा निगम और औद्योगिक विकास निगम की पूँजी को भी सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में लगाने पर बल दिया गया है. किसानों और मज़दूरों की दयनीय स्थिति पर पारंपरिक ढंग से चिंता व्यक्त की गयी है और उस के सुधार का वायदा किया गया है. नागरिक के मूल अधिकारों पर विशेष बल देते हुए कहा गया है कि कांग्रेस ने छात्रों के प्रति दमन की नीति अपनायी है और विश्वविद्यालयों में सांप्रदायिक तत्वों को प्रश्रय दिया है. मौलिक अधिकारों की स्थापना के सिलसिले में कहा गया है कि 'प्रिवेंटिव डिटेंशन एक्ट', 'आवश्यक सेवा संरक्षण अधिनियम' 'ग़ैर-क़ानूनी कार्रवाई निरोधक अधिनियम' तथा 'बैंक अधिनियम' की धारा ३६ ए डी को रद्द किया जाना चाहिए. 'ताज़ीराते हिंद' की कुछ धाराओं में भी संशोधन करने की माँग है ताकि उन का प्रयोग राजनैतिक कार्यकर्ताओं के विरुद्ध न हो सके. भाषा की समस्या को ले कर इस दल की मान्यता है कि देश के सभी क्षेत्रों में अंग्रेज़ी को हटा कर राज्य की भाषाओं को शिक्षा और प्रसारण का माध्यम बनाया जाये. किसी

एक भाषा को अकेले अंग्रेज़ी का स्थान देने की माँग का यह दल विरोध करता है. घोषणा-पत्र में इस बात की कोई चर्चा नहीं है कि उस स्थिति में संपर्क की कौन सी भाषा होगी. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के घोषणा-पत्र में कांग्रेस के विकल्प के रूप में वामपक्षी और जनवादी दलों की संयुक्त सरकार बनाने की परिकल्पना की गयी है. इस दल के घोषणा-पत्र में अपने कार्य-क्रमों पर कम और जनसंघ, कांग्रेस तथा अन्य राजनैतिक दलों पर छींटाकशी अधिक की गयी है. और महज़ उन की कमज़ोरियों को उभार कर सामने लाया गया है. वैसे घोषणा-पत्र में कृषि और ग्रामीण जीवन के विकास, कर्मचारियों और शिक्षकों के साथ न्याय, उद्योग धंधों की बढ़ोतरी, शिक्षा प्रणाली में सुधार, चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं आवास-सुविधाओं के विस्तार तथा आदिवासियों को क्षेत्रीय स्वशासन देने के अधिकार की माँग की गयी है. हरिजनों और पिछड़ी जातियों के कल्याण के लिए भी इस दल के पास कई कार्यक्रम हैं. इन में भूमि-सुधार के कार्यक्रमों को शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने, पिछड़ी जनता को रहने और जोतने के लिए ज़मीन दिलाने, काम के लिए उचित मज़दूरी और महाजनों के चंगुल से उन्हें छुड़ाने, बेगार और गुलामी से उन्हें मुक्ति दिलाने आदि की बात कही गयी है.

भारतीय जनसंघ ने भी अपने प्रादेशिक घोषणा-पत्र ही प्रकाशित किये हैं. जनसंघ भी मिश्रित अर्थव्यवस्था में विश्वास तथा आर्थिक क्षेत्र में एकाधिकार की प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाने की बात करता है. हालांकि उसने आधारभूत उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की बात कही है. घोषणा-पत्र के अनुसार यह दल भारतीय संस्कृति और मर्यादा के आधार पर ही देश का राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक निर्माण करना चाहता है. एकात्मक शासन की प्रतिष्ठा और राजनैतिक तथा आर्थिक सत्ता का विकेंद्रीकरण भी उस के वायदों में है. अखंड भारत की स्थापना, कश्मीर का पूर्ण विलय, चीन और पाकिस्तान द्वारा अधिकृत भू-भागों की वापसी, आधुनिकतम सैनिक संगठन, जोत की हदबंदी और भूमि के पुर्नवितरण, छोटे यंत्रचालित ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन, गोरक्षा और गो-संवर्द्धन, नि.शुल्क प्राथमिक शिक्षा और न्याय-पद्धति को भारतीय प्रकृति और परिस्थितियों के अनुरूप ढालने की बात कही गयी है. भाषा के प्रश्न पर जनसंघ की भी नीति क्षेत्रीय भाषाओं को प्रोत्साहन तथा संपर्क-भाषा के रूप में हिंदी के प्रयोग पर बल दिया गया है. घोषणा-पत्र में किसानों, मज़दूरों से ले कर सरकारी कर्मचारियों, पिछड़ी जातियों, स्त्रियों आदि की उन्नति और विकास की बातें अन्य दलों की ही तरह आकर्षक ढंग से कही गयी हैं. उस के घोषणा पत्रों में विभिन्न राज्यों की स्थानीय समस्याओं पर भी ज़ोरदार ढंग से दृष्टि केंद्रित की गयी है और उन के सुधार के वायदे किये गये हैं.

चरचे और चरखे

बड़प्पन और वेतन

अभी हाल के समाचार से कि अमेरिका के राष्ट्रपति का वेतन राष्ट्रपति श्री निक्सन के कार्य-भार ग्रहण करने के बाद से दुगुना कर दिया गया है, जो लोग यह सोचते होंगे कि संसार के सब से समृद्ध देश के राष्ट्रपति का वेतन सब से अधिक होगा वह ग़लती करेंगे. सचाई यह नहीं है. उदाहरण के लिए श्री निक्सन को, जिन की सरकार का शासन ३५ लाख वर्गमील के प्रदेश पर है, प्रति वर्ष ८० हज़ार पाउंड का भत्ता मिलेगा जब कि लक्ज़ेमबर्ग के ग्रैंड ड्यूक, जिन का शासन कुल एक हज़ार वर्गमील के प्रदेश पर है, अमेरिका के नये राष्ट्रपति से २७ हज़ार पाउंड अधिक पाते हैं. भौगोलिक दृष्टि से अन्य कई छोटे-छोटे देश अपने राज्याध्यक्षों को अमेरिकियों से अधिक भत्ता देते हैं. इस सूची में सब से ऊपर हालैंड की महारानी जूलियाना का नाम आता है जिन्हें प्रति वर्ष ५ लाख पाउंड प्राप्त होता है. यह राशि ब्रिटेन की महारानी एलिज़ाबेथ को मिलने वाली राशि से भी अधिक है. महारानी एलिज़ाबेथ का सरकारी भत्ता ४ लाख, ७५ हज़ार पाउंड प्रति वर्ष है.

हालैंड के बगल का ही छोटा सा देश बेल्जियम है जो अपने सम्राट् को साढ़े ३ लाख पाउंड देता है जब कि स्वीडेन, हालैंड और नार्वे के सम्राटों को ढाई-ढाई लाख पाउंड की मोटी रक़म मिलती है. यहाँ तक कि विकासशील देश जापान, जो आर्थिक दृष्टि से दुनिया में सब से तेज़ी से प्रगति कर रहा है, इन यूरोपीय सम्राटों का मुक़ाबला नहीं कर सकता. सम्राट् हिरोहितो को केवल एक लाख पाउंड प्रति वर्ष मिलता है. लेकिन इन तमाम संसार प्रसिद्ध लोगों का वेतन भी जापान के एक दवा बनाने वाले केमिस्ट के मुक़ाबले में कहीं कम है जिसे प्रति वर्ष ७ लाख ९० हज़ार पाउंड मिलते हैं. और यह रक़म भी बहुत छोटी है एक प्रसिद्ध अस्वीकृत शासक की आमदनी से जिसे अपराधों का बेताज का बादशाह कहा जाता है और जो शिकागो का संसार प्रसिद्ध गुंडा है. उस का नाम अल कापोन है. कहा जाता है कि १९२७ में अवैध शराब बेच कर ही उस ने ४३ करोड़ पाउंड पैदा किया था.

चढ़ जा सूली पर

लंदन में हैम्स्टीड हीथ में एक आदमी को सूली पर कील जड़ कर लटका दिया गया. अदालत की मेज़ पर ६ इंच की कीलें पड़ी हुई हैं जिन्हें उस की हथेली में जड़ दिया गया था. सलीब पर लटकाये जाने के पूर्व उस ने यह कहा था कि दो हज़ार वर्षों तक इतना बड़ा इंद्रजाल किसी ने नहीं किया होगा. उस ने यह भी कहा था कि 'इस करतब के बाद मैं ईश्वर की भाँति रहूँगा और अपने समस्त जीवन में संसार का ख्यातिप्राप्त व्यक्ति समझा जाऊँगा'. अदालत में २८ वर्षीय डेसमांड पालीडोर नामक व्यक्ति पर मुक़द्दमा चलाया जा रहा है जिस ने इस व्यक्ति के हाथों में, जिस का नाम **जोसेफ़ डी हैवीलैंड** है, कीलें ठोंकी थीं. उस पर एक व्यक्ति को शारीरिक क्षति पहुँचाने का अभियोग है. पालीडोर ने अपने बचाव में कहा है कि हैवीलैंड ने उस से कहा था "ईसामसीह के सूली चढ़ाये जाने के बाद से दो हज़ार वर्ष के भीतर ही एक और व्यक्ति भी शूली पर चढ़ाया जायेगा, उसे सारी दुनिया में लोग जानेंगे, समाचारपत्रों में उस का चित्र छपेगा वह व्यक्ति मैं हूँ. और मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे सूली पर पर चढ़ा दो. इस से मुझे न तो कोई तकलीफ़ होगी और न ही खून निकलेगा', सबूत के लिए डी हैवीलैंड ने एक जलती हुई गिसरेट अपने शरीर पर रख दी और दिखाया कि उस का मांस कहीं नहीं जला है. पालीडोर ने यह भी कहा है कि हैवीलैंड ने अपने हाथ के आर-पार सुई निकाल कर दिखाया था जिस से न तो कोई घाव हुआ और न ही उसे कोई तकलीफ़ हुई. दो और लोगों पर भी, जो सलीब की शहतीरें ढो कर ले गये थे, मुक़द्दमा चल रहा है. उन दोनों शहतीरों को जोड़ कर हैवीलैंड ने सलीब का आकार दिया और उसे पेड़ के सहारे खड़ा कर के बाँध दिया. पालीडोर का कहना है कि फिर हम लोगों ने उस के हाथों में कीलें ठोंक दीं. एक रहस्य से हम घिरे हुए थे. अदालत में बयान देते हुए डी हैवीलैंड ने कहा कि 'मेरा वास्तविक मन मेरे शरीर में नहीं था. सलीब पर भी मैं होश में था और जो लोग उपस्थित थे उन पर मेरा सम्मोहन था. उन में अपनी कोई इच्छा शक्ति नहीं रह गयी थी.' डी हैवीलैंड ने यह भी बताया कि सूली पर चढ़ने के पूर्व उस ने कैंटरबरी के आर्चबिशप को एक पत्र लिखा था जिस में पहले से ही उन्हें सूचित कर दिया गया था कि दैवी शक्ति के आदेश पर मैं शूली पर चढ़ने जा रहा हूँ. डी हैवीलैंड ने अदालत को बताया कि वह जादू का तमाशा दिखाया करता था और उस ने अपने हाथ में सुई चुभाने से ले कर सिगरेट जलाने और पीठ में छुरा भोंकने तक के करतब दिखाये हैं. अस्पताल में जाँच पर मालूम हुआ कि उस के दोनों हाथों में ढाई-ढाई इंच के घाव थे, लेकिन उस की मानसिक स्थिति अच्छी थी और उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं था.

राजधानी से : विशेष रिपोर्ट

पाकिस्तान में जनजागरण

अब यह बिलकुल स्पष्ट हो चुका है कि पाकिस्तान में जो हो रहा है वह निरे अनुशासन-हीन उपद्रवियों का उत्पात नहीं है, पाकिस्तान की राष्ट्रीय अभिव्यक्ति है. परंतु कराची, ढाका और लाहौर में सेना ने आ कर शांति स्थापित करने का ज़िम्मा लिया, यह समाचार नयी दिल्ली के राजनैतिक क्षेत्रों में कुछ बहुत प्रसन्नता का कारण नहीं बना है. अय्यूब ख़ाँ की कठिनाइयों से वर्तमान केंद्र सरकार कोई राजनैतिक लाभ उठा सकेगी इस की उम्मीद भी उस से नहीं करनी चाहिए.

दिल्ली के राजनीतिकों ने अभी शायद पाकिस्तान की घटना को सतही तौर पर ही देखा है. उन्होंने पाकिस्तान और भारत के हाल के आंदोलनों में, जिन्हें वे उपद्रव कहना पसंद करते हैं, एक समानता लक्ष्य नहीं की है. वह यह है कि दोनों देशों में, जो कि वास्तव में एक ही देश के दो हिस्से हैं, राजनैतिक नेताओं का नेतृत्व निकम्मेपन की पराकाष्ठा पर पहुँच गया है और वे आंदोलनों में कहीं हैं ही नहीं. पाकिस्तान में महँगाई से दबा मध्य वर्ग, विचारों की घुटन में घुटता विद्यार्थी और अध्यापक और अभिव्यक्ति की परतंत्रता में छटपटाता पत्रकार पाकिस्तान के जन जागरण का अगुवा है. अगर वहाँ वर्षों के तानाशाही के दमन के प्रतिरोध में जनतांत्रिक शक्तियाँ अर्थात् ये वर्ग जिन का उल्लेख किया गया है और आगे बढ़ीं तो शायद नरम नेता असग़र ख़ाँ का नेतृत्व भी इन्हें अपूर्ण जान पड़ने लगे.

भारत में हाल के आंदोलनों की भी विशेषता यह रही है कि राजनैतिक दलों ने उन का लाभ उठाने की कोशिश भले की हो लेकिन आंदोलन की आत्मा और देह मूलतः राजनैतिक दलों से बिल्कुल अलग रही है. अध्यापकों के हाल के आंदोलन में १२ हज़ार व्यक्ति जेल गये. इतने सत्याग्रही तैयार करने की सामर्थ्य देश के किसी राजनैतिक दल में है ऐसा मानना कोरी कल्पना होगी. सरकारी कर्मचारियों के दो-तीन पिछले आंदोलनों से भी यही तथ्य उभरता है कि उन का संयोजन खुद कर्मचारियों ने ही किया था. राजनैतिक दलों को बाद में उन के लिए कुछ समझौते करने या कराने की चिंता हुई. ज़ाहिर है कि आंदोलनों की मूल शक्ति जन से उत्पन्न होने की प्रक्रिया दोनों देशों में चल पड़ी है.

इस के आगे यदि कुछ भी सोचा जा सकता है तो वह भारत-पाकिस्तान दोनों के उन नेताओं के लिए प्रीतिकर नहीं हो सकता जो दोनों में अलगाव बनाये रख कर दोनों जगह शासन करते रहना चाहते हैं. एक समय पाकिस्तान के ख़तरे का प्रचार भारत के लोगों को घबरा कर एकत्र हो जाने पर आसानी से विवश कर दिया करता था. भारत-पाक संघर्ष के बाद अब भारतीयों के मन से उस भय का भ्रम भी अंशतः निकल चुका है. यह शिकायत भी कि पाकिस्तान ताशकंद समझौते पर अमल नहीं करता जब कि भारत करता है. विश्व-शक्तियों के नये संतुलन के चलते दम तोड़ चुकी है. उधर पाकिस्तान में भी अय्यूब ख़ाँ ने विदेशी ख़तरे का नाम ले कर अपनी जनता को भेड़-बकरियों की तरह एक झंडे के नीचे जमा करने में इतनी बड़ी सफलता नहीं पायी है कि उस के आगे वहाँ के आंदोलन निरर्थक जान पड़ें. और यह तो उल्लेखनीय है ही कि अय्यूब के विरोधी नेता कश्मीर और भारत-पाकिस्तान संबंधों को ले कर जनता का मन बनाने का कोई प्रयत्न नहीं कर रहे हैं. उन के लिए वह बाद की बात मालूम होती है—प्राथमिक उन के लिए अय्यूब को हटाना ही है जिन के शासन काल में भारत और पाकिस्तान के संघर्ष में पाकिस्तान ने मुँह की खायी थी.

वाणिज्य का विस्तार

विश्व-राजधानियों में भारत की कम-से-कम एक चीज़ अब अपरिचित नहीं रह गयी है. वह है एयर इंडिया का 'महाराजा'. एयर इंडिया की लोकप्रियता ने भारत सरकार का हौसला सचमुच ही बढ़ाया और भारत की गिरी हुई अर्थव्यवस्था को सँभालने के लिए भारत सरकार ने विदेशों से वाणिज्य के अनेक कार्यक्रम बनाये हैं. नये वर्ष में ईरान के शाह और फिर बुल्गारिया के प्रधानमंत्री की भारत यात्रा इसी कार्यक्रम का अंग थी. ईरान और भारत के बीच व्यापार की स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं थी. ईरान एशिया के अपेक्षाकृत समृद्ध देशों में से है और पिछले दस वर्षों में ईरान में प्रति व्यक्ति आय ८ गुनी बढ़ी है ईरान एशिया का दूसरा जापान बनना चाहता है. उस की इस आकांक्षा के अनुरूप ही ईरान के शाह ने अपनी विदेश-नीति में परिवर्तन का फ़ैसला किया. भारत के साथ संबंध बढ़ाने की उत्सुकता इस आकांक्षा की एक अभिव्यक्ति थी. भारत सरकार ने इस आकांक्षा का स्वागत किया और ईरान और भारत की वाणिज्य संभावनाओं पर विशेषज्ञ स्तर पर परामर्श चल रहा है.

बुल्गारिया के प्रधानमंत्री ने नयी दिल्ली में स्पष्ट शब्दों में कहा कि वह भारत के साथ

दिनमान
समाचार - साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — २ फ़रवरी, १९६९
अंक ५ — १३ माघ, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट	११
*	
मत और सम्मत	३
पत्रकार-संसद्	६
पिछला सप्ताह	७
चरचे और चरखे	१०
परचून	४६
*	
राष्ट्रीय समाचार	१३
प्रदेशों के समाचार	१७
विश्व के समाचार	३४
समाचार-भूमि : बुलगारिया	३२
खेल और खिलाड़ी : क्रिकेट; नेहरू हॉकी	३०
*	
घोषणा-पत्र : वायदों के सब्जबाग	८
मध्यावधि	२०
भेंट-वार्ता : कोरेटा किंग	३९
शिक्षा : अंग्रेज़ी	४०
नृत्य : बिरजू महाराज	४१
रंगमंच : नाना साहेब चापेकर	४२
साहित्य : समीक्षा के सिद्धांत	४२
किताबें	४३
कला : रामचंद्रन; भूषण कौल; रामेश्वर बरूटा, रथीन मित्र; उत्तरप्रदेश की कला	४४

*

आवरण-चित्र : प्रतापचंद्र चंदर निजलिंगप्पा को हार पहनाते हुए

*

संपादक

सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान

टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

प्रश्न चर्चा—५३

कल्पनाशील सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि केंद्रीय-पर्यटन विभाग जिज्ञासु विदेशी सैलानियों को भारत खींच लाने के लिए होली के हुड़दंग का विज्ञापन करना चाहता है.

प्रश्न यह है कि इस विज्ञापन का सांस्कृतिक मसविदा ३०० शब्दों के भीतर लिखा जाये तो वह क्या होना चाहिए.

सब से अधिक सटीक और सरस उत्तर पर ५०) पुरस्कार दिया जायेगा. उत्तर **'प्रश्न चर्चा-५३ दिनमान, ७ बहादुर शाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली-१** के पते पर १७ फ़रवरी ६९ तक आ जाना चाहिए. पुरस्कार-घोषणा २ मार्च के **होली अंक** में की जायेगी.

अधिक से अधिक व्यापार करना चाहते हैं. भारत सरकार ने श्री ज्विकोफ की इस घोषणा का स्वागत किया है और बुल्गारिया के साथ व्यापार के संबंध में विशेषज्ञ कार्यक्रम तैयार कर रहे है. श्री ज्विकोफ़ की इस घोषणा ने भारत सरकार का हौसला और भी बढ़ाया कि भारत के साथ कृषि विषयक चीज़ों का व्यापार बड़े पैमाने पर करेगा. कृषि के मामले में बुल्गारिया अत्यंत उन्नत देश है और भारत की खेतिहर आवश्यकताओं की इस से कुछ हद तक पूर्ति हो सकेगी.

भारत सरकार वाणिज्य के मामले में अब तक बहुत हद तक पश्चिमी दुनिया पर आश्रित रही है. अनेक वर्षों तक उस का व्यापार उन क्षेत्रों से होता रहा जहाँ उसे भुगतान विदेशी मुद्रा में करना पड़ा है. पिछले कुछ अर्से में भारत सरकार का ध्यान उन क्षेत्रों में गया जहाँ विनिमय स्वदेशी मुद्रा में संभव है. पूर्वी यूरोप में भारत को यह सुविधा प्राप्त होने के कारण अब भारत सरकार की नयी वाणिज्य नीति के अनुसार पूर्वी यूरोप के देशों से अधिक व्यापार किया जायेगा. बुल्गारिया के साथ व्यापार समझौता इसी आकांक्षा की दिशा में किया गया है. पिछले हफ्ते नयी दिल्ली में एक और व्यापार समझौता हुआ जिस के अनुसार भारत रुपयों में भुगतान करेगा. यह समझौता भारत और जर्मन डिमाक्रेटिक रिपब्लिक के बीच हुआ. इस समझौते के मुताबिक भारत जर्मनी से पोटाश और पोटेशियम क्लोराइड तथा रसायन की अन्य वस्तुएँ, छापाखाने की मशीनें, विद्युत उत्पादन, अन्य उद्योगों की मशीनरी, खेती की मशीनें, ट्रैक्टर इत्यादि, इस्पात की चीजें और कच्ची फ़िल्म का आयात करेगा तथा जूट, सूती वस्त्र, तंबाकू, अदरक, काफ़ी और चाय, चमड़े की चीजें, सिलाई और बुनाई की मशीनें, सूती वस्त्र की मशीनें, कच्चा लोहा इत्यादि का निर्यात करेगा. अब तक पूर्वी जर्मनी के साथ भारत का कोई दीर्घकालीन वाणिज्य समझौता नहीं था. इस समझौते के मुताबिक १९७० से १९७५ तक की अवधि में भारत और पूर्वी जर्मनी के बीच के व्यापार का स्तर प्रतिवर्ष बढ़ता जायेगा. पूर्वी जर्मनी के वाणिज्य प्रवक्ता हेर सॉक्स की नयी दिल्ली में की गयी घोषणा के मुताबिक १० वर्षों में भारत और पूर्व जर्मनी के व्यापार में ३.५ गुना वृद्धि हुई है. लेकिन यह वृद्धि पर्याप्त नहीं है क्यों कि पूर्वी जर्मनी का व्यापार सारे संसार के साथ हर साल बढ़ता जा रहा है जब कि भारत के साथ उस के व्यापार का प्रतिशत वैसे का वैसा ही बना हुआ है. श्री सॉक्स का दावा था कि भारत सरकार को वाणिज्य प्रतिशत बढ़ाना चाहिए ताकि भारतीय वाणिज्य और भी समृद्ध हो सके.

वस्तु स्थिति यह है कि अब तक भारत का वैदेशिक वाणिज्य असंतुलित रहा है. मसलन नये समझौते के मुताबिक भारत पूर्वी जर्मनी को जो निर्यात करेगा उस से किया गया आयात दूना होगा. यह स्थिति केवल पूर्वी जर्मनी के साथ किये गये समझौते की नहीं बल्कि अधिकतर देशों के साथ हुए समझौतों की है. शायद इस का एक कारण यह है कि अब तक निर्यात की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया. जैसे-जैसे विदेशी मुद्रा का संकट गहरा होता गया और भारतीय अर्थव्यवस्था लड़खड़ाती गयी वैसे-वैसे निर्यात की ओर भारत सरकार का ध्यान गया. १९६६ और '६७ की तुलना में १९६८ में भारत के निर्यात में वृद्धि हुई है और भारत सरकार को यह आशा है कि १९६९ और ७० में निर्यात का प्रतिशत बढ़ाने में वह समर्थ हो सकेगी. वाणिज्य मंत्रालय इस दिशा में विशेष रूप से सक्रिय है और प्रधानमंत्री ने इस संबंध में आवश्यक आदेश दिया है. भारत सरकार के विशेषज्ञों का मत है कि प्रयत्न करने से अगले १० वर्षों में भारत का निर्यात लगभग तिगुना हो सकता है और आयात निर्यात का संतुलन कायम करने में काफ़ी तरक्की की जा सकती है. जहाँ तक यंत्र और मशीनों का प्रश्न है, भारत पश्चिमी देशों को निर्यात करने की स्थिति में बहुत अधिक नहीं है क्यों कि ये देश टेकनालाजी की दृष्टि से बहुत समृद्ध हैं और भारतीय मशीनों का आयात इन देशों के लिए बहुत फ़ायदेमंद साबित नहीं होगा. लेकिन इस्पात और उस से बनी हुई चीजों का निर्यात अफ्रीका और दक्षिण पूर्वेशिया के देशों में आसानी से किया जा सकता है. अगर अब तक इन देशों में भारत ने अपनी मंडी तलाश नहीं की तो यह इन देशों का कसूर नहीं है. पिछले महीने एशियाई देशों में नियुक्त भारतीय राजदूतों के नयी दिल्ली सम्मेलन में वाणिज्य का प्रश्न मुखर हुआ था और इन राजदूतों की धारणा थी कि भारत को एशियाई देशों में अच्छी-खासी मंडी सुलभ हो सकती है, बशर्ते भारतीय वाणिज्य द्विपक्षीय हो अर्थात् उदार हो.

विदेशी मुद्रा के संकट को हल करने के लिए भारत का पर्यटन मंत्रालय भी पिछले कुछ अर्से से सक्रिय हुआ है. पर्यटन भी एक उद्योग हो सकता है इस की ओर अब तक ध्यान नहीं गया था. पर्यटन मंत्री करन सिंह ने पिछले वर्ष पश्चिम के अनेक देशों की यात्रा करने के बाद अपने मंत्रालय को आधुनिक ढंग से पर्यटन विकास के लिए काफ़ी ज़रूरी आदेश दिये थे और पर्यटन मंत्रालय आधुनिकता के सभी आकर्षणों का इस्तेमाल करता हुआ भारतीय पर्यटन का विकास करने में प्रयत्नशील है. विशेषज्ञों की राय है कि इस से भारत की विदेशी मुद्रा का संकट एक हद तक हल हो सकेगा.

—विशेष संवाददाता

दिनमान

इस अंक में

१. राष्ट्रीय स्तर की राजनैतिक पार्टियों के घोषणापत्रों का जायजा.
२. मध्यावधि चुनाव के ऐन मौक़े पर बंगाल के राजनीतिकों की 'दिनमान'-प्रतिनिधि से बातचीत, और मुख्य मुक़ाबिलों का हाल.
३. बुल्गारी प्रधानमंत्री के आगमन पर पर विशेष सामग्री.

अगले अंक में (९ फ़रवरी)

१. आप ने अखबारों में एक छोटा-सा समाचार पढ़ा होगा कि टांटोडा मे सत्याग्रहियों पर रेल चला दी गयी. गांधी शताब्दी वर्ष में सत्याग्रह की दशा बखानने वाली इस घटना का वृत्तांत.
२. भारतीय पुरासंपदा की सुरक्षा के बारे में एक विशिष्ट अधिकारी से **दिनमान**-प्रतिनिधि की भेंट.
३. तेलंगाना के छात्र-आंदोलन के समाचार बराबर आ रहे है लेकिन छात्रावासों के भीतर घुस कर किसी ने नहीं देखा कि वहाँ क्या हो रहा है. **दिनमान** के प्रतिनिधि का आँखों-देखा हाल.

केवल एजेंटों के लिए सूचना

२३ फ़रवरी का अंक आर्थिक विशेषांक होगा और २ मार्च का होली-विशेषांक.

जहाँ-जहाँ भाषा पढ़ी-समझी जाती है
वहाँ-वहाँ आज पढ़ने-समझने की भूख है
लोग जानना चाहते है कि
क्या कुछ बदल रहा है ?
और बदल रहा है तो क्या-कुछ बदल रहा है
और कौन उसे बदल रहा है और क्यों बदल रहा है
और कौन उसे क्यों नहीं बदल रहा है
और कौन उसे क्यों नहीं बदल पा रहा है

जब दिनमान जानता है तो आपको बताता है.

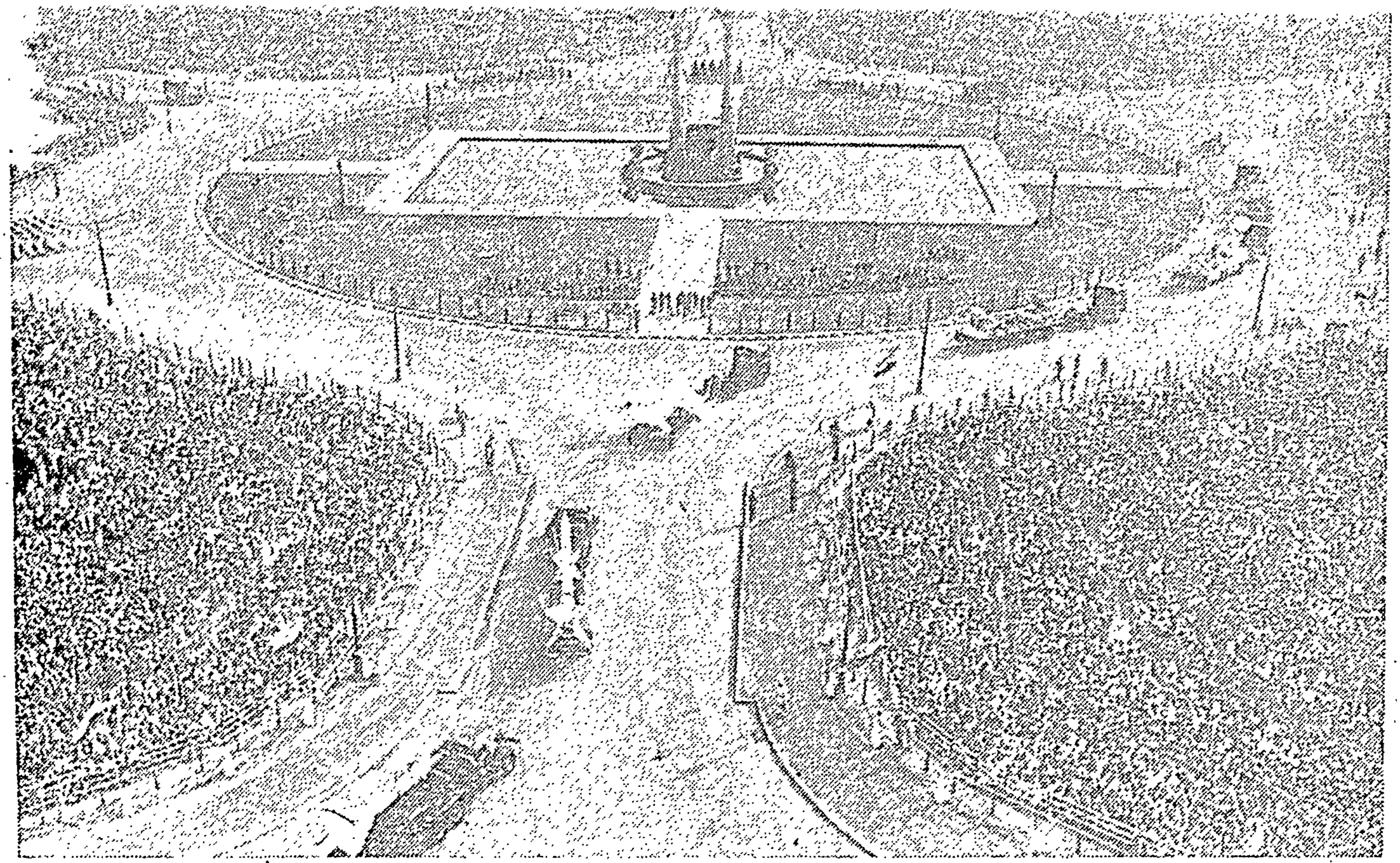

गणतंत्र दिवस : शांत और सौम्य परेड

राष्ट्र

राजपथ और जनपथ

नयी दिल्ली में गणतंत्र दिवस पर दो तरह की भीड़ होती है : एक वह जो इजाज़त से राजपथ के दोनों ओर इकट्ठा होती है और दूसरी वह जो जनपथ के चारों ओर बे-इजाज़त इकट्ठा होती है और जिसे क़ाबू करने के लिए घुड़सवार पुलिस जगह-जगह तैनात होती है. यह दूसरी भीड़ परेड को ठीक से नहीं देख पाती. उसे केवल रेडियो पर सुनती या अखबारों में पढ़ती है. इसी भीड़ ने २५ जनवरी की शाम रेडियो पर राष्ट्रपति का वह भाषण सुना जिस में उन्होंने अनुशासनहीनता के ख़तरों से आगाह किया था.

परंपरा निर्वाह : राष्ट्रपति ने समाज और देश के अंदर व्याप्त अनुशासनहीनता, फूट और आत्म-संहार की प्रवृत्तियों पर अपने भाषण में प्रकाश डाला. राष्ट्रपति की आलोचना का मुख्य केंद्र ये छात्र जिन की अनुशासनहीनता ने उन्हें चिंतित किया. डॉ. ज़ाकिर हुसैन प्रख्यात शिक्षा शास्त्री भी हैं और इस नाते विद्यार्थियों के भविष्य को ले कर उन का चिंतित होना स्वाभाविक ही था. उन्होंने एक बुज़ुर्ग और राष्ट्र प्रमुख की हैसियत से विद्यार्थियों को सलाह दी कि वे अवज्ञा का रास्ता छोड़ कर ज्ञानार्जन को अपना लक्ष्य बनायें. क्यों कि यह गांधी जन्म-शती वर्ष था राष्ट्रपति ने अपना भाषण गांधी जी के स्मरण से शुरू किया और प्रश्न किया कि क्या हम सचमुच ही गांधी जी के रास्ते पर चल रहे हैं. खेती और अन्न संकट की ओर उन्होंने भी इशारा किया. उन्होंने कहा कि यह कहना जल्दबाज़ी है कि हम खेतिहर क्रांति के नज़दीक पहुँच गये हैं. अन्न-संकट अब भी विषम है और हमें आज भी मानसून की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है. राष्ट्रपति का भाषण वर्तमान स्थितियों के ख़तरों से एक छोटा-सा परिचय था.

परेड और प्रदर्शन : लेकिन राजपथ पर गणतंत्र दिवस की परेड देखते हुए यह अनुभव नहीं होता कि देश ज्वालामुखी के शिखर पर बैठा हुआ है. जनता उत्सव में अपने को भुलाती है और इस के अलावा उस के पास कोई रास्ता भी नहीं है. पिछले अनेक वर्षों की तुलना में इस बार की परेड अधिक शांत और सौम्य थी. दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि उस में बहुत जान नहीं थी; हालांकि उड़ान भरने वाले विमानों की संख्या बढ़ा कर १६६ कर दी गयी थी. ठीक साढ़े ९ बजे सलामी मंच पर राष्ट्रपति के आसीन होने के साथ ही परेड शुरू हुई जिसे कि ५ लाख जनता के अलावा बुल्गारिया के प्रधानमंत्री तोदोर ज़िवकोफ़, यूगोस्लाविया के सेनाध्यक्ष मिलोव सुमांजो और नेहरू पुरस्कार विजेता मार्टिन लूथर किंग की विधवा श्रीमती कोरेटा किंग ने देखा. अश्वारोहियों और जयसलमेर रिसाले के बाद टैंकों का प्रदर्शन किया गया. विजयंत और सेंचुरियन टैंकों के अलावा परेड में ए. एम. एस. टैंक भी दिखाये गये थे. माउंटेन गन और फ़ील्ड गन के साथ मीडियम गन और ऐंटी एयर क्राफ़्ट गन भी शामिल किये गये थे. पैदल सेना की विभिन्न टुकड़ियों ने सलामी मंच के पास आ कर राष्ट्रपति को सलामी दी जिस में सब से शानदार टुकड़ी गोरखा रेजिमेंट थी. पैदल सेना के बाद ही जलसुंदरी धुन बजाती हुई नौसेना की टुकड़ी ने सलामी दी. नौसेना की पताका और बैंड ने राजपथ पर इकट्ठा भीड़ को आकर्षित किया और हर्षध्वनि हुई. नौसेना की तरह वायुसेना के जवानों ने भीड़ का ध्यान अपनी ओर खींचा. प्रादेशिक सेनाओं के बाद अवकाश-प्राप्त सैनिकों ने राष्ट्रपति को सलामी दी और केंद्रीय रिज़र्व पुलिस के बैंड ने 'हाउ ब्राइट स्माइल' की धुन बजा कर बच्चों और स्त्रियों की तालियाँ अर्जित कीं. दिल्ली पुलिस के बैंड के बाद ३०० होमगार्डों और उन के बाद पब्लिक स्कूल के लड़के-लड़कियों ने सलामी दी. ये तमाम युवक केसरिया कपड़े पहने हुए थे. लेकिन सारी परेड में सब से अधिक आकर्षक थी पिलानी एन. सी. सी. की लड़कियों की टुकड़ी और उन का बैंड. जैसे ही यह टुकड़ी सलामी मंच के आगे से गुज़री ज़ोरों की तालियाँ बजीं. पिलानी की लड़कियों की तरह लेजिम दस्ते ने लेजिम के कौशल से हमेशा की तरह इस बार भी देखने वालों को मुग्ध किया.

झांकियां : परेड में विभिन्न प्रदेशों की झांकियाँ शामिल थीं जिन में आंध्र, बंगाल, मध्यप्रदेश और मणिपुर की झांकियाँ विशेष रूप से आकर्षक थीं. बंगाल की झांकी में महात्मा

झलकियाँ

१९६९ के गणतंत्र दिवस की सब से बड़ी विशेषता यह थी कि मौसम ने गणतंत्र दिवस का साथ दिया. पिछले अनेक वर्षों से गणतंत्र दिवस के एक दिन पहले बारिश होती थी और गणतंत्र दिवस पर भी बूंदाबांदी होती थी. इस साल आसमान मेघाच्छन्न रहा लेकिन बारिश नहीं हुई. यह एक संयोग ही है कि ठीक साढ़े ९ बजे जब राष्ट्रपति महोदय अपनी ६ घोड़ों की बग्घी में राजपथ पर पधारे तब अचानक धूप निकल आयी और परेड का दृश्य उजागर हो गया. बारिश न होने से जमीन भी गीली नहीं थी और बहुत-से लोग जिन्हें कुर्सियाँ और बेंचें नसीब नहीं हुई घास पर बैठ कर परेड देख सके.

* * *

राष्ट्रपति की सलामी के लिए इस बार अधिक शक्तिशाली तोपों का प्रयोग किया गया. नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रपति की बग्घी के आगे चलने वाले घोड़ों का दस्ता भड़क-सा गया. अनुभवी घुड़सवारों ने तुरंत ही इन घोड़ों को सँभाल लिया और कोई भगदड़ नहीं हुई.

* * *

हर साल राजपथ के दक्षिण में एक अनोखा दृश्य नज़र आता था. विज्ञान भवन की छत पर खड़े हो कर बहुत-से लोग परेड देखा करते थे. इस बार छत सूनी थी. या तो विज्ञान भवन के ऊपर जाने की मनाही कर दी गयी थी या कि देखने वाले ही परेड देखते-देखते इतने बूढ़े हो चुके थे कि छत पर चढ़ने की शक्ति ही उन में नहीं रही.

* * *

वैसे भीड़ इस बार कम थी लेकिन पास हासिल करने की उत्सुकता अधिक थी. कई लोगों ने एक धंधा शुरू किया, पासों की बिक्री. परेड का एक-एक पास दस-दस रुपये से ले कर पचास रुपये तक में बिका. यहाँ तक कि प्रेस-दीर्घा भी सलामत नहीं रही. प्रेस दीर्घा में बैठे हुए ४ दुकानदारों ने बताया कि दस-दस रुपये में पास खरीद कर एक दिन के लिए पत्रकार बने हैं. अपने दोस्तों और रिश्तेदारों को मनमाने पास दे कर रक्षामंत्रालय के अफ़सरों ने अव्यवस्था पैदा करने की अपनी सालाना परंपरा बदस्तूर जारी रखी. इस के अलावा पत्रकारों के साथ उन्होंने बदतमीज़ियाँ कीं और प्रेस-दीर्घा में उन तमाम लोगों को भर दिया जिन का कि समाचारपत्रों से कभी कोई संबंध नहीं रहा.

* * *

भीड़ में खोये हुए बच्चों की संख्या ११० थी. माइक्रोफ़ोन पर बार-बार घोषणा करने के बावजूद अभिभावकों के न आने पर पुलिस वाले ने झल्ला कर कहा, 'मुद्दई सुस्त, गवाह चुस्त'.

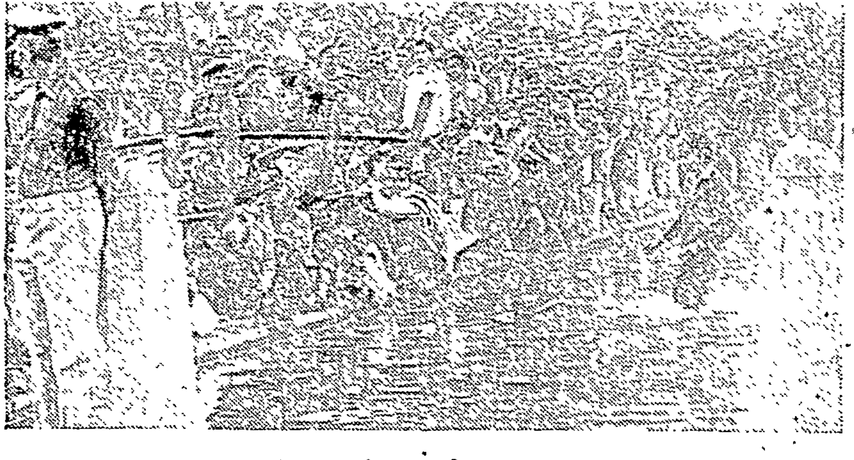

भीड़ का बांध : पानी का खतरा

गांधी, टैगोर और सी. एफ़. ऐंड्रूज की मुलाक़ात को दिखाया गया था. आंध्रप्रदेश की झाँकी में मूर्त्ति कौशल का सहारा लिया गया था. फ़ौज की परेड जितनी भी शानदार हुई उस से अधिक जानदार थी लोक-नर्तकों की परेड जो कि देश के कोने-कोने से इकट्ठा हुए थे. नेट विमानों की गड़गड़ाहट के साथ ही ११ बजे धूप पूरी तरह प्रस्फुटित हो गयी और परेड देख कर लौटने वाली जनता राजपथ के दोनों ओर के लान पर पिकनिक डिब्बे खोल कर बैठ गयी. थोड़ी देर पहले आसमान में विमान नजर आ रहे थे, १२ बजे के आसपास परिंदे नजर आने लगे.

राष्ट्रीय पुरस्कार : गणतंत्र दिवस पर बदस्तूर उपाधियाँ वितरित की गयीं और किस्मत की करामात है कि नोबेल पुरस्कार विजेता हरगोविंद खुराना को भी पद्म विभूषण प्रदान किया गया और भूतपूर्व कैबिनेट सचिव डी. एस. जोशी को भी. भारत रत्न बनने के लिए डॉ. खुराना को नोबेल पुरस्कार से भी बड़ा कोई पुरस्कार प्राप्त करना पड़ेगा.

भारत-बुलारिया

मीर-मीर द्रुज्बा

मीर-मीर द्रुज्बा का अर्थ है, शांति और मैत्री. पूर्वी यूरोप की राजधानियों में यह मुहावरा अक्सर सुनाई पड़ता है. पिछले हफ़्ते बुल्गारिया के प्रधानमंत्री **तोदोर ज़िवकोफ़** के भारत आगमन पर नयी दिल्ली में भी यह नारा सुनाई पड़ा. लेकिन बुल्गारिया के प्रधानमंत्री केवल शांति और मैत्री के लिए नहीं बल्कि वाणिज्य और राजनीति के लिए भी दिल्ली आये थे. बहुत साल पहले सोवियत रूस के तब के प्रधानमंत्री ख्रुश्चोव ने भारतवासियों से कहा था कि हम आप की खुल कर मदद करेंगे. कुछ उसी अंदाज़ में श्री ज़िवकोफ़ ने, जो कि पूर्वी यूरोप के अनुभवी राजनीतिज्ञों में से एक माने जाते हैं, नयी दिल्ली में कहा कि बुल्गारिया भारत के वाणिज्य को समृद्ध बनाने की हर तरह कोशिश करेगा.

बुल्गारिया एक छोटा लेकिन समृद्ध देश है. उस के खेतिहर और विद्युत उत्पादनों के कारण पूर्वी यूरोप में उस की एक विशिष्ट औद्योगिक स्थिति है. युगोस्लाविया, तुर्की, रोमानिया और ग्रीस मिल कर जितना निर्यात करते हैं अकेला बुल्गारिया उस से अधिक निर्यात करता है. स्वयं सोवियत रूस को वह हर साल एक अरब पचहत्तर करोड़ रूबल का निर्यात करता है. एक तरह से वह पूर्वी यूरोप का साहूकार है. भारत ने साहूकार बुल्गारिया के प्रधानमंत्री का विशिष्ट स्वागत किया. यद्यपि अभी कुछ समय पहले ईरान के शाह का शाही स्वागत किया गया था लेकिन बुल्गारिया के प्रधानमंत्री के स्वागत के लिए सरकारी खज़ाने खोल दिये गये. पालम से ले कर राष्ट्रपति निवास तक सभी मार्गों और चौकों को खूब सजाया गया था और नयी दिल्ली में एक और ही फ़िज़ा पैदा की गयी थी. श्री ज़िवकोफ़ के साथ उन की पुत्री श्रीमती ल्युडमिला ज़िवकोवा और विदेशमंत्री श्री ईवान बाशेर तथा मशीन निर्माण मंत्री श्री मारे इवानोव भी भारत यात्रा पर आये हुए थे. उन के अतिरिक्त वाणिज्य मंत्रालय का एक प्रतिनिधि भी उन के साथ था. श्री ज़िवकोफ़ की पार्टी में उन के निजी डॉक्टर और नर्स से ले कर पत्रकार और टेलीविज़न प्रतिनिधि तक थे. श्री ज़िवकोफ़ को राष्ट्रपति भवन के मशहूर द्वारका कक्ष और श्रीमती ज़िवकोवा को नालंदा कक्ष में ठहराया गया था. हालांकि सोफ़िया में बहुत सी खूबसूरत इमारतें हैं लेकिन नयी दिल्ली का राष्ट्रपति भवन उन से कुछ कम नहीं. राष्ट्रपति भवन में ही बुल्गारिया के प्रधानमंत्री तथा उन के सहयोगियों के आमोद प्रमोद के लिए अच्छा खासा प्रबंध किया गया था. श्री ज़िवकोफ़ ने श्रीमती गांधी के अलावा औद्योगिक विकास मंत्री श्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद और वाणिज्य मंत्री श्री दिनेशसिंह से भी बातचीत की. इस बातचीत से एक चीज़ निश्चित थी कि बुल्गारिया के साथ भारत के औद्योगिक संबंध गहरे और दृढ़ हो सकेंगे और वे तात्कालिक मात्र न हो कर दीर्घकालिक होंगे. श्री ज़िवकोफ़ ने अपनी यात्रा के दौरान भारत की व्यापारिक ज़रूरतों को समझने की कोशिश की और

ज़िवकोफ़ और इंदिरा गांधी : पुख्ता दोस्ती

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने भी इस बात पर ज़ोर दिया कि भारत और बुलारिया दोनों ही एक दूसरे के साथ अच्छी तरह व्यापार कर सकते हैं. प्रधानमंत्री ने यह कहा कि दो देशों की दोस्ती केवल मौखिक नहीं हुआ करती. बुलारिया के साथ भारत सचमुच ही अपने संबंध गहरे करना चाहता है यह प्रमाणित करने के लिए श्री ज़िवकोफ़ की भारत यात्रा के अवसर पर बुलारिया में भारतीय दूतावास के कार्यकारी राजदूत की नियुक्ति की गयी. वाणिज्य मंत्रालय के उपसचिव श्री भार्गव को यह पद सौंपा गया. अब तक सोफ़िया में भारत का दूतावास नहीं था. रोमानिया का दूतावास ही बुलारिया के साथ भारत के राजनयिक संबंधों की व्याख्या करता था.

श्रीमती गांधी और श्री ज़िवकोफ़ की बातचीत में पूर्वी यूरोप का हल्का-सा प्रसंग आया. श्रीमती गांधी ने चेकोस्लोवाकिया के संबंध में जानबूझ कर विस्तार से बातचीत करना पसंद नहीं किया. पाकिस्तान का ज़िक्र आने पर श्री ज़िवकोफ़ ने कहा कि बुलारिया यह चाहता है कि भारत और पाकिस्तान के बीच जो भी मतभेद हों वे शांति के साथ हल हो जायें. यह बात अभी तक प्रकाश में नहीं आयी है कि जब १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया था तब बुलारिया की लोकसभा के अध्यक्ष ने सोफ़िया में कुछ भारतीय संसद-सदस्यों से यह कहा था कि बुलारिया पाकिस्तान को आक्रमणकारी मानता है. लेकिन शायद रूसी दबाव के कारण इस समाचार की पुष्टि नहीं की गयी. स्वयं दिनमान को यह बात कुछ समय पहले सोफ़िया प्रवास के दौरान मालूम हुई. इस से यह समझा जा सकता है कि भारत-पाकिस्तान के संबंधों के संदर्भ में सोवियत रूस अपने पिछलग्गू देशों पर किस क़दर हावी है और भारत के बारे में सोवियत रूस की क्या दृष्टि है.

प्रेस सम्मेलन में भी श्री ज़िवकोफ़ ने सोवियत हितों को, जिन्हें कि वह बुलारिया के हित कहना पसंद करते हैं, दृष्टि में रख कर बातें कहीं, चेकोस्लोवाकिया में वारसा शक्तियों के हस्तक्षेप का ज़िक्र करते हुए उन्होंने कहा कि सोवियत रूस ने बुलारिया को नात्सियों के चंगुल से छुड़ाया था और सोवियत रूस की मदद से ही बुलारिया आज एक समृद्ध देश है. क्या इस मदद को सोवियत हस्तक्षेप माना जा सकता है. ठीक इसी तरह चेकोस्लोवाकिया में वारसा सेनाओं के प्रवेश को हस्तक्षेप नहीं माना जा सकता. संवाददाताओं के सवाल पैने थे लेकिन श्री ज़िवकोफ़ का उत्तर सधा हुआ बल्कि पिटा पिटाया था. जब उन से यह पूछा गया कि अप्रैल, १९६८ में चेक कम्युनिस्ट पार्टी के नये कार्यक्रम के प्रकाशन पर वारसा देशों ने कोई आपत्ति नहीं की, अगस्त में ब्रातिस्लावा वार्त्ता के बाद यह वक्तव्य जारी किया गया कि चेकोस्लोवाकिया और वारसा देशों के बीच जो भी मतभेद हैं उन्हें शांतिपूर्वक सुलझा लिया जायेगा, तब अगले दो हफ़्तों में ही ऐसा क्या हो गया कि वारसा शक्तियों को अपनी तोपें चेकोस्लोवाकिया में भेजनी पड़ीं—तब श्री ज़िवकोफ़ ने कहा कि प्रश्न लंबा है और यह कह कर उन्होंने सवाल को टालना चाहा. लेकिन सवाल को संक्षिप्त कर के सामने रखा गया. श्री ज़िवकोफ़ को बाध्य हो कर वही बात कहनी पड़ी जो कि प्रावदा सैकड़ों बार कह चुका है—चेकोस्लोवाकिया में समाजवाद ख़तरे में था, प्रतिक्रांतिकारी सत्ता हथियाने की तैयारी कर रहे थे, वारसा सेनाएं चेक जनता के आमंत्रण पर चेकोस्लोवाकिया के भीतर गयी थीं. प्राग में ज़ां पालाख़ के आत्मदाह के विषय में प्रश्न किये जाने पर उन्होंने कहा कि ज़ां पालाख़ और उन की तरह के अन्य नवयुवकों के आत्मदाह पर केवल अफ़सोस ज़ाहिर किया जा सकता है—वे प्रतिक्रांतिवादियों के प्रचार के शिकार हैं. जब एक जर्मन संवाददाता ने उन से पूछा कि मास्को में मई में अंतरराष्ट्रीय साम्यवादी सम्मेलन के नतीजे क्या निकलेंगे, क्या यह सम्मेलन अब बदली हुई परिस्थितियों में संभव है, तब उन्होंने कहा कि हमारे आंदोलन में हमेशा ही दो छोर रहे हैं और इस के बावजूद अंतरराष्ट्रीय साम्यवाद जीवित रहा है और आगे भी जीवित रहेगा. श्री ज़िवकोफ़ ने चीन, युगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया के अलावा इटली और फ़्रांस की कम्युनिस्ट पार्टियों की उन घोषणाओं और कार्यक्रमों को नज़रअंदाज़ कर दिया जो कि अंतरराष्ट्रीय साम्यवाद की परिकल्पना और व्यवस्था को नष्ट करते हैं.

राजनैतिक प्रश्नों को स्थगित कर उन्होंने ग़ैर-राजनैतिक प्रश्नों पर चर्चा करना अधिक पसंद किया और बताया कि बुलारिया भारत के साथ कृषि संबंधी व्यापार भी करना चाहता है. बुलारिया भारत को खेतिहर सामग्रियों का निर्यात करेगा और भारत की अर्थव्यवस्था को मज़बूत बनाने के लिए अपना योगदान देगा.

नेहरू पुरस्कार

अहिंसा की राह

२४ जनवरी, सुबह १० बजे. अमेरिका के निग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग की पत्नी श्रीमती कोरेटा किंग जब निश्चित समय पर विज्ञान भवन पहुँचीं तो उन की अगवानी के लिए वहाँ कोई भी बड़ा नेता मौजूद नहीं था. लेकिन दो-तीन मिनट में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के वहाँ पहुँच जाने से सरकारी अधिकारियों ने राहत की साँस ली. कुछ ही देर में राष्ट्रपति भी पधारे और देखते-देखते विज्ञान भवन खचाखच भर गया. सभी लोगों की आँखें श्रीमती कोरेटा किंग पर जमीं हुई थीं जो हल्के नीले रंग का रेशमी स्कर्ट और ब्लाउज़ पहने हुए थीं और उसी रंग की टोपी उन के व्यक्तित्व को खूब निखार रही थी. श्रीमती किंग का स्वागत करते हुए प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने महात्मा गांधी और मार्टिन लूथर किंग के देहांत के समय में एकरूपता का ज़िक्र करते हुए कहा कि उन्हें अपनी मौत का पहले से ही अहसास हो गया था. पंडित जवाहरलाल नेहरू, जिन की स्मृति में अंतरराष्ट्रीय सद्भावना के लिए नेहरू पुरस्कार का आयोजन किया गया है, और डॉ. किंग दोनों ही स्वाधीनता प्रेमी थे और अन्याय उन के लिए असह्य था. लोगों में भाई-चारे की भावना पैदा करने के लिए और अन्याय से मुक्ति दिलाने के लिए उन्होंने आजीवन काम किया और अपनी सारी ज़िंदगी अपने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निछावर कर दी. डॉ. किंग ने सभी देशों के ग़रीबों और दलितों को गले लगाया. उन्होंने मानव के जीने के अधिकार को आवश्यक बताया लेकिन साथ ही कहा कि ऐसे काम में तीन चुनौतियाँ हमेशा आड़े आती हैं—जातिवाद का अन्याय, ग़रीबी और युद्ध. वैज्ञानिक विकास के बावजूद आज का इनसान ग़ुर्बत के दायरे में घिरा हुआ है जिस से विश्व का दो-तिहाई जनमत भूख और अभाव का शिकार हो रहा है.

मानपत्र : उपराष्ट्रपति श्री वी. वी. गिरि ने मानपत्र की शुरुआत डॉ. मार्टिन लूथर किंग के ही शब्दों से की. उन्होंने कहा था कि जो इनसान किसी चीज़ के लिए मर नहीं सकता उसे जीने का हक़ नहीं है, और डॉ. किंग ने अपनी उक्तियों को चरितार्थ कर दिखाया. महात्मा गांधी की दार्शनिकता, प्रेम, अहिंसा और सत्याग्रह के तरीक़े उन्हें बहुत रास आये और वह इनसान के बुनियादी अधिकारों के लिए

हमेशा आगे बढ़ते रहे. १९५५-५६ में मांटगुमरी बस बहिष्कार आंदोलन से उन्होंने अपना रास्ता शुरू किया और उन के इस रास्ते का अनुसरण पहले सैंकड़ों, फिर हज़ारों और फिर लाखों लोगों ने किया. मानवता में इसी विश्वास के कारण उन्हें १९६४ में नोबेल पुरस्कार से अलंकृत किया गया. राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसेन ने जब श्रीमती कोरेटा किंग को मानपत्र सहित एक लाख रुपये का चेक दिया तो उन की आँखें आभार से झुक गयीं लेकिन सिर गर्व से कुछ और ऊँचा हो गया. अपने भाषण में डॉ. ज़ाकिर हुसेन ने कहा कि जवाहरलाल नेहरू सच्चे मायने में अंतरराष्ट्रीय व्यक्ति थे और उन्हें पूरी मानवता के प्रति आस्था थी. डॉ. मार्टिन लूथर किंग ने एक बार कहा था कि नेहरू का मानवता के लिए शांतिपूर्ण सहअस्तित्व में विश्वास मानवता के विकास के लिए एक सुनहरी किरण है.

सधे हुए क़दमों से जब श्रीमती कोरेटा किंग अपने स्थान से उठीं और भाषण देने के लिए निश्चित स्थान पर पहुँचीं तो श्रोताओं ने उन का तालियों की गड़गड़ाहट के साथ स्वागत किया. उन्होंने कहा कि मेरे स्वर्गीय पति को जो सम्मान दिया गया है उस के लिए मैं बहुत ही आभारी हूँ. श्रीमती कोरेटा किंग ने कहा कि आज भी उन का ध्यान मांटगुमरी संघर्ष की तरफ़ चला जाता है जब उन के पति ने ५० हज़ार काले नागरिकों का मार्गदर्शन किया था. उन का यह कार्य बस कंपनी के प्रति अपना रोष और असहयोग प्रकट करना था क्यों कि उस ने निग्रो लोगों के बुनियादी सम्मान पर चोट की थी. इस छोटे से आंदोलन ने पूरे विश्व के राजनैतिक जगत् पर अपनी छाप अंकित कर दी. १९५५ में काले लोग द्वितीय श्रेणी के नागरिक समझे जाते थे लेकिन उन के पति ने उन्हें हीनता की जंजीरों से मुक्त कराया था.

पत्रकार सम्मेलन : उसी शाम एक संवाददाता सम्मेलन में बोलते हुए श्रीमती किंग ने कहा कि निग्रो लोगों के अधिकारों के लिए गांधीवादी तरीक़ा बहुत उपयोगी साबित हुआ है. बेशक हम ने सामाजिक और राजनैतिक रूप से उन्नति की है, लेकिन उतनी नहीं जितनी होनी चाहिए थी. जब उन से पूछा गया कि मेलकाम दसवें भी तो ग़रीबों की उन्नति के लिए अपनी आवाज़ बुलंद करते थे तो श्रीमती किंग ने बताया 'हाँ, मगर मेलकाम हिंसा में विश्वास करते थे और हम अहिंसा में.' जब उन से पूछा गया कि क्या मार्टिन लूथर किंग के उत्तराधिकारियों में अहिंसा के तरीक़ों को ले कर कोई मतभेद है तो उन्होंने कहा, 'नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है. सभी लोग अहिंसा में विश्वास करते हैं.' उन्होंने कहा कि मार्टिन लूथर किंग के निकटवर्ती दो सहयोगी डॉ. ऐबरनाथी और एंड्रू यंग हैं. क्योंकि एंड्रू यंग श्रीमती किंग के साथ थे लिहाज़ा यंग ने कहा कि डॉ. मार्टिन लूथर किंग की हत्या से कुछ ही घंटे पहले उन से जो बातचीत हुई थी, उन्होंने यह साफ़ कहा था कि उन के आंदोलन का तरीक़ा अहिंसा का है और उन के रहने या न रहने पर उसी का अनुसरण किया जायेगा. हम यह मानते हैं कि हमारी संस्कृति अफ़्रीकी और अमेरिकी दोनों का मिश्रण है और इस लिए हमारा भविष्य इन दोनों के बीच का है. हम अफ़्रीकी बंधुत्व को नहीं छोड़ना चाहते और अमेरिकी संस्कृति को भी हम बनाये रखना चाहते हैं. मेरे पति कहा करते थे कि सच्ची समानता और भाईचारे के लिए कोई अलग रास्ता नहीं है. उन के इस प्रयास से निग्रो लोगों को स्कूलों और राजनीति में समानता के अधिकार प्राप्त हुए हैं लेकिन अभी भी समाज के दो ध्रुवों—आर्थिक और नीति-निर्धारण के मामले में सफ़ेद लोगों की ही तूती बोलती है.

श्रीमती किंग ने स्वदेश लौटने से पूर्व बंबई में घोषणा की कि नेहरू पुरस्कार की वह आधी रकम मार्टिन लूथर किंग के काम को आगे बढ़ाने के लिए तथा आधी रकम भारतीय हरिजनों के उद्धार पर खर्च करेंगी. उन्होंने एक हरिजन को छात्र-वृत्ति देने का भी एलान किया जो अहिंसा के कार्य को आगे बढ़ायेगा.

कामराज

खाली कुर्सी की आत्मा

नागरकोल के उपचुनाव के पहले ही संवाददाताओं के सब से बड़े आकर्षण कामराज नाडार के बारे में यह अनुमान शुरू हो गया था कि श्रीमती गांधी मंत्रिपरिषद् में उन्हें जगह देंगी. नागरकोल में उन की जीत के बाद श्रीमती गांधी ने इस खबर पर मुहर भी लगा दी है. उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा को बुलाया और उन से क़रीब घंटे भर तक श्री कामराज को ले कर बातचीत की.

सिंडीकेट की वापसी : श्री निजलिंगप्पा ने संवाददाताओं से बातचीत करते हुए केवल इतना कहा कि कामराज को मंत्रिपरिषद् में लिये जाने की संभावना है. सब कुछ कामराज के दिल्ली आने पर तय होगा. जहाँ तक श्री कामराज का प्रश्न है उन्होंने इस संबंध में अभी तक किसी फ़ैसले की घोषणा नहीं की है. जानकारों का दावा है कि कामराज मंत्रिपरिषद् का यह सौदा मंजूर नहीं करेंगे. कारण कि एक बार मंत्रिपरिषद् में आ जाने से उन का अस्तित्व लगभग उसी तरह ग़ायब हो जायेगा जिस तरह कि मंत्रिपरिषद् में उन से पहले के लोग हो गये हैं. श्रीमती गांधी से कामराज की नाराज़ी जगज़ाहिर है. कामराज के हितचिंतकों का कहना है कि यह नाराज़ी अभी कम नहीं हुई है. कामराज स्वयं को श्रीमती गांधी के हाथों अपमानित अनुभव करते हैं. १९६७ में श्री निजलिंगप्पा को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने में श्रीमती गांधी के सलाहकारों ने जो दांव-पेंच दिखाये उन से अपना रोष कामराज ने तभी ज़ाहिर कर दिया था. उस के बाद भी वह कांग्रेस के अंदर श्रीमती गांधी के विरुद्ध 'सिंडीकेट' में रहे. अगर कामराज मंत्रिपरिषद् में चले जाते हैं तो 'सिंडीकेट', जो कि पहले ही लगभग बिखर चुका है, पूरी तरह नष्ट हो जायेगा.

हवा का रुख : इस के विपरीत कांग्रेस-अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा यह चाहते हैं कि कामराज उन के प्रतिनिधि के रूप में मंत्रिपरिषद् में जायें. उन का यह ख्याल है कि इस से 'सिंडीकेट' के हितों का अधिक अच्छी तरह पोषण हो सकेगा. मंत्रिपरिषद् में इस समय श्रीमती गांधी के अनुयायियों का बहुमत है. 'सिंडीकेट' यह चाहता है कि यह बहुमत कम हो और श्रीमती गांधी के निर्णयाधिकारों में कटौती हो. कामराज को मंत्रिपरिषद् में लाने में श्रीमती गांधी को कोई व्यावहारिक कठिनाई नहीं है. मंत्रिपरिषद में पहले ही तीन जगहें खाली हैं

कामराज : बना रहे आकर्षण

जो कि मुहम्मद् करीम चागला, अशोक मेहता और चेन्ना रेड्डी के इस्तीफ़ों से पैदा हुई हैं. पहले ही इस बात की आलोचना की जा रही है कि पैट्रोल, इस्पात और विदेशमंत्रालयों में कैबिनेट-स्तर का कोई मंत्री अब तक नियुक्त नहीं किया गया है. श्रीमती गांधी इन तीनों ही जगहों को जल्द ही भरना चाहती हैं. संभवतः बजट अधिवेशन की शुरुआत के साथ ही. तब तक मध्यावधि के परिणाम भी आने लगेंगे और प्रधानमंत्री को हवा का रुख पहचानने में मदद मिलेगी. श्रीमती गांधी के सलाहकारों का दावा है कि वह मंत्रिपरिषद् में कुछ और परिवर्त्तन करना चाहती हैं; हालांकि ये परिवर्त्तन बहुत महत्त्व के नहीं होंगे. यह ज़रूर है कि एकाध किसी सामंत के विभाग में परिवर्त्तन हो सकता है जैसे कि श्री जगजीवनराम एक अर्से से इस बात की शिकायत कर रहे हैं कि मंत्रिपरिषद् का सब से पुराना सदस्य होने के बावजूद उन्हें बहुत महत्त्वपूर्ण मंत्रालय नहीं दिया गया है. औरों का हश्र जो भी हो, खाली कुर्सी की आत्मा कामराज के इर्दगिर्द मँडरा रही है.

प्रदेश

आंध्रप्रदेश

आंदोलन बनाम आंदोलन

राज्य के विभिन्न नगरों में उत्तेजना का वातावरण व्याप्त है. हैदराबाद से ले कर तेलंगाना क्षेत्र के विभिन्न नगरों में जुलूस, प्रदर्शन, नारेबाज़ी, उपद्रव और गोली-चालन की घटनाएँ घट चुकी हैं. कुछ दिनों पहले जब तेलंगाना क्षेत्र में छात्रों का आंदोलन तेज़ी के साथ बढ़ा तो उस की गंभीरता का एहसास सरकार और विभिन्न राजनैतिक दलों को भी हुआ. विभिन्न दलों ने दो दिन तक आपस में राय-मशविरा किया और एक संयुक्त वक्तव्य निकाल कर छात्रों को यह आश्वासन देते हुए कि उन की उचित माँगों को पूरा कराने की कोशिश की जायेगी, आंदोलन खत्म करने की अपील की. अपील का हल्का-सा असर हुआ और एकाध जगहों पर भूख हड़ताल करने वाले छात्रों ने हड़ताल खत्म भी की. राज्य सरकार ने भी उसी के साथ-साथ यह आश्वासन दिया था कि उन की माँगें पूरी की जायेंगी. उम्मीद की जा रही थी कि इन कोशिशों का अच्छा परिणाम निकलेगा. लेकिन तेलंगाना के आंदोलन की प्रतिक्रिया ने एक प्रतिआंदोलन को जन्म दिया और उस से सारी स्थिति एक भयंकर संकट का शिकार हो गयी. आंध्र और व्यंकटेश्वर विश्वविद्यालय के छात्रों ने 'आंध्र अधिकार बचाओ दिवस' का आह्वान किया, जगह-जगह हड़तालें हुईं और तेलंगाना आंदोलन के विरोध में नारे लगाये गये. राज्य के उच्च न्यायालय के दो सौ वकीलों ने एक प्रस्ताव द्वारा मुख्यमंत्री के क़दम की निंदा की और कहा कि वह तेलंगाना के लोगों के दबाव में आ गये हैं. माँगों को स्वीकार करने के सरकार के रुख से आंध्र वालों को बेइज़्ज़ती का एहसास हो रहा है. तेलंगाना-विरोधी छात्रों ने प्रतिआंदोलन के सिलसिले में जो उत्पात मचाये उस की प्रतिक्रिया पुनः तेलंगाना छात्रों में हुई. परिणाम यह है कि जो आंदोलन खत्म होने के निकट था वह फिर से शुरू हो गया है. सदाशिव पेठ में पुलिस को आंदोलनकारियों पर गोली चलानी पड़ी और उस में दर्जनों लोग घायल हुए. बेलमपल्ली में आंदोलनकारी भीड़ ने पुलिस के एक इंस्पेक्टर को पकड़ लिया और बड़ी मुश्किल से उस की जान बची. भद्रचलम के पास के जलविद्युत स्टेशन पर ज़ोरदार नारे लगा कर माँग की गयी कि वहाँ काम करने वाले एक हज़ार आंध्रवासी वापस जायें. कुल मिला कर यह आंदोलन पूरे प्रदेश में फैल गया. तेलंगाना वाले यह सोच कर उत्तेजित हैं कि उन के साथ निरंतर अत्याचार किया गया और आंध्रवाले यह सोच कर विक्षुब्ध हैं कि सरकार उन के दबाव में आ गयी है. तेलंगाना वालों का निश्चय यह है कि जब तक उन की माँगें पूरी नहीं होंगी उन का आंदोलन चलता रहेगा. आंध्रवालों की योजना यह है कि अगर सरकार नहीं मानती तो उसे झुकाने के लिए वे भी लंबे समय तक आंदोलन चलायेंगे.

मुख्यमंत्री ने कुछ महीने पहले न सिर्फ़ यह स्वीकार किया था कि तेलंगाना के लिए करोड़ों रुपये सुरक्षित हैं जिन का उपयोग उस क्षेत्र के विकास के लिए नहीं हो सका था बल्कि यह भी कहा था कि आने वाले दिनों में वह रक़म वहाँ के विकास कार्यों के लिए ही खर्च की जायेगी. विभिन्न राजनैतिक दलों ने जो संयुक्त वक्तव्य निकाला था, उस में भी यह स्वीकार किया गया था कि राज्य सरकार ने तेलंगाना क्षेत्र के प्रति उपेक्षा बरती है. राज्य सरकार और मुख्यमंत्री दोनों ही यह जानते हैं कि तेलंगाना छात्रों का आंदोलन निराधार नहीं है. उस पूरे क्षेत्र के प्रति सरकार की उपेक्षा बहुत ही स्पष्ट रूप से सामने आयी है. जातीयता और क्षेत्रीयता के पूर्वग्रह में आंध्र के अधिकारियों ने वहाँ के लोगों को काफ़ी नज़रअंदाज़ किया है. ऐसी स्थिति में यदि तेलंगाना वाले स्वतंत्र तेलंगाना की माँग करते हैं तो उसे सही परिप्रेक्ष्य में ही देखना चाहिए. यह बात अलग है कि आंध्र का हिस्सा होने के ही कारण तेलंगाना को कुछ ऐसी योजनाओं के लाभ भी मिले हैं जिन्हें वह खुद पूरा नहीं कर सकता था.

एक अपूरणीय क्षति

शुक्रवार २४ जनवरी को स्वातंत्र्य संग्राम का एक और महारथी हमारे बीच से उठ गया. राजस्थान खादी ग्रामोद्योग बोर्ड के अध्यक्ष तथा सुप्रसिद्ध समाजसेवी **माणिक्य लाल वर्मा** का जन्म ४ दिसंबर, १८८७ को मेवाड़ के एक गाँव बिजोलिया में हुआ था. विद्याव्यसन के साथ ही उन का सामाजिक जीवन भी आरंभ हो गया. किसी प्रकार का आदर्श बघारना उन्हें अच्छा नहीं लगता था. वह सच्चे कर्मवीर थे और सदैव रचनात्मक कार्यों में व्यस्त रहते थे. आदिवासी इलाक़े को उन्होंने अपना कर्मक्षेत्र बनाया. राजस्थान की भील और मीणा जातियाँ आज भी उन की सेवाओं को भूली नहीं हैं.

स्व. श्री वर्मा का गांधी जी से घनिष्ठ संबंध था. स्वाधीनता संग्राम में उन्होंने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया. १९४२ के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में वह बंदी बना लिये गये. १९४३ में छोड़े जाने पर फिर आदिवासियों की सेवा में जुट गये. उन्होंने १९२८ में मेवाड़ प्रजामंडल की स्थापना की जिस पर तत्कालीन अंग्रेज़ सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था. श्री वर्मा १९५४ में भारतीय राष्ट्रीय संविधान परिषद् के सदस्य चुने गये और १९४८ में राजस्थान की ११ रियासतों के एकीकरण के बाद वह प्रदेश सरकार के प्रथम मुख्यमंत्री बने. १९५२ से १९६२ तक वह लोकसभा के सदस्य रहे.

तमिलनाडु

पुराना रोग : पुराना राग

इधर तमिलनाडु विधानसभा का बजट अधिवेशन शुरू होने वाला है उधर राज्य के मुख्यमंत्री सी. एन. अन्नादोरै को अपने इलाज के सिलसिले में कैंसर इंस्टीट्यूट में दाखिल होना पड़ा है. विशेषज्ञ डॉक्टरों की निगरानी में उन का इलाज चल रहा है और स्थिति में सुधार के लक्षण भी स्पष्ट होने लगे हैं. उन की बीमारी का एक असर यह हुआ है कि राज्य परिवहन कर्मचारी संघ ने जो २२ जनवरी को अनिश्चित काल के लिए हड़ताल करने की नोटिस दे रखी थी, वापस ले ली. इस प्रकार परिवहन कर्मचारियों की प्रस्तावित हड़ताल फ़िलहाल टल गयी. यह एक तरह से अच्छा ही हुआ वरना अर्थ का अनर्थ होने की काफ़ी संभावना थी. परिवहन विभाग के निदेशक की ओर से यह फरमान जारी कर दिया गया था कि क्यों कि परिवहन कर्मचारियों का समझौता-प्रस्ताव विचाराधीन है इस लिए यह हड़ताल ग़ैर-क़ानूनी है और हर कर्मचारी को व्यक्तिगत रूप से यह बता दिया गया है कि जो लोग हड़ताल में शामिल होंगे या हड़तालियों को उकसाने या भड़काने का काम करेंगे उन पर अनुशासनहीनता की कड़ी कार्रवाई की जायेगी.

हिंदी विरोधी प्रदर्शन : खतरे का एक संकट तो किसी प्रकार टल गया मगर उस के तुरंत बाद तमिलनाडु छात्रों के एक संघ ने खतरे का एक बिगुल और बजा दिया. उन्होंने यह घोषणा की कि वे फ़रवरी से पूरे ज़ोर-शोर के साथ हिंदी-विरोध शुरू करने वाले हैं. तिरुचि में हुए तमिलनाडु हिंदी-विरोधी छात्र-प्रदर्शन समिति की दो दिन की बैठक में जब यह घोषणा की गयी तो राज्य के कुछ शांतिप्रिय लोगों पर इस की प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई.

कश्मीर

खोई हुई पांडुलिपियाँ

कश्मीर सरकार के कुछ पुस्तकालयों से बहुत-सी पुस्तकों और पांडुलिपियों के रहस्यमय ढंग से ग़ायब हो जाने की घटना पर अभी तक पर्दा पड़ा हुआ है. इस कांड के बारे में संबंधित सरकारी अधिकारियों की भेदभरी चुप्पी से यह ज्ञात नहीं हो पाया है कि कुल कितनी पुस्तकें, पांडुलिपियाँ और प्राचीन तथा आधुनिक दस्तावेज़ चुरा लिए गये हैं. फिर भी

स्पष्ट संकेत मिला है कि पुस्तकालयों से सैकड़ों किताबें, पांडुलिपियाँ और दस्तावेज ग़ायब हो गये हैं. इन में संस्कृत, फ़ारसी, अरबी, उर्दू, कश्मीरी, डोगरी और तिब्बती भाषाओं के वे अनेक बहुमूल्य ग्रंथ भी शामिल हैं, जिन में जम्मू और कश्मीर राज्य के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और ऐतिहासिक मसलों पर काफ़ी विस्तार और खोजपूर्ण तरीक़े से विचार किया गया है.

बताया जाता है कि राज्य के पुस्तकालयों में १५० से अधिक तिब्बती भाषा की पांडुलिपियाँ थीं, जिन का अब संबंधित पुस्तकालयों के रिकार्ड में कोई लेखा-जोखा उपलब्ध नहीं है. कहा जाता है कि इन पांडुलिपियों को डोगरा सेनापति वजीर जोरावर सिंह और हरीचंद क़रीब १२५ वर्ष पूर्व लद्दाख विजय के बाद अपने साथ लाये थे. चुराये गये ग्रंथों में महाराजा गुलाब सिंह के उत्तराधिकारी और जम्मू और कश्मीर राज्य के संस्थापक महाराजा रनबीर सिंह के शासनकाल में लिखी गयी ऐतिहासिक पुस्तकों के अनुवाद भी शामिल हैं. कहा जाता है कि अकेले राज्य विधानसभा पुस्तकालय से ही सन् १९४७ से अब तक क़रीब ३ हजार पुस्तकें ग़ायब हो चुकी हैं. यह आरोप भी लगाया गया है कि कुछ वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं, मंत्रियों और उच्चाधिकारियों को बहुत-सी महत्त्वपूर्ण और क़ीमती पुस्तकें दी गयीं, किंतु उन्होंने वर्षों से ये पुस्तकें लौटाने की तकलीफ़ नहीं उठायी. एक अफ़वाह यह भी है कि कुछ पुस्तकालयों के अधिकारी यह कह कर अपने आपको बेक़सूर साबित करने की कोशिश कर रहे हैं कि पुराने रिकार्डों के अनुसार पढ़ने के लिए दी गयी बहुत सी पुस्तकें लौटायी ही नहीं गयीं.

हज के बहाने : अनुमान लगाया जाता है कि चुरायी गयी अधिकतर पांडुलिपियाँ और दस्तावेज़ कश्मीर में शोध और प्रकाशन विभाग का भूतपूर्व निदेशक हसन शाह अपने साथ पाकिस्तान लेते गये. हसन शाह के कश्मीर से ग़ायब होने का क़िस्सा भी खासा दिलचस्प है. क़रीब तीन साल पूर्व वह हज के बहाने कश्मीर से ऐसा ग़ायब हुए कि फिर कभी लौट कर नहीं आये. जाने से पूर्व वह जम्मू-कश्मीर की अपनी जायदाद भी बेचते गये. एक बार वह पाक-अधिकृत कश्मीर की सीमा पर स्थित पुंछ क्षेत्र में भी गये थे. और यह रहस्य अब तक नहीं खुल पाया कि उस यात्रा में उन्होंने क्या गुल खिलाया था.

इतने अर्से बाद अब जा कर सरकार इस मामले की छानबीन के लिए सक्रिय हुई है, हालांकि निकट-भविष्य में किसी बड़े रहस्योद्घाटन के कोई आसार नहीं दीखते. फ़िलहाल सिर्फ़ इतना ही ज्ञात हो पाया है कि अधिकांश पांडुलिपियाँ और दस्तावेज़ जम्मू के रनबीर पुस्तकालय से ही ग़ायब हुए हैं. सन् १९४९ में कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री शेख़ अब्दुल्ला के आदेश से २,२०० बहुमूल्य पांडुलिपियाँ इस आशंका से जम्मू के रनबीर पुस्तकालय से श्रीनगर ले जायी गयी कि वहाँ वे 'अधिक सुरक्षित' रह सकेंगी. हैरत की बात है कि श्रीनगरसे भी उन्हीं में से बहुत-सी पांडुलिपियाँ ग़ायब हो गयीं.

मध्यप्रदेश

सत्याग्रह की राजनीति

प्रदेश कांग्रेस ने संविद शासन को गिराने के इरादे से प्रस्तावित 'सत्याग्रह' की तिथि २८ जनवरी से बढ़ा कर १७ फ़रवरी कर दी है. नये कार्यक्रम के अनुसार १७ फ़रवरी की शाम को भोपाल में विधानसभा के समक्ष प्रदर्शन पर लगी रोक को तोड़ कर सत्याग्रह आरंभ होगा और विधानसभा के बजट सत्र के चौबीस दिनों तक २०० सत्याग्रही प्रतिदिन स्वयं को गिरफ़्तार करायेंगे. द्वारका प्रसाद मिश्र के अनुसार विधानसभा सत्र के अंतिम दो दिनों में यह सत्याग्रह प्रदेशव्यापी हो जायेगा.

श्री मिश्र इस सत्याग्रह के माध्यम से संविद सरकार से ज़ोर-आज़माइश के लिए कृतसंकल्प दीखते हैं. योजना यह है कि श्री मिश्र जबलपुर से और श्री गंगवाल इंदौर से भोपाल के लिए पैदल प्रस्थान करेंगे—हर रोज़ ६ मील चल कर रास्ते में आंदोलन का निरीक्षण करते हुए २० दिनों के बाद भोपाल पहुँचेंगे और विधान सभा के सामने सत्याग्रह के लिए बैठे कार्यकर्ताओं का नेतृत्व करेंगे. सत्याग्रह की तिथि बार-बार स्थगित हुई है. इस का एक कारण यह भी है कि कांग्रेसियों में ही इस के प्रति अधिक उत्साह नहीं है और ५० हज़ार कांग्रेसियों को सत्याग्रह में झोंकने का ख़्वाब देखने वाले मिश्र जी ने भी स्वीकार किया है कि अब तक २१ हजार सत्याग्रहियों ने ही शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं. सत्याग्रह

द्वारकाप्रसाद मिश्र : तैयारी

की हलचल सारे प्रदेश में एक जैसी नहीं है, कांग्रेसी युवा वर्ग में कहीं-कहीं अतिरिक्त उत्साह है. कुछ विशिष्ट कांग्रेसी ही श्री मिश्र का साथ नहीं दे रहे हैं. श्यामाचरण शुक्ल इस प्रश्न पर श्री मिश्र के विरोधी हैं. रायपुर ज़िला कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा यह मत जाहिर किया है कि केंद्र की स्पष्ट स्वीकृति के बिना सत्याग्रह आरंभ न किया जाये. मिश्र-शुक्ल का आपसी विरोध कांग्रेस को हमेशा उलझाये रहता है. पिछले अनुभव से यही प्रकट होता है कि दोनों में जो भी समझौता होता है वह ज़्यादा दिनों तक नहीं टिक पाता. अत: श्री शुक्ल और उन के समर्थकों के सहयोग के बग़ैर सत्याग्रह की गति मंद पड़ गयी है.

जोखम : संविद के जीर्ण दुर्ग के पत्थर चटखाने का भरम पूरा होता है या नहीं, यह तो समय ही बतलायेगा पर सत्याग्रह के बहाने कांग्रेस को एक लाभ यह अवश्य हुआ है कि वह जनता के नजदीक पहुँच रही है और बहुत अर्से से निष्क्रिय बैठे कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को करने के लिए कुछ काम मिल गया है. कांग्रेसी कार्यकर्ता सत्याग्रह के दौर में अपने आप को गिरफ़्तार कराने के लिए पूरी कोशिश करेंगे इसी लिए उन्होंने विधानसभा के समक्ष ही प्रदर्शन की योजना बनायी है. लेकिन संविद सरकार गिरफ्तारी से भरसक कतराते हुए सत्याग्रहियों के प्रयास की विफलता के लिए अन्य हथकंडे अपनायेगी, जिन में से एक यह भी है कि सत्याग्रहियों को पकड़ कर २०-२५ मील दूर छोड़ आया जाये जिस से कि लौटते वक़्त पैदल घिसट कर उन का उत्साह कुछ ठंडा पड़ जाये. बजट सत्र की समाप्ति तक विधायकों को हड़ताल में शामिल न करने के इरादे का एक खास कारण यह भी प्रतीत होता है कि कांग्रेस को अभी यह उम्मीद है कि संविद सरकार बिना सत्याग्रह के भी टूट जायेगी. बहरहाल, संविद सरकार प्रस्तावित सत्याग्रह की अहमियत को चाहे जिस रूप में भी स्वीकार करे, आगामी कुछ हफ़्तों तक उसे धड़-पकड़ और एक साथ ही कई आंदोलनों से निपटने का जोखम उठाना पड़ेगा. सूखाग्रस्त क्षेत्रों में समुचित कार्रवाई करवाने के अलावा २३ जनवरी को जबलपुर में पूरी हड़ताल करवा कर प्रसोपा ने अपनी कई माँगों के लिए राज्यव्यापी आंदोलन शुरू कर दिया है. उस ने यह चेतावनी भी दी है कि यदि फ़रवरी के अंत तक उस की कुछ विशेष माँगें (जिन में एक माँग उच्च न्यायालय में हिंदी का प्रयोग भी शामिल है) पूरी न की गयीं तो वह संविद से अलग हो जायेगा. इस के अलावा कांग्रेस की प्रस्तावित हड़ताल के दौर में ही कम्युनिस्ट पार्टी ने भी आंदोलन चलाने की योजना बनायी है. माँगों की लंबी सूची में से उस की एक माँग यह है कि बस्तर को क्षेत्रीय स्वायत्तता दी जाये. कांग्रेसी और प्रसोपा नेताओं ने तो यह प्रचार भी आरंभ कर दिया है कि इस समय भी प्रदेश में केंद्रीय

हस्तक्षेप का वातावरण तैयार हो गया है—मुमकिन है, सत्याग्रह और आंदोलनों के शोर-शराबे इस प्रचार को हक़ीक़त में बदल दें.

संविद की स्थिति : इधर नयी दिल्ली के एक पत्रकार-सम्मेलन में राजमाता विजया राजे सिंधिया ने यह विश्वास प्रकट किया है कि फ़िलहाल संविद सरकार के अस्तित्व को कोई खतरा नहीं है. पिछले राजनैतिक संकट के लिए मुख्यमंत्री गोविंदनारायण सिंह को ही दोषी ठहराते हुए उन्होंने कहा कि बीच में राजा नरेशचंद्र के समर्थन में पद-त्याग की बात कह कर बाद में वह ही अपने इरादे से मुकर गये थे. अब क्यों कि तूफ़ान गुज़र चुका है, निकट भविष्य में संविद सरकार के अस्तित्व को कोई खतरा नहीं और अगर भूतपूर्व कांग्रेसी मुख्यमंत्री श्री मिश्र ने क़ानून तोड़ने की कोशिश की तो उन के खिलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई की जायेगी.

राजमाता के इस वक्तव्य के बावजूद इस में संदेह नहीं कि नवंबर में २० मंत्रियों का त्यागपत्र स्वीकार किये जाने के बाद जो स्थिति चल रही है वह संविद की मज़बूती का लक्षण नहीं है. गोविंदनारायण सिंह जनसंघ और राजमाता को शिकस्त दे कर मंत्रिमंडल के पुनर्गठन में तो सफल हो गये किंतु इस प्रक्रिया में उन्हें अपने कुछ समर्थकों से भी हाथ धोना पड़ा. किंतु तमाम खतरों से परिचित होते हुए भी मुख्यमंत्री का कहना है कि वह बजट सत्र से पूर्व और उस के दौरान कुछ कांग्रेसी विधायकों को लोक सेवक दल में ले आयेंगे. उन्होंने यह संभावना भी ज़ाहिर की है कि अगले कुछ महीनों में ३०-३५ कांग्रेसी विधायक टूट सकते हैं. मुख्यमंत्री को अपने मंत्रिमंडल में ३-४ स्थान और भरने हैं—यह लालच कुछ कांग्रेसी विधायकों को आकर्षित कर सकता है किंतु अभी तक तो ३५-४० की संख्या मुख्यमंत्री की खुशफ़हमी की ही उपज लगती है.

जनसंघ की जीत

खातेगाँव (मध्यप्रदेश) निर्वाचन क्षेत्र के विधानसभा-उपचुनाव में १२ हजार से अधिक मतों से जनसंघ की विजय से कांग्रेस की प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुँचा है. जनसंघ की यह विजय अप्रत्याशित नहीं है क्यों कि पिछले आम चुनाव में भी वह यहाँ विजयी हुआ था. तब और अब में फ़र्क सिर्फ़ इतना है कि जिताने वाले वोटों की संख्या डेढ़ हज़ार से बढ़ कर साढ़े बारह हज़ार हो गयी है.

म्युनिसिपल चुनावों में कांग्रेस की आशातीत सफलता के बाद इस उप-चुनाव के परिणाम ने यह स्पष्ट कर दिया है कि म्युनिसिपल और विधानसभा के चुनाव में काफ़ी अंतर है. इस का उदाहरण है कन्नौद में पिछले महीने संपन्न म्युनिसिपल चुनाव, जहाँ जनसंघ को एक भी स्थान नहीं मिल सका किंतु कांग्रेस एक को छोड़ कर सभी स्थानों पर कब्ज़ा करने में सफल हो गयी. लेकिन कन्नौद के विधान सभा उपचुनाव में कांग्रेसी उम्मीदवार वल्लभदास घूत से जनसंघी उम्मीदवार हिंदूसिंह केवल १७ वोटों से बाज़ी मार ले गये.

बेशक, हिंदूसिंह की विजय की खींचतान का सारा श्रेय जनसंघी कर्मचारियों की निष्ठापूर्ण और सुनियोजित चुनाव-प्रचार को दिया जाना चाहिए. जनसंघ के कार्यकर्त्ताओं ने ग्राम-ग्राम और घर-घर जा कर जनता से संपर्क कायम किया, कुछ अपवादों को छोड़ कर वे सरकारी कर्मचारियों से दूर ही रहे, कई तो रेस्ट हाउसों में भी नहीं ठहरे और उन्होंने किसानों के साथ बैठ कर भोजन किया. इस के विपरीत कांग्रेस के बहुत कम नेता चुनाव-प्रचार में निष्ठापूर्वक शामिल हुए. चोटी के कांग्रेसी नेताओं ने अमीराना ठाठबाट से चुनाव क्षेत्रों के दौरे किये. प्रांतीय कांग्रेस ने या तो इस चुनाव की जान-बूझ कर उपेक्षा की या कुशल कर्मचारियों के अभाव में वह अपना दायित्व नहीं निभा सकी. इस संदर्भ में मतदान से कुछ रोज पूर्व कांग्रेसी उम्मीदवार वल्लभदास से **दिनमान** की जो बातचीत हुई उस का निष्कर्ष यह था कि उन्होंने प्रदेश कांग्रेस की निष्क्रियता के कारण विजय की आशा पहले से ही त्याग दी थी.

अभी प्रदेश में और भी अनेक उपचुनाव शेष हैं; प्रायः सभी में कांग्रेस और जनसंघ का ही मुक़ाबला होगा. जनसंघ की कर्मठता और कांग्रेस की निष्क्रियता का अनुपात कन्नौद की ही तरह आगे भी क़ायम रहा तो मुमकिन है कि मायूसी का पलड़ा कांग्रेस की तरफ़ ही भारी रहेगा.

दिल्ली

जनसंघ की हार

सन् १९६७ के आम चुनाव में बुरी तरह पराजित होने के बाद पिछले दिनों पहली बार नगर निगम के चुनाव में कांग्रेसी उम्मीदवार डॉ. भीमसेन बंसल लाल दरवाज़ा क्षेत्र से विजयी हुए और कांग्रेस को सिर उठाने का एक सही मौक़ा मिला. विजयोल्लास स्वाभाविक ही था, उस की अभिव्यक्ति भी बहुत भव्य ढंग से की गयी. कांग्रेस के नेताओं ने कहा 'यह विजय धर्मनिरपेक्षता और प्रजातंत्र की विजय है. कि जनता ने उसे प्रतिनिधित्व का मौक़ा दिया है तो वह उन की उम्मीदों को पूरा करेगी.' दूसरी तरफ़ पराजित पक्ष यानी जनसंघ के नेताओं का कहना था कि कांग्रेस की विजय सांप्रदायिकता और पैसे की विजय है. संयोगवश यदि कांग्रेस हारी होती और जनसंघ जीता होता तब कांग्रेस भी यही कहती कि जनसंघ की विजय सांप्रदायिकता और पैसे की विजय है. जो भी हो, लाल दरवाज़ा मतदान यह सिद्ध करता है कि कांग्रेस की स्थिति पहले से अच्छी हुई है. यों लाल दरवाज़ा की सीट कांग्रेस की पुश्तैनी सीट रही है और सन् १९४७ से १९६७ तक वहाँ से कांग्रेस के ही उम्मीदवार विजयी होते रहे हैं. चुनाव के मैदान में कांग्रेस के डॉ. बंसल और जनसंघ के कृष्णकुमार के अलावा रिपब्लिकन दल के खुर्शीद आलम, प्रसोपा के हरस्वरूप शर्मा और खचेरू, दीपक, दुलीचंद, मुहम्मददीन, मुहम्मद ज़ुबेर, बब्बन और अली मुहम्मद नाम के अन्य निर्दल उम्मीदवार थे. श्री बंसल को जनसंघी उम्मीदवार कृष्णकुमार से २०११ वोट अधिक मिले. पिछले चुनाव में कांग्रेस के उम्मीदवार को जनसंघ से केवल ३००. मत अधिक मिले थे. पराजय के बावजूद जनसंघ इस बात से संतुष्ट है कि उसे पिछले चुनाव की तुलना में ८०० वोट अधिक मिले. वोटों का अधिक मिलना उस के अनुसार उस की लोकप्रियता का ही प्रमाण है. इस चुनाव की एक मज़ेदार बात यह भी है कि इस में कांग्रेस, जनसंघ और रिपब्लिकन के अलावा जो उम्मीदवार खड़े हुए थे, उन की स्थिति ज़रा भी अच्छी नहीं रही. उन्हें जो वोट मिले, उन का विवरण यों है : हरस्वरूप शर्मा : २२६, खचेरु ४३, दीपक ३२, दुलीचंद २३, मुहम्मददीन १६, मुहम्मद ज़ुबेर १४, बब्बन ७ और अली मुहम्मद ३.

कृष्णकुमार और भीमसेन बंसल : आमने-सामने

यह जगह कांग्रेस के दारोग़ामल के निधन से रिक्त हुई थी. लाल दरवाज़ा क्षेत्र में मुस्लिम मतदाताओं की संख्या बड़ी है और यही वजह है कि कांग्रेस वहाँ पर शुरू से ही विजयी होती रही. संभवतः जनसंघ वालों को इस बात का आभास था कि इस क्षेत्र में पाँव जमा पाना उन के लिए मुश्किल होगा लेकिन तब भी उन्होंने भरपूर कोशिश की. विजयकुमार मल्होत्रा तथा जनसंघ के अन्य नेता यह कह कर अपने को भले ही संतोष दे लें कि ८०० अधिक मतों का मिलना उन के दल की नीतियों की लोकप्रियता का प्रमाण है लेकिन यह संतोष महज़ संतोष है.

बहुत कुछ और कुछ नहीं के बीच

नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने कहा था 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा.' एक शब्द में यह स्पष्ट था कि वह जनता से क्या चाहते हैं और जो कुछ चाहते हैं उस के बदले में उसे क्या मिलेगा. आज स्वाधीन और खंडित बंगाल में—देश में भी नेता वोट माँगते है, जो वस्तुतः वोट न हो कर खून होता है और जनता भूख, ग़रीबी, बेरोजगारी, जुलूस, प्रदर्शन, आंदोलन, लाठी-प्रहार और गोली-वर्षा के दौर से गुजर कर अपना खून देती है. वोट के बदले में देने के लिए नेताओं, राजनैतिक दलों के पास एक शब्द में कुछ नही है, असंख्य शब्दों में बहुत कुछ है—इतना कुछ कि पुस्तकों की शक्ल मे ज़िंदगी भर पढ़ते रहें और तकरीरों की शक्ल में ज़िंदगी भर सुनते रहें.

इस संबंध में दो टूक उत्तर की तलाश में **दिनमान** के प्रतिनिधि ने विभिन्न दलों के शीर्ष नेताओं और प्रवक्ताओं से अलग-अलग मुलाकात की और यह जानना चाहा कि जनता ने अगर उन्हें वोट दिया तो वे जनता को क्या देंगे, अब तक क्या दिया है उन्होंने और जो कुछ देने का वायदा कर रहे हैं उसे दे सकने की उन में सामर्थ्य भी है? उन के सामने सब से बड़ी समस्या क्या है? खाद्य और बेरोज़गारी की समस्याओं का कैसे और कब तक हल निकाल लेंगे? उन की भाषा-नीति क्या होगी? अपनी भाषा को कब तक पूरी तरह अपना लेंगे? बढ़ती क़ीमतों को कब तक और कैसे बाँधेंगे? राष्ट्रीय एकता और सांप्रदायिक शांति के लिए उन के पास क्या कार्यक्रम है?

अधिकांश दल इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर देने में असमर्थ रहे. किसी भी समस्या का एक निर्धारित समय के भीतर समाधान करने के लिए उन के पास कोई कार्यक्रम नही है.

कांग्रेस : स्थायित्व और समृद्धि : प्रख्यात कांग्रेसी निर्मल चंदर के पुत्र और प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष **डॉ. प्रतापचंद्र चंदर** ने इस प्रतिनिधि को बताया कि बंगाल के विकास के लिए नहीं, बंगाल में प्रजातंत्र की रक्षा के लिए भी कांग्रेस को सत्ता में आना है. कांग्रेस ही स्थायी सरकार बना सकती है और स्थायी सरकार के बिना समृद्धि मुमकिन नहीं. कांग्रेस अध्यक्ष का दृढ़ विश्वास है कि कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिल जायेगा. उन के शब्दों में इस का कारण यह है कि पिछले आम निर्वाचन में कांग्रेस को कुल वोट का ४१ प्रतिशत वोट मिला था. कुछ कांग्रेसियों के कांग्रेस से निकलने और बंगला कांग्रेस बना लेने से ही दल अल्पमत में आ गया था. इस बार बँगला कांग्रेस के रहस्यों का भी उद्घाटन हो गया है और वह पाँच-छह टुकड़ों में बँट गया है.

पिछले बीस वर्षों में आप के दल ने क्या किया? क्या ऐसा कुछ किया जिस के चलते जनता कांग्रेस को एक और अवसर देना ठीक समझे?

'हमारी उपलब्धियाँ विशाल है. औद्योगिक, व्यापारिक और सेवा—हर दृष्टि से राज्य ने काफ़ी प्रगति की है. लेकिन इस का यह मतलब नहीं कि कांग्रेस सरकार सारी समस्याओं का समाधान करने में सफल रही है. ५० लाख विस्थापित पूर्वी बंगाल से आये, जिस से राज्य की अर्थ-व्यवस्था पर भारी दबाव पड़ा. इन सारी बातों के बावजूद कृषि-उत्पादन में भारी वृद्धि हुई. नये-नये उद्योग-धंधे स्थापित हुए, जिन में लोगों को रोजगार मिला. राज्य कांग्रेसी राज्य में निरंतर विकास की ओर बढ़ा लेकिन संयुक्त मोर्चा के ९ महीने के अल्प शासन-काल में ही गिरावट की ओर हो चला. श्रमिक-अशांति और आम अराजकता से विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया और अवनति प्रारंभ हो गयी.

'सत्ता में आने के बाद कांग्रेस सब से पहले खाद्य-समस्या को हल करने के लिए क़दम उठायेगी. कृषि-उत्पादन में वृद्धि और वितरण की उचित व्यवस्था कर के इस समस्या पर क़ाबू पाया जा सकता है. कांग्रेस महासमिति ने जैसा कि स्वीकार किया है, ग्रामीण संपत्ति के समान ही शहरी संपत्ति की भी अधिकतम सीमा निर्धारित की जायेगी. लेकिन यह अधिकतम सीमा क्या होगी और कब तक निर्धारित की जायेगी, इस संबंध में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता. समाजवाद के लिए संपत्ति का उचित बँटवारा करना ही पड़ेगा.

यह पूछे जाने पर कि आप की सरकार नक्सलवाड़ी आंदोलन का मुक़ाबला कैसे करेगी, डॉ. चंदर ने कहा कि इस का मुक़ाबला केवल क़ानून और पुलिस से नहीं किया जा सकता. इस के लिए राजनैतिक स्तर पर जनता के बीच नया आंदोलन शुरू करना पड़ेगा, जिस से नक्सलवादियों को अलग-अलग किया जा सके. मैं नक्सलवादियों की गतिविधि पर क़ानूनी प्रतिबंध के विरुद्ध हूँ, बशर्ते कि उन की गतिविधियाँ हिंसा को न भड़काती हों. यह एक राजनैतिक संगठन है और किसी राजनैतिक संगठन को अपनी विचारधारा के लिए आंदोलन चलाने का अधिकार है. इस का जवाब जवाबी आंदोलन ही हो सकता है.

क़ीमतों को बाँधने के लिए समय की कोई सीमा निर्धारित नहीं कर सकते. उत्पादन में वृद्धि से ही बढ़ती क़ीमतें रुक सकती हैं. राज्य के लिए भाषा कोई बड़ी समस्या नहीं है. यहाँ का काम बंगला और नेपाली में होगा और संपर्क-भाषा के रूप में अभी अंग्रेजी जारी रहेगी.

कोई वायदा नहीं : बंगाल की मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख नेता और संयुक्त मोर्चा की सरकार में उप-मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु के अनुसार जनता कम्युनिस्ट पार्टी और संयुक्त मोर्चे को इस लिए वोट देगी क्यों कि उस के सामने दूसरा कोई विकल्प नही है. जब बसु मोशाय से यह पूछा गया कि अगर संयुक्त मोर्चा पुनः सत्ता में आया तो वह राज्य की जनता के लिए क्या करेगा तो उन्होंने संयुक्त मोर्चा के घोषणापत्र का उल्लेख करते हुए कहा कि अभी से कुछ कह पाना मुश्किल है. सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात आर्थिक है और उस समय आर्थिक स्थिति क्या होगी, इस संबंध में कुछ भी कह पाना संभव नही है. जो साधन हमें उपलब्ध होंगे उन का सर्वोत्तम उपयोग करने की हम चेष्टा करेंगे. अभी राष्ट्रपति-शासन में वित्तीय मामलों में क्या कुछ हो रहा है, हमें कुछ पता नही. पुनः सत्ता में आने पर भीतरी बातों के विषय में जाना जा सकेगा.

श्री बसु के अनुसार सब से बड़ी समस्या खाद्य-समस्या है, जिस का समाधान फ़िलहाल केंद्रीय सहायता के बिना संभव नहीं है. खाद्य-नीति के बारे में भी कुछ कहना मुश्किल है. केंद्र का सहयोग कैसा रहेगा, सहायता किस हद तक मिलेगी इस का पता नहीं. वैसे हमारा प्रयास उत्पादन में वृद्धि कर आत्मनिर्भर होने के लिए रहेगा. जहाँ तक मूल्य-नीति या बढ़ती क़ीमतों को रोकने का सवाल है, यह राज्य सरकार के बस की चीज़ नहीं है. इसे केंद्रीय सरकार ही स्थिर रख सकती है. भाषा-नीति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि बंगला, अंग्रेज़ी और हिंदी तीनों को ले कर चला जायेगा. हम ज़बर्दस्ती किसी पर कोई भाषा नहीं लादेंगे. इस का मतलब यह हुआ कि संपर्क-भाषा के रूप में अंग्रेजी जारी रहेगी.

श्री बसु का खयाल है कि नक्सलवादी तत्त्वों की गतिविधियों का मार्क्सवादी पार्टी पर कोई बुरा असर नहीं पड़ेगा, अर्थात् चुनाव में मार्क्सवादी उम्मीदवारों को नक्सलवादियों के चुनाव-विरोधी आंदोलन के कारण कम वोट नहीं मिलेगा. बहुत कम लोग ऐसे कार्यों में लगे हुए हैं. यह आंदोलन वस्तुतः क्रांति के लिए नहीं, भ्रांति के लिए है.

प्रयोगहीन प्रयोग : दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट

प्रतापचंद्र चंदर हेमंतकुमार बोस सुकुमार राय सुनील दास जहाँगीर कबिर

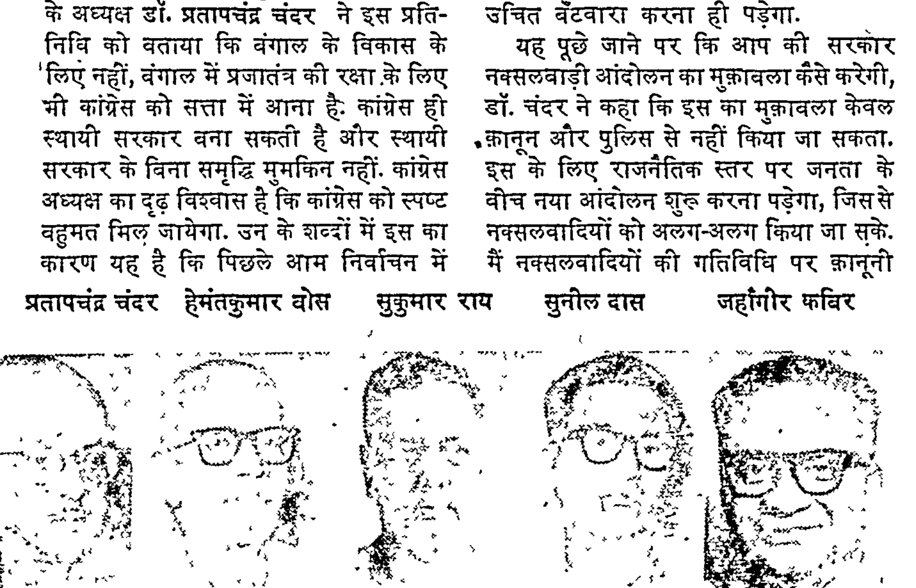

पार्टी के नेता सोमनाथ लाहिड़ी के अनुसार अगर संयुक्त मोर्चा अनेक दलों के सहयोग से बना है और किसी न किसी बिंदु पर खंडित है तो कांग्रेस भी इस से कम खंडित या विचारधारा को ले कर कम विभक्त नहीं हैं. संयुक्त मोर्चा एक न हो कर भी एक है, जब कि कांग्रेस एक हो कर भी एक नहीं है. इस लिए जनता संयुक्त मोर्चा के उम्मीदवारों को चुनेगी.

उन का कहना है कि संयुक्त मोर्चा एक दल के रूप में हो गया है, इस लिए अलग-अलग दलों की विचारधारा और कार्यक्रम के बारे में प्रश्न करना समीचीन नहीं है. पिछले आम निर्वाचन में जनता ने कांग्रेस को अस्वीकृत कर दिया था. बाद में कांग्रेस ने पिछले दरवाजे से सत्ता हथियाने की चेष्टा की, लेकिन जनआंदोलन के भारी दबाव से उसे ऐसा करने में भी सफलता नहीं मिली और अंत में राष्ट्रपतिशासन लागू करना पड़ा, जो अंततः प्रकारांतर से कांग्रेस शासन है. वास्तविक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है. जनता पूर्ववत् संयुक्त मोर्चा की ओर आकर्षित है. इस बार क्योंकि केवल एक मोर्चा है, इस लिए उस की शक्ति में जनता को अधिक विश्वास है. ग़रीब और श्रमिक जनता का भला संयुक्त मोर्चा ही कर सकता है. थोड़े समय के शासन-काल में ही किसानों को बहुत सारी सुविधाएँ उपलब्ध करायी गयीं थीं और श्रमिकों को मालिकों के शोषण और पुलिस के दमन से मुक्ति दिलायी गयी थी.

मोर्चा ही मोर्चा : पिछले आम चुनाव में ग़ैर-कांग्रेसी दलों के ध्रुवीकरण में बंगला कांग्रेस के संस्थापक श्री **अजय मुखर्जी** ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी. आसन्न चुनाव में भी संयुक्त मोर्चा को क़ायम रखने में मुखर्जी मोशाय की ही भूमिका सर्वप्रमुख है. बातचीत के दौरान भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री मुखर्जी ने यह विश्वास प्रकट किया कि बंगला कांग्रेस के प्रति बंगाल की जनता का आकर्षण पहले जैसा ही है. उन के अनुसार राज्य की जनता कांग्रेस विरोधी है, क्यों कि उसे मालूम है कि 'हमारी सरकार को ग़ैर-क़ानूनी तौर पर बरखास्त किया गया था. जनता पुनः संयुक्त मोर्चा को निर्वाचित कर हमारी सरकार को बहाल करने जा रही है. हमारा प्रयास समाजवाद की स्थापना के लिए है और रहेगा.

बंगला कांग्रेस के ही एक महत्त्वपूर्ण नेता और प्रवक्ता **सुकुमार राय** ने कहा कि संयुक्त मोर्चा के प्रमुख घटक मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से उन का समझौता हो चुका है कि कोई कार्यक्रम दोनों दलों की सहमति से ही तैयार होगा. इस संबंध में कुछ महीनों पहले साम्यवादी नेताओं (ज्योति बसु, प्रबोध दास गुप्त और निरंजन सेन) के साथ अजय मुखर्जी, सुशीलकुमार धाड़ा और मेरी बातचीत हुई थी. उन्होंने विश्वास दिलाया कि चुनाव के बाद संयुक्त मोर्चे के टूटने का कोई खतरा नहीं.

भूपाल बोस हरिपद भापती

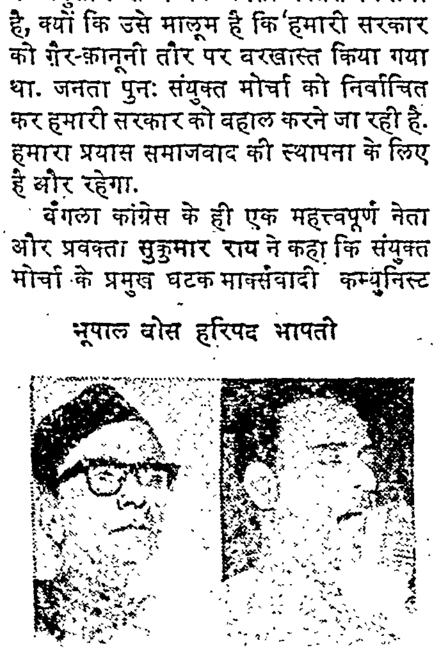

हुमायून कबिर आसुतोष घोष

श्री राय की नज़र में पश्चिम बंगाल की सब से बड़ी समस्या खाद्य की है. इस का समाधान उत्पादन में वृद्धि और अधिग्रह की समुचित व्यवस्था से संभव है. उन की सरकार अगर बनी तो इस के लिए तत्काल समुचित क़दम उठायेगी. दूसरी समस्या शिक्षा और सामाजिक सेवाओं की है. तीसरा स्थान औद्योगिक क्षेत्र को है. उन्होंने मानने से इनकार कर दिया कि राज्य की औद्योगिक स्थिति खराब हो रही है और पूँजी का पलायन अन्य राज्यों की ओर हो रहा है. 'केवल धमकियाँ दी जा रही हैं, कोई बंगाल से अपने कल-कारखाने उठाने नहीं जा रहा. श्री राय के लिए भाषा कोई समस्या नहीं है. राज्य का काम शीघ्रातिशीघ्र बंगला में हो और संपर्क-भाषा के रूप में अंग्रेज़ी तब तक जारी रहे जब तक कोई भारतीय भाषा, जो हिंदी भी हो सकती है, संपर्क-भाषा के रूप में अपना न ली जाये.

बंगला कांग्रेस के इस बार कुल ५९ उम्मीदवार हैं, जिन में से ३५ के जीतने की पूरी कोशिश है. पिछली बार ८१ उम्मीदवार थे, जिन में से ३४ जीत गये थे और बाद में १७ टूट कर कांग्रेस और अन्य दलों में चले गये. राय मोशाय के अनुसार इन टूटे लोगों के कारण बंगला कांग्रेस का कोई नुकसान नहीं हुआ.

बीच का रास्ता : प्रजा समाजवादी पार्टी के भूतपूर्व प्रादेशिक अध्यक्ष और वर्त्तमान महामंत्री श्री **सुनील दास** का ख्याल है कि बंगाल की भलाई के लिए कांग्रेस और संयुक्त मोर्चा दोनों की पराजय आवश्यक है. राज्य की सत्ता सँभालने के लिए प्रजातंत्र में विश्वास रखने वाली और राष्ट्रवादी दूसरी शक्तियों का उदय होना चाहिए और इस दिशा में उन की पार्टी सक्रिय रहेगी. 'मैंने राज्य प्रसपा द्वारा कम्युनिस्टों से साँठगाँठ करने और संयुक्त मोर्चा में शामिल होने का हमेशा विरोध किया. पहले मेरा विरोध अल्पमत में था. इस लिए दल संयुक्त मोर्चा में शामिल रहा. लेकिन धीरे-धीरे मुझे बहुमत प्राप्त हो गया और दल ने संयुक्त मोर्चा से निकलने का

सुबोध बनर्जी जीवनलाल चटर्जी

फ़ैसला लिया.'

प्रसपा के अनुसार आगामी मध्यावधि निर्वाचन में न कांग्रेस को बहुमत मिलेगा और न संयुक्त मोर्चे को. ऐसी स्थिति में पार्टी राष्ट्रीय और प्रजातंत्रवादी शक्तियों के साथ सरकार बनाने की चेष्टा कर सकती है. संयुक्त मोर्चा के विरोध का मतलब यह क़तई नहीं है कि हम कांग्रेस को किसी तरह की मदद करना चाहते हैं.

दबा विद्रोह : बंगाल की संयुक्त समाजवादी पार्टी के महामंत्री **डॉ. भूपाल बोस** के अनुसार वर्त्तमान संवैधानिक व्यवस्था, राजनैतिक आचार और **मूर्खों के प्रजातंत्र** में जब तक बुनियादी परिवर्त्तन नहीं किये जायेंगे देश का कल्याण नहीं हो सकता. भारत में प्रजातंत्र की प्रगति का इसी से अंदाज़ लगाया जा सकता है कि १९५२ के पहले आम निर्वाचन में निर्वाचित नेताओं में ३० प्रतिशत दसवीं कक्षा तक भी नहीं पढ़े थे, अर्थात् नॉनमैट्रिक थे. यह संख्या क्रमशः बढ़ कर १९५७ में ४५ प्रतिशत और १९६२ में ६० प्रतिशत हो गयी. १९६७ का मुझे पता नहीं. ८० प्रतिशत संसद-सदस्यों और विधायकों को अपने संविधान के विषय में कोई भी जानकारी नहीं. कलकत्ता जैसे शिक्षित महानगर में नगर निगम के ८० प्रतिशत सदस्यों को निगम-क़ानून के बारे में कोई जानकारी नहीं है. ऐसे नेताओं से देश का क्या भला होगा ? इस लिए प्रजातंत्र के इस स्वरूप को बदलना होगा. निर्वाचित होने वाले व्यक्तियों के लिए भी योग्यताएँ निर्धारित करनी होंगी. ऐसे लोगों के निर्वाचित होने पर पाबंदी लगानी पड़ेगी जिन्हें प्रजातंत्र की रीति-नीति का कुछ पता नहीं है.

डॉ. बोस ने यह वायदा करने से इनकार किया कि मध्यावधि निर्वाचन के बाद उन का दल संयुक्त मोर्चे में बना रहेगा. सरकार में शामिल होने के लिए संसपा की अपनी शर्तें होंगी : (१) ६ एकड़ से कम भूमि वाले किसानों को लगान की छूट, (२) भ्रष्टाचार की छान-बीन के लिए आयोग का गठन, जिसे संयुक्त मोर्चे के कार्यों की छानबीन की भी छूट हो, (३) कक्षा ८ तक निःशुल्क शिक्षा और (४) उत्तर बंगाल में बर्बाद हुए परिवारों का अविलंब पुनःसंस्थापन. इन शर्तों को स्वीकार होने की स्थिति में संसपा संयुक्त मोर्चा के मंत्रिमंडल में शामिल हो सकती है. पिछली विधानसभा में संसपा के कुल ७ सदस्य थे. मध्यावधि में १४ उम्मीदवार खड़े हैं. दल के लोगों का विश्वास

है कि ८-१० उम्मीदवार विजयी हो जायेंगे.

बंगाल रक्षा : फ़ॉरवर्ड ब्लॉक के प्रमुख नेता हेमंतकुमार बोस ने काफ़ी ज़ोर दे कर कहा कि अगर बंगाल को डूबने से बचाना है तो संयुक्त मोर्चा को विजयी बनाना होगा. कांग्रेस प्रजातंत्र और समाजवाद के विकास करने में निरंतर असफल रही है. संयुक्त मोर्चा के पराजय का कोई सवाल नहीं, उस की पराजय बंगाल की और प्रजातंत्र की पराजय है. जब उन का ध्यान संयुक्त मोर्चे के दौरान शिक्षा और औद्योगिक क्षेत्रों मे हुई अशांति की ओर दिलाया गया तो उन्होंने कहा कि जो कुछ हुआ वह बहुसंख्यक जनता के हित के लिए हुआ. आखिर आप ग़रीब श्रमिकों की उचित माँगों को स्वीकार करेंगे कि नही, हमारी सरकार ने और कुछ नही किया, बल्कि उन के शोषण में उद्योगियों-व्यापारियों का साथ नही दिया. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने जब यह जानना चाहा कि क्या ऐसा कोई एक अच्छा काम संयुक्त मोर्चे की सरकार ने किया है जिस का लाभ राज्य की आम जनता को मिला, या मिलेगा तो उन्होंने कहा 'इस साल बंगाल में भारी फ़सल काटी गयी है. इस का एकमात्र श्रेय संयुक्त मोर्चा सरकार को है. अगर उस ने कृषि-ऋण, उत्तम बीज, सिंचाई और खाद-व्यवस्था न की होती तो आज जो फसल देखने को मिलती है वह नही मिलती. अगर संयुक्त मोर्चा सत्ता में आया तो उन का दल इस बात के लिए प्रयत्नशील रहेगा कि शक्तिशाली निहित स्वार्थी तत्त्वों का सफ़ाया किया जाये. बसु मोशाय ने यह विश्वास दिलाया कि अगर संयुक्त मोर्चा को बहुमत प्राप्त हुआ तो वह औद्योगिक और शैक्षणिक शांति के लिए महत्त्वपूर्ण क़दम उठायेगी. वह सामाजिक शक्तियों की सहायता से हर समस्या का समुचित समाधान ढूंढ निकालेगी. पहला सवाल बंगाल की रक्षा का है. बंगाल इस समय निहित स्वार्थों के और केंद्रीय सरकार के शोषण का केंद्र बना हुआ है.

यह पूछे जाने पर कि क्या आप के कम्युनिस्ट सहयोगी नक्सलवादियों की हरकतों के विरुद्ध या अन्य विध्वंसात्मक कार्यों के विरुद्ध क़दम उठाने में उतनी ही तत्परता दिखायेंगे जितनी आप या ग़ैर-कम्युनिस्ट दल दिखायेंगे उन्होंने कहा, इस में संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है. आखिर नक्सलबाड़ी में ग़ैर-क़ानूनी हरक़तों के विरुद्ध हम ने पुलिस कार्रवाई की या नही ? मूल समस्याएँ खाद्यान्न और बेरोज़गारी हैं.

घेराव के घेरे में : भारतीय समाजवादी एकता केंद्र (एन. यू. सी. आई. वस्तुतः कम्युनिस्ट संगठन) के नेता और भूतपूर्व संयुक्त मोर्चा सरकार मे 'घेरावमंत्री' के रूप मे विख्यात श्री **सुबोध बैनर्जी** से **दिनमान** के प्रतिनिधि ने श्रम-नीति और 'घेराव' पर बातें की. नपे-तुले शब्दों में सुबोध बाबू ने कहा : घेराव भारत मे या बंगाल में नया नही है. गांधी जी ने जब हमें दुकानों पर धरना देने के लिए कहा, ताकि हम विदेशी माल खरीदने आने वालों को विरत कर सकें, तो वस्तुतः उन्होंने ऐसा दुकान का घेराव करने के लिए किया. ट्रेड यूनियन आंदोलन नये घेराव काफ़ी समय से प्रचलित हैं. यह नया नही, अलावा इस के किसी भी आंदोलन को जनता का समर्थन ऐसे ही नहीं मिलता. जनता का समर्थन आंदोलन की श्रेष्ठता और उच्चता पर निर्भर करता है. उदाहरण के लिए हड़ताल कर्मचारियों का कानूनी अधिकार है, लेकिन हर हड़ताल का समर्थन संभव नही है. अगर हड़ताल न्यायोचित, तर्कसंगत और नैतिक कार्य के लिए की गयी है तो उस को समर्थन मिलेगा, अन्यथा नही. 'घेराव' पर भी इसी दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए.

जब प्रतिनिधि ने उन्हें याद दिलाया कि कलकत्ता उच्च न्यायालय ने घेराव को ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया था तो उन्होंने कहा हमारे नेता और शिक्षक (हमारे महामंत्री कॉमरेड शिवदास घोष) ने हमें सिखाया है कि नीति-शास्त्र के अनुसार यह ज़रूरी नहीं कि हर ग़ैर-क़ानूनी चीज़ अनैतिक और अतर्कसंगत हो. इसी तरह यह भी ज़रूरी नहीं कि हर क़ानूनी व्यवस्था नैतिक और उचित ही हो, खास कर सामाजिक अन्याय और शोषण पर आधारित वर्गों में खंडित समाज में घेराव के विषय में यही मेरा विचार है. इतना मैं ज़रूर स्वीकार करता हूँ कि ट्रेड यूनियन नेताओं की ग़लती से कुछ मामलों में ज़्यादतियाँ हुईं. लेकिन इस का मतलब यह नहीं कि एक आंदोलन के रूप में घेराव त्याज्य या निंदनीय हो गया.

शोषणविहीन समाज : भारतीय वर्कर्स पार्टी (वस्तुतः कम्युनिस्ट) के संस्थापक-अध्यक्ष श्री **जीवनलाल चटर्जी** ने कहा कि वर्कर्स पार्टी का एकमात्र प्रयास समाजवादी क्रांति के लिए है. 'जोखुन सोशलिस्ट रिवोल्यूशन हबे तखुन शोषण थाकबे न.' श्री चटर्जी के अनुसार वर्तमान सामाजिक व्यवस्था शोषण पर आधारित है. आज उद्योगों और सामाजिक सेवाओं का संचालन लाभ और शोषण के लिए होता है, आम जनता के हित या सेवा के लिए नही. किसी भी निर्वाचित सरकार से जनकल्याण की आशा नहीं. इस के लिए वर्तमान समाज में बुनियादी परिवर्तन करने पड़ेंगे, जो कि जागृत जनआंदोलन से ही संभव हैं.

वर्कर्स पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी का अंतर स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि अंतर बहुत कम है, लेकिन यह महत्त्वपूर्ण है और इसे एक शब्द में स्पष्ट नही किया जा सकता. हमारी पार्टी को प्रेरणा किसी दूसरे देश से नही मिलती. कम्युनिस्ट पार्टी की आस्था का केंद्र देश की सीमाओं से बाहर है.

अखंड भारत : जनसंघ के राज्य शाखा के अध्यक्ष **प्रो. हरिपद भारती** के अनुसार जनता तीन बातों के लिए जनसंघ को वोट देगी : १—अखंड भारत की कल्पना को साकार करने के लिए, २—राष्ट्रीय बोध और राष्ट्रीयता के विकास के लिए और ३—सारी समस्याओं, खास कर आर्थिक समस्याओं के वास्तविक और समुचित समाधान के लिए. बातचीत के दौरान प्रो. भारती ने एक-एक चीज साफ़ की. भारत-पाकिस्तान के एकीकरण का सवाल है. यह सैनिक शक्ति के बल पर नही दोनों देशों के जनमत पर आधारित होगा. राष्ट्रीयता के विकास का आशय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हिंदू राष्ट्र से नही है. हम एक धर्म-निरपेक्ष हिंदू राष्ट्र चाहते हैं, जिस में विभिन्न धार्मिक आस्थाओं और संस्कृतियों को समान सम्मान और अधिकार प्राप्त होगा. आर्थिक नीति के विषय में उन्होंने कहा कि हम न पूंजीवाद चाहते हैं और न समाजवाद. हम मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के समर्थक है. जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने कहा कि कांग्रेस भी मिश्रित अर्थ-व्यवस्था का मार्ग अपनाये हुए है तो उन्होंने कहा कि कांग्रेस केवल सैद्धांतिक रूप से अपनाये हुए है. हम इसे ठोस स्वरूप देना चाहते हैं.

अहिंसा की वापसी : 'पश्चिम बंगाल हिंसा के दौर से गुजर रहा है. बंगाल में कांग्रेस या

कृषि-क्रांति की शपथ का आवाहन्

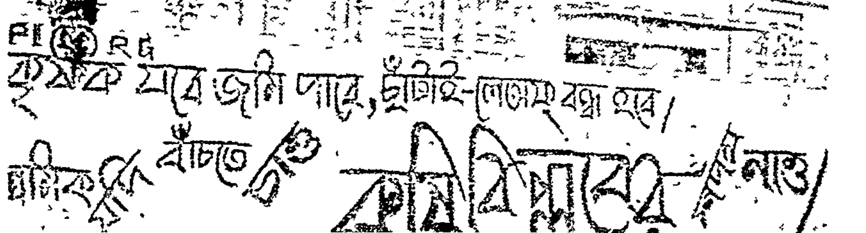

कि अमुक उम्मीदवार आप के गोत्र का है, इस लिए आप को चाहिए कि उसे ही वोट दें. फ़ैज़ाबाद में आर. एन. त्रिपाठी नाम के उम्मीदवार ने, जो कि भारतीय क्रांति दल की टिकट पर खड़े हैं, मुसलमान मतदाताओं को आकर्षित करने का एक नया तरीक़ा अपनाया है. उन्होंने अपनी बेटी का नाम **सीता-आयशा** रखा है और अपने दो बेटों को **राम-रहीम** और **कृष्ण-करीम** कह कर पुकार रहे हैं. फ़ैज़ाबाद में कांग्रेस के कुछ मशहूर नेताओं के कांग्रेस से निकल कर भारतीय क्रांति दल में शामिल हो जाने से कांग्रेस की स्थिति काफ़ी कमज़ोर हुई है. इस ज़िले से प्रसोपा, मज़दूर परिषद् और रिपब्लिकन दल ने भी अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं लेकिन उन की सफलता की कोई आशा नहीं है. दो भूतपूर्व कांग्रेसी नेता— जयराम वर्मा और मदनमोहन वर्मा प्रादेशिक स्तर के नेता रहे हैं. जयराम वर्मा क्रांति दल में चले गये और मदनमोहन वर्मा ने टिकट के मसले पर असंतुष्ट हो कर कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया. अभी तक वह किसी दल में शामिल नहीं हुए हैं. सर्वाधिक प्रतिष्ठा की सीट अकबरपुर की है, जहाँ से क्रांति दल के ही टिकट पर कुर्मी वर्ग के लोकप्रिय नेता जयराम वर्मा चुनाव लड़ रहे हैं. उन की प्रतिद्वंद्विता में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के रामवर भर हैं. उन्हें उस क्षेत्र के एक प्रभावशाली मुसलमान नेता अकबर हुसैन बरार का समर्थन प्राप्त है. पिछले आम चुनावों में जयराम वर्मा ने इन दोनों को हराया था. जयराम वर्मा की दिक़्क़त यह है कि उन के वर्ग के वोट निर्दलीय उम्मीदवार रामजोर यादव बँटा लेने वाले हैं. कांग्रेसी उम्मीदवार प्रियदर्शी जेतली हैं. जनसंघ और संयुक्त समाजवादी दल के उम्मीदवार भी यहाँ हैं, लेकिन उन्हें अपेक्षाकृत बहुत ही कम समर्थन मिलने की संभावना है. अयोध्या क्षेत्र में संघर्ष त्रिकोणात्मक है, जिस में सीता-आयशा के पूज्य मोहतरिम पिता आर. एन. त्रिपाठी का मुक़ाबला कांग्रेस के विश्वनाथ कपूर और जनसंघ के एम. पी. सिंह से है. इस क्षेत्र में मुसलमानों के १८००० वोट हैं और वे कांग्रेस और क्रांति दल में ही बँटने वाले हैं. ये मतदाता जनसंघ के कट्टर विरोधी हैं. यों संभावना यह है कि अगर मुसलमानों के वोट उस तरह से बँटे तो हिंदुओं के कुछ वोट जनसंघ को अवश्य मिल जायेंगे. फ़ैज़ाबाद शहर में जनसंघ के भी दो गुट हो गये हैं. ब्राह्मणों और ठाकुरों के बीच कुछ तनाव है. माया चुनाव-क्षेत्र में एक लखपति कम्युनिस्ट शंभुनारायण सिंह हैं, जो पिछले चुनाव में ९०० मतों से हार गये थे. भारतीय क्रांति दल की तरफ़ से ठाकुरदीन वर्मा खड़े हैं, जिन्होंने टिकट न मिलने के कारण कांग्रेस छोड़ दी है. यह क्षेत्र भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गढ़ समझा जाता रहा है. पिछले आम चुनावों में इस दल के उम्मीदवार राजबली पांडेय इस क्षेत्र से विजयी हुए थे. कुल मिला

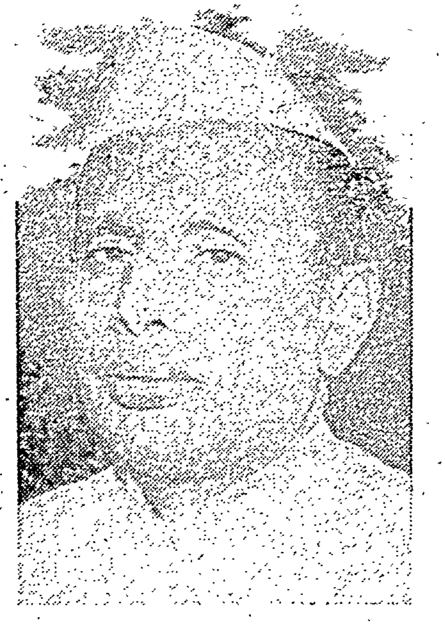

गिरधारी लाल

कर इस ज़िले में भारतीय क्रांति दल का ज़ोर अधिक है. विभिन्न चुनाव-भाषणों में चरणसिंह ने कांग्रेस की जो बखिया उधेड़ी है वह जनता को तात्कालिक ढंग से आकर्षित करने में सफल रही है. अपने भाषणों में अगर चरणसिंह यह कहते हैं कि कांग्रेस के बैल देश की खेती चर गये तो चंद्रभानु गुप्त उन पर यह लांछन लगाते हैं कि कांग्रेस में उन के हितों की पूर्ति नहीं हुई, इस लिए उन्होंने एक नया दल बना लिया है.

फ़तहपुर ज़िले से १९६७ के आम चुनावों में कांग्रेस विधानसभा की छह में से पाँच सीटों पर कब्ज़ा पाने में सफल हो गयी. कानपुर और इलाहाबाद के बीच इस क्षेत्र में कांग्रेस पिछले दो चुनावों में बहुत प्रभावशाली थी. लेकिन १९६७ तक पहुँचते-पहुँचते कांग्रेस इस क्षेत्र की जनता के सामने भी एकदम नग्न हो गयी थी. परिणाम यह था कि लोकसभा की जगह के लिए बी. बी. केसकर जैसे लोग पराजित हुए और विधानसभा में भी कांग्रेस के केवल दो उम्मीदवार जीत सके. पिछले आम चुनावों में इस ज़िले से ४८ उम्मीदवार खड़े हुए थे. इस वक़्त मैदान में ३७ उम्मीदवार हैं. सामान्य मतदाता यह मान कर चलता है कि इस क्षेत्र की कांग्रेस के बीस साल के शासन-काल में बहुत उपेक्षा की गयी है. कांग्रेस को एक और धक्का भारतीय क्रांति दल से भी लगा है, क्यों कि रुद्रप्रताप सिंह के नेतृत्व में यहाँ से बहुत से कांग्रेसी कांग्रेस से अलग हो कर भारतीय क्रांति दल में शामिल हो गये हैं. हाथा चुनाव-क्षेत्र में कांग्रेसी उम्मीदवार जयनारायण सिंह कई प्रतिद्वंद्वियों से घिरे हुए हैं. खजुहा चुनाव-क्षेत्र से भारतीय क्रांति दल के ही टिकट पर उदितनारायण शर्मा खड़े हैं, जो कि संयुक्त मोर्चे की सरकार में राजस्वमंत्री थे.

बीजनौर ज़िले में अंसार वर्ग के असंतोष ने इस बीच कांग्रेस की स्थिति थोड़ी और खराब कर दी है. मुसलमान मतदाताओं के एक बड़े वर्ग ने भारतीय क्रांति दल में शामिल हो कर कांग्रेसी हल्क़ों को खतरे के बिंदु पर खड़ा कर दिया है. इस ज़िले में ग़ैर-कांग्रेसी शक्तियों का काफ़ी ज़ोर है. कुछ ही दिन पहले चंद्रभानु गुप्त जब एक चुनाव-सभा में भाषण करने गये तो भाषण के शुरू होने के साथ-साथ ही भीड़ ने गधे और बिल्ली की बोलियाँ बोलनी शुरू कर दीं. इस क्षेत्र में अंसार और मोमिन मतदाताओं की संख्या काफ़ी बड़ी है. इन में ज़्यादातर बुनकर हैं. इन लोगों का कहना था कि कांग्रेस दो चुनाव-क्षेत्रों से उन के ही प्रतिनिधियों को टिकट दे. कांग्रेस ने सिर्फ़ एक जगह दी. असंतोष बढ़ा और उन्होंने भारतीय क्रांति दल के टिकट पर अपने दो उम्मीदवार खड़े कर दिये. जनसंघ की भी हालत इस क्षेत्र में खस्ता है. स्वतंत्र पार्टी की स्थिति जनसंघ से भी दयनीय है. कांग्रेसी नेतृत्व गुटबादिता का शिकार है. यहाँ के एक कांग्रेसी नेता के अनुसार धामपुर, नजीबाबाद, बिजनौर और नगीना, सभी क्षेत्रों में कांग्रेस के गुप्त गुट के कुछ लोग भारतीय क्रांति दल के उम्मीदवार का समर्थन कर रहे हैं. अफ़ज़लगढ़ चुनाव-क्षेत्र से कांग्रेस के भूतपूर्व मंत्री गिरधारी लाल खड़े हैं. यह क्षेत्र सुरक्षित है और इस का प्रतिनिधित्व श्री लाल काफ़ी दिनों से करते रहे हैं.

कानपुर में ६ लाख १६ हज़ार मतदाता हैं और यहाँ से क़रीब-क़रीब सभी दलों ने अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं. कांग्रेस, जनसंघ और संसपा इस बात की कोशिश में हैं कि जिन सीटों पर पिछले चुनाव में उन के उम्मीदवार विजयी हुए थे उन्हें किसी प्रकार सुरक्षित रखा जा सके. चौथी शक्ति के रूप में भारतीय क्रांति दल मैदान में आया है और उस की वजह से सारे अनुमान अनिश्चयता में बदल गये हैं. विधानसभा की छह जगहों के लिए साठ उम्मीदवार मैदान में खड़े हैं. एक मज़ेदार बात यह है कि पहले पीकिङ्पंथी लोगों ने शहर की दीवारों पर लंबे पोस्टर लगा कर जनता से यह अपील की थी कि वह चुनाव का बहिष्कार करे, लेकिन फिर चुनाव के दिन नज़दीक आने पर सब से पहले उन्होंने ही प्रचार का काम शुरू किया. आर्य नगर के सुरक्षित चुनाव-क्षेत्रों से भारतीय क्रांति दल ने जवाहर लाल जाटव को खड़ा किया है. श्री जाटव पिछले चुनाव में कांग्रेस के टिकट से विधानसभा के चुनाव में विजयी हुए थे. कांग्रेस ने अपने उम्मीदवार का नाम विभिन्न स्थानीय कांग्रेसियों के दबाव में तीन बार बदल कर अंततः नगर निगम के एक सदस्य शिवलाल को खड़ा किया है. जनसंघ ने मुंशीलाल को खड़ा किया है, जिन्हें पिछले चुनाव में द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ था. तीसरे उम्मीदवार संसपा के लालताप्रसाद दरयाबादी हैं. कैंटोनमेंट चुनाव-क्षेत्र से भारतीय क्रांति दल ने मनोहरलाल को खड़ा किया है, जो पिछले चुनाव में कांग्रेस उम्मीदवार देवीसहाय बाजपेयी से ७२४ मत से हार गये

बसंतसिंह रामप्रकाश गर्ग जोगिंदरसिंह मान प्याराराम धन्नोवाली कपूरसिंह जगन्नाथ कौशल लालचंद सब्बरवाल

थे. संसपा समझौते के अनुसार मनोहरलाल को समर्थन दे रही है. जनसंघ के उम्मीदवार वासुदेव कपूर हैं. चमनगंज के मुसलमान बहुल क्षेत्र से (९९५०८ मतदाता) भारतीय क्रांति दल ने मक़बूल हुसैन कुरेशी नाम के एक बहुत प्रभावशाली व्यक्ति को खड़ा किया है. श्री कुरेशी नगर निगम के उपाध्यक्ष हैं. इंटक के एक प्रभावशाली नेता के रूप में उन्होंने नगर निगम के चुनाव में कांग्रेसी उम्मीदवार को पराजित किया था. जनसंघ ने भी इस क्षेत्र से शकील अहमद तातारी नाम के मुसलमान उम्मीदवार को खड़ा किया है. कांग्रेस के उम्मीदवार हमीद खाँ हैं, जो संसपा के उम्मीदवार से पिछले चुनाव में ४४० मतों से हार गये थे. इस क्षेत्र से तीन मुसलमान उम्मीदवार और खड़े हैं. जनसंघ का दावा यह है कि क्यों कि मुसलमानों के मत बँट जायेंगे इस लिए उस की विजय होने की संभावना अधिक है. मुख्य संघर्ष कांग्रेस और संसपा के बीच में है और दोनों अपनी-अपनी सफलता के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर रहे हैं. जनरलगंज चुनाव-क्षेत्र से पिछले चुनाव में जनसंघ के उम्मीदवार गंगाराम तलवाड़ विजयी हुए थे. उन्होंने कांग्रेसी उम्मीदवार श्रीमती तारा अग्रवाल को पराजित किया था. कहा जाता है कि उस चुनाव में कांग्रेस के ही कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों ने श्रीमती तारा अग्रवाल के खिलाफ़ प्रचार किया था. इस बार जब श्रीमती तारा अग्रवाल ने कांग्रेस टिकट लेना नामंज़ूर कर दिया तो उस ने गणेशदत्त वाजपेयी को खड़ा किया. श्री वाजपेयी भूतपूर्व प्रसोपाई और मज़दूर-नेता हैं और उन की विजय की आशा कुछ अधिक है. कल्याणपुर चुनाव-क्षेत्र से जनसंघ के बाबूराम शुक्ल खड़े हैं. कांग्रेसी उम्मीदवार एस. जी. दत्ता हैं. भारतीय क्रांति दल ने श्री कृष्ण वाजपेयी को खड़ा किया है. श्री कृष्ण वाजपेयी पहले जनसंघ में थे, लेकिन जब जनसंघ ने उन्हें टिकट नहीं दिया तो वह भारतीय क्रांति दल में चले गये. गोविंद नगर के मज़दूर बहुल क्षेत्र में (१२५४९१ मतदाता) इंटक के नेता प्रभाकर त्रिपाठी कांग्रेसी उम्मीदवार के रूप में खड़े हैं. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने इस जगह से संतसिंह यूसुफ़ को खड़ा किया है. पिछले चुनाव में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट और प्रसोपा के विरोध के कारण वह पराजित हो गये थे. इस बार प्रसोपा और संसपा दोनों ही उन्हें समर्थन दे रहे हैं. जनसंघ की तरफ से पद्मदेवसिंह गौतम खड़े हैं. भारतीय क्रांति दल ने भी एक मज़दूर नेता जमुनाप्रसाद दीक्षित को खड़ा किया है. इस क्षेत्र में सात उम्मीदवार हैं.

सक्रिय नेताओं के बीच

अन्य तीन राज्यों की तरह मध्यावधि चुनाव की गरमी पंजाब में किसी भी तरह कम नहीं है. लुधियाना, जालंधर, फ़िरोज़पुर, पटियाला और अमृतसर ज़िलों में लगभग हर निर्वाचन-क्षेत्र में जीपों, कारों तथा अन्य कई प्रकार की गाड़ियों की भरमार है. अकाली दल, जनसंघ और कम्युनिस्ट पार्टियों के कार्यकर्ता पिछले आम चुनाव की अपेक्षा अधिक सक्रिय नज़र आ रहे हैं और प्रधानमंत्री के दो दौरों के बावजूद कांग्रेस का नैतिक मनोबल अपेक्षाकृत नहीं बढ़ पाया है. हर लिहाज़ से कांग्रेसी कार्यकर्ता और नेता ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों की अपेक्षा अपने आप को कमज़ोर पा रहे हैं. लेकिन अकाली और कम्युनिस्ट पार्टी में सभी स्थानों के लिए चुनाव-समझौता न हो सकने के कारण तथा पटियाला और रोपड़ ज़िलों में अकालियों की आपसी फूट के कारण उन की स्थिति को धक्का ज़रूर पहुँचा है फिर भी उन का मनोबल उतना नहीं गिरा है जितना कि कांग्रेसी नेताओं और कार्यकर्त्ताओं का.

पिछले दिनों कम्युनिस्ट पार्टी के प्रदेश सचिव अवतारसिंह मलहोत्रा ने कहा कि कोई भी पार्टी सरकार बना सकने में समर्थ नहीं होगी, क्यों कि वर्त्तमान संकेतों के अनुसार अकालियों को ज्यादा से ज्यादा ४० और कांग्रेस को ३० स्थान प्राप्त होंगे. जनसंघ की स्थिति पिछले आम चुनाव की अपेक्षा कमज़ोर होगी और वह ९ की जगह ५ स्थान ही बटोर पायेगी. उन का अनुमान है कि कम्युनिस्ट पार्टी को १५ स्थान मिलेंगे. अकालियों के लिए बेहतर होगा कि वह जनसंघ के साथ चुनाव-समझौता करने की जगह वामपंथी पार्टियों की सहायता करें और उन्हीं के सहयोग से सरकार बनायें. कम्युनिस्ट पार्टी २७ की जगह २६ स्थानों से चुनाव लड़ेगी और १८ निर्वाचन-क्षेत्रों में अकाली, ७ में कम्युनिस्ट मार्क्सवादी, ३ में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, ४ में रिपब्लिकन (अंबेडकर पार्टी) और १० निर्दल उम्मीदवारों का समर्थन करेगी. कम्युनिस्ट पार्टी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता हरिकिशनसिंह सुरजीत (बड़ा पिंड), अकाली नेता ज्ञानसिंह राड़ेवाला (पायल), सुरिंदरसिंह कैरों (पट्टी), तथा प्रेमसिंह प्रेम (बनूड़) का विरोध करेगी लेकिन भूतपूर्व मुख्यमंत्री गुरनामसिंह (ज़िला रायपुर) का समर्थन करेगी. गुरनामसिंह के पक्ष में निर्दल उम्मीदवार मल्कियतसिंह बैठ गया है और उस ने अपने १,००० समर्थकों के साथ अकाली दल में शामिल होने का भी ऐलान कर दिया है.

दूसरी ओर अकाली और जनसंघ नेता बाँह में बाँह डाले और कंधे से कंधा मिलाये चुनाव-प्रचार के लिए निकल पड़े हैं. संत फ़तहसिंह और जनसंघ नेता यज्ञदत्त शर्मा २६ जनवरी से पहली फ़रवरी तक अमृतसर, गुरदासपुर, जालंधर, लुधियाना, फिरोज़पुर, संगरूर और भटिंडा ज़िलों का दौरा कर चुके हैं. उन के अलावा सरदार गुरनाम सिंह और भूतपूर्व जनसंघी वित्तमंत्री डॉ. बलदेव प्रकाश तथा ज्ञानी भूपिंदर सिंह और जनसंघ के देवदत्त शर्मा भी अन्य इलाक़ों का दौरा कर रहे हैं. अकाली-जनसंघ समझौते के बावजूद पटियाला ज़िले में दोनों पार्टियों के बीच की खाई साफ़ नज़र आ रही है. पटियाला में जनसंघ के ओमप्रकाश लांबा और अकाली पार्टी के रवेलसिंह की कांग्रेस के जगन्नाथ कौशल से टक्कर है. यहाँ पहुँच संत और यज्ञदत्त अलग-अलग मंचों से अपनी-अपनी पार्टी के समर्थन में वक्तव्य देंगे. डकाला से स्वतंत्र पार्टी के प्रदेश सचिव बसंतसिंह के मुक़ाबले में पेप्सू के भूतपूर्व मुख्यमंत्री कर्नल रघुबीरसिंह की पत्नी श्रीमती बीरपाल कौर लड़ेंगी. अकाली दल बसंतसिंह का समर्थन कर रहा है और आज-कल बसंतसिंह की जीपों और कारों पर अकाली झंडे लहरा रहे हैं.

पंजाब में मालवा ज़िलों का एक समूह है, जिसे अकालियों का गढ़ समझा जाता है. इस में संगरूर, भटिंडा और फ़िरोज़पुर ज़िले शामिल हैं. इस समूह में ३४ निर्वाचन-क्षेत्र आते हैं. पिछले आम चुनाव में यहाँ से कांग्रेस को १२, अकाली संत गुट को १४ और दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों को ५ स्थान मिले थे. इस

वार भी यहाँ ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों की स्थिति मज़बूत है और कांग्रेस के लिए उन का दबदबा कम कर पाना मुश्किल है. फ़िरोज़पुर ज़िले के १५ स्थानों के लिए ६५ उम्मीदवार हैं. कांग्रेस पार्टी सभी १५ स्थानों के लिए, जनसंघ ६, अकाली दल ८, कम्युनिस्ट ५, रिपब्लिकन ४, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी २ और स्वतंत्र तथा जनता पार्टी १-१ उम्मीदवार खड़ा कर रही हैं. २३ निर्दल उम्मीदवार हैं. इस ज़िले में सब से दिलचस्प मुक़ाबला धर्मकोट में भूतपूर्व मुख्यमंत्री लक्ष्मणसिंह गिल (जनता पार्टी) और अकाली दल के संसद्-सदस्य सोहनसिंह बस्सी में है. दोनों बलवान हैं और उनके साधन भी बेइंतहा हैं. मुक़ाबला जम कर होगा.

फ़ाज़िलका से भूतपूर्व कांग्रेसी विधायक राधाकृष्ण, आदराम (जनसंघ) और हरफूल राम (कम्युनिस्ट) का मुक़ाबला है. वहाँ पर कांग्रेसी उम्मीदवार की स्थिति अच्छी है. लांबी सुरक्षित स्थान से कृपाराम (कांग्रेस) के मुक़ाबले में ओमप्रकाश (स्वतंत्र) और रामलाल (जनसंघ) खड़े हुए थे लेकिन एक जीप दुर्घटना में रामलाल की मृत्यु हो जाने से वहाँ का चुनाव फ़िलहाल स्थगित कर दिया गया है. मोगा में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के प्रदेश-अध्यक्ष साथी रूपलाल के मुक़ाबले में सत्यदेव सूद (कांग्रेस) और हरबंससिंह (अकाली) में जम कर टक्कर होगी.

भटिंडा ज़िले के १० स्थानों में से पिछले आम चुनाव में कांग्रेस को केवल २ स्थान ही मिले थे, जब कि अकालियों को ५ और कम्युनिस्ट पार्टी को एक स्थान मिला था. पिछले दिनों जब संत फ़तहसिंह गोनियाना और तलवंडी साबो इलाक़े का दौरा कर रहे थे तब वहाँ उन के ख़िलाफ़ नारे लगाये गये. इस का कारण यह था कि अकाली पार्टी ने तेजासिंह को इस स्थान से खड़ा किया है, जो कि 'बाहर' का आदमी है. अकाली समर्थक 'थोपे' गये आदमी को बर्दाश्त नहीं कर सकते. भटिंडा नगर से इस बार विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष हरबंसलाल के मुक़ाबले में तेजासिंह (अकाली) और सोमचंद गुप्ता (कांग्रेस) की टक्कर है. जनसंघ हरबंसलाल का समर्थन कर रहा है. लेकिन साथ ही के हलके कोटकपूरा में कांग्रेस के हरचरणसिंह बरार की स्थिति मज़बूत है.

संगरूर ज़िले की ९ सीटों में कांग्रेस को पिछली बार तीन, अकालियों को चार और दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों को दो स्थान मिले थे. संगरूर ज़िले के लहड़ा निर्वाचन-क्षेत्र से पेप्सू के भूतपूर्व मुख्यमंत्री बृषभान और अकाली उम्मीदवार हरचंद सिंह के बीच सीधी टक्कर है. बृषभान की स्थिति अधिक मज़बूत है.

होशियारपुर के ८ निर्वाचन-क्षेत्रों के लिए ३७ उम्मीदवार हैं. यहाँ से ७ भूतपूर्व विधायक, जिन में छह भूतपूर्व मंत्री हैं, चुनाव लड़ रहे हैं. कभी यह ज़िला कांग्रेस का गढ़ समझा जाता था और १९६७ के चुनाव में कांग्रेस को यहाँ से सात स्थान मिले थे. जम कर मुक़ाबला टांडा और दसुआ हलकों से होगा. टांडा से गिल मंत्रिमंडल के वित्तमंत्री डॉ. जगजीतसिंह (जनता पार्टी) की टक्कर अमीरसिंह (कांग्रेस), दीदारसिंह (जनसंघ), चननसिंह धुत (कम्युनिस्ट मार्क्सवादी) और ठाकुरदास (रिपब्लिकन) से है. जाटों का ज़्यादा दबदबा है और पिछली बार डॉ. जगजीतसिंह रिपब्लिकन पार्टी के टिकट पर यहाँ से निर्वाचित हुए थे. अपनी लोकप्रियता के कारण जगजीतसिंह की स्थिति काफ़ी अच्छी है. दसुआ से भी गिल मंत्रिमंडल के एक मंत्री महंत रामप्रकाश (निर्दल) के मुक़ाबले में सतपाल सिंह (कांग्रेस), दविंदरसिंह बजवा (अकाली), रतनदास (रिपब्लिकन) की टक्कर है. महंत ने पिछले आम चुनाव में कांग्रेस के ज्ञानी करतारसिंह को हराया था.

रोपड़ के दो हलकों—मुरिंडा और खरड़ के अकाली उम्मीदवारों को ले कर पार्टी में काफ़ी तनाव है. मुरिंडा से भूतपूर्व प्रतिरक्षामंत्री बलदेवसिंह के पुत्र सुरजीतसिंह को अकाली टिकट पर खड़ा किया गया है और रोपड़ से उन के भतीजे रविंदर सिंह को. इन उम्मीदवारों के ख़िलाफ़ अकाली हलक़ों में काफ़ी रोष है और अकाली कार्यकर्त्ता इन थोपे गये उम्मीदवारों के ख़िलाफ़ प्रचार कर रहे हैं. बेशक, ये लोग बाहर के नहीं, फिर भी कार्यकर्त्ताओं का ग़ुस्सा जायज़ ही लगता है. नंगल से एक भूतपूर्व स्थानीय कांग्रेसी नेता बामदेव जनसंघ की टिकट पर इस बार कांग्रेसी उम्मीदवार कुमारी सरला पराशर के विरुद्ध चुनाव लड़ रहा है. मुक़ाबला जम कर होगा. पिछले आम चुनाव में यहाँ से कुमारी पराशर तीन हज़ार मतों से जीती थीं.

करतारपुर (सुरक्षित स्थान) से हरिजन स्त्री २६ वर्षीया श्रीमती भूली के मैदान में आ जाने से प्यारा राम धन्नोवाली (रिपब्लिकन) की स्थिति डाँवाडोल हो गयी है. कांग्रेस ने यहाँ से गुरबंतसिंह को खड़ा किया है.

एडिलेड टेस्ट : प्रतिष्ठा का प्रश्न

ऑस्ट्रेलिया-वेस्ट इंडीज़ टेस्ट शृंखला शुरू होने से पहले जब वेस्ट इंडीज़ की टीम एडिलेड पहुँची थी तब सर डोनेल्ड ब्रैडमैन (दुनिया के सब से बड़े क्रिकेट खिलाड़ी) ने वेस्ट इंडीज़ के कप्तान गैरी सोवर्स की खेल-महिमा का गुणगान करते हुए कहा था कि सोवर्स क्रिकेट जगत का सर्वश्रेष्ठ आल-राउंडर (हरफ़नमौला) खिलाड़ी है. तब कुछ लोगों ने सर ब्रैडमैन के इस कथन का यह अर्थ लगा लिया था कि सोवर्स दुनिया का सर्वश्रेष्ठ बल्लेबाज़ भी है पर ऐसी बात नहीं है. सच तो यह है कि सोवर्स ने लोकप्रियता में अति की सीमा का स्पर्श कर लिया है और अब उन का जितना यशोगान किया जाता है उस से कहीं ज्यादा उन की आलोचना.

इस टेस्ट शृंखला का चौथा टेस्ट (एडिलेड टेस्ट) वेस्ट इंडीज़ के लिए और उस से भी ज्यादा कप्तान सोवर्स के लिए प्रतिष्ठा का टेस्ट है. ऑस्ट्रेलिया अब तक २-१ से आगे है. वेस्ट इंडीज़ पहला टेस्ट (ब्रिस्बेन) जीतने के बाद दूसरे और तीसरे टेस्ट (मेल्बोर्न और सिडनी) में बुरी तरह से हार गयी जिससे ऑस्ट्रेलिया की टीम का हौसला बुलंद और वेस्ट इंडीज़ की टीम के खिलाड़ियों का हौसला पस्त होना स्वाभाविक ही है. और फिर ऑस्ट्रेलिया के खिलाड़ियों को आजकल न जाने क्या हो गया है. लगता है कि उन्होंने सीधे विश्व-विजेताओं को ही हराने की ठान ली है, यानी हॉकी में वह विश्व-विजेता भारत को हराते हैं और क्रिकेट में विश्व-विजेता वेस्ट इंडीज़ को और लॉन-टेनिस में तो उन का अपना दबदबा है ही.

जख्मी खिलाड़ी: लगता है, कि चौथे टेस्ट में भी तक़दीर ऑस्ट्रेलिया का ही साथ दे रही है. सोवर्स यह बात भली-भांति जानते हैं कि यदि वह चौथे टेस्ट में हार गये तो अपना सब कुछ (मान-सम्मान, कौशल, लोकप्रियता) हार जायेंगे. अत: उन की कोशिश यही होगी कि यदि वह यह टेस्ट जीत नहीं सकते तो किसी तरह उसे 'ड्रा' कर दिया जाये. भलाई भी इसी में है क्यों कि यदि ऑस्ट्रेलिया चौथा टेस्ट भी जीत जाता है तो फिर पाँचवें टेस्ट में किसी की दिलचस्पी न रह जायेगी. इस टेस्ट शृंखला का पाँचवा और अंतिम टेस्ट १४ फ़रवरी को सिडनी में खेला जायेगा. यदि चौथा टेस्ट ऑस्ट्रेलिया जीत गया तो फिर इस आखिरी टेस्ट को देखने कौन जायेगा? उस स्थिति में दुनिया की दो चोटी की क्रिकेट टीमों के टेस्ट में हज़ार दर्शक जुटाने भी मुश्किल हो जायेंगे.

टेस्ट शुरू होने से दो दिन पहले वेस्ट इंडीज़ के तेज़ गेंदबाज़ वेस्ली हाल का जख्मी हो जाना, टास जीतने के बावजूद वेस्ट इंडीज़ के खिलाड़ियों का पहली पारी में केवल २७६ रन बना कर आउट हो जाना कोई शुभ लक्षण नहीं हैं. सोवर्स ने टास जीत कर खेलना शुरू किया मगर जिस अनुकूल पिच पर उन्हें कम से कम ४०० रन बनाने चाहिए थे उस पर पूरी टीम केवल २७६ रन बना कर ही आउट हो गयी. लेकिन इस में बेचारे सोवर्स का भी क्या दोष! उन्होंने १३२ मिनट में ११० रन (जिन में दो छक्के और १५ चौके थे) बना लिये और इस प्रकार उन्होंने एडिलेड टेस्ट की पहली पारी में ही १२ बोतल शराब (शैंपेन) ज़रूर खरी कर लीं (एडिलेड की एक शराब कंपनी ने एक छक्के पर छ: बोतल शैंपेन शराब देने की घोषणा की है) लेकिन शैंपेन की इतनी बोतलों से भी सोवर्स का ग़म ज़रा भी कम नहीं होगा. और इस प्रकार ६९ टेस्टों में भाग लेने पर उन्होंने २०वाँ शतक पूरा किया. ऑस्ट्रेलिया के विरुद्ध खेलते हुए यह उन का तीसरा शतक है.

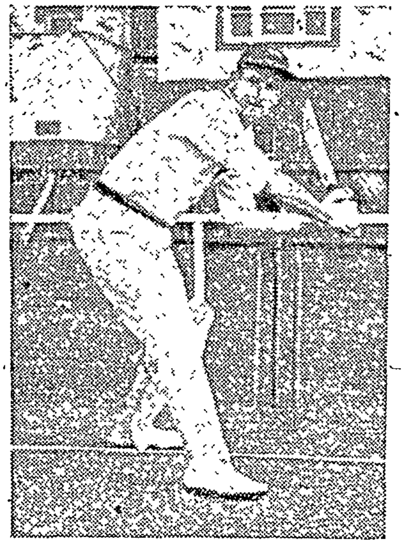

बिल लारी : बायें हाथ का खेल

यों चौथे टेस्ट में वेस्ट इंडीज़ के दो खिलाड़ियों चार्ली ग्रिफिथ (तेज़ गेंदबाज़) और डेविड हालफोर्ड (ऑल-राउंडर) को रिचर्ड एडवर्ड और वेस्ली हाल के स्थान पर रख लिया गया है. चौथे टेस्ट में दोनों टीमों के खिलाड़ियों के नाम इस प्रकार हैं:

वेस्ट इंडीज: सोवर्स, गिब्स, फ़्रेड्रिक्स, केरिऊ, कन्हाई, नर्स, बूचर, हेंड्रिक्स, ग्रिफ़िथ, लायड और हालफोर्ड.

ऑस्ट्रेलिया: लारी, जारमैन, स्टैकपोल, चैपेल, रेडपाथ, शीहन, वाल्टर्स, फ़्रीमैन, मैकेंज़ी, ग्लीसन, कोनोली और मैलेट.

बिल लारी: वर्तमान वेस्ट इंडीज़-ऑस्ट्रेलियाई टेस्ट शृंखला में हार-जीत के प्रश्न के साथ दोनों कप्तानों की प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है. जब से बिल लारी ने ऑस्ट्रेलियाई टीम के नेतृत्व का दायित्व संभाला है तब से वह दिन-ब-दिन लोकप्रिय होते जा रहे हैं. बाब सिंपसन (ऑस्ट्रेलिया के भूतपूर्व कप्तान) के संन्यास की घोषणा के बाद बिल लारी को (इन का पूरा नाम विलियम मारिस लारी है) ऑस्ट्रेलिया का कप्तान नियुक्त किया गया. बिल लारी पारी शुरू करने वाले सफल खिलाड़ी हैं. १९६१ में रिची बेनो की टीम के एक सदस्य (अतिरिक्त सदस्य) के रूप में उन्होंने इंगलैंड का दौरा किया था. बायें हाथ से बल्लेबाजी करने वाले इस खिलाड़ी ने तभी यह साबित कर दिया कि आर्थर मोरिस के बाद वही एकमात्र ऐसा खिलाड़ी है जो इस कठिन कार्य का बीड़ा उठा सकता है. २५ वर्षीय लारी (क़द छ: फ़ुट २ इंच, पतला मगर मज़बूत शरीर) ने इंग्लैंड में बायें हाथ का जो चमत्कार दिखाया उसे देख कर सभी दंग रह गये. ओवल में खेले गये पहले ही मैच में १६५, फिर लार्ड्स में १०४ और ८४ (और आउट नहीं) का प्रदर्शन दे कर उन्होंने दर्शकों की वाह-वाह तो लूटी ही साथ ही ऑस्ट्रेलिया की टीम में अपना स्थायी स्थान भी बना लिया.

१९६४ में बाब सिंपसन के नेतृत्व में उन्होंने दूसरी बार इंग्लैंड का दौरा किया. वहाँ उन्होंने सिंपसन की साझेदारी में पहले ही विकेट में २०१ रन बनाने का एक कीर्तिमान स्थापित किया. १९६५ में सिंपसन और लारी दोनों ने ब्रिजटॉउन में दोहरा शतक बनाया. वेस्ट इंडीज़ के हाल, ग्रिफ़िथ और सोबर्स ने अपनी ओर से पूरा ज़ोर लगाया मगर वे सभी गेंदबाज़ी करते-करते थक गये मगर ये दोनों बल्लेबाज रन बटोरते नहीं थके. यह एक ऐसा उदाहरण है जब पारी शुरू करने वाले दोनों बल्लेबाज (लारी—२१० और सिंपसन २०१) ने अपने-अपने दोहरे शतक बनाये थे. लारी अभी उम्र में बहुत छोटे हैं. लगता है अवकाश लेने से पहले इन की गणना भी क्रिकेट शलाकापुरुषों में की जाने लगेगी.

(अंतिम समाचारों के अनुसार वेस्ट इंडीज़ ने पहली पारी में २७६ और आस्ट्रेलिया ने ५३३ रन बनाये हैं.)

इंग्लैंड बनाम पाकिस्तान

एम. सी. काउड्रे के नेतृत्व में इंग्लैंड (एम. सी. सी.) की क्रिकेट टीम इन दिनों श्रीलंका का दौरा कर रही है. क्रिकेट की दुनिया में श्रीलंका की टीम सब से कमज़ोर टीम मानी जाती है. इंग्लैंड की टीम कुल मिला कर वहाँ तीन एक दिवसीय और एक तीन दिवसीय मैच खेलेगी. उस के बाद २ फ़रवरी को यह टीम पाकिस्तान चली जायेगी. इंग्लैंड बनाम श्रीलंका के मैचों में भारतीय क्रिकेट

प्रेमियों की भले कोई दिलचस्पी न हो मगर पाक-इंग्लैंड टेस्ट शृंखला में भारतीय खेल प्रेमियों की दिलचस्पी होना स्वाभाविक ही है. पाकिस्तान के मुक़ाबले में इंग्लैंड की टीम काफ़ी मज़बूत और तगड़ी है इस में कोई संदेह नहीं. इंग्लैंड की टीम में सभी चोटी के खिलाड़ी हैं इसलिए उसे संतुलित टीम नहीं कहा जा सकता. टीम के मैनेजर का कहना है कि दक्षिण अफ़्रीका के लिए तो यह टीम ठीक है मगर पाकिस्तान के लिए नहीं.

उधर पाकिस्तान में भी खिलाड़ियों के चुनाव के प्रश्न को ले कर काफ़ी परेशानी है. पाकिस्तान के पास पारी शुरू करने वाली कोई सफल जोड़ी नहीं है. हाँ, इंग्लैंड की टीम के कप्तान कॉलिन काउड्रे ने ज़रूर पाकिस्तानी खिलाड़ियों का उत्साह बढ़ाने के उद्देश्य से यह कहा कि पाकिस्तानी क्रिकेट के स्तर में भी हॉकी की तरह ही सुधार हो रहा है. कप्तान के रूप में कॉलिन काउड्रे ने भी काफ़ी ख्याति अर्जित कर ली है और अब उन की गणना दुनिया के इने-गिने चोटी के बल्लेबाज़ों में की जाती है. यों पत्रकारों से बातचीत करते हुए काउड्रे ने कई बार यह बात दोहरायी है कि मैंने काफ़ी समय से क्रिकेट का अभ्यास नहीं किया है मगर फिर भी मैं समझता हूँ कि इस से मेरे खेल-प्रदर्शन में कोई खास अंतर नहीं पड़ने वाला है. ३६ वर्षीय काउड्रे को अब दुनिया का महान बल्लेबाज कहलाने के लिए केवल १५५ रनों की ज़रूरत है. उन की यह मनोकामना किसी भी दिन पूरी हो सकती है. टेस्ट मैचों में वाल्टर हैमंड ने ७,२४९ रन बनाये हैं और काउड्रे ने अब तक ७,०९५, यानी १५५ रन और बनाने पर वह हैमंड से आगे निकल सकते हैं. ऑस्ट्रेलिया के सर डोनल्ड ब्रैडमैन ने ६,९९६ और इंग्लैंड के सर लीन हटन ने ६,९७१ रन बनाये. लगता है कि काउड्रे पाकिस्तान के इस दौरे में इतने रन तो बटोर ही लेंगे. इंग्लैंड की टीम पाकिस्तान में तीन टेस्ट मैच खेलेगी. ३६ वर्षीय काउड्रे का अभी क्रिकेट से संन्यास या अवकाश लेने का कोई इरादा नहीं है. उन का कहना है कि अभी कुछ साल तो मैं क्रिकेट खेलना ही चाहूँगा, अगर मुझे टीम में शामिल करने योग्य समझा गया तो.

नेहरू हॉकी

कॉर्नर अनेक मगर गोल एक भी नहीं

अखिल भारतीय जवाहरलाल नेहरू स्मारक हॉकी प्रतियोगिता में १९६६ से जो संयुक्त विजेता घोषित करने का सिलसिला चला वह अब तक चलता ही आ रहा है. दिल्ली के नवनिर्मित शिवाजी स्टेडियम में नेहरू हॉकी प्रतियोगिता का फ़ाइनल (इंडियन एयर लाइंस और अखिल भारतीय पुलिस) मैच दो दिन (रविवार और सोमवार) खेला गया मगर १५४ मिनट के समय में भी कोई टीम किसी पर कोई गोल नहीं कर सकी. दोनों टीमों को गोल करने के अनेक मौक़े मिले मगर सब बेकार.

सोमवार का फ़ाइनल मैच पहले दिन खेले गये मैच से ज्यादा दिलचस्प और ज़ोरदार था. इंडियन एयर लाइंस की टीम में राइट इन तजिंदर मोहन और लेफ्ट आउट शाहिदनूर का खेल बहुत ही आकर्षक था मगर यह बात समझ में नहीं आयी कि इनाम (इंडियन एयर लाइंस टीम के कप्तान) और तजिंदर मोहन ने शाहिदनूर को पास क्यों नहीं दिये जब कि वह हर बार चमत्कार दिखा कर दर्शकों की वाह-वाह लूटता था. उधर अखिल भारतीय पुलिस में लेफ्ट फुल बैक हुसैन की जितनी तारीफ़ की जाये उतनी कम है.

पहले दिन खेले गये फ़ाइनल में अतिरिक्त समय नहीं दिया गया. राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन दोनों दिन मैच में उपस्थित रहे. दूसरे दिन अतिरिक्त समय दिया गया मगर जब अतिरिक्त समय में भी कोई टीम कोई गोल नहीं कर सकी तो सिक्के की उछाल से तक़दीरों का फ़ैसला किया गया. यों कहा जा सकता है कि इंडियन एयर लाइंस की टीम शुरू से अंत तक क़िस्मत की धनी रही. सिक्के ने भी इंडियन एयर लाइंस का ही साथ दिया और इस प्रकार एयर लाइंस के कप्तान इनाम ने राष्ट्रपति से नेहरू ट्रॉफ़ी प्राप्त की.

प्रतिक्रिया : खेल खत्म हो जाने के बाद **दिनमान** के प्रतिनिधि ने मैदान में उपस्थित हॉकी के पुराने उस्तादों (के. डी. सिंह बाबू और बलबीर सिंह) से उन की प्रतिक्रिया जाननी चाही. यहाँ यह बताना उचित होगा कि इंडियन एयर लाइंस की टीम को प्रशिक्षित करने का श्रेय श्री के. डी. सिंह बाबू को ही है. उन्होंने बताया कि हमारे ज़माने में एक-एक साइड के लिए चार-चार खिलाड़ी होते थे और सभी एक से एक बढ़ कर होते थे और उन में से चुनाव करना भी मुश्किल हो जाता था. मगर आज ऐसी बात नहीं है. आज तो एक साइड

नेहरू ट्रॉफ़ी : इनाम को इनाम

के लिए कई बार एक अच्छा खिलाड़ी भी मिलना मुश्किल हो जाता है.

भारत के भूतपूर्व हॉकी कप्तान बलबीर सिंह (मेल्बोर्न ओलिंपिक, १९५६) ने बताया कि अब हमें स्कूल और कॉलेज के प्रतिभावान खिलाड़ियों की खोज पर ज्यादा बल देना चाहिए. हम लोग सब से बड़ी ग़लती यह करते हैं कि सेना, पुलिस या रेलवे या अन्य विभागों में खिलाड़ियों का चुनाव करते हैं. नये खिलाड़ियों को अपनी मर्ज़ी से तैयार किया जा सकता है मगर इन नामी खिलाड़ियों को अपने ढंग से तैयार करना मुश्किल हो जाता है. फिर ये खिलाड़ी जल्दी ही रोज़ी-रोटी, नौकरी या विवाह के चक्कर में फंस जाते हैं इस लिए इन में साधना पक्ष गौण हो जाता है और दूसरे पक्ष प्रबल हो जाते हैं.

नेहरू स्मारक हॉकी : पुराने विजेता

सन्	विजेता	रनर-अप
१९६४	उत्तर रेलवे	दक्षिण पूर्वी रेलवे
१९६५	सिख रेजिमेंटल सेंटर	बंबई एकादश
१९६६	भारतीय हॉकी संघ (ब्लू) और भारतीय हॉकी संघ (रेड)	संयुक्त विजेता
१९६७	इंडियन नेवी और उत्तर रेलवे	संयुक्त विजेता
१९६८	इंडियन एयर लाइंस और अखिल भारतीय पुलिस	संयुक्त विजेता

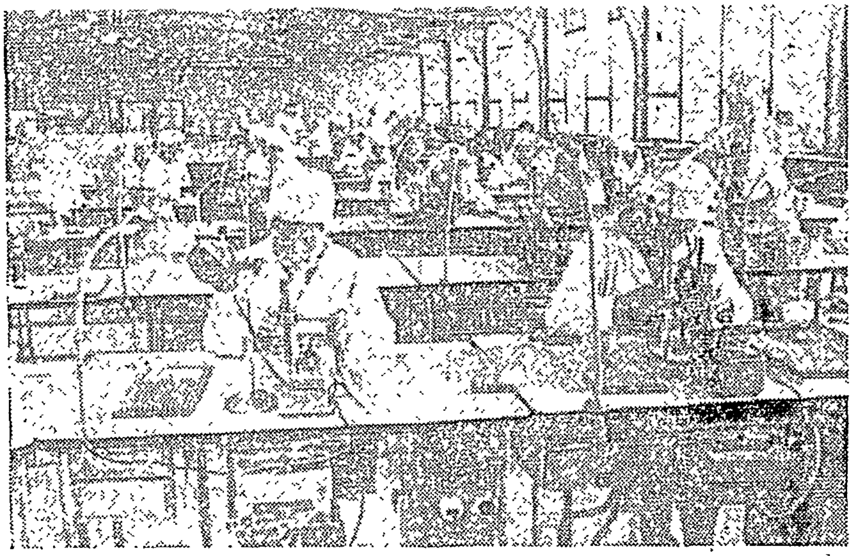

मेहनत के फूल...

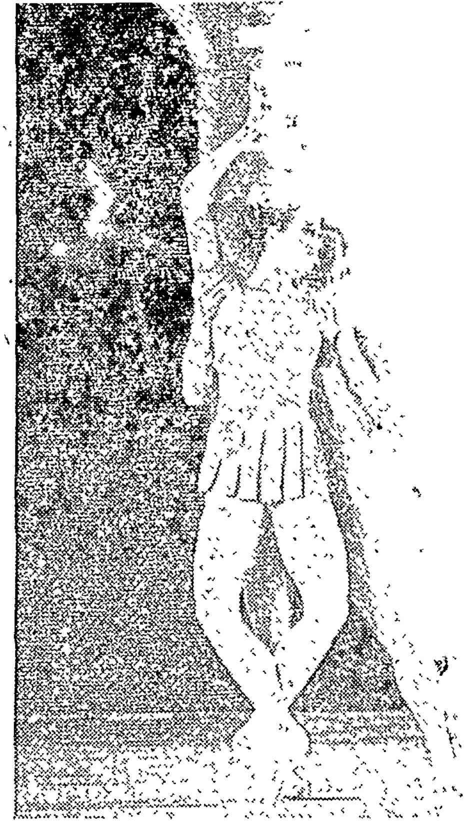

मंच पर खिले

समाचार-भूमि

बुल्गारिया : कांटों में खिला गुलाब

एक बुलगारी लोककथा के अनुसार ईश्वर ने अपने पास पहुँचे एक मेहनतकश किसान को स्वर्ग का एक छोटा-सा टुकड़ा उपहार में दिया. बुल्गारिया अपनी प्राकृतिक संपदा और सौंदर्य के कारण सचमुच पृथ्वी का स्वर्ग है. एक मायने में तो वह स्वर्ग से भी श्रेष्ठ है. अपने पिछले १३०० वर्ष के इतिहास में बुल्गारी जनता ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह स्वर्ग के देवताओं की तरह ऐशो-आराम की ज़िंदगी से संघर्षमय जीवन को श्रेष्ठ मानती है. ६८१ में जब प्रथम बुल्गारी राज्य की स्थापना हुई थी तब से ले कर १५ सितंबर १९४६ में गणराज्य की स्थापना तक बुल्गारिया का इतिहास संघर्षों का इतिहास रहा. बुल्गारी जनता को कभी अपने ही सामंतों से जूझना पड़ा तो कभी तुर्की के नृशंस शासकों के चंगुल से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष करना पड़ा. उस के लिए बाइ-जन्टाइन और तुर्क साम्राज्यों से मोर्चा-लेना जितना जीवट का काम था उतना ही जीवट का काम गणराज्य बनने से पहले स्वदेशी फासिस्ट शासकों से लोहा लेना रहा. बुल्गारी जनता ने अपनी पराधीनता के लंबे इतिहास में हर प्रकार के अत्याचार को सहा, किंतु कभी अपने दिलों को ग़ुलाम नहीं बनने दिया. हर शती में उसे अत्याचारों का सामना करने के लिए कुशल नेतृत्व मिला भले ही उन के विद्रोह की आवाज़ बार-बार कुचल दी गयी हो. कभी पीटर और आसेन बंधुओं ने तर्नोवो नगर को केंद्र बना कर उस का नेतृत्व किया तो कभी कालोयान के नेतृत्व में उस ने क्रुसेडरों के सम्राट् बाल्डविन की चुनौती को स्वीकार किया तो कभी सूअर पालने वाले एक मामूली से किसान इवाइलो बुर्दोक्का उस के नेता बने. ओत्तोमन साम्राज्य के विरुद्ध जार्जी राकोवस्की ने क्रांति का शंख फूंका तो बोतेव के क्रांति-गीतों ने उसे तुर्कों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित किया और अंत में गियोर्गी दिमित्रोव के नेतृत्व में बुल्गारी जनता ने आधुनिक समाजवादी बुल्गारिया की नींव रखी.

९० वर्ष : बुल्गारिया के १३०० वर्षों के इतिहास का यहाँ उल्लेख करना संभव नहीं. आज के बुल्गारिया पर यद्यपि उस इतिहास की अमिट छाप है फिर भी यह माना जा सकता है कि १३ जुलाई १८७८ की बर्लिन संधि के बाद जिस बुल्गारिया की स्थापना हुई वह कमोबेश अपने उसी रूप में आज अस्तित्व में है. इस संधि के ३० वर्ष बाद बुल्गारिया ने तुर्क साम्राज्य की पराधीनता की बेड़ियों को काट डाला और प्रिंस फर्दिनंद को जार की गद्दी पर आसीन किया. प्रिंस फर्दिनंद के राजगद्दी छोड़ने पर उन के पुत्र जार बोरिस तृतीय ने सत्ता सँभाली. २८ अगस्त १९४३ को बोरिस तृतीय की मृत्यु के बाद उन के पुत्र साइमन द्वितीय राजगद्दी पर बैठे जिन्हें ८ सितंबर १९४६ के जनमत संग्रह के परिणामों के आगे सिर झुका कर सत्ता छोड़नी पड़ी. जनमत संग्रह में ३८,०१,१६० मतदाताओं ने गणराज्य के पक्ष में और केवल १,९७,१७६ ने राजशाही के पक्ष में मतदान किया. १५ सितंबर १९४६ को राष्ट्रीय विधानसभा की स्वीकृति के बाद बुल्गारिया गणतंत्र का विधिवत् गठन हो गया. ४ दिसंबर १९४७ को नया संविधान लागू किया गया जिस के अनुसार एक सदन वाली राष्ट्रीय विधानसभा की स्थापना की गयी. देश की उच्चतम समिति प्रेसिडियम का चुनाव राष्ट्रीय विधानसभा करती है जिस में अध्यक्ष के अतिरिक्त दो उपाध्यक्ष, एक सचिव और १५ सदस्य होते हैं. सर्वोच्च सत्ता राष्ट्रीय विधानसभा में निहित है जिस के सदस्यों का चुनाव सीधे जनता करती है. हर १८ वर्षीय नागरिक को मत देने और चुनाव लड़ने का अधिकार प्राप्त है.

बुल्गारिया में गणतंत्र की स्थापना अकस्मात ही नहीं हो गयी. प्रथम विश्वयुद्ध में झुलसने के बाद बुल्गारिया की स्थिति बहुत ही विपन्न हो गयी थी. इस युद्ध में बुल्गारी जनता को अपने स्लाव रूसी भाइयों के विरुद्ध हथियार उठाने पड़े. इसी युद्ध में मज़दूर समाजवादी लोकतंत्री दल ने जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करते हुए बुल्गारिया के महायुद्ध में शामिल होने का विरोध किया और यहीं से बुल्गारिया में लोकतंत्री परंपरा का विकास हुआ. मज़दूर समाजवादी लोकतंत्री पार्टी, किसान संघ, पितृभूमि मोर्चा आदि राजनीतिक दलों ने बुल्गारिया में लोकतंत्र की जड़ें ज़माने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान रूस की लालसेना ने जब जर्मनों को खदेड़ते हुए बुल्गारिया में प्रवेश किया तो वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी ने उस का हार्दिक स्वागत किया. बुल्गारी सेना ने लालसेना से मिल कर अपने फ़ासिस्ट शासकों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया. उन्होंने राजधानी सोफ़िया पर अधिकार जमा कर सरकार के सभी मंत्रियों को बंदी बना लिया. उस के तत्काल बाद कियोन गियोर्गीव के नेतृत्व में पितृभूमि मोर्चे (फादरलैंड फ्रंट) की सरकार स्थापित हो गयी. इस समय यही मोर्चा बुल्गारिया में सत्ता सँभाले हुए है. इस में कम्युनिस्टों का बोलबाला है. इस का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि २७ फ़रवरी १९६६ के चुनावों में ४१६ स्थानों में से २८० पर कम्युनिस्ट, १०० पर अग्रेरियन, १७ पर यंग कम्युनिस्ट और १९ पर निर्दली उम्मीदवार चुने गये.

सांस्कृतिक विरासत : बुल्गारिया पर कोई

(वायें से) तोदोर ज़िवकोफ़ और ब्रेजनेव : सहयोगी हाथ

७०० वर्ष तक वाइजन्टाइन और ओत्तोमन साम्राज्य का आधिपत्य रहा. इन दोनों साम्राज्यों के निर्मम और कठोर शासन के बावजूद बुल्गारिया की राष्ट्रीय संस्कृति अक्षुण्ण बनी रही. यही नहीं बाल्कन प्रायद्वीप तथा अन्य यूरोपीय स्लाव देशों पर उस की संस्कृति की अमिट छाप है. नवीं शताब्दी में जब दो स्लाव शिक्षाविदों सिरिल और मेथोडियस ने स्लाव लिपि का निर्माण किया उस समय यह आशंका व्यक्त की गयी थी कि इस से स्लाव साहित्य और स्लाव प्रभाव का विकास अवरुद्ध हो जायेगा. किंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ. आज इस लिपि के कारण बुल्गारिया के पोलैंड, रोमानिया, रूस, युगोस्लाविया आदि की स्लाव जनता से घनिष्ठ संबंध बने हुए हैं. १८७८ में ओत्तोमन शासन की दासता से मुक्ति पाने के बाद बुल्गारिया का आर्थिक और सांस्कृतिक विकास बड़ी तेज़ी के साथ हुआ. पेचो स्लावेईकोव, पेयो पावोरोव, बोर्दन योनकोव और एलिन पैलिन जैसे महान् लेखकों और कवियों ने न केवल बुल्गारिया की साहित्य-श्री को बढ़ाया बल्कि उस की सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं को भी नया जीवन दिया.

बुल्गारी संस्कृति पर कई संस्कृतियों का प्रभाव है. पूर्वी और पश्चिम के चौराहों पर स्थित होने के कारण वहां से गुज़रने वालों ने विविध प्रकार की धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक छाप बुल्गारी जन-जीवन पर छोड़ी. थ्रेस सभ्यता का उस पर सर्वाधिक प्रभाव है. बुल्गारिया की लगभग ८३ लाख जनसंख्या में ८८ प्रतिशत स्लाव जाति के लोग हैं. शेष में रूसी, यहूदी, आरमीनियन, यूनानी, तुर्की, भारतीय मूल के जिप्सी आदि अनेक जातियां हैं. किंतु जहां तक सांस्कृतिक परंपराओं का प्रश्न है यह सब एक हैं. यहां सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त हैं. उन की अलग-अलग भाषाएं हैं. अलग-अलग सामाजिक रीति-रिवाज हैं. किंतु सांस्कृतिक स्तर पर वे सब एक हैं. यही कारण है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद के कुछ वर्षों में ही बुल्गारिया ने आश्चर्यजनक प्रगति की है जिस का श्रेय वर्तमान बुल्गारिया के राष्ट्रपिता गियोर्गी दिमित्रोव के इस उपदेश को दिया जा सकता है कि संस्कृति के क्षेत्र में कोई राष्ट्र छोटा या बड़ा नहीं होता है. सभी विश्व के सांस्कृतिक कोष में अपना योग दान कर सकते हैं. स्वाधीनता के कुछ वर्षों में ही बुल्गारिया ने शिक्षा, रंगमंच, सिनेमा आदि के क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की है. बुल्गारी सरकार लोक-कलाओं को काफ़ी प्रोत्साहन देती है. कुछ वर्षों पहले बुल्गारिया ने जब लोक-कला का अपना प्रथम राष्ट्रीय पर्व मनाया तो उस में २२,५०० लोक-गायक, लोक-नृत्यकार तथा नाट्य दलों ने भाग लिया. भाग लेने वाले कलाकारों की संख्या ७ लाख थी. ८३ लाख जनसंख्या वाले देश में इतनी बड़ी संख्या में लोक-कलाकारों का होना निश्चय ही आश्चर्य की बात है.

सहअस्तित्व : बुल्गारिया एक समाजवादी देश है, अत: पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों से उस के संबंधों का घनिष्ठ होना स्वाभाविक ही है. रूस से उस की यह घनिष्ठता और भी प्रगाढ़ है क्यों कि तुर्क साम्राज्य से बुल्गारिया को मुक्ति दिलाने में रूस ने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया था. फिर बुल्गारिया और रूस के स्लाव नागरिकों का ख़ून का भी संबंध है शायद यही कारण है कि बुल्गारिया में रहने वाले रूसी नागरिकों को वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो कि बुल्गारी जनता को मिले हुए हैं. किंतु इस का अर्थ यह नहीं है कि बुल्गारिया ने ग़ैर समाजवादी देशों की ओर से अपना रास्ता बंद कर रखा हो. बुल्गारी नेताओं का विश्वास है कि परमाणु युद्ध के विनाश से बचने और विश्व शांति की स्थापना के लिए शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की नीति ही कारगर उपाय सिद्ध हो सकती है. बुल्गारी नेताओं ने अपनी इस मान्यता को केवल कागज़ी ही नहीं रखा बल्कि उस के लिए उन्होंने सतत प्रयास भी किया है. उन्होंने बार-बार यह विश्वास व्यक्त किया है कि सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था से ही यूरोप में सुख और समृद्धि आ सकती है. इसी लिए उन्होंने इस बात की चिंता किये बिना कि कोई देश समाजवादी है अथवा पूंजीवादी, सभी यूरोपीय देशों से अपने संबंध स्थापित किये हैं. बुल्गारी नेताओं ने समय-समय पर यूरोपीय देशों की यात्राएँ की हैं और उन से सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और आर्थिक संबंध स्थापित किये हैं. रूस से घनिष्ठ संबंध होने के बावजूद बुल्गारिया ने नैटो देशों से भी अपने संबंध सुदृढ़ किये हैं. समाजवादी देशों के रूस-विरोधी खेमे के देशों युगोस्लाविया, रोमानिया आदि से भी उस के अच्छे संबंध हैं. चीन से उस के संबंध अलबत्ता अच्छे नहीं हैं क्यों कि अप्रैल १९६५ में चीन की सह पा कर कुछ चीन समर्थक तत्वों ने बुल्गारी सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र रचा था. फ़्रांस, जर्मनी, ब्रिटेन, आस्ट्रिया, इटली, स्विट्ज़रलैंड, फिनलैंड आदि देशों से हाल में बुल्गारिया ने अपने संबंध सुधारने के प्रयास किये हैं. १९६६ में उस ने फ़्रांस से एक समझौता कर के संस्कृति, विज्ञान तथा तकनीक और आर्थिक क्षेत्रों में सहयोग करने के लिए कारगर क़दम उठाया है. तुर्की से भी उस के मधुर संबंध हैं जिन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि बुल्गारी जनता के मन पर तुर्क साम्राज्य के नृशंस अत्याचारों की कोई छाप बाक़ी नहीं है. तूनीसिया, अल्जीरिया, मोरक्को, इथोपिया, तानज़ानिया, गिनी आदि अफ़्रीकी देशों से भी उस ने संबंध स्थापित किये हैं. भारत से बुल्गारिया के संबंध कोई १० वर्ष पुराने हैं और इन दस वर्षों में आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में दोनों देशों के संबंध प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होते गये हैं.

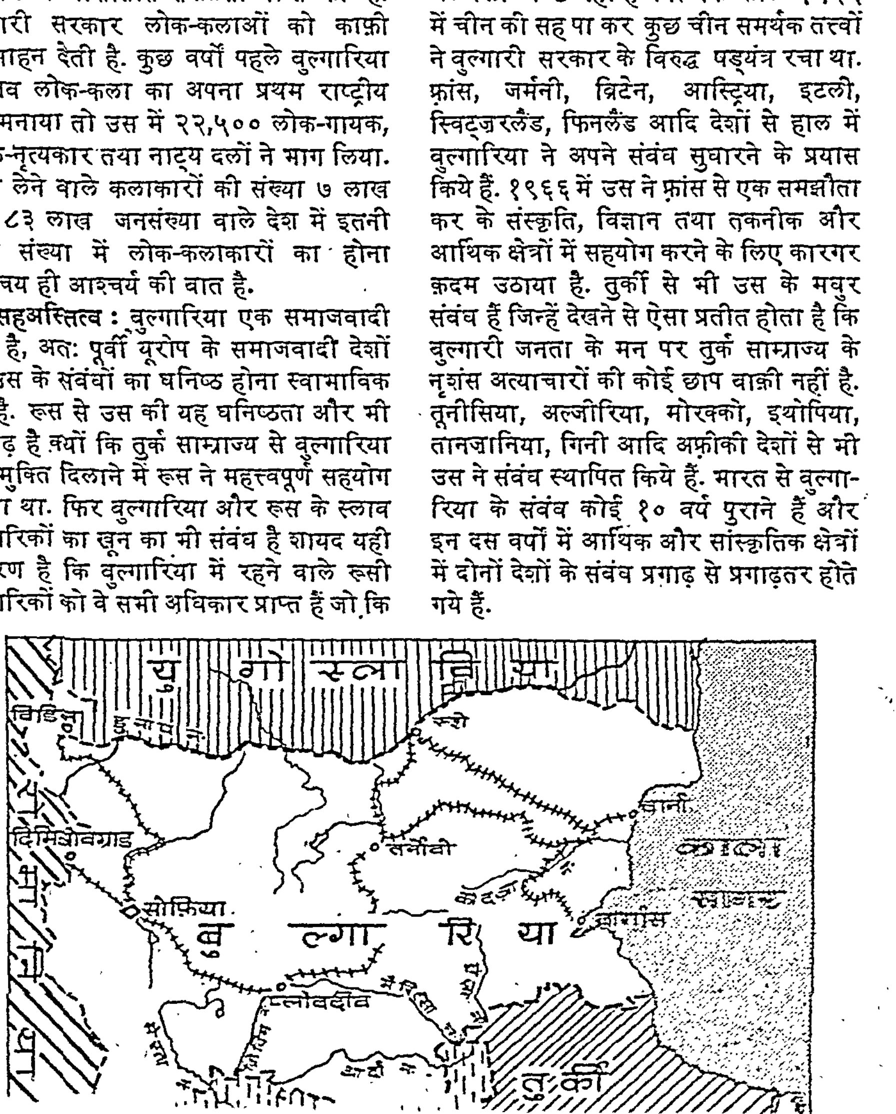

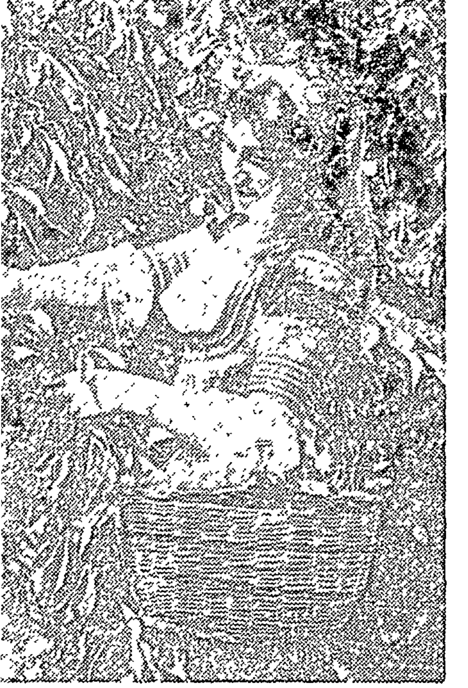

चेरी-फल का मौसम

समाजवादी बुलगारिया की अर्थव्यवस्था इतनी ठोस है कि उसे देख कर ऐसा नहीं लगता कि यह देश शताब्दियों गुलाम रहा. उस की प्रचुर प्राकृतिक संपदा के साथ ही बुलगारी जनता की असीम लगन और परिश्रम है. कृषि और औद्योगिक क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में बुलगारिया ने जो प्रगति की है उस पर किसी भी नवोदित राष्ट्र को गर्व हो सकता है. कृषि के उपकरण तैयार करने में तो बुलगारिया कई समृद्ध देशों से भी आगे बढ़ गया है. बुलगारिया निर्यात से तो विदेशी मुद्रा कमाता ही है, कई रमणीय स्थल भी उस के लिए कामधेनु बने हुए हैं. काला सागर तट पर स्थित सनीबीच, गोल्डेन सैंड्स आदि स्थान जहाँ पर्यटकों के लिए आकर्षण का केंद्र बने हुए हैं वहीं बुलगारिया की कला भी उन्हें आकर्षित करती है. बुलगारिया का प्राकृतिक सौंदर्य सचमुच ही उसे पृथ्वी पर स्वर्ग बनाये हुए है.

सब्जबाग़ नहीं, सब्जी

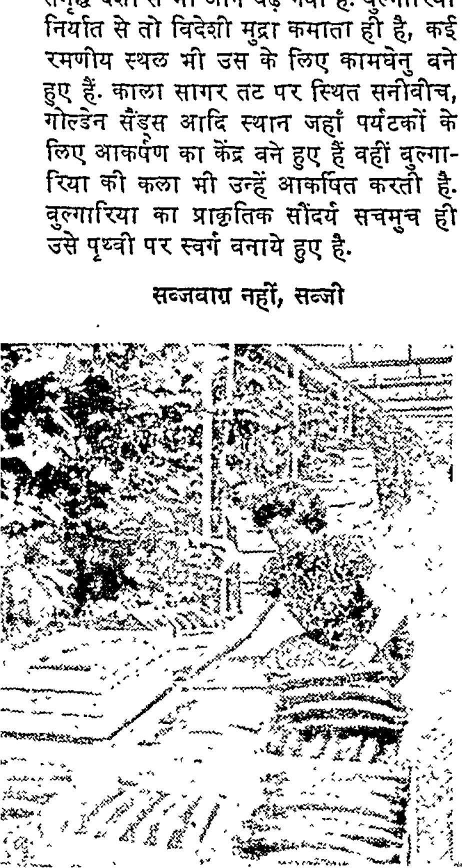

विश्व

अमेरिका

नया राष्ट्रपति : नये विश्वास

अमेरिका के ३७वें राष्ट्रपति ५६ वर्षीय रिचर्ड निक्सन ने आठ बरस की प्रतीक्षा के बाद अपने पद का कार्य-भार बिना किसी उद्विग्नता के बड़े ही साधारण लेकिन भव्य समारोह में सँभाला. कैपिटल हिल से ह्वाइट हाउस तक के दो मील लंबे रास्ते में असंख्य जनसमूह ने तालियों की गड़गड़ाहट से उन की जयजयकार की. नये राष्ट्रपति की सुरक्षा के लिए क़दम-क़दम पर सशस्त्र सैनिकों की टुकड़ियाँ तैनात की गयी थीं ताकि कोई भी अप्रिय घटना न घटने होने पाये. राष्ट्रपति जिस गाड़ी में सफ़र कर रहे थे उस के शीशे गोली अवरोधक थे. भीड़ से थोड़ी ही दूर पर कुछ हिप्पी और इप्पी राष्ट्रपति को मुँह चिढ़ा रहे थे और लगभग ४०० प्रदर्शनकारी वीएतनाम-विरोधी नारे बुलंद कर निक्सन को ख़तरे से आगाह कर रहे थे.

उद्घाटन-भाषण : रिचर्ड निक्सन ने अपने उद्घाटन भाषण में देश और विश्व को बहुत-से भरोसे दिलाये और विश्व-शांति स्थापित करने के लिए उन्होंने अन्य राष्ट्रों से साझेदारी की बात की. अपने भाषण के दौरान उन्होंने कहा कि आज लोग युद्ध से इतना उकता चुके हैं, शायद इस से पहले वे कभी नहीं उकताये होंगे. आज हर इनसान और हर देश शांति चाहता है. अपना भाषण तैयार करने में निक्सन ने अपने कई पूर्ववर्ती राष्ट्रपतियों के भाषण स्वयं पढ़े थे. उन में लिंकन, रूज़वेल्ट, तथा केनेडी के भाषण थे. उदारता भरे लहजे में निक्सन ने कहा कि काले और गोरों में भेद मिटाने के लिए पहले भी बहुत कुछ किया गया और आगे भी किया जायेगा. आज की युवा पीढ़ी पर अपना विश्वास प्रकट करते हुए निक्सन ने कहा कि मुझे बहुत विश्वास है कि अमेरिका के युवक शिक्षित तथा जागरूक हैं और भावनाओं के वशीभूत हो कर अपने आप को परिस्थितियों का शिकार नहीं होने देते. हमें युद्ध में ज़रूर रत होना पड़ा है लेकिन इस समय हमें शांति की आवश्यकता है. हम तब तक दूसरों से कुछ सीख नहीं सकते जब तक उन के खिलाफ़ नारे बुलंद करते रहेंगे. हमें शांति और सद्भावना से दूसरों का मन जीत कर अपनी आवाज़ उन तक पहुँचानी चाहिए. अपनी नीतियों की मोटी-सी रूप-रेखा बताते हुए उन्होंने कहा कि आज हमें पूर्ण रोज़गार, अच्छे आवास, बढ़िया शिक्षा, शहरों और गांवों का पुनर्निमाण और उस के साथ लोगों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता है, अतः हम जो अपना धन बाहर के मुल्कों की लड़ाई में फनाह करते हैं उस पर रोक लगाने की कोशिश करनी चाहिए. बिना जनता का सहयोग प्राप्त किये अकेले सरकार इस क्षेत्र में कुछ नहीं कर सकती. राष्ट्रपति निक्सन ने कहा कि कोई भी आदमी तब तक पूरी तरह स्वतंत्र नहीं जब तक उस का पड़ोसी भी वैसी ही स्वाधीनता का उपभोग नहीं कर पाता. शांति के प्रति अपनी आस्था व्यक्त करते हुए नये राष्ट्रपति ने कहा कि हमें यह व्रत लेना चाहिए कि जहाँ शांति नहीं है, वहाँ शांति की तनिक भी आशा का स्वागत करना चाहिए; जहाँ शांति कम है वहाँ उसे मज़बूत बनाना चाहिए और जहाँ शांति अस्थायी है वहाँ उसे स्थायी बनाने की कोशिश करनी चाहिए. हम हर एक को अपना

जॉनसन और निक्सन : निकट अतीत; निकट भविष्य

मित्र बनाने की अपेक्षा नहीं कर सकते लेकिन हम यह ज़रूर कोशिश कर सकते हैं कि हमारा कोई शत्रु न हो. श्री निक्सन ने कुछ शक्तियों को चुनौती देते हुए कहा कि जो हमारे विरुद्ध हैं उन्हें हमारे साथ शांतिपूर्ण प्रतियोगिता में शामिल होना चाहिए. इस का मतलब सीधा-सा है कि हमें दूसरे इलाक़ों को हथियाने में अपना समय बरबाद नहीं करना चाहिए, बल्कि इनसानी जिंदगी को खुशहाल बनाने के लिए काम करना चाहिए. इस के लिए

हथियारों को कम करना ज़रूरी है. शांति के ढांचे को सशक्त बनाने के लिए गुरबत तथा भुखमरी से मानव को निजात दिलाना होगा. मैंने अपनी आंखों से बेघरबार बच्चों को भूख से बिलबिलाते देखा है. युद्ध में ज़ख्मी हुए लोगों को दर्द से कराहते और दम तोड़ते देखा है और उस माँ की पीड़ा भी अनुभव की है जिस का बच्चा लड़ाई में जा कर पुनः नहीं लौटा. ऐसी उदारता भरे भाषण का कारण शायद यह है कि अल्पसंख्यक मतों के राष्ट्रपति को बहुसंख्यक संसद् से साक्षात्कार करना होगा.

प्रतिक्रियाएँ : श्री निक्सन का उद्घाटन भाषण पढ़ने से ऐसा कहीं भी नहीं लगता कि यह किसी रिपब्लिकन पार्टी के नेता का भाषण है. लेकिन निग्रो नेता एबरनाथी ने उस भाषण को निराशाजनक बताया. निग्रो के उद्धार का इस में कहीं ज़िक्र नहीं. सेनेटर यूजीन मैकार्थी का कहना है यद्यपि इस भाषण में कुछ भी नवीनता या विस्मयकारक बात नहीं है तथापि भाषण खासा है. डेमोक्रेटिक पार्टी की तरफ़ से उपराष्ट्रपति-पद के उम्मीदवार एडमंड मस्की ने भाषण पर संतोष व्यक्त किया है जब कि सेनेटर जे. डब्ल्यू. फुलब्राइट ने, जो जॉनसन की वीएतनाम-नीति के कटु आलोचक थे, इसे बहुत बढ़िया वक्तव्य कहा है. कुल मिला कर देशी और विदेशी पत्रकारों और नेताओं ने राष्ट्रपति निक्सन के भाषण में निहित उदारता को स्वीकारा है. रूस के साथ मित्रता और शांति के प्रयासों के जो संकेत निक्सन ने दिये हैं, रूस उस से प्रभावित हुआ लगता है और यही कारण है कि उस ने निक्सन के इस भाषण को सराहा है. रूस की इस सराहना से चीन को ज़रूर तकलीफ़ हुई है.

नीतियाँ : भाषण के बाद नये राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन और उन के मंत्रिमंडल के सदस्य तरह-तरह के जश्नों में शरीक हुए और लोगों की शुभकामनाएँ प्राप्त कीं. सेनेट ने निक्सन की सलाहकारों की सूची का अनुमोदन कर दिया लेकिन एटार्नी जनरल जॉन माइकेल की नियुक्ति पर कुछ आपत्ति हो गयी. बाद में उन के नाम का भी अनुमोदन हो गया. अगले दिन निक्सन ने अपने मंत्रिमंडल की बैठक का सभापतित्व किया और देश की समस्याओं पर अपने भाषण के संदर्भ में विचार-विमर्श किया. अमेरिका-रूस संबंधों को नये संदर्भ में सोचने, पूर्व और पश्चिम में तनाव कम करने, अणु-प्रसार-निषेध संधि पर अमल करने की बात भी उठी. रूस के साथ मधुर संबंध स्थापित करने तथा अंतरिक्ष यानों समेत अन्य वैज्ञानिक समृद्धि तथा विश्व के तनाव को कम करने की बात भी दोनों देशों के नेताओं में हो सकने की संभावना है. प्रतिरक्षा-बजट में कटौती करने की बात बड़ी गंभीरता से सोची जा रही है. जहाँ तक लोगों की भलाई का सवाल है, इस समय देश में सब से बड़ा मसला निग्रो लोगों को अधिक अधिकार देने और उन के प्रति भेद-भाव का रवैया खत्म करना है. केनेडी प्रशासन ने उन के उत्थान के लिए खासा काम किया था और जॉनसन प्रशासन ने अपने पहले के वर्षों में निग्रो लोगों को अधिकार दिलाने संबंधी रचनात्मक क़दम उठाये थे किंतु ज्यों-ज्यों जॉनसन प्रशासन वीएतनाम युद्ध में उलझता गया, घरेलू समस्याओं से उस का ध्यान कुछ हटता गया. मार्टिन लूथर किंग की हत्या के बाद निग्रो लोगों में भी कुछ निष्क्रियता देखने में आयी थी परंतु अब डॉ. राल्फ एबरनाथी, श्रीमती कोरेटा किंग और एंड्रू यंग जैसे कुछ लोग किंग द्वारा चलाये गये कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने में लग गये हैं. एक सर्वेक्षण से पता चला है कि १९६० और १९६८ के आठ सालों में निग्रो लोगों के कल्याण के लिए क्रांतिकारी कार्य हुए हैं. निग्रो की आय ५.३ प्रतिशत बढ़ी है, बेरोज़गारी ३४ प्रतिशत कम हुई है, ग़रीबी ५५ प्रतिशत से घट कर २७ प्रतिशत रह गयी है और अब हाल यह है कि आज एक निग्रो स्नातक की गोरे स्नातक से ज़्यादा पूछ है. आज निग्रो बेहिचक होटलों में जा सकते हैं, तथा कांग्रेस के सदस्य बन सकते हैं. केनेडी और जॉनसन मंत्रिमंडल में निग्रो मंत्री थे. क्लीवलैंड, गैरी और इंडियाना के मेयर निग्रो हैं. यहाँ तक कि टेलिविज़न तथा विज्ञापन के क्षेत्रों में निग्रो चेहरे बेसाख़्ता दीखते हैं. इतना सब होने पर भी आज भी निग्रो बच्चे ज़्यादा मरते हैं, सफ़ेद लोगों की अपेक्षा दुगुने निग्रो बेरोज़गार हैं, एक साधारण निग्रो को आसानी से काम नहीं मिलता और अच्छी शिक्षा, आवास की तो उस के पास कमी है ही.

बंकर की और जनरल जॉनसन : सलाह-मशविरा

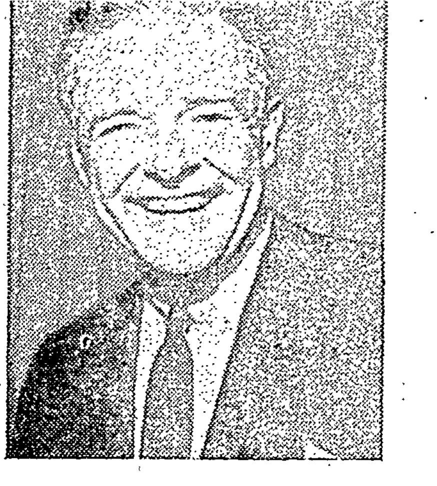

कैबेट लॉज : आशावादी

अपराध समाप्ति का सवाल निक्सन के लिए प्रश्नवाचक साबित हो सकता है. इस मामले में निक्सन को बड़ी एहतिआत बरतनी पड़ेगी. एटार्नी जनरल और न्यायमंत्री जॉन माइकेल इस बात की हामी भरते हैं कि देश में क़ानून और व्यवस्था के लिए नया प्रशासन कहीं भी ढिलाई नहीं आने देगा.

लेकिन सब से बड़ी चुनौती वीएतनाम-समस्या है. हैरिमन की जगह हेनरी कैबेट लॉज ने ले ली है और बातचीत का एक दौर चल चुका है. कैबेट लॉज इस बात के लिए प्रयत्नशील हैं कि किसी ऐसे निर्णय पर पहुँचा जाये जिस से इस पुरानी समस्या का शांति और सद्भावना से अंत हो जाये. दक्षिण वीएतनाम के प्रतिनिधि पेरिस में पहले से ही मौजूद हैं और उन के सलाहकार उपराष्ट्रपति काओ की पुनः पेरिस पहुँच गये हैं. की की कैबेट लॉज, राजदूत बंकर और जनरल जॉनसन से काफ़ी पटरी बैठती है और की यह बखूबी जानते हैं कि कि कैबेट लॉज की बदौलत ही वह दक्षिण वीएतनाम के प्रधानमंत्री बन सके थे. राजनैतिक प्रेक्षकों का यह खयाल है कि की-कैबेट लॉज-बंकर त्रिमूर्ति दक्षिण वीएतनाम और अमेरिका का पक्ष प्रभावशाली ढंग से पेश करने में कामयाब होगी. अगर ऐसा हो गया और वीएतनाम-समस्या का अंततः हल ढूंढ़ लिया गया तो निक्सन प्रशासन की यह सब से बड़ी सफलता होगी. शांति-वार्त्ता का दूसरा दौर जब २५ जनवरी से शुरू हुआ तो साढ़े छह घंटे की बैठक में अमेरिकी प्रतिनिधि ने पेशकश की कि उत्तर और दक्षिण वीएतनाम में तुरंत एक सेनाविहीन क्षेत्र बनाया जाये.

उत्तर वीएतनाम और मुक्ति मोर्चे को यह सुझाव स्वीकार नहीं हुआ. उन्होंने कहा कि दक्षिण वीएतनाम की सरकार को तुरंत खत्म किया जाना चाहिए. कैबेट लॉज को आशा है कि वह शीघ्र ही कुछ ऐसा हल पेश करेंगे जिस से वीएतनाम समस्या का समाधान जल्द हो जायेगा. निक्सन ने एक संवाददाता सम्मेलन में बताया कि वीएतनाम समस्या सुलझाने के लिए उन के पास कई नये प्रस्ताव हैं. यह उन्होंने कभी भी दावा नहीं किया था कि छह महीने या साल में वीएतनाम समस्या हल हो जायेगी. हाँ, यह जरूर होगा कि इस समस्या को नये परिप्रेक्ष्य में देखा जायेगा. निक्सन ने पश्चिम एशिया की स्थिति को विस्फोटक बताते हुए कहा कि उस पर ठंडे दिलोदिमाग से सोचना चाहिए. जहाँ तक चीन को संयुक्तराष्ट्र का सदस्य बनाने का सवाल है, जब तक चीन अपनी आक्रामक नीतियों में परिवर्तन नहीं करता तब तक अमेरिका उसे संयुक्तराष्ट्र का सदस्य बनाने का विरोध करेगा. इस से पहले सेनेटर टेड केनेडी ने चीन को संयुक्तराष्ट्र तथा भारत को सुरक्षा परिषद् का सदस्य बनाने की पेशकश की थी.

जॉनसन की विदाई : राष्ट्रपति का पद छोड़ने से ५ दिन पहले लिंडन जॉनसन ने कांग्रेस की दोनों सदनों के सम्मुख भाव-विह्वल भाषण देते हुए कहा कि उन के बहुत चाहने पर भी वीएतनाम में शांति स्थापित नहीं हो सकी. अब यह काम राष्ट्रपति निक्सन ही करेंगे. जॉनसन के शब्द इतने भावभीने थे कि लोगों की आँखों में आँसू आ गये. जॉनसन को अपने ३८ सालों का सार्वजनिक जीवन याद आ रहा था जब उन्होंने पहले-पहल द्वारपाल के रूप में प्रतिनिधि सभा में प्रवेश किया था. इसी कांग्रेस में रह कर वह प्रतिनिधि सभा के सदस्य बने, सेनेटर बने, उप-राष्ट्रपति चुने गये और फिर राष्ट्रपति बने. जॉनसन ने रस्म अदायगी के तौर पर कांग्रेस और अपने उन सभी साथियों का शुक्रिया अदा किया जिन्होंने उन के कार्यकाल के दौरान किसी न किसी रूप में उन का हाथ बँटाया. अपनी कुछ उपलब्धियों को गिनाते हुए जॉनसन ने कहा कि उन के कार्यकाल में पाँच लाख नये मकान बनाने संबंधी विधेयक पास हुआ. सामाजिक सुरक्षा और स्वास्थ्य सेवा में १३ प्रतिशत की वृद्धि हुई और वैज्ञानिक तौर पर जो उपलब्धियाँ उन्हें अपने कार्यकाल के अंतिम दिनों में देखने को मिलीं वे उल्लेखनीय हैं. लोगों की सुरक्षा के लिए उन्होंने अस्त्र-निरोध विधेयक भी पास करवाया और निग्रो को नागरिक अधिकार दिलाने के लिए हमेशा कोशिश में जुटे रहे. उन की सब से बड़ी उपलब्धि यह है कि युद्ध के बावजूद वह कोष खाली छोड़ कर नहीं जा रहे हैं. अपनी विफलताओं को भी उन्होंने गिनाया और कहा कि काम करते समय सफलताएँ और विफलताएँ दोनों आती ही हैं. अपने

आत्मदाही चेक छात्र की स्मृति में प्रागनिवासी

अथक प्रयास के बावजूद वह वीएतनाम-युद्ध समाप्त नहीं कर सके. जॉनसन कुछ भाग्यवादी भी हैं. उन की मान्यता है कि जब तक वह उपराष्ट्रपति थे, उन के भाग्य की रेखाएँ उन के साथ थीं. जॉन केनेडी की हत्या के बाद जब उन्होंने कार्यभार सँभाला तब जॉन केनेडी के के कार्यकाल का शेष समय बिना अधिक सिर-दर्द के समाप्त हो गया लेकिन अपना चार साल का कार्यकाल उन का सब से बड़ा सिरदर्द रहा. लाख कोशिश के बावजूद उन के संबंध फ्रांस के राष्ट्रपति द गॉल से सुधर न सके. रूसी नेताओं से मिलने की उन की इच्छा धरी की धरी रह गयी और पश्चिम एशिया में अरब राष्ट्रों का वह दिल जीत न सके. राष्ट्रपति जॉनसन को सभी लोग अपनी शुभकामनाएँ, अपना स्नेह और प्यार दे रहे थे और शायद ऐसे ही उद्गारों के जॉनसन चाहवान थे. यह सभी मानते हैं कि बतौर इनसान जॉनसन बहुत भले आदमी हैं और इनसानियत के नाते सभी लोगों की दृष्टि में उन का आदर और सम्मान है.

अगला बजट : अक्सर निवृत्त होने वाला राष्ट्रपति संसद् के सामने व्यक्तिगत रूप से भाषण नहीं देता. लेकिन जॉनसन ने ऐसा इस लिए किया क्यों कि संसद् के साथ उन के बड़े निकट के संबंध रहे हैं. इस से पहले १८०० में जॉन एडम्स ने संसद् के सामने अपना भाषण खुद पढ़ा था. भाषण के दौरान ५० बार तालियाँ बजीं और समाप्ति पर सदस्यों ने खड़े हो कर साढ़े तीन मिनट तक तालियों की गड़गड़ाहट से जॉनसन की दाद दी. जाती बार जॉनसन १९६९-७० के बजट भी पेश करते गये. इस में प्रतिरक्षा की रकम बढ़ा कर पेश की गयी है लेकिन वीएतनाम पर व्यय ३५.५ प्रतिशत से घट कर ३१.२ प्रतिशत ही रह गया है. इस का कारण यह है कि एक तो वीएतनाम में बमबारी बंद की जा चुकी है जो बहुत महँगी थी और दूसरे मुख्य सैनिक अड्डों का निर्माण-कार्य समाप्त हो गया है. बजट में संसद्-सदस्यों का वेतन ३०,००० डॉलर से ४२,५०० डॉलर प्रतिवर्ष तथा मंत्रिमंडल के सदस्यों का वेतन ३५,००० डॉलर से बढ़ा कर ६०,००० डॉलर प्रतिवर्ष बढ़ा देने की तजवीज़ है. राष्ट्रपति का वेतन तो २,००,००० डॉलर पहले ही किया जा चुका है. इस के विपरीत अंतरिक्ष तथा नये जहाजों के निर्माण की मद के लिए धन नहीं रखा गया.

चेकोस्लोवाकिया

मुखर विरोध

'हमारे देश की जनता विनाश के कगार पर खड़ी है. हम लोगों ने ऐसे स्वयं-सेवकों की टोली बनायी है, जिन्होंने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आत्मदाह करने का निर्णय किया है. मुझे प्रथम आत्मदाही बनने, प्रथम पत्र लिखने और प्रथम मानवीय टॉर्च बनने का गौरव मिला है. यदि ५ दिन के भीतर अर्थात २१ जनवरी तक हमारी माँगें पूरी नहीं की गयीं और यदि जनता ने अनिश्चितकालीन हड़ताल कर के हमारा समर्थन नहीं किया तो इस प्रकार की और टॉर्चें भी जलेंगी.' रूसी आक्रमण के पश्चात् चेक सरकार द्वारा अपनायी गयी नीतियों के विरोध में आत्मदाह करने वाले २१ वर्षीय छात्र जान पालाच के आत्मदाह से पूर्व लिखे गये पत्र के इस अंश से स्पष्ट हो जाता कि पालाच के आत्मदाह की घटना आकस्मिक नहीं थी. बाद में छह अन्य युवकों ने (जिन में एक १८ वर्षीया छात्रा भी थी) आत्मदाह का प्रयास कर के के पत्र में लिखी बातों की पुष्टि भी कर दी. चेक सरकार आत्मदाह की इन घटनाओं से चिंतित तो अवश्य है किंतु रूसी दबाव के कारण वह आत्मदाहियों की न तो यह माँग स्वीकार कर सकती है कि समाचारपत्रों पर लगा सेंसर उठा लिया जाये और न ही वह रूसी आक्रमण के बाद से चेकोस्लोवाकिया से प्रकाशित

समाचारपत्र अप्रेवी को कुचलने की उन की माँग पूरी कर सकने की स्थिति में है.

बदलते हालात : अगस्त में रूसी आक्रमण का चेक जनता ने जो मौन प्रतिवाद किया था, वह अब मुखर होता जा रहा है. पालाच के आत्मदाह से एक दिन पूर्व प्राग में मज़दूरों और छात्रों की एक विशाल रैली का आयोजन किया गया था. उस रैली में एक माँगपत्र 'प्राग घोषणापत्र' तैयार किया गया जिस में माँग की गयी कि सरकार स्लोवाक नेता पीटर चोलोत्का के स्थान पर जोसेफ़ स्मर्कोवस्की को चेकोस्लोवाकिया गणराज्य की नयी संसद् का अध्यक्ष बनाये. माँगपत्र में स्पष्ट कहा गया कि जब तक चेकोस्लोवाकिया की प्रभुसत्ता पुनः स्थापित नहीं हो जाती, तब तक मास्को से अच्छे संबंध नहीं बनाये जा सकते हैं. 'प्राग घोषणापत्र' से स्पष्ट है कि रूसी आक्रमण को ले कर चेकोस्लोवाकिया में जो असंतोष व्याप्त है उसे दबाने में सरकार विफल रही है. आत्मदाहों की शृंखला ने उसे और भी परेशान कर दिया है. पालाच की शव-यात्रा में कोई पाँच लाख व्यक्ति शामिल हुए जिन में छात्रों और मज़दूरों के अलावा सुधार कार्यक्रम के समर्थक अनेक राजनैतिक नेता भी थे. शव-यात्रा में पार्टी और सरकार के नेता शामिल नहीं हुए, इस से निश्चय ही चेक जनता के मन में अपनी सरकार की नीयत पर शक पैदा होगा. चेक सरकार अपनी विवशता के नाम पर यदि इसी प्रकार रूसी दबाव के आगे झुकती रही तो जनता का रूस के प्रति आक्रोश अपनी सरकार के विरुद्ध भड़क सकता है. चेक नेताओं का इस स्थिति से परेशान होना स्वाभाविक ही है. साथ ही रूसी नेताओं को भी अब यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि यदि उन्होंने अपना रवैया नहीं बदला तो चेक जनता का मुखर विरोध उन की साख को ले डूबेगा.

पश्चिम एशिया

शांति किस के लिए

अरब इस्राइल विवाद तय करने के लिए चार बड़े राष्ट्रों के सम्मेलन के प्रस्ताव की चर्चा है पर विवादरत दोनों पक्षों में से किसी ने भी इस नये प्रस्ताव के प्रति कोई उत्साह नहीं दिखाया है. बड़े राष्ट्रों का सम्मेलन करने के फ़्रांसीसी प्रस्ताव पर सोवियत संघ ने अपनी सहमति प्रकट कर दी है. ब्रिटेन के बारे में कहा जाता है कि वह पहले से ही इस प्रकार के सम्मेलन के पक्ष में था. अभी नये अमेरिकी राष्ट्रपति श्री निक्सन की ओर से इस प्रस्ताव पर सार्वजनिक घोषणा नहीं हुई है पर श्री निक्सन के शासन भार संभालते ही जिन समस्याओं पर उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ विचार-विमर्श किया उन में पश्चिम एशिया प्रमुख है, अतः जल्दी ही अमेरिका की की ओर से इस प्रस्ताव पर घोषणा होने की संभावना है और अमेरिका के इस सुझाव से असहमत होने का कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता. सोवियत संघ के संयुक्त राष्ट्र प्रतिनिधि ने सम्मेलन के प्रस्ताव पर अपने देश की सहमति से संयुक्त राष्ट्र प्रधान सचिव ऊ थाँ को जब अवगत किया तो इस प्रस्ताव पर ऊ थाँ के समर्थन का भी संकेत मिला.

विवाद जहाँ का तहाँ : लगता यह है कि अरब इस्राइल विवाद को तय करने के अब तक के प्रयत्नों में यह अंतिम प्रयत्न होगा और इस की सफलता अथवा विफलता पर समूचे पश्चिम एशिया का भविष्य निर्भर है पर इन प्रयत्नों के शुरू होते ही दोनों पक्षों के विवाद की तीव्रता बढ़ी है और दोनों ही अभी भी युद्ध की भाषा में बात कर रहे हैं. पश्चिम एशिया पर सोवियत सुझावों के बारे में अमेरिकी जवाब के प्रकाश में आते ही उधर तो अरबों का गुस्सा बढ़ गया और इधर इस्राइली प्रधानमंत्री ने यह वक्तव्य दे डाला कि श्री नासिर के भाषण से शांति की रही सही संभावना भी समाप्त हो गयी है. अमेरिकी जवाब मिस्र के प्रमुख पत्र अल अहराम में जैसे ही प्रकाशित हुआ विदेश विभाग में क्षोभ छा गया. विदेश मंत्री श्री रियाद ने क़ाहिरा स्थित अरब राजदूतों की एक बैठक बुलायी और उन के उपसचिव ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के सदस्य देशों के राजदूतों से बातचीत की. इस के बाद सोवियत संघ और फ्रांस दोनों मित्र देशों के राजदूतों से सलाह मशविरा हुआ.

मिस्र का क्रोध : ताज़ा अमेरिकी रवैये पर मिस्र की प्रतिक्रिया यह है कि अमेरिका ने फिर वही इस्राइल का ही पूरी तरह पक्ष लिया और उस का यह रवैया श्री यारिंग के शांति प्रयत्नों में भी बाधक है. मिस्र का कहना है कि अमेरिकी सरकार ने फिलिस्तीन के शरणार्थियों के हितों की तो बिलकुल अनदेखी कर दी है और उन के आंदोलन को आतंकवाद का नाम दे दिया है. यही नहीं अमेरिका ने उस सीमा रेखा को भी मान्यता देने से इनकार कर दिया जहाँ तक इस्राइली सेनाओं को हटने के लिए कहा जा रहा है तथा मिस्री इलाक़े में विसैन्यीकरण की बात तो खुले आम कह दी गयी पर इस्राइली इलाक़े के बारे में चुप्पी साध ली गयी. मिस्र का ख़याल है कि बड़े देश अरब इस्राइल विवाद का हल, लादना चाहते हैं. इस्राइल ने तो बड़े राष्ट्रों द्वारा निकाला गया कोई हल मानने से इनकार कर ही दिया है. वह तो अरबों से बातचीत और शांति संधि करने की बात पर अड़ा हुआ है.

इस्राइली क्षोभ : उधर इस्राइली प्रधानमंत्री श्री एशकोल ने अपने हाल ही के एक भाषण में वही पुराना राग अलापा है कि श्री नासिर का रवैया शांतिपूर्ण समझौते में बहुत बड़ी बाधा है. उन्होंने कहा है कि अपने देश की राष्ट्रीय एसेंबली में श्री नासिर के भाषण से साफ़ पता चलता है कि अरबों के उद्देश्य और नीयत में कोई परिवर्तन नहीं आया है. इस्राइली विदेश मंत्री ने तो श्री नासिर को शांति प्रयत्नों को छिन्न-भिन्न करने वाला बताया है. एक टेलीविज़न भेंट में इस्राइली विदेश मंत्री ने कहा—श्री नासिर युद्ध प्रणेता तो रहे ही हैं अब वे शांति के शत्रु के रूप में सामने आये हैं. श्री नासिर ने अपने इस भाषण में शांति के प्रति अपना जैसा खुला विरोध प्रकट किया है वैसा उन के अब तक के किसी भी भाषण में व्यक्त नहीं हुआ. राष्ट्रपति नासिर यह भ्रम फैलाते रहे हैं कि उन्होंने सुरक्षा परिषद् का १९६७ का पश्चिम एशिया संबंधी प्रस्ताव मान लिया पर असलियत यह है कि इस भाषण में राष्ट्रपति नासिर ने सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव की धज्जियाँ उड़ा दी हैं.

आशा और संभावनाएँ : दोनों पक्षों के रवैये में कोई भी परिवर्तन न आने से बड़े देशों का सम्मेलन करने के ताज़ा सुझाव से पश्चिम एशिया का विवाद का कोई हल निकल सकेगा इस में संदेह है. युरदान और इस्राइली सीमा पर छोटी-मोटी मुठभेड़ बराबर चलती ही रहती है और हाल का ही समाचार है कि हथियारों की सप्लाई के बारे में सोवियत संघ और युरदान के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर हुए हैं. इस से पहले युरदान पश्चिमी गुट के देशों मुख्यतः ब्रिटेन से हथियार लिया करता था. सोवियत संघ के साथ इस नये समझौते में चीनी तथा ऐसी ही अन्य कुछ चीज़ों के बदले में युरदान को हथियार तथा अन्य सैनिक साज सामान देने की व्यवस्था है. नया समझौता सोवियत संघ के इस वायदे के मुताबिक़ है कि इस्राइल और अरब देशों के बीच सैनिक संतुलन वह बनाये रखेगा.

सोवियत शांति योजना : उधर पश्चिम एशिया में शांति संबंधी सोवियत योजना की रूप रेखा हालांकि पहले से ही अरब राष्ट्रों को मालूम थी पर अब वह विधिवत् प्रकाशित कर दी गयी है. इस योजना में इस्राइली सेनाओं के सत्रह जून से पहले के स्थान तक वापिस चले जाने की बात कही गयी है. इसे योजना का प्रथम चरण बताया गया है और दूसरे चरण में संयुक्त राष्ट्र सेनाओं के शामएल शेख और गाज़ा पट्टी में लौट आने का सुझाव है लेकिन मुख्य विवादग्रस्त विषय यानी इस्राइली जहाज़ों के स्वेज़ नहर से हो कर गुज़रने के सवाल का सोवियत योजना में कोई ज़िक्र नहीं है.

अरब जगत् का उग्र वातावरण : अरब जनता के समर्थन में क़ाहिरा में द्वितीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की शुरूआत से शांति प्रयत्नों के संदर्भ में अरब जगत का वातावरण और भी उग्र दिखायी पड़ा. राष्ट्रपति नासिर ने सम्मेलन में अपील की कि इस्राइल और अरबों पर उस के साम्राज्यवादी आक्रमण के बारे में सच्चाई दुनिया के सामने लाने का हर संभव प्रयत्न किया जाना चाहिए.

ढाका माँग-पत्र : अय्यूब का परीक्षाकाल

ढाका में आठ विरोधी दलों के संगठन, **डेमोक्रेटिक एक्शन कमेटी** के समर्थकों और पुलिस के बीच एक गंभीर संघर्ष में चार व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी और कई दर्जन घायल हुए. इस संयुक्त मोर्चे ने ढाका में राष्ट्रपति अय्यूब की सरकार के विरोध में हड़ताल का आहवान किया था और हड़ताल के दौरान हजारों प्रदर्शनकारियों ने सरकारी भवनों, रेलवे स्टेशनों और हवाई अड्डों का घेराव किया. जिस का परिणाम यह हुआ कि ढाका शहर में कई स्थानों पर पुलिस और प्रदर्शनकारियों के बीच संघर्ष हुआ. क्रुद्ध प्रदर्शनकारियों ने कई पुलों को क्षति पहुँचायी, डाकखानों और पुलिस चौकियों मे आग लगा दी और हवाई अड्डे पर आक्रमण कर के ढाका हवाई अड्डे की संपूर्ण व्यवस्था को भंग कर दिया. हवाई अड्डे के एक अधिकारी के अनुसार ढाका से हर स्थान के लिए हवाई सेवाएँ स्थगित कर दी गयी. प्रदर्शनकारियों के रोष का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि जिन स्थानों में आग बुझाने के लिए दमकल पहुँच गयी थी वहाँ भी लोगों ने पुलिस के साथ संघर्ष कर के आग बुझाने के कार्य मे बाधा पहुँचायी. एक आग बुझाने वाले व्यक्ति को सीढ़ियो से उतार कर बुरी तरह पीटा गया. प्रदर्शनकारियों में सामान्य जनता के अतिरिक्त भारी संख्या में छात्र थे. संपूर्ण ढाका मे हड़ताल प्राय: पूर्ण थी क्यों कि अधिसंख्य क्षेत्रो मे आठ दलों के संयुक्त मोर्चे के प्रति सहानुभूति है किंतु जहाँ राष्ट्रपति अय्यूब के समर्थक भी है वहाँ भी आतंक के कारण दुकाने और शिक्षालय बंद रहे.

माँग-पत्र : पाकिस्तान में राजनैतिक स्थिति अब इस अवस्था में पहुँच गयी है, जहाँ राष्ट्रपति अय्यूब के लिए अस्तित्व का खतरा पैदा हो गया है. क्यों कि देश के अधिसंख्य राजनैतिक चिंतक इस बात मे सहमत है कि पाकिस्तान के वर्तमान ढाँचे के अंतर्गत अच्छा प्रशासन चल नही सकता इस लिए उसे बदलने की जरूरत है. इसी उद्देश्य को ले कर **डेमोक्रेटिक एक्शन कमेटी** ने यह निश्चय कर लिया है कि अगले मास होने वाले आम चुनावों को असफल कर दिया जाये. १२ फ़रवरी आम निर्वाचन के लिए तय कर दिया गया है मगर अभी तक यह कोई नही कह सकता कि उस दिन पाकिस्तान मे निर्वाचन हो सकेगा या नहीं. संयुक्त मोर्चे के एक प्रवक्ता ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी है कि 'हम चुनाव नही होने देगे'. संपूर्ण देश को इस बात के लिए तैयार किया जा रहा है कि १२ फ़रवरी के चुनाव का बहिष्कार किया जाये, क्यों कि संयुक्त दलों के इस विरोधी मोर्चे का विचार है कि यदि लोगों ने चुनाव का बहिष्कार किया तो उसे उन के सम्मिलित कार्यक्रम के प्रति विश्वास का मत समझा जायेगा. सम्मिलित कार्यक्रम में आठ माँगे है : संसदीय प्रणाली की स्थापना, वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव, संकटकाल की समाप्ति, नागरिक स्वतंत्रता की पुनर्स्थापना, राजनैतिक बंदियों की मुक्ति, धारा १४४ की समाप्ति और कर्मचारियों तथा मज़दूरों को हड़ताल का अधिकार. विरोधी नेताओ के अनुसार 'इन माँगों पर समझौता नही हो सकता.'

भुट्टो और असग़र : संयुक्त मोर्चे में केवल दो विरोधी दलों ने चुनावों का बहिष्कार करने का फ़ैसला नही किया है. वे है **मौलाना भाशानी** की **नेशनल अवामी पार्टी** और भूतपूर्व प्रतिरक्षा मंत्री **जुल्फिकार अली भुट्टो** की **पाकिस्तान पीपल्स पार्टी. अवामी पार्टी** संयुक्त मोर्चे के आठ-सूत्री माँगों को 'अपूर्ण और अस्पष्ट' बताती है. मगर फिर भी अवामी पार्टी ने संयुक्त कार्यक्रम का सांकेतिक समर्थन करने का फ़ैसला किया है. भुट्टो का कार्यक्रम दूसरा है. वह चुनाव का बहिष्कार नही करना चाहते, बल्कि चुनाव लड़ कर शासन पर कब्जा करना चाहते हैं. **भुट्टो** के मत में राष्ट्रपति अय्यूब से किसी कार्यक्रम को लागू करवाने का प्रयास व्यर्थ है. कोई प्रगतिशील कार्यक्रम सरकार बदले जाने पर ही किया जा सकता है. इसी प्रकार एयर मार्शल **असग़र खां** और न्यायाधीश **मुर्शिद** भी यह महसूस कर रहे हैं कि संयुक्त दलों के कार्यक्रम के साथ सहयोग न करने का मतलब राजनैतिक गलती होगी. इस के अतिरिक्त छात्रों ने भी संयुक्त मोर्चे का सहयोग करना शुरू कर दिया है. छात्रों की संस्था **नेशनल स्टुडेंट्स फेडरेशन** ने अधिक घेराव और अधिक प्रदर्शनों की धमकी दी है. इस लिए स्पष्ट है कि **पाकिस्तान पीपल्स पार्टी** को छोड़ कर सभी दल और वर्ग १२ फ़रवरी के चुनाव के बहिष्कार के समर्थन में हैं. पाकिस्तान की राजनीति मे दलों को छोड़ कर यदि व्यक्तियों को लिया जाये तो ज़ुल्फ़िकार अली भुट्टो के अतिरिक्त एयर मार्शल असग़र खां ही एक प्रभावशाली नेता सिद्ध हो सकते है. **असगर खां** ने संयुक्त मोर्चे की माँगों के साथ सहयोग करने का फ़ैसला इस लिए किया है कि वह विरोध की मुख्य धारा से अलग नही रहना चाहते. कुछ समय पहले तक उन का ख्याल था कि शासन मे सुधार के बाद ही कुछ माँगों को मनवाया जा सकता है मगर ऐसा लगता है कि अब उन का यह विश्वास समाप्त हो गया है क्यों कि अब वह भी पाकिस्तान के संविधान को पूर्ण रूप से बदलने की माँग कर रहे है. एक सभा में उन्होंने कहा कि वर्तमान संविधान 'राष्ट्रपति अय्यूब की बीमारी के साथ ही मर गया है'. इस लिए उसे नये आधारों और नये सिद्धांतों पर बनाया जाना चाहिए. भुट्टो के दल की एक विशेषता यह रही है कि उस ने पाकिस्तान की विदेश नीति को अपने कार्यक्रम का एक महत्त्वपूर्ण अंग बना लिया है और इसी लिए अपने तूफ़ानी दौरे में उन्होंने भारत के प्रति अविश्वास और घृणा को बहुत ही जोरदार शब्दों में व्यक्त करने की कोशिश की, फिर भी उन की आवाज़ कुछ शहरों तक ही सीमित रह सकी, देश के दूर दराज़ इलाकों मे वह नहीं जा सकी. मगर एयर मार्शल असगर खाँ के अनुसार विदेश नीति पाकिस्तान के वर्तमान संकट का एक महत्त्वपूर्ण अंग नही है बल्कि वह तो यहाँ तक सोचते है कि भारत और पाकिस्तान के बीच तनाव का कारण केवल भारत ही नही, उस मे पाकिस्तान का भी हिस्सा है. उन के अनुसार दोनों सरकारे इस समस्या को अपनी-अपनी शर्तो पर सुलझाना चाहती हैं मगर दोनों सरकारों के रुख मे ईमानदारी का अभाव है.

लाहौर में अय्यूब-विरोधी प्रदर्शन : असंतोष-प्रदर्शन या जन-जागरण

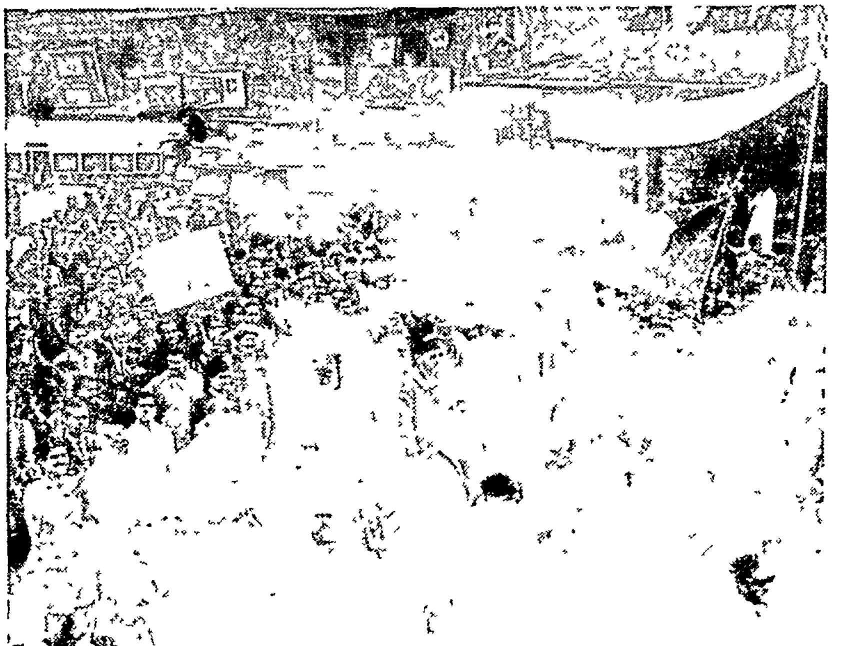

भेंट-वार्त्ता

अहिंसा और विश्व-शांति

संसार में कुछ ऐसी भी हस्तियाँ जन्म लेती हैं जो मर कर भी अमर रहती हैं. उन के कार्य, उन की मान्यताएँ और उन के आदर्शों को उन के जीवन-काल में वेशक पूरी तरह न सराहा जाये लेकिन उन की मृत्यु के वाद उन की उपलब्धियों को सही रूप से और कभी-कभी कुछ वढ़ा-चढ़ा कर भी पेश किया जाता है. अमेरिका के निग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग की गिनती भी ऐसी ही हस्तियों में की जाती है. उन की उपलब्धियाँ वास्तविक उपलब्धियाँ थीं और उन को कहीं भी अधिक वढ़ा-चढ़ा कर या तोड़-मरोड़ कर चित्रित नहीं किया गया. मार्टिन लूथर किंग ने जव निग्रो लोगों के उत्थान के लिए अपना झंडा वुलंद किया था तव पश्चिमी देशों और अमेरिका के संभ्रांत समझे जाने वाले श्वेत लोगों के लिए यह एक नया अनुभव था, क्यों कि इस तरह का कार्य इस रूप से पश्चिमी देशों के नेताओं ने कभी नहीं किया था. ऐसे नेता पूर्व में ही जन्मे हैं, जिन्होंने अहिंसा के वल-वूते पर वहुत कुछ ऐसा कर दिखाया है जो हथियारों के प्रयोग से संभव नहीं हो सका था. मार्टिन लूथर किंग ने अहिंसा के इस कार्य की प्रेरणा भारतीय नेताओं से ली थी. महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू उन के दिल में विशेष स्थान रखते हैं. ९ फ़रवरी १९५९ को मार्टिन लूथर किंग अपनी पत्नी श्रीमती कोरेटा किंग सहित जव भारत पधारे थे तव प्रधानमंत्री स्व. जवाहरलाल नेहरू के साथ उन की जो मुलाकात हुई थी उसे वह 'महान उपलब्धि' और 'ऐतिहासिक भेंट' मानते हैं.

किंग नहीं रहे. उन की यादें, उन के प्रवचन, उन के वक्तव्य और उन की मान्यताएँ शेष हैं. द्वितीय जवाहरलाल नेहरू शांति पुरस्कार स्वर्गीय मार्टिन लूथर किंग को दिया गया है. पहला पुरस्कार संयुक्त राष्ट्र महासचिव ऊ थाँ को दिया गया था. उस पुरस्कार को लेने के लिए मार्टिन लूथर किंग की पत्नी **श्रीमती कोरेटा** जव पिछले दिनों भारत पधारीं तो उन्होंने भारत की अपनी दूसरी यात्रा को 'तीर्थ-यात्रा' वताते हुए कहा कि भारत और उस के नेता उन की स्मृतियों में हमेशा सजीव रहते हैं और उन की प्रेरणा उन्हें हमेशा वल प्रदान करती है. श्रीमती किंग जव पालम हवाई अड्डे पर उतर रही थीं तव जहाँ उन के चेहरे पर खुशी की आभा दीख रही थी वहाँ दूसरी ओर एक अजीव-सी ग़मी की लीक भी थी. उस ग़मी की लीक का कारण निश्चित रूप से उन के पति की अकाल मौत, उन के अधूरे सपने, उन के अधूरे काम, जिन को अव श्रीमती किंग को अकेले पूरा करना था, के सिवाय और क्या हो सकता था. **दिनमान** के प्रतिनिधि से एक विशेष भेंट के दौरान उन्होंने वताया कि निग्रो लोगों की स्थिति संपन्न देश अमेरिका में वैसी ही है जैसी की अभी भारत में हरिजनों की थी. भारत के हरिजनों के उत्थान के लिए महात्मा गांधी ने जो ज्योति जलायी थी उसी ज्योति की लौ का प्रकाश अमेरिका के निग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग ने देखा था और उस प्रकाश को उन्होंने हर निग्रो के पास पहुँचाना चाहा था. यह काम अपने-आप में काफ़ी मुश्किल था और जोखिम क़दम-क़दम पर थे. विना किसी जोखिम की परवाह किये मार्टिन लूथर किंग 'हम जीतेंगे, जीत हमारी है' का गान करते हुए अपने असंख्य समर्थकों समेत आगे वढ़ते रहे. जव श्रीमती किंग अपने पति के गुणों और उन के कार्यों का वखान कर रहीं थीं तो उन की आँखों के कोने से हल्के-से मोती छलछला आये थे, परंतु उस वहादुर स्त्री ने वहुत जल्दी ही उन पर क़ावू पा लिया और कहा कि लड़ाई अभी अधूरी है, निग्रो लोगों के साथ जो ज्यादतियाँ हो रही हैं उन से निजात दिलाने के लिए अभी काफ़ी कुर्वानी की ज़रूरत है.

साँवले रंग की श्रीमती कोरेटा किंग अपने लाल ज़िवाकोनुमा स्कर्ट में खूव जँच रही थीं. उन के गले में भूरे रंग के मनकों की तेहरी लंवी माला और उस से थोड़ा ऊपर सफ़ेद मोतियों की चमचमाती हुई छोटी-सी माला उन के व्यक्तित्व को आकर्षक वना रही थी. उन की कलाइयों में सोने की चूड़ियों पर भारतीय चाँदी के रुपयों जैसी सोने की टिक्कियाँ, उन की लंवी गले तक की गर्म स्कर्ट पर सोने की जंजीर वाले सुनहरे वटन और कानों के लंवे वुंदे उन के सौंदर्य को निखार रहे थे. उन की आवाज़ में दृढ़ता और आँखों की विशेष चमक इस वात का सवूत थी कि उन का मार्ग निश्चित है और चाहे जितनी भी विपत्तियाँ उन के सामने आयें उन्हें झेलने में वह किंचित भी विचलित नहीं होंगी. नये निक्सन प्रशासन के वारे में जव वातचीत चली तव पहले तो श्रीमती किंग ने कुछ भी कहने से इनकार कर दिया, लेकिन वाद में वताया कि हमें रिपब्लिकन पार्टी के राष्ट्रपतियों से अधिक आशाएँ कभी नहीं रही हैं, लेकिन इधर नये राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने जो उदारता का परिचय देते हुए विश्व-शांति का नारा वुलंद किया है उस से हमें कुछ आशा वँधती है. सोचा जा सकता है कि उन का रवैया निग्रों के प्रति उदार होगा और वह उन लोगों की भलाई के लिए कुछ रचनात्मक क़दम उठायेंगे.

श्रीमती किंग ने जव **दिनमान** के प्रतिनिधि को यह वताया कि निग्रों के लिए समानता का अधिकार प्राप्त करने के लिए उन के पति ने अपने जीवन का उत्सर्ग कर दिया तो उन का माथा कुछ ऊपर उठ गया. यह वात जुदा है कि निग्रो लोगों को वह स्थान अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है, लेकिन हम अहिंसा और भ्रातृभाव से अपने संकल्प में जी-जान से जुटे हुए हैं. स्त्री और पुरुष, लड़के और लड़कियाँ काले और गोरे आज-कल हमारे साथ पद-यात्रा करते हैं और हमारी मान्यताओं के प्रति आस्था रखते हैं. यह वात सही है कि इस सतत प्रयास में हम ने कुछ मानवीय गरिमा और राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त की है, लेकिन वह स्वाधीनता तव तक पूरी नहीं क़रार दी जा सकती जव तक हमारी सरकार आधे से ज्यादा वजट मृत्यु और तवाही के गले में उतारना वंद नहीं कर देती. वीएतनाम में अपने भाइयों को स्वाधीन कराने के हमारे सपने अभी तक विखरे के विखरे रह गये हैं. वीएतनाम शांति-वार्त्ता पिछले कई महीनों से चल रही है और इस शांति-वार्त्ता के दौरान ८,००० से अधिक सैनिक और असैनिक काल के मुँह में जा चुके हैं. मानवता के साथ ऐसा खिलवाड़ क्यों ? ४ अप्रैल, १९६७ को इसी मानवता की रक्षा के लिए उन के स्वर्गीय पति मार्टिन लूथर किंग का ध्यान घरेलू जातिवाद की समस्याओं से हट कर विदेशी सैनिकवाद की समस्या पर केंद्रित हो गया था और उन्होंने यह महसूस किया था कि अमेरिकी जातिवाद ही विदेशी सैनिकवाद की जड़ है और इस वाहरी अहिंसा का कारण ही भीतरी और घरेलू अहिंसा है. स्वर्गीय मार्टिन लूथर किंग आजीवन युद्ध के विरोधी रहे और वीएतनाम के युद्ध के खिलाफ़ वह हमेशा अपना झंडा वुलंद किये रहे. श्रीमती किंग का ख्याल है कि आज के शांति-प्रिय रास्तों के सामने एक वहुत वड़ी चुनौती शांति को वनाये रखने की है.

श्रीमती किंग : 'अंततः मुक्ति'

अंग्रेज़ी : खुली खिड़की या बंद दरवाज़े

दिल्ली में औसत मध्यवर्गीय परिवारों के पास रहने के लिए डेढ़ या दो कमरों की व्यवस्था है. कई दफ़ा इतनी भी नहीं. एक ही कमरे में पूरा का पूरा परिवार ठसा रहता है. रामकृपा से हर परिवार में कम से कम आधा दर्जन प्राणी हैं. अधिकांश परिवार महँगाई के सताए हैं. पिता के पास काम करने के स्थान पर पहुँचने की जल्दी के कारण यह जानने का समय बिलकुल नहीं कि उस के बच्चों की शिक्षा कैसी और किन अंशों तक विधिवत् हो रही है. भेड़-बकरियों की तरह दिल्ली प्रशासन द्वारा चलाए जाने वाले माध्यमिक विद्यालयों में अधभूखे, कुपढ़ अध्यापकों द्वारा थोड़ा-बहुत ज्ञान अर्जित कर ये विद्यार्थी हायर सेकेंडरी पास कर आते हैं. पीछे आने वाले विद्यार्थियों का रेला इतना ज़बरदस्त है कि हायर सेकेंडरी में यह जानते हुए भी कि विद्यार्थी कमज़ोर है उसे फेल करना संभव नहीं होता. विशेष रूप से अंग्रेजी को ले कर इन विद्यार्थियों के साथ काफ़ी रियायत बरती जाती है. दिल्ली में ऐसे परिवार अपवाद ही होंगे जिन में घर का वातावरण अंग्रेज़ियत प्रधान हो और बच्चे दिल्ली प्रशासन द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलों में पढ़ने जाते हों. नतीजा यह होता है कि इन विद्यार्थियों की कमज़ोर अंग्रेज़ी से अवगत होते हुए भी इन्हें फेल करना संभव नहीं होता. हायर सेकेंडरी के बाद यही विद्यार्थी अपनी तमाम शैक्षिक कमज़ोरियों के साथ कॉलेज में आने के लिए बाध्य होता है.

माध्यमिक शिक्षा की खोखल इतनी भयंकर है कि उसे पाटने के सारे प्रयत्न कालेजों में व्यर्थ हैं. खास तौर पर तब जब कि पिछले पंद्रह-बीस वर्षों से सरकार की भाषा संबंधी केंचुआ नीति ने विद्यार्थी को न अंग्रेज़ी समझने-बोलने लायक रखा है न विषयों की उपादेयता परखने लायक पर ध्यान. हायर सेकेंडरी तक ग़लत अंग्रेज़ी और शेष विषय हिंदी में पढ़ कर जब यही विद्यार्थी कॉलेज में आते है और राजनीति, अर्थ-शास्त्र अथवा इतिहास की कक्षा में व्याख्यान-बाज़ी अंग्रेजी में होने लगती है तो वह भौचक्का हो कर जल्दी ही भाग निकलने की सोचने लगता है.

तीन वर्ष पूर्व विश्वविद्यालय ने एक आदेशानुसार यह छूट दी थी कि जो विद्यार्थी हिंदी माध्यम से पढ़ना चाहें वे सत्र के प्रारंभ में ही अपना विकल्प लिख दें. इस अवधि में सब से अधिक दुष्टता बरती शिक्षकों ने. पहले तो अधिकांश ने अपनी कमज़ोरी छिपाने के लिए या हिंदी के प्रति ईर्ष्या भाव के कारण यह तर्क देना शुरू किया कि उन्होंने स्वयं सारी शिक्षा अंग्रेज़ी के माध्यम से ग्रहण की है वे भला विद्यार्थियों को हिंदी में कैसे पढ़ा सकेंगे. दूसरे यह कि हिंदी में प्रामाणिक पुस्तकें ही नहीं हैं इस लिए हिंदी माध्यम से पढ़ाने का विचार ही ग़लत है. बात यहीं तक रहती तब भी ग़नीमत है, कुछ शिक्षकों ने खुल्लमखुल्ला विद्यार्थियों से यह कहना शुरू किया कि अगर वे हिंदी माध्यम अपनायेंगे तो निश्चय ही फेल हो जायेंगे. जिन विद्यार्थियों का लक्ष्य नौकरी था वे डर कर प्रारंभ में अंग्रेज़ी माध्यम की ही कक्षाओं में रहे मगर धीरे-धीरे जब थोड़ी शांति हुई तो अपनी-अपनी क्षमतानुसार विद्यार्थियों ने अपने-अपने माध्यम चुन लिये. पिछले दो वर्षों से अब कक्षाएँ दोनों माध्यमों से होती हैं और हिंदी माध्यम वाली कक्षाओं में विद्यार्थियों की संख्या निरंतर बढ़ती चल रही है. जो शिक्षक अभी भी अंग्रेज़ी के पक्षपाती हैं उन की यह पोल अभी भी खुलना बाकी है कि क्या वे सचमुच उस भाषा पर उतना अधिकार रखते हैं जिस का गुणगान वे अभी तक करते चले जा रहे हैं. विद्यार्थी के लिए अंग्रेज़ी कितना बड़ा बोझ है इस का अंदाज़ा इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि कई अंग्रेज़ी शिक्षकों को अनेक बार अंग्रेज़ी विषय पढ़ाते हुए व्याख्याएँ हिंदी में देनी पड़ती हैं. पिछले दिनों पेरिस से लौटे हुए एक शिक्षक को सब से बड़ी निराशा इस बात पर थी कि पेरिस के एक भी आदमी को उन से अंग्रेज़ी में बात करना गवारा नहीं हुआ और बदकिस्मती से फ्रेंच उन्हें आती नहीं थी.

सन् १९६४ में जो आयोग, शिक्षा, विशेष रूप से उच्चस्तरीय शिक्षा, की खामियों को परखने के लिए बैठाया गया था उस के अनुसार शिक्षा के स्तर में गिरावट के कारण दोहरे हैं. एक ओर तो विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि खराब है दूसरे यह कि शिक्षा संस्थानों में अनेक प्रकार की विकृतियाँ पैदा हो गयी हैं. दरअसल शिक्षा आयोग की यह रिपोर्ट सरकार के लिए एक अच्छी सीख होनी चाहिए थी. मगर वैसा कुछ नहीं हुआ. शिक्षा आयोग ने विश्वविद्यालय और शिक्षा-व्यवस्था की जिन कमज़ोरियों की ओर इशारा किया था स्थिति उस से कहीं अधिक बदतर है.

विश्वविद्यालय का कोई भी विभागाध्यक्ष अपने आप में छोटे-मोटे जागीरदार से कम नहीं है. उस के अधिकारों की सीमा पर हस्तक्षेप करने वाला कोई है ही नहीं. उपकुलपति अब क्यों कि इन्हीं विभागाध्यक्षों में से चुना जाता है इस लिए एक तो उस का दबदबा अन्य सहयोगी मानते नहीं दूसरे वह खुद क्यों कि उसी वातावरण में जोड़-तोड़ कर के घाघ हुआ होता है इस लिए नियुक्ति, उन्नति-अवनति संबंधी विभागीय मामलों में वह ज़्यादा खुड़पेंच नहीं लगाता. नतीजा यह होता है कि ईमानदारी से सोचने-समझने वाले मेधावी नवयुवक जब शिक्षा के क्षेत्र में घुसते हैं तो पहला पाठ यह पढ़ते हैं कि विभागाध्यक्ष को नाराज़ न करो चाहे वह कैसा ही क्यों न हो. दिल्ली के कॉलेजों में शिक्षकों की नियुक्ति तीन लोगों के हाथ में है. कॉलेज का प्रधानाचार्य, कालेज कमेटी का अध्यक्ष और तीसरा विश्वविद्यालय से आने वाला विभागाध्यक्ष. विभागाध्यक्ष इन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है.

दूसरा शहंशाह है प्रिंसीपल. कॉलेज के वातावरण में साफ़-साफ़ सामंतशाही की परंपरा डालने वाला अगर कोई जीव है तो वह यही प्रधानाचार्य है. यह जीव पूरी तरह अपने-आप को अफ़लातून समझने वाला, नेताओं को आमंत्रित करने में दक्ष, अपनी प्रशस्तियाँ लिखवाने में पारंगत, निहायत ख़ब्ती और ज़्यादातर पढ़ाई-लिखाई की दुनिया से संन्यस्त होता है. पद और प्रतिष्ठा का भदभाव इसी जीव के कारण शुरू होता है और आगे बढ़ कर शिक्षकों के कक्ष में पहुँचता है. ज़रा चले जाइए किसी कॉलेज के शिक्षक कक्ष में. आप हैरान हो जायेंगे देख कर कि बीस-पच्चीस शिक्षकों में से (एक समय में सामान्यतया इस से अधिक शिक्षक खाली नहीं होते) कोई एक-दो ही शिक्षा या शोध की बातें कर रहे होंगे. शिक्षा आयोग ने अपनी रिपोर्ट में शिक्षकों के विषय में जो कुछ लिखा है वह बहुत कम है. कक्ष में कुछ शिक्षक शतरंज या कैरम खेल रहे होंगे. कुछ नये षड्यंत्र की योजना बना रहे होंगे. कुछ सिगरेट और काफ़ी के प्यालों पर फ़िल्म और मौसम की बात कर रहे होंगे या फिर कुछ अनुपस्थित सहयोगियों की निंदा. बाक़ी बचे हुए नये खरीदे प्लाट या अपनी अतिरिक्त आमदनी का एलान कर रहे होंगे. शोर इतना अधिक होगा कि आप को पूछना पड़ जायेगा—क्या ये सारे लोग पढ़े-लिखे हैं ?

कुर्सियों की छीना-झपटी, ठस विद्वता और व्यक्तिगत ईर्ष्या से भरे वातावरण में जब विद्यार्थी पहली बार कॉलेज आता है तो कुछ दिन तक तो उसे इस खोखली शिक्षा नीति और रंगे चेहरों का नट-कौशल आकर्षक लगता है. मगर धीरे-धीरे उसे अपनी मामूलियत का एहसास होने लगता है जब उसे बैठने के लिए कामन रूम में जगह नहीं मिलती, पढ़ने के लिए लाइब्रेरी में किताब नहीं मिलती, शिक्षकों से मानवीय व्यवहार नहीं मिलता (अंग्रेज़ियत का प्रकोप), अपनी रुचि के किसी भी क्षेत्र में पहल नहीं मिलती, तब धीरे-धीरे उस का उत्साह फीका पड़ने लगता है, उस का मन उखड़ने लगता है और उसे भीतर-भीतर कुछ खटकने लगता है. पिछले दिनों परीक्षा में न बैठने वाले एक कालेज के हड़ताली विद्यार्थियों के अगुआ से जब यह सवाल किया गया कि तुम परीक्षा में क्यों नहीं बैठना चाहते तो उस का मात्र उत्तर था 'बैठ कर भी क्या होगा'.

'बैठ कर भी क्या होगा' उत्तर से जो ध्वनि निकलती है वह उन तमाम लोगों के लिए डूब मरने का कारण होना चाहिए जो शिक्षामंत्री

या उपकुलपति या और किन्हीं गद्दियों पर विराज रहे हैं. अगर पिछले वर्षों में हुए शिक्षा के कार्यक्रम में किये गये परिवर्तनों पर दृष्टिपात किया जाये तो हैरत होती है कि शासन करने वाले लोगों की इन तमाम विसंगतियों को इतने दिन तक युवा वर्ग वर्दाश्त कैसे कर पाया जो सरकार बीस वर्षों में यही निर्णय न कर सकी कि माध्यम की भाषा क्या बने वह शिक्षा किसे देगी? हर दो-तीन वर्ष में एक रूपरेखा बनती है और हर बार शिक्षामंत्री के पतन के ही साथ वह रूपरेखा गड्ढे में चली जाती है. जब कोई अंग्रेज़ी परस्त नेता कॉलिज में आता है तो सारी कार्रवाई अंग्रेज़ी में हो जाती है. जब कोई हिंदी का पक्षधर पहुँच जाता है तो शिक्षकों से ले कर प्रधानाचार्य तक सब के सब हिंदी का गुणगान करने लग जाते हैं. शिक्षकों और प्रधानाचार्य का यह बहुरुपियापन विद्यार्थी से छिपा नहीं रहता. उन की फ़िरकापरस्ती और व्यक्तिगत उखाड़-पछाड़ के कारण शिक्षा, शिक्षा-संस्थानों और शिक्षकों का खोखलापन विद्यार्थियों की समझ में आने लगता है सरकार की इस दोगली नीति का—जो विद्यार्थी हिंदी माध्यम से पढ़ना चाहें वे हिंदी कक्षाओं में पढ़ें और जो अंग्रेज़ी में पढ़ना चाहें वे अंग्रेज़ी कक्षाओं में—फ़ायदा वे सब उठाते हैं जो शिक्षा संस्थानों से संबद्ध हैं. उदाहरण के लिए आनर्स के विद्यार्थियों के लिए यह छूट इस लिए नहीं रखी गयी क्यों कि एम. ए. के स्तर पर जब ये विद्यार्थी विश्वविद्यालय में पहुँचेंगे तो पढ़ाने वाली पुरानी पीढ़ी को अपनी पूरी मनःस्थिति में अमूल परिवर्तन करना होगा.

आज के युवा वर्ग की सहनशीलता की सराहना करनी चाहिए कि इतने अवरोधों से गुज़र कर भी, इतना अपमान और यंत्रणा झल कर भी वह किसी तरह डिग्री लेना ही श्रेयस्कर समझता है. सरकार की ढुलमुल नीति, विश्वविद्यालय में व्याप्त प्रांतीयता और पदलिप्सा तथा भाषा के इस घपलाघोट के विरोध में वह इसलिए आवाज़ नहीं उठा रहा है कि घर की स्थिति उस से बँधी है, अपने साथ ही परिवार का भविष्य भी उसे ही सुधारना है.

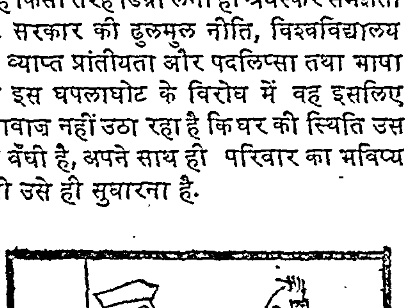

नौकरशाही की चिंता
'वेश-भूषा चल भी जायेगी पर भाषा...'

नृत्य

श्री बिरजू महाराज : कत्थक में गति और उभरते प्रश्न

संगीत और नृत्य—ये दोनों शब्द प्रायः एक दूसरे के आस-पास मँडराते हैं. लय से जुड़ते हैं. फिर भी संगीत जैसे कानों के माध्यम से अपने बिंब उकेरता है—नृत्य, प्रत्यक्ष आकृति की गति एवं नृत्य-रेखाओं से चित्र बनाता है. वह चित्र विशेष या विभिन्न लय-ताल में हो यह उस का तकनीकी प्रसंग है और उसी के भेद से नृत्य के भेद भी होते जायेंगे किंतु नृत्य द्वारा प्रस्तुत चित्रबिंब का बोध कराये और बिंब भी चित्रसत्ता परक हो, यह किसी भी शैली के नृत्य की कसौटी हो सकती है, उस के विकास के प्रसंग में. क्या यह भी नहीं कह सकते कि 'बिंब' किसी भी कला विधा का मूल माध्यम है, संप्रेषण के लिए, जिस से कि वह अभिव्यक्त होती है—'दर्शक' तक पहुँचती है. प्रायः कत्थक नृत्य देखते समय हमें यह अनुभव हुआ है कि नर्त्तक के बिंब की विधा बदल जाती है. यानी देख तो रहे हैं नृत्य किंतु बोल या नूपुर ध्वनि प्रधान हो जाती है. स्वतंत्र रूप से यहाँ कला संगीत का भाग अधिक हो जाती है नृत्य का कम. क्यों कि इस से दिये हुए पार्श्व या फलक पर चित्र नहीं बनते और इसी संगीत परकता के कारण कत्थक नृत्य में वह संभावना भी है जहाँ संगीत और नृत्य समतोल स्तर पर मिल सकें. तबलावादक और नर्त्तक की 'युगलबंदी' को और क्या कहेंगे ? और किसी भी नृत्य शैली में यह विकास-संभावना नहीं है. इस प्रसंग में प्रतिष्ठित कत्थक नृत्य गुरु **श्री बिरजू महाराज** (बृज मोहन नाम का यह बदलाव ? उन की घरानेदारी और लोकप्रियता ?) की कत्थक-नृत्य प्रस्तुतियाँ एवं उन के एकल प्रदर्शनों से कई बातें सामने आती हैं.

कत्थक की नृत्य-नाटिका के लिए उपयोगिता हो सकती है इस को देखा था श्री लच्छू महाराज ने. 'मालती-माधव' नृत्य-नाटिका की प्रस्तुति प्रायः १०-१२ साल पहले हुई थी जिसे **श्री लच्छू महाराज** ने तैयार किया था. किंतु चाचा की राह पर डट कर आगे बढ़े बिरजू महाराज. भिन्न नृत्य नाटिकाओं (कुमार-संभव, शाने अवध, दालिया, कृष्णायन) में उत्तरोत्तर कत्थक नृत्य में गति नियोजन की संभावना बढ़ती गयी और एक स्थान पर ततकार करते कत्थक 'गतभावों' के माध्यम से और भी अधिक मंचीय गतियाँ लेने लगा. किंतु संवेदना के स्तर पर वातावरण अब भी रीतिकालीन भक्ति से बहुत भिन्न नहीं. विवादात्मकता के प्रति जागरूकता उन में अवश्य है. जो बड़ी सफलता सिद्ध हो यदि एकल-प्रदर्शनों में भी यह दीखने लगे. श्री बिरजू महाराज के शिष्यों के माध्यम से भी यह फैल सकती है. बिरजू महाराज की ततकार, लयकारी और गणित उपज विलक्षण होती है. ये कत्थक का प्रधान, अंग हैं. साथ ही भाव अभिनय गतें भी हैं. मावलंकर समागार में पिछले दिनों **भारतीय कला केंद्र** ने एक समारोह आयोजित किया था. उस में श्री बिरजू महाराज का एकल प्रदर्शन हुआ. सामान्यतः ततकार, लयकारी गतें और भाव सभी दिखाये जाते हैं और 'महाराज जी' ने भी दिखाये. उन की अभिनय रचना **द्रौपदी-चीर-हरण** उन के अभिनय की नृत्य परकता का सुंदर उदाहरण है नूपुरों का उतार-चढ़ाव और मात्रा चक्रों की सूक्ष्म विविधता स्वतः संगीत था. यहीं इस आलेख की भूमिका के प्रश्न खड़े होते हैं. हाल में हुए 'युगोस्लाव बैले' के एकल नृत्य खंडों में चित्रित बिंबों, ऐहिकता से उठती वायवीयता और

बिरजू महाराज : भावविभोर

अवयव की रेखाओं के सौष्ठव एवं गौरव, नृत्य गतियों से संगीत और लय का आभास और चित्र सत्ता द्वारा काव्यात्मक वातावरण का निर्माण भी इन प्रश्नों को उभारने का ही काम कर गये हैं.

प्रताप पवार : बिरजू महाराज के शिष्य प्रताप पवार सक्रिय एवं लोकप्रिय रूप से कत्थक शैली में एकल करने लगे हैं. पिछले दिनों सप्रू हाउस में प्रताप एवं **प्रिया पवार** की प्रस्तुति हुई. अथक परिश्रम और लगन के दर्शन हुए. वह उन कम नर्तकों में से एक हैं जो अन्य कला माध्यमों की अभिव्यक्ति, को भी समझना चाहते हैं. इस कार्यक्रम में एक और चुस्त नर्त्तक थे—**तीरथ अजमानी**. यह भी बिरजू महाराज के शिष्य हैं और अंगों में नृत्य करते हैं. पता नहीं क्यों इन की एकल प्रस्तुतियाँ प्रायः छिपी रह जाती हैं—नहीं तो इन से भी वही प्रश्न उठते, शायद.

नाना साहेव चापेकर

रंगमंच

निधन के बाद स्मृति-धन

कुछ ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो कैसी भी परिस्थितियों में अपने व्यक्तित्व को विखरने से वचाये रह पाने मे सफल होते हैं. मराठी रंगमंच के प्रसिद्ध अभिनेता **नाना साहेव शंकर नीलकंठ चापेकर** को ऐसे ही व्यक्तियों में गिना जा सकता है. १५ जनवरी को, ६४ वर्ष की अवस्था में, नाना साहेव चापेकर का शरीर नही रहा, लेकिन जैसा कि मराठी के प्रसिद्ध कथाकार व्यंकटेश माडगूलकर ने कहा—वे 'स्मृति-धन' के रूप मे वरावर जीवित रहेंगे. यह स्मृति-धन अकेले श्री माडगूलकर का नहीं है, मराठी रंगमंच के दर्शकों व आकाशवाणी के मराठी के ग्रामीण कार्यक्रम 'राम राम-मंडली' के श्रोताओं का भी है. १९५६ से ले कर अपने अंतिम दिनो तक नाना साहेव इस कार्यक्रम में हिस्सा लेते रहे और इस कार्यक्रम के श्रोताओं को उन की प्रतीक्षा वरावर रहती रही.

मराठी रंगमंच के दर्शकों ने उन्हें श्रेष्ठ अभिनेता के रूप में जाना. मराठी के प्रसिद्ध कवि मर्ढेकर के अनुसार रेडियो की नौकरी नाना साहेव को कभी पचा नही सकी—उन का अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व वना ही रहा और अभिनय-प्रतिभा क्षीण नही हुई. नाना साहेव हर तरह की परिस्थिति में 'टिपटॉप' रहा करते थे—नौकरी में हों या वेकारी में, या पद-निवृत्ति में. जव आकाशवाणी से वह पद-निवृत्त हुए, जहाँ वह पहले न्यूज़रीडर (दिल्ली) और वाद में प्रोग्राम असिस्टेंट (वंवई) रहे, तो व्यंकटेश माडगूलकर ने उन से पूछा कि अव आप क्या करेंगे? नाना साहेव ने उस समय तो कोई उत्तर नहीं दिया, लेकिन श्री माडगूलकर को अपने प्रश्न का उत्तर जल्द ही मिल गया, जव उन्होंने नाना साहेव के पास एक दिन कैमरा देखा. आकाशवाणी की नौकरी के वाद नाना साहेव ने छाया-चित्रकारी का धंधा शुरू किया और आकाशवाणी के 'राम राम मंडली' में भी हिस्सा लेना जारी रखा.

मराठी नाट्य परिषद् के अध्यक्ष हो जाने के वाद भी, जव उन की काफी ख्याति हो गयी थी और वह तरह-तरह के सम्मान-पुरस्कार पाने लगे थे, नाना के व्यवहार में कोई अंतर नहीं आया. कर्वे नगर से शिवाजी नगर तक का लंवा रास्ता नाना सायकिल पर ही तय करते रहे.

ठंड के दिनों मे सवेरे-सवेरे वंवई की प्रभात रोड पर रोज़ एक दृश्य दिखायी पड़ता था: गरम कोट पहने, गले मे मफ़लर लपेटे, चुस्त-दुरुस्त नाना साहेव सायकिल पर पैंडल मारते हुए जा रहे हैं. जव उन से कोई पूछता कि आप ठंड में भी सवेरे-सवेरे क्यों निकल पड़ते हैं तव वह यही कहते कि 'भाई, मैं मजदूर आदमी हूँ'.

नाना के संस्मरणों का प्रकाशन भी हो चुका है. अपने प्रत्येक काम को पूरी मुस्तैदी से पूरा करने वाले नाना चापेकर ने अपना कोई काम कभी अधूरा नहीं छोड़ा. वह जीवन को जीने योग्य मानते थे और इस की अभिव्यक्ति उन की अभिनय-कला व जीवन में वरावर झलकती थी. ऐसे आदमी की मृत्यु में भी कोई अधूरापन नहीं होता. ऐसे नाना चापेकर को **दिनमान** की श्रद्धांजलि.

साहित्य

समीक्षा के सिद्धांत

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की आर्थिक सहायता से उदयपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग द्वारा 'संस्कृत में साहित्य-समीक्षा के सिद्धांत' विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया. स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त विभिन्न विश्वविद्यालयों से आये लगभग २५ विद्वानों ने इस गोष्ठी में भाग लिया. इस त्रिदिवसीय गोष्ठी में संस्कृत काव्यशास्त्र के कलाकार, गुण, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, रस आदि प्रायः सभी सिद्धांतों पर चर्चाएँ हुईं.

डॉ. ब्रह्मानंद शर्मा ने 'अलंकार-स्वरूप-विवेचन' नामक अपने निवंध में अर्थ-सौंदर्य को अर्थालंकार तथा अर्थानुकूल उच्चारण-सौंदर्य को शब्दालंकार का स्वरूप वतलाते हुए कहा कि अलंकारों को रस का अंग मानना उचित नहीं है, क्यों कि चित्रकाव्य में रस के अयोग में भी अलंकार की सत्ता आचार्यों

द्वारा स्वीकार की गयी है. उन्होंने शब्दार्थ को बोध-तत्त्व की दृष्टि से अलंकार्य और सौंदर्य-दृष्टि से अलंकार प्रतिपादित किया.

डॉ. गयाचरण त्रिपाठी (उदयपुर) ने 'अलंकार' शब्द की व्युत्पत्ति तथा अर्थ-विकास पर अपना निबंध प्रस्तुत किया. उन्होंने वैदिक 'ऋ' धातु से निष्पन्न अर, अरम, अरंकृति आदि शब्दों से अलंकार शब्द का संबंध बतलाते हुए कहा कि लौकिक संस्कृत का अलंकार, शब्द-रूप व अर्थ दोनों दृष्टियों से उक्त वैदिक शब्दों का ही विकास है तथा भामह के काव्यालंकार में प्रयुक्त इस शब्द का वास्तविक अर्थ 'समा-चीनता' या औचित्य है.

डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी (इंदौर) ने 'मम्मट-स्वीकृत षड्विध लक्षणा' नामक निबंध में बताया कि मम्मट के टीकाकारों में से केवल गोकुलनाथ ने ही लक्षणा का वर्गीकरण मम्मट के वास्तविक अभिप्राय के अनुसार किया है. उन्होंने इस संबंध में मम्मट के काव्य-प्रकाश की अनेक असंगतियों एवं आत्मविरोधों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया.

डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' (उदयपुर) ने पाश्चात्य बिंब-सिद्धांत को परिभाषित करते हुए कहा कि बिंब काव्य का केवल साधन-पक्ष है, साध्य नहीं. उन्होंने संस्कृत काव्य-शास्त्र के अलंकार, वक्रोक्ति, ध्वनि आदि सिद्धांतों में बिंब का अंतर्भाव बतलाते हुए अपनी यह मान्यता प्रकट की कि काव्य के अनुभूति पक्ष पर बल देने वाला भारतीय रस-सिद्धांत ही काव्य का चिरंतन सिद्धांत है.

डॉ. अ. न. जानी (वड़ौदा) ने श्रीकंठ की 'रस-कौमुदी' के रस-विवेचन पर काव्य-प्रकाश के रस-प्रकरण का प्रभाव स्पष्ट करते हुए कहा कि संगीत आदि कलाओं में भी रस-तत्त्व को ही चरम मूल्य स्वीकार किया गया है. **श्री वसंत जैतली** (जयपुर) ने भाव के स्वरूप के विषय में भरत से ले कर जगन्नाथ तक के काव्य-शास्त्रीय विकास में भाव-संबंधी विवेचन का ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत किया. **डॉ. के. कृष्णमूर्त्ति** (धारवाड़) ने अलंकार, गुण, दोष, रीति तथा रस आदि विभिन्न सिद्धांतों को परस्पर निरपेक्ष एवं स्वतंत्र मानने की रूढ़ प्रवृत्ति का विरोध करते हुए अपने निबंध में प्रतिपादित किया कि ये सभी तत्त्व परस्पर सापेक्ष रूप में ही काव्य-सौंदर्य की सृष्टि करते हैं. उन्होंने काव्य के इस मूलभूत सौंदर्य को ध्वनि से अभिन्न मानते हुए उसे अन्य समस्त काव्य-सिद्धांतों का मिलन-बिंदु सिद्ध किया.

डॉ. द्विजेंद्रनाथ शुक्ल (चंडीगढ़) ने अन्य ललित कलाओं के संदर्भ में काव्य की स्वरूप-विवेचना करते हुए प्रतिपादित किया कि ध्वनिवाद के अनुसार वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ का आधार है, अतः वाच्यार्थ पर आधारित अलंकार रीति आदि सिद्धांतों को ध्वनि-विरोधी मानना ठीक नहीं है. **डॉ. रामचंद्र द्विवेदी** (उदयपुर) ने यह मान्यता प्रकट की कि संस्कृत आलंकारियों की काव्य-संबंधी धारणाएँ दर्शन विशेष से बद्ध नहीं हैं, प्रत्युत वे समस्त दार्शनिक प्रतिपत्तियों से अतीत एवं स्वतंत्र हैं.

डॉ. (कु.) सुमन पांडे (भोपाल) ने जगन्नाथ की रमणीयता संबंधी धारणा में सन्निवेश चारुत्व, आस्वाद, चमत्कार एवं अनुसंधान आदि का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उस में पूर्ववर्ती काव्य-सिद्धांतों का अंतर्भाव दिखलाया. **श्री वी. वेंकटाचलम** (उज्जैन) ने कवि और सहृदय का नित्य संपृक्तता का निरूपण करते हुए यह विचार प्रकट किया कि कवि में भी सहृदयता आवश्यक है तथा सहृदयता भी एक अर्थ में कवि या स्रष्टा कहा जा सकता है. कवि यदि वाकस्रष्टा होता है तो सहृदय,स्रष्टा. **श्री सुरजन दास स्वामी** ने आपत्ति उठायी कि कवि के लिए तो सहृदयत्व आवश्यक है, किंतु सहृदय का कवि होना जरूरी नहीं है. उन्होंने राजशेखर के आधार पर कहा कि कवि और भावक की प्रतिभाएँ परस्पर भिन्न होती हैं. **डॉ. कांतिचंद्र पांडेय** ने कहा कि काव्य माध्यम मात्र होता है, जिस के द्वारा सहृदय कवि की अनुभूति को ग्रहण करता है.

श्री मूलचंद्र पाठक (उदयपुर) ने अपने निबंध 'संस्कृत अलंकार-शास्त्र में काव्य का सर्जना-पक्ष' में कतिपय विद्वानों की इस धारणा का खंडन किया कि संस्कृत काव्य-समीक्षा में काव्य के सृजन-पक्ष की उपेक्षा की गयी है. उन्होंने काव्यशास्त्र के आधार पर कवि के स्वरूप, सृजन-प्रेरणा, सृजन-शक्ति, प्रतिभा तथा काव्य की सर्जन-प्रक्रिया की व्याख्या की.

विचार-गोष्ठी में कुछ तुलनात्मक काव्य-सिद्धांत संबंधी निबंध भी पढ़े गये. **डॉ. पुरुषोत्तम लाल भार्गव** (जयपुर) ने भारतीय नाट्य-सिद्धांतों के साम्य-वैषम्य की विवेचना करते हुए कहा कि अरस्तू ने सर्वश्रेष्ठ कोटि का दुखांत नाटक उसे बतलाया है, जिस में यथा-समय रहस्योद्घाटन के कारण अंत में हत्या बचा ली जाती है. उन्होंने कहा कि अरस्तू की इस मान्यता के आधार पर संस्कृत के मृच्छकटिक, मुद्राराक्षस आदि नाटकों को सर्वश्रेष्ठ दुःखांत नाटक कहा जा सकता है.

इस प्रकार इस त्रिदिवसीय विचार-गोष्ठी में संस्कृत काव्य-शास्त्र के प्रायः (प्रायः इस लिए कि औचित्य-सिद्धांत की स्वतंत्र चर्चा नहीं हुई) सभी सिद्धांतों की व्याख्या-पुनर्व्याख्या प्रस्तुत की गयी. इस गोष्ठी ने जहाँ विभिन्न काव्य-सिद्धांतों के संबंध में शंकाओं और भ्रांतियों का निवारण किया वहाँ उस ने यह भी अनुभव कराया कि संस्कृत समीक्षा-शास्त्र की अनेक मान्यताएँ आधुनिक युग में भी नितांत अप्रासंगिक नहीं हैं, यद्यपि इस गोष्ठी में पढ़े गये निबंधों व तदनुगामी चर्चाओं से यह स्पष्ट नहीं हो सका कि संस्कृत आचार्यों के काव्य-चिंतन का आधुनिक साहित्य के मूल्यांकन में किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है.

किताबें

अकाल पुरुष गांधी

गांधी जी पर काफ़ी लिखा गया है पर बहुत कम अच्छा लिखा गया है. शायद इस का कारण यही है कि अभी तक जो कुछ लिखा गया है वह उन के समकालीनों ने लिखा है जिन में श्रद्धाभाव ही अधिक रहा है. वह तटस्थ दृष्टि नहीं रही है जिस में श्रद्धा और अश्रद्धा होते हुए भी श्रद्धा और अश्रद्धा लेखन पर हावी नहीं होती. जैनेंद्र की पुस्तक **अकाल पुरुष गांधी** इस दृष्टि से गांधी जी पर लिखी गयी अन्य पुस्तकों से भिन्न है और इसी लिए महत्त्व-पूर्ण है. हिंदी में ऐसी दूसरी पुस्तक नहीं है.

पुस्तक में गांधी जी पर लिखे गये संस्मरण और लेख हैं. जैनेंद्र की शैली का अपना चटखारा इन में पूरी तरह से विद्यमान है. तर्क और बुद्धि के पैंतरे जो अपनी सहजता का आभास दे कर चमत्कृत करते हैं, अपने को निरंतर काटते हुए भी आप को झकझोरते हैं इस पुस्तक में भी बखूबी देखे जा सकते हैं. यही जैनेंद्र की विशेषता भी है यही जैनेंद्र की सीमा भी. पर इतना इस पुस्तक को पढ़ कर अवश्य लगता है कि जैनेंद्र की दृष्टि निर्भीक है, न आत्ममोह द्वारा छली गयी है न परश्रद्धा से आक्रांत है. गांधी जी पर उन्होंने खुल कर कहा है, कहीं कोई लाग-लपेट नहीं है. "राज की दिशा में यह गांधी चाहता है तो 'राम-राज्य' चाहता है, जिस के तंत्र को किसी वैज्ञानिक भाषा में नहीं रखा जा सकता. समाज चाहता है तो ऐसा जिस में कोई संभावना नष्ट हो और सब स्नेह से रहें. धन रहे, धनपति रहें; श्रम रहे और श्रमिक रहें, राजा हो और वह चाकर भी हो, चाकर हो और वह राजा से कम न हो. इस तरह की अवैज्ञानिक और भावुक बातें जो कवि को शोभा दें अर्थ नीति और कूटनीति के संचालक और समाज-निर्माता पुरुष के लिए अटपटी लगती हैं." जैनेंद्र की ऐसी साफ़गोई पाठक को मोहती है और ऐसे स्थलों की पुस्तक में कमी नहीं है. संस्मरण बिना भावुकता के भी मर्मस्पर्शी हैं. गांधी जी से संबंधित विचारधाराओं पर भी जैनेंद्र के अपने विचार हैं. नीति, राजनीति, धर्मनिरपेक्षता, सत्याग्रह, अहिंसा, वर्गसंघर्ष, मानव-सभ्यता, प्रजातंत्र, राष्ट्रीयकरण, सर्वोदय, अर्थनीति सब पर जैनेंद्र के अपने मत हैं और उन में पेंच, लपेट उलझाव भी कम नहीं हैं. पर यही पेंच, लपेट, उलझाव ही तो जैनेंद्र है क्यों कि जैनेंद्र की शैली ऐसी है कि इन में फँस कर ही पाठक मुक्त होता है. या यों कहिए मुक्ति का रास्ता खोज लेता है. गांधी स्मारक निधि की आर्थिक सहायता से यह ग्रंथ गांधी शतसंवत्सरी पर प्रकाशित किया गया है.

अकाल पुरुष गांधी; जैनेंद्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली-६ मूल्य पंद्रह रुपया.

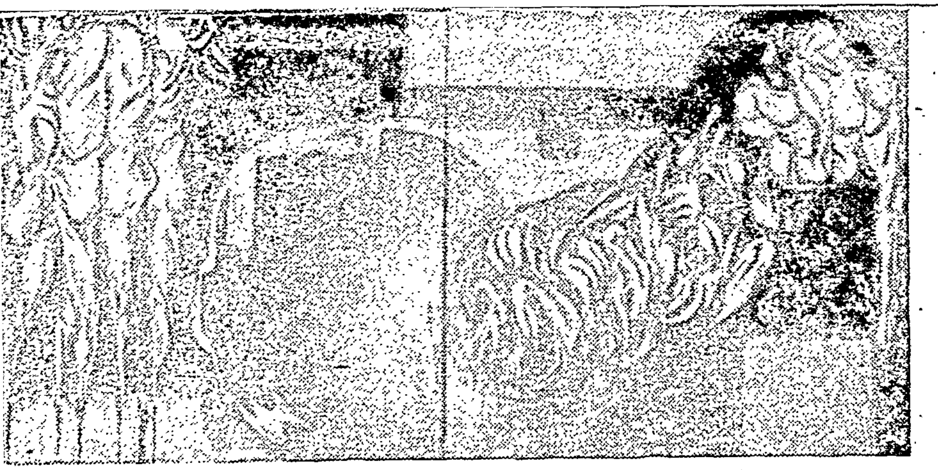

अ० रामचंद्रन् : 'मशीन'

कला

अ. रामचंद्रन : मनुष्य बनाम मशीन

पिछले दो-तीन वर्षों से अ. रामचंद्रन के चित्रों की प्रदर्शनियां कला-संसार में अगर बड़ी नहीं तो छोटी-मोटी हलचल उत्पन्न करती रही हैं. इस वर्ष उन्हें ललित कला अकादेमी का राष्ट्रीय पुरस्कार भी मिला है. मानव-स्थिति और मानव नियति संबंधी उन के चित्रों में आकृतियों और आकृति-अंगों की अकुलाहट-छटपटाहट मुखर रही है. उन्होंने प्राय: आकृति-अंगों, विशेष रूप से हाथ-पैरों को गहरी यंत्रणा और एक संबंध-विच्छेद के बीच प्रस्तुत किया है. आकृतियों और अंगों की रचना उन्होंने बराबर उन की मांसलता में की है. मानव-शक्ति का क्लासिकी और उदात्त आकलन, साथ ही उस की त्रासद स्थितियां और अनिवार्य नियति भी—मूल रूप से उन के चित्रों का विषय-संयोजन यही रहा है. इस वर्ष की उन की प्रदर्शनी (कुमार आर्ट गैलरी) का विषय भी यही है. इस में उन का एक बड़ा चित्र 'मशीन' तथा संबंधित रेखांकन प्रदर्शित थे. 'मशीन' तीन हिस्सों में बँटा हुआ चित्र है, जिसे दो कैनवासों को जोड़ कर उन्होंने तैयार किया है. चित्र के सामने खड़े होने पर दायीं ओर शरीर का बच रहा हिस्सा, जिस में एक लटकता पैर प्रमुख है, बच रहा है. शेष शरीर जैसे किसी भट्टी में झोंक दिया गया है. चित्र के बीच में काले चौखटे में छिपी मशीन है, लकड़ी या लोहा काटने वाली आरी की शक्ल में, जिस का कुछ हिस्सा ऊपर की ओर दिख रहा है. तेज़ी से चलती इस मशीन में क्रमश: शरीर निचुड़ता जायेगा, जो कुछ बच रहेगा वह बायीं ओर चित्रित है—बहते खून और निचुड़े मांस की ठठरियां, मांस-पेशियां जहां-तहां अब भी बच रही हैं, लेकिन व्यर्थ. चित्र भयावह और त्रासद है. लेकिन चित्र की शक्ति मानव-स्थिति-नियति की इस मोटी व्याख्या में नहीं है. शक्ति रामचंद्रन के तूलिका-घातों में व परिकल्पित रूपाकारों में है. रामचंद्रन अपने चित्रों के लिए ज्यामितिक आधार स्वीकार करते हैं. वृत्त, त्रिकोण और चतुर्भुज उन के चित्रों-रेखांकनों को रूपायित करते हैं. रामचंद्रन के रेखांकन भी मानव-शरीर को उलटपुलट कर देखते हैं. उन के इस बार के रेखांकनों में योग-मुद्राएँ हैं, कुछ ही लकीरों वाली निर्वसनाएँ हैं और एक-दूसरे से गुंथे स्तूपाकार हाथ-पैर हैं. प्राय: सभी आकृतियां धड़-रहित हैं, लेकिन प्राय: प्रत्येक रेखांकन के साथ एक मुखाकृति है, जो मानो मानव-अंगों की भिन्न गतिविधियों से परिचित हो रही है या शायद स्वयं अपने ही अंगों का भिन्न स्थितियों में साक्षात्कार कर रही है.

रामचंद्रन की इस प्रदर्शनी से भी उन की चित्रांकन व रेखांकन-क्षमता जाहिर होती है. लेकिन लगता है वह इस क्षमता का उपयोग एक ही घेरे में घूम कर कर रहे हैं. अब शायद यह उन के सोचने की बात हो गयी है कि वह इस क्षमता को और किन विषय-दिशाओं की ओर मोड़ें.

गैलरी मोहांती में प्रदर्शित भूषण कौल के अमूर्त्त चित्रों में रंग अक्सर उभरवाँ शक्ल में रखे गये हैं. प्रमुख पीले में व अन्य रंग-धब्बों में उन के चित्र अपने अनुभवों में हमें सहभागी नहीं बना पाते, न ही हमारे मन में समान या समांतर बिंब उभार पाते हैं. छोटी नावों के से रूपाकार वाले दो-एक चित्र ज़रूर प्रेक्षक से कहीं जुड़ने की आकांक्षा रखते मालूम पड़ते हैं.

रथीन मित्र के रेखांकन : एक अरसे से काम कर रहे चित्रकार रथीन मित्र ने, जो अब देहरादून में रहते हैं, पिछले दिनों श्रीधराणी कला दीर्घा में अपने कलम-स्याही के रेखांकन प्रदर्शित किये. मसूरी, देहरादून, हरिद्वार, लखनऊ, बनारस के इन रेखांकनों में बाजार, गलियाँ, मंदिर, मस्जिद, घाट, पुल आदि अपने विवरणों में उभरते हैं और एक परिचित संसार को सहसा ही सामने ला खड़ा करते हैं. लेकिन इस परिचित संसार को वह हमें किसी ऐसे कोण से नहीं दिखा पाते, जहां से हमारे अब तक के परिचय का विस्तार होता हो. यथार्थवादी चौखटे में आंके गये इन सैरों में वातावरण-निर्मिति अधूरी रह गयी लगती है. हम देख तो पाते हैं, लेकिन जो कुछ देख पाते हैं उस की ध्वनियाँ या अंतर्कथाएँ सहज ही प्राप्त नहीं कर पाते.

रथीन मित्र देश-विदेश में काफ़ी घूमे हैं और रंग-रेखाओं के बीच रहते हुए भी उन्हें काफ़ी दिन हो चुके हैं. इसी लिए उन के इन रेखांकनों में नये कोणों व अंतरंग अनुभव-कथाओं का अभाव खटकता है.

उन के इन रेखांकनों में गली-सैरों का संसार ही सब से अधिक आत्मीय व जीवंत लगता है. 'हरिद्वार की एक गली' रेखांकन में वह 'एक गली एकरसता भरी, फिर भी कितना कुछ कहती' जैसा प्रभाव देख सके हैं. सैरों में रखी गयीं आकृतियों के प्रति वह काफ़ी उदासीन लगते हैं—उन की उपस्थिति आकृति-चिह्नों के रूप में ही हो पायी है. उन्हें वह किसी ओर मुखातिब नहीं करते. कुछ ही रेखाओं वाला उन का बनारस का एक रेखांकन 'पवित्र पत्थर, पवित्र वृक्ष' ज़रूर अच्छा बन पड़ा है.

रामेश्वर व शोभा बरूटा के चित्र : श्रीधराणी

रथीन मित्र : 'पान की दूकान'

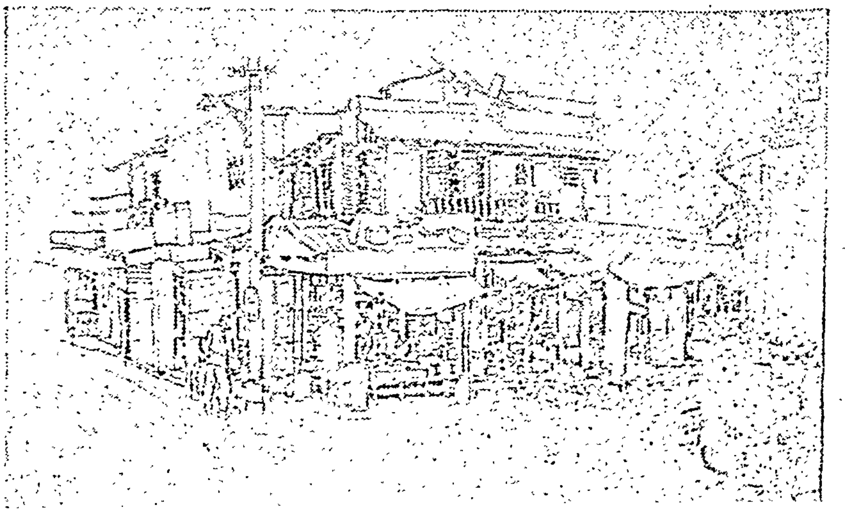

'मूर्तिशिल्पी और माचिस की डिब्बी'
रामेश्वर वरूटा

कला दीर्घा में आयोजित पति-पत्नी **रामेश्वर वरूटा** व **शोभा वरूटा** के चित्रों की प्रदर्शनी में आकृतिमूलक और अमूर्त कृतियाँ एक साथ इकट्ठी हो कर जैसे एक-दूसरे को अपने अलग-अलग संदर्भ में दे देती हैं. रामेश्वर वरूटा की प्राय: सभी कृतियाँ आकृतिमूलक हैं व शोभा की सभी अमूर्त्त. रामेश्वर की मुखाकृतियों व अन्य आकृतिमूलक कृतियों में रंग-चयन उन्हें सपाट होने से बचाता है. मुखाकृतियों-आकृतियों को मिले हुए रंग नाक-नक़्श की दुनिया से हटा कर हमें सीधे मन:स्थितियों से जोड़ देते हैं. रामेश्वर के अधिकांश रंग फूलों की *ताज़गी वाले रंग हैं—केवल रंग ही नहीं,* फूलों के अन्य रूप-गुण-स्पर्श भी इन आकृतियों से आ कर लिपट गये लगते हैं. इसी लिए उन के ये चित्र कोमल, शांत, ओस-भीगे लगते हैं. 'पुनरुज्जीवित की गयी स्मृतियाँ', 'चुप्पी', 'उषा' जैसे चित्र इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. रामेश्वर ने अपने अधिकांश चित्र में एक अकेली आकृति रखी है और उस आकृति की स्थिति, मन:स्थिति के लिए कुछ पृष्ठभूमि छोड़ दी है. इस तरह छोड़ी गयी पृष्ठभूमि में कहीं-कहीं पर कुछेक रूपाकार भी हैं. 'पुनरुज्जीवित की गयी स्मृतियाँ' में चुप बैठी एक स्त्री है—पृष्ठभूमि में जैसे बहुत पीछे छूट गयीं कुछ जगहें-चीज़ें—लघुतर आकार में. 'मूर्त्ति-शिल्पी और माचिस की डिब्बी' चित्र को छोड़ कर उन के सभी आकृति-प्रधान चित्रों में नारी आकृतियाँ ही हैं.

फूलों के स्पर्श वाली इस रंग-शैली का प्रयोग जहाँ उन्होंने सफलतापूर्वक किया है वहीं 'अतीत की परछाइयाँ' चित्र में उसे सुविधा के लिए अपना कर चित्र के प्रभाव को सपाट कर दिया है. कुछेक चित्रों में उन्होंने वनस्पति-संसार को उस के 'अकेलेपन' के रूप में रखा है. ये चित्र अन्य आकृति वाले चित्रों से अनायास संबंधित हो उठते हैं. रामेश्वर ने अपनी नारी आकृतियों के पहनावे को भी पुष्प-रंग दिये हैं. उन के चित्र 'सुरभि' में मुखाकृति व पहनावे को दिये गये ये रंग सार्थक लगते हैं.

शोभा वरूटा की अमूर्त कृतियों में अक्सर रंगों के घुमड़ते हुए बादल हैं. चित्र-संख्या १० में तो रंगों के ये बादल एक घुमड़न रच कर मन:स्थितियों से जुड़ने का भाव प्रकट करते हैं. लेकिन अन्य चित्रों में वे रंगों के ही धब्बे बन कर रह जाते हैं—प्रभाव-रहित. रंगों का इतना निष्फल प्रयोग—मन में अफ़सोस ही जगता है. चित्रों में स्थिर रूपाकार नहीं हैं. ब्लैक बोर्ड पर खड़िया मिट्टी की लिखाई को पोंछते समय जैसी लहरें-सी बनती जाती हैं कुछ वैसी ही लहरों की तरह के रूपाकार इन चित्रों में हैं—अगर इन्हें रूपाकार कहें तो बादल, लहरें, झँझोड़ती हवा—इन चित्रों से अधिक से अधिक इन्हीं में से किसी का रूप उभार सकते हैं. लेकिन इस से क्या? प्रेक्षक रूप या प्रकृति-निर्धारण का सुख पा भी ले तो रचनात्मक सुख का भागीदार कैसे बनेगा?

उत्तरप्रदेश की कला

उत्तरप्रदेश ललित कला अकादेमी के पाँचवें वार्षिक प्रदर्शन (१९६८) में महत्त्वपूर्ण रूप से खटकने वाली बात अतिथि कलाकार हैं जिन का कार्य, लगता है, उन कलाकारों के परिचित और पिटे हुए मुहावरों का विज्ञापन अधिकाधिक संख्या में करने के लिए प्रदर्शित किया गया. अन्यथा **रथीन मित्रा, मदनलाल नागर, विष्ट** आदि पहचान में आ गये कलाकारों का एक-एक चित्र प्रदर्शन की शोभा बढ़ाने के लिए क्या काफ़ी नहीं था? खाली वीथियों को भरना हो तो अलग बात है. वैसे निर्णायक-मंडल के प्रमुख सदस्य **के. एस. कुलकर्णी** का स्वयं नियम के विरुद्ध जाना भी समझ में नहीं आया क्यों कि आकार में उन का चित्र निर्धारित सीमाओं को पार कर जाता है. ख़ैर इस बार पुरस्कार वितरण में किसी प्रकार का असंतोष शायद ही किसी को हो पर प्रतियोगिता में लचर चित्रों की ही भरमार थी.

प्रदर्शन की उल्लेखनीय चीज़ें बहुत कम हैं. संख्या में कुल १८८ कलाकृतियाँ बहुत अधिक हैं पर उन में से कुछ में ही सृजन की अनिवार्य ललक है. उत्तरप्रदेश की कला लखनऊ, कानपुर, वाराणसी, देहरादून जैसे कुछ प्रमुख नगरों तक सीमित है और आश्चर्यजनक रूप में हर नगर का आपस में मिलता-जुलता रचना-संसार है. *चित्र का शीर्षक 'यंत्रणा'* दे देने से ही यंत्रणा की अनुभूति नहीं होती या फिर 'अपने भारत' को गहराई में पहचाने बिना फ़िल्म की तरह मंदिर-मस्जिद-गिरजे को खींच कर अपने भारत की संज्ञा दे देना ही काफ़ी नहीं है. इससे चालू मुहावरों के आत्मसात कर लेने की ही उत्कट इच्छा साफ़ होती है.

'संयोजन' : पी० दास गुप्ता

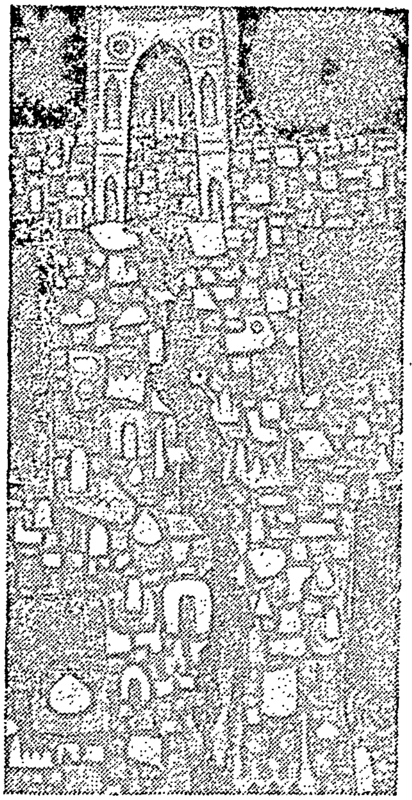

'शहर' : मदनलाल नागर

पुरस्कृत चित्रों में सब से प्रभावशाली **पी. दासगुप्ता** का 'संयोजन' तैल चित्र है हालाँकि पुरस्कारों की पंक्ति से अलग खड़े हुए कुछ युवक कलाकार भी प्रभावित किये बिना नहीं रहते. **गोपाल** (संयोजन), **समीर कुमार घोष** (सफ़ेद और नीला), **भैरवनाथ शुक्ल** (संयोजन), **किरण सक्सेना** (लीथोग्राफ़), **देवेंद्र कौर** (इंटेंगलियो), **रमेश विष्ट** (मूर्तिशिल्प) जैसे कुछ ताज़े नाम संभावनाओं को जगाते हैं. अपेक्षाकृत चर्चित कलाकारों में **दीपक बनर्जी, एन. एन. राय, जयकृष्ण** (पुरस्कृत), **सुधा अरोड़ा** (पुरस्कृत), **बलबीर सिंह कट्ट** वगैरह की कलाकृतियाँ संतोषजनक हैं. **सतीश** का स्व. डा. राधाकमल मुखर्जी स्वर्णपदक प्राप्त भू-खंड इस ढंग से सोचने के लिए विवश करता है कि इन सब 'अच्छी' चीज़ों, लुभावने दृश्यों को कागज़ पर उतार देने की सार्थकता क्या है? **टी. जे. रफ़ई** के कोलाज प्रभावशाली हैं.

प्रदर्शन देखने के बाद यही सवाल दिमाग को रह-रह कर आतंकित करता रहा कि उत्तर प्रदेश में कला का भविष्य क्या वही रहेगा जो कि अब तक रहता चला आया है? यानी 'वातावरण' बनाने वाली कलाकृतियाँ कब आयेंगी?

परचून

बक्सों के भीतर प्रदर्शनी

इटली के नगर तुरिन में एक विचित्र प्रदर्शनी का आयोजन किया गया है, जो बक्सों में बंद है. इस बक्सा-बंद प्रदर्शनी में इटली की संस्कृति और वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य की झाँकियाँ देखने को मिलेंगी. पूरी प्रदर्शनी ६ बक्सों में बंद है, जो नौ-नौ मीटर लंबे हैं. इन बक्सों को खोल कर तरतीबवार लगा देने के बाद ये ऐसी सुरंग का रूप ले लेते हैं जिस में सम्मेलन, गोल मेज़-वार्ता, वृत्त चित्र-प्रदर्शनी और वाद-विवाद के लिए काफ़ी स्थान होता है. चलती-फिरती यह प्रदर्शनी तुरिन के अलावा अन्य अनेक नगरों की यात्रा करेगी.

नोबेल पुरस्कार का दान

मानव-अधिकारों की रक्षा के लिए सतत प्रयत्न करने के बदले में फ़्रांस के प्रोफ़ेसर रेने कासा को नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया है. प्रोफ़ेसर कासा ने घोषणा की है कि वह इस पुरस्कार की रक़म को अपने व्यक्तिगत काम में नहीं लगायेंगे, बल्कि मानवता के भले के लिए वह पाँच लाख रुपयों की इस धन-राशि से स्ट्रासबुर्ग में एक अंतरराष्ट्रीय विधि संस्थान की स्थापना करेंगे.

प्रोफ़ेसर कासा ने इस संस्थान के लिए स्ट्रासबुर्ग को एक विशेष कारण से चुना है—वह इस फ़्रांसीसी नगर को यूरोप की नैतिक राजधानी मानते हैं. इसी नगर में यूरोपीय देशों के विधायकों की सामूहिक संसद् भी है, जिसे यूरोप के राजनैतिक एकीकरण की ओर एक क़दम समझा जाता है.

संगणक और जन्मपत्री

संगणक ने अनेक लोगों से उन का काम छीन लिया है, मगर अब ऐसा लगता है कि वह ज्योतिषी को भी बेकार कर देगा. पेरिस के शेम्स एलिसीज़ में एक एस्ट्रोफ़्लैश संगणक लगाया गया है, जो जन्मपत्रियाँ बनायेगा. दस फ़्रांक में यह ग्रह-नक्षत्रों से जोड़-तोड़ मिला कर चरित्र की रूप-रेखा प्रस्तुत कर देगा और अगले छह महीनों में जीवन में क्या होने वाला है—२० फ़्रांक में यह सब कुछ बता देगा. एस्ट्रोफ़्लैश को जन्म-तिथि और जन्म-स्थान बताने के दस मिनट बाद १६ पृष्ठों की टंकित जन्मपत्री मिल जायेगी, जिस में पूछने वाले का पूर्व निश्चित भविष्य का विवरण मिलेगा.

कहने की आवश्यकता नहीं कि एस्ट्रोफ़्लैश को जो धन मिलेगा वह उस के लिए कोई मायने नहीं रखता. प्राप्त धन उस के मालिक रोजर बर्तिये और ज्योतिषी ऑपरेटर आदि वालों में बँट जाएगा, जिन्होंने मिल कर इस संगणक को भविष्यवाणी करने की क्षमता दी. नये आविष्कारों के क्षेत्र में ऐसे संगणक के आविष्कार को किसी भी हालत में छोटी उपलब्धि कहना अन्याय है और रोजर बर्तिये की इस के संबंध में गर्वोक्ति पूरी तरह उचित है—'मैं संसार में पहला व्यक्ति हूँ जिस ने संगणक से जन्मपत्री तैयार करने की बात सोची.' बर्तिये के लिए यह एस्ट्रोफ़्लैश सोने की खान है, क्यों कि उसने इसे संगणक बनाने वाली संस्था आई. बी. एम. से सिर्फ़ ७५०,००० फ़्रांक प्रतिवर्ष की दर से ठेके पर लिया हुआ है. फ़्रांसीसी पत्रिका पेरिस मैच का विचार है कि बर्तिये शीघ्र ही लखपति हो जायेगा.

हीरों-जवाहरातों का ग्राम

पश्चिम जर्मनी में इदार ओबरस्टाइन नाम का एक गाँव है, जो संसार भर में अपने क़िस्म का अकेला है. इस गाँव की विचित्रता यह है कि यहाँ के बाशिंदों का केवल एक ही पेशा है और वह है क़ीमती पत्थरों का घड़ना. हीरों-जवाहरातों के लिए ख्यातिप्राप्त इस इलाक़े के निवासियों ने अपनी प्रसिद्धि के प्रतीक स्वरूप गाँव के बीचोंबीच एक ऐसा स्तंभ बनाया है जिस पर अनेक क़िस्म के अनघड़े हीरे-मोती लगाये गये हैं. इन बेशक़ीमती नगों को कुछ इस तरह इस खंभे में बैठाया गया है कि यदि किसी बुरी मति वाले व्यक्ति को इन्हें चुराने की सूझे तो वह इन को किसी भी तरह उखाड़ नहीं सकेगा.

बेशक़ीमती स्तंभ : चोरों को चुनौती

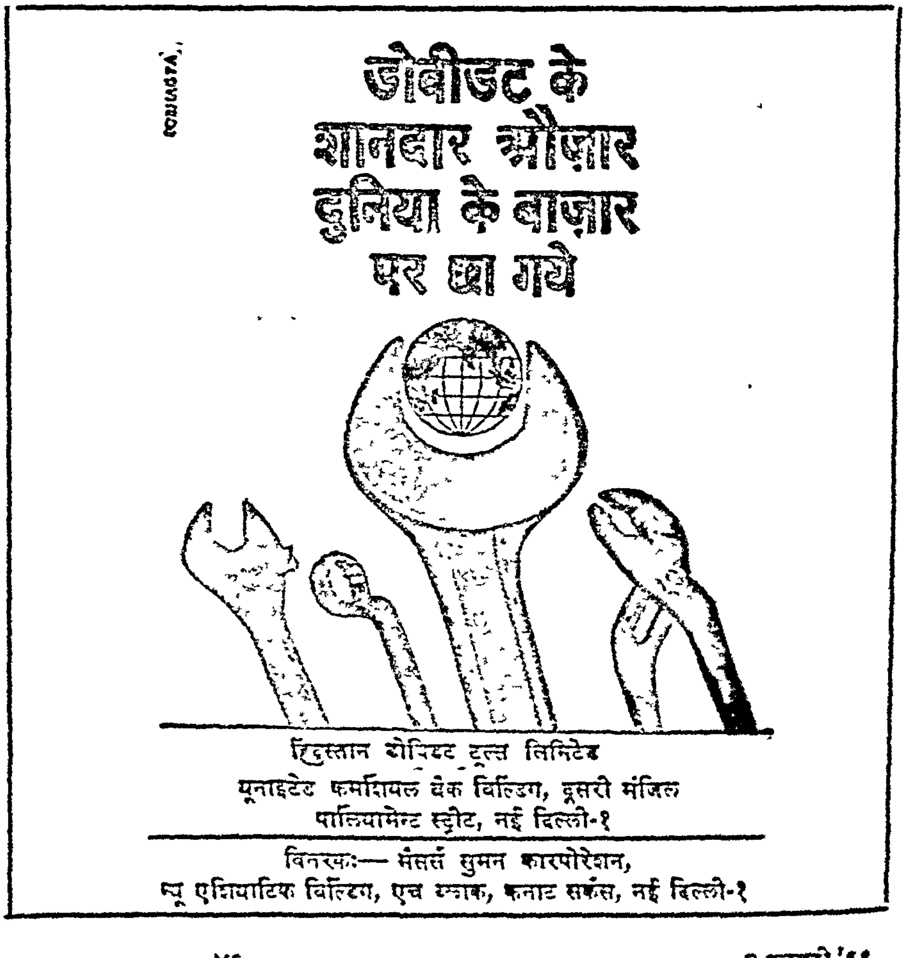

वी.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

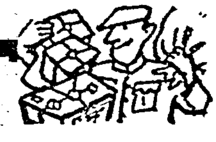

मोना की नई गुड़िया

४२ से० मी० लंबी

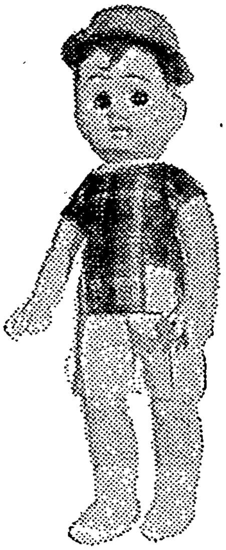

प्लास्टिक का टोप लगाये

मास्टर राजू

मोना टॉयज इण्डस्ट्रीज
डी-३४, राजौरी गार्डन्स, नई दिल्ली-१५
फोन : ५६६८३६

एकमात्र वितरक:—गुप्ता सेल्स कार्पोरेशन
२७९/१४, पोस्ट ऑफ़िस स्ट्रीट,
सदर बाज़ार, दिल्ली ।

विद्युत एवं रेडियो

अभियन्त्रण पाठ्यक्रम

विद्युत अभियन्त्रण, रेडियो मरम्मत, एसेम्बलिंग, विद्युत सुपरवाइजरी, वायरिंग आदि (८०० चित्र) रु० १२.५० वी. पी. डाक व्यय २/- सुलेखा बुक डिपो (इ) अलीगढ़

क़िस्तों में ट्रांज़िस्टर मंगायें सिर्फ १०) रु० मासिक पर

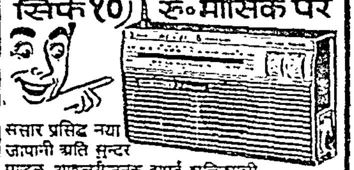

संसार प्रसिद्ध नया जापानी अति सुन्दर माडल आश्चर्यजनक अपूर्व शक्तिशाली अद्भुत आकर्षक ध्वनि बेहद टिकाऊ, गारंटिड, डायललाईट व सर्वाधिक खूबियों का अपना मनपसन्द 'वर्ल्ड वायस' ३ बैन्ड आलवर्ल्ड ट्रांजिस्टर ही मंगायें मूल्य 165/- रु०
हर शहर व गांव में भेजते हैं

आज ही जरूर पत्र लिखे।

आलवर्ल्ड एजेन्सी
(ल) कल्यानपुरा दिल्ली६

मुफ़्त उपहार

३ महीने तक स्त्रियों का सौन्दर्य काश्मीरी और बंगलौरी आर्ट सिल्क की साड़ियों में खिलता है। आधुनिक डिजाइनों और रंगों में नया माल आ गया है। केवल हमारे यहां ही प्राप्य है। एक डीलक्स साड़ी १२) दो साड़ियां २३) तीन साड़ियां ३३) चार साड़ियां ४०)। दो या अधिक साड़ियों के आर्डर पर ब्लाउजपीस मुफ़्त। आर्डर पोस्ट पार्सल से भेजे जायेंगे।

ATLAS CO (D.W.N.D.-25)
P.O Box 1329, DELHI-6

किस्तों पर ट्रांजिस्टर

सर्वत्र विख्यात "एस्कोट" ३ बैंड आल वर्ल्ड पोर्टेबल ट्रांजिस्टर, मूल्य १६५ रुपये मासिक किस्त रुपये १०) भारत के प्रत्येक गांव और शहर में भेजा जा सकता है। लिखें:—

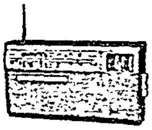

जापान एजेंसीज (D.W.N.D.—10)
पोस्ट बाक्स ११९४, दिल्ली-६

नवभारत टाइम्स

हिन्दी दैनिक

बम्बई और दिल्ली से प्रकाशित

"नवभारत टाइम्स" आधुनिक और ताजातर समाचारों का हिन्दी दैनिक है
और

इसके पाठकों की संख्या सबसे अधिक है।

दोनों ही संस्करणों में व्यावसायिक, स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारों के साथ-साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और आर्थिक विषयों पर विशेष सामग्री ही तो इसकी विशेषता है।

समाचारों की भाषा सरल है, और

सम्पादकीय अग्रलेख सन्तुलित और विचारोत्तेजक होते हैं।

हरियाणा के बढ़ते कदम

राज्य की स्थापना हुए कोई ज्यादा समय नहीं हुआ। इस थोड़े अर्से में ही हरियाणा ने खेती, सिंचाई, उद्योग, शिक्षा और स्वास्थ्य आदि क्षेत्रों में जो सराहनीय प्रगति की है उस की मुंह बोलती कहानी इन आंकड़ों की जबानी सुनिए।

	राज्य बनने के समय की स्थिति	आज की स्थिति
खेती		
अनाज की पैदावार	२५.७० (१९६६-६७) लाख टन	३९.५२ (१९६७-६८) लाख टन
रासायनिक खादों की खपत	०.६० (१९६६-६७) लाख टन	२.५० (१९६८-६९) लाख टन
सिंचाई		
सिंचित क्षेत्र	१२.७६ (१९६६-६७) लाख हैक्टेयर	१३.०१ (१९६७-६८) लाख हैक्टेयर
लगाए गए ट्यूबवैल	४३५ (१९६६-६७)	२२३५ (१९६७-६८)
लगाए गए पंपिंग सेट	३७४ (१९६६-६७)	२१७४ (१९६७-६८)
खोदे गए कुएँ	६१३ (१९६६-६७)	१९१३ (१९६७-६८)
उद्योग		
छोटे कारखाने	३५००	४५००
काम कर रहे रजिस्टर्ड कारखाने	१११७	१३४०
कारखानों में मजदूरों की संख्या	६८,०००	७६,४३३
शिक्षा		
स्कूलों में छात्रों की संख्या	९,६१,४७३	११,६३,०००
कालेजों में छात्रों की संख्या	२९,०००	३९,०००
प्राइमरी स्कूलों की संख्या	४४६५ (१९६६-६७)	५७००
मिडिल स्कूलों की संख्या	७४२ (१९६६-६७)	१३०२
हाई/हायर सैकण्डरी स्कूलों की संख्या	५९७	६५४
चिकित्सा एवं स्वास्थ्य		
हस्पताल एवं डिस्पेंसरियां	२८५	२८९ (१७ डिस्पेंसरियाँ आयुर्वैदिक डिस्पेंसरियाँ बना दी गई हैं)
हस्पतालों मे मरीजों के लिए शय्याएँ	४५८४	५,०६६ (जनवरी, १९६८)
पशुपालन		
पशु-हस्पताल	२१५	२२५
बिजली		
बिजली लगे गांव	१२५१ (अप्रैल १९६७)	१४३६
ट्यूबवैलों के कनैक्शन	२०,१९० (अप्रैल, १९६७)	२७,५८९ (अप्रैल, ६८) ४५,५८९ (१९६८-६९)
दिए गए कुल कनैक्शन	३,११,९१४	३,७९,४२८ (अक्तूबर, १९६८)
यातायात		
बसों की संख्या	४७५	५९३
चालू रूट	२१३	३३६
बसें जितने मील हर रोज चलती है	६४,०००	८,००००

लोक सम्पर्क विभाग, हरियाणा द्वारा प्रचारित

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

साप्ताहिक

दिनमान

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

वरी, १९६९
म, १८९०

अन्नादोरै • तीस जनवरी • आंध्र के छात्रावास • चुनाव के चरचे

पौष्टिक तत्वों से भरपूर
MOHUN'S NEW LIFE CORN FLAKES
मोहन्ज़ न्यू लाइफ कार्न फ्लेक्स तथा व्हीट फ्लेक्स दिन प्रतिदिन के कार्य के लिये आपके शरीर को आवश्यक प्राकृतिक पौष्टिक तत्व प्रदान करते हैं। मोहन्ज़ फ्लेक्स का प्रयोग कीजिये और स्वादिष्ट नाश्ते का आनन्द लीजिये।
MOHUN'S NEW LIFE WHEAT FLAKES
न्यू
मोहन्ज़
ला फ
फ्लेक्स
११३ वर्ष से अधिक का अनुभव विश्वास की गारन्टी है
मोहन मीकिन ब्रुअरीज़ लि०
स्थापित १८५५
मोहन नगर (गाज़ियाबाद) यू० पी०
MMB-NP-432

नियमि ा उपयोग से फ़ोरहन्स टूथपेस्ट मसूढ़ों के कष्ट और दंत-क्षय को रोकता है

जवानों और बूढ़ों द्वारा अपने आप भेजे गये प्रमाणपत्रों में मसूढ़ों की तकलीफ़ और दांतों की ख़राबी को रोकने के लिए फ़ोरहन्स टूथपेस्ट के गुणों की समान रूप से प्रशंसा की गयी है। ये प्रमाणपत्र जेफ्री मैनर्स एण्ड कंपनी लि. के किसी भी कार्यालय में देखे जा सकते हैं।

"मैं दांतों के रोगों से पीड़ित था... मैंने आपका फ़ोरहन्स इस्तेमाल किया। ...अब मैं उनमें से किसी भी रोग से पीड़ित नहीं हूँ। लगभग २०–२५ आदमी फ़ोरहन्स इस्तेमाल करने लगे हैं। और मेरे परिवार में वो फ़ोरहन्स सभी को बेहद प्रिय है।

—उदयशंकर तिवारी, पटना

आपके वैज्ञानिक ढंग से तैयार किये गये फ़ोरहन्स टूथपेस्ट ने, जिसे मैं पिछले दस साल से इस्तेमाल कर रहा हूँ, मेरे मसूढ़ों की सारी तकलीफ़ों को दूर कर दिया। अब हमारे परिवार के सभी लोग नियमित रूप से फ़ोरहन्स टूथपेस्ट से ही दांत साफ़ करते हैं।

—एस. एम.लाल, नयी दिल्ली।

फ़ोरहन्स

–एक दाँतों के डाक्टर द्वारा निर्मित टुथपेस्ट

दांतों की समुचित देखभाल के लिए फ़ोरहन्स टुथपेस्ट और दोहरे असरवाला फ़ोरहन्स टुथब्रश हर रोज़ रात में और सवेरे इस्तेमाल कीजिए... और अपने दाँत के डाक्टर से नियमित मिलते रहिए।

मुफ्त "दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" संबंधी रंगीन पुस्तिका

यह पुस्तिका हिन्दी और अंग्रेज़ी में मिलती है। इसे मँगवाने के लिये इस कूपन के साथ १५ पैसे के टिकट (डाक-खर्च के वास्ते) इस पते पर भेजिए: मैनर्स डेण्टल एडवाइजरी ब्यूरो, पोस्ट बॅग नं. १००३१, बम्बई-१

नाम ______ आयु ______

पता ______ , डी. १८

भाषा ______

54 F-203 HN

मत और सम्मत

केंद्रीय शस्त्रीकरण : केंद्र में सत्तारूढ़ कांग्रेस राष्ट्रहित को झुठला कर मात्र राजनैतिक उद्देश्य सिद्ध करना चाहती है. यदि नक्सलवादियों पर कठोर कार्यवाही नहीं की गयी तो राष्ट्रीय सुरक्षा ही खतरे में पड़ जायेगी. ऐसी हालत में गृहमंत्रालय का मौन क्या चाहता है ? कोई नहीं जानता. यदि गृहमंत्रालय का उद्देश्य केरल में किसी भी प्रकार से सरकार को हटा कर कांग्रेस को सत्तारूढ़ करना है तो यह घृणित राजनीति है. कांग्रेस को पहले राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों को पूर्ण करना चाहिए, पश्चात राजनैतिक लाभ देखना चाहिए.

—चिरंजीलाल शर्मा, अजमेर

स्थायित्व की गारंटी : कांग्रेस के पास एक ही नारा है कि हम स्थायित्व लायेंगे, जिस को ही प्रधानमंत्री से ले कर समस्त कांग्रेस नेता तक बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहते हैं. स्थायित्व प्रगति, विकास, समानता और शुद्ध प्रशासन के लिए ही अच्छा है, या स्थायित्व विकास, असमानता एवं भ्रष्टाचार के लिए भी अच्छा है? **स्थायित्व अच्छे कार्य के लिए अच्छा है, न बुरे कार्य के लिए भी.** कांग्रेस के पास क्या सबूत है कि पुन: कांग्रेस सरकार स्थापित होने पर नये चरणसिंह, गोविंदनारायण सिंह, राव वीरेंद्रसिंह और भगवद्दयाल शर्मा नहीं उत्पन्न होंगे. हुए तो स्थायित्व कैसा रहेगा ?

—कृष्णकुमार त्रिपाठी, सुलतानपुर

नये वायदे : १२ जनवरी : सब से अधिक हास्यास्पद जनसंघ के श्री नाना जी देशमुख का यह कथन है कि चोर बाज़ारी का रुपया जिन के पास है उन के लिए वह ववालेजान बन गया है. पता नहीं वह इस निष्कर्ष पर कैसे पहुँचे हैं. किंतु एक बात स्पष्ट है कि उन के विचारों को पढ़ कर काला बज़ारिये उन्हें अपना हमदर्द अवश्य समझेंगे. अब उन से एक प्रश्न और होना चाहिए कि क्या ऐसे लोगों के सहयोग से ही वह ईमानदारी का वातावरण बनाने जा रहे हैं ?

—शांतकुमार जैन, जैतवारा (म. प्र.)

शोक : आप को यह सूचित करते हुए अपार दुख हो रहा है कि पुरानी पीढ़ी के वैज्ञानिक विषयों के लेखक श्री रमेश प्रसाद, बी. एस.सी. का देहांत पटने में १५-१-६९ को हो गया. वह पाँच वर्षों से कैंसर से बुरी तरह पीड़ित थे. आप रमेश प्रिंटिंग वर्क्स के संस्थापक थे तथा अनेक दातव्य एवं धार्मिक संस्थाओं से संबद्ध थे. 'सरस्वती', माधुरी, चाँद, प्रभा, शारदा आदि पत्रों में विज्ञान विषयक निबंध नियमित रूप से लिखा करते थे. बिहार प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन के आजीवन सदस्य थे तथा उस से हमेशा संबद्ध रहे.

—नरेंद्र बख़्शी, पटना

सार्वजनिक उर्वरक : १९ जनवरी : इस में पी २ ओ ५ का उल्लेख किया गया है. पी २ ओ ५ का यह हिंदी रूप अशुद्ध माना जाना चाहिए तथा इस के बदले फॉस्फ़ोरस पेंटाऑक्साइड एसिड होना चाहिए तथा इसे हिंदी में गंधक का अम्ल कहते हैं. 'उच्छिष्ट' और 'अनुषंगी' जैसे शब्दों का प्रयोग भाषा को कठिन बना देता है.

—विष्णु ढांढनिया, कलकत्ता

नैनी जेल में लाठी-चार्ज : १२ जनवरी : शांति, अहिंसा और मानवीयता का ढिंढोरा पीटने वाली सरकार की नौकरशाही का सही चित्रण दृष्टिगत होता है.

—रामेश्वर सोनी, खुरई, ज़ि. सागर (म. प्र.)

फिर अनिश्चय : लंबी प्रतीक्षा के पश्चात् सभी विश्वविद्यालय खुल रहे हैं, परंतु विद्यार्थियों का अमूल्य समय और पैसा नष्ट रखने के ज़िम्मेदार व्यक्तियों का क्या होगा तथा पुन: वैसी ही व्यवस्था और वही समस्याएँ विद्यार्थियों को मिलेंगी. विश्वविद्यालय बंद होने से पढ़ाई, परीक्षा इत्यादि की समस्याएँ बढ़ी हैं, अत: इन नयी उत्पन्न समस्याओं के बारे में भी कोई हल निकाला जाना विश्वविद्यालय खुलने से पहले बहुत ज़रूरी है. इस समय शिक्षा-नीति में आमूल परिवर्त्तन होना अत्यावश्यक है, अत: शिक्षा से संबद्ध लोगों को उचित क़दम उठाना चाहिए, जिस से विद्यार्थी अपनी शक्ति को देश के निर्माण में लगा सकें. यदि इस समय शिक्षा-समस्याओं पर गंभीरता से विचार न कर के विश्वविद्यालय बंद करने वाली नीति को अपनाया गया तो इस के भयंकर परिणाम समाज के सामने आयेंगे, जो देश के विकास के के लिए बहुत बड़ी बाधा होगी.

—हरिचरण, काशी विश्वविद्यालय

भारतीय क्रांति दल : उत्तरप्रदेश में ज्यों-ज्यों मध्यावधि चुनाव क़रीब आते जा रहे हैं भारतीय क्रांति दल द्वारा अन्य पार्टियों की आलोचनात्मक व्याख्या में विस्तार होता जा रहा है. इस के कार्यकर्त्ता कांग्रेस को भ्रष्टाचारी, कुनबापरस्ती एवं सामंतवादी साबित कर रहे हैं, जब कि क्रांति दल के प्रमुख नेता लंबे काल से खुद कांग्रेसी रहे हैं. यदि क्रांति दल को कांग्रेस की कोख से उत्पन्न सामंत-वर्ग का पुत्र कहें तो अतिशयोक्ति न होगी.

—विजेंद्र सिंह, मेरठ

अलगाव में लगाव : कांग्रेस और जनसंघ को अलग मानना भारी भूल है. गो कि अपनी-अपनी किताबों में दोनों में शब्दों का अलगाव है मगर अर्थ में काफ़ी लगाव है. गोरखपुर ज़िले के कौड़ीराम विधानसभा-क्षेत्र में जनसंघ के प्रत्याशी का जब नामांकनपत्र खारिज हो गया तो जनसंघ के प्रचारकों ने कांग्रेस का प्रचार करना शुरू कर दिया. जनसंघ वाणी से कांग्रेस का विरोध करता रहा और जब उसे चुनाव लड़ने का अवसर नहीं मिला तो उसने चुनाव के मैदान में संसपा के उम्मीदवार के खिलाफ़ प्रचार करना शुरू कर दिया.

—गुंजेश्वरी प्रसाद, गोरखपुर

गणराज्य विशेषांक : जयपुर गोलीकांड शीर्षक से लिखी गयी लाइनें इस विशेषांक की खास उपलब्धि कही जा सकती हैं. बेरी आयोग ने अपने प्रतिवेदन में क्या-क्या बातें कही हैं, यह मालूम होने में तो शायद अभी थोड़ा समय लगे, किंतु जो संवाद प्रेषित किया गया है उसी ने सारी स्थिति को स्पष्ट कर के रख दिया है. भरत खेतान की पहेली एक विशेष दिलचस्पी का विषय थी, जिस का भी सही ढंग से उल्लेख हुआ है.

—राजेंद्रकुमार छाबड़ा, जयपुर

पृष्ठ ५, ६, ७, ११, १३, १४, १५, १६, २२-२८ पर प्रकाशित सामग्री के लिए अनेक धन्यवाद. समस्याओं के हल निकालने में सहायता मिल रही है.

—रा. मू. अग्रवाल

आप फ़रमाते हैं—

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

कोई २० हज़ार प्रदर्शनकारियों ने मेरा रास्ता रोकने की कोशिश की. मगर मैं किसी तरह पहुँच ही गया, क्यों कि मैं उन लोगों को निराश नहीं करना चाहता था जो यहाँ काफ़ी देर से मेरा इंतज़ार कर रहे थे.

पटना-पटना साहिब : 'पटना' स्टेशन का नाम बदल कर 'पटना साहिब' रखने के प्रस्ताव पर सरकार विचार कर रही है. किसे खुश करने के लिए? भारत की अधिकांश जनता और पटना के अधिकांश निवासी भी, अगर नाम बदलना आवश्यक हो तो, 'पाटलीपुत्र' नाम ज्यादा पसंद करेंगे. —गंगासिंह, जोधपुर

छात्रमत

विश्वविद्यालय की स्वतंत्र सत्ता होनी चाहिए. किसी भी प्रकार का बाह्य दबाव उस के विकास के लिए घातक है. केवल वही व्यक्ति विश्वविद्यालय में नियुक्त किये जायें जो अपने गहन अध्ययन और कठिन परिश्रम के लिए विख्यात हों. यहां तक कि विश्वविद्यालय के उप-कुलपति राजनीति से कोसों दूर हों और उन का जीवन विद्वत्ता, मननशीलता तथा लंबे शैक्षणिक अनुभव का इतिहास हो.

विश्वविद्यालय के संचालन में विद्यार्थियों का योग होना चाहिए. यहां पर यह स्मरणीय है कि संचालन में सहयोग का अवसर केवल उन छात्रों को दिया जाना चाहिए जो पहले अपनी परिपक्व और सुव्यवस्थित विचारधारा के उदाहरण प्रस्तुत कर चुके हों, न कि राजनैतिक और स्वार्थगत विचारधारा वाले छात्रों को.

विश्वविद्यालयों में गुटबंदी, पक्षपात, शिक्षा-स्तर में असमानता आदि चिंता के विषय हैं. इन समस्याओं के समाधान के लिए विश्वविद्यालयों के शिक्षकों का अंतर्विश्वविद्यालयीन स्थानांतरण अत्यंत आवश्यक है. इस से गुटबंदी दूर होगी, शिक्षक अपने अध्ययन तथा शैक्षणिक स्तर को भली भांति समझ सकेंगे और उन में संशोधन कर सकेंगे.

विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली पर आधारित शिक्षाक्रम का निर्धारण करें. इस से कम समय में विद्यार्थी अपने क्षेत्र में कुशलता प्राप्त कर सकेंगे और आत्मविश्वास के साथ कार्य करने में समर्थ होंगे.

विश्वविद्यालय के छात्रों का एक व्यस्त दैनिक कार्यक्रम निर्धारित किया जाये, जिस से उन में विध्वंसात्मक प्रवृत्ति जागृत न हो. समय-समय पर उन का मानसिक विश्लेषण किया जाये और उस के अनुसार उन में प्रगतिशील तत्त्वों का विकास किया जाये.

विद्यार्थियों की प्रत्येक समस्या पर उचित गहराई तक विचार किया जाये और उन की छोटी से छोटी समस्या को उपेक्षित दृष्टि से न देखा जाये. समाज और देश के कर्णधार दलगत राजनीति से हट कर विद्यार्थियों के प्रति अपना उत्तरदायित्व भली भांति समझें और उसे पूर्ण रूप से कार्यरूप में परिणत करें.

—अनुराग वशिष्ठ
४२, ट्रेनीज हॉस्टल ३,
हेवी इलेक्ट्रिकल (इंडिया) लि.,
भोपाल (म. प्र.)

नया हिंदी टाइपरायटर

अकोला निवासी ४४ वर्षीय **शांताराम नीलकंठ निलाखे** ने हिंदी टाइपरायटरों के लिए नये कुंजी-पटल का आविष्कार किया है. श्री निलाखे का दावा है कि अंग्रेजी टाइपिंग जानने वाला कोई भी व्यक्ति इस कुंजी-पटल पर ७ दिन के अभ्यास के बाद ही २५-३० शब्द प्रतिमिनट की गति से हिंदी टाइप कर सकता है.

एक विशेष भेंट में श्री निलाखे ने **दिनमान** को बताया कि हिंदी टाइपरायटरों का वर्तमान और भारत सरकार द्वारा आविष्कृत ये दोनों ही कुंजी-पटल अपूर्ण और अशुद्ध हैं. इन पर बहुत से संयुक्ताक्षर अपने मौलिक रूप में टंकित नहीं किये जा सकते और शिफ्ट का बार-बार उपयोग करने के कारण गति में रुकावट पड़ती है. "निलाखे की बोर्ड" पर सभी संयुक्ताक्षर अपने मूल रूप में टंकित किये जा सकते हैं और शिफ्ट का उपयोग अत्यल्प होने के कारण हिंदी टाइपिंग में भी अच्छी गति प्राप्त की जा सकती है. **दिनमान** के प्रतिनिधि द्वारा पूछे जाने पर कि बिना कुंजी बढ़ाये आखिर कौन-सा परिवर्तन उन्होंने वर्तमान कुंजी-पटल में किया है, जिस से सभी संयुक्ताक्षर सम्मिलित हो गये हैं उन्होंने बताया कि खड़ी पाई से बनने वाले अक्षरों का आधा रूप ही उन्होंने कुंजी-पटल में रखा है. पूर्णाक्षर बनाने के लिए खड़ी पाई वाली कुंजी रखी गयी है. खड़ी पाई वाले पूर्णाक्षरों को हटाने से कुंजी-पटल में जो स्थान बच गये उन से संयुक्ताक्षरों को बिठा कर देवनागरी के रूप को अक्षुण्ण रखा गया है. इस पर हिंदी, मराठी और संस्कृत भाषाओं को शुद्ध रूप में टंकित किया जा सकता है.

अपने कुंजी-पटल की उपयोगिता का राज बताते हुए श्री निलाखे ने कहा कि "निलाखे की बोर्ड" उन हज़ारों अंग्रेज़ी टाइपिस्टों की कठिनाइयों को ध्यान में रख कर बनाया गया है जिन्हें हिंदीकरण के पश्चात हिंदी टाइपिंग सीखनी पड़ेगी. इन अंग्रेज़ी टाइपिस्टों का टाइपिंग ज्ञान व्यर्थ न जाये, इस लिए इन्होंने अपने कुंजी-पटल में हिंदी अक्षरों को समान ध्वनि वाले अंग्रेज़ी अक्षर के स्थान पर ही रखा है, जैसे **एस** के स्थान पर **स**, **एम** के स्थान पर **म**, **वाइ** के स्थान पर **य**. श्री निलाखे ने कहा कि अगर यह कुंजी-पटल अपना लिया जाये तो दक्षिण के लोगों का हिंदी-विरोध बहुत कुछ समाप्त हो जाये, क्यों कि टाइपिंग पेशे में दक्षिण के लोग बड़ी संख्या में हैं. श्री निलाखे का यह भी दावा है कि "निलाखे की बोर्ड" लेने से करोड़ों रुपयों की जो अंग्रेज़ी मशीनें हमारे देश में हैं उन में आसानी से "निलाखे की बोर्ड" (हिंदी) बिठाया जा सकता है और इस तरह नये हिंदी टाइपरायटर खरीदने पर करोड़ों रुपये खर्च नहीं करने पड़ेंगे.

पिछले सप्ताह

(२३ जनवरी से २९ जनवरी, १९६९ तक)

देश

२३ जनवरी : बुल्गारिया के प्रधानमंत्री तोदोर झिवकोफ़ का नागरिक अभिनंदन.

२४ जनवरी : श्रीमती कोरेटा किंग द्वारा अंतरराष्ट्रीय सद्भाव के लिए जवाहर लाल नेहरू पुरस्कार ग्रहण. राजस्थान के भूतपूर्व मुख्यमंत्री मानिकलाल वर्मा का देहांत.

२५ जनवरी : तमिलनाडु के मुख्यमंत्री अन्नादोरै का दूसरा ऑपरेशन. गणराज्य दिवस पर राष्ट्र के नाम अपने संदेश में राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसेन द्वारा छात्रों में अनुशासनहीनता पर क्षोभ व्यक्त. डॉ. हरगोविंद खुराना पद्मविभूषण से अलंकृत.

२६ जनवरी : गणराज्य दिवस के अवसर पर देश भर में समारोह. हरयाणा में सभी प्रशासनिक स्तरों पर हिंदी भाषा लागू.

२७ जनवरी : बुल्गारिया के प्रधानमंत्री तोदोर झिवकोफ़ द्वारा भारत की पाक-नीति की स्तुति.

२८ जनवरी : न्यूज़ीलैंड के प्रधानमंत्री केनेथ होलियोक का भारत आगमन. हरयाणा विधानसभा का अधिवेशन शुरू.

२९ जनवरी : आंध्रप्रदेश में शांति बनाये रखने के लिए सेना का बुलाया जाना. पाकिस्तान द्वारा त्रिलोकचंद गुप्त को रिहा.

विदेश

२३ जनवरी : मॉस्को में अंतरिक्ष-यात्रियों के जुलूस पर एक व्यक्ति द्वारा गोली चलाया जाना. जापान में २१ विश्वविद्यालय बंद.

२४ जनवरी : अय्यूब शासन के विरुद्ध विरोध-प्रदर्शन पर गोलीबारी के कारण चार व्यक्तियों की मृत्यु. १८ वर्षीया एक चेक लड़की द्वारा आत्मदाह.

२५ जनवरी : पेरिस में वीएतनाम शांति-वार्त्ता का पूर्ण दौर शुरू. कराची तथा पूर्वी पाकिस्तान के कई इलाक़ों में कर्फ़्यू.

२६ जनवरी : गोवा के स्वाधीनता-संग्रामी मोहन रानाडे की पुर्तगाल जेल से रिहाई.

२७ जनवरी : इस्राइल के लिए जासूसी करने वाले १५ इराक़ियों को फांसी. लाहौर में पुलिस की गोलीबारी से चार व्यक्तियों की मृत्यु. अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन द्वारा एक संवाददाता-सम्मेलन में पश्चिम एशिया की स्थिति को विस्फोटक बताना.

२८ जनवरी : पेशावर में सरकार-विरोधी आंदोलन को दबाने के लिए सेना का बुलाया जाना.

२९ जनवरी : ऑस्ट्रेलिया और वेस्ट इंडीज का चौथा टेस्ट अनिर्णीत.

पत्रकार संसद

पाकिस्तानी जनता; देशहीन एशियाई

पाकिस्तान में असंतोष और अव्यवस्था की आज की स्थिति के बावजूद भारत के साथ संबंधों को सामान्य बनाने की वहाँ के लोगों की इच्छा समाचारपत्रों के संपादकीय लेखों से प्रकट होती है. भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने दोनों देशों के मतभेद दूर करने के लिए हाल ही में संयुक्त व्यवस्था का जो सुझाव दिया था उस पर अधिकांश पाकिस्तानी पत्रों की राय है कि पाकिस्तान सरकार को गंभीरतापूर्वक और किसी न किसी निर्णय पर पहुँचने की इच्छा से इस सुझाव पर विचार करना चाहिए.

मॉर्निंग न्यूज़ ने अपने संपादकीय में भारतीय सुझाव को प्रचार की नीयत से रखा गया सुझाव बताया, पर साथ ही यह भी आग्रह किया कि इसे कोरा प्रचार मान कर ही अस्वीकार नहीं कर दिया जाना चाहिए, पर गंभीरतापूर्वक इस का विचार होना चाहिए. भारत और पाकिस्तान के बीच जो लोग दोस्ती देखना चाहते हैं उन की राय में यह सुझाव पाकिस्तान के लिए बहुत अच्छा अवसर है. भले ही इस से दोनों देशों के बीच गहरे मतभेद की समस्याओं का समाधान न हो सके पर गहरे मतभेदों को दूर करने के लिए बातचीत का वातावरण तो निश्चय ही तैयार होगा.

खैबर मेल ने अपने संपादकीय में लिखा—दोनों देशों की विकासशील अर्थ-व्यवस्थाओं में निकट संपर्क की आवश्यकता है और भारतीय सुझाव में भारत और पाकिस्तान के बीच व्यापार बढ़ाने की बात कही गयी है. व्यापार में दोनों देशों की परस्पर निर्भरता से दोनों देशों की मनःस्थिति सामान्य होगी और उन राजनैतिक प्रश्नों पर भी बातचीत करना चाहेंगे जिन का ज़िक्र तक छेड़ना अब उन के लिए मुश्किल हो रहा है. भारतीय सुझाव के बारे में एक बात ज़ोर दे कर कही जा सकती है और वह यह कि बिना विचार किये यों ही इसे अस्वीकार नहीं कर देना चाहिए.

एशियाई कहाँ जायें ?

हाल ही के राष्ट्रकुल सम्मेलन में राष्ट्रकुल देशों की जिन अनेक समस्याओं पर विचार किया गया उन में देशहीन एशियाइयों की समस्या प्रमुख थी. कैनाडा के प्रमुख पत्र **ओटावा सिटिज़न** ने अपने संपादकीय में इस समस्या का उल्लेख करते हुए इसे राष्ट्रकुल की सर्वाधिक विवादास्पद और महत्त्वपूर्ण समस्या बताया है. पत्र ने लिखा—

राष्ट्रकुल के विचारणीय प्रश्नों में आव्रजन-समस्या यदि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और विवादास्पद रही तो कोई आश्चर्य की बात नहीं. इन में अधिकांश भारतवंशी और पाकिस्तानी हैं. ब्रितानी शासन-काल में उन के पूर्वज अफ़्रीका में जा बसे थे. इन में से कुछ तो केन्या, उगांडा, तंज़ानिया और ज़ाम्बिया के नागरिक हो गये, पर अभी हज़ारों ब्रितानी नागरिक हैं, जिन के पास ब्रितानी पासपोर्ट है. अब उन्हें वहाँ से निकाला जा रहा है. जिस से कि उन की नौकरियाँ और अन्य हित अफ़्रीकियों के पास आ जायें.

भारत उन्हें अपने यहाँ बसाने के लिए राज़ी नहीं है, क्यों कि वे ब्रितानी नागरिक हैं और उन की ज़िम्मेदारी लंदन पर है. ब्रिटेन उन के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाता है. वह केवल १५ सौ प्रतिवर्ष के हिसाब से ही उन्हें आने देने को तैयार है. उस का कहना है इस से अधिक वह अपने यहाँ नहीं खपा सकता. अब इन डेढ़ लाख लोगों का क्या किया जाये जिन के सर्वथा देशहीन होने की आशंका है ?

कैनाडा को इन में से उन लोगों को अपने यहाँ खपाने का प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे यहाँ के आव्रजक-क़ानून की माँगें पूरी करते हों और हमारे यहाँ आ कर बसने को तैयार हों. अन्य राष्ट्रकुल देशों को भी इस के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए. जो देश उन्हें अपने यहाँ से निष्कासित कर रहे हैं उन्हें उन की क्षतिपूर्ति के लिए मुआवज़ा देना चाहिए. नये देशों में उन्हें नये सिरे से ज़िंदगी बसर करने में सहायता देने के लिए विशेष कोष स्थापित किया जाना चाहिए. अगर सब की इच्छा हो तो समस्या हल हो सकती है.

भारत तटस्थ नीति पर क़ायम

मलाया और सिंगापुर से ब्रिटेन के १९७० के अंत तक चले जाने के बाद दक्षिण-पूर्व एशिया में भारत द्वारा महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने की बात कही जा रही है. अभी पिछले दिनों इस क्षेत्र के अनेक संबद्ध देशों के राजनैतिक नेताओं की भारत यात्रा संभवतः इस उद्देश्य से हुई थीं कि भारत को इस क्षेत्र में कोई सक्रिय भूमिका अदा करने के लिए किसी प्रादेशिक गठबंधन में शामिल होने को राज़ी किया जाये. युगोस्लाविया के प्रमुख समाचारपत्र **बोरबा** में प्रकाशित एक लेख में प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के एक वक्तव्य का हवाला देते हुए

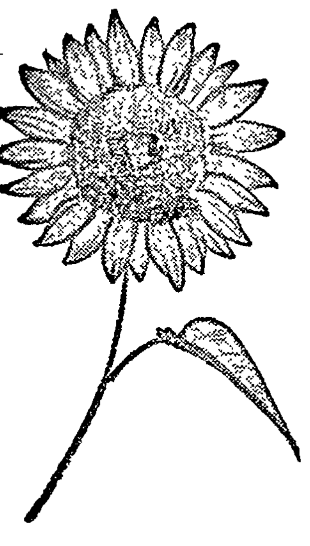
महिलायें जो जीवन के उज्ज्वल भविष्य की ओर देखती हैं वे हैन्डलूम ही पसंद करती हैं

आकर्षक तथा चमकीले रंगों में हैन्डलूम प्राप्ति का एक मात्र स्थान

HH 10098

हैन्डलूम हाउस
वस्त्रों का आगार
९-ए, कनाट प्लेस, नई दिल्ली

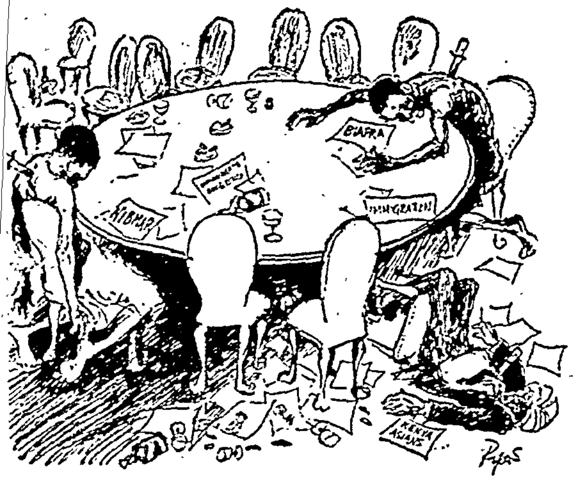

राष्ट्रकुल सम्मेलन के विचाराधीन समस्याओं पर गार्डियन में पापास का व्यंग्य

भारत की तटस्थ नीति का विश्लेषण किया गया है. लेख में भारत के अपनी तटस्थ नीति पर क़ायम रहने के निश्चय की सराहना करते हुए कहा गया है—

श्रीमती इंदिरा गांधी ने संसद में स्पष्ट कह दिया है कि मलाया और सिंगापुर से ब्रिटेन के चले जाने के बाद भारत का दक्षिण-पूर्व एशिया के किसी प्रादेशिक सैनिक गठबंधन में शामिल होने का कोई इरादा नहीं है.

श्रीमती इंदिरा गांधी का यह वक्तव्य भारत की विदेश-नीति के बारे में कोई आश्चर्यजनक नहीं है. भारत की विदेश-नीति शुरू से ही शांति और तटस्थता की रही है और श्रीमती इंदिरा गांधी का कथन भारत के उसी नीति पर क़ायम रहने का संकेत मात्र है. दक्षिण-पूर्व एशिया की संभावित स्थिति के बारे में भारत का रवैया जानने की उत्सुकता विश्व को तो है ही; साथ ही इस क्षेत्र से संबद्ध देश भी भारत के इस बारे में विचार जानने को बहुत उत्सुक थे. प्रधानमंत्री के वक्तव्य ने स्थिति स्पष्ट कर दी है. तटस्थता में विश्वास रखने वाले भारत के सभी मित्र देशों को इस नीति का समर्थन करना चाहिए.

पिछले वर्ष के अंतिम कुछ महीनों में भारत की राजधानी में कूटनीतिक सरगर्मियाँ ज़ोरों पर रहीं. दक्षिण-पूर्व एशिया क्षेत्र के अनेक संबद्ध देश भारत यात्रा पर संभवतः इस उद्देश्य से आते रहे कि मलाया और सिंगापुर से ब्रिटेन के चले जाने के बाद भारत को किसी प्रादेशिक सैनिक गठबंधन में शामिल होने को राज़ी किया जाये. पर भारत इस विचार से बिल्कुल भी प्रभावित नहीं हुआ और प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने स्थिति फ़ौरन ही स्पष्ट कर दी.

यहाँ किसी को यह नहीं भूलना चाहिए कि पिछले काफ़ी समय से भारत पर निहित स्वार्थों वाले बड़े देशों का दबाव पड़ता रहा है. हिंद महासागर में बड़े देश अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते रहे हैं. उधर भारत के शक्तिशाली पड़ोसी ने हिमालयवर्ती क्षेत्र में बहुत बड़ा सैनिक जमाव किया है, जिस से पिछले वर्ष के अंतिम महीनों में इस सीमा के पास के भारतीय राज्य और नेता बहुत चिंतित रहे.

सैनिक गुटबंदी के बारे में भारत का सदा यह विश्वास रहा है कि इस की प्रतिक्रिया में और अधिक सैनिक गुट बनते हैं और सैनिक गठबंधनों की रचना होती है. इस प्रसंग में भारत का इशारा चीन की संभावित प्रतिक्रिया के बारे में है जो भारत के प्रति अपने अनुचित रवैये को उचित ठहराने के लिये भारत के हर क़दम पर निगाह रखता है. भारत के इस विश्वास से सभी पड़ोसी देशों—यहाँ तक कि चीन से भी मित्रता रखने की भारत की इच्छा का पता चल जाता है. विश्व के इस भाग में स्थिरता लाने के लिए तटस्थता की अपनी नीति की फिर से घोषणा कर के भारत ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया है.

प्रेस जगत

पड़ोसी देश का लोकमत

पाकिस्तान में आज की गड़बड़ और अव्यवस्था के पीछे बहुत समय से चला आ रहा जनअसंतोष है, जिस की झलक पाकिस्तानी समाचारपत्रों की इस समीक्षा में मिलती है. समाचारपत्रों में विरोधी दलों और नेताओं की गतिविधियों के समाचारों का विस्तार से प्रकाशन ही यह साबित करता है कि ये विरोधी दल और नेता जनभावना को अभिव्यक्ति दे रहे हैं. **दिनमान** के पिछले अंक में पाकिस्तानी समाचारपत्रों में प्रकाशित कुछ समाचारों के उद्धरण दिये गये थे. इस अंक में ऐसे ही कुछ और समाचार पढ़िए, जिन से पाकिस्तानी लोकमत का आभास होता है.

पाकिस्तान टाइम्स ने पाकिस्तान कौंसिल मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मियाँ मुमताज़ मुहम्मद खाँ दौलताना का लाहौर की सभा में दिया गया भाषण विस्तार से प्रकाशित किया. पत्र ने यह समाचार इस प्रकार प्रस्तुत किया:

खबर है कि पाकिस्तान कौंसिल मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मियाँ मुहम्मद मुमताज़ खाँ दौलताना ने लाहौर में अपनी पार्टी की बैठक में कहा—'वर्तमान लोकतंत्रीय आंदोलन के दौरान एक जैसी माँगों और एक जैसे नारों से यह साबित हो गया है कि विरोध-पक्ष ने पाकिस्तान के अलग-अलग इलाक़ों और अलग-अलग वर्ग के लोगों में एकता पैदा कर दी है. मियाँ मुमताज़ दौलताना का कहना था कि इस वक़्त पाकिस्तान में तथाकथित पख़्तूनिस्तान, जय सिंध, पूर्व पाकिस्तान के अलगाव या बलूचिस्तान को अलग करने जैसा कोई नारा सुनायी नहीं पड़ रहा है. इस से यह इलज़ाम तो अपने-आप ही ग़लत साबित हो जाता है कि विरोधी दल या विरोधी नेता देश में फूट डालने वाली ताक़तों को जन्म दे रहे हैं.

पाकिस्तान टाइम्स ने ही नेशनल अवामी पार्टी के अध्यक्ष सैय्यद अमीर हुसैन शाह का संवाददाता-सम्मेलन में दिया गया वह वक्तव्य प्रकाशित किया जिस में उन्होंने सुझाव दिया है कि जनता को उस के अधिकार फिर से दिलाने के लिए सभी विरोधी दलों को संयुक्त मोर्चा बना लेना चाहिए. उन्होंने इस के लिए छह बातों वाला यह कार्यक्रम प्रस्तुत किया: (१) सीधे बालिग़ मताधिकार (२) पूर्ण प्रभुसत्तासंपन्न संसद (३) संसदीय लोकतंत्र शासन-प्रणाली (४) मौलिक और नागरिक अधिकारों की रक्षा (५) सभी राजनैतिक क़ैदियों और बंदियों की रिहाई और (६) संकटकालीन स्थिति की समाप्ति और सभी दमनकारी क़ानूनों का रद्द किया जाना.

सैय्यद अमीर हुसैन शाह ने यह भी कहा कि पाकिस्तान का वर्तमान असंतोष सहज और स्वाभाविक है. वह किसी एक पार्टी का पैदा किया हुआ नहीं है. पार्टियाँ तो इस असंतोष को एक दिशा दे कर उसे उपयोगी बनाना अपना कर्त्तव्य समझती है.

पूर्व पाकिस्तान के उपद्रव

पूर्व पाकिस्तान के समाचारपत्रों में हड़तालों और प्रदर्शनों की खबरें तो बराबर प्रकाशित होती रहीं, पर सरकारी प्रभाव के कुछ समाचारपत्रों ने इन प्रदर्शनों और हड़तालों को गुंडों और समाज-विरोधी लोगों का काम बताया, जब कि अन्य पत्रों ने इन्हें वर्त्तमान शासन के विरुद्ध संघर्ष की संज्ञा दी, जो शत-प्रतिशत सफल रहा. **हॉलिडे** नामक पत्र ने अपने संपादकीय में लिखा कि पूर्व पाकिस्तान में प्रतिपक्ष-राजनीति का फिर शुरू होना वहाँ राजनैतिक जागरण का लक्षण है. लोगों पर लादी गयी तानाशाही और झूठमूठ की शांति बनाये रखने के ढोंग का युग अब समाप्त हो गया.

डॉन ने राष्ट्रपति अय्यूब खाँ के भाषण का समाचार जिस ढंग से प्रकाशित किया उस से सरकार का पक्ष लेने के उस के रवैये का पता चलता था. समाचार इस तरह प्रकाशित किया गया:

राष्ट्रपति अय्यूब खाँ ने दीनाजपुर की एक सार्वजनिक सभा में घोषणा की है कि विरोध-पक्ष की फूट डालने वाली हरकतों को खत्म करना ही होगा, क्यों कि सरकार किसी भी क़ीमत पर मुल्क का बँटवारा नहीं होने देगी. विरोधियों को आज का निज़ाम खत्म करने का लाइसेंस नहीं दिया जा सकता. आज का निज़ाम ही मुल्क में आर्थिक और राजनैतिक स्थिरता लाने में सफल हो सका है. फ़रक्का बाँध के बारे में राष्ट्रपति अय्यूब का कहना था कि इस से पैदा होने वाली मुश्किलों से हम आगाह हैं. हम इस बारे में भारत से बातचीत कर रहे हैं.

राजरथ के तले

गांधीजी के प्रमुख अहिंसक अस्त्रों में से एक—सत्याग्रह का उन की जन्मशती के वर्ष ही यह निरादर होगा: इस की कल्पना शायद ही कभी की जा सकती थी. अहमदाबाद से क़रीब २२ किलोमीटर की दूरी पर राजकोट डिवीज़न की कलोल-विजापुर रेल लाइन पर विजापुर से कलोल जाने वाली गाड़ी को २१ जनवरी की प्रात: छ: बज कर २५ मिनट पर टीटोडा के पुराने फ्लैग स्टेशन पर रोकने के लिए हाथों को ऊंचा कर के जो १५० से अधिक सत्याग्रही खड़े थे उन्हीं पर २७ डाउन पैसेंजर ट्रेन चढ़ा दी गयी. यह सत्याग्रही आसपास के ४-५ गांवों से आये थे. सत्याग्रहियों का नेतृत्व करने वाला एक २८ वर्षीय युवक वासुदेव वापूलाल ब्रह्मभट्ट रेल लाइन के साथ ज़ोरों से टकरा कर २० फ़ुट की दूरी पर गिरा. उसी स्थान पर उस की मृत्यु हो गयी. ९ वर्षीय प्रद्युम्न वाडोलाल वाटोर का हाथ कट गया. बाद में उसे अहमदाबाद के सिविल अस्पताल में भरती कर दिया. ४ अन्य व्यक्ति घायल हो गये. यह नृशंस घटना घटते ही गाड़ी रुकी, परंतु उस गाड़ी के साथ लगे सैलून में यात्रा करने वाले एक क्षेत्रीय रेल अधिकारी भारद्वाज तब तक बाहर नहीं आये जब तक सत्याग्रहियों ने उन्हें बाहर आने को नहीं कहा. शांत सत्याग्रहियों का आभार मानना चाहिए, कि उन्होंने कोई तूफ़ान खड़ा नहीं किया.

टीटोडा फ्लैग स्टेशन ३० वर्ष पुराना स्टेशन है और वह आसपास के तारापुर, सरढ़य, आरसोडिया-सहीद्रा आदि कुछ गांवों के लोगों के लिए काफ़ी अनुकूल है. उसे हटा कर दूर ले जाने के रेलवे बोर्ड के निर्णय का ग्रामीणों ने तीव्र विरोध किया, लेकिन रेलवे ने २६ जनवरी से पुराने स्टेशन पर गाड़ी को न रोकने का और नये स्टेशन पर गाड़ी रोकने का आदेश दिया. परंतु ग्रामीणों के विरोध की आशंका के कारण रेलवे ने एकाएक उस आदेश में परिवर्तन कर के २० जनवरी की मध्य रात्रि के बाद गाड़ी को टीटोडा स्टेशन पर न रोकने का आदेश जारी कर दिया. लोगों को इस आदेश का पता चल गया. २० जनवरी रात के १२ बजे ग्रामीणों का दस्ता किसी उग्र हिंसक विरोध के लिए नहीं बल्कि सत्याग्रह करने के लिए जमा हो गया. रात को १२-३० पर आनेवाली गाड़ी को सत्याग्रहियों ने रोका; उस के बाद डेढ़ बजे की गाड़ी को रोका गया, परंतु सुबह की ६-२५ की गाड़ी उन के सत्याग्रह से नहीं रुकी, बल्कि उन पर चढ़ आयी. उस क्षेत्र के संसद्-सदस्य श्री डाह्या भाई पटेल परमार के अनुसार रात को रोकी गयी गाड़ी के साथ विशेष सैलून में रेल के क्षेत्रीय अफ़सर भारद्वाज थे. विजापुर से किलोल जाने वाली दूसरी गाड़ी के साथ उन के सैलून को रांधेजा में जोड़ा गया. सत्याग्रहियों के अनुसार इस स्थान पर रेल लाइन पर खड़े सत्याग्रही और पुलिस यदि भाग न गये होते तो और भी कई लोग मर गये होते. गाड़ी की गति भी नियत गति से अधिक जान पड़ती थी. पश्चिमी रेलवे की ओर से, इस घटना में रेलवे का बचाव करने की दृष्टि से, प्रकाशित की गयी विज्ञप्ति में बताया गया है कि उस क्षेत्र की जनता की ओर से टीटोडा स्टेशन को बदलने के लिए प्राप्त निवेदनपत्रों

खांसी है कि मुसीबत !
सारी पार्टी का मज़ा किरकिरा कर दिया! अब सुआलीन लीजिये!
खांसी और गले की खराश को दूर करने की मजेदार और प्रभाविक टिकियां

खांसी कभी कभी तो बहुत ही अनुचित समय और अवसर पर तंग करती है, किन्तु सुआलीन परेशानी से शीघ्र छुटकारा दिलाती है।

सुआलीन की मजेदार टिकियां शीघ्रता से अपना प्रभाव दिखाती है। यह गले की खराश, खांसी और नज़ले की तीव्रता में तुरन्त आराम भी देती है और अधिक समय तक प्रभाव भी दिखाती है।

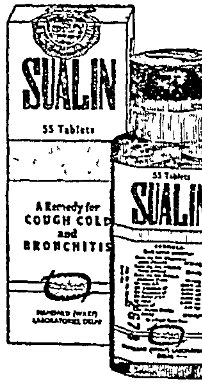

सुआलीन
खांसी में सबके लिये समान्तरूप से लाभदायक

हमदर्द का उत्पादन

HDSU—[illegible] H-A

को ध्यान में रख कर, संबंधित पक्षों के साथ विस्तृत चर्चा करने के तथा गुजरात सरकार की सहमति ले लेने के बाद टीटोडा फ्लैग स्टेशन को उस के मूल स्थान से हटाया गया है. वैकल्पिक स्टेशन बन जाने पर भी जब तक राज्य सरकार ने पूर्ण तथ्य नहीं विचार लिये और रेलवे बोर्ड ने भी अपना निर्णय नहीं दिया तब तक टीटोडा स्टेशन को नहीं हटाया गया था और आखिर राज्य सरकार की सहमति से ही स्टेशन को हटाया गया. राजकोट डिवीजन के डी. सी. ओ. वाटलीवाला के अनुसार टीटोडा स्टेशन को हटाने का निर्णय रेलवे का नहीं, परंतु भारत सरकार और गुजरात सरकार का था.

उन के इस कथन से रेलवे का बचाव नहीं हो सकता, क्यों कि ट्रेन चालक ने सत्याग्रहियों पर ट्रेन दौड़ायी, जब कि उस ने हाथ ऊँचे किये हुए सत्याग्रहियों को पटरियों पर खड़े देखा. रात को दो बार गाड़ियों के रुकने से सत्याग्रहियों को विश्वास था कि यह गाड़ी भी रुकेगी. परंतु उन की धारणा ग़लत साबित हुई. यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि ट्रेन चालक को कोई ऐसा आदेश नहीं दिया गया था कि टीटोडा स्टेशन के पास ट्रेन की गति पहले से ही धीमी कर दी जाये. कम से कम इतना तो किया ही जा सकता था. यह घटना घटने के बाद टीटोडा के पुराने और नये दोनों रेलवे स्टेशनों पर गाड़ी रुकने लगी है. सत्याग्रहियों ने भी अभी कुछ दिनों के लिए अपने सत्याग्रह को स्थगित कर दिया है. जो कुछ बाद में किया गया अगर यही पहले किया गया होता कि दोनों स्टेशनों पर कुछ दिनों तक गाड़ी को रोक कर रख लिया जाता, जिस से कि इस बात की भी पहचान हो जाती कि कहाँ से कितनी सवारियाँ चढ़ती-उतरती हैं, तो शायद यह अकल्पनीय घटना न घटती—दुर्घटना तो यह थी नहीं.

टीटोडा फ्लैग स्टेशन पर सत्याग्रहियों पर रेल दौड़ाने की नृशंस घटना की जाँच के लिए जनता के सभी वर्गों की ओर से माँग की गयी है. उत्तर गुजरात के श्रमिक नेता केशव भाई पटेल के अनुसार रेल अधिकारियों का रुख मानवताविहीन था. यदि उन्होंने बुद्धिपूर्वक काम किया होता तो इस घटना को रोका जा सकता था. प्रमुख कार्यकर्ता शंकर जी ठाकोर का कहना है कि शांत सत्याग्रहियों पर ट्रेन चढ़ा देने की घटना विश्व के इतिहास में एक कलंक है. विभिन्न गांवों में सभाओं का आयोजन किया गया और इस घटना की जाँच करने की मांग की गयी. महात्मा गांधी की जन्मभूमि गुजरात में उन की जन्मशती के अवसर पर घटी हक़ीक़त एक बार फिर यह सोचने के लिए बाध्य ही नहीं करती बल्कि आतंकित करती है कि इस देश की सरकार के शासनतंत्र में महात्मा गांधी के विचारों का क्या सचमुच लोप हो गया है?

स्मृति

तीस जनवरी की वह शाम

(३० जनवरी, १९४८ को गांधी जी की हत्या का विवरण लगभग भुला दिया गया है. स्वाधीनता के बाद जन्मी पीढ़ी के लिए यह सारा वृत्तांत क़रीब-क़रीब औपन्यासिक हो चुका है. उन दिनों की प्रमुख समाचार एजेंसी 'यूनाइटेड प्रेस ऑफ़ इंडिया' के संवाददाता श्री शैलेन चैटर्जी ने, जो कि घटना-स्थल पर उपस्थित थे, **दिनमान** के पाठकों के लिए गांधी जी के पुण्य स्मरण के बतौर समूची घटना का विवरण प्रस्तुत किया है. श्री शैलेन चैटर्जी ने, जो कि आज-कल कलकत्ते के 'हिंदुस्तान स्टैंडर्ड' के विशेष संवाददाता हैं, गांधी जी के साथ नोआखाली और अन्य उपद्रवग्रस्त इलाक़ों का दौरा किया था और गांधी जी को बहुत क़रीब से जाना था.)

'जनवरी ३०, १९४८. दूसरे दिनों की तरह ही वह भी दिन था, किंतु उस दिन की संध्या भयानक अंधकार ले कर आयी. शायद ही हमारे देश के इतिहास में ऐसी कोई अंधेरी शाम इस से पहले आयी हो. बिड़ला भवन के प्रार्थना-मैदान की हरी घास पर महात्मा गांधी की गोलियों से बिंधी देह पड़ी हुई थी. आभा गांधी और मनु गांधी, जिन के कंधों का सहारा ले कर बापू प्रार्थना के लिए जा रहे थे, रो रही थीं. कुछ ही मिनटों में बापू का जीवन-दीप बुझ गया और चारों ओर जैसे अंधकार छा गया.

जिस तख्ते में गांधी जी सोते थे उसी पर उन को धीरे से लिटाया गया. उन के चेहरे को देखने से ऐसा मालूम होता था जैसे वह सो रहे हैं. दोनों आँखें बंद, होठ निस्तब्ध, दोनों हाथ सीने पर ऐसे जैसे कि वह प्रार्थना कर रहे हों, मुख पर शांति की ज्योति, जैसे कि वह जीवित हों.

आभा, मनु और अन्य आश्रमवासी उन के मस्तक के पास बैठ कर रो रहे थे. उन के पैर के पास एक सेवाग्रामवासी बैठा था. एक ओर प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और अन्य नेतागण बैठे थे. बापू के मस्तक के दाहिनी तरफ़ मैं भी बैठा था. सब की आंखों में आंसू थे—सब फफक-फफक कर रो रहे थे. पंडित जी बापू के पैर पकड़ कर रो रहे थे. कुछ देर बाद उन्होंने अपने आंसू पोंछे. शायद उन्होंने सोचा कि अगर वह रोये तो लाखों-करोड़ों लोगों के आंसू कौन पोंछेगा. सरदार पटेल उन को सांत्वना दे रहे थे. शोक-मग्न सरदार अटल थे. उन की आंखों में आंसू नहीं थे. शायद गांधी जी की वाणी, कि अश्रुपात करने से मृत देह वापस नहीं आती, उन को याद आ गयी. कमरे में एक के बाद एक डॉक्टर आ रहे थे. वे गांधी जी के शरीर की परीक्षा कर रहे थे. किंतु सब ने सिर हिला कर संकेत किया कि सब कुछ समाप्त हो चुका है.

धर्मप्रिय बापू को गीता और रामायण बहुत ही प्रिय थे. अनेक बार उन्होंने कहा था कि अगर वह बीमार हो जायें तो उन को गीता, रामायण आदि से पाठ सुनाया जाये. वही उन के लिए एकमात्र औषधि थी. उन की इस इच्छा के अनुसार बापू के सहयोगियों ने गीता, रामधुन, रामायण पाठ करना शुरू कर दिया. गहरी वेदना में उन सब के कंठ अवरुद्ध हो रहे थे और अश्रु टपक रहे थे.

इस भयानक शोक में मुझे एक पत्रकार का कर्त्तव्य भी करना पड़ा. मैं उठ कर टेलीफ़ोन के पास गया. हमारे 'युनाइटेड प्रेस' के इंचार्ज ने जब मुझ से यह सुना कि गांधी जी को गोली मार दी गयी है तो उन्होंने विश्वास नहीं किया. वह बोले, 'आप क्या कह रहे हैं? मुझे विश्वास नहीं होता कि बापू को कोई इस तरह मार सकता है. मेरी कुछ समझ में नहीं आता. और ज़ोर से और ठीक-ठीक कहिए'. किंतु मैं क्या कहता. मेरा कंठ रुद्ध हो रहा था. जब मैं टेलीफ़ोन करने जा रहा था अनेक भारतीय और विदेशी पत्रकार मुझे पूछने लगे, 'महात्मा जी कैसे हैं?' मैंने उन को कहा 'सब शेष हो चुका. बापू नहीं रहे'.

कमरे में वापस आ कर मैं बापू की देह के पास बैठ कर गीता आदि पाठ सुनने लगा. मेरे सामने वह छोटा टेबिल था जिस के ऊपर बापू के प्रिय ग्रंथ—गीता, कुरान, बाइबिल और आश्रम भजनावली रखे थे. टेबिल के ऊपर बापू की छोटी पेंसिल, कागज, चिट्ठियाँ आदि पड़ी थीं. एक तरफ़ बापू के तीन बंदर थे, जिन को कि वह अपना गुरू मानते थे.

'एकला चलो रे' : एकाएक कमरे का वातावरण रुदन से फिर भर गया. गांधी जी के छोटे पुत्र देवदास गांधी आये और बापू की देह के पास बैठ कर उन के शरीर के चारों ओर हाथ रखा. थोड़ी देर बाद वह धाड़ मार कर रो पड़े और उन की मृत देह को बार-बार चूमने लगे. इस करुण दृश्य को देख कर सब रो पड़े. पंडित नेहरू और सरदार पटेल ने देवदास को उठाया. फिर आचार्य कृपालानी, श्रीमती सुचेता कृपालानी, श्रीमती नंदिता कृपालानी आदि अनेक लोग उस कमरे में एक के बाद एक आये. श्रीमती सुचेता कृपालानी और नंदिता ने गांधी जी का प्रिय रवींद्र संगीत गाया. 'जीवन जखन सुखाये जाये, करुणा-धाराय एशो'. यह गीत गांधी जी के उपवास के समय गाया जाता था. फिर उन्होंने गाया,

'यदि तोर डाक शुने केऊ ना आशे, तो एकला चलो रे'.

'एकला चलो' गीत सुन कर मुझे वापू की कठिन नोआखाली यात्रा याद आ गयी. गांधी जी नंगे पैर एक गाँव से दूसरे गाँव शांति की यात्रा कर रहे थे. वापू के बंगला सेक्रेटरी, अध्यापक निर्मल वसु, मैं और कुछ और पत्रकार उन के साथ इस यात्रा में थे. भयानक शीत में वापू नंगे पैर खेतों में पैदल चलते थे. उन के कोमल पैरों में काँटे चुभते और रक्त गिरता. फिर भी वापू रुकते न थे. मैं ने एक दिन यात्रा में वापू से पूछा—'वापू जी, आप इस ठंड में काँटों के बीच नंगे पैर क्यों चलते हैं ?' वापू हँस कर वोले—मैं तीर्थ-यात्रा में निकला हूँ. मंदिर में सब नंगे पैर जाते हैं. इसी लिए मैं नंगे पैर जा रहा हूँ.'

गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर रचित यह 'एकला चलो रे' संगीत गांधी जी को स अकेली यात्रा में प्रेरणा देता था. प्रतिदिन एक ग्राम से दूसरे ग्राम की यात्रा में हम सब 'एकला चलो रे' गाते थे.

फिर एकाएक कमरे की शांति भंग हो गयी. गांधी जी की पुत्रवधू श्रीमती लक्ष्मी गांधी और पौत्री-पौत्र तारा और मोहन ज़ोर-ज़ोर से विलाप करते हुए कमरे में आये. वापू के शरीर पर ढँकी हुई चादर उन्होंने उठायी. तीनों गोलियों के घावों से रक्त अब भी गिर रहा था. तीन साल का पौत्र गोपू सिसक रहा था. प्रतिदिन संध्या के समय वापू अपने प्यारे गोपू से खेला करते थे.

बेचैन भीड़ : कमरे के वाहर वहुत भीड़ थी. दरवाजे के शीशे से मैं ने वाहर देखा हज़ारों नर, नारी और वच्चे जनवरी के कठिन शीत में खड़े थे. सव वापू के दर्शन के लिए व्याकुल थे. हज़ारों कंठों से गांधी जी की जयध्वनि से आकाश गूँज रहा था. हम सव ने वापू की देह को एक टेविल पर रखा. फिर दरवाजा खोला गया. लोगों से विनती की गयी कि वह एक लाइन में चलें—वापू के दर्शन के लिए. किंतु लोग पागल जैसे हो गये थे. दौड़ने लगे. भीषण गडवड़ होने लगी. प्रत्येक व्यक्ति वापू के पैर छूना चाहता था. एक स्त्री रोती हुई ज़मीन पर वेहोश गिर गयी. इस गड़बड़ में असंभव जान कर, दरवाज़ा फिर वंद कर दिया गया.

हम सव ने फिर वापू की देह को उठा कर ऊपर के वरामदे में रखा. हज़ारों लोगों ने उन के दर्शन किये. फिर एक वार आकाश में 'महात्मा गांधी की जय' से गूँज उठा. रात के दस वज चुके थे. वापू के शरीर को फिर उन के कमरे में लाया गया. देवदास भाई ने कमरे की वत्तियाँ वुझा दीं. कमरे में अँधेरा हो गया. वापू के सिर के पास एक प्रदीप जलाया गया. एक सिख सज्जन ग्रंथ साहव का पाठ करने लगे.

रात के वारह वजे के क़रीव पंडित नेहरू कमरे में फिर आये. उन के साथ श्रीमती इंदिरा और श्री फ़िरोज गांधी आये. इंदिरा जी रो रही थीं. पंडित जी का जो कि आज उपवास कर रहे थे, चेहरा फ़ीका पड़ गया था—ओठ सूख गये थे. उन को देखने से ऐसा प्रतीत होता था जैसे वापू की मृत्यु के इन छह घंटों में ही वह वृद्ध हो गये. रोते-रोते उन की आँखें सूज गयी थीं. देवदास जी से उन्होंने वापू के अंतिम संस्कार के वारे में परामर्श किया. वह कमरे में ज्यादा देर तक न रह सके. वाहर जनता की भीड़ फिर वढ़ गयी. उन्मत्त जनता. पंडित जी के सिवाय उन को आज शांति और कौन दे सकता था ? कमरे से वाहर जाने से पहले फिर एक वार उन्होंने वापू के शांत चेहरे की ओर देखा. रूमाल से आँसू पोंछते हुए वह वाहर चले गये जहाँ कि हज़ारों लोग चिल्ला रहे थे—हम वापू के दर्शन करना चाहते हैं. तव रात का लगभग एक वज चुका था.

दिल्ली की जनवरी महीने की भीषण ठंड की रात. वापू के शरीर को कैसे स्नान कराया जाये. उन के शरीर को स्नानघर में ले जाया गया और उसी तख्ते पर लिटाया गया, जिस पर वैठ कर वापू रोज नहाते थे. हरिराम भाई ने उन की रक्त-स्नात चादर उठायी. नियम-पालन के लिए उन को स्नान कराया गया. मैं ने गोली के तीन दाग उन के शरीर पर देखे. दो गोलियाँ उन के शरीर को भेद कर वाहर चली गयी थीं. एक गोली शरीर में ही रह गयी थी उस समय की गोली के तीनों दागों से रक्त-स्राव हो रहा था. इस दृश्य को देख कर मेरा सिर चक्कर खाने लगा. कुछ देर के लिए मुझे चारों ओर अंधकार दिखायी देने लगा. शरीर से रक्त धोने के वाद उन को गंगा जल से स्नान कराया गया.

फिर वापू को कमरे के वीच, एक नयी धोती पहना कर, तख्ते पर लिटाया गया. गले में एक रुद्राक्ष की माला पहनायी गयी. मस्तक पर चंदन और कुंकुम का तिलक लगाया गया. हम सव ने मिल कर उन के शरीर को गुलाव के फूलों से, जो कि इंदिरा जी और फीरोज भाई लाये थे, सजाया. उन के सिरहाने महिलाओं ने फूल से 'राम-नाम' लिखा. कमरे में चारों ओर अगरु-धूप सुलगाया गया.

कर ले सिंगार... : गांधी जी प्रतिदिन साढ़े तीन वजे सवेरे उठ जाते थे और प्रातः प्रार्थना में लीन हो जाते थे. उस दिन ठीक साढ़े तीन वजे प्रातःकाल हम सव ने प्रार्थना शुरू की. वौद्ध धर्म, कुरान, गीता, उपनिषद् और जेंदावेस्ता से पाठ हुआ. एक भजन रोज की तरह गाया गया. जव यह करुण भजन गाया जा रहा था, सव रोने लगे. कुछ कमरा छोड़ कर वाहर जा कर चिल्ला कर रोने लगे. भजन के वोल इस प्रकार थे—

करले सिंगार चतुर अलवेले;
(तुझे) साजन के घर जाना होगा.
मिट्टी उढ़ावन, मिट्टी विछावन,
मिट्टी में ही मिल जाना होगा.
नहा ले, धो ले, शीश गुंथा ले,
फिर वहाँ से वापस न आना होगा.

भजन के वाद 'रघुपति राघव राजा राम' धुन गायी गयी. धीरे-धीरे उजाला हो गया. सूर्य की पहली किरण ने कमरे में प्रवेश किया—साथ ही उस भयावह रात्रि का अवसान हुआ. कितनी वेदना में, कितने आँसुओं के साथ वह रात वीती. वापूजी के साथ घूमते हुए इतनी भयानक दीर्घ रात्रि मैं ने अपने जीवन में कभी नहीं देखी. रात चली गयी, किंतु फिर भी मुझे दिन के उजाले में भी अंधकार ही नज़र आ रहा था.

कमरे के वाहर लाखों-लाखों लोग, स्त्री-पुरुष और वच्चे, आसमान गुँजा रहे थे—'महात्मा गांधी की जय', 'गांधी जी अमर हैं.' गांधीजी के शेष दर्शन के लिए वे सव आये थे. सारी रात वे भयानक ठंड में खड़े रहे—महज़ वापू के दर्शन के लिए रोते हुए हज़ारों लोगों ने वापू के शरीर पर फूल-मालाएँ चढ़ायीं. मृत्यु के कई घंटे वीत चुके थे फिर भी गांधी जी के मुँह पर एक अपूर्व ज्योति थी—शांति और क्षमा का भाव उन के मुख पर अंकित था.

यह सव था और जानता था कि मर्त्य ही मरा है. और ऐसा होने से ही सुविधा हुई है कि जो अमर था वह सदा जीता रह सके. फिर भी मालूम हो रहा था कि सव खो गया है. अस्तित्व सत् जहाँ हुआ हो, हुआ हो, हमारे लिए मानो लुप्त वन गया था.

रह-रह कर कमरे में जाता और झाँकता. क्षण भर उधर देख पाता कि भर आता और मकान की लंवी गैलरी में डग भरने लगता. सभी तो आदमी थे, वड़े से वड़े और छोटे भी. ये मकान में थे और वाहर भी असंख्य थे. सव का कुछ लुट गया था.

शरीर को क्या रख न लिया जाये ? वह तो अभी पास है. विज्ञान से उसे जितना स्थायी किया जा सकता हो उतना क्यों न कर लें. अभी तो दुनिया दर्शन को तरसेगी. उस के प्रति सदय हो कर क्यों कुछ रोज़ के लिए इस काया को सुरक्षित न रख लें ? एक प्रेम यह चाहता था और वह विचारवान था.

पर विजय दूसरे प्रेम की हुई, जिसे जीते गांधी की याद थी. और उस ने कहा कि नहीं जो जीता था वह मरे की पूजा न चाहता.

तव अर्थी उठी और सड़कों पर मैदानों में जितने समा सके आदमी साथ हुए और उस को भस्मीभूत कर आये जो आत्मीभूत हो गया था. —जैनेंद्र

(अकाल पुरुष गांधी से)

मध्यावधि चुनाव : पहला दौर

'दिनमान' का यह अंक जिस समय मुद्रण के लिए जा रहा है मध्यावधि चुनाव के लिए मतदान का पहला दौर शुरू हो चुका है—उत्तरप्रदेश के १५० मतदान केंद्रों में मतदान हो रहा है. ९ फ़रवरी तक मतदान का तीसरा दौर समाप्त हो चुका होगा और पंजाब, बिहार, बंगाल और उत्तरप्रदेश अर्थात् भारत की लगभग एक-तिहाई जनता अपने भाग्य का निर्णय कर चुकी होगी. जनता ने अपने बारे में क्या सोचा है, इस का पता चुनाव-नतीजों के सामने आने पर ही चल सकता है; लेकिन अब तक जो भी सर्वेक्षण हुए हैं, उन से एक बात तय नज़र आती है कि पिछले आम चुनाव और मध्यावधि की बुनियादी स्थितियों में परिवर्तन नहीं हुआ है. इन चार राज्यों में पार्टियों के संतुलन में बहुत फ़र्क नहीं आया है हालाँकि उन के अंतर्विरोध पहले से अधिक तीव्र हो गये हैं. जिस गतिशील ग़ैर-कांग्रेसवाद की कल्पना डॉ. लोहिया ने की थी और जिस का विस्फोट १९६७ के चुनाव में हुआ, वह यथास्थिति को बनाये रखने के प्रयत्न में बदल गयी. उत्तर भारत के अनेक राज्यों में बार-बार सरकारें उलटने और फिर वापस आने का मुख्य कारण यही था कि ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियाँ अपने अंतर्विरोध को सुलझा नहीं सकी हैं.

ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों की आपसी फूट का सब से विकृत रूप उत्तरप्रदेश में दिखायी पड़ता है जहाँ कि लगभग सभी पार्टियाँ अपने चुनाव-समझौतों के बावजूद एक-दूसरे के विघटन का कारण बनी हुई हैं. पिछले दो वर्षों में उत्तरप्रदेश में कांग्रेस की स्थिति में कोई सुधार न हुआ हो, लेकिन कुछ प्रमुख ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों की स्थिति में गिरावट हुई है. उन में सब से उल्लेखनीय है संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी जो कि दो साल के भीतर ही विभक्त हो गयी—उस का एक गतिशील हिस्सा 'अर्जक संघ' के नेताओं के नेतृत्व में उस से अलग हो गया. उत्तरप्रदेश में ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी सब से अधिक सक्रिय और जानदार पार्टी थी लेकिन आपसी मतभेदों और कुर्सी की लड़ाई ने उसे स्खलित कर दिया जिस का फ़ायदा कांग्रेस को नहीं, बहुत हद तक जनसंघ को प्राप्त होगा. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी ने अपनी ग़लतियों से जो ज़मीन खोयी है उस पर कांग्रेस नहीं बल्कि जनसंघ शासन करेगा—यह पार्टी के नेताओं के लिए संतोष का विषय हो सकता है कि उस ने अपनी जागीर एक ग़ैर-कांग्रेसी पार्टी को सौंप दी; लेकिन जो लोग राजनैतिक दलों के आत्मसंहार की प्रक्रिया से परिचित हैं, वे जानते हैं कि यह समाजवादियों के संगठन के ह्रास की एक शुरुआत है.

यद्यपि उत्तरप्रदेश में जनसंघ और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, शासन के दो दावेदारों की तरह बर्ताव कर रही हैं, चुनाव के कोलाहल में सब से अधिक मुखर दो आवाज़ें हैं : एक कांग्रेस की और दूसरी भारतीय क्रांति दल की. एक के प्रतीक हैं चंद्रभानु गुप्त और दूसरे के चौधरी चरण सिंह. श्री चरण सिंह की लड़ाई कांग्रेस से उतनी नहीं जितनी कि अपने पुराने प्रतिद्वंद्वी और शासन के सब से महत्त्वाकांक्षी उम्मीदवार चंद्रभानु गुप्त से है. उन के सामने एकमात्र रास्ता यही है कि वह कांग्रेस के समर्थन से मुख्यमंत्री का पद हासिल करें. जैसी कि कांग्रेस की परंपरा रही है वह ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों को सत्ता से दूर रखने के लिए चरण सिंह की अल्पमत सरकार का समर्थन कर सकती है.

बिहार की स्थिति ज़्यादा बिखरी हुई है, हालाँकि पार्टियों के संगठन की स्थिति में बहुत अंतर नहीं आया है. इस बीच किसी भी पार्टी ने अपनी स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं किया है; बल्कि वे कुछ टूटी ही हैं. बिहार में समाजवादी काफ़ी हद तक लोकप्रिय हैं और यह बहुत संभव है कि इस बार भी ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों में वह नंबर एक पार्टी साबित हो. लेकिन वहाँ भी संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और प्रजा समाजवादी पार्टी के झगड़े भीतरी स्तर पर सुलझ नहीं पाये हैं. मुख्यमंत्री के प्रश्न को ले कर झगड़ा निश्चित है; जिस की अनुगूंज पिछले दिनों संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के श्री मधु लिमये और प्रजा समाजवादी पार्टी के श्री नाथ पै के परस्पर विरोधी वक्तव्यों में सुनायी पड़ी थी. श्री मधु लिमये ने कहा था कि चुनाव समझौते के बावजूद कार्यक्रम-विहीन साझा-सरकार नहीं चल सकती. श्री नाथ पै ने समझौते को प्राणवान और स्थायी ठहराया था. दूसरे शब्दों में श्री मधु लिमये का यह कहना था कि अगर संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी चुनाव में पहले नंबर की पार्टी के रूप में उभर कर आती है तो मुख्यमंत्री संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का ही होगा जिस का कि श्री नाथ पै ने विरोध किया. जहाँ तक कांग्रेस का प्रश्न है, वह बिहार में अपनी सरकार बना सकेगी इस की कोई संभावना नज़र नहीं आती.

लगभग यही स्थिति बंगाल की है जहाँ कि कांग्रेस-विरोध ने पिछले दो वर्षों में अपनी जड़ें और भी गहरी कर ली हैं. केंद्र के लिए चिंता का सब से अधिक विषय पश्चिम बंगाल रहा है जो कि केंद्र की कांग्रेस सरकार को बराबर चुनौतियाँ देता रहा है. बंगाल की ग़ैर-कांग्रेसी सरकार ने अपनी ग़लतियों और ज़िद से समूचे प्रदेश में, विशेष रूप से कलकत्ते में, अराजकता की स्थिति पैदा कर दी. उस के शासन के एक वर्ष में कलकत्ते ने रौद्र रूप

दिनमान

समाचार-साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ ९ फ़रवरी, १९६९
अंक ६ २० माघ, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट	११
*	
मत और सम्मत	४
पिछला सप्ताह	५
पत्रकार-संसद्	६
परचून	४६
*	
राष्ट्रीय समाचार	१३
प्रदेशों के समाचार	२२
विश्व के समाचार	२५
समाचार-भूमि : पाकिस्तान	३३
खेल और खिलाड़ी : क्रिकेट	३०
*	
प्रेस-जगत् : पड़ोसी देश का लोकमत	७
गांधी शताब्दी और सत्याग्रह	८
स्मृति : तीस जनवरी	९
मध्यावधि	१८
छात्रावास : आंध्र प्रदेश	२४
पुरातत्त्व : पुरासंपदा की रक्षा	२७
विश्वविद्यालय की चिट्ठी	३९
विज्ञान : नमक	४०
चिकित्सा : रक्त से औषधि	४०
षष्टिपूर्त्ति : डॉ. जगदीशचंद्र जैन	४१
किताबें	४१
तालकटोरा : लोकनृत्य	४२
कला : एरिक बोवेन; विजय सोनी	४४
अभिनय : राल्फ़ गेलेव्स्की	४५

*

आवरण चित्र : स्वर्गीय सी. एन. अन्नादोरै
(फ़ोटो : श्रीकृष्ण शर्मा)

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

धारण कर लिया. इस के अलावा बंगाल ने हिंसा के इतिहास में एक नये मुहावरे को जन्म दिया : नक्सलबाड़ी. यह एक विडंबना ही है कि बंगाल में कांग्रेस इस हद तक स्खलित हो चुकी है कि अब वह जनता को अतिवादी कम्युनिस्टों से उबारने में समर्थ नही रही. अन्य कई प्रदेशों की तरह पश्चिम बंगाल मे भी कांग्रेस बराबर शिथिल रही और उस ने लगातार अपनी निष्क्रियता और कार्यक्रम-विहीनता का परिचय दिया, जिस का नतीजा यह हुआ कि बंगाल दुबारा उन वामपंथियों के हाथों मे जाता नज़र आता है जिन का कि लोकतंत्र में ज़रा भी विश्वास नहीं है.

पंजाब में कांग्रेस वापस आ सकती थी, लेकिन उस ने एक अल्पमत सरकार का समर्थन कर अपनी प्रतिष्ठा लगभग खो दी. अगर वह सिद्धांतों पर डटी रहती तो इस बात की बहुत संभावना थी कि मध्यावधि चुनाव में वह उभर कर आती. लेकिन उस की ग़लतियों से पंजाब मे ग़ैर-कांग्रेसवाद सरकार की पगचाप निकट सुनायी पड़ती है.

देश में अनेक छोटी-छोटी, बहुत हद तक प्रादेशिक पार्टियों का होना लोकतंत्र के लिए संकट हो गया है. अगर दो या तीन पार्टियां होतीं तो तस्वीर ज्यादा साफ़ होती और सत्ता का संतुलन अधिक स्वस्थ होता. लेकिन चौथे चुनाव के दो वर्षों के भीतर इस मध्यावधि चुनाव ने यह साबित कर दिया कि कांग्रेस बीस वर्षो मे जितनी विफल हुई हो ग़ैर-कांग्रेस जनमत उस से कम विफल नही हुआ है. उस की विफलता उन अनेक छोटी-छोटी पार्टियों के रूप मे अभिव्यक्त हुई है, जो कि कांग्रेस का कोई भी विकल्प बन सकने में असमर्थ हुई.

अध्यापक की परिभाषा

बहुत कम मौक़ों पर अधिकार के किसी एक प्रश्न को ले कर छात्रों और अध्यापकों के बीच एकता होती है. ३ फ़रवरी को दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों ने जो हड़ताल की वह पूरी तरह सफल नही हुई लेकिन उस का एक नैतिक महत्त्व जरूर था. छात्रों ने जिन माँगों को ले कर हड़ताल की वे अपनी परिणतियों में अध्यापकों के अधिकारों को संगठित करती है. छात्रों की माँग थी कि कालेजों और विश्वविद्यालय के प्रशासन के ढाँचे में इस तरह परिवर्त्तन किया जाये कि उस मे छात्रों और अध्यापकों का समुचित प्रतिनिधित्व हो.

जिस चीज ने दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों और अध्यापकों को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाया वह है श्यामलाल कालेज के एक अध्यापक श्री विनय कुमार की बरखास्तगी. पिछले साल श्री विनय कुमार को, जो कि श्यामलाल कालेज के हिंदी विभाग मे अध्यापक थे, कालेज की 'गवर्निंग बाडी' ने इस आरोप पर बरखास्त किया कि उन्होंने विद्यार्थियों की ग़ैरहाजिरी की दैनिक सूचना अधिकारियों को नही दी और इस तरह अपना कर्तव्य-पालन नहीं किया. श्री विनय कुमार ने कालेज के संचालकों को अपना स्पष्टीकरण दिया जिस में उन्होंने कहा था कि मैं ने अपने कार्य में कोई ढिलाई नही की है, विद्यार्थियों की ग़ैरहाजिरी की दैनिक सूचना समय और शक्ति का अपव्यय है और इस के अलावा मुझ से पहले अनेक अध्यापकों ने समय-समय पर विद्यार्थियों की ग़ैरहाजिरी की नियमित सूचना नही दी है इस लिए मेरे विरुद्ध की गयी कोई भी कार्रवाई अनुचित होगी. श्री विनय कुमार का समर्थन कालेज के हिंदी विभाग के अध्यक्ष ने भी किया. उन्होंने कहा कि श्री विनय कुमार अपना कार्य योग्यता और ईमानदारी के साथ करते रहे हैं और इस लिए उन के विरुद्ध कार्रवाई करना उचित नही होगा. इस के अलावा विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अनेक वरिष्ठ अध्यापकों ने भी श्री विनय कुमार का समर्थन किया लेकिन कालेज के अधिकारियों ने उन्हें बरखास्त करना ही उचित समझा.

श्यामलाल कालेज के अधिकारियों की इस निरंकुश कार्रवाई ने विश्वविद्यालय के अध्यापकों को उत्तेजित किया और उन्होंने पिछले महीने उपकुलपति के कार्यालय के सामने प्रदर्शन किया. विश्वविद्यालय अध्यापक संघ के अध्यक्ष ने श्री विनय कुमार की बरखास्तगी को ग़ैर-कानूनी और अनुचित बताते हुए यह घोषणा की कि उन को व्यक्तिगत कारणों से बरखास्त किया गया है. विश्वविद्यालय के अध्यापकों के इस प्रदर्शन ने विश्वविद्यालय के अधिकारियों को बहुत हद तक हिलाया लेकिन अब तक उपकुलपति इस संबंध मे कोई ऐसी ठोस कार्रवाई नही कर सके हैं जिस से कि अध्यापकों मे फैली हुई उत्तेजना और घबराहट कम हो सके. राज्यसभा मे श्री राजनारायण ने भी पिछले सत्र में श्यामलाल कालेज के संबंध में प्रश्न उठाया था. शिक्षामंत्री त्रिगुण सेन का ध्यान इस ओर कई लोगों द्वारा आकर्षित किया जा चुका है और शिक्षामंत्री यह अनुभव भी करते हैं कि श्यामलाल कालेज ने अध्यापकों के प्रश्न पर ज्यादती की है. लेकिन शिक्षा मंत्रालय भी कोई कार्रवाई करने मे विफल साबित हुआ है. श्यामलाल कालेज का नाम बहुत कम लोगों ने सुना था. लेकिन श्री विनय कुमार की बरखास्तगी ने उसे मशहूर कर दिया. इस कालेज के मामलों की जाँच के लिए एक नागरिक समिति नियुक्त की गयी जिसने कि अपनी रिपोर्ट मे यह कहा कि कालेज मे तरह-तरह की मनमानियां हो रही हैं और अध्यापकों और छात्रों पर जुल्म. रिपोर्ट मे यह भी बताया गया है कि कालेज के अधिकारियों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए विद्यार्थियों और अध्यापकों को दो राजनैतिक गुटों में विभक्त कर दिया है. इस तरह उन की निरंकुशता चल रही है.

लेकिन श्यामलाल कालेज की नींव गहरी मालूम पड़ती है. अध्यापक और छात्र दोनों ही संगठित होने के बावजूद उसे हिला नही सके हैं. अध्यापकों के प्रवक्ताओं का आरोप है कि श्यामलाल कालेज को सरकारी क्षेत्रों में भी समर्थन प्राप्त है और इसी लिए उन का रवैया तानाशाही का हो गया है. दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष ने पिछले महीने एक वक्तव्य जारी कर कहा था कि हमें उन परिस्थितियों पर शर्म और गुस्सा है जिस ने कि हमारे अध्यापकों को प्रदर्शन करने के लिए विवश किया. छात्र संघ के अध्यक्ष ने अपने वक्तव्य में कहा था कि मैं ने श्री विनय कुमार पर लगाये गये आरोपों का अध्ययन किया है और उन से संबंधित सभी दस्तावेज देखे हैं और अब मैं कह सकता हूँ कि यह बरखास्तगी सरासर अनुचित है.

अध्यापकों और छात्रों की इस उत्तेजना और बेचैनी का मुख्य कारण यह है कि यह केवल एक अध्यापक की बरखास्तगी का प्रश्न नहीं बल्कि इस में अनेक क़ानूनी और नैतिक सवाल निहित है. अध्यापकों का कहना है कि इस चीज़ की परिभाषा होनी चाहिए कि अध्यापक का वास्तविक कार्य क्या है. क्या वह अध्यापन के लिए रखा गया है या कि गवर्निंग बाडी के सदस्यों की इच्छाओं को, जो कि समय-समय पर बदलती रहती है, संतुष्ट करने के लिए ? कालेज और अध्यापक का रिश्ता क्या होना चाहिए ? प्रिंसिपल का कर्त्तव्य क्या है ? और अंततः विश्वविद्यालय क्या है ? विश्वविद्यालय अध्ययन केंद्र है या कि विभिन्न कालेजों के संचालकों की राजनीति का अखाड़ा ?

इस प्रश्न को सब से पहले श्यामलाल कालेज के बरखास्त अध्यापक श्री विनय कुमार ने ४ अप्रैल १९६८ को अपना स्पष्टीकरण देते हुए उठाया था. उन्होंने प्रश्न किया कि "प्रिंसिपल और अध्यापक का क्या रिश्ता है और अध्यापक का क्या कार्यक्षेत्र है और क्या अधिकार क्षेत्र ? इस की कोई सफ़ाई अब तक नहीं हो सकी है. उन्होंने लिखा था कि "यह विचारणीय है कि विद्यार्थियों की हाजिरी क्या है, कैसे ली जानी चाहिए, और वास्तव मे इस परंपरागत व्यवस्था की मूल भावना क्या है ? क्या इस मे विश्वविद्यालय के स्तर पर प्रिंसिपल को कोई निर्णय लेने से पहले अध्यापकों से परामर्श लेने या उन की भावनाओं को जानने की जरूरत है या नही ? यदि है तो क्या इस सिलसिले मे प्रिंसिपल ने अध्यापकों से परामर्श लिया था ? मेरी धारणा है कि प्रिंसिपल और अध्यापकों के बीच कप्तान और टीम के सदस्य का रिश्ता है, मालिक और नौकर का नही और संस्था का काम अच्छी तरह चले इस के लिए आलोचना और सुझाव न केवल वांछनीय, बल्कि ज़रूरी है."

—विशेष संवाददाता

राष्ट्र

अन्ना....अन्ना....अन्ना....

अन्नादोरै के, सोमवार की मध्य रात्रि को (१२.३० बजे) जिन की मृत्यु के साथ ही मद्रास की जनता अन्ना. . अन्ना. . . अन्ना. . . कह कर विलाप करती हुई अडियार कैंसर अस्पताल के बाहर इकट्ठी हो गयी, न रहने से तमिलनाडु की स्थिति में अचानक फ़र्क़ आ गया. बहुत हद तक यह अंतर राजनैतिक है. अन्नादोरै समूचे तमिलनाडु के निर्द्वंद्व नेता थे और केंद्र न केवल तमिलनाडु बल्कि समग्र दक्षिण भारत की समस्याओं को श्री अन्नादोरै की माँगों के संदर्भ में देखने लगा था. यह तमिलनाडु की जनता की असाधारण विजय थी. तमिलनाडु कांग्रेस के हाथ से पूरी तरह निकल चुका था. यद्यपि नागरपोल में श्री कामराज बहुत बड़े बहुमत से विजयी हुए लेकिन इस से समूचे प्रदेश में कांग्रेस की स्थिति में कोई विशेष अंतर नहीं आया था और कामराज की जीत ने केंद्रीय नेताओं का हौसला बहुत अधिक नहीं बढ़ाया था. लेकिन श्री अन्नादोरै के न रहने से तमिलनाडु में द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम की स्थिति में निश्चित रूप से अंतर पड़ गया और कांग्रेस तमिलनाडु में १९७२ में अपनी सरकार बनाने का स्वप्न देख सकती है.

अपराजेय नेता : श्री अन्नादोरै द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के अपराजेय नेता थे. यद्यपि उन्होंने द्र० मु० क० में योग्य नेताओं की दूसरी पंक्ति तैयार की थी लेकिन अपनी प्रशासनिक योग्यता के बावजूद इन में से कोई भी ऐसा नहीं है जिसे समग्र तमिलनाडु का विश्वास प्राप्त हो. इस के अलावा श्री अन्नादोरै के रहते द्र० मु० क० में नेतृत्व की लड़ाई का प्रश्न कभी नहीं उठा लेकिन जैसा कि हर संस्था में महान् नेता के न रहने के बाद हुआ करता है, द्र० मु० क० में भी नेतृत्व के संघर्ष की संभावना आसन्न है. शायद कांग्रेस भी यह चाहेगी कि द्र० मु० क० के भीतर इस तरह का कोई संघर्ष हो और कांग्रेस की विजय की परिस्थितियाँ और मज़बूत हों. फ़िलहाल श्री अन्नादोरै के निधन के साथ ही शिक्षामंत्री श्री नेडुंचेज़ियन को मुख्यमंत्री-पद की शपथ दिला दी गयी है और अन्य सभी मंत्रियों को उन के पदों पर बहाल किया गया है.

जीवन संघर्ष : लोकप्रिय नेता अन्नादोरै का अंत कष्टपूर्ण हुआ. अमेरिका में कैंसर के ऑपरेशन के बाद वह लगभग अच्छे हो चुके थे लेकिन अभी पूरी तरह विश्राम भी नहीं कर पाये थे कि दूसरी बार कैंसर की जड़ें उन की उदर-नलियों में फूट निकलीं. साथ ही उन को दिल का दौरा पड़ा. उन के उपचार के लिए अमेरिका से डाक्टर मिलर को, जिन्होंने कि पहली बार उन का ऑपरेशन किया था, बुलाया गया. . . डॉ० मिलर ने यह पता करने के लिए कि कैंसर का दुबारा हमला हुआ है या नहीं, उन के पेट का छोटा-सा ऑपरेशन किया. ऑपरेशन में कैंसर के चिन्ह पाये गये. श्री अन्नादोरै के उपचार के लिए हाङकाङ, ऑस्ट्रेलिया और जर्मनी से दवाएँ मँगाई गयीं और जैसा कि तमिलनाडु के निर्माणमंत्री श्री करुणानिधि ने कहा है कि डाक्टरों ने श्री अन्नादोरै की प्राण-रक्षा के लिए अस्पताल के भीतर एक महायुद्ध लड़ा. ३० जनवरी को श्री अन्नादोरै की हालत में कुछ सुधार के लक्षण दिखाई दिये लेकिन फिर उन की नाड़ी डूबने लगी. एक बार तो नयी दिल्ली के एक समाचारपत्र ने यह 'स्पाट न्यूज़' लगा दिया कि श्री अन्नादोरै नहीं रहे.

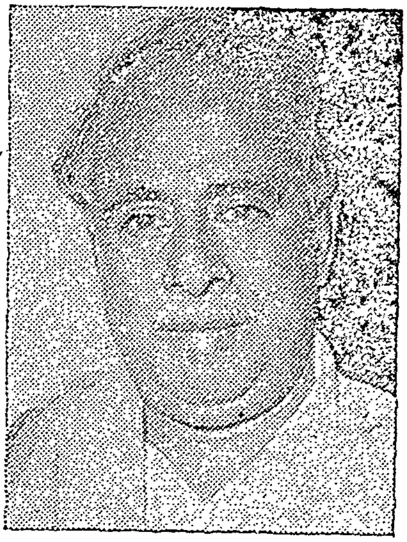

अन्नादोरै : निर्भीक नेता

दूसरी बार एक समाचार एजेंसी ने यह समाचार प्रकाशित किया जिसे कि आकाशवाणी ने भी अपने कुछ प्रसारणों में प्रसारित किया लेकिन श्री अन्नादोरै असाधारण इच्छा शक्ति के व्यक्ति थे. उन्होंने जिस तरह राजनीति और जीवन में अटूट संघर्ष किया उसी तरह अंतिम क्षण तक मृत्यु से लड़ते रहे.

मौत के साथ आँख मिचौली : श्री अन्नादोरै के सहयोगी और मंत्रिपरिषद के मंत्री उन की बीमारी के दौरान अस्पताल में बराबर बने हुए थे लेकिन मौत सब की नज़र बचा कर आती है. जिस समय श्री अन्नादोरै की मृत्यु हुई उस समय वार्ड में डाक्टरों के अलावा कोई भी उपस्थित नहीं था. सभी लोग यह सोच कर घर जा चुके थे कि अन्ना की तबियत में कुछ सुधार हो रहा है. डॉक्टरों ने भी यह एलान कर दिया था कि अगर श्री अन्नादोरै २४ घंटे और जीवित रहेंगे तो हम उन्हें बचाने में कामयाब रह सकेंगे. श्री अन्नादोरै की प्राण-रक्षा के लिए उन्हें हृदय संबंधी ताक़तवर दवा दी गयी. इस से उन की नाड़ी की गति में कुछ सुधार हुआ था. लेकिन शनिवार की शाम को उन्हें कुछ ज्वर हो आया था जिस के बारे में डाक्टरों का ख़याल था कि यह ज्वर विशेष महत्व नहीं रखता. श्री अन्नादोरै की मृत्यु लगभग वैसी ही हुई जैसे कि डेढ़ साल पहले डॉ० लोहिया की हुई थी. ठीक मध्य रात्रि को जब कि सभी लोग घर जा चुके थे, दस रोज़ तक मृत्यु से संघर्ष करने के बाद डॉ० लोहिया का जीवन भी बुझ गया.

निर्भीक और विद्रोही नेता : राममनोहर लोहिया और कां० न० अन्नादोरै में कई समानताएँ थीं. लोहिया की तरह ही अन्नादोरै भी निर्भीक और विद्रोही थे. उन्होंने भी १९६७ में कांग्रेस को अपदस्थ करने के लिए ग़ैर-कांग्रेसवाद के दर्शन को स्वीकार किया था. भीमराव अंबेडकर और राममनोहर लोहिया के बाद अन्नादोरै तीसरे व्यक्ति थे जिन्होंने कि जाति-प्रथा के विरुद्ध संगठित विद्रोह किया. जैसे लोहिया ने इस देश के शासक वर्ग को, जिसे कि वह ब्राह्मण कहना पसंद करते थे, समाप्त करने के लिए कुचली हुई जातियों को इतिहास का नियंता माना उसी तरह श्री अन्नादोरै ने मद्रास में ब्राह्मणों का नेतृत्व समाप्त कर पिछड़ी हुई जातियों की लोकशाही क़ायम की. यह आकस्मिक नहीं है कि भाषा के प्रश्न पर डॉ० लोहिया से असहमत होते हुए भी लोहिया के निधन पर शोक व्यक्त करते हुए श्री अन्नादोरै ने उन को भारत की सब से असाधारण प्रतिभा कह कर संबोधित किया था.

हिंदी से नहीं हिंदी के एकाधिकार से वैर : भाषा के संबंध में श्री अन्नादोरै की दृष्टि बिल्कुल अस्पष्ट होने के बावजूद बहुत हद तक ग़लत समझी गयी. श्री अन्नादोरै अंग्रेज़ी के समर्थक नहीं थे. उन को हिंदी विरोधी कहना भी उन के साथ अन्याय करना होगा. वास्तविकता यह है कि हिंदी के नाम पर उत्तर भारत के नेताओं ने समूचे देश पर सत्ता का जो एकाधिकार क़ायम कर रखा है श्री अन्नादोरै उसे ख़त्म करना चाहते थे. हिंदी उन के विरोध का एक संबोधन मात्र था. इस बारे में उन का दृष्टिकोण श्री राजगोपालाचारी से, जो कि अंग्रेज़ी को भारत की एकमात्र भाषा मानते हैं, अलग था. अन्नादोरै महज़ तमिल-भाषी नहीं थे, तमिल-प्रेमी भी थे. हिंदी राज्यों के नेताओं को, जो कि अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में भेजना पसंद करते हैं, जितना हिंदी-प्रेम है श्री अन्नादोरै का तमिल-प्रेम उस से कुछ कम नहीं था. श्री अन्नादोरै तमिल के प्रवक्ता ही नहीं प्रतिभाशाली लेखक थे. उन्होंने पिछले वर्ष तमिल संस्कृति और साहित्य

पर पुनर्विचार करने के लिए मद्रास में विश्व तमिल सम्मेलन का आयोजन किया था जिस में देश-विदेश के विद्वानों ने ढाई हज़ार वर्ष पुरानी तमिल भाषा और उस के साहित्य पर विचार-विमर्श किया.

विवादास्पद व्यक्तित्व : हर बुद्धिजीवी नेता की तरह अन्नादोरै का व्यक्तित्व भी विवादास्पद था. समय-समय पर उन्होंने जो वक्तव्य दिये उन के संदर्भो को ठीक-ठीक न समझने के कारण कुछ लोगों ने उन के देश-प्रेम पर भी संदेह किया लेकिन सचाई यह है कि श्री अन्नादोरै ने भारतीय एकता को खंडित नहीं किया बल्कि उसे और मजबूत बनाया. १९६७ में मद्रास का मुख्यमंत्री होते ही उन्होंने घोषणा की कि तमिलनाडु के भारत से अलग होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती. तमिलनाडु की नियति भारत के अन्य प्रदेशों से जुड़ी हुई है और अलग होने की माँग आत्मघाती है. यदि तमिल आंदोलन के, जिस में भाषा-प्रेम और देश-विरोध दोनों की संभावनाएँ थीं, नेता अन्नादोरै न होते, कोई ऐसा व्यक्ति होता जिसे कि भाषा-प्रेम और देश-प्रेम में अंतर्विरोध नजर आता तो तमिल का आंदोलन कहाँ पहुँचता इस की कल्पना ही की जा सकती है. श्री अन्नादोरै ने तमिल को अतिवाद और आत्मघात से बचा लिया. श्री कांचिपुरम् नटराज अन्नादोरै अपने जीवन और मृत्यु दोनों मे रूढ़ि मुक्त और बाग़ी थे. श्री अन्नादोरै की इच्छा के अनुरूप ही उन का शव जलाया नहीं गया बल्कि दफ़नाया गया. श्री अन्नादोरै ने मद्रास विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में एम० ए० की डिग्री प्राप्त की थी. कुछ वर्ष तक नौकरी करने के बाद १९३४ में वह बोब्बिली के राजा की जस्टिस पार्टी में शामिल हो गये. जस्टिस पार्टी में अपने लिए कोई अर्थ न प्राप्त करने के कारण उसे छोड़ दिया और ई० वी० रामस्वामी नायकर के द्रविड कषगम में शामिल हो गये. १९३७ में उन्होंने मद्रास में राजगोपालाचारी की सरकार के विरुद्ध आंदोलन किया और इस पर उन्हें सजा हुई १९४५ में वह 'रेडिकल ह्यूमनिस्ट' मानवेंद्रनाथ राय के संपर्क में आये और उन से तथा उन के विचारों से बहुत प्रभावित हुए. १९४९ में श्री नायकर के नेतृत्व के प्रति श्री अन्ना दोरै का असंतोष अपनी अभिव्यक्ति पाने लगा था. श्री अन्नादोरै का कहना था कि श्री नायकर की दृष्टि संकीर्ण है और द्रविड़ कषगम का कार्यक्षेत्र अत्यन्त सीमित है. द्रविड़ कषगम से अलग हो कर श्री अन्नादोरै ने द्रविड़ मुनेत्र कषगम की स्थापना की. १९६२ में विधानसभा के चुनाव में पराजित होने के बाद वह राज्यसभा के लिए निर्वाचित हुए जहाँ उन्होंने अपनी असाधारण वक्तृता का परिचय दिया. श्री अन्नादोरै उम्दा अंग्रेजी बोलते थे लेकिन तमिल में उन का भाषण अच्छे से अच्छे लेखक और कवि को मुग्ध कर देता था. १९६७ में वह लोकसभा और मद्रास विधानसभा दोनों के लिए निर्वाचित हुए. बाद में उन्होंने लोकसभा से इस्तीफ़ा दे दिया और मद्रास का मुख्यमंत्री बनना पसंद किया. श्री अन्नादोरै के प्रयत्न से ही मद्रास का नामकरण तमिलनाडु किया गया और मद्रास आकाशवाणी वानोली के नाम से पुकारी जाने लगी.

अन्नादोरै ने फ़िल्मों के लिए भी कहानियाँ लिखी हैं और गंभीर पाठकों के लिए भी. लेखक होने के नाते वह स्वभाव से शर्मीले थे और प्रचारप्रियता से दूर थे. यद्यपि संवाददाताओं से वह निस्संकोच बात करते थे लेकिन पत्रकारों से घिरे रहना उन्हें बहुत पसंद नहीं था. वह अपने लिए एकांत क्षण भी चाहते थे जिस में कि वह अपनी जनता और अपने आप के लिए निर्णय ले सकें.

शोक-संदेश : श्री अन्नादोरै के देहांत पर श्रद्धांजलि देते हुए राष्ट्रपति **डॉ० ज़ाकिर हुसेन** ने उन के अचानक निधन को केवल तमिलनाडु के लिए ही नहीं पूरे भारत के लिए अपूरणीय क्षति बताया. विधि के निर्दयी हाथों ने उन्हें तब हम से छीन लिया जब वह अपनी प्रसिद्धि की पराकाष्ठा पर थे. प्रधानमंत्री **श्रीमती इंदिरा गांधी** ने श्री अन्नादोरै को ऐसा विद्वान बताया जिन की कर्त्तव्यपरायणता के कारण सभी लोग उन का आदर करते थे. अभी उन से हमें बहुत-सी आशाएँ थीं. तमिलनाडु के राज्यपाल सरदार **उज्जलसिंह** ने अपने संदेश में कहा कि हमारी आशाएँ, प्रार्थनाएँ और बढ़िया दवा-दारू के बावजूद श्री अन्नादोरै नहीं बच सके और हमें दुख में तड़पता छोड़ गये. श्री अन्नादोरै के निधन से एक महान् आत्मा, योग्य नेता और जनता का आदमी हम ने खोया है. उपप्रधानमंत्री **मोरारजी देसाई** ने श्री अन्नादोरै को एक महान् लेखक के रूप में याद किया जिन्होंने तमिष् पुनर्जागरण आंदोलन में बढ़-चढ़ कर भाग लिया. 'उन से विरोधों के बावजूद मैं उन की ईमानदारी और सज्जनता का सम्मान करता हूँ.' स्वतंत्र पार्टी के नेता **सी० राजगोपालाचारी** ने अपना दुख प्रकट करते हुए कहा कि उन की मृत्यु से हुई क्षति का बयान शब्दों में नहीं किया जा सकता. अन्नादोरै के राजनैतिक गुरु **ई. वी. रामस्वामी नायकर** ने भरे गले से कहा, जो नहीं होना चाहिए था वह हो गया. मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री **गोविंद नारायण सिंह** ने अन्नादोरै के निधन से रिक्त स्थान को भर पाना मुश्किल बताया. गृहमंत्री **यशवंतराव चव्हाण** ने उन्हें एक योग्य प्रशासक और बढ़िया मित्र के रूप में याद किया. मुस्लिम लीग के प्रधान **मुहम्मद इस्माइल** ने उन्हें कमाल का जिंदादिल इनसान बताया. भूतपूर्व कांग्रेस-अध्यक्ष **कामराज** ने कहा कि मुख्यमंत्री के रूप में अन्नादोरै की सेवाएँ राज्य को दो साल से भी कम समय तक प्राप्त हो सकीं. ओडिसा के मुख्यमंत्री **आर० एन० सिंहदेव** ने अन्नादोरै को उच्च आदर्शों का मनुष्य, कुशल प्रशासक और देशभक्त के रूप में याद किया. लोकसभा के उपाध्यक्ष **आर० के० खाडिलकर** ने अन्नादोरै को तमिलनाडु की स्थिरता और प्रगति का स्तंभ बताया. जनसंघ के संसदीय पार्टी के महासचिव **सुंदरसिंह भंडारी** ने कहा कि अन्नादोरै ने यह महसूस कर लिया था कि तमिलनाडु का कल्याण सारे देश के कल्याण से बँधा हुआ है और लोगों में इस तरह की भावना जगाने के लिए उन्होंने अथक प्रयास किया. गुजरात के मुख्यमंत्री हितेंद्र देसाई ने उन्हें निस्वार्थ समाजसेवी के आदर्श के रूप में याद किया.

उपद्रव

नबी और टायनबी

शुक्रवार, ३१ जनवरी कलकत्ते के चौरंगी क्षेत्र में कुछ ही घंटों में उपद्रवों के दौरान, इतना कुछ हो गया जितना कई दिन के उपद्रवों के बाद भी नहीं हो पाता, उपद्रवियों ने मौक़े से लाभ उठा कर, जल्दी-जल्दी में अपना बक़ाया कोटा पूरा कर लिया. चार आदमी घटना-स्थल पर पुलिस की गोली से जान से मारे गये. ६७ घायलों में २२ पुलिस वाले थे, पुलिस ने पूरे धैर्य से काम लिया और लाठी चार्ज और आँसू गैस के विफल होने के बाद गोली चलायी. उपद्रव सुबह १० बजे के बाद शुरू हुआ और ४ बजे शाम तक उस पर क़ाबू पा लिया गया. १०० से कुछ अधिक लोग गिरफ़्तार किये गये.

टायनबी की टिप्पणी : यह सब दैनिक 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित प्रमुख इतिहासकार प्रोफ़ेसर आर्नल्ड जोसेफ़ टायनबी के एक लेख को ले कर हुआ. यह लेख 'स्टेट्समैन' में २६ जनवरी को प्रकाशित हुआ था जिस में इस्लाम के प्रवर्त्तक पैग़ंबर हजरत मुहम्मद साहब (नबी) की तुलना महात्मा गांधी से की गयी थी. तुलना में मुहम्मद साहब को एक सफल राजनैतिक नेता बताया गया था और कहा गया था कि उन्होंने राजनीति को गांधी के समान स्वेच्छा से नहीं, अपनी ज़िंदगी में आये बुहरान के दबाव से अपनाया था. रचना में यह भी कहा गया था कि सियासी तौर पर कामयाब मुहम्मद साहब को रूहानी नुक़सान उठाने पड़े थे. इस के खिलाफ़ अखबार मे जो ख़त भेजे गये वे प्रकाशित हुए और संपादक ने संपादकीय में अपनी सफ़ाई पेश की. लेकिन कुछ निहित स्वार्थ वाले राजनैतिक दलों ने बहते दरिया में हाथ धोने के लिए मुसलमानों को भड़काया जिस के परिणाम-स्वरूप हिंसात्मक प्रदर्शन और लूट-खसोट के मंज़र देखने को मिले. दो निजी गाड़ियों, एक डिलिवरी वैन, एक स्कूटर, एक पुलिस जीप और एक पान की दुकान में आग लगा दी गयी. फल और पान की कई दुकानों को

के पहाड़ी इलाकों का किया गया है. मणिपुर और त्रिपुरा के पहाड़ी क्षेत्रों के लिए भी इसी प्रकार का प्रशासनिक ढांचा सुझाया गया है. इन क्षेत्रों में ज़िला स्तर पर स्वायत्तता की आवश्यकता इस लिए महसूस हुई है कि नेफ़ा, मणिपुर और त्रिपुरा में जो जन-जातियाँ रहती हैं वह अपने तंग दायरों की वजह से बिलकुल अलग-अलग प्रकार की मान्यताओं और आवश्यकताओं से प्रभावित हैं. इस लिए उन के समुचित विकास के लिए कुछ समय तक उन्हें इस प्रकार की स्थानीय स्वायत्तता की ज़रूरत है. इन परिचमी सीमाओं के अतिरिक्त प्रशासनिक सुधार आयोग ने राजधानी दिल्ली के प्रशासनिक ढांचे में महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन करने की सिफ़ारिश की है. आयोग के अनुसार दिल्ली नगर निगम और महानगर परिषद् को मिला कर एक ही प्रतिनिधि संस्था बननी चाहिए ताकि दिल्ली में बहुपक्षीय नियंत्रण समाप्त हो जाये. नगर निगम के सभी कार्यों का उत्तरदायित्व महानगर परिषद् ले मगर दिल्ली परिवहन, विद्युत् संप्रदाय, जल प्रदाय आदि संस्थानों को स्वायत्तता दी जाये और वह इसी प्रकार महानगर परिषद् से संबद्ध हों जिस प्रकार साधारणतया स्वायत्तता प्राप्त संस्थाएँ विधानसभाओं से होती हैं. नयी दिल्ली नगरपालिका और छावनी बोर्ड के संबंध में आयोग ने किसी महत्त्वपूर्ण सुधार का सुझाव नहीं दिया है. हाँ इतना ज़रूर है कि आयोग ने महानगर परिषद् में नयी दिल्ली नगरपालिका के तीन सदस्य—छावनी बोर्ड, दिल्ली परिवहन विद्युत् प्रदाय तथा जल प्रदाय संस्थानों से एक-एक सदस्य मनोनीत करने की भी सिफ़ारिश की है.

राजधानी दिल्ली : महानगर परिषद् को प्रभावशाली संस्था बनाने के लिए आयोग ने सुझाव दिये हैं कि परिषद् में पारित प्रस्तावों को साधारणतया केंद्रीय सरकार पूर्ण रूप से स्वीकार करे और उन्हें स्वीकृति देने का अधिकार भी दिल्ली के उपराज्यपाल को दिया जाये. आयोग ने यह महसूस किया है कि यदि केंद्रीय सरकार के अधिकारियों का दखल रहा तो यह प्रतिनिधि संस्था ठीक प्रकार से काम नहीं कर सकेगी. अतः यह सुझाव दिया गया है कि केंद्रीय सरकार महानगर परिषद् के मामलों में कम से कम दखलंदाज़ी करे. मगर जहाँ एक ओर आयोग ने यह सिफ़ारिश की है कि महानगर परिषद् को कार्य करने के लिए अधिक अधिकार और प्रभाव दिया जाये वहाँ उस ने वित्तीय मामलों में महानगर परिषद् को परतंत्र ही रखा है. इस लिए यह बात स्पष्ट नहीं हो पायी है कि दिल्ली जैसे महानगर में जो आम शिकायत है उस का निवारण कैसे हो जायेगा. जब पैसे देने और बजट स्वीकार करने का अधिकार केवल केंद्रीय सरकार के पास रहेगा तो यह आशा करना कि महानगर परिषद् और उस पर आधारित प्रशासन स्वतंत्रतापूर्वक दिल्ली नगर का विकास कैसे कर सकेगा यह एक पहेली है. इस लिए आयोग के इस प्रकार के सुझाव का स्वागत अधिकारी वर्ग ने तो किया है मगर दिल्ली के राजनैतिक दल इन सुझावों के प्रति उत्साही नहीं दिखाई देते. कुछ समय पहले उपराज्यपाल आदित्यनाथ झा ने केंद्रीय सरकार को लिखा था कि दिल्ली नगर निगम को समाप्त कर के उस के सभी कार्य केंद्र अपने हाथ में ले मगर यदि नगर निगम के कार्यों को महानगर परिषद् को सौंपा जाये और उस की जेब पर केंद्र का ताला लगा तो दिल्ली के समुचित विकास की आशा करना व्यर्थ होगा. यह बात सभी चिंतक मान चुके हैं कि दिल्ली नगर में दोहरी शासन व्यवस्था समाप्त हो जानी चाहिए मगर प्रशासनिक सुधार आयोग ने जो सुझाव दिये हैं उन से इस दिशा में कोई ठोस प्रगति होने की आशा नहीं है.

बहुपक्षीय अधिकारों का जमघट

दिल्ली के महापौर हंसराज गुप्त को प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट के बारे में जितनी जानकारी है, उस के आधार पर वह इस बात के पक्ष में हैं कि दिल्ली नगर निगम, नयी दिल्ली नगरपालिका, मैट्रोपोलिटन कौंसिल को एक इकाई के रूप में संगठित किया जाये. वह इकाई विधानसभा भी हो सकती है या विधानसभा के समकक्ष भी. उसे वित्तीय मामलों में भी अधिकार होना चाहिए. अन्य संस्थाएँ उस के अंतर्गत होनी चाहिए.

काम को सुचारु रूप से चलाने के लिए वर्त्तमान ५६ निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या और बढ़ायी जा सकती है. क्षेत्रवार खंड समितियों को अपने क्षेत्र के विकास के लिए कुछ धन दिया जाना चाहिए ताकि वे अपने क्षेत्र का यथोचित विकास कर सकें.

जहाँ तक उपराज्यपाल या राज्यपाल के अधिकारों का संबंध है उन में कटौती की जानी चाहिए और अन्य राज्यों की तरह उसे भी केवल सलाह देने का ही अधिकार होना चाहिए. ऐसा होने से राजधानी का साफ़-सुथरा चेहरा निखर पायेगा और बहुपक्षीय अधिकारों का जो जमघट-सा बना हुआ वह समाप्त हो जायेगा. जब पिछले दिनों श्री गुप्त तोक्यो गये तो उन्हें बताया गया कि वहाँ पहले तरह-तरह के अधिकारी थे, लेकिन वहाँ उन्होंने एक विधानसभा बना दी और उस के अंतर्गत सभी स्थानीय संस्थाएँ कर दी गयी हैं. नतीजा यह हुआ है कि वे अपना काम बखूबी अंजाम दे रहे हैं और १९६४ के ओलिंपिक खेलों के लिए जिस प्रकार उन का आयोजन किया गया था, वह उल्लेखनीय है.

श्री हंसराज गुप्त ने **दिनमान** को बताया कि नयी दिल्ली नगरपालिका का १५-१६ मील का एक छोटा-सा इलाका है जिस में वह तरह-तरह के विकास कार्य कर रही है. लोगों के मन में स्वभावतः यह प्रश्न उठ सकता है कि नगरनिगम क्यों पीछे है. यदि इन सभी इकाइयों को एक इकाई में जोड़ दिया जाये तो लोगों के मन की यह भावना समाप्त हो सकती है. फिर उन्होंने हँस कर कहा : हो तो सब कुछ सकता है, लेकिन राजनीति आड़े रहती है. दुर्भाग्य यह है कि मामला चाहे राज्य का हो या केंद्र का, हर राजनीतिक पार्टी अपना स्वार्थ साधने की सोचती है. जैसे सार्वजनिक नलों के इस्तेमाल पर होने वाले खर्च की रकम पहले नगर निगम देता था लेकिन क्यों कि बाद में उसे वह रकम केंद्र से मिलनी बंद हो गयी तो पानी और निकास समिति को यह रकम जुटाने के लिए कहना पड़ा.

हंसराज गुप्त

प्रभावशाली परिषद् : संसदीय और संवैधानिक अध्ययन संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी ने दिल्ली की शासन व्यवस्था के संबंध में एक शोध ग्रंथ लिखा है. इस ग्रंथ की संक्षिप्त रूप-रेखा में डॉ. सिंघवी ने कुछ प्रशासनिक सुधारों का सुझाव दिया है. उन के अनुसार दिल्ली के प्रशासनिक ढांचे में सब से उपयुक्त सुधार बहुपक्षीय अधिकारों को कम करना होगा. इस उद्देश्य के लिए दिल्ली नगर निगम के सभी कार्य महानगर परिषद् के हवाले कर दिये जायें. महानगर परिषद् के अध्यक्ष और महापौर के पदों को एक कर के दिल्ली नगर निगम को समाप्त कर दिया जाये. महानगर परिषद् का नेतृत्व मुख्य कार्यकारी पार्षद करेंगे और यह परिषद् सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर काम करे. प्रादेशिक विषयों के संबंध में महानगर परिषद् को वास्तविक अधिकार दिये जाने चाहिए और उन में प्रशासक अथवा केंद्रीय सरकार सामान्य अवस्था में हस्तक्षेप न करे. इस प्रकार की योजना में कानून-व्यवस्था केंद्रीय सरकार का ही उत्तरदायित्व रहे तथा दिल्ली नगरपालिका और दिल्ली छावनी बोर्ड को महानगर परिषद् और मुख्य कार्यकारी पार्षद के अधिकार क्षेत्र से अलग रख दिया जाये. इस प्रकार की योजना से ही उन दोनों पक्षों के बीच समझौता हो सकता है जिन में से एक तो प्रजातांत्रिक अधिकार और स्थानीय सरकार की माँग करता है और दूसरा पक्ष संघ की राजधानी में विशेष प्रकार की आवश्यकताओं को मद्दनज़र रख कर केंद्रीय नियंत्रण की माँग करता है. डॉ. सिंघवी के अनुसार महानगर परिषद् तो केवल मात्र वाद-विवाद की एक संस्था है.

ख़तरनाक ख़ामोशी

भारी तूफ़ान के पहले जैसे वातावरण विल्कुल शांत हो जाता है, हवा थम जाती है और रहस्यमय सन्नाटे का एहसास होने लगता है, ठीक यही स्थिति **बंगाल** में मतदान के पूर्व देखी जा रही है. विभिन्न दलों की दौड़-धूप चरम सीमा तक पहुँचने के बाद अव विराम की स्थिति में आ गयी है. वड़ी सभाओं और जुलूसों का स्थान घर-घर की गुहार-मनुहार ने ले लिया है.

इस वार कांग्रेस और संयुक्त मोर्चा के उम्मीदवारों के बीच मुक़ावला इतना ज़ोरदार है कि परिणाम के वारे में पहले से कुछ भी कह पाना मुश्किल हो रहा है. खुद कांग्रेसी और संयुक्त मोर्चा दोनों कोई भविष्यवाणी करने में असमर्थ दीखते हैं. **दिनमान** के प्रतिनिधि के साथ वातचीत के दौरान विभिन्न दलों के नेताओं और उम्मीदवारों ने आशा पर अधिक ज़ोर दिया और यह स्वीकार किया कि मुक़ावला कुछ इस तरह का है कि पहले से कुछ भी कह पाना मुश्किल है.

वंगाल में मध्यावधि में १३ लाख नये मतदाता हैं जो पहली वार अपने वयस्क मताधिकार का उपयोग करेंगे. कुल मतदाता संख्या में उन का प्रतिशत १८ होगा जो निर्वाचन को प्रभावित करने के लिए काफ़ी है. पिछले चनाव में मतदाता संख्या २,०२,३६,४९१ थी.

तृतीय शक्ति : चनाव के वाद राज्य में तृतीय शक्ति के उदय होने की आशा की जा रही है. नये दल आपस में मिल कर एक मोर्चा वना सकते हैं. ततीय शक्ति में ग़ैर-कम्युनिस्ट दल ही एक साथ हो सकते हैं जिन में लोक दल, राष्ट्रीय गणतांत्रिक मोर्चा और वंगला जातीय दल प्रमुख हैं. लोक सेवक दल, संघ, प्रसपा और संसपा भी इस में आ सकते हैं.

लोक दल के नेता प्रो. हुमायुन कविर ने मेदिनीपुर के उसी स्थान पर पुनः चुनाव सभा को संवोधित कर, जहाँ उन्हें हिंसात्मक हमले से घायल कर दिया गया था, हिंसात्मक ताकतों की चुनौती को स्वीकार किया.

परिपक्वता : सारे सुखद-दुखद घटना चक्र के वावजूद यह मानना पड़ेगा कि बंगाल में राजनैतिक परिपक्वता आयी है और राजनैतिक दलों का झुकाव ध्रुवीकरण की ओर है. यह इस वात से भी जाहिर है कि इस वार कुल २८० सीटों के लिए १०१९ उम्मीदवार हैं जव कि १९५७ के आम निर्वाचन में १०५९ उम्मीदवार थे. कलकत्ते में भी कुल २३ निर्वाचन क्षेत्रों के लिए उम्मीदवारों की संख्या ११६ से घट कर ८९ रह गयी है जिस का मतलव यह हुआ कि उम्मीदवारों की संख्या में २३ फ़ीसदी कमी आयी है. १९६७ में पूरे वंगाल में दो दर्जन से कुछ अधिक सीटों पर सीधी टक्करें हुई थीं जव कि इस वार ६४ स्थानों पर सीधी टक्करें हो रही हैं. कलकत्ते में सीधी टक्करों की संख्या २ से वढ़ कर ७ हो हो गयी है. कई नये दलों के आविर्भाव के वावजूद यह स्थिति है; जिस से परिपक्वता और ध्रुवीकरण का संकेत मिलता है. इस वार चुनाव प्रचार का ढंग भी कुछ वदला नज़र आ रहा है. पोस्टर-दीवारों में लिखे नारे और जुलूस पहले से कम नज़र आ रहे हैं. लेकिन उम्मीदवार और राजनैतिक कार्यकर्ता पहले से अधिक व्यस्त हैं. इस वार सभा और जुलूसों से अधिक ज़ोर घर-घर जा कर निवेदन करने पर दिया जा रहा है. संयुक्त मोर्चा-दल के स कार्य में अधिक सक्रिय और निपुण नज़र आ रहे हैं जव कि कांग्रेसी नेता अधिक ज़ोर वड़े वड़े नेताओं को वुला कर वड़ी वड़ी सभाएँ करने पर देते रहे हैं.

परिपक्वता के संदर्भ में एक उल्लेखनीय वात कांग्रसी प्रचार से संवद्ध है. कांग्रेस ने अपने प्रचार में संयुक्त मोर्चा की आलोचना पर उतना ज़ोर नहीं दिया जितना कम्युनिस्टों की आलोचना पर दिया. इस का एक स्पष्ट उद्देश्य यह था कि इस से संयुक्त मोर्चा में फूट पड़ेगी. उन के प्रचार का सार यह है कि 'कम्युनिस्ट राष्ट्रविरोधी ताक़त हैं. और प्रजातंत्र में विश्वास रखने वाले राजनैतिक दलों का यह कर्त्तव्य है कि वह कम्युनिस्टों से अलग रहें. लेकिन इस प्रचार का कोई खास असर पड़ता नज़र नहीं आया. ग़ैर-कम्युनिस्ट और ग़ैर-कांग्रेसी खास कर संयुक्त मोर्चा के दूसरे दलों का कहना यह रहा कि वंगाल में कम्युनिस्टों को छोड़ कर राजनैतिक शक्तियों के ध्रुवीकरण की वात ही वेकार और वेमानी है.

निर्वाचन वहिष्कार क्षेत्र : उग्रपंथी नक्सलवादियों ने चुनाव वहिष्कार के लिए अपना आंदोलन आखिर तक जारी रखा है. जहाँ कहीं उन के नारे मिटाये गये हैं, उन्होंने दूसरे नारे लिख मारे हैं. कहीं-कहीं एक मिटाया गया तो दो नये लिखे पाये गये. कलकत्ता के अलावा दुर्गापुर में इन की अधिक हलचल देखी गयी. यह वंगाल का प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र है जहाँ देश-विदेश की ७०० करोड़ पये की पूँजी पिछले एक दशक में विनियोजित हुई है. इस वर्ष सरस्वती पूजा में जम कर भाग लेने वाले नक्सलवादियों ने चित्तरंजन के निकटस्थ सिझुरी और सुंदर पहाड़ी क्षेत्रों को निर्वाचन वहिष्कार क्षेत्र घोषित किया है. मूल योजना के अनुसार नक्सलवादी इस क्षेत्र के मतदाताओं को मतदान की अनुमति नहीं देंगे.

विहार के मध्यावधि चुनाव में राजनैतिक गरमी खासी है लेकिन ज़ोर हर पार्टी का अलग-अलग है. चुनाव समझौता केवल संसपा, प्रसपा और लोकतांत्रिक कांग्रस पार्टियों में ही हो पाया है. अव सभी पार्टियाँ अपने-अपने वल-वूते पर चुनाव लड़ रही हैं. कांग्रेस की स्थिति लगभग पिछले आम चुनाव जैसी ही है लेकिन १९६७ से ले कर २५ जून १९६८ तक एक के वाद एक जो विहार में तीन मन्त्रिमंडल वने और गिरे उस से यह वात सावित हो गयी कि यह ग़ैर-कांग्रसी सरकारें भी जनता की दृष्टि में अवसरवादी और पद-लोलुप ही सिद्ध हुई हैं. संयुक्त समाजवा ी दल के पास डॉ. राममनोहर लोहिया जैसा अव नेता नहीं रहा है और उस में आपसी फूट के कारण उस का वह दवदवा नहीं रह गया जो १९६७ के चुनाव में था. दो साल के इस अरसे में जनसंघ ने अपनी स्थिति काफ़ी मज़वूत की है और वर्त्तमान संकेतों से यह पता चलता है कि ३१८ विधानसभाई सदस्यों में जहाँ जनसंघ को पिछली वार २६ और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी को ६८ स्थान मिले थे इस वार जनसंघ के सदस्यों की संख्या अगर तिगुनी नहीं तो दुगुनी अवश्य होगी; लेकिन संसपा के सदस्यों की संख्या काफ़ी मात्रा में घट सकती है. जनसंघ के नेता यह दावा कर रहे हैं कि कलकत्ता से ले कर अमृतसर तक कांग्रेस का सफ़ाया होगा और उन की स्थिति मज़वूत होगी. उन के दावे में तथ्य ज़रूर है क्यों कि जनसंघी कार्यकर्ता अन्य-पार्टियों के कार्यकर्ताओं से अधिक परिश्रमी और लगनशील हैं. जनसंघ को पिछले चुनाव में वहुत से मुसलमानों के मत मिल गये थे क्यों कि तव कांग्रेस को यह लोग पसंद नहीं करते थे. लेकिन कुछ विवादास्पद कांग्रेसी नेताओं के चुनाव-क्षेत्र से हट जाने से मुसलमानों का क्षोभ कांग्रेस के प्रति कुछ कम ज़रूर हुआ है. पिछले चुनाव में संसपा, प्रसपा और लोकतांत्रिक कांग्रेस की मिली-जुली संख्या १०९ थी, जो अव ऊपरी एकता लेकिन भीतरी फूट के कारण कम हो सकती है. कांग्रेसी नेताओं को यह उम्मीद है कि उन के निश्चित और परंपरागत समझे जाने वाले स्थान जो आपसी फूट के कारण पिछली वार हाथ से निकल गये थे, इस वार पुनः उन के हाथ में आ सकते हैं. दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों को पिछली वार २८ स्थान मिले थे. वर्त्तमान

कामाख्या नारायण सिंह : कई रंग

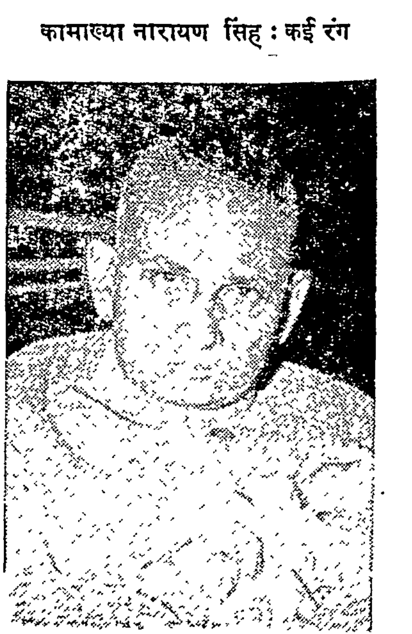

संकेतों से पता चलता है कि दरभंगा, गया, भागलपुर और छपरा ज़िलों में उन की स्थिति इस बार दृढ़ रहेगी. जमशेदपुर और धनबाद जैसे औद्योगिक क्षेत्रों में कम्युनिस्ट पार्टी का दबदबा बढ़ा है. २.९५ करोड़ बिहारी मतदाताओं के सामने २३ पार्टियाँ हैं जो अपने-अपने घोषणा-पत्र लिये उन्हें अपनी-अपनी तरफ़ आकर्षित कर रही हैं.

केंद्रीय नेताओं ने बिहार का बड़े पैमाने पर दौरा किया. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और कांग्रेस-अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने पाँच दिग्गज कांग्रेसी नेताओं से प्रदेश कांग्रेस समिति के हाथ मज़बूत करने और चुनाव जीतने की अपील की है. मौजूदा संकेतों से लगता है कि यह अपील कामयाब नहीं हुई है और तथाकथित बड़े नेता अपनी ही पार्टी के विरुद्ध काम करने में लगे हुए हैं. इसी कारण प्रदेश कांग्रेस समिति के अध्यक्ष ए. पी. शर्मा ने २२ व्यक्तियों को पार्टी-विरोधी कार्रवाइयों के लिए मुअत्तल कर के अपनी स्थिति मज़बूत करने की कोशिश की है. लेकिन कई हल्कों में ऐसा विश्वास है कि इस से उन की स्थिति मज़बूत नहीं होगी बल्कि कमज़ोर होगी. जनता पार्टी के रामगढ़ के राजा कामाख्या नारायणसिंह जिन्होंने पिछली बार जन क्रांति दल के साथ खड़े हो कर २८ स्थान जीते थे, इस बार १३८ स्थानों के लिए अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं. राजा के साथ जनता पार्टी के १८ सदस्यों के हट जाने से भोला पासवान मंत्रिमंडल का पतन हुआ था.

इन पार्टियों के अलावा झारखंड पार्टी एक क्षेत्रीय पार्टी है जो ६ छोटे-छोटे गुटों में बँटी हुई है. यही वजह है कि चुनाव आयोग ने किसी भी गुट को अखिल भारतीय पार्टी का दर्जा नहीं दिया है. यद्यपि जस्टिस रिचर्ड ने हल झारखंड पार्टी के रूप में ३४ उम्मीदवारों को खड़ा किया है, लेकिन अधिकतर आदिवासी और पिछड़ी जाति के लोगों को जनसंघ, कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टियों ने अपना कर जस्टिस रिचर्ड और जयपाल सिंह को पछाड़ दिया है.

पिछले आम चुनाव में कांग्रेस ने १२८ स्थान जीते थे. अब तक के संकेतों के अनुसार कांग्रेस की स्थिति कुछ दृढ़ ज़रूर हुई है और बहुत संभव है कि वह अपनी अतीत की स्थिति में कुछ संख्या और बढ़ा सके. लेकिन ५ बड़े नेताओं की आपसी फूट के कारण उसे उतने भी स्थान न मिल पायें, जितने उसे पहले आम चुनाव में मिले थे तो उस में ताज्जुब की कोई बात नहीं. २१ चुनाव क्षेत्रों में जहाँ मुसलमान आबादी बड़े पैमाने पर है, १३ निर्वाचन क्षेत्रों में नक्सलवादियों का ज़ोर है. लिहाज़ा ये स्थान वामपंथी पार्टियों को मिल सकते हैं.

राजनैतिक दल छात्रों और शिक्षकों की शक्ति को बहुत अच्छी तरह पहचानते हैं. उन्हें पता है कि मतदाता को प्रभावित करने में ये वर्ग कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. किसी तरह के ख़तरे से अपने को बचाने के लिए अधिकतर राजनैतिक दलों ने अपने घोषणापत्रों में छात्रों को ले कर कोई निश्चित मत व्यक्त नहीं किया है. हालाँकि उन का उपयोग वे अपने राजनैतिक हितों के लिए निरंतर करते रहे हैं. भारतीय जनसंघ चुनाव के अवसर पर उस शक्ति का उपयोग करने में एक कदम और आगे बढ़ गया है. पिछले दिनों उस ने विश्वविद्यालयों के छात्र संघों के भूतपूर्व अध्यक्षों और मंत्रियों की सहायता से उत्तर-प्रदेश में एक युवा अभियान का संगठन किया और उस की तरफ़ से राज्य के विभिन्न भागों में चुनाव-प्रचार के लिए लगभग ४०० कार्यकर्ता भेजे गये. ये कार्यकर्ता पैदल या साइकिल पर गाँव-गाँव में घूम कर कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करने में लगे हैं. दूसरा वर्ग शिक्षकों का है जो कांग्रेस की नीतियों से बहुत असंतुष्ट है. इस में मूलतः प्रारंभिक विद्यालयों के शिक्षक हैं जिन का संचालन ज़िला परिषदें करती हैं. अधिसंख्य ज़िला बोर्डों में कांग्रेस का कब्ज़ा रहा है. ये शिक्षक भी कांग्रेस के बहुत ही ख़िलाफ़ हैं. माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों की संख्या लगभग ५० हज़ार है. मतदाता को प्रभावित करने में इस वर्ग के शिक्षक उतने महत्त्वपूर्ण तो नहीं हैं लेकिन इन की वजह से भी कांग्रेस के सामने एक ख़तरा पैदा हुआ है. इन में से अधिकांश की विशेषता यह है कि वे कांग्रेस के विरोधी तो हैं ही लेकिन जनसंघ के पक्षधर नहीं हैं. डिग्री कॉलेज के शिक्षकों की संख्या ५ हज़ार है. उन का आंदोलन भी चल रहा है. ये भी कांग्रेस के नहीं हैं. माध्यमिक शिक्षक संघ के अध्यक्ष ठकुराई का कहना है कि वह यह अच्छी तरह जानते हैं कि कौन सा राजनैतिक दल उन के हितों की रक्षा करेगा. इतना तो निश्चित रूप से कहा ही जा सकता है कि शिक्षा संस्थानों से जुड़ा-बँधा यह वर्ग अधिकतर कांग्रेस का ही विरोध करेगा और उस का लाभ भारतीय क्रांति दल और जनसंघ को मिलेगा.

कांग्रेस की हालत इस राज्य में अगर कहीं सब से ज्यादा ख़राब है तो मेरठ में, जो भारतीय क्रांति दल के नेता चरणसिंह की जन्मभूमि है. यहाँ के कांग्रेसी कार्यकर्ता और नेता दोनों ही बहुत अधिक हताश और निराश नज़र आते हैं. कांग्रेसियों का सामना इस ज़िले में मुख्य रूप से भारतीय क्रांति दल के उम्मीदवार करेंगे. क्रांति दल का मतलब यहाँ पर चरण सिंह से है जो इस क्षेत्र में बड़े लोकप्रिय हैं. ख़ास कर जाटों में कोई भी उन के अलावा किसी और की नहीं सुनने वाला है. कहा जाता है कि सिर्फ़ इस एक ज़िले से उन्हें चुनाव के लिए १५ लाख रुपये इकट्ठा कर लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई. इस ज़िले में १५ जगहें हैं जिन में से पिछले चुनाव में कांग्रेस को ४ जगहें मिली थीं. इस वक्त हालत यह है कि कांग्रेस

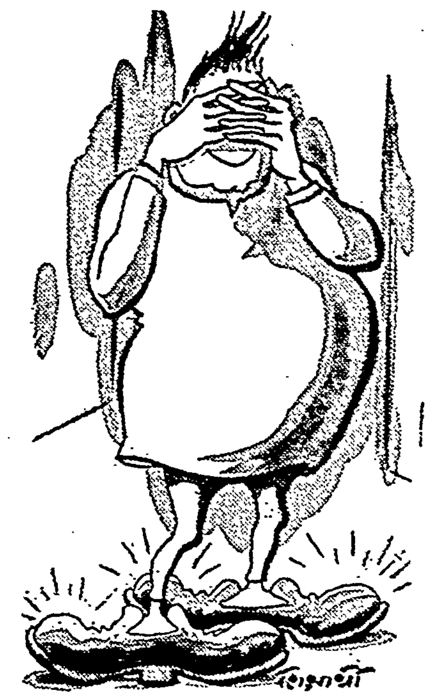

पता नहीं जीतने के बाद किधर पैर बढ़ाना पड़े.

एक जगह पाने की भी उम्मीद नहीं करती. चरण सिंह के ख़िलाफ़ यह शिकायत ज़ोरों पर है कि वह जातीयता के नाम पर मतदाताओं से वोट की अपील कर रहे हैं. मगर असलियत यह है कि ऐसा कोई तथ्य सामने नहीं आया है. यह बात अलग है कि जाट वर्ग उन्हें अपना सर्वे-सर्वा मानता है. इस बीच क्रांति दल को ले कर जनसंघ के दृष्टिकोण में भी थोड़ा परिवर्तन आया है. पहले जनसंघ का ख़याल था कि क्रांति दल सिर्फ़ कांग्रेस के ही वोट बँटायेगा लेकिन इधर ऐसा लगने लगा है कि क्रांति दल का प्रवेश उन क्षेत्रों में भी हो गया है जिन्हें जनसंघ अपनी मिल्कियत समझता था. इसी लिए जातिवाद का आरोप लगाने में जनसंघ भी शामिल हो गया है. वैसे एक असलियत यह भी है कि इस क्षेत्र के मतदाता किसी दल के नेता की ज़बान से चरणसिंह की बुराई सुनने को तैयार नहीं हैं. जिस किसी चुनाव सभा में उन के ख़िलाफ़ कोई एक शब्द कहता है भीड़ में कुत्ते और बिल्ली की बोलियाँ सुनाई देने लगती हैं. पिछले दिनों चपरौली चुनाव क्षेत्र में, जहाँ से चरणसिंह चुनाव लड़ रहे हैं, जब केंद्रीय गृहमंत्री यशवंतराव चह्वाण एक भाषण दे रहे थे तो वहाँ सुनने वालों की संख्या बहुत कम रही. चरण सिंह की बढ़ती हुई लोकप्रियता से आतंकित हो कर कांग्रेसी, रिपब्लिकन, जनसंघी और संसोपाई नेताओं ने यह शंका व्यक्त की है कि उन के समर्थक जाट हरिजनों को ज़बरन मतदान में भाग लेने से रोक सकते हैं. इन नेताओं ने माँग की है कि बड़ौत और चपरौली चुनाव क्षेत्रों में केंद्रीय पुलिस के जवान तैनात किये जायें. चरणसिंह ने जवाब देते हुए यह कहा है कि अगर वहाँ पर सेना के लोगों को तैनात किया जाये तो भी मैं उन का स्वागत करूँगा. जातिवाद के आरोप का खंडन करते हुए उन्होंने कहा कि क्रांति दल

के ४०८ उम्मीदवारों में सिर्फ़ ९ जाट हैं. २०० से अधिक संख्या पिछड़े वर्गों के उम्मीदवारों की है और दो दर्जन के आसपास मुसलमान हैं.

अलवत्ता आगरा में कांग्रेस सब से अधिक आशान्वित दिखाई देती है. पिछले आम चुनाव में ज़िले की १० जगहों में से उसे सिर्फ़ ३ जगहें मिली थीं. इस बार ऐसा लगता है कि वह ५ या ६ जगहों पर कब्ज़ा कर पाने में सफल हो सकेगी. उस की आशा का एक कारण यह भी है कि इस ज़िले में जनसंघ, भारतीय क्रांति दल, संसोपा और रिपब्लिकन सभी की स्थिति बहुत कमज़ोर है और उन की वजह से कांग्रेस को किसी कड़ी चुनौती का मुकाबला नहीं करना पड़ेगा.

राज्य के दक्षिण-पूर्वी इलाक़े यानी हमीरपुर और बांदा में पड़ोसी ज़िलों की तुलना में चुनाव की चहल-पहल ज्यादा है. रिक्शों से ले कर जीपों तक पर विभिन्न पार्टियों के झंडे लहरा रहे हैं और दीवारें पोस्टरों से रँगी नज़र आती हैं. हमीरपुर ज़िले की पाँचों सीटें पिछले चुनाव में कांग्रेस के हाथ से निकल चुकी थीं. इन में से ४ जनसंघ को मिली थीं और एक उसी द्वारा समर्थित एक निर्दलीय उम्मीदवार को. इस बार कांग्रेस अपनी सारी शक्ति इस कोशिश में लगा रही है कि पिछले चुनाव की पराजय का कलंक धुल जाये. कांग्रेस की हार का मूल कारण गोवध विरोधी आंदोलन था जिस में चित्रकूट के साधुओं ने जनसंघ के लिए स्वामी ब्रह्मानंद के नेतृत्व में दोनों ही ज़िलों में ज़ोरदार प्रचार किया था. स्वामी ब्रह्मानन्द ने खुद लोक सभा के चुनाव में अपने कांग्रेसी प्रतिद्वंद्वी को ५९ हज़ार मतों से पराजित किया था. लेकिन इस चुनाव के अवसर पर गोवध-विरोध संबंधी भावना शिथिल हो चुकी है और उसे विषय बना कर मतदाता चुनाव की कोई बात नहीं कर रहे हैं. दूसरी तरफ़ जनसंघ के हाथ मज़बूत करने वाले बहुत से साधु, जिन में भरुवा के नागा बाबा भी हैं, खुले रूप से चुनाव प्रचार से अलग हो गये हैं. स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले इस क्षेत्र के एक लोकप्रिय नेता शत्रुघ्नसिंह भी, जो कि पिछले चुनाव में जनसंघ के साथ थे, क्रांति दल में चले गये हैं और उन की वजह से भी जनसंघ को नुकसान हो सकता है. इन सारी असुविधाओं के बावजूद जनसंघ इस कोशिश में है कि वह अपनी चारों सीटें पुनः प्राप्त कर सके. हमीरपुर में ज़िला जनसंघ के भूतपूर्व अध्यक्ष महादेव प्रसाद खुले ढंग से कांग्रेसी उम्मीदवार प्रताप नारायण दुबे के लिए प्रचार कर रहे हैं. जनसंघ और कांग्रेस दोनों ने ही सभी जगहों पर अपने उम्मीदवार खड़े किये हैं जब कि क्रांति दल ने केवल ४ जगहों पर. इस क्षेत्र में कम्युनिस्टों ने भी पहले की तुलना में कुछ अधिक लोकप्रियता प्राप्त की है. बांदा में जुलाई '६६ में 'भूमिहीनों को भूमि दो' का जो आंदोलन इन्होंने शुरू किया था उस में पुलिस की गोलियों से ८ व्यक्तियों की जानें गयी थीं. उस आंदोलन के बाद से ही कम्युनिस्टों को पिछड़ी जातियों का समर्थन प्राप्त हुआ और उस का उसे निश्चित रूप से लाभ मिलने वाला है. संसोपा ने अपने ३ उम्मीदवार खड़े किये हैं. इन के अलावा प्राउतिस्त ब्लाक के एक, रिपब्लिकन पार्टी के २ और ११ निर्दलीय उम्मीदवार हैं. मौदहा क्षेत्र कम्युनिस्टों का गढ़ बन गया है. इसी क्षेत्र से '५८ के उप-चुनाव में चंद्रभानु गुप्त को रानी राजेंद्र कुमारी ने पराजित किया था.

सरोजिनी नगर

उत्तरप्रदेश में ही लखनऊ के सरोजिनी नगर का गुमनाम निर्वाचन-क्षेत्र (देखिए **दिनमान**, २६ जनवरी १९६९) इस बीच सहसा बहुत प्रकाश में आ गया है. प्रदेश कांग्रेस के सर्वोच्च नेता **चंद्रभानु गुप्त** यहाँ से भी चुनाव लड़ रहे हैं. इस निर्वाचन-क्षेत्र से उन की प्रतिद्वंद्विता में **संसपा** के रामसागर आज़ाद, **भारतीय क्रांति दल** के बालकृष्ण शुक्ल, **मज़दूर परिषद्** के शिवकुमार मिश्र और **कम्युनिस्ट पार्टी** के हमीद खान के अलावा तीन निर्दलीय उम्मीदवार ग़रीबलाल यादव, विश्वनाथ यादव और नरेवेग हैं. लेकिन इस वक़्त तक पहुँचते-पहुँचते प्रायः सारे उम्मीदवार निष्क्रिय, उदासीन या हताश हो गये हैं. संघर्ष महज़ जनसंघ के हीरालाल यादव और श्री गुप्त के बीच रह गया है. क्रांति दल ने श्री यादव को समर्थन देने का वायदा किया था, अतः इस बीच दोनों मिल कर श्री यादव को पैदल दरवाज़-दरवाज़े घुमा रहे हैं और जातिवाद के सहारे श्री गुप्त को मात देने की व्यूह रचना हो रही है. क्योंकि इस चुनाव-क्षेत्र में यादव, हरिजन और पासी मतदाताओं की संख्या अधिक है इस लिए श्री यादव के समर्थकों का सारा ज़ोर पिछड़े वर्ग पर केंद्रित हो गया है. श्री गुप्त के समर्थक ब्लॉक प्रमुखों, गाँव-प्रधानों, सभापतियों और छोटी जाति के चौधरियों के ज़रिये मतदाताओं को चुपचाप अपनी ओर खींचने की कोशिश में लगे हैं. यह चुनाव कांग्रेस की तरफ़ से चंद्रभानु गुप्त के व्यक्तिगत प्रभाव पर कम स्थानीय राजा विजयकुमार त्रिपाठी के प्रभाव पर अधिक लड़ा जा रहा है. श्री गुप्त के समर्थकों को यह विश्वास है कि साधनहीनता के कारण हीरालाल यादव मतदान के दिन मतदाताओं को चुनाव-केंद्रों तक पहुँचाने में समर्थ नहीं हो सकेंगे और इस का लाभ श्री गुप्त को मिलेगा. लेकिन कांग्रेस के कुछ लोग यह जानते हैं कि ऐसा कोई लाभ श्री गुप्त को एन मौक़े पर नहीं मिलेगा. जनसंघ की तरफ़ से सारा काम चुपचाप हो रहा है. वे सभाएँ कम कर रहे हैं, व्यक्तिगत मतदाता से संपर्क करने की कोशिश अधिक कर रहे हैं. कांग्रेस सभाएँ भी कर रही है और चौधरियों के ज़रिये मतदाताओं पर दबाव डालने की भी कोशिश कर रही है. जनसंघ की तरफ़ से कुछ दिनों पहले ग्वालियर की राजमाता इस क्षेत्र में आयी थीं. उन्होंने अपने भाषण में जनसंघ को कांग्रेस का विकल्प बताते हुए उस के उम्मीदवार को विजयी बनाने की अपील की थी. **दिनमान** के प्रतिनिधि को इस क्षेत्र का दौरा करने पर पता चला कि साधारण मतदाता **हीरालाल यादव** को तो जानता है, लेकिन चंद्रभानु गुप्त को नहीं. बहुतों को तो यह भी पता नहीं है कि श्री गुप्त यहाँ से चुनाव लड़ रहे हैं. बहुत से मतदाता विजयकुमार त्रिपाठी को तो जरूर जानते हैं, लेकिन साथ ही वे यह भी कहते हैं कि वोट उसी को दिया जायेगा जिसे बिरादरी मतदान के एक दिन पहले तय करेगी. आम तौर पर मतदाताओं के बीच किसी भी पक्ष या विरोध को ले कर कोई विशेष विचारधारा कार्य करती हुई नहीं दिखाई दे रही है. शायद इस का कारण यह है कि मतदाता अपने को प्रकट नहीं करना चाहता. राजा विजयकुमार त्रिपाठी इस तीखी वास्तविकता से चिंतित होने लगे हैं. इस का संकेत श्री त्रिपाठी की चुनाव-सभाओं में मिला जहाँ उन्होंने यह बताया कि वह इस क्षेत्र से खुद खड़े न हो कर क्यों श्री गुप्त के लिए प्रचार कर रहे हैं. उन का कहना था कि यह क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ है' यदि श्री गुप्त यहाँ से चुन लिये जाते हैं तो इस का विकास कर सकेंगे. प्रमाण के लिए कहा गया कि श्री गुप्त ने रानीखेत की बहुत सेवा की है. श्री गुप्त ने अपने भाषण में यह कहा कि अपने बुढ़ापे और स्वास्थ्य की चिंता के कारण उन्हें रानीखेत छोड़ कर सरोजिनी नगर को अपना कार्यक्षेत्र बनाना पड़ा है. यों समझदार मतदाता यह जानते हैं कि सरोजिनी नगर का अशिक्षित और पिछड़ा हुआ क्षेत्र सुरक्षित

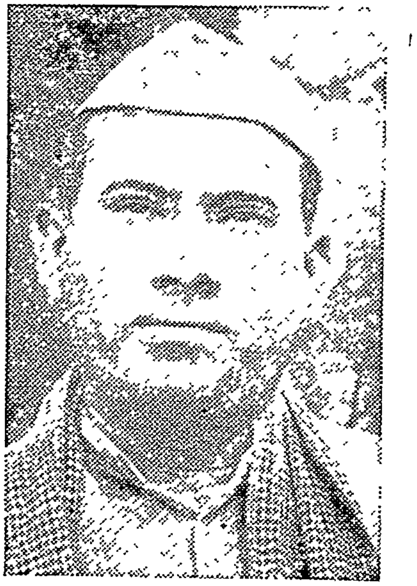

हीरालाल यादव : पैदल की शक्ति

समझ कर ही चुना गया है. इस समय स्थिति यह है कि चंद्रभानु गुप्त और हीरालाल यादव के बीच विजयकुमार त्रिपाठी का मुहरा शह बचा रहा है. अगर जनसंघ ने अपने पैदल हीरालाल यादव को फ़र्ज़ी बना लिया तो बाज़ी पलट सकती है. जनसंघ के नेताओं की दबी मुस्कान के साथ यह कहना है कि इस क्षेत्र में युद्ध के नगाड़ों की आवाज़ आसमान को भले न छुए, उस की वजह से पांव के नीचे की ज़मीन ज़रूर खिसक जायेगी. इन नेताओं के अनुसार चंद्रभानु गुप्त की स्थिति यह है कि वह उत्तर-प्रदेश के किसी भी क्षेत्र से नहीं जीत सकते. कारण : कांग्रेस सत्ता की गद्दियों से ही नहीं साधारण जनता के हृदय से भी अलग हो गयी है.

पंजाब

पंजाब में मध्यावधि चुनाव की गरमी जिस तरह बढ़ रही है उसी तरह लोगों के दिलों की गरमी भी बढ़ रही है और दलों की गरमी के कारण विरोधी पार्टियों के कार्यकर्त्ताओं और समर्थकों में लगातार होने वाली झड़पें दिनोंदिन बढ़ती जा रही हैं. पिछले दिनों मोगा में जनता पार्टी के नेता लक्ष्मणसिंह गिल और अकाली पार्टी के सोहनसिंह बस्सी के कार्यकर्त्ताओं में तकरार हो गयी, जिस की वजह से दोनों तरफ़ के लोग ज़ख्मी हुए. इस के साथ अखिल भारतीय स्तर के नेताओं के दौरों से लोगों का उत्साह बेशक बढ़ा हो या नहीं, किंतु राजनैतिक पार्टियों के सदस्यों और उन के कार्यकर्त्ताओं की उम्मीदें बहुत बढ़ी हैं. विशेष रूप से कांग्रेस पार्टी, जो अपनी नैय्या डगमगाती पा रही है, ने अपनी स्थिति में खासा सुधार किया है. मोरारजी देसाई और कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने पंजाब का दौरा किया और उसी घिसी-पिटी ज़ुबान में उन्होंने जनसंघ और अकालियों के सांप्रदायिक दृष्टिकोण से लोगों को सचेत कराया. लेकिन जनसंघ के प्रेमनाथ डोगरा यह मानते हैं कि कांग्रेसी सरकारें प्रभावहीन साबित हो चुकी हैं. पंजाब में आनंद मार्ग संस्था ने भी चुनाव-क्षेत्र में अपना दबदबा बढ़ाना चाहा है और उस का प्रांतत समूह पूरे ज़ोर-शोर से काम में लगा हुआ है. उन्होंने चुनाव आयोग से अपने-आप को पंजीकृत करा लिया है. आनंद मार्ग का क्षेत्र होशियारपुर ज़िला है और आनंदमार्गी लहर के आचार्य हरिहर आनंद अवधूत चुनाव-प्रचार में लगे हुए हैं.

सभी पार्टियों का चुनाव-प्रचार शिखर पर पहुँचा हुआ है. पटियाला में अकालियों के बड़े-बड़े विज्ञापन हैं, जिन पर संत फ़तेहसिंह के हाथ में तराज़ू है और उस पर लिखा है 'सच्चा और सुच्चा व्यापारी'. लोगों के मनोरंजन के लिए गांव-गांव में 'ढाढी जत्थे' नाम की गायकमंडलियां घूम-घूम कर लोगों का मनोरंजन कर रही हैं. कुछ अकाली कार्यकर्त्ता भगवे कपड़े पहन कर साधु के रूप में अकालियों के लिए वोट की भिक्षा मांग रहे हैं. इस के विपरीत कम्युनिस्ट पार्टी पंजाब तथा अन्य प्रदेशों के लोगों को नृत्य तथा नाटक दिखा कर खादीधारी कांग्रेसी प्रशासकों के विरुद्ध प्रचार कर रही हैं. कम्युनिस्ट पार्टी समर्थक नीली पगड़ीधारी अकालियों तथा पीली टोपी के जनसंघियों को भी नहीं बख्श रहे हैं. स्वतंत्र पार्टी अपने-आप को धर्म-निरपेक्ष होने का दावा कर रही है. लेकिन उकाला चुनाव-क्षेत्र से चुनाव लड़ने वाले उस के महामंत्री बसंतसिंह अपनी गाड़ी पर स्वतंत्र और अकाली दोनों पार्टियों का झंडा लगाये फिर रहे हैं. सब का मक़सद सिख मतदाताओं के मत प्राप्त करना है. रायपुर निर्वाचन-क्षेत्र से चिरंजी लाल नामक एक ऐसा व्यक्ति पिछले १५ सालों से चुनाव लड़ रहा है जिस के पास न कोई गाड़ी है, न साइकिल और न ही जीप. वह पैदल ही लोगों के घर जा-जा कर अपना प्रचार करते हैं.

इस बार सभी पार्टियां अपने चुनाव-दौर के दौरे देहातों में बड़े ज़ोर-शोर से कर रही हैं. होशियारपुर में मुकेरियां में सभी पार्टियों के सभी उम्मीदवार गये हैं. कांग्रेसी उम्मीदवार बहेती संप्रदाय के हैं, जिन का यहां पर काफ़ी दबदबा है. मुक़ाबला यहां कांग्रेस और जनसंघ में डट कर होगा. शामचौरासी में पिछले आम चुनाव में कांग्रेस के भक्त गुणादास निर्वाचित हुए थे.यद्यपि यहां वामपंथी पार्टियों का ज़ोर है और जनसंघ ने भी कुछ प्रभावशाली ज़मींदारों का समर्थन प्राप्त कर लिया है फिर भी कांग्रेस की स्थिति काफ़ी अच्छी है. गढ़शंकर के कांग्रेसी रतनसिंह यहां से चुनाव जीते हैं, यद्यपि जनसंघ और कम्युनिस्टों का यहां पर काफ़ी रसूख है. फिर भी यह इलाक़ा कांग्रेसी इलाका समझा जाता है. बलचौर से पिछली बार कांग्रेस के बालूराम निर्वाचित हुए थे. दल-बदल के कारण इस बार वह चुनाव नहीं लड़ रहे हैं, लेकिन वह अकाली और जनसंघ पार्टी की तरह अपना सहयोग स्वतंत्र पार्टी के गुरबख्शसिंह को दे रहे हैं. दिलीपचंद, जो बतौर निर्दल उम्मीदवार के पिछली बार हार गये थे, इस बार कांग्रेसी उम्मीदवार हैं. मुक़ाबला डट कर होगा, लेकिन कांग्रेस की हालत पतली है. भटिंडा के कोटकपूरा निर्वाचन-क्षेत्र में धन, धान्य और दारू का वितरण खुल कर हो रहा है, जहां पर कांग्रेस, अकाली और कम्युनिस्टों की करारी टक्कर है. लेकिन कम्युनिस्ट उम्मीदवार मास्टर बाबूसिंह कांग्रेस के हरबंससिंह सिधू और अकाली सुखदेवसिंह ढिल्लों की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हैं. सुखदेव सिंह ढिल्लों इलाक़े के बड़े ज़मींदार हैं और १९६२ में कांग्रेस की टिकट से चुनाव जीते थे. पक्काकलां निर्वाचन-क्षेत्र अकालियों का गढ़ है और उस के उम्मीदवार करनैलसिंह हमेशा यहां से विजयी होते आये हैं. लेकिन इस बार कांग्रेस के त्रिलोचनसिंह रियासती के मैदान में आ जाने से उन की एकछत्र स्थिति डगमगा-सी गयी है. मैसा निर्वाचन-क्षेत्र कम्युनिस्टों का गढ़ है. यहां से प्रजामंडल के नेता जागीरसिंह जोगा के मुक़ाबले में महंत लखासिंह और पेप्सू के भूतपूर्व राजस्वमंत्री हरचरणसिंह का मुक़ाबला है. जोगा के पास ५०० सधे और वफ़ादार कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता हैं और इस समय उस की स्थिति अन्य दोनों उम्मीदवारों की अपेक्षा मज़बूत है. भटिंडा ज़िले में १४०० हरिजन मतदाता हैं. पिछले आम चुनाव में हरिजनों और सरकारी कर्मचारियों की बदौलत कांग्रेसी उम्मीदवार जीत गया था. अकाली-जनसंघ समझौता होने की वजह से हिंदू अधिक खुश नहीं हैं और बहुत मुमकिन है कि इस बार फिर ये लोग अकालियों की अपेक्षा अपने मत-पत्र कांग्रेस के डिब्बे में डालें.

कपूरथला के तीनों स्थानों से पिछली बार कांग्रेसी उम्मीदवार विजयी हुए थे, लेकिन इस बार कांग्रेस के लिए तीनों स्थान बटोर पाना मुमकिन नहीं होगा. कपूरथला निर्वाचन-क्षेत्र से अकाली-जनसंघ उम्मीदवार हरनामसिंह और कांग्रेस के कृपालसिंह में मुक़ाबला है. लेकिन जगजीतसिंह बस्सी हरनामसिंह के विरोधी हैं और इन सब उम्मीदवारों को डर निर्दल उम्मीदवार लखीसिंह से है, जो लवाना जाति के हैं. वैसे अकाली-जनसंघ उम्मीदवार हरनामसिंह भी लवाना जाति के हैं. जाटों पर कांग्रेस के उम्मीदवार का दबदबा है. हरनाम सिंह की स्थिति मज़बूत है. सुल्तानपुर लोधी चुनाव-क्षेत्र से अकाली पार्टी के महासचिव आत्मासिंह की टक्कर कम्युनिस्ट पार्टी के जगजीतसिंह खेड़ा से है. पिछले आम चुनाव में बलवंतसिंह ने बतौर कांग्रेसी उम्मीदवार के आत्मासिंह को हराया था. यहां से कांग्रेसी उम्मीदवार प्रीतमसिंह हैं, जो इंडियन नेशनल आर्मी के सिपहसालारों में से हैं. अकालियों के लिए यह बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसे जीतने के लिए वे एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रहे हैं. फगवाड़ा से डॉ. साधू राम, कांग्रेस और स्वर्णराम, जनसंघ के बीच सीधा मुक़ाबला है. यद्यपि कांग्रेस को यह स्थान हथिया पाना आसान-सा दीख रहा है लेकिन निर्णायक मत हिंदुओं और औद्योगिक मज़दूरों का साबित होगा.

पायल, धर्मकोट और बाघा पुराना निर्वाचन-क्षेत्रों में इस समय बहुत तनाव है. पायल क्षेत्र से ज्ञानसिंह राड़ेवाला को हराने के लिए कांग्रेस और कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता निर्दल उम्मीदवार बेअंतसिंह के पक्ष में प्रचार कर रहे हैं. बाघा पुराना से गुरचरणसिंह, अकाली और तेजासिंह, कांग्रेस की टक्कर है. यहां भी मार पीट की छिट-पुट घटनाएँ हुई हैं, लिहाज़ा तनाव बना हुआ है. धर्मकोट और बाघा पुराना फिरोज़पुर ज़िले में आता है और इस ज़िले में तनाव के कारण सैलानियों के आने पर काफ़ी असर पड़ा है.

प्रदेश

दिल्ली

नये बजट

पिछले दिनों दिल्ली नगर निगम की बैठक में चार बजट पेश हुए. सब से पहला और महत्त्वपूर्ण बजट स्थायी समिति के अध्यक्ष केदारनाथ साहनी ने पेश किया. दिल्ली नगर निगम की खोखली हालत को सुधारने के लिए उन्होंने संपत्ति-कर, मनोरंजन-कर आदि में वृद्धि की पेशकश की. उन के हिसाब से यह वृद्धि सामान्य कर से २५ लाख, अग्नि-कर से १ लाख, मनोरंजन-कर से तथा मोटर गाड़ी-कर की शेष राशि से ९१ लाख, सीमा-कर से २० लाख, तह बाज़ारी से ५ लाख और सब्ज़ीमंडी के किराये से २५ लाख आदि बैठती है. मनोरंजन-कर के मौजूदा ४० प्रतिशत कर में परिवर्तन कर के ६० प्रतिशत करने की तजवीज़ इस बजट में है. संपत्ति-कर की मौजूदा दर १० प्रतिशत से बढ़ा कर ११-१२ प्रतिशत से ले कर २२ प्रतिशत तक ले जाने का सुझाव है. मोरारका समिति ने निगम की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए जो सिफ़ारिशें दीं उन में संपत्ति-कर न्यूनतम १५ प्रतिशत रखने का सुझाव दिया गया था. निगमायुक्त ने अपने बजट में जो यह सुझाव दे दिया था उस सुझाव को कार्यरूप मे परिणत कर दिया गया था. लेकिन साहनी साहब ने कुछ उदारता का परिचय दे ग़रीब लोगों को अधिक राहत देने की सिफ़ारिश की.

दूसरा महत्त्वपूर्ण बजट दिल्ली परिवहन समिति के अध्यक्ष श्री रामलाल ने पेश किया. उन्होंने बताया कि १९६८-६९ के दौरान २०० बसें खरीदने के लिए १८० लाख रुपये की व्यवस्था की गयी है. श्री रामलाल ने कहा कि १९६८-६९ के दौरान बढ़ाये जाने वाली बसों की प्रस्तावित संख्या १६३ थी और १९६९-७० में २८० बसें बढ़ायी जाने का प्रस्ताव था, ताकि १९६९-७० के अंत में १५१५ बसें और ८० प्रतिशत उपयोगिता की बसें साबित हो सकें. लेकिन २८० की बजाय केवल २२३ बसें ही बढ़ायी जा सकीं. उन्होंने कहा कि टायरों की चोरी पर रोक लगाने के लिए उन्होंने टायरों पर नये ढंग की मोहर लगानी शुरू करवा दी है. अपनी इच्छा के अनुसार यात्रा कीजिये टिकट योजना के अंतर्गत अप्रैल से दिसंबर तक ३६ लाख रुपये से अधिक आमदनी रही.

हरयाणा

कभी इधर, कभी उधर

२८ जनवरी को हरयाणा विधानसभा का अधिवेशन बड़े ही तनावपूर्ण वातावरण में

बंसीलाल : आश्चर्यजनक स्थिति

शुरू हुआ. अधिवेशन शुरू होने से पहले कांग्रेस के एक सदस्य रूपलाल मेहता ने संयुक्त विधायक दल में शामिल होने का निर्णय अध्यक्ष ब्रिगेडियर रणसिंह को बता दिया. इस से बंसीलाल और उन के समर्थकों को कुछ धक्का ज़रूर लगा, लेकिन उन के लिए सब से बड़ी आश्चर्यजनक स्थिति तब पैदा हो गयी जब बंसीलाल के भूतपूर्व मंत्री रामधारी गौड़ ने अध्यक्ष को ४ घंटे में दो पत्र लिखे. पहले पत्र में उन्होंने अध्यक्ष को सूचित किया कि वह कांग्रेस पार्टी के सदस्य के रूप में सभा में बैठेंगे, लेकिन दो घंटे बाद एक और पत्र में उन्होंने कहा कि उन्होंने संयुक्त विधायक दल के साथ बैठने का फ़ैसला किया है और उन का यह निर्णय अंतिम है. इस फ़ैसले से कांग्रेसी खेमे में तहलका मच गया और कुछ देर पहले आश्वस्त दीखने वाले मुख्यमंत्री बंसीलाल के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ती नज़र आने लगीं. अपनी स्थिति को साफ़ करते हुए श्री गौड़ ने बताया कि वह बहुत पहले ही कांग्रेस पार्टी छोड़ चुके थे और अब वहाँ उन के लौटने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता. उन्होंने बताया कि २८ जनवरी को उन का स्वास्थ्य देखने की गर्ज़ से जब मुख्यमंत्री उन के यहाँ पधारे तो उन्होंने उन से एक काग़ज़ पर हस्ताक्षर कराये. उस में क्या लिखा था, यह वह नहीं जानते थे और जब उन्हें पता चला तब उन्होंने अपने उस हस्ताक्षर वाले काग़ज़ की विषय वस्तु का खंडन किया. श्री गौड़ के प्रतिपक्ष में शामिल हो जाने से संयुक्त विधायक दल की सदस्य-संख्या ३६ और कांग्रेस पार्टी की ४० हो गयी है. तीन निर्दल सदस्य हैं.

स्वतंत्र पार्टी के एक सदस्य नारायणसिंह ने अपनी पार्टी से इस्तीफ़ा दे कर निर्दल उम्मीदवार के रूप में बैठने का निर्णय किया है. इस से पहले तीन और निर्दल उम्मीदवार कांग्रेस में शामिल हो चुके हैं. प्रतिपक्ष-नेता राव वीरेंद्रसिंह ने यह दावा किया है कि सत्तारूढ़ दल के सदस्यों की संख्या अब निर्णायक नहीं रही, लिहाज़ा उन्हें तुरंत त्यागपत्र दे देना चाहिए.

मध्यप्रदेश

डाकू, पुलिस और अपहरण

२६ जनवरी को, जब कि देश के विभिन्न भागों में गणतंत्र दिवस की खुशियाँ मनायी जा रही थीं, इस राज्य का छोटा-सा शहर मुरैना अपनी उदासी और मनहूसी में छटपटा रहा था. शहर में कर्फ़्यू लगा हुआ था; सरकारी इमारतों पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने वाला कोई नहीं था. सिर्फ़ ख़ाकी वर्दी पहने, लोहे के टोप लगाये हुए पुलिस के सिपाही घूम रहे थे और खुशी की जगह पर आतंक की सृष्टि कर रहे थे. उस के पहले जनता हड़ताल कर चुकी थी. कचहरी, अन्य सरकारी दफ़्तर और बैंकों पर ताले लग चुके थे. रेलें रोकी जा चुकी थीं और जुलूस निकल चुके थे. पुलिस ने भी अश्रु गैस छोड़ी, लाठी चलायी, बंदूकें छोड़ीं और उस के बाद कर्फ़्यू लग गया था. अशांति और उत्तेजना का वातावरण बदस्तूर कई दिनों तक बना रहा.

आशंका और माँग : ९ जनवरी को शहर के बीच से ही शाम को ७ बजे मुरारी नाम का एक बालक डाकुओं द्वारा अपहरित कर लिया गया. शहर के लोग यह सोच कर चिंतित हो गये कि डाकुओं की वजह से असुरक्षा महज़ गाँवों-देहातों में ही नहीं है बल्कि अब शहर भी उस से नहीं बच रहा है. कांग्रेस ने एक आम सभा कर के संविद शासन की असमर्थता की निंदा की और कहा कि वह गद्दी छोड़ दे. कांग्रेस को श्रेय लेते देख कर अन्य राजनैतिक दलों ने भी एक संयुक्त सभा आयोजित की. कांग्रेस भी उस में शामिल हुई. हर दल की तरफ़ से एक-एक व्यक्ति को मिला कर सामूहिक अनशन शुरू हुआ. जनता की माँग के मुताबिक शहर-कोतवाल और पुलिस के ज़िला अधीक्षक को स्थानांतरित कर दिया गया. अनशन का यह क्रम व्यक्ति बदल कर चलता रहा. इस बीच अपहृत बालक पुलिस द्वारा ले आया गया. लेकिन बालक को मुक्त करने के सिलसिले में न तो डाकुओं और पुलिस के बीच किसी मुठभेड़ का समाचार मिला न ही डाकू-दल का कोई सदस्य पकड़ा गया. जनता ने संदेह किया कि अपहरण में डाकू और पुलिस दोनों का गठबंधन है. फिर यह माँग की गयी कि उस के पहले जो लड़के गाँव से अपहृत किये गये उन्हें भी बरामद करना चाहिए. इन सारी घटनाओं में पुलिस का भी षड्यंत्र है. एक माँग न्यायिक जाँच की भी की गयी. १९ जनवरी को सभी दलों की ओर से एक सार्वजनिक सभा आयोजित की गयी और उस में आसपास की जनता ने हजारों की संख्या में भाग लिया. इस वक़्त तक पुलिस ने किसी को गिरफ़्तार नहीं किया था. २० जनवरी को जनता ने हड़ताल रखी और २१ जनवरी को ज़िले के मुख्य न्यायालय पर ताला लगा दिया. अन्य सरकारी इमारतों और बैंकों आदि पर भी

पुरातत्त्व

पुरासंपदा की रक्षा

[भारत की अथाह पुरासंपदा की तलाश और उस की सार-सँभार के बारे में रायकृष्ण दास की राय आप दिनमान में पढ़ चुके हैं. लेकिन इस बारे में सरकार क्या-कुछ कर रही है, यह जानने के लिए दिनमान का प्रतिनिधि भारतीय पुरातत्त्वविभाग के महानिदेशक ब्रजवासी लाल से मिला, जिस की 'रपट' यहाँ प्रस्तुत है.]

'पुरातत्त्वविभाग की ओर से प्राचीन खंडहरों और उन की खुदाई के संबंध में क्या नीति अपनायी जाती है ? खुदाई-कार्य का आरंभ किन आधारों पर किया जाता है ?'

'प्रत्येक गणराज्य में नीति की ही प्रधानता होती है, भले ही उस का रचनात्मक प्रयोग किया जाये अथवा नहीं. पुरातत्त्वविभाग गणराज्य का एक विभाग है, जहाँ कोयले और मोहरों का मूल्य आँका जाता है. खुदाई के पूर्व ऐतिहासिक तथ्यों का अध्ययन किया जाता है, तत्पश्चात् सर्वे और उस के पश्चात् खुदाई. जिस स्थान को खुदाई करने की योजना बनायी जाती है वहाँ की सभ्यता-संस्कृति का अध्ययन तथा वर्त्तमान सभ्यता, संस्कृति की तुलनात्मक रूप-रेखा को प्रधानता दी जाती है. वहाँ पर पायी गयी सामग्री के आधार पर थोड़े-थोड़े स्थानों को छोड़ते हुए गहरी और टेढ़ी खुदाई की जाती है. कभी-कभी खुदाई में काम की बातें और वस्तुएँ मिलती ही नहीं, यद्यपि खुदाई ऐतिहासिक तथ्यों एवं सर्वे के आधार पर ही की जाती है. इतिहास के क्षेपक के कारण अभियान असफल भी हो सकता है. खुदाई प्रायः शीत ऋतु में आरंभ की जाती है, जिस से कार्य शीघ्र हो सके. मौसम की अनुकूलता को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है'.

'सन् १९४७ के पश्चात् पुरातत्त्वविभाग की उपलब्धियाँ क्या रही हैं ? कहाँ-कहाँ खुदाई का काम हाथ में लिया गया ?'

प्रश्न समाप्त होते न होते उन्होंने धारा प्रवाह बोलना आरंभ कर दिया : 'मद्रास राज्य के चिंगलपुट जिले के बड़ा मंदुराई की खुदाई की गयी, जिस से द्रविड़ सभ्यता का विवरण प्राप्त किया जा सका है. राजस्थान राज्य के गंगानगर जिले के कालबेजन में खुदाई करने पर 'मोहनजोदड़ो' और हड़प्पा समय का पूर्ण विवरण मिला है. एक ओर जहाँ सिंधु घाटी की सभ्यता के चिन्ह हैं तो दूसरी ओर खुदाई करने पर सिंधु घाटी-सभ्यता के पूर्व की ऐतिहासिक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं. कुंड में ईंटों का प्रयोग पाया गया है. वे मिट्टी के बने हुए हैं. उत्तरी भाग में जो खुदाई की गयी है वहाँ निवास-स्थान संबंधी हर प्रकार के प्रामाणिक तथ्य पाये गये हैं. स्थान को चारों ओर से दीवार द्वारा सुरक्षित किया गया मालूम देता है. कुछ टीलों के नीचे शहर का रूप छिपा हुआ मिला.'

'मध्यप्रदेश राज्य के महेश्वर और राव स्थानों को, जो कि नर्मदा नदी के निकट हैं, खोदने पर पाषाणकालीन सभ्यता के चिन्ह मिले हैं. मद्रास और आंध्रप्रदेश के टीलों की खुदाई करने पर भूरे रंग के बर्त्तन मिले हैं. हेडी, सरखारीशख स्थानों की खुदाई पर हड़प्पाकालीन वस्तुएँ मिली हैं. सहारनपुर जिले के मोहिद्दीनपुर में भी इसी प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं.

'कुछेक स्थानों की खुदाई करने पर चालुक्य वंश से संबंधित वस्तुएँ भी मिली हैं. कदंब वंश, चोल वंश, पांड्य वंश, सिलाहरस, अलाउद्दीन खिलजी, कुतुब सिया और अकबर और हुमायूँ के समय की सामग्री मिली है. जहाँ तक सफलता और असफलता का प्रश्न है यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि निर्धारित नीति के अनुसार जो भी काम इस विभाग ने अपने हाथ में लिया है उस में ९० प्रतिशत सफलता प्राप्त हुई है. धन का व्यय यद्यपि अधिक हुआ है पर सफलता को देखते हुए उसे अधिक नहीं कहा जा सकता. विशिष्ट उप-महानिदेशकों की देखरेख में कार्य-संपादन होने पर असफलता की आशंका नहीं रहती. केंद्र और राज्य सरकारों का संबंध बहुत ही घनिष्ठ है.'

'घनिष्ठता' शब्द ने केंद्र-राज्य संबंध के बारे में कई जिज्ञासाएँ पैदा कर दीं :

'केंद्रीय और राज्य सरकारों के पुरातत्त्व-विभाग में कहाँ तक घनिष्ठ संबंध है ? क्या खुदाई संबंधी अभियानों के आरंभ करने के पूर्व राज्य सरकारें केंद्रीय पुरातत्त्व-विभाग से सलाह-मशविरा करती हैं ? क्या पुरातत्त्व-अधिकारियों की अदला-बदली की जाती है ? खुदाई के व्यय का भार कौन वहन करता है ?'

'जहाँ तक पुरातत्त्वविभाग का शाब्दिक अर्थ है प्रांतीय एवं केंद्रीय पुरातत्त्वविभाग की नीति और कार्य-संपादन करने की क्रिया एक-सी है, पर वैधानिक दृष्टि से दोनों अलग-अलग हैं. प्रांतीय पुरातत्त्वविभाग क्षेत्रीय दृष्टि से अपना कार्य करता है. खुदाई संबंधी तमाम व्यय प्रांतीय सरकार वहन करती है, अधिकारी भी अलग-अलग होते हैं. खुदाई में राष्ट्रीय महत्त्व की जो वस्तुएँ प्राप्त होती हैं उन्हें केंद्रीय पुरातत्त्वविभाग के हवाले कर दिया जाता है. क्षेत्रीय महत्त्व की वस्तुएँ प्रांतीय संग्रहालयमें रख दी जाती हैं. विशेष परिस्थितियों में प्रांतीय सरकारों की माँग के अनुसार केंद्रीय सरकार विशिष्ट अधिकारी कुछ समय के लिए दे देते हैं. प्रांतीय सरकारें प्रायः खुदाई संबंधी कार्यक्रमों में केंद्र से सलाह नहीं लेती. पुरातत्त्व-अधिकारियों की अदलाबदली नहीं की जाती. हाँ, स्थानांतर अवश्य होता रहता है. यदि क्षेत्रीय खुदाई में कुछ वस्तुएँ राष्ट्रीय महत्त्व की पायी जाती हैं तो ऐसी स्थिति में केंद्रीय पुरातत्त्वविभाग यदि उचित समझे तो व्यय का कुछ भाग प्रांतीय सरकार को दे सकता है. ऐसा नियम नहीं है कि व्यय-भार केंद्रीय पुरातत्त्वविभाग ही वहन करे.

आवश्यक जान यह जिज्ञासा प्रकट की गयी :

'केंद्र सरकार की ओर से इस विभाग के लिए क्या अलग से धन देने की व्यवस्था है और क्या बजट में इस विभाग के लिए विशेष रूप से धन दिया जाता है ? इस धन-राशि का व्यय कहाँ-कहाँ और किन-किन रूपों में किया जाता है ?

'माँग की पूर्त्ति पूर्ण रूप से कभी नहीं हुई. हमारी माँग समय के साथ-साथ बढ़ती जा रही है. सरकार के पास सीमित साधन हैं, इस लिए पूर्त्ति असंभव है. केंद्रीय पुरातत्त्व विभाग के अंतर्गत ३,५०० ऐतिहासिक स्थान हैं, जिन की देखरेख इस विभाग को करनी पड़ती है. इन स्थानों की दशा अत्यंत शोचनीय है. यदि राष्ट्र का आधा बजट भी इस विभाग को दे दिया जाये तो वह दाल में हल्के नमक के सदृश होगा. बजट में इस विभाग के लिए १५ लाख रुपये स्वीकृत हुए हैं, जो यथेष्ट नहीं हैं. इस १५ लाख के अंदर अधिकारियों के वेतन, लेखन-सामग्री तथा अन्य व्यय भी सम्मिलित हैं. इन ३५०० ऐतिहासिक स्थानों की देखरेख करने के लिए यथेष्ट चौकीदार भी नियुक्त नहीं किये जा सकते. सरकारी नियम के अनुसार एक व्यक्ति से ८ घंटे कार्य लिया जा सकता है, अतः एक ऐतिहासिक स्थान की देखरेख के लिए तीन व्यक्ति आवश्यक हैं. ३५०० स्थानों पर यदि ३-३ चौकीदार रखे जायें तो उन का वेतन ही एक करोड़ और कुछ लाख रुपये प्रतिवर्ष होगा. १५ लाख की धन-राशि से क्या होता है ? ऐतिहासिक स्थानों की मरम्मत आदि का व्यय भी इसी राशि से निकाला जाता है. स्पष्ट है कि ऐतिहासिक इमारतों की मरम्मत के लिए अलग से धन आवश्यक है. नये स्थानों का निर्माण किया जा रहा है, जब कि प्राचीन की उपेक्षा धनाभाव के कारण हो रही है. आने वाले समय में इन नयी इमारतों का हश्र भी वही होगा जो प्राचीन इमारतों का आज-कल है. नये निर्माण में इस विभाग से सलाह-मशविरा करने का प्रश्न ही नहीं उठता. इतनी अल्प राशि से हम प्राचीन इमारतोंकी मरहम-पट्टी करने में भी असमर्थ हैं, दवा देने की बात तो कोसों दूर है. हम लकीर पीट रहे हैं, और कुछ नहीं.'

पांडवों के समय के पुराने क़िले की मरम्मत के बारे में जब प्रश्न पूछा गया तो उन्होंने खिन्न भाव से उत्तर दिया:

'आधुनिक समय में एक नयी इमारत के निर्माण में इतना धन व्यय नहीं होता जितना कि प्राचीन इमारतों की मरम्मत में. प्राचीन

इमारतों में जिन वास्तुकला-सामग्रियों का प्रयोग किया गया है वे प्राप्त नहीं की जा सकतीं. उन के स्थान पर यदि नयी चीज़ों का प्रयोग किया जाये तो वे अधिक महँगी पड़ती हैं. यदि पुराने क़िले की दीवारों की पूरी मरम्मत की जाये तो उस में जितना ख़र्च आयेगा उतने से कई नयी इमारतों का निर्माण संभव है'.

'प्राचीन खंडहरों के खोदने में किसी विशेष कला का उपयोग करना पड़ता होगा?'

'भारी औज़ारों का प्रयोग कम और हल्के औज़ारों का अधिक. मिट्टी की ईंटों वाली इमारतों में प्राय: चाकू आदि हल्के औज़ार प्रयोग किये जाते हैं. सर्वे करने के पश्चात ही यह निश्चित किया जाता है कि अमुक स्थान की खुदाई सीधे अथवा तिरछे रूप से की जायेगी. आधार-शिला को हानि न हो, इस लिए पहले लंबाई को ध्यान में रखा जाता है और फिर उसी आधार पर ऊँचाई से नीचे की ओर बढ़ना पड़ता है. आड़ी खुदाई में सब से अधिक परिश्रम करना पड़ता है. प्राय: गुंबज वाली इमारतों में इस कला का प्रयोग करते हैं. इस की ट्रेनिंग विधिवत् दी जाती है. उच्च श्रेणी की शिक्षा एम. ए. तक होती है. यहां पर इस तरह की शिक्षा देने का एक कॉलेज है—पुरातत्त्व कॉलेज.'

'खुदाई में जो वस्तुएँ प्राप्त की जाती हैं उन की सुरक्षा का प्रबंध शोचनीय क्यों है? प्राप्त की हुई वस्तुएँ छिपे तौर से विदेशों को भेज दी जाती हैं. इन के निर्यात पर रोक-थाम के लिए क्या विशेष प्रबंध किया गया है और सफलता मिल रही है क्या?'

'जहाँ तक प्राप्त की गयी वस्तुओं का प्रश्न है उन्हें बड़ी सावधानी से एकत्र कर के संग्रहालय में भेजा जाता है. संग्रहालय में एक बार वस्तुओं के आने पर उन का छिपे तौर पर बाहर भेजा जाना एक दुष्कर कार्य है. **मध्यप्रदेश और राजस्थान के जंगलों में जिन खंडहरों की खुदाई की जाती है वे इतने गहन हैं कि वहाँ पर साधारण व्यक्ति काम करने के लिए तैयार नहीं होता.** धनाभाव के कारण पर्याप्त चौकीदार नियुक्त नहीं किये जा सकते, जो नियमित रूप से उन स्थानों की देखभाल कर सकें. लगभग चार हज़ार इमारतों की सुरक्षा का प्रश्न है और जैसा कि मैं पहले बता चुका हूँ इस के लिए लगभग एक करोड़ और कई लाख रुपये की दरकार है. तस्कर व्यापार के बारे में केंद्र सरकार के कस्टम विभाग को विशेष हिदायतें दी गयी हैं और अधिकारी सतर्क हैं. लुके-छिपे तौर पर जो वस्तुएँ विदेशों को भेज दी जाती हैं उस का कारण यह है कि **आम तौर से जंगली क्षेत्रों में पायी गयी वस्तुएँ गिरोह द्वारा हटायी जा कर फिर भारत से बाहर भेजी जाती हैं.** तस्करी को रोकने के लिए सरकार चिंतित है और यदि साधारण तौर पर सफलता न मिली तो निश्चय ही क़ानून की शरण लेनी पड़ेगी.

'खुदाई के पश्चात जो एतिहासिक तथ्य सभ्यता, संस्कृति के संबंध में एकत्रित किये जाते हैं वे संग्रहालय की चार दीवारियों के अंदर ही बंद रह जाते हैं और अंग्रेज़ों के समय का लिखा गया इतिहास आज भी पढ़ाया जा रहा है. ऐसा क्यों?' इस प्रश्न के उत्तर में श्री ब्रजवासी लाल ने बताया कि उन का विभाग इतिहास की सामग्री प्रस्तुत करता है, इतिहास नहीं लिखता. इतिहासकारों का अपना दृष्टिकोण है. इतिहास में नवीन खोजों को क्यों स्थान नहीं देते, इस पर प्रकाश डालने में वह असमर्थ तो नहीं हैं, पर डालना उचित नहीं समझते. जनता को पुरातत्त्वविभाग से जानकारी मिलने में अड़चन का सवाल उठाने पर उन्होंने आगे कहा: 'हमारे कार्यालय के अधिकारियों और जनता के मध्य एकरूपता है, पर कुछेक ऐसी बंदिशें क़ानूनी तौर पर हैं जिन के कारण जिज्ञासुओं की तुष्टि हम शीघ्रतापूर्वक नहीं कर पाते. जिज्ञासु एक बार कार्यालय में आ कर अधिकारियों से न मिल पाये तो दोबारा आने का कष्ट नहीं उठाते. लालफ़ीताशाही हमारे यहाँ नहीं है, पर लोग ऐसा नहीं सोचते.'

राजस्थान की संपदा

कलिबेजन की खुदाई में एक प्राचीन शहर के भाग प्राप्त हुए हैं. उन के चारों ओर जो चारदीवारी मिली है उस से निश्चित हो गया है कि ये सिंधु घाटी-सभ्यता की ही है. दीवार का घेरा १५० मीटर लंबा है. मिट्टी-ईंटों की तह-संख्या लगभग १५ है. दीवारों के दोनों ओर मिट्टी की ईंटों का प्रयोग किया गया है. **नागौर** ज़िले की खुदाई में संस्कृत लिपि में लिखे गये शिलालेख प्राप्त हुए हैं और क्षेत्रीय भाषाओं की सामग्री भी प्राप्त हुई है. इस का समय १३६७ ईसा बाद आँका गया है. **डीडवाना** में एक शिलालेख संस्कृत लिपि में लिखा हुआ मिला है. शेरशाह के समय में निर्मित दीवार के जो चिन्ह मिले हैं उन से निश्चित समय के संबंध पर प्रकाश नहीं पड़ता. बीकानेर के **पलासू** स्थान पर एक ख़ज़ाना मिला है. पाली स्थान पर भी एक ख़ज़ाना मिला है और ५०० सिक्के प्राप्त हुए हैं. **करोली, चटसू** और **टोंक** में ५० शिलालेख मिले हैं, जो लाल पत्थर के ऊपर खोदे गये हैं. **गंगानगर** के मुड़ा स्थान पर कुषाणकालीन भग्नाविशेष भी प्राप्त हुए हैं.

कलिबेजन की खुदाई से प्राप्त सिंधु घाटी-सभ्यता का नमूना

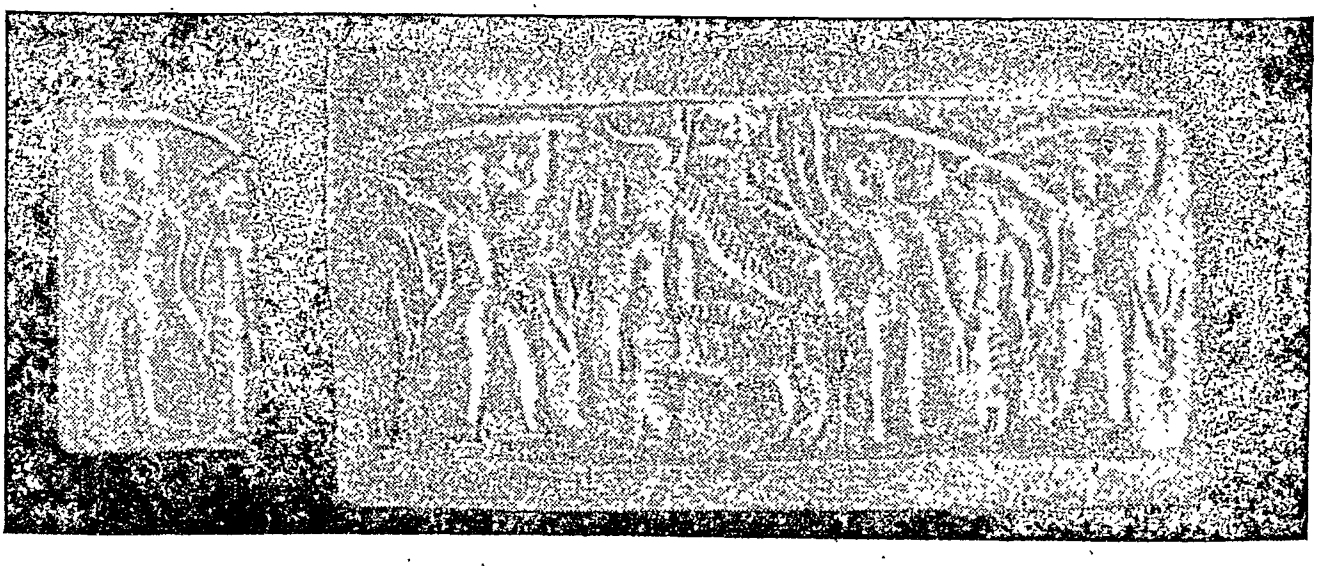

आकर्षक पैकेज आकर्षक लेबेल

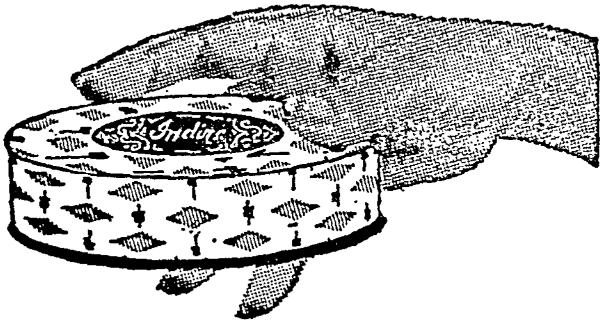

*************** क्रेता की दृष्टि आकर्षित करने को बाध्य है**

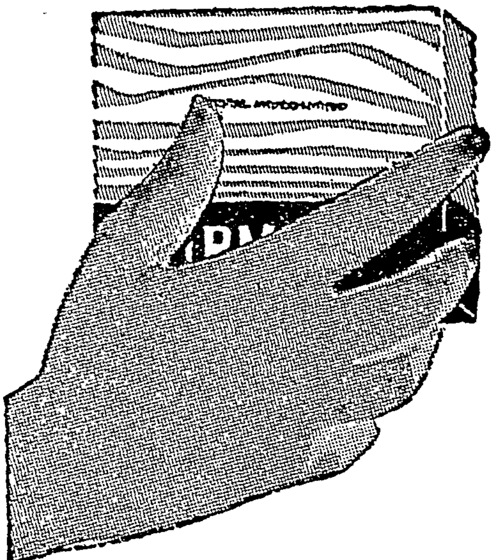

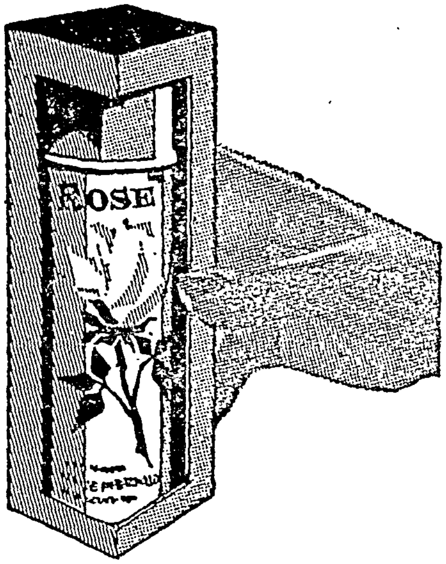

यह सही है कि चीजों की अच्छाई ही क्रेता को उन्हें खरीदने को मजबूर करती है—साथ ही साथ उन पैकेजों की विशेषता भी जिनमें चीजें हिफाजत से बन्द रहती है। पैकेज की सुन्दरता उसमें बन्द चीजों की सुन्दरता ही प्रगट करती है।

रोहतास डालमिया नगर स्थित अपने आधुनिक और उन्नतशील कारखाने में कार्टन और पैकेज बनाने लायक सर्वोत्तम पैकेजिंग पेपर और बोर्ड तैयार करते हैं, जिन पर बहु-रंगी छपाई के लिये भी भरोसा किया जा सकता है।

रोहतास पेपर्स और बोर्ड्स अच्छाई के प्रतीक हैं

ROHTAS

रोहतास इण्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमिया नगर (बिहार)

मैनेजिंग एजेण्ट्स :—साहू जैन लिमिटेड, ११, क्लाइव रो, कलकत्ता-१
सोल सेलिंग एजेण्ट्स :—अशोका मारकेटिंग लिमिटेड, १८ए, ब्राबोर्न रोड, कलकत्ता-१

प्रशिक्षण की व्यवस्था कर दी जाये तो अगले वर्ष बैंकाक में होने वाले एशियाई खेलों में ज़रूर ये कुछ कमाल दिखा सकते हैं.

एशियाई खेल : अगले वर्ष छठ एशियाई खेलों का आयोजन थाईलैंड (बैंकाक) में होगा यह बात बिलकुल तय हो चुकी है. क्यों कि इन खेलों का आयोजन छोटे स्तर पर होगा इस लिए इन में हॉकी के खेल को शामिल किया जायेगा या नहीं इस बारे में अभी से कुछ नहीं कहा जा सकता. भारतीय खेल अधिकारी इस बात की जी तोड़ कोशिश कर रहे हैं कि इन खेलों में हॉकी और निशानेबाज़ी को भी शामिल कर लिया जाये. ८ मार्च से १६ मार्च तक लाहौर में होने वाले अंतर-राष्ट्रीय हॉकी मेले में भारत का भाग लेना अब निश्चित ही है. भारतीय हॉकी फेडरेशन के अध्यक्ष श्री अश्विनी कुमार ने हाल ही में यह कहा है कि लाहौर हॉकी मेले में भाग लेने वाली भारतीय टीम के खिलाड़ियों की घोषणा १५ फ़रवरी तक कर दी जायेगी. उस के बाद उस टीम को खूब प्रशिक्षित किया जायेगा.

हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश

के

उच्चस्तरीय प्रकाशन

१–भाषा विज्ञान पर भाषण (तीन भाग)	डा० हेमचन्द्र जोशी	२०–००
२ समाज सेवा का क्षेत्र (दो खण्ड)	डा० शम्भूनाथ सिंह	१७–००
३–रूसो की तीन वार्ताएं	डा० मोतीलाल भार्गव	४–००
४–भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच	आचार्य सीताराम चतुर्वेदी	२२–५०
५–भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास	डा० भीखन लाल आत्रेय	२०–००
६–पाश्चात्य राजनीतिक विचारधारा का इतिहास	श्री विश्वनाथ प्रसाद वर्मा	१४–००
७–तेलुगु साहित्य का इतिहास	श्री बालिशोरि रेड्डी	६–००
८–जाति वर्गो का इतिहास	डा० रमाशंकर श्रीवास्तव	१२–५०
९–भारतीय भू-नीति	श्री कालिदास कपूर	७–५०
१०–पूर्व एशिया का आधुनिक इतिहास	कु० मिसला मिश्र	१४–००
११–दूरवीक्षण के सिद्धान्त	श्री हरप्रसाद शर्मा	६–५०
१२–स्टार्च और उसका व्यवसाय	डा० सन्तप्रसाद टण्डन	७–५०
१३–मूल्य और पूंजी	श्री महेश चन्द्र	९–००
१४–मनोविज्ञान के क्षेत्र	डा० राममूर्त्ति लुम्बा	७–५०
१५–शुद्ध बुद्धि मीमांसा	श्री भोलानाथ शर्मा	९–००
१६–गणित का इतिहास	डा० व्रजमोहन	९–५०
१७–शैक्षिक समाज शास्त्र	डा० सीताराम जायसवाल	७–५०
१८–ईशावास्य रहस्य	श्री सत्यदेव शास्त्री	२–५०
१९–भारत के उत्तर पूर्व सीमान्त देश	श्री वाचस्पति गैरोला	७–००

यह समिति वैज्ञानिक, तकनीकी एवं सामाजिक शास्त्रों से संबंधित विषयों पर १६५ ग्रंथ प्रकाशित कर चुकी है।

सुन्दर छपाई, आकर्षक गेटअप, नयी कमीशन दरें।

पूर्ण विवरण एवं पुस्तक की खरीद के लिये कृपया लिखें:—

सचिव,

हिन्दी समिति, सूचना विभाग

उत्तर प्रदेश शासन,

लखनऊ।

समाचार-भूमि

अय्यूब का धँसता सिंहासन

इस माह के अपने रेडियो प्रसारण का यह आश्वासन प्रेज़िडेंट अय्यूब न जाने कितनी बार दोहरा चुके हैं कि मुल्क की बहबूदी और खुशहाली के लिए वह प्रतिपक्षी नेताओं से विचार-विमर्श और किसी हद तक समझौता करने के लिए भी तैयार हैं बशर्ते कि इस रिआयत से कोई ठोस नतीज़ा निकल सके. किंतु १० साल तक पाकिस्तान की नब्ज़ परखते रहने के बावजूद वस्तुतः अब तक अय्यूब इस मामले में खुद को आश्वस्त नहीं कर पा रहे हैं कि प्रतिपक्षी नेता कई अहम सवालों पर उन से रिआयत हासिल कर के मौजूदा गंभीर राजनैतिक संकट से वाक़ई देश को मुक्त करना चाहते हैं या उन का खास इरादा उन्हें सत्ता-च्युत करना है. यही वजह है कि नाजुक वक्त की अहमियत को महसूस करते हुए भी अपने विरोधियों से कभी सख्ती, कभी नर्मी से पेश आते-आते कभी वह यह धमकी भी देते हैं कि यदि ज़रूरी हुआ तो वह पुनः सैनिक-शासन कायम कर सकते हैं. लेकिन यह धमकी भी कारगर सिद्ध नहीं हो पा रही है और तमाम मोर्चों—प्रशासन, सेना, प्रेस, नागरिक अधिकार आदि—पर वफ़ादार पहरेदार तैनात रखने के बावजूद विरोधियों की जद्दोजहद विस्फोटक रूप धारण करती जा रही है. पूर्वी पाकिस्तान के भूतपूर्व मुख्यमंत्री और अब प्रतिपक्ष के प्रबल नेता नूरुल अमीन ने यह भी दावा किया है कि उन्होंने पिछले वर्ष ही अय्यूब को आगाह कर दिया था कि वह 'पूर्वी क्षितिज पर एक काली घटा छायी हुई' देख रहे हैं और पश्चिमी पाकिस्तान में 'ज्वालामुखी फूट रहा है.'

पिछला इतिहास : १० साल पहले प्रेज़िडेंट अय्यूब ने भी पाकिस्तान में कुछ ऐसा ही मंज़र देख कर दुविधा और अनिश्चयता के दायरे में घिरी पाकिस्तानी जनता को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और नैतिक सुधारों का वास्ता दे कर सिकंदर मिर्ज़ा को दीमक लगी सरकार से मुक्त किया था. अक्तूबर, १९५८ में राजनैतिक भ्रष्टाचार, अलगाववादी प्रवृत्ति और विकट आर्थिक संकट में सने पाकिस्तान को प्रधान सेनापति अय्यूब के रूप में एक दुस्साहसी रहबर मिला. अय्यूब-पूर्व के पाकिस्तान की दयनीय स्थिति का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि जवाहरलाल नेहरू से पूछे गये इस प्रश्न के उत्तर में कि क्या वह पाकिस्तानी नेताओं से कश्मीर-समस्या पर बातचीत के लिए सहमत हैं, श्री नेहरू ने कहा था—समस्या यह नहीं है कि मैं बातचीत के लिए तैयार हूँ या नहीं—आखिर मैं बातचीत करूँ भी तो किस से? उस देश (पाकिस्तान) में तो कोई नेता ही नहीं है. सत्ता हथियाने के बाद अय्यूब ने १० साल तक बेशक अपनी जनता को इस अनिश्चयता से मुक्त रखा और प्रगति के, राजनैतिक दाँव-पेंच के और स्थायित्व के कीर्तिमान स्थापित किये, किंतु अब उन की लोकप्रियता को भी दीमक चाट रही है.

विरोध की शुरुआत : दरअसल, अय्यूब-विरोधी गतिविधियाँ पहले-पहल सन् १९६५ के राष्ट्रपति के चुनाव के दौर में उजागर हुई थीं, जब कई वरिष्ठ नेताओं और राजनैतिक पार्टियों ने क़ायदे आज़म जिन्ना की बहन स्वर्गीया फ़ातिमा जिन्ना का समर्थन किया था. लेकिन तब अपनी लोकप्रियता के बावजूद फ़ातिमा जिन्ना अय्यूब से हार गयीं. चुनाव-हथकंडों के अलावा १९५८ से पूर्व की कटु-स्मृतियों ने भी जनता को तब विवश कर दिया था कि वह एक सैनिक राजनेता को ही प्रशासन

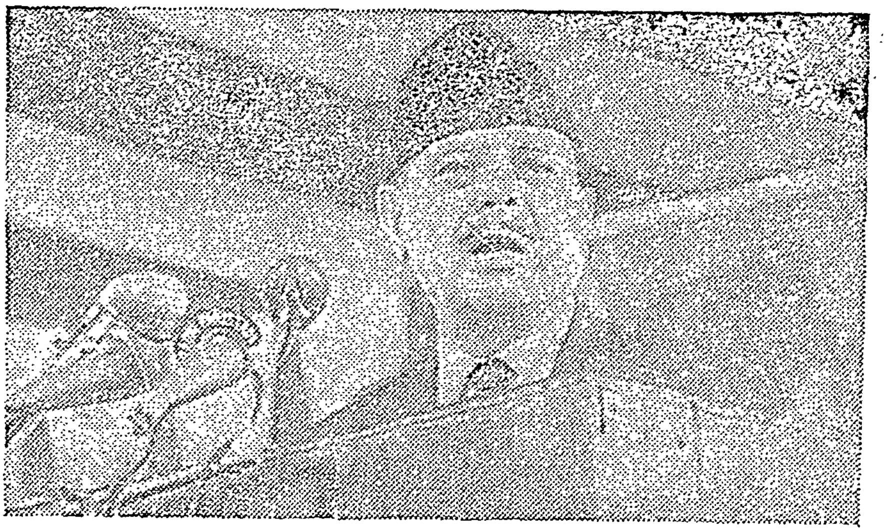

अय्यूब खाँ : रहूँ कि न रहूँ

की बागडोर सौंप दे. लोकतांत्रिक अधिकारों से वंचित रहते हुए भी पाक जनता तब यही महसूस करती थी कि एक वृद्ध स्त्री के नेतृत्व में पाकिस्तान की राजनैतिक स्थिरता खतरे में पड़ जायेगी. जन-समर्थन के मुलम्मे से अय्यूब का रुतबा और अधिक बढ़ गया था, किंतु सन् १९६५ के भारत-पाक संघर्ष के नतीजे से उन के रुतबे पर कालिख पुत गयी. उन के पतन की भूमिका यहीं से शुरू होती है. अपने तत्कालीन विदेश मंत्री ज़ुल्फ़िकार अली भुट्टो की मंत्रणा से ही वह भारत पर आक्रमण करने का जोखिम उठाने के लिए तैयार हुए थे किंतु आक्रमण के नतीजे से कुपित हो कर उन्होंने भुट्टो को विदेश मंत्री के पद से हटा दिया. हालांकि यह क़दम उन्होंने भुट्टो के आक्रामक व्यक्तित्व से निजात पाने के लिए ही उठाया था किंतु सत्ता-च्युत भुट्टो की आक्रामकता इस से और अधिक तीव्र हो उठी और फ़ातिमा जिन्ना से निपटने के बाद अय्यूब का एक और प्रबल विरोधी अखाड़े में उतर गया. पिछले वर्ष के प्रारंभ में अय्यूब की बीमारी से भी खास कर पाकिस्तान की युवा-पीढ़ी अपने भावी नेता के बारे में बहुत अधिक चिंतित हो उठी थी. पिछले कुछ महीनों में अनेक प्रभावशाली व्यक्तियों के राजनीति में प्रवेश से अय्यूब की सत्ता को नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है.

विरोधी पार्टियों के इरादे : यद्यपि पाकिस्तान की सभी राजनैतिक पार्टियाँ सुसंगठित नहीं हैं, आपसी फूट से ग्रस्त हैं और जनता पर उन का विशेष प्रभाव भी नहीं है किंतु अय्यूब से सत्ता छीनने के लिए वे सब एक हो गयी हैं. ये राजनैतिक पार्टियाँ हैं—(१) मास्को-समर्थक वामपंथी नेशनल अवामी पार्टी, (२) शेख मुजीबुर्रहमान की अवामी लीग, (३) जमायते इस्लामी, (४) जमायते उलेमा इस्लाम, (५) नवाब नसरुल्ला ख़ाँ की अवामी लीग, (६) निज़ामे इस्लाम पार्टी, (७) मुस्लिम लीग परिषद् और (८) नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट. विशेष मुद्दों पर मतभेद के कारण भुट्टो की पीपुल्स पार्टी और पीकिङ-समर्थक नेशनल अवामी पार्टी उक्त पार्टियों के संयुक्त मोर्चे—पाकिस्तान लोकतांत्रिक मोर्चा—में शरीक नहीं हैं यद्यपि अय्यूब-विरोधी अभियान में उन्हीं का स्वर सर्वाधिक तीव्र और कटु है. अन्य पार्टियों द्वारा गठित संयुक्त मोर्चा सन् १९७० में राष्ट्रपति पद के लिए प्रस्तावित चुनाव का बहिष्कार करना चाहता है क्यों कि अय्यूब द्वारा निर्धारित चुनाव-पद्धति के अनुसार १० करोड़ की आबादी वाले देश में केवल १,२०,००० लोगों को ही मतदान-अधिकार प्राप्त है, जिन्हें बुनियादी लोकतांत्रिकों का रुतबा दिया गया है. जब तक बालिग़-मताधिकार के आधार पर राष्ट्रपति का चुनाव नहीं होता तब तक किसी निष्पक्ष

नतीजे की उम्मीद नहीं की जा सकती, अतः ऐसे चुनाव के प्रति विरोधी पार्टियों की उदासीनता स्वाभाविक ही है. अलबत्ता भुट्टो की पार्टी चुनाव का बहिष्कार नहीं करना चाहती क्यों कि भुट्टो को अपनी लोकप्रियता पर इतना गुमान है कि वह अय्यूब द्वारा बिछाये गये चुनाव के शतरंज में वज़ीर उठा कर खेलने पर भी बाजी जीतने की उम्मीद रखते हैं. अन्य पार्टियों ने १२ फ़रवरी को राष्ट्र-व्यापी हड़ताल का आह्वान कर के ढाका घोषणा-पत्र के ८ सूत्रीय कार्यक्रम स्वीकार करने के लिए प्रेज़िडेंट अय्यूब को मजबूर करने की योजना बनायी है. १५ फ़रवरी को ढाका में सम्मेलन आयोजित कर के लोकतांत्रिक संघर्ष-समिति यह अंदाज़ लगाना चाहती है कि उस के ८ सूत्रीय कार्यक्रमों के प्रति जनता क्या रुख अपनाती है. ये ८ सूत्रीय कार्यक्रम हैं : (१) संयुक्त संसदीय सरकार की स्थापना, (२) बालिग़ मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष विधानसभाई चुनाव, (३) आपत्कालीन स्थिति की तुरंत समाप्ति, (४) पूर्ण जन-स्वातंत्र्य, (५) सभी राजनैतिक बंदियों की रिहाई, (६) धारा १४४ के अंतर्गत दिये गये सभी आदेशों की समाप्ति, (७) कर्मचारियों को हड़ताल करने की छूट, और (८) प्रेस पर लगाये गये नियंत्रणों की समाप्ति. संयुक्त मोर्चे ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इन कार्यक्रमों के बारे में किसी किस्म की रिआयत नहीं दी जायेगी.

बाहरी प्रतिक्रिया : वैसे तो पाकिस्तान की आंतरिक उथल-पुथल पर सभी देशों की नजरें गड़ी हैं किंतु खास कर अमेरिका, रूस, चीन और भारत, जो पाकिस्तान की विदेश नीति के आधार स्तंभ हैं, का इस ओर विशेष दिलचस्पी रखना स्वाभाविक ही है. यह जानते हुए भी कि भुट्टो-समर्थक पाकिस्तानियों का चीन की ओर झुकाव है, चीन पाकिस्तान के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप की पहल नहीं करना चाहता. नेशनल अवामी पार्टी और पीपुल्स पार्टी के जुलूसों में 'पाक-चीन मित्रता चिरस्थायी हो' जैसे नारों की अनुगूंज सुनते हुए भी नवंबर में एक छात्र द्वारा अय्यूब की हत्या के असफल प्रयास के लिए चीन के प्रधान मंत्री चाऊ-एन-लाई ने 'प्रतिक्रियावादी तत्वों' को ही दोषी ठहराया था. जब तक ग्रह-कलह का अंतिम परिणाम सामने नहीं आ जाता, तब तक चीन पाकिस्तान की मौजूदा सरकार के प्रति ही सद्भावना रखने का स्वांग रच रहा है. अलबत्ता अमेरिका के बारे में यह कहा जा सकता है कि अय्यूब के प्रबल विरोधियों में से किसी एक के समर्थन का अवसर मिला तो वह एअर मार्शल असग़र खाँ का ही पक्ष लेगा. अमेरिका को चिंता है कि सत्ता की इस होड़ में यदि पश्चिम-समर्थक तत्त्व धूमिल हो गये, तो पाकिस्तान में भुट्टो और मौलाना भासानी जैसे पीकिङ-समर्थकों का ही दबदबा बढ़ जायेगा. अमेरिका की मदद से ही एअर-मार्शल असग़र खाँ के काल में पाकिस्तान की वायुसेना ने अभूतपूर्व प्रगति की थी अतः उन की नीयत के बारे में अमेरिका अपेक्षाकृत अधिक आश्वस्त है. रूस यद्यपि पाकिस्तानी विदेशमंत्री अर्शाद हुसैन की प्रस्तावित रूस यात्रा को जल्द-से-जल्द संपन्न होते और अय्यूब के राजनैतिक भविष्य की स्पष्ट तसवीर देखने के लिए बहुत अधिक लालायित है, किंतु निकट-भविष्य में वह भी पाकिस्तान के साथ अपने संबंधों में किसी विशेष परिवर्त्तन के लिए तत्पर नहीं दीखता. भारत के हक़ में भी यही उचित है कि वह जहाँ तक हो सके, तटस्थ रहे. इक़बाल, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ जैसे चिंतक भी जब भारत-विरोधी उन्माद से अपने को मुक्त न रख सके और मुल्क के बँटवारे से एक अर्से तक बाग़ी, रहने वाले सआदत हसन मंटो ने भी

असग़र खाँ : 'मैं सत्ता-लोलुप नहीं (?) हूँ'

जब देश-विभाजन की 'ख़ौफ़नाक हक़ीक़त को तस्लीम' कर के दम तोड़ दिया तो फिर इस राजनैतिक अस्थिरता के दौर में पाकिस्तान के प्रबुद्ध वर्ग से यह अपेक्षा रखना व्यर्थ है कि वह भारत के विरुद्ध आग उगलने के लिए बेचैन भुट्टो जैसे आक्रामक व्यक्ति के प्रभाव से मुक्त रहने के लिए युवक वर्ग को सचेत कर पायेंगे.

प्रतिद्वंद्वी : भुट्टो, असग़र खाँ, ले. जनरल आज़म खाँ, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश सय्यद मुर्शीद, अवकाश प्राप्त मे. जनरल एम. जी. जैलानी के अलावा अय्यूब के मौजूदा सहयोगियों (जनरल मूसा आदि) में से भी कुछ प्रभावशाली व्यक्ति सत्ता की होड़ में बाज़ी जीतने के लिए आज नहीं तो कल खुल कर सामने आयेंगे. समय किस का साथ देगा, यह तो भविष्य के गर्भ में ही छिपा है किंतु व्यक्तित्व और उद्देश्यों के आधार पर राष्ट्रपति पद के प्रधान उम्मीदवारों की अब तक ज़ाहिर नीतियों का विश्लेषण किया जा सकता है. भुट्टो की यह दृढ़ धारणा है कि भारत-विरोधी अभियान और कश्मीर की 'मुक्ति' के लिए केवल चीन ही पाकिस्तान का साथ दे सकता है. पाकिस्तानी युवक भुट्टो की इस नीति पर मुग्ध हैं और वह इस ४१ वर्षीय नेता में अपने भावी राष्ट्रपति के सभी लक्षण देखते हैं. ४७ वर्षीय असग़र खाँ का दृष्टिकोण अभी तक काफ़ी सहिष्णु और संतुलित रूप से प्रकट हुआ है हालाँकि उन्होंने साथ-साथ यह भी ज़ाहिर करने की कोशिश की है कि वह 'सत्ता-लोलुप' नहीं हैं. भावी संविधान के बारे में उन्होंने यही राय ज़ाहिर की है कि वह 'समानता और इस्लामी जीवन-पद्धति' के पक्षधर हैं. यह मानते हुए भी कि 'सही या ग़लत कारणों से जनता की नज़रों में अय्यूब हमारे समाज की तमाम बुराइयों के प्रतीक हैं' वह अय्यूब-विरोधी आंदोलन को यथासंभव शांतिपूर्ण बनाये रखना चाहते हैं. यह कह कर कि 'पाकिस्तान का निर्माण चंद विशेषाधिकार प्राप्त परिवारों के लिए ही नहीं बल्कि १० करोड़ जनता के लिए किया गया है, जिस ने उसे अस्तित्व में लाने के लिए कुर्बानियाँ दीं' उन्होंने असमानता और पूँजीवाद के विरोध में भी आवाज़ उठायी है. कश्मीर की समस्या उभार कर वह सतही लोकप्रियता प्राप्त करने के लिए भी लालायित नहीं दीखते और अपने को वह एक 'शांतिप्रिय व्यक्ति' मानते हैं. दिसंबर १९६८ में राजनीति में प्रवेश करने वाले ले. जनरल आज़म खाँ संसदीय पद्धति कायम किये जाने के समर्थक हैं. उन का विचार है कि यदि राष्ट्रपति का चुनाव बालिग़-मताधिकार के आधार पर हो और विरोधी दलों को राजनैतिक अधिकार दिये जायें तो सभी राष्ट्रीय समस्याएँ शांतिपूर्ण तरीके से सुलझ सकती हैं. पूर्वी पाकिस्तान के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश मुर्शीद किसी पार्टी से संबद्ध नहीं हैं और वह भी अहिंसक तरीके से ही संविधान की जड़ता खत्म करना चाहते हैं.

चुनौती : अय्यूब-विरोधी अभियान दिन पर दिन तीव्रतर होता जा रहा है. छात्र, मजदूर, वकील, पत्रकार—यहाँ तक कि बुर्का पहनी स्त्रियों ने भी सड़कों पर आ कर उन की सत्ता को खुली चुनौती दी है. जनता अय्यूब-विरोध का कोई भी अवसर नहीं चूकने देना चाहती है. लाहौर, पेशावर, कराची, गुजरांवाला, ढाका आदि तमाम बड़े शहरों में कानून और व्यवस्था कायम रखने की ज़िम्मेदारी सेना सँभाल रही है. कवि फ़ैज़ ने भी अय्यूब को पद- त्याग की नेक सलाह दी है. विरोधी पार्टियों द्वारा आयोजित १५ फ़रवरी की प्रस्तावित राष्ट्रव्यापी हड़ताल यदि कामयाब रही तो फ़ील्ड मार्शल अय्यूब को शायद यह निर्णय करने के लिए विवश होना पड़े कि वह गद्दी पर टिके रहने की कोशिश करें या नहीं.

विश्व

पाकिस्तान

समझौता या अवकाश ?

राष्ट्रपति अय्यूब खाँ ने विरोधी दलों के नेताओं को वार्त्ता के लिए आमंत्रित किया है. यह क़दम इस आशा से उठाया गया है कि बातचीत से कोई मध्य-मार्ग निकल आये और अय्यूब की राजनैतिक सत्ता बरक़रार रहे. पिछले दिनों पाकिस्तान में जो उग्र और हिंसात्मक उपद्रव और प्रदर्शन हुए हैं उन को पुलिस की शक्ति से दबाने में विफल होने के बाद फील्ड मार्शल अय्यूब को इस बात का एहसास हो गया है कि अपने आसन को बचाने के लिए कुछ त्याग करना ज़रूरी है. अपने मासिक रेडियो भाषण में उन्होंने कहा कि 'संविधान ईश्वर का वाक्य नहीं है और इसे बदला जा सकता है. इस बात में कोई संदेह नहीं है कि हर संविधान को सुधारने की आवश्यकता होती है.' राष्ट्रपति अय्यूब का यह वाक्य ही इस बात का द्योतक है कि वह समझौता करने में उस हद तक जा सकते हैं जहाँ तक जाने से वह पाकिस्तान के शासक बने रहें, भले ही शासन-प्रणाली में आमूल परिवर्त्तन करना पड़े. सामान्य जनता को विरोधी दलों से दूर रखने के लिए उन्होंने यह आरोप लगाया कि 'पाकिस्तान के शत्रुओं' ने पाकिस्तान के जन-जीवन को नष्ट करने के लिए राष्ट्रीय एकता में दरार पैदा करने के लिए ही देश में उपद्रव खड़े करने का षड्यंत्र रचा है और इसी लिए उन्होंने इस बात का औचित्य तक सिद्ध करने की कोशिश की कि पाकिस्तानी पुलिस ने 'जनता की जान-माल की रक्षा' के लिए गोलियाँ चलायीं. उन के अनुसार छात्रों के प्रदर्शनों को 'अनेक दलों और अराष्ट्रीय तत्त्वों ने अपने स्वार्थ के लिए इस्तेमाल किया जिस से लूट-मार, अग्निकांड और जीवन तथा संपत्ति की भारी हानि हुई.'

असंतोष और क्रोध : पाकिस्तान के दोनों भागों में वर्तमान शासन-प्रणाली और अय्यूब के प्रति इतना असंतोष फैल चुका है कि उस में अब न केवल छात्र और राजनैतिक दल बल्कि श्रमिक और लेखक भी शामिल हो गये हैं. मृतकों की संख्या ३३ से ऊपर जा चुकी है और पुलिस के दमनचक्र के बावजूद पाकिस्तान सरकार को प्रदर्शनकारियों को दबाने में कोई सफलता नहीं मिली है. पिछले दिनों मौलाना भासानी समेत जब १००० व्यक्तियों को ढाका में गिरफ़्तार किया गया तो इस से पूर्व पाकिस्तान की स्थिति और विस्फोटक हो उठी. उसी विस्फोटक स्थिति के कारण ही एम. सी. सी. क्रिकेट टीम ने पूर्व पाकिस्तान का अपना दौरा रद्द करने की घोषणा की. जनता के क्रोध का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि पिछले दिनों लाहौर में धारा १४४ के बावजूद हज़ारों व्यक्तियों का जुलूस मुख्य बाज़ारों से अय्यूब-विरोधी नारे लगाते हुए गुज़रा जब कि संपूर्ण बाज़ार में पुलिस और पाकिस्तानी सेना का कड़ा पहरा था. इन परिस्थितियों को देख कर पाकिस्तान के मुख्य नेताओं ने सदर अय्यूब को अपने स्थान से भी हटने के लिए कहा है. अवामी पार्टी ने तो यहाँ तक कह दिया कि जब तक अय्यूब अपने पद से नहीं हटते तब तक उन से कोई भी बात नहीं हो सकती. अन्य प्रतिपक्षी पार्टियों ने भी अय्यूब के प्रस्ताव को ठुकरा दिया है.

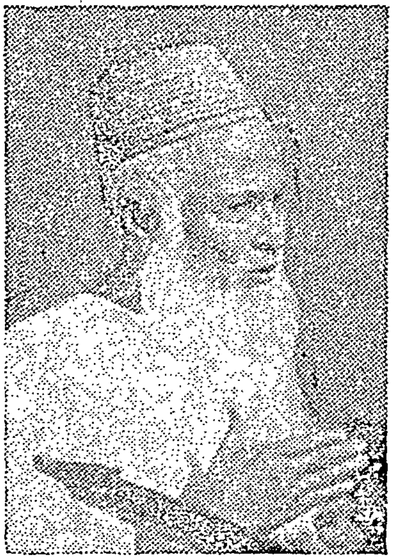

मौलाना भासानी : विस्फोटक गिरफ़्तारी

दो रास्ते : अय्यूब के सामने एक विचित्र स्थिति पैदा हो गयी है. यदि वह राष्ट्रपति-पद से हट कर पुन: जनता के सामने जाते हैं तो इस बात का विश्वास नहीं कि वह पुन: चुन लिये जायेंगे. यदि ऐसा होता तो उन्होंने कर्नल नासिर का दृष्टांत सामने रख कर अपनी स्थिति मज़बूत की होती. नासिर ने पराजय के बाद त्यागपत्र दिया था और इस प्रकार लोगों के सामने यह प्रदर्शित किया था कि वह जनता की भावनाओं का सम्मान करते हैं. क्यों कि सदर अय्यूब ऐसा नहीं कर सकते, इस लिए उन के सामने दो ही रास्ते हैं. या तो वह शालीनता का परिचय दे कर स्वयं अपने पद से हट जायें और पाकिस्तान के लोगों को नया राष्ट्रपति, नया शासन और नया संविधान चुनने के लिए छोड़ दें या फिर एक सच्चे अधिनायक के रूप में सामने आ जायें. मगर दूसरी सूरत में भी उन के लिए रास्ता साफ़ नहीं दिखाई देता. १९६५ के युद्ध के बाद कुछ उग्रपंथी पाकिस्तानी यह मानने लग हैं कि सदर अय्यूब की विदेश-नीति असफल रही है और वह युद्धकालीन नेता के रूप में असमर्थ हैं. इस प्रकार के विचारों को भूतपूर्व विदेशमंत्री ज़ुल्फ़िक़ार अली भुट्टो ने उत्साहित किया है और यह अनुमान लगाया जा रहा है कि स्वयं सेना में भी कुछ छोटे अफ़सर भुट्टो की विचारधारा से सहमत हैं. इस के अतिरिक्त मार्शल अय्यूब के विरोधियों में एयर मार्शल असगर खाँ भी हैं, जो थोड़ा ही समय पहले पाकिस्तानी वायुसेना के अध्यक्ष थे. और यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं होगा कि सेना में उन के भी समर्थक हैं. इस लिए यदि सदर अय्यूब अधिनायकवाद का पूरा प्रदर्शन करने का फ़ैसला करते हैं तो उन्हें अपनी सेना का सहारा लेना होगा. किंतु प्रश्न यह है कि क्या ऐसा करने से सेना भी विभिन्न वर्गों में नहीं बँट जायेगी ?

चेकोस्लोवाकिया

स्वतंत्रता की मशाल

यह सच है कि आत्महत्या से किसी देश को संकट से नहीं उभारा जा सकता. किंतु कभी-कभी वह जन-जागरण के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन बन सकती है. जनवरी के उत्तरार्द्ध में चेकोस्लोवाकी युवक यान पलाच ने आत्मदाह कर के सारे देश को झकझोर कर रख दिया. उस के आत्मदाह से स्वाधीनता की जो मशाल प्रज्वलित हुई उस ने सारे चेकोस्लोवाकिया में ठीक वैसी ही आग भड़का दी जैसी गत वर्ष अगस्त में रूसी आक्रमण के समय भड़की थी. यान पलाच के बाद ९ अन्य युवकों ने (जिन में एक युवती भी थी) रूसी हस्तक्षेप के विरोध में आत्मदाह कर लिया. हो सकता है, जैसा कि कहा जा रहा है, यान पलाच के अलावा अन्य सभी युवकों के आत्मदाह के पीछे ग़ैर-राजनैतिक कारण भी रहे हों किंतु यान पलाच की क़ुर्बानी के पश्चात् उन सब का भी आत्मदाह करना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि उन के दिल में चेकोस्लोवाकिया में दिनोंदिन बढ़ रहे रूसी हस्तक्षेप के प्रति उग्र विद्रोह था जिसे उन्होंने आत्म-बलिदान कर के व्यक्त किया. उन्होंने यान पलाच के उदाहरण को देख कर एक महान् उद्देश्य के लिए —देश की स्वतंत्रता की मशाल बन जाने के लिए— अपने को होम कर देना बेहतर समझा.

पीढ़ी दर पीढ़ी : चेकोस्लोवाकिया के इतिहास में यान पलाच ही पहला व्यक्ति नहीं है जिस ने किसी विशेष उद्देश्य के लिए आत्मदाह किया हो. अब से कोई साढ़े पाँच सौ वर्ष पहले प्राग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक यान हुस ने भी इसी प्रकार आत्मदाह किया था. वह चाहते थे कि लोग अपनी चेक भाषा में

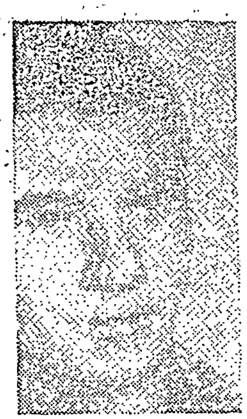

यान पलाच : स्वतंत्र मनुष्य

बाइबल (जिसे वह सत्य मानते थे) पढ़ें. १४१५ में यान हुस के आत्मदाह के बाद चेकोस्लोवाकिया में हुसवादी युद्ध का श्रीगणेश हुआ. चेक नेता यान जिज़्का ने एक नयी युद्ध-नीति –– शांत प्रतिरोध नीति का आविष्कार किया. उसे अपने प्रयत्नों में इतनी सफलता मिली कि सारे यूरोप से इकट्ठी हुई कैथलिक सेनाएँ भी चेक जनता का बाल बाँका नहीं कर पायीं. एक हुसवादी नेता ने इस सफलता पर टिप्पणी करते हुए कहा कि 'एक चेक किसान की पत्नी का बाइबल-ज्ञान एक रोमन पादरी से कहीं अच्छा है.' इस में कोई संदेह नहीं कि अपनी इस निष्ठा के कारण ही चेक जनता ने २०० वर्ष से भी अधिक समय तक अपनी स्वाधीनता को बनाये रखा. १६२० में चेकोस्लोवाकिया के पतन के बाद भी हुस और जिज़्का की यह परंपरा बनी रही. उसी वर्ष नेपोमुका के संत यान ने आत्मदाह किया और अब १६ जनवरी १९६९ को यान पलाच उसी परंपरा को निबाहते हुए शहीद हो गया.

यान पलाच की शहादत को पूरा राष्ट्रीय सम्मान मिला. राष्ट्रपति स्वोबोदा ने उस की माँ को संवेदना संदेश भेजते हुए उसे 'वीर पुत्र' कहा. चेकोस्लोवाक कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति ने और राष्ट्रीय संसद् ने भी 'आदर्श नैतिक शुद्धता की उत्कंठा' की सराहना की. विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष-मंडल के सदस्य यान कावान ने कहा 'अपने साथी यान पलाच की कार्यवाही पर छींटाकशी करने या उस का मूल्य कम कर के आँकने की कोशिशों को हम ठुकराते हैं... हम उस को एक व्यक्ति का अपना हल, एक राजनैतिक विरोध की अभिव्यक्ति और एक स्वतंत्र मनुष्य द्वारा विद्रोह का अपने ढंग का चयन मानते हैं. चेक मज़दूर संघ की केंद्रीय समिति ने श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि 'हम इस देशभक्तिपूर्ण कार्यवाही को तुच्छ बताने की कोशिशें नहीं चलने देंगे. यान पलाच की स्मृति में देश के कोने-कोने में सभाएँ हुई जिन में स्वतंत्रता और मानवीय समाजवाद की रक्षा करने का व्रत दोहराया गया. सभी प्रमुख विश्वविद्यालयों के छात्रों ने २४ घंटे की भूख हड़ताल की. इस विक्षोभ के वातावरण में स्लोवाक प्रदेश की सरकार ही एक मात्र ऐसा संगठन थी जिस ने यान पलाच की शहादत को किन्हीं 'समाज विरोधी' तत्त्वों द्वारा प्रेरित बताया. किंतु स्लोवाक मज़दूर संघ ने यान पलाच को श्रद्धांजलि अर्पित कर के और स्लोवाक छात्रों ने ब्रतिस्लावा में पलाच के नाम पर एक छात्रावास का नामकरण कर के यह स्पष्ट कर दिया कि स्लोवाक प्रदेश की सरकार वहाँ की जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर रही है.

यान हुस : परंपरा बनी है

फ्रांस

छोटा ब्रिटेन

ब्रिटेनी की अपनी यात्रा शुरू करने से पूर्व फ्रांस के राष्ट्रपति द गॉल को ब्रिटनी मुक्ति मोर्चे के समर्थकों के 'अपमानजनक' नारों से बचने के लिए बहुत-सी गिरफ़्तारियाँ करवानी पड़ीं. गिरफ़्तार किये गये लोगों में बहुत से पादरी भी थे. सावधानी और सुरक्षा के इन साधनों के बावजूद बहुत से छात्र काले झंडे ले कर राष्ट्रपति की अगवानी के लिए पुलिस की घेराबंदी तोड़ने में सफल हो गये. इन छात्रों को दबाने के लिए पुलिस को आँसू गैस तक का इस्तेमाल करना पड़ा. ब्रिटेनी मुक्ति मोर्चे के लोग फ्रांस के उत्तर-पश्चिम स्थित कैल्टिक क्षेत्र में रहते हैं, जो स्वायत्त शासन और अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों की माँग कर रहे हैं. इन लोगों ने अपनी माँगों के लिए पहले तो अहिंसा का रास्ता अख्तियार किया लेकिन जब उस से उन की मुराद पूरी नहीं हुई तो हथियार उठा लिये.

द गॉल के दिमाग़ में ब्रिटेनी की यात्रा शुरू करते समय दो बरस पहले की अपनी कैनाडा यात्रा का खयाल भी आया होगा अपनी कैनाडा यात्रा के दौरान उन्हों ने क्यूबेक की पृथकता की बात की थी. तब यह बात कनाडा के मूल निवासियों के अलावा उन लोगों को कितनी अखरी होगी जो वहाँ के फ्रांसीसी भाषी लोग हैं और जिन का भाग्य कैनाडा के साथ बँधा हुआ है. अपने ही देश में ब्रिटेनी के एक संगठित मोर्चे द्वारा अलगाव की बात करने से उन का चिंतित होना स्वाभाविक ही है जब कि उन्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए; क्योंकि वह खुद ही तो एक दूसरे देश के एक विशेष भाग को पृथकता का पाठ पढ़ाते हैं. ज्यों-ज्यों लोगों में राजनैतिक चेतना का विकास हो रहा है त्यों-त्यों उन में अपने अधिकारों की माँग का प्रश्न उठता जा रहा है. अमेरिका में जब निग्रो को दबाया जाता है तो वे अपनी आवाज़ बुलंद करते हैं. और फिर बिअफ्रा की सहायता भी फ्रांस ने इसी लिए की है क्योंकि उसे नाइजीरिया का तानाशाही रवैया स्वीकार नहीं. यहाँ के लोगों की भाषा, संस्कृति, आयरलैंड स्काटलैंड और ब्रिटेन के अधिक क़रीब है और इन लोगों के पुरखे यहीं से आ कर बसे हैं. इन लोगों द्वारा अपनी माँग के समर्थन में अहिंसक रूप अख्तियार करना राष्ट्रपति द गॉल के लिए चुनौती है.

द गॉल के सामने चुनौती के रूप में भूतपूर्व प्रधानमंत्री पांपीदू भी हैं जो कुछ समय पहले यह समझे बैठे थे कि वह द गॉल के संभावित उत्तराधिकारी होंगे. द गॉल ने यह बात तो ज़रूर उजागर कर दी है कि वह १९७० तक अपने पद पर बने रहेंगे लेकिन इस बात का कहीं उल्लेख नहीं किया कि क्या वह अगली बार खुद राष्ट्रपति-पद का चुनाव लड़ेंगे या अपने किसी समर्थक को चुनाव अखाड़े में उतारेंगे. पांपीदू ने यह ज़रूर घोषणा कर दी है कि या तो वह फ्रांस के अगले राष्ट्रपति होंगे या प्रतिपक्ष के नेता. राष्ट्रपति के निकट सूत्रों के हवाले से यह भी खबर मिली है कि वह वर्त्तमान प्रधानमंत्री मूर्विल, विदेशमंत्री देब्रे और शिक्षामंत्री के कार्य से अधिक संतुष्ट नहीं हैं. लोगों में संतोष बनाये रखने की ग़रज़ से उन्होंने फ्रांस में सुधार करने के लिए जनमत संग्रह करने का आदेश दिया है. वह आदेश कब कार्यान्वित होगा इस बात का फ़िलहाल कोई संकेत नहीं मिला है.

चीन

नया संविधान : पुराना विधान

अपने जीवन के आखिरी दिन अज्ञातवास में काटने वाले माओ त्से-तुंग जब भी कभी किसी बड़े या छोटे सभा या सम्मेलन में दर्शन दे देते हैं तो वह दुनिया की एक बहुत बड़ी खबर बन जाती है. और उस के बाद जब वह दो-तीन महीने तक फिर अज्ञातवास करते

हैं तो उन के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगनी शुरू हो जाती हैं और कहा जाने लगता है कि वह या तो बहुत सख्त बीमार हैं या उन की मृत्यु हो गयी है. पिछले साल की पहली अक्तूबर के बाद जब माओ त्से-तुंग पिछले महीने की २७ तारीख को ४०,००० क्रांतिकारियों का सलाम क़बूल करने आये तो यहाँ-वहाँ फिर यह कहा जाने लगा कि चीनी नेता बिलकुल स्वस्थ और प्रसन्न हैं. चीन की राजनीति अब यहाँ-वहाँ कुछ अफ़वाहें और अटकलें फैलाने और फिर उन का खंडन करने तक ही सीमित रह गयी है. कभी यह कहा जाता है कि माओ की पत्नी की पद-अवनति हो गयी है और कभी यह कि उन की पत्नी की पदोन्नति हो गयी है यानी पिछले वर्ष पहली अक्तूबर को जारी की गयी सूची में उन का आठवाँ स्थान था और अब उनका छठवाँ स्थान है.

सांस्कृतिक क्रांति की इतिश्री : कोई भी चीज़ जब हद से गुज़र जाती है तो वह एक सिरदर्द बन जाती है. लगता है कि चीन की सांस्कृतिक क्रांति (कुछ की निगाह में सांस्कृतिक आंदोलन) की गतिविधियाँ अब हद से गुज़र गयी हैं और वह माओ त्से-तुंग का सिरदर्द बनती जा रही है. शायद इसी लिए माओ त्से-तुंग अब अपने देश की बेशुमार और बेहिसाब जनसंख्या (७० करोड़) का ध्यान सांस्कृतिक क्रांति से हटा कर नौवीं नेशनल कांग्रेस की ओर केंद्रित करना चाहते हैं. नव वर्ष पर प्रकाशित एक सरकारी विज्ञप्ति में यह कहा गया कि १९६९ में सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति को पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त होगी.

माओ का नया संविधान : माओ के विचार, उनकी नीतियों और व्याख्याओं का पाठ और जाप तो वहाँ की जनता प्रतिदिन करती है, यह बात माओ जानते हैं. मगर माओ अब शायद यह चाहते हैं कि मार्क्स और लेनिन के बाद माओ का नाम लिया जाये.

माओ और लिन पिआओ : ज़िंदा हूँ इस तरह

नौवीं नेशनल कांग्रेस का आयोजन १३ वर्ष बाद किया जा रहा है. १९५६ में हुई आठवीं नेशनल कांग्रेस के कार्यक्रम पूरे हो चुके हैं या अधूरे ही छोड़ दिये गये हैं, यह तो माओ (चीन के देवता) ही जाने. ख़ैर, अब नौवीं नेशनल कांग्रेस में पुराने संविधान में परिवर्तन और संशोधन कर के एक नये संविधान की रचना की जायेगी. नये संविधान के लिए अब तक जो प्रस्तावित रूपरेखा तैयार की जा रही है वह कुछ इस प्रकार है: माओ के चित्र हर घर में लगें और माओ के विचारों का पाठ हर आदमी सुबह-शाम करे. यह कहने की बजाय कि माओ मार्क्स और लेनिन की विचारधारा को आगे बढ़ा रहे हैं यह कहा जाय कि जो विचार माओ के हैं वही वास्तव में मार्क्सवाद और लेनिनवाद है. माओ और लिन पिआओ अधिकारों और क्षेत्राधिकारों की अति से परेशान हैं और इसलिए शक्ति संतुलन बनाये रखने के लिए सत्ता का बँटवारा करना चाहते हैं. इन दिनों पीकिङ की दीवारों में जगह-जगह पोस्टर चिपके दिखायी दे रहे हैं जिन पर मोटी मोटी सुर्ख़ियों में 'कम्युनिस्ट पार्टी की नौवीं कांग्रेस का स्वागत' लिखा हुआ है. कहा जाता है कि इस कांग्रेस के लिए जो रूपरेखा तैयार की गयी है वह १९४५ और १९५६ की कांग्रेस की रूपरेखा की तुलना में कहीं ज़्यादा स्पष्ट और सरल है और मुख्यत: उस में नौकरशाही के कट्टर विरोध की ही ध्वनि निकलती है. हाँ, १९५६ में पार्टी के महासचिव के जिस महत्वपूर्ण पद की स्थापना की गयी है उस को अब संभवत: रद्द कर दिया जायेगा.

चीन और परमाणु बम : शक्ति, सत्ता और अधिकारों का बँटवारा करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जायेगा कि बड़ी-बड़ी कुर्सियाँ उन्हीं को सौंपी जायें जो दुनिया में चीन का दबदबा या आतंक का भ्रम फैलाये रखने में कामयाब हो सकें. पाँच सप्ताह पहले चीन द्वारा हाइड्रोजन बम का परीक्षण किये जाना यही सिद्ध करता है कि वह अपने यहाँ परमाणु बमों का भंडार बढ़ाने में लगा हुआ है. यों कहने को यह कहा जा सकता है कि उनका एक परीक्षण असफल भी हुआ. अमेरिकी विशेषज्ञों का अनुमान है (जो चीन की हर गतिविधि पर कड़ी नज़र रखते हैं) कि चीन ने कम से कम १०० परमाणु हथियार इकट्ठे कर रखे हैं.

चीन के नये संविधान में जिस पुराने कार्यक्रम का समर्थन किया गया है उस में अविकसित देशों का नेतृत्व कर के उन्हें अपने पुराने शत्रुओं (साम्राज्यवादी अमेरिका और सुधारवादी रूस) के विरुद्ध भड़काना लगता है. यह नया संविधान केवल चीन के लिए नहीं, दुनिया के सभी क्रांतिकारियों के लिए तैयार किया जा रहा है. १९४५ और १९५६ के संविधान में यह कहा गया था कि चीनी जनता के सर्वहारा वर्ग का उद्देश्य चीन में पूर्ण रूप से साम्यवाद का निर्माण करना है लेकिन अब नये संविधान में 'चीन' और 'चीनी जनता' इन दोनों शब्दों को हटा दिया गया है यानी उन का उद्देश्य विश्व में साम्यवाद की स्थापना करना हो जायेगा.

मलयेसिया

नया बावेला

मलयेसिया के राजनैतिक वातावरण में आजकल काफ़ी तनाव है, क्यों कि एक तो वहाँ की सरकार ने ब्रिटेन से हवाई जहाज़ ख़रीदने का निर्णय किया है और दूसरे संविधान में संशोधन कर सभी उपचुनावों को फ़िलहाल स्थगित किया जा रहा है. लोगों के मन में यह भावना घर करती जा रही है कि मलयेसिया में लोकतंत्र की जगह तानाशाही बढ़ती जा रही है और कम्युनिस्टों का सफ़ाया करने की योजनाएँ बनायी जा रही हैं. पिछले दिनों १४० कम्युनिस्टों को सरकार विरोधी कार्रवाइयाँ करने के जुर्म में पकड़ा गया. वामपंथी लेबर पार्टी ने सरकार की इस धर-पकड़ के कारण जून में संसद् और राज्य विधानसभाओं के लिए होने वाले चुनावों का बहिष्कार करने की सलाह की है. इस राजनैतिक उथल-पुथल से देश में अनिश्चितता की स्थिति पैदा होने के डर से सरकार ने संविधान में संशोधन कर उपचुनावों को स्थगित करने का हथियार बरत अपने प्रति विरोध का दायरा तो ज़रूर खड़ा कर लिया है लेकिन इस के साथ ही अपने हाथ भी काफ़ी मज़बूत किये हैं.

संविधान संशोधन : राजनैतिक हलकों में इस तरह की चर्चाएँ हैं कि एक तरफ़ लोकतांत्रिक व्यवस्था के विकास के लिए तरह-तरह के क़दम उठाये जा रहे हैं मसलन थाईलैंड में अगले महीने नयी संसद् का आम चुनाव हो रहा है, ट्रेड यूनियनों पर से पाबंदियाँ हटायी जा रही हैं और बहुत-से राजनैतिक बंदियों

तुंकू अब्दुल रहमान : आख़िरी फ़रमान

को रिहा किया जा रहा है. वर्मा की क्रांतिकारी परिषद् के प्रधान जनरल ने विन ने पिछले दिनों ३,००० राजनैतिक वंदियों में से ३०० के अलावा सभी को रिहा कर दिया है. यहाँ तक कि उन्होंने ३० लोगों की नये संविधान निर्माण के लिए उन की सेवाएँ चाही हैं. इंदोनेसिया में सुकर्ण का तानाशाही युग लगभग खत्म हो चुका है और सुहर्त्त के नेतृत्व में वहाँ लोकतंत्र की एक नयी तसवीर सामने आ रही है. फिर भी जहाँ कहीं कम्युनिस्ट गतिविधियाँ अँगड़ाई लेती हैं, तो उन्हें उठने से पहले ही दवा दिया जाता है. इस प्रकार मलयेसिया के आस-पास के देशों मे जहाँ लोकतंत्रीय व्यवस्था पुनः स्थापित हो रही है, वहाँ मलयेसिया की सरकार द्वारा चुनावों को स्थगित करना और लोगों के अधिकारों में कटौती करना वेमतलव-सा लगता है.

मलयेसिया सरकार ने संघ से अलग हुए सिंगापुर को मान्यता देने के लिए संविधान में संशोधन किया है और उस के वाद सारावाक के विद्रोही मुख्यमंत्री डेयाक को हटाने के लिए भी संविधान में तरमीम की है. इस के साथ ही वहुत से लोगों को जेल मे ठूँस दिया गया था जिस में एक विद्रोही वकील करमसिंह शामिल था. अक्सर यह पूछा जाता है कि इन राजनैतिक गतिविधियों से पैदा होने वाली नयी चेतना को दवाने के लिए क्या दमन नीति मलयेसिया के लिए कारगर सावित होगी. सारावाक को ले कर कभी मलयेसिया का इंदोनेसिया से झगड़ा था और अव सवाह के मामले को ले कर फ़िलिपीन और मलयेसिया मे ठन गयी है. यदि भीतरी अव्यवस्था के कारण मलयेसिया के जन-साधारण में क्षोभ वढ़ता है तो इस का असर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय तौर पर मलयेसिया के लिए शायद हितकर सावित न हो. मलयेसिया के प्रधानमंत्री टुंकू अब्दुल रहमान वैसे वड़े सुलझे हुए विचारों के व्यक्ति है, लेकिन कभी-कभी उन की पेचीदा नीतियाँ उन के अपने ही लोगों के पल्ले नही पड़तीं. १९७० में अपने सैनिक अड्डे समाप्त कर ब्रिटेन दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के लिए असुरक्षा की स्थिति पैदा कर रहा है, उसी ब्रिटेन से हथियार खरीदने का निर्णय ले कर भी टुंकू अब्दुल रहमान ने अपने आस पास खासा वावेला खड़ा कर लिया है.

पश्चिम एशिया

उत्तेजना साधन भी साध्य भी

इराक़ ने १४ व्यक्तियों को सार्वजनिक रूप से फाँसी पर लटका कर पश्चिम एशिया के वातावरण में एक नया तनाव पैदा कर दिया है. इराक के अधिकारियों का कहना है कि इन व्यक्तियों ने इराक़ के विरुद्ध इस्राइल और अन्य देशों के लिए जासूसी की, जिस से इराक़ के हितों को भारी नुक़सान पहुँच रहा था. इराक़ सरकार के इस काम को विश्व के अनेक राष्ट्रों ने अनावश्यक और अविवेकपूर्ण घोषित किया है. संयुक्त राष्ट्र के महासचिव ऊ थाँ ने एक संवाददाता सम्मेलन में कहा कि इस प्रकार का काम असभ्य है 'सार्वजनिक अभियोग और फाँसियों का हर समय विरोध किया जाना चाहिए क्यों कि वे घृणित कार्य होने के अतिरिक्त भयानक भी हैं. विशेष कर जब कि वे केवल इस लिए किये जायें कि जनता की भावनाएँ भड़क उठें.' महासचिव के अनुसार इस काम से पश्चिम एशिया की समस्या को हल करने के संवंध में और भी अधिक कठिनाई पैदा हो गयी है. संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के एक प्रवक्ता ने भी सार्वजनिक फाँसियों की निंदा की. उन के अनुसार अमेरिका सरकार 'सार्वजनिक अभियोगों के वारे में कुछ नही कह सकती क्योंकि वहाँ कोई अमेरिकी दूतावास नही है.'

व्रितानी सरकार ने इराक़ के इस कृत्य को उत्तेजक और अनावश्यक घोषित किया. उन के अनुसार यह मानव के अंत.करण के लिए घृणित कार्य है. मगर इन सव निंदाओं के वावजूद इराक़ सरकार तथाकथित जासूसों को सार्वजनिक रूप से फाँसी पर लटकाने के अपने कार्यक्रम को स्थगित करने या उस पर पुनर्विचार करने के लिए विल्कुल तैयार नही है.

घर का मामला : इराक़ के प्रतिनिधि अदनान राऊफ़ ने महासचिव ऊ थाँ के वक्तव्य पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा कि यह एक 'विचित्र वात है कि ऐसे विपयों पर महासचिव अपने वक्तव्य दें जो इराक़ के न्यायालयों और अधिकारियों के प्रभाव क्षेत्र मे आते हैं.' उन्होंने ऊ थाँ से कहा कि 'इराक़ की सुरक्षा और इराक की जनता का वचाव इराक़ी सरकार का सब से पहला और महत्त्वपूर्ण कार्य है.' इसी प्रकार इराक़ के सूचनामंत्री ने भी विदेशी सरकारों द्वारा इराक़ के मामले मे हस्तक्षेप की निंदा की हैं. वग़दाद में उत्तेजित भीड़ ने व्रितानी दूतावास को घेर कर व्रितानी रुख पर विरोध प्रकट किया.

किंतु इस से भी अधिक महत्त्वपूर्ण वात यह है कि इराक़ ने १५ व्यक्तियों के एक और दल को फाँसी पर लटकाने का निश्चय किया है. इन में १३ यहूदी हैं. यह ज्ञात नहीं हो सका है कि और कितने व्यक्तियों पर जासूसी का आरोप लगाया गया है. अनुमान है कि कुछ लोगों को छोटी-मोटी सजाएँ भी दी जायेंगी. इराक ने जनता को इस वात के लिए तैयार कर दिया है कि वह इस्राइल के विरुद्ध उसी प्रकार का एक घृणा आंदोलन आरंभ करे जिस प्रकार का १९६७ के अरव-इस्राइली युद्ध से पहले संयुक्त अरव गणराज्य में हुआ था. इराक़ी सरकार के अनुसार इस्राइल ने अपनी सेनाएँ इराक़ की सीमाओं के साथ खड़ी कर दी हैं और उस का एक ही अर्थ हो सकता है कि कुछ यहूदियों को फांसी पर लटकाने का वदला लेने के लिए इस्राइली एक व्यापक स्तर पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा है. यद्यपि इस्राइल में इराक़ी कार्य के विरुद्ध रोष और उत्तेजना फैली हुई है फिर भी राजनैतिक चिंतकों का विचार है कि इस्राइल अभी कोई प्रतिशोधात्मक कार्रवाई नहीं करेगा. क्यों कि वेरुत पर हेलीकाप्टरों के आक्रमण के वाद इराक़ पर किसी प्रकार का आक्रमण पश्चिम एशिया में एक नये संघर्ष को जन्म दे सकता है जो विश्व युद्ध का भी रूप धारण कर सकता है.

विभाजित अरव : संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेश विभाग ने यह सूचना दी है कि अमेरिकी सरकार ने इस्राइल को यह सलाह दी है कि वह कोई प्रतिशोधात्मक कार्रवाई न करे. उन्हें इस वात की आशा है कि इस्राइल में अमेरिकी इच्छा का सम्मान किया जायेगा. महासचिव ऊ थाँ ने भी पश्चिम एशिया समस्या को हल करने के लिए अपने प्रतिनिधि गुन्नार यारिंग के साथ वार्त्ता की. ऊ थाँ की दृष्टि में इस समस्या का हल करने के लिए चार वड़ों की वैठक लाभदायक सिद्ध हो सकती है.

मगर उन्होंने औपचारिक रूप से चार वड़े राष्ट्रों को ऐसा करने के लिए नहीं कहा है. संयुक्त राष्ट्र के प्रयास के वावजूद पश्चिम एशिया मे निकट भविष्य में किसी उचित हल की आशा दिखाई नही देती. स्वयं अरव राष्ट्र भी संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव पर सहमत नही है. हाल ही में काहिरा में आयोजित अरवों के समर्थन में द्वितीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन मे यह वात स्पष्ट हो गयी थी कि अरव समर्थकों मे भी कुछ लोग केवल इतना चाहते हैं कि इस्राइल जून, १९६७ से पूर्व की रेखा तक वापस चला जाये. मगर उग्रपंथी लोग फिलीस्तीन को आजाद कराने का हठ पकड़े हुए है. स्वयं राष्ट्रपति नासर ने भी एक वक्तव्य मे यह वताया कि संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव से फ़िलीस्तीनवासियों की इच्छाएँ पूरी नही होती इस लिए वे अपनी छापामार कार्रवाई को कायम रखने के अधिकारी हैं. इस सम्मेलन मे भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य भी एक मत नही थे. जहाँ लोक सभा के उपाध्यक्ष श्री खाडिलकर ने अरवों को यह सलाह दी कि वे व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाएँ और इस्राइल के साथ रहना सीखें वही दूसरे प्रतिनिधि डा. अनूपसिंह ने फिलीस्तीनी अरवों द्वारा अपने वतन को मुक्त कराने के प्रयास जारी रखने का परामर्श दिया.

विश्वविद्यालय की चिट्ठी

भाषण-भ्रमजाल

हाल में उत्तरप्रदेश के उप-कुलपतियों का राज्यपाल कुलपति की अध्यक्षता में जो सम्मेलन हुआ उस में शिक्षाविभाग के कुछ उच्च अधिकारी और इंसपेक्टर जनरल पुलिस भी सम्मिलित थे. कुछ समय पहले उत्तरप्रदेश के क़रीब-क़रीब सभी विश्वविद्यालय छात्र-आंदोलन के सबब से बंद थे, इस लिए आशा थी कि इस सम्मेलन से कुछ ऐसे प्रश्नों का उत्तर मिल सकेगा जो समान रूप से छात्रों को आंदोलित किये हुए हैं. मगर, जैसा कि अक्सर देखा गया है, जितने बड़े अधिकारियों का सम्मेलन होता है उतने ही यथार्थ से हटे हुए निर्णय लिये जाते हैं. वैसा ही इस सम्मेलन का भी हुआ.

विचारों का विचार : आज विद्यार्थियों की बहुत बड़ी समस्या शिक्षा-माध्यम की है. माँगें विद्यार्थियों ने किन्हीं शब्दों में रखी हों, महत्त्व किस को दिया हो किस को नहीं—मूल प्रश्न यह है कि उन को समाज-शास्त्र और विज्ञान ऐसी भाषा में पढ़ाये जायें जो उन की समझ में आये, जिस में वे स्वतंत्र रूप से सोच सकें और ऐसी ही भाषा में उन को पुस्तकें उपलब्ध करायी जायें—पुस्तकें जो क़ायदे की हों. दो संस्थाएँ इस काम में सहयोग दे सकती हैं—वास्तव में उन पर ही ज़िम्मेदारी है—वे हैं विश्वविद्यालय और सरकार. पिछले उप-कुलपति-सम्मेलन में यह निर्णय किया गया था.

हर विश्वविद्यालय में एक हिंदीअनुभाग बनाया जायेगा, जो माध्यम के प्रश्न पर विचार करेगा और समाधान निकालेगा. संभवत: किसी भी विश्वविद्यालय में इस प्रकार का अनुभाग नहीं बनाया गया. श्री एम. एन. मेहरोत्रा, उत्तरप्रदेश के शिक्षाविभाग उप-सचिव, ने **दिनमान संवाददाता** को बताया कि पिछली बैठक का यह निर्णय विवरण में शामिल था, मगर इस प्रश्न पर कोई चर्चा नहीं हुई और उन को कोई सूचना नहीं है कि इस संबंध में क्या हो रहा है. साथ-साथ श्री मेहरोत्रा ने यह भी कहा कि "इस का समाधान शीघ्र ही निकलने वाला है. केंद्रीय सरकार के एक करोड़ रुपये के अनुदान से हर हिंदी राज्य में हिंदी संस्थान की स्थापना हो रही है. कुछ दिन ठहरना होगा, बाद में सब ठीक हो जायेगा."

लखनऊ विश्वविद्यालय के उप-कुलपति श्री एम. बी. लाल का विचार यह है कि कुछ समय पूर्व के छात्र-आंदोलन में माध्यम की समस्या मुख्य नहीं थी. उन्होंने इस का समाधान भी निकाल लिया है. उन्होंने स्वीकार कर लिया (विद्यार्थियों के सम्मुख) कि माध्यम हिंदी ही हो और उन्होंने विभागाध्यक्षों का ध्यान एक पुराने प्रस्ताव की ओर आकृष्ट किया कि तीन वर्ष तक यदि वे चाहें तो उत्तर स्नातकोत्तर स्तर पर अंग्रेज़ी माध्यम रख सकते हैं. **सरकार और विश्वविद्यालय दोनों वर्गों ने, यानी अधिकारियों ने 'आसान' तरीक़े निकाल लिये, क्यों कि दोनों वर्गों में भाषा के संबंध में मोटी-मोटी बातों तक की समझ की कमी है. कोई उस भाषा की बात ही नहीं करता जो सक्षम हो; एक पैने शस्त्र की तरह हो; जो ज्ञान-विज्ञान की वाहक बन सके; जिस के विकसित होने, उपजने, सशक्त होने में सभी लोग, अध्यापक, विद्यार्थी, लेखक—वे लोग जो उसे बर्तते हैं—अपना-अपना योग दे सकें.**

हो क्या रहा है ?: अब भी हिंदी को राष्ट्र भाषा मनवाने के लिए हिंदी के बड़े-बड़े धुरंधर लगे हैं, जो 'आग्रह' के नाम पर दुराग्रह के लिए तैयार हैं और कुछ ऐसे लोग हैं जो हिंदी को राष्ट्रभाषा बनवाना तो एक महान समस्या मानते हैं, मगर तरीक़े कुछ अलग बताते हैं. **लेकिन सब से बड़ी समस्या, यानी हिंदी को कम से कम हिंदी प्रांतों में इस्तेमाल की भाषा बनाया जाये—यानी जीवन के हर क्षेत्र में इस्तेमाल की भाषा, पर कोई भी ध्यान देने को तैयार नहीं.**

अंत में : इस सब का नतीजा क्या निकलता है ? आये दिन विश्वविद्यालय के अध्यापक स्पष्ट नीति या विचार-विनिमय न होने के कारण अजब-अजब तरह की मुद्रायें अख्तियार करते हैं.

कुछ लोग विद्यार्थियों के सामने ऐसी अकृत्रिम हिंदी जान-बूझ कर बोलते हैं (जिसे वे 'क्लिष्ट' बताते हैं) कि विद्यार्थियों के कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता. विद्यार्थी उन की तरफ़ अचरज से देखते हैं, यह सोच कर कि उन का प्राध्यापक इतनी क्लिष्ट हिंदी बोल सकता है और उन अध्यापकों का भी काम बनता है, क्यों कि वे भी यही चाहते हैं कि विद्यार्थियों के वह पल्ले न पड़े. अंत में विद्यार्थी हार कर अनुरोध करते हैं कि अंग्रेज़ी में ही पढ़ाया जाये.

साथ ही कुछ काफ़ी नये अध्यापकों को अंग्रेज़ी में पढ़ाने में काफ़ी दिक़्क़त होती है और उन के लिए एक घंटे की कक्षा उन की ही परीक्षा हो जाती है इस बात का फ़ायदा उठाने के लिए कुछ विद्यार्थी, जिन का अंग्रेज़ी का स्तर ठीकठाक है, उन से अंग्रेज़ी में पढ़ाने का आग्रह करते हैं. इस सब का नतीजा होता है, हुल्लड़, मार-पीट आदि.

कुछ पुराने अध्यापक हिंदी में पढ़ने वाले विद्यार्थियों में हीन भावना पैदा करते हैं. अध्यापकों का एक ऐसा भी वर्ग है जो यह तर्क देता है कि हिंदी माध्यम विश्वविद्यालय के अध्यापकों की अंतर्विश्वविद्यालय-गति को रोकेगा—अच्छे अध्यापक एक विश्वविद्यालय से दूसरे विश्वविद्यालय में न जा सकेंगे. यह सही है कि ऐसे तर्क देने वाले अध्यापकों में से कई योग्य नवयुवक अध्यापक हैं, लेकिन वे एक ओर यह भूल जाते हैं कि ऐसे अध्यापकों का आनुपातिक अंश बहुत छोटा है. यह दूसरी समस्या अल्पकालीन है और व्यापक नीति-निर्धारण में निर्णायक नहीं मानी जा सकती है.

कुछ अध्यापक नौकरी छोड़ देने तक की बात करते हैं, जो धमकी अधिक और वास्तविकता कम है. यह सारा भ्रम जाल इस लिए भी है कि वे इस उद्देश्य से एक साथ बैठने को तैयार नहीं है कि हिंदी को अभी उस जगह आसानी से प्रवेश होने दे जहाँ **कालांतर** में उसे प्रवेश पाना है.

ढपोरशंख : जहाँ तक सरकार का और उन के अधिकारियों का प्रश्न है वे किसी न किसी बहुत बड़ी योजना का सहारा ले कर अनिवार्य और शीघ्र समाधान माँगने वाली समस्याओं से अपनी नज़र उठा लेते हैं. डॉ. मेहरोत्रा ने बताया कि केंद्र ने एक समन्वय-समिति बनायी है, जिस के संयोजक बनारस विश्वविद्यालय के उप-कुलपति श्री जोशी हैं. अनुवादों और मूल पुस्तकों की समस्या पर यह समिति अपने **विचार** पेश करेगी और कुछ **सुझाव** देगी. अत: डॉ. मेहरोत्रा के अनुसार अलग-अलग विश्व-विद्यालय में अनुभागों की आवश्यकता क्या रह जाती है?

वह कहते हैं 'बात बहुत आगे बढ़ गयी है'—यानी बात को इतना फैला दिया गया है वह पकड़ में न आये और योजनाओं-प्रस्तावों तक रह जाये. शिक्षाविभाग के ये अधिकारी साथ-साथ यह भी कहते हैं 'बड़े दिखने वाले लोग बड़े नहीं होते? काम छोटे लोग ही करेंगे !' परंतु क्या काम ?

किसी भी स्तर पर यह जागरूकता नहीं दिखायी दे रही है कि माध्यम की इस सजीव समस्या में सभी संबद्ध व्यक्तियों को जानदार सहयोग देना है. विद्यार्थी अपनी सही माँग को सही-सही तरीक़े से नहीं रख पा रहे हैं और वह समस्या, जो उन्हें वास्तव में छूती है, कुछ अध्यापकों, सरकारी अफ़सरों, कुछ हिंदी के स्वघोषित-प्रेमियों के लिए ताना-बाना बुनने और तरह-तरह के भ्रम उत्पन्न करने का साधन बनी हुई है.

नमक : एक वैज्ञानिक चुनौती

अपनी राजनैतिक लड़ाई की एक बड़ी मुहिम के तौर पर कभी हम ने नमक बनाया था. नमक बनाने की एक और बड़ी मुहिम देश को एक बार फिर चलानी है, क्यों कि उसे सर किये बिना आर्थिक आज़ादी संभव नहीं. यों तो तत्त्वों के शुद्ध रूप, रस भी बोलचाल में नमक ही कहलाते हैं. खटिक-तत्त्व या कैलशियम को, सीधी-सादी बोली में, चूने का नमक कहते हैं. पर और नमकों को छोड़िये, हमारे खाने का नमक भी अपने शुद्ध रूप में, क्षार धातु के हरिद सोडियम क्लोराइड के रूप में, अपने यहाँ नहीं बनता. उसे विदेशों से मँगाना होता है. आयात की कठिनाइयों के मारे वह दुर्लभ है. उस के अभाव में विज्ञान के कितने ही ज़रूरी प्रयोग हम कर नहीं पाते. यह नहीं कि उसे बनाने का सामान हमारे पास न हो. कमी अगर है तो बनाना जानने की की ओर उस जानकारी को उद्योग में लागू करने की. कई चीज़ें हम नब्बे प्रतिशत स्वदेशी बनाने लग गये और कई पचानवे प्रतिशत, मगर जिस दस या पाँच प्रतिशत के लिए हम अभी भी विदेशों के मुहताज हैं और जिस के बिना हमारा उद्योग विशेष ठप्प भी हो जा सकता है वह कमी आम तौर से इस या उस नमक की ही है. ट्रांज़िस्टर-सेट, रिफ़्रिजिरेटर आदि हम बनाते तो हैं, पर ये चीज़ें शत-प्रतिशत स्वदेशी नहीं होतीं. उन में जो विदेशी चीज़ें लगानी पड़ती हैं वे भी उक्त प्रकार की ही हैं. उन चीज़ों को घर का घर में ही बना लेने के लिए सारा ज़रूरी कच्चा माल हमारे पास मौजूद है. पर उस कच्चे माल को जिस मानक तक शुद्ध किये बिना काम नहीं चलता वह मानक अभी विदेशों में ही प्राप्त है. उद्योग में सीधे लगाये जा सकने वाले ऐसे संशोधित सामान को 'सामग्री' या मेटीरियल कहते हैं. सामग्री को शुद्ध करने की क्रिया वैज्ञानिकों की आम बोलचाल में 'सामग्री-भौतिकी' कहलाती हैं. सोवियत संघ में तो इस के कई स्वतंत्र विद्यापीठ हैं, जिन की दर्जनों अलग-अलग उप-विद्या-शाखाएँ हैं.

सामग्री को शुद्ध करने की समस्याओं पर विचार करने के लिए अभी-अभी नयी दिल्ली में पाँच दिन का एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ है : अवातु केलास और शिल्प-विज्ञान का अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन.

सम्मेलन : सम्मेलन की तेईस बैठकों में अठारह इस विषय की नयी खोजों और प्रयोगों पर प्रकाश डालने वाले निबंधों को समर्पित थीं. योग देने वाले तीन सौ वैज्ञानिकों में दो सौ भारत के थे, शेष पौन सौ प्रायः पंदरह बाहरी देशों के. सब से अधिक अमेरिका के और उन के बाद रूस के. दो सौ पैंतीस वैज्ञानिकों के एक सौ बावन निबंध प्रस्तुत किये गये. अमेरिका, ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी, डेनमार्क आदि के कई निबंधों में प्रवासी भारतीय प्रतिभा का भी योग था. विषयों के हिसाब से चार बैठकों में सामान्य लवणिदों (हैलाईडों), चार में क्षार लवणिदों, दो में जारिद (ऑक्साइड) केलासों, दो में इतर संबद्ध विषयों और एक में युक्तियों से संबद्ध निबंधों पर चर्चा हुई. निबंधों में पचीस इस सम्मेलन के लिए खास तौर से लिखवाये गये. आमंत्रित निबंध थे, जिन में सात स्वदेशवासी भारतीय विज्ञानियों के थे. दूसरे निबंधों में भी स्वदेशी निबंधों की (दिल्ली, कानपुर, खड़गपुर, मद्रास, आदि के) शिल्प-विज्ञान-संस्थानों, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं, ठोस अवस्था की भौतिकी के स्वतंत्र प्रतिष्ठानों, विश्वविद्यालयों आदि में हुए काम की उपलब्धियों के प्रतिवेदनों की गिनती खासी बड़ी थी. मतलब साफ़ है : अपने इस अभाव के प्रति भारत सचेत हो चुका है. देश की आँखें खोल देने का श्रेय उद्योगों की ज़रूरतों से भी बढ़ कर सुरक्षा की ज़रूरतों को है. सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्व की कई प्रकार की सामग्री, बनाने की प्रविधि हमारे हाथ बेचने से हमारे मित्र देशों तक ने साफ़ इनकार कर दिया. केलास-विद्या की कितनी ही महत्त्वपूर्ण जानकारियों को लगभग सभी देश रासायन-उद्योग के आवेजकों से भी अधिक गोपनीय मानते हैं और इस मामले में उन्हें सुरक्षा-भेदों की बराबरी का दर्जा देते हैं. इस लिए आर्थिक आज़ादी और सुरक्षा-स्वावलंबिता, दोनों की राह केलास-भौतिकी के मामले में एक हो गयी है : दोनों का तक़ाज़ा है कि हम स्वदेशी केलास-भौतिकी का विकास यथा शीघ्र कर डालें. सम्मेलन का आयोजन नयी दिल्ली के भारतीय शिल्प-विज्ञान-संस्थान ने किया और इस काम में उसे कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों ने सहयोग दिया है.

वैज्ञानिक रहस्य : केलास-विद्या और उस के शिल्प-विज्ञान ने पिछली-चौथाई सदी में अपूर्व उन्नति की है, पर उन की इस उन्नत अवस्था की विशिष्ट उपलब्धियों पर थोड़े-से ही देशों का अधिकार है. बहुत कुछ उसी तरह जिस तरह प्राचीन युगों में कितने ही प्रकार के विशेष तत्त्व-ज्ञानों और शास्त्रों पर ब्राह्मणों का ही एकाधिकार होता था. इस स्थिति का सब से बड़ा कारण यह है कि आधुनिकतम यंत्र-उद्योगों, अंतरिक्ष-कार्यक्रमों और प्रबल सामरिक साधनों के विकास के क्षेत्रों में इस समय जो दौड़ चल रही है उस में बाज़ी मार ले जाने के गुर घनावस्था-भौतिकी की सिद्धियों से ही हासिल होते हैं. यह प्रतियोगिता इस विज्ञान के द्वार पर नित नयी माँग ले कर आ खड़ी होती है. कभी कहती है कि हल्के से हल्के, अधिक से अधिक तापसह और साथ ही मज़बूत से मज़बूत परदे बना दो, कभी कहती है कि सूरज की ऊर्जा को गिरफ़्तार कर लेने वाले यंत्र बना दो. ऐसी सूरत में भारत का इस क्षेत्र में कई उन्नत राष्ट्र से पीछे रह जाना कोई अचंभे की बात नहीं है. फिर भी पिछड़ेपन की चोट हमारे उद्योग पर खासी गहरी पड़ती है. फ़ॉस्फ़र अर्धचालकों, ताप-बिजली अर्धचालकों आदि के पावन की विधियाँ हम मालूम कर लें तो टेलीविज़न के सेट और बैटरियों के सेल और ताप को बिजली बनाने वाले यंत्र हम पूरे के पूरे स्वदेशी और आज की अपेक्षा कहीं सस्ते बनाने लगें. प्रकाशित काचों के केलासन और निर्माण की विधियाँ मालूम कर के हमने उद्योग और सुरक्षा की कितनी ही विकट समस्याएँ हल कर ली हैं और इस मामले में अपनी दयनीय मुहताजी को अतीत के एक भयंकर दुस्वप्न के रूप में पीछे छोड़ दिया है. सामरिक-असामारिक महत्त्व की जो विधियाँ हमें अभी भी मालूम करनी रह गयी हैं उन के महत्त्व के बारे में डॉ. भगवंतम ने सम्मेलन का उद्घाटन करते समय यह बिलकुल ठीक ही कहा कि इन्हें हम समय रहते मालूम न कर सके तो समझिये कि देश का अस्तित्व ही खतरे में है. इस कारण घनावस्था-भौतिकी ही हमारे लिए शायद सब से महत्त्व का विज्ञान है. आज के उद्योग इस विज्ञान से ऐसे परिशुद्धतम विनिर्देशों वाले केलासों और उन से बनी सामग्री की माँग करते हैं जिन की परिशुद्धि में ज़रा भर भी इधर-उधर होना उन्हें क़तई मंज़ूर नहीं. लेसरों, मेसरों, नये ढंग के ट्रांज़िस्टरों, क़ंप्यूटरों में काम आने वाली स्मरण-युक्तियों आदि के आविष्कार विज्ञान, उद्योग, सुरक्षा आदि के क्षेत्रों में आमूल क्रांति ला रही है और उस क्रांति से अलिप्त रह जाना सचमुच आत्मघाती होगा और ऊर्जा से काम लेने की युक्तियाँ हाथ कर लेने पर भाप के इंजनों, डायनमों आदि पारंपरिक युक्तियों की ज़रूरत बिलकुल नहीं रह जायेगी. उन की जगह उन से कई गुनी अधिक कार्यक्षम और कई गुनी कम बेडौल युक्तियाँ ले लेंगी.

चिकित्सा

रक्त से औषधि

भारत-बुल्गारिया सहयोग से फ़रीदाबाद में स्थापित होने वाले ७० लाख रुपये की लागत के औषधि-संयंत्र से, जिस का शिलान्यास बुल्गारिया के प्रधानमंत्री श्री टोडोर ज़िव्कोफ़ अपनी भारत यात्रा के दौरान विधिवत् कर चुके हैं, भारत में **गामा ग्लोब्यूलिन और अल्ब्यूमिन** औषधि का उत्पादन संभव हो सकेगा. अभी तक यह औषधि केवल बुल्गारिया में ही बनती है. बुल्गारिया के टेक्नोएक्सपोर्ट और भारत के क्वोरवेल संस्थानों के सहयोग से

बनने वाली इस औषधि के लिए गर्भनाल की आवश्यकता होती है. पिछले पांच वर्षों से बुल्गारिया गर्भनाल द्वारा व्यावसायिक स्तर पर यह औषधि तैयार कर रहा था, लेकिन छोटा देश होने के कारण गर्भनाल वहाँ पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाती. भारत से कई देशों ने गर्भनाल को प्राप्त हो सकने के बारे में पूछताछ की थी. भारत में प्रसूतिगृहों की संख्या बहुत बड़ी है. अस्पतालों के प्रसूतिगृहों समेत इन में जन्म लेने वाले शिशुओं की गर्भनाल और गर्भनाल काटते समय बहने वाला रक्त अब तक बेकार जाते रहे हैं. गामा ग्लोब्यूलिन के लिए इन्हीं की आवश्यकता होती है. अब इस तरह व्यर्थ जाने वाले रक्त को और गर्भनालों को इकट्ठा किया जाएगा और उन्हें औषधि उत्पादन तक सुरक्षित रखा जाएगा.

इस में संदेह नहीं कि यह कार्य कठिन है. भारत भर के अस्पतालों व प्रसूतिगृहों से यह सारी सामग्री पखवाड़े में एक बार एकत्रित की जायेगी. फिर वायुयान या रेफ्रिजरेटेड ट्रकों द्वारा फ़रीदाबाद लायी जायगी. प्रसूतिगृहों के कर्मचारी ही इसे एकत्रित करेंगे.

गामा ग्लोब्यूलिन शरीर में प्रतिरोधक शक्ति पैदा करने वाली औषधि है. यह कई संक्रामक बीमारियों के विरुद्ध कार्य करती है. पोलियो, छोटी चेचक, चेचक आदि बीमारियों को रोकने के लिए यह विशेष रूप से सहायक है.

हाल में ही हुई खोज से यह पता चला है कि कैंसर को रोकने के लिए दिये जाने वाले टीकों में भी यह औषधि महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है. लेकिन इस का अभी कोई निश्चित रूप सामने नहीं आया है. खोज जारी है. अल्बुमिन, किडनी संदूषण और पोषक तत्त्वों की कमी में लाभदायक मानी जाती है. इस का इस्तेमाल उस समय भी किया जाता है जब रोगी के रक्त का मिलान उसे दिये जाने वाले रक्त से न हो पा रहा हो. इन दोनों ही औषधियों का उत्पादन गर्भनाल और उस के काटने पर बहने वाले रक्त से किया जाता है.

यह औषधि-संयंत्र विश्व का अपने ढंग का अकेला और पहला औषधि-संयंत्र होगा. फ़ैक्टरी की मुख्य प्रयोगशाला में टेकनीशियन ५ डिग्री के तापमान में काम करेंगे. इन दोनों ही औषधियों की क़ीमत इस संयंत्र का उत्पादन करने के साथ ही काफ़ी कम हो जायेगी. गामा ग्लोब्यूलिन की एक शीशी इस समय भारत में ५० रुपये में मिलती है, लेकिन इस संयंत्र के द्वारा उत्पादित होने पर इस का मूल्य ७-८ रुपये हो जायेगा. भारत में इस के उत्पादन से प्रतिवर्ष ४०-५० लाख रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त होने की संभावना है.

समारोह में बोलते हुए शिवमंगल सिंह 'सुमन'

षष्टिपूर्ति

महाराष्ट्र की विभूति

बंबई में चौपाटी पर प्राकृत साहित्य के पंडित और बंबई विश्वविद्यालय में हिंदी के वरिष्ठतम प्राध्यापक **डॉ. जगदीशचंद्र जैन** की षष्टिपूर्ति के अवसर पर बिरला क्रीड़ा केंद्र में एक समारोह हुआ. रुइया कॉलेज के वर्तमान प्रिंसिपल **प्रो. गोडबोले** ने बताया कि अपने सेवा-काल में डॉ. जैन ने लगभग चालीस ग्रंथों का प्रणयन किया है.

ब्लिट्ज़ के संपादक **आर. के. करंजिया** ने मित्र, मंत्रदाता और मार्ग-दर्शक कह कर डॉ. जैन का अभिनंदन किया. उन्होंने कहा कि अब से २० वर्ष पहले महात्मा गांधी की हत्या के षड्यंत्र को विफल करने का जो आकुल प्रयास डॉ. जैन ने किया था वास्तव में वह उस सारी साज़िश के खिलाफ़ किया गया महाप्रयत्न था जो आज भी हमारे राष्ट्र के धर्म-निरपेक्ष और प्रगतिशील नीतियों के विरुद्ध चल रहा है.

आचार्य अत्रे सुबह ही अपने पत्र 'मराठा' में डॉ. जैन को महाराष्ट्र की विभूति घोषित कर चुके थे.

विक्रम विश्वविद्यालय के कुलपति और इस समारोह के मुख्य अतिथि **डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन'** ने कहा कि डॉ. जन का जीवन सफलता का जीवन नहीं, चरितार्थता का जीवन रहा है.

शिक्षक-धर्म का उल्लेख करते हुए डॉ. जैन ने कहा शिक्षक को विचार-स्वातंत्र्य तो मिलना ही चाहिए, नहीं तो वह पढ़ायेगा क्या?

अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए **महामहोपाध्याय श्री दत्तोवामन पोतदार** ने कहा कि मैं इतिहासकार हूँ और तथ्यों पर मेरी नजर रहती है.

हिंदी के प्रश्न पर उन्होंने कहा कि सन् १८९४ में ही जब महात्मा गांधी अफ़्रीका में थे और भारत के राष्ट्रीय मंच पर उन का उदय भी नहीं हुआ था तभी महाराष्ट्र ने हिंदी की राष्ट्रभाषा के रूप में कल्पना की थी. मराठी के लिए हमारे मन में असीम प्रेम है. हम उस के लिए मरने को तैयार हैं मगर इस पूरे देश की भाषा के रूप में उस की कल्पना नहीं करते. वह हिंदी ही हो सकती है.

किताबें

अपना सोना अपनी कसौटी

'काँच के तूफ़ान' शिवचंद्र शर्मा के इक्कीस गल्पों का संग्रह है. पुस्तक पर इसे 'हिंदी का प्रथम अपराध-गल्प संग्रह' घोषित किया गया है. इस से इतना अवश्य प्रकट होता है कि लेखक इस दिशा में प्रथम होने का आकांक्षी है. ऐसी किसी भी आकांक्षा में साथ रहना अनुचित नहीं होता. पर उस का सही आधार तो होना ही चाहिए' क्या ये अपराध-गल्प हैं? या यही मान लिया जाये कि लेखक ने 'गल्प लिख कर अपराध किया है या गल्प अपराध है अथवा अपराध ही गल्प है'. कहानियों को अपराध से अवश्य जोड़ा गया है, हर कहानी के अंत में अपराध दिखायी देता है और पाठक अंत तक पहुँचते-पहुँचते यदि चाहे तो इस भाव से उबर सकता है कि वह इन्हें पढ़ने में अपराध नहीं कर रहा है. कथा-सूत्र टूटा और उलझा रहता है. पाठक का काम है उसे जोड़ना और सुलझाना और ऐसा न होने पर लेखक को कोसना; लेखक 'विस्तार को कम से कम में समेटने की विधा' की बात कर के आधुनिक गल्पकार बनने की मुद्रा में या 'प्रत्येक गल्प में बड़े से बड़े उपन्यास का फलक' होने की घोषणा करके पाठक को छलने की मुद्रा में दिखायी देगा. अपनी कमियों को छिपाने की पूरी मोर्चेबंदी लेखक ने कर रखी है. यहाँ तक कि आवरण पृष्ठ पर लेखक के बारे में स्व. नलिन विलोचन शर्मा का यह मत भी है: 'शिवचंद्र शर्मा की कहानियाँ अपनी ही कसौटियाँ भी हैं. पास में कोई पुरानी कसौटी हो और उस पर इन्हें आप परखना चाहें, आप पाएँगे, कसौटी खो गी है'. जो लेख अपना सोना और अपनी कसौटी लेकर सरे बाज़ार घूमता हो, उसे क्या कहें!

इन गल्पों की सब से उल्लेखनीय बात है इन की भाषा. यह भाषा बोल-चाल की नहीं है जो आम तौर पर अपराध कथाओं की भाषा होती है और जो नव-लेखन की भी भाषा है. इस दृष्टि से इन गल्पों की भाषा आप को अपरिचित लगेगी. शिवचंद्र शर्मा के काव्य का भी यही उल्लेखनीय गुण है. नकेनवाद की भाषा की यह धारा शिवचंद्र शर्मा तक सुरक्षित है सूखी नहीं है. उस तरह की भाषा को पसंद करने वालों को तो इस संग्रह को अवश्य पढ़ना ही चाहिए, उन्हें भी पढ़ना चाहिए जो यह जानना चाहें कि आज की भाषा यहाँ क्यों पहुँची है. हिंदी का नया लेखक इस भाषा में निहित संभावनाओं को परख सकता है और वाक्य विन्यास से कुछ अपने लिए सीख भी सकता है. सारी कहानियों में 'बुत का बिब्बोक' ही ऐसी कहानी है जो अपनी जघन्यता के लिए मन पर अंकित रहती है.

काँच के तूफ़ान; शिवचंद्र शर्मा, अभिज्ञान प्रकाशन, कचहरी पथ, राँची-१. मूल्य : ५.६०

तमिलनाडु का लोकनृत्य : लय-गति

तालकटोरा

लोकनृत्य : शहरी शैली

राजधानी में गणतंत्र दिवस समारोह के सिलसिले में लोकनृत्यों का प्रदर्शन ऐसा वार्षिक आयोजन है जो अब धार्मिक कृत्य की भाँति अनिवार्य हो गया है. पंद्रह-सोलह वर्ष पहले उसे शुरू करने का सरकारी उद्देश्य जो भी रहा हो, इस में कोई शक नहीं है कि तब उस से एक नये ढंग से इस विशाल देश के जन-साधारण की आश्चर्यकारी अनेकरूपता और अकल्पनीय सृजनात्मक क्षमता की तलाश और पहचान संभव हो सकी थी. पर धीरे-धीरे अब इस ने सालाना सरकारी तमाशे का रूप ले लिया है. शुरू में ये नृत्य अपनी स्वाभाविकता और सहजता के साथ, अपनी गतियों, समूहनों, वेशभूषा और संगीत की अनगढ़ किंतु प्राणवान जीवंत सुंदरता के साथ प्रस्तुत किये गये. इस से एक ओर लोकनर्तकों को पहली बार अपने कार्य से संतोष और आत्मसम्मान का बोध हुआ और उस के व्यापक महत्त्व की चेतना हुई. दूसरी ओर इन से उचित ही शहरी नर्तकों को और नृत्य तथा प्रदर्शनमूलक कलाओं से संबद्ध अन्य कलाकारों और व्यक्तियों को, अपने देश के कला-बोध के संबंध में और कई बार स्वयं अपने कार्य के संबंध में एक नयी दृष्टि दी. एक प्रकार से पूरे देश ने अपनी लोकनृत्य-परंपरा की अपूर्व सुंदरता और समृद्धि से साक्षात्कार किया. इस आयोजन के प्रारंभ की यह बड़ी भारी देन थी.

पर आज स्थिति इस से प्रायः ठीक उलटी हो गयी है. अब कुछ वर्षों से इस समारोह में प्रस्तुत होने वाले लोकनृत्यों की स्वाभाविकता नष्ट होती जा रही है. एक तो धीरे-धीरे हर वर्ष विभिन्न क्षेत्रों के लोकनर्तकों के बीच आपसी संपर्क और प्रभावों का लेनदेन बढ़ा, जिस से वे स्वयं अपने नृत्यों को अधिक 'प्रदर्शनोपयोगी' और 'आकर्षक' बनाने की ओर प्रवृत्त हुए. किंतु उस से भी अधिक राज्यों और केंद्र के सूचनाविभागों अथवा कलात्मक बोध के अभाव अथवा अतिरिक्त उत्साह के कारण इन नृत्यों के रूप, स्वभाव, वेशभूषा संगीत आदि में भी कई प्रकार के परिवर्त्तन होने लगे. नतीजा यह है कि बहुत-से नृत्यों में फ़िल्मी ढंग की, या किसी शहरी नर्त्तक के निर्देशन में या उस की समझ के अनुसार, नयी-नयी 'कोरियोग्राफ़ी' होने लगी; उन के संगीत की धुनों में, लयों में परिवर्त्तन होने लगे; उन के वस्त्रों में चमकीली साटन, रंगबिरंगी टेरे-लीन और नायलोन का उपयोग होने लगा; उन में चमत्कार या प्रभाव के लिए तरह-तरह की बातें जोड़ी जाने लगीं. धीरे-धीरे हालत यह बन गयी है कि इन प्रदर्शनों के अधिकांश नृत्यों की नवीनता, सहजता या प्राणवत्ता प्रायः खत्म हो चली है. वे न तो पूरी तरह लोक-नृत्य रहते हैं न कल्पनाशील पुनःसृष्टि द्वारा प्रस्तुत सुनियोजित मंचीय प्रदर्शन. एक तरह का फूहड़ बेमानी अधकचरापन उन में बार-बार सामने आता है.

लोकनृत्यों या आदिवासियों के नृत्यों के ऐसे शहरी प्रदर्शन में एक बड़ी कठिनाई है उन का अपने परिवेश से अथवा विशिष्ट अवसर या प्रासंगिकता से अलग हो जाना. अधिकांश आदिवासी-नृत्य एक धार्मिक या सामाजिक कृत्य अथवा अनुष्ठान से जुड़े होते हैं; या बहुत से लोकनृत्य फ़सल के बाद के उत्सवों से या होली आदि अन्य त्योहारों के अवसर पर होते हैं. उन को अपने सामुदायिक वातावरण से अलग कर के प्रस्तुत करना इन नृत्यों और नर्त्तकों के साथ-साथ शहरी दर्शकों के साथ भी बेइनसाफ़ी है. मूल रूप में उन के प्रदर्शन उन के परिवेश में ही होने चाहिए. शहरों में उन का प्रदर्शन करना ही हो तो उन की बड़ी संवेदन-शील कल्पना के साथ पुनःसृष्टि आवश्यक है, अन्यथा एक ओर इस सांस्कृतिक धरोहर के भ्रष्ट होते जाने की आशंका है, दूसरी ओर दर्शकों की रुचि और समझ के फूहड़ होते जाने की.

ये सभी बातें इस वर्ष के समारोह में प्रस्तुत लोकनृत्यों को देख कर बड़े तीखेपन के साथ मन में उभरती हैं. इस वर्ष के नृत्यों में हरयाणा के सस्ते और फ़िल्मी ढंग के बनाये हुए 'डफ' नृत्य से लगा कर भूटान के लोकनर्त्तकों द्वारा प्रस्तुत पा-छम् तुङ छम या क्षनक जैसे धार्मिक या अनुष्ठानमूलक नृत्यों तक सभी प्रकार के हैं. इन में बिहार के संथालों का बहा नृत्य, गुजरात के भीलों का नृत्य, मध्यप्रदेश का

त्रिपुरा की नर्तकियाँ : संतुलन

लोकप्रदर्शनी

आगे पुराने खंडहरनुमा दरवाज़े, पीछे झाड़ों का चंद्राकार जंगल और पीछे चट्टान का सिलसिला. बीच में कुछ मटिया, भूरी, सुर्ख़ सड़कें, बड़ी-बड़ी क्यारियों में फूल नहीं, धान नहीं, तंबू. तंबुओं की तनी रस्सियों की शृंखला और काले बौने खूँटों की कतार. कुछ झुरमुट तले एक गोल-सा मंच, सामने चौड़ी सीढ़ियाँ.

पीछे जंगल में पहरा, सामने दरवाज़े पर पहरा—सैनिक व्यवस्था और सुरक्षा. इस स्थान पर प्राय: राजधानी में सांस्कृतिक शिविर लगे हैं. यहाँ के द्वार पर खड़ी सैनिक गाड़ियों और तंबुओं में कुछ दिन रहने वाले लोगों में प्रभूत अंतर रहता आया है. इसी लिए यह तालकटोरा है ? एक ज़माने में यहाँ विश्वविद्यालय-युवक-समारोहों की धारा भी वही थी, जो जोखम न उठा सकने वाली नौकरशाही के हाथों सँभल नहीं सकी और अनिश्चय के मरु में विला गयी.

१९६९ : एक गढ़वाली तंबू में प्रवेश; एक उत्साह से स्वागत; प्रश्न : उत्साह से उत्तर, 'मारा यह नृत्य पूजा है. इस में भगवान शंकर की पूजा....' प्रश्न : कतार में निकलते परेड में और स्वच्छंद प्रकृति दोनों में पूजा-नृत्य कर के एक-सी श्रद्धा से अपने को भूलते हैं आप लोग ?' गोद में बच्चा लिये माँ की आँखों में विस्मय. मंडली के आलमसिंह 'नाचते समय हमें और कुछ नहीं दिखता.' ठीक है. २६ जनवरी का समारोह है, गोद में बच्चा है, पूजा का नृत्य है, फिर भी क्या सचमुच भूल जाते हैं—खो जाते हैं ये ? और संवाददाता की दृष्टि अभ्यास करते नर्त्तकों के पीछे खाले में फैले तंबुओं पर घूम जाती है. फैला जंगल और प्रस्तरी खुरदुरापन—टिहरी-गढ़वाल ! 'दफ़ला' जातीय एक सुंदर खिलौने-सा नौजवान तलवार पर हाथ रखता है : चित्र खिंचाते समय चेहरे पर अभिमान लाया, लेकिन वह वही थोथा अहं नहीं है जो हम 'पोर्ट्रेट' देते समय सायास चेहरे पर लाते हैं ?

तालकटोरा शिविर के तंबुओं में लोक-मंडलियाँ गड्डमड्ड हो रही थीं. फिर भी मराठा नर्त्तक त्रिपुरा के सदस्य से मिल नहीं पा रहा था. पंजाब की मंडली में चूनरों पर गोटे की चमक और 'मेकअप' भारी था. दूसरे छोर पर त्रिपुरा की कन्याओं का परिधान प्राय: न्यूनतम था.

गोद में शिशु, मन में पूजा-भाव
टेहरी गढ़वाल की नर्त्तकी

उन का शृंगार उन के मुँह पर नहीं, नृत्य-गति में था. पीछे तंबुओं के खूँटों के पास बैठे बुजुर्ग ने 'दिल्ली में लोग बड़े अमीर हैं. इतना बड़ा जलसा ?' उस की आँखों में विस्मय था, पर इस जलसे का एक भागीदार अनजाने ही वह भी है. अभ्यास इधर खुले में चल रहा है और वह तंबुओं के खूँटों की कतार में बैठा है. वह दफ़ला जाति का खिलौना-सा नौजवान आ कर कुछ पूछता है. हमारी समझ में नहीं आता क्या कहा, शायद वह कैमरे को पहचानता है और तस्वीर की प्रति चाहता है. कितनी तस्वीरें खिंचती हैं यहाँ और कितनी बार आदिम जातियों को नागर भारतीयता से पार्थक्य का आभास कराती हैं. एक नगा वृद्ध से पूछा, 'कैसा लगता है' प्रश्न संकेत से किया था. वह बोलता और वृत्ताकार टहलता चला गया—उस का एक शब्द पल्ले नहीं पड़ा. वह बोले जा रहा था, जैसे उस का हर उच्चारण समझा जा रहा है. आंगन के अभ्यास की झँझोर में हिंदुस्तान की जो झाँकी सजी थी उस के नृत्य में मटमैली धोती भी थी. प्रफुल्ल खोये उल्लास (या अभ्यास) में चमकती गोटदार चुनरी भी और इन के साथ धँसी आँखें और पिचके पेट गड्डमड्ड नाच रहे थे. इन्हें समेटना और इन की समस्याएँ समझना. क्या समग्र भारत है यह ? या नहीं है यह ? या इन फ़िल्म कैमरों, संवाददाताओं और अध्ययनमंडलों के लिए यह केवल एक देहलवी सामंती जलसा है ?

कमा, मणिपुर का लान लाम, केरल का चेरुमनकलि, राजस्थान का गूजरों-री-गेर होली के उत्सव या फ़सल के संबंधित हैं. मणिपुर का फंफित लाम, मैसूर का डोलू कुणिता, नगालैंड का अपलखवों, नेफ़ा का अरप आदिवासी-युद्ध या शिकार से संबंधित है. हिमाचलप्रदेश का गुरुपेम संभव नृत्य, जम्मू का कुद नृत्य, मणिपुर का लाइबो जगोई, ओडिसा का डालखई, पांडिचेरी का पोडिकड़ि, तमिलनाडु का कावडी, त्रिपुरा का हाज़गिरि, और उत्तरप्रदेश का केदार किसी न किसी धार्मिक कृत्य से संबद्ध हैं. दो एक और भी हैं, जो किसी समूह या जाति के समारोह से संबद्ध हैं.

इन के प्रदर्शन को देख कर यही लगा कि किसी धार्मिक कृत्य या अनुष्ठान से जुड़े हुए नृत्यों में अपेक्षया कम परिवर्त्तन हुए हैं. पर वे अधिकांशत: अपने मूल वातावरण और आधार से कटे हुए और अप्रासंगिक से लगते हैं. त्योहारों, उत्सवों से संबंधित नृत्यों में नृत्य-रचना बढ़ती जा रही है और इस दृष्टि से उन में ऊपरी समानता तो आती नज़र आ रही है, पर उन की विशिष्ट सुंदरता कम हो रही है और वे एक-दूसरे को दुहराते-से जान पड़ते हैं. पूरा प्रदर्शन कोई संतोषजनक कलात्मक अनुभव नहीं देता और फिर एक बार मन पर पड़ी इसी छाप को दृढ़ करता है कि देश के लोकनृत्यों को ऐसे आयोजनों के विघटनकारी प्रभाव से बचाने का शीघ्र ही कोई उचित उपाय होना आवश्यक है.

यदि यह उपाय नहीं किया गया तो इन नृत्यों की वास्तविक शक्ति धीरे-धीरे इतनी क्षीण हो जायेगी कि आगे चल कर उन्हें पहचानना भी मुश्किल हो जायेगा. नृत्य मन और आत्मा का संस्कार है, उस का बाह्य रूप उसी से अनुशासित होता है. यदि आग्रह केवल बाह्य रूप पर ही रहा और आंतरिक शक्ति का स्रोत सूखता रहा तो जो कुछ शेष रहेगा वह गर्व करने की वस्तु नहीं रह जायेगी.

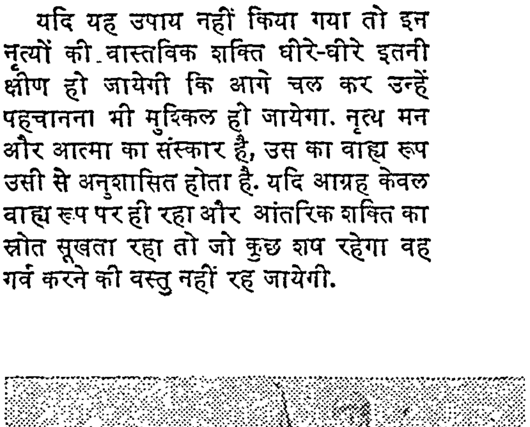

हिमाचल प्रदेश : मुखौटों की मुद्रा

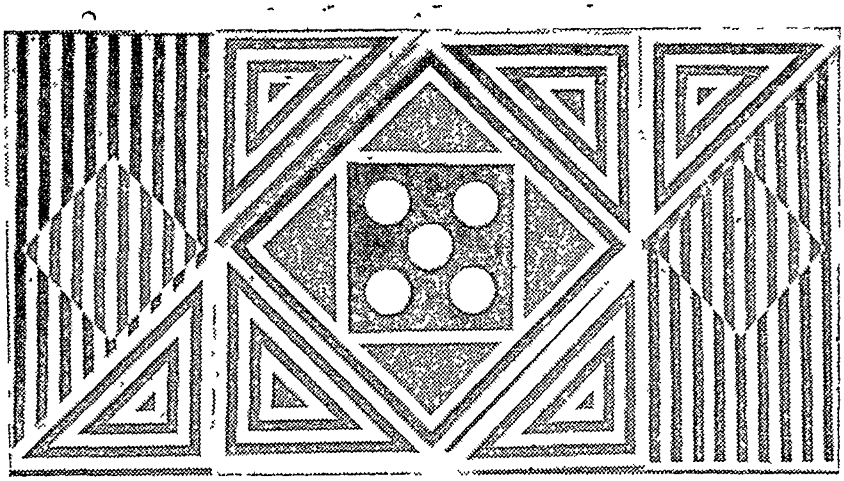

एरिक बोवेन : 'चित्र ज़ेड'

कला

एरिक बोवेन : गणित के बावजूद

कुणिक केमोल्ड कला-दीर्घा में प्रदर्शित एरिक बोवेन के चित्र की ज्यामितिक, मूर्ति शिल्पीय रंग-रूपाकार देखने को मिले. बोवेन के चित्रों के वस्तु या आकृति रहित रूपाकारों में चतुर्भुज, त्रिकोण और अंडाकार प्रमुख हैं. वह इन रूपाकारों को उन की अंतिम हद तक तराशते लगते है. नतीजा यह कि उन के चित्रों में अच्छे मुद्रण की-सी सफ़ाई व चमक है. सरलता से खींचे गये आकार, फिर मनोयोग से उन की रंग-रेखाएँ दुरुस्त करने का भाव—उन के चित्रों से यही जाहिर होता है. ऐसा लगता है कि वह इस प्रक्रिया में अंतर्निहित बातों को रूपाकारों में अदृश्य-अमूर्त्त रूप से उँडेलते जाते हैं. बोवेन के चित्रों में मूर्त्तिशिल्प का-सा प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता है. 'चित्रित मूर्त्तिशिल्प' की बनावट-बुनावट तो है ही मूर्त्तिशिल्पीय; उन के कुछ अन्य चित्रों में भी मूर्त्तिशिल्प की छाप है. एक चित्र में उन्होंने कैनवास पर नायलन के पतले धागे से लाल अंडाकार लटका दिया है—यह कैनवास को छूता नहीं. एक और चित्र में उन्होंने कैनवास पर रूपाकारों को उभारा है, फिर कैनवास को बीच से चीर कर मोड़ दिया है—इस चिरे हुए भाग में दूसरे रंग के रूपाकार नज़र आते हैं. ये चित्र को एक गहराई तो देते ही हैं, चित्र के भीतर छिपे एक और चित्र का एहसास कराते हैं.

बोवेन ने अपने एक चित्र में त्रिकोण उतारे हैं, कुछेक त्रिकोणों को दिशा-संकेत की तरह, दो-एक दिशाओं में उभार दिया है—यह चित्र भी चित्र के साथ ही मूर्त्ति-शिल्प भी लगता है. कुछेक रूपाकारों और रंगों द्वारा रची गयीं उन की ये कृतियाँ अपने रंगों-रूपाकारों की छाप तो मन पर छोड़ती ही हैं, एक तरह की रंग-माया भी रचती हैं. उभरे त्रिकोण, तिरछे गोलाकार, कैनवास के अंदर के एक और कैनवास के रूपाकार, कैनवास ऊपर लटकते अंडाकार या गेंदाकार जैसे अपने-अपने रंगों के साथ एक दूसरे कुछ कहते मालूम पड़ते हैं—ऐसा इसी लिए है कि उन के रंग-रूपाकारों में एक प्रकार की समानता है. कम से कम एक साथ प्रदर्शित चित्रों का प्रभाव कुछ ऐसा ही पड़ता है.

इलाहाबाद में १९२९ में जन्मे, 'ग्रुप १८९०' के संस्थापक-सदस्यों में से एक एरिक बोवेन के चित्रों की कई प्रदर्शनियाँ, विदेशों में विशेष रूप से इटली और नारवे में, आयोजित हो चुकी हैं.

एरिक बोवेन ने अपने चित्रों में अक्सर दो ही रंग रखे है और दो ही रूपकार. रेखा-गणित ही नहीं, गणित भी उन के चित्रों में उपस्थित लगती है. 'चित्र १८' में १८ ही चतुष्कोण हैं और 'चित्र १६-२' में १६ सफ़ेद और २ लाल वृत्त हैं.—ये दोनों चित्र भी इस बात का उदाहरण हो सकते हैं. लेकिन इस के बावजूद उन के चित्र 'दो और दो चार' का बोध न दे कर हमें मनस्थितियों-अनुभूतियों की गणित से परे ले जाते हैं. यही उन के चित्रों का आकर्षण भी है.

विजय सोनी : अपने-अपने प्रसंग

विजय (विको) सोनी के लघु चित्र रंगों के एक 'जल-बुझ' से मन में कई एक बिंब उभारते हैं. कुणिक केमोल्ड कला-दीर्घा में प्रदर्शित उन के चित्रों में वनस्पतियों के ये रंग-रूपाकार हमें कई स्मृतियों-मनःस्थितियों से जोड़ते हुए मालूम पड़ते हैं. कोई जल-भीगा पत्ता, जो जल के अंदर ही फूटता और मुरझाता है, का रंग-सामीप्य शैशव-संस्मरण भी उभार सकता है और आधुनिक शहरी मन में इन से दूर जा पड़ने की कचोट भी पैदा कर सकता है. विजय सोनी ने उचित ही अपने लघु आकार के चित्रों को नाम नहीं दिये—उन के चित्रों का उद्देश्य चीज़ों-मनःस्थितियों को नाम से पुकारना लगता भी नहीं है. ये चित्र उन विषयों-प्रसंगों के भी लगते हैं जो अपने 'पूरेपन' में हमारे सामने कभी नहीं उभरते, लेकिन संस्मरण या बिंबों के रूप में मन में बच रहते हैं, जिन्हें किसी बहाने बराबर

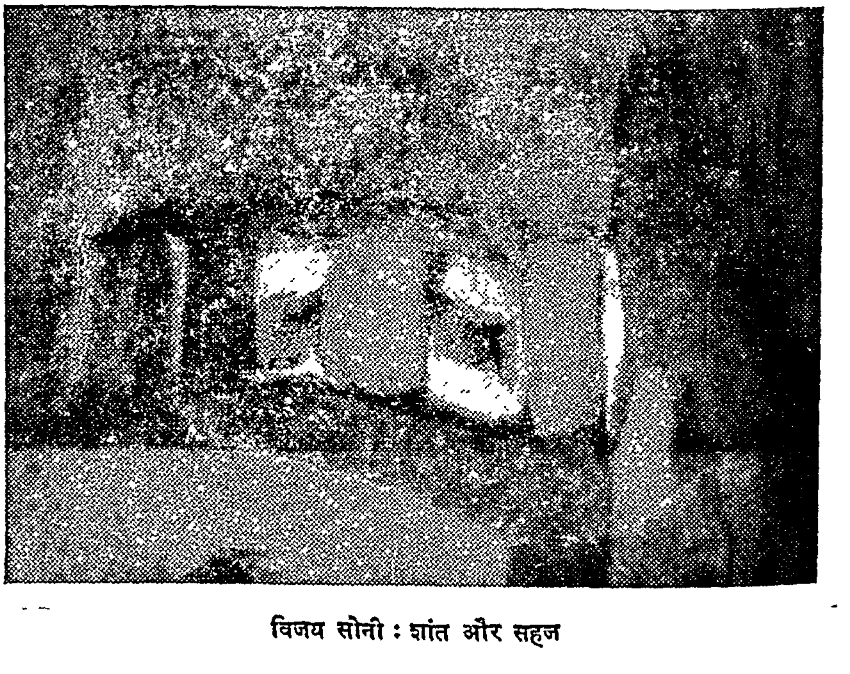

विजय सोनी : शांत और सहज

वी. पी. पी. द्वारा माल मंगाइये

संगीत और नृत्य की पुस्तकें

बाल संगीत शिक्षा तीनों भाग रु. ३.००, हाईस्कूल संगीत शास्त्र रु.२.००, गांधर्व संगीत प्रवेशिका रु. ३.५०, संगीत विशारद रु. ६.००, संगीत सागर रु. ७.००, रवीन्द्र संगीत रु. ३.५०, बेला विज्ञान रु. ४.००, सितार शिक्षा रु. ४.००, सूर संगीत दोनों भाग रु. ४.००, भारतीय संगीत का इतिहास रु. ५.००, ठुमरी गायकी रु. ३.५०, राग कोष रु. १.२५, सहगल संगीत रु. ३.००, ताल अंक रु. ५.००, मधुर चीजें रु. २.५०, सन्त संगीत अंक रु. ३.५०, राष्ट्रीय संगीत रु. ३.५०, वाद्य संगीत अंक रु. ३.५०, लोक संगीत अंक रु. ४.००, गजल अंक रु. ४.००, तराना अंक रु. ५.००, कथक नृत्य रु. ८.००, गिटार मास्टर रु. २.००, बैन्जो मास्टर रु. २.००, म्यूजिक मास्टर रु.२.५०, आवाज सुरीली कैसे करें रु. ३.५०, संगीत निबन्धावली रु. २.५०, पाश्चात्य संगीत शिक्षा रु. ७.००, संगीत मासिक रु. १०.००, फिल्म-संगीत त्रैमासिक रु. १०.०० (पत्रों का मूल्य जनवरी से दिसम्बर तक है)।

प्रकाशक : संगीत कार्यालय (१५) हाथरस (उ. प्र.)

क़िस्तों में ट्रांज़िस्टर मंगायें सिर्फ १०) रु० मासिक पर

संसार प्रसिद्ध नया जापानी अति सुन्दर मॉडल आश्चर्यजनक अपूर्व शक्तिशाली अद्भुत आकर्षक ध्वनि बेहद टिकाऊ. गारंटिड. डायललाईट व सर्वाधिक सुविधों का अपना मनपसन्द 'वर्ल्ड वायस' 3 बैन्ड आलवर्ल्ड ट्रांज़िस्टर है। मंगायें मूल्य 165/- रु० हर शहर व गांव में भेजते हैं

आज ही जरूर पत्र लिखें।

आलवर्ल्ड एजेन्सी (ल) कल्याणपुर दिल्ली ६

विद्युत एवं रेडियो

अभियन्त्रण पाठ्यक्रम

विद्युत अभियन्त्रण, रेडियो मरम्मत, एसेम्बलिंग, विद्युत सुपरवाइजरी, वायरिंग आदि (८०० चित्र) रु० १२.५० वी. पी. डाक व्यय २/- सुलेखा बुक डिपो (इ) अलीगढ़

मुफ़्त उपहार

३ महीने तक स्त्रियों का सौन्दर्य काश्मीरी और बंगलौरी आर्ट सिल्क की साड़ियों में खिलता है। आधुनिक डिजाइनों और रंगों में नया माल आ गया है। केवल हमारे यहां ही प्राप्य है। एक डीलक्स साड़ी १२) दो साड़ियां २३) तीन साड़ियां ३३) चार साड़ियां ४०)। दो या अधिक साड़ियों के आर्डर पर ब्लाउजपीस मुफ़्त। आर्डर पोस्ट पार्सल से भेजे जायेंगे।

ATLAS CO (D.W.N.D.-25)
P.O Box 1329, DELHI-6

किस्तों पर ट्रांजिस्टर

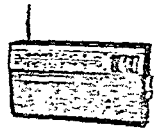

सर्वत्र विख्यात "एस्कोट" ३ बैंड आल वर्ल्ड पोर्टेबल ट्रांजिस्टर, मूल्य १६५ रुपये मासिक किस्त रुपये १०) भारत के प्रत्येक गांव और शहर में भेजा जा सकता है। लिखें:—

जापान एजेंसीज (D.W.N.D.—10)
पोस्ट बाक्स ११९४, दिल्ली—६

नवभारत टाइम्स

हिन्दी दैनिक

बम्बई और दिल्ली से प्रकाशित

"नवभारत टाइम्स" आधुनिक और ताजातर समाचारों का हिन्दी दैनिक है

और

इसके पाठकों की संख्या सबसे अधिक है।

दोनों ही संस्करणों में व्यावसायिक, स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारों के साथ-साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और आर्थिक विषयों पर विशेष सामग्री ही तो इसकी विशेषता है।

समाचारों की भाषा सरल है, और

सम्पादकीय अग्रलेख सन्तुलित और विचारोत्तेजक होते हैं।

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूजा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

आपकी भाग्य परीक्षा के साथ साथ

एक सत्कार्य में आपका योग

अस्पतालों और अपाहिजों

की सहायतार्थ

खरीदिये

उ० प्र० राज्य लाटरी

केवल एक रुपये के एक टिकट से

आप पा सकते हैं

१,००,००० रु०

अथवा निम्न में से कोई एक

२ दूसरे पुरस्कार	प्रत्येक	२०,००० रु०
२ तीसरे पुरस्कार	प्रत्येक	५,००० रु०
५ चौथे पुरस्कार	प्रत्येक	१,००० रु०
१० पांचवें पुरस्कार	प्रत्येक	५०० रु०
१०० छटे पुरस्कार	प्रत्येक	१०० रु०
६०० सातवें पुरस्कार	प्रत्येक	५० रु०

कुल ७२० पुरस्कार

प्रथम ड्रा १६-३-१९६९

टिकटों के बिक्री केन्द्र

- उत्तर प्रदेश के कोषागार, उपकोषागार और अधिकृत एजेण्ट
- गवर्मेन्ट यू० पी० हैण्डीक्रैफ्ट्स एम्पोरियम, हजरतगंज, लखनऊ
- सुपर बाजार, नई दिल्ली
- गवर्मेन्ट यू० पी० हैण्डीक्रैफ्ट्स एम्पोरियम, कनाट प्लेस, नई दिल्ली

एजेन्सी के लिये आवेदन करें

उत्तर प्रदेश के व्यक्ति और संस्थायें : स्थानीय जिलाधीश

अन्यत्र के व्यक्ति और संस्थायें : निदेशक उत्तर प्रदेश राज्य लाटरी तथा गवर्मेन्ट यू० पी० हैण्डीक्रैफ्ट्स एम्पोरियम कनॉट प्लेस, नई देहली (एजेण्टों को इस एम्पोरियम से टिकट भी मिल सकते हैं)

एजेन्टों को चुकती मूल्य के टिकट दिये जाते हैं

निदेशक उ० प्र० राज्य लाटरी (वित्त विभाग) लखनऊ

अर्थ विशेषांक

इण्डिया प्रकाशन

फ़रवरी, १९६९
फाल्गुन, १८९०

मतदान के बाद ● राष्ट्रीय आय का वितरण ● विदेशी क़र्ज और व्यापार

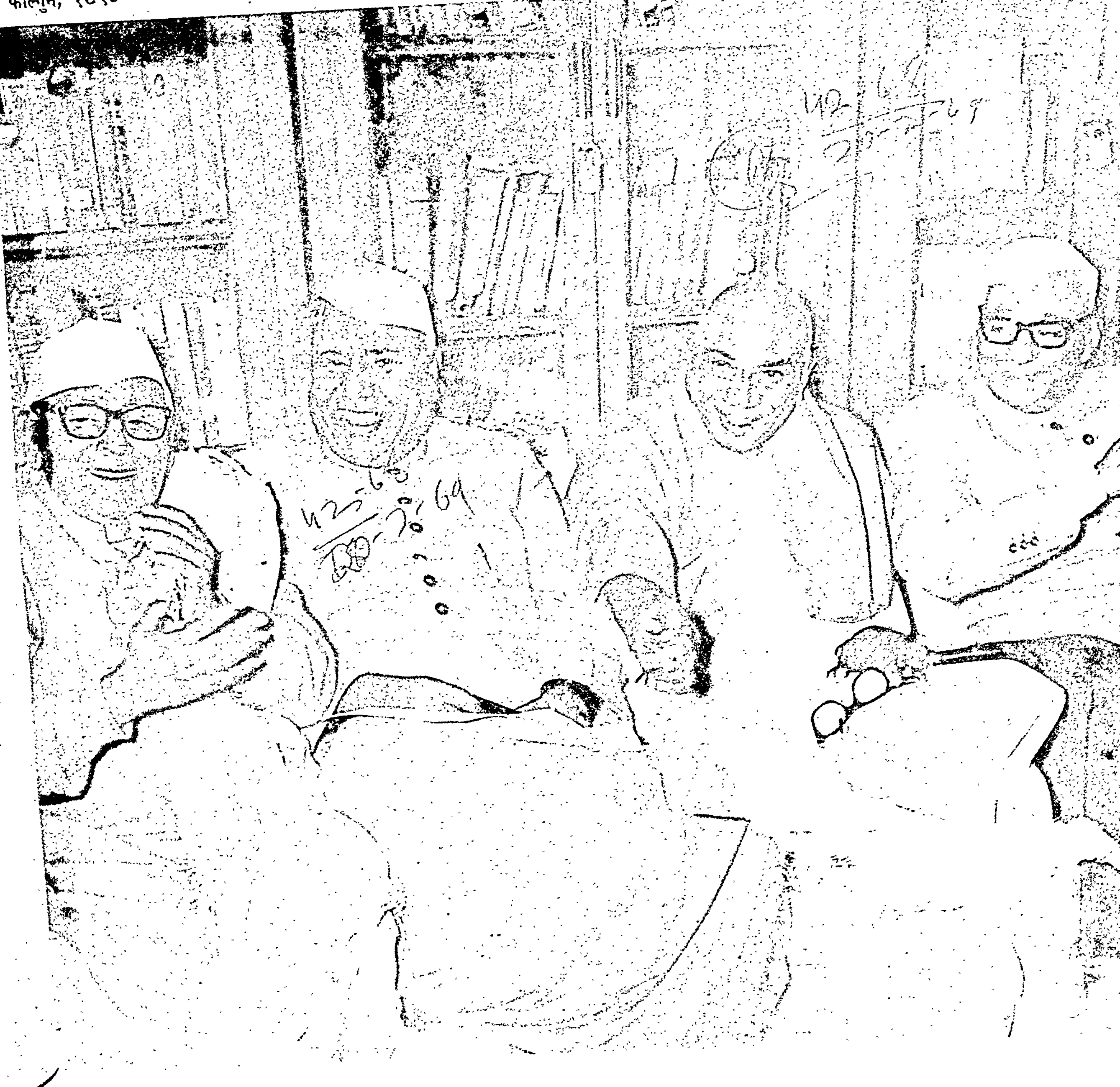

KEVENTER'S

3 star products

* CONDENSED MILK
  healthful, sweetened milk
* PASTEURISED BUTTER
  for tasty breakfast
* PURE GHEE
  for wholesome flavoury food

EDW. KEVENTER (SUCCESSORS) PVT. LTD. Sardar Patel Road, New Delhi

एडवर्ड केवेन्टर (सक्सेसर्स) प्रा० लि०, सरदार पटेल रोड, नई दिल्ली

मत और सम्मत

बहुत कुछ और कुछ नहीं : २ फ़रवरी, '६९ : भारतीय जनसंघ की अखंड भारत की कल्पना सामने आयी. प्रो० हरिपद भारती के शब्दों में "राष्ट्रीयता के विकास का आशय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के हिंदू राष्ट्र से नहीं है. हम एक धर्म-निरपेक्ष हिंदू राष्ट्र चाहते हैं." भारतीय जनसंघ की सब से बड़ी कमज़ोरी तो यह है कि वह भारत को एक राष्ट्र मानता है. भारत एक बहुभाषीय तथा बहुजातीय देश हैं. शायद जनसंघ के नेता तथा कार्यकर्त्ता देश, राज्य तथा राष्ट्र में आज तक अंतर न जान सके हैं. कुछ शब्दों में हम राष्ट्र की परिभाषा इन शब्दों में दे सकते हैं 'जिस राज्य के निवासी (धर्म, नस्ल, भाषा, व्यवहार, रीति-रिवाज़) एकानुभूति रखते हैं उसे राष्ट्र कहते हैं.'

अंत: सर्वप्रथम भारतीय जनसंघ को भारत को राष्ट्र रूप में देखना छोड़ना चाहिए. प्रो० हरिपद भारती के इन शब्दों को (हम एक धर्म-निरपेक्ष हिंदू राष्ट्र चाहते हैं.) पढ़ कर एक बुद्धिजीवी शायद हँसे बिना न रह सकेगा, कि एक तरफ़ धर्म-निरपेक्षता तथा दूसरी ओर हिंदू राष्ट्र की बात कही जाती है.

—नरेंद्रकुमार खन्ना, काशी

मत-सम्मत : २ फ़रवरी '६९ : संसपा की जाति-नीति के संबंध में श्री रवींद्र डेढ़गवें के साथ अनेक लोगों को ग़लतफ़हमी है, जिस का निराकरण अत्यावश्यक है. हमारा भारतीय समाज 'परचून की दूकान' बन गया है, जहाँ 'परचून' नाम की कोई चीज़ भी नहीं. ऐसे तो हमारे लिए 'भारतीय' और 'हिंदू' शब्द अक्सर प्रयुक्त होता है, पर दरअसल तो हम ब्राह्मण, ग्वाला, नाई, भंगी आदि ही हैं. इसी जातीय विभिन्नता के कारण हमारा समाज समरस तो बिल्कुल ही नहीं हो पाता. हज़ारों वर्षों से हम पर द्विजत्व और शूद्रत्व का बोझ जो लदा हुआ है उस का तीखा अनुभव डॉ० लोहिया ने किया. उन्होंने ८५ प्रतिशत 'मन-विहीन' शोषितों को विशेष अवसर दे कर ज़िंदगी के सफ़र में उन १५ प्रतिशत लोगों के मुक़ाबले पहुँचाने का प्रयत्न किया जो अपनी तथाकथित संस्कारगत विशिष्टता के बूते आगे बढ़ गये हैं. गांधी जी ने भी तो अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं पिछड़े मुसलमानों के लिए स्थान सुरक्षित करने की बात कही थी. क्या इन के उद्देश्य में भी किसी को शंका हो सकती है ? संसपा की जाति-नीति उसी 'पहल' की ही तो व्यापक परिणति है, जिसे जाति-तोड़-नीति ही कहें तो ज़्यादा सटीक होगा. ५१ से ८५ प्रतिशत तक का यह संरक्षण अस्थायी है, जिस का तभी तक महत्त्व है जब तक कि उन पिछड़ों के पेट और मन भर नहीं जाते.

अपेक्षाकृत कम ही सही पर धन के मामले में निश्चित ही उच्च जातियों में ग़रीब तथा निम्न जातियों में अमीर भी हैं. पर क्या मन से इन निम्न जातियों के 'व्यक्तित्वहीन' होने की सच्चाई को नज़रअंदाज़ किया जा सकता है और फिर यदि पिछड़ेपन की कसौटी 'अर्थ' ही हो जाये तो क्या वे सवर्ण इस का निष्पक्ष बँटवारा कर सकेंगे जिन का पहले से ही शासनतंत्र के प्रत्येक क्षेत्र में पक्षपातपूर्ण एकाधिकार है ? यह दुर्भाग्य है कि कुछ संसपायियों द्वारा ही इसे जाति-जोड़-नीति बनाया जाता रहा है, पर केवल इसी से इस की निरर्थकता नहीं कही जा सकती. इवीबाबानू गुप्ता तथा अर्जुनसिंह भदौरिया की बेटी के साथ अनेक अंतर्जातीय शादियाँ इस के प्रेरक उदाहरण हैं. आगे भी पटने में अंतर्जातीय विवाह संपन्न कराने के लिए संसपा की ओर से एक 'मैरिज-ब्यूरो' खोलने का प्रस्ताव है.

—सुरेंद्र अकेला, भरतपुर

माध्यम की समस्या : ४५ दिन की लंबी हड़ताल के बाद विश्वविद्यालय खुला. जिन बातों को ले कर हड़ताल की गयी थी उन में एक कारण पढ़ाई का माध्यम अंग्रेज़ी के बजाय हिंदी में होना चाहिए भी था; पर समस्या वहीं की वहीं पर है.

मैंने सेमिनार कक्षा में एक बुज़ुर्ग प्राध्यापक से अनुरोध किया कि आप की हिंदी में काफ़ी 'नॉलिज' है, आप अर्थ-शास्त्र में कोई पुस्तक क्यों नहीं लिखते ? इस से दो लाभ हो सकेंगे : १–हिंदी भाषा का विकास होगा, २–इस विषय में पुस्तकें भी उपलब्ध होना आरंभ हो जायेंगी, जिस के फलस्वरूप आज जो सेमिनार में सन्नाटा है, उस का निराकरण हो सकेगा. लगभग सभी विद्यार्थियों ने मेरी बात का समर्थन किया. उन्होंने उत्तर दिया 'ग्रेशम लॉ की तरह सस्ती पुस्तकों की माँग बढ़ती जायेगी और मेरी पुस्तक को कोई प्रकाशक छापने तक का कार्य नहीं लेगा. इस लिए जो कुछ चल रहा है सब कुछ चलने दो, जब गंदगी की राजनीति काफ़ी बढ़ जायेगी तब क्रांति होगी . . . . तब स्वयं ही सब ठीक हो जायेगा'. मैं प्राध्यापक महोदय के तर्क से सहमत नहीं हूँ, क्यों कि आज जो घुटन इस विदेशी भाषा के माध्यम में दी जाने वाली शिक्षा से विद्यार्थी महसूस कर रहा है उस की परिणति अगर विध्वंसात्मक हो तब क्या बुरा होगा? चेहरों पर उदासी, निराशा, उलझन-भरी थकान से सहज में अंदाज़ लगाया जा सकता है कि वह कितना समझ रहे हैं.

—भगवान द्विवेदी, लखनऊ

पश्चिमी जर्मनी में हिंदी : हमारे कॉलेज में स्नातकोत्तर श्रेणी के विद्यार्थियों को पश्चिम जर्मनी के दूतावास की ओर से कुछ डायरियाँ वितरित की गयीं. ये डायरियाँ हिंदी में छपी हैं और इन के आरंभ और अंत में जो सूचनाएँ, लेख आदि हैं उन का अधिकांश भाग भी हिंदी में ही है. सभी छात्रों और अध्यापकों ने भारत की राष्ट्रभाषा के प्रति दिखाये गये इस सम्मान की मुक्त कंठ से सराहना की. इस के लिए हम सब पश्चिम जर्मनी दूतावास के आभारी हैं. किंतु दूसरी ओर यह देख कर मार्मिक दुख हुआ कि डायरी के प्रकाशकों के नाम प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने अपना संदेश अंग्रेज़ी में लिख कर दिया. एक ओर विदेशियों का हिंदी के प्रति यह सद्भाव और दूसरी ओर श्रीमती इंदिरा गांधी जी की अंग्रेज़ी भक्ति क्या हम सब के लिए और स्वयं श्रीमती गांधी के लिए शर्म से सिर झुकाने वाली बात नहीं है ?

—कृष्णकुमार शर्मा, अंबाला छावनी

राज्य सरकारों की लॉटरियाँ : जहाँ तक मेरी बुद्धि पहुँचती है मैंने इसे 'कुकर्म' की संज्ञा दी है. इस से व्यक्ति और समाज का नैतिक और चारित्रिक पतन होगा. गीता का सिद्धांत 'कर्म ही प्रधान है' झुठलाया जायेगा. व्यक्ति को कर्म से हटा कर भाग्यवादी बनाया जा रहा है. यदि हमारे क़ानून में जुआ को एक सामाजिक बुराई और अपराध माना गया है तो राज्य द्वारा इस प्रकार की चलायी गयी लॉटरी को भी जुआ की ही श्रेणी में रखा जाना चाहिए और क़ानून की नज़रों में भी अपराध घोषित करना चाहिए. 'एक लगाओ और लाख पाओ' को जल्द से जल्द बंद किया जाये. इस में *व्यक्ति की व्यक्तिगत पूँजी की कोई गारंटी* नहीं रहती. एक व्यक्ति एक रुपया दाँव लगाने के स्थान पर सारी संपत्ति दाँव पर लगा सकता है. पहले जो इनामी बांड चलाया जाता था उसे एक हद तक ठीक ठहराया जा सकता था,

आप फ़रमाते हैं—

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

मैं जानता हूँ मैं पढ़ा-लिखा, हुनरमंद सब हूँ, लेकिन हार कर इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि यही पेशा सब से संतोषजनक है.

क्यों कि उस में लगी व्यक्तिगत पूंजी की गारंटी बनी रहती थी. सरकार बैंक की तरह अप्रत्यक्ष रूप से लाभ उठाती थी. एक व्यक्ति को बिना काम किये ही एक रुपये से एक लाख पाने का क्या हक़ है? यह तो खुले आम पूंजीवाद को बढ़ावा देना है. इस से समाज का स्वरूप विकृत होगा. तत्काल राज्य द्वारा अथवा इस प्रकार की अन्य लॉटरियों को बंद किया जाये.

—राजेंद्रप्रसाद श्रीवास्तव, वाराणसी

चुनाव-दौरों का ख़र्च : मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस को विजयी बनाने की जी-तोड़ चेष्टा में प्रधानमंत्री सहित कई अन्य केंद्रीय नेताओं ने बिहार के कई तूफ़ानी दौरे किये. प्रत्येक दौरे में उन्होंने बिहारवासियों के पिछड़ेपन और उन की ग़रीबी का अनेकों बार स्मरण किया. ऐसी स्थिति में उन के व्यक्तिगत दौरों पर ख़र्च हुए लाखों रुपयों की ओर भी बिहार-वासियों का ध्यान सहज ही आकर्षित होता है. प्रश्न यह है कि उन के ग़ैर-सरकारी दौरों पर ख़र्च होने वाली यह अपार धन-राशि सरकारी कोष से दी जाये, यह कहाँ तक उचित है.

—ज्ञानस्वरूप चौधरी, लक्ष्मणसिन्हा 'तन्ना', राजेंद्रकुमार डेविड, दिवाकर मिश्रा, मुंगेर

श्रीमती इंदिरा गांधी बिहार के दौरे पर कई बार आयीं—कांग्रेस पार्टी के लिए, पर प्रत्येक बार कांग्रेस का अहित ही कर गयीं. छपरा एसोसिएशन क्लब मैदान में अपने भाषण में एक स्थल पर बोलीं—'मैं देखने में उतनी तगड़ी और लंबी तो हूँ नहीं, फिर भी एक जनसंघ को कौन कहे उस के जैसे दस-दस संस्थाओं को देख सकती हूँ', आदि-आदि. छपरावासी प्रबुद्ध वर्ग को इस निम्न स्तर के वक्तव्य से गहरी चोट पहुँची—ऐसा मैं दावे के साथ कह सकती हूँ. फिर हाल ही में पटना सिटी स्थित गांधी सरोवर मैदान पर अपने भाषण के क्रम में जनसंघ पर प्रतिघात करती हुई बोलीं—'इस आणविक युग में भला दीपक क्या कर सकता है ?' तभी एक श्रोता ने, जो शायद जनसंघी थे, दबे स्वर (पर सुनाने के लिए काफ़ी था) में प्रश्न किया—ट्रैक्टर युग में भला बैलों की जोड़ी क्या कर सकती है ? सुनते ही इंदिरा जी के चेहरे पर चाचा नेहरू के समान तमतमाहट तो अवश्य आयी, पर गुस्से पर अधिकार पाते-पाते, तथाकथित प्रश्नकर्त्ता को यह अहसास कराते हुए कि वह प्रधानमंत्री भी हैं—बहुत-सी भद्दी और बेजा बातें बोल गयीं. आध-एक घंटे का प्रोग्राम पाँच मिनट में ही समाप्त कर अपने पीछे यहाँ के कांग्रेसी उम्मीदवारों को रोते-बिलखते छोड़ गयीं.

प्रचार-कार्य हेतु कुछ लोग यहाँ के एक कांग्रेसी उम्मीदवार से जब मिलने गये तो वह आँखों में विवशता का आंसू लिए ठुनक कर बोले—'बेकार ही इंदिरा जी को बुलवाया. अब तो और....' कहते-कहते बेचारे का गला रुँध गया.

—सजदा बानो 'कृष्ण', पटना

छात्रमत

छात्रों की अलग से अपनी कोई समस्या नहीं है. जो समस्या आज पूरे समाज की है लगभग वही समस्याएँ संपूर्ण छात्रों की भी हैं. ये समस्याएँ विद्यार्थियों को उत्तेजित इस लिए अधिक करती हैं कि उन्हें ही इस से अधिक दिनों तक जूझना तथा समाधान देना है.

आज जो विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहा है वह स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् जन्मा है. अपने भविष्य की आशा के प्रति उसे अनास्था, आशंका एवं अनिश्चितता दिखती है. देश की निष्प्रयोजन शिक्षा-पद्धति की उपयोगिता पर विद्यार्थी का विश्वास टिकता ही नहीं. स्वतंत्रता नवीनता के उन्मेष को ले कर आ नहीं सकी. राजनैतिक स्वतंत्रता मानसिक मुक्ति की प्रतीक नहीं बन पायी है. अपनी भाषा को माध्यम स्वीकारने तथा उसे उपयोगी व समर्थ बनाने में भाई-भतीजावाद के कोढ़ से ग्रसित अध्यापक-वर्ग कराहता है. इस लिए इन तमाम विसंगतियों को दूर करने के लिए नयी गठित लोकतांत्रिक सरकार से हम चाहेंगे कि स्वस्थ शिक्षा के लिए स्वस्थ व निरपेक्ष वातावरण तैयार किया जाये तथा निम्न सुझावों को कार्यान्वित किया जाये.

१. विद्यार्थियों की समस्त माँगों का विश्लेषण किया जाये तथा जो माँगें वास्तव में न्यायसंगत हों उन्हें अविलंब पूरा किया जाये. २. विश्वविद्यालय में जो असामाजिक तत्त्व हैं, या प्रवेश पा गये हैं उन के खिलाफ़ कड़ी से कड़ी अनुशासन की कारवाई की जाये. ३. किसी भी राजनैतिक पार्टी की युवजन शाखा को विश्वविद्यालय में पनपने का मौक़ा न दिया जाये तथा राजनैतिक पार्टी से संबद्ध व्यक्ति को विश्वविद्यालयीय चुनाव में भाग न लेने दिया जाये. ४. वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति एवं परीक्षा-प्रणाली में शिक्षाविदों की राय ले कर परिवर्त्तन अपेक्षित है, जिस से उपयोगी शिक्षा मिल सके तथा विद्यार्थियों को रोजगार के प्रति आश्वस्त किया जाये. ५. उपकुलपति का चुनाव शिक्षा-जगत् से हो और विश्वविद्यालय के प्रशासन में केंद्रीय या प्रांतीय शासन निकाय की घुस-पैठ रोकी जाये. ६. विश्वविद्यालय में उन अध्यापकों के विरुद्ध कड़ी कारवाई की जाये जो जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाई-भतीजावाद एवं खुशामद से अपने अधिकारों का दुरुपयोग करते हैं, ग़लत नंबर देते हैं, ग़लत नियुक्तियाँ करते हैं आदि. ७. विद्यार्थियों के नाम के आगे-पीछे से उपाधिवाची (सरनेम—सिंह, पांडेय) आदि नाम हटाये जायें, जिस से समानता का वातावरण उपस्थित हो सके. ८. हिंदी भाषा के माध्यम से विश्वविद्यालय के प्रशासन एवं अध्ययन-अध्यापन का काम संपन्न हो तथा पाठ्यक्रमों में भी क्रांतिकारी परिवर्त्तन अपेक्षित है.

—सत्येंद्र सिंह, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग

पिछले सप्ताह

(६ फ़रवरी से १२ फ़रवरी १९६९ तक)

देश

६ **फ़रवरी :** रेल यात्रियों के सामान-भाड़े में १० प्रतिशत की बढ़ोतरी. नगालैंड में आम चुनाव का पहला चरण शुरू.

७ **फ़रवरी :** हरयाणा के गुमे हुए विधायक जोगिंदरसिंह का अपने अपहरण के बारे में विधानसभा में वक्तव्य.

८ **फ़रवरी :** हरयाणा विधानसभा का वर्त्तमान अधिवेशन आठ-दस दिन और बढ़ाने के एलान से प्रतिपक्ष में क्षोभ. जमशेदपुर में पुलिस और भीड़ में भिड़ंत के कारण २ व्यक्तियों की मृत्यु.

९ **फ़रवरी :** पंजाब, बिहार, पश्चिम बंगाल और उत्तरप्रदेश में मध्यावधि चुनाव संपन्न. तमिलनाडु के निर्माणमंत्री करुणानिधि द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के सर्वसम्मति से नेता निर्वाचित.

१० **फ़रवरी :** मध्यावधि चुनावों के कुछ स्थानों के परिणाम घोषित. तमिलनाडु के करुणानिधि मंत्रिमंडल के सदस्यों द्वारा शपथ-ग्रहण.

११ **फ़रवरी :** पंजाब में कोई भी पार्टी स्पष्ट बहुमत प्राप्त करने में असफल. बंबई में पुलिस की गोली से ४३ व्यक्तियों की मृत्यु.

१२ **फ़रवरी :** पश्चिम बंगाल में संयुक्त मोर्चे को स्पष्ट बहुमत प्राप्त, हरयाणा विधानसभा अनिश्चितकाल के लिए स्थगित.

विदेश

६ **फ़रवरी :** पेरिस में वीएतनाम शांति-वार्त्ता के तीसरे दौर में गतिरोध बरक़रार. अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन द्वारा अपने दूसरे संवाददाता-सम्मेलन में यूरोप यात्रा और पश्चिम एशिया समस्या के समाधान का संकेत. नाइजीरिया के विमानों की बमबारी से ३०० बिअफ़्रा वासियों की मृत्यु.

७ **फ़रवरी :** पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ द्वारा आपत्कालीन स्थिति समाप्त करने का संकेत.

८ **फ़रवरी :** अय्यूब की पूर्व पाकिस्तान यात्रा के दौरान स्त्रियों द्वारा प्रदर्शन.

९ **फ़रवरी :** युर्दान द्वारा संयुक्तराष्ट्र के शीघ्र अधिवेशन की माँग.

१० **फ़रवरी :** पाकिस्तान हाईकोर्ट द्वारा भुट्टो की रिहाई का आदेश.

११ **फ़रवरी :** इस्राइल-अरब छापामारों में गोलीबारी.

१२ **फ़रवरी :** लाहौर में १५०० प्रदर्शनकारियों द्वारा राष्ट्रपति के निवास-स्थान की घेराबंदी का प्रयास.

पत्रकार संसद

अय्यूब के मार्ग-दर्शक ब्रितानी पत्र

पाकिस्तान के हालात में ब्रितानी पत्रों ने जितनी दिलचस्पी दिखायी है उतनी शायद ही किसी अन्य देश के पत्रों ने दिखायी हो. वहाँ की घटनाओं के व्यापक समाचार तो ब्रितानी पत्रों में रहते ही हैं, साथ ही प्रमुख पत्रों ने अपने संपादकीय लेखों में स्थिति की विस्तार से विवेचना भी की है. इस विवेचना में आम तौर पर राष्ट्रपति अय्यूब के शासन का समर्थन ही दिया गया है. ब्रितानी पत्रों का अपना निष्कर्ष यह है कि राष्ट्रपति अय्यूब के पिछले दस वर्ष के शासन में पाकिस्तान ने अभूतपूर्व प्रगति की है और उन की सब से बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने पाकिस्तान को राजनैतिक स्थिरता प्रदान की.

टाइम्स ने अपने लंबे संपादकीय में लिखा है:

दस वर्ष तक अय्यूब के कड़े नियंत्रण में रहने के बाद अब पाकिस्तान संकट की ओर बढ़ रहा है. पिछले छह महीने से पाकिस्तान में जो कुछ हो रहा है उस से संकेत मिलता है कि प्रतिपक्ष काफ़ी ज़ोर पकड़ गया है. हिंसा भले ही संगठित और व्यापक रूप से नहीं फैली पर इस बात के लक्षण तो दिखायी पड़ते ही हैं कि एक ओर तो सेना के भीतर से और दूसरी ओर ऐसे राजनैतिक दलों से राष्ट्रपति अय्यूब के लिए सीधी कार्यवाही का खतरा बढ़ गया है जो अगले वर्ष के राष्ट्रपति-चुनाव का बहिष्कार करने का फ़ैसला कर चुकी है.

राष्ट्रपति अय्यूब ने देश की स्थिति पर बातचीत करने के लिए जिम्मेदार प्रतिपक्ष-नेताओं से बातचीत का प्रस्ताव भी किया है. राष्ट्रपति अय्यूब की जिम्मेदार प्रतिपक्ष-नेताओं की परिभाषा में स्पष्टत: वामपक्षीय पार्टियों को छोड़ दिया गया है. साथ ही अय्यूब ने यह भी कहा है कि वह ऐसी कोई भी बात मानने को तैयार हैं जिस से पाकिस्तान की अखंडता और सुरक्षा को कोई आँच न आती हो. प्रतिपक्ष, राष्ट्रपति अय्यूब के इस प्रस्ताव को बेतुका मान कर, संकट की स्थिति समाप्त करने, राजनैतिक बंदियों को रिहा करने और लोगों को नागरिक अधिकार देने की बराबर माँग कर रहा है, तो इस में ताज्जुब ही क्या है ?

विरोध का सफलतापूर्वक दमन भी किया जा सकता है और उपद्रवग्रस्त नगरों में शांति भी क़ायम की जा सकती है. पर यह मानना पड़ेगा कि सन १९५८ से राष्ट्रपति अय्यूब ने जो निज़ाम क़ायम कर रखा है अब वह डगमगा रहा है. आज के आंदोलन में सभी राजनैतिक पार्टियों का मुख्य उद्देश्य यह है कि राष्ट्रपति अय्यूब छाप बुनियादी जम्हूरियत के बजाय बालिग़ मताधिकार पर आधारित लोकतंत्र स्थापित किया जाये. इस माँग के विरुद्ध सैनिकों की प्रतिक्रिया स्वाभाविक है, जो क़ानून व व्यवस्था बनाये रखना चाहते हैं.

यह बात सभी ने स्वीकार की है कि राष्ट्रपति अय्यूब ने पाकिस्तान के राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए देश को व्यवस्थित किया है. इस समूचे शासन-काल में सुदृढ़ प्रबंधमंडल के नियम और क़ानून सभी ने माने हैं, यहाँ तक कि उन लोगों ने भी जो पाकिस्तान में लोकतंत्र समाप्त हो जाने पर बहुत नाराज़ हैं. ज्यादा आलोचना इस कारण हुई है कि एक सुदृढ़ केंद्रीय सरकार ने समूचे देश को बाँधे रखा. इस के अलावा एक बात यह है कि अय्यूब शासन-काल में पाकिस्तान की अर्थ-व्यवस्था का इतना विकास हुआ कि एशिया में पाकिस्तान के किसी भी पड़ोसी देश की विकसित अर्थ-व्यवस्था से उस की तुलना की जा सकती है. फिर भी अनेक त्रुटियाँ प्रशासन में रहीं. इन सब त्रुटियों के बावजूद पाकिस्तान में असैनिक और सैनिक नौकरशाही का विकास हुआ, जिस का प्रशासन बहुत बुरा नहीं रहा. राष्ट्रपति अय्यूब यह आपत्ति उठा सकते हैं कि प्रतिपक्ष ने उन से बढ़िया कोई और रास्ता नहीं दिखाया है. उधर राष्ट्रपति अय्यूब अगले वर्ष के चुनाव से भी पीछे नहीं हटे हैं. शायद अभी वह विरोध-पक्ष की हवा का रुख देख रहे हैं.

गार्डियन ने भी अपने संपादकीय लेख में राष्ट्रपति अय्यूब के बढ़ते हुए विरोध पर चिंता व्यक्त की है. इस पत्र का भी यह मत है कि राष्ट्रपति अय्यूब ने अपने शासन-काल में पाकिस्तान को एक सूत्र में बाँधे रखा. पत्र ने लिखा है:

राष्ट्रपति अय्यूब के दस वर्ष से चले आ रहे शासन के प्रति संयुक्त विरोध ने अब व्यापक रूप धारण कर लिया. राष्ट्रपति अय्यूब ने विरोध-पक्ष से बातचीत करने की जो इच्छा व्यक्त की है वह इस विरोध की उग्रता को कम करने का एक उपाय हो सकता है. पेशावर में राष्ट्रपति अय्यूब की हत्या के प्रयत्न के बाद इस विरोध का अचानक विस्तार हो गया. अभी पाकिस्तान दंगों और हिंसात्मक उपद्रवों की लपेट में है.

राष्ट्रपति अय्यूब अपने शासन-काल में शुरू से ही विरोधियों की अवहेलना करते रहे. विरोधियों पर उन का आरोप यह रहा कि वे पाकिस्तान में फूट डालने और बुनियादी लोकतंत्र को बरबाद करने की कोशिशों में लगे रहते हैं. अन्य विकासशील देशों की तरह पाकिस्तान में भी प्रादेशिक, धार्मिक और इसी तरह की अन्य बातों को ले कर राजनैतिक मतभेद खड़े होते रहे हैं.

इधर राष्ट्रपति अय्यूब अपने सैनिक नियंत्रण द्वारा समूचे पाकिस्तान को एक सूत्र में बाँधे रखने में सफल रहे हैं, हालांकि उन का यह नियंत्रण राजनीति और समाचारपत्र-जगत् पर हावी रहा और उन के बुनियादी लोकतंत्र में बालिग़-मताधिकार का भी कोई स्थान नहीं रहा. १९६५ से राष्ट्रपति अय्यूब संकट की उस स्थिति को बनाये हुए हैं जिस की घोषणा भारत के साथ युद्ध के समय की गयी थी. इन सब बातों और उधर अगले साल होने वाले राष्ट्रपति-चुनावों के बावजूद छह की छह विरोधी पार्टियाँ अपना कोई संयुक्त विरोधी मोर्चा नहीं बना सकी हैं. ये विरोधी दल अय्यूब को ही अपदस्थ करना चाहते हैं, या पाकिस्तान में लोकतंत्र की पुनर्स्थापना उन का उद्देश्य है, यह अभी स्पष्ट नहीं है. राष्ट्रपति अय्यूब ने प्रतिपक्ष के लोगों से बातचीत का जो प्रस्ताव किया है उस से स्पष्ट है कि वह वर्तमान संकट पर केवल बल-प्रयोग से ही क़ाबू पाना नहीं चाहते. उन की नीति में यह परिवर्तन एक ख़ुशी की बात है. पाकिस्तान को आगे चल कर सब से अधिक जरूरत इस बात की है कि वहाँ राजनैतिक परिवर्तन ऐसे हों जो प्रादेशिक और धार्मिक आधार पर उग्रता को समाप्त कर सकें. अय्यूब के भूतपूर्व विदेश-मंत्री श्री भुट्टो की जनता पार्टी वामपक्षीय विचारधारा के अधिक निकट है और कश्मीर के प्रश्न पर भारत के उग्र विरोध की उन की नीति ने तो उन की पार्टी की विचारधारा को

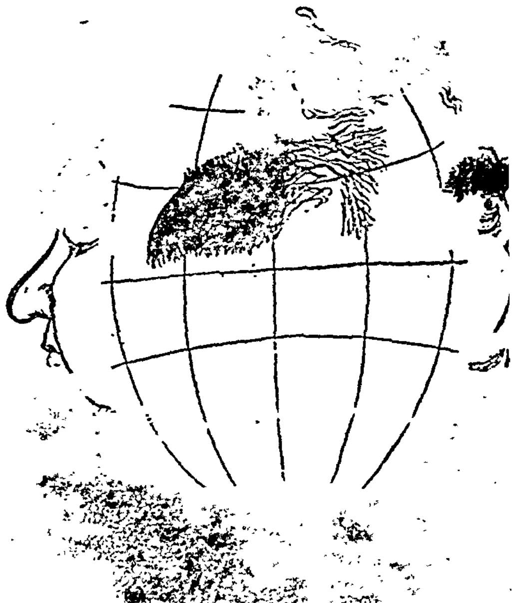

अमेरिकी-चीनी प्रगति

अमेरिका और चीन के वर्तमान संबंधों की स्थिति पर ल' पेली का व्यंग्य

और भी पेचीदा बना दिया है. पाकिस्तान में विघटित विरोध को देख कर तो यही कहा जा सकता है कि अगले चुनावों में राष्ट्रपति अय्यूब ही विजयी रहेंगे. पर इस समय लोकतंत्र की पुर्नस्थापना के लिए उन पर अधिक दबाव डाला गया तो इस पर सार्वजनिक विवाद और भी शिथिल पड़ जायेगा.

प्रमुख साप्ताहिक पत्र **इकॉनॉमिस्ट** के विचार में राष्ट्रपति अय्यूब के विरोध की दिशा स्पष्ट नही है. इसी लिए वह कारगर नहीं है. पत्र ने अपनी टिप्पणी में घटनाओं का अधिक विवरण दिया:

नये वर्ष की शुरूआत राष्ट्रपति अय्यूब की सत्ता को चुनौती से हुई. जनवरी के मध्य में पाकिस्तान के लगभग सभी बड़े शहरों में उपद्रव हुए और पुलिस की गोलियों से कुछ लोग मरे भी. राष्ट्रपति अय्यूब को एहसास होने लगा कि राष्ट्रमंडल देशों के सम्मेलन के बजाय देश में उन की उपस्थिति अधिक आवश्यक है. नवंबर और दिसंबर के प्रारंभ में उत्पन्न विरोध कुछ कम हुआ था, पर राष्ट्रपति अय्यूब के विरोधियों की अपने विरोध का विस्तार करने की क्षमता बढ़ गयी थी.

भूतपूर्व विदेशमंत्री श्री भुट्टो ने जेल से ही घोषणा कर दी कि आगामी राष्ट्रपति-चुनावों में वह भी उम्मीदवार होंगे. पुराने ढंग के राजनीतिज्ञों के संयुक्त मोर्चे ने चुनावों का बहिष्कार करने का ऐलान किया. उधर भूतपूर्व वायुसेनाध्यक्ष एयर मार्शल असग़र ख़ाँ और पूर्व पाकिस्तान के एक भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री एस० एम० मुरशाद राष्ट्रपति अय्यूब के प्रतिद्वंद्वी बन कर सामने आये.

पूर्व पाकिस्तान की जनता को अन्य परंपरावादी राजनीतिज्ञों की तरह श्री भुट्टो की क्रांतिकारी नीति और उन की नीयत पर संदेह है. उधर वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ मौलाना भाशानी का राजनैतिक दल पाकिस्तानी वामपक्षीय दल के अधिक निकट है. उस ने संयुक्त मोर्चे का भागीदार होने से इनकार कर दिया है. इधर तो संयुक्त मोर्चे के पास लोकतंत्र की पुर्नस्थापना के सिवाय कोई और कार्यक्रम नहीं है और उधर मौलाना भाशानी समाजवाद की माँग करते हुए एयर मॉर्शल असग़र ख़ाँ का यह कह कर विरोध कर रहे है कि एक सैनिक नेता दूसरे सैनिक नेता की जगह ले रहा है. इस के साथ-ही-साथ उन की माँग यह भी है कि पाकिस्तान का अगला राष्ट्रपति पूर्व पाकिस्तान का ही कोई व्यक्ति हो. इस माँग में भुट्टो कहीं आते नहीं.

राष्ट्रपति अय्यूब को बस इतना ही करना है और वह इतने भोले नहीं है जो इतना समझते न हों कि क़ानून व व्यवस्था बनाये रखें और विरोध-पक्ष को उन की अपनी असंभवताओं में फँसा रहने दे. परिस्थितियाँ चाहे जितनी प्रतिकूल हों वक़्त अभी राष्ट्रपति अय्यूब के साथ ही है. अभी ऐसा कोई लक्षण दिखायी नहीं पड़ा कि राष्ट्रपति अय्यूब अपना प्रभाव खो रहे हैं.

स्वर्गीय अन्नादोरै

तमिलनाडु के मुख्यमंत्री श्री अन्नादोरै की मृत्यु पर टिप्पणी करते हुए ब्रितानी पत्र **इकॉनॉमिस्ट** ने भारतीय लोकतंत्र की इस बात के लिए सराहना की है कि विरोधियों को भी शासनतंत्र में सर्वोच्च सम्मान दिया जाता है. पत्र की राय में श्री अन्नादोरै, जो पहले पृथकतावादी थे, सत्ता में आने के बाद भारत की एकता के लिए प्रयत्नशील रहे. अपनी टिप्पणी में पत्र ने लिखा है :

दक्षिण भारत में तमिलों के लिए मुख्यमंत्री श्री अन्नादोरै का निधन उत्तर भारत में श्री नेहरू के निधन से किसी तरह भी कम नहीं था, क्यों कि उन के निधन पर शोकाकुल जनता की भीड़ इतनी ज़बर्दस्त थी कि अनेक लोग भगदड़ में मारे गये.

श्रीमती गांधी के शब्दों में श्री अन्नादोरै को ऐसे समय मृत्यु ने छीना जब उन्होंने देश को बहुत कुछ देना था—वास्तव में वह तमिलों के ही नहीं थे पर समूचे भारत के हो गये थे. उन्होंने प्रादेशिकता और राष्ट्रीय लक्ष्यों के बीच एक संतुलन कायम कर लिया था. मद्रास के मुख्यमंत्री बनते ही उन्होंने इस दिशा में सोचना आरंभ कर दिया था कि मद्रास और नयी दिल्ली के बीच जो खाई चली आ रही है उस को कैसे पाटा जाये ? उन की महत्त्वाकांक्षा, जैसा कि वह कहा भी करते थे, भारत की एकता को स्थिर बनाना था. यह बात उन की अपनी पार्टी द्रमुक की विचारधारा से कितनी भिन्न थी, जो मद्रास के लिए पृथकता की माँग कर रही थी.

यहाँ प्रश्न उठता है कि १९५०–६० के बीच भी अन्नादोरै का पृथकतावाद में अपना विश्वास १९६० के शुरू में एकता में किस तरह बदल गया ? इस का जवाब भारतीय राजनैतिक प्रणाली की उस क्षमता में है जहाँ विरोधियों को भी शासनतंत्र में उचित स्थान दिया जाता है. सन १९६२ के आम चुनावों में जब द्रमुक ने मद्रास विधानसभा की एक-तिहाई से भी अधिक जगहें जीत ली तो शासनतंत्र में विरोधियों को भी उचित स्थान देने की प्रक्रिया स्पष्ट रूप ले चुकी थी. इस तरह जो रास्ता तैयार हुआ उस से मद्रास में कांग्रेस को भी हिंदी तथा अन्य राष्ट्रीय मामलों पर अपना दृढ़ रवैया अपनाने का मौक़ा मिल गया.

मद्रास की कुछ बातें अभी भी केंद्र के लिए चिंताजनक है, विशेषकर ऐसे समय जब कि श्री अन्नादोरै का प्रभाव अब कम होता जायेगा. श्री अन्नादोरै भी अपने शासन-काल में कुछ प्रश्नों पर छात्रों की उत्तेजना पर क़ाबू नहीं पा सके थे.

प्रेस जगत

सरकार और साहित्यिक

मराठी दैनिक **लोकसत्ता** (२ फ़रवरी १९६९) के संयुक्त संपादक **श्री विद्याधर गोखले** ने महाराष्ट्र वांग्मय परिषद्, बड़ौदा के ३२वें अधिवेशन के अध्यक्ष के नाते अपने विचार 'सरकार और साहित्यिक' विषय पर व्यक्त किये :

स्वतंत्रता के बाद प्रजातंत्र में विद्वान् साहित्यकारों का जो मान सरकार-दरबार में है वह भी उपयोगिता की दृष्टि से है. सरकार जिस साहित्यकार को जितना खतरनाक समझती है उतना ही उसे खरीद लेने का यत्न करती है. सरकार ने साहित्यकारों की अहिंसक किंतु उपद्रवकारी क़ीमत समझ ली है. अपने-अपने राज्य में सौ-पचास साहित्यिकों के हाथ पर थोड़ा सा दानोदक छोड़ना और उन के 'खुशीकरण' का मंत्र बोल कर उन्हें राज़ी रखना क्या यही सरकार का काम है ? सरकार की ऐसी मनोवृत्ति के कारण पैसा, पदवी और प्रतिष्ठा के लिए सत्ताधीशों की देहलीज़ रगड़ने वाले बुद्धिजीवी कंगाल, कुर्सीवादी विद्वान, साहित्यिक भूखे बंगालियों की फ़सल जोरों से बढ़ रही है. साहित्य और कला की ओजस्विता नष्ट हो कर कायरता का वातावरण निर्माण हो रहा है. पत्रकारों को भी ख़रीदने, उन पर नाजायज दबाव डालने का काम सरकार कर रही है.

मैं कुछ सुझाव देना चाहता हूँ. कुछ नियम बनाने चाहिएँ :

(१) किसी भी साहित्यिक समिति-पर एक व्यक्ति तीन से अधिक बार न रहे. कोई भी एक व्यक्ति दो से अधिक समिति पर न रहे. (२) सरकारी पुरस्कार के लिए डेढ़ महीने में २०० किताबें परीक्षकों को पढ़नी पड़ती है, जो कि ग़लत बात है. जैसे-जैसे पुस्तकें प्रकाशित होती जाये परीक्षकों को भेजी जानी चाहिएँ. (३) प्रकाशन-संस्था के संपादकमंडल के सदस्य पुरस्कार-समितियों के सदस्य नहीं होने चाहिएँ. (४) नाट्य-संगीत-चित्रपट के क्षेत्र में सरकारी सहायता के कारण व्यक्तिगत और मौलिक उन्मेष प्रयोगशीलता और आदर्शोन्मुखता नष्ट हो कर सरकार की सहायता पर निर्भरता बढ़ी है. (५) सरकारी पदवियाँ हास्यरस का विषय बन रही है. वि. स. खाडेकर जैसे साहित्यिक को पद्मभूषण करने के लिए अनेकों को आवाहन करना पड़ा. तब कहीं विलंब से उन्हें यह पदवी मिली. सरकारी ताल और तंत्र संभालने वाले नट-नर्त्तकों को पद्मश्री शीघ्र मिलती है. आधुनिक समाज-शास्त्र की नींव रखने वाले डॉ. घुर्ये जैसे महापंडित सरकारी पदवी से मंडित नहीं होते. ज्यादा बोलने वाले नूपुर सिर पर धारण कर के चूड़ामणियों को धूलि-धूसर करने वाली सरकार को क्या कहें?

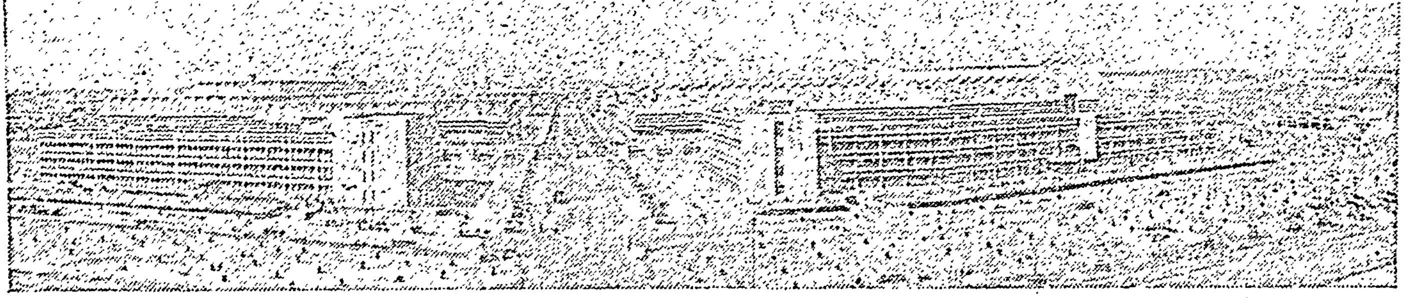

भारी इंजीनियरी निगम के विशाल संयंत्र : विस्तार और संभावनाएँ

भारी उद्योग

जंजीरों में जकड़ा राँची प्रतिष्ठान

६,००० एकड़ में फैले हुए भारी इंजीनियरी निगम के तीन विशाल संयंत्रों और वस्ती के मुख्य द्वार के निकट पत्थर की एक विशाल प्रतिमा अवस्थित है. इस प्रतिमा के हाथों में जंजीरें हैं. लगभग यही दशा भारी इंजीनियरी निगम की है—एक विशाल प्रतिष्ठान, जिस में निर्माण की अपरिमित संभावनाएँ निहित हैं, लेकिन देश के कर्णधारों की सीमित बुद्धि, दूर तक देख पाने की अयोग्यता के कारण यह भीमकाय प्रतिष्ठान सुप्तावस्था में ही है.

सन् १९५५ में ख्रुश्चेव-बुल्गानिन की यात्रा के दौरान जब भिलाई इस्पात कारखाने ने जन्म लिया उस समय हमारे आयोजकों को यह लगा कि आने वाले कई वर्षों तक यदि प्रतिवर्ष नहीं तो कम से कम हर दूसरे वर्ष १० लाख टन की क्षमता वाला एक इस्पात कारखाना स्थापित होता जायेगा. ऐसी दशा में भारी मशीन निर्माण-संयंत्र की स्थापना का सुझाव रूसी तकनीकों ने हमारे आयोजकों को दिया, जो आरंभ में प्रत्येक दूसरे वर्ष एक इस्पात कारखाना तैयार कर सके और बाद में प्रतिवर्ष एक कारखाना बना सके.

इस के पीछे जो अर्थ-शास्त्र काम कर रहा था वह यह था : आरंभ में इस्पात-कारखानों का निर्माण और १५-२० वर्ष बाद स्थापित इस्पात-कारखानों के यंत्रोपकरण की बदली. इस्पात-कारखाने की मशीन १०-१५ वर्ष में बेकार हो जाती हैं और उन्हें बदलना पड़ता है. लिहाजा यह भारी मशीन संयंत्र की कल्पना उस समय अनुपयुक्त न थी, क्यों कि देश में १५ इस्पात-कारखानों की स्थापना के पश्चात् इस प्लांट को प्रतिवर्ष एक न एक इस्पात कारखाने को पुनः लगाने की आवश्यकता पड़ेगी.

आज भी हमारे देश में प्रतिव्यक्ति इस्पात की खपत कुल ५ किलोग्राम है, जब कि जापान में २०० किलोग्राम प्रतिव्यक्ति है. अतः जहाँ तक इस्पात की खपत और इस लिए इस्पात-कारखानों की स्थापना का प्रश्न है उस की संभावनाएँ अपरिमित हैं.

लेकिन हमारी सरकार और आयोजना आयोग के सदस्यों को संभवतः इस का न तो अनुमान है और न ही उन में इतनी दूरदर्शिता है. कृषि में तथाकथित क्रांति के बावजूद इस्पात में वृद्धि की दिशा में अभी तक कुछ नहीं सोचा गया है. बोकारो इस्पात-कारखाना के, जिस की उत्पादन-क्षमता १७ लाख टन होगी, विकास-विस्तार पर अभी तक कोई निर्णय नहीं लिया जा सका है. बोकारो कारखाने में तब तक ४० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष का घाटा होता रहेगा जब तक कि इस की उत्पादन-क्षमता बढ़ा कर ४० लाख टन प्रतिवर्ष नहीं कर दी जाती.

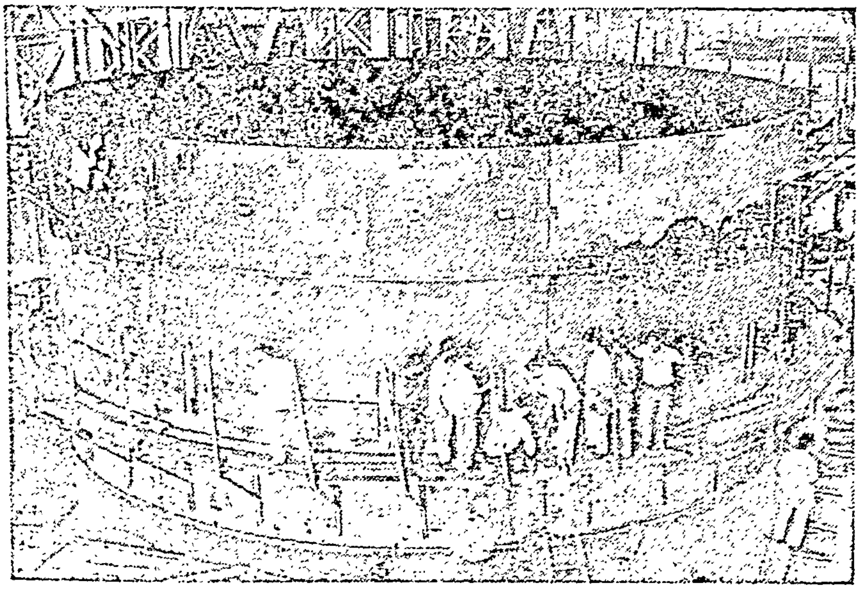

कारखाने में निर्मित धमन-भट्ठी

इस अनिर्णय के फलस्वरूप सन् १९७१ के बाद से भारी इंजीनियरी निगम के पास कोई ऑर्डर नहीं है और यदि आज की तारीख में बोकारो के विकास के बारे में समुचित निर्णय लिया भी गया तो एच. इ. सी. को उस ऑर्डर को पूरा करने में तीन वर्ष और लग जायेंगे, जिस का नतीजा होगा कि सन् १९७२ में इस के पास कोई काम न होगा.

इस्पात कारखाने को डिजाइन बनाने, कच्चे माल की प्राप्ति की योजना बनाने आदि में तीन वर्ष लगते हैं और तब कहीं उस की मशीनों का निर्माण आरंभ होता है.

लिहाजा यह भीमकाय प्रतिष्ठान उच्चस्तरीय अनिर्णय की स्थिति का एक असहाय क़ैदी बन कर रह गया है. इस लिए जब भारी इंजीनियरी निगम की स्थापना का निर्णय स्वर्गीय नेहरू के कार्यकाल में किया गया था तब आशाएँ बहुत अधिक और ऊँची थीं. आज सारा योजनाबद्ध विकास एक बिंदु पर आ कर ठप्प हो गया है. कहा जाता है कि इस्पात की और अधिक खपत की गुंजाइश ही नहीं है. लेकिन इस दिशा में प्रयास करने की कौन कहे, लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे हुए हैं. पूरे देश के इंजीनियरी कारखाने ऑर्डरों की बेहद कमी के कारण संकट के दौर से गुजर रहे हैं. जहां एक ओर इस संकट से उबरने के कोई लक्षण नजर नहीं आते वहीं दूसरी ओर कोई कोशिश भी नहीं की जाती. इस बारे में एक उदाहरण ही काफ़ी होगा. सारे देश में इस समय रिइनफ़ोर्स कंक्रीट के विशाल पुल बन रहे हैं, जब कि सीमेंट की कमी बहुत शिद्दत से महसूस की जाती है. देश में खनिज लोह के विशाल भंडार मौजूद हैं और यदि लोहे व इस्पात के पुल बनाये जायें तो सस्ते में बनें और साथ ही इस्पात-कारखानों की स्थापना की संभावनाएँ भी पैदा हों. इस के अतिरिक्त विदेशों को जो हम खनिज लोह भेज रहे हैं उस के स्थान पर हमें ढला कच्चा लोहा भेजना चाहिए, जो इस्पात-कारखानों के लिए अधिक काम मुहैया करेगा.

हर ओर अनिर्णय की स्थिति ने इस निगम की स्थापना के प्रथम वर्षों में भी काफ़ी

समस्याएँ पैदा कीं, जो आज तक हम पर भारी हैं. जब १९५७ में रूसी सहायता से भारी मशीन निर्माण-संयंत्र की योजना स्वीकार की गयी और उस पर काम शुरू हुआ तो पाया गया कि इस के साथ ही फ़ाउंड्री फोर्ज प्लांट की भी आवश्यकता होगी, जो इस्पात-कारखानों के मशीन निर्माण में भारी ढला और गढ़ा गया सामान दे और क्यों कि भारी मशीन संयंत्र की क्षमता ४०,००० टन थी अत: इसी क्षमता के फ़ाउंड्री फोर्ज प्लांट के लिए प्रोजेक्ट रिपोर्ट पर काम शुरू हुआ. देर से इस नतीजे पर पहुँचने के कारण फ़ाउंड्री का निर्माण पिछड़ गया और इस प्रकार पूरे मशीन निर्माण का काम भी पिछड़ गया. इस बीच भारी मशीन निर्माण-संयंत्र की क्षमता बढ़ा कर ८०,००० टन प्रति-वर्ष कर दी गयी. इस लिए फ़ाउंड्री का काम अभी तक पूरा नहीं हुआ. अत: बोकारो की मशीनों की सप्लाई में रोड़े पैदा हो रहे हैं.

यह तो हुई उच्च स्तर पर अनिर्णयों की कहानी का वह अंतहीन सिलसिला. लेकिन स्वयं निगम के पैमाने पर भी समस्याएँ हैं, जो उतनी ही भीमकाय व पेचीदा हैं. समय, योजना और दूर तक उत्पादन संगठित करने की न तो किसी में सलाहियत है और न ही उसे हासिल करने की उत्सुकता. नतीजे के तौर पर एक के बाद एक उत्पादन संबंधी समस्याएँ पैदा होती हैं और उन का अहसास तभी होता है जब किसी चीज़ का उत्पादन रुक जाता है. ऐसे क़िस्सों की कमी नहीं जब किसी आइटम की मशीनिंग कर दी गयी, जब कि उस में गियर कटने थे. लिहाज़ा लाखों का लगभग तैयार सामान बेकार हो गया और कार्य-वाही, जवाब-तलबी किसी की नहीं हुई.

फिर इस प्रतिष्ठान के साथ बिहार की अपनी समस्याएँ भी जुड़ी हुई हैं. सांप्रदायिकता, जातीयता, क्षेत्रीयता आदि ऐसी बीमारियाँ हैं जिन की गहराई सुनने से नहीं-केवल बिहार आने पर ही अनुभव होती है. उत्तर भारतीयों और दक्षिण भारतीयों के बीच झगड़े यहाँ हो चुके हैं. सन् १९६७ का सांप्रदायिक दंगा इस औद्योगिक नगरी में जम कर हुआ. जातिवाद के आधार पर तरक़्क़ी या तनुज्ज़ली के यहाँ एक दो नहीं अनेक उदाहरण हैं. ये सब यहाँ उत्पादन में निरंतर बाधक बने हुए हैं.

आदिवासियों की जमीनें ले कर उन से सुनहले वायदे किये गये, जो आज तक किसी ने भी पूरे नहीं किये. परिणामस्वरूप आदिवासियों के आर्थिक उत्थान के बजाय उन की अवनति ही हुई है. औद्योगिक सभ्यता की हर बुराई ने उन के पुराने रीति-रिवाजों, चारित्रिक विशेषताओं को तो तोड़ कर रख दिया, मगर बदले में मिला कुछ नहीं.

अत: यदि आदिवासी यह कहते हैं कि उन का विरसा भगवान अंग्रेज़ों के ज़माने में भी जंजीरों में जकड़ा था और आज भी जकड़ा हुआ है तो वे शायद कुछ ग़लत नहीं कहते.

चाय

अंतरराष्ट्रीय और क्षेत्रीय सहयोग

अफ़्रीकी और एशियाई देशों और उपनिवेशों के लिए चाय एक महत्त्वपूर्ण विदेशी मुद्रा-अर्जक रही है. श्रीलंका जैसे देशों के लिए तो चाय सोना-स्वरूप है. चाय का निर्यात उस के कुल निर्यात का क़रीब ६० प्रतिशत है. भारत में चाय का नंबर दूसरा है. अन्य देशों में* चाय के कुल निर्यात का अनुपात श्रीलंका के बराबर भले ही न हो पर इस में कोई शक नहीं कि निर्यात-वस्तुओं में उस का प्रमुख स्थान है. इस दशा में चाय का नीलामी दाम यदि ज़रा भी ऊँचा-नीचा हुआ तो इन देशों की जेबें हलकी रह जाती हैं. इस के अलावा चाय के मूल्य की अनिश्चितता का असर विकासोन्मुख देशों की राष्ट्रीय योजना और आर्थिक विकास पर भी पड़ता रहा है. श्रीलंका जैसे देशों के लिए तो चाय की समस्या मानो राष्ट्र के जीवन-मरण की समस्या बन गयी है.

भारत के कुल निर्यात में चाय का अनुपात उतना प्रभावजनक नहीं है जितना कि छोटे एशियाई-अफ़्रीकी देशों का. चाय के बाज़ार में भारत 'बड़का भैया' ही रहा है. १९६७ में चाय का निर्यात भारत के कुल निर्यात में क़रीब १३ प्रतिशत रहा है, पर चाय-उत्पादक देशों में भारत अग्रणी रहा है. संसार की एक तिहाई से भी अधिक चाय भारत में होती है. दूसरा नंबर श्रीलंका का है. चाय की काफ़ी खपत तो भारत के अंदर ही हो जाती है. इस लिए पिछले दो वर्षों से निर्यातकों में भारत प्रथम से द्वितीय हो गया है. उत्पादक देशों में पाकिस्तान और चीन तीसरे और चौथे रहे हैं, पर निर्यातक देशों में उन का ज़िक्र नहीं है. कारण है कि पाकिस्तानी और चीनी चाय देश में ही खप जाती है.

१९६७ के आँकड़ों के अनुसार भारत ने निर्यात की २१.३७ करोड़ किलोग्राम और श्रीलंका ने २१.६५ करोड़. इंदोनेसिया का निर्यात महज़ ३.१७ करोड़ था और अफ़्रीकी देशों का निर्यात ५.३ करोड़ किलो था (पिछले १५ वर्षों में अफ़्रीकी देशों का निर्यात बढ़ा है.) संक्षेप में चाय का क़रीब तीन-चौथाई निर्यात एशिया से होता रहा है और क़रीब १५ प्रतिशत अफ़्रीका से.

चाय के मूल्य के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि पिछले वर्षों में संसार की अनेक वस्तुओं के दाम में बढ़त हुई है, पर चाय के भाव में नहीं. चाय का फुटकर भाव क़रीब-क़रीब वही रहा है जो दस वर्ष पहले था. दूसरी ओर चाय का थोक भाव बराबर गिरता ही जा रहा है. भारत के चाय बोर्ड के आँकड़ों के अनुसार पिछले दशक में चाय का अंतरराष्ट्रीय थोक दाम क़रीब ३० प्रतिशत गिर गया है.

चाय के थोक भाव के गिरने के कई कारण दिये जाते हैं. एक दलील यह है कि उत्पादक देश पहले से कहीं अधिक चाय उपलब्ध करने लगे हैं. यह ठीक भी है. पिछले दशक में चाय का उत्पादन क़रीब ड्योढ़ा हो गया है और इस विषय पर अन्न-कृषि संगठन, भारत चाय बोर्ड तथा अन्य संस्थाओं ने जो शोध-कार्य किया है उन के अनुसार १९७५ में चाय का विश्वउत्पादन क़रीब १२,४४,००० से १२,८८,००० टन के बीच होगा. चाय बोर्ड का अनुमान है कि उत्पादन क़रीब १२,३९,००० टन होगा. चाय का उत्पादन तो बढ़ा है, पर कुछ लोगों के अनुसार खपत उतनी तेज़ी से नहीं बढ़ी है. ऐसी दशा में प्रतिस्पर्द्धा होती है चाय की बिक्री के लिए और इस चक्कर में चाय का दाम गिरता जा रहा है.

चाय की खपत के और उत्पादन के आँकड़ों का विश्लेषण उपर्युक्त दलील की पुष्टि नहीं करता. इस में कोई संदेह नहीं कि चाय की उपज बढ़ी है. पर यदि उस का उत्पादन बढ़ा है तो उस के पीने वाले भी. पिछले दशक में चाय के कुछ उत्पादन और खपत के आँकड़े क़रीब-क़रीब बराबर ही हैं. कुछ वर्षों में चाय की कुल खपत उत्पादन से कम भी रही है. अंतरराष्ट्रीय चाय बुलेटिन के अनुसार १९६६ में चाय का उत्पादन था १८,१६० लाख किलो और खपत थी १८,२८० लाख किलो. चाय की खपत उत्पादन से ६० लाख किलो ज़्यादा थी. इन आँकड़ों से यह स्पष्ट है कि वितरण और माँग का सिद्धांत चाय के गिरते हुए मूल्य का स्पष्टीकरण नहीं करता.

यदि चाय के औसत दाम का विश्लेषण चाय का वर्गीकरण कर के किया जाये तो ज्ञात होता है कि अच्छी क़िस्म की चाय का अंतरराष्ट्रीय थोक दाम उतना नहीं गिरा है जितना कि मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग की चाय का. इस का एक कारण है कि जो चाय अफ़्रीकी देश उत्पादित करते हैं उस का अधिकांश मध्यवर्गीय और निम्नवर्गीय चाय है. पर पूर्वी अफ़्रीकी देशों का चाय के उत्पादन का खर्च उतना नहीं है जितना श्रीलंका और भारत का. भारत और श्रीलंका की तरह अफ़्रीकी चाय बागान श्रमिक के पूरे परिवार को नौकरी नहीं देते. श्रमिकों के परिवार के लोग अन्य कार्य भी करते हैं. भारत और श्रीलंका में श्रमिकों के पूरे-पूरे परिवार चाय बागान में ही काम कर के अपनी रोटी कमाते हैं. दूसरे, पूर्वी

* भारत और श्रीलंका के अलावा चाय के प्रमुख उत्पादक देश हैं—पाकिस्तान, इंदोनेसिया, पूर्वी अफ़्रीका के केन्या, उगांडा, मलावी और टांगानिका, लाल चीन और मोज़ांबिक.

अफ्रीकी देशों में चाय बागान देर से तो ज़रूर प्रारंभ हुए, पर उन्होंने अपना प्रति एकड़ चाय-उत्पादन ही बड़ी तेज़ी से बढ़ाया है और इस दिशा में प्रारंभ से ही ऐसा बंदोबस्त कर रखा है कि श्रमिकों की संख्या प्रति एकड़ कम-से-कम रहे. उदाहरणार्थ केन्या में हर एकड़ पर ६५ मज़दूर काम करते हैं. भारत में प्रति एकड़ श्रमिकों का औसत क़रीब १०० है. केन्या श्रमिकों को भारतीय श्रमिकों से अधिक तनख्वाह दे कर भी मुनाफ़ा ज़्यादा कमा सकता है. यही नहीं, केन्या में उत्पादकों का एक विक्रय-संघ भी है. उत्पादक निम्नवर्गीय चाय घर में स्वयं बेचते हैं और अच्छी चाय बाहर. यही नहीं, केन्या में चाय का कचरा भी बेचा जाता है, पर भारत में उत्पादन-कर विभाग के नियंत्रणों के कारण उस को नष्ट करना पड़ता है और उस का उपयोग खाद बनाने में ही किया जा सकता है. चाय की इस खुरचन से काफ़ेन बनाने के बारे में भारत में कोई क़दम नहीं उठाया गया है. पूर्वी अफ्रीका के देशों ने चाय पर निर्यात-कर लगाया है, पर भारत में निर्माण-कर ही नहीं तरह-तरह के और कर भी लगे हुए हैं. चाय-उत्पादक देशों में जब होड़ होती है तो नये प्रतिस्पर्द्धी बाज़ी मार लेते हैं. वे तो मंदे भाव में भी चाय बेच कर मुनाफ़ा कमा लेते हैं, पर श्रीलंका और भारत जैसे देशों की हजामत बन जाती है.

उत्पादक देशों को चाय के अंतरराष्ट्रीय मूल्य के मंदे होने से जो घाटा होता रहा है उस का कुछ फ़ायदा उपभोक्ता उठाते रहे हैं, खास तौर से लंदन के लोग, जिन्हें एक कप चाय पर क़रीब-क़रीब उतना ही खर्च आज पड़ता है जितना दस वर्ष पहले. पर इस मंदे भाव का विशेष फ़ायदा उठाते हैं नीलामी कराने वाले लोग और उन से संबंधित संस्थाएँ, जिन की चाय कंपनियों से साँठगाँठ रहती है. एक बात और है. पिछले दशक में, खास तौर से स्वेज नहर बंद होने के बाद से, चाय का जहाज़ों में भेजने का खर्च तथा उस की पैकिंग इत्यादि की दर क़रीब १५ प्रतिशत बढ़ गयी है. स्टर्लिंग के अवमूल्यन का भी चाय के दाम पर असर पड़ा है. चाय-खरीददारों को तो बीच का यह खर्च भी वसूल करना होता है. स्वाभाविक ही है कि चाय के भाव के गिरने में उन की खास दिलचस्पी रही है. नीलामी में जितना ही दाम गिरता है उतना ही कमीशन बिचौलियों का बढ़ जाता है.

चाय की समस्या के लिए सम्मानित अंतरराष्ट्रीय विकल्प कई हो सकते हैं. एक तो यह हो सकता है कि बहुदेशीय समझौते लिये जायें. दूसरे 'बफ़र स्टॉक' रखा जाये और फिर सब देश मिल कर एक न्यूनतम अंतरराष्ट्रीय मूल्य पर सहमत हो जायें. चौथे, चाय का रेट यदि गिर भी गया तो आयात-कर का एक विशेष फ़ंड बनाया जाये और विशेष फ़ंड द्वारा उस के गिरते हुए दाम को रोका जाये. पर चारों पर अमल हो पायेगा, यह मुश्किल दीखता है. चाय बड़ी जल्दी खराब हो जाती है, इस लिए उस का स्टॉक रखना खतरे से खाली नहीं. उस का मूल्य-ढाँचा बहुत जटिल है, इस लिए उस का मूल्य निर्धारित करना आसान नहीं है. तीसरे, आयात-कर के सुझाव पर उत्पादक और उपभोक्ता देशों का समझौता टेढ़ी खीर है.

एक और सुझाव इस दिशा में दिया गया है और वह है चाय के उत्पादन और निर्यात-नियंत्रण से संबंधित. चाय का उत्पादन अधिक है और खपत कम—इस दलील की असमर्थता करने वाले वर्ग का सुझाव है कि यदि चाय का विश्वउत्पादन कम कर दिया जाये तो कदाचित समस्या का कुछ सीमा तक समाधान हो जाये. पर, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, चाय के आँकड़े इस दलील की पुष्टि नहीं करते. पर इस के साथ ही यह सुझाव दिया जाता है कि चाय के उत्पादन का नियंत्रण भले ही न हो पर उस के निर्यात पर उत्पादक देश एक सामूहिक समझौते द्वारा नियंत्रण कर के उस के गिरते मूल्य की रोक-थाम कर सकते हैं.

श्रीलंका और भारत को चाय के दाम की रोक-थाम के लिए अन्य दिशाओं में भी प्रयत्न करना होगा. भारत-श्रीलंका का संयुक्त चाय आयोग बनाने का निश्चय उल्लेखनीय है. श्रीलंका ने पिछले साल से कुछ देशों को ग़ैर-सरकारी तौर से भी चाय बेचनी प्रारंभ की है—नीलामी द्वारा नहीं. इस में उस को मुनाफ़ा अधिक मिला है. भारत और श्रीलंका इस दिशा में क़दम उठा सकते हैं. यही नहीं, चाय की आमदनी-खपत के लिए भी दोनों देश मिल कर यह निश्चय कर सकते हैं कि कौन-सी चाय बाहर भेजी जाये और कौन-सी अंदरूनी खपत के लिए रखी जाये. भारत में तो अंदरूनी खपत के लिए ही बहुत गुंजाइश है. श्रीलंका की चाय का कुछ हिस्सा भारत में भी खप सकता है और भारत-श्रीलंका की चाय के सामान्य बाज़ार की कल्पना कार्यान्वित की जा सकती है.

इन सब के लिए सब से आवश्यक है चाय की खपत-संबंधी आँकड़े. कौन-सी चाय कहाँ पसंद की जाती है और किस क़िस्म की चाय की अगले दशक में माँग ज़्यादा होगी, इस पर शोध-कार्य कर के योजना बनायी जाये. आँकड़ों के साथ ही साथ इस के लिए मंडियों का सर्वेक्षण भी बहुत आवश्यक है.

शोध-कार्य के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि दोनों सरकारें अपनी चाय-कर-नीति के विषय में भी कोई समान नीति अपनायें. यदि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर चाय-उत्पादन का दाम बढ़ाते ही गये तो चाय-उद्योग का भविष्य अंधकार में रहेगा. चाय-उत्पादन का खर्च घटाने के उपायों के अतिरिक्त प्रतिएकड़ चाय-उत्पादन बढ़ाने के लिए भी सरकार क्या कर सकती है, इस पर विचार होना चाहिए.

वित्त

बैंक आयोग

आखिरकार भारत सरकार ने बैंक आयोग की स्थापना की घोषणा कर ही डाली. आयोग के पाँच सदस्य होंगे और अध्यक्ष होंगे श्री आर. जी. सरैया. सरकार ने अभी तक केवल चार सदस्यों की घोषणा की है, वे हैं—श्री वी. जी. पेंढरकर, रिज़र्व बैंक के आर्थिक सलाहकार, श्री एम. रामनंदराव, स्टेट बैंक के मैनेजिंग डाइरेक्टर और श्री भवतोष दत्त, एक अर्थ-शास्त्री. स्पष्ट है कि आयोग के अध्यक्ष समेत पाँच सदस्य होंगे. आयोग पहली मार्च से अपना कार्य आरंभ करेगा और अपनी रिपोर्ट १९७० के अंत तक केंद्र सरकार को देगा.

आयोग बैंकों के वर्तमान ढाँचे के अतिरिक्त उन के व्यापार का रूप तथा उन के कार्यप्रणाली का अध्ययन कर उन संशोधनों की सिफ़ारिश करेगा जिन से बैंकों की कार्यक्षमता को अधिक बढ़ाया और उपयोगी बनाया जा सके. परंतु इस के पीछे कुछ और भी है. भारत सरकार के वित्तमंत्रालय के राज्यमंत्री श्री कृष्णचंद्र पंत के अनुसार देश में इधर कुछ वर्षों में बैंकों की संख्या बहुत अधिक बढ़ी है. बैंक उद्योग का देश की आर्थिक दशा के प्रति क्या रवैया हो तथा छोटे और बड़े बैंकों में क्या संबंध हो और उन में ऋण-व्यवस्था क्या हो, इस पर सामूहिक रूप से विचार करना आवश्यक था. इसी लिए आयोग की स्थापना की आवश्यकता हुई. फिर, स्वतंत्र भारत में अभी तक बैंक आयोग बना ही नहीं. कुछ प्रणालियाँ १९३१ में बने बैंक आयोग की सिफ़ारिश के आधार पर अब भी प्रचलित हैं. परंतु वे अब समय-परिवर्तन के कारण पुरानी और अनुपयोगी हो चली हैं.

आयोग इस दृष्टि से विचार कर बैंक कार्य-प्रणाली को आधुनिक बनाने का सुझाव देगा और यह भी अध्ययन करेगा कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के स्थान पर उन पर सामाजिक नियंत्रण का क्या रूप हो. इस से यह स्पष्ट हो जाता है कि सरकार बैंकों का राष्ट्रीयकरण दो वर्ष तक तो नहीं करेगी.

आयोग की स्थापना के संबंध में श्री मोरारजी देसाई ने लोकसभा में दिसंबर, १९६७ में इशारामात्र किया था. श्री देसाई का उद्देश्य है कि सरकार बैंक उद्योग की वृद्धि क्षेत्रीय आधार पर करे, जिस से ग्रामीण इलाक़ों तथा क़स्बों में धन की बचत हो सके और छोटे-मोटे किसानों तथा व्यापारियों की आवश्यकता आँकी जा सके. बैंक उद्योग देश की आर्थिक प्रगति में किस प्रकार महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकता है, इस का विवेचन भी करेगा. सरकार का यह विचार है कि बैंक उद्योग को रिज़र्व बैंक के उद्देश्यों का परिपालन करना चाहिए—यह अधिक प्रभावशाली रूप से कैसे हो, केवल आयोग की रपट ही बता पायेगी.

प्रगति की ओर

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भारत ने आर्थिक विकास की ओर काफ़ी ध्यान दिया. इस आर्थिक विकास में तेल-उद्योग भी शामिल है, जिस की १९५१-५२ में शोध-क्षमता केवल ५ लाख टन ही थी. आज वह क्षमता १ करोड़ ७० लाख टन हो गयी है. इस समय भारत में आठ तेल-शोधक कारखाने है, जिन में चार निजी क्षेत्रों में है. निजी क्षेत्रों में दो ट्रांबे में (वर्मा शेल और एस्सो), एक विशाखापट्टनम में (कालटेक्स) और एक डिग्वोई में (असम ऑयल कं.) ८३ लाख टन तेल शोध करते हैं. तीन सरकारी कारखाने गोहाटी, बरौनी और कोयाली में है. इन की क्षमता ६० लाख टन है. आठवाँ तेल-शोधक कारखाना कोचिन में है, जो २५ लाख टन तेल साफ़ करता है. अगले कुछ महीनों में मद्रास में एक शोध-कारखाना खुल जाने से तेल साफ़ करने के कारखानों की क्षमता में २५ लाख टन की और वृद्धि हो जायेगी. इस के अतिरिक्त १९७१ तक हाल्दिया में एक और कारखाना लगाने का विचार हो रहा है. १९५१-५२ में डिग्वोई से कच्चे तेल की निकासी ४ लाख टन थी, जो १९६८-६९ में ६० लाख टन हो गयी है. यदि नहारकोटी-मुरान तथा गुजरात के अंकलेश्वर कारखानों से बराबर तेल निकलता रहा तथा रुद्रसागर, लकवा, कलोल, नवागाँव सनद और ओलापाड़ी मे खोज-कार्य उपयोगी साबित हो गये तब भारत के पास साढ़े पंद्रह करोड़ टन कच्चा तेल हमेशा सुरक्षित रहेगा. गोहाटी और बरौनी शोध-कारखानों को मिलाने के लिए जो पाईप लाइन विछायी गयी है वह एशिया की सब से बड़ी पाईप लाइन है. तेल के इस क्षेत्र में प्राकृतिक गैस की भी अपनी अहमियत है, जो नेफ़ा, कैंबे और अपर असम क्षेत्रों में काफ़ी मात्रा में मौजूद है. पिछले दिनों ६७ अरब २५ करोड़ क्यूबिक मीटर गैस भारत के पास सुरक्षित थी. तेल-शोध-कारखानों को बढ़ाने के साथ-साथ इस के उत्पादनों की खपत भी विदेशी बाज़ारों में बढ़ी है. भारत ने पिछले साल पेट्रोलियम उत्पादनों का १५ लाख टन निर्यात किया था, जिस से उसे १४.२२ करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई थी. इसी प्रकार १९६२-६३ में निर्यात से जो ८ लाख रुपये की विदेशी पूँजी प्राप्त हुई थी वह चालू वर्ष में बढ़ कर ३५ लाख रुपये हो गयी है. निस्संदेह तेल-उद्योग का भविष्य भारत में उज्ज्वल है, लेकिन फिर भी इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करने की गुंजाइश है, क्यों कि इस क्षेत्र में भारत को कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है.

लेखाजोखा—तेल-उद्योग का : भारत के सीमित साधनों के बावजूद तेल-उद्योग को आगे बढ़ाने और इस से आर्थिक आय बढ़ाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं. सरकारी क्षेत्र में इस उद्योग के प्रति भारत सरकार की नीति काफ़ी प्रेरणादायक रही है. यद्यपि उस की आलोचना भी गाहे-बगाहे की जाती रही है लेकिन यह बात तय है कि इस की योजनाओं को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह उद्योग अपने पैरों पर खड़ा हो सकने में समर्थ होगा. इस समय तेल-उद्योग की १२ देशों में अपनी खासी साख है. अपने पैर मजबूत करने से पहले इन देशों के सामने भी कठिनाइयाँ थीं, निस्संदेह वैसी ही, बल्कि उस से कहीं बढ़ कर कठिनाइयाँ भारत के सामने आयेंगी. लेकिन विदेशों में ये कठिनाइयाँ अपेक्षाकृत कम रहीं. इस के कारण हैं कि बाकी राष्ट्रों की कठिनाइयाँ इतनी विषम हैं कि वे इस उद्योग में प्राप्त किये हुए तेल को बिना साफ़ किये, कच्चे रूप में ही प्रयोग करते हैं. यह दलील भी बेबुनियाद है कि भारत में यह उद्योग इतना फल-फूल सकेगा जिस से राष्ट्र की माँग की पूर्त्ति हो सकेगी. माँग प्रायः उत्पादन से बढ़ जाती है और कभी-कभी घट भी जाती है. समय का तराजू हाथों में ले कर देखने से पता चलता है कि वर्त्तमान उपयोग को सामने रखते हुए यह निश्चित है कि भविष्य में तेल की माँग कम नहीं होगी. सब से बड़ी दिक़्क़त तेल साफ़ करने के बारे में सामने आ सकती है. इस का कारण यह है कि भारत में इस कार्य के लिए सीमित साधन है और उन की वृद्धि हो पाना संभव नहीं दीखता. तेल से निर्मित अन्य वस्तुओं के लिए बिक्री-केंद्र कम खर्च पर स्थापित किये जाने के बारे में विचार किया जा रहा है. ग़ैर-सरकारी क्षेत्र में विदेशी संस्थाएँ भी भारत में इस काम को अंजाम दे रही है, पर सरकारी नीति के आधार पर इस उद्योग से संबंधित तेल प्राप्त करने, शोध-कार्य करने और बिक्री करने के समस्त अधिकारों को सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के अधीन रखना चाहती है. यह सारा काम इंडियन ऑयल कंपनी की देखरेख में होगा. इंडियन ऑयल कंपनी की स्थापना के बाद पिछले ५-७ वर्षो में इस कंपनी की प्रगति अनुमानित लक्ष्य को पार कर गयी है. उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में एक समान प्रगति हो रही है.

पिछले दिनों **दिनमान** प्रतिनिधि ने कुछ संसद्-सदस्यों से तेल-उद्योग के बारे में जब बातचीत की तो उन्होंने बताया कि २०० करोड़ रुपये की धन-राशि खर्च करने पर भी इस विभाग से इतनी आय नहीं हो सकी कि वह लगायी हुई पूँजी की बराबरी भी कर सके. लेकिन यह बात सही है कि विश्व में उत्पादित किसी भी कारखाने से भारत की तुलना की जा सकती है. १२ वर्ष के दौरान जो सफलता इस विभाग ने प्राप्त की है उस का मुक़ाबला कर पाने में कहीं-कहीं तो विदेशी संस्थाएँ भी पीछे रह गयी हैं. आलोचना के इस क्षेत्र में अधिक हलचल मची हुई है कि तेल निकालने की प्रगति जो सन् १९६७-६८ में हुई है वह अंतिम लक्ष्य है, क्यों कि आगामी वर्ष में वृद्धि के आँकड़े केवल ४० प्रतिशत ही अनुमानित हैं.

सीमित साधनों में १९६८-६९ में प्रगति का जो आँकड़ा ४० प्रतिशत लक्ष्य से अधिक रखा गया है इस से असफलता दिखाई देती है. एक अन्य सदस्य ने बताया कि रूस में तेल निकालने में जितना समय लगता है उस से बहुत कम भारत में लगता है. तकनीक की दृष्टि से भारत तेल निकालने के काम में रूस से बहुत पीछे है. इस का कारण लोगों का उत्साह, सच्चाई और मेहनत है. जहाँ तक तेल-प्राप्ति के व्यापक क्षेत्र का प्रश्न है उस से भारत को निराशा का पल्ला ही पकड़ना होगा. यह इस दृष्टि से कहा जा रहा है कि अन्य देशों के मुक़ाबले भारत में तेल पाये जाने की संभावना बहुत ही कम है. ईरान और भारत की तुलना में भारत का भाग्य मंद है. एक ओर जहाँ ईरान में निश्चित लक्ष्य के आधार पर निश्चित संख्यानुसार कुएँ खोदे गये वहाँ तेल की प्राप्ति आशा से अधिक हुई. भारत में ईरान के मुक़ाबले में अधिक कुएँ खोदे गये, पर तेल की प्राप्ति उस के मुक़ाबले में नहीं के बराबर ही है.

एक ओर भारत में जहाँ इस उद्योग से संबंधित प्राकृतिक कठिनाइयाँ हैं दूसरी ओर यहाँ धन का अभाव भी है. जो धन-राशि अब तक इस कार्य में लगायी गयी है उस के मुक़ाबले में प्रगति कम कही जा सकती है.

रसायन-उद्योग संबंधी कठिनाइयाँ तो हैं ही; इस उद्योग की तकनीकी समस्याएँ भी हैं. समय के अभाव का प्रश्न भी प्रमुख है. इस उद्योग को सुचारु रूप से चलाने के लिए कम से कम ७ वर्ष की अवधि आवश्यक है, जिस में संयंत्र लगाने की अवधि को बहुत कम समय दिया गया है. संयंत्र लगाने की इस अवधि के बीच तेल निकालने की तकनीक में परिवर्त्तन होना स्वाभाविक है, अतः नये संयंत्र लगाने के लिए उस के लिए विशेषज्ञों को ढूँढने के लिए विदेशी मुद्रा और समय भी तो आवश्यक होंगे. जहाँ सरकारी क्षेत्र में ये कठिनाइयाँ है ग़ैर-सरकारी क्षेत्र इस से मुक्त नहीं है. पुराने संयंत्रों से काम लिया जाना संभव अवश्य है, पर जब समय की कसौटी का प्रश्न आता है, दूसरे देशों से मुक़ाबला करने का प्रश्न हो, हम उन से किसी भी क्षेत्र में ऊँचे नहीं ठहर सकते.

तेल पानी पर तैरता नजर आता है, पर वहाँ खुदाई नहीं की जाती. यदि ऐसा है भी तो क्या यह शत-प्रतिशत आशा की जाती है कि वह तेल उस मात्रा में प्राप्त हो सकता है

जितना कि उस पर धन व्यय किया जायेगा ? हो सकता है वहाँ तेल का भंडार ही हो. लेकिन इस तरह की आयोजनाएँ विकसित देश ही अपने हाथ में ले सकते हैं. इस नयी प्रचलित तेल निकालने की तकनीक पर रूस से विचार-विनिमय किया जायेगा.

समुद्र के गहरे तल में तेल अधिक है, उसे प्राप्त किया जाना चाहिए. ऐसा भी सुझाव एक सदस्य का है. भारत में समुद्र के भीतर से तेल निकालने की तकनीक का अभाव है. अनुसंधानिक कठिनाइयों के साथ-साथ वहाँ से तेल निकालने वाले संयंत्रों की भी समस्या है. इस की खरीद के लिए विदेशी पूंजी और विदेशी तकनीक-विशेषज्ञों की ज़रूरत है. इस के लिए तो रूस तक को विदेशी राष्ट्रों से आर्थिक और तकनीकी सहायता लेनी पड़ी है. इस काम को आरंभ करने के पूर्व कम से कम २०० व्यक्तियों को शिक्षा के लिए विदेश जाना होगा.

इंडियन ऑयल कंपनी वर्त्तमान समय में ६-७ लाख टन तेल-शोध करने की क्षमता रखने वाले संयंत्रों से काम चला रही है. यदि इस में थोड़ा-सा परिवर्तन संभव हो तो इस से ९-१० लाख टन की वृद्धि हो सकेगी.

विभिन्न प्रांतों के अनेक संसद्-सदस्य अपने-अपने प्रांतों में इस प्रकार के शोध-कारखाने की आवाज़ उठाते हैं. कुछ लोगों का कहना है है कि उन संयंत्रों को अन्य स्थानों पर क्यों नहीं लगाया जाता जब कि वे पूरी तरह काम करने की क्षमता रखते हुए भी काम नहीं कर सकते: कारखाने लगाये जा सकते हैं, पर उत्पादित सामग्री को क्रय कहाँ किया जायेगा ? कारखाने वहीं स्थापित किये जाते हैं जहाँ दोनों प्रकार की सुविधाएँ हों. भविष्य में यदि इस प्रकार के कारखाने स्थापित किये भी जायेंगे तो वह क्षेत्र होगा 'उत्तर-पश्चिम क्षेत्र'. असम में दो कारखाने काम कर रहे हैं, तीसरे की संभावना अभी नहीं दिखायी देती, क्यों कि पहले से ही इन कारखानों से एक और डेढ़ करोड़ रुपये की हानि हो रही है.

ग़ैर-सरकारी शोधित कारखानों के मालिकों से इस प्रकार के कारखाने लगाने के पूर्व एक समझौता किया जा चुका है, जिसे तोड़ा जाना अनुचित है.

इस उद्योग में भारत की १० करोड़ की पूंजी ईरान में लगी है. इस उद्योग में सफलता भी मिली है. एक लाख टन तेल एक संयंत्र से प्राप्त हो सका है. अन्य लगाये हुए तेल-संयंत्रों से निश्चित रूप में तेल प्राप्त ही होगा, नहीं कहा जा सकता. जो इस उद्योग में ग़ैर-सरकारी क्षेत्र में आना चाहते हैं उन्हें इसे जुए का खेल समझ कर ही आना चाहिए, हालांकि इस प्रकार के समझौते के लिए ज़रूरी है कि लाभ और हानि दोनों का जोखिम उठाने के लिए तैयार रहा जाये.

उर्वरक

किस क़ीमत पर

निर्माण, भवन और संभरण मंत्रालय के तत्कालीन मंत्री श्री जगन्नाथ राव ने निर्णय किया है कि भविष्य में पश्चिम यूरोप के देशों, ब्रिटेन और जापान आदि देशों से रासायनिक उर्वरक खरीदने के मामले पर सामान्य रूप से भारत में ही विचार-विमर्श किया जायेगा और यहीं इस बारे में विशेषज्ञों की राय और उन के सुझाव भी उपलब्ध कराये जायेंगे. अब विदेशों से उर्वरक खरीदने के लिए बहुत अधिक संख्या में प्राप्त टेंडरों को इस प्रकार व्यवस्थित किया जायेगा कि आयातित उर्वरकों की कम से कम क़ीमत चुकानी पड़े. विदेश से सहायता लेते-लेते भारतीय सरकारी अफ़सर का मन इतना गुलाम हो चुका है कि जब इस मंत्री ने अपने अधिकारियों को रासायनिक उर्वरक खरीदने के लिए विदेश जाने से रोका तो वह आश्चर्य के मारे अवाक रह गये. श्री राव ने कहा, "रासायनिक खाद का बाज़ार खरीदने वाले का बाज़ार है, बेचने वाले का नहीं. जिसे बेचना हो, हमारे पास आ कर बेचे. पर हम हैं कि अपने को एक गया-बीता खरीदार समझ कर जहाँ देखो वहाँ दाम में रियायतें माँगते घूम रहे हैं. विदेश जाने पर जो खर्चा अंधाधुंध हो रहा है वह अलग रहा."

अगले कई वर्षों तक भारत को २० करोड़ डॉलर का उर्वरक बाहर से मँगाना पड़ेगा. इस बारे में अभी संदेह की काफ़ी गुंजाइश है कि भारत निकट-भविष्य में उर्वरकों के आयात के बारे में बचत की दृष्टि से कोई ठोस और सर्वमान्य योजना बना पायेगा क्यों कि भारत कई पूर्त्ति मिशनों द्वारा उर्वरक मँगवाता है. भारत अपनी कुल आवश्यकता का ६० प्रतिशत उर्वरक अमेरिका से मँगाता है और चीन के अलावा विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जो सब से अधिक उर्वरक बाहर से मँगाता है. अंतरराष्ट्रीय व्यापार का ठोस अध्ययन कर के यह निश्चय करने पर ही कि कब, कहाँ से और किस क़ीमत पर उर्वरक मँगाया जाये, भारत उर्वरकों के आयात की लागत में कमी कर सकता है.

देश के भीतर अधिक माँग की संभावना से उत्साहित हो कर ज़रूरत से ज़्यादा उर्वरक बाहर से मँगाने की प्रवृत्ति एक समस्या बन गयी है. अत: फ़र्टीलाइज़र एसोसिएशन द्वारा आयोजित एक सम्मेलन में इस समस्या पर विचार कर के यह तय किया गया कि इस बारे में स्पष्ट प्रावधान बनना चाहिए कि रासायनिक उद्योग और अधिकृत एजेंसियाँ कब और कितना और किस क़ीमत पर बाहर से उर्वरक मँगायें. ऐसी व्यवस्था हो जाने पर सर्वाधिक सस्ती क़ीमतों पर उर्वरक मँगाया जा सकेगा, जिस से

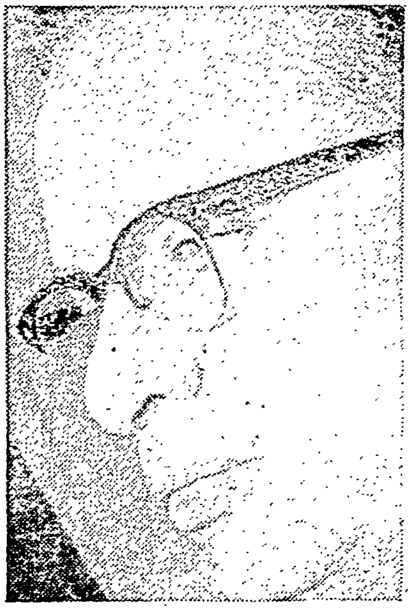

जगन्नाथ राव : निर्णय

उर्वरक उद्योगों और किसानों के हितों की रक्षा होगी. एक प्रवक्ता ने कहा कि उर्वरक मँगाने के बारे में संबंधित देशों से दीर्घकालीन समझौता करना लाभदायक नहीं होगा क्यों कि विश्व-बाज़ार में उर्वरकों के भावों में तेज़ी-मंदी आती रहती है अत: अपनी मर्ज़ी के मुताबिक ठीक समय पर और सस्ती से सस्ती क़ीमत पर उर्वरक खरीदने के लिए किसी भी प्रकार के दीर्घकालीन समझौते से भारत को मुक्त रहना चाहिए.

१९६८-६९ में उर्वरक मँगाने के संबंध में अनेक देशों के साथ सौदा तय किया गया है. यह धारणा ग़लत बतायी जाती है कि भारत पर यह दबाव डाला गया था कि वह अमेरिका से ही उर्वरक मँगाये और समाजवादी देशों से उर्वरक माँगना कम कर दे. बेशक अमेरिका और कैनाडा में बहुत अधिक उत्पादन के कारण उर्वरकों का भाव गिर जाने से यह निर्णय किया गया है कि आयात के लिए निर्धारित ३५ करोड़ टन उर्वरक का ६० प्रतिशत केवल अमेरिका और कैनाडा से ही मँगाया जाये. पिछले वर्ष अमेरिका और कैनाडा के उर्वरक उद्योगों से सौदा तय कर के स्वदेश लौटने पर पूर्त्ति विभाग के सचिव श्री राम ने बताया कि पश्चिमी बाज़ार का निकटसे अध्ययन का परिणाम काफ़ी उत्साहवर्द्धक साबित हुआ है. केवल एक ही क़िस्म का उर्वरक— डाइमोनिया फॉस्फेट बाहर से मँगाने से भारत ३ लाख डॉलर की बचत कर सकेगा.

किफ़ायत : पिछले २० वर्षों में उर्वरक-आयात की राशि २ करोड़ डॉलर से बढ़ कर ३५ करोड़ डॉलर हो गयी है. भविष्य में रासायनिक उर्वरक की खपत और अधिक बढ़ जायेगी. यह तय किया गया है कि भारत के लिए यूरिया का आयात अधिक लाभदायक सिद्ध होगा क्यों कि उस में नाइट्रोजन की ४६ प्रतिशत मात्रा शामिल रहती है. यहीं नहीं, अनेक भारतीय उर्वरक उत्पादक यूरिया के उत्पादन को ही प्राथमिकता दे रहे हैं.

चरचे और चरखे

सोलह सौ शब्द प्रति मिनट

दिन प्रति दिन हर दिशा में अपनी गति तेज करती इस दुनिया में पढ़ने की गति तेज करने की भी योजना बनाई जा रही है. अमेरिका मे एक संस्था है जो पिछले बीस वर्षो से यह सिखा रही है कि किस तरह पढ़ने की गति तेज की जाए. इस संस्था का नाम 'डाइनमिक रीडिंग इंस्टीट्यूट' है. ३५ गिनी दीजिए और हफ्ते में २४ घंटे यह सीखिये कि किस तरह पढ़ने की रफ़्तार तेज हो. हर दिन केवल एक घंटे का अभ्यास करना होगा. ब्रिटेन में वर्जीनिया हॉलफोर्ड नाम की १२ वर्षीय स्कूली छात्रा इस संस्था के लिए बतौर नमूना है. यह छात्रा किताब खोलती है और तेजी से अपनी उँगलियाँ पक्तियों पर चलाती है और इस तरह एक मिनट मे १००० शब्द से अधिक पढ़ ले जाती है. कहा जाता है कि इस तरह तेजी से उँगलियाँ चलाने से पाठक जो कुछ पढ़ता है उस का तारतम्य जोड़ लेता है और याद रखने में समर्थ भी होता है. वर्जीनिया जब इस संस्था मे आई थी तब १६१ शब्द प्रति मिनट पढ़ती थी. लेकिन इस संस्था द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के बाद १६०० शब्द प्रति मिनट पढ़ लेती है और जो पढ़ती है उस मे से ६० प्रतिशत से कही अधिक उसे याद रहता है. इस में वर्जीनिया ही अनोखी नही है. इस स्कूल में ९८ प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे हैं जो तेज रफ़्तार से पढ़ने मे माहिर है. संस्था के निदेशक का कहना है कि पढने का यह ढंग निराला और अभूतपूर्व है. इस पद्धति मे शब्दों का या शब्द समूहों की आकृति का ध्यान रखना होता है और पढ़ने वाला उस के अनुसार अपना तालमेल बैठाता है. ज्ञानवृद्धि के लिए आज जितनी सामग्री उपलब्ध है और जिस गति से उस का अंबार बढ़ता जा रहा है क्या इतनी तेज रफ़्तार से पढ़ने पर भी उस का पार पाया जा सकेगा ?

दिल में बसें देश में नहीं

राष्ट्रकुल देशों के पुरुष अब ब्रिटेन की स्त्रियों से शादी कर वहाँ बसने का दावा नहीं कर सकेंगे. ब्रिटेन के गृहमंत्री ने हाउस आफ़ कामन्स मे यह घोषणा की है कि ब्रिटेन आने वाले लोगों को या विद्यार्थियों को जो यहाँ विवाह करेंगे यहाँ बसने की अनुमति नही देगा. यह नियम लागू हो गया है. लेकिन इसे हर मामले में एक जैसा ही लागू नहीं किया जायेगा. स्थिति के अनुरूप इस मे हेर-फेर भी हो सकता है. इस नियम के अधीन ब्रिटेन में रहने वाली स्त्रियाँ यदि अपने पतियों के पास दूसरे देश जाना चाहे तो जा सकती है. गृहमंत्री का कहना है कि पिछले ६ महीनों के विवरण से पता चलता है कि राष्ट्रकुल देशों के स्त्री-पुरुष ब्रिटेन में आ कर प्रतिदिन विवाह की संख्या में वृद्धि कर रहे है. १९६५ मे में ऐसे विवाहों की संख्या ५०० थी जब कि १९६८ मे ३५५१ हो गयी. इन विवाहों मे ब्रिटेन के पुरुषों की संख्या १६७६ थी जिन्होंने राष्ट्रकुल देशों की प्रेमिकाओं से शादी की. मामलों की छान-बीन से पता चला है कि बहुत से विवाह सुविधा के लिए किये जाते है जिस से कि देश में बसने की समस्या हल हो सके. गृहमंत्री का कहना है कि ऐसा लगता है कि इस देश में बसने और रोजगार पाने के लिए राष्ट्रकुल देशों के अनेक युवक विवाहों को इस्तेमाल करने लगे हैं. इस नियम के अधीन अब यह माना जाएगा कि ब्रिटेन में रहने वाली कोई स्त्री यदि किसी दूसरे देश के पुरुष से विवाह करती है तो सामान्यतया उसे अपने पति के देश में ही रहना होगा. यह नियम ब्रिटेन में रहने वालों या ब्रिटेन में आ कर बस गये राष्ट्रिकों, दोनों पर ही लागू होगा. पुरुषों को अपनी पत्नियों से मिलने तथा विवाहोत्सव करने के लिए नही रोका जाएगा यदि वह अपना इरादा स्थायी रूप से ब्रिटेन में बसने का न रखते हों. विशेष स्थिति में ब्रिटेन में बसने की अनुमति चाहने वाले युवकों को—जैसे कि ब्रिटेन से बाहर रहने में उस की पत्नी को कठिनाई उठानी पड़ेगी—प्रवेशपत्र के लिए आवेदन देना होगा जिस से कि उन के मामले की पूरी छान-बीन की जा सके.

बीटनिक केंद्र बंद

ब्रिटेन में दक्षिणी तट पर बीटनिकों के और आधुनिक समाज से अलगाव चाहने वाले लोगों के लिए शिक्षा विभाग की ओर से १५००० पाउंड के अनुदान से जो केंद्र खोला गया था वह बंद कर दिया गया है. यह केंद्र कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं ने खोला था जिस के नेता ससेक्स विश्वविद्यालय में सामाजिक संबंध विभाग के रीडर जोजेफाइन क्लीन थे. उन्हें ब्राइटन समुद्र तट पर लीज पर एक वृत्तखंड दिया गया था. व्यापारियों ने यह शिकायत की कि बीटनिकों के रहने के कारण अवकाश बिताने के लिए आने से लोग हिचकते हैं. इस पर ब्राइटन निगम ने लीज़ का पट्टा नया नही किया जो कि इस क्रिसमस में समाप्त हो गया. ब्राइटन की अदालत में डा. क्लीन ने इस के विरुद्ध अपील की जो खारिज हो गयी. न्यायाधीश ने कहा 'खेद है कि यह अच्छा काम रुक गया लेकिन आशा करनी चाहिए कि कही और शीघ्र ही यह काम फिर शुरू हो सकेगा". इस वृत्तखंड या मेहराब का इस्तेमाल अब निगम गोदाम के लिए कर रहा है.

पंजाबी में गाली-गलौज

ब्रेडफोर्ड में तीन पाकिस्तानियों पर पंजाबी में गाली-गलौज करने पर ५-५ पाउंड का जुर्माना किया गया. मैनचेस्टर रोड पर यात्रियों ने उन की इस हरक़त पर आक्रोश व्यक्त किया था. जब यह गाली-गलौज हो रही थी तो ब्रेडफोर्ड में एकमात्र पाकिस्तानी पुलिस का आदमी रसीद अवान उपस्थित था. उन पर मुक़दमा धारा ४४७ के अंतर्गत चलाया गया था. उन्होंने इस पाकिस्तानी पुलिस को भी मैनचेस्टर रोड के एक सिनेमा में पाकिस्तान के हाई कमिश्नर की एक सभा में भाषण देने के बाद बुरी गाली दी और उसे 'हरामी' कहा. पुलिस के वकील का कहना था कि अंग्रेजी भाषी लोग इस गाली को समझते है या नहीं इस से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. क्यों कि बहुत से पाकिस्तानी आदमी औरतें और बच्चे वहाँ पर थे जो इन गंदी गालियों को समझते है. इसी लिए यह क़ानूनन जुर्म है. ६ घंटे के मुक़दमे के बाद शांति भंग करने के आरोप पर इन तीनों पाकिस्तानियों पर अदालत ने जुर्माना किया.

पगड़ी के लिए

एक सिख नेता सोहनसिंह जाली विमान द्वारा भारत से लंदन गये है. उन्होंने यह घोषणा की है कि यदि वूलवर हैम्पटन काउंसिल ने बस-चालकों के लिए पगड़ी बाँधने का जो निषेध किया है उसे संवैधानिक उपायों द्वारा हल नहीं किया गया तो वह विरोध मे आग लगा कर अपने प्राण दे देंगे. ब्रिटेन में रहने वाले सिखों ने उन से अनुरोध किया है कि वह अभी ऐसा कदम न उठायें. श्री जाली ने जो ब्रिटेन के सिख समाज के नेता भी है अपना यह निश्चय वापस नहीं लिया है और उन का आग्रह है कि सिख बस-चालकों पर पगड़ी न बाँधने का आदेश वापस लिया जाए. सिख नेता भरपूरसिंह का कहना है कि यदि श्री जाली ने आत्मदाह किया तो अनेक सिख उन का अनुसरण करेंगे और आत्मदाह का यह ताँता कभी समाप्त नहीं होगा.

उपकुलपतियों के सम्मेलन में
पुलिस अफ़सरों का भाषण

अविश्वास प्रस्ताव : शिवसेना की परछाईं

संयुक्त समाजवादी पार्टी, दो कम्युनिस्ट पार्टियों और कुछ मुस्लिम लीगी सदस्यों द्वारा प्रस्तावित अविश्वास प्रस्ताव पर जो बहस मंगलवार को शुरू हुई, आरंभ में उस में कोई जान नहीं थी. कम से कम **प्रो० हीरेन मुखर्जी** ने अपने भाषण में कोई नयी बात नहीं कही. केंद्र की कांग्रेसी सरकार के विरुद्ध उन के पास रोज़मर्रा तर्क थे. उन की तुलना में वामपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के **श्री राममूर्त्ति** ने अपने अविश्वास को अधिक तर्क के साथ रखा. श्री राममूर्त्ति ने शिवसेना की हाल की गतिविधियों को ले कर महाराष्ट्र सरकार पर मिथ्या हमला किया. उन्होंने महाराष्ट्र सरकार पर आरोप लगाया कि उस ने बंबई की ग़ैर-मराठी जनता की रक्षा के लिए शिवसेना के विरुद्ध कार्रवाई तो दूर उस पर अँगुली भी नहीं उठायी. जिस समय बंबई की ग़ैर-मराठी जनता शिवसेना द्वारा मारी जा रही थी, उस की संपत्ति लूटी जा रही थी, घरों में आग लगायी जा रही थी उस समय महाराष्ट्र सरकार हाथ पर हाथ धरे तमाशा देख रही थी. इस सारे हत्याकांड के दौरान महाराष्ट्र सरकार के कानों में जूं भी नहीं रेंगी.

श्री राममूर्त्ति ने आरोप लगाया कि बंबई के कुछ उद्योगपति शिवसेना का समर्थन कर रहे हैं—दरअसल वे महाराष्ट्र और मैसूर सीमा के बारे में केंद्र सरकार पर दबाव डालना चाहते हैं. तेलंगाना में हाल में हुए उपद्रवों का ज़िक्र करते हुए श्री राममूर्त्ति ने आंध्र सरकार पर आरोप लगाया कि वह क्षेत्र की जनता की न्यूनतम सुरक्षा करने में असमर्थ रही है. उन्होंने कहा कि आज हमें यह बताया जाता है कि कुछ असंतुष्ट राजनेता इन उपद्रवों के पीछे हैं. इस पर जनसंघ के **श्री अटल बिहारी वाजपेयी** ने टिप्पणी करते हुए पूछा कि 'क्या वे कांग्रेसी हैं?' श्री राममूर्त्ति ने उत्तर दिया, 'निश्चय ही ! उन के अलावा और कौन हो सकता है?'

दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के **प्रो० हीरेन मुखर्जी** ने पश्चिम बंगाल के मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस के पूरी तरह उखड़ जाने का उल्लेख किया और कहा कि कांग्रेस बिहार और पंजाब में बहुमत प्राप्त करने में नाकाम हुई. जनमत ने कांग्रेस के विरुद्ध अविश्वास व्यक्त किया. प्रो० मुखर्जी ने कहा कि अगर ऐसा कुछ ब्रिटेन जैसे किसी देश में हुआ होता, तो वहां की सरकार ने अपना इस्तीफ़ा दे दिया होता.

सरकार पर एक और तीखा हमला स्वतंत्र पार्टी के प्रवक्ता **नारायण दांडेकर** ने किया. उन्होंने कहा कि सरकार की आर्थिक नीतियां पूरी तरह विफल हुई हैं. उन्होंने कहा कि आज राजनैतिक पार्टियां भ्रष्टाचार का शिकार हो रही हैं—मगर इन में कांग्रेस प्रमुख है. उन्होंने कहा कि पिछले वर्ष फ़सल अच्छी हुई—मगर क्या कारण है कि इस के बावजूद देहाती जनता की आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हुआ. श्री दांडेकर ने सरकार की विदेश नीति की भी तीखी आलोचना की. उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री ने हाल में चीन से बातचीत की जो घोषणा की, वह, उन के पिता द्वारा अपनाये रवैये से भिन्न है.

विरोधी पार्टियों के अनेक तर्कों का उत्तर देते हुए कांग्रेस पार्टी के **श्री शांतिलाल शाह** ने यह स्वीकार किया कि शिवसेना एक फ़ासिस्ट संस्था है. मगर, उन्होंने कहा, यह कहना ग़लत है कि शिवसेना का समर्थन कांग्रेस ने किया है. श्री शाह ने कहा कि दरअसल शिवसेना के सवाल पर यहां नहीं बल्कि बंबई नगरपालिका और राज्य विधानसभा में विचार होना चाहिए. श्री शाह ने यह आशा व्यक्त की कि राज्य सरकार शिवसेना की गतिविधियों को समाप्त करने की दिशा में क़दम उठायेगी.

शिवसेना पर हथियारबंद संस्था होने के आरोप के उत्तर में कांग्रेस पार्टी के श्री वेंकटसुब्बय्या ने कहा कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी भी हथियारबंद संस्था है. इस पर श्री राममूर्त्ति ने आपत्ति की. उन्होंने कहा कि यह कहना सरासर ग़लत है कि हमारी संस्था हथियारबंद है. उन्होंने श्री वेंकटसुब्बय्या को चुनौती दी कि वे अपने आरोप को प्रमाणित करें या फिर संसद् सदस्यता से इस्तीफ़ा दें. संयुक्त समाजवादी पार्टी के **श्रीधर महादेव जोशी** और निर्दलीय **स० मो० बनर्जी** ने भी श्री वेंकटसुब्बय्या के कथन पर आपत्ति की. उन्होंने कहा संसदीय पार्टियों पर इस तरह का आरोप लगाना अनुचित है. इस पर उपाध्यक्ष श्री **श्री आर० के० खाडिलकर** ने कहा कि श्री वेंकटसुब्बय्या के कथन के विरुद्ध श्री राममूर्त्ति अपना विरोध व्यक्त कर चुके हैं. इस लिए इस मामले को आगे बढ़ाना उचित नहीं.

निर्दलीय **श्री तेन्नेत्ती विश्वनायन** ने सरकार की आर्थिक और राजनैतिक नीतियों की आलोचना करते हुए कहा कि उस ने न केवल कांग्रेस पार्टी को विघटन के कगार पर पहुँचा दिया है, बल्कि समूचा देश आज हाहाकार कर रहा है. कांग्रेस के **श्री रणजीत सिंह** ने विरोधी पार्टियों की आलोचना करते हुए कहा कि वामपंथी पार्टियां इस लिए झुंझलाई हुई हैं कि पंजाब, उत्तरप्रदेश और बिहार में उन की पराजय हुई है.

श्री तिरुमल राव (कांग्रेस) ने शिवसेना का ज़िक्र करते हुए कहा कि देश के अनेक हिस्सों में इस तरह के उन्मत्त जनमत के हाथों लोगों

दिनमान
समाचार - साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — २३ फ़रवरी, १९६९
अंक ८ — ४ फाल्गुन, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट — १३

*

मत और सम्मत — ३
पिछला सप्ताह — ४
पत्रकार-संसद् — ५
चरचे और चरखे — १२
परचून — ५४

*

राष्ट्रीय समाचार — १५
प्रदेशों के समाचार — २५
विश्व के समाचार — ४०
समाचार-भूमि : विश्व अर्थ-व्यवस्था — ३८
खेल और खिलाड़ी : साहसिक अभियान — ३६

*

प्रेस-जगत् : सरकार और साहित्यिक — ६
भारी उद्योग : रांची प्रतिष्ठान — ७
चाय : अंतरराष्ट्रीय और क्षेत्रीय सहयोग — ८
मध्यावधि — २०
प्रतिरक्षा-व्यय : पड़ताल का सवाल — २८
राष्ट्रीय आय — ३०
आयोजना : वार्षिक आयोजन — ३१
गांधी : गांधी और बौद्धिक वर्ग — ४५
श्रम-शक्ति और रोजगार — ४६
श्रमिक संबंध : केरल का सर्वेक्षण — ४७
संगीत : शमा हर रंग में जलती है.... — ४८
अकादेमी पुरस्कार — ४९
साहित्य — ५०
कला : बानी प्रसन्न; श्रीमती कुलवंत राय — ५३

*

आवरण-चित्र : कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक से पूर्व
(फ़ोटो : गुरुदत्त)

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

को क्षति उठानी पड़ी है. केरल में गोपाल सेना के चालीस हजार कार्यकर्त्ताओं ने सड़कों पर परेड कर अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया. श्री तिरुमल राव ने महाराष्ट्र सरकार से यह आग्रह किया कि वह शिवसेना का दमन कर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को वापस लाये. उन्होंने कहा कि यह दुख की बात है कि राजनैतिक पार्टियाँ चुनाव में जाति और संप्रदाय के आधार पर उम्मीदवार खड़े करती है. तेलंगाना में हुए उपद्रवों की चर्चा करते हुए श्री राव ने कहा कि अब पृथक तेलंगाना-रायल सीमा और आंध्र का प्रश्न नहीं रह गया है. आंध्र एक समूचा राज्य है और उस की एक संपूर्ण संस्कृति है. उसे अलग-अलग कर के नहीं देखा जा सकता.

राजनैतिक अस्थिरता

संसद के दोनों सदनों के समक्ष अभिभाषण करते हुए राष्ट्रपति ने सभी राजनैतिक पार्टियों से राजनैतिक स्थिरता लाने का आह्वान किया. लेकिन देश जिस भयानक स्थिति में है उसे देखते हुए यह नहीं लगता कि अगले कुछ दशकों में राजनैतिक स्थिरता जैसी कोई चीज़ भारत के संदर्भ में हो सकती है. सभी राजनैतिक पार्टियों का स्वरूप और विवेक अस्थिर है और उसे और भी अस्थिर बनाने वाली परिस्थितियाँ सामने हैं.

राजनैतिक स्थिरता की चर्चा करते समय उन सभी तत्वों को दिमाग में रखना पड़ता है जो कि पार्टी के भीतर सक्रिय हैं. राजनीति की इच्छा और आकांक्षा का इतना भयानक आवेग पहले कभी नहीं था. बहुत हद तक इस के लिए कांग्रेस पार्टी जिम्मेदार है. इस की सब से ताजा मिसाल मंत्रिपरिषद् का पुनर्गठन है. संसद के बजट अधिवेशन के पहले ही दिन संसद के गलियारों में सभी ओर इस पुनर्गठन की चर्चा थी. कांग्रेस पार्टी में कोई भी इस पुनर्गठन से संतुष्ट नहीं जान पड़ता था. इस का कारण यह नहीं था कि इस पुनर्गठन से अव्यवस्था कुछ और बढ़ जायेगी बल्कि यह था कि अनेक कांग्रेसी संसद सदस्यों को यह उम्मीद थी कि वे मंत्रिपरिषद् में शामिल कर लिये जायेंगे. लेकिन ऐसा नहीं हुआ. कई सदस्यों के तो पिछले दिनों नाम भी लिये जा रहे थे. जब उन का नाम इस पुनर्गठित सूची में नज़र नहीं आया तब उन पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई. पुनर्गठन से सब से अधिक असंतुष्ट वे लोग थे जो कि कांग्रेसी पार्टी के भीतर नौजवान तुर्क के नाम से जाने जाते हैं. ये नौजवान तुर्क पार्टी के भीतर पिछले ३-४ वर्षों से संगठित और सक्रिय हैं तथा प्रधानमंत्री और उपप्रधानमंत्री पर अपने अस्तित्व का दबाव बराबर डालते रहे हैं. बीच में कुछ अर्से के लिए पार्टी में उन का बोलबाला हो गया था लेकिन धीरे-धीरे वे केवल मुखर सदस्य के रूप में जाने जाने लगे. श्रीमती गांधी वैसे उन को नाराज नहीं करना चाहतीं लेकिन उन्होंने उन्हें अपने मंत्रिपरिषद् के लिए विशेष उपयोगी नहीं माना.

पार्टी में दूसरा तबका वह है जो कि न तो विचारों में क्रांतिकारी है और न ही राजनीति में बहुत कर्मठ है. लेकिन वह बराबर सत्ता का आकांक्षी रहा है. पुनर्गठित सूची में उस के प्रतिनिधियों का भी नाम नज़र नहीं आया. इन दोनों परस्पर विरोधी गुटों के, मंत्रिपरिषद् में प्रतिनिधित्व न होने से पार्टी की गुटबंदी ने एक और ही शकल अख्तियार कर ली है. यानी कि श्रीमती गांधी के विरुद्ध पार्टी के भीतर विरोध कुछ और संगठित हो गया. सत्ता का संतुलन बदल गया. यह सारा विरोध न तो सैद्धांतिक है और न ही इस के पीछे कोई नैतिक आधार है. लेकिन महत्त्वाकांक्षा ने कांग्रेस पार्टी के भीतर फिर वह अस्थिरता पैदा कर दी है जो कि १९६७ के आम चुनाव के कुछ दिनों बाद नज़र आया था.

कांग्रेस पार्टी किस आधार पर दूसरी राजनैतिक पार्टियों से यह माँग कर सकती है कि वे देश में राजनैतिक स्थिरता पैदा करने का प्रयत्न करें जब कि वह स्वयं अस्थिर है. १९६७ के तुरंत बाद अनेक राज्यों में सत्ता का संतुलन बिगड़ गया, सरकारें बनीं और बिगड़ीं. केंद्र में सरकार यदि बनी रही तो उस का कारण यह नहीं कि केंद्र में राजनैतिक अस्थिरता नहीं बल्कि उस का कारण यह है कि जितना आपसी मतभेद कांग्रेस के भीतर हैं उस से अधिक विरोधी पार्टियों में है. यह सही है कि केंद्र में सरकार के गिरने की कोई आशंका निकट भविष्य में नज़र नहीं आती है. मगर इस का मुख्य कारण यह है कि जनता यह नहीं चाहती कि केंद्र की वर्त्तमान सरकार गिरे और सारे देश में एक अराजकता की स्थिति पैदा हो जाये. यह जनता का ही दबाव है जिस के कारण केंद्रीय मंत्री और नेता एक ही नाव में सवार हैं. अगर उन का वश चलता तो वे अलग-अलग नावों पर अलग-अलग दिशाओं में निकल जाते और देश को उस के हाल पर छोड़ दिया जाता.

सारे समय कांग्रेस पार्टी के सदस्य क्या करते हैं ? क्या वे उस स्थिरता के लिए सचमुच ही व्याकुल हैं जिस की कि वे अक्सर चर्चा करते रहते हैं ? क्या उन्होंने इस के लिए कोई संगठित प्रयत्न किया है ? क्या उन्होंने इस बात की कोशिश की है कि राजनीति में एक नैतिक प्रतिमान क़ायम रहे क्यों कि इस के टूटने से एक ऐसी अस्थिरता पैदा होती है जिस से निपटना मुश्किल है. क्या उन्होंने चुनावों में व्यक्त होने वाली जनता की इच्छा को पहचाना है ? क्या वे स्वयं अपनी सरकार को बनाये रखना चाहते हैं या कि मौके की ताक में हैं.

हो सकता है कि उन्हें अपनी सरकार के अस्तित्व की चिंता हो लेकिन इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि उन्हें गैर-कांग्रेसी सरकारों के अस्तित्व की कम चिंता है. अगर दूसरी पार्टियाँ कांग्रेसी सरकारों को खत्म करने के लिए रात दिन एक किये हुए हैं तो कांग्रेस पार्टी भी हर तरह के साधनों का इस्तेमाल करती हुई गैर-कांग्रेसी सरकारों को मिटाने के लिए कृत-संकल्प है. राजनीति की शर्त यह है कि सत्ता को प्राप्त किया जाये और विरोधी को अधिक से अधिक क्षीण किया जाये. इस में कुछ भी ग़लत नहीं है. सवाल है कि इस के लिए किन साधनों का इस्तेमाल किया जाता है. पिछले दो वर्षों में सत्ता-परिवर्त्तन के लिए जिस साधन का इस्तेमाल किया गया है वह है राष्ट्रपति का शासन या कि दल-बदल. इन दोनों के रहते राजनैतिक स्थिरता की चर्चा हवाई लगती है.

किंग्सले मार्टिन

जो लोग किंग्सले मार्टिन को जानते थे उन्होंने यह कभी नहीं सोचा होगा कि इतनी शीघ्र उन का निधन हो जायेगा. हालांकि उन की उम्र ७१ वर्ष की हो चुकी थी. किंग्सले मार्टिन दिमाग से तो युवा थे ही शरीर से भी बहुत बूढ़े नहीं थे. काहिरा में उन्हें अचानक दौरा पड़ा और उन का देहांत हो गया.

३० वर्षों तक इंग्लैंड के उदार साप्ताहिक 'न्यू स्टेट्समैन' का संपादन करने के बाद पिछले ७ वर्षों से किंग्सले मार्टिन मुख्य रूप से भारत संबंधी समस्याओं का अध्ययन कर रहे थे. भारत से किंग्सले मार्टिन का शुरू से लगाव था और जिन दिनों हिंदुस्तान में आज़ादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी उन्हीं दिनों इंग्लैंड में भारत के लिए एक और व्यक्ति लड़ाई लड़ रहा था जिस का नाम था किंग्सले मार्टिन. उन्होंने न्यू स्टेट्समैन में भारत की स्वाधीनता की लड़ाई के समर्थन में बराबर संपादकीय और टिप्पणियाँ लिखीं. न्यू स्टेट्समैन ब्रिटेन का अब भी सब से प्रभावशाली पत्र है और उन दिनों वह और भी प्रभावशाली पत्र था. उस ने इंग्लैंड की लेबर पार्टी के दिमाग को प्रभावित किया और भारत की स्वाधीनता के लिए स्वर्गीय बेवान जैसे बुद्धिजीवी नेताओं का समर्थन प्राप्त किया.

श्री किंग्सले मार्टिन स्वर्गीय नेहरू के निजी दोस्तों में से थे और न्यू स्टेट्समैन नेहरू का सब से प्रिय पत्र था. नेहरू ने एक बार कहा था कि मैं ने जीवन में एक चीज़ नियमित की वह यह कि मैंने न्यू स्टेट्समैन को हर सप्ताह पढ़ा. न्यू स्टेट्समैन का श्री नेहरू पर कितना प्रभाव था इस का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि भारत की विदेश नीति की रचना करने में नेहरू और कृष्ण मेनन ने न्यू स्टेट्समैन की संपादकीय टिप्पणियों से बराबर सहायता ली.

किंग्सले मार्टिन नयी दिल्ली में लेखकों और पत्रकारों के बीच एक सुपरिचित चेहरा थे. अक्सर उन्हें नयी दिल्ली के राजनैतिक चंडूखाने और काफ़ी घरों में देखा जा सकता था. शायद यहीं बैठ कर वह अपनी कल्पना के भारत का मिलान वास्तविक भारत से किया करते थे. —विशेष संवाददाता

राष्ट्र

मंत्रि-परिषद्

कामराज के बिना काम चलता है

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की नयी मंत्रि-परिषद् में श्री कामराज नाडार का नाम न देख कर किसी को आश्चर्य नहीं हो रहा है. प्रधानमंत्री की नयी मंत्रिपरिषद् की घोषणा १४ फ़रवरी की मध्य रात्रि को हुई और उस के एक दिन पहले कामराज ने श्रीमती गांधी से यह कहा था कि मैंने अभी आप की सरकार में शामिल होने के बारे में कोई फ़ैसला नहीं लिया है. प्रधानमंत्री कामराज के फ़ैसले के लिए बहुत समय तक रुक नहीं सकती थीं. कामराज के बग़ैर काम चल सकता है.

भारी उलट-फेर : पिछले दो वर्षों में पहली बार बड़े पैमाने पर रद्दोबदल हुआ जिस का फ़ायदा दो मंत्रियों को पहुँचा : दिनेश सिंह, जो कि वाणिज्य मंत्रालय के दमघोटू वातावरण से निकल कर विदेशमंत्रालय के प्रसन्न वातावरण में जा पहुँचे और दूसरे श्री बलिराम भगत, जिन से दिनेश सिंह के लिए कुर्सी खाली तो करायी गयी लेकिन उस का उचित मुआवज़ा उन्हें दे दिया गया. श्री भगत को एक नये मंत्रालय—विदेशवाणिज्य में कैबिनेट-स्तर का मंत्री नियुक्त किया गया. श्री भगत के अलावा तीन और तक़र्दीरें जागीं. श्री वी. एस. मूर्त्ति, श्री डी. आर. चव्हाण और श्री भक्तदर्शन को जो कि अब तक उपमंत्री थे, राज्य स्तर का मंत्री नियुक्त किया गया. पुनर्गठित मंत्रि-परिषद् इस प्रकार है :

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी : परमाणु शक्ति और योजना : उपमंत्री श्रीमती नंदिनी सतपथी.

१ उपप्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई : वित्तमंत्री; राज्यमंत्री श्री प्रकाशचंद्र सेठी और उपमंत्री श्री जगन्नाथ पहाड़िया.

२ श्री यशवंतराव चव्हाण गृहमंत्री : श्री विद्याचरण शुक्ल राज्य गृहमंत्री और श्री के. सी. रामस्वामी उपमंत्री.

३ श्री जगजीवनराम अन्न, कृषि, सामुदायिक विकास और सहकारितामंत्री; राज्यमंत्री श्री अन्ना साहब शिंदे और श्री एम. एस. गुरुपद स्वामी; उपमंत्री श्री डी. एरिंग,

४ श्री जयसुखलाल हथी श्रम और पुनर्वास मंत्री; श्री भगवत झा आज़ाद राज्यमंत्री और श्री एम. सी. जमीर उपमंत्री.

५ डॉ. करणसिंह पर्यटन और नागरिक उड्डयन; डॉ. सरोजिनी महिषी उपमंत्री.

६ श्री के. के. शाह आवास, परिवार नियोजन और नागरिक विकास; राज्यमंत्री श्री डी. एस. मूर्त्ति और डॉ. एस. चंद्रशेखर.

७ श्री पी. गोविंद मेनन विधि और समाजिक सुरक्षा; राज्यमंत्री श्रीमती फूल रेणु गुहा, उपमंत्री श्री मुहम्मद यूनुस सलीम और जे. बी. मुथियाल राव.

८ श्री सी. एम. पुनाचा इस्पात और भारी इंजीनियरिंग, राज्यमंत्री श्री कृष्णचंद्र पंत; उपमंत्री श्री मुहम्मद शफ़ी कुरेशी.

९ डॉ. रामसुभग सिंह रेलवे; श्री परिमल घोष राज्यमंत्री और श्री रोहनलाल चतुर्वेदी उपमंत्री.

बलिराम भगत : पदोन्नति

श्री सत्यनारायण सिन्हा सूचना और प्रसारण तथा प्रचार मंत्री; राज्यमंत्री श्री इंद्रकुमार गुजराल और प्रो. शेरसिंह.

श्री फ़खरुद्दीन अली अहमद उद्योग, कृषि, व्यापार और कंपनी मामलात; श्री रघुनाथ रेड्डी राज्यमंत्री और भानुप्रकाश सिंह उपमंत्री.

डॉ. वी. के. आर. वी. राव शिक्षा और युवजन मंत्री; श्री भक्त दर्शन राज्यमंत्री और श्रीमती जहांनारा जयपालसिंह उपमंत्री.

श्री स्वर्णसिंह प्रतिरक्षामंत्री; श्री ललित नारायण मिश्र राज्यमंत्री और श्री एम. आर. कृष्ण उपमंत्री.

श्री दिनेशसिंह विदेशमंत्री, श्री सुरेंद्र पाल सिंह उपमंत्री.

डॉ. त्रिगुण सेन पैट्रो रसायन, खदान और धातुमंत्री; श्री जगन्नाथ राव और श्री डी. आर. चव्हाण राज्यमंत्री.

१० श्री बलिराम भगत विदेश व्यापार, श्री रामसेवक उपमंत्री.

११ श्री के. रघुरामैया संसद के मामले, जहाजरानी और परिवहन मंत्रालय में राज्यमंत्री; श्री इक़बाल सिंह उपमंत्री.

१२ डॉ. के. एल. राव सिंचाई और विद्युत मंत्रालय में राज्यमंत्री; श्री सिद्धेश्वर प्रसाद उपमंत्री.

प्रतिक्रियाएँ : अलग-अलग मंत्रियों को ले कर अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हुई हैं. न्यूयॉर्क टाइम्स के अनुसार श्री दिनेश सिंह के विदेश मंत्री नियुक्त होने से नयी दिल्ली में पश्चिमी देशों के राजदूतों ने असुविधा का अनुभव किया है. न्यूयॉर्क टाइम्स का इशारा स्वेतलाना कांड की ओर है. उन दिनों श्री दिनेशसिंह पर यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने इस मामले में रूसियों का साथ दिया और स्वेतलाना को भारत में नहीं रहने दिया गया. लेकिन न्यूयॉर्क टाइम्स की टिप्पणी केवल एक आशंका मात्र है. विदेश मंत्रालय में श्री दिनेश सिंह के आ जाने से कोई क्रांति हो जायेगी यह कहना श्री दिनेश सिंह से बहुत बड़ी माँग करना है. मिलनसार और हँसमुख दिनेश सिंह विदेशमंत्रालय के अफ़सरों के बीच हमेशा से लोकप्रिय हैं. वह नेहरू के ज़माने में इस मंत्रालय में एक अर्से तक रह चुके हैं और उस की खूबियाँ जानते हैं. प्रधानमंत्री ने उन को विदेश मंत्रालय सौंप कर अपना बढ़ा हुआ कार्य कम करने का प्रयत्न किया है. इस सारे रद्दोबदल से नीति विषयक किसी भी परिवर्तन की कल्पना करना ग़लत है क्योंकि नीति कोई मंत्री नहीं बल्कि समूची कैबिनेट निर्धारित करती है. यह सोचना भी उतावलापन होगा कि इस बेहिसाब रद्दोबदल से मंत्रालयों की कार्य-कुशलता बढ़ जायेगी. इस पुनर्गठन की अफ़सरों पर सीधी प्रतिक्रिया हुई : "मंत्री आते हैं मंत्री जाते हैं". पुनर्गठन पर इस से अच्छी टिप्पणी और क्या हो सकती है.

राजनैतिक दल

पुनर्विचार और उपसंहार

कोई पार्टी—केवल बंगाल की मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़ कर—यह दावा नहीं कर सकती कि मध्यावधि में उस की जीत हुई है. यही कारण है कि जब दिल्ली में विभिन्न राजनैतिक पार्टियों की केंद्रीय कार्यकारिणियों की बैठक हुई तो किसी के चेहरे पर मुस्कान नहीं थी बल्कि इस के विपरीत पराजय की छाप थी. कांग्रेस हाई कमांड ने तो यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि तीन राज्यों में उस की अप्रत्याशित हार हुई है और उस के कारणों की जांच करना आवश्यक है. लेकिन एक ओर अगर अपनी पराजय के कारणों का विश्लेषण करना आवश्यक है तो दूसरी ओर सरकार

बनाना भी उतना ही ज़रूरी है—देश की सभी राजनैतिक पार्टियाँ अब उस जहन्नुम में पहुँच चुकी हैं जहाँ वे ६ महीने भी सरकार से बाहर रहने अर्थात् सत्ताविहीन हो कर रहने की स्थिति और मन:स्थिति में नहीं हैं. पिछले कुछ वर्षों से देश में जो राजनैतिक परिवर्तन हुए हैं उन्होंने अब सत्ता को ही राजनीति की धुरी बना दिया है चाहे वह परिवर्त्तन की राजनीति हो या यथास्थिति की. इसलिए सारी राजनैतिक पार्टियाँ सत्ता प्राप्त करने के लिए सही और ग़लत समझौते करने के लिए तैयार हैं.

समझौतों की राजनीति : कम से कम एक राज्य बिहार ऐसा है जिस के संदर्भ में समझौतों की इस राजनीति को अच्छी तरह समझा जा सकता है. कांग्रेस हाई कमान ने भीतर ही भीतर फ़ैसला कर लिया कि बिहार में सरकार बनाने के लिए उसे कुछ और पार्टियों का सहयोग लेना चाहिए तब सवाल यह उठा कि वे कौन पार्टियाँ हों. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा कि कांग्रेस, कम्युनिस्ट और जनसंघ के साथ कोई समझौता नहीं कर सकतीं वे हमारे बुनियादी उसूलों के विरुद्ध हैं. श्रीमती गांधी को यह बात ज़ोर दे कर कहने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि कांग्रेस के भीतर अब धीरे-धीरे एक ऐसा हिस्सा पनप रहा है जो कि सरकार बनाने के लिए जनसंघ के साथ समझौता करने को तैयार है. श्रीमती गांधी का आग्रह था कि कांग्रेस केवल समानधर्मा पार्टियों के साथ मिल कर सरकार बना सकती है. वे समानधर्मा पार्टियाँ कौन हैं ? स्वतंत्र ? संयुक्त समाजवादी पार्टी ? प्रजा समाजवादी पार्टी ?

समानधर्मा की तलाश : जहाँ तक संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का प्रश्न है वह कांग्रेस के समूल विनाश को देश की राजनैतिक स्थिति साफ़ करने का एकमात्र रास्ता मानती है. स्वतंत्र पार्टी मध्यावधि राज्यों में विशेष महत्त्व नहीं रखती. एकमात्र समानधर्मा प्रजा समाजवादी रह जाते हैं. कांग्रेस हाई कमान का यह प्रस्ताव था कि प्रजा समाजवादी पार्टी और कतिपय निर्दलियों के सहयोग से बिहार में सरकार बनायी जाये. प्रजा समाजवादी पार्टी में भी कुछ लोग थे जो कि कांग्रेस से सहयोग करने को तैयार थे. प्रजा समाजवादी पार्टी की बिहार शाखा कांग्रेस के साथ सरकार बनाने को विशेष उत्सुक नहीं है. बिहार के प्रजा-समाजवादी संयुक्त समाजवादियों से अधिक भाई-चारे का अनुभव करते हैं. कुछ बिहार शाखा के दबाव से कुछ अपनी केंद्रीय समिति के कतिपय सदस्यों के आग्रह से पार्टी के अध्यक्ष श्री नारायण गोरे गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण से मिले और उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि उन की पार्टी बिहार में सरकार बनाने के लिए कांग्रेस से सहयोग करने के लिए कतई तैयार नहीं है. लेकिन कांग्रेस ने उम्मीदें नहीं छोड़ी हैं. हाई कमान के निर्देश के मुताबिक श्री चव्हाण पटने जा कर बिहार के कुछ अन्य ग़ैर-कांग्रेसी नेताओं और पार्टियों से बातचीत करेंगे.

चंद्रभानु गुप्त को हरी झंडी : जहाँ तक उत्तरप्रदेश का प्रश्न है कांग्रेस हाई कमान की यह धारणा है कि वहाँ सरकार बनाने में कांग्रेस को विशेष दिक़्क़त नहीं होगी. मध्यावधि के तुरंत बाद श्री चंद्रभानु गुप्त और श्री कमलापति त्रिपाठी ने प्रधानमंत्री से बातचीत की और प्रधानमंत्री की ओर से उन्हें पूरी छूट दी गयी. हाई कमान ने उत्तरप्रदेश में कांग्रेस की स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार को श्री चंद्रभानु गुप्त की जीत के रूप में स्वीकार किया है. श्री गुप्त ने दो जगहों से विजयी हो कर यह और भी साबित कर दिया कि वह राजनीति में पराजित नेता नहीं हैं.

मुख्यमंत्री कौन हो ? : संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और जनसंघ के संसदीय बोर्ड ने उत्तर-प्रदेश और बिहार में अपनी स्थिति पर विचार करते हुए अपने को कुछ कठिन परिस्थितियों में पाया. संसपा की कठिनाई कुछ कम है. उसे केवल कुछ ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों का सहयोग प्राप्त करना है. अगर वह इस में कामयाब हो सकी तो एक राज्य बिहार में पहली बार एक संयुक्त समाजवादी मुख्यमंत्री बनने की संभावना हो सकती है. जहाँ तक जनसंघ का प्रश्न है उस ने सरकार बनाने के मामले में कांग्रेस और संयुक्त समाजवादी दोनों को बिहार में अपनी ओर से पूरी सुविधा दे दी है. जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा है कि अगर कांग्रेस बिहार में सरकार बना सकती है तो हम उस के रास्ते में रोड़ा नहीं डालेंगे लेकिन अगर वह ऐसा करने में असमर्थ है तो संयुक्त समाजवादी पार्टी को, जो कि बिहार में दूसरे नंबर की पार्टी है, सरकार बनाने का मौक़ा देना चाहिए. श्री वाजपेयी का आशय यह है कि बिहार पुन: राष्ट्रपति शासन के हवाले नहीं किया जाना चाहिए. जनता ने पार्टियों को चुन कर इस लिए भेजा है कि वे सरकार बनायें इस लिए नहीं कि वे लोकप्रिय शासन की जगह राष्ट्रपति शासन को आमंत्रित करें. लेकिन संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के रास्ते की मुख्य बाधा मुख्यमंत्री का पद है. प्रजा समाजवादी पार्टी यह चाहती है कि बिहार के मुख्यमंत्री श्री भोला पासवान हों. इस का कारण यह है कि प्रजा समाजवादी यह नहीं चाहते कि उन का सौतेला भाई संयुक्त समाजवादी दल सत्ता पर हावी न हो. मध्यावधि चुनाव के कुछ पहले ही श्री नाथ पै ने अपने एक वक्तव्य में अपनी पार्टी के इस आशय को व्यक्त कर दिया था. इस के विपरीत समाजवादी पार्टी के लोग इस बार ज़िद पर हैं कि मुख्यमंत्री उन का ही होना चाहिए तभी परिवर्त्तन की राजनीति को थोड़ा बहुत सार्थक किया जा सकता है.

ग़ैर-मार्क्सवादियों की चिंता : मुख्यमंत्री का यह झगड़ा पश्चिम बंगाल में भी है जहाँ की ग़ैर-मार्क्सवादी पार्टियाँ अजय मुखर्जी को मुख्यमंत्री बनाना चाहती हैं और मार्क्सवादी कम्युनिस्टों की यह ज़िद है कि मुख्यमंत्री उन की पार्टी के नेता ज्योति बसु होंगे. अगर यह संभव नहीं तो मार्क्सवादी दूसरा सौदा करने को तैयार हैं. वह यह कि गृह और श्रम विभाग मार्क्सवादियों के हाथ में होंगे. दोनों ही सूरतों में वास्तविक सत्ता मार्क्सवादियों के हाथ में होगी. कलकत्ते में १९६७ के बाद जो श्रम असंतोष पैदा हुआ और पुलिस पर मार्क्सवादी जिस तरह हावी हुए उसे देखते हुए ग़ैर-मार्क्सवादी पार्टियाँ यह नहीं चाहेंगी कि ये दोनों विभाग मार्क्सवादियों के हाथ में जायें. समझौता जो भी हो इस बार मार्क्सवादी सत्ता पर पहले से अधिक ख़तरनाक ढंग से हावी होंगे. न केवल कांग्रेस बल्कि सभी ग़ैर-मार्क्सवादी पार्टियों की मुख्य चिंता यही है.

संसद्

राष्ट्रपति का अभिभाषण

हर वर्ष की भाँति इस बार भी राष्ट्रपति ने ब्रितानी शासन-काल से चली आ रही राजसी आनबान और शान के साथ संसद् के बजट अधिवेशन का उद्घाटन किया. राष्ट्रपति ने दोनों सदनों के मिले-जुले अधिवेशन में अपना अपना अभिभाषण हिंदी में और उस के बाद उपराष्ट्रपति वी. वी. गिरि ने अंग्रेज़ी में पढ़ा. हिंदी और अंग्रेज़ी के अभिभाषणों में एक उल्लेखनीय अंतर यह था कि हिंदी के अभिभाषण के अंत में 'जय हिंद' का उच्चारण किया गया और अंग्रेज़ी में नहीं.

सचिवालय के मुंशियों द्वारा तैयार किये गये इस अभिभाषण को पढ़ने का कर्त्तव्य निभाते हुए राष्ट्रपति ने वही सब कुछ कहा जो कि हर बार कहा जाता है—प्रगति का लेखा-जोखा, भविष्य के प्रति कुछ आशाएँ और आशंकाएँ और उस में यदि नया कुछ कहा भी गया तो मध्यावधि चुनाव पर एक प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी. इस परस्पर विरोधी प्रतिक्रिया में संतोष भी व्यक्त किया गया और असंतोष भी. यानी जहाँ यह कहा गया—"यह संतोष की बात है कि मुख्य चुनाव आयुक्त ने आवश्यक समझ कर केवल २८ चुनाव-केंद्रों में दोबारा मतदान करने का नये सिरे से चुनाव करने का आदेश दिया है". वहाँ यह भी कहा गया—"कई जगहों से चिंताजनक सूचना मिली है कि लोगों पर दबाव धमकी के रूप में डाला गया. जिस के कारण वह मतदान नहीं दे सके. सरकार इस बात पर ध्यान दे रही है."

राजनैतिक दलों को सीख और उपदेश देते हुए यह भी कहा गया कि हरेक राजनीतिक दल को राजनीतिक स्थिरता बनाये रखने की कोशिश करनी चाहिए, क्यों कि वह सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए बहुत ज़रूरी है.

संपादकीय

स्थायित्व या प्रगति ?

हैदराबाद-कांग्रेस '६८ में बड़ी खुशी से लार टपका कर राजनैतिक वातावरण सुधरने का गीत गाया गया था परंतु जो 'स्वस्थ जलवायु' कांग्रेस के महामानवों को देश में तब दिखाई देने लगा था वह मध्यावधि चुनाव में कहीं प्रतिबिंबित नहीं हुआ. बंगाल में संयुक्त-मोर्चा ही सब से अधिक स्थायित्व-सक्षम दिखाई दिया है जब कि चुनाव-प्रचार में कहा गया था कि कांग्रेस के न होने से स्थायित्व नहीं होगा और देश रसातल को चला जायेगा. पार्टी-राजनीति, जो 'काम करो या गद्दी छोड़ो' के नारे से थोड़ी बहुत आगे खिसकती प्रतीत हो रही थी, वह धुरी की ओर न जा कर फिर १९६७ के पहले की-सी स्थिति में पहुँच गयी है.

ठीक-ठीक वैसी ही नहीं लगभग वैसी ही. वह अपने साथ पिछले एक वर्ष में उगे घेंघे और रसौलियां भी ले आयी है. समता और समृद्धि की व्यापक सामाजिक क्रांति से उदासीन सर्वग्राही एकाधिकार की जो जातिवादी परंपरा कांग्रेस ने पोसी थी उस के जवाब में अल्पसंख्यकों की समाज से अलगाव के आधार पर अधिकार की माँग आज की राजनीति का अभिन्न अंग बन चुकी है; अंग्रेज़ी के गूँगे गुलामतंत्र के भीतर छटपटाते लोगों की कुंठाजन्य आत्मरक्षा-भावना छोटे-छोटे अनेक दलों के रूप में फूटी है. सार्वदेशिक राष्ट्रीयता को आत्मघात मानने वाले स्थानीय स्वार्थों का निर्लज्ज डंका बजाया गया है और किसी राज्य में कोई राष्ट्रीय कद वाला नेता रह नहीं गया है. और सब के ऊपर नहीं रह गया है गांधी-शताब्दी-वर्ष में लोकतंत्र के मूलमंत्र सविनय अवज्ञा—सत्याग्रह—का सत्ता के निकट कोई सम्मान. कांग्रेस छोड़ कर भागे नेतृत्व ने भी कांग्रेस की ही तरह, विशेषतया उत्तरप्रदेश में, तरह-तरह के अवसरवादी एकत्र कर लिए हैं जिस से वैचारिक ध्रुवीकरण और भी खटाई में पड़ चुका है. १९६७ के बाद राज्य-कांग्रेसों को विरोध-पक्ष की कुर्सियों में काँटे चुभते रहे हैं और वह संसदीय लोकतंत्र की मर्यादा के अनुसार उन पर बैठ कर अपनी-अपनी वैचारिक अद्वितीयता सिद्ध करने में निकम्मी साबित हुई हैं. केंद्र-कांग्रेस ने राज्य कांग्रेसी की सरकार-रचना सामर्थ्य तौल कर समय-समय पर संविधान का अवसर सम्मत भाष्य कर के, राज्यपाल को दल-पोषक राजनैतिक-कर्म का माध्यम बार-बार बनाया है. यह तथ्य हमें स्पष्ट स्वीकार करना चाहिए कि राज्यपाल के पद की प्रतिष्ठा का हमेशा के लिए अवमूल्यन हो चुका है, केंद्र-राज्य संबंध पर एक अमिट दाग लग चुका है सो अलग. धर्मवीर को बंगाल से वापस आने की जो उतावली हो रही है वह स्वतः प्रमाण है.

अवश्य १९६७ के पराभव के बाद राज्य-कांग्रेसों में पुराने व्यक्तिगत गद्दी-युद्ध में शस्त्र-विराम हो गया था परंतु यह भी प्रकट हो गया था कि कांग्रेस विचारधारा और कार्यक्रम के माध्यम से जनता से संबंध स्थापित करने में सत्ता-यंत्र के बिना असमर्थ है. कहना न होगा कि इस बीच कांग्रेस ने एक भी जन-आंदोलन नहीं छेड़ा जब कि २० वर्ष में पहली बार उसे इस का अवसर मिला था. १९६७ में जिन्होंने मतदानोत्तर वैविध्य को लोकतंत्रीय शक्ति बताया था उन प्रधानमंत्री का अब यह कहना निरा औपचारिक प्रतीत होता है कि केंद्र ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों को सहयोग देगा पर वे राष्ट्र-विरोधी आचरण न करें. अपनी समझ में यह कह कर उन्होंने कांग्रेस-विरोधी दलों पर एक चतुर राजनैतिक चोट की है परंतु यह चोट लगी है भारतीय जन-शक्ति को जिसे प्रधानमंत्री और उन के पिता से अधिक आसक्ति राष्ट्र में न होने का कोई कारण नहीं है. आत्ममोहित राजसी सरंजाम और साहबी नकचढ़ेपन से खिन्न हो कर भीड़ ने चुनाव-प्रचार के दौरान बड़े नेताओं पर जो खीझ उतारी थी और जिसे दर्शनार्थियों की श्रद्धाकुलता ('महाराष्ट्र में गाड़ी रोक कर मेरे पाँव धोये गये थे') बता कर गत मास प्रधानमंत्री ने अखबारों पर कोप किया था, वह जनमानस में अवश्य बहुत गहरी जमी हैं नहीं तो कौतूहल से भाषण सुनने को एकत्र लाखों की भीड़ प्रधानमंत्री की पार्टी को स्पष्ट बहुमत क्यों न देती.

अब न केंद्र-राज्य सहयोग की पिटी हुई पुचकार में विशेष दम है न दल-बदल के शास्त्रीय विवेचन का ही अर्थ बचा है. केंद्र-राज्य सहयोग या ग़ैर-कांग्रेसी राज्यों से सह-अस्तित्व कांग्रेस को इस बार और अधिक निष्ठा से करना पड़ेगा. जब तक क्रांतिकारी समाज परिवर्तन के लिए केंद्र अपनी सत्ता का इस्तेमाल नहीं करता तब तक न तो ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों के घटकों से उस की कोई स्वस्थ राजनैतिक तुलना हो सकती है और न गद्दे पर पसरी घमघूसर कांग्रेस की छवि ही बदल सकती है. जो कुछ हो सकता है वह यह है कि केंद्र से प्रतिकूलता के बहाने ग़ैर-कांग्रेसी दल एक ओर अपना स्थानीय प्रभाव बढ़ायें और दूसरी ओर केंद्र के मुखिया को गरिमामंडित कर के उन से अनुकूलता के बहाने चतुर सौदेबाज़ी करें.

हो सकता है कि ये रिश्ते १९७२ में प्रधानमंत्री के लिए समर्थक सिद्ध हों. परंतु सचमुच अपनी पार्टी में रह कर लोकप्रिय बनना है तो प्रधानमंत्री को पार्टी की शक्ल भी काफ़ी बदलनी पड़ेगी. यह कहना अविश्वसनीय होगा कि कांग्रेस-अध्यक्ष और प्रधानमंत्री को इस आवश्यकता का ध्यान नहीं है. कम-से-कम प्रधानमंत्री के इसे अनिवार्य मानने का प्रमाण है—चुनाव-परिणाम देखते ही उन्होंने मंत्रिमंडल की शतरंज का पुनर्गठन किया है. क़ांग्रेस के सार्वजनिक चरित्र की अवनति के साथ-साथ आने वाले वर्षों में राष्ट्रीय राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम होगा प्रधानमंत्री के अनुकूल सामंतों का संकलन.

परंतु यह तो जर्जर होते एक राज्यतंत्र की अंतरंग शिखर-राजनीति की बात है. विचार, विद्या और व्यवसाय के सामाजिक संगठनों के माध्यम से राजनीति की प्रक्रिया में और राजनैतिक तंत्र में परिवर्तनकारी स्फूर्ति लाने वाले तत्त्व मध्यावधि के नतीजों में पूर्णतया प्रतिबिंबित ही नहीं हो सके हैं. स्वतःस्फूर्त छात्र और शिक्षक आंदोलनों को चुनाव के पोषक बताने वाले लोग इस यथार्थ को पहचानें कि राजनैतिक दल इन दोनों समूहों की सच्ची आकांक्षाओं को अपना सपना नहीं बना पाये हैं. **दिनमान** की प्रश्न-चर्चा ५१ के उत्तर में प्राप्त सहस्राधिक छात्र-मत के पत्र दिशाहीन राजनैतिक नेतृत्व की व्याकुल आलोचना से भरे पड़े हैं. यदि इन की और इन के जैसे समूहों की आवाज़ राज्य और केंद्र के मंत्रालयों के बाहर ही गूंजती रह गयी तो संसदीय लोकतंत्र तो शिखर राजनीति के हाथ नोचा-खसोटा जाता ही रहेगा, जन-साधारण के हाथों उस की मरहमपट्टी या उस का कायाकल्प दोनों ही और अधिक असाध्य होते जायेंगे.

आशा : सरकार के कामों की प्रगति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए सरकारी नीतियों की सराहना की गयी जनता के बारे में कहा गया कि हमारे देशवासियों ने जिस साहस और धीरज के साथ कठिनाइयों को झेला उस पर हमें गर्व होना चाहिए. उन के त्याग, सहयोग, मेहनत, लगन और देशभक्ति की भावना के बगैर केंद्र और राज्य की योजनाएं और कार्यक्रम सफल नहीं हो सकते थे. कृषि क्रांति, औद्योगिक विकास और पंचवर्षीय योजनाओं की दुहाई दे कर कहा गया कि इन में उज्ज्वल भविष्य की आशा की किरण देखी जा सकती है.

१९६७-६८ की फसल से हमारी खेती की पैदावार में एक मोड़ आया. अनाज का उत्पादन ९ करोड़ ५६ लाख मीट्रिक टन हुआ जो कि १९६४-६५ के मुकाबले में ६० लाख मीट्रिक टन अधिक था. कई राज्यों में सूखा और बाढ़ के कारण जो नुक़सान हुआ था उस के बावजूद यह आशा की जाती है कि १९६८-६९ में अनाज का उत्पादन उतना ही ही अच्छा होगा जितना कि १९६७-६८ में हुआ था. १९६८-६९ में ८५ लाख हैक्टेयर जमीन पर अधिक उपज वाली फसलें बोयी जाएंगी और अगले वर्ष उस का और भी विस्तार किया जाएगा. १९६८-६९ में ६१ लाख हैक्टेयर और जमीन पर खेती की जाएगी.

मतदानोत्तर

संयुक्त मोर्चा : लाल सलाम

मोर्चा ! मोर्चा !! मोर्चा !!! पश्चिम बंगाल में मध्यावधि निर्वाचन क्या हुआ एक तूफ़ान आ गया. बीस साल से जमे कांग्रेसियों के खेमे इस तरह उड़ गये जैसे पतझड़ में अस्तित्वहीन पीले पत्ते उड़ा करते हैं. संयुक्त मोर्चा के लिए मैदान बिलकुल साफ़ हो गया. अपनी भयानक पराजय से वह एक सशक्त प्रतिपक्ष की भूमिका अदा करने की स्थिति में भी नहीं रह पायी. प्रदेश के राजनैतिक मंच पर हुए इस प्रलयंकारी परिवर्तन पर कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी दोनों ही क्षेत्रों में आश्चर्य है ! भारी आश्चर्य है ! कांग्रेस को तो खैर अपनी इस दुर्गति की आशंका थी ही नहीं, संयुक्त मोर्चा को भी बस इतनी ही आशा थी कि तीस-बत्तीस वे सीटें उसे मिल जायेंगी जो दोनों कम्युनिस्ट दलों के लड़ने से कांग्रेस को मिल गयी थीं. इस के साथ ही कुछ दूसरी सीटों के चले जाने का भी ख़तरा था. लेकिन वोट की महिमा को क्या कहिए ! अपनी अप्रत्याशित उपलब्धियों से संयुक्त मोर्चा के लोग भी स्तब्ध रह गये.

संयुक्त मोर्चा लाल सलाम ! इन्क्लाब ज़िंदाबाद ! कम्युनिस्ट पार्टी जिंदाबाद ! कांग्रेस पार्टी मुर्दाबाद ! नारे और नारे ! जुलूस और जुलूस ! लाल झंडों के साथ उल्लास में उमड़े जनसमुद्र में राइटर्स बिल्डिंग डूब गया ! सड़कें पनाह माँगने लगीं ! चौरंगी के चेहरे पर नयी रौनक आ गयी !

चुनाव-परिणाम घोषणा के दिन भी क्या खूब रहे ! कई दिनों तक कलकत्ते में वक़्त की रफ़्तार रुकी रही. कार्यालय खुले हैं, कर्मचारी नहीं ! कर्मचारी मौजूद हैं, काम नहीं. सब की नज़रें पास की सड़क से गुज़र रहे जुलूस पर हैं, सड़कों पर छूट रहे पटाखों पर हैं, अखबारों के दफ़्तरों के सामने जो स्कोर बोर्ड पर है—एक शब्द में नये इन्क्लाब की नयी दिशा पर हैं. **दिनमान** का प्रतिनिधि भी निकट से जानने-समझने के लिए कभी उमड़ती भीड़ में डूब जाता है, कभी जुलूसों में बह जाता है और कभी गगनभेदी नारों के बीच डूब जाता है !

सियालदह से मज़दूर-नेता **यतीन चक्रवर्ती** ने कांग्रेस अध्यक्ष डॉ. प्रतापचंद्र चंदर को परास्त कर दिया. डूबती कांग्रेस का अध्यक्ष भी डूब गया ! एक सनसनी-सी पैदा हो गयी. अध्यक्ष ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया. कई इलाक़ों में सड़कों की बत्तियों पर लाल काग़ज लपेट दिये गये. लाल झंडे लगा दिये गये. रात लाल हो गयी. सूर्य के लाल कोरतेहबे ! सूर्य को लाल करना पड़ेगा ! काश ऐसा कर पाते !

कांग्रेस भवन ! भूतपूर्व मंत्री कुमारी आभा मैती विजयिनी हुई ! एक सहयोगी ने बधाई देने के लिए उन के कमरे में प्रवेश किया. बधाई ? कैसी बधाई ! कांग्रेस का सफ़ाया हो गया और तुम मुझे बधाई दे रहे हो ? अतुल्य घोष किसी विदेशी पत्रिका के पन्ने उलट रहे हैं ! कोई प्रतिक्रिया ! 'नहीं, कोई प्रतिक्रिया

अजय मुखर्जी ज्योति बसु

नहीं, मैं किसी को दोष नहीं देता, किंतु कीं होयछे आमी बुजते पाच्छीना.' अपनी सभाओं में उमड़ती भारी भीड़ को देख कर हम ने अंदाज़ा लगा लिया था कि जनमत कांग्रेस के पक्ष में है. लेकिन सब झूठ निकला. मिथ्या सिद्ध होयछे. हताश-निराश कांग्रेस नेता ने कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में शरीक होने के लिए दिल्ली जाने का फ़ैसला रद्द कर दिया. कार्यकारिणी से इस्तीफ़ा देने की सोचने लगे.

हम हारे : तुम जीते : आरामबाग़ में अजय मुखर्जी हार गये. इस हार का कोई ग़म नहीं. प्रफुल्लचंद्र सेन जीत गये. इस जीत पर कोई खुशी नहीं. आखिर हम जीत कर क्या करेंगे—की कोरबो—कोथाय जाबो. मुखर्जी मोशाय हार कर भी तामलुक (मेदिनीपुर) से जीत गये हैं और फिर प्रशासन की बागडोर सँभालने जा रहे हैं. संयुक्त मोर्चा को सफल बनाने के लिए जनता को धन्यवाद दे रहे हैं : विनीत सेवा के लिए आपने एक और अवसर दिया. हम हृदय से आभारी हैं !.

रास बिहारी से विजयकुमार बैनर्जी निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में फिर विजयी होते हैं. प्रेस वाले उन की प्रतिक्रिया जानना चाहते हैं, लेकिन इस से पहले कि कुछ कहें पुष्टि के लिए फ़ोन उठा लेते हैं. फिर चेहरा चमक उठता है. उन का इतराता पोता फ़ोन उठा लेता है : दीदा ! दीदा ! दादू जितेछे. (दादी ! दादी ! दादा जीत गये.) बैनर्जी बंधु अलीपुरगढ केंद्र से जैसे ही बाहर निकलते हैं उन के मस्तक पर लाल गुलाल लगा दिया जाता है. सफ़ेद पंजाबी कुर्त्ते पर लाल बब्बे उभर आते हैं.

भूतपूर्व मुख्यमंत्री डॉ. प्रफुल्ल घोष झाड़ग्राम से हार गये. कांग्रेसी टिकट रास न आया.

फिर संयुक्त मोर्चा के कई मंत्रियों के नाम एक स्कोर बोर्ड पर उभरे—हरेकृष्ण कोनार, काशीकांत मैत्र, सुशील धाड़ा और देवप्रकाश राय. सब के लिए लाल सलाम.

घेराव के जनक भूतपूर्व श्रममंत्री सुबोध बैनर्जी जीत गये. शानदार जुलूस चौरंगी होते हुए धर्मतल्ला स्ट्रीट पर पहुँचा.

भूतपूर्व कांग्रेसी मंत्री विजयसिंह नाहर बहू बाज़ार से जीत गये. धाकड़ कांग्रेसी सिद्धार्थशंकर राय भी चौरंगी में जमे रहे, लेकिन इन जीतों की क़ीमत क्या है ? बड़ा बाज़ार में रामकृष्ण सरावगी ने ईश्वरदास जालान का स्थान लिया है, लेकिन वह बात कहाँ जो कांग्रेसी राज में थी. फिर भी जश्ने जीत मना ली जाती है. जुलूस निकाल लिये जाते हैं.

वामपंथी कम्युनिस्ट पार्टी का दफ़्तर ! पत्रकार कुछ सुनना चाहते हैं वामपंथ के शीर्ष

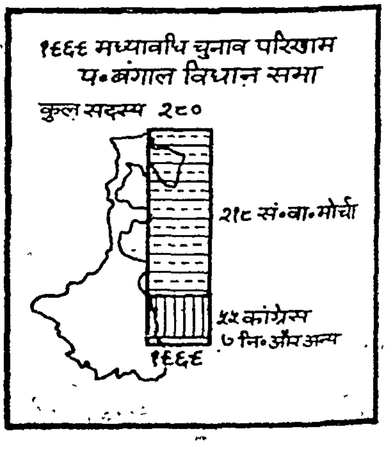

फजलुर्रहमान, तरुणकांति घोष, निरंजन सेनगुप्ता, अमरप्रसाद चक्रवर्ती और देवप्रकाश राय : विजयी

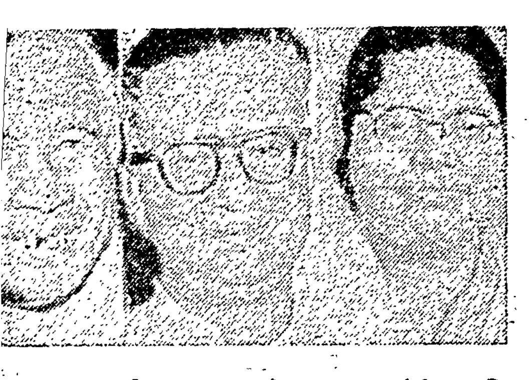

पराजित प्रफुल्ल घोष तथा जहाँगीर कबिर तथा विजयी आभा मैती.

नेताओं से. ज्योति वसु के चेहरे पर एक मुस्कराहट दौड़ जाती है और वह खामोश रहते हैं. प्रमोद बाबू बोल पड़ते हैं : इतना पता था कि हम आ रहे हैं, लेकिन यह पता नहीं था कि कांग्रेस इस हद तक लोकप्रियता खो चुकी है.

वह बाजार में दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यालय के सामने भी भारी भीड़ झूमती नज़र आती है. कार्यालय ठसाठस भरा हुआ है. 'क्या होगा ! अब हमें क्या करना चाहिए.' विश्वनाथ मुखर्जी अपने साथियों को संबोधित करते हैं : 'यह सब मोर्चा की बदौलत हुआ है, इस लिए हमारा पहला काम मोर्चा को और मज़बूत करना है. जनता मोर्चा की मज़बूती चाहती है.'

राइटर्स बिल्डिंग में खलबली मची हुई है. बड़े अफ़सरों के तबादले और छुट्टियों की हवा गर्म है. जिन अफ़सरों से संयुक्त मोर्चा को खतरा था उन्हें आज संयुक्त मोर्चा से खतरा है. मुख्य सचिव श्री एम. एम. बसु बने रहेंगे क्या ? क्या उन्हें किसी आयोग का अध्यक्ष बनाया जायेगा ? नये मुख्य सचिव के रूप में एच. एन. राय, मनीषा सेन और एस. बी. राय के नाम लिये जा रहे हैं.

मध्यावधि-निर्वाचन के बाद पश्चिम बंगाल की राजनीति ने एक नया मोड़ लिया है और अब वह ध्रुवीकरण की ओर है. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी सब से बड़े दल के रूप में उभर कर सामने आया. कांग्रेस को दूसरा स्थान मिला. संयुक्त मोर्चे में शामिल दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट दल, बंगला कांग्रेस, फ़ॉरवर्ड ब्लॉक, संयुक्त समाजवादी दल और क्रांतिकारी समाजवादी पार्टी की स्थिति में काफ़ी सुधार हुआ. यह बात दूसरी है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की तुलना में इन दलों की स्थिति कम मज़बूत हुई.

प्रतिष्ठा की सिर्फ़ एक लड़ाई में —आरामबाग़ में—संयुक्त मोर्चा की पराजय हुई, जहाँ भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री प्रफुल्लचंद्र सेन ने भूतपूर्व मुख्यमंत्री अजय मुखर्जी को १५,००० से भी अधिक वोटों से परास्त किया. लेकिन कांग्रेस की भारी पराजय के कारण इस विषय से कांग्रेसी हलक़ों में जिस विजयोल्लास का वातावरण तैयार होना था नहीं हुआ. कांग्रेस में शामिल प्रफुल्लचंद्र घोष भी बुरी तरह पिटे.

इस के विपरीत संयुक्त मोर्चा सरकार का कोई अदना मंत्री भी कहीं नहीं हारा. अजय कुमार मुखर्जी (तामुलूक से), ज्योति बसु, सोमनाथ लाहिड़ी, ज्योति भट्टाचार्य, हरेकृष्ण कोनार, सुबोध बैनर्जी, विजय बैनर्जी (मोर्चा सरकार के दौरान विधानसभा में स्पीकर), सुशीलकुमार धाड़ा, काशीकांत मैत्र, देव प्रकाश राय, निरंजन सेन गुप्ता, अमर भट्टाचार्य आदि मोर्चा के सारे मंत्री अधिकांश पहले से अधिक वोट से विजयी घोषित किये गये.

कांग्रेस के विजयी मंत्रियों में श्री फज़लुल रहमान, श्री तरुणकांति घोष, श्री विजयसिंह नाहर और कुमारी आभा मैती प्रमुख हैं. हिंदीभाषी क्षेत्र बड़ा बाजार और जोड़ासाँकू में कांग्रेसी उम्मीदवार रामकृष्ण सरावगी और देवकीनंदन पोद्दार विजयी हुए. चौरंगी में सिद्धार्थशंकर राय अपने स्थान पर जमे रहे.

बलद नगर बनाम हंसिया-हथौड़ा नगर : कलकत्ते में कांग्रेस की स्थिति पहले से ही खराब थी. आधी से भी कम सीटें उस के हाथ में रह गयी थीं. इस बार उस में से भी सियाल्दह, तलतल्ला और कालीघाट आदि की कई महत्त्वपूर्ण सीटें चली गयीं. पूरा कलकत्ता हाथ से निकल गया.

लेकिन सब से बड़ा आश्चर्य हावड़ा में हुआ है, जो कांग्रेस का गढ़ था और बलद नगर—बैलों का नगर के नाम से विख्यात था. ज़िले की कुल १६ सीटों में इस बार सिर्फ़ दो कांग्रेस को मिली हैं और १० पर कम्युनिस्टों ने क़ब्ज़ा जमा लिया है. शालीमार से बाली तक हिंदीभाषी भरे हुए हैं. इन के वोट हमेशा कांग्रेस को मिलते रहे हैं, लेकिन इस बार इस प्रवृत्ति में परिवर्त्तन दीख पड़ा है. उल्लेखनीय बात यह रही कि इस बार शंकरदास बैनर्जी, काज़िम अली मिर्ज़ा, हरेंद्र मजूमदार, आशु घोष, जहाँगीर कबिर, डॉ॰ प्रफुल्ल घोष आदि दल-बदलू बिलकुल साफ़ हो गये. बाकुड़ा, हुगली, बर्दवान, बीरभूमि, २४ परगना और मेदिनापुर में कांग्रेस की आश्चर्यजनक पराजय हुई है जहाँ पिछले चुनाव में उसे ६ फ़ीसदी अधिक वोट मिले थे. बाकुड़ा की कुल १३ सीटों में से एक भी कांग्रेस को नहीं मिली, जहाँ कभी अतुल्य घोष का अच्छा प्रभाव था. समाचार मिला है कि बाकुड़ा के प्रमुख नेता श्री जगन्नाथ काने, जो कि विधानसभा में कांग्रेस के मुख्य सचेतक रहे हैं, काबाकुड़ा में अच्छा प्रभाव है और उन्होंने इस बार संयुक्त मोर्चा का समर्थन किया. जलपाईगुड़ी, कूचबिहार जैसे कुछ गिने-चुने ज़िलों में ही कांग्रेस की स्थिति ठीक रह पायी है. कलकत्ता के अलावा दुर्गापुर और आसनसोल के औद्योगिक क्षेत्रों में कांग्रेस की स्थिति और खराब हो गयी है और श्रमिकों ने संयुक्त मोर्चा के पक्ष में वोट दिये हैं.

मज़बूत वामपंथ : संयुक्त मोर्चा के संयोजक श्री सुधीन कुमार ने एक वक्तव्य में कहा कि पश्चिम बंगाल में वामपंथ की विजय से केंद्र कमज़ोर हुआ है और वह अपने उन इरादों में तब्दीली करने के लिए बाध्य होगा जिन के अंतर्गत वह केरल के मामले में हस्तक्षेप करने की सोच रहा था. भूतपूर्व मुख्यमंत्री अजय मुखर्जी ने जनता को धन्यवाद देते हुए कहा कि हमें ग़ैर-क़ानूनी तौर पर हटाया गया था और जनता ने पुनः क़ानूनी तौर से पूर्व स्थिति में ला दिया है. भूतपूर्व उपमुख्यमंत्री ज्योति बसु ने कहा कि जनता में आयी राजनैतिक जागरूकता के कारण ऐसा हुआ है. जनता को इस का प्रतिफल मिले, इस की हम आप्राण चेष्टा करेंगे.

तृतीय शक्ति : नये राजनैतिक परिवर्त्तनों को दृष्टिगत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि नये और पुराने दलों की तृतीय शक्ति को पैदा करने की कोशिश बेकार गयी. पुराने दलों में प्रजासमाजवादी दल प्रमुख है, जो तृतीय शक्ति के लिए सक्रिय रहा है. इस के अध्यक्ष निशीथनाथ कुंदू, जो संयुक्त मोर्चा में मंत्री रह चुके हैं, चुनाव में हार गये हैं. ध्यान रहे कि श्री कुंदू मोर्चा सरकार से बाद में निकल गये थे और उन की पार्टी ने मोर्चा से निकल कर अलग दल के रूप में चुनाव लड़ा है और सीटें पहले ७ से भी कम ५ मिली हैं. नये दलों में प्रो॰ हुमायुन कबिर का लोकदल और उन के भाई जहाँगीर कबिर का बंगला जातीय दल प्रमुख हैं. इन्होंने क्रमशः ५३ और १७ उम्मीदवार खड़े किये थे और एक-एक सीट के लिए तरस गये हैं. जहाँगीर कबिर खुद भी हार गये हैं. ऐसी ही दुर्गति भारतीय राष्ट्रीय गणतांत्रिक मोर्चा की हुई है, जिस के ९८ उम्मीदवारों में सिर्फ़ एक लौटा है और दल के संस्थापक-अध्यक्ष आशुतोष घोष तीन सीटों से लड़े थे और तीनों से ही हार गये हैं. जनसंघ की आशाओं पर पानी फिर गया है. उसे कोई सीट नहीं मिली है. नये दलों में प्रगतिशील मुस्लिम लीग की सफलता उल्लेखनीय है. उस के ४० उम्मीदवारों में से तीन विजयी हो गये हैं. राज्य में आयी राजनैतिक परिपक्वता से नये दलों को अपनी जड़ें जमाने का मौक़ा नहीं मिला है और जनता भी राजनैतिक ध्रुवीकरण की समर्थक साबित हुई है. तृतीय शक्ति के लिए सर्वाधिक सक्रिय प्रो॰ हुमायुन कबिर ने कहा है कि जो कुछ हुआ है आश्चर्यजनक है. मैं समझ नहीं पाया कि आखिर ऐसा क्यों हुआ ?

संयुक्त मोर्चा में साम्यवादी घटक मज़बूत हो गये हैं. उन्हें सवा सौ सीटें मिल गयी हैं. अब वे ग़ैर-साम्यवादी घटकों पर हावी रहेंगे. पिछले निर्वाचन में स्थिति इस के विपरीत थी.

बिहार में भी मतदाताओं ने अपना निर्णय जिस रूप में दिया उस की वजह से यथा स्थिति बनी रह गयी यानी जिन गड़बड़ियों के कारण राष्ट्रपति शासन लागू किया गया था और जिस के निवारण के लिए बाद में चुनाव कराया गया उन में कोई परिवर्तन नहीं आया. कांग्रेस की शक्ति के क्षीण होने के अनुमान तो पहले से ही थे क्यों कि जिन ५ शीर्षस्थ नेताओं को चुनाव का टिकट न दे कर अलग कर दिया गया था उन की उदासीनता कांग्रेस पर असर डालने वाली ही थी और उस ने असर डाला भी. कांग्रेस की शक्ति पिछले चुनाव की तुलना में भी कम हो गयी. प्रांतीय स्तर के दलों को थोड़ा बहुत लाभ अवश्य मिला लेकिन यहाँ भी राष्ट्रीय स्तर के दलों को कुछ अपवाद को छोड़ कर अपनी पुरानी स्थिति बनाये रखने में सफलता नहीं मिली. सब से बड़ा धक्का संयुक्त समाजवादी पार्टी को लगा जिसे पिछले आम चुनाव की ६८ जगहों की तुलना में इस बार सिर्फ़ ५१ जगहें मिलीं. जनसंघ ने अपनी स्थिति कुछ मज़बूत ज़रूर की. उसे ८ जगहें पिछले चुनाव की तुलना में अधिक मिलीं. लेकिन कम्युनिस्ट, प्रसोपा और

महामाया प्रसाद और भोला पासवान: मायापास

स्वतंत्र दल की स्थिति में एकआध जगहों से ज़्यादा का परिवर्तन नहीं आया. भारतीय क्रांति दल के महामाया प्रसाद सिंह एक जगह से हार गये मगर दूसरी जगह से विजयी हो गये. लेकिन उन के दल को सिर्फ़ ६ जगहें मिलीं. फ़ॉरवर्ड ब्लाक ने पहली बार एक जगह पर क़ब्ज़ा कर के विधानसभा में प्रवेश किया है. संयुक्त समाजवादी दल की शक्ति तो घटी है लेकिन उस के कुछ प्रमुख नेता विधानसभा के भूतपूर्व अध्यक्ष धनिकलाल मंडल, रामानंद तिवारी और श्री कृष्णसिंह विजयी हुए. भोला पासवान शास्त्री को भी अपनी जगह सुरक्षित रखने में सफलता मिली और कर्पूरी ठाकुर, हरिनाथ मिश्र चंद्रशेखर सिंह भी विजयी हुए. इस वक़्त राज्य में मुख्य चर्चा का विषय मंत्रिमंडल का गठन है. ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियाँ यह अच्छी तरह महसूस कर रही हैं कि उन की स्थिति किसी भी रूप में सरकार बनाने की नहीं. अपनी घटी हुई शक्ति के बावजूद कांग्रेस सब से बड़ी पार्टी के रूप में सामने आयी है और उस के नेताओं को यह उम्मीद है कि वे जोड़-गाँठ की स्थिति उत्पन्न कर के सरकार बनाने में सफल हो सकेंगे. बहुमत के लिए कांग्रेस को ४२ विधायकों के समर्थन की आवश्यकता है. यदि समान विचारधारा वाले दलों को साझे की सरकार में शामिल करने की बात उठी तो यह बातचीत भारतीय क्रांति दल, प्रसोपा, संसोपा और कम्युनिस्ट पार्टी से करने की संभावना हो सकती है. दिक्कत यह है कि त्रिगुट के नाम पर

संगठन का संकट

मध्यावधि चुनाव में संयुक्त समाजवादी पार्टी को बिहार और उत्तरप्रदेश में गहरा धक्का लगा है. सन् '६७ में बिहार में उसे विधान सभा की ६८ और उत्तर प्रदेश में ४४ जगहें मिली थीं. इस चुनाव में उस की स्थिति क्षीण हो कर बिहार में ५१ और उत्तरप्रदेश में ३५ रह गयी. उस की शक्ति के क्षीण हो जाने के संदर्भ में जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने उस के अध्यक्ष श्री श्रीधर महादेव जोशी से प्रतिक्रिया जाननी चाही तो उन्होंने कहा कि बिहार और उत्तर-प्रदेश की स्थितियों का विश्लेषण अलग-अलग किया जाना चाहिए. विंदेश्वरीप्रसाद मंडल ने दल से अलग हो कर **बिहार** में थोड़ी क्षति पहुँचायी. संगठन की कमज़ोरी ने एकता की तसवीर को धुँधला किया और कुछ नेताओं के सत्तामोह ने जनता को दल से विरक्त किया. समाजवादी दल बटाईदारी के प्रश्न पर मज़दूरों-किसानों की स्थिति को मज़बूत करने के पक्ष में रहा है लेकिन इस मुद्दे को ले कर जनसंघ ने उस का विरोध किया. बटाई देने वालों की संख्या अधिक है और प्रभाव भी इतना कि वे मतदाता के विचारों को प्रभावित कर सकते हैं. बटाई लेने वालों की आवाज़ कमज़ोर थी और उन में संगठन का भी अभाव था. संसोपा की यह नीति भी मतदान के सिलसिले में उस के खिलाफ़ पड़ी. दल उर्दू को पाकिस्तान की या मुसलमानों की भाषा न मान कर उसे हिंदी की एक शैली मानता है और उर्दू भाषी क्षेत्रों में उसे उचित स्थान दिलाने का पक्षधर है. जनसंघ ने भाषा के प्रश्न पर ग़लत और ग़लीज़ नारों के माध्यम से विरोध किया. कहीं-कहीं नारों में कर्पूरी ठाकुर को मौलवी कर्पूरी कह कर संबोधित किया गया. शक्ति के क्षीण होने का एक कारण सामूहिक तैयारी की कमी भी रही. लोकतांत्रिक कांग्रेस के साथ चुनाव में जो समझौते किये गये थे वे ऊपरी तौर पर तो बहुत अच्छे रहे लेकिन उस के माध्यम से जिस एकता की कल्पना की गयी थी उसे साकार करने के सिलसिले में व्यावहारिक क़दम नहीं उठाये गये. परिणाम यह हुआ कि तीनों दलों के नेता और कार्यकर्ता एकता और समझौते की भावना का ख़्याल न कर के अपने हितों को ध्यान में रख कर विरोधी वक्तव्य देते रहे और इस का परिणाम यह हुआ कि जनता उन के वक्तव्यों पर विश्वास न कर सकी. उत्तरप्रदेश में स्थिति कुछ भिन्न रही. विघटन और पारस्परिक मतभेद के जिस वातावरण में संसोपा ने इस राज्य में चुनाव लड़ा उस में ३३ सीटों का पा जाना ही एक बड़ी उपलब्धि मानी जानी चाहिए. बातचीत के सिलसिले में जोशी जी ने बहुत-सी बातें जानबूझ कर स्पष्ट नहीं कीं लेकिन विश्लेषण के दौरान उन्होंने कई मौक़ों पर विषयांतर की जो कोशिश की उस से प्रतिनिधि ने यह नतीजा निकाला कि वह दल के नेताओं के पारस्परिक मतभेद से बुरी तरह विक्षुब्ध हैं. उन के अनुसार संसोपा का विशेष उद्देश्य सत्ता और कुर्सी के इर्द-गिर्द घूमने का न हो कर जनमानस में जागृति की भावना और जनतांत्रिक अनुशासन पैदा करने का होना चाहिए. उन की दृष्टि में ऊपरी तौर पर दो दलों का विलय भी व्यावहारिक धरातल पर बहुत सार्थक नहीं लगता. जन-जागृति बड़ी चीज़ है और जब तक उसे आंदोलित करने की कोशिश नहीं होती विलय का कोई मतलब नहीं है. शायद इस तरह के अनिश्चय का कारण एक प्रभावशाली नेतृत्व की कमी भी है. 'डॉ. लोहिया ने जब ग़ैर-काँग्रेसी मोर्चे की कल्पना की थी तो उद्देश्य यह था कि कुछ निश्चित कार्यक्रमों को ले कर विभिन्न दल एकमत हो कर काम करें. बाद में अलग-अलग समझौते हुए लेकिन उस उद्देश्य की सही अर्थ में पूर्ति नहीं हुई'. कुल मिला कर वर्तमान परिणामों से भी उन्हें ज़्यादा असंतोष नहीं है. उन का कहना था कि जनता ने संसोपा के जितने प्रतिनिधियों का चुनाव कर दिया उस का स्पष्ट मतलब यह है कि उस ने दल को उपेक्षित नहीं किया है. उस ने एक मौक़ा और दिया है. यदि दल के लोग अब से भी सामूहिक ढंग से जन-जागरण की चेतना का विकास करने में अपने को आगे लायेंगे तो जनता का समर्थन मिलेगा.

कर्पूरी ठाकुर, कामाख्यासिंह, हरिनाथ मिश्र, वसंत नारायणसिंह, चंद्रशेखर सिंह : ५...

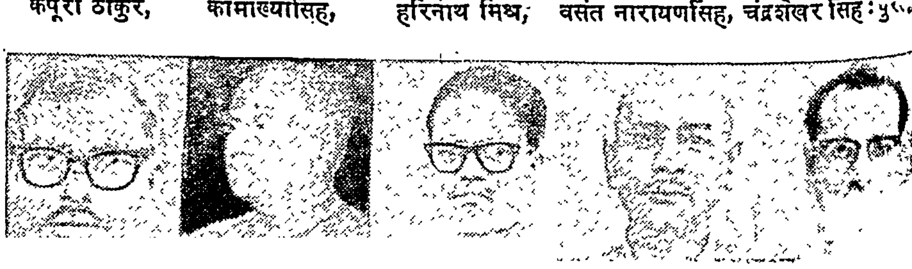

प्रसोपा और संसोपा ने लोकतांत्रिक कांग्रेस के साथ जो समझौता किया था उस के अनुसार ये दल कांग्रेस का साथ शायद ही दे पायें— विशेष कर लोकतांत्रिक कांग्रेस के श्री सुधांशु तथा अन्य नेता एक बार कांग्रेस से निकलने के बाद संभवतः उस के साथ जोड़-गाँठ बैठा पाने की मानसिक स्थिति में नहीं हैं. कामाख्या नारायण सिंह की जनता पार्टी को १४ जगहें मिली हैं. श्री सिंह के एक भाई बसंत नारायण सिंह भी चुनाव में विजयी हुए हैं. श्री सिंह का रंग बदलने वाला व्यक्तित्व शुरू से ही लोगों के लिए दिलचस्पी और विवाद का विषय रहा है. इस बात की संभावना हो सकती है कि वह दल-बदल सहित कांग्रेस का साथ देने के लिए तैयार हो जायें. हल झारखंड दल को भी १० जगहें मिली हैं. इस दल के नेताओं के बारे में भी यह कहा जा सकता है कि वे कांग्रेस से समझौता करने की मानसिक स्थिति में आ सकते हैं. लेकिन जनता और झारखंड के कांग्रेस के साथ हो जाने के बावजूद कांग्रेस के बहुमत प्राप्त करने की स्थिति नहीं पैदा हुई है. यदि कांग्रेस निर्दलियों और कुछ अन्य दलों के लोगों को भी अपनी तरफ़ आकर्षित कर पाने में सफल हो जाती है तो उस की सरकार बनेगी लेकिन जो सरकार वह बनायेगी उस का अस्तित्व हर क्षण खतरे के कगार पर खड़ा रहेगा और यह खतरा बिहार के चुनाव का सब से भयानक और दुखद पक्ष है.

बसावन सिंह, सभापति सिंह और सतीश सिंह : तिरस्कृत

पंजाब संयुक्त मोर्चे के ७० वर्षीय नेता सरदार गुरनाम सिंह ने १५ महीने बाद पुनः मुख्यमंत्री-पद की शपथ-ग्रहण की. उन के अलावा अकाली तथा जनसंघ पार्टियों से दो-दो विधायक मंत्रिमंडल में शामिल किये गये. अकाली पार्टी ने संसद्-सदस्य सोहनसिंह बस्सी और सरदार आत्मासिंह तथा जनसंघ ने विधानमंडल पार्टी के नेता रामजीदास टंडन और कृष्ण लाल को मंत्री-पद के लिए नामज़द किया. बस्सी, धर्मकोट निर्वाचन-क्षेत्र से लक्ष्मणसिंह गिल से हारे थे और आत्मासिंह मास्टर अकाली गुट के सदस्य थे. कृष्णलाल पिछले संयुक्त मोर्चे में भी श्रममंत्री थे. गुरनाम सिंह ने शपथ-ग्रहण के बाद बताया कि वह राज्य में ईमानदार प्रशासन देंगे तथा लोगों की सभी तरह की शिकायतें दूर करने का भरसक प्रयास करेंगे. वह प्रधानमंत्री से चंडीगढ़ और भाखड़ा नंगल के बारे में शीघ्र पंच-निर्णय देने का भी आग्रह करेंगे. पंजाब हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश ने बड़े ही संयत और संतुलित शब्दों में कहा कि गिल सरकार की कारगुज़ारियों का भी लेखा-जोखा किया जायेगा.

पराजित उम्मीदवार को मंत्रिमंडल में शामिल करने के फ़ैसले से अकाली पार्टी के भीतर सदस्यों में कानाफूसी शुरू हो गयी है. ज्ञानसिंह राड़ेवाला यह महसूस करने लगे हैं कि यदि पराजित बस्सी को मंत्रिमंडल में शामिल किया जा सकता था तो उन के दावे को भी दरकिनार नहीं करना चाहिए था. लेकिन यह बात तय है कि बहुत जल्द इस ५-सदस्यीय मंत्रिमंडल का विस्तार होगा, और तब अन्य अनेक दावेदारों के दावे भी सामने आयेंगे.

दिनमान ने अपने चुनाव-पूर्व सर्वेक्षण में

संघटन का संकट

मध्यावधि चुनाव से पूर्व भारतीय जनसंघ के कट्टर विरोधियों को भी यह नहीं लगता था कि जनसंघ उत्तरप्रदेश में बुरी तरह हार जायेगा. श्रीमती इंदिरा गांधी के चुनाव-प्रचार से स्पष्ट था कि वह जनसंघ को एक बहुत शक्तिशाली प्रतिद्वंद्वी समझती थीं. नगर चुनाव-परिणामों से जहाँ चुनाव पर्यवेक्षकों को आश्चर्य हुआ है वहीं भारतीय जनसंघ के कार्यकर्त्ताओं को एक आघात लगा है. इस सिलसिले में जब **दिनमान** के संवाददाता ने जनसंघ के अध्यक्ष अटलबिहारी वाजपेयी से भेंट की तो उन्होंने यह स्वीकार किया कि वास्तव में भारतीय क्रांति दल के प्रभाव को जनसंघ के कार्यकर्त्ताओं ने महसूस नहीं किया था और खतरे को महसूस न करने के कारण ही परिणाम आशाओं के विपरीत निकला "मगर मुझे चुनाव से पहले ही वास्तविक स्थिति का अंदाज़ा लग गया था. उत्तरप्रदेश के दौरे के तुरंत बाद मैंने दिल्ली में भारतीय क्रांति दल और चौधरी चरण सिंह के चुनाव-प्रचार की निंदा की क्यों कि वह संपूर्ण प्रदेश में जातीयता के आधार पर एक अस्वस्थ वातावरण पैदा कर रहे थे. मगर उस समय बहुत कम वक़्त बच रहा था और हम वातावरण को बदल नहीं पाये." वाजपेयी जी के अनुसार भारतीय क्रांति दल ने जनसंघ को दो ओर से काटा. चौधरी चरणसिंह ने पिछड़े वर्गों में यह भय पैदा कर दिया था कि यदि जनसंघ के हाथ में सत्ता आ गयी तो प्रदेश में सवर्णों का राज हो जायेगा. इस लिए इस तथाकथित 'ब्राह्मण-ठाकुर वर्ग' के विरुद्ध निम्न जातियों को इकट्ठा होना चाहिए. यही भय कांग्रेस और भारतीय क्रांति दल ने मिल कर मुसलमानों के मन में भी पैदा कर दिया. "इस में हमारा भी कुछ योगदान है. हमने यह घोषणा कर रखी थी कि जनसंघ इस बार उत्तरप्रदेश में अकेले सरकार बनायेगा. 'इस से मुसलमानों के मन में यह आशंका पैदा हो गयी कि उन के हितों को जनसंघ राज्य में क्षति पहुँचेगी." जब उन से यह पूछा गया कि भारतीय जनसंघ ने समझौतों द्वारा अपनी शक्ति को कुछ ऐसे क्षेत्रों में केंद्रित करने की कोशिश क्यों नहीं की जहाँ कि उस का अधिक प्रभाव था तो उन्होंने उत्तर दिया कि ऐसा करने से भी अधिक सफलता की आशा नहीं थी क्यों कि यदि जनसंघ संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी से समझौता करता तो उस से 'हमें उस दल के समर्थक मतदाताओं के मत प्राप्त नहीं हो सकते थे क्यों कि इस वर्ग में जनसंघ के प्रति एक बहुत ही तीव्र दुर्भावना पैदा की गयी है.' साथ ही कुछ नीति संबंधी मतभेद के कारण ऐसा संभव नहीं हो सका. "हम तुरंत सत्ता पर अधिकार करने के लिए अपनी नीतियों को कैसे छोड़ सकते हैं ?"

एकता का मूल्य : जनसंघ-अध्यक्ष के अनुसार बिहार में जनसंघ को अधिक स्थान मिलने की आशा तो थी मगर जितने स्थान मिले हैं उस से कोई निराशा या आश्चर्य उन्हें नहीं हुआ है क्यों कि 'बिहार में हम संगठनात्मक रूप से कमज़ोर थे. हमारे पक्ष में जो जन-भावना बन गयी थी उस का हम पूरा लाभ नहीं उठा सके." उत्तरप्रदेश और बिहार में विरोधी दल के रूप में जनसंघ ऐसे विषयों पर अपनी आवाज़ उठायेगा जिन का संबंध सामान्य जनता से है. इस सिलसिले में वाजपेयी ने कहा कि कुछ समय बाद ही जनसंघ हरिजनों और पिछड़े वर्गों के पक्ष में एक देश-व्यापी अभियान आरंभ करने जा रहा है. **दिनमान** के संवाददाता ने उन का ध्यान पंजाब के चुनाव परिणामों की ओर दिलाया तो उन्होंने कहा "हम एक स्थान ज़रूर हारे हैं मगर हमें उस का कोई अफ़सोस नहीं क्यों कि हिंदू-सिख एकता को स्थापित करने के लिए हमें इस हानि की आशंका पहले से थी. इस बात का हमें बिलकुल भी खेद नहीं कि पंजाब की सांप्रदायिक एकता के स्वस्थ सिद्धांत का हमने मूल्य चुकाया है. इस लिए पंजाब के संबंध में अपनी नीतियों को बदलने की हमें कतई ज़रूरत नहीं है." भारतीय जनसंघ की संसदीय समिति ने पंजाब प्रदेश जनसंघ को अकाली दल के साथ मिल कर सरकार बनाने का आदेश दे दिया है.

हरचरण सिंह बराड़, सत्यपाल डांग, बलवंत सिंह, रामजीदास टंडन और लक्ष्मणसिंह गिल : खरे सरे आम
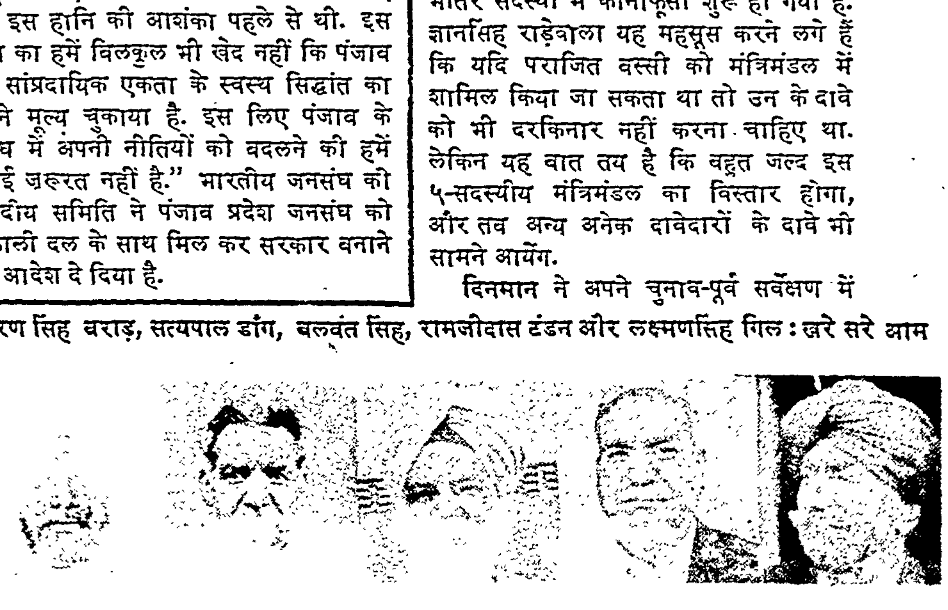

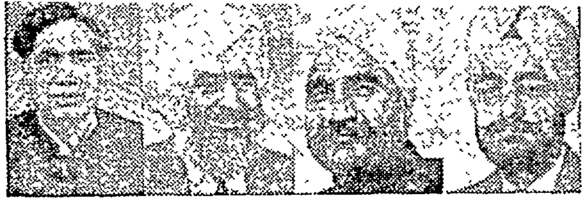

बलदेव प्रकाश जगजीत सिंह, दरबारा सिंह, ज्ञानसिंह राड़ेवाला : मारे गये गुलफ़ाम

इस बात का संकेत किया था कि पंजाब की मौजूदा राजनैतिक स्थितियों को देखते हुए यह बात लगभग तय है कि मध्यावधि चुनाव में संयुक्त मोर्चे की स्थिति कांग्रेस से सुदृढ़ होगी. पिछले दिनों विधानसभा के १०३ स्थानों के जो चुनाव-परिणाम सामने आये उस में अकाली-जनसंघ मोर्चे की ५१ (अकाली ४३ और जनसंघ ८), कम्युनिस्ट पार्टी ३, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट २, संसपा २, स्वतंत्र १, प्रसपा १, जनता पार्टी १ और निर्दल ४ स्थान प्राप्त हुए. बनूड़ से अकाली-समर्थन पर निर्वाचित एक निर्दल उम्मीदवार बलबीर सिंह के अकाली दल में शामिल हो जाने से इस दल की सदस्य-संख्या४४ हो गयी है. एक दूसरे निर्दल उम्मीदवार दरबारा सिंह ने भी संयुक्त मोर्चे के साथ बने रहने का विश्वास दिलाया है. तीसरे निर्दल सदस्य बेअंत सिंह, जिन्होंने भूतपूर्व कांग्रेसी मगर अकाली पार्टी के नेता ज्ञानसिंह राड़ेवाला को कांग्रेस और कम्युनिस्टों के सहयोग से हराया है, अकाली दल के नेता सरदार गुरनाम सिंह के क़रीबी रिश्तेदार हैं. लिहाजा इस बात की आशा व्यक्त की जा रही है कि वह संयुक्त मोर्चे का समर्थन करेंगे. यद्यपि अभी उन्होंने 'शुद्ध निर्दल' बने रहने की घोषणा की है. लेकिन अकाली नेता गुरनाम सिंह ने यह बात जग-ज़ाहिर कर दी है कि वह भूतपूर्व मुख्यमंत्री लक्ष्मणसिंह गिल और उन की सरकार के ही एक भूतपूर्व मंत्री राजा नरेंद्रसिंह को किसी भी हालत में संयुक्त मोर्चे में शामिल नहीं करेंगे. जनता पार्टी के १४ उम्मीदवारों में केवल उस के संस्थापक लक्ष्मणसिंह गिल ही निर्वाचित हुए हैं और उन के १९ दल-बदलू मंत्रियों में उन के अलावा केवल राजा नरेंद्रसिंह ही निर्वाचित हो सके हैं. स्वतंत्र पार्टी के बसंतसिंह भी संयुक्त मोर्चे के समर्थक हैं और संसपा और प्रसपा का समर्थन भी संयुक्त मोर्चे के पक्ष में ही होगा. जहाँ तक कम्युनिस्ट पार्टियों का सवाल है. वह संयुक्त मोर्चा सरकार में फ़िलहाल शामिल होने को ख्वाहिशमंद नहीं हैं, लेकिन उन्होंने यह घोषणा ज़रूर की है कि वे सरकार के फ़ैसलों का समर्थन या विरोध विशेष स्थितियों को ध्यान में रख कर के करेंगे. रिपब्लिकन पार्टी, प्रजत तथा लेबर पार्टी के कोई भी उम्मीदवार सफल नहीं हो सके. कांग्रेस के १०३ में ३८, अकाली दल के ६५ में ४३, जनसंघ के ३० में ८, कम्युनिस्ट के २८ में २, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट के १० में २, संसपा के ७ में २, स्वतंत्र के ६ में एक, प्रसपा के ३ में १ जनता के १४ में से एक सदस्य निर्वाचित हुए हैं. कांग्रेस को १९६७ में ३७.४६ प्रतिशत मत मिले थे जो बढ़कर ३९.२८प्रतिशत हो गये. अकाली दल के मत २४.६९ से बढ़ कर २९.५९ प्रतिशत हुए जब कि जनसंघ के ७.८५ से घट कर ८.८४ प्रतिशत, कम्युनिस्ट को ५.१६ से घट कर ४.५४ और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट को ३.२६ से घट कर ३.१० रह गये हैं. इस मध्यावधि चुनाव में ४३ भूतपूर्व मंत्रियों में ३० भूतपूर्व मंत्री पराजित हुए हैं जिन में मुख्य डॉ० बलदेव प्रकाश (जनसंघ), दरबारा सिंह, मोहनलाल, बृषभान, प्रबोधचंद्र, कपूरसिंह, प्रेम सिंह प्रेम और निरंजन सिंह तालिब (सभी कांग्रेस) ज्ञानसिंह राड़ेवाला (अकाली), जनरल राजेंद्रसिंह स्पैरो (निर्दल) और डॉ० जगजीत सिंह (जनता) हैं. नयी विधानसभा में केवल ३० पुराने चेहरे नज़र आयेंगे जब कि ७७ पुराने विधायकों ने चुनाव लड़ा था. पिछले दस साल से कांग्रेस की स्थिति गिर रही है. १९६२ में ८७ के स्थान पर उस के ५० विधायक थे, १९६७ में १०४ में ४८ और अब केवल ३८.

गुरनाम सिंह : गुणनाम सिंह

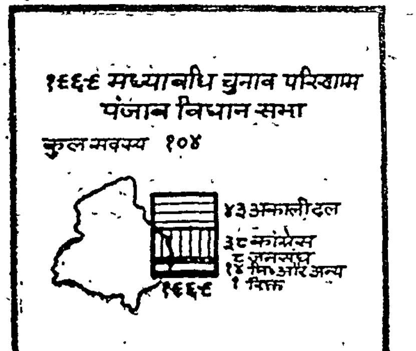

आशा के विपरीत उत्तरप्रदेश में मतदाताओं ने राजनीति के पर्यवेक्षकों के सारे अनुमान ग़लत कर दिये. कांग्रेस के आधे दर्जन से ज्यादा महत्त्वपूर्ण नेता चुनाव हार गये लेकिन संख्या की दृष्टि से कांग्रेस को ४२० सीटों में से २०८ मिल गयीं. अभी पर्वतीय क्षेत्र की ५ जगहों का चुनाव बाक़ी है. पिछले आम चुनाव की तुलना में इस चुनाव में उस की स्थिति अच्छी रही. हालाँकि स्पष्ट बहुमत के लिए ५ जगहों की और आवश्यकता है लेकिन वह बहुमत स्थापित करने में उसे व्यावहारिक धरातल पर कोई कठिनाई नहीं होगी. पूरे चुनाव में राष्ट्रीय दलों की ही अधिक क्षति हुई है. संसोपा का ४४ में ३३, कम्युनिस्ट का १४ में ४, स्वतंत्र का १२ में ५, प्रसोपा का ११ में ३ और रिपब्लिकन का ९ में १ जगह पाना इस का प्रमाण है कि इन सभी की शक्ति विघटित हुई है. पूरे-के-पूरे चुनाव की हवा ही राष्ट्रीय क्षितिज से हट कर प्रांतीय स्तर पर बहने लगी जिस में मतदाता ने यदि एक प्रांत में एक दल का पत्ता साफ़ किया तो दूसरे प्रांत में उसी का हाथ पकड़ा.

उत्तरप्रदेश में मध्यावधि चुनाव की विशिष्ट उपलब्धि है एक नये संघर्षरत राजनैतिक संयंत्र का जन्म और कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य पुराने राजनैतिक दलों का ह्रास. नये राजनैतिक संयंत्र के जन्मदाता चौधरी चरणसिंह का व्यक्तित्व विवादास्पद हो गया है. कांग्रेस नेताओं ने उन पर राजनैतिक धोखेबाज़ी का आरोप लगा कर उन को लांछित करने का जो प्रयास मध्यावधि निर्वाचन से पहले किया था वह परिणामों के घोषित होने के बाद हास्यास्पद हो गया है. चरणसिंह ने दल बदल कर संविद सरकार का नेतृत्व कर के कोई अनोखी बात नहीं की थी, उन से पहले विरोधी दल के अनेक सदस्य दल बदल कर कांग्रेस मंत्री बन चुके थे. चरणसिंह ने कांग्रेस द्वारा चलाये जाने वाले इस बीस बरस पुराने राजनैतिक चक्र को उल्टा घुमा कर साधारण मंत्रिपद की बजाय मुख्यमंत्री पद पर कब्ज़ा कर कांग्रेस को ही अपदस्थ कर दिया था. मध्यावधि चुनाव में उन को तथा उन के द्वारा अनुप्राणित भारतीय क्रांति दल को आशातीत सफलता दे कर जनमत ने उन पर जो विश्वास प्रकट किया है उस से वह पुराना संदिग्ध लांछन भी पूर्ण रूप से धुल गया है. जन-विश्वास प्राप्त चरणसिंह अब एक ९८ सदस्यीय विशिष्ट राजनैतिक दल के समर्थ नेता हैं और उन के अस्तित्व को भुला कर चलायी जाने वाली राजनीति प्रदेश को एक अंधे मार्ग पर ही ले जा सकती है. इस भावी राजनैतिक दुर्भाग्य से प्रदेश तभी बच सकता है जब प्रदेशीय कांग्रेस का नेतृत्व यथार्थ को स्वीकार कर के अपने भावी कार्यक्रम निश्चित करे. अभाग्यवश अभी तक ऐसे कोई संकेत नहीं हैं जिस से प्रकट हो कि केंद्रीय अथवा प्रदेशीय कांग्रेस नेतृत्व वस्तु-

स्थिति को समझ कर प्रदेश की भावी राजनीति की गतिविधि को सही दिशा देने का प्रयास करेगा. अब तक घोषित चार सौ बीस परिणामों में दो सौ आठ (वस्तुतः दो सौ सात) सदस्यीय कांग्रेस दल के अभी तक अनौपचारिक नेता चंद्रमानु गुप्त भारतीय क्रांति दल को दल बदलुओं की पार्टी कह कर न केवल स्वयं अदूरदर्शी राजनीतिक के रूप में जनता के सामने आ रहे हैं वरन् स्पष्ट रूप से जनमत का मखौल भी उड़ा रहे हैं. वह जिस व्यक्तिगत वैमनस्य के कारण चरणसिंह से दूर रहना चाहते हैं उस का यथार्थपरक राजनीति में कोई स्थान नहीं है. पिछले दो दशकों से भी अधिक समय से चलने वाले स्वार्थ साधन चक्र में फँस कर प्रदेश की सिद्धांतहीन सिद्धांतवादी राजनीति अब दिगंबर हो कर जनता के सामने आ गयी है और सामर्थ्य तथा साधन ही वह दो पहिये हैं जिस पर वह आगे बढ़ सकेगी.

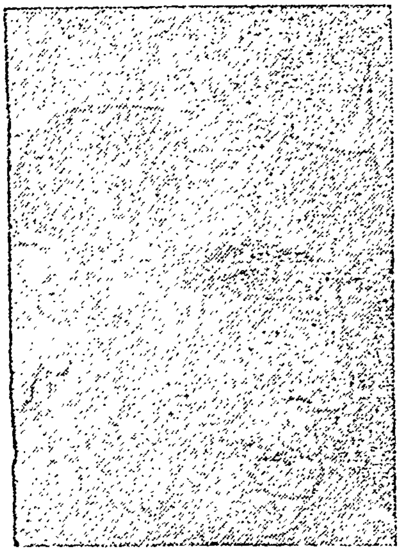

चरणसिंह : वरणसिंह

मध्यावधि निर्वाचन से पहले इन दोनों पर केवल कांग्रेसी नेता चंद्रभानु गुप्त सवार रहते थे और प्रदेश की राजनीति उन के दिशा-निर्देश का पालन करती थी. मध्यावधि से पहले चरण सिंह ने भी सामर्थ्य और साधन दोनों ही अश्वों को अपनी लगाम दे कर अपने राजनीतिक रथ को कुशलतापूर्वक हांक कर दो वर्ष से कम समय में चंद्रभानु गुप्त की बीस वर्ष लंबी दौड़ की आधी मंज़िल तय कर ली है. यदि दोनों को एक दौड़ और दौड़नी पड़ी तो यह कहना कठिन है कि कौन बाज़ी मार ले जायेगा. चंद्रभानु गुप्त की साठवीं वर्षगांठ के शुभ अवसर पर जो पैंतालीस लाख रुपया एकत्र हुआ था, उस के संकलन में उन के दल के सभी प्रभावशाली सत्ताधारी राजनीतिकों तथा उद्योगपतियों ने अपनी पूरी शक्ति लगायी थी. इसी रुपये के बल पर उन्होंने चौथा आम चुनाव लड़ा था. मध्यावधि के लिए वह और उन के साथी इतना धन संग्रह नहीं कर पाये थे और चुनाव के परिणामों के घोषित होने के बाद चंद्रभानु गुप्त ने अपनी इस लाचारी का उल्लेख करते हुए कहा भी है कि अगले चुनाव में न तो वह भाग लेंगे न धन संग्रह ही कर सकेंगे और अब नये युवक कांग्रेसजनों को वह उत्तरदायित्व सँभालना चाहिए. अपनी इस विवशता का परिचय देते हुए उन्होंने जनता जनार्दन की भी इस लिए भर्त्सना की है कि उस ने किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं दिया और इस कारण उसे फिर कष्ट उठाना चाहिए. उन की यह उक्ति उस परीक्षार्थी की निराशा को व्यक्त करती है जो परीक्षक द्वारा द्वितीय श्रेणी के योग्य समझा गया हो और जो यह शिकायत करे कि उसे प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण क्यों नहीं किया गया. वस्तुतः जनमत ने जो निर्देश दिया है वह स्पष्ट है. उस ने चरण सिंह के नेतृत्व में जिन पुराने कांग्रेसी, जनसंघी तथा संसोपाई विधायकों को अपना विश्वास दिया है (और जिन की संख्या सैंतालीस थी) उन से मिल कर कांग्रेस एक सबल और स्थायी सरकार बना सकती है क्यों कि भारतीय क्रांति दल की रीति-नीति का कहीं कांग्रेस की रीति-नीति से विरोध नहीं हैं. चरणसिंह ने केवल यह दावा किया था कि यदि वह सरकार बना सकेंगे तो वह सब से पहले भ्रष्टाचार का उन्मूलन करेंगे और प्रदेश में फैली हुई अराजकता के विरुद्ध सशक्त क़दम उठायेंगे तथा प्रदेश में ईमानदारी और मेहनत के काम का वातावरण बनायेंगे. इन बातों से किसी को विरोध नहीं हो सकता. इस के अतिरिक्त यदि उन से प्रदेशीय कांग्रेस नेतृत्व को कोई शिकायत है तो वह केवल यह है कि उन्होंने इतनी अधिक सफलता कैसे प्राप्त की और कैसे पुराने कांग्रेसी नेतृत्व के समकक्ष पहुँच गये. जब **दिनमान** ने उन से लखनऊ में बात की तो उन्हें आत्मविश्वास से परिपूर्ण पाया. उन्होंने कहा कि वह विरोधी पक्ष में बैठने को तत्पर हैं क्यों कि जो जनमत का फ़ैसला है उस का कोई विकल्प नहीं है और वह पुरानी संविद ऐसी सरकार बनाने के पक्ष में नहीं हैं. जब **दिनमान** ने उन का ध्यान जन-निर्देश की यथार्थता की ओर आकर्षित किया तो उन्होंने स्वीकार किया कि जन-निर्देश के अनुसार कांग्रेस और भारतीय क्रांति दल की सरकार बननी चाहिए. **दिनमान** के फिर प्रश्न करने पर उन्होंने कहा कि जो वस्तुस्थिति जनमत के प्रकाश में आने के बाद सामने आयी है उस से यह स्पष्ट है कि इस मामले में पहल कांग्रेस की ओर से होनी चाहिए. **दिनमान** का ऐसा विश्वास है कि जो बातें उन्होंने इस से कही हैं उस का संकेत प्रदेशीय कांग्रेस नेतृत्व तक भी पहुँच चुका है फिर भी यदि एक प्रबल विश्वसनीय साथी को दरगुज़र कर चंद्रभानु गुप्त अविश्वसनीय और निर्बल निर्दलीय विधायकों को उन की क़ीमत दे कर कांग्रेस की एक दलीय निर्बल सरकार बनाना चाहते हैं

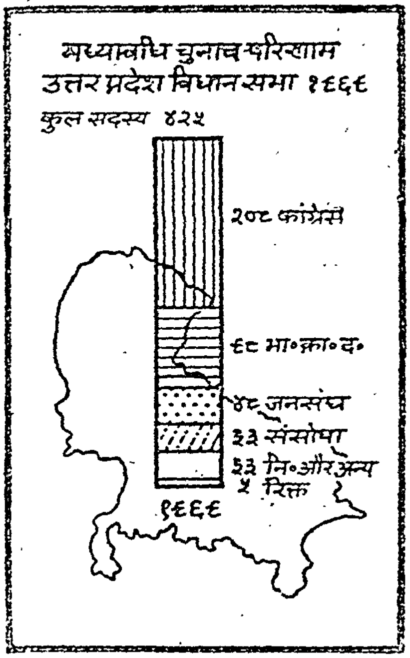

तो यह उन की राजनीतिक बुद्धि का परिचायक होगा. यों अपने दल की शक्ति के अनुसार उन्हें यह अधिकार है कि वह अपनी राजनीतिक अभिरुचि के अनुसार हिंदू राष्ट्रवादी जनसंघ के साथ सरकार बना कर कांग्रेस द्वारा उन शक्तियों को प्रबल करें अथवा संसोपा के साथ मिल कर देश में समाजवादी धारा को बल दें अथवा भारतीय क्रांतिदल में अपनी ही भांति सम्मिलित सभी प्रकार की विचारधाराओं के साथ सरकार बना कर अपनी ही नीतियों का प्रक्षालन करें. वह जो कुछ भी करें पर इस में संदेह नहीं कि यह उन के सामने संभावनाओं से भरा एक ऐसा अवसर है जिस में वह प्रादेशिक कांग्रेस को और भी कमज़ोर कर सकते हैं अथवा उसे हिंदू राष्ट्रवादी या समाजवादी या फिर शुद्ध कांग्रेसी दृष्टि दे सकते हैं. वह क्या करेंगे यह उन की राजनीतिक बुद्धि अथवा प्रदेश या कांग्रेस के भाग्य पर निर्भर है.

कमलापति त्रिपाठी : पुनर्प्रतिष्ठित

फूलपुर चुनाव-क्षेत्र

संसदीय उपचुनाव में फूलपुर क्षेत्र से संयुक्त समाजवादी जनेश्वर मिश्र की विजय कांग्रेस के प्रति जनता के मोह-भंग का एक और ज्वलंत उदाहरण है. पंजाब में होशियारपुर चुनाव-क्षेत्र की भी सीट कांग्रेस को नहीं मिली. वहाँ से जनसंघ के मेजर जनरल जयसिंह निर्वाचित हुए हैं. इन दोनों जगहों में कम से कम एक समानता अवश्य है कि दोनों में ही कांग्रेस को मुँह की खानी पड़ी.

इलाहाबाद के फूलपुर चुनाव-क्षेत्र की जनता ने पहली बार ग़ैर-कांग्रेसी व्यक्ति के गले में विजय-माला डाली है. ऐसा नहीं कि नेहरू निर्विरोध चुन लिये जाते थे—एक बार प्रभुदत्त ब्रह्मचारी ने उन्हें चुनौती दी थी और दूसरी बार स्व० लोहिया ने. जब श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित विजयी हुई थीं तब जनेश्वर मिश्र ने उन का विरोध किया था. वह कोई ३६ हजार मतों से पराजित हुए थे. पर इस बार समाँ कुछ और ही था. नेहरू का जादू उड़ चुका था और जनेश्वर के विकल्प के रूप में ऐसा व्यक्ति था जिस का वामपंथी मार्का कांग्रेसी समाजवाद बहुत पहले तिरस्कृत हो चुका है. केशवदेव मालवीय, जो मंत्रिपद से हटने के बाद काफ़ी समय तक इधर-उधर भटक चुके थे, राँची के इंजीनियरी प्रतिष्ठान के अध्यक्ष के रूप में प्रतिष्ठित कर दिये गये थे. कांग्रेस ने उन्हें शायद इसी लिए खड़ा किया था कि संयुक्त समाजवादी उम्मीदवार के जोड़ में कांग्रेसी समाजवाद का प्रतीक सामने कर दिया जाये. लेकिन फूलपुर की जनता ने बता दिया कि वह क्या चाहती है. परिणामस्वरूप जनेश्वर मिश्र को ८३२५५ वोट मिले, जब कि केशवदेव मालवीय को केवल ६१५५०. यों तो मैदान में आठ उम्मीदवार थे. इस संसदीय चुनाव-क्षेत्र से विधानसभा की पाँच सीटों का भी चुनाव हुआ—इस बार इन में से चार संसपा को मिलीं और केवल एक कांग्रेस को.

जनेश्वर मिश्र : ३६ वर्षीय युवजन जनेश्वर मिश्र ने, जो इस क्षेत्र में 'छोटे लोहिया' के नाम से जाने जाते हैं, अपनी विजय से संसपा की वह क्षति एक सीमा तक पूरी कर दी है जो उत्तरप्रदेश में उसे उठानी पड़ी है. कर्मठ राजनैतिक कार्यकर्त्ता के रूप में परिचित और बलिया निवासी किसान के घर में जन्मा यह 'युवक' दसियों बार जेल जा चुका है. प्रयाग विश्वविद्यालय के स्नातक (बी. ए. और एल. एल. बी.) जनेश्वर १९६७ में अखिल भारतीय संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त मंत्री के रूप में चुने गये थे. ११ फ़रवरी को दस बजे रात चुनाव की घोषणा के बाद प्रातः २ बजे तक लगभग बीस हजार जनता का जुलूस इलाहाबाद की सड़कों पर जनेश्वर मिश्र को ले कर घूमता रहा. चुनाव की घोषणा को सुनने के लिए जनेश्वर के समर्थकों में भूतपूर्व हाईकोर्ट के जज और राज्यसभा के वृद्ध सदस्य प्रकाशनारायण सप्रू और प्रो० के. के. भट्टाचार्य भी थे. जनेश्वर मिश्र ने जब अपने सरल स्नेह ज्ञापन में आशीर्वाद माँगा तो दोनों की आँखें भर आयीं.

दिनमान के प्रतिनिधि से एक भेंट में जनेश्वर मिश्र ने संसद् की राजनीति के बारे में बताया : "हम तो संसद् का इस्तेमाल केवल एक काम के लिए करेंगे और वह है जनता के मन को उभारने के लिए. पिछले बीस साल के कांग्रेस राज्य में आदमी की बात की क़दर या मान्यता उस आदमी के रुतबे से अधिक संबद्ध रही है. इस हालत में मेरी संसद् की सदस्यता केवल मेरी बात को अधिक प्रामाणिक बनाने के सिवा और कुछ नहीं करेगी, क्यों कि लोकसभा में इतनी औपचारिकता है कि उस के माध्यम से कोई भी बड़ी क्रांति संभव नहीं है. संसद के भीतर भी मैं जनता की आवाज ही बुलंद करूँगा.

तो बड़ी क्रांति क्या संसद् से पृथक हो कर विकसित होगी ?

"मैंने कहा कि संसद् की औपचारिकताओं में जो जकड़ जायेगा वह न तो बाहर बड़ी क्रांति का वाहक हो सकेगा और न संसद् के भीतर उस क्रांति को ही मुखरित कर सकेगा. लेकिन जो संसद् को एक माध्यम के रूप में इस्तेमाल करेगा वह बाहर और भीतर दोनों को एक दूसरे का पूरक बनाने में सहायक होगा. इसी लिए मैंने संसद् को उस का माध्यम माना है. औपचारिकता का अत्यधिक जल संसद् को दर्पण-रूप न दे कर उसे धुँधला बना देता है. इस परंपरा को तोड़ना पड़ेगा. औपचारिकता के माध्यम से बाहर की उभरती क्रांति को दबाने की चेष्टा अब तक की जाती रही है. अब यह रुख बदलना पड़ेगा और संसद् को बाहर की क्रांति का प्रतिबिंब बनाना पड़ेगा."

डॉ० लोहिया कहा करते थे कि दिल्ली बड़ी ख़तरनाक है. वह बड़ों-बड़ों को भी खा जाती है. क्या आप इस से सहमत हैं ?

"मैं इस से पूर्णतया सहमत हूँ लेकिन इसे रोकने के लिए जरूरी है कि संसद् के सदस्यों का ठाठ-बाठ कम हो. मैं तो तीसरे दर्जे की बर्थ का पास लेना अधिक पसंद करूँगा. इधर संसद् सदस्यों की तनख्वाह और आराम की माँग तेज हो रही है. इस का मैं विरोध करूँगा. भारतीय जनता की प्रतिनिधि संसद् तभी हो सकती है जब वह सामान्य भारतीय के जीवन को प्रतिबिंबित कर सके.

इधर संसद् की कार्रवाई में कुछ विशेष रंग नहीं दीखता. संसद् को अधिक प्रभावशाली कैसे बनाया जा सकता है ?

"यह पार्लियामेंट अधिक प्रभावशाली हो सकती है अगर नयी उमर के लोग अधिक से अधिक संख्या में वोट देने के अधिकारी हों. ६७ के चुनाव के बाद जो देश की राजनीति में उथल-पुथल दिखाई देती है उस का एक कारण यह है कि १५ अगस्त '४७ के बाद जन्मा बच्चा पहली बार मतदाता हुआ है."

तो क्या आप इस बात से सहमत हैं कि वर्त्तमान संविधान को संशोधित कर के २१ वर्ष की आयु में मत देने के अधिकार को बदल कर १८ वर्ष कर दिया जाये ?

"हमें संविधान में इस आशय का परिवर्त्तन लाना चाहिए कि मतदाता की कम से कम आयु २१ वर्ष की अपेक्षा १८ साल कर दी जाये. ताकि देश का युवजन अपना घर बनाने के बारे में खुद नियम और क़ानून बनाने का हक़दार हो सके. इस समय देश की प्रगति में बाधा इस लिए भी है कि नयी पीढ़ी के रहने का घर, समाज, देश, उस के पुरखे अपने मत से बनाते हैं."

आप ने युवजन आंदोलन का नेतृत्व किया है. संसद् में पहुँच कर आप वह कौन से क़ानून लागू करेंगे जिस से देश का युवजन भी आप को अपना प्रतिनिधि मान सके.

"जैसा मैं ने कहा, पहले तो मैं मतदाता की उमर २१ वर्ष से १८ वर्ष के संशोधन को लाने की कोशिश करूँगा. अगर १८ साल वाली बात मान ली गयी तो इस से देश की राजनीति में बहुत बड़ा परिवर्त्तन आ जायेगा. मेरा दूसरा प्रस्ताव यह होगा कि देश के किसी भी मतदाता को जो देश का असली मालिक है बेकारी का शिकार न होने दिया जाये. अनिवार्यतः १८ साल के ऊपर के लोगों को सरकार काम दे. ऐसी योजनाएँ चलाये जिस से देश का बहुत बड़ा वर्ग जो आज केवल बेकार रहता है और देश के उत्पादन में भाग नहीं लेता वह सक्रिय हो. उस की बेकारी खत्म हो. जिस देश का युवक वर्ग बेकार रखा जायेगा उस का विकास असंभव है.

फूलपुर में कौन सा काम करेंगे जिस से जनता को लगे कि उस का दाय और कर्त्तव्य बदल गया है ?

"फूलपुर की जनता को पिछले बीस वर्षों से अंधकार में रखा गया है. इस क्षेत्र में कोई विकास का ठोस क़दम नहीं उठाया गया है. इस क्षेत्र में ऐसे भी इलाक़े हैं जहाँ पीने के पानी के लिए भी कुएँ नहीं हैं. (वहाँ पर मौजूद हँडिया क्षेत्र के विधानसभा के नव-निर्वाचित सदस्य श्री राजित राम पांडेय ने बताया कि बड़ौली से ले कर टेला तक का इलाक़ा ऐसा है जहाँ सिवा नदी से पानी ले कर पीने के और कोई साधन नहीं है) सरकार बिड़ला को तीन पैसा यूनिट बिजली देती है और सामान्य जनता को चौबीस पैसे यूनिट. इस प्रकार की अनेक समस्याएँ हैं. इस प्रकार के अन्यायों के विरुद्ध एक व्यापक जन-आंदोलन जरूरी है. इस का विरोध ही नया जागरण लायेगा."

प्रदेश

नगालैंड

शांतिवादियों की जीत

नगालैंड के शासक दल (नगा नेशनल ऑर्गेनाइज़ेशन) ने निर्णायक बहुमत प्राप्त कर के यह सिद्ध कर दिया है कि इस सीमा-प्रांत में साधारण जनता हिंसात्मक मार्गों की अपेक्षा प्रजातांत्रिक पद्धति को अधिक पसंद करती है. फ़िज़ो के समर्थकों और उग्रपंथी गुप्त नगाओं ने यह प्रचार कर रखा था कि निर्वाचन में भाग लेना नगाओं के हित में नहीं है, इस लिए उन का बहिष्कार किया जाना चाहिए. मगर मतदान का जो रुख रहा है उस से यह सिद्ध होता है कि नगाओं ने इस प्रचार के प्रति विशेष रुचि नहीं दिखायी, क्यों कि अन्य प्रदेशों की अपेक्षा नगालैंड में मतदान का प्रतिशत काफ़ी अधिक रहा. इस से एक और बात भी सिद्ध हो गयी, कि इस पिछड़े हुए पहाड़ी इलाक़े में भी लोग व्यक्ति की योग्यता और पिछले अनुभव के आधार पर ही चयन करते हैं. उदाहरण के लिए उन्होंने भूतपूर्व मुख्यमंत्री शिलू आओ को समर्थन नहीं दिया, जब कि वर्तमान मुख्यमंत्री अंगामी को भारी बहुमत से विजय प्राप्त हुई. उन्होंने आत्मनिर्वासित नगा नेता फ़िज़ो की भतीजी रानो साइज़ को एक हज़ार मतों से पराजित किया, जब कि कुल २८६८ मत पड़े थे. इस से कुछ लोग यह अनुमान लगाने लगे हैं कि नगालैंड में फ़िज़ो के नाम पर मत प्राप्त करना अब संभव नहीं रहा है. मगर इतनी जल्दी किसी निष्कर्ष पर पहुँचना उचित नहीं दिखाई देता, क्यों कि फ़िज़ो के ही एक निकट संबंधी वाम्ज़ो ने वर्तमान सरकार के पशु-पालनमंत्री डेमो को पराजित किया है. वास्तविक स्थिति यह है कि अब न तो फ़िज़ो के नाम में उतना आकर्षण है और न ही फ़िज़ोवादियों का संगठन अब पहले जैसा दृढ़ है. मगर ऐसे नगाओं में जहाँ ईसाइयों का प्रचार अब भी चल रहा है फ़िज़ो का नाम प्रभावहीन नहीं हो गया है.

नगालैंड विधानसभा में कुल ५२ सदस्य होते हैं, जिन में केवल ४० का सार्वजनिक रूप से निर्वाचन होता है. शेष १२ सदस्यों को ह्वेनसांग क्षेत्रीय परिषद् द्वारा मनोनीत किया जाता है और मनोनीत होने के बाद वे उसी दल का समर्थन करते हैं जिस की सरकार बन जाती है. इस लिए ४० निर्वाचित सदस्यों में ही बहुमत का निर्णय किया जाता है. ३८ स्थानों के परिणाम घोषित हो चुके हैं, जिन में नगा नेशनल ऑर्गेनाइज़ेशन को २१ स्थान प्राप्त हुए हैं. इस लिए यह आशा की जाती है कि वर्तमान मुख्यमंत्री अंगामी पुनः नगालैंड के मुख्यमंत्री बन जायेंगे. यद्यपि शासक-वर्ग को चुनाव में काफ़ी सफलता प्राप्त हुई है फिर भी कुछ महत्त्वपूर्ण नेता चुनाव में पराजित हो गये हैं. पी. डेमो की पराजय के अतिरिक्त विद्युत-शक्ति के उपमंत्री को भी नगा युनाइटेड फ़्रंट के हाथों शिकस्त खानी पड़ी. इस के अतिरिक्त भूतपूर्व विधानसभा के १५ सदस्यों को भी पराजय का मुँह देखना पड़ा. इस बार नगालैंड में केवल दो महिलाओं ने चुनाव लड़ा था, जिन में एक तो पराजित हो गयी हैं, किंतु एक कुमारी आर. सी. किंगेन स्वतंत्र प्रत्याशी के रूप में सफल हो गयी हैं. बंडारी चुनाव-क्षेत्र से निर्वाचित यह स्त्री एक साधारण अध्यापिका है. देश के अन्य प्रदेशों की भाँति नगालैंड में भी कुछ निकट संबंधी विरोधी दलों की ओर से चुनाव लड़ रहे थे. इन में भूतपूर्व डिप्टी कमिश्नर पी. ह्राली ने अपने ही एक संबंधी कीलू को ३०० मतों से पराजित किया. इस चुनाव की सब से महत्त्वपूर्ण बात यह रही है कि कई क्षेत्रों में वर्तमान शासक-वर्ग को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई. ऐसे क्षेत्रों में वनों से घिरे हुए वे इलाक़े भी शामिल हैं जहाँ विद्रोही नगाओं ने अपने अड्डे बना रखे थे. ऐसा लगता है कि नगालैंड में अब उग्रपंथी नगाओं का ज़ोर कम हो गया है और पृथकतावादी भावनाएँ ठंडी पड़ गयी हैं.

हरयाणा

नयी चाल

हरयाणा विधानसभा का अधिवेशन, जो २८ जनवरी से ले कर १० फ़रवरी तक बुलाया गया था, अचानक बढ़ा दिये जाने से प्रतिपक्ष के सभी दाँव उस की थैली में ही धरे रह गये और वह सिवाय सरकार का खुल कर विरोध करने के और कुछ न कर सका. लेकिन उन का वह विरोध भी बेअसर साबित हुआ. प्रतिपक्ष के इस बेअसर विरोध के बाद सरकार ने सदन में १९६९-७० का बजट पेश कर प्रतिपक्ष को एक बार फिर आश्चर्यचकित कर दिया. इस बार प्रतिपक्षी सदस्य अपनी नाखुशी का इज़हार करने की गरज़ से सदन त्यागने के अतिरिक्त और कुछ न कर पाये. राजनैतिक तौर पर अपरिपक्व समझे जाने वाले बंसीलाल जोड़-तोड़ में संयुक्त विधायक दल के नेता राव वीरेंद्रसिंह से भारी साबित हुए. एक के बाद एक उन्हें ऐसी विस्मयकारी स्थितियों का सामना करना पड़ा जिस के कारण वह कुछ रचनात्मक क़दम तो नहीं उठा सके, अलबत्ता सकते में आ गये और सदन त्यागने का फ़ैसला किया.

जब २८ जनवरी को अधिवेशन शुरू हुआ था तब विरोधी पार्टी को यह उम्मीद थी कि वह बंसीलाल सरकार का तख़्ता पलटने में कामयाब हो जायेगी. लेकिन जब राज्यपाल के भाषण पर धन्यवाद-प्रस्ताव बिना शक्ति-परीक्षण के पास हो गया तो बंसीलाल का सीना एक बालिश्त फूल गया. इस दौरान एक विधायक जोगिंदरसिंह के अपहरण संबंधी तकरार को ले कर ४ विरोधी विधायक एक सरकारी प्रस्ताव के ज़रिए पूरे अधिवेशन के लिए मुअत्तल कर दिये गये. इस से बंसीलाल ने अपनी स्थिति सुरक्षित जान कर फ़ायदा उठाना चाहा. प्रतिपक्ष बंसीलाल की चाल भाँप गया और अध्यक्ष से अपील की कि वह एक तो सदन का अधिवेशन एक-साथ दस-बारह दिन तक बढ़ाने की स्वीकृति न दें और दूसरे बजट को पेश करने के लिए जो १५ दिन की पूर्व सूचना ज़रूरी होती है सरकार को उस पर अमल करने की ताक़ीद करें. अध्यक्ष रणसिंह ने प्रतिपक्ष के इस सुझाव को अमान्य ठहराया और वित्तमंत्री श्रीमती ओमप्रभा जैन ने प्रतिपक्षी सदस्य-रिक्त सदन में अपना बजट पेश किया. ६.३४ करोड़ रुपये घाटे के अपने बजट में वित्तमंत्री ने कोई नये कर नहीं लगाये. जनता को अधिक सुविधाएँ देने का उन्होंने विश्वास दिलाया और कहा कि बजट का घाटा राज्य की अर्थ-व्यवस्था को सुधार तथा मितव्ययिता बरत कर ठीक किया जायेगा. दूसरे दिन जब विनियोग विधेयक समेत २० अन्य बिल एक के बाद एक सदन में पेश किये गये तब भी प्रतिपक्ष के सदस्य ग़ैर-हाज़िर रहे. उन की ग़ैर-हाज़िरी के बावजूद बजट, विनियोग तथा अन्य विधेयक ९० मिनटों में पास हो गये और १२ फ़रवरी को विधानसभा को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया गया.

निलंबित किये गये ४ प्रतिपक्षी सदस्यों के खिलाफ़ प्रस्ताव वापस न लेने के दृढ़ रवैये से बंसीलाल ने अपनी स्थिति कम से कम ६ महीने के लिए और मज़बूत कर ली है. क़ानून के अनुसार सदन की ६ महीने के भीतर अगली बैठक बुलानी होती है. मुख्यमंत्री इस बात के लिए आश्वस्त हैं कि ६ महीने तक उन की स्थिति में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं आने वाला है. उन का यह ख़्याल है कि अब नये सिरे से कांग्रेसी विधायक दल-बदल नहीं करेंगे और संयुक्त विधायक दल के सदस्यों में जो एकता की भावना फ़िलहाल बरक़रार है समय के सरकने के साथ वह खत्म हो जायेगी. यह बात भी सही है कि राव वीरेंद्रसिंह बंसीलाल की चालों के सामने मात खा गये हैं और अगले क़दम के बारे में वह गंभीरता और गोपनीयता बरतने की इच्छा रखते हैं. उस इच्छा में कितनी सद्भावना व्याप्त है, इस समय कुछ भी कह पाना इस लिए मुमकिन नहीं कि राज्य की राजनैतिक सरगर्मियाँ अन्य चार राज्यों के मध्यावधि चुनाव परिणामों के कारण शिथिल पड़ गयी हैं.

मध्यप्रदेश

दोनों जहाँ के रास्ते

मुख्यमंत्री गोविंदनारायण सिंह ने, शिक्षा विभाग अपने हाथ में लेने के बाद, एक नया और अजीबोग़रीब काम किया है और वह है योग की शिक्षा देने की शासकीय व्यवस्था. उन्होंने शायद दल-बदलू साथियों और संविद शासन से ऊबी हुई जनता को एक नया सहारा देने की आवश्यकता का अनुभव तीव्रता से किया है. विकल्परूप में योग की शिक्षा के द्वार उन्हें दिखाई दिये और उसे जनता को उपलब्ध करा कर उन्होंने यह मान लिया कि दोनों जहां के रास्ते क़दमों के नीचे हैं.

संभवत: मध्यप्रदेश ही देश का एक ऐसा राज्य है जहां की सरकार ने योग की शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया है और स्वामी विश्वभक्त के मार्ग-दर्शन में योग विभाग की स्थापना कर के जनता को शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ बनाने के इस प्राचीन विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था की है. शिक्षा विभाग ने योग विभाग के अध्यक्ष की नियुक्ति की है और योग की शिक्षा की एक सुगठित प्रणाली को विकसित करने की योजना बनायी है. इस के प्रचार के लिए २५ शिक्षकों को छह महीने का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है. प्रतिवर्ष विभागाध्यक्ष प्रत्याशियों का चुनाव करेगा और उन्हें दो दलों में प्रशिक्षित करेगा. सिर्फ़ छह महीने में योग-क्रियाओं में पारंगत हो कर शिक्षार्थी विभिन्न शैक्षणिक संस्थाओं में छात्रों को शिक्षित करेंगे.

मुक्त व्यापार : एक लंबे अर्से के बाद मोटे अनाजों को राज्य की सीमा के बाहर भेजने की छूट मिली है. पिछले दिनों शासन ने मक्का, बाजरा और ज्वार को प्रदेश से बाहर भेजने की रोक खत्म कर के व्यवसायियों को एक सुखद आश्चर्य में डाल दिया. दो वर्षों से इस राज्य में अनाज की फ़सल अच्छी हो रही है. मोटे अनाज का भारी स्टॉक जमा हो गया. पड़ोसी राज्यों में अच्छी फ़सल होने के कारण इन अनाजों के भाव नीचे थे, इस लिए इन अनाजों को चोरी-छुपे भेज कर मोटी रक़म कमाने का धंधा बंद हो गया था. दालों के निर्यात पर अभी भी परमिट की आवश्यकता है, हालांकि दालों का स्टॉक भी काफ़ी हो गया और उन का भी भाव काफ़ी गिर गया है. मांग की जा रही है कि उसे भी बाहर भेजने की छूट दे दी जाये. मोटे अनाजों पर से न केवल निर्यात का रोक हटाया गया है बल्कि उन पर लगने वाली लेवी भी समाप्त कर दी गयी है. इस की वजह से सही अर्थों में मोटे अनाजों का मुक्त व्यापार शुरु हुआ. उम्मीद तो यह थी कि मुक्त व्यापार मोटे अनाज के भावों को ऊपर उठाने में कारगर होगा लेकिन अभी तो भावों में आयी तेज़ी नाममात्र की है.

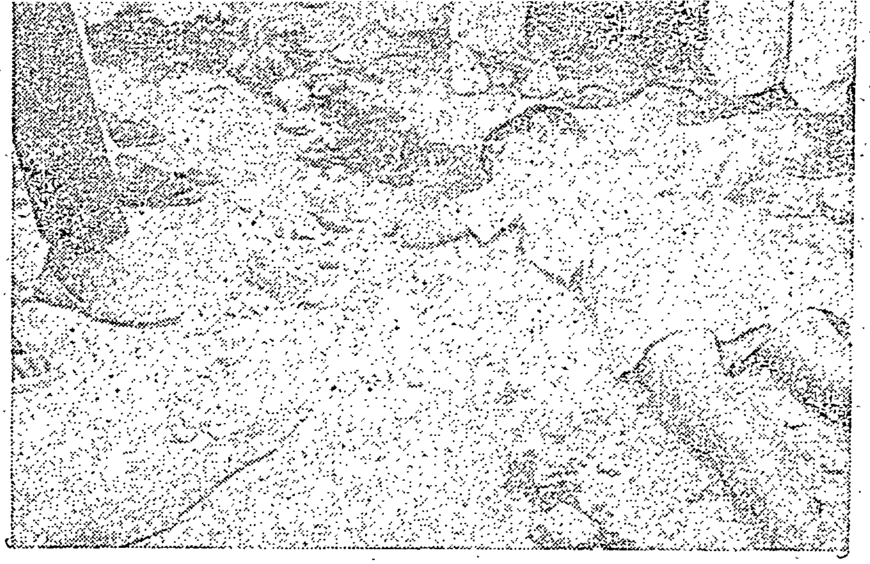

पुलिस जुल्म का शिकार बालक

राजस्थान

बेरी आयोग और पुलिस

पुलिस गोली नहीं चलाती है, फिर भी उस की बंदूक से गोली छूट जाती है. पुलिस या सरकार को इस का पता ही नहीं रहता कि गोली पुलिस की बंदूक से छूट गयी है.

जयपुर गोलीकांड के सिलसिले में बेरी आयोग ने जो रिपोर्ट प्रस्तुत की थी उसे राज्य सरकार ने अभी भी प्रकाशित नहीं किया है. लेकिन इस बीच कुछ विश्वस्त सूत्रों के माध्यम से कुछ ऐसे तथ्य सामने आये हैं जो जनता को संदेह का शिकार बनाते हैं. पुलिस का यह आधार कर्त्तव्य और नैतिकता के किस रूप का उदाहरण प्रस्तुत करता है, यह समझना अब बहुत मुश्किल नहीं रह गया है.

सुबह ड्योढ़ी बाज़ार में भी गोली चली थी लेकिन पुलिस ने बेरी आयोग को इस की सूचना नहीं दी; पूछने पर भी नहीं. लेकिन अपनी जाँच के दौरान आयोग ने यह पता लगा लिया कि गोली ड्योढ़ी बाज़ार में भी चली थी और चलाने वाले पुलिस के लोग थे. गोली चालन का वह कांड नितांत अनुचित था. पुलिस ने यह सिद्ध करने की कोशिश की थी कि ड्योढ़ी बाज़ार में भीड़ में से किसी ने गोली चलायी थी, प्रारंभिक सूचना में कहा गया कि भीड़ में कई छर्रे एक सिपाही की छाती पर लगे. भीड़ आक्रामक थी. पत्थर फेंकती थी, आग लगाती थी. समझा जाता है कि बेरी आयोग ने आत्मरक्षा की पुलिस की इस दलील को भी नहीं स्वीकार किया है. कुछ तथ्यों को अघोषित रखने तथा नये तथ्यों को इजाद करने की पुलिस ने जो कोशिश की उस से कई तरह के संदेह सामने आये हैं. पुलिस का यह आरोप कि गोली भीड़ में से चलायी गयी, सही था, तो वह इसे सिद्ध क्यों नहीं कर सकी. पुलिस और प्रशासन ने ड्योढ़ी बाज़ार में गोली चलाने का जो समय बताया था वह भी ठीक नहीं था. आयोग की रिपोर्ट में संभवतः यह नतीजा भी निकाला गया है कि ड्योढ़ी बाज़ार के गोली चालन का जो समय पुलिस ने बताया है वह सही नहीं है. पुलिस की गोलियां एक एंबुलेंस गाड़ी से भी टकरायी थीं. प्रश्न यह है कि गोलीकांड से संबंधित तथ्यों को छिपाने की कोशिश क्यों की गयी और गोली चालन के औचित्य को सिद्ध करने के लिए निराधार प्रश्न की सृष्टि क्यों की गयी ? यह कहा जा सकता है कि बेरी आयोग का काम इन प्रश्नों पर विचार करना नहीं था, लेकिन आयोग के कार्याधिकार से अलग इस प्रश्न का संबंध जनता से है. जनता की दिलचस्पी निश्चित ही उस प्रश्न के सही उत्तर तक पहुँचने में है, क्यों कि वही पुलिस की गोलियों की बेरहमी से शिकार होती है. अगर मंत्रिमंडल ने इस का सही उत्तर नहीं दिया तो इस आरोप की सिद्धि कैसे होगी कि जनता विरोधी दलों के बहकावे में आ जाती है.

बेरी आयोग की रिपोर्ट में पुलिस के कुकृत्य की जगह-जगह निंदा की गयी है. गोली कांड और आयोग की रिपोर्ट को प्रस्तुत करने के बीच अनेक घटनाएँ हुईं. इस बीच पुलिस और सरकार के बहुत से अधिकारियों का पता चल गया है. बहुतों को पुरस्कार मिले हैं. दिनमान के संवाददाता को पता चला है कि उन में से अधिसंख्य अधिकारियों के विषय में रिपोर्ट में निंदा के शब्द हैं. सरकार का धर्म-संकट और विलंब की वजह दोनों समझ में आते हैं, लेकिन विलंब के पीछे एक मर्यादा है. जाँच आयोगों की नियुक्ति लोकतांत्रिक आवश्यकताओं के अनुसार होती है. उपर्युक्त कांड में जाँच करने वाले राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री बेरी हैं. उसे फ़ौरन प्रकाशित किया ही जाना चाहिए, ताकि उसे सामान्य जनता पढ़ सके.

महाराष्ट्र

अशिव शिवसेना

प्रसपा के श्री नाथ पै यह संदेश लाये हैं कि यर्वदा सेंट्रल जेल में नज़रबंद शिवसेना-प्रमुख वाल ठाकरे का हृदय बंबई के दंगों में हुए जान-माल के नुक़सान का हाल सुन कर द्रवित हो उठा. जेल से छूट कर वह अपनी व्यंग्य-चित्र-पत्रिका 'मार्मिक' में दंगों से संबंधित कितने मार्मिक व्यंग्य-चित्र प्रकाशित करेंगे, यह तो समय ही बतलायेगा, किंतु चार दिनों तक बंबई में कोहराम मचाने के बाद कुछ सुस्ता कर बंबई के एक उपनगर चेंबूर में पुन: आगज़नी और दुकानें लूट कर पुलिस को गोली चलाने के लिए मजबूर कर के बाल ठाकरे के अनुयायियों ने यह ज़ाहिर कर दिया है कि वे अपने किये पर पछताने के लिए क़तई तैयार नहीं हैं, न ही उन के ख़ूनी इरादों में कोई परिवर्तन आया है. ५१ व्यक्तियों के जान से हाथ धो बैठने, पाँच हज़ार दंगाइयों की गिरफ़्तारी और ५ करोड़ रुपये (अंदाजिया) की संपत्ति चकनाचूर हो जाने के बाद भी यदि शिव सेना हृदय-परिवर्तन का दावा करती है तो महाराष्ट्र सरकार द्वारा देश को और ख़ास कर बहुजातीय नगर बंबई के बाशिंदों को दिये गये 'स्थिति पर पूर्ण नियंत्रण' के आश्वासन से ही काम नहीं चलेगा. इस से पहले भी कई बार बाल ठाकरे यह सफ़ाई पेश कर चुके हैं कि वह शांतिपूर्ण तरीक़े से ही आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े मराठियों का हक़ हासिल करना चाहते हैं. देश के अन्य भागों, महाराष्ट्र सरकार और केंद्रीय नेताओं (वे अनेक बार यह स्वीकार कर चुके हैं कि शिवसेना की कुछ माँगें उचित हैं और आर्थिक कुंठाओं ने ही उन्हें विचलित किया है) पर बाल ठाकरे के इस तर्क का चाहे जो भी प्रभाव पड़े किंतु बंबई की जनता को इस तर्क के बल पर आश्वस्त नहीं किया जा सकता, क्यों कि उसने हज़ारों बार गली-गली घुमाये जाने वाले शिवसेना के वे पोस्टर देखे हैं जिन में मानो ख़ून पी कर भी अतृप्त-सा, अपने शिकार पर झपटने के लिए बेक़रार-सा जबड़ा फाड़े हुए शेर की तसवीर बनी होती है. यह तसवीर शिवसेना के हिंस्र इरादों का प्रतीक है या शांतिपूर्ण इरादों का ? आर्थिक कुंठाओं और अपने अस्तित्व के आभास का प्रतीक है या क्षेत्रीय भावना, विघटनकारी प्रवृत्ति, घृणा और नफ़रत का ? थाना से बोरीबंदर और बोरीवली से चर्चगेट तक चलने वाली बिजली की गाड़ियों में आसमान गुँजाते हिंस्र नारे लगाते हुए जब शिवसेना के रंगरूट बेख़ौफ़ (और बेटिकट भी) घूमते-फिरते हैं तो जनता का हृदय संभावित अनिष्ट की दहशत से दहल उठता है, हालांकि शिवसेना के रंगरूटों के दिमाग़ पर तो यही ग़लतफ़हमी तारी रहती है कि वे वाक़ई शिवाजी के जाँबाज सैनिक हैं और किसी ख़याली मुग़लिया हुकूमत से टक्कर लेना चाहते हैं.

शैतान का कारख़ाना : शिवसेना के अस्तित्व की खोज के लिए ज़्यादा पीछे जाने की ज़रूरत नहीं, क्यों कि इस पीछे जाने की प्रक्रिया से वहशियों और पेशेवर क़ातिलों को आगे आने का अवसर मिल जाता है, माँस और लहू से खेलने का अवसर मिल जाता है. १९६७ के आम चुनाव के दौर में ही बंबई की जनता और पूरे देश को यह आभास मिला कि महाराष्ट्र में शिवसेना नाम की भी कोई सेना है. इसी दौर में कांग्रेस के ही कुछ वरिष्ठ नेताओं ने यह तर्क उछाला कि महाराष्ट्र से चुनाव लड़ने के लिए किसी स्थानीय व्यक्ति को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए और 'बाहर वाले' को टिकट नहीं दिया जाना चाहिए. 'बाहर वाले' उम्मीदवार का बॉयकॉट कर के शिवसेना ने फिर यह सोचना शुरू कर दिया कि बंबई में सिर्फ़ चुनाव लड़ने के लिए ही बाहर के लोग नहीं आते, बल्कि रोज़गार की तलाश में भी लाखों व्यक्ति बाहर से आ कर बंबई में बस गये हैं और आर्थिक दृष्टि से वे मराठियों से आगे बढ़ गये हैं. सब से पहले इस असंशोधित विश्लेषण के शिकार हुए बंबई में बसे दक्षिण भारत के नागरिक और फिर कभी अपनी टुच्ची उपलब्धियों से प्रेरित हो कर तो कभी कांग्रेस, महाराष्ट्र सरकार और अन्य दलों के वरिष्ठ नेताओं की शह पा कर शिवसेना के रंगरूटों को मधु लिमये के शब्दों में अपनी 'संकीर्णता और तंग-नज़रिये की नुमाइश' का खुला अवसर मिल गया और आज शहर बंबई में ही शिवसेना की १२० शाखाएँ सक्रिय हैं—हिंसा और नफ़रत के नग्न प्रदर्शन के लिए सक्रिय. यह एक अजीब बात है और एक दिलचस्प बात भी कि शिवसेना के अधिसंख्य सैनिक कम उम्र के और अधकचरे युवक ही हैं, अलबत्ता उन के मार्ग-दर्शन का ठेका कुछ ढलती उम्र वालों ने ही ले रखा है. मौक़े-बेमौक़े और कभी-कभी दिन दहाड़े ये ढलती उम्र के गिद्ध अपने चेले-चपाटों को ले कर निकल पड़ते हैं और किसी प्रदेश विशेष के नागरिकों पर अचानक टूट पड़ते हैं. दिनमान प्रतिनिधि ने ऐसे मुठभेड़ों के अवसर पर इन ढलती उम्र के गिद्धों को मैदान छोड़ कर भागते हुए अपने चेले-चपाटों को चिल्ला-चिल्ला कर यह कहते हुए भी सुना है—'का रे ! आतां का पलताहात. तुम्हीं मेलेल्या आईचें दुध प्यालात कां ?' (क्यों रे, क्यों भागते हो. तुमने अपनी मरी हुई माँ का दूध पिया है क्या ?) कहना न होगा कि उन मेहनतकश युवकों का इस संगठन से कोई वास्ता नहीं है, जो वाक़ई अपना भविष्य बनाने के लिए चिंतित हैं. ऐसे युवक बंबई के यांत्रिक जीवन से सबक हासिल कर के रात की या दिन की 'पाली' में नौकरी कर के अपना अतिरिक्त समय उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कॉलेजों या विश्वविद्यालयों में बिताते हैं. ज़िम्मेदार मराठी नागरिकों का भी इस संगठन से कोई वास्ता नहीं है और न वे तोड़-फोड़ की घटनाओं में ही शरीक़ होते हैं. इस संगठन ने उन युवकों को भर्ती किया है जिन के ज़ेहन में अपने भविष्य की कोई तसवीर नहीं है. शिवसेना के बूढ़े गिद्धों ने इन के मस्तिष्क को शैतान का कारख़ाना बना दिया है. वे उन्हें आर्थिक प्रगति की राह पर नहीं ले जा रहे हैं; गेरिल्ला युद्ध की तरकीबें सिखलाते हैं, जिस का अंदाज़ा बंबई के हाल के दंगों से लगाया जा सकता है, जब बड़े-बड़े वृक्ष गिरा कर पुलिस का रास्ता रोकने की कोशिश की गयी या मार कर भाग जाने की नीति बरती गयी.

आम चुनाव और महाराष्ट्र के नगर निगम के चुनावों में छा जाओ, गोवा को महाराष्ट्र में मिलाओ, दक्षिण भारतीयों को बंबई से निकाल बाहर करो, गंदी बस्तियाँ जला दो, हॉकरों को पीटो के बाद अब शिवसेना के रहबरों ने महाराष्ट्र-मैसूर सीमा-विवाद को सुलझाये बिना केंद्रीय मंत्रियों को बंबई में न घुसने देने की हठ ठान ली है. शिवसेना के नेताओं ने गृह-मंत्री यशवंतराव चव्हाण और मोरारजी देसाई के बंबई प्रवेश से बहुत पहले ही अपना इरादा ज़ाहिर कर दिया था, किंतु समस्या की गंभीरता की शव-परीक्षा तब की जा रही है, जब बंबई की जनता ने शिवसेना के बीभत्स इरादे का नग्न प्रदर्शन देख लिया है. वहाँ क़ब्रिस्तान का-सा सन्नाटा व्याप्त था. महाराष्ट्र-मैसूर सीमा-विवाद के संबंध में महाजन आयोग की सिफ़ारिशों को केंद्र या संबंधित प्रदेशों की जनता चाहे जिस रूप में स्वीकार करे किंतु इस बार शिवसेना की यह ख़ुशफ़हमी जड़ से खोद कर फेंक दी जानी चाहिए कि हिंसा और बल-प्रयोग से सरकार को झुकाया जा सकता है. अन्यथा बाल ठाकरे की यह चेतावनी लोकतंत्र पर हावी हो जायेगी कि "कुछ समस्याओं के निदान और कुछ मुद्दों को सुलझाने के लिए ही सेनाएँ संगठित की जाती हैं" और अगर शिवसेना की चुनौती का हल 'आर्थिक कुंठाओं' की परतें टटोल कर खोजा गया तो शहर बंबई में उस हिंस्र जीव की तसवीर फिर जगह-जगह घूमती रहेगी जिस के बारे में यह कहा जाता है कि एक बार आदमी का ख़ून पी जाने के बाद वह स्वभावत: मानव-भक्षी बन जाता है.

धधकती टैक्सियाँ : उपद्रव के शिकार

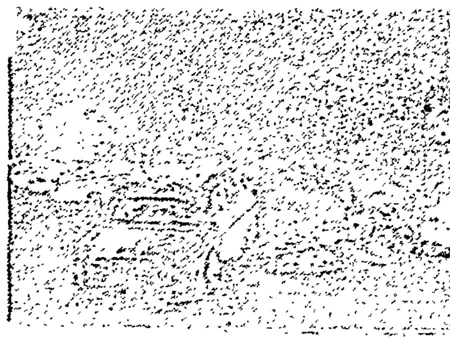

पड़ताल का सवाल

विभाजन के समय भारतीय सेनाओं के सैनिकों की संख्या ३,००,००० थी. यह संख्या अब बढ़ कर ९,७७,००० (इंस्टीट्यूट ऑफ़ डिफेंस स्टडीज लंदन के अनुमान के अनुसार) हो गयी है. इस का मतलब यह है कि १९४७ की तुलना में अब भारत की सैनिक संख्या तिगुनी हो गयी है. यह बढ़ोतरी पिछले २२ वर्षों में घटित हुई है. स्पष्ट कारणों से यह बढ़ोतरी प्रमुखतः सेना में ही हुई है, जो कि हाल की गणना के अनुसार विश्व की चौथी सब से बड़ी सेना है. अन्य बड़ी सेनाएँ अमेरिकी, रूसी और चीनी हैं. इसी के अनुसार प्रतिरक्षा बजट भी जो कि १९४८–४९ में लगभग २०० करोड़ रुपये का था १९६८–६९ में (अनुमानित) बढ़ कर एक हज़ार करोड़ हो गया है. यह वृद्धि दो चरणों में हुई है. पहला चरण १९५६ था जब पहली बार भारतीय क्षितिज पर चीनी चुनौती प्रकट हुई. इस से पहले पाकिस्तान का ही खतरा था. भारत को विभाजन के तुरंत बाद मिलने वाली सेनाएँ जो कि सुसंगठित थीं और जिन में थोड़ी वृद्धि भी हुई थी, इस खतरे के लिए पर्याप्त जान पड़ती थीं. इसी लिए भारत १९५६ तक अपने प्रतिरक्षा-व्यय के स्तर को लगभग समान रूप में बनाये रख सका. १९५६ में चीनियों के सामने आ जाने पर स्थिति में मौलिक परिवर्त्तन हो गया. हालाँकि उस समय संबंधित अधिकारी-क्षेत्रों ने इसे ठीक तरह से नहीं समझा. भारत की कूटनीतिक क्षमता पर विश्वास रखते हुए, कि चीन के साथ सभी मतभेदों को समझौता-वार्त्ता द्वारा हल कर लिया जायेगा, भारत की प्रतिरक्षा की ओर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया. आधे मन से और विशुद्ध रूप से सावधानी बरतने के लिए कुछ तरीक़ों का इस्तेमाल किया गया. कुछ पर्वतीय डिवीज़न बनाये गये. सेना और वायुसेना के कुछ पुराने और व्यर्थ के उपकरणों की जगह नये उपकरण जुटाये गये, सीमाओं पर कुछ सड़कों का निर्माण किया गया, यद्यपि बहुत सीमित रूप में. आत्मनिर्भरता की ओर एक महत्त्वपूर्ण क़दम यह बढ़ाया गया कि प्रतिरक्षा भंडार को भरने के लिए कुछ आर्डीनेंस फैक्टरियाँ स्थापित की गयीं जिस से कि वे बंदूकें, हवाई जहाज़, वाहन और कुछ बिजली के उपकरण तैयार कर सकें. प्रतिरक्षा बजट को लगभग १०० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष बढ़ा दिया गया, जिस से कि अतिरिक्त व्यय को पूरा किया जा सके. भारतीय प्रतिरक्षा सेनाओं के इस मध्यम बल्कि दुर्भाग्यपूर्ण चरण का अंत १९६२ के अंतिम दिनों में हुआ, जब कि चीनियों ने सशक्त आक्रमण के साथ उत्तरी सीमाओं के कई भारतीय क्षेत्रों को अपने क़ब्ज़े में कर लिया. चीन के साथ यह छोटी लेकिन तीखी लड़ाई संभवतः भारतीय प्रतिरक्षा सेनाओं में आये नये मोड़ का कारण बनी. इस के द्वारा यह बात सामने आ गयी कि समकालीन विश्व में भारत की युद्ध विषयक जानकारी और समझ नहीं के बराबर है—यह इतनी बड़ी कमी थी जो आगे चल कर राष्ट्र के संपूर्ण विनाश का कारण बन सकती थी. इसी लिए १९६३ में पहली बार भारतीय प्रतिरक्षा के विकास के ठोस, यथार्थवादी प्रयत्नों पर काम शुरू हुआ और इस की परिणति 'पंचवर्षीय प्रतिरक्षा योजना' के रूप में हुई. योजना ने अपने सामने ५ वर्ष के भीतर सेनाओं को बढ़ाने, उपकरणों के लिहाज़ से उसे ठोस बनाने का उद्देश्य सामने रखा जिस से कि सेनाएँ इतनी संगठित और मज़बूत हो सकें कि निकट भविष्य में राष्ट्र के सामने उपस्थित होने वाले किसी बाहरी खतरे का मुक़ाबला प्रभावशाली ढँग से कर सकें. मोटे तौर पर योजना ने इन उपायों को शामिल किया : (क) सेना की संख्या को बढ़ा कर ८,२५,००० करना. (ख) वायुसेना की शक्ति को ६५ स्क्वाड्रनों तक पहुँचाना. (ग) सेनाओं को अपेक्षाकृत नये और बेहतरीन अधुनातन हथियारों से लैस करना जिस से कि उन की युद्ध-क्षमता बढ़े. (घ) सीमावर्त्ती सड़कों के जाल को शीघ्रता से बिछाना. आर्डीनेंस फैक्टरियों का आधुनिकीकरण करना तथा नयी आर्डीनेंस फैक्टरियाँ स्थापित करना जिस से कि प्रतिरक्षा उपकरणों का देसी उत्पादन हो और आयात किये हुए उपकरणों पर निर्भरता समाप्त हो. यह अनुमान लगाया गया कि ५ वर्षों में योजना के ऊपर ५००० करोड़ रुपये तक खर्च आयेगा. इसी लिए प्रतिरक्षा बजटों में और वृद्धियाँ आवश्यक होंगी. योजना को १९६३ से ६३–६४ के लिए ८१६ करोड़ रुपये के बजट अनुदान के साथ क्रियान्वित किया गया. इस के बाद से प्रतिरक्षा व्यय में थोड़ी वृद्धि हुई है. भारत की पहली पंचवर्षीय प्रतिरक्षा योजना पूर्ण हो चुकी है और फलस्वरूप वह अपनी सीमाओं की रक्षा में पहले से कहीं अधिक समर्थ है. पहले की तुलना में उस की सेनाएँ कहीं बेहतर ढंग से लैस हैं. प्रतिरक्षा-भंडार के मामले में उस ने एक स्तरीय आत्म-निर्भरता प्राप्त कर ली है. साथ ही स्वयंचालित राइफ़लें, बंदूकें, मार्टर, लड़ाकू जहाज़ों और बिजली के कुछ उपकरणों के मामले में आज वह कहीं अधिक अच्छी स्थिति में है. सीमा की सड़कों के निर्माण का कार्यक्रम योजना के अनुसार चला है. देश की प्रतिरक्षा-क्षमताओं में चौतरफ़ा प्रशंसनीय वृद्धि हुई है. कई बार देश में और देश के बाहर भी ऐसी आवाज़ें उठायी जाती हैं कि भारत अपनी प्रतिरक्षा तैयारियों में अधिक खर्च कर रहा है और ऐसा वह अपनी आर्थिक प्रगति को नज़रअंदाज़ कर के कर रहा है. ऊपर से यह आक्षेप ठोस लगता है. नज़दीक से प्रतिरक्षा व्यय की पड़ताल करने पर यह मालूम पड़ेगा कि न केवल यह आक्षेप ग़लत है, भ्रामक भी है. भारत का मौजूदा प्रतिरक्षा-व्यय कुल राष्ट्रीय उत्पादन का ३.२ प्रतिशत है और केंद्रीय व्यय का २६ प्रतिशत है. पंचवर्षीय प्रतिरक्षा योजना के पहले साल यानी ६३–६४ में यह प्रतिशत कुछ अधिक थे, क्रमशः ४.४ और ३० प्रतिशत. लेकिन इस के बाद से यह कम होते गये हैं. इस संबंध में दूसरे देशों के प्रतिशत ये हैं:—(कुल राष्ट्रीय उत्पादन के प्रतिरक्षा-व्यय के प्रतिशत भर यहाँ दिये जा रहे हैं) अमेरिका—८.९ प्रतिशत, रूस—५.७ प्रतिशत, ब्रिटेन—६.७ प्रतिशत, फ़्रांस—५.१ प्रतिशत, संयुक्त अरब गणराज्य—८.६ प्रतिशत, इस्राइल—१०.७ प्रतिशत, ईरान—४.१ प्रतिशत, युगो-

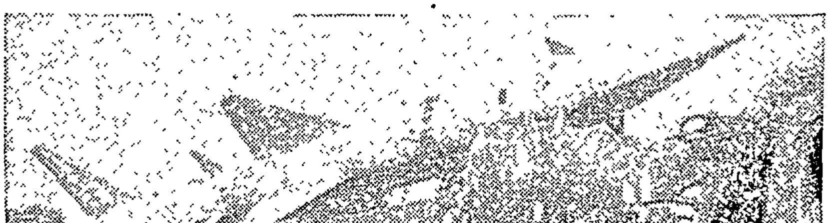

भूमि से वायु-प्रक्षेपास्त्र

स्लाविया—६ प्रतिशत, तुर्की—३.५ प्रतिशत, इंदोनेसिया—३.९ प्रतिशत और पाकिस्तान ३.२ प्रतिशत. इन में से अधिकतर देश आज भारत जैसी ही राजनीतिक व सैन्य परिस्थितियों में हैं. पड़ताल से यह मालूम होगा कि वस्तुतः भारत का प्रतिरक्षा-व्यय विश्व के दूसरे देशों की तुलना में कम है.

प्रतिरक्षा बजट का एक सामान्य विश्लेषण यह बतायेगा कि जिन दो मदों में अनुदान का बहुलांश चला जाता है वे हैं :—(क) प्रतिरक्षा कर्मचारियों के वेतन, भत्ते और पेंशनें, (ख) प्रतिरक्षा उपकरण. इन दोनों मदों में प्रतिवर्ष कुल प्रतिरक्षा-व्यय का ६० से ६५ प्रतिशत तक चला जाता है. बचा हुआ ३५ से ४० प्रतिशत तक राशन, पेट्रोल, तेल अन्य द्रव्यों, राजस्व करों, निर्माण कार्य तथा अन्य छोटी-मोटी मदों में खर्च होता है.

प्रतिरक्षा-सेनाओं में वेतन और भत्तों का ढाँचा उचित ही देश की दूसरी नौकरियों में प्रयुक्त ढाँचे के अनुरूप ही रखना होता है. स्थितियों को देखते हुए निकट भविष्य में वर्तमान वेतन-दरों के कम होने की कोई संभावना नहीं दीखती. अगर कुछ होगा तो यही कि वे बढ़ेंगी. इसी लिए जब तक प्रतिरक्षा सेनाओं की कुल शक्ति में कमी ही नहीं कर दी जाये, इस मद का व्यय कभी भी कम नहीं होता दीखता. यह भी विवादास्पद ही है कि क्या भारत निकट भविष्य में कभी अपनी प्रतिरक्षा सेनाओं में कमी करेगा. चीन और पाकिस्तान के साथ इस के संबंध अब तक किसी भी रूप में नहीं सुधरे. दोनों देशों में से किसी के साथ भी मैत्रीपूर्ण समझौते के कोई आसार नज़र नहीं आ रहे. यही नहीं काफ़ी समय तक भारत इन दोनों देशों पर विश्वास करने की स्थिति में नहीं होगा, भले ही अब तक के जो विवाद हैं वह समझौता-वार्त्ता द्वारा सुलझा लिये जायें. चीन शक्तिशाली देश है और आज उस के पास विश्व की सब से बड़ी सेना है. जब तक कि भारत पर चीनी आक्रमण का खतरा बना हुआ है वह (भारत) अपनी प्रतिरक्षा सेनाओं को जो कि वस्तुतः आवश्यक शक्ति की न्यूनतम हैं, कम करने की स्थिति में नहीं है.

पूरे विश्व में आज प्रतिरक्षा की योजना बनाने वालों के सामने जो सब से बड़ी समस्या है वह हथियारों के चुनाव को ले कर है. विधि का विकास इतनी तेज़ी से हो रहा है कि कोई हथियार काम में लाये जाने के पहले ही परीक्षा और विकास के इतने चरणों से गुज़रता है कि कुछ दिनों बाद काम में लाये जाने के पहले ही मानों वह बेकार हो जाता है और उसकी जगह किसी और तरह के हथियार की ज़रूरत पड़ जाती है. हम विकसित प्रक्षेपास्त्रों और इलेक्ट्रॉनिकों के युग में प्रवेश कर चुके हैं. अग्नयास्त्र चाहे वह मामूली ही क्यों न हो, अब प्रक्षेपास्त्रों, नियंत्रित और

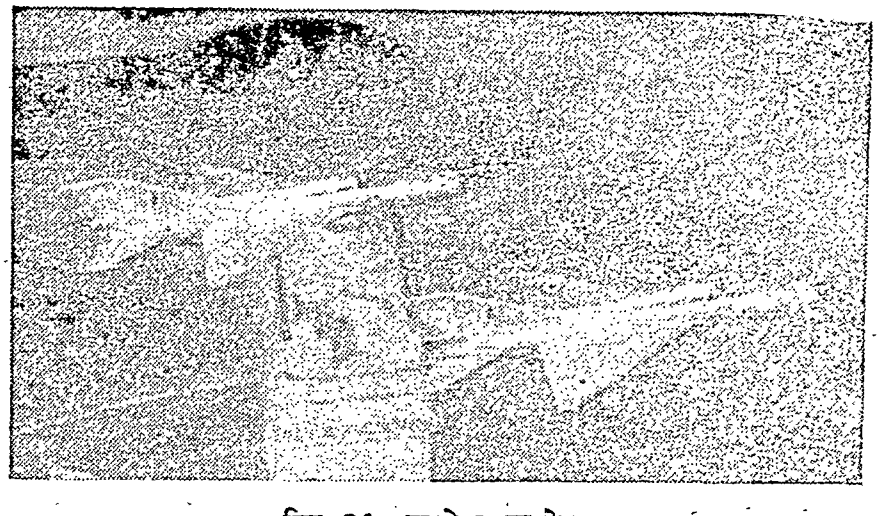

मिग २१ : वायुसेना का वेग

अनियंत्रित, दोनों के द्वारा बदले जा रहे हैं. नये और बेहतरीन मार्टर विकसित किये जा रहे हैं. ज़्यादा-से-ज़्यादा बेहतरीन टैंक जिन में जल और थल दोनों में ही काम करने की क्षमता हो तथा जिन में अधिक शक्तिशाली तोपें लगी हों साथ ही 'इंफ़्रारेड' उपायों वाले प्रक्षेपास्त्रों के उत्पादन का काम हाथ में है. युद्ध-क्षेत्र में निगरानी रखने वाले राडार अब प्रायः यूरोप की सभी सेनाओं के पास हैं. सुपर सोनिक फाइटर तथा बमवर्षक जो काफी गतिशील होते हैं, जिन की बमवर्षक पद्धति अत्याधुनिक है तथा जिन की रफ्तार १.५।२ है—यह सब युद्ध के सामान्य हथियार बन रहे हैं. बेहतरीन हथियार अपने विकास के लिए अधिक धन की अपेक्षा रखते हैं, अपने उत्पादन के लिए भी और रखवाली के लिए भी. भारत को अपनी प्रतिरक्षा सेनाओं को नये हथियारों से लैस करने का प्रयत्न अपने साधनों के अनुरूप ही करना चाहिए. हालांकि ऐसा करते हुए शत्रुओं की प्रहारक क्षमता को बराबर ध्यान में रखना होगा. इस तरह यह निष्कर्ष निकालना तर्क-संगत है कि भारत अधिक-से-अधिक बेहतरीन उपकरण और हथियार काम में लायेगा जिस से कि शत्रु की तुलना में उस की सेनाएँ किसी भी अवस्था में उसे धक्का न पहुँचा सकें. फलस्वरूप प्रतिरक्षा बजट बढ़ जायेगा लेकिन ऐसा सेनाओं की संख्या को बढ़ाये बिना किया जायेगा. अधिकांश विकसित देश इस प्रक्रिया से गुज़र रहे हैं और हिंदुस्तान इस का अपवाद नहीं हो सकता. इस तरह यह देखा जायेगा कि जैसे समय बीतेगा यह मानने का पूरा कारण है कि भारत प्रतिरक्षा पर अधिक से अधिक व्यय करेगा. इस लिए नहीं कि उस की प्रतिरक्षा सेनाओं में कोई वृद्धि हो जायेगी बल्कि इस लिए कि अपनी सीमाओं की पर्याप्त सुरक्षा के लिए उसे अधिक से अधिक बेहतरीन उपकरणों की आवश्यकता होगी.

युद्ध इन दिनों काफ़ी महँगी चीज़ हो गयी है. यद्यपि यह कहा जाता है कि १९६५ में भारत-पाक युद्ध के २१ दिनों में हिंदुस्तान ५० करोड़ रुपये के खर्च के साथ सस्ते में ही निपट गया, फिर भी यह राशि हमारे स्तर को देखते हुए कोई बहुत थोड़ी नहीं है. इस तरह युद्ध का आर्थिक पक्ष काफ़ी महत्त्वपूर्ण हो उठा है. हथियारों से पूरा काम निकालने के लिए नियोजित दृष्टि व आर्थिक संयम की ज़रूरत होगी. प्रतिरक्षा की योजना में अधिक सुरक्षा को ध्यान में रख कर किया गया व्यय कई क्षेत्रों में हो सकता है जैसे कि कुल कर्मचारियों की संख्या में हथियारों की विभिन्नता और गुणों में विभिन्न यूनिटों और उप यूनिटों के असंतुलित संगठन में. जब हथियार या संगठन में कोई भी बड़ा परिवर्त्तन केंद्रीय वित्त विभाग को करोड़ों रुपये अधिक खर्च में डाल सकता है तब यह विश्लेषण आवश्यक हो उठता है कि इस के लिए क्या किया जाये. दूसरे शब्दों में ऐसी अवस्था आ पहुँची है जब कि प्रतिरक्षा को किसी भी दूसरी राष्ट्रीय आर्थिक योजना की तरह लिया जाये, कम-से-कम जहाँ तक प्रभावकारी लागत का सवाल है. हालांकि हम यह जानते हैं कि भारत प्रतिरक्षा पर जो कुल व्यय करता है उस के बारे में शायद ही कोई व्यक्ति सजग हो कि उस के बदले में जो कुछ हमें मिला है वह कितना प्रभावशाली और क्षमतावान है. पिछले बजट को पेश करते हुए उप-प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने संकेत किया था कि प्रतिरक्षा में होने वाले खर्च को प्रभावशाली ढंग से इस्तेमाल करने के तरीक़ों पर विचार किया जा रहा है. लेकिन इस के बाद से इस संबंध में कुछ भी नहीं सुना गया. यह उपाय जल्दी ही किये जाने चाहिएँ जिस से कि राष्ट्र को प्रतिरक्षा में व्यय होने वाले धन के बदले में अधिकतम लाभ मिल सके. ये उपाय प्रतिरक्षा-प्रयत्नों की उचित सीमाएँ भी खींच सकेंगे.

—विशेष सैनिक संवाददाता

देश की आमदनी का बँटवारा

किसी भी देश में राष्ट्रीय आय विभिन्न वर्गों में किस अनुपात से वँटती है, यह क्लासिकी अर्थ-शास्त्र का प्रधान प्रश्न है. किंतु अपने देश में राष्ट्रीय आय के वितरण का प्रश्न असरदार ढंग से किसी विश्वविद्यालयी अर्थ-शास्त्री ने नहीं उठाया. इसे उठाया राम मनोहर लोहिया ने, २२ अगस्त, १९६३ को. लोकसभा में तत्कालीन सरकार पर पहले अविश्वास-प्रस्ताव पर वोलते हुए लोहिया ने कहा था कि देश के ६० फ़ीसदी, यानी २७ करोड़ ग़रीबों की आमदनी ३ आना रोज़ है. प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस आँकड़े को ग़लत बताते हुए कहा था कि यह तीन आना नहीं है, कम से कम इस का पाँच गुना है, १५ आना रोज़ है. इस पर से ३ आना बनाम १५ आना की बहस शुरू हुई थी. १५ आना रोज़ तो औसत आमदनी होती थी, ग़रीब ६० सैकड़ा की आमदनी नहीं. देश के ६० सैकड़ा ग़रीब की आमदनी क्या है ? खर्च क्या है ? देश की ग़रीबी की हद क्या है ? देश की आमदनी का, इस में हुई वृद्धि का बँटवारा कैसे होता है ? इन प्रश्नों पर बहस के अगले दौर में चर्चा हुई थी.

इस सिलसिले में बुनियादी बात यह है कि अब तक विकास के अर्थ-शास्त्र में राष्ट्रीय आय में या प्रतिव्यक्ति आय में कमी-बेशी पर ही ध्यान दिया जाता रहा है. राष्ट्रीय आय में ६ प्रतिशत या अधिक की वृद्धि हो तो प्रतिव्यक्ति आय में ४-५ प्रतिशत की वृद्धि होगी. इस तरह अगले २०-२५ वर्षों में राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति आय दुगुनी होगी, जैसे कुल और औसत लक्ष्य देश के नियोजन के सामने रहे हैं. इस औसत में देश की अत्यधिक अमीरी के हिम शिखर और अत्यंत ग़रीबी के दलदल शामिल रहे हैं. 'औसत' के मशहूर क़िस्से के मुंशी जी की तरह नदी की औसत गहराई और परिवार की औसत ऊँचाई नाप कर भारत सरकार और आयोजना आयोग के मुंशियों ने देश को अभाव की नदी पार करने का आदेश दिया और अब कुनबे के डूब जाने पर लेखाजोखा थहा रहे हैं. इस लिए ज़रूरी है कि हम देश की आमदनी का विभिन्न आय-वर्गों में बँटवारा कैसे होता है यह जान लें.

आय और संपत्ति के वितरण के अध्ययन के लिए प्रोफ़ेसर महालनोविस की अध्यक्षता में नियुक्त की गयी जाँच-समिति ने फ़रवरी १९६४ में प्रकाशित अपने प्रतिवेदन में इन प्रश्नों की जाँच की. समिति के उपलब्ध तथ्यों से यह निष्कर्ष जैसे निकलता है कि पहले दो आयोजनों की अवधि में आय और संपत्ति का बँटवारा ज्यादा विषम हुआ है. किंतु समिति जैसे अपने तथ्यों से निकलने वाले निष्कर्षों से कतराती रही है. लगता है कि सत्य का मुँह हिरण्मय पात्र से ढका हुआ है. फिर भी इस समिति के प्रतिवेदन में दिये गये कुछ आँकड़े अपूर्ण होते हुए भी सूचक हैं :

भारत में आमदनी का बँटवारा १९५५-५६

प्रतिव्यक्ति मासिक आय (रुपयों में)	कुल आबादी का प्रतिशत	कुल आय का प्रतिशत
१० से कम	२५.०	९.५
१०-१९	४४.०	३१.५
२०-२९	१७.०	१९.०
३०-३९	६.०	९.०
४०-४९	३.०	६.३
५०-७४	२.७	८.०
७५-९९	१.०	३.७
१००-१९९	१.०	६.१
२०० से अधिक	०.३	५.८

इस तालिका के अनुसार टैक्स देने के पहले १९५५-५६ में देश की कुल आबादी के २५ प्रतिशत की आमदनी १० रु. मासिक से कम है, यानी ५ आना रोज से भी कम. कितनी कम ? इस की थाह इन आँकड़ों से नहीं मिलती. लोकसभा में हुए विवाद में राममनोहर लोहिया ने ६० सैकड़ा यानी २७ करोड़ ग़रीबों की आमदनी ३ आना रोज़ है, इस की पुष्टि के लिए आदिवासियों, भूमिहीन खेत-मजदूरों, बेरोज़गारों, विधवाओं और श्री नंदा के साधु-समाज के सदस्यों वग़ैरह के आमदनी-खर्च के आँकड़े दिये थे. तत्कालीन आयोजनमंत्री ने नेशनल सैम्पल सर्वे के आँकड़ों के आधार पर इसी वर्ग की आमदनी को ७॥ आना रोज़ बताया था. बाद में नेशनल काउंसिल ऑफ़ अप्लाइड इकनॉमिक रिसर्च ने इन ६० प्रतिशत या २७ करोड़ की आमदनी आँकी थी. १९६९ में जनसंख्या ५३ करोड़ से अधिक है. इस के ६० प्रतिशत का मतलब ३० करोड़ से अधिक होता है. १९६३-६४ के बाद के वर्षों में तो सरकारी आँकड़ों के मुताबिक भी औसत आमदनी में कोई उल्लेखनीय वृद्धि नहीं हुई है. ग़रीब ६० सैकड़ा की आमदनी तो नहीं ही बढ़ी है. असल में तो घटी ही है, किंतु अगर उसे स्थिर भी मान लें तो देश के ३० करोड़ लोग लोहिया के अनुसार ३ आना, काउंसिल के अनुसार ४॥ आना, नंदा के अनुसार ७॥ आना रोज पर कैसे जीते हैं ?

निचले ६० सैकड़ा के साथ ऊपर के १ सैकड़ा की हालत भी कैसी है ? ७५ रु. प्रतिमास से अधिक आय वालों की संख्या आबादी का एक प्रतिशत है. ये एक प्रतिशत कुल आमदनी का लगभग छठवाँ भाग हड़पे हुए हैं. यह १ प्रतिशत भारत के ऊँचे लोग हैं. शासक-वर्ग के लोग हैं. इन की औसत आमदनी ७५ रु. मासिक या २॥ रु. रोज़ से ऊपर भर है. औसतन इस आमदनी पर यूरोप और अमेरिका में आप एक भंगी को एक घंटे भी काम पर नहीं लगा सकते ! देश का तथाकथित उच्च वर्ग, १ प्रतिशत, जब २॥ रु. रोज़ की औसत आमदनी पर जीता हो तो ऊपर के सिरे पर भी कितना ज़बर्दस्त अभाव है इस की कल्पना की जा सकती है. औसत में भी तो एक अत्यंत अल्पसंख्यक वर्ग है—राष्ट्रपतियों, मंत्रियों, राज्यपाल जैसे राजनीतिक पदाधिकारियों का, अफ़सरों का और करोड़पतियों का, जिन में भी ऊँचों की आमदनी या खर्च २० हज़ार रुपया रोज़ या अधिक है. १ फ़ी सदी के उच्च वर्ग में भी इतनी ज़बर्दस्त असमानता है. इस असमानता के जंगल में सिंह की तरह अपना शिकार करने की शक्ति भी थोड़े-से लोगों में है. इस लिए सियार की तरह चतुराई से दूसरों का शिकार कर अपना पेट भरने की युक्ति अधिकतर १ प्रतिशत तथाकथित विशिष्ट जनों में है. दरिद्रता की राजनीति, भ्रष्टाचार, घूस और निर्वीयता इस सियार की जैसी क्षुद्र चतुराई की उपज है.

आय-वर्गों के अनुसार बँटवारे के साथ-साथ एक और ढंग से देश की आमदनी-खर्च का बँटवारा विचारणीय है. इधर योजना और ग़ैर-योजना मद्धे सरकारी खर्च १०० प्रतिशत से अधिक बढ़ा है. सरकारी कर्मचारियों की संख्या १९५०-५१ के लगभग ५० लाख से बढ़ कर १९६७-६८ में लगभग एक करोड़ हो गयी है. इन को दी जाने वाली तनखाहों-भत्तों में केंद्र, राज्य, स्थानीय शासन वग़ैरह की और पदों की दृष्टि से घोर असमानताएँ हैं. इस लिए राज्य कर्मचारियों का असंतोष स्वाभाविक है. किंतु सब ले-दे कर सरकारी खर्च का हिस्सा राष्ट्रीय आमदनी में बढ़ा है. महालनोविस समिति के प्रतिवेदन के अनुसार १९५०-५१ में राष्ट्रीय आय ८८.५ अरब रु. थी और सरकारी खर्च ५.२ अरब रु. था. सरकारी खर्च राष्ट्रीय आय का ५.९ प्रतिशत था. १९६०-६१ में राष्ट्रीय आय (१९४८-४९ की क़ीमतों पर) बढ़ कर १२७.५ अरब रु. हो गयी है. इस दशक में राष्ट्रीय आय में ४४ प्रतिशत की वृद्धि हुई. इसी बीच सरकारी खर्च ५.२ अरब रु. से बढ़ कर १०.३ अरब रु. हो गया. सरकारी खर्च ९८ प्रतिशत या लगभग दुगुना बढ़ा, जब कि राष्ट्रीय आय ४४ प्रतिशत ही बढ़ी. अनुपात के रूप में १९५०-५१ के ५.९ प्रतिशत से बढ़ कर सरकारी खर्च राष्ट्रीय आय का १९६०-६१ में ८.१ प्रतिशत हो गया. निजी खर्च राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में इस दशक में १९५०-५१ के ८८.५ प्रतिशत से गिर कर १९६०-६१ में ८३.८ प्रतिशत ही रह गया. कुल रक़म में वृद्धि हुई,

किंतु राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में निजी खर्च में कमी हुई.

योजनाबद्ध विकास में सरकारी क्षेत्र का अंश बढ़ता ही है, यह सरकारी पक्ष की ओर से कहा जा सकता है. यह सही है कि कम्युनिस्ट देशों में, सोवियत संघ और चीन में जहाँ योजनाबद्ध विकास हुआ वहाँ निजी खर्च पर रोक लगा कर सरकारी आय और विनियोग बढ़ा कर तेजी से आर्थिक विकास का प्रयोग हुआ. किंतु अपने देश का अनुभव इस के विपरीत है. निजी खर्च के लिए उपलब्ध साधनों की उपलब्धि में अपेक्षाकृत कटौती कर सरकारी खर्च में लगभग दुगुनी या अधिक की वृद्धि हुई, किंतु बचत में सरकारी क्षेत्र का योगदान प्रायः नगण्य रहा. जैसे १९६०-६१ में सरकारी खर्च राष्ट्रीय आय का ८.१ प्रतिशत था, किंतु सरकारी बचत का अंश कुल राष्ट्रीय आय का १.७ प्रतिशत ही रहा. उस दशक में तो सरकारी बचत का अनुपात राष्ट्रीय आय में बढ़ने के बजाय गिरा : १९५१-५२ में १.९ प्रतिशत से गिर कर १.७ प्रतिशत रह गया, जब कि इसी बीच सरकारी व्यय राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में ५.२ प्रतिशत से बढ़ कर ८.१ प्रतिशत हो गया. जाहिर है कि सरकार का योग खर्च में जितना बढ़ा है बचत और विनियोग में नहीं. यह सरकारी खर्च निजी खर्च की क़ीमत पर हुआ, किंतु अनुत्पादन कामों में, दिखावे में, शौक़ीनी और फ़िजूलखर्ची में लगा. इसलिए चौथी आयोजना के लिए जरूरी अंदरूनी और विदेशी साधन नहीं जुट पाये और पंचवर्षीय आयोजन दो-तीन बरस से स्थगित है.

राष्ट्रीय आमदनी में सरकारी खर्च की वृद्धि और निजी उपयोग के लिए अपेक्षाकृत कमी का असर निजी उपयोग में औसत कमी के रूप में हुआ है. यह हाल तो औसत का है. आबादी के निचले ६० सैंकड़ा या ३० करोड़ से अधिक का क्या हाल हुआ है ? अकाल की खबरें और तस्वीरें अखबारों में छपती हैं. इस अखंड अकाल के इलाक़े और वर्ग का क्या हाल है ? इस पर आमदनी के बढ़ने, घटने, स्थिर रहने का क्या असर पड़ता है ? यह एक अलग ही जाँच का विषय है.

आयोजना

समझौतावादी आयोजन से आर्थिक आयोजन

तीन वर्ष के आयोजन-अवकाश के बाद जिस आर्थिक वातावरण में चौथी पंचवर्षीय आयोजना शुरू होने जा रही है वह प्रकटतः बहुत उत्साहवर्द्धक है. इस लिए हो सकता है कि आयोजना में आर्थिक वृद्धि की दर का जो लक्ष्य रखा गया है वह बहुत ऊँचा प्रतीत न हो और यह समझा जाये कि अर्थ-व्यवस्था में ५-६ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से विकास करने की क्षमता है. परंतु पिछले तीन आयोजनों के परिणामों को देखते हुए अधिक आशान्वित होना उचित नहीं.

पिछले तीन आयोजनों पर निगाह डालने से एक दिलचस्प परिणाम यह निकलता है कि जैसे-जैसे आयोजनों का आकार बढ़ता गया वृद्धि की आयोजित दर और वास्तविक दर का अंतर भी बढ़ता गया है. इस से भी महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि जिन व्यापक सामाजिक उद्देश्यों को सामने रख कर योजनाएँ बनायी गयीं थीं उन से दूरी बढ़ती गयी. आय की असमानताएँ बढ़ती गयीं, क्षेत्रीय असमानताएँ भी नहीं घटीं और ग़ैर-सरकारी उद्यम की अपेक्षा सरकारी क्षेत्र को अधिक महत्त्व दे कर समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने का प्रयत्न सफल रहा. सरकारी उद्यम सफ़ेद हाथी बन गये, जिन की व्यापक असफलताएँ जो लगभग सभी दिशाओं में हैं—जैसे प्रबंधकीय अकुशलता, विक्षुब्ध औद्योगिक संबंध, लाभार्जन की क्षमता, कार्यान्वयन में ढीलढाल और ढुलमुलपन—राज्य की कुछ कर सकने की सामर्थ्य, उस के नेतृत्व के बारे में गंभीर संदेह पैदा करती हैं. सच्चाई तो यह है कि समाजवादी व्यवस्था की ओर न ले जा कर सरकारी उद्यमों ने ग़ैर-सरकारी उद्यम को फ़ायदा पहुँचाया है और उसे अधिक मजबूत बनाया. इस स्थिति में स्वाभाविक है कि लोगों का राज्य द्वारा संचालित आयोजन पर से विश्वास उठ जाये और आवाजें उठने लगें कि आयोजन की विद्यमान रीति के स्थान पर निर्देशनात्मक आयोजन चालू किया जाये.

वास्तव में किसी भी आयोजन की सफलता इस पर निर्भर करती है कि आयोजक बदलने वाली शक्तियों (चरों) पर किस मात्रा तक नियंत्रण रख सकता है. नियंत्रण जितने ही अधिक चरों पर जितनी ही अधिक मात्रा में होगा योजना की सफलता की संभावना उतनी ही अधिक होगी. अल्पविकसित अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक और अनार्थिक चर दोनों महत्त्वपूर्ण होते हैं, बल्कि कभी-कभी अनार्थिक चर अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं. आर्थिक विकास की समस्या केवल प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि की समस्या नहीं होती, बल्कि सामाजिक, संस्थात्मक और संगठनात्मक परिवर्त्तनों की समस्या भी होती है. लोकतंत्री आयोजना, जिसे एक 'महान प्रयोग' कह कर भारत में अपनाया गया है, आर्थिक और अनार्थिक चरों पर आयोजक के नियंत्रण को सीमित कर देती है और नियंत्रणों के बारे में समझौते होने लगते हैं. परिणामस्वरूप नियंत्रण नहीं रह जाते या विकृत हो जाते हैं. समझौते की संभावना निश्चित और स्पष्ट नीति के निर्धारण और उसके कार्यान्वयन में सदा अवरोध उत्पन्न करती रही है. इस का फल यह हुआ है कि जिन शक्तियों पर नियंत्रण नहीं हो सकता, जैसे विदेशी सहायता और मौसम, वे अपनी जगह बनी रहीं और आयोजकों को आयोजनाओं के पूरा न होने का बहाना मिलता रहा. परंतु जिन पर नियंत्रण हो सकता था और होना चाहिए था, जैसे क़ीमतें, शिक्षितों और तकनीकविदों, इंजीनियरों में बेरोजगारी इत्यादि, वे भी आयोजकों की शक्ति के बाहर हो गयीं.

विद्यमान सामाजिक-राजनैतिक ढांचे में महान संगठनात्मक परिवर्त्तन लाने की सामर्थ्य रखने वाली संस्थाएँ किस प्रकार भ्रष्ट और विकृत हो जाती हैं, इस का उदाहरण भारत में सहकारिता है. सहकारिता के प्रसार का फ़ायदा अशक्त लोगों को उतना नहीं हुआ जितना पहले ही से शक्तिशाली लोगों को हुआ और इन के हाथों में सहकारिता भी, जिस का उद्देश्य अशक्तों को समर्थ बनाना है, शोषण का साधन बन गयी.

दरअसल आयोजकों को जिन मूलभूत प्रश्नों के उत्तर अवश्य देने चाहिए थे उन से वे कतराते रहे और तात्कालिक दृष्टि से समझौते करते रहे. समझौते की मनोवृत्ति पूरे भारतीय आयोजन में बसी हुई है. मिश्रित अर्थ-व्यवस्था के माध्यम से समाजवादी व्यवस्था क़ायम करने का प्रयत्न इस का एक उदाहरण है, जिस का परिणाम यह हुआ कि आर्थिक विकास के लिए समाजवादी व्यवस्था की संभावनाओं का उपयोग करना तो दूर रहा, उन्हें पूरी तरह से पहचाना तक नहीं गया. यह तथ्य भुला दिया गया कि राज्य बचत का कार्य अपने हाथ में ले कर आय की असमानता के आर्थिक औचित्य को समाप्त कर देता है. हुआ यह कि आयोजनों के कारण से एक नये धनी वर्ग का उदय हुआ, जिस की विशेषता उस का ठाठबाट, उस का आडंबरपूर्ण व्यय है. इसी प्रकार समाजवादी व्यवस्था की विकास की आर्थिक और अनार्थिक लागतों को कम करने की, औद्योगीकरण के दबावों और तनावों को दूर करने की संभावनाओं को न तो पहचाना गया न उन का उपयोग किया गया.

समझौते की मनोवृत्ति का एक अन्य उदाहरण रोजगार-संबंधी नीति है. पूंजी-प्रधान भारी और आधारभूत उद्योगों को स्थापित कर के विकास की दर बढ़ाने और श्रम-प्रधान छोटे पैमाने के और घरेलू उद्योगों को प्रोत्साहन दे कर बेरोजगारी की समस्या को दूर करने की नीति की विफलता इस से स्पष्ट हो जाती है कि विकास की दर ऊँची नहीं रही और बेरोज़गारी बढ़ती गयी. वास्तव में इस संबंध में हुई बहसों में कई प्रकार की भ्रांतियां मिलती हैं. बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए तकनीक के चुनाव के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया है वह इस मुख्य बात को ध्यान में नहीं रखता कि समस्या पर श्रम लगाने के दृष्टिकोण से नहीं बल्कि पूंजी बचाने के दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए, क्यों कि पूंजी दुर्लभ कारक है. यह बिल्कुल संभव है कि श्रम-प्रधान तकनीक में यद्यपि श्रम की प्रतिइकाई पूंजी की मात्रा कम हो, परंतु

उत्पत्ति की प्रतिइकाई पूंजी अधिक लगे. इसी प्रकार हो सकता है पूंजी-बचाऊ तकनीक श्रम-बचाऊ भी हो (जैसे इस्पात-उद्योग में एल० डी० प्रक्रिया). मुख्य बात यह है कि समस्या किसी भी प्रकार रोज़गार बढ़ाने की नहीं, बल्कि बढ़ती दर से प्रतिव्यक्ति उत्पत्ति को बढ़ाते हुए रोज़गार बढ़ाने की है.

परंतु उपलब्ध श्रम-प्रधान तकनीकों की संभावनाओं की पूरी तरह से जाँच नहीं की गयी. . श्रम-प्रधान तकनीकों को छोटे पैमाने के उद्योगों से आवश्यक रूप से संबद्ध समझा गया है. परंतु इन दो के बीच कोई आवश्यक संबंध नहीं है. एक ही छत के नीचे एक हज़ार हथकरघे बैठा कर उत्पादन किया जा सकता है. यदि इस दिशा में सोचा जाता तो श्रम-प्रधान तकनीक का उपयोग करते हुए भी बड़े पैमाने के उद्यम की किफ़ायतों का फ़ायदा उठाया जाता, जिस से पूंजी के साथ-साथ एक अन्य

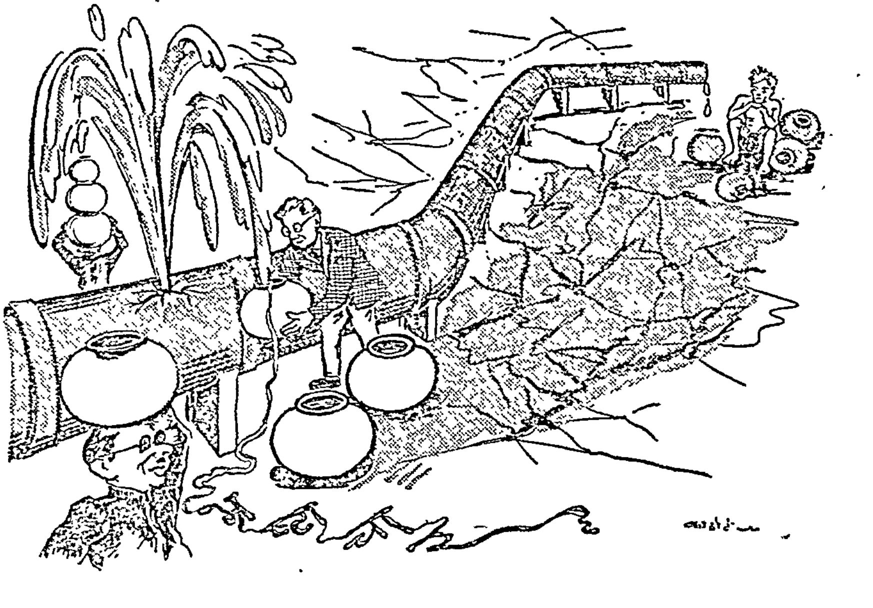

दुर्लभ साधन, उद्यम की कमी, आड़े न आती.

यह बात स्पष्ट रूप से समझी जानी चाहिए कि मध्य मार्ग का अनुसरण करना तलवार की धार पर चलने के समान है और दक्षता के अभाव में पथ-भ्रष्ट होना अपरिहार्य है. जैसे यदि रोज़गार-संबंधी नीति सफल होती तो छोटे और घरेलू उद्योगों के प्रसार के फलस्वरूप अल्पकाल में बेरोज़गारी न बढ़ती और भारी और आधारभूत उद्योगों के प्रसार के कारण दीर्घ काल में जनसंख्या के बढ़ने और स्वयं विकास की प्रक्रिया से उत्पन्न बेरोज़गारी की समस्या का भी समाधान हो गया होता. परंतु दक्षता के अभाव में, इस नीति की विफलता के कारण, न तो अल्पकाल में बेरोज़गारी घटी और न दीर्घ काल में घटने की संभावना है.

चौथे पंचवर्षीय आयोजन के प्रारूप में बुनियादी सवालों से बचा गया है और जिन सामाजिक और संस्थात्मक उद्देश्यों को ले कर पंचवर्षीय आयोजनों का सूत्रपात किया गया था उन की बहुत कम चर्चा की गयी है. दीर्घकालीन विकास के परिप्रेक्ष्य में पंचवर्षीय आयोजनों के स्थान पर अपने-आप में स्वतंत्र कार्यकारी वार्षिक योजनाओं को रखना असमर्थता की स्वीकृति है. आर्थिक विकास की शक्तियाँ दीर्घकालिक होती हैं और वर्ष के आरंभ में विद्यमान स्थिति के आधार पर सालाना योजनाओं को बनाने पर वे नज़र-अंदाज़ हो जा सकती हैं. विकास की शृंखला में यदि प्रत्येक कड़ी तात्कालिक परिस्थितियों के आधार पर गढ़ी गयी तो कुछ कमज़ोर कड़ियों के कारण विकास की संपूर्ण प्रक्रिया मंद हो जायेगी, जैसे इंजीनियरों में बेरोज़गारी देखते हुए उन के कॉलेज में प्रवेश में कमी, जिस का नतीजा चार साल बाद सामने आयेगा और तब इस बीच हुए विकास के कारण इंजीनियरों की कमी महसूस हो सकती है. इस प्रकार के नीति-निर्धारण की दूरदर्शिता इस लिए भी संदिग्ध है क्यों कि अर्थ-व्यवस्था में जिस प्रकार के दबाव और तनाव पैदा हो चुके हैं उन के उचित राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक समाधान के लिए दीर्घकालीन दृष्टि होना आवश्यक है. ये समस्याएँ ऐसी नहीं है कि आर्थिक विकास की दर ऊँची होने पर अपने-आप हल हो जायेंगी, प्रत्युत् ऊँची दर उन्हें अधिक तीव्र कर देगी.

बुनियादी परिवर्तनों के प्रति आग्रह के कम होने का एक परिणाम कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में ऐसे विचार का समर्थन हुआ है जिस के अनुसार राज्य का व्यय वहीं तक सीमित रहना चाहिए जहाँ तक राज्य को, संगठित क्षेत्र द्वारा, कृषि-क्षेत्र में अधिक माल बेच कर उस की बढ़ी आय में से हिस्सा मिलता है. इस प्रकार सार्वजनिक व्यय विकास का प्रेरक नहीं रह जायेगा, बल्कि केवल समायोजन-कारी बन जायेगा. इस विचारधारा को स्वीकृति मिलने का अवश्यंभावी परिणाम यह होगा कि आयोजना निर्देशनात्मक हो जायेगी, जैसी वह अधिकांश पूंजीवादी देशों में है.

खाद्यान्नों की पूर्ति की स्थिति, क़ीमतों के आपेक्षिक स्थायित्व और सामान्य आर्थिक समुत्थान को देखते हुए और पिछले आयोजनों ने जिस औद्योगिक ढाँचे का निर्माण किया है उस की पृष्ठभूमि में ५-६ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से वृद्धि करना बहुत कठिन नहीं है. परंतु उस के लिए जिस परिष्कृत और जटिल प्रकार के आयोजन की अपेक्षा है उस का पूरा होना कठिन प्रतीत होता है. अब तक औद्योगिक और अन्य क्षेत्रों में जिस अतिरिक्त क्षमता का सृजन हो चुका है उस के कारण घरेलू बचत की दर में बहुत वृद्धि किये बिना और अपेक्षाकृत कम विदेशी सहायता मिलने पर भी कम से कम अल्पकाल में वृद्धि की इस दर को बनाये रखा जा सकता है. परंतु इस के लिए आवश्यक है स्थूल योगों को छोड़ कर छोटी इकाइयों के स्तर पर योजना बनायी जाये. यदि अतिरिक्त क्षमता का उपयोग कर के आय और रोज़गार को बढ़ाने की संभावनाओं का पूरा उपयोग करना था तो उन के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली जानी चाहिए थी. परंतु आयोजन-अवकाश के काल में मिला समय गँवा दिया गया और अब संभावना इस बात की है कि विस्तृत जानकारी के अभाव में अतिरिक्त क्षमता के पूर्णतर उपयोग की योजनाएँ ठीक से कार्यान्वित नहीं की जा सकेंगी और आय में वृद्धि की दर के इस लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया जा सकेगा. जिसे कृषि के क्षेत्र में क्रांति के नाम से पुकारा जा रहा है वह वास्तव में क्रांति है या नहीं इस का निर्णय मौसम के प्रतिकूल होने पर ही हो सकेगा. परंतु यदि कृषि-उत्पादन में वृद्धि की दर पिछले वर्षों की औसत दर के बराबर रही तो यह अपने-आप में एक उपलब्धि होगी, क्यों कि नयी ज़मीन तोड़ कर उत्पत्ति में वृद्धि करने की अधिक गुंजाइश नहीं रह गयी है. इन बातों को देखते हुए पूंजी-उत्पत्ति के अनुपात में और निर्यात-प्रसार की संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए इस की संभावना अधिक प्रतीत होती है कि वृद्धि की दर ३.५-४ प्रतिशत प्रतिवर्ष है.

यदि ऐसा हुआ तो अर्थ-व्यवस्था को स्वावलंबी और आत्मचालित होने में और अधिक समय लगेगा. इस लिए यह प्रश्न स्वाभाविक है कि क्या आयोजना के इस विशाल आडंबर के बिना वृद्धि की दर ३.५-४ प्रतिशत प्रतिवर्ष नहीं होगी ? आयोजन-अवकाश के उत्तरार्द्ध में आर्थिक स्थिति देखते हुए इस का उत्तर असंदिग्ध रूप से 'नहीं' नहीं है. तो फिर ऐसे आयोजन की क्या सार्थकता है जो न तो व्यापक सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल हुई है और न ही आर्थिक विकास की दर को काफ़ी ऊँचा उठा पायी है ?

विदेशी क़र्ज़

संकटग्रस्त अर्थ-व्यवस्था

हिंदुस्तान में अंग्रेज़ी राज की स्थापना के बाद से ही ब्रितानी शासन ने भारत के वैदेशिक व्यापार, विदेशी पूंजी और क़र्ज़ का एक खास ढाँचा बनाया, जिस ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था का संबंध पड़ोसी देशों से लगभग पूरी तरह समाप्त कर के भारतीय अर्थ-व्यवस्था को ब्रितानी अर्थ-व्यवस्था के साथ जोड़ा. इस ऐतिहासिक तथ्य का महत्व इस कारण है कि १९४७ तक तो वह ढाँचा अपरिवर्तित रहा ही, पिछले बीस सालों में भी उस में कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं हुआ है. वह ढाँचा क्या है और पिछले दिनों उस में क्या परिवर्तन हुए हैं, इसे हम आगे देखेंगे.

उन्नीसवीं सदी के अंत तक ब्रितानी शासन ने भारत के वैदेशिक व्यापार को ऐसा बना दिया था कि भारत का निर्यात-व्यापार लगभग पूरी तरह भारत में लगी हुई ब्रितानी पूंजी के हाथ में आ गया था. निर्यात की मुख्य वस्तुएँ थीं बागान के उत्पादन, अर्थात् चाय, कच्चा खनिज माल, यानी कोयला, कच्चा लोहा, अबरख आदि और नील या अफ़ीम जैसी खेती की पैदावार, जिन के ठेके अंग्रेज़ों के हाथ में थे. इन उद्योगों में—अगर इन्हें उद्योग कहा जा सके तो—पूंजी लगाने के लिए ब्रितानी पूंजीपतियों को तरह-तरह की सुविधाएँ और सहायता दी गयी थीं. मिसाल के लिए चाय बागानों के मालिकों को मुफ़्त लगान-माफ़ी वाली ज़मीनों के अलावा ५ रु. फ़ी एकड़ नक़दी सहायता दी गयी थी (जिस का वास्तविक मूल्य आज की मुद्रा की तुलना में संभवतः पचास गुने के आसपास होगा). भारतीय रेलों में पूंजी लगाने वालों के लिए भारत सरकार द्वारा ५-६ प्रतिशत ब्याज आरक्षित था. इस के अलावा भारत सरकार नियमित रूप से ब्याज की ऊँची दरों पर लंदन में क़र्ज़ लेती थी. भारत में लगी ब्रितानी पूंजी का लगभग आधा हिस्सा, दूसरे महायुद्ध के पहले तक, ऐसे क़र्ज़ों के रूप में था.

जूट की मिलें पहला निर्माण-उद्योग था जिस में ब्रितानी पूंजी लगी. शुरू-शुरू में सरकार ने मशीनों के आयात पर प्रतिबंध भी लगाये और रेलों में निर्यात-सामग्री की ढुलाई की रियायती दरें रखी गयीं. बीसवीं सदी के आरंभ में इस में कुछ परिवर्तन हुआ. सरकारी स्तर पर भेद-भाव प्रकट रूप में घटा; वस्त्र, साबुन, चीनी, दियासलाई और बाद में सीमेंट जैसे उद्योग शुरू हुए और १९११ में जमशेदपुर के इस्पात कारखाने की भी नींव पड़ी. इन नये उद्योगों में कुछ भारतीय पूंजी भी धीरे-धीरे लगी. लेकिन दूसरे महायुद्ध के पहले तक संगठित भारतीय उद्योगों में महत्वपूर्ण उद्योग ब्रितानी पूंजीपतियों के हाथ में थे. मुनाफ़ों का अनुमान इस से लगाया जा सकता है कि जूट मिलों ने, जो पूरी तरह अंग्रेज़ों के हाथ में थीं, १९१८-२१ के तीन सालों में १ करोड़ ९० लाख पौंड आरक्षित निधि में डालने के बाद २ करोड़ २९ लाख पौंड लाभांश के रूप में बाँटा, जब कि उन की कुल पूंजी केवल ६१ लाख पौंड थी. उस समय सूती कपड़े की मिलों का लाभांश १२% से २५% तक होता था.

दूसरे महायुद्ध के पूर्व तक हिंदुस्तान में कुल कितनी ब्रितानी पूंजी लगी थी, इस के बारे में विभिन्न अनुमान हैं, लेकिन एशिया व दूरपूर्व के लिए संयुक्तराष्ट्र की आर्थिक बुलेटिन (जून, १९६२) के अनुसार १९३०-३१ में यह पूंजी ५३ करोड़ पौंड और १९३९ में ६५-७० करोड़ पौंड के लगभग थी. इस बीच भारत के आयात-निर्यात व्यापार में केवल एक बड़ा फ़र्क पड़ा था—वस्त्र-उद्योग के विकास और संभवतः स्वदेशी आंदोलन के फलस्वरूप सूती कपड़ों का आयात बहुत घट गया था. अन्यथा भारतीय उद्योग-धंधों का और वैदेशिक व्यापार का एक ऐसा ढाँचा बन गया था जिस में लचीलापन बहुत कम था. भारतीय उद्योग-धंधे दैनिक उपभोग की बुनियादी ज़रूरतों तक सीमित थे, या फिर उन के उत्पादन की देश के अंदर बहुत कम माँग थी और उन का उत्पादन मुख्यतः इंगलिस्तान को निर्यात के लिए होता था. चाय, जूट, चमड़ा, कच्चा खनिज, कपास, ये निर्यात की मुख्य वस्तुएँ थीं और कपड़ा, साबुन आदि को छोड़ कर लगभग सभी विनिर्मित वस्तुओं का इंगलिस्तान से आयात होता था, जिस में रेल के इंजन और अन्य सामान, इंजीनियरी के सामान, तरह-तरह की मशीनें और अन्य उपभोग की वस्तुएँ होती थीं. भारतीय उद्योगों की यह विशेषता थी कि उन का पूरा ढाँचा मशीनों और विनिर्मित वस्तुओं के आयात पर खड़ा था.

इस ढांचे में भारतीय अर्थ-व्यवस्था के स्वतःस्फूर्त्त विकास की कोई गुंजाइश नहीं थी. दूसरे महायुद्ध के दौरान भारत सरकार ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था को पूरी तरह युद्ध-सेवा में लगा दिया, देश के जनजीवन पर जिस के भयंकर परिणाम हुए. लेकिन इस का एक परिणाम यह भी हुआ कि भारत सरकार क़र्ज़दार न रह कर देनदार हो गयी और १९४७ में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे ब्रितानिया से १६०० करोड़ रुपया पाना था.

उस समय भारत सरकार के सामने यह विकल्प था कि वह अर्थ-व्यवस्था के औपनिवेशिक ढाँचे को बदल कर उसे स्वतःस्फूर्त्त आर्थिक विकास की दिशा में ले जाये. उस में शायद विदेशी पूंजी और सहायता की भी एक सहायक भूमिका हो सकती थी, लेकिन भारत सरकार के आयोजकों ने ऐसा न कर के उसी औपनिवेशिक अर्थ-व्यवस्था पर औद्योगिक विकास का ढाँचा खड़ा करना चाहा. विश्व के विकसित और धनी देशों ने इस से लाभ उठा कर भारतीय अर्थ-व्यवस्था को इस तरह अपने शिकंजे में लिया कि अब उस की स्थिति साँप-छछूँदर जैसी हो गयी है.

पिछले बीस सालों में भारत सरकार की आर्थिक नीति के दो मुख्य पाये रहे हैं—विदेशी पूंजी और निर्यात. तर्क यह रहा है कि विदेशी पूंजी से ऐसा उत्पादन बढ़ेगा जिस का निर्यात हो सके और निर्यात से अर्जित विदेशी मुद्रा को फिर पूंजी में बदला जा सकेगा. एक अनंत क्रम के रूप में इस की कल्पना की गयी थी, लेकिन यह चिंतन मूलतः खोटा था, क्यों कि यह आर्थिक विकास की योजना को बिलकुल नकली ढंग से आरोपित करता था. अर्थ-व्यवस्था के स्वतःस्फूर्त्त विकास की इस में कहीं गुंजाइश नहीं थी. फलस्वरूप इस का एक पाया शुरू से ही ठूँठ रहा—निर्यात व्यापार नहीं बढ़ सका.

भारत के वैदेशिक व्यापार के तीन मुख्य पहलू हैं. सब से महत्त्वपूर्ण पहलू है कि भारत का निर्यात-व्यापार अब भी अधिकांश कुछ परंपरागत वस्तुओं तक सीमित है. दूसरी योजना की समाप्ति के समय भी भारतीय निर्यात का एक तिहाई केवल दो वस्तुओं तक सीमित था—चाय और जूट और ये दोनों ही उद्योग अभी भी अधिकांश ब्रितानी पूंजीपतियों के हाथ में हैं. इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है. भारतीय निर्यात-व्यापार का लगभग तीन चौथाई ऐसी वस्तुओं का है जिन में निर्यात बढ़ाने की गुंजाइश लगभग नहीं है: चाय और जूट के अलावा कपड़ा और कपास, चमड़ा और चमड़े का सामान, वनस्पति तेल, मसाले, काजू और कच्चा खनिज. पिछले दिनों भारत में प्रचलित मूल्य से लगभग आधे दाम पर अमेरिका को चीनी का निर्यात बढ़ाने की चेष्टा की गयी. देश में भोजन की कमी के बावजूद दालें निर्यात की गयीं, केला निर्यात किया गया. लेकिन निर्यात का स्तर उस के बाद भी लगभग स्थिर बना रहा.

पिछले दिनों निर्यात-व्यापार में कुछ विविधता लाने की कोशिश की गयी है—बिजली के पंखे और मोटर, सिलाई की मशीनें, साइकिलें आदि. लेकिन इस तरह के परिवर्तन में सफलता मिलने की गुंजाइश ज़्यादा नहीं है, क्यों कि विनिर्मित वस्तुओं का निर्यात करने में भारत को पश्चिम के विकसित देशों से प्रतियोगिता करनी पड़ती है.

निकट भविष्य में स्थिति और भी बिगड़ सकती है. भारत का वस्त्र-उद्योग रोगी है. इस के अलावा पश्चिमी देशों ने वस्त्र के आयात पर प्रतिबंध लगा रखे हैं और नकली रेशम आदि के वस्त्रों का निर्माण बढ़ने के साथ सूती कपड़ों की खपत घटने की संभावना है. जूट की वस्तुओं का उत्पादन पहले ही माँग से ज़्यादा है और इस मामले में भी पश्चिमी देश

जूट के स्थान पर काग़ज़ और अन्य वस्तुओं का इस्तेमाल करने लगे हैं. केवल चाय की खपत ही न्यूनाधिक स्थिर है. एक अनुमान के अनुसार अगले दस-बारह सालों में भारत का निर्यात-व्यापार अधिक से अधिक सवाया हो सकेगा.

यह स्थिति इस तथ्य के साथ जुड़ी हुई है कि भारत का आधे से अधिक निर्यात-व्यापार पश्चिमी यूरोप और अमेरिका के साथ होता है, लगभग एक चौथाई अकेले ब्रिटेन के साथ. इस का एक पहलू यह भी है कि भारत जिन वस्तुओं का निर्यात करता है उन में उत्पादकता अपेक्षाकृत बहुत कम है और जिन वस्तुओं का आयात करता है उन में बहुत अधिक. फलस्वरूप वैदेशिक व्यापार भारत की लूट का एक स्थायी तरीक़ा बना हुआ है. यह एक प्रासंगिक तथ्य है कि लंदन स्थित भारतीय दूतावास में लगभग डेढ़ हज़ार कर्मचारी हैं, बहुतेरे 'व्यापार-संगठन' के नाम पर और यूरोप के अन्य देशों के साथ होने वाला बहुतेरा व्यापार भी लंदन के मार्फ़त होता है.

निर्यात बढ़ाने में असफल होने पर भारत सरकार द्वारा भुगतान-संतुलन को ज़्यादा बिगड़ने से रोकने के लिए आयात पर अंकुश लगाये गये और अधिकांश उपभोक्ता-वस्तुओं के आयात पर पाबंदी लगा दी गयी. लेकिन इस के दो ऐसे परिणाम हुए, जिन से स्थिति और बिगड़ी. विदेशी पूंजी अथवा विदेशी सहयोग से निर्मित उद्योगों को चलाते रहने के लिए ही कच्चे माल और पुर्ज़ों आदि का आयात आवश्यक है. आरोपित औद्योगीकरण का एक परिणाम यह है कि ऐसे उद्योग बहुत ही कम हैं जो बिना ऐसे आयात के चल सकते हों. अतः उपभोक्ता-वस्तुओं के आयात पर पाबंदी लगाने के बाद भी आयात कम नहीं हुआ, बढ़ता ही गया. आयात में मशीनों और परिवहन-सामग्री का अनुपात १९२८ में १५% से बढ़ कर अब ५५% प्रतिशत हो गया है. इस आयात में विशेष कमी नहीं की जा सकती, क्यों कि इस का मतलब होगा समूची अर्थ-व्यवस्था का अस्तव्यस्त हो जाना. लेकिन इस आयात को जारी रखने के लिए धन कहाँ से आयेगा ?

दूसरी बड़ी समस्या है कि आयात पर प्रतिबंध लगने के फलस्वरूप तस्कर व्यापार बहुत अधिक बढ़ गया है. सोना (आयात) और अफ़ीम (निर्यात) इन में मुख्य है, लेकिन भोजन-सामग्री से ले कर हीरों तक कितनी ही चीजों का तस्कर व्यापार होता है. रिज़र्व बैंक के एक अनुमान के अनुसार १९५७-५८ में २७ करोड़ रुपये से अधिक मूल्य का सोना तस्करी से भारत आया. यह अनुमान शायद वास्तविकता से बहुत कम है. एक अनुमान के अनुसार भारत में लगभग ६०० करोड़ रुपये प्रतिवर्ष का तस्कर व्यापार होता है. कुछ तस्करी अधिकृत आयात-निर्यात व्यापारियों द्वारा भी की जाती है, जो सरकारी काग़ज़ों में कम माल दिखाते हैं. अर्थ-व्यवस्था पर इस के कुपरिणामों का अनुमान लगाया जा सकता है.

यह स्थिति उत्पन्न कैसे हुई ? इस के लिए पिछले बीस सालों में विदेशी पूंजी और क़र्ज़ों की वृद्धि की प्रक्रिया को देखना होगा.

विदेशी पूंजी के द्वारा आर्थिक विकास के तर्क के अनुरूप ही भारत सरकार ने निजी विदेशी पूंजी को आकर्षित करने के लिए तरह-तरह की सुविधाएँ देने की घोषणा की. लेकिन इन घोषणाओं के बावजूद विदेशी पूंजी भारत में नहीं के बराबर ही आयी है. एक अनुमान के अनुसार १९४८ में भारत में लगभग २६५ करोड़ मूल्य की निजी विदेशी पूंजी लगी थी, जो १९६१ में बढ़ कर ६८१ करोड़ रुपये हो गयी. लेकिन यह वृद्धि सर्वथा भ्रामक है, क्यों कि इस का ८०% से अधिक सम्पत्ति के पुनर्मूल्यांकन और मुनाफ़ों के पुनः विनियोजन का फल है. नयी विदेशी पूंजी बहुत कम आयी, बल्कि अधिकांश वर्षों में, अगर इस तरह की नकली वृद्धि को छोड़ दें, तो निजी विदेशी पूंजी घटी. जो नयी विदेशी पूंजी आयी थी, उसे लगाने वालों ने बड़ी अनुचित शर्तें लगायीं. जिन दो अमेरिकी कंपनियों ने भारत में तेल-शोधक कारखाने लगाये उन्होंने भारत में अपने उत्पादन का दाम ऐसा रखा जैसे वह अमेरिका से आयात किया गया हो. इन कंपनियों ने तीन वर्ष के अंदर ही अपनी पूंजी से अधिक मुनाफ़ा कमा लिया. रासायनिक खाद का एक कारखाना लगाने के लिए एक अमेरिकी कंपनी ने यह शर्त लगायी कि भारत सरकार उस के हिसाब-किताब की जाँच नहीं कर सकेगी और उसे अपना उत्पादन किसी भी मूल्य पर बेचने की छूट होगी.

स्वतंत्र भारत में निजी विदेशी पूंजी नहीं आयी, इस का कारण यही था कि ब्रितानी शासन की सारी आर्थिक नीति जिस प्रकार उस के पक्ष और हित में थी वैसा अब नहीं हो सकता था. और इस कारण विदेशी पूंजीपतियों ने भारत में पूंजी लगाने पर हमेशा उस के वास्तविक मूल्य को बढ़ा-चढ़ा कर बताया, निर्यात कर के विदेशी मुद्रा अर्जित करने में अनिच्छा दिखायी, भारतीयों को प्रशिक्षित करने में कोई रुचि नहीं ली, अपने व्यापार का नियंत्रण भारत के बाहर से किया और हर पूंजीपति ने अपनी मर्ज़ी की मशीनें मँगा कर लगायी, जिस से कि हर मामले में पुर्ज़ों के आयात की अनिवार्यता बनी रही.

लेकिन निजी विदेशी पूंजी के न आने के फलस्वरूप भारत सरकार आर्थिक विकास का कोई वैकल्पिक मार्ग अपनाये, इस की नौबत नहीं आयी. पौंड पावने को भारत सरकार पहले से ही खुले हाथों खर्च कर रही थी. १९५१ से काफ़ी बड़े पैमाने पर अमेरिका से सरकारी 'सहायता' मिलने लगी. आरंभ से ही इस सहायता का बड़ा हिस्सा अमेरिका में अन्न ख़रीदने के लिए पी. एल. ४८० के अंतर्गत दिया गया. १९५१ से १९६४ के बीच कुल लगभग ५७५ करोड़ डॉलर की अमेरिकी सहायता में से लगभग ३०० करोड़ डॉलर की रक़म पी. एल. ४८० के अंतर्गत दी गयी. यह रक़म बढ़ कर अब ४०० करोड़ डॉलर के लगभग हो गयी है. भारतीय आर्थिक नीति का यह एक दिलचस्प लेकिन दुखद पहलू है कि देश के सब से बड़े उद्योग खेती की उपेक्षा के फलस्वरूप देश में व्यापक अकाल और भुखमरी से बचने के लिए ही इतने बड़े पैमाने पर क़र्ज़ लेना पड़ा.

अमेरिकी आर्थिक सहायता का एक पहलू यह रहा है कि शुरू में उस का अधिकांश अनुदान के रूप में था. १९५४-५८ के बीच अमेरिकी सहायता में ३९ करोड़ डॉलर अनुदान के रूप में था और १२ करोड़ डॉलर से कुछ अधिक क़र्ज़ के रूप में. १९६२ तक यह अनुपात आधा-आधा हो गया और अब अनुदान बिलकुल नहीं है, सारी 'सहायता' क़र्ज़ के रूप में है. दूसरे, अमेरिकी सहायता की शर्तें अधिकाधिक कड़ी होती गयी हैं. अब ९० फ़ीसदी से अधिक सहायता 'बँधी' हुई मिल रही है, अर्थात् उसे अमरीका में ही खर्च किया जा सकता है.

१९६५ में भारत-पाकिस्तान संघर्ष के बाद अमेरिकी सहायता लगभग बिलकुल बंद हो गयी. उस के बाद पी. एल. ४८० के अधीन अन्न ख़रीदने के लिए तो क़र्ज़ फिर दिये जाने लगे, लेकिन अन्य सहायता अब भी लगभग पूरी तरह बंद है. हमारे वैदेशिक व्यापार की स्थिति इतनी बिगड़ गयी कि भारत-सरकार को रुपये का अवमूल्यन करना पड़ा. अमेरिका और अन्य क़र्ज़ देने वाले देशों का आग्रह इस पर बहुत था. अवमूल्यन के फलस्वरूप भारत निर्यात-व्यापार का मूल्य एकदम एक-तिहाई कम हो गया और आयात का मूल्य डेढ़ गुना हो गया. आशा यह की गयी थी कि अवमूल्यन के फलस्वरूप भारतीय माल की क़ीमतें घटेंगी और निर्यात बढ़ाया जा सकेगा. लेकिन यह आशा फलवती नहीं हो रही है. १९६८ में भारत का कुल निर्यात १३०० करोड़ रुपये से कुछ अधिक का हुआ, लेकिन विदेशी मुद्रा में इस का मूल्य अवमूल्यन-पूर्व की दरों पर ८०० करोड़ रुपये से कुछ अधिक होता है. इस प्रकार पिछले पाँच सालों में भारतीय निर्यात का मूल्य, विदेशी मुद्रा अर्जित करने की दृष्टि से, बहुत कम बढ़ा है.

पिछले अठारह सालों में भारत को अधिकांश विदेशी सहायता अमेरिका से ही मिलती रही है. लेकिन उस का कुछ हिस्सा ब्रिटेन और पश्चिम जर्मनी जैसे देशों से भी आया है. कुछ सहायता विश्वबैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा-निधि जैसे संगठनों से भी मिलती रही है,

खुद के लिये उपहार...

आधुनिक सिलाई मशीन लेने की साध रजनी की खूब लंबे अर्से की साध थी। पर उसके लिये रुपये कहां से आते?

एक सहेली के सुझाने पर रजनी ने पी एन बी में सावधिक जमा खाता खोला व प्रति माह १० रुपये बचाना आरंभ किया। ३६ महीने में यह रकम ३९५ रु. हो गयी–सिलाई मशीन खरीदने के लिये सर्वथा योग्य राशि।

आज वह खुशी से गुनगुनाते हुए अपनी मशीन पर सिलाई करती है।

यह बहुत आसान है! बहुत लाभदायक है!

इस योजना के अंतर्गत प्रति माह ५ रु. अथवा ५ से विभाजित होने वाली कोई भी राशि ३६, ४८ अथवा ६० महिनों की निश्चित अवधि के लिये स्वीकार की जाती है। इस अवधि के अंत में आप अपनी जमा बचत चक्र वृद्धि ब्याज के साथ पायेंगे... भविष्य के लिये बचत करने का आदर्श मार्ग!

अब आप अपने स्वप्न संजो सकते है! वे निश्चित रूपसे साकार होंगे।

अधिक विवरण के लिये पी एन बी की निकटतम शाखा से संपर्क स्थापित करें। सारे भारत में हमारी ५०० से अधिक शाखाएं हैं।

पंजाब नैशनल बैंक

१८९५ से राष्ट्र की सेवा में निरत

अध्यक्ष : एस. सी. त्रिखा

PR-PNB-6814 H

लेकिन यह सारी सहायता अमेरिकी सहायता से जुड़ी हुई है.

पिछले दस वर्षों में रूस से भी कुछ आर्थिक सहायता भारत को मिली है और कुछ व्यापार समझौते रूस व पूर्वी यूरोप के देशों के साथ हुए हैं. इन देशों के साथ भारत का व्यापार बढ़ता रहा है. १९५५ में ७० लाख डॉलर से कुछ अधिक के निर्यात और ४४ लाख डॉलर के आयात की तुलना में १९६४ में भारत ने इन देशों को लगभग २३ करोड़ डॉलर मूल्य का निर्यात किया और १५ करोड़ डॉलर से अधिक मूल्य की वस्तुएँ आयात कीं. इस समय भारत के निर्यात व्यापार का लगभग एक तिहाई रूस और पूर्वी यूरोप के देशों के साथ है. अधिकांश व्यापार रुपये में होने के राजनीतिक निहितार्थ चाहे जो भी हों, आर्थिक दृष्टि से यह व्यापार लाभदायक भी है. लेकिन उत्पादकता का अंतर यहाँ भी भारत के विपरीत है.

जहाँ तक अमेरिकी सहायता का सवाल है, जो थोड़ी-बहुत सहायता अब मिल रही है, उसे एक ओर तो अमरीका में ही खर्च करना होगा, दूसरी ओर यह सहायता विशिष्ट प्रायोजनाओं के लिए नहीं होगी, अर्थात् केवल चालू खर्चों के लिए ही होगी. इस के फलस्वरूप कम से कम दस महत्त्वपूर्ण प्रायोजनाएँ भारत सरकार को स्थगित कर देनी पड़ी हैं और उन के पुनर्जीवित होने की कोई संभावना नहीं है. १९६७-६८ में मुख्यत: इंजीनियरी उद्योग में जो मंदी आयी, वह भी मुख्यत: अमेरिकी सहायता बंद हो जाने के कारण आयी.

इस के साथ ही पुराने कर्ज़ों के ब्याज और मूल की किश्तों की अदायगी की समस्या विकट हो गयी है, जिसे विश्व बैंक के एक भूतपूर्व अध्यक्ष ने 'कर्ज़-विस्फोट' की संज्ञा दी है. विदेशी कर्ज़ों ने विदेशी मुद्रा अर्जित करने की भारतीय क्षमता में तो कोई उल्लेखनीय वृद्धि की नहीं है, लेकिन उन कर्ज़ों की अदायगी के लिए विदेशी मुद्रा आवश्यक है. एक अनुमान के अनुसार मार्च १९६८ तक भारत के ऊपर कुल १०६६.६ करोड़ डॉलर का कर्ज़ हो गया था और १९६८ में ही लगभग ४७ करोड़ डॉलर ब्याज या मूल की किश्तों के रूप में देना था.

सांप-छँछूदर वाली इस स्थिति में योजना आयोग चौथी पंचवर्षीय योजना आरंभ कर रहा है. सरकारी अनुमान (या आशा) के अनुसार १९६९-७० में लगभग ७०० करोड़ रुपये मूल्य के विदेशी कर्ज़ मिल जायेंगे, जिन में से लगभग ३०० करोड़ रुपये ब्याज और मूल की अदायगी के बाद लगभग ४०० करोड़ रुपये सरकार के पास नये कर्ज़ के रूप में बच जाएँगे. अगर यह आशा सच भी साबित हो, तो आगे क्या होगा ? ब्याज और मूल की रक़म, जिस की अदायगी करनी होगी, हर वर्ष बढ़ती जायेगी.

साहसिक अभियान : मंज़िल की ओर

१३ और १४ फ़रवरी को यदि कुछ लोग सब से पहले अखबार उठा कर यह खबर देखते कि मध्यावधि चुनाव के बाद कहाँ कौन सी सरकार बन रही है तो ज़्यादातर लोग यह देखते कि कनहोजी आंग्रे (जिस छोटी सी किश्ती पर सवार हो कर दो नवयुवक कलकत्ता से अंदमान का १,००० मील का सागर पार करने के साहसिक अभियान पर निकले हुए हैं) का कुछ अता-पता मिला या नहीं. बुधवार को जब भारतीय वायुसेना का जहाज़ बंगाल की खाड़ी की टोह लेने के बाद निराश हो कर कलकत्ता पहुँचा तो वहाँ की जनता एकदम परेशान हो उठी. कुछ लोग घबराये हुए मिहिर सेन, एक्सप्लोरर्स क्लब के अध्यक्ष, के पास पहुँचे तो कुछ मौसम विभाग के दफ़्तर, मिहिर सेन ने इतना ही कहा कि पाँच दिनों से आंग्रे से कोई संपर्क स्थापित नहीं हो सका है पर मेरा मन कहता है कि वह दोनों नवयुवक —लेफ़्टिनेंट जार्ज अल्बर्ट ड्यूक और पिनाकी चैटर्जी—बिलकुल ठीक-ठाक हैं. मौसम विभाग ने यह समाचार दिया कि पिछले दिनों से बंगाल की खाड़ी और सागर और हवा बिल्कुल शांत है इसलिए घबराने की कोई आवश्यकता नहीं. लेकिन इन दोनों साहसी नवयुवकों के परिचितों, मित्रों और संबंधियों की परेशानी का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है.

अगले दिन भारतीय वायुसेना के दो हवाई जहाज़ आंग्रे की टोह में फिर निकले परंतु वे भी बिना कोई समाचार लाये वापिस लौट आये. लेकिन कैप्टन रथीन दास अंत तक यही कहते रहे कि इस में घबराने की कोई बात नहीं, हो सकता है कि तेज़ लहरों के कारण किश्ती रास्ते से भटक गयी हो. शनिवार की सुबह जब भारतीय जनता को यह समाचार मिला कि कनहोजी आंग्रे को सैंडहेड्स से कोई ८० किलोमीटर दूर देखा गया तो सब ने सुख की सांस ली. शुक्रवार की सुबह भारतीय वायु-सेना के दो हवाई जहाज़ आंग्रे की खोज में निकले जिन में से एक ने आंग्रे का वह गुब्बारा देखा जिस का उपयोग ये नाविक कुशल समाचार भेजने के लिए करते हैं. रथीन दास ने २ बज कर १८ मिनट (दोपहर) पर आंग्रे को कलकत्ता से १९० मील की दूरी पर देखा. रथीन दास ने कहा कि दोनों नाविक बहुत ही स्वस्थ और प्रसन्न हैं. उन्होंने यह भी कहा कि इस साहसिक अभियान की प्रगति बहुत धीमी है और उस का कारण शायद यह है कि सागर की तेज़ लहरें कभी-कभी उन्हें सही रास्ते से भटका देती हैं.

मिहिर सेन : इसी बीच इस साहसिक अभियान के संचालक मिहिर सेन को भी लोगों ने बहुत कुछ कह डाला—यानी यही सब कि जब मिहिर सेन किसी सागर को तैर कर पार करने की योजना बनाते हैं तो अपनी सुरक्षा की पूरी तैयारी कर लेते हैं लेकिन उन्होंने इस साहसिक अभियान की योजना बनाते समय इन दोनों नवयुवक नाविकों की सुरक्षा की व्यवस्था क्यों नहीं की. खैर, घबराहट और परेशानी की मन:स्थिति में लोग जो चाहें कह सकते हैं. मगर साहसिक अभियानों के भी कुछ नियम होते हैं यानी तैर कर सागर पार करने वाले तैराक के लिए तो सुरक्षा प्रबंधों की व्यवस्था की जा सकती है अर्थात् उस के साथ तो इंजिनयुक्त नौका और नाविक चल सकते हैं मगर छोटी-छोटी पालदार नौकाओं या चप्पुओं की किश्तियों में सागर पार करने वाले ऐसे साहसिक अभियानों के साथ साथ या पीछे दूसरी नौकाएँ नहीं चलतीं. चिचेस्टर ने अकेले ही अपनी पालदार नौका में दुनिया का चक्कर लगाया था. साहसिक कार्यों में यदि भारत को अपना नाम ऊँचा करना है तो फिर उसे भी उसी ढंग से सोचना चाहिए जैसे कि दूसरे देशों के लोग सोचते हैं.

दोनों नवयुवक नाविक सकुशल हैं. इस की सूचना तुरंत पिनाकी चैटर्जी के घर पहुँचायी

जार्ज ड्यूक और पिनाकी चैटर्जी : त्रिगुण सेन (बायें) का आशीर्वाद

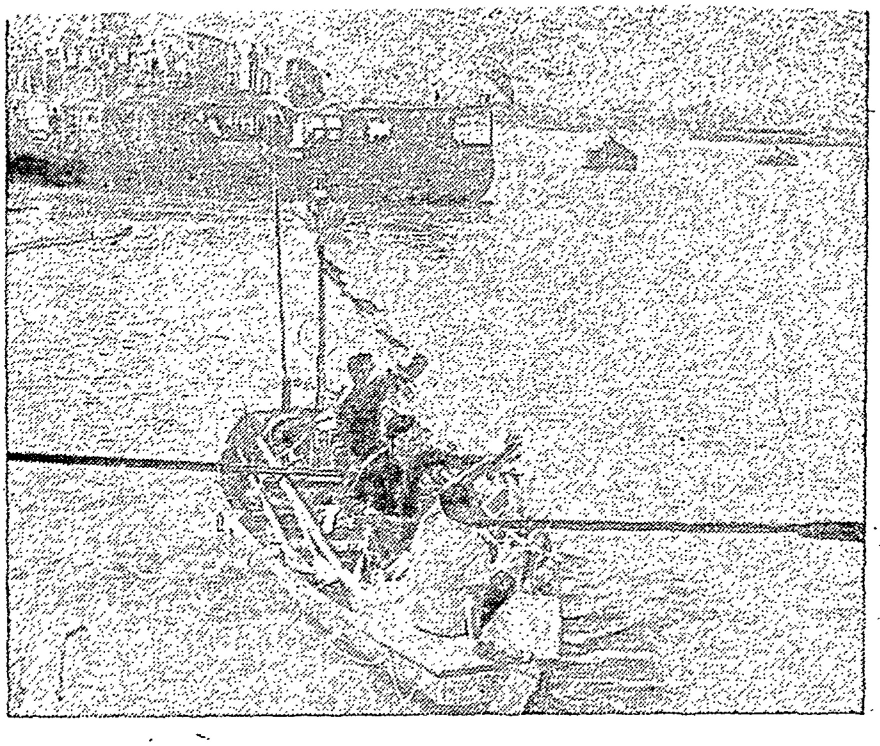

पिनाकी चैटर्जी (अंत में) जार्ज ड्यूक (मध्य) और कप्तान दास : अंदमान में मिलेंगे आप से

गयी. ड्यूक के माता-पिता तो इस समय कैनाडा में हैं. कलकत्ते में उन के चाचा कप्तान डी. वी. ब्रेगेंजा को जब यह समाचार मिला तो उन की खुशी का कोई ठिकाना न रहा.

कलकत्ता से अंदमान तक छोटी सी नौका में चप्पुओं द्वारा नाव चला कर १००० मील का सागर पार करने का यह एशिया का पहला अभियान है मगर दुनिया में ऐसे साहसिक अभियानों की कमी नहीं है. १८९६ में नार्वे के दो नाविकों—जार्ज हारदर और फ्रंक सैम्यूल्सन ने—न्यूयार्क से सिसली द्वीप तक के ३,००० मील के सागर को ५४ दिनों में पार किया था. १९६६ में ब्रिटेन के दो नाविकों—रिजवे और बलिय—ने अमेरिका से आयरलैंड तक का सागर चप्पुओं की नौकाओं से पार किया था.

अब तक की प्राप्त सूचनाओं के अनुसार एडमिरल कनहोजी आंग्रे की प्रगति काफ़ी धीमी है लेकिन इस के बहुत से कारण हो सकते हैं कभी तेज और तूफ़ानी हवाएँ, कभी समुद्र की प्रतिकूल धाराएं.

हमारे इन साहसी नाविकों को इस बात का पूरा-पूरा भरोसा है कि वह मंजिल पर अवश्य पहुँच जायेंगे जैसे कि ड्यक ने अपनी एक कविता में लिखा है (देखिए दिनमान १६ फ़रवरी, १९६९ .

विवाद : इसी बीच मिहिर सेन और पिनाकी चैटर्जी के पिता आर. एन. चैटर्जी में एक अच्छा-खासा वाक्-युद्ध छिड़ गया. मिहिर सेन का कहना है कि पिनाकी चैटर्जी के पिता यह चाहते हैं कि इस साहसिक अभियान को तुरंत रोक दिया जाये. क्योंकि मिहिर सेन ने इस साहसिक अभियान की योजना बनाते समय न तो दोनों नाविकों को पूरी तरह तैयार ही किया और न उन की सुरक्षा या उन से स्थायी संपर्क बनाये रखने की कोई व्यवस्था ही की गयी. लेकिन मिहिर सेन ने अपनी स्पष्टीकरण में कहा कि इस अभियान में पिनाकी चैटर्जी ने विशेष दिलचस्पी और उत्साह दिखाया था इस लिए हम ने उन की इच्छानुसार ही उन्हें इस अभियान में शामिल किया. वैसे आर. एन. चैटर्जी ने मिहिर सेन के आरोप का खंडन यह कह कर किया है कि उन्होंने वैसी कोई बात नहीं कही. इस तकरार के पीछे सच्चाई क्या है इसे तो श्री सेन और श्री चैटर्जी ही जानें पर राष्ट्रीय अपेक्षा यही है कि इस तरह के साहसिक अभियानों में नवयुवकों के अलावा उन के माँ-बाप भी कुछ हिम्मत और दिलेरी का परिचय दें.

हॉकी :

एक अर्थहीन विवाद

जब भी किसी अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता के लिए भारतीय हॉकी टीम का चुनाव किया जाता है तो अक्सर एक विवाद सा उठ खड़ा होता है. लाहौर में होने वाले अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले में भाग लेने वाली टीम के चुनाव के समय ऐसा विवाद नहीं होगा ऐसी कल्पना करना बेकार है क्यों कि ऐसे गंभीर और पेचीदा मामलों में दृष्टिकोण के कारण मतभेद होना स्वाभाविक ही है, और ऐसा होना एक स्वस्थ परंपरा की निशानी है. कुछ विवाद अर्थपूर्ण होते हैं और कुछ अर्थहीन. लेकिन दुर्भाग्य यह है कि हमारे यहां अर्थहीन विवादों पर ही ज्यादा समय और साधन बरबाद किये जाते हैं.

मैक्सिको ओलिंपिक में भारतीय हॉकी टीम के कप्तान पृथीपाल सिंह को ले कर एक अच्छा खासा अर्थहीन विवाद उठाया गया. पृथीपालसिंह का यह कहना है कि भारतीय हॉकी संघ के अध्यक्ष अश्विनीकुमार ने उन के सामने लाहौर भेजी जाने वाली भारतीय टीम का नेतृत्व करने का प्रस्ताव रखा था जिस के उत्तर में उन्होंने यह कहा कि क्यों कि मैं अब हॉकी के खेल से संन्यास ले चुका हूँ अतः असमर्थ हूं. पृथीपालसिंह के इस बयान के बाद अगले दिन अश्विनीकुमार का बयान प्रकाशित हुआ जिस में यह कहा गया कि उन्होंने पृथीपाल सिंह के सामने ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं रखा. उन्होंने कहा—"मुझे इस बात का कोई ज्ञान नहीं है. अभी तो लाहौर हॉकी मेले में भाग लेने वाली भारतीय टीम का चुनाव ही नहीं हुआ? अश्विनी कुमार ने यह भी कहा कि मैंने उन से यह ज़रूर कहा था कि वह इर्नाकुलम में हो रही राष्ट्रीय हॉकी प्रतियोगिता में पंजाब की टीम की ओर से हिस्सा लें. जिस के उत्तर में पृथीपाल ने यह कहा कि मैं इन दिनों पूर्ण स्वस्थ नहीं हूँ और फिर मैंने बहुत दिनों से हाकी भी नहीं खेली. बस फिर आरोप और प्रत्यारोप और एक दूसरे को झूठा सिद्ध करने का एक सिलसिला शुरू हो गया.

पृथीपाल सिंह से भेंट : इसी बीच पृथीपाल सिंह ने दिनमान के खेल-प्रतिनिधि से अपनी एक भेंट के दौरान बताया कि मैंने हाकी के खेल से अवकाश लेने की घोषणा बहुत सोच-विचार करने के बाद ही की थी. और अब मैं सचमुच हॉकी छोड़ चुका हूँ इस प्रश्न के उत्तर में 'कि भारतीय हॉकी टीम को लाहौर अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले में भाग लेना चाहिए या नहीं' उन्होंने कहा कि जहाँ तक मैं समझता हूँ हमें इस हॉकी मेले में बिलकुल भाग नहीं लेना चाहिए. कारण : पहली बात तो यह है कि उन्होंने भारत में खेलने के हमारे प्रस्ताव को दो-तीन बार ठुकराया है. दूसरा यह कि अभी हमारी टीम की पूरी तैयारी भी नहीं है. अधूरी तैयारी में भारतीय टीम को वहाँ भेजने का कोई अर्थ नहीं. यों पूरी तैयारी के बाद भी भारतीय टीम पाकिस्तान में जाकर जीत सकती ऐसा सोचना ही ग़लत है. और इस का कारण हमारे अधिकारी अच्छी तरह से जानते हैं.

तेनजिंग नोर्के और त्रिगुण सेन : स्टार्ट

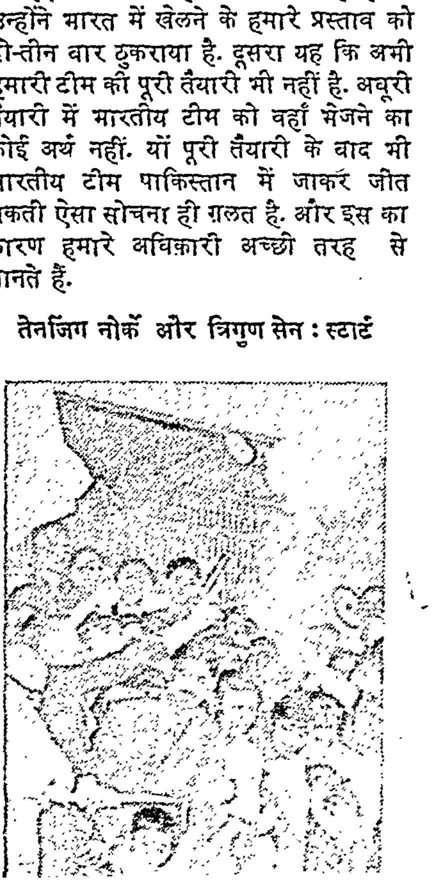

विश्व अर्थ-व्यवस्था : १९६८–६९

आर्थिक प्रगति और भौतिक समृद्धि आज की दुनिया के हर देश का सर्वोच्च लक्ष्य है. पर आज का समूचा विश्व राजनैतिक दृष्टि से नहीं तो आर्थिक दृष्टि से इस प्रकार एकसूत्र में बँधा हुआ है कि अकेले किसी देश की आर्थिक प्रगति या तो संभव नहीं है और यदि हो भी तो अन्य देशों को भागीदार बनाये बिना वह हानिकर भी हो सकती है. इस सिद्धांत की धुरी पर घूमता हुआ आज का अर्थ-जगत् जहाँ भौतिक समृद्धि की चरम सीमा पर जाने को उत्सुक है वहाँ उस की इस समृद्धि की तीव्र गति एक नया संकट भी उत्पन्न कर सकती है. १९६८ पार कर १९६९ में प्रवेश करने पर आर्थिक प्रगति के लिए तेज़ी से बढ़ते हुए औद्योगिक देशों को अर्थशास्त्रियों ने ऐसी ही चेतावनी दी है. इस के साथ ही अर्थशास्त्रियों को आशंका है कि इस वर्ष में अधिकांश प्रमुख औद्योगिक देश मुद्रा संकोच की नीति अपनायेंगे जिस से मंदी के युग का समारंभ होगा. इस वर्ष में अनेक देश अपनी आर्थिक प्रगति की रफ़्तार को कम करने का प्रयत्न भी करेंगे.

इस परिस्थिति के बावजूद १९६९ के नये वर्ष में प्रत्येक देश का अर्थतंत्र विपरीत दिशाएँ लेगा पर विश्व का प्रत्येक देश किसी न किसी रूप में इन विपरीत प्रवृत्तियों से भी प्रभावित होगा. बड़े औद्योगिक देशों का आर्थिक विश्लेषण कर के उस के प्रभाव को सहज ही समझा जा सकता है.

सोवियत संघ : १९६९ की सोवियत आर्थिक योजना में उन आर्थिक सुधारों का उल्लेख भी नहीं है जिन के बारे में सोवियत संघ ने बहुत बढ़-चढ़ कर दावा किया था. इन आर्थिक सुधारों के ज़रिए समूची सोवियत अर्थ-व्यवस्था में मौलिक परिवर्त्तनों की घोषणा की गयी थी. इन परिवर्त्तनों में नियोजित पूँजी पर कुछ प्रतिशत का कर लगाया गया था जो उद्योगों को ही अदा करना था, उत्पादन के लक्ष्य तय करने का तरीक़ा बदल दिया गया था और उत्पादन-विधि में सुधार करने के उद्देश्य से मुनाफ़े में अधिक अंश निश्चित किया गया था. इन सभी सुधारों को समूचे सोवियत उद्योग में १९६८ के अंत तक लागू करना था पर १९६८ के सोवियत आँकड़ों से पता चलता है कि इन सुधारों को निश्चित कार्यक्रम के अनुसार लागू नहीं किया गया. सोवियत संसद् के दिसंबर अधिवेशन में सोवियत उप-प्रधानमंत्री ने बताया कि समूचे उद्योग के केवल ५८ प्रतिशत ने नये आर्थिक सुधार लागू किये हैं. फिर एक निराशाजनक बात यह भी रही कि नये सुधारों से श्रमिकों की उत्पादन क्षमता में कमी हो गयी.

एक सोवियत अर्थशास्त्री ने नये आर्थिक सुधारों के इस नये प्रयोग पर अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि नये आर्थिक सुधारों पर वाद-विवाद से कोई लाभ नहीं होगा. इस अर्थशास्त्री के विचार से अधिक औद्योगिक उदार नीति तथा कृषि में अधिक पूँजी लगाना भी ठीक नहीं है.

एक ओर जहाँ कुछ सोवियत अर्थ-विशेषज्ञ आर्थिक सुधारों के पीछे राजनैतिक उद्देश्य में ही विश्वास रखते हैं वहाँ कुछ अर्थ-विशेषज्ञ आर्थिक सुधार केवल आर्थिक दृष्टि से ही लाने के पक्ष में हैं. वे उद्योगों को काफ़ी स्वतंत्रता देने और कृषि में अधिक पूंजी लगाने के पक्ष में हैं. इन अर्थशास्त्रियों का तो यहाँ तक विचार है कि पूर्ण साम्यवाद आने पर भी निजी कृषि उद्योग बना रह सकता है. उद्योग और आयोजन तथा समूची अर्थ-व्यवस्था के केंद्रीयकरण में विश्वास रखने वाले अर्थशास्त्री केंद्रीयकरण को और भी सुदृढ़ बनाने की बात कहते रहे हैं. दूसरी ओर आर्थिक क्षेत्र में अधिक उदारता बरतने की नीति के हिमायती भी अपना पक्ष प्रस्तुत करते रहे हैं. सोवियत अर्थ-व्यवस्था के दिशा-निर्धारण को दोनों ही पक्ष इस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं. इस वादविवाद में सोवियत आर्थिक प्रगति का किसी हद तक गतिहीन होना स्वाभाविक है. कुछ सोवियत अर्थशास्त्रियों के अनुसार सोवियत कृषि उपज में गिरावट इन्हीं आर्थिक सुधारों का परिणाम है.

इन दोनों विपरीत प्रवृत्तियों के बीच समय-समय पर समझौता होता रहा है. सोवियत मोटर उद्योग इस का एक उदाहरण है. १९६८ में मोटर गाड़ियों का उत्पादन काफ़ी गिर गया था पर १९६९ में दोनों विपरीत आर्थिक प्रवृत्तियों में मध्य मार्ग निकाल कर यह उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न किया जा रहा है. सोवियत विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि मोटर उद्योग में जितनी पूँजी लगाने की आवश्यकता है उस से कहीं अधिक सड़कों अथवा परिवहन मार्गों के निर्माण में पूँजी की आवश्यकता होगी. अब प्रश्न यह है कि पूँजी नियोजन मोटर उद्योग में अधिक होगा अथवा परिवहन निर्माण में. मोटर उद्योग में अधिक पूँजी लगने से मोटर उपभोक्ताओं को ही लाभ होगा. वोल्गा फ़िएट फ़ैक्ट्री में, जिस के १९७० में चालू होने की आशा है, संभवतः सब से अधिक पूँजी लगेगी. उधर यह संकेत मिले हैं कि नये मॉडल की पैसेंजर कारें १९६९ में ही उपलब्ध हो जायेंगी. इस विश्लेषण से सहज ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि १९६९ की सोवियत अर्थ-व्यवस्था सर्वसाधारण के लिए इतनी उपयोगी नहीं होगी जितनी एक वर्ग विशेष के लिए. उपभोक्ता सामग्री और कृषिजन्य पदार्थों की सुगम उपलब्धि अभी भी सोवियत जनता के लिए दूर की मंज़िल है.

अमेरिका : रक्षा बजट के व्यय से अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था क्षतिग्रस्त अवश्य हुई है पर पिछले काफ़ी वर्षों की गतिशीलता के कारण १९६९ में भी वह आगे बढ़ने की प्रक्रिया में है. अगर इसे धीमी गति कहा भी जाये तो यह कहना मुश्किल है कि यह गति कितनी धीमी है. उधर अमेरिकी अर्थशास्त्री इस बात पर एकमत नहीं हैं कि इस धीमी गति का काल कितना लंबा होगा ?

अमेरिकी व्यापारी १९६९ के अपने सारे अनुमान आशाजनक ही लगा रहे हैं पर साथ ही साथ कुछ सतर्क भी हैं. अमेरिकी व्यापारी

कार्डिफ़ डॉक पर कारों का हुजूम : निर्यात के लिए

वर्ग वेतन-वृद्धि, लागत-खर्च और ब्याज़ की दर में वृद्धि आदि जैसी बातों पर चिंतित हैं. विदेशों में होड़ का, अमेरिकी कपड़ा और इस्पात उद्योग पर जितना असर पड़ रहा है उतना शायद ही किसी अन्य उद्योग पर पड़ रहा हो. हो सकता है अमेरिकी उद्योग नयी अमेरिकी संसद् से कुछ आयात सुविधाओं की माँग करे.

मोटर उद्योग के प्रमुख उद्योगपतियों का विचार है कि १९६८ के मुक़ाबले १९६९ में मोटर उत्पादन कम होगा. उपभोक्ताओं की आय में हस्तक्षेप, सामाजिक सुरक्षा के लिए अधिक कर और ब्याज़ की दर में वृद्धि के कारण १९६९ का आर्थिक वर्ष अमेरिका के लिए कुछ कम समृद्धिशाली होगा. पर उद्योगों के आधुनिकीकरण में प्रगति बराबर रहेगी.

ब्रिटेन : आज की अर्थ-व्यवस्था की स्थिति उन तीन अमेरिकी अन्तरिक्ष यात्रियों जैसी है जो अंतरिक्ष में पहुँचते ही भूमि पर आने की तैयारी में लग गये. अगर ब्रिटेन को आज फिर से समृद्धि के युग में आना है तो उसे बहुत तंग रास्ते से बड़ी ही तेज़ रफ़्तार से दौड़ना होगा. अपनी कुछ आर्थिक असफलताओं का ब्रिटेन को भारी मूल्य चुकाना होगा. सामान्य भौतिक समृद्धि के लिए भी ब्रिटेन की अभी एक और पीढ़ी को सतत् प्रयत्न करने होंगे.

किसी समय ब्रितानी पौंड की ज़बर्दस्त साख थी पर आज उस की आवश्यकता केवल व्यापार के लिए ही पड़ती है. अब वह साख फिर से क़ायम हो जाने पर ब्रितानी पौंड स्वर्ण का विकल्प नहीं बन सकता. अभी हाल ही के कुछ वर्षों में ऋणों, क़र्ज़ों और मुद्रा विनिमय द्वारा पौंड स्टर्लिंग की काफ़ी सहायता की गयी लेकिन अभी भी पौंड को बचाने के लिए अरबों डालरों की आवश्यकता है जिस के लिए अभी हाल ही में बातचीत भी की गयी है. अवमूल्यन के बावजूद अदायगी की स्थिति के हिसाब से ६० करोड़ स्टर्लिंग का घाटा रहा. १९६९ के लिए इसी मद में २५ करोड़ स्टर्लिंग की बचत का अनुमान था. अब इस अनुमान में भी संशोधन कर दिया गया है. बहुत मामूली बचत का अनुमान लगाया गया है. संकट टला नहीं, कुछ रुका है पर आयात व्यवस्था साथ नहीं दे रही है. ब्याज़ की काफ़ी दर होने के बावजूद ब्रिटेन बाहरी पूँजी को खींचने में सफल नहीं रहा है. इस का एक मुख्य कारण शायद यह है कि विदेशों में पौंड स्टर्लिंग की साख पहले जैसी नहीं जम पायी है.

१९६८ के बजट में ब्रितानी उपभोक्ताओं से कर के रूप में जितना धन एकत्र किया गया उतना शायद ही इस से पहले कभी किया गया हो. इस के बाद नवंबर में और टैक्स बढ़ाये गये और संभवतः इस से अगला बजट उपभोक्ताओं पर और भी भार डालने वाला होगा.

१९६९ के बारे में ताज़ा अनुमानों के अनुसार निर्यात में सात प्रतिशत की वृद्धि होगी तो आयात में भी और वृद्धि का अनुमान है. इस से आवश्यक बचत होने की संभावना नहीं है. तो समृद्धि के द्वार तक पहुँचने के ब्रिटेन को कुछ और क़दम उठाने होंगे.

फ्रांस : फ्रांसीसी अर्थ-व्यवस्था के १९६९ में आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ने की अधिक संभावना है इस वर्ष के शुरू में इस आत्मनिर्भरता की आधारशिला भले ही रखी जाय पर लक्ष्य प्राप्ति के लिए फ्रांसीसी अर्थ-व्यवस्था को कड़ा संघर्ष करना पड़ेगा. इस संभावना पर फ्रांसीसी अर्थशास्त्री एकमत नहीं हैं. अभी भी फ्रांस के सामने विदेश व्यापार तथा घरेलू वित्तीय व्यवस्था की अनेक समस्याएँ हैं. इन समस्याओं के समाधान के लिए कुछ बातें सुझायी गयी हैं ! (१) फ्रांसीसी निर्यात-व्यापारियों को देश में माल की खरीद की प्रतीक्षा किये बिना बाहर माल बेचने का ज़बर्दस्त अभियान चलाना चाहिए. (२) फ्रांसीसी पर्यटन उद्योग को प्रति वर्ष २० लाख से ले कर ३० लाख तक विदेशी पर्यटकों को अपने यहाँ आने के लिए प्रेरित करना चाहिए. (३) फ्रांस चूंकि बेल्जियम, हॉलैंड, जर्मनी और यहाँ तक कि इटली के मुकाबले अभी औद्योगिक दृष्टि से कम विकसित है इस लिए नयी पूंजी के रूप में वहाँ लाखों डालर लगने की संभावना है. इन संभावनाओं में किस-किस को वास्तविक रूप मिलेगा इस का पता तो १९६९ में ही चलेगा.

जहाँ तक विदेशी पूँजी लगने की संभावना है वह तो शून्य ही है. सरकार की इस घोषणा के कारण कि जनरल द गॉल के आने से फ्रांस में पूँजीवाद समाप्त हो रहा है. खुद फ्रांसीसी पूँजीपति पूँजी लगाने में हिचकिचा रहे हैं. दूसरी संभावना भी कम है क्यों कि १९६९ में पर्यटन को प्रोत्साहन मिलने की कम आशा है. अन्य देशों की अपेक्षा फ्रांस में क़ीमतें अधिक हैं. भले ही वहाँ नाइट क्लबों और ऐशो आराम के अन्य साधनों की भरमार हो, पर विदेशी पर्यटकों को वहाँ जाकर एहसास यही होता है कि आय के एक साधन के रूप में ही वहाँ पर्यटकों का स्वागत है. अगर पर्यटन और विदेशी पूँजी लगने की संभावनाएँ वास्तविक रूप नहीं लेतीं तो फ्रांसीसी अर्थ-व्यवस्था को १९६९ में अपने ही प्रयत्नों से अपने पैरों पर ही खड़ा होना पड़ेगा.

इधर देश में हालत यह है कि सब जगह से काम करने लायक दस लाख से भी अधिक लोग बेरोज़गार हैं. उत्पादन की लागत जर्मनी की अपेक्षा १० से लेकर १५ प्रतिशत तक बढ़ गयी है. अर्थशास्त्रियों का कहना है कि दगॉल सरकार जब तक फ्रांसीसी मुद्रा का २० प्रतिशत तक अवमूल्यन नहीं करती, आर्थिक प्रगति के मार्ग की कठिनाइयाँ कम नहीं होंगी.

इटली—इटली की अर्थव्यवस्था आत्म-संतोष के साथ १९६९ में प्रवेश कर रही है. उस का निर्यात बढ़ रहा है और साधनों में भी वृद्धि हुई है. इटली की अर्थ-व्यवस्था में अभी पिछले दिनों जो संकट आया था पूर्वी यूरोप और अल्पविकसित देशों को अधिक माल निर्यात कर उसे काफ़ी हद तक दूर कर दिया गया है. तब से इटली की अर्थव्यवस्था उस के पड़ोसियों के लिए ईर्ष्या का विषय बन गयी है. इतालवी मुद्रा की साख भी अच्छी है. १९६३-६४ के बाद से अदायगी की स्थिति में बचत है. १९६८ में अदायगी की स्थिति में जो बचत थी वह १९६७ के मुक़ाबले दुगनी थी. इटली की अर्थव्यवस्था के लिए आत्म-विश्वास की सब से बड़ी बात यह है कि निर्यात व्यापारियों ने इटली के विरुद्ध खड़ी की गयी सभी अंतरराष्ट्रीय बाधाओं को सफलतापूर्वक पार कर लिया. स्टर्लिंग के अवमूल्यन से भी ब्रिटेन को इटली के निर्यात में कोई कमी नहीं आयी जब कि ब्रिटेन से आयात काफ़ी घट गया. इटली की नयी निर्यात व्यापार प्रणाली इतनी गतिशील है कि स्तालिनवादी अल्बानिया पर इटली के पूँजीपतियों के हाथ बिक जाने का आरोप लगाया गया है. पूर्वी यूरोप में युगोस्लाविया इटली का सब से बड़ा ग्राहक है.

पश्चिम जर्मनी—छह करोड़ पश्चिम जर्मनवासी १९६८ के मुक़ाबले १९६९ में अधिक समृद्धि की आशा कर रहे हैं. दरअसल पश्चिम जर्मनी में मूल्य-स्थिरता की समस्या उत्पादन और व्यापार की अत्यधिक सफलता से ही उत्पन्न हुई. घरेलू माँग काफ़ी बढ़ी हुई है जिस से नये-नये उद्योगों में पूँजी लग रही है. अर्थ-समीक्षकों की भविष्यवाणी है कि जर्मनी के उद्योगपति अपने उद्योगों का विस्तार करने के लिए १९६९ में ६८ के मुक़ाबले बीस प्रतिशत अधिक पूँजी लगायेंगे. देश में नौकरियाँ और रोज़गार अधिक हैं और जगहें भरने वाले कम हैं. दस लाख से अधिक विदेशी कर्मचारी विभिन्न क्षेत्रों में लगे हुए हैं और अभी आ ही रहे हैं.

अभी पिछले वर्ष नवंबर में फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका ने चांसलर कीसिंगर से मार्क के पुर्नमूल्यन की बात कही थी जिस के लिए कीसिंगर ने इंकार कर दिया. १९६९ में मुद्रा-स्फीति ही पश्चिम जर्मनी की अर्थ-व्यवस्था की एक खेदजनक संभावना है.

जापान—बताया जाता है कि जापान का १९६९–७० का बजट जो अप्रैल में आने वाला है अब तक के बजटों में सब से बड़ा होगा. संभवतः इस बजट के सामने आने तक जापान अमेरिका के बाद स्वतंत्र संसार का दूसरा बड़ा औद्योगिक देश होगा. पिछले दशक में जापान ने उत्पादन के क्षेत्र में दस प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि के युग में प्रवेश किया था जिसे वह अभी भी बनाये हुए है. कुल राष्ट्रीय उत्पादन में १९६८–६९ में १० प्रतिशत की वृद्धि होने की आशा है. जापान की अर्थव्यवस्था भी निर्यात व्यापार की धुरी पर घूमती है. जापानी अर्थव्यवस्था के १९६९ में और भी गतिमान होने की पूरी संभावना है.

विश्व

पाकिस्तान

अराजकता का दौर

पाकिस्तान के भूतपूर्व विदेशमंत्री ४१ वर्षीय जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो जब ९२ दिन की नज़रबंदी के बाद खुले में आये तो उन के समर्थकों ने उन्हें कंधों पर उठा लिया. सत्तर हज़ार जनसंख्या वाले उन के कस्बे लरकाना की आबादी देखते ही देखते एक लाख से ऊपर तक पहुँच गयी. खुशआम्दीद करने वाले लोगों की इस बेमिसाल भीड़ में एक ऐसा शख्स भी नज़र आया जिस के हाथ में छोटी-सी पिस्तौल थी और वह भुट्टो से सिर्फ़ पाँच गज़ की दूरी पर खड़ा उसे अपना निशाना बनाना चाहता था. लेकिन लोगों की सतर्क आँखों ने उस आदमी की ख्वाहिश पूरी होने से पहले ही उसे अपने सख्त हाथों में दबोच लिया और वह सिवाय छटपटाने के और कुछ नहीं कर सका. जब भुट्टो उस की मदद के लिए आये (जो कुछ ही मिनट पहले हत्यारा बनने जा रहा था) तब तक उस की खासी मरम्मत हो चुकी थी. भुट्टो ने अपने समर्थकों को कहा कि इसे पुलिस को सौंप दो, लरकाना पुलिस को नहीं, क्योंकि मुझे उस पर एतबार नहीं है. भुट्टो की रिहाई से उस के अपने पुश्तैनी शहर में तो खुशी मनायी गयी, लेकिन उन सभी विरोधी पार्टियों ने भी जश्न मनाया जो उस की रिहाई के लिए कई महीनों से जद्दोजहद कर रही थीं. इधर भुट्टो की रिहाई का हुक्म जारी हुआ, उधर उस की पत्नी नसरत बेग़म लाहौर की सड़कों पर पाँच हज़ार औरतों का जुलूस लिए अय्यूब प्रशासन के खिलाफ़ नारे बुलंद कर रही थीं. नारे बुलंद करने वालों ने कराची में अय्यूब प्रतीक हर चीज़ को तोड़ा-फोड़ा और जला कर राख कर दिया.

भुट्टो की रिहाई : भुट्टो की रिहाई से विरोधी पार्टियाँ अपने आप को काफ़ी सशक्त महसूस कर रही हैं, क्यों कि भुट्टो की रिहाई से उन की आवाज़ और दमदार हो जाती है. राष्ट्रपति अय्यूब खाँ द्वारा विरोधी पार्टियों की एक के बाद एक शर्त मानते जाना उन की जीत की ही निशानी है. विरोधी पार्टियाँ यह चाहती थीं कि मुल्क से हंगामी हालत खत्म कर दी जाये और सभी सियासी बंदियों को रिहा कर दिया जाये. अय्यूब ने ये दोनों ही बातें मान ली हैं. १६ फ़रवरी को आधी रात के क़रीब पाकिस्तान से ४२ महीने से चली आ रही हंगामी हालत खत्म कर दी गयी. इस के साथ ही बहुत से राजनैतिक बंदियों को भी रिहा किया गया. भुट्टो ने आपत्कालीन स्थिति के बाक़ायदा खात्मे तक जो आमरण अनशन किया था, वह भी उन्होंने समाप्त कर दिया. लेकिन उन्होंने इस बात की ओर ज़रूर इशारा किया है कि अभी भी अय्यूब की दयानतदारी पर उन्हें यक़ीन नहीं. आपात्कालीन स्थिति समाप्त होने के बावजूद पाकिस्तान की सड़कों पर नारे लगाते हुए लोगों के जुलूस जाते नज़र आ रहे हैं जो आती-जाती सरकारी गाड़ियों तथा सरकारी इमारतों को फूंकने में नहीं झिझकते. अय्यूब ने पख्तून नेता खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ के पुत्र खान वली खाँ को रिहा कर के भी अपनी उदारता का परिचय देना चाहा है और लोगों से यह अपील की है कि वे मुल्क की बहबूदी के लिए हर मुमकिन कोशिश करने को तैयार हैं.

वार्त्ता : डेमोक्रेटिक एक्शन कमेटी के संयोजक नवाबज़ादा नसरुल्ला खाँ ने आठ पार्टियों की

भुट्टो: नजरबंदी के बाद

दो-दिवसीय बैठक के बाद यह ऐलान किया है कि वह अय्यूब द्वारा बुलायी गयी बैठक में भाग लेंगे. उन्होंने यह भी कहा कि यह बैठक १७ फ़रवरी की बजाय १९ फ़रवरी को होनी चाहिए. अय्यूब ने उन की यह माँग भी स्वीकार कर ली. नसरुल्ला खाँ ने अय्यूब को यह बताया कि एक्शन कमेटी की आठ पार्टियों के दो-दो नुमाइंदे तो बातचीत में शामिल होंगे ही, इन के अलावा अवामी पार्टी, राष्ट्रीय अवामी लीग, एयर मार्शल असगर खाँ, लेफ़्टीनेंट जनरल आज़म खाँ, न्यायाधीश एस. एम. मुर्शिद और भुट्टो की पीपुल्स पार्टी को भी शामिल करना चाहिए. लेकिन इन पार्टियों से अय्यूब को स्वयं पत्र-व्यवहार करना होगा. अय्यूब ने नसरुल्ला खाँ की यह बात मान ली है. इन के अतिरिक्त अय्यूब खाँ खान वली खाँ को भी न्योता दे रहे हैं ताकि पख्तूनों के मामले पर भी विचार किया जा सके. बातचीत में भाग लेने के लिए डेमोक्रेटिक एक्शन कमेटी के १५ सदस्य रावलपिंडी पहुँच चुके हैं जिनमें मुजीबुर्रहमान और मौलाना भासानी भी शामिल हैं.

याचिका और बयान : न्यायालय से भुट्टो ने याचिका बेशक वापिस ले ली है और आपत्कालीन अध्यादेश के नियम खत्म कर दिये गये हैं लेकिन अय्यूब के बारे में भुट्टो ने जो बातें कहीं और अय्यूब पर जो आरोप लगाये उस की परत अभी भी जन-मानस पटल पर विराजमान है. भुट्टो ने अपने बयान में कहा कि 'अय्यूब राज ताक़त की पैदाइश है, ताक़त के सिर पर खड़ा है और ताक़त के ज़रिये ही फ़नाह होगा. आज हर तरफ़, बलोचिस्तान से ले कर पूर्व पाकिस्तान तक निर्दोष लोगों के खून से ज़मीन को सींचा जा रहा है.' उन्होंने कहा कि 'मुझे किन आरोपों में धरा गया, यह स्पष्ट नहीं है लेकिन यह बात ज़रूर सही है कि मुझे सींखचों के अंदर बंद करने में मनमर्जी बरती गयी है, क्योंकि अगर हुकूमत ऐसा न करती तो मैं अय्यूब की खामियों समेत ताशकंद-समझौते के वरकों को पलटना शुरू कर देता जिस की वजह से अय्यूब का सही और साफ़ चेहरा लोगों के सामने आता. लेकिन अय्यूब में सच्चाई जानने और जान कर बर्दाश्त करने का माद्दा नहीं था. मुझ भले चंगे आदमी पर बीमारी का लबादा ओढ़ा कर विदेशमंत्री का पद त्यागने के लिए मजबूर किया गया. मुल्क में रह कर मैं हुकूमत के लिए सिरदर्द साबित हो सकता था, लिहाज़ा अय्यूब ने चाहा कि मैं पेरिस या और किसी देश में राजदूत बन कर चला जाऊँ. मुझे यह गवारा न हुआ. मुझे समझाने-बुझाने और 'राह पर लाने' की जब सभी नायाब तरकीबें नाकाम साबित हो गयीं तब अय्यूब ने कड़ा रुख अपनाया, लेकिन उन की इस कड़ाई में भी दरारें पड़ गयीं. जब अय्यूब द्वारा राजदूत का प्रस्ताव और अपने कस्बे लरकाना में जूट या चीनी मिल लगाने संबंधी सुझाव को मैंने ठुकरा दिया और राजनीति में सक्रिय रहने का हठ ही बरकरार रखा तब अय्यूब ने मुझे अपना फ़ैसला बदलने के लिए तत्कालीन उद्योगमंत्री अल्ताफ़ हुसेन की मदद ली. अल्ताफ़ हुसेन ने मुझ से यह मनवाना चाहा कि १९७० के राष्ट्रपति-चुनाव के लिए मैं खड़ा न होऊँ. लेकिन मैंने उन्हें इस क़िस्म का कोई भी भरोसा नहीं दिया. इस के बाद अय्यूब के बड़े लड़के अख्तर अय्यूब ने पिता अय्यूब और मुझ में समझौता कराने की कोशिश की. जब उस के हाथ भी कुछ नहीं लगा तब गवर्नर मूसा का सहारा लिया गया. गवर्नर मूसा ने कहा कि हर इनसान में कुछ खामियाँ होती हैं और राष्ट्रपति अय्यूब इन खामियों से परे नहीं, आखिरकार वह भी इनसान हैं. लिहाज़ा उन्होंने मुझे यह नेक सलाह दी कि मैं ताशकंद-समझौते के बारे में अपने जज़्बातों को ज़ब्त रखूँ. जब अय्यूब के यह सब लाड़-प्यार-तकरार से काम नहीं बना, तब उन्होंने आखिरी हथियार उठाया—मुझे हिरासत में ठूँसने का. वहाँ भी मेरे साथ अच्छा सुलूक नहीं किया गया.

और जिस कोठरी में मुझे बंद किया गया उस कोठरी में मक्खी-मच्छरों और खटमलों की भरमार थी और वह कोठरी मुझे काल-कोठरी की याद दिला रही थी.' राष्ट्रपति अय्यूब और गवर्नर मूसा के प्रतिवादी बयानों में भुट्टो की इन बातों को मनगढ़ंत और बेदलील बताया गया. अय्यूब ने तो यहाँ तक कहा कि उन्होंने ऐसी कोई बात नहीं की उन्होंने तो भुट्टो को विदेशमंत्री-पद छोड़ने के बाद अलबत्ता खाखुशी ज़िंदगी बिताने की अपनी दिली दुआएँ ही दी थीं.

लेकिन ये सभी बातें अब जनता के मन पर गहरी छाप छोड़ चुकी हैं. आपत्कालीन स्थिति समाप्त होने पर भी लोगों का रोष बरकरार है. आज भी मुज़ाहिरे निकल रहे हैं, प्रशासन के ख़िलाफ़ आवाज़ें उठायी जा रही हैं, बसें जलायी जा रही हैं, ढाका के बंदी विद्रोह कर रहे हैं और उन पर गोलियाँ बरसायीं जा रही हैं. सच बात तो यह है कि पाकिस्तान के हर कोने में उठते-बैठते, सोते-जागते लोगों के कानों में गोलियों की आवाज़ ही सुनाई देती है. यह गोलियाँ एक मुल्क की दूसरे मुल्क पर हमले की नहीं, बल्कि एक मुल्क के दो मुख़्तलिफ़ विचार-धाराओं पर अपनी-अपनी विचारधारा जनवाने और मनवाने के लिए चलायी जा रही हैं. छात्रों ने प्रतिपक्षी नेताओं को ज़ाहिरा तौर पर यह बता दिया है कि वे अय्यूब से किसी प्रकार की बातचीत न करें, क्यों कि वे अब बातचीत नहीं, अय्यूब को हटाने का हठ रखते हैं.

ढाका में गोली : सार्जेंट जैहूरुलहक, जिसे अगरतल्ला षड्यंत्र कांड में बंदी बनाया गया था, ने भागने की जब नाकाम कोशिश की तो पुलिस की गोलियों से वह घायल हो गया और दूसरे दिन उस का प्राणांत हो गया. उस की लाश को जब दफ़नाने के लिए ले जाया जा रहा था तो लोगों की बेसाख़्ता भीड़ बेकाबू हो गयी और शोकाकुल लोग प्रदर्शनकारियों में बदल गये तथा तैनात पुलिस पर पत्थरों की बौछार होने लगी. बिगड़ती हुई हालत पर क़ाबू पाने के लिए सरकार ने सभी सार्वजनिक स्थानों और मंत्रियों के घरों पर सेना का कड़ा पहरा लगा दिया.

विरोधी पार्टियों के सामने अय्यूब बुरी तरह झुके हैं. इतना झुकने के बावजूद यदि उन में और प्रतिपक्ष के बीच में हुई बातचीत किसी निर्णायक परिणाम पर न पहुँच सकी तो उन की रही-सही साख़ ख़त्म हो जायेगी. यह बात सही है कि अय्यूब के साथ उन की अपनी पार्टी मुस्लिम लीग और उन के अधिकारियों और सलाहकारों ने उन को ऐसे मोड़ पर ला खड़ा कर दिया है जहाँ से वह मुड़ना चाह कर भी नहीं मुड़ सकते. उन्हें हमेशा यह बताया जाता रहा है कि आज भी उन का वही दबदबा, वही इज़्ज़त और सम्मान है जो आज से दस साल पहले था, जब कि वास्तव में स्थिति भिन्न थी. इस समय पाकिस्तान के राजनैतिक वितान पर भुट्टो, असगर ख़ाँ और मुजीबुर्रहमान जैसे चमकते सितारे हैं और इन में से १९७० के राष्ट्रपति-पद के लिए कोई न कोई उम्मीदवार होगा, अगर अय्यूब ने स्वयं या उस के किसी चहेते ने चुनाव लड़ने का इरादा रखा. पाकिस्तान की मौजूदा हालत केवल राजनैतिक अस्थिरता तक ही सीमित नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक सीमाओं तक भी पहुँच चुकी है. यहाँ तक कि एम. सी. सी. क्रिकेट टीम के खिलाड़ियों को भी एक दो दिन तक अपने होटल में बंद रहने की ही सलाह दी गयी थी. यद्यपि एयर मार्शल असगर ख़ाँ अय्यूब को पूर्ण सुरक्षा का भरोसा दिलाते हैं, तथापि यह बात जग-ज़ाहिर हो चुकी है कि इन प्रतिपक्षी नेताओं को तो अपनी सुरक्षा का यकीन नहीं, वह किस आधार पर दूसरे की सुरक्षा का व्रत लेते हैं. यदि सत्तारूढ़ और प्रतिपक्षी नेताओं के सीनों पर दोनालियाँ इसी तरह तनी रहीं जैसे अय्यूब और भुट्टो पर तन चुकी हैं, तब वह दिन दूर नहीं जब पाकिस्तान भर में केवल अराजकता और अव्यवस्था का ही राज होगा.

पश्चिम एशिया

थका-हारा शांति-यात्री

पश्चिम एशिया के संकट का समाधान करने के लिए संयुक्तराष्ट्र प्रधान सचिव ऊ थाँ के विशेष प्रतिनिधि डॉ. गुन्नार यारिंग अपने प्रयत्नों से तंग आ गये हैं. उन्होंने बहुत मायूस हो कर अब अपने पूर्व पद पर मॉस्को लौट जाने का फ़ैसला किया है. उन के विचार में बड़े चार राष्ट्रों ने इस काम में उन का हाथ बँटाने का जो आश्वासन दिया था वह पूरा नहीं हो रहा है और यह बात उन की निराशा का एक प्रधान कारण है. डॉ. यारिंग शांति-प्रयत्नों का नया कार्यभार सँभालने से पहले सोवियत संघ में स्वीडन के राजदूत थे और उन्होंने इस पद से छुट्टी ले कर पश्चिम एशिया की समस्या का समाधान ढूँढने की ज़िम्मेदारी सँभाली थी. एक वर्ष से भी अधिक समय बीत गया. डॉ. यारिंग को काफ़ी भाग-दौड़ करने के बाद भी, शांति-प्रयत्नों में कोई सफलता नहीं मिली. पिछले नवंबर में ही उन्होंने इस कार्य से मुक्त होने की इच्छा प्रगट की थी, लेकिन फिर उन्हें प्रयत्न जारी रखने के लिए राज़ी कर लिया गया. उन्हें आशा दिलायी गयी कि नये अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन पश्चिम एशिया में शांति-स्थापना के कार्य को सर्वोपरि मान कर इस दिशा में दृढ़ता के साथ कोई क़दम उठायेंगे. वैसे चार बड़े राष्ट्रों की बैठक का प्रस्ताव श्री निक्सन ने सिद्धांत रूप में स्वीकार कर लिया. पर इस दिशा में भी कोई ख़ास प्रगति अब तक नहीं हुई. अब डॉ. यारिंग का निष्कर्ष यह है कि राष्ट्रपति निक्सन की यूरोप यात्रा से पहले चार बड़े राष्ट्रों की बैठक नहीं होगी और इस के बाद भी इस बैठक को बुलाने में हफ़्तों और महीनों का समय लग जायेगा. ताज़ा समाचारों के अनुसार डॉ. यारिंग अपने पद पर मॉस्को लौटने से पहले पश्चिम एशिया के विवाद से संबद्ध दोनों ही पक्षों से फिर संपर्क क़ायम करने की कोशिश करेंगे.

विरोध-प्रतिरोध का सिलसिला : उधर अरब और इस्राइल के बीच विरोध-प्रतिरोध का सिलसिला बराबर जारी है. दोनों की लड़ाई ख़त्म होने के लगभग बीस महीने बाद भी शायद ही कोई ऐसा दिन बीता हो जब कहीं न कहीं, किसी रूप में, दोनों पक्षों की सैनिक और असैनिक मुठभेड़ें न हुई हों. हर मुठभेड़ के बाद यही लगता है कि शायद अरब-इस्राइल के बीच अब कोई बहुत बड़ा युद्ध छिड़ जायेगा.

दोनों पक्षों को बड़े राष्ट्रों की सैनिक सहायता का सिलसिला भी बराबर जारी है. शांति-स्थापना के लिए चार बड़े राष्ट्रों के सम्मेलन का फ़्रांसीसी प्रस्ताव हालांकि चारों संबद्ध देशों को स्वीकार हो चुका है पर अरब-इस्राइल संघर्ष में बड़े-बड़े राष्ट्र जिस-जिस के हिमायती हैं, उस-उस को सैनिक सहायता भी बराबर पहुँचा रहे हैं. जब इस्राइल की हिमायत करने वाला कोई बड़ा देश उसे सैनिक सामग्री देता है तो अरब देशों में क्षोभ की नयी लहर दौड़ जाती है और जब अरब देशों को उन के हिमायती किसी राष्ट्र की सहायता मिलती है तो इस्राइल भड़क उठता है. अभी हाल ही में संयुक्त अरब गणराज्य ने ब्रिटेन को सूचित किया है कि इस्राइल को ब्रितानी हथियार देने की किसी भी कोशिश को वह अपने ऊपर आक्रमण-कार्यवाही समझेगा. इसी तरह की चेतावनियां इस्राइल भी अरब देशों को बाहर से हथियार मिलने की संभावनाओं पर बराबर देता रहता है.

सीधी बातचीत के इच्छुक : अभी हाल ही में एक पत्र-प्रतिनिधि के साथ भेंट में इस्राइली प्रधानमंत्री श्री एश्कोल ने यह संकेत दिया था कि अगर अरब देश इस्राइल की स्थापना को ठीक इसी तरह स्वीकार कर लेते जैसे बाकी विश्व ने किया तो शायद पश्चिम एशिया में अशांति की नौबत ही न आयी होती. इस भेंट में श्री एश्कोल ने शुरू से ले कर अब तक की स्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा है कि पिछले बीस वर्षों से हम बराबर यह कहते आ रहे हैं कि हम श्री नासिर के साथ अपनी समस्याओं पर बातचीत करने को तैयार हैं. मैं अब भी काहिरा जाने को तैयार हूँ और श्री नासिर से एक विजेता की हैसियत से नहीं लेकिन एक साथी की हैसियत से बात करूँगा. मैं सिर्फ़ इतना चाहता हूँ कि श्री नासिर अपने दिमाग़ से इस्राइल के बारे में ऊटपटांग विचार निकाल दें. उधर श्री नासिर यह कहते हैं कि हम संयुक्तराष्ट्र-प्रेक्षकों के तत्वावधान में बातचीत करने को तैयार हैं. इधर इस्राइल और उधर अरब नेताओं के समय-समय पर प्रकट किये गये इन विचारों से सहसा प्रश्न यह

उठता है कि दोनों पक्ष सीधी बातचीत के लिए तैयार हैं, फिर सीधी बातचीत द्वारा समस्या का समाधान क्यों नहीं हो रहा ? इस का सहज उत्तर यही है कि बड़े राष्ट्र दोनों पक्षों के माध्यम से पश्चिम एशिया को शांत रहने देने में ही अधिक दिलचस्पी रखते हैं.

अमेरिकी सूत्रों ने चार बड़े राष्ट्रों का पश्चिम एशिया सम्मेलन शीघ्र ही होने का संकेत दिया है. पर अभी यह स्पष्ट नहीं है कि पश्चिम एशिया में शांति के लिए इन चारों बड़े राष्ट्रों की बातचीत किस ढंग की होगी.

इंदोनेसिया

साम्यवादी अभियान : पुनर्जन्म की प्रक्रिया

इंदोनेसिया में क्या हो रहा है, या क्या होने वाला है, इस की सही जानकारी बाहरी विश्व को बहुत कम रहती है. केवल अनुमान लगाये जा सकते हैं और यह ज़रूरी नहीं है कि वह अनुमान भी सही निकल आयें, क्यों कि उन के आधार पर कुछ अधूरे और अस्पष्ट आँकड़े और समाचार रहते हैं. हाल ही में इंदोनेसिया के एक टापू फ्लोर्स में एक ज्वालामुखी पर्वत माउंट इजा में विस्फोट हो गया, जिस से संपूर्ण टापू में भयानक भूकंप हुआ और देर से प्राप्त समाचारों के अनुसार इस विस्फोट से १७७ मकान, ६ मस्जिदें और ३ स्कूल धराशायी हो गये और ३२०० एकड़ उपजाऊ भूमि, लावा और चट्टानें बिखर जाने से, बेकार हो गयी. सामान्यतया यह एक बहुत बड़ा विस्फोट है, मगर विश्व के समाचारपत्रों में इस संबंध में कुछ पंक्तियों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं लिखा गया. साधारण ज्वालामुखियों के अतिरिक्त इंदोनेसिया में राजनैतिक ज्वालामुखी भी हैं. जनरल सुहर्त के राष्ट्रपति बनने के बाद संपूर्ण इंदोनेसिया पर एक गहरा कोहरा छा गया है, जिस के भीतर झाँकने पर केवल अस्पष्ट और धुंधला दृश्य ही दिखाई देता है. हाल ही में दक्षिणी बोर्नियो में ६ इंदोनेसियाई पत्रकारों को गिरफ़्तार किया गया, जिस में एक पत्रकार-संघ का अध्यक्ष भी शामिल है. इन पत्रकारों पर यह आरोप लगाया गया है कि उन्होंने कुछ सैनिक अधिकारियों की गिरफ़्तारी के बारे में समाचार दिया. पत्रकारों ने सैनिक अधिकारियों को समाचारों के स्रोतों को बताने से इंकार कर दिया. इस से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि इंदोनेसिया में ऊपर से दिखने वाले शांत वातावरण के नीचे कुछ विद्रोही धाराएँ बह रही हैं. इस के अतिरिक्त भी कई पत्रकारों को साम्यवादी छापामारों के साथ सहानुभूति रखने के आरोप पर नज़रबंद कर दिया गया है.

सुकर्ण की आड़ में : इंदोनेसिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्ण के प्रभाव को समाप्त करने के लिए कई प्रकार के क़दम उठाये जा रहे हैं. अपने शासन-काल में सुकर्ण ने मुद्राओं पर अपनी तस्वीरें खुदवायी थीं और यह सिक्के तथा नोट आज तक चालू हैं. मगर नयी सरकार ने यह घोषणा की है कि नये काग़ज़ के सिक्के चालू कर दिये जायेंगे, जिन पर सुकर्ण की तस्वीर नहीं होगी, ताकि जनता के मन से भूतपूर्व अधिनायक-राष्ट्रपति का विचार दूर हो जाए. इस के अतिरिक्त इंदोनेसिया की संसद ने ७५ शिलालेखों को रद्द करने का विधेयक पारित किया है. इन शिलालेखों में सुकर्ण ने अपनी आज्ञाएँ और राजनैतिक घोषणाएँ खुदवायी थीं. सुकर्ण ने अपनी शासन-पद्धति को 'निर्देशात्मक लोकतंत्र' नाम दिया था और इस विचित्र प्रकार के लोकतंत्र द्वारा वह दस करोड़ जनता पर बिना किसी हस्तक्षेप

सुहर्त : अस्पष्ट और धुंधली राजनीति

के शासन चला रहे थे. मगर शिलालेखों और मुद्राओं को समाप्त करने से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात स्वयं सुकर्ण की नज़रबंदी के संबंध में है. अपने पतन के बाद सुकर्ण को अपने शानदार महल बोगोर में रखा गया था. मगर अब इंदोनेसियाई सैनिक सरकार ने उन्हें वहाँ से हटा कर ४० मील दूर एक अन्य मकान में भेज दिया है, ताकि बोगोर को पर्यटकों के लिए एक आकर्षण स्थल में परिवर्तित किया जा सके. मगर वास्तविक कारण यह है कि इंदोनेसियाई नागरिक भूतपूर्व राष्ट्रपति से संपर्क स्थापित न कर सकें. पिछले दिनों सुकर्ण की चौथी पत्नी रत्नश्री देवी न्यूयॉर्क चली गयीं और उन के साथ काफ़ी मात्रा में व्यक्तिगत और घरेलू सामान था. इस से यह अफ़वाहें फैल रही हैं कि सुकर्ण ने राजनीति से सदा के लिए अवकाश ग्रहण करने का फ़ैसला किया है और वह अमेरिका में अपनी शेष ज़िंदगी बिताने की योजनाएँ बना रहे हैं. यदि यह सच है तो यह एक विचित्र ऐतिहासिक घटना होगी कि सुकर्ण उस देश का आश्रय ग्रहण करेंगे जिसे वह अपने उत्थान के दिनों में सब से अधिक गालियाँ देते रहे हैं. ऐसा लगता है कि सुकर्ण के राजनैतिक जीवन का अंत हो गया है, क्यों कि सेना किसी भी सूरत में उन्हें पुनः शासन पर अधिकार करने नहीं देगी. जैकर्त्ता के सैनिक अधिकारी ने, जिन के संरक्षण में सुकर्ण नज़रबंद हैं, यह घोषणा की है कि जो कोई भी उन्हें शासन में पुनः स्थापित करने की कोशिश करेगा उसे जैकर्त्ता की सेना का मुक़ाबला करना होगा.

माओ रोग का प्रवेश : संभवतः सुकर्ण की प्रतिष्ठा को नष्ट करने के पीछे इंदोनेसियाई सैनिक सरकार और सैनिक अधिकारियों के पास उचित आधार है. क्यों कि १९६५ में सुकर्ण को पद से हटाने के बाद इंदोनेसियाई साम्यवादी दल को नष्ट करने का जो हिंसक और उग्र अभियान चला था उस में तो साम्यवादी दल के अधिकांश नेता मारे गये थे मगर फिर भी कुछ उग्रपंथी जंगलों में या दूर-दराज़ स्थानों में बचे रहे गये. जिन्होंने भूतपूर्व राष्ट्रपति के नाम पर 'सुकर्ण मोर्चा' स्थापित किया. उद्देश्य यह था कि सुकर्ण के व्यक्तित्व से फ़ायदा उठा कर इंदोनेसियाई जनता की सहानुभूति प्राप्त की जाए. इस सिलसिले में इंदोनेसियाई सेना ने ३००० व्यक्तियों को पिछले साल ही गिरफ़्तार किया था. मगर उस के बाद भी कई साम्यवादी केंद्रों को ध्वस्त करने का अभियान जारी रहा. अनुमान लगाया जाता है कि अब भी साम्यवादियों का एक बहुत बड़ा वर्ग देश में आतंक फैलाने की कोशिश में है. इस सिलसिले में एक षड्यंत्र की आम चर्चा की जा रही है, जिस के अनुसार अक्तूबर १९७० को 'अफ़्रेशियाई साम्यवादी क्रांति-दिवस' मनाने का आयोजन है. इस दिन की सफलता के लिए इंदोनेसिया के बहुत से देहाती क्षेत्रों में लंबे और हिंसक संघर्ष के कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं जिस में कुछ सैनिक अफ़सर भी शामिल हैं. पूर्वी जावा में इस प्रकार की कार्यवाहियों के प्रमाण मिले हैं, जिस से यह सिद्ध हो जाता है कि हांगकांग और सिंगापुर के रास्ते माओवादी प्रचार साहित्य इंदोनेसिया में पहुँचाने की व्यापक योजनाएँ काम कर रही हैं.

आर्थिक स्थिरता : इस विस्फोटक स्थिति के बावजूद यह कहना अनुचित होगा कि वर्त्तमान शासक-वर्ग को इंदोनेसिया में राजनैतिक स्थिरता लाने और इंदोनेसिया की आर्थिक अवस्था को सुधारने में कोई सफलता नहीं मिली है. सच तो यह है कि सुहर्त्त-मंत्रिमंडल को आर्थिक स्थिति में कुछ महत्त्वपूर्ण संशोधन करने में सफलता मिली है. हाल ही में अमेरिकी सरकार ने २० करोड़ डॉलर ऋण देने का फ़ैसला किया है. अपनी प्रस्तावित पंचवर्षीय विकास-योजना में सुहर्त्त ने इस प्रकार के कार्यक्रम बनाये हैं जिस से आवश्यक वस्तुओं का मूल्य कम हो जायेगा और उद्योगों का विकास होगा. अनेक वर्षों के बाद १९६८

का वर्ष इंदोनेसिया के लिए इस लिए भी महत्त्वपूर्ण था कि सुहर्त सरकार ने पहली बार लाभ का बजट प्रस्तुत किया. वर्ष के अंत पर जनता के नाम अपने भाषण में राष्ट्रपति सुहर्त ने कहा कि "नौ मूल वस्तुओं के मूल्य प्रायः स्थिर रहे हैं जिस का मतलब है कि मूल्यों में कोई असाधारण वृद्धि नहीं हुई है जब कि राष्ट्रीय अवकाशों से पहले इन वस्तुओं के मूल्य सदा बढ़ते रहे हैं". राजनैतिक और आर्थिक सहयोग के लिए इंदोनेसिया ने विकासशील देशों के साथ संपर्क स्थापित किया है. इस सिलसिले में एक व्यापार मंत्री की नियुक्ति हुई है ताकि अर्थतंत्र को अनुदानों और ऋणों से मुक्त कर के अपनी टाँगों पर खड़े रहने योग्य बनाया जा सके. इस उद्देश्य से इंदोनेसिया के विदेशमंत्री आदम मलिक कुछ दिनों में ही भारत आ रहे हैं. मलिक तीन वर्ष पूर्व भी भारत आये थे. भारत ने तब इंदोनेसिया को २० करोड़ रुपये का ऋण दिया था. संभवतया गर्मियों में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी भी इंदोनेसिया के दौरे पर जायेंगी.

पेरू

क्यूबा की राह पर

पेरू की सैनिक सरकार आजकल क्यूबा के नक्शे क़दमों पर चल रही है. एक दशक पहले क्यूबा के कास्त्रो ने सभी अमेरिकी प्रतिष्ठानों पर रोक लगा कर अमेरिका-विरोधी जेहाद छेड़ा था और अब पेरू के राष्ट्रपति जनरल जुआन वेलास्को एलवारादो ने अंतरराष्ट्रीय पैट्रोलियम कंपनी की शाखा एस्सो पर ६९०,५२४,२८३ डॉलर के दावे का नोटिस दे उसे ४४ वर्षों के लिए अपने क़ब्ज़े में कर लिया है. आदेश में कहा गया है कि १ मार्च, १९२४ से ९ अक्तूबर, १९६८ तक ला ब्रया और पारीनास तेल कुओं से यह संस्था ग़ैर-क़ानूनी ढंग से तेल निकालती रही है. इस अक्षम्य अपराध के कारण पेरू सरकार को बहुत-सी विदेशी पूँजी से हाथ धोना पड़ा है. सरकार का कहना है कि इस कंपनी को पेरू की प्राकृतिक संसाधनों का फ़ायदा उठाने का कोई अधिकार नहीं है.

इस झगड़े का कारण ९ अक्तूबर १९६८ का वह आदेश है जिस के अंतर्गत सैनिक सरकार ने तेल का राष्ट्रीयकरण कर सभी पुराने समझौतों को रद्द कर दिया था. लिहाज़ा अंतरराष्ट्रीय पैट्रोलियम कंपनी की सारी पूँजी की हक़दार पेरू सरकार हो गयी थी. सैनिक सरकार का यह मत है कि भूतपूर्व अपदस्थ राष्ट्रपति टेरी ने जनता की भावनाओं से खिलवाड़ किया और उसे भूमि सुधार आदि का यक़ीन दिलवा कर बाद में मुकर गयी. उस के इन भरोसों का असर १ करोड़ २० लाख पिछड़े वर्गों पर पड़ा. टेरी का प्रशासन घूसखोरी और भ्रष्टाचार के दौर में डूब कर रह गया. पेरू अधिकारियों का कहना है कि अंतरराष्ट्रीय पैट्रोलियम कंपनी ने १४,५००,००० डॉलर का कच्चे माल का बिल भी सरकार को देने से नाहीं कर दी.

पेरू के इस क़दम से अमेरिका को बहुत तकलीफ़ पहुँची है क्योंकि अमेरिका अमेरिकी राज्य संघ का संस्थापक है जो लातीनी अमेरिकी देशों के हितों का ख्याल रखता है. अमेरिका के विदेश मंत्रालय ने यह धमकी दी है कि यदि उस ने अंतरराष्ट्रीय पैट्रोलियम कंपनी को मुआवज़ा नहीं दिया तो वह जो उसे ढाई करोड़ डॉलर की वार्षिक सहायता देता है वह तो बंद की ही जायेगी, इस के अलावा साढ़े छह करोड़ डॉलर की पेरू की चीनी अमेरिका आयात करना भी बंद कर देगा. अमेरिका की इस भूमिका से पेरू की सैनिक सरकार पर कोई अधिक फ़र्क़ नहीं पड़ने का, क्योंकि अपने तीन महीने के अल्पकालिक शासन में उस ने अपने आप को समाजवादी देशों के काफ़ी निकट किया है. पेरू के रोमानिया, चेकोस्लोवाकिया आदि देशों से काफ़ी निकटतापूर्ण संबंध हैं और सोवियत संघ के साथ भी उस की पटरी काफ़ी अच्छी बैठती है. पेरू के इस क़दम से यह बात तय हो जाती है कि नये निक्सन प्रशासन ने लातीनी अमेरिकी देशों के प्रति जो उदासीनता का रवैया अपनाया था, उस से इन देशों को कष्ट पहुँचा है. राष्ट्रपति निक्सन के सामने पेरू एक चुनौती के रूप में खड़ा है और इस समस्या का हल निक्सन की राजनयिक कुशलता या अकुशलता का परिचायक साबित हो सकता है.

वीएतनाम-वार्ता

लाओस समस्या : एक भारी बाधा

यद्यपि पैरिस में वीएतनाम संबंधी शांति वार्ता की प्रगति बहुत धीमी है और तुरंत किसी प्रकार के हल की आशा दिखायी नहीं देती फिर भी जितना कुछ हो चुका है उस को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि इस का अंत असफलता में हो जायेगा. मगर यदि वार्ता में अमेरिकी और उत्तर वीएतनामी पक्ष की समस्या को सुलझाने के संबंध में ईमानदारी के साथ आगे भी बढ़ें तब भी कुछ ऐसी समस्याएँ सामने आ सकती हैं जो प्रत्यक्ष रूप से संबंधित नहीं हैं मगर परोक्ष रूप से वह उस की गति और दिशा को प्रभावित ज़रूर करेंगी. इन में लाओस की समस्या सब से बड़ी है. यदि यह मान लिया जाये कि उत्तर वीएतनामियों के दबाव डालने पर संयुक्त राज्य अमेरिका दक्षिण वीएतनाम से अपनी सेनाएँ हटाने का फ़ैसला करता है और उस के बदले में उत्तर वीएतनाम की सरकार भी दक्षिणी वीएतनाम से अपनी सेनाओं को वापस बुलाती है तब भी यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या दक्षिणी-पूर्वी एशिया में शांति स्थापित हो सकती है? यह अनुमान लगाया गया है कि दक्षिणी वीएतनाम में एक लाख सैनिकों को रखने के अतिरिक्त उत्तरी वीएतनाम ने लाओस में भी प्रायः ४०,००० सैनिकों को रखा है. स्थानीय सरकार के विरुद्ध वामपंथी छापामारों का संघर्ष चल रहा है जिन की सहायता उत्तर वीएतनाम की साम्यवादी सरकार करती रहती है. पेथेटलाओ के छापामारों ने लाओस के बहुत से भाग को अपने कब्ज़े में कर रखा है. यह क्षेत्र उत्तर वीएतनाम और लाओस की सीमा के साथ-साथ लगा हुए हैं. राष्ट्रपति हो ची मिन्ह और पेथेटलाओ के नेताओं के बीच एक दूसरे को सहायता करने का जो समझौता है उस ने अभी तक दोनों पक्षों को काफ़ी लाभ पहुँचाया है. लाओस की सरकारी सेनाओं से अनेक क्षेत्रों को छीनने के अतिरिक्त इस समझौते के द्वारा हो-ची-मिन्ह-मार्ग की भी रक्षा होती रहती है. यदि पेरिस में वीएतनाम की समस्या को सुलझाने के संबंध में प्रगति हुई तो निस्संदेह यह समस्या पैदा हो सकती है कि क्या दक्षिण वीएतनाम से अपनी सेनाएँ हटाने की अवस्था में उत्तर वीएतनाम लाओस से भी अपनी सेनाएँ वापस बुलायेगा क्यों कि अमेरिकियों के जाने के पश्चात् हो-ची-मिन्ह मार्ग की कोई उपयोगिता नहीं रह जाती है. पश्चिमी राजनीतिकों को इस बात में संदेह है. उन के अनुसार यदि अमेरिका ने वीएतनाम से अपनी सेनाएँ वापस हटा लीं तो हो-ची-मिन्ह के लिए लाओस पर अधिकार जमाना अत्यंत सरल हो जायेगा. यदि ऐसा हुआ या इस प्रकार की आशंका पैदा हो गयी तो संयुक्त राज्य अमेरिका को लाओस की सरकारी सेनाओं के सहयोग से पेथेटलाओ के केंद्रों पर अधिक व्यापक रूप से बमबारी करनी पड़ेगी. जिस का मतलब यह होगा कि वीएतनाम की मुख्य समस्या न रहते हुए भी उत्तर वीएतनाम और अमेरिकी हित आपस में टकरा सकते हैं. फ़िलहाल संयुक्त राज्य अमेरिका के बी-५२ बमवार एक विशेष क्षेत्र में ही पेथेटलाओ केंद्रों पर प्रहार करते हैं.

रूस का रुख : यह कहा जाता है कि वीएतनाम की समस्या के हल के सिलसिले में संयुक्त राज्य अमेरिका उत्तरी वीएतनामियों को लाओस से भी हटाने के लिए कह सकता है. मगर यह बात साधारणतया इतनी आसान नहीं दिखलायी देती क्यों कि उत्तर वीएतनाम ने कभी यह स्वीकार ही नहीं किया है कि उस की सेनाएँ लाओस में स्थित हैं. यद्यपि सोवियत संघ ने संयुक्त राज्य अमेरिका पर यह आरोप लगाया है कि उस ने बमबारी द्वारा लाओस में आतंक पैदा कर दिया है फिर भी कई लोगों का यह अनुमान है कि स्वयं सोवियत संघ भी यह नहीं चाहेगा कि लाओस पर उत्तर वीएतनाम का कब्ज़ा हो जाए, क्यों कि राजनीतिक रूप से अधिक स्थिर लाओस सोवियत संघ के लिए भी

उपयोगी होगा. सोवियत संघ संभवतः यह नहीं चाहेगा कि दक्षिण पूर्वी एशिया में चीन का प्रभाव अधिक बढ़े. अमेरिकी विदेश विभाग के अधिकारी मेक्लोवस्की के अनुसार लाओस की समस्या का 'मूल कारण वहाँ ४०,००० वीएतनामी सैनिकों की उपस्थिति है, जो कि १९६२ के जेनेवा समझौते का बिलकुल उल्लंघन है'. इस लिए अमेरिका के सामने यह समस्या बड़े विकट रूप में आने वाली है कि क्या उसे दक्षिणी पूर्वी एशिया को साम्यवादी प्रभाव और दबाव के लिए खुला छोड़ देना चाहिए अथवा नहीं. क्यों कि लाओस में अपेक्षाकृत शांति स्थापित होने से ही इस क्षेत्र में तनाव कम करने के संबंध में कोई स्थायी हल खोजा जा सकता है.

अमेरिकी व्यवहार : पेरिस वार्त्ता के दूसरे सत्र में जहाँ विरोधी पक्षों ने एक दूसरे पर कीचड़ उछालने की औपचारिकता पूरी की वहीं संयुक्त राज्य अमेरिकी व्यवहार में कुछ सख्ती भी दिखाई दी. पिछले वर्ष जुलाई में **एवरिल हैरीमन** ने उत्तर वीएतनामी प्रतिनिधि को कहा था कि अमेरिका दक्षिण से अपनी सेनाएँ हटायेगा. मगर वार्त्ता के दूसरे सत्र में अमेरिकी विशेष प्रतिनिधि **केबट लॉज** ने माँग की कि उत्तर वीएतनामी दक्षिणी वीएतनाम से स्थायी सेनाओं के अतिरिक्त षड़यंत्रकारी तत्वों को भी वापस ले लें जिस का मतलब यह होता है कि अमेरिकी प्रतिनिधि वीएतकाङ कार्रवाई को भी समाप्त करने के पक्ष में है. संभवतः इस का अर्थ यह भी है कि अमेरिका यह चाहता है कि उत्तर वीएतनाम लाओस में स्थित अपनी सेनाओं को भी वापस हटा दें. इस के अतिरिक्त अमेरिका तब तक अपनी सेनाएँ हटाने के पक्ष में नहीं जब तक उत्तर वीएतनामी अपनी सेनाएँ नहीं हटाते. अमेरिका यह अपना अधिकार मानता है कि वह तब तक उत्तरी वीएतनाम में अपनी जासूसी उड़ानें जारी रखे. दक्षिणी वीएतनाम मुक्ति मोर्चा के प्रतिनिधि **कियम** ने एक फ़्रांसीसी प्रतिनिधि को अपनी एक भेंट में कहा कि वह विसैनीकृत क्षेत्र को पुनः स्थापित करने का प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकते, 'क्यों कि इस का मतलब मुक्ति सेनाओं का विनाश होता है. जो हम कभी होने नहीं देंगे'. इस तरह वीएतनाम शांति वार्त्ता के सामने इतनी अधिक समस्याएँ है कि उस का आसानी से हल निकालना बहुत कठिन हो गया है.

उपग्रहों का सहयोग : जहाँ एक ओर पेरिस में शांति स्थापना के लिए आमने सामने बातचीत हो रही है वहीं इस समस्या पर विश्व के बड़े राजनीतिज्ञों द्वारा वाद-विवाद का भी कार्यक्रम बनाया जा रहा है और यह कार्यक्रम संचार उपग्रहों द्वारा संपन्न होगा. पहली मार्च को संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेश मंत्री **विलियम रोगर्स**, सोवियत संघ के उपप्रधान-मंत्री **बाइबकोव**, जापान के विदेश मंत्री **आईची** और थाईलैंड के विदेशमंत्री 'प्रचार उपग्रहों द्वारा विश्व की इस अत्यंत विवादास्पद समस्या पर अपने विचार व्यक्त करेंगे. इन राजनीतिज्ञों के अलावा दिल्ली विश्वविद्यालय के **डा. वी. पी. दत्त** अमेरिकी राष्ट्रपति के विशेष सहायक **मेंसफ़ील्ड**, **डा. हेनरी कीसिंगर**, प्रावदा के **जुकोव** आदि भी अपने विचार व्यक्त करेंगे. यह कार्यक्रम मास्को से वारसा इंग्लैंड, फ़्रांस और जर्मनी तक एक संचार उपग्रह द्वारा पहुँचाया जायेगा. यह उपग्रह इस कार्यक्रम को संयुक्त राज्य अमेरिका के पृथ्वी केंद्रों तक पहुँचायेगा. अमेरिकी केंद्रों से एक अन्य संचार उपग्रह द्वारा जापान के टेलीविज़न केंद्रों तक पहुँच जायेगा.

बिअफ़्रा

अन्न के बदले हथियार

कर्नल ओजोक्वू की बिअफ़्रा सरकार पर नाइजीरिया ने यह आरोप लगाया है कि वह अंतरराष्ट्रीय दुर्भिक्ष-राहत कार्यों के अंतर्गत प्राप्त धन-राशि को हथियार खरीदने और अपने खर्चीले विदेश-सूचना-सेवा विभाग को बरकरार रखने में सर्फ़ कर रही है. यह धन बिअफ़्रा को विभिन्न राहत संस्थाओं को बेचे गये खाद्यान्नों के बदले में मिलता है जो कर्नल ओजोक्वू के युद्ध बजट का प्रमुख स्रोत बन गया है. बिअफ़्रा के निर्यात व्यापार की स्थिति बहुत-ही दयनीय है और उस में निकट भविष्य में किसी सुधार की गुंजाइश नहीं है अतः उसे अपनी वित्त-व्यवस्था के लिए अपने हितचिंतक राष्ट्रों से मिलने वाले कर्ज़ या राहत संस्थाओं से प्राप्त आय पर ही निर्भर करना पड़ता है. अरसे से दुर्भिक्ष पीड़ित होते हुए भी बिअफ़्रा के अधिकारियों ने न तो राशन की और न ही किसी केंद्रीय खाद्यान्न वितरण पद्धति की व्यवस्था की है. फलस्वरूप जिन लोगों के पास पैसा है वे तो अपनी ज़रूरत की चीज़ें खरीद लेते हैं किंतु निर्धनों और शरणार्थियों को राहत संस्थाओं के सम्मुख हाथ फैलाना पड़ता है. इसी बहाने बिअफ़्रा सरकार को राहत कोष को अपनी आय में शामिल करने का अवसर मिल जाता है जिस के बल पर वह विदेशों से आयात करता है. राहत संस्थाएँ बिअफ़्रा के किसानों से सीधे ही खाद्यान्न खरीदती है किंतु बिअफ़्रा सरकार स्थानीय मुद्रा में इन का मुगतान स्वीकार नहीं करती क्यों कि इस मुद्रा की विदेशों में कोई वक़त नहीं है. अतः वह राहत संस्थाओं को विदेशी मुद्रा देने के लिए विवश करती है और अपने किसानों को स्थानीय मुद्रा ही देती है. इस हेर-फेर से प्राप्त आय से वह अपनी वित्त-व्यवस्था चलाती है. राहत संस्थाओं की शिकायत है कि इस नीति द्वारा बिअफ़्रा सरकार काफ़ी बड़ी रक़म हज़म कर जाती है.

हाल ही में कर्नल ओजोक्वू ने पूर्वी क्षेत्र के भूतपूर्व राज्यपाल फ़्रांसिस ईबियम को इस इरादे से स्विटजरलैंड भेजा था कि वह राहत संस्थाओं से सारा भुगतान सीधे ज्यूरिक के बिअफ़्राई खाते में जमा करने के लिए कहें. इस प्रतिनिधि ने राहत संस्थाओं से यह भी कहा कि वे भावी खरीद के लिए भी पहले से ही भुगतान कर दें. इस माँग ने राहत एजेंसियों के लिए गंभीर असमंजस की स्थिति उत्पन्न कर दी है. पश्चिम जर्मन के प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक चर्च बिअफ़्रा के खाद्यान्न पूर्ति केंद्रों को सर्वाधिक सहायता देते हैं और वे सीधे बिअफ़्रा के ज्यूरिक स्थित खाते में ही भुगतान करते हैं. लेकिन अब वे न तो अग्रिम देने के लिए ही राजी हैं और न बिअफ़्रा द्वारा निर्धारित भुगतान व्यवस्था से ही संतुष्ट हैं.

सही स्थिति : जिनेवा स्थित गिरजाघरों की संयुक्त राहत संस्था का कहना है कि उसे बिअफ़्रा में स्थानीय वस्तुओं की खरीद और खाद्यान्न-पूर्ति केंद्रों पर प्रति माह लगभग तीन लाख डॉलर खर्च करना पड़ता है और अब इस राशि को बढ़ा कर ५ लाख डॉलर प्रति माह करना ज़रूरी हो गया है. इस के अतिरिक्त हवाई जहाज़ द्वारा सामान ढोने पर भी लगभग १३ लाख डॉलर प्रति माह खर्च करना पड़ता है. अंतरराष्ट्रीय रेडक्रॉस संस्था का कहना है कि वह प्रति माह लगभग ११ लाख स्विस फ़्राँक नाइजीरिया पर खर्च करती है जब कि बिअफ़्रा पर वह कुछ भी खर्च नहीं करती. इस के अलावा वह १३ लाख स्विस फ़्राँक हवाई जहाज़ द्वारा सामान लाने-ले जाने पर खर्च करती है जिस का बड़ा हिस्सा तो स्विटजरलैंड और यूरोप की यातायात कंपनियाँ हड़प जाती हैं और सामान चढ़ाने-उतारने के एवज़ में बिअफ़्रा-वासियों को इस रक़म का अल्पांश ही मिलता है. जैसा कि आँकड़े गवाही दे रहे हैं —राहत कोष की अधिकांश धन-राशि केवल बिअफ़्रा में ही खर्च नहीं होती बल्कि वह प्रोटीन और दवाओं की पूर्ति के लिए अन्य देशों को भी दी जाती है. सितंबर से अब तक लगभग १६ हज़ार टन प्रोटीन बिअफ़्रा भेजा गया है जिस की लागत १ करोड़ २५ लाख पौंड है. इस में से आधी सामग्री तो गिरजाघरों की संयुक्त राहत संस्था और आधी सामग्री रेडक्रॉस संस्था ने भेजी है.

अब अगर नाइजीरिया के आरोपों और बिअफ़्रा द्वारा निर्धारित भुगतान की शर्तों पर ज्यादा हुज्जत की गयी तो प्रोटीन और दवाओं की पूर्ति के कार्य में गतिरोध आ जायेगा, जिसे बिअफ़्रा की त्रस्त जनता नहीं झेल सकेगी. बिअफ़्रा जैसे देश में खेती से उत्पन्न वस्तुओं की बिक्री के लिए केंद्रीय व्यवस्था कर पाना बहुत मुश्किल है क्यों कि वहाँ के किसान इस क़िस्म की किसी भी व्यवस्था का तीव्र विरोध करेंगे. उन्हें अपने परिवार के भरण-पोषण के अलावा इन दिनों उन शरणार्थियों का भी गुजारा चलाना है, जो उन पर निर्भर करते हैं.

गांधी और बौद्धिक वर्ग

गांधी जी ने लड़ाई पहले लड़ी; विद्वानों ने गांधीवाद उस में से बाद में निकाला. यद्यपि गांधी जी स्वयं इस गांधीवाद नाम की चीज़ को बहुत महत्त्व नहीं देते थे फिर भी उन के कर्मों से जो कुछ भी आदर्श, कल्पना, सत्य मिला उसे हमने गांधीवाद कहा. बौद्धिक वर्ग पीछे चलने वाला हुआ; कर्म आगे-आगे चला. गांधी शताब्दी के नाम पर आज जो कुछ हो रहा है वह इस की उल्टी प्रक्रिया से जन्मा है. दायित्वहीन बौद्धिक वर्ग कर्म को सिद्धांत से अलग कर के केवल सिद्धांतों के विवेचन-विश्लेषण में लग गया है. परिणाम यह है कि आज उन के विरोधाभास हर जगह देखे जा सकते हैं. अभी ३० जनवरी को प्रयाग विश्वविद्यालय के सिनेट हॉल में एक ग्राम-उद्योग की प्रदर्शनी का उद्घाटन, विश्वविद्यालय में स्थापित गांधी भवन के तत्त्वावधान में, **ढेबर भाई** ने किया. प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ और अंग्रेज़ीपरस्त उपकुलपति श्री **अवधविहारी लाल** ने उस उद्घाटन का सभापतित्व किया. गांधी भवन के अवैतनिक निदेशक **डॉ० जगन्नाथ स्वरूप माथुर** ने, जो प्रयाग विश्वविद्यालय में गांधी और गांधीवाद के मसीहा माने जाते हैं, अंग्रेज़ी में अपनी रपट पढ़ी. ढेबर भाई का स्वागत उपकुलपति महोदय ने अंग्रेज़ी में किया और 'काली अंग्रेज़ी' के ठेठ मुहावरों की चाशनी में गांधी जी की अंग्रेज़ी विरोधी और स्वदेशी समर्थक आत्मा को श्रद्धांजली अर्पित की गयी. मुद्दत से अंग्रेज़ी के अभ्यास के लिए लालाइत ढेबर भाई भी अंग्रेज़ी का मोह संवरण नहीं कर सके. भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष, ग्रामोद्योग के आयुक्त को जब दकियानूस अंग्रेज़ी के अभिभावक मिल गये तो उन्होंने भी गांधी जी पर अपना सारगर्भित डेढ़ घंटे का भाषण अंग्रेज़ी में ही दे डाला. गांधी की आत्मा स्वदेशी से बँधी हुई थी. चरखा संघ से ले कर राष्ट्रभाषा संघ तक का सारा आंदोलन इसी स्वदेशी-भावना से ओतप्रोत था. उन का स्पष्ट कथन था—'यदि मैं डिक्टेटर होता तो अंग्रेज़ी को अविलंब भारत से निकाल बाहर करता, सार्वजनिक क्षेत्रों से अंग्रेज़ी को निष्कासित कर देता और जनता की भाषा को चालू करता.' गांधी जी ने अपने जीवन में इस का आचरण किया. लेकिन तथाकथित गांधी जी के उत्तराधिकारियों ने इस बड़े मर्म को कूड़े में फेंक दिया. परिणाम है कि आज गांधी शताब्दी के नाम पर जो कुछ भी हो रहा है उस से समाज के ७० लाख व्यक्ति, जो अपने को बौद्धिक और अंग्रेज़ीपरस्त कहते हैं, वही गांधी जी के नाम पर शोषण कर रहे हैं. जनता वंचित है. उसे न तो दृष्टि मिलती है और न विकास का साधन. इस पाखंड की चरम परिणति ३१ जनवरी को हुई, जब हमारे उपराष्ट्रपति ने 'लेबर प्रॉब्लेम एंड गांधियन सोल्यूशन' शीर्षक से श्रम-समस्या पर अपना लिखित आलेख अंग्रेज़ी में पढ़ा. माननीय उपराष्ट्रपति जब अपना भाषण कर रहे थे तो गांधी भवन में बैठे श्रोताओं में से एक क्षीण आवाज़ विरोध में आयी, लेकिन 'काली अंग्रेज़ी' के कलाबाज़ों की संख्या अधिक थी, इस लिए वह जहाँ-की तहाँ ठंडी कर दी गयी. गोष्ठी के अंत में जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने उपस्थित साहित्यिकारों से बात की तो हिंदी की वयोवृद्ध लेखिका **श्रीमती महादेवी वर्मा** ने नितांत क्षुब्ध हो कर कहा—'यदि बापू आज जीवित होते तो वह इस गोष्ठी के आयोजकों को डंडा मार कर भगा देते.' बापू जीवित होते तो शायद यह गांधी भवन, जिस की इमारत गांधी जी की कुटिया के मुक़ाबले महल है, प्रयाग विश्वविद्यालय के इस माहौल में न हो कर कहीं गाँव में होता और तब यह सवाल ही नहीं उठता. **दिनमान** के प्रतिनिधि को कमला नेहरू अस्पताल के उद्घाटन के समय का वह दृश्य याद आया जब गांधी जी ने कहा था—'यह अस्पताल बहुत क़ीमती और ठाठबाट वाला बन गया है. मुझे डर है कि साधारण गाँव वाले भाई इस में आने की भी हिम्मत कर सकेंगे कि नहीं.' इसी के साथ-साथ उन्होंने जवाहरलाल नेहरू की आलोचना भी की थी.

गांधी भवन : गांधी भवन का निर्माण १९६१ में हुआ. १९६१ में **श्रीप्रकाश जी** ने इस की नींव डाली थी. १९६२ से ले कर १९६८ तक प्रयाग विश्वविद्यालय के जाने कितने उपकुलपति आये, लेकिन यह भवन एक जीवित खंडहर के समान ही पड़ा था. नये उपकुलपति श्री अवधविहारी लाल के काल में भी यह जीवित खंडहर ही रहता, लेकिन दुर्भाग्य या सौभाग्यवश इसी साल गांधी शताब्दी पड़ गयी. गांधी के नाम पर फ़ैशन के स्तर पर इस विश्वविद्यालय में भी कुछ होना चाहिए था. इस लिए जल्दी-जल्दी में एक योजना बन गयी और एक दो दिवसीय समारोह भी आयोजित कर लिया गया. इस के पूर्व जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने गांधी भवन के अवैतनिक निदेशक महोदय से भेंट की थी और गांधी भवन के विषय में कुछ बातें की थीं तो उन्हें विश्वविद्यालय की व्यवस्था से ढेरों शिकायतें थीं. अब शायद नहीं हैं, क्यों कि अब विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने अपने ढंग से गांधी भवन चलाने पर निदेशक महोदय को राज़ी कर लिया है. इस का पहला नमूना यह आयोजन है, जिस में सब कुछ है, केवल गांधी जी की आत्मा नहीं है.

ढेबर भाई का भाषण : ३० जनवरी के अपने भाषण में ढेबर भाई ने गांधी जी के दर्शन पर विचार व्यक्त करते हुए इस बात पर तो प्रकाश डाला कि गांधी जी कुछ बुनियादी जीवन-पद्धतियों (एटीट्यूड्स) के प्रवर्तक थे. लेकिन वह पद्धतियाँ क्या थीं, इस पर सत्य-अहिंसा पर तो व्याख्याएँ प्रस्तुत कीं, लेकिन इस सत्य-अहिंसा के साथ उन का स्वदेशी आंदोलन किन सारों पर जुड़ा था इस पर प्रकाश नहीं डाला. यदि ढेबर भाई अपने इस सैद्धांतिक भाषण को हिंदी या गुजराती में देते तो सत्य और अहिंसा से जुड़ी हुई स्वदेशी आत्मा न छूटती. अंग्रेज़ी ने इस स्वदेशी तत्त्व को नष्ट कर दिया, इस लिए सारा भाषण किताबी हो कर रहा गया. श्री ढेबर भाई ने अपने भाषण में ५० करोड़ जनता पर ६९ लाख नौकरशाही की नियुक्ति की आलोचना करते हुए कहा कि ५० भारतीयों के ऊपर एक अफ़सर का औसत आता है और इस औसत को गांधी जी के सिद्धांत से अनुचित घोषित किया. लेकिन यह सारी नीति जिस विदेशी मन से उपजती है उस की आलोचना नहीं की. स्वदेशी मन यदि इस देश के शासक का होता तो नक़ल की जगह असल स्थान लेता. अंग्रेज़ी की जगह भारतीय भाषाएँ होतीं और ग्रामोद्योग कमीशन में जिस प्रकार ५०० रुपये से अधिक का कोई वेतन-भोगी नहीं हैं उसी प्रकार १५०० रुपये से अधिक वेतन-भोगी प्रशासन में भी नहीं होता. लेकिन जहाँ ढेबर भाई ने ग्रामोद्योग संघ की ५०० रुपये वेतन की प्रशंसा की वहीं यदि इस ५०० रुपये की कसौटी को वह ढूँढ़ते तो स्वदेशी की कसौटी पर वह सारी नीति को कस सकते थे. विचारों के आंदोलन में कुछ और तथ्यों की ओर भी उन्होंने संकेत किया. आर्थिक नीति पर बहस करते हुए चरखा और ग्रामोद्योग की भी बात उठायी. 'मैन पावर' और मशीन की भी चर्चा की. लेकिन इन सारे सिद्धांतों के स्रोत में जिस भारतीय की कल्पना उन के सामने थी वह ६ पुराने पैसे पाने वाला भारतीय था, जो पिछले २० वर्षों में केवल २० नये पैसे तक पहुँचा है. आज के शासकों की बात करते समय यह सोचना चाहिए कि वर्तमान शासकों के मन में २० पैसे रोज पर जीने वाला भारतीय है, या ६९ लाख वाला नौकरशाह? गांधीवाद में, जो बुद्धिजीवी और सरकारी स्तर पर पनपाया जा रहा है, इस २० पैसे पाने वाले भारतीय की आवाज समाप्त की जा रही है. क्या ढेबर भाई कभी इस २० पैसे पर जीवन निर्वाह करने वाले भारतीय की मूल समस्याओं को सही ढंग से उठायेंगे?

उपराष्ट्रपति का भाषण : लेकिन उपराष्ट्रपति श्री वी. वी. गिरि का अंग्रेज़ी भाषण और भी दिलचस्प था. श्री गिरि उत्तरप्रदेश के गवर्नर होने के नाते उत्तरप्रदेश के विश्वविद्यालयों के कुलपति भी रह चुके हैं. प्रयाग विश्वविद्यालय के गांधी भवन में एकत्र विद्यार्थियों और अध्यापकों को देख कर वह अपना लोभ नहीं रोक सके. अपना लिखित

भाषण पढ़ने से पहले उन्होंने अध्यापकों और विश्वविद्यालयों की व्यवस्था पर भाषण देते हुए कहा—'पूरे युवक-वर्ग को केवल दो ही लोग संभाल सकते हैं. प्रथम तो घर की माताएँ और दूसरे अध्यापक. प्रत्येक शिक्षण-केंद्र में, चाहे वह प्राथमिक शिक्षा का हो या विश्वविद्यालय हो, कम-से-कम एक दर्जन ऐसे अध्यापक होने चाहिएँ जो पूरे विद्यार्थी-वर्ग को गांधी जी के सिद्धांतों के आधार पर शिक्षित कर सकें.' परंपरा के अनुसार अध्यापकों की आलोचना करते हुए उपराष्ट्रपति ने कहा—'आज प्रत्येक शिक्षा-केंद्र में राजनीतिज्ञ प्रकार के अध्यापकों का बाहुल्य हो गया है. परिणाम यह है कि इन संस्थाओं से शिक्षा समाप्त हो गयी है और प्रगति के नाम पर अशिक्षित पैदा हो रहे हैं. ऐसी स्थिति में ऐसी प्रगति की अपेक्षा पीछे जाना ज्यादा श्रेयस्कर है. गांधी जी के सिद्धांतों का पुनर्विवेचन होना चाहिए, क्यों कि इस देश का भविष्य केवल अहिंसा पर आधारित है. युवजन के व्यक्तित्व का एक गंभीर अंश अहिंसा होना चाहिए.

वांछित युवजन : श्री गिरि ने इस अहिंसा के आधार पर युवजन-आंदोलन की तोड़-फ़ोड़ की चर्चा गंभीरता से की, लेकिन उन की इस शिकायत में यथास्थितिवाद की जड़ता के प्रति कुछ भी नहीं कहा गया था. यद्यपि श्री गिरि ने यह कहा—'युवजन का आक्रोश मैं समझता हूँ, लेकिन इन की तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति राष्ट्रघातक है. मैं नव जवानों को गुंडों के रूप में भी देख सकता हूँ, लेकिन ऐसे गुंडे नहीं जो शीशे तोड़ें, गाड़ियाँ जलायें. उन्हें रचनात्मक विद्रोह क्या है इसे सीखना चाहिए और यह सीख केवल गांधी जी के विचारों से ही मिल सकती है.' अहिंसा के इन सिद्धांतों को प्रतिपादित करते हुए उन्होंने कहा—'मेरा विश्वास पुरुष में अब नहीं रहा. मुझे लगता है कि जब तक हमारे समाज की नारियाँ इन बच्चों को उचित संस्कार नहीं देंगी तब तक यह युवजन सही अर्थों में विकसित नहीं हो पायेगा'. —लेकिन यह सारे सिद्धांत यथास्थितिवाद पर कैसे लागू होंगे, उस सामाजिक जड़ता को कैसे बदलेंगे जो स्वार्थांधता में केवल प्रतीक सूझता है. विद्यार्थियों की हिंसा का कोई समर्थक नहीं है, लेकिन विद्यार्थी या युवजन जब तक तथाकथित राष्ट्रीय संपत्ति रेल, इमारत, बस से हेय समझे जायेंगे तब तक स्थितियाँ काबू में नहीं आयेंगी. एक शीशा टूटने पर राष्ट्रीय संपत्ति की क्षति की घोषणा तो होती है, किंतु विद्यार्थियों के मारे जाने पर क्या कभी किसी सरकार ने राष्ट्रीय क्षति की घोषणा की है ? यह प्रश्न-चिन्ह है, जो आज भी राष्ट्रीय संपत्ति की परिभाषा के सामने ज्वलंत रूप में खड़ा है.

श्रम-समस्या : अंत में श्रम-समस्या पर अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री गिरि ने कहा—'गांधी जी हमेशा राष्ट्र के पुनर्जीवन को संचारित करने के प्रयास में लगे रहे. औद्योगिक संबंधों की बुनावट में वह अहिंसा और सत्य की भावना को भर देना चाहते थे. वह भौतिक संपन्नता को आध्यात्मिक चेतना से ओतप्रोत कर के सुचारुता, उदारता और कुशलता के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे. इस लिए आज के संदर्भ में यह आवश्यक है कि श्रमिक-वर्ग अपनी समस्याओं को अधिक बढ़ा-चढ़ा कर न प्रस्तुत करें. उसे विरोधी के तर्क में यदि संगति दिखे तो स्वीकार करने में हिचकिचाहट भी नहीं होनी चाहिए. साथ ही जब तक सारे संवैधानिक और शांतिपूर्ण रास्ते बंद न हो जायें तब तक समझौते की नीति और पंचायत द्वारा निराकरण का मार्ग अपनाना चाहिए. बड़े से बड़े भड़कावों और उत्तेजनाओं के बावजूद न तो हिंसात्मक रूप धारण करना चाहिए और न मालिकों के प्रति कोई दुर्भावना रखनी चाहिए. श्रमिकों का संगठन व्यवस्थित होना चाहिए और सत्यनिष्ठ, अहिंसात्मक आंदोलनों को ही चलाना चाहिए.

दो दिनों के इस लंबे अधिवेशन का प्रभाव केवल तामझाम तक ही सीमित रहा, क्यों कि गांधी जी की वास्तविक आत्मा सत्य और अहिंसा के साथ-साथ स्वदेशी और तत्काल के तर्क से बँधी होती थी. उस तत्काल, कर्म और स्वदेशी की आत्मा इन दोनों विचार-गोष्ठियों में नहीं थी.

श्रम-शक्ति और रोज़गार

बेकार और अर्द्ध बेकार

भारत में कितने काम करने लायक बालिग़ व्यक्ति बेकार हैं ? इंगलिस्तान के मज़दूर दल ने अपने कुछ प्रतिनिधियों द्वारा किये गये अध्ययन के आधार पर १९५० के लगभग एक पुस्तिका प्रकाशित की थी, जिस के अनुसार भारत में उस समय पाँच करोड़ से अधिक व्यक्ति बेकार थे. पुस्तिका के लेखकों ने बेकारों और अर्द्ध बेकारों दोनों का ही हिसाब लगा कर यह संख्या निकाली थी. लेकिन भारत सरकार के श्रममंत्रालय और योजना आयोग के अनुमानों के अनुसार इस समय लगभग एक करोड़ व्यक्ति सारे देश में बेकार हैं. इस में अर्द्ध बेकारों की संख्या शामिल नहीं है. यों सरकारी प्रवक्ता भी इस मामले में एकमत नहीं हैं. योजना आयोग के रोज़गार-विशेषज्ञ श्री वेंकटरमण के अनुसार इस समय लगभग एक करोड़ तीस लाख व्यक्ति बेकार हैं. कुछ सरकारी अनुमान एक करोड़ साठ लाख तक जाते हैं. इस समय रोज़गार के दफ़्तरों में तीस लाख से अधिक व्यक्तियों ने अपने नाम दर्ज करा रखे हैं, जिस में लगभग ग्यारह लाख शिक्षित बेकार हैं.

अर्द्ध बेकारों की संख्या कितनी है—यानी ऐसे लोग जिन्हें साल में पूरे दिन और दिन में पूरे समय का काम नहीं मिलता—इस का कोई भी अनुमान लगाना बड़ा कठिन है. भारत सरकार के एक अनुमान के अनुसार उस समय लगभग २ करोड़ ६७ लाख व्यक्ति (काम में लगी कुल श्रम-शक्ति के १४ प्रतिशत से अधिक) अर्द्ध बेकार थे. इन में लगभग दो करोड़ व्यक्ति खेत-मज़दूर थे. १९५६–५७ में भारत सरकार द्वारा किये गये एक नमूना सर्वेक्षण के अनुसार उस समय १ करोड़ ६३ लाख परिवार मुख्यतः खेत-मज़दूरी से गुजारा करते थे और इन में बालिग़ पुरुष मज़दूर साल में औसत १२८ दिन बेकार रहते थे.

किंतु इन अनुमानों को अटकलों से अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता. इस का कारण यह है कि 'श्रम-शक्ति' और 'रोज़गार' की कोई ऐसी परिभाषाएँ नहीं की गयी हैं जो यथार्थ के अनुरूप हों, या जिन के पीछे कोई आर्थिक प्रतिमान हों. सब जानते हैं कि खेत-मज़दूर केवल पुरुष ही नहीं होते, स्त्रियाँ भी होती हैं. उसी प्रकार छह से ले कर चौदह साल तक के बच्चों की बहुसंख्या ऐसी है जिन के लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है और जो होश संभालते ही 'श्रम-शक्ति' में शामिल हो जाते हैं—न सिर्फ़ गाँवों में, बल्कि शहरों में भी. दूसरी ओर अगर हम मात्र काम के दिनों या घंटों को ही न गिन कर उस से होने वाली आय को भी गिनें और कम से कम तंदुरुस्ती बनाये रखने लायक़ आय को प्रतिमान के रूप में लें तो कम से कम दस करोड़ बालिग़ व्यक्तियों को बेकारों की श्रेणी में रखना पड़ेगा.

बेकारों की वास्तविक संख्या के बारे में कोई भी बहस इस कारण गौण हो जाती है कि हम चाहे जिस आधार पर अनुमान लगायें इस बारे में कोई बहस नहीं है कि आर्थिक आयोजन के पिछले अठारह सालों में बेकारी बढ़ती ही गयी है और आगे भी उस के बढ़ते जाने की ही संभावना है. सरकारी सूत्रों के अनुसार पहले तीन आयोजनों के दौरान तीन करोड़ व्यक्तियों को नया रोज़गार मिला, लेकिन इसी अवधि में श्रम-शक्ति में ३ करोड़ अस्सी लाख की वृद्धि हुई, अर्थात् बेकारों की संख्या अस्सी लाख बढ़ गयी. श्री वेंकटरमण का अनुमान है कि वर्तमान प्रवृत्तियों के जारी रहने पर बेकारों की संख्या पाँच साल बाद १९७४ में पौने तीन करोड़ और १९७९ में छह करोड़ हो जायेगी. इन अनुमानों में भी अर्द्ध बेकारों की संख्या शामिल नहीं है. स्पष्ट है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था किस ओर जा रही है.

इस से भी अधिक चिंताजनक तथ्य यह है कि आयोजन में खर्च और नये रोज़गार का अनुपात बराबर बिगड़ता जा रहा है. पहली दो आयोजनों पर हुए १०,००० करोड़ से कुछ अधिक व्यय पर अनुमान है कि एक करोड़ सत्तर लाख लोगों को नया रोज़गार मिला

(पचास लाख को खेती में और एक करोड़ बीस लाख को अन्य धंधों में). तीसरी योजना का व्यय भी लगभग इतना ही था, लेकिन केवल एक करोड़ पैंतालीस लाख लोगों को नया रोज़गार मिला (चालीस लाख को खेती में और एक करोड़ से कुछ अधिक को अन्य धंधों में). चौथी योजना के बारे में अनुमान है कि उस पर लगभग २३,०० करोड़ रु० व्यय होंगे. इस अवधि में श्रम-शक्ति में लगभग पौने तीन करोड़ की वृद्धि होने की संभावना है. सरकारी अनुमानों के अनुसार इन में से लगभग आधी संख्या को ही काम मिल सकेगा. किसी भी हालत में एक करोड़ अस्सी लाख से अधिक को नहीं, अर्थात जहाँ पहली दो योजनाओं में औसत लगभग ६,००० रु० के व्यय पर एक व्यक्ति को रोज़गार मिला था वहाँ तीसरी योजना में यह रक़म ७,००० रु० हो गयी और चौथी योजना में १२,००० से भी अधिक होगी.

तीसरी योजना के अंतिम कालांश से ले कर चौथी योजना के आरंभ के पहले तक, यानी १९६५-६६ से १९६८-६९ तक की अवधि को अगर देखें तो हालत और भी बुरी नज़र आती है, क्यों कि इस अवधि में रोज़गार पहले की तुलना में भी घटा. सरकारी क्षेत्रों में तो ख़ैर कोई छँटनी नहीं हुई, लेकिन निजी क्षेत्र में १९६५-६६ में रोज़गार लगभग २ प्रतिशत घटा. १९६७ में निजी क्षेत्र में लगे लोगों की संख्या में एक लाख की कमी आयी. पिछले दिनों मंदी के फलस्वरूप कारखाने बंद होने से जो बेरोज़गारी बढ़ी उस के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है.

इन दिनों अर्थ-व्यवस्था के पुनः स्वस्थ होने की बात काफ़ी चल पड़ी है. सरकारी प्रवक्ताओं द्वारा कहा जा रहा है कि हम कठिनतम स्थिति को पार कर आये हैं और अब अर्थ-व्यवस्था धीरे-धीरे सुधरती जायेगी. इस दावे की समीक्षा करने का यहाँ स्थान नहीं है. यों यह दावा बिल्कुल थोथा है, क्यों कि सरकारी अर्थ-शास्त्री न अभी तक यह बता पाये हैं कि संकट उत्पन्न क्यों हुआ, न यही कि उसे दूर करने के लिए वे क्या उपाय कर रहे हैं, या करने वाले हैं. मानसून ने धोखा नहीं दिया, इस लिए खेती की हालत सुधरी है. सरकारी आशावादिता का एकमात्र यही आधार है, जो अगली बरसात में ही ढह जा सकता है.

किंतु असली बात यह है कि सरकारी आयोजना ने अपने सामने जो लक्ष्य रखे हैं, आर्थिक विकास की जो रूपरेखा बनायी है उसी में बुनियादी खोट है. चौथी योजना की समाप्ति के समय देश में पौने तीन करोड़ काम करने लायक बालिग़ व्यक्ति बेकार होंगे और १९६९ में उन की संख्या छह करोड़ होगी, यह सरकारी आयोजन का स्वीकृत लक्ष्य है. इस लक्ष्य को ले कर चलने वाली सरकार के इरादे क्या हैं, यह सवाल ज़रूर उठता है.

श्रमिक संबंध

केरल में सर्वेक्षण

अपनी साख और दबदबा बनाये रखने के लिए सरकारें अब जैसे हर क्षेत्र में निर्णय को प्रभुता अपने हाथ में रखने की कोशिश करती हैं, श्रमिक-संबंधों या श्रमिक और औद्योगिक विवादों के निर्धारण और निपटारे का भी वह मौक़ा ढूँढ ही लेती हैं. समाचार पत्रों में यह समाचार अब अक्सर देखने को मिल जाता है कि किसी श्रमिक या औद्योगिक विवाद को सरकार के किसी मंत्री ने अपने हस्तक्षेप से निपटाया या कि सरकारी क्षेत्रों या किसी मंत्री से यह आग्रह किया गया कि वह किसी विवाद को निपटाये. उद्योग-संस्थानों के अपने निजी व्यवस्था-कार्यों और मज़दूर-संघों के बीच जो तनाव बनता है उसे वे आपस में न निपटा कर सरकार द्वारा ही निपटाये जाने की अपेक्षा रखते हैं. यह स्थिति कैसे पैदा होती है या कैसे पैदा हुई है इसे जानने के लिए हाल ही में किये गये कुछ सर्वेक्षण काम आ सकते हैं. 'इंडियन इंस्टीट्यूट आफ़ पर्सोनल मनेजमेंट' द्वारा किया गया केरल के उद्योगों व वहाँ के श्रमिक-संबंधों का सर्वेक्षण भी इन्हीं में से एक है. कोचीन-अल्वाय क्षेत्र में स्थित उद्योगों के सर्वेक्षण से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि औद्योगिक विवादों में संस्थानों के अपने निजी व्यवस्था नियमों या मजदूर संघों के अपने नियमों, सिद्धांतों से विवाद नहीं निपटाए जाते. ज़रूरत पड़ने पर सरकार ही हस्तक्षेप करती है. जिन औद्योगिक संस्थानों का सर्वेक्षण किया गया है वे उर्वरकों से ले कर मशीनें, तेल उत्पादित करने वाले तक हैं. इन संस्थानों में से प्रमुख हैं—कोचीन रिफ़ाइनरी लिमिटेड, ट्रावनकोर रेयन लिमिटेड, ट्रावनकोर कोचीन कैमिकल्स, हिंदुस्तान मशीन टूल्स लि., इंडियन एलम्यूनियम कंपनी आदि.

इन में से ज़्यादातर के मजदूर संघ किन्हीं राजनीतिक दलों से संबद्ध नहीं हैं. केवल ६ संस्थानों के मजदूर संघों के अध्यक्ष राजनीतिक कार्यकर्ता हैं. एक दिलचस्प बात यह भी है कि इन में से प्रायः सभी संस्थान एक साथ ही कई मजदूर संघों को मान्यता देते हैं. इस से कई बार विवाद सुलझने के बजाय और उलझते जाते हैं, यही नहीं मज़दूर संघों में आपसी फूट और एक प्रकार की प्रतिद्वंद्विता भी पैदा होती है. इस के अलावा संस्थानों के प्रबंध-कार्यों के लिए कोई लिखित नीतियाँ नहीं हैं. यह मान कर चला जाता है कि जो भी अलिखित नीतियाँ हैं उन्हें मालिक-प्रबंधक और श्रमिक दोनों ही समझते हैं और उन के अनुसार की गयी व्यवस्था को स्वीकार करते हैं. इसी के साथ यह भी जोड़ सकते हैं कि संस्थान और श्रमिक के बीच जब कोई विवाद उठ खड़े होते हैं तो उन्हें सुलझाने के लिए जो अधिकारी

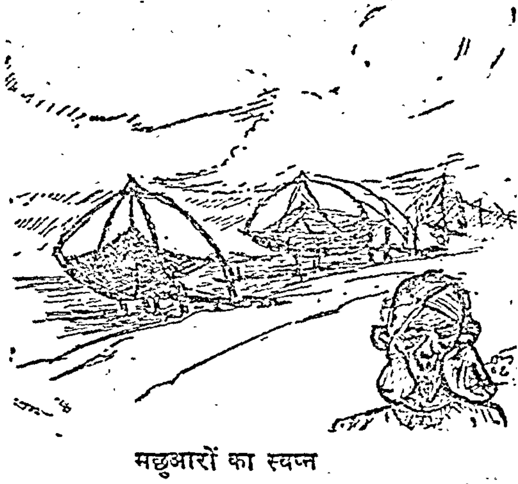

मछुआरों का स्वप्न

छान-बीन करते हैं उन्हें अद्यतन क़ानूनी फ़ैसलों की जानकारी अक्सर नहीं होती. यह कुछ बातें हैं जो औद्योगिक विवादों के निपटारे को सरकारी हस्तक्षेप की ओर अपने आप ले जाती हैं. यानी यही नहीं राजनीतिक हस्तक्षेप भी इस से अपने आप काम करने लगता है. केंद्र राज्यों समेत अपवाद स्वरूप ही शायद कोई सरकार हो जो इस तरह की स्थितियों को जाने-अनजाने प्रोत्साहन न देती हो.

केरल के इन औद्योगिक संस्थानों में श्रमिकों के लिए प्रशिक्षण की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है. अगर यह मान भी लिया जाए कि इन में से सभी साधनों के लिहाज़ से प्रशिक्षण की सुविधाएँ नहीं जुटा सकते तो भी प्रशिक्षण और विकास के लिए जितनी सुविधाएँ आज के बदलते समय में तकनीकी प्रगति को देखते हुए अपेक्षित हैं, उन की ओर कोई प्रयत्न नहीं मालूम पड़ता. यह भी इन संस्थानों की स्थिति पर अपने आप में एक टिप्पणी है—उन की व्यवस्था और प्रबंध पर. यहीं यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिक उत्पादन करने वाले संस्थानों की कार्यप्रणाली आधुनिक नहीं है.

सभी संस्थानों में एक औपचारिक शिकायत प्रणाली (ग्रीवांस प्रोसीडियोर) है जिसे मालिक और मजदूर संघों के बीच हुए समझौतों में स्थान भी मिला है. लेकिन बहुत से संस्थान शिकायतों का कोई हिसाब नहीं रखते. और ऐसा मालूम पड़ता है कि औपचारिक शिकायत प्रणाली ठीक से काम नहीं कर रही. शिकायत कमेटियों की बैठकें भी बराबर नहीं होतीं. अलग-अलग संस्थानों में, एक से ले कर १० शिकायतें तक कर्मचारियों की ओर से आयीं, लेकिन कई जगहों में उन की कोई लिखा-पढ़ी नहीं मिलती. इस से भी यही ज़ाहिर होता है कि शिकायत प्रणाली अपना कार्य नहीं कर पा रही. इन सभी संस्थानों में मज़दूर संघ सक्रिय हैं लेकिन सामूहिक मोल-भाव के समय सभी समस्याएँ सामने रख दी जाती हैं. इस कारण भी शिकायत प्रणाली को इस का उचित दर्जा नहीं मिल पाता और श्रमिकों को उस का कोई लाभ नहीं मिलता.

जहां संयुक्त कमेटियां हैं वहां पर भी कोई साझा सलाह-मशविरा नहीं हो पाता, क्यों कि ये या तो बहुत मामूली सवालों में उलझी रहती हैं, या फिर इन की बैठकें भी अनियमित होती हैं. यह तथ्य कि संयुक्त कमेटियां और शिकायत कमेटियां ठीक से काम नहीं कर पा रही, या कि बिलकुल ही काम नहीं कर पा रही इस बात का भी सूचक है कि इस क्षेत्र के श्रमिक इन्हें बहुत महत्त्व नही देते. कारण शायद यह है कि वह अपने मजदूर-संघों को काफ़ी ताकतवर मानते हैं.

जहां मजदूर-संघों द्वारा सामूहिक मोल-भाव के महत्त्व को स्वीकार किया जाना चाहिए वहाँ यह भी नहीं भुला देना चाहिए कि किसी कर्मचारी के साथ घटित कोई घटना या उस का मामला अनदेखा न रह जाये, या उस के साथ ठीक न्याय न हो पाये. इसी लिए शिकायत-प्रणाली का अपना महत्त्व है और उसे ठीक से ही क्रियान्वित होना चाहिए.

इन संस्थानों में घेराव की भी कई घटनाएं हुई हैं. यह घेराव अक्सर मजदूर-संघों की ओर से या उन की जानकारी में हुए हैं. एक बार ओणम के त्यौहार के समय एक कंपनी के कर्मचारियों ने पेशगी के लिए घेराव किया. इसी तरह एक और कंपनी में महँगाई-भत्ते की अपर्याप्तता का कारण बताते हुए २५ रु० की अंतरिम व्यवस्था की माँग की. पूरी तरह समझौता न हो पाने के कारण मजदूर-संघ और श्रमिकों ने अधिकारियों का घेराव किया. बाद में इस के कारण कई प्रमुख व्यक्ति निलंबित कर दिये गये. इन सब के कारण ऐसी स्थिति बनी कि प्रबंधकों ने तालाबंदी कर दी. अंत में श्रममंत्री और उद्योगमंत्री दोनों ने मजदूर-संघ और प्रबंधकों को अलग-अलग और फिर सम्मिलित रूप से बुलाया और यह तय किया गया कि फ़ैक्टरी को खोल दिया जाए और विवाद को महीने भर के भीतर सुलझा लिया जाए. इस पर भी सहमति हुई कि अगर प्रबंधकों और मजदूर-संघ के बीच कोई समझौता नही हो सका तो मंत्री का पंच-फ़ैसला मान्य होगा.

इस पूरी स्थिति से यही निष्कर्ष निकलता है कि केरल की औद्योगिक संस्थाओं में मजदूर-संघ और प्रबंधक ऐसी स्थिति पैदा करने के दोषी हैं जहाँ कि सरकारी हस्तक्षेप अनिवार्य हो उठे. सरकारें तो अब शायद यह चाहती ही हैं कि उन के प्रभाव-क्षेत्र के बाहर अब कुछ न होने पाये. अपनी साख बढ़ाने के अलावा वह शायद यही चाहती है कि वह ऐसे मौक़ों पर हस्तक्षेप करती रहें; नहीं तो ऐसा क्यों नही है कि जो भी कार्य-पद्धतियां, नियम या सिद्धांत ऐसे विवादों या मतभेदों पर लागू होने चाहिएं उन पर नजर न रख कर ऐसे मौक़ों पर नज़र रखा जाता है जब कि उन की सक्रियता के अभाव में सरकारी प्रभाव सुरसा के मुँह की तरह अपने-आप खुल जाता है.

संगीत

शमा हर रंग में जलती है ...

उमा शर्मा : प्रभावपूर्ण

रागरंग ने दिल्ली में ग़ालिब शताब्दी के अवसर पर मावलंकर सभा भवन में 'शमा हर रंग में जलती है' और 'साज ओ नाज़' के अंतर्गत एक दो रोजा ग़ज़ल, ठुमरी, नृत्य और वादन का सफल, आनंददायक कार्यक्रम आयोजित किया.

इक़बाल की मशहूर नज़्म 'मिर्ज़ा ग़ालिब' की खूबसूरत अदायगी द्वारा **रईस मिर्ज़ा** ने प्रोग्राम का प्रारंभ किया. नृत्य की कत्थक शैली अभिनय-प्रधान शैली है और ठुमरी एवं ग़ज़ल के आधार पर अभिनय की परिपाटी परंपरागत और इस शैली के नृत्यों की प्रमुख विशेषता भी है. 'शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक' और 'मुद्दत हुई है यार को मेहमाँ किये हुए' ग़ालिब की इन दो विख्यात ग़ज़लों को नृत्य और अभिनय के द्वारा रूपांतरित कर प्रभावपूर्ण शैली में **उमा शर्मा** ने पेश किया. **शंभू महाराज और बिरजू महाराज** के क्रमशः कुशल और अनुभवी नृत्य और संगीत-निर्देशन में प्रस्तुत दोनों ही ग़ज़लों का अभिनय मनोहारी रहा. राग अहीर भैरव में बिरजू महाराज द्वारा ग़ज़ल की बंदिश, शांता सक्सेना द्वारा उस का अत्यंत भावपूर्ण एवं हृदयस्पर्शी गायन, संगत करने वाले कलाकारों का अच्छा सहयोग और उमा की नृत्य-प्रतिभा जहाँ सजीव और मुग्ध करने वाली रही वहीं दूषित प्रकाश व्यवस्था नृत्याभिनय के प्रभाव को घटाने वाली सिद्ध हुई. रागरंग की संस्थापिका और सरल शास्त्रीय गायकी की कुशल कलाकार **श्रीमती नैना देवी** ने ग़ालिब की तीन ग़ज़लें और एक पूर्वी दादरा अपनी रंजक और माधुर्यपूर्ण शैली में पेश किया. यद्यपि ग़ज़लें गाने का इन का ढंग परंपरागत था पर राग केदार की बंदिश में 'दिल मेरा सोजे निहां से, बे महाबा जल गया' ग़ज़ल का अपना निराला अंदाज और रंग रहा. **ज़फ़र हुसैन** और उन के साथियों ने ग़ालिब को क़व्वाली में ढाल कर पेश किया. प्रस्तुत तीन चार ग़ज़लों में 'दिले नादां तुझे हुआ क्या है' अच्छी रही, पर गायन का रंग जमा नही. मुख्य कारण था ग़ालिब की ग़ज़लों के लिए क़व्वाली का अंदाज़ और भाव-पक्ष का कमज़ोर होना. यों तो शमा मंच पर हर रंग में जलती रही पर जब मलिकाए ग़ज़ल **बेगम अख़्तर** ग़ज़लसंग हुईं तो इस का शबाब ही निराला रहा. बेगम साहिबा की उम्र के साथ-साथ इन की ठुमरी और ग़ज़ल गायकी में एक नया आकर्षण और निराला अंदाज़े बयां सुनने को मिला. विभिन्न रागों की बंदिश में तीन दिलकश और ग़ालिब की चुनी हुई ग़ज़लें आपने पेश कीं. 'दिल ही तो है न संगो खिश्त' 'दायम पड़ा हुआ तेरे दर पर नहीं हूँ मैं' और अंत में 'कोई उम्मीद बर नहीं आती'—तीनों ही ग़ज़लें साफ़ और सुलझे तलफ़्फ़ुज़, मधुर स्वर-कल्पनाएं, उर्दू ग़ज़ल की नफ़ासत और भाव-पक्ष की सजीवता से पूर्ण अपूर्व रहीं. ग़ज़लों की कशिश और अदायगी के सूझ-बूझपूर्ण एवं सुरीलेपन ने श्रोताओं को अपने जादू से आत्मविस्मृत कर दिया.

दूसरे दिन **साज ओ नाज़** में उस्ताद बिसमिल्ला खाँ, मुनव्वर अली खाँ, सिद्धेश्वरी देवी और देवव्रत चौधरी ने गायन और वादन के कार्यक्रम पेश किये. पटियाला गायकी के अमर गायक स्व. उस्ताद बड़े ग़ुलाम अली खाँ के सुपुत्र **मुनव्वर अली खाँ** ने मिश्र शिवरंजनी में दादरा और (आयोजकों के अनुरोध पर) दो ग़ज़लें इन की देन रहीं. अपने मुक्त और सक्षम कंठ से मुनव्वर अली खाँ द्वारा प्रस्तुत दादरा 'ना जा पी परदेश' पटियाला गायकी की प्रतिनिधि और उस्ताद बरकत अली खाँ की याद ताज़ा करने वाली रही. उन्होंने दो ग़ज़लें भी पेश कीं. दोनों का चयन सुंदर रहा, पर प्रस्तुतीकरण लगभग दादरा जैसा ही रहा. इन के साथ संगत करने वाले कलाकार भी यदि समझ-बूझ कर संगत करने वाले होते तो निस्संदेह इन का गायन और भी अधिक आनंददायक रहता. नये नाम के अंतर्गत एक प्रचलित राग को दिल्ली के सितार वादक **देवव्रत चौधरी** ने प्रस्तुत किया. राग दुर्गावती नाम में नवीनता रही, पर जिस की स्वर-रचना राग हेमंत के अनुरूप रही. आलाप में यद्यपि क्रमिकता का अभाव रहा पर गत-वादन में स्वरों का सौंदर्य और राग-विस्तार आकर्षित करने वाला रहा, तो द्रुत और झाला-वादन में तैयारी और दक्षता कौशलपूर्ण. अंतराल के बाद पूर्वी अंग की सरल शास्त्रीय शैली की सुविख्यात गायिका **श्रीमती सिद्धेश्वरी देवी** ने ठुमरियाँ, दादरा और ग़ज़ल पेश की. ग़ज़ल की अपेक्षा ठुमरी और दादरा गायन में इन का कार्यक्रम उल्लेखनीय रहा. ठुमरी 'पिया तिरछी नज़र लागे प्यारी' और दादरा 'जब सुधि आये नैना भरी-भरी आयें' सरस और विविध कल्पनाओं से भरे बोलों वाली मनोहारी रचनाएं रहीं.

अकादेमी पुरस्कार

देर आयद दुरुस्त आयद

१९५९ का साहित्य अकादेमी पुरस्कार दस भाषाओं को दिया गया है. इन दस भाषाओं के पुरस्कृत लेखक हैं:—श्रीमती नलिनी बाला देवी (असमिया), श्री सुंदरम (गुजराती), श्री हरिवंश राय बच्चन (हिंदी), श्री मस्ति वेंकटेश अय्यंगार (कन्नड़), श्री नागार्जुन (मैथिली), श्रीमती इरावती करवे (मराठी), श्री कुलवंत सिंह विर्क (पंजाबी), श्री सत्यव्रत शास्त्री (संस्कृत), श्री के. बी. अडवानी (सिंधी), श्री ए. श्रीनिवास राघवन (तमिल) साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त जिन भाषाओं को इस वर्ष पुरस्कार नहीं दिया गया वह हैं:—(१) बंगला, (२) मलयालम, (३) तेलगू, (४) उर्दू, (५) कश्मीरी, (६) उड़िया, (७) अंग्रेजी.

पुरस्कृत पुस्तकों में पाँच कविता-संग्रह हैं, दो कहानी-संग्रह और तीन समीक्षा-ग्रंथ हैं. कविता-संग्रह के नाम हैं:—अलकनंदा (नलिनी बाला देवी), श्री गुरुगोविंद सिंह चरितम् (सत्यव्रत शास्त्री), वेल्ले परवे (ए. श्रीनिवास राघवन). पुरस्कृत कहानी-संग्रह हैं : नवें लोक (कुलवंत सिंह विर्क), सण्णकतेगलु (मस्ति वेंकटेश अय्यंगार). पुरस्कृत समीक्षा-ग्रंथों के नाम हैं :—अवलोकना (सुंदरम), युगांत (इरावती करवे), शाह जो रसालो (के. बी. अडवानी).

असमिया के लिए पुरस्कृत श्रीमती नलिनी बाला देवी (जन्म १८९८) अनेक काव्य-ग्रंथों की रचयिता हैं. उन की दो कविता-संग्रहों संध्यार सुर और सयोनार सुर को असमिया साहित्य में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त है. कविताओं के अलावा उन्होंने आलोचनाएँ और निबंध भी लिखे हैं. उन्होंने १९५४ में असम साहित्य सभा के २३ वें अधिवेशन की अध्यक्षता की थी. साहित्य-सेवाओं के लिए उन्हें पद्मश्री और काव्य भारती की उपाधियों से विभूषित भी किया जा चुका है. वह इन दिनों गोहाटी में रहती हैं. गुजराती के लिए पुरस्कृत श्री सुंदरम अपनी भाषा के प्रतिष्ठित लेखक हैं. वयोवृद्ध श्री सुंदरम की समीक्षाएँ एक अर्से तक बड़ी रुचि के साथ पढ़ी जाती थीं. वह अब भी साहित्य में सक्रिय हैं.

हिंदी के डॉ. हरिवंशराय बच्चन (जन्म १९०७) लगभग ३० काव्य-ग्रंथों के प्रणेता और भारत के संभवतया सब से लोकप्रिय कवि हैं. उन के प्रमुख काव्य-ग्रंथ हैं : मधुशाला, निशा निमंत्रण, मिलन यामिनी, धार के इधर उधर, बहुत दिन बीते और दो चट्टानें. कैंब्रिज से डॉक्टरेट करने के बाद डॉ. बच्चन कई साल तक विदेशमंत्रालय में हिंदी अधिकारी रहे. राष्ट्रपति ने उन्हें उन की साहित्यिक सेवाओं के लिए राज्यसभा में नामज़द किया. मस्ति वेंकटेश *अय्यंगार* कन्नड़ के *लोकप्रिय* कथाकार हैं. श्री सुंदरम की तरह श्री अय्यंगार भी वयोवृद्ध हैं, लेकिन साहित्य में अब भी सक्रिय हैं. उन की कहानियों का पाठक-समुदाय काफ़ी बड़ा है और उन की कहानियाँ भारत की अनेक भाषाओं में अनूदित हो चुकी हैं. नागार्जुन हिंदी के लिए अपरिचित नाम नहीं है, लेकिन 'यात्री' ज़रूर एक अपरिचित नाम है. नागार्जुन मैथिली में यात्री के नाम से रचनाएँ करते हैं, और वास्तव में मैथिली के लिए नागार्जुन को नहीं यात्री को पुरस्कार दिया गया है. नागार्जुन कवि, कथाकार और उपन्यासकार तीनों ही हैं. हिंदी में उन्होंने लगभग एक दर्जन उपन्यास लिखे हैं, जिन में रतिनाथ की चाची और बलचनमा को असाधारण प्रतिष्ठा प्राप्त है. मैथिली में नागार्जुन अर्थात् यात्री ने सैकड़ों कविताएँ और दर्जनों कहानियाँ लिखीं हैं. हिंदी की तरह मैथिली में भी नागार्जुन लोकप्रिय मगर गंभीर लेखक हैं. श्रीमती इरावती करवे का, जिन्हें मराठी के लिए पुरस्कार मिला है, जन्म १९०५ में बर्मा में हुआ था. उन की शिक्षा बंबई और बर्लिन के विश्वविद्यालयों में हुई. उन्होंने अनेक समीक्षा और काव्य-ग्रंथों की रचना की है, जिन में प्रसिद्ध हैं : परिपूर्त्ति और मराठी लोकांची संस्कृति. वह पूना में रहती हैं. पंजाबी के श्री कुलवंत सिंह विर्क (जन्म १९२१) दिल्ली में सूचना अधिकारी हैं. कहानीकार के अलावा वह पत्रकार भी हैं. उन के कुछ कहानी-संग्रह हैं : छाहवेला, धरती ते आकाश, तुरी दी पंड. संस्कृत के श्री सत्यव्रत शास्त्री पुरस्कृत सूची में संभवतः एकमात्र नव युवक हैं. वह संस्कृत में काव्य रचना कर महान कवियों की भाषा को समृद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं. वह दिल्ली में संस्कृत के प्राध्यापक हैं. सिंधी के कल्याण बूलचंद अडवानी (जन्म १९११) अपनी भाषा के पुराने समालोचकों में से हैं. उन के दो प्रमुख समीक्षा-ग्रंथ हैं : सामी और सचल. उन्होंने सिंधी में शकुंतला का अनुवाद भी किया है. श्री ए. श्रीनिवासन तमिल के प्रतिष्ठित कवियों में से हैं. उन्होंने अनेक काव्य-ग्रंथों की रचना की है और कुछ आलोचना भी लिखी है.

पुरस्कृत लेखकों में अधिकतर परिचित नाम हैं. इन में से ज्यादातर को उन की साहित्य-सेवा के लिए पुरस्कृत किया गया है. यह कह सकना मुश्किल है कि यह सारी कृतियाँ अपनी भाषाओं की पिछले तीन वर्षों की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं. पुरस्कार १ जनवरी १९६५ से ३१ दिसंबर १९६७ के बीच के प्रकाशित ग्रंथों पर दिये गये हैं. पुरस्कार के बतौर लेखकों को पाँच हज़ार रुपये की धन-राशि के अलावा राष्ट्रपति द्वारा एक ताम्रपत्र दिया जायेगा. पुरस्कृत सभी लेखकों में शायद सब से परिचित नाम डॉ. बच्चन का है. साहित्य अकादेमी अब तक हिंदी के दिग्गज लेखकों को उन की साहित्य-सेवा के लिए पुरस्कृत करती रही है. डॉ. बच्चन ने अब तक पुरस्कृत अनेक हिंदी लेखकों से अधिक मूल्यवान साहित्य की रचना की थी, लेकिन किन्हीं परिचित कारणों से हमेशा ही उन का नाम छोड़ दिया जाता रहा. इस साल उन्हें पुरस्कृत कर साहित्य अकादेमी ने अपनी ग़लती सुधार ली है. देर आयद दुरुस्त आयद ठीक इसी तरह नागार्जुन को भी पुरस्कृत कर साहित्य अकादेमी के निर्णायकमंडल ने अपनी निर्णय-प्रतिभा का कुछ थोड़ा-सा परिचय दिया है. यह अलग बात है कि नागार्जुन ने पुरस्कार की कसौटी पर खरी उतरने वाली रचना लिखने से हमेशा इंकार किया.

श्री और श्रीमती बच्चन

कवि और कवि-पत्नी : अपना-अपना पुरस्कार

१९६८ के साहित्य अकादेमी पुरस्कारों की घोषणा १३ फ़रवरी १९६९ को साहित्य अकादेमी के उपाध्यक्ष डॉ. सुनीतिकुमार चैटर्जी की अध्यक्षता में हुई कार्यकारिणी की बैठक के बाद की गयी. भाषावार पुरस्कारों की सिफ़ारिश संबंधित भाषाओं के सलाहकारों की सलाह पर की गयी थी. हिंदी के सलाहकार थे : (१) श्रीमती लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत, (२) श्री रामधारी सिंह दिनकर, (३) जैनेंद्र कुमार, (४) जानकीवल्लभ शास्त्री, (५) महादेवी वर्मा, (६) डॉ. रामविलास शर्मा, (७) डॉ. लक्ष्मीनारायण सुधांशु, (८) डॉ. उदयनारायण तिवारी, (९) हज़ारीप्रसाद द्विवेदी.

हिंदी के लिए अब तक जिन ग्रंथों को पुरस्कृत किया जा चुका है वह हैं:—१९५५ : हिंद तरंगिनी (माखनलाल चतुर्वेदी), १९५६ : पदमावत : संजीविनी व्याख्या (वासुदेवशरण अग्रवाल), १९५७ : बौद्ध धर्म-दर्शन (आचार्य नरेंद्र देव), १९५८ : मध्य एशिया का इतिहास (राहुल सांकृत्यायन), १९५९ : संस्कृत के चार अध्याय (रामधारी सिंह दिनकर), १९६० : कला और बूढ़ा चाँद (सुमित्रानंदन पंत), १९६१ : भूले बिसरे चित्र (भगवती चरण वर्मा), १९६३ : प्रेमचंद : क़लम का सिपाही (अमृतराय), १९६४ : आँगन के पार द्वार (अज्ञेय), १९६५ : रस सिद्धांत (डॉ. नगेंद्र), १९६६ : मुक्ति बोध (जैनेंद्र कुमार), १९६७ : अमृत और विष (अमृतलाल नागर).

कविता और मौसम का हाल

कविता के संदर्भ में आधुनिकता और समसामयिकता के फ़र्क़ को लगभग भुला-सा दिया गया है. अक्सर समसामयिकता ही आधुनिकता का भ्रम खड़ा कर आधुनिकता के नाम से पुकारी जाने लगती है. इस से *कविता के मूल्यों* में भी गड़बड़ी पैदा होती है और पाठक और आलोचक गुमराह होते हैं. **गुड़गाँव डिग्री कालेज** में इसी फ़र्क़ को पहचानने के इरादे से **कविता के संदर्भ में आधुनिकता और समसामयिकता** पर **भारतभूषण अग्रवाल** की अध्यक्षता में एक गोष्ठी आयोजित की गयी, जिस में कि आधुनिकता और समसामयिकता की साहित्यिक परिणतियों पर देर तक विचार-विमर्श हुआ. गोष्ठी में अन्य वक्ता थे सर्वश्री अशोक वाजपेयी, नामवर सिंह और श्रीकांत वर्मा. वक्ताओं में इस बात पर लगभग सहमति थी कि आधुनिकता इतिहास का एक गहरा अर्थ है और कविता बुनियादी स्तर पर आधुनिकता से उत्पन्न प्रश्नों को ही चुनौती के रूप में लेती तथा आधुनिकता के मूल्यों से ही अपना संगठन करती है—समसामयिकता केवल एक साक्षात्कार है इस से अधिक कुछ नहीं. समसामयिकता को बुनियादी प्रश्न मान लेना साहित्य में एक संकट पैदा करना है और हिंदी में ऐसा *पहली बार नहीं हुआ है जब कि कवियों और* लेखकों ने उत्तेजना और आवेश में यह संकट पैदा किया है. पहले द्विवेदी युग में, फिर प्रगतिवादी युग में और अब सन् '६० के बाद समसामयिकता को ही साहित्य की शर्त मान कर आधुनिक मानव के गहरे प्रश्नों को तिरस्कृत करने की कोशिश की जा रही है. इस कोशिश में साहित्य बहुत हद तक स्खलित और क्षीण होगा.

नियति और स्थिति : विषय प्रवर्तन करते हुए **श्रीकांत वर्मा** ने कहा कि आधुनिकता और समसामयिकता का बुनियादी फ़र्क़ यह है कि आधुनिकता ईश्वर-विहीन संसार में मनुष्य की परिभाषा करने का एक अनवरत प्रयत्न है जब कि समसामयिकता स्थिति का अहसास मात्र है. मनुष्य की नियति की परिभाषा के लिए मनुष्य की हालत से परिचित होना जरूरी है लेकिन मनुष्य के बुनियादी सवालों को रद्द करके केवल बाहरी विवरण प्रस्तुत करना न केवल नाकाफ़ी है बल्कि अपने कर्त्तव्यों और ज़िम्मेदारियों से पलायन है. महज़ स्थिति का अहसास कराने वाली कविता नितांत सामयिक होगी. वह अर्थ न हो कर केवल शब्द होगी. आज की बहुतेरी कविता केवल शब्द है, वह गहरे अभिप्रायों से रहित है.

असल फ़र्क़ : कवि और आलोचक **अशोक वाजपेयी** ने आधुनिकता और समसामयिकता के फ़र्क़ को आज की कविता के संदर्भ में और अधिक स्पष्ट किया. उन्होंने कहा कि कुछ कवियों ने अपने लिए एक सुविधाजनक स्थिति अपना ली है और वे गहरे स्तर पर साक्षात्कार नहीं कर रहे हैं. श्री अशोक वाजपेयी ने कहा *कि समसामयिकता पर आधारित कविता* आधुनिकता के तनावों और आशंकाओं से मुक्त होती है और इसी लिए वह गहरे स्तर पर नहीं चल पाती. उन्होंने कविता के नाम पर दिये गये सामयिक ब्यौरों को शब्दाडंबर क़रार दिया. उन्होंने कहा कि आधुनिक कवि समूचे इतिहास के संदर्भ में अपनी व्याख्या करता है, केवल कामचलाऊ वक्तव्य नही देता.

असंगत राम : समालोचक **डॉ. नामवर सिंह** ने आधुनिकता और समसामयिकता के प्रश्न को हिंदी कविता के विकास के संदर्भ में रख कर देखा और अनेक प्रश्न किये. उन्होंने कहा कि शुरू से ही आधुनिकता और समसामयिकता के बारे में भ्रांतियाँ होती रही है. जब श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' की रचना की तब यह कहा गया कि साकेत आधुनिक कृति है. लेकिन यह पहचानने में बहुत वक़्त नहीं लगा कि 'साकेत' एक आधुनिक नहीं बल्कि समसामयिक कृति थी. मैथिलीशरण गुप्त के 'राम' समसामयिक हो सकते हैं, आधुनिक नहीं; *जब कि निराला की 'राम की शक्ति पूजा' के* 'राम' आधुनिक युग के लिए संगत राम हैं. वास्तव में मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' और 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा' का अंतर ही समसामयिकता और आधुनिकता का अंतर है. डॉ. नामवर सिंह ने इस संबंध में एक और उदाहरण दिया. उन्होंने कहा कि सन्' ४० के आसपास छायावाद पर यह आरोप लगाया जाता था कि वह आधुनिकता के अभिप्रायों से रहित है, जब कि श्री मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे कवियों की, 'राष्ट्रप्रेम' और समसामयिक राजनीति से उत्पन्न, कविताओं को आधुनिक क़रार दिया जाता था. समय ने यह साबित कर दिया कि राष्ट्रीय उद्बोधन और समसामयिक राजनीति का यह काव्य केवल समसामयिक था; जब कि छायावाद एक आधुनिक काव्य संगठन था. कविता में प्रस्तुत राजनैतिक विवरणों की ओर इशारा करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने कहा कि कविता मौसम का हाल नहीं है. मौसम का हाल पूछना ज़रूरी हो सकता है, लेकिन महज़ औपचारिकता के नाते. इस के आगे इस तरह की कविता का कोई महत्त्व नहीं.

व्यावसायिकता : गोष्ठी के अध्यक्ष **डॉ. भारतभूषण अग्रवाल** ने इस परिसंवाद का समापन करते हुए कहा कि समसामयिकता और आधुनिकता की चर्चा करते समय व्यावसायिकता का प्रश्न भी बना रहता है. हिंदी में पिछले दिनों व्यावसायिकता का तेज़ी से विकास हुआ है जिस का दुष्परिणाम यह हुआ है कि कवि और लेखक व्यावसायिकता को स्वीकार साहित्य की रचना कर रहे हैं. आधुनिकता के नाम पर वे नितांत समसामयिक साहित्य लिख और पढ़ रहे हैं. इस में कोई संदेह नहीं कि आधुनिकता को समसामयिकता से अलगाना पड़ेगा—तभी कविता का सम्यक विकास और मूल्यांकन संभव है.

पूना में नया साहित्य

पूना के राष्ट्रभाषा प्रेमी-वातावरण में आधुनिक साहित्य पर बहस के तीन दिन के दौरान (३१ ज. १, २ फ.) मराठी भाषियों ने हिंदी साहित्य को नयी दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया. विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के अध्यक्ष डॉ. आनंदप्रकाश दीक्षित के आयोजन में महाराष्ट्र के विदग्ध समीक्षकों और नये की ओर उन्मुख विद्यार्थियों का आधुनिक समस्याओं से साक्षात्कार रोचक भी था, विचारोत्तेजक भी.

कुलगुरु श्री पाटस्कर के हाथों उद्घाटन के समय गोष्ठी के अध्यक्ष माध्यम-संपादक बालकृष्ण राव ने आधुनिकता की व्याख्या का प्रयत्न किया–'आधुनिकता कोई मूल्य नहीं है. वह आदमी को आदमी की तरह देखने की दृष्टि है.' अनंतर दो दिनों में प्रभाकर माचवे, नामवर सिंह, के. क्षीरसागर (मराठी समीक्षक) हरिनारायण व्यास (दूसरा सप्तक के कवि), और प्राध्यापक डॉ. न. चि. जोगलेकर, डॉ. म. गो. कनाडे, डॉ. रा. ना. मौर्य और श्रीमती मालती शर्मा ने भी परिभाषा का प्रयत्न नहीं छोड़ा. किंतु गोष्ठी शेष होने तक स्पष्ट हो चुका था कि वह आधुनिकता की परिभाषा से नहीं बल्कि सहृदयता के परस्पर विनिमय के कारण सफल हुई है. विद्यार्थियो और साहित्यकारों के बीच बहुधा जो व्यवधान विश्वविद्यालय के रूप में रहता है वह यहाँ स्वयं विश्वविद्यालय ने दूर किया था, हालाँकि गोष्ठी के अंत में पूछा गया एक प्रश्न यह भी था कि 'आधुनिकता तो हम समझें, पर इसे प्रश्न-पत्र में किस तरह समझायें?'

गोष्ठी में जो अन्य प्रश्न समय-समय पर उठे उन में एक यह था कि जब आधुनिक कवि कविता को शास्त्र से मुक्त कर के अनुभव-सम्मत कर रहा है तो आधुनिकता-बोध को आलोचना-शास्त्र में बाँधना कहाँ तक आधुनिक है. विषय-प्रवर्त्तक के. क्षीरसागर का दृढ़ मत था कि आधुनिकता और नये में कोई अंतर नहीं. परंतु बालकृष्ण राव चाहते थे कि साहित्य की संपूर्ण उपलब्धियों के प्रति सजग रह कर पुराने समीक्षा-मानदंडों को याद करते हुए उन के प्रकाश में आलोचना होनी चाहिए.

नामवर सिंह की भी धारणा थी कि यदि एक मूल्यांकन में पिछली परंपरा का भी मूल्यांकन नहीं होगा तो आलोचना समसामयिक तर्क का शिकार हो जायेगी. **प्रभाकर माचवे** ने भाव-बोध और युग-बोध के बढ़े हुए आग्रह को स्वीकार किया, परंतु 'आधुनिक समस्या के बीज इस में भी मुझे कहीं नहीं मिलते.'

दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न था मराठी प्रदेश में हिंदी शोध के विषय क्या हों और इस पर बातचीत में कुछ शिकायत भी उभरी कि तुलनात्मक अध्ययन करने वालों की उपेक्षा होती है. **डॉ. प्र. रा. भूपटकर** ने अपने प्रवर्त्तन भाषण में दखिनी हिंदी तथा महानुभाव पंथ की बिखरी पड़ी रचनाओं के व्यवस्थित अध्ययन की माँग की और राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा के अध्यक्ष **श्री गो. प. नेने** ने सहमत होते हुए सतर्क किया कि संकलन जैसे कार्य को शोध नहीं मानना चाहिए. अनुभव किया गया कि मराठी प्रदेश में आधुनिक हिंदी साहित्य पर शोध भी होना चाहिए. आम राय थी कि भले ही मराठी और हिंदी के दकियानूसी लोगों में अपने बारे में कोई भ्रम हो परंतु दोनों भाषाओं की नयी पीढ़ियाँ एक-दूसरे को ज़्यादा अच्छी तरह जानती हैं. जो प्रश्न अनुत्तरित रह गया वह यह था कि क्या कारण है कि जब हिंदी पत्रिकाएँ प्रति मास आधुनिक मराठी रचनाओं के अनुवाद छापती हैं मराठी पत्रिकाएँ आधुनिक हिंदी रचनाओं के प्रति उदासीन हैं.

'आज की कविता और सामयिक परिवेश'

वाराणसी में अपरा की ओर से एक गोष्ठी में 'आज की कविता और सामयिक परिवेश' विषय पर मधुव्रत ने अपने दिलचस्प लेख में कहा कि साठोत्तरी पीढ़ी का कवि परंपरा को नकारने को अपनी सब से बड़ी उपलब्धि मानता है. शायद इस लिए कि रचनाकार आज अपने सही परिवेश से कट कर एक नक़ली वातावरण को ओढ़ने की कोशिश कर रहा है. अज्ञेय, भारती, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, श्रीकांत का काव्य इसी लिए पाठक को अपना लगता था, जब कि आज की कविता में उसे अपनी तस्वीर उल्टी दिखलायी पड़ रही है.

प्राध्यापक-कथाकार **शिवप्रसाद सिंह** ने आज के अप्रमाणिक लेखन को प्रामाणिक लेखन से अधिक परिवेश के निकट बतलाया और कहा कि मैं इस विचारधारा का समर्थक हूँ कि परिवेश का सही चित्रण जितनी सफ़ाई और ईमानदारी के साथ मीडियॉकर लेखक करते हैं उतनी महान् लेखक नहीं कर पाते. क्योंकि आज हिंदी का अधिकांश लेखन मीडियॉकर लेखकों द्वारा हो रहा है अतः परिवेश का चित्रण भी उतनी ही सफ़ाई से हो रहा है. यद्यपि कहीं-कहीं अतिवादी दृष्टि उसे संदिग्ध बना देती है फिर भी संपूर्ण रूप से शुभ है. आज लेखक-पाठक-आलोचक की सब से बड़ी समस्या तल के खोज की है. नक़ली जीवन-दृष्टियों का इतना अधिक फेन इकट्ठा हो गया है कि सही तल छिप-सा गया है. जिस दिन हम सही तल की समस्या अधिक सतर्कता से हल कर लेंगे उस दिन परिवेश के पहचानने न पहचानने की कोई समस्या ही नहीं रह जायेगी.

डॉ० ब्रजविलास श्रीवास्तव ने कहा सवाल सही परिवेश को पहचानने का है. हम सतही और थोथे मूल्यों की व्याख्या कर के कोई परिवर्त्तन नहीं कर सकते. यह भी सत्य है कि आज की कविता पचास वर्ष के बाद के परिवेश को प्रस्तुत कर रही है. सही अभिव्यक्ति के मार्ग में अनेक खतरे हैं, जिन में सब से बड़ा परिवेशगत ईमानदारी के चित्रण का है.

डॉ० युगेश्वर को अप्रतिबद्ध लेखन पर आक्रोश था. उन्होंने नव लेखन के नाम पर सतही मूल्यों की व्याख्या करने की आलोचना की और कहा कि इस समय हम अपने सामयिक परिवेश से जितना कट कर चल रहे हैं उतना कभी नहीं चले थे. अपने संदर्भों से कट कर अगली शताब्दी की बात करना फ़िज़ूल और बेमानी है. परिवेशगत सत्यता के विवेचन की आवश्यकता है उसे छोड़ कर आगे बढ़ने की नहीं.

धूमिल ने कहा हम जैसा देख रहे हैं, भोग रहे हैं, जी रहे हैं सिर्फ़ उतना ही लिखते हैं. इस कारण हमारा लेखन प्रामाणिक है. हम संभावनाओं में विश्वास नहीं करते. हमारे लेखन में फ़ैंटेसी नहीं, अनुभव की यथार्थता रहती है. आज कविता महाजन संबंधों के बीच जी रही है. सवाल पीढ़ी का नहीं, अभिव्यक्तिगत क्षमता का है . . .

अरुणेश नीरन ने कहा क्योंकि आज संदर्भ बदल गया है इस कारण परिवेश भी बदल गया है. सामाजिक जागरण से भयभीत रचनाकार अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सजग हो उठा है और इसी कारण घोर व्यक्तिवादी एवं आत्मपरक हो गया है. वह अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष कर रहा है. इस कारण उस से संवेदना की सही पहचान हो रही है. वैयक्तिक ऐंठ में निहित स्थिर समर्पण के भाव ने उस के लेखन को प्रतिबद्ध बना दिया है.

पद्मधर त्रिपाठी ने कहा कि पुराने मूल्यों के संस्कार एवं नये मूल्यों के निर्माण का द्वंद्व आज रचनाकार को विवश कर रहा है कि वह परिवेश का चित्रण सही करे. अध्यक्षीय भाषण में **डॉ० विद्यानिवास मिश्र** (अध्यक्ष) ने परिवेशगत जागरूकता को शुभ बतलाया और कहा कि सवाल कुंठा, संत्रास, टेरर, फ़्रस्ट्रेशन आदि नारों से हट कर प्रामाणिक एवं जागरूक लेखन का है.

किताबें

मध्यवर्ग का दस्तावेज़

अतुकांत लक्ष्मीकांत वर्मा का पहला काव्य संग्रह है. कवि लक्ष्मीकांत को पढ़ते समय समीक्षक लक्ष्मीकांत को भुलाना आवश्यक है. अन्यथा उन की ही कसौटी पर यह संग्रह खरा नहीं उतरेगा. इस का कुछ तो कारण यह भी है कि इसमें पंद्रह वर्ष के दौरान लिखी गयी कविताएँ संग्रहीत हैं. कविता पर चिंतन में वह बदलते गये हैं पर कविता में अपने को नहीं बदल सके हैं और जहाँ यत्नपूर्वक उन्होंने अपनी कविता बदलने की कोशिश की है वहाँ वह साफ़ पकड़ में आ जाते हैं. इस संग्रह में उन की पुरानी लिखी कविताएँ ही सर्वाधिक प्रभावशाली हैं और उन के सारे काव्य-गुणों पर उन से ही सर्वाधिक प्रकाश पड़ता है.

लक्ष्मीकांत मध्यवर्ग के कवि हैं. घर-गिरस्ती बीमारी-हारी पैसे की मार, कर्जा-उधार, बाल-बच्चे-बीवी, चौका-रसोई-चूल्हा, तंगदस्ती, फटेहाली इन की कविता की जड़ है. लक्ष्मीकांत की भावना वहीं से आंदोलित होती है और उस के ऊपर वह दीन-दुनिया का वितान तानते हैं और विचारों का रंग चढ़ाते हैं. कभी वह स्वीकार हो पाती है कभी नहीं. निम्नमध्यवर्ग की गृहस्थी का जितना मार्मिक चित्रण लक्ष्मीकांत ने किया है उतना किसी अन्य नये कवि ने नहीं किया.

भाषा काफ़ी बदलती चली है. कविताओं की भाषा कहीं अज्ञेय की है कहीं अन्य नये कवियों जैसी बोलचाल की. नंगी भाषा कहीं नहीं मिलती. लक्ष्मीकांत ने 'अनगिनत गालियों, ढेलों और पत्थरों के बीच अपना रास्ता निकालने की कोशिश की है' और वह 'ऊबड़-खाबड़पन, ऊलजलूलपन' को एक 'शिल्पगत अनिवार्यता' मानते हैं. इस से सहमत होने के लिए पहले पाठक को लक्ष्मीकांत की कविता पसंद करना सीखना पड़ेगा. बिना मकान बनाये ईंटा-गारा-लोहा-लक्कड़ की ढेर में बैठने की आदत डालनी होगी. जो पाठक 'रागात्मक ऐश्वर्य' से ऊब चुके होंगे उन्हें इस में निश्चय ही मजा आयेगा और वे कवि से अधिक खुद इन कविताओं का 'शरारतपूर्ण सहसंयोजन' का लुत्फ़ लेंगे. एक महत्त्वपूर्ण चिंतक, समीक्षक और क्रान्तिकारी विचारक की कविताएँ अपने आप में महत्त्वपूर्ण होती हैं उस से हम उस के आवेगों के उत्स और विचार-प्रवाह के अंतराल को पकड़ सकते हैं. फिर लक्ष्मीकांत की यह कविताएँ तो निम्न मध्यवर्ग में पुराने संस्कार और पुरानी व्यवस्था से लड़ते आधुनिक मन की दस्तावेज़ भी हैं.

अतुकांत; लक्ष्मीकांत वर्मा भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुंड मार्ग, वाराणसी-५; मूल्य: पाँच रुपया.

रंगमंच

प्रयाग में नाट्य समारोह

प्रयाग की संस्था **कालिदास अकादेमी** ने एक बहुभाषी पंचदिवसीय नाट्य समारोह का आयोजन किया, जिस मे संस्कृत, हिंदी, तेलगू और कन्नड़ के नाटकों के अतिरिक्त दो बंगाली नाटक **मंजरी, आमेर मंजरी** और **मानुषेर अधिकारे** खेले गये. संस्कृत नाटक **अभिज्ञान शाकुंतल** का उपस्थापन **कालिदास अकादेमी** ने किया. प्रयाग आंध्र एसोसियेशन ने एक नाटिका **पेंडिंग फ़ाइल** तेलगू भाषा मे और कन्नड़ **एसोसियेशन** ने **तीसरी पत्नी** कन्नड़ भाषा मे प्रस्तुत किया. बंगाल के प्रसिद्ध कलाकार अजितेश बंदोपाध्याय के निर्देशन मे नांदिकार संस्था ने **चेखव** के प्रसिद्ध नाटक **चेरी ऑर्चर्ड** का बंगाली रूपांतर **मंजरी, आमेर मंजरी** प्रस्तुत किया. **उत्पल दत्त** के निर्देशन मे **लिटिल थियेटर ग्रुप** ने अमेरिका मे निग्रो जीवन पर आधारित **मानुषेर अधिकारे** का सफल अभिनय किया. इस अवसर पर भारत के प्रसिद्ध प्रकाश-संयोजक **श्री तापस सेन** ने **अभिज्ञान शाकुंतल, एक कंठ विषपायी, तीसरी पत्नी, मानुषेर अधिकारे** और **पेंडिंग फ़ाइल** मे प्रकाश का संयोजन दिया. **मंजरी, आमेर मंजरी** मे **नांदिकार** के प्रकाश-संयोजक **स्वरूप मुखोपाध्याय** ने प्रकाश का संयोजन किया. इन समस्त नाटकों का एक समवेत अनुभव प्रयाग के रंगकर्मियों और दर्शकों के लिए विशेष अवसर प्रदान कर सका. समारोह का उद्घाटन तापस सेन ने किया. इन पाँचो नाटको के उपस्थापन मे **अभिज्ञान शाकुंतल** में **डॉ. बालकृष्ण मालवीय, श्रीमती सूर्या अवस्थी** और **डॉ. कमलेशदत्त त्रिपाठी** माढव्य, शकुंतला और दुष्यंत की भूमिका अपने कुशल अभिनय से स्थापित करने मे सफल रहे. कण्व की भूमिका मे **श्री कृष्णदास** और भरत की भूमिका मे **स्वस्ति ठाकुर** का भी अभिनय उत्कृष्ट रहा.

एक कंठ विषपायी, जिस का निर्देशन अवधेश चंद्र ने किया, प्रयोग की दृष्टि से नाटक के कथ्य और मर्म को दर्शित करने मे पूर्णत: सफल रहा. अभिनय मे सर्वहत की भूमिका मे **श्री अवधेश चंद्र**, इंद्र की भूमिका मे **श्री मुरारीलाल साही**, ब्रह्मा की भूमिका मे **श्री रामलाल गुप्त** का स्टाईलाईज्ड अभिनय निर्देशन की कुशलता को व्यक्त कर सका.

कन्नड नाटक **तीसरी पत्नी** के निर्देशक **श्री रवींद्रनाथ** ने अपने इस हास्य उपस्थापन से पूरे समारोह को एक स्फूर्त्ति का अनुभव प्रदान किया. नायक के रूप मे **श्री चारी**, तीसरी पत्नी की भूमिका मे **श्रीमती रामा चारी**, डॉक्टर की भूमिका मे **श्री शेट्टी** और वैद्य की भूमिका मे स्वयं निर्देशक **रवींद्रनाथ** के अभिनय सफल रहे. पूरा नाटक यथार्थवाद से डरे हुए नायक की मानवीय कमज़ोरियों पर आधारित होने के नाते बड़ा यथार्थवादी अनुभव दे सका. तेलगू नाटक भी इसी प्रकार हास्य और व्यंग्य से ओतप्रोत था.

मंजरी, आमेर मंजरी : बहुभाषी नाट्य समारोह का यह पहला अनुभव था जो प्रयाग के नागरिक को प्राप्त हो सका. लेकिन बंगला के दोनों नाटक वास्तव मे अपनी कुशलता और क्षमता मे सर्वश्रेष्ठ थे. **मंजरी, आमेर मंजरी** के उपस्थापन मे मंच-व्यवस्था समुचित रूप में सफलता के साथ किया गया था. निर्देशन मे यद्यपि **अजितेश बंदोपाध्याय** ने कही भी अतिशयोक्ति से काम नही लिया है लेकिन फिर भी नाटक की व्याख्या अंतिम दृश्य मे 'मेलोड्रैमैटिक' हो गयी है.

मानुषेर अधिकारे का कथा-दृश्य १९६७ में वीएतनाम के एक दृश्य से प्रारंभ होता है. प्रथम दृश्य मे एक अमेरिकी सिपाही, जिस ने एक वीएतनाम की स्त्री के साथ बलात्कार किया है, वीएतनामी सिपाहियों के सामने लाया जाता है. सिपाही का नायक उसे गोली मार देने का आदेश देता है, लेकिन पहले इस के कि उस अमेरिकी सिपाही को गोली का निशाना बनाया जाये सिपाहियों का नायक १९३१ मे अमेरिका के अलबामा राज्य मे एक निग्रो युवक की कहानी सुनाता है, जिस मे अमेरिकी गोरे एक निग्रो पर एक अमेरिकी महिला पर बलात्कार करने का झूठा आरोप लगा कर उसे दंडित करते हैं. नाटक का दूसरा दृश्य फ़्लैश बैक के अंतरिम बिंदु से प्रारंभ होता है. इस मे दिखाया गया है किस प्रकार एक चरित्र-भ्रष्ट वेश्या-वृत्ति वाली लड़की जबर्दस्ती बलात्कार के आरोप को स्वीकार करती है. तीसरा दृश्य अदालत का है, जिस में गवाहों का जिरह किया जाता है. इस दृश्य मे मुद्दालय के वकील के रूप मे **उत्पल दत्त** का अभिनय, एटर्नी जनरल की भूमिका मे **सत्य बैनर्जी** का अभिनय और जज का अभिनय रंगमंच की उत्कृष्टता का परिचय देती है. इसी दृश्य मे यह दिखलाया गया है कि जूरी और जनता की आकांक्षा के विरुद्ध किस प्रकार जज उस निग्रो को फाँसी की सज़ा देता है और निग्रो यह भविष्यवाणी करता है कि एक दिन उसी के वर्ग का कोई न कोई इस अपराध का बदला लेगा ही.

उपाधि-वितरण : इस अवसर पर कालिदास अकादेमी ने **श्री अजितेश बंदोपाध्याय** और **श्री तापस सेन** को नाट्यश्री की उपाधि से शोभित किया. **श्री उत्पल दत्त** को नाट्याचार्य **श्रीमती शोभा दत्त** को नाट्यश्री और कालिदास अकादेमी की **श्रीमती सूर्या अवस्थी** को रंगश्री की उपाधियाँ दी.

अंग्रेजियत से दूर

पिछले दिनों दिल्ली के अंग्रेज़ी मंच पर मूल रूसी नाटक का प्रस्तुतीकरण हुआ.

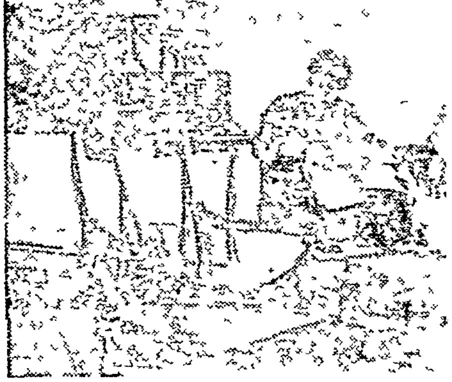

लियोनिदिक की भूमिका में आफ़ताब सेठ

अलेक्सी आर्बूज़ोव के मूल नाटक 'माइ पूअर मराट' को यहाँ **प्रोमिज़ इन लेनिनग्राद** के नाम से प्रस्तुत किया गया.

यात्रिक के लिए इस का निर्देशन किया **श्री सोम बेनिगल** ने. यह भेंट अंग्रेज़ी मे हो कर भी राजधानी के मंच की तथाकथित अंग्रेजियत से दूर थी. तीन पात्र. युद्ध की पार्श्वभूमि. एक ध्वस्त, जीर्ण आवास मे आगे-पीछे कर के तीन किशोर. तीनों के कोमल एवं भव्य सपने. दो युवक और एक १६ वर्षीया किशोरी. दोनों युवक परस्पर मित्र. युवक **मराट** का किशोरी **लीका** से प्रणय. उधर मित्र युवक **लियोनिदिक** का भी आंतरिक झुकाव उसी ओर. कोई खलनायक नही—सभी पूर्ण मानवीय और असांत्वनीय.

निर्देशक **सोम बेनिगल** ने तारीखों को गगनिका पर उकेर कर इसे एक डायरी-सा बना दिया. तकनीकी स्तर पर जहाँ इस से एक दूरी का बोध हुआ वहीं संगठन मे एक आत्मीय गोपनता का भी. पार्श्व मे नगरादि के स्लाइड थे. उस से भी सारी पीठिका को एक विस्तार मिला. मंच-सज्जा, प्रकाश, ध्वनि-प्रभाव सभी दक्ष थे. किंतु आरंभ मे बमबारी का नाटकीय प्रभाव ज़्यादा देर तक खिंच गया, जिस से उस का असर उल्टे कम ही हुआ. सब से महत्त्वपूर्ण एवं कठिन था अभिनय और सब से बड़ी लड़ाई लड़ी भी अभिनेताओ ने. लियोनिदिक के रूप मे **आफ़ताब सेठ** ने सूक्ष्म दुहरेपन और विविध स्थितियो को कभी हँसा कर और सहसा तान कर व्यक्त किया. चरित्र का विकास संतुलित था. लीका की कठिन भूमिका में **ज़रीन चौधरी** प्रभावपूर्ण थी. किशोरावस्था से ले कर प्रौढ़ भावो तक कोई विशेष बाह्य परिवर्त्तन तो न था—परिवर्त्तन का एहसास था. **ज़हूरी मयुद्दीन** मराट की भूमिका मे थे. जारी का चरित्रण भी छूता था. उस के निर्दोष झूठ-साफ झलकते थे और ईर्ष्या एवं दर्प के साथ उस की पीड़ा और सम्भ्रमों को भी रंगत मिली. उन का स्वर एक रस न होता तो सोने मे सुहागा था. आश्चर्य यह होता है कि सोम बेनिगल जैसे कुशल एवं सुरुचिपूर्ण निर्देशक कई-कई वर्षो तक मंच के लिए निठल्लों की तरह कैसे छिप जाते हैं?

वानी प्रसन्न : एक चित्र

कला

दृष्टि-क्षेत्र के परे

एक-दूसरे से मिलतेजुलते रूपाकारों के विशिष्ट मनःस्थितियों वाले चित्रों की प्रदर्शनियों से ऊबे हुए प्रेक्षक को **वानी प्रसन्न** के चित्र (आइफ़ैक्स कला-दीर्घा) आकर्षित तो करते ही हैं, उसे एक ऐसे संसार में भी ले जाते हैं जो उस के अंदर उपस्थित होते हुए भी उस की दृष्टि से ओझल रहता है. वनस्पतियां, मछलियां, सूर्य-रंग, जल-जीव उन के चित्रों में एक ऐसा ताना-बाना बुनते हैं कि प्रेक्षक चमत्कृत होने के साथ ही जीव-जगत् व सौरमंडल से अपने संबंध के भान से एक प्रसन्नतापूर्ण औत्सुक्य पा लेता है. यह औत्सुक्य शैशव-संसार से ही फिर से नहीं जोड़ता, शैशव के बाद के अनुभवों को भी अपने में समेट लेता है. यों वानी प्रसन्न की शैली, बाल-चित्रकारों की-सी सरल शैली से मिलती-जुलती है, जिसे निश्चय ही उन के चित्रकार की परिपक्वता कहेंगे. वानी प्रसन्न जन्म से ले कर मृत्यु तक के बीच देह-मन पर घटित होने वाले प्रभावों व उन के कारकों की खोज करते मालूम पड़ते हैं. समकालीन शहरी मनुष्य की दृष्टि भले सीमित न हो, उस का दृष्टि-क्षेत्र जरूर सीमित हो गया है और यह भी कह सकते हैं कि वह अपने अस्तित्व को प्रभावित करने वाले कारकों को जानते हुए भी उन्हें भुलाये रहने को विवश है. जीव-जगत् हो, वनस्पतियों का संसार हो, सौरमंडल हो, इन से उस का रिश्ता बहुत कुछ अदेखा और अनुभवातीत रह जाता है—कहीं अंदर स्थित होते हुए भी वह अपनी उपस्थिति को मुखर नहीं कर पाता. वानी प्रसन्न के तैल चित्र व जलरंगी रेखांकन इस रिश्ते को मुखरित करते हैं और बहुत हद तक प्रेक्षक के लिए विपर्यांतर भी करते हैं. मछलियां, मेंढक, जल-घासें, सूर्य-किरणें, टहनियां, पत्तियां व टहनियों नुमा हाथ-पैरों की अँगुलियां, रूपांतरित मानव-आकृतियां—उन के चित्रों में सभी जैसे एक दूसरे से मिलने दौड़ पड़े हैं.

वानी प्रसन्न : एक रेखांकन

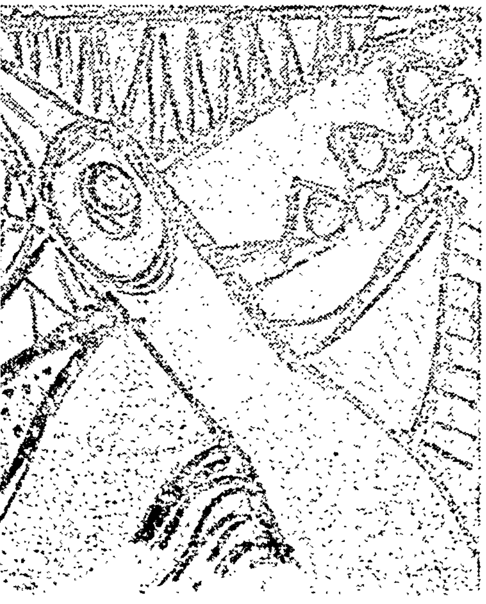

वानी प्रसन्न के चित्र कौतुक-भरे भी हैं. 'चिड़िया का प्रातःकालीन नाश्ता' न केवल विषय के लिहाज से एक कौतुक की सृष्टि करता है बल्कि अपने रूपाकारों व विषय के प्रस्तुतीकरण में भी कौतुक-भरा लगता है. वह विषय को पहले तो सरलीकृत या बोधगम्य कर डालते हैं, फिर उसे संश्लिष्ट व जटिल प्रभावों—संवेदनाओं में बदल डालते हैं. सूर्य, मां, मेंढक जैसे कई चित्रों को वह पहले तो एक विषयानुकूलता फिर इन सरल लगने वाले विषयों को उन की जटिल परिणतियां देते हैं. वानी प्रसन्न के चित्र रूपाकारों से भरे हैं—एक दूसरे को काटते हुए रूपाकारों से. जल की सतह के नीचे तैरने वाले जीव व जल-गर्भ में उगने वाली वनस्पतियां जिस तरह एक दूसरे से टकराती हैं कुछ उसी तरह उन के रूपाकार एक दूसरे को एक हलचल से भरते हैं.

वानी प्रसन्न के जलरंगी रेखांकनों में चिड़ियां, फूल-पौधे, मधुमक्खियां, भौंरे या इन के से रूपाकार ही अधिक हैं. इस प्रदर्शनी में उन्होंने कुछ रेखांकनयुक्त कविताएं भी प्रदर्शित की थीं—ये रेखांकन खाली समय में कुछ बनाते रहने जैसे रेखांकन थे—कम से कम अपने आकार-प्रकार में. चित्र, रेखांकन और लघुतर रेखांकन सभी को मिला लें तो कह सकते हैं कि वानी प्रसन्न ने इस में अपनी कृतियों की पूरी भीड़ इकट्ठी कर दी थी. अगर वह इतनी सारी कृतियां प्रदर्शित न करते तो प्रदर्शनी अधिक प्रभावी होती और अधिक ग्राह्य भी.

आकृतियों की भरमार

अपनी प्रक्रिया में ही एक प्रकार की चित्रात्मकता रखने वाले बातिक का प्रयोग अब चित्रों के लिए होने लगा है. पहनावे के लिए रचे

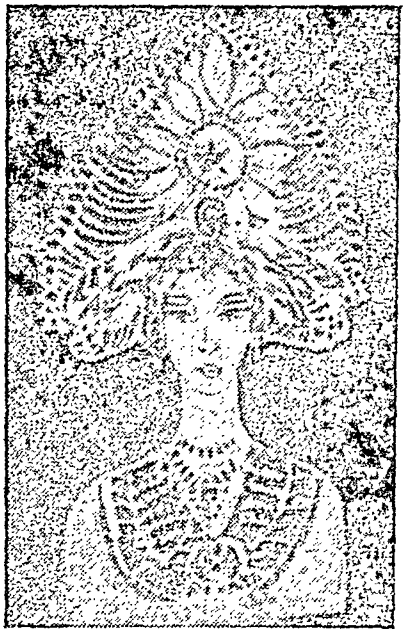

कुलवंत राय : बातिक चित्र

गये सज्जा-अंकनों तक ही वह सीमित नहीं रहा. लेकिन **श्रीमती कुलवंत राय** के बातिक चित्र (श्रीधराणी कला-दीर्घा) प्रयोगान्मुख नहीं हैं—अजंता की नारी आकृतियां, मुखाकृतियां, घोड़े, फूलों आदि को चित्रित करने वाली उन की बातिक कृतियां सुघरी अनुकृतियों की सीमा से ज्यादा आगे नहीं बढ़तीं. इस तरह उन के अधिकांश चित्र बातिक की सीमाओं को कहीं तोड़ते मालूम नहीं पड़ते. लेकिन आत्माभिव्यक्ति के लिए बातिक शैली को चुनने वाली श्रीमती राय के कुछ चित्र उन की संवेदना और प्रयोग-आकांक्षा को प्रकट करते हैं. 'बंबई में वर्षा' चित्र इस बात का उदाहरण हो सकता है.

बातिक आकृतियों-मुखाकृतियों के लिए अच्छा माध्यम नहीं लगता. श्रीमती राय की प्रदर्शनियों में इन की भरमार न होती तो उन के चित्र उसे अधिक प्रभावी व आकर्षक बना लेते.

प्रसून

३०० डॉलर में कृत्रिम गुर्दा

हाल ही में हाइफ़ा टेकनोलॉजिकल इंस्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने 'घरेलू गुर्दा मशीन' बनायी है, जो इलेक्ट्रॉनिक जटिलताओं से पूरी तरह मुक्त है—यहाँ तक कि इस के लिए विद्युत-शक्ति की भी आवश्यकता नहीं. यह वेग और खिंचाव के ज़रिए काम करता है, जिस का संचालन रोगी के पेट की झिल्लियाँ करती हैं. इस समय अस्पतालों में आम तौर पर जिन गुर्दा मशीनों का प्रयोग किया जाता है उन से यह मशीन रक्त-परिवर्तन का काम अधिक तेज़ी से कर सकती है. नये कृत्रिम गुर्दे को संवाददाताओं के सामने पेश करते हुए प्रोफ़ेसर ज्वाई कार्नी ने बताया कि इस को बनाने में ३०० डॉलर से भी कम ख़र्च आयेगा, जब कि आजकल काम में लाये जाने वाले कृत्रिम गुर्दे पर हज़ारों डॉलर खर्च हो जाते हैं. उन्होंने आगे बताया कि सब से बड़ी दिक़्क़त इस सीधे-सादे यंत्र को बेचने की है, क्यों कि आधुनिक चिकित्सक इस में चमकदार बत्ती और मीटर न पा कर इसे इस्तेमाल के योग्य नहीं समझते.

परमाणु-विस्फोट पर चीन का गर्व

नये वर्ष के अवसर पर शुभ कामनाएँ भेजने के लिए विश्व भर में करोड़ों की संख्या में सुंदर, आकर्षक और मनमोहक कार्ड छापे जाते हैं. चीन में भी इस अवसर पर कार्ड छपे, पर उन का रूप बिल्कुल ही भिन्न था. चीन में छपे कार्डों में व्यापक विनाश के प्रतीक प्रदर्शित किये गये, जिन पर परमाणविक बम विस्फोट के कुकुरमुत्ता जैसे विशाल बादलों के चित्र बनाये गये. हर राष्ट्र को परमाणविक शक्ति के क्षेत्र में अपनी वैज्ञानिक खोजों पर गर्व करने का अधिकार है, लेकिन किसी को भी अपने राष्ट्र तथा मानव-सभ्यता की नियतियों से संबंधित एक विषय को उस रूप में पेश करने की कभी नहीं सूझी जैसा कि पीकिङ् के क्रांतिकारी इस समय कर रहे हैं.

विदेशी विशेषज्ञों का अनुमान है कि १९५७ और १९६८ के बीच चीन ने परमाणु बम पर क़रीब ७०००,०००,००० डॉलर खर्च किये, या कहना चाहिए कि देश की वार्षिक राष्ट्रीय आय का प्रायः पाँचवाँ भाग इस मुद्दे पर व्यय किया गया, जिस से प्लूटोनियम और यूरेनियम कारखाने तथा परमाणविक हथियारों के परीक्षण-स्थलों का निर्माण हुआ.

बंदियों के लिए अवकाश

हांबुर्ग (जर्मनी) के सिनेटर पीटर शुल्ज़े, जिन का न्याय से घनिष्ठ संबंध है, एक ऐसा प्रयोग करने वाले हैं जिस से दंड-काल का अधिकांश बिता देने वाले बंदियों को कारावास से बाहर के जीवन से पुनः परिचय कराया जाएगा. इस ३८ वर्षीय प्रगतिवादी सिनेटर का प्रयोग यदि सफल रहा तो इस से क़ैदियों का जीवन एक नया मोड़ लेगा और लंबा दंड भोगने के बाद भी उन्हें साधारण जीवन से सामंजस्य स्थापित करने में कोई विशेष असुविधा नहीं होगी. जिस बंदी को छुटकारा पाने में केवल छह ही महीने रह जाएँगे उसे एक नये कारागार में रखा जाएगा, जहाँ उसे कारावास से बाहर जीवन व्यतीत करने का पूरा प्रशिक्षण दिया जाएगा. क़ैद की घंटी की आवाज़ पर उठने की बजाय उसे स्वयं उठने को कहा जाएगा और भोजन भी जेल की कोठड़ियों से बाहर स्वयं पंक्ति में खड़े हो कर लाना होगा. कारावास की अपनी एक दुकान होगी, जहाँ से वह अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुसार चीजें ख़रीद सकेगा. अवकाश के समय उसे पूरी छूट होगी कि वह किसी भी विषय पर खुल्लमखुल्ला बातचीत कर सके, यहाँ तक कि जेल के बाहर जुलूसों और जलसों में भाग लेने की भी उसे इजाज़त होगी. काम पर जाते समय वह क़ैदियों के कपड़े न पहन कर साधारण कपड़े पहन सकेगा.

इस प्रकार के छूट पा कर क़ैदियों के भाग जाने की संभावना के बारे में सिनेटर पीटर शुल्ज़े का मत है कि क्यों कि कुछ ही दिनों में उन का दंड-काल समाप्त होने वाला होता है इस लिए ऐसा कोई डर नहीं होता. क़ैदियों के लिए छुट्टी की व्यवस्था और संबंधियों से मिलने के नियमों में भी संशोधन किये जा रहे हैं. इस समय हांबुर्ग के क़ैदियों को छह सप्ताह के व्यवधान में १५ मिनट के लिए अपने रिश्तेदारों से मिलने दिया जाता है. नये नियमों के अनुसार चार सप्ताह के बाद ४५ मिनट की मुलाक़ात की आज्ञा दी जाएगी.

खुले कारावासों के क़ैदियों को इस समय पाँच दिन की छुट्टी दी जाती है. इस के अतिरिक्त साल में एक सप्ताह की छुट्टी और दी जाएगी. बंदी ये छुट्टी के दिन अपने परिवार के सदस्यों के बीच गुज़ार सकेंगे. ये सुविधाएँ केवल कुछ विशेष प्रकार के बंदियों को नहीं दी जायेंगी, बल्कि सभी के लिए उपलब्ध होंगी.

गोलियों की लोकप्रियता

आज के समस्यापूर्ण जीवन ने रोगों की संख्या बढ़ा दी है और औषधि बनाने वालों को मालामाल कर दिया है. एलवैश, जर्मनी के इंस्टीट्यूट ऑफ़ डेमोस्कोपी ने एक सर्वेक्षण किया है, जिस के अनुसार जर्मन संघीय गणराज्य के ६३ प्रतिशत वयस्क लोग औसत में हर पंद्रहवें दिन दवा की गोलियाँ खाने लगते हैं. गोलियाँ खाने वालों में औरतों की संख्या ७० प्रतिशत और पुरुषों की संख्या ५५ प्रतिशत है. ६० वर्ष से अधिक आयु के लोग अधिक नियमपूर्वक दवा की गोलियाँ खाते पाये गये हैं.

इन गोलियों के इतनी बड़ी तादाद में सेवन के पीछे प्रमुख रूप से सिर का दर्द है. इस के बाद सर्दी, कफ़, गले की सूजन और दूसरे रोगों का नंबर आता है. जर्मनी में केवल ९ प्रतिशत लोगों को नींद की गोलियाँ खाने की ज़रूरत महसूस होती है.

पशु-प्रेमियों का दर्द

पश्चिमी जर्मनी के उत्तरी समुद्र में एक जहाज के कप्तान ने अपना जहाज धो कर उस का सारा तेल तट पर छोड़ दिया. जहाज के इस गंदे तेल के कारण हज़ारों समुद्री पशुओं का जीवन खतरे में पड़ गया. इन बेज़ुबानों को संकट में देख उन के प्रेमियों का दिल रो उठा और कई व्यक्तियों ने इन की जान बचाने की प्रतिज्ञा की. तुरंत ही स्वयंसेवकों की एक टोली तैयार हो गयी और समुद्री पशुओं को बाहर निकाल कर उन का उपचार किया गया.

स्वयंसेवकों का पशु-प्रेम : प्राण बचाने का प्रयास

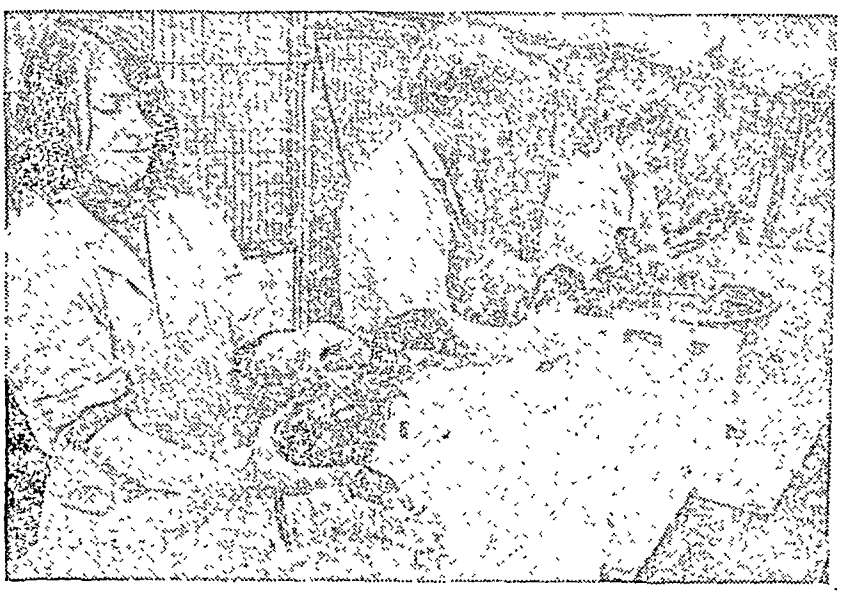

यह है धर्मयुग का ★ होली विशेषांक ★

○ **साहित्यबाजी** : आपने पहले पढ़ा होगा, बाबाबाजी के बारे में और फिर एक राष्ट्रीय शौक नेताबाजी के बारे में जो देश की आजादी के बाद कुछ ज्यादा ही फैल गया है. अब **भगवतीचरण वर्मा** अपनी उसी पैनी बेलाग कलम से ऐसे लोगों के बारे में लिख रहे हैं जिन का शगल ही है, बस, साहित्यबाजी.

○ **राम जी तुम कहां हो, तुम्हारी अजुध्या कहां है ?** : धर्मयुग ने प्रागैतिहासिक भारत की खोजों का विवरण क्या छापा, असली खोज तो की है चौक, लखनऊवाले **अमृतलाल नागर** जी ने जिन के अनुसार अब न राम हमारे रहे और न उन की अजुध्या ही....

○ **वे दिन : वे लोग** : बात जब पुराने वक्त की ही चल पड़ी तो लगे हाथ क्यों न याद कर लें भारतीय पत्रकारिता का वह गुजरा जमाना यानी जब अखबार और पत्रिकाएं छपनी शुरू ही हुई थीं. उन दिनों कैसे कार्टून होते थे उन में, इस का विवरण दे रहे हैं **कार्तिक प्रसाद डोगरा** और विज्ञापनों का मजमून कैसा होता था, यह पढ़िए **शरद जोशी** की चुटीली कलम से.

○ **चौबे बनारसीदास** : पत्रकार और वह भी पुराने हमारे बनारसी दास चतुर्वेदी भी हैं. लेकिन इस के साथ वे हिंदी में मनोविनोद के मूर्तिमान प्रतीक हैं. उन के कुछ रोचक संस्मरण **डॉ. रामधारी सिंह दिनकर** ने लिखे हैं—इस अंक के लिए खास तौर पर.

होली के रंगों में यानी रंगीन आकर्षण

○ **चित्रकार हेब्बार** की तूलिका से होली : उनके तीन बिलकुल नये होली चित्र.

○ **साइकेडेलिक होली** : होली क्या साल में एक बार ही जलती है ? दुनिया में पुराने मूल्यों को जलाने, उखाड़ने और बदलने के लिए नयी पीढ़ी क्या हर रोज एक तरह की होली नहीं मनाती ? पश्चिमी दुनिया की साइकेडेलिक होली के पीछे के दर्शन की व्याख्या हमारे कला निर्देशक **रमेश संझगिरी** द्वारा. साथ में कई रंगीन चित्र.

○ **कोली होली** : बंबई के मछुआरों की होली की छटा अलग ही तरह की है. रंगीन चित्र फीचर हमारे छायाकार ने इस अंक के लिए खास तौर पर तैयार किया है.

○ **होली और हेमा मालिनी** : फ़िल्म संसार की नयी और चर्चित अभिनेत्री होली में सराबोर. छाया केंद्र द्वारा दो बहुरंगे चित्र.

○ **फाल्गुन में हथेलियों रची होली** : महिला पाठिकाओं के लिए होली के लिए फागुनी मेंहदी के नमूने. साथ में **ऋषि जैमिनी कौशिक 'बरुआ'** का सुललित लेख.

○ मुखपृष्ठ, मध्यवर्ती पृष्ठों तथा अन्य रंगीन पृष्ठों पर **विद्याव्रत, बालकृष्ण और सूर्यकांत कुलकर्णी** के कैमरे से होली की कई मनोहारी और चटख छवियां.

○ नोबेल पुरस्कार के बारे में एक सनसनीखेज खबर ? क्या है—इसे होली अंक में ही पढ़ें. और उस पर सर्वश्री **अमृतलाल नागर, यशपाल, हरिशंकर परसाई, विष्णु प्रभाकर और शरद जोशी त्यागी** की प्रतिक्रिया

○ **छोटा परिवार : सुखी परिवार** : परिवार नियोजन अभियान का यह नारा आज हर किसी की जुबान पर है. लेकिन परिवार नियोजन की परंपरा हमारे देश में कितनी पुरानी है, बैठे ठाले यह शोध कर डाली है, **रवींद्रनाथ त्यागी** ने—आप भी लाभान्वित होइए !

○ **शिवमंगल सिंह सुमन** की तीन सरस कविताएं.

○ **जयवंत दलवी और लक्ष्मीकांत वैष्णव** की हास्य कहानियां और **डॉ. रामकुमार वर्मा** के हास्य एकांकी **'रामायण में महाभारत'** की अंतिम किस्त.

○ **विद्यानिवास मिश्र** का ललित लेख.

○ **एक अंतरंग बातचीत** : शार्टकट की संस्कृति पर की जानेवाली चर्चा इस बार हास्य-व्यंग्य कथाकार **श्रीलाल शुक्ल** तथा **केशवचंद्र वर्मा** के बीच हो रही है. रचना और रचनाकार के धर्म को ले कर कई अहम मुद्दे उठाये गये हैं. जिन पर गौर तो आप भी करना चाहेंगे.

○ और एक विशिष्ट कवि गोष्ठी भी धर्मयुग के पृष्ठों पर, जिस में भाग ले रहे हैं चुने हुए चार कवि सर्वश्री **काका हाथरसी, ओमप्रकाश आदित्य, दिनकर सोनवलकर और अशोक प्रियदर्शी.**

○ **तकिया कलाम** : जी हां, बात उसी कलाम की है जो तकिये पर काढ़ा जाये. अपनी बात उन तक पहुँचाने के यों तो कितने ही तरीके हैं, लेकिन तकिये के ज़रिये कुछ और ही बात होती है. सुनिए **मुज्तबा हुसैन** की जुबानी.

○ **मृणाल पांडे** की चुटीली व्यंग्य कविता

○ **प्राण, नेगी, नंदलाल शर्मा और सुरती** के चुटीले व्यंग्य चित्र.

○ स्थायी स्तंभों में **प्रभाकर माचवे, वैकुंठनाथ मेहरोत्रा** आदि की रचनाएं.

○ जोकर तो सर्कस का बादशाह है. सर्कस के जोकर जो कद और काठ में बिलकुल जो कर ही लगते हैं, जीवन में भी जोकर ही हैं फिर सीखना किस से और क्या ? फिर भी **प्रमोद शंकर भट्ट** जोकरों की ट्रेनिंग की चर्चा कर रहे हैं, साथ में कई चित्र भी.

○ क्या यह हो सकता है कि बिना शिला के आधार के कोई योगी बैठा रहे ? आप कितनी ही रस्सियों से जयमाला को बांध दें, वह अगले ही क्षण स्वतंत्र हो जायेंगी—संसार की पहली महिला जादूगरनी जयमाला से विशेष भेंट **सतीश बहादुर वर्मा** करा रहे हैं.

यही वह अंक है जिसका आप पूरे के पूरे साल सांस रोक कर इंतजार करते हैं : मौका मत चूकिए, तुरंत सुरक्षित करा लीजिए अपनी प्रति

धर्मयुग : २ मार्च १९६९ :

पंजीयित संख्या डी० १५०१

हरियाणा सरकार

हरियाणा स्टेट लाटरीज़

३०-१-६९ को निकाली गयी द्वितीय लॉटरी में प्रथम पुरस्कार प्राप्त भाग्यशाली विजेता ने
१०-२-६९ को अपना पुरस्कार प्राप्त किया

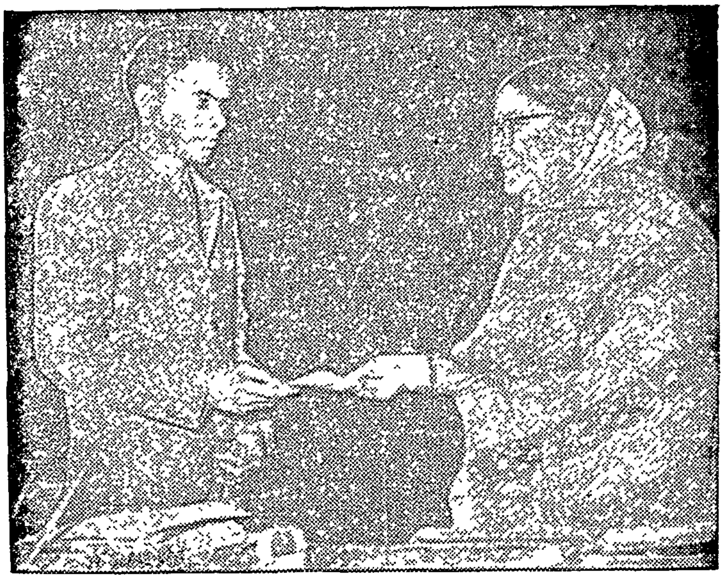

श्री राम चन्द्र सुपुत्र श्री बाल किशन, जो चीफ़ सेटेलमेंट कमिश्नर, जयपुर के कार्यालय में यू. डी. सी. हैं, हरियाणा के वित्तमंत्री श्रीमती ओमप्रभा जैन से प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर रहे हैं

तृतीय लाटरी : २९-३-६९ को

अभी भी बहुमूल्य पुरस्कार प्रस्तुत करता है

प्रथम पुरस्कार : रु० १,००,०००) तथा एक बिल्कुल नई एम्बैस्डर कार

द्वितीय पुरस्कार : रु० २५,०००) और रु० १०,०००) से रु० ५०) तक के ४९८ अन्य मूल्यवान नकद पुरस्कार

एक रुपये का अपना भाग्यशाली टिकट आज ही निम्न स्थानों से खरीदिए

समस्त अधिकृत एजेण्ट्स, हरियाणा राज्य के समस्त डिस्ट्रिक्ट ट्रेज़री आफीसर्स,
दि ट्रेज़री आफीसर, गुड़गाँव द्वारा हरियाणा एम्पोरियम,
थियेटर कम्युनिकेशन बिल्डिंग, कनाट सरकस, नई दिल्ली-१

दि डायरेक्टर, हरियाणा स्टेट लाटरीज़
३० बे बिल्डिंग, सेक्टर १७, चण्डीगढ़ द्वारा प्रचारित

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित ।

साप्ताहिक
दिनमान
टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

होली है, होली है

२ मार्च, १९६९

कहते हैं

लंका पर चढ़ाई करने को जब सेतुबन्ध रामेश्वर का पुल बनाया जा रहा था उस समय अनेक बानर-भालू, ग्रामीण और निषाद जी-जान से जुट कर उस पवित्र कार्य में अपने श्रम शक्ति से भरपूर योग दे रहे थे।

एक क्षुद्र गिलहरी भी जगज्-जननी के उद्धार हेतु बनाये जाने वाले इस पुल में अपना अकिंचन योग दे रही थी वह भोर से सांझ तक बार बार धूल में लोट कर अपने रुओं में धूल भर कर लाती और उसे पुल पर झाड़ देती थी।

भूख, गरीबी, बेकारी, बीमारी, और निरक्षरता के विरुद्ध भारतीय जनता के संघर्ष में हम भी अपनी अकिंचन भूमिका अदा कर रहे हैं और दासत्व के अभिशाप – आर्थिक पराधीनता से भारत को मुक्त करने के लिए कृतसंकल्प हैं।

स्वदेशी

काटन मिल्स कम्पनी लिमिटेड

कानपुर • नैनी • पांडुचेरी • उदयपुर • मऊ

जैपुरिया प्रतिष्ठान

BHARAT/SCM—1(69)

उत्तम सिलाई की नींव

हमारे आधुनिकत्तम आयात किये गये स्वचलित संयंत्र में सर्वोत्तम कपास से तैयार मोदी धागा बिल्कुल सफ़ेद या इन्द्रधनुषी पक्के रंगों में मिलता है। यह मुलायम और मज़बूत है इसलिए घरेलू व औद्योगिक सिलाई और कशीदाकारी के लिए सर्वोत्तम है।

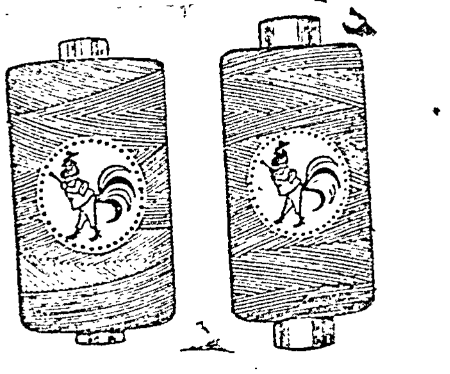

मोदी थ्रेड मिल्स
बढ़िया धागे बनाने वाले

प्रोप्राइटर्स
मोदी स्पीनिंग एण्ड वीविंग मिल्स कं० लि० मोदीनगर (यू० पी०)

Newfields.

मत और सम्मत

[होली के अवसर पर हमें कुछ पाठकों के विशेष पत्र प्राप्त हुए हैं. कुछ में होली का मूड है और कुछ में होली से संबंधित प्रश्न. ये पत्र यहां दिये जा रहे हैं—सं.]

मंत्रिमंडल में परिवर्त्तन : केंद्रीय मंत्रिमंडल में फेर-बदल पर उस दिन हम लोग चर्चा कर रहे थे. सभी होली के मूड में थे, सभी ने छान रखी थी इस लिए सोचा वह दिलचस्प विवरण आप को भेज दूं शायद आप का और आप के पाठकों का मनोरंजन हो.

एक ने कहा : मंत्रिमंडल में परिवर्त्तन से वातावरण में परिवर्त्तन होगा.

दूसरे ने कहा : वातावरण के परिवर्त्तन से जनता में परिवर्त्तन होगा.

तीसरे ने कहा : जनता के परिवर्त्तन से देश में परिवर्त्तन होगा.

चौथे ने कहा : देश में परिवर्त्तन से विरोधी दलों में परिवर्त्तन होगा.

पाँचवे ने कहा : विरोधी दलों में परिवर्त्तन से कांग्रेस में परिवर्त्तन होगा.

छठे ने कहा : कांग्रेस में परिवर्त्तन से प्रधान मंत्री में परिवर्त्तन होगा.

'यानी' सभी एक साथ बोल पड़े.

सातवें ने कहा : प्रधानमंत्री में परिवर्त्तन का अर्थ यह है कि वह अपनी चिंता छोड़ देश की चिंता करने लगेगी.

सत्यप्रिय माथुर, हाथरस

अंतरराष्ट्रीय व्यापार : शायद आपने सुना हो कि पश्चिमी देशों में भाँग के प्रति प्रेम बढ़ता जा रहा है और चोरी-छिपे भाँग का व्यापार होने लगा है. कुछ दिन पहले तक इंग्लैंड में आमों के टोकरों में भाँग भेजी जाती थी. टोकरों में पत्तियों की जगह भाँग की पत्तियाँ लगायी जाती थीं जिन्हें निकाल कर चोरी-छिपे बेचा जाता था. एक बार एक सरदार कुली ने उन्हें पहचान कर खुशी से नाचना शुरू कर दिया और यह भेद खुल गया. भारत सरकार स्वयं क्यों नही भाँग का व्यापार करती. ठंडई के रूप में, गोलियो के रूप में सारी दुनिया में उस की खपत कर सकती है और पर्याप्त विदेशी मुद्रा कमा सकती है. एल. एस. डी. कैनाबिस जैसे मादक द्रव्यों पर अन्तरराष्ट्रीय व्यापार के अंतर्गत जो प्रतिबंध लागू है वह भाँग पर नही लगाया जा सकेगा. आखिर भाँग शराब से तो बुरी नहीं है. उसे और अधिक गुणकारी बना कर विदेशों में बेचा जा सकता है.

—विजयापति, उन्नाव

निक्सन और जनसंघ : अमेरिका में नये राष्ट्रपति के चुनाव से जनसंघ बहुत प्रसन्न है. यह घोषणा शंकरबूटी छाने हुए यहाँ के एक कार्यकर्त्ता ने भरी सभा में की. उस ने कहा 'निक्सन के राष्ट्रपति होने पर अब संसार में कट्टरपंथियों का रास्ता खुल गया है. सभी देश पुरातन शक्तियों की ओर लौटेंगे भारत में जनसंघ की शक्ति मज़बूत होगी'. एक श्रोता ने पूछा सो कैसे? उसने कहा 'कैसे का जवाब राजनीति में नही दिया जाता. जब देखोगे तब पता चल जायेगा'. दूसरे श्रोता ने पूछा 'आखिर क़ब देखेंगे?' उस ने कहा : यह गुप्त बातें है खुली सभा में बताकर तुम हमारा प्रोग्राम चौपट करना चाहते है. हम गुप्तचरों से सतर्क रहते हैं ?' जनसंघ में परिवर्त्तन हो या न हों हम ने देखा जनसंघ कार्यकर्त्ता में अवश्य परिवर्त्तन हो गया है. वह सतर्क रहने लगा है (कम से कम मध्यावधि चुनावों के बाद)

विजन विहारी,' अकोला

बाल-साहित्य लेखक : हिंदी में सब से अधिक दिलचस्प स्थिति बाल-साहित्य लेखन की है. साहित्य लेखक और बाल-साहित्य लेखक अलग अलग श्रेणियों के लेखक माने जाते है. साहित्य लेखक को यश मिलता है बाल-साहित्य लेखक को पैसा. इधर दोनो एक दूसरे के क्षेत्र में अतिक्रमण करने लगे है. डा. **लक्ष्मीनारायण लाल, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश** जैसे तमाम लेखक पैसों के लिए बाल-साहित्य की पत्रिकाओं में लिखने लगे हैं. और **योगराज थानी. हरिकृष्ण**

आज दिल्ली कहीं स्वच्छ, सुन्दर व सुखी नगर है।

कोई भी प्रशासन इन बातों पर गर्व कर सकता है ।

- यातायात के लिए सड़कों पर आज अधिक बसें चल रही हैं ।
- जनता को अपनी पसंद का गेहूं चावल देने के लिए धीरे-धीरे राशन व कंट्रोल की समाप्ति ।
- स्कूल शिक्षा के ढांचे में क्रांतिकारी परिवर्तन एवं हायर सेकेण्ड्री स्कूलों में विज्ञान शिक्षा के लिए अधिक सुविधा तथा अधिक वैज्ञानिक पुस्तकालयों की व्यवस्था ।
- १० नये कॉलेज, २४ हायरसेकेण्ड्री स्कूल व ६ मिडिल स्कूल खोलना ।
- जमीन की कीमतों में भारी गिरावट ।
- कम व मध्यम आय वाले वर्ग के लिए २० रु० से ३८ रु० प्रति .८३६ वर्ग मीटर के दाम पर लाटरी द्वारा प्लाट देना ।
- सहकारी समितियों के लिए शीघ्रता से जमीन तथा किश्तों पर निर्मित मकानों की बिक्री ।
- व्यापार में एकाधिकार का सफाया ।
- टैक्सी व स्कूटर ड्राइवरों द्वारा अधिक किराया लेने व सवारियों के साथ दुर्व्यहार रोकने के लिए कारगर कार्रवाई ।

भविष्य में और अधिक सेवा के लिए कृत संकल्प !

जन सम्पर्क निदेशालय, दिल्ली प्रशासन, दिल्ली द्वारा प्रसारित

देवसरे जैसे लेखक साहित्य लेखकों के समान यश और प्रतिष्ठा प्राप्त करने का स्वप्न देखने लगे हैं. अपने-अपने क्षेत्र में ये प्रसन्न क्यों नहीं हैं ? होली के अवसर पर साहित्य लेखकों को बच्चों के साथ हुड़दंग में शामिल होना चाहिए और हमारा सुझाव है बच्चों के सामने यदि वे डटे रह सकें तभी उन्हें बाल-साहित्य में डटने देना चाहिए. बाल-साहित्य लेखकों को डा. नगेन्द्र जैसे समीक्षकों के पास जाकर कुछ बौद्धिक स्तर पर रस-अलंकार के वाद-विवाद में भाग लेना चाहिए वहाँ प्रतिष्ठित होने पर ही इन्हें साहित्य में प्रतिष्ठा दी जानी चाहिए.

बालकराम भगत, कानपुर

वसंत मेला वसंत पंचमी की रात 'सरस्वती पूजन' के लिए अबीर-गुलाल की जरूरत पड़ी. विधिवत् पूजन के लिए यह आवश्यक है. आठ बज चुके थे. दुकानें बंद हो चुकी थीं. सोचा दिल्ली नगर निगम वसंत मेला कर रहा है वहाँ तो मिल ही जायेगा. लेकिन वहाँ पहुँचने पर लगा उस वसंत मेले का वसंत से कोई संबंध नहीं है. न वसंत ऋतु से न वसंत पंचमी के धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतीक से. अबीर-गुलाल तो दूर की बात एक पीला रूमाल तक कहीं नहीं. जुए और फ़ैशन की दुकानें ही चारों तरफ़. समझ में नहीं आया मेले को वसंत से जोड़ने की क्या जरूरत थी जब वसंत के प्रति कहीं कोई सांस्कृतिक दृष्टि ही नहीं ? रघुवीर सहाय की कविता याद आयी 'वसंती रंग जानते थे न पंसारी न मुसद्दी लाल . . .' एक अधिकारी से पूछने पर पता चला कि ईद मेला की तरह ही वसंत मेले को भी हम धर्मनिरपेक्ष रखना चाहते हैं, ऐसा रूप देना चाहते हैं जिस से हिंदू-मुसलमान दोनों ही उस में रस ले सकें. क्या हिंदू-मुसलमान दोनों को एक-दूसरे की संस्कृति का सही रूप परिचित करा कर उस के प्रति एक दूसरे में सम्मान का भाव जगाना ग़लत प्रकार की एकता का परिचय देना है ? संस्कृतियों को नष्ट कर के जो एकता प्राप्त की जा रही है वह क्या संस्कृतियों को अपना कर प्राप्त की गयी एकता से घटिया होती ? 'सब एक हैं' दिखाने के लिए सब का सिर काट देना जरूरी नहीं है. हर त्योहार की अपनी आत्मा, अपना रंग जीवित रख कर एक-दूसरे में उस के लिए प्रेम और सम्मान का भाव जागृत रखना ही सच्ची एकता है. वसंत और ईद मेले इसी रूप में किए जाने चाहिए अन्यथा मेला ही काफ़ी है. राजधानी में और होता ही क्या है ?

दुर्गावतीसिंह, नयी दिल्ली

राष्ट्रीय त्योहार हमारे देश में जब राष्ट्रीय पक्षी और राष्ट्रीय चिन्ह सभी कुछ है तो राष्ट्रीय त्योहार क्यों नहीं ? मेरे विचार से होली को राष्ट्रीय त्योहार घोषित कर दिया जाना चाहिए. यही एकमात्र ऐसा त्योहार है जो जात-पांत, छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब किसी तरह का कोई भेदभाव नहीं रखता. सभी दीवारें तोड़ता है. यदि यहाँ भी धर्मनिरपेक्षता की चिंता सताती हो तो यह जानना चाहिए कि मुसलमान और ईसाई दोनों धर्मावलंबियों की बहुत बड़ी संख्या यह त्योहार मनाती आ रही है, मनाती है और मनाती रहेगी, यदि धर्मनिरपेक्षता को जबरदस्ती बीच में न खड़ा किया जाये. आशा है इस ओर ध्यान दिया जायेगा.

—स्वदेश रंजन मित्र, नैनीताल

मध्यावधि : चुनाव के परिणाम अत्यंत चिंताजनक हैं. किसी भी राज्य में किसी भी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला. किसी भी राज्य की सरकार स्थायी नहीं होगी. हम अंधकार से और ज्यादा अंधकार में चले गये हैं. आखिर कब तक राज्यपाल के शासन वाला संसदीय प्रजातंत्र हम इस देश में चलाते रहेंगे ? तीन वर्ष पश्चात् जब केंद्र की सरकार में भी किसी भी दल का स्पष्ट बहुमत नहीं रहेगा तब इस देश को टूटने और बिखरने से कैसे रोका जा सकेगा. मेरी शंका है कि यह संसदीय व्यवस्था कहीं भारत में प्रजातंत्र के प्राण ही न ले ले. भारत के राजनीतिक दलों के जंगल में—जिस में दूर-दूर तक राजनीतिक ध्रुवीकरण की आशाएँ नहीं हैं—संसदीय प्रजातंत्र नहीं चल सकता. मेरी राय है कि (१) भारत का संविधान जिस शासन प्रणाली की व्यवस्था करता है, उसे बदलना बहुत आवश्यक है, क्यों कि भारत जैसा ग़रीब देश बार-बार मध्यावधि चुनाव का बोझ नहीं उठा सकता. (२) मध्यावधि चुनावों के बाद भी स्थायी सरकारें नहीं बनती (३) राज्यों की सी अस्थिरता और अव्यवस्था जब केंद्र तक पहुँचेगी, तो सारा प्रशासन चौपट हो जायेगा और देश में अराजकता की स्थिति आ सकती है. सैनिक तानाशाही भी आ सकती है.

—ओम् नागपाल, मुरैना

'डाकू पुलिस गठबंधन' : यहाँ जन सुरक्षा समिति के संयोजक एवं सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री छोटेलाल भारद्वाज ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि 'डाकुओं से रक्षा' की माँग करने वाली मुट्ठी भर निरीह जनता की दानवी तरीक़े से पुलिस द्वारा जो पिटाई की गयी उस से ४ व्यक्तियों के मारे जाने की अभी तक खबर है. मृतकों में से ३ जवान एवं १ वृद्ध है. अंबाह के संबंध में उन्होंने बताया कि धनीराम नामक हरिजन छात्र की एक आँख फोड़ दी गयी है. मुरैना में कई महिलाओं, बच्चों, वृद्धों एवं जवानों को पुलिस ने पकड़-पकड़ कर एवं किवाड़ों को तोड़ कर घरों में घुस-घुस कर इतनी बेरहमी से मारा है कि २-३ कोठों के भीतर खून फैला हुआ देखने को मिला. मुरैना नगर में इस समय तमाम प्लास्टर चढ़े टूटे हाथ और पट्टियाँ बंधे सिर लिए हुए सैकड़ों घायलों का दृश्य देख कर ऐसा लगता है जैसे आजादी के २० साल बाद २६ जनवरी का त्योहार मनाने को खूंख्वार नादिरशाह मुरैना में उतर कर आया और उस ने निरीह नागरिकों के खून से जी भर कर होली खेली.'

पता नहीं कि इस खूनी होली के छींटे २४ मील दूर ग्वालियर के रंग महल (राजमहल) में पहुँचे या नहीं. अगर २६ जनवरी १९६९ को मुरैना के घायल नागरिकों को जिस तरह सकलेचा जी की पुलिस ने प्रसाद बाँटा है वही संविद का असली स्वाद है तो मैं उस दिन के इंतज़ार में हूँ जब मुरैना की सड़कों पर फैला यह खून रंग लायेगा और इतिहास सामंतवाद के खूंख्वार पन्नों में मुरैना की इन ४ लाशों को भी जोड़ेगा. मुरैना जिले के बहादुर नागरिकों एवं विद्यार्थियों ने इतने भीषण जुल्म के बाद भी अपने मनोबल को क़ायम रखा और जुल्मी हुकूमत को मजलूमों के सामने झुकना पड़ा. यह हमारे इस आंदोलन का सब से अधिक गर्व का विषय है. साढ़े नौ लाख जनता के एक स्वर में 'डाकू पुलिस गठबंधन' के अत्याचार की कलई खोल दी और प्रशासन की सामंती व नौकरशाही मनोवृत्ति को पराजित कर दिया. यह इस जिले की जनता की बहादुरी और एकता का जीता-जागता स्वरूप है. संविद शासन में जो भी अच्छे तत्व हों उन से मेरा आग्रह है कि इस महान् जन आंदोलन की भावना को समझें और सत्ता से मुंदी हुई पलकें खोल कर ग्वालियर संभाग के ३० लाख लोगों की जान-माल की रक्षा करें अन्यथा मुरैना की यह आग सारे ग्वालियर संभाग में फैलेगी.

—छोटेलाल भारद्वाज, मुरैना

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

'अगली बार जब कोई केंद्रीय मंत्री हमारे नगर में आये तब तुम्हें मेरे लिए कम-से-कम आधा दर्जन नाइलन की साड़ियाँ लानी होंगी'

प्रश्न-चर्चा–५३

निर्णायक का प्रतिवेदन

हमारा प्रश्न था "कल्पनाशील सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि केंद्रीय पर्यटन विभाग जिज्ञासु विदेशी सैलानियों को भारत खींच लाने के लिए होली के हुड़दंग का विज्ञापन करना चाहता है. इस विज्ञापन का सांस्कृतिक मसविदा ३०० शब्दों के भीतर लिखा जाये तो वह क्या होना चाहिए'.

विज्ञापन के मसविदे काफ़ी संख्या में प्राप्त हुए जिस से यह भी पता चला कि हमारे संवादी होली के मूड में है. लेकिन एक भी मसविदा पूरी तरह संतोषजनक नहीं था. हम ने सोचा कि क्यों न हम यह विज्ञापन ही दे दें कि 'ज़रूरत है अच्छे संवादियों की जो होली के हुड़दंग का आकर्षक मसविदा जिज्ञासु विदेशी सैलानियों के लिए तैयार कर सकें'. लेकिन सवाल यह था कि यह विज्ञापन हम देते कहां ? लगता है संवादी होली के मूड में अपने को संयत नहीं रख सके. कुछ के विज्ञापन ऐसे थे जो घोर संजीदा थे जिस में होली के सांस्कृतिक महत्त्व पर ही टिप्पणी की गयी थी और कुछ ऐसे भी थे जो हुड़दंग को ऐसी सीमा तक ले गये थे जिसे देख कर दंग रह जाना पड़ा. कुछ संवादियों ने इस मौक़े का फ़ायदा उठा कर तीखे कटाक्ष और व्यंग्य आज की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति पर किये, हास्य नदारद था. कुछ ने विज्ञापन की सटीक भाषा और विधि तो अपनायी पर कथ्य उन के पास नहीं था. ऐसे सभी संवादियों को हम होली पर निराश नहीं करना चाहते और विशेष रूप से उन्हें अपनी शुभकामनाएँ और स्नेह भेजते हैं.

राजेंद्र प्रसाद जैन (भवानी मंडी, राजस्थान) ने विज्ञापन के अपने मसविदे में यह भी लिखा है 'राजधानी में रामलीला मैदान में गधों की रेस का आयोजन किया गया है रेस में सर्वप्रथम आने वाले सैलानी का मुंह डामर से पोत कर उस का सार्वजनिक अभिनंदन किया जायेगा और एक सुंदर गधे का बच्चा भेंट किया जायेगा. **सियाराम यादव** (फरूखाबाद) का मसविदा है "चल बेटा भारत, छोड़ मफ़िया और एल. एस. डी. सज्जनों यह भाषा का नहीं भांग का कसूर है, शंकरबूटी का, जिस के सामने एल. एस. डी. फ़ीकी पड़ जायेगी". **मनोहरलाल त्रिखा** (मेरठ) ने लिखा है, "निकालिये गुब्बार दादी नानी के ज़माने का. वो सब गालियां जो अब आप के यहां नहीं चलतीं उन्हें सुना जाइये दे जाइये. 'होली है होली है'. **राजेंद्र प्रसाद जैन** (तिस्सा) : "होली ऐसी चुटीली कि आप को निकलना ही पड़ेगा. रंग और गुलाल में सर से पाँव तक रंग जाना होगा और होली के हुड़दंग करने वालों को मिठाई खिलानी ही होगी". **विकासचंद्र शुक्ल** (इंदौर): 'आज के दिन भारत में आधुनिक कला के चलते-फिरते नमूने सारे देश में दिखायी देते हैं. हर भारतीय प्रकृति को चुनौती देता है. वेशभूषा एवं चाल-ढाल के आधार पर किसी को पहचानना कठिन होता है". **विमलचंद जैन** (भागलपुर) : "होली पर दिल्ली में महामूर्ख सम्मेलन का आयोजन किया जायेगा जिस में मोरारजी देसाई को स्वर्णयुग विनाशक और इंदिरा गांधी को कामराज मर्दिनी की उपाधियाँ दी जायेंगी. गधे के पुजारी काका हाथरसी और मशहूर शायरा तारकेश्वरी सिन्हा सम्मिलित होंगी". **कृत्यानंद प्रसाद** (भागलपुर) : "बुंदेलखंड के अहीर लट्ठबाजी का प्रदर्शन करेंगे. महर्षि महेश योगी मोक्ष प्राप्त करने के गुर बतायेंगे और राज नारायण सिंह का भूख हड़ताल तथा घेराव का कार्यक्रम होगा ". **राजनारायण द्विवेदी** (भोपाल) "विदेशी सैलानियों को जो इस हुड़दंग में सर्वश्रेष्ठ घोषित किये जायेंगे उन्हें भारत में 'हुड़दंग पंचवर्षीय योजना' में शामिल कर लिया जायेगा. पाँच साल तक हुड़दंग मचाने का उन्हें पूरा मौक़ा दिया जायेगा क्यों कि भारत की जनता देशी हुड़दंगबाज़ों से ऊब-सी गयी है. **महावीर प्रसाद पुरोहित** (सीकर): 'राह चलते हुओं पर मकानों की छतों पर से रंग भरे गुब्बारे ठीक वैसे गिरेंगे जैसे शत्रु सैनिकों पर हथगोले. साथ ही चूड़ियों की झंकार भी सुनाई देगी जिस से क्रोध शांत हो जायेगा'.

देवेंद्र आले (कांगड़ा) व्यंग्य के साथ हुड़दंग का चित्र खींचते हैं, 'रंग के साथ कभी यह खून से भी रंग जाते हैं. भूखे नंगों का रूप भी रंग से लाल होता है. रूप से बेरूप हो कर रंग से चेहरा छिपा कर यह लोग हुड़दंग मचाते हैं. नोच-खसोट, छीना-झपटी का पागलपन सवार रहता है. और यह खुद को भूल जाते हैं.

जयवल्लभ पंत (पिथौरागढ़) वे विज्ञापन का मसविदा इस प्रकार दिया है : 'भांग, गांजा, चरस सर्वत्र प्राप्य है. हिप्पियों एवं बीटल बंधुओं के लिए विशेष सुविधाजनक रूप में रियायती दर पर. इस अवसर पर कवि सम्मेलन और मुशायरा भी होगा जिस में प्रसिद्ध कवि चाँद पर और मशहूर शायरा चाँद के दीवानों पर अपनी कविता सुनायेंगे. मगरमच्छ के आँसू, हड़ताल संहिता, कुर्सी का नशा, दफ़ा-१४४ आदि नाटक खेलें जायेंगे. कांग्रेस और विरोधी दलों के बीच रस्साकशी, छात्र और पुलिस तथा पुलिस और छात्र के बीच घूंसेबाज़ी (बाक्सिंग) का मैच भी होगा". **प्रफुल्ल नीलोसे** (भोपाल) का विज्ञापन इस प्रकार है : "क्या आप ने कभी स्वयं को भाँति-भाँति के रंगों में रँगा हुआ पाया है ? क्या आप ने अपने चारों ओर प्रत्येक को रंगों में डूबा हुआ पाया है? क्या आप ने देश के समस्त नेताओं को रंगों में सराबोर देखा है? क्या आप ने अबालवृद्ध नर-नारी सभी को खुलें आम सड़कों पर हुड़दंग करते व नाचते गाते देखा है ? क्या आप ने कभी अपनी साली अथवा भाभी को पकड़ कर नहलाया है ? यदि नहीं तो आइये; भारत व भारत की जनता आप को सस्नेह होली की हुड़दंग में शामिल होने के लिए आमंत्रित करती है, अपने हाथों में अबीर, गुलाल व रंगों से भरी पिचकारी लिए, आप को स्नेह के रंगीन सागर में डूबा देने के लिए, आप को मस्तियों में डुबाने के लिए, आप को वास्तविक स्वच्छंदता की याद दिलाने के लिए ताकि जब आप स्वदेश लौटे तो भारत की होली की हुड़दंग की रंगीन यादें आप के बोरियत के समय को भी रंगीन बना दें".

प्रथम पुरस्कार : ३० रुपया

भारत ! रहस्यमय, रोमांटिक पूर्वी प्राचीन देश

आप को आमंत्रित करता है—

अपने प्रमुख राष्ट्रीय त्योहार होली में

ज्ञातव्य है—यह त्योहार हिंदू धर्म का माना जाता है, (हिंदू : जो अपने को गौमाता का पुत्र समझे, पूज्य गुरु जी पर आस्था रखे, पाकिस्तान को भारत में मिलाने का स्वप्न देखे) किंतु होली में हमारे मुसलमान राष्ट्रपति की फ्रेंच कट दाढ़ी में सतरंगी बहार देखें. होली !

बीटनिक, हिप्पी आदि सांस्कृतिक आंदोलनों का मूल, इन की जननी होली ही है. साथ ही होली का मुख्य उपहार—हिंदुओं के देवाधिदेव शिव जी की बूटी-विजया, जिस के नाती-पोते आज चरस, गाँजा, एल. एस. डी, मारिजुआना आदि बन कर संसार विजय कर रहे हैं. होली!

इस में आप के सात खून माफ़ रहेंगे. (नोट : यह मात्र एक मुहावरा ही है) आप जिसे चाहें गालियाँ दें, रंग नहीं, पानी-कीचड़ डालें, अबीर नहीं धूल झोंक दें, सब क्षम्य है (नोट : रंग अबीर के अतिरिक्त अन्य वस्तुएँ यहाँ भरपूर मिलेंगी),

पर्यटकों को मथुरा-बरसाने की होली दिखायी जायेगी, जिस से उन की दृष्टि में इस पिछड़े देश में भी महिला प्रधानमंत्री की उपलब्धि का रहस्य खुल जायेगा. (पत्रकारों के लिए स्वर्णावसर!)

हिप्पी पर्यटकों को 'हरे रामा, हरे रामा' के बदले यहाँ कबीर होली के भँडौवे आदि रटाये जायेंगे.

होली में मालपुए, हलवे, दही बड़े, पूड़ी-मिठाई आदि का आनंद उठायें (नोट : अधिक मालपुए आदि गरिष्ठ भोजन के कारण पेट गड़बड़ाने का उत्तरदायित्व पर्यटकों का ही रहेगा). भांग इच्छानुसार पी सकते हैं. मौज में आने पर चेहरे पर कालिख-चूना आदि मल कर के परंपरागत भारतीय होली-वाहन वैशाखनंदन की सवारी का लोकोत्तर आनंद भी उठाया जा सकता है (नोट : वैशाखनंदन एक धर्मभीरू, दार्शनिक प्रख्यातभारतीय जंतु है. होली में इस की सवारी का बड़ा ही महत्त्व है).

पर्यटक देखेंगे कि किस प्रकार हम विभिन्न रंगों को एक में मिला कर के संसार की राजनीति को नया संकेत देते हैं. हां, वे पहले

खजुराहो दर्शन कर के इस पर्व की पृष्ठभूमि समझ लें.

विशेष ज्ञातव्य : पर्यटक अखिल भारतीय महामूर्ख सम्मेलन में अवश्य ही पधारें. इस पुनीत अवसर पर हम भारतवासी अपने कम से कम एक गुण की तो व्यापक स्वीकृति देते हैं.

होली ! होली!! होली!!!

अवश्य आयें! अवश्य देखें!! अवश्य आनंद उठायें!!!

चंद्रमोहन प्रधान,
प्राचार्य, ज्ञान कला केंद्र,
आमगोला, मुजफ़्फ़रपुर

अतिरिक्त पुरस्कार
२०-२० रु०

(१)

केंद्रीय पर्यटन विभाग भारत जिज्ञासु सैलानियों को होली के हुड़दंग के अवसर पर सहर्ष आमंत्रित करता है. हम आप को दिखायेंगे—

(१) ब्रज की लट्ठमार होली : भारत की ग्रामीण गोपियाँ पाश्चात्य सभ्यता से कई क़दम आगे हैं और थीं, का ज़ीता-जागता सजीव प्रमाण. इस के अंतर्गत गोपियाँ मस्ती से झूमते ग्वालों पर लट्ठ प्रहार करती हैं.

विशेष : आप की सुरक्षा का पूर्ण प्रबंध रहेगा.

(२) गाँव की होली : कहावत है कि... साल बाद घूरे के भी दिन फिरते हैं. गाँव में घुसते ही आप का स्वागत नाली के बोदे से परिपूर्ण कपड़े या लत्ते द्वारा किया जायेगा. जिस कूड़े को छुआ नहीं जाता था उसे आज बदन में लिपटा देखिए.

विशेष : हम गंदगी दिखाने से शर्माते नहीं हैं. हमीं ने मि. मैकमिलन को कलकत्ते की गंदी बस्तियों में घुमाया था.

(३) महामूर्ख सम्मेलन : होली का विशेष महोत्सव—अध्यक्षता मूर्ख विभूषण द्वारा इस समारोह में आप मूर्ख श्री, मूर्ख भूषण, महा-मूर्खाधिराज, मूर्खाधिपति आदि महान हस्तियों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे.

विशेष : दाढ़ी दल के निर्माता काका हाथरसी व उन के समर्थकों की उपस्थिति उल्लेखनीय है.

इस के अतिरिक्त अन्य अनेक आकर्षक दृश्य.

खाइए गुझिया : एक मौसमी पकवान. यह होली में हर घर में बनता है बशर्ते उन में बनाने की हैसियत हो. मैदा की पर्त में खोया से ले कर छोटे-छोटे कंकड़ तक. स्वाद. खा कर देखिए.

और कुछ विशेष : देखिए रंग से सराबोर रंग बिरंगे झुंड जिन्हें आप का कैमरा अपने में अंकित करने को बाध्य हो जायेगा.

सुनिए : उन की मस्त स्वर लहरी.

और अंत में : सुनहरा अवसर.

एक सैलानी की कमीज़ होली के अवसर पर रंग-बिरंगी हो गयी. उस ने उस कमीज़ की कटिंग कर के रंगे भाग को फ्रेम करा लिया और मॉडर्न आर्ट प्रतियोगिता में प्रथम स्थान प्राप्त किया.

शायद अब यह सौभाग्य आप को प्राप्त हो.

तो आइए. हम हाथ में गुलाल और दिल में प्यार ले कर अपने सैलानी दोस्तों को आमंत्रित करते हैं. प्रतीक्षा में.

—तृषित गोयल,
२।२५६, नवाब गंज, कानपुर—२

(२)

पर्यटकों के लिए अभूतपूर्व आकर्षण—होली के विशेष अजीबो गरीब हुड़दंग, जो न देखे होंगे, न सुने होंगे—इस बार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आयोजित हैं. कुछ बानगी देखिए :

मध्यप्रदेश में गोविंदनारायण सिंह की नयी कलाबाजी, जनसंघ और राजमाता का संयुक्त बाल डांस, द्वारकाप्रसाद मिश्र का अदृश्य सत्याग्रह.

उत्तर प्रदेश में चंद्रभानु गुप्त के नये पैंतरे—चरणसिंह की नयी चालें और संसोपा-जनसंघ का मरसिया नृत्य.

बंगाल में देखिए कामरेडी करिश्मे—अजय मुखर्जी और ज्योति बसु की पिचकारियाँ—अतुल्य घोष के घड़ियाली आँसू...

पंजाब में साँझा मोर्चा का नया नृत्य—यहाँ जनसंघ, अकाली व कम्युनिस्ट एक-दूसरे की कमर में हाथ डाल कर फाग खेलेंगे.

और बिहार में ... वह तो आप देख कर ही मजा ले सकेंगे.

गांधी शताब्दी वर्ष की होली में देखिए गांधीवाद की होली.

और राजधानी दिल्ली में अभूतपूर्व संसदीय दंगल. राजनारायण एंड कंपनी के नये करिश्मे—विश्वास-अविश्वास का युद्ध, कामराज, के नये काम और मोरारजी की कलाबाज़ियाँ.

... पर मुद्रा कुछ ज़्यादा लाइए. हो सकता है रेल-यात्रा कुछ महँगी हो जाये, डाक दरें कुछ बढ़ जायें, सिगरे, सिगार, सुरा की क़ीमत भी बढ़ सकती है. पर इस से घबड़ायें नहीं—यह अति-रिक्त व्यय से आप को जो आनंद प्राप्त होगा उस के सम्मुख नगण्य है.

आइए—अवश्य आइए, आप हमारे सम्मानीय अतिथि होंगे—हम मृदु मुसकान से आप का स्वागत करेंगे. स्वागत—स्वागत—स्वागत.

—ऊर्मि मिश्रा
१३३, मालवीय नगर, भोपाल-३

पिछले सप्ताह

(१३ फ़रवरी से १९ फ़रवरी, १९६९ तक)

देश

१३ फ़रवरी : प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा अपने मंत्रिमंडल में फेर-बदल. सरदार गुरनाम सिंह पंजाब अकाली दल के विधान मंडलीय नेता निर्वाचित.

१४ फ़रवरी : कांग्रेस द्वारा बिहार में सरकार बनाने के प्रयास. आंग्रे किश्ती प्राप्त. अतुल्य घोष द्वारा कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से अपना त्यागपत्र वापस.

१५ फ़रवरी : अकाली दल के नेता गुरनामसिंह का राज्यपाल डॉ. पावटे से संयुक्त मोर्चे की सरकार के गठन के बारे में विचार-विमर्श.

१६ फ़रवरी : राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसेन द्वारा ग़ालिब शताब्दी संबंधी समारोहों का उद्घाटन.

१७ फ़रवरी : संसद का बजट अधिवेशन राष्ट्रपति के अभिभाषण से शुरू. पंजाब में संयुक्त मोर्चे के मुख्यमंत्री गुरनामसिंह तथा अन्य पाँच मंत्रियों द्वारा शपथ-ग्रहण.

१८ फ़रवरी : लोकसभा में मंत्रिमंडल के विरुद्ध अविश्वास-प्रस्ताव बहस के लिए मंज़ूर.

१९ फ़रवरी : पिछले चार वर्षों में पहली बार लाभ का रेलवे बजट संसद के पेश. रेल के भाड़े में कोई वृद्धि नहीं.

विदेश

१३ फ़रवरी : एयर मार्शल असग़र ख़ाँ की लरकाना में ज़ुल्फ़िक़ार अली भुट्टो से बातचीत.

१४ फ़रवरी : भुट्टो द्वारा आमरण अनशन शुरू. स्वेज नगर के सर्वेक्षण के लिए संयुक्त अरब गणराज्य सहमत.

१५ फ़रवरी : भुट्टो की हत्या करने का विफल प्रयास. ढाका में बंदियों पर गोलीबारी से दो बंदी घायल. नव वर्ष के अवसर पर दक्षिण वीएतनाम द्वारा २४ घंटे की युद्ध-बंदी की घोषणा.

१६ फ़रवरी : पाकिस्तान के विरोधी आठ दल राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ से बातचीत करने के लिए सहमत.

१७ फ़रवरी : प्रसिद्ध पत्रकार किंगसले मार्टिन का काहिरा में देहांत. पाकिस्तान में ताज़ा दंगे.

१८ फ़रवरी : भुट्टो तथा पाकिस्तान के अन्य प्रतिपक्षी नेता अय्यूब से बातचीत करने को असहमत.

१९ फ़रवरी : नेपाल के लिए संसदीय प्रणाली उपयुक्त नहीं... नरेश महेंद्र की घोषणा.

भारत मध्यावधि चुनावों के बाद

भारत के मध्यावधि चुनाव परिणामों से अमेरिकी पत्र **न्यूयार्क टाइम्स** ने यह निष्कर्ष निकाला है कि भारत और प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के लिए अभी और कठिन समय आने वाला है. पत्र ने अपने संपादकीय में लिखा है.

'उत्तर प्रदेश में कांग्रेस की स्थिति सुदृढ़ हुई है जिस का मतलब यह हुआ कि इस राज्य के मतदाताओं ने उन संकीर्ण सांप्रदायिक अपीलों पर कोई ध्यान नहीं दिया जो भारत में हिंदू-मुस्लिम तनातनी वढ़ाने और भारत तथा पाकिस्तान के संबंध खराव करने के लिए ज़िम्मेदार हैं. लेकिन कम्युनिस्ट नेतृत्व प्रधान राज्य, पश्चिम बंगाल में कांग्रेस की पराजय चिंताजनक वात है. यहाँ मतदाता का कांग्रेस विरोध इतना प्रकट नहीं होता जितनी कि कम्युनिस्ट नेतृत्व में उस की आस्था व्यक्त होती है.

चाहे जो भी हो ये मध्यावधि चुनाव लोकतंत्र प्रणाली को वनाये रखने की भारत की क्षमता का प्रतीक हैं. भारत के आकार और उस की अनेक पेचीदा समस्याओं को देखते हुए यह कोई कम सराहनीय वात नहीं है कि लोकतंत्र प्रणाली भारत में क़ायम है. पड़ोसी देश पाकिस्तान की घटनाओं को देखते हुए तो यह और भी वड़ी उपलब्धि है.

इसी प्रश्न पर ब्रितानी पत्र **इकानामिस्ट** की राय कुछ और है. इस पत्र के विचार में मतदाताओं के निर्णय से यह प्रतीत होता है कि भारतीय मतदाता राष्ट्रीयता से दूर हो कर प्रादेशिक और जातिगत निष्ठाओं के अधिक निकट आता जा रहा है. पत्र ने लिखा है.

'भारत के मध्यावधि चुनावों ने कांग्रेस पार्टी को एक और आघात पहुँचाया है. पश्चिम बंगाल और पंजाव तो कांग्रेस के हाथ से १९६७ में ही जाता रहा था. इस वार इन राज्यों में कांग्रेस अकेली सव से वड़ी विरोधी पार्टी के रूप में भी सामने नहीं आ सकी. जहाँ तक विहार और उत्तर प्रदेश का संबंध है. वहाँ कांग्रेस की स्थिति पहले से कुछ अच्छी भले ही रही हो पर इन राज्यों को राजनैतिक स्थिरता प्रदान करने में कांग्रेस असमर्थ है. उत्तर प्रदेश में कांग्रेस के दूसरे दलों से मिल कर सरकार बनाने की संभावना हो सकती है पर विहार में तो १९६७ जैसी ही स्थिति रहेगी.

पश्चिम वंगाल में कम्युनिस्ट नेतृत्व में फिर वही संयुक्त मोर्चा सरकार वनेगी. श्रीमती गांधी के सामने फिर मुसीवत खड़ी होगी. कुछ ऐसी ही दिक़्क़त का सामना पंजाव में भी आयेगा जहाँ अकाली-जनसंघ सम्मिलित सरकार बनायी जा रही है. दोनों ही राज्यों की सरकारों के वारे में वही पुरानी समस्या है. इन मध्यावधि चुनावों में अकेले कांग्रेस पार्टी को ही आघात नहीं पहुँचा है. पश्चिम वंगाल को छोड़ मध्यावधि चुनाव वाले अन्य राज्यों में कम्युनिस्ट पार्टी को भी गहरा धक्का लगा है. उत्तर प्रदेश और पंजाव में तो कम्युनिस्टों की वुरी तरह हार हुई है. उधर हिंदूवादी संस्था जनसंघ की उत्तर प्रदेश और पंजाव में स्थिति वहुत अच्छी नहीं रही है पर विहार में उसे कुछ सफलता मिली है.

इस मध्यावधि चुनाव में एक वात वहुत स्पष्ट रूप से सामने आयी है और वह यह कि कि मतदाता का झुकाव राष्ट्रीय संस्थाओं के वजाय प्रादेशिक और जातिगत पार्टियों की तरफ अधिक रहा. यह वात पंजाव में अकाली दल की सफलता से और उत्तर प्रदेश में भारतीय क्रांति दल की सफलता से अधिक स्पष्ट होती है. विहार में भी अगर अखिल भारतीय दलों के वजाय स्थानीय दल होते तो स्थिति शायद दूसरी ही होती.

मध्यावधि चुनावों के संदर्भ में पश्चिमी देशों का विश्लेषण भारत के लिए राजनैतिक-संकट की भविष्यवाणी करता है तो अफ्रीकी देशों के पत्रों की राय में भारत आर्थिक प्रगति के पथ पर है. केन्या के प्रमुख पत्र ईस्ट अफ्रीकन स्टैंडर्ड ने 'भारत के अच्छे दिन' शीर्षक से अपने संपादकीय लेख में भारत की भावी समृद्धि का चित्र प्रस्तुत किया है. इस पत्र की राय में भारत के सुख समृद्धि के दिन अव शुरू हो गये हैं. पत्र का कहना है.

'दिल्ली से प्राप्त ताजा आंकड़ों से पता चलता है कि पाकिस्तान के साथ विवाद, चीन के साथ युद्ध, वाढ़, सूखा, जन-संख्या वृद्धि तथा ऐसी ही अनेक वातों से उत्पन्न निराशाजनक स्थिति के वाद अव भारत के उज्ज्वल भविष्य की संभावनाएँ अचानक वढ़ गयी हैं.

सन् १९६७ में आर्थिक संकट से मुक्ति की जो प्रक्रिया आरंभ हुई थी वह जारी है और निर्यात तथा अन्य क्षेत्रों में भी आशाजनक प्रगति हुई है. हम वहुत वर्षों से अपने इस पत्र में कहते आये है कि अगर भारत और पाकिस्तान अपने मतभेद तय कर लें तो दोनों ही देशों का लाभ है. इस प्रकार वे अपने-अपने यहाँ के लोगों का जीवन स्तर ऊँचा उठा सकेंगे. वैसे दोनों देशों के आपसी संवंधों में अव भी तनाव है पर १९६५ के संघर्ष के वाद से स्थिति में काफ़ी सुधार हुआ है.

डोबीडट के
शानदार औज़ार
दुनिया के बाज़ार
पर छा गये

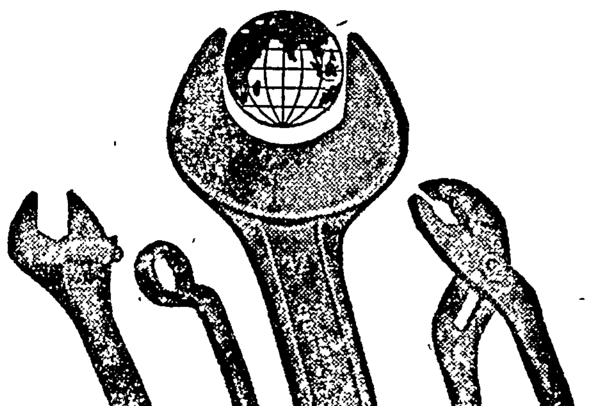

हिंदुस्तान डोबिडट टूल्स लिमिटेड
यूनाइटेड कमर्शियल बैंक बिल्डिंग, दूसरी मंजिल
पार्लियामेन्ट स्ट्रीट, नई दिल्ली-१
वितरक :—मैसर्स सुमन कारपोरेशन,
न्यू एशियाटिक बिल्डिंग, एच ब्लाक, कनाट, सर्कस, नई दिल्ली-१

पत्रकार संसद

(यहाँ संकलित सामग्री उल्लिखित समाचारपत्रों के संभावित होली विशेषांकों से ली गयी है. पाठक ये अंक प्राप्त करने किसी पुस्तकालय में न जायें क्यों कि होली अंक होने के नाते होलिका के साथ इन सब विशेषांकों का दहन कर दिया जायेगा.—सं.)

होली, मध्यावधि चुनाव और सर्वहारा क्रांति

चीन के मुख पत्र पीकिङ डेली ने भारत में हुए मध्यावधि चुनाव पर अपने संपादकीय में लिखा है:

'भारत के चार राज्यों—बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश और पंजाब में मध्यावधि चुनाव समाप्त हो चुके हैं. सामंतवादी सत्ताधारी दल कांग्रेस ने अमेरिकी डॉलर से चलने वाली स्वतंत्र पार्टी और जनसंघ के साथ छिपे तौर से साँठ-गाँठ कर के जनता की एकमात्र पार्टी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को हराने का पूरा प्रयास किया. जनता ने इस का विरोध किया और मतदान के समय में ही अनेक जगहों पर उस ने खुली लड़ाई लड़ी जिसे गोलियों और लाठियों से दबाया गया. बंबई में चुनाव के बाद भी यह विस्फोट बहुत दिनों तक जारी रहा और लगभग आधा नगर आग की लपटों में रहा. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को समाप्त करने की साजिश विफल रही है. सर्वहारा वर्ग बहुत अच्छी तरह से पहचान गया है कि उस का मित्र कौन है. उस की आँखें अध्यक्ष माओ की ओर लगी हुई हैं. सामंतवादी तानाशाही के विरुद्ध उस के मन की आग भड़क उठी है. चार-पाँच मार्च को सारे देश के कोने-कोने में, शहरों में, गाँवों में विराट पैमाने पर प्रदर्शनों की योजना बन चुकी है. हफ़्तों पहले से सारे देश में छिट-पुट प्रदर्शन होने भी लगे हैं. इन प्रदर्शनों में स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभी भाग ले रहे हैं. जगह-जगह पर सामंतवादियों का मुँह काला किया जा रहा है. हजारों की संख्या में क्रोध में पागल प्रदर्शनकारी चीखते-चिल्लाते, नारे लगाते गलियों और सड़कों पर दिखायी देते हैं. सामंतवादी मारे डर के घर में छिपे रहते हैं. बाहर निकले नहीं कि उन की दुर्गति कर दी जाती है. उन पर बदशक्ल करने वाले रंग, कीचड़, गंदा पानी, सड़े हुए फल फेंके जाते हैं—यह सब अध्यक्ष माओ के ही उपदेशों का फल है. सरकार ने इन प्रदर्शनों से डर कर प्रदर्शन के मुख्य दिन सारे देश में छुट्टी का एलान कर दिया है. सामंतवाद से लड़ाई खुले आम हो रही है. सारा कामकाज ठप्प है. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी उस का नेतृत्व कर रही है.

'भारत सरकार इन प्रदर्शनों से परेशान है. मध्यावधि चुनावों के बाद ये प्रदर्शन इतना ज़ोर पकड़ेंगे इस की उस ने स्वप्न में भी आशा नहीं की थी. साम्राज्य लोलुप अमेरिका भी भारत की इस हालत से घबराया हुआ है. भारत सरकार इन प्रदर्शनों को होली कह रही है (होली हिंदुओं का एक बहुत पुराना त्योहार था जो उत्तरप्रदेश के एक छोटे से ब्रज प्रदेश में मनाया जाता था). संसार की समाजवादी शक्तियों को गुमराह करने के लिए और अमेरिका से असलियत छिपाने के लिए भारत सरकार ने अपने पिट्ठू सभी समाचारपत्रों को आदेश दिया है कि इस अवसर पर अपने पत्रों के विशेष अंक निकालें और इस जनजागरण को होली का रंग बताएँ. सामंतवाद के गुर्गे भारतीय समाचारपत्र मोटी-मोटी सुर्खियों में इस झूठ का प्रचार कर रहे हैं. लेकिन भारतीय जनता की आवाज़ इस से दबने वाली नहीं है. वह ये प्रदर्शन करके रहेगी. सर्वहारा वर्ग का शायद ही कोई घर ऐसा हो जहाँ इस की तैयारी पूरी न हो चुकी हो. सामंतवादी सरकार के घुस-पैठिए बड़े छिपे ढंग से समाज में सक्रिय हैं. लेकिन मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी उन की एक भी चाल सफल होने नहीं दे रही है. इन प्रदर्शनों में चीनी जनता भारतीय जनता के साथ है. प्रदर्शन सफल हो के रहेंगे. भारत सरकार की मध्यावधि चुनावों की शतरंजी चाल नाकामयाब होगी. देश में सर्वहारा वर्ग का नेतृत्व होगा. भारतीय जनता जिंदाबाद, सर्वहारा क्रांति जिंदाबाद, अध्यक्ष माओ जिंदाबाद'.

पाकिस्तान

जब जुल्फ़िकार अली भुट्टो और मुजीबुर्रहमान ने १८ तारीख को प्रस्तावित गोलमेज सम्मेलन में शामिल होने से इनकार कर दिया तब पाकिस्तान के सदर अय्यूब ने मुस्लिम लीग की कार्यकारिणी की एक बैठक में एक तक़रीर दी, जिसे पूरी तरह गोपनीय रखा गया. लेकिन लाहौर टाइम्स ने उस का सार प्राप्त कर के छापा है :

'जैसा कि आप लोग जानते हैं हमारी लोकतंत्री सरकार पड़ोसियों को रास नहीं आ रही है. अभी तक सिर्फ़ हिंदुस्तान हमारी तरक्की और बहबूदी से जलता था, लेकिन अब मुझे पूरा-पूरा शक है कि चीन भी अपना उल्लू सीधा करना चाहता है. भारत की पिट्ठू अवामी लीग ने जो षड्यंत्र रचा था वह मामला यानी ढाका षड्यंत्र केस सब को मालूम है. लेकिन चीन भुट्टो की मार्फ़त जो कुछ करवा रहा है उस की जानकारी आप लोगों को नहीं है. इस पर मैं यहाँ कुछ रोशनी डालना चाहता हूँ.

'मियाँ भुट्टो को चीन के दूतावास के ज़रिये लाखों रुपये मिल रहे हैं जो छात्रों, मुल्लाओं और वामपंथी राजनैतिक कार्यकर्ताओं में बाँटे गये हैं. औरतों और गाँवों के बेगुनाह किसानों को समाजवाद के नाम पर बरग़लाया जा रहा है. वरना ये लोग चूँ नहीं कर सकते थे.

'हालाँकि चीन हिंदुस्तान को अपना दुश्मन मानता है लेकिन पूर्वी पाकिस्तान को हम से जुदा करने में वह हिंदुस्तान के साथ है. वह चाहता है कि पाकिस्तान का यह हिस्सा आजाद हो जाये जिस से कि वह उसे आर्थिक सहायता दे कर वहाँ अपने पाँव पसार सके. हिंदुस्तान भी इसी गुंताड़े में है.

'भुट्टो की समूची रणनीति से चीनी क्रांतिवाद की बू आती है. वह न होता तो गोलमेज सम्मेलन में कुछ ले-दे कर मामला दफ़ा हो जाता. चीन की तरह भुट्टो भी ताशकंद समझौते की मुख़ालफ़त कर रहे हैं, सरकारी पद के ज़रिये अपनी दौलत बढ़ा कर आज समाजवाद का नारा दे रहे हैं और अपने वतन की सरकार को कमज़ोर बना कर पड़ोसियों के हाथ में खेल रहे हैं.

'पाकिस्तान की भोली जनता इन सब बारीकियों को नहीं समझती—वैसे ही जैसे पश्चिम बंगाल की हिंदुस्तानी जनता कम्युनिस्टों की चाल न समझते हुए कम्युनिस्टों को जिता रही है.

'हम ने रूस और अमेरिका को लिखा है कि वह चेकोस्लोवाकिया और वीएतनाम के घिसे-पिटे मसलों में ही मशगूल न रहें और इस ओर भी तवज्जह दें वरना तीसरी बड़ी जंग कभी भी शुरू हो सकती है. चीन को विरोधपत्र भेजने के लिए हमारे गुप्तचर और ब्योरा जमा कर रहे हैं'.

राजधानी में कमाल का सरकस

दुर्घटना-विभाग का खंडन

[महानगर में सड़क-दुर्घटना के विषय में दिनमान ने २६ जनवरी के अंक में एक वृत्तांत प्रकाशित किया था. उस पर नगरपालिका ने खंडन के रूप में अपनी वार्षिक रपट हमें भेज दी. आमतौर से हम इसे छापना आवश्यक न समझते, किंतु होली का ख्याल कर के हम ने उन के प्रतिवेदन को गंभीरता से देखा और यहाँ अविकल रूप में छाप दिया है. —सं०]

यह सही है कि आलोच्य वर्ष में दुर्घटनाओं की संख्या में सामान्य वृद्धि हुई, किंतु यदि इस तथ्य पर ध्यान दिया जाये कि उन में मृत्यु के प्रकारों का रोचक वैविध्य भी बढा तो यह संख्या-वृद्धि इतनी नीरस नही रह जाती जितनी बतायी गयी है. यदि जनसंख्या की वृद्धि भी हिसाब में शामिल कर ली जाये तब तो गत वर्ष की तुलना में कोई उल्लेखनीय दुर्घटनावृद्धि दृष्टिगत ही न होगी, अपितु इसी से यह सिद्ध होना असंभव न रह जायेगा कि अनुपाततः इस वर्ष गत वर्ष से कम ही दुर्घटनाएँ हुई हैं.

महानगर की परिवहन संबंधी दुर्घटनाएँ

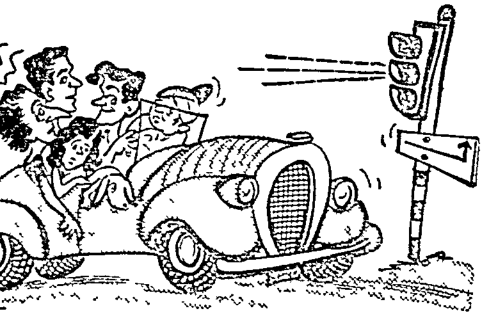

प्रधानमंत्री के पुत्र की छोटी कार : काफ़ी बड़ी

हम ३ प्रकारों में बाँट सकते हैं (१) साइकिल और रिक्शा, (२) स्कूटर और फटफट और फटफटिया, (३) मोटर और लारी. किंतु विश्लेषण की सुविधा के लिए इन सब को आगे पैदल-दुर्घटना कहा जायेगा. यह संक्षेपीकरण अनावश्यक पिष्टपेषण बचाने के लिए भी आवश्यक है क्यों कि अंततः मरता पैदल ही है.

विभागीय सर्वेक्षण से प्रकट है कि अधिकांश मामलों में मृतक या तो साइकिल पर सवार था या साइकिल घर पर छोड़ आया था. प्रायः सभी मृतक सामने से मोटर आती दीखने पर भी सड़क से न हटने के कारण मरे.

क़ानूनी कारवाई में जितनी देर अनिवार्य है उस के बाद मृतक के परिवारों को तुरंत सूचना और राजकीय सहानुभूति पहुँचायी गयी. कुछ मामलों में तो यह काम तत्काल किया गया क्यों कि मृतक का परिवार भी उसी के साथ था—एक बच्चा गोद में और दो उंगली पकड़े. या फिर साइकिल पर सारा परिवार : इस प्रकार के मिले-जुले मामलों में एक सामान्य तथ्य प्रकाश में आया जो आगे की नीतियों पर असर डाल सकता है. बच्चे प्रायः सभी मामलों में बच निकले बशर्ते कि वे गोद में न रहे हों: इस पर नगरपालिका के अध्यक्ष की टिप्पणी भी ध्यान देने योग्य है'.

हमारा ध्यान दिनमान नामक एक पत्र के आग्रह पर हुई दुर्घटना की जाँच की ओर जाता है. गत सत्र में राजनैतिक फ़ायदा उठाने की दृष्टि से उठी न्यायिक जाँच की माँग को अस्वीकार परंतु जाँच की माँग को सिद्धांततः और अंशतः स्वीकार करते हुए मुख्य नगरपिता ने एक दुर्घटना की विभागिक जाँच के लिए चुंगी विभाग के सचिव को इस विचार से नियुक्त किया था कि संयोग से दुर्घटनाग्रस्त मोटर के चालक होने के कारण वह मौके पर भी मौजूद थे. उन की रपट से पूर्णतया सिद्ध नही होता कि (पूर्णतया सिद्ध न होना निष्पक्षता का ही प्रमाण है) मृतक इतने धीरे-धीरे सड़क क्यों पार कर रहा था कि दब कर मर गया. रपट में, जो हो, इस पक्ष में प्रबल तर्क हैं कि वह कई वर्ष से कम पोषक आहार खाने के कारण दौड़ सकने में असमर्थ हो गया था. स्पष्ट है कि हमारे लिए इन तर्कों को मानने या न मानने का प्रश्न ही नही उठता क्यों कि ऐसी दशा में यह मामला इस मंत्रालय का नही खाद्य-मंत्रालय का हो जाता है और इस की पूरी छानबीन से शिक्षा मंत्रालय से संपर्क भी आवश्यक होना चाहिए, क्यों कि लंबी दौड़ और ऊँची छलाँग आदि उन के 'खेलकूद-विभाग' के अंतर्गत है.

जहाँ तक मोटर चालकों का प्रश्न है २० वर्ष के सुनियोजित आर्थिक विकास से उत्पन्न परिस्थितियों से उन को अलग कर के देखना अनुचित होगा. विकास की गति तीव्र होने से और साथ ही संविधान में सब को समान अवसर सुनिश्चित होने से स्पर्द्धा का वेग स्वाभाविक है. नेहरू जी ने भ्रष्टाचार के विषय में कहा था कि विकास के साथ वह होगा ही. उसी प्रकार विकास के साथ एक दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ भी होगी ही. दुर्घटनाओं में से कितनों के लिए यह प्रवृत्ति ज़िम्मेदार है इसे कालांतर में विश्लेषण के लिए छोड़ कर यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि मशीनी युग में मोटर से होने वाली दुर्घटनाएँ विज्ञान और मनुष्य के तनाव के संदर्भ में ही देखी जानी चाहिए. जैनेंद्रकुमार जी से व्यक्तिगत रूप में मिल कर पालिकाध्यक्ष कभी इस वर्ष के शेषांश में इस विषय पर प्रवचन सुनेंगे.

[(१) नगर में स्कूलों के निकट पारपथ न होने से उन छोटे बच्चों को जो चलना सीख चुके हैं परंतु बसों में सफ़र करने लायक हट्टे-कट्टे नही हुए हैं, लारियों-मोटरों को आता देख कर बच निकलने का स्वतः अभ्यास हो गया दीखता है. शिशु के मन की रचनाकाल में ही ऐसे संस्कार पड़ जाने के परिणामों से पारपथ-पारपथ का हल्ला करने वाले समाज-सुधारकों को पालिका की अगली बैठक में अवगत किया जाना चाहिए. वर्त्तमान नीति के पक्ष में यह उल्लेखनीय होगा कि अगले बीस वर्ष में ये बच्चे बड़े हो कर सड़क दुर्घटनाओं की संख्या बड़ी हद तक कम कर देंगे.

(२) आग्रह पर जाँच हुई थी, दुर्घटना नही. यह पाठ मूल अंग्रेज़ी-रपट का सरकारी अनुवाद है और न जाने क्यों इस बार मिला कर पढ़ने के लिए इस के साथ मूल अंग्रेज़ी पत्र संलग्न कर के नहीं भेजा गया है—इस लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता पड़ी. —सं.]

साइकिल सवारों के मामले में जो सहानुभूतिमूलक प्रश्न उठाये गये हैं हम बता देना चाहते हैं कि वे अकेले दिनमान के मन में नहीं उठते. नेहरू जी ने भी किसी समय (मृत्यु से पहले) कहा था कि साइकिल को भारतीय प्रगति का प्रतीक मानना चाहिए. अनंतर एक नये तत्व का समावेश हुआ जो और भी प्रगति का सूचक है. साइकिल-रिक्शा की संख्या सारे भारत में फैलने लगी है. साइकिल रिक्शा पर लोहिया ने संसद में कुछ कहा भी था. वह अंग्रेज़ी अखबारों में जितना छपा उस के आधार पर यह कहना यथेष्ट होगा कि वह नेहरू-द्वेष से अनुप्रेरित था. क्योंकि साइकिल-रिक्शा में साइकिल नेहरू की देन है, मनुष्य को अपनी देन लोहिया भले मानते रहे हों परंतु विभागीय कार्रवाई से थोड़ा परे उठने की स्वच्छंदता लेते हुए हम यहाँ यह बताना आवश्यक समझते हैं कि साइकिल रिक्शा में नेहरू के समय के प्रगति-प्रतीक और नेहरू के बाद के पीड़ित मनुष्य का समग्र एकीकरण निहित है'. मनुष्य द्वारा खींचा गया यह वाहन अंततः मनुष्य को ही ढोता है, जैसा कि रवि ठाकुर ने 'सवार ऊपर मनुष्य' आदि कह कर पहले से ही परिकल्पित कर रखा था. मनुष्य और मनुष्य के इस सहयोग को भारतीय समाजवादी समाज की स्थापना की ऐसी सामान्य परंतु दूरगामी उपलब्धि मानना पड़ेगा कि जिस का प्रभाव अमीर-ग़रीब दोनों को एक ही योजना में जोत देने में परिलक्षित होता है. इस के माध्यम से अमीर और ग़रीब का भेद भी कालांतर में बहुत कुछ मिट सकता है जो कि हमारे संविधान का लक्ष्य है, क्यों कि आज भी एक वर्ग (बाबू) के सर्वेक्षण से प्रमाण मिलते हैं कि रिक्शा में चढ़े बैठे आदमी की आर्थिक स्थिति बहुधा उस आदमी की आर्थिक स्थिति से कुछ ही बेहतर होती है जो उसे खींचता है.

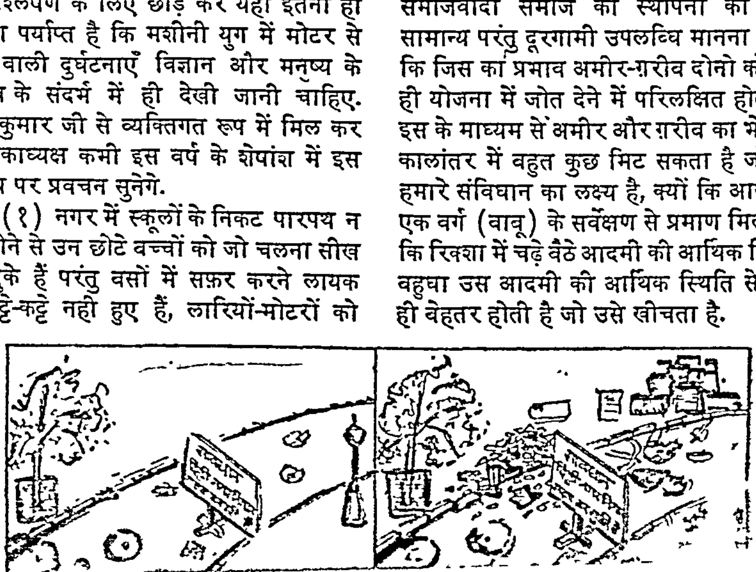

भेंटवार्ता

मुख्यमंत्री का शौक

(इस कल्पित भेंट-वार्ता के लिए हमारा संवाददाता अपनी कुर्सी से उठ कर भी नहीं गया, लेकिन होली में संसदीय विशेषाधिकार की शरण लेते हुए उस ने दावा किया है कि इसे प्रामाणिक माना जाये. —सं.)

दिनमान का संवाददाता जब ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेस से भोपाल स्टेशन पर उतरा तब सवेरे के पाँच बजे थे. मुख्यमंत्री **गोविंद नारायण सिंह** ने उसे मुलाकात के लिए ठीक छह बजे का वक्त दिया था. संवाददाता ने टैक्सी की और सीधे मुख्यमंत्री के बँगले पहुँचा. दरवाज़े पर किसी ने रोक-टोक नहीं की. भीतर लान पर इस कड़ाके की सर्दी में, दस-बारह पुरुष और स्त्रियाँ टहल रहे थे. संवाददाता को जेब से नोट बुक निकालते देख उन्होंने उत्सुकता से पूछा, "आप कहाँ से आये हैं ?" संवाददाता ने उत्तर दिया, 'दिल्ली. और आप कहाँ से आये हैं?' उन में से एक ने जो फुर्तीला नज़र आता था, जवाब दिया, "हम कांग्रेस से आये हैं".

संवाददाता ने सवाल किया, 'क्या आप मुख्यमंत्री से मिलने आये हैं?' जवाब मिला "हाँ ! मगर देर हो गयी. छह महीने पहले मिले होते तो अब तक कैबिनेट में होते. ब्रजलाल का कहना तब न मान कर ग़लती की".

इतनी देर में भीतर से चाय आ गयी. प्लेट में डाल कर गरम चाय पीते हुए उन्होंने कहा, "आप ठाकुर साहब से नहीं मिल सकते".

"क्यों?"

"मुख्यमंत्री शिकार खेलने रीवां गये हैं".

"मगर उन्होंने तो मुझे आज बुलाया था".

"तो क्या हुआ. उन्होंने हमें परसों का वक्त दिया था. हम तीन दिनों से पड़ाव डाले हुए हैं. इस से तो अच्छे मिसिर जी थे. जो भी हो". यह कह कर उस व्यक्ति ने गहरी साँस ली.

संवाददाता ने इस बातचीत में और दिलचस्पी न ले, सीधे स्टेशन के लिए सवारी की, जहाँ से रीवां के लिए तुरंत गाड़ी जाती थी. रीवां तक की मुश्किल यात्रा तय कर उस ने ठाकुर गोविंद नारायण सिंह के फार्म का पता किया. फार्म पर दूर से एक आदमी ट्रैक्टर चलाता नज़र आया. हुलिया से वह गोविंद नारायण सिंह नज़र आता था. संवाददाता ने उसे नमस्कार किया और पूछा, "आप गोविंद नारायण सिंह हैं?"

उस आदमी ने संवाददाता की मूर्खता पर हँस कर कहा, "मैं गोविंद नारायण सिंह का डमी हूँ".

"मतलब ?"

"मतलब यह कि गोविंद नारायण सिंह जब भोपाल में होते हैं तब मैं रीवां में शिकार खेलता हूँ, जब वह रीवां में शिकार करते होते हैं तब मैं दिल्ली में निजलिंगप्पा के साथ उन के पिता की दोस्ती दुहराता होता हूँ, जब वह निजलिंगप्पा के साथ गपशप करते होते हैं तब मैं राजमाता को ग्वालियर का खोया हुआ राज्य वापस दिलाने की सौगंध लेता होता हूँ, जब वह राजमाता के साथ प्रिवी पर्स के बारे में बातचीत करते होते हैं तब मैं पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र को अपना गुरु घोषित करता होता हूँ और जब वह पंडित मिश्र के पैर छूते होते हैं तब मैं अपने बँगले में हरभजन से बात करता होता हूँ".

"हरभजन कौन ?"

"हरभजन को आप नहीं जानते. हरभजन और हरचरन जुड़वाँ भाई हैं. हर भजन हर पार्टी के सिद्धांत को मानता और न-मानता है, हर चरन हर पार्टी के भीतर जाता और हर पार्टी से बाहर आता है".

राजनीति में अपरिपक्व संवाददाता कुछ भी समझ नहीं पाया. तब उस ट्रैक्टर वासी ने कहा, "दिल्ली के लिए गाड़ी पकड़िए, ठाकुर साहब वहीं मिलेंगे".

दिल्ली पहुँच कर संवाददाता सीधे कांग्रेस अध्यक्ष के बँगले की ओर लपका, मालूम हुआ कि गोविंद नारायण सिंह का तार आ गया कि मंत्रिमंडल में संकट है, इसलिए वह ग्वालियर रुक गये हैं. थके-माँदे संवाददाता ने ग्वालियर की यात्रा कार से तय की और सीधे राजनिवास पहुँचा. राजनिवास पर क़रीब तीस तंदरुस्त लोग बरामदे पर कुर्सियाँ लगाये किसी का इंतज़ार कर रहे थे.

संवाददाता राजमाता से पहले से परिचित था. जब उस ने राजमाता को अपने नाम की चिट भिजवायी तो उन्होंने उसे तुरंत भीतर बुलवाया. संवाददाता ने पाया राजमाता दुर्बल हो गयी हैं.

संवाददाता ने उन के स्वास्थ्य की ओर इशारा करते हुए पूछा, "यह कैसे हुआ?"

राजमाता ने उत्तर दिया, "यह पिछले तीन दिनों में हुआ. पिछले तीन दिनों से मैं और सारी कैबिनेट मुख्यमंत्री की प्रतीक्षा कर रहे हैं. बैठक ग्वालियर में प्रस्तावित थी".

संवाददाता ने माथे का पसीना पोंछते हुए पूछा, "मुख्यमंत्री कहाँ हैं ?"

"भोपाल में". राजमाता का स्वर क्षीण था.

"हद है". संवाददाता ने अपना कैमरा टेबल पर पटकते हुए कहा और भोपाल के लिए गाड़ी पकड़ी.

बँगले पर पहुँच कर पाया कि लान पर अब भी भीड़ थी, मगर कुछ दूसरे लोग थे. संवाददाता ने पूछा, "वे लोग कहाँ गये?" उत्तर मिला, "कैबिनेट में".

"आप लोग कहाँ-कहाँ से आये हैं".

"कैबिनेट से".

"अब कहाँ जायेंगे ?"

"कांग्रेस ".

यह बातचीत हो ही रही थी कि संवाददाता के लिए भीतर से बुलावा आ गया. भीतर पहुँचने पर देखा कि मुख्यमंत्री मसनद पर पड़े हुए हैं

और एक आदमी उन के सीने पर स्टेथ्सकोप लगाये हुए है. दूसरा ब्लड प्रेशर ले रहा है.

मुख्यमंत्री के सहायक ने बताया कि मुख्यमंत्री पिछले आठ दिनों से बीमार हैं—इसलिए ज़्यादा बातचीत नहीं हो सकेगी.

डाक्टरों के हटते ही मुख्यमंत्री ने कहा, "भई हम राजनीति-बाजनीति कुछ नहीं समझते हैं. कुछ चूना-तंबाकू की बात करो".

मुख्यमंत्री की विनम्रता पर मुग्ध हो संवाददाता ने पूछा, "आपका भावी कार्यक्रम क्या है?"

मुख्यमंत्री : "हमारी जन्मकुंडली दो व्यक्तियों के पास है, राजमाता सिंधिया और पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र. वे ही हमारा भावी कार्यक्रम तय करेंगे".

"पिछले दिनों समाचार निकला था कि सागर से भोपाल की पद यात्रा के दौरान पुलिस ने पंडित मिश्र से सलाम किया. आप की क्या प्रतिक्रिया है?"

"गर वो बी. ए. पास हैं तो हम भी बी बी पास हैं".

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि अगर उन को पुलिस सलाम करती है तो हम को डकैत सलाम करते हैं".

"क्या मध्यप्रदेश में मध्यावधि की संभावना है?"

"सब कुछ जनसंघ और राजमाता पर निर्भर करता है".

"आप के शौक क्या-क्या हैं?"

"कैबिनेट का विस्तार".

"क्या आप निकट भविष्य में कैबिनेट का विस्तार करने जा रहे हैं??"

"यह इस पर निर्भर करता है कि क्या कांग्रेस विधायक दल की संख्या निकट भविष्य में कम होने जा रही है".

"पंडित मिश्र के बारे में आप की क्या राय है?

"वह कवि अच्छे हैं. मगर अब बस. इस से अधिक कहने की डाक्टरों की मनाही है".

यह कह कर मुख्यमंत्री ने जमुहाई ली और सहायक से कहा, एक ट्रंक काल ग्वालियर राजमाता को लगाओ और दूसरा जबलपुर मिश्र जी को. और देखो शिक्षा मंत्रालय को कृष्णायन की पाँच हज़ार प्रतियाँ खरीदने का आर्डर दे दो.

—श्री. व.

चरचे और चरखे

बहारे ग़ालिब

राजधानी में आजकल ग़ालिब शताब्दी की धूम है. जिधर देखिए उधर भारत सरकार का ग़ालिब-प्रेम ग़ालिब हो रहा है. व्याख्यान, प्रदर्शनियाँ, संगीत, नृत्य, नाटक, गोष्ठियाँ, मुशायरे, कवि सम्मेलन, हर जगह ग़ालिब. रेडियो, फ़िल्म, टेलीविज़न हर जगह ग़ालिब पर कार्यक्रम, हर जगह धूम ग़ालिब की. **दिनमान** का होली संवाददाता होली के मूड में जब निकला तो उस ने एक और समा देखा. बड़ी-बड़ी सीढ़ियाँ लिए कुछ सरकारी कर्मचारी सड़कों पर इधर-उधर आ-जा रहे हैं. पूछने पर पता चला भारत सरकार ने आदेश दिया है कि सरकारी मंत्रालयों और विभागों पर ग़ालिब की सूक्तियाँ बड़े-बड़े अक्षरों में कपड़ों पर लिख कर लटकायी जायें. ग़ालिब एक महान कवि था, उस की सूक्तियाँ दफ़्तरों में लगी होनी चाहिए जिन से प्रेरणा मिलेगी. संवाददाता ने पूछा—'सूक्तियाँ या पूरे शेर'. जवाब मिला 'शेर के बारे में हम नहीं जानते, सूक्तियों का आर्डर है'. शाम तक हर सरकारी विभाग में सूक्तियाँ लटकी हुई थीं. विभागों के नाम और उन पर लटकी सूक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं:

आकाशवाणी : 'बक रहा हूँ जुनूं में क्या-क्या कुछ, कुछ न समझे ख़ुदा करे कोई.'

फ़िल्म, टेलीविजन : 'देखने हम भी गये थे पे तमाशा न हुआ'.

स्वास्थ्य मंत्रालय : 'आख़िर इस मर्ज की दवा क्या है ?'

अस्पताल : 'मौत से पहले आदमी ग़म से नजात पाये क्यों ?'

रक्षा मंत्रालय : 'लड़ते है मगर हाथ में तलवार भी नही.'

पर्यटन विभाग : 'हम वहाँ है जहाँ से हम को भी, कुछ हमारी ख़बर नहीं आती.'

पुनर्वास विभाग : 'कोई वीरानी सी वीरानी है, दश्त को देख के घर याद आया'.

आवास विभाग : 'रहिए अब ऐसी जगह चल कर जहाँ कोई न हो'.

निर्माण विभाग : 'दरो दीवार से टपके है बयावाँ होना'.

डाकतार विभाग : 'यारब अपने ख़त को हम पहुँचायें क्या ?'

न्याय विभाग : 'बख़्श दो ग़र ख़ता करे कोई'.

लघु उद्योग विभाग : 'बनेंगे और सितारे अब आसमां के लिए'.

भारी उद्योग विभाग : 'हम भी इक अपनी हवा बांधते है'.

व्यापार विभाग : 'ले आयेंगे बाज़ार से जा के दिलो-जाँ और'.

शिक्षा विभाग : 'कोई बतलाये कि हम बतलायें क्या ?.'

परिवार नियोजन : 'देखना इन बस्तियों को तुम कि वीरां हो गयी'.

गृह मंत्रालय : 'कटे जवान तो खंजर को मरहबा कहिए'.

कृषि मंत्रालय : 'ता चंद बागबानि-ए-सहरा करे कोई'.

विदेश मंत्रालय : 'दोस्ती का परदा है बेगानगी, मुंह छिपाया हम से छोड़ा चाहिए'.

रेल विभाग : 'क्या हुआ ज़ालिम तेरी गफ़लत शआरी हाय-हाय'.

खाद्य मंत्रालय : 'घर में क्या था कि तेरा ग़म उसे ग़ारत करता'.

इतना ही नहीं **दिनमान** के प्रतिनिधि ने यह भी देखा कि पुलिस का हर आदमी अपनी बाँहों पर बिल्ला लगाये हुए है : 'ऐसे क़ातिल का क्या करे कोई ?' और जनता में छोटे-छोटे तिरंगे बैज चारों तरफ़ बाँटे जा रहे हैं जिन पर लिखा है :

'जब तवक्क : ही उठ गयी 'ग़ालिब'
क्यों किसी का गिला करे कोई
क्या किया खिज्र ने सिकंदर से
अब किसे रहनुमा करे कोई

पता नहीं ये बिल्ले किस की ओर से बाँटे जा रहे थे. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने चाहा कि उन का चित्र ले कर अपने पाठकों के लिए प्रकाशित करे पर तब तक उस का होली का मूड समाप्त हो गया था.

समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकें

श्रीकांत से हट कर	कैलाश वाजपेयी
कविता के नये प्रतिमान	नामवर सिंह
सीढ़ियों पर धूप में	रघुवीर सहाय
न आने वाला छल	मोहन राकेश
दूसरा बोर	श्रीकांत वर्मा
एक दूनी नाव	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
भंग दर्शन	नेमिचंद जैन
अथुकांत	लक्ष्मीकांत वर्मा
बैशाखियों वाली शरारत	रमेश बक्षी
युक्तिशोध	जैनेंद्र
एक बनिया समानांतर	राजेंद्र यादव
बिना दीवारों के डर	मन्नू भंडारी
हो हल्ले की डायरी	हरिशंकर परसाई
कुछ दूसरों के दिये	उपेंद्रनाथ 'अश्क'
सात जीत वर्ष	धर्मवीर भारती
चांस का दरिया	कमलेश्वर
सात घूँघट वाला दुखड़ा	अमृतलाल नागर
अलग-अलग वह तरुणी	डॉ. शिवप्रसाद सिंह
वह पथ बंद था	नरेश मेहता
जलती ताड़ी	निर्मल वर्मा
छटंकी	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल

बहारे कृशनचंदर

उर्दू के कहानी लेखक **कृश्न चंदर** ने जश्न में एक शायर मित्र को बताया कि आज-कल मेरे डॉक्टर ने मुझे ऐसा कोई भी काम जिस में सोचने की जरूरत हो करने से मना कर रखा है. यानी अब मैं कहानी, उपन्यास कुछ नहीं लिख सकता. उन के मित्र ने सहानुभूति प्रगट करते हुए उन से कहा कि 'इस का मतलब यह है कि आपके डाक्टर ने एक तरह से आप का लिखना-पढ़ना ही बंद कर दिया.' कृष्ण चंदर ने कहा 'नहीं, खाली ऐसी चीजें लिखने-पढ़ने की मनाही है जिस में सोचने-विचारने की जरूरत पड़ती है. शायरी करने की मनाही नहीं है.' शायर मित्र ने बा-अदब फ़रमाया, 'लगता है आप के डॉक्टर ने आप के अफ़साने पढ़े नहीं है, अन्यथा वह उन्हें भी लिखने की छूट आप को दे देते.'

मौखिक स्वास्थ्य-लाभ कामना

महँगा वोट

गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण ने लोकसभा में अविश्वास प्रस्ताव पर वहस के दौरान कहा कि हम चाहते हैं कि नवनिर्वाचित ग़ैर-कांग्रेसी सरकारें अधिक से अधिक दिनों तक बनी रहें. कम-से-कम पश्चिमी बंगाल में अपने भीतरी मतभेद को सुलझा कर संयुक्त मोर्चे ने यह साबित कर दिया है कि सत्ता से उसे नफ़रत नहीं है. लेकिन सत्तारूढ़ होना एक बात है और सत्ता को बनाए रखना सर्वथा दूसरी बात है. १९६७ के आम चुनाव के बाद संयुक्त मोर्चा सत्तारूढ़ हुआ था और उस समय श्री श्री अजय मुखर्जी को मुख्यमंत्री चुना गया था. लेकिन धीरे-धीरे संयुक्त मोर्चा अपने अंतर्विरोधों का शिकार होता गया और अंततः वह पूरी तरह सत्ताहीन हो कर रह गया.

जनता को मध्यावधि चुनाव से हो कर गुजरना पड़ा. मध्यावधि चुनाव के लिए दिया गया वोट महँगा वोट है. क्या इस की कोई गारंटी है कि पश्चिमी बंगाल का संयुक्त मोर्चा इस 'महँगे वोट' की कद्र करेगा. कम-से-कम जिस तरह मंत्रिमंडल का गठन किया गया है उस से नहीं लगता कि मोर्चे के अंतर्विरोध दुबारा न उभरेंगे और सरकार नहीं लड़खड़ायेगी. जैसी कि आशा की जा सकती थी, पश्चिमी बंगाल के मंत्रिमंडल पर मार्क्सवादी कम्युनिस्टों का बोलबाला है. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी यह दावा कर सकती है कि मध्यावधि के बाद से बड़ी पार्टी के रूप में उभरने के कारण सरकार पर उसे सब से अधिक अधिकार है और उस का यह दावा नैतिक दृष्टि से सही हो सकता है. लेकिन मंत्रिमंडल में विभागों का बँटवारा जिस तरह किया गया है उस से यह साफ़ हो जाता है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी न केवल प्रतिनिधित्व की दृष्टि से, बल्कि अपनी समरनीति की दृष्टि से भी सरकार को अपनी मुट्ठी में रखना चाहती है.

जिन परिस्थितियों में और जिस तरह श्री अजय मुखर्जी को मुख्यमंत्री बनाया गया उस से उन की स्थिति बहुत संगठित नज़र नहीं आती. वह कुल मिला कर एक प्रतीक मुख्यमंत्री नज़र आते हैं. अगर उन को मुख्यमंत्री नहीं बनाया जाता तो संयुक्त मोर्चे की अनेक इकाइयाँ मार्क्सवादी पार्टी के साथ सरकार बनाने को तैयार नहीं होतीं और संयुक्त मोर्चे का सत्ता स्वप्न लड़खड़ा जाता. इस लिए संयुक्त मोर्चे ने चतुराई के साथ श्री अजय मुखर्जी को मुख्यमंत्री बना कर काँटों के सिंहासन पर बैठा दिया है. अपनी उदारता का परिचय देने के लिए मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने श्री अजय मुखर्जी को न केवल मुख्यमंत्री बनाया बल्कि गृह मंत्रालय के राजनैतिक और रक्षा अनुभाग भी सौंपे. इस से एक पत्थर से दो चिड़ियों का शिकार होता है. सूबे में राजनैतिक अमन-चैन बनाये रखने की ज़िम्मेदारी अब से श्री अजय मुखर्जी और उन की पार्टी पर होगी.

लेकिन क्या सचमुच ही बंगाल की मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी प्रदेश में शांति बनाये रखना चाहती है. १९६७ के बाद बंगाल में जो कुछ हुआ उस ने कम से कम एक बात तो स्पष्ट कर दी कि वामपंथी केंद्र से तनाव को बराबर बरक़रार रखना चाहते हैं. उन की समर-नीति के मुताबिक़ यही सब से अधिक फ़ायदेमंद है. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के दर्शन के मुताबिक केंद्र की सरकार एक प्रतिक्रियावादी सरकार है और उसे स्खलित करने के बाद ही जनता की सरकार क़ायम की जा सकती है. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की यह धारणा रही है कि बंगाल में समता का स्वप्न कारगर करने के लिए केंद्र को कमज़ोर करना ज़रूरी है और केंद्र को कमज़ोर करने के लिए बंगाल में विरोधी जनमत बनाये रखना आवश्यक है. अपनी इसी समर-नीति के अनुसार मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने १९६७ और ६८ में समूचे बंगाल को एक अशांत प्रदेश में परिणत कर दिया. यह सब सत्ता से अलग होने के बाद नहीं हुआ बल्कि इस की शुरूआत उस समय हुई जब कि संयुक्त मोर्चा शासन में था. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी लड़ाई दो मोर्चों पर लड़नी चाही—एक सरकारी स्तर पर दूसरी जनमत के स्तर पर. एक लड़ाई संविधान के विरुद्ध थी और दूसरी मार्क्सवाद के अनुकूल थी. इस का नतीजा यह हुआ कि बंगाल के उद्योग और आर्थिक जीवन में भयानक गिरावट हुई.

संयुक्त मोर्चे ने सत्ता की शपथ उठाते हुए कोई ऐसी घोषणा नहीं की है जिस से यह लगे कि वह लोकतंत्र की मर्यादाओं को बनाये रखेगी. यह आकस्मिक नहीं है कि कलकत्ते में संयुक्त मोर्चे के पदासीन होते ही केंद्र और राज्य के बीच तनाव की नयी संभावना पैदा हो गयी. जहाँ तक केंद्र सरकार का प्रश्न है उस ने यह साफ़-साफ़ शब्दों में कह दिया है कि वह पश्चिमी बंगाल की ग़ैर-कांग्रेसी सरकार से सहयोग करने के लिए तैयार है. लेकिन सहयोग का अर्थ घुटने टेकना नहीं है. अगर पश्चिमी बंगाल की ग़ैर-कांग्रेसी सरकार यह सोचती है कि वह पिछली-बार की तरह इस बार भी केंद्र के साथ संबंधों को ले कर राजनैतिक खेल खेल सकती है तो इस से केंद्र को जो भी नुक़सान हो पश्चिमी बंगाल की जनता को ज्यादा नुक़सान होगा. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को यह बात औरों से अधिक याद रखनी होगी कि मध्यावधि चुनाव उन की विजय का प्रतीक नहीं है, बल्कि एक सबक भी है.

दिनमान

समाचार - साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — २ मार्च, १९६९

अंक ९ — ११ फाल्गुन, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट १३

*

मत और सम्मत ४
प्रश्न-चर्चा ६
पिछला सप्ताह ७
पत्रकार-संसद् ९
चरचे और चरखे १२
परचून ४९

*

राष्ट्रीय समाचार १५
प्रदेशों के समाचार २१
विश्व के समाचार ३६
समाचार-भूमि : जापान ३४
खेल और खिलाड़ी : क्रिकेट; हॉकी ३२

*

प्रेस-जगत् : मध्यावधि चुनावों के बाद भारत ८
जनपथ : दुर्घटना विभाग का खंडन १०
भेंट-वार्त्ता : मुख्यमंत्री का शौक ११
तेलंगाना : 'जेंटलमेंस एग्रीमेंट' १९
सम्मेलन : मध्य एशिया सम्मेलन २६
स्मृति : क्रांतिकारी का हृदय ३१
विज्ञान-कथा : अंतरिक्ष में आकुल आतुर ४१
साहित्य : आधुनिकता और समसामयिकता ४२
संस्मरण : यह होली कैसे खेलते थे ४४
संगीत : हलीम जाफ़र ख़ाँ ४५
रंगमंच : एक चादर मैली सी ४५
कला : स्वामीनाथन्; मीलू बनर्जी; नलिनीदनदास; हरिपाल त्यागी ४६
नृत्य : कत्थक समारोह ४८

*

आवरण-चित्र : होली का उत्सव रंग
(फ़ोटो : परमेश्वरी दयाल)

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

संसदीय लोकतंत्र पर पुनर्विचार

संसद् के दोनों सदनों में लोकतंत्र की हालत पर बरावर चिंता व्यक्त की जा रही है. यह सिलसिला राष्ट्रपति के अभिभाषण से शुरू हुआ था और पिछले दो हफ़्तों में अनेक बहसों और प्रश्नों के दौरान सदस्यों ने देश के अनेक हिस्सों में घट रही घटनाओं को आपस में जोड़ते हुए जो नतीजा निकाला है, उस पर विचार करना एक तरह से लोकतंत्र की बदलती हुई मन:स्थिति पर विचार करना है. लोकसभा में बंबई और तेलंगाना की हाल की घटनाओं, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की गतिविधियों, नक्सलवाड़ी कम्युनिस्टों के उपद्रवों का बार-बार ज़िक्र किया जा चुका है. मध्यावधि चुनाव, दल-वदल, आर्थिक अस्थिरता इत्यादि चीज़ों ने **मोहम्मद करीम चागला** जैसे न्यायवेत्ता को राज्यसभा में पिछले सप्ताह यह कहने के लिए विवश कर दिया कि संसदीय लोकतंत्र में ही कोई गड़वड़ी नजर आती है. श्री चागला ने राष्ट्रपति के अभिभाषण पर जारी बहस के दौरान वर्त्तमान पद्धति को शंका की दृष्टि से देखा और उस में परिवर्त्तन की सलाह दी. यह पहला मौका नही है जब कि लोकतंत्र को और अधिक संगठित करने की दृष्टि से वर्त्तमान प्रणाली में सुधार का सुझाव दिया गया है. लोकसभा में प्रकाशवीर शास्त्री ने लगभग दो साल पहले संसदीय पद्धति में सुधार के लिए एक विधेयक रखा था. श्री चागला ने भी आग्रह किया है कि वर्त्तमान पद्धति वदलने के लिए संविधान में संशोधन किया जाये.

संसदीय लोकतंत्र के २१ वर्षों में भारतीय जनमत को जिन पहलुओं से गुज़रना पड़ा उन में शायद कोई दूसरा राष्ट्र नही ठहरता. हिंदुस्तान की यह एक विशेषता है कि वह टटते-टूटते वच जाता है. लेकिन आखिर कव तक ? विघटन की जो प्रक्रिया भीतर ही भीतर चल रही है उस की कोई परिणति होने जा रही है या नही ? स्वयं पर विचार करते समय दूसरों से अपने संबंधों पर विचार करना जरूरी हो जाता है. पिछले तमाम वर्षों में दूसरे देशों, विशेषकर शक्तिशाली राष्ट्रों, के साथ भारत के संबंध सामान्य न हो कर विकृत होते गये है. चाहे वह अमेरिका हो या ब्रिटेन या चीन, किसी के साथ भारत के संबंध सामान्य नही है. इस का कारण यह है कि भारत एक सामान्य देश नही है. सामान्य न होते हुए भी वह निर्वल है. यदि वह सवल होता तो शक्तिशाली देशों के साथ उस के संबंधो में बहुत विकृति न होती, लेकिन कमजोर होने के कारण भारत क ऐसा चरागाह हो गया है, जिस पर शक्तिशाली देश अपने घोड़े दौड़ाना चाहते हैं.

शक्तिशाली राष्ट्रों में से कोई भी यह नही चाहता कि भारत का भौगोलिक. आकार-प्रकार बना रहे. सभी की भीतरी इच्छा, जो कि उन के वक्तव्यों और समाचार-पत्रों के जरिए व्यक्त होती रही है, यह है कि भारत एक महान् संभावना के रूप में न रह कर एक तुच्छ यथार्थ में परिणत हो जाये. पिछले साल इंग्लैड के प्रभावशाली पत्र **'आब्ज़र्वर'** ने अपने संवाददाता का हवाला देते हुए एक लेख प्रकाशित किया था, जिस में अमेरिका और ब्रिटेन को इस बात के लिए कोसा गया था कि उन्होंने नगालैंड के मामले में विशेष दिलचस्पी नही ली जब कि चीन इस बारे में गहरी दिलचस्पी ले रहा है. संवाददाता की राय थी कि नगा-अशांति से चीन लाभान्वित होगा अर्थात् अंततः नगालड को चीनी प्रभाव-क्षेत्र में परिणत होना है जब कि वस्तुतः उसे अमेरिकी या ब्रितानी प्रभाव-क्षेत्र में परिणत होना चाहिए. इस तरह चीन और पश्चिमी राष्ट्र दोनों ही नगालैंड के बारे में एक ही दृष्टि से विचार करते है. नगालैंड केवल एक मिसाल है. भारत के अन्य इलाकों के बारे में शक्तिशाली राष्ट्रों की एक जैसी गिद्ध-दृष्टि है जो कि अब छिपाने पर भी नही छिप पा रही है.

क्यों कि हर उपद्रव को अब तक विदेशियों द्वारा करायी गयी गड़बड़ी कह कर सामान्यीकरण किया जाता रहा है, इस लिए अब विशेष रूप से बुद्धिजीवियों को यह कहते हुए संकोच होता है कि देश में जो उपद्रव हो रहे है उन के पीछे विदेशी शक्तियों का हाथ है लेकिन भारत के अलग-अलग प्रदेशों में विशेष रूप से उन इलाकों में, जो कि लोकतंत्र के लिए बहुत ज़रूरी हैं, उपद्रवों का एक जैसा ढांचा और ढंग रहा है और इस से यह शुवहा होना स्वाभाविक है कि इन सारी घटनाओ के पीछे एक जैसी दृष्टि है. वह दृष्टि क्या है ? दरअसल वह समूचे देश को विघटित करने और लोकतंत्र को एकदम स्खलित करने का प्रयत्न है.

जब दोनों सदनों के अनेक सरकारी और ग़ैर-सरकारी सदस्य महाराष्ट्र, केरल और तेलंगाना की घटनाओं की जाँच की माँग करते है तो दरअसल वे अपनी इसी चिंता को व्यक्त करते है. उपद्रव १९६७ के आम चुनाव के पहले भी हुए थे लेकिन उन का ढ़ंग कुछ और था. वे मुख्य रूप से चुनाव के पहले की हलचल थी लेकिन पिछले साल भर में सारे देश में जो कुछ हुआ है उस के पीछे किसी तात्कालिक लाभ की योजना नही बल्कि लोकतंत्र के संबंध में एक दूरगामी प्रभावों वाली योजना है. पिछले महीने बंबई आग की लपटों मे समायी उस के पहले, पिछले साल कलकत्ता छिन्न-भिन्न हो चुका था. भाषा को ले कर मद्रास कव भभक उठेगा, कोई नहीं कह सकता. आखिर कौन सा ऐसा महानगर बचा है जिस के भीतर ही भीतर तूफ़ान नही उमड़ रहा है. वे कौन-सी शक्तियाँ है जो कि लोगो के आर्थिक और सामाजिक असंतोष को संगठित कर रही हैं. क्या वे अपने उद्देश्यों में स्वदेशी है या कि अपनी परिणतियों में विदेशी. सारा देश एक भयानक मोड़ पर खड़ा हुआ है.

यह केवल सरकार की ही ज़िम्मेदारी नही बल्कि समस्त राजनैतिक पार्टियों की जिम्मेदारी है कि वे जनता के आर्थिक और सामाजिक असंतोष को अलग दिशा में जाने से रोकें. यानी इस असंतोष की अभिव्यक्ति की जिम्मेदारी उन्हें स्वयं पर लेनी चाहिए. राजनैतिक पार्टियों का काम लोगों के असंतोष को बढा कर स्वयं छुट्टी पा लेना तथा जनता को गलत लोगों के हाथ सौप देना नही है. शिवसेना पर लोकसभा में हुई बहस से यह आभास होता है कि बंबई में कुछ ऐसा ही हुआ. शिवसेना के साथ बंबई की कुछ राजनैतिक पार्टियाँ और अन्य जिम्मेदार तवकों ने पिछले दिनों समझौता किया था जिसे कि अब वे चुनाव समझौता क़रार देते है. शिवसेना की भयानक आत्मघाती शक्ति का उपयोग करते हुए कुछ अनजान तबकों ने बंबई को आग के हवाले कर दिया. यह सही है कि बंबई को चिता में परिणत करने की सीधी ज़िम्मेदारी उन राजनैतिक पार्टियों पर नही है जिन्होंने शिवसेना से समझौता किया था लेकिन इस संस्था ने जो भी कुकर्म किये उन की नैतिक जिम्मेदारी इन राजनैतिक पार्टियों पर भी है जो कि अब तक उसे अपना समर्थन और सहयोग देती रही है. अब वे शिवसेना की निंदा कर अपनी ज़िम्मेदारी से मुक्त नही हो सकती.

ज़रा से फ़ायदे के लिए फ़ासिस्टों और लोकतंत्र विरोधियों को अपना नैतिक समर्थन दे देना समूचे लोकतंत्र और उस की परंपराओं के प्रति अपराध है. सारी राजनैतिक पार्टियाँ संसद् के दोनों सदनो में एक दूसरे को अपराधी करार दे रही हैं लेकिन क्या कोई भी दिल पर हाथ रख कर यह कह सकता है कि उस ने यह अपराध नही किया.

—विशेष संवाददाता

पाकिस्तान और हम

आंदोलन-अस्थिर पड़ोसी पाकिस्तान की समस्याएँ, जो एक पीढ़ी पहले तक हिंदुस्तान की ही समस्याएँ थी, आज भी बहुलांश में भारत की समस्याओं के समान हैं. दोनों देशों में परिवर्त्तन और प्रगति की आकांक्षाओं की सही पहचान के लिए पाकिस्तान में कार्यरत तत्त्वों को समझना आवश्यक है.

दिनमान यह प्रयत्न करता रहा है. ९ मार्च के अंक में हम पाकिस्तान की हलचल के भौगोलिक-राजनैतिक महत्त्व पर विचार करेंगे, उस की प्रतिरक्षा-समस्याओं पर रोशनी डालेंगे और उस के यहाँ जारी भाषा-विवाद का परिचय देंगे. अन्य पहलुओं का विश्लेषण अन्य अगले अंकों में पढ़ियेगा—सं०

अविश्वास प्रस्ताव

चतुर्भुज और चतुर्वर्ण

किसी ज़माने में भारत की कल्पना चतुर्भुज के रूप में की गयी थी. विच्छिन्न हो रहे चतुर्भुज की तसवीर अविश्वास प्रस्ताव पर हुई बहस के रूप में दिखायी पड़ी. लोक सभा में चतुर्वर्ण की समस्या पर भी एक प्रश्न के दौरान विचार हुआ. तात्कालिक उत्तेजना थी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख श्री गोलवलकर का वह वक्तव्य जिस के ज़रिये उन्होंने चतुर्वर्ण अर्थात् जाति व्यवस्था का समर्थन किया था.

विरोध : अविश्वास प्रस्ताव हमेशा की तरह पराजित हुआ. उस के पक्ष में ८३ और विपक्ष में २१३ मत आये. लेकिन अविश्वास प्रस्ताव पर यह बहस पिछली बहसों से ज्यादा संगठित और उत्तेजक साबित हुई. मुख्य रूप से शिव-सेना की गतिविधियों पर हमला हुआ और इस हमले को एक ज़ोरदार जिरह का रूप देने का श्रेय मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के श्री राममूर्त्ति को है जिन्होंने शिव सेना का असली चित्र लोक सभा में पेश किया. शिव सेना के विरुद्ध वातावरण इस हद तक संगठित हो गया कि अनेक कांग्रेसी संसद्-सदस्यों के अलावा स्वयं गृहमंत्री चव्हाण को भी यह कहना पड़ा कि शिव सेना की गतिविधियाँ और उस की विचारधारा राष्ट्र-विरोधी हैं तथा उस का दमन किया जाना चाहिए. विरोधी पार्टियों के शिव सेना विरोधी नारे को अपना नारा बनाते हुए गृहमंत्री ने विरोध को ढीला करने में कुछ हद तक सफलता पायी. दूसरी ओर श्री पी. राममूर्त्ति ने यह कह कर मतदान के समय विरोधी पार्टियों को संगठित करने का प्रयत्न किया कि उन का विरोध विरोधी बेंचों पर बैठने वाली पार्टियों से नहीं बल्कि जाति द्वेष और विध्वंस की उस परछाई से है जिस ने कि अपना नंगा नाच पिछले दिनों बंबई में दिखाया.

जॉर्ज फ़र्नांडिज़ : शिव सेना, किस की सेना ?

निंदा : शिव सेना के कुकृत्यों की निंदा प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने भी की. श्रीमती गांधी ने बंबई और तेलंगाना की घटनाओं पर चिंता व्यक्त की. उन्होंने कहा कि शिव सेना जैसे आंदोलनों से देश की एकता भंग होने का खतरा है. प्रधानमंत्री ने देश में व्यापक असंतोष को दो हिस्सों में बाँट कर देखा है. प्रधानमंत्री की धारणा थी कि पहली क़िस्म का असंतोष इस कारण है कि विकास की इस अवस्था में प्रत्येक व्यक्ति की समस्या का निदान संभव नहीं है. दूसरी क़िस्म का असंतोष मुख्य रूप से नवयुवक पीढ़ी में है जो कि लोकतंत्र के विकास से उत्पन्न हुआ है और समाज और आदमी की हालत के प्रति नौजवान लोगों की बेचैनी को व्यक्त करता है. श्रीमती गांधी ने कहा कि इन सभी प्रश्नों को राष्ट्रीय स्तर पर हल करना पड़ेगा और इस के लिए उन्होंने समस्त पार्टियों से सहयोग माँगा. सरकार और विरोधी पार्टियों के संबंधों की व्याख्या करते हुए श्रीमती गांधी ने कहा कि सदन या कि विधान-सभा के किसी भी सदस्य को यह नहीं सोचना चाहिए कि हम लोकतंत्र के मंच पर उन की उपस्थिति के विरोधी हैं. इस के विपरीत हम संसद् और विधानसभाओं में उन का स्वागत करते हैं और यह आशा व्यक्त करते हैं कि वे लोकतंत्र के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देंगे. श्रीमती गांधी ने केंद्र के साथ प्रदेश की ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों के सहयोग की प्रशंसा की.

गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण ने भी अपने वक्तव्य में यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि विरोधी पार्टियों के साथ उन के संबंध केवल विरोध के लिए विरोध के नहीं हैं. बल्कि जहाँ कहीं भी सरकार और विरोधी पार्टियों के बीच सहमति के आधार हो सकते हैं उस की तलाश की जानी चाहिए. शिव सेना को फ़ासिस्ट संस्था की संज्ञा देते हुए उन्होंने इस आरोप का खंडन किया कि महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस ने इस फ़ासिस्ट संस्था को अपना समर्थन दिया है. श्री चव्हाण ने पिछले अगस्त में महाराष्ट्र-प्रदेश-कांग्रेस द्वारा पास किये गये एक प्रस्ताव का हवाला दिया जिस में कि शिव-सेना की गतिविधियों की निंदा की गयी थी. गृहमंत्री ने मैसूर-महाराष्ट्र-विवाद की भी चर्चा की और कहा कि यह एक नाज़ुक मामला है जिस से लगभग हर राजनैतिक पार्टी विभक्त हो गयी है. तेलंगाना के उपद्रवों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि इस से यह बात उभर कर आती है कि जो लोग सत्ता में हैं उन्हें प्रादेशिक

तारकेश्वरी सिन्हा : हम भी चिंतित हैं

संतुलन और असंतुलन का ध्यान रखना पड़ेगा. पश्चिम बंगाल के मध्यावधि चुनाव के परिणामों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि संयुक्त मोर्चे को उस की सफलता पर बधाई देते हुए मैं यह कहना चाहूँगा कि वह अपनी सफलता पर गर्व करते हुए दूसरों को अवहेलना की दृष्टि से न देखें. हम चाहते हैं कि संयुक्त मोर्चा सचमुच संयुक्त रहे और संविधान के प्रति वफ़ादार.

बहस पर बहस : अविश्वास प्रस्ताव पर बहस में हिस्सा लेते हुए जनसंघ के नेता **अटलबिहारी वाजपेयी** ने यह स्पष्ट किया कि जनसंघ ने इस अविश्वास प्रस्ताव का प्रस्तावक बनना क्यों स्वीकार नहीं किया. उन्होंने कहा कि हमारा मतभेद प्रस्ताव के केवल रूप और समय से था. लेकिन सरकार जिस तरह कार्य कर रही है उसे देखते हुए उस के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव उचित और संगत है. श्री वाजपेयी ने कांग्रेस पर यह आरोप लगाया कि उस ने पंजाब, उत्तरप्रदेश, और बिहार में फूट डालो और राज करो की नीति अपनायी हालाँकि उस के बाद भी मध्यावधि में उस की पराजय हुई. उन्होंने कहा कि पंजाब में उस ने हिंदुओं और अकालियों के बीच, उत्तरप्रदेश में जाति-जाति के बीच और बिहार में आदिवासियों और ग़ैर-आदिवासियों के बीच कांग्रेस ने फूट डालनी चाही.

संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के **श्री जॉर्ज फर्नांडिज** ने, जो कि शिव सेना के गढ़ बंबई से चुन कर आये हैं, अपने सधे हुए भाषण में शिव सेना की गतिविधियों की व्याख्या की और इस संबंध में प्रजा समाजवादी पार्टी और स्वतंत्र पार्टी का भी उल्लेख किया. उन्होंने कहा कि इन पार्टियों ने भी शिव सेना के साथ सहयोग किया है. श्री फ़र्नांडिज़ ने कहा कि एक ओर कांग्रेस, प्रजा समाजवादी पार्टी और स्वतंत्र पार्टी जैसी संस्थाएँ श्रीनगर के राष्ट्रीय एकता सम्मेलन में बैठ कर एकता की बात करती हैं और दूसरी तरफ़ बंबई में शिव सेना का समर्थन करती हैं. श्री फ़र्नांडिज ने आरोप लगाया कि बंबई में शिव सेना का इस्तेमाल ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों के दमन के लिए किया गया है और

पिछले आम चुनावों में इस संस्था का उपयोग श्री कृष्ण मेनन को हराने तथा श्री सदाशिव पाटील को विजयी बनाने के लिए किया गया था. श्री फ़र्नांडेज ने माँग की कि शिव सेना को पैसा कहाँ से मिलता है, इस की केंद्रीय ख़ुफ़िया विभाग द्वारा जाँच करायी जानी चाहिए. श्री फ़र्नांडिज़ का दावा था कि कांग्रेस जो कि देश के चप्पे-चप्पे से उखड़ रही है कतिपय उद्योगपतियों की सहायता से शिव सेना को संगठित करने का प्रयत्न कर रही है.

कांग्रेस की **श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा** ने मध्यावधि चुनाव के परिणामों की व्याख्या करते हुए मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़, जो कि बंगाल में विजयी हुई, अन्य सभी पार्टियो से कहा कि आप को अपनी शक्ल आईने में देखनी चाहिए. श्रीमती सिन्हा ने कहा कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को छोड़ कौन-सी विरोधी पार्टी ऐसी है जो यह दावा कर सकती है कि मध्यावधि में उसे कामयाबी मिली. श्रीमती सिन्हा ने शिव सेना के संबंध मे गृहमंत्री चव्हाण और महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री वसंतराव नाईक पर लगाये गये आरोपों का खंडन किया और कहा कि शिव सेना को समर्थन देने में कांग्रेस का क्या हित हो सकता है. अगर शिव सेना जैसी क्षेत्रीय संस्थाएँ कामयाब और आक्रामक हुई तो उस से सब से ज्यादा नुकसान कांग्रेस को होगा. इस लिए यह आरोप ग़लत है कि कांग्रेसी शिव सेना का समर्थन करते है. प्रजा समाजवादी पार्टी के **श्री नाथ पै** ने श्री फ़र्नांडिज़ के इस आरोप का खंडन किया कि प्रजा समाजवादी पार्टी हिंसक गतिविधियों को भड़काने में हिस्सा लेती रही है. श्री नाथ पै ने कहा कि इस संकटपूर्ण घड़ी में किसी पर अँगुली उठाने से कोई फ़ायदा नही है. जहाँ तक शिव सेना के साथ हमारी पार्टी के संबंधों का प्रश्न है हम ने बंबई में उन के साथ नगरपालिका के चुनावों में कुछ सीटों को ले कर समझौता किया था. बंबई, तेलंगाना और मुंगेर में जो उपद्रव हुए हैं और उन से जो हिंसा बढ़ती है उस से एक पार्टी नही सभी पार्टियाँ चिंतित है. कांग्रेस के **श्री चरणजीत यादव** ने संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी पर यह आरोप लगाया कि वह प्रतिक्रियावादियों की निंदा करती है और दूसरी ओर जनसंघ जैसी संस्था से सहयोग करती है. स्वतंत्र पार्टी की **श्रीमती गायत्रीदेवी** ने कहा कि केंद्र सरकार का एकमात्र कार्य अब कांग्रेस को केंद्र तथा राज्यों में सत्ता में बनाये रखना रह गया है. कांग्रेस की **श्रीमती इलापाल चौधरी** ने अपने भाषण मे विरोधी पार्टियों की आपसी फूट की चर्चा की और द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के **श्री एस. कंडप्पन** ने गृहमंत्री के वक्तव्य पर निराशा व्यक्त की. निर्दलीय **श्री ई. एस. सईद** और **श्री एम. नारायण रेड्डी** ने तेलंगाना और बंबई की घटनाओं पर चिंता

बलराज मधोक : कटु शब्द

व्यक्त की और कांग्रेस के श्री **कार्तिक ओरांव** ने अविश्वास प्रस्ताव को विरोधी पार्टियों की हताशा का परिणाम बताया.

लोकसभा में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की गतिविधियों पर पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देते हुए गृहमंत्री चव्हाण ने संघ की गतिविधियों को देश-विरोधी बताया लेकिन श्री गोलवलकर के विरुद्ध क़ानूनी कार्रवाई की माँग स्वीकार करने में उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की. श्री गोलवलकर द्वारा 'चतुर्वर्ण' के समर्थन की चर्चा करते हुए गृहमंत्री ने कहा कि यह संघ के विकृत दर्शन का प्रतीक है. यह आत्मघाती रवैया है और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ न केवल हिंदू और मुसलमानों को बल्कि स्वयं हिंदू जाति को विभक्त करने का प्रयत्न कर रहा है.

लोक सभा में इस सारे प्रश्नोत्तर के दौरान काफ़ी देर तक हंगामा होता रहा. उस हंगामे का कारण यह था कि मुस्लिम लीग के एक सदस्य श्री **सुलेमान सईत** ने समाचारपत्रों का हवाला देते हुए श्री बलराज मधोक पर यह आरोप लगाया कि उन्होने यह कहा था कि जो मुसलमान भारत के प्रति वफ़ादार नही हैं उन्हें कुत्तों और बिल्लियों की तरह गोली से

आर. उमानाथ : तीव्र आपत्ति

भून देना चाहिए या फिर उन्हें पाकिस्तान भेज दिया जाना चाहिए. इस पर **श्री मधोक** ने तीव्र आपत्ति की और इसे सरासर झूठ करार दिया. हल्ले गुल्ले के बीच श्री मधोक ने उत्तेजना में कुछ कटु शब्दों का प्रयोग किया. इस पर अनेक विरोधी सदस्यों ने विशेष रूप से वामपंथी कम्युनिस्टों ने अपनी जगह पर खड़े हो कर तीव्र आपत्ति की और अध्यक्ष से यह माँग की कि श्री मधोक ने श्री सईत को गालियाँ दी हैं और उन्हें अपने शब्द वापस लेने चाहिएँ. कुछ अन्य जनसंघी सदस्यों ने जिन में कि प्रमुख श्री हुकुमचंद कछवाय, श्री मधोक के समर्थन में शोर किया. अध्यक्ष श्री संजीव रेड्डी ने सदस्यों को शांत होने की सलाह दी लेकिन हल्ला कम नहीं हुआ. श्री मधोक उत्तेजना में पूर्ववत डटे रहे.

उन्होंने कहा कि मैं ने श्री सईत के बारे में कोई अपमानजनक बात नहीं कही है. मैं ने सिर्फ़ इतना कहा है कि लोग संविधान को भंग करना चाहते है, वे गद्दार हैं. लेकिन इस से विरोधी सदस्यों को संतोष नही हुआ. वे बार-बार यह माँग करते रहे कि श्री बलराज मधोक माफ़ी माँगें. जब अध्यक्ष ने यह कहा कि मैं बाद में रिकार्ड देखूँगा और आपत्तिजनक शब्दों को हटा दिया जायेगा तब सदन में शांति हुई. उसी दिन बाद में श्री मधोक ने सदन को बताया कि मैं ने रिकार्ड देखा है और मेरे द्वारा कही गयी जिन बातों पर आपत्ति की गयी है मैं उन्हें वापस लेता हूँ. इस पर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के श्री **उमानाथ** ने घोषणा की कि मैं ने श्री मधोक के विरुद्ध जो मर्यादा प्रस्ताव दिया था उसे वापस ले रहा हूँ. इस के पहले श्री उमानाथ ने श्री गोलवलकर पर यह आरोप लगाया कि वह मुसलमानों और अनुसूचित जातियों के विरुद्ध घृणा का प्रचार कर रहे है जो कि समूचे देश के लिए घातक है. इस पर गृहमंत्री चव्हाण ने कहा कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का विरोध करना केवल वामपंथी कम्युनिस्टों की ठेकेदारी नही है. हम भी संघ की गतिविधियों को घातक मानते हैं. उन्होने कहा कि मेरे और प्रधानमंत्री के बीच इस तरह की देश-विरोधी गतिविधियों को ले कर समय-समय पर बातचीत होती रही है और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसी घातक संस्था की गतिविधियों पर निगरानी रखी जा रही है.

श्री गोलवलकर ने पिछले छह महीनों में भारत में मुसलमानों की स्थिति और अनुसूचित जातियों को ले कर अनेक वक्तव्य दिये थे जिन पर अनेक राजनेताओं ने आपत्ति की थी. हाल में १ जनवरी, १९६९ को बंबई के नवाकाल नामक समाचारपत्र में एक भेंटवार्ता में श्री गोलवलकर ने चतुर्वर्ण का समर्थन किया था और अल्पसंख्यकों के संबंध में कुछ विवादास्पद बातें कही थी.

संतुलित बजट

हर साल की भाँति इस बार भी १९ फ़रवरी को रेलों का बजट लोकसभा में पेश किया गया, लेकिन इस बार का यह बजट देश की सही स्थिति के अधिक नज़दीक था. कृषि पैदावार और औद्योगिक उत्पादन सुधरने से चहुँमुखी विकास के आसार नज़र आने लगे हैं और यही आधार नये रेल बजट का रहा. उत्पादन बढ़ने से रेलों को ढोने के लिए अधिक माल मिलेगा तथा जनता की आर्थिक स्थिति सुधरने से ज़्यादा संख्या में लोग रेलों से यात्रा करेंगे, इस लिए रेलों की आय बढ़ेगी. तभी तो चार साल बाद पहली बार घाटे का रेल बजट पेश नहीं किया गया. चूंकि फ़ायदे का बजट है इस लिए रेलों के किराये और भाड़े में बढ़ोतरी नहीं की गयी.

संसद् में पेश किये गये रेल-बजट में किराया और भाड़ा न बढ़ाने से पैदा हुई जनता की ख़ुशी २४ घंटे भी नहीं रह पायी कि रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष श्री खंडेलवाल ने यह घोषणा कर दी कि कुछ समय बाद माल-भाड़ा और किराया दोनों ही बढ़ाये जाने की संभावना है. इस दोहरी बात की एक कहानी है और इसे जितना ही अधिक जाना जाये उतनी ही परेशानी बढ़ती है. मंत्रिमंडल का पुनर्गठन होने से पूर्व घाटे का रेल बजट तैयार किया गया था और उस की प्रतियाँ प्रेस में छप भी गयीं थी, लेकिन फिर १३ फ़रवरी की आधी रात को श्री पुनाचा के स्थान पर डॉ० रामसुभग सिंह को रेलमंत्री बना दिया गया. नये रेलमंत्री ने बजट भाषण को बदला और संसद् के सामने अपनी अच्छी तस्वीर लाने के लिए घाटे के बजट को दो करोड़ की बचत का बजट बना दिया और रेल बोर्ड को बता दिया कि बाद में घाटा होते देख किराया-भाड़ा बढ़ाया जा सकता है. फिर से नया बजट भाषण छपा. अब आने वाले १२ महीने बतायेंगे कि क्या सचमुच अधिक माल ढोने और अधिक सवारियाँ ले जाने से रेलों का ख़र्च पूरा हो जायेगा या घाटा पूरा करने के लिए दरें बढ़ानी पड़ेंगी. दोनों ही बातें हो सकती हैं और डॉ० रामसुभग सिंह का अंदाज़ सही भी हो सकता है और ग़लत भी, पर दोनों ही हालतों में नये रेलमंत्री बेदाग़ निकल सकते हैं.

रेलें देश का सब से बड़ा उद्योग हैं. इन में १२ लाख लोग काम करते हैं और इन की लंबाई ५८ हज़ार ८७७ किलोमीटर है, जो दुनिया में सब से बड़ी श्रेणी में आती है. इस के अलावा माल ढोने तथा सवारी परिवहन का अभी तक रेल ही मुख्य साधन है, हालांकि सड़क परिवहन इतनी तेज़ी से बढ़ रहा है कि रेलों का प्रमुख स्थान नीचे खिसकता जा रहा है. फिर भी देश की विशालता को देखते हुए आने वाले कई दशकों तक रेलों को ही परिवहन का मुख्य साधन बने रहना है. तभी तो केंद्र सरकार को रेलों की ओर ही अधिक ध्यान रखना होता है.

अप्रैल से शुरू होने वाले वित्त वर्ष १९६९–७० में रेलों की कुल आय नौ अरब ४६ करोड़ आठ लाख आँकी गयी है, तथा कुल व्यय छह अरब ६५ करोड़ ३५ लाख रुपये होगा. शेष धन में से ९५ करोड़ मूल्य ह्रास निधि के लिए, १० करोड़ पेंशन निधि के लिए, एक अरब ५९ करोड़ लाभांश दायिता के लिए होंगे. इस प्रकार शुद्ध बचत लगभग दो करोड़ रुपये की रह जायेगी.

अन्य सरकारी विभागों की भाँति रेलों का सब से बड़ा ख़र्च है कर्मचारियों का वेतन और भत्ता, जिस पर दो-तिहाई से अधिक व्यय होता

रामसुभग सिंह : मौक़ा देख कर

है. आगामी साल इसी पर २२॥ करोड़ रुपये और अधिक व्यय होंगे, विशेष कर इसलिए कि कर्मचारियों का महँगाई भत्ता हाल में बढ़ाया गया है तथा अगले साल जो ९० लाख टन अधिक माल ढोया जायेगा उस के लिए बड़ी संख्या में नये कर्मचारियों को भर्ती किया जायेगा. जब भी रेलों में ढुलायी बढ़ती है तभी कर्मचारी बढ़ जाते हैं लेकिन काम कम होने पर भी कर्मचारियों की वही बढ़ी हुई संख्या रहती है, इस का कोई हल नहीं निकला या निकाला गया. कई देशों ने इस का एक रास्ता यह निकाला है कि नया काम बढ़ने पर नये लोग भर्ती न कर के बढ़े काम का यंत्रीकरण किया जाता है. इस से एक ओर छँटनी का डर नहीं रहता तथा दूसरी ओर यंत्रीकरण होने से आधुनिकीकरण की ओर क़दम बढ़ते हैं.

रेलों के आय-व्यय के बजट के साथ निर्माण-कार्यों का बजट भी पेश किया जाता है. आगामी साल निर्माण कार्यक्रम पर दो अरब ५५ करोड़ रुपये रखे गये हैं—चल स्टाक पर एक अरब १८ करोड़ रुपये तथा शेष पटरियों को दोहरी करने और पुलिया-स्टेशन आदि बनाने पर. अगले साल का निर्माण बजट अत्यंत निम्न-स्तर पर रखा गया है और कोई नयी लाइन नहीं बनायी जायेगी. पहली तीन योजनाओं में बहुत-सी नयी लाइनें बनायी जा चुकीं और अब तो जो लाइनें हैं उन्हीं को सुधारने पर ज़्यादा ध्यान रहेगा. इस से उन क्षेत्रों को काफ़ी निराशा रहेगी जहाँ कि अब तक रेलें नहीं हैं तथा इसी लिए उन क्षेत्रों का समुचित विकास नहीं हो पाया है. पहले उखाड़ी गयी लाइनों को फिर से बनाने की भी कोई व्यवस्था नहीं की गयी है.

आम जनता का सवारी गाड़ियों से सीधा संबंध है, लेकिन इस दिशा में नये बजट में कोई राहत नहीं दिखायी देती. बजट में अनुमान लगाया गया है कि अगले साल सवारियों की संख्या में तीन प्रतिशत की वृद्धि होगी, लेकिन कोई नयी सवारी गाड़ी चलाने का प्रस्ताव नहीं, प्रस्ताव है पहली मार्च से दिल्ली और कलकत्ता के बीच राजधानी एक्सप्रेस चलाने की जो सारी वातानुकूलित होगी और जिस में बैठने का किराया ९० रुपये तथा शयन दान का किराया २८० रुपये—एक तरफ़ का. यह गाड़ी अब तक की सभी गाड़ियों से तेज़ चलेगी—१२० किलोमीटर प्रति घंटा. लेकिन इतने महँगे किराये में हमारे देश के केवल उच्च वर्ग के लोग ही यात्रा कर सकेंगे.

आम सवारियों के प्रति रेलों की इतनी उपेक्षा का क्या कारण हो सकता है ? इस का एक उत्तर रेल बजट के साथ प्रकाशित किये गये सर्वेक्षण से मिलता है. चालू साल में एक अरब १६ करोड़ लोगों ने रेल से यात्रा की मोटे तौर से औसत देश के हर व्यक्ति ने साढ़े चार बार रेल यात्रा की. एक ओर रेलों को कुल व्यय का आधे से अधिक सवारियों पर ख़र्च करना पड़ता है, लेकिन आय होती है केवल ३५ प्रतिशत. इस प्रकार माल ढोने से रेलों की आय ६५ प्रतिशत होती है. किराये से कम आय का मुख्य कारण यह है कि लगभग ५० प्रतिशत यात्री ऐसे हैं जो सीज़न टिकट पर देश के चार बड़े नगरों की उपनगरीय रेलों में सफ़र करते हैं. उपनगरीय रेलों का सीज़न टिकट अल्प-शुल्क पर दिया जाता है. परिणामस्वरूप सवारी किराये की कुल आय का सात प्रतिशत भाग ही उपनगरीय रेलों के यात्रियों से वसूल हो पाता है, शेष ९३ प्रतिशत लंबा सफ़र करने वालों से वसूल किया जाता है.

हर साल सवारियों की संख्या में तीन प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हाल के वर्षों में होती रही है और अगले साल भी होगी. चार साल में २३ नयी रेलें चला कर अधिक सफ़र की सुविधाएँ दी गयी थीं और अगले साल यह भी नहीं करने का प्रस्ताव है. ऐसी स्थिति में क्या हो सकता है ? एक तो यह कि अधिक से अधिक रेलों को बिजली से चलाया

जाये. इस से रेलों की गति बढ़ सकेगी और दूसरी ओर कर्मचारियों की संख्या भी कम रह सकेगी. देश में लगभग १२ हज़ार रेल इंजन हैं और इन में दो हज़ार से भी कम बिजली या डीजल के हैं और शेष सभी कोयले से चलने वाले. कोयले के इंजन से चलने वाले इंजनों पर खर्च भी ज्यादा होता है और कर्मचारी भी ज्यादा चाहिए. रेलों का बिजलीकरण का काम अत्यंत धीमा है और अभी केवल उपनगरीय रेलों के अलावा कलकत्ता से मुगलसराय तक ही रेलें बिजली से चलायी जा सकी है. आयोजन आयोग का विचार है कि कोयले की खानों के पास ही ताप बिजलीघर बना दिये जायें और फिर उस बिजली से सारी रेलें चलायी जायें.

इस वर्ष के रेल बजट के साथ प्रकाशित दुर्घटनाओं का जो सर्वेक्षण दिया गया है वह संतोषप्रद है. सन् १९६३ से १९६८ तक के पाँच वर्षों में सभी तरह की रेल दुर्घटनाओं की संख्या में ३५ प्रतिशत की कमी हुई है. यह कुंजरू-समिति के प्रतिवेदन को लागू करने का परिणाम है. फिर भी दुर्घटनाओं की संख्या १९६७–६८ में ५५०२ रही, जो अन्य देशों से कही ज्यादा हैं.

भारत- इंदोनेसिया

सहयोग के मूल्य की पहचान

डॉ० आदम मलिक की भारत यात्रा भारत और इंदोनेसिया के बीच एक नये और लाभप्रद सहयोग का दौर शुरू कर सकती है क्यों कि मलिक ही वह व्यक्ति हैं जिन्होंने सुकर्ण के ज़माने की भारत-विरोधी भावना को सहयोग की आकांक्षा में बदल दिया है. इस लिए इंदोनेसिया के इस वरिष्ठ राजनीतिज्ञ से बातचीत करने का अवसर प्राप्त कर के यदि भारत के प्रतिनिधि कुछ अधिक उत्साह का प्रदर्शन कर रहे हों तो अस्वाभाविक नही है. नयी दिल्ली में अपने प्रेस सम्मेलन में डॉ० मलिक ने कहा कि उन्होंने भारत से इंदोनेसिया की पंचवर्षीय योजना में सहायता देने का अनुरोध किया है. यदि एक वैज्ञानिक प्रणाली निकाली जाये तो कोई कारण नहीं कि दोनों एक ऐसा प्रबंध न कर सकें जिस से विश्व के बाज़ारों में दोनों की वस्तुएँ विशेष अनुपात में बिना प्रतियोगिता के बिक सकें. इस सिलसिले में चाय, मिर्च, अबरक आदि वस्तुओं का मूल्य पहले से अधिक मिल सकता है. अदम मलिक ने इस प्रकार के व्यापारिक सहयोग के संबंध में भारत के अधिकारियों से बातचीत की है. सहयोग का दूसरा रास्ता इंदोनेसिया में अकेले या इंदोनेसिया के उद्योगपतियों के साथ मिल कर उद्योग स्थापित करना है. आदम मलिक के अनुसार यद्यपि सुकर्ण के व्यवहार और बाद में क्रांति के कारण बहुत से भारतीय उद्योगपति इंदोनेसिया से चले गये फिर भी इस समय भारतीय व्यापारियों की काफ़ी बड़ी संख्या इंदोनेसिया में है. इस लिए भारतीय उद्योगपतियों के लिए इंदोनेसिया के उद्योगपतियों के साथ मिल कर उत्पादन में सहयोग देने में कोई विशेष कठिनाई महसूस नहीं होगी. इंदोनेसिया प्राकृतिक रूप से संपन्न और भौगोलिक रूप से उपयुक्त स्थिति वाला देश है जिस के साथ व्यापार करने में भारत को काफ़ी लाभ प्राप्त हो सकता है. इंदोनेसियाई सरकार ने अपनी पंचवर्षीय योजना को सफल बनाने के लिए विदेशी सहयोग को एक बहुत बड़ा साधन मान लिया है. संभवतः इस लिए हाल ही में एक नये व्यापार मंत्री की नियुक्ति हुई है.

आदम मलिक : नयी आकांक्षा

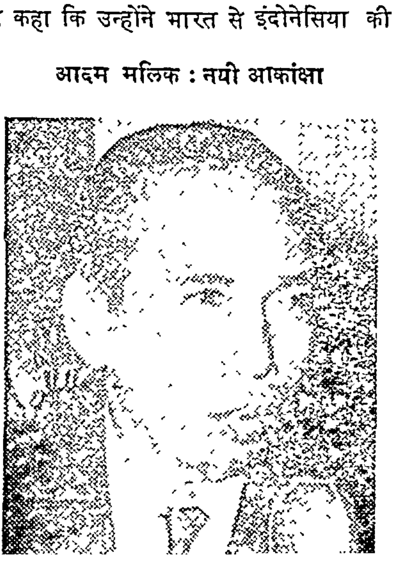

राजनैतिक दृष्टिकोण : डॉ० मलिक ने अपने समाचार सम्मेलन में कुछ राजनैतिक प्रश्नों का भी उत्तर दिया. उन के अनुसार इंदोनेसिया चीन को शत्रु नही मानता मगर दूसरे देशों में हस्तक्षेप करने की चीन की नीति से उसे असंतोष है. भारत के साथ मिल कर चीन के विरुद्ध एक मोर्चा बनाने की आवश्यकता इंदोनेसिया को महसूस नही होती क्यों कि भारत स्वयं अपने पड़ोसी के साथ मित्रतापूर्वक रहना चाहता है. अदम मलिक के अनुसार वीएतनाम से अमेरिकी सैनिक शक्ति के चले जाने के बाद दक्षिण पूर्व एशिया में जो रिक्तता पैदा होगी उस को भरने के लिए इंदोनेसिया सरकार आगे नहीं आयेगी. क्यों कि इस क्षेत्र के राष्ट्र कालांतर में स्वयं इतने सशक्त हो जायेंगे कि उन के लिए अपना बचाव करना असंभव नही होगा. इंदोनेसिया की नज़र में किसी भी क्षेत्र में विदेशी सेनाओं का रहना उस क्षेत्र के लिए उपयक्त नही है.

निधन

वृंदावनलाल वर्मा

वृन्दावनलाल वर्मा के निधन के बाद हिंदी जगत् में ऐसा लेखक मुश्किल से मिलेगा जिसे

वृंदावनलाल वर्मा : विरले लेखक

साहित्य की राजनीति से दूर रह कर भी साहित्यिक यश प्राप्त हो. इतना ही नही **वृंदावनलाल वर्मा** ऐसे विरले लेखक थे जिन्हें साहित्य यश और लोक यश समान रूप से प्राप्त था. अपने ऐतिहासिक उपन्यासों और पात्रों की रचना उन्होंने बंद कमरों में मेज पर बैठ कर ही नहीं की. बुंदेलखंड का चप्पा-चप्पा उन का छाना हुआ था. कसरत, पहलवानी अच्छे पौष्टिक पदार्थ खाने के साथ-साथ हर तरह का जोखम उठाने का भी उन का शौक भुलाया नहीं जा सकता. बंदूक ले कर महीनों शिकार के लिए जंगल-जंगल छानते घूमना और आज की जिंदगी और समाज से कटी हुई जनजातियों को भी अपनी आत्मीयता से अपना बना लेना उन की उस ज़िंदादिली का सबूत है जो अब लेखकों की दुनिया में कहीं दिखायी नही देती. उन के लेखन कर्म और जीवन कर्म की परिधि एक थी.

वृंदावनलाल वर्मा का जन्म ९ जनवरी १८८९ में मऊरानीपुर में हुआ था. अभी उन्हें सोवियत लैंड पुरस्कार प्राप्त हुआ था. बी. ए. एल. एल. बी. करने के बाद वह झाँसी में एडवोकेट थे और मयूर प्रकाशन के नाम से अपनी पुस्तकों का खुद प्रकाशन करते थे. उन्होंने ६० से अधिक पुस्तकें लिखी हैं. **झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई** (१९४६) का रूसी भाषा में अनुवाद हो चुका है. देश की लगभग सभी भाषाओं में वह अनुदित है. **राखी की लाज** (नाटक १९४७) कलाकार का दंड (कहानी-संग्रह), मंगलसूत्र (नाटक १९५५). **गढ़-कुंडार, विराटा की पद्मिनी** उन के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपन्यास है और इन के लिए वह हमेशा याद किए जायेंगे. **मृगनयनी** उन का काफ़ी लोकप्रिय उपन्यास माना जाता है. भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री से भी सम्मानित किया था. साहित्यकार संसद, हिन्दुस्तानी अकादेमी, नागरी प्रचारिणी सभा, उत्तरप्रदेश सरकार, भारत सरकार, तथा डालमिया सभी की ओर से वह अपने जीवनकाल में पुरस्कृत हो चुके थे. आगरा विश्वविद्यालय से उन्हें सम्मानार्थ डी० लिट० की उपाधि प्राप्त हुई थी और वह आगरा विश्वविद्यालय सिनेट के सदस्य थे. **दिनमान** उन के निधन पर अपनी श्रद्धा और उन के परिवार के प्रति अपनी हार्दिक समवेदना व्यक्त करता है.

तेलंगाना

'जेंटलमें'स एग्रीमेंट' और शासन की कुर्सी

१२ जनवरी को उस्मानिया विश्वविद्यालय छात्रसंघ की कौंसिल की बैठक हुई जिस में 'तेलंगाना सेफ़गार्ड' को क्रियान्वित न किये जाने के उपलक्ष्य में १५ जनवरी से आम हड़ताल प्रारंभ करने के विषय में निर्णय लेने थे. कौंसिल की इस बैठक में छात्रों में मतभेद हो गया और दो दल बन गये. एक दल 'तेलंगाना सेफ़गार्ड' के नाम से जाना जाता है और दूसरा 'सेपरेट तेलंगाना' के नाम से. 'सेपरेट तेलंगाना' वाला दल कौंसिल की बैठक से बहिष्कार कर गया. इस बैठक ने १५ जनवरी से 'सेफ़गार्ड' आंदोलन चलाना तय किया. तेलंगाना छात्र यूनियन के समर्थन के साथ १५ जनवरी से आम हड़तालों और भूख हड़तालों का दौर शुरू हुआ. सेपरेट तेलंगाना समर्थक छात्रों ने भी १५ से आंदोलन प्रारंभ किया. ये छात्र निज़ाम कॉलेज में इकट्ठे होते थे और जुलूस निकाल कर चार मीनार, कोठी या घंटाघर के पास विसर्जित हो जाते थे और सेफ़गार्ड वाले विवेक वर्धिनी महाविद्यालय में जमा हो कर सचिवालय जाते थे. एक-दो बार इन छात्रों की मुठभेड़ भी हुई और हाथापाई तक नौबत भी आयी तब पुलिस को हस्तक्षेप करने का मौक़ा मिला. लाठी चार्ज किया गया और आँसू गैस भी छोड़ी गयी. यह आंदोलन ज़िलों में तेज़ी से फैला और हाई स्कूल और कॉलेजों के छात्र इस आंदोलन में कूद पड़े. तेलंगाना क्षेत्र के ज़िलों—वारंगल, खम्मम, निज़ामाबाद, महबूब नगर, नलगोंडा, आदिलाबाद, मेदक और करीम नगर में आंदोलन उग्रतर होता गया. हाई स्कूलों, कॉलेजों और सचिवालय के सामने छात्रों ने भूख हड़ताल प्रारंभ की. आमरण अनशन कर रहे एक छात्र नेता श्री रवींद्रनाथ की सहानुभूति में कांग्रेसी विधायक श्री जी. सत्यनारायण ने भी तीन दिन का अनशन किया. इस आंदोलन का राज्य के विरोधी दलों ने समर्थन किया और संयुक्त वक्तव्य दिये. कांग्रेस के कुछ भूतपूर्व मंत्री और नेता भी पर्दे के पीछे से इस का समर्थन कर रहे हैं. मुख्यमंत्री ने भी इस आंदोलन के पीछे निहित स्वार्थ का हाथ बताया है.

इस आंदोलन के दौरान ट्रेनों, बसों, बिजली के खंभों और तेलंगाना और आंध्र क्षेत्रों के लोगों पर हमलों की अशोभनीय घटनाएँ घटीं. पुलिस को गोली, लाठी और आँसू गैस का खुल कर इस्तेमाल करना पड़ा और जब आंध्र की पुलिस कम पड़ी तो मैसूर से सशस्त्र सेना बुलायी गयी और फिर मुख्यमंत्री को शांति बनाये रखने के लिए सेना तक को बुलाना पड़ा. अखबारी आंकड़ों के आधार पर ८ व्यक्तियों की जान गयी जिन में हाई स्कूल के नन्हे-मुन्ने छात्रों की संख्या ज्यादा है और जिन की उम्र १० से १५ वर्ष के बीच है. हज़ारों गिरफ़्तार हुए. सैकड़ों घायल हुए.

ज़िला नलगोंडा में विजयपुरी नामक स्थान पर रंगाचार्यलु नामक एक उप-सर्वेयर को कपड़ों में आग लगा कर जला दिया गया जिस की अस्पताल में मृत्यु हो गयी. आंध्र क्षेत्र के कर्मचारी तेलंगाना छोड़ कर भागने लगे और इसी प्रकार तेलंगाना क्षेत्र के कर्मचारी आंध्र क्षेत्र छोड़ कर भागने लगे. कहीं भी सुरक्षा की गारंटी नहीं थी. घृणा और आतंक सारे प्रांत में व्याप्त हो गया तथा स्थिति छात्रों और राजनीतिक नेताओं के हाथ से निकल कर गुंडों, चोरों और असामाजिक तत्वों के हाथों में चली गयी. तेलंगाना छात्र आंदोलन के विरोध में आंध्र के छात्रों ने एक 'आंध्र बचाओ' आंदोलन चलाया और इस तरह तनाव और उत्तेजना और बढ़ गयी. चारों ओर से मुख्यमंत्री से त्यागपत्र देने और राज्य में राष्ट्रपति शासन की माँग की गयी.

'जेंटलमें'स एग्रीमेंट' : इस आंदोलन को आकस्मिक नहीं कहा जा सकता. ३ सितंबर, १९५२ को गैरमुल्की आंदोलन के दौरान हैदराबाद नगर की सिटी कॉलेज के सामने पुलिस की गोली से ३ छात्र मारे गये थे. फिर जब सन् १९५६ में आंध्रप्रदेश का निर्माण हुआ तो स्वतंत्र तेलंगाना की माँग ज़ोरों से उठी थी और तब केंद्र ने फ़ज़ल अली कमीशन बैठाया था. इस कमीशन ने पूरे क्षेत्र का दौरा कर के जो रिपोर्ट दी थी उस का आशय यह था कि वास्तव में यह क्षेत्र बहुत पिछड़ा हुआ है और या तो इसे दस वर्ष तक अलग रखा जाये या फिर इसे दस वर्ष तक विशेष सुविधाएँ दी जायें. इस कमीशन की रिपोर्ट के बाद दोनों क्षेत्रों के नेताओं ने मिल कर एक समझौता किया था जिसे 'जेंटलमें'स एग्रीमेंट' कहा जाता है. तेलंगाना क्षेत्र की ओर से स्व. बी. रामकृष्ण-राव तथा सर्वश्री चन्ना रेड्डी, जे. वी. नरसिंह राव और रंगा रेड्डी थे और आंध्र क्षेत्र की ओर से सर्वश्री संजीव रेड्डी, गोतु लच्छन्न और बी. गोपाल रेड्डी आदि थे. समझौते में मुख्य बातें थीं कि आंध्र और तेलंगाना क्षेत्रों पर खर्च का अनुपात २:१ रखा जायेगा. तेलंगाना की मालगुज़ारी की आय १० वर्ष तक तेलंगाना पर ही खर्च की जायेगी और ३०० रुपये से कम की सभी नौकरियों पर तेलंगाना क्षेत्र के लोग ही रखे जायेंगे.

बचत योजना के नाम पर पिछले दिनों सरकारी नौकरियों में छंटनी होने लगी तो तेलंगाना क्षेत्र के १५ सहायक इंजीनियरों को नौकरी से हटाने की नोटिसें दी गयीं. यह खबर पढ़ कर छात्र चौंके और उन्हें 'जेंटलमें'स एग्रीमेंट' की याद आयी जो पिछले १३ वर्षों से सड़ रहा था और जिस में तेलंगाना क्षेत्र पर खर्च की जाने वाली राशि धीरे-धीरे बढ़ कर ७० से ७२ करोड़ तक जमा हो गयी थी और अध्यापकों सहित चार हज़ार से अधिक आंध्र क्षेत्र के लोग तेलंगाना क्षेत्र में नौकरियों पर अधिकार जमा चुके थे.

आंदोलन : आंध्रप्रदेश के मुख्यमंत्री से विरोधी दलों के नेताओं का एक प्रतिनिधि मंडल मिला और ज्ञापन दिया. आंध्र के वयोवृद्ध नेता स्वामी रामानंद तीर्थ ने भी १९५६ के समझौते को पूरा न किये जाने पर खेद प्रकट किया. आखिर मजबूरन मुख्यमंत्री को सभी राजनैतिक दलों के नेताओं को बुलाना पड़ा और दस घंटे की विस्तृत चर्चा के बाद एक सर्वसम्मत समाधान खोजा गया. इस के आधार पर 'तेलंगाना सेफ़गार्ड' को प्रभावकारी ढंग से क्रियान्वित किया जायेगा और क्षेत्रीय जनता को पूरा संतोष दिया जायेगा. समझौते पर मुख्यमंत्री सहित सभी राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किये. लेकिन इस घोषणा के बाद भी आंदोलन चलता रहा और राज्य सरकार को १६ फ़रवरी तक सरकारी और ग़ैर-सरकारी स्कूल-कॉलेज बंद करने का आदेश देना पड़ा. २३ जनवरी को छात्र-नेताओं और मुख्यमंत्री के मध्य हुई बातचीत के बाद उस्मानिया विश्वविद्यालय छात्रसंघ के अध्यक्ष श्री वेंकटरामा रेड्डी ने हड़ताल समाप्ति की घोषणा की. छात्र नेताओं ने मुख्यमंत्री को चेतावनी दी कि छात्र केवल समझौते की लिखा-पढ़ी से ही संतुष्ट नहीं होंगे बल्कि उस के क्रियान्वयन को ही प्रमुखता देंगे.

अब प्रश्न उठता है कि राज्य में यह जो सब कुछ घटित हुआ इस का जिम्मेदार कौन है ? दिनमान के प्रतिनिधि ने शायर और साम्यवादी नेता श्री मख़्दूम मोहिउद्दीन से पूछा कि इस छात्र आंदोलन के संबंध में आप के क्या विचार हैं ?

कृष्णकुमार : जन-संपर्क के बाद

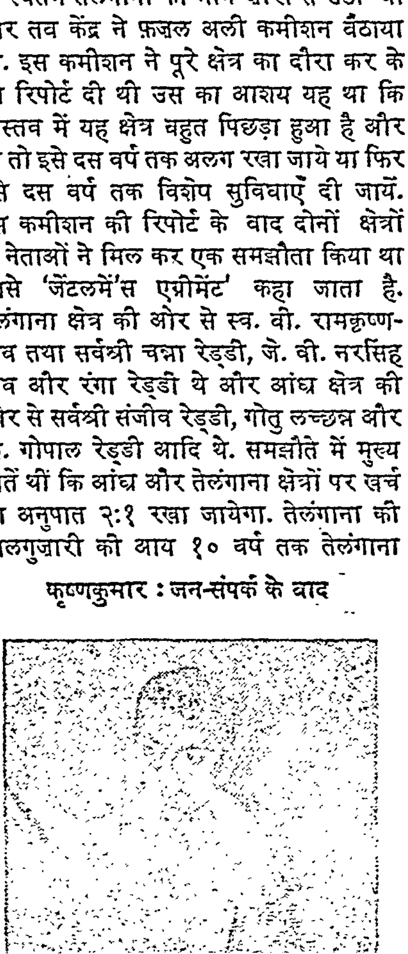

मख़्दूम मोहिउद्दीन : आंदोलन सही, विभाजन ग़लत

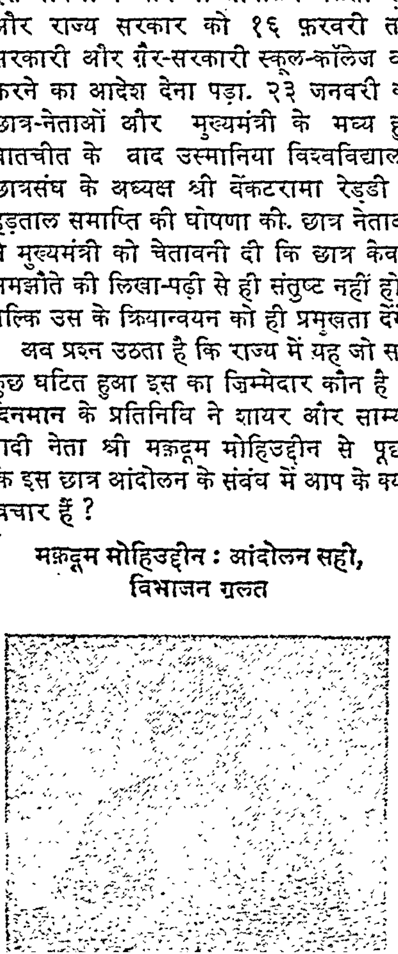

श्री मक़दूम : ज़ाहिर है कि मैं इस का समर्थक हूँ क्यों कि आंध्र के निर्माण के समय तेलंगाना क्षेत्र के लोगों के लिए जो समझौता हुआ था और जो आश्वासन दिये गये थे वे पूरे नहीं किये गये. लेकिन स्वतंत्र तेलंगाना की माँग बहुत खतरनाक है. इस के कारण तेलंगाना क्षेत्र हमेशा-हमेशा के लिए पिछड़ा हुआ रह जायेगा और यह ख़ूबसूरत क्षेत्र वीरान हो जायेगा. नौजवान दिखने वाले इस ६१ वर्षीय वयोवृद्ध नेता ने धीरे-धीरे कहना शुरू किया : 'इस से आंध्र की संस्कृति, औद्योगिक उन्नति और सभ्यता पर काफ़ी विपरीत असर पड़ेगा और सब से बड़ी बात तो यह कि ५०० वर्षों के बाद, बड़े-बड़े बलिदान दे कर हम ने जो एकता हासिल की है वह खंडित हो जायेगी'.

प्रतिनिधि : लेकिन ये जो हिंसात्मक घटनाएँ हो रही हैं उन पर आप की क्या प्रतिक्रिया है ?

श्री मक़दूम : मैं इन की भर्त्सना करता हूँ. जिन क्षेत्रों में आंध्र के लोगों के साथ हिंसा का और अशिष्टता का बर्ताव हुआ है उस से मुझे काफ़ी दुख हुआ है. यह ऐसा ज़ख्म है जो भरा नहीं जा सकता. इस के लिए राज्य सरकार के साथ-साथ रीजनल कमेटी के तीनों चेयरमैन (१) श्री अच्युत रेड्डी, (२) श्री हयग्रीवाचारी और (३) श्री चोक्का राव भी समान रूप से जिम्मेदार हैं. इन लोगों का काम था कि पिछले १३ वर्ष में ये चीज़ें अमल में लाते. भूतपूर्व मुख्यमंत्रियों ने भी कुछ नहीं किया और उस समय ब्रह्मानंद रेड्डी साहब वित्तमंत्री भी थे. तेलंगाना क्षेत्र के जो मंत्री रहे हैं और नेता हैं, उन्होंने भी पिछले १३ वर्ष में कुछ नहीं किया.

प्रतिनिधि : आप भी तो लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य हैं, कभी आप भी यह सवाल उठा सकते थे.

श्री मक़दूम : सन् १९६१ में कम्युनिस्ट पार्टी ने इस बात को पकड़ा था और पूछा था कि तेलंगाना क्षेत्र की जो २१ करोड़ की रक़म जमा हो गयी है वह खर्च क्यों नहीं की गयी तो तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री संजीव रेड्डी और उन के वित्तमंत्री श्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने कहा था कि हम वर्ष में १ करोड़ रुपये उस के लिए निकालेंगे लेकिन इस वचन को भी उन्होंने पूरा नहीं किया और बढ़ते-बढ़ते अब यह रक़म ७०-७२ करोड़ तक पहुँच गयी है. इस रक़म से तेलंगाना क्षेत्र में जो उन्नति होनी चाहिए थी वह नहीं हुई—'पोचमपाड प्रॉजेक्ट' बनना चाहिए था, सो नहीं बना. गांवों में बिजली और सिंचाई की व्यवस्था होनी चाहिए थी, सो नहीं हुई. नौकरियों के संबंध में भी पिछले तेरह वर्ष में बराबर वचन भंग हुआ है.

प्रतिनिधि : लेकिन यह आंदोलन तेरह वर्ष बाद क्यों छेड़ा गया, यह तो बहुत पहले छिड़ जाना चाहिए था.

श्री मक़दूम : नौकरियों में छंटनी, बेकारी की समस्या, कॉलेजों में दाखिले की दिक़्क़त

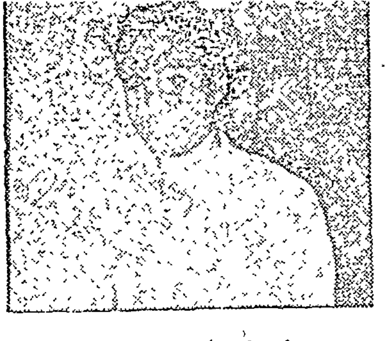

अज़ीज़ पाशा : माँग ही माँग

आदि से बेचैनी धीरे-धीरे ही फैलती है. समय तो लगता ही है. आप हमारे क्षेत्र के देशमुख— वे रुके, यानी किसान को देखिए. आंध्र क्षेत्र के किसान की तुलना में वह गया-गुज़रा है. भूखा है, नंगा है, आंध्र के लोग सामंत हैं, वे आर्थिक रूप से संपन्न हैं, शहर में आ कर ज़मीनें खरीद रहे हैं, महल बना रहे हैं, अंगूर के बग़ीचे लगा रहे हैं, कारों में फिरते हैं और रात में महफ़िलें सजाते हैं. इस सब से तेलंगाना क्षेत्र के लोगों में हीन भावना घर करती जा रही है.

प्रतिनिधि : और कुछ—?

श्री मक़दूम : अब स्थिति यह है कि १९ जनवरी को विरोधी दलों के नेताओं और कांग्रेस सरकार के जिन लोगों ने जेंटलमें'स एग्रीमेंट को ५ वर्ष में क्रियान्वित करने का जो समझौता किया है वह यह सरकार जल्दी से जल्दी पूरा करे तो स्थिति में कुछ सुधार हो सकता है.

हैदराबाद स्टुडेंट्'स यूनियन के अध्यक्ष और आंध्रप्रदेश स्टुडेंट्'स फ़ेडरेशन के सेक्रेटरी श्री अज़ीज़ पाशा ने **दिनमान** को बताया कि तेलंगाना सेफ़गार्ड की अवधि १० वर्ष बढ़ायी जाये और जेंटलमें'स एग्रीमेंट को जल्द से जल्द क्रियान्वित किया जाये. आंध्र क्षेत्र के ९ ज़िलों में बी. एड. कॉलेज हैं जब कि तेलंगाना में कुल तीन हैं. छात्र चाहते हैं कि यहाँ भी प्रत्येक ज़िले में एक ट्रेनिंग कॉलेज हो. निज़ामाबाद में एक मेडिकल कॉलेज खोला जाये और तेलंगाना की राशि तेलंगाना पर खर्च हो.

न्यू एम. एल. ए. क्वार्टर्स में वातावरण इस कदर गर्म था कि सारा एम. एल. ए. क्वार्टर गूंज रहा था. यह प्रतिनिधि मंडल भी दो भागों में विभाजित हो गया. एक दल आंदोलन वापस लेना चाहता है और दूसरा आंदोलन को जारी रखना चाहता है. तेलंगाना सेफ़गार्ड आंदोलन के प्रमुख छात्रनेता श्री एस. सदानंद ने (जो आंध्र विद्यालय के अध्यक्ष और हैदराबाद स्टुडेंट्'स यूनियन के जनरल सेक्रेटरी हैं) **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि तेलंगाना क्षेत्र के साथ हमेशा से ही अन्याय होता आ रहा है. निज़ाम के राज में सिर्फ़ शहर की ओर ही ध्यान दिया गया और ग्रामीण क्षेत्र पिछड़े रह गये. प्रजातांत्रिक सरकार ने भी भेदभाव किया.

प्रतिनिधि के यह पूछे जाने पर कि इस छात्र आंदोलन के पीछे राजनीतिक तत्वों का हाथ कहाँ तक है ? उन्होंने बताया कि कुछ पिटे हुए मोहरे जैसे चेन्ना रेड्डी और चोक्काराव आदि कुछ प्रभाव हासिल करने में लगे हुए हैं. कल जो

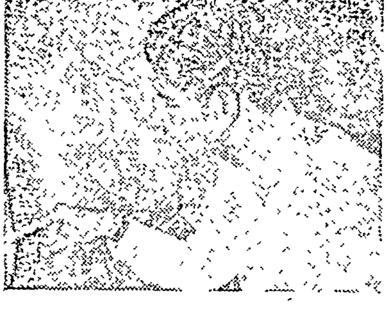

एस. सदानंद : अन्याय ही अन्याय

आंध्र क्षेत्र से प्रतिनिधिमंडल आया है, उस के पीछे प्रदेश कांग्रेसाध्यक्ष श्री कांकाणी वेंकटरत्नम का काफ़ी हाथ है. यह प्रतिनिधिमंडल मुख्यमंत्री से इस्तीफ़े की माँग करता रहा और काफ़ी गर्मागर्मी रही. आप तो जानते ही हैं कि कांकाणी साहब विधायक हैं और उन्हें ब्रह्मानंद मंत्रीमंडल में नहीं लिया गया था. उन्होंने कल अपनी ताक़त दिखा दी. बाद में वे छात्र आंदोलन वापस लेने पर राज़ी हो गये. आंध्र क्षेत्र के छात्र आंदोलन के पीछे ऐसे ही नेताओं का हाथ है जो राजनीतिक उद्देश्य के लिए आग को और हवा देते हैं. हम सेपरेट तेलंगाना आंदोलन के विरुद्ध हैं और आंध्र की जनता और छात्रों से अपील करते हैं कि ५०० वर्षों के बाद जो एकता आई है उसे छिन्न-भिन्न न करें. हम चाहे जो कुर्बानी दे कर भी इस एकता को क़ायम रखना चाहेंगे. आंध्र के छात्र अगर अपना आंदोलन वापस नहीं लेंगे तो सेपरेट तेलंगाना की माँग वाले इस घातक आंदोलन को और हवा देंगे. हम सिर्फ़ जेंटलमें'स एग्रीमेंट का क्रियान्वयन चाहते हैं.

आंध्र विश्वविद्यालय से आए प्रतिनिधिमंडल के नेता श्री कृष्ण कुमार ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को भेंट में बताया कि हम ने आंदोलन आंध्र की एकता के लिए शुरू किया था. असल में सही बातें देर से मालूम होती हैं. तेलंगाना सेफ़गार्ड की माँगों का हम समर्थन करते हैं लेकिन साथ ही हम राज्य सरकार से यह माँग भी करते हैं कि आंध्र क्षेत्र में भी रायल सीमा और सिरकाकुलम जैसे हर दृष्टि से पिछड़े हुए इलाके हैं, उन की तरक़्क़ी की ओर भी समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए.

प्रतिनिधि : क्या आप यह आंदोलन वापस ले रहे हैं ?

श्री कृष्ण कुमार : अभी कुछ नहीं कहा जा सकता. हम लोग अपने-अपने स्थानों को जायेंगे, जनता और लोगों से मिलेंगे. छात्रों को यहाँ जो देखा-समझा और सुना है, वह बतायेंगे. फिर जो भी निर्णय वे लें. लेकिन हम किसी भी क़ीमत पर आंध्र प्रदेश की एकता को खंडित नहीं होने देंगे. सेपरेट तेलंगाना या सेपरेट आंध्र हमें स्वीकार नहीं है. हम चाहते हैं कि भावनात्मक और वैचारिक एकता के लिए प्रांत के प्रत्येक विश्वविद्यालय में कम से कम २० स्थान ऐसे रखे जायें जो अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के लिए हों और जिस से हम आपसी समस्याओं से अवगत हो सकें, प्रांत के लिए कुछ कर सकें.

प्रदेश

बिहार

आदिवासी क्षेत्र और जनसंघ

हरिहर सिंह को नेता चुन कर बिहार कांग्रेस के मठाधिकारियों ने यह सिद्ध कर दिया कि अब भी वहाँ उन का ही शासन चलता है. स्वयं केंद्रीय प्रतिनिधि चव्हाण भी हवा का रुख देख कर खामोश ही रहे. उन्होंने प्रादेशिक कांग्रेस की कार्रवाई में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा. नेता चुनने के तुरंत बाद कांग्रेसी हल्क़ों में सरकार बनाने की चर्चा बड़े उत्साह से चल पड़ी थी मगर वह उत्साह अधिक देर तक नहीं रह पाया, क्यों कि विरोधी दलों में भी ग़ैर-कांग्रेसी सरकार की संभावनाओं पर बातचीत होने लगी है. हरिहर सिंह और संसपा के नेता कर्पूरी ठाकुर—दोनों अपने-अपने दावे ले कर राज्यपाल से मिले मगर अभी कोई भी ठोस ज़मीन पर खड़ा नहीं है.

भारतीय जनसंघ ने राँची क्षेत्र में अपनी शक्ति में महत्वपूर्ण वृद्धि की है. बृहद राँची में जनसंघ ने तीनों स्थानों पर कब्ज़ा कर लिया है. इस में राँची, कांके और खिजरी शामिल हैं. हटिया और धुरवा के औद्योगिक क्षेत्र भी इसी इलाक़े में आते हैं. वास्तव में इस क्षेत्र में जनसंघ की अपनी संगठित शक्ति के अतिरिक्त उस के सब से कट्टर शत्रु और निकटतम प्रतिद्वंद्वी साम्यवादी दल के प्रचार ने भी जनसंघ को अधिक मत दिलाये. साम्यवादी दल ने राँची क्षेत्र में अपना अभियान मुस्लिम बहुल क्षेत्र में इस प्रकार शुरू किया जिस से हिंदू बहुसंख्यक क्षेत्रों में स्पष्ट विरोध की भावना पैदा हो गयी. मुसलमानों में जनसंघ को हिंदू सांप्रदायिकतावाद के पुनरुत्थान के रूप में पेश किया गया और यह अफ़वाह बड़े ज़ोरों से फैल गयी कि मुस्लिम संप्रदाय एक वर्ग के रूप में साम्यवादियों के पक्ष में मत डाल कर जनसंघ के प्रत्याशियों को पराजित करेगा. इसे हिंदुओं ने एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया. इस प्रकार के तनावपूर्ण वातावरण में जहाँ साम्यवादियों के मतों में वृद्धि हुई वहीं जनसंघ को भी हिंदुओं का भारी समर्थन प्राप्त हुआ. यद्यपि साम्यवादी दल को इस बात का संतोष है कि उसे पहले से अधिक समर्थन प्राप्त हुआ फिर भी खिजरी विधानसभा चुनाव क्षेत्र का जनसंघ के हाथ में पड़ना उन के लिए एक भारी आघात के समान है क्यों कि इसी क्षेत्र में हेवी इंजीनियरिंग कॉरपोरेशन शामिल है जिस में १८००० मज़दूर और कर्मचारी काम करते हैं. साम्यवादी दल का यह आरोप है कि जनसंघ ने आदिवासियों की सब से बड़ी कमज़ोरी शराब का उपयोग किया फिर भी उन्हें इस बात का एहसास है कि पिछले दो वर्षों में मज़दूर वर्ग में जनसंघ का कार्य काफ़ी बढ़ गया है. हेवी इंजीनियरिंग कारपोरेशन के भूतपूर्व अध्यक्ष केशवदेव मालवीय के व्यवहार के कारण *मज़दूरों, विशेषकर हिंदू मज़दूरों में साम्यवाद-विरोधी भावनाएं पैदा हो गयीं.*

छोटा नागपुर : जनसंघ को आशा थी कि वह संपूर्ण छोटा नागपुर क्षेत्र और आदिवासी ज़िलों में कम-से-कम ३० स्थान पर कब्ज़ा करेगा. इस क्षेत्र में कुल ६१ स्थान हैं. मगर जनसंघ की यह आशा पूरी नहीं हो सकी. उसे केवल १२ स्थान मिले जिन में ७ तो केवल राँची ज़िले से हैं. इस से पहले जनसंघ के इस क्षेत्र—राँची, हज़ारीबाग, पलामू, सिंहभूमि और धनबाद—में केवल ७ स्थान थे. साम्यवादी दल को पहली बार इस क्षेत्र में ४ स्थान मिले हैं. झारखंड पार्टी को १० और संसपा को ५. मगर कांग्रेस ने ३० के बदले केवल ११ स्थान प्राप्त किये हैं. ऐसा लगता है कि इस क्षेत्र में कांग्रेस का प्रभाव दिन-प्रतिदिन घटता जा रहा है. कांग्रेस के अतिरिक्त रामगढ़ के राजा का दल *जनता पार्टी के स्थानों में भी कमी हुई है.* उसे केवल १० स्थान प्राप्त हुए हैं. कांग्रेस की असफलता का सब से बड़ा कारण प्रभावहीन अभियान और असंगठित नेतृत्व था. इस संदर्भ में कुछ लोगों का यह विचार है कि कांग्रेस को अपने प्रचार और प्रत्याशियों की सामर्थ्य को देखते हुए अधिक मत मिले हैं. कांग्रेस में जनसंघ के विरुद्ध शक्तिशाली प्रचारतंत्र स्थापित करने *की न तो क्षमता थी और न ही दृढ़ निश्चय.* राँची में कांग्रेस ने अपना कोई चुनाव एजेंट तक नियुक्त नहीं किया था, क्यों कि कांग्रेस के एक वरिष्ठ नेता ने उसे एक ऐसे पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य किया था जो प्रतिनिधित्व को रद्द करने के लिए होता है. फिर भी यदि कांग्रेस को इतने मत मिले हैं तो इस का अर्थ इतना ही है कि अभी कांग्रेस का आधार समाप्त नहीं हुआ है. आदिवासी क्षेत्र में स्थित लहर डागा स्थान से पराजित संसोपा प्रत्याशी अरुण औरांव ने यह आरोप लगाया है कि छोटा नागपुर क्षेत्र में राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की कारवाइयों के कारण हिंदू आदिवासियों और ईसाई आदिवासियों में भेदभाव पैदा हो गया है क्यों कि संघ की प्रेरणा से ही आदिवासियों में शुद्धीकरण का आंदोलन चल पड़ा है. उन्होंने कहा कि वह इस प्रभाव का डट कर मुक़ाबला करेंगे.

मध्यप्रदेश

सत्याग्रह का पहला शिकार

तीसरी बार स्थगित होने के बाद कांग्रेस के नेता द्वारका प्रसाद मिश्र के सत्याग्रह के प्रति मध्यप्रदेश की जनता की रुचि बिलकुल कम हो गयी है क्यों कि जिस उत्साह और उग्रता के साथ उन्होंने संविद सरकार को 'नंगा' करने के लिए सत्याग्रह करने की घोषणा की थी वह उत्साह अधिक देर तक रह नहीं सका. कई बार सत्याग्रह का रूप बदलना पड़ा और अंतिम दौर में पहुँचते-पहुँचते वह एक तमाशा-सा बन गया. शोर-शराबा, गाजे-बाजे, शंख-घड़ियाल और कुंकुम-अक्षत द्वारा स्वागत कराने के बाद मिश्र और प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष को भोपाल के निकट पहुँचते-पहुँचते सत्याग्रह स्थगित करना पड़ा. सत्याग्रहियों से वापस घर जाने के लिए कहा गया ताकि मिश्र जी की अनुपस्थिति में भोपाल में प्रवेश न करें. इस कार्रवाई के लिए कांग्रेस हाई कमान को उत्तरदायी ठहराया गया है क्यों कि उस ने ऐन मौक़े पर स्थगन की आज्ञा भेज कर मिश्र और गंगवाल को परामर्श के लिए दिल्ली बुलाया है. बहुत दिनों से यह चर्चा रही है कि कांग्रेस हाई कमान प्रदेश कांग्रेस के इस सत्याग्रह से प्रसन्न नहीं है और कई बार प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में केंद्रीय नेताओं ने इस बात *का इशारा किया था कि द्वारका प्रसाद मिश्र* को संविद सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह का रास्ता छोड़ देना चाहिए. कुछ लोगों का विचार है कि द्वारकाप्रसाद मिश्र के प्रतिद्वंद्वी श्यामाचरण शुक्ल ने भी सत्याग्रह को स्थगित करवाने में पर्याप्त योगदान दिया है. ऐसा लगता है कि सत्याग्रह के बहाने प्रदेश कांग्रेस के ये दो प्रतिद्वंद्वी एक-दूसरे को पराजित करने *का खेल भी खेल रहे हैं.*

केंद्र का रुख : कुछ समय पहले द्वारका प्रसाद मिश्र ने प्रदेश कांग्रेस मंत्री विमला वर्मा और अपने विश्वासपात्र रुक्मिणी रमण प्रताप सिंह को दिल्ली *भेजा था.* केंद्रीय नेताओं के साथ उन की बात-चीत के आधार पर मिश्रजी का कहना था कि कांग्रेस की उच्च सत्ता संयुक्त विधायक दल सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह करने और धारा १४४ को तोड़ने के विरुद्ध नहीं है. वह केवल विधानसभा क्षेत्र में सत्याग्रह करना उचित नहीं समझती, क्योंकि वह विधानसभा की 'पवित्रता' को भंग करने के विरुद्ध है. वास्तव में मोरारजी भाई सत्याग्रह के विरुद्ध नहीं थे किंतु प्रधानमंत्री और कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा का रुख द्वारका प्रसाद मिश्र के पक्ष में नहीं था.

भीतरी कमज़ोरी : प्रदेश कांग्रेस के नेताओं का विश्वास है कि अब तक की पदयात्रा ने मध्यप्रदेश कांग्रेस को काफ़ी लाभ पहुँचाया है क्यों कि उस से कांग्रेस और जनता के बीच प्रत्यक्ष संपर्क पैदा हो गया है. यह संपर्क बहुत समय से टूटा हुआ था. कांग्रेस के कार्यकर्ताओं में उत्साह और सक्रियता पैदा हो गयी और जनता के सामने विभिन्न प्रकार की समस्याओं को स्पष्ट रूप से रखने के कारण संविद सरकार की भ्रष्ट नीतियों की कलई खुल जायेगी. द्वारिका प्रसाद मिश्र का विश्वास है कि संविद सरकार के 'काले करतूतों' से इतनी गंभीर

परिस्थिति पैदा हो गयी है कि केंद्रीय सरकार को उचित जांच करवाने के बाद हस्तक्षेप करना चाहिए. फिर भी मध्यप्रदेश के राजनैतिक हलकों में इस बात की चर्चा है कि द्वारिका प्रसाद द्वारा बार-बार सत्याग्रह स्थगित करवाने से कांग्रेस संगठन की भीतरी कमज़ोरियाँ स्पष्ट रूप से सामने आ जाती हैं. उन के विरोधी तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि मिश्र और उन के साथियों में जेल जाने का साहस ही नहीं रहा. जब सब से पहले हाई कमान की अनुमति का प्रश्न आया था तब द्वारिका प्रसाद मिश्र ने कहा था कि यह कार्य प्रदेश कांग्रेस के कार्यक्षेत्र में आता है इस लिए कांग्रेस उच्च सत्ता की अनुमति आवश्यक नहीं. साथ ही उन का यह भी दावा था कि केंद्रीय नेताओं का आशीर्वाद उन के साथ है. मगर बाद की घटनाओं से स्पष्ट हो गया कि द्वारिका प्रसाद मिश्र के अनुमान में भारी ग़लती थी, या वह खाली हवा का रुख देखने की कोशिश कर रहे थे. कुछ भी हो, संविद सरकार को मार गिराने का जो शस्त्र द्वारिका प्रसाद मिश्र ने हाथ में लिया था उस का पहला शिकार उन की अपनी और प्रदेश कांग्रेस की प्रतिष्ठा बन गयी है.

पश्चिम बंगाल

ध्रुवीकरण, मगर ध्रुव कहाँ?

पश्चिम बंगाल में मध्यावधि निर्वाचन में कांग्रेस की भारी पराजय ने सब को आश्चर्य में डाल दिया है. ख़ुद संयुक्त मोर्चा के नेता अपनी अपरिकल्पित विजय पर आश्चर्यचकित हैं. लेकिन जनमत का विश्लेषण किया जाये तो इस में आश्चर्य की कोई खास बात नहीं है. जहाँ तक मत के प्रतिशत का सवाल है, कांग्रेस की स्थिति मध्यावधि निर्वाचन में भी कुछ वैसी ही रही जैसी कि पिछले आम चुनावों में रहा करती थी. १९५२ में सर्वाधिक ४७ प्रतिशत मत कांग्रेस को मिला था, जो १९५७ में घट कर ४४ प्रतिशत रह गया. १९६२ में फिर बढ़ कर ४६ प्रतिशत हो गया और १९६७ में काफ़ी घट कर ४२ प्रतिशत पर आ गिरा. १९६९ के मध्यावधि निर्वाचन में भी कांग्रेस को ४२ प्रतिशत वोट मिले हैं. केवल राज्य विधानसभा में कुर्सियाँ १२७ से घट कर ५५ रह गयी हैं. कांग्रेस के अलावा अन्य दलों को प्राप्त मतों का प्रतिशत २ से ८ तक बढा है. सर्वाधिक वृद्धि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के वोट में हुई है. जैसा कि वामपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के एक प्रवक्ता ने दिनमान को बताया, अगर पार्टी और उम्मीदवार खड़ी कर सकी होती तो न केवल उसे और अधिक मत मिलते, बल्कि कुछ और सीटें भी मिल जातीं. बंगला कांग्रेस को पिछले आम निर्वाचन के १० प्रतिशत के मुकाबले केवल ८ प्रतिशत वोट मिले हैं, लेकिन इस का एक मात्र कारण कम उम्मीदवारों का खड़ा किया जाना है. इस बार उस के सिर्फ़ ४९ उम्मीदवार थे जब कि पिछले निर्वाचन में ८१ उम्मीदवार खड़े किये गये थे.

निर्बल और सबल : यह पहला चुनाव था जो बंगाल में आंशिक राजनैतिक ध्रुवीकरण के बाद हुआ. इस निर्वाचन में अकेले कांग्रेस को अन्य समस्त दलों का, जो एक मोर्चे पर थे, सामना करना पड़ा. दूसरे शब्दों में यह ४२ प्रतिशत की लड़ाई ५८ प्रतिशत से थी. लेकिन लोगों को मोर्चा की एकता और लोकप्रियता में कुछ संदेह था, इस लिए वे कांग्रेस को भी समान रूप से सशक्त मान बैठे थे.

संयुक्त मोर्चा की भी अपनी दिलचस्प कहानी है: पिछले आम चुनाव के पहले डॉ. लोहिया ने ग़ैर-कांग्रेसवाद का नारा बुलंद किया और राजनैतिक ध्रुवीकरण द्वारा कांग्रेस को परास्त करने का आह्वान किया. फिर कई राज्यों में मोर्चा का गठन हुआ. पश्चिम बंगाल में राजनैतिक ध्रुवीकरण के लिए कांग्रेस से निकले प्रतिष्ठित नेता अजय कुमार मुखर्जी ने बीड़ा उठाया. लेकिन उन का प्रयास पूरा-पूरा सफल नहीं हो सका और राज्य में दो मोर्चा बने—संयुक्त वामपंथी मोर्चा और प्रगतिशील संयुक्त वामपंथी मोर्चा. संयुक्त मोर्चा का ज्योति बसु ने और प्रगतिशील मोर्चा का अजय मुखर्जी ने नेतृत्व किया. चुनाव में कांग्रेस हार गयी. उसे बहुमत नहीं मिल सका. लेकिन दूसरी ओर कोई एक मोर्चा भी सरकार बनाने की स्थिति में नहीं था. सवाल यह था कि १४ दल एक कैसे होंगे और किसी एक नेता का नेतृत्व कैसे स्वीकार करेंगे. २५ फ़रवरी से चुनाव के नतीजे आने शुरू हुए. जैसे-जैसे वामपंथी उम्मीदवार जीतते गये, वामपंथी शिविर में बेचैनी बढ़ती गयी, आराम बाग में अजय मुखर्जी ने भूतपूर्व मुख्यमंत्री प्रफुल्लचंद्र सेन को पराजित कर एक नया कीर्तिमान क़ायम किया. ज्योति बसु ने इस समय बड़ी होशियारी से काम लिया और अजय बाबू को नेता बनाने का प्रस्ताव किया. रातों-रात शोहरत की आखिरी ऊँचाई पर पहुँचे अजय मुखर्जी के नेतृत्व पर किस को एतराज हो सकता था. एतराज कुछ था तो वामपंथी कम्युनिस्ट नेताओं को, लेकिन वे यह नहीं चाहते थे कि किसी कारण हाथ में आया मौक़ा हाथ से निकल जाये क्यों कि कांग्रेस का घाव अभी ताजा था और वह अजय मुखर्जी की वापसी के लिए सब कुछ कर सकती थी. आम चुनाव के पहले पाँच वर्षों तक लगातार हड़ताल और खाद्य आंदोलन कर कम्युनिस्टों ने देख लिया था कि उन की स्थिति ज्यों की त्यों थी. दक्षिण पंथी (१६) और वामपंथी (४३) दोनों गुटों को मिला कर ५९ स्थान मिले थे जब कि १९५७ में ४६ और १९६२ में ५० स्थान मिले थे. इस तरह २७ फ़रवरी तक चुनाव के परिणाम आये और २८ को एक संयुक्त मोर्चा बन गया. पहली मार्च को ब्रिगेड परेड के मैदान में हुई सर्वदलीय सभा में मोर्चा का १८ सूत्री कार्यक्रम पेश कर दिया गया और २ मार्च को सरकार बन गयी.

सरकार बनने के बाद मोर्चे ने अगर कुछ किया तो अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए किया. सरकारी कर्मचारियों के महँगाई-भत्ते में वृद्धि की गयी, हड़ताल के जुर्म में बर्खास्त कर्मचारियों को वापस ले लिया गया. पुलिस वालों को अपना यूनियन बनाने का अधिकार दिया गया. कल-कारखानों में श्रमिक-आंदोलन शुरू किया गया, जिस के दौरान 'घेराव' नामक नये शब्द या तकनीक का जन्म हुआ. उत्तर बंगाल में नक्सलबाड़ी आंदोलन भी देखने को मिला. अनाज वसूली न कर किसानों को ख़ुश रखा गया. इन सब कार्यों का अधिकांश श्रेय वामपंथी-दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट दलों ने लिया, क्यों कि श्रमिक यूनियनें उन के हाथ में थीं.

बड़े नाटकीय ढंग से संयुक्त मोर्चा सरकार बरखास्त कर दी गयी. संयुक्त मोर्चा कई बार टूटते-टूटते बचा. प्रसोपा निकल भी गया, लेकिन अन्य दल मोर्चे में बने रहे और इस तरह पिछले मध्यावधि निर्वाचन के पहले तक संयुक्त मोर्चा की सब से बड़ी उपलब्धि यह थी कि संयुक्त मोर्चा बना रहा, आंतरिक फट के बावजूद विघटित नहीं हुआ.

मुस्लिम मत : इस बार फिर मुस्लिम मत कांग्रेस के खिलाफ़ रहा. कुछ कांग्रेसियों ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि उन्हें कम-से-कम ५० सीटों से इस लिए हाथ धोना पड़ा है कि मुसलमानों ने कांग्रेस का बहिष्कार किया. राज्य में कुल ३२ लाख मुस्लिम मतदाता हैं, जिन का प्रभाव ७० निर्वाचन-क्षेत्रों में है. 'स्टेट्समैन' की घटना के कारण, जो ऐन मतदान के पहले हुई, प्रतिपक्षियों को कांग्रेसी मत तोड़ने में काफ़ी मदद मिली. इस बार मुस्लिम उम्मीदवारों की संख्या १५४ थी, जब कि पिछली बार सिर्फ़ ५९ उम्मीदवार थे. इस बार ३२ मुसलमान विजयी हुए हैं, जब कि १९६७ में २८ और १९६२ में भी २८ उम्मीदवार विजयी हुए थे. पश्चिम बंगाल के राजनैतिक क्षितिज पर जिन नये दलों का आविर्भाव हुआ उन में प्रगतिशील मुस्लिम लीग सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्यों कि मोर्चा और कांग्रेस की सीधी और ज़ोरदार लड़ाई के बावजूद इस ने तीन सीट जीत लीं. एक उम्मीदवार सिर्फ़ कुछ सौ मतों से हार गया.

भविष्यहीन नये दल : पश्चिम बंगाल में उदित नये दलों का कोई भविष्य नजर नहीं आता. तृतीय शक्ति के उदय होने की संभावना भी बहुत कम रह गयी है. प्रो. हुमायुन कबिर के लोकदल (उम्मीदवार ५८), बंगला जातीय दल (१७), आमरा बंगाली (६४) और जनसंघ (५०) को कोई सीट नहीं मिली है. आशु घोष के भारतीय गणतांत्रिक मोर्चे को संयोग से एक सीट मिल गयी है. तृतीय शक्ति के लिए काफ़ी प्रयत्नशील रहने वाले प्रसोपा और लोकसेवक संघ की स्थिति पहले से अधिक

कमज़ोर हो गयी है. प्रसोपा को अपने बल-बूते सिर्फ़ एक सीट मिली. चार सीटों पर उसे संयुक्त मोर्चा का समर्थन प्राप्त था. लोकसेवक संघ की शक्ति केवल पुरुलिया में है, जहाँ से उस के ६ उम्मीदवार खड़े हुए थे, जिन में से ४ विजयी हुए. कबिर बंधुओं—प्रो. हुमायुन कबिर और जहाँगीर कबिर का राजनैतिक भविष्य ख़तरे में पड़ गया है. इन्हें आशा थी कि कम से-कम मुस्लिम मत उन्हें मिलेंगे, इसी लिए अपने अधिक उम्मीदवार मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में ही खड़े किये थे. लेकिन मुसलमानों ने इन का बिलकुल बहिष्कार किया. नयी नवेली मुस्लिम लीग बाज़ी मार ले गयी. दूसरे शब्दों में प्रत्यक्ष सांप्रदायिकता के सामने अप्रत्यक्ष सांप्रदायिकता हार गयी.

नेता का चुनाव : यद्यपि नेता पद के लिए अजय मुखर्जी के बंगला कांग्रेस और मार्क्सवादी साम्यवादियों के बीच खींचातानी से मोर्चे में काफ़ी तनाव पैदा हो गया था फिर भी दोनों पक्ष यह जानते थे कि इस तनाव को एक निश्चित सीमा से बाहर जाने देना आत्महत्या के समान होगा. इस लिए सब से बड़ा दल होते हुए भी मार्क्सवादी साम्यवादी दल ने अंत में मुखर्जी बाबू को ही मुख्यमंत्री-पद के लिए नेता चुनने का फ़ैसला किया. ज्योति बसु को उपनेता चुना गया है. इस चुनाव के साथ ही संभवतया संयुक्त मोर्चे के नेता वर्तमान राज्यपाल को हटाने के लिए केंद्रीय सरकार पर अधिक दबाव डालेंगे. मगर फ़िलहाल राज्यपाल धर्मवीर को वापस बुलाने की माँग पर केंद्रीय सरकार गंभीरता-पूर्वक विचार नहीं कर रही है. अजय मुखर्जी मुख्यमंत्री के अतिरिक्त वित्त और आयोजना-विभाग भी सँभालेंगे. उपमंत्री ज्योति बसु के पास सामान्य प्रशासन और गृह-विभाग होगा.

पंजाब

पाँच प्यारों की सरकार

१५ महीने के बाद मुख्यमंत्री की कुर्सी पुनः सँभालने के बाद सरदार गुरनामसिंह ने बड़े ही दृढ़ता भरे शब्दों में कहा कि चंडीगढ़, भाखड़ा-नंगल तथा वे सभी क्षेत्र जो पंजाबी-भाषी क्षेत्र में शामिल नहीं किये गये हैं पुनः पंजाब में शामिल करने के बारे में वह अपना पूरा ज़ोर लगायेंगे. उन्होंने केंद्र सरकार को सलाह देते हुए कहा कि चंडीगढ़ को पंजाब में मिलाने का निर्णय पहले लेना चाहिए. जब तक हरयाणा की नयी राजधानी तैयार नहीं हो जाती तब तक पंजाब हरयाणा के कार्यालयों को चंडीगढ़ में बने रहने की पूरी छूट देगा. गुरनामसिंह के इस वक्तव्य का पंजाब भर में स्वागत किया गया, लेकिन हरयाणा के मितभाषी मुख्यमंत्री बंसीलाल ने काफ़ी दिन की चुप्पी तोड़ते हुए कहा कि चंडीगढ़ पर एकमात्र हरयाणा का अधिकार है. पिछले दिनों बंसीलाल ने गुरनामसिंह से आधे घंटे तक चंडीगढ़ में बातचीत भी की, जो संभवतया इन्हीं विषयों के संदर्भ में रही होगी.

भाषा का सवाल : गुरनामसिंह की सरकार द्वारा कार्य-भार सँभालते ही सरकारी अधिकारियों के बड़े पैमाने पर तबादले किये गये. मुख्य सचिव एच. बी. लाल की जगह अमरनाथ कश्यप ने सँभाली और बी. एस. ढिल्लों पुनः अतिरिक्त महाभिवक्ता नियुक्त किये गये. इस तरह के तबादलों का कारण बताते हुए मुख्यमंत्री ने कहा कि राज्य में ईमानदार और कुशल प्रशासन चलाने के लिए ऐसा करना ज़रूरी था. भूतपूर्व मुख्यमंत्री लक्ष्मणसिंह गिल सरकार की कारगुज़ारियों और राष्ट्रपति को गिल के ख़िलाफ़ दिये गये ज्ञापन के संदर्भ में जाँच कराने की भी उन्होंने इच्छा व्यक्त की. **दिनमान** के प्रतिनिधि से बात करते हुए, अपनी असली ७० साल की उम्र से कम दिखने वाले, मुख्यमंत्री गुरनामसिंह ने बड़े ही नपे-तुले शब्दों में कहा कि जिस जनता ने हमें चुन कर भेजा है उसे यह तो पता लगना ही चाहिए कि कांग्रेस-समर्थक गिल सरकार ने अपने शासन-काल में क्या-क्या गुल खिलाये थे. गुरनामसिंह छात्रों की शिकायतें दूर करने, सरकारी कर्मचारियों की माँगों पर विचार करने, किसानों को अधिक सुविधाएँ देने और लोगों में आत्मसम्मान की भावना को दृढ़ करने के लिए प्रयत्नशील हैं. कुछ समय पहले उन्होंने **दिनमान** के प्रतिनिधि से लुधियाना में बातचीत करते हुए कहा था कि 'जहाँ तक हिंदी भाषा का सवाल है उस के बारे में हमारी स्थिति बिलकुल साफ़ है. हम हिंदी को पंजाब की संपर्क-भाषा मानते हैं, इस में दो राय नहीं. पंजाब के इलाक़े में जहाँ-जहाँ केवल गुरुमुखी लिपि का इस्तेमाल किया गया है वहाँ सब जगह अब गुरुमुखी के साथ हिंदी लिपि भी रखी जायेगी. हिंदी के विकास के लिए मेरी सरकार हर संभव क़दम उठायेगी.

कपूरसिंह की दलील : गुरनामसिंह की सरकार के गठन को ले कर उन की अपनी ही पार्टी के भीतर मतभेदों की परत गहरी होती जा रही है. अकाली पार्टी के वरिष्ठ उपप्रधान और विधायक सरदार कपूरसिंह मंत्रिमंडल के शपथ-समारोह में शरीक नहीं हुए, न ही अकाली पार्टी के नेता के चुनाव में उन्होंने भाग लिया. शपथ-समारोह के अवसर पर राज्यपाल दादा साहेब पावटे ने यह कह कर कि कपूरसिंह ने उन्हें फ़ोन द्वारा यह सूचित किया था कि वह गुरनामसिंह को अपना नेता नहीं मानते राजनैतिक हलक़ों में खासी हलचल पैदा कर दी है. लेकिन राज्यपाल ने यह कहा कि वह इस बात से पूरी तरह से सहमत हैं कि गुरनाम सिंह ही संयुक्त मोर्चे के नेता हैं और यदि किसी को कोई शिकवा-शिकायत है तो वह विधानसभा के अधिवेशन में दूर हो सकती है. कपूरसिंह ने बाद में बताया कि उन्होंने राज्यपाल को इस आशय का कोई फ़ोन नहीं किया

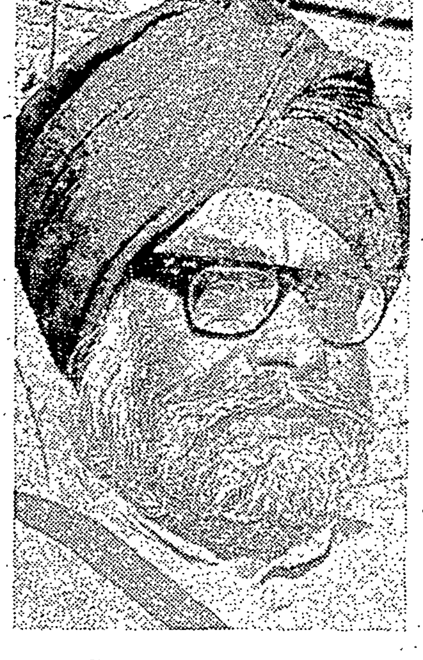

कपूरसिंह : नये नेता का बहिष्कार

था. जहाँ तक नेता के चुनाव का प्रश्न है यह बात सही है कि इस चुनाव में जल्दबाज़ी से काम लिया गया है, जो दल के लिए संवैधानिक तौर से ठीक नहीं था. गुरनामसिंह मेरे भाई के समान हैं और यदि मुझे उन के नेता-पद के नाम का प्रस्ताव करने का मौक़ा दिया जाता तो मुझे खुशी होती. इस समय कपूरसिंह जो मर्ज़ी है करें, लेकिन यह दलील भी बेबुनियाद नहीं कि पहले-पहल जब उन्होंने सिखिस्तान की माँग के साथ गुरनामसिंह को संयुक्त मोर्चे का नेता मानने से इनकार किया था तो इस से न केवल अकाली दल बल्कि जनसंघ में खासी प्रतिक्रिया हुई थी. उन के चुनाव से पहले ही यह बात राजनैतिक फ़िज़ाँ में उड़ चली थी कि गुरनामसिंह और कपूरसिंह में ठनेगी. कपूरसिंह ने खुले आम नेता के बारे में बहसबाज़ी शुरू कर अपने प्रति तनाव और कटुता का दायरा फैला लिया है, जिस के कारण पार्टी में उन की स्थिति संदिग्ध समझी जा रही है. लोगों का तो यह भी ख्याल है कि देर-सबेर कपूरसिंह गिल की राह का ही अनुसरण करेंगे.

आलोचना : गुरनामसिंह मंत्रिमंडल की आलोचना करने वालों में कम्युनिस्ट, कांग्रेस और रिपब्लिकन पार्टी के कुछ नेता भी हैं, जो सोहनसिंह बस्सी के मंत्रिमंडल में लिये जाने के विरुद्ध आवाज़ उठा रहे हैं. उन का यह मत है कि हारे हुए उम्मीदवार को मंत्रिमंडल में शामिल कर के गुरनामसिंह ने अपनी ईमानदारी के प्रति संदेह की भावना को जन्म दिया है. इस आलोचना का उत्तर देते हुए उन्हों ने बताया कि बस्सी संसद्-सदस्य हैं, लिहाज़ा वे विधायक से अधिक लोगों का प्रतिनिधित्व करते हैं. राजनैतिक हल्कों में यह भी चर्चा है कि गुरनाम सिंह भूतपूर्व वित्तमंत्री डॉ. बलदेव प्रकाश को भी मंत्रिमंडल में शामिल करने के पक्ष में थे, लेकिन कुछ भीतरी दबाव के कारण उन्होंने

फ़िलहाल ऐसा नहीं किया. लेकिन वह यह ज़रूर चाहते हैं कि किसी भी हालत में बलदेव प्रकाश को विधानमंडल का सदस्य बनाया जाना चाहिए. उन की इस इच्छा-पूर्ति के लिए अकाली और जनसंघ सदस्य अपनी सदस्यता से त्यागपत्र देने को तैयार हैं. डॉ. बलदेव प्रकाश गुरनामसिंह के मित्र और मार्ग-दर्शक दोनों समझे जाते हैं. उन्होंने अपने पहले मंत्रिमंडल के दौरान और उस के बाद संयुक्त मोर्चे की भावना को बनाए रखने में कंधे से कंधा मिला कर काम किया है. यह बात तय है कि निकट भविष्य में डॉ. बलदेव प्रकाश को मंत्रिमंडल में शामिल किया जायेगा. विभागों के बँटवारे से यह बात और साफ़ हो जाती है कि गुरनामसिंह मंत्रिमंडल के विस्तार से अपना भार हलका करेंगे. सोहन सिंह बस्सी को वे ही विभाग दिये गये हैं जो कभी लक्ष्मणसिंह गिल के पास थे. कृष्णलाल के पास वित्त, बलरामजी दास टंडन के पास उद्योग, आत्मासिंह के पास भूमि-सुधार, राजस्व और पुनर्वास आदि विभाग हैं. पाँच प्यारों की यह सरकार अगले कुछ ही दिनों में कुछ और 'प्यारे' सम्मिलित करेगी. इस के लिए अपने-अपने दावे किसी न किसी बहाने अभी से पेश किये जा रहे हैं. सरदार गुरनामसिंह यह भी चाहते हैं कि पंजाब का बजट अधिवेशन १० मार्च के आसपास हो. इस बजट अधिवेशन से दो फ़ायदे होंगे—एक तो संयुक्त मोर्चे की स्थिति का सभी को सही पता चल जायेगा और दूसरे कांग्रेस अपने नये नेता मेजर हरिंदर सिंह के नेतृत्व में कैसा कार्य करती है, इस का भी अनुमान हो जायेगा.

महाराष्ट्र

शिवसेना : असली-नकली चेहरे

कम्युनिस्ट दलों और संसोपा द्वारा लोकसभा में सरकार के विरुद्ध पेश अविश्वास-प्रस्ताव बुरी तरह पराजित तो हो गया, किंतु इस प्रस्ताव के एक ख़ास मुद्दे—शिवसेना के अशिव कार्य—पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने प्रायः वे ही बातें दोहरायीं जो कांग्रेस के अन्य वरिष्ठ नेता कई बार कह चुके हैं. यह जानते हुए भी कि सभी दलों ने शिवसेना से अपना कोई संबंध न बता कर उसे एक हरामी बच्चे की तरह तिरस्कृत किया है उन्होंने सभी दलों से क्षेत्रीयता की भावना के दमन में सरकार को सहयोग देने की अपील की और कहा कि भविष्य में कोई भी दल अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए क्षेत्रीयता की भावना को न भड़काये. उन्होंने खेद प्रकट किया कि शिवाजी के समान राष्ट्रीय वीर पुरुष का नाम शिवसेना जैसे एक संकीर्ण

चव्हाण : जवाबों का सवाल

संगठन के साथ जोड़ा जाता है. बेशक, शिवसेना को प्रोत्साहन देने का आरोप तो प्रधानमंत्री ने ग़ैरों पर नहीं थोपा पर उन्होंने बड़ी सफ़ाई से यह भी ज़ाहिर करने की कोशिश की कि कांग्रेस या महाराष्ट्र सरकार का इस संगठन से कभी कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध नहीं रहा है, जब कि विरोधी दलों ने यह सिद्ध करने की भरसक कोशिश की कि कांग्रेस और महाराष्ट्र सरकार ने ही शिवसेना को पाल-पोस कर इस लायक़ बनाया है कि वह पिछले दिनों बंबई में कोहराम मचा सकी.

झड़प : शिवसेना के मसले पर तीन दिन की बहस के दौरान जम कर चौतरफ़ा हमला किया गया गृहमंत्री यशवंत राव चव्हाण पर और वह जैसे कटघरे में खड़े दलील की दलदल में डूबते-उतरते कभी अपने, कभी महाराष्ट्र सरकार और कभी कांग्रेस के बचाव में प्रतिपक्षी नेताओं के तीखे आरोपप्रत्यारोपों से जूझते रहे.

बंबई : इंजन का धुँआ नहीं, जलता स्टेशन

गृहमंत्री ने अपनी सफ़ाई में प्रतिपक्षी सदस्यों को याद दिलाया कि सब से पहले उन्होंने ही 'फ़ासिस्ट' संगठन कह कर खुले आम शिवसेना की भर्त्सना की थी. महाराष्ट्र सरकार के बचाव में उन्होंने कहा कि प्रारंभ में तो स्थिति की गंभीरता का अनुमान लगाने में उस से भूल हुई, किंतु बाद में उसने अराजकता पर क़ाबू पाने के लिए कठोर क़दम उठाया था. अतः महाराष्ट्र सरकार को दोषी ठहराना न्यायोचित नहीं है.

विरोधी सदस्यों के इस आरोप का भी उन्होंने खंडन किया कि कांग्रेस ने शिवसेना का समर्थन किया, क्यों कि सन् १९६७ में ही महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस समिति ने इस संगठन की भर्त्सना की थी. वस्तुतः बंबई के पिछले म्युनिसिपल चुनाव के दौर में तो प्रसोपा ने ही इस संगठन के साथ साँठगाँठ की थी. इस पर जैसे किसी अवैध शिशु से अपना संबंध जुड़ता हुआ-सा महसूस कर के प्रसोपा के श्री मुल्क गोविंद रेड्डी ने चव्हाण के आरोप की काट प्रस्तुत की कि यह आभास मिलते ही कि शिवसेना की गतिविधि राष्ट्रीय हित में नहीं है प्रसोपा ने उस से कोई सहयोग न करने का निर्णय किया था.

अविश्वास-प्रस्ताव पेश करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले प्रोसफ़ेर राममूर्ति (मार्क्सवादी) ने माँग की कि दक्षिण भारतीयों तथा अन्य प्रदेशों की जनता के जीवन और उन की संपत्ति की रक्षा न कर पाने के लिए ज़िम्मेदार महाराष्ट्र सरकार के अधिकारियों की निष्क्रियता के बारे में तुरंत जाँच की जाये. उन्होंने कांग्रेस को चुनौती दी कि वह उस मामले की छान-बीन के लिए जनता के पास जाये जिस की वजह से बंबई और अन्य भागों में ख़ून-ख़राबी हुई. महाराष्ट्र सरकार महाजन आयोग की सिफ़ारिशों को अपने हक में मोड़ने के लिए शिवसेना को माध्यम बना कर केंद्र पर दबाव डाल रही है.

बहस के दौरान सब से ज्यादा तीव्र झड़प हुई **भूपेश गुप्त** और चव्हाण के बीच. श्री गुप्त ने कहा कि 'शिवसेना को संगठित करने में कई कांग्रेसियों का हाथ रहा है और मुझे अफ़सोस के साथ कहना पड़ता है कि प्रारंभ में श्री चव्हाण और श्री नायक ने भी इस संगठन को प्रश्रय दिया था.' १९६७ के आम चुनाव में कृष्ण मेनन को पराजित करने के लिए 'कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं' के रूप में शिवसेना का उपयोग किया गया और अब उसे 'प्रगतिशील वामपंथी श्रमिक वर्ग के आंदोलन को कुचलने' के लिए प्रेरित किया जा रहा है. उन्होंने श्री चव्हाण से जानना चाहा कि क्या वह बंबई की पिछली घटनाओं की जाँच के उद्देश्य से एक आयोग नियुक्त करने के लिए सहमत हैं. श्री चव्हाण ने यह तर्क पेश करके आयोग नियुक्त करने से साफ़ इनकार कर दिया कि 'शिवसेना का

मुक़ावला सिद्धांतों के मैदान में ही किया जायेगा'. विना कोई ठोस वजह वताये ही श्री चव्हाण ने जाँच आयोग की नियुक्ति के साथ-साथ शिवसेना पर प्रतिवंध लगाने की माँग को भी अस्वीकृत कर दिया. शिवसेना के प्रति स्वराष्ट्रमंत्री की इस नर्मी से कुपित हो कर श्री भूपेश गुप्त ने और भी अधिक प्रहारात्मक रुख़ अपनाते हुए कहा कि शिवसेना 'गुंडों और प्रतिक्रियावादियों का एक फ़ासिस्ट और हिंसक संगठन है', जिसे कुछ पूंजीपतियों ने जन्म दिया और श्री चव्हाण की पार्टी तथा महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस ने उसे प्रोत्साहित और विकसित किया है. 'वाल ठाकरे और उस के चेले-चपाटों को वंवई शहर में कुचल दिया जाये. यदि गृहमंत्री यह कार्य नहीं कर सकते तो उन्हें अपना पद त्याग देना चाहिए'. यदि श्री नायक शिवसेना की गतिविधियों का दमन नहीं कर सकते तो उन्हें मुख्यमंत्री पद से हटा दिया जाये. श्री चव्हाण ने इस पर कहा कि यदि वह (भूपेश गुप्त) श्री नायक को अपने पद से हटाना चाहते हैं तो वह यह कार्य सिर्फ़ यहाँ दिये गये अपने वक्तव्य द्वारा ही नहीं कर सकते, क्योंकि सौभाग्य से श्री नायक भूपेश गुप्त की दया पर आश्रित नहीं हैं. श्री चव्हाण ने कहा कि वंवई में सुलगती हुई क्षेत्रीय भावना का नाजायज़ फ़ायदा संपूर्ण महाराष्ट्र समिति ने भी उठाया है, जिस पार्टी से 'माननीय सदस्य (भूपेश गुप्त) भी संवद्ध हैं'.

आश्वासन : प्रसोपा के श्री **मुल्क गोविंद रेड्डी** के एक प्रश्न के उत्तर में अराजकता-ग्रस्त वंवई के वारे में नवीनतम सूचना देते हुए श्री चव्हाण ने कहा कि जिन ६३ होटलों को वहाँ लूटा गया उन में से केवल ४३ होटल दक्षिण भारतीयों के थे. इस के अलावा जिन १२३ दुकानों को लूटा गया उन में से १४ दक्षिण भारतीयों की थीं. एक मराठी जौहरी की दुकान भी लूटी गयी. दंगाइयों ने मराठियों और ग़ैर-मराठियों को लूटने में कोई भेद-भाव नहीं वरता है. उन्होंने कहा कि महाजन आयोग की सिफ़ारिशों के वारे में सरकार ने अभी तक अंतिम निर्णय नहीं किया है. श्री **अच्युत मेनन** के इस आरोप को उन्होंने 'निम्न कोटि का और शरारतपूर्ण' ठहराया कि दंगा शुरू होने से पूर्व वाल ठाकरे चव्हाण सहित कुछ अन्य नेताओं से विचार-विमर्श के लिए दिल्ली आये थे. उन्होंने वताया कि महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री ने दंगों से प्रभावित लोगों को मुआवज़ा देने के लिए ५ लाख रुपया मंजूर किया है. वह और अधिक मुआवज़ा देने के वारे में भी विचार कर रहे हैं. श्री चव्हाण ने सदन को आश्वासन दिया कि महाराष्ट्र सरकार स्थिति पर नियंत्रण रखने के लिए पूरी कोशिश कर रही है और सभी ग़ैर-मराठी नागरिकों को सरकार से संरक्षण प्राप्त करने का पूरा हक़ है.

शेष प्रश्न : शिवसेना की विरादरी स्वीकार करने से तो सभी दल इनकार कर चुके हैं, किंतु कुछ शेष प्रश्न हैं, जिन का उत्तर केंद्र या महाराष्ट्र सरकार अव तक नहीं दे पायी है. उन वंदियों के खिलाफ़ क्या कारवाई की जायेगी जो वंवई के दंगों के सिलसिले में गिरफ़्तार किये गये ? वेशक, महाराष्ट्र सरकार यह गवारा नहीं कर सकती कि शिवसेना पुनः कोहराम मचा कर उसे और वदनाम करे, किंतु भविष्य में इस संगठन के प्रति उस का क्या रवैया रहेगा ? रेडियो द्वारा प्रसारित अपने भाषण में तो मुख्यमंत्री श्री नायक ने शिवसेना पर क़तई चोट नहीं की थी, तव वंवई की जनता को कैसे आश्वस्त किया जाये कि आतंकवादियों को कुचलने के लिए वह दृढ़संकल्प है.

गुजरात

घाटे का वजट

गुजरात के वित्तमंत्री जसवंत मेहता ने १९६९-७० के लिए २० करोड़ ६२ लाख रुपये का घाटे का वजट विधान सभा में पेश किया. घाटे की इतनी वड़ी राशि राज्य के वजट इतिहास में पहली वार दर्शाये जाने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि यदि राज्य कम घाटा वताये तो पिछड़ी हुई जातियों तथा आदिवासियों के विकास के लिए केंद्रीय वित्त आयोग से मिलने वाली सहायता वंद हो जायेगी. वैसे भी केंद्रीय वित्त आयोग ने अपनी अंतरिम रिपोर्ट में संविधान की २७५ वीं धारा के अनुसार राज्यों को अनुदान देने की जो सिफ़ारिश की है उस में गुजरात का समावेश नहीं किया गया है. गुजरात के वित्तमंत्री को उम्मीद है कि राज्य की आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए वित्त आयोग अपने निर्णय पर पुनर्विचार करेगा और घाटे की अधिकांश पूर्ति केंद्र सरकार के अनुदान से और शेष ग्राम डिवेंचरों और सुरक्षित निधि से की जायेगी.

जसवंत मेहता के मंत्रित्व काल का यह दूसरा वजट है, जिस में कोई नये कर नहीं लगाये गये हैं. कुल १६५.८३ करोड़ रुपये की आय में से १०२ करोड़ रुपया गाँवों के विकास के लिए खर्च किया जायेगा. इस वार कृषि को भी उद्योग का दर्जा दिया गया है और उस के विकास को प्राथमिकता देने के इरादे से ७९.९६ करोड़ रुपये की वार्षिक योजना वनायी गयी है. गत तीन वर्षों में गुजरात ने अपनी वार्षिक योजनाओं में २१६ करोड़ रुपया व्यय कर के देश के समुन्नततम राज्यों में प्रथम स्थान प्राप्त किया. चौथी पंचवर्षीय योजना में उस ने ४५० करोड़ रुपया खर्च करने का कार्यक्रम वनाया है. गुजरात प्रतिव्यक्ति के विकास पर औसतन ३७ रुपया खर्च करेगा और इस दृष्टि से पंजाव के वाद दूसरा नंवर उसी का है.

लाल गुलाव : वित्तमंत्री जव वजट पेश करने विधानसभा में आये तो उन के कांग्रेसी मित्र छविलदास मेहता ने उन्हें लाल गुलाव भेंट किया. इस भेंट को नया अर्थ देने के अंदाज़ में उन्होंने गुलाव का फूल विपक्षियों को दिखला कर सांकेतिक रूप से अपना मंतव्य व्यक्त किया कि नया वजट भी इस फूल की तरह ही हल्का और खुशनुमा है, हालांकि गुजरात देश का का दूसरा राज्य है जो जनता से सर्वाधिक कर लेता है. १९६० में भूतपूर्व वंवई राज्य से अलग होते वक़्त गुजरात की वार्षिक राजस्व आय ५१ करोड़ रुपये थी, जो वढ़ कर अव १६५.८३ करोड़ रुपये हो गयी है. वहरहाल, राज्य की चौथी पंचवर्षीय योजना वहुत ही महत्त्वाकांक्षी वनायी गयी है. वित्तमंत्री ने १७.६० करोड़ रुपये का ऋण वाजार से लेने की घोषणा की है और अल्प वचत से भी सर्वाधिक रक़म प्राप्त करने का लक्ष्य वनाया गया है. वित्तमंत्री चाहते हैं कि कुछ ऐसा वातावरण वने कि गुजरात की जनता आत्मविकास में खुद भी सक्रिय भाग ले.

राम-झरोखा

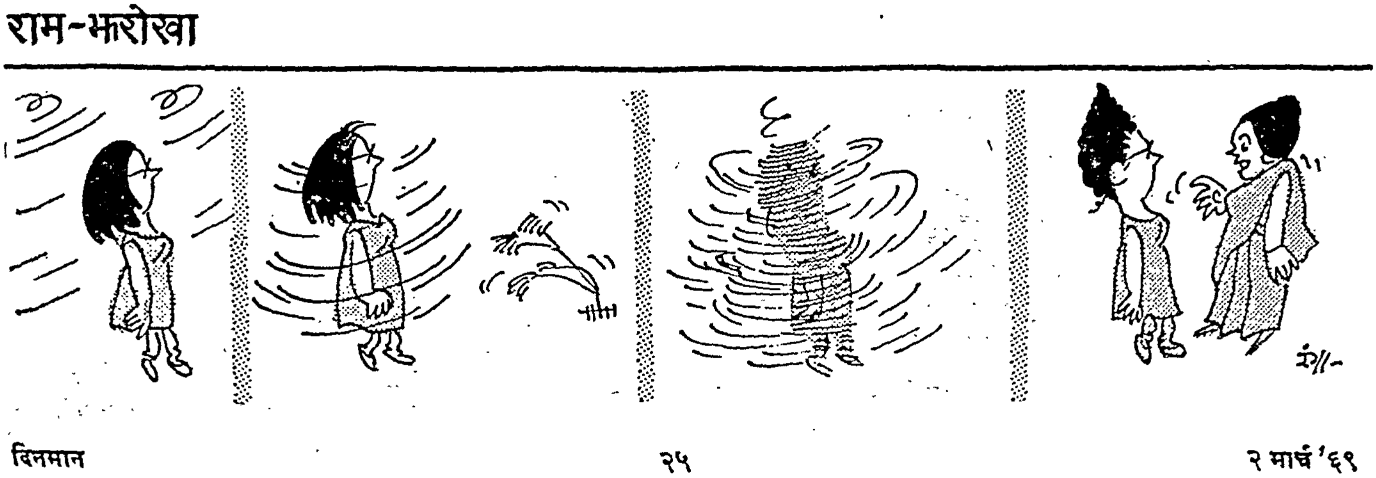

मध्य एशिया सम्मेलन

पिछले दिनों दिल्ली में मध्य एशिया पर एक सम्मेलन हुआ. यह सम्मेलन 'यूनेस्को के साथ नेशनल कमीशन के सहयोग' और 'इंडियन काउंसिल फ़ॉर कल्चरल रिलेशन्स' की ओर से आयोजित हुआ था. सम्मेलन यूनेस्को की उस प्रायोजना के अंतर्गत हुआ जो मध्य एशिया की सभ्यता के अध्ययन के लिए तैयार की गयी है. इस यूनेस्को प्रायोजना का उद्देश्य मध्य एशिया के लोगों की सभ्यता को वेहतर ढंग से समझना भी है. पुरातत्त्व, इतिहास, विज्ञान और साहित्य को आधार वना कर ही इस समझ को आगे वढ़ाने की वात है. जिन देशों को इस में शामिल किया गया है वे हैं अफ़ग़ानिस्तान, भारत, ईरान, पाकिस्तान और रूस. इस सम्मेलन में जो प्रतिनिधि शामिल हुए उन में से कुछ विश्व-विख्यात विद्वान हैं, जैसे वी. गाफ़ूरोव, एम. द्रोविशेव, वोनगार्ड लेविन और प्रोफ़ेसर मिकोयान (रूस), श्री मुहाघाघ, श्री नस्र (ईरान) प्रोफ़ेसर ए. एल. वैशम (ब्रिटेन) तथा कार्ल मेंजेस (अमेरिका). भारतीय विद्वानों में से थे प्रोफ़ेसर सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ. एच. डी. सांकलिया, डॉ. वी. के. थापर, डॉ. जी. आर. शर्मा, श्री टी. एम. पी. महादेवन तथा डॉ. के. ए. निज़ामी. श्री डी. कौशिक तथा अमलेंदु गुहा जैसे युवा विद्वानों ने भी अपने निवंध पढ़े. कुल मिला कर कई प्रश्न और कई ऐतिहासिक काल-खंडों को चर्चा का विषय वनाया गया था. विद्वानों की यह एक अच्छी उपस्थिति थी, ऐसे विद्वानों की जो विषय को कई कोणों से समझ और समझा सके.

यह स्वाभाविक ही था कि इस तरह के सम्मेलन को इतिहास के कई काल-खंडों में चर्चा के लिए उपविभाजित कर दिया जाता. अलग-अलग विचार-गोष्ठियों में, मध्य एशिया के देशों के लोगों और विचारों के एक दूसरे पर प्रभाव पर विचार किया गया. प्रागैतिहासिक काल और आदि काल से ले कर ८ वीं सदी तक, मध्य युग से ले कर १८ वीं सदी तक तथा १९ वीं और २० वीं सदी में इन देशों के लोगों और विचारों का जो आदान-प्रदान हुआ उस पर वातचीत हुई. एक साधारण विचार-गोष्ठी में मध्य एशिया के देशों के पारस्परिक और आपसी सहयोग को और निकट लाने के उपायों और माध्यमों पर भी चर्चा हुई.

जहाँ यह उपविभाजन समझ में आने वाला था और प्रत्येक विचार-गोष्ठी के अध्यक्ष ने उच्चतम शास्त्रीय दृष्टिकोण से ले कर एक विचारोत्तेजक दृष्टिकोण की छाप, जैसे कि प्रो. वैशम ने, छोड़ी. वहीं निवंधों के पाठ और उन पर हुई चर्चा कुछ विच्छिन्न और अप्रासंगिक भी हो गयी. प्रायः प्रत्येक विचार-गोष्ठी में यही हुआ. पहली विचार-गोष्ठी ज़रूर अपवाद थी, जिस में डॉ. सांकलिया, डॉ. वी. के. थापर, डॉ. एस. पी. गुप्त के निवंधों ने संवंधित समस्याओं को उठाया और इस के वाद जो विचार-विमर्श हुआ उस में पाषाण काल के मध्य एशिया के लोगों के वीच आदान-प्रदान व उन के संवंधों पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया. इन विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत किये गये ठोस प्रमाणों को ले कर इन संवंधों की पुर्नरचना संभव थी. फिर चाहे वह प्रारंभिक भारत-पाक की संस्कृति पर ईरानी प्रभाव हो या भारत की मध्ययुगीन संस्कृति पर पुर्नविचार. नव पाषाण-कालिक और ताम्रकालिक मध्य एशिया और भारत पर प्रस्तुत किये गये डॉ. वी. के. थापर के निवंध के वाद प्रागैतिहासिक पारिभाषिक शव्दावली की समस्याओं को ले कर महत्त्वपूर्ण और प्रासंगिक विचार-विमर्श हुआ. शव्दावली की समस्या पर पुरातत्त्व-सर्वेक्षण शताब्दी सम्मेलन और १६ वें प्राच्यविद अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में पहले भी चर्चा हो चुकी है. अव समय आ गया है कि पुरातत्त्व-शास्त्र और प्रागैतिहास संवंधी पारिभाषिक शव्दावली की समस्याओं पर विशेषज्ञों का एक छोटा सम्मेलन विशेष रूप से वुलाया जाए. जैसे-जैसे सम्मेलन पाषाण युग, नव पाषाण युग और ताम्र युग से ऐतिहासिक युग की ओर बढ़ा स्वभावतः ज़ोर उपकरणों से हट कर कल्पनाशील वातों पर हो गया. वेग्राम के यक्षिणी पात्र पर आर. सी. अग्रवाल का परचा और दंदान उलीक की हारीति लक्ष्मी पर डॉ. वनर्जी के पर्चे इसी कोटि के थे. डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी, डॉ. जी. आर. शर्मा, डॉ. वी. एन. मुकर्जी के निवंध अधिक व्याख्यात्मक और सामान्य विषयक थे. आर. सी. अग्रवाल और डॉ. वनर्जी दोनों के ही निवंध एक ही साक्ष्य पर उस साक्ष्य को साहित्यिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ढाँचे के एक व्यापक रूप से जोड़े विना निष्कर्ष निकालने की सुविधा और कमज़ोरी दोनों ही वताते थे. वेग्राम की यक्षिणी तथा ऐसी ही दूसरी वस्तुएँ जो भारत में पायी गयीं हैं, विशेष रूप से पंजाव और हरयाणा में, इस वात को प्रमाणित करती हैं कि आपसी प्रभाव थे. लेकिन यह सिद्ध नहीं किया जा सका है कि पानी पीने के पात्रों पर चित्रित यह आकृतियाँ जननी-देवियों का प्रतिनिधित्व करती हैं. डॉ. वनर्जी के निवंध से यह ज़रूर स्पष्ट था कि अव वह समय आ गया है जव भारतीय विद्वान अकेली मूर्त्ति या आकृति को पूर्णाकार से जोड़ कर देखें. डॉ. वनर्जी की व्याख्या, जो एक विशिष्ट शैली और साहित्यिक तथा कलात्मक ढाँचे में की गयी थी, का हिंदू-वौद्ध पुराण-कथा के हारीति लक्ष्मी प्रतीक से कुछ लेना-देना नहीं था. डॉ. वनर्जी के निवंध पर भारतीय, ईरानी और अफ़ग़ानी विद्वानों ने जो आलोचना प्रस्तुत की वह विलकुल ठीक और प्रामाणिक थी. डॉ. चटर्जी और डॉ. शर्मा का दृष्टिकोण भिन्न था. उन की शैली भी व्यापक थी. लेकिन इन निवंधों में भी अपर्याप्त साक्ष्यों के आधार पर साधारणीकरण करने की प्रवृत्ति की भूल मिलती थी. १८वीं और १९वीं सदी में तथा मध्य युग में विचारों के आदान-प्रदान को ले कर जो विचार-गोष्ठियाँ हुई उन में भी सतही वातचीत हुई. लोक-संस्कृति, साधारण जनों, अभिजात्य वर्ग, वुर्जुआ, आध्यात्मिकता तथा धर्म जैसे आधारभूत प्रश्नों पर विद्वानों के जो वने-वनाये दृष्टिकोण थे उन के कारण चर्चा में पर्याप्त गरिमा और गंभीरता नहीं आ पायी. इन सव में डॉ. के. ए. निज़ामी का निवंध सव से अधिक तटस्थता लिये हुए था. प्रो. वी. ग़ाफ़ूरोव के निवंध में कई एक ऐसे अंश थे जहाँ से यह विवाद उठ खड़ा हो सकता था कि भारतीय सांस्कृतिक धरोहर ने मध्य एशिया की संस्कृति को

मध्य एशिया सम्मेलन के मध्य प्रतिनिधिगण

किन रूपों में और कितना समृद्ध किया है, हालांकि प्रो. गाफ़ूरोव के आग्रह श्री डी. कौशिक के आग्रहों की तुलना में बहुत कम थे, जिन्होंने १९वीं और २०वीं सदी में 'मध्य एशिया के साहित्य में लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों' पर एक पक्षपातपूर्ण निबंध पढ़ा. उन के शीर्षक को ले कर ही उन से एक विवाद किया जा सकता था और लोकतंत्र की उन के द्वारा की गयी परिभाषा पर भी. उन्होंने ऐसे वक्तव्य दिये जो अकल्पनीय थे और जिन्हें मानना असंभव है, जैसे कि 'सूफ़ी कवियों में ह्रासशील सामंती ढांचे के खिलाफ़ एक प्राचीन भौतिकवादी विचारधारा के तत्त्व ढूंढ़े जा सकते हैं'. इस निबंध पर जो दिलचस्प बातचीत हुई उस में श्री कौशिक यह विश्वास करते भी पाये गये कि लोगों को धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है और उमर खय्याम एक भौतिकवादी था. वह अपनी भौतिकवादी विचारधारा में एक मार्क्सीय विचारक को पीछे छोड़ते मालूम पड़े और इसे दुर्भाग्य ही कहेंगे कि दूसरे ऐसे भारतीय विद्वान वहां नहीं थे जो रूसी मध्य एशियाई साहित्य पर इतनी गहरी जानकारी रखते हों कि उन के विवादास्पद वक्तव्यों के बारे में गहरा विचार-विमर्श कर सकते. दूसरे रूसी विद्वान, विशेष रूप से श्री मिकोयान और श्री ग्रोनिशेव के निबंध स्पष्ट रूप से यह बताते थे कि रूस, भारत और रूस के बीच सामान्य रूप से और मध्य एशिया के बारे में विशेष रूप से, आपसी आदान-प्रदान को ले कर एक विशेष दृष्टिकोण रखता है. श्री ग्रोनिशेव का निबंध भले ही सूचनाप्रद और शिक्षात्मक था लेकिन वह विचारोत्तेजक लेखों की कोटि में नहीं आता. अच्छा होता अगर मध्य एशिया के देशों के बीच आधुनिक युग में आदान-प्रदान की जो विशेष समस्याएं हैं पहले उन की पूर्व पीठिका बता दी जाती और उस के बाद उस पर एक लाभदायक विचार-विमर्श होता. अंतिम विचार-गोष्ठियों में गंभीर इतिहासकार की दृष्टि लुप्त हो गयी और निबंध संबंधित देशों पर रिपोर्ट बन कर रह गये. वैसे यह सही है कि कुछ निबंध इसी अर्थ में लिखे भी गये थे, जैसे कि 'मध्य एशिया के लोगों की सभ्यता का वैचारिक के इतिहास और दर्शन के आलोक में अध्ययन' पर टी. एम. पी. महादेवन का निबंध. विचार-गोष्ठियों में नृशास्त्रीय सांस्कृतिक ढांचे पर किये जाने वाले क्षेत्र विशेष के अध्ययन की आवश्यकता नहीं उभर पायी. हालांकि यह बात स्पष्ट थी कि मानव-जाति के पिछले ५००० वर्षों के इतिहास में कई क्षेत्रों और कई स्तरों पर आपसी प्रभाव व संपर्क घटित हुए हैं.

सम्मेलन उपयोगी और प्रेरणाप्रद था. लेकिन आयोजन संबंधी थोड़ी नयी सूझ-बूझ उसे अधिक महत्त्वपूर्ण बना सकती थी.

प्रतिनिधि प्रश्नोत्तर

प्रश्न : भारत में हो रही गोष्ठी के संबंध में आप के क्या विचार हैं ? पुस्तकों में वर्णित विचारों एवं ऐतिहासिक सामग्री के अलावा हमें और आप क्या दे सकते हैं और क्या ग्रहण कर सकते हैं ? इस गोष्ठी से कुछ रचनात्मक लाभ संभव है ?

उत्तर : मध्य एशिया के देशों की सभ्यता और संस्कृति के संबंध में इस गोष्ठी का आयोजन किया गया है और इस ओर मेरी रुचि बाल्यावस्था से ही रही है, विशेषकर भारतीय सभ्यता और संस्कृति से मेरा पुराना संबंध है.

सभ्यता और संस्कृति के विषय में मेरी उतनी रुचि नहीं है जितनी भाषा और लिपि के प्रति है. मैं भाषा और लिपि के मध्य सभ्यता और और संस्कृति ढूंढ़ता हूं. यदि किसी विशेष वस्तु को खाने का अवसर मुझे प्राप्त होता है तो मैं नहीं चूकता और मेरी तृष्णा तब तक शांत नहीं होती जब तक कि मैं उस से अपने को पूरी तरह तृप्त नहीं कर लेता. यही बात भाषा पर लागू होती है. विभिन्न भाषा-भाषी जनता एवं सदस्यों के मध्य मुझे कुछ कहने और सुनने का अवसर प्राप्त होगा और जो कुछ मैं जानता हूं उस के अतिरिक्त इस गोष्ठी में मुझे कुछ और भी प्राप्त हुआ है, या प्राप्त होने की संभावना है. उर्दू भाषा ने कहां तक तरक़्क़ी की है, देवनागरी भाषा में क्या नवीन परिवर्त्तन हुए हैं, आमनेसामने हो कर पूछने का अवसर मुझे मिलेगा. यह दूसरा कारण है जो मुझे बरबस भारत खींच लाया. पुस्तकों में जो कुछ लिख दिया जाता है वह प्रामाणिक अवश्य कहा जा सकता है, किंतु आलोचनात्मक ढंग से व्याख्या सामने ही हो सकती है. हम क्या दे रहे हैं और उस के बदले में हमें क्या मिल रहा है यह हम ने कभी नहीं सोचा. ऐसा व्यापारी सोचते हैं. सभ्यता और संस्कृति के विषय में यह प्रश्न नहीं उठता. जहां तक लाभ और हानि का प्रश्न है रचनात्मक तथ्यों के ज्ञान का संबंध है. इस गोष्ठी से यह अवश्य लाभ होगा कि हम जानेंगे कि हम अपने विचारों के आदान-प्रदान में कितने मुक्त हैं और सभ्यता एवं संस्कृति किन नवीन उसूलों पर आगे बढ़ने जा रही है. अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से इस गोष्ठी का क्या महत्त्व होगा यह सोचना मुख्य प्रश्न है.

(प्रो. ए. बौसानी (इटली)से साक्षात्कार)

प्रश्न : आप की रुचि किस देश के इतिहास में अधिक है ? क्या पुस्तकों में वर्णित सामग्री से आप की तुष्टि हो जाती है? भाषा और लिपि के विचार से 'संस्कृत' के विषय में आप के क्या विचार हैं ?

उत्तर : बचपन से ही भारतीय इतिहास के प्रति रुचि रही है. मेरे पिता और चाचा द्वारा सुनायी गयी भारतीय कहानियों ने मुझ में भारत के इतिहास के अध्ययन के प्रति अधिक रुचि पैदा की. आज मैं एक भारतीय इतिहासवेत्ता के रूप में इस गोष्ठी में भाग ले रहा हूं. मेरा क्षेत्र यद्यपि ऐतिहासिक है पर सामाजिक क्षेत्र से मेरा लगाव अधिक है. संस्कृत, हिंदी, गुजराती, बंगला, तमिल, उर्दू

ए० एल० बैशम

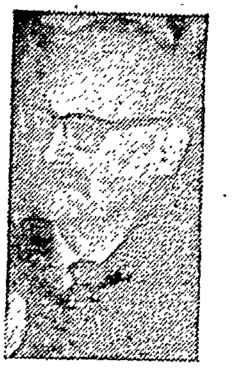

कार्ल मेंजेस

और सिंहली भाषाओं का ज्ञान मैंने प्राप्त किया है. संस्कृत साहित्य ज्ञान का भंडार है. विश्व की प्रचलित भाषाओं के सम्मुख संस्कृत भाषा हर रूप में खड़ी हो सकती है.

केवल इतिहास-ज्ञान से मेरी तुष्टि नहीं हो सकती. भारतीय रहन-सहन मुझे प्रिय है. संस्कृत काव्य और भारतीय संगीत दोनों के द्वारा मुझे आत्मिक शांति प्राप्त होती है. संस्कृत भाषा में कविता करने की मेरी इच्छा अपूर्ण ही रही है. इस बात का प्रमाण है कि मैं एक भारतीय महिला का पति हूं.

(प्रो. ए. एल. बैशम (ब्रिटेन) से साक्षात्कार)

"तीन मृत भाषाओं की स्मृति मेरे मानसपटल पर आज छायी हुई है और जब तक मैं जीवित रहूंगा वे छायी रहेंगी." ऐसा कहते हुए प्रो. वाल्कन ने मेरे प्रश्नों के उत्तर दिये.

प्रश्न : आप को इतिहासकार न कह कर बहुभाषी विद्वान कहना उचित होगा, इस पर आप की क्या राय है ? प्राचीन इतिहास में आप क्या ढूंढ़ते हैं ? एक इतिहासकार के स्थान पर यदि आप सरकारी कर्मचारी होते तो आप के देश को अधिक लाभ होता, क्या यह सत्य नहीं है ?

उत्तर : आप मुझे इतिहासकार मानने को तैयार नहीं हैं, अतः मैं एक बहुभाषी के रूप में आप के प्रश्नों का उत्तर दूंगा. मेरी चेष्टा तो यही होगी कि इतिहास संबंधी प्रश्न को मैं भाषा के प्रश्न का ही रूप दूं, जो सरल नहीं.

लोग मुझे विश्वप्रसिद्ध इतिहासकार के रूप में जानते हैं और वस्तुतः मैं एक इतिहासकार हूं, पर आप के सामने नहीं. मेरा जन्म अंकारा

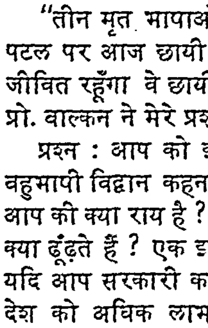

एस० मिकोयान

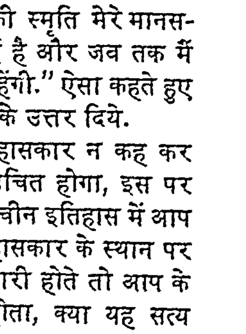

के० वाल्कन

में हुआ है. आरंभ से मुझे मेसोपोटामिया की तीनों मृत भाषाओं के प्रति रुचि रही है. वर्त्तमान समय में सुमेरियन, बैबीलोनियन और असीरियन भाषाएँ नहीं बोली जातीं और उन्हें मृत मान लिया गया है, पर यह निश्चित है कि इन तीनों भाषाओं ने ऐतिहासिक दृष्टि से इतिहास के रूप को निखारा है और साहित्य, समाज, दर्शन, पुरातत्व, राजनीति के समस्त अंगों का विशिष्ट वर्णन इन भाषाओं के साहित्य में छिपा हुआ है.

इन भाषाओं के इतिहास के उस दस्तावेज़ का वर्णन करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ जो १९०० ई. पू. लिखा गया था. यदि ध्यानपूर्वक इन भाषाओं के साहित्य का अध्ययन किया जाये तो, जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ, अनेकानेक समस्याओं का हल मिल सकता है. आज विश्व में जो कुछ हो रहा है उस का वर्णन इन भाषाओं के साहित्यिक इतिहास में हर स्थान पर दिखाई देता है. 'स्वर्ण-नियंत्रण' प्रश्न की महत्ता आज सर्वत्र है, पर मेसोपोटामिया निवासियों के लिए यह अपरिचित नहीं था. 'स्वर्ण-नियंत्रण' के संबंध में इन मृत भाषाओं में कहा गया है कि अंतोलिया के बादशाहों ने, अपने देश से स्वर्ण-निष्कासन के बारे में जब अन्य कोई साधन रोकने में कारगर न हुए तो, इस पर प्रतिबंध लगा दिया था. व्यापार-साहित्य के पृष्ठों पर यह अंकित किया गया है कि अंतोलिया और मेसोपोटामिया के बीच सर्वप्रथम व्यापार आरंभ हुआ था. व्यापार करने का ढंग वैज्ञानिक था. बैंक की सुविधाएँ, क़र्ज़ देने की प्रथा, ब्याज लेने की नीति और क़र्ज़ की उगाही करने की प्रथा उस समय भी थी. मेरे लिये आये दिन के शासकीय क़ानून, जो कि व्यापार संबंधी होते हैं, आश्चर्य के कारण नहीं बनते. मैंने प्राचीन व्यापारियों की डायरियों का अध्ययन भली प्रकार किया है. तस्करी के प्रश्न पर आज विश्व चिंतित है, पर तसकरी का प्रयत्न आदि काल में भी विदेशों में था. पुजारी और पुजारिनों का भी इस काम में सक्रिय सहयोग था. विवाह संबंधी प्रश्न वर्त्तमान समय की ही भाँति थे, तलाक़-प्रथा थी और इसे वैधानिक मान्यता प्राप्त थी.

(प्रो. के. वाल्कन (टर्की) से साक्षात्कार)

प्रश्न : क्या आप अपनी साहित्यिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक रुचि के बारे में प्रकाश डालेंगे ? प्राचीन भारतीय भाषाओं में आप की विशेष रुचि किस भाषा में है ?

उत्तर : एक अमेरिकी होने के नाते मैं इस अंतरराष्ट्रीय गोष्ठी, जो कि भारत में हो रही है, में भाग लेने आया हूँ. मैं प्राचीन सभ्यता और संस्कृति के विषय में अधिक दिलचस्पी नहीं रखता. वर्त्तमान से मेरा लगाव अधिक है. साहित्य के अध्ययन से ही ऐतिहासिक एवं राजनैतिक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है. मंगोलिया का इतिहास इस बात का साक्षी है. लोगों की धारणा है कि रूस का 'स्तालिनवाद' एक नयावाद है, पर यह ग़लत है. प्राचीन काल में मंगोलिया में इसी तरह का एक वाद प्रचलित था. हर साहित्य में मेरी अभिरुचि है, पर विशेषकर द्रविड़ भाषा और उस के साहित्य के विषय में जानने के लिए मैं सदैव सजग रहता हूँ. सन् १६४४ से १९११ तक चीन पर तुर्की, मंगोलिया और मंचूतुगस का प्रभाव दिखाई देता है. इन के अतिरिक्त ५० भाषाएँ और भी थीं, जो भारतीय द्रविड़ भाषा के बिलकुल अनुरूप ही थीं. धीरे-धीरे व्याकरण संबंधी विभिन्नता आती गयी और द्रविड़ भाषा उन से अलग होती गयी. भारत की सब से प्राचीन भाषा 'द्रविड़' है. लगभग एक हज़ार वर्ष के अंतर में द्रविड़ भाषा के व्याकरण और बोलचाल में अंतर आया.

(प्रो. कार्ल मेंजेस से साक्षात्कार)

प्रो. मिकोयान मॉस्को स्थित 'इंस्टीट्यूट ऑफ़ वर्ल्ड एकॉनॉमिस्ट एंड इंटरनेशनल रिलेशंस' की ओर से भारत में हो रही गोष्ठी में भाग लेने के लिए भारत आये हैं.

प्रश्न : इस प्रकार की गोष्ठियों के विषय में आप के क्या विचार हैं ?

उत्तर : सभा-कक्ष में होने वाले सांस्कृतिक विचारों के आदान-प्रदान के विषय में मैंने जो निष्कर्ष निकाला है वह अत्यंत ही निराशाप्रद है. एशियाई देशों के मध्य जो प्राचीन सभ्यता और संस्कृति प्राचीन समय में प्रचलित थी वह अधिक सार्थक थी. प्राचीन समय में आज की भाँति गोष्ठियों का आयोजन न होने के बावजूद लोगों में एक दूसरे के निकट आने की तथा सभ्यता-संस्कृति जानने की भावनाएँ जागरूक थीं. हर देश आज शांति और प्रेम में आस्था रखता है, रूस-भारत में जब इतनी निकटता न थी उस के पूर्व से ही मुझे भारतीय इतिहास और भारतीय सभ्यता-संस्कृति के प्रति दिलचस्पी थी. कश्मीर समस्या सुलझाने के लिए कोई भी रचनात्मक सुझाव नहीं दिये गये.

(डॉ. एस. मिकोयान से साक्षात्कार)

FOR
FERTILIZERS
PRINTING MACHINERY
MACHINE TOOLS
SCIENTIFIC INSTRUMENTS
ORWO PRODUCTS

AS WELL AS A WIDE RANGE OF OTHER TOP QUALITY GOODS

MADE IN GERMANY
IT'S
GDR
GERMAN DEMOCRATIC REPUBLIC

REPRESENTATIONS AT
NEW DELHI - 1, Kutilya Marg,
BOMBAY - Mistry Bhawan, 112, Dinshaw Wacha Road,
CALCUTTA - Faraday House, P-17, Mission Row Ext.
MADRAS - 34 1/1, Kodam Bakkam High Road, Nungam Bakkam.

INTERADS

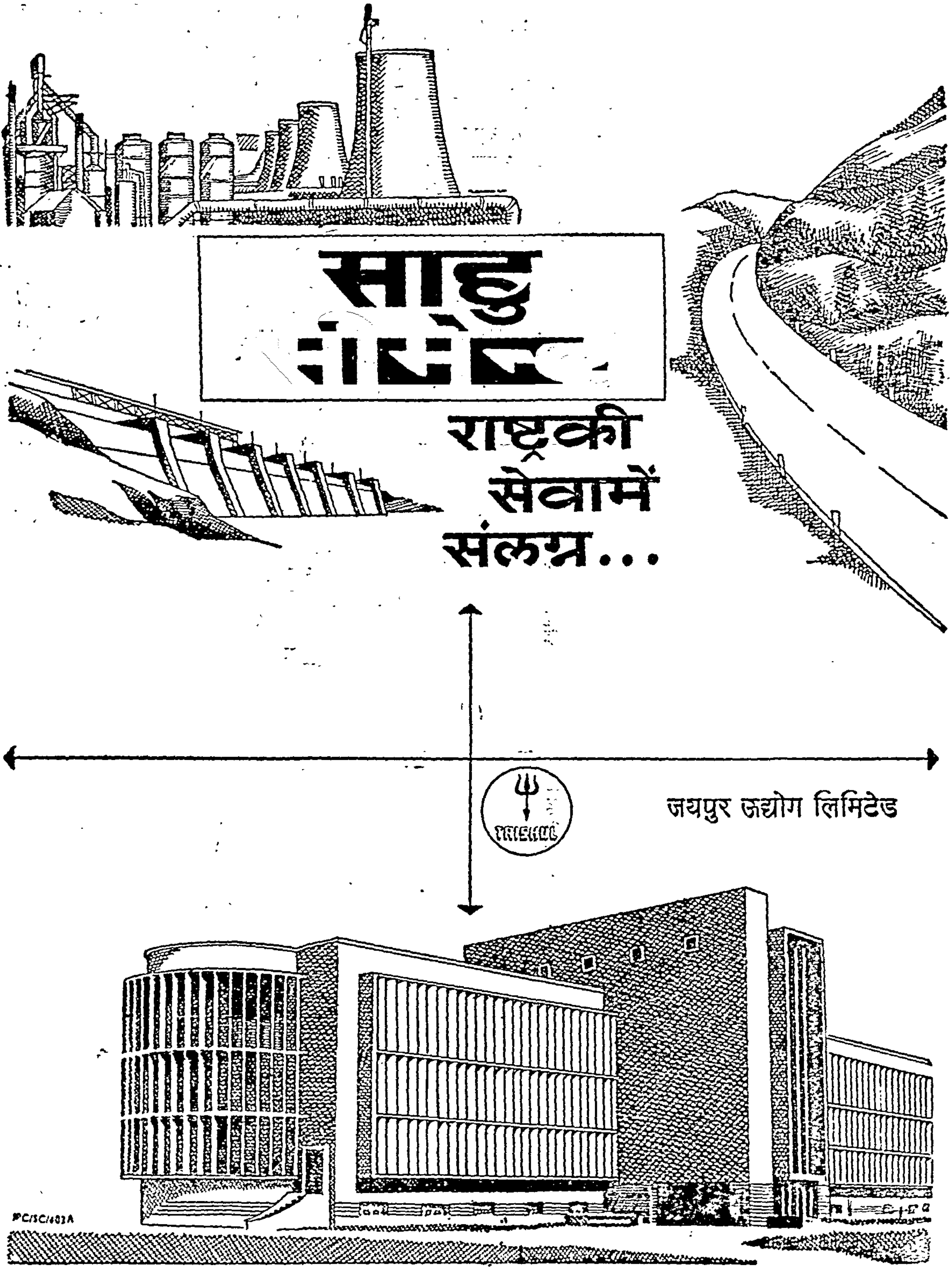
साहु
राष्ट्रकी
सेवामें
संलग्न...
जयपुर उद्योग लिमिटेड
TRISHUL

खरीददारी की सूची
में पहले
स्थान पर
कोटोजम
वनस्पति
ए और डी
विटामिन युक्त
KOTOGEM
INTERADS
मोदी वनस्पति मैन्युफैक्चरिंग कं० मोदीनगर (यू० पी०)

स्मृति

क्रांतिकारी का हृदय

[चंद्रशेखर आज़ाद २७ फ़रवरी के दिन इलाहाबाद के एलफ़्रेड पार्क में शहीद हुए. उन की निधन तिथि समूचे राष्ट्र में मनायी जा रही है. चंद्रशेखर आज़ाद के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष उन की याद के साथ उभर कर आते हैं. आज़ाद के निकटतम सहयोगी और आतंकवादी आंदोलन के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री विमल प्रसाद जैन की धर्मपत्नी श्रीमती रूपवती जैन ने ब्रितानी सरकार को उड़ाने के लिए बनाये जा रहे बमों का कारखाना भी देखा और आंदोलन में सक्रिय भाग भी लिया. उन के संस्मरणों में आज़ाद की सहृदयता ही उभर कर आती है.]

बात सन् १९२९ के दिसंबर मास की है. पहले दिन वायसराय लार्ड इर्विन की रेलगाड़ी को बम से उड़ाने का प्रयास किया गया था जिस में वायसराय बाल-बाल बच गए थे. आज़ाद उस समय दिल्ली में ही थे. दो दिन पहले ही दल की सर्वोच्च कार्यकारिणी ने निश्चय किया था कि फ़िलहाल वायसराय की ट्रेन को उड़ाना किसी और उपयुक्त समय के लिए स्थगित कर दिया जाये.

वायसराय की गाड़ी उड़ाने का रोमांचकारी समाचार प्रातःकाल सभी अखबारों में प्रमुखता के साथ निकला, समाचारपत्र को देख कर आज़ाद की सब से पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि अपने साथियों श्री भगवतीचरण, श्री यशपाल आदि की कुशलता के बारे में जानकारी करें यद्यपि इस घटना पर उन्हें क्रोध भी आया क्यों कि दल के ऊँचे पदाधिकारियों द्वारा दल का अनुशासन भंग करने की यह घटना थी.

दल के नियमानुसार जिन-जिन व्यक्तियों का वायसराय की ट्रेन उड़ाने वाले व्यक्तियों से संबंध था, उन का स्थान बदलना आवश्यक था. विशेषतया उन साथियों का जो फ़रार थे और छद्मवेश में रह रहे थे. इस लिए मेरे पतिदेव श्री विमलप्रसाद जैन को चंद्रशेखर आज़ाद उर्फ़ भैया तथा कैलाशपति उर्फ़ सीतल के स्थान बदलने और सुरक्षा की जिम्मेदारी सौंपी गयी. दोनों को तुरंत ही नया बाज़ार में गल्ले के आढ़ती के कमरे पर ठहरा दिया गया जहाँ बाहर से आने वाले व्यापारी ठहरते थे. तय किया गया कि श्री आज़ाद और कैलाशपति को दिल्ली से बाहर सुरक्षित ले जाया जाये. उस समय वायसराय के ट्रेन-कांड के बाद दिल्ली में पंजाब, यू. पी. और अन्य कई राज्यों से चुनें हुए सी. आई. डी. अफ़सर नाकेबंदी किये हुए थे. रेल या किसी सवारी द्वारा बाहर जाना खतरे से खाली नहीं था. निश्चय हुआ कि श्री आज़ाद और कैलाशपति को ले कर श्री विमल-प्रसाद जैन पैदल ही नलगढ़ा गाँव पहुँच जायें. नलगढ़ा दिल्ली से पंद्रह मील दूर जमुना और

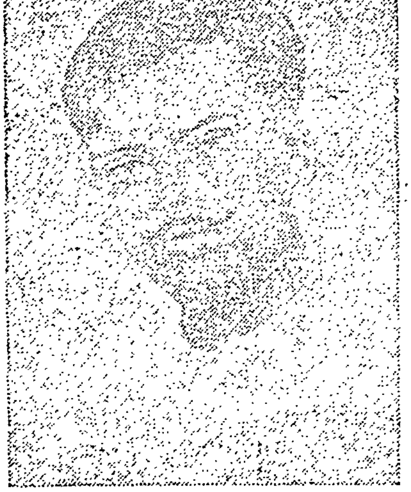

चंद्रशेखर आज़ाद : कठोर भी, कोमल भी

हिंडन नदी के बीच बुलंद शहर जिले में है. वहाँ श्री रामचंद्र शर्मा और ब्रह्मानंद सक्सेना का खेती का एक बड़ा फार्म था. वहाँ पर हथियार भी थे. योजना बनी कि पंडित चंद्रशेखर आज़ाद एक सेठ जी के वेश में और उन के दोनों साथी श्री कैलाशपति और श्री विमलप्रसाद मुनीम और गुमास्ते के वेश में यमुना का पुल पार कर लेंगे.

योजना के अनुसार पुल पार कर लिया गया. धोती-तौलिये में लिपटे हुए पिस्तौल तीनों के पास थे जिस में एक माउज़र पिस्तौल भी था. यमुना के उस पार, जहाँ आजकल गांधीनगर, कृष्णनगर आदि बस्तियाँ बस गयी हैं, उन दिनों केवल यमुना का खादर था. पुल से दो-तीन मील दूर झील-कुरंजा नाम का गाँव था. सन् १९२९ का दिसंबर बहुत ही ठंडा था. आज़ाद कपड़े का जूता पहने हुए थे. पैदल चलने की उन की आदत भी छूट गयी थी. प्रातःकाल की सख्त ठंड में चलने से भैया के पैर की दो ऊंगलियाँ कट गयीं.

थोड़ी देर बाद ये लोग झील-कुरंजा गाँव के नज़दीक पहुँच गये. सोचा गया अगर गाँव में बैलगाड़ी-तांगा मिले तो उसे नलगढ़ा के लिए ले लिया जाये. गाँव के बाहर एक षोडषी-किसान कन्या सर नीचा किये, उपले पाथ रही थी. वह अपने काम में व्यस्त थी. विमल जी ने उस से पूछा—'गाँव में कोई भाड़े की बैलगाड़ी मिल जायेगी. उस ने बिना सर ऊपर उठाये ही पूछा—'कहाँ जाना है?' उसे बतलाया गया नलगढ़ा. लड़की ने कहा—'नलगढ़ा तो युरा (पास ही है). तांगा क्या करोगे?' विमल जी ने ज़ोर दिया—'गाड़ी चाहिए ही'. जैसे ही कन्या की निगाह भैया पर पड़ी वह खिलखिला कर हँस पड़ी. आज़ाद की ओर उंगली से इशारा करते हुए उस ने कहा—'इस फ़फ़सनाथ से नहीं चला जाता होगा.'

गाड़ी ले ली गयी. आज़ाद एकदम चुप थे. थोड़ी देर के पश्चात् चेहरे की कठोरता कम हुई और मौन भंग कर के उन्होंने कहा—'तुम सब लोगों ने मिल कर मेरे शरीर को बेकार बना दिया है. कहीं निकलने नहीं देते. देखते हो इस छोकरी ने भी मुझे फ़फ़सनाथ की पदवी दे दी'. कहते हुए उन को हँसी भी आ गयी.

शाम होने से पहले ही ये लोग नलगढ़ा पहुँच गये. अगले दिन वे तीनों जंगल में निकल गये और वहाँ आज़ाद ने श्री विमल को पिस्तौल से सामने पेड़ पर बैठे हुए पक्षी का निशाना साधने को कहा. भैया के हुक्म की तामिल की गयी. पक्षी को निशाना ठीक लगा. वह गोली खा कर पेड़ से नीचे गिर गया. लेकिन इस पर विमल जी ने कहा—'इस तरह बिना बात किसी की जान लेना मेरी भावना के प्रतिकूल है. आप ने देख लिया मैं निशाना भी ठीक लगा सकता हूँ और आप के हुक्म की तामील भी कर सकता हूँ'. भैया द्रवित हुए पर चुप रहे.

दो पेटू लड़के : अप्रैल सन १९३० की बात है. दल के उच्च पदाधिकारी दिल्ली में दल का आगे का कार्यक्रम निश्चित करने के लिए एकत्रित हुए थे. श्री चंद्रशेखर आज़ाद और श्री भगवती चरण बोहरा इसी सिलसिले में दिल्ली में मौजूद थे. इन दोनों की देख-रेख की जिम्मेदारी श्री विमल प्रसाद जैन पर थी. एक दिन जब वे दोनों मीटिंग से निश्चित हो गये तो बापू भैया (भगवतीचरण) ने श्री विमल प्रसाद जैन से कहा—'कल पेट भर खाना खाया जायेगा'. आज़ाद भी बोल उठे—'बिलकुल ठीक है. महीनों से खाना नसीब नहीं हुआ. बिल माँ से कह देना कि उस के दो पेटू लड़के खाना खाने आयेंगे और केवल अरहर की दाल और चावल खायेंगे'. दूसरे दिन ठीक समय पर विमल जी के साथ दोनों खाना खाने के लिए घर पहुँच गये. आज़ाद भैया ने माँ से हँस कर कहा—'हम दोनों में होड़ लगी है. आज जो कुछ आप ने बनाया है, उस में से कुछ भी बाक़ी नहीं छोड़ेंगे'.

डकैती : जुलाई सन् १९३० में दल ने गड़ोदिया स्टोर में डकैती डालने की योजना बनायी. उस का नेतृत्व श्री चंद्रशेखर आज़ाद ने स्वयं किया. डकैती सुचारू रूप से सफल हुई.

गड़ोदिया स्टोर में पेशीलाल मुनीम की हैसियत से काम करते थे और डकैती के समय वहीं मौजूद थे. उन का भाई किसी समय विमल जी की दुकान पर मुनीम था इसी लिए विमल जी और पेशीलाल परस्पर परिचित थे. डकैती के एक-दो दिन बाद विमल जी से पेशीलाल की चाँदनी चौक में भेंट हो गयी. मुनीम जी ने बताया कि वे मामूली डकैत नहीं थे, कोई महान् आदमी थे. उन्होंने बताया कि जब रोकड़िया ने नक़द रुपये के साथ-साथ ज़ेवर के डिब्बे भी डाकुओं के सरदार के सामने रख दिये तो गुस्से से सरदार ने कहा—'मुझे माँ-बहनों का ज़ेवर नहीं चाहिए'. मुनीम जी और वहाँ मौजूद लोगों पर सरदार की महानता और सज्जनता का इतना प्रभाव जम गया था कि दिल्ली षड्यंत्र केस में पुलिस ने जब उन से गवाही दिलवानी चाही तो उस में से एक भी आदमी ने पुलिस की ज़्यादती के बावजूद गवाही नहीं दी.

वारेल ट्रॉफ़ी : ऑस्ट्रेलिया में

क्रिकेट की कमेंट्री सुनते समय कुछ लोगों की दिल का दौरा पड़ने से मृत्यु भी हो सकती है, यह बात सुन कर भारतवासियों को थोड़ी हैरानी हो सकती है. लेकिन यह एक सत्य है. वेस्ट इंडीज की जनता क्रिकेट की कितनी दीवानी है इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि इधर सिडनी में जब वेस्ट-इंडीज़-ऑस्ट्रेलियाई टेस्ट श्रृंखला का पाँचवाँ और अंतिम टेस्ट खेला जा रहा था और आस्ट्रेलिया के बल्लेबाज़ बड़ी तेज़ी से रन बटोरते जा रहे थे तो उधर त्रिनिदाद में कमेंट्री सुनते हुए दो सिपाहियों की दिल का दौरा पड़ने से मृत्यु हो गयी. इन में से एक सिपाही एंड्रयू डैनियल की, जो सांग्रे ग्रांड अस्पताल में अपना इलाज करा रहे थे, इस सदमे से ही मृत्यु हो गयी. इस टेस्ट श्रृंखला के चौथे टेस्ट (एडिलेड) के पहले दिन भी जब कार्पोरल सीसिल कारनोवाल नामक व्यक्ति ने घर में कमेंट्री सुनते हुए यह सुना कि कनहाई को 'एल. बी. डब्ल्यू.' के कारण आउट कर दिया गया है तो वह वहीं बेहोश हो कर ऐसा गिरा कि फिर उठ नहीं सका.

इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेस्ट इंडीज की जनता सब कुछ बर्दाश्त कर सकती है मगर क्रिकेट की हार को बर्दाश्त नहीं कर सकती. लेकिन अब उसे क्रिकेट की हार का सदमा भी सहना पड़ रहा है. ऑस्ट्रेलियाई-वेस्ट इंडीज़ टेस्ट श्रृंखला में ऑस्ट्रेलिया ने वेस्ट इंडीज़ को ३-१ से हरा कर फ़्रैंक वारेल ट्रॉफ़ी पर पुन: अपना अधिकार जमा लिया है. इस ट्रॉफ़ी के विजेता को क्रिकेट के खेल में विश्व-विजेता कहलवाने का गौरव प्राप्त हो जाता है. १९६०-६१में ऑस्ट्रेलिया (मेलबोर्न) में स्वर्गीय सर फ़्रैंक वारेल ने आस्ट्रेलिया के कप्तान रिची बेनो को यह ट्रॉफ़ी दी. १९६५ में फिर इस ट्रॉफ़ी पर वेस्ट इंडीज़ का अधिकार हो गया और अब फिर ऑस्ट्रेलिया के अधिकार में आ गयी.

तब और अब : १९६०-६१ में जब सर वारेल ने यह ट्रॉफ़ी अपने प्रतिद्वंद्वी कप्तान रिची बेनो को दी थी तब मेल्बोर्न स्टेडियम में लगभग ४,००० से अधिक दर्शकों ने वारेल का वह विदाई भाषण सुना था और अब सिडनी में वेस्ट इंडीज के कप्तान गारफ़ील्ड सोबर्स ने अपने प्रतिद्वंद्वी कप्तान बिल लारी को ट्रॉफ़ी प्रदान करते हुए जो दो शब्द कहे उसे सुनने के लिए मैदान में केवल २०० दर्शक ही उपस्थित थे. कारण यह कि अंतिम टेस्ट के अंतिम दिन का खेल देखने के लिए मैदान में केवल ८१९ दर्शक ही उपस्थित हुए थे क्यों कि एक दिन पहले ही ऑस्ट्रेलिया की जीत और वेस्ट इंडीज की हार निश्चित हो गयी थी. आखिरी दिन केवल ४३ मिनट का खेल ही खेला गया. खेल के आखिरी दिन वेस्ट इंडीज़ ने अपनी दूसरी पारी में ७ विकेट पर ३०३ रन से आगे का खेल शुरू किया और ३५२ रन बना कर आउट हो गयी. ऑस्ट्रेलिया ने आखिरी टेस्ट ३८२ रनों से जीत लिया. ऑस्ट्रेलिया ने पहली पारी में ६१९ रन और दूसरी पारी में ८ विकेट पर ३९४ (और पारी समाप्ति की घोषणा) और वेस्ट इंडीज़ ने पहली पारी में २७९ और दूसरी पारी में ३५२ रन बनाये. यों सोबर्स ने दूसरी पारी में अपना शतक पूरा कर दिया मगर ऐसे शतक पर भी उन्हें इतनी खुशी नहीं हुई.

सोबर्स का विदाई भाषण : टेस्ट श्रृंखला समाप्त हो जाने के बाद दुनिया के सर्वश्रेष्ठ कप्तान और हरफ़नमौला खिलाड़ी ३२ वर्षीय सोबर्स ने, जो शान से जीतते हैं और शान से ही

बिल लारी : विश्वविजयी मुस्कान

हारते हैं, पत्र-प्रतिनिधियों के सम्मेलन में अपनी हार का जो आत्म-विश्लेषण किया उस से हमारे खिलाड़ियों, अधिकारियों और कप्तानों (विशेष कर हॉकी) को एक सीख लेनी चाहिए. सोबर्स अपने देशवासियों के दुख और क्रिकेट दीवानी जनता की तीव्र प्रतिक्रिया से भली-भाँति परिचित हैं. लेकिन इस पर भी अपनी हार के लिए उन्होंने न तो अंपायरों को दोषी ठहराया और न ही अपने प्रतिद्वंद्वी खिलाड़ियों के व्यवहार (या दुर्व्यवहार) की चर्चा करने में ही अपने शब्दों का अपव्यय किया. उन्होंने जो कुछ कहा उस का सारांश यही था कि 'कुछ कमी हमी में थी जो हम हार गये'.

सोबर्स ने अपने ही खिलाड़ियों की कमज़ोरियों पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वेस्ट इंडीज़ की टीम का क्षेत्र-रक्षण बहुत ही खराब था और खराब क्षेत्र-रक्षण के कारण ही हमारी हार हुई है. सोबर्स ने कहा कि मैं ऑस्ट्रेलियाई टीम के कप्तान बिल लारी और उन के खिलाड़ियों को इस शानदार टेस्ट श्रृंखला के लिए बधाई देता हूँ.

ऑस्ट्रेलिया का दौरा खत्म कर अब वेस्ट इंडीज़ की टीम न्यूज़ीलैंड के लिए रवाना हो गयी जहाँ वह तीन टेस्ट और चार प्रथम श्रेणी के मैच खेलेगी. क्रिकेट के आँकड़े इकट्ठा करने वालों को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि सोबर्स ने ७० वें टेस्ट में अपना २१ वाँ शतक पूरा कर लिया है और इस प्रकार वह शतक बनाने में इंग्लैंड के कालिन काउड्रे और ऑस्ट्रेलिया के हार्वे के बराबर हो गये हैं.

डाउग वाल्टर्स : इस टेस्ट श्रृंखला में ऑस्ट्रेलिया के डाउग वाल्टर्स ने भी क्रिकेट के इतिहास में एक नया अध्याय जोड़ दिया है. उन्होंने वेस्ट इंडीज़ के विरुद्ध खेलते हुए एक पारी में २४२ रन बना कर एक नया रिकार्ड स्थापित किया. पिछला रिकार्ड १९३० में ब्रिस्बेन में ब्रैडमैन ने २२३ रन बना कर स्थापित किया था.

हॉकी

खेल या खिलवाड़

लाहौर में होने वाले अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले में भाग लेने के लिए भारतीय टीम और कप्तान का चुनाव हो जाने के बाद जब सब तैयारियाँ (खेल के अलावा) हो चुकीं तो एक दिन यह सुनने में आया कि लाहौर हॉकी मेले का प्रस्तावित दौरा रद्द कर दिया गया है. भारतीय खेल कूद के क्षेत्र में ऐसे आश्चर्यजनक या चमत्कारपूर्ण समाचार अक्सर सुनने में आते हैं. भारत सरकार ने दौरा रद्द करने के कारणों की व्याख्या करते हुए दो कारण बताये : एक तो यह कि इन दिनों पाकिस्तान में गृह-युद्ध की सी ही स्थिति है और ऐसी अशांत और प्रतिकूल परिस्थितियों में हमारा वहाँ जाना मुनासिब नहीं होगा और दूसरा यह कि लाहौर हॉकी मेले में भाग लेने के लिए जिस भारतीय टीम का चुनाव किया गया वह इतनी दमदार, जानदार या शानदार नहीं थी. यह भी कहा गया कि जब मेक्सिको ओलिंपिक खेलों के लिए भारतीय हॉकी टीम का चुनाव किया गया था तब यह कहा गया था कि अच्छे खिलाड़ियों की एक संतुलित टीम तैयार की गयी है. तीन महीने बाद जब दूसरी टीम का चुनाव किया गया तो उस में पहली टीम के १२ खिलाड़ी अलग कर दिये गये. इतना ही नहीं कुछ ऐसे खिलाड़ियों को भी शामिल कर लिया गया जिन्होंने अभी इर्नाकुलम में हो रही राष्ट्रीय हॉकी प्रतियोगिता में अपनी-अपनी टीम का प्रतिनिधित्व भी नहीं किया. मेक्सिको में भारत की हार के बाद अब हमें सबक़ सीखना चाहिए.

प्रस्तावित दौरे के रद्द होने पर अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हुईं. कुछ खेल-प्रेमियों और खेल-समीक्षकों ने, सरकार की

आलोचना करते हुए कहा कि सरकार को टीम के चुनाव में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए. कुछ लोगों ने सरकार की इस घोषणा का स्वागत और समर्थन करते हुए कहा कि सरकार ने बहुत अच्छा क़दम उठाया है. हमारे खेल-अधिकारी अपनी ज़िम्मेदारियों के प्रति कितने उदासीन हैं यह बात किसी से छिपी नहीं है. भारत की हार के बाद भी उन में कुछ ज़िम्मेदारी का एहसास हो गया हो, ऐसा नहीं लगता. राष्ट्रीय हॉकी प्रतियोगिता से पहले भी चार बड़ी हॉकी प्रतियोगिताएँ हाल में हुईं. दिल्ली क्लाथ मिल्स प्रतियोगिता (कोटा), अंतर-सेना प्रतियोगिता, अंतर-रेलवे प्रतियोगिता (मद्रास) और नेहरू स्मारक हॉकी प्रतियोगिता (नयी दिल्ली). देश के लगभग सभी नये और पुराने खिलाड़ियों ने इन प्रतियोगिताओं में भाग लिया मगर सवाल यह है कि भारतीय चुनाव समिति के कितने अधिकारियों ने इन मैचों को देखा. आर. एस. भोला ही एकमात्र ऐसे चुनाव-अधिकारी थे जो अंतर-सेना और नेहरू हॉकी प्रतियोगिता के सभी मैचों को नियमित रूप से देखने आये. बाक़ी किसी अधिकारी को अपनी ज़िम्मेदारी निभाने के लिए फ़ुर्सत नहीं मिली.

गुरबख्श सिंह ने अंतरराष्ट्रीय हॉकी से संन्यास लेने की घोषणा के बाद भी लाहौर जाने वाली भारतीय हॉकी टीम का नेतृत्व करना स्वीकार क्यों किया, यह तो वही जानें पर लगता है कि उन का संकल्प उतना अटल नहीं था जितना कि पृथीपाल सिंह का था. पृथीपाल सिंह से भारतीय टीम का नेतृत्व करने को कहा गया या नहीं, यह तो वही जानें पर लगता है कि पृथीपाल सिंह अब सचमुच हॉकी से अपना नाता तोड़ चुके हैं.

एथलेटिक

आठवीं अंतर-इस्पात खेल-कूद प्रतियोगिता

जनरल मैनेजर जगपति द्वारा पुरस्कृत 'टिस्को' का एक खिलाड़ी : क़द भी, करतब भी

भिलाई के भव्य स्टेडियम में १४ से १६ फ़रवरी तक आठवीं अंतर-इस्पात खेल-कूद प्रतियोगिता हुई जिस में भारत के आठों इस्पात कारखाने के १६० खिलाड़ियों ने भाग लिया. प्रतियोगिता का उद्घाटन हिंदुस्तान स्टील लिमिटेड के अध्यक्ष श्री चांडी ने किया. प्रतियोगिता के लिए यद्यपि हज़ारों रुपया खर्च किया गया परंतु जनता में इस प्रतियोगिता के बारे में विशेष रुचि नहीं थी. लगातार ८ दिनों तक स्थानीय समाचारपत्रों में विज्ञापनबाज़ी करने के बाद भी स्टेडियम सूना-सूना ही रहा.

भिलाई में प्रतियोगिता होने के बावजूद भिलाई इस्पात योजना का कोई भी खिलाड़ी प्रथम नंबर पर नहीं आ सका. इतना ही नहीं पब्लिक सेक्टर के, जिस में भिलाई, दुर्गापुर, राउरकेला तथा बोकारो इस्पात योजना सम्मिलित हैं, किसी भी खिलाड़ी का प्रदर्शन संतोषजनक नहीं रहा. केवल एक खेल 'शाटपुट' में राउरकेला इस्पात योजना का एम. सिंह नामक खिलाड़ी प्रथम नंबर पर आया. शेष २२ पारितोषिकों में से 'टिस्को' (टाटा आयरन एंड स्टील लिमिटेड) को १६ एवं 'इस्को' (इंडियन आयरन एंड स्टील कं. लिमिटेड) को ६ प्रथम नंबर के पारितोषिक मिले.

इस प्रतियोगिता में टिस्को के एक श्री पंडा नामक खिलाड़ी ने भी भाग लिया जिस की ऊँचाई ७ फ़ुट ४ इंच थी. सभी दर्शकों की नजर इस दर्शनीय खिलाड़ी पर लगी रही. श्री पंडा को गोला फेंकने में तीसरा और चक्का फेंकने में दूसरा स्थान प्राप्त हुआ.

संक्षिप्त समाचार

भारत केसरी : इस वर्ष दिल्ली के कॉरपोरेशन स्टेडियम में भारत केसरी के दंगल का आयोजन २६ अप्रैल से ४ मई तक किया जायेगा.

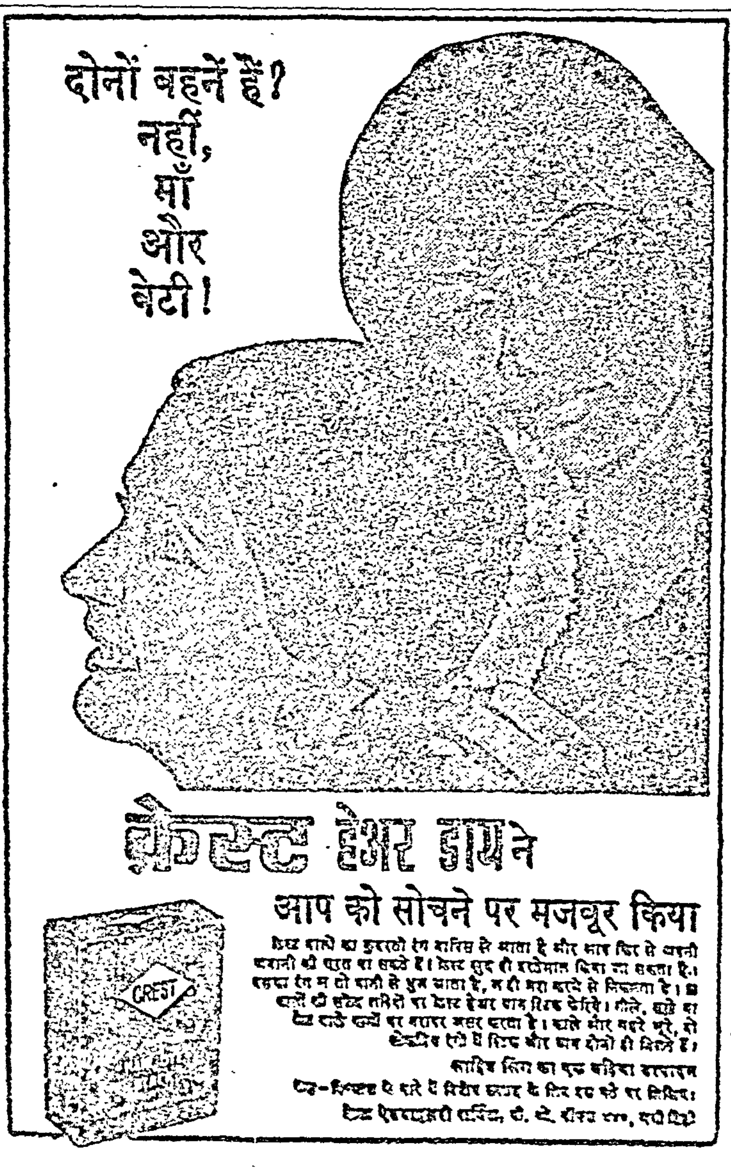

अनुमान है कि इस में देश के ३० से भी अधिक पहलवान भाग लेंगे. 'भारत केसरी' का पद प्राप्त करने वाले पहलवान को एक साल तक एक हज़ार रुपया प्रतिमास दिया जायेगा या इस के स्थान पर दिल्ली में २०० वर्ग गज़ का प्लाट, जिसकी कीमत लगभग ६,००० रुपया होगी, दे दिया जायेगा. दिल्ली प्रशासन द्वारा आयोजित भारतीय ढंग की इस कुश्ती प्रतियोगिता में भाग लेने वाले हर पहलवान को हर कुश्ती के लिए ५०० रुपये दिये जायेंगे. दिल्ली प्रशासन भारत केसरी प्रतियोगिता के आयोजन के साथ-साथ इस वार पहली बार 'भारत कुमार' प्रतियोगिता का भी आयोजन करेगा. 'भारत कुमार' प्रतियोगिता में २५ वर्ष से छोटी उम्र के विश्वविद्यालयों के छात्र ही भाग ले सकेंगे. 'भारत कुमार' का पद प्राप्त करने वाले खिलाड़ी को एक वर्ष तक १०० रुपया प्रतिमास दिया जायेगा.

इंदौर मोटर रेस : २२ फ़रवरी, प्रातः आठ बजे इंदौर में महाराजा ग्वालियर श्री माधवराव सिंधिया ने झंडी दिखा कर इंदौर कार-रैली प्रतियोगिता शुरू की. इस प्रतियोगिता में देश के २६ चालकों ने, जिन में दो स्त्रियाँ भी थीं, भाग लिया. यह अपने ढँग की पहली कार-रेस प्रतियोगिता थी. १५६० किलोमीटर (लगभग १००० मील) का फ़ासला सब से पहले तय करने वाले के लिए 'महाराजा ग्वालियर ट्रॉफ़ी' और दस हज़ार का नक़द पुरस्कार रखा गया था. दूसरा पुरस्कार पाँच हज़ार और तीसरा पुरस्कार ढाई हज़ार का था. यह प्रतियोगिता इंदौर से शुरू हुई और इंदौर में ही समाप्त हुई. इस का रास्ता था : इंदौर से बड़वाह, खंडवा, वाला-घाट, जबलपुर, दमोह, सागर, भोपाल, उज्जैन, बड़नगर, महू और फिर इंदौर.

२६ कारों में से केवल १० कारें ही निर्धारित समय पर पहुँच सकीं. १६ कारें इंदौर से जबलपुर के बीच के रास्ते में खराब हो गयी थीं. महाराजा ग्वालियर की फ़ोर्ड फाल्कन कार, जिसे जलाल आग़ा (फ़िल्मी हास्य अभिनेता आग़ा के सुपुत्र) चला रहे थे, जब सब से पहले (प्रातः २ बज कर २८ मिनट) इंदौर पहुँची तो सैकड़ों उत्साही लोगों ने उन का स्वागत किया. जलाल आग़ा ने इस दूरी को १७ घंटे और ४७ मिनट में तय किया. उन की कार में कहीं कोई खराबी नहीं हुई और औसत रफ़्तार १२९ किलोमीटर प्रति घंटा रही. फ़ाल्कन गाड़ी के २२ मिनट बाद अशोक पटेल द्वारा चालित मर्सीडीज़ बेंज पहुँची. इंदौर की महारानी द्वारा घोषित महिला चालक का एक हज़ार का पुरस्कार जुबीन गोदरेज को मिलेगा क्यों कि दूसरी महिला चालक कुमारी तुरखिया की कार में कुछ खराबी हो गयी थी जिस के कारण उसे बीच में प्रतियोगिता से हट जाना पड़ा.

समाचार-भूमि

जापान : नये रास्ते की तलाश

एशिया का सब से विकसित देश जापान आजकल तरह-तरह की सरगर्मियों का भी केंद्र बनता जा रहा है. १,४२,७२६.५ वर्ग मील क्षेत्रफल में फैला जापान आज हर उद्योग में बढ़-चढ़ कर है और उस की एक करोड़ से अधिक जनसंख्या अपने देश के उत्थान में जी जान से लगी हुई है. जहाँ औद्योगिक रूप से लोग हर क्षेत्र में जुटे हुए हैं वहाँ राजनैतिक रूप से भी वे किसी प्रकार पीछे नहीं. सरकार की हर खामियों को वह बड़ी बारीकी से देखते हैं और जो भी नीतियाँ उन्हें देश के लिए अहितकर दीखती हैं, उस के खिलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद करते हैं. जापान के विद्यार्थियों का विद्रोह, संसद में घुस कर हाथापाई तथा किसी भी राजनैतिक मामले में अपनी आवाज़ उठाना

इसाको सातो : व्यावहारिकता की अपेक्षा

वहाँ के लोग अपना धर्म समझते हैं. इस समय जापान के लोग यह मानते हैं कि ओकीनावा द्वीप उन का द्वीप है और उस पर से अमेरिकी प्रभुत्व यथाशीघ्र खत्म होना चाहिए. मौजूदा सातो सरकार के सामने यह एक विकट समस्या है और इस समस्या का हल ढूंढ़ने के लिए वह इस साल के मध्य में अमेरिका का दौरा करेंगे. लेकिन जनमत में एक यह शंका भी है कि सातो ओकीनावा द्वीप को लेने की बजाय कहीं अपने हथियार टेक न बैठें. ओकीनावा द्वीप द्वितीय विश्वयुद्ध की याद हमेशा जापानियों को दिलाता रहता है.

ओकीनावा का मसला : अमेरिका के नये राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन की नीतियों को देखते हुए और उन की व्याख्या करते हुए यह बात अब आम हो चली है कि उन का रवैया उदारतापूर्ण होगा. लेकिन किसी भी निश्चय पर पहुँचने के लिए तरह-तरह के पहलुओं पर विश्लेषणात्मक अध्ययन करना ज़रूरी होता है और जापान के निवासी सातो को सैद्धांतिक नहीं व्यावहारिक बनने की ही शिक्षा देते हैं. उन का यह कहना है कि बतौर सिद्धांत के कोई भी चीज़ प्राप्त नहीं की जा सकती. ऐसा करने से प्राप्ति का साधन टलता जाता है. अमेरिका ही का फ़िलहाल ओकीनावा द्वीप पर नियंत्रण है और यह द्वीप उस का सैनिक अड्डा भी है. इस अड्डे पर अमेरिका बेशुमार पैसे खर्च करता है. अमेरिकी सैनिक विभाग इस द्वीप को दक्षिण-पूर्व एशिया का अमेरिकी नाभिकीय कड़ी समझता है. ओकीनावा के तले में आणविक हथियारों तथा प्रक्षेपास्त्रों का अथाह भंडार है. संभव है कि कुछ और अधिक आधुनिक हथियार भी वहाँ पर जमा हों. लेकिन जो कुछ भी उन के पास है वे उसे हमेशा गुप्त रखते हैं. अमेरिका का ओकीनावा द्वीप पर आधिपत्य इस बात का सूचक है कि वह चीन और उत्तर कोरिया की सैनिक गतिविधियों का लेखा-जोखा समय-समय पर प्राप्त करने के चाहवान हैं. अमेरिका यह भली प्रकार जानता है कि अगर उस ने चीन के प्रति उदासीनता का रुख अपनाया तो इस से उसे मुँह की खानी पड़ सकती है. पाकिस्तान द्वारा पेशावर सैनिक अड्डे खत्म करने के निर्णय (या अय्यूब प्रशासन द्वारा रूस के बहकावे में आ कर अमेरिका को ऐसा करने के लिए बाध्य करना) से उस का संपर्क एशिया के कुछ भागों से टूट जायेगा और अगर वह ओकीनावा से भी अपना नियंत्रण समाप्त कर लेता है, तो अमेरिका के लिए दक्षिण-पूर्व एशिया की बिगड़ती या पनपती स्थिति का पता लगा पाना कुछ मुश्किल हो जायेगा. लेकिन जहाँ तक ओकीनावा के १० लाख जापानियों का ख्याल है वह इस बात के पक्ष में हैं कि इस क्षेत्र से अमेरिकी प्रभुत्व यथाशीघ्र समाप्त हो और यह इलाका पुनः जापानियों के हाथ में आ जाये. आज जापान की घरेलू राजनीति में ओकीनावा सब से बड़ा मसला है और इस मसले का समाधान या तो प्रधानमंत्री साकू सातो का राजनैतिक जीवन बना सकता है या हमेशा के लिए समाप्त कर सकता है. यदि सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए सातो अमेरिका को ओकीनावा द्वीप वापस लेने के लिए मना लेंगे तो इस से सातो की स्थिति निश्चित रूप से दृढ़ होगी.

जहाँ तक अन्य विरोधी राजनैतिक पार्टियों का संबंध है, इस बारे में वे सभी एकमत हैं कि ओकीनावा पर विदेशी नियंत्रण शीघ्रातिशीघ्र समाप्त होना चाहिए. पिछले दिनों अमेरिका के सेनेटर स्काट और सेनेटर मस्की ने जापान का दौरा किया था. अपने प्रतिवेदन में उन्होंने कहा कि जापान के लोगों के दिमाग़ पर अभी भी हिरोशिमा और नागासाकी की तबाही की छाप दीख रही है. लोगों का एक बहुत बड़ा प्रतिशत सिद्धांत रूप से अमेरिका के ओकीनावा पर बने अधिपत्य के विरुद्ध है. इस समय इस समस्या के

हल के लिए सब से सही तरीक़ा ओकीनावा को जापान की मुख्य भूमि का दर्जा देने का है. ऐसा विश्वास किया जाता है कि अपनी अमेरिका-यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री सातो अमेरिकी अधिकारियों पर इस तरह का दवाव डालेंगे कि १९७२ तक ओकीनावा जापानियों को वापस देने की योजना बनायें. और अगर इस अदला-बदली में जापान सरकार कहीं वहाँ आणविक हथियारों के रखे रहने की बात मान गयी तो इस बात का विरोध न केवल वहाँ के निवासी ही करेंगे बल्कि सभी विरोधी राजनैतिक पार्टियाँ भी करेंगी. और अगर कहीं इस तरह का सातो विरोधी अभियान वहाँ चल पड़ा तो निश्चित रूप से जापान और अमेरिका के संबंधों में बिगाड़ की लीक दिखने लगेगी. बिगाड़ की इस लीक से चीन तथा रूस अमेरिका और जापान के बिगड़ते हुए संबंधों का फ़ायदा उठाने में देरी नहीं करेंगे. मस्की ने तो यहाँ तक सुझाव दिया है कि अमेरिका को बड़े ही ठंडे दिमाग़ से काम लेना चाहिए क्यों कि ओकीनावा का हस्तांतरण अब अमेरिका के लिए आवश्यक है. अब अमेरिका चाह कर भी उसे अपने कब्ज़े में नहीं रख सकता. इन सेनेटरों ने तो अमेरिकी अधिकारियों को यह सलाह दी है कि वे जापान के साथ इस नाजुक मामले को सुलझाने के प्रति पहल करें ताकि अमेरिका और जापान के मधुर संबंध बने रह सकें.

संधि पर हस्ताक्षर : अमेरिका और जापान में साम्य का एक और मसला अणुविस्तार-निरोध संधि का अनुमोदन करना है. अब जब अमेरिका के नये राष्ट्रपति निक्सन ने सेनेट में इस संधि को मान्यता देने के बारे में अपनी सहमति प्रकट कर दी है तो जापान भी यह सोचने लगा है कि उस के द्वारा हठी रवैया अपनाना मौजूदा हालात में शायद ठीक नहीं. प्रधानमंत्री सातो भी अब जापान संसद् में इस प्रस्ताव के अनुमोदन पर ज़ोर डालेंगे. राजनैतिक हलकों में इस तरह का विचार है कि इस साल के मध्य तक जापानी संसद् भी अणु विस्तार निरोध संधि को मान्यता प्रदान कर देगी. एक सरकारी सर्वेक्षण से इस बात का पता चलता है कि ८७ राष्ट्रों ने इस संधि पर हस्ताक्षर कर दिये हैं लेकिन ब्रिटेन अभी तक इस पर हस्ताक्षर करने से थानाकानी कर रहा है. जापान ने पहले-पहल इस पर हस्ताक्षर इस लिए नहीं किये थे, क्यों कि उस का मत था कि यह संधि अमेरिका और रूस का गठबंधन है. लेकिन जब राष्ट्रपति निक्सन ने इस संधि के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया तो जापान ने भी हामी भर दी क्यों कि जापान अमेरिका पर बतौर सैनिक शक्ति के आश्रित जो है. जापान नहीं चाहता कि वह किसी भी तरह बौद्ध और कम्युनिस्टों को अपने विरुद्ध करे. लेकिन इस के साथ यह भी सच है कि जापान की प्रतिपक्षी पार्टियाँ यह मानती हैं कि अणुविस्तार निरोध संधि जो अमेरिका और रूस की संयुक्त देन है, की लपेट में नहीं आना चाहिए. लेकिन यह बात भी सच है कि सातो और उन का मंत्रिमंडल इस संधि पर हस्ताक्षर करने के पहले भारत, ऑस्ट्रेलिया, कैनाडा, स्वीडेन और इटली के रवैये को दरकिनार नहीं कर सकता. बहरहाल कैनाडा, स्वीडेन और इटली इस संधि पर हस्ताक्षर कर चुके हैं और ऑस्ट्रेलिया इस लिए देरी कर रहा है, क्यों कि वह शांतिपूर्ण प्रस्तावों के बारे में और स्पष्टीकरण चाहता है. ऑस्ट्रेलिया यह ज़रूर चाहता है कि आणविक विस्फोटक का इस्तेमाल किसी देश के आंतरिक मामलों में नहीं किया जाना चाहिए, इस बात की गारंटी मिलना ज़रूरी है. लेकिन जहाँ तक भारत का संबंध है, जापान इस बात को मानने को तैयार नहीं कि भारत किस बिना पर इस संधि का विरोध कर रहा है. उन का मत है कि भारत को डर फ़िलहाल चीन से है और दूसरा डर उस को अमेरिका, रूस और ब्रिटेन के परस्पर समझौते से है. जहाँ तक पश्चिम जर्मनी का सवाल है वह इस लिए हस्ताक्षर नहीं कर पा रहा है क्यों कि वह यह नहीं चाहता कि बर्लिन पर पूर्वी जर्मनी के लोगों का कुछ दवाव डले. सोवियत संघ द्वारा चेकोस्लोवाकिया पर हमला उस का संधि पर हस्ताक्षर न करने का एक और कारण भी है. प्रधानमंत्री सातो द्वारा सँभल कर और फूंक कर क़दम उठाने का कारण जापान का व्यापारिक तबक़ा भी है जो उन की लिबरल डेमोक्रैटिक पार्टी का समर्थक है.

कृषि-उद्योग : जापान की पुख्ता अर्थ-व्यवस्था का कारण वहाँ की कृषि और उद्योग है. जापान का बहुत बड़ा भाग पर्वतों से घिरा होने के बावजूद वहाँ के तीस प्रतिशत लोग कुल भूमि क्षेत्रफल के १६ प्रतिशत भूमि पर खेती करते हैं. खेतों के छोटे आकार, रासायनिक खादों के उपयोग, छोटे आकार की मशीनों से जो समृद्धि जापान ने प्राप्त की है उतनी एशिया के अन्य किसी देश में नहीं हुई. फिर भी जापान को गेहूँ, चीनी और सोयाबीन जैसी चीज़ों का आयात करना पड़ता है. मछली पकड़ने और पालने का जापान का एक महत्त्वपूर्ण धंधा है. १९६४ में जापान ने ६३,५०,००० टन मछलियाँ पकड़ कर विश्व-रेकॉर्ड स्थापित किया था. उद्योग धंधों के रूप में भी जापान की गिनती संपन्न देशों में की जाती है. १९६६ में जहाज़ निर्माण के क्षेत्र में संसार का सब से बड़ा २,१०,००० टन वाले 'इदेमित्सु मारू' जहाज़ को जल में उतार उस ने सारे संसार को चकित कर दिया. जापान कच्चा माल, ईंधन तथा खाद्य पदार्थ ९६ से ९९ प्रतिशत आयात करता है जब कि धातु के सामान, मशीन तथा रासायनिक पदार्थों का निर्यात ५८.१ प्रतिशत है. जहाज़, मोटर, कैमरे, ट्रांज़िस्टर-रेडियो और टेलीविजन का निर्यात उस का २१ प्रतिशत है. १९६५ में अमेरिका ने ३३ प्रतिशत जापान से इन सभी चीज़ों का आयात किया था.

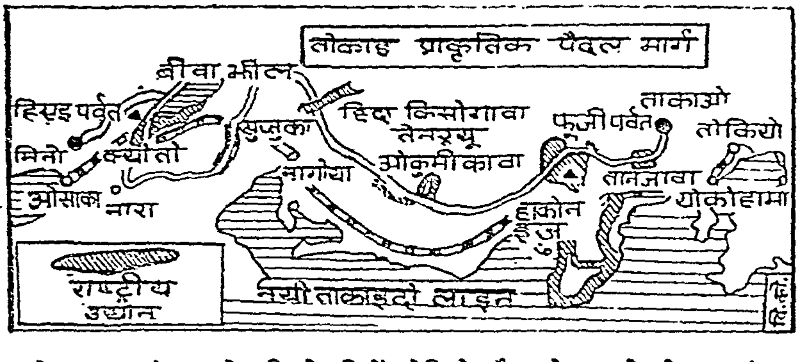

जापान के स्वास्थ्यमंत्रालय ने पिछले दिनों तोकियो और ओसाका के बीच प्रशांत तट के साथ तोकाइ प्राकृतिक पैदल-मार्ग बनाने का निश्चय किया है. इस मार्ग का काम १९७० में शुरू होगा, जो तीन सालों में खत्म होगा. इस पर लगभग ८३ लाख डॉलर खर्च होंगे. यह पैदल मार्ग ८९० किलो मीटर तोकाइ पार्क से ले कर ओसाका तक की दूरी तय करेगा. यह रास्ता फूजी, आकोन, इज़ु, राष्ट्रीय पार्कों से होता हुआ गुज़रेगा जिस के भीतर से ७ राज्यों के पार्क आयेंगे. अगले कुछ समय में १० प्राकृतिक पार्क इस के साथ क़ायम किये जायेंगे. यह पैदल मार्ग घने जंगलों, खूंख्वार जानवरों के अलावा ऐतिहासिक और परंपरागत अभिरुचि वाले क्षेत्रों से भी निकलेगा. इन क्षेत्रों में घने जंगल और फूजी तथा एईही जैसे पहाड़ भी रास्ते में आयेंगे. इस पैदल मार्ग के रास्ते में एनराई कूजी मंदिर भी पड़ेगा. यह पैदल मार्ग सभी मौसमों में खुला रहेगा और सभी तरह के यात्रियों के मनोरंजन का साधन रहेगा. जापान जैसे औद्योगिक रूप से विकसित देश में इस क़िस्म का मनोरंजक मार्ग बनाने का मतलब लोगों में उत्साह की भावना पैदा करना है. इस रास्ते से केवल पैदल ही लोग जा सकेंगे. यहाँ तक कि साइकल चालकों को इस रास्ते से जाने की मनाही है. इस मार्ग में लोगों की सुविधाओं के लिए रहने और खाने की पूर्ण व्यवस्था रहेगी जो कि अधिक खर्चीली नहीं होगी. इस पैदल-मार्ग की योजना से जापानियों में एक नये क़िस्म का उत्साह पैदा हुआ है और वे सरकार को हर तरह का सहयोग देने को तैयार हैं.

विश्व

बर्लिन संकट

चुनाव को चुनौती

फ़ेडरल जर्मनी में राष्ट्रपति के चुनाव के लिए फ़ेडरल असेंबली की बैठक ५ मार्च को पश्चिम बर्लिन में होगी, पूर्व जर्मनी द्वारा पश्चिम बर्लिन जाने वाले मार्गों पर प्रतिबंध लगा दिये जाने के बाद बॉन में सरकारी प्रवक्ता के बयानों से यह अब प्रायः स्पष्ट हो गया है. लगता है पूर्व जर्मनी के इस प्रतिबंध की प्रतिक्रिया पश्चिम जर्मनी पर यह हुई कि पश्चिम बर्लिन में ही यह चुनाव करने का उस का निश्चय और भी दृढ़ हो गया. हवाई यातायात चूँकि इस प्रतिबंध से मुक्त है इस लिए चुनाव-मंडल के अधिकांश सदस्य और उन के लगभग तीन सौ कर्मचारी पूर्व जर्मनी के ११० मील के प्रदेश पर से उड़ान कर के पश्चिम बर्लिन पहुँचेंगे. पश्चिम जर्मनी के राजनैतिक प्रेक्षकों का खयाल है कि पूर्व जर्मनी की धमकी में आ कर यदि पश्चिम बर्लिन में चुनाव कराने की योजना छोड़ दी गयी तो पूर्व जर्मनी के शासक राजनैतिक दृष्टि से फ़ेडरल जर्मनी से पश्चिम बर्लिन को अलग-थलग करने की अपनी चाल में सफल हो जायेंगे. लेकिन राजनैतिक हलकों में अब यह बात भी कही जा रही है कि यदि रूस पूर्ण समझौते तथा पूर्व और पश्चिम बर्लिन के संबंध सुधारने का आश्वासन दे तब बॉन बर्लिन में चुनाव न कराने के बारे में क़दम उठा सकता है.

आशंका की छाया में निर्णय : राष्ट्रपति-पद के चुनाव के लिए फ़ेडरल असेंबली की बैठक पश्चिम बर्लिन में करने का निर्णय एक दम ही नहीं कर लिया गया. कुछ क्षेत्रों की ओर से आशंका प्रकट की गयी थी कि पूर्व जर्मनी कोई मुसीबत ज़रूर खड़ी करेगा जिस का नतीजा अंततः पश्चिम बर्लिन के नागरिकों को ही भुगतना पड़ेगा, लेकिन यह मान कर चला गया कि द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति के बाद से फ़ेडरल राष्ट्रपति का तीन बार चुनाव पश्चिम बर्लिन में ही हुआ इस लिए अब उस परंपरा को छोड़ देना भी ठीक नहीं होगा.

पूर्व जर्मन अधिकारियों का दावा है कि पश्चिम बर्लिन अब भी १९४५ के पोट्सडम समझौते के अधीन है, इसलिए पश्चिम जर्मन शासकों को इस तरह के समारोह कर के उसे पश्चिम जर्मनी का ही एक भाग सिद्ध करने का कोई अधिकार नहीं है. पूर्व जर्मनी का यह भी कहना है कि पश्चिम जर्मनी के वर्तमान राष्ट्रपति डॉ० हाईनरिश ल्यूबके के उत्तराधिकारी के चुनाव में २२ नव नात्सी नेशनल डेमोक्रेट भी भाग ले रहे हैं, अतः पश्चिम बर्लिन में चुनाव कराने का निर्णय पूर्व जर्मनों के दावे के खंडन के लिए ही किया गया.

पूर्व जर्मनी बर्लिन के बारे में पोट्सडम समझौते की दुहाई देता है पर उस ने स्वयं पोट्सडम समझौते का उल्लंघन कर बर्लिन के आधे भाग को अपनी राजधानी बना लिया. शायद इसी लिए तीनों पश्चिमी देशों ने रूसियों को पोट्सडम समझौते की याद दिलायी है जिस में कहा गया है कि पोट्सडम समझौते की धाराएँ बर्लिन के दोनों भागों यानी पूर्व और पश्चिम पर समान रूप से लागू होती हैं.

पूर्व जर्मनी की सरकार ने प्रतिबंध लगाने के साथ इस बारे में जो वक्तव्य दिया है उसे पश्चिम जर्मनी की सरकार के निर्णय को भड़काने वाली कार्रवाई बताया गया है. उन के विचार में पश्चिम जर्मनी इस तरह पश्चिम बर्लिन के दर्जे में परिवर्तन ला कर उसे अपने राज्य का अभिन्न अंग बनाने की दिशा में बढ़ रहा है जो पोट्सडम समझौते का उल्लंघन है.

मित्र देशों का समर्थन : बताया जाता है पश्चिम बर्लिन में राष्ट्रपति-चुनाव कराने के निर्णय से पहले बॉन सरकार ने अपने पश्चिमी मित्र देशों से अच्छी तरह सलाह-मशविरा कर लिया था क्यों कि पश्चिम बर्लिन की रक्षा की ज़िम्मेदारी अंततः उन्हीं पर है.

फ़ेडरल जर्मनी के राष्ट्रपति का चुनाव पश्चिम जर्मनी और बर्लिनवासियों की एकता के प्रदर्शन का सब से अच्छा अवसर होता है. इस लिए यह चुनाव पश्चिम बर्लिन में ही होता है पर पूर्व जर्मनी के शासकों का इस बार का विरोध कुछ अधिक उग्र है. पश्चिम राष्ट्रों का समर्थन भी कुछ इस रूप में है कि उन्होंने पश्चिम बर्लिन में राष्ट्रपति-चुनाव करने के निर्णय पर आपत्ति नहीं की है. पश्चिम जर्मनी की सरकार में भी इस निर्णय पर अलग-अलग प्रतिक्रिया है. सरकार में ही कुछ लोगों का मत है कि चेकोस्लोवाकिया पर सोवियत संधि के देशों के आक्रमण से पूर्व-पश्चिम संबंधों में तनातनी खत्म करने की प्रक्रिया में बाधा पड़ गयी थी. उस बाधा के दूर होने के कुछ आसार नज़र आने लगे थे, पर पश्चिम बर्लिन में राष्ट्रपति-चुनाव करने के निर्णय से अब फिर वही संकट पैदा हो जायेगा और तनातनी कम करने के अब तक के सब प्रयत्नों के परिणामों पर पानी फिर जायेगा. इस से पूर्व जर्मनों को नयी गड़बड़ पैदा करने का मौक़ा भी मिल जायेगा. पर अंततः निर्णय यही रहा कि राष्ट्रपति-चुनाव पश्चिम बर्लिन में ही हो.

सोवियत संघ की उदासीनता : पूर्व जर्मनी के उग्र विरोध को सोवियत संघ का समर्थन मिलना स्वाभाविक ही था. सोवियत संघ की ओर से विरोध प्रकट किया गया जिस के पश्चिम जर्मनी द्वारा अस्वीकार कर दिये जाने का समाचार भी आ गया लेकिन मास्को में राजनैतिक प्रेक्षकों का ख़्याल है कि सोवियत संघ इस प्रश्न को ले कर कोई बड़ा पूर्व-पश्चिम संकट खड़ा करने के पक्ष में नहीं है. इन प्रेक्षकों के अनुसार इस तरह का संकट खड़ा करने से कोई उद्देश्य तो सिद्ध होगा नहीं. उलटे अमेरिका के साथ प्रक्षेपास्त्रों के बारे में रूस की प्रस्तावित बातचीत पर बुरा असर पड़ेगा. नये अमेरिकी राष्ट्रपति श्री निक्सन के साथ सोवियत संघ के शिखर सम्मेलन की जो योजना है उस पर भी इस का विपरीत असर पड़ सकता है. इसलिए रूस का विरोध पूर्व जर्मनी को खुश करने के लिए ही है. इस के अलावा परमाणु अस्त्र प्रसार निषेध संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए पश्चिम जर्मनी पर सोवियत संघ बराबर दबाव डालता रहा है. इस बार भी पूर्व जर्मनी का समर्थन करने का इतना उद्देश्य सोवियत विरोध में नहीं है

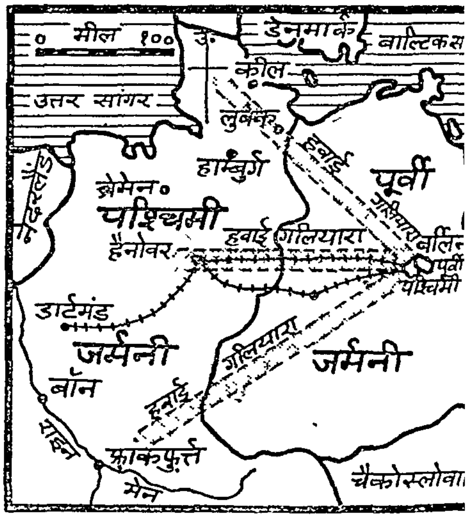

जितना इस दबाव को मौक़ा पा कर और भी सुदृढ़ बनाने का लेकिन सोवियत संघ यह भी समझता है कि वॉशिंग्टन के साथ मिल कर यह दबाव जितना कारगर हो सकता है उतना किसी और तरीक़े से नहीं. इस लिए भी सोवियत संघ इस प्रश्न को ले कर ऐसा कोई क़दम नही उठायेगा जिस से अमेरिका के साथ उस की तनातनी बढ़ती हो.

ऐसी परिस्थितियों में पूर्व जर्मनी अपने विरोध में अकेला ही पड़ गया है और उस का उद्देश्य भी विरोध इतना नहीं है जितना कि इस प्रश्न को ले कर पश्चिम जर्मनी तथा उस के पश्चिमी मित्र देशों के विरुद्ध प्रचार.

पूर्व जर्मनी अधिकारियों ने पश्चिम जर्मनी के विदेशमंत्री विली ब्रांट से प्रतिबंधों को ढीला करने के बारे में पत्र लिखा उस के उत्तर में विदेशमंत्री ब्रांट ने कहा कि दोनों तरफ़ आने-जाने की छूट बिना किसी प्रतिबंध के स्थायी होनी चाहिए. पूर्व और पश्चिम में संबंध

विगड़ने न पायें, पिछले दिनों बॉन-स्थित रूसी राजदूत ने चांसलर कीसिंगर और विली ब्रांट से २४ घंटों में दो बार बातचीत की. ऐसी संभावना है कि तनातनी का दिखने वाला वर्तमान दौर अगले कुछ दिनों में ठीक हो जायेगा.

यूरोप

सद्भाव यात्रा पर

अमेरिका के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन जब ५ राष्ट्रों की ७ दिवसीय यात्रा पर नैटो और साझा बाजार के मुख्यालय ब्रुसेल्स पहुँचे तब ६ वर्षो के बाद आये एक अमेरिकी राष्ट्रपति का ब्रुसेल्सवासियों ने दिल खोल कर स्वागत किया. लेकिन लंदन पहुँचने पर अमेरिका विरोधी झंडे तथा पुलिस और प्रदर्शनकारियों की भिड़ंत से निकलने वाले लाल खून के कतरे भी राष्ट्रपति की आँखों से ओझल न हो सके. अपनी यात्रा शुरू करने से पहले निक्सन ने कहा था कि वह नये यूरोप की खोज में निकल रहे हैं. उन्हें इन देशों के अधिकारियों से बातचीत कर उन की समस्याएँ और कठिनाइयाँ समझने का मौका मिलेगा. निक्सन वीएतनाम और पश्चिम एशिया के मामले के बारे में भी इन देशों से अपने विचारों का आदान-प्रदान करना चाहते हैं. निक्सन ने एक बार कहा था कि अपने विरोधियों से बातचीत करने से पहले अपने दोस्तों से विचार-विमर्श करना अधिक आवश्यक है और वही सही तरीका है. नैटो समझौते के दायरे में आने वाले पश्चिम यूरोपीय देशों से समानता की जो लीक राष्ट्रपति निक्सन को मिलेगी उस से उन के हाथ मजबूत होंगे और रूस के साथ किसी भी निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले यह लीक उन का मार्गदर्शन करेगी.

१९६० के बाद पहली बार निक्सन सरकारी तौर पर पश्चिम यूरोप की यात्रा पर गये ब्रुसेल्स निक्सन का पहला पड़ाव था और उस के बाद वह ब्रिटेन पहुँचे. प्रधानमंत्री हेरल्ड विल्सन के साथ उन की बातचीत का मुद्दा मु य रूप से नैटो और यूरोपीय साझा बाजार में ब्रिटेन का शामिल होना था. विल्सन यह मानते हैं कि अमेरिका के साथ उन के पुश्तैनी संबंध हैं और उन संबंधों को और मजबूत करना उन का फ़र्ज़ है. इस के साथ ही यह बात भी सही है कि ब्रिटेन और अमेरिका में जो इधर तनाव की दरारें दीखने लगी थीं दोनों नेता उन बढ़ती हुई दरारों को पाटने के चावा.ा दीखते हैं. विल्सन ने एक बार कहा था कि नैटो के शक्तिशाली होने से पश्चिम यूरोपीय देशों की शक्ति और दृढ़ होगी. उन के सोचने का मतलब शायद यह था कि वारसा संधि के देशों में जितनी आत्मीयता और एकता है उन में नहीं. विल्सन ने कहा कि रूस के प्रतिरक्षा बजट पर १४ प्रतिशत की वृद्धि हुई है और वारसा संधि के देशों पर अब पहले की अपेक्षा दुगुना खर्च किया जा रहा है. १९५८ से पहली बार ब्रिटेन ने अपने प्रतिरक्षा खर्च में कमी की है. इस का कारण पूर्वी स्वेज़ और अप्रैल १९७० में मलयेसिया आदि से अपने सैनिक अड्डे समाप्त करना है. ब्रिटेन अपनी गुरखा ब्रिगेड में भी १५०० सैनिकों और अधिकारियों की कटौती करेगा. ऐसा सब करने का कारण यह है कि ब्रिटेन नैटो को मजबूत बनाने के पक्ष में है. पिछले दिनों जारी किये गये एक श्वेत-पत्र में कहा गया कि वारसा संधि के देशों के पास ३,५००,००० सैनिक, १० लाख हवाई और रॉकेट बरसाने वाले वायुसैनिक और लगभग पांच लाख नौसैनिक हैं. एक और अनुमान के अनुसार वारसा संधि के देशों के पास नैटो के मुक़ाबले तिगुने टैंक, दुगुनी सेना तथा विमान और लगभग १००० प्रक्षेपास्त्र हैं जिन का मुँह पश्चिम यूरोपीय देशों की तरफ़ है. नैटो को शक्तिशाली बनाने की ज़रूरत इस लिए भी महसूस की जा रही है क्यों कि वारसा संधि के देशों ने चेकोस्लोवाकिया पर जो ३ दिवसीय हमला किया था उस से राजनैतिक रूप से रूस की बेशक आलोचना की गयी थी लेकिन पश्चिमी यूरोपीय देश उस की सैनिक सर्वोच्चता को देख कर भीतर ही भीतर डर महसूस करने लगे थे. नैटो को शक्तिशाली बनाने में फ़्रांस सहयोग देने को तैयार नहीं और राष्ट्रपति द गॉल ने यह बात ज़ाहिरा तौर पर बता दी है कि वह किसी भी तरह नैटो के साथ सहयोग नहीं करेंगे.

निक्सन : नये यूरोप की खोज

फ़्रांस के इस बूढ़े शेर की जिद से सभी पश्चिमी देश वाकिफ़ हैं और उस के हठी स्वभाव के सामने सभी खिसियाई बिल्ली की तरह दुम दबा कर भागते हैं. फ़्रांस को इस बात का संकेत मिल गया था कि पिछले दिनों पश्चिम जर्मनी के चांसलर कीसिंगर और ब्रितानी प्रधानमंत्री विल्सन में साझा मंडी के बारे में बातचीत हुई है. एक समाचार के अनुसार पश्चिम जर्मनी ने ब्रिटेन को साझा मंडी में शामिल करने का समर्थन देने की बात मान ली थी. इन सभी पूर्वानुमानों को ध्यान में रख कर राष्ट्रपति द गॉल ने पिछले दिनों यह घोषणा कर दी कि साझामंडी के द्वार ब्रिटेन के लिए अभी तक बंद हैं. अमेरिका पर यह भी तोहमत लगायी जा रही है कि प्रक्षेपास्त्र और आणविक हथियारों के निर्माण के आधुनिक तरीक़े वह ब्रिटेन को ही बताता है, अन्य देशों के साथ उस का व्यवहार पक्षपातपूर्ण है. ऐसा भी कयास है कि निक्सन और विल्सन में सैनिक सहयोग के बारे में लंबी बात चीत होगी. ब्रिटेन के बाद निक्सन पश्चिम जर्मनी के चांसलर कीसिंगर से बातचीत करेंगे. नये राष्ट्रपति का स्वागत करने में उन्हें इस बात की अधिक खुशी होगी क्यों कि सैनिक रूप से पश्चिम जर्मनी अमेरिका पर ही निर्भर है. कीसिंगर निक्सन के सामने अणु-प्रसार-निरोध संधि पर हस्ताक्षर करने की रस्म अदायगी भी करेंगे. यह भी संभव है कि बर्लिन के कुछ युवक अमेरिका के पश्चिम जर्मनी पर बढ़ने वाले अधिक प्रभाव के खिलाफ़ निक्सन को काले झंडे भी दिखायें लेकिन निक्सन की सुरक्षा के लिए २० हज़ार सिपाहियों के कड़े पहरे की व्यवस्था की गयी है.

जर्मनी के बाद निक्सन इटली जायेंगे. इटली की मिली-जुली सरकार से संभवतः वह ब्रिटेन को साझा बाजार में शामिल करने की वकालत करेंगे. इटली के विदेशमंत्री नेन्नी ने चीन के साथ जो राजनयिक संबंध स्थापित करने की घोषणा की है उस पर अमेरिका और इटली के अधिकारियों में नैटो के संदर्भ में बातचीत होगी. निक्सन नहीं चाहते कि इटली चीन के साथ राजनयिक संबंध स्थापित करे. निक्सन पोप पॉल से भी मिलेंगे. ख्याल किया जाता है वह संभवतः वैटिकन के साथ पुनः राजजयिक संबंध स्थापित करने की बात चीत करें.

निक्सन का अंतिम पड़ाव पेरिस होगा. फ़्रांस के राष्ट्रपति द गॉल ने १९६६ में नैटो के साथ अपने संबंध-विच्छेद करने के बाद किसी भी अमेरिकी राष्ट्रपति का फ़्रांस की भूमि पर स्वागत नहीं किया. समय के सरकने के साथ-साथ फ़्रांस के अमेरिका विरोधी रवैये में ढिलाई आयी है. इसी नरमी की वजह से अमेरिका और वीएतनाम की वार्ता के लिए फ़्रांस ने मेजबान बनना स्वीकार किया. रूस तथा वारसा संधि के देशों द्वारा चेकोस्लोवाकिया पर हमले के कारण भी फ़्रांस और अमेरिका निकट आये लेकिन उन में वह आत्मीयता पुनः स्थापित नहीं हो सकी जो जान केनेडी के समय थी. पिछले दिनों फ़्रांस

की भीतरी स्थिति को काफ़ी ठेस पहुँची है और एक वक़्त तो ऐसा आ गया था कि फ़ांस फ्रांक के अवमूल्यन की बात सोचने लगा था. अपनी इस ख़स्ता हालत के लिए वह अमेरिका को ही दोषी पाता रहा है. द गॉल के साथ निक्सन की बातचीत काफ़ी गंभीर दौर से हो कर गुज़रेगी. यह बात सही है कि निक्सन फ़ांस का हर मामले में अपने साथ सहयोग चाहते हैं और निक्सन ने राष्ट्रपति द गॉल के उस सुझाव को कि चार बड़े देश पश्चिम एशिया की समस्याओं का हल ढूंढ़ें, मान कर अपनी सद्भावना का परिचय दिया है. द गॉल नैटो के मामले में कितना झुकते हैं और ब्रिटेन के यूरोपीय साझा बाज़ार में शामिल होने में कितनी सहायता कर पायेंगे, इस का पता तभी लग पायेगा यदि दोनों नेताओं ने दिल खोल कर बातचीत की.

पश्चिम एशिया

सर के बदले नाखून ही सही

कुछ दिनों की चुप्पी के बाद सीरिया और इस्राइल के विमानों ने फिर अपनी मुहिम तेज की. पहले सीरिया ने इस्राइली अड्डों पर बमवर्षा की और बाद में बदला लेने की गर्ज से इस्राइल ने सीरियाई सैनिक अड्डों पर हमला किया. स्थिति की गंभीरता को आँकते हुए संयुक्त अरब गणराज्य ने आपत्कालीन स्थिति का ऐलान कर दिया.

संपूर्ण अरब-जगत् १९६७ की पराजय के बाद अंतरराष्ट्रीय संस्था संयुक्तराष्ट्र और विश्व की बड़ी शक्तियों द्वारा अपने अनुकूल न्याय प्राप्त करने मे सफल ही कर इस प्रकार कुंठाग्रस्त हो गया है कि अब निराशा में वहाँ एक के बाद दूसरा मूर्खतापूर्ण क़दम उठाने का सिलसिला शुरू हो गया है. बेरूत की घटना के बाद बगदाद में तथाकथित इस्राइली जासूसों को फाँसी पर लटकाने का जो क्रम हो चुका है उस से अरब-इस्राइली समस्या को सुलझाने में कोई सहायता तो मिलेगी ही नहीं अरबों को भी केवल उसी प्रकार संतोष प्राप्त होगा जैसा कि एक निर्बल और चिड़चिड़े स्वभाव के व्यक्ति को शत्रु से पिट कर उसे दो-चार भद्दी गालियाँ देने से होता है. २७ जनवरी को बग़दाद और बसरा में फाँसी पर लटकाये हुए १४ व्यक्तियों को प्रदर्शन की वस्तु के रूप में जिस प्रकार जनता के सामने लाया गया वह मनुष्य की असभ्य प्रवृत्तियों का ही द्योतक है. इस्राइल और अन्य देशों में इस कृति के प्रति भारी असंतोष और घृणा की अभिव्यक्ति हुई थी फिर भी इराक़ ने २० फ़रवरी को और ७ व्यक्तियों को बग़दाद के विरुद्ध कार्य करने के आरोप में फाँसी पर लटका कर आम जनता के लिए प्रदर्शित किया. लाशों के इस प्रदर्शन से भी मूर्खतापूर्ण क़दम इन छापामारों की सराहना है जिन्होंने एथेंस में एल अल के यात्री विमान को नष्ट करने का षड्यंत्र रचा.

ज़्यूरिख : इस प्रशंसा का एक परिणाम यह भी निकला कि फ़िलस्तीन मुक्ति मोर्चे के इन छापामारों को इस्राइली नागरिक वायुसेना को नष्ट करने का प्रोत्साहन मिला और पिछले ही दिनों ज़्यूरिख में एल अल के एक यात्रीयान पर गोलियाँ चलायी गयीं. २६ यात्रियों में इस्राइली विदेश विभाग के महानिदेशक भी थे जिन्हें एक गोली छू कर चली गयी. ९ व्यक्ति घायल हुए जिन में ५ की हालत गंभीर है. जब छापामारों ने मशीनगनों से वायुयान पर आक्रमण किया तो एक यात्री ने वापस गोली चलायी. जिस से एक आक्रमणकारी मारा गया. अन्य ३ व्यक्तियों को पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया है. ज़्यूरिख पुलिस के अनुसार इस आक्रमण की योजना पहले से बनायी गयी लगती है, क्यों कि इन चार आक्रमणकारियों को जिन में एक महिला भी शामिल है, हवाई अड्डे के अधिकारियों ने एक दिन पहले भी घूमते हुए देखा था. अनुमान है कि उन्होंने रूस में बने हुए मशीनगन से आक्रमण किया. क्षतिग्रस्त वायुयान का निरीक्षण करने पर पता चला कि उस में ४० गोलियाँ लगीं थी. पुलिस ने उस कार को भी अपने क़ब्ज़े में कर लिया है जिस में ये आक्रमणकारी आये थे. कार में कुछ बारूद के अतिरिक्त फ़िलस्तीन मुक्ति मोर्चे के पत्रक और एक पुस्तिका "इस्राइल में अरब" भी थी. इन पत्रकों में स्विस जनता से प्रार्थना की गयी थी कि वह आक्रमणकारियों के उद्देश्य और स्थिति को सहानुभूतिपूर्वक समझें. बेरूत के 'सार्वजनकि फ़िलस्तीन मुक्ति मोर्चे' ने घोषणा की है कि इस आक्रमण की पूरी ज़िम्मेदारी उस पर है.

बदले का ख़तरा : ब्रितानी सरकार को इस बात की आशंका हो गयी है कि इस्राइल नागरिक वायुयान पर इस प्रकार के आक्रमण का जरूर बदला लेगा और उन्होंने इस 'भयानक क्रिया और प्रतिक्रिया की श्रृंखला को तोड़ने के लिए संयम की प्रार्थना की है. महासचिव ऊ थाँ ने भी इस घटना पर 'मायूसी और चिंता' व्यक्त की है और कहा है कि इस प्रकार के आक्रमणों पर एक दम रोक लगाई जानी चाहिए अन्यथा नागरिक उड्डयन को अव्यवस्था और अराजकता से बचाना कठिन हो जायेगा. यद्यपि विभिन्न सरकारों ने इस्राइल से बदला न लेने की प्रार्थना की है. फिर भी इस बात की बहुत अधिक आशंका है कि इस्राइल खमोश नही रहेगा. इस आशंका का कारण इस्राइल के समाचारपत्रों की प्रतिक्रिया और यातायातमंत्री मोरो कारमेल का एक वक्तव्य है. कारमेल ने कहा है कि इस प्रकार के घातक आक्रमणों से इस्राइल की अपेक्षा अरबों की हवाई सेवाओं को अधिक ख़तरा पैदा हो गया है. उन्होंने चेतावनी दी है कि यदि 'अरब सरकारें अंतरराष्ट्रीय संपर्क कड़ियों को अक्षत रखना चाहती हैं तो यह उन के लिए उचित होगा कि वह शीघ्र ही इस्राइली वायुयानों पर इस प्रकार के गुप्त आक्रमणों पर रोक लगाने के लिए प्रभावशाली क़दम उठायें.' इस्राइल के विदेशमंत्री अब्बा एबन ने विदेशमंत्रालय के महानिदेशक से बातचीत करने के बाद कहा कि यह उन्ही लोगों का काम है जिन की पिछले ही दिनों राष्ट्रपति नासिर ने प्रशंसा की है. 'इस में कोई संदेह नही है कि षड्यंत्रकारियों और उन के मालिकों को उस वातावरण से उत्साह मिला है जो २६ दिसंबर को एथेंस में इस्राइली वायुयान पर आक्रमण करने के बाद बना.' इस से यह स्पष्ट है कि इस्राइल छापामारों और अरब सरकारों में कोई भेद नहीं करता. वास्तव में अरब सरकारों ने कभी भी आतंकवादियों की इन कार्यवाहियों की निंदा नहीं की. निंदा की बात तो दूर इन लोगों को राष्ट्रीय वीरों के रूप में चित्रित किया गया. ऐसे वातावरण से इस्राइल से यह अपेक्षा करना कि वह अरब सरकारों और अरब छापामारों में भेद करेगा, अव्यवहारिक बात है. इस बात की बहुत आशंका है कि इस्राइल ज़्यूरिख की स घटना का बदला 'अपनी सुविधा और समय पर लेगा.' अत: अरब-इस्राइली समस्या का हल निकालने के लिए चार बड़े राष्ट्रों को बिना समय नष्ट किये प्रभावशाली क़दम उठाना चाहिए क्यों कि पश्चिम एशिया में प्रतिद्वंद्वियों से हल निकालने की आशा करना अब व्यावहारिक नहीं रहा है. मगर प्रश्न यह है कि क्या बड़े राष्ट्र भी अरबों और इस्राइलियों को अपने शतरंज के मोहरे बना कर अपना ही खेल नही खेल रहे हैं ?

पाकिस्तान

अपनी-अपनी गोटियाँ

पाकिस्तान के ६२ वर्षीय राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ ने विरोधी पार्टियों की दो महत्त्वपूर्ण माँगों को स्वीकार कर उन को उलझन में डाल दिया है. अय्यूब ने यह घोषणा की है कि १९७० के राष्ट्रपति-चुनाव के लिए वह खड़े नहीं होंगे. दूसरे ढाका षड्यंत्र कांड के मामले को वापस ले कर सभी ३४ अभियुक्तों को रिहा करने के आदेश जारी कर दिये गये हैं. राष्ट्रपति की इन घोषणाओं का सारे पाकिस्तान में स्वागत किया गया और छात्रों ने तो इसे अपनी जीत कह कर जश्न भी मनाये. अय्यूब के इन दो महत्त्वपूर्ण ऐलानों ने विरोधी पार्टियों को एक ऐसे कगार पर ला खड़ा किया है कि वे अब बातचीत न करना चाह कर भी करने को बाध्य हो गयी हैं. पूर्व पाकिस्तान के अवामी लीग के नेता शेख मुजीबुर्रहमान, जो ढाका षड्यंत्र कांड

के मुख्य अभियुक्त थे, ने वातचीत में भाग लेने की अपनी सहमति व्यक्त कर दी है. पूर्वी पाकिस्तान के एक अन्य महत्त्वपूर्ण नेता मौलाना भासानी ने इस आशय का वयान दिया है कि अगर उन की पार्टी अय्यूव के साथ वातचीत करने को सहमत है तो वह स्वयं वातचीत में तव तक शामिल नहीं होंगे जव तक उनकी ११ माँगें नहीं मानी जायेंगी लेकिन पार्टी के हुक्म के मुताविक एक नुमाइंदा भेजा जायेगा. ८ सदस्यीय डेमोक्रैटिक एक्शन कमेटी के संयोजक नवावज़ादा नसरुल्ला खाँ ने, जो अय्यूव से पहले ही वात चीत करने को सहमत थे, वताया कि वह मुजीवुर्रहमान तथा अन्य नेताओं से वातचीत कर इस वात का निश्चय करेंगे कि वातचीत का दायरा क्या हो. अय्यूव के राष्ट्रपति-पद के चुनाव के लिए खड़े न होने के एलान से भूतपूर्व विदेशमंत्री जुल्फ़िकार अली भुट्टो को भीतर ही भीतर से काफ़ी कोफ़्त हुई है. वह यह वखूवी जानते हैं कि पश्चिमी पाकिस्तान में जितनी उन की क़द्र है पूर्वी पाकिस्तान में उन के क़द्रदाँ उतने ही कम हैं. लिहाज़ा उन्होंने यह वक्तव्य जारी किया कि अगर पूर्वी पाकिस्तान के लोग कोई ऐसा उम्मीदवार चुनते हैं जो पश्चिम और पूर्व दोनों को मान्य हो तो वह अपना नाम वापस ले लेंगे. वौखलाहट में की गयी इस घोषणा के साथ ही भुट्टो ने यह भी कहा कि जव तक पाकिस्तान में दंगे-फ़साद कर्फ़्यू और गोलियाँ चलनी वंद नहीं हो जातीं तव तक वह अय्यूव से वातचीत करने को तैयार नहीं. एक के वाद एक वहानेवाज़ी का सहारा ले कर भुट्टो अव अधिक दिन तक युवा तवके को अपने हाथ का खिलौना नहीं वना सकते. यह वात तय है कि यदि अव भी विरोधी पार्टियों ने अय्यूव के साथ वात करने से कन्नी कतरायी तो लोगों में उन के प्रति जो

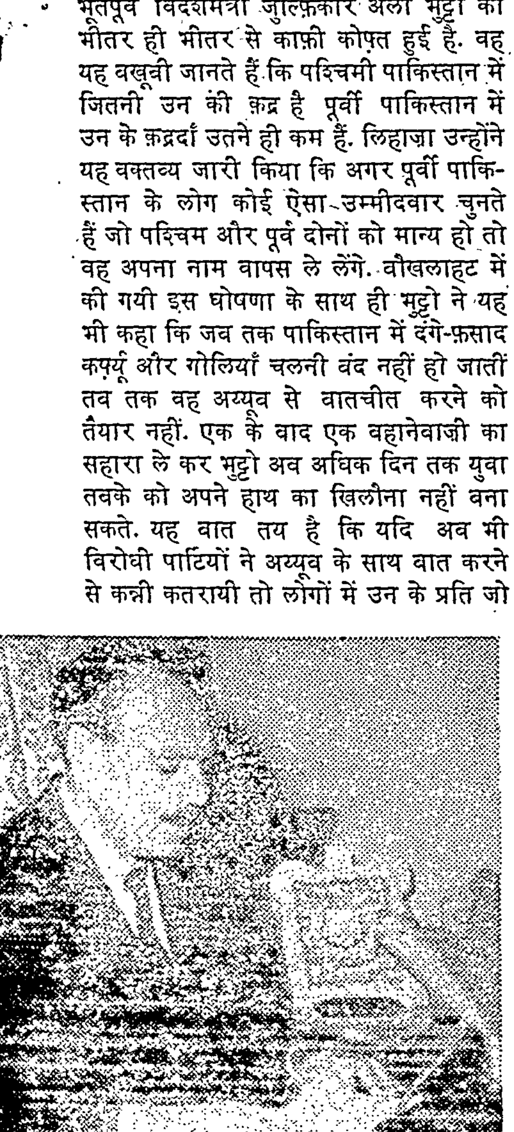

अय्यूव खाँ : कुछ तुम कहो, कुछ हम कहें

विश्वास-स्तंभ था वह ढह जायेगा और अय्यूव उन की नज़रों में पुनः नायक वन जायेंगे.

अय्यूव ने जव शांत और संयत स्वर में यह कहा कि वह मौजूदा समस्याओं का हल ढूँढने के लिए प्रयत्नशील हैं और अगर विरोधी पार्टियाँ हर संभावनाओं के वावजूद उन से वातचीत करने को तैयार नहीं हुई तो वह खुद कुछ संवैधानिक परिवर्त्तन संवंधी प्रस्ताव राष्ट्रीय असेंवली में पेश करेंगे. इस आकस्मिक लेकिन लिखित वक्तव्य में अय्यूव ने राजनैतिक सुधारों का हवाला देते हुए कहा कि जुलूसों, गोलियों की वदौलत मसले हल नहीं होते. यह तो सिर्फ़ एक पागलपन की निशानी है. मैं यह कभी वर्दाश्त नहीं कर सकता कि पाकिस्तान की प्रगति में किसी क़िस्म की रुकावट आये, लिहाज़ा ऐसे जो भी क़दम उठाये जायेंगे उन का पाकिस्तान के इतिहास में गहरा प्रभाव होगा. अय्यूव ने कहा कि उन के निकट रहने वाले लोग यह वखूवी जानते हैं कि १९६५ के चुनाव के वाद उन्होंने यह वात साफ़ कर दी थी कि वर्त्तमान कार्यकाल खत्म होने वाद वह अपनी ज़िम्मेदारियों से छुटकारा पाना चाहेंगे. जहाँ तक प्रत्यक्ष मतदान का प्रश्न है यदि आम जनता यह चाहती है तो इस में मुझे कोई आपत्ति नहीं. देश के मसलों को सुलझाने के लिए अगर हम एक साथ नहीं वैठ सकते तो हम ख़ुदा के सामने जवावदार हैं और हमारे मिल कर न वैठ सकने से होने वाली इस हार की गवाह हमारी तवारीख होगी. जव-जव भी मुझे मुश्किलातों का सामना करना पड़ा है या मुझ पर किसी तरह की भीड़ आ पड़ी है मैं ने ख़ुदा से रोशनी की दुआ की है और आज मैं एलान करता हूँ कि मैं राष्ट्रपति-पद के लिए उम्मीदवार नहीं होऊँगा. मेरा यह फ़ैसला आखिरी है और इस में तवदीली की कोई गुंजाइश नहीं.' उन्होंने छात्रों से अनुरोध किया कि वे अपनी कक्षाओं में जायें. उन की शिकायतों को दूर करने की भरसक कोशिश की जायेगी.

अय्यूव खाँ जव मुल्क के सामने अपना यह पैग़ाम प्रसारित कर रहे थे तव उनके सूचनामंत्री ख्वाजा शहावुद्दीन ढाका में शेख मुजीवुर्रहमान से यह इल्तजा कर रहे थे कि वह अय्यूव से वातचीत करने को तैयार हो जायें. शेख मुजीवुर्रहमान ने जव उन्हें अपनी शर्त वतायी तव पहले से ही तैयार सूचनामंत्री ने यह एलान कर दिया कि ढाका षड्यंत्र कांड के मामले को सरकार वापस लेने के लिए तैयार है. मुजीवुर्रहमान के सामने अव और कोई चारा नहीं रहा. उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा कि मैं अपने साथियों के साथ वातचीत कर अपना फ़ैसला दूँगा. उन्होंने जहाँ वार्त्ता में भाग लेने का निर्णय ले लिया वहाँ भुट्टो ने फिर अड़ंगे डालने शुरू कर दिये. भुट्टो ने कहा कि पूर्व पाकिस्तान के गवर्नर अब्दुल मोनेम, जो लोगों के खून-खरावे के ज़िम्मेदार हैं, के वातचीत के समय हाज़िर रहने से कैसे ईमानदारी का रवैया अपनाया जा सकेगा. उन्होंने यह भी कहा कि जव लोगों पर गोलियाँ वरस रही हैं तव वातचीत करने से कोई फ़ायदा नहीं. खैर, विरोधी नेताओं के साथ अय्यूव की वातचीत तो शुरू हो गयी है मगर उसमें भुट्टो और भासानी भाग नहीं ले रहे हैं.

उधर ढाका षड्यंत्र कांड का मामला सरकार ने वापस ले लिया इधर २० हज़ार लोगों की भीड़ ने संचारमंत्री खान-ए-सवूर के घर को घेर लिया और उस पर पथराव करना शुरू कर दिया. इस पथराव से उन की जान को तो आँच नहीं आयी लेकिन माल का नुक़सान ज़रूर हुआ. भीड़ पर रोक लगाने के लिए पुलिस और सेना ने गोलावारी की जिस से अभी तक के समाचारों के अनुसार ९ व्यक्तियों को जान से हाथ धोना पड़ा. एक तरफ़ वातचीत करने की स्थिति तैयार की जा रही है और दूसरी तरफ़ ये दंगे और जुलूस सिर उठा रहे हैं. इस का सीधा-सा कारण प्रदर्शनकारियों और राजनैतिक नेताओं में समन्वय का अभाव है. राजनैतिक नेता युवा तवके की वास्तविक माँग को समझ नहीं रहे हैं जिस की वजह से उन का यह विद्रोह दिनों-दिन वढ़ता जा रहा है. संभव है कि इस में कुछ अवांछनीय सामाजिक तत्त्व भी सिर उठा रहे हों लेकिन इस के साथ ही यह वात भी सही है कि यदि अय्यूव से इन को शिकायत है तो विरोधी पार्टियों से भी इन्हें कम शिकवे नहीं. इस गुमराह भीड़ को राह पर लाने के लिए अगर पूर्वी पाकिस्तान के मुँह-वोले नेता मौलाना भासानी और मुजीवुर्रहमान अपने प्रभाव का इस्तेमाल नहीं करते तव स्थिति सँभलने की वजाय विगड़ सकती है. इन लोगों द्वारा वार-वार यह आवाज़ वुलंद करना कि अय्यूव को हटाया जाये वेमानी नहीं. अय्यूव के स्थान पर किसे वैठाया जाये इस वारे में अभी तक न ही यह उपद्रवी और न ही विरोधी पार्टियाँ एकमत हैं.

छात्रों का आतंक : ढाका के एक लाख छात्रों ने राष्ट्रीय असंवली और १२०,००० वेसिक डेमोक्रेटों को यह एल्टीमेटम दे दिया है कि अगर उन्होंने ३ मार्च तक अपनी सदस्यता से त्यागपत्र नहीं दिया तो इस के गंभीर हश्र होंगे. यह चेतावनी केवल गीदड़ धमकी ही नहीं थी. उन्होंने इसे कार्यरूप में भी परिणत कर दिया. कई केंद्रीय मंत्रियों, जिला अधिकारियों की संपत्ति को स्वाहा कर दिया गया और कई वेसिक डेमोक्रेटों की जानें भी गयीं. छात्रों के इस आतंकवादी रवैये के कारण अय्यूव-समर्थक वेसिक डेमोक्रेटों के इस्तीफ़े सरकार को मिल रहे हैं. इस जद्दोजहद में अव तक २० छात्र भी अपनी जान से हाथ धो चुके हैं. राजनीतिकों को दी गयी इस चेतावनी के अलावा छात्रों ने अय्यूव से तुरंत अवकाश ग्रहण करने और पूर्व पाकिस्तान को अधिक

स्वायत्तता देने की माँग की है. दूसरी माँग का समर्थन शेख मुजीबुर्रहमान ने भी किया है. ऐसा भी कयास है कि राष्ट्रपति अय्यूब विदेश तथा प्रतिरक्षा के अलावा पूर्व पाकिस्तान को स्वायत्तता देने के लिए सहमत हो गये हैं. छात्रों का विद्रोह ढाका की ही तरह पश्चिम में भी बढ़ रहा है. वे तब तक कक्षाओं में जाने को तैयार नहीं जब तक उन की सभी शर्तें नहीं मानी जातीं.

राष्ट्रपति कौन हो? अभी तक १९७० के राष्ट्रपति-पद के लिए केवल भुट्टो ही उम्मीदवार हैं लेकिन उन के उस वक्तव्य से कि पूर्व पाकिस्तान अगर कोई ऐसा उम्मीदवार ढूँढ़ लेता है जो पूर्व और पश्चिम को पसंद हो तो एक माने में वह भी उम्मीदवार नहीं रह जाते. इस में कोई संदेह नहीं कि पूर्व पाकिस्तान की आबादी पश्चिम पाकिस्तान से अधिक है और वहाँ पर किसी भी सर्वसम्मत उम्मीदवार को निर्णायक बहुमत मिल जाने से देश की बागडोर उस के हाथों में जा सकती है लेकिन सवाल फिर मुजीबुर्रहमान और मौलाना भासानी के इर्द-गिर्द चक्कर काट कर ही रह जाता है. ये दोनों पूर्व पाकिस्तान के एकछत्र नेता हों ऐसी बात नहीं और फिर पश्चिम पाकिस्तान में भी इन का वह रुतबा नहीं जो भुट्टो का है. भुट्टो पश्चिम पाकिस्तान के युवा तबके में ज़रूर लोकप्रिय हैं लेकिन पूर्व पाकिस्तान में नहीं. नवाबज़ादा नसरुल्ला खाँ का अंधविश्वासी दृष्टिकोण उन के आड़े आता है और वह पाकिस्तान के दोनों भागों के एकछत्र नेता नहीं हो सकते जनरल आज़म खाँ अभी नयें-नये राजनीति में आये हैं और दोनों ही भागों ने उन्हें अच्छी तरह परखा नहीं. असग़र खाँ का दबदबा दिनो-दिन बढ़ रहा है और दोनों ही भागों के लोग यह महसूस करने लगे हैं कि असग़र खाँ अधिक संयत, संतुलित और विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण रखते हैं. उन की उदार विचारधारा के कारण वह कभी अय्यूब के विश्वासपात्र थे ही आजकल आम जनता के भी यकीनी दोस्त माने जाते हैं. उन्होने अय्यूब के दो महत्त्वपूर्ण निर्णयों के बाद अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि विरोधी पार्टियों पर अब बहुत बड़ा भार आ गया है. उन के लिए यही बेहतर होगा कि वे एक हो जायें और मिल कर मुल्क की बहबूदी के लिए क़दम उठायें. जब तक विरोधी पार्टियों के स्वार्थ बँटे-कटे रहेंगे तब तक सत्तारूढ़ दल उन की इन्हीं कमज़ोरियों का फ़ायदा उठाता रहेगा.

लेकिन मुजीबुर्रहमान राष्ट्रपति-शासन के पक्ष में नहीं. वह चाहते हैं कि देश में संघीय संसदीय किस्म की सरकार बने. दरअस्ल, अपने अगले क़दम के बारे में सभी विरोधी नेताओं में मतभेद हैं. और वे अपनी-अपनी गोटियाँ अपने-अपने स्वार्थों के अनुसार बिठा रहे हैं.

पाकिस्तान की बुनियादी समस्या तभी से शुरू हो गयी थी जब १९४७ में दो संस्कृतियों को काट कर अलग-अलग किया गया था. पश्चिमी पाकिस्तान सांस्कृतिक रूप से पूर्व से अलग था, भारत के पंजाब की पंजाबी भाषा संस्कृत से अधिक नज़दीक होने के कारण काफ़ी फूली-फली लेकिन पाकिस्तान के पंजाब की भाषा फ़ारसी के निकटता के कारण उस रूप में नहीं पनप सकी जिस रूप में उसे बढ़ना चाहिए. जब तक १९५८ में राष्ट्रपति अय्यूब खाँ ने देश की सत्ता नहीं हथिया ली तब तक वहाँ की सरकारें 'आया राम-गया राम' हो कर ही रह गयीं. अय्यूब ने देश में स्थिरता का सूत्रपात किया और यही वजह है कि अस्थिर पाकिस्तान स्थिरता की तरफ़ बढ़ रहा है. जहाँ तक भाषा का सवाल है पाकिस्तान में उर्दू और बंगाली दोनों सरकारी भाषाएँ हैं. रेडियो से जब 'मशरकी' और 'मग़रबी' पाकिस्तान लफ़्ज़ों का प्रसारण हुआ तो पूर्व पाकिस्तान के लोगों ने सरकार का इस लिए विरोध किया कि पूर्व पाकिस्तान का अनुवाद करना ग़लत है, लिहाज़ा अब पाकिस्तान रेडियो से पूर्व पाकिस्तान ही प्रसारित किया जाता है जो संभवतः पश्चिम पाकिस्तान के लोगों के कानों को काफ़ी अटपटा लगता होगा. भाषा की समस्या से अनजान पाकिस्तान के छात्रों ने भी अब भाषा के आधार पर सूबों की माँग शुरू कर दी है. अपने १२ सूत्रीय कार्यक्रम में छात्रों ने अय्यूब से कहा है कि बंगाल, पंजाब, बलोचिस्तान, सिंध, सरहंद और कराची को भाषा के आधार पर गठित किया जाये. वामपंथी पार्टियों ने सरकारी स्तर पर उर्दू भाषा तथा बैंकों, बीमा, विदेशी पूंजी और मुख्य उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की भी आवाज़ बुलंद की है.

अय्यूब शासन ने औद्योगिक तौर पर भी काफ़ी प्रगति की है और चीन और अमेरिका के साथ-साथ रहने पर भी उस ने रूस की तरफ़ भी दोस्ती का हाथ बढ़ाया है. यह अय्यूब की प्रशासनिक सूझबूझ के कारण ही संभव हो सका है. पाकिस्तान की वर्त्तमान लहर एक ही शासन को एक दशक से अधिक सत्ता में बने रहने से उठने वाली उकतान के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद कर रही है.

विअफ़्रा

नक्कारखाने में विवेकपूर्ण तूती

हाल ही में महासचिव ऊ थाँ ने पत्रकारों को बताया कि अफ़्रीकी एकता संस्था (ऑर्गनाइज़ेशन फ़ार अफ़्रीकन युनिटी) ने एक सलाहकार समिति नियुक्त की है जो विअफ़्रा की समस्या का हल निकालने का प्रयास करेगी. महासचिव से यह पूछा गया था कि संयुक्त राष्ट्र अफ़्रीका की इस गंभीर समस्या के लिए क्या कर सकता है. महासचिव के अनुसार संयुक्त राष्ट्र केवलमात्र उन्हीं समस्याओं में कोई हस्तक्षेप कर सकता है जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों से संबंधित हों. मगर नाइजीरिया के भूतपूर्व राष्ट्रपति अज़िकिवे के अनुसार यह व्यवहार विश्व में शांति स्थापित करने की भावना के विरुद्ध है. "जब जिबराल्टर की समस्या उठाई गयी थी तो क्या उस समय भी ऊ थाँ ने इसे पश्चिम यूरोपीय संघ के सुपुर्द किया था?' वास्तव में अब समय आ गया है कि विअफ़्रा और नाइजीरिया को विनाश से बचाने के लिए संयुक्त राष्ट्र प्रत्यक्ष रूप से सामने आये, क्यों कि अफ़्रीकी एकता संस्था अभी इतनी नयी और अनुभवहीन संस्था है कि वह ऐसे नाज़ुक मामलों को ठीक प्रकार नहीं सँभाल सकती. अज़िकिवे ने इस समस्या को हल करने के लिए एक योजना प्रस्तुत की है. उन के अनुसार संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का यह पहला कर्त्तव्य है कि वह संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् का ध्यान नाइजीरिया की बिगड़ती हुई स्थिति की ओर दिलाते हुए १९ सदस्यों की एक समिति के निर्माण के लिए प्रस्ताव रखे. इस समिति में सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य, (चीन, ब्रिटेन, अमेरिका, फ़्रांस और सोवियत संघ) १० अस्थायी सदस्य और चार विशेष सदस्य (गबन, आइवरी कोस्ट, पुर्तगाल और तांज़ानिया) रहेंगे. भूतपूर्व राष्ट्रपति ने जनरल गोवन से इस युद्ध के विनाशकारी परिणामों को देख कर अपने व्यवहार में नरमी लाने की प्रार्थना की है. उन के अनुसार विअफ़्रा और नाइजीरिया के युद्ध क्षेत्रों में तुरंत युद्ध विराम कर दिया जाये और संयुक्त राष्ट्र सेना इस क्षेत्र की निगरानी करे. हल खोजने के लिए युद्ध क्षेत्र और विअफ़्रा की जनता का मत लिया जाये, जिस में प्रत्येक वयस्क से यह पूछा जाये कि वह विअफ़्रा और नाइजीरिया को एक ही देश रखना चाहता है या विअफ़्रा को अलग राज्य बनाने के पक्ष में है.

खाना या शस्त्र: अज़िकिवे की योजना उस समय प्रस्तुत की गयी है जब कि विअफ़्रा की भूखी जनता को मिलने वाली सहायता में भी बाधाएँ उपस्थित होने की आशंका उपस्थित हो गयी है. गोवन ने आरोप लगाया है कि कर्नल ओजुक्वू इस प्रकार की सहायता में प्राप्त धन से शस्त्र खरीद रहे हैं. सहायता देने वाली संस्थाओं के सामने नयी प्रकार की परेशानी पैदा हो गयी है. विअफ़्रा ने एक यूरोपीय नगर के एक बैंक में खाता खोल रखा है तथा सहायता संस्थाओं से इसी खाते में धन जमा करने को कहा जाता है. इस प्रकार की विदेशी मुद्रा से ओजुक्वू शस्त्र खरीद रहे हैं, यह अस्वाभाविक बात नहीं है. ऐसा लगता है कि उत्तरोत्तर बिगड़ती परिस्थिति को संभालने के लिए अज़िकिवे द्वारा प्रस्तावित संयुक्त राष्ट्र के प्रत्यक्ष हस्तक्षेप का ही सहारा लेना पड़ेगा.

विज्ञान कथा

अंतरिक्ष में आकुल आतुर

२ मार्च को सवेरे सारी दुनिया के लोगों ने प्रथम पृष्ठ पर बड़े-बड़े हरफ़ों में समाचार पढ़ा 'इंडिया एनटर्स इंटु स्पेस एज' (भारत का अंतरिक्ष युग में प्रवेश). समाचार में आगे बताया गया था कि 'एक भारतीय २ मार्च को मध्यरात्रि ०.५ समय से पृथ्वी के चारों ओर चक्कर काट रहा है. यह अंतरिक्ष यात्री अपने को कवि बताता है. अंतरिक्ष यात्री, जिस का नाम **गिरिजा कुमार मायुर** बताया गया है, स्वयं को अंतरिक्ष का कवि करार देता है'.

"भारत की इस अपूर्व सफलता पर संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ ने जिन का कि अंतरिक्ष पर अब तक एकाधिकार था, भारत सरकार को बधाई देते हुए कहा है कि एक कवि को अंतरिक्ष में भेज कर भारत ने अपनी आध्यात्मिक परंपराओं को मजबूत किया है. भारत ने यह साबित कर दिया कि उस के पास पुष्पक विमान था. लेकिन अचंभे का विषय है कि भारत सरकार ने एक भारतीय की इस समग्र अंतरिक्ष यात्रा की ज़िम्मेदारी स्वीकार करने से इनकार कर दिया है. भारत सरकार के परमाणु विभाग के प्रवक्ता और अंतरिक्ष अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष ने बड़े सवेरे जारी किये गये एक वक्तव्य में कहा है कि हमें इस संबंध में कुछ भी पता नहीं, हम ने कोई अंतरिक्ष यान नहीं छोड़ा है. भारत सरकार किसी कवि के गुमराह हो जाने की ज़िम्मेदारी स्वयं पर नहीं ले सकती'.

'दूसरी ओर यह अंतरिक्ष यात्री हर पैंतीसवें मिनट पर पृथ्वी का चक्कर काट रहा है. पृथ्वी का पहला चक्कर काटने के बाद उस ने पृथ्वीवासियों के नाम अपने संदेश में कहा: **'पृथ्वीकल्प प्रकाशन के लिए तैयार है'**.

'जब अमेरिका के अंतरिक्ष अनुसंधान केंद्र के विशेषज्ञों ने 'पृथ्वीकल्प' नामक उस के अनुसंधान ग्रंथ के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए उस से संपर्क किया तो भारतीय अंतरिक्ष यात्री ने कहा कि वह इस का अनुवाद अंग्रेज़ी में करा चुका है, मगर उस की ज़िद है कि उसे कविता के रूप में प्रकाशित किया जाये'.

'जान पड़ता है कि अंतरिक्ष में उस ने कुछ और नक्षत्र ढूंढ़ निकाले हैं. वह बार-बार 'चंदरिमा' नामक एक नक्षत्र का नाम लेता है, जिसे, अगर उस के संकेत सही हैं, तो चंद्रमा के आसपास ही कहीं होना चाहिए'.

'यह अंतरिक्ष यात्री, गिरिजा कुमार मायुर, जिस का कि जन्म १९१८ में शाजापुर में हुआ था, हिंदी-अंग्रेज़ी दोनों का समान रूप से प्रयोग करता है. 'कास्मिक', 'प्रोटोन', 'इलेक्ट्रोन' जैसे शब्दों का इस्तेमाल करता हुआ वह पृथ्वी और अंतरिक्ष के विषय में जो 'कमेंट्री' दे रहा है, वह लयात्मक है और पृथ्वी पर उस की जो अस्पष्ट ध्वनियाँ पहुँच पा रही हैं उन से पता चलता है कि वह इस कमेंट्री को गा रहा है. पहली बार एक अंतरिक्ष यात्री ने अपनी कमेंट्री को इतना लयात्मक बनाया है कि कमेंट्री और कविता के बीच बहुत कम फ़र्क रह गया है. अंतरिक्ष यात्री मायुर इस कमेंट्री को आने वाले युग की कविता भी बताता है'.

'यह पूछे जाने पर कि पृथ्वी कैसी नज़र आती है, भारतीय अंतरिक्ष यात्री ने संक्षिप्त-सा उत्तर दिया, 'केसरिया'; लेकिन यह प्रश्न करने पर कि अमेरिका कैसा दिखायी पड़ता है उस ने एक लंबी 'कमेंट्री' दी और कहा कि यह 'मैनहटन' मेरी कविता है. विशेषज्ञों की राय है कि पृथ्वी पर उसे कोई घना जंगल नज़र आ रहा है, जिसे वह बार-बार 'ढाखना' कह कर दुहरा रहा है'.

'जहाँ तक अंतरिक्ष वैज्ञानिकों का प्रश्न है, अंतरिक्ष यात्री मायुर ने उन के लिए अनेक समस्याएँ पैदा कर दी हैं. वे उस के संकेतों को ग्रहण नहीं कर पा रहे हैं. या तो यान में कोई गड़बड़ी है या इस अंतरिक्ष यात्री में ही कोई गड़बड़ी है. उदाहरण के लिए 'कास्मास' से उस का क्या अभिप्राय है, यह अंतरिक्ष-वैज्ञानिक समझ नहीं पाये हैं. दरअसल कास्मास के नाम से वह जो विवरण दे रहा है, वह खिड़की के बाहर दिखायी पड़ने वाला सँकरा आकाश है. कास्मास में घोर सन्नाटा होता है. लेकिन इस अंतरिक्ष यात्री को कास्मास में नाद और ध्वनियाँ सुनायी पड़ रही हैं. लगता है यह अपने ही खर्राटे को कास्मास की आवाज़ समझ रहा है'.

'अंतरिक्ष यात्री को देश-विदेश से लगातार बधाई के संदेश प्राप्त हो रहे हैं. राज्यसभा के सदस्य, कैंब्रिज के डॉक्टर **हरिवंश राय बच्चन** ने अंतरिक्ष यात्री मायुर को बधाई देते हुए कहा है, 'अंतरिक्ष में आकुल मायुर, कभी इधर उड़, कभी उधर उड़'.

—कृतिकार

रीटा
बिस्कुट
मीठे व नमकीन

ताज़गी और मुरमुरेपन
से भरे यह रीटा बिस्कुट
बहुत ही स्वादिष्ट हैं

रीटा बिस्कुट कम्पनी प्राईवेट लि०
पटियाला (पंजाब)

साहित्य

आधुनिकता और समसामयिकता

नयी दिल्ली के विट्ठलभाई पटेल भवन में हाल ही में **नेमिचंद जैन** की अध्यक्षता में **आलोचना** की ओर से एक गोष्ठी आयोजित की गयी. विषय था **'नयी कहानी : विडंबना और सीमाएँ'** विषय प्रवर्त्तन करते हुए संवादलोलुप समयवादी आलोचक **नामवर सिंह** ने अपने महत्त्वपूर्ण भाषण में कहा : 'अब समय आ गया है कि नयी कहानी और नयी कविता में संवाद शुरू हो. अब तक जो विवाद रहा है वह झूठा रहा है, उस का कोई ऐतिहासिक महत्त्व नही है. कहानी कभी आधुनिक हो ही नही सकती. अगर हो सकती है तो कविता ही आधुनिक हो सकती है. आधुनिक मन संबंधों या स्थितियों के सूत्रों को जोड़ने में अपने को असमर्थ पाता है. वह टूटे और विच्छिन्न सूत्रों का ही वाहक है. जहाँ यह टूटन नहीं है वहाँ भी वह उस का सृजन करता है. यह आधुनिक प्रवृत्ति है इस से बचा नहीं जा सकता. कहानी संबंधों और स्थितियों के सूत्रों को जोड़ती है, बिना इस के वह चल नही सकती जब कि कविता वस्तुतः नयी कविता इन सूत्रों को तोड़ती है. जोड़ना और तोड़ना नयी कहानी और नयी कविता की मूल रचना प्रक्रिया में ही निहित है. नये कहानीकारों ने भी इसे स्वीकार किया है इसी लिए उन का मुख्य नारा प्रतिबद्धता का रहा है जब कि संत्रास, निर्वासन अजनबियत जैसे आधार पर नयी कविता खड़ी रही है.

'नयी कहानी इस दृष्टि से भी झूठा आंदोलन रहा है कि उस के कहानीकारों ने इसे स्वीकार करते हुए भी अपने को आधुनिकता से जोड़ने का प्रयत्न किया है. मैं १४वीं शताब्दी के मंगोलिया के लेखक **तू फ़ुइन** के इस कथन से काफ़ी हद तक सहमत हूँ कि 'कहानी कविता की परोपयोगिता है'. जब भी कविता को परोपयोगी बनाने की कोशिश की गयी है उस का स्वरूप बदला है चाहे वह सामंतों को प्रसन्न करने के लिए प्रेमाख्यान हो, चाहे नरेशों का मनोबल बढ़ाने के लिए वीर प्रबंधकाव्य हो. कविता अपने से हट कर जहाँ दूसरे के क्षेत्र में गयी है वह बदली है, उस ने कहानी के क्षेत्र को अपनाया है और वह प्रबंध काव्य हो गयी है, जो काव्य का महत्त्वपूर्ण पक्ष नहीं है. इस तर्क को हम और आगे बढ़ायें तो देखेंगे कि सारी नयी कहानी नयी कविता का प्रबंध रूप रही है. हर उल्लेखनीय नया कहानीकार मूलतः नया कवि रहा है. इसीलिए हर नये कहानीकार ने कविता की है, अलग से न सही तो अपनी कहानी में. सच तो यह है कि काव्य मनस्थितियों को खींचकर प्रतिबद्धता के नाम पर परोपयोगी बनाने के लिए उस ने कहानियाँ गढ़ी हैं. इसीलिए न उस का कविरूप सुरक्षित रहा है और न वह कहानीकार के रूप में ही सफल रहा है. सारे नये कहानीकार नयी कविता के प्रसाद है, प्रेमचंद्र एक भी नही है, कुछ उदाहरण दिलचस्प होंगे :

'मांस का दरिया' में **कमलेश्वर** की एक कहानी है **दुखों के रास्ते**. शीर्षक यही देते हुए अब आप उस कहानी की कुछ पंक्तियाँ पढ़िये :

खिड़की से
मैंने उस का कटा हुआ धड़ देखा
वह धड़ ठिठक-ठिठक कर आगे बढ़ रहा था
इसी टूटी सड़क पर,
जो मेरी खिड़की की दो सिमतों में कैद है—
दुख कभी नही बीतता
अगर बीता होता तो फिर लौट कर नहीं आता.

दूसरा उदाहरण लीजिए 'फ़ौलाद का आकाश' कहानी संग्रह से **मोहन राकेश** का. कहानी का शीर्षक है **फ़ौलाद का आकाश** : अब इसी शीर्षक के अंतर्गत उस कहानी की कुछ पंक्तियाँ पढ़िये :

हवा से पत्तियों का काँपना
घास का सरसराना
उँगलियों का सर्द पड़ते जाना
जैसे कोई कसी हुई गाँठ
ढीली पड़ रही हो,
कोई सोई हुई चीज़
धीरे-धीरे करवट बदल रही हो,
हथेलियाँ गालों से फिसलकर
आँखों पर आ गयीं—
ठंडी आँखें कुछ गरमा गयीं
हथेलियाँ कुछ ठंडी पड़ गयीं
फिर उस ने चार-चार उँगलियों की आँखों से
बाहर देखा तो लगा कि सितारा
घास की लान पर उतर आया है.

दोनों में संवेदना काव्य के स्तर पर चित्रित है. पर कहानी से प्रतिबद्ध होने के कारण वह कहानी में अटक गयी है. ये पंक्तियाँ न अच्छी कविता बन सकीं न अच्छी कहानी बना सकी. नये कथाकारों की ऐसी ट्रेजडी उन के हर कहानी में मिलेंगी. अच्छा होता उन्होंने कहानी का मोह छोड़कर कविता लिखी होती.

'अंत में एक चीज मैं और कहना चाहूँगा कि कहानी समसामयिक भी नहीं हो सकती, आधुनिकता का प्रश्न तो उस के साथ उठता ही नही. वह केवल अतीत में लौट कर संबंधों या स्थितियों को दूसरों के उपयोग के लिए चित्रित कर सकती है. समसामयिकता के संदर्भ में मैं रघुवीर सहाय का उदाहरण देना चाहूँगा. **रघुवीर सहाय** ने पिछले पाँच वर्षों में कहानियाँ भी लिखी हैं और कविताएँ भी. उन की इधर दो प्रकाशित कहानियाँ 'प्रेमिका' और 'तीन मिनट' लीजिए और 'आत्महत्या के विरुद्ध' की कविताओं को. दोनों विधाओं का अंतर स्पष्ट हो जायेगा. कहानियों का परिवेश सीमित है या अतीतोन्मुख है जब कि कविताओं में लेखक की संवेदना का विस्तार हुआ है और उस ने समसामयिकता के तकाजे डटकर पूरे किए है.

'अंत में मैं पुनः यह कहना चाहूँगा कि नयी कहानी के इस झूठे आंदोलन की अंत्येष्टि ऐतिहासिक अनिवार्यता थी. नयी कहानी न आधुनिक हो सकती है न समसामयिक. आधुनिकता और समसामयिकता का सवाल कविता का सवाल है. अब समय आ गया है कि उसे वहीं हल किया जाना चाहिए. नये कहानीकार यदि कविता लिखें तो वह अपने साथ भी न्याय करेंगे और समय के साथ भी. व्यावसायिकता का संदर्भ मैं यहाँ नहीं उठाना चाहता. वह साहित्यिक मूल्यांकन की परिधि में नही आता. नयी कहानी की सीमाएँ पहले भी स्पष्ट थी अब और स्पष्ट हो गयीं हैं. यह विडंबना ही है कि नये कहानीकार जिन्हें कवि होना चाहिए था, कहानी के क्षेत्र से खुद को बाँध कर न इधर के रहे न उधर के.'

विचार विनिमय का प्रारंभ करते हुए **कमलेश्वर** ने कहा : 'मैं नामवर जी से पूछना चाहता हूँ कि क्या आधुनिकता और समसामयिकता का कोई संबंध वर्त्तमान प्रकाशन जगत से नही है ? यदि है तो कविता की कितनी पत्रिकाएँ निकलती हैं, जब कि कहानी की पत्रिकाओं की कमी नही है.' (प्रकाशन जगत व्यावसायिकता का जगत है.' गोष्ठी में पीछे बैठे कुछ युवक कहानीकारों ने आवाज़ लगायी) कमलेश्वर ने कहा मैं यही कहना चाहता था कि आधुनिकता और समसामयिकता की समस्या भी व्यावसायिकता की समस्या है. नामवर जी मूल समस्या से कतरा गये है. साहित्य की कोई भी समस्या हवा में नहीं होती, यदि साहित्य यथार्थ से जुड़ा है तो उस की समस्याएँ भी यथार्थ से जुड़ी हैं. प्रकाशन का यथार्थ जगत यदि व्यावसायिकता से जुड़ा है तो साहित्य भी व्यावसायिकता से जुड़ा है. नयी कहानी की प्रतिबद्धता इसी अर्थ में जुड़ना थी टूटना नही. नामवर जी ने आधुनिकता के साथ टूटन को अनिवार्य बता उसे साहित्य की समस्या से अलग कर दिया है.'

मोहन राकेश ने कहा : 'कमलेश्वर ने कुछ बातें साफ़ की है लेकिन मैं कहना चाहता हूँ— आधुनिकता, समसामयिकता, संत्रास, निर्वासन, प्रतिबद्धता सब व्यवस्था से जुड़े हुए प्रश्न है. इन्हें वर्त्तमान व्यवस्था से—सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक—सभी से काट कर देखना, समस्या को अधूरा देखना है. व्यवस्था के परिवर्त्तन के साथ-साथ ही कलाकार की चेतना में भी परिवर्त्तन होता है. जो व्यवस्था साहित्यकार के अनुकूल नही है वह साहित्य के अनुकूल कैसे हो सकती है ? मैं पूछता हूँ क्या हम आज वर्त्तमान व्यवस्था में कही साहित्यकार को प्रतिष्ठित करते है फिर साहित्य प्रतिष्ठित कैसे होगा ?

राजेंद्र यादव ने कहा—'मैं राकेश और कमलेश्वर से सहमत नहीं हूँ प्रतिवद्धता के सवाल को मैं ने कभी उस रूप में नहीं देखा जैसे दूसरों ने देखा था. प्रतिवद्धता साहित्यिकता और व्यावसायिकता दोनों को यदि समानांतर न चला सके तो उस का आधुनिकता से कोई संबंध नहीं है. कहानी ही ऐसी विधा है जो दोनों को सामानांतर चलाती है' ('जैसे दूसरों की हज़म की हुई रायल्टी लेखक और प्रकाशक को समानांतर चलाती है' किसी क्रुद्ध नवयुवक ने पीछे से बुलंद आवाज़ में कहा) राजेंद्र यादव कुछ और कहना चाहते थे पर चुपचाप बैठ गये.

रघुवीर सहाय ने नामवर का समर्थन करते हुए कहा 'लेकिन इस में एक पेंच है. कहानी के बारे में जो कहा गया वह ठीक है पर कविता के बारे में कुछ और सोचना पड़ेगा. कविता समसामयिक हो कर भी आधुनिक होती है जब कि कहानी के लिए समसामयिक हो कर आधुनिक होना या आधुनिक हो कर समसामयिक होना दोनों ज़रूरी नहीं है. कविता—मेरा मतलब सही कविता से है, इस दोहरी माँग को पूरा करती है. जब मैं कहता हूँ 'मैं अपनी एक मूर्त्ति बनाता एक ढहाता हूँ' तो कवि के रूप में ये दोनों ही माँगें पूरी करता होता हूँ.'

श्रीकांत वर्मा ने कहा : 'यहाँ इस तरह नयी कहानी नयी कविता के संदर्भ में आधुनिकता और समसामयिकता को उठा कर बहुत बड़ी ग़लती की जा रही है. आधुनिकता और समसामयिकता को किसी संदर्भ की ज़रूरत नहीं है. मानव नियति की भाँति यह संदर्भहीन स्थिति है. यदि इस का कोई संदर्भ हो सकता था तो आस्था से ही हो सकता था जो आज के आदमी के जीवन में नहीं है. प्रतिवद्धता नरक है. कवि उस नरक से बचना चाहता है पर बच नहीं पाता. इसी लिए वह खुद अपनी खोज है आधुनिकता इस में जितनी उस की मदद करती है उतनी वह आधुनिक रह जाती है शेष समसामयिकता में बदल कर अपनी मौत आप मर जाती है.'

नेमिचंद जैन ने अंत में अध्यक्ष पद से कहा 'मैं नामवर से इस बात में सहमत हूँ कि संवाद होना चाहिए. सामाजिक दृष्टि से संवाद का बना रहना ही आधुनिकता है और संवाद के उस स्थिति को बनाये रखने की खोज समसामयिकता है. मुझे दोनों में मूलभूत अंतर नहीं दिखायी देता. नयी कहानी ने यह संवाद समाप्त कर दिया था. न वह इस संपूर्ण व्यवस्था से संवाद बनाये रख सकी थी न उस स्थिति की खोज ही वह कर रही थी. ऐसी स्थिति में उस का जीवित रहना असंभव था. इस आंदोलन ने कुछ वैसी ही ग़लती की जैसी प्रगतिवादी आंदोलन ने की थी. आशा की जानी चाहिए कि हम नयी कविता को यह ग़लती नहीं करने देंगे.' —सर्वे सर्विस

किताबें

शराफ़त और व्यंग्य

प्रिय हरिशंकर परसाई जी,

आप की पुस्तक **और अंत में ...** के चौंतीसों पत्र पढ़ गया और सोचने लगा आपने एक नये प्रकाशक का बंटाधार कर दिया. मेरी समझ में नहीं आता आप की यह पुस्तक कौन खरीदेगा? आप के इन पत्रों की वजह से 'कल्पना' पत्रिका का, जिस में आपने इन्हें छपवाया था, क्या हाल हुआ, आप बखूबी जानते हैं—न साहित्य की पत्रिका रह गयी न राजनीति की, न इधर की न उधर की. आकार के साथ-साथ प्रतिष्ठा भी घट गयी. अब लोग भूल गये कोई ऐसी पत्रिका निकलती भी है. इसी लिए इस नये प्रकाशक के दुर्भाग्य पर तरस आता है. इस पुस्तक के प्रकाशन में उस ने जितना पैसा लगाया वह खड़ा नहीं होगा आप भले खड़े के खड़े रह जायें. इन पत्रों में तीखा व्यंग्य कर के आपने उन सभी व्यक्तियों, संस्थाओं को नाराज़ कर दिया है जो इसे खरीद या खरीदवा सकती थीं. सरकार, नौकरशाही, मंत्रीगण, नेता, सेठ, राजनीतिज्ञ कोई नहीं चाहेगा कि आप की पुस्तक किसी के हाथ लगे. सरकारी खरीद की तो बात दूर, पुस्तकालयों में भी आप नहीं पहुँच सकेंगे. स्कूल, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में भी आप की किताब बहिष्कृत की जायेगी क्यों कि आप ने प्राध्यापकों, शोधकर्त्ताओं, विद्यार्थियों सभी को नाराज़ करने में कोई कसर नहीं उठा रखी है. नये कवियों और नये कहानीकारों की तो बात दूर, गोष्ठियों और परिचर्चाओं में भी आप की इस पुस्तक का कोई नाम भी नहीं लेगा क्यों कि आप ने इन सब की बखिया उधेड़ी है. संपादकों पर जो आप ने छींटाकशी की है उस से कहीं समीक्षा की भी आशा न कीजिएगा. समझ में नहीं आता आप किस के साथ हैं. छायावादी आप को पसंद नहीं आते, नया साहित्य आप को हज़म नहीं होता, आँचलिक से आप घबराते हैं, भारतीय लेखकों की दुदशा पर आँसू बहाते हैं, क्रुद्ध पीढ़ी पर आप क्रुद्ध हैं, वयोवृद्धों से आप को शिकायतें ही शिकायतें हैं, राजनीतिक दलों से आप टकराते हैं, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तक को आप छेड़ते हैं. आखिर आप इस देश, इस समाज में कहीं रहना चाहते हैं या नहीं ? अगर आप सोचते हैं 'जोरु न जाँता, अल्लामियाँ से नाता' तो कम से कम नये व्यंग्य लेखकों को तो यह रास्ता न दिखाइए, उन की मति तो न मारिए. अब देखिए आप को साहित्यकार बनने का शौक है, नहीं तो लिखते ही क्यों ? यह सब आप चुपचाप पड़े-पड़े सोच भी सकते थे जैसा कि देश के अधिकतर लोग करते हैं. अपना सर भले ही नोचें दूसरों के बाल नहीं खींचते. पर आप उन से अलग अपने को दिखाना चाहते हैं. क़लम चलाते हैं और चाहते हैं क़लम के सिपाही आप का साथ दें. और ढंग आप का यह है कि अपने ही साथियों पर भौंकते हैं, काट खाने दौड़ते हैं, ज़रा ठंडे दिमाग़ से सोचिए, अज्ञेय, अमृतराय, रेणु, नागार्जुन, जैनेंद्र, कृश्नचंदर, दिनकर, नामवर सिंह, श्रीकांत, सर्वेश्वर, रघुवीर, माचवे, अब्बास, रमेशबक्षी सब से तो आप दो-दो हाथ कर रहे हैं और साहित्य में जमना भी चाहते हैं. अकेले नामवर सिंह ही आप को उखाड़ने के लिए काफ़ी हैं. व्यंग्य में आधुनिकता और समसामयिक़ता के एक ही दाँव से वह आप को पटरा कर दे सकते हैं. फिर आप की किताब के सफ़े चूरन बेचने वालों के काम आयेंगे. पुरस्कारों पर आप ने ऐसे व्यंग्य किये हैं कि कोई साहित्यिक-असाहित्यिक पुरस्कार भी आप को नहीं मिल सकता.

हिंदी में व्यंग्य लेखकों की कमी नहीं रही पर सब ने अक्ल से काम लिया. बीवियों, सालियों और प्रेमिकाओं पर हाथ साफ़ किया. राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक, आर्थिक सभी शक्तियों को एक साथ नहीं ललकारा. **जी. पी. श्रीवास्तव** तक ने यदि अध्यापकों की खिल्ली उड़ायी तो विद्यार्थियों का साथ दिया. उन्हें उकसाया. ('लंबी दाढ़ी' आपने पढ़ी होगी) पर आप बिना अपना आगा-पीछा, भविष्य सोचे सभी को छेड़े जा रहे हैं. सारी व्यवस्था को कोस-कोस कर आसमान सिर पर उठा रहे हैं. कुआँरे और बेरोज़गार आदमी की बहुत-सी कुंठाएँ होती हैं. उन का इलाज भी है. किसी एक को भी बख़्शने से कहीं धंधे से लग जाइएगा. अफ़सोस होता है इतनी अच्छी भाषा, इतनी चुटीली शैली, इतनी विश्लेषण शक्ति, इतनी तीखी तीव्र बुद्धि, बाल की खाल तक निकालने की सामर्थ्य सब आप की बेकार जा रही है. अच्छा व्यंग्य लेखक वही है जो यह यक़ीन करा दे कि वह हमला कर सकता है पर करता नहीं है, शरीफ़ है. उस का पेट भी चलता है और यश भी. कितना अच्छा होता यदि आप की किताब पढ़ कर पाठकों के मन में यह आता कि बेचारा कितना शरीफ़ है, चाहता तो पलस्तर उखाड़ देता पर नंगई पर नहीं उतरा. क्षमा कीजिएगा यह कहने के लिए कि आप नंगई पर उतर आये हैं. यदि ऐसा आपने न किया होता तो हम भी दूसरों से कह सकते थे, भई यह पुस्तक पठनीय है, मनोरंजक है, महत्त्वपूर्ण है, पढ़ो. पर अब क्या कहें ?

सस्नेह,

स. द. स.

और अंत में : हरिशंकर परसाई. अभिव्यक्ति प्रकाशन, ८४७, यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद—२, मूल्य : चार रुपया पचास पैसा.

संस्मरण

यह होली कैसे खेलते थे...

संपूर्णानंद जी होली और दीपावली को भी बड़ा संस्कारपूर्ण अवसर मानते थे और सदा ही सुसंस्कृत ढंग से मनाते थे. इतना कुछ होने पर भी होली के हुड़दंग पर वह नाक भौं कभी नहीं सिकोड़ते थे. होली की अश्लीलता पर उन्हें ज़रूर बहुत क्रोध आता था और उस को वह किसी भी दशा में क्षम्य नहीं मानते थे. प्रातःकाल से ही होली के दिन उन के मन में उत्साह भर उठता था और वह अपने परिवार और समीप रहने वालों को भी उत्साहित करते रहते थे. प्रातः स्नानादि के बाद बच्चे उन के पास जा कर उन के चरणों में अबीर और गुलाल चढ़ाते, कुछ वयस्क उन के माथे पर भी टीका लगाते. प्रायः नौ दस बजते उन के अपने समवयस्क उन के पास आ जाते और उन के साथ वह होली खेलने बाहर चल पड़ते थे. जिन दिनों वह लखनऊ थे तब भी प्रायः यही कार्यक्रम रहा और काशी में तो था ही. उन के अपने मित्रों में इस प्रसंग में स्व. भगवान सहाय मंगलाप्रसाद (काशी के) और रामेश्वर सहाय जी को नहीं भूला जा सकता. मंगलाप्रसाद जी 'आज' कार्यालय में थे और बड़े ही विनोद प्रिय थे. वह इन के साथ हास-परिहास में भी भाग लेते. पर साधारणतः इन्हें रंग पोतने की सुविधा तो प्रायः बहुतों को थी पर इन के साथ हास-परिहास का अवसर इने गिने व्यक्तियों को ही मिलता था. यह परिहास भी ऊँचे ढंग का और मर्यादापूर्ण होता और इस में इन के हमजोली ही भाग लें सकते थे. गीले रंग खेलने का भी वह आदर करते पर शर्त यह होती कि वह लाल ही हो. टेसू के फूल को रात को उबाल कर उस से रंग बनाने का इन्हें शौक था और जब भी अवसर मिला उस से वे रंग का यह प्रयोग करते. सायंकाल गाने-बजाने के कार्यक्रम में बड़े चाव से भाग भी लेते थे. चैता, होली हिंडोल आदि इस अवसर के विशेष राग गाने का आग्रह करते. इतना ही नहीं होली को वैदिक स्तर पर ले जाया जाता इस प्रयत्न में एक बार वसंत के अवसर पर वसंत पूजा भी आयोजित की और वैदिक यज्ञ किया था. इस अवसर पर संस्कृत और हिंदी कवियों की वसंत संबंधी कविताओं का संग्रह भी प्रकाशित हुआ था.

गीले और सूखे रंग : इन्हीं के समकालीन और समवयस्क या यों कहा जाये कि दस महीने बड़े **नरेंद्र देव** जी भी थे. नरेंद्र देव जी होली को न केवल सामाजिक पर्व मानते थे वरन् इस में समता की भावना भी देखते थे. स्यात् उन की समाजवादी विचारधारा एक दिन के लिए ही इस अवसर पर व्यावहारिक संतोष पाती थी. ऊँच-नीच, छोटे-बड़े सब इस प्रकार के कृत्रिम भेदभाव भूल कर एकाकार हो जाते थे. आचार्य नरेंद्र देव जी और संपूर्णानंद दोनों ही भारतीयता और भारतीय संस्कृति के कट्टर समर्थकों में से थे. दोनों ही संस्कृतनिष्ठ थे और दोनों ही समाजवादी, कांग्रेस समाजवादी दल के संस्थापक सदस्यों में थे. अतः होली के संबंध में दोनों की विचारधाराएँ प्रायः मिलती थीं. पर व्यवहार में नरेंद्र देव जी कुछ अधिक सजग से रहते. गीले रंग उन को बिलकुल प्रिय नहीं थे. संभवतः इस में उन का स्वास्थ्य अधिक बाधक था. पर अपने समवयस्कों के ही साथ नहीं वरन् नवयुवकों में भी नवयुवक के समान सूखे रंगों से शराबोर होने में इन्हें तनिक संकोच नहीं होता. नरेंद्रदेव जी के स्वभाव की एक बहुत बड़ी विचित्रता थी कि वह हर वय के लोगों के साथ इस सरलता से व्यवहार करते कि दूसरे को अपने और उन के वय में अंतर नहीं दिखाई देता. नरेंद्र देव जी भी होली खेलने अपने दोस्तों के यहाँ, मुहल्ले में, और सार्वजनिक आयोजनों में ज़रूर जाते थे. वे हास-परिहास में भी भाग लेते और इस बात में उन का दायरा भी संपूर्णानंद जी की अपेक्षा बड़ा था.

भूतनाथ : एक बार संपूर्णानंद जी आचार्य नरेंद्र देव के घर होली खेलने गये. आचार्य जी के बच्चे उन्हें हर प्रकार के रंग पोतने लगे पर डर-डर कर आचार्य जी को भी देखते जाते थे. संपूर्णानंद जी ने यह बात ताड़ ली. वह समझ गये कि बच्चे आचार्य जी की भावनाओं से भयभीत हो रहे थे. उन्हें बढ़ावा देते हुए संपूर्णानंद जी ने कहा कि अरे भाई यह भी क्या रंग है ज़रा लाल पीला भी पोतो. फिर क्या था बच्चे खुल पड़े और संपूर्णानंद जी रंग से भर गये. नरेंद्र देव जी देख रहे थे पर शायद इतना रंग उन्हें अच्छा न लगा था. उन्होंने कहा, 'भला देखो तो कैसे भूत लग रहे हो'. संपूर्णानंद जी ने तुरंत जवाब दिया 'मैं भूत नहीं भूतनाथ हूँ'.

मन भर : आचार्य जी और संपूर्णानंद जी दोनों ही खाने-खिलाने के शौकीन थे. पर परंपरा से आचार्य जी के घर होली के दिन मिठाई नहीं बनती थी. वह चाहते थे कि उस दिन भी मिठाई और पकवान की परंपरा चलायी जाये. शुरुआत बाज़ार से खरीद कर करनी थी अतः बड़े लड़के को मिठाई लाने की आज्ञा हो गयी. उन्होंने पूछा 'कितना लाऊँ?' आचार्य जी जी ने कहा 'मन भर'. सब हँस पड़े. मन भर मिठाई आयी और मन भर कर लोगों ने इतना खाया कि मन भर मिठाई भी कम पड़ गयी.

रंगधूसर : जवाहरलाल जी को भी होली में रस मिलता था. रंग-धूसर होने में मजा आता था और दूसरों को शराबोर करने में भी वह आनंद लेते थे. कई लोगों का ख़्याल है कि वह इस हुड़दंग को एक हद तक स्वीकृति इस लिए देते थे कि उन के ऊपर कैंब्रिज के विद्यार्थी होने के कारण वहाँ का हुड़दंग ख़ास कर 'अप्रैल फ़ूल' असर किये हुए था. पर यह बात हो या न हो उन की होली इलाहाबाद की होली थी, 'आनंद भवन' की होली थी. प्रयाग में यह त्योहार विशेष उत्साह से मनाया जाता है और प्रयाग विश्वविद्यालय के निकट आनंद भवन होने के कारण उस ज़माने के विद्यार्थी भी आनंद भवन की होली में शरीक़ हो जाते थे. जो लोग जवाहरलाल जी को जानते हैं, जिन्हें इस अवसर पर उन के निकट जाने का मौक़ा मिला है, उन्हें मालूम है कि जवाहरलाल जी को रंग पसंद था, होली की भारतीयता पसंद थी और वह इसे एक राष्ट्रीय पर्व के रूप में देखते थे.

यूसुफ़ मेहरअली, रफ़ी साहब मुसलमान थे. बंबई के रहने वाले. ऊपर जिन व्यक्तियों का चर्चा हुआ है उन के दोस्त और विचारधारा से समाजवादी तथा परिवार में समृद्ध. कपड़े पहनने में बड़ी सावधानी और सुरुचि बरतने वाले व्यक्ति पर होली के अवसर पर रंग इन्हें भी पसंद आता था. पर रंग सूखा. गीला रंग इन्हें पसंद नहीं था. नरेंद्र देव जी की भाँति यह भी इस त्योहार को समता का सूचक मानते थे.

परवाह नहीं : लेकिन रफ़ी साहब मुसलमान थे पर होली पर हिंदू से भी बढ़ कर. रंग सूखा हो या गीला परवाह नहीं. रंग ज़रूर हो. रफ़ी साहब सदा खुले दिल के आदमी रहे. उस के पास बेरोकटोक सभी पहुँच पाते थे हर समय, फिर होली तो सब का द्वार उन्मुक्त कर देती थी. रफ़ी साहब होली के सभ्य हुड़दंग में खुल कर भाग लेते और ख़ूब रंग खेलते थे. एक बार ईद और होली साथ-साथ पड़ गयी. नरेंद्र देव जी और संपूर्णानंद जी रफ़ी साहब के घर पर ईद मिलने और रफ़ी साहब आचार्य जी के घर होली मिलने आये. आचार्य जी ने गले मिलते हुए कहा था 'रफ़ी साहब त्यौहार तो ईद और होली हैं और सब तो ढपोरशंख है'.

गाने-सुनने का शौक : इन सब लोगों में **गोविंदवल्लभ पंत** वयोवृद्ध थे. शरीर भी भारी था और उतने चपल भी नहीं थे पर होली तो खेलनी ही होती थी. होली के दिन वह भी चाहते कि लोग रंग खेलें पर अश्लीलता से दूर रहें. उन्हें भी होली गाने-सुनने का शौक था और उन के घर भी गाने वालों के दल उत्साह से आते, गाना गाते और मिठाई-पान और पुरस्कार ले कर वापस होते थे. वह भी इन लोगों के साथ होली मिलने निकलते और रंग लगाते.

आइये गले मिलें : लाल बहादुर जी इन सब में छोटे थे. उम्र में भी क़द में भी. पर उन का उत्साह किसी से कम नहीं था. संपूर्णानंद जी ने उन्हें पढ़ाया था अतः उन्हें वह प्रोफ़ेसर साहब कहा करते थे. आचार्य जी और संपूर्णानंद जी के प्रति उन के मन में बड़ा आदर था और उन के सामने वह बहुत ही संयमशील विद्यार्थी की भाँति व्यवहार करते. पर व्यंग और चोट का अवसर हाथ से नहीं जाने देते. एक बार होली के अवसर पर सभी उन के घर पर एकत्र थे. उन दिनों वह उत्तर प्रदेश के पुलिस मंत्री थे. सब से होली मिलने के बाद अपने कमरे में रखी चौकी पर चढ़ कर बोले 'अब मैं आप के बराबर हो गया आइए गले मिलूं'. अपने ऊपर आप हँसने की ताकत देख कर सब हँस दिये.

संगीत

सरसता और शास्त्रीयता

इंडियन कलचरल सोसाइटी ने उस्ताद **हलीम जाफ़र खाँ** के सितार वादन का एक कार्यक्रम सप्रू हाउस में पेश किया. इन के साथ तबले पर सराहनीय संगत की सदाशिव प्रसाद ने. बंबई के ख्याति प्राप्त सितार नवाज़ हलीम जाफ़र खाँ इंदौर के प्रसिद्ध तंत्रवाद्यकारों के घराने से संबंधित हैं. इंदौर के बंदे अली खाँ और मुराद खाँ बीनकारों की संगीत परंपरा और अपने पिता जाफ़र खाँ और चाचा महबूब खाँ से प्राप्त संगीत शिक्षा को हलीम जाफ़र खाँ ने अपनी स्वयं की प्रतिभा से भी खूब विकसित किया है. प्रयोगशील प्रकृति के धनी हलीम जाफ़र खाँ का सितार नवाजों में अपना स्थान है. सुरीलापन, अनुपम तैयारी, नये-नये इरादे, विविध एवं अलंकारिक शैली और उस

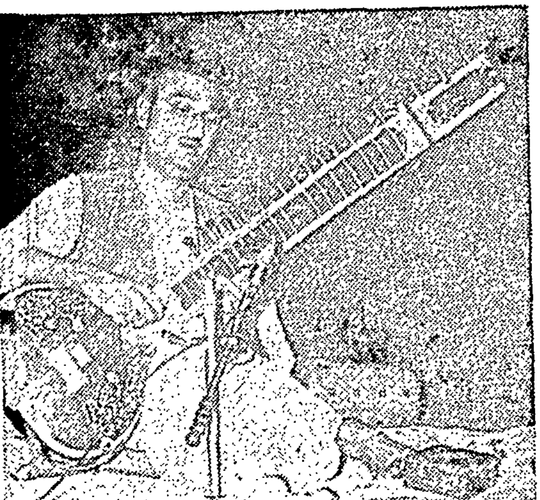

हलीम जाफ़र खाँ : अनुपम तैयारी

में गमक, मींड, खटके, मुरकियों का स्वाभाविक रूप वादक कलाकार की दक्षता और साज पर अद्‌भुत अधिकार का परिचय देते हैं. सृजनात्मक प्रतिभा से विकसित निजी और गायकी प्रधान सितार वादन शैली और अपनी प्रयोगशील प्रकृति ही के कारण यह अन्य वादकों से अलग पहचाने जाते हैं. कल्पना की उड़ान, नये-नये प्रयोग और स्वरों की मिठास द्वारा हलीम जाफ़र खाँ श्रोताओं का ध्यान शीघ्र ही आकर्षित कर लेते हैं. शास्त्रीय संगीत में सरसता के साथ-साथ शास्त्रीय शुद्धता भी अपेक्षित है, पर अपनी कल्पनाओं और नये-नये प्रभावों के प्रदर्शन में उस्ताद हलीम जाफ़र खाँ ऐसे डूब जाते हैं कि शास्त्रीय शुद्धता तक को बिसरा देते हैं. यही कारण है कि इन के शास्त्रीय संगीत और रागों से सरल शास्त्रीय और कभी-कभी तो सरल संगीत का भी आभास होने लगता है, जो निस्संदेह सरसता और जनरंजन की दृष्टि से तो अत्यधिक सफल होता है, पर न्यायसंगत नहीं.

आयोजित कार्यक्रम में उस्ताद हलीम जाफ़र खाँ ने तीन रागों में कई बंदिशें पेश कीं. मुख्य राग एमन कल्याण और फिर राग पहाड़ी. एमन कल्याण के विस्तृत आलाप के बाद जोड़, झाला और तीन ताल में इसी राग की गतकारी थी. आलाप अंग कुछ कमज़ोर रहा. आलाप करने के इन के ढंग में जहाँ स्वर लगाव में भाव की गहराई और शैली में माधुर्य रहा वहीं सिलसिलेवार बढ़त का अभाव, जिस से राग का पूरा आनंद प्राप्त नहीं हो सका. पर खाज और मिजराब का काम आलाप में उल्लेखनीय रूप से आकर्षक था. गतकारी में मौलिकता, लय की अद्‌भुत सवाई और तोड़ों में विविधता एवं वादन-चातुर्य बरबस आकृष्ट करने वाला रहा. सपाट और गमक की तीनों में स्पष्टता और तेज गति के झाले में परिष्कार कलाकार के निरंतर अभ्यास का पूर्ण परिचायक रहा. पहाड़ी अत्यंत मधुर प्रकृति का छोटा-सा और सरल शास्त्रीय बंदिशों के लिए ही उपयुक्त राग है और छोटी-छोटी कम समय की बंदिशें ही इस में आनंदप्रद रहती हैं, पर कलाकार ने इस राग में भी आलाप, जोड़ और फिर विलंबित तथा द्रुत दोनों ही गतें पेश कीं, जिस से इस मधुर राग के साथ पूरा न्याय न हो सका. पहाड़ी की द्रुत गत अवश्य संतोषप्रद एवं अपनी स्वर रचना की विशिष्टता के लिए प्रशंसनीय रही. अमीर खुसरो रचित एक अप्रचलित राग 'फरहना' की अवतारणा से हलीम जाफ़र खाँ ने अपने कार्यक्रम का समापन किया.

रंगमंच

एक चादर मैली-सी

एक मार्मिक आंचलिक उपन्यास के रूप में **राजेंद्र सिंह बेदी** की यह रचना पर्याप्त लोकप्रियता और ख्याति प्राप्त कर चुकी है. साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कार भी मिला है किंतु एकांत में उपन्यास का पढ़ा जाना और सामूहिक माध्यम मंच पर कई दर्शकों के सामने खेला जाना बिलकुल भिन्न स्थितियाँ हैं और भिन्न क्षमता की अपेक्षा रखती हैं. पिछले दिनों **यात्रिक** ने एक चादर मैली-सी का मंच-रूप प्रस्तुत किया. निर्देशक थे **राजीन्दर नाथ** (राजेंद्र उच्चारण ग़ैर-पंजाबी होगा). उपन्यास का मंच रूपांतर स्वतः लेखक ने किया है—सोच कर असमंजस होता है. प्रबोध और मैत्री का स्त्री-पुरुष विवाद इस मंचीय रूपांतर में कोई मंतव्य नहीं सिद्ध करता, बल्कि एक जातीय संस्कृति के गौरव की बात करता है, जो नाटक के जीवन में कहीं नहीं. क्या वही जीवन ऐसा है जिस की सुसंस्कृतता पर कोई वर्ग गौरव कर सके ? शिल्प की दृष्टि से भी कथाकार एवं पक्षी-युगल के संलाप का कोई प्रभावपूर्ण स्वरूप नहीं बन पाता.

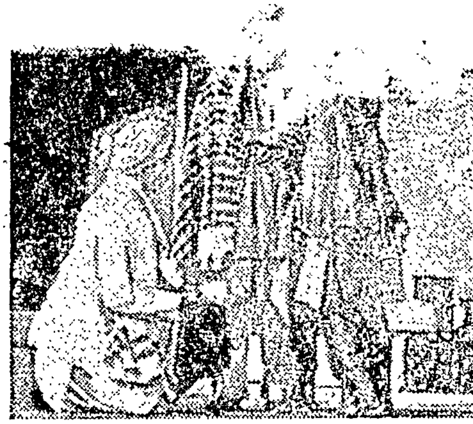

'एक चादर मैली सी' का एक दृश्य

मूल उपन्यास और उस में चर्चित जीवन की लंघुताएँ और जीजिविषा की सशक्त संवेदना कुछ क्षणों में उभरी. नाटक में सारा स्वरूप स्त्री-पुरुषों की बहस के रूप में दिखाने का आग्रह रखता है, इस संवेदना और स्वरूप के आग्रह में ही टकराव रहा. फलतः दर्शक भटक गया और सिर्फ़ कहीं-कहीं खंड रूप से ही किसी पात्र की स्थिति के प्रति सहानुभूति रख सका—बस. कुछ स्थितियों और चरित्रों द्वारा हास्य की उत्पत्ति तो होती है किंतु बहुत गहरे कुछ नहीं उतरता. संवाद की भाषा से गँवई पंजाबी वातावरण की सृष्टि तो हुई किंतु व्यापक रूप से वह बाधक ही सिद्ध हुई. क्रम से बोलने की सामान्य रीति ने भी हास्यास्पद रूप धारण कर लिया. जहाँ एक-एक शब्द या गाली (शब्द और गाली एक माना जाये तो) निकली वहीं जनता हँसी. इस से कई गंभीर स्थितियों में भी दर्शक हँस पड़े. क्या यह वातावरण-सृष्टि इस क़ीमत पर अपेक्षित है? हम मान कर चलते हैं कि यह पंजाबी जीवन है—हिंदी यहाँ अनुवादी भाषा है. फिर इस सामान्य छूट का उपयोग करने में लेखक या निर्देशक को क्या संकोच था? तिलोके की हत्या कोई प्रभाव नहीं छोड़ती पर मंगला और रानो का जबरन विवाह सुंदर नियोजन का उदाहरण है. निर्देशक सक्षम है इस नियोजन के लिए, फिर भी यह बिखराव क्यों ? सारी अभिनेता मंडली भी अच्छी थी. बुढ़िया सास जिंदाँ के अभिनय का निर्वाह **वीणा खन्ना** ने कुशलता से किया. पड़ोसिनों के रूप में **मोहिनी** और **मधु** भी सधी हुई थीं. मंगला के के रूप में **श्याम अरोड़ा** अपनी क्षमता दिखा सके. बूढ़े बाप की खामोशी और आखिरी अलफाजों की अदाकारी में **खरबंदा** और **बी. के. सूद** भी खरे उतरे. सलामती (**बबली नागपाल**) की भूमिका में भी विकास हुआ है. रानो (**सुषमा मेहरा**) के चरित्र-चित्रण में भी गहरे उतरने की कोशिश की गयी. फिर भी समग्र प्रभाव वजनदार नहीं रहा. निर्देशक राजीन्दर नाथ ने कुछ दृश्य-बंधों पर कड़ी मेहनत की किंतु कथाकार की घोषणा में सूना मंच वह भी किसी अर्थ से नहीं भर पाये. लगा जैसे अच्छे निर्देशक का ग़लत उपयोग हुआ हो. इन सब खामियों के बावजूद इस के लोकप्रिय होने की पूरी गुंजाइश है.

स्वामीनाथन्ः एक में अनेक

कला समीक्षक ज. स्वामीनाथन् पिछले कुछ वर्षों से स्वयं भी चित्र रचना करते रहे हैं. यह भी लगता है कि वह कला संबंधी अपने विचारों और अपनी उड़ानों को मन ही मन कुछेक रूपाकारों में तपाते भी रहे हैं—नतीजा उन के नवीनतम ८ चित्र हैं (कुणिक कैमोलेंड कला-दीर्घा) इन चित्रों की रचना उन्होंने पिछले दो महीनों—दिसंबर, '६८-जनवरी, '६९ में की है. स्वामीनाथन् के इन चित्रों में पर्वत-खंड, वृक्ष और चिड़िया—यही तीन चीज़ें हैं, जो अपने ऊपर समय, 'देश' (स्पेस) और काल को झेलती हैं. इन के रूपाकारों या रूपाकृतियों के रंध्र-रंध्र में जैसे सारे घटित-अघटित को समाहित कर लेने का भाव है. स्वामीनाथन् के पर्वत-खंडों को देख कर कवि शमशेर बहादुर सिंह की ये पंक्तियाँ याद आती हैं :

जो कि सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर
सजग हो कर पसरने लगा
आप से आप.

पत्थर आप से आप सजग हो कर पसरने ही नहीं लगता, एक शिला खंड पर्वत से अलग हो कर एक चिड़िया के पाँवों में मानों किसी अदृश्य चुंबक के सहारे लिपट जाता है—चिड़िया, जो बहुत करके मोर ही है, या तो इस पर्वत खंड के साथ-साथ उड़ते हुए आकाश में ठहर गयी है या उसे ले कर उड़ान भरने की तैयारी में है. लेकिन नहीं, स्वामीनाथन के इन चित्रों की कोई रूप-व्याख्या नहीं हो सकती. देश-काल में अस्तित्व की व्यापकता, सौंदर्यता और ग्रहण-शीलता इन चित्रों में ध्वनित है. वृक्ष में पत्तियों-शाखाओं का रूपाकार मछलियाँ रचती हैं. पर्वत के ऊपर से मानों पथरीला त्वचा उतार दी गयी है और जड़ की चेतनता प्रकट हो गयी है. यह आकस्मिक नहीं है कि स्वामीनाथन् के कुछ शिला खंड पत्तों सरीखे लगते हैं.

अगर यह कल्पना कर के चलें कि प्रयुक्त रंगों की कोई परत या त्वचा होती है तो लगता यही है कि स्वामीनाथन नें रंगों से यह परत या त्वचा हटा दी है—इन चित्रों में उन के रंगों का रूप कुछ इतना ही अंतरंग है. स्वामीनाथन्

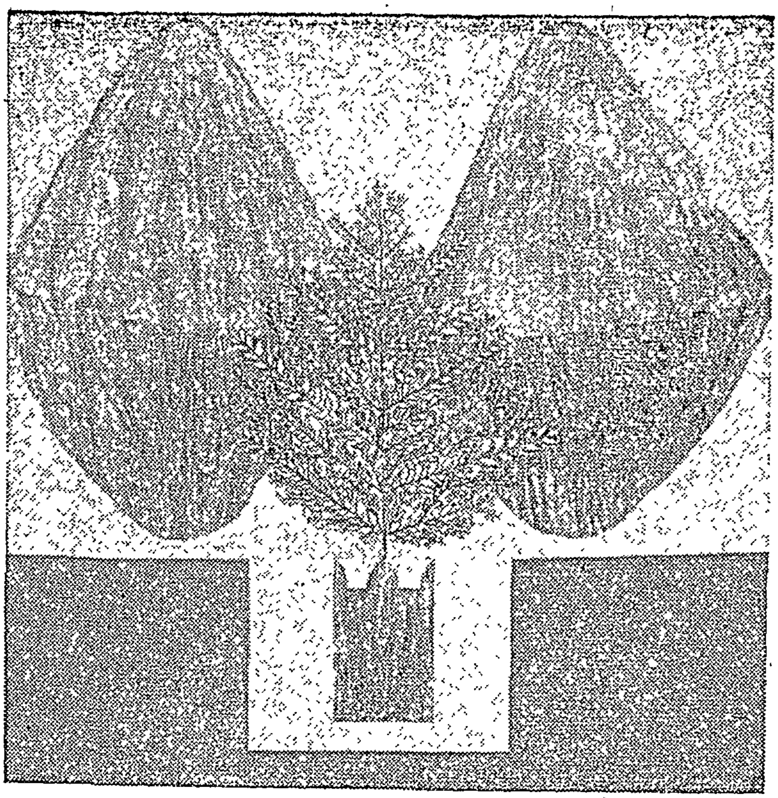

स्वामीनाथन् : 'तुलसी'

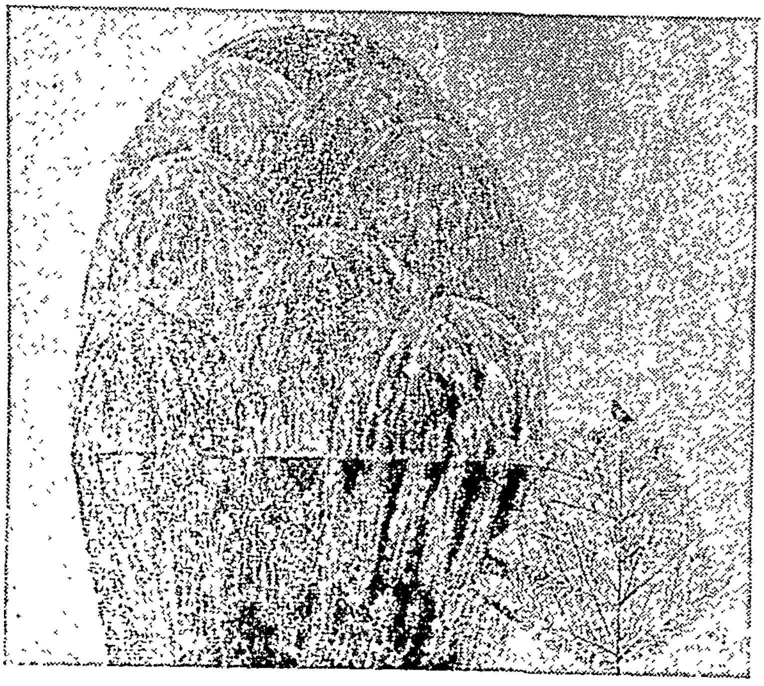

स्वामीनाथन 'निवास'

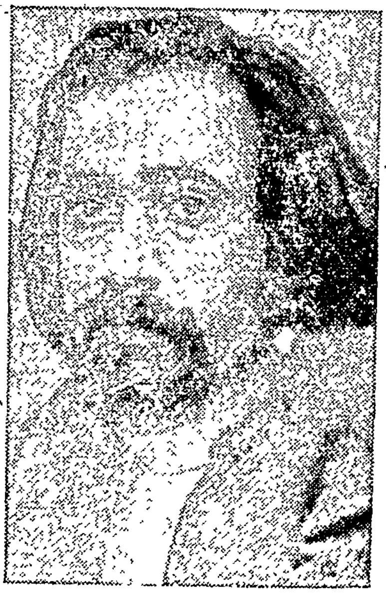

स्वामीनाथन् : उड़ान

के इन चित्रों में गहरी शांति और गहरी संवेदना है—जिस में हल्की से हल्की आवाज़ और हल्की से हल्की छटपटाहट को ग्रहण करने की क्षमता है. धमनियों या पत्तों की धारियों की तरह पर्वत खंडों में उकेरी गयी बारीक लकीरें, तुलसी वृक्ष की प्रत्येक पत्ती को मिली हुई रंग-छायाएँ, दृष्टि की सूक्ष्मता और दृष्टि की संवेदना बताती हैं. इन चित्रों की गहरी शांति और चुप्पी में जैसे तमाम झंझावात और तमाम जल-धाराएँ छुपी हुई हैं. बिना रूपों के वैविध्य में गये कुछ ही रूपों के माध्यम से देश काल और अस्तित्व की समस्याएँ हल करने का, उन के असली और एकात्म रूप में पहुँचने का, ये चित्र महत्त्वाकांक्षी प्रयत्न लगते हैं.

स्वामीनाथन् के इन चित्रों में मौलिकता है और आधुनिक कला के तमाम रूपों का अस्वीकार भी. उन की चित्र शैली का उद्गम उन के विचारों और अनुभूतियों में ही लगता है. यों भारतीय लोक कला की और राजपूत शैली के या जैन लघु चित्रों की छवियों की अदृश्य उपस्थिति इन में झलक सकती है. 'देश' को भरने और उसे रूपायित करने के लिए स्वामीनाथन् ज्यामिति का सहारा लेते हैं—लेकिन बहुत कुछ मौलिक ढंग से. उन के दो-एक चित्रों में सूर्य, कमल, सीढ़ी के परिचित प्रतीक जरूर हैं और ये चित्र तांत्रिक-कला से कुछ प्रभावित भी लगते हैं—इस से तथा राजपूत शैली के लघुचित्रों की 'कविता' से कुछ सीखने का आग्रह स्वामीनाथन् का रहा भी है.

स्वामीनाथन ने चटख रंगों का प्रयोग नहीं किया लेकिन उन के चित्रों में आलोक-गरिमा है.

असंगत और संगत संसार

आधुनिक जीवन की भाग दौड़ में दृष्टि-क्षेत्र की वस्तुएँ ही जैसे अपने पूरे आकार में दृष्टि-मन पर नहीं उभर पातीं तो फिर दृष्टि-क्षेत्र के परे की वस्तुओं की बात ही क्या ! लेकिन आधुनिक जीवन प्रक्रिया की नियति यह भी है कि दृष्टि की और उस से परे की वस्तुएँ मानों किसी 'स्वप्न-कथा' में आ कर एक दूसरी से मिल जाती हैं. इतिहास और अतीत की बातें, वर्तमान यांत्रिक सभ्यता, आदमी की विवशता का और इच्छाओं का जीवन—सब एक-दूसरे से ऐसे बिंदुओं पर टकराते रहते हैं जहाँ वे एक-दूसरे के लिए कतई असंगत जान पड़ते हैं. इसी असंगत और परस्पर विरोधी संसार को **मीलू बनर्जी** (आइफ़ैक्स कला दीर्घा) ने कथ्य और शिल्प, दोनों ही स्तरों पर उभारने की कोशिश की है. वह मानो दृष्टि के लिए अभ्यस्त दृश्यों को उलट-पुलट देते हैं. सड़क और छत की तथा सामने की और पिछली गली की दृष्टि दूरी उन के चित्रों में मिट जाती है. कई बार दूर का दृश्य पास आ जाता है और निकट का दृश्य दूर चला जाता है. यही नहीं, उन के चित्रों में आधुनिक जीवन के तथा इतिहास के किसी काल-विशेष के दृश्य साथ ही उभरते हैं. मीलू बनर्जी के अधिकांश चित्र शहर के अलग-अलग भागों और दृश्यों का 'कोलाज' लगते हैं. उन्होंने अपने चित्रों में रंगों को 'मिटते-से रंगों' के रूप में रखा है—यानी चित्र अपनी आयु के हिसाब से पुराने लगते हैं. मीलू बनर्जी के साथ ही **टूकू नंदी** और **रनजीत राय** ने भी अपने चित्र प्रदर्शित किये थे. टूकू नंदी के वाम-मार्गीय या तंत्र-मंत्र से घिरे लगने वाले चरित्र जैसे *मानव आकृतियों और स्थितियों के लिए* एक विपर्यांतर करते हैं. लेकिन ये त्रास-विरूपित आकृतियां किसी गहरे अर्थ से जुड़ती मालूम नहीं पड़तीं. रनजीत राय विरूपित आकृतियों की संरचनाएँ गढ़ते हैं. कुल मिला कर इन तीनों चित्रकारों में रचना और दृश्य संसार को उलट-पुलट देने का भाव है और वे नितांत नये के लिए आकृति और अमूर्त्त, दोनों ही क्षेत्रों में एक दृश्यांतर उपस्थित करते मालूम होते हैं. लेकिन शिल्प से कथ्य या विषय-वस्तु को उलट-पुलट देना ही काफ़ी नहीं है.

नलिनी दनदास : इन के विपरीत नलिनी दनदास अपने चित्रों में आकृतियों, सैरों, फूलों आदि को उन के सहज रूप में ही चित्रित करती हैं. उन के 'फूल' जो अचल जीवन के रूप में उभर कर भी बड़ी ताज़गी लिये हुए हैं, विशेष रूप से आकर्षक बन पड़े हैं. नलिनी दन दास के रूपाकारों में एक प्रकार की उदग्रता है जो आकृतियों, फूलों, सैरों को इकहरे और छरहरे रूप में उभारती है और उन्हें एक प्रकार के सहज सौंदर्य से भरती है. नलिनी दनदास बहुत परिचित सैरों, फूलों को कैनवास पर प्रियतर रूपों में प्रस्तुत करती हैं. उन के चित्रों की विषय-वस्तु में वैविध्य है और वह जीवन के विविध रूपों को अपनी इस प्रदर्शनी में 'जीने के सुख में' बदल देती हैं.

नलिनी दनदास के कुछ चित्रों में पक्षी फूलों की तरह ही उपस्थित हैं. वह अक्सर कुछ ही रंग-छायाओं से अपने चित्र बुनती हैं लेकिन काफ़ी आत्मीयता से. कुछ फूलों को उन्होंने 'पानी की धारा में बहते लेकिन अपनी जगह स्थित' के रूप में चित्रित किया है—या कि यह हवा ही है जो पानी की किसी धारा में परिवर्तित हो गयी लगती है. मानवीय स्पर्श के साथ प्रकृति की उपस्थिति—नलिनी दनदास के चित्र यही कहते-करते हैं.

महानगर की जटिलता

व्यावसायिक चित्रकार जब चित्रकला की दुनिया में शुद्ध कलाकार के रूप में आता है तब लोग उसे संदेह की दृष्टि से देखते हैं और उस के चित्रों में व्यावसायिकता खोजते है, नहीं मिलती तो आरोपित करते हैं. हरिपाल त्यागी पुस्तकों के आवरण पृष्ठ बनाने में इतनी व्यावसायिक ख्याति प्राप्त कर चुके हैं कि यह खतरा इन्हें झेलना ही पड़ेगा. प्रसन्नता की बात है कि चित्रों में व्यावसायिकता की कहीं कोई छाप नहीं है. महानगर के विविध रूपों और मनस्थितियों का चित्रण उन्होंने इन अमूर्त्त चित्रों में किया है. हल्के रंग उन्हें प्रिय हैं. अपने प्रतीक रूपाकारों में उन्होंने खोजे हैं पर सहजता को हाथ से नहीं निकलने दिया है. महानगर की गलियाँ, दुर्घटनाएँ, रात, शाम और दोपहर के रंग, मकानों और आदमियों की आकृतियों का पारस्परिक टकराव सब उन्होंने बहुत सहज अमूर्त्त शैली में किया है. पर अभी कला के इस रास्ते पर बड़ी लंबी यात्रा खोजनी है, अपने चित्रों का एक पृथक व्यक्तित्व बनाना है और उसे प्रतिष्ठित करना है.

नलिनी दन दास : छरहरे चित्र

हरिपाल त्यागी : महानगर

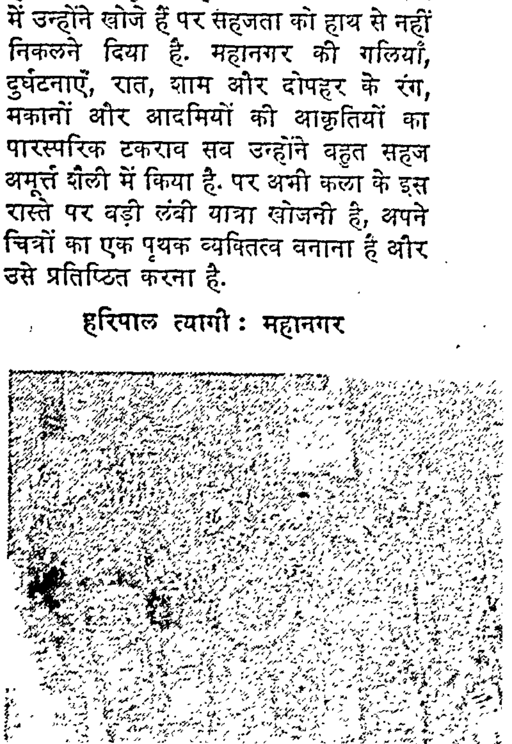

नृत्य

कत्थक समारोह

जयपुर की रवींद्र रंगशाला में कत्थक नृत्य और उस पर विचार-विनिमय करने के लिए पिछले दिनों एक अखिल भारतीय समारोह हुआ, जिस का आयोजन राजस्थान की संगीत नाटक अकादमी और गंधर्व महाविद्यालय ने मिल कर किया था. इस चतुर्दिवसीय कार्यक्रम का उद्घाटन राजस्थान के राज्यपाल ने किया. आठ फ़रवरी की रात को जिन कलाकारों ने नृत्य-प्रदर्शन किये उन में पद्मश्री शम्भू महाराज भी शामिल थे. उन्होंने दर्शकों को हँसाया तो खूब पर यह कहना कठिन है कि वह कोई गंभीर वातावरण, जो उन की गरिमा के अनुकूल हो, उत्पन्न कर पाये. प्रताप और प्रिया पवार काफ़ी मेहनत से नाचे लेकिन ताल की दृष्टि से उन का कार्यक्रम काफ़ी ढीला रहा. इस के विपरीत चरण गिरधर ने ताल और तैयारी का अच्छा काम दिखाया. वह जिस लपक् से नाचते हैं वह सचमुच सराहनीय है. यदि अभिनय पर वह ज़रा और ध्यान दें तो निस्संदेह अच्छी कोटि के कलाकार बन सकते हैं. अगले तीन दिनों में जो नृत्य-प्रदर्शन हुए उन में इन कार्यक्रमों का उल्लेख किया जा सकता है :

जयपुर की शशि साँकला ने **ताल** का काम अच्छा दिखाया इन का 'स्टैमिना' प्रशंसा के योग्य है. किंतु वे **अंग** पर ध्यान नहीं दे पातीं, **चक्करों** में इन के हाथ ठीक नहीं बनते. आचार्य सुंदर प्रसाद जी के शिष्य ओमप्रकाश पवार और प्रकाशचंद ने **तालमाला** के रूप में **पैर** का काम बहुत ही साफ़ किया, लेकिन वे भी अंग पर ध्यान बिलकुल नहीं देते. यहाँ तक कि स्टेज पर खड़े रहने में भी कुछ अजीब से मालूम पड़ते थे. **बनारस घराने** के कृष्णकुमार प्रसिद्ध तबलावादक गुदई महाराज की संगत पर नाचे. मंच पर उन की हमेशा यह कोशिश रही कि एक-आध तैयार बोल ऐसा पढ़ें जो तबलावादक से एकदम न निकले और अपने इस प्रयास में वे कई बार सफल भी हुए. किंतु ऐसा करना संगत की नीति के विरुद्ध है. तबलावादक को, जो कुछ नर्तक करता है, वह पहले से याद तो नहीं होता ; उसे सोच कर ही बजाना पड़ता है. फिर भी यह मानना पड़ेगा कि कृष्ण कुमार का पैर बहुत साफ है. किंतु अंग-सौंदर्य की दृष्टि से इन का भी नृत्य फीका ही था. पूना की रोहिणी भाटे ने अपने नाच में काफ़ी समझ का परिचय दिया, लेकिन इन का भी अंग अगर भद्दा नहीं था तो 'सिमटा' हुआ भी नहीं मालूम पड़ता था. इस के अलावा उन्होंने अनजाने में ही कुछ ऐसी चेष्टाएँ कीं जिस से मामूली दर्शक के लिए भी उनके नृत्य का सौंदर्य काफ़ी कम हो गया. स्टेज पर ही बिना किसी संकोच के (जुकाम की ही वजह से शायद) नाक सिकोड़ना और ऊपरी होंठ के बायें हिस्से को ऊपर चढ़ा कर उन का मुस्कराना ज़रा सस्ता मालूम होता था. लेकिन एक बात ऐसी भी थी जो प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से अच्छी न होते हुए भी उन के ईमानदार कलाकार होने की परिचायक ज़रूर है. संगत करने वालों के साथ पहले से समझौता न होने के कारण उन्होंने कुछ **तोड़े**, भूल सुधारने के आशय से, स्टेज पर कह कर दोहराये.

डा० सुशील कुमार सक्सेना : नयी दृष्टि

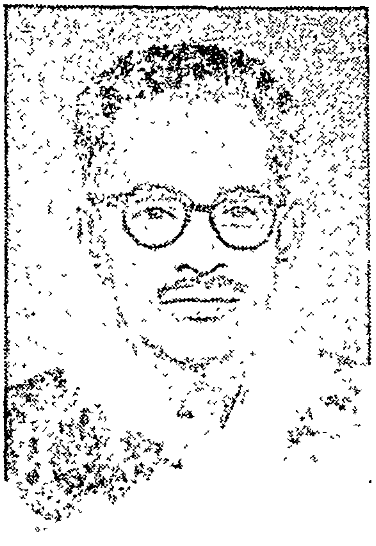

अपना कार्यक्रम सरस्वती-वंदना से आरंभ कर के रानी कर्णा ने कुछ ध्रुपद और धमार प्रस्तुत किये. उन के नाच के साथ राजकुमार का गायन भी काफ़ी अच्छा रहा. रानी कर्णा गंभीर और सुमधुर वातावरण प्रस्तुत करने के अपने यत्न में निश्चित रूप से सफल रहीं. इन के कार्यक्रम में एक विशेष बात यह थी कि श्रृंगार रस की बंदिश भी उन्होंने ऐसी प्रस्तुत की कि उस में सस्तेपन की गंध तक न थी. **सूलताल** में बद्ध वीर रस का ध्रुपद भी अनोखा था, लेकिन इन्हें एकाध चीज़ ऐसी भी प्रस्तुत करनी चाहिए थी जो स्टेज पर उन की अपनी उपज मालूम पड़े. इस में कोई संदेह नहीं कि इन्होंने कत्थक को एक अच्छी दिशा में नया मोड़ देने की कोशिश की है (कत्थकों से व्यक्तिगत रूप से बात करने पर यह मालूम पड़ा कि रानी कर्णा ने अपने नाच में ध्रुपद धमार की जो बंदिशें प्रयोग की हैं उन की रचना दिल्ली विश्वविद्यालय के डॉ० सक्सेना ने की है). वयोवृद्ध कलाकारों के बारे में तो इतना कहना ही काफ़ी होगा कि उन्होंने अपनी अवस्था को देखते हुए स्टेज पर आश्चर्यजनक स्फूर्ति और आवेश का प्रदर्शन किया. यहाँ इशारा लच्छू महाराज, हनुमान प्रसाद और गौरीशंकर जी की ओर है. लच्छू महाराज ने स्टेज पर जो कुछ काम किया वह बहुत सुथरा था.

विचार-गोष्ठी का कार्यक्रम दिन के समय चलता था जिस की अध्यक्षता संगीत नाटक अकादमी के मोहन खोकर ने की. कुल मिला कर चार ही निबंध पाठ हुए किंतु उन पर बहस काफ़ी हुई. पहली वार्त्ता डॉ. सुशील कुमार सक्सेना की थी. विषय था कत्थक की शिक्षा

चरण गिरधर : जयपुर घराना

और दिशा-निर्देश. उन का कथन था कि नृत्य में, संगीत के हमारे पुराने आदर्श के अनुसार, गायन तथा वादन का समन्वय होना चाहिए हालाँकि इस का विचार हमेशा रहना चाहिए कि प्रमुखता नृत्य की ही हो. उन के अनुसार कत्थक नृत्य में जिन ध्रुपद, धमार व तरानों का प्रयोग हो वे **ताल प्रधान** होने चाहिए. शब्द अर्थ और ताल की गति में समन्वय होना चाहिए और उन के द्वारा कलाकार को **अभिनय** और **भाव-भंगिमा** के प्रदर्शन का पूरा अवसर मिलना चाहिए. इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि **आमद** का स्वरूप न बिगड़ने पाये और उचित **वातावरण** पैदा हो सके. अपनी बात को समझाने के लिए डॉ. सक्सेना ने गा कर कुछ बंदिश प्रस्तुत कीं. लेकिन क्या पूछा जा सकता है कि उन्होंने ध्रुपदों में **अभोग की तानें** क्यों नहीं रिकार्ड होने दीं ? क्या वे भी खानदानी कलाकारों की तरह विद्या को छिपाने में विश्वास रखते हैं ? श्रीमती सुनैना, श्रीमती रोहिणी भाटे ने अभिनय पर और श्री बाबूलाल पाटनी ने कत्थक के कुछ बुनियादी सवालों पर 'पेपर' पढ़े. श्री पाटनी का निबंध काफ़ी विचारोत्तेजक था. उस पर अच्छी बहस हुई. अंत में अध्यक्ष के आग्रह पर डॉ. सक्सेना ने गोष्ठी का सारांश प्रस्तुत किया. जहाँ तक ठाठ के स्वरूप का प्रश्न है सभी उपस्थित कत्थकों ने खुले रूप से उन का अनुमोदन किया. निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि जयपुर का यह समारोह कत्थक के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है. पहली बार कत्थक के अभिभावकों और जानकारों ने आपस में मिल कर विचारों का आदान-प्रदान किया और मतभेद एवं वैमनस्य की उस परंपरा को तोड़ने की कोशिश की है जिस ने नाट्य की इस विद्या को सदियों से जकड़ रखा है, हालाँकि अधिवेशन के मध्य में ही उस की असमय समाप्ति की संभावना के क्षण भी कई बार उपस्थित हुए. समारोह की दूसरी विशिष्ट उपलब्धि है कत्थक के घिसे-पिटे, पुराने, मुग़लिया एवं राजदरबारी जामे को हटा कर उस में नये आयामों और नयी संभावनाओं को खोजने की चेष्टा करना.

परचून

रोनी सूरतें

तुम कितनी सुंदर लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास

धर्मवीर भारती की यह पंक्तियाँ सही लगती हैं क्योंकि हाल ही में स्त्रियों के बारे में बी. बी. सी. से एक भाषण प्रसारित करते हुए के. विदर्स ने कहा कि कुछ खुशनसीब स्त्रियाँ हैं जो बड़ी नाज़-ओ-अदा के साथ रो सकती हैं और रोने में वे निहायत ही सुंदर दिखाई देती हैं. सब से पहले उन की ठोड़ी थोड़ी-सी हिलती है, फिर उन के ओंठ फड़कते हैं और अंततः मोती सदृश स्वच्छ आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें आँखों से निकल कर बड़े रोमानी ढंग से गालों पर ढुलक पड़ती हैं. अपने बारे में के. विदर्स ने बताया कि वह इन खुशनसीब महिलाओं में से नहीं हैं. रोने के बाद उन की तस्वीर कुछ इस प्रकार होती है—खून-सी लाल बड़ी-बड़ी डरावनी आँखें, जो लगता है, किसी को निगल जाने के लिए लालायित हैं; सूजी हुई पलकें और सूजा हुआ ऊपर का ओंठ, धब्बों से सजा हुआ चेहरा और बहती, सुड़सुड़ाती लाल नाक.

सूझ-बूझ

मैसाचुसेट्स (अमेरिका) की तकनीकी संस्था के वैज्ञानिक एक ऐसी घड़ी बनाने के फ़िराक में हैं जो ६०० वर्षों में एक सेकेंड पीछे हो सकेगी. आज की परिस्थितियों को देखते हुए लगता है कि इन वैज्ञानिकों ने इस घड़ी को बनाने के काम को ग़लत प्राथमिकता दे दी है. आज का व्यक्ति वैज्ञानिक से आशा करेगा कि वह अपना उपजाऊ दिमाग़ अन्य महत्त्वपूर्ण खोजों में लगाये. मसलन वह गठिया रोग को दबाने, साधारण नज़ला-ज़ुकाम से नजात पाने, खाद्य में पौष्टिक गुणों की कमी दूर करने या फिर आज के मानव की झगड़ालू प्रवृत्ति का दमन करने के उपाय खोजने का प्रयास करे.

नयी आचार संहिता

पूर्वी जर्मनी के शासकों ने, जहाँ इस समय रूसी संरक्षण में कम्युनिस्ट शासन है, अपने सैनिकों के लिए एक आचार संहिता प्रकाशित की है. इस पुस्तिका में कहा गया है कि सैनिकों को किसी भी दशा में शासन के संबंध में कोई मज़ाक नहीं करना चाहिए. सैनिक जीवन के बारे में जो नयी शर्तें लगायी गयी हैं उन में सब से दिलचस्प है कि किसी भी सैनिक को सीधे बोतल से शराब नहीं पीनी चाहिए. इस अपराध को बिल न अदा करने के समान ही अवांछनीय बताया गया है. सैनिक किसी स्त्री के प्रति प्रेम या आदर-भाव जताने के लिए केवल उस के हाथ चूम सकता है, जो कि बहादुराना शिष्टता का प्रतीक माना गया है.

समाचारपत्र-पंजीयन (केन्द्रीय) नियम १९५६ के आठवें नियम (संशोधित) के साथ पठित प्रेस तथा पुस्तक पंजीयन अधिनियम की धारा १९-'डी' की उपधारा 'बी' के अन्तर्गत अपेक्षित "दिनमान" नामक समाचारपत्र के सम्बन्धित स्वामित्व और अन्य बातों का ब्यौरा.

प्रपत्र ४
(नियम ८ देखें)

१. प्रकाशन का स्थान	नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६
२. प्रकाशन की आवर्तता	साप्ताहिक (प्रत्येक रविवार)
३. मुद्रक का नाम	श्री जे. एम. डिसूज़ा, स्वत्वाधिकारी बैनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के लिए
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	४, तिलक मार्ग, नयी दिल्ली
प्रकाशक का नाम	श्री जे. एम. डिसूज़ा, स्वत्वाधिकारी बैनेट, कोलमैन एण्ड कम्पनी लिमिटेड के लिए
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	४, तिलक मार्ग, नयी दिल्ली
५. सम्पादक का नाम	श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	डी १/२३, सत्य मार्ग, चाणक्यपुरी, नयी दिल्ली-११

६. उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचारपत्र के मालिक और कुल चुकता पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक हिस्सेदार या भागीदार हैं.

हिस्सेदार

(१) भारत निधि लिमिटेड, ५, पार्लियामेंट स्ट्रीट, नयी दिल्ली
(२) मैसर्स साहू जैन लिमिटेड, ११, क्लाइव रो, कलकत्ता-१
(३) जयपुर उद्योग लिमिटेड, सवाई माधोपुर (राजस्थान)
(४) मैसर्स सोन वैली पोर्टलैण्ड सिमेंट कम्पनी लि., ११ क्लाइव रो, कलकत्ता-१
(५) इलाहाबाद बैंक नामीनीज़ लि., १४, इंडिया एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता-१
(६) श्री अशोक कुमार जैन, ११, क्लाइव रो, कलकत्ता-१
(७) अशोक विनियोग लिमिटेड, १-बी, ओल्ड पोस्ट आफ़िस स्ट्रीट, कलकत्ता

मैं, जे. एम. डिसूज़ा, घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं।

जे. एम. डिसूज़ा
प्रकाशक

दिनांक : २ मार्च, १९६९

नये उद्योग की योजना बना रहे हैं?

गुजरात

भारत का विशाल तेल सम्पन्न औद्योगिक क्षेत्र

आपका स्वागत करता है और प्रस्तुत करता है

- विशाल खनिज, पैट्रोकैमिकल, कृषि एवं समुद्रीय साधन
- ऊर्जा सघन उद्योगों के लिए विशेष दरें तथा ऊर्जा सहायता
- सड़क, रेल व समुद्री मार्ग द्वारा संचार का समन्वित जाल
- औद्योगिक क्षेत्रों एवं एस्टेट्स का जाल
- अत्यंत सस्ती दर पर औद्योगिक जल
- वित्तीय सहायता तथा अंडर राइटिंग
- करों और चुंगियों से छूट
- प्राविधिक परामर्श
- कुशल अनुशासित श्रमिक

—: विवरण के लिए सम्पर्क करें :—

उद्योग आयुक्त,
गुजरात राज्य,
अहमदावाद–१६

सूचना निदेशक,
सचिवालय,
अहमदावाद

सम्पर्क अधिकारी (उद्योग),
धनराज महल,
अपोलो बंदर, बंबई–१

आफीसर-इंचार्ज,
गुजरात सूचना केन्द्र,
७२, जनपथ, नई दिल्ली–१

KEVENTER'S

3 star products

* CONDENSED MILK
  healthful, sweetened milk
* PASTEURISED BUTTER
  for tasty breakfast
* PURE GHEE
  for wholesome flavoury food

EDW. KEVENTER (SUCCESSORS) PVT. LTD. Sardar Patel Road, New Delhi

एडवर्ड केवेन्टर (सक्सेसर्स) प्रा० लि०, सरदार पटेल रोड, नई दिल्ली

होली की
बहार

परिवार
के लिये
उपहार

गोपी
वनस्पति
जीवन

स्वच्छ और विशुद्ध
वनस्पति तेल

प्राग वनस्पति प्रोडक्ट्स, अलीगढ़

(INTERADS)

नेठ, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

साप्ताहिक

५० पैसे

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

बजट का बोझ

९ मार्च, १९६९

अनमोल भेंट

आज वेतन का दिन है। घर आते ही मेरे पति ने एक पार्सल सुनीता के हाथों में थमा दिया।

मनपसंद मिठाइयाँ और खिलौने देखकर वह बल्लियों उछली। ठीक उसी समय मेरी नज़र प्रीमियम–नोटिस पर पड़ी। उस नोटिस ने मुझे सचेत किया। मैं सोचने लगी कि हम बीमे पर कितना कम खर्च करते हैं और ऐसी–वैसी चीज़ों पर ज़्यादा।

मेरा मन अकस्मात् किसी विचित्र भय से काँप उठा आज मुन्नी की प्रसन्नता के लिए न जाने कितना पैसा खर्च हो रहा है किन्तु उसके भविष्य के लिए भी क्या हमने कोई उचित प्रबन्ध कर रखा है? हमारे इतने बीमे से क्या होगा? अगर हम कल न रहें तो...कल बच्ची का क्या होगा? फ़ालतू चीज़ों को खरीदने के बजाय यदि हम बीमे के प्रीमियम के लिए अधिक रक़म बचा दें तो... बस, इस विचार ने मेरी आँखें खोलीं और मैंने मन–ही–मन प्रतिज्ञा कर ली, "हम रहें या न रहें, बेटी! तुम्हें एक अनमोल भेंट दी जाएगी जिससे तुम सुरक्षित रहोगी

आज भी और आनेवाले कल के लिए भी।

जीवन बीमा सुरक्षा का बेजोड़ साधन है।

ASP/LIC/Z-54

मत और सम्मत

मध्यावधि चुनाव—मोहभंग की विडंबना : हाल ही के मध्यावधि चुनाव-परिणामों से यह बात और अधिक पुष्ट हो चुकी है कि आम मतदाता का रुझान यथास्थितिवाद के विरुद्ध और परिवर्तन की ओर झुकता चला जा रहा है. जनता ग़ैर-कांग्रेसवाद की पक्षधारा है और विभिन्न राजनैतिक दलों का आपसी ध्रुवीकरण चाहती है, पर राजनीतिक हैं कि अपने दल से असंतुष्ट हो कर, उस दल से छिटक कर बाहर निकल जाते हैं और फटाक से क्षेत्रीयता, जातिवाद और सीमित स्वार्थवश नये दल के गठन का हौवा खड़ा कर क्षमाशील भोली जनता के गाल पर करारा थप्पड़ मारते हैं.

—विज्ञान मोदी, जोधपुर

इस चुनाव में संसपा की जाति-नीति और कम्युनिस्ट पार्टी की वर्ग-संघर्ष-नीति को गहरा धक्का लगा है. यह सोचना कि अवर्ण जातियों को चौधरी चरणसिंह ने अपने में मिला लिया आंशिक सत्य है. यह कहना भी ग़लत है कि जनसंघ समाप्त हो गया. परंपरावादी और यथास्थिति की शक्तियाँ अपने लिए एक दल रखेंगी और उन के लिए जनसंघ उपयुक्त मंच है. कांग्रेस के साथ सवर्ण जातियाँ अधिक जुड़ी हैं. प्रतिक्रियास्वरूप अवर्ण जातियों ने भारतीय क्रांति दल को अपनाया. संसपा इस होड़ में पीछे रह गयी, क्यों कि वह न केवल आर्थिक क्रांतिकारिता चाहती है वरन् सामाजिक क्रांति भी चाहती है. मुझे दीखता है कि अवर्ण और सवर्ण के बीच संघर्ष तीव्र होगा.

प्रगतिशील और क्रांतिकारिता में विश्वास करने वाले दल तभी जीवित रह सकते हैं जब कि वे चौधरी चरणसिंह की दकियानूसी नीति से अपने को बचायें और जनसंघ तथा कांग्रेस की प्रतिगामी नीतियों के ख़िलाफ़ पुरअमन बग़ावत करें.

—अध्यात्म त्रिपाठी, वाराणसी

सुना है बिहार में जनसंघ कांग्रेस से मिल कर सरकार बनायेगा. सत्ता-मोह की हद हो गयी. कहीं स्वतंत्र पार्टी से मिलने की बात चल रही है, कहीं थोड़े ही दिनों पूर्व साम्यवादियों के साथ थे, कहीं अकाली दल, कहीं कांग्रेस के साथ—समझ में नहीं आता यह कैसी नीति है. शायद इसे ही सत्ता-लोलुपता की पराकाष्ठा कहते हैं. भाषा के प्रश्न पर भी पंजाब की सरकारी भाषा पंजाबी रहेगी. वहाँ जनसंघ हिंदी को द्वितीय स्थान भी नहीं दिलाना चाहता. ग़ैर-कांग्रेसवाद में भी विश्वास नहीं है—किसी तरह सत्ता मिलनी चाहिए.

भविष्य में जनसंघ किसी दूसरे लुभावने नारे की तलाश करेगा, जो आने वाले वर्षों में उसे मिल सकेगा या नहीं, इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता.

—अरविंद कुमार, पटना

मध्यावधि चुनाव के संबंध में दिनमान की भविष्यवाणी तथा संकेत सच निकले. उत्तर-प्रदेश की जनता ने कम्युनिस्ट पार्टी और जनसंघ को जान लिया है तथा संसपा के नेताओं को यह संकेत दिया है कि गड़बड़ी तथा ग़लत आचरण करने वाला समाजवादी समाप्त होगा. समाजवाद अमर है. जनेश्वर मिश्र की जीत अभावग्रस्त जनता की एकता का आह्वान है.

—रत्नकुमार रत्नाकर, गया

बिहार में मध्यावधि चुनाव के फलस्वरूप छोटा नागपुर तथा संथाल परगना में 'हल झारखंड' जैसे सांप्रदायिक दल को जो सफलता मिली है उस से इस क्षेत्र में (ख़ास कर संथाल परगना) प्रांतीयता की भावना बहुत बढ़ गयी है. यह दल अलग प्रांत तथा अलग विधानसभा की माँग करता है.

—शिवनारायण साह, दुमका, संथाल परगना

अब खाली राग अलापने का जनता पर कोई असर नहीं होगा, जिस का प्रत्यक्ष उदाहरण है उत्तरप्रदेश व पंजाब में जनसंघ की हार. यदि जनसंघ आगे आना चाहता है तो सर्वप्रथम वह जहाँ सत्तारूढ़ है वहाँ कुछ जनता के हित में करके दिखाये. फूलपुर में श्री के. डी. मालवीय की हार इंदिरा गांधी की अयोग्यता ही का परिचायक है.

—नरेशप्रसाद दीक्षित 'भोला', जबलपुर

संसपा, जनसंघ व बी. के. डी. में बहुत अंतर है, क्यों कि संसपा पिछड़े वर्ग, भूमिहीनों, ग़रीबों व छात्रों की समस्याओं के लिए संघर्ष करती रही है और इस के कार्यकर्त्ता सदा जेल जाने से पीछे नहीं हटे. इस सब के बाद भी संसपा अधिक लोकप्रियता प्राप्त क्यों नहीं कर सकी है ?

मुझे इन सब का एक ही कारण दिखायी देता है कि दल में ऐसे नेता पनपने लगे हैं जो दल के विधान व समाजवादी विचार-धारा से दूर पहलवानी की राजनीति में विश्वास करते हैं और दूसरों के विचारों को आगे बढ़ाने में रुकावट डालते हैं.

—कुंदनसिंह, हल्द्वानी

शिवसेना : पहले तो कांग्रेस ने चुनाव में जीतने के लिए शिवसेना को बनाया और शिव-सेना ने कांग्रेस की जीत में बहुत सहायता की और अब शिवसेना कांग्रेस पर आरोप लगाती है, क्यों कि इस साँप को बाहर निकालने का काम कांग्रेस ने किया और तमाशा बाल ठाकरे साहब ने दिखाया. फिर अपना उल्लू सीधा करने के लिए इस भौंडी राजनीति का दोष जनता पर मढ़ दिया.

—विजयकुमार चंदा, बंबई

उपद्रव : बंबई के हाल के प्रांतीयतावादी उपद्रव अत्यंत निंदनीय हैं. विधि की विडंबना है कि एक राष्ट्र के दो प्रांतों को इस तरह विभाजित करने की कोशिश हो रही है जैसे कि दो राष्ट्रों का होता है.

—बलराज बजाज, नागपुर-४

संसपा : हाल ही में श्री किशन पटनायक एवं डॉ. रमा मित्र जैसे सच्चे समाजवादी नेताओं के इस्तीफ़े से स्थिति और भी स्पष्ट हो गयी है. क्या डॉ. लोहिया के मरने के बाद संसपाई नेताओं की यही उन के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है ? आज संसपा ही एक ऐसी पार्टी है जिस से देश कुछ चाह रहा है. संसपाई नेताओं के स तरह के व्यवहार से बुद्धिजीवी-वर्ग क्षुब्ध हो गया है. व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए पार्टी की हत्या करना घोर अपराध है.

—कपिलदेवप्रसाद सिंह 'कपिल', सिंदरी

अर्थ विशेषांक : दिनमान का 'अर्थ विशेषांक' देखा. प्रतिरक्षा-व्यय के बारे में भरपूर जान-कारी देने के लिए धन्यवाद. विश्वअर्थ-व्यवस्था का लेखाजोखा सुंदर है. यदि सार्व-जनिक उद्योगों के बारे में थोड़ी और सामग्री दी जाती तो अच्छा रहता.

इस बार संपादकीय भी पढ़ने को मिला. आज की परिस्थिति के बारे में ये कॉलम सोचने-समझने को काफ़ी विवश करते हैं.

चुनाव-परिणामों के बारे में पृष्ठ १८ से २४ तक दी गयी सामग्री विशेष रूप से पठ-नीय रही.

—राजेंद्रकुमार छावड़ा, जयपुर

चेलापति राव : 'त्वदीयं वस्तु गोविंदम्' के चेलापति राव प्रशंसा के पात्र हैं. मुझे

आप फ़रमाते हैं—

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

'ठीक है, हमें २० वर्ष लग गये हैं. लेकिन यह प्रायोजना देश के लिए इतना महत्त्वपूर्ण है कि हम जल्दी में कोई निर्णय नहीं ले सकते.'

ऐसा लगता है कि महापंडित राहुल सांकृत्यायन को जिस ढंग से सुशोभित किया गया वह कम कष्टकर नहीं था.

—सी. सी. शर्मा, कलकत्ता

व्याख्यान-माला : प्रयाग गांधी शताब्दी व्याख्यान-माला की कटु आलोचना (क्या इस से अधिक कटु संभव न थी ?) पढ़ कर जितनी खुशी मुझे हुई शायद ही किसी को हुई होगी. तरस उन लोगों पर आ रहा था जो अपने आप को हिंदी से जोड़ कर भी अंग्रेज़ी पर अधिकार (?) रखने का ढिंढोरा पीटते फिरते हैं. ऐसे ही बुद्धिजीवियों का वहाँ बाहुल्य था, कि एक तरफ़ श्री गिरि अपनी 'स्पीच' पढ़ रहे थे और दूसरी तरफ़ ये बुद्धिजीवी उस स्पीच (जो छपवा कर बाँट दी गयी थी) के पन्ने पलट रहे थे कि कब खत्म हो.

—विष्णुमोहन बेजल, प्रयाग

शिक्षा-नीति : भारत की शिक्षा-नीति ही दो वर्गों की बनी है. एक वर्ग में देश के पूंजीपतियों, बड़े-बड़े सरकारी अफ़सरों और बड़े-बड़े नेताओं के लड़के शिक्षा पाते हैं. सेंट ज़ेवियर्स, संत पाल, किंडरगार्टन, मांटेसरी पद्धति इसी वर्ग में आते हैं. दूसरे वर्ग में देश के भूखे, नंगे मज़दूरों और किसानों के बेटे शिक्षा पाते हैं.

—शक्तिनाथ झा 'अमीन', महना-बरौनी

पिछले सप्ताह

(२० फ़रवरी से २६ फ़रवरी, १९६९ तक)

देश

२० **फ़रवरी** : अजय मुखर्जी के नेता चुने जाने से पश्चिम बंगाल संयुक्त मोर्चा का संकट समाप्त.

२१ **फ़रवरी** : इंडोनेसिया के विदेशमंत्री डॉ० अदम मलिक और विदेशमंत्री दिनेशसिंह की बातचीत.

२२ **फ़रवरी** : कोहिमा सेमा मंत्रिमंडल द्वारा शपथ-ग्रहण. नयी दिल्ली में प्रो० फ्रेड हॉयल द्वारा १,००० पांउड का कलिंग पुरस्कार ग्रहण.

२३ **फ़रवरी** : डॉ० वृंदावनलाल वर्मा का झाँसी में देहांत.

२४ **फ़रवरी** : राजस्थान के राज्यपाल सरदार हुकमसिंह द्वारा विधानमंडल के बजट अधिवेशन का उद्घाटन.

२५ **फ़रवरी** : पश्चिम बंगाल में अजय मुखर्जी के नेतृत्व में संयुक्त मोर्चा द्वारा शपथ-ग्रहण. चंद्रभानु गुप्त उत्तरप्रदेश कांग्रेस विधानमंडल दल के सर्वसम्मत नेता निर्वाचित.

२६ **फ़रवरी** : उत्तरप्रदेश में चंद्रभानु गुप्त के मंत्रिमंडल तथा बिहार में हरिहरसिंह द्वारा शपथ-ग्रहण.

विदेश

२० **फ़रवरी** : ईराक में इस्राइल के लिए जासूसी करने के अपराध में सात और व्यक्तियों को फाँसी. ढाका षड्यंत्र कांड के प्रमुख अभियुक्त मुजीबुर्रहमान पेरोल पर रिहा.

२१ **फ़रवरी** : पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब खाँ द्वारा पुनः चुनाव न लड़ने के निर्णय की घोषणा.

२२ **फ़रवरी** : राष्ट्रपति अय्यूब द्वारा अगरताला षड्यंत्र मामला वापस लेने से सभी अभियुक्त रिहा.

२३ **फ़रवरी** : वीएतकाङ छापामारों द्वारा दक्षिण वीएतनाम पर भारी बमबारी. अमेरिका के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन की यरोप यात्रा शुरू.

२४ **फ़रवरी** : इस्राइली सैनिकों द्वारा सीरिया पर बमबारी. पाकिस्तान के छात्रों से राजनीतिक आतंकित.

२५ **फ़रवरी** : संयुक्त अरब गणराज्य में आपत्कालीन स्थिति लागू.

२६ **फ़रवरी** : इस्राइल के प्रधानमंत्री लेवी एश्कोल का हृदय-गति रुक जाने से देहांत. रावलपिंडी में अय्यूब और विरोधी पार्टियों की बातचीत १० मार्च तक स्थगित.

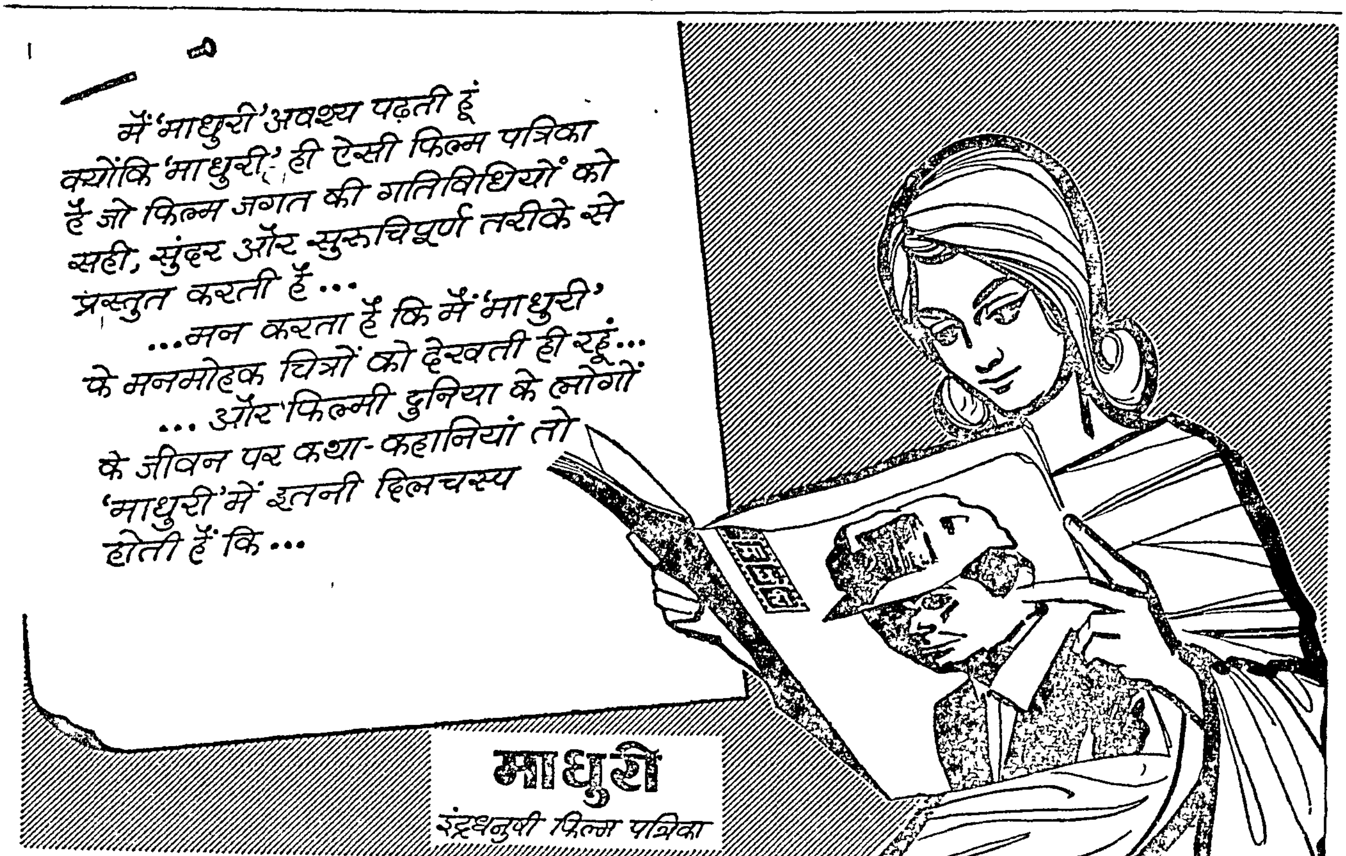

पत्रकार संसद

अय्यूब बदले तो देश बदले

पाकिस्तान के तेज़ी से वदलते हालातों पर सारी दुनिया की आँखें लगी हुई हैं. वहाँ हर रोज़ परिवर्तन हो रहे हैं और उन के आधार पर पाकिस्तान के राजनैतिक भविष्य के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही हैं. ब्रितानी पत्र **इकॉनॉमिस्ट** ने अपने ताज़ा अंक में राष्ट्रपति अय्यूब के सैनिक समर्थन पर भरोसा रखने की बात कही है. अय्यूब के राष्ट्रपति-पद के चुनाव के लिए खड़े न होने की घोषणा विरोधी पक्ष के साथ बातचीत शुरू होने के समाचारों से पहले पत्र ने अपनी समीक्षा में कहा :

पाकिस्तान के भूतपूर्व विदेशमंत्री श्री जुल्फ़िकार अली भुट्टो ने तीन महीने की क़ैद से छुटकारा पा कर कराची पहुँचते ही हंगामा मचा दिया. उन के समर्थकों द्वारा जोश के साथ उन का स्वागत करने में अय्यूब के समर्थकों और उन के चाहने वालों में मुठभेड़ें भी हुई और पुलिस हस्तक्षेप में पाँच-छह जानें भी गयीं. इस युवा ज़मींदार (भुट्टो) ने एक वार फिर यह सावित कर दिया कि पश्चिम पाकिस्तान के युवा वामपक्ष की ओर से वस उसे ही वोलने का अधिकार है.

"उधर राष्ट्रपति अय्यूब, जो आतंक फैला कर राज करने वाले लोगों में से तो नहीं हैं, वरावर सोच रहे हैं कि एक सियासी नेता के नाते उन्होंने जो जोड़-तोड़ और तरकीवें अव तक सीखी हैं वे काम नहीं आ रही हैं. चार साल पुरानी संकटकालीन स्थिति भी उन्होंने समाप्त कर दी. शेख मुजीवुर्रहमान और अन्य अभियुक्तों के खिलाफ़ ढाका षडयंत्र केस भी उन्होंने वापिस ले लिया और विरोधी पक्ष के नेताओं को वातचीत का वुलावा भी भेज दिया गया (अव तो राष्ट्रपति-पद का चुनाव न लड़ने के अपने इरादे का भी ऐलान कर दिया). पर विरोध अभी समाप्त नहीं हुआ है.

पाकिस्तान का विरोध-पक्ष अपनी वढ़ती हुई ताक़त को देख कर इस समय खुद ताज्जुव में है, क्यों कि उसे उम्मीद नहीं थी कि विरोध-पक्ष एक हो कर यह शक्ल अख्तियार कर लेगा. पिछले राष्ट्रपति-चुनावों में अय्यूब विरोध-पक्ष को नीचा भी दिखा चुके थे, लेकिन आज विरोध-पक्ष के जवड़े खुल चुके हैं. पर सेना के जवड़े भी वहुत मज़वू़त हैं. अव देखना यह है कि सेना अपने जवड़ों का इस्तेमाल अय्यूब के विना या अय्यूब के रहते करेगी भी या नहीं.'

एक और ब्रितानी पत्र **गार्डियन** ने एशिया में लोकतंत्र के भविष्य का विश्लेषण करते हुए पाकिस्तान की हाल ही की घटनाओं का उल्लेख किया है. पत्र ने इस संदर्भ में तानाशाही प्रणाली पर ही आघात किया है और एशियाई देशों में भारतीय लोकतंत्र को ही स्थिर वताया है. पत्र का कहना है :

पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब को अव तानाशाही प्रणाली के परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं. वह सुधार लागू करें या फिर गद्दी छोड़ें. अव तक की घटनाओं से संकेत यही मिल रहे हैं कि अपनी सत्ता वनाये रखने के लिए अव वह सेना पर निर्भर नहीं रह सकते. वैसे उन्होंने अव तक जो क़दम उठाये हैं उन से लगता है उन में यथार्थ दृष्टि और गतिशीलता दोनों ही हैं. अभी यह नहीं कहा जा सकता कि 'वुनियादी लोकतंत्र' को उन्होंने समझा भी है या नहीं. इस वुनियादी लोकतंत्र के अनुसार प्रतिवंध उचित हो सकते हैं, पर छात्र, वकील और पत्रकार जैसा शहरी वर्ग ऐसे प्रतिवंधों को वर्दाश्त नहीं कर सकता. पाकिस्तान में वहुदलीय प्रथा क्या आ जायेगी ? अभी इस वारे में कुछ कहना वहुत कठिन है क्यों कि वहाँ की राजनीति में जड़ता आये काफ़ी अरसा हो गया लेकिन इस जड़ता के खत्म होने का अवसर भी यही है.

अमेरिकी पत्र **क्रिश्चेन सायस म निटर** ने राष्ट्रपति अय्यूब की तुलना फ्रांस के जनरल द गॉल से की है. पत्र की राय में:

फ़्रांस के जनरल द गॉल की तरह पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब ने लगभग दस वर्ष तक अपने देश का शासन चलाया और अपने देश को स्थिरता तथा आर्थिक विकास के नज़दीक ला खड़ा किया. उन्होंने जब शासन की वाग-डोर संभाली तव राजनेताओं ने उन के देश की स्थिति को पेचीदा वना कर छोड़ दिया था. जनरल द गॉल की तरह राष्ट्रपति अय्यूब भी सेना के ही हैं. उन में अहंकार और अधिकार की भावना स्वाभाविक ही है. फ़्रांसीसी राष्ट्रपति का मुक़ावला कर के देखा जाये तो यह मानना ही पड़ेगा कि अखवारों और राजनैतिक आलोचकों को स्वतंत्रता देने में राष्ट्रपति अय्यूब जितना आगे वढ़े हैं उतना शायद फ़्रांसीसी राष्ट्रपति नहीं वढ़े. अव फ्रांस की तरह पाकिस्तान में विशेष कर युवा वर्ग में विरोध और असंतोष की एक लहर आयी हुई है.

राष्ट्रपति अय्यूब के विरोधियों की सव से वड़ी कमज़ोरी यह रही है कि अय्यूब के विरोध में ही वे एक-दूसरे से वँधे रह सकते हैं. यह विरोध खत्म होते ही उन्हें एक रखने वाली कोई और शक्ति नहीं है. लोगों को याद होगा १९६३ के चुनाव में जव अय्यूब के सभी विरो- फ़ातिमा जिन्ना की उम्मीदवारी पर सहमत हु- थे तो उन्हें मार्शल अय्यूब से वहुत वुरी तर- मार खानी पड़ी थी. इस वार विरोध ने मार्शल अय्यूब को वचाव की स्थिति में खड़ा किया है. विरोध जितना उग्र हो रहा राष्ट्रपति अय्यूब उतना ही अधिक समझौ- की भावना से काम ले रहे हैं. जो भी हो इस समय अय्यूब को अपने राष्ट्रपति काल क- सव से गंभीर चुनौती का सामना करना रहा है.

सिगरेट संकट में

सिगरेट पश्चिम की देन है और आ- पश्चिम उस से विमुख हो रहा है. ...श्चिम यूरोप के सर्वाधिक समृद्धिशाली देश ...रिका में सिगरेट को ले कर एक तूफ़- उठ खड़ा हुआ है. अव यह तूफ़ान जो- पकड़ता जा रहा है. सिगरेट की आद- लोगों को तव से अखरने लगी जव अमेरिकी सर्जन जनरल की १९६४ में ... रिपोर्ट प्रकाशित हुई कि सिगरेट मृ- को अधिक निकट लाती है. सर्जन जनरल अमेरिकी स्वास्थ्य सेवा, स्वास्थ्य शिक्ष- तथा लोककल्याण विभाग ने इस भी डरावने प्रतिवेदन छापे, जिन में कह गया था कि वहुत अधिक सिगरेट पी- वाला विल्कुल सिगरेट न पीने वाले आठ वर्ष जल्दी मर जाता है. इस सम- अमेरिका में वहुचर्चित सिगरेट निषेध आंदोलन पर प्रमुख अमेरिकी पत्र ...ाइ ने यह समीक्षा प्रकाशित की :—

अमेरिकी सर्जन जनरल की १९६४ क- रिपोर्ट के वाद से देश की सिगरेट नम- कंपनियाँ वहुत अधिक दवाव में हैं. १९६५ अमेरिकी संसद् ने आदेश दिया था कि सिगरे-

सिगरेट व्यवसाय पर क्रि-चेन सायंस म.निट में ल पेली का व्यंग्य

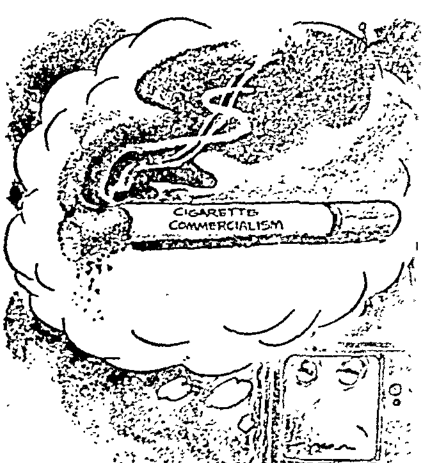

पैकेटों पर यह चेतावनी छपी होनी चाहिए 'खबरदार, सिगरेट पीना आप के स्वास्थ्य के लिए हानिकर हो सकता है.' कोई बीस माह पहले फ़ेडरल संचार आयोग ने आदेश दिया था कि रेडियो और टेलीविज़न व्यवस्था को अमेरिकी कैंसर सोसायटी और अन्य संस्थाओं के लिए अधिक समय दे कर सिगरेट व्यवसाय को सीमित करना चाहिए. सिगरेट व्यवसाय को एक और ज़बर्दस्त आघात इस निर्णय से पहुँचा कि टे. वी. और रेडियो से सिगरेट के विज्ञापन पर प्रतिबंध लगा दिया जाये. यह निर्णय अंतिम रूप से लागू करना संसद् के ही अधिकार में होगा. आंदोलन ने सिगरेट बनाने वाली कंपनियों को काफ़ी नुकसान पहुँचाया है. १९६४ के बाद यह पहला अवसर था जब सिगरेट पीने वालों की संख्या में काफ़ी कमी हो गयी. बहुत से युवक अब सिगरेट पीना पसंद नहीं करते. वे अब इसे आवश्यक भी नहीं समझते.

यदि प्रसारण-व्यवस्था में सिगरेटों के विज्ञापन सीमित कर दिये गये, या उन का निषेध कर दिया गया तो राजस्व में भी करोड़ों डॉलरों की कमी होगी. फिर सिगरेट बनाने वाली कंपनियाँ विज्ञापन के कुछ और माध्यम ढूंढेंगे. हो सकता है सिगरेट कंपनियाँ धूम्रपान और स्वास्थ्य पर अनुसंधान के लिए अपना कोई अलग बजट बनायें. इस बारे में निर्णय ३० जून के आसपास लिया जायेगा, क्यों कि सिगरेट पैकेटों पर लेबिल लगाने और उन के विज्ञापन से संबंध रखने वाला १९६५ का क़ानून उस समय समाप्त हो रहा है.

प्रेस जगत

बुद्धिवाद की चुनौती

तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी, संस्कृत के महापंडित, 'धर्मकोश' के संपादक, पुराने राजनैतिक कार्यकर्त्ता और मानवेंद्रनाथ राय के सहकर्मियों में प्रधान मराठी लेखक हैं. २३ फ़रवरी के महाराष्ट्र टाइम्स में उन्होंने 'गुरूजी की हिंदू संस्कृति और प्रजातंत्र तत्त्व-प्रणाली' पर अपने प्रखर विचार व्यक्त किये हैं. उन के लेख का संक्षिप्त अनुवाद प्रस्तुत है:

'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंचालक श्री गोलवलकर गुरूजी ने रा. स्व. सं. की मूलभूत विचारसरणि प्रथम बार स्पष्ट रूप में व्यक्त की. इस लिए धन्यवाद. अखंड भारत, भारतीय सांस्कृतिक आत्मा, हिंदुत्वनिष्ठ राष्ट्रवाद आदि सैद्धांतिक घोषणाएं दे कर परंपरागत हिंदू संस्कृति पर श्रद्धा मज़बूत करने का कार्य सरसंघचालक बहुत पहले से करते आ रहे हैं. परंतु हिंदुत्वनिष्ठ राष्ट्रवाद का विवरण अब तक गोलमाल और गूढ़ रूप में ही रखा जाता था. बहुत अच्छा हुआ गोलवलकर गुरूजी ने अपना दर्शन स्पष्ट रूप में सामने रखा. रा. स्व. सं. का संगठन रूढ़िनिष्ठ भावबंध से बँधा है. उस के पीछे कोई भी नया विचार नहीं है, यह बात अलग से बताना ज़रूरी नहीं है. मध्ययुगीन दर्शन और मध्ययुगीन सामाजिक शोषण पर आधारित समाज-व्यवस्था भारतीय संविधान के प्रजातांत्रिक रूप के मूलाधार पर कुठाराघात करने वाली है, यह बात गुरूजी के विचारों से सिद्ध है.

गुरुजी ने जो अपना दर्शन व्यक्त किया है वह आज के सुशिक्षित समाज में कोई भी विचारवान या राजनैतिक नेता स्वीकार नहीं करता. शंकराचार्य या अन्य आचार्यों के मठ, आधुनिक शिक्षा से अपरिचित कुछ पंडित-पुरोहित आदि जब-तब गुरूजी के मत व्यक्त करते थे. नव शिक्षित समाज कभी से ऐसे विचारों से छुट्टी पा चुका है, लेकिन सभी आधुनिक सुशिक्षित उन रूढ़ियों से पूर्णतया मुक्त नहीं हुए हैं.

जन्मसिद्ध जाति-भेद पर श्रद्धा अब सर्वसाधारण रूप से हिल चुकी है. अन्यायी सामाजिक संस्थाओं के विरोध में विद्रोह करने की वृत्ति उस में से नहीं पैदा होती. पश्चिम में २५० वर्षों से सामाजिक न्याय और समता का संघर्ष चल रहा है. परंपरागत भारतीय अध्यात्मवाद विद्रोही वृत्ति को नष्ट कर देता है. परंपरागत अध्यात्मवाद को बुद्धिवाद की भट्टी में डाल कर उस का परीक्षण करने को सुशिक्षित भारतीय तैयार है या नहीं, यह एक प्रश्न है. गोलवलकर गुरूजी जिस वैचारिक बंधनागार में बंधे हैं, उस में कुछ सुविधाएँ प्राप्त कर उन के निषेधक भी आबद्ध हैं.

गुरूजी ने तरुणों की बड़ी संघटना बनायी है, परंतु उन के विचार पुराने, जीर्ण और वृद्ध हैं. उन की उक्ति से उन विचारों का भयानक, विद्रूप और गंदा कंकाल खुल कर सामने आया है. यह 'भूत' सारे हिंदू समाज के सिर पर सवार है. इस भूत को उतारने का मंत्र दो-तीन लोग ही बता गये हैं. हमारे धर्मातीत राज्य के कारीगर और कांग्रेस के वारिसदार सत्ताधारी भी उसी परंपरा के वारिसदार हैं. धर्मातीत राज्य के शासक नये-नये कार्यालय, कारखाने, बाँध आदि की भूमि-पूजा उसी परंपरागत पूजा-पद्धति से करते हैं. आकाशवाणी के सब भजन उसी परंपरागत विचार को मधुर स्वरों में आलापित करते हैं.

जाति-संस्था क़ायम है. उस का दार्शनिक विचारात्मक समर्थन नये पढ़े-लिखों ने छोड़ दिया है. बुद्धिजीवियों का सामाजिक-राजनैतिक स्थान फिसल रहा है. यह बात बहुत उचित और इष्ट हुई है. ज़ाति-बहिष्कार का पुराना रूप नहीं रहा है. सब जातियाँ समान हैं, यह एक ओर हम कहते हैं, फिर भी जाति-संस्था ज्यों की त्यों मौजूद है. शादी-ब्याह के और वंशाधिकार के क़ानून जाति-भेद नहीं मानते, फिर भी जातियाँ बराबर टिकी हुई हैं. अलग-अलग प्रदेशों के राज्य में अलग-अलग जातियाँ सत्ताधारी बन रही हैं. बहुजनसमाज का अर्थ है उस प्रदेश की ग्रामीण जनता की बहुसंख्या. ग्रामांचल के सुतार, दर्ज़ी, छीपे, लुहार, कुम्हार, चमार, महार, मांग, डोम, धोबी इत्यादि हतबल हो कर उखड़ रहे हैं. ग्रामांचलों में अस्पृश्यता और अछूतपन की तीक्ष्ण धार नयी-नयी ज़ख्में करने से चूक नहीं रही है. जातियाँ कैसे जायेंगी इस का विचार सत्ताधारी जाति के लोग नहीं करते. आगे बढ़ कर निचली मानी जाने वाली जातियों को बंधन-मुक्त करने को वे नहीं बढ़ते. इच्छा होने पर भी राजनैतिक स्वार्थी विचारों को पराजित करें, इतना साहस उन में नहीं है.

श्री गोलवलकर गुरुजी ने पहली भेंट में अपने दिल की बात कही. फिर संघ और जनसंघ के राजनैतिक उद्देश्य को वह बाधित कर रही है, यह देख कर वह अन्य प्रगतिशील नेताओं की तरह पुनः भेंट दे कर दूसरी उल्टी बातें करने लगे. हर आदमी इस समय अपनी निष्ठाओं का परीक्षण करें. अन्यथा सब निष्ठाओं को घातक चोट पहुँचाने वाला दिन आ रहा है. गुरूजी आप भी अंतर्मुखी बनें और निषेधकर्त्ताओ तुम भी. यह प्रार्थना मैं आप से ही एक तरह से कर रहा हूँ, मुझे मालूम है कि आप नाराज़ होंगे.

पत्रकारों का अपना भवन

श्रमजीवी पत्रकारों का अपना भवन देश के समूचे पत्रकार-जगत् का बहुत बड़ा आकर्षण होगा. यह सौभाग्य मध्यप्रदेश में भोपाल को प्राप्त होगा, जहाँ अभी पिछले दिनों जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल द्वारा भवन की आधारशिला रखी गयी.

पत्रकार-भवन पत्रकारों के मात्र निवास अथवा आमोद-प्रमोद का ही स्थान नहीं होगा, इस में संदर्भ-पुस्तकालय, पत्रकारिता शिक्षण-विभाग, सभा-भवन, शोध, प्रकाशन और प्रदर्शनी-शाखाएँ भी होंगी. निर्माण पर ढाई लाख रुपये के खर्च का अनुमान है. बाहर से आने वाले पत्रकारों के यहाँ ठहरने की भी व्यवस्था होगी. पत्रकार-भवन का सभा-कक्ष भोपाल की सांस्कृतिक तथा सार्वजनिक संस्थाओं के समारोहों के लिए भी उपलब्ध रहेगा. शिलान्यास-समारोह के मौक़े पर जम्मू-कश्मीर के राज्यपाल, मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री के. सी. रेड्डी, मुख्यमंत्री श्री गोविंद नारायण सिंह, राज्य मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों तथा उपस्थित विशिष्ट नागरिकों ने योजना की सफलता के लिए आशीर्वाद प्रदान किया. शिलान्यास करते हुए राज्यपाल श्री भगवान सहाय ने अनेक महत्त्वपूर्ण बातें कहीं. उन का यह कथन आज की पत्रकारिता के संदर्भ में काफ़ी महत्त्वपूर्ण है कि पत्रों को सनसनीखेज़ खबरों के पीछे न पड़ कर देश और समाज की समस्याओं को समाचारपत्रों में प्रमुख स्थान देना चाहिए.

अकादमी पुरस्कार

संगीत नाटक अकादेमी : समारोह-अवरोह

संगीत, नृत्य और नाटक-प्रेमियों की उपस्थिति में १३ विशिष्ट कलाकारों को नयी दिल्ली के रवींद्र भवन में उपराष्ट्रपति श्री वी. वी. गिरि द्वारा १९६८ वर्ष के संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार दिये गये. प्रत्येक पुरस्कार-विजेता को एक ताम्रपत्र और ५ हज़ार रुपया नक़द दिया गया. यह पहला अवसर है जब कि कलाकारों को नक़द पुरस्कार दिया गया और इसी साल पहली बार परंपरागत रंगमंच 'यात्रा' के उत्थान के लिए भी पुरस्कार दिया गया. 'यात्रा' के लिए पुरस्कृत **फणिभूषण 'विद्याविनोद'** की मृत्यु हो गयी है, अतः यह पुरस्कार उन की पुत्री ने प्राप्त किया. पुरस्कार-विजेताओं में सर्वाधिक वयोवृद्ध कलाकार थे केरल के ८८ वर्षीय **श्री कुरीची कुंज पन्निकर**, जिन्हें कथकलि के विकास में उन के योगदान के लिए सम्मानित किया गया. सब से कम उम्र (३६ वर्ष) की पुरस्कार-विजेता थीं भरतनाट्यम की प्रख्यात नर्त्तकी **श्रीमती कमला. श्री कालीचरण पटनायक** को ओडिसी कला के विकास के लिए अकादेमी का 'फ़ेलो' बनाया गया है.

सम्मानित कलाकारों को बधाई देते हुए श्री गिरि ने यह आशा व्यक्त की कि वे भविष्य में भी कला और संगीत को और अधिक निखारते चलने में अपना योगदान देते रहेंगे. उन्होंने कहा कि इस प्रकार के पुरस्कारों से न केवल कलाकार को प्रेरणा और सम्मान मिलता है बल्कि कला के प्रति अभिरुचि बढ़ती है और ज्यादा लोग कलाकार को जानने-समझने लगते हैं. स्वरूप और शैली में क्षेत्रीय विविधता के बावजूद हमारे देश के संगीत, नृत्य और नाटक में आंतरिक एकता है. उन्होंने कहा कि दो युवक नाटककारों—**बादल सरकार** (बंगला) और **मोहन राकेश** (हिंदी)—को दिया गया पुरस्कार समसामयिक भारतीय रंगमंच की जीवंतता का परिचायक है.

अकादेमी के उपाध्यक्ष श्री पी. एस. मेनन ने कहा कि अकादेमी युवक और वयोवृद्ध दोनों ही कलाकारों को समान रूप से प्रेरित करना पसंद करती है. पुरस्कार केवल योग्यता के आधार पर दिया गया है. अब अगर सम्मानित कलाकार विभिन्न प्रदेशों के हैं तो इस का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि अकादेमी ने भौगोलिक दृष्टि से सभी प्रदेशों के कलाकारों को पुरस्कृत किया है. सम्मानित कलाकारों के नाम हैं:—

फ़ेलोशिप : कालीचरण पटनायक.

नृत्य : गुरु चिंता कृष्णमूर्त्ति (कुचिपुडी); *दमयंती जोशी (कत्थक); श्रीमती कमला* (भरतनाट्यम) और कुरिचि कुंजन पन्निकर (कथकलि).

नाटक : बादल सरकार (बंगला); मोहन राकेश (हिंदी); प्रोफ़ेसर जशवंत ठक्कर (गुजराती—अभिनय) और स्वर्गीय फणि भूषण 'विद्याविनोद' ('यात्रा' रंगमंच के अभिनेता).

संगीत : श्रीमती मोगुबाई कुर्डीकर (हिंदुस्तानी गायकी); उस्ताद मुश्ताक़ अली खाँ (हिंदुस्तानी वादन—सितार); श्रीनिवास अय्यर (कर्नाटक गायकी) और प्रोफ़ेसर के. शिवराम नारायणस्वामी (कर्नाटक वाद्य-संगीत—वीणा).

कत्थक : गति-गरिमा

दमयंती जोशी

१९६७ के संगीत नाटक अकादेमी पुरस्कार विजेता थे :—

फ़ेलोशिप : आद्य रंगाचार्य 'श्रीरंग' इ. अल्काज़ी, बड़े गुलाम अली खाँ, पी. के. कुंजु कुरुप, सुब्रह्मण्यम अय्यर, श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुंडेल, शंभू महाराज और वेदांतम सत्यनारायण शर्मा.

अन्य पुरस्कार-विजेता थे—बाल सुब्रह्मण्य शास्त्री, कलामंडलम कृष्णन् नायर, पी. एल. देशपांडे, सविताव्रत दत्त, एस. वी. सहस्रनामम् श्रीकृष्ण पहलवान, अमीर खाँ, अयोध्या प्रसाद, सी. वेंकट राव और के. एस. वेंकटरमय्या.

क़ानून

प्रगतिशील समाज का स्थिर क़ानून

भारतीय संविधान की धारा ४४ का निर्देश है कि राज्य 'नागरिकों के लिए भारत के संपूर्ण सीमा-क्षेत्र में एक ही प्रकार की क़ानून-संहिता स्थापित करे.' क़ानून समाज के विकास को निश्चित दिशा में ले जाने के लिए बनाया जाता है, इस लिए उस का उद्देश्य हर समय समाज को गतिशील बनाना है. समय के अनुसार प्रत्येक देश और प्रत्येक समाज की परिस्थितियाँ और आवश्यकताएँ बदलती रहती हैं और बदली हुई परिस्थितियों में प्रत्येक जीवित समाज के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी मान्यताओं, रस्मो-रिवाज और क़ानूनों में संशोधन और परिवर्त्तन करे तथा जो कुछ भी अनावश्यक हो उस को उतार फेंक दे. विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक प्रगतिशील समाज ने ऐसा ही किया है; यह अलग बात है कि राजनैतिक ग़ुलामी और आर्थिक विपन्नता ने इस प्रकार के विकास में समय-समय पर भारी अड़चनें पैदा कर दी हैं. इस प्रकार की बाधाएँ उपस्थित होने पर समाज विद्रोह करता है और बंधनों को तोड़ फेंकता है, या अपनी कमज़ोरियों और अकर्मण्यता का शिकार हो कर समय के गर्त्त में विलीन हो जाता है. मगर इन दोनों सूरतों से अलग एक तीसरा रास्ता भी है और विश्व के बहुत सारे वर्गों ने वही रास्ता अपनाया है जिस के कारण कुंठा, निराशा, रूढ़िवादिता की अवस्था पैदा हो जाती है. एसा लगता है कि भारतीय मुस्लिम समाज इसी प्रकार की रूढ़िवादी घेराबंदी में चला गया है.

हिंदू क़ानून : स्वतंत्रता के बाद यह महसूस किया गया कि भारतीय समाज से कमज़ोर वर्गों का शोषण रोकने के लिए और प्रत्येक व्यक्ति को समाज के समान अधिकार वाला सदस्य बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि उस समय के चालू सामाजिक और परिवार संबंधी क़ानूनों में संशोधन किया जाये. इसी लिए संविधान में परिगणित और अनुसूचित जातियों तथा पिछड़े वर्गों के अधिकारों की रक्षा करने तथा उन्हें सामान्य स्तर पर लाने का आदेश दिया गया था. संविधान की इसी भावना का आदर करते हुए देश के सब से बड़े वर्ग हिंदुओं के विवाह और संपत्ति संबंधी क़ानूनों में संशोधन कर के हिंदू कोड बिल विधेयक प्रस्तुत किया गया. यह बात ठीक है कि उस समय हिंदुओं के एक वर्ग ने इस विधेयक का विरोध किया, क्यों कि उन के अनुसार यह धार्मिक स्वतंत्रता का हनन अथवा धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप था. मगर वास्तव में ऐसी कोई बात नहीं. इतिहास इस का साक्षी है कि

भारत के हिंदुओं ने कभी भी एक प्रकार के नियमों को सदा के लिए स्वीकार नहीं किया है. अधिसंख्य हिंदुओं में आज-कल पारिवारिक और संपत्ति संबंधी जितनी भी व्यवस्थाएँ हैं उन का आधार मनुस्मृति है. मगर क्या यह सच नहीं कि मनुस्मृति के अतिरिक्त भी अनेक स्मृतियां लिखी गयी हैं ? क़ानून-प्रणाली समय की आवश्यकताओं से बनती है. भारतीय संस्कृति एक सतत प्रयोग है. इसी लिए हिंदू कोड बिल विधेयक का विरोध अधिसंख्य हिंदुओं ने नहीं किया. थोड़े से शोरशराबे के बाद सरकार ने इसे क़ानून के रूप में ग्रहण कर लिया. मगर मुसलमानों के संपत्ति और विवाह संबंधी नियमों के बारे में सरकार न केवल खामोश रही बल्कि उस ने हर ऐसे अवसर को टालने का प्रयास किया जिस पर इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर गंभीर विचार किया जा सके, अथवा कोई प्रगतिशील क़दम उठाया जा सके. भूतपूर्व विदेश और शिक्षामंत्री मोहम्मद करीम चागला के अनुसार यह खेद की बात है कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू मुसलमानों को सम्मिलित करने के लिए एक क़ानून-संहिता स्थापित करने के लिए पर्याप्त साहस नहीं बटोर पाये.

मुस्लिम क़ानून : मुस्लिम क़ानून क्या है ? पैग़ंबर मोहम्मद इलहाम (दैवी-प्रेरणा) के आधार पर समाज के लिए शरीअत (मार्ग) का निर्माण किया मुसलमानों के अनुसार शरीअत प्रत्येक प्रकार के क़ानून का स्रोत है. परंपरावादियों के अनुसार इन नियमों को बदला नहीं जा सकता, मगर यदि इस बात को माना भी जाये कि शरीअत में कोई परिवर्तन संभव नहीं तो भी उस की भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ संभव हैं. उदाहरण के लिए कुरान में विवाह के संबंध में इस प्रकार का आदेश है : 'ऐसी महिला से विवाह करो जो तुम्हें अच्छी लगे; दो, तीन या चार और अगर तुम्हें यह आशंका हो कि तुम न्याय नहीं कर सकते तो केवल एक, या वह जो तुम्हारे

सी० सी० देसाई : समान क़ानून-संहिता

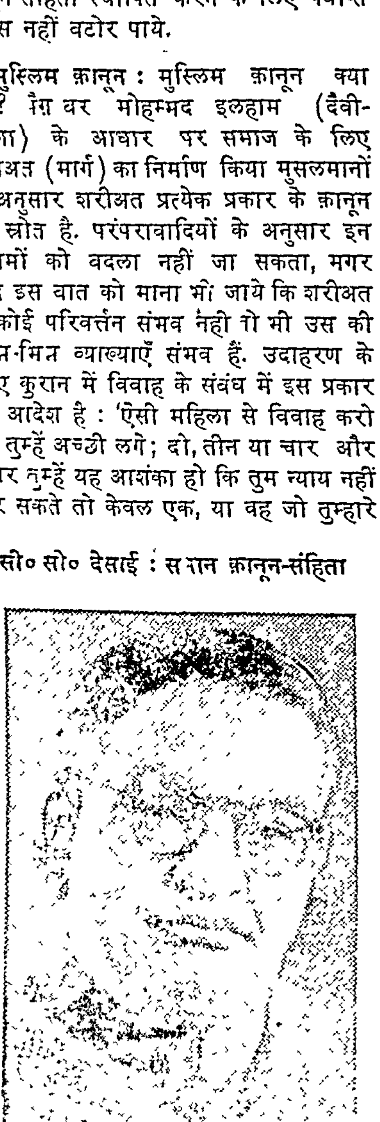

दायें हाथ में हो. इस प्रकार इस बात की अधिक आशा है कि तुम अन्याय नहीं करोगे.' यह आदेश इतना व्यापक है कि इस की अनेक व्याख्याएँ सामने आयी हैं. मगर इस वाक्य : 'अगर तुम्हें आशंका हो कि तुम न्याय नहीं कर सकते तो केवल एक. . . ', का सहारा ले कर बहुत से मुसलमान देशों ने विवाह संबंधी नियमों में संशोधन किये हैं. ईरान में एक क़ाज़ी की इजाज़त के बिना दूसरा विवाह नहीं किया जा सकता. सीरिया में भी इसी प्रकार का नियम है, मगर ट्यूनीशिया में स्पष्ट रूप से क़ानून पारित किया गया है कि 'बहुपत्नी-प्रथा वर्जित है.' इन सब संशोधनों का आधार यही है कि जहाँ कुरान एक से अधिक पत्नियाँ रखने की आज्ञा देता है वहीं वह यह भी आदेश देता है कि यदि अन्याय होने का डर हो तो केवल एक ही विवाह किया जाना चाहिए.

विवेक का न्याय : संसदीय और संवैधानिक अध्ययन संस्थान, दिल्ली द्वारा आयोजित समान नागरिक संहिता पर विचार-गोष्ठी में ए. जी. नूरानी ने इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जिन से यह सिद्ध होता है कि अनेक मुसलमान देशों ने विवाह संबंधी नियमों में संशोधन किया है. शरीअत के साथ-साथ सुन्ना (पैग़ंबर का आचरण) भी मुस्लिम क़ानून का एक आवश्यक अंग है. मगर इन दोनों के अतिरिक्त व्यक्तिगत विवेक द्वारा पैदा हुआ न्याय भी महत्त्वपूर्ण माना गया है, जिसे 'इजतिहाद' कहते हैं. उर्दू कवि इक़बाल के अनुसार यह एक बहुत दुःख की बात है कि 'इजतिहाद के दरवाज़े बंद किये जा रहे हैं. भारत के मुसलमानों की रूढ़िवादिता के कारण भारत के न्यायाधीशों को केवल मान्य पुस्तकों तक ही सीमित रहना पड़ता है. परिणाम यह है कि जब कि लोग आगे बढ़ रहे हैं क़ानून एक ही जगह टिके हुए हैं.' स्पष्ट है कि मुसलमान विवाह संबंधी क़ानूनों में संशोधन करने से मुस्लिम मज़हब पर कोई आघात नहीं लगता, या उस से शरीअत का उल्लंघन नहीं होता. प्रसिद्ध विद्वान् सैयद ज़फ़र हुसैन ने अपने शोधपत्र में मुसलिम क़ानून के इतिहास और उस की विशेषता पर विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'अब समय आ गया है कि भारत भी अन्य मुस्लिम देशों की भाँति आगे बढ़े.' उन के अनुसार उलेमा, न्यायविदों और न्यायाधीशों का एक आयोग स्थापित किया जाना चाहिए, जो मुस्लिम क़ानून की समस्याओं की एक सूची तैयार करे; मुस्लिम समाज में सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए मुस्लिम क़ानून के संशोधन पर विचार करे. जनता को कुरान के आदेशों और शरीअत की सही व्याख्या समझाये.

भयभीत समाज : गोष्ठी में जहाँ कई विद्वानों और न्यायविदों ने संपूर्ण भारत के लिए एक ही प्रकार की क़ानून-संहिता बनाने का समर्थन किया वहाँ कुछ लोगों ने इस आधार

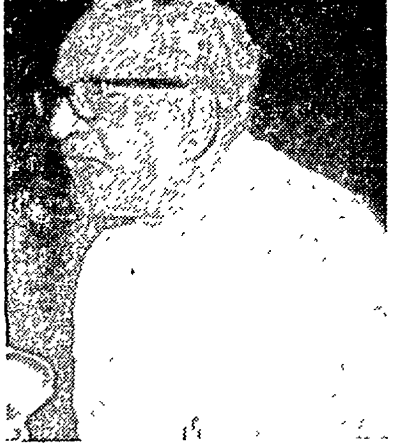

चागला : प्रखर वार

पर भी इस का विरोध किया कि मुस्लिम क़ानून को बदलना इस्लाम के विरुद्ध होगा, क्यों कि इस दैवी नियम को केवल 'अल्लाह ही बदल सकता है.' पत्रकार ए. जी. नूरानी ने मुस्लिम क़ानून को बदलने की आवश्यकता बताते हुए यह तर्क पेश किया कि अल्पसंख्यक मुस्लिम समाज भय की अवस्था में है, इस लिए असुरक्षा के कारण वह रूढ़िवादी हो गया है. इस के अतिरिक्त मुस्लिम क़ानून को बदलने की माँग को बिलकुल धर्म-निरपेक्ष नहीं कहा जा सकता, क्यों कि अगर ऐसा होता है तो जनसंघ के चुनाव घोषणापत्र में इस प्रकार की माँग पर बल क्यों दिया गया होता. विचित्र बात है कि मुस्लिम बुद्धिजीवी अपने समाज में किसी स्वस्थ संशोधन का इस लिए विरोध करें कि इस संशोधन की माँग ग़ैर-मुस्लिमों का एक बहुत बड़ा वर्ग करता है. नूरानी की बात सही है कि मुस्लिम समाज एक असुरक्षा की भावना में रह रहा है. मगर इस प्रकार का भय बनाये रखने में मुस्लिम बुद्धिजीवियों का भी बहुत हाथ है. वास्तव में इस गोष्ठी में स्वतंत्र पार्टी के नेता श्री सी. सी. देसाई ने स्पष्ट शब्दों में संपूर्ण भारत के लिए एक ही कानून-संहिता बनाने की माँग तो की किंतु सब से प्रगतिशील और साहसी स्वर मोहम्मद क़रीम चागला का ही था, जिन्होंने प्रतिक्रियावादी तत्त्वों पर प्रखर वार करते हुए मुसलमान महिलाओं से अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करने के लिए कहा. उन के अनुसार यह कहना मूर्खता है कि मुस्लिम क़ानून को कोई छू नहीं सकता. उसे न केवल छुआ गया है बल्कि उसे बहुत अधिक बदला गया है. चागला के अनुसार संविधान धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता देता है, मगर उस में सामाजिक और राजनैतिक अल्पसंख्यकों के लिए कोई स्थान नहीं. उन्होंने कहा कि वर्तमान सरकार का भी वही रुख है जो स्वतंत्रता से पहले अंग्रेज़ों का रहा था. उन की नीति थी 'जितना चाहो उतना पिछड़े रहो, मगर शांत रह कर अंग्रेज़ों की आज्ञाएँ मान लो.' उन के अनुसार 'सरकार का कार्य शासन करना है और अगर वह शासन करना नहीं चाहती तो उसे अवकाश ग्रहण करना चाहिए.'

दिल्ली की चिट्ठी

सौंदर्य-अभियान

चिड़ियाघर जाने वालों को अब उस कटघरे के सामने उतना मज़ा नहीं आयेगा जिस में सिगरेट पीने और आगे बढ़ कर हाथ मिलाने वाली, २० वर्षीया चिंपाज़ी सुंदरी रीता रहती थी (पिछले सप्ताह उस ने शरीर छोड़ दिया), लेकिन पार्लियामेंट स्ट्रीट और जनपथ हो कर कनॉट प्लेस पहुँचने और लाल क़िले के सामने से गुज़रने वालों को परिवेश में परिवर्त्तन उस 'सौंदर्य-अभियान' से परिचय करा देगा जिस का भूत दिल्ली प्रशासन की विभिन्न हस्तियों पर छाया हुआ है. जनपथ पर विंडसर चौक में फव्वारा लगाया गया है, जिस की २५ फ़ुट ऊँची फुहार रात में विद्युत-प्रकाश में आलोकित होती है. चारों ओर के पेड़ों पर पत्तों के झुरमुट भी आलोकित किये जाते हैं. पार्लियामेंट स्ट्रीट पर भी नयी दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी (न. दि. म्यु. क.) के सामने और बगल में पटरियों की सजावट फव्वारों की फुहार और गोल छेदों वाले लैंपशेड नयनाभिराम दीखते हैं. थोड़ा हट कर सड़क के पार जंतर मंतर है, जो रात में आलोकित किया जाता है. जंतर मंतर में प्रकाश की व्यवस्था पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग ने स्वतंत्र रूप से एक सार्वदेशिक योजना के अधीन की है.

कनॉट प्लेस का भी रूप बदल गया है. गाड़ियाँ खड़ी करने और यातायात की सुविधा की दृष्टि से मध्यवर्त्ती पार्क को छोटा कर के दूसरा चक्र-मार्ग बना दिया गया है. कनॉट प्लेस और कनॉट सर्कस को जोड़ने वाले रेडियल मार्गों में से कुछ को बंद कर दिया गया है. यह सब, खास कर रेडियल मार्गों को बंद किया जाना, न उपयोगी ही जान पड़ता है न सुविचारित ही. इस बारे में न. दि. म्यु. क. के ग़ैर-ज़िम्मेदाराना रवैये का कई क्षेत्रों में विरोध हुआ है. केंद्रीय निर्माण और भवनमंत्रालय के भूमि और विकासविभाग ने 'मास्टर प्लान' के ख़िलाफ़ किये गये कामों की सूची बनायी है, जिस में ३६ मामले दर्ज किये गये हैं. २६ फ़रवरी को जब दिल्ली विकास अधिकरण की स्थायी समिति के सदस्यों ने कनॉट प्लेस के नवीकरण का मुआयना किया तो नगर नियोजन संगठन (टाउन एंड कंट्री प्लानिंग ऑर्गनाइज़ेशन) की ओर से यह शिकायत सामने आयी कि न. दि. म्यु. क. वाले संगठन के प्रतिनिधियों की सलाह नज़रअंदाज़ कर देते हैं और ऊपर से तुर्रा यह कि संगठन-प्रतिनिधि की 'सहमति' का दम भरने लगते हैं. कहा जाता है कि इन लोगों की असहमति को दर्ज भी नहीं किया जाता. इस लिए इन का कहना है कि अब से हम न. दि. म्यु. कमेटी द्वारा बुलायी गयी बैठकों में शामिल नहीं होंगे. मुख्य कार्यकारी पार्षद विजयकुमार मलहोत्रा का, जो विकास अधिकरण की स्थायी समिति के अध्यक्ष हैं, कहना है कि मास्टर प्लान में कनॉट प्लेस के लिए जो व्यवस्था की गयी है उस में केवल केंद्र सरकार और विकास अधिकरण ही परिवर्त्तन कर सकते हैं.

दिल्ली-नयी दिल्ली को सुंदर बनाने का अभियान समझ में आता है, लेकिन जिस आपाधापी से काम हो रहा है वह इस महानगरी का बेढंगापन ही बढ़ा रहा है. लेप और रंग पोतने से यदि गतयौवना का चेहरा सुंदर हो सकता है तो दिल्ली भी सुंदर हो रही है : कहीं एक फव्वारा, कहीं कुछ रोशनी, कहीं खुशनुमा पटरियाँ और सुदर्शन नामपट्ट (ये सब तो होने ही चाहिएँ) किसी समन्वित योजना या परिकल्पना के हिस्से नहीं मालूम होते. क्या कोई समूची दिल्ली की सुंदरता के बारे में सोच रहा है ? क्या किसी ने नयी इमारत के वास्तु को पड़ोस की इमारतों के अनुरूप रखने या रखवाने की सोची है ? इंद्रप्रस्थ इस्टेट की इमारतें, जो १०-१२ वर्ष के भीतर ही बनी हैं, वास्तुकला का बेढंगा जमघट मालूम होती हैं—न समरसता है न कोई योजना. इस की ज़िम्मेदारी केवल नगर निगम या न. दि. म्यु. कमेटी की ही नहीं है—उन सभी की है जिन को टाँग अड़ाने का मौक़ा मिलता है—केंद्रीय निर्माण और भवन, दिल्ली प्रशासन, दिल्ली विकास अधिकरण सभी की खिचड़ी अलग-अलग पकती है.

पिछले सप्ताह इंडिया इंटरनेशनल सेंटर (नयी दिल्ली) में आयोजित विचार-गोष्ठी में इस विषय पर विचार हुआ. स्कूल ऑफ़ प्लानिंग ऐंड आर्किटेक्चर के एसोसिएट प्रोफ़ेसर रणजीत साबिकी की राय थी : निगम और न. दि. म्यु. क. शायद यह भूल रहे हैं कि सौंदर्य का अर्थ होता है अधिक समरसता, स्वच्छता और सफ़ाई; नये पार्क बनाते समय शायद उन्हें ध्यान नहीं रहता कि पुरानों का रख-रखाव उपेक्षित हो रहा है. उन की राय में सजावट में परिप्रेक्ष्य के दर्शन ही दुर्लभ हो रहे हैं. नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के निदेशक अल्काज़ी के अनुसार दिल्ली नयी-नवेली दुल्हन नहीं है, उस का सौंदर्य उस की ऐतिहासिकता में है. दिल्ली को उस के अतीत से अथवा नयी दिल्ली को रूप देने वाले ल्युटेन्स की परंपरा से काटने की कोशिश भोंडापन ही बढ़ायेगी. जवाब में न. दि. म्यु. क. के अध्यक्ष छाबरा का कहना था कि 'यदि फव्वारा खूबसूरत दीखता है तो वह सोद्देश्य है—यदि वह राहत पहुँचाता है तो उस का उद्देश्य पूरा समझना चाहिए.

छाबरा को इस वर्ष गणराज्य दिवस के अवसर पर राष्ट्रीय सम्मान से अलंकृत भी किया गया है. उन की तत्परता और योग्यता पर सरकारी मोहर भी लग गयी है. उन्हीं की बदौलत इंडिया गेट के बालोद्यान का एक से अधिक बार उद्घाटन हो चुका है. क्रमशः दो प्रधानमंत्री और गृहमंत्री चह्वाण को यह सुअवसर मिल चुका है. उद्घाटन-क्रम का लाभ चाहे जिस किसी को मिला हो, कमेटी के एक अधिकारी के लिए बुरा ही साबित हुआ है. कमेटी के स्वास्थ्य-अधिकारी ने हाल में अपनी परेशानी सामने रखी : आये दिन उद्घाटन के तथा अन्य जो समारोह कमेटी आयोजित करती है उस में स्वास्थ्यविभाग के कर्मचारी इतने व्यस्त हो जाते हैं कि हमारे मूल काम में अड़चन पड़ती है. इस समस्या को सुलझाने के लिए कोई तरकीब निकाली जाये. कमेटी को अपने अधीनस्थ कर्मचारी की आपत्ति और उस की मूल भावना समझने में परेशानी अनुभव हुई, अतः उस ने एक दूसरी तरकीब निकालने की सोची—क्यों न इस स्वास्थ्य अधिकारी को वहाँ वापस करने का बंदोबस्त कर दिया जाये जहाँ से वह आया था. सैनिक चिकित्सा सेवा का यह अधिकारी केंद्रीय स्वास्थ्यमंत्रालय की मार्फ़त आया था और यदि उस का कार्यकाल और आगे न बढ़ाया जाता तो अगस्त १९६९ तक चलता.

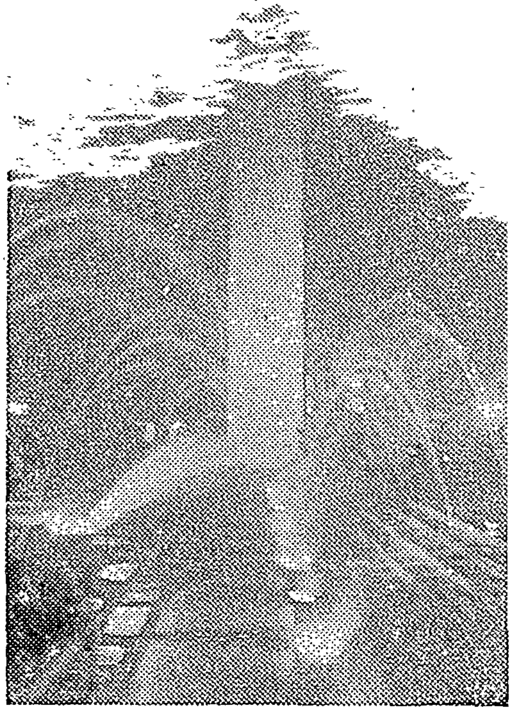

जंतर मंतर : आलोकित इतिहास

जनपथ पर विंडसर चौक

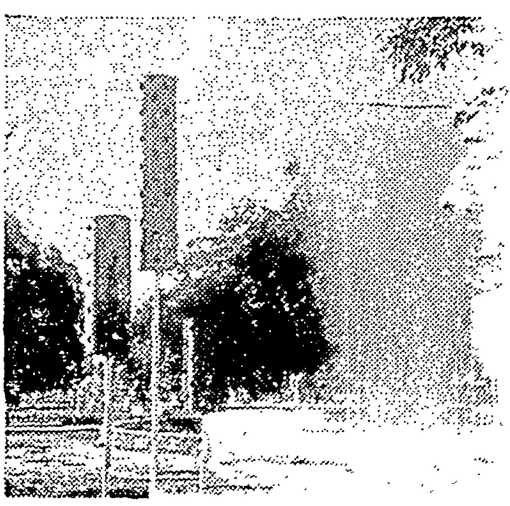

चरचे और चरखे

आकाशवाणी का काव्य-प्रेम

ग़ालिब शताब्दी के अवसर पर आकाशवाणी ने भी ग़ालिब-प्रेम में कोई कसर नहीं उठा रखी. इधर राजधानी में साहित्यकारों के बीच यह चर्चा ज़ोरों पर है कि यदि 'ग़ालिब' इस समय होते तो आकाशवाणी उन की शायरी प्रसारित करने में कितनी काट-छाँट करती ? कविता की जितनी समझ आकाशवाणी को है उतनी कवियों को नहीं, जिस तरह कविताओं में वह काट-छाँट करती है उस से यही अर्थ निकाला जा सकता है. या तो वह कवियों को यह सिखाना चाहती है कि किस तरह ऐसी कविता लिखी जाये जो अपने देश, समाज से आँखें बंद कर के महज़ मनोरंजक हो; सत्यदर्शन से कविता, कविता नहीं रह जाती. फिर ग़ालिब के इस शेर का वह क्या करती 'हम ने माना कि दिल्ली में रहें, खायेंगे क्या ?' कुछ लोग आकाशवाणी के इस काव्य-प्रेम को नहीं समझ पा रहे हैं और गंभीर हो कर पूछते हैं : 'यह लोकतंत्र की आकाशवाणी है या तानाशाही की ?' कुछ लोग मज़ाक करते हैं कि आकाश में सब समा सकता है लेकिन यह आकाशवाणी नहीं 'डिब्बाकाशवाणी' है. कुछ कहते हैं सरकार जितना नहीं चाहती उस से ज्यादा खैरख्वाही उस के कर्मचारी निभाते हैं. सच बात हमें नहीं मालूम लेकिन हम इतना जानते हैं कि ग़ालिब शताब्दी समारोह के अंतर्गत १६ फ़रवरी को एक कवि-सम्मेलन सप्रू हॉउस में हुआ. उस सम्मेलन को ग़ालिब प्रेम के उत्साह में बिना कवियों से अनुमति लिए हुए १७ फ़रवरी की रात को आकाशवाणी से प्रसारित किया गया. कुछ कविताओं में उस ने प्रसारण में काट-छाँट की. **कैलाश वाजपेयी** की एक कविता थी 'ग़ालिब के नाम एक पत्र.' उस कविता में से देखिए आकाशवाणी ने ये पंक्तियाँ निकाल दीं—

> जैसी कुछ छोड़ी थी तुम ने दिल्ली
> दस क़दम आगे है अब तबाही में
> 'रोज इस शहर में नया हुक्म होता है'
> जैसा कुछ हुआ था अठारह सौ सत्तावन में
> वैसा अब रोज-रोज होता है.
>
> × × ×
>
> तुम कहा करते थे बख़्श दो
> मगर असद लोग ख़ता करते हैं
> धौंस भी जमाते हैं,
> हर आने वाले मंत्री के साथ
> पिछले सब वायदे गुड़ूप्प हो जाते हैं.

ये पंक्तियाँ कवि-सम्मेलन में पढ़ी गयी कविता में थीं पर प्रसारित की गयी कविता में नहीं थीं, निकाल दी गयी थीं. सवाल उठता है किसे खुश करने के लिए ? जनता को ? शायद यह मानती है कि जनता को वस्तुस्थिति का कोई ज्ञान नहीं, इन पंक्तियों से वह भड़क जाती, क्रांति हो जाती. फिर क्या सरकार को खुश करने के लिए ? जैसे सरकार को यह सब सुनने की आदत ही न पड़ी हो, विरोधी पक्ष संसद् में उस की तारीफ़ ही करता है. किसी ने कहा 'ये पंक्तियाँ ग़ालिब की आत्मा को खुश करने के लिए निकाली गयीं. ग़ालिब की आत्मा को दिल्ली की हालत का यह बयान पढ़ कर कितना सदमा पहुँचता; इसी लिए खत सेंसर कर दिया'. यह बात समझ में आती है. इसी लिए राजधानी के साहित्यकारों में आक्रोश के बावजूद आकाशवाणी के अन्य प्रेमी आकाशवाणी के इस ग़ालिब-प्रेम अर्थात् काव्य-प्रेम की दाद देते हैं: पर अभी उन की समझ में नहीं आ रहा है कि **श्रीकांत वर्मा** की कविता 'समाधिलेख' के तीन-चौथाई काट दिये जाने पर किस तरह आकाशवाणी के काव्य-प्रेम पर दाद दें.

समीक्षकों का काव्य-प्रेम

राजधानी में हिंदी के कुछ नये समीक्षकों की समझ में अंततः यह बात आ गयी है कि कविता पुरस्कार से प्रतिष्ठित होती है और सही कविता लिखने की सही प्रेरणा सही कवियों को सही पुरस्कार द्वारा ही प्रदान की जा सकती है. रीतिकाल के सारे प्रतिष्ठित कवि पुरस्कृत कवि थे. शायद ही छायावाद का कोई कवि अब ऐसा रह गया हो जिसे पुरस्कार न मिला हो. प्रगतिवाद बिना पुरस्कार के लुप्त हो गया. कहीं नयी कविता भी पुरस्कार के अभाव में लुप्त न हो जाये इन समीक्षकों के सामने यह वाजिब चिंता थी. अतः मशहूर समीक्षक **नामवर सिंह** ने, चरचा है कि नेमिचंद्र जैन, अशोक वाजपेयी, सुरेश अवस्थी, भारत भूषण अग्रवाल के साथ मिल कर एक 'कविता समाज' की स्थापना की है जिस के अंतर्गत एक हज़ार रुपये का 'मुक्तिबोध पुरस्कार' प्रति वर्ष नयी कविता के कवियों को प्रोत्साहन के लिए प्रदान किया जायेगा. जिस कवि की वर्ष भर में सब से अच्छी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होंगी उसे यह पुरस्कार दिया जायेगा और बाद में उस की कविताओं को किसी प्रकाशन द्वारा छपवाया जायेगा. पुरस्कार समिति में नयी कविता के कुछ प्रतिष्ठित कवियों को मुक्तिबोध के नाम पर शामिल करने की जोड़-तोड़ कोशिश की जा रही है. पुरस्कार की विधिवत् उद्घोषणा के पूर्व ही यह समाचार राजधानी के साहित्यिक वर्ग में फैल गया है और इस पर **दिनमान** के प्रतिनिधि को तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ सुनने को मिलीं. कुछ लोगों ने इसे एक समीक्षक के अहंकार के रूप में देखा है. कुछ लोग, जो समीक्षा जगत् में नामवर सिंह की चालों से वाकिफ़ हैं, इसे उन की नयी चाल मानते हैं. उन का कहना है कि वह इस तरह नयी पीढ़ी को फुसलाना और खरीदना चाहते हैं, कविता का एक साँचा गढ़ कर उस तरह की कविताएँ थोक में लिखवाना चाहते हैं. लेखों और भाषणों के सहारे जो काम वह नहीं कर सके वह पुरस्कार के ज़रिए करना चाहते हैं. साल भर हर कवि को आश्वासन, हर एक की जुबान बंद, हरेक के नेता, दूसरे साल फिर यही सिलसिला. इस तरह प्रगतिवादी विचारधारा जो आधुनिकता के आड़ में लायी जा रही थी अब पुरस्कार की आड़ में प्रतिष्ठित की जायेगी.

पता चला है कि कुछ कवि एक ऐसे पुरस्कार की योजना बना रहे हैं जो प्रतिवर्ष पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सर्वोत्तम समीक्षा पर प्रदान किया जायेगा. उन का ख्याल है कि अच्छी समीक्षा को प्रोत्साहित करने तथा उसे प्रतिष्ठित करने का यही एक तरीक़ा है. उन का यह भी ख्याल है कि इस पुरस्कार के बाद ही कविता पर दिये जाने वाले पुरस्कार का कुछ महत्त्व हो सकेगा. युवा लेखकों और कवियों की काफ़ी बड़ी संख्या ऐसी है जो यह कहती है कि यह दो-मुँही नीति है. 'एक ओर व्यवस्था का विरोध और दूसरी ओर स्वयं व्यवस्था (इस्टैब्लिशमेंट) बनने का प्रयत्न'.

ठेके पर संस्कृति

यह ख्याल आते ही कि दिल्ली राज्य का एक सांस्कृतिक मंच भी होना चाहिए. **दिल्ली प्रशासन** ने बतर्ज़ साहित्य अकादेमी **साहित्य कला परिषद्** नामक एक संस्था पिछले दिनों स्थापित कर दी. यह संस्था लेखकों की श्रेष्ठ कृतियों के प्रकाशन में सहयोग देगी, कलाकारों को सम्मानित तथा पुरस्कृत करेगी, साहित्य गोष्ठियाँ, कवि सम्मेलन और कला प्रदर्शनियाँ करेगी. (यानी वही सब कुछ जो होता आया है.) इस के लिए जब परिषद् के सदस्य रूप में साहित्यकारों और कलाकारों को प्रशासन ढूँढने निकला तो उसे मिले डॉ. रामलाल वर्मा, व्रज मोहन, सत्यपाल चुग, वैद्य गुरुदत्त, एन. आर. मलकानी, शरण रानी वाकलीवाल, रानी रिपुजीत सिंह, विश्वनाथ मुखर्जी, संतोषनारायण नौटियाल आदि. शोभा के लिए जैनेंद्र, नगेंद्र और अमृता प्रीतम भी हैं. परिषद् अगले महीने सात साहित्यकारों और कलाकारों को ११०० रुपये, प्रशस्ति-पत्र और शाल भेंट कर सम्मानित करेगी. आसान काम. कलाकारों को कला सृजन के लिए सुविधा देना नहीं, सम्मानित करना ज्यादा जरूरी है. कारण स्पष्ट है कि जिन कलाकारों को ध्यान में रख कर यह बीड़ा उठाया गया है, उन्हें सुविधाओं की जरूरत अब नहीं है. सम्मान की ही जरूरत है. प्रशासन के लिए न तो नयी पीढ़ी है न उस का संघर्ष है न वह उस का साथी है, न उसे उस के लिए कुछ करना है. यह थोड़ा कठिन काम है. आखिर सरकार में निर्माण का हर कार्य जब ठेके पर ठेकेदारों द्वारा किया जाता है तो संस्कृति के निर्माण का काम भी ठेके पर क्यों नहीं हो सकता ?

धर्मवीर का धर्मयुद्ध

पश्चिमी बंगाल के राज्यपाल धर्मवीर का भाग्य निश्चित हो कर भी अनिश्चित बना हुआ है. श्री धर्मवीर को, एक बार फिर, केंद्र और राज्य के बीच तनाव की धुरी बनना पड़ा. लोकसभा में गृहमंत्री चव्हाण की इस घोषणा के बावजूद कि राज्यपाल धर्मवीर को ६ मार्च के पहले बंगाल से वापस बुलाना संभव नहीं, कलकत्ते और दिल्ली के बीच संवाद जारी है. मंगलवार की शाम को, मुख्यमंत्री अजय मुखर्जी ने फ़ोन पर प्रधानमंत्री से एक बार और यह आग्रह किया कि वह, ६ मार्च को विधान सभा की शुरुआत के पहले ही, राज्यपाल को वापस बुलाने की व्यवस्था करें. श्रीमती गांधी ने इस पर अपनी असमर्थता ज़ाहिर की. उन्होंने कहा कि गृहमंत्री पहले ही यह कह चुके हैं कि यह संभव नहीं है. श्री अजय मुखर्जी के अलावा, इस संबंध में, उपमुख्यमंत्री ज्योति बसु ने भी, श्रीमती गांधी से संपर्क किया.

राज्यपाल धर्मवीर की वापसी केंद्र की प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गयी है. एक तरह से केंद्र, श्री धर्मवीर के माध्यम से, अपना शक्ति-परीक्षण कर रहा है. जहाँ तक **श्री धर्मवीर का प्रश्न है, उन्होंने पिछले अक्तूबर में ही, प्रधानमंत्री की कलकत्ता-यात्रा के दौरान, उन से यह इच्छा ज़ाहिर की थी कि उन्हें पश्चिमी बंगाल से कहीं और भेज दिया जाय.** श्री धर्मवीर को शायद इस बात का अनुमान था कि मध्यावधि में क्या होगा; मगर केंद्र के कांग्रेसी नेताओं के मन में मध्यावधि की तस्वीर साफ़ नहीं थी—उन्हें, जैसा कि कांग्रेस संसदीय पार्टी के एक सदस्य ने पिछले हफ़्ते पार्टी की बैठक में कहा, यही बताया गया था कि बंगाल में कांग्रेस की जीत होगी. केंद्रीय नेताओं को यह उम्मीद नहीं थी कि पश्चिमी बंगाल में संयुक्त मोर्चे की सरकार बनेगी और राज्यपाल को ले कर संवैधानिक संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी. इस लिए उन्होंने धर्मवीर के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया.

वैसे संयुक्त मोर्चा सरकार का राज्यपाल को हटाने का आग्रह न केवल अनुचित बल्कि संविधान की दृष्टि से भी ग़लत है—क्यों कि संविधान के अनुसार राज्यपाल राज्य-सरकार की इच्छा या ज़िद का प्रतीक न हो कर राष्ट्रपति का प्रतिनिधि है. लेकिन यदि केंद्र ने श्री धर्मवीर को हटाने का निर्णय ले ही लिया था तो उन्हें ६ मार्च तक बरक़रार रखने की ज़िद बेमानी है—फ़िज़ूल का शक्ति प्रदर्शन है. यदि श्री धर्मवीर स्वयं बंगाल में बना रहना चाहते तब केंद्र की बाध्यता समझी जा सकती, मगर स्वयं गृहमंत्री के स्पष्टीकरण के अनसार श्री धर्मवीर बंगाल से हटना चाहते हैं, केंद्र सरकार ही उन्हें वहाँ बनाये रखना चाहती है. श्री धर्मवीर अधर्मयुद्ध नहीं, 'धर्मयुद्ध' लड़ना चाहते हैं. केंद्र उन को धर्मयुद्ध नहीं लड़ने देना चाहता. क्यों ? और किस आशा में ?

दोनों तरफ़ की इस ज़िद का नतीजा यह हुआ है कि अब पश्चिमी बंगाल में एक अनोखे राजनैतिक नाटक की भूमिका तैयार है. नियम और परंपरा के अनुसार राज्यपाल को विधानसभा के बजट अधिवेशन पर अपना अभिभाषण पढ़ना होगा. यह अभिभाषण मंत्रि-परिषद् द्वारा की गयी टिप्पणियों के आधार पर तैयार किया जाता है. जब तक यह अभिभाषण प्रकाशित नहीं हो जाता तब तक कुछ कह सकना मुमकिन नहीं; लेकिन अब तक **प्राप्त जानकारी के मुताबिक़ पश्चिमी बंगाल मंत्रि-परिषद् ने राज्यपाल के लिए जो अभिभाषण तैयार किया है उस में संयुक्त मोर्चे की पिछली सरकार की बरख़ास्तगी में श्री धर्मवीर की भूमिका की भी चर्चा है. दूसरे शब्दों में राज्यपाल धर्मवीर का प्रस्तावित अभिभाषण स्वयं उन्हीं के विरुद्ध निंदा प्रस्ताव है.** क्या श्री धर्मवीर इस अभिभाषण को पढ़ना पसंद करेंगे ? और यदि उन्होंने इस भाषण को या इस के किसी अंश को पढ़ने से इंकार कर दिया तो क्या स्थिति होगी ?

राज्यपाल धर्मवीर की वापसी के क़ानूनी पहलुओं के अलावा उस का राजनैतिक पहलू भी है. संयुक्त मोर्चे को अपने अस्तित्व का आशय व्यक्त करने का शीघ्र ही एक मौक़ा मिल गया.

धर्मवीर केवल अपने कर्त्तव्यों का पालन कर रहे हैं, उन के विरुद्ध जनमत का आह्वान करने का क्या अर्थ है ? कल संयुक्त मोर्चे की सरकार किसी केंद्रीय अफ़सर के विरुद्ध आंदोलन का आह्वान कर सकती है. ऐसी हालत में प्रशासन की क्या नियति होगी. संयुक्त मोर्चा श्री धर्मवीर को हटाने की स्थिति में नहीं है. इस का यह अर्थ नहीं कि राज्यपाल पर मनमाने आक्षेप किये जायें. लोकसभा के अध्यक्ष श्री नीलम संजीव रेड्डी को भी यह कहना पड़ा कि इस तरह के आक्षेपों को सदन की कार्यवाही से रद्द कर दिया जाय.

संवैधानिक औचित्य की दृष्टि से संयुक्त मोर्चा केंद्र से केवल यह अनुरोध कर सकता है कि वह राज्यपाल धर्मवीर को वापस बुला ले. केंद्र के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह इस अनुरोध को स्वीकार करे. श्री चह्वाण ने संविधान के अनुच्छेद १५६ का हवाला देते हुए, लोकसभा में यह स्पष्ट भी किया कि, "राष्ट्रपति के आदेश से राज्यपाल जब तक चाहे तब तक अपने पद पर बना रह सकता है—परंपरा के अनुसार राज्यपाल पदग्रहण के पाँच वर्ष तक अपने पद पर बरक़रार रहेगा".

दिनमान
समाचार - साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ ९ मार्च, १९६९
अंक १० १८ फाल्गुन, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट ११

*

मत और सम्मत ३
पिछला सप्ताह ४
पत्रकार-संसद् ५
चरचे और चरखे १०
परचून ४६

*

राष्ट्रीय समाचार १३
प्रदेशों के समाचार १९
विश्व के समाचार ३४
समाचार-भूमि : पाकिस्तान ३२
खेल और खिलाड़ी : गोल्फ़ प्रतियोगिता ३०

*

प्रेस-जगत् : बुद्धिवाद की चुनौती ६
अकादेमी पुरस्कार : संगीत नाटक अकादेमी ७
दिल्ली की चिट्ठी ९
क्रांति : पड़ोस का भूकंप २४
आर्थिक समीक्षा : पिछले वर्ष का लेखा-जोखा २६
स्मारक : आगा ख़ाँ का उपहार २७
पुरातत्त्व : दक्षिण भारत के मंदिरों २८
राज्य-वित्त : उत्तरप्रदेश की अर्थ-व्यवस्था २९
विज्ञान : अनंत और अनादि ब्रह्मांड ३९
भाषा : पाकिस्तान में ज़बान की लड़ाई ४०
किताबें ४१
संगीत : ग़ालिब शताब्दी के अवसर पर ४२
फ़िल्म : मधुबाला ४३
कला : फ़्रांसीसी टेपेस्ट्री; कैथे कौलविज ४४

*

आवरण चित्र : श्री मोरारजी देसाई
(फ़ोटो : रविव्रत वेदी)

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

कांग्रेस संसदीय पार्टी : हार की चुनौती

किसी ने नहीं सोचा था कि कई महीनों की शांति के बाद कांग्रेस संसदीय पार्टी में अचानक धड़ाका होगा और सारा का सारा नेतृत्व—मुख्य रूप से प्रधानमंत्री—धुएँ में ढँक जायेगी. मध्यावधि चुनाव के बाद, पिछले हफ्ते, जब कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्य-कारिणी समिति, पार्टी की हार पर विचार करने के लिए, इकट्ठी हुई, तब पार्टी के उप-नेता श्री श्यामनंदन मिश्र ने उठ कर, इस सारी पराजय के लिए, अपने खास अंदाज में, पार्टी के नेताओं को जिम्मेदार करार दिया और संपूर्ण नेतृत्व के विरुद्ध जेहाद बोल दिया.

श्यामनंदन मिश्र क्रांतिकारी नहीं हैं—इस रूप में उन की प्रतिष्ठा कभी नहीं रही. उन की वास्तविक ख्याति का आधार उन की चुनौती देने की क्षमता है. अक्सर जब पार्टी के सामान्य सदस्यों के मन में कोई असंतोष होता है, तब उसे अभिव्यक्ति देने की जिम्मेदारी श्यामनंदन मिश्र पर होती है. इस बार भी यही हुआ. बात मुख्य रूप से श्यामनंदन मिश्र ने कही—लेकिन बात अकेले उन की न होकर पार्टी के उस शिविर की थी जो कि बहुत से कारणों से आरंभ से नेतृत्व का विरोधी है.

श्री श्यामनंदन मिश्र ने रोष में भर कर प्रधानमंत्री को संबोधित करते हुए कहा कि १९६९ के मध्यावधि चुनाव के परिणाम इस बात के सूचक हैं कि कांग्रेस नेतृत्व ने १९६७ में सात राज्यों में अपनी पराजय से कोई सबक नहीं लिया. श्री श्यामनंदन मिश्र और कार्यकारिणी के कुछ अन्य सदस्यों ने नेताओं पर यह आरोप लगाया कि उन्हें पार्टी और देश की उतनी चिंता नहीं जितनी कि कुछ विशिष्ट व्यक्तियों की है.

इन सदस्यों का इशारा हाल में मंत्रिपरिषद् के पुनर्गठन की ओर था. मंत्रिपरिषद् का पुनर्गठन पिछले कुछ अर्से से कांग्रेस पार्टी के भीतर चर्चा का विषय बना हुआ है. **पुनर्गठन विरोधियों का कहना है कि यह सारा का सारा पुनर्गठन बेमानी है. अगर इस का कोई अर्थ है तो केवल इतना ही कि श्रीमती गांधी अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहती हैं और कुछ खास मंत्रियों को बढ़ाना और अन्य को उलझन में डालना चाहती हैं.** पुनर्गठन के विरोध में एक और तर्क यह दिया गया है कि इस से प्रशासन शिथिल और खोखला होगा—जब तक एक मंत्री अपने विभाग से अभ्यस्त होता है तब तक उसे दूसरे विभाग में नौसिखुआ बनने के लिए भेज दिया जाता है. काश, इतने ही शीघ्र भ्रष्ट अफ़सरों का तबादला होता.

मध्यावधि और पुनर्गठन की पृष्ठभूमि में पार्टी का विस्फोट अस्वाभाविक नहीं था—असाधारण जरूर था. **यद्यपि इस तोप का मुंह, श्री देसाई की ओर न हो कर श्रीमती गांधी की तरफ़ था, श्री मोरार जी देसाई ने इस विस्फोट के दबाव को अनुभव करते हुए पार्टी के सचिव श्री शिवाजी राव देशमुख से कहा कि आज पार्टी में जो कुछ हुआ वह प्रेस में नहीं जाना चाहिए.** पार्टी की यह परंपरा रही है कि बैठक के बाद उस का एक संक्षिप्त विवरण संवाददाताओं को दिया जाता है. यह विवरण इतना स्थूल और रस्मी होता है, कि वास्तव में पार्टी में क्या हुआ, किस की किस से झड़प हुई, उस का कोई अंदाज नहीं मिलता. संवाददाताओं को अंतर्कथा जानने के लिए अपने स्रोतों का इस्तेमाल करना होता है. इसलिए श्री देसाई ने कार्यकारिणी के सदस्यों से यह आग्रह किया कि वे इस बैठक की बातें संवाददाताओं को न बतायें, कारण कि इस से हाई कमांड की बदनामी होगी.

नेतृत्व के विरोध के मुख्य रूप से तीन आधार थे. एक तो यह कि पार्टी के नेता और हाई कमांड के सदस्यों को अब पार्टी के संगठन में कोई दिलचस्पी नहीं रह गयी है. वे आपसी स्वार्थों और सौदों में व्यस्त हैं. इस से पार्टी लगभग नेतृत्व विहीन हो गयी है. दूसरा यह कि नेताओं को विभिन्न राज्यों में पार्टी की स्थिति का एकदम गलत अंदाज है—वे हाथीदाँत की मीनार में कैद हैं.

श्री श्यामनंदन मिश्र ने इस संबंध में पश्चिमी बंगाल का उदाहरण देते हुए कहा कि इस प्रदेश के बारे में मध्यावधि के पहले हमें बताया गया था कि यहाँ संयुक्त मोर्चे की पराजय और कांग्रेस पार्टी की विजय निश्चित है. मगर मध्यावधि ने साबित कर दिया कि सरकार और कांग्रेस दोनों के खुफिया विभाग की जानकारियाँ बिलकुल गलत थीं. पश्चिमी बंगाल में कांग्रेस की हार का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा कि किसी एक व्यक्ति को इस के लिए दोषी ठहराना फिजूल है. कांग्रेस पार्टी ने पश्चिम बंगाल में कुछ खास व्यक्तियों के हितों का पोषण करने का प्रयत्न किया—इस से वह जनता की नज़र में और भी गिर गयी. श्री श्यामनंदन मिश्र ने जहाँ पर मौन रहना पसंद किया श्री गुलजारी लाल नंदा ने वहाँ खुल कर बात करने में कोई संकोच नहीं किया. पश्चिमी बंगाल में कांग्रेस की पराजय के लिए उन्होंने श्री अतुल्य घोष को दोषी ठहराया.

सदस्यों की आलोचना का तीसरा आधार था नेतृत्व की निरंकुशता. अनेक सदस्यों की यह धारणा थी कि नेतृत्व अपने आग्रहों को, अनुशासन के नाम पर पार्टी पर थोपता रहा है. वास्तव में होना यह चाहिए कि पार्टी के नेता सदस्यों के विचारों के आधार पर अपनी नीतियाँ संगठित करें. लेकिन स्थिति इस के विपरीत है. नेता मनमानी नीतियाँ बना कर पार्टी से उस पर मुहर लगाने का प्रयत्न करते रहे हैं. पिछले काफी अर्से से इस संबंध में प्रधानमंत्री की पश्चिमी एशिया नीति का उदाहरण दिया जाता रहा है. कार्यकारिणी के अनेक सदस्यों का दावा है कि हम प्रधानमंत्री की पश्चिम एशिया नीति को राष्ट्रीय हितों के विपरीत मानते हैं, लेकिन श्रीमती गांधी ने हमारी राय और आपत्तियों को कभी कोई शख्सियत नहीं दी—अपनी ज़िद को उन्होंने पार्टी पर थोपा.

नेतृत्व के विरुद्ध, पार्टी की बैठक में जो जिहाद शुरू हुआ, उस का सिलसिला आगे बढ़ चुका है. मार्च के तीसरे हफ्ते में कांग्रेस संसदीय पार्टी की संपूर्ण बैठक, अनौपचारिक स्तर पर, मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस की हार पर विचार करेगी. इस तरह की कुछ अनौपचारिक बातचीत श्री गुलजारी लाल नंदा, कांग्रेसी संसद सदस्यों के साथ कर चुके हैं.

मध्यावधि के परिणामों के अलावा पार्टी की बैठक में आपसी प्रतिस्पर्धा को लेकर भी चर्चा हुई. अनेक सदस्यों ने कहा कि नेतृत्व में धीरे धीरे यह प्रवृत्ति घर करती जा रही है कि एक नेता दूसरे नेता को गिराने का प्रयत्न करता है, लँगड़ी लगाता है. वह अपने प्रति-द्वंद्वी से सीधे-सीधे आमने-सामने मुकाबला नहीं करता बल्कि पीछे से वार करता है. एक मंत्री दूसरे मंत्री की प्रतिमा खंडित करने के लिए अपना शिविर बनाता है और इस तरह पार्टी के भीतर कई शिविर बनते जा रहे हैं. इस का नतीजा यह हो रहा है कि पार्टी भीतर ही भीतर खंडित हो रही है. सारी की सारी एकता एक कल्पना होती जा रही है.

पार्टी की बैठक में श्री श्यामनंदन मिश्र के अलावा **श्रीमती सुचेता कृपालानी, श्री के. एन. पांडेय, श्री आर. एस. पंजहजारी और श्री वेदव्रत बरुआ** ने नेताओं और मंत्रियों की तीव्र आलोचना की.

श्रीमती सुचेता कृपालानी ने बहस को एक दूसरे स्तर पर प्रतिष्ठित करते हुए कहा कि पश्चिमी बंगाल में संयुक्त मोर्चा, राज्य पाल धर्मवीर को हटाने की जिस तरह माँग किये हुए है, वह अपने आप में एक खतरनाक मोड है. उन्होंने केंद्र सरकार से यह आग्रह किया कि वह कम्युनिस्टों के दबाव के आगे घुटने न टेके. अगर केंद्र ने यह माँग स्वीकार कर ली तो यह एक भयानक शुरुआत होगी.

—विशेष संवाददाता

राष्ट्र

मंत्रि परिषद्

एक आदमी को कितनी ज़मीन चाहिए?

वित्तमंत्री मोरारजी देसाई के वजट भाषण की शुरुआत पर कोई भी मंत्री लोकसभा में उपस्थित क्यों नहीं था, इस का रहस्य बाद में खुला. श्री मोरारजी देसाई ने अपने वजट-प्रस्तावों में खेतिहर ज़मीन और अचल संपत्ति पर कर लगाने का जो प्रस्ताव किया था उस पर कैबिनेट में तव भी बहस जारी थी, जब कि लोकसभा में श्री मोरारजी देसाई का भाषण शुरू हो चुका था. वजट भाषण के घंटा भर पहले वजट-प्रस्तावों पर विचार करने के लिए कैबिनेट की बैठक बुलायी गयी थी. अधिकतर वजट-प्रस्तावों पर कोई मतभेद नहीं था, लेकिन खेतिहर ज़मीन और इमारतों पर संपत्ति कर लगाने के प्रस्ताव का कैबिनेट के अधिकतर सदस्यों ने तीव्र विरोध किया. **विरोध करने वालों में अगुवा थे श्री दिनेशसिंह और डॉ० रामसुभग सिंह. श्री यशवंतराव चव्हाण और श्री जगजीवनराम की भी यह राय थी कि यह प्रस्ताव अपने आप में अनुचित है—अलावा इस के कि इस से ग्रामीण जनमत कांग्रेस-विरोधी हो जायेगा.** दूसरी ओर श्री मोरारजी देसाई की यह निश्चित मान्यता थी कि इस से छोटे क़िसानों को कोई नुक़सान नहीं पहुँचेगा लेकिन ज़मीन के नाम पर बड़ी-बड़ी व्यापारिक फ़र्मों ने जो जायदाद वना ली है उस का क्षेत्र अवश्य प्रतिबंधित होगा. श्री मोरारजी देसाई का कहना है कि इस प्रस्ताव का उद्देश्य बड़ी व्यापारिक फ़र्मों को बेशुमार ज़मीन इकट्ठा करने से रोकना है. श्री मोरारजी देसाई को, मंत्रि परिषद् में, शिक्षामंत्री डॉ० वी. के. आर. वी. राव से समर्थन मिला. डॉ० राव ने श्री मोरारजी देसाई को अपना एकनिष्ठ समर्थन देते हुए विचार व्यक्त किया कि ज़मीन के नाम पर धनी लोग संपत्ति संग्रह कर रहे हैं और अगर उन्हें ऐसा करने से न रोका गया तो धनी और भी धनी हो जायेंगे.

'विपत्ति कर' : बहस अभी चल रही रही थी कि संसद् में वजट पेश करने का समय हो गया और श्री मोरारजी देसाई कैबिनेट की बैठक से उठ कर लोकसभा में चले गये. जब वह अपना वजट-भाषण पढ़ रहे थे तव कैबिनेट की ओर से उन्हें एक चिट भेजी गयी जिस में इस प्रस्ताव को संशोधित किया गया था. यद्यपि श्री मोरारजी देसाई के वजट-प्रस्तावों के आलोचकों की आपत्ति का केंद्र खेतिहर ज़मीन पर संपत्ति-कर है, मगर अब आलोचना का क्षेत्र काफ़ी व्यापक हो गया है. वजट-प्रस्ताव के आलोचकों की राय है कि वित्तमंत्री ने खेतिहर क्षेत्र के बारे में सख्त रवैया अपनाया है जब कि औद्योगिक क्षेत्र के संबंध में उन के प्रस्ताव काफ़ी उदार और सहायक हैं. पिछले दो वर्षों में देश की उपज में कुछ सुधार हुआ है और ग्रामीण अर्थ-स्थिति में अपेक्षाकृत स्थायित्व आया है. लेकिन इस का यह अर्थ नहीं कि भारत की ग्रामीण जनता खुशहाल हो गयी या कि उस ने नागरिक-क्षेत्र की जनता जैसी समृद्धि पा ली. ऐसी हालत में खेतिहर ज़मीन पर संपत्ति-कर का प्रस्ताव करना ग्रामीण विकास को जाने या अनजाने रोकने की कोशिश करना है. यह संपत्ति-कर न हो कर, किसानों के लिए विपत्ति-कर होगा.

योजना का बोझ : दूसरी ओर वजट प्रस्तावों के पक्ष में सब से बड़ा तर्क यह दिया गया कि अगर *चौथी योजना* को कामयाब बनाना है तो स्वदेशी आय के स्रोतों को पर्याप्त संगठित करना होगा. चौथी योजना और अगली वार्षिक योजना का परिमाण निश्चित किया जा चुका है और अब केवल इतना ही तय होना वाकी है कि अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों से क्या सहयोग प्राप्त किया जाये. इस संबंध में यह बताया गया कि उर्वरक पर राजस्व लगाने का प्रस्ताव योजना आयोग की सलाह पर किया गया था.

असंवैधानिक : खेतिहर ज़मीन पर संपत्ति कर के प्रस्ताव ने अनेक राजनैतिक और संवैधानिक पेचीदगियाँ पैदा कर दी हैं. संसद् में जैसे ही यह प्रस्ताव आया, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के श्री मधु लिमये ने उठ कर वित्त विधेयक को 'असंवैधानिक' क़रार दिया. **विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के प्रवक्ताओं से बातचीत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संसद् में इस मामले पर विस्फोट निश्चित है. लगभग सभी पार्टियों की यह राय है कि खेतिहर ज़मीन पर संपत्ति कर लगाने का प्रस्ताव न केवल क्रूर है बल्कि वह संविधान की भावना के विरुद्ध है.** इस संबंध में एक दूसरी कठिनाई यह है कि अलग-अलग राज्य में ज़मीन की क़ीमत अलग-अलग है. ऐसी हालत में इमारतों और मकानों के किराये की दर किस कसौटी पर निश्चित की जा सकती है और अगर सभी राज्यों के लिए समान दर नहीं हो सकती तो फिर संपत्ति कर का आधार क्या हुआ ? सरकार को इस प्रशासनिक कठिनाई का सामना करना पड़ेगा.

संशोधन की गुंजाइश : मंत्रि परिषद् में श्री देसाई के प्रस्ताव का जो विरोध हुआ उस से वित्तमंत्री ने अपने वजट भाषण में कुछ मौखिक परिवर्तन किया, जिस के अनुसार वास्तविक काश्तकार संपत्ति कर से मुक्त होंगे. बाद में वित्तमंत्रालय के प्रवक्ताओं ने यह बताया कि संपत्ति कर केवल उन्हीं लोगों पर लागू होगा जो कि पहले से आय कर दे रहे हैं. इस कर से वे सभी काश्तकार मुक्त हो जायेंगे जो कि आय कर से मुक्त हैं. इस के बावजूद इस प्रस्ताव ने अचल संपत्ति संबंधी कई अधिकारों के बारे में उलझन पैदा कर दी है और संसद् में इन पर पर्याप्त बहस होगी. यह बहुत संभव है कि संसद् में हुई बहस और राज्य सरकारों की राय के मुताबिक़ प्रस्ताव में और भी संशोधन कर दिये जायें यानी कि खेतिहर ज़मीन पर संपत्ति कर का क्षेत्र और भी सीमित कर दिया जाये.

बिड़ला उद्योग

तीसरा स्मरणपत्र

बिड़ला समूह के उद्योगों द्वारा की गयी अनियमितताओं की जाँच की माँग एक बार फिर ज़ोरदार शब्दों में संसद् के दोनों सदनों में की गयी. बिड़ला उद्योगों के विरुद्ध तीन स्मरणपत्र प्रस्तुत करने वाले कांग्रेसी संसद्-सदस्य चंद्रशेखर ने अपने तीसरे स्मरणपत्र तथा जाँच की अब तक की प्रगति का ब्योरा सदन के पटल पर रखने की पुरज़ोर माँग करते हुए भारत सरकार पर उचित कार्रवाई न करने का आरोप लगाया. उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि भारत सरकार के कुछ 'बड़े लोग' बिड़लाओं की ढाल बने हुए हैं. कई अन्य सदस्यों ने भी चंद्रशेखर द्वारा सरकार पर लगाये गये आरोपों का समर्थन करते हुए माँग की कि सरकार बिड़ला उद्योगों के विरुद्ध लगाये गये आरोपों की मुस्तैदी से जाँच कराये.

जाँच जारी : उद्योग, आंतरिक व्यापार तथा कंपनी मामलों के मंत्री फखरुद्दीन अली अहमद ने चंद्रशेखर के तीसरे स्मरणपत्र तथा जाँच के ब्योरे को राज्यसभा के पटल पर रखते हुए बताया कि तीनों स्मरणपत्रों में बिड़ला उद्योगों के विरुद्ध कुल ८८ आरोप लगाये गये हैं. ये आरोप विभिन्न मंत्रालयों से संबद्ध हैं. कुछ आरोप ऐसे भी हैं जिन का संबंध एक से अधिक मंत्रालयों से है. सभी आरोपों को सात वर्गों में विभाजित कर के उन की जाँच की जा रही है. अब तक ६४ आरोपों की जाँच पूरी हो चुकी है और उस के आधार पर आवश्यक कार्रवाई की गयी है अथवा की जा रही है. शेष २४ आरोप ऐसे हैं जिन के बारे में अभी और जाँच होनी आवश्यक है. इन २४ मामलों में से १७ वित्तमंत्रालय से, २ कंपनी मामलों के विभाग से, एक रेल और चार वाणिज्यमंत्रालयों से संबंधित हैं. वित्तमंत्रालय से संबद्ध १७ आरोपों में ५ आरोप

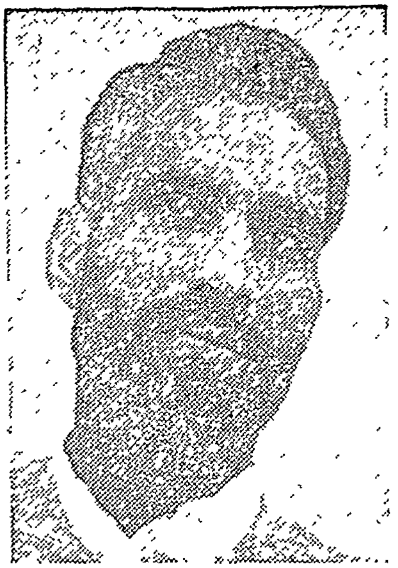

चंद्रशेखर : आरोपों का सिलसिला

विदेशी मुद्रा नियमों के उल्लंघन से संबंधित हैं. मंत्री महोदय ने बताया कि इन में से दो मामलों की जाँच विदेशों में की जा रही है, किंतु स्विट्जरलैंड से संबंधित मामले में हम साक्ष्य प्राप्त नहीं कर सके हैं. वित्त मंत्रालय से संबद्ध ७ आरोप सिद्ध नहीं हो सके हैं, किंतु शेष आरोपों की जाँच के आधार पर आय-कर संबंधी ३० मामले पुनः चलाये जा रहे हैं, जिन में से १० की जाँच पूरी हो चुकी है.

कंपनी मामलों के विभाग से संबंधित आरोपों के निरीक्षण के बाद कंपनी क़ानून बोर्ड ने इन में से दो कंपनियों की जाँच का आदेश दिया किंतु कलकत्ता उच्च न्यायालय की निषेधाज्ञा के परिणामस्वरूप जाँच स्थगित करनी पड़ी. कलकत्ता स्थित इन कंपनियों के अलावा दो अन्य कंपनियों की लेखा पुस्तकों के निरीक्षण के आधार पर उन की जाँच का आदेश दिया गया. यह जाँच भी जबलपुर उच्च न्यायालय की निषेधाज्ञा के कारण स्थगित करनी पड़ी. कंपनी द्वारा प्रस्तुत की गयी याचिका पर न्यायालय ने निर्णय दे दिया है जिस का सरकार के क़ानून अधिकारी अध्ययन कर रहे हैं. स्मरणपत्रों में उल्लिखित अन्य आरोपों की भी जांच की जा रही है.

आयोग नहीं, आयुक्त : मंत्री महोदय ने आरोपों की जाँच के लिए आयोग की नियुक्ति को अनावश्यक बताया. उन्होंने घोषणा की कि सरकार ने जाँच करने वाले अधिकारियों की सहायता के लिए एक विशेष आयुक्त की नियुक्ति की है जो न्यायिक और क़ानूनी बातों के अच्छे जानकार है. मंत्री महोदय ने विशेष आयुक्त के अधिकार-क्षेत्र की चर्चा करते हुए सदन को बताया कि वह अपनी सुविधा के लिए संबद्ध विभागों और उन के अधीनस्थ कार्यालयों से काग़ज़ात तथा अन्य सूचनाएँ मँगा सकते हैं.

विविध आरोप : श्री चंद्रशेखर ने अपने स्मरणपत्रों में बिड़ला समूह के उद्योगों के विरुद्ध विविध प्रकार के आरोप लगाये हैं. अधिकांश आरोप आयकर, केंद्रीय चुंगी, सीमा शुल्क, विदेशी मुद्रा नियमों, बीमा, राज्य सरकारों द्वारा बिड़ला उद्योगों के प्रति अपनाये गये पक्षपातपूर्ण रवैये आदि से संबंधित हैं. उन्होंने आरोपों की जाँच के मामले को कई बार संसद् में भी उठाया है और सरकार को वक्तव्य देने के लिए विवश किया है. उन्हें अपने इस प्रयास में अनेक कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी संसद्-सदस्यों का समर्थन मिला है. फिर भी अब तक जाँच में वह प्रगति नहीं हो सकी है जो कि अपेक्षित थी. जाँच के बाद जो परिणाम सामने आये हैं या यों कहिए सरकार ने जाँच के बाद जो जानकारी संसद् को दी है उस से आरोप लगाने वालों को संतोष नहीं हुआ है. आरोप सही हैं अथवा निराधार, यह अलग बात है किंतु उन की जाँच कर के असलियत का पता लगाना चाहिए ताकि जनमानस में सरकार तथा बिड़ला उद्योगों के प्रति व्याप्त भ्रांतियाँ दूर हो सकें.

अतिथि

सोवियत रक्षामंत्री

यह एक विचित्र संयोग की ही बात थी कि सोवियत रक्षामंत्री मार्शल आंद्रे ग्रेचको के भारत आगमन और रूस-चीन सीमा संघर्ष के समाचार एक ही दिन सुनने को मिले. इन दोनों घटनाओं का परस्पर कोई संबंध है या नहीं इस बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता यों सोवियत संघ ने चीन पर यह आरोप लगाते हुए कहा है कि चीन ने जानबूझ कर उस समय सीमा पर विवाद शुरू किया जब कि सोवियत संघ ने अपना सारा ध्यान बर्लिन संकट पर केंद्रित किया हुआ था.

सोवियत रक्षामंत्री ग्रेचको एक सप्ताह के लिए भारत आये हैं. पालम हवाई अड्डे पर भारतीय रक्षामंत्री स्वर्णसिंह ने उन का स्वागत किया. दूसरे दिन ग्रेचको ने प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को सोवियत प्रधानमंत्री कोसिगिन का एक पत्र भी दिया. उस पत्र का विवरण अभी ज्ञात नहीं हो सका. भारतीय रक्षामंत्री स्वर्ण सिंह के साथ ग्रेचको की दूसरे दिन दो घंटे की एक बैठक हुई जिस में दोनों मंत्रियों ने कई गंभीर मामलों पर विचार-विमर्श किया. इस में पाकिस्तान की आंतरिक स्थिति, भारत की रक्षा-व्यवस्था, और रूस-चीन सीमा संघर्ष के बारे में भी बात चीत की गयी. यों पत्रकारों के साथ बातचीत करते हुए भारतीय रक्षा मंत्री ने कहा कि रूस-चीन सीमा संघर्ष तो १९६८ से ही होते आये हैं. उन्होंने यह भी कहा कि हम ने तो सोवियत संघ द्वारा पाकिस्तान को हथियार देने के मसले पर भी विचार-विमर्श नहीं किया. लेकिन जानकारों का कहना है कि रूस-चीन सीमा विवाद पर इन दोनों मंत्रियों ने बातचीत की.

महत्त्वपूर्ण दौरा : ग्रेचको सोवियत पोलिट ब्यूरो के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य और कोसिगिन मंत्रिमंडल के एक वरिष्ठ और विश्वास-पात्र व्यक्तियों में हैं. मार्शल ग्रेचको के दल में अन्य कई महत्त्वपूर्ण सदस्य भी भारत आये हैं. बात-चीत के दौरान ग्रेचको ने इस बात को फिर दोहराया कि सोवियत संघ ने भारत को जो सैनिक साज-सामान देने का आश्वासन दिया है वह उसे तो पूरा करेगा ही साथ ही इस बात का भी ध्यान रखेगा कि पाकिस्तान को केवल उस सीमा तक ही सैनिक सामान दिया जाये जिस से इस महाद्वीप का वर्तमान शक्ति संतुलन बना रहे.

सोवियत नेता यह जानना चाहते हैं कि भारत चीन के साथ अपना सीमा विवाद सुलझाने के लिए बातचीत करने को तैयार है या नहीं और यदि है तो किस शर्त पर. क्यों कि चीन की चालों को समझने वाले सोवियत जानकारों का कहना है कि शायद चीन भारत के साथ बातचीत करने को तब तक तैयार नहीं होगा जब तक कि भारत के सोवियत संघ के साथ गहरे और मधुर संबंध होंगे.

रूस के प्रतिरक्षामंत्री ग्रेचको भारत के प्रतिरक्षामंत्री स्वर्णसिंह और वायु सेनाध्यक्ष अर्जुनसिंह : पालम में स्वागत

सब कुछ महँगा : केवल लेमनचूस सस्ता

सोवियत रक्षामंत्री एक सप्ताह का भारत का दौरा पूरा करने के बाद पाकिस्तान भी जायेंगे.

वित्त

केंद्रीय बजट

ऐसा भी क्या बजट जो विकास और राजनीति के तकाज़ों को भी पूरा करे और सब को खुश भी, वित्तमंत्री के रूप में ऐसे भी क्या मोरार जी देसाई जो कोई साहसिक और इसलिए विवादग्रस्त व्यवस्था न सुझा बैठें । स्वर्ण नियंत्रण और अनिवार्य जमा-योजना की परंपरा में कृषि-सम्पत्ति पर कर एक नयी कड़ी है. यह एक ऐसा सुझाव है जो किसी भी राजनैतिक दल को हज़म नहीं हो सकता : उन के सामने यह सवाल नहीं है कि कितने बड़े किसान पर कर लगे, बल्कि यह है कि लगे ही क्यों ? खुद कांग्रेसी मंत्रिमंडल ने बजट-भाषण में ऐन मौक़े पर संशोधन करवा दिया कि 'वास्तविक किसान' को सम्पत्ति कर से मुक्त रखा जायेगा.

यह प्रस्ताव, जो हर हालत में अगले वर्ष ही लागू होता, फ़िलहाल छोड़ दिया जाये तो भी उप प्रधानमंत्री देसाई पंपिंग सेटों पर मूल्यानुसार २० प्रतिशत और उर्वरकों पर १० प्रतिशत का उत्पादन शुल्क लगा कर कृषि के विकास के लिए कृषि-क्षेत्र से ४४ करोड़ रुपया उगाहने में समर्थ हो जायेंगे. विरोध इस का भी होगा हालांकि आर्थिक दृष्टि से ये कर अनावश्यक नहीं हैं.

१९६९-७० के बजट की दूसरी खूबी यह है कि उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता की देवी को प्रसन्न करने के लिए जूट और चाय पर निर्यात शुल्क की राशि घटा दी है. इससे ये उद्योग अंतर्राष्ट्रीय मंडियों में टिके रह सकेंगे, यह आशा की जा सकती है. यही नहीं सूती पटसन कपड़ा उद्योगों को भी विकास देने का प्रस्ताव है.

यदि वित्तमंत्री महोदय ने राहत के नाम पर किसी-किसी को कुछ दिया है तो अतिरिक्त वसूली में कोई कोताही नहीं दिखायी है. उन्होंने कुल मिलाकर १२७.२९ करोड़ रुपये के नये कर लगाये हैं (ब्यौरा आगे दिया गया है) उत्पादन शुल्कों से १०४.५७ करोड़ रुपये अधिक मिलेंगे जब कि प्रत्यक्ष करों से केवल १३.५ करोड़ रुपया अधिक. टेलीफ़ोन और तार की दरों में वृद्धि से ६.४६ करोड़ की प्राप्ति होगी. फिर भी बजट में २५० करोड़ रुपये का घाटा रहता है. मोरारजी भाई का ख्याल है कि यदि पिछले वर्ष की तरह इस वर्ष भी अच्छी फ़सल हुई तो घाटे की वित्त-व्यवस्था का अर्थरचना पर बुरा असर नहीं पड़ेगा. वित्तमंत्री का बजट और देशवासियों का भाग्य इस हद तक मानसून पर निर्भर करे, यह छोटी विडम्बना नहीं है.

लेकिन अतिरिक्त उगाही से देश के कौन-कौन-से बिगड़े काम बनेंगे ? बजट-भाषण भी इस बारे में अधिक आश्वस्त नहीं करता : अतिरिक्त राजस्व का खासा भाग—५९ करोड़ रुपये—प्रतिरक्षा चाट जायेगी. इस मद में किफ़ायत का या धन के सदुपयोग का सवाल उठता है, लेकिन इस की बाबत कुछ बताया ही नहीं जाता. चौथे आयोजन के प्रथम बजट में कुल १२२३ करोड़ रुपये रखे जा सके हैं; यह राशि पिछले वर्ष से ९३ करोड़ रुपये अधिक है. यह इस तरह कि पिछले वर्ष ११७० करोड़ रुपये की राशि में सार्वजनिक उद्योगों को घाटा पूरा करने के लिए ४० करोड़ रुपये के क़र्ज़ की रक़म शामिल थी जबकि इस बार यह मद आयोजन के खाते में नहीं, ग़ैर-आयोजन व्यय में शुमार की गयी है. मोरार जी का कहना है कि ग़ैर आयोजन-व्यय की मदों में किफ़ायत करने की बहुत कोशिश की लेकिन यह संभव नहीं हुआ. आयोजन के अधीन पूरी की गयी योजनाएँ ग़ैर-आयोजन व्यय से चलेंगी, ऋणों का ब्याज दिया जाना है, निर्यात संवर्द्धन की योजनाएँ चलनी हैं, महँगाई भत्ता मूल वेतन में मिलाया जा रहा है. प्रतिरक्षा व्यय में ५९ करोड़ रुपये की बढ़ोत्तरी का अधिकांश वेतन और पेंशन पर खर्च होगा.

हर बजट महँगाई ले कर आता है : पेट्रोल, सिगरेट, बिजली के हीटर आदि, खुले बाज़ार में चीनी महँगी होगी, लेकिन किसी-किसी को खुशी हो सकती है कि चलो, लेमनचूस तो कुछ सस्ते हो जायेंगे.

अप्रत्यक्ष कर

नये कर प्रस्ताव

सीमा-शुल्क : (१) निर्यात शुल्कों में **कटौतियां :** (क) हेसियन पर निर्यात-शुल्क ५०० रु० प्रति मेट्रिक टन से घटा कर २०० रु० प्रति मेट्रिक टन (ख) वूल सैक और काटन बैगिंग का निर्यात-शुल्क समाप्त. (ग) जूट सैकिंग पर निर्यात-शुल्क में १०० रु० प्रति टन की कमी. (घ) चाय का निर्यात-शुल्क घटाकर २० प्रतिशत से १५ प्रतिशत प्रति किलोग्राम. (च) चरबी रहित कच्चे ऊन और धातु के डिब्बों में बन्द चाय पर लगा निर्यात-शुल्क समाप्त और दूसरे प्रकार के डिब्बों में बन्द चाय पर लगा निर्यात-शुल्क १५ प्रतिशत से ५ प्रतिशत. इन सब निर्यात-शुल्कों में कमी से राजस्व में प्रतिवर्ष २३ करोड़ रु० की कमी होगी.

(२) आयात-शुल्कों में वृद्धि : (क) चिकने तेल पर मूल्यानुसार १२॥ प्रतिशत, (ख) मोटर कारों पर मूल्यानुसार ४० प्रतिशत वृद्धि, (ग) मेवा और गुठली रहित खजूर पर मूल्यांकन का आधार बदलने से वृद्धि—इन आयात-शुल्कों से कुल अतिरिक्त राजस्व ६ करोड़ २० लाख रु०.

उत्पादन-शुल्क : (क) इन पर केन्द्रीय उत्पादन-शुल्क लगाने का प्रस्ताव है : (१) उर्वरकों पर मूल्यानुसार १० प्रतिशत की दर से. इससे २२ करोड़ रु० का राजस्व प्राप्त होगा. (२) बिजली से चलने वाले पंपों पर मूल्यानुसार २० प्रतिशत. इससे २ करोड़ रु० का राजस्व प्राप्त होगा. (३) परिरक्षित खाद्य-पदार्थों पर मूल्यानुसार १० प्रतिशत. (४) घरों में इस्तेमाल किये जाने वाले बिजली के उपकरणों पर मूल्यानुसार १० प्रतिशत. (५) सिनेमाटोग्राफ फ़िल्मों (कच्ची फ़िल्म) पर प्रति मीटर २ पैसे.

(ख) इनके उत्पादन-शुल्क में परिवर्तन करने का प्रस्ताव है : (१) सभी प्रकार की

दानेदार चीनी पर २८.६५ रु० प्रति क्विंटल के वर्त्तमान निर्दिष्ट कर को मूल्यानुसार २३ प्रतिशत की दर में बदल दिया जाये. इससे २७ करोड़ ४५ लाख रु० का लाभ होगा. (२) सिगरेटों पर शुल्क में मूल्यानुसार ६ से १८ प्रतिशत तक की वृद्धि. लाभ—१५ करोड़ ८४ लाख रु०. (३) मोटर स्पिरिट पर लगे हुए उत्पादन शुल्क में ७ पैसे प्रति लिटर की वृद्धि (४) बढ़िया क़िस्म के मिट्टी के तेल के उत्पादन-शुल्क में ४ पैसे प्रति लिटर की वृद्धि. लाभ : १४ करोड़ ४० लाख रु. (५) सेल्यूलोजी रेशे (स्टेपुल फाइवर) पर लगे उत्पादन-शुल्क में २० पैसा प्रति किलोग्राम और ग़ैर-सेल्यूलोजी रेशे पर लगे उत्पादन-शुल्क में १२ रु० प्रति किलोग्राम की वृद्धि. इन सब से लाभ—७ करोड़ २० लाख रु०. (६) जूट की बनी चीज़ों पर लगा *हुआ बुनियादी उत्पादन-शुल्क* ११० रु० प्रति मेट्रिक टन बढ़ाया जा रहा है. इससे ४ करोड़ ९५ लाख रु० का राजस्व प्राप्त होगा.

सभी परिवर्त्तनों से ८३ करोड़ ८४ लाख रु० का अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होगा.

(ग) खंडसारी, सोडियम सिलिकेट, रबड़ के सामान, वनस्पति, सोडा ऐश कास्टिक सोडा, साबुन सीमेंट, बिजली के लट्टुओं और ट्यूब और बिजली के पंखों पर लगे उत्पादन-शुल्क में संशोधन. अतिरिक्त राजस्व: ३ करोड़ ५० लाख रु०.

उत्पादन-शुल्कों में इन परिवर्त्तनों और कुछ नये सामान पर पहली बार लगाये गये उत्पादन-शुल्क के फलस्वरूप कुल ११५ करोड़ ५० लाख रु० का अतिरिक्त राजस्व प्राप्त होगा.

सूती वस्त्र उद्योग को उत्पादन-शुल्क में कुछ राहत देने के प्रस्ताव हैं. सादी सीधी रीलों की लच्छियों के रूप में होने वाले सूत पर लगा हुआ उत्पादन-शुल्क कुछ सूत्रांकों के सम्बन्ध मे हटाया जा रहा है और कुछ अन्य सूत्रांकों के संबंध में घटाया जा रहा है. इन तथा अन्य राहतों से सूती कपड़े की कमजोर मिलों को बहुत लाभ होगा. प्रस्तावित राहत की रक़म—१५ करोड़ ३० लाख रु०.

पर इस हानि में से ९ करोड़ ५० लाख रु० की पूर्ति नियंत्रित क़िस्मों के छपे कपड़े को छोड़ बहुत बारीक तथा बारीक क़िस्म के छपे कपड़े पर ५ पैसे प्रति वर्ग मीटर और दूसरी सब किस्मो के छपे कपड़े २॥ पैसे प्रति वर्ग मीटर का और ऊँचा शुल्क लगा कर तथा ज्यादा कीमती किस्मों के कपड़ों, जैसे सूट के कपड़ों, परदे और सजावट के कपड़ों, टर्किश तौलियों और दूसरे कपड़ों पर, जिन पर इस समय उनकी कीमत को देखते हुए शुल्क का भार कम है, छँटाई के आधार पर, १५ प्रतिशत का मूल्यानुसार शुल्क लगाकर, की जायेगी.

नीचे के 'डेनियरों' के नाइलन के धागे पर लगा हुआ उत्पादन-शुल्क घटाया जा रहा है और इससे होने वाली हानि की कुछ पूर्ति कतिपय ऊंचे 'डेनियरों' के नाइलन के धागे पर लगा हुआ उत्पादन-शुल्क कुछ बढ़ाकर की जायेगी. इस घट-बढ़ का परिणाम यह होगा कि राजस्व ३ करोड़ ९० लाख रु० कम हो जायेगा. इस रियायत से नाइलन के धागे का चोरी से देश में लाया जाना बन्द करने में सहायता मिलेगी. नाइलन के धागे का चोरी से लाया जाना बड़ी चिंता का विषय हो गया है.

कनफेक्शनरी पर लगा हुआ उत्पादन-शुल्क घटाकर ८० पैसे प्रति किलोग्राम से ३० पैसे प्रति किलोग्राम किया जा रहा है, पर चाकलेटों पर लगा हुआ उत्पादन-शुल्क नही घटाया जा रहा है. कसीदे, रेडियो-सेट और उन के पुर्जो, सिनेमा फ़िल्मों और कांच तथा कांच

मोरारजी देसाई : पाई दर पाई

के बर्तनों के उत्पादन-शुल्क में भी कुछ रियायतें दी गयी हैं. इन सब राहतों से १० करोड़ ९३ लाख रु० की हानि होगी और उत्पादन-शुल्क से शुद्ध लाभ १०४ करोड़ ५७ लाख रु० रह जायेगा.

प्रत्यक्ष-कर

व्यक्तिगत आय—१० हजार से अधिक की आय पर मूल आय-कर की दरें इस प्रकार बढ़ायी जा रही हैं : १०,००१ रु० से १५,००० तक—१७ प्रतिशत (वर्त्तमान दर १५ प्र.श.) १५,००१ रु० से २०,००० तक—२३ प्रतिशत (वर्त्तमान दर २० प्र० श०)

सहकारी समितियां: सहकारी समितियों की जिस आय पर छूट रहती है, वह १५ हजार रु० से बढ़ाकर २० हज़ार रु० कर दी जाएगी. इस के अतिरिक्त कुछ अन्य मूल-दरों में भी परिवर्त्तन किया गया है.

रजिस्टर्ड फर्म: अब तक २५ हज़ार रु० तक की आय पर कर से छूट थी, जबकि अब इसे घटाकर १० हज़ार रु० करने का प्रस्ताव है. १०,००१ रु० से २५,००० रु० तक की आय पर कर की दर ४ प्रतिशत होगी. अग्रिम कर के भुगतान की प्रणाली में भी परिवर्त्तन किये गये हैं. आय-कर में इन परिवर्त्तनों से २१ करोड़ ५० लाख रु० का लाभ होगा.

सम्पत्ति-कर: कर निर्धारण वर्ष १९७०-७१ से कृषि-सम्पत्ति भी सम्पत्ति में शामिल की जायेगी और उस पर वर्त्तमान दर से सम्पत्ति-कर लगेगा. इसमें खड़ी फ़सलें, खेती के औज़ार और उपकरण आदि शामिल नहीं होंगे.

इससे १९७०-७१ में लगभग ५ करोड़ रु० का लाभ होगा, जो राज्यों को अनुदान के रूप में दे दिया जायेगा.

राहतें

कर-अवकाश सम्बन्धी रियायत की अवधि ५ वर्ष बढ़ा दी गयी है. सूती और पटसन के कपड़ा उद्योग को विकास छूट के लिए प्राथमिक उद्योग माना जायेगा. भारतीय कम्पनियों को अब तक ५०० रु० के लाभांश पर छूट थी, जिसे बढ़ाकर १ हजार रु० किया जा रहा है. लेखकों, कलाकारों आदि को विदेशों से होने वाली विदेशी-मुद्रा की आय का २५ प्रतिशत कर से मुक्त किया जा रहा है. १५ हज़ार रु० तक की आय वाले लोगों को मोटर-कार रखने के लिए १५० रु० की छूट दी जाती थी, उसे बढ़ाकर २०० रु० प्रति मास किया जा रहा है.

इन रियायतों और राहतों से ८ करोड़ रु० की हानि होगी.

डाक और तार

टेलीफोन: बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली शहरों में टेलीफोन का किराया ३०० रु० प्रति वर्ष से बढ़ाकर ३६० रु० प्रतिवर्ष कर दिया जायेगा. अन्य एक्सचेंजों के लिए यह किराया २४० रु० प्रति वर्ष से बढ़ाकर ३०० रु० और जहाँ ३०० रु० है, वहाँ बढ़ाकर ३४० रु० किया जायेगा. डाइरेक्टरी पूछताछ सेवा पर, जो अब तक निःशुल्क थी, अब शुल्क *लगाया जायेगा. विशेष व्यक्ति* (पी. पी.) ट्रंक कालों और निर्धारित समय के ट्रंक कालों के लिए अतिरिक्त शुल्क अब समान रूप से बुनियादी शुल्क का ५० प्रतिशत होगा.

तार: बधाई के तारों, बहु-पता तारों और टैलेक्स तथा कुछ और सेवाओं के शुल्क में भी वृद्धि करने का प्रस्ताव है. इन परिवर्त्तनों से पूरे वर्ष में ६.४६ करोड़ रु० का राजस्व प्राप्त होने की सम्भावना है और यह रक़म प्रत्याशित राजस्व घाटे की रकम को पूरा करने के लिए काफ़ी होगी.

अपना-अपना बजट

यह पहला मौक़ा था जव वजट छुट्टी के दिन पेश किया गया. ईद के कारण न केवल सरकारी दफ़्तर वंद थे, संसद् को भी दिन भर के लिए कार्यमुक्त कर दिया गया था. मगर क्यों कि वजट फ़रवरी के आख़िरी दिन के वाद पेश नहीं किया जाता वजट के लिए लोकसभा और राज्य सभा, दोनों ही सदनों के सायंकालीन अधिवेशन हुए. वित्तमंत्री का वजट भाषण सुनने के लिए संसद के वाहर लंवी क्यू थी लेकिन लोक सभा में सरकारी वैंचें ख़ाली थीं—मंत्री गायव. वजट पाँच वजे शाम को पेश किया गया, मगर उस समय तक कैविनेट की वैठक चल रही थी और प्रधानमंत्री सहित अधिकतर मंत्री लोकसभा में उपस्थित नहीं थे. जव लोकसभा के अध्यक्ष ने वित्तमंत्री से वजट पेश करने के लिए कहा तव श्री मोरारजी देसाई ने पाया कि वह अपने पक्ष में अकेले हैं. विरोधी सदस्यों ने प्रधानमंत्री और अन्य मंत्रियों की अनुपस्थिति पर आपत्ति की और देर तक हल्ला होता रहा. श्री मोरारजी देसाई ने इस हल्ले-गुल्ले के वीच अपने वजट भाषण का भाग 'क' पढ़ना शुरू किया. थोड़ी देर के वाद प्रधानमंत्री दलवल सहित पहुँच गयीं. तव जा कर शोर समाप्त हुआ.

* * *

जो अव्यवस्था अंदर थी लगभग वही वाहर थी. संवाददाताओं को वताया गया था कि उन्हें वजट की प्रतियाँ पाँच वजे दे दी जायेंगी. इस उम्मीद से संसद् में संवाददाताओं की लंवी कतार लगी हुई थी. लेकिन पिछले वर्षों की परंपरा को तोड़ कर संवाददाताओं को वजट समय पर नहीं दिया गया. इस पर संवाददाताओं और प्रेस सूचना विभाग के अफ़सरों के वीच झड़प हुई. मालूम हुआ कि संवाददाताओं में वितरित करने के लिए वजट की प्रतियाँ वित्तमंत्रालय से संसद् भवन में अभी नहीं पहुँची हैं. वजट की प्रतियाँ संवाददाताओं को एक घंटे देर से दी गयीं. मगर एक घंटे में ही वजट से संवंधित दुनिया में वारा-न्यारा हो जाता है. वजट की प्रति के अभाव में संवाददाताओं ने प्रेस गैलरी में वैठकर श्री मोरारजी देसाई के भाषण को आशुलिपि में लिखना और उसे टेलीप्रिंटर पर देश भर में भेजना शुरू किया. वित्तमंत्रालय द्वारा मुद्रित वजट प्रतियाँ विशेष उपयोगी नहीं सावित हुईं.

* * *

वजट एक और कारण से समाचारपत्रों के लिए दुखदायी सावित हुआ. प्रस्तावित वजट में समाचारपत्रों की तारों, टेलीप्रिंटरों के मार्ग पर किराया वढ़ा दिया गया है. अव तक यह किराया प्रतिमील प्रतिवर्ष ३० रुपये था अव इसे वढ़ा कर प्रति किलोमीटर प्रतिवर्ष २० रुपये कर दिया गया है. टेलीप्रिंटर मशीन का किराया भी वढ़ा दिया गया है.

* * *

१९६९-७० के वजट पर जो प्रतिक्रियाएँ हुई हैं उन से लगता है कि केवल एक वर्ग प्रसन्न है. यह वर्ग है लेखकों और कलाकारों का जिसे कि श्री मोरारजी देसाई ने अपने प्रस्तावों में विशेष महत्त्व दिया है. उन्होंने अपने वजट भाषण के दौरान कहा कि लेखकों, कलाकारों, नाटककारों, संगीतज्ञों और अभिनेताओं के

बजट—एक दृष्टि में

	१९६८–६९ वजट	१९६८–६९ संशोधित	१९६९–७० वजट
कर से प्राप्तियाँ :			
तटकर	५,३९.२७	४,४५.००	४,२६.००
केंद्रीय उत्पादन कर	१२,७९.२४	१३,२०.४५	१४,२१.६३
निगम कर	३,२०.३५	३,२२.००	३,३०.००
आयकर	३,१९.६५	३,३८.००	३,४५.००
मृत्यु कर	७.५०	७.००	७.५०
संपत्ति कर	११.००	११.००	१२.००
व्यय कर	३	३	१
उपहार कर	१.७५	१.७५	१.५०
अन्य मदें	३८.९१	४४.५५	४९.८७
योग	२५,१७.७०	२४,८९.७८	२५,९१.८१
ग़ैर-कर राजस्व			
कर्ज़ अदायगी	४,४९.१९	४,९६.०३	५,४०.०७
प्रशासनिक व्यय	१०.००	९.७८	९.७९
समाज और विकास सेवाएँ	२५.९५	३०.४७	३०.१७
वहु-उद्देशीय नदी योजनाएँ आदि	१.९७	१.०५	३.७५
सार्वजनिक निर्माण	५.८७	६.४७	७.५१
परिवहन और संचार	११.३८	११.८८	१२.७०
मुद्रा और टकसाल	८६.०५	८७.१९	९४.९३
फुटकर	२२.४९	२६.१९	२७.४१
प्राप्तियाँ और फुटकर समायोजन	४४.४७	४४.१०	४५.८१
विशेष मदें	१५.५४	३६.७२	२७.६०
योग	६,७२.९१	७,४९.८८	७,९९.७४
योग-सकल राजस्व	३१,९०.६१	३२,३९.६६	३३,९१.५५
राज्यों का हिस्सा घटाएँ :			
आय कर	–१,५६.५०	–१,९४.५१	–१,८२.०७
मृत्यु कर	–६.८१	५.५४	–७.११
योग	–१,६३.३१	–२,००.०५	–१,८९.१८
योग-शुद्ध राजस्व	३०,२७.३०	३०,३९.६२	३२,०२.३७
राजस्व मद में घाटा	–	–	५९.९६
योग	३०,२७.३०	३०,३९.६१	३२,६२.३३

लिए मेरे पास खुशखबरी है. जहां तक उन का संबंध है, विदेशों से वह अपनी रचनाओं के जरिये विदेशी मुद्रा में जो आय (भारत में रहते हुए) प्राप्त करेंगे उस में का.२५ प्रतिशत कर योग्य आय से काटा जायेगा. अगर इस से यह भय उत्पन्न होता है कि हमारी बहुत-सी सांस्कृतिक देन विदेश चली जायेगी तो मैं माननीय सदस्यों को यह याद दिलाना चाहता हूँ कि जिंदगी की सब से अच्छी चीजें सामान्यतया निर्यात के लिए होती हैं.'

* * *

यद्यपि श्री मोरारजी देसाई ने अपने भाषण में इस का उल्लेख नहीं किया लेकिन बजट की दूसरी खुशखबरी राजा-महाराजाओं के लिए है जिन के लिए इस वर्ष भी प्रिवी पर्स की व्यवस्था रखी गयी है जब कि सरकार प्रिवी पर्स बंद करने का निर्णय क़रीब-क़रीब ले चुकी है.

वित्तमंत्री ने हर साल की तरह इस साल भी सिगरेट के शौकीनों का घरेलू बजट और बढ़ा दिया है. जैसे ही यह खबर फैली कि सिगरेट पर ड्यूटी बढ़ा दी गयी है वैसे ही बाजार से सिगरेट ग़ायब होने लगीं. सिगरेट पीने वालों ने दूसरे कारण से गहरी सांस ली और उन की बीवियों ने दूसरे कारण से.

श्री मोरारजी देसाई के बजट के उस हिस्से की सब से तीव्र आलोचना हुई है जिस में उन्होंने उर्वरकों पर राजस्व बढ़ाने का प्रस्ताव किया है. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के श्री मधु लिमये ने सदन में उठ कर इस पर तीव्र आपत्ति की और वित्त विधेयक को संविधान विरोधी करार दिया. श्री मधु लिमये के अलावा कई कांग्रेसी और विरोधी सदस्यों ने, जिन में प्रमुख हैं श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा और चौधरी रणधीरसिंह, उर्वरक-संबंधी प्रस्ताव को अनुचित बताया है.

बजट पर अनेक सदस्यों की अनेक प्रतिक्रियाएँ हैं, मगर उन में सब से दिलचस्प है संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों की प्रतिक्रियाएँ. **मधु लिमये** ने बजट को संविधान के विरुद्ध जालसाज़ी की संज्ञा दी और जॉर्ज फर्नांडीस ने इस पर प्रतिक्रिया व्यक्त की कि इस बजट से कांग्रेस और स्वतंत्र पार्टी की मिली-जुली सरकार बनने का मार्ग प्रशस्त हो जाता है. स्वतंत्र पार्टी के **ना. गो. रंगा** ने कहा है कि इस बजट से जनता के सभी वर्गों को कष्ट होगा. दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के **श्रीपाद अमृत डांगे** ने टिप्पणी की है कि मोरारजी देसाई चेहरे से चाहे जितना मासूम नजर आयें, उन्होंने बजट से क़ीमतों में वृद्धि की स्थिति पैदा कर दी है. प्रजासमाजवादी पार्टी के **नाथ पै** ने कहा है कि हमारी अर्थव्यवस्था में जो गतिरोध पैदा हो गया है उसे समाप्त करने का एक और मौक़ा हाथ से गँवा दिया गया है. जनसंघ के श्री **अटलबिहारी वाजपेयी** ने टिप्पणी की है कि इस से खेतिहर विकास रुकेगा और क़ीमतें बढ़ेंगी. कांग्रेस पार्टी के **बाबूभाई चिनाय** की राय है कि अगर कंपनी टैक्स को राहत प्रदान की गयी होती तो पूंजी बाज़ार फिर जीवित हो उठता. निर्दलीय **बख़्शी गुलाम मुहम्मद** ने कहा कि बजट अच्छा है, मगर कृषि-संपदा और उर्वरकों पर लगाया गया टैक्स ज्यादती है.

२९ फ़रवरी श्री मोरारजी देसाई का जन्म दिन है. लेकिन इस साल २९ फ़रवरी नहीं पड़ी और वित्तमंत्री ने बजट अपने जन्म दिन के एक दिन पहले पेश किया. अन्यथा पिछले साल उन्होंने १९६८-६९ का बजट अपने जन्म दिन पर पेश किया था.

बजट भाषण अनेक हाथों से गुज़र कर हस्ताक्षर के लिए वित्तमंत्री तक पहुँचता है. लेकिन इस साल का बजट पढ़ने से लगता है कि वित्तमंत्री ने न केवल बजट प्रस्तावों पर बल्कि बजट भाषण की शैली पर भी अपनी छाप पूरी तरह छोड़ी है. जगह-जगह उस में मोरारजी-शैली का व्यंग्य है और जगह-जगह उन्हीं की शैली की शिष्टता है. अक्सर बजट का हिंदी अनुवाद अपठनीय होता है, इस साल हिंदी अनुवाद लगता है कि जानदार हाथों में पड़ कर अंग्रेज़ी की ही तरह सजीव हो गया है— यह अलग बात है कि हिंदी की प्रति प्राप्त करने के लिए संवाददाताओं और राजनेताओं में विशेष उत्सुकता नहीं थी.

राजनैतिक दल

संसपा : दो इस्तीफ़े

मध्यावधि चुनाव के बावजूद हिंदी प्रदेशों की एक प्रमुख वामपंथी पार्टी संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी की भीतरी हालत अच्छी नहीं है. अगर भूतपूर्व संसपा सदस्य और समाजवादी युवजन सभा के अध्यक्ष किशन पटनायक का पार्टी की प्राथमिक सदस्यता से और स्व. डॉ. लोहिया की सहयोगी तथा पार्टी के केंद्रीय संसदीय बोर्ड की सदस्या श्रीमती रमा मित्र का बोर्ड से इस्तीफ़ा किसी चीज का संकेत है तो इस का कि डॉ. लोहिया के निधन के बाद से पार्टी के भीतर कलह और आकांक्षा की जो प्रक्रिया शुरू हुई, वह तरक़्क़ी पर है. श्री किशन पटनायक और श्रीमती रमा मित्र ने अपने त्यागपत्र में यह कहा भी है कि पार्टी के भीतर ऐसी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं जिन से पार्टी के निष्प्रभ और नष्ट होने का खतरा है. श्री किशन पटनायक ने औपचारिक रूप से अपना इस्तीफ़ा दिसंबर में ही दे दिया था, लेकिन उस का प्रकाशन मध्यावधि चुनाव के बाद किया गया है. शायद स का कारण यह था कि त्यागपत्र के प्रकाशन से बिहार और उत्तरप्रदेश में पार्टी की स्थिति पर प्रतिकूल असर पड़ सकता था. श्री पटनायक ने अपने पत्र में लिखा था कि यदि ३१ दिसंबर तक पार्टी के अध्यक्ष (श्रीधर महादेव जोशी) और महा मंत्री (रामसेवक यादव) अपने पद से इस्तीफ़ा नहीं देते हैं तो मुझे अगले सम्मेलन तक के लिए पार्टी से अलग माना जाये. श्री पटनायक ने नेतृत्व पर यह आरोप लगाया है कि उस ने पार्टी को गुमराह किया है. मुख्य रूप से उन्होंने इस की ज़िम्मेदारी पार्टी के अध्यक्ष श्रीधर महादेव जोशी, लोकसभा में संसपा के उपनेता श्री मधु लिमये और उत्तरप्रदेश के नेता तथा राज्यसभा के सदस्य राजनारायण पर डाली है. श्री जोशी के विषय में उन्होंने कहा है कि 'उन्होंने श्री राजनारायण के विरोधियों को उकसाने में कोई कसर नहीं रखी.' श्री राजनारायण के विषय में उन्होने कहा है कि 'उन्होंने अपना सारा समय और शक्ति उत्तर-प्रदेश में अपने प्रतिद्वंद्वियों को उखाड़ने में लगायी' और श्री मधु लिमये के विषय में उन्होंने शिकायत की है कि 'यद्यपि पार्टी में उन्हें सब से अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी पर उन्होंने खतरनाक मौन साधे रखा.'

श्रीमती रमा मित्र ने भी केंद्रीय संसदीय बोर्ड से अपने त्यागपत्र के तीन कारण गिनाये हैं. उन की पहली आपत्ति यह है कि चुनाव के दौरान श्री जोशी ने यह कह कर कि भोला पासवान बिहार में ग़ैर-कांग्रेसी सहयोग के स्वाभाविक नेता हैं, पार्टी की प्रतिष्ठा को गिराया और नीति को भंग किया है. दूसरा यह कि चुनाव के दौरान पार्टी के दो कर्णधारों, जॉर्ज फ़र्नांडीस और राजनारायण के 'तू-तू मैं-मैं' से पार्टी की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचा है. केंद्रीय पार्टी से अधिकार प्राप्त कर जॉर्ज फ़र्नांडीस ने रामस्वरूप वर्मा को टिकट दिया— मगर पार्टी की उत्तरप्रदेश शाखा ने इस निर्णय को रद्द किया. इस के अलावा मधु लिमये ने बिहार के ग़ैर-कांग्रेसी सहयोग की भर्त्सना की. श्रीमती रमा मित्र की तीसरी आपत्ति यह है कि राज्यसभा के लिए श्री बालकृष्ण गुप्त को और उत्तरप्रदेश विधानसभा के लिए प्रभुनारायण सिंह को टिकट देना अनुचित था, क्यों कि श्री गुप्त १९६७ के चुनाव में हार चुके थे और प्रभु नारायण सिंह परिषद् के सदस्य थे. श्रीमती मित्र का आग्रह था कि श्री प्रभु नारायण सिंह को इस्तीफा दे कर चुनाव लड़ना चाहिए था.

किशन पटनायक और श्रीमती रमा मित्र ने पार्टी के अंग्रेज़ी मुखपत्र 'मैनकाइंट' से अपना संबंध-विच्छेद नहीं किया है. पार्टी के नेताओं पर इन इस्तीफ़ों की अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं हुई है, लेकिन पार्टी के बौद्धिक तबके ने इन इस्तीफ़ों को नैतिक कारणों से उचित ठहराया है. श्रीमती रमा मित्र ने यह भी कहा है कि मैं ने डॉ. लोहिया से एक चीज़ सीखी थी— स्वयं अपने विरुद्ध संघर्ष. यदि पार्टी के नेता अपने को नहीं सुधारते तो मैं स्वयं उन के विरुद्ध सत्याग्रह करूँगी.

प्रदेश

पश्चिम बंगाल

मोर्चे की वापसी

२५ फ़रवरी की शाम को राष्ट्रपति शासन समाप्त हो गया और राज्यपाल धर्मवीर ने संयुक्त मोर्चे के ३० मंत्रियों को पद और गोपनीयता की शपथ दिलाई. इन मंत्रियों में ७ कुंवारे और १ कुंवारी भी हैं. सिर्फ़ संसोपा के २ मंत्रियों ने शपथ नहीं ली क्यों कि वे अपने मंत्रिमंडलीय साझेदारों से संतुष्ट नहीं थे. अजय मुखर्जी मुख्यमंत्री बने और ज्योति वसु उन के उप-मुख्यमंत्री. शपथ ग्रहण के फ़ौरन बाद मोर्चे की सरकार ने नीति संबंधी जो प्रारंभिक घोषणाएँ कीं उन में मुख्य हैं : नक्सलवादी नेताओं की रिहाई, केंद्रीय सरकार के कर्मचारियों के आंदोलन के सिलसिले में चलाए जा रहे मुक़द्दमों की वापसी और कुछ विशिष्ट ढंग के क़ैदियों के कारावास की अवधि में महीने भर की छूट. यह घोषणा भी की गयी कि पूँजीपतियों और उद्योगपतियों को किसी तरह के खतरे की आशंका नहीं करनी चाहिए. सरकार की कोशिश रहेगी कि उत्पादन में किसी तरह की बाधा उत्पन्न न हो. हालाँकि दबे स्वर में यह भी कहा गया कि पूँजीपतियों को भी इसी तरह की नीति अपनानी चाहिए जिस से श्रमिक विवाद उत्पन्न होने की स्थितियाँ न पैदा हों.

संयुक्त मोर्चे की विभिन्न इकाइयाँ मंत्रिमंडल के गठन के पहले आपस में जिस तरह टकरायीं उस से इस बात का स्पष्ट संकेत मिला कि आने वाले दिनों में उन के बीच मतभेद बढ़ सकते हैं हालाँकि वे मतभेद मोर्चा सरकार के स्थायित्व को किसी तरह के खतरे का शिकार बना सकने में कारगर नहीं होंगे. नेता और उपनेता का निर्वाचन और गृह विभाग को ले कर जो संघर्ष हुआ उस से यह भी स्पष्ट हो गया कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का पलड़ा बहुत भारी है और उसे दबाया नहीं जा सकता. ज्योति वसु ने कहा भी था "अगर कोई दूसरा दल मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की स्थिति में होता तब शायद उस की माँग हमारी पार्टी से भी ज़्यादा होती. विभागों के वितरण में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को पूरी आज़ादी रही है. उस की दिलचस्पी पुलिस, श्रम, भूमि, शिक्षा, राहत और परिवहन जैसे विभागों में ज़्यादा रही. उन का महत्त्व प्रशासन और जन-संपर्क दोनों ही दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है. छोटे-बड़े अन्य दलों की चीख-पुकार के बावजूद ये सारे विभाग उस ने खुद अपने पास रख लिये. भूतपूर्व श्रम मंत्री सुबोध बैनर्जी नेता पद के संघर्ष के समय से ही यह विभाग पाने के लिए उछल-कूद मचाये हुए थे लेकिन उस का कोई असर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी पर नहीं हुआ. संसोपा ने विभाग-वितरण की कम्युनिस्ट पार्टी की नीति का प्रतिवाद भी किया था. उस के प्रतिनिधि एक बार मोर्चे की बैठक का बहिष्कार कर गये थे. बाद की बैठकों में भी उन्होंने हिस्सा नहीं लिया. उन की माँग थी कि उन्हें मंत्रिमंडलीय स्तर के दो विभाग दिये जाने चाहिए. इन में से कम से कम एक महत्त्वपूर्ण हो. मोर्चे ने दो व्यक्तियों को मंत्रिमंडल में लेना तो स्वीकार किया लेकिन महत्त्वपूर्ण विभाग नहीं दिया.

मंत्रिमंडलीय दायित्व : संयुक्त मोर्चे का वर्तमान मंत्रिमंडल इस के पहले के किसी भी मंत्रिमंडल से बड़ा है. डॉ. बिधानचंद राय के ज़माने में १९६२ में एक बार मंत्रिमंडल में ३६ आदमी लिये गये थे. लेकिन उस मंत्रिमंडल में कैबिनेट स्तर के सिर्फ़ १५ मंत्री थे. लेकिन संयुक्त मोर्चे के ३२ सदस्यों के वर्तमान मंत्रिमंडल में २८ मंत्री कैबिनेट स्तर के हैं. इस के दो कारण हैं. पहला तो यह कि बड़े दलों ने अपने अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण सदस्यों को मंत्री बनाने का मौका हाथ से जाने नहीं दिया. दूसरा यह कि मोर्चे की हर इकाई को एक मंत्री पद दिया गया. यहाँ तक कि मार्क्सवादी फ़ारवर्ड ब्लाक का एक सदस्य विजयी हुआ उसे भी मंत्री बना दिया गया. बॉल्शेविक पार्टी ने चुनाव तो नहीं लड़ा लेकिन समर्थन दिया था और उस के भी एक सदस्य को मंत्री पद दिया गया. मंत्रिमंडल जितना बड़ा है, दायित्व उस से भी ज़्यादा बड़े हैं. औद्योगिक शांति, क़ानून व्यवस्था और खाद्य स्थिति के सुधार की ओर मोर्चे की सरकार को सब से पहले ध्यान देना होगा. ज्योति वसु ने यह आश्वासन ज़रूर दिया है कि उत्पादन जारी रखने और कारखाने चालू रखने की व्यवस्था की जायेगी. अपने वक्तव्यों में संयुक्त मोर्चे के नेताओं ने उद्योगपतियों और ज़मींदारों को चेतावनी दी कि राज्य का राजनैतिक वातावरण बदल गया है और उन्हें अपने को बदलना चाहिए. अगर ऐसा नहीं हुआ तो सरकार को मजबूर हो कर श्रमिकों और किसानों के पक्ष-समर्थन के लिए आगे आना पड़ेगा.

उत्तरप्रदेश

असंतोष की गुंजाइश

इस राज्य में कांग्रेस को सर्वाधिक सीटें (२०९) तो प्राप्त हुईं लेकिन बहुमत उसे नहीं मिल सका. इस बहुमत के लिए उसे बाहर से समर्थन लेना पड़ा तब जा कर कहीं चंद्रभानु गुप्त इस स्थिति में आये कि वह मंत्रिमंडल का गठन कर सकें. पहले चरण में जिन १६ मंत्रियों को मंत्रिमंडल में लिया गया उस में आधे लोग नये हैं. कमलापति त्रिपाठी को उप मुख्यमंत्री का पद दिया गया. जिन ८ नये लोगों को मंत्रमंडल में शामिल किया गया वे सभी नये हैं. मुख्यमंत्री पद की शपथ लेने के बाद चंद्रभानु गुप्त ने कहा कि राज्य सरकार के सामने कई विस्फोटक समस्याएँ हैं और उन का निदान विवेकपूर्ण तरीके से ढूँढ़ना होगा. कृषि पर बल देना होगा और उस के लिए सिंचाई सुविधाओं के विकास की व्यवस्था की जायेगी. उद्योग की दृष्टि से राज्य पिछड़ा हुआ है. उस के विकास के लिए ऐसे प्रयत्न किये जाने हैं जिन से उद्योगपतियों और श्रमिकों के बीच विश्वास की भावना का विकास हो और बेरोजगारी खत्म हो. श्री गुप्त यह जानते हैं कि वह एक ज्वालामुखी पर खड़े हैं जिस का कभी भी विस्फोट हो सकता है. इसी लिए अपनी तरफ़ से उन्होंने मंत्रिमंडल गठन की पूरी प्रक्रिया में बहुत सतर्कता और चालाकी बरती. लेकिन मंत्रिमंडल का जो प्रारंभिक रूप सामने आया उस से लगा कि असंतोष की आग अभी बुझी नहीं है, उस का धुंआ उन के दल यानी कांग्रेस के भीतर के ही कुछ लोगों के साथ है. प्रमाण के लिए पूर्वी उत्तरप्रदेश के एक लोकप्रिय किसान नेता गेंदासिंह को मंत्रिमंडल में नहीं शामिल किया गया है. श्री गेंदासिंह कांग्रेस में आने के पहले प्रसोपा में थे लेकिन जब वह कांग्रेस में आये तो उन के साथ २५ विधायकों का एक दल भी था. सुचेता मंत्रिमंडल में उन्हें जगह दी गयी थी. इस चुनाव में उन के कई महत्त्वपूर्ण साथी पराजित हो गये हैं लेकिन अभी भी लगभग १२ विधायक उन के साथ हैं. यह सूचना मिलने पर कि उन्हें मंत्रिमंडल में शामिल नहीं किया गया है उन्होंने आवेश में कहा 'मैं नहीं जानता कि मुझे किस जुर्म की सज़ा दी गयी है.' श्री सिंह के इस कथन से उन की मानसिक स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है. एक तरफ़

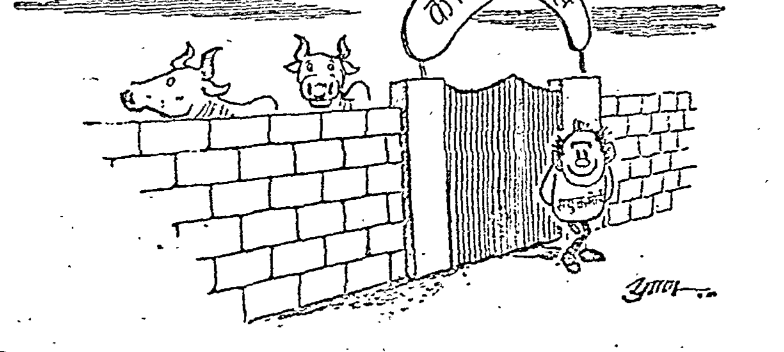

चंद्रभानु गुप्त ने मंत्रिमंडल को स्थायित्व देने की कोशिश की है दूसरी तरफ़ गेंदासिंह का गुट अपने असंतोष से परेशान है. यह सही है कि मंत्रिमंडल में अभी और विस्तार किया जायेगा. यदि श्री गुप्त ने दूरदर्शिता से काम नहीं लिया तो संभव है कि उन्हें विकट स्थितियों का सामना करना पड़े.

कांग्रेस के बाहर जिन लोगों ने श्री गुप्त को समर्थन दिया है उस में एक हैं हरदोई जिले के निर्दलीय सदस्य परमई लाल. श्री लाल ने निर्दलीय उम्मीदवार की हैसियत से अपने कांग्रेसी प्रतिद्वंद्वी को २३७ वोटों से हराया था. यह बात भी समझने की है कि जिस कांग्रेसी संगठन से उन्होंने इतना जबर्दस्त मोर्चा लिया उसी के उम्मीदवार को हरा कर वह खुद उस का एक अंग बन गये. निश्चित रूप से श्री लाल के समर्थन का कारण उन का सत्ता-मोह ही है. १९६२ में वह जनसंघ के टिकट पर कांग्रेसी उम्मीदवार को २६० मतों से हराने में सफल हुए थे. १९६७ में लोकसभा के लिए चुनाव लड़ा और उस में हार गये. १९६९ में मध्यावधि चुनावों में जनसंघ का टिकट न मिलने पर वह निर्दलीय हो गये और उन्होंने चुनाव भी जीत लिया. चुनाव चर्चा के ही दौरान १८ जनवरी को उन्हें अदालत से एक सजा भी मिली.

२२ जून '६८ को ललउ नामक एक व्यक्ति की हत्या हो गयी थी. आरोप लगाया गया था कि १९६७ के चुनाव के दरम्यान एक विवाद के बढ़ने पर परमई लाल और उन के साथियों ने ललउ के दरवाजे पर जा कर बंदूक से आक्रमण किया और फलस्वरूप उस की मत्यु हो गयी. सिविल और सेशन जज ने परमई लाल को धारा ३०४ तथा १४९ के अंतर्गत १० तथा ३ वर्ष की क्रमशः सजा दी. अन्य साथियों को भी विभिन्न अवधि की सजाएँ दी गयीं. श्री लाल ने उस सजा के विरुद्ध अपील की है और सभी लोग उस के फैसले की प्रतीक्षा कर रहे हैं. कांग्रेस के एक अन्य निर्दलीय समर्थक मेहरबान सिंह पुराने कांग्रेसी हैं. कांग्रेस टिकट न मिलने पर उन्होंने भी निर्दलीय की हैसियत से चुनाव लड़ा और विजयी हुए. बलिया के श्री बब्बन १९६२ से ही चुनाव लड़ते रहे और बराबर कांग्रेस से हारते रहे. इस बार वह विजयी हुए और कांग्रेस का अंग बन गये. इन तीनों ने कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण कर ली. जिन अन्य सदस्यों ने कांग्रेस को समर्थन देने का आश्वासन दिया है उनमें प्रमुख हैं : जनसंघ के टिकट पर हमीरपुर जिले से जीते हुए चंद्रनारायण सिंह, बुलंद शहर के वीरेंद्र स्वरूप और आगरा के राजाराम. ये निर्दलीय हैं और इन्होंने कांग्रेस को समर्थन देने का वायदा किया है. श्री राजाराम ने १९६७ में निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में कांग्रेसी प्रत्याशी को १२००० मतों से हराया था. इस बार भी उन्होंने कांग्रेसी उम्मीदवार को १८८३६ वोटों से हराया है.

बिहार

हरी झंडी के बावजूद

हरिहर सिंह को कांग्रेस विधायक दल का नेता चुन लिया गया और उन्हें मुख्यमंत्री पद की शपथ भी दिला दी गयी. लेकिन इस के पहले कि अन्य मंत्रियों का चुनाव हो और मंत्रिमंडल गठन की प्रक्रिया गति प्राप्त करे, दल-बदल की घटनाएँ सामने आ गयीं और वर्तमान सरकार के भविष्य के सामने एक प्रश्नचिन्ह-सा लग गया. ३१८ सदस्यों की विधानसभा में मध्यावधि चुनाव में कांग्रेस को ११८ जगहें मिली थीं. विधान सभा का सब से बड़ा दल होने के नाते कांग्रेस ने जनता पार्टी (१३), झारखंड पार्टी (१२), शोषित दल (६), स्वतंत्र (३), भारतीय क्रांति दल (४) और (६) निर्दलीयों को मिला कर मिली-जुली सरकार बनाने की कोशिश की. हरिहर सिंह मंत्रिमंडल के गठन संबंधी अनुदेश लेने के लिए दिल्ली गये जहाँ उन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा और प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से भेंट की. लेकिन इसी बीच भारतीय क्रांति दल ने समर्थन देने का अपना वायदा रद्द कर दिया. भारतीय क्रांति दल के ४ विधायकों के अलग हो जाने से कांग्रेस के मिले-जुले विधायकों की संख्या महज १५८ रह गयी लेकिन तभी एक निर्दल सदस्य ने कांग्रेस को समर्थन देने का वायदा किया और इस प्रकार उस की संख्या १५९ हो गयी. यह संख्या बहुमत की प्रतिष्ठापना के लिए पर्याप्त है और इस के आधार पर सरकार बन भी सकती है. उस के लिए तैयारियाँ भी जारी हैं. क्रांति दल के सदस्यों के अलग हो जाने के बावजूद राज्य और केंद्र के कांग्रेसी नेता चिंतित नहीं दिखाई देते. उन का ख्याल है कि दस और विधायक कांग्रेस को समर्थन देने का वायदा कर चुके हैं और इस रूप में कांग्रेस की मिली-जुली सरकार निरंतर बहुमत में बनी रहेगी. कांग्रेस हाई कमांड ने सरदार हरिहर सिंह को मंत्रिमंडल के गठन के सिलसिले में बातचीत करने और निर्णय लेने की पूरी छूट भी दे रखी है. इस बात की पूरी संभावना है कि वह अपने प्रयास में सफल होंगे. मगर सवाल यह है कि अस्थायित्व का जो खतरा बिहार सरकार के सामने राष्ट्रपति शासन के पहले पैदा हुआ था वह खतरा अभी भी टला नहीं है.

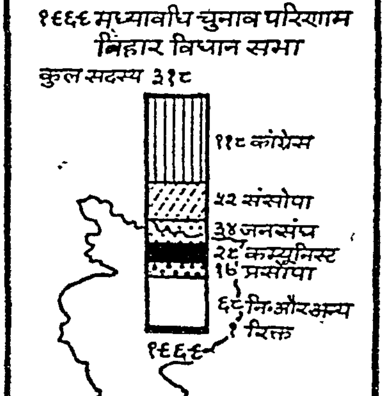

मध्यप्रदेश

आदिवासियों के शहरी शासक

२५ मार्च, १९६६ को जगदलपुर (बस्तर) राजमहल में गोलीकांड की जो घटना हुई थी उस की जाँच के लिए पांडे आयोग की नियुक्ति की गयी थी. आयोग ने अपना जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया उस से सिद्ध हो गया है कि बस्तर के आदिवासियों की एक नहीं अनेक समस्याएँ हैं, जिन का अविलंब निराकरण करना राज्य सरकार के लिए अपेक्षित ही नहीं, अनिवार्य भी है. राजनैतिक और सामाजिक जागरूकता, शिक्षा, आवागमन के साधनों की बहुलता, उत्तम कृषि-प्रणाली और उद्योगों के विकास के अभाव में बस्तर शुरू से ही एक पिछड़ा हुआ और समस्याग्रस्त क्षेत्र रहा है. यहाँ के आदिवासियों में व्याप्त पिछड़ेपन, ग़रीबी, भूख और असंतोष को ले कर जब-तब आवाज़ें भी बुलंद की जाती रहीं, लेकिन कभी भी उन पर ईमानदारी और गंभीरता के साथ ग़ौर नहीं किया गया.

पांडे आयोग की रिपोर्ट प्रस्तुत होने के बाद राज्य के संविद शासन ने रिपोर्ट में उल्लिखित विषयों के प्रकाश में मई १९६८ में एक उच्चस्तरीय 'आदिवासी विकास नीति निर्धारण आयोग' का गठन किया और आशा की कि यह आयोग राज्य के समस्त आदिवासी-क्षेत्रों के विकास की भावी नीतियों के निर्धारण के बारे में शासन को सलाह देगा. आयोग के उपाध्यक्ष रामचंद्र विट्ठल बड़े के नेतृत्व में उस के सदस्यों ने ३१ जनवरी से १३ फ़रवरी, ६९ तक संपूर्ण बस्तर ज़िले के भीतरी क्षेत्रों का दौरा किया तथा आदिवासियों से संपर्क स्थापित कर के उन के आर्थिक और सामाजिक जीवन की समस्याओं का अध्ययन किया. श्री बड़े ने पत्रकारों के सम्मुख यह स्वीकार किया कि पिछले २० वर्षों में बस्तर के आदिवासियों के विकास के नाम पर करोड़ों रुपये खर्च किये गये, लेकिन उस के बावजूद आदिवासियों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई. वे आज भी वहीं हैं जहाँ दशाब्दियों पहले थे. आयोग के एक अन्य सदस्य मंगरू विईके ने ज़िले के भीतरी क्षेत्रों में आवागमन की सुविधा के अभाव पर असंतोष व्यक्त करते हुए कहा कि सिंचाई की सुविधा भी अपर्याप्त है.

आयोग के लगभग सभी सदस्यों का यह कहना था कि सर्वेक्षण के दौरान उन्होंने जहाँ

मद्यपान : आदिवासी शैली

कहीं भी वातचीत की आदिवासियों ने एक स्वर में भूमि, सिंचाई, दवा-दारू, पीने का पानी, रोज़गार और निस्तारी जंगल की सुविधा पाने की माँग पर ज़ोर दिया. वेरोज़गारी वस्तर की एक भयंकर समस्या वन गयी है. वेलाढीला लौह परियोजना, सड़कों के निर्माण, और जंगलों में लकड़ी और वाँस आदि की कटाई के लिए ठेकेदार आंध्र, ओड़िसा और छत्तीसगढ़ के दूसरे ज़िलों से मज़दूर ला कर काम करवा रहे हैं और उन्हीं के विल्कुल क़रीव वस्तर के हज़ारों आदिवासी वेकार और वेरोज़गार पड़े हैं. सदस्यों ने इस वात की भी आवश्यकता महसूस की कि वड़े उद्योगों की स्थापना के पहले वस्तर में औद्योगिक और तकनीकी प्रशिक्षण के लिए वड़ी संख्या में तकनीकी विद्यालय खोले जाने चाहिएँ, ताकि आदिवासी युवक प्रशिक्षित हो कर रोज़गार और नौकरी की दृष्टि से संपन्न हो सकें. आयोग के सदस्यों को इस वात की भी जानकारी मिली है कि सैगौन के वहुमूल्य लकड़ी के वहुत से वृक्ष ऐसी ज़मीनों पर हैं जो हैं तो आदिवासियों की लेकिन उन पर कब्ज़ा दूसरे लोगों का है. इस लकड़ी की ख़रीद और विक्री में ठेकेदार और साहूकार आदिवासियों को अपने शोषण का शिकार वनाते हैं. राजस्वविभाग के अधिकारियों और कर्मचारियों में भ्रष्टाचार का वोलवाला है. उत्तरी भाग में १,५०० वर्गमील का अवुझमाड का इलाका दशाव्दियों से परित्यक्त और उपेक्षित है. आयोग ने इस क्षेत्र के विकास के लिए शासन को एक रिपोर्ट अलग से देने का निश्चय किया है.

आयोग ने अपने प्रतिवेदन के सिलसिले में कोई निश्चित जानकारी भी नहीं दी है, लेकिन इतना स्पष्ट है कि शासकीय अधिकारियों से ले कर आदिवासियों और शिक्षित वर्ग के लोगों से सदस्यों की जो वातचीत हुई उस से उन की समस्याओं और सामाजिक आर्थिक स्थिति के वारे में प्रामाणिक जानकारी प्राप्त हुई है. आशा की जानी चाहिए कि प्रतिवेदन में आदिवासियों की ग़रीवी, उन के पिछड़ेपन और उन के असंतोष—सभी के मूल कारणों पर विचार किया गया होगा और उस के निराकरण के लिए सुझाव भी दिये गये होंगे.

राजस्थान

वेरी आयोग की रिपोर्ट

लंवी प्रतीक्षा के वाद राज्य सरकार ने वेरी आयोग की रिपोर्ट (दिनमान, १६–२३ फ़रवरी) प्रकाशित कर दी है. जैसा कि दिनमान में संकेत किया गया था आयोग ने अपनी रिपोर्ट में जयपुर के जौहरी वाज़ार और सिरहड्योढ़ी वाज़ार में पुलिस के गोली-चालन को 'पूरी तरह अन्यायपूर्ण' माना है. राज्य के गृहमंत्री दामोदरलाल व्यास द्वारा इस रिपोर्ट की एक प्रति विधानसभा में भी विचार-विमर्श के लिए पेश की गयी. गृहमंत्री ने कहा कि राज्य सरकार ने राजस्थान उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को ऐसा कोई वचन नहीं दिया है कि वह आयोग की सिफ़ारिशों को पूरी तरह लागू करेगी. उत्तेजित विरोधी सदस्यों ने सरकार की इस विना पर तीव्र आलोचना की कि वह दोषी अधिकारियों को दंडित करने से कतरा रही है. इस आरोप की सरासर उपेक्षा करते हुए श्री व्यास ने कहा कि सरकार क़ानूनन इस रिपोर्ट को विधानसभा में पेश करने के लिए वाध्य नहीं है, फिर भी वह कोई तथ्य नहीं छिपाना चाहती, जिस से कि सभी सदस्य तथ्यों को जान लें और इस संवंध में अपने विचार प्रकट कर सकें. उन्होंने कहा कि इस सिलसिले में कोई भी निर्णय लेने से पूर्व सरकार को साक्षियों और दस्तावेज़ों के हज़ारों पृष्ठों का अध्ययन करना पड़ेगा, अतः इस कार्य में विलंव होना स्वाभाविक ही है.

रिपोर्ट की प्रतियाँ सभी विरोधी सदस्यों को वाँट दी गयीं, किंतु उन सदस्यों ने रोष प्रकट किया जो रिपोर्ट का हिंदी अनुवाद चाहते थे. गृहमंत्री ने उन्हें आश्वासन दिया कि तैयार हो जाने पर रिपोर्ट का हिंदी अनुवाद भी वितरित किया जायेगा. सतीशचंद्र अग्रवाल (जनसंघ) ने यह आरोप लगाया कि सरकार मासूम वच्चों की 'हत्या' के लिए ज़िम्मेदार पुलिस अधिकारियों के कारनामों पर पर्दा डाल रही है. लक्ष्मणसिंह (स्वतंत्र) ने राज्यपाल के अभिभाषण में वेरी आयोग की रिपोर्ट की चर्चा न किये जाने और रिपोर्ट को देर तक रखने की सरकारी नीति की भर्त्सना की.

वेरी आयोग ने अधिकांश मामलों में सरकार की दलीलों और उस के स्पष्टीकरण का खंडन किया है तथा ज़्यादातर मामलों में पुलिस को दोषी ठहराया है. उस ने जनमत को अपने हक में मोड़ने वाले नेताओं को भी आगाह किया है कि उन्हें यह वात गाँठ वाँध लेनी चाहिए कि हर स्थिति में 'आंदोलन की भाषा' ही उचित नहीं है, क्यों कि जनमत को अपने उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए सक्रिय करना तो आसान है पर उसे व्यवस्थित और नियंत्रित रखना वहुत मुश्किल है. 'पथराव की भाषा', जिसे प्राथमिकता देने की प्रवृत्ति वढ़ रही है, को ख़त्म करने के लिए कारगर क़दम उठाये जायें. प्रशासन और अधिकारी वर्ग को भी आयोग ने चेतावनी दी है कि नागरिक अधिकारों का उल्लंघन करने से पूर्व सारे मसले पर गंभीरतापूर्वक विचार करना आवश्यक है और जव एक वार कहीं क़ानूनी नियंत्रण क़ायम हो जाये तो फिर उसे मज़वूती से कार्यान्वित किया जाना चाहिए, जिस से कि क़ानून की प्रतिष्ठा को ठेस न पहुँचने पाये.

आरोपों का दायरा

संसपा के नेता रामकिशन ने '२० वर्ष तक जारी योजनाओं के वावजूद राज्य में दुर्भिक्ष की समस्या सुलझाने में असमर्थ' राजस्थान सरकार के विरुद्ध विधानसभा में निंदा-प्रस्ताव रखा. इस प्रस्ताव में रामकिशन, विरोधी दल के नेता महरवाल लक्ष्मण, सतीशचंद्र अग्रवाल (जनसंघ), वद्रीप्रसाद गुप्त (भाक्रांद) और रामानंद अग्रवाल (कम्यु.) ने हस्ताक्षर किये थे. श्री रामकिशन ने कहा कि सरकार राहत-कार्यों को अगले चुनाव में अपने हित-साधन को मद्देनज़र रखते हुए अंजाम दे रही है. राहत-केंद्रों में केवल कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं या कांग्रेस के समर्थकों को ही भर्ती किया जाता है. उन्होंने कहा कि ट्यूववेल लगवाने के लिए सरकार करोड़ों रुपया ख़र्च कर चुकी है, फिर भी पश्चिम के सूखाग्रस्त ज़िलों में पानी के लिए लोग तरस रहे हैं. सूखा पड़ने पर सरकार ने यदि तुरंत कार्रवाई की होती तो हज़ारों पशुओं की जान वचायी जा सकती थी. दौलतराम शरण (भाक्रांद) ने श्री रामकिशन के मत का समर्थन करते हुए कहा कि यदि राजस्थान नहर को पूरा करने के लिए युद्धस्तर पर कार्य किया जाता तो राज्य को दुर्भिक्ष से कभी का छुटकारा मिल गया होता

वाँध : विधानसभा के अध्यक्ष ने सिंचाईमंत्री आर. पी. लड्ढा से मही नदी पर वनाये जाने के लिए प्रस्तावित कनाद वाँध के निर्माण के संवंध में गुजरात के साथ किये गये अंतरराज्यीय समझौते के वारे में खुलासा देने के लिए कहा, तो सिंचाईमंत्री ने कहा कि १९६६ में इस वाँध के निर्माण के वारे में गुजरात के साथ, समझौता किया गया था. इस पर ३४ करोड़ रुपया ख़र्च होने का अनुमान है. पहले तय किया गया कि इस वाँध की ऊँचाई ४६५ फ़ुट होनी चाहिए, लेकिन वाद में इस ऊँचाई को घटा कर ४१९ फ़ुट कर दी गयी. कुछ ख़ास इलाक़ों को वाँध के साथ न मिलाना पड़े.

घर का भेदी (?) : कुछ विरोधी नेताओं

ने विधानसभा में मुख्यमंत्री मोहनलाल सुखाड़िया पर यह आरोप भी लगाया कि उन्होंने एक सरकारी रहस्य का भेद खोला है, अतः राजकीय गोपनीयता अधिनियम के अंतर्गत उन के खिलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई की जाये. जनसंघ के नेता शेखावत सिंह ने कहा कि श्री सुखाड़िया ने उदयपुर में एक सिनेमाघर का उद्घाटन करते वक़्त सर्वसाधारण के सम्मुख यह भेद खोला कि सरकार राज्य से मोटे अन्न के निर्यात पर प्रतिबंध लगाना चाहती है. इस रहस्योद्घाटन से बहुत से मुनाफ़ाखोरों को जल्द से जल्द खाद्यान्न निर्यात करने का अवसर मिल गया.

श्री सुखाड़िया ने इस आरोप का खंडन करते हुए कहा कि इस मसले पर तो सितंबर में ही नयी दिल्ली में खाद्यमंत्रियों के सम्मेलन में बहस हो चुकी थी और तभी उन्होंने मोटे अन्न के निर्यात पर प्रतिबंध लगाने की माँग भी की थी, जो बाद में समाचारपत्रों में भी प्रकाशित हुई. राज्य सरकार को निर्यात पर प्रतिबंध लगाने का अधिकार नहीं है. श्री शेखावत ने माँग की कि पुलिस इस मामले की जाँच करे, किंतु अध्यक्ष ए. ए. आचार्य ने कहा कि यह मामला जाँच के लिए पुलिस को नहीं सौंपा जा सकता है. सदस्य चाहें तो विशेषाधिकार-प्रस्ताव द्वारा इस पर विचार कर सकते हैं.

कश्मीर

नक्सलवाद का नया क्षेत्र

जम्मू-कश्मीर के डेमोक्रेटिक कांफ़्रेंस का नेतृत्व जिन लोगों के हाथ में है उन्हें नक्सलवादी कहना ग़लत नहीं होगा. इस के अधिकांश नेता भूमिस्थ हैं और मुख्यमंत्री गुलाम मोहम्मद सादिक़ के बार-बार यह कहने के बावजूद कि उन के खिलाफ़ गिरफ़्तारी का कोई वारंट नहीं है वे बाहर नहीं आ रहे हैं. लेकिन उन के बाहर न आने से कांफ़्रेंस का कोई काम रुका हुआ नहीं है. यह कट्टरपंथी गुप्त बैठकों में हिंसा का पाठ पढ़ाते हैं. इन की ओर से एक अख़बार का भी प्रकाशन होता है और उस के प्रकाशक कॉमरेड आर. पी. सराफ़ हैं और वह भी भूमिस्थ ही है. नेताओं के भूमिस्थ होने के बावजूद अख़बार का प्रकाशन नियमित रूप से हो रहा है. उस की प्रतियां पूरे राज्य में, लेकिन ख़ास तौर से सीमावर्ती इलाक़ों में मुफ़्त बाँटी जाती हैं. अख़बार में चीन समर्थक हर तरह की सामग्री होती है. माओवादी साहित्य का वितरण भी ख़ूब जोर-शोर से हो रहा है और कहा जाता है कि यह साहित्य चीन से प्राप्त किया गया है.

अख़बार के पिछले एक अंक में भारत के मार्क्सवादी और दक्षिणपंथी दोनों कम्युनिस्ट दलों पर भयंकर प्रहार किया गया है. दोनों को ही सत्ताधारियों का एजेंट बताया गया है. कहा गया है कि यह बहुरूपिये स्वतंत्र और जनसंघ के लोगों से भी ज़्यादा ख़तरनाक हैं. नंबूदिरिपाद की सरकार पर आक्रमण करते हुए कहा गया है कि २२ महीने के शासन में नंबूदिरिपाद की सरकार ने जनता के दुश्मन के रूप में अपने को प्रस्तुत किया है. उन के शासन-काल में जनता-विरोधी नीतियों को ही व्यवहार में लाया गया है. पत्र ने चेतावनी देते हुए कहा है कि केरल, पश्चिम बंगाल तथा दूसरे स्थानों पर क्रांतिकारियों (कट्टरपंथियों) के साथ जिस तरह का जुल्म किया गया है उस के सिलसिले में उन लोगों को एक-एक बूंद ख़ून का हिसाब देना पड़ेगा. अख़बार में बंगाल के मार्क्सवादियों की चुनाव संबंधी ख़ुशी की निंदा करते हुए कहा गया है कि चुनाव के माध्यम से एक सरकार को बदल कर दूसरे को प्रतिष्ठित करना जनता को बेवकूफ़ बनाना है. अख़बार में किसानों और मज़दूरों को संशोधनवादियों से सावधान रहने की सलाह दी गयी है और कहा गया है कि उन्हें पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों के हाथ से सत्ता छीन लेने के लिए संघर्ष करने के लिए तैयार रहना चाहिए. राज्य सरकार इन कट्टरपंथी नक्सलवादियों पर कड़ी निगाह रखे हुए है. लेकिन कुछ लोगों की शिकायत यह है कि अधिकारी ऐसे कट्टरपंथी तत्वों के प्रति अपेक्षित शक्ति का बर्ताव करने में किसी कारण से असमर्थ हैं.

देवी की गुफा : जम्मू से ३९ मील की दूरी पर एक तीर्थ-स्थल वैष्णव देवी का मंदिर है जहाँ देश के हर भाग से बड़ी संख्या में तीर्थ-यात्री आते रहते हैं. सन् ४७ के पहले इस जगह पर बीस हज़ार से ज़्यादा तीर्थ-यात्री नहीं आते थे, लेकिन सन् ६८ में उन की संख्या २ लाख ८६ हज़ार हो गयी. बड़ी संख्या में तीर्थ-यात्रियों के आने से राज्य की आर्थिक स्थिति के विकास में मदद मिलती है. क्यों कि वे यहाँ पर ४ करोड़ रुपये ख़र्च कर के वापस लौटते हैं, देवी की गुफा ६००० फ़ुट की ऊँचाई पर है. १२० फ़ुट लंबी गुफा में काली, लक्ष्मी और सरस्वती की मूर्तियाँ हैं. यात्रियों को जम्मू से कटरा तक की ३८ मील की यात्रा बस से करनी पड़ती है. कटरा से ९ मील का मार्ग पैदल का है. कुछ लोग इसी मार्ग को टट्टुओं के सहारे भी तय करते हैं. कुछ वर्षों पहले तक यह यात्रा केवल अक्तूबर, नवंबर और दिसंबर के महीनों तक सीमित रहती थी मगर अब स्थिति यह है कि यात्रियों का आना-जाना पूरे वर्ष भर लगा रहता है. यात्रियों की इस वृद्धि के साथ-साथ कई समस्याएँ भी सामने आ गयी हैं. सब से बड़ी समस्या यात्रियों को लाने ले जाने की है. बसों की संख्या बहुत कम है. इन तीर्थ-यात्रियों को कभी-कभी कई-कई दिनों इंतज़ार करना पड़ता है तब कहीं जा कर वे पहुँच पाते हैं. जम्मू, कटरा तथा गुफा के पास तीर्थ-यात्रियों के आवास की भी समस्या पैदा हो गयी है. गुफा में प्रवेश करने की भी वर्तमान व्यवस्था बहुत ही असंतोषजनक है. २४ घंटे में केवल २४०० तीर्थ-यात्री देवी के दर्शन कर सकते हैं. इस का कारण यह है कि द्वार सिर्फ़ एक ही है और प्रवेश तथा निकास दोनों से एक मार्ग से बारी-बारी से होता है.

मंदिर का गुफ़ाद्वार : ६००० फ़ुट चढ़े, द्वार पर अटके

हरयाणा

भीतरी कसक

हरयाणा के भूतपूर्व कांग्रेसी मुख्यमंत्री और अब संयुक्त मोर्चे के नेता पं० भगवद्दयाल शर्मा तथा संयुक्त विधायक दल विधानमंडलीय पार्टी के नेता राव वीरेंद्रसिंह समेत ८ प्रतिपक्षी सदस्यों ने राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसेन से भेंट कर राज्य की स्थिति के बारे में उन्हें आगाह किया. उन्होंने राष्ट्रपति को बताया कि बंसीलाल सरकार किस तरह अपना राजनैतिक उल्लू सीधा करने के लिए लोगों पर दबाव डाल रही है. सरकारी कर्मचारियों पर दबाव डाल उन से कई ऐसे काम कराये जा रहे हैं जो सरकारी तौर पर उन से नहीं लिये जा सकते. राष्ट्रपति को यह बताया गया कि प्रतिपक्ष की अनुपस्थिति में सरकार ने कैसे ९० मिनट में बजट और बीस विधेयक पास करवाये. प्रतिपक्षी सदस्यों पर मनघढ़ंत आरोप लगा कर उन्हें भी परेशान किया जा रहा है और अब हालत यह हो गयी है कि कोई भी विधायक देर-सवेर घर लौटने को डरता है. उसे हमेशा इस बात का डर रहता है कहीं उस का भी वही हश्र न हो जो जोगिंदरसिंह का हुआ था. इन प्रतिपक्षी सदस्यों के प्रतिनिधिमंडल में जोगिंदरसिंह भी राष्ट्रपति से मिले और उन्होंने अपने अपहरण की कहानी अपनी जुबानी बतायी. भगवद्दयाल शर्मा ने पत्रकारों से बातचीत करते हुए कहा कि राष्ट्रपति ने उन के साथ सहानुभूति जतलाते हुए उन्हें यह सलाह दी है कि यह सभी शिकायतें लिख कर उन्हें दी जायें, ताकि आवश्यक जाँच करवायी जा सके.

अधिवेशन : २ से ४ अप्रैल तक फ़रीदाबाद में होने वाले सम्मेलन का ज़िक्र करते हुए पं० भगवद्दयाल शर्मा ने कहा है कि कांग्रेसी मंत्री और नेता बड़े-बड़े व्यापारियों और उद्योगपतियों से ज़बर्दस्ती रुपया ऐंठ रहे हैं. फ़रीदाबाद अधिवेशन के लिए जो ७० लाख रुपये की राशि इकट्ठी की गयी बतायी जाती है वह उस से कहीं अधिक है. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने श्री शर्मा के इस आरोप के संदर्भ में जब कुछ उद्योगपतियों से बातचीत की तो कइयों ने तो पंडित जी की बात को सफ़ेद झूठ क़रार दे दिया, लेकिन कुछ एक उद्योगपतियों ने बड़े ही संतुलित और सँभले हुए लहजे में कहा 'नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है. हमने कांग्रेस अधिवेशन के लिए कुछ चंदा ज़रूर दिया है.' उन की बातचीत से कुछ ऐसा लगा कि वह जितना चंदा चाहते थे उन से उस से अधिक वसूला गया. कांग्रेस अधिवेशन के अलावा १० मई को ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों का अधिवेशन भी होने जा रहा है. उस समय ये पार्टियाँ शायद कांग्रेसी पार्टियों की खामियाँ या उन के प्रस्तावों का मूल्यांकन करेंगी. पंडित जी ने यह नहीं बताया कि इस सम्मेलन के लिए पैसा कहाँ से जुटाया जा रहा है.

मंत्रिमंडल का विस्तार : बंसीलाल के ४-सदस्यीय मंत्रिमंडल का विस्तार करने की बात फिर उठ रही है. राज्य के हरिजन यह अनुभव कर रहे हैं कि मंत्रिमंडल में इन का प्रतिनिधित्व नहीं है. इस बारे में कई हरिजन शिष्टमंडल बंसीलाल से मिल भी चुके हैं. अपने को पहले से अधिक आश्वस्त पाने वाले मुख्यमंत्री बंसीलाल स्वयं तो इस विषय में अधिक कुछ नहीं कहते, लेकिन उन के कुछ मुँह लगे लोगों का ज़रूर यह ख्याल है कि बंसीलाल भूतपूर्व हरिजन मंत्री रणसिंह को अपने मंत्रिमंडल में शामिल करने की सोच रहे हैं. इन्हीं लोगों का यह भी ख्याल है कि मुख्यमंत्री बड़े पैमाने पर अपने मंत्रिमंडल का विस्तार करना चाहते हैं. लेकिन यह बात भी सही है कि पं० भगवद्दयाल और राव वीरेंद्रसिंह ने राष्ट्रपति से मिल जो उन के खिलाफ़ हवा बाँधी है उस को ध्यान में रखते हुए फ़िलहाल वह मंत्रिमंडल का विस्तार शायद न करें.

पं० भगवद्दयाल शर्मा और राव वीरेंद्रसिंह की मिलीजुली राजनैतिक सूझ-बूझ उन के अधिक काम नहीं आयी और बजट अधिवेशन के दौरान सरकार के पतन का उन का तरीक़ा नाकाम साबित हुआ. राजनैतिक हल्कों का ख्याल है कि ये दोनों भूतपूर्व मुख्यमंत्री अब भीतर ही भीतर कुछ ऐसा कर गुज़रने की सोच रहे हैं जिस की खबर कांग्रेसी हल्कों और बंसीलाल गुट को तब लगेगी जब उस का तख्ता पलट चुका हो. यह भीतरी कसक आज तब उन्हें काफ़ी कचोटती दीखती है.

तमिलनाडु

शिवसेना बनाम तमिलर पडै (सेना)

"मैं प्रशासन में स्थिरता लाने के लिए दृढ़ता से काम करूँगा. व्यर्थ की काग़ज़ी कार्रवाई कम करूँगा और भ्रष्टाचारियों का सिर कुचल कर रख दूँगा". ये शब्द तमिलनाडु के नये मुख्यमंत्री करुणानिधि ने मुख्यमंत्री का पद सँभालने के चंद रोज़ बाद कहे थे. राज्य की जनता को करुणानिधि पर उतना भरोसा नहीं है जितना कि स्वर्गीय अन्नादोरै पर था. यों राज्य में छोटी-मोटी मार-पीट की घटनाओं के अतिरिक्त कोई ऐसी बड़ी घटना नहीं घटी जिस से द्रमुक सरकार को कोई बड़ा खतरा पैदा हो गया हो. इधर छात्रों ने कुछ समय के लिए शांति का मार्ग अपनाया है और उधर करुणानिधि भाषा संबंधी नीति पर कुछ बोल नहीं रहे हैं.

कृपानंद वारियर : कुछ दिन पहले तमिलनाडु के एक धार्मिक नेता कृपानंद वारियर को इस लिए पीटा गया कि उन्होंने अन्नादोरै के प्रति कुछ अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया था. तमिलनाडु विधानसभा में जब इस संबंध में चर्चा उठी तो करुणानिधि ने कहा कि पुलिस इस मामले की पूरी तरह जाँच-पड़ताल कर रही है और वारियर को यह सलाह दी गयी है कि वह कुछ समय के लिए नीयवेली (जहाँ पर उन की पिटाई हुई थी) से बाहर चले जायें. लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि कृपानंद वारियर यदाकदा राज्य के नेताओं के विरुद्ध कुछ अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं, जिस कारण कुछ नवयुवक उन के बहुत खिलाफ़ हो गये हैं. कृपानंद वारियर एक कट्टर धार्मिक व्यक्ति हैं और इस लिए उन की और द्रमुक नेताओं की, जिन्हें वह अधार्मिक कहते हैं, लड़ाई काफ़ी पुरानी है.

शिवसेना के मुक़ाबले : तमिलनाडु विधानसभा में शिवसेना और तमिलर पडै (तमिलसेना) की खूब चर्चा हुई. एक ओर तो करुणानिधि ने केंद्रीय गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण को एक पत्र में शिवसेना की हाल ही की गतिविधियों पर चिंता व्यक्त करते हुए यह लिखा कि बंबई में दक्षिण भारतीयों का जितना नुकसान हुआ है उन्हें उस का समुचित मुआवज़ा मिलना चाहिए, दूसरी ओर तमिलनाडु की जनता अब तमिलर पडै की गतिविधियों से घबराने लग गयी है. राज्य की जनता अब यह सोचने लग गयी है कि कहीं तमिलर पडै भी उसी तरह रौद्र रूप न धारण कर जाये जैसा कि बंबई में शिवसेना ने धारणा किया और 'घर को आग लग गयी घर के चिराग़ से' जैसी स्थिति न उत्पन्न हो जाये. मद्रास में जब तमिलर पडै पर प्रतिबंध लगाने की बात की गयी तो करुणानिधि ने उस का पक्ष लेते हुए कहा कि यह राजनैतिक संस्था नहीं, बल्कि स्वयंसेवकों की एक ऐसी जमात है जो सभाओं और सम्मेलनों में शांति स्थापित करने में राजनैतिक दलों की सहायता करती है. हाँ, उन्होंने इतना ज़रूर कहा कि यदि इस सेना ने कहीं हिंसा, उपद्रव और अव्यवस्था फैलाने की कोशिश की तो इस संस्था पर प्रतिबंध लगा दिया जायेगा.

नगरपालिका-चुनाव : तमिलनाडु नगर पालिका-चुनाव के लिए २४ और २६ अप्रैल की तारीख निश्चित की गयी है. इन चुनावों में द्रमुक सरकार की स्थिति थोड़ी और स्पष्ट हो जायेगी. मगर इतना तो निश्चित ही है कि द्रमुक के पास अब अन्नादोरै जैसा लोकप्रिय नेता कोई नहीं है; नेता नहीं, बल्कि राजगुरु, जिस के एक इशारे पर अशांत छात्र अपने हथियार डाल देते हों.

श्रीमती अन्नादोरै को पेंशन : एक विरोधी नेता पी० जी० करुथिरुमन ने हाल ही में यह सुझाव दिया कि श्रीमती अन्नादोरै के सहायतार्थ राज्य सरकार को कुछ धन-राशि पेंशन के रूप में देनी चाहिए. मगर 'श्रीमती अन्नादोरै ने उस सुझाव को अस्वीकार कर दिया.

पड़ोस का भूकंप

पाकिस्तान में चार महीने पहले जब छात्रों की हड़ताल से आंदोलन शुरू हुआ था (जिस में पेशावर में एक छात्र ने मार्शल अय्यूब पर गोली भी चलायी थी) तो किसी के मन में यह कल्पना भी नहीं आयी थी कि इस के फलस्वरूप अंततः मार्शल अय्यूब को गद्दी छोड़नी पड़ेगी. लेकिन शीघ्र ही छात्रों का आंदोलन व्यापक जन आंदोलन बन गया. भूतपूर्व विदेशमंत्री भुट्टो और पश्चिम पाकिस्तान में **नेशनल अवामी पार्टी** के नेता **खान अब्दुल वली खाँ** (अब्दुल ग़फ़्फ़ार खाँ के पुत्र) की गिरफ़्तारी के बाद आंदोलन विपक्षी दलों ने सीधे अपने हाथ में ले लिया; आठ दलों की एक लोकतांत्रिक आंदोलन समिति बन गयी. वायुसेना के भूतपूर्व अध्यक्ष **एयर मार्शल असग़र खाँ** और थलसेना के अवकाश प्राप्त **ले. जनरल आज़म खाँ** भी मार्शल अय्यूब के विरुद्ध हो गये. दो साल पहले पूर्व पाकिस्तान के लिए अधिकारों की माँग करने पर अवामी लीग के नेता **शेख मुजीबुर्रहमान** को गिरफ़्तार कर लिया गया था और उन पर मुक़द्दमा चल रहा था. अब पूर्व पाकिस्तान के अधिकारों का आंदोलन भी फिर भड़क उठा. छात्रों और जनसाधारण का विद्रोह, विरोधी दलों का संयुक्त अभियान और सेना में पर्याप्त समर्थन का अभाव—इन सब कारणों के मिल जाने पर मार्शल अय्यूब के सामने और कोई रास्ता नहीं रहा सिवाय इस के कि वह झुकें और विरोधियों की माँगें स्वीकार करें. आपत्कालीन स्थिति समाप्त कर दी गयी, शेख मुजीबुर्रहमान और उन के साथियों के विरुद्ध चल रहा ढाका षड्यंत्र मुक़द्दमा वापस ले लिया गया और मार्शल अय्यूब ने विपक्षी नेताओं को सलाह-मशविरे के लिए निमंत्रित करते हुए यह भी कहा कि विपक्षी नेताओं से बातचीत में अगर सहमति न हो सकी तो वह अपनी ओर से संवैधानिक सुधारों के बारे में प्रस्ताव रखेंगे.

अंग्रेज़ी हटाओ : इधर पूर्व पाकिस्तान के छात्रों ने १९५२ के भाषा-आंदोलन की स्मृति में शहीद दिवस मनाते हुए 'अंग्रेज़ी हटाओ' आंदोलन चलाया है और माँग की है कि मौजूदा संविधान के अंतर्गत चुने गये सभी प्रतिनिधि इस्तीफ़ा दे दें. दूसरी ओर राजनीतिक टीकाकारों, खास तौर पर विदेशी पत्रकारों द्वारा बहुधा ऐसा कहा जा रहा है कि विपक्षी दलों में सहमति न होने के कारण मार्शल अय्यूब हार कर भी जीत जायेंगे. पूर्व पाकिस्तान नेशनल अवामी पार्टी के नेता मौलाना भासानी मार्शल अय्यूब का सामना करने को तैयार नहीं हुए हैं. श्री भुट्टो ने कहा है कि वह राष्ट्रपति का चुनाव नहीं लड़ेंगे, बशर्ते कि पूर्व पाकिस्तान की ओर से सर्वसम्मति से कोई व्यक्ति राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने को मनोनीत किया जाए. शेख मुजीबुर्रहमान की भूतपूर्व सैनिक अफ़सरों से बातचीत संतोषप्रद रही है, लेकिन श्री भुट्टो के साथ उतनी नहीं.

कई तनाव : यह सच है कि अय्यूब विरोधी मोर्चे में अभी भी कई तरह के तनाव काम कर रहे हैं. एक तनाव पूर्व पाकिस्तान और पश्चिम पाकिस्तान के बीच है. दूसरा सैनिक नेताओं और असैनिक नेताओं के बीच. तीसरा सवाल यह है कि जो राजनीतिक परिवर्तन होंगे उन से किस को लाभ होगा—अमेरिका, रूस, चीन या भारत को? इस विषय पर लगभग पूर्ण सहमति है कि वर्तमान संविधान को समाप्त कर के बालिग मताधिकार के आधार पर संघीय लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित की जाए. लेकिन नयी लोकतांत्रिक व्यवस्था में क्या पाकिस्तानी राजनीति का आधार बदलेगा और बदलेगा तो किस प्रकार? पाकिस्तानी राजनीति का आधार बदलने पर क्या पाकिस्तान अपने वर्तमान रूप में क़ायम रह पायेगा?

जन्म से निराधार : ये सवाल इस कारण उठते हैं कि जन्म से ही पाकिस्तान के पीछे ऐसा कोई आधार नहीं रहा है जो आम तौर पर राष्ट्रीय जीवन के लिए ज़रूरी समझे जाते हैं—न भौगोलिक, न ऐतिहासिक, न सांस्कृतिक, न आर्थिक. पाकिस्तान बनाते समय ब्रितानी सरकार ने संभवतः श्री जिन्ना को यह आश्वासन दिया था कि उन के राज्य के लिए कोई खतरा उत्पन्न होने पर ब्रितानिया उन की रक्षा करेगा. पाकिस्तान को जन्म देने वाली दूसरी शक्ति थी धर्मांध मुस्लिम सांप्रदायिकता, एक बाहरी ताक़त और दूसरी नकारात्मक.

भारत विरोध : पश्चिमी पाकिस्तान में तो कश्मीर की समस्या किसी हद तक मुस्लिम सांप्रदायिकता को भारत विरोध के रूप में जीवित रखने में सफल हुई, लेकिन पूर्व पाकिस्तान में असंतोष फैलने लगा. १९५२ में हुए भाषा-आंदोलन के फलस्वरूप बंगला को भी उर्दू के समान ही राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठा मिली, यद्यपि वास्तव में अंग्रेज़ी ही राजभाषा बनी रही. १९५४ में पूर्वी पाकिस्तान में चुनाव हुए—पुराने १९६५ के संविधान के ही अंतर्गत—लेकिन सीमित मताधिकार वाले चुनाव में भी मुस्लिम लीग हारी और एक वामपक्षी संयुक्त मोर्चे को भारी बहुमत मिला. पश्चिमी पाकिस्तान में भी पख़्तूनों, बलूचियों, सिंधियों और भारत से गये शरणार्थियों में व्यापक असंतोष फैला. पाकिस्तान के शासक अपनी स्थिति को दृढ़ करने के लिए तरह-तरह के उपाय करते रहे—राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री बदलते रहे, पश्चिम पाकिस्तान के सभी सूबों को समाप्त कर के पश्चिम पाकिस्तान का एक प्रांत बना दिया गया. इस बीच दो प्रमुख नेताओं की हत्या भी हुई—पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाक़त अली खाँ और पश्चिम

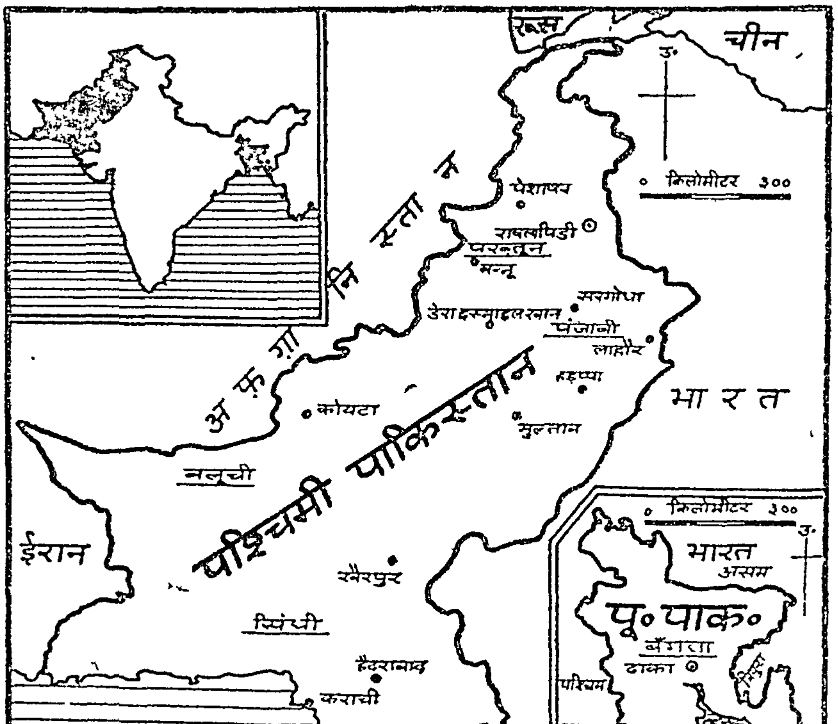

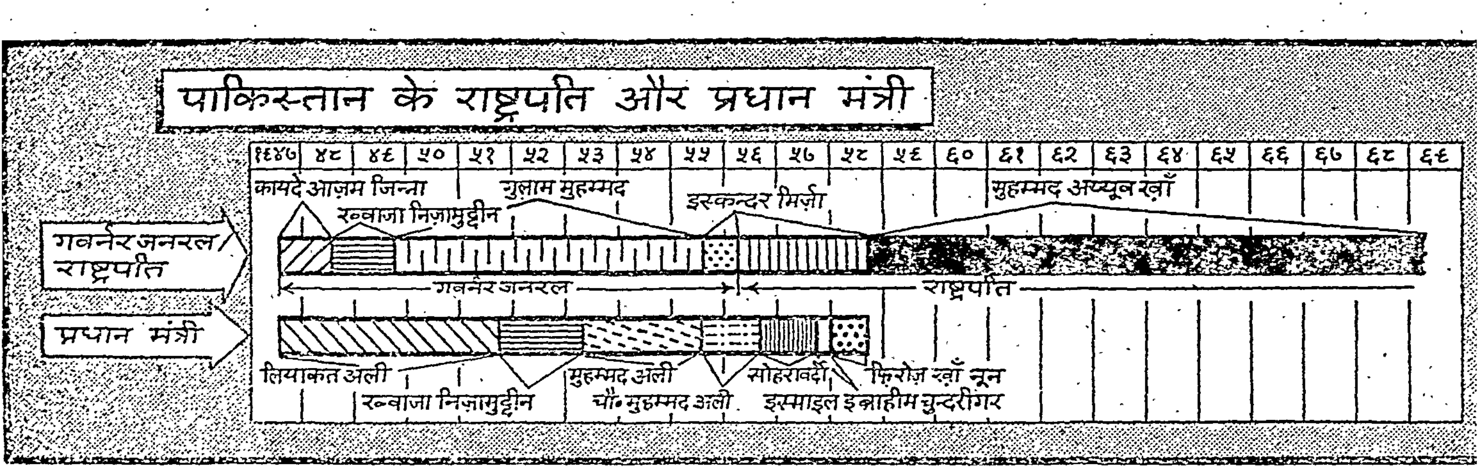

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री डॉ॰ खां साहब.

चूहा भाग बिल्ली आयी : इस की संभावना उत्पन्न हो गयी थी कि पाकिस्तान टूटे, पूर्व पाकिस्तान अलग हो जाए और शायद हिंदुस्तान का बँटवारा ख़त्म हो. लेकिन इस बीच पाकिस्तान के संरक्षक के रूप में ब्रितानिया की जगह अमेरिका ने ले ली थी. दूसरे महायुद्ध के बाद से सारी दुनिया में ही यह प्रक्रिया चल रही थी. ब्रितानिया के पास अब वह आर्थिक-सामरिक शक्ति नहीं थी कि वह अमेरिका और रूस के मुक़ाबले पर अपने को एक विश्व-शक्ति बनाये रख सके और जहाँ से भी ब्रितानिया को हटना पड़ता वहाँ अमेरिका उस की जगह आ जाता.

नये संरक्षक : १९५४ में पाकिस्तान और अमेरिका के बीच एक सैनिक सहायता संधि हुई, जिस के अंतर्गत पाकिस्तान को अमेरिका से बड़े पैमाने पर सैनिक सहायता मिली और अमेरिका को ख़ास तौर पर पश्चिमी पाकिस्तान में सैनिक अड्डे बनाने की अनुमति मिली. रूसी-अमरीकी कूटनीति के लिए भारत-पाकिस्तान का इलाक़ा शुरू से ही बहुत महत्त्वपूर्ण समझा जाता था. भारतीय विदेश-नीति का वह 'पंचशील युग' था, यानी चीन के साथ दोस्ती के अलावा भारतीय विदेश-नीति कभी-कभी रूस की ओर भी झुक जाती थी. अतः पाकिस्तान में बढ़ती हुई अस्थिरता पर अमेरिका को चिंता हुई और अमेरिका के इशारे पर सैनिक क्रांति हुई. शीघ्र ही पाकिस्तानी सेना में ब्रितानिया समर्थक जनरल इस्कंदर मिर्ज़ा को (अपुष्ट सूचनाओं के अनुसार ब्रितानिया के जासूस), जो नये राष्ट्रपति बने थे, देश छोड़ कर इंगलिस्तान भागना पड़ा और अमेरिकी सुरक्षा व विदेशविभागों के आशीर्वाद के साथ मार्शल अय्यूब सत्तारूढ़ हुए. चार वर्ष के सैनिक शासन के लिए राष्ट्रपति अय्यूब ने नया संविधान लागू किया, जिस के अंतर्गत अप्रत्यक्ष चुनावों की व्यवस्था की गयी.

नया नक़्शा : १९६२ से ही अंतरराष्ट्रीय स्थिति भी बदल गयी. चीन और रूस के बीच १९५४ से ही खटपट शुरू हो गयी थी, जो धीरे-धीरे बढ़ती चली गयी. इस बीच अंतरिक्ष-उपग्रह और प्रक्षेपास्त्रों का युग भी शुरू हो गया, जिस से रूस और अमेरिका के बीच तनाव धीरे-धीरे घटने लगा. सैनिक अड्डों का महत्त्व पहले जैसा नहीं रहा. भारत-चीन विवाद १९५९ में ही तब सामने आ गया था जब एक भारतीय गश्ती दल के पंद्रह सैनिक लद्दाख में चीनियों के हाथों मारे गये थे और यह भी प्रकट हुआ कि हज़ारों वर्गमील भारतीय भूमि पर चीन अपना दावा जता रहा है.

चीन चलो : भारत सरकार पहले कई बार यह प्रस्ताव कर चुकी थी कि भारत और पाकिस्तान आपसी विवादों को सुलझाने में युद्ध न करने का समझौता करें और यह प्रस्ताव पाकिस्तान अस्वीकार कर चुका था. भारत-चीन विवाद सामने आने पर मार्शल अय्यूब ने भारत और पाकिस्तान के बीच संयुक्त प्रतिरक्षा-संधि का प्रस्ताव रखा, लेकिन दुर्भाग्यवश भारत सरकार ने उस समय वह प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया.

१९६२ में भारत पर चीनी आक्रमण के बाद, विशेषतः श्री ज़ुल्फ़िक़ार अली भुट्टो के पाकिस्तानी विदेशमंत्री बनने के बाद, पाकिस्तान की चीन के साथ मैत्री तेजी से बढ़ी. चीन से लगे हुए पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर के इलाक़े के बारे में पाकिस्तान ने चीन के साथ एक सीमा-समझौता भी किया, जिस के अंतर्गत लगभग २,००० वर्गमील भूमि पर चीन का अधिकार स्वीकार कर लिया. इसी से मुख्यतः पाकिस्तानी इलाक़ों को १९६५ में कश्मीर में छापामार ढंग की घुस-पैठ करने और फिर सैन्य आक्रमण करने की प्रेरणा भी मिली.

लेकिन १९६५ के युद्ध में पाकिस्तान को असफलता ही हाथ लगी. इस के साथ ही अमेरिका की मौन सहमति से भारत-पाकिस्तान संबंधों में रूस का कूटनीतिक प्रवेश हुआ. रूस की कोशिशों से दोनों देशों के बीच ताशकंद समझौता हुआ. श्री भुट्टो ने अपनी अलग पीपुल्स पार्टी बनायी और पश्चिम पाकिस्तान में अय्यूब सरकार के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया.

ठोस लक्ष्य : दूसरी ओर १९६६ में ही पूर्व पाकिस्तान में शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए आंदोलन चला, जिस की परिणति ढाका षड्यंत्र मुकदमे में हुई. पूर्व पाकिस्तान के आंदोलन की यह विशेषता रही है कि उस ने कुछ ठोस लक्ष्य अपने सामने रखे—**लोकतांत्रिक संविधान, पूर्व पाकिस्तान के अधिकारों की रक्षा के लिए संघीय व्यवस्था, अंग्रेज़ी के स्थान पर बंगला की प्रतिष्ठा, पूर्व पाकिस्तान के आर्थिक विकास के लिए विशेष प्रयत्न. इस के विपरीत श्री भुट्टो और पुराने सैनिक अफ़सरों का विरोध बहुत कुछ मार्शल अय्यूब के व्यक्तित्व या उन की कुछ नीतियों तक ही सीमित रहा है.**

दो दिशाएँ : इस प्रकार पाकिस्तान की राजनीति में आज दो मुख्य तत्त्व हैं : एक ओर पूर्व पाकिस्तान के साथ पश्चिम पाकिस्तान के अल्पसंख्यक समूह हैं (पठान, बलूची, सिंधी, शरणार्थी), जिन का आंदोलन कुछ राजनीतिक-आर्थिक लक्ष्यों के लिए है और जिन के नेता शेख मुजीबुर्रहमान और ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ाँ जैसे व्यक्ति हैं. दूसरी ओर ऐसे व्यक्ति या समूह हैं जिन की दृष्टि अंतरराष्ट्रीय राजनीति की बड़ी ताक़तों पर है. **ज़ुल्फ़िक़ार अली भुट्टो चीन समर्थक भाषा का प्रयोग करते हैं, लेकिन संभवतः वह उसी तरह ब्रितानी हितों के समर्थक हैं जैसे भारत सरकार में कभी श्री कृष्ण मेनन थे. ब्रितानी अख़बार उन की ब्रितानी शिक्षा-दीक्षा का ज़िक्र करते हुए अक्सर उन्हें पाकिस्तान का नया नेता बताते हैं.** पुराने सैनिक अफ़सरों का झुकाव स्वभावतः बड़ी हद तक अमेरिका की ओर है. पाकिस्तान में कोई वास्तविक चीन समर्थक साम्यवादी समूह ऐसा नहीं है जिस का उल्लेखनीय प्रभाव हो. सब से अधिक चीन समर्थक दृष्टिकोण मौलाना भासानी का है, यद्यपि उन के भी साम्यवादी होने में संदेह है. पाकिस्तान में चीन समर्थक वास्तव में भारत विरोध का दूसरा पहलू है.

भविष्य : समूचे पाकिस्तान में जन आंदोलन ने इस समय जो रूप ग्रहण कर लिया है उस से यह आशा बँधती है कि सांप्रदायिकता और विदेशी प्रभाव के शिकंजे से निकल कर पाकिस्तान की राजनीति अब नये आधार प्राप्त करेगी. उस सूरत में भारत और पाकिस्तान के लोगों को एक बनाने वाली भूगोल, इतिहास और संस्कृति की शक्तियाँ अनिवार्यतया अपना प्रभाव डालेंगी. लेकिन इस प्रक्रिया को रोकने वाली शक्तियाँ भी सक्रिय हैं और अभी शायद विश्वासपूर्वक कुछ कहने का समय नहीं आया है.

पिछले वर्ष का लेखाजोखा

१९६९-७० के बजट से पहले १९६८-६९ की जो आर्थिक समीक्षा पेश की गयी उस को देखने से पता चलता है कि देश की आर्थिक स्थिति स्थायित्व की तरफ़ बढ़ रही है. पिछले अन्य कई सालों की अपेक्षा १९६८-६९ का वर्ष अन्न के क्षेत्र में अधिक आत्मनिर्भर रहा. इस का मुख्य कारण शायद यह है कि विकास के सभी कार्यों में पहले से अधिक संयम से काम लिया गया.

कृषि के क्षेत्र में औद्योगिक क्षेत्र की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई. पिछले दो सालों की अपेक्षा मूल्यों में भी ज़्यादा बढ़ोतरी नहीं हुई, जिस के कारण लोगों में निराशा की भावना नहीं पनपने पायी. १९६७-६८ में ९५६ लाख मेट्रिक टन अन्न पैदा हुआ, जो अपने समय की सब से अधिक पैदावार थी. यदि मौसम अनुकूल रहा और रबी की फ़सल भी आशा के अनुसार हुई तो १९६८-६९ की पैदावार भी पहले जैसी ही होगी. अन्न में गेहूँ की उपज अधिक रही और चावल की कम. इस अधिक उपज का कारण रासायनिक खाद का उपयोग, अधिक उपज देने वाले बीजों का इस्तेमाल और सिंचाई के साधनों में सुधार था. जहाँ १९६६ में १०४ लाख मेट्रिक टन अन्न आयात किया गया १९६७ में केवल ८७ लाख मेट्रिक टन और १९६८ में ५७ लाख मेट्रिक टन अन्न ही बाहर से मँगाया गया. अधिक उपज से अन्न की स्थिति में सुधार होने के कारण मूल्यों में ९.५ प्रतिशत की कमी हुई. यह कमी गेहूँ में १.९ प्रतिशत, चावल में ०.५ प्रतिशत, बाजरा में ८.४ प्रतिशत, ज्वार में ८.९ प्रतिशत और दालों में ३०.३ प्रतिशत रही. इस कमी के कारण आम जनता को काफ़ी राहत मिली. लेकिन इस बात का भी ध्यान रखा गया कि अनाज के मूल्य गिरने से किसानों को भी नुक़सान न होने पाये. वर्षा की अनिश्चितता के कारण भविष्य के लिए अन्न सुरक्षित रखने के भंडार बनाये गये. यहाँ ३५ से ४० लाख मेट्रिक टन अनाज की व्यवस्था होगी, जो आड़े वक़्त के लिए रखा रहेगा.

लेकिन औद्योगिक उत्पादन का स्तर लगभग पहले के वर्ष जैसा ही था. १९६६-६७ और १९६७-६८ में तिलहन, कच्चे जूट और कपास की पैदावार में वृद्धि होने के कारण उद्योगों का विकास कुछ हुआ ज़रूर, लेकिन इस साल कच्चे जूट का उत्पादन बहुत कम होने से आयात कम करने के वादे क़ायम न रह सके. पर्याप्त वर्षा का अभाव और बाढ़ों के कारण कपास और मूंगफली की फ़सलों पर बुरा असर पड़ा. इतना सब होने के बावजूद औद्योगिक उत्पादन में कुल मिला कर ५ से ६ प्रतिशत की वृद्धि ही हो सकी. इस के अलावा उपभोक्ता वस्तुओं में ट्रैक्टरों की माँग बहुत बढ़ी. धातुओं के क्षेत्र में एल्यूमिनियम का उत्पादन जिस अनुपात में बढ़ रहा है इस्पात का उत्पादन घटता जा रहा है. ट्रैक्टरों और ट्रकों के उत्पादन में वृद्धि हुई है. औद्योगिक कच्चे माल के मूल्यों में और मुख्य रूप से कच्चे जूट के मूल्य में ६७ प्रतिशत वृद्धि हो जाने के कारण जूट की वस्तुओं के भाव बढ़े हैं. १९६८-६९ के केंद्रीय और राज्यों के बजटों में आयोजना संबंधी खर्चो पर पिछले साल की तरह ही व्याख्या की गयी थी. इस में अन्न के भंडारों की व्यवस्था शामिल नहीं थी. अन्न के भंडारों को शामिल करने से ६ प्रतिशत की वृद्धि हो गयी. केंद्र में ११८ करोड़ रुपया और राज्यों में १४ करोड़ रुपये के अतिरिक्त कर लगाने की व्यवस्था की गयी. पिछले १२ महीनों का औसत उपभोक्ता मूल्य-सूचक-अंक २१५ से अधिक हो जाने से महँगाई-भत्तों की अदायगी में वृद्धि करना आवश्यक हो गया. आशा से कम आयात होने के कारण आयात-शुल्कों से मिलने वाले राजस्व और विदेशी सहायता की प्राप्ति में अनुमान से ज़्यादा कमी होने के ख्याल से कई योजनाएँ पूरी न हो सकी. लेकिन कुछ सीधे करों, बिक्री करों और उत्पादन-शुल्कों में अनुमान से अधिक वृद्धि होने के कारण बजट संबंधी घाटों में कमी हो सकती है.

१९६८-६९ में भारतीय रिज़र्व बैंक ने प्राथमिकता-प्राप्त क्षेत्रों को ऋण देने की उदार नीति जारी रखी और कुछ नियंत्रणों में ढील दी गयी. फिर भी बजट संबंधी घटनाओं और बैंकों में मीयादी जमा की राशि में काफ़ी वृद्धि के कारण एक वर्ष पहले की अपेक्षा १९६८ के अंत में सिर्फ़ ६.५ प्रतिशत की वृद्धि हुई. १९६७-६८ की राष्ट्रीय आय में ८.९ प्रतिशत की वृद्धि और १९६८-६९ में ३ प्रतिशत संभावित वृद्धि को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि मुद्रा-उपलब्धि की वृद्धि स्थायी मूल्यों के अनुसार बढ़े उत्पादन की आवश्यकताओं के बराबर थी.

१९६७-६८ में निर्यात में भी केवल ३.७ प्रतिशत की मामूली-सी वृद्धि हुई. इस का कारण शायद यह है कि १९६४-६५ और १९६५-६६ की एकदम वृद्धि के बाद यह कमी आना स्वाभाविक ही था. लेकिन एक उत्साह अभी भी बना हुआ है कि आमदनी में होने वाली लगातार वृद्धि और धातुओं आदि की बढ़ती माँग से उस का असर अंतरराष्ट्रीय बाज़ार पर पड़ेगा. १९६७-६८ में पिछले साल के मुक़ाबले आयात में भी लगभग ५ प्रतिशत कमी हुई. इस की वजह देश में कृषि-उत्पादन में सुधार था. रासायनिक खाद और इस खाद को तैयार करने के काम में आने वाले कच्चे माल के आयात में काफ़ी वृद्धि हुई. आयात की कमी का एक कारण यह भी है कि लोगों में अब देश में बने उपकरण इस्तेमाल करने की आदत पड़ती जा रही है और लोगों का यह भ्रम दूर होता जा रहा है कि देसी उपकरण और मशीनें विदेशों से किसी तरह कम हैं. १९६७-६८ में अन्न के रूप में प्राप्त सहायता से अलग सहायता के उपयोग में तेज़ी से वृद्धि हुई है. दूसरी तरफ़ पी. एल. ४८० से भिन्न सहायता की मंजूर हुई नयी रक़म भी कम हो गयी. यह रक़म १९६६-६७ में १६१२० लाख डॉलर थी, जो १९६७-६८ में घट कर सिर्फ़ ६५८० लाख डॉलर ही रह गयी. इस का फल यह हुआ कि मिलने वाली सहायता में काफ़ी कमी हुई. इस वर्ष तक ७७७० लाख डॉलर की सहायता का वचन मिला है, जिस में से ६४२० लाख डॉलर की रक़म आयोजना संबंधी सहायता के लिए होगी. ब्याज़ सहित ऋण परिशोधन संबंधी व्यय में और वृद्धि हुई है. १९६६-६७ में यह व्यय ३१९० लाख डॉलर था, जो १९६७-६८ में ४४४० लाख डॉलर और १९६८-६९ में लगभग ५१७० लाख डॉलर हो गया. इस के फलस्वरूप १९६६-६७ और १९६७-६८ के बीच सहायता-निर्धारण में केवल ५३० डॉलर की वृद्धि हुई.

खेतों की पैदावार, निर्यात और औद्योगिक क्षेत्र में हुए विकास को ध्यान में रखते हुए तथा मूल्यों में एक हद तक स्थिरता का ख्याल रखते हुए ऐसा सोचा जा सकता है कि अगले वर्ष में स्थिति पहले की अपेक्षा सँभल सकती है. कृषि-उत्पादन में वृद्धि होने से एक तो बाहर से अन्न आना कम हो जायेगा तथा कच्चे माल का आयात भी अधिक नहीं किया जायेगा. अगर ऐसा हुआ तो विदेशी अदायगियों में बड़ी मदद मिलेगी. कृषि-उत्पादन के कार्यक्रम को ज़ोर-शोर से बनाये रखने के लिए रासायनिक खाद की सप्लाई, सिंचाई के छोटे साधनों का विस्तार, पंपों को बिजली से चलाने के लिए बिजली मुहैय्या करना तथा किसानों को ऋण देने की बातों को ध्यान में रखा जा रहा है. इसी के साथ औद्योगिक वृद्धि भी जुड़ी हुई है.

ऐसी औद्योगिक वृद्धि को ज़्यादा तरजीह दी जा रही है जिस से कृषि के साथ-साथ औद्योगिक उत्पत्ति में भी सुधार हो. अप्रैल से शुरू होने वाले चौथे पंचवर्षीय आयोजन के लिए देश के भीतर से धन जुटाने के लिए. कृषि के उत्पादन में सुधार के साथ-साथ ऐसे औद्योगिक क्षेत्रों में वृद्धि की आवश्यकता है जिस के कारण देश का निर्यात बढ़े, आयात कम हो और बाहरी सहायता पर अधिक निर्भर न रहना पड़े.

उद्योग

हीरे की कहानी

भारत प्राकृतिक साधनों की दृष्टि से काफ़ी संपन्न देश है. इस देश की हीरा-खानों में कितने अमूल्य हीरे (रत्न) छिपे पड़े हैं इस की कल्पना इस लोककथा से ही की जा सकती है. गुजरात के महासंत प्राणनाथ जी कुछ समय के लिए छतरपुर के महाराज के यहाँ ठहरे और महाराज के भक्ति-भाव, श्रद्धा-भाव और सेवा-भाव से प्रसन्न हो कर उन्होंने छतरपुर के महाराज को यह वरदान दिया था कि तुम जहाँ-जहाँ भी अपना घोड़ा दौड़ाओगे वहीं-वहीं हीरा पाओगे. यह लोककथा पन्नावासियों के मन में घर कर चुकी है. वहाँ के सीधे-सादे लोग फ़ुरसत के समय पत्थर तोड़ते रहते हैं. उन का विश्वास है कि उन्हें एक न एक दिन तो हीरा मिल ही जायेगा और फिर उन के सारे दुःख-दर्द दूर हो जायेंगे. इसी आशा और विश्वास के साथ वह दिन-रात मेहनत करते हैं.

हथेली पर हीरे

राष्ट्रीय खनिज विकास निगम : दिल्ली के कुछ पत्रकार (जिन में **दिनमान** के प्रतिनिधि भी थे) कुछ समय पहले राष्ट्रीय खनिज विकास निगम की हीरों की खुदाई का कार्यक्रम देखने के लिए पन्ना (मध्यप्रदेश) पहुँचे. इस समय भारत में हीरों का उत्पादन करने वाला एक मात्र स्थान पन्ना ही है. यों आंध्रप्रदेश में भी कुछ स्थानों पर हीरों की खुदाई का कार्यक्रम जारी है. सरकारी तौर पर राष्ट्रीय खनिज विकास निगम ही एकमात्र ऐसा संगठन है जो पन्ना हीरा खनन परियोजना का आधुनिक ढंग से विकास कर रहा है. अब तक की हुई प्रगति से इतना अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि दो या तीन वर्षों में हीरों का उत्पादन लक्ष्य से अधिक हो सकेगा और १९६९ के अंत तक पन्ना की दोनों खानों (मझगाँव और राम खेड़िया) में २३,२५० कैरट प्रतिवर्ष उत्पादन होने लगेगा. यों अब तक छोटे स्तर पर किये गये खनन-परिणामों के आधार पर २० हज़ार कैरट के हीरे प्राप्त किये गये हैं. इन में से १९६७-६८ में ८,१०० कैरेट हीरे प्राप्त हुए और अनुमान है कि चालू वित्तीय वर्ष (१९६८-६९) में उत्पादन लक्ष्य १६,००० कैरेट हो जायेगा.

पन्ना में हीरे की दो खानें—मझगाँव और राम खेड़िया गाँव के पास बाघेन नदी के तटवर्त्ती क्षेत्र हैं. पन्ना शहर से १४ मील उत्तर पूर्व में मझगाँव की खान में ज्वालामुखी के लावा में हीरा मिलता है. यह लावा के साथ मिल कर पत्थर हो गया है और हीरा उन के बीच फँसा या धँसा हुआ है. २१ एकड़ भूमि में फले इस खान में ६० फ़ुट की गहराई तक कुएँ गला कर देखे गये और उन में हीरे के कण मिले. अब तक हीरों की १० नीलामियाँ हो चुकी हैं. आँकड़ों के आधार पर यदि लाभ-हानि का ब्योरा देखना हो तो कहा जाता है कि इन खानों पर जितना धन खर्च किया जाता है उस के अनुपात में हीरों की प्राप्ति नहीं हो रही है.

इतने लोगों को एक साथ काम करते देख एक पत्रकार ने **दिनमान** के प्रतिनिधि से यह पूछा कि सरकार इस घाटे के सौदे में क्यों बेकार इतना पैसा खर्च कर रही है. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने उत्तर दिया कि अब सरकार की यह कह कर आलोचना की जा रही है कि वह इस योजना पर इतने पैसे क्यों खर्च कर रही है. (कम से कम इतने लोगों को रोज़गार तो मिलता ही है). यह न करे तो यह कह कर सरकार की आलोचना की जायेगी कि मध्यप्रदेश (पन्ना) में हीरे की इतनी खानें हैं और सरकार उन की खोज या खुदाई के लिए प्रयत्न क्यों नहीं कर रही है.

पन्ना हीरे तराशने व चमकाने का प्राचीन केंद्र है. वित्तीय कठिनाइयों और आधुनिक औज़ारों की कमी के कारण हीरे तराशने के काम में मंदी के कारण कारीगरों का उत्साह कम होता जा रहा था, मगर अब लोगों में फिर हीरा तराशने के काम में उत्साह पैदा होता जा रहा है. पन्ना में हीरे के पारखियों से बात-चीत कर के कुछ नयी और दिलचस्प बातों का पता चला, यानी यही सब कि हीरा जितना बड़ा होगा उस की उतनी ही ज़्यादा क़ीमत होगी. यदि एक कैरट की क़ीमत १००० रुपये है तो १० कैरेट के हीरे की क़ीमत ८०,००० होगी. हीरा खाने या चाटने पर आदमी मर जाता है, यह धारणा भी एकदम ग़लत है. राष्ट्रीय खनिज विकास निगम की इन दोनों खानों—मझगाँव और राम खेड़िया में सुरक्षा का इतना कड़ा प्रबंध है कि हीरा चुनने की प्रक्रिया देखने के बाद जब **दिनमान** का प्रतिनिधि बाहर निकलने लगा तभी एक चौकीदार ने कहा कि "जनाब बूटों की मिट्टी तो झाड़ते जाइए".

स्मारक

आगा ख़ाँ का उपहार

कस्तूरबा गांधी की २५वीं पुण्यतिथि पर युवराज करीम आगा ख़ाँ ने पूना स्थित अपना वह ६१ वर्ष पुराना 'आगा ख़ाँ महल' भारत सरकार को सौंपा जहाँ स्वातंत्र्य-संघर्ष के दौर में महात्मा गांधी ६३६ दिनों—९ अगस्त, १९४२ से ५ मई, १९४४—तक रहे थे. भारत और महात्मा गांधी के प्रति अपने उद्गार प्रकट करते हुए इस अवसर पर आगा ख़ाँ ने कहा कि 'भारत में बसे इस्माइली नागरिक, मुझे और मेरे भाई (युवराज ए मोहम्मद) को राष्ट्रपिता का यह राष्ट्रीय स्मारक भारत सरकार को सौंपते हुए हार्दिक प्रसन्नता है और हमें आशा है कि इस स्मारक से जुड़ी हुई स्मृतियाँ और वे महिमामंडित मानवीय आदर्श जिन के लिए गांधी जी जिये और मरे थे इस स्मारक को देखने के लिए आने वालों द्वारा न केवल याद किये जायेंगे बल्कि वे इन पर अमल भी करेंगे.

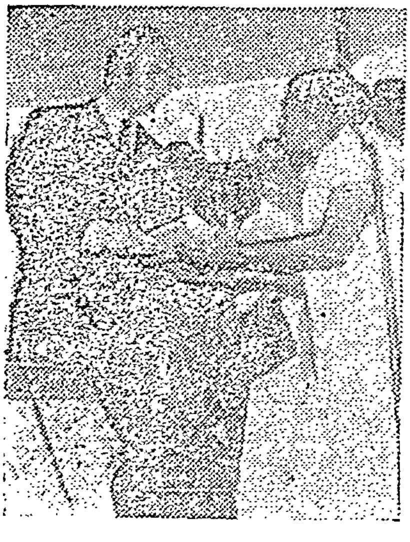

आगा ख़ाँ, सुचेता कृपालानी : हार्दिक प्रसन्नता

पूना में संयुक्त रूप से बने कस्तूरबा गांधी और महादेव देसाई के स्मारक के सम्मुख एक ख़ूबसूरत पंडाल में आगा ख़ाँ के सम्मान में एक समारोह आयोजित किया गया था, जिस का उद्घाटन उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने किया. पूना के 'आगा ख़ाँ राजभवन' से राष्ट्र-पिता के जीवन की न जाने कितनी कटु और मधुर, मायूसी और विजय की स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं. पूना शहर से ५ मील दूर अहमदनगर रोड पर बना यह तीन मंज़िल का ३० कमरों वाला भव्य राजभवन सब से पहले सारे विश्व का आकर्षण-केंद्र तब बना था जब ९ अगस्त, १९४२ को सुबह के वक़्त गांधी जी को उन के निजी सचिव महादेव देसाई और अन्य सह-योगियों सहित बंबई में गिरफ़्तार कर के यहाँ लाया गया था. इस से ठीक एक रोज़ पहले

कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने 'भारत छोडो' आदोलन का प्रस्ताव पास किया था. कुछ समय बाद बंबई की एक सभा मे भाषण देने पर कस्तूरबा को भी गिरफ्तार कर के यहाँ भेज दिया गया. इस महल मे रहते हुए महात्मा गाधी ने अपने जीवन के दो ज़बर्दस्त आघात सहे थे—१५ अगस्त, १९४२ को हृदय के दौरे से उन के निजी सचिव महादेव देसाई का निधन और २२ फरवरी, १९४४ को उन की पत्नी कस्तूरबा की मृत्यु. कस्तूरबा गांधी और महादेव देसाई की अस्थियाँ इस महल के नीचे की मंज़िल में समाधिस्थ की गयी. 'भारत छोडो' आदोलन को कुचलने की ब्रिटिश हुकूमत द्वारा अपनायी गयी नीति के विरोध में महात्मा गाधी ने यही पर १० फ़रवरी, १९४३ से २१ दिनो का उपवास किया था. इन्ही कुछ ऐतिहासिक घटनाओं ने 'आगा खाँ राजभवन' को राष्ट्रीय स्मारक का रुतबा दे दिया हे, जिसे भारत सरकार को सौंपते हुए आगा खाँ ने कहा कि 'मैंने और मेरे भाई ने यह निर्णय किया कि पूना के इस महल को हम अब अपना घर नही समझेंगे. हम चाहते हैं कि भारत सरकार इसे राष्ट्रीय स्मारक बना ले. हमने निश्चय किया कि यह उपहार भारत को सौंपने का अवसर गांधी जन्मशती वर्ष से अच्छा और कोई नही हो सकता और हमे खुशी है कि इस वक़्त हमारे पास अपने पिता के वे कागजात भी हैं जिन मे मुझे और मेरे भाई को यह संपत्ति अपनी इच्छानुसार इस्तेमाल करने का अधिकार दिया गया है. हम चाहते हैं कि यह भवन और इस के असबाब अब गाधी स्मारक निधि की संपत्ति बन जाये.'

समारोह के अध्यक्ष मोरारजी देसाई ने भारत की ओर से कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि आगा खाँ भवन देश की पवित्र निधि हैं और आगा खाँ का यह उपहार महात्मा गांधी की महानता के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है. गांधी स्मारक समिति ने आगा ख़ाँ महल के सामने ७ एकड़ ज़मीन ले ली है. स्मारक के निर्माण के लिए गांधी स्मारक निधि ने डेढ लाख रुपये की धनराशि स्वीकृत की है और कस्तूरबा गाधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट भी इस पर डेढ लाख रुपये खर्च करेगा.

आगा ख़ाँ महल : भव्य उपहार

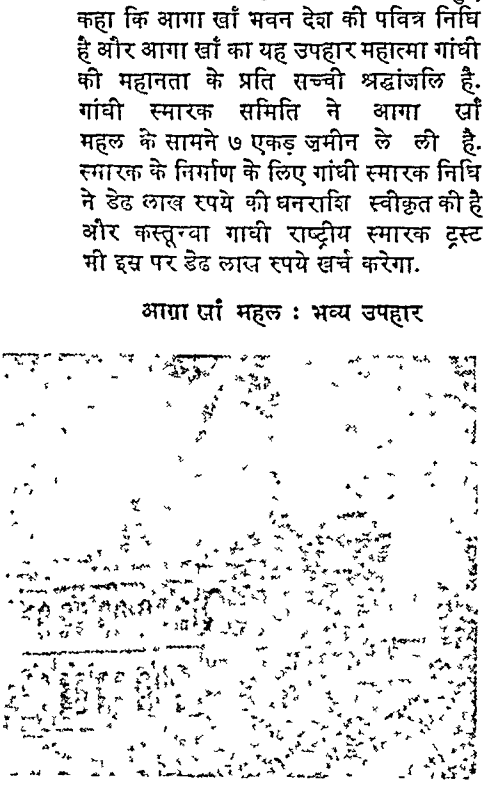

पुरातत्व

दक्षिण भारत के मंदिरों का जीर्णोद्धार : महँगी समस्या

अपनी विशिष्ट कला के लिए प्रसिद्ध दक्षिण भारत के प्राचीन मंदिरो की शोचनीय दशा देख कर यह निष्कर्ष निकाला जा रहा है कि यदि शीघ्रातिशीघ्र इन के जीर्णोद्धार के लिए उचित प्रयास न किये गये तो भारतीय वास्तुकला के ये बेजोड़ नमूने खंडहर मे बदल जायेंगे. लेकिन यह तभी संभव हे जब इस कार्य के लिए पर्याप्त धनराशि की व्यवस्था की जा सके. दक्षिण के विशिष्ट नागरिको का एक प्रतिनिधिमंडल इस सिलसिले में तमिलनाडु सरकार से मिला और उसने आग्रह किया कि दक्षिण भारत के मंदिरो की दयनीय अवस्था को सुधारने के लिए सरकार रचनात्मक कदम उठाये. कुछ समय पश्चात् तमिलनाडु सरकार की ओर से एक अपील प्रकाशित की गयी. अपील में कहा गया था :—

'दक्षिण भारत के मंदिरो की शोचनीय दशा को देखते हुए यह अनुभव किया जा रहा है कि अविलंब इन मंदिरो के जीर्णोद्धार के लिए रचनात्मक कदम उठाये जाये, अन्यथा इन मंदिरो की इमारते शीघ्र खंडहर में बदल जायेंगी, इस में शंका नही. प्राचीन राजाओं-महाराजाओं ने अपने शासन-काल में उदार-वृत्ति का परिचय दिया था—धार्मिक भावनाओं से प्रेरित हो कर उन्होने इस कार्य के लिए एक निश्चित धनराशि व्यय करने की नीति कार्यान्वित की थी, पर वर्त्तमान काल में न तो राजे-महाराजे रहे और न ही उन की उस नीति को जारी रखा जा सका, अतः मंदिरों की देखरेख असंभव हो गयी. आज लोगों में धार्मिक भावनाओ के प्रति बहुत कम आस्था दिखाई देती है, पर अभी भी कुछेक ऐसी धनी-मानी संस्थाएँ है जो आर्थिक सहायता दे कर मंदिरो के जीर्णोद्धार मे योग दे सकती हैं और प्राचीन मंदिरो की कलाकृतियों की रक्षा हो सकती हे. अतः हर एक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह दिल खोल कर आर्थिक सहायता प्रदान करे.'

इस अपील का जनमानस पर अधिक प्रभाव नही पड़ा, हालाँकि सरकार को आशा थी कि जनता दिल खोल कर इस पवित्र कार्य के लिए धन देगी. कुछ समय तक यह कार्य यों ही चलता रहा. धनाभाव के कारण कुछ समय के पश्चात् इन की देखरेख का काम बंद कर देना पड़ा. सन् १९६६ में पुनः शासन की ओर से एक और अपील की गयी और साथ ही साथ केंद्रीय सरकार के पुरातत्वविभाग से भी कहा गया कि वह इन मंदिरो के जीर्णोद्धार एवं देखरेख के कार्य को अपने हाथ मे ले. केंद्रीय पुरातत्व-विभाग अपने सीमित साधनो के कारण इन धार्मिक संस्थाओ को सहायता प्रदान करने में असमर्थ रहा. फिर शासन की ओर से यूनेस्को के 'एक्सपोर्ट विभाग' से प्रार्थना की गयी कि वह यह कार्य अपने हाथ में ले ले. यूनेस्को की ओर से एक शिष्टमंडल, जिस के नेता श्री पी. ए. रुदलनकर थे, भारत आया और दक्षिण भारत में तीन सप्ताह ठहरा. शिष्टमंडल के सदस्यों ने, जिन में पुरातत्व अधिकारी, विविध मामलों के जानकार एवं तकनीकी मामलों के विशेषज्ञ थे, दक्षिण भारत के तमाम मंदिरों का निरीक्षण किया. तीन सप्ताह तक इन मंदिरो का सर्वे किया गया. कुछ समय पश्चात् इस दल ने अपनी रिपोर्ट तमिलनाडु सरकार को भेज दी. रिपोर्ट में जो कुछ लिखा गया है उसे सर्वसाधारण तक न पहुँचाने की हिदायत दी गयी है, इसी लिए रिपोर्ट का खुलासा आज तक प्रकाशित न हो सका. तमिलनाडु सरकार की ओर से रिपोर्ट की मोटी-मोटी बातों का विवरण पत्रकारों को दिया गया, किंतु इस से पत्रकार संतुष्ट न हुए.

धनाभाव : पत्रकारों की ओर से पूछे गये प्रश्नो के उत्तर में तमिलनाडु शासन के इस कार्य से संबद्ध कमिश्नर ने बताया कि 'यूनेस्को एक्सपोर्ट' ने समस्त दक्षिण भारत के धार्मिक संस्थानों एव मंदिरों के जीर्णोद्धार के बारे में अपनी क्या रिपोर्ट दी है, इस पर प्रकाश नही डाला जा सकता. पर यह निश्चित है कि 'यूनेस्को एक्सपोर्ट' ने जो अपनी रिपोर्ट पेश की है उस में दक्षिण भारत के विशेष मंदिर श्री रंगनाथ स्वामी की देखरेख और जीर्णोद्धार संबंधी तमाम प्रश्नो का हल करने की स्वीकृति दी गयी है. अन्य मंदिरो और धार्मिक संस्थानों के विषय में उन्होने कुछ भी प्रकाश नही डाला.

पत्रकारो द्वारा पूछे गये प्रश्नो के उत्तर में कमिश्नर ने कहा कि रिपोर्ट का यह अर्थ नही लगाया जाना चाहिए कि जो कुछ उस में कहा गया है वह पूरा ही किया जायेगा और न यही कहा जा सकता है कि सर्वे करने के पश्चात् जो रिपोर्ट भेजी गयी है उसे कार्यान्वित करने में वह असमर्थ है. सन् १९६६ के उस विशिष्ट मंडल के विषय में चर्चा करते हुए उन्होने पत्रकारों को बताया कि श्री जी. आर. एच. वेट्स और श्रीमती जे. अयूब्योर ने दक्षिण भारत की यात्रा की और कुछ सप्ताह वहाँ ठहर कर उन्होंने मंदिरो का तकनीकी दृष्टि से सर्वेक्षण किया. इन दोनो ने विशेष तौर पर श्री रंगनाथ स्वामी के मंदिर का निरीक्षण किया था और अपनी राय न देते हुए वे भारत से वापस लौट गये.

जनता की शंका का समाधान करते हुए कमिश्नर ने कहा—'हमें आशा नही थी कि ये दो विशेषज्ञ इस मदिर के जीर्णोद्धार के संबंध में अपनी राय अनुकूल देंगे. इस मंदिर पर जिस व्यय की संभावना की जा रही थी वह

क़ोई छोटी-मोटी रक़म नहीं है. स मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए विशिष्ट प्रकार के औज़ारों की व्यवस्था करनी पड़ेगी, जिन की प्राप्ति बहुत मुश्किल है. साथ ही साथ मरम्मत आदि के समय विशिष्ट अधिकारियों की उपस्थिति भी आवश्यक है. उन के वेतन और सुविधाओं पर ही बहुत पैसा खर्च होगा, जिसे जुटा सकना सरल काम नहीं है.' लेकिन कमिश्नर ने दक्षिण भारत के अन्य मंदिरों के संबंध में कुछ भी बताने से साफ़ इनकार कर दिया. निष्कर्ष यह निकलता है कि 'यूनेस्को एक्सपोर्ट' केवल रंगनाथ स्वामी के मंदिर के जीर्णोद्धार के प्रति रुचि रखता है, शेष के प्रति नहीं.

असमर्थता : तकनीकी विशेषज्ञों की रिपोर्ट में विलंब होते देख शासन की ओर से एक बार पुनः केंद्रीय पुरातत्वविभाग का द्वार खटखटाया गया. केंद्रीय पुरातत्वविभाग की ओर से स्पष्ट रूप में बता दिया गया कि मंदिरों के जीर्णोद्धार का प्रश्न सुलझाना प्रांतीय सरकार का कार्य है, अतः केंद्रीय पुरातत्वविभाग किसी प्रकार की सहायता करने में असमर्थ है.

कमिश्नर के वक्तव्य और पुरातत्वविभाग के रुख से जनता को बड़ी निराशा हुई. अतः शासन की ओर से इस प्रश्न को शिक्षा-मंत्रालय के माध्यम से सुलझाने का प्रयास शुरू हुआ. केंद्रीय शिक्षामंत्रालय ने आश्वासन दिया कि इस प्रश्न को सुलझाने के लिए यूनेस्को एक्सपोर्ट विभाग से बातचीत की जायेगी. कुछ समय पश्चात् यूनेस्को एक्सपोर्ट विभाग द्वारा सूचना दी गयी कि श्री रंगनाथ स्वामी के मंदिर का जीर्णोद्धार किया जायेगा और इस कार्य में जो औज़ार आवश्यक हैं उन के लिए १२ हज़ार डॉलर स्वीकृत किये गये हैं और औज़ार खरीदने का ऑर्डर दिया जा चुका है. इस १२ हज़ार डॉलर से केवल औज़ार ही ख़रीदे जायेंगे तो कितनी धन-राशि और कहाँ-कहाँ व कैसे व्यय की जायेगी, यह नहीं कहा जा सकता. किंतु यह निश्चित है कि इस मंदिर के जीर्णोद्धार के लिए धन की व्यवस्था विशेष रूप से यूनेस्को करेगा. कमिश्नर ने यह भी बताया है कि श्री रंगनाथ स्वामी के मंदिर के संबंध में एक पुस्तिका भी प्रकाशित की जायेगी, जिस पर लगभग तीन हज़ार डॉलर व्यय होने का अनुमान है.

अनुमानतः यूनेस्को एक्सपोर्ट विभाग केवल रंगनाथ स्वामी के मंदिर के जीर्णोद्धार के कार्य को अपने हाथ में लेगा. अन्य मंदिरों के संबंध में कहा गया है कि प्रांतीय सरकार कुछ ऐसा प्रबंध करे जिस से उन्हें भविष्य में हानि न पहुँच सके. पूर्ण रूप से जीर्णोद्धार के लिए बहुत बड़ी धन-राशि की आवश्यकता पड़ेगी, जिसे पूरा करना प्रांतीय सरकार के वश की बात नहीं है.

राज्य-वित्त

उत्तरप्रदेश की अर्थ-व्यवस्था

मध्यावधि निर्वाचन के फलस्वरूप उत्तरप्रदेश में राजनीतिक पटपरिवर्तन के कारण बनने वाली नयी जनप्रिय सरकार के सामने सब से बड़ी समस्या आर्थिक संतुलन तथा प्रदेश की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति होगी. सदैव से दुरूह आर्थिक विषमताओं के कारण यहाँ का आर्थिक विकास गतिरुद्ध हो गया है और इस कारण से प्रदेशीय राजनीतिक अर्थवेत्ता नये आर्थिक प्रयासों द्वारा प्रदेश की आर्थिक स्थिति में उन्नति करने से हिचकिचाते रहे हैं. योजनाकाल के पिछले दस वर्षों में उन्होंने अपनी आर्थिक प्रयास करने की अक्षमता को केंद्र के ऊपर डाल कर इस उत्तरदायित्व से हाथ धो लिये थे.

दोषारोपण : पिछले प्रादेशिक नेताओं द्वारा केंद्र पर दोषारोपण करने के कारण पिछले महीनों में इस समस्या पर इतना खुल कर विचार हुआ कि सर्वसाधारण की समझ में भी यह बात आ गयी कि उत्तरप्रदेश का राजनीतिक नेतृत्व स्वयं ही आवश्यक आर्थिक प्रयास करने से भागता रहा है. सितंबर १९६८ में योजना आयोग के उपाध्यक्ष डॉ. डी. आर. गाडगिल ने लखनऊ में आयोजित एक योजना गोष्ठी में प्रदेश के राजनीतिक अर्थवेत्ताओं द्वारा केंद्र पर उत्तरप्रदेश के साथ सौतेला व्यवहार करने के आरोप का खंडन करते हुए कहा था कि केंद्रगत योजनाओं का आधा भाग प्रायः १०० करोड़ रुपया तो देश में इस्पात कारखानों की स्थापना में लगा है. यह इस्पात मिल साधनाभाव के कारण उत्तरप्रदेश में नहीं लग सकते और बाक़ी योजना-निधि का बारह प्रतिशत उत्तरप्रदेश में लगा है. उन्होंने गोष्ठी में भाग लेने वाले राज्यपाल तथा अन्य राजनीतिक नेताओं, जो सभी दोषारोपण करते रहते हैं, को बताया था कि योजना-निधि के किसी प्रदेश में अधिक या न्यून मात्रा में निवेश से उस प्रदेश की समृद्धि में अंतर पड़ना आवश्यक नहीं है. उदाहरणस्वरूप बिहार में योजना-निधि सब प्रदेशों से अधिक मात्रा में निवेशित है फिर भी वह सब प्रदेशों से पिछड़ा हुआ है. इस के विपरीत पंजाब में योजना निधि का निवेश सब प्रदेशों से कम है फिर भी वह समृद्धि की दौड़ में सब से आगे है.

उत्तरदायित्व किस का? : मध्यावधि निर्वाचन के दौरान सभी राजनीतिक दल आर्थिक समस्याओं के दबाव को तो स्वीकारते रहे परंतु उन के समाधानों पर प्रकाश डालने से कतराते रहे. नयी जनप्रिय सरकार को जिन आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा उनमें प्रमुख है वार्षिक बजट में सत्तावन करोड़ रुपये का घाटा. चौथी योजनावधि में प्रदेश को १७५ करोड़ रुपये की कमी का सामना करना पड़ेगा. योजना आयोग ने प्रदेश सरकार से यह आशा की थी कि वह आगामी पाँच वर्षों में १५० करोड़ रुपये के साधन अपने ही प्रयासों से जुटाये. इस आशा के फलस्वरूप नियुक्त उत्तरप्रदेश जाँच समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है. समिति की पूर्ण अनुशंसाएँ अभी प्रकाशित नहीं हुईं. परंतु जो आधिकारिक संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया गया है उस के अनुसार समिति ने कुछ प्रस्तावित नये करों और वर्त्तमान करों की दरों में वृद्धि से ११५ करोड़ ८५ लाख रुपये की प्राप्ति के सुझाव दिये हैं. इस के अतिरिक्त समिति ने यह भी अनुशंसा की है कि सरकारी प्रतिष्ठानों और प्रशासन के घाटों को कम कर के ६० करोड़ रुपये और प्राप्त हो सकते हैं. ७७० पृष्ठ और २४ अध्यायों की इस वृहद् रिपोर्ट के विभिन्न अंशों को गोपनीय रखा गया है. समिति ने स्थानीय निकायों की अर्थ-व्यवस्था को सुधारने के लिए भी कुछ सुझाव दिये हैं जिस से वह अपने उत्तरदायित्व को अर्थाभाव के कारण निभाने में भविष्य में भी असफल न रहे. समिति द्वारा प्रस्तावित नये करों और वर्त्तमान करों में वृद्धि तथा स्थानीय निकायों को आर्थिक प्रयास के लिए दिये गये सुझावों पर कोई निष्कर्ष तभी संभव होगा जब उस की पूर्ण अनुशंसाएँ प्रकाशित होंगी. इस समय तो केवल यही सोचा जा सकता है जिस प्रदेश में प्रति व्यक्ति आय सभी प्रदेशों से कम हो और जहाँ का औसत करभार सर्वाधिक है, वहाँ नये करों और कर-वृद्धि के सुझाव तो दिये जा सकते हैं परंतु जनप्रिय सरकार में बिल्ली के मुँह में घंटी बाँधने वाला अर्थमंत्री आसानी से नहीं मिल सकता. नये करों तथा वर्त्तमान करों में वृद्धि के सुझावों में ऐसी किसी नयी अर्थनीति के दर्शन संभव नहीं हैं जो प्रदेश की आर्थिक विषमता का अंत कर सके.

भारतीय क्रांति दल का हल

खेल और खिलाड़ी

उत्तर भारत गोल्फ़ प्रतियोगिता

उत्तर भारत की गोल्फ़ प्रतियोगिता का आयोजन हमेशा ही दिल्ली के गोल्फ़ मैदान में किया जाता है. अच्छा मैदान होने के कारण देश के सभी चोटी के खिलाड़ी यहाँ पहुँचते हैं. बीच-बीच में कभी कुछ विदेशी खिलाड़ियों के भी दर्शन हो जाते हैं. लेकिन अब की बार उत्तर भारत गोल्फ़ प्रतियोगिता में न जाने क्यों बहुत कम खिलाड़ी इकट्ठे हुए. यहाँ तक कि पितांवर और सेठी भी नहीं पहुँच पाये. यही कारण है कि दिल्ली में इतनी बड़ी प्रतियोगिता हुई और किसी को खबर तक नहीं मिली. न खिलाड़ी, न दर्शक, सूना-सूना मैदान. जहाँ प्रतियोगिता के आखिरी दिन विजयश्री प्राप्त करने वाले दो प्रतिद्वंद्वी खिलाड़ियों के पीछे-पीछे उन के हज़ारों प्रशंसक चला करते थे वहाँ इस बार ऐसा कुछ नहीं था जिस के आधार पर गोल्फ़ की लोकप्रियता का बखान किया जा सके. हाँ, केवल इतना कह कर ही संतोष किया जा सकता है कि इस वर्ष कुछ किशोर खिलाड़ियों की तादाद पहले से ज्यादा थी. इस बार जिन नये और तरुण खिलाड़ियों ने भाग लिया उन के नाम इस प्रकार हैं : मधुमिश्र, मनजीत, अतुल, अचल, अशोक खन्ना आदि. यों मनजीतसिंह की गिनती काफ़ी अच्छे खिलाड़ियों में की जा सकती है पर वह पहली ही पाली में हार गया. फिर मधुमिश्र और अतुल नाथ भी हार गये और इस प्रकार आखिरी दिन के लिए विक्रमसिंह और जीती चौधरी बच रहे.

विक्रमजीत सिंह के बारे में इतना कहना आवश्यक है कि वह बहुत ही कुशल, होनहार और नवयुवक खिलाड़ी है और उस पर कुछ आशा लगायी जा सकती है. वह इस वर्ष के गोल्फ़ चैंपियन भी हैं. विक्रमजीत और जीती चौधरी का मुकाबला या चोट यों भी बराबर की नहीं थी. इस पर जीती चौधरी के शुरू-शुरू के खेल से ही रही-सही कसर पूरी हो गयी. प्रथम तीन 'होल' में ही यह तीनों हार गये. आखिरी दिन का खेल नियमानुसार ३६ 'होलों' का खेल होता है. प्रथम पाली के १८ 'होलों' में यह ७ 'होल' नीचे हो चुके थे और २८ वें पर पहुँचते-पहुँचते खेल समाप्त हो गया. कुल मिला कर यह खेल कम और खिलवाड़ ज्यादा हो गया.

दो-चार लोग जो इनका खेल देखने के लिए इन के साथ-साथ चले भी, वह भी दुःखी मन वापस आने लगे और इस प्रकार यह 'विजयश्री' विक्रम को बिना कोई कमाल या पराक्रम दिखाये मिल गयी. यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि सारा मैदान १८ हिस्सों में बँटा होता है. प्रत्येक हिस्से के प्रारंभ का चबूतरा 'टी' कहलाता है और अंतिम भाग 'ग्रीन' कहलाता है. इन ग्रीनों में एक गोलइ कटा होता है जिसे अंग्रेज़ी में 'होल' कहते हैं और गोली भी इसी में डालनी होती है. प्रत्येक भाग, को जिसे लाक्षणिक रूप से 'होल' ही कहते हैं, जीतने वाला एक ऊपर (अंग्रेज़ी में 'वन अप') और हारने वाला एक नीचे (वन डाउन) होता है.

महिला-गोल्फ़ : किंतु जिस दिन यह प्रतियोगिता समाप्त हुई उस के दूसरे ही दिन महिलाओं ने मोर्चा संभाल लिया. महिलाओं की उत्तर भारत गोल्फ़ प्रतियोगिता यहाँ के गोल्फ़ के इतिहास में पहली बार आयोजित हुई और इस का सारा श्रेय दिल्ली की गोल्फ़-खिलाड़िनों को दिया जा सकता है. इस में कलकत्ते से श्रीमती हारिले और श्रीमती बसंतसिंह और बंबई की श्रीमती सारा फ़िलिप्स ने भाग लिया श्रीमती अंजनी देसाई बंबई से किसी कारणवश नहीं आ सकी, वह गोल्फ़ की एक अच्छी खिलाड़िन हैं.

गोल्फ़ के खेल में मौसम का भी विशेष प्रभाव पड़ता है. यानी खराब मौसम में अच्छे खेल की कल्पना नहीं की जा सकती. इधर तीन चार दिनों से बदलते मौसम के कारण कुछ 'ग्रीन' बढ़ गयी और कुछ तेज़ हवा के कारण खेल में मंदी आ गयी फिर भी पहले दिन के खेल में श्रीमती विली राइट का खेल सब से अच्छा रहा और उन्होंने पहले दिन का खेल ८० में किया. यह कभी-कभी पुरुषों के लिए कठिन हो जाता है. इसी प्रकार सीता रौली का भी खेल अच्छा रहा. वह पहले दिन के खेल में दूसरे नंबर पर रही. लिली खन्ना और कमला मिश्र क्रमशः तीसरे और चौथे नंबर पर रहीं.

दूसरे दिन के खेल में श्रीमती विली राइट बीमार हो जाने के कारण न खेल सकीं. श्रीमती सारा फ़िलिप्स क्यों कि उन की मेहमान थी. अतः वह भी अपने मेजबान की अस्वस्थता के कारण मैदान में उपस्थित न हो सकीं. इन दोनों अच्छी खिलाड़िनों के प्रतियोगिता से अलग हो जाने के कारण तीसरे और चौथे दिन का खेल श्रीमती सीता रौली, लीला खन्ना और श्रीमती शीलानाथ के हाथों में आ गया. यह तीनों ही महिलाएँ दिल्ली की अच्छी खिलाड़िनें हैं.

इस प्रकार महिलाओं की इस प्रथम गोल्फ़ प्रतियोगिता में श्रीमती सीता को पहला, श्रीमती कमला मिश्र को दूसरा और हरजी मलिक को तीसरा और श्रीमती चांद उज्ज्वलसिंह को चौथा स्थान प्राप्त हुआ. पुरस्कार वितरण दिल्ली के उप-राज्यपाल डॉ. आदित्यनाथ झा ने किया.

सरकारी नीति और नीयत

उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई द्वारा जब २८ फ़रवरी की शाम को लोक-सभा में १९६९-७० के लिए केंद्रीय बजट प्रस्तुत किया गया तो उस में खेल-कूद पर उन की विशेष कृपादृष्टि रही. उन्होंने एक ओर जहाँ खेल-कूद के लिए ५८.२८ लाख रुपये (यानी गत वर्ष से ७:२७ लाख रुपये अधिक) की धनराशि निश्चित की वहाँ खेल-कूद पर होने वाले फ़िज़ूल के दफ़्तरी खर्च, यात्राभत्ते और ऐसे ही अन्य खर्चों को घटाते हुए सरकारी अनुदानों को १.९८ करोड़ से घटा कर ८१.०७ लाख कर दिया.

ऊपरी तौर पर देखने से तो यह लगता है कि भारत सरकार अपनी ओर से भारतीय खेल-कूद के विकास में कोई कसर उठा नहीं रखना चाहती मगर भीतर ही भीतर सरकार और खेल-संघों के बीच ताल-मेल न होने के कारण तनाव और तकरार आये दिन बढ़ता जा रहा है. सरकारी अधिकारी हो या खेल-अधिकारी सब को अपनी-अपनी पड़ी है. भारतीय खेल-कूद के स्तर के विकास की किसी को चिंता नहीं. आरोप, प्रत्यारोप, आलोचना-प्रत्यालोचना, मत-भेद, विरोध, पहले वक्तव्य फिर खंडन, कुल मिला कर खेल-कूद के नाम पर यही सब हो रहा है. पहले यह सुनने में आता है कि इंग्लैंड की क्रिकेट टीम भारत का दौरा कर रही है, फिर यह कि प्रस्तावित दौरा रद्द कर दिया गया है. कारण वही, विदेशी मुद्रा का संकट. कभी यह सुनने में आता है कि भारतीय हॉकी टीम लाहौर का दौरा कर रही है, टीम का चुनाव हो गया, कप्तान निर्विरोध और सर्वसम्मति से चुन लिया गया है. इसी बीच कहीं एक विवाद शुरू हो जाता है कि पृथीपाल सिंह को लाहौर जाने वाली टीम का कप्तान बनाने का न्यौता दिया गया है. फिर पृथीपाल सिंह का वक्तव्य, फिर अश्वनी कुमार द्वारा उस वक्तव्य का खंडन और फिर यह कि भारतीय हॉकी टीम लाहौर नहीं जा रही है. सरकारी अधिकारियों का यह कहना है कि जिस टीम का चुनाव किया गया है वह बहुत कमज़ोर और नौसिखिया है और भारतीय हॉकी संघ के अधिकारियों का यह कहना है कि सरकार हमारे मामले में अनुचित हस्तक्षेप कर रही है. खिलाड़ियों के चुनाव का काम हमारा है, सरकार का नहीं—और न जाने क्या-क्या. इस व्यर्थ की तकरारबाज़ी से भारतीय खिलाड़ियों के मन पर क्या गुज़रती होगी उस की कल्पना आसानी से की जा सकती है.

शिकायत : सब को एक-दूसरे से शिकायत है. खिलाड़ियों को खेल-अधिकारियों से, खेल-अधिकारियों को सरकारी अधिकारियों से. जिम्मेदारी का एहसास किसी को नहीं है. अपने-अपने बचाव के लिए सब के पास अपने-अपने तर्क हैं. नतीजा यह होता है कि भारतीय खेल-कूद के ह्रास के बारे में जब किसी से भी बातचीत की जाती है तो यही एक उत्तर

अखिल भारतीय निशानेबाज़ी प्रतियोगिता का मुख्यमंत्री गोविंद नारायण सिंह द्वारा उद्घाटन : राजनैतिक निशाना

सुनने को मिलता है 'हम क्या करें' और 'कोई क्या करे'.

मंत्रिमंडल में परिवर्तन : हाल में प्रधान-मंत्री द्वारा केंद्रीय मंत्रिमंडल का परिवर्तन किया गया. इस परिवर्तन की उपयोगिता या अनुपयोगिता पर हमारी कोई बहस नहीं. लेकिन इस परिवर्तन से भारतीय खेल-प्रेमियों का ध्यान तुरंत भगवत झा आज़ाद पर केंद्रित हो गया. भगवत झा आज़ाद का, जिन्हें खेलमंत्री भी कहा जाता था, शिक्षा मंत्रालय से तबादला कर दिया गया. भगवत झा आज़ाद अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद् के अध्यक्ष भी थे. अब उन्होंने अध्यक्ष पद से अपना त्यागपत्र दे दिया है. उन का त्यागपत्र स्वीकार किया जायेगा या नहीं, खेल-विभाग का अध्यक्ष कौन होगा, इस बारे में अब तक कोई समाचार नहीं है. भगवत झा आज़ाद ने जब खेल-कूद परिषद का अध्यक्ष पद संभाला था तब यह घोषणा की थी कि वह भारतीय खेल-कूद के विकास के लिए एक स्पष्ट नीति की घोषणा करने वाले हैं. मगर, उस के बाद उस पुनर्गठित परिषद् की बैठक ही नहीं हुई और इस प्रकार उन के मन की बात मन में ही रह गयी. अब कुछ दिनों बाद एक नये खेलमंत्री के नाम की घोषणा होगी. और कौन जाने जब वह एक खेल-नीति की घोषणा करने वाले हों तब उन का भी तबादला हो जाये.

मध्य प्रदेश की चिट्ठी

पिछले दिनों मध्यप्रदेश में जिन दिलचस्प खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया उन में एक थी इंदौर कार-रेस, दूसरी भोपाल में अखिल भारतीय निशानेबाज़ी प्रतियोगिता और तीसरी भोपाल में ही श्री एम. कुमार द्वारा बिना रुके १६७ घंटे साइकिल चलाने का रिकार्ड. लंदन-सिडनी कार-रेस के तरीक़े पर ही आधारित १५६८ किलोमीटर कार-रेस इंदौर में २३ फ़रवरी को शुरू हुई (देखिए दिनमान, २ मार्च) १४ फ़रवरी से २३ फ़रवरी तक भोपाल में हुई अखिल भारतीय निशानेबाज़ी की प्रतियोगिता में २३० लोगों ने भाग लिया जिनमें २१ महिलाएँ और ३५ बच्चे भी थे. सब से छोटी उम्र का प्रतियोगी केवल साढ़े आठ वर्ष का था. इस प्रतियोगिता में देश के सभी प्रसिद्ध निशानेबाज़ों ने अपने करतब दिखाये. यों भी जिस प्रतियोगिता में बीकानेर के महाराजा कर्णीसिंह पहुँच जायें उस का महत्त्व अपने आप बढ़ जाता है. इस प्रतियोगिता की एक दिलचस्प बात यह थी कि इस में छोटे-प्रतियोगियों का प्रदर्शन बड़े प्रतियोगियों से कहीं बेहतर था. बीकानेर की राजकुमारी १२ वर्षीया कुमारी मधुलिका ने क्ले पीजन शूटिंग की. इस प्रतियोगिता का उद्घाटन मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री गोविंद नारायण सिंह ने बंदूक चला कर किया और पुरस्कार वितरण राज्यपाल के. सी. रेड्डी द्वारा किया गया.

इस प्रतियोगिता में कोई उल्लेखनीय कीर्त्तिमान तो स्थापित नहीं हो सके मगर पुरस्कार ज़रूर उल्लेखनीय ढंग से बाँटे गये. पुरस्कारों की एक बाढ़-सी आ गयी, इतने पुरस्कार बाँटे गये कि उन के वितरण में डेढ़ घंटा लग गया.

एम. कुमार जौनपुरी ने लगातार १६७ घंटे साइकिल चला कर अपना १६२ घंटे ५६ मिनट के पुराने कीर्त्तिमान में सुधार कर दिखाया. यों लगातार साइकिल चलाने का अखिल भारतीय रिकार्ड १८१ घंटे १५ मिनट का है जो इन्हीं के भाई द्वारा स्थापित किया गया है. लगभग एक सप्ताह तक साइकिल चलाने वाले इस नौजवान के सर्कसनुमा करतब देखने के लिए दर्शकों की काफ़ी भीड़ रही.

संक्षिप्त समाचार

दक्षिण अफ़्रीका और ओलिंपिक : अक्सर देखा गया है कि जब किसी देश या किसी क्लब या किसी खेल-संस्था को किसी बड़ी खेल-प्रतियोगिता से बाहर कर दिया जाता है तो वह अपने लिए एक अलग अंतरराष्ट्रीय खेल प्रतियोगिता का आयोजन करने की तैयारी में जुट जाती है. कुछ साल पहले एशियाई खेल संघ से खफ़ा हो कर इंडोनेसिया ने अपने लिए अलग 'नयी विकसित शक्तियों' (न्यू एमर्जिंग फोर्सेस—गनेफा) की प्रतियोगिताओं का आयोजन किया था. खेल-कूद में रंग-भेद की नीति के कारण दक्षिण अफ़्रीका को ओलिंपिक खेलों से बहिष्कृत किया गया है. अब यह सुनने में आ रहा है कि दक्षिण अफ़्रीका अपनी एक अलग छोटी-ओलिंपिक प्रतियोगिता (मिनी-ओलिंपिक) का आयोजन करने की रूप रेखा तैयार कर रहा है. इन प्रतियोगिताओं का प्रतीक भी ठीक ओलिंपिक जैसा (पाँच गोले) होगा. दक्षिण अफ़्रीका ने दुनिया के चोटी के एथलीटों को निमंत्रण-पत्र भी भेज दिये हैं. फ़्रांस और अमेरिका ने खुले और साफ़ शब्दों में यह कह दिया है कि उन के यहाँ का कोई खिलाड़ी दक्षिण अफ़्रीका द्वारा आयोजित ऐसी अंतर-राष्ट्रीय प्रतियोगिता में भाग नहीं लेगा. लेकिन सुनने में आ रहा है कि कुछ देशों के खिलाड़ियों ने स्वीकृति भेज दी है.

क्रिकेट : वारेल ट्रॉफ़ी ऑस्ट्रेलिया के कप्तान-बिल लारी को थमा कर गैरी सोवर्स अपनी टीम के साथ न्यूज़ीलैंड पहुँच गये हैं. ऑस्ट्रेलिया की हार के बाद से वेस्ट इंडीज़ के कप्तान गैरी सोवर्स की यहाँ-वहाँ काफ़ी आलोचना की जा रही है. वेस्ट इंडीज के खिलाड़ियों का मनोबल अब बहुत कमज़ोर हो गया है. क्रिकेट खेलने वाले देशों में न्यूज़ीलैंड की टीम अब तक सब से कमज़ोर टीम समझी जाती थी. ऑकलैंड में खेले गये पहले टेस्ट की पहली पारी में वेस्ट इंडीज़ की टीम न्यूज़ीलैंड जितने भी रन नहीं बना सकी.

डेविस कप : कुआलालंपुर में खेले जा रहे डेविस कप के प्रथम राउंड में भारतीय टीम में जिन खिलाड़ियों को शामिल किया गया उन के नाम हैं : रामनाथन कृष्णन, गौरव मिश्र और आनंद अमृतराज. भारत के लिए मलयेसिया को हराना बायें हाथ का खेल है यह जानते हुए ही भारतीय टीम में दो नये खिलाड़ियों को शामिल किया गया है. मलयेसिया के खिलाड़ियों के नाम इस प्रकार हैं : मलयेसिया का नंबर एक खिलाड़ी एस. ए. आज़मन (३२ वर्षीय), विल्ली याप (३६ वर्षीय) और रहमान बकर (१९ वर्षीय). रामनाथन कृष्णन् जैसे गुरु की देख-रेख में नये और होनहार खिलाड़ियों को डेविस कप का अनुभव कराने का यह एक प्रशंसनीय प्रयास है. और लीजिए भारत ने यह मैच (*अंतिम समाचारों के अनुसार* ३-० से) जीत लिया है.

बिल लारी और सोवर्स : विदाई से पहले

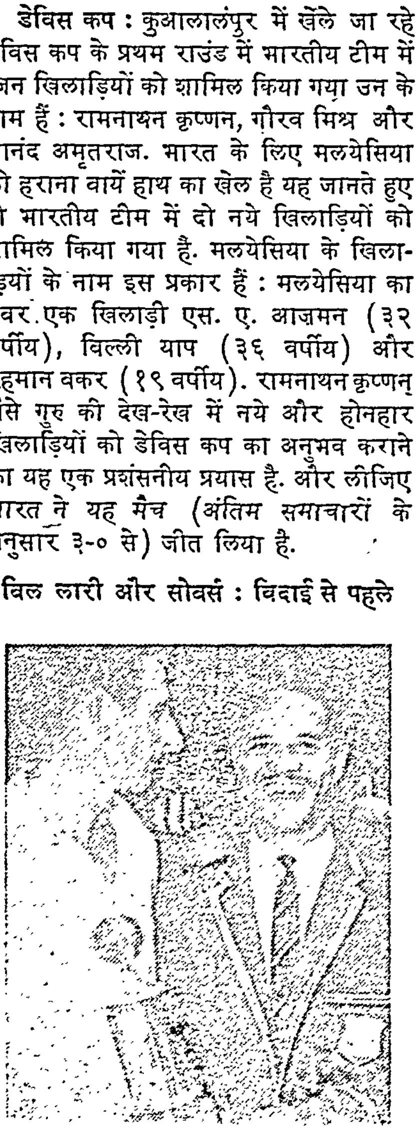

चव्हाण : सब ठीक है (सितंबर '६५ का एक चित्र)

समाचार-भूमि

चुप तोपों के खुले मुँह

दस बरस के अंदर पाकिस्तान में यह दूसरी राजनैतिक उथल-पुथल है. इस बार प्रक्रिया पलटी हुई है. लोकतंत्रीय शक्तियाँ, जिन्हें कभी सैनिक तानाशाही ने दबोच लिया था, सर उठा रही हैं और राष्ट्रपति का तानाशाही आसन हुमस रहा है. आखिर में सरकार किस तरह की और किन पार्टियों की बनेगी, यह तो समय ही बतायेगा पर आज के पाकिस्तानी-दृश्य के प्रेक्षक यह तथ्य स्पष्ट देख रहे हैं कि पाकिस्तानी सैनिक-शक्ति वहाँ सत्ता की लड़ाई में अय्यूब के पक्ष या विपक्ष में कुछ नहीं कर रही है. यह कुछ अजब जान पड़ता है कि सशस्त्र सेना दस वर्ष देश पर राज करने के बाद जनता के सामने घुटने टेक दे और बिना चूं-चपड़ किये उन्हीं राजनीतिकों को फिर गद्दी की तरफ़ बढ़ने दे जिन्हें कुछ ही वर्ष पहले उस ने उखाड़ फेंका था. तानाशाही देशों में आम तौर से एक सैनिक तख्ता-पलट के बाद दूसरा सैनिक तख्ता-पलट होता ही है और तानाशाही से लोकतंत्र तक का रास्ता मजे-मजे तय होता आम तौर से देखा नहीं गया. कहा जा सकता है कि पाकिस्तान में सब कुछ इतना मजे-मजे नहीं हो रहा है लेकिन वहाँ के राजनैतिक आंदोलन का आकार-प्रकार देखते हुए जो कुछ हुआ है वह बहुत बड़ा खूनखराबा नहीं कहा जायेगा.

पाक दामन : पाकिस्तानी सेना के विषय में प्रेक्षक इतना तो स्पष्ट देख रहे हैं कि वह अपनी एकता, संगठन अथवा समग्रता खोये बिना वर्तमान उथल-पुथल में से बाहर रह गयी है. इस का उल्टा भी हो सकता था और अगर होता तो यह तय था कि सेना की युद्ध-शक्ति कुछ क्षय होती. अब अगर अगले कुछ महीनों में कोई बहुत ही भयंकर बात न हो जाये तो इतना निश्चित है कि पाकिस्तान की अगली सरकार सेना की वफ़ादारी का विश्वास कर सकती है. हो सकता है कि सेना का बहुत समय तक शासनारूढ़ रहना और उस के मुँह खून लगा होना शुरू के दिनों में सेना और लोकतंत्रीय शासन के बीच पारस्परिक संदेह उपजाये और स्वस्थ संबंध में व्यवधान करे लेकिन यह बाधा असाध्य नहीं है.

भेड़िया आया : कई वर्ष से भारत ने अय्यूब-राज के साथ सहअस्तित्व का अभ्यास किया है. अब, जब कि पाकिस्तान-सरकार में आमूल परिवर्त्तन आसन्न दीखता है, प्रश्न उठता है कि यदि नयी सरकार बनी तो उस का भारत की ओर क्या रुख रहेगा. तथाकथित कश्मीर-समस्या का हल पाकिस्तान के हित में करा लेना तब भी पाकिस्तान की सरकार का अन्यतम लक्ष्य रहेगा. इस की सिद्धि में वह किस हद तक आगे जायेगी यह अनुमान अभी केवल अटकल ही कहलायेगा. इतना मान कर चलें कि सरकार में कोई भी परिवर्त्तन हो, वह भारत-विरोधी कार्रवाइयाँ राजनैतिक और सैनिक दोनों क्षेत्रों में कश्मीर के प्रश्न को ले कर काफ़ी बढ़ा सकती है. चूंकि नयी सरकार को जमने के लिए कुछ समय चाहिए, जनता के सामने वह कश्मीर का हौवा कुछ दिन तक ज़रूर खड़ा रखना चाहेगी. इस लिए भारत को पाकिस्तान के सैन्य-बल का एक सिंहावलोकन कर लेना इस समय आवश्यक है और यदि उस के संदर्भ में अपनी प्रतिरक्षा-योजना में कुछ छिद्र दिखें तो उन्हें पूर लेना भी अभी ही उचित होगा.

पाक-शक्ति, तब : सितंबर, १९६५ के संघर्ष के पहले पाकिस्तान के पास लगभग **दो लाख** सशस्त्र जवान इस प्रकार थे :

सेना : कुल शक्ति एक लाख सत्तर हज़ार : इस के अंतर्गत छह पदातिक डिवीज़न, एक बख्तरबंद डिवीज़न, एक अतिरिक्त बख्तरबंद. ब्रिगेड और एक वायुसेना रक्षा ब्रिगेड.

नौ सेना : कुल शक्ति आठ हज़ार : इस के अंतर्गत एक हल्का क्रूज़र, एक पनडुब्बी, दो बड़े विध्वंसक, तीन सहायक विध्वंसक, दो पनडुब्बी-मारक फ़्रिगेट, आठ तटीय सुरंग-मारक, चार द्रुतगामी गश्ती नौकाएँ और आठ अन्य पोत.

वायु सेना : कुल शक्ति बीस हज़ार : इस के अंतर्गत दो सौ हवाई जहाज़, बी-५७ बमबार जेट सहित दो हल्के बमबार स्क्वाड्रन, एफ़-८५ लड़ाकू सैबर सहित चार लड़ाकू बमबार स्क्वाड्रन, एक प्रतिरोधक स्क्वाड्रन (एफ़-१०४ ए), कुछ आर-टी ३३ ए पड़ताली-विमान और चार ब्रिस्टल हर्क्युलीस भारवाहक विमान.

पाकिस्तान के पास **उपसैनिक शक्ति** भी है, जिसका विवरण यों है :—

कुल शक्ति ७०,००० : इस के अंतर्गत **सीमांत दल** (२५,००० कबायली), **पश्चिम पाकिस्तान रेंजर** (१०,०००), **पूर्व पाकिस्तान राइफ़ल्स** (१०,०००) और **आज़ाद कश्मीर दल** (२५,०००) हैं.

१९६५-६६ का पाकिस्तान रक्षा बजट १४० करोड़ रुपये का था जो कि उस की कुल राष्ट्रीय उत्पत्ति का ३.२ प्रतिशत और कुल केंद्रीय राजस्व का प्राय: १८ प्रतिशत है. ये आँकड़े लंदन के सामरिक अध्ययन संस्थान के अनुसार हैं.

२१ दिन के बाद : सितंबर-अक्तूबर, १९६५ में पाकिस्तान को इल्म हो गया था कि उस की सैनिक-शक्ति, खासकर भारतीय वायु-शक्ति के मुक़ाबले उस की वायु शक्ति कितनी अयथेष्ट थी. तब से पाकिस्तान अपना युद्ध-यंत्र संगठित करने में एड़ी-चोटी का पसीना एक किये हुए है. अभी १९ फ़रवरी को रक्षामंत्री स्वर्णसिंह ने संसद् में बताया है कि १९६५ के

रूस-निर्मित मिग विमान जो चीन अपने मित्रों को दे रहा है : विनाशकारी उपहार

बाद से पाकिस्तान ७० करोड़ डॉलर भर का सैनिक सामान जहाँ-तहाँ से प्राप्त कर चुका है. रक्षा मंत्री १३ नवंबर, १९६८ के अपने बयान के हवाले से यह भी बता चुके हैं कि उस वक़्त चीन ने पाकिस्तान को दो पदातिक डिवीज़न का संपूर्ण साज़-सामान, लगभग २५० टंक, १२० मिग विमान और इल्युशन-२८ बमबार के दो स्क्वाड्रन दिये थे. रक्षामंत्री ने यह भी प्रकट किया था कि चीन ने इतना ही नहीं, बहुत बड़ी तादाद में तोपें और सैनिक गाड़ियाँ तमाम गोला-बारूद और टैंकों और विमानों कल-पुर्ज़ों के साथ पाकिस्तान को भेंट किया था. इसी विपुल चीनी उपहार को ले कर पाकिस्तान अपनी सशस्त्र सैनिक शक्ति प्रायः दुगुनी कर सका है.

पाक-शक्ति, अब : लंदन के सामरिक अध्ययन संस्थान का '१९६७-६८ का सैन्य संतुलन' नामक प्रकाशन पाकिस्तानी सशस्त्र सेना के निम्नलिखित अनुमान पेश करता है :

कुल सशस्त्र सेना : तीन लाख तेइस हज़ार,

१९६७-६८ का प्रतिरक्षा बजट : २१४ करोड़ पाकिस्तानी रुपये. **थल सेना**—चार बख्तरबंद ब्रिगेड, १३ पदातिक ब्रिगेड और ९०० अदद तोपखाने के साथ कुल तीन लाख. **नौ सेना**—एक पनडुब्बी, दो बड़े विध्वंसक, तीन सहायक विध्वंसक, दो पनडुब्बी-मारक फ्रिगेट, आठ तटीय सुरंग-मारक, चार द्रुतगामी गश्ती नौकाओं और तीन सहायक जहाज़ों के साथ कुल ९०००. **वायुसेना**—कुल शक्ति १४ हज़ार (इस में स्पष्टतः भूमि कर्मचारी शामिल नहीं हैं) : २४० लड़ाकू जहाज, दो हल्के बमबार स्क्वाड्रन, (बी-५७-बी जैट) एक हल्का-बमबार स्क्वाड्रन, एल्युशन-२८ जैट बमबार, आर टी ३३ ए और आर बी-५७ सहित दो क्षेत्रीय पड़ताली स्क्वाड्रन, दो प्रतिरोधक स्क्वाड्रन, (एफ़. १०४ ए स्टार-फाइटर) पाँच लड़ाकू बमबार स्क्वाड्रन (एफ़. ८६ एफ़ साबर), चार लड़ाकू स्क्वाड्रन (मिग १९), दो भारवाहक स्क्वाड्रन, कुछ आलुएन हैलीकाप्टर, २५ मिराज III ई जैट प्रतिरोधक (आर्डर दिया हुआ है).

कुछ और भी : इस तख़मीने के छपने के बाद २४ मार्च, १९६८ को पाकिस्तान दिवस परेड में चार मिराज III ई सलामी देते हुए देखे गये. इस से यह नतीजा निकालना ग़लत न होगा कि पाकिस्तान के पास कम से कम एक स्क्वाड्रन मिराज III ई जैट प्रतिरोधकों का काम लायक़ हालत में मौजूद है. बहुत संभव है कि पाकिस्तान को सामरिक-संस्थान की खबर के विपरीत एक नहीं बल्कि दो इल्युशन-२७ जैट बमबार स्क्वाड्रन मिल गये हों. अगर हाँ तो इस का मतलब हुआ कि '६५ के बाद के तीन वर्षों में पाकिस्तान ने अपनी सैन्य-शक्ति प्रायः सात डिवीज़न से बढ़ा कर लगभग १५ डिवीज़न कर ली है. नौसेना में कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई जान पड़ती है. ख़ास बात तो यह है कि दो पदातिक डिवीज़न चीनी साज़-सामान से लैस किये गये हैं. पाकिस्तानी सेना-प्रधान जनरल यहया खान कुछ समय पहले चीनी सेना का कार्य-कलाप देखने चीन गये थे. ज़ाहिर है कि वहाँ उन्होंने चीनी सामरिक प्रणाली और रणनीति का अध्ययन किया होगा. इस लिए यह भी अनुमान असंगत नहीं है कि जो दो पदातिक डिवीज़न चीनी साज़ सामान से लैस हैं उन्हें चीनी तरीक़ों से लड़ना सिखाया गया है या जा रहा है. इतना जान कर कोई भी अच्छी तरह समझ सकता है कि इन दो डिवीज़नों का किसी भावी लड़ाई के समय पाकिस्तान कहाँ और कैसे इस्तेमाल करेगा.

खायगे क्या : इतनी बड़ी सैन्य-शक्ति को सहारा देने योग्य औद्योगिक-आधार पाकिस्तान के पास यथेष्ट रूप में नहीं है. दूसरे शब्दों में उस की सैन्य शक्ति का अधिकांश साज-सामान उसे बाहर से मँगाना होगा. बंदूक जैसे छोटे-

१९६५ के संघर्ष में पाकिस्तानी ८५ वर्ष की हसना बेगम को सियालकोट के एक गांव में छोड़ गये थे: भारतीय जवानों ने उस की देखभाल की.

मोटे अस्त्रों को छोड़ कर बाक़ी तोपें, टैंक, हवाई जहाज़ यहाँ तक कि सैनिक गाड़ियाँ, संचार के विद्युत यंत्र और बेतार के तार वग़ैरा भी वह आयात करता है. उस की किस्मत से इस तरह का बहुत-सा साज-सामान उसे चीन ने बख्शीश के तौर पर दे रखा है और शायद दे रहा है. एक यह वज़ीफा बराबर मिलता रहेगा या नहीं यह मुआमला एक हद तक पाकिस्तान की मरज़ी के बाहर है. दूसरे, १५ डिवीज़न थल सेना, २० स्क्वाड्रन वायु सेना और जितनी भी हो उतनी ही नौसेना का रख-रखाव पाकिस्तान के आर्थिक आयोजकों को सरदर्द बन सकता है. प्राप्त औसत आँकड़ों के हिसाब से उपर्युक्त सैन्य शक्ति के सालाना रख-रखाव का खर्च क़रीब ४५० करोड़ रुपये पड़ता है. (इस लिहाज़ से सामरिक संस्थान के तख़मीने ग़लत मालूम होते हैं) ४५० करोड़ रुपये के इस खर्च में किसी नयी खरीद या वर्तमान साज सामान के बदल पर होने वाले खर्च शामिल नहीं हैं. उन्हें भी शामिल करें तो यह रक़म ६०० करोड़ रुपये से से भी ऊपर यानी आज की दरों पर होने वाले पाकिस्तानी केंद्रीय-खर्च के ४० प्रतिशत से भी ऊपर चढ़ जायेगी. इस तरह उन राजनैतिक कारणों के अतिरिक्त, जिन से पाकिस्तान को दूसरे देशों से सैनिक-मदद घट सकती है, एक आर्थिक तत्व भी है जो पाकिस्तानी सैन्य संगठन के विस्तार पर ज़बर्दस्त पाबंदी लगा सकता है. वक़्त आने पर जब वर्तमान साज सामान में बदल की ज़रूरत होगी तो आज के स्तर पर भी सैन्य शक्ति को बनाये रखना पाकिस्तान के लिए जी का जंजाल हो जायेगा लेकिन यह भी मानना होगा कि जब राष्ट्रीय हितों की बाज़ी लगी हो तो कोई भी राष्ट्र तर्क को ताक पर रख सकता है. भावी पाकिस्तान सरकारें कश्मीर-समस्या को जितना महत्त्व देंगी उस के अनुसार हो सकता है कि पाकिस्तान आज का भारी रक्षा-व्यय बर्दाश्त करना ही नहीं बल्कि और भी बोझ सर पर लादना हंसी खुशी कबूल कर ले. इस लिए पाकिस्तान से किसी सैनिक-ख़तरे का अंदाज़ लगाने से पहले पाकिस्तान की वर्तमान सैन्य-शक्ति को समझने के साथ-साथ यह स्वीकार करना भी ज़रुरी हो जाता है कि चाहे जैसे हो पाकिस्तान हमेशा इस सैन्य शक्ति को बनाये रखने का आर्थिक नियोजन करता ही रहेगा.

तुलना के तथ्य : लंदन के सामरिक संस्थान के अनुसार, भारत की कुल सैन्य-शक्ति करीब नौ लाख है. भारत ने करीब ३० वायुसेना स्क्वाड्रन तैयार कर लिए हैं. हाल में उस ने नौसेना में पनडुब्बी का प्रवेश भी किया है. शुद्ध आँकड़ों को देख कर भारत की सैन्य-शक्ति पाकिस्तान से श्रेष्ठ जान पड़ती है. लेकिन भारत की सैन्य-शक्ति का यह अनुमान अपूर्ण है. उसे तो हमेशा चीन जैसे महाबली शत्रु के खतरनाक और ज़बर्दस्त आतंक के संदर्भ में जाँचना होगा. चीन के साथ भारत की सीमा बहुत लंबी है. अगर यह ध्यान रहे कि जब तक राजनैतिक स्थिति जड़ से ही नहीं बदल जाती तब तक भारत इस लंबी सीमा पर चीन के मुक़ाबले के लिए उतने सैनिक ज़रूर रखेगा जितने कम से कम चाहिएं तो यह प्रकट हो जाता है कि पाकिस्तान से कोई संघर्ष होने पर वह यथेष्ट संख्या में सैनिकों का तबादला नहीं कर सकता. इस का अर्थ यह हुआ कि उस की सैन्य-शक्ति आँकड़ों से जो भी दिखाई पड़ती है उस के अनुरूप श्रेष्ठता हासिल करना और बात है. किसी पाकिस्तानी आक्रमण के जवाब में भारत पाकिस्तान से बीस साबित हो जाये तो उतना ही बहुत होगा. ज़ाहिर है कि पहली मरतबा पाकिस्तान भारत की सुरक्षा के लिए एक वास्तविक खतरा बन गया है. अब पाकिस्तान इस स्थिति में आ गया है कि वह भारत को सशस्त्र संघर्ष की चुनौती देने का स्वप्न देख सकता है.

मंसूबों के नक़्शे : पाकिस्तान के सामरिक आयोजकों के दिमाग की एक झलक हाल में एयर मार्शल मुहम्मद असगर खाँ के पाकिस्तान टाइम्स (२२ और २९ सितंबर १९६८) में प्रकाशित लेखो से मिली थी. जरूरी नही है कि असगर खाँ के विचार पाकिस्तान सरकार के भी विचार हो लेकिन पाकिस्तान-वायुसेना के भूतपूर्व अध्यक्ष और फील्ड मार्शल अयूब के संभाव्य उत्तराधिकारी के नाते असगर खाँ के विचार कुछ मायने तो रखते ही है. उन का कहना है कि पाकिस्तान की दृष्टि मे भारतीय सैन्य-शक्ति पश्चिमी सीमात पर जहाँ सब से अधिक लगायी जा सकती है वह है सियालकोट और फिरोजपुर के बीच का इलाका. असगर खाँ ने यह भी लक्ष्य किया है कि जम्मू और कश्मीर मे भारतीय सेना की सब से बडी कमजोरी उस के शेष भारत से सचार की व्यवस्था है, लबी और जटिल सचार व्यवस्था के कारण वह सेना शत्रु के हाथो शेष भारत से असंपृक्त कर दी जा सकती है. असगर खाँ ने चीन और पाकिस्तान से मिले लबे और विस्तृत भारतीय सीमात के चलते भारतीय सेना को इच्छानुसार ठीक जगह और ठीक समय पर ला खडा करने की कठिनाई भी उल्लिखित की है. उन के लेखो से दिखाई दे जाता है कि अगर कभी पाकिस्तान से कोई सघर्ष हुआ तो पाक-सामरिक-नीति क्या हो सकती है. शायद वह यह होगी:

१: यदि सभव हो तो चीन के साथ मिल कर भारत से लडाई शुरू की जाये; अगर यह न हो सके तो चीन से खतरे की आशका पैदा करके भारतीय सेना के बहुलाश को उस तरफ़ बझा दिया जाये.

२: सियालकोट-फीरोजपुर क्षेत्र में भारत के 'संभाव्य आक्रमण' के मुकाबले पर सैन्य-संगठन तैयार रखा जाये पजाब और जम्मू और कश्मीर के मध्य की सडक काट कर जम्मू और कश्मीर मे जोरदार आक्रामक कार्रवाइयाँ की जाये.

पाकिस्तान ने कुछ कदम उठाये भी है. वास्तव मे उस ने पश्चिमी पजाब के सीमात पर अपने क्षेत्र मे प्रतिरोधो की एक लंबी कडी तैयार कर ली है. मुख्यतया टैंक विरोधी-प्रतिरोध है. पाकिस्तान का दो पदातिक डिवीजन चीनी प्रणाली से तैयार करना दिखाता है कि ये कश्मीर मे इस्तेमाल के लिए हो सकते है. क्योकि उन का सब से अच्छा इस्तेमाल पहाडी इलाको मे ही हो सकता है. अभी तक पाकिस्तान सरकार ने जो किया है उस से एयर मार्शल असगर खाँ के और पाक सरकार के विचारो मे काफी साम्य दीखता है. संसद मे कहा गया है कि भारत की सैन्य-शक्ति पाकिस्तान और चीन के सशस्त्र खतरे का सामना करने के लिए यथेष्ट रूप से तत्पर है इस विषय मे ठोस जानकारी सक्षेप मे भी प्राप्त न होने के कारण राष्ट्र को अपने सत्ताधारी नेताओं के शब्दो पर विश्वास करने के सिवाय कोई चारा नही रह जाता. यह विश्वास बना रहना चाहिए.

विश्व

अमेरिका

निक्सन और यूरोप

राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन यूरोप की ८ दिवसीय यात्रा के बाद जब वाँशिंग्टन पहुँचे तब उन के चेहरे के भाव सपाट थे—न उन में उद्विग्नता थी और न ही प्रसन्नता. उन के कर्मचारियो ने यह जरूर प्रचारित किया कि राष्ट्रपति पद सँभालने के ६ सप्ताह बाद निक्सन ने जिस विदेशी भूमि पर कदम रखा वह यूरोप की 'कठोर' धरती थी जो १९६० की अपेक्षा अब काफी नरम हो गयी थी. इस यात्रा के दौरान बेल्जियम को छोड़ कर राष्ट्रपति निक्सन जहाँ-जहाँ भी गये अमेरिकी विरोधी नारे भी उन का पीछा करते रहे. लदन मे पुलिस-प्रदर्शनकारियो मे भिडंत हुई. रोम में एक युवक ने निक्सन की कार के सामने अपने आप को फेंक कर अपनी बात कहनी चाही और फ्रास मे अमेरिका विरोधी इश्तहार और नारे दोनो लगाये गये. अमेरिका के प्रति यूरोपीय लोगो की इस भावना से निक्सन को काफी ठेस भी पहुँची जिसे राष्ट्रपति उन्होने उफ किये बिना सहा. लेकिन द गॉल का उग्र रवैया पहले की अपेक्षा नर्म पाकर उन्हे जरूर सकून मिला होगा. यही कारण है कि फ्रास मे निक्सन अपने पूर्व लिखित भाषण मे जगह-जगह तबदीली कर द गॉल के गुणो का ही बखान करते रहे.

पहला चरण : ब्रिटेन मे राष्ट्रपति निक्सन और प्रधानमंत्री हेरल्ड विलसन मे अमेरिकी-ब्रितानी सबंधो, पूर्व पश्चिम समस्याओ, नैटो और साझा बाज़ार के बारे मे काफी लंबी बातचीत हुई. बातचीत के दौरान अमेरिका के नये प्रशासन ने अतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष योजना के विशेष अधिकारो को लागू करने पर भी बातचीत की और राष्ट्रपति निक्सन ने अपने वाणिज्यमंत्री मारिस स्टैंस को मार्च के अंत तक लंदन भेजने का सकेत दिया. अमेरिका ने नैटो के देशो को सैनिक और राजनैतिक सहयोग देने और ब्रिटेन को यूरोपीय साझा मंडी मे शामिल किये जाने का भी समर्थन किया. फ्रास में ब्रितानी राजदूत क्रिस्टोफर सोएम्स, जो भूतपूर्व ब्रितानी प्रधानमत्री चर्चिल के दामाद है, की राष्ट्रपति द गॉल से हुई बातचीत का हवाला भी विलसन ने निक्सन को देते हुए बताया कि द गॉल ने सोएम्स से कहा था कि नैटो और साझा बाज़ार दोनो को बिलकुल खत्म कर नये सिरे से समझौता किया जाये. यह बात सही है कि १९५८ मे जब द गॉल ने राष्ट्रपति पद सँभाला था तब साझा बाजार एक नयी और अविकसित संस्था थी. द गॉल इस सस्था मे तीन साल बाद शामिल हुए लेकिन इस दौरान जो उन्होने अपनी और साझा बाजार की स्थिति बना दी है वह आज और किसी देश की नही. बिना फ्रास के साझा बाज़ार अस्तित्वहीन है. राष्ट्रपति द गॉल का अपने राजदूत को दिया गया सुझाव विलसन को नागवार गुजरा. वह यह तो पसंद कर सकते है कि मौजूदा साझा बाज़ार का विघटन कर नये सिरे से संगठन किया जाये, लेकिन वह नैटो को अस्तित्वहीन करने के पक्ष मे कतई नही.

दिली मुराद : पश्चिम जर्मनी की निक्सन की यात्रा उन की दिली मुराद पूरी न कर सकी.

लंदन में निक्सन-विरोधी प्रदर्शनकारी और पुलिस : मठभेड़

अणु-प्रसार-निरोध संधि पर चांसलर डॉ० कुर्त्त जॉर्ज कीसिगर हस्ताक्षर करने को सहमत नहीं हुए. वह इस बात की गारंटी चाहते थे कि आणविक अस्त्रों का इस्तेमाल केवल शांति के लिए किया जाये और इस मामले में सभी राष्ट्रों की स्थिति एक समान होनी चाहिए. निक्सन ने कीसिगर को अमेरिकी सेनेट के उस प्रस्ताव की लपेट में लपेटना चाहा जिस के अंतर्गत ६ मार्च को सेनेट अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा हस्ताक्षर की गयी अणु प्रसार निरोध संधि का अनुमोदन कर देगी. जब इस से भी कीसिगर के दृढ़ रवैये में फ़र्क़ नहीं आया तब उन्होंने जर्मनी के पुर्नएकीकरण का विश्वास दिलाया. जब इस से भी बात बनती नज़र न आयी तब अमेरिका और रूस की बातचीत में पश्चिमी मित्रों में जर्मनी के विचारों को प्राथमिकता देने की बात कही. इस के बाद उन्होंने नैटो को अपना पूर्ण समर्थन देने का भी वादा किया ताकि पश्चिम जर्मनी के लोग यह महसूस करें कि अमेरिका की उन के साथ कितनी सद्भावना है. लेकिन पश्चिम जर्मनी के प्रधानमंत्री कीसिगर ने ५ मार्च से होने वाले राष्ट्रपति चुनाव में अत्यन्त व्यस्त होने के कारण इस विषय पर सोच-विचार करने के लिए समय चाहा. निक्सन बर्लिन गये और वहाँ उन्होंने रूसी सेनाओं का जमाव भी देखा. रूस ने अब यह धमकी भी पश्चिम जर्मनी को दी है कि जो जहाज़ बर्लिन से हो कर उड़ेंगे उस के यात्रियों और जहाज़ों की सुरक्षा की गारंटी रूस नहीं देगा. लेकिन चांसलर कीसिगर ने यह बात साफ़ कर दी है कि बर्लिन से उड़ान भरने वाले हर जहाज़ और हर यात्री की सुरक्षा का दायित्व बतौर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध के रूस पर है. रूस ने पश्चिम और पूर्व बर्लिन की सीमाओं पर नाकाबंदी कर एक तरफ़ से दूसरी तरफ़ आने-जाने वाले लोगों पर प्रतिबंध लगा दिया गया है. कीसिगर ने देशवासियों को इस बात के लिए आगाह कर दिया है कि आने वाला समय काफ़ी मुसीबतों का समय हो सकता है.

प्रदर्शनों के बीच दर्शन : रोम के हवाई अड्डे पर व्हाइट हाउस के सफ़ेद जहाज़ ने जब अपने पंख फैलाये और राष्ट्रपति निक्सन एक खुली मुस्कान ले कर उस से बाहर निकले तब इटली के बादलों से घिरे मौसम और तनावपूर्ण वातावरण में कुछ देर के लिए सद्भावना की लीक नज़र आयी. हवाई अड्डे के बाहर वामपंथी छात्रों का एक बहुत बड़ा गिरोह निक्सन-विरोधी नारे ज़रूर लगा रहा था लेकिन इस से राष्ट्रपति के स्वागत-सत्कार में अधिक बाधा नहीं पड़ी. सतर्कता के बावजूद निक्सन विरोधी प्रदर्शनकारियों और पुलिस भिड़ंत में ११९ लोग घायल हुए. इटली के अधिकारियों के साथ निक्सन की बातचीत का मुद्दा, साझा-बाज़ार और नैटो को सशक्त बनाना था. लेकिन राष्ट्रपति निक्सन की फ़ांस-यात्रा को काफ़ी महत्त्व दिया जा रहा है. अमेरिका के प्रति फ़ांस के रवैये में जो नरमी आयी है, उस का संकेत राष्ट्रपति द गॉल द्वारा हवाई अड्डे पर खुले दिल से निक्सन का स्वागत करना था. अपने भाषण के दौरान निक्सन ने द गॉल को 'महा मानव' बताते हुए उन के साहस, दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता का ज़िक्र किया. फ़ांस और अमेरिका की 'पुश्तैनी दोस्ती' का हवाला देते हुए राष्ट्रपति द गॉल ने दोनों देशों के संबंधों को मानवीय आदर्शों का उदाहरण बताया. द गॉल ने कहा कि निक्सन की मौजूदा यात्रा दोनों देशों के संबंध और दृढ़ बनायेगी. निक्सन ने द गॉल से तीन बार बातचीत की और अपनी इस बातचीत में उन्होंने पश्चिम एशिया की समस्या सुलझाने के लिए चार देशों के शिखर सम्मेलन, वीएतनाम में शांति स्थापना के क़दम, नैटो और साझा बाज़ार आदि पर दिल खोल कर बातचीत की. राजनैतिक प्रेक्षकों का कहना है कि दो राष्ट्रपतियों की खुली और बेबाक बातचीत ने दोनों देशों के बीच व्याप्त कटुता को काफ़ी हद तक दूर किया है और अब दोनों देश एक दूसरे के अधिक नज़दीक आये हैं. दक्षिण वीएतनाम के उपराष्ट्रपति काओ की ने भी निक्सन से अपनी ३५ मिनट की बातचीत के दौरान पेरिस में चल रही वीएतनाम की शांति-वार्त्ता के बारे में एक-दूसरे के विचार जाने और निक्सन ने अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से की को अवगत कराया. की ने कहा कि निक्सन यह मानते हैं कि वीएतनाम वीएतनामियों की समस्या है जो अगर वे नेकनीयती बरतें तो स्वयं ही सुलझा सकते हैं. निक्सन ने जहाँ द गॉल को अमेरिका पधारने का न्यौता दिया, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री विल्सन से इस बारे में बातचीत तक नहीं की, यद्यपि निक्सन भीतर ही भीतर ऐसा चाह रहे थे.

निक्सन की इस व्यस्त यात्रा के दौरान उन्हें यूरोप की समस्याओं के बारे में नये सिरे से नयी जानकारी हासिल हुई है. यह बात सही है कि रूस से होने वाली निक्सन की बातचीत में यूरोप की यह यात्रा मार्गदर्शन का काम अंजाम देगी.

चेकोस्लोवाकिया

सुधारों का तक़ाज़ा

यह स्वीकार करते हुए भी कि पिछले वर्ष अगस्त में चेकोस्लोवाकिया में वारसाउ देशों की सेनाओं के प्रवेश की नाटकीय घटना से चेक जनता की भावना को गहरा आघात पहुँचा, डॉ० डालीबर हैनस के नेतृत्व में हाल ही में भारत के दौरे पर आये १४ संसद-सदस्यों के शिष्टमंडल ने संवाददाताओं के पैने प्रश्नों के उत्तर में यथासंभव रूस की प्रत्यक्ष आलोचना से बचने की कोशिश की. दर्शनशास्त्र के विद्यार्थी जाँ पलाच और जाँ जैसिक द्वारा आत्मदाह के रोमांचकारी निर्णय को भी उन्होंने राजनीति से अधिक भावनात्मक आवेग से सराबोर साबित करने की चेष्टा की और जैसे अपने हितचिंतकों को ढाढ़स देने के अंदाज़ में कहा कि 'हम अपने जनतांत्रिक कार्यक्रमों को तरतीबवार पूरा कर रहे हैं.' लेकिन चेक शिष्टमंडल के इस आत्मगोपन के बावजूद कुछ और भी तथ्य प्रकाश में आये हैं, जिन से चेकोस्लोवाकिया की आंतरिक स्थिति का अंदाज़ा लगाया जा सकता है. चेकोस्लोवाकिया में ट्रेड यूनियनों का संगठन एक नयी शक्ति के रूप में उभर रहा है और ज़रूरत पड़ने पर वह आम हड़ताल का आह्वान कर के भी सुधारवादी आंदोलन के शेष कार्यक्रमों को कार्यान्वित कराने के लिए कृतसंकल्प हैं. हाल ही में संपन्न एक सम्मेलन में यूनियन के अनेक नेताओं के वक्तव्यों तथा उन के प्रस्तावों से इस के स्पष्ट संकेत मिले हैं. स्लोवाक समाचारपत्र 'लुड' ने भी यूनियनों के उद्देश्य का समर्थन करते हुए कहा है कि उन्हें स्वतंत्र रूप से कार्य करने का पूरा अधिकार मिलना चाहिए और 'किसी को भी उन्हें यह आदेश देने का हक़ नहीं है कि वे क्या करें और क्या न करें.' चेक और स्लोवाक यूनियनों के कुल सदस्यों की संख्या ५५ लाख है, जिस में से ४० लाख तो बोहेमिया और मोरेविया के चेक हैं और बाक़ी स्लोवाक हैं. सब मिला कर ये लोग कुल जनसंख्या के लगभग ३८ प्रतिशत हैं.

इन यूनियनों ने यह तो स्वीकार किया है कि देश की प्रमुख राजनैतिक शक्ति पार्टी ही है किंतु इस वर्चस्व को वे कुछ शर्तों के साथ ही मानने के लिए तैयार हैं. हाल के सम्मेलन में यूनियन नेताओं ने यह बात खुल कर जतला दी है कि यूनियनों के कार्यक्षेत्र, कर्त्तव्य और अधिकारों के बारे में उन की मान्यता रूढ़िगत साम्यवादी मान्यताओं से स्पष्टतया भिन्न है. रूढ़िगत साम्यवादी मान्यता के अनुसार तो यूनियन मात्र पार्टी की नीतियों को ढोने वाला ज़रिया है, पार्टी के निर्णयों को कारखानों में लागू करवाने का साधन मात्र है, लेकिन चेक यूनियनों ने यह अक़ीदा कर लिया है कि वे तभी तक पार्टी का साथ देंगे, जब तक वह जन-आकांक्षा के अनुसार कार्य करे. वे अपने को पार्टी के स्वतंत्र हक़दार मानते हैं, उस के पिछलग्गू नहीं. दरअसल, ये यूनियन इतने सबल हैं कि राष्ट्रपति स्वबोदा ने भी चेक कांग्रेस के सम्मुख स्वीकार किया कि बिना इन की मर्ज़ी के कोई भी महत्त्वपूर्ण निर्णय नहीं लिया जा सकता है. यही नहीं, पार्टी के नेताओं में तो कई मामलों में मतभेद हैं, किंतु यूनियन के नेताओं में काफ़ी एका है और जहाँ अगस्त के हमले के बाद से पार्टी के नेताओं को अनिश्चयता ने क्षुब्ध किया है वहीं यूनियनों

की शक्ति और उत्तरदायित्व की भावना का हमले के बाद से तेज़ी से विकास हुआ है. अतः अब न केवल पार्टी के नेताओं बल्कि रूसी नेताओं को भी इन से छेड़खानी करने में एहतियात बरतनी पड़ेगी. सुधारवादी कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने में चेक नेताओं की टाल-मटोल, रूसी नेताओं के दबाव के सम्मुख झुक जाने की प्रवृत्ति या सैनिक शक्ति के बल पर रूस द्वारा चेकोस्लोवाकिया के आत्मसम्मान को पुनः ठेस पहुँचाने की कोई भी कोशिश स राष्ट्रव्यापी संगठन को संघर्ष के लिए भड़का सकती है. इस बारे में शंका की क़तई गुंजाइश नही, क्योंकि यूनियन नेता यह अक़ीदा कर के ही स्थिति का अध्ययन कर रहे हैं.

नया अजूबा : बहरहाल, उन्होंने सरकार को यह आश्वासन भी दिया है कि वे कुछ 'असह्य परिस्थितियों' में ही हड़ताल का सहारा लेंगे. लेकिन इस आश्वासन के साथ धातु कामगारों के प्रधान ब्लासतीमिल तोमन की यह चेतावनी भी शामिल है कि यूनियनों ने पिछले वर्ष के अपने लक्ष्यों को तिरोहित नही किया है और न वे बाहरी शक्तियों के सम्मुख झुकना ही चाहते हैं. प्रेस मज़दूरों के यूनियन ने भी यह घोषणा कर दी है कि वह कोई भी ऐसे लेख नही छापेंगे, जो सुधारवादी कार्यक्रमों की भर्त्सना करते हों. पिछले दिनों पार्टी की एक साप्ताहिक पत्रिका के प्रथम अंक को यूनियन ने तब तक नही निकलने दिया, जब तक उस में से कुछ आपत्तिजनक सामग्री हटायी नहीं गयी. चेक यूनियनों का यह राजनैतिक सामर्थ्य कम्युनिस्ट-जगत् के लिए एक नया अजूबा है क्योंकि ख़ास कर पूर्वी गुट के कम्युनिस्ट देशों में तो इन की अपनी कोई आवाज़ ही नही है. इस महीने चेकोस्लोवाकिया की सभी यूनियनों का एक सम्मेलन होगा. चेक नेताओ के लिए यह एक पेचीदा समस्या बन गयी है कि वे कुछ महत्त्वपूर्ण सामाजिक-आर्थिक मसलों पर विचार-विमर्श के लिए यूनियन नेताओं को राज़ी कर सकें.

माँगें : वस्तुतः यूनियनों के मौजूदा रुख़ के लिए पार्टी के दो वरिष्ठ नेताओं को ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है. जब जोसेफ़ स्मरकोवस्की को संसद् के नेता के रूप में बरक़रार रखने के लिए धातु कामगारों के यूनियन ने हड़ताल की धमकी दी थी तो स्लोवाक पार्टी-प्रमुख गुस्ताव हुसक ने तैश में आ कर यूनियन के प्रवक्ता को 'ग़ैर-ज़िम्मेदार' और 'दक्षिणपंथी' ठहराया था. एक अन्य कट्टरपंथी, रूस-समर्थक नेता लुबोमिर स्ट्रूगल ने भी कुछ ऐसी ही वचनावली इस्तेमाल की थी. धातु कामगारों के नेता तोमन ने काफ़ी तीखे लहजे में इस का खंडन किया और सभी यूनियनों ने तोमन के इसी भाषण को ही अपने सम्मेलन के अंतिम प्रस्ताव के रूप में स्वीकार कर लिया. प्रस्ताव में पार्टी के नेताओं के नवंबर में तैयार किये गये संशोधित सुधारवादी कार्यक्रमों के प्रारूप का समर्थन किया गया है, बशर्ते कि उन्हें पूरी तरह से लागू किया जाये. यूनियनों की ख़ास माँग यह है कि संसदीय चुनाव और चेक कम्युनिस्टों का स्थगित सम्मेलन-इस वर्ष संपन्न हो. कम्युनिस्टों का सम्मेलन आयोजित करवाने का ख़ास उद्देश्य यह है कि एक पृथक चेक पार्टी गठित की जाये. चेक पार्टी का संगठन इस लिए भी आवश्यक है कि कई वर्षो से स्लोवाकों की अपनी पार्टी गठित है. इस बात की पूरी संभावना है कि सभी यूनियनों के मार्च के सम्मेलन में ये दोनों माँगें स्वीकार की जायेंगी. मौजूदा संसद् के बहुत से सदस्य लोकप्रिय सुधारवादी कार्यक्रमों के विरोधी हैं. यूनियनों की माँग है कि जन-प्रशासन के सभी स्तरों के लिए चुनाव किये जायें. वे चाहते हैं कि सभी स्तरो पर 'जनता के विश्वासपात्र' और योग्य प्रशासकों को ही नियुक्त किया जाये. बुद्धिजीवी और विद्यार्थी आंदोलनों के नेता भी यूनियन की माँगों का समर्थन कर रहे हैं, अतः पार्टी के नेता इन माँगों को आसानी से नहीं टाल सकते. विद्यार्थी, बुद्धिजीवी और यूनियन सम्मिलित रूप से विचाराभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मुक्त प्रेस की संवैधानिक गारंटी चाहते हैं. सब से पहले रूसियों ने ही चेक जनता के इन अधिकारों को छीनने की कोशिश की थी किंतु अब कुछ तथाकथित यथार्थवादी और कट्टरपंथी चेक नेता भी इन अधिकारों पर अंकुश रखना चाहते हैं. लेकिन शक्तिशाली यूनियनों का तीव्र विरोध झेलते हुए नागरिक अधिकारों के दमन और सुधारवादी कार्यक्रमों को टालते चलने की साज़िश ज़्यादा दिनों तक नहीं चल सकती.

सीरिया

सैनिक क्रांति : उग्रपंथ का उदय

सीरिया के प्रतिरक्षामंत्री और वायुसेना अध्यक्ष जनरल हफीज़ल हसद ने सीरिया में सत्ता पर अधिकार कर लिया है और देश के शासक डॉ० नुरुद्दीन अत्तासी को नज़रबंद कर दिया गया है. ऐसा लगता है कि इस प्रकार की क्रांति के लिए पहले से ही भूमिका तैयार की जा रही थी क्योंकि मंत्रियों के अतिरिक्त शासक दल के जिन १० प्रमुख नेताओं को गिरफ़्तार किया गया है उन में से कुछ २४ तारीख़ से ही सैनिक अधिकारियों की नज़रबंदी में थे. शासक बाथ पार्टी के कुल १६ प्रमुख अधिकारी हैं. जब जनरल असद ने अपने उपमंत्री जनरल मुस्तफ़ा तियास की सहायता से सीरिया के प्रमुख स्थानों को अपने अधिकार में लेना आरंभ किया तो अत्तासी सरकार के दो मंत्री मोहम्मद खाँ ताबिल और मोहम्मद अयवी ने देश के उत्तरी भागों में सैनिक शासन के विरुद्ध जन आंदोलन शुरू किया. किसानों और मज़दूरों का एक विशाल जुलूस उत्तरी सीरिया की राजधानी की ओर बढ़ रहा था कि सीरिया के सैनिक दस्तों ने उन्हें घेर लिया और दोनों मंत्रियों को सैनिक संरक्षण में राजधानी भेज दिया गया. सैनिक विद्रोह के बावजूद सीरिया की राजधानी में कोई विशेष उत्तेजना नहीं दिखायी दी क्योंकि क्रांति के नेताओं के प्रति देश की सैनिक शक्ति पूर्णरूप से वफ़ादार रही.

रूस को चेतावनी : कुछ समय से जनरल असद और डॉ० अत्तासी में मतभेद पैदा हो गया था और असद ने सरकारी ढाँचे में भारी परिवर्तन करने की माँग की थी किंतु बाथ पार्टी के महासचिव और राष्ट्रपति अत्तासी ने इस का डट कर विरोध किया. बताया जाता है कि जनरल असद जहाँ एक ओर सीरिया पर साम्यवादी प्रभाव कम करना चाहते हैं वही वह इस्राइल के विरुद्ध अरब एकता के पक्षपाती भी है. यद्यपि जनरल असद का कोई सार्वजनिक विरोध नही हुआ है फिर भी यह अनुमान लगाया जा रहा है कि सत्ता के लिए संघर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ है. पुलिस अध्यक्ष कर्नल अब्दुल करीम जुंदी की आत्महत्या इसी बात की ओर संकेत करती है. यद्यपि सरकारी वक्तव्यों में उन की मृत्यु की परिस्थितियों पर कोई प्रकाश नहीं डाला गया है फिर भी अधिकारिक सूत्रों से पता चला है कि जुंदी ने एक उच्चस्तरीय बैठक के दौरान ही अपने आप को गोली मार दी. इस समाचार के अनुसार गिरफ़्तारी के बाद जब डॉ० अत्तासी और उन के मुख्य सहायक मेजर जनरल सालह जदीद पर नयी सैनिक सरकार को क़ानूनी मान्यता देने के बारे में ज़ोर डाला जा रहा था तभी कर्नल जुंदी ने विरोध स्वरूप अपने आप को गोली मार दी. सत्ता हथियाने के तुरंत बाद नये शासकों ने सोवियत संघ को चेतावनी दी है कि वह सीरिया के आंतरिक मामलों में अनावश्यक हस्तक्षेप न करें. साथ ही इस्राइल के विरुद्ध युद्ध के लिए तैयारियों का कार्यक्रम अपनाने की भी बात कही गयी है.

पश्चिम एशिया

इस्राइल : सीमाओं का विस्तार

इस्राइल के दूसरे प्रधानमंत्री लेवी एश्कोल की मृत्यु के तुरंत बाद अरब छापामारों की एक संस्था ने यह घोषणा कर दी कि प्रधानमंत्री के निवासस्थान पर विस्फोट के कारण उन की मृत्यु हो गयी है. इस्राइली सरकार ने इसे 'हास्यास्पद' कहा है. वास्तव में कोई भी गंभीर राजनीतिक अरब छापामारों के इस

दावे में विश्वास नहीं करता. एश्कोल का जन्म १८९५ में पोलैंड में हुआ था. १८ वर्ष की आयु में वह पोलैंड से भाग कर फ़िलिस्तीन आये और वर्तमान यरुशलम के पास रहने लगे. प्रथम विश्व-युद्ध में वह ब्रितानी सेना के यहूदी बटालियन में भरती हो गये और बाद में एक यहूदी स्वयं सेवक संस्था में भाग लिया. इस संस्था का उद्देश्य फ़िलिस्तीन से तुर्कों का शासन उखाड़ फेंकना था. १९२० के बाद एश्कोल ने कृषि विकास कार्य में भाग लिया और उन्हीं दिनों वह यरुशलम क्षेत्र में कृषि-कार्यकर्त्ताओं की एक संस्था के मंत्री चुने गये. १९२१ में वह 'ज़योनिस्ट' परिषद् में प्रतिनिधि के रूप में गये. इस्राइल की स्थापना के बाद वह आंतरिक सुरक्षामंत्रालय के निदेशक बने. १९६० में **एश्कोल** के दल को बहुमत मिला. १९६६ के आम निर्वाचनों के बाद **एश्कोल** ने **एश्कोल** में एक विशाल आधार पर संयुक्त सरकार का निर्माण किया. उन्हें पहला दिल का दौरा कुछ दिन पूर्व पड़ा था.

नये प्रधानमंत्री : एश्कोल की मृत्यु से पश्चिम एशिया की समस्या में अधिक जटिलता पैदा होने की आशंका हो गयी है क्यों कि कार्यकारी प्रधानमंत्री **यिगल अलन** अधिक कठोर नीति के पक्षपाती रहे हैं. अलन एश्कोल के जीवनकाल में ही उपप्रधानमंत्री बन गये थे. वर्तमान मंत्रिमंडल में दूसरे प्रभावशाली व्यक्ति प्रतिरक्षामंत्री **मोशे दायान** भी अरब राष्ट्रों के प्रति नर्मी का वर्त्ताव करने के पक्षपाती नहीं हैं. यद्यपि इन दोनों नेताओं के बीच अधिकार के स्थानों पर क़ब्ज़ा करने का संघर्ष चल रहा है फिर भी जहाँ तक इस्राइल की विदेश-नीति का संबंध है दोनों में बहुत अधिक अंतर नहीं हैं. यह संभव है कि यदि प्रधानमंत्री-पद के लिए संघर्ष से कटुता पैदा होने का ख़तरा हो गया तो समझौते के रूप में भूतपूर्व प्रतिरक्षामंत्री **यीगल यादिन** को ही नेता चुन लिया जाये. यद्यपि यादिन इस समय राजनीति में सक्रिय भाग नहीं ले रहे हैं फिर भी इस्राइल में उन का काफ़ी सम्मान किया जाता है. तीनों में से किसी के भी प्रधानमंत्री बनने की स्थिति में अरबों के प्रति इस्राइल के रवैये में कोई नर्मी आने की संभावना नहीं है. कुछ दिन पूर्व कार्यकारी प्रधानमंत्री ने एक बी.बी.सी. कार्यक्रम में कहा था कि यद्यपि अरबों की जनसंख्या बढ़ रही है फिर भी इस्राइल की तकनीकी क्षमता उस से कहीं अधिक गति से विकसित हो रही है. अलन का विश्वास है कि इस्राइल को किसी भी सूरत में हारना नहीं चाहिए क्यों कि इस्राइल की एक भी हार का मतलब उस का पूर्ण विनाश भी हो सकता है. इस लिए वह भी इस्राइल की सीमाओं के फैलाव में विश्वास करते हैं. लेकिन एक और समाचार के अनुसार लेबर पार्टी ने भूतपूर्व विदेश मंत्री ७० वर्षीय श्रीमती गोलडा मीर का नाम प्रधानमंत्री-पद के लिए सुझाया गया है. क्योंकि नवंबर में चुनाव होने वाले हैं, लिहाज़ा दायान और अलन यह महसूस करते हैं कि नेता के प्रश्न को लेकर इस समय अधिक बखेड़ा खड़ा नहीं करना चाहिए.

छापामार और इस्राइल : अरब छापामारों की विस्फोटक कार्रवाइयाँ इस्राइली शासकों के लिए परेशानी का विषय बन गयी हैं. ऐसा लगता है कि इस्राइल ने अरब छापामारों के केंद्रों पर प्रत्यक्ष रूप से वार करने की नीति अपनायी है. इस का मतलब यह नहीं कि वह छापामारों की कार्रवाइयों के लिए अरब सरकारों को उत्तरदायी नहीं ठहराते किंतु यह इस बात का द्योतक है कि इस्राइल यह समझने लगा है कि छापामारों पर अरब राज्यों का पूरा नियंत्रण नहीं है. वास्तव में छापामार स्वयं अरब शासकों के लिए भी ख़तरनाक हो गये हैं. कुछ लोगों का कहना यहाँ तक है कि संयुक्त अरब गणराज्य के शासक अपनी ही सुरक्षा के लिए **फ़िलिस्तीन मुक्ति मोर्चा** और अन्य छापामार संस्थाओं का समर्थन कर रहे हैं. **लेबनान** के शासकों के सामने भी यही समस्या पैदा हो गयी है कि यदि वह छापामारों का समर्थन करते हैं तो इस्राइली प्रतिशोध का शिकार होना पड़ता है और यदि उन्हें दबाने की कोशिश करते हैं तो **शाह हुसैन** की भाँति लेबनान के वर्तमान शासन को ही चुनौती दी जा सकती है. इस अवस्था में पश्चिम एशिया की इस समस्या की अनेक शाखाएँ और उपशाखाएँ निकल रही हैं. यद्यपि अमेरिकी प्रतिनिधि **रोजर्स** ने इस्राइल को बदला न लेने का परामर्श दिया है फिर भी छापामारों की कार्रवाइयों को देखते हुए ऐसा नहीं लगता कि इस्राइल ख़ामोश रहेगा.

राष्ट्रपति निक्सन के यूरोप के दौरे के बाद यह अनुमान लगाया जाता है कि संभवतया चार बड़े राष्ट्रों का शिखिर सम्मेलन संभव हो जाये मगर पश्चिम एशिया के संबंध में भी न केवल रूस और अमेरिका बल्कि अमेरिका और फ्रांस के बीच भी पर्याप्त मतभेद हैं. ऐसी स्थिति में तुरंत किसी ऐसे हल का निकल आना कठिन लगता है जिस पर सभी सहमत हों, फ़िलहाल इस्राइल ने अधिकृत क्षेत्रों में सड़कें बनाने और बस्तियाँ बसाने का कार्यक्रम हाथ में ले लिया है.

पाकिस्तान

३५ मिनट की बैठक में ३६ का रिश्ता

काफ़ी दिनों की अनिश्चितता के बाद २६ फ़रवरी को अंततः राष्ट्रपति मुहम्मद अय्यूब ख़ाँ और प्रतिपक्षी सदस्यों में बातचीत शुरू हुई. यह बातचीत केवल ३५ मिनट तक ही चली लेकिन इस पूरे माहौल में जो सद्भावना व्याप्त थी उस को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि १० मार्च को पुनः शुरू होने वाली बात-चीत में अगर ईमानदारी बरती गयी तो कोई-न-कोई हल ज़रूर निकल आयेगा. गोलमेज की इस बातचीत में १९ प्रतिपक्षी नेताओं ने भाग लिया जिस में डेमोक्रेटिक एक्शन कमेटी के संयोजक नवाबज़ादा नसरुल्ला ख़ाँ के अतिरिक्त अवामी लीग के नेता मुजीबुर्रहमान, एयर मार्शल असगर ख़ाँ, भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश एस. एम. मुर्शीद, मुमताज दौलताना, भूतपूर्व प्रधानमंत्री चौधरी मोहम्मद अली, नरूल अमीं और पख़्तून नेता ख़ान अब्दुल वली ख़ाँ शामिल हुए सत्तारूढ़ मुस्लिम लीग पार्टी का नेतृत्व राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ ने किया. उन के अलावा सूचनामंत्री ख़्वाजा शहाबुद्दीन, क़ानूनमंत्री एस. एम. ज़फ़र तथा अब्दुल सुबूर ख़ाँ के अतिरिक्त अन्य सात सदस्य थे. ३५ मिनट की इस अल्पकालिक बातचीत में दोनों पक्षों ने देश में शांति बहाल करने की ज़रूरत महसूस की. छात्रों का असंतोष दूर करने का ज़िक्र भी बातचीत में आया. इस बात पर भी सहमति थी कि राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ अपना माहवारी प्रसारण तब तक नहीं करेंगे, जब तक १० मार्च को प्रतिपक्षी नेताओं से उन की बातचीत नहीं होती. यद्यपि यह बातचीत रस्म-अदायगी के दायरे के बीच ही घूम-फिर कर रह गयी तथापि परस्पर कशमकश की डोरी की ऐंठन ज़रूर ढीली पड़ी है.

अपनी-अपनी शर्तें : रस्म अदायगी की इस बातचीत में पीपुल्स पार्टी के नेता जुल्फ़िकार अली भुट्टो, पूर्वी पाकिस्तान अवामी पार्टी के नेता मौलाना भासानी और जनरल आज़म ख़ाँ ने भाग नहीं लिया. भुट्टो बातचीत के दिन रावलपिंडी में ज़रूर थे, लेकिन गोलमेज़ सम्मेलन में वह इस लिए शरीक नहीं हुए, क्यों कि वह यह महसूस करते थे कि बातचीत की कार्यविधि इतनी व्यापक नहीं है जिस के अंतर्गत देश की सभी समस्याओं को शामिल किया जा सके. मौलाना भासानी की ज़िद है कि जब तक उन का ११-सूत्री कार्यक्रम नहीं माना जायेगा तब तक वह बातचीत में शामिल नहीं होंगे. जनरल आज़म ख़ाँ की मान्यता है कि बातचीत करने से पहले सभी मुद्दों पर प्रतिपक्षी दलों में पहले से सहमति होनी चाहिए. बातचीत शुरू होने से पहले राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ ने विरोधी पार्टी के सदस्यों की माँग स्वीकार करते हुए जी. एम. सैयद पर लगे नियंत्रण हटाने के साथ ही अन्य ७ राजनैतिक बंदियों को रिहा कर दिया. आज़म ख़ाँ की शर्त को दृष्टिकोण में रखते हुए प्रतिपक्षी नेताओं ने मिल-बैठ कर गोलमेज सम्मेलन में अपना एका दर्शाने की ग़र्ज से कार्यविधि पर सहमति प्राप्त करने के प्रयास शुरू कर दिये हैं. बेशक ढाका में ४ मार्च को पूर्ण हड़ताल रही और छात्रों ने विधायकों तथा बेसिक डेमोक्रेटों

को अपने-अपने ओहदे छोड़ने की मियाद ३ मई तक बढ़ा दी गयी लेकिन मौजूदा हालात से ज़ाहिर है कि तनाव अभी भी बरक़रार है. लोगों का ध्यान भीतर स्थितियों से हटाने और अपनी नाकामयाबी की तस्वीर लोगों के सामने से दूर ले जाने की कोशिश में अय्यूब ने रण्ण के कच्छ का अलाप पुन: छेड़ अपने विरोधियों का ध्यान भारत-विरोधी नारों की तरफ़ ले जाने की कोशिश में हैं.

भुट्टो का लहजा : बातचीत में भुट्टो ने भाग ज़रूर नहीं लिया लेकिन उन्होंने एक प्रेस कांफ्रेंस में यह बात स्पष्ट कर दी कि जब उन के हाथ में सत्ता आयेगी तो वह कश्मीर को आज़ाद कराने की पूरी कोशिश करेंगे. उन्होंने कहा कि अगर भारत को पाकिस्तान और चीन से डर है तो वह क्यों अपने इन पड़ोसियों से झगड़ा खत्म नहीं करता. कश्मीर को आत्म-निर्णय की छूट दे भारत को सभी जंजालों से मुक्त होना चाहिए. फिर भविष्यवाणी करते हुए भुट्टो ने कहा कि १९७० में कश्मीरी अपने संघर्ष का झंडा बुलंद करेंगे. यह संघर्ष गेरिल्ला-क़िस्म का या सीधे संघर्ष का भी हो सकता है. अपने आप को द्विपक्षीय बातचीत का जनक बताते हुए भुट्टो ने कहा कि उन्हीं की सलाह पर अय्यूब ने चीन, रूस और अमेरिका से बातचीत कर पाकिस्तान की विदेश-नीति व्यापक रूप से विश्व के सामने पेश की है. ब्रिटेन भुट्टो का इस लिए विरोधी है क्यों कि उन्होंने ब्रिटेन की कश्मीर और स्वेज नीति की हमेशा आलोचना की है. अपने समर्थकों के सामने बातचीत करते हुए भुट्टो मस्ती में आ गये और बड़े ही नाटकीय ढंग से अपनी जैकेट की पाकेट को फाड़ते हुए और अपने समर्थक युवा तबके की वाहवाही के दौरान उन्होंने भारत के प्रतिरक्षामंत्री सरदार स्वर्णसिंह को यह जतलाते हुए कहा 'सरदार जी को यह समझ लेना चाहिए कि मैं फिर आ रहा हूं'. यह शायद उन्होंने उस संदर्भ में कहा जब कभी सरदार स्वर्णसिंह ने यह कहा था कि जब तक भुट्टो पाकिस्तान के विदेशमंत्री हैं तब तक भारत और पाकिस्तान के संबंध सामान्य नहीं हो सकते. भुट्टो ने यह भी कहा कि ताशकंद-समझौते का उन्होंने विरोध किया था और इस विरोध के कारण उन्हें विदेशमंत्री के पद से त्यागपत्र देना पड़ा. वह कश्मीरियों को पाकिस्तानी नागरिक मानते हैं और जब तक कश्मीरी 'भारतीय चंगुल' से अलग नहीं हो जाते तब तक भारत के खिलाफ़ उन की लड़ाई जारी रहेगी.

चीन की तरफ़ : भुट्टो और भासानी दोनों ही चीन समर्थक हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में दोनों का दबदबा काफ़ी है. यदि अगले साल इन दोनों की मिली-जुली सरकार बनती है तो यह बात तय है कि पाकिस्तान में चीन का दबदबा अधिक हो जायेगा. अगर ऐसा हो गया तब पाकिस्तान रूस और अमेरिका से सौदाबाजी करने की स्थिति में हो सकता है और एशिया में उस की स्थिति दृढ़ हो जायेगी. ऐसा होने से भारत के संबंध पाकिस्तान के साथ और बिगड़ सकते हैं. मुजीबुर्रहमान पाकिस्तान के कुछ उदार नेताओं में से हैं जो यह महसूस करते हैं कि बेशक राजनैतिक तौर से पश्चिम और पूर्व पाकिस्तान को एक धरातल पर रखा गया. लेकिन सांस्कृतिक तौर पर पूर्व और पश्चिम में बहुत बड़ी खाई है. बंगला भाषा का फ़ारसीकरण करने की जब बात चली तो पूर्वी बंगाल के लोगों ने इस बात का खुला विरोध किया. मुजीबुर्रहमान ने मांग की है कि पाकिस्तान रेडियो से रवींद्र संगीत का प्रसारण किया जाना चाहिए. मुजीबुर्रहमान यह चाहते हैं कि देश में राष्ट्रपति-पद्धति समाप्त कर के संसदीय लोकतंत्र स्थापित किया जाय और पूर्व पाकिस्तान को अधिक स्वायत्तता दी जाये. यदि ऐसा नहीं होता और पूर्व पाकिस्तान के लोग विद्रोह कर के अपना अलग से अस्तित्व कायम करते हैं तो उस से भारत को ज्यादा खतरा हो सकता है, क्यों कि तब भारत बढ़ते हुए कम्युनिस्ट प्रभाव के तले आ जायेगा. पश्चिम बंगाल में दिनोंदिन मार्क्सवादी कम्युनिस्टों की स्थिति दृढ़ हो रही है. असम में विद्रोही तत्व सिर उठा रहे हैं, नगा पहले ही से बाग़ी हैं और उन के साथ अगर पूर्वी पाकिस्तान भी मिल जाता है तो इस से भारत का सिर दर्द बहुत बढ़ जायेगा.

भुट्टो और मुजीबुर्रहमान : क़रार, इक़रार या तक़रार बरक़रार

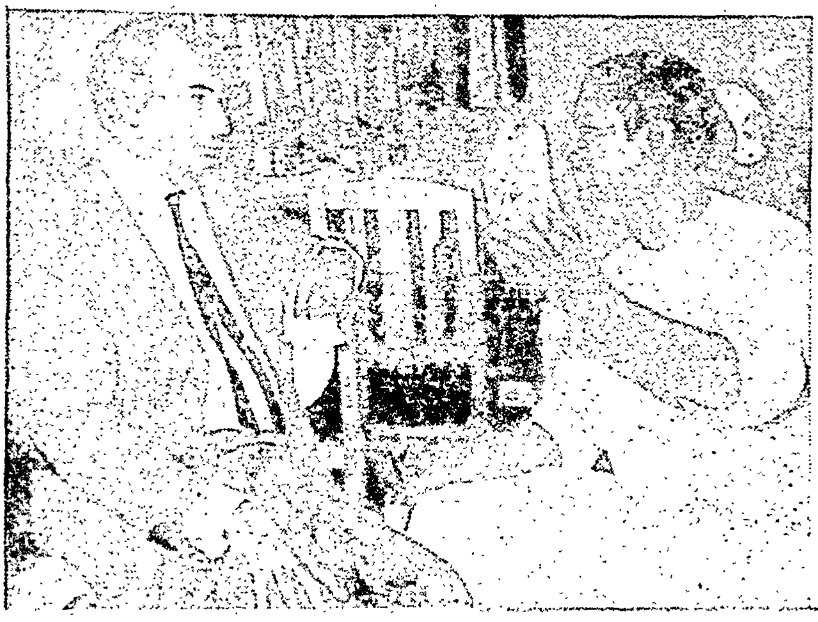

अंतरिक्ष अनुसंधान

एक क़दम और आगे

३ मार्च को अपोलो-९ को अंतरिक्ष में भेज कर अमेरिका ने यह स्पष्ट कर दिया है कि सोयुज़-४ और सोयुज़-५ का अंतरिक्ष में संगम कर के रूसी वैज्ञानिकों ने भले ही अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की हो, परंतु अमेरिकी वैज्ञानिक भी इस दिशा में पीछे नहीं हैं. अपोलो-८ की सफलता के बाद ही यह संकेत मिल गया था कि आगामी जुलाई में मानव को चंद्रमा पर उतारने से पहले अमेरिका कुछ और प्रयोग कर के मानव की चंद्र-यात्रा को सर्वथा निरापद बनाने का प्रयत्न करेगा. अपोलो-९ उस की इसी योजना की एक कड़ी है.

नियंत्रण : अपोलो-९ की उड़ान के बाद उस में बैठे तीन अंतरिक्ष यात्रियों ने अंतरिक्ष में जो सफल प्रयोग किया उस से स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिकी वैज्ञानिकों का प्रयास अंतरिक्ष-यान पर पूरा-पूरा नियंत्रण प्राप्त करना है ताकि भविष्य में चंद्रमा पर उतरने वाला अंतरिक्ष-यात्री अपने यान को सुविधानुसार दिशा दे सके. अपोलो-९ के अंतरिक्ष यात्रियों ने चंद्रयान से संबद्ध अपने अंतरिक्ष-यान को ऊपर की ओर धकेला जिस में उन्हें सफलता मिली. इस सफलता से यह आशा की जा सकती है कि अंतरिक्ष-यात्री संकट की स्थिति में यान को सँभाल सकेंगे. कक्षा-परिवर्तन के लिए उन्होंने राकेट इंजन दागा. इंजन दागने का एक उद्देश्य अपोलो-९ का भार कम करना भी रहा. अब अंतरिक्ष-यात्री कम ईंधन से अधिक गति कर सकेंगे और वे यात्रा के दौरान चांद्र यान की रक्षा भी कर सकते हैं. अपोलो-९ के अंतरिक्ष-यात्रियों ने पृथ्वी की कक्षा की परिक्रमा करते हुए अपने कमान कैप्सूल को चंद्रमा पर उतारे जाने वाले माडूल से संबद्ध करने में भी महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है.

अपोलो-९ दस दिन तक अंतरिक्ष में यात्रा करेगा और उस का मुख्य उद्देश्य दस टांगों वाले चांद्र यान का अंतरिक्ष में परीक्षण करने का है. अपोलो-९ की अब तक की सफलता के आधार पर यह आशा व्यक्त की जा रही है कि संभवत: अमेरिका, रूस से पहले चंद्रमा पर पहुंच जायेगा. सोयूज़-५ की सफलता पर उस के ठीक़ विपरीत संभावना व्यक्त की गयी थी. ऐसी स्थिति में कौन कितने पानी में है इस का निर्णय करना फ़िलहाल संभव नहीं है.

विज्ञान

अनंत और अनादि ब्रह्मांड

प्रसिद्ध ब्रितानी वैज्ञानिक प्रोफ़ेसर फ़्रेड हॉयल को ज्योतिप-विज्ञान के संबंध में महत्त्व-पूर्ण अध्ययन के उपलक्ष्य में कलिंग पुरस्कार प्रदान किया गया. कलिंग पुरस्कार समिति और यूनेस्को के निमंत्रण पर डॉ. हॉयल भारत पधारे और एक विशेष आयोजन में उन्हें यह पुरस्कार दिया गया. फ़्रेड हॉयल ने ब्रह्मांड की रचना, उस के विकास और परिवर्तन के संबंध में महत्त्वपूर्ण खोज की है और अपने अध्ययन के आधार पर उन्होंने **'समतुलित सिद्धांत'** का प्रतिपादन किया है. ब्रह्मांड की रचना और उस के आकार के संबंध में जितने भी वाद प्रस्तुत किये गये उन में अनेक तो केवल कुछ ही वर्ष बाद प्रमाणाभाव में रद्द कर दिये गये. किंतु **समतुलित सिद्धांत** ने वैज्ञानिकों को इतना आकर्षित किया कि वर्षों तक उस के आधार पर विश्व के विभिन्न ज्योतिष-केंद्रों में वाद-विवाद चलता रहा. एक स्थिति ऐसी भी आ गयी थी कि इस वाद के भी अमान्य होने का खतरा पैदा हो गया था. हॉयल भी दृढ़तापूर्वक इस को प्रमाणित सिद्ध नहीं कर सके. मगर बाद में उन के इस वाद के पक्ष में अनेक सामग्री प्राप्त हो गयी. हॉयल ने १९६५ में भारतीय वैज्ञानिक **जयंत विष्णु नारलीकर** के साथ कुछ परिवर्तित समतुलित अवस्था सिद्धांत का प्रतिपादन किया.

फैलता ब्रह्मांड : समतुलित अवस्था सिद्धांत क्या है ? प्राचीन काल से लोग यह मानते आ रहे हैं कि ब्रह्मांड में जितने भी तारे हैं वह सब स्थिर हैं. वास्तव में एक ग्रह और तारे में यही अंतर माना जाता था कि ग्रह एक विशेष कक्षा में घूमता रहता है, जब कि तारा स्थिर है. मगर वास्तव में संपूर्ण ब्रह्मांड में कोई भी तारा स्थायी रूप से स्थिर नहीं है. इन में से कुछ तारों की गति कई प्रकार की है. मगर ये सब के सब भूमि से दूर नहीं भागते, बल्कि कुछ हमारी ओर आते हुए दिखाई देते हैं. जो नीहारिकाएँ बहुत दूर स्थित हैं उन में से अधिसंख्य भूमि से भागती हुई नज़र आ रही हैं. यह अरबों नीहारिकाएँ (एक-एक में दस करोड़ से ले कर दस अरब तक तारे हो सकते हैं) हमारी पृथ्वी से भाग रही हैं. इस सिलसिले में अनेक सिद्धांत पेश किये गये हैं, जिन में सब से मान्य सिद्धांत यह है कि संपूर्ण ब्रह्मांड फैल रहा है. क्या वह इसी प्रकार फैल रहा है जिस प्रकार एक गुब्बारा हवा भरने पर फैलता है ? वास्तव में फैलते हुए गुब्बारे को यदि ब्रह्मांड मान लिया जाये और उस पर काग़ज़ की छोटी-छोटी बिंदियाँ चिपकायीं जायें तो कुछ-कुछ इस सिद्धांत की कल्पना कर सकते हैं, क्यों कि जहाँ नीहारिकाएँ विभिन्न दिशाओं में भाग रही हैं वहाँ स्वयं नीहारिकाएँ अपेक्षाकृत नहीं फैलतीं; वे केवल एक-दूसरे की तुलना में चल रही हैं.

प्रकाश की गति : ब्रह्मांड के इस विचित्र व्यवहार के साथ एक और तत्त्व मिला हुआ है; वह है प्रकाश की गति. कोई भी दो वस्तुओं की गति को हम एक-दूसरे के अनुपात और अन्य तत्त्वों के अनुपात में ही माप सकते हैं. यदि रेलगाड़ी ३० मील की गति से चल रही है और हम उसी दिशा में ५ मील की गति से चल रहे हैं तो हमारी गति वही नहीं होगी जो उस समय होगी जब कि हम रेलगाड़ी के विपरीत दिशा में जा रहे हों. मगर यदि हम अपनी गति पृथ्वी को स्थिर मान कर मापें तो वह ५ ही मील रह जायेगी. इस लिए जब यह कहा जाता है कि कोई भी वस्तु प्रकाश की गति से (१ लाख ८६ करोड़ प्रतिमील सेकेंड) अधिक नहीं चल सकती तो उस का मतलब यह होता है कि प्रकाश की गति से अधिक जो कोई भी वस्तु भागेगी उस का अस्तित्व, जहाँ तक हमारा संबंध है, शून्य होगा, क्यों कि

बीजू पटनायक और फ़्रेड हॉयल : ब्रह्मांड की खोज

हमारा संबंध दूसरी हिलती हुई वस्तुओं से संकेतों द्वारा होता है. अगर कुछ नीहारिकाएँ या तारे प्रकाश की गति से ज्यादा तेज़ भाग रहे हों तो वहाँ से आने वाला संकेत हम तक नहीं पहुँच पायेगा, क्यों कि प्रकाश से तेज़ गति वाला कोई भी संकेत संभव नहीं है. इस से आइंसटाइन का सामान्य सापेक्षता सिद्धांत ग़लत साबित नहीं होता, क्यों कि वास्तव में जिन उल्काओं या तारों की गति के बारे में हम कल्पना करते हैं वह भी किसी स्थिर वस्तु की तुलना में प्रकाश की गति से अधिक नहीं चलते. मगर ब्रह्मांड में कोई स्थिर वस्तु है ही नहीं. इस फैलते हुए ब्रह्मांड में कुछ नीहारिकाएँ अपेक्षाकृत कम आयु की और कुछ बहुत बूढ़ी दिखाई देती हैं. यहीं **समतुलित अवस्था** सिद्धांत और अन्य सिद्धांतों का प्रवेश होता है.

समतुलित अवस्था : कुछ ज्योतिर्विदों का विश्वास है कि यह संपूर्ण ब्रह्मांड अचानक पैदा हो गया और यह आकस्मिक घटना ७ अरब साल पहले हुई. इस से पहले अकेला, अत्यंत घना आकाश परमाणु रहा होगा, जो खरबों वर्षों तक खामोश और निष्क्रिय रहा होगा और फिर अकस्मात् एक विस्फोट के परिणामस्वरूप सभी नीहारिकाएँ और आकाश-गंगाएँ बन गयीं. किंतु फ़्रेड हॉयल ने अपने सहयोगियों की सहायता से इस के विपरीत एक नया वाद प्रस्तुत किया, जिस के अनुसार संपूर्ण अंतरिक्ष में गैस के संघनन से धीरे-धीरे नीहारिकाएँ बन रही हैं और साथ ही नये परमाणु पैदा होते हैं, जो नयी नीहारिकाओं के निर्माण के लिए गैस की सामग्री उत्पन्न करते हैं. यह परमाणु लगातार नीहारिकाओं के बीच के अंतरिक्ष में अचानक पहुँचते रहते हैं, क्यों कि ब्रह्मांड का आकार इतना बड़ा है कि इन नये परमाणुओं का उदय दिखाई नहीं देता. मगर यह परमाणु इतनी अधिक संख्या में आते हैं कि यदि उन का भार लिया जाए तो १००००००००००००००००००००००० ००० टन प्रतिसेकेंड होगा. इसी लगातार रचना के कारण ब्रह्मांड फैलता रहता है, मगर उस के घनत्व में एक विशेष प्रकार का संतुलन बना रहता है और संपूर्ण ब्रह्मांड एक सतत अवस्था में रहता है. इसी लिए इस वाद को **समतुलित अवस्थावाद** कहते हैं. अगर यह वाद सच है तो प्रत्येक नीहारिका को विकास की हर अवस्था पर देखना संभव होना चाहिए. मगर इस प्रकार की कोई भी नीहारिका अभी तक दिखाई नहीं दी है जो १० करोड़ साल पहले पैदा हुई हो. मगर संभव है कि इस का कारण दूरदर्शकों की अक्षमता है. पिछले कई वर्षों में कुछ संकेत मिले हैं जिन के आधार पर इस प्रकार का आभास मिलता है कि निकट भविष्य में इस वाद की प्रामाणिकता के बारे में स्पष्ट मत निर्धारित किया जा सकेगा. मगर यदि **अकस्मात् विस्फोट** वाला वाद सच है तो फिर प्रत्येक नीहारिका बिलकुल वैसी ही रही होगी जैसी वह आज है. यदि यह संभव होता कि हम ऐसी नीहारिकाओं को देखने में समर्थ हो सकते जो ५ अरब साल प्रकाश-वर्ष दूर है तो यह बताया जा सकता था कि उन में कुछ परिवर्तन हुआ है या नहीं.

भारतीय विज्ञान परिषद के तत्त्वावधान में 'अंतरिक्ष-विज्ञान पर आधुनिक मत' पर बोलते हुए **प्रोफ़ेसर फ़्रेड हॉयल** ने कहा कि आकस्मिक विस्फोट वाले सिद्धांत के पीछे ईसाई धार्मिक भावना का संकेत मिलता है, क्यों कि उन के अनुसार ईश्वर ने ब्रह्मांड को अकस्मात् पैदा कर दिया है. उन्होंने चेतावनी दी कि अपर्याप्त सामग्री के आधार पर अंतिम निर्णय पर पहुँचना अविवेकपूर्ण और खतरनाक है. उन के सिद्धांत का प्रमाण अंतिम रूप से १९७४ में मिल जाएगा, क्यों कि तब तक विभिन्न स्रोतों से प्राप्त संकेतों का पूर्ण विश्लेषण हो जायेगा.

पाकिस्तान में ज़बान की लड़ाई

पाकिस्तान के वर्तमान राजनैतिक संघर्ष में ख्याल होता है कि देश की अन्य समस्याएँ शायद दब-सी गयी हैं. किंतु वास्तव में ऐसा नहीं है. राजनैतिक समस्या के कहीं भी जटिल बनने का कारण ही यह होता है कि आर्थिक और सामाजिक जीवन की मौलिक समस्याओं का समाधान नहीं होता. इन में भाषा की समस्या के प्रमुख स्थान का पता बेल्जियम की फ़्लेमिश, फ़िनी और फ़्रांसीसी भाषाई झगड़ों और कैनाडा के भाषाई झगड़ों में राष्ट्रपति द गॉल के हस्तक्षेप ही से नहीं चलता, बल्कि इस से भी ज़्यादा उस का अंदाज़ा इस यथार्थ से होता है कि क़रीब-क़रीब हर एक समूह में भाषा के विस्तार, उस के विकास और वृद्धि की फ़िक्र और उस को स्थान स्वीकार कराने का ख्याल लोगों को अपने मानवीय अधिकारों की बिल्कुल प्रथम चेतना के साथ-साथ आता है.

पाकिस्तान में भाषा की समस्या की प्राथमिकता तो इतनी स्पष्ट है कि पूर्व बंगाल को अपनी भाषा की लड़ाई पाकिस्तान के जन्म के साथ-साथ ही और इतने ज़ोर से आरंभ करनी पड़ी थी कि मोहम्मद अली जिन्ना तक को, जिन के मुँह से निकली हुई बात विधान, क़ानून और बिल्कुल अंतिम शब्द की हैसियत रखती थी, कहना पड़ा कि उर्दू का विरोधी पाकिस्तान का शत्रु है. इस आशय का विज्ञापन १९४७ ही से हर सिनेमाघर में दिखाया जाता था. यह समय वह था जब सारा भारत (और पाकिस्तान) विभाजन की चोट से ज़ख्मी था और कराह रहा था. परंतु ऐसे युग में भी भाषा का प्रश्न इस प्रकार उठा कि बंगाली भाषा को दबाने के लिए क़ायदेआज़म मोहम्मद अली जिन्ना को अपने पूरे एकाधिकारी प्रभाव का प्रयोग करना पड़ा.

मगर किसी जीवित भाषा को न आदेशों की घनगरज से दबाया जा सकता है, न शासन के नित्य नये हथियारों से उस की हत्या हो सकती है. पश्चिमी पाकिस्तान के शासक, जो कहने को उर्दू के नाम पर अंग्रेज़ी को ही दरबारी भाषा बनाये रखना चाहते थे, सात साल तक क़ानून और दमन दोनों से बंगाल को दबाने की सिर तोड़ कोशिश करते रहे. ढाका से ले कर सिलहट और चटगाँव तक बंगाल के सपूत बंगाली का अधिकार मनवाने के लिए, उर्दू के समान उस को भी राष्ट्रभाषा स्वीकार कराने के लिए आंदोलन करते रहे. रक्त और जीवन की आहुति देते रहे. १९५४ में चुनाव हुए. पश्चिमी शासकों को पूरब में मुँह की खानी पड़ी. जिन्ना साहब की पार्टी, पाकिस्तान बनवाने वाली पार्टी, अर्थात् मुस्लिम लीग का बिल्कुल सफ़ाया हो गया और फज़लुलहक़ जैसे नेता भी, जो लीग की आधारशिला रखने वाले पुराने गिने-चुने लीडरों में से थे, लीग के विरुद्ध हो गये. अभी भारत में कांग्रेस और नेहरू की असली पूजा का युग, आर्थिक विकास और पंचवर्षीय योजनाओं का युग शुरू ही हो रहा था कि पाकिस्तान का बहुसंख्यक भाग शासकों के संगठन और पाकिस्तान बनवाने वाली सब से प्रभावशाली, बल्कि देश की एकमात्र राजनैतिक पार्टी मुस्लिम लीग को हमेशा के लिए घूरे पर फेंक चुका था. यह भाषा के असंतोष का परिणाम और उस के महत्त्व का एक बड़ा स्पष्ट मापमानक था.

अंत में इतने लंबे आंदोलन के पश्चात् पश्चिमी शासकों को बंगाली को उर्दू के बराबर स्थान देना पड़ा और इसे भी राष्ट्रभाषा मानना पड़ा. लेकिन यह समस्या का केवल विधिवत् समाधान था, वास्तविक नहीं. इस विधिवत् स्वीकृति में यथार्थ का अर्थ भरने के लिए भी बंगालियों का संघर्ष अभी तक ख़त्म नहीं हुआ, क्यों कि सत्ता पश्चिम वालों के हाथ में है इस लिए अन्य क्षेत्रों के अलावा भाषा और साहित्य के क्षेत्र में भी निर्णय का अधिकार उन्हीं के पास है. पूरब में बंगाली के विकास की रूप-रेखा उस की स्वाभाविक प्रतिभा के अनुकूल नहीं, बल्कि सरकारी आदेशों के अनुसार बनती-बिगड़ती रही है. भाषा के विषय में पूर्व बंगाल अब भी कितना बाध्य और मजबूर है, इस का अनुमान इस से लगाया जा सकता है कि ढाका रेडियो पर रवींद्र संगीत और साहित्य के प्रसार का अधिकार उस ने अभी कुछ दिन हुए अय्यूबशाही के हाथों से उस वक़्त छीना है जब बराबर चोटें पड़ते-पड़ते वह ढीले बल्कि बेजान हो चुके थे.

समस्या का वास्तविक समाधान हो भी नहीं सकता था, क्यों कि कहने के लिए चाहे उर्दू राष्ट्रभाषा हो या बंगाली, पर चूँकि प्रजातंत्र तो पाकिस्तान में कभी आया ही नहीं, न लीग के राज्य में न उस के बाद, न अय्यूब के राज्य में, न उस से पहले. इसी लिए शासन के केंद्रों में जनता की बोली का क्या साँस का भी गुज़र नहीं होने पाया और अफ़सरशाही के ऊँचे-ऊँचे भवनों में गोरे साहबों की उसी पुरानी जीभ ऐंठाने वाली बोली का बोलबाला रहा जिस के लिए 'जोश' ने लिखा है :

चाल अंग्रेज़ी, ढाल अंग्रेज़ी, जिस्म का बाल-बाल अंग्रेज़ी
तन हिंदी में जान अंग्रेज़ी, मुँह के अंदर ज़ुबान अंग्रेज़ी,

छिलती है गर ज़ुबाँ तो छिल जाये,
लहजा साहब से अपना मिल जाये.

इसी लिए अंग्रेज़ी का राज जैसा पहले था वैसा ही रहा, बल्कि उस का ज़ोर कुछ और बढ़ गया, क्यों कि पुराने माई-बाप की तरह वे नये चाचा जी की भी भाषा निकली और अंग्रेज़ी जब सम्राट-सिंहासन पर स्थापित रहे तो भाषा का संकट कैसे कट सकता है? अंग्रेज़ी का और पाकिस्तान की प्रादेशिक भाषाओं का संघर्ष कैसे समाप्त हो सकता है? इन में चूँकि बंगाली सब से प्रमुख है, सब से उन्नत है, एक ओर आधुनिकता और दूसरी ओर जनता से घनिष्ट संपर्क के क्षेत्र में सब से आगे है और फिर यह कि सब से अधिक बहुसंख्य भाषा है इसी लिए इस का और अंग्रेज़ी का संघर्ष अनिवार्य तौर पर सब से ज़्यादा है.

पूर्व के समान पश्चिमी भाग में भी भाषा का प्रश्न मौजूद है, बल्कि पूर्व से ज़्यादा उलझा हुआ है. पूर्व में तो संघर्ष केवल बंगाली के लिए है, मगर पश्चिम में पंजाबी, पश्तो और सिंधी तीनों ऐसी जीवित और लोकप्रिय भाषाएँ हैं जिन का साहित्य है, लंबी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है और उन के प्रति जनता में प्यार और श्रद्धा है और अब तो बलूची भाषा का भी अपना एक अलग व्यक्तित्व बनता जा रहा है और बलूचिस्तान में प्रजातंत्र के संघर्ष के साथ भाषा के अधिकार की चेतना भी उभर रही है. लेकिन इस सूची से हमें समस्या का ज्ञान नहीं होता, बल्कि अज्ञान शायद कुछ और बढ़ता है, क्यों कि इस में पंजाबी की हैसियत बहुत तेज़ी से बदल रही है. आरंभ में भाषाई समस्या की रूप-रेखा साफ़ थी. उर्दू, जिसे जिन्ना साहब ने पाकिस्तान की राष्ट्रभाषा बनाया था, अगर थी तो केवल शहरों की भाषा थी. पाकिस्तान में उस का कोई प्रदेश नहीं था, बल्कि यह एक शरणार्थी-भाषा थी, क्यों कि उस के अधिकतर बोलने वाले शरणार्थी थे.

शुरू में शरणार्थियों का राज्य था. कोई पुरानी सरकार तो थी नहीं, जिस में नये शासक आ कर खप जाते, इस लिए सारी की सारी सरकार इन ही लोगों की थी और इन्हीं की भाषा उर्दू हावी हुई, आदरणीय ठहरी, इस लिए नहीं कि वह पश्चिम की भाषाओं में सब से अच्छी और योग्य भाषा थी, (जो कि वह थी और आज भी है) बल्कि केवल प्रशासकों की भाषा होने के कारण.

राजकीय प्रभाव के सहारे किसी वस्तु को ज़बर्दस्ती न सही तो कृत्रिम रूप से बढ़ावा और प्रोत्साहन देने से तनाव और संघर्ष के बीज बोये जाते हैं. वह संघर्ष उस समय सामने नहीं आया, क्यों कि एक तो उर्दू में और सब भाषाओं में इतना बड़ा अंतर था कि किसी प्रतिद्वंद्वी भाषा में मुक़ाबले की शक्ति नहीं थी. दूसरे अंग्रेज़ी के द्वारा पाकिस्तानी भाषाओं की उपेक्षा में चूँकि अन्य भाषाओं के साथ उर्दू भी सम्मिलित थी और यह प्रतिरोध शुरू से अब तक बराबर चला आ रहा है इसी लिए उर्दू के साथ अन्य भाषाओं का टकराव कुछ कमज़ोर-सा पड़ जाता है. तीसरे ये सब भाषाएँ न तो उर्दू से इतनी दूर थीं जितनी

बंगाली कि आपस में अजनबी मालूम हों और दोनों में घनिष्ट संबंध का आपस में आदान-प्रदान का कोई व्यापक आधार ही न हो और न इतनी समीप जैसे हिंदी कि दोनों एक घर एक आँगन में फूलने-बढ़ने वाली बहनें. जवान हो कर दुश्मनी पर आयें तो एक दूसरे के खून की प्यासी हो जायें. उर्दू की स्थिति, सरकारी भाषा बनने पूर्व भी, बराबर की बहन नहीं बल्कि बड़ी बहन की थी. बहुत बड़ी बहन, आदरणीय और सम्मानजनक. घर के बोलने की भाषा पंजाबी, पश्तो या सिंधी है और थी. मगर स्कूल में शिक्षा का माध्यम उर्दू ही था. सभा में भाषण जितने स्थानीय भाषाओं में होते थे उतने ही उर्दू में देहातों में छोटे से छोटे गाँव में संस्कृति का स्तर ज़रा ऊँचा हुआ तो उर्दू ने सहारा दिया. सन् १९०५ के क़रीब सर मोहम्मद इक़बाल, सर अब्दुल क़ादिर, सर शहाबुद्दीन (आज-कल के मंत्री ख्वाजा शाहाबुद्दीन नहीं) आपस में हँसी-मज़ाक पंजाबी में करते थे, मगर शायरी उर्दू में. 'मखज़न' की मासिक पत्रिका उर्दू में निकालते थे. चुनाव में वोट के लिए प्रचार उर्दू में करते थे.

मगर सब से बड़ी बात यह थी कि उर्दू निर्विभाजित भारत के लंबे और कठोर सांप्रदायिक संघर्ष का एक केंद्रीय प्रतीक ही नहीं बल्कि उस का मौलिक कारण, बल्कि कुछ लोगों के ख्याल में तो उस का एक मात्र कारण, थी और कहने वाले यहाँ तक कहते थे कि पाकिस्तान बना ही उर्दू की रक्षा के लिए. कम से कम शुरू में सारे पश्चिमी भाग में उर्दू के प्रति बड़ी श्रद्धा थी और भाषा का कोई संघर्ष या विवाद भी कई साल तक नहीं उभरा.

मगर मौलिक प्रश्नों का उत्तर कहीं आदर और श्रद्धा के द्वारा दिया जा सकता है? इधर यू. पी. वालों और शरणार्थियों अर्थात् उर्दू वालों के प्रति सहानुभूति घटती रही और अंत में अफ़सरशाही की धाँधली के कारण धीरे-धीरे संदेह बल्कि विरोध में परिवर्तित होती गयी. उधर शासन का ढाँचा बदलता रहा और जिन्ना एवं लियाक़त के बाद उत्तरप्रदेश वाले जो अधिकार के पदों पर जमे हुए थे शासन के केंद्र से निकाले जाने लगे. गुलाम मोहम्मद के अधीन और विशेष कर नाज़मुद्दीन के बाद सत्ता पंजाबियों के हाथ में पहुँचती रही और अंत में अय्यूबशाही युग में, जो तानाशाही का कोई बहुत ढका-छुपा रूप नहीं है, पंजाबी राज की पूर्ति हो गयी, जो शासकों के क्षेत्र में आज भी क़रीब-क़रीब वैसी ही चल रही है. यू. पी. और पंजाबी या महाजिर और मक़ामी (शरणार्थी और स्थानीय) के संघर्ष का प्रभाव यह भी हुआ कि भाषा का प्रश्न हल्के-हल्के रूप में उठने लगा. जैसे शासन और पदवी के लिए टक्कर लेने वाले सब से आगे पंजाबी थे वैसे ही भाषा का प्रश्न भी सब से पहले पंजाबियों ने उठाया. मगर पहले-पहल आलोचना और विरोध के रूप में नहीं, बल्कि पंजाबी से एक नये प्रेम की भावना की शक्ल में. ज़ाहिर है जो लोग अब तक बंगालियों की इसी बात के लिए निंदा करते आ रहे थे कि वे उर्दू के विरोधी हैं वे स्वयं ही उर्दू का विरोध एकदम कैसे शुरू कर देते. परंतु यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है कि जब १९५४ और '५५ के ज़माने में पंजाब के साहित्यकारों ने अपनी भाषा की ओर खिंचना शुरू किया तो इसी के साथ हाँके-पुकारे यह भी घोषणा कर दी कि अब वे उर्दू में नहीं लिखेंगे. मंटो और क़ासिमी जैसे उर्दू के मँजे हुए कलाकार पंजाबी में भी कहानी लिखने लगे. पंजाबी पत्रिकाओं का चलन हुआ और पंजाबी साहित्य बड़ी तेज़ी से उन्नति करने लगा और इस के कवियों, साहित्यकारों, इस के संगठनों और संस्थानों की अपील बढ़ती रही और इन की लोकप्रियता अब इस हद तक पहुँच गयी है कि अभी हाल में लाहौर से एक पंजाबी मुशायरा सुनने में आया जिस में ग़ज़लें भी थीं और नज़्में या कविताएँ भी और आश्चर्य की बात यह है कि कविताएँ जितनी भली और स्वाभाविक थी उन के लिखने वालों के नाम उतने ही नये.

लेकिन पंजाबी शासक हैं. उन के लिए उर्दू की ओर से ध्यान हटा कर या कम कर के पंजाबी की ओर लगाना केवल निश्चय की बात है. मगर सीमा-प्रदेश के लोग और उन से अधिक सिंध के लोग अधीन हैं और उन्हें राजनैतिक दमन के साथ-साथ यह भी शिकायत है कि उन की भाषा को भी मिटाया जा रहा है. सिंध में लोगों को अपने प्रांत के समाप्त किये जाने का सब से अधिक दुख है और यह आशंका है कि उन के राष्ट्रीय अस्तित्व को मिटाने के लिए सिंधी भाषा का भी गला घोंटा जा रहा है. भाषा की समस्या स्पष्ट है कि अधिक कठिन है और वहाँ के पुराने शायर और साहित्यकार शेख अयाज़ इस भाषा-विरोध के भी नेताओं में हैं. सीमा-प्रांत में क्योंकि राजनैतिक संकट पख्तूनिस्तान के प्रश्न के कारण बहुत तीव्र है इस लिए भाषा का प्रश्न मौजूद तो है, लेकिन अभी उसने अलग से किसी गंभीर समस्या का रूप धारण नहीं किया.

तो गोया पाकिस्तान में भाषा की समस्या लगभग वैसी ही विकट है जैसी कि भारत में. उस के संबंध में रक्तपात भी कुछ कम नहीं हुआ और वह इसी प्रकार शासन और अधिकार के प्रश्नों से जुड़ी हुई है. अंतर केवल यह है कि भारत में उस की दिशा उत्तर-दक्षिण की है और पाकिस्तान में पश्चिम-पूरब की ओर. भारत के उत्तर और पाकिस्तान के पश्चिम में समस्या गूढ़ है, किंतु कठिन नहीं. दक्खिन और पूरब में यथेष्ट साफ़ और सीधी टक्कर के रूप में है और इसी लिए बहुत जटिल है. एक और बड़ा अंतर यह भी है कि भारत की राष्ट्रभाषा जनसंख्या की बहुमत के अनुकूल है और पाकिस्तान में उर्दू को जो वहाँ स्थान दिया गया है वह एक अल्पसंख्यक भाषा है.

किताबें

पाठक विरोधी नहीं

लोग बिस्तरों पर : अपने इस प्रथम कहानी संकलन से काशीनाथ सिंह समर्थ कहानीकार के रूप में सामने आते हैं. यथार्थ जीवन का और मानवीय संबंधों की सूक्ष्मता का चित्रण इन में हैं. कहानियों की शक्ति उन का व्यंग्य है. उसी से उन का स्वरूप निर्धारण होता है. कहीं कहानी फैंटेसी का रूप ले लेती है जैसे 'लोग बिस्तरों पर' : 'अपने लोग', 'आदमी का आदमी' और कहीं सांकेतिकता का कलात्मक आवरण ओढ़ती है जैसे 'संकट', 'आखिरी रात', 'कस्बा जंगल और साहब की पत्नी.' 'तीन काल कथा' में अकाल की भयावहता का चित्रण करने के लिए और भावुकता का कहीं स्पर्श भी न आने देने के लिए कहानीकार ने अखबारी रिपोर्टिंग का ढंग अपनाया है और मार्मिकता बढ़ायी है. कुछ कहानियों में प्रतीक का सहारा लिया गया है जो अनावश्यक लगता है जैसे 'अपने घर का देश', अपने यथार्थ के चित्रण के कारण ही वह मार्मिक बनती है. यदि कहानी जीवन के अनुभवों से जुड़ी हो और उसे लिखने के लिए एक सृजनात्मक बेचैनी कलाकार में हो तो शिल्प के प्रति अतिरिक्त पैंतरे दिखाने की उसे ज़रूरत नहीं होनी चाहिए. भाषा साफ़-सुथरी है और निहितार्थ तथा व्यंग्य को बखूबी प्रेषित करती है.

मुट्ठी भर पहचान : शीर्षक से ही स्पष्ट है कि ये सीमित ईमानदार अनुभवों की कहानियाँ है. अन्विता अग्रवाल की कहानियों की विशेषता उन का छोटा होना और पठनीयता है. सारी कहानियाँ एक जैसी हैं विचार प्रक्रिया से बुनी हुई, अपने चारों ओर जो घटित हो रहा है उस के प्रति अत्यधिक जागृत. लेखिका के अनुभव का संसार कितना ही सीमित क्यों न हो उस की दृष्टि सीमित नहीं है. एक खुलापन उस की पहचान में है और भाषा और अभिव्यक्ति में सादगी है. कहीं किसी तरह का कोई झूठा आग्रह नहीं है. नये कहानीकार के लिए जब उस के चारों तरफ़ झूठे आग्रहों की एक ललचाने वाली बहुत बड़ी दुनिया खड़ी हो, उस से बचे रहना इस बात का प्रमाण है कि आगे उस का लेखन विकसित होगा लेखिका के इस प्रथम संग्रह की भूमिका में श्रीकांत वर्मा ने लिखा है कि 'आधुनिक साहित्य, कृत्रिम रूप से नहीं बल्कि अपनी नियति से पाठक-विरोधी साहित्य है.' पर दोनों कहानी संग्रह आधुनिक होते हुए भी पाठक-विरोधी नहीं हैं.

लोग बिस्तरों पर : काशीनाथ सिंह, अभिव्यक्ति प्रकाशन. ८४७ यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद-२ मूल्य साढ़े चार रुपये.

मुट्ठी भर पहचान : अन्विता अग्रवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन. २, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-६. मूल्य चार रुपये.

ग़ालिब शताब्दी के अवसर पर

ग़ालिब शती के अवसर पर 'अखिल भारतीय ग़ालिब शताब्दी समिति' ने सप्ताह भर संगीत और नृत्य के भी कई तरह के कार्यक्रम आयोजित किये. आकाशवाणी, रागरंग, कत्थक केंद्र, संगीत नाटक अकादेमी, दिल्ली आर्ट थियेटर और बंबई के फ़िल्म कलाकारों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम सुनने और देखने के पश्चात् कई प्रश्न एक साथ उठते हैं. क्या ग़ालिब ने चंद ग़ज़लें ही लिखी हैं? क्या ग़ज़ल-गायकी का कोई अलग अंदाज़ नहीं हो सकता? क्या नयी धुनें नहीं बन सकतीं, उन में नवीनता लाना असंभव है और क्या ग़ालिब की चंद जानी-पहचानी और सुनी बातों के अतिरिक्त उन का कोई ऐसा पहलू नहीं जिसे रोशन किया जा सके?

निर्मला अरुण : '···याद आया'

विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रस्तुत संगीत-नृत्य के कार्यक्रमों को सुनने-देखने के बाद, जिन में घूम-फिर कर वही-वही ग़ज़लें (जो बरसों से सुनी जा रही हैं) और मिर्ज़ा ग़ालिब के कुछ जाने-पहचाने लतीफ़ों और वाक़यात के अतिरिक्त किसी को कुछ और पेश करने को नहीं मिला. काश इस खास मौक़े पर किसी कलाकार या संगीतकार ने कोई नयी धुन और कोई अप्रचलित ग़ज़ल पेश किया होता, या किसी शायर अथवा लेखक ने ग़ालिब पर कोई मौलिक रचना में उन के किसी अनछुए पहलू को उजागर करने की ज़हमत उठायी होती. ग़ालिब शताब्दी न तो इस से पूर्व ही और न अब दोबारा ही मनायी जा सकती है, फिर भी इस विशेष अवसर के लिए किसी भी संगीतकार, नृत्यकार अथवा लेखक ने इस सप्ताह भर के कार्यक्रमों में ऐसा कुछ नहीं दिया जो इस अवसर की स्मरणीय देन कही जा सके.

मिर्ज़ा ग़ालिब को पहली श्रद्धांजलि 'रागरंग' ने दी (समीक्षा **दिनमान**, २४ फ़रवरी). रागरंग के अतिरिक्त आकाशवाणी, संगीत अकादेमी और बंबई के फ़िल्म कलाकारों ने संगीतबद्ध ग़ालिब की ग़ज़लों के कार्यक्रम पेश किये.

आकाशवाणी ने अपने 'संगीत के अखिल भारतीय कार्यक्रम' का विशेष आयोजन 'ग़ालिब की ग़ज़लें' का आमंत्रित श्रोताओं की उपस्थिति में मावलंकर सभा भवन में प्रस्तुत किया. ग़ालिब की अत्यंत लोकप्रिय ग़ज़लें लखनऊ, दिल्ली, बंबई आदि से आये कलाकारों ने अपने-अपने ढंग से पेश कीं. प्रायः सभी कलाकार और उन की गायकी चिर-परिचित रही. शायद ही किसी ने अपनी बँधी-बँधायी, परंपरागत शैली से हटने का प्रयास किया हो. प्रस्तुत १०–११ ग़ज़लों में ऐसी कोई भी नहीं थी जिसे स्मरणीय कहा जाये. एक-दो को अपवाद स्वरूप छोड़ कर न तो किसी में भाव की गहराई थी और न ही नयापन और नफ़ासत. आकाशवाणी द्वारा आयोजित इन कार्यक्रमों में शायद ही किसी ने ग़ालिब के साथ न्याय किया हो. दिल्ली के मंच के लिए नयी कलाकार लखनऊ की गायिका **नसीम बानो** ने दो बहु प्रचलित ग़ज़लें 'दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है, और 'ये न थी हमारी क़िस्मत' पेश की तो बंबई की **निर्मला अरुण** ने 'फिर मुझे दीदाये तर याद आया' और 'इशरते क़तरा है दरिया में फ़ना हो जाना.' बंबई के ही **सातत बिन अशरफ़** ने भी दो ग़ज़लें अपनी सीधी-सरल शैली में पेश कीं, पर उपर्युक्त सभी ग़ज़लों की धुनों में कहीं कोई नवीनता, ग़ज़लीखानी का सोज़ और कशिश नहीं थी. **बेग़म अख़्तर** ने तीन ग़ज़लें रागों में बाँध कर पेश कीं, पर इन का गायन भी आशानुरूप नहीं था. इसी मंच में रागरंग के कार्यक्रम में जो स्मरणीय ग़ज़लें इन्होंने पेश की थीं उन की बरबस याद आ गयी. प्रस्तुत तीन ग़ज़लों में भैरवी पर आधारित 'दर्द मिन्नत कशे दवा न हुआ' अवश्य उल्लेखनीय कही जा सकती है. **शंकर शंभु** ने समापन कार्यक्रम में दो ग़ज़लें—कव्वाली के रूप में पेश कीं. ग़ालिब की ग़ज़लें किसी भी दृष्टि से गायकी के क़व्वाली अंग के लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं हुईं, जनरंजन चाहे जितना भी इस से खुश हो.

महाकवि ग़ालिब की ग़ज़लों का दूसरा कार्यक्रम **संगीत नाटक अकादेमी** ने सप्रू हाउस में आयोजित किया. ग़ज़ल गायन और कत्थक नृत्य के मिलेजुले इस कार्यक्रम में उच्च कोटि के काव्य का संगीतमय आनंद श्रोताओं ने काफ़ी देर तक उठाया. दिल्ली के जाने-पहचाने फ़नकार **नसीर अहमद ख़ाँ, यूनुस हुसेन ख़ाँ, हफ़ीज़ अहमद ख़ाँ, बशीर अहमद ख़ाँ** और **माधुरी भट्ट** के अतिरिक्त **बेग़म अख़्तर** ने ग़ज़लें और **बिरजू महाराज** ने नृत्याभिनय पेश किया. कलाकारों ने ग़ज़लों का अच्छा चयन किया. भाग लेने वाले अधिकतर कलाकार शास्त्रीय और सरल शास्त्रीय संगीत के ही कलाकार थे, जिन के द्वारा विभिन्न राग-रागिनियों को बंदिशों में ग़ालिब के भावों को संगीत द्वारा साकार करने का प्रयास निस्संदेह प्रशंसनीय और काफ़ी हद तक सफल रहा. **बशीर अहमद ख़ाँ** ने राग नट, **यूनुस ख़ाँ** ने भैरवी और **हफ़ीज़ अहमद ख़ाँ** ने मिश्र शिव रंजनी की बंदिशों में क्रमशः 'इक मुझ को नहीं वहशत ही सही', 'वो आये ख़्वाब में तस्कीने इस्तराब तो है' और 'न हुई गर मेरे मरने से तसल्ली' ग़ज़लें पेश की. तीनों ही ग़ज़लों का प्रस्तुतीकरण सुंदर पर पारंपरिक रहा. सरल संगीत के लिए अत्यंत उपयुक्त और असरदार राग एमन के स्वरों में बँधी **नसीर अहमद ख़ाँ** की दोनों ग़ज़लों में स्वर, राग और काव्य के समन्वय का अच्छा उदाहरण सुनने को मिला. शब्दों की नफ़ासत और भावों की साकारता इन के गायन में खूब मुखरित हुई. यद्यपि **बेग़म अख़्तर** ने कोई नयी ग़ज़ल (जो इस से पूर्व उन से न सुनी जा चुकी हो) नहीं पेश की पर उन की बंदिशों का नयापन अपने-आप में उल्लेखनीय और मोहक रहा. ग़ज़ल की धड़कन और गायकी का सुरीलापन इन की ग़ज़लों में एक निराले अंदाज़ से व्यक्त हुआ. शंकरा और जोग जैसे अत्यंत सरस रागों के स्वरों में डुबो कर 'दिले नादाँ तुझे हुआ क्या है' और 'दिल से तेरी निगाह जिगर तक उतर गयी' ग़ज़लों को बेग़म अख़्तर ने ऐसा डूब कर गाया कि फिर उन के बाद कोई कार्यक्रम अपना रंग नहीं जमा सका. अंतराल के बाद कत्थक शैली में अनन्य बिरजू महाराज ने 'बस के हर एक उन के इशारे में निशाँ और' ग़ज़ल का भाव-अभिनय पेश किया.

बेग़म अख़्तर : '···जिगर तक उतर गयी'

दिल्ली के **कत्थक केंद्र** ने इस अवसर पर मावलंकर सभा भवन में श्रीमती **सिद्धेश्वरी**

देवी का गायन और **बिरजू महाराज** का 'कत्थक बैले' पेश किया. कत्थक केंद्र की भेंट निराशाजनक रही. सिद्धेश्वरी देवी निस्संदेह सरल शास्त्रीय संगीत की कुशल गायिका हैं, पर ग़ज़लों को पेश करने का उन का ढंग प्रभावित नहीं कर सका. प्रस्तुत दो ग़ज़लें 'दर्द मिन्नत कशे दवा न हुआ' न अच्छी रही न बुरी और 'आह को चाहिए एक उम्र असर होने तक' बेअसर रही.

बिरजू महाराज के निर्देशन में कत्थक केंद्र के सारे कलाकारों का सम्मिलित प्रयास 'होता है शबो रोज तमाशा मेरे आगे' भी खासा तमाशा ही बन कर रह गया. कत्थक शैली निस्संदेह विषय के लिए नृत्य की उपयुक्त शैली थी, पर कल्पना और सूझ-बूझ के अभाव में कत्थक केंद्र का प्रयोग प्रयोग हो कर ही रह गया.

भावाभिनय कत्थक की बहुत ही जानदार और विशिष्ट चीज है, जो लाल, नीले प्रकाश में विलीन हो कर रह गयीं. रिफ़त सरोश ने मिर्ज़ा ग़ालिब की चुनी हुई ग़ज़लों और अशआरों द्वारा ग़ालिब का एक रूप पेश करने का अच्छा प्रयास अपने कथानक में किया, जिसे लखनऊ घराने के प्रतिनिधि बिरजू महाराज ने प्रत्यक्ष रूप दिया. नृत्यों की रचना और भाव-प्रदर्शन में बिरजू महाराज ने अ.नी कुशलता का जहां एक ओर अच्छा परिचय दिया वहीं उस में काल्पनिकता का अभाव भी था. नृत्य शैली की बारीकियों और मंच-प्रभावों की अपेक्षा यदि निर्देशक ने भाव और अभिनय-पक्ष को प्रधानता दी होती तो निस्संदेह प्रयास कहीं अधिक सार्थक होता. दोषपूर्ण और रुचिहीन प्रकाश-आयोजन, चक्करदार परतें, पैर का काम और रंगीनी में भावों की सूक्ष्मता, काव्य की गहराई और सौंदर्य कहीं भी उभर नहीं सका. काल्पनिक पात्रों द्वारा ग़ालिब की विभिन्न ग़ज़लों के नृत्याभिनय में बिरजू महाराज के अतिरिक्त **भारती** और **प्रदीप शंकर** भी कहीं-कहीं अच्छे रहे, पर बैले की विशिष्टता थी उस का संगीत और स्वयं बिरजू महाराज का नृत्याभिनय 'दिले नादां तुझे हुआ क्या है.' बशीर अहमद खाँ और हीरा शर्मा द्वारा ग़ज़लों का गायन भी आकर्षक रहा.

'ग़ालिब कौन था' : एक दृश्य

दिल्ली आर्ट थियेटर ने इस सिलसिले में शीला भाटिया के निर्देशन में एस. एस. मेहंदी की संगीतिका प्रस्तुत की, जिसे हफ़ीज़ अहमद खाँ ने संगीतबद्ध किया. **ग़ालिब कौन था** संगीतिका में जनाब मेहंदी ने पुरअसर संवादों और लोकप्रिय ग़ज़लों द्वारा ग़ालिब के व्यक्तित्व को उभारने की पूरी और सफल कोशिश की. क़रीब २५-३० कलाकारों ने 'ग़ालिब कौन था' संगीतिका को साकारता प्रदान की. यों तो शीला भाटिया का निर्देशन बहुत ही जाना-पहचाना रहा, पर जहाँ कहीं भी उन्होंने कुछ कल्पना का सहारा लिया दृश्य अधिक मुखर ही नहीं अपितु प्रभावशाली भी बन पड़े. 'ग़ालिब कौन था' मुख्य रूप से संगीत-प्रधान प्रयास था, पर संगीत के नाम पर इस में कोई विशेष उपलब्धि नहीं हो सकी. एक दो ग़ज़लों को छोड़ कर **हफ़ीज़ अहमद खाँ** की धुनों में न तो कोई कशिश थी और न ही इन के संगीत में नवीनता या मौलिकता. संगीतिका में ग़ालिब की ग़ज़लों को पेश करने का दायित्व था दो मुख्य नारी पात्र मुग़ल जान और चाँदनी पर. मुग़ल जान के रूप में **मदन बाला** और चाँदनी की भूमिका में **मीनाक्षी** संगीत-पक्ष के साथ पूरा न्याय नहीं कर सकीं. दोनों ही कलाकारों में संगीतिक प्रतिभा, भावों को व्यक्त करने की क्षमता और सुरीलेपन का अभाव रहा. संगीत और काव्य का आनंदमय रूप, जिस पर संगीतिका का दारोमदार था, बहुत ही कमज़ोर सिद्ध हुआ. पर तानरस खाँ और फ़क़ीर के रूप में **महेंद्र चोपड़ा** ने जो दो ग़ज़लें दीं वे निस्संदेह कर्णप्रिय और स्मरणीय रहीं, जिन के लिए वे बधाई के पात्र हैं. ग़ालिब के रूप में **मोहम्मद अय्यूब खाँ** का अभिनय यों तो आरंभ से अंत तक खासा रहा, पर अधिक सजीव और प्रभावशाली रहा अंतराल के बाद, विशेष कर अंतिम कुछ दृश्यों में. अन्य सहयोगी कलाकारों में **ताहिर नियाज़ी, पं. दीनानाथ, रईस मिर्ज़ा** और **राजेंद्र सिंह** भी अपनी-अपनी भूमिका में न्यायपूर्ण रहे.

इस सप्ताह में संगीत की अंतिम भेंट थी बंबई के फ़िल्म कलाकारों, गायकों और संगीत-निर्देशकों की. संगीतकार **नौशाद** और **रवि** के निर्देशन में **मोहम्मद रफ़ी, तलत महमूद महेंद्र कपूर** जैसे सिद्धहस्त और लोकप्रिय गायक-कलाकारों के अतिरिक्त अभिनेत्री **माला सिन्हा** और स्वयं रवि ने ग़ज़लें पेश कीं. पर कुल मिला कर कार्यक्रम निराशाजनक रहा. यदि कोई उल्लेखनीय बात इस आयोजन की रही तो वह थी घोषित समय से डेढ़ घंटे बाद कार्यक्रम का आरंभ होना और अन्य कलाकारों की अपेक्षा रवि और माला सिन्हा जैसे नये नामों (गायन के क्षेत्र में) से श्रोताओं का प्रभावित होना.

फ़िल्म

मधुबाला अब नहीं रहीं

३६ वर्ष की अवस्था में अपने बांद्रा (बंबई) स्थित निवासस्थान पर प्रसिद्ध अभिनेत्री मधुबाला के निधन से हिंदी फ़िल्म जगत् को वह शून्य नहीं घेर पाया है, जो रुपहले पर्दे से सहसा किसी बहुचर्चित और दिलकश चेहरे के ग़ायब हो जाने से उभरता है. दरअसल, मधुबाला के चेहरे को देखने के लिए तो सिनेप्रेमी उन के जीवन काल में ही तरस रहे थे. वर्षों तक हृदय-रोग से पीड़ित मधुबाला का एक तरह से फ़िल्मों से नाता टूट-सा गया था हालांकि अस्वस्थ होते हुए भी वह सिर्फ़ अपनी एक ही फ़िल्म 'ज्वाला' पूरा कर पायीं, जो उन की अंतिम फ़िल्म और अंतिम यादगार भी है. यह एक विडंबना है कि जो तारिका एक ज़माने में फ़िल्माकाश में सर्वाधिक झिलमिलाती थी, वह एकांत में चुपचाप बुझ गयी..

मधुबाला : 'बस इक याद बाकी है'

१४ फ़रवरी, १९३३ को दिल्ली में जन्मी मधुबाला (मुमताज़ जहाँ बेगम) ने १०० से अधिक फ़िल्मों में अभिनय किया. 'नज़मा' पहली फ़िल्म थी, जिस में वह नायिका बनीं. इस से पहले बाल-अभिनेत्री के रूप में भी उन्होंने कई फ़िल्मों में काम किया था. 'फागुन', 'परदेसी', 'बेक़सूर', 'महल', 'निशान', 'तराना', 'संगदिल', 'बादल' आदि दर्जनों फ़िल्में हैं, जिन के साथ इस रूपसी की धुंधली स्मृति जुड़ी हुई है. ९ वर्ष पहले प्रदर्शित फ़िल्म 'मुग़ले-आज़म' में मधुबाला ने अनारकली की भूमिका निभायी थी, जिस की याद भी अब धुंधली पड़ गयी है. वह अपने अभिनय की खामी को अपने रूप से भर देती थीं.

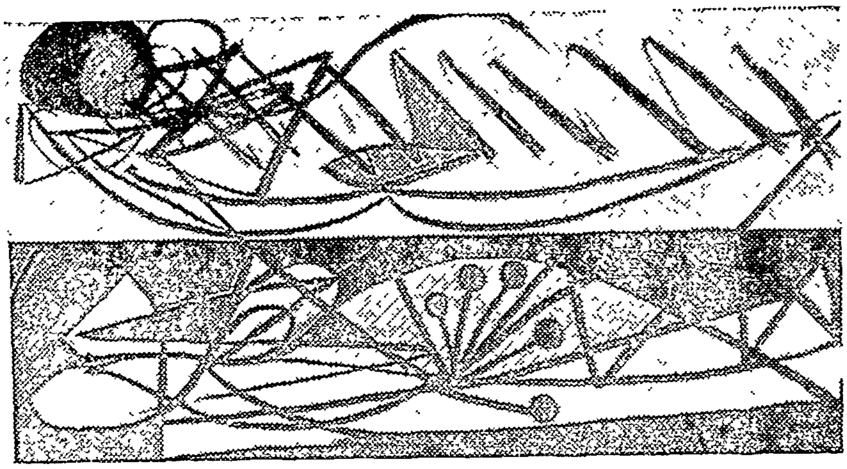

एमिली गीलिआली के चित्र पर आधारित चित्र-यवनिका

कला

बुनावट की बात

सृजनात्मक कृतियों की 'बुनावट' की चर्चा उन की समीक्षा के समय अक्सर की जाती है. कविता, कहानी, उपन्यास, चित्रकला सभी के संदर्भ में 'बुनावट' एक परिचित शब्द है. सृजनात्मक कृतियों के संदर्भ में यह शब्द इतना सार्थक क्यों है, इस का एक उत्तर समकालीन फ़्रांसीसी टेपेस्ट्रियों (चित्र-यवनिकाओं) के देखने पर मिलता है. पिछले दिनों नयी दिल्ली के रवींद्र भवन में इन चित्र-यवनिकाओं की एक प्रदर्शनी हुई. ये चित्र-यवनिकाएँ कुछ आधुनिक यूरोपीय चित्रकारों की कृतियों के आधार पर बुनी गयी हैं—**ज्यां आर्प, जोन मीरो, ला कोरबूज़िए** आदि के चित्रों के आधार पर.

फ़्रांसीसी, टेपेस्ट्री (चित्र-यवनिका) बुनने की कला को काफ़ी अरसे से एक कला-विधा का दरजा देते रहे हैं. इन आधुनिक चित्र-यवनिकाओं को देख कर लगता है कि वह इस कला-विधा को भूले नहीं हैं, बल्कि उन्होंने इसे चित्रकला की नयी शर्तों में ढाल लिया है. दूर से देखने पर ये चित्र-यवनिकाएँ चित्र ही लगती हैं. यही नहीं काफ़ी बड़े आकार में बुनी गयी ये चित्र-यवनिकाएँ दीवार के सहारे लटका दिये जाने पर भित्ति-चित्र भी लगती ही हैं. सज्जा और चित्रांकन के लिए १५ वीं सदी से ले कर १८ वीं सदी तक फ़्रांस के कई स्थानों के चित्र-बुनकरों ने देवताओं की प्रेम-कहानियाँ, राजाओं तथा चरवाहों के जीवन-संबंधी प्रसंगों को ले कर चित्र बुने. इस के बाद पूरी एक सदी चित्र-यवनिकाओं को बदलते समय से जोड़ने के लिए, कई मूल-ग़लतियों में, बिता दी गयी. इस सदी—२० वीं सदी—में चित्र-यवनिकाओं ने अंततः अपनी प्रासंगिकता और कलात्मकता पुनः प्राप्त कर ली—आधुनिक फ़्रांसीसी चित्र-यवनिकाओं की यह प्रदर्शनी भी इसी बात को प्रमाणित करती है.

चित्रों के आधार पर बुनी गयी ये चित्र-यवनिकाएँ यह भी प्रमाणित करती हैं कि बुनाई के द्वारा आधुनिक कला की रंग-योजना को उतार-उभार पाना काफ़ी हद तक संभव है. **राओल डुफ़ी** के दो चित्रों के आधार पर बुनी गयी चित्र-यवनिकाएँ भिन्न रंग-छायाओं का पीछा करती मालूम पड़ती हैं. गोल रूपाकार इस में भिन्न रंग-छायाओं के माध्यम से एक दूसरे का अतिक्रमण करते हैं और इस प्रक्रिया में एक दूसरे से जुड़ कर लयात्मकता प्राप्त करते हैं. ज़ाहिर है कि रंग-छायाओं के अतिक्रमण को बुनने के लिए, चित्र में रंग भरने जैसी ही रचनात्मकता चाहिए—कुछ अर्थों में शायद अधिक ही. इसी प्रकार **वीइरा दा सिल्वा** के चित्र 'संरचना' के आधार पर बुनी गयी चित्र-यवनिका में अभी-अभी लगाये गये जल-रंगों जैसा प्रभाव है. कुछ फैलती और मिटती लकीरों की इस जटिल संरचना को बुनना भी इस की मूल रचना से कम कठिन काम नहीं है.

इन्हीं और ऐसी ही चित्र-यवनिकाओं को देख कर लगता है कि चित्र बुनने की यह विधा अपने में गहरी संवेदना और संभावना छिपाये हुए है. संवेदनशील चित्रकार के हाथ तूलिका-स्पर्शों और तूलिकाघातों के लिए जो प्रशंसा प्राप्त करते हैं उसी प्रशंसा की अधिकारिणी चित्र-बुनकर की संवेदनशीलता भी है. भारत में भी सज्जा या शोभा-वस्त्रों में और पहनावे में भी शोभा-अंकनों को बुनने की परंपरा रही है. इसी लिए भारतीय प्रेक्षक से यह विधा अपने लिए और भी आत्मीयता प्राप्त कर लेती है.

फ़्रांसीसी चित्र-बुनकरों ने इसे चित्रों के बिल्कुल निकट ला कर, बल्कि इसे चित्रों का पर्याय बना कर यह सिद्ध कर दिया है कि चित्र रंगों के मोहताज हो सकते हैं, लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि वे जल या तैल रंगों के ही मोहताज हों—मोटे-महीन रंगीन धागे भी रंगों का काम कर सकते हैं. चित्रों की अनुकृतियाँ होने के, या उन पर आधारित होने के नाते ये चित्र-यवनिकाएँ अमौलिक हों, ऐसी बात भी नहीं है. ये मूल चित्रों को चाक्षुष विस्तार में प्रस्तुत करती हैं और जैसे उन्हें दुबारा 'बुनने' की प्रक्रिया में और अधिक जीवंत बना देती हैं. इस तरह इन चित्र-यवनिकाओं को दुहरी बुनावट के चित्र भी कह सकते हैं—पहली बुनावट मूल चित्र की रचना, दूसरी बुनावट उस की सचमुच में बुनकरी.

इन चित्र-यवनिकाओं को देख कर यह भी लगता है कि यों तो ये कैसे भी रूपाकारों को उभारने में समर्थ हैं लेकिन ज्यामितिक रूपाकार, गोल रूपाकार, अर्द्ध चंद्र, चंद्राकार, अंडाकार आदि और फ़ीतों के आकार-प्रकार इन में विशेष आकर्षक लगते हैं. **विक्टर वासार्ली** के चित्र पर आधारित चित्र-यवनिका के गोलाकारों के विभिन्न रूपों की बुनावट उन्हें हर कोण से उभारती है—सीधे-आड़े, तिरछे, चित-पट, ये गोलाकार इस चित्र यवनिका में अपने सभी रंगों में उभरते हैं. यहीं यह भी कहा जा सकता है कि इन चित्र-यवनिकाओं में रंग-भेद—एक ही रंग का या कुछ रंगों का 'रूपांतर'—बहुत आकर्षित करता है.

कैथे कौलाविट्ज़ :
पीड़ा का संसार

सारे कलात्मक-रचनात्मक सृजन का केंद्र मनुष्य रहा है, लेकिन कला और साहित्य में उसे बिल्कुल यथार्थवादी धरातल पर रख

जोन मीरो के चित्र पर आधारित चित्र-यवनिका

कर कलाकृति का सृजन कर लेना कभी सरल नहीं माना गया. बिल्कुल यथार्थवादी धरातल पर रची गयी कृतियाँ या तो सपाट हो जाती हैं या फिर प्रभावहीन. इसी लिए साहित्यकार यथातथ्य प्रस्तुतीकरण से बचते रहे हैं और चित्रकार यथातथ्य चित्रण से. बहुत कुछ इन्हीं कारणों से जर्मन कलाकार कैथे कौलविज (१८६१-१९४५) के ग्राफ़िक चित्र, रेखांकन और मूर्त्तिशिल्प एक ही साथ आश्चर्यचकित, प्रभावित और आकर्षित करते हैं. पिछले दिनों इन की कृतियों की प्रदर्शनी नयी दिल्ली के रवींद्र भवन में 'जर्मन आर्ट काउंसिल' की ओर से आयोजित हुई. इस महान् कलाकार ने प्रायः अपनी सभी कृतियों को यथार्थवादी धरातल पर रचा है, लेकिन उन में फिर भी इतना ओज, आकर्षण और गहरी मानवीय संवेदना है कि वे बरबस प्रभावित करती हैं. मृत्यु, युद्ध, माँ-बच्चे, श्रमिक, किसान, मित्र—सभी इन कृतियों में अपने परिचित रूपों में ही उभरते हैं, लेकिन ये कई स्तरों पर हमारे 'परिचय' का विस्तार करते लगते हैं. जैसे 'नगर में आश्रय' ग्राफ़िक चित्र में एक माँ अपने दो बच्चों के साथ कहीं लेटी हुई है—बहुत कर के किसी ऐसी जगह जहाँ वे सुरक्षित नहीं हैं. तीनों ही नींद में हैं. लेकिन तीनों की ही नींद चौकन्नी नींद लगती है और यह चौकन्नी नींद बंद पुतलियों से या इन के चेहरे के किसी अनदेखे भाव से सहसा ही फूट कर पूरे चित्र को और हमें छा लेती है. इसी तरह एक ग्राफ़िक चित्र में एक पुत्री या माँ युद्धभूमि में रात को हाथ में प्रकाश लिये किसी चेहरे को खोजने में व्यस्त है. रात, किसी मृतक के चेहरे पर पड़ता प्रकाश, एक झुकी हुई स्त्री और काली रेखाओं का अंबार—इतने से चित्रण में कैथे कौलविज युद्ध, प्रेम, मानव-नियति को जैसे हज़ार रूपों में हमारे मन में कौंधा देती हैं.

'मेज पर आत्मचित्र' में भी एक कमरे में मेज के सामने एक स्त्री (कैथे कौलविज स्वयं) बैठी हुई है, ऊपर लटकती एक बत्ती है और बस. लगता है किसी शाम या रात, एक कमरे में मानवीय संवेदना मूर्त्त हो उठी हैं और उस में बँधा हुआ समय ठिठका रह गया है—मृत्यु, विनाश, प्रेम-रहितता, क्रूरता के विरुद्ध यह छोटी-सी कृति ऐसी है जिसे कोई कभी नष्ट नहीं कर सकेगा.

कैथे कौलविज एक डायरी लेखिका के रूप में भी विख्यात हैं. **वह पीड़ा को ही चित्रित नहीं करतीं, उस की अनिवार्यता को भी चित्रित करती जान पड़ती हैं.** उन का अपना जीवन भी काफ़ी संघर्षमय रहा है और दलितों-पीड़ितों ने जैसे उन्हें पीड़ा का संसार रचने के लिए बाध्य किया है. उन के एक पुत्र की मृत्यु काफ़ी कम उम्र में हो गयी थी—यह घटना उन्हें आजीवन विचलित किये रही. यह आकस्मिक नहीं है कि उन के बहुत से चित्र माँ-शिशु को ले कर हैं. इन चित्रों में उन्होने मानवीय प्रेम, करुणा, आशंका, हताशा, आशा-आकांक्षा को मूर्त्त ही नहीं कर दिया, उन्हें हमारे मन पर छाप दिया है.

कैथे कौलविज के ग्राफ़िक चित्रों की उत्कृष्टता उन की गहरी मानवीय संवेदना में ही नहीं है. तकनीकी दृष्टि से भी उन के ग्राफ़िक उत्कृष्टता का उदाहरण आप हैं. काले-सफ़ेद में छापे गये इन ग्राफ़िकों की बारीकी और सूक्ष्मता आश्चर्यचकित करती है. चित्र के कितने हिस्से को खाली छोड़ देना है, किस कोण से, किस कटाव से और इसी प्रकार उसे कितना और कहाँ से भर देना है—इस की गहरी समझ उन की हर कृति में झलकती है. शिशुओं के बाल हों—उन की कोमलता, अबोधता बताने वाले—या तार-तार होता कपड़ा हो कैथे कौलविज उन्हें ग्राफ़िकों में मुद्रित करना जानती हैं. किसानों और श्रमिकों के चेहरों की दृढ़-ठोस लकीरें प्रिंटों में ठीक-ठीक खिचती हैं.

कैथे कौलविज के रेखांकन और मूर्त्तिशिल्प भी इन्हीं गुणों से भरे हुए हैं. लेकिन इस में संदेह नहीं कि उन के ग्राफ़िक-चित्रों की बराबरी इन की अन्य कृतियाँ नहीं कर सकतीं.

कैथे कौलविज : रोटी

कैथे कौलविज : 'नगर में आश्रय'

परचून

बटन दबायें, खाना हाज़िर

आप के सिर्फ़ बटन दबाने की देर है, जब चाहें गरमागरम भोजन, नाश्ता या बर्फ़ की तरह शीतल पेय आप की खिदमत में हाज़िर हो जायेगा. कोई परोसने वाला नहीं, कोई बैरा नहीं और इसी लिए कोई विलंब नहीं, टिप नहीं और कोई शिकायत भी नहीं. समय पर अपनी गिरफ़्त मजबूत करने के इरादे से यह एक और आश्चर्यजनक प्रबंध किया गया है स्वीडन के बड़े-बड़े होटलों या ढाबों में और इस प्रबंध को नाम दिया है—'स्वचालित खाद्य संभरण.' यह सारा प्रबंध दूर-नियंत्रण व्यवस्था पर आधारित है. एक व्यक्ति के लिए आवश्यक भोजन, नाश्ते तथा पेयों के अलग-अलग प्रकार निर्धारित किये जाते हैं, जो भीतर रसोई में लगी मशीन में अलग-अलग पैकेटों में रखे रहते हैं. एक शीतागार है, जिस में शीतल खाद्य-पदार्थ रखे रहते हैं और एक उष्णागार है, जिस में हर चीज़ गरम रहती है. शीत या गर्म विभागों से ग्राहक की मेज़ तक पैकट पहुँचाने के लिए अलग-अलग नल लगाये गये हैं. ग्राहक मशीन के पास जा कर बटन दबा कर ऑर्डर देता है. ऑर्डर मशीन में दर्ज हो जाता है. बटन दबते ही दूर-नियंत्रण यंत्र अपना करतब दिखाता है. इस के धक्के से वांछित पैकेट नल से हो कर चंद ही क्षणों में ग्राहक की मेज़ पर आहिस्ते से हाज़िर हो जाता है. स्वीडन के अलावा अन्य देशों में भी इस मशीन का तेज़ी से प्रचार हो रहा है. इस मशीन के व्यापक प्रयोग से ग्राहकों को तो क्या शिकायत हो सकती है, बेशक होटल कामगारों को अपनी रोज़ी-रोटी की चिंता ज़रूर सतायेगी.

गुर्दों की अदलाबदली

चिकित्सा-विज्ञान के इतिहास में पहली बार पश्चिम जर्मनी के डॉक्टरों ने एक रोगी के शरीर में ऐसे गुर्दे का प्रत्यारोपण किया जो ३०० किलोमीटर की दूरी से हवाई जहाज़ द्वारा लाया गया था. कोलोन में सड़क-दुर्घटना में मृत एक २५ वर्षीया स्त्री का यह गुर्दा हैनोवर की एक ३५ वर्षीया महिला के शरीर में लगाया गया. इस स्त्री के दोनों गुर्दों ने काम करना बंद कर दिया था, लेकिन अब रोगी की दशा संतोषजनक है. मृत महिला के गुर्दे को निकालने और उसे दूसरी महिला के शरीर में लगाने में सिर्फ़ ३ घंटे २० मिनट का अंतर था. बताया जाता है कि मनुष्य की मृत्यु के तुरंत बाद निकाला गया गुर्दा ५-६ घंटे तक जीवित रहता है. इस अवधि को और बढ़ाने के प्रयत्न जारी हैं, जिस से कि भविष्य में एक महाद्वीप से लाये गये गुर्दे का दूसरे महाद्वीप में भी प्रत्यारोपण किया जा सके.

हम भी टेलीफ़ोन करेंगे

स्टुटगार्ट चिड़ियाघर के मैसूर नामक हाथी ने टेलीफ़ोन द्वारा अपने महावत से संपर्क स्थापित करना चाहा, किंतु उसे सफलता नहीं मिली. टेलीफ़ोन ऑपरेटर ने जब दूसरी ओर से सिर्फ़ उस के भारी साँसों की आवाज सुनी तो वह बहुत चकरायी. कई बार 'हैलो-हैलो' कहने पर भी जब कोई नहीं बोला तो उस ने मेकैनिक से माजरा जानने के लिए कहा. लेकिन तब तक मैसूर ने टेलीफ़ोन तोड़ दिया था. दूसरे दिन प्रेस फ़ोटोग्राफ़रों ने जब मैसूर को टेलीफ़ोन करते हुए कैमरे में क़ैद करना चाहा तो वह सोत्साह राज़ी हो गया—प्रमाण है नीचे का चित्र.

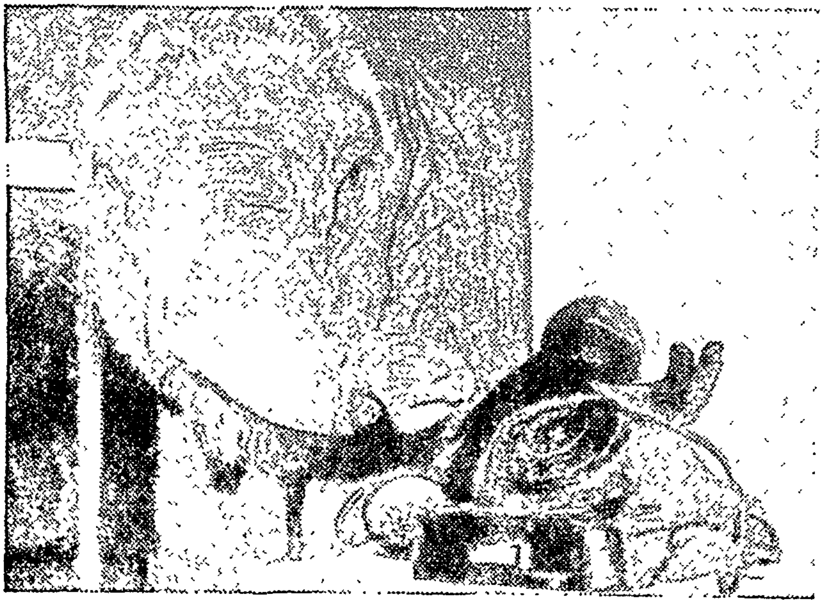

तुरन्त कार्य
हमारी हर शाखा में

मरकैन्टाइल बैंक लि०

इंगलैंड में समिति बद्ध
(हाँगकाँग बैंक ग्रुप का सदस्य)
(१०० वर्ष से अधिक अनुभव)

आप अपना बचत खाता केवल ५ रु. की छोटी राशि से खोल सकते हैं तथा ३½% वार्षिक ब्याज प्राप्त कर सकते हैं।

नई दिल्ली कार्यालय :
ई ब्लाक, रेडियल रोड–६
कनाट प्लेस

दिल्ली कार्यालय :
फतेहपुरी, चाँदनी चौक

IPB-D.MB.2-68 HIN

नियमित उपयोग से फ़ोरहन्स टूथपेस्ट मसूढ़ों के कष्ट और दंत-क्षय को रोकता है

जवानों और बूढ़ों द्वारा अपने आप भेजे गये प्रमाणपत्रों में मसूढ़ों की तकलीफ़ और दांतों की ख़रावी को रोकने के लिए फ़ोरहन्स टूथपेस्ट के गुणों की समान रूप से प्रशंसा की गयी है। ये प्रमाणपत्र जेफ़्री मैनर्स एण्ड कंपनी लि. के किसी भी कार्यालय में देखे जा सकते हैं।

"मैं दाँतों के रोगों से पीड़ित था... मैंने आपका फ़ोरहन्स इस्तेमाल किया। ...अब मैं उनमें से किसी भी रोग से पीड़ित नहीं हूँ। लगभग २०–२५ आदमी फ़ोरहन्स इस्तेमाल करने लगे हैं। और मेरे परिवार में वो फ़ोरहन्स सभी को बेहद प्रिय है।

—उदयशंकर तिवारी, पटना

आपके वैज्ञानिक ढंग से तैयार किये गये फ़ोरहन्स टूथपेस्ट ने, जिसे मैं पिछले दस साल से इस्तेमाल कर रहा हूँ, मेरे मसूढ़ों की सारी तकलीफ़ों को दूर कर दिया। अब हमारे परिवार के सभी लोग नियमित रूप से फ़ोरहन्स टूथपेस्ट से ही दांत साफ़ करते हैं।

—एस. एम. लाल, नयी दिल्ली।

फ़ोरहन्स

—एक दाँतों के डाक्टर द्वारा निर्मित टुथपेस्ट

दांतों की समुचित देखभाल के लिए फ़ोरहन्स टुथपेस्ट और दोहरे असरवाला फ़ोरहन्स टुथब्रश हर रोज़ रात में और सवेरे इस्तेमाल कीजिए... और अपने दाँत के डाक्टर से नियमित मिलते रहिए।

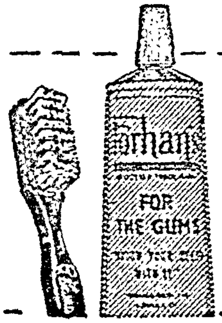

मुफ्त "दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" संबंधी रंगीन पुस्तिका

यह पुस्तिका हिन्दी और अंग्रेज़ी में मिलती है। इसे मँगवाने के लिये इस कूपन के साथ १५ पैसे के टिकट (डाक-खर्च के वास्ते) इस पते पर भेजिए: मैनर्स डेण्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई-१

नाम ____________ आयु ______

पता ____________

भाषा ____________ डी. २८

54 F-203 HN

पंजीयित संख्या डी० १५०१

जीतिए
नकद रु. १,००,००० का पुरस्कार तथा साथ में एक बिल्कुल नई एम्बास्डर कार

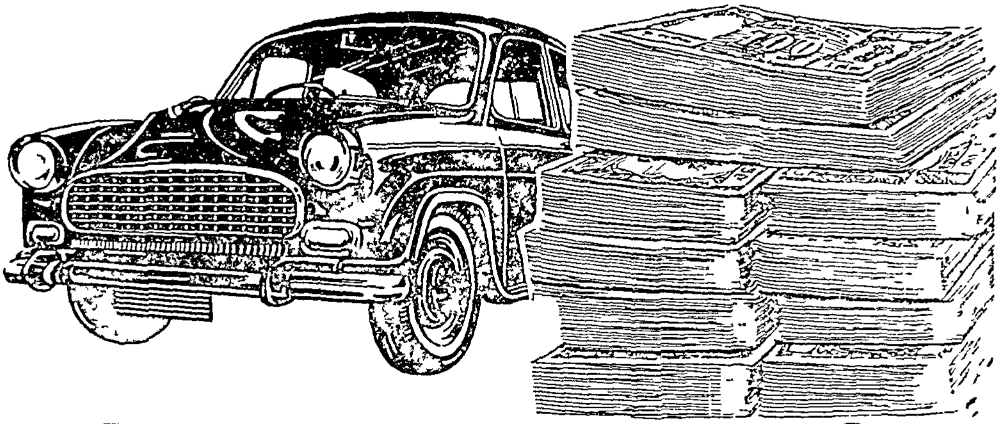

हरियाणा स्टेट लाटरीज़

के

प्रथम पुरस्कार में
तीसरा ड्रा २९-३-१९६९

और

रु. १,००,०००)

का एक अतिरिक्त पुरस्कार।

४९९ अन्य मूल्यवान पुरस्कार भी जो रु. २५,००० से रु. ५० तक के होंगे।

आज ही अपना भाग्यशाली टिकट खरीदिए

निम्न स्थानों से :

समस्त अधिकृत एजेन्ट्स.

समस्त डिस्ट्रिक्ट ट्रेज़री आफीसर्स ऑफ हरियाणा स्टेट.

दि ट्रेज़री आफीसर, हरियाणा ट्रेज़री, चन्डीगढ़.

दि ट्रेज़री आफीसर, गुड़गॉव C/o हरियाणा इम्पोरियम.

थियेटर कम्यूनिकेशन बिल्डिग, कनाट सरकस, नई दिल्ली.

दि डायरेक्टर, हरियाणा स्टेट लाटरीज़, ३० वे बिल्डिग, सेन्टर १७, चन्डीगढ़

द्वारा प्रसारित.

Newfields

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

साप्ताहिक
दिनमान
टाइम्स आफ इण्डिया प्रकाशन

ाट्य-समारोह • गुड़िया मेला
हसी सुब्रह्मण्यम् • भारत कितना ?
: रूस-चीन; मध्येशिया; वीएतनाम

0 पैसे
१६ मार्च, १९६९
२५ फाल्गुन, १८९०

पी एन बी लघु उद्योगों के विकास में सहायता करता है

ऐसा समय अवश्य आता है जब कि नये साज सामान की खरीद, कारखाने के आधुनिकीकरण तथा वर्तमान कारखाने के विस्तार के लिये पूजी की आवश्यकता होती है। तब पी एन बी सहायता के लिये अपना हाथ बढ़ाता है।

पी एन बी लघु उद्योगों को बहुत ही आसान शर्तों पर थोडी तथा औसत अवधि के लिये ऋण देता है।

अधिक विवरण के लिये पीएनबी की निकटतम शाखा से संपर्क स्थापित करें। सारे भारत में हमारी ५०० मे अधिक शाखाए हैं।

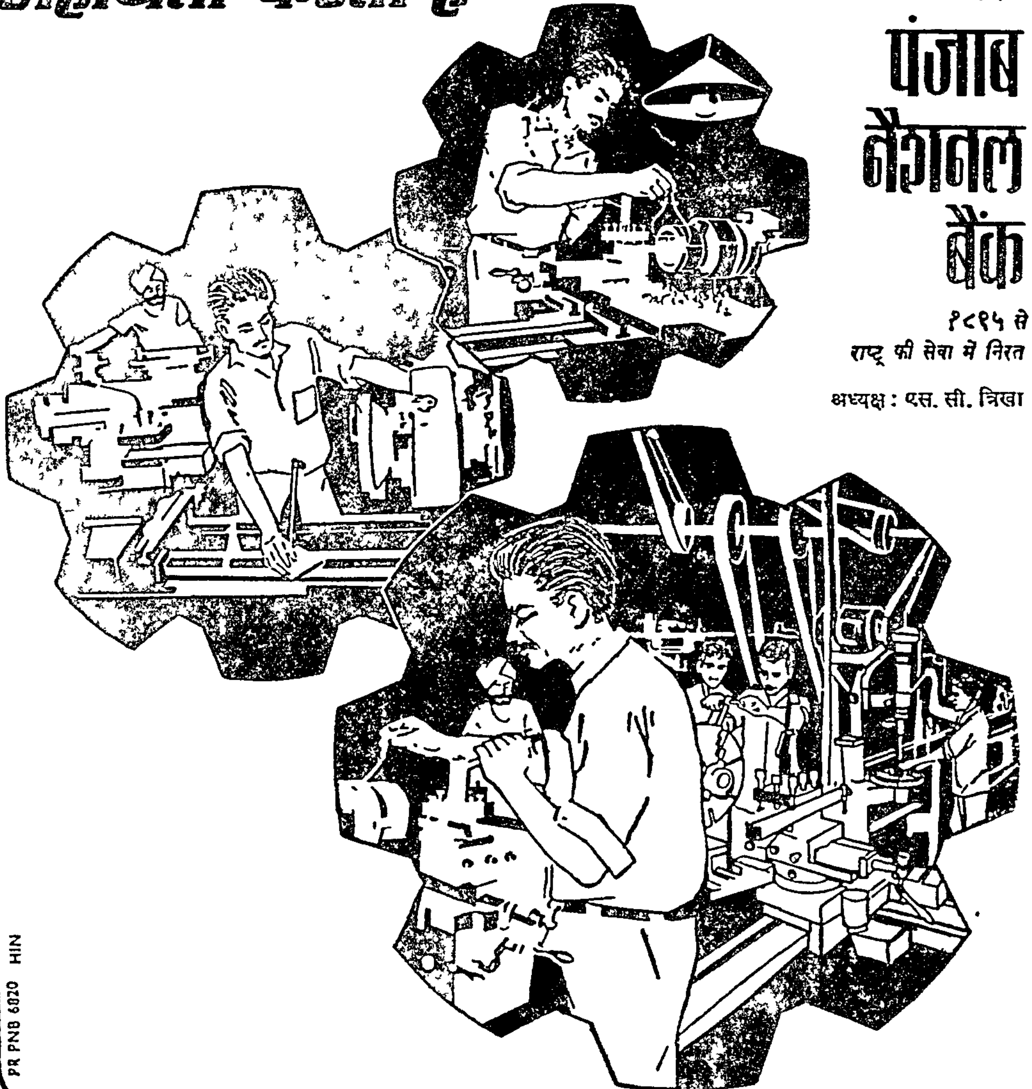

पंजाब नैशनल बैंक

१८९५ से

राष्ट्र की सेवा मे निरत

अध्यक्ष : एस. सी. त्रिखा

PR PNB 6820 HIN

मत और सम्मत

KOTA

गांधी और बौद्धिक वर्ग : २३ फ़रवरी : गांधी शताब्दी-समारोहों की गूंज में यह संक्षिप्त किंतु सटीक आलोचना प्रस्तुत करने के लिए 'दिनमान' को धन्यवाद. निश्चय ही कर्म से बचने का यह सब से सुंदर प्रयास है कि बंद कमरों में विचार-गोष्ठियों का आयोजन कर कतिपय नामवारी व्यक्तित्व 'वादों' के वायदे पूरे करते रहें.

—ज्ञानस्वरूप चौधरी, मुंगेर

भूतपूर्व कांग्रेसाध्यक्ष का अंग्रेज़ी पढ़ा गया (लिख कर) भाषण हमें भी पढ़ने को मिला. लगता है अंग्रेज़ी भाषा में वह भी किसी हिंदी भाषी जनता-सुंदरी से प्रेमालाप करना चाहते हैं. मगर सिवा गिटपिट के सुंदरी को क्या मिला होगा भला. और अगर गांधीवाद उन्हें केवल अंग्रेज़ी-दाँ अफ़सरों को ही सिखाना है तो अच्छा होगा कि एकाध किताब 'गांधीवाद' पर लिख कर बटवा दें. किताब तो अंग्रेज़ी में ही होगी—क्यों कि गांधीवाद और हिंदी प्रेम हिंदी में प्रकट करना पिछड़ापन लगेगा उन्हें, दरअसल इन नेताओं का गांधीवाद पर चीखना-चिल्लाना सिवाय पाखंड के और कुछ नहीं लगता. मैं अगर वहाँ उपस्थित होता तो अवश्य श्री गिरि की 'रचनात्मक विद्रोह' वाली बातचीत पर चीख पड़ता, 'आप का गांधी के विषय में बोलना पाखंड है'.

—भुवन दुबे, छिंदवाड़ा (म. प्र.)

लॉटरियाँ : लॉटरी और जुआ में तत्त्व की दृष्टि से कौन-सा अंतर है? लॉटरी का टिकट खरीदने वाले सर्वसाधारण मनुष्य के मन में क्या वही प्रवृत्ति कार्यरत नहीं होती जो किसी जुआरी के होती है. 'नसीब के खेल' के अधीन हो कर जनसाधारण में अकर्मण्यता के भाव नहीं जगेंगे? बिना किसी परिश्रम के लखपति बनने के सपनों से दिन-ब-दिन अकर्मण्यता में वृद्धि हो कर चरित्र-पतन न होगा? गांधी जन्मशताब्दी-वर्ष में जहां एक ओर गांधी जी के सिद्धांतों को आचरण में लाने की सीख दी जा रही है वहीं दूसरी ओर गांधीवादी सरकारें लॉटरियाँ चला कर मानव की सहज प्रलोभना प्रवृत्ति को उकसा कर क्या गांधी जी के सिद्धांतों की हत्या नहीं कर रहीं?

—कांत देसाई, नाइक पथ, नागपुर

सरकारी लॉटरियों का प्रचलन हमें भाग्य-वादी तो बनाता ही है, साथ ही पूंजीवादी प्रवृत्ति का द्योतक है. हैरानी की हद तो यह है कि कॉमरेड नंबूदिरिपाद जैसे साम्यवादी भी इस में सहयोग कर रहे हैं. पता नहीं उन को कहाँ इस कार्य में साम्यवादी प्रगतिशील दर्शन के लक्षण दिखायी दे गये. उन की प्रगतिशीलता के इस पक्ष ने काफ़ी परेशान किया है. संभव है कि लॉटरी न आने की निराशा आत्महत्या जैसे अपराधों को भी जन्म दे. इस कार्य के खिलाफ़ सभी लोगों को आंदोलन करना चाहिए.

—रमेश खंडेलवाल, भरतपुर (राज.)

अंग्रेज़ी हटाओ : मध्यप्रदेश विधानसभा में संविधान और क़ानून का हनन हुआ है. विधायक श्री कल्याणमल जैन ने सदन में राज्यपाल के अंग्रेज़ी पत्र को जला कर संविधान और क़ानून की रक्षा करने का प्रयत्न किया था. अतः क्षमा राज्यपाल को माँगनी चाहिए थी, क्यों कि मध्यप्रदेश के राज्यपाल होते हुए उन्होंने एक निजी फ़र्म को अंग्रेज़ी में संदेश भेजा था. ज्ञातव्य है कि मध्यप्रदेश सरकार ने गत १५ अगस्त से अंतिम रूप से हिंदी में सरकारी काम-काज करने का निर्णय किया है. अंग्रेज़ी में व्यवहार पर विभागीय कार्रवाई करने की व्यवस्था भी की गयी है. मध्यप्रदेश के राज्यपाल श्री के. सी. रेड्डी मध्यप्रदेश राज्य के नौकर हैं; राज्य सरकार से वेतन और अन्य सुविधाएँ पाते हैं. अतः श्री रेड्डी मध्यप्रदेश सरकार की मातृभाषा और राजभाषा का ही व्यवहार कर सकते हैं, अंग्रेज़ी का नहीं. अगर भविष्य में राज्यपाल राजभाषा हिंदी में पत्र न लिख कर अंग्रेज़ी में सरकारी पत्र-व्यवहार आदि करें तो अखिल भारतीय अंग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन अपनी मध्यप्रदेश शाखा के माध्यम से राज्यपाल को हटाने की माँग करेगा.

—कृष्णनाथ, (अंग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन) वाराणसी

हमें बहुत अधिक प्रसन्नता होगी यदि हिंदी भाषी, तेलुगु, तमिल, मलयालम अथवा कन्नड़ व दक्षिण भारत निवासी हिंदी को एक अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ना शुरू कर दें और अंग्रेज़ी को निकाल बाहर करें, जो कि आज अनेकों ही के मार्ग में रोड़ा बन रही है.

—मोहनलाल गुप्त, पिलानी

नाम-संक्षेप : छोटे नाम या नाम का छोटा रूप हो जाना अंग्रेज़ी नाम-प्रणाली की विशेषता है. पर क्या यह विशेषता हिंदी या भारतीय भाषाओं में नहीं आ सकती? यदि हिंदी में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना *या* सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन जैसे बड़े नाम लिखने की असुविधा या अनिच्छा हो तो एस. डी. या जी. एम. की अपेक्षा मूल नामों का स. द. या स. ही लिखना क्या हास्यास्पद है? वी. पी. सुरी के स्थान पर वि. प्र. सुरी लिखने से क्या नामगत सौंदर्य में कुछ कमी आ जायेगी. मराठी ने तो इस भारतीय लघुरूप नाम-प्रणाली को अपना लिया है. प्रायः बड़े-बड़े साहित्यकारों के नाम इसी प्रकार के हैं. जैसे ना. सी. फड़के; वि. स. खांडेकर, पु. भा. भावे. क्या हिंदी सहित संपूर्ण भारतीय भाषाओं में ऐसा नहीं हो सकता? कम से कम हिंदी को तो इस दिशा में शुरूआत कर देनी चाहिए; जैसे एस. राधाकृष्णन् को स. राधाकृष्णन्, वाइ. बी. चव्हाण को य. व. चव्हाण. वैसे इस संबंध में अनेक दिक़्क़तें हैं. एक पत्रकार के नाते मुझे मालूम है कि हिंदी समाचारपत्रों को अंग्रेज़ी पर कितना निर्भर रहना पड़ता है. समाचार समितियों में सब नाम अंग्रेज़ी प्रणाली में ही लिखे रहते हैं और हरेक के बारे में जानकारी होना संभव भी नहीं, ताकि उसे भारतीय नाम-प्रणाली के अनुरूप परिवर्तित किया जा सके. फिर भी, अधिकतम तथा संभवतम प्रयत्न अवश्य होने चाहिये.

—विलास गुप्ते, दुर्ग (म. प्र.)

भिलाई : इस्पात-कारखाने में जातिवाद और प्रांतीयता पर आधारित पक्षपात और शत्रुता की लिखित शिकायतें इस्पातमंत्री, अर्थमंत्री, गृहमंत्री, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति को भेजी गयीं थीं. ये शिकायतें कारखाने के उच्चाधिकारियों के पास आ गयी हैं. इस कार्यवाही के अर्थ ये हुए कि केंद्र के मंत्री कुछ नहीं कर सकते. प्रश्न उठता है कि मंत्रिमंडल है किस लिए?

—रा. मू. अग्रवाल, भिलाई

छात्र-समस्याएँ : छात्र-युवा समस्याएँ पूर्वापेक्षा आज और भी उलझ गयी हैं. छात्र शिविरों में शासक एवं अध्यापकवर्ग की उदासीनता, मनमानी और भेदमूलक प्रवृत्तियाँ एवं राजनीतिक पक्षधरों के जोशखरोश

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

'मंत्री के रूप में अब मैं सरकार के विरुद्ध और अधिक प्रभावशाली आंदोलन चला सकूंगा'

वाले व्याख्यान और अपने दलीय सिद्धांतों को घुसेड़ कर उन्हें वरगलाने की ओछी नीति ने उन के परंपरागत संस्कारों को बुरी तरह झकझोर दिया है.

—अशोक डेढ़गवें, (भा. रा. यु. सं) गया

गुप्त गुप्त काल : यदि दिनमान जैसे पत्रों के माध्यम से अचेतन सरकार को कुछ असर हो तो बड़ा अच्छा होता, क्यों कि जिस तरह भितरी में गुप्तकालीन ईंटो का पूर्ण नक्काशी-युक्त मंदिर और आसपास अनेक स्थान खुदाई के लिए शेष हैं ठीक उसी तरह सिरपुर (श्रीपुर) जिला रायपुर में उसी काल के मंदिर है. लगता है दोनों स्थान किसी न किसी सूत्र से आवद्ध थे. उस स्थान की दुर्दशा इतनी अधिक है कि सोचा भी नहीं जा सकता. यहाँ अनेक टीले ऐसे हैं जिस की खुदाई शेष है और यहाँ अनेक पुरातत्त्व-सामग्री और विशाल बुद्ध की प्रतिमा की कोई सुरक्षा नहीं है. कहते हैं कि पहले सरकार ने ध्यान दिया था, अव सरकार इस ओर ध्यान दे सके तो सर्वोत्तम होगा.

—एम. एस. शर्मा, वागवहरा, रायपुर

स्यायित्व या प्रगति : संपादकीय : २३ फ़रवरी : ग़ैर-कांग्रेसी, कांग्रेसी सरकारों तथा उत्तरप्रदेश के अवसरवादियो को चाहिए कि इस में अपनी सूरत देखे और वैठ कर प्रायश्चित्त करे. २० वर्षो तक राजकीय जीवन व्यतीत करने के वाद हर कांग्रेसी नेता के सामंतशाही अकड में ऐंठ आ गयी है. जन-आंदोलन अव कांग्रेस के वस की वात नही रह गयी. इस का ज्वलंत उदाहरण मध्यप्रदेश है. यहाँ हर रोज जनआंदोलन के कार्यक्रम विगड़ते और वनते रहते हैं.

—गिरिजाशंकर जायसवाल, मनेंद्रगढ़ (म. प्र.)

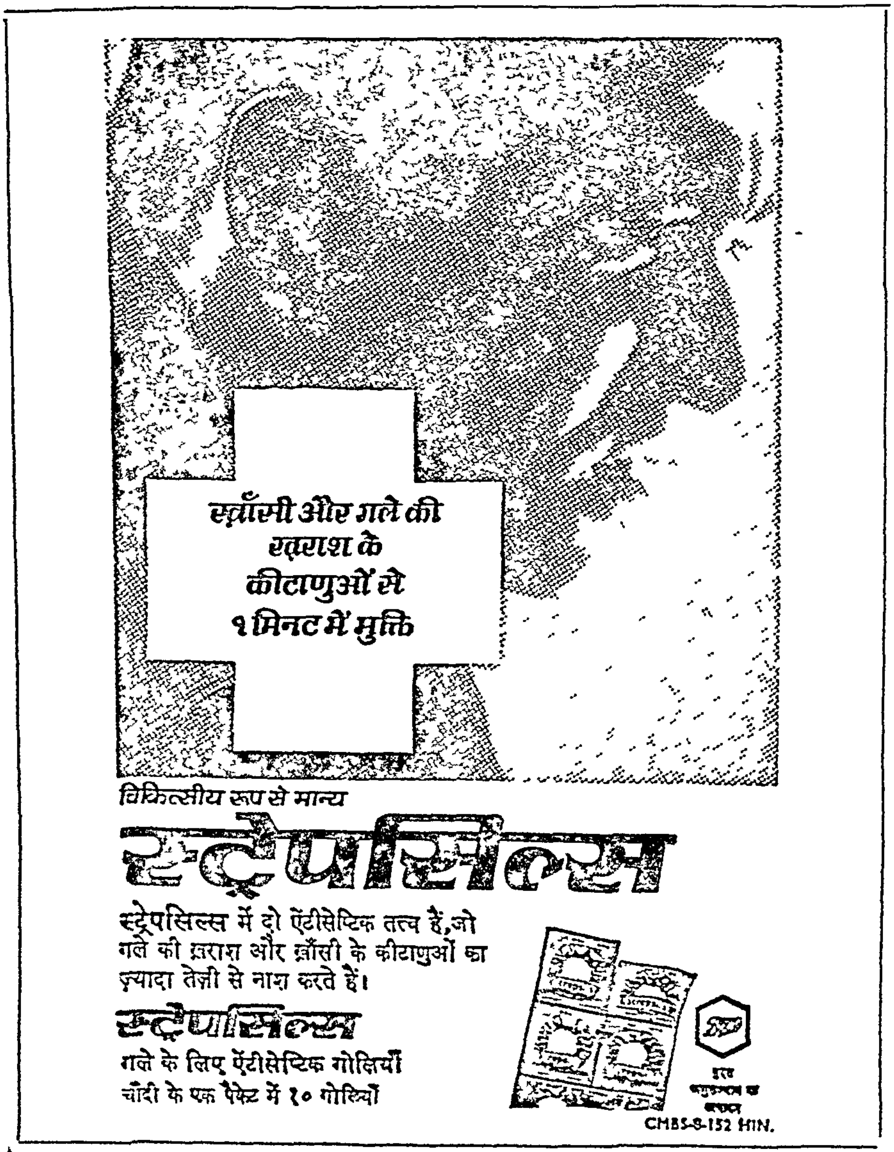

पिछले सप्ताह

(२७ फ़रवरी से ५ मार्च, १९६९ तक)

देश

२७ **फ़रवरी :** विहार के मुख्यमंत्री श्री हरिहर सिंह द्वारा कांग्रेस हाई कमान से मंत्रिमंडल के गठन पर वातचीत. श्री कमलापति त्रिपाठी उत्तरप्रदेश के उपमुख्यमंत्री नियुक्त. केरल मे मज़दूरों और पुलिस में मुठभेड़ के कारण तीन व्यक्तियों की मृत्यु.

२८ **फ़रवरी :** उपप्रधानमंत्री और वित्तमंत्री श्री मोरारजी देसाई द्वारा १९६९-७० का वजट लोकसभा मे पेश.

१ **मार्च :** उत्तरप्रदेश विधान परिषद् के सभापति दरवारीलाल शर्मा का लखनऊ में देहांत. गोवा-स्वातंत्र्य-संग्रामी मोहन रानाडे का दिल्ली पहुँचने पर स्वागत.

२ **मार्च :** सोवियत रूस के प्रतिरक्षामंत्री ग्रेचको का दिल्ली आगमन.

३ **मार्च :** पश्चिम वंगाल के राज्यपाल को ६ मार्च तक वापस वुलाने की संयुक्त मोर्चा सरकार की माँग गृहमंत्री चव्हाण द्वारा अमान्य.

४ **मार्च :** होली के अवसर पर सारे देश में समारोह. विहार मंत्रिमंडल के गठन में अड़चनें वरकरार.

५ **मार्च :** प. वंगाल के राज्यपाल धर्मवीर के अभिभाषण के वारे मे मुख्यमंत्री अजय मुखर्जी से पत्र-व्यवहार.

विदेश

२७ **फ़रवरी :** रोम में निक्सन-विरोधी प्रदर्शन. भुट्टो द्वारा अय्यूव के त्यागपत्र की माँग.

२८ **फ़रवरी :** भारतीय सेना-अध्यक्ष कुमारमंगलम् नेपाल सरकार द्वारा सम्मानित. युर्दान और इस्राइली सैनिकों में गोलावारी.

१ **मार्च :** सीरिया में रक्तहीन क्रांति. पश्चिम पाकिस्तान की मुस्लिम लीग द्वारा देश में प्रत्यक्ष चुनावों का समर्थन.

२ **मार्च :** रूसी सीमा-सैनिकों पर चीनी सैनिकों की गोलीवारी. सीरिया के गुप्तचर विभाग के प्रधान कर्नल अब्दुल करीम जुंदी द्वारा आत्महत्या.

३ **मार्च :** पीकिङ में रूसी दूतावास का चीनी लाल रक्षकों द्वारा घेराव. अमेरिका द्वारा अपोलो-९ का अंतरिक्ष में छोड़ा जाना.

४ **मार्च :** पूर्व पाकिस्तान में पूर्ण हड़ताल. गिनी मे आपत्कालीन स्थिति की घोषणा.

५ **मार्च :** पश्चिम जर्मनी सोशलिस्ट पार्टी के गुस्ताव हिनमान नये राष्ट्रपति निर्वाचित.

पत्रकार संसद

एशिया में लोकतंत्र का भविष्य

एशिया में लोकतंत्र का भविष्य क्या है ? इस प्रश्न का विश्लेषण करते हुए ब्रितानी पत्र गार्डियन ने भारत, पाकिस्तान और थाईदेश की हाल ही की घटनाओं की समीक्षा की है. पत्र ने विश्वास प्रकट किया है कि एशिया में पश्चिमी देशों का हित साधन तभी तक हो सकता है जब तक वहाँ राजनैतिक स्थिरता है, पर यह स्थिरता एशियाई देशों को पश्चिमी राष्ट्रों के अस्त्र-शस्त्र सप्लाई करने से अथवा इन देशों में शस्त्र-संग्रह को प्रोत्साहन देने से कभी नहीं रह सकती. हाल ही के अपने एक संपादकीय में पत्र ने लिखा है—

एशिया में लोकतंत्र पहले ही एक मुरझाता हुआ पौधा है और हाल ही में उस को और भी तेज़ हवा के झोंके लगे हैं. उत्तर भारत में मध्यावधि चुनावों से इस तरह की हिंसा भड़की कि भारत अत्यधिक चिंतित हो उठा. श्रीमती गांधी की कांग्रेस पार्टी उन के अपने राज्य उत्तरप्रदेश में सरकार बनाने में भले ही सफल हो जाये पर उसे पूर्ण कांग्रेस सरकार नहीं कहा जा सकता. इस के अलावा मध्यावधि चुनावों वाले अन्य राज्यों में भी संयुक्त सरकार ही बनेगी, अतः स्थिरता की संभावना नहीं. थाईदेश की सैनिक सरकार बड़ी सावधानी से लोकतंत्र की ओर बढ़ रही है, क्यों कि हाल ही के चुनावों में जनता की रुचि लोकतंत्र की ओर ही अधिक रही. पाकिस्तान में राष्ट्रपति अय्यूब के बुनियादी लोकतंत्र पर दबाव बराबर बढ़ रहा है.

यह निर्विवाद है कि जिन एशियाई देशों में लोकतंत्र का विकल्प इस समय है वह आगे चल कर हानिकर होगा . कई एशियाई देशों में यह देखा जा चुका है कि सीमित लोकतंत्र से ही तानाशाही पलती रहती है, जिस का परिणाम अव्यवस्था और गड़बड़ भी होती है. पर सभी जगह ऐसा होना अनिवार्य नहीं है. कुछ तानाशाह अनुभव से सीखते हैं और इसी तरह मतदाताओं को तानाशाही से कुछ अनुभव प्राप्त होते हैं. राष्ट्रपति अय्यूब की बुनियादी लोकतंत्र की प्रणाली शुरू में सफल रही. इसी प्रकार फ़्रांसीसी राष्ट्रपति द गॉल को कुछ व्यक्तियों के विरोध के कारण ही असंतोष का सामना करना पड़ा, जिस के शांत होने पर उन्होंने राहत की साँस ली. फ़्रांस में आर्थिक प्रगति, तटस्थता और दृढ़ता आदि जैसी चीज़ें शायद लोकतंत्रीय अथवा अपेक्षया अधिक स्वतंत्र प्रशासन द्वारा संभव न होतीं. जनता का हित दिल से चाहने वाले तानाशाहों में प्रवाह के विरुद्ध बहने की शक्ति भी होती है. इधर भारत के साथ युद्ध ने राष्ट्रपति अय्यूब के बहुत से कामों पर पानी फेर दिया. आर्थिक प्रगति रुक गयी और विदेश-नीति का रुख भी बदलना पड़ा. सीमित लोकतंत्र अथवा तानाशाही वाले देशों में भ्रष्टाचार भी अपेक्षया अधिक होता है और पाकिस्तान के मामले में इस भ्रष्टाचार ने विरोध को अधिक भड़काया.

भारत में लोकतंत्र का सर्वाधिक प्रतिष्ठित स्थान है, भले ही उस में यदाकदा कुछ गड़बड़ रही हो. इतने बड़े आकार और विविधता वाले देश में लोकतंत्र का कोई और विकल्प हो भी नहीं सकता. श्री नेहरू की मृत्यु के बाद से भारत की अनेक समस्याओं के लिए सुदृढ़ नेतृत्व की आवश्यकता रही. यह श्रीमती गांधी के नेतृत्व में संदेह करने की कोई बात नहीं है, पर स्थिति यह है कि उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष के अलावा समूचे भारत को एक सूत्र में बाँधने वाला कोई कार्यक्रम ही नहीं रहा. जब तक ऐसा कोई कार्यक्रम सामने नहीं आता भारत की केंद्रीय सरकार को तरह-तरह के तनाव और दबाव में काम करना पड़ेगा. भारत के राज्य उत्तरप्रदेश ने यह सबक़ तो ले ही लिया होगा कि कांग्रेस से छुटकारा पाना एक बात है और उस का विकल्प ढूँढ निकालना बिल्कुल दूसरी बात. पंजाब और बिहार ने यह सबक़ भले ही न लिया हो पर वे स्थिरता के लिए दूसरे रास्ते से ही आगे बढ़ रहे हैं.

थाईदेश में एकता के लिए राष्ट्रीय आधार जितना व्यापक है उतना शायद ही किसी अन्य एशियाई देश में हो. अन्य एशियाई देशों में उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष से जो राजनैतिक जागरुकता आयी है उस की थाईदेश में ज़रूर कमी है. फिर भी बैंकॉक में सरकार की हार इस बात का प्रमाण है कि लोग लोकतंत्र की आकांक्षा रखते हैं. भ्रष्टाचार के अलावा अमेरिका की उपस्थिति को ले कर भी वर्तमान सरकार के प्रति असंतोष है. इस में संदेह नहीं अमेरिकी उपस्थिति देश के लिए आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होने के साथ-साथ सुरक्षा की भी गारंटी है, पर इसे स्थायी मानने को जनता तैयार नहीं है. वीएतनाम समस्या के समाधान से स्वतंत्रता की एक नयी परिभाषा का जन्म होगा, जिस में चीन के साथ समझौता भी आता है. फिर सभी को अपना दिल टटोल कर देखना होगा. अमेरिकी थाईदेश से जाने में समय भले ही लगाये पर उन्हें एक बात तो ध्यान में रखनी ही है और वह यह कि एशिया में पश्चिमी देशों का हितसाधन यहाँ की राजनैतिक स्थिरता से ही हो सकता है और यह स्थिरता केवल शस्त्रों की सप्लाई पर ही निर्भर नहीं है.

पश्चिम एशिया

पश्चिम एशिया की दिनोंदिन बिगड़ती स्थिति को देखते हुए अमेरिकी पत्र **क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर** ने सख़्त चेतावनी दी है कि यदि संयुक्तराष्ट्र अथवा चार बड़े देश (अमेरिका, ब्रिटेन, फ़्रांस और रूस) जल्दी ही दृढ़तापूर्वक कोई उचित कार्यवाही नहीं करते हैं, तो पश्चिम एशिया को बदतर होने से बचाने का वक़्त हाथ से निकल जायेगा—

ज्यूरिच में इस्राइली विमान पर अरब कमांडो का हमला एक ऐसी कार्यवाही थी जिस से उत्तेजना पा कर इस्राइल बहुत गंभीर क़दम उठा सकता था. हम इस्राइल से भी संयम से काम लेने का अनुरोध करते हैं और उसे समझाना चाहते हैं कि वह अंतरराष्ट्रीय क़ानून को इस मामले में कार्यवाही करने दे. यह संयम इस्राइल तभी बरत सकता है जब उस का यह विश्वास हो कि दुनिया के सभी देश इस तरह की हिंसा न होने देने के लिए कृतसंकल्प है. दूसरे शब्दों में कहना चाहिए कि दरअसल न तो इस्राइल सरकार और न जनता इस तरह के अप्रत्याशित आक्रमणों को सहन करेगी. ऐसी हालत में किसी तीसरी शक्ति को पश्चिम एशिया में शांति-स्थापित करानी ही होगी. इस प्रकार की शांति स्थापना के बाद ही पश्चिम एशिया की समस्या का कोई स्थायी समाधान निकाला जा सकेगा.

हालाँकि ज्यूरिच की इस घटना पर अरब देशों, विशेष कर काहिरा के विचार दिखाने के लिए कुछ और हो सकते हैं पर हम नहीं

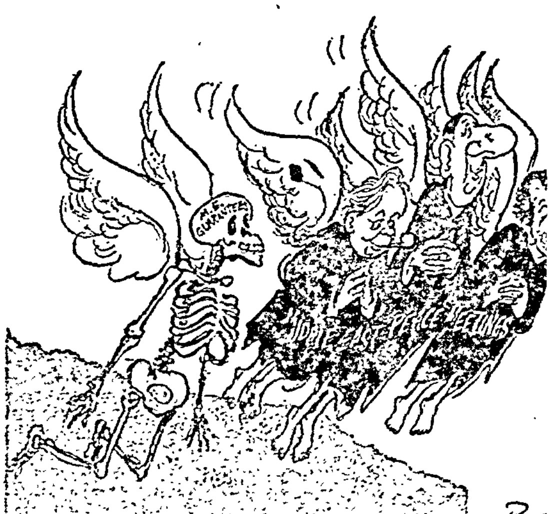

मध्य-पूर्व शांति-सम्मेलन पर गार्डियन में पापास का व्यंग्य

समझते अंदर से काहिरा इस घटना पर प्रसन्न होगा.

पश्चिम एशिया की स्थिति अरब और इस्राइल के बीच का कोई अपना मामला नहीं रह गया है. यह संघर्ष अब विश्व शांति के लिए ख़तरा बन चुका है और सारे संसार का आज की स्थिति पर चिंतित रहना स्वाभाविक ही है. अब यह समूचे विश्व का कर्त्तव्य है कि वह स्थिति को बदतर होने से बचाने की कोशिशों में कोई कसर न उठा रखे.

पाकिस्तान

पाकिस्तान की ताज़ा घटनाओं पर ब्रितानी पत्रों में व्यापक रूप से टिप्पणियाँ की जाती हैं. ब्रितानी पत्र **इकॉनॉमिस्ट** ने अपनी ताज़ा संपादकीय टिप्पणी में अब यह प्रश्न उठाया है कि राष्ट्रपति अय्यूब के जाने के बाद पाकिस्तान में स्थिति पहले से बेहतर होगी या ख़राब? पत्र का विचार है—

'पिछले दस वर्षों में पश्चिमी देशों की सरकारों की पाकिस्तान के बजाय भारत में दिलचस्पी अधिक रही है जहाँ लोकतंत्र-व्यवस्था पूर्ण है और उस का पालन भी बराबर होता रहता है. पाकिस्तान में लोकतंत्र का स्थान एक ऐसी प्रणाली ने ले लिया जिस की निंदा अगर करें तो एकतंत्र कह सकते है और अच्छा बताना चाहें तो उसे प्रजा-हितैषी तानाशाही कहा जा सकता है. अब ये ज़माना भी ख़त्म हो रहा है. तीन महीने के लगातार प्रदर्शनों ने राष्ट्रपति अय्यूब को इस एलान के लिए मजबूर कर ही दिया कि वह राष्ट्रपति-पद के अगले चुनावों में खड़े नहीं होंगे.

१९५८ से पाकिस्तान में आम तौर पर शांति रही और सब काम ठीक चलता रहा. राष्ट्रपति अय्यूब के विरोधी भी थे, पर उन्हें परेशान करने या उन के ख़िलाफ़ कोई कार्यवाही करने की ज़रूरत नहीं पड़ी. पाँच वर्ष के भीतर ही अय्यूब ने प्रशासन को ऐसे सांचे में ढाल दिया कि उसे अर्द्ध सैनिक और अर्द्ध नागरिक कहा जा सकता था. सिद्धांत में तो पाकिस्तान अपने पश्चिमी मित्रों के साथ रहा, पर चीन और सोवियत संघ से भी उस का मेलजोल रहा. पर भारत से पाकिस्तान के संबंध बहुत ख़राब रहे. इतना सब होते हुए भी राष्ट्रपति अय्यूब की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि सिंधु नदी पानी के बँटवारे में १९६० में उन्होंने भारत से सहमति प्राप्त कर ली. यह एक बहुत बड़ी बात थी, क्यों कि यह प्रश्न दोनों देशों में युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर सकता था. १९६५ में भारत के साथ युद्ध राष्ट्रपति अय्यूब की बहुत बड़ी गलती थी, जिस का सुधार उन्होंने समय रहते कर लिया.

अगर पश्चिमी देश और कुछ हद तक भारत की सहानुभूति भी इस समय राष्ट्रपति अय्यूब के साथ हो तो इस में ताज्जुब की कोई बात नहीं.

इस में शक नहीं पाकिस्तान में पिछले कुछ सप्ताहों में पुलिस की गोलियों से जितनी जानें गयी हैं किसी पश्चिमी देश की सरकार तो उस से हिल जाती. पर एशियाई दृष्टि से यह कोई बहुत बड़ी संख्या नहीं है. मिसाल के तौर पर भारत के बंबई नगर में हाल ही के उपद्रवों में इतने ही या इससे अधिक लोग मरे होंगे. इन सब बातों से राष्ट्रपति अय्यूब ने सैनिक तानाशाह की तरह नहीं बल्कि एक राजनीतिज्ञ की तरह ही व्यवहार किया. इस पर यह चुनौती नहीं दी जा सकती कि वह देश पर से नियंत्रण और प्रभाव दोनों ही खो बैठे हैं.

अब कहा जा रहा है कि राष्ट्रपति अय्यूब के सत्ता से हटते ही पाकिस्तान में सब ठीक हो जायेगा. यह निर्विवाद है कि आर्थिक विषमताएँ कम करने वाली कोई भी सरकार पाकिस्तान या विदेश में ऐसे लोगों को प्रिय नहीं हो सकती जो पाकिस्तान में पूँजी लगाना चाहते है, जिस का मतलब यह होगा कि पूँजी-नियोजन न होने से पाकिस्तान की आर्थिक प्रगति धीमी पड़ जायेगी. पाकिस्तान में अभी इस बात की गुंजाइश है कि पूँजीपतियों को मध्यम वर्ग और ग़रीबों की सहायता करने के उद्देश्य से कुछ संयम से काम लेने के लिए राज़ी किया जा सकता है. कुल राष्ट्रीय आय और उपज को बड़ा नुकसान पहुँचाये बिना एक विवेकशील सरकार ही ऐसा कर सकती है.

यह कहना ठीक नहीं है कि राष्ट्रपति अय्यूब की जगह कोई भी सामूहिक नेतृत्व पाकिस्तान के लिए अभिशाप ही साबित होगा. श्री भुट्टो को वामपंथी और चीनी समर्थक और यहाँ तक कि पाकिस्तान का कृष्ण मैनन बताया जाता है. पर ऐसी ही सब बातें किसी समय क्या श्री नेहरू के बारे में नहीं कही गयी थी? वे महत्त्वाकांक्षी है, राष्ट्रवादी भी है, पर अगर पश्चिमी देश कुछ सावधानी बरतें तो ऐसा नहीं है कि श्री भुट्टो अपने देश को रूस अथवा चीन से ही बाँध देंगे. साथ ही श्री भुट्टो के जल्दी ही शिख़र पर पहुँचने की संभावना भी नहीं है. अगर वह शिखर पर पहुँचे भी तो पश्चिमी देशों में बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता है.

इस में भी संदेह नहीं कि भविष्य अंधकारमय भी हो सकता है अलग-अलग राजनैतिक दलों की आपसी प्रतिद्वंद्विता एक अलग ही शक्ल अख़्तियार कर सकती है. राष्ट्रपति अय्यूब की नीयत भले ही साफ़ हो पर उन के समर्थक किसी न किसी रूप में सत्ता पर काबिज़ रह सकतें हैं. चुनाव-प्रणाली बदली जा सकती है; पर सब से महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि समूचे देश का राजनैतिक ढांचा तय करना होगा. पाकिस्तान को अपना वर्त्तमान संविधान तय करने में ही आठ वर्ष का समय लग गया. चाहे जो भी हो राष्ट्रपति अय्यूब के सत्ता से हटने पर पाकिस्तान को बहुत-सी गंभीर समस्याओं का सामना करना ही होगा.

प्रेस जगत्

अंग्रेज़ी हटाओ

अखिल भारतीय अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन की स्थायी समिति ने फ़ैसला किया है कि अप्रैल से एक मासिक पत्रिका निकाली जाये, जिस का नाम "अंग्रेज़ी हटाओ पत्रिका" होगा. गत मास समिति की बैठक में पारित एक प्रस्ताव में कहा गया है कि उत्तरप्रदेश तथा बिहार में राष्ट्रपति-शासन के दौरान अंग्रेज़ी को पुन: लादने की कोशिश की गयी है, अत: अंग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन इन राज्यों में नवगठित सरकारों से यह आशा करता है कि वे अविलंब अंग्रेज़ी को हटायेंगी तथा व्यवसाय, समाचार-पत्र, प्रशासन तथा शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषाओं को प्रतिष्ठित करेंगी. अगर चुनी गयी सरकारें यह काम नहीं करती हैं तो सम्मेलन इन सरकारों के विरुद्ध ठोस क़दम उठाने का फ़ैसला कर सकता है.

एक अन्य प्रस्ताव में कहा गया है कि फ़िल्मों में अंग्रेजी का प्रयोग तत्काल बंद किया जाये तथा पोस्टर आदि मातृभाषा में छपाये जायें. व्यवसाइयों और निर्माताओं से आग्रह किया गया है कि वे अपने कारखानों में बनने वाली वस्तुओं पर अंग्रेज़ी का उपयोग न करें. अगर निर्माता एवं व्यवसायी सम्मेलन के इस आग्रह को नहीं मानेंगे तो मजबूरन सम्मेलन कोई ठोस कदम उठाने का फ़ैसला करेगा.

बैठक ने उ. प्र. बार कौंसिल के चुनावों में प्रत्याशियों द्वारा अंग्रेज़ी में परिचयपत्र छपाये जाने पर चिंता प्रकट की तथा ऐसे प्रत्याशियों का विरोध करने की सिफ़ारिश की.

आगामी १६ मार्च से २३ मार्च तक अंग्रेज़ी हटाओ सप्ताह मनाने का निर्णय लिया गया. इस अवधि में अ० भा० अंग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन की सभी शाखाएँ अंग्रेज़ी हटाने के लिए कुछ ठोस कार्य करेंगी.

"गांधी जन्मशताब्दी वर्ष" को अंग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन "अंग्रेजी हटाओ वर्ष" के रूप में मना रहा है. अत: इस समय गांधी विद्या अध्ययन संस्थान द्वारा निरन्तर अंग्रेज़ी के प्रयोग पर सम्मेलन चिंता व्यक्त करता है तथा संस्थान के संचालकों से आग्रह करता है कि वे शीघ्र ही अपने यहाँ से अंग्रेज़ी का प्रयोग समाप्त करें.

बैठक ने, एक अन्य प्रस्ताव द्वारा, काशी विश्वविद्यालय में पुन: अंग्रेज़ी के बढ़ते हुए प्रयोग पर चिंता व्यक्त की है और कहा है कि इस के विरोध के लिए सम्मेलन का एक प्रतिनिधिमंडल विश्वविद्यालय के अधिकारियों से मिलेगा.

भारत का राज्यपालन

उत्तरप्रदेश में राष्ट्रपति-शासन के एक वर्ष का हिसाब-खाता दिखाता है कि उस में देना अधिक है, पावना कम. इस अवधि में राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी ने जहाँ स्वयं एक कुशल प्रशासक होने का परिचय दिया वहाँ उन के कार्यकाल में यह भी स्पष्ट हुआ कि पुराने कांग्रेसी नेताओं की उत्पीड़ित जनता के प्रति संवेदना कितनी कुंठित हो गयी है और वे निश्चितता की मानसिक आरामतलबी में लिप्त हो चुके हैं.

असंवेदनशीलता : राज्यपाल रेड्डी के शासन-काल में प्रदेश के प्रायः डेढ़ लाख प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षकों के वेतन और महँगाई-भत्ते की वृद्धि के आंदोलन से प्रदेश में कम से कम माध्यमिक स्तर की शिक्षा डेढ़ मास के लिए निलंबित रही और प्रारंभिक शिक्षा दो मास से अधिक अस्तव्यस्त रही. इस आंदोलन को सभी स्तरों पर व्यापक जन-समर्थन प्राप्त था. परंतु राज्यपाल महोदय ने प्रारंभ में इसे कोई महत्त्व नहीं दिया और कह दिया कि नयी सरकार ही इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करेगी, क्यों कि राज्यकोष में धन की कमी है. राज्यपाल ने इस प्रकार की असंवेदनशीलता से जनमानस पर अपनी कोई बहुत उजली छाप नहीं छोड़ी. जब १८००० माध्यमिक शिक्षकों की जेल यात्रा तथा ३८ दिन लंबी हड़ताल के बाद शिक्षकों की प्रमुख माँगें स्वीकार की गयीं तो लगा कि शिक्षक-आंदोलन के साथ अनावश्यक शक्ति-परीक्षा कर के प्रशासन ने प्रदेश के गिरे हुए शिक्षा-स्तर को और नीचे पहुँचा दिया है. इसी मनोवृत्ति का परिचय ४ फ़रवरी से जारी डिग्री कॉलेज शिक्षकों की हड़ताल के बारे में भी यह कह कर दिया गया है कि 'डिग्री कॉलेज के शिक्षक छुट्टी मना रहे हैं.' जनपीड़ा के प्रति यह व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया ब्रिटिश नौकरशाहों की स्मृति ताज़ा कर देता है.

शासन-सूत्र सँभालने के बाद राज्यपाल ने पुरानी परामर्शदातासमिति की परंपरा का अंत कर सचिवसमिति पर ही निर्भर रहना श्रेयस्कर समझा. औपचारिक ढंग से विधान-परिषद की सभाएँ कर के चतुर्थ योजना के विषय में परामर्श माँगा गया और विधान-परिषद के सदस्यों की अनेक समितियाँ बना कर उन्हें विभिन्न विभागों से संबद्ध किया गया. इन की कोई वैधानिक क्षमता तो थी नहीं. अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि इस प्रकार के प्रयासों से राज्यपाल ने अपने शासन को जनप्रियता का जामा पहना दिया.

पहले सिनेमा : प्रशासन ने शिक्षक-आंदोलन के दौरान ग़ाज़ियाबाद में प्रसिद्ध शराब-निर्माता श्री मोहन के सपने को साकार करने के लिए अभिनेता सुनील दत्त और उन की अभिनेत्री पत्नी नरगिस को एक फ़िल्म स्टुडियो बनाने के लिए सस्ती ज़मीन और धन की प्रायः एक करोड़ रुपये की सहायता की उद्घोषणा कर यह स्पष्ट कर दिया कि उस की सहानुभूति किस वर्ग के साथ है. संविद सरकार के समय प्रदेश में हिंदी के प्रचलन को जो गति मिली थी उस पर भी राज्यपाल-शासन के दौरान अंकुश लगा दिया गया.

इसी प्रकार भ्रष्टाचार-विरोधी उपाय तथा सवा छह एकड़ की भूमि-जोतों पर संविद सरकार-प्रदत्त सुविधाएँ भी रोक कर उस जनक्रंदन की अवहेलना की गयी जो संविद सरकार ने सुना था और जिस की सुनवाई को प्रदेश कांग्रेस के चौथे आम चुनाव के घोषणापत्र में विशेष स्थान दिया गया था. ग्राम-पंचायतों और ग्राम-सभाओं की अवधि को बढ़ा कर उन के चुनावों को स्थगित करना प्रदेश की प्रजातांत्रिक प्रगति में बाधा देना ही नहीं कांग्रेस के शक्ति-केंद्रों को भी यथावत् बनाये रख कर उसे मध्यावधि चुनाव में शक्ति-संवर्धन का अवसर देना कहलायेगा.

उपमालंकार : अपने कार्यकाल को 'भरत शासन' की संज्ञा राज्यपाल ने दी है, जिस से 'निष्क्रियता' का बोध होता है. परंतु पूर्णतः ऐसा नहीं है. मंत्रियों और विधानसभा की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर कुछ आवश्यक और प्रगतिशील शासनादेश भी जारी किये गये. इस में एक था अनाज के आने-जाने पर प्रतिबंध का हटाना. इस प्रतिबंध के हटने से अनाज के भावों का स्तर औचित्य की सीमा पर क़ायम रहा. मार्क्सवादी कम्युनिस्टों की श्रमिक-अशांति उत्पन्न करने की योजना भी फलीभूत न हो सकी और प्रदेश में राष्ट्रपति-शासन-काल में श्रमिक-शांति का वातावरण रहा. प्रदेश के उद्योगों को राहत देने के लिए भी अनेक सभाओं और प्रतिनिधिमंडलों में विचार-विमर्श होता रहा और बड़े-बड़े उद्योगपति यह आशा व्यक्त करते रहे कि राज्यपाल-शासन की उपलब्धियाँ नयी सरकार के समय में भी बनी रहनी चाहिएँ. प्रदेश वित्तनिगम ने भी इस काल में अपनी नीति में परिवर्त्तन कर क़र्ज़ देने की प्रक्रिया सरल की और आश्वासन दिया कि प्रत्येक सुयोग्य उद्यमकर्त्ता को एक वित्तीय छत्र का संरक्षण प्राप्त रहेगा और उसे तीन वर्ष तक करों से मुक्ति रहेगी. कलाप्रिय राज्यपाल ने सांस्कृतिक प्रदर्शनों को भी मनोरंजन-कर की छूट दे दी और जहाँ शमीम बानो भोपाली और प्रवीन सुल्ताना आदि गायिकाओं के मुजरे नुमा गायन की प्रदेश में बढ़िया-सी आ गयी वहाँ सुरुचिपूर्ण सांस्कृतिक आयोजनों को भी भरपूर प्रोत्साहन मिला. पानी-बिजली की दरों का सारे प्रदेश में समानीकरण हो गया और यह एक ऐसा क़दम था जिसे पुरानी सरकारों ने उठाने का आश्वान दे कर भी कभी पूरा नहीं किया था. आधुनिक भरत ने भावी राम राज्य की सफलता के लिए भी यथेष्ट प्रयास किया और एक कर-जाँचसमिति की राय प्राप्त कर चतुर्थ योजना-काल के १७५ करोड़ रुपये का घाटा पूरा करने का रास्ता भी दिखा दिया. इस के अतिरिक्त राज्यपाल ने राजनीतिकों की पुरानी परंपरा निबाहते हुए केंद्रीय वित्त आयोग से भी प्रदेश के लिए ८७० करोड़ रुपये की ज़ोरदार माँग की और केंद्र पर जननेताओं की तरह यह आरोप भी लगाया कि उस ने उत्तरप्रदेश की जनसंख्या तथा पिछड़ेपन के अनुरूप सहायता नहीं दी है. उन के इस आग्रह के पीछे पुराने केंद्रीय वित्त-विभाग के राज्यमंत्री होने का अनुभव भी था और संभव है इस से प्रदेश को वह लाभ हो जिस की उसे पहले आशा नहीं थी. प्रदेशीय सरकारी कर्मचारी भी अपनी मँहगाई-भत्तों की वृद्धि तथा दूसरी और माँगों की पूर्ति के कारण इस समय संतुष्ट हैं. सभी दृष्टियों से राज्यपाल रेड्डी ने मुख्यमंत्री चंद्रभानु गुप्त को ऐसा एक संतुलित शासन-भार सौंपा है जो समस्याओं के रहते हुए भी एक प्रकार के स्थायित्व की ओर बढ़ रहा था. भविष्य में नये मुख्यमंत्री और उन के दल की आंतरिक प्रवृत्तियाँ इसे किस ओर ले जायेंगे, यह उन्हीं पर निर्भर है.

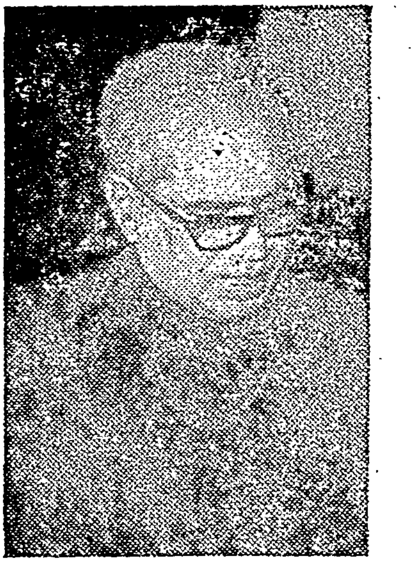

गोपाल रेड्डी : कुशल प्रशासक

बंबई की चिट्ठी

महानगरी का संकट

आज के ज़माने में किसी महानगरी में जा कर बसना आसान नहीं. वहाँ रहने में जितने सुख हैं उस से कहीं ज़्यादा मुसीबतें और फिर बंबई जैसी महानगरी में तो इनसान ५० लाख आदमियों की भीड़ में मानो खो ही जाता है. यहाँ की आबादी ५० लाख से ५५ लाख के लगभग है, यानी यह एक ऐसी महानगरी है जिस में आबादी का ठीक हिसाब ही नहीं लगाया जा सकता. पाँच-सात लाख की आबादी का आये दिन उतार-चढ़ाव होता रहता है. हज़ारों-लाखों लोग बड़ी-बड़ी आशाएँ ले कर इस शहर में आते हैं, जिन में से कुछ इनेगिने लोगों को छोटी-मोटी नौकरियाँ मिल जाती हैं और ज़्यादातर लोग आवारागर्दी की टोलियों में शामिल हो जाते हैं.

अकेलों की भीड़ : इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि जहाँ जितनी घनी आबादी होगी वहाँ उतने ही ज़्यादा जुर्म और अपराध होंगे. बंबई जितना दूर से अच्छा लगता है उतना पास से नहीं. बंबई से दूर रहने वालों के लिए बंबई एक स्वर्ग है और बंबई में बसने वालों के लिए नरक. ग़नीमत यह है कि बंबई की पुलिस काफ़ी होशियार है. दुनिया के कुछ देशों में बंबई की पुलिस को 'आदर्श पुलिस' की संज्ञा दी जाती है.

स्वर्ग-नरक : बंबई का जीवन स्वर्गतुल्य है या नरकतुल्य, इस विवाद में पड़े बिना वहाँ के एक दैनिक समाचारपत्र में छपी केवल एक दिन की जुर्म या अपराध की घटनाओं पर दृष्टिपात कर लेना उचित होगा. इस से शायद बंबई से दूर रहने वालों को बंबई के नारकीय जीवन की एक धुंधली किरण दिखायी दे जाये. ये खबरें केवल एक ही दिन की हैं, यानी जो अखबार में छप सकी हैं और न जाने ऐसी कितनी ही और खबरें अछपी ही रह गयी होंगी.

—तीन बच्चों की विधवा माँ गर्भवती हो गयी और दो आदमियों के साथ बंबई छोड़ कर पूना चली गयी. उस औरत का कहीं कुछ अता-पता नहीं चल रहा था. उन दो बदमाश व्यक्तियों को बंबई में पकड़ लिया गया और उन्हें पूना ले जाया गया, जहाँ ज़मीन खोद कर उस औरत की लाश को निकाला गया. पूना की ही एक नीम-हकीम औरत ने एक स्त्री का गर्भपात करने की नाकाम कोशिश की और गर्भवती परलोक सिधार गयी. लाश को वहीं कहीं धरती में दबा दिया गया.

—मुर्ग़ियों की ख़रीद-फ़रोख़्त में पति-पत्नी में ऐसा झगड़ा हुआ कि पति ने पत्नी को जान से ही मार दिया. उस समय आदमी शराब के नशे में धुत था. ये दोनों केरलवासी थे. पुलिस उस औरत के निकट संबंधियों का पता लगाने की कोशिश में है.

—दो आदमियों में, जो एक साथ दर्ज़ी की दूकान चलाते थे, खाने-पीने की चीज़ों के बँटवारे को ले कर ऐसा झगड़ा हुआ कि उन में से एक अस्पताल में पहुँच गया और एक भगवान् के घर.

—तीन घंटे के अंदर ही एक मनचले नौजवान ने एक कार और एक टैक्सी पर हाथ साफ़ किया. पुलिस से पहले उसे टैक्सी ड्राइवर के भाई ने पकड़ लिया.

—मकान के किराये से प्राप्त धन-राशि का बँटवारा करते समय दो भाइयों का आपस में झगड़ा हो गया और उन में से एक ने चंद पैसों (या रुपयों) के लिए अपने भाई को ही जान से मार डाला. उस के बाद उस क़ातिल को पकड़ लिया गया और उसे कठोर कारावास की सज़ा सुनायी गयी.

—और इसी प्रकार की और भी अनेकों घटनाएँ : एक आदमी को धोखाधड़ी के अपराध में गिरफ़्तार किया गया. कुछ ड्राइवरों को सड़क पर दुर्घटनाओं के अपराध में हिरासत में लिया गया और ८,००० से ज़्यादा लोग बिना टिकट सफ़र करते हुए पकड़े गये, जिन से ९,५०० रुपये किराया और जुर्माने के रूप में वसूल किये गये.

पुलिस की होशियारी का एक और उदाहरण—पुलिस ने बदमाश लोगों के एक गिरोह को, जो सुर्वे ब्रदर्स गग के नाम से मशहूर था, हिरासत में ले लिया. यह गैंग भोलेभाले लोगों, दूकानदारों और होटल के मालिकों को डरा-धमका कर लूट-मार किया करता था और पुलिस के लिए एक अच्छा खासा सिर-दर्द बना हुआ था. इस गिरोह के केवल दो आदमियों की गिरफ़्तारी से यह पूरा गिरोह तितर-बितर हो गया. इस के लिए पुलिस कमिश्नर ने राज्य के पुलिस अधिकारियों को बधाई दी.

विश्लेषण : बंबई में हुए अपराधों और जुर्मों का संक्षेप में विश्लेषण करने के लिए इन आँकड़ों पर एक नज़र दौड़ाना भी ज़रूरी है. १९६८ के दौरान बंबई में अपराधों की संख्या २७,४२० रही, यानी १९४७ की संख्या (२८,८९१) से कम. पुलिस कमिश्नर का कहना है कि अपराधों की संख्या में निरंतर ह्रास का कारण राज्य पुलिस की सतर्कता है. विभिन्न अपराधों की संख्या इस प्रकार है : १९६७ की संख्या कोष्ठकों में दी गयी है. खून और क़त्ल १५१ (१६९), क़त्ल की कोशिश ३३ (५२), डकैती २१ (२५), दीवार में सन लगाना और चोरी १,९४४ (२,१३९), अपहरण २९८ (३३७), लूट-मार १४,६४७ (१६,००९), जेब काटने की घटनाएँ ५२२ (६११) और छुरे या चाकू मारना ६४५ (६९२).

१९६८ में १,८३० व्यक्तियों को छोड़ा गया, जब कि १९६७ में १,३७९ व्यक्तियों को छोड़ा गया था. पुलिस के वरिष्ठ अधिकारी मोदक ने व्यक्तिगत जाँच-पड़ताल के बाद कहा है कि पुलिस की निष्क्रियता या लापरवाही के बारे में जितने आरोप लगाये जाते हैं उन में से ९५ प्रतिशत के लगभग निराधार होते हैं.

सुरक्षा-व्यवस्था : बंबई में पुलिस की शक्ति १८,७०० है, जिन में से ७,००० व्यक्ति सशस्त्र पुलिस में हैं. हर डिवीज़न के लिए दो वायरलेस गाड़ियों की व्यवस्था है, यानी कुल मिला कर दो दर्जन वायरलेस गाड़ियाँ.

चोरी-डकैती, लूट-मार जैसे अपराधों के अलावा पुलिस को कुछ और परेशानियों का भी सामना करना पड़ता है. उदाहरणार्थ १९६८ में पुलिस को २,५७९ प्रदर्शनों, ५,९३० सभाओं, ४१० मोर्चों और ४०० हड़तालों पर शांति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए इंतज़ाम करना पड़ा. बड़े-बड़े मोर्चे या हड़तालों पर कम से कम ७०० सिपाहियों की ज़रूरत पड़ती है.

कुछ ऐसे भी अपराध होते हैं जिस में पुलिस ज़्यादा सख़्ती नहीं कर सकती, जैसे औरतों और बच्चों के भिखारियों के कुछ ऐसे गिरोह हैं जो भीख माँगने के साथ-साथ लोगों की क़ीमती चीज़ें चुरा लेते हैं. ऐसी स्थिति में पुलिस ज़्यादा से ज़्यादा जनता को यह चेतावनी ही दे सकती है कि वह ऐसे आदमियों से सावधान रहें. भिखारियों की संख्या में काफ़ी वृद्धि हो रही है. यों भिखारियों में ऐसे भी बहुत से भिखारी हैं जो स्वस्थ हैं और कोई छोटी-मोटी नौकरी या मज़दूरी करने की स्थिति में हैं मगर इस पर वे न जाने क्यों इस धंधे को बेहतर समझते हैं और सड़कों पर भीख माँगते फिरते हैं; कभी पर्यटकों को परेशान करते हैं, तो कभी बंबई की साधारण जनता को और इन्हीं में से बहुतेरे ऐसे होते हैं जो भीख माँगने के साथ-साथ जेब कतरने की कला में भी काफ़ी दक्ष हैं.

भिखारियों के भी अपने-अपने गिरोह हैं. इन्हें भी एक ख़ास ढंग से प्रशिक्षित किया जाता है. इन के ग्राहक और इन की गली-बाज़ार बँटे होते हैं. इन को किसी भी सूरत में एक निश्चित धन-राशि इकट्ठी करनी होती है. ऐसे क़िस्से-कहानियाँ तो अक्सर सुने जाते हैं कि घरेलू नौकर घर की सफ़ाई करते-करते घर का सफ़ाया ही कर गया; या कुछ लोगों ने कृत्रिम ढंग से अपने शरीर को कोढ़ी बना लिया, ताकि उन्हें भीख के धंधे में ज़्यादा धन प्राप्त हो सके. पुलिस को यह सब भी देखना पड़ता है.

यहाँ के चंद बाज़ार तो ज़रूर रोशन हैं, मगर हज़ारों गंदी बस्तियों में बसने वालों की हर रात काली होती है.

पुरातत्व

सिंधु घाटी की लिपि

अनेक विद्वानों ने सिंधु घाटी-सभ्यता को अवैदिक घोषित किया है. अविभाजित भारत की प्राचीनतम सभ्यता के रूप में व्यापक स्वीकार देते हुए भी उन्होंने उसे शेष भारत की सभ्यता से नितांत भिन्न माना है. डॉ. मार्टीमेर ह्वीलर ने पाक संस्कृति को पाँच हज़ार वर्ष पुरानी कह कर आर्यों की गणना सिंधु घाटी-सभ्यता के विध्वंसकों में की है. इसी निष्कर्ष पर सिंधु घाटी की लिपि का, शेष भारतीय लिपियों से विपरीत, दाहिनी से बाईं ओर को लिखा हुआ माना गया और उस का संबंध प्राय: अभारतीय लिपियों से जोड़ने का प्रयत्न किया गया. इसी दिशा में चलते हुए फ़ादर हेरास और उन के शिष्यों ने सिंधु घाटी की तथाकथित अनार्य संस्कृति के उन तत्त्वों को उद्घाटित किया जिन से मिल कर शाक्त, जैन, शैव, योग आदि की परंपराओं का विकास हुआ है. डॉ. कार्मारकर की दृष्टि में ये सभी परंपराएँ अवैदिक व्रात्य और संभवत: द्रविड़ हैं, जब कि कुछ जैनाचार्यों ने इसी आधार पर सिंधु घाटी-सभ्यता को अनार्य जैन संस्कृति तथा उस के विध्वंसकों को बर्बर व हिंसक आर्य कहना प्रारंभ कर दिया है.

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के निदेशक और सिंधु घाटी की लिपि को सफलतापूर्वक पढ़ने वाले डॉ. फ़तहसिंह क़रीब तीस वर्षों से इस शोध-कार्य में लगे हुए हैं. उन की स्पष्ट मान्यता है कि पूर्वाग्रहों से मुक्त हुए बिना सिंधु घाटी-सभ्यता का स्रोत जानना संभव नहीं है. विदेशियों द्वारा आरोपित प्रत्येक बात को सत्य की तरह स्वीकार लेना भी अनुचित है. सिंधु घाटी-सभ्यता का रहस्य उस के मुद्रा-चित्रों पर अंकित लिपि में छुपा हुआ है. इस लिपि को **फ़ादर हेरास, डॉ. प्राणनाथ, स्वामी शंकरानंद, राजमोहन नाथ** तथा सब से अधिक सुधांशुकुमार रे ने पढ़ने का दावा किया है, किंतु कोई संतोष देने वाला परिणाम सामने नहीं आ पाया है. उदाहरणार्थ एक विद्वान् ने मोहेनजोदड़ो के एक मुद्रा-चित्र पर पशु की आकृति के ऊपर 'खांसने वाला इकसिंगा' लिखा है, जब कि डॉ. सिंह के अनुसार वहाँ 'अत्रि अग्निमान अन' शब्द हैं, जिन में से प्रत्येक को वैदिक दर्शन का पारिभाषिक शब्द माना जा सकता है.

अब तक सिंधु घाटी की लिपि को एक ही माना जा रहा है, पर डॉ. सिंह को चार लिपियों का पता चल चुका है, जिन में से तीन नि:संदेह बाईं से दाहिनी ओर को लिखी जाती थीं और एक संभवत: दाहिनी से बाईं ओर को लिखी जाती होगी. यद्यपि अभी तक सभी मुद्रा-चित्रों एवं लेखों का अनुवाद संभव नहीं हो सका है पर जो कुछ सफलता से पढ़ा जा सका है उस में ब्राह्मण ग्रंथों और उपनिषदों के प्रतीक प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं. ये प्रतीक न केवल हड़प्पा से प्राप्त मुद्रा-चित्रों में पाये गये हैं अपितु इन का अस्तित्व उन मुद्रा-चित्रों पर भी पाया जाता है जो मोहेनजोदड़ो के निम्नतम स्तर की गहराई में पाये गये हैं. ऐसा कोई भी लेख नहीं है जिस में कोई धार्मिक या दार्शनिक संकेत न किया गया हो.

ब्राह्मण ग्रंथों के प्रतीक : इस खोजपूर्ण निर्णय से भारतीय इतिहास की कई मन्यताएँ झूठी पड़ जाती हैं. मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा के लेखों में अग्नि, इंद्र, इंदु, वृत्र, वरुण, अज, अजा, श्येन, उमा, उषा, उरवा, क, अन, अप आदि शब्दों का उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होना जिन में वे ब्राह्मणों एवं उपनिषदों में होते हैं सिंधु घाटी-सभ्यता को उत्तर वैदिक काल का सिद्ध करता है. तद्वनं, वषट्, प्रणव आदि शब्दों की व्युत्पत्तियों पर तथा ब्राह्मण ग्रंथों में प्राप्त विचित्र समीकरणों अथवा पर्याय-योजनाओं पर जो नवीन प्रकाश पड़ता है उस से यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार भारतीय योग, मंत्र, तंत्र, आगम, पुराण, शैव मत, शाक्त मत आदि का स्वाभाविक संबंध वैदिक परंपरा से जुड़ा हुआ है. डॉ. फ़तहसिंह ने दिनमान के प्रतिनिधि के समक्ष सिंधु घाटी के अवर्ण की रोचक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए एक चार्ट भी दिखलाया, जिस में उन्होंने वर्णमाला को प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट किया है. उन्होंने बतलाया कि संदर्भ बदल जाने से भी कभी-कभी वर्ण-रूप बदल जाते हैं, पर उन के मूल चिह्न पहचाने जा सकते हैं और संपूर्ण मुद्रा-चित्र को सही अर्थ दिया जा सकता है. वे तत्कालीन अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृत भाषा को मानते हैं, पर उस की कुछ अलग विशेषताएँ थीं : (१) 'स' के स्थान पर 'सिंधु' जैसे शब्दों में 'ह' का उच्चारण होता था (२) 'वृक्ष' जैसे शब्दों में 'क' ध्वनि के स्थान पर 'ख' ध्वनि उच्चरित होती थी (३) आधुनिक संस्कृत के 'क्त' प्रत्यय के स्थान पर 'त' न हो कर 'त्र' होता था, जैसे भारत्र (भारत), सुवृत्र (सुवृत) आदि (४) प्रथमा विभक्ति में विसर्ग के स्थान में प्राय: नकार का प्रयोग होता था. (५) कभी-कभार संधि-नियम पदों में लागू नहीं होते थे. (६) सब जगह विभक्तियों का प्रयोग अनिवार्य नहीं था.

उपनिषदों के प्रतीक : विभिन्न लिपियों में मूलत: दो प्रकार के अवर्ण पाये जाते हैं— एक फ़ारसी लिपि के अलिफ़ की तरह डंडाकार और दूसरा दो वक्र रेखाओं से निर्मित फ़ारसी ऐन अथवा ब्राह्मी आकार के समान. सिंधु घाटी में डंडाकार अवर्ण तो प्रचलित है पर उस के साथ वक्र रेखाओं से निर्मित आकार या तो लंबे खरबूज़े की खड़ी आकृति का है अथवा वृत्ताकार हो गया है. तीनों प्रकार के अवर्ण सिंधु घाटी में एक प्रतीक-परंपरा से संबंध

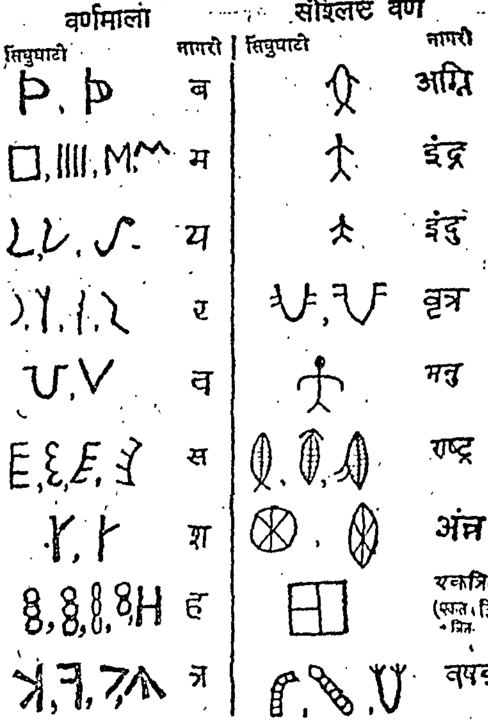

रखते हैं. बृहदारण्यक—उपनिषद् (४,१,३) के अनुसार निर्गुण आत्मा की पुरुष-रूप में कल्पना की गयी है, जो सगुण होने पर क्रमश: (१) अहंनाम (२) आलिंगनबद्ध स्त्री-पुरुष सदृश तथा (३) दो पृथक् खंडों, पति और पत्नी से अनेक प्रजाओं की सृष्टि है. सिंधु घाटी में इन में से प्रथम का प्रतीक डंडाकार, दूसरे का खरबूज़ाकार तथा तीसरे का वृत्ताकार 'अ' माना गया है. अत: प्रथम रूप में वह दंडधारी पुरुष है, दूसरे में खरबूज़ाकार अवर्ण तथा तीसरे में उसे वृत्ताकार अवर्ण से संयुक्त दिखलाया जाता है . श्वेताश्वतर-उपनिषद् (४, ३) का कथन है कि वह दंडधारी होने से यद्यपि जीर्ण होने का भ्रम उत्पन्न करता है पर वस्तुत: उस के भीतर (द्वितीय अवस्था के) स्त्री-पुरुष, कुमार-कुमारी का द्वैत बीज-रूप विद्यमान है, इसीलिए वह (तृतीय अवस्था में) जन्म लेते ही 'विश्वतोमुख' (नाना रूप) हो जाता है. इस से पूर्व एक अन्य श्लोक में उक्त तीनों अवस्थाओं को क्रमश: अवर्ण, निहितार्थ अवर्ण और अनेक वर्ण कहा गया है.

सिंधु घाटी की भाषा में इस नानात्वमयी विश्वसृष्टि को 'नाम-रूप' कहा गया है और इस के प्रतीकस्वरूप दो डंडाकार अवर्णों का प्रयोग होता है, क्यों कि यह नाम रूप 'अन' और 'अन्न' नामक दो तत्त्वों का ही संयुक्त मोहर ५०५ रूप हैं. छांदोग्य-उपनिषद् में यह 'अन' ही वैश्वानर आत्मा (प्राण) है. शतपथ ब्राह्मण में यह 'अन' अन्नाद अग्नि है, जिसे कभी-कभी 'अत्ता' या 'अत्रि' भी कहा जाता है. सिंधु घाटी में इस

अन्नगृहीत (विश्वात्मा 'अन' को इन्द्र-नाम भी दिया गया है और हड़प्पा के एक लेख में 'इन्द्र' इस तरह लिखा गया है कि एक पुरुष की आकृति बन गयी है, जिस के एक हाथ में 'प' वर्ण है और दूसरे में 'उ' वर्ण. यह प-वर्ण आत्मा की उस 'परा' शक्ति का द्योतक है जिसे उसकी 'स्वाभाविकी ज्ञान बलाक्रिया' कहा गया है और जिस के संयोग से ही वह आत्मा 'अन' तथा 'अन्न' की संयुक्त सृष्टि बनता है. इसी भाव को व्यक्त करने के लिए हड़प्पा के उक्त लेख मे इन्द्र के प-वर्णधारी हाथ के पास दो दंडाकार अवर्ण बनाये गये है जिन्हें ऊपर 'अन' और 'अन्न' का प्रतीक बताया गया है. इसके विपरीत इन्द्र के उ-वर्णधारी हाथ के पास भी 'अन्न' शब्द लिखा है उवर्ण सिंधुघाटी एव वैदिक सभ्यता मे समान रूप से ज्योति का प्रतीक है, अत: उस का संबंध एक दंडाकार वाले सूक्ष्म 'अन्न' से है.

इस दार्शनिकता का निर्वाह सपुटाकार 'प' वर्ण में भी हुआ है. सिंधुघाटी के एक त्रिवृत्त मुद्रा-चित्र में एक ओर एक पुरुष को एक पैर की ऐड़ी पर बैठ कर वीरासन लगाये और हाथ मे दंडाकार अवर्ण को लिये हुए दिखलाया गया है और उस के सामने प-वर्ण को दोनो हाथों में उठाये एक स्त्री झुक कर खडी है. प-वर्ण नि.संदेह उस परा का पहला वर्ण है जो निर्गुण ब्रह्मरूपी अवर्ण (श्वेताश्वतर-उपनिषद्) की 'शक्ति' का नाम है. प-वर्ण की कुछ ढली हुई या पत्थर आदि की आकृतियाँ भी मोहेनजोदड़ो मे मिली है. इन मे से कुछ पर 'न' वर्ण बना हुआ है. प-वर्ण से 'अ' के संयोग पर 'अप' बनता है. जिसे वैदिक भाषा मे 'कर्म' या 'जल' माना जाता है 'न' के साथ अवर्ण के संयोग से 'अन' शब्द बनता है जो उपनिषद् की भाषा में प्राण, उपान, उदान, व्याज तथा समान में व्याप्त 'अन' है, और मूल या पूर्ण (भूमा) प्राण का द्योतक है. ब्राह्मणो मे 'अन' यज्ञ का वाचक माना गया है और सिंधुघाटी परंपरा में भी दो 'अप' के साथ 'अन' मिलने से यज्ञ का उद्भव माना गया प्रतीत होता है. प-वर्ण की आकृति के एक पहलू पर कभी-कभी ज-वर्ण और दूसरे पर न-वर्ण बना मिलता है तो 'यज्ञ' शब्द की उस व्युत्पत्ति का ध्यान हो आता है जिसके अनुसार उसे 'जन्' धातु से निष्पन्न माना जाता है.

डॉ० फ़तहसिंह ने वरुण और वृत्त दक्षिणा-वर्त और वामावर्त, स्वस्तिक द्वय तथा क्रास-चिन्ह, द्विश्रृंगी पशु और पुरुष और वृक्ष, गोधा और महिष, ओंकार-भेद, वषट् और वृषट् आदि पर विस्तार से विचार किया है और उन के अध्ययन की प्रणाली वैज्ञानिक व तर्काश्रित है. डॉ. सिंह ने राजस्थान में कालीबंगा की खुदाई से प्राप्त मुद्राचित्रों को भी सिंधुघाटी सभ्यता के अवशेष माना है और उन के समान स्तर को सिद्ध किया है.

चरचे और चरखे

शौक़ के लिए—१

उसे फ़ुटबॉल से प्रेम है. उस की आयु २२ वर्ष की है और वह थाईदेश की राष्ट्रीय टीम में सेंटर हाफ़ खेलता है. नाम **सुमेत कायेवति-प्पायानेत्र.** पिछले साल थाई फ़ुटबाल एसो-सिएशन ने उसे ब्रिटेन की फ़ुटबॉल स्कॉलरशिप के लिए नामज़द किया. दिक़्क़त यह थी कि स्कॉलरशिप के साथ आने-जाने का किराया नही था.

और कोई होता तो हार मान लेता, लेकिन सुमेत ने ऐसा नही किया. उसने खेल का सामान बेचने वाली एक दुकान से किसी प्रकार एक साइकिल प्राप्त की और पिछले साल ६,३००० मील (थाईदेश से लंदन) की यात्रा पर साइकिल पर रवाना हो गया. बैंकॉक से वह साइकिल पर पेनांग गया. जब थक जाता तो सड़क के किनारे सो जाता. मलाया से एक नौका में सवार हो कर वह मद्रास पहुँचा. एक सप्ताह की यह यात्रा जोखम से भरी हुई थी. सात आदमी उसी नौका में उस की आँखों के सामने ही भूख और बीमारी से मौत के मुँह में चले गये. मद्रास से फिर साइकिल उठायी और १८० मील चल कर नयी दिल्ली पहुँचा. गया मे १३ दिन रह पाकिस्तान. लाहौर के एक अस्पताल में मलेरिया से बीमार पड़ा. लेकिन यहाँ भी उसने अपनी यात्रा के लिए दुगुनी शक्ति प्राप्त की और तेहरान रुका. वहाँ किसी तरह फ़ारस की राष्ट्रीय टीम में फुटबॉल का अभ्यास का मौका उस ने ढूँढ निकाला. इतना ही नही जिस परिवार के साथ वह ठहरा हुआ था उन्होने अपनी १२ वर्षीया लड़की का हाथ उसे सौंप दिया और उस से यह आग्रह किया कि वह मुसलमान हो कर उस के साथ विवाह करे. सुमेत ने किसी तरह पीछा छुडाया.

तुर्की पहुँचा तो उस की जेब में एक छदाम भी नही बचा, लेकिन सौभाग्य से वहाँ एक ऐसे परिवार से उस का परिचय हुआ जिसने उसे सड़को पर भटकता देख अपने यहाँ शरण दी और ऐसे लोगों से परिचय कराया जिन्होने उसे सौ अमेरिकी डॉलर दिये. उन्होने रेल या हवाई जहाज़ से उस की यात्रा का खर्च भी उठाना चाहा, लेकिन उसने कहा शौक का रास्ता यह नही है. मैं साइकिल से ही लंदन जाऊँगा.

यूनान से पानी के जहाज़ में बैठ कर वह दक्षिण इटली पहुँचा और वहाँ से फिर साइकिल पर सवार हो रोम और पेरिस के रास्ते लंदन के लिए रवाना हो गया. अंतत: डोवर पहुँच कर उस ने दम लिया. अधिकारियों को उसे इंग्लैंड मे देख कर हैरत हुई. उन्होंने उसे प्रशिक्षण के लिए लंदन के फ़र्स्ट डिवीज़न लीग क्लब में भेज दिया

शौक के लिए साधना दिन-ब-दिन कम होती जा रही है. सुविधा न मिलने की शिकायत अपनी जगह दुरुस्त है, लेकिन संकल्प और जीवट के सामने क्या यह शिकायत छोटी नही ?

शौक़ के लिए—२

राजधानी में बरसो से **भोजपुरी समाज, अवधी समाज** जैसे समाज सास्कृतिक शौक़ के लिए काम कर रहे है. क्या काम कर रहे हैं, और कैसे काम कर रहे हैं, इस की तफ़सील में जा कर क्या करेंगे ? होली पर राजधानी में मंत्रियों और नेताओं का एक वर्ग भोजपुरी समाज को आज भी याद करता है. नेहरू जी के समय में हर वर्ष बड़ी धूमधाम से भोजपुरी समाज में होली मनायी जाती थी. वह शौक अभी भी बरकरार है. इस बार भी होली पर भोजपुरी समाज का जमावड़ा हुआ. डॉ० रामसुभग सिंह (अध्यक्ष), जगजीवन राम, श्रीमती इंदिरा गाधी, अनेक उपमंत्री, नेता और उन तक पहुँच रखने वाला एक विशिष्ट वर्ग उस में सम्मिलित हुआ. नाच-गाना हुआ, यानी होली मंगल मिलन कार्यक्रम हुआ लेकिन यह समझ में नही आया कि इन समाजों का क्षेत्रीय नामकरण क्यो है और इन में जो कार्यक्रम होते हैं वे किस के लिए ? ये कार्यक्रम न संस्कृति के प्रतीक है न लोक-संस्कृति के.

भोजपुरी समाज में नृत्य : किस का प्रतीक ?

राजधानी से : विशेष रिपोर्ट

मध्यप्रदेश का टूटता हुआ तिलिस्म

मुख्यमंत्री गोविंद नारायणसिंह के आखिरकार त्यागपत्र से मध्यप्रदेश का वह तिलिस्म टूटता-सा नज़र आता है जिसे भेदने की कोशिश तीनों कर रहे थे—जनसंघ, श्रीमती सिंधिया और गोविंद नारायण सिंह. मध्यप्रदेश की 'संविद' सरकार के ये आखिरी दिन हैं.

यह सरकार बच सकती थी बशर्ते राज्यपाल के. सी. रेड्डी अचानक बीमार न पड़ जाते. १० मार्च की रात को जब श्री गोविंद नारायण सिंह अपना इस्तीफ़ा देने के लिए श्रीमती विजया राजे सिंधिया के साथ राजभवन गये तो उन्हें बताया गया कि राज्यपाल बीमार हैं और फलस्वरूप उन का इस्तीफ़ा तुरंत मंजूर नहीं किया जा सका. 'संविद' के नेताओं, श्रीमती सिंधिया, श्री गोविंद नारायण सिंह और श्री सकलेचा ने व्यवस्था यह की थी कि श्री गोविंद नारायण सिंह के स्थान पर राजा नरेशचंद्र सिंह को, जो कि पिछले साल मुख्यमंत्री बनने की उम्मीद से कांग्रेस से बाहर आये थे, मध्यप्रदेश का मुख्यमंत्री बनाया जाये. श्री गोविंद नारायण सिंह ने अपने वक्तव्य में कहा भी है कि अपना त्यागपत्र देने के साथ ही मैं ने अपने उत्तराधिकारी की घोषणा कर दी थी. लेकिन राज्यपाल ने श्री गोविंद नारायण सिंह का इस्तीफ़ा तत्काल स्वीकार न कर संविद सरकार का भविष्य संकटपूर्ण बना दिया. जिस प्रदेश की राजनीति में 'रातों-रात क्रांति' होती हो वहाँ 'हृदय परिवर्तन' के लिए एक रात काफ़ी है. **श्री गोविंद नारायण सिंह के इस्तीफ़े और 'संविद' का भविष्य निश्चित नज़र न आने के कारण 'संविद' के लगभग ४० सदस्यों ने अपना एक अलग समुदाय, जो कि कांग्रेस-समर्थक होगा, बनाने का फ़ैसला कर लिया.**

बार-बार उखड़ कर बार-बार जमने वाले पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र ने दावा किया है कि 'संविद' के ४० विधायकों ने राज्यपाल को संयुक्त रूप से लिखा है कि हम ने शासक पार्टी से से अपना संबंध विच्छेद कर लिया है. श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र ने, जो कि मध्यप्रदेश विधानसभा में, फ़िलहाल, विरोध के नेता हैं, कहा कि मैं राज्यपाल को यह लिखने जा रहा हूँ कि समानधर्मा पार्टियों के साथ मिल कर कांग्रेस मध्यप्रदेश में सरकार बनाने के लिए तैयार है.

नयी दिल्ली में मध्यप्रदेश की खबरों ने विरोधी पार्टियों को बेचैन और परेशान किया. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के श्री मधु लिमये ने मंगलवार को नियम ३४० का हवाला देते हुए 'कामरोको' प्रस्ताव पेश करने का विफल प्रयत्न किया. श्री मधु लिमये के प्रस्ताव का जनसंघ के अलावा कुछ निर्दलीय सदस्यों ने भी समर्थन किया. कांग्रेस हाई कमांड मध्यप्रदेश के बारे में अभी तक कोई स्पष्ट निर्णय नहीं ले सका है. कांग्रेस हाई कमांड की मुख्य चिंता इस समय श्री सुब्रह्मण्यम् का इस्तीफ़ा और श्री मोरारजी देसाई तथा चंद्रशेखर का झगड़ा है. मध्यप्रदेश इस सारी स्थिति से एकदम अलग मामला नहीं है. अगर कांग्रेस को मध्यप्रदेश में उन लोगों के साथ मिल कर सरकार बनाने की इजाज़त दी जाती है जो कि १९६७ में कांग्रेस से बाहर गये थे तो फिर कुछ नैतिक और राजनैतिक समस्याएँ उठ खड़ी होंगी.

यह संभव है कि फ़िलहाल तथाकथित समानधर्मा पार्टियों के साथ मिल कर मध्यप्रदेश में कांग्रेस अपनी सरकार बना ले—संभव है कि श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र के प्रयत्नों से उसे हाई कमांड से इस की छूट और सुविधा प्राप्त हो जाये. **लेकिन मध्यप्रदेश की यह मिली-जुली सरकार ज्यादा दिन टिक नहीं सकेगी. इस का कारण केवल यह नहीं कि कांग्रेस विधायक दल में एकता नहीं, बल्कि यह भी है कि कथित समानधर्मा लोगों में आपस में गहरा मतभेद है और स्वार्थों की टक्कर है. उन के स्वार्थों को श्री गोविंद नारायण सिंह ने अपने विलक्षण व्यक्तित्व से इस तरह जोड़ रखा था कि उन का अंतर्विरोध बहुत उभर कर नहीं आ पाया. लेकिन श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र या कि कांग्रेस पार्टी का कोई भी अन्य नेता एकता का प्रतीक नहीं बल्कि फूट और टूट का प्रतीक है.**

क्या इस सब की कोई कल्पना जनसंघ, श्रीमती सिंधिया और श्री गोविंद नारायण सिंह को नहीं थी? तीनों पक्षों को यह अच्छी तरह पता है कि 'संविद' सरकार का एकमात्र विकल्प मध्यावधि चुनाव है और तीनों ने जानते-बूझते यह निर्णय लिया.

मध्यप्रदेश में राष्ट्रपति शासन और मध्यावधि चुनाव निश्चित है. लेकिन मध्यावधि चुनाव भी मध्यप्रदेश की यथास्थिति को बहुत बदल नहीं सकेगा. कांग्रेस अपनी स्थिति में बहुत सुधार नहीं कर सकती और जनसंघ को यह भ्रम है कि मध्यप्रदेश उस का गढ़ है. उत्तरप्रदेश के विषय में भी उसे यही भ्रम था जो कि पिछली फ़रवरी में ग़लत साबित हुआ.

नयी दिल्ली और भोपाल के बीच राजनीति की 'राजधानी एक्सप्रेस' दौड़ रही है. १९६७ में केंद्रीय नेताओं को मध्यप्रदेश कांग्रेस के नेताओं ने ग़लत अनुमान और ग़लत तस्वीर दी थी. इस बार भी वे अपनी शक्ति का सही अनुमान केंद्रीय नेताओं को देंगे इस में शुबहा है. जैसी कि स्थिति है केंद्रीय नेता यथार्थ से अलग भ्रांति की दुनिया में रहना पसंद करते हैं और वे फिर भ्रांति में पड़ेंगे और कांग्रेस के लिए और अपने लिए उलझन मोल लेंगे.

दिनमान
समाचार-साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — १६ मार्च, १९६९
अंक ११ — २५ फाल्गुन, १८९०

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट ११

*

मत और सम्मत ३
पिछला सप्ताह ४
पत्रकार-संसद् ५
चरचे और चरखे १०
परचून ४२

*

राष्ट्रीय समाचार १३
प्रदेशों के समाचार १७
विश्व के समाचार ३०
समाचार-भूमि : चीन २८
खेल और खिलाड़ी २६

*

प्रेस-जगत् : अंग्रेज़ी हटाओ ६
संदर्भ : भारत का राज्यपालन ७
बंबई की चिट्ठी ८
पुरातत्त्व : सिंधु घाटी की लिपि ९
रंगमंच : बादल सरकार की रंगभूमि २२
नाट्य समारोह २३
अंतरिक्ष : अपोलो-९ २५
दर्शन : कार्ल यास्पर्स ३५
विज्ञान : सूर्य और चाँद तथा मनुष्य का व्यवहार ३६
संगीत : शैलियों का आकर्षण ३७
कला : सुल्तान अली, याल, ललित कला महाविद्यालय दिल्ली शिल्पी चक्र, रंजन गौतम ३८
मनोरंजन : गुड़िया मेला ४०

*

आवरण चित्र : बादल सरकार
(फ़ोटो : परमेश्वरी दयाल)

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

कांग्रेस पार्टी : भीतर का विस्फोट

१९६२ में कृष्ण मेनन के इस्तीफ़े के बाद कांग्रेस संसदीय पार्टी में पहली बार एक ऐसा संकट पैदा हुआ है जो पार्टी के अस्तित्व के आगे प्रश्नचिह्न लगा देता है. श्री मोरारजी देसाई की यह घोषणा कि अगर कांग्रेस संसदीय पार्टी के भीतर अनुशासनहीनता इसी तरह बढ़ती रही और मुझे इसी तरह आक्रमण का लक्ष्य बनाया जाता रहा तो मुझे त्यागपत्र दे देना और राजनीति से अलग हो जाना पड़ेगा. श्री मोरारजी देसाई के विक्षोभ का कारण कांग्रेस पार्टी के 'युवा तुर्कों' के नेता चंद्रशेखर थे. श्री चंद्रशेखर ने राज्यसभा में बिड़ला उद्योगों पर बहस के दौरान श्री मोरारजी देसाई पर बिड़लों के साथ पक्षपात का आरोप लगाया था.

सोमवार को कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक की अध्यक्षता श्रीमती गांधी की अनुपस्थिति में श्री मोरारजी देसाई कर रहे थे. श्री देसाई ने अचानक यह नाटकीय घोषणा की कि अगर उन के विरुद्ध कांग्रेस पार्टी के भीतर चल रहा प्रचार-तंत्र अविलंब बंद नहीं होता है तो उन्हें अपने को राजनीति से मुक्त कर लेना होगा. **पार्टी की बैठक में श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा ने आरोपों-प्रत्यारोपों के बढ़ते हुए सिलसिले का जिक्र करते हुए कहा कि हमारे कुछ विशेष और प्रतिष्ठित नेताओं के विरुद्ध प्रचार अभियान चल रहा है लेकिन प्रधानमंत्री इस पर मौन हैं. श्रीमती सिन्हा ने, जो कि आवेश के साथ बोल रही थीं, श्रीमती गांधी पर अभियोग लगाया कि वह श्री मोरारजी देसाई, श्री यशवंतराव चव्हाण तथा कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा के विरुद्ध वातावरण बनाने में अप्रत्यक्ष रूप से सहायता कर रही हैं.** श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा ने अपनी इसी वाग़ी मुद्रा में कहा कि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से श्री सुब्रह्मण्यम् के इस्तीफ़े के बाद लोगों में यह भ्रम पैदा करने की कोशिश की गयी कि बिहार मंत्रिमंडल में रामगढ़ के राजा को शामिल करने की जिम्मेदारी केवल श्री निजलिंगप्पा, श्री चव्हाण और डॉ. रामसुभग सिंह पर है, जब कि श्रीमती गांधी और उन के सहयोगी इस मामले में 'दूध के धोये हुए' हैं. लगभग दो साल बाद श्रीमती गांधी के विरुद्ध खुली बग़ावत का ऐलान करते हुए कांग्रेस पार्टी की सब से परिचित सदस्या श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा ने कहा कि बंगाल के मामले में भी यही हुआ. जब पश्चिम बंगाल में संयुक्त मोर्चे की सरकार को बरखास्त किया गया तो प्रधानमंत्री के समर्थकों ने इस की सारी जिम्मेदारी श्री मोरारजी देसाई और श्री चव्हाण पर डाल दी. श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा ने कहा कि श्री चंद्रशेखर ने उप-प्रधानमंत्री के विरुद्ध अभियान चला रखा है और **प्रधानमंत्री इस पर मौन हैं.** श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा को **श्री श्यामनंदन मिश्र, श्री अशोक सेन और श्रीमती शारदा मुखर्जी** का समर्थन प्राप्त हुआ. लेकिन **श्री के. के. शाह** ने श्रीमती सिन्हा को सुनाते हुए कहा कि आप दूसरों पर कीचड़ उछालने का आरोप केवल चंद्रशेखर पर क्यों लगा रही हैं? आप खुद बंबई के एक साप्ताहिक में श्रीमती गांधी के विरुद्ध लगातार विष-वमन करती रही हैं.

इस पर श्रीमती सिन्हा ने कहा कि मैं ने केवल नीतियों की आलोचना की है व्यक्ति विशेष को ले कर कुछ नहीं कहा है. मंगलवार की बैठक में यह प्रश्न फ़िर उठा. संसद् के गलियारों, सेंट्रल हाल और कांग्रेस संसद् सदस्यों के निवास स्थान पर कुछ वैसी ही चहलपहल थी, जैसी कि प्रधानमंत्री के चुनाव को ले कर हुआ करती है. मामला था भी संगीन. श्रीमती गांधी ने, जो कि सोमवार को अपनी अस्वस्थता के कारण बैठक में नहीं उपस्थित हो सकी थीं, यह घोषणा की कि मैं इस मामले में श्री चंद्रशेखर को समझाने-बुझाने का प्रयत्न करूंगी. अगर श्री चंद्रशेखर ने मेरी बात नहीं मानी तो कार्यकारिणी उन के विषय में कोई भी निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र होगी. कार्यकारिणी में पिछले दिन की तुलना में कुछ शांति थी. लेकिन श्री मोरारजी देसाई के त्यागपत्र की चुनौती से काफ़ी चिंता थी. कुछ सदस्यों ने यह कहा कि अगर श्री चंद्रशेखर अपने प्रचार-अभियान को बंद नहीं करते हैं तो उन्हें पार्टी से निकाल दिया जाना चाहिए. **श्री श्याम नंदन मिश्र** ने सुझाव दिया कि श्री चंद्रशेखर को इस संबंध में क्षमा-याचना करनी चाहिए. एक अन्य सदस्य श्री सोनवने ने उठ कर यह सुझाव दिया कि श्री चंद्रशेखर के विरुद्ध किसी भी कारंवाई का फ़ैसला करने से पहले उन्हें अपना स्पष्टीकरण देने का अवसर दिया जाना चाहिए. **श्री सोनवने** की राय थी कि श्री चंद्रशेखर के आचरण से संबंधित मामलों पर पूरी तरह विचार होना चाहिए. उस पर आंशिक ढंग से कोई विचार नहीं किया जा सकता.

कांग्रेस संसदीय पार्टी के नियमों के मुताबिक़ भी सदस्य के विरुद्ध कारंवाई करने के लिए महासमिति के ५० प्रतिशत सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है. किसी भी सदस्य को पार्टी से निकालने के लिए उपस्थित सदस्यों की दो तिहाई की स्वीकृति जरूरी है. श्री चंद्र शेखर ने श्री मोरारजी देसाई के संबंध में कोई क्षमा-याचना करना अब तक स्वीकार नहीं किया है. श्री चंद्रशेखर और उन के सहयोगियों, मोहन धारिया, कृष्णकांत, शांति कोठारी, अर्जुन अरोड़ा इत्यादि के बीच इस संबंध में विचार-विमर्श जारी है. यह जरूर है कि सोमवार को बिड़ला-प्रकरण पर मतदान के समय श्री चंद्रशेखर और मोहन धारिया की अनुपस्थिति ने बहुत से लोगों को आश्चर्य में डाल दिया है जब कि इस के विपरीत कांग्रेस पार्टी के ही एक सदस्य श्री महावीरप्रसाद भार्गव ने अपनी पार्टी के विरुद्ध मत दिया.

संसद् में धर्मवीर

पश्चिम बंगाल के राज्यपाल धर्मवीर का, जिन्होंने पिछले हफ़्ते राज्यपाल के भाषण के दो पैराग्राफ़ पढ़ने से इनकार कर दिया भविष्य निश्चित है. केंद्र ने उन्हें २५ मार्च तक बंगाल से हटा लेने का फ़ैसला कर लिया है. बंगाल का अगला राज्यपाल कौन हो यह एक दूसरा पेचीदा सवाल है. श्री मोहन कुमार मंगलम्, श्रीमती अरुणा आसफ़ अली और श्री कृष्ण मेनन जैसे वामपंथियों से ले कर श्री आर. के. खाडिलकर, सरदार हुकुमसिंह और जनरल कुमार मंगलम् तक के नाम हवा में हैं. इतना तय है कि अब इस बार पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री की सलाह के बिना राज्यपाल की नियुक्त नहीं की जायेगी.

श्री धर्मवीर ने कलकत्ते में जो विस्फोट किया उस का धमाका संसद् के दोनों सदनों में सुनाई पड़ा लेकिन लोकसभा में विरोधी पार्टियाँ इस संबंध में सरकार को घेर सकने में पूरी तरह कामयाब नहीं हुईं. राज्यपाल के आचरण को ले कर एक अच्छी-खासी बहस ज़रूर हुई. गर्मा-गर्मी बहुत नहीं हो सकी क्यों कि गृहमंत्री समझौते की मुद्रा में थे. उन्होंने कहा भी कि मैं ऐसी कोई भी बात नहीं कहना चाहता जिस से कि केंद्र और राज्य के संबंधों में बिगाड़ हो. खुद विरोधी पार्टियों में इस सारे प्रश्न को ले कर कुछ मतभेद था. दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और प्रजा समाजवादी पार्टी के प्रवक्ताओं के अनुसार श्री धर्मवीर का आचरण संविधान विरोधी था जब कि स्वतंत्र पार्टी और जनसंघ के प्रवक्ताओं ने श्री धर्मवीर का समर्थन न करते हुए भी उन का विरोध नहीं किया. वामपंथी पार्टियों ने धर्मवीर के आचरण को ले कर गृहमंत्री से बार-बार यह सवाल किया कि संविधान के किस नियम के मुताबिक राज्यपाल को अपना अभिभाषण पूरा न पढ़ने की सुविधा प्राप्त है. विरोधी पार्टियों की मान्यता थी कि इस मामले में केंद्र दोषी है और वह ग़ैर-कांग्रेसी राज्यों के साथ पहलवानी कर समचे प्रश्न को विकृत कर रहा है.

—विशेष संवाददाता

अगला अंक

यदि आप यह समझना चाहते हैं कि पाकिस्तान क्या है, वहां क्या हो रहा है तो दिनमान का २३ मार्च का 'पाकिस्तान अंक' अवश्य पढ़ें.

राष्ट्र

कांग्रेस

सुब्रह्मण्यम् का इस्तीफ़ा : सहयोग से असहयोग

रामगढ़ के राजा कामाख्या नारायण सिंह को विहार की दो सरकारें, आध दर्जन मंत्री और कई विधायक निगल जाने की प्रतिष्ठा प्राप्त रही है. पिछले हफ़्ते तमिलनाडु प्रदेश-कांग्रेस के अध्यक्ष चिदंवरम् सुब्रह्मण्यम् के, कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से इस्तीफ़े के साथ ही राजा साहव की प्रतिष्ठा में चार चाँद और लग गये. श्री सुब्रह्मण्यम् ने कांग्रेस अध्यक्ष के नाम अपने त्यागपत्र में कहा कि मैं विहार मंत्रिमंडल में रामगढ़ के राजा के शामिल किये जाने के विरोध में इस्तीफ़ा दे रहा हूँ. श्री सुब्रह्मण्यम् केंद्रीय राजनीति में रामगढ़ के राजा के पहले शिकार हैं. लेकिन इस इस्तीफ़े से, जिसे कि श्री सुब्रह्मण्यम् वापस लेने को तैयार नहीं, हाई कमांड में जो संकट पैदा हो गया है, उस से यह निश्चित है कि दिल्ली में राजा साहव के शिकारों की सूची में अकेले श्री सुब्रह्मण्यम् का पत्र दर्ज हो कर नहीं रह जायेगा. रामगढ़ के राजा को ले कर कांग्रेस हाई कमांड पिछले तीन वर्षों से अजीव स्थिति में है. कभी राजा कामाख्या नारायण सिंह को सर आँखों पर विठाया जाता है, कभी उन को कटु से कटु शब्दों में याद किया जाता है. 'तुलसी अपने राम की रीझि भजों के खीझि.'

श्री सुब्रह्मण्यम् के इस्तीफ़े का आधार नैतिक है. कांग्रेस-अध्यक्ष को अपना त्यागपत्र देने के पहले कार्यकारिणी की वैठक में उन्होंने विहार मंत्रिमंडल में मुख्यमंत्री श्री हरिहर सिंह द्वारा श्री कामाख्या नारायण सिंह को शामिल किये जाने की तीव्र आलोचना की थी. उन्होंने कहा था कि सुप्रीम कोर्ट ने अपने हाल के फ़ैसले में राजा कामाख्या नारायण सिंह पर टिप्पणी की थी. इस तथ्य को जानते-वूझते रामगढ़ के राजा को मंत्रिमंडल में शामिल किया जाना अनुचित और अनैतिक है. इस से पार्टी की प्रतिष्ठा घटेगी और लोगों में यह विश्वास दृढ़ होगा कि कांग्रेस पार्टी अस्थायी राजनैतिक फ़ायदों के लिए सिद्धांतों की कुरवानी दे सकती है. श्री सुब्रह्मण्यम् के त्यागपत्र के आधारों और कांग्रेस हाई कमांड के वदले हुए दृष्टिकोण में अंतर्विरोध है. श्री सुब्रह्मण्यम् के त्यागपत्र का आशय यह है कि कांग्रेस को दूसरी पार्टियों के साथ मिल कर सरकार नहीं वनानी चाहिए—हालाँकि उन्होंने यह वात स्पष्ट शब्दों में नहीं कही है, केवल जनता पार्टी का नाम लिया है. दूसरी ओर कांग्रेस हाई कमांड मध्यावधि चुनावों के परिणामों के वाद से सहयोगी सरकारों के वारे में नये ढंग से सोचने लगा है. पहली वार कांग्रेस हाई कमांड ने यह महसूस किया कि कांग्रेस अनेक प्रदेशों में अपनी अकेली सरकार नहीं वना सकती. अव या तो उसे केवल विरोध में वैठना पड़ेगा या फिर कुछ अन्य पार्टियों के साथ मिल कर सरकार वनानी पड़ेगी. यह पार्टी द्वारा इस चीज़ का अहसास भी है कि अव पूरे देश का प्रतिनिधित्व करने वाली एक समग्र पार्टी न रह कर और पार्टियों की तरह एक पार्टी हो गयी है. कांग्रेस हाई कमांड के नेताओं ने विहार में एक शुरुआत की जो कि रामगढ़ के राजा के शामिल किये जाने से ज़रूर ग़लत हो गयी, लेकिन और प्रदेशों में भी सहयोग की सरकारें वनाने का फ़ैसला कांग्रेस हाई कमांड के नेता अलग-अलग रूपों में ले चुके हैं. विहार के वाद मध्यप्रदेश का नंवर है जहाँ कि संविद सरकार लड़खड़ा रही है. ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियों से मिल कर सरकार वनाने के विचार का सव से अधिक विरोध पिछले कुछ अर्से से श्री मोरारजी देसाई ने किया था. जव कि इस के विपरीत श्री सादोवा पाटील स्पष्ट शब्दों में यह कहते रहे हैं कि कांग्रेस को समानधर्मा पार्टियों के साथ मिल कर सरकार वनानी चाहिए. उन्होंने तो अपने एक वक्तव्य में जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी का नाम ले कर यह भी स्पष्ट कर दिया था कि वह समानधर्मा पार्टियाँ कौन-सी हैं जिन के साथ श्री सादोवा पाटील की कांग्रेस सहयोग कर सकती है.

अंततः सहयोग की सरकारें वनाने के विचार की ही जीत हुई और विहार को उस के एक प्रयोग के रूप में चुना गया. लेकिन जैसा कि श्री सुब्रह्मण्यम् ने अपने वक्तव्य में कहा है, यह एक वेहूदा प्रयोग था. रामगढ़ के राजा को मंत्रिमंडल में शामिल किये जाने के विरुद्ध हाई कमांड के और भी सदस्य थे. श्री मोरारजी देसाई और श्री जगजीवनराम दोनों ने रामगढ़ के राजा के शामिल किये जाने का तीव्र विरोध करते हुए कार्यकारिणी समिति में कहा था कि इस निर्णय से विहार में तथा अन्य प्रदेशों में कांग्रेस की स्थिति और कमज़ोर होगी. लेकिन श्री निजलिंगप्पा और रामसुभग सिंह ने इस मान्यता का विरोध किया. मुख्य रूप से डॉ. रामसुभग सिंह ने इस मामले में अगुवाई की और कांग्रेस हाई कमांड से यह निर्णय करा लिया कि श्री हरिहर सिंह अपने मंत्रिमंडल में राजा कामाख्या नारायण सिंह को शामिल करेंगे. यद्यपि कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने इस सारे निर्णय की जिम्मेदारी स्वयं पर ले ली है लेकिन मंत्रिमंडल में राजा रामगढ़ को कुर्सी दिलाने में वहुत-सी महत्त्वपूर्ण हस्तियों ने अपनी भूमिका अदा की है जिन में से कुछ लोग श्रीमती गांधी के आस-पास के लोगों में से हैं. यद्यपि कहा यह जाता है कि श्रीमती गांधी ने इस मामले में विशेष दिलचस्पी नहीं ली, लेकिन जानकार सूत्रों का दावा है कि उन्होंने इस संवंध में कोई दिलचस्पी दिखायी हो या न दिखायी हो उन के नाम का इस्तेमाल ज़रूर किया गया. दूसरी ओर इस की ज़िम्मेदारी श्री यशवंतराव चह्वाण पर भी डाली गयी है जिन्हें कि विहार का मामला सौंपा गया था. रामगढ़ के राजा के वहाने केंद्र में यानी कि कांग्रेस हाई कमांड में एक अच्छी रस्साकशी चल रही है और नेताओं के दो गुट एक-दूसरे को अप्रतिष्ठित करने का प्रयत्न कर रहे हैं. श्री सुब्रह्मण्यम् ने जो प्रश्न उठाया है वह अपने आप में महत्त्वपूर्ण है कि कांग्रेस को किन पार्टियों के साथ सहयोग करना चाहिए. श्री सुब्रह्मण्यम् ने अपने प्रेस सम्मेलन में कहा कि कांग्रेस केवल समानधर्मा पार्टियों के साथ मिल कर सरकार वना सकती है, लेकिन प्रश्न यह है कि वे समानधर्मा पार्टियाँ कौन-सी हैं, और जिन्हें समानधर्मा पार्टियाँ कहा जाता है क्या वे स्वयं कांग्रेस के साथ सहयोग करने को तैयार हैं या कि कांग्रेस की एकमात्र नियति रामगढ़ के राजा हैं.

सुब्रह्मण्यम् : न वापसी का इस्तीफ़ा

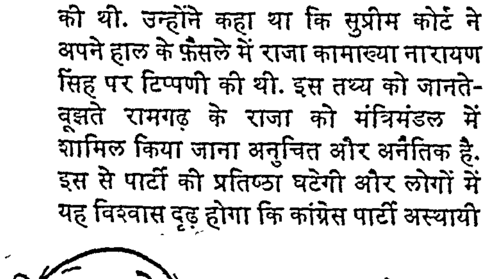

निजलिंगप्पा : 'दिन में दो त्यागपत्र देने के वाद'

विड़ला-प्रसंग

संसद में सूटकेस : आखिर वह क्या रहस्य था ?

कभी-कभी संसद् में अचानक कोई सनसनी खेज़ मामला आ जाता है और सारी वहस रखी रह जाती है. पिछले हफ़्ते कांग्रेस पार्टी के श्री ए. जी. कुलकर्णी ने राज्यसभा में अचानक यह कह कर तहलका मचा दिया कि संसद् के सेंट्रल हाल में विड़ला वंधुओं की ओर से चमड़े की पेटियाँ वितरित की जा रही हैं ताकि सदस्य विड़ला उद्योग समूह पर हो रही वहस में हिस्सा न लें. इस पर कांग्रेस पार्टी के अनेक सदस्यों ने तीव्र आपत्ति की और कहा कि यह आरोप विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाये क्यों कि इस से सदस्यों की मर्यादा भंग हुई है. हल्ले-गुल्ले के वीच श्री कुलकर्णी ने कहा कि मैं ने यह सुना कि चमड़े की पेटियाँ वाँटी जा रही हैं. अगर मेरे वक्तव्य से किसी को क्लेश हुआ हो तो मैं अपना वक्तव्य वापस लेता हूँ. मुझे यह पता नहीं कि किस के लिए थैलियाँ वाँटी गयी हैं. मैं अपना वक्तव्य वापस ले रहा हूँ. यह कह कर श्री कुलकर्णी ने अपने आरोप को वापस ले लिया. इस के पहले जैसे ही उन्होंने आरोप लगाया था एक और कांग्रेसी सदस्य श्री सैयद मुहम्मद भागते हुए सेंट्रल हाल में गये और वहाँ से लौट कर सदन में उन्होंने श्री कुलकर्णी के वक्तव्य को चुनौती दी. श्री कुलकर्णी ने दावा किया कि मैं ने चमड़े की पेटियाँ वाँटी जाती देखी हैं लेकिन मुझे यह पता नही कि इन पेटियों में क्या था. स्वतंत्र पार्टी के श्री लोकनाथ मिश्र ने कहा कि यह घटिया आरोप है और मैं इन सदस्य महोदय को जानता हूँ. इस पर श्री कुलकर्णी और श्री भूपेश गुप्त ने प्रतिरोध किया और कहा कि कोई भी सदस्य दूसरे सदस्य को धमकी नही दे सकता. श्री भूपेश गुप्त ने कहा कि किसी सदस्य का वक्तव्य मात्र विशेषाधिकार समिति में नहीं भेजा जा सकता. श्री राजनारायण ने यह मामला विशेषाधिकार समिति को भेजने की माँग का समर्थन किया और अध्यक्ष से आग्रह किया कि वह उन सभी पेटियों को अपनी निगरानी में ले लें जो कि वाँटी गयी हैं.

इस के पहले राज्यसभा में ही विड़लाओं से संवद्ध एक और विशेषाधिकार प्रस्ताव समिति को भेजने की माँग की गयी थी. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के श्री राजनारायण ने यह आरोप लगाया था कि प्रधानमंत्री ने कांग्रेस संसदीय पार्टी की वैठक में कांग्रेसी सदस्यों से यह आग्रह कर के कि वें विरोधी पार्टियों के संशोधनों का समर्थन न करें, सदन की मर्यादा को भंग किया है. इस के पहले श्री राज नारायण ने अध्यक्ष को इस संवंध में एक पत्र भी लिखा था. श्री गिरि ने कहा कि मैं ने आप का पत्र देख लिया है और इस से विशेषाधिकार का मामला नहीं वनता.

लोकसभा और राज्यसभा दोनों ही सदनों में विड़ला-विवाद को तरह-तरह से पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया गया. विरोधी पार्टियों ने सरकार को घेरने की पूरी कोशिश की और यह नहीं कहा जा सकता कि वे इस में पूरी तरह नाकामयाव हुए हैं. लोक सभा में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के श्री जार्ज फर्नांडिज़ ने यह आरोप लगाया कि कलकत्ते में मध्यावधि चुनाव के पहले श्री व्रजमोहन विड़ला प्रधान मंत्री से मिले थे और दोनों के वीच कांग्रेस के चंदे के वारे में सौदा हुआ था. इस का औद्योगिक विकासमंत्री श्री फखरुद्दीन अली अहमद ने तीव्र प्रतिवाद किया. उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री ने विड़लों को कभी

भूपेश गुप्त : प्रतिरोध

कोई आश्वासन नहीं दिया और इस संवंध में कभी कोई सौदा नहीं हुआ. लोकसभा में इस वहस की शुरुआत मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य श्री ज्योतिर्मय वसु ने की थी. उन्होंने विड़लों के संवंध में प्रश्न करते हुए यह आरोप लगाया था कि कुछ केंद्रीय मंत्री विड़लों से पैसा पाते हैं. श्री फ़खरुद्दीन अली अहमद ने इस पर उन्हें चुनौती दी और कहा कि अगर उन में साहस हो तो सदन के सामने यह वात प्रमाणित करें. श्री अहमद ने कहा कि सरकार ने राज्यसभा के श्री चंद्रशेखर द्वारा दिये गये तीन ज्ञापनों पर विचार किया है और वह इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि ये मामले ऐसे नहीं कि इन पर कोई जाँच समिति विठायी जाये. जहाँ ज़रूरी था वहाँ कार्रवाई पहले ही की जा चुकी है. जव श्री ज्योतिर्मय वसु और उन के कुछ सहयोगियों ने मंत्री पर आरोप लगाया तव सदन में हंगामा हुआ. श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा तथा कुछ अन्य कांग्रेसी सदस्यों ने इस आरोप का तीव्र प्रतिवाद किया कि विड़लों ने यह धमकी दी है कि अगर उन के विरुद्ध कोई जाँच आयोग विठाया गया तो वे विहार में कांग्रेस विधायक दल में वहुत वड़े पैमाने पर दलवदल संगठित करेंगे. कम्युनिस्ट पार्टी के श्री इंद्रजीत गुप्ता और निर्दलीय श्री सा. मो. वनर्जी दोनों ने विड़लों के मामले में सरकार की शिथिलता और उदारता को 'दाल में कुछ काला है' के रूप में देखा. श्री जार्ज फर्नांडिज़ ने तो एक क़दम आगे वढ़ कर यह कहा कि मैं ने प्रधानमंत्री और कांग्रेसी मंत्रियों पर जो आरोप लगाये हैं वे विलकुल सच हैं.

राज्यसभा में श्री मोरारजी देसाई ने घोषणा की कि सरकार विड़लों के मामले में जो कार्रवाई कर चुकी है, कोई भी जाँच आयोग उस से अधिक कुछ नहीं कर सकता. श्री मोरारजी देसाई ने इस आरोप का खंडन किया कि सरकार द्वारा ऋण देने के मामले में या कि जीवन वीमा निगम द्वारा क़र्ज़ के संवंध में विड़लों के साथ कोई पक्षपात किया गया है. श्री मोरारजी देसाई ने विड़लों के संवंध में सरकार पर लगाये गये सभी आरोपों का खंडन किया और कहा कि सरकार ने किसी तरह की रियायत नहीं की है और विड़लों का 'भला करने' का कोई प्रयत्न सरकार की तरफ़ से नहीं हुआ है.

कांग्रेस पार्टी के श्री चंद्रशेखर ने जो कि वीमारी की हालत में अस्पताल से उठ कर आये थे, विड़ला प्रकरण को ले कर सरकार पर तीखा हमला किया. उन्होंने कहा कि विड़लों पर जो ८८ आरोप लगाये गये हैं उन के संवंध में जो सरकारी उत्तर दिये गये हैं उस में यह स्वीकार किया गया है कि तथ्य हैं लेकिन उन्हें प्रमाणित नहीं किया जा सकता और केंद्रीय खुफ़िया विभाग के मुताविक कार्रवाई के लिए मामला अदालत में नहीं भेजा जा सकता. उन्होंने अपने उस ज्ञापन का हवाला दिया जो कि उन्होंने विड़लों के विरुद्ध सरकार को दिया था. उन्होंने कहा कि मैं ने अपने ज्ञापन में सभी तथ्यों को विधिवत् रखा है और उन की न्यायिक जाँच हो सकती है. उन्होंने सरकार से यह माँग की कि वह आयकर जाँच पदाधिकारी तथा केंद्रीय राजस्व वोर्ड की रिपोर्ट को पटल पर रखे. जिस अफ़सर ने विड़ला समुदाय को ११ करोड़ रुपया वचाने में मदद दी थी वह अवकाश ग्रहण कर चुकने के वाद उसी-समुदाय में मुलाज़िम हो गया है. श्री चंद्रशेखर ने यह भी दावा किया कि जीवन वीमा निगम और अन्य वित्तीय संस्थाओं के संवंध में पूरी जाँच से विड़ला उद्योगों की धाँधली सामने आ सकती है.

भारत-पाक

भारत-पाक संबंध और सोवियत संघ

हाल ही में राज्यसभा में एक स्वतंत्र पार्टी सदस्य डॉ. वी. एन. अंतानी ने कहा कि पाकिस्तान कच्छ के क्षेत्र में पुनः घुसपैठ करने की

कोशिश कर रहा है और कुछ क्षेत्रों में तेल के कुएँ खोद रहा है. कुछ लोगों के मत में कच्छ के निर्जन देशों में भी तेल और अन्य खनिज पदार्थों के मिलने की बहुत अधिक संभावना है. किंतु अभी तक इस दिशा में भारत की ओर से कोई ठोस सर्वेक्षण आरंभ नहीं किया गया. राज्यसभा के एक सदस्य की यह चेतावनी भी संभवतः इसी प्रकार अनसुनी कर दी जायेगी. कच्छ समझौते की प्रगति के संबंध में विदेश-मंत्री दिनेश सिंह ने राज्यसभा में कहा कि कच्छ के सीमांकन के संबंध में कुछ विवाद खड़ा हो गया है. यह विवाद एक ऐसे क्षेत्र के संबंध में पैदा हो गया है जहाँ नियंत्रण स्तंभ ६ खड़ा है. पाकिस्तान का दावा है कि यह क्षेत्र सिंध का इलाक़ा है. इस सिलसिले में जनसंघ सदस्य डॉ. महावीर ने कहा कि भारत को सीमांकन के संबंध में पाकिस्तान की प्रार्थना जल्दबाज़ी में स्वीकार नहीं करनी चाहिए थी, क्यों कि यह संभव है कि पाकिस्तान की वर्त्तमान स्थिति में तुरंत परिवर्त्तन हो जाये. नेतृत्व के बदलने से भारत संबंधी व्यवहार में भी परिवर्त्तन हो सकता है. यह एक विचित्र बात है कि पाकिस्तान में जिस समय आंतरिक तनाव और अशांति इस अवस्था तक पहुँच गयी है जहाँ राष्ट्रपति अय्यूब के लिए एक-एक दिन शासन में रहना कठिन हो रहा है उस समय वह कच्छ के संबंध में एक अपेक्षाकृत महत्त्व-हीन विवाद खड़ा करने पर तुले हुए हैं. पता चला है कि पाकिस्तान ने भारत सरकार से सीमांकन के संबंध में पुनः उच्च स्तरीय बैठक की माँग की है. यद्यपि भारत की ओर से इस प्रकार की माँग का विरोध करने का कोई सवाल पैदा नहीं होता फिर भी इस से राज-नैतिक हल्क़ों में यह चर्चा शुरू हो गयी है कि संभवतया पाकिस्तान के नेता घरेलू अशांति से जनता का ध्यान हटाने के लिए भारत के साथ नया विवाद खड़ा करने की योजना बना रहे हैं. मगर यह भी संभव है कि बाहर से महत्त्वहीन दिखने वाले इस विवाद की तह में कोई महत्त्व-पूर्ण बात छिपी हुई हो. क्या पाकिस्तान कच्छ के थोड़े-से भाग पर क़ब्ज़ा कर के संतुष्ट नहीं है? क्या यह विवाद खड़ा करने के बाद वह किसी एक ऐसे क्षेत्र पर अधिकार जमाना चाहता है जो या तो सैनिक या खनिज पदार्थों की दृष्टि से काफ़ी महत्त्वपूर्ण है? इन प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट रूप से नहीं दिया जा सकता. इस लिए सब से अच्छा तरीक़ा तो यही होगा कि भारत सरकार सीमांकन के बारे में स्वयं कोई जल्द-बाज़ी या उतावलापन न दिखाते हुए संपूर्ण समस्या को सतर्क हो कर समझने की कोशिश करे.

समझौते के तीन वर्ष : ताशकंद-समझौते के बाद भारत और पाकिस्तान के संबंधों में कोई महत्त्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई है. गत जनवरी में इस समझौते के तीन वर्ष पूरे हो गये मगर इन तीन वर्षों में उस ने केवल एक ही उद्देश्य प्राप्त किया है. भारत और पाकिस्तान के बीच २२ दिनों के युद्ध को अस्थायी रूप से रोक दिया है. दोनों देशों के बीच तनाव कम करने या समस्याओं को आपसी बातचीत द्वारा सुलझाने की भावना पदा करने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई है. कच्छ और कश्मीर की समस्या के अतिरिक्त अब भारत और पाकि-स्तान के बीच फरक्का बाँध की समस्या भी है. ताशकंद-समझौते में सोवियत संघ ने महत्त्वपूर्ण योग दिया था मगर अब उस का भी इस सिल-सिले में कोई विशेष उत्साह नहीं रहा है. वास्तविकता तो यह है कि पाकिस्तान के प्रति उस के रवैये में भी कुछ परिवर्त्तन हो गया है. स्थिति इस प्रकार ऐसी है जिस में सोवियत संघ भी भारत और पाकिस्तान की समस्याओं में टाँग अड़ाने के पक्ष में नहीं है. फरक्का के मामले में भी सोवियत संघ स्पष्ट रूप से कोई पक्ष नहीं लेना चाहता, हाँ यह ठीक है

दिनेश सिंह : नौ दिन चले अढ़ाई कोस

कि वह इस सिलसिले में विश्व बैंक के हस्तक्षेप का भी समर्थक नहीं है. इस प्रकार ऐसा लगता है कि ताशकंद-समझौते ने १९६५ में अपना काम पूरा कर दिया और अब वह एक ऐति-हासिक संधि के रूप में निष्क्रिय हो गया है. अभी इस प्रकार के कोई संकेत प्राप्त नहीं हुए हैं कि पाकिस्तान फिर से भारत के साथ शक्ति आज़माई करना चाहता है मगर भारत-पाक सीमाओं पर पाकिस्तानी सेनाओं की हरकतें और प्रतिरक्षा संबंधी निर्माण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अभी निकट भविष्य में पाकिस्तान भारत के साथ सहयोग या मित्रता की भावना से रहने के लिए तैयार नहीं है. पाकिस्तान की आंतरिक स्थिति से यह चिंता पैदा होने लगी है कि यदि राष्ट्रपति अय्यूब के पश्चात् भुट्टो या इसी प्रकार के किसी उग्रपंथी के हाथ में पाकिस्तान की बागडोर आ गयी तो भारत और पाकिस्तान के संबंधों में और भी कटुता पैदा हो सकती है.

रूस और पाकिस्तान : सोवियत रक्षामंत्री मार्शल ग्रेचको की भारत-यात्रा भले ही इस समय कोई ठोस सुझाव और समस्याओं के लिए भूमिका तैयार न करे फिर भी वह एक ऐसे अवसर पर भारत आये हैं जब कि वह भारत, पाकिस्तान और चीन के आपसी संबंधों को बहुत निकट से देख सकते हैं. यह ठीक है कि भारत सोवियत संघ से अपनी विदेश-नीति बदलने का आग्रह नहीं कर सकता क्यों कि प्रत्येक देश की विदेश-नीति राष्ट्रीय हितों को दृष्टि में रख कर बनाई जाती हैं. मगर दो मित्र राष्ट्र एक दूसरे की समस्याओं को समझ कर मतभेदों को दूर करने का प्रयास ज़रूर कर सकते हैं. सोवियत प्रतिरक्षामंत्री भारत के बाद पाकिस्तान जा रहे हैं और यह यात्रा उस वक़्त हो रही है जब कि पाकिस्तान में दंगे-फ़साद और असंतोष की तीव्र भावना व्याप्त है.

यह ज्ञात नहीं कि सोवियत संघ ने पाकिस्तान को शस्त्र देने के समय किन बातों को दृष्टि में रख कर निश्चय किया था मगर तब से आज तक सोवियत संघ के नेता इस बात का अंदाज़ लगा चुके होंगे कि पाकि-स्तान को संयुक्त राज्य अमेरिका या चीन से अलग करने के इस तरीक़े के निश्चयपूर्वक सफल होने में संदेह है, क्यों कि पाकिस्तान ने चीन की मित्रता को अपने लिए अमूल्य मान लिया है और चीन की मित्रता के बावजूद वह संयुक्त राज्य अमेरिका से अच्छे संबंध बनाये रखने की चेष्टा कर रहा है. अमेरिकियों को इस बात का आभास मिल गया है कि पाकि-स्तान चीन की दोस्ती के लिए अमेरिका की मित्रता का भी बलिदान कर सकता है. सोवियत प्रतिरक्षामंत्री और अन्य सोवियत नेताओं के सामने यह विचारणीय प्रश्न होना चाहिए कि क्या पाकिस्तान को शस्त्रों की सहायता देने के बाद भी पाकिस्तान साम्यवादी चीन और सोवियत संघ के बीच संतुलन बनाये रखने में समर्थ हो सकेगा. सोवियत संघ और चीन के बिगड़ते हुए संबंधों के संदर्भ में यह ज्यादा ज़रूरी हो गया है कि सोवियत नेता पाकिस्तान को दी जाने वाली शस्त्रों की सहायता पर पुनर्विचार करें. अपनी भारत-यात्रा के दौरान प्रतिरक्षामंत्री ग्रेचको ने भारत के प्रतिरक्षामंत्री स्वर्णसिंह और प्रधान-मंत्री से भेंट की और इन मुलाकातों के बीच आपसी संबंधों के बारे में भी बातचीत हुई. कुछ लोगों का विचार है कि पाकिस्तान की वर्त्तमान परिस्थिति में सोवियत नेता पाकि-स्तान को शस्त्र देने का क़दम स्थगित कर देंगे क्यों कि स्वयं सोवियत नेताओं को भी इस बात का अनुमान नहीं कि अय्यूब के बाद जो नेतृत्व पाकिस्तान में उभरेगा उस का चीन और रूस के संदर्भ में क्या रुख़ होगा. साथ ही सोवियत संघ को इस बात की भी चिंता होगी कि अधिक चीन समर्थन और भारत-विरोधी नेतृत्व के कारण भारत खंड में तीव्र तनाव पैदा हो सकता है जो अंतरराष्ट्रीय राजनैतिक स्थिति के लिए बुरा होगा.

बजट

कृषि संपत्ति पर मोरारजी की नज़र

उपप्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई के बजट प्रस्तावों में यद्यपि अनेक वस्तुओं पर नये कर लगाने की बात कही गयी है फिर भी सब से अधिक विवादास्पद विषय कृषि संपत्ति पर कर लगाना है. जब कि भारत में खाद्यान्नों में आत्मनिर्भर बनने के प्रति अधिक सक्रिय और ठोस क़दम उठाने की चर्चा चारों ओर से चल रही है और कुछ लोग यह भी कहने लगे हैं कि देश में 'कृषि क्रांति' आरंभ हो गयी है, कृषि संपत्ति पर कर लगाने से अनेक राजनैतिक और कृषक नेताओं का असंतोष व्यक्त करना एक स्वाभाविक बात है. इस लिए बजट प्रस्तावों पर लोकसभा में जो बहस हुई उस में अधिसंख्य सदस्यों ने इस विषय पर अपने विचार ज़रूर व्यक्त किये.

सिर पर वार : बहस कई व्यवस्था के प्रश्नों से आरंभ हुई. स्वतंत्र पार्टी के पी. के. देव ने संवैधानिक आपत्ति उठाते हुए कहा कि कृषि क्षेत्र बिल्कुल प्रादेशिक सूची में आता है, इस लिए उस पर कोई कर नहीं लगाया जा सकता. संसपा के मधु लिमये ने कहा कि बजट प्रस्ताव संसद् में पेश किये जाने से पहले ही कुछ लोगों को मालूम हो चुके थे जिस से बंबई के एक व्यापारी को लाभ हुआ. उपाध्यक्ष खाडिलकर ने इन आपत्तियों को अमान्य करते हुए कहा कि इन्हें उठाने का यह उचित अवसर नहीं है. अपने विचार व्यक्त करने के लिए बहस के दौरान सदस्यों को पूरा मौक़ा मिल जायेगा. अटल बिहारी वाजपेयी ने माँग की कि वित्त-मंत्री को यह कहना चाहिए कि उन्होंने कृषि संपत्ति पर कर लगाने के बारे में किस से परामर्श किया था, क्यों कि यह बताया गया है कि वर्तमान अटार्नी जनरल की सम्मति नहीं ली गयी. इस के उत्तर में मोरारजी देसाई ने कहा कि उन्होंने वर्तमान अटार्नी जनरल की सम्मति ली थी. बजट पर बहस आरंभ करते हुए स्वतंत्र पार्टी के एम. आर. मसानी ने विभिन्न कर प्रस्तावों का विश्लेषण करते हुए कहा कि उर्वरकों और पंपिंग सैटों पर कर लगाना वास्तव में 'दुष्टतापूर्ण' है. उस समय जब कि किसान अपने पाँव पर खड़ा होने लगा है सरकार ने उस के सिर पर वार कर दिया है. बजट प्रस्तावों में वास्तविक कृषकों को रियायत देने की बात कही गयी है मगर मीनू मसानी को यह बात निस्सार लगी क्यों कि वास्तविक और अवास्तविक कृषकों में कैसे अंतर किया जा सकेगा. अगर सरकार यह समझती है कि बड़े-बड़े पूँजीपति अपना धन कृषि में लगाने लगे हैं ताकि वे कर मुक्त हों तो सरकार आयकर अधिनियम के अंतर्गत इस प्रकार के लोगों से निपट सकती है. वास्तव में मसानी के अनुसार किसी प्रकार के कर का कोई औचित्य नहीं है और न ही इस बात की कोई ज़रूरत है कि वित्तमंत्री घाटे की अर्थ-व्यवस्था चालू रखें. उन्होंने आरोप लगाया कि जन-लेखा समिति की सिफ़ारिशों की ओर सरकार ने कोई ध्यान नहीं दिया है जिस ने यह स्पष्ट कर दिया है कि 'करोड़ों रुपयों का अपव्यय होता है. उन्होंने बोकारो परियोजना के लिए १७० करोड़ रुपये लगाने की कटु आलोचना की.

अपना-अपना मत : अन्य आलोचकों में प्रजा समाजवादी पार्टी के नेता एस. एन. द्विवेदी ने सरकार पर आरोप लगाया कि वह इस प्रकार लोगों पर करों का भार लाद कर एक हिंसात्मक क्रांति के लिए दरवाज़ा खोल रही है. इस बजट में शिक्षित, बेकार और क्षेत्रीय असंतुलन संबंधी समस्याओं के लिए कोई भी इलाज नहीं बताया गया है. डॉ. करणी सिंह के अनुसार कृषि संपत्ति पर कर लगाने से बड़े व्यापारियों की अपेक्षा छोटे किसानों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा. कांग्रेस की सुचेता कृपालानी ने कहा कि घाटे की अर्थ-व्यवस्था से फिर से उपभोक्ता वस्तुओं के मूल्य बढ़ने आरंभ हो जायेंगे. श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा के विचार में वित्तमंत्री ने न केवल मूल्यों के बढ़ते हुए रुख को रोक दिया है बल्कि उसे कई अर्थों में घटा भी दिया है. श्रीमती सिन्हा के अनुसार सरकार को क्षेत्रीय असंतुलन के प्रति अधिक ध्यान देना चाहिए क्यों कि इसी प्रकार के असंतुलन से बंबई में शिवसेना के उपद्रव का जन्म हुआ था.

संसदीय दल में : बजट प्रस्तावों पर कांग्रेस संसदीय दल में भी बहस हुई जिस में श्रीमती यशोधा रेड्डी ने कृषि संपत्ति पर कर लगाने का समर्थन किया. उन के अनुसार इस में कोई तर्क नहीं कि हर समय राष्ट्रीय विकास में केवल शहरी लोग ही योगदान दें और ग्रामीण क्षेत्र करों से मुक्त रहें. चिरंजीत यादव ने भी देसाई के प्रस्तावों का समर्थन किया मगर नवलकिशोर शर्मा और पन्नालाल बारूपाल ने कृषि संपत्ति पर कर लगाने की तीव्र आलोचना की.

क्षेत्रफल

भारत कितना ?

कोई भी सरकार जब किसी असुविधाजनक सवाल का सही जवाब नहीं देना चाहती तो 'सार्वजनिक हित के विरुद्ध' 'सद्भाव-यात्रा' और 'लगभग' सरीखे शब्दों का उपयोग कर के गोलमोल जवाब दे देती है. लेकिन भारत सरकार जिस राष्ट्र पर शासन करती है उस के सीमांतों का भी पता उसे न हो, यह अजीब-सा लगता है. किन्हीं ख़ास परिस्थितियों में यह संभव हो तो हो, लेकिन १९६९ में विदेशमंत्री दिनेश सिंह का भारतीय द्वीपों की संख्या के बारे में यह कहना कि वे 'लगभग १३,००० हैं' और सरकार 'नवीनतम तकनीक द्वारा सही सर्वेक्षण करा रही है' हास्यास्पद मालूम होता है.

मूल सवाल था—भारत का क्षेत्रफल कितना है ? भारतीय द्वीपों के क्षेत्रफल के नये-पुराने आँकड़ों में अंतर क्यों है ? कुछ सदस्य जानना चाहते थे कि १९३४ में, १ नवम्बर १९४७ को और आज भारत का कुल क्षेत्रफल कितना है ?' लेकिन इस तरह के मासूम और बुनियादी सवालों का संतोषजनक उत्तर न मिलने पर राज्यसभा में कोई १५-२० मिनट तक तूफ़ान मचा रहा. संयुक्त समाजवादी नेता राज-नारायण को 'गोलमोल' जवाब पर विशेष आपत्ति थी—उन की निगाह में ऐसा जवाब गद्दारी के बराबर था.

विदेशमंत्री दिनेश सिंह ने सदन को बताया कि १९३४ में भारत का क्षेत्रफल ४८,८१,३३९ वर्ग किलोमीटर था; विभाजन के बाद के आँकड़े अभी तैयार नहीं हुए हैं; 'वर्त्तमान क्षेत्र-फल ३२,६८,०९० वर्ग किलोमीटर दिया गया है.' द्वीपों की संख्या 'लगभग १३,०००' बतायी गयी—सही संख्या बता सकने में असमर्थता व्यक्त की गयी. समय-समय पर प्रकाशित क्षेत्रफल के आँकड़ों में अंतर का कारण यह बताया गया कि सर्वेक्षण-विधि में अंतर होने के कारण यह फ़र्क नज़र आता है.

विदेशमंत्री ने राज्यसभा में भारत के क्षेत्र-फल का जो आँकड़ा दिया है वह सरकारी प्रकाशन 'इंडिया १९६८' में भी है और उसे फ़ुटनोट में १.१.१९६६ का बताया गया है. यानी परिवर्त्तन अपेक्षित है. मगर तीन वर्ष के भीतर इस मोर्चे पर कोई प्रगति नहीं दिखाई दी है.

क्षेत्रफल का या सर्वेक्षण की नयी तकनीक का मामला इतना सीधा नहीं है जितना ऊपर से वह दीखता है. क्या सरकार को पिछले बीस-बाईस वर्षों में भारत की क्षेत्रीय संपत्ति की जानकारी नही हुई तो क्यों नहीं ? क्या उसे फ़ुरसत नहीं थी या और कोई गोलमाल है ? यदि सीमांती क्षेत्रों की ज़मीन सीमांत समा-योजन में हम ने गँवा दी है तो उसे स्वीकार क्यों नहीं किया जाता—क्यों नहीं बताया जाता कि अमुक समझौते के अधीन इतना क्षेत्रफल हमारे इलाक़े से निकल गया ? उन्नत सर्वेक्षण-विधि की ओट में वस्तुस्थिति से कत-राना समझ में नहीं आता. फिर द्वीपों की संख्या के बारे में 'लगभग' क्यों ? यदि कुछ द्वीप भूकंप के या समुद्र-जल की सतह ऊँची हो जाने के कारण समुद्र में समा गये तो बता सकना चाहिए. विदेशमंत्री यदि इतना ही बता देते कि नयी विधि से जो सर्वेक्षण हो रहा है उस के परिणाम कब तक सामने आ जायेंगे तो कुछ संतोष हो जाता.

प्रदेश

पश्चिम बंगाल

आश्वासन और आशंकाएँ

६ मार्च को नवनिर्वाचित राज्य विधान मंडल के संयुक्त अधिवेशन को राज्यपाल धर्मवीर द्वारा संबोधित करते समय जिस ऐतिहासिक संकट के पैदा होने की आशंका थी वह अंततः टल गयी. राज्यपाल ने मंत्री परिषद् द्वारा तैयार वक्तव्य के वे दो पैराग्राफ़ नहीं पढ़े जिन पर उन्होंने एक दिन पहले ही आपत्ति कर दी थी. वक्तव्य के उन अंशों में उन स्थितियों का ज़िक्र करते हुए, जिन के अंतर्गत मोर्चा सरकार को बर्खास्त किया गया था, राज्यपाल और केंद्र की तीव्र आलोचना की गयी थी और कहा गया था कि मुखर्जी सरकार को नवंबर १९६७ में ग़ैर-क़ानूनी तौर पर सत्ता से अलग कर दिया गया. विधानसभा भवन पहुँचने पर अध्यक्ष विजय कुमार बैनर्जी और उपाध्यक्ष श्री बर्मन ने राज्यपाल का प्रवेशद्वार पर स्वागत किया और उन्हें सदन तक ले गये. सदन में पहुँचने पर उदास राज्यपाल का कांग्रेसी और कुछ निर्दलीय सदस्यों ने उठ कर स्वागत किया जब कि सरकारी कुर्सियों के विधायक चुपचाप बैठे रहे. अभिभाषण के बाद जब राज्यपाल सदन छोड़ने लगे तब फॉरवर्ड ब्लाक के अमर राय प्रधान ने **'धर्मवीर बंगाल छोड़ो, अभी छोड़ो, जल्दी छोड़ो'** और **'संयुक्त मोर्चा जिंदाबाद'** के नारे लगाये. मोर्चे के विधायकों ने ज़ोर से नारा देते हुए श्री प्रधान का अनुकरण किया और राज्यपाल के जाते समय भी उठ कर खड़े होने के शिष्टाचार का पालन नहीं किया. गनीमत यह थी कि विधायकों ने राज्यपाल को शारीरिक राजनीति का शिकार नहीं बनाया. विजय बैनर्जी उन्हें दरवाजे तक छोड़ने गये. जाते समय राज्यपाल को भारी भीड़ का सामना करना पड़ा. मोर्चे के लाल बिल्ले धारण किये स्वयंसेवकों ने मज़बूत घेरा बना कर श्री धर्मवीर की उत्तेजित जनता से रक्षा की. पर उन की गाड़ी महफ़ूज न रह सकी. विधानसभा भवन के बाहर काफ़ी भीड़ थी जिस को संबोधित करते हुए अजय मुखर्जी और ज्योति बसु ने कहा कि हमें हर शक्ति का सामना प्रजातांत्रिक ढंग से करना चाहिए. सब से उल्लेखनीय बात यह थी कि पुलिस का कहीं पर भी पता नहीं था. पुलिस की ज़िम्मेदारी, यहाँ तक कि यातायात को नियंत्रित करने का काम भी मोर्चे के लाल बिल्लाधारी स्वयंसेवकों ने ही संभाली. लेकिन इस सुरक्षा-व्यवस्था के बावजूद अनेक प्रमुख कांग्रेसियों को जनता के हमले का शिकार होना पड़ा. भूतपूर्व मुख्यमंत्री प्रफुल्ल सेन, तरुण कांति घोष और नेपाल राय के साथ दुर्व्यवहार किया गया. कांग्रेस विधायक दल के नेता सिद्धार्थ शंकर राय को भी ज्योति बसु ने मुक्ति दिलायी. इतना सब होने के बाद अजय मुखर्जी और ज्योति बसु दोनों केंद्रीय नेताओं से बातचीत करने के लिए (देखिए राष्ट्र) दिल्ली चले गये.

सनसनी का दौर : मोर्चा सरकार के सत्तारूढ़ होने के साथ-साथ राज्य के अमीर वर्ग के लोगों और कांग्रेसियों में एक बार सनसनी-सी पैदा हो गयी है. अमीरों में पहली सनसनी का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि चुनाव परिणाम आने के एक सप्ताह तक हवाई जहाज़ का टिकट कलकत्ता आने या कलकत्ता से जाने के लिए मिलना मुश्किल रहा.

ज्योति बसु और अजय मुखर्जी : मंत्रणा

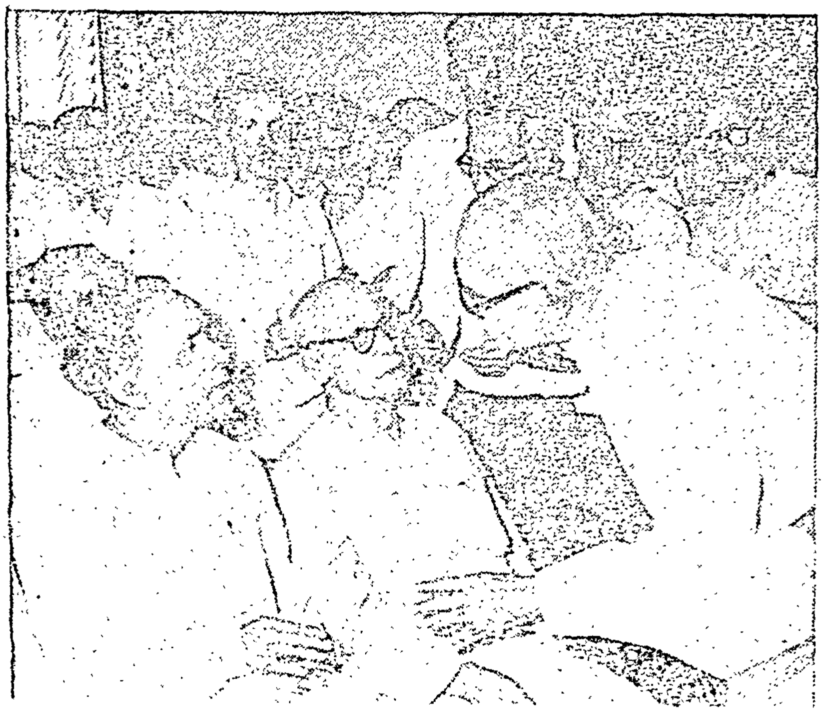

ज्योति बसु और दूसरे नेताओं ने बार-बार यह आश्वासन दिया कि शांति और व्यवस्था बनी रहेगी. श्रमिक शांति, औद्योगिक विस्तार और विनियोजन के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करने का भी आश्वासन दिया गया था. इतना ही नहीं मोर्चा सरकार के अस्तित्व में आने पर कुछ ऐसे कल-कारखानों में, जहाँ घेराव हो चुके हैं, वहाँ पुलिस भी भेजी गयी है. एक कारखाने में पुलिस को आँसू गैस और लाठीबाज़ी के लिए भी मजबूर होना पड़ा. पुलिस के इस रवैये के प्रति मोर्चे के ही कुछ दलों को आपत्ति है और कुल मिला कर मोर्चा सरकार के आश्वासनों के बावजूद आशंकाओं का निराकरण नहीं हुआ. कलकत्ता के चौरंगी रोड पर स्थित प्रदेश कांग्रेस के कार्यालय को उठा कर कहीं 'सुरक्षित' स्थान पर ले जाने का प्रस्ताव भी विचाराधीन है. कांग्रेस को वोट देने वाले हिंदी भाषी भी आशंकित हैं क्यों कि राज्य की यह पहली सरकार है जिस में हिंदी भाषियों का कोई प्रतिनिधि नहीं है. कलकत्ता में कांग्रेस को जो ५ सीटें मिली हैं वे सब की सब हिंदी भाषी क्षेत्रों से ही मिली हैं.

कैसा परिवर्तन? : इस बीच वस्तुस्थिति में बहुत तेज़ी से परिवर्तन हुआ है. कांग्रेस समर्थक अख़बार रातोंरात संयुक्त मोर्चे और कम्युनिस्ट पार्टी के समर्थक हो गये हैं. अनेक कांग्रेसियों ने सुरक्षा के ख्याल से कांग्रेस का चोला उतार फेंका है. उन्हें उत्तरपाड़ा की वह घटना याद है जिस में एक कांग्रेसी संसद् सदस्य को नंगा कर के बीच सड़क पर पीटा गया था. पुलिस के महानिरीक्षक उपानंद मुखर्जी को पदमुक्त कर दिया गया है और लाल बाज़ार थाना के सामने 'पुलिस, अगर बचना चाहो तो डंडा छोड़ झंडा लो' जैसे नारे लिखे हुए मिल रहे हैं.

पुलिस ने भी संयुक्त मोर्चे की सरकार का स्वागत किया है. हावड़ा और नदिया ज़िले की कांग्रेस समितियों के सभी पदाधिकारियों ने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया है. उद्योगपतियों और व्यापारियों में भी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट नेताओं के प्रति अचानक स्नेह उमड़ पड़ा है. इस परिवर्तन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए मार्क्सवादी विधायक अबुल हसन ने **दिनमान** को बताया 'कल तक जो हमारा सलाम क़बूल नहीं करते थे आज हमें सलामी देने पहुँचने लगे हैं. संयुक्त मोर्चे की सरकार ने अपना विजय समारोह मनाने के लिए ३ मार्च को सरकारी छुट्टी रखी. इस समारोह में निजी क्षेत्र के सारे कारखाने स्वेच्छा से शामिल हुए और उस दिन हावड़ा की एक ऐसी जूट मिल भी बंद रही जो महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद देशव्यापी बंदियों के दौरान भी चलती रही थी.

बिहार

लाख का घर

पटना से दिल्ली और दिल्ली से पटना. दौड़-धूप और विचार-विमर्श के बाद अंततः मुख्यमंत्री हरिहर सिंह ने मंत्रिमंडल के गठन के आंशिक किंतु प्रारंभिक महत्त्व का काम पूरा कर लिया. पहले जत्थे के १२ मंत्रियों की सूची प्रकाशित कर दी गयी. कांग्रेस के असंतुष्ट गुट के नेता दारोगा प्रसाद राय ने शपथ ग्रहण समारोह में हिस्सा न ले कर अपने असंतोष को व्यक्त किया. उन के अनुसार कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने असंतुष्ट गुट के ४ व्यक्तियों को मंत्रिमंडल में शामिल किये जाने का आश्वासन दिया था लेकिन मुख्यमंत्री ने यह आश्वासन पूरा नहीं किया (निजलिंगप्पा ने दिल्ली में कहा कि उन्होंने दारोगा राय को ऐसा कोई आश्वासन नहीं दिया था). मंत्रिमंडल गठन के प्रश्न पर सब से बड़ा विवाद जनता पार्टी के नेता कामाख्या नारायण सिंह को ले कर पैदा हुआ था. एक छोटी समस्या कांग्रेस के असंतुष्ट गुट को आनुपातिक प्रतिनिधित्व देने की भी थी. कांग्रेस उच्च कमान के कुछ लोगों का कहना था कि राजा बहादुर के खिलाफ़ क्यों कि अदालत के एक फ़ैसले में कुछ आपत्तिजनक बातें कही गयी हैं और क्यों कि उन्होंने प्रायः दल परिवर्त्तन की राजनीति को प्रश्रय दिया है, उन्हें मंत्रिमंडल में शामिल नहीं किया जाना चाहिए. इस से कांग्रेस की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचेगा. उच्च कमान में ही कुछ ऐसे लोग भी थे जिन का तर्क यह था कि यदि कांग्रेस कुछ दलों के साथ मंत्रिमंडल बनाने की स्थिति में आ गयी है तो मंत्रिमंडल ऐसा बनना चाहिए जिस के स्थायित्व की आशा हो सके. यदि राजा बहादुर को उस में शामिल नहीं किया गया तो १५ सदस्यों की जनता पार्टी अपना समर्थन वापस ले लेगी और फिर कांग्रेस के लिए सरकार बनाना संभव नहीं हो सकेगा. यदि अन्य दलों को मिला कर मंत्रिमंडल बना भी लिया गया तो उस के स्थायित्व के सामने निरंतर एक खतरा बना रहेगा.

मुख्यमंत्री हरिहर सिंह का तर्क यह था कि मिलीजुली सरकार में शामिल होने के लिए उन्होंने जब अन्य दलों को आमंत्रित किया तो उस में ऐसी कोई शर्त नहीं रखी थी कि अमुक दल का नेतृत्व अमुक व्यक्ति करेगा या नहीं करेगा. यह अधिकार उन दलों का ही था कि वे अपने प्रतिनिधि के रूप में जिस को भी चाहें मंत्रिमंडल में मनोनीत करें. यदि अन्य दलों के सामने यह शर्त नहीं रखी गयी कि उन का कोई प्रतिनिधि विशेष मंत्रिमंडल में शामिल नहीं किया जायेगा तो फिर जनता पार्टी के साथ ही इस तरह की शर्त क्यों रखी जाये. श्री सिंह का यह भी कहना था कि मंत्रिमंडल के गठन के सिलसिले में उन्हें पहले दौर में यह आश्वासन भी दिया गया था कि वे अपने सुनिर्णय से पूरे अधिकार के साथ जो भी कुछ चाहें कर सकते हैं. ऐसी स्थिति में राजा बहादुर को विवश नहीं किया जा सकता. कांग्रेस उच्च कमान के जो लोग राजा बहादुर कामाख्या नारायण सिंह को मंत्रिमंडल में शामिल करने के पक्ष में नहीं थे उनका कहना था कि श्री सिंह की जगह पर उन के पुत्र को, जो जनता पार्टी के टिकट पर जीत कर आये हैं, मंत्रिमंडल में शामिल किया जा सकता है. लेकिन यह भी संभव नहीं था.

फ़िलहाल राजा बहादुर को मंत्रिमंडल में जगह दी गयी है. कहा जाता है कि राजा बहादुर ने खुद ही परोक्ष रूप से न केवल इस बात के लिए दबाव डाला था कि उन्हें मंत्रिमंडल में शामिल किया जाये बल्कि यह भी कहा था कि उन्हें खनिज विभाग दिया जाये. राजा बहादुर कई कारखानों के मालिक हैं और इस राज्य में उन के बहुत से हित हैं. ऐसी स्थिति में उन के हित वाले विभाग की माँग करना भी उन के उद्देश्यों को बहुत साफ़ तौर पर सामने ला देता है. पिछले वर्षों में राजा बहादुर ने विभिन्न सरकारों के मंत्रिमंडल में रहते हुए खान संबंधी अपने जिन हितों की पूर्ति के सिलसिले में अपने अधिकारों का उपयोग या दुरुपयोग किया उस के बारे में काफ़ी कुछ लोगों की जानकारी में आ चुका है. ऐसी स्थिति में यदि उच्च कमान के कुछ लोग मंत्रिमंडल में उन को शामिल करने का विरोध कर रहे थे तो उसे उचित ही कहा जायेगा. पर प्रश्न यह है कि वह विरोध कहाँ तक कारगर हो सकता है. कांग्रेस सरकार बनाने के लिए किसी भी व्यक्ति या दल का सहयोग पाने के मोह का संवरण नहीं कर सकी. अगर उस ने मोह का संवरण नहीं किया तो इस से यह भी स्पष्ट हो गया कि सत्ता-मोह में वह खुद अपनी ही बनायी नैतिकता से खिलवाड़ कर रही है. इस के परिणाम उस की बदनामी के लिए जगह तैयार करेंगे.

हरिहर सिंह

इस फ़ैसले से केंद्रीय संसदीय बोर्ड के सदस्यों में भी मतभेद पैदा हो गया है. श्री सुब्रह्मण्यम ने निजलिंगप्पा के फ़ैसले के विरोध में अपनी सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया है. उनका कहना है कि सत्ता-मोह में लिया गया फ़ैसला अनैतिक और कांग्रेस के लिए घातक है.

उत्तरप्रदेश

पर्दा खुलने तक

शिक्षामंत्री होते ही रामजीलाल सहायक कॉलेज अध्यापकों के लिए सहायक सिद्ध हुए और बढ़ा हुआ महँगाई-भत्ता देने का आश्वासन दे कर उन्होंने महीनों से चली आ रही शिक्षकों की हड़ताल को समाप्त होने का मौक़ा दिया और शासन में आने के बाद गुप्त मंत्रिमंडल की यह पहली उपलब्धि है. कहा यह गया है कि शिक्षकों की अन्य माँगों पर भी सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जायेगा. चंद्रभानु गुप्त ने अपने मंत्रियों की सूची पखवाड़ा भर पहले ही प्रकाशित कर दी थी लेकिन दूसरी सूची के बारे में अभी कोई विशेष संकेत नहीं मिला है. संकेत न मिलने से असंतुष्टों की परेशानी बदस्तूर क़ायम है. कांग्रेसी क्षेत्रों का विचार है कि इस मंत्रिमंडल के गठन में दिल्ली के अलावा बलरामपुर अस्पताल में बीमार पड़े हेमवती बहुगुणा और एटा के पटियाली क्षेत्र से पराजित उन के एक प्रवक्ता बनारसी दास का विशेष हाथ है. असलियत यह है कि अपनी बात पर क़दम-क़दम पर अड़ने वाले चंद्रभानु गुप्त मंत्रिमंडल के अस्तित्व को बनाये रखने के लिए हर तरह के दबाव को बड़ी मजबूरी में बर्दाश्त कर रहे हैं. कुछ तटस्थ पर्यवेक्षकों का विचार है कि ३ हरिजनों और २ पिछड़े वर्ग के लोगों को मंत्रिमंडल में शामिल कर के कांग्रेस ने इन वर्गों में अपनी साख जमाने का प्रयास किया है. कुल मिला कर यह समझा जा रहा है कि चंद्रभानु गुप्त ने अपना काम बहुत कुशलता और चतुराई से शुरू किया है. ख़्याल है कि अगली सूची का प्रकाशन विलंब से किया जायेगा. चंद्रभानु गुप्त और कांग्रेसी राजनीति की बागडोर संभालने वाले अन्य नेता इस बीच भारतीय क्रांतिदल के चरणसिंह और जनसंघ की गतिविधियों को सूक्ष्मता के साथ देख रहे हैं. अगली किस्त का प्रकाशन संभवतः उस समय होगा जब यह पता चल जायेगा कि चरणसिंह विरोधी दलों को किस सीमा तक मंच पर ला पाते हैं. कुछ दिनों पहले चरणसिंह के निवासस्थान पर जनसंघ, संसपा और कुछ निर्दलीय विधायकों की एक सभा हुई थी लेकिन उस में कोई सर्वसम्मत समझौता नहीं हो सका था. प्रयास जारी है. बात एक विरोधी मोर्चा क़ायम करने की है.

आंध्रप्रदेश

डॉक्टरों की हड़ताल

२८ फरवरी से आंध्रप्रदेश के एक हज़ार हाउस सर्जन अनिश्चितकालीन आम हड़ताल पर हैं. नये डॉक्टरों को हाउस सर्जनशिप के अंतर्गत स्नातक होने के बाद एक वर्ष के लिए

अनिवार्य प्रशिक्षण लेना पड़ता है और इस प्रशिक्षण के दौरान इन लोगों को अस्पतालों में लगभग वही सब काम करने पड़ते हैं जो एक सहायक सर्जन करता है. जिन कारणों से यह राज्यव्यापी हड़ताल हो रही है, उन्हीं कारणों से दो वर्ष पूर्व भी हाउस सर्जनों ने राज्य सरकार को हड़ताल की नोटिस दी थी. लेकिन तब मुख्यमंत्री के आश्वासन पर हड़ताल टल गयी थी. अब वह फिर सामने आयी है. हाउस सर्जनों की मुख्य माँगें हैं:—

१—छात्र-वृत्ति की प्रतिमास दी जाने वाली रक़म एक सौ पचास रुपये से बढ़ा कर दो सौ पचास रुपये की जाये. २—प्रशिक्षणार्थियों से ली जाने वाली फिटनेश सर्टिफिकेट की फ़ीस सोलह रुपये माफ़ की जाये. ३—यदि एक वर्ष के प्रशिक्षण के बाद प्रशिक्षणार्थी को नौकरी न मिले और वह हाउस सर्जनशिप जारी रखना चाहे तो प्रतिमास प्रशिक्षणार्थी से ली जाने वाली तीस रुपये फ़ीस की राशि माफ़ की जाये.

इन प्रशिक्षणार्थी डॉक्टरों को सुबह साढ़े आठ से सायं तीन-चार बजे तक अस्पताल में अनिवार्य रूप से काम करना पड़ता है. महीने में एक दिन इन की चौबीस घंटे की ड्यूटी रहती है. इस के अतिरिक्त मरीज़ों की भर्ती के दिनों में भी इन को चौबीस घंटे ड्यूटी देनी पड़ती है. कुल मिला कर इन्हें औसतन साढ़े बारह घंटे काम करना पड़ता है. इन्हें निजी प्रेक्टिस करने की भी अनुमति नहीं. इतनी कड़ी मेहनत के बदले इन्हें छात्र-वृत्ति के रूप में एक सौ पचास रुपये की राशि दी जाती है जो उन के रहने, खाने और मार्ग-व्यय के लिए भी पूरी नहीं पड़ती. जिन अस्पतालों में इन्हें काम करना पड़ता है वहाँ रहने की व्यवस्था नहीं है.

संवाददाता सम्मेलन में (५ मार्च को) उन के प्रतिनिधियों ने शिकायत की कि कुछ तकनीकी क़िस्म के काम अप्रशिक्षित नर्सों से लिये जाते हैं जिस से मरीज़ की जान पर बन आती है. सिविल सर्जनों और सहायक सर्जनों के वेतन में तीस से पचास प्रतिशत तक की वृद्धि की गयी किंतु हाउस-सर्जनों को मिलने वाली छात्र-वृत्ति में कोई वृद्धि नहीं की गयी. हाउस-सर्जनों के प्रतिनिधियों ने बतलाया कि ये लोग मुख्यमंत्री श्री ब्रह्मानंद रेड्डी के पास अपनी माँगें ले कर गये थे किंतु उन की बेरुखी और सहानुभूतिहीन व्यवहार ने उन्हें अनिश्चितकालीन हड़ताल करने को बाध्य कर दिया. हाउस-सर्जनों ने संवाददाता सम्मेलन में इस बात पर खेद प्रकट किया कि उन की इस हड़ताल के कारण जनता को अनावश्यक कष्ट का सामना करना पड़ रहा है किंतु उन्होंने यह बात भी बतलायी कि हड़ताल के दौरान भी गंभीर परिस्थितियों में वे काली पट्टियाँ लगा कर रोगियों की सहायता के लिए पहुँच जाते हैं.

अस्पताल के अधिकारियों ने अपने एक अध्यादेश द्वारा अस्पतालों में सीमित पलंगों से अलग फ़र्श पर अतिरिक्त विस्तर देने की व्यवस्था को खत्म कर के बीमारों को लेना बंद कर दिया है और पुराने और सामान्य रोगियों, दुर्घटनाग्रस्त मरीजों को भी दाखिल नहीं किया जा रहा है. इस अध्यादेश के अंतर्गत केवल गंभीर रोगियों को ही दाखिल किया जायेगा.

हिमाचलप्रदेश

स्वशासन की माँग

विधानसभा में बजट अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए अपने अभिभाषण में उप-राज्यपाल कंवर बहादुर सिंह ने यह उम्मीद ज़ाहिर की कि शीघ्र ही हिमाचलप्रदेश को भी भारत संघ में एक स्वतंत्र राज्य का दर्जा मिल सकेगा. केंद्र-शासित इस राज्य की जनता और नेताओं की अर्से से संचित इस आकांक्षा की ओर केवल संकेत भर कर के उप-राज्यपाल फिर राज्य की भावी आर्थिक संभावनाओं का हवाला देने लगे और उन्होंने इस बारे में कोई खुलासा नहीं दिया कि स्वतंत्र राज्य का दर्जा प्राप्त करने की उम्मीद का कोई ठोस आधार है भी या नहीं; केंद्रीय नेताओं ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उन्हें ऐसा कोई आश्वासन दिया भी है या नहीं. हिमाचल को स्वतंत्र राज्य का दर्जा देने की माँग तो कई वर्षों से दोहरायी जा रही है और कुछ ही रोज़ पूर्व गृहमंत्रालय में राज्यमंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल ने राज्यसभा में कहा भी था कि सरकार फ़िलहाल इस राज्य की वर्त्तमान हैसियत में कोई भी परिवर्त्तन करना नहीं चाहती. स्वतंत्र राज्य का दर्जा दिये जाने का प्रश्न तभी उठेगा जब यह राज्य आर्थिक दृष्टि से आत्म-निर्भर हो जाये.

कुंठाएँ : दरअसल केंद्र की नौकरशाही के बोझ से लदे हिमाचलप्रदेश के प्रशासनिक ढाँचे का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि लगभग ३३ लाख की आबादी वाले इस राज्य में क़रीब १ लाख सरकारी कर्मचारी हैं. इस पर भी प्रदेश का अपना जन सेवा आयोग न होने से वहाँ के युवक-युवतियों को सरकारी नौकरी हासिल करने में प्राथमिकता नहीं दी जाती जिस से यह वर्ग बहुत असंतुष्ट है. स्थानीय नेता भी इस हीन भावना से ग्रस्त हैं कि राज्य की विधानसभा तो मात्र एक 'नगरपालिका' है, जिस का प्रशासन 'केंद्रीय मंत्रियों के आदेशानुसार उन के सचिव चलाते हैं.' यह शिकायत काफ़ी हद तक सही है क्यों कि नियमित रूप से प्रशासन चलाने और छोटे-मोटे मामलों पर निर्णय लेने के लिए भी स्थानीय नेताओं को केंद्र के आदेशों की प्रतीक्षा करनी पड़ती है और राज्य के वरिष्ठ मंत्रियों का अधिकांश समय महत्त्वपूर्ण मसलों पर निर्णय लेने का तकाज़ा करने के इरादे से बार-बार दिल्ली का दौरा लगाने में ही सर्फ़ हो जाता है. प्रदेश के न्याय विभाग पर भी दिल्ली के उच्च न्यायालय का ही नियंत्रण क़ायम है. प्रदेश के मंत्री अपने सीमित अधिकारों से कुंठित हैं. पिछले वर्ष अप्रैल में हिमाचल प्रदेश के नेताओं ने प्रधानमंत्री को इस आशय का एक ज्ञापन दिया था कि स्वतंत्रता के बाद की अवधि में लोकतांत्रिक और प्रशासनिक परंपरा के निर्वाह के तजुर्बे के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से भी प्रदेश इस लायक हो गया है कि वह स्वशासन के अधिकार की माँग कर सके.

शर्तों की गाँठ : इस बजट-अधिवेशन में चौथी पंचवर्षीय योजना का ज़िक्र करते हुए उप-राज्यपाल ने केंद्र से अधिक अनुदान प्राप्त करने में क़ामयाब डॉ. परमार को बधाई तो दी पर इस बात की बहुत कम संभावना है कि केंद्र की इस दरियादिली से इस राज्य पर अपनी गिरफ़्त क़ायम रह सकेगा. दरअसल, केंद्रीय नेताओं ने स्वतंत्र राज्य का दर्जा देने और आर्थिक आत्मनिर्भरता में अन्योन्याश्रित संबंध क़ायम कर के इस प्रदेश की जनता के आग्रह की तीव्रता को कुंद करने की एक परिपाटी-सी बना ली है. हालाँकि इस परिपाटी के खोखलेपन से वे बेखबर नहीं क्यों कि प्राय: सभी राज्यों को केंद्र से आर्थिक सहायता मिलती है और खास कर जम्मू कश्मीर तथा नगालैंड को केंद्रीय सहायता पर ही आश्रित होते हुए भी भारतीय संघ में स्वतंत्र राज्य का दर्जा दिया गया है.

बहरहाल, उप-राज्यपाल को यह आशा है कि यदि प्रदेश अपने समस्त आर्थिक साधनों के उपयोग के लिए प्रयत्नशील हो तो वह १० वर्ष के भीतर अपनी आय में ६० करोड़ रुपयों की वृद्धि कर सकता है. राज्य सरकार ने इस वर्ष केंद्र से माँग की है कि भाखड़ा-नंगल बाँध के पानी के उपयोग के एवज में हिमाचलप्रदेश को पड़ोसी राज्यों—पंजाब, हरियाणा और राजस्थान—से रायल्टी मिलनी चाहिए. अनुमानत: इस रायल्टी से राज्य को प्रतिवर्ष १० करोड़ रु. की आय हो सकेगी. हिमाचल प्रदेश के नेताओं की मान्यता है कि स्वशासन का पूर्ण अधिकार मिलने पर १० वर्ष के भीतर ही यह राज्य आत्मनिर्भर बन सकता है.

शर्तों की गाँठ से बँधी इस माँग ने अभी उग्र रूप धारण नहीं किया है. लेकिन बातचीत और रखरखाव से मामला न सुलझने पर आंदोलन और 'कुर्बानी' का दौर भी शुरू हो सकता है. चीन और पाकिस्तान की सीमा से लगे इस राज्य में कोई भी उग्र आंदोलन देश के लिए अहितकर सिद्ध होगा. ५८,२३२ वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल वाले, आकार में हरियाणा और पंजाब से बड़े इस राज्य की स्वशासन की माँग चाहे जिस आधार पर भी दबायी जाये, इस में शंका की गुंजाइश नहीं कि इस राज्य को प्रभावशाली प्रशासन दे सकने में केंद्र अब तक नाक़ामयाब रहा है.

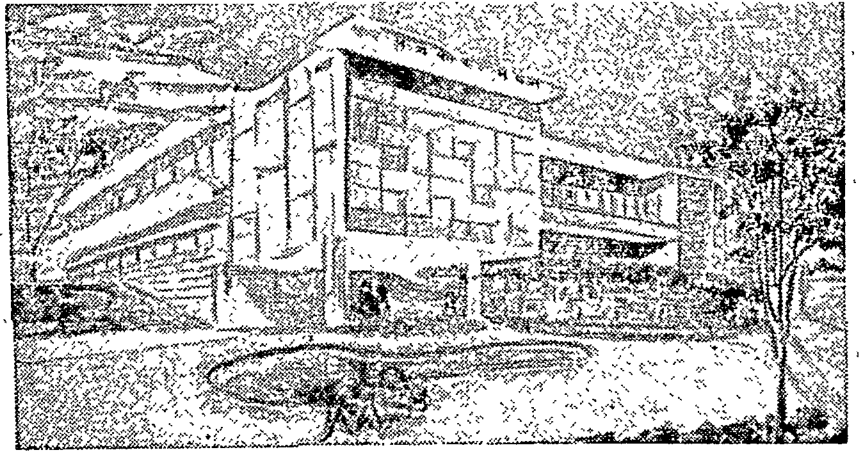

पत्रकार भवन : मोहक नक़्शा, आकर्षक योजनाएँ

मध्यप्रदेश

सरकार का संकट

संविद शासन की इकाइयों में काफ़ी मतभेद पैदा हो गये हैं. उसे देख कर लगता है कि सरकार के सामने जितना बड़ा खतरा इस वक़्त पैदा हो गया है वैसा खतरा पिछले १८ महीनों में कभी नहीं पैदा हुआ था. हालाँकि अभी यह नहीं कहा जा सकता कि उस खतरे के कारण मंत्रिमंडल का पतन हो ही जायेगा.

वर्तमान मंत्रिमंडल के कम से कम १० दल-बदलू सदस्य मुख्यमंत्री से असंतुष्ट हैं और मुख्यमंत्री को नीचा दिखाने की शतरंजी चाल चल रहे हैं. संसपा का ९ सदस्यीय गुट सरकार में रह कर भी विरोधी दल की तरह पेश आ रहा है. उस का संगठन पक्ष सरकार में रहने के लिए अब उतना उत्सुक भी नहीं दिखायी दे रहा है जितना कि पहले था. संविद की तीन अन्य इकाइयाँ : प्रसोपा, भारतीय क्रांति दल और कम्युनिस्ट तो विरोधियों की सीट पर बैठने ही लगे हैं. लोक सेवक दल लगभग टूट गया है और राजमाता गुट के विधायकों में से कुछ विद्रोह की तैयारी में लगे हुए हैं. इन विद्रोहियों में हीरालाल पिप्पल और रायसिंह मदौरिया के नाम प्रमुख हैं. जनसंघ की स्थिति विचित्र है. उस में भी दो गुट हो गये हैं. एक शासन में बने रहना चाहता है और दूसरा उस से अलग हो जाना चाहता है.

विधानसभा में भूतपूर्व मंत्री रामेश्वर प्रसाद शर्मा ने मुख्यमंत्री गोविंद नारायण सिंह पर अपना मकान बनवाने में सरकारी सामग्री का उपयोग, सरकारी इंजीनियरों द्वारा उसे बनवाने, रिश्वत लेने और नियुक्तियों में पक्षपात आदि के भयंकर आरोप लगाये हैं. दूसरी तरफ़ संयुक्त विधायक दल की बैठक में भी मुख्यमंत्री की पहले से कहीं तीखी आलोचना की गयी. इन सब को देख कर लगता है कि श्री सिंह की प्रतिष्ठा और उन के प्रभाव में काफ़ी गिरावट आ गयी है.

एकता के दर्शन : दो वर्षों में पहली बार कांग्रेस में एकता दिखायी देने लगी है. द्वारका प्रसाद मिश्र और श्यामाचरण शुक्ल ने एक-दूसरे की टाँग खींचना बंद कर दिया है. कहा जाता है कि श्री मिश्र ने श्री शुक्ल से यह कहा है कि संविद को गिराने का जो भी प्रयास होगा उस में वह अपना पूरा समर्थन देंगे. एक सूचना के अनुसार संविद के २५-३० व्यक्ति इतने असंतुष्ट हैं कि अवसर पाते ही विद्रोह कर देंगे. इस के लिए दिल्ली और भोपाल दोनों जगहों पर गुप्त चर्चाएँ चल रही हैं.

पत्रकार भवन : इस बीच भोपाल में श्रमजीवी पत्रकार संघ ने लगभग ४० हज़ार रुपया एकत्र कर लिया है. इतना ही रुपया दो-तीन महीनों में और एकत्र कर लिया जायेगा. इस तरह लगभग ७० हज़ार रुपये की लागत से उस के निर्माण का प्रथम चरण पूरा हो जायेगा. शेष रुपयों की व्यवस्था होनी है. उस के लिए शिलान्यास के वक़्त कश्मीर के राज्यपाल श्री भगवान सहाय ने लॉटरी डालने का प्रस्ताव किया था और उस पर विचार किया जा रहा है. पत्रकारों का यह भवन, जिस में भोपाल का सब से विशाल सभागृह होगा, पत्रकारों की अपनी संपत्ति होने के बावजूद सभी सांस्कृतिक और साहित्यिक संस्थाओं के कार्यक्रमों के लिए उपलब्ध हो सकेगा. क़लम पर जीने वालों के विचार-विमर्श के लिए तो यह स्थान महत्वपूर्ण होगा ही. ढाई लाख की लागत से निर्मित होने वाले इस भवन में संदर्भ पुस्तकालय, पत्रकारिता का शिक्षण देने वाली संस्था, पत्रकारिता विषयक शोध-कक्ष तथा एक सभा भवन की भी व्यवस्था होगी.

पंजाब

कुशल प्रशासन के लिए

जब से गुरनामसिंह ने राज्य की सत्ता सँभाली है तब से वह बराबर अपने मंत्रियों समेत राज्य का व्यापक दौरा कर रहे हैं और लोगों को कुशल प्रशासन देने का आश्वासन दे रहे हैं. किसानों को राहत देने की गर्ज़ से १० एकड़ ज़मीन पर मालगुज़ारी की छूट देने का ऐलान किया गया. पहले यह छूट ५ एकड़ ज़मीन पर थी. एक लाख ट्यूबवैल और पंप लगाने की सुविधाएँ देने का भी वायदा किया गया. इस सुविधा से ११.९ लाख हेक्टायर भूमि में सिंचाई-कार्य हो सकेगा. सरकारी कर्मचारियों को ज़रूरत पर आधारित वेतन देने की बात भी सिद्धांततः स्वीकार कर ली गयी है. उन सभी केंद्रीय सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ़ चल रहे मुकद्दमों को भी वापस लेने का निर्णय किया है, जिन्हें १९ सितंबर की हड़ताल में भाग लेने के कारण गिरफ़्तार किया गया था. राज्य में भ्रष्टाचार समाप्त करने के बारे में गुरनामसिंह सरकार ने निर्देश जारी किये हैं जिन के अनुसार लोगों की शिकायत आने पर पुलिस कमिश्नर को मौक़े पर जा कर वाकये की पड़ताल करने की ताक़ीद की गयी है. अपनी सरकार की साफ़ और उजली तस्वीर लोगों के सामने पेश करने के लिए गुरनामसिंह मंत्रिमंडल के सदस्यों ने ५०० रुपया महीना वेतन कम लेने का भी निर्णय किया है.

परिषद् की समाप्ति : लोगों को अधिक सुविधाएँ देने और इस के फलस्वरूप आमदनी में कमी को ध्यान में रखते हुए पंजाब सरकार कुछ इस तरह के क़दम उठाने का विचार रखती है जिस से राज्य की अर्थ-व्यवस्था लड़खड़ाने न पाये. इस संबंध में सब से पहला क़दम विधान परिषद् को समाप्त करने के बारे में उठाये जाने की संभावना है. मुख्यमंत्री का कहना है कि पंजाब एक छोटा-सा राज्य है और वहाँ दो सदनों की कोई ज़रूरत नहीं. पिछली संयुक्त मोर्चा सरकार ने भी इस बारे में निर्णय लिया था, लेकिन सरकार का पतन हो जाने के कारण वह निर्णय कार्यरूप में परिणत नहीं किया जा सका. जब मुख्यमंत्री गुरनामसिंह से यह पूछा गया कि क्या विधान परिषद् को समाप्त करने का निर्णय कम्युनिस्टों का दबाव था तब उन्होंने नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा कि वह निर्णय पूरे मंत्रिमंडल का था. मौजदा अकाली-जनसंघ सरकार को 'दक्षिणपंथी' सरकार कह कर संबोधित किया जा रहा है और लोगों का ऐसा क़यास है कि पिछला 'वामपंथी' मोर्चे का स्वरूप वर्तमान मोर्चे से भिन्न था. लेकिन मुख्यमंत्री ने परिषद् के बारे में अपना निर्णय बता कर सभी दलीलों को बेबुनियाद साबित कर दिया है. इस बात की भी चर्चा है कि राज्यपाल अपने अभिभाषण में परिषद् को समाप्त करने के बारे में भी संकेत देंगे.

मंत्रिमंडल का विस्तार : राजनैतिक हलकों में यह अफ़वाह बहुत गर्म थी कि अधिवेशन शुरू होने से पहले गुरनामसिंह अपने मंत्रिमंडल का विस्तार करेंगे. लेकिन पिछले दिनों अकाली नेता संत फ़तेहसिंह ने गुरनामसिंह की उपस्थिति में इस बात का ऐलान किया कि फ़िलहाल मंत्रिमंडल के विस्तार का कोई विचार नहीं. संत के इस

फ़ैसले से उन सभी दावेदारों को बहुत कोफ़्त हुई होगी जो यह समझ बैठे थे कि अब उन की मुराद पूरी होने में अधिक दिन नहीं रह गये हैं. संत का कहना है कि विधायकों को अपने सही विधायक होने का पहले परिचय देना चाहिए और तब ही मंत्रि-पद की कामना करनी चाहिए. उन्होंने अकाली विधायकों को अकाल-तख्त के सामने ली गयी शपथ का ध्यान दिलाते हुए कहा कि दल बदलने की बात सोचने से पहले शपथ तोड़ने के संभावित परिणामों को उन्हें अवश्य दृष्टिकोण में रखना चाहिए.

कश्मीर

सफ़ाया अभियान

राज्यसरकार ने दावा किया है कि उस ने पाकिस्तानी षड्यंत्रकारियों के एक और दल का सफ़ाया कर दिया है. ऐसे ही एक दल के सफ़ाये की घोषणा अक्तूबर ६८ में भी की गयी थी. राज्य की पुलिस के अनुसार इस बार १० षड्यंत्रकारियों को गिरफ़्तार किया गया और ५ भाग निकले. उन की योजना मखदूम साहब और खानिकाह मुल्लाह की मस्जिदों को आगजनी के ज़रिए नष्ट कर देने की थी. राज्य पुलिस के उपमहा-निरीक्षक पीर गुलाम हसन शाह के अनुसार षड्यंत्रकारियों के इस दल का संगठन १९६७ के प्रारंभ में किया गया था. अपनी कार्रवाइयों के पहले दौर में इस दल ने रेड कश्मीर के लेबल में उत्तेजक साहित्य वितरित करने की कोशिश की थी. लिफ़ाफ़ों पर जम्मू-कश्मीर सरकार का डाक टिकट लगाया हुआ था और उस का उद्देश्य था कि राज्य के युवक भारत के विरुद्ध अल्जीरियायी ढंग की क्रांति के लिए तैयार किये जायें. अपनी प्रारंभिक कार्रवाइयों से संतुष्ट हो कर इस दल ने पाकिस्तान के इशारे पर स्थानीय ढंग से अस्त्र-शस्त्र संग्रह करने का प्रयोग किया. फ़रवरी ६७ में सीमा सुरक्षा दल के एक जवान को, जो कि नवकदल पुल पर पहरा दे रहा था, छुरे से बुरी तरह घायल किया गया और उस की थ्री नॉट थ्री (३०३) की राइफ़ल छीन ली गयी. जवान के पास ५ कारतूस भी थे. पुलिस ने ऐसी किसी और घटना का ज़िक्र तो नहीं किया है, लेकिन कुछ लोगों का ख्याल है कि इस दल के लोगों ने स्थानीय ढंग से विस्फोटक सामग्री बनाने की भी योजना शुरू की थी. एक स्थानीय कॉलिज के एक छात्र के घर में विस्फोट हुआ था और उस में छात्र घायल हो गया था. पुलिस ने उस से प्रश्न आदि भी किये थे.

श्री शाह का कहना था कि षड्यंत्रकारियों ने मखदूम साहब की दरगाह में आग लगाने की कोशिश की. जब वह उस में सफ़ल नहीं हुए तब दोबारा मखदूम साहब और खानिकाहे मुल्लाह की दरगाहों में आग लगाने की योजना बनी; लेकिन इस के पहले कि उन की योजना कोई रूप लेती पुलिस ने उन्हें पकड़ लिया. इस संघर्ष में पुलिस को वह राइफ़ल भी मिली जिसे सीमा सुरक्षा दल के उस जवान से छीन लिया गया था. समय-समय पर राज्य सरकार को षड्यंत्र की जिन घटनाओं का पता चलता रहा है उस से यह सिद्ध हो गया है कि पाकिस्तान अपनी भारत विरोधी कार्रवाइयों को स्थगित करने के पक्ष में नहीं है. जब एक पत्रकार ने मुख्यमंत्री गुलाम मोहम्मद सादिक़ से यह प्रश्न किया कि क्या गिरफ़्तार किये गये उन १० व्यक्तियों में कोई पाकिस्तानी भी है तो उन्होंने उत्तर दिया कि पाकिस्तानियों का आना और जाना लगा हुआ है. नेशनल कांफ्रेंस के अध्यक्ष श्यामलाल सर्राफ़ को मुख्यमंत्री की यह आत्मस्वीकृति रहस्यमय लगी. उन्होंने यह जानने की भी कोशिश की कि पिछले संघर्ष के षड्यंत्र के मामले में जिन लोगों को पकड़ा गया था उन्हें क्या सज़ा दी गयी. इस सिलसिले में यह बात ध्यान देने की है कि पिछले कुछ दिनों में राज्य सरकार ने षड्यंत्रकारी होने के अभियोग में जितने लोगों को गिरफ़्तार किया था उन में से २३ को छोड़ दिया गया है. इन सभी के खिलाफ़ राष्ट्रविरोधी कार्रवाइयाँ करने के आरोप थे. इन की रिहाई भी राज्य सरकार के उस दावे के बाद हुई है जिस के अनुसार षड्यंत्रकारियों के एक और दल का सफ़ाया कर दिया गया. ७ दिसंबर १९६८ को श्रीनगर के केंद्रीय कारागार से जो तीन पाकिस्तानी षड्यंत्रकारी भाग गये थे उन की गिरफ़्तारी अभी तक नहीं हो सकी है. मुख्यमंत्री का कहना है कि पुलिस अभी भी उन की तलाश कर रही है, हालाँकि एक असलियत, जैसा कि बताया जाता है, यह भी है कि जेल से निकलने के १५ दिन के बाद वे षड्यंत्रकारी सीमा पार कर आज़ाद कश्मीर पहुँचने में सफल हो गये थे.

यह मान कर कि षड्यंत्र का सारे का सारा काम पाकिस्तान के निर्देशन पर हो रहा है, राज्य सरकार ने घोषणा की है कि विभिन्न तबकों के २२ हज़ार लोगों को चालू वर्ष में नागरिक सुरक्षा का प्रशिक्षण किया जायेगा. नागरिक सुरक्षा और गृह रक्षक विभाग के उपमहानिरीक्षक मुहम्मद सुल्तान का कहना है कि जिन २२ हज़ार लोगों को प्रशिक्षण दिया जायेगा उन में से १५ हज़ार शिक्षण-संस्थानों से लिये जायेंगे. इन युवकों को विस्फोटकों के इस्तेमाल से ले कर प्राथमिक उपचार और आग बुझाने आदि का प्रशिक्षण दिया जायेगा.

राजनैतिक क्षेत्रों के कुछ व्यक्तियों का ख्याल है कि यदि कश्मीर के युवकों को इस तरह का प्रशिक्षण दिया जाता है तो उस से एक दूसरी तरह का खतरा भी पैदा हो सकता है. इस वर्ग ने अपनी शंका का तर्क देते हुए कहा है कि राज्य के पृथकतावादी नेताओं ने कश्मीरी युवकों को सलाह दी है कि वे अधिक से अधिक संख्या में नागरिक सुरक्षा के प्रशिक्षण में भाग लें. कहा जाता है कि इस तरह का प्रशिक्षण लेने वाले कुछ लोगों ने शपथ के अवसर पर अपनी भक्ति भारत के प्रति न व्यक्त कर के कश्मीर के प्रति व्यक्त की. जिन पत्रकारों ने नागरिक सुरक्षा के फ़ॉर्म देखे वे भी उसे पढ़ कर आश्चर्यचकित रह गये. यह विश्वास अभी भी एक बड़े वर्ग में विद्यमान है कि १९६५ के संघर्ष के दौरान घुसपैठियों ने जो अस्त्र-शस्त्र छोड़ दिये थे वे अभी भी घाटी में पड़े हुए हैं और उस की जानकारी कुछ लोगों को है. कुछ दिनों पहले राज्य सरकार की पुलिस ने यह कहा था कि ताशकंद समझौता-घोषणा के बाद पाकिस्तानी षड्यंत्रकारियों से जो अस्त्र-शस्त्र छीने गये थे उन में ३०० राइफल, २८ स्टेनगन, २५ रिवॉल्वर, ३१५ हथगोले, ८५,००० कारतूस, १५०० पाउंड विस्फोटक सामग्री और दो इंच के अनेक मॉर्टर बम हैं.

राम-झरोखा

बादल सरकार की रंगभूमि

दुबले-पतले और विनम्र, बीमार-से लगने वाले, अट्ठारह छोटे-बड़े नाटकों के रचयिता बादल सरकार को देख कर नहीं लगता कि वह अपने भीतर विस्फोट छिपाये हुए हैं. बादल सरकार का नाटक 'नया नाटक' है, जो मनुष्य-जीवन की बुनियादी समस्याओं से साक्षात्कार करता है. अपने नाटक के पात्रों की तरह बादल सरकार भी बातचीत में सहसा किसी नतीजे पर नहीं पहुँचते; धीरे-धीरे, अपने अनुभव और अध्ययन का सहारा लेते हुए स्थापनाएँ करते और मानव-इतिहास के समग्र आशय को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं. भारतीय नाटककारों में वह अकेले हैं जिन के पास कोई 'दावा' नहीं है. उन का एक मात्र 'दावा' केवल इतना है कि "मैं अपने नाटकों के ज़रिए मानव-जीवन की विडंबना को समझने की कोशिश कर रहा हूँ."

दिनमान ने 'बाकी इतिहास' के रचयिता बादल सरकार के साथ अपनी बातचीत इतिहास के उन्हीं प्रश्नों को आधार बना कर की जो कि उन के नाटकों में पात्रों और अपात्रों की शकल में मौजूद हैं.

दिनमान : 'निजी ट्रैजेडी और समग्र मानव-स्थिति—आप अपनी चिंता के इन दो केंद्रों को, जो कि आप की रचना के आधार भी हैं, किस तरह एक दूसरे से जोड़ना चाहते हैं ? क्या इन दो संसारों का एक दूसरे से जुड़ पाना संभव है ?'

बादल सरकार : 'मैं एक सजग व्यक्ति के लिए नाटक लिखता हूँ, जो कि इन दोनों ही स्तरों पर जीवित रहता है. जो व्यक्ति अपने जीवन में एक घोर अंधकार का द्रष्टा है वही इतिहास की एक भयानक दुर्घटना का गवाह भी है. एक आत्मीय की मृत्यु का अवसाद और महायुद्ध में मारे गये लोगों का शोक, दोनों ही मनुष्य के भीतर अपना अर्थ पाते हैं. निजी ट्रैजेडी को इतिहास से बाहर कर देखना जीने के अर्थ को विकृत और अनाधुनिक करना है.'

मानव-संहार

दि. : 'कुछ नाटककारों का दावा है कि पश्चिम में जिसे अर्थहीनता का रंगमंच (थियेटर ऑफ़ द एबसर्ड) कहा जाता है वह हमारे लिए बहुत संगत नहीं हो सकता.'

बा. स. : 'क्यों नहीं हो सकता. क्या हमारे जीवन में मृत्यु नहीं, दुर्घटना नहीं, जीने का भय नहीं, अपने अर्थहीन होते जाने का अहसास नहीं ? मैं कलाकृतियों पर प्रचलित लेबल लगाने के विरुद्ध हूँ; इस लिए अगर कोई मेरे नाटकों को 'एबसर्ड' की संज्ञा देता है तो मैं इसे अपर्याप्त मानूँगा. लेकिन यह मानना कि 'अर्थहीनता' केवल पाश्चात्य व्यक्ति की अनुभूति है मनुष्य को विभक्त कर देखने का प्रयत्न है. मनुष्य का संकट केवल पश्चिम तक सीमित नहीं. यह सही है कि पश्चिम में पिछली कुछ शताब्दियों में घटनाएँ बड़ी तेजी से घटी हैं—दो-दो महायुद्ध, सभ्यताओं का पतन, समग्र मानव-संहार की संभावना ! लेकिन क्या हम अपने बारे में यह कह सकते हैं कि हम इतिहास की विभीषिका से मुक्त हैं ? क्या हम एक सर्वव्यापी भय में जीवित नहीं हैं ? क्या हमारे जीवन में गहरा विषाद नहीं ? क्या हम केवल सतह पर जीवित हैं ?'

नाटककार का प्रश्न

दि. : 'क्या भय या ट्रैजेडी का अहसास ही काफ़ी है ? या कि नाटककार की इस से भी आगे कोई ज़िम्मेदारी है ?'

बा. स. : 'नाटककार की ज़िम्मेदारी है दर्शक को मनुष्य की नियति का परिचय देना. 'बाकी इतिहास' में जो कुछ रह गया है उसे मैंने अपने बाद के नाटक 'त्रिंश शताब्दी' (तीसवीं सदी) में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है. एक तरह से वह 'बाकी इतिहास' की अगली कड़ी है. यह एक वृत्त (डाक्युमेंट्री) नाटक है. जहाँ तक नाटककार की सामाजिक ज़िम्मेदारी का प्रश्न है यह सही है कि नाटककार अपने दर्शक-वर्ग के प्रति उत्तरदायी है. मगर उस का काम प्रश्न का हल ढूंढना नहीं. यह उस के बस की बात नहीं. उस का कार्य केवल प्रश्न करना है. मैं अपने नाटकों के ज़रिए केवल व्यक्ति-चेतना का विस्तार कर सकता हूँ. इस से आगे कुछ मेरा अभीष्ट भी नहीं.'

दि. : 'चेतना का विस्तार और राजनीति में हिस्सेदारी दो अलग-अलग चीज़ें हैं. क्या कोई कलाकार आज राजनीति से अलग रह सकता है ?'

बा. स. : 'यह राजनीति से विमुख होने की समस्या नहीं. कलाकार किसी भी चीज़ से विमुख नहीं हो सकता. लेकिन कला-माध्यम की अपनी सीमाएँ होती हैं. हर चीज़ को हर चीज़ का माध्यम नहीं बनाया जा सकता. अपनी सूक्ष्म परिणतियों में कलाकृति का राजनैतिक अर्थ होता है, क्यों कि आखिर राजनीति क्या है? आदमी की हालत को व्यवस्थित करने का एक प्रयत्न. कला का सरोकार भी मनुष्य की दशा से है, इस लिए गहरे स्तर पर उस का आशय राजनैतिक है; मगर स्थूल स्तर पर नहीं. इस के अतिरिक्त मनुष्य की दशा को बदलने का माध्यम राजनीति है. जिस हद तक कोई राजनैतिक पार्टी हमारी मनुष्य-चिंता में हिस्सा बँटाती है उस हद तक वह हमारे लिए अर्थपूर्ण और संगत है. उस से अधिक नहीं. पार्टी को अपने लिए पूर्णतया अर्थपूर्ण मानना अपने संपूर्ण आशय में, जो कि पार्टी से बड़ा है, कतरब्यौंत करना है.'

कला और क्रांति

दि. : 'क्या इस का अर्थ यह है कि कला क्रांति का वाहक नहीं हो सकती ?'

बा. स. : 'लेखक, कलाकार क्रांति के लिए विचारों की भूमिका तैयार करने में सहायक हो सकते हैं, जैसा कि फ्रेंच और रूसी क्रांति के पहले हुआ. मगर यह कला की, नाटक की बुनियादी समस्या नहीं. जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैं सारी जनता और सारे समाज का नाटककार होने का दावा नहीं कर सकता. मैं थोड़े-से लोगों को जानता हूँ और उन्हीं की ज़िंदगी मेरे नाटकों की आधार-भूमि है.'

दि. : 'उत्पल दत्त के रंगमंच के विषय में आप के क्या विचार हैं ?'

बा. स. : 'मैं उत्पल दत्त के रंगकौशल और प्रयोगों को सराहना की दृष्टि से देखता हूँ. मगर उन के नाटकों से मैं बहुत प्रभावित नहीं हूँ.'

दि. : 'विदेशी नाटककारों में किसने आप को अपनी तरफ़ खींचा है ?'

बा. स. : 'बेकेट के 'वेटिंग फ़ॉर गोदो' के अलावा मुझे सार्त्र का 'अल्तोना' अपने आवेग और ताक़त के कारण बहुत पसंद है. एडवर्ड एलबी के नाटक भी मुझे अच्छे लगते हैं. भारतीय और पश्चिमी नाटकों का बुनियादी फ़र्क़ उन के दर्शक-वर्ग का फ़र्क़ है. पश्चिमी दर्शक-वर्ग 'कॉमेडी' चाहता है; हिंदुस्तानी वर्ग, खास तौर से बंगाली भावुक है और 'ट्रैजेडी' चाहता है. नाटक को भावुकता से किस तरह बचा कर ट्रेजेडी को गहरे अभिप्रायों के साथ पेश किया जाये, इस प्रश्न का अब भारतीय नाटककारों को और भी अधिक सामना करना पड़ेगा.'

परिचय

'बाकी इतिहास' के रचयिता बादल सरकार से बंगला भाषा-भाषी जनता अच्छी तरह परिचित है. बादल सरकार पिछले अनेक वर्षों से नाटकों की रचना कर रहे हैं और 'बहुरूपी' के अलावा कलकत्ते की बंगला नाट्य-संस्था 'शौभनिक' उन के नाटकों का प्रदर्शन कर चुकी है. कलकत्ते में बादल सरकार की अपनी नाट्य संस्था है.

पेशे से बादल सरकार स्थपति और इंजीनियर हैं. अपने व्यवसाय और अपने रचना-कर्म में वह कोई अंतर्विरोध नहीं देखते. मृदुभाषी और अल्पभाषी बादल सरकार एक सजग बुद्धिजीवी हैं, जिन्होंने नाटकों की रचना और प्रदर्शन ही नहीं किया बल्कि उन के बारे में सोचा भी है.

नाट्य समारोह

व्यावसायिकता और प्रयोजन का फ़र्क़

प्रयोजनशीलता का अतिशय आग्रह करने वाला नाटक वास्तव में क्या होता है, इस का सब से उम्दा परिचय, संगीत नाटक अकादेमी के पुरस्कार-समारोह पर अभिनीत हिंदी नाटककार मोहन राकेश के बहुविज्ञापित नाटक 'आधे-अधूरे' के माध्यम से मिलता है. वैसे भी प्रयोजनशीलता और व्यावसायिकता का फ़र्क़ सब से अधिक रंगमंच पर उभर कर आता है, जहाँ व्यावसायिक अपील, फ़ॉर्मूलों, लटकों, पिटी-पिटायी स्थितियों और घिसे हुए चरित्रों को नाटककार 'प्रयोजन' के भारीभरकम मुहावरे में छिपा नहीं पाता और दर्शकों को उद्वेलित करने के स्थान पर गुदगुदाता तथा उन्हें उन की जगह से उखाड़ने के बजाय और भी उद्वेगरहित बनाता है. व्यावसायिक रंगमंच की अपील, कितनी भी क्रांतिकारी लिबास में पेश की जाये, छिप नहीं सकती—उसे जितना ही छिपाने का प्रयत्न किया जाये वह उतने ही बीभत्स ढंग से नंगी होती जाती है.

अगर मोहन राकेश के नाटक 'आधे-अधूरे' का उद्देश्य इस को छिपाना न होता तो इस भूमिका की ज़रूरत न पड़ती. वैसी हालत में 'आधे-अधूरे' को उसी निरपेक्षता से देखा (या अनदेखा) जा सकता था जिस निरपेक्षता से दिल्ली में आये दिनों अभिनीत नाटकों को देखा जाता है.

व्यावसायिक रंगमंच की यह सब से बड़ी पहचान है कि वह घटनाओं और चरित्रों को गहरे आशय से पृथक कर सारी स्थिति का सतही और अधूरा साक्षात्कार कराता है. वह प्रश्न न कर समाधान उपस्थित करने का ढोंग करता है. दर्शक को इस से मनचाही तृप्ति मिलती है और वह नाटक की समाप्ति पर स्वयं को कहीं भी आहत या पराजित नहीं पाता.

'आधे-अधूरे' स्त्री-पुरुष-संबंधों की असंगति को मंच पर पेश करने का दावा करता है. सावित्री एक ऊबी हुई नौकरीपेशा स्त्री है, जिसने अपने विवाहित जीवन के बाईस वर्षों में अपना स्वत्व खो दिया है और अब आधे जीवन की विडंबना के बाद अपना खोया हुआ स्वत्व दोबारा प्राप्त करना चाहती है. पति महेंद्रनाथ एक टूटा हुआ आदमी है, जो रोटी और कपड़े के लिए पत्नी पर तथा हौसले के लिए अपने एक आत्मीय मित्र जुनेजा पर आश्रित है. 'स्वत्वहीनता' की यह स्थिति आधुनिक स्त्री-पुरुषों के लिए एक अत्यंत परिचित स्थिति है, जिस में द्वंद्व और नाटक की अनंत संभावनाएँ छिपी हुई हैं. आधुनिक स्त्री-पुरुषों की इस असंगति के लिए कोई तीसरी शक्ति ज़िम्मेदार नहीं—यहाँ तक कि वे स्वयं इस के लिए ज़िम्मेदार नहीं. एक दूसरे के लिए क्रमशः असंगत होते जाना उन की नियति है, जिस से वे बच नहीं सकते. स्त्री-पुरुष-संबंधों की असंगति का लोक वास्तव में केवल दो व्यक्तियों का लोक है—इस में तीसरे किसी व्यक्ति की गुंजाइश नहीं. अगर असंगति किसी तीसरे व्यक्ति या शक्ति की उपस्थिति के कारण है तो स्थिति झूठी है, नाटक नक़ली है.

'आधे-अधूरे' के सावित्री और महेंद्रनाथ का संसार केवल दो व्यक्तियों का संसार नहीं. उस में समाज नामक एक तीसरी और बाहरी शक्ति काम कर रही है. मोहन राकेश का समाज केवल एक आर्थिक वास्तविकता है, जो सिंहानिया, जुनेजा और जगमोहन की शक्ल धारण कर सावित्री और महेंद्रनाथ के रिश्तों को विकृत करता और उन्हें एक दूसरे के लिए असंगत बनाता या बताता है. दूसरे शब्दों में अगर महेंद्रनाथ कामयाब आदमी होता और सावित्री को जीविका और चैन के लिए अपने को पराये आदमियों के हवाले न करना पड़ता तो दोनों के बीच कोई असंगति नहीं होती और 'आधे-अधूरे' की रचना की आवश्यकता नाटककार को अनुभव न होती. काश ! ज़िंदगी मोहन राकेश के नाटक की तरह प्रश्नरहित और सपाट होती ! काश ! मानव-मन की सारी दुर्घटनाओं के लिए केवल बाहरी कारण ज़िम्मेदार होते.

मुख्य प्रश्न से पलायन कर चुकने के बाद नाटक केवल माँस-पेशियों के तनाव के स्तर पर चलता है. तनाव का एक सिरा महेंद्रनाथ पकड़े हुए हैं, दूसरा सावित्री. दोनों के बीच नाटक की कोई संभावना नहीं; इस लिए नाटककार ने छह अनर्गल पात्रों की रचना की. महेंद्रनाथ का मित्र जुनेजा, सावित्री का ऐयाश और लिजलिजा बॉस सिंहानिया, सावित्री का पुराना प्रेमी जगमोहन और महेंद्रनाथ दंपति की दो पुत्रियाँ और एक पुत्र. ये सभी पात्र यांत्रिक और अवास्तविक हैं. क्यों कि महेंद्रनाथ और सावित्री का विवाद वास्तविक नहीं इस लिए उन के बीच का संवाद अवास्तविक है; क्यों कि जगमोहन, जुनेजा और सिंहानिया ग़ैर-ज़रूरी पात्र हैं इस लिए मंच पर उन की उपस्थिति नाटक के ख़ाली स्थानों को भरने के सिवा कुछ नहीं करती; क्यों कि सारी ट्रैजेडी को ओछे स्तर पर देखा गया है इस लिए महेंद्रनाथ परिवार के वयस्क और अवयस्क सदस्य केवल एक पारिवारिक दुर्घटना के साक्षी बन कर रह जाते हैं. आधुनिक स्त्री-पुरुषों की भयानक ट्रैजेडी को पारिवारिक विफलता के स्तर पर उभरना आधुनिक रंगमंच की शर्तों से एकदम इंकार कर देना है. यह आकस्मिक नहीं है कि 'आधे-अधूरे' जगह-जगह उन दुःखांत हिंदी फ़िल्मों की याद दिलाता है जो वास्तव में सुखांत होते हैं.

अगर 'आधे-अधूरे' एक विफल नाटक होता तो उस के लिए बहुत चिंता की ज़रूरत नहीं थी. चिंता का कारण यह है कि 'आधे-अधूरे' एक सफल नाटक है. वह हँसाता, गुदगुदाता, खिलखिलाता है. उस में लतीफ़ेबाज़ी भी है, लफ़्फ़ाज़ी भी. वह दर्शक को खुजलाता है, उसे पर्दे के पीछे का दृश्य दिखाता है—'कभी कमोड पर स्त्री को लिटा कर उस के साथ संभोग करने की घटना का उल्लेख कर और कभी नाबालिग़ लड़के-लड़कियों की सेक्स संबंधी बातचीत का उत्था कर ! जो दर्शक पेट भर हँसना चाहते हैं उन के लिए नाटक में सिंहानिया का प्रसंग है और दर्शक-दीर्घा में बैठी हुई जो छात्राएँ जी भर रोना चाहती हैं उन के लिए महेंद्रनाथ की टूटी हुई, रूमानी पितर-आकृति (फ़ादर फ़िगर) है.

'चुस्त-दुरुस्त' नाटक की आकांक्षा ने 'आधे-अधूरे' को भीतर से ख़ाली और सतह पर चकाचौंध बना दिया है. अर्थपूर्ण नाटक नंगा और निराडंबर होता है. उस में चमत्कार के लिए चमत्कार नहीं होता और मिथक और प्रतीक उस की भीतरी बहसों के रूप में होते हैं, गहनों के रूप में नहीं. 'आधे-अधूरे' को चार पुरुष निर्मित एक पुरुष का प्रतीक खड़ा करने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? दरअसल वह कोई प्रतीक है, या कि दर्शकों को चमत्कृत करने के लिए महज़ एक कौशल ? समूचे नाटक में इस की क्या संगति है ? अगर जगमोहन, जुनेजा, महेंद्रनाथ, सिंहानिया का अभिनय चार अलग व्यक्तियों ने किया होता तो क्या नाटक की आंतरिक एकता कम हो जाती ? बादल सरकार के नाटक 'बाकी इतिहास' में भी इस मिथक का प्रयोग किया गया है; मगर 'बाकी इतिहास' में यह एक कौशल मात्र न हो कर नाटक की बुनियादी शर्त है.

'आधे-अधूरे' अकादेमी द्वारा दोबारा पुरस्कृत नाटककार मोहन राकेश का तीसरा संपूर्ण नाटक है, जिस में 'दिशांतर' का प्रस्तुतीकरण और ओम् शिवपुरी तथा सुधा शर्मा जैसे अनुभवी कलाकारों का अभिनय भी कोई अर्थ कर सकने में कामयाब नहीं हो सका.

× × ×

'आधे-अधूरे' देखने के बाद शंभु मित्र के 'बहुरूपी' द्वारा अकादेमी समारोह के अंतर्गत अभिनीत 'बाकी इतिहास' देखना अपने-आप में एक अनुभव है. बादल सरकार ने अपने नाटक में कहीं किसी प्रयोजन का दावा नहीं किया है, बल्कि प्रचलित अर्थ में 'बाकी इतिहास' एक निष्प्रयोजन (एबसर्ड) नाटक है. मगर बादल सरकार के नाटक का एक निश्चित प्रयोजन है : मानव-इतिहास को नंगा करना. इस के लिए बादल सरकार ने किसी भारीभरकम

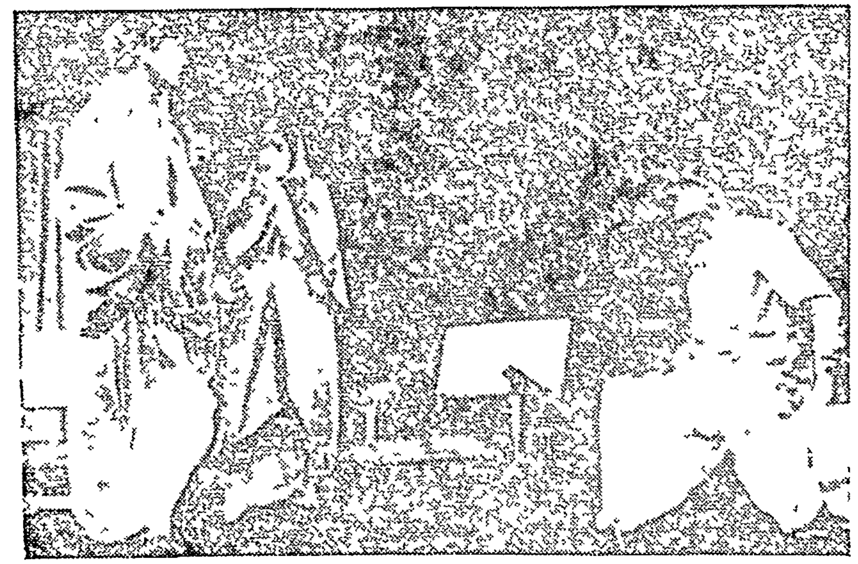

'बाकी इतिहास' का एक दृश्य : असाधारण प्रस्तुतीकरण

मुहावरे या किताबी स्थिति का सहारा नही लिया है.

'बाकी इतिहास' की कहानी बहुत सादी है. मध्यवर्गीय पति-पत्नी शरदेंदु और बासती अखबार मे पढी हुई एक घटना—सीतानाथ नामक एक व्यक्ति की आत्महत्या को ले कर अपनी कल्पना के घोडे दौडा रहे हैं. किसी व्यक्ति की आत्महत्या महज़ एक रोज़मर्रा की घटना है; कौतूहलप्रिय पाठको के लिए एक दिलचस्प समाचार है, या इस से भी अधिक कुछ है क्या उस का कोई भीतरी कार्य है ? शरदेंदु और बासती के पास इस आत्महत्या की दो कहानियाँ हैं, एक ही घटना की दो व्याख्याएँ हैं

बासंती की कहानी में सीतानाथ एक सवेदनशील नौजवान और 'काना' का उद्धारक है. उस ने काना को उस के पिता से, जो उस से वेश्यावृत्ति कराना चाहता है, छुडाया है और काना को मनोवैज्ञानिक मुक्ति देने के लिए बता रखा है कि उस का पिता मर चुका है. दूसरी ओर काना के पिता का मुँह बद रखने के लिए वह बैंक का जमा खर्च करता जाता है. काना एक दिन पाती है कि जमीन, जायदाद, पैसा यहाँ तक कि पिता—उसे बाँध सकने वाली कोई भी चीज़ उस के पास नही है और वह यह कह कर सीतानाथ को छोड कर चली जाती है कि 'अब तो मैं अपनी बडी बहन के मार्ग पर जाने को और भी स्वतंत्र हूँ.' इस स्थिति में सीतानाथ को अपनी मुक्ति का एकमात्र रास्ता नज़र आता है आत्महत्या.

शरदेंदु की कहानी का सीतानाथ एक हेडमास्टर है, जो कि अपराध-भावना से पीडित है. बहुत वर्ष पहले उस ने एक १२ साल की लड़की के साथ बलात्कार किया था. अब अपनी पाठशाला मे एक लड़के को नबोकोव की 'लोलिटा' पढते देख उस का अपराध जाग उठा है और उस का पीछा कर रहा है. उसे लगता है कि बलात्कार के कारण जो लड़की (पार्वती) मर गयी थी वह गौरी (स्कूल की एक लडकी) के रूप मे दोबारा वापस आ गयी है. अपना सारा वृत्तांत अपने एक मित्र से कह चुकने के बाद भी वह वर्षो पहले किये अपराध की ग्लानि से छुटकारा नही पाता और आत्महत्या कर लेता है

शरदेंदु और बासती दोनो की कहानी में केवल एक चीज़ समान है : आत्मघात के लिए फंदा. मगर क्या वे अपनी गढी हुई कहानी के ज़रिये सत्य तक पहुँच सके है ?

सत्य कितना भयानक है, यह शरदेंदु और बासती की कहानियो से नही बल्कि शरदेंदु के स्वप्न से मालूम होता है. इस स्वप्न-दृश्य मे सीतानाथ की प्रेतात्मा शरदेंदु से प्रश्न करती है, क्या तुम सत्य को पा सके ? क्या तुम सचमुच ही जान सके कि मैंने क्यो आत्महत्या की ? या कि यह सारा का सारा मनोविलास था ? आत्महत्या का क्षण वास्तव में निर्णय का क्षण है, या पलायन का, क्या सारा का सारा साहित्य मिल कर भी इस गुत्थी को सुलझा सकता है ? दो-दो महायुद्ध, हिटलर, नेपोलियन, जोन ऑफ़ आर्क, महाभारत, मनुष्य का सारा इतिहास क्या है ? क्या वह उस की व्यर्थता का बोध नही ? ये सारे प्रश्न उठाते हुए सीतानाथ की प्रेतात्मा शरदेंदु के लिए इतिहास का वास्तविक संसार छोड जाती है—जहाँ आत्महत्या केवल एक आत्महत्या मात्र न रह कर एक गहरा अर्थ प्राप्त कर लेती है.

बादल सरकार ने अपने नाटक के ज़रिये एक तरह से उस समस्त कला को अवास्तविक करार दिया है जो नतीजो पर पहुँची हुई है, या कि जो मनुष्य-जीवन की ट्रैजेडी को हमेशा यांत्रिक स्थितियो से जोड़ती है, उसे हमेशा ही बाहरी कारणों से जोड़ कर उस की भयानकता और महत्त्व को नष्ट करती है.

इतिहास के प्रश्नो को मंच पर अपूर्व शक्ति के साथ प्रस्तुत करने वाला नाटक 'बाकी इतिहास' समकालीन अभिप्रायो को उद्घाटित करने के बावजूद किसी की नक़ल नही—वह पश्चिम के 'एबसर्ड थियेटर' का अनुकरण नही. इस के विपरीत वह हिंदुस्तानी दर्शक-वर्ग की जरूरतो को समझते हुए एक ऐसे स्तर पर रचा गया है जहाँ नाटक दर्शकों के साथ समझौता नही करता, बल्कि दर्शकों को नाटक के साथ समझौते पर बाध्य करता है. नाटक का दो-तिहाई अंश सीधी-सादी किस्सागोई के सहारे बढ़ता हुआ दर्शक को उस की जगह पर बिठाये रखता है—सहसा सीतानाथ की प्रेतात्मा मंच पर आती है और दर्शकों को उन की जगह से उखाड़ फेंकती है—वह दरअसल शरदेंदु से नही दर्शक से जूझती है—तुम अब तक जो कुछ देख रहे थे वह अवास्तविक था, कहानी थी. वास्तविक यह है. सीतानाथ की प्रेतात्मा केवल शरदेंदु को नही बल्कि कहानी का आनंद ले रहे दर्शक-वर्ग को निहत्था, परेशान, अकेला और डरा हुआ छोड़ जाती है. एक नाटक की इस से बड़ी सफलता और क्या हो सकती है.

शंभू मित्र के 'बहुरूपी' ने 'बाकी इतिहास' की सभी संभावनाओ को दृष्टि में लेते हुए उस का असाधारण प्रस्तुतीकरण करने मे कोई कसर नही रखी—चाहे वह तृप्ति मित्र का अभिनय हो या दिलीप घोष की प्रकाश-व्यवस्था !

धुरी कीन्हि निज भूप कैकेयी

वसत काणेटकर का मराठी नाटक **रायगडला जेव्हां जाग देते** (जब रायगढ की नीद खुलती है) दो अभिप्रायों की समांतर पटरियो पर चलने के लिए रचा गया है. नाम में सामान्य वर्तमान की काल-विभक्ति 'लट्' इसी लिए है.

सतह का अभिप्राय है ऐतिहासिक शिवाजी का जीवन-दीप अब बुझने पर है. समस्या है उत्तराधिकारी कौन हो ? गद्दी के हकदार शंभाजी (शंभू राजा) के खिलाफ कुचक्र चलना है. उन की अपनी माँ मर चुकी है. सौतेली माँ छोटी रानी सोयराबाई की शह पा कर प्रधानों (मंत्रियों) की मंडली शंभाजी के विरुद्ध शिवाजी के कान भरती है. शंभाजी की कमजोरियो के तिल ताड़ बनते हैं.

शिवाजी का मन डाँवाडोल होता है. उन के मन का अनिश्चय सुलगता-सुलगता विपरीत निश्चय की आग बन लेता है. उस मे घी का काम करता है शंभा जी का अक्खड बर्ताव. परिणति शंभाजी पर खुला मुक़द्दमा

चलाया जाता है. वात्सल्य-प्रेरित शिवाजी बेटे को 'प्रधान' दंड नहीं देते, अनिश्चित अवधि के लिए समर्थ रामदास की सेवा में सज्जनगढ़ भेजते हैं, ताकि आवेश शांत होने पर सभी पक्ष ठंडे दिल से मामले पर ग़ौर करने का अवसर पायें. पर मुग़ल शाहज़ादे का मित्र शंभाजी सज्जनगढ़ की बजाय मुग़ल छावनी जा पहुँचता है. शिवाजी उन्हें राजगद्दी देने के लिए पकड़वा मँगाते हैं. संघर्ष में नयी उत्कटता आती है. मराठा राजवंश भयंकर फूट के कगार पर है. ऐसी ही अवस्था में, 'माँ भवानी की इच्छा' से शिवाजी दम तोड़ते हैं.

सतह के ठीक तले दूसरा अभिप्राय अन्योक्ति है—पिता-पुत्र के संबंधों का तत्त्व-दर्शन; पुरानी पीढ़ी के विरुद्ध नयी का विद्रोह; इस विद्रोह के औचित्य को समझने में पुरानी पीढ़ी की कठिनाई; बदले मूल्यों से अपरिचय, इस कारण आंतरिक संप्रेषण के जुड़ पाने में विलंब. यशवंत ठाकर के गुजराती प्रस्ताव रायगढ़ ज्यारे जागे छे में यह दूसरा अभिप्राय दब गया है. नाटक शुद्ध ऐतिहासिक बन कर प्रस्तुत हुआ है. यह नहीं कि आधुनिक समस्या और आधुनिक चिंतन की छापवाले संवाद हटा दिये गये हों. वे ज्यों के त्यों बने हैं. पर उन्हें उभार लाने वाले आग्रह प्रयोग में नहीं हैं.

यशवंत ठाकर नाट्यकार, नाट्यकला-प्राध्यापक, नटमंडल के नेता, निर्देशक और चौथाई सदी की अविराम मंच-साधना वाले अनुभवी नट हैं. दूसरे अभिप्राय की डोर उन के हाथ से छूट गयी तो क्या, बच रही अकेली डोर इतिहास-व्याख्या के सहारे ही उन्होंने नाटक को रस के परिपाक से समन्वित किया है.

अभिनय के बल : काम कठिन था. कठिनाई पार करायी है ठाकर और उन के नटमंडल के नटों के अभिनय-कौशल ने.

मंडल के दूसरे नटों को भी उन्होंने इसी साँचे में ढाला है. सोयराबाई (उषा चोकशी), येसूबाई (नीला जोशी), शंभू राजा (अरविंद वैद्य) आदि की भूमिकाएँ यदि अधिक निखरी-सुथरी हैं तो इस लिए कि ये ही नाटक की प्रमुख भूमिकाएँ हैं.

रण के आँगन में दशरथ के रथ की धुरी के टूट जाने पर कैकेयी ने धुरी की जगह अपनी बाँह लगा दी थी. यशवंत ठाकर ने कुछ वैसा ही काम किया है. नाटक की दो अभिप्राय-पटरियों में से एक के हाथ न आने पर उस की जगह अपनी अभिनय-कला बिछा दी है. इस कला में प्रायोगिकता का चमत्कार नहीं, न सही; परंपरा की देन का परिष्कार और कुशल उपयोग है, जो उसे सार्थकता देता है.

इस नाटक के मराठी प्रयोगों में अन्योक्ति का आस्वादन जो लोग कर चुके हैं उन्हें यहाँ उस का अभाव व्यंजन के अलोनेपन-सा खला होगा. पर ऐसी तुलना का आग्रह जिन्हें न था उन के रंजन के लिए इस में काफ़ी कुछ था.

अंतरिक्ष

अपोलो ९ : एक सफल पूर्वाभ्यास

चंद्रमा पर मनुष्य को उतारने के पूर्वाभ्यास के लिए अपोलो अंतरिक्ष कार्यक्रम का नवाँ यान सफलतापूर्वक अंतरिक्ष में तकनीकी करिश्मे दिखा रहा है. १० दिन की इस अंतरिक्ष यात्रा में ३ अंतरिक्षयात्रियों को कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग करने थे जिन में सब से महत्त्वपूर्ण प्रयोग मुख्य अंतरिक्ष यान से छोटे से चंद्रयान को अलग करना और फिर कई परिक्रमाओं के पश्चात् दोनों को आपस में जोड़ा जाना था. गत शुक्रवार को अपोलो-९ ने यह प्रयोग सफलतापूर्वक संपन्न किया. दो अंतरिक्ष-यात्री छोटे चंद्रयान में प्रविष्ट हो कर मुख्य यान से १९० किलोमीटर दूर हट गये और बाद में पुनः किसी अड़चन के बिना वह पुनः वापस जुड़ गये. यह पहला अवसर था जब कि इस प्रकार का परीक्षण अंतरिक्ष में हुआ है. इस परीक्षण में कुल ६ घंटे लगे और इस से यह सिद्ध हो गया कि १९७० से पहले चंद्रमा पर मनुष्य को उतारने की अपनी योजना में अमेरिकी अंतरिक्ष विशेषज्ञ निश्चित रूप से प्रगति कर रहे हैं. अपोलो-११ भी अपोलो-९ के ही सिद्धांत पर बनाया जायेगा और चंद्रमा के निकट पहुँचने पर कुछ परिक्रमाओं के बाद उस का चंद्रयान भी उसी प्रकार अलग हो जायेगा.

विमुक्त चंद्रयान धीरे-धीरे चंद्रमा तल पर उतर जायेगा और योजना के अनुसार प्रयोग संपन्न होने के बाद वह फिर मुख्य अपोलो यान की ओर आ जायेगा. इस संपूर्ण प्रक्रिया में जिन कठिनाइयों का सामना होने की आशंका है उन सब को दृष्टि में रख कर ही अपोलो-९ के चंद्रयान का निर्माण किया गया है.

पुनर्मिलन : पृथ्वी की चार परिक्रमाओं के दौरान पृथ्वी पर स्थित अंतरिक्ष विशेषज्ञों को थोड़े समय के लिए चिंता होने लगी थी जबकि चंद्रयान को मुख्य यान से जोड़ने वाली सिटकियाँ बटन दबाने पर भी न खुल पायीं. मगर दूसरी बार बटन दबाने पर वे खुल गयीं और चंद्रयान अलग हो गया. अलग होने से पहले अपोलो-९ के दो यात्री चंद्रयान में प्रवेश कर चुके थे और केवल एक यात्री मुख्य यान में रह गया था. अलग होने के बाद चंद्रयान को अचानक मुख्य यान से दूर नहीं ले जाया गया, क्योंकि चंद्रयान में इस प्रकार की क्षमता नहीं कि वह पुनः पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश कर सके. इस लिए यदि किसी कारण उस के संचालन में गड़बड़ी हो जाती तो अधिक दूर होने के कारण उसे सहायता नहीं पहुँचायी जा सकती थी. इस आशंका को दृष्टि में रख कर पहले चंद्रयान केवल १६ किलोमीटर दूर चला गया, उस के बाद ४५ किलो मीटर और जब यान के सभी यंत्र ठीक तरह से चलने लगे तभी एक विशेष इंजन को चालू कर के मुख्य अंतरिक्ष यान से १८० किलोमीटर दूर अलग चला गया. इस कठिन कार्यक्रम का सब से कठिन भाग चंद्रयान का पुनः मुख्य अपोलो यान से जुड़ जाना था.

जिस समय चंद्रयान मुख्य अंतरिक्ष यान की कक्षा से अधिक ऊँची कक्षा में परिक्रमा कर रहा था उसी समय मुख्य यान के साथ जुड़ने के लिए पीछा करने का काम आरंभ हुआ. इस समय चंद्रयान का वह इंजिन चालू कर दिया गया जो चंद्रमा तल से ऊपर उठने के लिए प्रयोग में लाया जायेगा. चंद्रयान के चालक ने अपने यान की कक्षा बदल कर कुछ कम कर दी ताकि ऊपर उड़ते हुए अपोलो यान के निकट पहुँचा जा सके. दोनों को एक-दूसरे के पास पहुँचने में कुल २ घंटे लगे. भारतीय समय के अनुसार रात्रि के १२ बजे दोनों यान फिर से आपस में जुड़ गये. जिस समय चंद्रयान मुख्य यान के बिलकुल निकट (३० मीटर) चला आया तो उस समय उस में बैठे एक अंतरिक्ष यात्री मैकडेविट ने उल्लास भरे शब्दों में कहा 'मैं सूर्य के प्रकाश में तुम्हें बिलकुल स्पष्ट देख रहा हूँ. तुम एक बड़े चमकीले और अत्यंत विचित्र नक्षत्र जैसे दीखते हो.' इस मुख्य अपोलो यान से अलग होने और वापस जुड़ने में चंद्रयान को कुल ६ घंटे लगे.

चंद्रयान अपना कार्य करने के बाद अपोलो यान के लिए व्यर्थ का भार ही बन गया. इस लिए उसे मुख्य यान से पुनः अलग कर के ४३२३ मील दूर फेंक दिया गया जहाँ वह पृथ्वी की परिक्रमा करने लगा. अंतरिक्ष यात्रियों को यह आदेश मिला कि वह १० दिन पूरे करने के बाद ही पृथ्वी पर लौट सकते हैं अतः वह तब तक के लिए लंबे आराम की मुद्रा में बैठ गये.

आकाशचारी रूस-अमेरिका मिलन और (नीचे) बेचारा मनुष्य

खेल और खिलाड़ी

राष्ट्रीय प्रतियोगिता : उदासीन दर्शक

नयी दिल्ली के नेशनल स्टेडियम में २४वीं राष्ट्रीय साइकिलिंग प्रतियोगिता (पाँच दिवसीय) का आयोजन हुआ और किसी को खबर तक नहीं हुई. इसी स्टेडियम में केवल एक दिन (रविवार, ९ मार्च) के लिए फ़िल्मी सितारों के एक नुमाइशी क्रिकेट मैच का आयोजन किया गया जिस का हर दिल्लीवासी को पता चल गया. साइकिल प्रतियोगिता में दर्शकों के लिए कोई टिकट नहीं था लेकिन इस के बावजूद वहाँ इने-गिने दर्शक ही पहुँच पाये और फ़िल्मी सितारों के इस नुमाइशी मैच को देखने के लिए लोगों ने ५०-५० रुपयों के टिकट भी खरीदे.

पहला दिन : २४वीं राष्ट्रीय साइकिलिंग प्रतियोगिता के पहले दिन दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद् ने इस प्रतियोगिता का उद्घाटन किया. इस दिन दिल्ली की ही सुमन चड्ढा ने २,००० मीटर की 'इंडिविजुअल परस्यूट प्रतियोगिता' को ३ मि. २०.१ सेंकिड में पूरा करके अपने ही पुराने कीर्तिमान में ७.६ सें. का सुधार किया. उन का पिछला रिकार्ड ३ मि. २७.७ सें. था. इसी प्रतियोगिता में जिस दूसरी खिलाड़िन ने अपने पुराने कीर्तिमान में सुधार किया वह थी जबलपुर (मध्यप्रदेश) की १८ वर्षीया लीना लोबो. लीना लोबो जबलपुर के सेंट एलॉयसिस कॉलेज की छात्रा है.

इस प्रतियोगिता के दूसरे दिन लीना लोबो ने ५०० मीटर की प्रतियोगिता में दिल्ली की सुमन चड्ढा को पीछे छोड़ दिया. इस दिन साइकिल प्रतियोगिता में पाँच नये राष्ट्रीय कीर्तिमान स्थापित हुए मगर सूने स्टेडियम को देखकर यही बात दिमाग़ में बार-बार घूमती रही कि साइकिलिंग की प्रतियोगिता के प्रति लोगों की कितनी अरुचि है. यों अंतरराष्ट्रीय रिकार्ड और एशियाई रिकार्ड की तुलना करने पर भी इसी नतीजे पर पहुँचा जा सकता है कि भारतीय खिलाड़ी इस प्रतियोगिता में अभी बहुत पीछे हैं.

दूसरे दिन जिन खिलाड़ियों का प्रदर्शन बहुत उत्साहवर्धक रहा उन के नाम इस प्रकार हैं :—

१८ साल से कम उम्र के लड़कों की प्रतियोगिता में आडी बालसारा (महाराष्ट्र), राम कुमार जोशी (राजस्थान), करमवीर सिंह (पंजाब).

पुरुष खिलाड़ियों में जिनका प्रदर्शन कुछ प्रभावशाली रहा उन के नाम हैं सिकंदर सिंह (पंजाब), अमरसिंह और डी. एस. रंधावा (दोनों सेना के).

दूसरे दिन शाम को दिल्ली प्रशासन की ओर से देश के कोने-कोने से आये इन खिलाड़ियों के लिए एक स्वागत-समारोह का आयोजन किया गया. उस में हमारे नये खेलमंत्री भक्तदर्शन भी उपस्थित हुए. दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद् श्री विजयकुमार मल्होत्रा ने भारतीय साइकिलिंग प्रतियोगिता में भारतीय खिलाड़ियों की विश्व के खिलाड़ियों के साथ तुलना करते हुए कहा कि हमारे खिलाड़ियों के निराशाजनक प्रदर्शन का एक कारण यह भी है कि हमारे खिलाड़ियों के पास वैसी साइकिलें ही नहीं हैं जिन पर सवार होकर वह अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग ले सकें. यह अपने आप में कितनी दुखद स्थिति है. भारत में ऐसी खास क़िस्म की साइकिलों का निर्माण नहीं होता और विदेशों से आयात करने की सुविधा नहीं दी जाती.

फिर उन्होंने कहा कि मैं दिल्ली के होनहार खिलाड़ियों को यह विश्वास दिलाता हूँ कि दिल्ली प्रशासन की ओर से उन की हर मुमकिन सहायता की जायेगी.

हाल ही में दिल्ली प्रशासन की ओर से उन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देने की भी घोषणा की गयी थी जिन्होंने खेल-कूद के क्षेत्र में उत्साहवर्द्धक प्रदर्शन किया.

इस के बाद श्री भक्त दर्शन ने देश के कोने-कोने से आये खिलाड़ियों को बधाई देते हुए कहा कि यहाँ बैठे खिलाड़ियों में मैं पूरे भारत के एक प्रतिरूप के दर्शन कर रहा हूँ. इतने विशाल देश और इतनी विशाल जनसंख्या को देखते हुए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमारा प्रदर्शन बहुत निराशाजनक रहा है. छोटे-छोटे देश खेल-कूद के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ रहे हैं यह देखकर हमें आश्चर्य भी होता है और ईर्ष्या भी.

२,००० मीटर की प्रतियोगिता में आगे हैं दिल्ली की सुमन चड्ढा : सुधरा कीर्तिमान

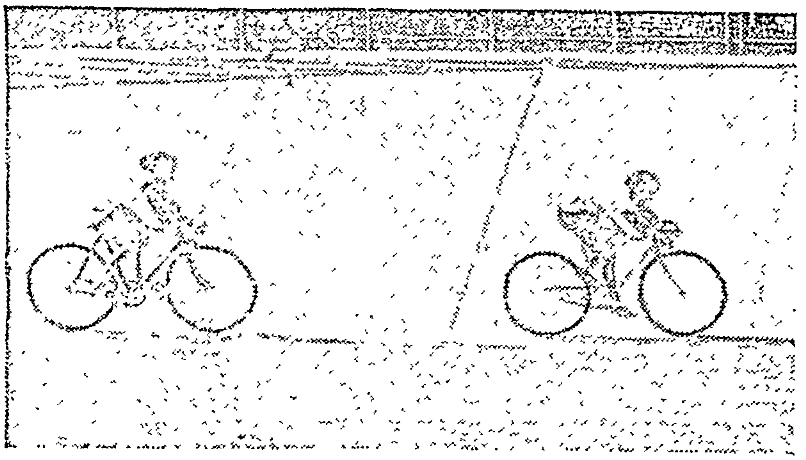

फ़्री-स्टाइल कुश्ती

दारा सिंह को चुनौती

पिछले दिनों एक भारतीय पहलवान जब १० साल बाद कैनाडा से भारत लौटे तो उन्होंने आते ही सब से पहले भारत के दारा सिंह, जो अमेरिकन फ़्री-स्टाइल कुश्ती में अपने को 'रुस्तमे जमाँ' कहते हैं, को चुनौती देते हुए कहा कि कहाँ है दारा सिंह जो अपने आप को इस कुश्ती का विश्व चैंपियन समझता है. मैं उस के साथ कहीं भी, कभी भी लड़ने को तैयार हूँ—यहाँ, बंबई या कलकत्ता में, जहाँ वह राज़ी हों.

टाइगर जीतसिंह की, जो विदेशों में 'जायंट किलर' के नाम से मशहूर हैं, इस घोषणा के साथ ही एक बार फिर से लोगों ने फ़्री-स्टाइल कुश्ती के बारे में, जिसे अधिकांश जनता एक तमाशा मानती है, गंभीरतापूर्वक सोचना शुरू कर दिया है. जिन लोगों ने टाइगर जीतसिंह को देखा है उन्होंने तुरंत यह धारणा बना ली है कि अव्वल तो दारा सिंह इस चुनौती को स्वीकार ही नहीं करेगा और अगर उसने ताव में आकर इस चुनौती को स्वीकार भी कर लिया तो फिर फ़्री-स्टाइल कुश्ती लड़ना तो भूल जायेगा, बस फ़िल्म अभिनेता बनने पर ही सारा ध्यान केंद्रित करेगा.

भीमकाय : टाइगर जीतसिंह (उम्र २५ वर्ष, वज़न २५० पौंड, कद ६ फुट ३ इंच) कैनाडा, अमेरिका, वेस्ट इंडीज और इंग्लैंड के बड़े-बड़े नामी पहलवानों की चुनौतियों को स्वीकार करने के बाद अब १० साल बाद अपने देश वापिस लौटे हैं. १० साल पहले जब वह अपने भाई-बहनों से मिलने कैनाडा गये थे तो उन की अवस्था केवल १५ वर्ष की ही थी. तब उन्होंने कभी यह सोचा भी नहीं था कि वह इतना नाम और 'नामा' प्राप्त करने के बाद भारत लौटेंगे.

इनका जन्म लुधियाना के साजूपुर गांव में हुआ और इन्होंने जालंधर के साईदास स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की.यों अब भी अंग्रेज़ी और हिंदी अच्छी बोल लेते हैं. अपने स्कूली जीवन में उन्हें गोला और चक्का फेंकने का शौक था और अपने साथियों में वह सब से लंबे-तगड़े थे. कैनाडा पहुँच कर जब उन्होंने एक दिन टेलिवीज़न पर फ़्री-स्टाइल कुश्ती देखी तभी से उन्हें फ़्री-स्टाइल पहलवान बनने की धुन सवार हो गयी. संयोग से उन्हें एक अच्छा गुरु फ़्रेड एटकिंस भी मिल गया. उन्हीं से उन्होंने इस कुश्ती के दांव-पेंच सीखने शुरू कर दिये और देखते ही देखते उन्होंने सब पहलवानों को एक-एक कर के किनारे लगा दिया. उन्होंने कहा कि कैनाडा में अमेरिकन फ़्री-स्टाइल कुश्ती का काफ़ी प्रचलन है. इस की लोकप्रियता का अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि एक-एक कुश्ती में २०-२० हज़ार दर्शक मैदान में उपस्थित होते हैं और लाखों लोग इन कुश्तियों को टेलीवीज़न पर देखते हैं.

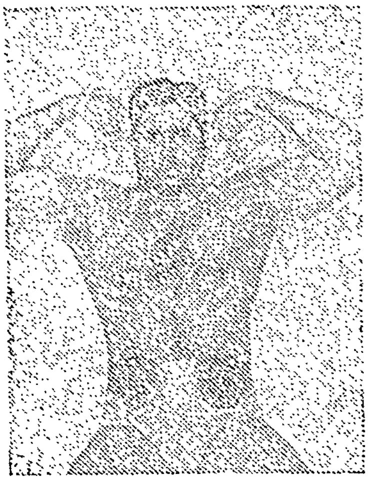

टाइगर जीतसिंह : आ जाओ

यही नहीं कई-कई बार तो उन्हें एक सप्ताह में सात बार कुश्तियाँ लड़नी पड़ीं. उन का कहना है कि कैनाडा, वेस्ट इंडीज और आस्ट्रेलिया में उन्हें कोई भी पहलवान नहीं हरा सका. उन के गुरू ने उन्हें एक खास गुरुमंत्र सिखा रखा है जिसे वह 'कोबरा होल्ड' कहते हैं. उनका कहना है कि जब कोई प्रतिद्वंद्वी मेरे इस दांव में फँस जाता है तो वह मारे दर्द के चिल्लाने लग जाता है और अपनी जान की दुआ माँगने लग जाता है. जहाँ तक उन की खुराक का सवाल है, वह सुबह-सुबह ८ अंडों का नाश्ता और आधा किलो कच्चा मांस खाते हैं.

लेकिन बातचीत के दौरान वह जिस वाक्य को बार-बार दोहराते हैं वह है—'मैं अब अपने देश में आ गया हूँ और दारा सिंह से जल्दी ही कहीं न कहीं लड़ना चाहता हूँ'.

क्या आप कुछ समय के लिए यहाँ रहेंगे इस प्रश्न के उत्तर में उन का कहना है —'यदि यहाँ मुझे काफ़ी संख्या में अच्छे प्रतिद्वंद्वी पहलवान मिल जायें तो मैं यहाँ कुछ समय के लिए रुक सकता हूँ ? लेकिन मैं जिस पहलवान से हाथ मिलाने को तड़प रहा हूँ उस का नाम है दारा सिंह'.

चुनौती स्वीकार : राजधानी के कुछ समाचारपत्रों में टाइगर जीतसिंह के चित्र और चुनौती छपने की सूचना बंबई में दारा सिंह को भी मिली. दारा सिंह के दिल्ली स्थिति मैनेजर एम. के. वाट्स का कहना है कि दारा सिंह ने टाइगर जीतसिंह की चुनौती स्वीकार कर लेने को कहा है. दारा सिंह का कहना है कि पिछले काफ़ी समय से फ़िल्मों में व्यस्त रहने के कारण मुझे कुश्ती का अभ्यास करने का समय नहीं मिला. फिर भी मैं अपने ही देशवासी से लड़ने को तैयार हूँ. मैं चाहता हूँ कि कोई भारतीय ही मेरा उत्तराधिकारी बने. मुझे जीतसिंह से लड़ने में कोई आपत्ति नहीं बल्कि उस की जीत पर प्रसन्नता भी होगी.

अमेरिकी फ़्री-स्टाइल कुश्ती : अमेरिकी फ़्री-स्टाइल कुश्ती क्या है, उस के पहलवानों को कहाँ मान्यता प्राप्त है, इसके नियम क्या हैं इस बारे में किसी को भी ज्यादा कुछ नहीं मालम. लेकिन भारत में आम धारणा यह हो गयी है कि यह कुश्ती नहीं बल्कि एक तमाशा है. इस तरह की कुश्तियों के पहलवानों की संख्या भी गिनी-चुनी ही है. हंगरी का दढ़ियल पहलवान किंग-कांग की कभी बड़ी धूम थी. फिर दारा-सिंह और रंधावा मैदान में आये और अब ये दोनों पहलवान भी मैदानों में कम और फ़िल्मों में अपनी कुश्तियाँ ज्यादा दिखाते हैं.

क्रिकेट

जान बची और . . .

पाकिस्तान का दौरा करने वाली इंग्लैंड की क्रिकेट टीम के खिलाड़ी और अधिकारी अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि उन्होंने ग़लत समय पर पाकिस्तान का दौरा किया है. पाकिस्तान-इंग्लैंड टेस्ट श्रृंखला में अब किसी की कोई विशेष दिलचस्पी नहीं रही. इंग्लड के खिलाड़ियों की बस यही इच्छा है कि किसी तरह वह अपने देश सही-सलामत वापस लौट जायें. कराची में खेले गये इस टेस्ट श्रृंखला के अंतिम मैच के दूसरे दिन भी पाकिस्तान के दर्शकों ने क्रिकेट के मैदान में काफ़ी हो-हल्ला और शोर-शराबा मचाने की कोशिश की. इंग्लैंड के टाम ग्रैवनी ने जब मध्यांतर से १५ मिनट पहले ही अपना शतक पूरा किया तब दर्शक उस को मुबारकबाद देने के लिए मैदान में पहुँच गये. पुलिस ने जब छात्रों को धकेल कर मैदान से बाहर निकाला तो उन में से बहुतेरों ने पुलिस पर कुर्सियां और पत्थर फेंकने शुरू कर दिये. स्थिति को बिगड़ता देख खिलाड़ी समय से पहले ही चाय-पान करने चले गये. पाकिस्तानी दर्शकों के इस दुर्व्यवहार को देख कर इंग्लैंड की टीम के कप्तान कोलिन काउड्रे ने गुस्से में कहा कि जब तक इस उपद्रव को शांत करने की कोई व्यवस्था नहीं की जाती तब तक हमारे लिए खेलना संभव नहीं है.

पाकिस्तानी क्रिकेट प्रेमी पाकिस्तान की क्रिकेट टीम के चुनाव से भी काफ़ी असंतुष्ट हैं. मैदान में यहाँ-वहाँ इस तरह के पोस्टर और इश्तिहार लगा दिये गये जिन पर यह लिखा था कि पाकिस्तानी चुनाव अधिकारियों को अब इस्तीफ़ा दे देना चाहिए. उन्होंने हनीफ़ की बजाय सईद अहमद को कप्तान बनाकर बड़ी भारी भूल की है.

तीसरा दिन : खेल के तीसरे दिन पाकिस्तानी उपद्रवकारियों ने खेल के मैदान में इतना आतंक फैलाया कि इंग्लैंड की टीम के मैनेजर लेस्ली अमेस को परेशान हो कर यह ऐलान करना पड़ा कि उन की टीम सब से पहले मिलने वाले जहाज़ से स्वदेश लौट जायेगी. एक मनचले नौजवान प्रदर्शनकारी ने चिल्ला कर कहा कि क्या आप यह नहीं जानते कि हमारे यहाँ जनक्रांति हो रही है. इंग्लैंड और पाकिस्तान की टीम के कप्तानों तथा पाकिस्तान क्रिकेट बोर्ड के अध्यक्ष सीदाहसन ने (जो राष्ट्रपति अय्यूब खाँ के निजी सलाहकार भी हैं) भी बाद में यही कहा कि इस स्थिति में दौरा रद्द कर देने के सिवाय हमारे पास कोई चारा नहीं है. इस प्रकार इंग्लैंड की टीम तीसरे मैच को बीच में छोड़ कर अपने देश लौट गयी.

संक्षिप्त समाचार

कनहोजी आंग्रे : कलकत्ता से अंदमान तक के १००० मील के सागर को छोटी-सी चप्पुओं की किश्ती (कनहोजी आंग्रे) में पार करने के साहसिक अभियान की सफलता पर राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और केंद्रीय शिक्षामंत्री ने इन दोनों साहसी नवयुवक नाविकों जॉर्ज ड्यूक और पिनाकी चैटर्जी को बधाई संदेश भेजे हैं. राष्ट्रपति ने ड्यूक और पिनाकी को बधाई संदेश में कहा कि उन के साहस और हिम्मत से हमारे देश के नवयुवकों को प्रेरणा मिलेगी. बंबई में जॉर्ज ड्यूक की मंगेतर कुमारी कमल सचदेव को जब यह समाचार मिला तो वह बोली 'भगवान का लाख-लाख शुक्र है.'

हॉकी : पाकिस्तान के खेल-प्रेमियों ने इंग्लैंड-पाकिस्तान टेस्ट श्रृंखला के दौरान जैसी हरकतें की हैं यदि लाहौर में होने वाले अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले के दौरान भी वैसी ही हरकतें कीं तो लगता है कि हॉकी मेले का मजा भी क्रिकेट की तरह बदमजा हो जायेगा. भारतीय हॉकी टीम किन्हीं कारणों से लाहौर हॉकी मेले में तो भाग नहीं ले रही है पर सुनते हैं कि पाकिस्तान का दौरा करने वाली केन्या की टीम भारत में कुछ मैच खेलेगी.

समाचार-भूमि

चीन : जाये तो जाये कहाँ?

फरवरी के मध्य में अमेरिका से वार्त्ता स्थगित करने की घोषणा और मार्च के दूसरे दिन उसूरी नदी के एक टापू पर रूसी सीमा-रक्षकों पर हमला करने के पीछे चीन का उद्देश्य क्या था, इस प्रश्न पर भले ही राजनीतिक प्रेक्षकों में मतभेद हो, किंतु इन दोनों घटनाओं से एक बात स्पष्ट है कि चीनी नेता क़दम-क़दम पर मुँह की खाने के बावजूद अपने पुराने कूटनीतिक पैंतरे बरक़रार रखना चाहते हैं. अमेरिका से वारसाउ में वार्त्ता करने का प्रस्ताव चीन ने ही किया था किंतु बाद में बिना किसी ठोस कारण के उस ने वार्त्ता को स्थगित कर दिया. अभी राजनीतिक प्रेक्षक चीन के इस अप्रत्याशित निर्णय की गुत्थी को सुलझाने में ही व्यस्त थे कि चीन और उस के जवानों की झड़प ने उन्हें एक नये प्रश्न का उत्तर खोजने में उलझा दिया. चीनी नेता इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं कि वे इस समय युद्ध-क्षेत्र में रूस को शिकस्त नहीं दे सकते हैं, फिर उन्होंने सीमा-विवाद को सशस्त्र संघर्ष का रूप देने का दुस्साहस क्यों किया? इस प्रश्न ने एक बार फिर राजनीतिक प्रेक्षकों का ध्यान चीन की ओर आकृष्ट किया है.

पुराना विवाद : रूस और चीन का सीमा-विवाद काफ़ी पुराना है. सीमा-निर्धारण के लिए दोनों देशों के शासकों में पहली संधि १६८९ में हुई थी जिस के अनुसार चीन के मंचूरिया प्रांत के उत्तर में बहने वाली नदी आमूर तक का भू-भाग रूस के अधिकार में चला गया. १९५८ और १८६० की संधियों के बाद आमूर की सहायक नदी उसूरी के पूर्व का भू-भाग भी रूस को मिल गया. माओ त्से दुंग ने सत्ता संभालने से पहले ही रूस के एक बड़े भू-भाग को चीनी इलाका बताना शुरू कर दिया था. उन्होंने दावा किया कि पूर्वी साइबेरिया का सारा इलाका और पश्चिम में मध्य एशिया के कई प्रांत चीन के हैं. किंतु १९४९ में सत्तारूढ़ हो जाने के बाद माओ ने इस प्रश्न पर चुप्पी साध ली. संभवत: अपने देश के विकास के लिए रूस से मिलने वाली सहायता को दृष्टिगत रखते हुए ही उन्होंने यह रास्ता चुना. परंतु सत्ता में आने के आठ साल बाद १९५७ में माओ की सरकार ने रूस के कई लाख वर्गमील इलाके पर अपना दावा करते हुए १६८९, १८५८ और १८६० की संधियों को बलात् थोपा हुआ बताया और १९५८ में ख्रुश्चोव की पीकिङ-यात्रा के दौरान सीमा-निर्धारण का प्रश्न उठाया गया. उस समय इस मामले ने अधिक तूल नहीं पकड़ा, किंतु १९६२ में क्यूबा-संकट के समय दोनों देशों का सीमा-विवाद खुल कर सामने आया. चीन ने रूस के ज़ार सम्राटों पर विस्तारवादी होने का आरोप लगाया और बातचीत द्वारा सीमा-विवाद हल करने का आग्रह किया. तब से रूस-चीन सीमा पर बराबर तनाव बना हुआ है और अब वह सशस्त्र संघर्ष का रूप लेता जा रहा है. रूस के साथ सीमा-विवाद को चीन आरंभ से ही गंभीर समझता चला आ रहा है, जिसका एक कारण यह भी रहा है कि कम्युनिस्ट जगत् के नेतृत्व को लेकर दोनों देशों में सैद्धांतिक मतभेद भी काफ़ी उग्र है. माओ त्से दुंग ने अपनी विदेश नीति निर्धारित करते समय रूस से अपने संबंधों को सदैव ध्यान में रखा है. उन्होंने सदा इस बात की कोशिश की है कि अन्य देशों से रूस के संबंध अच्छे न हो सकें, भले ही उस से चीन को घाटा उठाना पड़े. १९६२ में चीन ने भारत पर जो आक्रमण किया उस का अन्य उद्देश्यों के साथ एक उद्देश्य यह भी था. परंतु उस समय रूसी नेता माओ त्से दुंग के जाल में नहीं फँसे. भारत को दिये गये वायदों को पूरा करने की घोषणा कर के वे भाई (चीन) और मित्र

माओ : हमारा, सब कुछ हमारा

(भारत) के प्रति अपने दोहरे कर्त्तव्य को निबाहने में येन-केन प्रकारेण सफल हुए, भले ही उन वायदों को पूरा करने या न करने का कोई प्रभाव भारत-चीन संघर्ष पर पड़ने वाला नहीं था.

चीन और रूस के सैनिकों की ताजा झड़प से यह निष्कर्ष तो नहीं निकाला जा सकता है कि वह गंभीर संघर्ष का रूप धारण कर लेगा किंतु झड़प के बाद पीकिङ में रूस-विरोधी और मास्को में चीन-विरोधी जो विशाल प्रदर्शन हुए उन से पता चलता है कि दोनों देशों की आम जनता में भी एक-दूसरे के प्रति घृणा की प्रबल भावना है.

अर्द्ध दशक : पिछला अर्द्ध दशक अर्थात् १९६२ में भारत पर आक्रमण करने के बाद का काल चीन की विदेश नीति की विफलता का समय रहा. भारत पर आक्रमण कर के चीन ने पंचशील के सिद्धांतों की जिस प्रकार हत्या की उस से एशिया और अफ़्रीका के नवोदित राष्ट्र सतर्क हो गये. अपनी घरेलू उलझनों और आर्थिक दुर्बलता के कारण चीन उन वायदों को भी पूरा नहीं कर सका जो उसने इन राष्ट्रों से मित्रता स्थापित करते समय किये थे. परिणामस्वरूप एक के बाद एक प्राय: सभी नवोदित राष्ट्र उस के प्रभाव क्षेत्र से निकल कर या तो पश्चिमी खेमे में चले गये या फिर उन्होंने रूस की हाँ में हाँ मिलाने में अपनी कुशल समझी. कम्युनिस्ट देशों में अल्बानिया ही एकमात्र ऐसा देश है जो चीन का अंधानुसरण कर रहा है. ग़ैर-कम्युनिस्ट देशों में एक भी देश ऐसा नहीं है जिस की मित्रता का दावा चीन कर सके. इस समय उस की पाकिस्तान से अवश्य गाढ़ी छन रही है, किंतु वह भी अपना उल्लू सीधा करने के लिए. पाकिस्तानी नेता इस तथ्य से अवगत हैं कि चीन की मित्रता का उद्देश्य महज़ उसे अमेरिका और रूस से विमुख करना है और इसी कारण वे चीन से बिना शर्त सैनिक साज-सामान मिलने के बावजूद उक्त दोनों देशों से भी अपने संबंध सुदृढ़ करने के लिए प्रयत्नरत है. पाकिस्तान को अमेरिका से आर्थिक और सैनिक सहायता पहले ही मिल रही है, गत वर्ष से रूस से भी दोनों प्रकार की सहायता मिलने का सिलसिला शुरू हो गया है. चीन इस स्थिति को अपने लिए खतरनाक मानता है. उसे डर है कि पाकिस्तान के माध्यम से रूस और अमेरिका के संबंधों में सुधार होगा. चीनी नेता रूस और अमेरिका दोनों को ही अपना शत्रु मानते हैं अतएव वे यह कभी सहन नहीं कर सकते हैं कि ये दोनों शत्रु मिल कर चीन के विनाश की भूमिका रचें.

विश्वास का आधार : रूस और अमेरिका को अलग रखने के अथक प्रयासों और उलझन-पूर्ण नीति के बावजूद चीनी नेताओं को यह विश्वास हो चला है कि पिछले अर्द्ध दशक में दोनों देशों के बीच की दूरी बहुत कम हो गयी है. उन के इस विश्वास का ठोस आधार है. १९६२ के क्यूबा संकट के बाद रूस और अमेरिका में परस्पर संपर्क बनाये रखने का जो सिलसिला शुरू हुआ था, वह काफ़ी विस्तृत होता गया, जिस के परिणामस्वरूप १९६५ के भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान, १९६७ के अरब-इस्राइल युद्ध के दौरान, १९६८ के चेकोस्लोवाकिया पर रूसी आक्रमण के दौरान तथा अनवरत वीएतनाम युद्ध के दौरान रूस और अमेरिका ने कभी भी आमने-सामने होने का इरादा नहीं किया, भले ही संबद्ध देशों की सद्भावना प्राप्त करने के लिए उन्होंने इस या उस पक्ष का नैतिक अथवा आर्थिक समर्थन किया हो. उत्तरी विएतनाम की समस्या के समाधान के लिए बातचीत करने को सहमत होना चीन की कूटनीति की सबसे बड़ी पराजय थी क्योंकि इस से रूस और अमेरिका के बीच की दूरी थोड़ी और कम हो गयी. पेरिस-वार्त्ता की अभंगता से चीन का यह दावा भी थोथा सिद्ध हो गया कि उस के सहयोग के बिना समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता.

परेशान माओ : महान् सांस्कृतिक क्रांति की विफलता और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के उग्र तथा उदार खेमों में वँट जाने से माओत्से दुंग का परेशान होना स्वाभाविक ही था. गत नवंवर से रूस से भी तनाव अधिक वढ़ गया. अल्वानिया में प्रक्षेपास्त्र अड्डे स्थापित करने के चीनी निर्णय से भी रूस और अमेरिका अधिक परेशान नहीं हुए. वीएतनामयुद्ध को पुनः उग्र करने का चीनी प्रयास भी विफल रहा. संभवतः माओ ने सोचा कि क्यों न अमेरिका के नये प्रशासन से संवंध सुधारने का प्रयास किया जाये. चीन ने १९५५ से चली आ रही वारसाउ वार्त्ता के क्रम में अमेरिका से राजदूतस्तर पर वार्त्ता करने का प्रस्ताव गत वर्ष नवंवर में किया और अपना अमेरिका-विरोधी प्रचार भी ढीला कर दिया. अव तक वारसाउ में दोनों पक्ष १३४ वार मिल चुके हैं. उधर कैनाडा, इटली, पश्चिम जर्मनी आदि नैटो देशों ने चीन को मान्यता देने का विचार व्यक्त किया. अमेरिका ने भी उचित परिस्थितियों में चीन और क्यूवा से दौत्य संवंध स्थापित करने और चीन की यात्रा पर लगे प्रतिवंधों को समाप्त करने का इरादा ज़ाहिर किया. वारसाउ वार्त्ता के लिए २० फ़रवरी की तिथि निश्चित की गयी. किंतु उस से एक दिन पहले ही चीन ने वार्त्ता स्थगित करने की घोषणा कर के सभी को आश्चर्यचकित कर दिया. चीन ने वार्त्ता-स्थगन के तीन कारण वताये हैं—१—हेग से चीनी कूटनीतिज्ञ लिआओ हो शू का कथित अपहरण (लिआओ हो शू अव अमेरिका में हैं) २—अमेरिका द्वारा लिआओ हो शू को चीन वापस न भेजना और ३—फारमोसा के सहयोग से अमेरिका द्वारा वर्तमान चीन-विरोधी वातावरण तैयार करना. चीनी कूटनीति के विशेषज्ञ इस से सहमत नहीं हैं. उन का कहना है कि ये कारण ऐसे नहीं हैं जिन के परिणामस्वरूप काफ़ी अरसे से नियोजित वार्त्ता को स्थगित किया जाता. प्रश्न उठता है कि फिर वार्त्ता क्यों स्थगित की गयी? प्रेक्षकों का मत है कि चीनी नेता यह तय नहीं कर पाये हैं कि अमेरिका के नये प्रशासन से किस प्रकार निपटा जाये. एक कारण यह भी हो सकता है कि चीनी नेता अपने आंतरिक विग्रह में उलझे हुए हैं और नेतृत्व पर अभी उग्रपंथी, जिन का नेतृत्व श्रीमती माओ कर रही हैं, हावी हैं जो अमेरिका से वार्त्ता करने का कट्टर विरोध करते रहे हैं. सांस्कृतिक क्रांति के ध्वंसावशेष भी चीनी नेताओं को उलझाये हुए हैं. फिर शायद चीनी नेताओं ने यह भी सोचा होगा कि वर्त्तमान राजनीतिक वातावरण में वे वार्त्ता का उपयोग अपने हित-साधन में नहीं कर सकेंगे और ऐसी दशा में वातचीत करना व्यर्थ ही होगा. वार्त्ता-स्थगन को चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के उदार वर्ग की, जिस के नेता चाओ एन लाइ हैं, पराजय भी वताया जा रहा है.

वदलता रुख : १३५वीं वार्त्ता स्थगित करने के कारण कुछ भी क्यों न रहे हों किंतु एक वात निश्चित है कि अव कुछ चीनी नेता भी यह सोचने लगे हैं कि उन की 'एकला चलो रे' की नीति निरापद नहीं है. कम्युनिस्ट देशों में अपनी दाल न गलते देख कर उन्होंने पश्चिम की ओर रुख किया, इस का संकेत इस तथ्य से भी मिलता है कि इस वार चीन ने फारमोसा से अमेरिकी सेना की वापसी की माँग नहीं की. अमेरिका और पश्चिमी देश भी चीन से संवंध सुधारने को तत्पर जान पड़ते हैं, क्यों कि वे अव भी यह मानते हैं कि उन्हें सव से वड़ा खतरा रूस की ओर से है, चीन से नहीं, परंतु अमेरिका की सव से वड़ी विवशता यह है कि वह वर्त्तमान परिस्थितियों में दक्षिण-पूर्व एशिया से अपनी सेनाएँ वापस नहीं वुला सकता है. चीन भी फारमोसा पर अपना दावा नहीं छोड़ सकता है. ऐसी हालत में रूस-विरोध के नाम पर चीनी नेता अमेरिका से संवंध सुधार सकेंगे, इस में संदेह है. यह हो सकता है कि रूस और अमेरिका की दोस्ती सतही हो, किंतु चीन और अमेरिका की दोस्ती इस से भी सतही होगी.

पूर्वी सीमा पर रूस से सशस्त्र संघर्ष छेड़ कर चीन ने १९६७ के वाद एक और वड़ी भूल की है. हो सकता है कि पूर्वी क्षेत्र में उस की सामरिक स्थिति रूस से अच्छी हो, किंतु पश्चिमी क्षेत्र में वह युद्ध छिड़ने पर संपूर्ण सिंकयाङ प्रांत को रूस के अधिकार में जाने से नहीं वचा सकता है. फिर भारत, इंदोनेसिया, सिंगापुर, मलयेसिया, लाओस तथा सुदूर पूर्व के देशों से भी उस के संवंध अच्छे नहीं हैं, उत्तरी वीएतनाम के पेरिस-वार्त्ता में शामिल हो जाने के वाद यह स्पष्ट हो गया है कि एशिया में चीन सर्वथा अकेला पड़ गया है. इस अकेलेपन का प्रवल अहसास चीनी नेताओं को है किंतु वे इस से छुटकारा पाने का रास्ता नहीं खोज पा रहे हैं. आंतरिक उथल-पुथल और अपनी अव तक की विफलता ने उन्हें किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा कर दिया है.

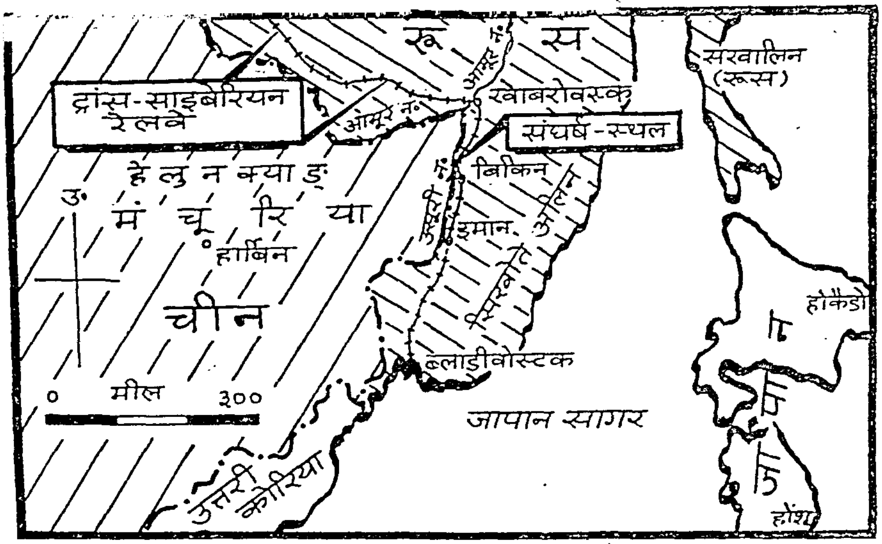

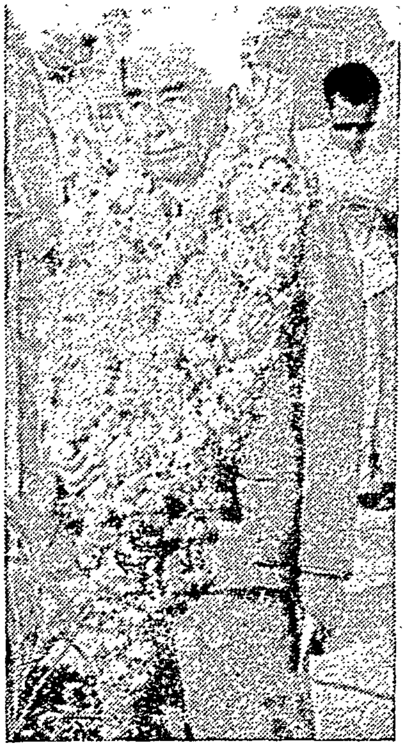
चाओ एन लाइ : वार्त्ता स्थगन की पराजय

लिन पिआओ : वही नारा

विश्व

रूस-चीन

प्रदर्शन, प्रति प्रदर्शन

उसूरी नदी के एक द्वीप पर २ मार्च को रूस और चीन के सैनिकों की जो जबर्दस्त मुठभेड़ हुई, दो घंटे की उस झड़प में रूसी विज्ञप्ति के अनुसार रूस के ३४ और चीन के लगभग ३० सैनिक खेत रहे. दोनों पक्ष के काफी सैनिक घायल भी हुए. दोनो पक्षों ने एक दूसरे को इस सशस्त्र संघर्ष के लिए उत्तरदायी ठहराया. संघर्ष की दोनों देशों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई. सब से पहले पीकिङ-स्थित रूसी दूतावास के समक्ष लाखों चीनियों ने रूस-विरोधी नारे लगाते हुए प्रदर्शन किया. प्रदर्शनों का क्रम चार दिन तक चला. प्रतिदिन प्रदर्शनकारियों की संख्या में वृद्धि होती गयी. चीन में रहने वाले रूसी नागरिकों के लिए खतरा पैदा हो गया. परिणामस्वरूप रूस ने एक विरोधपत्र भेज कर चीन से रूसी नागरिकों की जान-माल की सुरक्षा की माँग की. चीनी नेताओं ने विरोध पत्र, अपनी आदत के अनुसार, रद्दी की टोकरी में फेंक दिया. चीन के विभिन्न भागों में अब भी रूस-विरोधी प्रदर्शन हो रहे है. अब तक कोई २६ करोड़ चीनी इन प्रदर्शनो मे भाग ले चुके हैं. ताज़ा समाचारो के अनुसार चीन बड़े पैमाने पर युद्ध की तैयारी कर रहा है. रक्षामंत्री लिन पिआओ ने ६० लाख चीनी सैनिकों को रूसी सीमा पर भेजने का आदेश दिया है.

प्रतिक्रिया : इन प्रदर्शनों की रूस में तीव्र प्रतिक्रिया हुई और ७ मार्च को मॉस्को-स्थित चीनी दूतावास पर विशाल प्रदर्शन हुआ. ८ मार्च को एक लाख से भी अधिक प्रदर्शनकारियो ने माओ-विरोधी नारे लगाते हुए पुन: प्रदर्शन किया. इसी बीच रूसी समाचार पत्र 'इजवेस्तिया' ने २ मार्च की मुठभेड़ का संपूर्ण विवरण प्रकाशित किया है जिस के अनुसार पहल चीन ने की और उस के ५३० सैनिको ने संघर्ष में भाग लिया. 'प्राव्दा' ने चीन पर आरोप लगाया कि उस ने ऐसे समय पर रूसी सीमा पर आक्रमण किया जब कि सारे साम्यवादी देश अमेरिका के विरुद्ध उत्तरी वीएतनाम का समर्थन कर रहे हैं. चीनी नेताओं ने एक समाजवादी देश से संघर्ष छेड़ कर साम्राज्यवाद-विरोधी अभियान में समाजवादी शक्तियो के साथ विश्वासघात किया है. 'दमंस्की द्वीप के निकट संघर्ष भड़का कर चीन ने अपनी उन विदेश और गृह नीतियो के तथाकथित प्रगतिशील संशोधन में तीव्रता लाने की माओवादी नीति को चरम-सीमा पर पहुँचा दिया है जिन का उद्देश्य अंतत: चीन को एक ऐसी शक्ति के रूप में परिणत करना है जो समाजवादी देशों का सशक्त विरोध कर सके.' रूस और चीन के बीच गत एक वर्ष में एक हजार झड़पें हो चुकी है.

रूस-अमेरिका

सद्भावना के दर्शन

राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन जब ८ दिवसीय यूरोप यात्रा से लौटे तब उन के लहजे में एक तबदीली-सी नजर आयी. ५५ वर्षीय राष्ट्रपति ने अपने ५५ मिनट की टेलिविजन प्रेस कांफ्रेंस में रूस के प्रति जिस तरह का रवैया अख्तियार किया वह रिपब्लिकन पार्टी के इतिहास में नये मोड़ का परिचायक है. इस नयी दिशा का कारण शायद चीनी-रूसी सीमा-विवाद और दोनों देशों के बीच लगातार बिगड़ते हुए संबंध हैं. राजनैतिक हल्कों में इस तरह की भी चर्चा थी कि चीन और अमेरिका यदि काफ़ी निकट आ गये तो रूस का क्या होगा. तब किसी ने कहा था कि रूस का झुकाव फ़्रांस और ब्रिटेन के प्रति अधिक होगा. क्यो कि तब इस का मुख्य कारण फ़्रांस और अमेरिका का परस्पर मनमुटाव था. यूरोप की खोजपूर्ण यात्रा में निक्सन ने फ़्रांस को नये सिरे से देखा है और दोनों देशो के नेताओ ने अपनी समस्याओ पर खुल कर बातचीत की है. फ़्रांस और अमेरिका के बदलते हुए इन संबंधों के संदर्भ में और रूस द्वारा अमेरिका के साथ अधिक सहयोग करने की इच्छा के कारण निक्सन अब यह चाहते है कि आक्रामक चीन की बजाय उदार रूस से उन के संबंध चिरस्थायी साबित हो सकते है. यह बात जग जाहिर है कि रूस का दबदबा पूर्व यूरोपीय देशों के अलावा अरब, अफ़्रीकी, एशियाई और लातीनी अमेरिकी देशों पर चीन की अपेक्षा अधिक है.

महान् शक्ति का गठन : इस आशावादी दृष्टिकोण की पुष्टि निक्सन की उस बात से हो जाती है कि 'रूस चाहता है कि पश्चिम बर्लिन, पश्चिम एशिया और वीएतनाम में तनाव खत्म किया जाये. शांति के इस प्रयास में मॉस्को वॉशिंग्टन का साथ देगा. रूस पूर्वी जर्मनी, अरब और उत्तर वीएतनामियों पर अपने दबदबे का इस्तेमाल कर उन्हें समझौते के लिए तैयार करेगा. ऐसे ही आशावादी विचार निक्सन ने अपनी यूरोप यात्रा में व्यक्त किये. निक्सन पर ऐसे विचार हावी करने का श्रेय क्रेमलिन के एक मुख्य अधिकारी डाबरीलिन को है जिन्होंने यूरोप यात्रा पर जाने से पहले राष्ट्रपति और उन के विदेशमंत्री रोजर्स से बातचीत की थी. निक्सन भी यह मानते हैं कि बिना रूसी सहयोग के विश्व के मौजूदा तनाव का कम हो पाना असंभव लगता है लेकिन इस के साथ उन की यह मान्यता भी है कि रूस के साथ बातचीत के हर क्रम में वह अपने यूरोपीय मित्रो का सलाह-मशविरा बाकायदा लेते रहेंगे. लोगों में बेमतलब का डर पैदा न हो जाये, अत: एक बात उन्होने और साफ़ करते हुए कहा कि वह रूस के साथ मिल कर किसी महान् शक्ति के गठन का इरादा नही रखते. अणु हथियारों पर रोक लगाने के बारे में रूस-अमेरिका सहमति की मिसाल तो सर्वविदित है लेकिन इस मिसाल को बेमिसाल बनाने के लिए वे विस्फोटक हथियारो पर रोक और पूरी तरह पाबंदी लगाने के पक्ष में हैं. निक्सन चाहते है कि आणविक हथियारों की रोक के साथ राजनैतिक समस्याएँ जुड़ी हुई नही है. इन दोनो ही समस्याओ का एक साथ और अलग-अलग निपटारा हो सकता है. हम रूसियों पर ऐसा कोई दबाव नहीं डाल रहे हैं कि अगर वे पश्चिम एशिया और वीएतनाम की समस्याओं को सुलझाने के लिए सहयोग नही करेंगे तो हम हथियारों की होड़ खत्म करने के बारे में उन की बात नही मानेंगे. निक्सन चाहते है कि हथियारों पर रोक तब तक बेमानी है जब तक राजनैतिक तनाव बना रहेगा. हम अपने मौजूदा हथियारों से ही विश्व को विनाश की कगार पर ला कर खड़ा कर सकते हैं.

निक्सन का रूस के प्रति जो समझौतावादी रवैया है, गुटनिरपेक्ष और तटस्थ देशों से उतना ही निराशावादी. उन की निराशा का सब से बड़ा कारण यह है कि ये देश अमेरिका

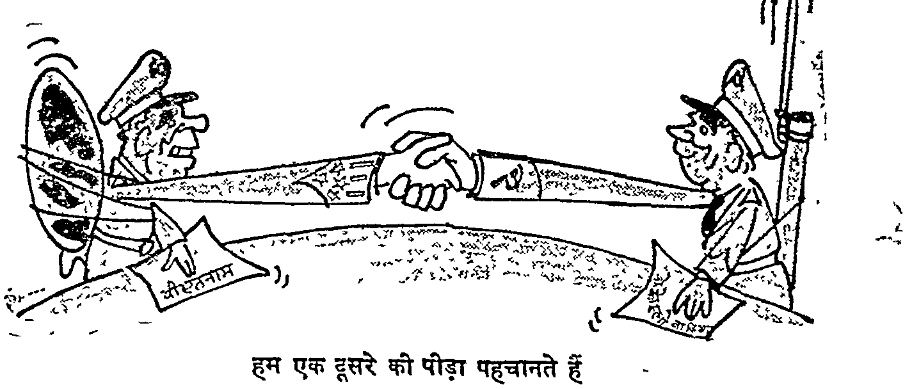

हम एक दूसरे की पीड़ा पहचानते हैं

को तो बमबारी बंद करने की सलाह देते हैं लेकिन उत्तर वीएतनाम पर किसी तरह का भी दवाव डालने की बात नहीं करते. उन्होंने कहा कि अमेरिका को बमबारी बंद करने का उत्साहजनक जवाब नहीं मिला है और अब हालत यह है कि उत्तर वीएतनामी और वीएतकाङ छापामार अमेरिकी ठिकानों को नष्ट करने में लगे हुए हैं. उन्होंने बड़े ही सँभले हुए शब्दों में कहा कि मेरा प्रशासन वीएतनामियों द्वारा बेमतलब बहाये जाने वाले अमेरिकी खून को बर्दाश्त नहीं करेगा. तटस्थ देशों को उन्होंने यह सलाह दी कि कोई भी दलील देने या दबाव डालने से पहले वे तस्वीर के दोनों पहलुओं को भली प्रकार परख लें. जब उन का ध्यान संयुक्त-राष्ट्र के महासचिव ऊ थाँ के उस वक्तव्य की ओर दिलाया गया जिस में उन्होंने अमेरिका को वीएतनाम पर बमबारी बंद करने के लिए पहल का सुझाव दिया था तब बात को और आगे न बढ़ाने की गर्ज़ से निक्सन ने धीमे से कहा कि कुछ का कथन अपवाद समझे जा सकते हैं.

इस पूरी प्रेस कांफ्रेंस से एक बात ज़ाहिर हो गयी कि अमेरिका निश्चित रूप से रूस के साथ बैठ कर अपनी और विश्व की समस्याओं के हल ढूँढ़ना चाहता है. संभवतः इस बात की तैयारियाँ भीतर ही भीतर जारी भी हैं जो किसी भी दिन इस ऐलान के साथ सामने आ सकती हैं कि निक्सन और कोसीगिन की बातचीत अगले कुछ दिनों में होने जा रही है.

पश्चिम एशिया

स्वेज़ विस्फोट

जब स्वेज़ नहर क्षेत्र में अरबों और इस्राइलियों के बीच झड़प हो गयी थी तो किसी को यह आशंका नहीं थी कि वह तुरंत एक बड़ी लड़ाई में परिणत हो जायेगी. स्वेज़ स्थित संयुक्त अरब गणराज्य के तेल शोधक कारखाने के नष्ट हो जाने और सेनाध्यक्ष लेफ़्टिनेंट जनरल अब्दुल मुनीम रियाद के मारे जाने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि नहर के आर-पार जो गोलाबारी हो रही है उसे एक साधारण झड़प कह कर टाला नहीं जा सकता. ८ मार्च को संयुक्त अरब गणराज्य और इस्राइली सेनाओं ने ५ घंटे तक लगातार युद्ध किया. इस्राइलियों के अनुसार अरबों ने पहले छोटे शस्त्रों का प्रयोग किया मगर इस्राइलियों की जवाबी कार्रवाई के बाद लड़ाई के क्षेत्र को व्यापक कर दिया गया और प्रक्षेपास्त्र, मार्टर तथा भारी तोपों का प्रयोग भी शुरू हो गया. कई घंटों तक युद्ध होने के पश्चात् संयुक्त-राष्ट्र के पर्यवेक्षकों ने दोनों पक्षों को युद्ध-विराम के लिए राज़ी कर लिया मगर संयुक्त अरब गणराज्य की ओर से युद्ध-विराम का उल्लंघन करने के कारण दूसरे दिन फिर से गोलाबारी शुरू हो गयी. इस्राइली तोपों ने स्वेज़ क्षेत्र में स्थित तेलशोधक कारखाने को लक्ष्य बनाया और भारी तथा विस्फोटक गोलों से उस में आग लगा दी. मुठभेड़ खत्म होने के बाद भी इस कारखाने के दो भागों से शोले और धुआँ उठ रहा था. अनुमान लगाया गया है कि इस से संयुक्त अरब गणराज्य को करोड़ों रुपयों का नुक़सान हुआ होगा. इस से भी अधिक क्षति अरबों को संयुक्त अरब गणराज्य के सेनापति के मारे जाने से हुई. जनरल रियाद युद्ध छिड़ने के बाद अग्रिम मोर्चों का निरीक्षण करने के लिए गये हुए थे जहाँ एक इस्राइली गोले के फटने से उन की मृत्यु हो गयी. इस के अतिरिक्त सिनाइ क्षेत्र में संयुक्त अरब गणराज्य के चार मिग वायुयानों ने इस्राइली अधिकृत क्षेत्र में प्रवेश किया मगर इस्राइली लड़ाकू जहाज़ों ने उन का पीछा किया जिस में एक मिग जहाज़ गिरा दिया गया. इस्राइलियों का दावा है कि उन्होंने घायल चालक को पकड़ लिया है जब कि अरबों के अनुसार उसे बचा लिया गया.

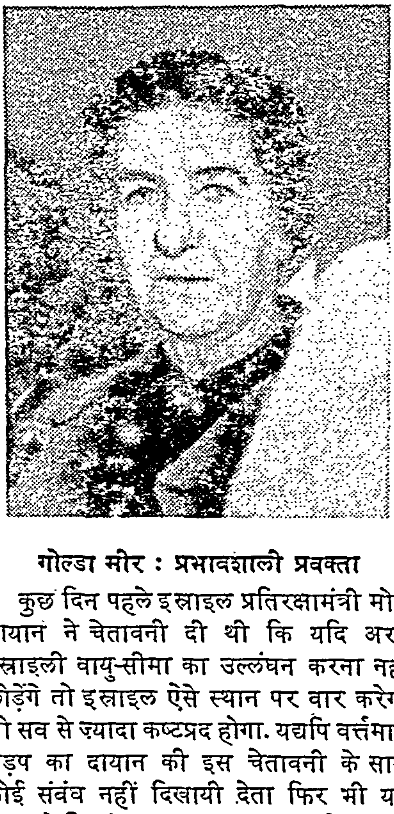

गोल्डा मीर : प्रभावशाली प्रवक्ता

कुछ दिन पहले इस्राइल प्रतिरक्षामंत्री मोशे दायान ने चेतावनी दी थी कि यदि अरब इस्राइली वायु-सीमा का उल्लंघन करना नहीं छोड़ेंगे तो इस्राइल ऐसे स्थान पर वार करेगा जो सब से ज़्यादा कष्टप्रद होगा. यद्यपि वर्त्तमान झड़प का दायान की इस चेतावनी के साथ कोई संबंध नहीं दिखायी देता फिर भी यह स्पष्ट है कि संयुक्त अरब गणराज्य और इस्राइल के बीच अचानक युद्ध छिड़ने का एक कारण इस्राइलियों की वह नीति है जिस के अनुसार वे अरब क्षेत्रों में नयी बस्तियाँ स्थापित करने का कार्यक्रम अपना रहे हैं.

गोल्डा मीर : कुछ लोगों के अनुसार लेवी एशकोल की मृत्यु के बाद इस्राइल में सत्ता के लिए संघर्ष आरंभ हो जायेगा और ऐसे ही अवसर पर अरबों को वार करना चाहिए किंतु इस तर्क का आधार अस्पष्ट अध्ययन दिखायी देता है. यदि प्रधानमंत्री की मृत्यु के पश्चात् इस्राइल में सत्ता के लिए संघर्ष आरंभ होने वाला था तो उस अवसर पर अरबों के आक्रमण से इस्राइलियों के सामने आपसी प्रतिस्पर्द्धा की अपेक्षा शत्रु की धमकी के सामने एक हो जाने की भावनाएँ अधिक शक्तिशाली हो जायेंगी. इस के अतिरिक्त एश्कोल की मत्यु के बाद सत्ता पर अधिकार करने का संघर्ष कदापि उस प्रकार का नहीं होगा जिस में इस्राइल के कमज़ोर होने की संभावना हो, कम से कम तब तक नहीं होगा जब तक नये निर्वाचन नहीं होते हैं. ७१ वर्षीय श्रीमती गोल्डा मीर का निर्वाचन इसी बात का द्योतक है कि इस्राइली नेता फ़िलहाल अपने व्यक्तिगत हितों के लिए संघर्ष करने की मुद्रा में नहीं हैं. गोल्डा मीर की नीति अरबों के संबंध में वैसी ही रहेगी जैसी कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री की थी क्यों कि श्रीमती मीर जहाँ श्रमिक वर्ग की पक्षपाती हैं वहीं अरबों के प्रति अनावश्यक नरमी बरतने की विरोधी भी हैं. प्रधानमंत्री डेविड बेन गुरियो के समय वह इस्राइल की एक प्रभावशाली प्रवक्ता रही थीं और स्वयं प्रधानमंत्री के शब्दों में 'वह मेरे मंत्रिमंडल में अकेला पुरुष हैं'. वास्तव में इस्राइल के परंपरावादी व्यक्ति गोल्डा मीर को प्रधानमंत्री चुन कर एक विचित्र प्रकार का संतोष महसूस करते हैं क्यों कि बाइबिलकालीन साम्राज्ञियों जैज़ेबेल और एलैग्ज़ेंधा के बाद वह पहली महिला हैं जो इस्राइल पर शासन करेंगी.

पाकिस्तान

दूसरा दौर

पाकिस्तान के राष्ट्रपति मार्शल अय्यूब ख़ाँ और ८ दलीय डेमोक्रेटिक ऐक्शन कमेटी के सदस्यों के बीच जब १० मार्च को बातचीत का २ घंटे का दूसरा दौर चला तो उस में कुछ खुल-कर बातें हुईं. दौर में प्रतिपक्षी नेता पिछले महीने की अपेक्षा इस बार अधिक संगठित थे और उन्होंने ८ मार्च को सर्वसम्मति से जो प्रस्ताव अय्यूब के सामने रखने का निर्णय लिया था, उस पर पूरी तरह अमल किया. डेमोक्रेटिक एक्शन कमेटी के संयोजक नवाबज़ादा नसरुल्ला ख़ाँ जहाँ कमेटी के अन्य सदस्यों की तरफ़ से बातचीत में बढ़-चढ़ कर हिस्सा ले रहे थे, वहाँ एयर मार्शल असग़र ख़ाँ और पूर्व पाकिस्तान के भूतपूर्व न्यायाधीश एस. एम. मुर्शीद समेत अवामी लीग के नेता शेख मुजीबुर्रहमान ने भी अपनी भूमिका जिस कदर निभायी, उसे देख सत्तारूढ़ मुस्लिम लीग पार्टी के सदस्य कभी खुली आँखों से प्रतिपक्षी नेताओं को देखते तो कभी अधमुंदी आँखों से अपने नेता अय्यूब को देख जाते. प्रतिपक्ष की इस एकता को देख कर अय्यूब के मन में भी शायद यह बात आ जा रही थी कि यदि इन लोगों में

ऐसी एकता बनी रही तो देश की सत्ता इन लोगों के हाथ में जाने में अधिक देर नहीं लगेगी. अस्वस्थ होने के बावजूद शेख मुजीबुर्रहमान ने बातचीत में भाग लिया. पूर्व पाकिस्तान अवामी पार्टी के नेता मौलाना भासानी और पीपुल्स पार्टी के जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो सम्मेलन में शामिल नहीं हुए. भासानी चाहते हैं कि कार्य-सूची में विद्यार्थियों की ११-सूत्रीय माँगों को शामिल किया जाये जब कि भुट्टो की ज़िद है कि जब तक अय्यूब अपने पद से हट नहीं जाते तब तक उन से किसी तरह की बातचीत करना नामुमकिन है. प्रतिपक्षी नेता चाहते थे कि संसदीय पद्धति की सरकार, क्षेत्रीय स्वायत्तता और व्यस्क मताधिकार की उनकी माँगें स्वीकार की जायें.

बातचीत का दायरा : ८ मार्च की अपनी बैठक में डेमाक्रेटिक ऐक्शन कमेटी के नेताओं ने यह फ़ैसला किया था कि वे अय्यूब ख़ाँ से बातचीत करेंगे और दूसरे पाकिस्तान के मौजूदा ढाँचे को ५ भागों में बाँटने पर ज़ोर देंगे. ये ५ भाग इस प्रकार के हो सकते हैं—१) फ्रंटियर, २) पंजाब और बहावलपुर ३) सिंध, ४) बलूचिस्तान और ५) पख्तूनिस्तान. इस के अलावा ५६ प्रतिशत आबादी वाले पूर्व पाकिस्तान को स्वायत्तता का दर्जा दिलाने की माँग भी की जा रही है जिस के अंतर्गत विदेश और प्रतिरक्षा विभाग संघ के अंतर्गत होंगे. मुजीबुर्रहमान पूर्व पाकिस्तान के लिए अलग सेंट्रल बैंक की भी माँग कर रहे हैं. उन का यह कहना है कि देश में वयस्क मताधिकार के अनुसार निर्वाचन हों. यदि ऐसा होता है तो राष्ट्रीय असेंबली में पूर्व पाकिस्तान की सदस्य-संख्या अधिक होगी जब कि आज कल राष्ट्रीय असेंबली में पश्चिम और पूर्व पाकिस्तान दोनों का बराबर-बराबर प्रतिनिधित्व है. एक प्रश्न के उत्तर में मुजीबुर्रहमान ने कहा कि १९७० के राष्ट्रपति के पद-चुनाव से पहले अंतरिम सरकार बने जिस में अय्यूब ख़ाँ को भी शामिल किया जाये. फिर उन्होंने हँसते हुए कहा, 'आख़िर पिछले दस सालों से हम उन्हें बरदाश्त तो कर ही रहे हैं.' जब उन से यह पूछा गया कि क्या वह किसी पद के इच्छुक हैं तब उन्होंने कहा कि यदि जनता चाहेगी तो मैं राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री किसी भी पद के लिए अपनी सेवाएँ अर्पित कर सकता हूँ.' यह बात तय है कि मुजीबुर्रहमान के उदार रवैये के कारण उन्हें पूर्व पाकिस्तान में काफ़ी हिमायत प्राप्त है और अब पश्चिम पाकिस्तान में भी उन के श्रद्धालुओं की संख्या बढ़ती जा रही है. असग़र ख़ाँ का पश्चिम पाकिस्तान में उदारवादियों के बीच काफ़ी दबदबा होने से वे मुजीबुर्रहमान के साथ मिलने को तत्पर दिखायी देते हैं. भुट्टो का दबदबा केवल छात्रों और शहरों में ही है. देहातों में अभी भी अय्यूब समर्थक ज़मींदारों का काफ़ी दबदबा है.

यह बात तय है कि अगर पाकिस्तान में प्रत्यक्ष चुनाव होते हैं तो पश्चिम पाकिस्तान से अय्यूब समर्थक लोग ही अधिक चुन कर आयेंगे. यह बात तो अब साबित हो चुकी है कि पाकिस्तान के उद्योगों पर लगभग २० परिवारों का ही अधिकार है और अपने १० साल के कार्यकाल में अय्यूब ने इन लोगों पर किसी तरह का अकुंश नहीं लगाया भुट्टो को सब से ज्यादा डर पूर्वी पाकिस्तान के अलावा इस तबके के लोगों से ही है. पूर्व पाकिस्तान में भुट्टो की पीपुल्स पार्टी के अध्यक्ष मकबूल हुसेन ने पार्टी को भंग करने का निश्चय किया है क्यों कि भुट्टो ने पूर्व पाकिस्तान की पूर्ण स्वायत्तता की माँग का समर्थन नहीं किया. मौलाना भासानी समय का तकाज़ा समझते हुए प्रेस अध्यादेश में संशोधन, बंदियों की रिहाई, सुरक्षा नियमों में परिवर्तन, पुलिस की ज्यादतियों के बारे में जाँच और पुलिस की गोली से मरने वालों के परिवारों को मुआवज़ा देने की माँग बुलंद कर उन का समर्थन पाना चाहते हैं. इस बात में उन्हें अभी तक तो सफलता मिल रही है लेकिन कई हलकों में इस बात की चर्चा ज़ोर पकड़ रही है कि मौलाना भासानी का गोलमेज़ सम्मेलन में शामिल नहीं होना एक राजनैतिक चाल है. जहाँ असग़र ख़ाँ और मुजीबुर्रहमान एक दूसरे के नज़दीक आ रहे हैं वहाँ भुट्टो और भासानी की निकटता भी दिन-ब-दिन बढ़ रही है. आने वाले दिनों में इन की यह निकटता कोई अन्य नया मोड़ ले सकती है.

पूरे पाकिस्तान में इस समय अराजकता का माहौल व्याप्त है. डाकख़ाने खुले हैं लेकिन वहाँ काम करने वाला कोई नहीं है. बंदरगाहों पर जहाज़ आते हैं लेकिन वहाँ पर माल उतारने वाला कोई नहीं, डाक्टरों की हड़ताल के कारण मरीज़ दवा-दारू और चिकित्सा के अभाव में दम तोड़ रहे हैं, छात्रों का विद्रोह तो जारी ही है और पत्रकारों ने धमकी दी है कि अगर २ अप्रैल तक उन के वेतनमानों में सुधार नहीं किया गया तो वे भी अनिश्चितकाल के लिए हड़ताल कर देंगे. छात्रों की शक्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है और पूर्व पाकिस्तान की असेंबली के विधायकों और राष्ट्रीय असेंबली में पूर्व पाकिस्तान के संसद्-सदस्यों ने ३ मई से त्यागपत्र देने का निर्णय कर लिया है. छात्रों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण और अत्यावश्यक सेवाओं में गिरावट आ जाने के कारण पाकिस्तान का साधारण और असाधारण जन तरह-तरह के संकटों के दौर से गुज़र रहा है.

साझा-बाज़ार

संघर्ष की भूमिका

साझा-बाज़ार में प्रवेश के प्रश्न को ले कर ब्रिटेन और फ्रांस में काफ़ी अरसे से तनाव चला आ रहा है. गत अगस्त में चेकोस्लोवाकिया पर रूसी आक्रमण के बाद पश्चिमी यूरोप की सुरक्षा के लिए जो ख़तरा पैदा हो गया था उस ने इस तनाव को कुछ कम किया. फ्रांस ने, जो पहले 'नैटो' से अलग होने की घोषणा कर चुका था, 'नैटो' में बने रहने का फ़ैसला किया. परिणामस्वरूप ब्रिटेन से भी उस के संबंधों में सुधार हुआ. इस नयी स्थिति से ऐसा प्रतीत होने लगा था कि संभवतः साझा बाज़ार में ब्रिटेन के प्रवेश के मामले पर फ्रांस अपना रवैया बदलेगा. किंतु ऐसा कुछ न हो सका. सोएम्स कांड ने दोनों देशों की दूरी को और भी बढ़ा दिया है.

गुप्त प्रस्ताव : श्री सोएम्स पेरिस में ब्रितानी राजदूत हैं. गत ४ फ़रवरी को फ्रांस के राष्ट्रपति जनरल द गॉल से उन की गुप्त मंत्रणा हुई, जिस का विवरण बाद में समाचारपत्रों में प्रकाशित हो गया. मंत्रणा के दौरान राष्ट्रपति द गॉल ने प्रस्ताव किया कि ब्रिटेन और फ़्रांस को एक ऐसा षड्यंत्र रचना चाहिए जिस के प्रथम चरण के रूप में अमेरिका को यूरोप से खदेड़ दिया जाये और दूसरे चरण में साझा-बाज़ार के, जिस के प्रति रोम-संधि के अंतर्गत फ्रांस प्रतिबद्ध है, स्थान पर एक ऐसे स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र की स्थापना की जाये जिस का संचालन यूरोप की चार बड़ी शक्तियाँ करें. इस प्रस्ताव की व्याख्या यों भी की जा सकती है कि 'नैटो' का विघटन कर के पश्चिमी यूरोप के देश अपने आर्थिक विकास और प्रतिरक्षा के लिए स्वयं प्रयास करें. जनरल द गॉल पहले भी कई बार अपना अमेरिका-विरोध प्रगट कर चुके हैं और इस दृष्टि से इस प्रस्ताव में कोई नयी बात नहीं है. किंतु इस बार उन्होंने ब्रिटेन को मोहरा बनाने का असफल प्रयत्न किया है—असफल इस लिए कि उन की योजना का आरंभ में ही ब्रिटेन ने भंडाफोड़ कर दिया. इस से फ्रांस का नाराज़ होना स्वाभाविक ही है.

जनरल द गॉल का प्रस्ताव इस दृष्टि से भले ही अनुचित हो कि उन्होंने 'नैटो' के विघटन का उत्तरदायित्व स्वयं ओढ़ने के स्थान पर ब्रिटेन पर थोपना चाहा, वैसे यह प्रस्ताव अमेरिका और पश्चिमी यूरोपीय देशों की उत्तम राय की ही प्रतिध्वनि है. दोनों ही यह स्वीकार करते हैं कि पश्चिमी देशों को अपनी सुरक्षा का दायित्व स्वयं सँभाल लेना चाहिए. इस में अमेरिका और पश्चिमी यूरोप दोनों का ही ही हित होगा. स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र की स्थापना की बात भी प्रायः सभी पश्चिमी यूरोपीय देश स्वीकार करते हैं. वे तो इस क्षेत्र को पूर्वी यूरोप तक व्यापक करने की बात भी करते हैं. फिर जनरल द गॉल ने उसी बात को योजनाबद्ध ढंग से क्रियान्वित करने का प्रस्ताव कर के कौन-सा जुर्म कर दिया ? शायद यह कि वह ब्रिटेन की आर्थिक और सैनिक क्षमता के बारे में अनभिज्ञ हैं. प्रस्ताव करते समय वह यह भूल गये कि ब्रिटेन अब वह ब्रिटेन नहीं रहा है जिस के साम्राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता

था. और यह भी कि अब ब्रिटेन इतना अधिक अमेरिका पर निर्भर है कि वह उस की इच्छा के बिना करवट नहीं ले सकता है. ब्रितानी पत्रों ने इस तथ्य को, परोक्ष ही सही, स्वीकार भी किया है. एक ब्रितानी पत्र की यह टिप्पणी इस के अलावा और क्या हो सकती है कि ब्रिटेन ने जनरल द गॉल के प्रस्ताव को अपने मित्रों को बताना आवश्यक समझा. क्यों कि स्वेज़-संकट के समय ब्रिटेन ने अपनी योजना मित्रों (या मित्र) को नहीं बतायी थी, अतः उसे मुँह की खानी पड़ी.

बाज़ार का भविष्य : ब्रिटेन और फ़्रांस की तक़रार का और चाहे कोई परिणाम हो या न हो किंतु इस का एक परिणाम निश्चित है कि फ़्रांस साझा बाज़ार में ब्रिटेन का फिर डट कर विरोध करेगा. इस बार निश्चय ही साझा बाज़ार के अन्य सदस्य देशों का अधिक मुखर समर्थन ब्रिटेन को मिलेगा. सदस्य देशों की इस खींचतान से न केवल यूरोपीय आर्थिक समुदाय की प्रगति में बाधा पड़ेगी, बल्कि पश्चिमी यूरोपीय संघ का मार्ग भी अवरुद्ध हो सकता है. १९६७ में साझा बाज़ार में ब्रिटेन के प्रवेश पर जब फ़्रांस ने अपने विशेष अधिकार (वीटो) का प्रयोग किया, उस समय हालैंड ने फ़्रांस का खुला विरोध किया था, जिस के कारण साझा-बाज़ार में गत्यावरोध पैदा हो गया, जो कहीं १९६८ के अंत में जा कर दूर हुआ. रोम-संधि की अवधि ३१ दिसंबर, १९६९ को समाप्त हो जायेगी. उस समय तक सदस्य देशों के बीच कृषि प्रतियोगिता, परिवहन और विदेशी व्यापार के क्षेत्र में चार सामान्य नीतियों और श्रम, माल, व पूंजी, कंपनियों की निःशुल्क स्थापना और व्यावसायिक सेवाओं के स्थानांतरण के क्षेत्र में पाँच स्वतंत्रताओं की स्थापना का काम पूरा हो जाना था. किंतु प्रगति देखते हुए संधि का यह उद्देश्य पूरा होना असंभव ही है, यदि आने वाले महीनों में कोई चमत्कार न हो जाये. अब तक कृषि के क्षेत्र में ही एक आम नीति का निर्धारण साझा-बाज़ार के देश कर सके हैं. वहाँ भी अतिरिक्त उत्पादन की समस्या सिरदर्द बनी हुई है. साझा-बाज़ार के सदस्य देशों की स्वार्थ सिद्धि के लिए आपाधापी भी उद्देश्य सिद्धि में बाधक बनी हुई है. इस संदर्भ में फ़्रांस और पश्चिम जर्मनी का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है. दोनों ही देश साझा-बाज़ार के प्रमुख स्तंभ हैं, किंतु गत नवंबर में फ़्रांस के समक्ष जब मुद्रा-संकट उत्पन्न हुआ और उस ने समग्र यूरोपीय पर अपना काला पंजा फैला दिया, उस समय पश्चिम जर्मनी और फ़्रांस की स्वार्थपरता स्पष्ट हो गयी. न तो फ़्रांस ने फ़्रांक का अवमूल्यन किया और न ही जर्मनी मार्क के अतिमूल्यन के लिए तैयार हुआ. यह स्थिति फिर उत्पन्न हो सकती है. ऐसी दशा में साझा-बाज़ार के उज्ज्वल भविष्य के प्रति किस प्रकार आश्वस्त रहा जा सकता है.

चेकोस्लोवाकिया

ख़बरों के पीछे की ख़बरें

एक चेकोस्लोवाक पत्रिका के हास्य-व्यंग्य स्तंभ में एक समाचार छपा कि संसद सदस्य विलेम नोवी को नोबेल पुरस्कार दिया जाने वाला है क्योंकि उन्होंने 'ठंडी लपटों' का आविष्कार किया है.

इस आविष्कार की दिलचस्प कथा है. विद्यार्थी जाँ पलाच की आत्माहुति पर कीचड़ उछालने की नीयत से विलेम नोवी ने एक विदेशी समाचार एजेंसी से अपनी मुलाकात में कहा कि जाँ पलाच मरना नहीं चाहता था; उस के साथ साम्राज्यवादी एजेंटों ने छल किया. इन एजेंटों ने सोवियत-विरोधी भावनाएँ उकसाने के लिए एक नाटक रचा और उसका नायक पलाच को बनाया. एजेंटों ने पलाच को समझाया था कि उस के ऊपर ऐसा द्रव छिड़का जायेगा जिस से लपटें तो उठेंगी, मगर शरीर का बाल बाँका न होगा. इस तरह पलाच आत्माहुति देने की कोशिश करने वाला 'हीरो' बन जायेगा और जीवित भी रहेगा.

श्री नोवी का कहना था कि पलाच के संगी-साथी साम्राज्यवादी एजेंटों ने ख़ुद अपने गिरोह के एक सदस्य के साथ विश्वासघात किया. श्री नोवी ने दावा किया था कि ये तथ्य प्राग की पुलिस की जाँच में सामने आ रहे हैं. पश्चिम की एक समाचार एजेंसी को दिये गये इस वक्तव्य को सोवियत संघ की समाचार एजेंसी भी ले उड़ी और उस के आधार पर उसने पलाच की हत्या को साम्राज्यवादियों की साज़िश का एक अंग सिद्ध करने का प्रयत्न किया.

पुलिस विभाग ने साफ़ घोषणा की है कि उस ने श्री नोवी को अपनी जाँच की कोई रिपोर्ट नहीं दी और अपने बयान के लिए वे स्वयं ज़िम्मेदार हैं. फिर श्री नोवी को रिपोर्ट कहाँ से मिली ? प्राग में यह बात छिपी नहीं है कि श्री नोवी आजकल रूसी प्रचारतंत्र के प्रवक्ता हैं. रूसी प्रचारतंत्र का बस चलता तो पलाच काँड का लाभ उठा कर वे सभी प्रगतिशील राजनीतिज्ञों का सफ़ाया कर देते. अब भी वे पलाच काँड में कुछ और लोकप्रिय लोगों को फँसाने का प्रयत्न कर रहे हैं. हाल में प्रागवासियों के घरों में चुपके से एक परचा छोड़ा गया जिस में लिखा था : 'हत्यारो, जाँ पलाच के बारे में सचाई प्रकट हो गयी है. साम्राज्यवादियों के इस एजेंट ने आत्महत्या नहीं की थी, बल्कि वह अपने गिरोह द्वारा ही मार डाला गया था. सी. आई. ए. (अमेरिकी जासूसी संगठन) के इस एजेंट के साथ स्वयं उस के मालिकों ने विश्वासघात किया.

'एमिल ज़ातोपेक (ओलिंपिक स्वर्ण पदक विजेता) पश्चिमी जर्मनी से एक द्रव पदार्थ लाया था और उस ने वह द्रव अमेरिकी जासूस एजेंट ज़्बीनेक वोखरौलित्स्की (विद्यार्थी नेता), लुदेक पाखमान (शतरंज के चैंपियन) और श्री होखमान (प्रमुख पत्रकार) और ल्यादीमीर (टेलीविज़न टीकाकार) के हवाले कर दिया था. इन लोगों ने उस द्रव के स्थान पर जाँ पलाच पर पैट्रोल छिड़क दिया. जाँ पलाच इस साज़िश से बेख़बर था. ये पागल हत्यारे अपने को प्रजातांत्रिक और स्वतंत्रता का हिमायती घोषित करते हैं, मगर इन को मज़दूर वर्ग नेस्तनाबूद कर देगा.'

'काला पंजा' : राजनैतिक रूप से नहीं, शारीरिक रूप से नेस्तनाबूद करने की धमकियाँ दी जा रही हैं. उदाहरण के लिए श्री स्कुलीना को एक गुमनाम पत्र मिला, 'हत्यारे, सोमवार, २७ जनवरी की सुबह ही पालात्स्की और ईराशेक पुलों के बीच तुम्हारी खोपड़ी चकनाचूर पायी जायेगी.' इस पर हस्ताक्षर था : 'काला पंजा'. कुछ क्षेत्रों में 'काला पंजा' संप्रदाय के कारिंदे स्थानीय नेताओं को धमकाते हैं. इस की एक मिसाल देते हुए ओस्त्रावा के पुलिस विभाग ने एक वक्तव्य में बताया है कि स्थानीय फासिस्ट-विरोधी योद्धा-समिति के एक नेता श्री कनोतेक ने थाने में एक रिपोर्ट दर्ज करायी, जिस में बताया गया है कि दो अपरिचित आदमी इन के घर आये और उन से तीन स्थानीय नेताओं के पते पूछने लगे जो जनतांत्रिक सुधारों के समर्थक माने जाते हैं. श्री कानोतेक ने इनकार किया तो उन को पीटा गया और फिर उन दोनों आदमियों ने कमरे की तलाशी ली. बाद में वे लोग श्री कानोतेक को एक घंटे तक बाहर न जाने की हिदायत दे कर चले गये. श्री कानोतेक ने बताया कि वे एक रूसी कार में सवार हो कर ग़ायब हो गये. इस तरह की और भी अनेक घटनाएँ हुई हैं

पश्चिम जर्मनी

राष्ट्रपति-चुनाव और बर्लिन

पश्चिम जर्मनी ने रूस और पूर्व जर्मनी के प्रबल विरोध के बावजूद गत ५ मार्च को अपने नये राष्ट्रपति का चुनाव पश्चिमी बर्लिन में किया. डेमोक्रेट पार्टी के उम्मीदवार श्री गस्ताव हीनेमान मतदान के तीसरे चक्र में राष्ट्रपति चुने गये. उन्होंने क्रिश्चन डेमोक्रेट उम्मीदवार श्री गेर्हार्ड श्रोडर को ५०६ के मुकाबले ५१२ मतों से परास्त किया. चुनाव से पूर्व यह संभावना व्यक्त की गयी थी कि यदि बर्लिन के प्रश्न पर कम्युनिस्ट खेमे से कोई समझौता नहीं हुआ तो रूस की शह पर पूर्व जर्मनी चुनावों में विघ्न डालने के लिए हर संभव प्रयास करेगा. किंतु पश्चिम जर्मनी से बर्लिन पहुँचने वाले मुख्य मार्गों को कुछ देर के लिए बंद करने के अलावा अन्य कोई ऐसी कार्रवाई पूर्व जर्मनी ने नहीं की जिस से चुनाव-कार्य में व्यवधान पड़ता. रूस की इस चेतावनी

के बावजूद कि चुनाव में मतदान करने वाले प्रतिनिधियों के सकुशल पश्चिमी बर्लिन पहुँचने की वह कोई गारंटी नहीं दे सकता है, फ़्रांस, अमेरिका और ब्रिटेन के विमानों से प्रतिनिधि मतदान करने के लिए पश्चिमी बर्लिन गये. तीन सौ से अधिक रूसी और पूर्व जर्मन टैंकों की पश्चिम जर्मनी की सीमा पर गश्त और कम्युनिस्ट सैनिकों द्वारा बर्लिन के चारों ओर घेराव उन्हें मतदान में भाग लेने से न रोक सका. चुनाव निर्विघ्न समाप्त हो गया, किंतु उस ने बर्लिन की समस्या को फिर जीवंत कर दिया.

मुख्य आरोप : रूस और पूर्व जर्मनी ने पश्चिमी देशों पर यह आरोप लगाया कि पश्चिमी बर्लिन में राष्ट्रपति के चुनाव का आयोजन कर के उन्होंने उस संधि का उल्लंघन किया है जो द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद चार बड़ों (अमेरिका, रूस, ब्रिटेन और फ़्रांस) के बीच बर्लिन की समस्या के समाधान के लिए हुई थी. रूस ने पश्चिम जर्मनी की इस कार्रवाई को ग़ैरक़ानूनी बताया. अमेरिका, ब्रिटेन और फ़्रांस ने एक स्वर से उस आरोप का खंडन किया और कहा कि विभाजित बर्लिन के प्रति रूस का भी उत्तरदायित्व है. मिथ्या आरोप न लगा कर वह उस उत्तरदायित्व को निवाहे. कम्युनिस्ट खेमे को सब से बड़ी शिकायत यह थी कि पश्चिमी बर्लिन में राष्ट्रपति के चुनाव का आयोजन कर के पश्चिम जर्मनी ने उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया है, जब कि पश्चिम जर्मनी का कहना था कि उस का ऐसा कोई इरादा नहीं रहा. पश्चिम जर्मनी का यह कथन कहाँ तक सत्य है, यह तो वही जान सकता है, किंतु घटनाक्रम के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि पश्चिमी बर्लिन में राष्ट्रपति के चुनाव की व्यवस्था कर के पश्चिम जर्मनी ने रूस की उस चेतावनी का सशक्त उत्तर दिया है जो उसे चेकोस्लोवाकिया पर वारसाउ संधि के सदस्य देशों के आक्रमण के बाद रूस से मिली थी.

गस्ताव हीनेमान : विजयी

इस कार्रवाई से रूस के हाथ सिवाय बदनामी के और कुछ नहीं लगा. उस ने पश्चिम और पूर्व जर्मनी में ठीक उस समय पुन: तनाव पैदा कर दिया जब कि पश्चिम जर्मनी, पूर्व जर्मनी से संबंध सुधारने के लिए प्रयत्नशील था.

दक्षिण-पूर्व एशिया

अभी कितने वीएतनाम और ?

वीएतनाम, दक्षिण-पूर्व एशिया का नासूर बन गया है. हमलों और जवाबी हमलों का सिलसिला जारी है. कभी ज़ोरों पर तो कभी शिथिल, पर वीएतनामी नव वर्ष के उपलक्ष्य में २४ घंटे के हाल ही के युद्ध-विराम के बाद तो दक्षिण वीएतनाम पर नये वीएतकाङ आक्रमणों की लहर-सी आ गयी. नये आक्रमण और निशाने भी नये. नये अमेरिकी राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने अपनी हाल ही की यूरोप-यात्रा की समाप्ति पर चेतावनी भी दी कि वीएतकाङ आक्रमणों को सहन नहीं किया जायेगा. पर इस चेतावनी के बाद भी दक्षिण वीएतनाम के असैनिक ठिकानों पर वीएतकाङ आक्रमण जारी रहे और यही नहीं, वीएतकांगियों के नेशनल लिबरेशन फ्रंट ने असैनिक ठिकानों पर अपनी इस गोलाबारी को उचित ठहराते हुए राष्ट्रपति निक्सन की कड़ी आलोचना का भी नया सिलसिला शुरू कर दिया.

सब कुछ क्रांति के लिए : हानोई रेडियो के अनुसार हमलों का उद्देश्य क्रांति की संभावनाओं को सुदृढ़ और शत्रु की स्थिति को कमज़ोर करना है. इस का एक मक़सद अमेरिकियों को यह एहसास भी कराना है कि सैगॉन में अपनी कठपुतली सरकार को अब वे अधिक समय बनाये नहीं रख सकते. यह पहला अवसर था जब उत्तर वीएतनाम ज़बर्दस्त आक्रमण के साथ-साथ अपने उद्देश्यों को भी स्पष्ट करता जा रहा था. इधर तो वीएतकाङ, राकेटों और मार्टरों से दक्षिण वीएतनाम के कस्बों और नगरों पर आक्रमण कर रहे थे उधर हानोई रेडियो दक्षिण वीएतनाम के लिए प्रसारित अपने समाचार बुलेटिनों में अपनी नीति और उद्देश्य भी स्पष्ट करता जा रहा था. वीएतकाङ आक्रमण और दक्षिण वीएतनाम सरकार तथा अमेरिकी सेनाओं द्वारा उन का मुक़ाबला जारी है और वीएतनाम समस्या के किसी स्थायी समाधान तक इस स्थिति में परिवर्त्तन होने की संभावना नहीं है. पर ऐसे देश भी हैं जो हर समय इसी आशंका से त्रस्त हैं कि वीएतनाम-युद्ध समाप्त होते ही उन के यहाँ तोड़-फोड़ करने वाले कम्युनिस्ट तत्त्व अधिक सक्रिय हो उठेंगे और उन के यहाँ एक और वीएतनाम बन जायेगा.

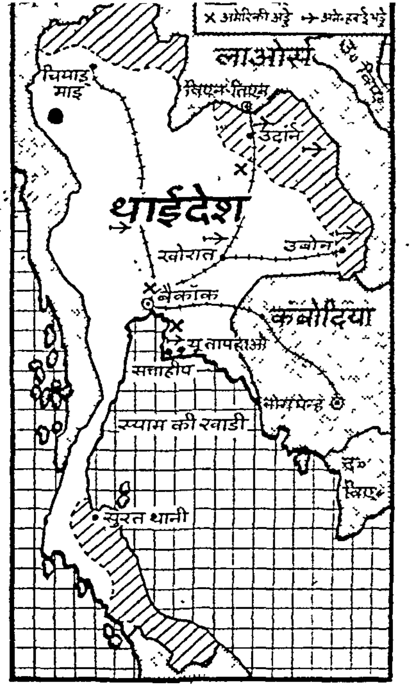

पहला निशाना थाईदेश : वीएतनाम युद्ध के उतार-चढ़ाव को देखते हुए थाईदेश का यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि वीएतनाम-युद्ध की समाप्ति अथवा शिथिलता का अनिवार्य परिणाम कम्युनिस्टों के साथ मुक़ाबला है और वीएतनाम-युद्ध समाप्ति का दिन भले ही दूर हो पर इस मुक़ाबले का दिन दूर नहीं है. देश के भीतर तीन अलग-अलग मोर्चों पर कम्युनिस्ट विद्रोहियों का पहले से ही ज़ोर है. भले ही यह अभी सीमित है. दक्षिण में थाई सुरक्षा सेनाओं के साथ कम्युनिस्ट छापामारों की 'आँखमिचौनी चलती ही रहती है.

थाईदेश की प्रमुख चिंता : थाईदेश के अनेक लोगों ने निजी तौर पर बातचीत के दौरान यह आशंका व्यक्त की है कि अमेरिका कभी भी दक्षिण पूर्व एशिया से हटने का निर्णय कर सकता है. अमेरिका के ऐसा निर्णय कर लेने से उत्पन्न समस्याओं से थाईदेश की सरकार के उच्च अधिकारी बहुत चिंतित हैं. थाई देश की सरकार को आशा है कि अमेरिका इस वर्ष के अंत तक काफ़ी बड़ी संख्या में अपने सैनिक दक्षिणपूर्व एशिया से हटा लेगा. अगर वीएतनाम युद्ध हुआ तो स्थिति में और भी ज़बर्दस्त परिवर्त्तन आ सकता है. शायद दक्षिण पूर्व एशिया से अमेरिकी सेनाओं का हटना जल्दी ही शुरू हो जाय. इस का सीधा असर थाईदेश पर ही पड़ेगा. इस समय कोई पचास हज़ार अमेरिकी सैनिक उत्तर वीएतनाम के खिलाफ़ वायु युद्ध में थाईदेश से कार्यवाही कर कर रहे हैं. मगर वीएतनाम युद्ध बंद हो गया तो अमेरिका इन में से कम से कम तीस हज़ार सैनिक तो वापिस बुला ही लेगा. इस संभावना का थाईदेश की अपनी रक्षा-व्यवस्था पर असर पड़ना स्वाभाविक ही है.

कार्ल यास्पर्स : अपने होने के अर्थ का अनुभव

तत्त्व-ज्ञान की इस युग में विशेष पूछ नहीं. विशेष ज्ञानों की अफ़रातफ़री में 'ज्ञान' की सुध लेने की फ़ुरसत किसे है ? ऐसे में कार्ल यास्पर्स (फ़रवरी २३, १८८३—फ़रवरी २६, १९६९ ई०) जैसों के दम ग़नीमत रहे हैं.

ओल्दनबुर्ग (जर्मनी) का यह तत्त्व-ज्ञानी पहले विख्यात आधि-वैद्य (मन की बीमारियों का चिकित्सक) था. पिछले दिनों यह हवा-सी चली थी कि अक्सर तत्त्व-ज्ञानी कोई न कोई व्यावहारिक पेशा या यथायथ विज्ञान छोड़ कर ही तत्त्व-चिंतन में पड़े. यास्पर्स के कुछ ही पहले त्सायहेन आधि-वैद्यक छोड़ कर तर्क-विद्या और बोध-सिद्धांत के चक्कर में पड़े थे. प्रमाणवाद के प्रवर गुरु माख भौतिकी से आये थे; आधुनिक उत्क्रांतिवाद के रीति-शास्त्री आँरी बर्गसाँ और आँरी प्वांकारे गणित से. सदी के उदय-काल में 'अचेतन चक्र' का आविष्कार करने वाले हार्तमान सैनिक और दक्षिण अमेरिकी बुद्धिजीवियों के नेता रोमेरो इंजीनियर रह चुके थे. यह हवा कोई संयोग न थी. यह इस बात का प्रमाण थी कि युग का तत्त्व-चिंतन युग की तत्त्व-चिंता है.

कांत, शेलिङ, प्लोतों और कीर्केगार्द का अनुशीलन, वीवर और हुसेर्ल का परिचय और 'वस्तु-सत्य' की अजेय जिज्ञासा यास्पर्स को शुद्ध तत्त्व-चिंतन तक ले आयी. जर्मन विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान वैद्यक का नहीं दर्शन का अंग रहा है. १९१३ से यास्पर्स मनोविज्ञान पढ़ाने लगे और १९२१ में हायदलबर्ग में दर्शन के प्राध्यापक बनाये गये. वहीं से उन्होंने सद्वादी पंथ चलाया और तत्त्वज्ञों की एक पूरी पीढ़ी के गुरु का पद सँभाला.

नात्सीवाद से उन्हें घिन थी. उस के पतन पर उन के भावातुर वाक्य मंत्र बन कर जपे गये. इन वाक्यों ने उन्हें विश्वख्याति दी. तत्त्वज्ञमंडलियों से दूर का भी नाता न रखने वालों के बीच भी वह मशहूर हुए. फिर वह स्विट्ज़रलैंड के बास्ले विश्वविद्यालय में दर्शन-विभाग के अध्यक्ष हुए और अंत तक वहीं बने रहे. बास्ले से बाहर वह अतिथि वक्ता हो कर ही गये तो गये. **चित् और प्रतिचित्** अतिथि-भाषणों का ही संग्रह है. इन में मार्क्सवाद और मनोविश्लेषण दोनों को 'सत्'-विरोधी ठहराया गया है. दोनों को बहुत बड़ी गहराई में ललकारा गया है.

यास्पर्स के काम के परास और विचारों के दिगंतों का कुछ अनुमान उन के ग्रंथों की विषय-सूचियों से हो सकता है. तत्त्व के स्तर पर सारी दुनिया सिमट आयी है उन में. **हमारे युग की आत्मिक दशा** नात्सी जर्मनी में ही छपी थी. नरक को जाते पतन-पथ को देख कर त्रस्त कितनी ही आत्माओं को इस पुस्तक ने अमित बल और अभय दिया. **दार्शनिक आस्था** ने मज़हबी दीनदारी मात्र को ललकारा. इन के बहुत पहले **आधुनिक युग में मानव** (१९३१) ने परवर्ती युग की सामाजिक, मानव-सार्वधिक, राजनीतिक, कलागत, विज्ञानगत, चिंतनगत आदि समस्याओं और दुविधाओं के अत्यन्त ही यथावत् भविष्य-दर्शन कर लिये थे.

आज के विश्व को 'तकनीक' और 'औज़ार' ने सिरजा है. उन्होंने 'जनता' बनायी है. यह जनता जीवन के हर गोशे में 'आत्मता' और 'निजता' के लिए ख़तरा बन गयी है. आज के दिन 'निजता' (सच्ची वैयक्तिकता) की संभावना पर विचार के प्रसंग में प्रो० यास्पर्स ने अपने 'सत्-दर्शन' के कुछ पहलू भी तभी उजागर कर दिये थे. मानव अपने विश्व को पूरी तरह नहीं जान सकता. ऐसे अज्ञेय विश्व में चुन-चुनाव कर पाना उस के लिए ज़रूरी हो जाता है. अस्तित्ववाद के दूसरे दर्शनों से 'सद्वाद' इस अर्थ में अधिक आशावादी है कि यह सच्ची और तोषप्रद मुक्ति को संभव मानता है.

समस्याएँ वहीं तक विचारी जाती हैं जहाँ तक वे सत् को छूती हैं. विश्व स्वस्थ है. सत् उसी में है. सत् उसी के प्रति उन्मुख है. सत् का प्रकाशन दर्शन है. व्याख्या अपेक्षित नहीं. सत् का प्रकाशन उस की संभावनाओं को आलोकित करता है. अन्यान्य सत् इकाइयों के साथ और अतींद्रियता के साथ उस के संबंध को आलोकित करता है. यों स्वयं अपने आगे अपना स्पष्टीकरण करता है.

यह स्पष्टीकरण कोई 'मनोविज्ञान' नहीं बनता. सत् की दशा, उस का संभव उभार, अतींद्रियता की ओर उस का तनाव, अन्य सत्-इकाइयों की ओर उस का तनाव आदि दो टूक बताये नहीं जा सकते. वे ज्ञापनीय नहीं, अंततः आचरणीय हैं.

अगला पर्याय 'भाव' यानी 'अधि-सत्' के प्रतीकों की खोज का है. उन का भी शब्दों में वर्णन संभव नहीं. प्रतीक आप ही सत् के लिए परमार्थ बन जा सकते हैं. लेकिन भटकाने की उन की क्षमता भी बनी ही रहती है. वे निर्देश भर करेंगे. यह देखना सत् का काम है कि निर्देश किधर को है.

सद्वाद के सभी पद 'सिद्धांततः' अनेकार्थी हैं. ख़तरा है कि वे निर्देशक पदों की बजाय विवरण-पद मान लिये जायँ. इस ख़तरे से बचा नहीं जा सकता. व्याख्या की दुर्व्याख्या भी तो हो सकती है ? इस तरह यह दर्शन एक कोंच भर है कि दूसरे भी अतींद्रियता-संपादन की वही आंतरिक क्रिया करें जो यास्पर्स कराना चाहते हैं.

सद्वाद रहस्यवाद भी नहीं; न ही सादी अप्रेषणीयता है. यह तो इस बात का स्वीकार है कि केवल सत् ही सत् को समझ सकता है. मतलब हमारा आपस का सब से महत्त्वपूर्ण कथ्य अकथ है. मतलब उस का बोध बलात् कराया नहीं जा सकता.

सत् क्या है ? उस का आवरक क्या है ? अतींद्रियता क्या है ? इन पदों के काम यास्पर्स ने बताये हैं, इन की परिभाषाएँ नहीं दी हैं. यह कोई संयोग नहीं; न ही कोई शैली-दोष है. परिभाषा देना सद्वाद का निषेध करना होता, यह भी नहीं कि ये व्यर्थ हैं. इन के अर्थ तर्क के अंतिम छोर पर हैं. अपने छोर को छूने की सामर्थ्य तर्क में है ? अपने परे की अनुभूति उस के लिए संभव है ? वह स्वातीत हो सकता है ? यास्पर्स कहते हैं: हाँ; स्वातीत होना उस के लिए शक्य ही नहीं, लाज़िम भी है.

तम के सागर में हम प्रकाश के छोटे-से द्वीप में हैं. तम को देखने के लिए हम अपने प्रकाश को करण बना सकते हैं ? जहाँ तक बनायेंगे तम हट लेगा, दिखेगा नहीं. आँख तम को देख नहीं सकती, पर महसूस तो करती है ? हमारे विज्ञानों की स्पष्टता चरमता पर जा कर भ्रष्ट हो जाती है. यह भी तो संभव है कि हमारे द्वीप का प्रकाश ही तम हो और उसे घेरने वाला सागर तम नहीं प्रकाश हो ? तम और प्रकाश को एक दूसरे की निषेधक अपेक्षा से ही तो जाना जाता है ?

यास्पर्स का चिंतन हमें 'देता' कुछ नहीं. न विश्वदर्श, न सुखी जीवन का भेद. पर उस के दिल से यदि हमारे दिल को राह हो ले तो अंततः वह कहीं अधिक क्रांतिकारी सिद्ध हो सकता है. अपनी सीमा का बोध, अपने आवरक रहस्य का अहसास कोई मामूली उपलब्धि नहीं.

सद्वाद में न आशा है न निराशा. सार्त्र के "मानव माने व्यर्थ आवेश" की यहाँ नाम-गंध नहीं. अंत में जो नौकाडूबी होगी, उस में सत् भी डूबेगा. नौकाडूबी में से ही वह कुछ प्रथम-प्रथम प्रकट होगा जो प्रामाणिक होगा.

अपने अंत की 'वसीयत' आप हम नहीं कर सकते; न ही हमारा नाश अपनी अनस्तित्व-साधकता मात्र से हमें कोई दिव्य दृष्टि दे देगा. पर ऐसी दृष्टि का अवसर बन भी वही सकता है. नया 'पंथ' चलाने का यह मुक़ाम नहीं. यों 'अनहद नाद' की रट वाले का कबीर-पंथ भी चलता ही है !

यास्पर्स तो बस हमें वापस बुलाते भर हैं, अपनी प्रामाणिक दशा के साक्षात्कार के लिए. 'पलट आओ' की यह पुकार कोई 'सिद्धांत' नहीं, एक आंतरिक क्रिया की प्रेरणा मात्र है. यह क्रिया हर किसी को आप ही करनी है. अपनी मौत आप मरे बिना गुज़र नहीं. यास्पर्स का सत्-दर्शन इस प्रकार मानव की ईमानदारी को विचारने और बरतने का प्रयास मात्र है—बुद्धि के प्रति अनुराग के रूप में.

सूर्य और चाँद तथा मनुष्य का व्यवहार

अगर अचानक सामान्यतया शांत स्वभाव के किसी व्यक्ति में क़त्ल करने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है, या स्नायु-रोग से पीड़ित किसी व्यक्ति की बेक़रारी और परेशानी अचानक बढ़ जाती हैं, या व्यक्ति स्वयं अपने अजीव व्यवहार को समझने में असमर्थ हो जाता है तो इन अस्वाभाविक बातों के स्रोत साधारणतया चिकित्सक शरीर के भीतर खोजने की कोशिश करते हैं; या फिर सामान्य परिस्थितियों के मत्थे सारा दोष मढ़ दिया जाता है. मगर क्या यह संभव है कि वास्तविक अपराधी न तो शरीर के भीतर हो और न ही अड़ोसपड़ोस की परिस्थितियों में; वल्कि वह बहुत दूर, पृथ्वी के वायुमंडल से भी वाहर, चाँद, सूर्य या अन्य ग्रहों से आता हो. अमेरिका, रूस और ब्रिटेन के वैज्ञानिकों के अनुसार यह केवल संभव ही नहीं, वल्कि एक तथ्य है.

चाँद और संतुलन : अमेरिका के एक विश्व-विद्यालय नॉर्थ वेस्टर्न यूनिवर्सिटी में प्रो. फ्रैंक ए. ब्राउन ने कुछ घोंघे और चूहे पाल रखे हैं और यह इतने प्रसिद्ध हो गये हैं कि विश्व के बड़े-बड़े वैज्ञानिक और चिकित्सक इन्हें देखने और इन की हरकतों और उछल-कूद को समझने के लिए प्रो. ब्राउन की प्रयोगशाला में आते हैं. यह निरीह जीव चाँद के घटने-बढ़ने के साथ-साथ अपनी हरकतों में भी परिवर्त्तन करते रहते हैं.

अपनी प्रयोगशाला में उन्होंने यह बात प्रदर्शित की है कि घोंघे, जो कि समुद्र के ज्वार के साथ-साथ खुलते और बंद होते रहते हैं, समुद्र से दूर भी चाँद की गतिविधि के साथ-साथ उसी प्रकार की हरकतें करते हैं कि मानों उन पर ज्वार-भाटा का प्रभाव पड़ रहा हो. इसी प्रकार उन्होंने चूहों को एक बंद डिब्बे में रखा है, जिस में कोई भी खिड़की नहीं है. फिर भी जब चंद्रमा का उदय होता है तो अचानक चूहे परेशान और बेक़रार से दिखाई देते हैं. इन प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करने की कोशिश की गयी है कि पृथ्वी पर स्थित जीवों पर चाँद की गतिविधि से प्रभाव पड़ता रहता है. कुछ विशेषज्ञों का विश्वास है कि जिस प्रकार चाँद का गुरुत्वाकर्षण ज्वार-भाटा को नियंत्रित करता है उसी प्रकार वह जीवधारियों पर भी प्रभाव डालता होगा, क्यों कि अधिसंख्य जीवों में ५० प्रतिशत से अधिक मात्रा पानी की रहती है. मगर कुछ वैज्ञानिक कहते हैं कि संभवत: चाँद प्रत्यक्ष रूप से जीवधारियों (जिस में मानव भी शामिल है) पर भले ही प्रभाव न डालता हो वह निश्चित रूप से विद्युत-चुंबकीय शक्तियों को प्रभावित करता है, जिस से मनुष्य के मानसिक संतुलन में खराबी पैदा हो सकती है. इन तर्कों के प्रमाण में मानसिक रोगों के अस्पतालों के उदाहरण दिये जाते हैं. संयुक्त राज्य अमेरिका में मानसिक रोग अस्पतालों में कुछ कर्मचारियों को पूर्ण चंद्रोदय के समय छुट्टी लेने की इजाज़त नहीं दी जाती, क्यों कि रोगियों के व्यवहार में पूर्ण चंद्रमा के समय व्यापक असंतुलन पाया गया है. प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक चिकित्सक एडीसन एंड्रयूज़ को चंद्रमा के इस प्रभाव पर इतना विश्वास है कि वह प्राय: उसी समय शल्य-क्रिया करते हैं जब कि कृष्ण पक्ष हो.

कार दुर्घटनाएँ : चाँद का प्रभाव केवल मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्तियों पर ही नहीं पड़ता, सामान्यतया स्वस्थ व्यक्ति भी इस से प्रभावित हो सकते हैं. डॉ. जेम्स केंटनर के अनुसार 'अगर हमें चाँद के प्रभाव के संबंध में अधिक जानकारी प्राप्त हो जाती तो शायद प्रतिवर्ष हज़ारों व्यक्तियों की ज़िंदगी बचायी जा सकती थी'. डॉ. केंटनर शिकागो यातायात अनुसंधान विभाग के विशेषज्ञ हैं. यातायात विशेषज्ञों ने यह महसूस किया है कि अनेक दुर्घटनाएँ चाँद के प्रभाव से ही होती हैं. आँकड़ों से यह सिद्ध किया गया है कि शिकागो में ८५ प्रतिशत कार दुर्घटनाएँ परेशानी, असहिष्णुता तथा क्रोध के कारण हो जाती हैं और इन में अधिसंख्य मामलों में पूर्णिमा के चाँद का प्रभाव दिखाई दिया है. पूनम का चाँद हमें ग़ुस्सा क्यों दिलाता है, यह एक विचित्र पहेली है, जिस का हल अभी भी नहीं निकल पाया है. मगर वैज्ञानिक इस सिलसिले में ख़ामोश नहीं हैं. सदियों से दंतकथाओं में चाँद के प्रभाव की बात की गयी है और यह बहुत संभव है कि प्राचीनों ने चंद्रमा के प्रभाव को महसूस तो किया था, मगर वह उस की गहराई तक जाने में असमर्थ थे.

समस्या अगर यहीं समाप्त हो जाती तो एक बात थी. मगर ऐसा लगता है कि संपूर्ण ब्रह्मांड में स्थित ग्रह-उपग्रह और तारे हमारे जीवन, विचार और व्यवहार में हस्पक्षेप करते रहते हैं. कई वर्ष पहले यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि अंतरिक्ष के बीच अपनी यात्रा के दौरान आकाश-कणों और किरणों के प्रभाव से पृथ्वी की घटनाएँ और गतिविधियों में परिवर्त्तन आ जाता है और इन आकाशीय तूफ़ानों का प्रभाव मनुष्य पर पड़े बिना नहीं रह सकता. यह आकाश-किरणें और अन्य प्रकार की शक्तियों के स्रोत ब्रह्मांड में फैले ही असंख्य ग्रह-उपग्रह हैं, जिन में से कुछ ग्रह तो हमारी भूमि से हज़ारों प्रकाश-वर्ष दूर हैं. मगर सूर्य अपेक्षाकृत निकट (९ करोड़ ३० लाख मील दूर) होने के कारण पृथ्वी पर सब से अधिक प्रभाव डालता है.

यह विश्वास किया जाता है कि सूर्य पर कभी-कभी उवाल या तूफ़ान जैसा पैदा होता है और सूर्य की पिघली हुई सतह पर होने वाले इस परिवर्त्तन से पृथ्वी पर स्थित मानव का व्यवहार बहुत घनिष्ठता के साथ बँधा हुआ है. इस सिलसिले में सोवियत संघ के वैज्ञानिक निकोलस शुल्ज़ ने १ लाख २० हज़ार व्यक्तियों का रक्त और अमेरिका के बोस्टन इंस्टीट्यूट के वज्ञानिकों ने २८६०० व्यक्तियों के रक्त का नमूना संगृहीत कर के सूर्य के प्रभाव का अध्ययन किया है. यह विश्वास किया जाने लगा है कि सूर्य से आने वाली इन शक्तियों का प्रभाव सब से अधिक रक्त के श्वेत दानों पर पड़ता है. इस के अतिरिक्त सूर्य से उत्पन्न विद्युत-चुंबकीय शक्ति से मानव-शरीर के विद्युतीय संतुलन पर प्रभाव पड़ता है. इसी लिए कभी-कभी मनुष्य साधारणतया अस्वाभाविक काम करने लगता है. ब्रितानी और अमेरिकी विशेषज्ञों ने यह सिद्ध कर दिया है कि आकाश में सूर्य की स्थिति के साथ-साथ विशेष क्षेत्रों में अपराधों की संख्या घटती और बढ़ती है.

सूर्य की रोशनी में कोई वस्तु ऐसी ज़रूर है जो शरीर की आंतरिक प्रणाली में असंतुलन पैदा करती है. इस से व्यक्ति चिड़-चिड़ा बन सकता है; उस की परेशानी बढ़ सकती है; वह क्रूर हो सकता है; या वह ऐसा काम कर सकता है जो साधारणतया उस के स्वभाव के विपरीत हो. इस लिए विश्व के संपन्न देशों में अपराधों की रोक-थाम के सिलसिले में भौगो-लिक सूर्य और चंद्रमा संबंधी तत्त्वों को भी शामिल किया जाता है. सच तो यह है कि विश्व के बड़े वैज्ञानिकों ने यह महसूस किया है कि संपूर्ण सौरमंडल कुछ इस प्रकार के नियमों से बँधा हुआ है जो वास्तव में उस में स्थित असंख्य ग्रहों और उपग्रहों को नियंत्रित करते रहते हैं. मनुष्य की इच्छा-शक्ति, उस का स्वभाव और विश्व के विभिन्न भागों में होने वाली घटनाएँ भी इस पृथ्वी से वाहर की शक्तियों द्वारा प्रेरित और किसी हद तक नियंत्रित होती हैं. मॉस्को विश्वविद्यालय के प्रो. आईवान त्ककीजोवस्की के अनुसार यदि सौर-प्रक्रिया की तीव्रता की अवधि में अपराधी को गिरफ़्तार किया जाये तो यह मानना उचित नहीं होगा कि सारा दोष अभियुक्त का होगा. इस लिए अब ऐसा समय आ रहा है जब कि अदालत में बैठे व्यक्तियों को सूर्य और चाँद जैसे तत्त्वों के प्रभाव और हस्तक्षेप को भी ध्यान में रखना होगा. अमेरिकी शहरों में अपराधियों और अपराधों का अध्ययन करते समय सूर्य के प्रभाव को एक आवश्यक अंग माना जाने लगा है. यह बहुत संभव है कि अगले दस वर्षों में ग्रहों के प्रभाव के संबंध में कुछ निश्चित तथ्य मिल जायें और तब अपराध संबंधी दृष्टिकोणों में भी परिवर्त्तन करने की आवश्यकता होगी.

शैलियों का आकर्षण

संगीत नाटक अकादेमी द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत १९६८ के गायन, वादन और नृत्य के कलाकारों का चार दिवसीय वार्षिक संगीत-नृत्य समारोह इस वर्ष सफल और संगीत-नृत्य की विभिन्न शैलियों का पूर्ण परिचायक रहा.

नृत्य : भरतनाट्यम में **श्रीमती कमला** और कत्थक में **दमयंती जोशी** दोनों ही अपनी-अपनी नृत्य-शैलियों की प्रतिनिधि और अद्वितीय महिला कलाकार रहीं. पूर्ण रूप से भरतनाट्यम को समर्पित पहली सभा में मद्रास की विख्यात नर्त्तकी **श्रीमती कमला** ने अपना बहुत ही सक्षम कार्यक्रम प्रस्तुत किया—शंकराभरणम में अल्प समय की नृत्य-रचना पुष्पांजली, बाद में राग मालिका में भावयामी और अंत में तिल्लाना. कलात्मक रुचि और निष्ठामय साधना तीनों ही नृत्यों में रहीं. महाराज स्वाति तिरुनाल रचित संस्कृत पदावली भावयामी में संक्षिप्त रूप से वर्णित राम कथा में सभी प्रमुख पात्रों का अभिनय एक ही कलाकार प्रस्तुत करता है, जो निस्संदेह कठिन कार्य है, जिसे श्रीमती कमला ने बहुत ही सहजता से प्रस्तुत किया. रामायण के सभी प्रमुख पात्र, स्वाभाविक अर्थभरी मुद्राओं और सशक्त मूक अभिनय द्वारा भावयामी में सजीव रहे, तो आदि ताल में निबद्ध राग शुरुति में तिल्लाना भरतनाट्यम की शैलीगत विशेषताओं, पाँव के जटिल काम और अंग-भंगिमाओं में उल्लेखनीय रूप से सफल रहा. **श्रीमती दमयंती जोशी** द्वारा प्रस्तुत नृत्य कत्थक शैली का प्रतिनिधि और अत्यंत सुरुचिपूर्ण प्रदर्शन रहा. नृत्यों में परंपरागत विशिष्टताओं के साथ-साथ निजीपन, मौलिकता और प्रयोगजनित उपलब्धियाँ भी स्पष्ट रूप से रहीं. दमयंती जोशी का कार्यक्रम संगीत और नृत्य दोनों ही में समानरूप से प्रभावशाली रहा. शैली के अलंकार, अंग, थाट, परन और तोड़ों से दमयंती जोशी ने अपना प्रदर्शन आरंभ किया. थाट, परन आदि कत्थक शैली की बहुत ही जानी-पहचानी चीजें हैं, पर इन के प्रस्तुतिकरण में भी अनोखा आकर्षण था. नायिका-भेद पर आधारित एक कथानक द्वारा 'अष्ट नायिका' में तो दमयंती जोशी का अभिनय और नृत्य चर्मोत्कर्ष पर रहा. चाल, भाव, मोहक मुद्राएँ और विभिन्न नायिकाओं की सूक्ष्म से सूक्ष्म मन:स्थितियों की सजीवता, शृंगार, चंचलता, विरहानुभूति, पश्चाताप—सभी मनोदशाओं को प्रत्यक्ष रूप देने में अभिनयात्मक अभिव्यंजना सभी अनुपम थी. कुचिपुडी शैली के पुरस्कृत **गुरु चिंता कृष्णामूर्त्ति** के शिष्यों ने कई नृत्य-रचनाएँ प्रस्तुत कीं—विनायक स्तुति, तरंगम दशावतार और भामा कल्पना आदि. प्रस्तुत कुचिपुडी शैली के नृत्यों में **कुमारी लंका अन्नपूर्णा देवी** द्वारा तरंगम और भामा कल्पना विशेष उल्लेखनीय रहे. कत्थक की शैली की मुख्य विशेषता नाटकीयता को पूर्ण तौर से और प्रभावशाली ढंग से **गुरु कुंजन पन्निकर** तथा उन के शिष्यों ने 'नल चरीतम' में प्रस्तुत किया. नल-दमयंती के रूप में **गोपाल नायर** और **पद्मनाभन** तथा हंस की भूमिका में **गोविंद पिल्लई** दक्ष रहे, पर नारद की भूमिका में स्वयं **गुरु पन्निकर** बेजोड़.

गायन : उत्तर भारतीय शास्त्रीय गायन की पुरस्कृत कलाकार श्रीमती **मोगूबाई करदीकर** तथा कर्नाटक कंठ-संगीत के अल्लतुर **श्री एस. श्रीनिवास अय्यर** ने दूसरी सभा में अपना गायन प्रस्तुत किया. भारतीय शास्त्रीय संगीत के विभिन्न घरानों में जयपुर अतरौली घराना विशिष्ट घराना है, पर अन्य घरानों की अपेक्षा कम प्रचलित. स्वर्गीय उस्ताद अल्लादिया खाँ के नाम से प्रचलित इस घराने की गायकी की प्रतिनिधि और उन्हीं की शिष्या **मोगूबाई** का गायन एक सुखद अनुभव रहा. यद्यपि इस घराने की गायकी में विविधता नहीं पर अन्य विशिष्टता जैसे अप्रचलित रागों का प्रस्तुतीकरण, शास्त्रीय शुद्धता और बढ़त की तानों में जटिलता का अनूठा प्रदर्शन अत्यंत आकर्षक रहता है. इस घराने की गायकी सामान्यत: और विशेषकर दिल्ली के आयोजनों में कम ही सुनने को मिलती है. राग जैत कल्याण में तीन ताल की विलंबित और तराना तथा राग भूपनट में दो रचनाएँ इस लय में भी जिस सहजता, सुरीलेपन और तैयारी से मोगूबाई कुरदीकर ने प्रस्तुत की वह चकित करने वाली रही. वरिष्ठ एवं प्रख्यात कर्नाटक शैली के गायक **अल्लतुर अय्यर** ने तीन राग प्रस्तुत किये. रागों की शुद्धता, अनूठी लयकारी और स्वयं प्रस्ताव के साथ-साथ आलापना में माधुर्य से इन की अपूर्व दक्षता और साधना स्पष्ट लक्षित होती थी. कंठ स्वर की विशेषताएँ, स्वरों का उतार-चढ़ाव और लय के चमत्कार से युक्त मिश्र चापु ताल में राग चक्रवागम, राग वाचस्पति और राग तोड़ी में श्री अल्लतुर श्री निवास अय्यर के गायन से संगीत का प्रभावपूर्ण वातावरण निर्मित हुआ. वायलन और मृदंगम पर क्रमश: श्री **टी. एन. कृष्णन्** और **पालघाट मणि** की इन के गायन में संगत भी उल्लेखनीय रूप से पूरक रही.

वादन : सितार और वीणा वादन क्रमश: उत्तर भारतीय और दक्षिण भारतीय शैली में **उस्ताद मुश्ताक़ अली खाँ** और **श्री के. एस. नारायण स्वामी** ने प्रस्तुत किया. प्रौढ़ सितार नवाज़ सेनिया घराने के **उस्ताद मुश्ताक अली खाँ** सितारखानी की मूल एवं प्राचीन शैली में बहुत ही दक्ष साधक हैं. इन के वादन की महत्त्वपूर्ण बात रही सीधे एवं सरलतम ढंग से रागों में निहित रस और भावों को मूर्त्तरूप देना. विधिवत् राग एमन में आलाप द्वारा राग की स्थापना के पश्चात जोड़, झाला और तीन ताल में निबद्ध दो गतें उस्ताद ने पेश कीं. एमन के वादन में राग की प्रकृति के अनुकूल पूरा संतुलन माधुर्य के साथ विद्यमान रहा. रसपूर्ण राग विस्तार का ढंग, उस में से क्रमबद्धता स्वरों की स्पष्टता और विविधता से उस्ताद के सितार वादन के सौंदर्य में उत्तरोत्तर वृद्धि होती चली गयी. एमन के स्वरों ने जिस संगीतमय वातावरण का निर्माण किया उसे पीलू की अवतारणा ने और भी अधिक

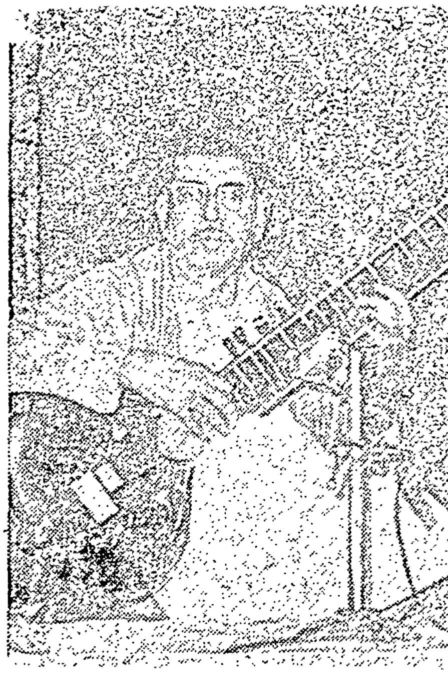

उस्ताद मुश्ताक अली खाँ : प्राचीन शैली

गहरा दिया. पीलू में अल्प अलाप और गतकारी अत्यंत मर्मस्पर्शी और रागनिहित असीम वेदना को मुखरित करने वाली रही. अंतिम सभा में **श्री के. एस. नारायणस्वामी** ने कर्नाटक वीणा वादन श्री रामनादेईश्वरम की मृदंगम पर उच्चकोटि की संगत में तीन रागों में प्रस्तुत किया. विभिन्न रागों और तालों में प्रस्तुत कृतियों में संत त्यागराज और महाराज स्वामी तिरुनाय की रचनाएँ उल्लेखनीय रूप में सफल रहीं. राग हरिकामबोजी में त्यागराज और कल्याणी में स्वाति तिरुनाल की क्रमश: आदि ताल और चापु ताल में निबद्ध कृतियों में वादक कलाकार की एकनिष्ठ साधना, ताल पर अद्भुत अधिकार और झुमा देने वाली लयकारी का विशिष्ट उदाहरण मिला.

कला

परिचित से फिर परिचय

ज० सुलतान अली का रचना-संसार समकालीन भारतीय कला के प्रेक्षक के लिए अव अपरिचित नहीं रहा—कहना चाहिए वह अत्यधिक परिचित हो गया है. इसी लिए उन की नवीनतम प्रदर्शनी (कुमार कला-दीर्घा) में उसी परिचित संसार को पा कर वहुत अच्छा नहीं लगता—लगातार वार-वार उन्हीं आकृतियों, रूपाकारों और चित्र-रचना की उन्हीं शैलियों को देखते हुए यह भ्रम हो उठना स्वाभाविक है कि यह काम नया है या पुराना. कोई कलाकार अपने को लगातार वदलता ही रहे, यह ज़रूरी नहीं होता, लेकिन उस की हर कृति को किसी न किसी अर्थ में 'वदलना' पड़ता है; तभी वह उस की नयी या अगली कृति हो पाती है. सुलतान अली के इन १० तैल चित्रों में चित्रों के भीतर चित्र हैं, लिपियाँ हैं, आदिवासी-आकृतियाँ हैं, कान-नाक में पहने जाने वाले अनेक आभूषण हैं, आकृतियों में पक्षियों की-सी भाव-भंगिमाएँ हैं, वैल हैं, चिड़ियाँ हैं—लोकजीवन की अनेक छवियाँ हैं.

सुलतान अली ने लोकजीवन की छवियों को ही नहीं रंगों को भी पकड़ा है. तोतापंखी हरे की तथा नीले की कई छायाएँ उन के चित्रों को आकर्षण प्रदान करती हैं. मनुष्य की अप्रिय रागात्मकता को, उस के विस्मय, कौतूहल को सुलतान अली प्रस्तुत तो करना चाहते हैं, लेकिन जैसे अव वह अपनी आकृतियाँ-रूपाकारों को कोई चरितार्थता-सार्थकता नहीं दे पाते.

धूमिल रंगों से आकृतियों-रूपाकारों को किसी हद तक लीप कर या रूपाकारों को रंगों की एक तरलता से घेर कर वह जैसे अपने परिचित संसार को एक मोड़ देना चाहते हैं; लेकिन इस में कोई वड़ी सफलता हासिल नहीं कर पाते. केवल लिंगम चित्र में रंगों का इस तरह प्रयोग कर, मानों चित्र के ऊपर वर्फ़ गिरी हो, वह एक नया रंग-प्रभाव पैदा कर सके हैं और यह चित्र इस प्रदर्शनी में अलग नज़र आता है. इसी चित्र में लघु रूपों में चित्रित पक्षी और जानवर की आकृतियाँ भी जैसे अपने रंगों में खिल उठती हैं, यानी चित्र के भिन्न भाग इस रंग-प्रयोग के कारण अपनी-अपनी सार्थकता प्राप्त कर लेते हैं.

ज० सुलतान अली का शिल्प पर अधिकार है. उन के कुछेक चित्रों की चौकस दृष्टि प्रेक्षक को वाँध भी लेती है. लेकिन उन के चित्रों के प्रेक्षक उन के दृश्यों से चकित ही न हों, या उन के चित्रों के प्रति अपना औत्सुक्य ही खो दें, तो यह स्थिति वहुत सुखद नहीं होगी.

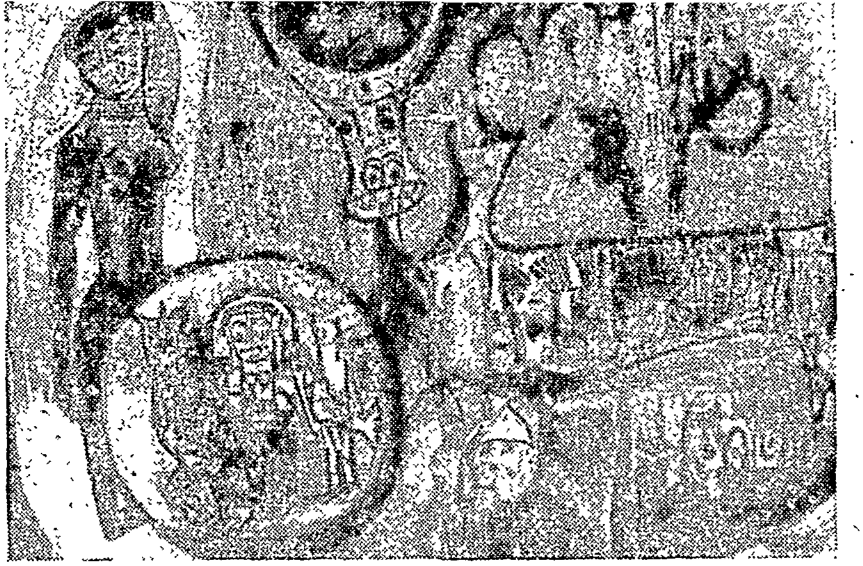

ज० सुलतान अली : रंग-प्रयोग

प्रदर्शनी-चक्र

'दिल्ली शिल्पी चक्र' की १९६९ की वार्षिक प्रदर्शनी में ११ चित्रकारों के चित्र प्रदर्शित थे. ये चित्रकार हैं : जया अप्पासामी, जीवन अदल्जा, रामेश्वर वरूटा, शोभा वरूटा, गोपी गजवानी, जय, कुलदीपसिंह जस, कँवल खन्ना, के. खोसा, जगदीश राय और उमेश वर्मा. इन में से प्रत्येक के दो या तीन चित्र प्रदर्शनी में सम्मिलित किये गये थे. कुछेक चित्र पहले ही इन की एकल प्रदर्शनियों में देखने को मिल चुके हैं. प्राय: सभी चित्रकारों का काम उन के परिचित लहजे में ही था, चित्र भी सव नये नहीं थे. कुछ तो साल-दो साल पुराने भी थे. ऐसी स्थिति में इसे 'प्रदर्शनी-चक्र' ही कहेंगे. वर्ष में एक वार प्रदर्शनी कर देनी है जैसा भाव शायद खत्म होना चाहिए. इस तरह की प्रदर्शनी से सम्मिलित चित्रकारों के काम का कोई रूप तो उभर पाता नहीं. यह भी कि दिल्ली शिल्पी चक्र अव वार्षिक प्रदर्शनी को कोई अवसर नहीं वना पाता. जया अप्पासामी के परिचित लहजे में ज़रूर थोड़ा परिवर्तन हुआ है. उन के सैरों में कोमलता की जगह कंकरीली-पथरीली भूमि की एक नयी संवेदना उभरी है. उन की रंग-छायाएँ भी वदली हैं.

ललित कला महाविद्यालय की २०वीं वार्षिक प्रदर्शनी भी इसी प्रदर्शनी-चक्र के घेरे में आती है. ६०० से ऊपर प्रदर्शित कलाकृतियों को देख सराह पाना किसी भी प्रेक्षक के लिए संभव नहीं लगता. चित्र, रेखाचित्र, मूर्तिशिल्प, ग्राफ़िकों आदि की इस प्रदर्शनी में विद्यालय के अधिकांश छात्रों का प्रतिनिधित्व करना ज़रूरी नहीं होना चाहिए. अच्छा होता अगर कुछ चुनी हुई कृतियाँ ही प्रदर्शित की जातीं. 'मेरी भी कृति प्रदर्शित हुई' की वजाय 'मेरी भी कृति प्रदर्शन-योग्य समझी गयी' की वात किसी भी छात्र के लिए अधिक संतोषप्रद होगी. इस तरह तो कृतियों की भीड़ में अच्छी कृतियों के खो जाने का भी खतरा होता है. प्रदर्शनी में प्रदर्शित अचल जीवन प्राय: सभी कमज़ोर हैं. कुछेक रेखाचित्र अच्छे हैं: **गौरी शंकर मुखर्जी, सुमंत दधेरा** आदि के. **सुविज्ञ हाशमी** का 'मेरी आत्मा का विंव' (कोलाज) भी अच्छा है, जिस में किसी इमारत के चौकोर ईंट-पत्थरों के-से झिलमिल रूपाकार हैं. जल-रंगों में **दिनेशप्रसाद वाहुनी** का 'एक शहर' सैरा भी अच्छा वन पड़ा है. चित्रों में कु. **सुमन सूद, प्रमिला ज्योत्सना, सुनीता कर्नाविदे, प्रिया मुखर्जी, दीपक चौधरी, निर्मल कपूर** आदि के चित्र आकर्षित करते हैं. प्रदर्शनी का ग्राफ़िक विभाग संपन्न लगता है. मूर्तिशिल्पों में **अमिताभ भौमिक** के लघु मूर्तिशिल्पों का उल्लेख किया जा सकता है. इन नामोल्लेखों से यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि इन्हीं छात्र-छात्राओं की कृतियाँ भर प्रशंसा के योग्य हैं. दरअसल, इस समीक्षक को इस वात का पूरा एहसास है कि वह कुछ अन्य उल्लेखनीय कृतियों को छोड़ रहा है और यह भी कि वह चर्चा अपर्याप्त है. लेकिन प्रदर्शनी की आयोजना ही कुछ ऐसी है कि उस की सम्यक समीक्षा असंभव-सी लगती है. एक वात पुरस्कृत कृतियों के वारे में—अधिकांश पुरस्कृत कृतियों के निर्णय से सहमत होना आसान नहीं लगता.

छात्रों की इस प्रदर्शनी के वाद अध्यापकों की एक प्रदर्शनी की चर्चा सुखकर होती, अगर छात्रों के सामने अध्यापकों को एक उदाहरण वना कर प्रस्तुत किया जा सकता. लेकिन रवींद्र भवन में वनारस विश्वविद्यालय के कला-विभाग के अध्यापकों की प्रदर्शनी ऐसे सुख का अवसर नहीं देती. प्रसिद्ध चित्रकार कुलकर्णी समेत पंद्रह अध्यापकों की यह प्रदर्शनी कोई गहरा प्रभाव नहीं छोड़ती. मूर्तिशिल्पों में से तो कई वहुत ही साधारण लगे.

दिल्ली के कला-छात्रों और वनारस के कला-अध्यापकों की प्रदर्शनियों में पुराने के प्रति रुझान और नये के प्रति रुझान है, लेकिन

उस में असफलता या प्रायः कृत्रिमता इस बात के सूचक हैं कि कला-अध्यापन को अभी भी एक स्वतंत्र संसार की रचना करनी है.

याल : कुछ और की अपेक्षा

व्यस्त शहरी जीवन में अपने-अपने धंधों में लगे जब कुछ युवा चित्रकार अपनी कलाकृतियों का प्रदर्शन करते हैं तो सहज कौतूहल होता है कि वे चित्रों की भाषा में क्या सोचते हैं. 'यंग आर्टिस्ट लीग' (याल) के कुछ सदस्य पिछले तीन-चार वर्षों से सामूहिक और एकल प्रदर्शनियाँ करते रहे हैं और उन्होंने अपने काम के प्रति रुचि और आकर्षण भी पैदा किया है. अपनी नवीनतम प्रदर्शनी (आइफ़ैक्स कला-दीर्घा) में वे अधिक परिष्कृत रूप में सामने आते हैं. कुछने अपने रूपाकार भी बदले हैं. लेकिन कुल मिला कर वे चित्रों की भाषा में कुछ ऐसा सोचते हुए नहीं मालूम पड़ते जो हमें अपरचित रूपाकारों, प्रसंगों और तनावों से तोड़ दें. मूर्त्तिशिल्पी वृज महाजन, जो पहली बार याल की प्रदर्शनी में सम्मिलित हुए हैं, जरूर प्रयोगोन्मुख लगते हैं और उन के मूर्त्ति-शिल्प शिल्प और विषय-वस्तु दोनों के लिहाज़ से कुछ नये कोण उपस्थित करते हैं. **महेंद्र कुमारी पुरी, राजेंद्र अग्रवाल, एस. डी. बेरी, आर. एस. गिल, के. के. मल्होत्रा** सभीने तकनीकी कुशलता प्राप्त कर ली है; सबने काम करने का एक ढंग भी बना लिया है.

एस. डी. बेरी के चार 'ध्यान में विचार' शीर्षक चित्र त्रिभुजों की एक अल्पना रचते हैं. इन्हीं त्रिभुजों में एक रंगांतर उपस्थित कर और उन्हें डबडबाये-से रंग दे कर वह अपने चित्रों की ओर ध्यान खींच लेते हैं. लेकिन इन चित्रों के आकर्षण के बावजूद उन का दुहराव अखरता है.

महेंद्रकुमार पुरी ने इस बार अपने नायिका-अध्ययन प्रस्तुत किये हैं—रीतिकालीन नायिकाओं से ये नायिकाएँ भिन्न तो होंगी ही, यह कहने की ज़रूरत नहीं. लेकिन यह 'नायिका-भेद' कोई बड़ी बात पैदा नहीं कर पाता. 'झूले में नायिका' चित्र जरूर अपवाद है.

आर. एस. गिल कुछ बहुत ही परिचित विषयों और सैरों को अपने रंग देते हैं. गिल के रंगों में इतनी आत्मीयता है कि उन के इन चित्रों को देख कर इस बात का अफ़सोस होता है कि वह इन्हें किसी नये विषयों की ओर क्यों नहीं मोड़ते. इस प्रदर्शनी में उन का 'आशान्वित' चित्र ग्रामीण नारी की आकृति को बहुत ही संवेदनशील तूलिका-स्पर्श देता है.

राजेंद्र अग्रवाल ने अपने विषय बहुत ही सीमित कर लिये हैं—प्रेमी युगल, ताल, नारी आकृतियाँ, सैरें. इन्हें चित्रित करने के ढंग भी वह बदलते नहीं. इस बार उन का 'सिलहुटी' चित्र ज़रूर एक लांग शाट के रूप में उभर कर आकर्षित करता है और उन की रंग-छाया की समझ प्रकट करता है.

के. के. मल्होत्रा के रूपाकार अक्सर संप्रेषण की ओर उन्मुख लगते हैं. लेकिन उन के गाढ़े रंग एक बड़ी बाधा लगते हैं. इस प्रदर्शनी में काले में उन का एक चित्र 'मीलों चलना है' मन में कई तरह के बिंब उभारता है. इस की गतिमयता आकर्षित करती है.

वृज महाजन के प्रायः सभी मूर्त्तिशिल्प अच्छे बन पड़े हैं—काठ को कहीं-कहीं थोड़ा-सा जला कर उन्होंने अपने मूर्त्तिशिल्प में काफ़ी अच्छा प्रभाव पैदा किया है. 'लंगड़ी औरत' उन का एक उत्कृष्ट मूर्त्तिशिल्प है.

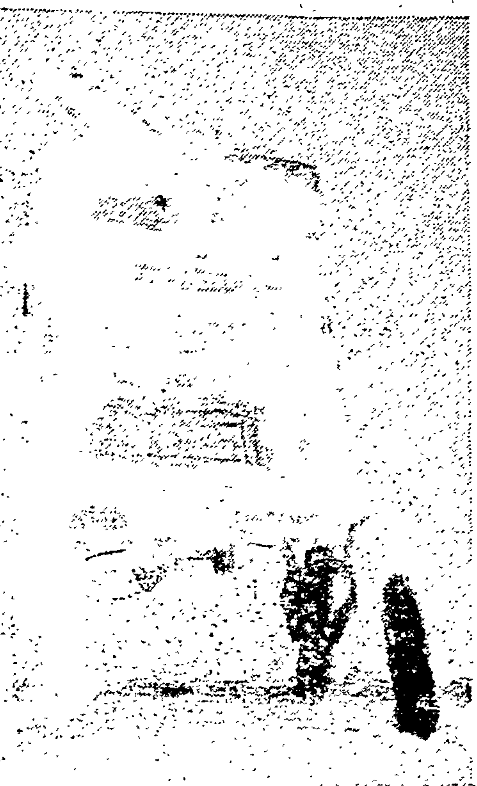

के. के. मल्होत्रा : 'मीलों चलना है'

खंडित रंग-चेतना

राजस्थान ललित कला अकादेमी की ग्यारहवीं वार्षिक कला-प्रदर्शनी सदा की भाँति रामनिवास बाग के बीचोंबीच स्थित अलवर्ट हॉल में लगायी गयी, पर बाहर के फूलों-भरे वातावरण का अंदर कोई असर नज़र नहीं आया. एक ही तरह के अनेक व्यक्तित्वहीन चित्र बड़े बेतरतीब ढंग से टाँग दिये गये थे. निन्यानबे में से अधिकांश चित्रों के पास रंगों की कोई भाषा नहीं, उन में हर ओर से गूँगापन झलक रहा था. जिन्हें पुरस्कृत किया गया उन की दरिद्र स्थिति सब से ज़्यादा 'मनोरंजक' थी. पता नहीं, अकादेमी ऐसे निर्णायक कहाँ से पकड़ लाती है.

राजस्थान के इन प्रतिनिधि चित्रकारों के बारे में दो-तीन बातें स्पष्ट करना आवश्यक है. एक तो यह कि अभी तक ये रूमानी आवेगों से मुक्त नहीं हो पाये हैं. प्रत्येक चित्र में स्त्री और उस के अवयवों की उपस्थिति अनिवार्य-सी जान पड़ती है. ऐसा लगता है कि यथार्थ के कच्चेपन से साक्षात्कार करने के मोह को ले कर उन्होंने कुछ नुस्खे हथिया लिए हैं और उन्हीं को इधर-उधर दुहराते हैं. दूसरे, अपने चित्रों में इन्हें कहीं न कहीं 'वृत्त' का आगमन अच्छा लगता है, चाहे वह अर्थ की गहनता को नष्ट करता हो. तीसरे, रंगों को अनुभूति से जोड़ने की बजाय इन्होंने कैनवास के विस्तार से जोड़ने का आग्रह पाल लिया है, अतः इस स्तर पर दर्शक को छूते नहीं—उस की बगल से गुज़र कर रह जाते हैं.

रंजन गौतम : 'संयोजन-१'

प्रदर्शनी में कुछ अच्छे चित्र भी हैं, जो सीधे रचनात्मक आकांक्षा से टकराहट पैदा करते हैं. **प्रेमचंद्र गोस्वामी** की 'प्रतिक्रिया' में एक मानसिक तैयारी है. रंगों के इस्तेमाल में उन की सतर्कता ने चित्र को रागात्मक तल्लीनता के भाव से जोड़ दिया है. भीतर के वक्र आयोजनों से पैनापन और तनाव प्रकट होता है. ऊपर हल्के नीले टुकड़े में विभाजित-सा आकाश दिखलायी देता है और उस के नीचे खंडित नारी का उत्तेजक अंश. **ज्योतिस्वरूप** कुछ नया नहीं दे पाये. मटमैली पृष्ठभूमि में तंत्र-ज्ञान से संबंधित उन के चित्रों में सब कुछ पूर्व-नियोजित-सा है और दर्शक को पकड़ता नहीं. **परमानंद चोयल** के 'दरवाज़ा' और 'भैंसें' लोकरंग को सार्थक अभिव्यक्ति देते हैं. **रंजन गौतम** के 'संयोजन-१' में एक निरंतर संघर्ष है—कठोरताओं से जूझने, टूटने, डूबने, और उभरने का. ध्वस्त कंगूरों की तरह पूरी स्थिति को कई सतहों से संबद्ध कर उन्होंने निजी सत्ता के अपहरण को व्यंजित किया है. **हरिप्रसाद शर्मा** (लाल और पीला), **मोहन शर्मा** (संगीतज्ञ) और **गणेश वशिष्ठ** के चित्र विव-दृष्टि से आकृतियों का निर्माण करते हैं. ग्राफ़िक में **रेखा माथुर** की कृतियाँ लय का आभास उत्पन्न करती हैं. उन में आंतरिकता की सघन शक्ति है. शिल्प अत्यंत दयनीय है. **हरिदत्त** के काष्ठशिल्पों का अभाव इस बार खलता रहा.

दिल्ली की गुड़ियाँ : जितनी गलियाँ उतने रूप

छोटी आकृति, बड़ा आकर्षण

गुड़ियों का ब्याह ही नहीं गुड़ियों की प्रदर्शनी भी होती है. पिछले दिनों नयी दिल्ली की आइफ़ैक्स कलादीर्घाओं में 'ऑल इंडिया हैंडीक्राफ़्ट बोर्ड' व विदेश-व्यापारमंत्रालय के सहयोग से खिलौनों और गुड़ियों की एक प्रदर्शनी आयोजित हुई. शहरों में रहने वाले और गुड़ियों का ब्याह रचाने वाली उम्र के लड़के-लड़कियों के लिए ऐसी प्रदर्शनियाँ कोई अजूबा तो नहीं रहीं, लेकिन उन के लिए एक बड़ा आकर्षण ये ज़रूर हैं. सिर्फ़ उन के लिए ही नहीं इस उम्र को पार कर आये बड़े-बूढ़ों के लिए भी ऐसी प्रदर्शनियों का आकर्षण कम नहीं है. समूचे भारत से आयी गुड़ियों और खिलौनों की इस प्रदर्शनी में पक्षी, जानवर तो थे ही; आदिवासी, ग्रामीणजन, देवी-देवताओं, नर्तकों, नर्तकियों की कई झाँकिया भी थीं. गुड़ियों की सहेलियाँ यानी कठपुतलियाँ भी इस प्रदर्शनी में थीं, बल्कि रोज़ शाम को वे अपने कार्यक्रम भी प्रस्तुत करती रही थीं. खिलौने, गुड़ियाँ, कठपुतलियाँ मिल कर जो जादू जगा सकती हैं वह इस प्रदर्शनी में भरपूर देखने को मिला. अखरने वाली बात एक ही थी कि उन्हें कुछ गड्डमड्ड ढंग से सजाया गया था और इतना अधिक पास-पास रखा गया था कि उन के सामने ठहर कर उन से 'बातचीत' का ज़्यादा सुख नहीं मिलता था. चाहे दुल्हनें हों चाहे नर्तकियाँ गुड़ियों के रूप में चित्रित होने के लिए उन्हें अपना पहनावा भले न छोड़ना पड़ता हो, लेकिन अपनी आयु ज़रूर कम कर देनी पड़ती है. इस प्रदर्शनी में भी दिल्ली की बनी हुई कुछ दुल्हिनें बचपन की ओर लौट गयी लगती थीं. उम्र बीत जाती है, चीज़ों के रूप बदल जाते हैं, लेकिन बदन के कुछ भाव हैं जो कभी नहीं मिटते. यही कारण है कि दुल्हनों वाली इन गुड़ियों में सचमुच ही दुल्हनों का-सा आकर्षण है; एक मामले में उन से भी कुछ अधिक ही. बंगाल के बने हुए नगा औरत और नगा पुरुष इतने जीवंत लगते थे कि उन के सचमुच होने का भ्रम पैदा होता था. नृत्य की मुद्रा में एक पैर उठाये, लंबे लहराते बालों को पीठ पर बिछाये, माँसल देह वाली बड़ी आकार की नगा गुड़िया मन पर गहरी छाप छोड़ती थीं.

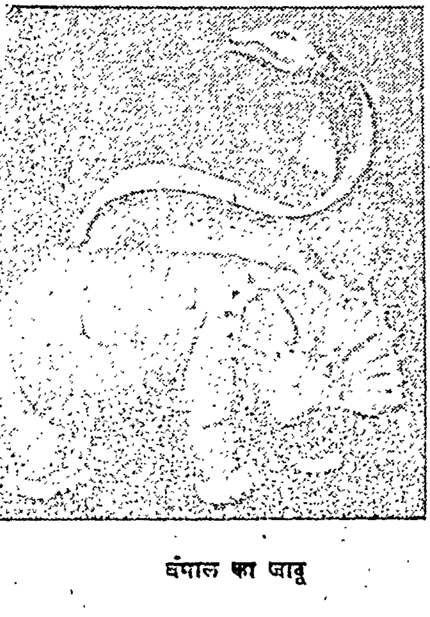

बंगाल का जादू

गुड़िया गुड़िया रहे : अर्से तक यह माना जाता रहा है, बल्कि कई देशों में अब भी यह माना जाता है कि गुड़िया की उम्र बढ़ा देने से या उस का आकार बड़ा कर देने से बच्चों और बड़ों का आकर्षण उस की ओर नहीं रह जाता. कुछ हद तक यह बात सच हो सकती है, क्यों कि गुड़िया शब्द से जो ध्वनि निकलती है वह छोटी आकृति और कम वय का ही चित्र खींचती है. लेकिन धीरे-धीरे इस ध्वनि को और इस चित्र को बदलने की कोशिश की जा रही है. यहाँ यह बात ध्यान देने की हो सकती है कि बड़े आकार के खिलौने या गुड़ियों के मूर्तियों के रूप में परिवर्तित हो जाने की आशंका है, यानी एक ऐसा अंतर बराबर बनाये रखना होगा जो मूर्त्ति और गुड़िया को अलग-अलग झलकाता रह सके. इस दृष्टि से इस

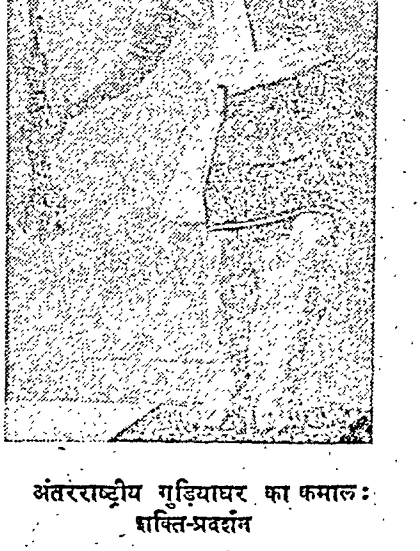

अंतरराष्ट्रीय गुड़ियाघर का कमाल : शक्ति-प्रदर्शन

प्रदर्शनी की नगा औरत वाली गुड़िया को लिया जा सकता है. अगर इस का आकार थोड़ा और बड़ा हो गया होता, यह हाव-भाव में अधिक बड़ी लगने लगती, तो यह एक नगा औरत की मूर्ति बन कर रह जाती. गुड़ियों और मूर्तियों के इस अंतर में ही वह रहस्य छिपा हुआ है जो गुड़िया शब्द कहने पर मन को थिरका देता है.

खिलौना छोटा क्यों ? आकृति की यही बात खिलौने के साथ भी लागू होती है. पंजाब की बनी हुई रेलगाड़ी अपने बड़े आकार-प्रकार के कारण ही खिलौना न रह कर मॉडल बन गयी थी. बल्कि ठीक-ठीक मॉडल भी नहीं, सचमुच की रेलगाड़ी और खिलौनों के बीच की ऐसी चीज जो न तो बड़ों को आकर्षक लगी होगी और न बच्चों को. इस दृष्टि से महाराष्ट्र की बनी हुई रेलगाड़ी उल्लेखनीय है. पक्षियों और जानवरों के प्रति बच्चों का आकर्षण कभी कम नहीं होता, ये चिड़ियाघर में हों, किसी कहानी में हों या खिलौनों में हों. इस प्रदर्शनी में भी पक्षियों और जानवरों के रूपों वाले खिलौनों की भरमार थी. छोटे आकार की नन्हीं-मुन्नी चिड़िया बड़े आकार की भी तथा छोटे आकार के हाथी घोड़े बड़े आकार के भी, इस प्रदर्शनी में प्रदर्शित थे.

अंतरराष्ट्रीय गुड़ियाघर का कमाल : सुकेशनी

गुड़ियों और खिलौने के विषय ही नहीं उन के रूप-माध्यम भी काफ़ी मायने रखते हैं. मिट्टी, लकड़ी, कपड़ा यहाँ तक कि बेंत भी इन के बनाने के काम में लाया जाता है. इस प्रदर्शनी में भी इन सभी माध्यमों का उपयोग देखने को मिला. बेंत की डोलचियों और टोकरियों के मिलते जुलते रूपाकारों वाले सिक्की (बिहार) के राधा-कृष्ण इस माध्यम में चित्रित होने के कारण अलग ही नजर आ रहे थे. हरयाणा में बने संसद् का खिलौना-रूप अधिक आकर्षक होता, अगर उसे झाँकी बनाने का प्रयत्न न किया गया होता. यह खिलौना भी इस बात का उदाहरण था कि बच्चों को अलग से झाँकियाँ चाहे जितनी अच्छी लगती हों वे खिलौनों के साथ किये गये खिलवाड़ को पसंद नहीं कर सकते. शायद इसी लिए अभी भी परंपरागत नृत्यों की भंगिमाएँ परंपरागत रूपों में चित्रित हो कर अच्छी लगती हैं. प्रदर्शनी में कथकलि के नर्त्तकों की गुड़ियाएँ ही सब से ज्यादा आकर्षक बन पड़ी थीं.

बच्चे सच्चे कला-पारखी : यहीं से यह बात उठायी जा सकती है कि आधुनिक जीवन के विषयों को भी जब चित्रित किया जाये तब उन के विशुद्ध रूप में ही. बच्चे शायद सब से बड़े कला-पारखी होते हैं. वह मिलावट को तुरंत भाँप लेते हैं. कहने की जरूरत नहीं कि कथकलि नर्त्तकों वाली गुड़ियों को चमत्कार पैदा करने के लिए अगर जरा-सा भी विरूपित कर दिया जाता तो संभव है कि बच्चे, जो कथाकलि के बारे में 'न कुछ' के बराबर जानते होंगे, उन की ओर कत्तई आकृष्ट न होते. 'इंटरनेशनल डॉल्स म्यूज़ियम' द्वारा बनायी गयी गुड़ियों की सब से बड़ी विशेषता शायद यही है कि वे आकृति-विषयों को उन के विशुद्ध रूप में ही प्रस्तुत करती हैं.

गुड्डा कहीं न रूठे : इस प्रदर्शनी से यह भी लगा कि गुड़िया-गुड्डा की बात तो साथ ही की जाती है, लेकिन गुड्डे को कुछ भुला-सा दिया गया है. यों भी गुड्डा कभी गुड़िया की तरह आकर्षक नहीं माना गया. कुछ देशों में तो गुड्डे की कोई कल्पना ही नहीं है. भारत में यह कल्पना रही है, अब भी है और आधुनिक जीवन के प्रसंग में यह जरूरी हो गया है कि गुड़िया के साथ ही गुड्डे को बनाने का भी ध्यान रखा जाये; नहीं तो आधुनिक जीवन के कई रोचक प्रसंग गुड़ियों के संसार के बाहर चले जायेंगे. प्रदर्शनी का नगा पुरुष यह बताता है कि स्त्री गुड़िया की तरह पुरुष गुड्डा भी कौतूहल और रोचकता की सृष्टि कर सकता है.

लाओ नये खिलौने गुड़िया : राजस्थान की गुड़ियों और खिलौनों में लोककला का प्रभाव काफ़ी गहरा था. गुजरात, उड़ीसा, महाराष्ट्र तमिलनाडु के गुड़िया और खिलौने भी *लोकजीवन और लोककला की छाप लिये* हुए थे. इस प्रदर्शनी से यह बात भी साफ़ हुई

मध्यप्रदेश की गुड़ियाँ : आदिवासी रंग

कि खिलौनों और गुड़ियों के लिए नये विषयों की खोज जरूरी है. खेल-कूद, साहसिक अभियानों और आधुनिक जीवन के प्रसंगों और आधुनिक उपकरणों को भी इस संसार में शामिल करना चाहिए. हाथी, घोड़े. पक्षी, दुल्हनें, सिपाही, घुड़सवार, नर्तक-नर्तकियाँ आकर्षक तो अब भी लगते हैं, आगे भी लगेंगे.

सिक्की (बिहार) की गुड़ियां राधा-कृष्ण और हाथी

परचून

पाषाण-युग के चिन्ह

उत्तरी स्पेन में पाषाण-युग के कुछ चित्र मिले है, जिन का महत्त्व अल्तामिरा और लस्कौक्स में पायी गयी चित्रकारी के समान वताया जाता है. गत वर्ष अप्रैल में आर्डाइस में कुछ छात्र अन्वेषको ने रिवाडेसेल्ला के निकट आस्टूरिया के तट पर स्थित गुफाओ में जिन पुरानी चित्रों की खोज की उन्हे भी मानव की आदि कलाकृति की झाँकियाँ माना गया है. ये चित्र अधिकतर जानवरों के हैं, जिन में वारहसिंघा, हरिण, घोड़े और जगली भैंस मुख्य हैं.

स्पेन की ललित कला अकादेमी के प्रोफेसर मैंगिन वेरेंगगुएर ने हाल ही में प्राप्त चित्रों को पाषाण-युग के शुरू के दिनों का बताया है. ये ऐसी गुफाओं मे पायी गयी हैं जिन का मूल प्रवेशद्वार सदियों से होने वाले भूमि-स्खलन के कारण वंद हो गया था और जो भूमि के १०० फुट नीचे है.

सब से पहले जिस चित्रकारी का पता चला उस में लाल रंग से स्त्री के शरीर के कुछ अंग वने हुए थे. फिर एक सुरंग से आगे बढ़ने पर छात्रों को और चित्र दिखायी पड़े, जिन में घोड़े का सिर, दो हरिण और एक बड़ा-सा सांड बने हुए थे. पर सब से महत्त्वपूर्ण कलाकृतियाँ और आगे चल कर एक छोटा-सा जलाशय पार करने के बाद मिली. यहाँ बड़े-बड़े चित्र थे, जिन में से कुछ की ऊँचाई छह फ़ुट से अधिक थी. जंगली भैंस, दो घोड़े, तीन हरिण और दो बारहसिंघा के उन चित्रों में लाल और काला रंग बहुलता से प्रयोग किया गया था. ये चित्र कही से भी खराब नही हुए हैं और इन गुफाओ तक आसानी से पहुँचने की व्यवस्था की जा रही है.

हृदय-रोग का नया इलाज

लंदन में इस समय कम से कम चालीस व्यक्ति ऐसे है जिन का यदि वेस्टमिंस्टर अस्पताल में नये ढंग से इलाज न किया होता तो शायद वे कभी के इस दुनिया से उठ गये होते. ये सभी व्यक्ति आधुनिक अर्थ-व्यवस्था वाले उन्नत देशो में फैले उस अभिशाप की चपेट में आ चुके हैं जिस से हर वर्ष हजारों व्यक्ति जान खो देते हैं—अचानक हृदय की गति रुक जाने से.

बी.बी.सी. से प्रसारित एक भाषण में रिचर्ड ऑलिवर ने कुछ तथ्य दिये है, जिन से पता चलता है कि यह भयंकर हृदय-रोग सभ्यता की गहराई तक पहुँच कर वार करता है, जिस की पूर्वसूचना भी नही मिलती, जिस से कोई पहले से थोड़ा-बहुत सँभल सके. इस की सब से कड़ी चोट तनाव में रहने वालों पर पड़ती है—जिन के पद दायित्व की माँग करते है. वैसे ब्रिटेन या उस जैसे अन्य देशों की लगभग एक-तिहाई जनता की मृत्यु हृदय की गति अचानक रुक जाने से होती है. इन में स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक होती है और अक्सर ही ये ऐसे मध्य वयस्क पुरुष होते हैं जिन की पारिवारिक ज़िम्मेदारियाँ खत्म नही हो पाती.

हृदय की गति अकस्मात रुक जाने के कई कारण है. मूलतः हृदय रक्त का ठीक ढंग से संचार नही कर पाता. रक्त में, जीवित रहने के लिए आवश्यक तत्त्व, ऑक्सीजन रहता है, जो कि फेफड़ों से शरीर के अन्य हिस्सो में जाता है—हृदय की पेशियों में भी. पर्याप्त ऑक्सीजन के बिना शरीर का क्षय होने लगता है, सर्वप्रथम जिस का असर दिमाग़ पर पड़ता है. इस लिए इस मर्ज़ के जो ६० प्रतिशत मरीज़ बच जाते है उन में से कई बहुत ज्यादा कमज़ोर हो जाते हैं.

वेस्टमिंस्टर अस्पताल में ऐसे रोगियों को एक विशेष ऑक्सीजन कोष्ठ में रखा गया जहाँ शुद्ध ऑक्सीजन का दवाव वायुमंडल में रहने वाले ऑक्सीजन से दुगना कर दिया जाता है, जिस से रोगी हृदय ठीक तरह से काम न करने पर भी अपने शरीर को ठीक हालत में रखने के लिए पर्याप्त ऑक्सीजन अंदर ले सकें. फिर पर्याप्त पोषक तत्त्व मिलने पर शरीर की मरम्मत उतनी ही आसानी से होगी जितनी कि एक मामूली चोट लगने के बाद होती है.

गत अठारह महीनों में ४० रोगियों का इस तरह इलाज किया गया, जिन में ३७ जीवित रहे. तीन मृत व्यक्तियों में जब दो का शव-परीक्षण किया गया तो पता चला कि उन के हृदय की रक्त-धमनियाँ बिलकुल ही निष्क्रिय हो चुकी थी, इस लिए मृत्यु अवश्यभावी थी. वैसे ऑक्सीजन के दबाव द्वारा अन्य कुछ रोगों का जैसे कैंसर, गैंगरीन और विषाक्त गैसों से उत्पन्न रोग—इलाज किया जाता है, पर वेस्टमिंस्टर अस्पताल में पहली बार सारे वायुमंडल को शुद्ध ऑक्सीजन से भर दिया गया है, जिस से हृदय-रोगियों को साँस लेने में सुविधा हो. आम तौर पर इन रोगियों को जाली के ज़रिये ऑक्सीजन दिया जाता है, पर वेस्टमिंस्टर अस्पताल के विशेष कमरों में इस की आवश्यकता नही पड़ती और मरीज़ साधारण रूप से साँस ले सकते हैं.

बेहोशी के तीन वर्ष

ऐंसटर्डम के एक चिकित्सक को, जिन्होंने अपने एक मरीज़ की शल्य-चिकित्सा करने के लिए उसे वेहोश करने की दवा सुंघायी थी, ११५ पौंड का दंड भरना पड़ा, क्यों कि तीन वर्ष के बाद भी उन के मरीज़ की बेहोशी खत्म नहीं हुई. ज़िला अदालत ने जाँच के बाद पता लगाया है कि चिकित्सक ने बेहोशी की दवाई की ताक़त को समझने में भूल की. मरीज़ २२ वर्षीया युवती मिआ वस्लुइस को, अप्रैल १९६६ में, एड़ी की एक मामूली शल्य-चिकित्सा के लिए वेहोश किया गया था.

विश्व का सब से बड़ा मसाला-केंद्र

मध्य युग में हाबुर्ग (जर्मनी) के सौदागरों को 'काली मिर्चों की बोरी' कहा जाता था. सदियों बाद यहाँ के व्यापारी फिर अपने पुर्खों के पद-चिन्हो पर चल रहे है. आज एल्बे नदी के किनारे बसा हाबुर्ग मसालो का प्रमुख केंद्र बन गया है. यहाँ यूरोप का सब से बड़ा मसालों का कारखाना है, जिस मे हर सप्ताह १ लाख २० हजार किलोग्राम बढ़िया मसाले पैकेटो में भरे जाते है. यहाँ दुनिया भर से कच्चे मसाले मँगा कर उन्हें उत्तम रीति से तैयार किया जाता है. कई बार मसालों के सम्मिश्रण और स्वाद भी ग्राहक ही तय करते है. इस कारखाने को बनवाने में ९० हज़ार मॉर्क (२२ हज़ार ५ सौ डॉलर) खर्च हुआ था. इस कारखाने के कुल उत्पादन का लगभग आधा माल निर्यात किया जाता है.

जर्मन होली

ठिठोली का संबंध सिर्फ़ भारतीय होली से ही नही है; जर्मनी के कुछ भागो मे भी 'मिडलहीम में जादूगरनियों का राज' नामक उत्सव मनाया जाता है, जिस मे पुरुष जादूगरनियों का वेश धारण कर के (ऊपर का चित्र देखे) घूमते है और कही-कही वे अपनी पत्नियो के आदेशानुसार स्त्रियों के सभी काम भी करते है. देखिये, (नीचे का चित्र) पुरुषो द्वारा धोये गये कपड़े गली में लटके नजर आ रहे है.

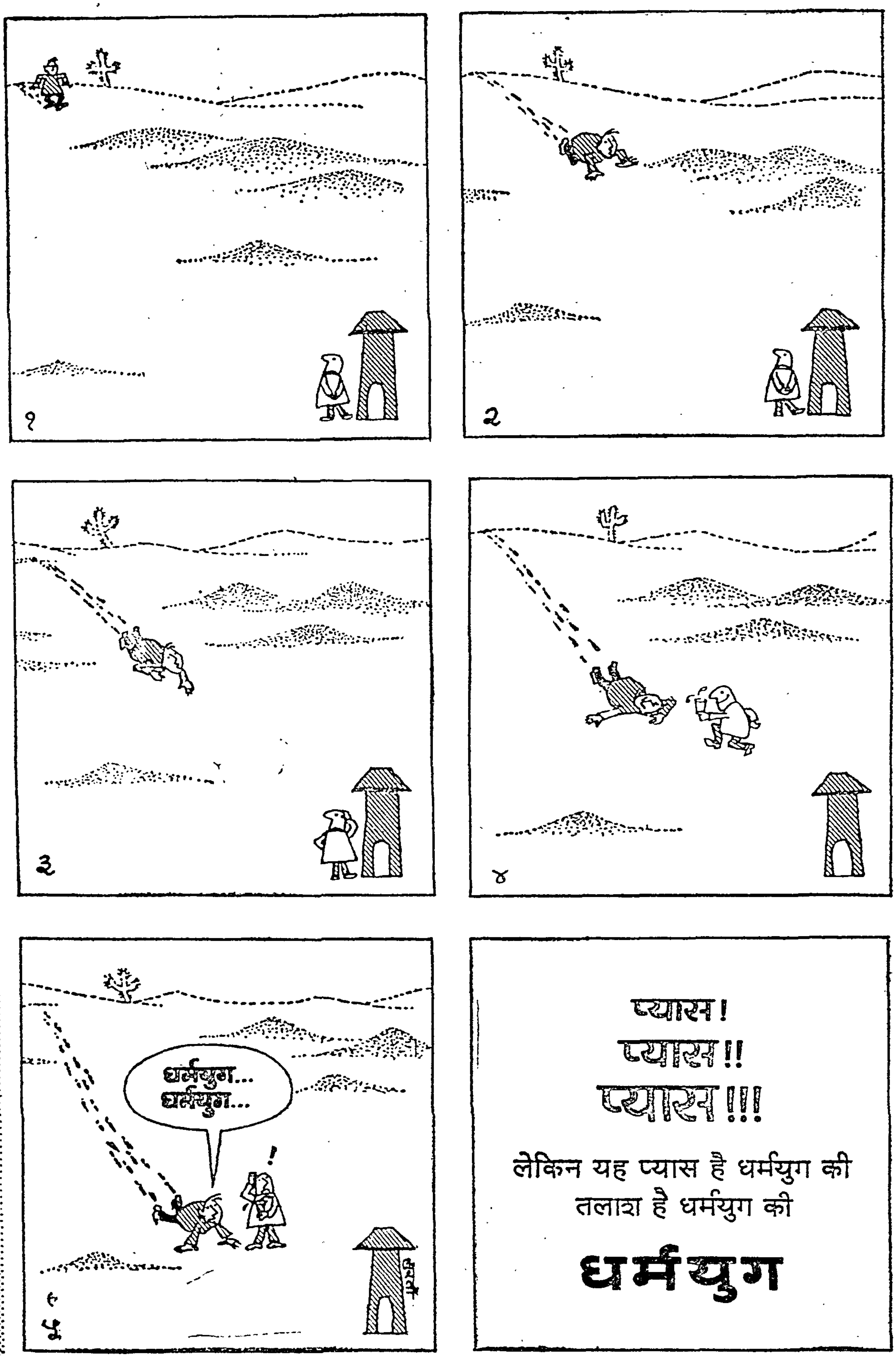
१
२
३
४
धर्मयुग... धर्मयुग...
!
५
प्यास!
प्यास!!
प्यास!!!
लेकिन यह प्यास है धर्मयुग की
तलाश है धर्मयुग की
धर्मयुग

पंजीयित संख्या डी० १५०१

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

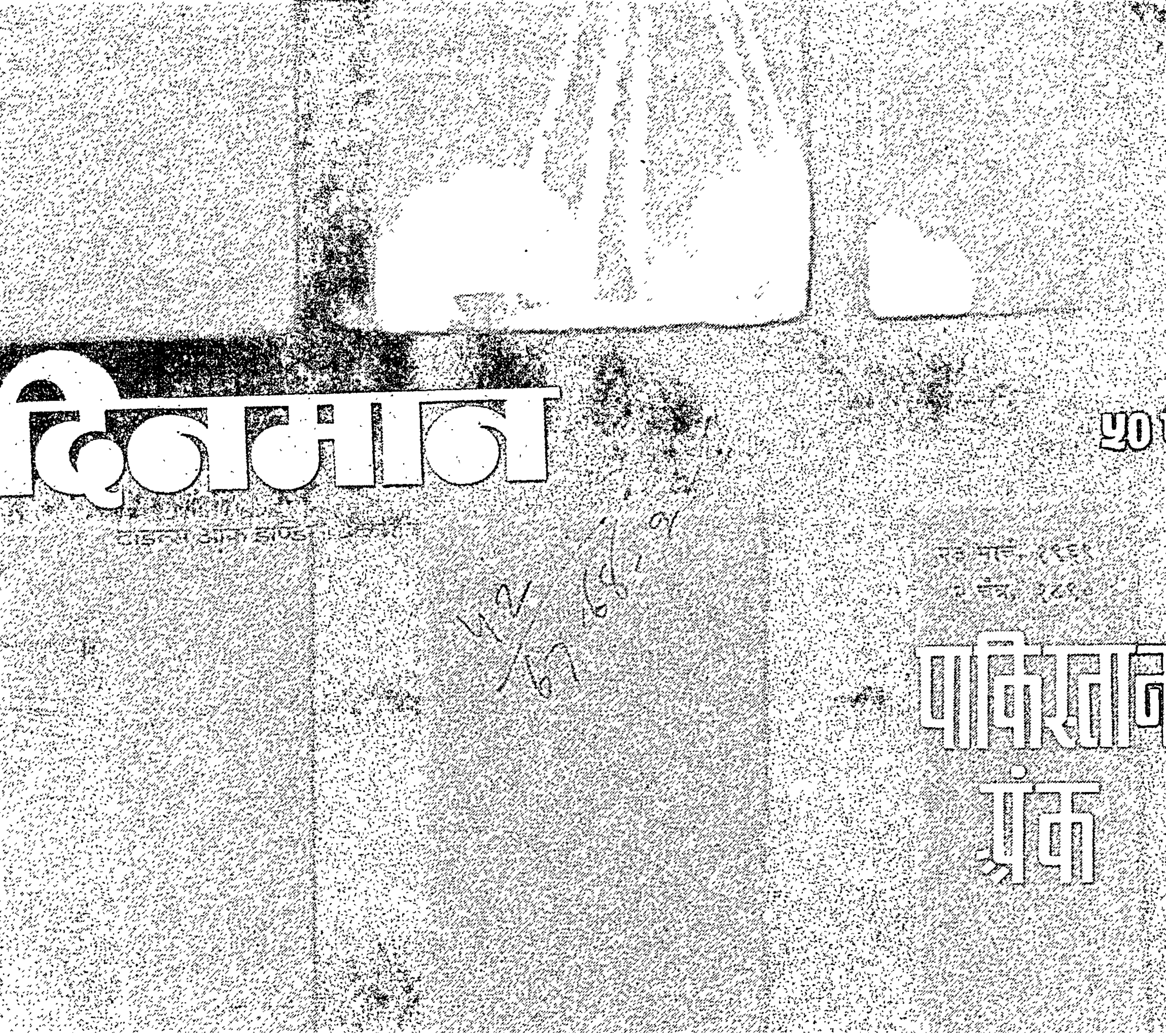
दिनमान
पाकिस्ता
अंक

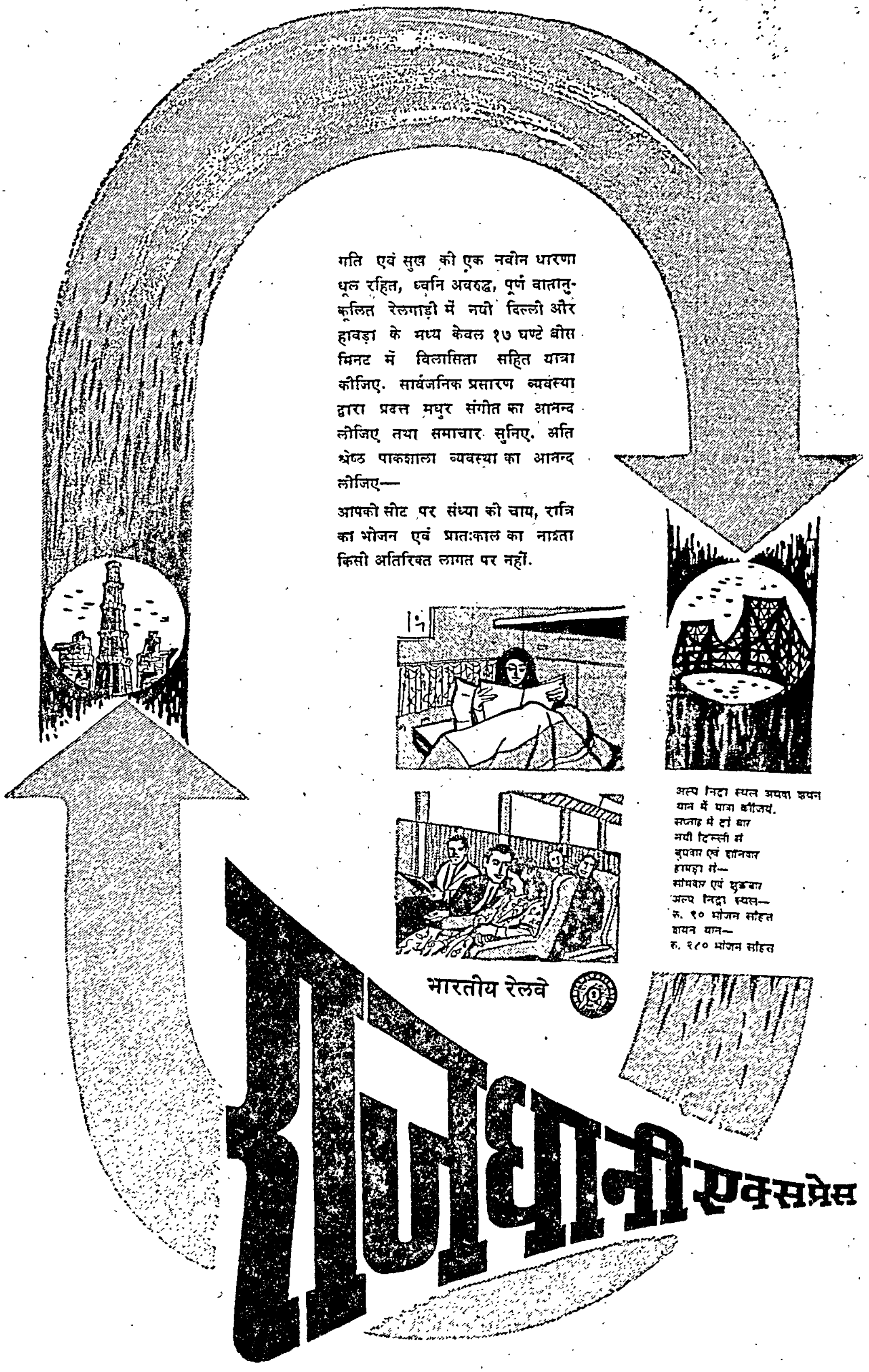
गति एवं सुख की एक नवीन धारणा
धूल रहित, ध्वनि अवरुद्ध, पूर्ण वातानुकूलित रेलगाड़ी में नयी दिल्ली और हावड़ा के मध्य केवल १७ घण्टे बीस मिनट में विलासिता सहित यात्रा कीजिए. सार्वजनिक प्रसारण व्यवस्था द्वारा प्रदत्त मधुर संगीत का आनन्द लीजिए तथा समाचार सुनिए. अति श्रेष्ठ पाकशाला व्यवस्था का आनन्द लीजिए—
आपको सीट पर संध्या की चाय, रात्रि का भोजन एवं प्रातःकाल का नाश्ता किसी अतिरिक्त लागत पर नहीं.
अल्प निद्रा स्थल अथवा शयन यान में यात्रा कीजिए.
सप्ताह में दो बार
नयी दिल्ली से
बुधवार एवं शनिवार
हावड़ा से—
सोमवार एवं शुक्रवार
अल्प निद्रा स्थल—
रु. ९० भोजन सहित
शयन यान—
रु. २८० भोजन सहित
भारतीय रेलवे
राजधानी एक्सप्रेस

अनमोल भेंट

आज वेतन का दिन है। घर आते ही मेरे पति ने एक पार्सल सुनीता के हाथों में थमा दिया।

मनपसंद मिठाइयाँ और खिलौने देखकर वह वल्लियों उछली। ठीक उसी समय मेरी नज़र प्रीमियम-नोटिस पर पड़ी। उस नोटिस ने मुझे सचेत किया। मैं सोचने लगी कि हम वीमे पर कितना कम खर्च करते हैं और ऐसी-वैसी चीज़ों पर ज़्यादा। मेरा मन अकस्मात् किसी विचित्र भय से काँप उठा आज मुन्नी की प्रसन्नता के लिए न जाने कितना पैसा खर्च हो रहा है किन्तु उसके भविष्य के लिए भी क्या हमने कोई उचित प्रबन्ध कर रखा है? हमारे इतने बीमे से क्या होगा? अगर हम कल न रहें तो...कल बच्ची का क्या होगा? फ़ालतू चीज़ों को खरीदने के बजाय यदि हम बीमे के प्रीमियम के लिए अधिक रक़म बचा दें तो... बस, इस विचार ने मेरी आँखें खोलीं और मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली, "हम रहें या न रहें, बेटी! तुम्हें एक अनमोल भेंट दी जाएगी जिससे तुम सुरक्षित रहोगी

आज भी और आनेवाले कल के लिए भी।

जीवन बीमा सुरक्षा का बेजोड़ साधन है।

ABP/LIC/2-84

मत और सम्मत

संकल्पशील संघर्ष : हम पाकिस्तान के दोनों भागों की जनता, विशेष रूप से युवकों को, लोकतंत्र की उन की बहादुर और संकल्पशील लड़ाई के लिए बधाई देते हैं. हमें विश्वास है कि उन का संघर्ष शीघ्र ही मार्शल अय्यूब ख़ाँ की परोक्ष तानाशाही तथा मुट्ठी भर शासक-वर्ग द्वारा जनसाधारण, विशेष रूप से पख़्तूनों, बलूचियों, बंगालियों, सिंधियों और शरणार्थियों, के शोषण का ख़ात्मा कर देगा. हम यह भी आशा व विश्वास करते है कि पाकिस्तान में नया जनजागरण हिंदू-मुस्लिम एकता को मज़बूत करेगा और भारत-पाकिस्तान की जनता द्वारा बुनियादी परिवर्त्तनों व सच्चे लोकतंत्र की स्थापना के लिए किये जा रहे संघर्ष में उन्हें एक-दूसरे के क़रीब लायेगा, जिस से कि वह निकट भविष्य में एक महान राष्ट्र की अपनी नियति को पा सकें।.

—रमा मित्र, किशन पटनायक, ओमप्रकाश दीपक, दिल्ली

'रंगश्री' प्रदर्शन : अख़बारों के इस समाचार से हमें गहरा अचंभा हुआ है कि १९ वें मेक्सिको ओलिंपिक में भारतीय दल के प्रमुख राजा भालिंदर सिंह ने 'रंगश्री' लिटिल बैले ग्रुप (ग्वालियर) के सांस्कृतिक प्रदर्शनों को निम्न स्तर का बताया. यह दल सरकार की ओर से ओलिंपिक मेले में भेजा गया था. राजा साहब ने कहा कि 'वे जिन लोगों से भी मिले उन सभी को ये प्रदर्शन निराशाजनक लगे.' यह ध्यान देने की बात हे कि राजा भालिंदर सिंह ने ये कार्यक्रम स्वयं नही देखे थे. राजा भालिंदर सिंह के विचार जो भी हों अंतरराष्ट्रीय लोकमेला, मेक्सिको' की प्रमुख संयोजिका **एना मारिदा** के विचार हैं कि 'इस दल के मेले में सम्मिलित होने से मेले का गौरव बढ़ा.' अमेरिकी लोकजीवन मेला (वॉशिंग्टन) के कला-निर्देशक **राल्फ़ सी. रिज़लर** के विचार थे कि 'मैंने किसी भी देश का कोई ऐसा दूसरा दल नही देखा जिस में इतने अच्छे सृजनशील व्यक्ति हों.'

पता नही राजा भालिंदर सिंह जैसे व्यक्ति, जिन का क्षेत्र खेल-कूद है, कला और संस्कृति पर इतने आधिकारिक ढंग से अपने विचार क्यों व्यक्त करते है. यहाँ पर हम मेक्सिको स्थित भारतीय राजदूत के विचार भी दल के संबंध में देना चाहते है. उन्होंने कहा था 'भारतीय हॉकी टीम की हार की वजह से भारत की प्रतिष्ठा को जो क्षति पहुँची है उसे 'रंगश्री' के प्रदर्शनों ने पूरा कर दिया है.'

—गुल वर्धन, प्रधान सचिव 'रंगश्री,' ग्वालियर

आस्था : साथी जैनेश्वर की विजय का समाचार तो आकाशवाणी और अन्य दैनिक पत्रों में ही पढ़ लिया था, किंतु जिस ढंग से **दिनमान** ने इस समाचार को प्रस्तुत किया है वह साबित करता है कि **दिनमान** देश में उभरती युवा शक्ति के प्रति जागरूक है और उस की संभावनाओं में आस्था रखता है.

—ओमप्रकाश शर्मा, भरतपुर, राजस्थान

अंतरिक्ष में आकुल-आतुर : २ मार्च, १९६९ को भारतीय नागरिक गिरिजाकुमार माथुर की अंतरिक्ष-यात्रा का समाचार पहली बार **दिनमान** द्वारा ज्ञात हुआ. निस्संदेह यह व्यक्ति स्वयं के प्रयत्न से दुनिया को कुछ नयी देन देना चाहता है. भारतीय अंतरिक्ष-अनुसंधान के अध्यक्ष का इस बात की जानकारी से अनभिज्ञ रहना उन की उदासीनता का परिचायक है. भारत सरकार का इस नागरिक की कोई जिम्मेदारी नहीं लेना भी खेद का विषय है. गिरिजाकुमार माथुर को केवल एक कवि ठहरा कर उस का उपहास करना ही होगा. डॉ. बच्चन ने बधाई देते हुए श्री माथुर के प्रति जो शब्द कहे उस से ऐसा प्रतीत होता है कि—'खग जाने खग ही की भाषा.'

—रवींद्रनारायण श्रीवास्तव, उदयपुर

छात्रावास : ९ जनवरी के अंक में आपने कुचली हुई जातियों के छात्रों के छात्रावासों के बारे में जो सामग्री प्रकाशित की है वह पढ़ कर अत्यधिक हर्ष हुआ. राजनीति के कुटिल खेल में व्यस्त नेता और अपने आसन को बराबर अचल रखने में मस्त तथाकथित नेताओं (जनता-विमुख) के बारे में परिच्छेदों के बाद परिच्छेद लिखने में ही अपना परम कर्त्तव्य समझने वाली समाचारपत्रिकाओं से परे आपने लोकोन्मुख विचार प्रकट किये हैं. यही चित्र सभी राज्यों में चलाये जाने वाले पिछड़ी हुई जातियों के छात्रावासों के बारे में प्रमाण सिद्ध हो सकता है.

—भि. शिंदे, जामनगर (गुजरात)

बजट प्रतिक्रिया : भारतीय कृषि-क्रांति पर वित्तमंत्री द्वारा कठोर प्रहार हुआ है. भय है कि रासायनिक खाद और कृषि-उपकरणों पर कर-वृद्धि की घोषणा से इस क्रांति की कही भ्रूण-हत्या न हो जाये.

—मनोहरप्रसाद वर्मा, हज़ारीबाग (बिहार)

कृषि के सामान एवं रासायनिक उर्वरक पर अतिरिक्त करारोपण मोरारजी देसाई की अदूरदर्शिता का परिणाम है. अगर मध्यावधि निर्वाचन के पूर्व ऐसा बजट संसद् में आया होता तो कांग्रेस पार्टी का अस्तित्व भी इन प्रांतों में संदेहास्पद था.

—अर्जुन पाठक विकल, सारण (बिहार)

सबक : स्पेन के राजदूत श्री जी. नडल द्वारा हिंदी में प्रमाणपत्र पेश करने का समाचार पढ़ कर अत्यंत हर्ष हुआ. एक विदेशी द्वारा हमारी राष्ट्रभाषा के प्रति प्रदर्शित किये गये इस गौरव तथा सम्मान को देख कर उन व्यक्तियों को शर्म आनी चाहिए जो अपने स्वार्थों की ख़ातिर राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को अपनाये जाने का विरोध करते हैं. विशेषतया मैं भारतीय विदेश-सेवा के अधिकारियों का ध्यान इस ओर दिलाना चाहूँगा, जिन के गले से हिंदी नीचे नही उतरती.

—सुभाष बंसल, अंबाला छावनी

सरकारी भाषा-नीति : केंद्र के सरकारी कार्यालयों में हिंदी के प्रति तथा हिंदी में काम करने वालों के प्रति अधिकारियों के दृष्टिकोण के विषय में मेरा निजी अनुभव है. गत मास मैंने दो पत्र हिंदी में केंद्र के सरकारी कार्यालय को लिखे, जिन के उत्तर मुझे अंग्रेज़ी में मिले, जब कि गृहमंत्रालय का स्पष्ट आदेश है कि हिंदी में लिखे गये पत्रों का उत्तर हिंदी में ही दिया जाना चाहिए. इस विषय पर मैंने गृहमंत्रालय का भी ध्यान आकर्षित किया, किंतु खेद है कि वहाँ से पत्र की पावती भी नही मिली. मैंने स्वयं केंद्र के एक सरकारी कार्यालय (रक्षालेखा-विभाग) में कुछ दिन कार्य किया है. वहाँ मेरे समय में तो हिंदी में हस्ताक्षर करने पर भी प्रतिबंध था और अधिकारियों का उन कर्मचारियों के प्रति जो कि हिंदी में कार्य करते थे बहुत ही खेदजनक व्यवहार था. इस विषय में मैं जब उस विभाग के उच्च अधिकारी से मिला तो उन के विचार में अनुशासन बनाए रखने के लिए हिंदी में कार्य करने वालों को यदि तंग किया जाता है तो अनुचित नही है. यदि गृहमंत्रालय वास्तव में चाहता है कि कर्मचारी हिंदी में कार्य करें तो हिंदी में कार्य करने वालों को संरक्षण प्रदान करना होगा.

—सिंधु राजसिंह, मेरठ

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

आप का मतलब है कि आप अपना त्यागपत्र वापिस लेने को तैयार नहीं ? फिर त्यागपत्र देने से फ़ायदा ही क्या था ?

तुरन्त कार्य

हमारी हर शाखा में

मरकैन्टाइल बैंक लि०

इंगलैंड में समिति बद्ध

(हाँगकाँग बैंक ग्रुप का सदस्य)

(१०० वर्ष से अधिक अनुभव)

आप अपना बचत खाता केवल ५ रु. की छोटी राशि से खोल सकते हैं तथा ३½% वार्षिक ब्याज प्राप्त कर सकते हैं।

नई दिल्ली कार्यालय:

ई ब्लाक, रेडियल रोड–६ कनाट प्लेस

दिल्ली कार्यालय:

फतेहपुरी, चाँदनी चौक

IPB-D.MB.2-68 HIN

पत्रकार संसद

पुराना यूरोप, नया अमेरिका

अमेरिकी राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन की हाल ही की यूरोप यात्रा के परिणामों के बारे में एशियाई तथा यूरोपीय समाचारपत्रों के विचार चाहे जो भी हों पर अमेरिकी समाचारपत्रों ने इसे पूर्ण रूप से सफल माना है. प्रसिद्ध अमेरिकी पत्र **क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर** ने अपने संपादकीय में लिखा है:

राष्ट्रपति निक्सन अपनी सर्वाधिक सफल कूटनीतिक यात्रा समाप्त कर स्वदेश वापिस पहुँच गये. ऐसा कम ही हुआ है जब कोई अमेरिकी राष्ट्रपति विदेश-यात्रा में इतना सफल रहा हो. श्री निक्सन की पश्चिमी यूरोप की यात्रा की उपलब्धियों पर अभी से कुछ नहीं कहा जा सकता, लेकिन एक महान् कार्य तो इस यात्रा से हुआ ही है और वह यह कि यूरोप के सामने एक नया अमेरिका लाया गया. इस नये अमेरिका की एक विशेषता यह है कि वह अपने निकटतम विदेशी मित्रों की सलाह और बात सुनने के लिए हर वक्त तैयार है.

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि फ्रांस पहुँचने पर राष्ट्रपति द गॉल द्वारा स्वागत के अवसर पर राष्ट्रपति निक्सन ने जो भी कहा वह अपने में बहुत अभूतपूर्व था. विश्व के सर्वाधिक शक्तिशाली देश की ओर से बोलते हुए भी उन्होंने जनरल द गॉल के प्रति अपना सम्मान तो व्यक्त किया ही, साथ ही राष्ट्रपति द गॉल के अनुभव और उन की राजनैतिक सूझ-बूझ से भी कुछ सीखने की अपनी उत्सुकता दिखायी. जनरल द गॉल के साथ बातचीत की इस से अच्छी शुरुआत और क्या हो सकती थी?

लंदन, बर्लिन, पेरिस और रोम में श्री निक्सन ने जो विचार व्यक्त किये वे सर्वथा उपयुक्त तो थे ही, इस के अलावा यह भी स्पष्ट हुआ कि अमेरिकी कूटनीति का अब नया दौर शुरू हुआ है और उस की विशेषता होगी अमेरिका का आत्मविश्वास तथा उस में अपना पक्ष प्रस्तुत करने का साहस.

इस परिवर्तन के अनेक सूत्र हैं. सब से महत्त्वपूर्ण बात तो है वीएतनाम युद्ध के बारे में समूचे अमेरिकी राष्ट्र का मोहभंग. जो राष्ट्र लगभग पिछले पच्चीस वर्ष से इस प्रश्न को ले कर विश्वव्यापी बोझ ढो रहा हो उस का इस तरह जागरूक हो उठना स्वाभाविक ही है. अमेरिका में धीरे-धीरे अब यह महसूस किया जाने लगा है कि देश की कुछ समस्याओं के तत्काल समाधान की जरूरत है. यह बात भी अब मानी जाने लगी है कि अतीत में अमेरिकी रवैये ने अमेरिका और उन लोगों के बीच दूरी बढ़ाई है जिन्हें विचार और समान हित की दृष्टि से एक दूसरे के और निकट होना चाहिए था.

अमेरिका के लिए यह आसान नहीं है कि वह विदेश-नीति और घरेलू दृष्टिकोण में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन लाये. राष्ट्रीय नीति में भी कोई बहुत बड़ा परिवर्तन तब तक नहीं लाया जा सकता जब तक कि कोई गंभीर मतभेद ही न उठ खड़े हों. फिर भी इस में संदेह नहीं है कि कई प्रश्नों के बारे में अमेरिकी विदेश-नीति में संशोधन की आवश्यकता है और इस में भी संदेह नहीं कि राष्ट्रपति निक्सन इस जरूरत को समझते भी हैं. अपनी यूरोपीय यात्रा के दौरान उन के वक्तव्यों और भाषणों से इस बात की झलक भी मिली थी. पर परिवर्तन की जरूरत महसूस करना एक बात है और बहुत समय से चली आ रही नीतियों में परिवर्तन लाना दूसरी बात. मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि अमेरिका अब स्वतंत्र संसार की रक्षा में पहले जितनी बड़ी भूमिका कैसे अदा कर सकता है? पर कुछ कम और कुछ अप्रत्यक्ष तो उसे ऐसा करना ही होगा. श्री निक्सन ने इस से इनकार भी नहीं किया है.

चीन की दृष्टि से

राष्ट्रपति निक्सन की पश्चिमी यूरोप की यात्रा के बारे में चीनी पत्रों में जो कुछ प्रकाशित हुआ उसे अमेरिका के प्रति चीन के अब तक के रवैयों को देखते हुए नयी बात माना जा रहा है. श्री निक्सन के राष्ट्रपति चुने जाने पर चीनी पत्रों की वही पुरानी टिप्पणी थी कि राष्ट्रपति बदल जाने से अमेरिकी साम्राज्यवादी नीति तो नहीं बदल जायेगी.

नवचीन समाचार एजेंसी ने अमेरिकी राष्ट्रपति की यात्रा का विवरण इन शब्दों में दिया. 'एक चूहा सड़कों पर दौड़ा फिर रहा है, जिसे पश्चिमी यूरोप के देशों की मार खानी पड़ रही है'. इसी समाचार एजेंसी ने निक्सन विरोधी प्रदर्शनों का समाचार देते हुए कहा 'श्री निक्सन बहुत घबराये हुए हैं.'

एक टिप्पणी में कहा गया है कि निक्सन की पश्चिमी यूरोप की यात्रा अमेरिकी सोवियत शिखर सम्मेलन की भूमिका है. जॉनसन ने सोवियत संघ के साथ मिल कर चीनी विचारधारा और चीन के विरुद्ध जो अभियान शुरू किया था अब श्री निक्सन उसे और तेज करने की ही तैयारी कर रहे हैं. प्रेक्षकों द्वारा इस बात को बहुत महत्त्व दिया जा रहा है कि चीनी पत्रों में राष्ट्रपति निक्सन की यात्रा के समाचारों को इतना प्रमुख स्थान दिया है.

पाकिस्तान—परिवर्तन की प्रक्रिया

नजरबंदी से रिहा होने के बाद जुल्फ़िकार अली भुट्टो के सोचने में सिर्फ़ इतना फ़र्क आया कि पहले वह अपनी जन्मभूमि लरकाना के नेता थे, अब सिंध और पंजाब में भी उन की तूती बोलने लगी है. जनता खुशामदपरस्त नेता के पीछे आँख मूंद कर के चल रही है और अपना अहित कर रही है. भुट्टो की दुश्मनी अय्यूब से है, पर उस का फल पाकिस्तान को भोगना होगा. भुट्टो के पास ऐसी कोई योजना नहीं जिस से पाकिस्तान की माली हालत सुधर सके. इस प्रकार की टिप्पणी **वाशिंगटन टाइम्स**, न्यूयॉर्क के एंथनी लीवियरो ने की. भुट्टो को रिहा कर के राष्ट्रपति अय्यूब ने ठीक किया या ग़लत, इस बारे में अलग-अलग लोगों के अलग-अलग विचार हैं. न्यूयॉर्क के ही एक पत्र **सैटर्डे रिव्यू** ने अपने संपादकीय 'ए बैटल फ़ॉर पावर' (सत्ता के लिए संघर्ष) में लिखा है :

भुट्टो की रिहाई कर के जनरल अय्यूब ने राजनीतिज्ञ न होने का सबूत पेश कर दिया है. विरोधी पार्टियाँ यह महसूस करने लगी हैं कि उन की ताक़त जायज़ अथवा नाजायज़ तरीक़ों से हुकूमत में रद्दोबदल करा सकती है. बिना किसी शर्त श्री अय्यूब का विरोधियों के आगे झुकते जाना डेमोक्रेसी उसूल के खिलाफ़ है और भविष्य में डेमोक्रेसी शब्द पाकिस्तान के 'लुगत' से हमेशा के लिए हट जायेगा. आपत्कालीन स्थिति की समाप्ति से देश में अराजकता कम नहीं हो सकती.

भुट्टो की रिहाई पर अय्यूब की आलोचना करते हुए **चट्टनगूगा टाइम्स** के एक संवाददाता ने कहा :

किसी भी राष्ट्र की सरकार एक बाग़ी के सामने इतनी जल्दी घुटने टेक देगी: राजनीति तवारीख में पहली घटना है. ताशकंद समझौते का तो एक बहाना है; वास्तव में अय्यूब को हटा कर भुट्टो एशिया के अमन में खलल डालना चाहते हैं. चीन क्या चाहता है, भुट्टो अभी तक नहीं समझ सके. दुनिया में तनाव क़ायम रहे और हर राष्ट्र अपनी फ़ौजी ताक़त बढ़ाने में ज्यादा से ज्यादा तवज्जह दे और पाकिस्तान को खतरा है ऐसा कह कर अन्य राष्ट्रों से वित्तीय इमदाद की परंपरा चलती रहे. भुट्टो के पास नेक सलाह देने का मादा ही नहीं है. वह इनसान से अधिक ऊँचे हैं, ऐसा उन का ख्याल है. वह अपने जज़बात को क़ाबू में नहीं रख सकते. इस का सबूत उन्होंने अपने हुकूमत के समय में यू. एन. ओ. में प्रकट कर दिया था. पाकिस्तान अय्यूब के बाद नहीं सँभल सकता. एक मुरगी कई खाने वालों की तृष्णा कैसे शांत कर सकती है ?

अय्यूब के बाद पाकिस्तान की स्थिति में सुधार होगा, ऐसी कल्पना करना ही व्यर्थ है. यानी फिर लूटखसोट का दौर शुरू होगा; फिर कुछ परिवर्तन होगा और इस प्रकार सरकारें बनती रहेंगी और टूटती रहेंगी. **न्यूयॉर्क डेली** का विचार है : अपने विरोधियों के सम्मुख अय्यूब की साख एक तरह से खत्म हो चुकी है. गोल मेज़ कांफ्रेंस से कोई हल निकलने की आशा नहीं है. उन के साथियों ने हमेशा उन को ग़लतफ़हमी में रखा और हुकूमत को ग़लत सलाह दी, जिस के कारण तमाम पाकिस्तान में गड़बड़ी फैली. भुट्टो और उन के साथी पाकिस्तान की जनता को बेहतरी का रास्ता नहीं दिखा सकते. हर एक दूसरे की ओट में अपना उल्लू सीधा करना चाहता है. पाकिस्तान में जो भी सरकार बनेगी वह लूटखसोट के अलावा कुछ नहीं करेगी. बिना उद्देश्य और लक्ष्य के जो भी सरकारें क़ायम होंगी उन में एक हुकूमत होगी—पाकिस्तान की नयी हुकूमत, जो मौसम की तरह बदलती रहेगी.

आश्चर्य की बात तो यह है कि पाकिस्तान के अखबारों में भी अय्यूब विरोधी बातें खुल कर लिखी जा रही हैं. **इत्तिफ़ाक़** में दी गयी एक सुर्खी क़ाबिले-ग़ौर है :

अय्यूब खाँ का दामन निहायत गंदगी से सना हुआ है. एक फ़ौजी होने की वजह से उन में मजहबी बातों की कोई वक़त नहीं. मुल्क की बहबूदगी के बारे में उन के दिमाग़ शरीफ़ में टोटा है. जनता की आवाज़ को उन्होंने गोली से दबाने की कोशिश की है. भुट्टो को ग़ैर-क़ानून बंद कर के अपनी जहालत का जो सबूत पाकिस्तान रियाया के सामने पेश किया है उसे देख कर कौन इनसान चुप रह सकता है. मौलवियों को मस्जिदों के अंदर बंद कर उन पर जो असामाजिक जुल्म उन्होंने पुलिस और सैनिकों के ज़रिए ढाये हैं उन्हें याद कर के आज भी रोएँ खड़े होते हैं. श्रीमती भुट्टो के नेतृत्व में जुलूस पर जो वहशियाना जुल्म उन्होंने किया है इस्लामी तवारीख में खून की स्याही से दर्ज किया जायेगा. नंगे फ़क़ीरों और मुल्लाओं पर जो कोड़े की रसीद दिखायी पड़ रही है उस को समय ही मिटा सकेगा. क़ुरान-शरीफ़ की पाक किताब को जला कर फ़ौज और पुलिस ने सिगरेट लगायी; मुल्लाओं की लुंगियों को छीन कर उन में आग लगा दी गयी. वज़ू करने के बर्त्तनों को ठोकर मार कर तोड़-फोड़ दिया गया. कुछेक मुल्लाओं के मुँह में गंदगी भर दी गयी. ऐसे नामाकूल इनसान का चेहरा देखना गुनाह है. तालेबिल्मों पर कराची और ढाका, रावलपिंडी और लाहौर में जो गोलियों की बारिश की गयी है उन में ज्यादा से ज्यादा मासूम तालेबिल्म थे; वे थे जिन के वालदयन सियासी माने गये हैं, या वे हैं जिन के वालिद को बाग़ी क़रार दिया गया है और उन पर यह जुर्म लगाया गया है कि उन्होंने पैसों से मदद दी है. सेना के कुछेक अफ़सरानों पर अगरतल्ला में पोशीदा तौर पर हुकूमत पलटने के जुर्म लगाये गये और उन पर जेलों में जुल्म किया गया. जैहरुलहक के ऊपर जान-बूझ कर गोली चलायी गयी और उसे मौत के घाट उतारा गया. औरतों के बुर्के ज़बरन उतरवाये गये और उन के पीछे गुंडों और पुलिस के गिरोह को छोड़ दिया गया. अब तक पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान में जितनी मौतें हुई हैं उन की तादाद इंतहा है; कितनी लाशें क्लिफ़टन और मनोरा ले जा कर समुंदर के हवाले की गयी है, आज तक नहीं पता चल सका.

स्यालकोट के **जेहाद** साप्ताहिक ने पाकिस्तानी पुलिस के मनमाने अत्याचारों की चर्चा करते हुए कहा :

९ तारीख की सुबह क़यामत की सुबह थी. लोहे की टोपी पहने वर्दी-पेटी से लैस भरकम बूटों की तड़तड़ करती हुई आवाज़ ने तमाम जमात को होशियार कर दिया. वे संभल न पाये थे कि उन पर डंडों से बारिश की गयी, उन के मकान में फ़ौजी अड्डे क़ायम कर दिये गये और बेशुमार कराहते हुए इनसान सड़कों पर लावारिस की तरह दम तोड़ रहे थे. दूकानें लूटी जा रही थीं; आग के शोले आसमान की ओर जा रहे थे. बच्चों की चीखोपुकार से कान के पर्दे फट रहे थे. ट्रंक बाज़ार की हालत बुरी थी. बड़े बाज़ार की सड़कें हैवानी के शिकार हुए अल्लाह के बंदों से भरी हुई थीं. रामतुलाई बाज़ार के दूकानों की तमाम चीजें बाहर निकाल कर जलायी जा रही थीं. गाँवों के किसानों के घरों पर पुलिस और फ़ौज का जमघट था. मवेशियों को खोल दिया गया था और उन्हें फ़ौज के लोग अपने-अपने घरों की ओर हाँक ले गये थे.

बहावलपुर के **मजहबी आईना** में भी पुलिस के जुल्मों की दर्दनाक दास्तान इस प्रकार सुनायी गयी है :

मुलतान के 'नवे शहर' से जो सड़क पुराने शहर को जाती है वहाँ के इर्द-गिर्द पीरों की रिहायश है और उन्होंने अपने-अपने हथियार कॉलेज के लड़कों को सौंप दिये हैं. कैंटूनमेंट से फ़ौज के ४ दस्ते (जिस में लगभग ४०० फ़ौजी जवान थे) लॉरियों पर संगीन और बंदूकों से लैस हो कर नयी कचहरी की ओर चल पड़े. रास्ते में जो भी सामने आया उन की गोली का शिकार हुआ. बंद

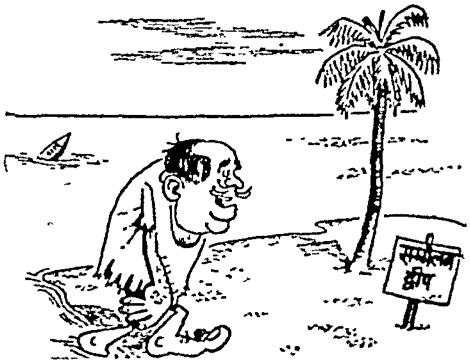

दूकानों में आग लगाती हुई फ़ौजी गाड़ियाँ ट्रेज़री और नयी कचहरी की ओर बढ़ रही थीं. कॉलेज की इमारत पर पुलिस का पहरा लगा दिया गया था और भीतर फ़ौज के जवान लड़कों एवं प्रोफ़ेसरों पर लाठियों की बौछार कर रही थी. लगातार कचहरी के सामने पुलिस और फ़ौजी १५ मिनट तक गोलियों की बौछार करते रहे. पीरों और मुल्लाओं के मकानों को लूट लिया गया. उधर कचहरी की चहारदीवारी पर चढ़े हुए पुलिस के नवजवान गोलियाँ बरसाते रहे.

अपनी ख़बर दूसरों की मार्फ़त

"भारतीय पत्रकार आसानी से पाकिस्तानी समाज में घुल-मिल जाते हैं, इस लिए वे अन्य देशों के संवाददाताओं की अपेक्षा अधिक जल्दी देश की सही स्थिति को समझ जाते हैं. उन की रिपोर्टों में पाकिस्तान की खामियाँ साफ़ झलकती हैं और फिर सभी देशों के अखबार भारतीय पत्रों से रिपोर्ट ले कर छापते हैं. इस से हमारे सूचनामंत्रालय का काम कठिन हो जाता है." यह है पाकिस्तान के उच्च अधिकारियों का विचार हमारे संवाददाताओं के बारे में और इस से स्पष्ट हो जाता है कि क्यों इस्लामाबाद ने १९६५ के युद्ध के बाद से किसी भारतीय संवाददाता को रहने नहीं दिया.

विदेशमंत्रालय ने ताशकंद घोषणा के तुरंत बाद ही पाकिस्तान के समक्ष प्रस्ताव रखा था कि दोनों देश एक-दूसरे के संवाददाताओं को रहने की सुविधाएँ दें. इस के कई महीने बाद, सन् १९६६ के आरंभ में, पाकिस्तान इस बात के लिए राज़ी हुआ कि वह अंग्रेज़ी दैनिक 'स्टेट्समैन' के संवाददाता को रावलपिंडी में इस शर्त पर रहने देने के लिए तैयार है कि 'पाकिस्तान टाइम्स' के संवाददाता को नयी दिल्ली में रहने दिया जाये. भारत तुरंत राज़ी हो गया. स्टेट्समैन के सुरेंद्र निहालसिंह को छह महीने का विसा दिया गया और वह रावलपिंडी गये, लेकिन पाकिस्तान टाइम्स का कोई संवाददाता रावलपिंडी में हमारे उच्चायुक्त के पास विसा के लिए नहीं गया और सुरेंद्र निहालसिंह को छह महीने बाद ही भारत लौटना पड़ा.

विदेशमंत्रालय ने कई बार राजनयिक स्तर पर फिर अपना आग्रह दोहराया और हर बार यही उत्तर मिला कि कोई पाकिस्तानी समाचारपत्र अपना संवाददाता भारत भेजने को राज़ी नहीं, इस लिए रावलपिंडी भारतीय संवाददाता को विसा देने की स्थिति में नहीं है. रावलपिंडी की इस उक्ति को आसानी से स्वीकार नहीं किया जा सकता कि कोई पाकिस्तानी अखबार भारत में अपना संवाददाता नहीं भेजना चाहता, विशेष कर इस लिए कि पाकिस्तान में समाचारपत्रों पर सरकार का नियंत्रण इस हद तक है कि समाचारपत्रों, विशेष कर दैनिकों, का प्रबंध सरकारी अधिकारियों के हाथों में है.

पाकिस्तान में हमारे देश का कोई संवाददाता न होने का यह परिणाम है कि उस देश में हाल में हो रही क्रांति के सभी समाचारों के लिए हमें अमेरिकी, ब्रिटिश और फ़्रांसीसी समाचार एजेंसियों की रिपोर्टों को ही प्रकाशित करना होता है. लेकिन क्यों कि पश्चिमी देशों की समाचार एजेंसियों को पाकिस्तान की आंतरिक स्थिति में उतनी दिलचस्पी नहीं जितनी कि हमें है. इसी लिए उन एजेंसियों के समाचारों से पाकिस्तान की सही स्थिति का पूरा ज्ञान हमें नहीं हो पाता. फिर पाकिस्तानी शासक अपने देश की जनता को भी भारत की सही स्थिति से अनभिज्ञ रख कर केवल रेडियो पाकिस्तान के भारत विरोधी प्रचार पर ही आश्रित रख रहे हैं. दोनों देशों में संवाददाताओं की अदलाबदली न होना ताशकंद घोषणा के अनुरूप नहीं है. घोषणा की चौथी धारा में कहा गया था—दोनों देश संचार के साधनों को बढ़ावा दे कर मैत्रीपूर्ण संबंध क़ायम करने के लिए क़दम उठायेंगे.

अदलाबदली : जब से पाकिस्तान बना है तब से कभी पाँच से अधिक भारतीय संवाददाता एक साथ पाकिस्तान में नहीं रहे. १९५० के समझौते के अंतर्गत पाकिस्तान सरकार पी. आई. बी. के तीन संवाददाताओं को ढाका, कराची और लाहौर में रखने को राज़ी हुई थी. भारत ने भी ए. पी. पी. के तीन संवाददाताओं को दिल्ली, बंबई और कलकत्ता में आने की इजाज़त दे दी थी. पी. टी. आई. के तीन संवाददाता १९६५ के युद्ध तक पाकिस्तान में रहे, लेकिन ए. पी. पी. के दो ही संवाददाता दिल्ली और कलकत्ता में रहे. बंबई में कभी ए. पी. पी. का संवाददाता नहीं रहा. समय-समय पर कराची और रावलपिंडी में टाइम्स ऑफ़ इंडिया, स्टेट्समैन, इंडियन एक्सप्रेस और हिंदुस्तान टाइम्स के एक-एक संवाददाता रहे और बदले में पाकिस्तान टाइम्स, डॉन, जंग और मॉर्निंग न्यूज़ के संवाददाता यहाँ रहे.

१९६५ के युद्ध के समय जब पाकिस्तान ने वहाँ रहने वाले हमारे पाँच संवाददाताओं को नज़रबंद किया तो भारत ने भी दिल्ली स्थित चार पाकिस्तानी संवाददाताओं को नज़रबंद किया. दो महीने नज़रबंद रखने के बाद दोनों देशों ने संवाददाताओं की अदलाबदली कर ली. अब कराची का डॉन दैनिक कोलंबो से भारतीय समाचार पाकिस्तान भेजता है. कोलंबो और नयी दिल्ली के बीच ज़मीन के ऊपर लगे तारों की व्यवस्था है, इस लिए पी. टी. आई. के सभी समाचार कोलंबो जाते हैं, जो पाकिस्तान के सभी केंद्रों को प्रसारित किये जाते हैं. इस लिए डॉन के संवाददाता को वही सब समाचार मिल जाते हैं जो उसे दिल्ली में बैठ कर मिलते.

पिछले सप्ताह

(६ मार्च से १२ मार्च, १९६९ तक)

देश

६ **मार्च :** पश्चिम बंगाल के राज्यपाल धर्मवीर द्वारा आपत्तिजनक अंशों को छोड़ कर विधानमंडल में अभिभाषण. विजय बनर्जी प. बंगाल विधानसभा के सर्वसम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित. हरयाणा के मंत्रिमंडल में रणसिंह सम्मिलित.

७ **मार्च :** प. बंगाल के मुख्यमंत्री अजय मुखर्जी और उपमुख्यमंत्री ज्योति बसु की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से केंद्र-राज्य संबंधों के संदर्भ में बातचीत. बिहार में १२ मंत्रियों द्वारा शपथ-ग्रहण.

८ **मार्च :** बिहार मंत्रिमंडल में राजा कामाख्यानारायण सिंह को शामिल करने के विरोध में सी. सुब्रह्मण्यम् द्वारा कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से त्यागपत्र.

९ **मार्च :** पांडिचेरी में मध्यावधि चुनाव शांतिपूर्ण संपन्न. स्वतंत्र पार्टी के संस्थापक सदस्य होमी मोदी का बंबई में देहांत.

१० **मार्च :** मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री गोविंद नारायण सिंह का त्यागपत्र. पांडिचेरी उपचुनाव में द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम को कुल ३० स्थानों में १५ स्थान प्राप्त. श्रीमती फ़िशर द्वारा नेहरू पुरस्कार ग्रहण.

११ **मार्च :** कांग्रेस के रामनारायण मंडल विहार विधानसभा के अध्यक्ष निर्वाचित.

१२ **मार्च :** राजा नरेशचंद्र सिंह को म. प्र. के राज्यपाल रेड्डी द्वारा मंत्रिमंडल गठन करने का निमंत्रण.

विदेश

६ **मार्च :** कराची में पुलिस और भीड़ में मुठभेड़ के कारण २ व्यक्तियों की मृत्यु.

७ **मार्च :** मॉस्को स्थित चीनी दूतावास पर पथराव. पूर्व पाकिस्तान में भीड़ का शासन.

८ **मार्च :** स्वेज़ नहर के पास संयुक्त अरब गणराज्य के तेल के कारखानों पर इस्राइली सैनिकों का हमला. इंग्लैंड की क्रिकेट टीम का पाकिस्तान का दौरा रद्द.

९ **मार्च :** संयुक्त अरब गणराज्य के सेनाध्यक्ष ले. जनरल अब्दुल मोनेम रियाद की सैनिक मुठभेड़ में मृत्यु.

१० **मार्च :** रावलपिंडी में राष्ट्रपति अय्यूब खाँ और प्रतिपक्षी नेताओं में गोल मेज़ सम्मेलन वार्त्ता. अमेरिका के निग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग के हत्यारे जेम्स अर्ल रे को ९९ वर्ष की क़ैद.

११ **मार्च :** फ़्रांस में बड़े पैमाने पर हड़ताल के कारण जनजीवन अस्तव्यस्त.

१२ **मार्च :** रावलपिंडी में गोल मेज़ सम्मेलन में एयर मार्शल असगर खाँ और सत्तारूढ़ पार्टी में झड़प.

भेंट-वार्त्ता

व्याकुल तिब्वत का सौम्य विद्रोही

तिब्वत के विद्रोह की दसवीं जयंती (१० मार्च) को दलाई लामा ने अपने निवास धर्मशाला से संदेश दिया 'चीनी तिब्वत को मिट्टी में मिला दें, तो भी तिब्वत उठेगा; स्वतंत्र होगा; जनता की इच्छा ही तिब्वत का शासन करेगी; दलाई लामा स्वयं फिर से प्रतिष्ठित हों, या न हों. तिब्वत के कोने-कोने में असंतोष उमड़ रहा है. युवा जन विदेशी चीनियों की *उपस्थिति की खुले आम निंदा* कर रहे हैं और उन के विरुद्ध तोड़-फोड़ कर रहे हैं. यह आंदोलन जेलों तक में पहुँच गया है. जो तिब्वती स्वतंत्र देशों में पहुँच गये हैं वहीं से प्रयत्न करें. तिब्वत की स्वतंत्रता तिब्वती जनता की शक्ति पर ही निर्भर है.'

विद्रोह दिवस पर धर्मशाला में ५००० से अधिक तिब्वती निष्कासितों ने दलाई लामा का जय-जयकार किया और तिब्वत में बच रहे अपने भाइयों का स्मरण किया—उन २,००,००० *तिब्वती शहीदों का भी* जिन्होंने चीनी आततायी के विरुद्ध लड़ कर वीरगति पायी.

श्री जयप्रकाश नारायण और १३ अन्य नेताओं ने भारत सरकार से अनुरोध किया है कि तिब्वत को अपना राजनैतिक स्थान स्थिर करने का हक़ दिलायें. भारत पहल करे तो और देश भी तिब्वत पर दोबारा सोचेंगे. भारत ने तिब्वत पर चीन का अधिकार स्वीकार कर के जो भूल की थी उसी का परिणाम है कि तिब्वत ग़ुलाम हुआ, भारत की सुरक्षा खतरे में पड़ी और संयुक्तराष्ट्र में तिब्वत की स्वतंत्रता का मामला उठाया नहीं जा सका.

दिनमान की ओर से पतंजलि सेठी दलाई लामा से मिले थे. उन्हीं के शब्दों में—परम पावन दलाई लामा से भेंट एक अभूतपूर्व और चिरस्मरणीय अनुभव है . कितना ही गर्म मिजाज़ पत्रकार क्यों न हो उन की स्निग्ध विनम्रता उसे सौम्य कर देती है. सीधे-सादे परम पावन दलाई लामा गाँव के काव्यमय निर्झर के समान सरल हैं. वह जितने युवा हैं उस से भी अधिक युवा दिखते हैं, पर उन के मुँह से निकले शब्द सार्थक और गुरु गंभीर होते हैं. वह सहज भाव से ही बोलते हैं; हमारे अनेक राजनैतिक नेताओं की तरह अपनी बुद्धिमत्ता की धाक बिठाने के लिए सँभल कर और सोच कर नहीं.

धर्मशाला में ज्वालामुखी मंदिर

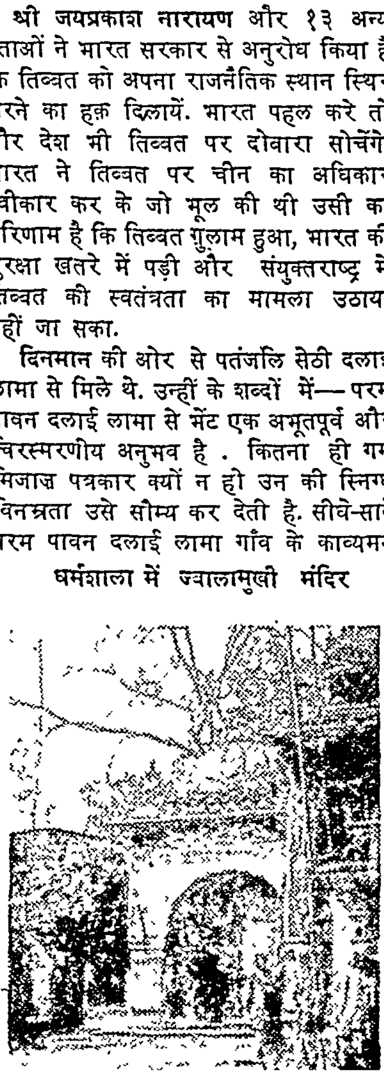

उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन के वर्ष बहुत उथलपुथल में गुज़ारे हैं. १६ वर्ष पहले चीनियों ने बाक़ायदा योजना बना कर तिब्वती युवा वर्ग का दिल-दिमाग़ बदलना शुरू कर दिया. ऐसी परिस्थिति में दलाई लामा निरी १६ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठे. तिब्वतियों का निर्दय विनाश, उन का विद्रोह, दलाई लामा का साहस और उन का अपना देश छोड़ कर कोई दस वर्ष पहले भारत में आगमन अब इतिहास बन चुका है. वह इस समय धर्मशाला में रहते हैं, जो भारत में आ कर बसे हुए तिब्वतियों की एक प्रकार से राजधानी है. उन्हें अपने देश की दुर्भाग्यजनक घटनाओं और तिब्वतियों के साथ होने वाली क्रूरताओं के समाचार बराबर मिलते रहते हैं.

हालाँकि वह अंग्रेज़ी जानते हैं और जब चाहे तभी बोल भी सकते हैं पर वह दुभाषिए का सहारा लेते हैं. इस भेंट में अलबत्ता उत्साहवश उन्होंने कभी-कभी अंग्रेज़ी में भी बात की.

तिब्बत से भारत पहुँचने पर दलाई लामा का शानदार स्वागत हुआ था. उन से पूछा गया कि क्या तब से भारतीय जनता और भारत सरकार के रुख में परिवर्त्तन आया है? उन्होंने मुस्करा कर कहा सही है. बहुत हद तक सच है कि दिलचस्पी कुछ कम हो गयी है. यह मानव-स्वभाव है. क्या पता कुछ क़सूर हमारा भी हो. हमारे लिए लोगों से संपर्क रखना मुश्किल होता है. हमने यह काम काफ़ी अच्छी तरह नहीं किया. अपने में भारतीयों की दिलचस्पी बनाये रखने के लिए हमें और भी उत्साह से काम करना चाहिए.

तिब्वत में परिवार की इकाई का क्या हाल है?

ईश्वर के बताये हुए मार्ग का पालन करते रहना ही सच्ची परिवार-प्रणाली है, पर कम्युनिस्टों के लिए ऐसा नहीं है. यह कहते हुए असहायता का भाव मुख पर झलक आया.

परिवर्त्तन की बात करते हुए उन से प्रश्न किया गया कि भले ही उन के यहाँ लोगों को बुरा वक़्त देखना पड़ा पर क्या तिब्वत से उन का बाहर आना अभिशाप के रूप में वरदान जैसा साबित नहीं हुआ?

'हाँ! तिब्वती इस तरह अपनी सीमित दुनिया से बाहर तो निकले, वरना वे आज के परिवर्त्तनों से अछूते ही रहते.'

दलाई लामा : स्निग्ध विनम्रता

तिब्वती स्वाधीनता की संघर्ष की दसवीं वर्षगाँठ का ज़िक्र आने पर दलाई लामा ने कहा 'इस अवसर पर हमें समाचारपत्रों में लेखों-निबंधों द्वारा संसार के लोगों में तिब्वत के प्रति रुचि जगानी चाहिए'. उन्हें यह सुझाव पसंद आया कि तिब्वती जीवन के प्रत्येक पक्ष, संस्कृति, कला, इतिहास, दस्तकारी, रीति-रिवाज़ और दर्शन आदि पर बहुत-सी सामग्री तैयार करनी चाहिए. इस सब के लिए हमारे यहाँ अलग दफ़्तर हैं; पर हमें और भी प्रयत्न करने चाहिए.

वह तिब्वत की स्वाधीनता में रुचि रखने वाले पत्रकारों और लेखकों से संपर्क स्थापित करने की राय से सहमत दिखे. ये सब ऐसी सामग्री तैयार कर सकते हैं जो देश और विदेश दोनों के लिए ही उपयोगी हों. इस के साथ ही साथ परम पावन दलाई लामा के साथ के अधिकारी भी इन लेखकों और पत्रकारों से संपर्क रखें और तिब्वत संबंधी विभिन्न विषयों की इन्हें जानकारी कराते रहें. परंतु इस बार वह ही प्रश्न कर बैठे, इस के लिए धन जुटाने की समस्या भी तो है?

उन्हें बताया गया कि यह कोई बड़ी समस्या नहीं है, क्यों कि ऐसे बहुत लोग हैं जिन की तिब्वतियों से सहानुभति है. उन का काम तो अवैतनिक ही होगा. वह बोले हाँ यह बहुत ठीक है, व्यावहारिक भी प्रतीत होता है.

बातचीत में राजनीति का प्रसंग आना स्वाभाविक ही था. अपने देश की जनता के सर्वोच्च नेता होने के नाते दलाई लामा अंतरराष्ट्रीय ख्याति के व्यक्ति हैं. बीसवीं शताब्दी की राजनीति के बारे में आप के विचार क्या हैं?

उन के चेहरे पर विवाद की रेखाएँ आयी और बोले—आज की राजनीति बस सत्ता हथियाने की राजनीति है.

इस संदर्भ में तिब्वत कहाँ खड़ा है? जैसा कि आप जानते ही हैं हंगरी पर शर्मनाक ढंग से कब्ज़ा हुआ और चेक लोगों को ग़ुलाम बनाया गया, तब कोई उंगली भी नहीं उठा सका. क्या यह सब ठीक ऐसा नही है कि लोग बातें ही बातें करते हैं, ठोस सहायता कोई किसी की नही करता?

उन्होंने बिना किसी हिचकिचाहट के इस

तरह के कठिन प्रश्न का भी उत्तर दिया. शायद पहले शब्द और बाद में काम हो. पर कुछ कहना कठिन है. परिस्थितियों पर बहुत कुछ निर्भर करेगा.

फिर तिब्बत की भीतरी स्थिति के बारे में एक के बाद एक दो प्रश्न किये गये—तिब्बत में लोग इस समय क्या कर रहे हैं ? उन का विद्रोह जारी है और वे अपनी भूमि को जानते हैं. वे चीनियों को बराबर तंग करते रह सकते हैं. पर क्या बाहरी मदद से चीनियों के खिलाफ़ छापामार लड़ाई को और तेज़ नहीं किया जा सकता ?

इस के उत्तर में भी दलाई लामा ने आज के राजनीतिज्ञों की तरह घन गर्जन नहीं किया. वह बोले 'यह सब करना बहुत मुश्किल है. तिब्बतियों के हौंसले बहुत ऊँचे हैं, विशेष कर युवा वर्ग कृतसंकल्प है. पर बाहर मदद की कल्पना बहुत मुश्किल है.

फिर रास्ता क्या है ?

हमें इंतज़ार करना होगा. तिब्बत में संसार की रुचि बनाये रखनी होगी.

बंबई के बौद्ध सम्मेलन में सुझाव दिया गया था कि बौद्धों के अधिकार वापस दिलाने के लिए आंदोलन शुरू किया जाये. क्या आप इस तरह के आंदोलन के पक्ष में हैं ? उन का कहना था—मुझे इस तरह के किसी सुझाव का पता नहीं है, न मैंने समाचारपत्रों में इस बारे में कुछ पढ़ा है. पर आम तौर पर मेरा विश्वास है शांति से ही सब कुछ होना चाहिए. पर यह भी है कि कभी-कभी शांति से अथवा बिना आंदोलन के कोई परिणाम नहीं निकलते.

शांतिमय तरीक़ों के कोई परिणाम न निकले तो क्या होगा ? बहुत-से आंदोलन क्या हिंसा में परिणत हो जाते ? उन्होंने जवाब के लिए आंदोलन कर रहे हैं ? मैं तो समझता हूँ कि वे ख़ुद नहीं जानते कि किस लिए आंदोलन कर रहे हैं. उन की वास्तविक शिकायतें हो सकती हैं, पर उन का हिंसा उपाय नहीं है.

कक्षा से भाग जाना, बसें जलाना और दुकानें लूटने आदि के बारे में आप क्या सोचते हैं ?

वह मुस्कराये, बोले जितना नुकसान वे करते हैं उस की क्षतिपूर्ति उन से ही करायी जानी चाहिए. यही उन पर सब से अच्छी रोक हो सकती है.

क्या आप अंग्रेज़ों के ज़माने के सामूहिक जुर्मानों जैसी कोई बात सुझा रहे हैं ? जुर्माना कैसे किया जाये ?

दिल्ली में तिब्बतियों का प्रदर्शन

दिया, हाँ, हिंसा भी भड़क उठती है. यह एक दुष्चक्र है. आंदोलनकारी समझते हैं कि अपने प्रति होने वाले अन्याय के विरुद्ध वे क़दम उठा रहे हैं. अगर अपनी मुसीबतें कम कराना और न्याय पाना अन्य साधनों से संभव होता तो उन्हें उन का प्रयोग करना चाहिए. आंदोलन ही पहला क़दम न होता है और न होना चाहिए. बाद में हिंसा भड़क उठती है, तो बहुत मुश्किल हो जाती है. बातचीत करना भी संभव नहीं होता; तब आंदोलन आगे चलाना भी संभव नहीं रह जाता और आंदोलनकारियों को वह बहुत महँगा पड़ता है. जो ऐसे आंदोलन करते हैं कि उस का नतीजा हिंसा और अव्यवस्था ही हो वे भी ग़लत रास्ते पर हैं और जो आंदोलन के बिना बात ही नहीं सुनते वे भी ग़लत रास्ते पर हैं. इसी संदर्भ में छात्र-आंदोलन की बात भी छिड़ गयी. दलाई लामा ने कहा 'वे क्या वास्तव में किसी माँग

ये सब मैं नहीं जानता, इस का मुझे पता नहीं.

ठीक है, बहुत सी समस्याएँ हैं जिन का समाधान हमें पता नहीं है. पर हम प्रयत्न करते रह सकते हैं और समाधान के प्रति आशावान भी रह सकते हैं. भेंट-वार्त्ता समाप्त कर जब विदा लेने के लिए मैंने दलाई लामा से हाथ मिलाया तो मुझे लगा उन में आशा का एक सागर है; केवल अपने ही देशवासियों के लिए नहीं, पर सभी के लिए. तिब्बतियों की समस्याओं पर ही उन का समूचा ध्यान केंद्रित न होता तो शायद अन्य क्षेत्रों में भी वह हमारी मदद कर सकते; पर क्या हम उन की मदद लेना स्वीकार करते ? एक महापुरुष की सहायता लेना भी हमें अच्छा नहीं लगता. भारत में उन का निवास हम सभी के लिए गौरव की बात है. परंतु खेद की बात है कि हम उन्हें त्यागे जैसे हैं और यह साधारण खेद की बात नहीं है.

पश्चिमोत्तर हिमाचलप्रदेश के धौलाधर इलाक़े का छोटा सा कस्बा 'धर्मशाला', भारत आये तिब्बतियों की राजधानी यानी नया ल्हासा है. धर्मशाला नाम सार्थक ही है.

धर्मशाला का इतिहास बहुत दिलचस्प है. दरअसल १९५५ से यह कांगड़ा ज़िले का सदर मुकाम रहा. छावनी का जब विस्तार किया गया तो आवास के लिए यही क्षेत्र चुना गया. यह कांगड़ा से केवल ११ मील पर था. पठार जैसा एक स्थल है, जहाँ एक हिंदू धर्मस्थान और धर्मशाला है. इसी से इस का नाम भी धर्मशाला पड़ा.

धर्मशाला सड़क के रास्ते पठानकोट से ५६ मील है. पठानकोट से कांगड़ा तक छोटी लाइन है. पर यात्रा बहुत धीरे-धीरे होने की वजह से समय बहुत लग जाता है. कांगड़ा से प्रायः बसें छूटती रहती हैं और थोड़ी ही देर में धर्मशाला पहुँच जाते हैं.

धर्मशाला में अनेक सुरम्य स्थल हैं. ऐसी भी जगहें हैं जहाँ खड़े हो कर समूची कांगड़ा घाटी का विहंगम दृश्य दिखाई पड़ता है.

धर्मशाला का ऊपरी भाग ६ हज़ार फ़ुट ऊँचा है. धरनकोट नामक एक छोटा-सा कस्बा सात हज़ार फ़ुट की ऊँचाई पर है.

धर्मशाला की ओर से राज्य सरकार उदासीन है. एक तरह से यह अच्छा ही है, क्यों कि इस की प्राकृतिक सुंदरता और निर्जनता सुरक्षित हैं. यह देवभूमि है. दलाई लामा ने अपने आवास के लिए इसे ही श्रेष्ठ स्थान माना है.

चरचे और चरखे

तमाशा खत्म हुआ

प्रेज़िडेंट निक्सन के लंदन से वॉन रवाना होने पर बी. बी. सी. टेलीविज़न से आँखों देखा हाल प्रसारित किया गया, जिस में कहा गया कि 'लो तमाशा खत्म हुआ' विवरण प्रसारित करने वाले ने अरथा किट के एक गीत की पंक्तियाँ भी कहीं, जिस का अर्थ था 'सर्कस शहर से चला गया और हम अंत तक उस के संगीत को रुमाल हिलाते रहे.' हवाई अड्डे का दृश्य खींचते हुए इस विवरणकार ने कहा, 'लगता है जैसे निक्सन के आगमन की फ़िल्म अब उल्टी चलायी जा रही है' और वॉन में स्वागत की तैयारियों पर कहा, 'निःसंदेह गार्ड ऑफ़ ऑनर पेश करने के लिए पंक्ति खड़ी की जा रही है. घबराये हुए अधिकारीगण इधर-उधर भाग-दौड़ कर रहे हैं. राजनीतिज्ञों ने अपने चेहरों पर गंभीरता ओढ़ ली है, फूलों की सजावट को अंतिम रूप दिया जा रहा है...

अमेरिका के प्रति सहानुभूति रखने वाले कुछ टेलीविज़न प्रेक्षकों ने इस पर आपत्ति प्रगट की. प्रसारण बिना रेकॉर्डिंग के सीधा किया गया था. एक प्राइवेट फ़र्म से, जिस ने प्रसारण रेकार्ड किया है, प्रतिलिपि माँगी जा रही है, लेकिन ब्रिटिश सरकार के पास अभी तक इस पर कोई औपचारिक विरोध अमेरिकी सरकार की ओर से न तो आया है और न आने की संभावना है. बिना पूछताछ के भी बी. बी. सी. ने इस टिप्पणी पर खेद प्रकट कर दिया और जांच का आदेश दे दिया है.

आँखों देखा हाल प्रसारित करने वाले डिविलबी स्वतंत्र रूप से प्रसारण का काम करते हैं. पहली बार उन्हें किसी राजनीतिक घटना पर प्रसारण का कार्य सौंपा गया था. निक्सन के दौरे के तीन दिन उन्हें किसी प्रकार अपने रवैये में परिवर्तन का कोई आदेश नहीं दिया गया. समाचारपत्रों के टेलीविज़न समीक्षकों का तो कहना है कि उन्होंने जो ढंग विवरण देने का अख्तियार किया वह स्वागत-योग्य है और ताज़गी देने वाला है.

छोटी पत्रिका, बड़ा मोह

राजधानी में 'दिल्ली शिल्पी चक्र' में छोटी पत्रिकाओं की एक प्रदर्शनी की गयी. छोटे-से हॉल में बेमेल पत्रिकाओं की भीड़ तो थी ही, बेमेल साहित्यकारों की भी भीड़ जमती रही. पत्रिकाओं से अधिक हर व्यक्ति एक दूसरे का चेहरा देख रहा था. ऐसी प्रदर्शनी के साथ कुछ अदेखा देखने का जो भाव था वह वहाँ जाते ही लुप्त हो गया. प्रदर्शनी के एक आयोजक **रमेश बक्षी** ने बताया कि २२५ विदेशी, १२८ हिंदी, ५२ बंगला और १०२ अन्य भारतीय भाषाओं की पत्रिकाएँ प्रदर्शनी में हैं. ज़रूर थीं, पर उन में छोटी कहलाने योग्य कितनी थी ? लगता है या तो छोटी की परिभाषा आयोजकों के सामने स्पष्ट नहीं थी या उन का अकेलापन दूर करने के लिए उन्हें बड़ी पत्रिकाओं की एक भीड़ की ज़रूरत थी. अंग्रेज़ी की पत्रिकाओं में छोटी पत्रिकाओं के नाम पर 'पेरिस रिव्यू', 'लंदन मैगज़ीन', 'महफ़िल', 'एवरग्रीन', 'पर्सपेक्टिव', 'ईस्ट-वेस्ट रिव्यू', 'शिकागो रिव्यू', जैसी अनेक पत्रिकाएँ थीं और हिंदी में मृत पत्रिकाओं का खाना, जिस में 'प्रतीक', 'निकष' आदि थे, छोड़ भी दें तो 'लहर', 'वातायन', 'साहित्यदर्पण', 'समवेत' आदि अनेक पत्रिकाएँ थीं. यदि छोटी-बड़ी पत्रिकाओं का अर्थ व्यावसायिक-अव्यावसायिक ही है तो भी यह प्रदर्शनी सही नहीं उतरी. उदाहरण के लिए लहर जैसी पत्रिका छोटी कैसे कही जा सकती है ? जिस पत्रिका का उद्देश्य शुरू से ही लेखकों का शोषण कर के धनोपार्जन ही रहा है वह अव्यावसायिक कैसे है ? यदि छोटी-बड़ी का निर्णय साहित्य और साहित्यकार के प्रति रवैये से निश्चित होता है तो भी लहर छोटी कैसे कही जायेगी, जिस का कोई साहित्यिक मानदंड कभी नहीं रहा जो अपनी साहित्यिक नीति में रखैल की तरह का आचरण प्रारंभ से करती रही और आज भी कर रही है, खाली पैसा कमाना जिस का उद्देश्य है ? हाँ, छोटी का अर्थ छोटी नीयत और और छोटा दिमाग़ यदि हो तो बात दूसरी है. प्रदर्शनी यह स्पष्ट नहीं कर सकी कि छोटी से उस का प्रयोजन क्या है ? अधकचरी, अनर्गल, अधूरी, अविकसित, अश्लील पत्रिकाएँ ही यदि देखने को मिलती तो भी उस के प्रयोजन का कुछ पता चलता, सारी प्रदर्शनी 'मो सम कौन कुटिल खल कामी' कह कर साधुओं के बीच बैठने का ढोंग था. आयोजकों को अपनी दृष्टि में कुछ और स्पष्ट और अपने उद्देश्य के लिए कुछ और परिश्रम करना चाहिए था. आयोजकों ने इतनी तत्परता यदि वास्तव में छोटी पत्रिकाओं की प्रदर्शिनी के लिए ही दिखायी होती तो यह महत्त्वपूर्ण बात होती. छोटी पत्रिकाओं की बड़ी प्रदर्शिनी करने के मोह में पड़ कर उन्होंने प्रदर्शिनी को कहीं का नहीं रखा. जिन्होंने प्रदर्शिनी को 'छोटी' विशेषण निकाल कर केवल पत्रिकाओं की प्रदर्शनी के रूप में देखा होगा उन्हें शायद कुछ सुख मिला हो और आयोजकों का परिश्रम एकदम व्यर्थ न लगा हो.

आख़िर किस लिए ?

आवश्यकता है एक 'अविवाहित, असामाजिक, अदेशीय, असभ्य, अहसान फ़रामोश, अभक्त, अधनी, अनागरिक' कलाकार के लिए कलापारखी की. यह कलाकार बनारस में रहता है और अपने बारे में यह कहता है कि वह छिप कर (अंडरग्राउंड) काम करता है. खुले आम चित्र रचना नहीं करता, फिर भी यह घोषणा करता है कि वह 'अपनी स्वाधीनता को मनवाने के लिए भयावह हो सकता है,' आप चाहें तो उस का चित्र ख़रीद सकते हैं यद्यपि वह कहता है 'कलाकार को इस संसार में कुछ नहीं करना है.' उस के तथा उस के अन्य तीन साथियों के चित्र राजधानी की छोटी पत्रिका-प्रदर्शनी में प्रदर्शित किये गये. दीवारों पर उन के चित्र टँगे थे और उन चित्रों के नीचे एक कोने में कुछ विदेशी हिप्पी बैठे थे. चित्रों में कोई जान नहीं थी, मौलिकता भी नहीं, कुछ चित्र डाली जैसे विदेशी चित्रकारों की भोंडी नक़ल थे. समझ में नहीं आता ऐसे घटिया चित्रों की रचना के लिए इतनी स्वाधीनता की दुहाई देने की और इतना छिप कर काम करने का नारा लगाने की क्या ज़रूरत है ? इस से अच्छे जानदार मौलिक चित्र बिना इस तरह की घोषणाओं के भी कलाकार बनाते रहे हैं, बनाते हैं और बनाते रहेंगे.

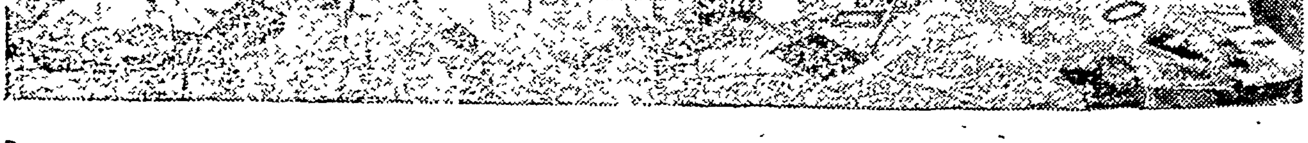

कांग्रेस पार्टी : टूटने की प्रक्रिया में

१९६७ के चौथे चुनाव के साथ ही देश की विशालकाय संस्था कांग्रेस में टूटने की जो प्रक्रिया शुरु हुई थी वह अपनी अंतिम परिणति में पहुँचने के लिए आतुर नज़र आती है. १९६७ में राजनीति के अध्येताओं के सामने प्रश्न था कि क्या १९७२ के वाद कांग्रेस केंद्र में रहेगी ? पिछले महीने भर की घटनाओं ने अब नया प्रश्न पैदा कर दिया है कि क्या १९७२ तक कांग्रेस केंद्र में बनी रह सकेगी. अगर १९७२ के पहले ही केंद्र में कांग्रेस की सरकार गिर गयी तो इस का श्रेय विरोधी पार्टियों को नहीं वल्कि खुद कांग्रेस पार्टी के नेताओं को होगा.

'युवा तुर्कों' के नेता श्री चंद्रशेखर और उप-प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई के बीच की झड़प ने कांग्रेस पार्टी के भीतर के जिस संकट को उजागर कर दिया वह टल जायेगा इस की कोई उम्मीद नज़र नहीं आती है. वास्तविकता यह है कि कांग्रेस पार्टी के भीतर जो परस्पर विरोधी शक्तियाँ काम कर रही हैं उन में से कोई यह नहीं चाहता कि यह संकट खत्म हो जाये. यह अलग वात है कि पार्टी की बैठकों में एकता और संगठन को ले कर इतनी बेचैनी व्यक्त की जा रही है.

पिछले हफ़्ते कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक में श्री मोरारजी देसाई के समर्थकों ने श्रीमती इंदिरा गांधी पर यह आरोप लगाया कि वह श्री देसाई के विरोधियों को अपने मौन से मदद दे रही हैं. दूसरी ओर श्रीमती इंदिरा गांधी के समर्थकों का श्री मोरारजी देसाई के अनुयायियों पर यह आरोप है कि वे प्रधानमंत्री के विरुद्ध छिप कर नहीं वल्कि खुले आम जहर उगलते रहे हैं. कांग्रेस पार्टी के भीतर श्रीमती इंदिरा गांधी और श्री मोरारजी देसाई को ले कर जनवरी १९६६ से ही रस्साकशी होती रही है. जनवरी, १९६६ में श्री लालवहादुर शास्त्री के निधन के वाद प्रधानमंत्री के चुनाव के समय कांग्रेस पार्टी स्पष्ट रूप से दो शिविरों में विभक्त हो गयी और इन दो शिविरों के आपसी मतभेद कभी सुलझ नहीं सके, क्यों कि ये मतभेद विचार-धारा को ले कर उतने नहीं जितने कि सत्ता को ले कर थे. श्रीमती गांधी ने श्री मोरारजी देसाई को अपने एक सहयोगी के रूप में स्वीकार कर लिया लेकिन उन के अनुयायियों को वह कभी स्वीकार नहीं कर सकीं. पिछले दो वर्षों में श्री मोरारजी देसाई के अनुयायी अपनी लड़ाई अपने आप लड़ते रहे. यह कहना ज़्यादती होगी कि श्री मोरारजी देसाई ने अपने अनुयायियों को श्रीमती गांधी के विरुद्ध उकसाया है, वल्कि सच्चाई यह है कि उन्होंने कई मौक़ों पर श्रीमती गांधी की मदद की. जब श्रीमती इंदिरा गांधी और श्री यशवंतराव चव्हाण के बीच मतभेद की खबरें आने लगीं तब भी श्री मोरारजी देसाई ने अपने आप को बहुत नहीं उलझाया. अगर वह चाहते तो श्रीमती गांधी के विरोधियों को बढ़ावा दे कर प्रधानमंत्री की स्थिति को कमज़ोर कर सकते थे. लेकिन यह कहना ज़रूरी हो जाता है कि प्रधानमंत्री के एक सहयोगी के रूप में श्री मोरारजी देसाई का आचरण काफ़ी अर्से तक असंदिग्ध रहा.

लेकिन, जैसा कि हुआ करता है, श्री मोरारजी देसाई के अनुयायियों ने पिछले कुछ अर्से में उन को भी अपनी सत्ता की लड़ाई में उलझा लिया है और प्रधानमंत्री और उपप्रधानमंत्री के बीच तनाव फिर पैदा हो गया है. यह तनाव नीतियों को ले कर नहीं था वल्कि सत्ता के वितरण को ले कर है. श्री मोरारजी देसाई के समर्थकों का दावा है कि श्रीमती इंदिरा गांधी कांग्रेस संस्था और कांग्रेस संसदीय पार्टी दोनों पर अपना एकछत्र नेतृत्व क़ायम करना चाहती हैं. इसी लिए उन्होंने कांग्रेस और सरकार के तीन कर्णधारों श्री निजलिंगप्पा, श्री मोरारजी देसाई और श्री यशवंतराव चव्हाण के विरुद्ध वातावरण बनाने में नेतृत्व किया है. इस के प्रमाण में श्रीमती इंदिरा गांधी के विरोधी विहार, बंगाल और विड़ला प्रकरण का हवाला देते हैं. उन का कहना है कि यद्यपि विहार में मिली-जुली सरकार बनाने और मंत्रिमंडल में रामगढ़ के राजा को शामिल करने का निर्णय सामूहिक था लेकिन इस की ज़िम्मेदारी श्री निजलिंगप्पा और श्री यशवंत राव चव्हाण पर डाली गयी. श्री सुब्रह्मण्यम् का, जो कि प्रधानमंत्री के विश्वासपात्रों में से हैं, इस्तीफ़ा दिला कर निजलिंगप्पा के विरुद्ध अविश्वास व्यक्त किया गया. इस शिविर का यह कहना है कि श्रीमती गांधी श्री निजलिंगप्पा का कार्यकाल समाप्त हो जाने के वाद कांग्रेस अध्यक्ष की गद्दी पर अपना आदमी विठाना चाहती हैं ताकि १९७२ में वह अपनी इच्छा के उम्मीदवारों को टिकट दिला सकें और समूची संस्था में अपना तंत्र क़ायम कर सकें. श्री निजलिंगप्पा प्रधानमंत्री के बहुत अधिक समर्थकों में से नहीं रहे हैं. समय-समय पर उन्होंने सरकारी नीति के बारे में जो कुछ कहा है उस से यह नहीं लगता कि वह प्रधानमंत्री से बहुत संतुष्ट हैं. श्री निजलिंगप्पा एक अर्से तक उस शिविर के कर्णधार रहे हैं जिसे कि सिंडीकेट कहा जाता है. सिंडीकेट इंदिरा गांधी का विरोधी रहा है अब उस के टूट जाने के बाद एकमात्र निजलिंगप्पा बचे हैं जिन के पास कुछ सत्ता है.

कांग्रेस संसदीय पार्टी में श्री मोरारजी

दिनमान
समाचार-साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — २३ मार्च, १९६९
अंक १२ — २ चैत्र, १८९१

*

इस अंक में

संपादकीय — १८

*

विशेष रिपोर्ट — ११

*

मत और सम्मत — ४
पत्रकार-संसद — ५
पिछला सप्ताह — ७
चरचे और चरखे — १०
परचून — ४६

*

राष्ट्रीय समाचार — १३
प्रदेशों के समाचार — १९
विश्व के समाचार — ३४
समाचार-भूमि : पाकिस्तान का आर्थिक विकास — ३२
खेल और खिलाड़ी : क्रिकेट; साहसिक अभियान; खेल-कूद साहित्य — ३०

*

प्रेस-जगत : पाकिस्तान-परिवर्तन की प्रक्रिया — ६
भेंट-वार्ता : दलाई लामा — ८
स्मृति : हिंद-पाक एका — १७
समुद्र-विज्ञान : समुद्र-मंथन और सागर-युग की भूमिका — २४
साक्षात्कार : पाकिस्तान और हम — २७
समकालीन पाकिस्तानी साहित्य : उर्दू, बंगला, पंजाबी — ३९
संगीत : द्वितीय जुगलबंदी सम्मेलन — ४२
अभिनय : दि जर्मन थियेटर, पेरिस — ४३
कला : अकबर पदमसी, कलकत्ता और राजस्थान के चित्रकार — ४४

*

आवरण चित्र : ताशकंद समझौते के वाद शास्त्री

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

देसाई के समर्थकों और श्रीमती गांधी के विरोधियों का यह भी कहना है कि बंगाल में धर्मवीर के आचरण की जिम्मेदारी श्रीमती गांधी ने गृहमंत्री चव्हाण और उपप्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई पर डाल दी और स्वयं उस से बरी हो गयी. उन का तर्क है कि पश्चिम बंगाल में राज्यपाल के रूप में श्री धर्मवीर को बनाये रखने का निर्णय केंद्र सरकार ने सामूहिक रूप से लिया था लेकिन प्रधानमंत्री ने बंगाल के वामपंथियों को यह आभास दिया कि मैं तो धर्मवीर को वापस बुलाना चाहती थी लेकिन इस मामले में उपप्रधानमंत्री और गृहमंत्री राजी नहीं हैं.

जब बिड़ला प्रकरण को ले कर श्री चंद्रशेखर ने श्री मोरारजी देसाई पर आरोप लगाया तब कांग्रेस पार्टी के भीतर विस्फोट हुआ और श्रीमती गांधी को मोरारजी विरोधी वातावरण के लिए कुछ सदस्यों ने जिम्मेदार ठहराया. इन सदस्यों का यह भी कहना है कि श्रीमती गांधी जानबूझ कर श्री मोरारजी देसाई को उलझाती रही हैं. इस संबंध में वह एक और घटना का हवाला देते हैं. पिछले महीने जब कैबिनेट की बैठक में बजट आया तब श्री दिनेश सिंह और कुछ अन्य मंत्रियों ने, जो कि प्रधानमंत्री के सलाहकारों में से माने जाते है, कृषि-संपत्ति पर कर लगाये जाने का विरोध किया और मंत्रिपरिषद् की बैठक में काफी गर्मागर्मी हुई. सदस्यों का कहना है कि क्या इस बजट प्रस्ताव की कोई जानकारी प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को नहीं थी और वह इस सारी गर्मागर्मी में इतनी तटस्थ क्यों रही ? आखिरकार बजट सरकार का था, श्री देसाई के घर का नहीं. हाल में कांग्रेस पार्टी में कृषि-संपत्ति कर को ले कर श्री मोरारजी देसाई पर जिन लोगों ने फब्तियाँ कसी उन में से अधिकतर प्रधानमंत्री के समर्थक माने जाते हैं. इस की भी यह व्याख्या की जा रही है कि श्रीमती गांधी का शिविर, चाहे आर्थिक प्रश्न हों या राजनैतिक, श्री मोरारजी देसाई के पीछे हाथ धो कर पड़ा है. चंद्रशेखर का मामला इसी सारी तनातनी का चरमोत्कर्ष था. कांग्रेस पार्टी चंद्रशेखर के विरुद्ध चाहे जो भी कार्रवाई करे उस के भीतर जो दरारें हैं वह नहीं मिट सकती हैं.

कांग्रेस पार्टी के भीतर जो शक्ति-परीक्षण चल रहा है उस से यह लगता भी नहीं कि कोई इस दरार को खत्म करना चाहता है. इस तथ्य के अहसास ने कि १९७२ में केंद्र में कांग्रेस अकेले अपनी सरकार नहीं बना सकती है, कांग्रेस पार्टी के अंदरूनी शिविरों को बाध्य कर दिया है कि वे भीतर का दृश्य साफ करें. १९७२ में कांग्रेस के सामने यह प्रश्न रहेगा कि कि वह किस के साथ मिल कर सरकार बनाये और इस के साथ ही यह प्रश्न भी जुड़ा हुआ रहेगा कि इस मिली जुली सरकार का नेता कौन हो. श्रीमती इंदिरा गांधी के अनुयायियों का दावा है कि मिली-जुली सरकार का नेतृत्व केवल श्रीमती इंदिरा गांधी कर सकती हैं क्यों कि वही समूचे देश को सर्वमान्य हो सकती हैं. इस बात में कुछ हद तक सच्चाई भी है. श्रीमती इंदिरा गांधी के व्यक्तित्व और विचारों में जो लचीलापन है वह इन को दक्षिणपंथी और वामपंथी दोनों ही तरह की पार्टियों के स्वीकारयोग्य बना देता है. कांग्रेस पार्टी में फ़िलवक़्त दूसरा कोई नेता नहीं जो कि विरोधी पार्टियों के दोनों ही शिविरों को मान्य हो सके. इस लिए श्रीमती इंदिरा गांधी के समर्थक यह बात विश्वास के साथ कहते रहे हैं कि वह किसी भी शिविर के साथ मिल कर सरकार बना सकती हैं. श्रीमती गांधी की इस शक्ति के अहसास ने उन के समर्थकों को शक्तिशाली बना दिया है और वह कांग्रेस पार्टी के भीतर श्रीमती गांधी के नेतृत्व को अटूट बनाना चाहते है ताकि १९७२ में उन के नेतृत्व को लेकर पार्टी के भीतर से कोई चुनौती न आये.

लेकिन एकछत्र नेतृत्व कायम करने की इच्छा ने श्रीमती गांधी के नेतृत्व के आगे समय से पहले ही प्रश्न चिन्ह लगा दिया. चंद्रशेखर के विरुद्ध कार्रवाई की माँग की बहस के दौरान कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी के अनेक सदस्यों ने श्रीमती गांधी के नेतृत्व को ढीला-ढाला क़रार दिया. और उन पर यह आरोप लगाया कि वह अनुशासनहीनता पर नियंत्रण कर सकने में असमर्थ हैं. दूसरे शब्दों में ये सदस्य यह कहना चाहते थे कि श्रीमती गांधी को पार्टी के भीतर की अनुशासनहीनता से कोई चिंता या सरोकार नहीं है उन्हें केवल अपने नेतृत्व को बनाये रखने की फ़िक्र है.

अगर यह लड़ाई इसी तरह बढ़ती ही गयी तो इस की परिणति क्या होगी? राजनीति के अध्येतायों का ध्यान पहली बार इस ओर गया है कि कांग्रेस पार्टी टूट सकती हैं. वर्त्तमान परिस्थितियों में उस का टूटना बहुत अस्वाभाविक नहीं होगा हालांकि इस विशालकाय संस्था में बने रहने और उसे अपनी मुट्ठी में रखने का मोह और लोभ अब भी बहुत से नेताओं के मन में है. यह आकस्मिक नहीं है कि कार्यकारिणी की बैठकों में कतिपय सदस्यों ने पार्टी छोड़ देने की धमकी दी थी.

यह कौन सा शिविर है जिस के कि कांग्रेस से अलग होने की संभावना है ? सच्चाई यह है कि दोनों में से कोई भी शिविर कांग्रेस से अलग हो कर कोई संस्था बनाने की मनःस्थिति में नहीं है. दोनों ही शिविर एक दूसरे को धकेलते हुए कगार पर ले जाना चाहते है. श्री मोरारजी देसाई के समर्थकों का आरोप है कि श्रीमती गांधी और उन के सलाहकार पार्टी और सरकार को पूरी तरह मुट्ठी में कर के हमारे लिए वह स्थिति पैदा कर देना चाहते हैं कि हमारे पास पार्टी छोड़ देने के सिवा कोई रास्ता न रह जाये.

अगर कांग्रेस पार्टी विचारधारा के आधार पर दो टुकड़ों में विभक्त हो गयी होती तो देश की राजनीति में वह धुँधलका नहीं होता जो कि आज है. राजनीति विज्ञान के अधिकतर अध्येताओं और विशेषज्ञों की धारणा है कि कांग्रेस की विचारधारा स्पष्ट न होने के कारण देश की राजनीति ही अस्पष्ट है. और ध्रुवीकरण की प्रक्रिया में गति नहीं है. इस लिए ये विशेषज्ञ और अध्येता विचारधारा के आधार पर कांग्रेस का दो टुकड़ों में विभक्त होना देश के लिए हितकर मानते हैं. लेकिन कांग्रेस अगर टूटती है तो इस की कोई गारंटी नहीं कि यह टूटन विचारधारा के आधार पर होगी. यह बहुत संभव है कि पहले की तरह इस टूट में भी केवल स्वार्थों की शक्तियाँ टूटें. विचारों का दृश्य साफ न हो तथा देश की राजनीति में धुँधलका पहले की तरह बना रहे. संभावना इस बात की है कि १९७२ के पहले कांग्रेस में जो उथलपुथल होगी वह विचारों के आधार पर नहीं बल्कि आकांक्षाओं के कारण होगी. कांग्रेस बराबर दो टुकड़ों में विभक्त हो सकेगी इस में संदेह है. यह ज़रूर है कि नेतृत्व को चुनौती देते हुए कुछ लोग कांग्रेस से अलग हो जायें और केंद्र में कांग्रेस का बहुमत और भी कम हो जाये.

कांग्रेस की स्थिति और भी उलझी और संकटपूर्ण होने का कारण यह है कि कांग्रेस के भीतर कोई भी पक्ष यह मानने को तैयार नहीं है कि वह पराजित हो चुका है या कि उस की पराजय की कोई आसन्न संभावना है. अगर श्रीमती गांधी के सलाहकार और समर्थक अपने संगठन की प्रक्रिया तेज कर रहे हैं तो उन के विरोधी भी, जो कि अब तक एक दूसरे के विरोधी थे, एक ऐसी एकता क़ायम करने का प्रयत्न कर रहे हैं जो कि शायद आने वाले कुछ समय तक बनी रहे सकेगी. देश की राजनीति में ध्रुवीकरण हो या न हो, कांग्रेस पार्टी के भीतर ध्रुवीकरण की प्रक्रिया जारी है. इस प्रक्रिया में अभी कई बलिदान होंगे. अगर श्री चंद्रशेखर के विरुद्ध कार्रवाई की संभावना आसन्न है तो दूसरे शिविर के कुछ नेताओं का भविष्य भी संकटपूर्ण है. इधर श्री चंद्रशेखर पर कार्रवाई की माँग की गयी और उधर श्री मोरारजी देसाई की सब से बड़ी समर्थिका श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा के विरुद्ध भी कार्रवाई की माँग शुरू हो गयी. श्रीमती सिन्हा पर कांग्रेस पार्टी के कुछ सदस्यों ने यह आरोप लगाया है कि वह प्रधानमंत्री के विरुद्ध प्रचार में सक्रिय रही हैं और उन्होंने बंबई के एक साप्ताहिक में श्रीमती गांधी के विरुद्ध कई लेख लिखे. दरअसल लड़ाई चंद्रशेखर और श्रीमती सिन्हा की नहीं बल्कि दो सत्ता-गुटों की है जो कि अपनी आखिरी लड़ाई लड रहे हैं और केंद्र में १९७२ में एक ऐसी मिली-जुली सरकार बनाने की तैयारी कर रहे हैं जिस का नेतृत्व उन के हाथ में हो.

—विशेष संवाददाता

राष्ट्र

नगा-समस्या

गिरफ्तारी के बावजूद

१६ मार्च की सुबह, नगालैंड की राजधानी कोहिमा से ८० किलोमीटर दूर, पूर्वोत्तर इलाक़े में ५१ वर्षीय, कुँआरे विद्रोही नगा जनरल मोवू अंगामी और उन के २०० के क़रीब चीन-प्रशिक्षित विद्रोहियों की भारतीय सुरक्षा सैनिकों द्वारा गिरफ़्तारी सनसनीखेज़ तो नहीं, कुछ अप्रत्याशित अवश्य है. सुरक्षा सैनिकों के सूत्रों से प्राप्त समाचारों के अनुसार विद्रोही नगा चीनी हथियारों से पूरी तरह लैस थे लेकिन उन्हें ऐसी स्थिति में गिरफ़्तार किया गया जब वे आक्रामकता का परिचय नहीं दे सकते थे. एक और समाचार के अनुसार सुरक्षा सेनाओं ने विद्रोही नगाओं के सेनाध्यक्ष मोवू को किसी अज्ञात स्थान पर नजरबंद किया है जहाँ उन की गतिविधियों की जाँच की जा रही है. बहुत पहले जब जनरल मोवू और उन के सहयोगियों के भारत-बर्मा सीमा के रास्ते से नगालैंड में प्रवेश करने के प्रयास के समाचार मिल रहे थे, भारतीय सुरक्षा सेनाओं ने अपनी सतर्कता काफ़ी तेज़ कर रखी थी और इस में उन्हें बर्मी सुरक्षा सेनाओं का भी सहयोग प्राप्त था. गुप्तचर विभाग ने विद्रोहियों की गतिविधियों का मानचित्र लगभग उसी समय से तैयार करना शुरू कर दिया था, जब से बर्मा की सीमा के इर्द-गिर्द उन के मंडराने के संकेत प्राप्त हुए थे. जनरल मोवू के पूर्णतया फ़िज़ो समर्थक होने के कारण उन की गिरफ़्तारी भारत सरकार के लिए सामरिक और राजनैतिक दोनों ही दृष्टियों से बेहद महत्त्वपूर्ण हो उठी थी. जब जनरल मोवू और उन के सहयोगी बर्मी सीमा के इर्द-गिर्द चक्कर मार रहे थे, इस आशय के समाचार भी आधिकारिक सूत्रों से प्राप्त हुए थे कि मोवू ने फ़िज़ो समर्थक बाग़ी नेताओं को यह हिदायत दे रखी थी कि मेरे नगालैंड में प्रवेश से पहले वे कोई महत्त्वपूर्ण राजनैतिक या सामरिक फ़ैसला न करें.

लगभग ३ साल पहले जब जनरल मोवू को फ़िज़ो-समर्थक नगा विद्रोहियों के व्यापक दबाव में सेनाध्यक्ष नियुक्त किया गया था, पूर्वोत्तर भारत की राजनीति के समीकरण की दिशा से उलझने की भविष्यवाणी नगा-समस्या के विशेषज्ञों द्वारा की गयी थी. दिसंबर १९६७ में जब नगा विद्रोहियों के फ़िज़ो-विरोधी वर्ग की अवहेलना कर के जनरल मोवू ३-४ हज़ार नगा विद्रोहियों के साथ साम्यवादी चीन में गॅरिला युद्ध में प्रशिक्षण प्राप्त करने गये थे, तभी से यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया जाने लगा था कि १९६४ का युद्ध-विराम एक काग़ज़ी समझौता मात्र रह गया है जिस का इस्तेमाल नगा विद्रोहियों द्वारा युद्ध-विराम चलाने और भारतीय सुरक्षा सेनाओं से आख़िरी शक्ति-परीक्षण के लिए क्रमशः तैयार करते रहने के इरादे से किया जा रहा है. जनरल मोवू चीन प्रशिक्षित नगा विद्रोहियों को किस्तों में नगालैंड में भेजते रहे हैं और १६ मार्च की सुबह उन के सहित विद्रोहियों के जिस दल को गिरफ़्तार किया गया वह इस क्रम में तीसरी किस्त का निर्माण करता है. ७ जून १९६८ को कोहिमा से १० मील दूर जोत सोमा क्षेत्र में चीन प्रशिक्षित नगा विद्रोहियों और भारतीय सुरक्षा सैनिकों के बीच पहली मुठभेड़ हुई थी. दूसरी मुठभेड़ कोहिमा से १० मील दूर मेज़ोमा क्षेत्र के इर्द-गिर्द २ दिसंबर को हुई थी. दोनों ही मुठभेड़ों में भारतीय सुरक्षा सैनिकों ने विद्रोहियों से भारी परिमाण में चीनी मार्के के हथियार और कुछ महत्त्वपूर्ण सामरिक और राजनैतिक दस्तावेज़ बरामद किये थे. अब तक प्राप्त समाचारों के अनुसार, यह निश्चित नहीं हो सका है कि इस बार की गिरफ़्तारी में कोई नया दस्तावेज़ सुरक्षा सैनिकों के हाथ आया है या नहीं, लेकिन इस बात के संकेत मिले हैं कि इस संभावना को बिलकुल निराधार नहीं कहा जा सकता कि कुछ ऐसे दस्तावेज़ प्राप्त हो सकते हैं जिन से न केवल विद्रोहियों की गतिविधियों का पता चलता है बल्कि पूर्वोत्तर भारत में चीनी हस्तक्षेप की दिशा के भी सूत्र मिलते हैं. वैसे जनरल मोवू की यह गिरफ़्तारी पहली नहीं है (१९५७ में पूर्व पाकिस्तान से लौटते हुए उन्हें असम की उत्तर कछार पहाड़ियों में गिरफ़्तार किया गया था और १९५८ में उन्हें मुक्त किया गया था) न ही आख़िरी ही. मई १९६२ में जनरल मोवू स्वर्गीय नगा-विद्रोही कैटो सुखई के साथ पूर्व पाकिस्तान गये थे जहाँ से बाद में फ़िज़ो से मिलने वह लंदन भी गये थे.

जनरल मोवू की गिरफ़्तारी का नगा राजनीति पर सीधा असर पड़ना अपरिहार्य है. केंद्रीय सरकार इस गिरफ़्तारी के राजनैतिक और सामरिक पक्षों पर संजीदगी से विचार करने की आवश्यकता से इनकार नहीं कर सकती, न ही नगालैंड की सरकार इस स्थिति से उत्पन्न संकट की अवहेलना कर सकती है. विद्रोही नगाओं के फ़िज़ो विरोधी क्षेत्रों में और ख़ास तौर पर श्री कुवातो सुखई के समर्थकों के शिविर में इस गिरफ़्तारी पर प्रसन्नता व्यक्त की जा सकती है लेकिन इस से पूर्वोत्तर भारत की राजनीति के अनेक समीकरण उलझते हैं. इस संभावना को निराधार नहीं समझा जाना चाहिए कि अपने जनरल की गिरफ़्तारी से क्रुद्ध हो कर फ़िज़ो समर्थक अपनी सामरिक गतिविधियों को तेज़ कर सकते हैं और युद्ध-विराम समझौते को बिलकुल बेमानी क़रार दे सकते हैं. नगा विद्रोहियों का फ़िज़ो समर्थक नेतृत्व समय-समय पर नगालैंड और भारत को दो देशों के रूप में प्रचारित करता रहा है और चीन तथा पाकिस्तान से हथियार हासिल करने के पक्ष में यह दलील पेश करता रहा है कि अगर एक स्वतंत्र प्रभुसत्ता संपन्न देश के रूप में भारत सरकार दूसरे देशों से शस्त्र सहायता ले सकती है तो वे क्यों नहीं ले सकते यद्यपि यह दलील युद्ध-विराम समझौते की शर्तों के बिलकुल विपरीत है लेकिन इस मनःस्थिति की व्यापक उपस्थिति को नगालैंड शांति समिति के संयोजक डा. हरम ने भी समय-समय पर स्वीकार किया है.

व्यापार-उद्योग

४२वाँ अधिवेशन

भारतीय वाणिज्य एवं उद्योगमंडल संघ (एफ़. आई. सी. सी. आई.) के ४२वें वार्षिक अधिवेशन में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने घोषणा की कि तीव्र गति से विकास के लिए राजनैतिक और सामाजिक उद्देश्यों की अवहेलना नहीं की जा सकती है. प्रस्तावित उद्योगों के बारे में देर से निर्णय करने का सरकार पर जो आरोप लगाया जाता है उस का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि ऐसा इस लिए होता है कि आगे चल कर कोई कठिनाई पैदा न हो. सरकार नहीं चाहती है कि कोई निर्णय जल्दबाज़ी में किया जाये और बाद में उस से उत्पन्न राजनैतिक समस्याओं के समाधान में समय नष्ट किया जाये. उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि इस प्रकार के निर्णयों से देश के स्वतंत्र चिंतन को अवरुद्ध नहीं किया जाना चाहिए. श्रीमती गांधी ने इच्छा व्यक्त की कि 'टिकाऊ आधार' की नीति पर चल कर प्रगति का लक्ष्य प्राप्त किया जाना चाहिए. उन्होंने धन पैदा करने के लिए स्वतंत्र व्यापार अर्थ-व्यवस्था के सिद्धांत को ठुकराते हुए कहा कि उत्पादन की ऐसी व्यवस्था को स्वीकार नहीं किया जा सकता है जिस से देश के निर्धन वर्ग को धीरे-धीरे लाभ पहुँचे, यों कि भारत में निर्धनों के मुक़ाबले धनी लोगों की संख्या नगण्य है. सामाजिक तथा राजनैतिक स्थिति की उपेक्षा कर के कोई भी आर्थिक समाधान नहीं किया जा सकता है. ऐसा कह कर श्रीमती गांधी ने राजनीति को उद्योग-व्यापार का एक अनिवार्य अंग बना दिया. उन्होंने नियंत्रण की नीति का बचाव करते हुए कहा कि नियंत्रण न केवल कम साधनों को नियमित करने के लिए लगाया जाता है, बल्कि उपभोक्ताओं की रक्षा के लिए भी नियंत्रण लगाना पड़ता है. उन्होंने उद्योगपतियों से अपील की कि वे

साहू शांतिप्रसाद जैन, हंसराज गुप्त, प्रधानमंत्री गांधी और गूजरमल मोदी : परस्पर आश्वासन

सेना के छँटनीशुदा अधिकारियों और विकलांग जवानों को काम दिलाने में सहयोग करें.

माँग और सुझाव : इस से पूर्व भारतीय वाणिज्य एवं उद्योग मंडल संघ के अध्यक्ष गूजरमल मोदी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में आर्थिक प्रगति के अभियान में संघ की ओर से सरकार को हर प्रकार का सहयोग देने का आश्वासन देते हुए कहा कि मूल्य-नियंत्रण और ऊँचे करों की सरकारी नीति के कारण कुछ उद्योग समुचित विकास नही कर पा रहे है. श्री मोदी ने कृषि के क्षेत्र में हुई प्रगति पर संतोष व्यक्त किया और कहा कि इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना शेष है. उन्होने सुझाव दिया कि आगामी पाँच वर्षो में कम से कम एक तिहाई कृषि-क्षेत्र के लिए सिंचाई की व्यवस्था हो जानी चाहिए. चौथे पंचवर्षीय आयोजन पर अपने विचार व्यक्त करते हुए हुए उन्होने सुझाव दिया कि आयोजन साधनों पर आधारित होना चाहिए और उसे वार्षिक योजनाओं के रूप में क्रियान्वित किया जाना चाहिए. श्री मोदी ने सरकार के इस प्रस्ताव को अव्यावहारिक बताया कि एक करोड़ रुपये से अधिक पूंजी वाली कंपनी और २० करोड रुपये से अधिक पूंजी वाले व्यापार-गृह पर नियंत्रण लगाया जाना चाहिए. उन्होने तर्क दिया कि अमेरिका और ब्रिटेन में कंपनी में लगी पूंजी की अधिकतम सीमाएँ क्रमश: १०० अरब तथा ५० अरब रुपये तक हैं.

बेरोजगारी : श्री मोदी ने देश में दिनों-दिन बढ़ रही बेरोजगारी पर चिंता व्यक्त की और कहा कि इस के लिए बहुत कुछ सरकारी नीतियाँ जिम्मेदार है. उन्होंने उद्योगपतियों से अनुरोध किया कि वे यथासंभव इंजीनियरों और शिल्पियों को अपने उद्योगों में खपायें. श्री मोदी ने कहा कि कृषि-उत्पादन में वृद्धि से ग्रामों में बचत बढ़ाई जा सकती है. आर्थिक समृद्धि के लिए इस बचत को उत्पादन-कार्यो में लगाये जाने की व्यवस्था करना आवश्यक है.

श्री मोदी ने राज्य व्यापार निगम के माध्यम से आयात करने से संबंधित सरकारी प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि हमारी आयात नीति सदैव देशी उत्पादनों के विकास के अनुरूप नही होती है. अतः इस संबंध में अंतिम निर्णय करने से पहले सरकार को उद्योगपतियों से परामर्श कर लेना चाहिए. उन्होंने सरकारी क्षेत्र की भी आलोचना की. पिछली संयुक्त मोर्चा सरकार के ज़माने में पश्चिम बंगाल में हुई घेराव आदि की घटनाओं और हाल में बंबई के उत्पातों पर चिंता प्रगट करते हुए श्री मोदी ने कहा कि इस प्रकार की घटनाएँ औद्योगिक विकास के लिए बाधक हैं. इसी संदर्भ में उन्होंने केंद्र-राज्य संबंधों में बढ़ते हुए तनाव का भी उल्लेख किया और इस प्रकार राजनीति को अर्थ-नीति से संबद्ध किया.

बजट

खेती की हिमायत : कर का विरोध

लोक सभा में बजट पर बहस के दौरान अधिकतर वक्ताओं ने खेती की हिमायत और कृषि-संपत्ति पर लगाये गये कर के विरोध का सिलसिला जारी रखा. वक्ताओं के तर्कों में समानता थी. एक, संसपा के मधु लिमये को छोड़, किसी ने इस संबंध में कोई नया तर्क नहीं दिया. **मधु लिमये** ने अपने ओजस्वी भाषण में, जिस का प्रभाव सरकारी और विरोधी दोनों ही पार्टियों पर समान रूप से पड़ा, कृषि संपत्ति कर का विकल्प पेश किया. उन्होने कहा कि वर्त्तमान कर संसद् की परिधि के बाहर की चीज है और इस से संविधान पर आँच आती है. सरकार को इस संबंध में राज्य सरकारों से बात चीत करनी चाहिए जो कि 'धनी किसानों' के आधिपत्य के कारण उन पर कोई कर लगाने में हिचकिचाती हैं. श्री लिमये ने कहा कि सरकार उर्वरकों पर राजस्व वापस ले ले और राज्यों को इसी अनुपात में अनुदान दे, बदले में राज्य विकास कर या कृषि आय कर तथा कृषि संपत्ति पर कर लगाये. राज्य सरकारों को यह अनुदान इस शर्त पर दिया जाये कि वे उस का और स्वयं अपने कृषि कर का उपयोग, किसानों के फ़ायदे के लिए एक सिंचाई कोष बनाने में इस्तेमाल करेंगी. सामान्य कर ढांचे की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि पिछले बीस वर्षो में दस हजार से पंद्रह हजार रुपये आय वाले समुदाय पर कर १४ से ३० प्रतिशत तक बढ़ा है जब कि तीन लाख रुपयों से ऊपर के आय वाले व्यक्तियों का कर १२ प्रतिशत से भी अधिक घटा है.

स्वतंत्र पार्टी के श्री **र. क. अमीन** ने सरकार पर यह आरोप लगाया कि वह खेती की उपेक्षा कर रही है. उन्होने कहा कि देश के सामने आज प्रश्न यह है कि उसे बोकारो की ज़रूरत है या कि नर्मदा जैसी सिंचाई योजनाओं की ? **प्रो. हुमायुन कबिर** ने भी बोकारो योजना को शक्ति और धन का अपव्यय बताते हुए ग़रीब जनता के लिए और अधिक रोजगार-संभावनाएँ उत्पन्न करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया. उन्होंने कृषि संपत्ति कर पर वित्तमंत्री को बधाई दी. कांग्रेस के श्री **ज. मंडल** ने विभिन्न मंत्रालयों की फ़िज़ूलखर्ची की तीखी आलोचना की और कांग्रेस पार्टी के ही श्री **प्रेमचंद वर्मा** ने वर्त्तमान डाक दरों को छोटे समाचारपत्रों पर भारी बोझ बताया. दक्षिण-पंथी कम्युनिस्ट पार्टी के श्री **भोगेंद्र झा** ने कांग्रेस पर यह आरोप लगाया कि वह पूँजीवाद को बढावा दे रही है और कांग्रेस के श्री **त. द. यादव** ने करघों पर अतिरिक्त कर का विरोध किया. निर्दलीय डा. **सूर्य प्रकाश पुरी** का विचार था कि कृषि संपत्ति कर से अन्न उत्पादन प्रोत्साहित नही होगा. किरासिन, चीनी और पैट्रोल पर लगाये गये करों से जनता का बोझ बढ़ेगा. उन्होने सारे देश के लिए बेरोजगारी बीमा और केंद्रीय स्वास्थ्य योजना की मांग की. निर्दलीय श्री **प्रकाशवीर शास्त्री** ने आग्रह किया कि कर ढांचे को सरल बनाया जाये. उन्होने कहा कि किसानों पर कर लगाते हुए सरकार ने कहा है कि इस से काले धन पर रोक लगेगी. लेकिन सरकार ने यह आश्वासन नही दिया कि सच्चे और वास्तविक किसानो पर कर-भार नहीं लगाया जायेगा.

बजट प्रस्तावों पर हिस्सा लेते हुए मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के श्री **उमानाथ** ने केंद्र पर आरोप लगाया कि उस ने मध्यावधि चुनावों में अपनी पार्टी की पराजय के कारण और बदले की भावना से किसानो और साधारण जनता पर कर लगाया है. श्री उमानाथ ने कहा कि निस्संदेह श्री मोरारजी देसाई असमानता को दूर करना चाहते हैं मगर ग़रीबों और अमीरों की असमानता को नही बल्कि देश के बड़े व्यापारिक संस्थानों के बीच की असमानता को. **श्रीमती निर्लेप कौर** ने ब्रिटेन में भारत के उच्चायुक्त श्री धवन को वापस बुलाने की माँग की और जनसंघ के श्री **कंवरलाल गुप्त** ने वित्तमंत्री पर दावा किया कि उन्होंने किसानों के विरुद्ध जेहाद बोल दिया है. श्री गुप्त ने सरकार को चेतावनी दी कि देश में आर्थिक विपन्नता और विषमता बढ़ती ही जा रही है और अगर इसे दूर नही किया गया तो जनता कम्युनिस्टों के चंगुल में फँस जायेगी और देश में एक हिंसात्मक क्रांति होगी. कांग्रेस पार्टी के श्री **कमलनयन बजाज** ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए स्वस्थ कर नीति निर्धारित करने का आग्रह किया. कांग्रेस पार्टी के ही श्री **विश्वनाथ पांडेय**

ने उपप्रधानमंत्री से आग्रह किया कि उन्हें जनता की राय का सम्मान करते हुए बिजली से चलने वाले पंपों और उर्वरकों को कर से मुक्त करना चाहिए.

बहस के दौरान क्षेत्रीय विषमता के प्रश्न पर भी विचार हुआ. अनेक कांग्रेसी और विरोधी सदस्यों की राय थी कि सरकारी उद्योगों के मामले में दक्षिण भारत के साथ सौतेला व्यवहार किया जाता है. कांग्रेस पार्टी के श्री राजशेखरन और प्रजा समाजवादी पार्टी के श्री लकप्पा ने यह आग्रह किया कि कुछ वर्तमान उद्योगों का विस्तार जैसे टेलीफ़ोन और विद्युत, इस तरह किया जाये कि दक्षिण भारत को इस संबंध में कोई असंतोष न हो. दूसरे शब्दों में ये उद्योग दक्षिण भारत में स्थापित किये जायें.

मोरारजी भाई के बजट पर बहस हो रही हो और उस में मद्य-निषेध की चर्चा न हो ऐसा कैसे हो सकता है. लोक सभा में यही हुआ. कांग्रेस पार्टी की श्रीमती सुचेता कृपालानी ने शिकायत की कि शराब पर कोई नया कर नहीं लगाया गया है. इस का स्पष्टीकरण वित्त-मंत्रालय में राज्य मंत्री श्री प्रकाशचंद्र सेठी को देना पड़ा. उन्होंने बताया कि शराब पर कर लगाने के मामले में अब हद हो चुकी है. विदेशी शराब पर ५३० प्रतिशत राजस्व लगाया जा चुका है और इस के आगे नहीं लगाया जा सकता.

सरकार-संकट

ऊल-जलूल की राजनीति

मध्यप्रदेश के नये मुख्यमंत्री राजा नरेशचंद्र सिंह ने जब भोपाल में घोषणा की कि विधानसभा का बजट अधिवेशन, जिसे ११ मार्च को स्थगित कर दिया गया था, २० मार्च से फिर से शुरू किया जा रहा है, तो प्रदेश के राजनैतिक क्षेत्रों में हल्की-सी राहत महसूस की गयी. प्रदेश की ऊल-जलूल राजनीति के ये कुछ दिन दहशत के दिन साबित हो रहे हैं क्यों कि संयुक्त विधायक दल और कांग्रेस दोनों पक्षों से परस्पर-विरोधी और स्फीत दावे किये जा रहे हैं. गोपाल की राजनीति को भँवर में छोड़ कर संयुक्त विधायक दल के नये मुख्यमंत्री राजा नरेशचंद्र सिंह और दल की नेता राजमाता सिंधिया तथा प्रदेश कांग्रेस विधायक दल के नेता श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र की नयी दिल्ली यात्रा और केंद्रीय नेताओं से उन की बातचीत ऊल-जलूल की राजनीति के इस संदर्भ में सहज ही महत्वपूर्ण हो उठते हैं. राजनैतिक अटकलबाज़ों के एक अखाड़े का मत है कि संयुक्त विधायक दल के नेता इधर हाल में भारी पैमाने पर हुए दल-परिवर्तन की भयावहता से आँखें चार करने से कतरा रहे हैं और केंद्रीय नेताओं से या तो कोई सौदा पटा रहे हैं या फिर उन से बीच-बचाव का रास्ता निकालने का आग्रह कर रहे हैं. इस के विपरीत, प्रदेश कांग्रेस के मठाधीश श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र को पूरा विश्वास है कि उन की पार्टी संयुक्त सरकार बनाने की स्थिति में हो गयी है. २९६ सदस्यों के सदन में कांग्रेस पार्टी के सदस्यों की संख्या १४२ है और श्री मिश्र को विश्वास है कि प्रगतिशील ग्रुप के २२ सदस्यों की मदद से उन की पार्टी सरकार बना सकती है. जब कुछ संवाददाताओं ने श्री मिश्र से जानना चाहा कि क्या उन की पार्टी संयुक्त विधायक दल के साथ भी कोई समझदारी विकसित कर सकती है तो उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया. केंद्रीय नेताओं के सामने यह प्रश्न भी है कि यदि मध्यप्रदेश में संयुक्त विधायक दल की सरकार का पतन हो जाता है और कांग्रेस सरकार बनने की स्थिति में आ जाती है तो दल का नेता कौन होगा. सामान्य स्थिति में श्री द्वारका प्रसाद मिश्र को दल का नेता बनाने में केंद्रीय नेताओं को कोई आपत्ति नहीं होती लेकिन श्री मिश्र के खिलाफ़ अदालत के फ़ैसले को ध्यान में रखते हुए उन्हें स्थिति कुछ असामान्य लगती है. जहाँ तक श्री मिश्र का सवाल है, वह यह नहीं मानते कि अदालत के फ़ैसले का उन के नेता चुने जाने पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है क्यों कि उन्हें अभी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा है.

विचार-स्वतंत्रता

क्या कविता का संपादन नौकरशाह करेंगे?

आकाशवाणी पर कलाकृतियों के 'सेंसर' और संपादन को ले कर संसद् के दोनों सदनों में बहस के बाद सूचनामंत्री सत्यनारायण सिंह ने यह घोषणा की कि भविष्य में आकाशवाणी पर कवियों की इच्छा के विरुद्ध उन की कविताओं का संपादन नहीं किया जायेगा. उन्होंने लोकसभा में यह भी घोषणा की कि आइंदा किसी भी काव्य-समारोह की रेडियो रिपोर्ट तभी प्रसारित की जायेगी जब कि समारोह के आयोजक आकाशवाणी को यह आश्वासन देंगे कि आकाशवाणी द्वारा किये गये संपादन पर कवियों को आपत्ति नहीं होगी. एक अन्य प्रश्न के उत्तर में उन्होंने आश्वासन दिया कि आकाशवाणी की नीति कविता को 'सेंसर' करने की नहीं है और इस संबंध में निर्देश जारी किये जायेंगे.

लेखकों का विरोध : सूचनामंत्री को यह सारा स्पष्टीकरण आकाशवाणी द्वारा प्रसारित एक विवरण को ले कर देना पड़ा. १६ फ़रवरी को 'ग़ालिब शताब्दी समारोह' के अंतर्गत सप्रू हाउस में हिंदी कवियों का एक कवि-सम्मेलन आयोजित किया गया था. १७ फ़रवरी को आकाशवाणी ने उस कार्यक्रम को रेकार्ड कर लगभग एक घंटे भर तक प्रसारित किया. प्रसारित कार्यक्रम में श्रीकांत वर्मा की कविता 'समाधि लेख' के कतिपय अंशों को काट दिया गया था. इसे लेखक की स्वतंत्रता पर आघात क़रार देते हुए प्रस्तुत कविता के कवि ने आकाशवाणी के महानिदेशक को अपना विरोधपत्र भेजा जिस में कहा गया था कि एक तो आकाशवाणी ने मेरी इजाज़त के बिना मेरी कविता प्रसारित कर कापीराइट भंग किया है दूसरे कविता को काट-छाँट कर प्रसारित कर उस के अर्थ को विकृत किया और इस तरह मुझे अप्रतिष्ठित किया है. दिल्ली के लेखकों की एक बैठक में आकाशवाणी के इस कृत्य की निंदा की गयी और एक प्रस्ताव के ज़रिये कहा गया कि आकाशवाणी को किसी भी कविता या कलाकृति के संपादन की सुविधा नहीं दी जा सकती. अगर यह प्रवृत्ति बढ़ी तो अंततः रचनाकार के रचना की स्वतंत्रता पूरी तरह छिन जायेगी.

कविता और लोकतंत्र : ११ मार्च को राज्यसभा में एक अल्प सूचना प्रश्न के ज़रिये **श्री राजनारायण** ने अभिव्यक्ति की स्वाधीनता के इस सवाल को उस के सभी पहलुओं के साथ उठाया. हल्ले-गुल्ले और हंगामे के बीच श्री राजनारायण ने आरोप लगाया कि क्यों कि श्रीकांत वर्मा और कैलाश वाजपेयी की कविताओं में लोकतंत्र की वर्तमान स्थिति और व्यवस्था की आलोचना थी इस लिए उन्हें 'सेंसर' किया गया. उन्होंने, सदन में, काटे गये अंशों को पढ़ कर सुनाया जो इस प्रकार हैं:

'कुछ लोग मूर्तियाँ बना कर
फिर बेचेंगे क्रांति की (अथवा
षड्यंत्र की)
कुछ और लोग सारा समय
कसमें खायेंगे लोकतंत्र की

—श्रीकांत वर्मा

'जहाँ कहीं छोड़ी थी तुम ने दिल्ली, ग़ालिब,
दस क़दम आगे है अब तबाही में
रोज़ इस शहर में नया हुक्म होता है
जैसा कुछ था अठारह सौ सत्तावन में
अब वैसा रोज़-रोज़ होता है.'
—कैलाश वाजपेयी

कॉपीराइट : जवाब में सूचनामंत्री ने कहा कि रेडियो रिपोर्ट के अंतर्गत कविताओं को पूरा प्रसारित करना संभव नहीं था—आकाशवाणी ने कविताओं के केवल उद्धरण प्रसारित किये. इस पर श्री राजनारायण ने कहा कि जब अधिकतर कविताओं को पूरा का पूरा प्रसारित किया गया तब इन्हीं कविताओं को और उन के इन्हीं अंशों को क्यों काटा गया ? इस के अतिरिक्त आकाशवाणी ने इन कविताओं का कॉपी राइट भी भंग किया है. श्री राजनारायण ने आरोप लगाया कि श्रीकांत वर्मा प्रगतिशील विचारों के कवि हैं इस लिए आकाशवाणी ने उन की उन पंक्तियों को 'सेंसर' कर दिया जो कि सरकारी व्यवस्था को बर्दाश्त नहीं हो सकती थीं. श्री सत्यनारायण सिंह के यह कहने पर कि हम राष्ट्रपति के भाषण को भी संपादित कर प्रसारित करते हैं, सदन में हंगामा हुआ. **प्रजा समाजवादी पार्टी के श्री बंका विहारी दास और संसपा के श्री गौड़े मुराहरि ने कहा कि भाषण और कविता में बुनियादी फ़र्क है.** श्री सत्यनारायण सिंह अंत तक यह कहते रहे कि इन कविताओं को काटने में आकाशवाणी की कोई बुरी नीयत नहीं थी; पर श्री राजनारायण ने अपना यह दावा नहीं छोड़ा कि कविता को केवल समग्र रूप में देखा जा सकता है. उस की रेडियो रिपोर्ट नहीं हो सकती. अध्यक्ष श्री वी. वी. गिरि ने कहा कि श्री राजनारायण ने काटे गये अंशों को प्रसारित कर डाला है अत: अब यह मामला यहीं समाप्त किया जाये.

भाषण और कविता : १३ मार्च को लोक सभा में यह बहस सुनने के लिए अनेक कवि और लेखक उपस्थित थे. श्री मधु लिमये और जार्ज फ़र्नांडीज़ ने सरकार पर आरोप लगाया कि कविताओं को राजनैतिक कारणों से सेंसर किया गया और अब समयाभाव की आड़ ली जा रही है. **श्री मधु लिमये** ने सूचनामंत्री पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने यह ग़लत कहा है कि केवल लंबी कविताओं में काट-छाँट की गयी है. सचाई यह है कि संपादित कविताओं से अधिक लंबी कविताएँ प्रसारित की गयीं—उन के साथ कोई छेड़-छाड़ नहीं की गयी. केवल इन कविताओं को काटा गया क्यों कि इन में सरकार के प्रति कटाक्ष था. श्री मधु लिमये ने कहा कि अगर सदन चाहे तो मैं काटी गयी कविताओं को पढ़ कर सुना सकता हूँ. इस से पता चल जायेगा कि ये कितने मिनट की थीं. श्री मधु लिमये ने काटे गये अंशों को सदन में पढ़ कर सुनाया और कहा कि यह विडंबना है कि लोकतंत्र में कलाकृतियों का निषेध किया जा रहा है. जब श्री सत्यनारायण सिंह ने यह कहा कि आकाशवाणी को संपादन का अधिकार आज से नहीं आरंभ से है, तब सदन में हंगामा हुआ. विरोधी पार्टियों के अनेक सदस्यों ने कहा कि यह परंपरा गलत है और इसे बदला जाना चाहिए. **सूचनामंत्री के यह कहने पर कि समाचार पत्र के संवाददाता की तरह आकाशवाणी के प्रतिनिधि को भी इस बात का अधिकार है कि वह किस अंश को ले और किस को न ले, मधु लिमये ने कहा कि भाषण और कविता में बहुत फ़र्क है. भाषण को तो बिल्कुल ही प्रसारित नहीं करना चाहिए—यह अलग बात है कि आकाशवाणी मंत्रियों के भाषण दिन-रात प्रसारित करती रहती है. श्री लिमये ने पूछा कि क्या मंत्री महोदय सदन को यह आश्वासन देंगे कि उन के कार्यकाल में कवियों और लेखकों की रचनाओं में काट-छाँट नहीं होगी और लेखकों की स्वाधीनता पर आघात नहीं किया जायेगा ?**

रिले और रिपोर्ट : जब श्री सत्यनारायण सिंह ने रिले और रिपोर्ट का अंतर बताना चाहा तब **श्री जार्ज फ़र्नांडीज़** ने कहा कि यह फ़र्क हम लोग भी समझते हैं, लेकिन हम **यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि इस काट-छाँट में ऐसी ही पंक्तियाँ क्यों संपादित की गयीं जिन में आप लोगों के ऊपर या आप की व्यवस्था पर आक्षेप थे ?** सचाई यह है कि उन्हीं पंक्तियों को हटाया गया जिन से कि सरकार को तकलीफ़ होती है. अन्यथा इसी कार्यक्रम में कई लंबी-लंबी कविताएँ पूरी प्रसारित की गयीं. श्री जार्ज फ़र्नांडीज़ ने कहा कि राष्ट्रपति के भाषण या मोरारजी भाई अथवा श्रीमती इंदिरा गांधी के भाषण के साथ आप जो भी सलूक करें, कॉपी राइट क़ानून के अनुसार किसी भी कवि की रचना को छह पंक्तियों से ज्यादा लेने के लिए आप को उस की अनुमति की ज़रूरत है. श्री सत्य नारायण सिंह ने स्पष्ट करना चाहा कि सरकार ने इस संबंध में विधि मंत्रालय से परामर्श किया है और यह क़ानून रेडियो रिपोर्ट पर लागू नहीं होता.

कवि-कर्म : संसद के इतिहास में पहली बार कला और कविता के मूल्यों को ले कर एक बहस हो रही थी. इस बहस में सभी पार्टियों के सदस्यों ने उत्सुकता दिखायी. प्रजा समाजवादी पार्टी के **श्री नाथ पै** ने कला के बुनियादी अधिकारों संबंधी प्रश्न को उठाते हुए कहा कि सवाल यह नहीं है कि किस को कितना समय मिला और किस की कितनी पंक्तियाँ प्रसारित की गयीं. सवाल यह है कि क्या कलाकृतियों को सेंसर करने का अधिकार नौकरशाहों को दिया जा सकता है ? वास्तव में यह कला का प्रश्न है. **अगर नौकरशाह बैठ कर यह तय करने लगेंगे कि कवि को क्या लिखना चाहिए और क्या नहीं तो बहुत बड़ा खतरा पैदा हो जायेगा.** अध्यक्ष महोदय आप जानते हैं कि जिन पंक्तियों को काटा गया उन में सरकार की हल्की सी आलोचना थी. **अगर कवियों को उन के कवि-कर्म से रोका गया तो, मैं सोचता हूं, हमें अभी और यहीं यह घोषणा कर देनी चाहिए कि आज से भारत में कवियों का जन्म न हो.** हमारे और परम शक्तिशाली मंत्रियों के भाषण कालांतर में भुला दिये जायेंगे और रद्दी के टोकरे में फेंक दिये जायेंगे लेकिन कवि और कलाकार आज जिस चीज़ की रचना कर रहे हैं उसे भावी पीढ़ी स्मरण रखेगी. आकाशवाणी को किसी कविता को अस्वीकार करने का अधिकार है लेकिन कविता में संशोधन या परिवर्तन कर उस के मूल अर्थ और चेतना को नष्ट करने का अधिकार उसे नहीं. प्रजा समाजवादी पार्टी के **श्री हेम बरुआ** ने भी इस दावे को दुहराया कि कविता के संपादन का अधिकार नौकरशाहों को नहीं दिया जा सकता. उन्होंने कहा कि एक बार मैं ने एक कविता पढ़ी जिस का शीर्षक था 'आशावाद : एक कविता जो पूरी नहीं हो सकी' इस पर आकाशवाणी ने आपत्ति की कि यह कविता 'अधूरी' है. निर्दलीय **श्री स० म० बैनर्जी** ने कहा कि अगर आज मिर्ज़ा असदुल्ला ख़ाँ ग़ालिब ज़िंदा होते और यह जवाब सुनते तो वह कहते कि 'हम को उन से वफ़ा की है उम्मीद, जो नहीं जानते वफ़ा क्या है !' सूचना तथा प्रसारण-मंत्री ने बहस के दौरान सदन को यह आश्वासन दिया कि आकाशवाणी कवियों की स्वतंत्रता पर आघात नहीं करेगी. लेकिन इस के साथ ही साथ उन्होंने यह ज़िम्मेदारी कवियों पर सौंप दी कि वे अपनी आज़ादी की रक्षा करें. उन्होंने कहा कि मैं ने इस संबंध में आकाशवाणी के महानिदेशक से बातचीत की है और यह निश्चय किया है कि जो लोग कविता पढ़ना चाहते हैं अगर वे यह मांग करते हैं कि जब तक उन की कविता पूरी प्रसारित नहीं की जायेगी तब तक वे कविता प्रसारित नहीं करेंगे तो उन की कविता को प्रसारित नहीं किया जायेगा. दूसरे शब्दों में केवल वे ही कविताएँ प्रसारित की जायेंगी जिन के रचयिता संपादन का अधिकार आकाशवाणी को सौंपने को तैयार होंगे.

राजनारायण : 'निज कवित्त केहि लाग न नीका'

स्मृति

हिंद-पाक एका

मई १९४७ में कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक में देश के बँटवारे की माउंटबेटन योजना पर विचार करने के लिए (जिस पर श्री जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभ भाई पटेल पहले ही अपनी स्वीकृति दे चुके थे) गांधी जी भी उपस्थित थे. राम मनोहर लोहिया भी निमंत्रित थे. गांधी जी ने सुझाव दिया कि कार्यकारिणी बँटवारे की योजना को स्वीकार करे, लेकिन कहे कि अंग्रेज पहले चले जायें, हम खुद ही योजना पर अमल कर लेंगे. यह एक बढ़िया सुझाव था, जिस से नेताओं की बात भी रह जाती और बँटवारा भी न होता. लेकिन कार्यकारिणी ने नहीं माना, बल्कि ज़्यादातर सदस्य झुंझलाये. फिर मूल प्रस्ताव आया, जो शायद श्री नेहरू ने तैयार किया था. लोहिया ने एक वाक्य जोड़ने का उस में एक संशोधन रखा : **'भूगोल, पहाड़ों और समुद्र ने हिंदुस्तान को जैसा है वैसा बनाया है और कोई मानवीय ताक़त उस शक्ल को बदल नहीं सकती या उस के भाग्य को पलट नहीं सकती. हिंदुस्तान की वह तस्वीर, जिसे हम ने पूजना सीखा, हमारे दिलों और दिमाग़ों में रहेगी... दो राष्ट्रों के नकली सिद्धांत का सभी लोग तिरस्कार करेंगे.'**

बँटवारे के ग्यारह साल बाद मौलाना आज़ाद की पुस्तक 'इंडिया विन्स फ़्रीडम' की चर्चा करते हुए लोहिया ने कांग्रेस कार्यकारिणी की उस बैठक का विवरण दिया और खुद अपने लिए लिखा कि मेरे जैसे व्यक्ति को कम से कम बँटवारे के दिन जेल में होना चाहिए था. बँटवारे का सक्रिय विरोध न करना बड़ी भूल थी. इस भूल का एक कारण गांधी जी थे. १९४६-४७ में समूचे उत्तर भारत में सांप्रदायिकता की आग लगी थी, खास तौर से बंगाल, पंजाब और दिल्ली में. जहाँ आग लगती, गांधी जी उसे बुझाने पहुँचते. लोहिया ज़्यादातर उन के साथ रहे—नोआखाली, कलकत्ता और फिर दिल्ली में. दिल्ली में शरणार्थियों की सहायता और पुनर्वास के काम की ज़िम्मेदारी गांधी जी ने लोहिया को दी थी. उस में लगे हुए ही लोहिया ने दिल्ली की एक सभा में कहा कि पाकिस्तान पाँच सालों में खत्म हो सकता है, तीन रास्ते हैं : मुसलमान पाकिस्तान को और मुस्लिम लीग के नेतृत्व को अस्वीकार कर दें; पाकिस्तान के नेता अपनी भूल समझ कर एक होने को राज़ी हो जायें या युद्ध. इस भाषण पर श्री जिन्ना ने एक अखबारी वक्तव्य में काफ़ी नाराज़ी प्रकट की थी. लोहिया ने अपने भाषण में यह भी कहा था कि अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों की पूरी रक्षा करनी चाहिए. इस के एक महीने बाद नवंबर १९४७ में लोहिया ने कलकत्ता के समाजवादियों को एक चिट्ठी भेजी, जिस में उन्होंने लिखा कि पाकिस्तान के लोग अपनी ग़लती महसूस करें, यह संभावना बंगाल में अधिक है. किसी भी हालत में, चाहे समझौता हो या युद्ध, पाकिस्तान ज़रूर खत्म होगा. लेकिन भारतीय संघ में हिंदू गुंडों द्वारा एक भी मुसलमान का मारा जाना विनाशकारी होगा.

जोड़ने की बातें : तब गांधी जी जीवित थे. गांधी जी ने खुद उन्हीं दिनों लिखा था, 'अब तो यह भी तय हो गया है कि हम सब दोनों हिस्सों के शहरी हैं.' मौलाना आज़ाद की पुस्तक की चर्चा करते हुए लोहिया ने यह भी लिखा ('भारत विभाजन के अपराधी') कि गांधी जी की हत्या के बाद उन्होंने पाकिस्तान के खत्म होने की सार्वजनिक भविष्यवाणी करना बंद कर दिया था. शायद इस लिए कि देश की राजनीति में अनुकूल शक्ति का निर्माण किये बग़ैर यह चर्चा निरर्थक थी. अतः १९५८ में जब उन्होंने यह चर्चा फिर उठाई तो भविष्यवाणी नहीं की, बल्कि एक नीति रखी. खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ के पख्तूनिस्तान आंदोलन के समर्थन और कश्मीर के मामले को भारत-पाक महासंघ द्वारा देश का बँटवारा खत्म करने की नीति का अंग बनाने का सुझाव दिया. १९६३ में जब लोहिया लोकसभा के सदस्य चुने गये तो अपने पहले महत्त्वपूर्ण भाषण में उन्होंने जहाँ देश के साठ सैकड़ा लोगों की आमदनी तीन आने रोज़ होने की तरफ़ ध्यान खींचा, वहीं लोकसभा से यह भी अपील की कि भारत-पाक महासंघ की बात सोचे, सपना देखे. 'जब सपना देखा था, तभी अंग्रेज़ी राज खत्म हुआ और किसी ने बुरा सपना देखा था, तभी तो मुल्क का बँटवारा हुआ. अगर अच्छा सपना देखो तो शायद जोड़ की बात शुरू हो.'

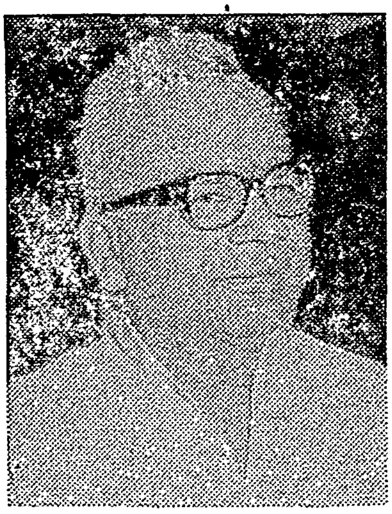

२३ मार्च : जन्म जयंती

१९६५ में जब पाकिस्तान ने कच्छ पर आक्रमण किया तो लोहिया ने भारत-पाक एका को अपने कार्यक्रम का प्रमुख मुद्दा बनाया और उस के तीन अंग रखे : (१) सीमा की सुरक्षा : भारत सरकार कच्छ का कोई इलाक़ा पाकिस्तान को न सौंपे, इस के लिए उन्होंने स्वयंसेवक भर्ती किये जो कच्छ में जा कर सत्याग्रह करें. (२) हिंदू-मुस्लिम एका : लोहिया ने कहा कि हर हिंदू अपने को आधा मुसलमान समझे और हर मुसलमान अपने को आधा हिंदू, अपनी जान दे कर या दूसरे हिंदू की जान ले कर भी मुसलमान की जान बचाये. (३) भारत-पाकिस्तान का महासंघ बने, चाहे समझौते से चाहे युद्ध से. लोकसभा में लोहिया ने कहा कि इतिहास प्यार से भी बनता है, तलवार से भी, लेकिन अक्सर दोनों को मिला-जुला कर.

अगस्त-सितंबर १९६५ के भारत-पाकिस्तान संघर्ष के बाद लोहिया ने अपने आंदोलन को और तेज़ किया. लखनऊ, दिल्ली और अन्य केंद्रों में भारत-पाक एका सम्मेलन हुए जिन में हिंदुओं ने मुसलमानों के साथ भोजन किया, एक-दूसरे को राखी बाँधी और विभाजन समाप्त करने के प्रस्ताव स्वीकार किये. लखनऊ में हुए भारत-पाक एका सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री से यह माँग भी की गयी कि ताशकंद वार्त्ता में वह मार्शल अय्यूब से भारत-पाक महासंघ बनाने के आधार पर बातचीत करें. श्री शास्त्री के ताशकंद जाने के पहले लोकसभा में लोहिया ने भी यह माँग दोहरायी और श्री शास्त्री ने इस सुझाव के लिए लोहिया को धन्यवाद भी दिया. ताशकंद में ही श्री शास्त्री की मृत्यु के कारण यह चीज़ छिपी ही रह गयी कि वहाँ पर्दे के पीछे क्या हुआ, लेकिन ताशकंद समझौते में केवल एक ही संकेत था—भारत-पाकिस्तान के ६० करोड़ लोगों की चर्चा का.

दिनमान

दिनमान का एक अंक पढ़ने में उतना भी समय नहीं लगता जितने उस में पृष्ठ हैं.

हमारी कोशिश होती है कि आप दिनमान पढ़ें और पढ़ कर कुछ समय सोचने को भी दें.

जिन से हर मनुष्य जाने-अनजाने बंधा है, सारी दुनिया के उन विषयों पर आप विचार करें दिनमान का मन जान कर.

दिनमान का एक अंक पत्र भी है, पुस्तक भी. आज पढ़िए और कल के लिए सम्हाल कर रखिए.

अन्यथा समझौता पहले की ही स्थिति को क़ायम रखने वाला था.

एकता की समस्या : १९६५-६६ में लोहिया ने काफ़ी विस्तार के साथ देश के बँटवारे और बाद की स्थितियों के बारे में लिखा और कहा. उन्होंने इस ओर ध्यान खींचा कि जिन इलाक़ों को ले कर पाकिस्तान बना, वहाँ के मुसलमान बँटवारे के लिए बहुत उत्सुक नहीं थे. पाकिस्तान की माँग को समर्थन उन इलाक़ों में अधिक मिला था जहाँ मुसलमान अल्पसंख्यक थे. वे अब भी भारत में हैं और यह महसूस करने लगे हैं कि देश के बँटवारे से उन्हें कोई फ़ायदा नहीं हुआ. लोहिया ने याद दिलाया कि श्री जिन्ना ने कभी इस की परवाह नहीं की थी कि हिंदू क्या चाहते हैं . इस लिए पाकिस्तान क्या चाहता है, इस की चिंता नहीं करनी चाहिए. 'सवाल यह है कि हिंदुओं की निष्क्रिय तंग-दिमाग़ी में कितना परिवर्त्तन हुआ है, या हो सकता है' क्यों कि 'भारत में हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे के जितने नज़दीक आयेंगे, पाकिस्तान की आखिरी घड़ी भी उतनी ही नज़दीक आयेगी.' लोहिया ने इस ओर भी ध्यान खींचा कि पाकिस्तान में पाँच अल्पसंख्यक समूह हैं जिन में असंतोष बढ़ रहा है—सिंधी, बलूची, पठान, बंगाली और भारत से गये शरणार्थी. बंगालियों में क़रीब एक करोड़ हिंदू भी हैं. 'अगर भारत में मुसलमानों का जीवन, उन की संपत्ति और प्रतिष्ठा उतनी ही सुरक्षित रहे जितनी हिंदुओं की, तो यह अनिवार्य है कि पाकिस्तान टूटेगा.'

लोहिया ने १९६६ में कहा था कि भारत-पाक एका के मार्ग में तीन बड़ी बाधाएँ हैं : १—पाकिस्तान का शासक वर्ग, जिस का स्वार्थ बँटवारा क़ायम रखने से जुड़ा है. २—कांग्रेस पार्टी, जो एका के परिणामों से डरती है कि उस का प्रभुत्व खत्म ही जायेगा और ३—हिंदुओं और मुसलमानों के दिमाग़ अभी काफ़ी हिले नहीं हैं.

इन में से दो बाधाएँ टूटने की प्रतीक्षा में हैं. भारत में कांग्रेस का एकछत्र शासन नहीं रह गया, बल्कि वह कमज़ोर ही पड़ता जा रहा है. पाकिस्तान में जन-विद्रोह के आगे शासक वर्ग को झुकना पड़ा है. लेकिन तीसरा काम—हिंदुओं और मुसलमानों के दिमाग़ को हिलाने का—कहाँ तक हो रहा है ?

लोहिया होते तो निश्चय ही करते. उन की पहली बरसी पर भोपाल में एक हिंद-पाक महासंघ सम्मेलन भी हुआ था, जिसे हिंदू-मुसलमान दोनों का व्यापक समर्थन मिला. भोपाल और ग्वालियर के राजघरानों का समर्थन उतना महत्त्वपूर्ण नहीं था, जितना भोपाल के बीस-पच्चीस हज़ार नागरिकों का. यह अपेक्षा करनी चाहिए कि अब, जब पाकिस्तान में लोकतांत्रिक शक्तियाँ विजयी हो रही हैं, यह आंदोलन व्यापक और सक्रिय होगा.

संपादकीय

पाकिस्तान और हम

पाकिस्तान में बहुत तेज़ी से परिवर्त्तन हो रहा है : इतनी तेज़ी से कि अब वहाँ की घटनाओं को एक टेढ़े पड़ोसी के घरेलू झगड़े के रूप में देखते रहना असंभव हो गया है. सिर्फ़ इतना ही नहीं कि भारत के पूर्व और पश्चिम दोनों सीमांतों पर बसे होने के कारण पाकिस्तान में राज्यतंत्र का नया रूप भारत की सुरक्षा पर असर डालेगा बल्कि यह भी कि उस की अपनी लड़ाइयाँ भारत में जन-शक्तियों की लड़ाइयों पर असर डालेंगी. बार-बार उस घर की पहेलियाँ हमें अपने गोरखधंधों की याद दिलाती हैं और दीखने लगता है कि दोनों देशों को जन-प्रतिनिधित्व और भाषा के मामले में एक नक़ली बँटवारे की लादी ढोनी पड़ी है. पूर्व पाकिस्तान की भाषा और जनसंख्या को कृत्रिम पाकिस्तान राज्यतंत्र में तब तक वास्तविक स्वत्व नहीं मिल सकता जब तक कि पश्चिम पाकिस्तान का पूर्व पाकिस्तान से सांस्कृतिक एकीकरण नहीं होता और यह एकीकरण न हो पाने की आशंका ही अधिक प्रकट है क्यों कि ऐसा एकीकरण निरे मतवाद अथवा धर्म के आधार पर नहीं, भौगोलिक और ऐतिहासिक आधार पर ही हो सकता है और विभाजन भूगोल और इतिहास दोनों को ज़बरदस्ती तोड़-मरोड़ चुका है.

जो स्वाभाविक और साथ ही सामुदायिक दृष्टि से जन-हितकारी हो सकता है वह भारत और पाकिस्तान दोनों देशों की सरकारें बँटवारे के आधार पर खड़ी होने के कारण नहीं करना चाहतीं. उदाहरण के लिए पूर्व पाकिस्तान के लोगों का सहज उन्मेष पश्चिम पाकिस्तान इस लिए नहीं होने देता कि उस से हिंदुस्तान के पश्चिम बंगाल से नैकट्य अनिवार्य होगा और होने दे तो भी कहा नहीं जा सकता कि वैसा नैकट्य भारत में केंद्र के यथास्थितिवादी सत्तारूढ़ दल के लिए अर्थवान होगा या नहीं. अपने जन-विमुख चरित्र के कारण वह दल पश्चिम बंगाल में जनतंत्र को झूठे जनतंत्रवादियों के हाथ सौंप बैठा है. यह एक और कारण है जिस से कि भाषा, संस्कृति और आर्थिक विकास की स्वाभाविक प्रक्रियाओं को बढ़ाने से उसे भय होता है. दोनों देशों की सरकारें काले साहबों की अंग्रेज़ी से चिपकी रह कर बहरों की तरह समझती और गूँगों की तरह बोलती हैं और निज भाषा से राष्ट्रोदय की जोखिम भरी प्रक्रिया नही चलाना चाहतीं. दोनों देशों की सरकारें अपने-अपने लोगों को एक-दूसरे के प्रति शंकालु रहने का कर्त्तव्य बार-बार याद दिलाती रहती हैं और उन की भौगोलिक-ऐतिहासिक एकता को ज़बरदस्ती झुठलाये चली जाती हैं. परिणामत: बड़े पैमाने पर दोनों खंडित भूखंडों के जन-तत्वों को जोड़ने का कोई प्रयत्न नहीं होता, निरे विवाद निपटाने के प्रयत्न होते रहते हैं. ये जितने विवाद अब तक खड़े किये गये हैं सब अभी तक खड़े हुए हैं तो इसी लिए कि उन्हें एक समग्र भौगोलिक-ऐतिहासिक इकाई के मिथ्या विभाजन के आधार पर खड़ा किया गया है.

विभाजन के बाद धार्मिक राज्य और लौकिक राज्य बनाने के जो दोनों प्रयोग दोनों देशों में हुए वे दोनों ही मूलत: अपूर्ण रहे हैं, सतही सफलताएँ चाहे उन्हें मिली हों. यह लक्ष्य करना चाहिए कि भारत में रहने वाले जिन लोगों ने धर्म के आधार पर पाकिस्तान बनाने में सब से अधिक योग दिया था उन्हें आज पाकिस्तान में अपने ही धर्म वालों के साथ आर्थिक जीवन में पूरा हिस्सा नहीं मिल रहा है. इधर विभाजन के बाद भारत में लौकिक राज्य बनाने की घोषणाएँ जिन्होंने की थी वे अभी तक दोनों के लिए समान प्रगतिशील सामाजिक क़ानून बनाने का एक भी प्रमाण नहीं दे सके हैं और धर्म के ही आधार पर दोनों में भेद किये चले जाते हैं.

भारत और पाकिस्तान में परिवर्त्तन की आकांक्षाएँ भी बहुत कुछ एक-सी हैं. पाकिस्तान में लोग वोट का हक़ माँग रहे हैं तो हिंदुस्तान में वोट का अधिकार रहने पर भी जन-आकांक्षा का पूर्ण प्रतिनिधित्व न होने की घुटन है. सर्वोच्च नेतृत्व दोनों देशों में संकट में है क्यों कि दोनों ने अपने-अपने तरीक़ों से अपने को पंगु बना लिया है. दोनों का श्रेष्ठिवर्ग नयी पीढ़ी के छात्रों और शिक्षकों को समाज की व्यापक प्रगति में हिस्सेदार न बना कर एक जड़ और दिशाहीन राज्यतंत्र का मूक समर्थक बनाये रखना चाहता है.

इन समतुल्य स्थितियों के मूल में शायद एक बड़ा कारण यह भी है कि जब से पश्चिमी शक्तियों ने भारतीय इतिहास के विघटनकारी तत्वों को बढ़ावा दे कर इस भूखंड को विभाजित किया तभी से दोनों खंड अंतरराष्ट्रीय राजनीति के मामले में किसी स्वतंत्र ऐतिहासिक भूमिका का स्वप्न छोड़ कर एशिया में बड़ी शक्तियों के खिलौने बन गये. भारत ने विशेष रूप से एशियाई देशों के प्रति अपने सोच में आगे बढ़ कर पहल करने का कोई साहस नहीं किया. पाकिस्तान ने जितनी भी पहल की वह भारत से झगड़ा बनाये रखने के लिए की. आज दोनों देश आंतरिक परिवर्त्तन की उथल-पुथल से गुज़रते हुए अगर देख सकें कि कम-से-कम अब एशिया में पहल करने का एक नया अवसर उन्हें मिल रहा है तो दोनों के इतिहास में नया मोड़ आ सकता है. आज भी अगर इस जोखिम भरे अवसर के अनुरूप साहस नहीं जुटाया गया तो शायद यह अंतिम अवसर होगा और फिर दोनों देशों की सरकारें अपने लोगों को एशिया में बड़ी शक्तियों के निपट गुलाम बनते देखते रहने से कुछ अधिक विशेष नहीं कर पायेंगी.

प्रदेश

मध्यप्रदेश

शपथ-यात्रा से पहले

१० मार्च को संविद की साधारण सभा में गोविंद नारायण सिंह का त्यागपत्र उपस्थित लोगों को एकदम अप्रत्याशित नहीं लगा. यह पहले से ही स्पष्ट था कि वह अपने पद पर नहीं रहेंगे. इस की शुरूआत तो पिछले नवंबर में ही हो गयी थी जब उन्होंने २० मंत्रियों के त्याग-पत्र स्वीकार कर लिये थे और जब पिछले नव-वर्ष के दिन उन्होंने उन में से चार को छोड़ कर शेष को पुनः मंत्रिमंडल में वापस ले लिया और उन के विभागों में परिवर्तन कर कुछ मंत्रियों के 'दाँत तोड़ दिये'. उसी वक़्त यह स्पष्ट हो गया था कि ताश का यह महल जल्द ही ढहने वाला है. उन के अपने मंत्रियों में असंतोष था और बाहर के कुछ उन लोगों का धैर्य भी टूट गया था जिन्हें श्री सिंह ने मंत्री बनाने के प्रलोभन में संविद में रोक रखा था. राजा नरेशचंद्र के प्रकरण को ले कर राजमाता भी उन से नाराज़ थीं. उन्होंने खुद भी कई बार राजमाता के प्रति उपेक्षा का परिचय दिया था. ८ मार्च को वह ग्वालियर में थे लेकिन राजमाता के बुलाने पर भी वह उन से मिलने नहीं गये. कुछ दिनों पहले रामेश्वर शर्मा ने उन पर रोंगटे खड़े कर देने वाले आरोप लगाये थे. ७-८ मार्च को संविद के एक अन्य विधायक यज्ञदत्त शर्मा ने संकेत दिया कि अगर १० मार्च को श्री सिंह स्वयं मुख्यमंत्री पद से इस्तीफ़ा नहीं देते तो उन्हें जबर्दस्ती उस पद से हटा दिया जायेगा. लोगों का कहना है कि सारी बातें राजमाता के इशारे पर हुई.

दस मिनट की बैठक : १० मार्च की रात की बैठक १० मिनट भी नहीं चली. इतने ही समय में श्री सिंह ने त्यागपत्र की घोषणा की और वह बैठक में स्वीकृत भी हो गया. उन्हीं के प्रस्ताव पर राजा नरेशचंद्र सिंह को, जो कि इस वक़्त विधायक भी नहीं हैं, मुख्यमंत्री भी चुन लिया गया. उस के बाद वह राजमाता, उप-मुख्यमंत्री सकलेचा और संसपा के नेता चिनपुरिया के साथ राज्यपाल के पास त्यागपत्र देने पहुँचे किंतु उस समय राज्यपाल सो रहे थे. राज्यपाल की नींद कुछ आश्चर्यजनक लगी क्यों कि शाम को श्री सिंह उन से मिले थे और संभवतः तभी यह आभास दे दिया था कि वह रात में आयेंगे. ख़ैर, त्यागपत्र उन्होंने सुबह दे दिया और उसी के साथ नरेशचंद्र सिंह को मुख्यमंत्री नियुक्त करने का पत्र भी. त्यागपत्र मौखिक रूप से स्वीकार हो गया. उन्हें केअर टेकर रूप में कोई और व्यवस्था होने तक बने रहने को कहा गया. राज्यपाल बीमार हो गये और तीन दिनों के लिए सारा कार्यक्रम रद्द हो गया. राज्यपाल की बीमारी आकस्मिक संयोग था. कुछ लोगों ने कहना शुरू किया कि इस के बहाने वह कांग्रेस को तोड़-फोड़ का अवसर दे रहे हैं. इस स्थिति से निश्चय ही कांग्रेस को सहायता मिली क्यों कि उस के बाद ही संविद का ताश का महल ढहने लगा और उस के विधायक तेज़ी के साथ टूटने लगे.

प्रगतिशील विधायक दल : ११-१२ मार्च को ही ४०-४५ विधायक संविद से पृथक हो कर कांग्रेस का समर्थन करने लगे. प्रगतिशील विधायक दल का निर्माण हुआ और उस में २२ लोग शामिल हो गये. इस में संसोपा, प्रसोपा, जनसंघ, क्रांति दल और निर्दलीय हैं. नेता क्रांति दल के श्याम सुंदर श्याम और मंत्री संसोपा के देव प्रसाद आर्य निर्वाचित हुए. इन लोगों ने कांग्रेस को समर्थन देने की घोषणा की और उस की विधिवत सूचना विधानसभा के अध्यक्ष को भी दे दी गयी. इन्हीं के साथ २० विधायक जो कांग्रेस छोड़ कर संविद में शामिल हुए थे, पुनः कांग्रेस में लौट आये. इन में विधानसभा के उपाध्यक्ष रामकिशोर शुक्ल और उपमंत्री श्रीमती आशालता यादव भी हैं. कुछ ऐसे सदस्य भी हैं जिन्होंने संविद से तो नाता तोड़ लिया है लेकिन कांग्रेस या प्रगतिशील विधायक दल में शामिल नहीं हुए हैं. इन में उल्लेखनीय नाम यज्ञदत्त शर्मा का है. १२ मार्च की रात को ही कांग्रेस के द्वारकाप्रसाद मिश्र ने राज्यपाल के सामने १५३ विधायकों को प्रस्तुत कर के अपना बहुमत भी प्रमाणित किया. विधानसभा में २९७ जगहें हैं जिन में ६ खाली हैं. श्री मिश्र का दावा है कि उन के साथ ८ विधायक और हैं जो भोपाल में उपस्थित न होने के क़ारण राज्यपाल के सामने प्रस्तुत नहीं किये जा सके.

प्रगतिशील विधायक दल की स्थापना श्री मिश्र की उस घोषणा के बाद हुई थी जिस में उन्होंने कहा था कि कांग्रेस का पूर्ण बहुमत होने पर भी वह समानधर्मा दलों के साथ मिला-जुला मंत्रि-मंडल बनाना चाहेंगे. ११ मार्च को विधानसभा के अध्यक्ष ने विधानसभा का एक दिन के लिए सत्रावसान कर दिया. संभावना यही है कि अधिवेशन शीघ्र ही शुरू होगा और दोनों पक्षों में शक्ति-परीक्षण होगा. इस बीच जो भी घटनाएँ हुई हैं उन्होंने राजमाता और जनसंघ को बुरी तरह विचलित कर दिया है. अब वे महसूस करने लगे हैं कि गोविंद नारायण सिंह का मुख्यमंत्री बने रहना कितना आवश्यक था. एक तरफ़ उन्हें फिर से मुख्यमंत्री बनाने का अभियान शुरू हो रहा है और दूसरी तरफ़ राज-माता और जनसंघ ने उन्हें सारा अधिकार दे कर यह अनुरोध किया है कि वह जैसे भी चाहें मंत्रिमंडल को बनाये रखने की कोशिश करें.

आघात या वरदान : १२ मार्च को ही कांग्रेस विधायक दल के नेता द्वारकाप्रसाद मिश्र का १९६३ में कसडोल का निर्वाचन मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा रद्द घोषित कर दिया गया. उस से कांग्रेस को भारी आघात लगा. न्यायालय ने उन्हें भ्रष्ट तरीक़े अपनाने का दोषी ठहराया है और कहा है कि उन्होंने खर्च का हिसाब नहीं दिया. न्यायालय के आदेश में न केवल १९६३ का चुनाव रद्द किया गया है बल्कि उस के परिणाम में उन का १९६७ का चुनाव भी अवैध मानते हुए कहा गया है कि वह अगले छह वर्षों के लिए चुनाव के अयोग्य हैं. श्री मिश्र सर्वोच्च न्यायालय में अपील करने के लिए स्वतंत्र हैं लेकिन फ़िलहाल उन की संसदीय गतिविधि पर रोक लग गयी है. एक दूसरा पहलू यह है कि श्री मिश्र के विरुद्ध न्यायालय ने जो फ़ैसला किया है वह कांग्रेस के लिए वरदान भी सिद्ध हो सकता है यानी कुछ ऐसे लोग जो श्री मिश्र के कारण कांग्रेस में नहीं आ रहे थे अब कांग्रेस में आ सकते हैं.

संविद को लाभ : नरेशचंद्र सिंह के मुख्यमंत्री होने से संविद के हलकों में नयी आशा का संचार हुआ है और उसे बहुमत में लाने के प्रयास शुरू हो गये हैं. यदि विधानसभा का अधिवेशन तत्काल होता तब उस का पतन लगभग निश्चित था किंतु अनुमान है कि अधिवेशन हफ़्ते भर बाद बुलाया जायेगा और इस बीच संविद की शक्ति शायद बढ़ जायेगी. यह प्रचार भी शुरू हो गया है कि राजा द्वारा गठित किये जाने वाले

राजा नरेशचंद्र द्वारा शपथग्रहण : कितने दिन की सरकार ?

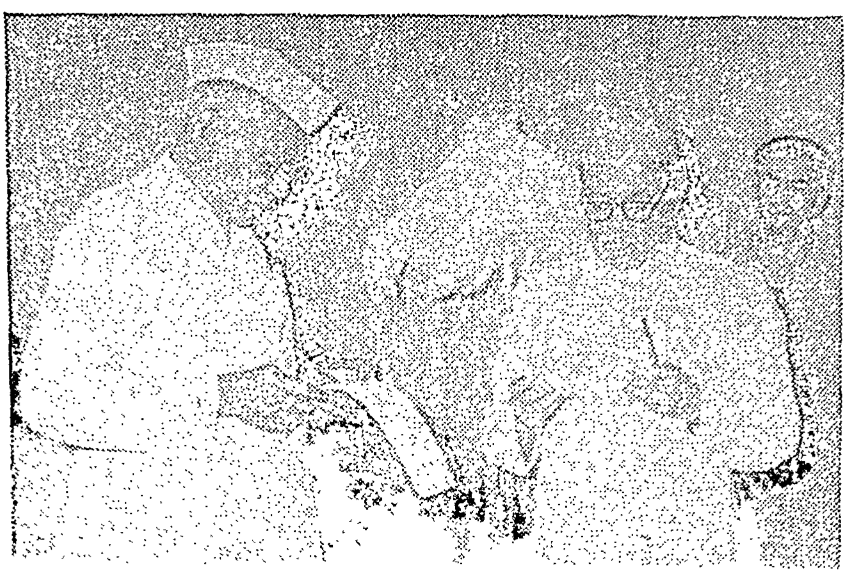

मंत्रिमंडल में ४५-५० सदस्य होंगे. लोगों को प्रलोभनों में बाँधने का सिलसिला शुरू हो गया है. संविद छोड़ कर कांग्रेस में जाने वाले ऐसे विधायकों की भी कमी नहीं हैं जो किसी सिद्धांत के अनुयायी नहीं हैं. ऐसे लोग उचित मूल्य पाने पर फिर संविद में लौट सकते हैं. आदिवासी विधायकों की संख्या लगभग सौ है. इस हल्के में पूरी एकता लाने की कोशिश की जा रही है और उस का आधार यह है कि आदिवासी विधायकों को राजा जी को समर्थन देना चाहिए. यों कांग्रेस भी काफ़ी सावधान है और संविद से अलग होने वाले विधायकों की पूरी रक्षा कर रही है.

शव-यात्रा कब होगी ? : राजा द्वारा कांग्रेस छोड़ कर संविद में शामिल होने के वक्त द्वारका प्रसाद मिश्र ने कहा था कि वे संविद की शव-यात्रा की अध्यक्षता करने जा रहे हैं. राजा का मुख्यमंत्री बन जाना शायद इस अध्यक्षता का प्रारंभ है. फ़िलहाल संविद अल्पमत में है. लगता है कि संविद के परित्याग की प्रक्रिया कुछ समय तक जारी रहेगी. न तो राजमाता अब अधिक पैसा खर्च करने के पक्ष में हैं और न

द्वारका प्रसाद मिश्र
आने की चिंता

गोविंद नारायण सिंह
जाने का ग़म (?)

गोविंद नारायण सिंह को संविद को बचाने में कोई रुचि है. उन्होंने पत्रकारों को मूंगफली खिलाते हुए कहा कि मेरा आशीर्वाद राजा और मिश्र दोनों के साथ है. राजा जी एक भले आदमी हैं और मुख्यमंत्री के रूप में यही उन का सब से बड़ा दोष है. जिन चालों और तिकड़मों की आवश्यकता कुर्सी बनाये रखने के लिए होती है वह उन के पास नहीं है. आशंका इसी बात की है कि विधानसभा का सत्र प्रारंभ होने पर किसी भी वक्त मत-विभाजन होगा और उस में ताश का महल ढह जायेगा.

और एक चुटकुला : एक उम्मीदवार नौकरी के इंटरव्यू के सिलसिले में मध्यप्रदेश के एक बड़े अफ़सर के सामने गया. अफसर ने उस से पूछा "तुम्हारी योग्यता क्या है ?" उम्मीदवार ने जवाब दिया, "हम रीवां त आये हन". अफ़सर ने कहा, "मैं यह नहीं पूछ रहा हूँ कि तुम कहाँ से आये हो बल्कि यह पूछा है कि तुम्हारी योग्यता क्या है ?" उम्मीदवार ने नाराज़ हो कर कहा, "कह त दीन हम रीवां त आये हन और का चाहो". और उस की नियुक्ति फ़ौरन हो गयी.

पांडुचेरी

कषगम का प्रवेश

मध्यावधि चुनाव ने कांग्रेस का तख्ता उलट दिया और उस की जगह द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम ने सब से बड़े दल के रूप में ले ली. ३० सदस्यों के सदन में इस बार द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम को १५, कांग्रेस को १०, निर्दलीयों को २ और कम्युनिस्टों को ३ स्थान मिले. १९६४ के चुनाव में कांग्रेस को इन ३० जगहों में से २२ जगहों पर कब्ज़ा करने में सफलता मिली थी लेकिन बाद में दल-बदलू राजनीति के प्रभावी होने के कारण कांग्रेसी मंत्रिमंडल का अंत हो गया और उस की जगह राष्ट्रपति शासन लागू करने की मजबूरी हो गयी. चुनाव की घोषणा के बाद द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम ने कम्युनिस्ट पार्टी से तालमेल बैठा कर मंत्रिमंडल बनाने में सफलता प्राप्त कर ली. ३२ वर्षीय फारूक़ मारीकर दल के नेता के रूप में सर्वसम्मति से चुने गये. श्री मारीकर जो इस समय द्रमुक के उम्मीदवार हैं इस राज्य के कांग्रेसी मुख्यमंत्री भी रह चुके हैं. बाद में उन्होंने दल परिवर्तन कर लिया था. समझौते के अनुसार द्रमुक और कम्युनिस्ट दल का मिला-जुला मंत्रिमंडल एक सर्वसम्मत न्यूनतम कार्यक्रम के अनुसार काम करेगा. मंत्रिमंडल में ४ सदस्य द्रमुक के होंगे और एक कम्युनिस्ट दल का.

इस घोषणा के तत्काल बाद कि द्रमुक को विधानसभा में ३० में से १५ स्थान प्राप्त हो गये हैं, कषगम के ख़ेमे में सरगर्मियाँ शुरू हो गयीं और स्थानीय कषगमी नेता तमिलनाडु की तरफ़ देखने लगे. पहले दौर में द्रमुक और कम्युनिस्ट दोनों दलों के स्थानीय नेताओं ने यह कहा कि सरकार बनाने का फ़ैसला उन की केंद्रीय कार्यकारिणी के निर्णय पर निर्भर करता है. फ़िलहाल तमिलनाडु के कषगमी मुख्यमंत्री करुणानिधि (जो कि दल के कोषाध्यक्ष भी हैं) तथा उन के संगठनमंत्री नटराजन और तमिलनाडु प्रदेश की कम्युनिस्ट पार्टी की कार्यकारिणी के मंत्री कल्याणसुंदरम के बीच बातचीत हुई उस में पांडिचेरी की दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता डॉ. सुब्बैया भी मौजूद थे. बातचीत की समाप्ति के बाद श्री करुणानिधि ने मिलीजुली सरकार बनाने की घोषणा की और उस के साथ ही श्री मारीकर से यह भी कहा कि वह स्वर्गीय अन्नादोरै के आदर्शों का पालन करें. उन्होंने आशा व्यक्त की कि दोनों दल मिल कर एक टीम की भूमिका निभायेंगे. मंत्रिमंडल में दक्षिणपंथी कम्युनिस्टों का प्रतिनिधित्व श्री सुब्बैया करेंगे. नये मंत्रिमंडल की चर्चा करते हुए कम्युनिस्ट पार्टी के श्री कल्याण सुंदरम् ने कहा कि नया मंत्रिमंडल आये दिन के प्रशासन का काम सामूहिक नेतृत्व के आधार पर करेगा, मगर इस के साथ ही साथ सरकार में शामिल होने वाले दलों की स्वतंत्रता को भी बनाये रखने की कोशिश की जायेगी.

जय-पराजय : इस चुनाव में सर्वाधिक आश्चर्यजनक पराजय भूतपूर्व कांग्रेसी मुख्यमंत्री वेंकट सुब्बा रेडियार की रही. इन को कषगम के डी. रामचंद्रन ने नेटापक्कम के प्रतिष्ठा के चुनाव क्षेत्र से १५२ मतों से हरा दिया. द्रमुक के फारूक मारीकर ने अपने कांग्रेसी प्रतिद्वंद्वी मुरुगेसा मुदलियार को कालाप्पेट में १४०० मतों से पराजित किया. यह लड़ाई भी प्रतिष्ठा की थी. पिछली विधानसभा में विरोधी दल के नेता दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट सुब्बैया ने मुदलियार प्पेट चुनाव-क्षेत्र से अपने कांग्रेसी प्रतिद्वंद्वी को हरा कर अपनी पुरानी सीट सुरक्षित रख पाने में सफलता प्राप्त कर ली. मुस्लिम लीग के एकमात्र उम्मीदवार हमीद मारीकर को करैकल चुनाव क्षेत्र से कांग्रेस के जंबूलिंगम ने पराजित किया. माहे के कांग्रेस महापौर बी. ए. पुरुषोत्तम ने पल्लोर चुनाव-क्षेत्र में संयुक्त मोर्चे के एक उम्मीदवार आनन्दीन को सीधे मुकाबले में १३५० मतों से हराया. कांग्रेस के एक भूतपूर्व मंत्री पी. शानमोगम ने दुनकादू चुनाव-क्षेत्र में इसी प्रकार द्रमुक के अपने प्रतिद्वंद्वी सुंदरगेन को २० मतों से पराजित किया. एक अन्य कांग्रेसी भूतपूर्व मंत्री नागराजन को अपनी ज़मानत तक से हाथ धोना पडा.

पंजाब

वक्त-बेवक्त की बात

पंजाब विधानसभा का अधिवेशन १३ मार्च को सदस्यों द्वारा शपथ-ग्रहण समारोह से शुरू हुआ. १०४ सदस्यीय विधानसभा में केवल २९ ही पुराने चेहरे हैं. पहले-पहल विधानसभा में प्रवेश करने के कारण नवनिर्वाचित सदस्यों में बहुत उत्साह था और उन को जो कभी विधानसभा की कार्रवाइयों की कहानियाँ सुना करते थे अपनी आँखों उस विधानसभा को देख और कार्यवाही में भाग ले एक अनोखा सुख़ प्राप्त हुआ. शपथ-समारोह अधिवेशन का सभापतित्व संयुक्त मोर्चे के एक भूतपूर्व मंत्री दरबारासिंह ने किया, जो दूसरे दिन विधानसभा के बाकायदा अध्यक्ष चुन लिये गये. विधान सभा के सदस्यों ने गुरनामसिंह और कपूरसिंह के शपथ-ग्रहण पर विशेष हर्ष-ध्वनि की. कांग्रेसी सदस्यों के चेहरों से खीज और क्रोध की लीक दीख रही थी, जिस का उद्घाटन उन्होंने शपथ-समारोह के बाद किया. उन्होंने भूतपूर्व मुख्यमंत्री लक्ष्मणसिंह गिल की गिरफ़्तारी पर सरकार को आड़े हाथों लेना चाहा. गिल की गिरफ़्तारी के संदर्भ में मुख्यमंत्री गुरनामसिंह से जब संपर्क स्थापित किया गया तो उन्होंने बड़े ही सीधे शब्दों में कह दिया, 'मुझे मालूम नहीं'.

गिल की गिरफ़्तारी : लक्ष्मणसिंह गिल जब चंडीगढ़ हवाई अड्डे पर उतरे तो लुधियाना

की पुलिस वहाँ पर पहले से ही मौजद थी. गिल के जहाज़ से उतरते ही उन के हाथ में वारंट थमाया गया. वारंट देखते हुए उन्होंने अपने लड़के के कान में कुछ कहा और फिर अपने-आप को पुलिस के हवाले कर दिया. जब उन्हें पंजाब-हरयाणा कोर्ट में पेश किया गया तो उन्हें १०,००० रुपये की जमानत पर रिहा कर दिया गया. लक्ष्मणसिंह गिल की गिरफ़्तारी का कारण यह बताया गया कि उन्होंने अपने शासन-काल में जगराँव की सहकारी मंडी से अनाज खरीदने की अपेक्षा कुछ आढ़तियों से खरीदने के आदेश दे कर क़ानून का उल्लंघन किया था. उन के आदेशों के अनुसार हफ़्ते में ४ दिन इन नये व्यापारियों की संस्था से अनाज खरीदा गया था और शेष २ दिनों में एक और व्यापारियों की संस्था से. इन दोनों ही संस्थाओं के आढ़ती गिल के कुछ निकटवर्ती लोग थे. यह जुर्म भ्रष्टाचार-उन्मूलन अधिनियम की धारा ५ (२) के अंतर्गत आता है और इसी कारण भूतपूर्व मुख्यमंत्री को हिरासत में लिया गया.

राज्यपाल का भाषण : राज्यपाल डॉ. दादा साहेब चितामणि पावटे ने विधानमंडल की दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में अपना अभिभाषण पंजाबी में पढ़ा. पूर्ववर्ती संयुक्त मोर्चा सरकार की उपलब्धियों का बखान करते हुए उन्होंने पिछले बरस विधानसभा द्वारा पारित किये गये बजट की आलोचना की. उन्होंने बँगाल के राज्यपाल धर्मवीर का अनुसरण नहीं किया. राज्यपाल ने कहा कि हमारे संविधान में सभी लोगों को बुनियादी अधिकार दिये गये हैं, लेकिन पिछले संयुक्त मोर्चे की सरकार टूटने के बाद इन पवित्र अधिकारों को पैरों तले रौंदा गया. अपने अभिभाषण में राज्यपाल ने मार्च, १९६८ में विधानसभा में पुलिस बुलाये जाने का उल्लेख करते हुए इस के न्यायिक जाँच कराने के निश्चय का भी संकेत किया. चंडीगढ़, भाखड़ा नंगल तथा अन्य पंजाबी भाषी क्षेत्रों को पंजाब में मिलाये जाने, विधान-परिषद् को समाप्त करने, सरकारी कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि के अलावा किसानों को अच्छे बीज, खाद, लघु सिंचाई के साधन जुटाने आदि का भी विश्वास दिलाया गया. पंचायती राज-प्रणाली में सुधार करने का ज़िक्र करते हुए राज्यपाल ने कहा कि मौजूदा प्रणाली देहातों में बढ़ रही पार्टीबाज़ी और वैर-विरोध के घेरे में ही घिर कर रह गयी है. इस के ढाँचे में परिवर्तन करने से पहले जनमत-संग्रह कराया जायेगा. सरकारी और ग़ैर-सरकारी अध्यापकों के वेतनमानों और सुविधाओं की समानता, सेना से अवकाश-प्राप्त अफ़सरों को सरकारी नौकरी देने में प्राथमिकता, हरिजनों की भलाई के लिए आवश्यक क़दम उठाने के अलावा पंजाबी और हिंदी भाषाओं के विकास का भी उल्लेख किया गया है. गुरु नानक देव के ५००वीं जयंती पर अमृतसर में एक विश्व-विद्यालय स्थापित करने का भी केंद्र को सुझाव दिये जाने का राज्य सरकार इरादा रखती है.

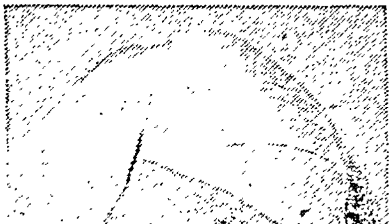

लक्ष्मणसिंह गिल : मुख्यमंत्रित्व का दंड

कश्मीर

अंतरविरोध की दरारें

सय्यद मीर क़ासिम द्वारा प्रदेश कांग्रेसाध्यक्ष पद से इस्तीफ़ा दिये जाने के कारण उत्पन्न राजनैतिक संकट से उभरने की कोशिश चल ही रही थी कि पार्टी के प्रधान सचिव-पद से श्री त्रिलोचन दत्त के त्यागपत्र ने मतभेद की दरार को और चौड़ी कर दी है. राज्य के कुछ राजनैतिक क्षेत्रों में राज्य कांग्रेस के मतभेद दूर करने में केंद्रीय नेताओं की लापरवाही की तीव्र आलोचना की जा रही है.

मीर क़ासिम काफ़ी अर्से से त्यागपत्र देने का इरादा जाहिर करते रहे हैं, किंतु कांग्रेसाध्यक्ष निजलिंगप्पा, केंद्रीय मंत्रियों और प्रधानमंत्री ने उन से अपने पद पर बने रहने का आग्रह किया था और वह जैसे-तैसे अब तक टिके रहे. अपने त्यागपत्र में मीर क़ासिम ने लिखा है कि वह पिछले २५ वर्षों से सक्रिय राजनीति में शरीक हैं; १८ वर्षों तक विधायक रह चुके हैं और धर्म-निरपेक्षता व लोकतांत्रिक आस्थाओं के प्रति समर्पित हैं. लेकिन अब इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि वर्त्तमान परिस्थितियों में वह अपने सिद्धांतों के उत्कर्ष के लिए कोई ठोस योगदान नहीं दे सकते. "यह मेरा व्यक्तिगत निर्णय है और मैं दूसरों से अनुरोध करता हूँ कि वे इस से प्रभावित न हों".

ऊपरी एका : बताया जाता है कि मीर क़ासिम और उन के समर्थक काफ़ी अर्से से उन मंत्रियों को हटाने की माँग कर रहे थे जिन पर राज-नैतिक मंत्रणा के लिए श्री सादिक़ ज़्यादा निर्भर हैं. राज्य में क़ानून और व्यवस्था की स्थिति से भी वह खिन्न थे. कुछ राजनैतिक पर्यवेक्षकों का विचार है कि मीर क़ासिम और उन के अनुयायियों का श्री सादिक़ से मतभेद का सिल-सिला तो पिछले आम चुनाव के बाद श्री सादिक़ द्वारा मंत्रिमंडल गठित किये जाने के वक़्त से ही चला आ रहा है. राज्य कांग्रेस के अंतरविरोधों को यथासंभव गुप्त रखने की तमाम कोशिशों के बावजूद यह तथ्य गुप्त नहीं रह सका है कि मीर क़ासिम, डी. पी. धर (रूस में भारतीय राजदूत), त्रिलोचन दत्त तथा कुछ अन्य प्रभावशाली व्यक्ति मंत्रिमंडल में उन मंत्रियों को लिये जाने से असंतुष्ट थे जो उन के अनुसार जनता के विश्वास-पात्र प्रति-निधि नहीं हैं. पिछले वर्ष के प्रारंभ में श्री सादिक़ ने मीर क़ासिम तथा अन्य नेताओं से विचार-विमर्श कर के 'बीती-बातों' को भूल कर सौमनस्य स्थापित करने की चेष्टा की थी, जो ज़्यादा दिनों तक न टिक सकी. जाड़ों में मंत्रि-परिषद् से वन-विभाग के राज्यमंत्री ग़ुलाम रसूल कार द्वारा इस्तीफ़ा दिये जाने से पूर्व श्रीनगर में कांग्रेसी विधायकों की बैठक में गर्मागरम बहस से भी यह प्रकट हो गया था कि कांग्रेस पार्टी का ऊपरी एका कितना संदेहास्पद है. यही नहीं, पिछले दिनों राज्यपाल के अभि-भाषण पर विधानसभा में बहस के दौरान एक ओर तो मोहनलाल फ़ोतदार ने पिछले वर्ष दिसंबर में श्रीनगर सेंट्रल जेल से तोड़-फोड़ करने वाले तीन पाकिस्तानियों के फ़रार हो जाने की घटना के लिए जेल संबंधी मामलों के मंत्री मोहम्मद अय्यूब खाँ को जिम्मेदार ठहरा कर उन के पद-त्याग की माँग की तो दूसरी ओर श्री एस. के. कौल ने मुख्यमंत्री सादिक़ की 'सहिष्णुतापूर्ण' नीतियों की प्रशंसा करते हुए राज्य में क़ानून और व्यवस्था की स्थिति पर संतोष व्यक्त किया. श्री फ़ोतदार को मीर

मीर क़ासिम : विरक्त

क़ासिम और श्री कौल को श्री सादिक़ के गुट से संबद्ध बताया जाता है. बहस के दौरान अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों पर भ्रष्टाचार के आरोप लगाये जाते वक़्त श्री सादिक़ का रुख़ भी कुछ असामान्य-सा रहा. उर्वरकों के गमन के लिए उपखाद्यमंत्री की तीव्र आलोचना के वक़्त वह खामोश बैठे रहे और मुफ़्ती सैय्यद तथा एक निर्दलीय सदस्य शमीम अहमद शमीम की तीखी झड़प के दरमियान भी उन्होंने क़तई हस्तक्षेप नहीं किया. लेकिन जब सामुदायिक विकास-मंत्री मोहम्मद शफ़ी चौधरी पर कुछ आरोप लगाये गये तो उन्होंने सहसा हस्तक्षेप करते हुए विरोधियों से कहा कि वे इस मामले की जाँच की माँग रखें.

कश्मीर के प्राय: सभी कांग्रेस समितियों के अध्यक्षों ने मीर क़ासिम का समर्थन किया है और उन्होंने प्रधानमंत्री को तार भेज कर उन के त्यागपत्र के संबंध में चिंता व्यक्त की है. मीर क़ासिम के त्यागपत्र के सिलसिले में राज्य की ४१ सदस्यीय विधानसभा में तो विचार किया ही जायेगा, परंतु अंतिम निर्णय केंद्रीय नेताओं से उन की बातचीत के बाद ही लिया जा सकेगा. आपसी मंत्रणा से श्री सादिक़ मीर क़ासिम को इस्तीफ़ा वापस लेने के लिए राज़ी नहीं कर सके, अब दोनों नेता केंद्रीय नेताओं से बातचीत के लिए एक साथ दिल्ली आये हैं. दिल्ली में मीर क़ासिम ने अपने निर्णय के बारे में कोई भी स्पष्टीकरण नहीं दिया. उन्होंने कहा कि श्री सादिक के प्रति मेरी आत्मीयता में कोई फ़र्क़ नहीं आया है, मैं तो बस राजनीति से अलग होना चाहता हूँ. मुमकिन है कि श्रीमती गांधी के प्रयासों से मीर क़ासिम के रुख में कुछ परिवर्तन आ जाये पर कश्मीर की राजनैतिक स्थिति में एकायक किसी नये मोड़ की अपेक्षा नहीं की जा सकती क्यों कि वहाँ की राजनीति में अंतर्विरोधों का दायरा बहुत व्यापक है.

आंध्रप्रदेश

पृथक तेलंगाना

पृथक तेलंगाना की माँग का आंदोलन उत्तरोत्तर तीव्र होता जा रहा है. ३ मार्च की सफल आम हड़ताल के बाद ८ और ९ मार्च को हैदराबाद के रेड्डी छात्रावास के विशाल प्रांगण में पृथक तेलंगाना के समर्थन में दो दिनों का एक सफल सम्मेलन भी हुआ, जिस में वक्ताओं ने अपनी माँग के समर्थन और रेड्डी शासन और कांग्रेस दोनों के विरुद्ध खुल कर बातें कहीं. 'जय हिंद' और 'जय तेलंगाना' के नारों की गूँज के साथ कार्यक्रम शुरू हुआ. उस्मानिया विश्वविद्यालय छात्र संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष वेंकटेश्वर राव ने स्वागत-भाषण पढ़ा और उस के बाद तेलंगाना के नक़्शे का अनावरण किया गया. सम्मेलन में तेलंगाना क्षेत्र के ९ ज़िलों के १५ सौ प्रतिनिधि आये थे. एक हज़ार स्वयंसेवक और ६ सौ पर्यवेक्षक भी उपस्थित थे. १५-२० हज़ार की भीड़ के बावजूद वातावरण शांत था. मंच पर पुराने राजनीतिज्ञ, मंत्रियों और विधायकों के अलावा छात्र-नेता और ज़िले तथा तहसीलों की पंचायत-समितियों के अध्यक्ष भी नज़र आ रहे थे. अध्यक्षता भूतपूर्व मंत्री श्रीमती सदालक्ष्मी ने की. श्रोताओं को संबोधित करते हुए श्री सत्यनारायण ने कहा, "पिछले १२ वर्षों में, यानी आंध्रप्रदेश के निर्माण के बाद आंध्र या तेलंगाना किसी भी क्षेत्र की जनता के लिए सरकार ने कोई उपयोगी काम नहीं किया. हर व्यक्ति आज यही सोच रहा है कि पृथक तेलंगाना ही दोनों क्षेत्रों के लिए अधिक उपयोगी था." छात्रों को उन के आंदोलन पर साधुवाद देते हुए उन्होंने कहा कि स्वार्थी और भ्रष्ट तत्त्वों से सावधान रहना चाहिए. मुख्यमंत्री और अन्य नेता समय-समय पर आश्वासन तो बहुत देते रहे हैं लेकिन अभी भी वे समय की नब्ज़ को पहचानने में असमर्थ हैं. यह आंदोलन अराजक या निहित स्वार्थों के व्यक्तियों द्वारा नहीं चलाया जा रहा है, बल्कि तेलंगाना क्षेत्र की जनता के साथ किये गये अन्याय की प्रतिक्रिया के रूप में चलाया जा रहा है. यह एक जन-आंदोलन है. छात्रों ने सचाई को देखा है और अब निर्भीकतापूर्वक अपने विक्षोभ को व्यक्त कर रहे हैं. तेलंगाना के प्रत्येक व्यक्ति को विलय के बाद नुकसान उठाना पड़ा है. अत: अब हम साथ नहीं रह सकते. सभा में जिन अन्य व्यक्तियों ने अपने विचार प्रकट किये उन में वंदेमातरम रामचंद्र राव, एस. पी. गिरी, राम रेड्डी, पुरुषोत्तम राव, श्रीमती सदालक्ष्मी और राममूर्त्ति नायडू के नाम उल्लेखनीय हैं. प्राय: सभी व्यक्तियों ने आंध्र सरकार की वर्तमान नीतियों की आलोचना की और छात्रों को वचन दिया कि उन्हें आंदोलन के सिलसिले में हड़ताल द्वारा समर्थन और सहयोग दिया जायेगा. सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास किये गये उन में कहा गया था—(१) जब तक पृथक तेलंगाना नहीं बनाया जाता तब तक छात्र स्कूलों और कॉलेजों में नहीं जायेंगे और परीक्षाओं का बहिष्कार करेंगे, (२) तेलंगाना सेफ़गार्ड्स की निंदा की गयी और उसे आज की स्थिति में अर्थहीन बताते हुए कहा गया कि आंदोलन आंध्र के लोगों के खिलाफ़ नहीं है. वे उतने ही ग़रीब है जितने की भारत के अन्य नागरिक, (३) तेलंगाना क्षेत्र के सभी मंत्रियों और विधायकों से माँग की गयी कि वे अपने पदों से त्यागपत्र दे दें: वे अपने पिछले कामों के ज़रिये जनता का विश्वास खो चुके हैं. उन्हें यह भी चुनौती दी गयी कि वे फिर से चुनाव लड़ कर देख लें, (४) बुज़ुर्गों की खुदग़र्ज़ी, मौक़ापरस्ती और विश्वासघात के कारण उन पर अविश्वास प्रकट किया गया और कहा गया कि आंदोलन का नेतृत्व अब छात्र करेंगे. केंद्र और प्रदेश सरकार को चेतावनी दी गयी कि अगर एक महीने के अंदर पृथक तेलंगाना की उन की माँग स्वीकार नहीं की जाती तो वे हड़ताल व क़ुरबानी करेंगे और इस सिलसिले में असहयोग के जितने भी तरीक़े हो सकते हैं उन का इस्तेमाल भी करेंगे. प्रस्ताव में हिंदी को राष्ट्र भाषा और तेलुगु को राज्य की सरकारी भाषा के रूप में मान्यता दी गयी.

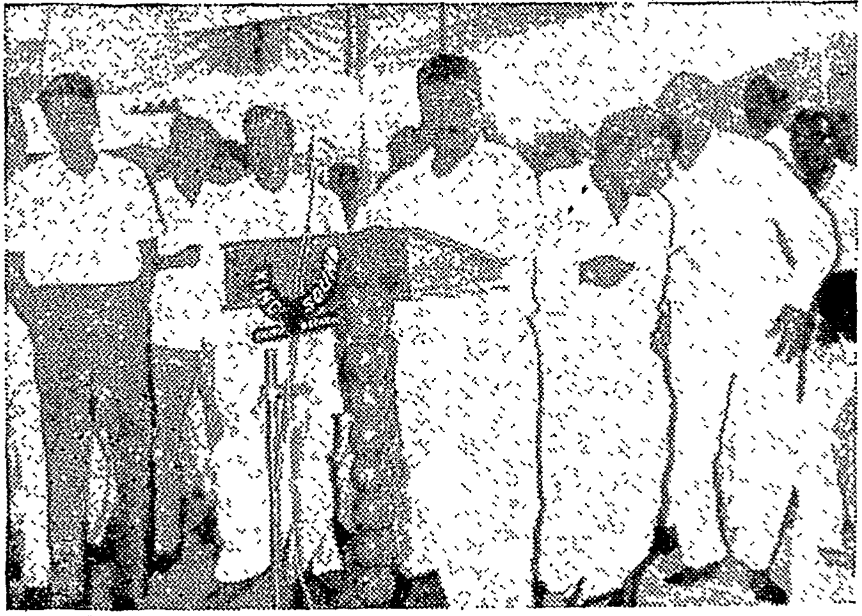

तेलंगाना छात्र-आंदोलन : हुतात्मा की स्मृति

सम्मेलन का वातावरण आंध्र-विरोधी था. दिनमान के प्रतिनिधि ने देखा कि एक भाषा-भाषी होने से ही एकता या प्रेम नहीं हो सकता. आंध्र और तेलंगाना क्षेत्र के लोगों में विलयन के १२ वर्षों के बाद भी पारस्परिक बंधुत्व का भाव

नहीं हो पाया है, जब कि क्षेत्र में रहने वाले अन्य राज्यों के लोगों के साथ उन का व्यवहार सहोदर जैसा है.

अनमकोडा पंचायत समिति के अध्यक्ष कवि श्री सत्यनारायण को भी मंच पर बुलाया गया था. उन्होंने १९५६ में आंध्र के निर्माण के समय लिखी अपनी कविता की कुछ पंक्तियां जब पढ़ीं तो सारा वातावरण तालियों से गूंज उठा. "ए तेलंगाना के सहोदरो, तुम यदि इस वक़्त सो जाओगे तो बाद में पछताओगे. मद्रास वालों ने जब इस की दुम काट ली तो यह चतुर लोमड़ी भाई-भाई रटती हुई यहां (तेलंगाना) आयी और कहने लगी कि वह हमें कुबेर बना देगी. लेकिन देखना, यह हमेशा हमें लूटेगी". उन्होंने संजीव रेड्डी के नेतृत्व-काल में लिखी दक्षिणी भाषा की एक कविता और सुनायी. कुछ पंक्तियां हैं : संजीव रेड्डी मामा, ओ आंध्र के गामा, अ यें यो रामा रामा, समझ गये हम सब तुम्हारा कामा, कुत्ते की दुम तो मुड़ गयी, धोखा फ़रेब रह गया. फाड़ेंगे पायजामा, संजीव रेड्डी मामा". श्री सत्यनारायण ने ज़ोरदार शब्दों में यह कहा कि हम एक साथ नहीं रह सकते. उन्होंने तेलंगाना और आंध्र के लोगों के उच्चारणों को ले कर आंध्रवासियों का मज़ाक उड़ाते हुए कहा कि अगर कोई तेलुगु और आंध्र साथ-साथ चल रहे हों तो चाल से ही बता देंगे कि कौन तेलुगु है और कौन आंध्र. सम्मेलन में भारत सरकार को भी यह चेतावनी दी गयी कि वह आंध्रप्रदेश में राष्ट्रपति-शासन लागू करे और एक महीने के भीतर पृथक तेलंगाना के निर्माण की घोषणा करे. तेलंगाना सेफ़गार्ड के समर्थकों ने आंध्र की एकता के लिए ११ मार्च को आंध्र बंद का आह्वान किया था, लेकिन पृथक तेलंगाना सम्मेलन की सफलता ने उन के मनोबल को शायद चूर-चूर कर दिया इसी लिए अब बंद का आह्वान ३१ मार्च के लिए स्थगित कर दिया गया. राज्य विधानसभा में श्री लछन्ना ने कहा कि १९ जनवरी को विभिन्न राजनैतिक दलों की एकता से जो समझौता हुआ था उस पर उन्होंने भी यह सोच कर हस्ताक्षर किया था कि इस से संभवत: राज्य में शांति क़ायम हो सकेगी. लेकिन अब उन्हें भी लगता है कि दुर्भाग्यवश यह समझौता राज्य में नये सिरे से अशांति पैदा करने का स्रोत हो गया है. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने यह भी देखा कि १९ जनवरी के समझौते पर हस्ताक्षर करने वाले राजनैतिक दलों के कुछ महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी भी पृथक तेलंगाना सम्मेलन में दोनों दिन मंच पर उपस्थित थे.

उत्तरप्रदेश

समस्याओं के पहाड़

मुख्यमंत्री के रूप में चंद्रभानु गुप्त ने अपना तूफ़ानी दौरा शुरू कर दिया है, लेकिन शेष मंत्री अभी भी चुप बैठे हैं. सरकारी काम में भी अभी उन्होंने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई है. इस की वजह यह है कि जो विभाग जिन मंत्रियों को फ़िलहाल मिले हैं उन में आने वाले दिनों में परिवर्तन हो सकता है. मंत्रिमंडल के विस्तार की कार्रवाई भी अभी स्थगित है. इस का एक परिणाम तो यह है कि जब तक उस के विस्तार की संभावनाएँ जीवित हैं कांग्रेस विधायक दल के लोग अंदर-अंदर असंतुष्ट होने के बावजूद खुल कर विरोध नहीं कर पा रहे हैं. जिस दिन मंत्रिमंडल की अंतिम सूची प्रकाशित होगी उस के ठीक बाद ही कांग्रेस के संतुष्टों और असंतुष्टों का गुट अलग-अलग स्पष्ट हो जायेगा. मुख्यमंत्री के सामने दोनों समस्याएँ हैं : कांग्रेस की एकता को बनाये रखना और सरकार को क़ायम रखना. एक बात यह भी है कि कांग्रेस का मंत्रिमंडल इस समय अपनी बहुमत की शक्ति पर कम और विधानसभा में विरोधी दलों की आपसी फूट पर अधिक टिका है. कांग्रेसी नेताओं के अनुसार मध्यावधि चुनाव ने विरोधी दलों में इतनी गहरी खाइयां खोद दी हैं कि कांग्रेस स्थायी शासन देने की स्थिति में आ गयी है.

जनसंघ और भारतीय क्रांति दल के मतभेद अंतिम छोर तक पहुंच चुके हैं. चरणसिंह के नेतृत्व में उद्बोधित होने वाले जातिवाद के प्रेत ने जनसंघ की आधी शक्ति को निगल लिया है और संसोपा की अछूतों और पिछड़े वर्गों की आधार-शिला को झकझोर कर रख दिया है. जनसंघ और संसोपा के नेता श्री सिंह से गठबंधन के लिए राज़ी नहीं हो पा रहे हैं. कांग्रेस के लिए यह स्थिति अनुकूल है. श्री गुप्त ने शायद इन बातों को ही ध्यान में रख कर पिछले दिनों दो महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ कीं. पहली यह कि उन्होंने सरोजिनी नगर की अपनी सीट से त्यागपत्र दिया है और दूसरी यह कि एक ही व्यक्ति मंत्रिमंडल का सदस्य और कांग्रेस संगठन का पदाधिकारी एक साथ नहीं हो सकेगा. कुछ कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को उन की इन घोषणाओं पर आपत्ति भी है. उन का कहना है कि पहली घोषणा प्रादेशिक संसदीय समिति द्वारा और दूसरी अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष द्वारा प्रसारित की जानी चाहिए. यदि गुप्त मंत्रिमंडल के सामने कोई खतरा आता ही है तो इस का एकमात्र कारण कांग्रेसी खेमे का पारस्परिक मतभेद ही होगा.

साधनों का संकट : वर्त्तमान मंत्रिमंडल के सामने कुछ प्रशासनिक कठिनाइयों के साथ-साथ साधनों का संकट अपने खूंख्वार जबड़े खोल कर खड़ा है. राष्ट्रपति शासन काल में प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षकों का आंदोलन हुआ. शासन ने उन के सामने घुटने टेक दिये. अनुमान लगाया गया है कि इस सिलसिले में ७ करोड़ ७० लाख रुपये की आवश्यकता होगी. उसी तरह का मामला सहायता-प्राप्त प्रशिक्षण महाविद्यालय के शिक्षकों का है. उन की हड़ताल कुछ ही दिन पहले श्री गुप्त की अपील पर समाप्त हुई. अभी कोई समझौता नहीं हुआ है, लेकिन मांगों पर तेज़ी से विचार किया जा रहा है.

भूखे शिक्षकों का प्रश्न एक तरफ़ है. दूसरी ओर है इलाहाबाद, मिर्ज़ापुर, वाराणसी और पूर्वी उत्तरप्रदेश के अनेक क्षेत्रों में सूखे की स्थिति. श्री गुप्त ने इन इलाक़ों का दौरा किया और लगान माफ़ी और तकावी-वितरण का ऐलान किया. प्रश्न यह है कि इन सब के लिए जिस अतिरिक्त धन की आवश्यकता है वह कहां से प्राप्त किया जाये? श्री गुप्त के सामने यह दर्द सब से बड़ा है. केंद्रीय बजट में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों की जो बढ़ोतरी हुई उन से जनता की कमर पहले ही टूट चुकी है. विधानसभा में ३ सदस्यों के बहुमत को ले कर श्री गुप्त इस स्थिति में नहीं हैं कि वह सदन में अतिरिक्त कर के प्रस्ताव पास करा सकें. करों की आवश्यकता केवल तात्कालिक समस्याओं के समाधान के लिए ही नहीं वरन् प्रदेश के विकास के लिए भी है. विकास-कार्यों के लिए केंद्र से मिलने वाली सहायता अनुमानत: २५ करोड़ रुपये है. श्री गुप्त ने इंदिरा गांधी के माध्यम से केंद्र से मांग की है कि सहायता के रूप में कम से कम ५५ करोड़ रुपये दिये जायें. पता नहीं कि केंद्र से यह सहायता मिल पायेगी या नहीं. श्री गुप्त को इन भीषण परिस्थितियों से लड़ाई लेनी है और उन की सारी सफलता इन पर क़ाबू पा लेने में ही निहित है. लगता है कि गुप्त मंत्रिमंडल जो भी क़दम उठायेगा उस का विरोधी दलों द्वारा ज़ोरदार विरोध होगा. श्री गुप्त सूखाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा करने के बाद ज्यों ही लखनऊ वापस आये जनसंघ के प्रादेशिक मंत्री हरिश्चंद्र श्रीवास्तव ने मांग की कि शासन इन क्षेत्रों में कोई भी सहायता भारत सेवक समाज के माध्यम से न दे. भारत सेवक समाज की ईमानदारी पर अक्सर संदेह किया गया है. जनसंघ से अलग कतिपय मुसलमान विधायकों ने शपथ को ले कर जो प्रश्न उठाया वह भी सार्वजनिक विवाद का रूप ले सकता है. एक सूचना के अनुसार एक मुसलमान विधायक ने राज्यपाल को सूचित किया है कि हिंदी की जिस कठिन शब्दावली में उन्हें विधायक होने की शपथ लेनी है वह बोधगम्य नहीं है, अत: उन्हें उर्दू में शपथ लेने की आज्ञा दी जाये. विधानसभा कार्यालय संविधान द्वारा प्रतिपादित शपथ-ग्रहण की भाषा का उर्दू में अनुवाद करने में व्यस्त है और साथ ही शपथ की हिंदी शब्दावली को उर्दू लिपि में भी तैयार कर रहा है. शपथ दिलाने का संवैधानिक कर्त्तव्य राज्यपाल का है. यदि शपथ-ग्रहण की भाषा में कोई परिवर्त्तन होता है तो जनसंघ तथा कुछ अन्य दल उसे भी आलोचना का विषय बनायेंगे.

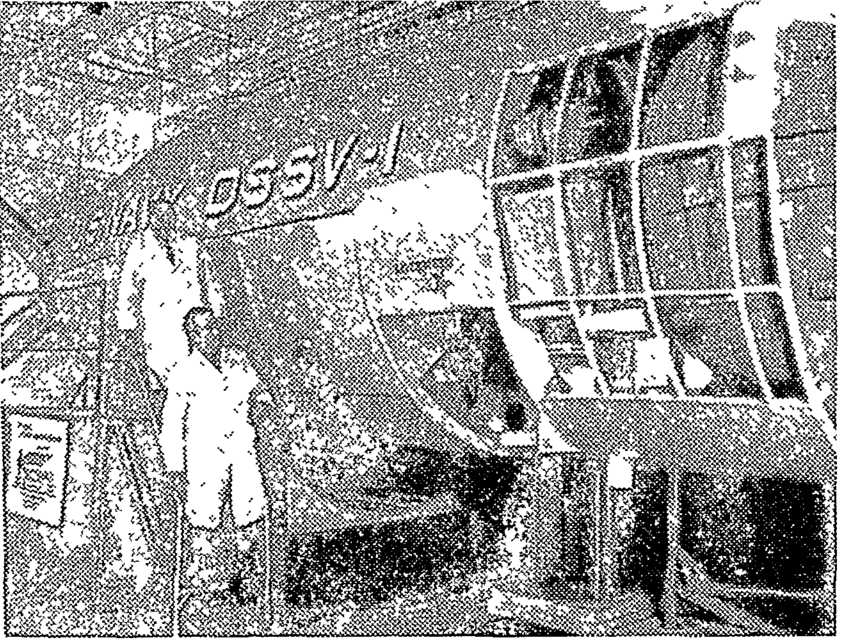

गहरे पानी में डुबकी लगाने वाली अमेरिकी नाव

समुद्र-विज्ञान

समुद्र-मंथन और सागर-युग की भूमिका

बंगाल के प्रसिद्ध समाज-सुधारक राजा राममोहन राय के ज़माने में समुद्र-यात्रा करने वाले हिंदु युवक को समाज में पतित समझा जाता था. भारतीय द्वीप समूह अंडमान और निकोबार को लोग काला पानी कहते थे, क्यों कि यह राजनैतिक बंदियों और भयानक अपराधियों के लिए एक अभेद्य दुर्ग-सा बनाया गया था. मगर 'काला पानी' की भावना उन टापुओं के प्रति नहीं, महासागर के अथाह जल के प्रति सदियों से चली आ रही है.

हम और सागर : सागर के बारे में हम क्या जानते हैं ? यही कि यह विशाल जल-राशि इस पृथ्वी के दो तिहाई भाग पर फैली हुई है. आरंभिक अनुसंधानकर्त्ताओं के कार्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि पानी की गहराइयों में समुद्र की तलहटी पर बिल्कुल उसी प्रकार समतल क्षेत्र, खाड़ियाँ, गुफ़ाएँ, पर्वत-श्रृंखलाएँ और तंग दर्रे होते हैं जिस प्रकार स्थल पर रहते हैं. हम यह जानते हैं कि समुद्र में जल-धाराओं की गति विशेष नियमों से प्रेरित हो कर घटती-चढ़ती हैं. हमें यह भी ज्ञात है कि जिस प्रकार समुद्र की तलहटी पर हमें कई प्रकार के शंख-घोंघे आदि मिलते हैं वैसे ही वहाँ कई अन्य खनिज पदार्थ भी हैं. समुद्र मछलियों के अतिरिक्त अनेक जीवधारियों का घर है. मगर यह प्रारंभिक बातें समुद्र का महत्त्व पहचानने के लिए पर्याप्त नहीं हैं. मानव-सभ्यता के विकास में महासागर ने बहुत योग-दान दिया है, मगर उसे सभ्यता की जननी नहीं कहा जा सकता. सभ्यताएँ अब तक स्थल पर ही पनपीं और विकसीं. मगर अब समय आ गया है कि मनुष्य सागर के महत्त्व को समझ कर उसे अपने विकास और उज्ज्वल भविष्य के निर्माण के लिए उपयोग में लाये. सागर-युग अब आने वाला है.

सागर और खनिज : हम सागर से क्या अपेक्षा करते हैं ? यदि विश्व के अधिसंख्य पिछड़े हुए देशों की ओर नज़र डालें तो स्पष्ट हो जायेगा कि भूख अब भी एक बहुत बड़ी समस्या है. विश्व की बहुत बड़ी जनसंख्या को अब भी पर्याप्त खाना नहीं मिलता. सच पूछा जाये तो भोजन अविकसित देशों में ही नहीं विकसित देशों में भी एक चिरस्थायी समस्या है, क्यों कि भूमि से हम इतना कुछ प्राप्त कर रहे हैं कि आगे आने वाले युग में वह बढ़ती हुई जनसंख्या की बढ़ती हुई माँगों को पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकेगी. इस शताब्दी के अंत तक यदि आहार के नये स्रोत नहीं खोजे गये तो भूख की समस्या कम होने के स्थान पर बढ़ जायेगी. मनुष्य के भोजन का सब से बड़ा स्रोत सागर है. मनुष्य ने तट के साथ-साथ समुद्र के हर क्षेत्र में अपने जाल बिछा रखे हैं. अनेक देशों के यंत्रचालित या साधारण मछुआ-नौकाएँ या जहाज़ २०० से २५० मीटर गहरे पानी से मछलियाँ पकड़ते हैं और विश्व की जितनी मछलियाँ पकड़ी जाती हैं उस का अधिकांश इन्हीं क्षेत्रों से प्राप्त होता है. उस से गहरे १२०० मीटर गहरे पानी में मछलियाँ पकड़ने की क्रिया अभी बहुत धीमी है. इन स्थानों से कुल मछली-उत्पादन का केवल ३ प्रतिशत प्राप्त होता है. वास्तव में गहरे पानी से मछलियाँ पकड़ने में अनेक समस्याएँ सामने आती हैं. इस सिलसिले में पश्चिम जर्मनी, स्पेन, फ़्रांस और ब्रिटेन में कुछ अनुसंधान हो रहे हैं. सोवियत संघ ने भी इस सिलसिले में काफ़ी प्रगति की है. इस समय विश्व में कुल ५२ करोड़ ४० लाख सेंटनर मछलियाँ पकड़ी जाती हैं, यद्यपि इस सिलसिले में भी विशेषज्ञों का एक मत नहीं है. कैनाडा के एक वैज्ञानिक **जे. एल. कास्का** के अनुसार १९३८ से १९६५ तक मछलियों के उत्पादन में १५० प्रतिशत की वृद्धि हुई है और इस शताब्दी के अंत तक १०० करोड़ सेंटनर प्रति वर्ष मछलियाँ पकड़ी जा सकेंगी. इस के अतिरिक्त समुद्र में अनेक ऐसे तत्त्व मौजूद हैं जिन से मनुष्य का भोजन तैयार किया जा सकता है. इस समय विश्व के वैज्ञानिक इन तत्त्वों से पोषक पदार्थ प्रोटीन तैयार करने के सिलसिले में गंभीरतापूर्वक सोच रहे हैं. मनुष्य के लिए आहार प्रदान करने के अतिरिक्त सागर मनुष्य के आर्थिक विकास में भी सहयोग दे सकता है. यह एक स्वाभाविक बात है कि समुद्र की तलहटी में उसी प्रकार खनिज के भंडार होंगे जिस प्रकार भू-गर्भ में हैं. इन खनिज पदार्थों में पेट्रोल सब से महत्त्वपूर्ण दिखायी देता है. संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ इस सिलसिले में अनुसंधानरत है. वैज्ञानिकों को विश्वास है कि सागर की तलहटी में कुँए खोदे जा सकते हैं और इन कुँओं से पर्याप्त मात्रा में तेल निकाला जा सकता है. एक आशावादी अनुमान के अनुसार इस तेल की मात्रा इतनी अधिक है कि वह सदियों तक समाप्त नहीं होगा.

जलवायु का पिता : सागर जलवायु का जन्मदाता माना जाता है. समुद्र के ऊपर से चलने वाली हवाएँ, समुद्र की जलधाराएँ, ज्वार-भाटा, समुद्र का तापमान ऐसे तत्त्व हैं जो समुद्र-तट-स्थित देशों की ही जलवायु को प्रभावित नहीं करते, बल्कि उन का प्रभाव दूर-दूर तक होता है. हिंद महासागर इस का सब से बड़ा उदाहरण है. मॉनसून का जन्म इसी में होता है और भारत की संपूर्ण कृषि-सिंचाई इसी मॉनसून का खेल है. वास्तव में इस शब्द का अर्थ ही मौसम होता है. बंगाल की खाड़ी के मछेरों, सिंध, कच्छ और अरब के जहाज़रानों को मॉनसून की गति और दिशा का पूरा-पूरा परिचय था और वह उसी के अनुकूल यात्रा करते थे. आधुनिक युग के प्रादुर्भाव के साथ विश्व के उन समुद्रों का अन्वेषण होना आरंभ हो गया है जिन के तटों पर स्थित राष्ट्रों में आर्थिक जागृति उत्पन्न हो गयी थी. इस दिशा में भू-मध्य सागर, प्रशांत महासागर और उत्तरी ध्रुव सागर में काफ़ी परीक्षण हुए हैं; किंतु वास्तव में सब से महत्त्वपूर्ण महासागर हिंद महासागर के बारे में वैज्ञानिकों को बहुत कम जानकारी प्राप्त है. संभवत: इस का कारण यह रहा होगा कि भारत की स्वतंत्रता के पहले २०० वर्षों तक बर्मा, मलाया, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया से अदन तक संपूर्ण सागर-तट पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा था; इस लिए अन्य संबद्ध राष्ट्र इस में हस्तक्षेप नहीं करते थे. स्वयं अंग्रेज़ों ने इस दिशा में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया. मगर भारत की स्वतंत्रता के बाद विश्व के

वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और १० वर्ष पूर्व सागर-वैज्ञानिकों ने यह निश्चय किया कि हिंद महासागर को एक अंतरराष्ट्रीय अनुसंधान का क्षेत्र बना दिया जाये.

परित्यक्त महासागर : हिंद महासागर ही क्यों ? यह महासागर विश्व का सब से बड़ा महासागर नहीं है, मगर फिर भी कई अर्थों में यह विश्व का सब से महत्त्वपूर्ण महासागर है. एशिया और अफ़्रीका महाद्वीपों के बराबर क्षेत्रफल पर फैली हुई यह जलराशि संपूर्ण विश्व के सातवें भाग पर छायी हुई है. मगर यह उस का महत्त्व नहीं है. बहुत प्राचीन काल से मिस्र, अरब और भारत के बीच समुद्री व्यापार होता रहा है, बल्कि इस बात के भी प्रमाण हैं कि प्राचीन वैदिक काल में भी भारतीयों ने समुद्र पर अपने जहाज़ तैराये थे. फिर भी प्रायः डेढ़ हज़ार वर्ष से जो प्रगति जहाज़रानी के सिलसिले में यूरोपीय राष्ट्रों ने की उस के सामने सर्वविदित ऐतिहासिक कारणों से भारत और हिंद महासागर के तटवर्त्ती सभी देश बहुत पीछे रह गये. आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता के विकास के साथ-साथ जहाज़रानी का विकास तो हुआ ही, समुद्र की विशेषताओं का अध्ययन भी होने लगा. मगर इस दिशा में भी हिंद महासागर प्रायः अछूता रह गया. समुद्र वैज्ञानिकों की भाषा में इसे 'परित्यक्त महासागर' नाम दिया गया था. वैज्ञानिकों को जहाँ अन्य सागरों के बारे में बहुत कुछ मालूम हो गया था हिंद महासागर अपने रहस्य पर परदा डाले रहा. इस लिए १९५८ में समुद्र-वैज्ञानिकों ने यह फ़ैसला किया कि सहयोग के आधार पर विश्व के संबंधित देश सामूहिक रूप से हिंद महासागर पर वैज्ञानिक धावा बोल दें. हिंद महासागर के चुनाव का एक बहुत बड़ा कारण यह भी था कि इस महासागर को छोड़ कर और कहीं भी जलधाराएँ अपनी दिशा मोड़ कर वापस नहीं लौटतीं और न ही नियमित रूप से हवाओं तथा मौसम का परिवर्त्तन होता है. ३० राष्ट्रों के वैज्ञानिकों और विशेष यंत्रों से युक्त जहाज़ों ने इस अभियान में भाग लिया और जितनी भी सामग्री का विश्लेषण हुआ उस का परिणाम विश्व के अनेक अनुसंधान-केंद्रों को प्रेषित किया गया. क्यों कि यह एक सहयोगी प्रयास है इस लिए सर्वेक्षण से प्राप्त परिणाम सभी देशों को पहुँचाये जाते हैं. भारत में कोचीन तथा बंबई में इन परिणामों को प्राप्त करने तथा उन का विश्लेषण करने के केंद्र स्थापित किये गये हैं. इस सर्वेक्षण के आधार पर वैज्ञानिकों को कुछ अद्भुत और आश्चर्यचकित करने वाली बातों का पता चला. उदाहरण के लिए सुदूर दक्षिण में स्थित मॉरिशस द्वीप के पास एक छोटा-सा द्वीप रियूनियन है. इस द्वीप का सब से ऊँचा स्थल समुद्र की सतह से १००६९ फ़ुट ऊँचा है, मगर समुद्र की तलहटी का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि वास्तव में रियूनियन टापू समुद्र में स्थित एक बहुत ऊँची पर्वतीय चोटी है, क्यों कि यह तलहटी से २६०६९ फुट ऊँचा है. इस अनुमान से रियूनियन विश्व के उच्चतम शिखरों में से एक है. समुद्र की सामान्य गहरायी १६,००० फ़ुट मानी जाती है.

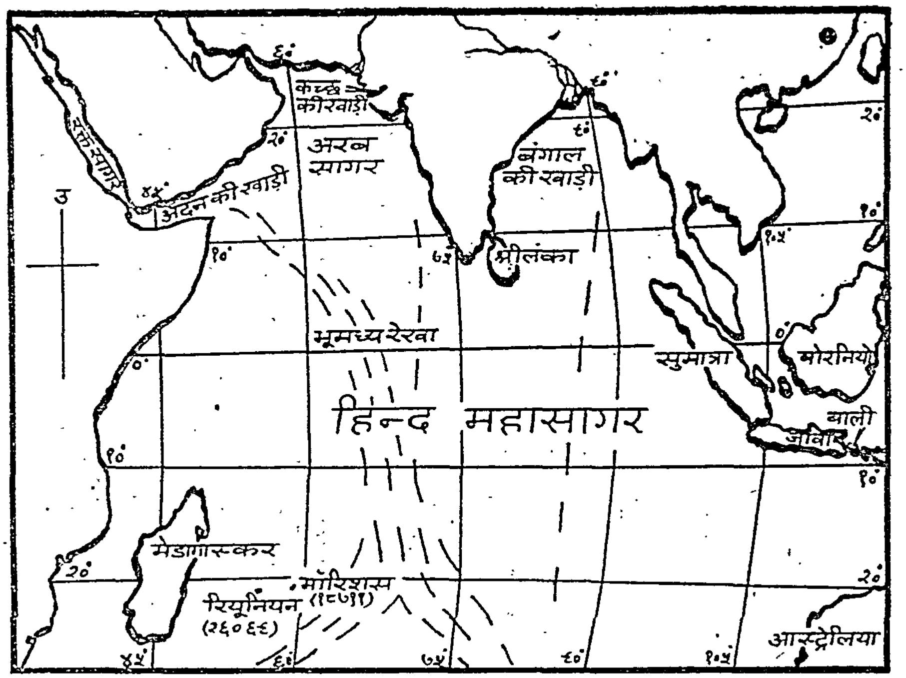

'डीप क्वेस्ट' अनुसंधान-यान पर दो वैज्ञानिक

कीचड़ की धारा : इस अभियान ने पाँच महत्त्वपूर्ण बातों पर विशेष प्रकाश डाला है—ऊँची पर्वत श्रेणियाँ, जलधाराएँ, खारे पानी के स्थल, पोषक पदार्थ जप्लैंकटन और मत्स्य-भंडार. वैज्ञानिकों को मालूम हुआ है कि हिंद महासागर में एक पर्वत-शृंखला ३००० मील लंबी है, जिस का ऊपरी भाग चाकू की धार के समान पतला है. कहीं-कहीं यह शृंखला १३००० फुट ऊँची है. पहले-पहल इस का पता अमेरिकी वैज्ञानिकों को लगा और बाद में रूसी वैज्ञानिकों ने इस की खोज खाड़ी बंगाल से ले कर ऑस्ट्रेलिया के दक्षिण तक की. गंगा और सिंध के मुहानों के पास धाराओं और पानी के तूफ़ानों की प्रक्रिया से बहुत ही गहरी खाड़ियाँ और दरारें पैदा हो गयीं हैं, जिन के कारण जलधाराएँ इतनी तेज़ गति से चलती हैं कि उन की गति कभी-कभी ५० मील प्रति घंटा हो जाती है. इसी सिलसिले में अमेरिकी सर्वेक्षण-यान पाइनियर ने पता लगाया कि सुमात्रा के आसपास पानी की सतह के नीचे कीचड़ से भरी हुई विशाल जलधाराएँ चलती हैं, जिन की चौड़ाई संभवतया समुद्र-तल पर चलने वाली किसी भी धारा से अधिक है.

घुमक्कड़ भारत : १९५० में अतलांतिक महासागर का मानचित्र बनाते हुए दो वैज्ञानिक कुमारी थार्प और डॉ. हीज़न ने एक तंग खाड़ी का पता लगाया था. अंतरराष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान के दौरान एक वैज्ञानिक यंत्रों से युक्त जलयान वेमा ने इस खाड़ी के कुछ चिह्न हिंद महासागर में मेडागास्कर टापू के पूर्व में देखे. बाद में अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस की पुष्टि की. अब यह विश्वास किया जाने लगा है कि प्रशांत सागर की यह तंग खाड़ी पूरे विश्व-समुद्र में फैली हुई है और यह वास्तव में पृथ्वी-तल में एक विशाल दरार है, जो प्रायः ४०,००० मील लंबी है. यह विशाल दरार हिंद महासागर में एक अंग्रेज़ी शब्द वाई के उल्टे रूप में पायी जाती है. कुछ साल पूर्व एक वैज्ञानिक वेगनर ने एक आश्चर्यजनक विचार प्रस्तुत किया था, जिस के अनुसार कुछ महाद्वीप धीरे-धीरे अपनी वास्तविक स्थिति से हटते जा रहे हैं. इस सिद्धांत को यदि स्वीकार किया जाये तो उस का अर्थ यह होगा कि भारत की स्थिति अत्यंत प्राचीन काल में वही नहीं थी जो आज है. वेगनर के अनुसार भारत हिंद महासागर के दक्षिणी भाग में अफ़्रीका, ऑस्ट्रेलिया और मेडागास्कर का एक

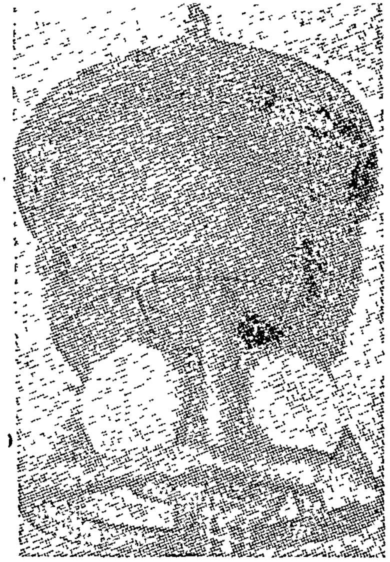

'नोमैड' (खानावदोश) की पहली यात्रा

भाग था. इस संपूर्ण महाद्वीप को गोंडवानालैंड नाम दिया गया. कालांतर में **अफ़्रीका** और **ऑस्ट्रेलिया** एक दूसरे से हटते गये तथा **भारत** और **मैडागास्कर** में दरार पड़ गयी. भारत उत्तर की ओर यात्रा करने लगा और वह एशिया महाद्वीप से टकरा गया. इस भारी टक्कर के कारण चट्टानों और मिट्टी का इतना विशाल ढेर लग गया कि धीरे-धीरे वही ढेर वर्त्तमान **हिमालय** पर्वत-श्रृंखला और उस की छाया में बसे हुए **तिब्बत** पठार के रूप में परिणत हो गया. **डॉ. हीज़न** का विश्वास है कि **वैगनरवाद** के पक्ष में पर्याप्त प्रमाण इकट्ठे हो गये हैं. अनेक छोटे टापुओं और पर्वत-श्रृंखलाओं के अतिरिक्त स्वयं **मैडागास्कर** भी इसी विभाजन के अंश हैं. **मैडागास्कर** एक हज़ार मील लंबा टापू है, जिस की निचली सतह कठोर पत्थर से बनी हुई है और इस बात का अभी तक किसी ने उत्तर नहीं दिया कि यहाँ के निवासी आरंभ में कहाँ से आये.

गरम जलकुंड : दूसरी विचित्र बात रक्त सागर के बारे में है. अभी तक यह माना जाता था कि मृत सागर सब से अधिक खारा समुद्र है, क्यों कि वस्तुतः मृत सागर प्रायः चारों ओर से भूमि से घिरा हुआ है. मगर हिंद महासागर अभियान से यह मालूम हुआ है कि **रक्त सागर** और अदन की खाड़ी में खारापन **मृत सागर** से भी अधिक है, क्यों कि यहाँ ठंडे पानी के नीचे बहुत गर्म पानी के कुंड पाये गये हैं. इन्हीं जल-कुंडों में नमक की मात्रा बहुत अधिक है. यह अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक १०० पाउंड समुद्री जल में ३.५ पाउंड नमक पाया जाता है, जो कि साधारणतया समुद्री पानी के खारेपन से आठ गुना अधिक है. मगर इस से भी विचित्र बात यह है कि इस पानी का तापमान १३३ अंश फ़रेनहाइट तक है. कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि इस पानी में खनिजों की मात्रा सामान्य समुद्री जल से बहुत अधिक है, इस लिए अपने भारीपन के कारण यह गर्म पानी ऊपर नहीं उठता और इस प्रकार ठंडे और गर्म पानी की मिलावट नहीं होती. नमक के अतिरिक्त इस पानी में लोहा, ताँबा, चाँदी और सोना है. वास्तव में यदि कहीं पानी में सोने की खान है तो लाल सागर में ही है. विश्व की बहुत तेज़ बहने वाली जल-धारा, जो दक्षिणपूर्वी मॉनसून द्वारा आकर्षित हो कर सोमालिया के किनारे-किनारे बहती है, की विशेषताओं का भी पता लग गया है. इस की गति कई महत्त्वपूर्ण जलधाराओं से लगभग दुगुनी है. इस के अतिरिक्त भी कुछ जलधाराओं का पता लगाया गया है.

समुद्र की फ़सल : समुद्र खाद्य-पदार्थों का एक बहुत बड़ा भंडार है. पोषक खाद्य-पदार्थों के ८०० नमूने संग्रहीत किये गये हैं. वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस प्रकार के पोषक पदार्थ अरब सागर में बहुत अधिक पाये जाते हैं. जहाँ तक मछलियों का सवाल है हिंद महा-सागर में अभी इतना अधिक मत्स्य-भंडार है कि उस से भारत का खाद्य-नक्शा बदल सकता है. सर्वेक्षण से पता चला है कि यदि मछली पकड़ने के आधुनिक साधनों को अपनाया जाये तो वर्त्तमान शताब्दी के अंत तक प्रति वर्ष हिंद महासागर से दो करोड़ टन मछलियाँ पकड़ी जा सकेंगी. इस सिलसिले में एक महत्त्वपूर्ण घटना उल्लेखनीय है. १९५७ में एक रूसी जहाज़ को अरब सागर में लगभग २ करोड़ टन मरी हुई मछलियाँ मिलीं. इस से अनुमान लगाया जा सकता है कि किस प्रकार इस अमूल्य खाद्य-पदार्थ को ज़ाया किया जा रहा है. इस सिलसिले में भारत की ओर से प्रयास आरंभ हो गये हैं, मगर उसे गति देने की ज़रूरत है. कई स्थानों पर यह प्रयास बहुत अच्छे परि-णाम भी दे रहे हैं. उदाहरण के लिए **कोचीन** में **इंडियन बायलौजीकल सेंटर** के अंतर्गत अनेक पोषक पदार्थों के नमूने इकठ्ठे किये गये हैं तथा मत्स्य-उद्योग का भारी विकास हुआ है. पिछले वर्ष तक भारत से कुल १८ करोड़ रुपये की मछलियों का निर्यात होता था, जिस में से १६ करोड़ रुपये की मछलियाँ कोचीन से जाती हैं. वास्तव में कई साल पहले तक हिंद महासागर में विशाल और आधुनिक मत्स्य उद्योग स्थापित करना एक अपव्यय माना जाता था क्यों कि गरमी के कारण मछलियों के सुरक्षण की समस्याएँ बहुत अधिक थीं, मगर अब आधुनिक साधनों के प्रकट होने से यह सिद्ध हो गया है कि मछली पकड़ना और उसे सुरक्षित रखना ध्रुव सागरों और अपेक्षाकृत ठंडे देशों का ही पेशा नहीं होना चाहिए, भारत जैसे गर्म देश भी इसे एक महत्त्वपूर्ण उद्योग के रूप में अपना सकते हैं. मत्स्य-उद्योग के अति-रिक्त हिंद महासागर में खनिज-पदार्थों को खोजने और उन का उचित उपयोग करने की दिशा में बहुत बड़ा क्षेत्र पड़ा हुआ है. अन्य विकसित देश इस दिशा में शीघ्रता से आगे बढ़ रहे हैं. उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका समुद्र से प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ डॉलर के मूल्य की गंधक निकालता है. इसी प्रकार समुद्र से पेट्रोल निकालने की होड़ भी शुरू हो गयी है.

नये साधन : समुद्र-तलहटी की खोज करने के लिए नये से नये यंत्रों का निर्माण हो रहा है. संयुक्त राज्य अमेरिका की एक संस्था **लॉक-हीड मिसाइल्स एंड स्पेस कंपनी** ने हाल ही में गहरे पानी में डुबकी लगाने वाले एक अन्वेषक यान का निर्माण किया है, जो २० हज़ार फ़ुट गहराई तक जा सकता है. इस से समुद्र-तलहटी का ९० प्रतिशत क्षेत्र मनुष्य के अनुसंधान की पहुँच में आ जायेगा. इस अन्वेषक यान में चार व्यक्ति बैठ सकते हैं, जो समुद्र-तलहटी से प्राप्त नमूनों का विश्लेषण भी इसी यान में स्थित प्रयोगशाला में कर सकते हैं. इस प्रकार के यंत्र का सफल परीक्षण हो गया है. इस के अतिरिक्त एक जर्मन वैज्ञानिक संस्था ने एक यंत्र का निर्माण किया है, जो समुद्र में १६५० फ़ुट गहराई तक जा सकता है. इस में डुबकी मारने वाला अन्वेषक गहरे पानी में सुरक्षित रह सकता है. इन परीक्षणाधीन साधनों के अतिरिक्त विश्व के अनेक वैज्ञानिक यंत्रों से युक्त यानों का उपयोग किया जा रहा है, जो समुद्र के विभिन्न भागों और गहराइयों से आँकड़े इकट्ठे कर सकते हैं. हिंद महासागर में भाग लेने वाले अमेरिकी और रूसी जहाज़ों के अतिरिक्त भारतीय अनुसंधान जहाज़ **किस्तना** का भी उपयोग किया गया. एक अन्य जहाज़ समुद्र में मौसम के परिवर्त्तन के संबंध में जानकारी प्राप्त कर रहा है. यह जहाज़ **नोमैड** (खाना-बदोश) स्वचालित यंत्रों द्वारा अपनी जानकारी ऋतु-प्रयोगशालाओं को प्रदान करता रहता है.

सागर से मित्रता : हिंद महासागर के वैज्ञा-निक अभियान से जितनी जानकारी प्राप्त हुई है उस का आर्थिक और वैज्ञानिक उपयोग तो है ही, किंतु उस का राजनैतिक उपयोग भी हो सकता है. विश्व की स्थिति ऐसी है कि किसी भी विषय को दूसरे विषयों से अछूता नहीं रखा जा सकता.

पानी में खोज करने वाला जर्मन यंत्र

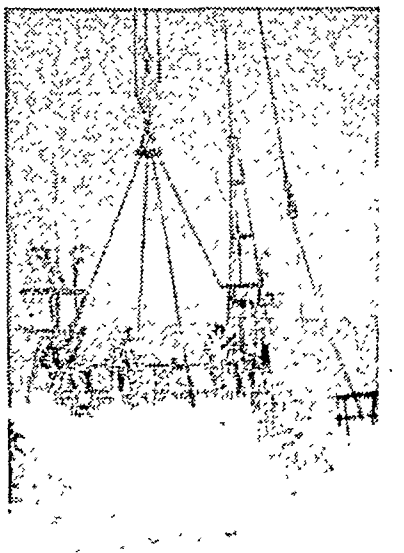

पाकिस्तान और हम

पश्चिम और पूर्व में भारत के सीमांत के प्रतिवेशी पाकिस्तान में अशांति फैल रही है और भारत में राजनीतिक और बौद्धिक चुप हैं : क्या उन में कोई विचार नहीं जागते ? उन की चुप्पी तोड़ने के उद्देश्य से **दिनमान** के प्रतिनिधियों ने साक्षात्कार के कुछ दौर पूरे कर के यह संवाद प्रस्तुत किया है. यह अगले अंक में जारी रहेगा. तब पढ़ियेगा बंगाल के लेखकों के विचार.

भू-खंड-भाग्य

जनसंघ के अध्यक्ष अटलविहारी वाजपेयी ने आशा और आशंका दोनों प्रकट की हैं : शायद अब कुछ लोग समझ जायें कि यदि पाकिस्तान और भारत साथ हों तो किसी तीसरी ताक़त को इस भू-खंड में घुसने का मौक़ा नहीं मिलेगा. अंग्रेज़ की गुलामी दोनों देशों के लोग एक समान कर चुके हैं और उस के परिणाम में उत्पन्न आर्थिक तथा सामाजिक पिछड़ेपन के शिकार हैं. विश्व-शक्तियों का प्रयत्न इन दोनों देशों को अपनी-अपनी कठपुतली बनाने का जारी है और आम आदमी की हालत दोनों जगह खराब है. इन तथ्यों से यदि हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इस भू-खंड का भाग्य परस्पर बँधा हुआ है तो दोनों में सहयोग बढ़ाना संभव हो जाता है. पर यह सहयोग बढ़ेगा तो इसी आधार पर कि हमारे और पाकिस्तान के बीच आधारभूत सहमति हो; फिर तो सहयोग के सैकड़ों द्वार खुल जायेंगे जो आज बंद हैं.

शुद्ध आशा नहीं : आशंका का पहलू भी उन्होंने स्पष्ट किया. अगर पाकिस्तान में वास्तविक लोकतंत्र नहीं आता और जनता के सच्चे प्रतिनिधि शासन नहीं ग्रहण करते तो यह संभावना बिलकुल नहीं रहती कि वह भारत के निकट आये तथा शस्त्र-दौड़ और शस्त्रों के संघर्ष में अपनी शक्ति खर्च करने की बजाय अपने को एक स्वावलंबी और सुखी राष्ट्र बनाने पर अपनी सारी शक्ति खर्च करे. तब तो यह आशंका पैदा हो जायेगी कि पुरानी मुस्लिमलीगी राजनीति को नया जामा पहनाने की कोशिश में कोई ऐसे तत्त्व उभर कर सामने न आ जायें जो जनता के जुनून को भड़कायें और भारत के खिलाफ़ जेहाद के नारे नये सिरे से बुलंद करें. भुट्टो और भासानी जैसे चीन के हितैषी ऐसी ही आशंका उपजाते हैं. पूर्व पाकिस्तान में उन का प्रभाव यह खतरा पैदा करता है कि कहीं पाकिस्तान के नये शासक क़म्युनिस्ट चीन के साथ मिल कर भारत के विरुद्ध नया बखेड़ा न खड़ा करें. वे जानते हैं कि अब अकेले लड़ कर पाकिस्तान भारत को परास्त नहीं कर सकता. पिछले दो-तीन साल की तैयारी के बाद भी पाकिस्तान की शक्ति न उतनी है, न भविष्य में बन सकती है, कि लड़ाई के मैदान में भारत को परास्त कर दे. नये नेता मुक़ाबले का यह तरीक़ा शायद निकालें कि चीन और पाकिस्तान से एक साथ भारत को भिड़ा दें; भारत के विरुद्ध अपनी जनता को और भी गुमराह करें.

घृणा-पुत्र : जहाँ तक भारत का सवाल है पाकिस्तान का जन्म भारत के लिए घृणा में से हुआ था. पर ऐतिहासिक तथ्य यह है कि १९४७ तक हम और पाकिस्तान एक ही देश के हिस्से थे और जनता आज भी एक ही है. अलग राज्य बनने से पृथकता बद्धमूल अवश्य हुई, परंतु यह बुनियादी तथ्य नहीं बदला कि भारत और पाकिस्तान के दो राज्यों में जो जनता निवास करती है वह एक है और विभाजन उस के इतिहास को नहीं बदल सकता.

वाजपेयी : आशा और आशंका

जब हम चीन और पाकिस्तान का विचार करें तो दोनों से खतरा मानते हुए भी इस बात को नहीं भुला सकते कि पाकिस्तान की जनता कल तक हमारा अंश थी और भविष्य में भी शायद हम मिल सकते हैं; जब कि चीन से ऐसी किसी संभावना की कल्पना भी नहीं की जा सकती.

सेना साथ नहीं : परंतु पाकिस्तान में अय्यूब का शासन डगमगाया क्यों ? जनसंघ के अध्यक्ष का कहना है कि तानाशाही का शिकंजा ढीला पड़ने के दो-तीन कारण हैं. एक तो यह कि पश्चिम पाकिस्तान के प्रदेशों की भाषाएँ और पूर्व पाकिस्तान की भाषा अलग है. पूर्वी पाकिस्तान की जनता अपने लिए पाकिस्तान के पंजाबी शासकों जैसा अच्छा और ऊँचा स्थान माँग रही है. अगर इन प्रदेशों की सरकारें अलग-अलग बनती हैं तो पाकिस्तान का पूरा राजतंत्र बदलता है. अय्यूब जो इतनी जल्दी उखड़ गये उस का एक कारण यह है कि सेना उन का साथ नहीं दे रही है. कहा जाता है कि ताशकंद के पहले बल-प्रयोग और बाद में बातचीत के द्वारा कश्मीर को हड़पने में जो विफलता अय्यूब को मिली उस से सेना में उन के प्रति अविश्वास और असंतोष पैदा हो गया. ऐसा हो तो कुछ अजब नहीं होगा.

भूतपूर्व

श्रीप्रकाश ने पाकिस्तान में **भूतपूर्व भारतीय उच्चायुक्त** की हैसियत से कहा कि 'मेरा कटु अनुभव है कि दोनों ही राष्ट्रों में घटनाएँ अतिरंजित कर प्रचारित की जाती हैं. दोनों राष्ट्रों में एक दूसरे के विरुद्ध कटु भावना होने के कारण ऐसा होता है. पाकिस्तान एक अद्भुत प्रकार का देश है, क्यों कि इस के दो अंग हैं: एक दूसरे से १५०० मील की दूरी पर स्थापित हैं. इन दोनों भागों को एक ऐसा देश पृथक किये हुए है जिसे वहाँ के शासकगण और संभवतः अधिकतर निवासी भी शत्रु मानते हैं. ऐसी स्थिति संसार में कोई दूसरी नहीं है. दोनों खंडों में समता नहीं के बराबर है. कहने को दोनों खंडों के निवासी अपने को मुसलमान कहें, पर भाषा, संस्कृति, परंपरा, आर्थिक स्थिति, सामाजिक आचार-विचार में दोनों में भारी अंतर है.

बस करो : लोकतंत्रात्मक समाज में किसी का बहुत दिन तक शासन नहीं सहन किया जाता. वह शासकों का परिवर्त्तित होते रहना आवश्यक समझता है. वर्त्तमान राष्ट्रपति अय्यूब दस वर्षों से अनन्याधिकारी रहे हैं. लोकतंत्र इसे अपने सिद्धांतों के विरुद्ध मानता है.

राष्ट्रपति अय्यूब अगर हटे तो इन के हटने के पहले इस में कोई संदेह नहीं कि वहाँ के संविधान में बहुत कुछ परिवर्त्तन हो जायेगा. पूर्व पाकिस्तान को बहुत-कुछ अपने शासन में स्वाधीनता मिलेगी. मेरी समझ में भारत की तरह वहाँ के राष्ट्रपति भी वैधानिक हो जायेंगे और पश्चिम पाकिस्तान में फिर पहले की तरह कई प्रदेश स्थापित हो जायेंगे. एक प्रकार का संघ राज्य वहाँ भी होगा.

हुआ करे : भारत पर पाकिस्तान के आंदोलनों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ सकता. बहुत संभव है कि वहाँ की दशा देख कर भारत के भी बहुत से मुस्लिम लोग, जो पाकिस्तान का पक्षपात करते हों, वे भारत पर ही श्रद्धा रखने लगें. यह भी संभव है कि पाकिस्तान और भारत की परस्पर की कटुता कम हो. भारत की हार्दिक सद्भावना को वे पहचानें और बाहर के देशों से मित्रता करने के फेर में न पड़ कर भारत से मित्रता करें. पाकिस्तान की वर्त्तमान दशा अवश्य ही विदेशों में उस के प्रति अश्रद्धा होगी. प्रायः विदेश भारत-पाकिस्तान के परस्पर के मनोमालिन्य में पाकिस्तान का ही पक्ष लेते थे. संभव है कि वे अब भारत की दृष्टि से भी स्थिति को देखें और भारत और पाकिस्तान में

श्रीप्रकाश : कटु अनुभव

परस्पर मैत्री स्थापित कराने में सहायक हों.

पूर्व पाकिस्तान शायद अपने अस्तित्व को पश्चिमी पाकिस्तान से बहुत-कुछ अलग कर लेगा, यद्यपि उस का राजनीतिक संबंध पश्चिम से बना रहेगा. पख्तूनों का अपने को पृथक करने का आंदोलन जारी रहेगा. वे पाकिस्तान के अधीन नहीं रहना चाहते. मैं स्वयं जानता हूँ कि पठान लोग कहते हैं कि धर्म में समता होते हुए भी हम पठान हैं और हमारा पंजाबियों, सिंधियों, बंगालियों से कोई संबंध नहीं है. बहुत संभव है कि आरंभ में उन का एक पृथक प्रदेश स्थापित हो जाये, पर आगे चल कर अफ़ग़ानिस्तान की सहायता और सहानुभूति के कारण पाकिस्तान से बिलकुल ही अलग हो जायें.

बिना प्रीति का भय : जब एक बार किसी कारण व्यक्तियों, घरों या देशों में पार्थक्य हो जाता है तो उन का फिर मिलना कठिन क्या प्रायः असंभव हो जाता है. भारत और पाकिस्तान का पुनः एक राष्ट्र होने की संभावना मैं नहीं देखता. उल्टे यह भय है कि भारत ही कई स्वतंत्र खंडों में विभक्त हो जायेगा. हां, मेरी अभिलाषा अवश्य है कि भारत के विविध खंड, जो आज प्रदेश के नाम से जाने जाते हैं, यदि स्वतंत्र हो जायें और इसी प्रकार पाकिस्तान के भी विभिन्न खंड स्वतंत्रता की पृथक-पृथक घोषणा करें तो सब मिल कर एक मैत्रीपूर्ण महासंघ स्थापित करें. इस में सब का ही भला होगा और सब के व्यक्तित्त्व की रक्षा होगी. पर ऐसा होगा या नहीं, मैं नहीं कह सकता.

काशी विद्यापीठ के उपकुलपति राजाराम शास्त्री का विचार है कि पाकिस्तान के लोगों की राजनीति, जनजाति-राजनीति (ट्राइबल पॉलिटिक्स) से ऊपर नहीं उठ पायी है. इस से हमारी चिंता बढ़ी है. वहाँ ऐसी राष्ट्रीयता का विकास नहीं हो पाया है जो एकरस हो कर चल सके. वहाँ के राजनीतिक नेता किसी नीति पर नहीं चलते. निजी राजनीति से स्थिरता नहीं आ पाती.

अय्यूब के ज़माने में स्थिरता आयी, क्यों कि उन्होंने बुनियादी जनतंत्र की स्थापना की. अय्यूब की दब्बू नीति नहीं थी, जो यह कहे कि मैं आप को और आप के कुत्ते को भी प्यार करता हूँ. सभी देशों के साथ रिश्ता एक सीमा तक रहा. अय्यूब ने आपस में एक-दूसरे के दुश्मन से भी दोस्ती की. चीन और अमेरिका इस के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं. अय्यूब वैसे तानाशाह नहीं थे जो ज़बरदस्ती और फ़ौज के बल पर शासन करते. वह एक जननेता की तरह काम करते रहे और जनता के बीच स्वच्छंदतापूर्वक विचरण करते थे.

बड़ी चिंता : पाकिस्तान की मौजूदा हलचलों का भारत में हिंदू-मुसलमान समस्या पर भी व्यापक प्रभाव पड़ेगा. इस की खाई और बढ़ सकती है. इसी लिए मुझे इस राजनीति से बड़ी चिंता हो रही है. अय्यूब राजनीति में परिपक्व हो गये थे. मौजूदा लोग नये हैं. दुनिया में खड़े होने लायक़ नहीं बन पाये हैं. अतिवादी होने के कारण दिक़्क़त ही पैदा करेंगे. अय्यूब एक सुलझे हुए राजनीतिज्ञ है, तभी तो उन्होंने कहा है कि हमारी पार्टी विरोध में रह कर काम करेगी.

काशी विद्यापीठ के अर्थ-प्राध्यापक **कृष्णनाथ** ने कहा कि पाकिस्तान के हाल के उलट-फेर को मैं भारत की स्थिति के साथ जोड़ कर ही देखना चाहूँगा. भारत-पाक की वर्त्तमान दुर्व्यवस्था का मूल कारण एक राष्ट्र का दो राष्ट्रों में कृत्रिम बँटवारा है. इस तरह पाकिस्तान की मौजूदा हलचल के आइने में मैं भारत की कभी सुप्त, कभी प्रकट हलचल को देखता हूँ. अगर एक वाक्य में कहूँ तो भारत-पाक विभाजन का मूल उद्देश्य असफल हुआ है और इसे असफल होना ही था. अय्यूब के पतन से **वर्तमान आंदोलनकारी और एक हद तक जनता संतुष्ट-सी होगी. किंतु जल्द ही यह एहसास उभरने लगेगा कि पाकिस्तान के नये शासक पुरानों से** बदतर हैं. शासक-वर्ग के भोग और जनता की खुराक के लिए पाकिस्तान अमेरिका पर इतना निर्भर है कि पाकिस्तान की नई हुकूमत उस से रिश्तों को वास्तविक रूप से नहीं बिगाड़ना चाहेगी, चाहे स्वतंत्रता का तेवर दिखाती रहे. रूस-चीन द्वंद्व के तीखे होने के कारण अब पाकिस्तान को कम-बेश एक-दूसरे के बीच चुनाव करना होगा. पूर्व पाकिस्तान, पाकिस्तान की केंद्रीय सत्ता से दूरी, जाति, भाषा और संस्कृति के अलगाव के कारण नाम मात्र को ही पाकिस्तान का अंग है. भविष्य में यह अलगाव और दूरी के बढ़ने की प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ेगी. केंद्रीय सत्ता के उलट-फेर से पख्तून आंदोलन के लिए अनुकूल स्थिति पैदा हो सकती है. किंतु आंदोलन की सफलता-असफलता पख्तून नेतृत्व, संकल्प और संचालन के साथ-साथ भारत के समर्थन पर निर्भर है.

दो पंथ एक काज

संवैधानिक मामलों के विशेषज्ञ और संसदीय व्यवस्था के अध्येता डॉ. **लक्ष्मी मल्ल सिंघवी** की धारणा है कि सभी अविकसित देशों में जल्द उन्नति करने का लालच उन्हें कुछ समय के लिए तानाशाही शासन स्वीकार करने के भ्रष्ट निर्णय की ओर ढकेल ले जाता है. पाकिस्तान में भी वही हुआ जो कई अविकसित देशों में हुआ यानी सोचा गया कि विकास पहले हो ले फिर लोकतंत्र हो जायेगा. इस चक्कर में न उन्हें माया मिली न राम.

प्रत्येक तानाशाही के अधीन लोगों में बरदाश्त की हद होती है और यह हद अब पाकिस्तान में पहुँच गयी है. हालाँकि अय्यूब ने कोई लंबे-चौड़े वायदे जनता से नहीं किये थे तो भी उन का बनाया हुआ राज्यतंत्र अब एक भुलावा जैसा दिखायी देने लगा है.

इस विचित्र स्थिति पर कि पाकिस्तान में लोग संसदीय व्यवस्था चाह रहे हैं जब कि यहाँ एकात्म शासन की माँग होने लगी है, डॉ. सिंघवी ने कहा, जो एकात्म व्यवस्था चाहते हैं वे मृगतृष्णा से ग्रस्त हैं. केवल संघीय व्यवस्था में ही किसी गतिशील लोकतंत्रीय समाज की रचना हो सकती है.

प्रश्न : पर पाकिस्तान में क्यों संसदीय व्यवस्था माँगी जा रही है ?

उत्तर : शब्दों पर न जाइये. वास्तव में पाकिस्तान और हमारी खोज एक ही है. हम दोनों अपने आर्थिक विकास के लिए अच्छा कारगर प्रशासन खोज रहे हैं. पाकिस्तान में राष्ट्रपति-व्यवस्था वास्तव में कभी थी ही नहीं, वहाँ तानाशाही थी. हमारे यहाँ भी जो लोग राष्ट्रपति व्यवस्था चाहते है वे तानाशाही नहीं चाहते. लोकतंत्र तो हमारे यहाँ की परिवर्त्तन की आकांक्षा के मूल में है और लोकतंत्र ही हमारी नियति है. चर्चिल ने कहा था, 'लोकतंत्र में खराब शासन प्रणाली और कोई नहीं है सिवाय उस के जो लोकतंत्र से पहले पायी जाती थी.' डॉ. सिंघवी ने कहा कि पाकिस्तान की उथल-पुथल में हिस्सा लेने वाले तत्त्वों की विविधता हमें नहीं भूलनी चाहिए. एक ओर तो पूर्व पाकिस्तान के बौद्धिकों का असंतोष वहाँ संघीय व्यवस्था को नया रूप देने की कोशिश कर रहा है दूसरी ओर यह भी खतरा है कि पूर्व पाकिस्तान अवहेलना की एक हद के बाद पृथकता का रास्ता अपना ले. यह भी हो सकता है कि

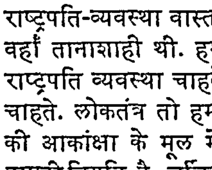

लक्ष्मी मल्ल सिंघवी

वहाँ चीन एक कठपुतली सरकार बैठा दे और तब भारत के लिए पश्चिम बंगाल के साम्यवादी तत्वों का पूर्व पाकिस्तान के समानधर्मा सांस्कृतिक तत्वों से मिलन एक विडंबना बन जाये—यह प्रवृत्ति एक ओर सहज और दूसरी ओर खतरनाक होगी. हमें जल्दी में कोई धारणा नहीं बनानी चाहिए. हम यह विश्वास कर सकते हैं कि पूर्व पाकिस्तान से अपने सांस्कृतिक ऐक्य का साक्षात्कार और निकटता से करें जिस से संभवत: उस देश के लोगों में चीन के प्रति वैचारिक भक्ति और गहरी होने से रुक जायेगी

जन-क्रांति का स्वागत

पश्चिम बंगाल के राजनैतिक क्षेत्रों में पाकिस्तान में हुई और हो रही जनक्रांति का स्वागत किया गया है. राजनैतिक क्षेत्रों में पूर्व बंगाल के प्रति विशेष आशा है. कुछ नेताओं का यह भी कहना है कि पाकिस्तान में आने वाला नया नेतृत्व अपने उत्तरदायित्व को समझेगा. अभी तक सभी इस तथ्य से इनकार करते रहे हैं कि पूर्व और पश्चिम बंगाल की जनता में किसी तरह का अंतर नहीं है.

कांग्रेस और बंगला कांग्रेस के नेताओं ने अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करने से परहेज़ किया. शायद उन को भय था कि कहीं उन की प्रतिक्रिया को पाकिस्तान के मामले में हस्तक्षेप के रूप में न लिया जाये. अन्य दलों के प्रवक्ताओं ने जन-आंदोलन के समर्थन में अपना मत प्रकट किया. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने तो बाज़ाब्ता एक प्रस्ताव पास किया है जिस में आंदोलन का समर्थन करते हुए पाक जनता की साहसिकता और समझदारी की प्रशंसा की गयी है.

दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के नेता और पश्चिम बंगाल सरकार में आयोजन और विकासमंत्री **सोमनाथ लाहिड़ी** ने कहा कि पाकिस्तान में जो जन-जागरण शुरू हुआ है, प्रजातांत्रिक अधिकारों के लिए अय्यूबशाही एकतंत्र के विरुद्ध जो विराट् संग्राम चला रहे हैं, उन के प्रति हमारी कम्युनिस्ट पार्टी हार्दिक सहानुभूति प्रकट करती है. हम उन की सफलता की कामना करते हैं, विशेष कर हम पूर्व पाकिस्तान के लोगों के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं, जो स्वाभाविक ही है क्यों कि हम एक भाषाभाषी हैं और एक समय एक देश के ही लोग थे. पाकिस्तान में जो कुछ हुआ है, काफ़ी उत्साहवर्द्धक है.

पश्चिम बंगाल सरकार के एक दूसरे मंत्री और समाजवादी एकता केंद्र के नेता **सुबोध बैनर्जी** ने कहा कि 'पाकिस्तान में जो प्रजातांत्रिक आंदोलन हो रहा है, हम उस का स्वागत करते हैं. वह समर्थन योग्य है, उस से क्रांति की संभावनाएँ बढ़ती हैं.' यह पूछे जाने पर कि सरकार की भूमिका क्या होगी, आप ने कहा कि अभी इस संबंध में कोई निर्णय नहीं लिया गया है. 'मैं अपने दल के प्रवक्ता की हैसियत से बोल रहा हूँ, मंत्री की हैसियत से नहीं.'

एकीकरण की पहली कड़ी : पश्चिम बंगाल जनसंघ के अध्यक्ष **प्रो. हरिपद भारती** ने कहा कि भारत और पाकिस्तान की जनता ने अब यह महसूस किया है कि विभाजन से उन्हें कोई फ़ायदा नहीं हुआ. हिंदू और मुसलमान दोनों ही वर्गों में एक ही तरह की निराशा है. अंग्रेज़ों के बाद भी देश को विभिन्न वर्गों और टुकड़ों में बाँटने और शासन करने की नीति जारी रही. इस समस्त स्थिति पर नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता है. इस बात पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि बँटवारे के बाद भी पूर्व और पश्चिम बंगाल के लोग अपने को एक समझते हैं. जहाँ तक आम जनता का सवाल है, पश्चिम पाकिस्तान की जनता भी भारत की जनता को पहले की तरह ही प्यार करती है. हमारा स्नेह भी उन से छिपा नहीं है.

यह पूछे जाने पर कि क्या पश्चिम और पूर्व बंगाल पुन: एक हो सकते हैं, प्रो. भारती ने कहा कि बिलकुल हो सकते हैं क्यों कि जनता की इच्छा ही यही है. अगर ऐसा हुआ तो भारत और पाकिस्तान के पुन:एकीकरण की दिशा में यह पहला क़दम होगा. सरकार की भूमिका पर आप ने कहा कि वह और कुछ नहीं कर सकती तो कम-से-कम पाक जनता के प्रति सद्भावना तो प्रकट कर ही सकती है, लेकिन उस से इतनी आशा भी नहीं रही.

राजनैतिक ध्रुवीकरण : बंगला जातीय दल के अध्यक्ष **श्री जहाँगीर कबिर** ने कहा कि पूर्व बंगाल में जो कुछ हुआ है वह अद्वितीय है. दुनिया के इतिहास में ऐसा नहीं हुआ. पूर्व बंगाल के अहिंसक, अनुशासित और शांतिपूर्ण आंदोलन से महात्मा गांधी का आंदोलन भी पीछे पड़ गया है. गोलियाँ चलती रहीं और लोग बिना किसी प्रतिरोध के शांति से अपने प्राणों की आहुति देते हुए आगे बढ़ते रहे.

पश्चिम बंगाल में राजनैतिक ध्रुवीकरण कुछ भी नहीं है. अगर ध्रुवीकरण देखना है तो पूर्व पाकिस्तान को देखना चाहिए. इस का अंदाज़ उसी समय लग गया जब भाषा-आंदोलन शुरू हुआ था. पूर्व बंगाल कभी दबने वाला नहीं रहा है. जिस सभा में क़ायदे आज़म जिन्ना ने कहा था : राष्ट्रभाषा उर्दू हबे ! राष्ट्रभाषा उर्दू हबे !! राष्ट्रभाषा उर्दू हबे !!! उसी सभा में एक बंगाली ने उठ कर प्रतिवाद किया था : राष्ट्रभाषा बांगला चाई ! राष्ट्रभाषा बांगला चाई !! राष्ट्रभाषा बांगला चाई !!! आत्मोत्सर्ग के बाद पूर्व पाकिस्तान के सैकड़ों युवकों ने अपना खून बहा कर बंगला भाषा प्राप्त की है, जो पूर्व और पश्चिम बंगाल में 'कॉमन बांड' है. उन का संघर्ष सांस्कृतिक एकता के लिए है जो कि दोनों के लिए 'कॉमन हैरिटेज' है. नयी पीढ़ी इसे तेज़ी से महसूस कर रही है.

जहाँगीर कबिर का, जो कि बँटवारे के पहले पाकिस्तान में रहे हैं, विश्वास है कि पाकिस्तान में जो कुछ हुआ है उस के पीछे कम्युनिस्ट नेता **मनिसिंह** की भूमिका सर्वप्रमुख है. वह एक लंबे अर्से से भूमिगत था.

बंगला साप्ताहिक **'कंपास'** के संपादक और पश्चिम बंगाल विधान सभा के निर्दलीय सदस्य **श्री पन्नालाल दासगुप्त** ने अपने वक्तव्य में कहा कि पाकिस्तान में जो कुछ हो रहा है, उसे प्रजातांत्रिक क्रांति नहीं कह सकते. इस क्रांति का विषय काफ़ी गहरा है, हालांकि निहित स्वार्थ के प्रतिक्रियावादी तत्त्व भी मौक़े से लाभ उठाना चाहते हैं. आठ सदस्यीय 'प्रजातांत्रिक कार्रवाई समिति' में, जो कि मार्शल अय्यूब खाँ के साथ बातचीत कर रही है और जिस ने समझौता किया है, मौलाना भासानी की नेशनल अवामी पार्टी और भुट्टो की पीपुल्स पार्टी शामिल नहीं हैं, ये दोनों ही दल पीकिङ् समर्थक हैं. श्री भुट्टो का वामपंथ अपने 'कैरियर' के लिए है. भुट्टो के दल की कोई इकाई पूर्व पाकिस्तान में नहीं. अभी तक वह वहाँ किसी सभा को संबोधित करने में भी क़ामयाब नहीं हुए हैं. मौलाना भासानी बहुत पुराने हो चुके हैं और अपनी पार्टी के अंतर्विरोधों से परिपूर्ण दबावों के चंगुल में रहते हैं. पूर्व पाकिस्तान में मौलाना की अवामी पार्टी और शेख मुजीबुर्रहमान की अवामी लीग वास्तविक शक्तियाँ हैं. अवामी लीग वामपंथी पार्टी नहीं फिर भी वामपंथी, प्रजातंत्रवादी, धर्मनिरपेक्ष है; न पीकिङ् की समर्थक है न भारत विरोधी. वह भारत से सौमनस्य रखना चाहती है, इसी लिए 'अगरतल्ला षड्यंत्र' के मामले में सारे विरोधी दलों ने उसे अकेले छोड़ दिया था. पीकिङ्-समर्थक गुटों ने मुजीबुर्रहमान को भारत, अमेरिका और रूस का एजेंट कहा. इस के बावजूद अय्यूब खाँ का दाँव उल्टा पड़ा और छात्र आंदोलन के चलते मामले को वापस लेना पड़ा. अब मुजीबुर्रहमान पूर्व पाकिस्तान के सब से अधिक लोकप्रिय नेता हैं और लोग उन के 'छह सूत्री' माँगों के चारों तरफ़ चक्कर काट रहे हैं.

पश्चिम पाकिस्तान में स्थिति ऐसी नहीं है, वहाँ प्रतिक्रियावादी तत्त्व अधिक सक्रिय हैं. अब पाकिस्तान में हो रहे नये परिवर्तनों से नये सिरे से संबंध जुड़ने की संभावना है. आशा है दोनों ही दो-दो क़दम आगे बढ़ कर एक-दूसरे से मिलेंगे. दो काले दशकों के बाद भाषा, जाति, धर्म आदि के आधार पर विभाजन का खोखलापन उजागर है और इन दशकों ने खुद इस का उत्तर तैयार किया है.

खेल और खिलाड़ी

क्रिकेट : दौरे से पहले का दौर

इस वर्ष अक्तूबर के महीने में ऑस्ट्रेलिया की क्रिकेट टीम भारत का दौरा करने वाली है और ऑस्ट्रेलिया की टीम का चुनाव भी हो चुका है लेकिन...इस 'लेकिन' से अब भी छुटकारा नही है यानी आशा में आशंका का भाव अब भी जुड़ा हुआ है. कारण, भारत सरकार की टाल-मटोल करने की नीति. विदेशी मुद्रा के संकट की दुहाई दे कर बार-बार एन मौके पर क्रिकेट के दौरों को रद्द करने की परंपरा से क्रिकेट जगत में भारत की साख दिन-ब-दिन कम होती जा रही है. तभी तो ऑस्ट्रेलिया के एक मशहूर क्रिकेट समीक्षक जैक फ़िंगलटन ने दक्षिण अफ़्रीका के एक समाचारपत्र में अपनी आशंका व्यक्त करते हुए कहा कि मुमकिन है कि एन मौक़े पर यह दौरा भी रद्द हो जाये. इतना ही नही उन्होने ऑस्ट्रेलिया के अधिकारियो और खिलाड़ियो को एक प्रकार से सावधान करते हुए कहा कि हमें प्रतिकूल स्थिति के लिए भी तैयार रहना चाहिए. उस स्थिति में हमें दक्षिण अफ़्रीका का पूरा दौरा करना होगा. ऑस्ट्रेलिया की टीम भारत में १० मैच (जिन में ५ टेस्ट होंगे) खेलेगी. इस क्रिकेट समीक्षक ने १९६८-६९ के इंग्लैंड (एम. सी. सी.) के प्रस्तावित दौरे का उदाहरण देते हुए कहा कि तब एम. सी. सी. ने तीन टेस्ट मैचो और तीन साधारण मैचो के लिए २०,००० पौंड स्टर्लिंग पूंजी माँगी थी जिसे भारत सरकार ने अस्वीकार कर दिया था.

प्रधानमंत्री तक पहुँच : भारतीय क्रिकेट नियंत्रण बोर्ड का प्रधानमंत्री से सिफ़ारिश के लिए कहना, फिर प्रधानमंत्री का उप-प्रधान मंत्री और वित्तमंत्री मोरारजी देसाई से सलाह-मशविरा करने के बाद यह कहना कि एम. सी. सी. के भारत के दौरे की उपयोगिता समझने के बाद भी हम फ़िलहाल इतनी विदेशी मुद्रा जुटा पाने की स्थिति में नही है आदि छोटी-छोटी बातो का दूसरे देशों पर कोई अच्छा प्रभाव नही पड़ता. अन्य देशो के क्रिकेट समीक्षक इन्ही बातो की अपने-अपने ढंग से व्याख्याएँ करते है जिस से भारत की कोई अच्छी तस्वीर उभर कर सामने नही आती.

३१ मार्च और १ अप्रैल को अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद् की बैठक में ऑस्ट्रेलियाई टीम के भारत के दौरे पर विचार किया जायेगा. यों यह बैठक १ मार्च को होने वाली थी मगर मंत्रिमंडल में परिवर्तन के कारण उस बैठक को स्थगित कर देना पड़ा क्यो कि परिषद् के अध्यक्ष भगवत झा आज़ाद का शिक्षा मंत्रालय से श्रम और पुनर्वास मंत्रालय मे तबादला हो गया था.

वेस्ट इंडीज़ बनाम न्यूज़ीलैंड : न्यूज़ीलैंड की टीम वेस्ट इंडीज़ की टीम को हरा सकती है, इस बात पर आसानी से विश्वास नही किया जा सकता. लेकिन सचाई यह है कि न्यूज़ीलैंड की हॉकी टीम भारत को (मेक्सिको ओलिंपिक १९६८ में पहले ही मैच में न्यूज़ीलैंड ने भारतीय हॉकी टीम को हराया था) और न्यूज़ीलैंड की क्रिकेट टीम वेस्ट इंडीज को हरा सकती है. वेलिंगटन में खेले गये दूसरे टेस्ट में न्यूज़ीलैंड ने वेस्ट इंडीज़ को ६ विकेट से हराया था. तीन टस्ट मैचो की शृंखला में पहला टेस्ट वेस्ट इंडीज़ ने और दूसरा न्यूज़ीलैंड ने जीता.

वारेल ट्रॉफ़ी ऑस्ट्रेलिया के हवाले करने के बाद वेस्ट इंडीज़ के खिलाड़ियो का मनोबल काफ़ी गिर गया है. बीच-बीच में वेस्ट इंडीज के कप्तान गैरी सोबर्स (दुनिया के सर्वश्रेष्ठ हरफ़नमौला खिलाड़ी) क्रिकेट के खेल से अवकाश लेने की धमकियाँ देते रहते हैं. हाल ही में सोबर्स ने कहा था कि वह गर्मियो में इंग्लैंड जाने वाली वेस्ट इंडीज़ की टीम से शायद अपना नाम वापस ले लें. उन्होने कहा—'अपनी टीम का नेतृत्व करने का सवाल वेस्ट इंडीज़ क्रिकेट चुनाव अधिकारियों से मिलने वाले जवाब पर निर्भर करता है'. उन्होने कहा कि मैने ऑस्ट्रेलिया के दौरे में अपने खिलाड़ियों के प्रदर्शन के बारे में एक रिपोर्ट भेजी थी. लगता है कि सोबर्स का चुनाव-अधिकारियों से काफ़ी मतभेद है और इंग्लैंड जाने वाली टीम की घोषणा करते समय सोबर्स की सलाह और सिफ़ारिश को एकदम अनसुना और अनदेखा कर दिया गया है.

अवकाश और संन्यास : वेस्ट इंडीज़ के ३५ वर्षीय मशहूर बल्लेबाज़ सीमोर नर्स ने टेस्ट जीवन से संन्यास ले लिया, कप्तान सोबर्स बीच-बीच में संन्यास की धमकी देते रहते हैं और इंग्लैंड की टीम के कप्तान पाकिस्तान से इतने मायूस, निराश और परेशान हो कर वापस लौटे है कि उन्होने आते ही क्रिकेट के प्रथम श्रेणी के टेस्ट मैचो से अवकाश लेने का निश्चय कर लिया. इंग्लैंड की टीम अपने पाकिस्तान के दौरे को बीच में ही छोड अपने देश वापस लौट आयी. टेस्ट मैचो के दौरान पाकिस्तानी दर्शको ने खेल के मैदान में जो उपद्रव किये उस की इंग्लैंड के समाचारपत्रो में बडी प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई. कुछ समाचारपत्रो ने चेतावनी के स्वर मे कहा कि भविष्य मे किसी भी देश का दौरा करने से पहले वहाँ की राजनैतिक स्थिति का सही अंदाज़ा लगा लेना चाहिए. इस से तो यही अच्छा था कि इंग्लैंड की टीम दक्षिण अफ़्रीका का ही दौरा कर लेती. डेली टेलिग्राफ़ ने संपादकीय में लिखा है कि यदि दक्षिण अफ़्रीका के नेता वरस्टर कभी हंसते है, तो अब हमारी इस हालत पर ज़रूर हंस रहे होंगे.

साहसिक अभियान

स्वागत और स्वागत

बिना पतवार की छोटी-सी चप्पुओं की नौका (कानहोजी आंग्रे) में कलकत्ता से अंडमान के लगभग १००० मील के सागर को सफ़लतापूर्वक पार करने के बाद जब दोनों साहसिक नाविक—जॉर्ज ड्यूक और पिनाकी चैटर्जी—हवाई जहाज़ से पोर्ट ब्लेयर से वापस डमडम हवाई अड्डे पर पहुँचे तो लगभग २५,००० लोगों की भीड़ उन के स्वागत के लिए उमड़ पड़ी. बड़ी मुश्किल से उन्हें जहाज़ से उतारा गया. सब से पहले बंगाल के खेलमंत्री राम चैटर्जी जहाज़ में गये और उन्होंने ड्यूक और पिनाकी को इस महान सफलता की बधाई देते हुए कि कहा इस साहसिक यात्रा से भारतीय युवको को हमेशा प्रेरणा मिलती रहेगी. लेकिन इसी बीच उन्होने संयुक्त मोर्चे का भी यशोगान करना शुरू कर दिया. उन्होंने कहा कि इन नवयुवको ने एक असंभव को संभव कर दिया है. भविष्य में राज्य की संयुक्त मोर्चा सरकार ऐसे साहसिक अभियानों के लिए अपना सक्रिय सहयोग देगी. बड़ी मुश्किल से दोनों नाविकों को हवाई अड्डे से बाहर निकाला गया.

उद्गार : जॉर्ज अल्बर्ट ड्यूक की मंगेतर कुमारी कामा सचदेव ने, जो बंबई से उन के स्वागत के लिए कलकत्ता आयी थीं, कहा—'मैं ड्यूक से मिल कर बहुत खुश हूँ'. यहाँ यह बता देना उचित होगा कि अप्रैल में ड्यूक का विवाह होने वाला है.

पिनाकी चैटर्जी के पिता आर. एन. चैटर्जी ने कहा—'अंत भले का भला'. पिनाकी की माता खुशी में कुछ कह नही पा रही थी.

पिनाकी (बायें) और ड्यूक २७ मार्च को जब अंडमान के पूर्वी द्वीप में पहुंचे :
'लो आ गयी मंजिल पसीना पोंछ ले प्यारे'

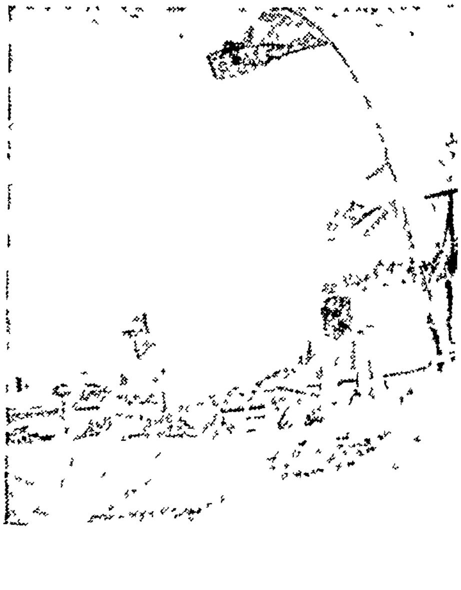

प्रशंसकों की भीड़ से घिरे ड्यूक : स्नेहातिरेक

१५ मार्च को ये दोनों नाविक और मिहिर सेन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी से मिले.

संक्षिप्त समाचार

हॉकी : लाहौर अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले में भाग लेने के बाद केन्या की १७ सदस्यीय हॉकी टीम १७ मार्च को १० दिन के लिए भारत का दौरा करेगी जिस में वह दो टेस्ट (१९ मार्च को जालंधर और २० मार्च को अमृतसर में) खेलेगी. १८ मार्च को फ़िरोजपुर में एक साधारण मैच खेला जायेगा.

लाहौर में हुए अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले में पाकिस्तान की ही दोनों टीमें (पाकिस्तान और पाकिस्तान जूनियर्स) फ़ाइनल में पहुँची. ऑस्ट्रेलिया की टीम हार जाने के बाद अचानक ही वहाँ से अपने देश को वापस लौट गयी. यहाँ यह बता देना उचित होगा कि ऑस्ट्रेलिया की टीम पाकिस्तान जूनियर्स से २-० से हार गयी थी. इस से पहले कि पाँचवें स्थान के लिए वह शनिवार को लाहौर में मैच खेलती, अपने देश लौट गयी. इस प्रकार अचानक बिना किसी से कुछ कहे लौट जाने का कोई विशेष कारण तो नहीं बताया गया मगर कहा जाता है कि ऑस्ट्रेलिया ने अम्पायर के फ़सले के विरोध में ऐसा किया.

परिषद् का नया अध्यक्ष : संसद् सदस्य श्री राम निवास मिर्धा को अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद् का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है. इस से पहले इस परिषद् के अध्यक्ष भगवत झा आज़ाद थे जिन का हाल ही में शिक्षा मंत्रालय से श्रम और पुनर्वास मंत्रालय में तबादला कर दिया गया. श्री मिर्धा राजस्थान विधान सभा के अध्यक्ष, राजस्थान एथलेटिक एसोसिएशन के अध्यक्ष और विभिन्न खेल-संगठनों के महत्त्व-पूर्ण पदों पर कार्य कर चुके हैं.

साइकिलिंग प्रतियोगिता : नयी दिल्ली में २४ वीं राष्ट्रीय साइकिलिंग प्रतियोगिता समाप्त हो गयी. इस प्रतियोगिता की सब से लंबी और सब से दिलचस्प दौड़ (१५० किलोमीटर) जीतने का गौरव राजस्थान के जूनियर खिलाड़ी राम कुमार जोशी को प्राप्त हुआ. उन्होंने इस फ़ासले को ५ घंटे, १८ मि. और १३.५ से. में पूरा किया. यों तो इस प्रतियोगिता में ५६ खिलाड़ियों ने भाग लिया, लेकिन मंजिल तक केवल १३ खिलाड़ी ही पहुँच पाये, कुछ जख्मी हो गये, कुछ रास्ते में ही रह गये. एयर चीफ़ मार्शल अरजनसिंह ने विजेताओं को पुरस्कार बाँटे. प्रथम छः स्थान पाने वाले खिलाड़ियों के नाम इस प्रकार हैं :१—राम कुमार जोशी ५ घंटे, १८ मि. और १३.५ से., २—अमर सिंह बिलिंग ५:१८:१४.५, ३—चरणजीत सिंह ५:१८:१५.५, ४—लक्ष्मण सुर्वे ५:१८:१६.३, ५—दलचंद ५:१८:१६.९, बापू माल्कोलम ५:१८:५७.५

खेल-कूद-साहित्य

५० करोड़ की आबादी वाले इस विशाल देश से मेक्सिको ओलिंपिक (१९६८) में केवल ४ भारतीय एथलीटों का भाग लेना, एथलेटिक के क्षेत्र में अब तक एक भी पदक प्राप्त न करना आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिन्हें जान कर दुखद आश्चर्य होता है. लेकिन उस से भी ज्यादा आश्चर्य की बात तो यह है कि हमारे यहाँ खेल-कूद-साहित्य न के बराबर है. कुछ समय पहले तक अंग्रेज़ी में एक खेल-कूद पत्रिका (स्पोर्ट्स एंड पास टाइम) निकलती थी वह भी अब बंद हो गयी है. यों अंग्रेज़ी में कुछ खेल-कूद संबंधी पुस्तकें गिनायी जा सकती हैं मगर उन में भी अधिकतर क्रिकेट पर ही हैं.

दि सेंचुरी आफ़ टेस्ट्स : मारत द्वारा क्रिकेट के क्षेत्र में १०० टेस्ट पूरे करने पर अंग्रेज़ी में एक पुस्तक (इसे पुस्तक नहीं बल्कि सोविनियर ही कहना चाहिए) प्रकाश में आयी. इस पुस्तक के अवैतनिक संपादक हैं के. ईश्वरदत्त (स्वर्गीय) और के. वी. गोपालरत्नम. इस पुस्तक में भारत द्वारा विभिन्न देशों के विरुद्ध खेले गये १०० टेस्ट मैचों की पूरी कहानी है. ऑस्ट्रेलिया, वेस्ट इंडीज़, न्यूज़ीलैंड, पाकिस्तान और इंग्लैंड के विरुद्ध भारत ने कहाँ-कहाँ, कितने-कितने टेस्ट खेले, किसने कितने-कितने रन बनाये इस की पूरी कहानी इस पुस्तक (सोविनियर) में सविस्तार दी गयी है. कुल मिलाकर इसे एक अच्छा और संग्रहणीय क्रिकेट कोप कहा जा सकता है जिस में सब कुछ है सिवा खेल के नियमों के. इस में राष्ट्रपति ज़ाकिर हुसैन, वी. वी. गिरी, ज़ेड. आर. ईरानी के संदेश और लाला अमरनाथ, विजय मर्चेंट, सईद मुश्ताक अली आदि चोटी के खिलाड़ियों के कुछ महत्त्वपूर्ण लेख भी हैं. यह पुस्तक सी. के. नायडू, के. ईश्वर दत्त (जो इस पुस्तक के एक संपादक भी हैं) और विजयनगरम् के महाराज कुमार (विज्जी) को समर्पित की गयी है.

संसार के प्रसिद्ध खिलाड़ी : हाल ही में हिंदी की जो पुस्तक देखने को मिली वह थी 'संसार के प्रसिद्ध खिलाड़ी' (लेखक—**योगराज थानी.**) इस पुस्तक के लेखक का दावा है कि यह अपने ढंग की हिंदी में पहली और अनोखी पुस्तक है. पुस्तक देखने से लगता है उन का यह दावा बेबुनियाद नहीं है. जब तुलनात्मक अध्ययन के लिए कोई दूसरी ऐसी पुस्तक सामने न हो तो मजबूरी की हालत में जो है उसी को अच्छा कहना पड़ता है. प्रस्तुत पुस्तक में लगभग सभी खेलों क्रिकेट, हॉकी, एथलीट, फ़ुटबाल, वॉलीबाल, बैडमिंटन, दौड़, तैराकी, बिलियर्ड आदि के चोटी के खिलाड़ियों का खासा परिचय (संक्षिप्त और सचित्र) मिल जाता है. इस पर भी लेखक संतुलन बनाये रखने में कहीं-कहीं चूक गया है. यानी कहीं-कहीं एक-एक खिलाड़ी पर चार-चार पृष्ठ और कहीं-कहीं एक खिलाड़ी पर चार-चार पंक्तियों का पैराग्राफ़. लेखक के पास इन खिलाड़ियों के बारे में और ज्यादा सामग्री नहीं, ऐसा तो नहीं माना जा सकता, अलबत्ता यह जरूर समझा जा सकता है कि जल्दबाज़ी और उतावलेपन तथा पुस्तक को जल्द प्रकाशित करवाने के चक्कर में वह अधिक मेहनत करने से कतरा गया है. यह भी संभव है कि लेखक में पूरी सामग्री का उपयोग किसी अगली पुस्तक में करने का लोभ आ गया हो. बहरहाल क़िताब में विश्व के रिकार्ड, ओलिंपिक की सिलसिलेवार सूची और कुछ-कुछ अनोखे चित्रों को ही दुर्लभ सामग्री के रूप में समझा जा सकता है.

लगता है पुस्तक मूल रूप से बच्चों के लिए लिखी गयी है वैसे दुनिया के कुछ चोटी के खिलाड़ियों के बारे में बुनियादी जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक पाठकों के लिए लेखक का यह प्रयास अवश्य कुछ सहायक हो सकता है.

१—दि सेंचुरी आफ़ टेस्ट्स—अवैतनिक संपादक—के. ईश्वरदत्त; के. वी. गोपालरत्नम, प्रकाशक : के. एल. सारदा, १६-१३ डब्ल्यू. ई. ए., करोल बाग, नयी दिल्ली-५. मूल्य-१५ रुपये.

२—संसार के प्रसिद्ध खिलाड़ी : लेखक—योगराज थानी, प्रकाशक : राजधानी ग्रंथागार, लाजपत नगर, नयी दिल्ली. मूल्य २ रु. ५० पैसे, पृष्ठ ११२.

पाकिस्तान का आर्थिक विकास : समस्याएँ और संभावनाएँ

हाल में राष्ट्रपति अय्यूब द्वारा आगामी चुनाव न लड़ने की घोषणा किये जाने के बाद से पाकिस्तान के राजनैतिक जीवन में एक नाटकीय हलचल पैदा हो गयी है. पाकिस्तान के भविष्य के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगायी जा रही हैं. इस संदर्भ में पाकिस्तान के आर्थिक विकास का अध्ययन विशेष महत्त्वपूर्ण है. आर्थिक दबाव हर देश की राजनीति को प्रभावित करता है. पाकिस्तान इस बात का अपवाद नही है. पिछले दशक में पाकिस्तान की अर्थ-व्यवस्था में जो परिवर्त्तन हुए है वे न केवल हाल की घटनाओं की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं बल्कि भविष्य में संभावित नीतियों की दिशा की ओर भी संकेत करते है.

काल विभाजन : पाकिस्तान के आर्थिक विकास को आमतौर पर दो भागों में बाँटा जाता हे: विभाजन से सन् साठ तक और सन् साठ के बाद के वर्ष. यह विभाजन काफ़ी हद तक सही भी है. सन् अट्ठावन में पाकिस्तान में सैनिक शासन की स्थापना हुई और सन् साठ से पाकिस्तान की दूसरी (पाँच साला) योजना की शुरूआत की गयी. सफलता की कसौटी पर भी बँटवारे के दो दशक साफ़-साफ़ अलग हो जाते है. विभाजन के बाद पाकिस्तान के आर्थिक विकास के मार्ग में विकट कठिनाइयाँ थी और शासन-तंत्र में स्थायित्व का अभाव अर्से तक बना रहा. पाकिस्तान की पहली (छह साला) योजना अपने लक्ष्यो को प्राप्त करने में असफल रही. इस पहले दशक में आर्थिक विकास के लिए जरूरी स्फूर्ति और उत्साह का अभाव बना रहा. इस की तुलना में पिछले दशक में पाकिस्तान का आर्थिक विकास आमतौर पर बहुत प्रभावशाली माना गया है.

पिछला दशक : पाकिस्तान की राष्ट्रीय आय के आँकड़ो की परीक्षा से पता चलता है कि १९५९-६० के बाद के वर्षो में दो क्षेत्रों में विशेष वृद्धि हुई है—खेतीबाड़ी तथा सेवाएँ. इन दस सालो में खेतीबाड़ी के क्षेत्र में वृद्धि की दर ३ प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है जब कि इस से पहले के दस सालों में यह दर डेढ़ प्रतिशत प्रतिवर्ष थी. १९५९-६० के बाद के पाँच सालों में निर्माण-कार्यो में लगभग चौगुनी वृद्धि हुई और इन से राष्ट्रीय आय का ५ प्रतिशत भाग प्राप्त हुआ. औद्योगिक उत्पादन की क्षमता में वृद्धि की दर साढ़े तेरह प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है.

यह स्पष्ट है कि बँटवारे के बाद दूसरे दशक से पाकिस्तान की राष्ट्रीय आय की वृद्धि की दर उल्लेखनीय रही है पर इस वृद्धि की दर से क्या सही निष्कर्ष निकाले गये है? विकासशील देशों के आर्थिक विकास की सही सूची राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि की दर से स्पष्ट होती है अत: पाकिस्तान की आर्थिक प्रगति का पता लगाने के लिए कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि का अध्ययन करना आवश्यक है.

पूर्व पाक विस्थापित : सियालदह में जीवन का रूप

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्रियो के एक दल ने पाकिस्तान को कृषि के क्षेत्र में अद्भुत सफलता प्राप्त करने का श्रेय दिया है. इस दल का मानना है कि कृषि के क्षेत्र में सफलता का आरंभ नयी सरकार की नीतियो के फलस्वरूप हुआ है. ये नीतियाँ दो शीर्षकों में रखी जा सकती हैं—बाजार भावों के प्रति जागरूकता और कृषि के प्रति भेदभाव का अंत. कृषि की सफलताओं ने पाकिस्तान के आर्थिक जीवन में, इन विशेषज्ञों के मत में, नयी ताज़गी भर दी.

मूल्यांकन : परंतु पाकिस्तान की अर्थव्यवस्था का अध्ययन करने के बाद भारतीय अर्थशास्त्री डॉ. के. एन. राज इन पाश्चात्य विद्वानों से भिन्न निष्कर्षो पर पहुँचे हैं. डॉ. राज ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि १९५९-६० के बाद के वर्षो में भी पाकिस्तान में कृषि-उत्पादन में वृद्धि की दर ३ प्रतिशत से अधिक नही रही है. इसे 'अद्भुत' नही कहा जा सकता है. खाद्यान्नों का उत्पादन भी १९४७-५८ काल की तुलना में महत्त्वपूर्ण दर से नही बढ़ा है. उदाहरणतः १९५०-५१ में पाकिस्तान में गेहूँ का उत्पादन लगभग ४० लाख टन प्रतिवर्ष था. १९६३-६४ के उत्पादन में कोई अंतर नही था तथा १९६४-६५ में बढ़ा हुआ उत्पादन ४४ लाख टन रहा था. चावल के उत्पादन में वृद्धि की दर कही अधिक बढी थी (साढे सत्रह प्रतिशत). स वृद्धि के बारे में यह स्मरणीय है कि पूर्व बंगाल में चावल के उत्पादन में प्रयोग किये जाने वाले आदानों के (रासायनिक खाद, कृमिनाशक या सिंचाई के नये साधन) उपयोग में कोई उल्लेखनीय प्रगति नही हुई. ऐसी स्थिति में लगता है कि चावल के उत्पादन में वृद्धि के लिए अच्छा मौसम 'नयी नीतियों' से अधिक लाभदायक रहा है. डॉ. राज ने इस बात को भी सामने रखा हे कि इसी दशक में पूर्वी पंजाब में कृषि उत्पादन में वृद्धि की दर इस से कही अच्छी रही है.

डॉ. राज ने यह स्वीकार किया है कि औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन की वृद्धि तथा सरकार की नयी नीतियों का प्रभाव कही अधिक स्पष्ट रूप से देखने में आता है. १९५०-५१ में राष्ट्रीय आय का केवल डढ़ प्रतिशत भाग औद्योगिक उत्पादन से प्राप्त होता था. १९६४-६५ में यह हिस्सा साढ़े सात प्रतिशत हो गया था. १९५९-६० के बाद के पाँच सालो में इस क्षेत्र में वृद्धि की दर साढे तेरह प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है.

वृद्धि की इस दर का सही मूल्यांकन पाकिस्तान की विशेष स्थिति को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए. विभाजन के बाद पाकिस्तान का औद्योगीकरण लगभग पहले क़दम से शुरू किया गया. सुरक्षित बाज़ार में नये उद्योगों का तेजी से विकास आश्चर्यजनक नहीं (इस वृद्धि की तुलना डॉ. राज के मत में स्वतंत्रता

के पहले के वर्षों में भारत के औद्योगीकरण से की जानी चाहिए न कि स्वतंत्र भारत से).

पाकिस्तान में ऐसे उद्योगों का भी विकास हुआ है जो आयात किये हुए कच्चे माल का उपयोग करते हैं. कुल औद्योगिक उत्पादन का एक-तिहाई भाग रासायनिक, बिजली का सामान तथा मशीनें बनाने वाले उद्योगों से प्राप्त होता है. इन उद्योगों के विकास के लिए जरूरी विदेशी मुद्रा तथा विदेशी मुद्रा की व्यवस्था ने पाकिस्तान के आर्थिक विकास की दर को खूब प्रभावित किया है. आयात की उदार नीति ने इन उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया है और इस का श्रेय अय्यूब सरकार को है पर इस नीति के अन्य परिणामों की अवहेलना नहीं की जा सकती है. १९६१ तथा १९६४ में उदार आयात-नीतियाँ अपनाने से औद्योगिक उत्पादन तो बढ़ा पर विदेश-व्यापार का संतुलन बिगड़ गया. १९५९-६० में पाकिस्तान के कुल आयात-व्यापार की राशि २४६ करोड़ रुपये थी और निर्यात-व्यापार की राशि १८४ करोड़ रुपये. १९६४-६५ तक आयात में वृद्धि १२० प्रतिशत हो गयी थी (कुल राशि ५३७ करोड़ रुपये तक पहुँच गयी) जब कि निर्यात व्यापार में कुल ३० प्रतिशत वृद्धि हुई. बढ़ते आयात के साथ स्वदेशी उत्पादन की गति अवरुद्ध हो गयी तथा पाकिस्तान की विदेशी सहायता पर निर्भरता बढ़ी.

पाकिस्तान के आर्थिक विकास के दर के अध्ययन के समय इस दशक में पाकिस्तान को मिली भारी विदेशी सहायता को ध्यान में रखना आवश्यक है. १९६० के बाद के वर्षों में पाकिस्तान को कुल ३.१ अरब डॉलर मूल्य की विदेशी सहायता मिली. इस में सैनिक सहायता

दिल्ली में पूर्व पाकिस्तान के विस्थापित

क्षेत्रफल, जनसंख्या और साक्षरता

(१९६१ की जनगणना के अनुसार)

	पाकिस्तान	पू. पाकिस्तान	प. पाकिस्तान
१. क्षेत्रफल (वर्गमीलों में)	३,६५,५२९ (१००)	५५,१२६ (१५)	३,१०,४०३ (८५)
२. जनसंख्या (हज़ार में)	९३,७२० (१००)	५०,८०४ (५४.२)	४२,८८० (४५.८)
३. जनसंख्या में प्रतिशत वृद्धि (१९५१ की तुलना में १९६१ में)	२३.९	२१.२	२७.१
४. प्रति वर्गमील व्यक्ति	२५६	९२२	१३८
५. साक्षर (हज़ार में)	१४,३३६	८,९५६	५,३८०
६. साक्षरता (कुल जनसंख्या का प्र. श.)	१५.९	१७.६	१३.६
७. ग्रामीण जनसंख्या (कुल का प्र. श.)	८६.९	९४.८	७७.५
८. मुस्लिम (कुल जनसंख्या का प्र. श.)	८८.०९	८०.४३	९७.१७

टिप्पणी : कोष्ठक में लिखे आँकड़े प्रतिशत के प्रतीक हैं.

की मदों के अंतर्गत खर्च की गयी विदेशी मुद्रा शामिल नहीं है. अतः यद्यपि यह सच है कि पिछले पाँच-सात बरसों में पाकिस्तान के आर्थिक विकास की दर बहुत अच्छी रही और कुछ क्षेत्रों में उत्पादन की वृद्धि महत्त्वपूर्ण भी है फिर भी यह मानना ग़लत होगा कि पाकिस्तान में आत्मनिर्भर आर्थिक विकास शुरू हो गया है.

एक पाकिस्तानी अर्थशास्त्री ने **'द पाकिस्तान डेवलपमेंट रिव्यू'** (ग्रीष्म, १९६८) के एक अंक में पाकिस्तान के आर्थिक विकास के संबंध में अपनी शंकाएँ प्रकट की हैं. पिछले दस सालों में कृषि और औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि को संयम से ग्रहण करने की राय देते हुए डॉ. स्वदेश बोस ने बचत बढ़ाने, निर्यात-व्यापार को प्रोत्साहन देने, स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने तथा विदेशी सहायता पर कम से कम निर्भर रहने की बड़ी ज़रूरत बतलायी है.

पूर्वी पाकिस्तान की समस्या : आर्थिक विकास के क्षेत्र में भी पूर्वी पाकिस्तान की समस्या अलग से है. विभाजन के समय कलकत्ता से अलग हो जाने पर पूर्वी बंगाल अपनी राजधानी से ही नहीं बिछुड़ा बल्कि आर्थिक जीवन का केंद्र भी खो बैठा. विभाजन के बाद के वर्षों में पश्चिमी एवं पूर्वी पाकिस्तान के आर्थिक विकास में कोई भी मेल नहीं रहा है. खेती के नये आदानों का उपयोग पश्चिमी पंजाब तक सीमित रहा है. उद्योगों के क्षेत्र में स्थिति और भी बुरी है. जिन दो दर्जन परिवारों के हाथ में निजी व्यापार में लगी लगभग ७० प्रतिशत पूँजी संचित है उन में से एक भी परिवार पूर्वी पाकिस्तान का नहीं है.

पूर्वी पाकिस्तान के आर्थिक विकास के लिए १९६२ में एक आर्थिक विकास आयोग की स्थापना की गयी थी. तीसरी योजना में इस आयोग के खर्चे के लिए लगभग दो अरब रुपयों की राशि स्वीकृत की गयी है. सन् १९६७ में इस आयोग ने चिटगाँव में एक इस्पात मिल की स्थापना की थी, पर और ठोस परिणाम अभी सामने आने बाक़ी हैं. एक पाकिस्तानी विशेषज्ञ रहमान सोमान ने पूर्वी पाकिस्तान के ग्रामीण जीवन में आर्थिक विकास की समस्या की गंभीरता स्वीकार की है. उन के अनुसार पूर्वी बंगाल के ग्रामीण जीवन में तीन सामाजिक वर्ग उपस्थित हैं. समृद्ध कृषक, छोटे कृषक एवं भूमिहीन मज़दूर. समृद्ध कृषक महाजन और बेसिक डिमोक्रेट भी हैं और अपने राजनैतिक संबंधों के प्रभाव से उन्होंने सरकार की ग्राम-विकास योजनाओं को पूरी तरह लागू नहीं होने दिया है. श्री सोमान के अनुसार इस से पूर्व पाकिस्तान में वर्ग-संघर्ष की संभावना खतरनाक रूप धारण कर रही है. (एक पाश्चात्य विशेषज्ञ ने इस मत से अपना विरोध प्रकट किया है. जॉन वुडवर्ड टामस का मानना है कि सरकार की योजनाओं के फलस्वरूप कई भूमिहीन पूर्वी पाकिस्तानियों को काम मिला है तथा सड़कों के निर्माण से आर्थिक विकास का ढाँचा तैयार हुआ है. सन् १९६३ से १९६७ तक ग्राम-विकास के इन कार्यों पर ७.१ अरब रुपये खर्च किये गये हैं. इन में से ४.५ अरब रुपया वेतन के रूप में दिया गया है. इस से पुराना ऋण चुकाने के बाद भूमिहीनों, मज़दूरों व समृद्ध कृषकों के संबंधों में वुडवर्ड के विचार में सुधार हुआ है. ग्राम-विकास योजनाओं के सिंचाई कार्यक्रमों से छोटे कृषकों को भी लाभ हुआ है. वुडवर्ड पूर्वी पाकिस्तान में सरकार एवं समृद्ध कृषकों के बीच किसी साज़िश का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते हैं).

पर पूर्वी पाकिस्तान (जहाँ पाकिस्तान की अधिकांश जनता रहती है) और पश्चिमी पाकिस्तान के आर्थिक जीवन के बीच की खाई अब भी गहरी है. यही नहीं, इन दोनों प्रदेशों के आर्थिक विकास की भिन्न दर इस खाई को दिन प्रतिदिन गहरा कर विस्फोटक राजनैतिक असंतोष को बढ़ा रही है. इस के साथ ही एक और कठिनाई है. भारत-पाक संघर्ष के बाद से रक्षा-व्यय में कमी कर रचनात्मक आर्थिक विकास की ओर लगाना पहले से कहीं कठिन हो गया है.

विश्व

पाकिस्तान

दिया तो क्या दिया

राष्ट्रपति अय्यूब खाँ कहते फिरते हे कि वह सच्चे मायने मे मुल्क मे शांति चाहते हैं और उस अमन के लिए वह हर तरह की कुर्बानी देने को भी तैयार है. उन के पिछले दो-तीन फ़ैसलों से ऐसा लगता हे कि पश्चिम पाकिस्तान (जहाँ के राष्ट्रपति मूल निवासी है) की वहबूदी का ही उन्हें ज्यादा ख्याल हे गोलमेज सम्मेलन के फ़ैसलो के कार्यान्विन से जो संसदीय प्रकार की शासन-प्रणाली वजूद मे आयेगी, उस में भी उन की आवाज ही ज्यादा वजनदार सावित होगी. अय्यूब की ऐसी ही दो मुँही बातो और दुचित्ती चालो के कारण पूर्व पाकिस्तान के नेता, मुख्य रूप से शेख मुजीवुर्रहमान, ने यह ऐलान किया है कि जब तक पूर्व पाकिस्तान के लोगो को पूर्ण स्वायतत्ता प्राप्त नही होगी तव तक वे दम नही लेगे उन्होने छात्रो को भी संघर्ष जारी रखने की सलाह दी हे पूर्व पाकिस्तान के वढते हुए विरोध और उस विरोध से पैदा होने वाले संभावित विद्रोह या विस्फोट की आशंका के कारण पश्चिम पाकिस्तान के सैनिक टैकों, मॉर्टार तथा स्वयचालित हथियारो से लैस हो ढाका पहुँच गये ह. एक तरफ सेना रवाना होती हे तो दूसरी तरफ सैनिक मूसा के वदले असैनिक व्यापारी राजनयिक राजनीतिक गवर्नर युसुफ हारून की नियुक्ति की घोषणा होती हे और पूर्व पाकिस्तान के गवर्नर मोनेम खाँ को वदलने का यक़ीन दिलाया जाता है. कशमकश के दौर का अय्यूब खाँ बुरी तरह से शिकार हो गये दीखते है और संभव है उन की यही लड़खडाती नीतियाँ दूसरे विअफ्रा या वीएतनाम को जन्म दे दे. अगर ऐसा हो गया तो एशिया महाद्वीप विनाश के कगार पर खडा हो जायेगा. वीएतनाम मे युद्ध जारी है. चीन-रूस सीमा विवाद गभीरता के दौर से गुजर रहा है, पश्चिम एशिया की स्थिति दिनो-दिन विस्फोटक होती जा रही है और इन पर अगर पूर्व और पश्चिम पाकिस्तान की खाई गहरी होती गयी तो भारत भी अपनी चादर समेट कर रख पाने मे समर्थ नही रहेगा.

राष्ट्रपति अय्यूब खाँ और विपक्षी नेताओं के वीच जो गोलमेज सम्मेलन हुआ था, उस में प्रत्यक्ष चुनाव और देश में ससदीय प्रणाली का संघीय ढाँचा बनाने की बात स्वीकार कर ली गयी है और राष्ट्रपति मार्च के अंत में राष्ट्रीय असेंवली का अधिवेशन बुला अपने इस निर्णय को कार्यरूप मे परिणत करने भी जा रहे हैं. लेकिन पूर्व पाकिस्तान को क्षेत्रीय स्वायत्तता देने और भाषा के आधार पर पश्चिमी पाकिस्तान को पाँच सूबो में बाँटने के बारे में फिलहाल इस लिए निर्णय नही लिया गया, क्योंकि राष्ट्रपति अय्यूब खाँ महसूस करते है कि इन मुद्दो पर प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होने वाली राष्ट्रीय असेंवली विचार करे तो ज्यादा वेहतर हो.

ऐतिहासिक क़दम : राष्ट्रपति अय्यूब खाँ और विपक्षी सदस्यो का यह गोलमेज सम्मेलन सभी प्रतिपक्षी पार्टियों को संतुष्ट नही कर सका. लेकिन डेमोक्रेटिक एक्शन कमेटी के संयोजक नवावजादा नसरुल्ला खाँ ने इस सम्मेलन के परिणामो को लोगों की जीत करार दिया है. अवामी लीग के प्रधान शेख मुजीवुर्रहमान ने तुर्श लहजे मे कहा है कि जब तक पूर्व पाकिस्तान को पूर्ण स्वायतता देने की वात स्वीकार नही कर ली जाती तव तक उन का संघर्ष जारी रहेगा. यही कारण हे कि उन्होने अय्यूब की घोषणाओ के वाद डेमोक्रेटिक एक्शन कमेटी से अपनी पार्टी का समर्थन वापस ले लिया है. नवावजादा नसरुल्ला खाँ ने यह कह कर कि हम अपने कार्यक्रम मे सफल रहे हे और अब कमेटी की कोई जरूरत नही रही उसे भंग कर दिया. एयर मार्शल असगर खाँ भी गोलमेज सम्मेलन के परिणामो से अधिक सतुष्ट नही दीखे, उन्होने अपने दृष्टिकोण का और व्यापक परिचय देने की गर्ज से जस्टिस पार्टी का गठन करते हुए कहा है कि १९७० से पहले एक गैर-पार्टी सरकार बनायी जानी चाहिए. इस वात के भी संकेत मिल रहे हैं कि राष्ट्रपति अय्यूब खाँ ने इस सुझाव से सहमति व्यक्त की है. लेकिन अय्यूब खाँ यह जरूर चाहते है कि इस तरह की सरकार को वल देने के लिए कुछ हंगामी कानूनो का बने रहना लाजिमी है ताकि देश में अराजकता और अव्यवस्था न फैलने पाये.

प्रतिक्रियाएँ : नवावजादा नसरुल्ला खाँ ने राष्ट्रपति अय्यूब खाँ के निर्णय को जहाँ 'वास्तविक और साहसपूर्ण' वताया है वही भूतपूर्व विदेशमंत्री और पीपुल्स पार्टी के नेता जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो ने इस से अपना असंतोष व्यक्त करते हुए कहा कि उन्होने गोलमेज सम्मेलन में इसी लिए भाग नही लिया था क्योकि उन्हें डर था कि इस से कुछ वनने वाला नही है. और उन का डर सही सावित हो गया है. भुट्टो ने अपना पुराना राग अलापते हुए कहा कि जव तक अय्यूब अपने पद से नही हट जाते तव तक देश में सही माने में लोकतंत्रीय व्यवस्था स्थापित नही हो सकती. लेकिन एक भूतपूर्व प्रधानमंत्री चौधरी मुहम्मद अली ने अय्यूब के फ़ैसले को 'आला दर्जे की राजनयिक सूझबूझ' बताया जब कि जमायते-इस्लामी पार्टी के सैयद अब्दुल आलम मदूदी ने कहा कि सरकार के ढाँचे मे शांतिपूर्ण और संवैधानिक तरीके से परिवर्तन एक ऐतिहासिक कदम है, लोकतंत्र हम वतौर लोकतंत्र के नही चाहते है, मगर इस लिए चाहते है कि यह एकता का परिचायक हे और जनता के लिए सुधारो के कार्यक्रम जनता के सहयोग सच्चे अर्थों मे बनाये जा सकते हैं. नेशनल अवामी पार्टी के वयोवृद्ध नेता मौलाना भासानी ने यद्यपि गोलमेज सम्मेलन में भाग नही लिया, तथापि उन्होने अय्यूब के फैसले का वडे एहतियात से स्वागत तो किया लेकिन साथ मे यह भी कहा कि जव तक मुल्क मे 'इसलामी समाजवाद' नही आ जाता तव तक मसले ज्यो के त्यो वने रहेंगे. आर्थिक स्वाधीनता के विना राजनैतिक आजादी वेमानी है. अपने नजरिये का प्रचार करने के लिए मौलाना भासानी जव गाड़ी मे सफ़र कर रहे थे तो साहीवाला के करीव कुछ लोगो ने उन्हे पीटा. उन्होने इस के पीछे दक्षिण पंथी जमायते इस्लामी का हाथ वताया. ८६ वर्षीय मौलाना ने यह वात और साफ कर दी है कि जव तक उन की ११-सूत्रीय माँगे स्वीकार नही की जाती तव तक वह मुल्क में चुनाव नही होने देगे. उन्होने धमकी देते हुए कहा कि जो भी आदमी चुनाव कराने की कोशिश करेगा उसे फनाह कर दिया जायेगा और उसकी जाय-

गोलमेज सम्मेलन का एक अनौपचारिक दौर

दाद आग में झोंक दी जायेगी. पूर्व पाकिस्तान के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश एस. एम. मुर्शीद की मान्यता है कि अय्यूब ने एक हाथ से दे कर दूसरे हाथ से ले लिया है. नुरुल अमीन महसूस करते हैं कि क्षेत्रीय स्वायत्तता की बात भी इस बैठक में तय हो जानी चाहिए थी, जब कि पख्तून नेता खाँ अब्दुल वली खाँ ने इस फ़ैसले को 'ऐतिहासिक निर्णय' बताते हुए कहा कि संभावित खून खराबे की तरफ़ अगर तवज्जो दी जाती तो पूर्व पाकिस्तान की क्षेत्रीय स्वायत्तता और पश्चिमी पाकिस्तान में भाषा के आधार पर सूबों के गठन की बात भी सुलझा दी जाती. ऐसा करने से पाकिस्तान के सभी वर्गों को अधिक संतोष हो सकता था. मुस्लिम लीग कौंसिल के मियाँ मुमताज दौलताना की राय थी कि इस फ़ैसले से लोगों की लगभग सारी माँगों की पूर्ति हुई है.

अय्यूब का अपना नज़रिया : राष्ट्रपति अय्यूब खाँ खुद यह महसूस करते हैं कि मौजूदा हालातों में उन का यह फ़ैसला सर्वोत्तम है. उन की दलील भी बेदम नहीं है. जो इनसान ११ साल तक स्वयं ही सब कुछ रहा हो, सत्ता का इस प्रकार हस्तांतरण कितना दुखदायी प्रतीत होता है यह तो भुक्तभोगी ही जान सकता है. अय्यूब यह मानते और चाहते भी हैं कि मौजूदा संविधान में कम से कम तरमीम की जाये. प्रत्यक्ष चुनाव के लिए संविधान में परिवर्त्तन की आवश्यकता वह अनुभव नहीं करते. लेकिन सरकार के ढाँचे में परिवर्त्तन के लिए संविधान में संशोधन करना ज़रूरी है. राष्ट्रपति को विश्वास है कि जब एक बार प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित राष्ट्रीय असेंबली वजूद में आ जायेगी तो देश के वे सभी मसले जिन्हें गोलमेज़ सम्मेलन में उठाया गया था, पर विचार-विमर्श करना उचित होगा. इस समय संबंधित सभी समस्याओं का हल ढूँढ़ने की कोशिश करना अगली राष्ट्रीय असेंबली के अधिकारों पर अंकुश लगाना होगा.

मौलाना भासानी : धमकी

रूस के प्रतिरक्षामंत्री ग्रेचको की पाकिस्तान-यात्रा : कमाल का सरकस

असंतुष्ट पूर्वी पाकिस्तान : पूर्व पाकिस्तान के लोग अय्यूब के इस फ़ैसले से कतई संतुष्ट नहीं हुए हैं. उन के दोनों ही नेताओं ने—मुजीबुर्रहमान और मौलाना भासानी—पूर्व पाकिस्तान की स्वायत्तता के बारे में अपनी नाखुशी का इज़हार किया है. मुजीबुर्रहमान ने यह ऐलान कर दिया है कि जब तक पूर्व पाकिस्तान के लोगों को स्वायत्तता प्राप्त नहीं हो जाती तब तक उन का संघर्ष जारी रहेगा. ढाका के छात्रों ने भी अनिश्चितकाल के लिए हड़ताल करने का ऐलान किया है. मौलाना भासानी ने कहा है कि वह ३० मार्च को सर्व-पार्टी सम्मेलन बुलाने जा रहे हैं. इस में सभी संवैधानिक मामलों और पेचों पर बातचीत की जायेगी. वह चाहते हैं कि देश के भावी संविधान के बारे में जनमत संग्रह कराया जाये. लेकिन एक बात ज़रूर तय हो गयी है कि अब अय्यूब की ईमानदारी और दयानतदारी की धाक सारे पाकिस्तान में तो नहीं पश्चिम पाकिस्तान के कुछ इलाकों में ज़रूर जम गयी है. लोग यह बखूबी समझने लगे हैं कि अय्यूब अपने स्वार्थ के लिए अपने पद से नहीं चिपके रहना चाहते. जब उन्होंने यह महसूस किया कि देश में अव्यवस्था फैलती जा रही है तो वह एक के बाद एक प्रतिपक्षी सदस्यों की माँग स्वीकार करते चले गये ताकि किसी तरह देश में शांति हो सके. प्रतिपक्षी नेता पश्चिमी पाकिस्तान के गवर्नर मूसा और पूर्व पाकिस्तान के गवर्नर अब्दुल मोनेम खाँ को हटाने की आवाज़ भी बुलंद कर रहे हैं. राष्ट्रपति ने मूसा के स्थान पर तो ५५ वर्षीय यूसुफ़ हरून को गवर्नर नियुक्त कर दिया है जो २० मार्च को अपना पद सँभाल लेंगे. हरून के नामांकन का असगरखाँ और मौलाना आसमी ने विरोध किया है. वह हरून को भी अय्यूब-समर्थक मानते हैं.

पूर्व पाकिस्तान में इस समय बड़ा तनावपूर्ण वातावरण है और लोग यह नारे लगाते जा रहे हैं कि 'हम तुम्हें सहन नहीं करेंगे.' 'बंगाल हमारा है, हम उसे ले कर रहेंगे.' ढाका की सड़कों पर छात्र नारे लगाते निकल रहे हैं कि बीस साल तक हम ने पंजाबी प्रभुत्व सहन किया है अब पंजाब नहीं बंगाल हमें चाहिए और बंगाल हम ले कर रहेंगे. ७ करोड़ बंगालियों की आबादी में सेना में उन का प्रतिनिधित्व केवल १० प्रतिशत है जब कि पश्चिमी पाकिस्तान के लोगों का ९० प्रतिशत है. सब से बड़ा बंगाली अफ़सर मेजर जनरल है. इस के साथ यह बात भी सही है कि प्रतिरक्षा सेवाओं के लिए बंगाल के खाते से ६० प्रतिशत और पश्चिम पाकिस्तान के खाते से १० प्रतिशत जाता है. ७ करोड़ आबादी के लिए पूर्व पाकिस्तान में ६ हज़ार अस्पताल हैं जब कि पश्चिम पाकिस्तान की ५ करोड़ आबादी के लिए २६ हज़ार अस्पताल. मुजीबुर्रहमान के बढ़ते हुए दबदबे के कारण मौलाना भासानी की धाक कुछ खाक में ज़रूर मिलती जा रही है लेकिन दिनाजपुर, बोगरा जैसे इलाक़ों के लोग मौलाना की ६५ सालों की सेवाओं के बारे में भी वाक़िफ़ हैं. लेकिन वे

भुट्टो : चुप्पी

यह महसूस करते हैं कि मौलाना का चीन-समर्थक दृष्टिकोण उन की अधिक भलाई नहीं कर सकता जब कि मुजीबुर्रहमान का उदार रवैया उन की प्रगति में अधिक सहायक हो सकेगा. क्षेत्रीय स्वायत्तता न मिलने के कारण पूर्व पाकिस्तान में बहुत तनाव है. इस तनाव का कहीं विस्फोट न हो जाये और अय्यूब समर्थक लोगों के अलावा आम जनता की सुरक्षा पर न बन आये; पश्चिमी पाकिस्तान से सैनिकों की बहुत बड़ी कुमुक पूर्व पाकिस्तान पहुँच रही है. एक सरकारी रिपोर्ट के हवाले से पता चला है कि अब तक १६७ लोग अपनी जान तथा १०,००० घरों से हाथ धो चुके हैं. छात्रों की तनातनी के अतिरिक्त पाकिस्तान के सभी डाकखाने बंद पड़े हैं. टेलीफ़ोन की घंटियाँ चुप हैं और अन्य अत्यावश्यक सेवाओं के अधिकारियों ने हड़ताल के नोटिस दे डाले हैं.

असुरक्षित यात्री : इस भीतरी उथल-पुथल के कारण पाकिस्तान में रहने वाले और सद्भाव यात्रा पर आने वाले विशिष्ट लोग भी अपने आप को असुरक्षित पाते हैं इंग्लैंड की क्रिकेट टीम को अपना मैच बीच में छोड़ कर स्वदेश भागना पड़ा और अब हाकी की टीमों को भी स्वदेश लौटने के आदेश दे दिये गये हैं. सोवियत रूस के प्रतिरक्षामंत्री मार्शल ग्रेचको भी अपनी यात्रा रद्द कर मास्को पहुँच गये हैं. ग्रेचको के स्वदेश लौटने का कारण रूस-चीन सीमा पर सैनिक मुठभेड़ भी हो सकता है. लेकिन उन के पाकिस्तान में रहते ही रूस से हथियारों की एक खेप पाकिस्तान पहुँची. इस बात की पुष्टि भारतीय संसद् में प्रतिरक्षामंत्री स्वर्णसिंह ने की कि पाकिस्तान को रूस से जो सैनिक सहायता मिली है उस में ४०-५० टैंक भी हैं. यद्यपि अपनी भारतीय यात्रा के दौरान मार्शल ग्रेचको ने कहा था कि पाकिस्तान को टैंक आदि नहीं दिये जा रहे हैं. और अगर कुछ छोटा-मोटा सैनिक सामान दिया भी गया तो भारत के हितों की अनदेखी नहीं की जायेगी.

गुप्त समझौता : रूस-भारत और पाकिस्तान के संबंधों में पिछले दिनों एक और विवाद सामने आया. लंदन के संडे टेलीग्राफ ने यह छापा कि रूस के प्रधानमंत्री कोसीगिन, राष्ट्रपति अय्यूब खाँ और भारत के स्वर्गीय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री में एक गुप्त समझौता हुआ था, जिस में जम्मू-कश्मीर को खास दर्जा देने की बात दर्ज है. इस खबर ने काफ़ी तूल पकड़ी. इस बात का खंडन रूस, भारत और पाकिस्तान के विदेशमंत्रियों को अलग-अलग करना पड़ा है लेकिन संडे टेलीग्राफ ने अपनी बात फिर दोहरायी है. पाकिस्तान के विदेशमंत्री अर्शाद हुसेन ने कहा है कि ताशकंद-समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद श्री शास्त्री का देहांत हो गया था. उस के बाद जम्मू-कश्मीर के लिए विशेष दर्जे के बारे में कैसा गुप्त समझौता हो सकता था. अर्शाद हुसैन ने संडे टेलीग्राफ की इस टिप्पणी को शरारतपूर्ण और मनगढ़ंत बताया है. लेकिन अभी तक भुट्टो की वाणी चुप है. ताशकंद-समझौते के कटु आलोचक भुट्टो के वक्तव्य की भीतर ही भीतर सभी लोग प्रतीक्षा जरूर कर रहे होंगे.

पश्चिम एशिया

बदले का बदला

संयुक्त अरब गणराज्य के सेनापति जनरल **अब्दुल मुनीम रियाद** की मृत्यु पर अरबों ने यह प्रतिज्ञा की कि हम उन की मृत्यु का बदला लेंगे. रियाद संयुक्त अरब गणराज्य में अत्यंत उच्चकोटि के सेनापति माने जाते थे और १९६७ में इस्राइल के हाथों पराजित होने पर जब राष्ट्रपति नासिर का भविष्य अनिश्चित हो गया था तो राजनैतिक मुल्कों में यही चर्चा थी कि रियाद ही उन के स्थान पर राष्ट्रपति बन सकते हैं. मृत्यु से उत्तेजित होना तो अस्वाभाविक नहीं है, मगर उत्तेजना के क्षणों में कहे गये वचनों को कार्यान्वित करना निश्चय ही एक खतरनाक क़दम होगा, क्यों कि पश्चिम एशिया की विस्फोटक परिस्थिति में कोई भी अविवेकपूर्ण कार्य दुर्घटनाओं की श्रृंखला को जन्म दे सकता है और वही अरबों और इस्राइलियों के बीच चौथे युद्ध के लिए सामान तैयार करेगा. इस क्षेत्र में शांति स्थापित करने की आशाएँ तो पहले से ही अधिक नहीं थीं मगर अब वह और भी धूमिल हो गयी हैं. स्वेज़ नहर के आर-पार अरबों और इस्राइलियों के बीच युद्ध तथा सिनाइ के ऊपर संयुक्त अरब गणराज्य के बमबारों के इस्राइली वायुयानों से टक्कर के बाद वह आशाएँ पीछे सरक गयीं हैं. संयुक्त-राष्ट्र के पर्यवेक्षक दल के नेता **ले. जनरल अ ड बुल** के अनुसार स्वेज नहर की लड़ाई आरंभ करने का उत्तरदायित्व संयुक्त अरब गणराज्य पर है. बुल ने संयुक्त अरब गणराज्य के अधिकारियों से इस संबंध में बातचीत की है और अपनी रिपोर्ट महा सचिव **ऊ थाँ** को भेज दी है. ऊ थाँ ने इस्राइली विदेशमंत्री अब्बा एबन को एक पत्र में लिखा है कि इस क्षेत्र में शांति के लिए पहला क़दम वह होगा जब कि अरब राष्ट्र और इस्राइल १९६७ के सुरक्षा परिषद् प्रस्ताव को कार्यान्वित करने की घोषणा करें.

अनिश्चित भविष्य : स्वेज नहर की झड़प के बाद इस्राइल और संयुक्त अरब गणराज्य के प्रतिनिधियों ने संयुक्तराष्ट्र से एक दूसरे के विरुद्ध शिकायत की है मगर किसी ने इस सिलसिले में संयुक्तराष्ट्र की बैठक बुलाये जाने की माँग नहीं की है. कुछ दिन पहले बगदाद रेडियो पर संयुक्त अरब गणराज्य ने शांति स्थापना के लिए अपने सुझाव घोषित किये थे मगर इस्राइली विदेशमंत्री एबन ने उसे रद्द कर दिया है. उप-प्रधानमंत्री **एलन** के अनुसार इस्राइल अरबों के साथ युद्धविराम के लिए तैयार है बशर्ते कि यह विराम दोनों ओर से हो. उन के अनुसार इस्राइल हर मोर्चे पर शांति चाहता है इस लिए शांति स्थापित करने का दायित्व अरबों पर है. इस के विपरीत अरब समाचार-पत्रों में यह आरोप लगाया गया है कि इस्राइल ने स्वेज़ नहर के अरब क्षेत्र में गोलाबारी कर के न केवल तेल-शोधक कारखाने को क्षति पहुँचाई बल्कि प्रायः ३० नागरिकों के मकान भी नष्ट कर दिये. समाचार-पत्रों के अनुसार इस्राइल अरब नागरिकों से बदला ले रहा है. बदला कौन किस से ले रहा है, इस पर विवाद हो सकता है मगर यह निर्विवाद है कि दोनों पक्ष बदले की भावना से प्रेरित हैं. यह आशा करना कि दो सेनाओं में युद्ध करते समय असैनिक क्षेत्रों को क्षति नहीं पहुँचेगी अव्यावहारिक बात है. वास्तव में इस्राइलियों की शिकायत यही है कि अरब देश न केवल खुले रूप से बल्कि छापामारों की आड़ में भी इस्राइली सीमा के अंदर नागरिक जीवन को नष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं. **अल फ़तेह** के नेता **यासिर अराफत** जिन्हें गुप्त भाषा में **अबू अमर** भी कहते हैं, का **फ़िलिस्तीन मुक्ति संगठन** का नया अध्यक्ष चुना जाना इस बात का द्योतक है कि अरब छापामारों की गतिविधियों में कमी होने के बदले तीव्रता आने की अधिक आशंका है. इस लिए इस्राइल की नयी प्रधानमंत्री **गोल्डा मीर** के लिए यथास्थिति बनाये रखना आसान कार्य नहीं होगा.

युगोस्लाविया

साम्यवादियों का (अ)साम्य

बेलग्राद में आयोजित युगोस्लाव कम्युनिस्टों की ९वीं कांग्रेस में एक मत से यह प्रस्ताव पास किया गया कि किसी भी देश की प्रभुसत्ता पर किसी तरह का नियंत्रण न लादा जाये फिर चाहे इस नियंत्रण को जिन कारणों से भी लाज़िमी ठहराया जाये. राष्ट्रपति टीटो ने किसी बड़े राष्ट्र (रूस जैसे) के नियंत्रण में विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन की बागडोर सौंपने के विचार की तीव्र भर्त्सना की और कहा कि कम्युनिस्ट-जगत् में स्तालिनवाद के दोष आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं. उन्होंने चेतावनी दी कि अमेरिका और रूस की बढ़ती हुई मित्रता से छोटे और मध्यम श्रेणी के राष्ट्रों की सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है. बड़े राष्ट्रों के बीच प्रत्यक्ष समझौतों से छोटे और मध्यम श्रेणी के राष्ट्रों की चिंता बढ़ जाती है क्यों कि ऐसे समझौतों में उन के हितों की हेरा-फेरी की भी संभावना रहती है. प्रत्यक्ष समझौते की नीति अपना कर बड़े शक्ति-गुट हमें शांति और स्थायित्व के क़रीब नहीं ला रहे हैं और न इस नीति से छोटे राष्ट्रों की सुरक्षा की गारंटी के आसार ही उभर रहे हैं. आज का विश्व अंतरराष्ट्रीय संबंधों में शक्ति-प्रयोग की प्रवृत्ति का सामना कर रहा है और इस खतरनाक प्रवृत्ति से विभिन्न प्रकार के दबावों को

व्यवहार में लाया जा रहा है; दूसरे देशों के अंदरूनी मामलों में प्रत्यक्ष और सशस्त्र हस्तक्षेप एवं तथाकथित स्थानीय युद्ध को प्रोत्साहन मिल रहा है.

युगोस्लाव सर्वहारा आंदोलन की ५०वीं वर्षगांठ के उपलक्ष्य में आयोजित युगोस्लाव-कम्युनिस्ट लीग की ९वीं कांग्रेस के ५ दिवसीय सम्मेलन में विभिन्न देशों के ६५ प्रतिनिधि शामिल हुए किंतु वारसाउ संधि में शामिल देशों ने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया. रूस, हंग्री, पूर्व जर्मनी, पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया की कम्युनिस्ट पार्टियों ने इस सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भेजने की बजाय सिर्फ़ अपने संदेश भेजे हैं. पूर्वी यूरोप के देशों में से केवल रोमानिया ने ही इस सम्मेलन में अपना प्रतिनिधि भेजा था. भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने भी इस सम्मेलन में अपना शिष्टमंडल नहीं भेजा क्यों कि वह चेकोस्लोवाकिया में सशस्त्र रूसी हस्तक्षेप के विरोध के मुद्दे पर युगोस्लाविया का साथ नहीं देना चाहती थी. युगोस्लाविया ने विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के अलावा अन्य प्रगतिशील तथा राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संघर्ष से संबद्ध पार्टियों को भी इस सम्मेलन में आमंत्रित किया था. भारत से संसोपा के प्रतिनिधि सदाशिव बगाइतकर बालकृष्ण गुप्त (संसद्-सदस्य), प्रसोपा के प्रतिनिधि एन. जी. गोरे और कांग्रेस के प्रतिनिधि मैसूर प्रदेश-कांग्रेस के अध्यक्ष डॉ. नागप्पा अलवर इस सम्मेलन में शरीक हुए. ७० हज़ार शब्दों का एक नीति संबंधी मुद्रित विवरण सम्मेलन के प्रतिनिधियों में वितरित किया गया. दो घंटे की बैठक के बाद सम्मेलन समाप्त हो गया.

रूस की आलोचना : युगोस्लाविया और रूस के संबंधों का ज़िक्र करते हुए राष्ट्रपति टीटो ने कहा कि दोनों देशों के संबंधों में स्तालिन-युग में ही दरारें पड़ गयीं थी. रूस के नेतृत्व में वारसाउ देशों की सेना द्वारा चेकोस्लोवाकिया पर हमले की भर्त्सना करते हुए उन्होंने कहा कि इस घटना से स्तालिनवाद की स्मृति फिर से उभरी है. अपने देश के साम्यवाद को अधिक सहिष्णु और मानवतावादी ठहराते हुए उन्होंने समाजवाद के स्वतंत्र विकास को सैनिक हस्तक्षेप द्वारा अवरुद्ध करने की प्रवृत्ति को साम्यवाद के लिए गंभीर खतरा बतलाया, क्यों कि इस से साम्यवाद की नीतियों को आघात पहुँचता है, अन्य प्रगतिशील आंदोलनों की गति अवरुद्ध होती है और साम्राज्यवाद-विरोधी मोर्चे पर भी शिकस्त मिलती है. उन्होंने कहा कि दीर्घकाल तक स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए स्वयं अनेक प्रकार के दबावों और क्रूरता का सामना करने से हम उन देशों के प्रति गहरी सहानुभूति रखते हैं जिन्हें ऐसी ही स्थिति से गुज़रना पड़ रहा है. युगोस्लाविया यह दावा नहीं करता कि उस ने समाजवाद की सभी आधुनिक समस्याओं का हल खोज लिया है या कि वह अपनी समस्याओं, कठिनाइयों और ख़ामियों से भली भांति परिचित है. लेकिन वह यह महसूस करता है कि अंतरराष्ट्रीय व्यवहार और समाजवादी विचारधारा, साम्राज्यवाद के विरुद्ध वास्तविक संघर्ष, शांति, सभी राष्ट्रों की स्वतंत्रता और श्रम के गौरव के प्रति युगोस्लाव कम्युनिस्ट लीग और अन्य सभी क्रांतिकारी पार्टियों के ठोस योगदान को ही उन की अंतरराष्ट्रीयता और क्रांतिवादी व्यक्तित्व की कसौटी माननी चाहिए.

अन्य निर्णय : राष्ट्रपति टीटो ने केंद्रीय समिति को समाप्त कर युगोस्लाव कम्युनिस्ट लीग को पुनः संगठित करने की घोषणा की. लीग के संचालन के लिए एक ५२ सदस्यीय अध्यक्ष मंडल गठित किया जायेगा, जिस के नेता राष्ट्रपति टीटो होंगे. अध्यक्ष-मंडल लीग, श्रमजीवी वर्ग और युगोस्लाव जनता से संबंधित संयुक्त ज़िम्मेदारी वहन करेगा. २८० सदस्यों की लीग का हर साल अधिवेशन होगा. कुल सदस्यों में से ७० तो स्थायी होंगे और बाक़ी २१० सदस्यों को हर साल बदला जा सकेगा. अध्यक्ष-मंडल गठित करने का मुख्य उद्देश्य देश के नेतृत्व को मज़बूत बनाना है. 'सीमित प्रभुसत्ता' के रूसी सिद्धांत की भर्त्सना के लिए तैयार की गयी अंतरराष्ट्रीय संबंधों के बारे में समिति के प्रतिवेदन को सम्मेलन में स्वीकृत किया गया और सर्वसम्मति से यह निर्णय भी लिया गया कि युगोस्लावया अगले वर्ष के मास्को शिखर सम्मेलन में शरीक नहीं होगा.

फ़्रांस

द गालवाद का उत्तराधिकारी

यूरोप के राजनैतिक केंद्रों में फ़्रांस के भूतपूर्व प्रधानमंत्री **जॉर्ज पांपिदू** आजकल चर्चा के विषय बने हुए हैं. प्रश्न यह है कि क्या **पांपिदू** फ़्रांस के अगले राष्ट्रपति होंगे ? १७ जनवरी को रोम में उन्होंने कहा था कि वह राष्ट्रपति पद के लिए खड़े होंगे, मगर उस समय लोगों ने से गंभीरता से नहीं लिया था. किंतु १२ फ़रवरी को जिनेवा में फ़्रांस के इस वरिष्ठ राजनीतिज्ञ ने यूरोप में नवचेतना का आंदोलन आरंभ करने का आह्वान किया. साथ ही उन्होंने कुछ उसी अंदाज़ में अपना भाषण दिया जिसे यूरोप की राजनीति में द गॉल शैली कहते हैं. सात सौ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों, जिन में राजनैतिक, सैनिक और राजनयिक सभी मौजूद थे, के सामने **पांपिदू ने पैलेस द एक्सपोज़ीशंस** में अप्रत्याशित रूप से अपने महत्त्वपूर्ण भाषण में एक प्रौढ़ राजनीतिज्ञ की भांति इस बात का इशारा किया कि वह फ़्रांस के सब से महत्त्वपूर्ण व्यक्ति हैं. नगर के इस प्रसिद्ध केंद्र में जिस प्रकार का स्वागत उन्हें मिला वह भी इसी बात की ओर इशारा कर रहा था. इस अवसर पर जिनेवा में समाचारपत्रों ने भी **पांपिदू** की यात्रा पर काफ़ी टिप्पणियाँ लिखीं, जिस से यूरोप की जनता में इस संभावना पर विचार होने लगा है कि संभवतः राष्ट्रपति **द गॉल** अपने राष्ट्रपति पद की अवधि समाप्त होने से पहले ही पांपिदू के पक्ष में राजनीति से अवकाश ग्रहण करें.

राष्ट्रपति द गॉल की ओर से इस प्रकार का कोई इशारा नहीं मिला है कि वह १९७२ से पहले राष्ट्रपति पद को त्याग देंगे. यह कहा जाता है कि यदि वह पूरी अवधि तक भी शासन करें तब भी सामान्य परिस्थितियों में **पांपिदू** अधिक उपयुक्त व्यक्ति दिखाई देते हैं. १९६८ में मई-जून की 'क्रांति' के बाद **पांपिदू** की लोकप्रियता प्रायः उतनी ही बढ़ गयी थी जितनी स्वयं द गॉल की. वास्तव में द गॉल सामान्य परिस्थितियों में यही चाहेंगे

पांपिदू : राष्ट्रपति धुन लगी

कि उन के बाद भी द गॉल का ही शासन रहे. इस सिलसिले में वर्त्तमान प्रधानमंत्री **मॉरिस कुवे द मुर्विल** प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुए हैं. प्रधानमंत्री के अतिरिक्त विदेशमंत्री **माइकेल देब्रे** को एक संभावित प्रत्याशी के रूप में देखा जाता था. देब्रे ने भी इस दिशा में अपने प्रयास आरंभ कर दिये हैं. हाल ही में उन्होंने मॉस्को की यात्रा करने का फ़ैसला किया है. मगर **पांपिदू, देब्रे** और **मुर्विल** से बहुत आगे निकले हुए दिखाई देते हैं, क्यों कि उन के सहयोगियों में मध्यमार्गी और परंपरावादी लोग हैं. फ़्रांस के धनवान वर्ग के लोग **पांपिदू** को अपना प्रतिनिधि मानने लगे हैं क्यों कि वे स्वयं भी एक सफल बैंक अधिकारी रहे हैं. इस के अतिरिक्त उन्होंने टेलीविज़न और रेडियो पर जो सफलता प्राप्त की है उस ने भी उन की लोकप्रियता में वृद्धि की है. इस लिए

यह माना जाने लगा है कि **पांपिदू** का प्रभाव फ़्रांस के मतदाता के सब से बड़े वर्ग पर पड़ता है. स्विट्ज़रलैंड में कुछ राजनीतिज्ञों का विचार है कि यदि परिस्थितियाँ सामान्य रहीं तो पांपिदू को राष्ट्रपति बनने में कोई भी कठिनाई नहीं होगी.

नया पैंतरा : फ़्रांस के भावी राष्ट्रपति की चर्चा उस समय हो रही है जब कि फ़्रांस और ब्रिटेन के बीच यूरोप की एकता के विषय पर मतभेद बहुत बढ़ गये है. फ़्रांस ने सदा से ब्रिटेन को यूरोपीय साझा बाज़ार से बाहर रखने का प्रयास किया है. अब द गॉल ने एक नयी योजना प्रस्तुत की है. यद्यपि यह प्रस्ताव गुप्त रखने की कोशिश की गयी फिर भी इस का सार समाचारपत्रों तक पहुँच चुका है. द गॉल के अनुसार यदि वास्तविक रूप से एक स्वतंत्र यूरोप बन जाये तो फिर अमेरिकी हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी. ऐसी अवस्था में नैटो जैसी सैनिक संधियों का कोई औचित्य नहीं रह जाता. इस के अतिरिक्त ब्रिटेन, फ़्रांस, पश्चिम जर्मनी और टली की स्थाई निर्देशक समिति के गठन और कुछ साधारण नियमों के आधार पर एक 'कर मुक्त व्यापार क्षेत्र' की स्थापना का भी प्रस्ताव रखा गया है. फ़्रांस ने ब्रितानी राजदूत द्वारा ब्रिटेन को बैठक के लिए औपचारिक निमंत्रण देने के लिए कहा है. ब्रिटेन में कुछ लोग इसे एक 'जाल' मानते हैं जिस में फँसा कर वह ब्रिटेन पर यूरोप से अमेरिका के निष्कासन का उत्तरदायित्व थोपना चाहता है. और संकट ऐसे समय पर पैदा हो रहा है जब कि राष्ट्रपति निक्सन राजकीय यात्रा पर आने वाले हैं.

नया संकट : साझे बाज़ार से भी बड़ी समस्या स्वयं फ़्रांस में विद्रोही प्रवृत्तियों को नियंत्रण में रखने की है. पिछले वर्ष जून के छात्र विद्रोह के बाद फिर से नये संकट का सामान पूरी तरह जुट गया था जब कि फ़्रांस की तीन बड़ी मज़दूर संस्थाओं ने देशव्यापी हड़ताल की घोषणा कर दी. कई लोगों को यह आशंका थी कि फिर से फ़्रांस में भारी स्तर पर दंगे और मार-काट होगी तथा द गॉल की सरकार के लिए स्थिर रहना असंभव हो जायेगा. मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ. हड़ताल पूर्ण सफल थी मगर उस ने दंगे और बग़ावत का रूप नहीं लिया, क्यों कि मज़दूर नहीं चाहते थे कि वह किसी वाद विशेष के जाल में फँस कर अपने रास्ते से भटक जायें. उन की माँग थी कि वेतनों में १२ प्र. श. की वृद्धि की जाये. इस से आगे जा कर वह प्रजातंत्र को खतरे में नहीं डालना चाहते थे. इसी लिए जब बीस हज़ार हड़ताली मजदूरों के सामने से ५००० वामपंथी छात्र नारे लगाते गुज़रे तो उन्होंने कोई जोश नहीं दिखाया. द गॉल के रेडियो भाषण से भी काफ़ी प्रभाव पड़ा. राष्ट्रपति के अनुसार यह आंदोलन "विनाश और तोड़-फोड़ का व्यापक अभियान है." उन्होंने लोगों को चेतावनी दी कि इस अभियान के पीछे भी उसी (गत वर्ष के) प्रकार के लोग उन्हीं सहायकों के साथ हैं, जो उन्हीं प्रकार के साधनों द्वारा मुद्रा, अर्थ-व्यवस्था और गणतंत्र को नष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं." फ़्रांसीसी जनता की देशभक्ति और अपनी व्यवहार-कुशलता से द गॉल ने एक और संकट को पार कर लिया है.

अपोलो-९

ऐतिहासिक योजना का पूर्वाभ्यास

अंतरिक्ष में १० दिन रहने के बाद अपोलो-९ अपने यात्रियों सहित अतलांतिक महासागर में उतर आया. जिस समय यह अंतरिक्ष यान **प्यूरिटो रिको** के ३०० मील उत्तर में स्थित एक विशाल समुद्र यान के निकट पानी में उतरा उस समय १२ बजे थे. इस अंतरिक्ष यान के उतरने का पूरा कार्यक्रम संचार उपग्रहों द्वारा अमेरिका और अन्य देशों में लाखों दर्शकों ने टेलीविज़न पर देखा. टेलीविज़न पर दृश्य क़रीब-क़रीब उतने ही साफ़ दिखाई दे रहे थे जितने कि किसी स्टूडियो से प्रसारित चित्रों के होते हैं. समुद्र में कूदने से पहले ही आकाश में उड़ते हुए दो हेलीकाप्टरों ने अपोलो-९ को देख लिया था और इस लिए जब अंतरिक्ष यान पानी में कूद पड़ा तो हेलीकाप्टरों में बैठे हुए नौसेना के तैराक भी पानी में कूद पड़े. कुछ मिनटों के अंदर ही तीनों अंतरिक्ष यात्रियों को सुरक्षित घोषित कर दिया गया और उन्हें अमेरिकी जलयान **ग्वाडल कैनाल** तक पहुँचाया गया.

अगला क़दम : अपोलो-९ जिस वक़्त अपनी परिक्रमा के दौरान **हवाई द्वीपों** के ऊपर से उड़ रहा था तो उसी वक़्त विपरीत चलने वाले रॉकेटों को चालू कर दिया गया ताकि वह पृथ्वी की परिधि से मुक्त हो कर पृथ्वी की ओर मुड़ जायें. इस अवसर पर वायुमंडल से टकराने के कारण बहुत अधिक गरमी पैदा होने का खतरा होता है इस लिए एक ताप-निरोधक आवरण से यान को बचाया गया था. यह अंतरिक्ष यात्रा अमेरिका के अपोलो अंतरिक्ष कार्यक्रम की नवीं कड़ी है. कार्यक्रम के अनुसार अपोलो-११ चंद्रमा की परिक्रमा करने के बाद २ व्यक्तियों को चंद्रतल पर उतार देगा. उस समय भी इसी प्रकार का कार्य करना होगा जिस प्रकार का कार्य अपोलो-९ ने अंतरिक्ष में किया. चंद्रयान में २ अंतरिक्ष यात्रियों को अलग कर के फिर से जोड़ने की प्रक्रिया इस कार्यक्रम की बहुत बड़ी उपलब्धि है. अंतरिक्ष यात्रा इतनी सफल रही कि कुछ अमेरिकी अंतरिक्ष अधिकारियों ने यह सुझाव दिया है कि अपोलो-१० को ही यह आदेश दिया जाये कि वह अपने २ यात्रियों को चाँद पर उतारे. इस बात पर अभी कोई निश्चय नहीं किया गया है.. किंतु यह बात निश्चित है कि अपोलो-१० की यात्रा को अनुपयोगी समझ कर रद्द नहीं किया जायेगा क्यों कि वह पहले ही केप केनेडी के प्रक्षेपणस्थल तक पहुँच गया है.

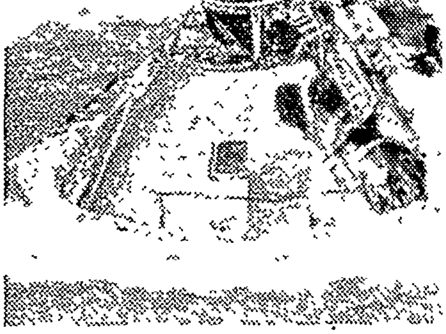

अपोलो-९ : अतलांतिक सागर में सकुशल

रूस-चीन विवाद

एक झड़प और

उसूरी नदी के टापू दमिस्की पर रूस और चीन के सैनिकों की २ मार्च की झड़प की याद अभी बासी भी न हो पायी कि १५ मार्च को दोनों पक्षों में उसी टापू पर फिर एक झड़प हो गयी. फिर वही पहले जैसे आरोप-प्रत्यारोप हताहतों के बारे में चीन की ख़ामोशी. रूसी सूत्रों के अनुसार पहली झड़प में चीन के कोई तीन सौ सैनिक खेत रहे. इस बार की संख्या का पता नहीं. हाँ, रूस का एक कर्नल और पाँच सैनिक चीनी गोलियों के शिकार बने. छोटे-से-टापू पर कर्नल की उपस्थिति से राजनैतिक प्रेक्षक यह अनुमान लगाने लगे हैं कि रूस और चीन का सीमा-विवाद धीरे-धीरे युद्ध का रूप धारण करता जा रहा है. रूस के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री ख्रुश्चोव ने भी इस स्थिति पर चिंता व्यक्त की है.

शक्ति-प्रदर्शन : घटनाक्रम और विश्व-राजनीति की वर्त्तमान स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि संघर्ष में पहल चीन ने की, भले ही वह धुआँधार प्रचार कर के उस का उत्तरदायित्व रूसी नेताओं के मत्थे मढ़ने का प्रयत्न करे. चीन नहीं चाहता कि उत्तरी वीएतनाम पूर्णतः रूसी प्रभाव में चला जाये. पाकिस्तान को हाल में जो रूसी सैनिक सामग्री मिली है उस से भी चीनी नेता यह सोचने लगे हैं कि कहीं पाकिस्तान भी उन के हाथ से न निकल जाये. रूसी रक्षामंत्री मार्शल ग्रेचिको की पाकिस्तान-यात्रा के दौरान रूसी नौसेना के उपाध्यक्ष ने इस बात पर बल दिया था कि भारत उपमहाद्वीप में शांति के लिए पाकिस्तानी नौसेना का सुदृढ़ होना आवश्यक है. चीनी नेता इस कथन के दूरगामी परिणामों को समझते हैं. रूस से सीमा पर संघर्ष छेड़ कर वे पाकिस्तान तथा उत्तरी वीएतनाम को शायद यह बताना चाहते हैं कि चीन भी एक शक्तिशाली देश है और वे अपने हितों की रक्षा के लिए उस पर निर्भर रह सकते हैं.

बोल अरी ओ धरती बोल

सैयद सज्जाद ज़हीर ने पाकिस्तान के साहित्य-जगत का निरीक्षण दिनमान के लिए विशेष रूप से करते हुए लिखा है कि पाकिस्तान में उर्दू अदब के बाग़ में अभी तक जो बड़े और तनावर दरख़्त हैं वह मुतहिद्दा (अविभाजित) हिंदुस्तान के ज़माने में ही लगाये गये थे. 'मेरा मतलब है जोश मलीहाबादी, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, अहमद नदीम क़ासिमी, हफ़ीज़ जालंधरी, क़तील शफ़ाई, हफ़ीज़ होश्यारपुरी, अब्दुल हमीद अदम, सूफ़ी गुलाम मुस्तफ़ा, तबस्सुम वग़ैरह से. (मुमकिन है कि मैं कई नाम छोड़ गया हूँ) ये सब लोग वे हैं जिन्होंने पाकिस्तान बनने से पहले ही शोहरत हासिल कर ली थी. अफ़साना (कहानी) और नाविल निगारों (उपन्यासकारों) में दो बड़े नाम हमारे सामने हैं. सआदत हसन मंटो और कर्तुलऐन हैदर ने अपनी ज़िंदगी के बेश्तर तख़लीक़ी (रचनात्मक) साल बंबई में बसर किये. पाकिस्तान में वह ४-५ ही साल ज़िंदा रहे. ऐनी लखनऊ से कमउमरी में ही अपनी बेवा माँ और भाई के साथ पाकिस्तान गयीं. वहाँ १५ साल के क़रीब रह कर और अपना मशहूर नावेल 'आग का दरया' लिखने के बाद वह हिंदुस्तान वापस आ गयीं. मैं यह बातें इस लिए नहीं कह रहा हूँ कि पाकिस्तानी अदब की अहमियत को घटाना चाहता हूँ या यह कि उसे महज़ हिंदुस्तान के उर्दू अदब का एक हिस्सा साबित करना चाहता हूँ. आख़िर पाकिस्तान के सब से बड़े रहनुमा और उस के बानी (संस्थापक) मोहम्मद अली जिन्ना के जिस्मानी, नफ़सियाती (मानसिक) और सियासी (राजनैतिक) तरबियत और नशोनुमा (विकास और पोषण) भी हिंदुस्तान बल्कि इंडियन नेशनल कांग्रेस में हुई थी और पाकिस्तान के पहले वज़ीरेआज़म नवाबज़ादा लियाक़त अली ख़ाँ का भी. इशारा मैं इस बात की तरफ़ करना चाहता हूँ कि हमें इस बीस साल के पाकिस्तानी उर्दू अदब को समझने और परखने के लिए उस के तारीख़ी माख़िज़ों (ऐतिहासिक स्रोतों) को याद रखना ज़रूरी है. अभी हमें सियासी तौर से अलेहदा हुए बीस साल हुए हैं.

गुज़िश्ता (गत) साल जोश साहब दिल्ली आए थे तो उन्होंने एक बड़ी ख़ूबसूरत नज़्म बरसात के बारे में सुनाई जो उन्होंने पाकिस्तान जाने के बाद लिखी है. लेकिन उस नज़्म में बरसात और मल्हार और फूलों और ऊदी घटाओं का सारा मंज़र (दृश्य) कराची का नहीं बल्कि अवध और मलीहाबाद का था. बाज़ लोगों को शायद यह मालूम कर के ताज्जुब हो कि कई पाकिस्तानी शायर बृज भाषा, अवधी, छत्तीसगढ़ी और मध्य प्रदेश की बोलियों में कृष्ण और राधा की भक्ति के गीत लिखते हैं. पाकिस्तान राइटर्स गिल्ड के सेक्रेटरी जमीलुद्दीन आली बृजभाषा में दोहे लिखते हैं और हमें रहीमन की याद दिलाते हैं. एक बात और ताज्जुब के क़ाबिल है. पाकिस्तान के मय्यारी अदबी रिसालों (उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रिकाओं) में पाकिस्तानी अदीबों के साथ-साथ हिंदुस्तानी अदीबों की चीज़ें भी काफ़ी बड़े पैमाने पर शाया (प्रकाशित) होती हैं. मेरे ख़्याल में नकूश पाकिस्तान का सब से अहम अदबी रिसाला है. यह रिसाल क्या है ६०० से ज़्यादा सफ़्हों की एक भारी-भरकम किताब है. साल में ३ या ४ नंबर (अंक) शाया होते हैं. मेरे सामने उस के ३ शुमारे (अंक) हैं. इन सब में कृश्ण चंदर, बेदी, असमत, रामलाल, जोगिंदर पाल, आनंद नारायण मुल्ला, फ़िराक़, ख़्वाजा अहमद अब्बास, डा. गोपीचंद नारंग, हंसराज रहबर, बलवंतसिंह, कश्मीरीलाल, ज़ाकिर, डा. मोहम्मद हसन, करतार सिंह दुग्गल और बहुत से दूसरे हिंदुस्तानी अदीबों की चीज़ें शाया की गयी हैं. तक़रीबन आधा रिसाला हिंदुस्तानी अदीबों की चीज़ों से भरा है. मेरा ख़्याल है कि अब भी कृश्णचंदर पाकिस्तान के सब से ज़्यादा मक़बूल (लोकप्रिय) और पसंदीदा उर्दू अफ़साना निगार हैं.

हम ने अभी तक जो कहा है उस का यह मतलब बिल्कुल नहीं है कि पाकिस्तानी अदब पुराने ढर्रों पर ही चल रहा है. बात दरअसल बिल्कुल उल्टी है. पहले तो यह कि कई मशहूर और पहले के लिखने वालों (मसलन जोश, फ़ैज़, नदीम क़ासिमी) ने अभी तक हेरतअंगेज़ तवानाई (शक्तिमत्ता) है. अहमद नदीम क़ासिमी अच्छे शायर तो काफ़ी अरसे से मशहूर ही हैं. इस मुद्दत में बहैसियत एक अफ़साना निगार के उन्होंने ग़ैर मामूली कामयाबी हासिल की है. ख़ास तौर पर उन का वह अफ़साना जिन में मग़रबी पंजाब के देहात के नादार मेहनतकशों की ज़िंदगी के मुख़तलिफ़ (विभिन्न) पहलुओं को बड़ी जानदार, सच्ची, नौजवान और दिल को छू लेने वाली अक्कासी की गयी है. फ़ैज़ की शायरी में ग़ालिब और इक़बाल की शब्दावली की परछाइयाँ थीं लेकिन गुज़िश्ता दिनों उन्होंने पाकिस्तान के मेहनतकशों का एक तराना बिल्कुल नयी शब्दावली में लिखा है. हिंदी वालों को इस से ख़ासी दिलचस्पी होगी. वह कहते हैं :

जागो मेरे लाल
अब जागो मेरे लाल
घर-घर बिखरा भोर का कुंदन,
घोर अँधेरा अपना आँगन
जाने कब से राह तके हैं
बाली धनिया, बाँके बीरन
तुम बिन कितना काज पड़ा है
देखो सूना राज पड़ा है
बैरी बिराजे राजसिंहासन
तुम माटी में लाल
उट्ठो अब माटी से उट्ठो
जागो मेरे लाल

दूसरी बात है पाकिस्तानी अदब में बहुत से नये और होनहार लिखने वालों का उभरना और नये-नये नज़रियाती रुझानों नेज़ फ़ार्मूलों के तजुर्बे. इन नये अफ़साना निगारों में हैं, गुलामुलतक़लैन, नक़वी, ख़ालिदा असग़र, सलमा हसन, अनवर सज्जाद, मुमताज मुफ़्ती, रज़िया फ़सीह, अहमद वग़ैरह. और भी जदीद (नये) अफ़साना निगार हैं जिन में स्ट्रीम ऑफ कॉनशियनेस (चेतना प्रवाह) और सिंबोलिक (प्रतीकात्मक) तर्ज़े-तहरीर (लेखन का ढंग) नुमायाँ है. ये लोग और उन के तरफ़दार पुराने रियलिस्ट (यथार्थवादी) या रूमानी तर्ज़ के लिखने वालों पर सख़्त हमला कर रहे हैं. इन में ऐसे भी हैं जो सैक्स, तनहाई, इनसान की लाचारी, बेबसी और अवचेतन की धुँधली दुनिया में हक़ीक़त की जड़ों तक पहुँचने की कोशिश कर रहे हैं और इन में अगर कई बोगस और सतही हैं तो कई ऐसे भी हैं जिन में बड़ी जान है और ख़ुलूस और वैविध्य के साथ दर्दमंद दिल भी हैं. ज़ाहिर है कि इन लिखने वालों पर सार्त्र, कामू और उन के फ़लसफ़ों का असर है. शायरी में भी यह प्रवृत्ति अभिव्यक्त हुई है.

चंद साल पहले तक दिल्ली के सब से बड़े मुशायरे में पाकिस्तानी शायरों का भी एक गिरोह शरीक होता था. आख़िरी बार मैं ने उन को १९६४ में सुना था. उन में से २-३ नौजवान शायरों (अतहर नफ़ीस, असद मोहम्मद ख़ाँ 'असद', जालिब) की चीज़ें सुन कर मुझे यह अहसास हुआ कि पाकिस्तानी उर्दू शायरों में फ़िलजुमला हिंदुस्तान के उर्दू शायरों के मुक़ाबले में ज़्यादा तवानाई और ज़्यादा रूहानी और नफ़सियाती तनाव है. असद कराची में रहते हैं और मध्यप्रदेश से वहाँ गये हैं. उन्होंने अपना एक गीत सुनाया. उस का उन्वान (शीर्षक) था : 'विंध्याचल की आत्मा' उस की कुछ पंक्तियाँ हैं :

मैं विंध्याचल की आत्मा
मेरे माथे चंदन चंद्रमा
मेरी माँग साँझ की धूप
मैं चित्रकार का अंतिम चित्र
कला का अंतिम रूप
मेरी धारा के सब रूप चाल
कहीं नर्मदा, कहीं कमलताल.
मैं बिछड़ों का संयोग
मैं रूपमती का सपना
मेरे कीकर सब तेरे घाव
मेरे घायल मन को बचाइये
मेरे मोर, पंख में मृग...

अतहर नफ़ीस की ग़ज़ल के चंद शेर यह थे :

वेनियाज़ाना हर एक राह से गुजरा भी करो
शौके-नज्जारा जो ठहराये तो ठहरा भी करो
इतने शाइस्ताए-आदावे-मोहव्वत न वनो
शिकवा आता है अगर दिल में तो शिकवा भी करो
सीनए-इश्क तमन्नाओं का मदफ़न तो नही
शौके-दीदार अगर है तो तकाज़ा भी करो.

मालूम होता है कि वह तड़पती हुई आग खुदऐतमादी (आत्मविश्वास) और जुर्रअत (साहस) जो पाकिस्तानी अदीवों के एक गिरोह में नजर आता है उस कैफ़ियत का इज़हार करते है जो आज पाकिस्तान में आम हो गयी है और जिस के सवव से वहाँ राज सिंहासन डावाँडोल नज़र आता है. पाकिस्तानी अवाम (जनता) वड़े जोरो-शोर से हुकूमत के वंद दरवाज़े खटखटा रहे हैं और तक़ाज़ों पर तकाज़े कर रहे हैं.

यह तस्वीर का एक रुख है, एक दूसरा रुख भी है जिस पर नज़र डालना जरूरी है. हम अभी तक जदीद ज़ेहन रखने वाले रोशन ख्याल और जम्हूरियत (लोकतंत्र) पसंद और तरक्कीपसंद शायरों और अदीवों की चर्चा कर रहे थे. दूसरा जो रुझान पाकिस्तानी अदव में अहिया परस्ती (पुन त्थानवादी) और माज़ीपरस्ती का भी है. मसलन पाकिस्तान के काफ़ी मग़हूर शायर हैं, जाफ़र ताहिर. थोड़े दिन हुए, मैने उन की तवील (लंवी) नज्म की किताव, ३०० से ज्यादा पृष्ठों की है, देखी. उस नज्म में तुर्की, मिस्र, अरव, ईराक, ईरान, पाकिस्तान, आदि के इसलाही तारीख के चंद वाक्यात को काफ़ी तोड़-मरोड़ कर दरअसल पुराने पान इस्लामिजम (मुस्लिम वंधुत्व) के नजरिये को पेश किया गया है. इन हज़रत के ऐतिहासिक ज्ञान और उन के दृष्टिकोण की तुलना हम सिर्फ़ अपने दिल्ली के ओक साहव से कर सकते हैं जो इस पर ज़िद ठाने हैं कि ताजमहल को एक राजपूत राजा का महल सावित कर दें. या उन साहव से जिन को हिंदुस्तान-पाकिस्तान की सन् ६५ की अफ़सोसनाक लड़ाई में महाभारत के धर्मयुद्ध का नक़्शा नज़र आने लगा था लेकिन खुशी की वात यह है कि इस क़िस्म के अदव को पाकिस्तान में भी कोई अदवी हैसियत नही मानी जाती. उन के नुकसानदेह असर से हमें इनकार न होना चाहिए. मज़हवी जुनून (धार्मिक पागलपन या अंधविश्वास) को इन के ज़रिये भड़काया जा सकता है. लेकिन कला के मंदिर मे कोई उन को जगह नही देता. यह खुशी की वात है कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान दोनों में 'उस अदव' को भुला दिया गया जो वहुत से जोशीले देशभक्तो ने १८ दिन की लड़ाई के ज़माने में लिखा था.

पाकिस्तानेर निबरुव बांगला

साहित्य में आंचलिक भाषा का क्या स्थान होना चाहिए, यह विषय साहित्यकारों के चिंतन का है. पर किसी स्थानीय भाषा के शब्दों में जो शक्ति है उस को खोज कर साहित्यिक रचनाओं में इस्तेमाल करने की आवश्यकता को झुठलाया नही जा सकता. १९४२ में—पाकिस्तान के जन्म से पाँच वर्ष पूर्व,—पूर्वी पाकिस्तान साहित्य संसद् की जिन्होने कल्पना की थी उन्होने उस समय के पूर्वी बंगाल की मुसलमान जनता के दिमाग़ में यह वात गढ़ा देने की जी-तोड़ कोशिश की कि वंगला के मुसलमान साहित्यकारों को हिंदू साहित्यकारो से भिन्न जान पड़ना चाहिए—यानी ऐसे मुस्लिम साहित्य की रचना की जानी चाहिए जो उस समय प्रचलित वंगला साहित्यिक धारा से अलग हो. इस धारा में भाषा, लिपि और विषय-वस्तु को सम्मिलित किया गया. इस भावना का राजनीति से गहरा संवंध था और नेतागण अपनी इस कल्पना को सच माने वैठे थे कि साहित्य-जगत् में परिवर्त्तन लाने के उन के प्रयास को जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त है. वैसे सचमुच ही १९वी शताव्दी में जितनी भी वंगला साहित्य की रचना हुई उस में मुसलमान साहित्यकारों का कोई महत्त्वपूर्ण योगदान नही था और राजनीति के क्षेत्र में मान लिया गया था कि जिस तरह सामाजिक क्षेत्र में मुसलमान हिंदुओं द्वारा दवाये जाते रहे उसी तरह साहित्यिक क्षेत्र में उन्हें आगे वढ़ने से रोका गया. उस शताब्दी के मुसलमान लेखकों का दायरा वहुत ही सीमित रहा—मध्ययुगीन लोकगीत से आगे वढ़ न पाया. इस तरह पिछड़ जाने के मूल में क्या रहा होगा, यह तो इस विषय के वाहर है. वैसे, निश्चित रूप से, पूर्व वंगाल के साहित्य में पूर्ण परिवर्त्तन लाने की उग्र भावना के मूल में राजनैतिक प्रतिक्रिया ही थी.

चोट पर चोट : पूर्व पाकिस्तान के साहित्य में अव तक जिस भाषा का प्रयोग होता है, वह पश्चिम वंगाल की भाषा के इतने पास है कि एक भाषा में दो अलग-अलग देशों के साहित्यकारों की रचनाओं में सामंजस्य अधिक है, अंतर कम. इस अंतर को वड़ा करने के लिए ही शायद पाकिस्तान के राजनैतिक नेताओं ने वहाँ की वंगला भाषा पर लगातार चोट पहुँचाना शुरू किया. सव से हाल ही की चोट ढाका विश्वविद्यालय के अकादेमिक काउंसिल से आयी, जिस ने वर्त्तनी, व्याकरण, वर्णमाला में संस्कार और सरलीकरण के नाम पर कुछ ऐसे नये सिद्धांत वनाये जिन को मान्यता मिलने पर एक नयी वंगला लिपि का जन्म होगा. वर्णमाला से ई, ऊ, ऐ, ण, ष आदि हटा कर और वड़ी मात्राओं का पूरी तरह वर्जन कर, संयुक्ताक्षर लिखने का नया तरीक़ा निकाल, ए की मात्रा को वर्ण के दायीं तरफ़ लगा कर एक ऐसी लिपि को जन्म देने का प्रयास किया जा रहा है जिसे पूर्व पाकिस्तान की 'अपनी वंगला' क़रार दिया जा सके.

बंगला के हिमायती : शिक्षा के हर स्तर पर वंगला को शिक्षा का माध्यम वनाने, दफ़्तर-कचहरियों में वंगला को मान्यता दिलाने और सर्वसाधारण से उन की भाषा को दूर रखने की चेष्टाओं का खंडन करने के लिए १९६७ में एक संस्था का गठन हुआ, जिस के अध्यक्ष प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. शहीदुल्ला निर्वाचित हुए. ढाका विश्वविद्यालय के अकादेमिक काउंसिल का कहना है कि जो भी संशोधन किये गये हैं वे सभी इस संस्था की सलाह के अनुसार किये गये है, हालाँकि संस्था के अध्यक्ष की सहमति के सवूत नही मिलते. यहाँ यह वता देना उचित होगा कि भाषा-परिवर्त्तन के जितने समर्थक इस संस्था में हाज़िर थे वे सभी पाकिस्तान सरकार के उच्च पदस्थ अधिकारी या सरकार के अनुग्रह पर चलने वाले शिक्षाविद् थे.

लोकप्रिय विषय : वंगला भाषा का संशोधन आज-कल पूर्व पाकिस्तान के लोकप्रिय विषयों में से एक है. वैसे जो इस विषय को लेकर चर्चा करते हैं वे सभी समझ-बूझ कर अपना मत देते होंगे, ऐसा मानना भूल होगी. किसी भाषा का संस्कार मनुष्य के हाथ में कम और समय-सापेक्ष अधिक है. फिर इस विषय पर दो विरोधी मत इस समय प्रचलित हैं. पहला मत वंगला भाषा में किसी प्रकार के संशोधन के खिलाफ़ है, क्यों कि इस भाषा में वर्त्तनी व्याकरण के नियमानुसार हैं. दूसरा पक्ष कहता है कि वंगला की वर्त्तनी निहायत ही उलझी हुई है और हर्फ़ों की शक्ल भी भद्दी है, इस लिए आमूल परिवर्त्तन अपेक्षित है. अतिवादी तो यहाँ तक सिफ़ारिश करते है कि वंगला के अक्षरों को विलकुल हटा कर, ध्वनि को आधार मान कर, रोमन अक्षर ग्रहण कर लिए जाएँ. जैसे क के

अविभक्त वांगलाई वांगालीर एकमात्र वाँचार पथ

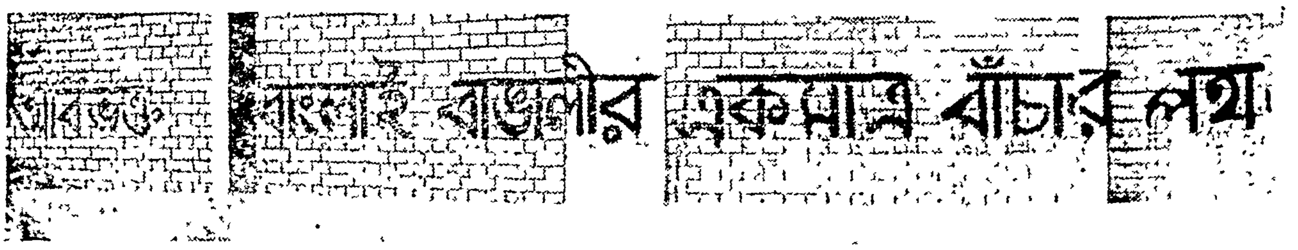

लिए के, ग के लिए जी, च के लिए सी, ए के लिए ई, ओ के लिए ओ आदि.

भाषा और लिपि के परिवर्तन में यदि राजनीति प्रवेश पा जाये तो वह निहायत ही दुर्भाग्य की बात होती है. इस लिए जब पूर्व पाकिस्तान के ४१ साहित्यिक और पत्रकारों ने अकादेमिक काउंसिल के लिपि-परिवर्तन संबंधी नियमों के खिलाफ़ एक प्रस्ताव पारित किया तो उसे भी राजनैतिक रंग दिया गया. विरोध करने वालों का कहना था कि भाषा या लिपि में जो परिवर्तन हों वे स्वतः होने चाहिएं और यहाँ बाहर से ला कर लाद देने वाली बात कभी नहीं मानी जा सकती. उन का आगे मत है कि ऐसे परिवर्तन ज़बर्दस्ती थोपने से भाषा, साहित्य और शिक्षा के क्षेत्रों में अराजकता फैल जाएगी, जिस से सदियों पुरानी बंगला भाषा और उस में रचित साहित्य के साथ पूर्व पाकिस्तानियों का संबंध टूट जाएगा.

एक उपलब्धि : ढाका की बंगला अकादेमी ने आंचलिक शब्द-संकलन का जो काम आरंभ किया है उस की सराहना विशेष रूप से की जानी चाहिए. सैयद अली अहसान, मोहम्मद अब्दुल, डॉ. काज़ी दीन मोहम्मद, डॉक्टर एनामुल हक, प्रोफ़ेसर मुनीर चौधरी आदि विशिष्ट भाषाविदों के सहयोग से एक शब्द-कोष तैयार किया जा रहा है, जिस के कई खंड होंगे. पहले खंड में पूर्व पाकिस्तान के विभिन्न भागों में प्रचलित भाषाओं के शब्दों को एकत्रित किया गया है. इस के लिए शब्द जुटाने के लिए सभी को निमंत्रित किया गया था, जिस के जवाब में कुल मिला कर ४५७ अध्यापक, शिक्षक, छात्र और अन्य लोगों ने १५२ किश्तों में १६६२४६ स्थानीय और प्रचलित शब्द भेजे. इन सब को पारिश्रमिक देने में अकादेमी ने कंजूसी नहीं की और २२६८६ रुपये खर्च किये गये. कुल मिला कर जितने शब्द आये, संपादन के बाद, उन में से ७५,००० शब्द लिये गये. वैसे उच्चारण की दृष्टि से शब्दों को पेश करने में ज़रूर कुछ त्रुटियां रह गयी हैं पर जिस विस्तृत रूप से इस काम की ज़िम्मेदारी उठायी गयी है—क्रमिक संख्या, शब्द, शब्दार्थ, किस अंचल का शब्द और वाक्य में प्रयोग के उदाहरण, विभिन्न प्रदेशों के अलग-अलग उच्चारण—इन सभी की व्याख्या इस शब्द कोष में उपलब्ध है. इतनी परिश्रम और लगन से जो चीज़ तैयार की गयी है उसे पूर्व पाकिस्तान के वर्तमान साहित्यिक कितने चाव से ग्रहण करेंगे, यह भी एक रुचिकर विषय है. पूर्व पाकिस्तान के युवा साहित्यिक अब तक रवींद्रनाथ ठाकुर या जीवनानंद दास जैसे बंगला कवियों के प्रभाव से अपने-आप को मुक्त नहीं कर पाये हैं. इस लिए इन से अलग दिखाई पड़ने या मुस्लिम साहित्य रचना करने के लालच से वह भाषा या लिपि-संशोधन का कहाँ तक स्वागत करेंगे, यह कह सकना कठिन है.

पाकिस्तान दी पंजाबी

१९४७ में विभाजन के बाद पश्चिमी पंजाब से बहुत से लेखक और कवि भारत आ गये, लिहाज़ा पश्चिम पाकिस्तान चोटी के पंजाबी लेखकों से महरूम हो कर रह गया. पाकिस्तान के पहले दस वर्षों में राजनैतिक अस्थिरता और उथल-पुथल के कारण बुद्धिजीवी वर्ग और खास कर पंजाबी साहित्यकार राजनीति के बदलते हुए रूपों का खासा शिकार हुए और उन का ध्यान साहित्यिक रचना से हट कर राजनैतिक संरचना में अधिक लगने लगा. १९५८ में पंजाबी-भाषी राष्ट्रपति फ़ील्ड मार्शल अय्यूब खाँ के सत्तारूढ़ हो जाने से पंजाबी साहित्य में स्थायित्व ज़रूर आया लेकिन गतिशीलता नहीं आयी. यही कारण है कि जहाँ भारत में पंजाबी साहित्य अधिक पनपा और आगे बढ़ा है वहाँ पाकिस्तान का पंजाबी साहित्य किस्सों और परंपरागत कहानियों के घेरे में ही घिर कर रह गया है.

विकास : पंजाबी साहित्य की शुरुआत बारहवीं सदी से शेख फ़रीद के दोहों से बतायी और मानी जाती है. इस भाषा का प्रारंभिक प्रसार और प्रचार का श्रेय मुसलमान कवियों और संतों को रहा है. इस लिए यह स्वाभाविक था कि पंजाबी में उर्दू और फ़ारसी के शब्द अधिक होते. शेख फ़रीद के अलावा शाह हुसैन, पीहलू, मौलाना हबीब उल्ला, शाह शरफ़, बुल्ले शाह, अली हैदर, फ़र्द फ़कीर, नजाबत, वारिस शाह, हाशिम, अहमद यार, कादिर यार, इमाम बख्श, शाह मुहम्मद, फ़ज़ल शाह आदि कुछ ऐसे मुसलमान पंजाबी लेखक हुए हैं जिन का साहित्य और जनता पर एक-सा प्रभाव था. नजाबत की युद्ध कविता, वारिस शाह की हीर, अहमद यार की शीरीं, शाह मुहम्मद का सिख-अंग्रेज युद्ध, फ़ज़ल शाह की सोहनी आदि कुछ ऐसी कृतियाँ हैं जो पंजाबी साहित्य में सदा अमर रहेंगी. इन सभी कृतियों की लिपि उर्दू है. गुरुमुखी लिपि शारदा और टांकरी उपभाषाओं का विकसित रूप है. कहा जाता है कि सिखों के दूसरे गुरु अंगद के काल में गुरुमुखी लिपि वजूद में आयी. गुरुमुखी लिपि में पहले-पहल सिख गुरुओं की वाणी ही पढ़ने को मिली. इस वाणी में उर्दू-युक्त पंजाबी शब्द ही न हो कर ब्रज, अवधी, राजस्थानी, फ़ारसी, संस्कृत और हिंदी आदि भाषाओं के शब्दों का काफ़ी भंडार था. इस मिश्रण का मुख्य कारण यह था कि सिख गुरु अपने उपदेशों के प्रचार के लिए जगह-जगह घूमे और वहाँ की भाषाओं को अपने उपदेशों में लिपिबद्ध करते गये. इस विविधता के कारण गुरुमुखी लिपि का विकास हुआ. गुरुमुखी लिपि में पं. मानसिंह कालिदास, साधु ईश्वरदास, जोगासिंह, देसराज साईलोक ने पंजाबी साहित्य में अपना योगदान किया. इन के बाद गुरुमुखी

संत फ़तेहसिंह और क़ाज़ी नज़रुल इस्लाम १९६७ में नेता-कवि मिलन

लिपि को लेखकों ने भी अपना लिया. लेकिन इन सभी साहित्यकारों का दायरा किस्से, शब्दों और भजनों तक ही सीमित रहा. आधुनिक पंजाबी साहित्य के जनक भाई वीरसिंह माने जाते हैं. भाई वीरसिंह ने पंजाबी साहित्य को एक नया मोड़ प्रदान किया जो आज कल फूल-फल रहा है. भाई साहब के समकालीन और उन के बाद के लेखकों में पूरनसिंह धनीराम चातरिक, कृपा सागर, मोहनसिंह, अमृता प्रीतम, प्रभजोत कौर, हरभजन सिंह, करतारसिंह दुग्गल आदि ने भारत के पंजाबी साहित्य को जहाँ आगे बढ़ाया है, वहाँ पाकिस्तान के पंजाबी साहित्यकार काफ़ी पिछड़ गये हैं.

आज का साहित्य : पाकिस्तान के आधुनिक लेखकों में अहमद राही, सज्जाद हैदर (भारत स्थित पाकिस्तानी राजदूत नहीं), हुसैन सैयद, भट्टी आदि ने पंजाबी को आगे बढ़ाने में काफ़ी मदद की है. लेकिन जहाँ तक इस के विकास का संबंध है वह भारत में ही अधिक हुआ है. पाकिस्तान का उर्दू साहित्य निस्संदेह आगे बढ़ा है लेकिन पंजाबी साहित्य उस अनुपात में नहीं बढ़ पाया है. आज का पाकिस्तानी कवि तुकबंदी, 'गिद्दा', 'उडीक', 'कीकली', 'पींग', 'ढोला', 'सावन' आदि ऋतुओं और चिन्हों को अपना प्रतीक और प्रेरणा मान कर कविता रचता है. मौजूदा बदलते हुए माहौल, वैज्ञानिक प्रगति, इनसानी जद्दोजहद को वहाँ के पंजाबी कवियों ने अपना विषय नहीं बनाया है. हुसैन सैयद का 'काफ़ियाँ' एक नया कविता-संग्रह है जो पुरानी लीक को ही पीटता नज़र आया. सज्जाद हुसैन हैदर पाकिस्तान के कुशल कहानीकार और नाटककार के रूप में सामने आये हैं जिन्होंने रेडियो और पत्रिकाओं के ज़रिये अपनी छाप अपने श्रोताओं और पाठकों पर गहरी उतारी है. अहमद राही का 'त्रिंजण' सशक्त पंजाबी काव्य-संग्रह साबित हुआ है. शरीफ़ कुंजाही, अहमद सलीम और रफ़ी पीर ने आधुनिक वातावरण में झांकने की

कोशिश की है लेकिन उन्हें सज्जाद हैदर और अहमद राही जितनी सफलता प्राप्त नहीं हो सकी. इन पाकिस्तानी पंजाबी साहित्यकारों के अलावा अमृता प्रीतम की 'नवी रुत' (कविता संग्रह) और 'पिंजर' (उपन्यास), प्रभजोत कौर का 'वन कपासी' (कविता-संग्रह) और मोहनसिंह का 'सावे पत्तर' (कविता संग्रह) पाकिस्तान में प्रकाशित हो चुके हैं. 'पंज दरिया' और 'पंजाबी अदब' नामक दो मासिक पत्रिकाएँ भी लाहौर से प्रकाशित होती हैं. पंज दरिया के संपादक मुहम्मद अफ़ज़ल ने पंजाबी के विकास के लिए काफी काम किया है. लेकिन जहाँ उर्दू और बंगला के लेखक-लेखिकाओं को प्रोत्साहन देने के लिए 'आदम पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है, वहाँ पंजाबी के लेखकों के लिए ऐसी व्यवस्था नही. गुरुमुखी लिपि को सिख-गुरुओं की लिपि समझ कर बढ़ावा नही दिया जाता. पिछले दिनों पंजाबी अदब में पाकिस्तानी और भारतीय पंजाबी लेखक-लेखिकाओं की रचनाओ का विशेषांक सचमुच विशेष था. एक विशेष भेंट में **अमृता प्रीतम** ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि उन की और भी अनेक रचनाएँ पाकिस्तान में छपी हैं, यद्यपि उन से स की इजाज़त नही ली गयी.

दिनमान के प्रतिनिधि से भेंट के दौरान **प्रभजोत कौर** ने बताया कि पाकिस्तान की पंजाबी ज्यादा मीठी है. उन के रेडियो से प्रसारित होने वाले कार्यक्रम ज्यादा सटीक और बोलचाल की दृष्टि से अधिक अच्छे होते है, बेशक हम उन की नीतियों और विचार धाराओं से सहमत नही. पश्चिमी पाकिस्तान में पंजाबी विश्वविद्यालय स्तर तक पढ़ाई जाती है और अमृता प्रीतम की 'नवीं रुत' मैट्रिक के पाठ्य क्रम में है. अपने १९६३ के अनुभव सुनाते हुए **सुरजीत** ने बताया कि मुसलमानों में पंजाबी के प्रति वैसा ही उत्साह है, जैसा विभाजन से पहले हुआ करता था. देहातों के लोग अपने घरों में पंजाबी बोलते हैं और उन्होने भी पंजाबी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में चलाने की माँग पिछले दिनों बुलंद की थी. जब कासिमी और ए. हमीद से उन्होंने पूछा कि आप पंजाबी में क्यों नही लिखते तो उन्होने हँस कर कहा था लेकिन हम बोलते तो हैं पंजाबी में. हम अपने आप को उस भाषा में सही ढंग से व्यक्त नही कर सकते जैसा कि उर्दू में जहाँ आदम पुरस्कार की व्यवस्था है वहाँ बैंकों द्वारा भी उर्दू और बंगला के साहित्यकारों को सालाना पुरस्कार दिये जाते है. पाकिस्तान में पंजाबी भाषा बिल्कुल खत्म हो गयी होती अगर वहाँ के युवा-तबके ने मुहिम न छेड़ा होता. और उर्दू में लिखने का मुख्य कारण शायद यह भी है कि इस ज़बान से उन के ख्यालात सरकार के कानों तक जल्दी पहुँच सकते हैं.

संगीत

द्वितीय जुगलबंदी सम्मेलन

जुगलबंदी गायन की हो अथवा वादन की यदि सफल हो तो निसंदेह आनंददायक और जनरंजन की दृष्टि में भी अधिक आकर्षक सफल होती है. दिल्ली घराने के उस्ताद मम्मन खाँ और उस्ताद बुंदू खाँ की स्मृति में **संगीत सभा** और **सुरसागर सोसाईटी** द्वारा आयोजित दूसरा जुगलबंदी सम्मेलन एन. डी. एम. सी. हाल में संपन्न हुआ. गायन और वादन की विभिन्न जुगलबंदियों में कई अच्छी और सुनने योग्य रही.

सफल जुगलबंदी के लिए आवश्यक है कि भाग लेने वाले कलाकार एक तो समान रूप से दक्ष हों दूसरे उन की सृजनात्मक प्रतिभा भी पूर्ण विकसित हो. पर ऐसा कम ही जुगलबंदियों में रहा. पहली सभा की पहली जुगलबंदी सरोद-सितार की **सुनीता मुखर्जी** और **चाँद भारती** ने राग हेमंत में प्रस्तुत की. दिल्ली घराने के उस्ताद चाँद खाँ की शिष्या **कुमारी कृष्णा** और **भारती चक्रवर्ती** ने राग जोग में एक अत्यन्त सुमधुर जुगलबंदी प्रस्तुत की. द्रुत गायन एवं तानों में स्पष्टता चमत्कारपूर्ण रही. राग बिहाग और काफ़ी में होली **अशोक कुमार राय** और **जमालुद्दीन भारतीय** ने भी सरोद और सितार की जुगलबंदी में प्रस्तुत की. बिहाग में आलाप, जोड़, झाला की अपेक्षा काफ़ी में इन कलाकारों का सम्मालित वादन निखरा और सूझबूझपूर्ण रहा. युवा पीढ़ी के प्रतिनिधि **हिलाल अहमद खाँ** और **नसीर अहमद खाँ** द्वारा राग दरबारी में विलंबित और द्रुत तथा राग बसंत में जुगलबंदी सही अर्थो में सफल और आकर्षक रही. ख्याल गायकी की विविधता, और राग को गहन गंभीर प्रकृति के अनुकूल दरबारी की जुगलबंदी में पर्याप्त चैनदारी भी थी और अनुपम तैयारी भी. जहूर अहमद खाँ और ज़फ़र अहमद खाँ ने वायलन और सितार की जुगलबंदी राग पूरीयाधनाश्री में आरंभ की पर अंत तक आते-आते यह जुगलबंदी जहूर अहमद खाँ के वायलन वादन मे परिवर्त्तित हो कर रह गयी. सम्मेलन में आलाप-ध्रुपद की एकमात्र जुगलबंदी कनिष्ठ डागर बंधुओं ने पेश की और आलाप और ध्रुपद दोनों ही पक्षों में समानरूप में प्रभावपूर्ण रही. डागर घराते की आलाप की विशिष्ट शैली को नसीर जहीरुद्दीन और नसीर फैय्याज़ उद्दीन डागर ने समान रूप से व्यक्त किया. शहनाई जो बंसरी पर राग मारू बिहाग में **अनंतलाल और रघुनाथ प्रसाद** की जुगलबंदी आलाप और गतों में एक सी रही. विलंबित में 'रसिया हो न जा' तथा द्रुत में 'तड़पत रैन दिना' इन दो बहुप्रचलित राग मारू बिहाग में बंदिशों की अवतारणा सुरीली होते हुए भी मौलिकता और नवीनता के अभाव में सामान्य रही.

मास्टर मश्कूर : निरंतर अभ्यास

समापन जुगलबंदी में दिल्ली घराने के बुज़ुर्ग **उस्ताद चाँद खाँ—उस्ताद उस्मान खाँ** और हिलाल अहमद खाँ तीन फनकारों ने राग पूरिया के स्वरों से वातावरण को संगीतमय किया.

बैजू बावरा संगीत सम्मेलन

दिल्ली की बैजू बावरा संगीत समिति द्वारा आयोजित १५ वें वार्षिक संगीत सम्मेलन में दिल्ली, पटना और वाराणसी के उदीयमान और तरुण पीढ़ी के कलाकारी ने भाग लिया. पटना के विख्यात ध्रुपद गायक रामचतुर मलिक के सुपुत्र **अभयनारायण मलिक** ने राग शुद्ध कल्याण में आलाप और धमार गायकी की प्राचीन शैली का परिचय दिया. दिल्ली के **देवव्रत चौधरी** ने ऋतु प्रधान राग परज-बसंत में अपना सितार वादन प्रस्तुत किया. मिश्र राग में आलाप और तीन ताल की गतकारी इन की देन रही. वाराणसी की गायिका श्रीमती गिरिजा देवी की शिष्या **वीणापाणि मिश्र** की गायकी में अपने गुरु की गायकी का पूरा अनुकरण रहा. दिल्ली के **अशोककुमार राय** ने सरोद पर राग दरबारी में आलाप, जोड़, झाला और राग रागेश्वरी में गत वादन प्रस्तुत किया. दूसरी सभा का आरंभ किराना घराने के सारंगी वादक उस्ताद शकूर खाँ के पुत्र **मास्टर मश्कूर** ने किया और अच्छा रंग जमाया. बाल कलाकार मश्कूर ने मिश्र राग पूरिया कल्याण और होली काफ़ी में उत्तम शिक्षा और निरंतर अभ्यास द्वारा गायन-दक्षता का परिचय दिया. खयाल अंग की विविधता, गमक, सरगम और तानों में तैयारी, मश्कूर के उज्ज्वल भविष्य की प्रतीक रही. **जहूर अहमद खाँ** ने वायलिन पर राग भूपाली और ठुमरी पहाड़ी **अनवर हुसैन** खाँ की तबले पर संगत में पेश की. भूपाली की विलंबित में जिस चैनकारी और सुरीलेपन का परिचय आरंभ में रहा अंत तक क़ायम न रह सका. वायलिन वादन में राग की क्रमिक बढत किये बग़ैर विभिन्न अलंकारों का प्रयोग दक्षतापूर्ण होते हुए भी न्यायपूर्ण नही थी. प्रतिष्ठित फ़नकार **नसीर अहमद खाँ** ने राग रागेश्वरी खयाल और चंद्रकौंस में तराने के पश्चात् उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ की प्रसिद्ध रचना 'का कहूँ सजनी आये न बालम' पेश की.

अभिनय

परंपरा की वापसी

८ व्यक्तियों के दल वाले श्री ओल्फ़ाम मेहरिंग के मूकाभिनय (दरअसल नृत्य-रचना) ने एक बार फिर यह एहसास कराया कि संगीत, चित्रकला, मूर्त्तिकला और साहित्य की कई धाराओं की तरह ही भारत नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में भी अपनी जड़ों की ओर उन्मुख होगा—पश्चिमी शैलियों में एशियाई तत्त्वों की मुठभेड़ के कारण. साहित्य में यही घटित हुआ, जब कि प्राच्य दर्शन ने स्वच्छंदतावाद (रोमांटिसिज़्म) को जन्म दिया और जिस ने उलट कर भारतीय काव्य को प्रभावित किया. चित्रकला में यह तब घटित हुआ जब प्रतीकवादी और अतियथार्थवादी धाराएँ यूरोप में पनपीं. इन का पनपना भी प्राच्य प्रभाव के कारण हुआ और इन्होंने उलट कर भारतीय चित्रकला को प्रभावित किया.

प्राच्य प्रभाव : रंगमंच में यह फ़िनोमिना (प्रतिभास) एक बार फिर उभर कर सामने आया है. १८वीं-१९वीं सदी का पश्चिमी यथार्थवादी नाटक काफ़ी परिवर्त्तित हो गया है. यह परिवर्त्तन 'नो नाटक' की विकसित विशिष्ट शैलियों तथा पश्चिम में संस्कृत रंगमंच के परंपरागत नियमों में छिपी विशिष्ट प्रकृति के प्रति बढ़ी जागरूकता के कारण हुआ: मंच-सज्जा से जान-बूझ कर और सोद्देश्य रूप से किया गया दृश्यों का निष्कासन इस का प्रथम चरण था, नाटय रचना की बुनावट में दूसरी रंगमंचीय शैलियों का ग्रंथन दूसरा. २०वीं सदी के पश्चिमी बौद्धिक-मानसिक द्वंद्व के कारण अंतिम रूप से जो कुछ सामने आया वह जरूर पश्चिमी था, लेकिन ऐसा पश्चिमी जो पूर्व के प्रभाव के बिना असंभव होता. 'अमूर्त्त' का यही वह आधुनिक रंगमंच है—प्रतीकवाद का रंगमंच—जो अब भारतीय रंगमंच की धाराओं को मोड़ सकता है. ऐसा करते हुए यह भारतीय रंगमंच—कलाकार, निर्देशक, प्रस्तोता—को अपनी परंपरा की तमाम शैलियों के प्रति जागरूक बनायेगा ही. आशा की जानी चाहिए कि यह जागरूकता एक पुनर्मूल्यांकन और एक नयी रचनात्मकता में परिणत होगी.

श्री मेहरिंग के प्रदर्शन को देखते हुए प्रेक्षक रंगमंच के एक और ऐसे रूप से परिचित हुए जो पश्चिम में एक स्वतंत्र रंगमंचीय कला के रूप में हाल में विकसित हुआ है, लेकिन जिसे भारतीय रंगमंच की परंपरा में पहले ही एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकृति प्राप्त रही है.

बदलता रूप : पेंटोमाइम (आंगिक अभिनय) को एक पश्चिमी जिस रूप में समझता है वह उसे एक सहायक कलाविधा का दर्जा देता रहा है, क्यों कि यह माना जाता रहा है कि द्वंद्व और द्वंद्व की स्थिति से मुक्त कला किसी उत्कृष्ट बौद्धिक ढाँचे को जन्म न दे कर एक साधारण रंगमंचीय कला को जन्म देगी. इसी लिए आंगिक अभिनय काफ़ी हद तक नक़ल के क्षेत्र तक सीमित था—विशेष क़िस्म के चरित्रों तथा सीमित क्रिया-कलापों की स्थितियों तक. इस में न तो दूरगामी प्रभावों के रंगमंच को पाना उद्देश्य था और न ही उस की अपेक्षा की जाती थी. भारत में इस तरह का रंगमंच एक उत्कृष्ट कलाविधा के रूप में वर्त्तमान था तथा इस का आधार द्वंद्व के सिद्धांत से निर्मित नहीं था. यूरोप, अमेरिका में हाल में 'माइम' के नाम से जाने जाने वाले एक रंगमंचीय कलारूप का विकास हुआ है; यह पेंटोमाइम के विपरीत है, जो कि समग्र शारीरिक अभिव्यक्ति के उद्देश्य को सामने रख कर चलता है और जो एकव्यक्तीय प्रदर्शन तक भी सीमित नहीं है, न ही 'टाइप' चरित्रों तक, बल्कि जो एक समग्र नाटकीय स्थिति को वाणी देता है. इस में मंच के दूसरे तमाम तामझाम उपयोग में लाये जाते हैं, जैसे कि संगीत, कुछ मंचीय उपकरण; लेकिन न तो अभिनेता मंच पर कोई शब्द बोलते हैं और न संगीत के माध्यम से ऐसा किया जाता है.

सार्थक नाटक : हमने इस कलाविधा में काम करने वाले कलाकार भारत में देखे हैं. श्री मेहरिंग के दल द्वारा प्रदर्शित कार्यक्रम अपनी व्यक्तिगत मौलिकता और पेंटोमाइम तथा विशुद्ध नृत्य को एक साथ लाने की दृष्टि से उल्लेखनीय है. दल के सभी व्यक्तियों की शारीरिक अभिव्यक्ति पूर्ण मालूम होती थी और उन में छोटे बड़े अंग-संचालनों तथा गतियों की क्षमता भी दिखायी पड़ती थी. फिर चाहे वे अकेले प्रदर्शन कर रहे हों या समूह के साथ उन में शैली-रूप पर नियंत्रण-अधिकार भी परिलक्षित होता था और भिन्न नृत्यों के द्वारा एकनिष्ठ रचना शैली भी, जो कि अलग-अलग गतियों से उभरती थी. यह बात 'पकड़' शीर्षक कार्यक्रम में पूरी तरह उभर कर सामने आयी. प्रेक्षक को यह बात एक सुखद आश्चर्य लगी होगी कि पश्चिमी ढंग में भी, जहाँ हाथ को शरीर के ऊपरी भाग का एक अंगमात्र माना जाता है, यानी जहाँ हाथ से केवल यही भाग संकेतित होता है, वहाँ इस प्रदर्शन में हाथ का उपयोग कुछ विशिष्ट अर्थों को संकेतित करने के लिए सफलतापूर्वक किया गया था. भारतीय नृत्य में यह जरूर महत्त्वपूर्ण रहा है और है. कार्यक्रम में नृत्य-रचना-शैलियों और भाव-स्थितियों के लिहाज से काफ़ी वैविध्य था : आड़े-तिरछे और चक्राकार ढाँचे हल्के-फुल्के और चपल थे. 'पकड़' और 'तारावली' के रचना-ढाँचे अधिक गंभीर थे. कुछ दूसरे यूरोपीय कलाकारों की तुलना में इन कलाकारों ने मुखाभिव्यक्ति को उल्लेखनीय गतिमयता प्रदान की. प्रेक्षक को यह भी अनुभव हुआ होगा कि बिना उच्चरित शब्दों के भी सार्थक नाटक संभव है.

भारतीय नृत्य-परंपरा में अभिनय काफ़ी समर्थ रहा है, विशेष रूप से 'आंगिकाभिनय' की परंपरा, जिस में हम जिसे नृत्य के रूप में जानते हैं वह केवल एक शैली के रूप में रहता था और जिस में दूसरी शैलियों तथा कलारूपों का अस्तित्व था—ऐसे कलारूपों का जो बिना संवादों या उच्चारित शब्दों के पूरी देह का उपयोग अभिव्यक्ति के लिए करते थे.

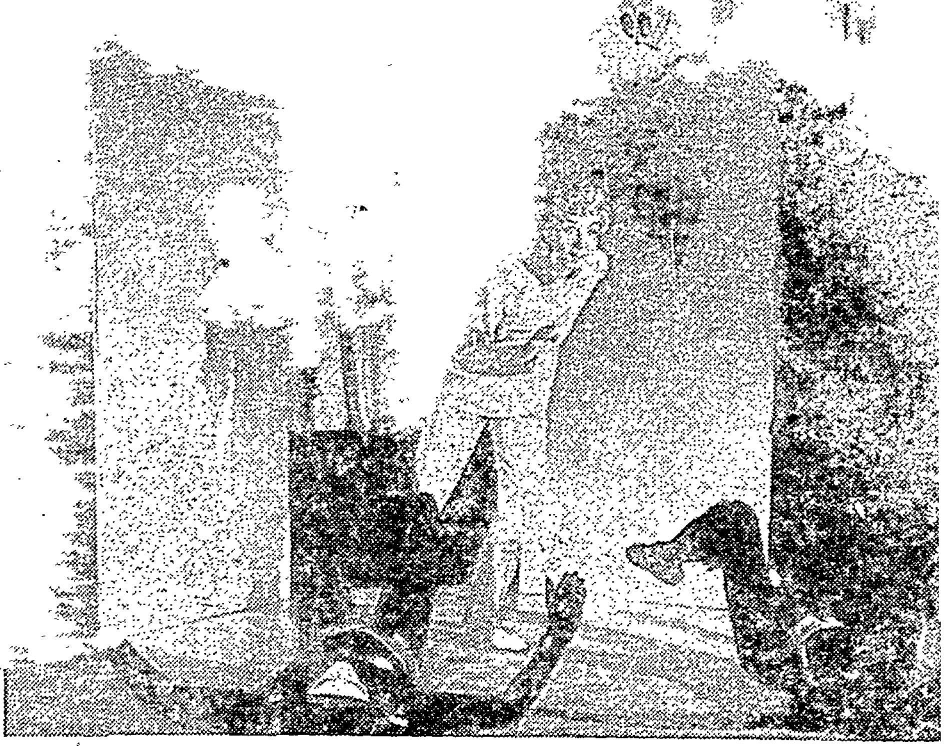

सप्रू हाउस में, मैक्समूलर भवन और 'इंडियन काउंसिल फ़ॉर कल्चरल रिलेशंस' की ओर से आयोजित 'दि जर्मन थियेटर, पेरिस (निर्देशक ओल्फ़ाम मेहरिंग) द्वारा अभिनीत कार्यक्रम 'रूपांतर' का एक दृश्य

अकबर पदमसी : दृश्यावलि का अमूर्त्तन

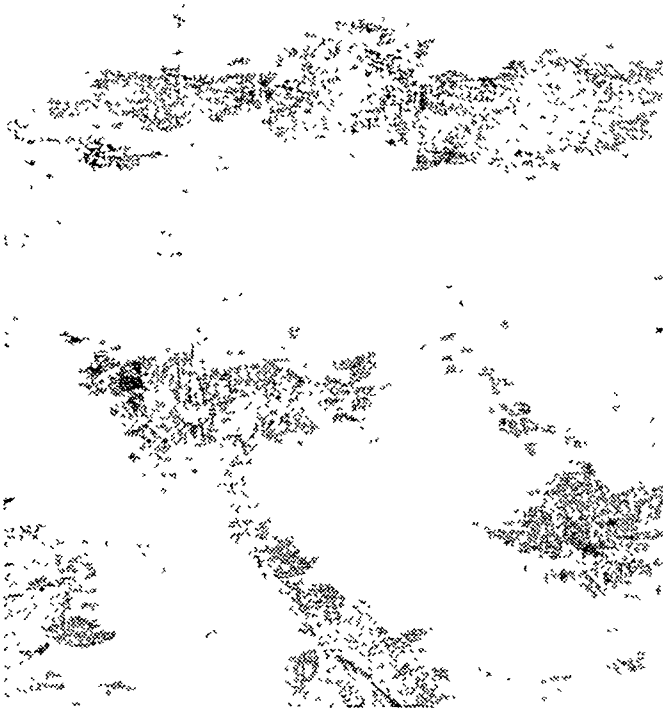

अकबर पदमसी की एक रचना

एक उम्र के बाद जगहों का—उन के दृश्यों का—रूप हमारे मन में शायद वही नहीं रह जाता. एक ढाँचे के ऊपर दूसरा ढाँचा खड़ा होता जाता है, या तमाम ढाँचे आड़े-तिरछे हो कर एक-दूसरे से जुड़ने लगते हैं. इसे किसी प्रकार का दृष्टि-भ्रम नहीं कहेंगे—यह शायद अनुभव-संसार की व्यापकता है. लेकिन किसी सीमा तक यह स्थिति अभिव्यक्ति के प्रश्न से जुड़ जाती है और 'अनुभव' को ग्रहण करने की कठिनाई से भी. कुणिक केमोल्ड कलादीर्घा में प्रदर्शित अकबर पदमसी के चित्र, जिन्हें सैरे भी कह सकते हैं, बहुत कुछ इसी स्थिति के चित्र लगते हैं. इन सैरों में, जिन्हें सुविधा के लिए अमूर्त्त सैरे कह सकते हैं, कोई दृश्यावली नहीं है—किसी दृश्यावली का 'वातावरण' भी नहीं. इन्हें देख कर खंडहरों, बाढ़ के बाद के दृश्यों, पुरानी इमारतों, किलों आदि की याद आ सकती है. इन में से कुछेक फ़्रांज काफ़्का के 'दुर्ग' की भी याद दिला सकते हैं, जहाँ अनुभव बहुत कुछ होता है, लेकिन पूरी तरह से, अंतिम रूप में, कुछ भी जाना नहीं जा सकता. अकबर पदमसी के इस गड्डमड्ड संसार में अनुभव को संप्रेषित करने का भाव है, लेकिन किसी एक अनुभव का नहीं. यह बात उन के चित्रों की बुनावट से भी स्पष्ट है. तूलिका-स्पर्शों व तूलिकाघातों के सहारे—इन का ईंट पर ईंट रखने जैसा रंग-उपयोग कर—अकबर पदमसी जो ढाँचा खड़ा करते हैं वह गठन का न हो कर विघटन का ढाँचा है. लेकिन वह इस विघटित ढाँचे को सफलतापूर्वक खड़ा कर पाते हैं—इसी अंतर्विरोध में उन के इन चित्रों का शिल्प और मर्म छिपा है.

ऐसी अनुभूतियों का जो अपने लिए पूरे बिंब या पूरे रूपाकार नहीं बना पातीं, अमूर्त्त अंकन उन की स्थिति तो बताता ही है, उन की चरितार्थता भी प्रकट करता है. यहीं अकबर पदमसी की कला बिना आकृतियों और वस्तु-चित्रणों का सहारा लिये आधुनिक मन से जुड़ जाती है. विघटन, चीज़ों के गड्डमड्ड हो जाने के भाव, बच रहे मानवीय संवेदन सब जैसे इन अमूर्त्त चित्रों में साकार हो उठते हैं.

अकबर पदमसी के इन चित्रों में एक साथ ही कई रंग-परतों की झलक है, रंग एक-दूसरे को पीछे छोड़ते हुए और इस क्रम में एक दूसरे से जुड़ते हुए बढ़ते हैं—विघटन की तमाम दृश्यावलियों के बावजूद इन में भगदड़ नहीं है. कहने की ज़रूरत नहीं कि रंगों की थोड़ी-सी भगदड़ सब कुछ को लीप-पोत कर रख दे सकती थी. तब चित्रों की व्याख्या आसान हो जाती, लेकिन उन की गरिमा नष्ट हो जाती. जहाँ तक रंगों को जहाँ-तहाँ खुरच कर एक प्रभाव पैदा करने की कोशिश है अकबर पदमसी कहीं-कहीं सफल हो पाते हैं, क्यों कि इन का मूल स्वर, अनुभूतियों की जीर्णता नहीं है, बल्कि उन की पूरी तरह न पकड़ में आ सकने वाली विवशता और उस से उपजा अभिव्यक्ति-संकट है.

अकबर पदमसी के इन चित्रों में सब से अधिक उभर कर या साफ़ नज़र आने वाली चीज़ सड़क है. जहाँ यह सड़क या राह चित्र को छा लेती है वहाँ चित्र अपनी सार्थकता खो बैठता है, क्यों कि से वे किसी संगत प्रतीक या बिंब के रूप में नहीं उभार पाये. इस की बनिस्वत जहाँ उन्होंने किसी इमारत के ऊपरी भाग को झलकाया है वहाँ वे अधिक रचनात्मक हो सके हैं. एक चित्र में किसी महल या दुर्ग का ऊपरी हिस्सा जैसे सूर्य के आलोक से आलोकित है, चित्र के निचले भाग में एक अमूर्त्त दृश्यावली है. पगडंडियाँ, पेड़, खंडहर, या वनस्पतियाँ—कुछ भी इस दृश्यावली में हो सकते हैं.

अकबर पदमसी के कुछ चित्रों में नदी या उस से फूटती पतली जल-पगडंडियाँ हैं, लेकिन उन का नील रंग जैसे जल-धाराएँ न प्रकट कर एक प्रकार की नीली संवेदना प्रकट करता है. यहाँ यह कहा जा सकता है कि अकबर पदमसी के चित्रों के संवेदनशील रंग किसी प्रकार की आर्द्रता न रच कर एक प्रकार की शुष्कता की ही सृष्टि करते हैं. नीला, पीला, सिंदूरी—ये सभी रंग उन के चित्रों में जैसे अपने लिये नये संबंध प्राप्त कर लेते हैं. इस समीक्षक की दृष्टि में ये चित्र रंग-प्रयोग के लिहाज़ से भी उल्लेखनीय हैं. वातावरण नहीं, रूप-गंध-स्पर्श की सृष्टि नहीं, किसी आर्द्रता की नमी नहीं—ग्रीष्म की दोपहरी के बाद खंडहरों, पुरानी-नयी इमारतों, वनस्पतियों का तप कर जो रूप होता है ये चित्र कुछ-कुछ उसी से जुड़ते मालूम होते हैं; लेकिन बराबर उसी से नहीं, क्यों कि बाढ़, जल-धाराओं, आकाश-पटल आदि को भी ये अगर उभारते नहीं तो बहुत हद तक मन में कौंधा देते हैं.

अमूर्त्त चित्रों में केवल रूपाकारों को पाने की अभ्यस्त आँखों के लिये ये चित्र विषयांतर और दृश्यांतर दोनों ही करते हैं, और इस में कोई संदेह नहीं कि अपनी अमूर्त्त दृश्यावलियों को अकबर पदमसी ने अगर एक ही प्रकार के शिल्प से 'रूपायित' करने की कोशिश न की होती तो वह और भी प्रभावशाली होते.

पर्वत-श्रेणियों, पेड़ों आदि के कुछ रेखांकन भी उन्होंने प्रदर्शित किये थे. इन रेखांकनों को चित्रों के साथ जोड़ कर देखना चित्रों के साथ अन्याय करना होगा. लेकिन पहले चित्र देखें और बाद में रेखांकन—जैसा कि इस समीक्षक ने किया—या पहले रेखांकन देखें और बाद में चित्र तो दोनों एक-दूसरे से बहुत दूर भी नहीं मालूम होते. दोनों के उद्देश्य तो निश्चित रूप से अलग हैं, पर शक्लों में विशेष फ़र्क नहीं.

एक दुहराव के चारों ओर

पिछले दिनों कुछ युवा चित्रकारों की प्रदर्शनियाँ देख कर लगा कि उन के चित्रों के विषय, कम-से-कम शीर्षक, कुछ बहुत एकरस, 'सब जगह मिलने वाले' हो गये हैं. संरचना, विचार, स्वप्न, यात्रा, पक्षी, पशु, प्रकृति-प्रसंग—घूम फिर कर बार-बार यही आते हैं. 'संरचना' का उपयोग सब से अधिक होने लगा है. कुछेक रूपाकार, उन्हीं को ले कर रची गयी संरचना. ज़ाहिर है कि ये ऐसे सर्व-सामान्य विषय नहीं बने जिन की कृतियों में पुनरावृत्ति उद्वेलित करने वाली हो. इस से यह निष्कर्ष निकालना कुछ ग़लत न होगा कि युवा चित्रकारों में से इसे अधिकांश ने सुविधा के लिए अपना लिया है.

विषयों की यही पुनरावृत्ति 'कलकत्ता के चित्रकार' तथा 'राजस्थान के चित्रकार' प्रदर्शनियों में देखने को मिली. पहली प्रदर्शनी आइफ़ैक्स कलादीर्घा में हुई थी, और दूसरी **रवींद्र भवन** में. कलकत्ता के आठ युवा चित्रकारों की प्रदर्शनी के साथ एक अच्छी बात यही थी कि विषयों के 'पुरानेपन' के बावजूद उन में शिल्प के प्रति नया रुझान था. प्रकाश कर्मकार, रोबिन मंडल, गोपाल सान्याल, अनीता राय चौधरी, तपन घोष, निखिलेश दास, दिलीप कुंडू, अमिताभ सेनगुप्त के चित्रों में से कुछ की बुनावट आकर्षित करने वाली थी. **गोपाल सान्याल** के चित्र इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, झँझरियों, नसों, टहनियों की तरह की उन की चित्रधारियाँ चित्रों के रूपाकारों के ही रूपांतर उपस्थित नहीं करतीं थीं, उन्हें भिन्न कोण भी देती थीं. लेकिन 'सपेरा', 'पुराना मंदिर,', 'सांड' आदि चित्रों में जहाँ ये धारियाँ एक बुनावट के रूप में परिणत हो जाती थीं और विषयानुकूलता भी प्राप्त कर लेती थीं वहीं अपने बीच से यह भी झलका देती थीं कि शिल्प के स्तर पर इन्होंने जो सार्थकता-प्रासंगिकता प्राप्त की है वह कथ्य के स्तर पर इन्हें प्राप्त नहीं हो सकी. **प्रकाश कर्मकार** की संरचनाएँ और अनुभूतियाँ शीर्षक कृतियाँ अपनी ओर विशेष ध्यान नहीं खींच पातीं—केवल एक चित्र की काली पृष्ठभूमि में उभरे नीले रूपाकार चित्रपीठ पर उभरे निशानों के रूप में सामने आ कर कुछ झकझोरते थे और संरचना का एक अर्थ-रूप भी उन्हें मिलता था. **रोबिन मंडल** ने अपने चित्रों में एक परंपरागत मूर्तिशिल्प और सज्जा को उभारा—जगन्नाथ पुरी के मंदिर की मूर्तियों का तुरंत स्मरण हो आता था. **अनीता राय चौधरी** के प्रकृति-छायार्थ अच्छे बन पड़े थे और डंठलों, टहनियों, बेंत के-से रूपाकारों में वन-घासें, फूल, मेंढक, जल-जीव आदि जैसे रह-रह कर झाँक उठते थे. लेकिन प्रकृति के छाया-अर्थों को उन्होंने ख़ासे अनुपयुक्त रंग दिये हैं—हल्का गुलाबी या राख रंग न सिर्फ इन्हें कम आकर्षक बनाते हैं इन के अर्थों को भी सीमित कर देते हैं और इन की विवर्धमिता को भी. **तपन घोष** के एक-दूसरे को काटते ज्यामितिक-रूपाकार चित्रों को रंग छायाएँ तो देते हैं, लेकिन विषय-वस्तु का पुरानापन उन के शिल्प-प्रभाव को काफ़ी कम कर देता है. 'आलिंगन' चित्र इस बात का उदाहरण हो सकता है—आलिंगन के समय फैली और कुछ संकेत करती-सी अंगुलियाँ द्विअर्थक भले हों, लेकिन अंततः वे चित्र को सपाट बनाती हैं. आरोपित रंगों को उत्कीर्ण कर दो-एक चित्रों को वह ज़रूर कुछ प्रभावकारी बना सके हैं.

निखिलेश दास के 'विचार' माला के चित्र विशिष्ट रंग-प्रयोग के कारण कुछ अलग नज़र आते हैं. 'रंग का झरता पलस्तर' के रूप में रंगों का प्रयोग न केवल आकर्षक है अर्थपूर्ण भी है. चौड़े रूपाकारों को एक-दूसरे के आसपास रख कर, उन्हें रंग घेरा दे कर और फिर उन के बीच में एक और ही रंग रख कर—वह भी उखड़ते या झड़ते रूप में—वह रंगों का एक 'कोलाज' तैयार करते मालूम पड़ते हैं.

दिलीप कुंडू के चित्र संवेदना की रचना करते मालूम पड़ते हैं. इस में वह बहुत हद तक सफल भी हुए हैं. धूमिल रंगों में तूलिका-स्पर्शों के लघु चौकोर रूपाकार जैसे विभिन्न अनुभूतियों की रंग-छायाएँ रचते हैं, फिर उन्हें संतोष की समझ में परिणत कर देते हैं. सफ़ेद और धूमिल रंगों में ये चित्र जैसे कई अप्रिय या दुखद स्थितियों को छिपा देते हैं, लेकिन उन की उपस्थिति से इनकार नहीं करते—उन्हें भिन्न रूप में प्रस्तुत कर जैसे परिवर्तन की पृष्ठभूमि सुझाते हैं.

अमिताभ सेन गुप्त के 'इंटैग्लिओ' (उत्कीर्णन) ग्राफ़िक चित्रों का अच्छा नमूना हैं. लिपियाँ, बाल-चित्रकारों की सी अंकित मुखाकृतियाँ-आकृतियाँ और इन के साथ ही कुछ जटिलरूपाकार—इन उत्कीर्णनों में यही हैं.

इन युवा चित्रकारों में नये शिल्प के प्रति ललक है और बात को आकर्षक ढंग से कहने का चाव भी—लेकिन कुछेक विषय-वस्तुओं के प्रति मोह उन्हें चारों ओर से घेरे हुए है.

राजस्थान ललित कला अकादेमी की ओर से नयी दिल्ली में आयोजित चार राजस्थानी चित्रकारों की प्रदर्शनी से भी यही ज़ाहिर हुआ कि चित्रकार कुछ विषय-वस्तुओं के मोह के शिकार हो गये हैं. **द्वारकाप्रसाद शर्मा, प्रेमचंद्र गोस्वामी, रनजीत सिंह और ज्योति स्वरूप** में से केवल ज्योति स्वरूप में शिल्प के प्रति भी थोड़ी ललक मालूम पड़ती है; यह अलग बात है कि उन की यह ललक एक शिल्प-रूढ़ि को ही जन्म दे सकी है. रनजीत सिंह की चारों 'संरचनाएँ' कुछ रूपाकारों को गड्डमड्ड ढंग से प्रस्तुत भर करती हैं. 'उदयपुर के घाट', 'तांगा-अड्डा' जैसे चित्रों में भी वह न तो इन की कोई प्रतीति दे पाये हैं और न ही इन का कोई कलात्मक रूप. द्वारकाप्रसाद शर्मा के चित्र तो विषय-वस्तु और शिल्प के लिहाज़ से बेहद पुराने लगते हैं. रेगिस्तान का जहाज़ के रूप में ऊँट, बारात, गति और नारी को अच्छे चित्रांकन कहना भी मुश्किल है. इन में अर्थ-छायाएँ ढूँढ निकालना तो अनुपस्थित को उपस्थित मानने के बराबर है. प्रेमचंद्र गोस्वामी 'कल्पना-लोक', 'अबोले अस्तित्व', 'संरचना', 'स्वप्न', 'पंथ' आदि चित्रों में रूढ़ि और प्रयोगशीलता के शिकार एक साथ हुए हैं, यानी रूढ़ि में प्रयोग आरोपित करने का ही प्रयत्न वह करते हैं. केवल कल्पना-लोक चित्र में कुछ खास तूलिका-स्पर्शों से वह रंग-रेशे तैयार करने में किसी हद तक सफल हुए हैं और इसे एक आकर्षक प्रयोग बना सके हैं. लेकिन कुछ रंग-छायाएँ उन्होंने भले ही तैयार कर ली हों चित्र को स्थितियों-मनःस्थितियों से वह नहीं जोड़ सके हैं. 'मेरे मन का द्वंद्व' में शिल्प से विषय का सरलीकरण और भी ज्यादा स्पष्ट है. ज्योति स्वरूप छोटी-छोटी पत्तियों व दानों के रंग-स्वरूप में समाविस्थ आकृतियों को छिपा कर उभारते हैं. लेकिन चित्रों के रंगांतर के बावजूद वह एक ही बात कहते मालूम होते हैं.

तपन घोष : अस्तवल—१

परचून

सादगी पर ज़ोर

ज़ांबिया सरकार ने हाल ही में एक सांस्कृतिक सम्मेलन का आयोजन किया था, जिस में कुछ ऐसे सुझाव रखे गये जिन्हें मान लेने से इस देश मे मिनी स्कर्ट तंग स्कर्ट, प्रसाधन-सामग्रियों और न्यायाधीशों के विग और चोग़ों का दौर खत्म हो जाएगा. इस सम्मेलन में ज़ांबिया के पारंपरिक लिवासों को फिर से अपनाने के वारे में वातचीत हुई और आज की पीढ़ी रोज़मर्रा की ज़िंदगी मे जिन मूल्यों को महत्त्व देती है उन में आमूल परिवर्त्तन लाने के प्रस्ताव रखे गये. इस सम्मेलन में माँग की गयी कि रंग गोरा करने के लिए उपयुक्त प्रसाधन-सामग्रियों और यौन-भावना संवंधी अपराध के फ़िल्मों पर तत्काल प्रतिवंध लगा देना चाहिए और विदेशी खानों की लोकप्रियता घटाने की हर संभव कोशिश करनी चाहिए.

इस सम्मेलन में वहुविवाह की प्रथा के लिए आधिकारिक मान्यता की माँग की गयी. सरकार से अनुरोध किया गया कि जेहोवा के साक्षियों की समस्या का भी समाधान किया जाए, अन्यथा भविष्य में वे ज़ांबिया में हिंसात्मक कार्रवाइयाँ करने में समर्थ हो जाएँगे.

इस सम्मेलन में जो भी सुझाव रखे गये उन्हें सांस्कृतिक विभाग के सामने पेश किया गया, जिस के अध्यक्ष उपराष्ट्रपति कपवेप्वे हैं. उन्होंने ही सम्मेलन का उद्घाटन भी किया. उन्होंने प्रतिनिधियों को वताया कि पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही दिशाओं की सभ्यताएँ ज़ांबिया में फैली हुई हैं और इन की चपेट में आ कर स्थानीय रस्म-रिवाज़ों के खत्म हो जाने की आशंका है. इस लिए इस हवा से वचने की तत्काल कोशिश करनी चाहिए.

सम्मेलन ने प्रस्ताव रखा कि यहाँ के वकील और न्यायाधीश अव तक जो व्रितानी नमूने के विग और चोग़े पहनते है उन्हें नाजायज़ क़रार दिया जाए और न्यायालयों के लिए नये नमूने के लिवास वनाये जाएँ. टेलीविज़न और रेडियो पर प्रसारित और समाचारपत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों की जाँच-पड़ताल भली प्रकार की जाए, जिस से ऐसे विज्ञापन सामने न आ सकें जो अश्लीलता और अन्य वुरी आदतों को प्रोत्साहन देते हों.

वहुविवाह की प्रथा का मूल वताते हुए कहा गया कि अफ़्रीकी संस्कृति में विवाहित पुरुष को पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री से घनिष्ठ संवंध स्थापित करने की छूट नही है. वहुविवाह को मान्यता दे कर अवैध संतानों की संख्या कम से कम की जा सकती है और तलाक भी घटाये जा सकते हैं.

सम्मेलन में भाग लेने वालों ने चाहा कि आधिकारिक भोज के अवसर पर स्थानीय पकवानों से दावत की मेज़ सजी हो और देश के नेताओं से आग्रह किया गया कि वे इस रीति को होटलों, विश्वविद्यालयों और घरों में सर्वमान्य वनाने का प्रयत्न करें.

ज़ांबिया का आम खाद्य सूखी मक्की से वनाया हुआ दलिया है, जिस में स्थानीय मसाले मिलाये जाते है. इस के साथ सुखाई हुई मछली परोसी जाती है. भोजन-विलासियों के लिए पत्ते पर पलने वाले कीड़ों, उड़ने वाली चीटियों और खेत के चूहों का शोरवा है!

कौन किस को मात दे?

गत दो वड़े विश्वयुद्धों के वाद पश्चिमी देशों में पुरुषों की संख्या कम हो गयी थी और समाजशास्त्री इस वारे मे विशेष चिंतित भी नजर आये. मुख्य रूप से व्रिटेन में यह समस्या वड़ी वुरी तरह सव को डराये हुए थी. पर गत वर्ष के पिछले छः महीनों के जन्म के आँकड़े देख कर उन का तनाव निश्चित ही कम हुआ होगा. १९६८ में जनवरी से जून तक व्रिटेन में जन्मे शिशुओं में लड़कों की संख्या लड़कियों से अधिक रही. यदि लड़के १०० थे तो लड़कियाँ ९८. वैसे इस समय व्रिटेन मे स्त्रियों की संख्या ६ प्रतिशत अधिक है. पर यदि यही जन्मक्रम जारी रहा तो व्रिटेन भी तथाकथित पिछड़े देशों की तरह स्त्रियों की भारी कमी महसूस करेगा. इस समय स्त्रियाँ संख्या में ज्यादा वेशक है, पर अधिकांश की उम्र ४४ वर्ष से अधिक है.

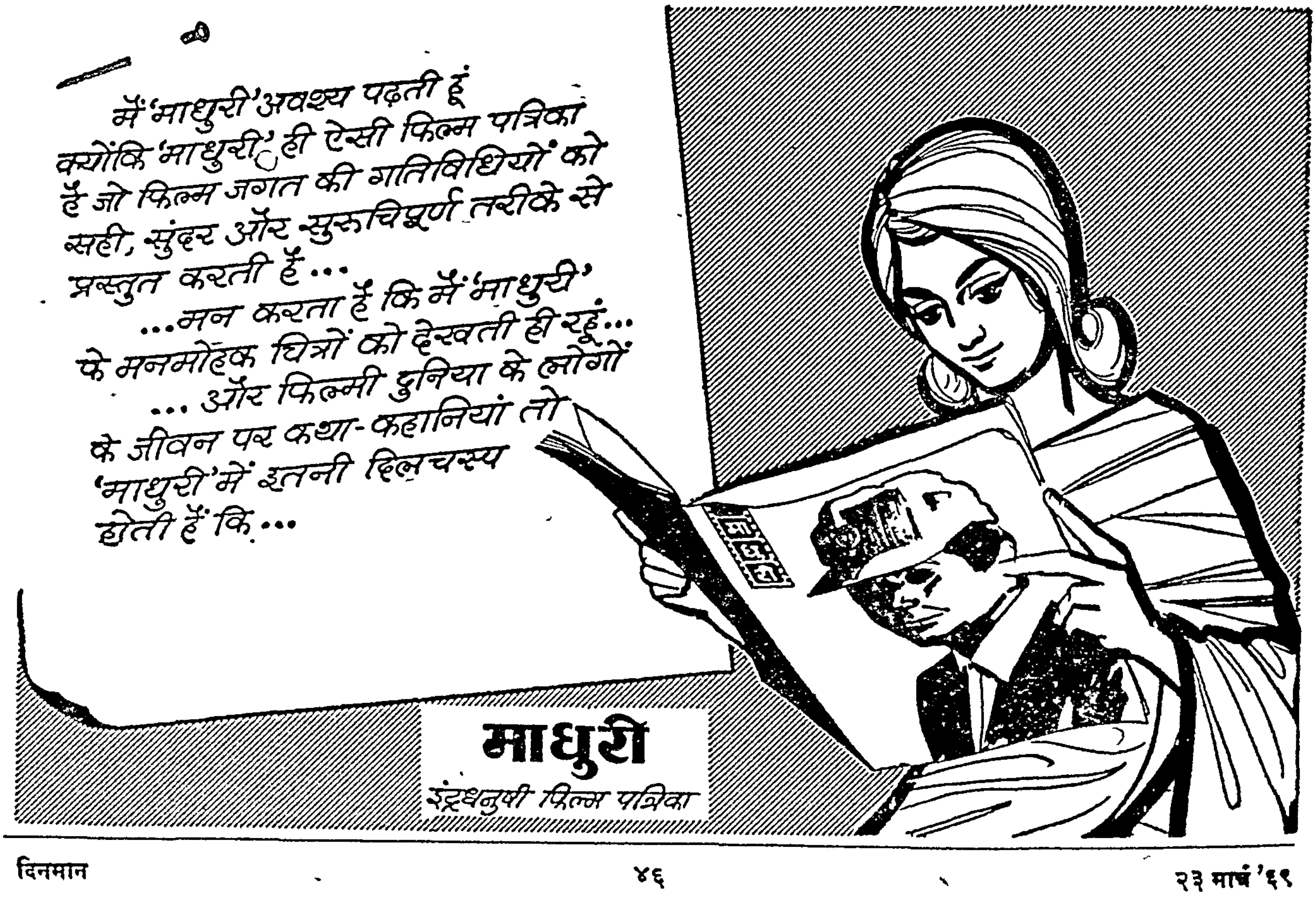

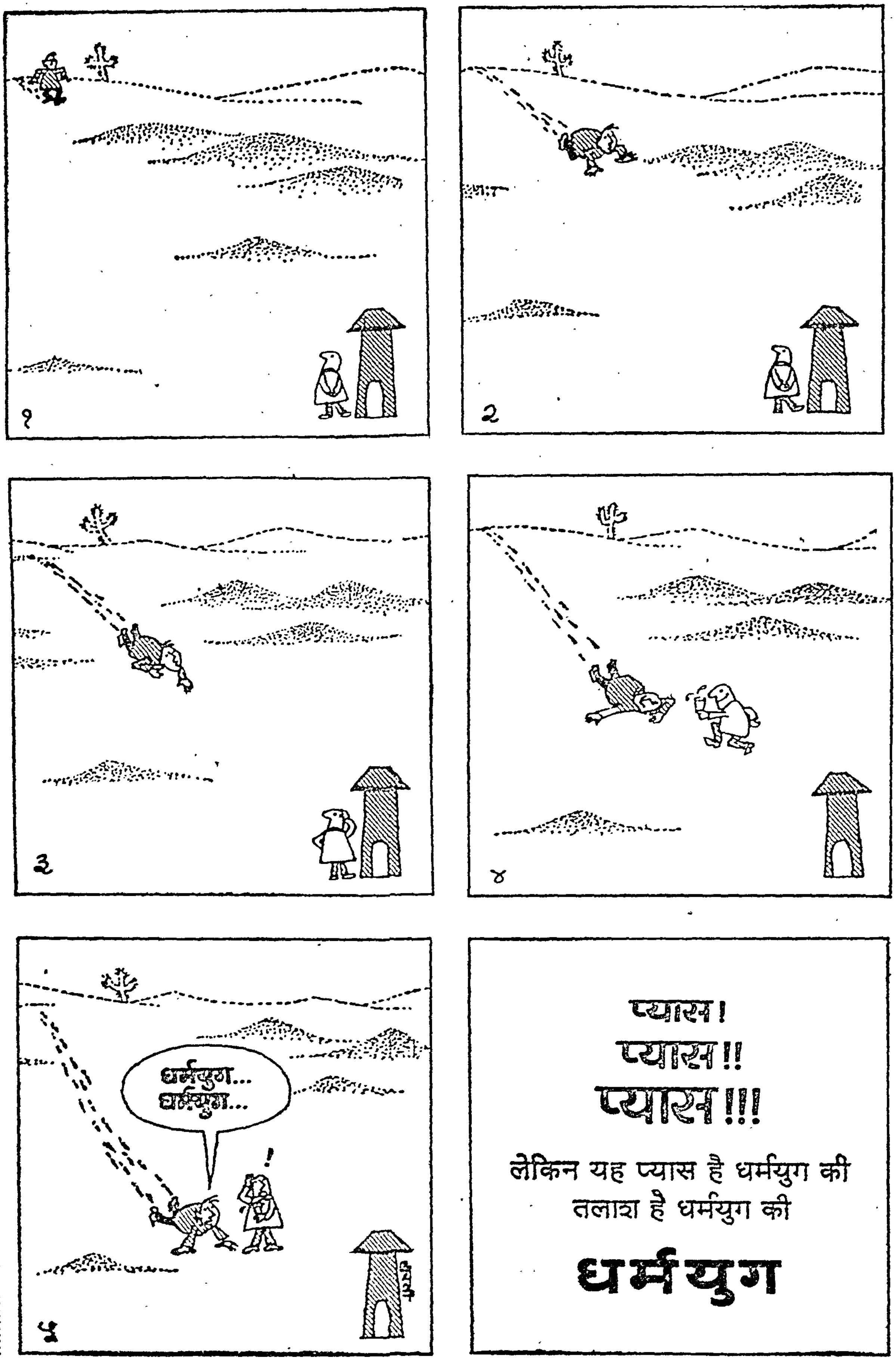
धर्मयुग... धर्मयुग...
प्यास!
प्यास!!
प्यास!!!
लेकिन यह प्यास है धर्मयुग की
तलाश है धर्मयुग की
धर्मयुग

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

दिनमान
टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन
७० पैसे

अंतरराष्ट्रीय त्रिकोण • एंगुइला • पड़ोसी नेपाल • कांग्रेस की पहेली

३० मार्च, १९६
९ चैत्र, १८९

नवभारत टाइम्स

हिन्दी दैनिक

बम्बई और दिल्ली से प्रकाशित

"नवभारत टाइम्स" आधुनिक और ताजातर
समाचारों का हिन्दी दैनिक है
और

इसके पाठकों की संख्या सबसे अधिक है ।

दोनों ही संस्करणों में व्यावसायिक, स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारों के साथ-साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और आर्थिक विषयों पर विशेष सामग्री ही तो इसकी विशेषता है ।

सप्ताह में एक वार

बालछटा, महिला अंचल, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों से सतत भरपूर यह पत्र "चलचित्र जगत" और "स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी" भी प्रस्तुत करता है ।
अनेक भाषाओं के समाचारपत्रों में "नवभारत टाइम्स"
सदैव सबसे आगे रहा है ।

भाषा के सम्बन्ध में हिन्दी तथा अहिन्दी-भाषी दोनों ही
"नवभारत टाइम्स" को उच्च स्तर का मानते हैं ।
समाचारों की भाषा सरल है, और

सम्पादकीय अग्रलेख सन्तुलित और उच्च साहित्यिक स्तर के होते हैं ।

मत और सम्मत

चीन की चाल : चीन, जिस की विश्व की राजनीति में काफ़ी निंदा हो रही है, बाज़ार पाने के लिए आकुल है और अपने हथियारों को बेचने के लिए वह छटपटा रहा है. किंतु उस का हथियार कोई कमज़ोर मुल्क ख़रीद नहीं रहा है. उस का निर्यात-व्यापार ठप्प है, इस लिए वह नये बाज़ारों की खोज में रूस के साथ सीमा-संघर्ष कर के एशिया के निर्बल देशों में आतंक पैदा कर रहा है. भारत सरकार, जिस की विदेश-नीति भी उदार है, अगर इस तिकड़म को समझने में विफल हुई और उसने एशिया के निर्बल राष्ट्रों को बचाने में अगुवायी नहीं की तो निश्चित रूप से नेपाल के साथ निकट भविष्य में सीमा-संघर्ष शुरू हो सकता है, क्यों कि नेपाल सरकार ने सन् १८७७ के अनुसार भारत-नेपाल सीमा-निर्धारण का सवाल इधर उठाया है. नेपाल की इस माँग के पीछे चीन का हाथ है और इस के साथ ही अय्यूब को हटा कर पश्चिमी पाकिस्तान का जो भी नेता पाकिस्तान का सदर होगा वह पीकिङ के इशारे पर भारत से सीमा-युद्ध करने का ऐलान करेगा, क्यों कि दोनों मुल्क—नेपाल और पाकिस्तान—चीन के अब बाज़ार बन जायेंगे. अय्यूब, जो अमेरिका-रूस समर्थक थे, की राजनीति के दिन लद गये हैं. अतएव भारत सरकार अपने स्वार्थ को पहचान कर और पड़ोसी देशों के स्वार्थों के बचाव के लिए पाकिस्तान, नेपाल, बर्मा, लंका और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों का एक संघटन बनाने की पहल करे. **—गुंजेश्वरी प्रसाद, गोरखपुर**

संकल्प हिंदी के लिए : अभिभावक संघ, रतनगढ़ की असाधारण सभा ने बार काउंसिल राजस्थान के अंग्रेज़ी प्रयोग के प्रश्न पर विचार कर के चिंता प्रकट की कि हिंदीभाषी क्षेत्र की वकीलों की प्रतिनिधि संस्था होते हुए भी बार काउंसिल का रुख हिंदी के प्रति द्वेषपूर्ण रहा है. सदस्यों ने निम्न संकल्प किया : १-राजस्थान बार काउंसिल (जोधपुर) से निवेदन किया जाये कि वह अपना समस्त कार्य केवल हिंदी में करे. उन से यह भी निवेदन किया जाये कि वह इस संघ अथवा इस के सदस्यों से भविष्य में यदि कोई पत्र-व्यवहार अंग्रेज़ी में करेंगे तो वह पत्र अथवा परिपत्र आदर सहित वापस लौटा दिया जायेगा तथा उस का कोई उत्तर नहीं दिया जायेगा. २—यदि २ अक्तूबर, सन् '६९ तक बार काउंसिल अपना कार्य हिंदी में करने पर तत्पर नहीं होगी तो असहयोग, सत्याग्रह (जिस में धरना भी शामिल है) करने को यह संघ तत्पर रहेगा. ३—समस्त अभिभावक संघों को प्रस्ताव की प्रति प्रेषित कर के निवेदन किया जाये कि वे भी इस संबंध में इन्हीं भावनाओं एवं विचारों के आधार पर कार्य करते हुए जनमत तैयार करें. ४—बार काउंसिल के प्रत्येक प्रत्याशी एवं वर्तमान पदाधिकारियों को व्यक्तिगत रूप से प्रस्ताव की प्रति प्रेषित की जाये. **—मोहनलाल ओझा, रतनगढ़**

बिरला विरोध का पटाक्षेप : राज्यसभा में कांग्रेसी संसद्-सदस्य श्री चंद्रशेखर तथा श्री मोहन धारिया ने बिरला उद्योगों की जाँच को ले कर अधिक नाम कमाया. कांग्रेस संसदीय समिति की बैठक में तो श्री चंद्रशेखर अपनी बीमारी की अवस्था में अस्पताल से गये, परंतु राज्यसभा में जब श्री राजनारायण के संशोधन पर मतदान होने का समय आया तो चंद्रशेखर सदन से उठ कर चले गये, जब कि वह सदन में यह स्वीकार कर चुके थे कि यदि मौक़ा मिला तो मैं इस बात पर मतदान करूँगा कि बिरला बंधुओं की जाँच की जाये. मेरी राय में यह मात्र बिरला विरोध का नाटक था, जो बिना कुछ किये सस्ती लोकप्रियता पाने के लिए किया गया था, जिस का पटाक्षेप राज्यसभा में होने वाले मतदान के पूर्व हो गया. क्या यह सच नहीं है कि बिरला बंधुओं का विरोध करने के लिए पूँजीपतियों के दूसरे गुट से मिल कर नाटक रचाया गया ? **—शिवदेव नारायण, वाराणसी**

उपप्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने यह कह कर कि वह समयांतर से उन के ऊपर लगाये जा रहे आरोपों की न्यायिक जाँच करवाने को तैयार हैं, किंतु ग़लत परंपराएँ नहीं स्थापित होने देने के लिए ऐसा नहीं कर रहे हैं, अपनी स्थिति को काफ़ी सुधारा है. किंतु एक संसद्-सदस्य ने जिस प्रकरण को जन्म दिया है उस से न केवल देश में ही अपितु विदेशों में भी कांग्रेस की प्रतिष्ठा और गौरव को आघात पहुँचा है. **—राजेंद्रकुमार छावड़ा, जयपुर**

संविधान की त्रुटियाँ : १९३७ ई० में ब्रिटिश संविधान के अधीन भारत के सामने एक जटिल समस्या थी कि क्या कांग्रेस उन प्रांतों में पदग्रहण करे जिन में उसे बहुमत प्राप्त हुआ है ? गांधी जी ने कहा कि यदि उन प्रांतों के गवर्नर हस्तक्षेप नहीं करें तो इस के पक्ष में फ़ैसला लिया जा सकता है.

१९३७ में और आज में फ़र्क सिर्फ़ इतना ही है कि यह संविधान हमने बनाया, जिस के अधीन मुट्ठी भर लोग वर्ग का सुख भोग रहे हैं; बाक़ी की हालत नरक से भी बदतर है. यदि १९३७ में यह बात गांधी जी ने ब्रिटिश आधिपत्य को हिंदुस्तान से उठाने के लिए कही थी तो आज मुल्क से कांग्रेसी आधिपत्य को समाप्त करने के लिए इस प्रकार का कारगर क़दम उठाया जाना चाहिए और इस से संविधान की त्रुटियाँ भी सामने आती हैं.

आज किसी प्रांत के कांग्रेसी मुख्यमंत्री के मनोनुकूल राज्यपाल न हो तो एक ही टेलिफ़ोन पर वहाँ के राज्यपाल को हटाया जायेगा और यह २० वर्षों से चल रहा है. **—मंगनीलाल मंडल, दरभंगा**

नाम-संक्षेप : विलास गुप्त (दिनमान १६ मार्च) ने लिखा है कि हिंदी में नाम की लघु रूप-प्रणाली को अपनाना चाहिए. बात तो उन की अच्छी है, किंतु इस में जो एक कठिनाई भयंकर रूप से सामने आयेगी उस का क्या इलाज है ? कुछ नामों का संक्षिप्तीकरण इस प्रकार होगा :—काशीनाथ-काना; भाईलाल-भाला; भैरों साह-भैंसा; बाबूलाल-बाला; प्यारे लाल-प्याला और बहुत से नाम ऐसे ही लिखे जा सकते हैं जो कि हास्यास्पद तो होंगे ही, अपमानजनक भी होंगे—क्या विचार है ? **—काका हाथरसी, हाथरस**

क्यों, हास्य कवि के लिए हासी क्या बुरा है ?—सं०

मेरी समझ में नाम-संक्षेप हिंदी की आत्मा के प्रतिकूल पड़ता है और छापे की कल की सुविधा और समाचारों के लिए अंग्रेज़ी पर अत्यधिक निर्भरता और तज्जनित कठिनाई के रहते हुए भी नाम अगर पूरा लिखा जाये तो पढ़ने में अटक नहीं रहेगी. नाम-खंड के प्रथमाक्षर के बाद पूर्ण विराम देने की अंग्रेज़ी प्रक्रिया से यह अटक अनिवार्यतः आ जाती है. भक्तों और संतों द्वारा नाम की महिमा का जो गुणगान किया गया है वह हमें पूर्ण नामों के प्रति आत्मीयता का भाव रखने के लिए न जाने किस अवचेतन से प्रेरित करता रहता है. प्रयाग विश्वविद्यालय से तो पूरे नामों पर

आप फ़रमाते हैं—

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

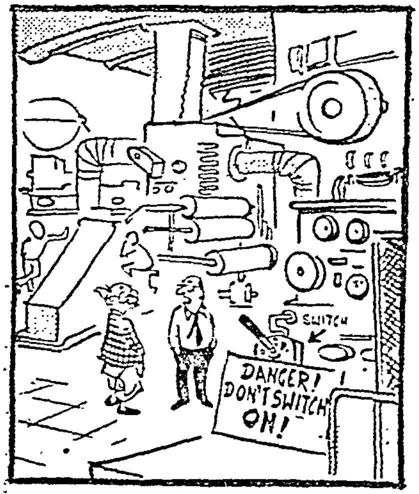

'ख़तरा है, चालू न करें' यह सूचना हमने इसलिए लटका रखी है कि संयंत्र चालू करते ही करोड़ों का घाटा हो जाता है. आप जानते ही हैं यह सरकारी उद्योग है.

विचार प्रकट करने वाली एक थीसिस पर डी. लिट. भी मिल चुकी है. मैंने उस में पढ़ा था कि इकन्नी लाल, इतवारी लाल, देवी प्रसाद, हनुमान प्रसाद, छकौड़ी लाल आदि में से प्रत्येक नाम उस 'लाल' की जन्मोत्पत्ति की सत्य कथा से संबद्ध है. 'रूप विशेष नाम बिनु जानें । करतलगत न परहि पहचानें का तर्क बहुत सटीक है.

—रमेशचंद्र दुबे, आगरा

समान क़ानून-संहिता : मैं श्री चागला और श्री सी. सी. देसाई (**दिनमान, ९ मार्च '६९**) के मत का अनुमोदन करता हूँ कि शीघ्रातिशीघ्र संपूर्ण भारत के लिए एक ही क़ानून-संहिता बनायी जानी चाहिए. श्री चागला बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने मुस्लिम कट्टरपंथियों को करारी चोट पहुँचायी और मुस्लिम महिलाओं को आह्वान दिया कि वह बहुपत्नी-विवाह जैसे अत्याचारी नियमों के प्रति आंदोलन छेड़ें. भारत में एकता और सहिष्णुता का वातावरण पैदा करने के लिए इस की बड़ी आवश्यकता है. जो लोग इस्लाम का नारा दे कर रूढ़ीवादी रहना चाहते हैं उन्हें पाकिस्तानियों से सीख लेनी चाहिए, जो समय के साथ बदलते जा रहे हैं. यहाँ तक कि बुर्क़े में रहने वाली महिलाएँ भी प्रदर्शनों में भाग लेने लगी हैं.

—शबीर क़ुरैशी, बिलासपुर

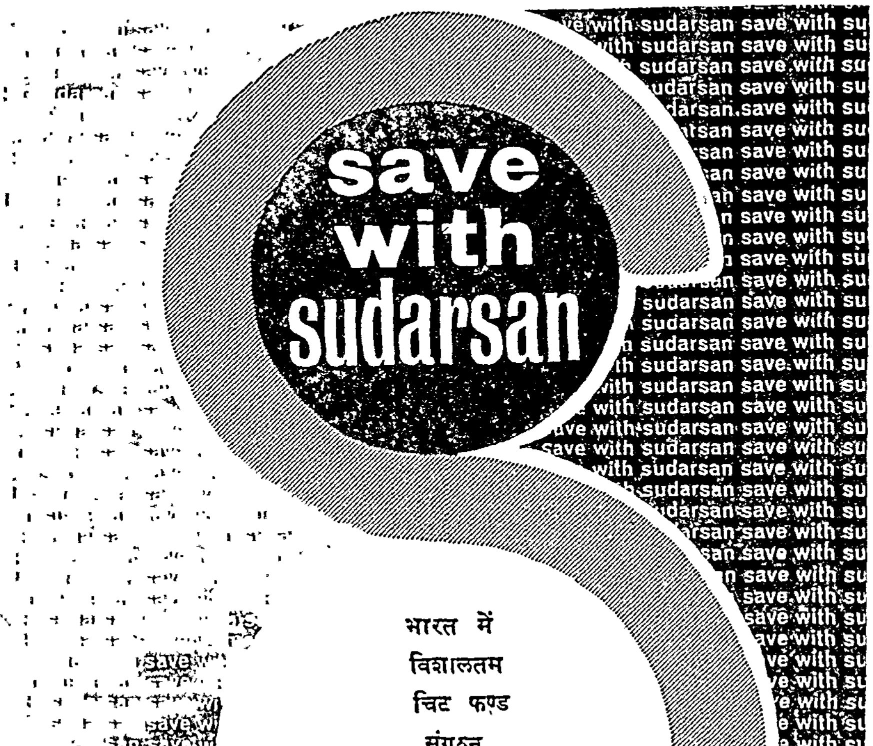

सुदर्शन ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड
पंजीकृत कार्यालय :—कालीकट-२
केन्द्रीय कार्यालय :—सुदर्शन बिल्डिंग, ह्वाइट्स रोड, मद्रास-१४
फोन : ८३०६८
th sudarsan save with sudarsan save with sudarsan save with sudarsan save with s

आधे-अधूरे : १६ मार्च, '६९ : नाट्य महोत्सव के अंतर्गत मोहन राकेश कृत नाटक 'आधे-अधूरे' की प्रस्तुति पर आप की समीक्षा पढ़ी. निष्पक्ष एवं साहसपूर्ण टिप्पणी के लिए हार्दिक बधाई स्वीकारें. साहसपूर्ण इस लिए कि बहुधा समीक्षक उगते हुए सूर्य को नमन ही करने लगते हैं. 'आधे-अधूरे' के आलेख की त्रुटियों पर आपने सही प्रकाश डाला है. 'धर्मयुग' में पढ़ते समय मेरे मन में भी यही प्रश्न उठे थे. क्या वास्तव में 'आधे-अधूरे' का परिवार सही रूप में भारतीय मध्यम वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है? क्या पारिवारिक विघटन का मूल कारण आर्थिक विषमता एवं सेक्स की कुंठा ही है ? प्रथम अंक में नाटक अपना कुछ प्रभाव अवश्य छोड़ता है, परंतु आगे चल कर वह लड़खड़ाने लगता है. यह दोष राकेश के 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों के राजहंस' में भी है.

फिर एक ही पुरुष को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत कर के नाटककार ने नाटकीय प्रभाव को बढ़ाने की बजाय कम ही किया है. कुछ नाटकों में यह शिल्प सफलतापूर्वक अपनाया गया है, किंतु केवल नवीन प्रयोग की फ़ैशन रूप में ही अनुकृति से जो ट्रैजडी हो सकती है वही 'आधे-अधूरे' के साथ हुई है.

—विनोद रस्तोगी, इलाहाबाद

उत्तराधिकारी का चुनाव : १६ मार्च : दारा सिंह का यह कथन कि कोई भारतीय ही उन का उत्तराधिकारी बने और टाइगर जीत सिंह की विजय पर उन्हें प्रसन्नता होगी एक स्वस्थ परंपरा एवं विशाल सहृदयता का पुनर्निर्माण है. परशुराम का यह कथन

'राम रमापति करधनु लेहू ।
खैंचहु मिटै मोर संदेहू ॥'

बरबस स्मरण हो आता है. अपने उत्तराधिकारी की इस खोज का क्या देश के नेता अनुसरण करेंगे ? इस से देश की नयी पीढ़ी की शिकायत मिटेगी; उन्हें शांतिपूर्ण अवसर मिलेगा.

—'विश्वेश्वर', मुंगेर

केंद्रीकरण : आक्रामक क्षेत्रीयता के समाधान के लिए बंबई, कलकत्ता, मद्रास, बंगलौर, दुर्गापुर और वाराणसी का केंद्रीकरण किया जाये और यदि परिणाम श्रेयस्कर रहे तो भविष्य में कुछ अन्य नगरों को भी इस कसौटी पर कसा जाये. साथ ही चंडीगढ़ को भी, जो संयोगवश केंद्रीय शासन के अधीन है, पंजाब या हरयाणा को न दे कर पूर्ववत केंद्रीकृत ही रखा जाये.

—प्रो० इंद्रदेव सिंह, गौहाटी

होली अंक : दिनमान का २ मार्च का होली अंक बहुत ही सुंदर व शिष्ट हास्य की सामग्री प्रस्तुत करता है. ग़ालिब की सूक्तियों का उपयोग बहुत सटीक है.

—ईश्वरचंद्र, जबलपुर

पत्रकार संसद

रूस-चीन सीमा-संघर्ष : पाकिस्तान संकट अफ्रीकी दृष्टि में

रूस-चीन सीमा पर दोनों देशों के बीच हाल ही की मुठभेड़ लंबे समय से चले आ रहे सैद्धांतिक संघर्ष का स्वाभाविक परिणाम है. दोनों देश एक दूसरे को दोषी बता रहे हैं और दोनों ने ही एक दूसरे को गंभीर परिणाम भुगतने के लिए तैयार रहने को कहा है. वैसे तो इन सीमा-मुठभेड़ों की दोनों देशों की जनता पर गहरी प्रतिक्रिया हुई है, पर ग़ैर-कम्युनिस्ट देश अब यह बात और भी गहराई से अनुभव करने लगे हैं कि कम्युनिस्ट चीन जब सीमा-प्रश्न को ले कर रूस के साथ यह सलूक कर सकता है तो सीमावर्ती अन्य देशों की तो बात ही क्या है. अमेरिकी पत्र क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर ने अपने संपादकीय लेख में सख़्त चेतावनी दी है कि चीन के इस रवैये को देखते हुए उस के सीमावर्ती देशों को अन्य देशों के साथ अपने संबंधों पर नये सिरे से विचार करना चाहिए और रूस को एशिया और यूरोप के साथ लगने वाली अपनी सीमाओं के बारे में अब और चौकस रहना चाहिए. पत्र का कहना है—

पीकिङ आज-कल वॉशिंग्टन और मॉस्को दोनों को ही बुरा-भला कहने पर तुला हुआ है. अभी कुछ दिन पहले चीन ने वारसा में अमेरिका के साथ राजदूत-स्तर पर होने वाली बातचीत ऐन मौक़े पर स्थगित कर दी थी. अब वह अचानक रूस की तरफ़ मुड़ा. उसूरी नदी के पास सीमा-रक्षकों के साथ मुठभेड़ के बारे में मॉस्को का विवरण यह है कि चीनियों ने भड़काने वाली कार्यवाही की. अभी यह कहना तो मुश्किल है कि चीन ने यह पहले से योजना बना कर ही किया होगा. पर दो चेतावनियां इस से मिलती हैं. एक तो यह कि चीन के साथ बराबर कठिनाई महसूस करने वाले ग़ैर-कम्युनिस्ट देश चीन के अलावा अन्य देशों के साथ अपने संबंधों पर नये सिरे से विचार करें. दूसरी यह कि रूस इधर तो यूरोप और उधर एशियाई देशों के साथ लगने वाली अपनी सीमाओं की सुरक्षा का और कड़ा इंतज़ाम करे. हाल ही की यह मुठभेड़ें उन क्षेत्रों में हुई हैं जो रूस और चीन की हज़ारों मील की सीमा के साथ-साथ हैं. इन क्षेत्रों में सब से पहले सिंक्यांग है, जो साथ लगने वाली सीमा के पश्चिम की ओर स्थित है. सब से महत्त्व की बात यह है कि यहीं चीन के परमाणु-शक्ति-ठिकाने हैं और इस क्षेत्र में बसने वाले अधिकांश लोग मूल रूप से चीनी नहीं हैं. वे सीमा के उस पार सोवियत क्षेत्र की भाषा बोलने वाले लोग हैं. इसी तरह का दूसरा क्षेत्र आमुर और उसूरी नदी का सीमावर्ती क्षेत्र है. इन नदियों के द्वीपों के स्वामित्व पर शुरु से झगड़ा रहा है. रूसियों ने इन नदियों के पूर्वी और उत्तरी प्रदेशों को विधिवत् अपना इलाक़ा बना रखा है, जब कि चीन इन के संबंध में की गयी पुरानी संधियों को अन्यायपूर्ण मान रहा है. ये संधियाँ १८५८ और १८६० की हैं, जिन के बारे में चीन ने १९६३ में ही विवाद खड़ा कर दिया था. ज़ाहिर है रूस हरगिज़ भी चीनियों को ऐसा करने नहीं देगा, क्यों कि यह तो प्रशांत की एक बड़ी शक्ति के रूप में रूस को चुनौती है और साथ ही साइबेरिया रेलवे और व्लाडीवोस्टक के सभी महत्त्वपूर्ण बंदरगाहों के लिए ख़तरा आमंत्रित करना है. ऐसी हालत में चीनियों का यह काम शरारत खड़ी करने के अलावा और कुछ नहीं है. पर यह मॉस्को के लिए चेतावनी ज़रूर है.

इसी घटना पर ब्रितानी पत्र इकॉनॉमिस्ट का मत दूसरा ही है. उस के विचार में सोवियत विरोधी प्रचार का इस्तेमाल अब माओ के ख़िलाफ़ ही होने लगा है. इस पत्र का कहना है—

सांस्कृतिक क्रांति के घाव अभी भरे भी नहीं हैं और पार्टी कांग्रेस में किये गये वायदे अभी पूरे भी नहीं हुए हैं कि राष्ट्रीय एकता को गति प्रदान करने के लिए माओ को कुछ और हंगामा खड़ा करने की ज़रूरत पड़ गयी. राष्ट्रीय एकता का जोश लाने के लिए चीन जैसे देशों में लोगों को कोई न कोई नशा देना पड़ता है, तो यह अनुमान लगाना तर्कसंगत ही है कि माओ ने रूस के साथ सीमा-विवाद खड़ा कर के इसी तरह लोगों को उत्तेजित करना ठीक समझा हो और अपने राजनतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही यह सब किया हो. इस संदर्भ में और चीन के व्यवहार के पिछले तजुर्बों को देख कर यह भी कहा जा सकता है कि चीन-रूस सीमा-संघर्ष वास्तव में ही चीन-रूस की सीमा फिर से निश्चित करने के लिए हो.

सीमा पर मुठभेड़ों के साथ-साथ चीन ने सीमा संबंधी अपने दावे भी बड़ी चतुराई और सावधानी से पेश किये हैं. पीकिङ की १९६० की संधि के अनुसार भी, जिसे चीन अपने पक्ष में नहीं मानता, उसूरी नदी के दमांस की टापू को चीनी क्षेत्र में ही माना गया था. कहा जाता है कि सीमा संबंधी १९६४ की बातचीत में रूस ने यह बात मान भी ली थी. इस बातचीत के भंग होने के बाद ही ये सीमा-संघर्ष शुरु हुए हैं.

चीन के विदेशमंत्रालय द्वारा जारी किये गये बयान से पता चलता है कि रूस के साथ वर्त्तमान सीमा-विवाद भारत के साथ सीमा विवाद जैसा ही है, जिसे ले कर १९६२ में उस के साथ युद्ध हुआ था. चीन ने भारत से भी पुरानी साम्राज्यवादी संधि के आधार पर ही अपना सीमा-विवाद तय करने की कोशिश की थी; पर बातचीत आगे चली ही नहीं और जब भारतीय सेनाओं ने लद्दाख की तरफ़ से चीनी क्षेत्र में घुसना शुरु कर दिया तो भारतीयों को सबक़ सिखाना ज़रूरी हो गया. माओ शायद इसी तरह रूसियों को सबक़ सिखाना चाहते हैं, लेकिन भारत के साथ संघर्ष के दौरान शक्ति संतुलन जितना चीनियों के पक्ष में था उतना रूस के मामले में नहीं हो सकता. शायद इसी लिए माओ ने शायद यही ठीक समझा कि सीमा पर थोड़ी छेड़छाड़ कर के ही रूसियों को चीन के दावों की याद दिला दी जाये. न तो चीन ने और न सोवियत संघ ने हाल ही के सीमा-संघर्ष का विवरण दिया है. रूस और चीन का सीमा-विवाद जल्दी ही तय होने की कोई संभावना नहीं है और तब तक ये सीमा-संघर्ष किसी न किसी रूप में बराबर चलते रहेंगे; रूसी अब बराबर सतर्क रहेंगे, इस में संदेह नहीं. इधर तो माओ और उधर ब्रेज़नोफ़ इन सीमा-संघर्षों में अपने राजनैतिक लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे.

सोवियत और चीनी सैनिकों के बीच हाल ही की झड़पों के लिए दोनों देशों का एक दूसरे को ज़िम्मेदार ठहराना स्वाभाविक ही था. दोनों देशों के इस घटना पर एक दूसरे को विरोधपत्र देने के अलावा

रूस-चीन सीमा-संघर्ष पर क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर में ल पेली का व्यंग्य

दोनों का एक दूसरे के विरुद्ध प्रचार-अभियान भी और तेज हो गया है. पीकिङ के **पीपुल्स डेली** और **लिबरेशन आर्मी डेली** ने संयुक्त संपादकीय लेखों में सोवियत विरोधी प्रचार की वही पुरानी शैली अपनायी है. संपादकीय लेखों में कहा गया है—

सोवियत नेता चीन के प्रदेश पर कब्ज़ा करने के लिए ज़ारशाही नीति पर चल रहे हैं. सोवियत नेताओं ने ज़ारशाहीनुमा उपनिवेशवाद क़ायम करने के लिए पूर्वी यूरोप के देशों को बुरी तरह लूटा. अब यही सब कुछ वे एशिया में करना चाहते हैं.

सोवियत संघ ने मंगोलिया गणराज्य को अपना एक उपनिवेश-सा बना लिया है. हम सोवियत संशोधनवादियों को चेतावनी देना चाहते है कि चीन की प्रभुसत्ता पर आक्रमण की वे हिम्मत न करें. जब तक हम पर हमला ही न हो जाये तब तक हम हमला नही करेंगे. हमारा तो जवाबी हमला ही होगा. वे ज़माने गये जब चीन डराने-धमकाने में आ जाता था. ज़ारशाही के पुराने-तरीक़े अपना कर अगर कोई चीनी जनता से निबटना चाहता है तो वह सख्त ग़लती पर है.

पाकिस्तान

पाकिस्तान की हाल ही की घटनाओं पर जहाँ पश्चिमी देशों के पत्र राष्ट्रपति अय्यूब के विरोध अथवा समर्थन में मत व्यक्त करते रहे है अफ़्रीकी पत्रों में केन्या के एक समाचारपत्र **डेली नेशन** ने अय्यूब के निर्देशात्मक लोकतंत्र को एक प्रयोग मान कर ही समूची घटनाओं की विवेचना की है. इस पत्र ने अपने ताज़ा संपादकीय में लिखा है —

दो पड़ोसी एशियाई देशों ने अपने-अपने यहाँ किसी संतोषजनक लोकतंत्रीय प्रणाली को अंतिम रूप देने के लिए जो शासन-व्यवस्था अपनायी थी उसके संचालन और क्षमता को अफ़्रीकी देश बहुत दिलचस्पी और उत्सुकता से देखते रहे हैं. हमारी भी रुचि शुरू से इस बात में रही है कि इन दोनों देशों में नवीनतम लोकतंत्र कहाँ तक सफल रहता है. पाकिस्तान और भारत हमारे राष्ट्रकुल सहयोगी होने के साथ-साथ हमारे जैसे ही आदर्श और लक्ष्यों से प्रेरित है. भौगोलिक दृष्टि से भी हम भारतीयों और पाकिस्तानियों के उस समय से निकट हैं जब यह महाद्वीप दो देशों में विभक्त भी नही हुआ था. सन् ४७ में पाकिस्तान बनने से बहुत पहले से ही यह महाद्वीप हम सभी अफ़्रीकी देशों के लिए प्रेरणा-स्रोत रहा. इस से अफ़्रीकी देशों में भी यह आत्मविश्वास पैदा हुआ कि वे स्वयं अपने भाग्य-विधाता बन सकते हैं.

यह आवश्यक नहीं है कि वेस्टमिनिस्टर मॉडल का लोकतंत्र अफ़्रीका में भी सफल हो. लोकतंत्र की कोई आदर्श प्रणाली ढूँढ़ निकालने के लिए अनेक देश वर्षों से परिश्रम और प्रयोग करते रहे हैं. भारत और पाकिस्तान में किये जा रहे प्रयोगों से अफ़्रीका बहुत कुछ सीख सकता है. भारतीय लोकतंत्र अत्यधिक स्वतंत्रता के कारण शायद अफ़्रीका के लिए बहुत उचित न बैठे. पाकिस्तान में निर्देशात्मक लोकतंत्र का जो प्रयोग पिछले एक दशक से चल रहा है वह भी ज्यों का त्यों अफ़्रीका को ग्राह्य न हो, पर आज की पाकिस्तान की घटनाओं और भारतीय लोकतंत्र के संचालन के अब तक के तजुर्बों से बहुत कुछ सीखा जा सकता है.

राष्ट्रपति अय्यूब ने अगले राष्ट्रपति-चुनावों में खड़े न होने के फ़ैसले का एलान कर के ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जिस में लोग यही अनुमान लगाते रहे कि क्या मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के लिए अथवा अपने विरुद्ध बढ़ते हुए असंतोष को कम करने के लिए ही उन्होने यह क़दम उठाया है ? उन के इस एलान से विकल्प की बात उठती है. राष्ट्र क्योंकि व्यक्ति से बड़ा होता है अत: उन के नेतृत्व में अनेक महत्वपूर्ण सुधारों के बाद यह भी हो सकता है कि राष्ट्रपति अय्यूब को अपना यह फ़ैसला बदलना पड़े.

इस में जरा भी संदेह नहीं राष्ट्रपति अय्यूब के शासन-काल में पाकिस्तान ने आर्थिक क्षेत्र में ज़बर्दस्त प्रगति की है. लेकिन आज वहाँ की जनता उसी प्रणाली से असंतुष्ट है जिस में उन्हें इतनी ज़बर्दस्त आर्थिक सफलताएँ मिली. आर्थिक और सामाजिक विकास के क्षेत्र में पाकिस्तान और पूर्व अफ़्रीका की समस्याएँ एक दूसरे से बहुत कुछ मिलती जुलती हैं, इस लिए राजनैतिक नेतृत्व में वहाँ के संकट को लोकतंत्र के विकास की दृष्टि से ही देखना चाहिए. पाकिस्तान को अपने आज के नाज़ुक दौर में स्थिति को कैसे सँभालना है इसे सभी अफ़्रीकी देश बहुत ध्यान और रुचि से देख रहे है.

भारत और कैनाडा

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के कैनाडा के प्रधानमंत्री पियेरे त्रूदो को भारत आने का निमंत्रण देने पर कैनाडा में हर्ष प्रकट किया गया है. इस संदर्भ में भारत-कैनाडा संबंधों का उल्लेख वहाँ के प्रमुख पत्र **ब्रांडन सन** ने अपने संपादकीय में किया है—

प्रधानमंत्री त्रूदो ने श्रीमती इंदिरा गांधी का अगले वर्ष किसी समय भारत आने का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है. वह संभवत: अगले वर्ष भारत के गणराज्य दिवस, २६ जनवरी को भारत जायेंगे. श्रीमती गांधी हमारे प्रधानमंत्री से मिलने को बहुत उत्सुक हैं. हाल ही में श्रीमती गांधी जब दक्षिण अमेरिकी देशों की यात्रा पर थी तो उन्होंने टेलीफ़ोन पर हमारे प्रधानमंत्री से बातचीत की थी.

भारत और कैनाडा के संबंध बहुत मित्रतापूर्ण है. उस की विदेश-सहायता का बहुत बड़ा भाग भारत को ही जाता है. भारत में खाद्य-संकट पर कैनाडा बहुत चिंतित रहा है. १९६८ में ही कैनाडा ने ५ लाख टन गेहूँ भारत को दिया.

कैनाडा ने भारत को अब तक ६५ करोड़ पौंड दिये हैं, जिस में से २६ करोड़ पौंड विद्युत-योजना कार्यों के लिये है. बंबई की परमाणु-भट्टी बनाने में भी कैनाडा ने भारत की सहायता की है. भारत और कैनाडा दोनों ही परमाणु-शक्ति का प्रयोग शांतिपूर्ण कार्यों के लिए कर रहे हैं. दोनों देशों के बीच इस आशय का समझौता है कि परमाणु-भट्टियों से प्लेटोनियम तैयार होगा, उस का उपयोग परमाणु बम बनाने के लिए हरगिज़ नहीं किया जायेगा. भारत के मद्रास, केरल, राजस्थान और महाराष्ट्र राज्यों के विद्युत-योजना कार्यों में भी कैनाडा सहायता दे रहा है. इन योजना-कार्यों में कैनाडा के वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में भारतीय वैज्ञानिकों के साथ मिल कर कार्य कर रहे है.

प्रेस जगत

लोकतंत्र-समीक्षा

लोकतंत्र एक सतत धारा है, जिस को आगे बहना ही चाहिए. अपने बहाव को बनाये रखने के लिए वह रास्ता बनाता है—कही मुड़ कर, कही तंग घाटियों के बीच और कही विस्तृत मैदानों में. कोई भी नियम, संहिता या परंपरा अपरिवर्त्तनीय नही है. संविधान केवल मार्ग का निदर्शन करता है और उस के निर्देशों में भी परिवर्त्तन हो सकता है. इस लिए प्रजातांत्रिक शासन-प्रणाली में लोकहित को दृष्टि में रख कर नयी परिस्थितियों और आवश्यकताओं में नये विचारों, नये सुझावों और नयी व्याख्याओं की अनिवार्यता में किसी को भी संदेह नही हो सकता. चिंतकों, विद्यार्थियों, विधायकों और विधि-विशेषज्ञों के सामने इस प्रकार के नये विचार और मत लाने के उद्देश्य से संवैधानिक और संसदीय अध्ययन संस्थान ने एक त्रैमासिक पत्रिका 'लोकतंत्र-समीक्षा' का प्रकाशन आरंभ किया है. हिंदी राष्ट्रभाषा है और इस में राष्ट्रीय भावना और चेतना को वहन करने की क्षमता है. मगर इस तथ्य को सिद्ध करना होगा. वैज्ञानिक और विशेष शास्त्रों से संबंधित सामग्री को उपलब्ध कराना इस के प्रति एक महत्त्वपूर्ण क़दम होगा. अब जब कि देश के संसद् और अनेक विधानसभाओं में हिंदी का व्यापक उपयोग होने लगा है तथा अनेक प्रदेशों में शासन का कार्य इसी भाषा में होना आरंभ हुआ है यह ज़रूरी है कि हिंदी को अंग्रेज़ी की पराधीनता से मुक्त करने का सफल और प्रभावशाली अभियान चलाना चाहिए. लोकतंत्र-समीक्षा के पहले अंक में प्रकाशित लेखों पर एक दृष्टि डालने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह पत्रिका राजनैतिक चेतना जागृत करने में सहायता देगी और संवैधानिक गुत्थियों को सुलझाने के मार्गों का निर्देश करेगी.

लंदन की चिट्ठी

राष्ट्रीय गीत की कतर-ब्योंत

सभा-सम्मेलनों, सिनेमा और नाटकों के अंत में राष्ट्रीय गीत को अदब से खड़े हो कर सुनने की परिपाटी के निर्वाह के प्रति अब उस ब्रिटेन की जनता में भी विशेष उत्साह नहीं रहा, जो अपने राजा-रानी के सम्मान, सभ्यता की नोक-पलक और अनुशासन के पालन के लिए ज़माने से प्रतिष्ठित है. नाटक या चलचित्र की समाप्ति के बाद अब ब्रिटेन में भी राष्ट्रीय गीत की धुन बजते वक़्त लोग या तो केवल औपचारिकता निभाने के लिए अपने स्थान पर खड़े रहते हैं या मौक़ा देख कर (खुले आम भी) चुपके से खिसक जाते हैं. जनता की इस अरुचि और उदासीनता से तालमेल बैठाने के इरादे से ब्रिटेन की अधिकांश रंगशालाओं और सिनेमाघरों के मालिकों ने भी राष्ट्रीय गीत 'द क्वीन' की धुन बजाना या तो बहुत कम कर दिया है या उस के समय में कटौती व रद्दोबदल कर दी है. कुछ रंगशालाओं और सिनेमाघरों में या तो राज-परिवार के संदस्यों की उपस्थिति में या किसी खास राष्ट्रीय पर्व के अवसर पर ही राष्ट्रीय गीत की धुन बजायी जाती है तो कुछ में बजाय अंत के शुरू में यह धुन बजती है जिस से कि दर्शकों को भागने का मौक़ा ही न मिले.

कुछ रंगशालाओं और सिनेमाघरों ने राष्ट्रीय गीत का समय काफ़ी कम कर दिया है. लेकिन ब्रिटेन के २७३ सिनेमाघरों में राष्ट्रीय गीत की धुन बजाये जाने की परिपाटी अभी भी जारी है भले ही दर्शक उसे मन लगा कर सुनें या फूट लें. अक्सर देखा गया है कि जो चलचित्र सहज रूप से खत्म हो जाते हैं, उन के दर्शक तो राष्ट्रीय गीत सुनने के लिए रुके रहते हैं किंतु जिन चलचित्रों के अंत में नामावली के सिलसिले के बाद ही राष्ट्रीय गीत का दौर शुरू होता है, उसे सुनने के लिए बहुत कम दर्शक मौजूद रहते हैं. बी.बी.सी. टेलीविज़न (बी.बी.सी.-१, बी.बी.सी.-२ नहीं) तो हर रात श्रोताओं को अंत में राष्ट्रीय गीत की धुन अवश्य सुनाता है किंतु ग्रैंडा टेलीविज़न संस्था किसी राजपुरुष की जन्मतिथि या राष्ट्रीय पर्व के अवसर पर ही राष्ट्रीय गीत की धुन बजाती है. वह नहीं चाहती कि इधर तो राष्ट्रीय गीत चले और उधर श्रोता स्विच आफ़ कर के सो जायें.

ये बस्ती, ये लोग

रईसों की बस्ती के ठाठ तो ब्रिटेन में बदस्तूर जारी हैं किंतु मध्य-वर्ग और ग़रीबों की बस्तियों की हालत बदतर होती जा रही है. सेंट स्टीफेंस गार्डन के आसपास की बस्तियों के लोगों की शिकायत है कि उन्हें घुटनभरी खामोशी ने परेशान कर दिया है. यहां एक-एक कमरे में सात-सात व्यक्ति रहते हैं और रेडियो-टेलीविज़न सुनने की मनाही है. पश्चिम जर्मनी से आ कर कुछ दिनों के लिए ब्रिटेन की एक ऐसी ही बस्ती में रहने के बाद रोनाल्ड क्रीडी नामक एक व्यक्ति ने बताया कि वहां रहते हुए हम चुपचाप बैठे अपने बच्चों के सोने की प्रतीक्षा करते रहते थे लेकिन बच्चों का क्या. वे सोना ही नहीं चाहते थे क्यों कि बत्ती जली रहती थी. किराया इतना कि दूसरी जगह इतने में मकान के साथ किराये का टेलीविज़न भी मिल सकता है. जर्मनी में इस व्यक्ति के परिवार को 'बच्चों से संपन्न' माना जाता था. उन के पास ५ कमरों का फ्लैट था और पारिवारिक भत्ते के एवज़ में उन्हें दो महीने के लिए ४२ पौंड मिलता था जब कि लंदन में उन्हें २ पौंड, ६ शिलिंग ६ पेंस सिर्फ़ एक कमरे, सात चारपाई और तीन वक़्त के खाने के लिए प्रतिदिन देना पड़ा. कोई मकान तलाश करना भी बच्चों का खेल नहीं है क्योंकि ५ बच्चों के माता-पिता से मकान मालिक वैसे ही कतराते हैं.

सेंट स्टीफेंस गार्डन की ही एक बस्ती में रह कर मुश्किल से छुटकारा पाये एक अन्य व्यक्ति विलियम ली ने बताया कि इन बस्तियों में जीना दूभर हो उठता है. न वहां दूध मिलता है और न मेहमानों को बुलाने की ही अनुमति दी जाती है. लगता है कि जैसे किसी गुनाह की सज़ा भुगतने के लिए ही आप वहां रह रहे हैं. बहरहाल किरायेदारों का तजुर्बा जो भी रहा हो, इन बस्तियों से संबद्ध निदेशक और उन के सहायकों को किरायेदारों की शिकायतों से कोई सरोकार नहीं है. उनकी धारणा है कि ये किरायेदार तो अपनी पेचीदी आर्थिक समस्याओं को निपटाने के लिए यहाँ आते हैं—सुख-सुविधाओं की तलाश में नहीं. और फिर वैसे भी माताएँ अपने बच्चों को छोड़ कर अलग कमरे में नहीं सोतीं. अक्सर देखा गया है कि जिन परिवारों को दो कमरे दिये गये वे भी एक ही कमरे में रहना पसंद करते हैं.

अंग्रेज़ी का घेराव

लंदन विश्वविद्यालय शिक्षण संस्था के एक प्राध्यापक ए.जी. राजेल ने यह सिफ़ारिश की है कि माध्यमिक स्कूलों में ८ से १३ वर्ष के बच्चों के नीरस विषयों की हेर-फेर की जानी चाहिए और उन्हें अंग्रेज़ी एक पृथक विषय के रूप में नहीं पढ़ाया जाये क्यों कि 'कॉलेज के विद्यार्थियों को बहुत पहले ही बता दिया गया है कि हर शिक्षक अंग्रेज़ी का शिक्षक होता है.' माध्यमिक स्कूल इस पद्धति को व्यवहार में ला सकते हैं. भाषा सीखने का सही तरीक़ा है उसे इस्तेमाल करना और जब सभी विषय—साहित्य, कला, धर्म आदि अंग्रेज़ी में ही पढ़ाये जाते हैं तो फिर अंग्रेज़ी को पृथक विषय के रूप में क्यों पढ़ाया जाये ?

नौकरों की छँटनी

ब्रिटेन में घरेलू नौकरों की संख्या तेजी से घटती जा रही है. वहाँ केवल ८१० ही ऐसे परिवार हैं, जिन में ३ या इस से अधिक नौकर हैं. सन् १९६६ की जनगणना पर आधारित प्रधान रजिस्ट्रार की रिपोर्ट के अनुसार लगभग १ करोड़ ५० लाख परिवारों में से केवल ५८ हज़ार ३०० परिवारों में ही घरेलू नौकर—बटलर, चौकीदार, सचिव आदि थे. कुल नौकरों की संख्या ६४,५१० थी. अविवाहित परिचारिकाओं के आंकड़े भी दिलचस्प हैं—६० हज़ार परिचारिकाओं में से केवल ८ हज़ार ही विवाहित थीं. बेशक, संभ्रांत व्यक्तियों की शान-शौकत में तो आज भी विशेष कमी नज़र नहीं आती किंतु वे आत्मनिर्भर अवश्य होते जा रहे हैं.

बेटा ! मुझे बाहर निकलने दो ! बेटा ! सुनो, बेटा ! बेटा ! !

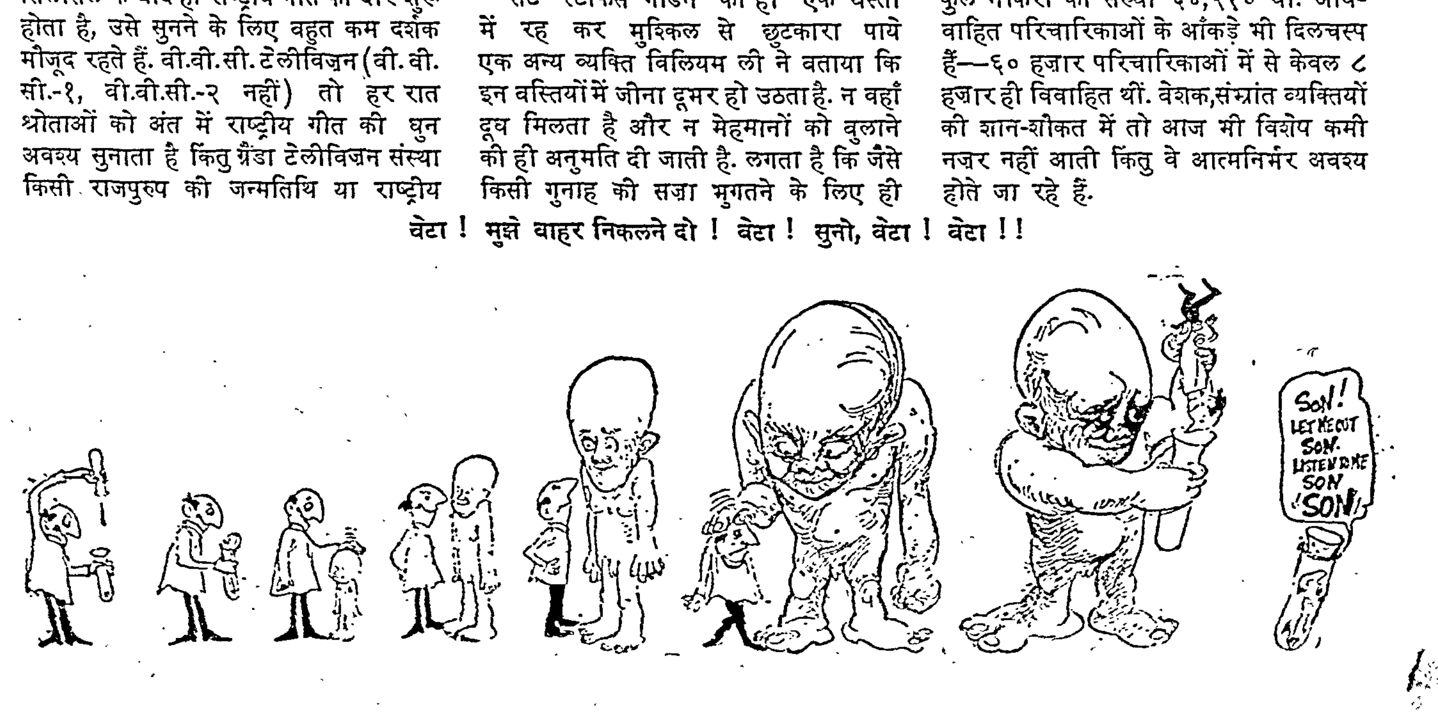

नौकरी देने की शर्त

श्रीमती कैरोल वेस्ट, एक २१ वर्षीया स्त्री को लंकाशायर के रायटन नामक स्थान में अवकाशप्राप्त बूढ़ों के लिए बनी बस्ती 'वॉर्डन' में इस शर्त पर नियुक्त किया गया कि पाँच साल तक वह एक भी बच्चा नहीं जनेगी. अपनी नियुक्ति का हवाला देते हुए श्रीमती वेस्ट ने बताया कि जब अधिकारियों ने मुझ से यह पूछा कि क्या तुम गर्भ-निरोधक गोलियाँ लेती हो तो मैं हैरान हो गयी. मेरे हाँ कहने पर वे नौकरी देने के लिए राज़ी हो गये. 'मैं तब तक कोई बच्चा नहीं चाहती जब तक उस के भरण-पोषण के लिए समर्थ न हो जाऊँ.' आवास समिति के अध्यक्ष श्री जे. वेस्टन का मत है कि उन्होंने श्रीमती वेस्ट से बिलकुल सही और सामान्य प्रश्न पूछा था, क्यों कि अब अगर वह गर्भवती हुई तो अवकाशप्राप्त बूढ़ों की सेवा क्या खाक करेगी. हमें लगता है कि श्रीमती वेस्ट गर्भ-निरोध पर बहुत 'आस्था' रखती हैं.

युवतियों की बदलती रुचि

पिछले पाँच वर्षों से जारी लंकाशायर में युवतियों के सर्वेक्षण से पता चला है कि गर्भ-निरोध के प्रति उन का उत्साह तेज़ी से गिरता जा रहा है. १९६३ के सर्वेक्षण के अनुसार सभी श्रमजीवी लड़कियों ने यह स्वीकार किया था कि अविवाहितों के लिए गर्भ-निरोध की व्यवस्था प्रशंसनीय है, किंतु अब ५९ प्रतिशत ही इस व्यवस्था के प्रशंसक हैं. शादी के बारे में भी लड़कियों की रुचि में बहुत फ़र्क़ आ गया है. एक शिक्षा-अधिकारी डॉ० रॉबर्ट काईड के अनुसार १९६३ में ज्यादातर लड़कियाँ चाहती थी कि उन के पति सब से पहले सुंदर हों और विश्वसनीय हों. अच्छी आय को वह तीसरा स्थान देती थीं और तब जा कर समान रुचि का ख्याल रखती थी. लेकिन पिछले वर्ष युवतियों की सब से पहली ख्वाहिश थी कि उन के पति खुशमिजाज हों, समान सामाजिक और आर्थिक स्तर के हों, समान रुचि हो और सेहतमंद हों; खालिस शारीरिक आकर्षण का स्थान अंत में चला गया है.

परख नली में प्रजनन-प्रयोग

कैंब्रिज के वैज्ञानिक डॉ० बॉब इडवर्ड्स और पैट्रिक स्टैप्टो ने बिना गर्भाशय के ही एक अंडे (मानवीय जीवाणुयुक्त,) को विकसित करने में आंशिक रूप से सफल होने के बावजूद यह स्वीकार किया है कि वह समय अभी बहुत दूर है जब परख नली में बच्चा पैदा करने और कृत्रिम गर्भाधान की विधि का आविष्कार हो सकेगा और बांझ औरतें भी माँ बन सकेंगी. इन वैज्ञानिकों का विश्वास है कि अपने शोध से वे यह तो जान सके हैं कि विकृत आकार के बच्चे क्यों उत्पन्न होते हैं, किंतु उन्हें ठीक करने की कोई तरक़ीब वे नहीं सुझा सकते. डॉ० इडवर्ड्स ने कहा कि यदि परख नली में बच्चा पैदा करने के माने मात्र एक कृत्रिम अंडा विकसित करना है तो वह यह कार्य कर ही चुके हैं. किंतु वह अपने शोध के इस नतीजे से क़तई संतुष्ट नहीं हैं, क्यों कि इस अंडस्थ भ्रूण को वह केवल एक दिन ज़िंदा रख सके हैं. अलबत्ता जानवरों के भ्रूण को अवयवों की वृद्धि और हृदय-गति शुरू होने तक जीवित रख सके हैं. यह भी. एक टेक है उन की कि परख नली से अपरूप बच्चा नहीं पैदा करेंगे और यही सब से बड़ी दिक़्क़त है. इस उपलब्धि का भी कोई सार नहीं कि पहले बिना गर्भाशय के ही भ्रूण तैयार किया जाये और फिर उसे विकसित करने के लिए माँ के पेट में रख दिया जाये हालाँकि—यह कार्य भी वर्षों की माथा-पच्ची के बाद ही संभव हो सकेगा. अपरूप और विकृत बच्चों की उत्पत्ति का एक खास कारण इन वैज्ञानिकों ने गर्भाशय में ही कुछ मूल खराबी होना बतलाया है.

कैंब्रिज प्रयोगों के लिए प्रयुक्त भ्रूण आवश्यक शल्य-क्रियाओं के दौरान स्त्रियों के बीजकोषों से निकाले गये तत्व से तैयार किये गये हैं और अब ऐसी तकनीक भी विकसित की गयी है, जिस से न केवल इन्हें परिपक्व किया जा सकता है बल्कि गर्भाधान के लिए भी इन्हें जीवित रखा जा सकता है. मानवीय जीवाणु का आकार एक इंच के ५ हज़ारवें हिस्से के बराबर होता है.

अभी से यह उम्मीद करना सिवाय खुश-फ़हमी के और कुछ नहीं कि कृत्रिम रूप से प्रयोगशाला में बच्चा पैदा हो सकेगा. अब तक चुहिया के पेट से अंडे निकाल कर प्रयोगशाला में विकसित कर के उन्हें पुनः चुहिया के गर्भाशय में रख कर सामान्य प्रजनन-प्रक्रिया बरक़रार रखने में ही सफलता मिली है. यह प्रयोग आगे चलकर मानवीय प्रजनन-प्रक्रिया के लिए भी किया जा सकेगा. यही नहीं, किसी बड़े जानवर के पेट से भ्रूण निकाल कर कुछ समय के लिए किसी छोटे पशु के पेट में रखने के बाद पुनः उसी पशु के पेट में ही प्रत्यारोपित कर के स्वाभाविक प्रजनन का भी सफल प्रयोग हो चुका है.

बहरहाल, परख नली और प्रयोगशाला में बच्चे पैदा करने की संभावना के बारे में तो अभी से निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता किंतु इस संभावना के साथ कुछ सामाजिक, नैतिक वैधानिक प्रश्न भी जुड़े हैं, कई प्रश्न उठेंगे: पहले से ही जनसंख्या के भार से लदी इस पृथ्वी में कृत्रिम मानवों का क्या स्थान होगा ? क्या धर्म-शास्त्री कृत्रिम मानवों को मान्यता दे सकेंगे ? क्या वे भी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों की माँग कर सकेंगे ? इस 'आविष्कार' का मानवीय हितों की दृष्टि से क्या महत्व है ? किंतु सब से टेढ़ा सवाल तो अभी कृत्रिम मानव का अस्तित्व प्रदान करना ही है !

पिछले सप्ताह

(१३ मार्च से १९ मार्च, १९६९ तक)

देश

१३ मार्च : सारंगगढ़ के राजा नरेशचंद्र सिंह द्वारा मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री-पद की शपथ-ग्रहण. पंजाब के भूतपूर्व मुख्यमंत्री लक्ष्मनसिंह गिल चंडीगढ़ में गिरफ़्तार.

१४ मार्च : पंजाब के राज्यपाल डॉ० दादा साहेब पावटे का विधानमंडल के संयुक्त अधिवेशन में बिना क़ाट-छाँट के अभिभाषण. सी.-सुब्रह्मण्यम् द्वारा त्यागपत्र वापस. निर्दल सदस्य दरबारा सिंह पंजाब विधानसभा के अध्यक्ष निर्वाचित.

१५ मार्च : केरल के अध्यापकों पर लाठी चार्ज के कारण ५० अध्यापक घायल.

१६ मार्च : नगा विद्रोही सेनापति मोवू अंगामी और उस के २०० सहयोगियों द्वारा आत्मसमर्पण.

१७ मार्च : चौथी आयोजना के उद्देश्यों में संशोधन करने के बारे में मंत्रिमंडल सहमति.

१८ मार्च : मध्यप्रदेश के नरेशचंद्र सिंह सरकार में तीन और मंत्री शामिल. लोकसभा द्वारा रेल बजट पारित.

१९ मार्च : मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री नरेशचंद्र सिंह का त्यागपत्र. गोविन्दनारायण सिंह पुनः कांग्रेस में शामिल.

विदेश

१३ मार्च : पाकिस्तान के राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ द्वारा प्रतिपक्षी पार्टियों की वयस्क मताधिकार और संसदीय शासन प्रणाली संबंधी माँगें स्वीकार. अमेरिकी अंतरिक्ष-यान अपोलो-९ धरती पर वापस.

१४ मार्च : पूर्वी पाकिस्तान द्वारा स्वायत्तता की माँग की लड़ाई जारी रखने का फ़ैसला.

१५ मार्च : रूस के प्रतिरक्षामंत्री ग्रेचको पाकिस्तान की यात्रा बीच में छोड़ कर स्वदेश वापस.

१६ मार्च : पश्चिम पाकिस्तान के गवर्नर जनरल मुहम्मद मूसा के स्थान पर युसुफ हारून नियुक्त. इस्राइली सैनिकों द्वारा युर्दान के भीतर तक मार. वेनेज़ुएला की हवाई दुर्घटना में ८५ व्यक्तियों की मृत्यु.

१७ मार्च : पाकिस्तान में पूर्ण हड़ताल के कारण जनजीवन अस्तव्यस्त. थाईलैंड के सैनिकों द्वारा १०९ वीएतकाङ् छापामारों का सफ़ाया.

१८ मार्च : रूस और चीनी सैनिकों में लड़ाई.

१९ मार्च : देश में शांति बनाये रखने के लिए पाकिस्तान की सेना को मुस्तैदी के आदेश.

भेंट-वार्त्ता

वृद्ध आक्रोश की समृद्ध वाणी

उस दिन **दिनमान** के प्रतिनिधि ने जब वयोवृद्ध न्यायमूर्त्ति और संविधान के प्रवक्ता माननीय **प्रकाशनारायण सप्रू** के कमरे में प्रवेश किया तो वह काफ़ी थके और उदास-से थे. दिल्ली से पिछली रात लौटे थे और वहाँ पर देश की राजनीति की गतिविधि को उन्होंने जिस रूप में देखा था उस से काफ़ी चिंतित थे. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने जब बताया कि वह उन की एक भेंट-वार्त्ता के लिए आया है तो वह अधिक उत्साहित नहीं हुए. बोले इस देश में सारी आवाज़ें बेकार चली जा रही हैं. मुझे खीझ होती है और दुख भी. गंभीरता का ढोंग कर के हम कब तक अगंभीर बने रहेंगे? **दिनमान** के प्रतिनिधि ने कहा कि वह इसी लिए आप से मिलने आया है, जिस से कि इस बढ़ती हुई अगंभीरता के विषय में कुछ प्रकाश पड़ सके. श्री सप्रू ने कहा; लेकिन कौन सुनेगा? **दिनमान** के प्रतिनिधि ने कहा, ऐसी बात नहीं है. प्रजातंत्र में बातों का प्रभाव पड़ता है, कभी-कभी जल्दी और कभी-कभी देर में. प्रतिनिधि ने पूछा:

प्रजातंत्र में स्थायी प्रशासन की क्या कोई अहमियत है? कांग्रेस की ओर से यह नारा पिछले चुनाव में बड़ी ज़ोर से दिया गया है. स स्थायित्व के विषय में आप की क्या राय है?

श्री सप्रू : मैं इस स्थायित्व शब्द को निरर्थक मानता हूँ. यह यथास्थिति को बनाये रखने के लिए 'टोरी' दल वालों द्वारा प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द गंदा और भ्रम फैलाने वाला है. प्रजातंत्र में और प्रगति-प्रधान देश में इस की कोई सार्थकता नहीं है, क्यों कि प्रजातंत्र की मूलभूत प्रेरणा गतिशील परिवर्त्तन (डाइनमिक प्रोग्रेस) से विकसित होती है. प्रजातंत्र में बल जनतांत्रिक पद्धति और क्रांतिकारी परिवर्त्तन पर होनी चाहिए, न कि यथास्थितिवादी स्थायित्व पर. स्वस्थ दिमाग़ों में प्रगति और परिवर्त्तन की समस्याएँ होती हैं, न कि स्थायी या शाश्वतता की समस्या होती है. वर्त्तमान संदर्भ कांग्रेस द्वारा दिया गया स्थायित्व का नारा निराशा और आत्महीनता के कारण दिया गया है. इस का कोई महत्त्व नहीं है. यह प्रतिक्रियावादी नारा है.

लेकिन वर्त्तमान चुनाव में तो जनता ने परिवर्त्तन के पक्ष में अपना स्पष्ट मत नहीं दिया है. ऐसी स्थिति में क्या आप समझते हैं कि कोई क्रांतिकारी परिवर्त्तन की नीति चल सकती है?

श्री सप्रू : ऐसा नहीं है. जनता ने परिवर्त्तन के पक्ष में मत दिया है. यह बात अलग है कि परिवर्त्तन के पक्ष में दिया गया मत बँटा हुआ है और स्थायित्व चाहने वाले कम मत पाने के बावजूद भी संगठित हैं. लेकिन संगठन का यह अर्थ लगाना कि जनता स्थायित्व चाहती है ग़लत है. जनता प्रगति चाहती है, परिवर्त्तन चाहती है, गति चाहती है. अल्पमत वाला यदि संगठित है तो हो सकता है कि वह सत्ता में आ जाये, लेकिन वह चल नहीं पायेगा, क्यों कि घटनाएँ ऐसी घटित होंगी कि परिवर्त्तन के मत, जो आज बिखरे हैं, संगठित होंगे. ऐतिहासिक स्थिति उन्हें संगठित होने के लिए मजबूर करेगी. उत्तरप्रदेश, बिहार में तो यह स्थिति हो कर रहेगी.

तो क्या आप यह मानते हैं कि कांग्रेस को मंत्रिमंडल बनाने के लिए उत्तरप्रदेश और बिहार के राज्यपालों को नहीं बुलाना चाहिए था?

श्री सप्रू : ब्रिटेन की परंपरा यह रही है कि सम्राट वहाँ उसी दल को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करता है जिस की संख्या लोअर हाउस में अधिक होती है. इस दृष्टि से तो राज्यपालों ने ठीक ही किया है, लेकिन मैं समझता हूँ कि केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है, क्यों कि आज से कई वर्षों पहले तक मैं यह समझता था कि ब्रिटिश पद्धति प्रजातंत्र के क्षेत्र में एक अंतिम उपलब्धि है, जिस से अधिक अच्छी पद्धति विकसित करना वर्त्तमान मानव-बुद्धि द्वारा संभव नहीं है. लेकिन मेरा यह भरम भी धीरे-धीरे टूट रहा है. मुझे लगता है कि ब्रिटिश पद्धति भारतीय प्रकृति के अनुकूल नहीं है. किसी भी देश का संविधान उस देश की जनता के जीवन और उस की प्रकृति को प्रतिबिंबित करता है. वर्त्तमान स्थितियों को देखते हुए हमें ऐसा लगता है कि जब तक हम अपने संविधान पर इस दृष्टि से पुनर्विचार नहीं करेंगे और आवश्यक परिवर्त्तन संविधान में नहीं लायेंगे तब तक यह विसंगतियाँ दूर नहीं होंगी. इस प्रकार के चिंतन की आवश्यकता है, क्यों कि मुझे ऐसा लगता है कि राजनैतिक दलों का बाहुल्य हमारे देश में रहेगा. इस को मिटाया नहीं जा सकता.

लेकिन क्या आप उस परिवर्त्तन की ओर भी संकेत कर सकते हैं? आखिर उस परिवर्त्तन का रूप क्या होगा?

श्री सप्रू : मैं समझता हूँ कि कुछ संशोधन-परिवर्त्तन के साथ अमेरिकन प्रेज़ीडेंशल पद्धति का रूप ही हमारे देश की प्रकृति के अनुकूल होगा. विशेषकर सत्ता के विभाजन के साथ, कुछ रोक और संतुलन के साथ अदालतों को सर्वोच्च स्थान दे कर ही यह स्थिति लायी जा सकती है. मैं अंतिम रूप से यह नहीं कह सकता कि यही रूप होना चाहिए, लेकिन जिस प्रकार मैं इस समस्या पर खुले दिमाग़ से सोच रहा हूँ उसी प्रकार इस दिशा में चिंतन की आवश्यकता है.

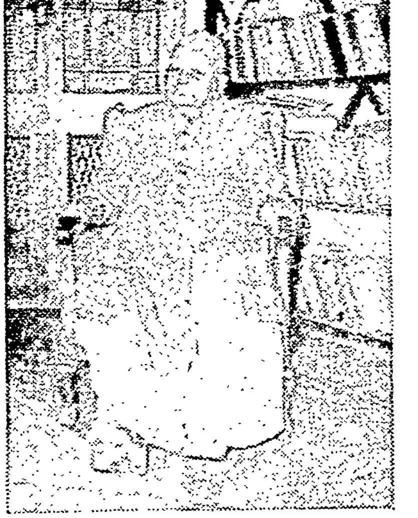

प्रकाशनारायण सप्रू : कौन सुनेगा ?

वर्त्तमान संवैधानिक संकट का एक रूप बंगाल और केरल में केंद्र और प्रादेशिक स्वतंत्रता को ले कर उठ खड़ा हुआ है; विशेषकर गवर्नरों की नियुक्ति की समस्या बंगाल में तीव्र रूप में उभर कर आयी है. इस संबंध में आप की क्या राय है?

श्री सप्रू : इस संबंध में मैंने अभी कहा है कि कुछ अर्द्धसंघ के रूप में देशों और केंद्र के संबंध होने चाहिए, लेकिन इस महासंघ का मूलाधार "यूनिटरी बायस" होना अनिवार्य है. राज्यपाल को केंद्र के एजेंट के रूप में इस्तेमाल करना विसंगत है. वर्त्तमान दशा में राज्यपालों का जो रूप सामने आ रहा है वह यूनियन गवर्नमेंट के निहित हितों और स्वार्थों के रक्षक रूप में ही अधिक उभर रहा है. यह उचित नहीं है. यह नितांत आवश्यक है कि राज्यपालों की नियुक्तियाँ यदि प्रादेशिक सलाह से न की जायें तो कम से कम प्रादेशिक मुख्यमंत्रियों से परामर्श ले कर करना ही संगत होगा. प्रादेशिक स्वायत्तता और स्वतंत्रता की मर्यादा और रक्षा के लिए यह नितांत आवश्यक है.

अभी हाल में जो कैबिनेट में परिवर्त्तन हुए हैं इस पर आप के क्या विचार हैं?

श्री सप्रू : कोई ख़ास प्रतिक्रिया नहीं है. ये परिवर्त्तन कोई बड़े महत्त्व के नहीं हैं.

भारत की विदेश-नीति से क्या आप संतुष्ट हैं?

श्री सप्रू : किसी भी देश की विदेश-नीति उस की राष्ट्रीय नीति पर आधारित होती है. हमारी विदेश-नीति में इस दृष्टि से काफ़ी कमियाँ हैं. इस में काफ़ी चिंतन और परिवर्त्तन की आवश्यकता है. राजदूतों की नियुक्तियों में भी सावधानी की आवश्यकता है. हमारे यहाँ विदेशमंत्रालय को तो महत्त्वपूर्ण बनाया गया है लेकिन नीतियों की ओर ध्यान कम दिया गया है. यह नीतियाँ अधिक यथार्थवादी होनी चाहिए. हमें यह जानना चाहिए कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हमारी कोई शक्ति नहीं है. यदि कोई भी शक्ति हमारे पास हो सकती है तो वह नैतिक ही शक्ति हो सकती है. यदि हमारी विदेश-नीति इस मोटे तथ्य को स्वीकार कर के

चले तो देश की कोई वास्तविक विदेश-नीति बन सकती है.

हमारी यथास्थितिवादी नीति में विश्वास रखने वाली प्रधानमंत्री ने बार-बार इस बात को दोहराया है कि वह अपने पिता की विदेश-नीति को ही यथावत् चलायेगी. क्या आप इस से सहमत हैं, विशेषकर तटस्थता की नीति से ?

श्री सप्रू : बुनियादी तौर पर जवाहरलाल नेहरू की 'नॉन अलाइनमेंट नीति' में कोई खराबी नही थी, लेकिन गडबड़ी यह हुई कि तटस्थता की इस नीति को निभाने की नैतिक शक्ति का भी प्रदर्शन हम नही कर पाये. मैं नही चाहता कि भारत किसी भी देश का उपग्रह बन कर रहे, चाहे वह देश रूस हो अथवा अमेरिका. आज अपनी वह तटस्थता हम सुरक्षित नही रख पा रहे हैं. ऐसी स्थिति में अपनी विदेश-नीति में भी हमे पुनर्विचार करने की आवश्यकता है.

हमारी विदेश-नीति का जो भी रूप होगा उस में पड़ोसी देशो के संबंध विशेषकर पाकिस्तान और चीन के प्रति क्या दृष्टि-कोण हो इस का बडा हाथ रहेगा. यह देखते हुए भी क्या कोई बुनियादी परिवर्त्तन संभव है ?

श्री सप्रू : जहाँ तक चीन का संबंध है मैं चीन के साथ समझौता और शाति का समर्थक हूँ. मैं चाहता हूँ कि चीन से बातचीत शुरु करनी चाहिए और जो भी मामले भारत और चीन के बीच हैं वह सुलझने चाहिए और इस दिशा में पहला काम यह होना चाहिए कि दोनों देशों में राजदूतों द्वारा राजनैतिक संबंध स्थापित करने चाहिए. साथ ही एक शिखर सम्मेलन दोनों देशो मे होना चाहिए.

लेकिन जब तक चीन हमारे देश के हजारों वर्गमील जमीन को दबाये है तब तक यह वार्त्ता कैसे संभव हो सकती है ?

श्री सप्रू : राजनीति मे कभी-कभी ऐसा करना पडता है. स्थितियो को भावुकता के आधार पर न ग्रहण कर यथार्थवादी दृष्टि से लेना चाहिए.

पाकिस्तान के वर्त्तमान उथलपुथल के बीच जो मुख्य स्वर भुट्टो का उभर कर आया उस से लगता है कि पाकिस्तान अपनी चीन की मित्रता को बनाये रखेगा. कही आप की चीन से संवाद वाली बात इस की प्रतिक्रिया से तो नही प्रभावित है ?

श्री सप्रू : नही. चीन से संवाद शुरु करने वाली बात का संबंध भुट्टो की कथनी से नही संबंधित है. भुट्टो के विषय मे निश्चित रूप में तो कुछ नही कहा जा सकता. पाकिस्तान की स्थिति ऐसी नही है कि वह केवल चीन से मैत्री कर के चल पड़े. पाकिस्तान मे जो कुछ हो रहा है उस से भी हमें विशेष रूप से नही प्रभावित होना है, लेकिन चीन के प्रति नयी नीति आवश्यक है.

चरचे और चरखे

अनशन का रास्ता

रूसी लेखक **यूरी डेनियल** ने, जो आज कल क़ैदखाने में है, सात अन्य बंदियों के साथ मिल कर अनशन शुरू कर दिया है. अनशन का उद्देश्य राजनैतिक बंदी का दर्जा प्राप्त करना है. अभी तक वह साधारण अपराधी के वर्ग में सजा भोग रहे है. यूरी डेनियल मॉस्को के २५० मील दक्षिण पूर्व में पोटमा लेबर कैंप में क़ैदी है. उन के साथ **एलेक्जेंडर गिंसबर्ग** और **यूरी गैलेंसकोफ़** भी भूख-हड़ताल पर हैं. इन लेखकों को पिछले वर्ष जनवरी में कैद किया गया था. यूरी डेनियल और सिन्यावस्की पर यह आरोप था कि उन्होने अपनी कृतियाँ चोरी-छिपे पश्चिमी देशों में प्रकाशित करायी. कहा जाता है कि इस लेबर कैंप में इन दोनों लेखकों पर अमानुषिक व्यवहार किया जा रहा है. इन में से एक बहरा हो गया है, क्यों कि उसे बिना श्रवण-रक्षा का यंत्र कानो में लगाए भयानक शोर करती मशीन के सामने काम करना पडता है. इस लेबर कैंप में कोई १५००० बंदी हैं, जिन में कई सौ विदेशी है. मॉस्को में प्राप्त विश्वसनीय सूत्रों के हवाले से पता चला है कि उन के अनशन का कारण लेनिनग्राद से आये रोनकिन नाम का एक इंजीनियर है. एक सुबह हाजिरी के वक़्त उसने अपने को राजनैतिक बंदी कहे जाने का आग्रह किया, जैसा कि नियमानुसार किया जाना चाहिए था. फलस्वरूप उसे सजा दी गयी और उसे अपने एक संबंधी से मिलने नही दिया गया. रोनकिन को १९६५ में ७ वर्ष की सज़ा दी गयी है, क्यों कि उस ने एक पत्रिका में एक समीक्षा प्रकाशित की थी. परिवर्त्तन के लिए चाहे वह सामाजिक हो या राजनैतिक हिंसा का अनुसरण करने वाली सरकार क्या इन लेखकों के अहिंसक साधनों का महत्त्व पहचान सकेगी ?

सार्त्र का नया नाटक

फ़्रांसीसी लेखक ज्याँ पाल सार्त्र ने एक नया नाटक लिखा है, जिस में रूस और अमेरिका, दो शक्तिशाली गुटो की राजनीति की निंदा की गयी है. यह नाटक हाल ही में पेरिस थियेटर में प्रस्तुत किया गया. फ्रांस के सर्वश्रेष्ठ अभिनेताओं और अभिनेत्रियों ने इस नाटक में काम किया नाटक पहले सिनेरियो के रूप में लिखा गया और फिर पुस्तिका के रूप में. बाद मे इसे रंगमंच का नाटक बनाया गया. 'ला इंग्रिनेज' नाम का यह नाटक पिरेंडलो रचित प्रसिद्ध नाटक "क्या चरित्र नाटककार की खोज में हैं" और शेक्सपीयर का 'मच एडू अबाउट नथिंग' के साथ दिखाया जा रहा है. शांति का नाटक करने वाले गुटों को शायद सार्त्र का यह नाटक पसंद न आए.

लड़ाकू विद्यार्थियों के लिए

फ़्रांस के विद्यार्थी नेता **डेनियल कोहन बेंदि** ने, जो दो महीने से इंग्लैंड में शांति का और कुछ लोगों के शब्दों में निष्क्रियता का जीवन बिता रहे है, ब्रिटेन के लड़ाकू विद्यार्थियों के लिए एक पुस्तिका प्रकाशित की है. 'स्टूडेंट पावर' (विद्यार्थी-शक्ति) नाम की इस पुस्तिका में अंत में एक चौथाई हिस्सा बेंदि का लिखा हुआ है. अन्य तीन प्रमुख लेखक हैं:—रोबिन ब्लेकबर्न, डेविड ट्रेसमैन और फ़्रेड हैलिडे. संवाददाताओं द्वारा यह पूछे जाने पर कि क्या वह आशा करते है कि यह पुस्तक लडाकू विद्यार्थियों के लिए 'बाइबल' सिद्ध होगी ? बेंदि ने जवाब दिया "आप के सोचने का ढंग गलत है. हम ऐसी कोई आशा नही करते. हमारे पास कोई बाइबल नही हे. आपने गलत शब्द सीख लिया है.'

हैदराबाद के आबिद रोड के बीच चार महीने से यह मूर्त्ति बुर्क़ा ओढ़े खड़ी है. मूर्ति जवाहरलाल नेहरू की है, हाथ में शांति कपोत है. अनावरण के लिए उचित अवसर की तलाश है, किसे और क्यों ?

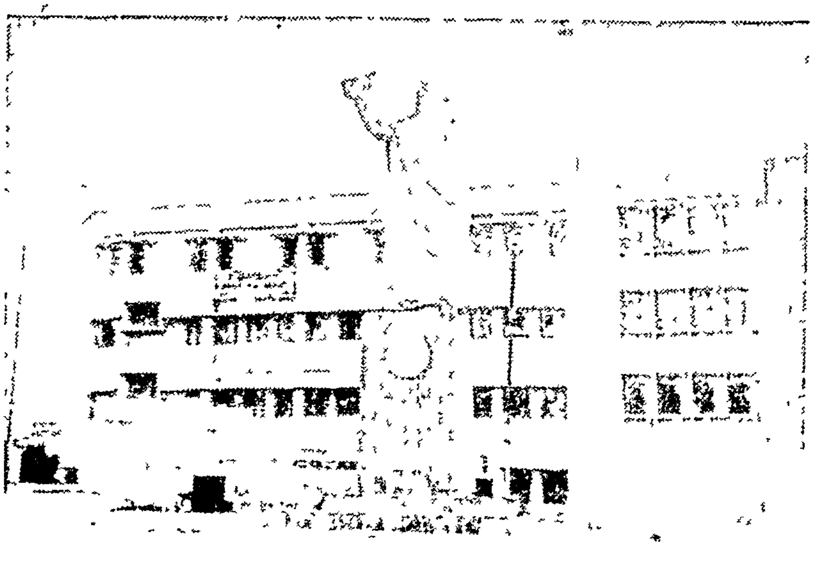

मध्यप्रदेश : तीसरे दौर की राजनीति

चौथे आम चुनाव के वाद मध्यप्रदेश ने तीसरे दौर में प्रवेश किया है. तीसरे दौर के मुख्यमंत्री श्यामाचरण शुक्ल ने पहले दौर के नेता द्वारिकाप्रसाद मिश्र के उम्मीदवार कुंजीलाल दुबे को पराजित कर मध्यप्रदेश का काँटों का सिंहासन प्राप्त किया है. अगर उन का चुनाव सर्वसम्मति से हुआ होता तो कांग्रेस के भीतर दोनों गुटों में सद्भावना की अधिक गुंजाइश थी. लेकिन पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने, जो कि महाभारत के व्याख्याता भी हैं, 'विना लड़े एक इंच ज़मीन नहीं दूंगा' की नीति को दुहराते हुए अपने उत्तराधिकारी श्री श्यामाचरण शुक्ल को मध्यप्रदेश का 'मिनी महाभारत' लड़ने को विवश किया. मुख्य रूप से छत्तीसगढ़ के विधायकों और पंडित द्वारिकाप्रसाद मिश्र के विरोधियों का समर्थन प्राप्त कर मध्यप्रदेश के पहले मुख्यमंत्री स्वर्गीय रविशंकर शुक्ल के सुपुत्र श्यामाचरण शुक्ल ने अपने पिता की सरकार के सारथी श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र का व्यूह भेद दिया और अंततः वह पद प्राप्त कर लिया जिस के लिए कांग्रेस हाई कमांड के दफ़्तर में उन की अर्ज़ी १९६७ से ही पड़ी हुई थी.

मध्यप्रदेश की राजनीति अव तक वुनियादी तौर पर प्रतिहिंसा की राजनीति रही है. इस राजनीति के सूत्रधार श्री गोविंद नारायण सिंह रहे हैं जिन्होंने प्रतिहिंसा में पहली वार श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र को तख़्त से उतरने पर मजबूर किया और दूसरी वार खुद सिंहासन से उतर कर राजमाता के साम्राज्य को पूरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया. श्री गोविंदनारायण सिंह को जितना संहार करना था कर चुके और अब उन के चेहरे पर वहुत हद तक संतोष की छाप है. यह मानने के कारण हैं कि अभी काफ़ी अर्से तक वह कांग्रेस की और प्रदेश की राजनीति से उदासीन रहेंगे क्यों कि इसी में उन का और उन के सहयोगियों का हित है. जनमत के वीच उन की जड़ें गहरी नहीं हैं. अव यह प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए उन्हें काफ़ी दिनों तक तपस्या करनी पड़ेगी और मौन रहना पड़ेगा. अनुभवी और अभ्यस्त होने के नाते श्री गोविंद नारायण सिंह इस कौशल को जानते हैं.

इन हालतों में श्री श्यामाचरण शुक्ल को श्री गोविंदनारायण सिंह से फ़िलहाल कोई आशंका नहीं है. लेकिन श्री श्यामाचरण शुक्ल को कांग्रेस के दूसरे शिविर से वरावर आशंका वनी रहेगी. अभी ही यह शिविर इस वात का आग्रह कर रहा है कि श्री श्यामाचरण शुक्ल की स्थिति को अस्थायी माना जाये. यानी अगर श्री द्वारिकाप्रसाद अदालती फ़ैसले के ज़रिये चुनाव में 'भ्रष्टाचार' के आरोप से वरी कर दिये जायें तो उन को फिर से नेता वनाया जाये. जहाँ तक श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र का प्रश्न है वह एक से अधिक वार यह घोषणा कर चुके हैं कि वह प्रदेश की राजनीति से मुक्त हो कर संसद् सदस्य वनना चाहते हैं. श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र की इस घोषणा से यह मान लेना कि वह प्रदेश की राजनीति से थक चुके हैं, ग़लत होगा. श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र उन लोगों में से हैं जो कि कभी संन्यास नहीं लेते—हमेशा 'आग और ईंधन' जुटाते हैं. 'यावज्जीवेताग्निहोत्रं जुहोति:'. अगर वह संसद् में चले भी गये तव भी उन की दिलचस्पी मध्यप्रदेश विधानसभा में वनी रहेगी. इस दिलचस्पी का वना रहना स्वाभाविक ही है.

श्री श्यामाचरण शुक्ल में संकट से जूझ सकने की क्षमता है या नहीं, इस की परीक्षा आने वाले दिनों में होगी. वह अव तक के सभी मुख्यमंत्रियों में सव से युवा हैं. वह कितने दिन मुख्यमंत्री वने रहते हैं यह वहुत कुछ इस वात पर निर्भर करेगा कि वह कांग्रेस के भीतरी अंतर्विरोधों को किस तरह सुलझाते हैं. कांग्रेस के भीतर जो स्पष्ट गुटवंदियाँ हैं, अगर श्री श्यामाचरण शुक्ल का व्यक्तित्व उन्हें सुलझा नहीं पाता तो मध्यप्रदेश में चौथे दौर की शुरुआत निश्चित है. यह समूचे मध्यप्रदेश के लिए दुर्भाग्य की वात होगी. श्री रविशंकर शुक्ल के निधन के समय से ही मध्यप्रदेश में अव तक एक भी सरकार ऐसी नहीं आयी जिसे कि वेदाग़ कहा जा सके. अव तक जितनी भी सरकारें वनीं उन में से अधिकतर, वल्कि सभी, वहुत हद तक भ्रष्ट, असंतुलित और अवयस्क रही हैं. श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र ने अपने शासन काल में भ्रष्टाचार को समाप्त करने का प्रयत्न ज़रूर किया. लेकिन उन्होंने पाया कि उन की कोशिशों के वावजूद भ्रष्टाचार घटने के वजाय वढ़ गया. सारा मध्यप्रदेश 'संविद शासनकाल' में एक ऐसी अंधेर नगरी में वदल गया जिस पर सामंत, सूवेदार, और पुलिस शासन करने लगी. इस सारी शासन प्रणाली को ठीक करने की ज़िम्मेदारी भी मध्यप्रदेश के तीसरे दौर के मुख्यमंत्री पर है. यानी कि शासन प्रणाली में जो गड़वड़ियाँ पहले दौर में थीं उन्हें भी सुधारना होगा और उस में जो विष दूसरे दौर में प्रवेश कर गया उसे भी समाप्त करना होगा. मध्यप्रदेश एक ग़रीव लेकिन विकास की ओर वढ़ता हुआ सूवा है. एक भी योग्य नेता के प्रयत्न से सारे का सारा प्रदेश एक खुशहाल और शांत इलाक़े में वदल सकता है.

दिनमान
समाचार साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — ३० मार्च, १९६९
अंक १३ — ९ चैत्र, १८९१

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट ११

*

मत और सम्मत ३
पत्रकार-संसद् ५
पिछला सप्ताह ८
चरचे और चरख़े १०

*

राष्ट्रीय समाचार १३
प्रदेशों के समाचार १७
विश्व के समाचार ३१
समाचार-भूमि : नेपाल २८
खेल और खिलाड़ी : हाकी वर्ल्ड कप; मिनी ओलिंपिक; एथलेटिक २६

*

प्रेस-जगत् : लोकतंत्र समीक्षा ६
लंदन की चिट्ठी ७
भेंट-वार्ता : प्रकाशनारायण सप्रू ९
परिवहन : कनकोर्ड २२
आधुनिक जीवन : दुर्घटनाएँ २४
साक्षात्कार : विजयदेव नारायण साही; वालकृष्ण राव; विमल मित्र; बुद्धदेव वसु ३५
किताबें ३७
संगीत : सातवाँ शंकरलाल संगीत समारोह ३८
रंगमंच : चिड़ियों की एक झालर ३९
कला : विनोद विहारी मुखर्जी; हरिदासन, सूर्यप्रकाश, लक्ष्मा गौड़ ४०

*

आवरण चित्र : ब्रेजनोव, माओ और निक्सन

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, वहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

राज्य और केंद्र भाई-भाई !

जैसे-जैसे देश १९७२ के आम चुनाव की ओर उन्मुख होता जा रहा है वैसे-वैसे केंद्र और राज्य के संबंधों में परिवर्तन आता जा रहा है. वैसे १९६७ में सात राज्यों में कांग्रेस की पराजय के बाद ही प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने केंद्र और राज्य के संबंधों में सुधार की ओर इशारा किया था. मगर कार्यरूप में सुधार की बजाय बिगाड़ अधिक हुआ. १९६९ के मध्यावधि चुनाव के बाद प्रधानमंत्री ने केंद्र और राज्य के संबंध में अपनी राय को ज्यादा वज़न के साथ रखा और उन को अप्रत्याशित क्षेत्र में समर्थन मिला. कामराज ने, जो कि एक अर्से से उन से नाराज़ हैं, इस संबंध में उन का समर्थन किया और प्रदेशों को और अधिक 'स्वायत्तता' देने की माँग की.

जिस समय कांग्रेस हाई कमांड के ज्यादातर कर्णधार ग़ैर-कांग्रेसी सूबों को ले कर क्षुब्ध हैं, उस समय, प्रधानमंत्री की ओर से यह शुरुआत क्यों हुई है ? क्या प्रधानमंत्री ने यह शुरुआत १९७२ को दृष्टि में रख कर ही की है? प्रधानमंत्री के अहलकारों ने बंगाल में मार्क्सवादियों और तमिलनाडु में द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के साथ नया संबंध बनाने की उत्सुकता दिखायी है. पिछले दिनों मद्रास के मुख्यमंत्री करुणानिधि के दिल्ली-आगमन पर उन का जोरदार स्वागत किया गया जो कि कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों के लिए एक दुर्लभ चीज़ है. श्री करुणानिधि के स्वागत-समारोहों में लोकसभा के अध्यक्ष के अतिरिक्त सभी प्रमुख केंद्रीय मंत्री उपस्थित थे. प्रधानमंत्री से उन की बातचीत के विषय में कहा गया कि सारी बातचीत अत्यंत सद्भावना के वातावरण में हुई है. प्रधानमंत्री ने अपनी सद्भावना का परिचय पश्चिम बंगाल के साथ भी दिया है. पश्चिम बंगाल पर उन का विशेष अनुग्रह है जो कि केवल इस एक बात से स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिम बंगाल के राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में उन्होंने अतिशय उदारता से काम लिया. एक तरह से उन्होंने राज्यपाल की नियुक्ति का प्रश्न संयुक्त मोर्चे पर छोड़ दिया. अंत में दोनों पक्षों को मान्य नाम स्वीकार किया गया. ब्रिटेन में भारत के उच्चायुक्त श्री धवन को, जिन्हें कि पश्चिम बंगाल का राज्यपाल नियुक्त किया जा रहा है, ख्याति 'साम्राज्य-विरोधी बुद्धिजीवी' के रूप में रही है. श्री धवन की नियुक्ति से संयुक्त मोर्चे को कोई विशेष अड़चन नहीं होगी—एक तो इस लिए कि वह उन की गतिविधियों के प्रति हमेशा ही विरोधी रवैया नहीं अपनायेंगे और दूसरे इस लिए कि वह, गृहमंत्री के नहीं, प्रधानमंत्री के विश्वासपात्र हैं. श्री धवन का अधिकतर कार्य-जीवन प्रयाग में बीता है जहाँ उन्हें नेहरू परिवार की सद्भावना शुरू से प्राप्त रही.

जब से पश्चिमी बंगाल में संयुक्त मोर्चे की सरकार बनी है उन की ओर से प्रधानमंत्री के विरुद्ध कोई बात नहीं कही गयी है बल्कि धर्मवीर के मामले में मार्क्सवादियों ने उप-प्रधानमंत्री और गृहमंत्री को ले कर जितना भी रोष प्रदर्शित किया हो, श्रीमती गांधी के संबंध में उन्होंने मौन ही रखना पसंद किया. पिछले हफ़्ते भी संयुक्त मोर्चे ने वित्त के संबंध में अपना गुस्सा समग्र केंद्र पर नहीं बल्कि उपप्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई पर उतारा. उन की उत्तेजना का कारण यह था कि श्री मोरारजी देसाई ने संसद् में यह सुझाव मानने से इनकार कर दिया था कि वित्तीय सत्ताएँ राज्यों के हाथ में दे दी जायें. इस पर झुंझला कर पश्चिम बंगाल के उपमुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु ने कहा कि 'मोरारजी देसाई कौन होते हैं ?' बंगाल के योजनामंत्री सोमनाथ लाहिड़ी ने अपने उपमुख्यमंत्री से भी एक क़दम आगे जा कर कहा कि "हम ने श्री देसाई से सत्ता नहीं माँगी थी. हम मोरारजी भाई को सत्ताहीन कर देंगे." मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने पिछले हफ़्ते केंद्र के संबंध में जो कुछ कहा है उस से भी उन के रवैये का पता चलता है. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी ने यह आशंका व्यक्त की है कि केंद्र में अगले चुनाव के बाद मिली-जुली सरकार की स्थापना अनिवार्य हो जायेगी. वैसी हालत में हम को यह सोचना पड़ेगा कि हम किस के साथ हैं. बहुत हद तक सब कुछ इस पर निर्भर करेगा कि केंद्र में किस का नेतृत्व होता है. वामपंथी पार्टियों की यह विशेषता रही है कि वे कांग्रेस को विभक्त कर देखते रहे हैं. कम्युनिस्ट पार्टी की निगाह में श्री नेहरू 'प्रगतिशील' थे और उन के विरोधी या कि वे जो कि उन के समर्थक नहीं थे, 'प्रतिक्रियावादी' थे. मार्क्सवादियों ने भी अपने लिए कुछ इसी तरह का व्यूह तैयार किया है. श्रीमती इंदिरा गांधी को वे 'प्रगतिशील' मानते हैं और श्री मोरारजी देसाई और उन के सहयोगियों को 'प्रतिक्रियावादी'. कांग्रेस की भीतरी राजनीति की जो स्थिति है उस में श्रीमती गांधी के लिए इस से अनुकूल परिस्थिति और क्या हो सकती है. बंगाल की मार्क्सवादी पार्टी एक बढ़ रही पार्टी है और अगर श्रीमती गांधी को उन का नैतिक या अन्य किसी तरह का समर्थन प्राप्त होता है तो कांग्रेस में उन की स्थिति निश्चय ही मजबूत होगी. प्रधानमंत्री के समर्थकों ने पश्चिम बंगाल में अकारण ही दिलचस्पी नहीं दिखायी है. यह भी आकस्मिक नहीं है कि आकाशवाणी के इस्तेमाल को ले कर केंद्र और संयुक्त मोर्चे के बीच जो झगड़ा पिछले वर्षों में चल रहा था उसे समाप्त करने में सूचना और प्रसारणमंत्री सत्यनारायण सिंह विशेष रुचि ले रहे हैं. अपने मंत्रालय की अनौपचारिक सलाहकार समिति में उन्होंने कहा कि अगर पश्चिम बंगाल के मंत्री आकाशवाणी का इस्तेमाल करना चाहते हैं तो उन का स्वागत है—यह ज़रूर है कि आकाशवाणी की अपनी सीमाएँ हैं; उस के भीतर ही उन को प्रसारण करना होगा.

केंद्र में मिली-जुली सरकार बनाने के संबंध में कांग्रेस के भीतर भी विवाद चल रहा है. कम-से-कम दो व्याख्याकारों ने इस संबंध में अपनी राय जनता के सामने रखी है. ये दो व्याख्याकार हैं श्री सदाशिव पाटील और श्री सुब्रह्मण्यम्. जहाँ तक श्री पाटील का प्रश्न है वह बहुत पहले ही यह बात साफ़-साफ़ कह चुके हैं कि कांग्रेस को दक्षिणपंथी पार्टियों के साथ सहयोग करना चाहिए. श्री सुब्रह्मण्यम् ने इस संबंध में तीन विभिन्न पार्टियों का नाम लिया है जिन का झुकाव तीन विभिन्न दिशाओं में है. उन्होंने कहा है कि कांग्रेस की समानधर्मा पार्टियाँ हैं—संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, प्रजा समाजवादी पार्टी और जनसंघ. दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के विषय में उन्होंने कहा कि जब तक यह पार्टी अपनी नीतियों में अनुकूल परिवर्तन नहीं करती और विदेशी प्रभाव से अपने को मुक्त नहीं करती तब तक उसे कांग्रेस के नज़दीक नहीं माना जा सकता.

अलग-अलग नेताओं के मन में अलग-अलग तस्वीरें हैं और यह स्पष्ट नहीं है कि अगर १९७२ में या उस के पहले केंद्र में मिली-जुली सरकार बनी तो किन पार्टियों को कांग्रेस समानधर्मा मानेगी. सब कुछ मुख्य नेता पर निर्भर करेगा. लेकिन एक चीज़ स्पष्ट है कि अब कांग्रेस अपनी भुजाएँ बहुत-सी दिशाओं में फैला रही है और जो भी उस की पकड़ में आ जायेगा वह उस का निश्चय आलिंगन करेगी.

केंद्र और राज्यों, विशेष रूप से ग़ैर-कांग्रेसी राज्यों, के बीच संबंध सुधारने की दिशा में जो सरगर्मी आयी है वह कांग्रेस की अंदरूनी राजनीति का ही प्रतिफलन है. अगर कांग्रेस के भीतर फूट न होती तो शायद राज्यों के साथ इतने अधिक सहयोग की उत्सुकता न दिखायी जाती और ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों के एक अर्से तक विरोधी श्री कामराज को यह कहने के लिए विवश न होना पड़ता कि राज्यों को और अधिक स्वायत्तता दी जानी चाहिए.

स्वायत्तता का अर्थ अब तक राज्यों के संदर्भ में अस्पष्ट है. किस तरह की स्वायत्तता और किस तरह की छूट ? और किस सीमा तक ? किंतु इन सारे प्रश्नों पर ही भारत की राजनैतिक एकता निर्भर करेगी. केंद्र और राज्यों के बीच जो भी तनाव है उन को दूर करना केंद्रीय नेता अब आवश्यक मानने लगे हैं. लेकिन उस के साथ ही साथ इस बात की भी आशंका है कि राज्यों को इतनी अधिक स्वायत्तता न मिल जाये कि वे स्वतंत्र राज्यों की तरह व्यवहार करने लगें. अभी ही कतिपय मुख्यमंत्री और उपमुख्यमंत्री अपने को स्वतंत्र राज्य के नेताओं से कम नहीं मानते हैं. जो भी हो, केंद्र और राज्य भाई-भाई का युग शुरू हो चुका है. —विशेष संवाददाता

राष्ट्र

लेखक की तलाश में नाटक के पात्र

मध्यप्रदेश के एकांकी और एकांगी नाटक के लेखक द्वारकाप्रसाद मिश्र के नेपथ्य में चले जाने से मध्यप्रदेश के रंगमंच पर अराजकता पैदा हो गयी और बेतरतीब और बदहवास नाटक के पात्र स्वयं को अर्थ देने के लिए किसी और लेखक की तलाश में लग गये. अगर श्री द्वारकाप्रसाद ने मुख्यमंत्री के चुनाव से स्वेच्छा से मुक्ति न पा ली होती तो कांग्रेस हाई कमांड उन पर दबाव डाल कर उन्हें मुख्यमंत्री बनाने से रोकता. जैसे ही यह तय हुआ कि मध्यप्रदेश में कांग्रेस की सरकार बने कांग्रेस हाई कमांड की समस्या सुलझने की बजाय उलझ गयी. हाई कोर्ट ने अपने एक निर्णय के ज़रिये कृष्णायन के रचयिता पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र को विधानसभा की सदस्यता के लिए एक हद तक अयोग्य क़रार दे दिया था. हाई कोर्ट के फ़ैसले के विषय में श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र और हाई कमांड के बीच मतभेद था. श्री मिश्र का दावा था कि उन को विधानसभा की कार्रवाई में हिस्सा लेने से पूरी तरह मना नहीं किया गया है जब कि हाई कमांड के अधिकतर सदस्यों का मत था कि फ़ैसले की क़ानूनी परिणतियों के मुताबिक पंडित मिश्र मुख्यमंत्री नहीं बन सकते. केंद्र सरकार ने इस संबंध में अटार्नी जनरल की राय माँगी और केंद्र सरकार तथा कांग्रेसी नेताओं दोनों को विधि-विशेषज्ञों की ओर से यह सलाह प्राप्त हुई कि श्री मिश्र को मुख्यमंत्री नहीं बनाया जा सकता.

क़ानूनी अड़चनों के अलावा श्री मिश्र के मुख्यमंत्री बनाये जाने के विरुद्ध पर्याप्त जनमत था. हाई कमांड का यह मत था कि हाई कोर्ट के फ़ैसले के संदर्भ में श्री मिश्र का मुख्यमंत्री बनना नैतिक दृष्टि से ग़लत होगा. समाचारपत्रों और राजनैतिक पार्टियों ने मिश्र जी के मुख्यमंत्री बनाये जाने के प्रस्ताव का विरोध किया. हाई कमांड में श्री मिश्र का सब से अधिक विरोध श्री मोरारजी देसाई ने किया जिन से कि श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र की बातचीत टेलीफ़ोन पर भी हुई. हाई कमांड का बहुमत शुरू से ही श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र के विरुद्ध रहा है और केवल श्रीमती इंदिरा गांधी हाई कमांड में उन का समर्थन करती रहीं. इस बार जब उन्हें मुख्यमंत्री बनाने का मौक़ा आया तब श्रीमती गांधी ने भी विशेष दिलचस्पी नहीं दिखायी. बिहार मंत्रिमंडल में रामगढ़ के राजा को शामिल किये जाने की इजाज़त दे कर कांग्रेस-अध्यक्ष पहले ही अपने लिए पर्याप्त अपयश मोल ले चुके थे इस लिए वह पंडित द्वारकाप्रसाद मिश्र का समर्थन करने को तैयार नहीं थे यद्यपि उन की यह धारणा थी कि वर्तमान परिस्थितियों में मध्यप्रदेश में कांग्रेस नेतृत्व किसी अनुभवी आदमी के हाथों होना चाहिए. इसमें कोई शक नहीं कि पंडित मिश्र अनुभवी आदमी हैं और मध्यप्रदेश की रग-रग से वाकिफ़ हैं लेकिन न केवल कांग्रेस के बाहर बल्कि दल के भीतर भी वह विवादास्पद व्यक्ति हैं और हाई कमांड को इस बात की पूरी आशंका थी कि यदि श्री मिश्र मुख्यमंत्री बनते हैं तो यह बहुत संभव है कि कांग्रेस की सरकार बहुत दिनों तक नहीं चल पाये.

कांग्रेस हाई कमांड की इच्छा को समझ कर अपने विषय में अंतिम निर्णय लिये जाने के पहले ही श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र ने कांग्रेस हाई कमांड को अपनी इस इच्छा से परिचित करा दिया कि मैं नेता के पद से हट रहा हूँ और मेरी जगह किसी और को नेता चुना जाये. मध्यप्रदेश की लालसाग्रस्त कांग्रेस

मिश्र : स्वेच्छा-मुक्ति की मजबूरी

में नेतृत्व के उम्मीदवारों की संख्या कभी कम नहीं रही. फ़िलहाल ४ महानुभावों ने मुख्यमंत्री बनने की इच्छा जाहिर की है : श्यामाचरण शुक्ल, शंभुनाथ शुक्ल, परमानंद पटेल और कुंजीलाल दुबे. इन में से दो, परमानंद पटेल और कुंजीलाल दुबे श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र के विश्वासपात्र हैं और श्री श्यामाचरण शुक्ल उन के सब से सक्रिय और मुखर विरोधी हैं. वैसे श्री शंभुनाथ शुक्ल तटस्थ व्यक्ति माने जाते हैं लेकिन उन की तटस्थता किसी भी ओर झुक सकती है इस लिए वह बहुत मानी नहीं रखती. चारों उम्मीदवारों में सब से महत्त्वाकांक्षी श्री श्यामाचरण शुक्ल ने दिल्ली आ कर अपने मामले की पैरवी भी की. वह प्रधानमंत्री और कांग्रेस-अध्यक्ष से मिले और उन्हें विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया कि कांग्रेस पार्टी उन के साथ है. लेकिन कांग्रेस हाई कमांड दो कारणों से उन से बहुत खुश नहीं है. एक तो यह कि उन के समर्थकों ने श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र के विरुद्ध हस्ताक्षर अभियान शुरू कर दिया और दूसरे यह कि हाई कोर्ट ने श्री मिश्र के विषय में जो निर्णय किया है उस में श्री श्यामाचरण शुक्ल का भी उल्लेख है. यह अलग बात है कि श्री श्यामाचरण शुक्ल वर्तमान स्थितियों में मुख्यमंत्री चुन लिये जायें लेकिन मध्यप्रदेश के हरिजन और आदिवासी सदस्यों ने किसी भी ब्राह्मण को मुख्यमंत्री बनाने के प्रस्ताव का विरोध किया है. इस सारी परिस्थिति को सुलझाने और नेता का चुनाव कराने के लिए हाई कमांड ने श्री जगजीवन राम को नियुक्त किया है जो कि पहले से ही मध्यप्रदेश की राजनीति में पूरी तरह से दिलचस्पी लेते रहे हैं. इतवार की शाम को श्रीमती इंदिरा गांधी ने हाई कमांड के सदस्यों को अपने निवास स्थान पर भेज दिया और उस में यह फ़ैसला लिया गया कि मध्यप्रदेश के नाटक का समापन श्री जगजीवन राम करें. श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र ने नेता की लड़ाई से अवकाश-ग्रहण कर लिया लेकिन यह करते हुए भी उन्होंने बहुत-से सवाल खड़े कर दिये. बहुत कम प्रदेश सामंत हैं जिन की चर्चा संसद् के दोनों सदनों में पिछले ३-४ वर्षों में बार-बार हुई है. श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र प्रदेश नेता हैं लेकिन उन पर बहस संसद् में होती है. राज्य-सभा और लोकसभा दोनों ही जगह श्री मिश्र को मुख्यमंत्री बनाये जाने के प्रस्ताव तथा उन के विषय में अटार्नी जनरल से माँगी गयी राय को ले कर गर्मागर्म बहस हुई. राज्यसभा में विरोधी सदस्यों ने जिन में से अधिकतर वामपंथी पार्टियों के थे, अटार्नी जनरल से सलाह माँगे जाने का विरोध किया. उन्होंने कहा कि मामला साफ़ है. श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र मुख्यमंत्री नहीं बनाये जा सकते. इस संबंध में अटार्नी जनरल की सलाह की कोई आवश्यकता नहीं है. राज्य सरकार अटार्नी जनरल की सलाह माँग कर दरअसल श्री मिश्र को मुख्यमंत्री की गद्दी पर बैठाना चाहती है. बहस के दौरान प्रजा समाजवादी पार्टी के श्री बंका बिहारी दास ने श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र को 'भ्रष्ट' कहा जिस पर अनेक कांग्रेसी सदस्यों ने आपत्ति की. कांग्रेस सदस्यों ने कहा कि श्री मिश्र ने हाई कोर्ट के फ़ैसले के विरुद्ध याचिका दी है और मामला अभी अदालत में है, अतः श्री मिश्र के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता. गृहमंत्री चव्हाण ने अपने उत्तर में कहा कि मध्यप्रदेश में वैधानिक व्यवस्था अभी टूटी नहीं है, इस लिए विरोधी पार्टियों

की यह माँग स्वीकार नहीं की जा सकती कि वहाँ राष्ट्रपति का शासन लागू किया जाये.

लोकसभा में भी श्री चव्हाण ने अपना यह तर्क दुहराया कि अटार्नी जनरल से सलाह लेने में कोई हर्ज नहीं है बल्कि इस से सारी स्थिति साफ़ करने में मदद मिलेगी. लोकसभा में इस सवाल पर क़रीब घंटे भर तक बहस होती रही. श्री चव्हाण ने कहा कि विरोधी सदस्य अटार्नी जनरल की सलाह से इतने डर क्यों गये हैं ? प्रजा समाजवादी पार्टी के श्री नाथ पै ने कहा कि हैरानी की बात है कि जिस व्यक्ति को राज्य के सर्वोच्च न्यायालय ने चुनाव में भ्रष्टाचार का दोषी ठहराया है उसे मुख्यमंत्री बनाने की कोशिश कर सरकार नैतिक और कानूनी अपराध कर रही है. जनसंघ के श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने समाचारपत्रों का हवाला देते हुए कहा कि श्री निजलिंगप्पा ने संवाददाताओं से कहा था कि कांग्रेस हाई कमांड मिश्र जी का मामला अटार्नी जनरल को भेज रही है. श्री वाजपेयी ने चुनौती दी कि कांग्रेस पार्टी को अपने भीतरी झगड़ों को सुलझाने के लिए सरकारी अफ़सरों का दुरुपयोग करने का क्या अधिकार है. संसपा के मधु लिमये और निर्दलीय श्री स० म० बनर्जी ने भी इस मामले में श्री वाजपेयी का समर्थन किया और सरकार पर आरोप लगाया कि वह अनैतिक और असंवैधानिक ढंग से सारे मामले से जूझ रही है. श्री लिमये ने कहा कि मैं यह मानता हूँ कि बिना सदन का सदस्य हुए कोई व्यक्ति मुख्यमंत्री हो सकता है तथा सदन की बहसों में बिना भाग लिये या मतदान का अधिकार न होने पर भी वह सदन का सदस्य हो सकता है (जैसा कि श्री मिश्र द्वारा प्राप्त स्थगन आदेश में बताया गया है) लेकिन वैसी हालत में उस व्यक्ति को आरोप मुक्त होना चाहिए. श्री मिश्र का मामला यह है कि उन को हाई कोर्ट ने चुनाव में भ्रष्टाचार का दोषी ठहराया है और तब भी उन को मुख्यमंत्री बनाने की कोशिश की जा रही है. श्री चव्हाण ने इस का कोई उत्तर नहीं दिया, केवल इतना कहा कि अटार्नी जनरल को मामला भेजने में कोई हर्ज नहीं है. उन्होंने यह जरूर स्पष्ट किया कि अटार्नी जनरल से सलाह सरकार ने माँगी है कांग्रेस संस्था ने नहीं. जब श्री नाथ पै ने यह कहा कि अटार्नी जनरल से सलाह माँगना नैतिक है या अनैतिक इस के बारे में आप किस से सलाह लेंगे तब श्री चव्हाण ने कहा कि मैं शंकराचार्य से सलाह नहीं लूंगा. गृहमंत्री ने इस सारे मामले पर कोई स्पष्ट आश्वासन नहीं दिया जब कि मधु लिमये तथा अन्य सदस्य यह चाहते थे कि वह समूचे कांड के संबंध में साफ़-साफ़ आश्वासन दें. इस पर लोकसभा के अध्यक्ष श्री संजीव रेड्डी ने कहा कि मैं मंत्री महोदय पर दबाव नहीं डाल सकता लेकिन यह जरूर है कि श्री मिश्र के मामले के कुछ नैतिक पहलू भी हैं.

स्कूटर-प्रकरण

गुप्तचरों के गुप्तचर

संसपा के श्री राजनारायण जासूसी उपन्यास नहीं पढ़ते—कम से कम जेम्स बांड तो नहीं ही पढ़ते लेकिन पिछले हफ़्ते उन्होंने जेम्स बांड को भी मात दे दी. एक टेप रेकार्डर लिये हुए वह राज्यसभा के प्रधान श्री वी. वी. गिरि से मिले और उन से सदन में टेप सुनाने की इजाज़त माँगी. श्री वी. वी. गिरी ने कहा कि राजनारायण, बेहतर हो आप टेप मुझे ही सुना दें, सदन की कार्यवाही में बाधा नहीं पड़नी चाहिए. इस पर श्री राजनारायण ने श्री गिरि को पूरा टेप सुनाया. टेप में एक मंत्री के निजी सहायक और उत्तरप्रदेश के एक व्यापारी श्री पी० एन० सिंह की बातचीत थी.

अध्यक्ष से इजाजत प्राप्त कर श्री राजनारायण ने सदन में इस टेप से संबंधित मामला पेश किया. उन्होंने आरोप लगाया कि एक केंद्रीय उपमंत्री के निजी सहायक और एक अवर सचिव के स्टेनोग्राफ़र ने श्री पी० एन० सिंह को औद्योगिक लाइसेंस संबंधी तथ्य बता कर उन से ६ सौ रुपये लिये. श्री राजनारायण ने यह भी आरोप लगाया कि असम के भूतपूर्व मंत्री श्री मोइनुल हक ने श्री पी० एन० सिंह को यह विश्वास दिलाया कि वह औद्योगिक विकासमंत्रालय से उन को स्कूटर बनाने का लाइसेंस दिला देंगे, और उन से ११ हज़ार रुपये लिये. श्री राजनारायण ने आरोप लगाया कि इस पैसे से मोइनुल हक औद्योगिक विकास मंत्री श्री फ़खरुद्दीनअली अहमद को हज कराने अजमेर ले गये. श्री अहमद पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाते हुए श्री राजनारायण ने उन से त्यागपत्र की माँग की.

राजनारायण के अनुसार मामला यह है कि श्री पी० एन० सिंह ने सस्ते दामों पर स्कूटर तैयार करने के लिए केंद्र सरकार से लाइसेंस माँगा था. इस योजना का समर्थन अनेक संसद् सदस्यों ने किया था और श्री पी० एन० सिंह को स्कूटर का मॉडल तैयार करने के लिए पोलैंड जाने की अनुमति भी दी गयी. श्री पी० एन० सिंह की योजना में दिलचस्पी लेते हुए कुछ लोगों ने उन से रिश्वत ली और उन को विश्वास दिलाया कि उन का काम हो जायेगा. लेकिन पोलैंड से लौटने के बाद श्री पी० एन० सिंह ने पाया कि उन के आवेदन के बारे में अब तक कोई निर्णय नहीं हुआ है. इसी बीच एक उपमंत्री का सहायक उन से मिला और उस ने बताया कि इस संबंध में लाइसेंस किसी और पार्टी को दिया जा रहा है. इस पर श्री पी० एन० सिंह ने उन से प्रमाण माँगा तब उस निजी सहायक ने कहा यदि तुम ३ हजार रुपया खर्च करो तो मैं संबंधित फ़ाइल ला सकता हूँ. ६ सौ रुपया प्राप्त कर उपमंत्री के निजी सहायक और एक स्टेनोग्राफ़र ने श्री पी० एन० सिंह को वह फ़ाइल दी जिस के अनुसार उन का मामला रद्द कर किसी और को लाइसेंस देने का सुझाव दिया गया था. यह सारी बातचीत किसी ने टेप रिकार्ड कर ली थी जिसे कि श्री राजनारायण ने राज्यसभा के प्रधान को सुनायी.

श्री फ़खरुद्दीन अली अहमद ने श्री राजनारायण के आरोपों का खंडन करते हुए कहा कि वास्तविकता यह है कि श्री राजनारायण ने मंत्रालय को श्री पी० एन० सिंह के संबंध में प्रभावित करने की कोशिश की लेकिन वह इस में विफल रहे. उन्होंने कहा कि राजनारायण मेरे पास आये थे और उन्होंने मुझ से यह कहा था कि पी० एन० सिंह को लाइसेंस दे दिया जाये. मुझ से कुछ और संसद्-सदस्यों ने भी इस संबंध में आग्रह किया था और लोकसभा के सदस्य श्री जे० एन० हज़ारिका ने प्रधानमंत्री को एक पत्र भी लिखा था जिस में कि पी० एन० सिंह को लाइसेंस देने का आग्रह किया गया था. श्री राजनारायण ने श्री जे० एन० हजारिका और औद्योगिक विकास मंत्रालय के एक संयुक्त सचिव पर आरोप लगाते हुए कहा कि वे श्री पी० एन० सिंह से सौदा करना चाहते थे. अपने आरोपों का समर्थन करते हुए श्री राजनारायण ने श्री हजारिका और संयुक्त सचिव श्री एम० बी० सुब्रह्मण्यम् के बीच हुए पत्र-व्यवहार का उद्धरण भी दिया. श्री फ़खरुद्दीन अली अहमद ने कहा कि श्री सुब्रह्मण्यम् पर आरोप लगाना फ़िज़ूल है. जहाँ तक उपमंत्री के निजी सहायक और एक स्टेनोग्राफ़र का प्रश्न है उन्हें नौकरी से मुअत्तल किया जा चुका है.

श्री राजनारायण के टेप रिकार्ड की ध्वनियों ने अनेक प्रतिध्वनियाँ पैदा की लेकिन संसद् के गलियारों में इस बात को ले कर बड़ी चर्चा है कि एक शक्तिशाली मंत्री महोदय के पास भी यही टेप है. उस टेप की ध्वनि मूल है या श्री राजनारायण के टेप की प्रतिध्वनि—यह कहना मुश्किल है.

भारत-विदेश वार्ता

वार्ता; क़रार; समझौते

आर्थिक, तकनीकी, सांस्कृतिक तथा ऐसे ही अन्य क्षेत्रों में सहयोग के बारे में क़रार और समझौतों की दृष्टि से नयी दिल्ली में गत सप्ताह की गतिविधियाँ महत्त्वपूर्ण थी. फ्रांस, संयुक्त अरब गणराज्य और पश्चिम जर्मनी के साथ व्यापार और सहयोग के समझौते संपन्न हुए और इन समझौतों के लिए विचार-विमर्श के दौरान तीनों देशों के साथ राजनैतिक विचार-विनिमय भी हुआ. फ्रांस के साथ बातचीत में दोनों देशों के संयुक्त योजना कार्य भारत में शुरू करने की बात तय हुई तो संयुक्त अरब गणराज्य के साथ कृषि-क्षेत्र में सहयोग के बारे में एक महत्त्वपूर्ण समझौता हुआ. पश्चिम जर्मनी के साथ बातचीत के

दौरान गुजरात में पैट्रो-केमिकल्स कारखाने की स्थापना के लिए सात करोड़ रु. के कर्ज़ का प्रस्ताव आया. इस के अलावा अन्य क्षेत्रों में भारत और पश्चिम जर्मनी के सहयोग के बारे में अनेक निर्णय लिये गये.

फ़्रांसीसी सहयोग के क्षेत्र : फ़्रांस के सरकारी प्रतिनिधिमंडल ने अपनी तीन दिन की बातचीत के बाद दोनों देशों में ही नहीं बल्कि अन्य देशों में भी दोनों देशों के संयुक्त योजना कार्यों के समारंभ की संभावना प्रकट की. बातचीत के बाद फ़्रांसीसी प्रतिनिधिमंडल के नेता ने एक संवाददाता सम्मेलन में कहा कि विशेष ढंग के संयुक्त योजना कार्यों को शुरू करने के बारे में दोनों देश अब योजनाएँ बनायेंगे. फ़्रांसीसी प्रतिनिधिमंडल के नेता को इस बात पर खेद था कि भारत के कुल विदेश व्यापार का दो प्रतिशत ही फ़्रांस के साथ है और दोनों देशों के व्यापारी वर्ग को इसे बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिए. इस के लिए दोनों देशों को एक दूसरे के बारे में अधिकाधिक जानकारी की आवश्यकता है. इस के लिए भारतीय व्यापारियों को फ़्रांसीसी व्यावसायिक मेलों में अधिकाधिक भाग लेना चाहिए. इसी तरह फ़्रांसीसी व्यापारियों को भारत की मंडियों के बारे में ज्यादा से ज्यादा जानकारी प्राप्त करनी चाहिए.

राजनैतिक दिशाएँ : आर्थिक सहयोग के इस विचार-विमर्श में राजनैतिक प्रश्नों का ज़िक्र आना स्वाभाविक ही था. फ़्रांसीसी प्रतिनिधिमंडल के विचार में भारत-चीन संबंधों में जल्दी सुधार की इस लिए संभावना नहीं है कि आज के कम्युनिस्ट संसार के सामने इस से भी महत्त्वपूर्ण और अनेक बातें हैं. पाकिस्तान को फ़्रांसीसी हथियार देने के बारे में फ़्रांसीसी नेता का स्पष्टीकरण था कि हम ने व्यावसायिक आधार पर पाकिस्तान को छोटे हथियार दिये हैं. हम चाहते हैं दोनों देशों के बीच ताशकंद भावना बनी रहे. इसी प्रकार अरब-इस्राइल विवाद में फ़्रांसीसी प्रतिनिधिमंडल के नेता ने चार बड़े राष्ट्रों के सम्मेलन का वही फ़्रांसीसी प्रस्ताव दोहराया. इसी संवाददाता सम्मेलन में फ़्रांसीसी प्रतिनिधिमंडल के नेता ने घोषणा की कि भारत के राष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसैन ने इसी वर्ष जुलाई में फ़्रांस की राजकीय यात्रा का निमंत्रण स्वीकार कर लिया है. हमें आप के राष्ट्रपति का अपने देश में स्वागत करने पर बहुत हर्ष होगा.

संयुक्त अरब गणराज्य के साथ क़रार : आर्थिक सहयोग की वार्त्ताओं के इसी दौर में संयुक्त अरब गणराज्य के साथ एक महत्त्वपूर्ण क़रार पर हस्ताक्षर हुए जिस के अनुसार दोनों देशों की सरकारें कृषि-क्षेत्र में बड़े पैमाने पर सहयोग करेंगी. इस में कृषि संबंधी अनेक ऐसे कार्य हैं जिन से दोनों देशों को अपने-अपने यहाँ खेती की उपज बढ़ाने में सहायता मिलेगी. इस क़रार की एक विशेषता यह है कि दोनों देशों के विशेषज्ञों और अधिकारियों की एक संयुक्त समिति बनायी जायेगी जो बारी-बारी से क़ाहिरा और नयी दिल्ली में दोनों देशों की कृषि-क्षेत्र में प्रगति का लेखा-जोखा कर के परामर्श दिया करेगी. तकनीकी क्षेत्र में भी दोनों देशों के बीच सहयोग बढ़ाने पर सहमति हुई है.

कुछ राजनैतिक तो बहुत कुछ आर्थिक : विदेशों के साथ विचार-विमर्श के दौर की सब से महत्त्वपूर्ण वार्त्ता पश्चिम जर्मनी के साथ हुई जहाँ के प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व वहाँ के विदेश सचिव श्री जी. एफ़. डुकविट्ज़ ने किया. बातचीत का मुख्य उद्देश्य तो आर्थिक और व्यावसायिक ही बताया गया था पर पश्चिम जर्मनी की हाल ही की घटनाओं और बर्लिन में राष्ट्रपति के चुनावों को ले कर कम्युनिस्ट-जगत् के साथ उत्पन्न हाल ही के संकट से भी संभवतः भारतीय प्रधानमंत्री और

डुकविट्ज़ : परस्पर सहयोग

नेताओं को अवगत कराया गया. एक संवाददाता सम्मेलन में श्री डुकविट्ज़ से पूर्व जर्मनी में व्यापार दफ़्तर खोलने के भारत के निर्णय के बारे में कुछ पूछा भी गया जिस पर श्री डुकविट्ज़ टिप्पणी करने से इंकार कर दिया. इसी प्रकार पश्चिम जर्मनी के नेता ने इस समाचार का भी खंडन किया कि पश्चिम जर्मनी अपनी परमाणु जानकारी कम्युनिस्ट चीन को देने पर सहमत हो गया है.

आर्थिक और तकनीकी क्षेत्र में दोनों देशों के बीच सहयोग बढ़ाने की आवश्यकता पर संयुक्त विज्ञप्ति में सब से अधिक ज़ोर दिया गया है. इस विज्ञप्ति में बताया गया कि परस्पर हितों के प्रश्न पर दोनों देशों की यह बातचीत संपूर्ण रूप से सफल रही है. आर्थिक, औद्योगिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में पश्चिम जर्मनी और भारत के सहयोग की अब तक की व्यवस्था का भी लेखा जोखा किया गया और आगे की संभावनाओं का भी विचार किया गया. भारत और पश्चिम जर्मनी सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाने पर भी सहमत हुए हैं जिस के लिए अलग से एक सांस्कृतिक समझौते पर हस्ताक्षर हुए हैं.

दोनों देशों के आयात-निर्यात व्यापार में भारत की अदायगी की स्थिति को और अच्छा बनाने के लिए पश्चिम जर्मनी ने भारत से और अधिक मात्रा में इंजीनियरी का सामान मँगाने की भी इस अवसर पर घोषणा की.

प्रतिरक्षा

नये सेनाध्यक्ष

१९६२ में नेफ़ा क्षेत्र में चीन के हाथों पराजित होने के बाद भारतीय सेना और जनता को जो मानसिक आघात पहुँचा था उसे कुछ हद तक दूर करने का श्रेय ले. जनरल मानेकशा को है. जनरल कौल की असफलता के बाद उन्हें नेफ़ा क्षेत्र में कोर कमांडर नियुक्त किया गया था. यद्यपि इस महत्त्वपूर्ण पद पर आने के बाद मानेकशा को अपनी योग्यता और सामर्थ्य का पूरा परिचय देने का मौक़ा नहीं मिला फिर भी सैनिक और राजनैतिक क्षेत्रों में यह विश्वास किया जाता है कि जनरल मानेकशा भारत जैसे विशाल देश की कठिन प्रतिरक्षा आवश्यकताओं के संदर्भ में एक अत्यंत योग्य सेनापति सिद्ध होंगे. भारत सरकार की एक विज्ञप्ति के अनुसार उन्हें अब वह स्थान प्राप्त होने वाला है. वर्तमान सेनाध्यक्ष **पी. पी. कुमारमंगलम्** ८ जून को अपना कार्यभार जनरल मानेकशा को सौंप कर अवकाश-ग्रहण करेंगे. इस समय **जनरल मानेकशा** पूर्वी कमान के जनरल आफ़ीसर कमांडिंग इन-चीफ़ के पद पर काम कर रहे हैं.

हरबख्शसिंह : जनरल मानेकशा को सेनाध्यक्ष बनाने का निश्चय करते समय भारत सरकार को पर्याप्त सतर्कता और विवेक से काम लेना पड़ा है क्यों कि पश्चिमी कमान के **ले. जनरल हरबख्शसिंह** भी इस पद के लिए एक सशक्त प्रत्याशी थे. दोनों जनरलों को प्रायः एक साथ ही कमीशन मिला और दोनों ने विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त योग्यता के साथ काम किया है. जनरल हरबख्शसिंह भारत के अकेले सैनिक अधिकारी हैं जिन्होंने सैकिन कमांडर के रूप में किसी शत्रु के साथ युद्ध किया है. ऐसा अवसर उन्हें १९६५ में भारत-पाकिस्तान की लड़ाई के समय मिला था. अन्य सैनिक अधिकारियों ने एक डिवीज़न या कोर के नेतृत्व से अधिक युद्ध कार्य नहीं किया है. इस योग्यता को दृष्टि में रख कर जनरल हरबख्शसिंह को सेनाध्यक्ष के पद के लिए उपयुक्त माना जाता रहा है. किंतु जनरल **मानेकशा** को उन से कुछ मास पहले कमीशन मिला था और उन्होंने सेना के विभिन्न विभागों

मानेकशा : नयी संभावनाएं

के कार्य का निरीक्षण किया है.

भारतीय प्रशिक्षण : ले. जनरल एस. एच. एफ़. जे. मानेकशा पहले सेनाध्यक्ष होंगे जिन को भारतीय सैनिक प्रशिक्षण विद्यालय से कमीशन प्राप्त हुआ है. वास्तव में भारत और विदेशों में एक भ्रांति सी पैदा हो गयी थी कि सैंडहर्स्ट के किंग्स कमीशन अफ़सर भारतीय शिक्षित अफ़सरों से अधिक उच्च कोटि के सिपाही होते हैं. यह एक ऐसी भ्रांति है जो दूसरी प्रकार की भ्रांतियों की भांति परतंत्र भारतीय जनता पर थोपी गयी थी. इस सिलसिले में एक दिलचस्प बात यह है कि इस वर्ष और अगले वर्ष—जनरल कुमारमंगलम् के अवकाश ग्रहण करने के तुरंत बाद ही—अनेक सैनिक अधिकारियों की सेवावधि समाप्त हो जाती है. जिस का मतलब यह होगा कि मानेकशा के सेनाध्यक्ष बनते ही भारतीय सेना के उच्च अधिकारियों के दल में बहुत अधिक परिवर्तन हो जायेगा, और छोटे अधिकारियों को आगे बढ़ने का मौक़ा मिल जायेगा. अवकाश-ग्रहण करने वालों में ले. जनरल हरबख़्शसिंह, ले. जनरल मोती सागर, ले. जनरल डिलोन और ले. जनरल के. एस. कटोच हैं. १५ ले. जनरलों में कम से कम ५ जनरल अवकाश ग्रहण करेंगे. साथ ही कुछ मेजरों की सेवावधि भी समाप्त हो रही है. संभवतया नये सेनाध्यक्ष के लिए भारतीय सेना के आंतरिक प्रशासन को नया रूप और नयी सामर्थ्य देने का यह बहुत अच्छा अवसर है.

जनरल साम : जनरल मानेकशा को अपने सैनिक अधिकारी सम्मान से 'साम' कहते हैं. इन का जन्म ३ अप्रैल १९१४ में हुआ. और १९३४ में उन्हें कमीशन मिला. दूसरे महायुद्ध के दौरान उन्हें बर्मा में जापानियों के विरुद्ध एक भीषण मुठभेड़ में भाग लेना पड़ा. यहीं सितांग नदी के मोर्चे पर जापानियों को खदेड़ने में उन्होंने अभूतपूर्व वीरता दिखाई, जिस के उपलक्ष्य में उन्हें किन्स क्रास पदक मिला. इसी युद्ध में वह ज़ख्मी हो गये और स्वस्थ होने के बाद उन्होंने कोयटा के स्टाफ़ कालेज में प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा उत्तर पश्चिमी सीमा पर ब्रिगेड मेजर के रूप में नियुक्त किये गये. वहां से वापस आने पर कोयटा के स्टाफ़ कालेज में वह प्रशिक्षक बने और कुछ समय बाद जनरल सलीम के नेतृत्व में रंगून-मांडले के मोर्चे पर उन्होंने प्रभावशाली कार्य किया. ले. जनरल मानेकशा ने जापानियों को आत्मसमर्पण के बाद बर्मा में विस्थापितों को बसाने में बड़ी सहायता की. १९४६ में भारत सरकार ने उन्हें ऑस्ट्रेलिया के दौरे पर भेजा जहां उन्होंने भारतीय सेना और उस की आवश्यकताओं पर भाषण दिये. भारत आने के बाद उन्हें मिलिटरी आपरेशन निदेशालय का निदेशक नियुक्त किया गया. भारत-चीन लड़ाई के समय वह देहरादून की मिलिटरी अकादेमी के कमांडर थे. नेफ़ा की पराजय के बाद उन्हें उस क्षेत्र का कोर कमांडर नियुक्त किया गया.

राजनैतिक दल

मार्क्सवादी दल : केंद्र को कुचल दो

इस सप्ताह कलकत्ते में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के पोलित ब्यूरो का तीन दिवसीय अधिवेशन समाप्त हो गया जिस में कुछ महत्त्वपूर्ण और कुछ दिलचस्प निर्णय लिये गये हैं. सर्वाधिक प्रमुख निर्णय जो लिया गया है, वह यह है कि केंद्र से संघर्ष जारी रहेगा और किसी भी मत पर केरल और बंगाल की मोर्चा सरकारें, जिन पर कम्युनिस्ट हावी हैं, केंद्र के सामने घुटने नहीं टेकेंगी. पोलित ब्यूरो का ख्याल है कि आगे चल कर कांग्रेस, जनसंघ और स्वतंत्र तीनों दल मिल कर एक हो जायेंगे. इस लिए प्रजातंत्रवादी शक्तियों को इन 'प्रतिक्रियावादी शक्तियों' का मुक़ाबला करने के लिए तैयार रहना है.

वाम और दक्षिण के बीच : मार्क्सवादी पार्टी को न केवल नक्सलवादियों की बल्कि दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी की गतिविधियों पर भी भारी चिंता है. हाल में कलकत्ता विश्वविद्यालय में उपकुलपति का नक्सलवादियों ने जो घेराव किया और जिस के चलते भारी दंगे हुए, उस पर भी पोलित ब्यूरो में विचार किया गया. इस बात पर सहमति पायी गयी कि एक बार फिर निहित स्वार्थ वाले और कांग्रेसी संयुक्त मोर्चा की सरकार को उलट देना चाहते हैं. श्री पी. सुंदरैया ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि प्रतिद्वंद्वी राजनैतिक दलों ने छात्रों और युवकों का उपयोग उपद्रव कराने, कॉफ़ी हाउस में तोड़-फोड़ करने और कालेज स्ट्रीट की दूकानों को लूटने के लिए किया. श्री सुंदरैया ने कहा कि उन की पार्टी को प्राप्त सूचनाओं के अनुसार कॉफ़ी हाउस और हिंदू होस्टल पर संयुक्त मोर्चा या मार्क्सवादी दल के स्वयंसेवकों ने नहीं, नक्सलवादी छात्रों और युवकों ने हमले किये. मार्क्सवादियों से अपनी मुठभेड़ के बाद नक्सलवादियों ने कलकत्ते में एक रैली का आयोजन किया. लगे हाथ सोवियत दूतावास के सामने 'चीन के साथ छेड़खानी' के विरुद्ध प्रदर्शन भी किया गया.

विरोधियों की प्रशंसा : श्री सुंदरैया से यह पूछा गया कि क्या केरल और बंगाल में एक साथ काम करने के कारण मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के बीच मतभेद घटा है तो उन्होंने प्रश्न का सीधा उत्तर न दे कर कहा कि उन की पार्टी दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी या किसी प्रजातांत्रिक पार्टी के साथ कुछ खास मुद्दों पर समझौता कर काम करती है. जब उन का ध्यान दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के पत्र में प्रकाशित एक रचना की ओर आकर्षित किया गया जिस में उन की प्रशंसा की गयी थी तो उन्होंने कहा 'फिर तो हमें काफ़ी सावधान रहना पड़ेगा, क्यों कि विरोधी पार्टी प्रशंसा कर रही है.'

चीन को बधाई : सोवियत रूस और कम्युनिस्ट चीन के बीच जो नया संघर्ष शुरू हुआ है, उस पर पार्टी ने काफ़ी चिंता व्यक्त की है और किसी एक पक्ष का समर्थन न कर दोनों को दोषी घोषित किया है. पोलित ब्यूरो का ख्याल है कि विश्व की दो प्रथम समाजवादी शक्तियां आपस में लड़ कर समाजवादी शक्तियों के विकास में बाधक हो रही हैं. मार्क्सवादी नेताओं ने यह आशा व्यक्त की है दोनों देश समझदारी से काम लेंगे और परस्पर संघर्ष न बढ़ा कर समझदारी और सूझबूझ से काम लेंगे.

नक्सलवादियों के सोवियत-चीन विवाद में हस्तक्षेप करने के सिलसिले में लोकसभा में गृहमंत्री चव्हाण ने एक संक्षिप्त-सा वक्तव्य भी दिया. संसपा के जॉर्ज फ़र्नांडीज़ ने एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव पेश किया था जिस में सरकार का ध्यान इस बात की ओर दिलाया गया था कि नक्सलवादियों के एक नेता सुशील राय चौधरी ने भारत स्थित चीनी दूतावास के माध्यम से चीनी सरकार और चीनी जनता को एक तार भेजा है जिस में नक्सलवादियों की ओर से तथाकथित सोवियत आक्रमण का डट कर मुक़ाबला करने के लिए बधाई दी गयी है. गृहमंत्री ने कहा कि इस प्रकार के काम की सभी दलों द्वारा निंदा होनी चाहिए मगर उन्होंने जॉर्ज फ़र्नांडीज़ के प्रश्न का उत्तर देते हुए चीनी दूतावास के माध्यम से जाने वाले संदेशों पर नियंत्रण रखने में असमर्थता व्यक्त की क्यों कि दूतावासों के संदेशों पर केंद्रीय सरकार का कोई नियंत्रण नही हो सकता.

पोलित ब्यूरो ने पाकिस्तान में हुई जनक्रांति का स्वागत करते हुए कहा है 'भारत में तानाशाही के ख्वाब देखने वालों को पाकिस्तान से सबक़ लेना चाहिए.' मार्क्सवादी विधायक श्री मोहम्मद अमीन ने दिनमान के प्रतिनिधि को बताया कि पाकिस्तान में अय्यूबशाही की वकालत करने वाले श्री करियप्पा आज कहां हैं. वे आज देखें कि पाकिस्तान की जनता तानाशाही को कैसा जवाब दे रही है.

प्रदेश

मध्यप्रदेश

कांग्रेस की वापसी

जैसी कि संभावना थी, राज्यपाल ने राजा नरेशचंद्र सिंह की विधानसभा भंग करने और मध्यावधि चुनाव कराने की सलाह को अमान्य कर दिया. राजभवन से प्रकाशित एक विज्ञप्ति में यह भी कहा गया है कि संविद की जगह पर वैकल्पिक सरकार बनाने की दिशा में आवश्यक क़दम उठाये जायेंगे. राज्यपाल के इस क़दम की राजमाता, जनसंघ के महामंत्री कुशाभाऊ ठाकरे और संसपा के नेता चानपुरिया सभी ने आलोचना की. राजा नरेशचंद्र सिंह की स्थिति बड़ी विचित्र रही. मुख्यमंत्री की गद्दी पर वह सिर्फ़ एक हफ़्ते बैठे रह सके. राज्यपाल के निर्णय पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, 'जिस तरह मैं ने अपने अधिकारों का उपयोग कर के विधानसभा भंग करने और मध्यावधि चुनाव कराने का सुझाव दिया था उसी प्रकार राज्यपाल ने अपने अधिकारों का उपयोग कर के उसे अमान्य कर दिया.'

१३२ घंटे : द्वारका प्रसाद मिश्र की भविष्यवाणी अंततः सच हो गयी. राजा के कांग्रेस छोड़ने पर श्री मिश्र ने कहा था कि वह संविद की अंत्येष्टि की अध्यक्षता करने जा रहे हैं. १३२ घंटे के बाद राजा को मजबूरन त्यागपत्र देना पड़ा. वैसे यह बात उसी दिन स्पष्ट हो गयी थी जब गोविंद नारायण सिंह ने त्यागपत्र दिया था. उन के त्यागपत्र के २४ घंटे के अंदर ही संविद ने अपना बहुमत भी खो दिया था. एक तथ्य यह भी है कि राजा साहब न तो त्यागपत्र देना चाहते थे न विधानसभा को भंग करने और मध्यावधि चुनाव कराने की सिफ़ारिश करना चाहते थे. वह चाहते थे कि २० मार्च को विधानसभा में शक्ति की आजमाइश हो और पराजय की घोषणा के बाद त्यागपत्र दिया जाये. संभवतः उन की योजना कांग्रेस में लौटने की थी इसी लिए १९ मार्च को वह राजमाता से बचते रहे. राज्यपाल से उन्होंने दो बार मुलाक़ात की लेकिन समन्वय समिति की बैठक में शामिल नहीं हुए. उन्होंने रात के साढ़े ११ बजे भोपाल से दिल्ली जाने वाली गाड़ी पकड़ने की योजना बनायी थी. द्वारका प्रसाद मिश्र भी उसी गाड़ी से जा रहे थे. राजमाता के लिए यह चिंता का विषय था. राजमाता का ख्याल था कि गोविंद की तरह नरेश भी उन्हें धोखा दे रहे हैं. अगर उन्होंने विधानसभा भंग करने और मध्यावधि चुनाव कराने की सिफ़ारिश न की तो उन्हें और जनसंघ दोनों को नीचा देखना पड़ेगा. अंततः बृजलाल वर्मा ने ११ बजे रात को ही राजा को पकड़ कर, उन्हें विवश कर के, दो पृष्ठ के पहले से ही तैयार त्यागपत्र पर ज़बरदस्ती हस्ताक्षर कराया और उन की इच्छा के विरुद्ध दबाव डाल कर राज्यपाल के पास उन्हें इस लिए ले जाया गया ताकि वह त्यागपत्र दे सकें और विधानसभा को भंग करने तथा चुनाव कराने की सिफ़ारिश कर सकें.

दिल्ली की दौड़ : १३ से १९ मार्च तक का पूरा सप्ताह प्रदेश में राजनैतिक हलचलों से भरा रहा. राजा, राजमाता, गोविंदनारायण सिंह, द्वारका प्रसाद मिश्र तथा अनेक भूतपूर्व मंत्री और नेता दिल्ली की दौड़ लगाते रहे. राजा की वफ़ादारी संविद और कांग्रेस के बीच भटकती रही. त्यागपत्र देने के डेढ़ घंटे पहले तक वह यही कहते रहे कि त्यागपत्र नहीं देंगे और विधानसभा का मुक़ाबला करेंगे. संविद

नरेशचंद्र सिंह : ७ दिन के राजा

के इस पतन में छोटे से २२ सदस्यों वाले प्रगतिशील दल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है. वास्तव में यह योजना भूतपूर्व प्रसोपा नेता चंद्र प्रताप तिवारी और भारतीय क्रांति दल के विधायक श्याम सुंदर श्याम, संसपा के देव प्रसाद आर्य, राजमाता गुट के हीरालाल पिप्पल और रामसिंह भदोरिया द्वारा द्वारका प्रसाद मिश्र के नेतृत्व तथा श्यामाचरण शुक्ल के सहयोग के परिणामस्वरूप सफल हुई. श्री सिंह के त्यागपत्र देने के १५-२० घंटे के भीतर इस के गठन से संविद के बांध का एक ऐसा कोना टूटा जो तेज़ी के साथ चौड़ा होता गया और संविद को समाप्त कर गया.

महंगी पराजय : श्री मिश्र राजमाता के साथ संघर्ष में एक बार पराजित हो चुके थे. अब वह फिर विजयी हो गये हैं. राजमाता को यह पराजय बड़ी महंगी भी पड़ी है. उन की प्रतिष्ठा और प्रभाव दोनों को आघात लगा है. आज वह पराजित और उदासीन नज़र आती हैं. दूसरी तरफ़ उच्च न्यायालय के निर्णय के बावजूद श्री मिश्र अपनी प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने में सफल हो गये हैं. श्री मिश्र का चुनाव रद्द होने तथा उन्हें न्यायालय द्वारा अयोग्य घोषित किये जाने का आघात कांग्रेस सहन कर गयी. लगता है कि इस से कांग्रेस में पुनः प्रवेश करने वालों की संख्या बढ़ गयी. श्री मिश्र को राज्य के उच्च न्यायालय से स्थगन का आदेश प्राप्त हो गया और सर्वोच्च न्यायालय में अपील भी दाखिल कर दी गयी है. लेकिन जब तक अपील पर निर्णय नहीं होता वह सदन में उपस्थित होने के बावजूद उस की कार्रवाइयों में कोई हिस्सा नहीं ले सकेंगे. श्री मिश्र ने कहा था कि वह प्रदेश की राजनीति में भाग नहीं लेना चाहते बल्कि संसद में जाना चाहते हैं लेकिन लोगों को उन के इस कथन पर विश्वास नहीं हुआ. इधर उन्होंने यह भी घोषणा कर दी है कि वह नेता पद के लिए संघर्ष नहीं करेंगे, उनकी घोषणा से कांग्रेस के सामने नेतृत्व का प्रश्न खड़ा हो गया है. अगर श्यामाचरण शुक्ल मुख्यमंत्री बनाये गये और द्वारका प्रसाद मिश्र को वह स्थिति अच्छी नहीं लगी तब भी एकता नहीं रह सकेगी. मतभेद की दशा में गोविंदनारायण सिंह और उन के समर्थक श्री मिश्र के विरोधी ही होंगे. श्यामाचरण शुक्ल केंद्र के किसी व्यक्ति या विद्याचरण शुक्ल या प्रकाशचंद्र सेठी को भी मुख्यमंत्री बनाने का स्वागत नहीं करेंगे. शायद ये लोग भी उन्हें पसंद न करें. मगर नेतृत्व के संकट के बावजूद आज कांग्रेस की स्थिति मार्च १९६७ की स्थिति से ज्यादा मज़बूत है. ज्यादातर विद्रोही कांग्रेसी इस शर्त पर वापस आ गये हैं कि उन्हें न तो मंत्रिपद दिया जायेगा न ही मध्यावधि चुनाव के अवसर पर कांग्रेस का टिकट. और चूंकि कांग्रेस का बहुमत है इस लिए उस में शामिल होने वाला प्रगतिशील विधायक दल भी यह सोच कर खामोश रहेगा कि कांग्रेस से लड़ने से उस की हानि हो सकती है. १९६७ के आम चुनाव के बाद कांग्रेस को २९६ में से १६७ जगहें मिली थीं. आज उस के पास १६८ विधायक हैं और इस के साथ-साथ २०-२२ सदस्य प्रगतिशील विधायक दल के भी उसे समर्थन दे रहे हैं. अपने पूर्ण बहुमत के बावजूद कांग्रेस ने इस दल के साथ मिल कर मंत्रिमंडल बनाने का फ़ैसला किया है.

पराजय की पीड़ा : राजमाता ने मुख्यमंत्री के रूप में नरेशचंद्र का शपथ ग्रहण शुभ मुहूर्त में कराया था. मुहूर्त की घड़ी ग्वालियर के राजमहल के ज्योतिषियों ने निकाली थी. दुर्भाग्यवश वह ग़लत सिद्ध हो गयी. अफ़वाह है कि राजमाता ने क्रोध में आकर उन ज्योतिषियों को राजमहल की नौकरी से निकाल देने की बात कही है.

कश्मीर

सुबह का भूला

कश्मीर के प्रदेश कांग्रेसाध्यक्ष सय्यद मीर क़ासिम और राज्य के मुख्यमंत्री जी. एम. सादिक़ के बीच फ़िलहाल एक अस्थायी समझौता हो गया है. पिछले दिनों इन दोनों नेताओं के बीच मनमुटाव और परस्पर अंतर्विरोध इतना बढ़ गया था कि पहले मीर क़ासिम ने अध्यक्ष पद से और फिर त्रिलोचन दत्त ने प्रदेश कांग्रेस समिति के महासचिव पद से त्यागपत्र दे दिया था. उस के बाद इन नेताओं का दिल्ली का दौरा हुआ, फिर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी, गृहमंत्री चव्हाण, कांग्रेसाध्यक्ष निजलिंगप्पा द्वारा इन रूठे नेताओं को मनाने का सिलसिला शुरू हुआ.

मीर क़ासिम ने अपने त्यागपत्र में कहा था कि मैं समझता हूँ राज्य की वर्त्तमान स्थिति में मेरे विचारों और आदर्शों के लिए अब कोई स्थान नहीं रहा. उधर मुख्यमंत्री सादिक़ ने, जो चंद रोज़ पहले तक यह कहते थे कि वह प्रदेश कांग्रेस की गतिविधियों से संतुष्ट नहीं हैं, १० मार्च को एक आम जलसे में यह कहा कि हमारे परस्पर संबंध बहुत ही अच्छे और मधुर हैं. मतभेद की इन खबरों में कोई सच्चाई नहीं. कुछ स्वार्थी लोग धर्म-निरपेक्षता और लोकतंत्र को कमज़ोर बनाने के लिए ही ऐसा झूठा प्रचार कर रहे हैं. खैर, जानकारों का कहना है कि यह समझौता अस्थायी है और कभी भी फिर मतभेद का रूप धारण कर सकता है.

कश्मीर हमारा है : 'कश्मीर भारत का अटूट और अभिन्न अंग है' इस तरह के वक्तव्य आये दिन हमारे राष्ट्रीय नेता दोहराते रहते हैं. मगर राज्य में जो फूट डालने वाली या पृथकतावाद का राग अलापने वाली और जनमत संग्रह कराने वाली शक्तियाँ काम कर रही हैं उन को कुचलने के लिए कुछ नहीं किया जा रहा है. शेख़ अब्दुल्ला यहाँ-वहाँ न जाने क्या-क्या कहते और करते रहते हैं. इन दिनों २४ वर्षीय मौलवी फ़ारुख शेख़ अब्दुल्ला का स्थान ग्रहण करने का स्वप्न देख रहे हैं. मौलवी फ़ारुख कट्टर मजहबी खानदान से ताल्लुक़ रखते हैं और राज्य में जनमत संग्रह आंदोलन को और तेज़ करने में जी-जान से जुटे हुए हैं. यों उन की सब से ज्यादा दुश्मनी शेख़ अब्दुल्ला से है. वह कश्मीर को भारत से अलग कर उसे पाकिस्तान का अंग बनाना चाहते हैं. इस सिलसिले में वह केंद्रीय नेताओं से बातचीत करने के लिए दिल्ली भी आये मगर मायूस हो कर वापस लौट गये क्यों कि राजधानी में किसी भी नेता ने उन के साथ बातचीत करना मुनासिब नहीं समझा. उन की कुछ ग़ैर-ज़िम्मेदाराना हरक़तों के कारण उन की पार्टी (अवामी एक्शन कमेटी) के कुछ महत्त्वपूर्ण सदस्य पार्टी से अलग हो गये हैं. सूफ़ी अहमद ने, जो इस पार्टी के महासचिव थे, पार्टी से त्यागपत्र देने के बाद दिनमान के प्रतिनिधि से कहा कि कुछ दिन पहले मीर वायज़ मौलवी फ़ारुख के कुछ बदमाशों ने मुझे मार डालने की धमकी दी थी. मेरा क़सूर केवल इतना था कि मैं ने पार्टी के अंदरूनी और वित्तीय मामलों में हुई गड़बड़ी और अंधेरगर्दी की जाँच करवाने का प्रस्ताव रखा था. उन का कहना है कि फ़ारुख की पार्टी में इतनी अंधेरगर्दी और धाँधलेबाज़ी है, जिस की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता.

अब केंद्रीय नेताओं को बार-बार 'कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है' वाक्य दोहराने की बजाय राज्य में शांति और व्यवस्था भंग करने वाले अराष्ट्रीय तत्त्वों को सख्ती से कुचलने में जुट जाना चाहिए. कश्मीर में जनमत संग्रह मोर्चा अभी तक क्यों बना हुआ है? शेख़ अब्दुल्ला को आये दिन धमकी भरे विषैले भाषण देने की छूट क्यों दी जा रही है? फ़ारुख को यह कहने की हिम्मत कैसे हो रही है कि कश्मीर पाकिस्तान का होना चाहिए? राज्य के नेता यदि आये दिन ज़रा-ज़रा-सी बात पर रूठते रहे और केंद्रीय नेता उन्हें ही मनाते रहे तो राज्य के इन अराष्ट्रीय तत्त्वों को कुचलने का काम कौन करेगा?

बिहार

स्वायत्तता के लिए

आदिवासी क्षेत्रों में एक प्राचीन कथा प्रचलित है : एक मुंडा लड़का उत्तरी बिहार के सिलवान क्षेत्र में एक लड़की से प्यार करता था. सरना गांव में शाल के फूलों को अपने हाथ में लिये हुए सरहुल पर्व पर वह नाच रहा था. आदिवासियों के विश्वास के अनुसार शाल के उस फूल को सब से पहले देवता को चढ़ाया जाना था और उस के बाद ही उसे केशों में लगाया जा सकता था. लेकिन अपनी प्रेमिका के चमकते बालों पर अभिभूत उस लड़के ने ग़लती कर दी और बजाय इस के कि फूल को देवता पर चढ़ाया जाये उसे अपनी प्रेमिका के बालों में लगा दिया. अपराध अक्षम्य था और देवता उस पर कुपित हुए और उस की मृत्यु हो गयी. लड़की ने तपस्या की, लंबी तपस्या और उस का एक आंशिक परिणाम पुरस्कार के रूप में उसे मिला. दोनों अपने जीवनकाल में तो नहीं मिल सके लेकिन मृत्यु के बाद दोनों का मिलन हुआ. यानी दोनों एक पहाड़ी में रूपांतरित हो गये. शरीर एक ही था लेकिन सिर दो और देखने पर ऐसा लगता था कि दोनों एक-दूसरे से मिलने के लिए युगों से प्रयत्नशील हैं. इस पहाड़ी को दोमुंडा नाम दिया गया. इसे छोटा नागपुर के पारसनाथ पहाड़ी के अगले हिस्से में उत्तरी धनबाद में ग्रांड ट्रंक रोड पर देखा जा सकता है.

सरहुल आदिवासियों के बसंत का एक त्योहार है. इस वर्ष वह २१ मार्च को पड़ा. त्योहार को पूरा हफ़्ता भर मनाया जाता है. इस अवसर पर फूलों की शौकीन आदिवासी लड़कियाँ पलाश के फूलों को अपने बालों में लगाती हैं, खुशियाँ मनाती हैं, शराब के मादक नशे में नगाड़े की आवाज़ के साथ उल्लासपूर्वक नाचती हैं. इस दौरान में पूरे आदिवासी क्षेत्रों में खुशी का एक मादक वातावरण छाया रहता है.

राजनैतिक ऐंठन : इस वर्ष सरहुल के अवसर पर आदिवासियों की मनःस्थिति में एक विशेष अंतर दिखाई दिया. कुछ ही दिनों पहले के चुनाव में झारखंड पार्टी (११ जगहें) और हुल (क्रांतिकारी) झारखंड पार्टी (७ जगहें) के उम्मीदवार अप्रत्याशित ढंग से विजयी हुए. इस विजय के साथ-साथ दोनों दलों के नेताओं ने बड़े जोशो-खरोश के साथ छोटा नागपुर के पठार और संथाल परगने को मिला कर एक पृथक् झारखंड राज्य की माँग को आगे बढ़ाया है. दिनमान के प्रतिनिधि से एक बातचीत के दौरान भूतपूर्व मंत्री और वर्त्तमान विधायक सुशील बागी ने कहा कि आदिवासी नेताओं के पृथक् झारखंड राज्य के आंदोलन के माध्यम से विघटनकारी शक्तियों पर नियंत्रण किया जा सकेगा क्यों कि उन की वजह से देश की एकता को बड़ा खतरा है. उन्होंने यह सूचना भी दी कि तहसीलों और ज़िलों में इस बात के लिए बैठकें और सभाएं हो रही हैं कि झारखंड राज्य की माँग करने वाले सभी लोगों को एक झंडे के नीचे एकत्रित किया जा सके. बाद में एक बड़ा समारोह होगा और उस में ठोस कार्यक्रमों का निर्धारण किया जायेगा. इस बीच हुल झारखंड पार्टी के विधायक जस्टिस रिचर्ड ने क्षेत्रीय आयोजन और विकास बोर्डों के पुनर्गठन की माँग की है. ये बोर्ड १९६३ में जयपालसिंह की झारखंड पार्टी के विलय के बाद क्षेत्रीय स्वायत्तता और आदिवासी क्षेत्रों के अलग बजट बनाने के उद्देश्य से गठित किये गये थे और विश्वास किया गया था कि इन की वैधानिकता संदेहास्पद नहीं होगी.

अब इन माँगों को सामने रखते हुए और कांग्रेस की मिलीजुली सरकार को बेशर्त सहयोग देने से इनकार कर के उन का दल झारखंड पार्टी की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है. झारखंड पार्टी ने साझे की सरकार में सहयोग दिया है और वह भी चुप नहीं है. इस दल के प्रवक्ता ने अभिभाषण के उस अंश के प्रति गहरा असंतोष व्यक्त किया है जिस में कहा गया है कि ये क्षेत्रीय बोर्ड परामर्शदाता क़िस्म के ही होंगे. कहा जाता है कि इस दल ने सरदार हरिहर सिंह को यह चेतावनी भी दे दी है कि अगर बोर्ड को वैधानिक मान्यता नहीं दी गयी तो वह अपना समर्थन वापस ले लेगा. अगर इस का कोई हल नहीं निकलता तो कांग्रेस सरकार के सामने अस्तित्व का बहुत बड़ा खतरा पैदा हो जायेगा.

अविश्वास प्रस्ताव ने तो फ़िलहाल कांग्रेस को किसी रूप में प्रभावित नहीं किया लेकिन अस्थायित्व का खतरा भी टला नहीं है. जनता पार्टी के राजा कामाख्या नारायण सिंह का विवाद ऊपर से समाप्त लगता है. उन्होंने मंत्रिपद छोड़ना स्वीकार कर लिया. पिछले दिनों कांग्रेस कार्यकारिणी ने मुख्यमंत्री हरिहर सिंह को यह निर्देश दिया था कि वह राजा को मंत्रिमंडल से अलग कर दें. मुख्यमंत्री दिल्ली गये भी थे और वहाँ पर केंद्रीय नेताओं से राज्य के कांग्रेस विधायक दल की समस्याओं को ले कर उन्होंने अनेक बातों की चर्चा की थी. वहीं पर उन्हें यह आश्वासन भी दिया गया था कि समस्याओं का हल शीघ्र ही निकल जायेगा.

उत्तरप्रदेश

ईश्वर नहीं ख़ुदा

विधानसभा के अध्यक्ष पद पर सर्वसम्मति से आत्माराम गोविंद खेर का चुनाव हुआ. ७० वर्षीय श्री खेर ने कहा कि पहले ७ वर्षों में सदन से बाहर रह कर उन्होंने विधान मंडल का स्वरूप जनहित के आइने में देखा है और महसूस किया है कि विधान मंडलों की पकड़ शासनतंत्र पर कमज़ोर होती गयी है और उसी के साथ-साथ भ्रष्टाचार में बढ़ोतरी होती रहती है. उपाध्यक्ष पद का चुनाव होना अभी बाक़ी है. सरकार और विरोधी दलों में यह समझौता हो गया है कि यह पद विरोधी दल के ही किसी सदस्य को दिया जायेगा. संसोपा के वासुदेव सिंह के नाम पर सभी विरोधी दल सहमत नज़र आते हैं. विधानसभा में फ़िलहाल कांग्रेस का बहुमत केवल एक वोट से है. श्री खेर के कांग्रेस से और श्री वासुदेव के संसपा से हट जाने पर भी संतुलन में कोई अंतर नहीं आयेगा.

अध्यक्ष के चुनाव के पहले विधायकों के शपथ ग्रहण समारोह के समय ११ मुसलमान सदस्यों ने उर्दू में शपथ लेने की अनुमति इस आधार पर चाही कि शपथ की हिंदी भाषा उन के लिए बोधगम्य नहीं है. सदन में मुसलमान सदस्यों की संख्या ३६ है. उन में से २५ ने ऐसी कोई आपत्ति नहीं की. आपत्ति न करने वालों में कांग्रेस के मुसलमान विधायक मुख्य रूप से हैं और आपत्ति करने वालों में विरोधी दलों के ही सदस्य हैं. जिस रूप में प्रश्न उठाया गया वह नया नहीं है. नगर महापालिकाओं के चुनाव के बाद भी यह प्रश्न उठाया गया था. मामला उच्च न्यायालय में पहुँचाया गया था और वहाँ पर निर्णय उर्दू वालों का विरोध रहा. राष्ट्रपति शासनकाल में राज्यपाल बी. गोपाल रेड्डी की कृपा से उर्दू में शपथ लेने का विधान मूल अधिनियमों में संशोधन कर किया गया था. इस प्रचलन को ले कर लखनऊ से दिल्ली तक में सदन में बहस-मुबाहसे हुए और अंततः यह मनवाने की कोशिश की गयी कि संविधान में मान्यता प्राप्त किसी भी भाषा में शपथ ली जा सकती है. शपथ दिलाने के लिए राज्यपाल ने देहरादून के कृष्ण सिंह की नियुक्ति की थी. श्री सिंह ने व्यवस्था दी कि राज्य और सदन की भाषा हिंदी घोषित की जा चुकी है कि विधान में हिंदी के अलावा अन्य किसी भाषा में शपथ लेने की व्यवस्था नहीं है. उन्होंने यह भी कहा कि जो सदस्य शपथ नहीं लेंगे वे सदन की अगले दिन की बैठक में भाग नहीं ले सकेंगे. जो सदस्य इस का उल्लंघन कर के सदन की कार्रवाइयों में भाग लेंगे वे ५०० रुपया प्रतिदिन के हिसाब से जुर्माना अदा करने के भागीदार होंगे. श्री सिंह ने वैधानिक प्रतिष्ठा का निर्वाह इस सीमा तक किया कि जब भारतीय क्रांति दल के मोहम्मद नबी ने ईश्वर के स्थान पर ख़ुदा शब्द का प्रयोग किया तो उन्हें रोक दिया गया और उन्हें ईश्वर कहने को बाध्य किया गया. उन की व्यवस्था के फौरन बाद ५ सदस्यों ने विधिवत शपथ ग्रहण किया बाक़ी लोगों ने अगले दिनों में. वास्तविकता यह है कि शपथ की भाषा समझ पाने या न पाने का प्रश्न सचमुच उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि उस का संबंध मनोवृत्ति से है. उन का ख़्याल है कि हर शपथ समारोह के अवसर पर उर्दू की बात उठा कर वे अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहे हैं. शपथ की भाषा का विरोध करने वालों में न केवल डॉ. फ़रीदी की मजलिस के सदस्य थे वरन् भारतीय क्रांति दल और प्रसोपा आदि के भी थे.

अभिभाषण : उर्दू के विषय में राज्यपाल की विचारधारा चाहे जो भी हो उन्होंने ४५ मिनट का अपना लंबा अभिभाषण हिंदी में ही पढ़ा. उन के अभिभाषण में उन नीतियों और कार्यों की तरफ़ संकेत था जो अगले महीनों में कांग्रेस की नयी सरकार जनहित में करने जा रही है. उन में विशेष उल्लेखनीय है चौथे पंचवर्षीय आयोजन में कुमाऊँ में विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव. गोरखपुर में भी एक मेडिकल कॉलेज खोलने का प्रस्ताव है. अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए एक स्थायी कमीशन नियुक्त करने का निश्चय किया गया है. कमीशन यह भी देखेगा कि प्रशासन ने अल्पसंख्यकों के संबंध में जारी किये गये निर्देशों और आदेशों का किस सीमा तक पालन किया है. पर्वतीय क्षेत्रों के विकास बोर्ड को अधिक से अधिक प्रशासकीय अधिकार देने तथा ग़ैर-सरकारी माध्यमिक शिक्षकों के अध्यापकों को उन का वेतन चेक द्वारा देने की बात कही गयी है. कर्मचारियों और सरकार के बीच अच्छे संबंध क़ायम करने के लिए विटले काउंसिल का निर्माण करने की भी बात है. यूँ तो अभिभाषण में यह भी कहा गया है कि प्रदेश को सुखी बनाने के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि और औद्योगीकरण के वास्ते हर संभव उपाय किये जायेंगे. कुल मिला कर अभिभाषण

में ठोस काम की तरफ़ इशारा कम और वायदे ही अधिक दिये गये हैं. अभिभाषण में महँगाई रोकने के किसी प्रयास का ज़िक्र नहीं किया गया है.

आंध्रप्रदेश

असंतुष्ट तेलंगाना

पृथक तेलंगाना चाहने वालों का आक्रोश दिन पर दिन तीव्रतर होता जा रहा है और राज्य तथा केंद्रीय नेताओं के तमाम आश्वासनों के बावजूद तेलंगाना के आंदोलनकारी आश्वस्त नहीं हो पा रहे हैं. १८ मार्च को प्रतिबंधात्मक आदेश का उल्लंघन करने के इरादे से ५० हड़ताली छात्र हैदराबाद में राज्य विधानसभा के अहाते में एकत्र हुए और उन्हें तितर-बितर करने पर आमादा पुलिस को लाठी चलानी पड़ी. लेकिन छात्र विधान सभा के अहाते से हट कर सामने की सड़क पर जमा हो गये. पुलिस द्वारा पुनः बल-प्रयोग से कुपित हो कर उन्होंने राह पर गुज़रती बसों पर पथराव शुरू कर दिया और एक बस में आग लगाने की भी चेष्टा की. हैदराबाद शहर के अन्य भागों में भी तोड़-फोड़ और पथराव की घटनायें हुईं और इन घटनाओं से संबद्ध २५ छात्रों को पुलिस ने गिरफ़्तार किया. १७ मार्च को तेलंगाना के अनेक शहरों, हैदराबाद और सिकंदराबाद में 'लोकतंत्र बचाओ दिवस' मनाया गया. एक छात्र प्रवक्ता के अनुसार कुछ लड़कियों सहित २०० आंदोलनकारियों को इस सिलसिले में गिरफ़्तार किया गया. हैदराबाद में कॉलेजों और हाई स्कूलों के छात्र अपनी कक्षाओं से ग़ैरहाज़िर रहे और उन्होंने शहर के विभिन्न भागों में बसों पर पथराव किया. उस्मानिया विश्वविद्यालय के अहाते में स्थित कॉलेजों की बंदी की अवधि मौजूदा स्थिति को देखते हुए २४ मार्च तक के लिए बढ़ा दी गयी है. ये कॉलेज १५ मार्च से बंद पड़े हैं. पृथक तेलंगाना की माँग को लेकर ४ मार्च से भूख हड़ताल कर रहे एक भूतपूर्व विधायक श्री के. पट्टाभिरमय्या को १८ मार्च की रात को उस्मानिया अस्पताल में ज़बरदस्ती भोजन दिया गया क्योंकि उन की हालत बहुत गिर गयी थी.

समाधान की जोड़-तोड़ : तेलंगाना जन-सम्मेलन ने यह माँग भी की है कि पृथक तेलं-

गाना के समर्थन में तेलंगाना के सभी विधायक मार्च के अंत तक त्यागपत्र दे कर आंदोलन में शरीक़ हों किंतु विधायक इसके लिए तत्पर नहीं दीखते. पिछले दिनों तेलंगाना के कांग्रेस विधायकों की एक बैठक में सर्वसम्मति से यह निर्णय लिया गया कि राज्य का विभाजन नहीं होना चाहिए और 'तेलंगाना सेफ़गार्ड' के प्रावधानों को अविलंब कार्यान्वित किया जाना चाहिए. मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने भी तेलंगाना की जनता की शिकायतों को यथा-शीघ्र दूर कर राज्य को अक्षुण्ण बनाये रखने की अपील की. बैठक में कहा गया कि जल्द से जल्द तेलंगाना की जनता को आश्वस्त किया जाना चाहिए कि उन के साथ पूरा न्याय किया जायेगा और संपूर्ण तेलंगाना की अतिरिक्त आय तेलंगाना के सर्वतोन्मुखी विकास के लिए ही व्यय की जायेगी. कांग्रेस विधायकों ने सरकार से अनुरोध किया कि 'तेलंगाना सेफ़गार्ड' को पूर्ण रूप से लागू करने के लिए एक अंतिम तिथि निश्चत की जानी चाहिए तभी आंदोलन-कारियों के आक्रोश को ठंडा किया जा सकेगा.

नगालैंड

विद्रोहियों की गिरफ़्तारी

फ़िजो समर्थक विद्रोही नगा नेता जनरल मोवू अंगामी और उन के २ सौ साथियों की सुरक्षा सेना द्वारा गिरफ़्तारी के बाद इस बीच सुखई गुट के समर्थकों द्वारा १७० और विद्रोहियों के पकड़े जाने का समाचार मिला है. यह गिरफ़्तारी सेमा क्षेत्र में हुई थी. चीन से लौटने वाले गेरिल्ला युद्ध में प्रशिक्षित फ़िजो समर्थक नगाओं और सुखई के समर्थक नगाओं में कई झड़पें हुई थी और उस में दोनों दल के कुछ लोग मारे गये. सुखई के समर्थक क्रांति-कारी नगाओं को अंततः फ़िजो-समर्थक नगाओं को पकड़ने में सफलता मिली. उन के पास से भी चीनी मार्के के अस्त्र-शस्त्र बरामद हुए. चीन में प्रशिक्षित नगा सैनिकों की पिछले दिनों कोशिश रही है कि वे नगा प्रदेश में प्रवेश कर सकें. लेकिन सुरक्षा सैनिकों की सतर्कता के कारण उन्हें अभी तक अधिक सफ़लता नहीं मिली है. जहां तक कुघातो सुखई का सवाल है, वह चीन-समर्थक नगा विद्रोही गुट के जानी दुश्मन हैं. उन्होंने पिछले साल ही यह घोषणा कर दी थी कि उन का गुट किसी भी बाहरी देश से, चाहे वह चीन हो या पाकिस्तान, अस्त्र-शस्त्र नहीं मांगेगा. इस गुट ने यह भी घोषणा की थी कि वह अपने दल का सहयोग नगा-समस्या के शांतिपूर्ण हल की खोज में देंगे.

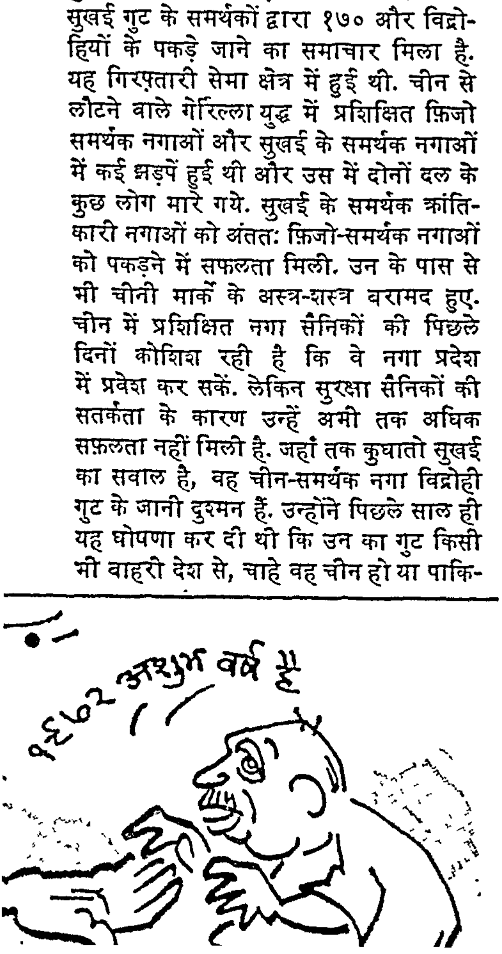

मोहभंग : कुछ सूत्रों का ख्याल है कि चीन से लौटने वाले विद्रोही नगाओं में से बहुतों का चीन के प्रति मोहभंग हो चुका है. उन का कहना है कि उन्हें गेरिल्ला युद्ध में प्रशिक्षण तो जरूर दिया गया लेकिन उन्हें चीन जाते समय जो आश्वासन दिये गये थे उन की पूर्ति नहीं हुई. चीन ने उन्हें वापस तो भेज दिया लेकिन सिवाय अस्त्र-शस्त्र देते रहने के अतिरिक्त और किसी ठोस सहयोग की बात नहीं कही. गुप्तचर विभाग की रिपोर्ट के अनुसार बहुत से नेता महसूस करते हैं कि चीन ने उन्हें अपमानित किया है क्यों कि प्रस्थान के वक़्त उन्हें यह आश्वासन दिया गया था कि भारतीय साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष के सिलसिले में उन्हें हर तरह की मदद दी जायेगी. जनरल मोवू अंगामी को और उन के समर्थकों को शुरू में यह आश्वासन दिया गया था कि चीन न केवल राजनैतिक समर्थन देगा बल्कि आवश्यकता के क्षण में चीन से सैनिक स्वयंसेवक भी आयेंगे और वे नगाओं के साथ कंधे-से-कंधा मिला कर भारत के विरुद्ध युद्ध करेंगे. फ़िजो समर्थक नगाओं को यह बताया गया था कि चीन उत्तरी बर्मा के जंगलों में गुप्त शिविरों की स्थापना करेगा जहां पर नगाओं को युद्ध का प्रशिक्षण दिया जायेगा. पीकिङ ने यहां तक कहा था कि वह नगालैंड को एक स्वायत्तता प्राप्त देश की मान्यता भी देगा. अब हालत यह है कि नगाओं को माओ के सिद्धांतों में प्रशिक्षित करने के बाद बिना किसी आश्वासन के भेज दिया गया. कहा जाता है कि जनरल अंगामी को यह भी बताया गया था कि वह अपने समर्थकों के साथ नगा प्रदेश में प्रवेश कर के भारत के विरुद्ध कार्रवाइयां शुरू कर के सुदृढ़ राजनैतिक मंच बनायें. जब तक वे ऐसा नहीं करते तब तक उन्हें चीन से सीधी सहायता नहीं मिलेगी. दूसरे शब्दों में चीन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि ऐसी अवस्था में विद्रोही नगा सरकार को मान्यता देने या चीनी स्वयंसेवक भेजने का सवाल ही नहीं पैदा होता. इन विद्रोही नगाओं को माओ साहित्य का जो अंश दिया गया था उस में भी यही संकेत था कि वे अपनी लड़ाई स्वयं लड़ें.

पश्चिम बंगाल

खान बचाओ अभियान

अगर यह पता हो कि किसी भी क्षण दुर्घटना घटित हो सकती है, दुर्घटना केंद्र का भी पता हो, उस के शिकार होने वाले व्यक्तियों का भी तो उन व्यक्तियों का और जिन्हें इस की सूचना है उन का मन भी हर क्षण आशंका, बेचैनी और घबराहट से भर जाता है. ऐसे समय में धैर्य, बुद्धि और एकाग्रचित्त सुरक्षात्मक उपाय ही काम आ सकते हैं. पिछले दिनों आसनसोल की रतिबाती कोयला खान में काम करने वाले ४ मज़दूर खान के १० नं. कूप (पिट) में सहसा ही घिर गये. ऊपर से कूप की छत टूटी, कुछ पत्थर गिरे, नीचे से बहती हुई बालू का एक रेला आया और वे छाती तक पत्थर, बालू और पानी से ढक गये. जैसा कि मज़दूरों ने बाद में बताया कि ८ घंटे तक वह अपने को भाग्य के भरोसे छोड़े रहे. यही लगता था कि पता नहीं कब वे इस कूप में सदा के लिए सो जायेंगे. लेकिन उन के कुछ मज़दूर साथियों को इस दुर्घटना का पता चल गया था और ऊपर से सुरक्षा अधिकारियों व कर्मचारियों की ओर से यह कोशिश जारी थी कि उन्हें कुछ खाद्य और पेय सामग्री तुरंत पहुँचाई जाये. ८ घंटे बाद उन्हें थोड़ी-सी रोशनी दिखी और जिस छेद से यह रोशनी आ रही थी उधर से ही कुछ रोटियां और चाय भी आ गयीं. इसी बड़े छेद से इन मज़दूरों से लगातार संपर्क बनाये रखा गया. उन्हें आक्सीजन भेजी जाती रही और ४ दिन के कठिन प्रयत्नों व लगातार काम के बाद २०० मज़दूरों व कई अधिकारियों की सहायता से ४५ फ़ीट लंबी सुरंग कूप तक तैयार की गयी और १२५ घंटे तक अंधेरे और मौत की छाया में रहने के बाद ये मज़दूर सकुशल बाहर आये. भारतीय कोयला खदान के इतिहास में इन मज़दूरों को इस तरह बचाने की यह पहली घटना है. इस से पहले एक बार १९५६ में एक खान में ४० व्यक्ति घिर गये थे जिन में से १९ दिन के बाद ११ बच कर ऊपर आ गये थे. उन्हें देख कर उन के साथियों ने उन्हें मृत समझा था क्यों कि वे मृत मान लिये गये थे. इस बार स्थिति भिन्न थी. यह पता था कि ४ मज़दूर एक कोयला खान में घिर गये हैं और उन्हें जीवित ऊपर लाया जा सकता है. इस लिए उन्हें ऊपर निकाल लेने के लिए कर्मचारियों और अधिकारियों को सभी क्षेत्रों से बधाइयां मिलीं. मज़दूरों का उन के साथियों, परिवार के व्यक्तियों व अधिकारियों ने अपार हर्ष और उल्लास के साथ स्वागत किया. लोकसभा में इस घटना की चर्चा हुई और मज़दूरों को सकुशल ऊपर निकाल लिये जाने पर खुशी प्रकट की गयी. श्रम मंत्रालय में राज्यमंत्री भगवत झा आज़ाद ने सदन को बताया कि यह मज़दूर ७० फ़ीट नीचे घिर गये थे. उन की अपनी तथा सुरक्षा अधिकारियों की व कर्मचारियों की बहादुरी उन के लिए पुनर्जन्म का कारण साबित हुई. बचाव सुरंग के तैयार होते ही एक-एक कर चारों मज़दूर ऊपर आये. सब से पहले ऊपर आने वाला था रसुराय (२१ वर्ष). इस के बाद लड्डू यादव (२५), रामविलास महतो (२४) और रामापीश साव (२३) ऊपर आ गये. ये चारों मज़दूर बिहार के दरभंगा और मुंगेर ज़िलों के थे. उन्हें ऊपर आने के लिए किसी सहायता की जरूरत नहीं हुई. वे अपने

पैरों से चल कर ही ऊपर आये. कुछ ऐसी दुर्घटनाएँ होती हैं जो अपने 'घटित न होने देने के लिए' कुछ भी समय नहीं देतीं. एक धमाका हुआ और सब खत्म. कोयला-खानों में भी ऐसी घटनाएँ होती रही हैं. लेकिन इस बार हुई एक दुर्घटना को जिस तरह 'न घटित' होने दिया गया वह इस बात का प्रमाण है कि भाग्य-भगवान पर ऐसी दुर्घटनाओं को न थोप कर सावधानी, सहानुभूति और संकल्पशीलता बरती जाये तो 'धमाके' वाली दुर्घटनाओं को भी रोका जा सकता है; उन की दुःखद परिणतियों को तो जरूर ही. यहाँ यह दुहराने की ज़रूरत है कि खानों में होने वाली ज्यादातर दुर्घटनाएँ सुरक्षा-उपकरणों के अभाव में व खानों को 'बुरी हालत' में रखने के कारण होती हैं. इस मज़दूर-बचाव-अभियान ने यह सिद्ध कर दिया है कि सुरक्षात्मक उपादान और मज़दूर-कर्मचारियों के प्रति सद्भावना-भंडार ऐसी दुर्घटनाओं को रोकने में सफल हो सकता है. इस में कोई संदेह नहीं कि यह अभियान आगे फिर कभी किसी ऐसी ही दुर्घटना घटित होने की संभावना के समय सुरक्षा व आत्मरक्षा के लिए एक प्रेरणा का काम करेगा.

पंजाब

बढ़ता हुआ रुतबा

मुख्यमंत्री सरदार गुरनामसिंह राज्यपाल के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव की बहस का जब उत्तर दे रहे थे तो उन के हाव-भाव से यह लग रहा था कि यह ७० साल का वृद्ध नहीं बोल रहा है. उन के लगभग हर वाक्य में व्यंग्य और कटाक्ष था और वह अपने तर्कों की संवैधानिक पुष्टि पेंचों के हवाले दे रहे थे. उन की विश्लेषणात्मक टिप्पणियों के सामने विरोधी सदस्यों की सिट्टीपिट्टी भूल गयी. कांग्रेस पार्टी के सदस्यों ने राज्यपाल डॉ. दादा साहब चिंतामणि पावटे के अभिभाषण की आलोचना करते हुए कहा कि राज्यपाल ने अपनी नीतियों की आलोचना खुद की है. उन्हें पश्चिम बंगाल के राज्यपाल धर्मवीर की तरह साहसी होना चाहिए था और जिन दो पैराग्राफ़ों में पिछली गिल सरकार की आलोचना की गयी थी उन्हें छोड़ देना चाहिए था. राज्यपाल ने ऐसा न कर अपने दब्बूपन का सबूत दिया है. १९६८-६९ के बजट की आलोचना सर्वोच्च न्यायालय द्वारा वैध ठहराये गये बजट की आलोचना है और इस प्रकार न्यायालय की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करना है. कांग्रेस पार्टी के नेता मेजर हरिंदरसिंह ने केंद्र से अनुरोध किया कि वह राज्यपाल को वापस बुला कर संसदीय परंपरा को दफ़न होने से बचायें. कांग्रेस के नेताओं ने मौजूदा सरकार को संयुक्त मोर्चे की सरकार नहीं लेकिन अकाली-जनसंघ की खिचड़ी सरकार बताया. विधानपरिषद् को समाप्त किये जाने के फ़ैसले का भी उन्होंने विरोध किया. प्रतिपक्षी पार्टी का यह ख्याल है कि उच्च सदन पर केवल ६ लाख रुपये साल का खर्चा है, जो राज्य की समृद्धि की तुलना में नगण्य है.

आरोप का जवाब : इन सभी आरोपों का उत्तर देते हुए मुख्यमंत्री गुरनामसिंह ने कहा कि राज्यपाल के भाषण में किसी तरह की भी कोई बेजा बात नहीं कही गयी. उस में सरकार की नीतियों को सिर्फ़ दर्ज किया गया है जो राज्यपाल ने संवैधानिक मुखिया होने के नाते पढ़ा; लिहाजा राज्यपाल की आलोचना बेमानी है. अपने भाषण के दौरान जब मुख्यमंत्री को बार-बार टोकाटाकी का शिकार होना पड़ा तो उन्होंने कांग्रेस पर सीधी चोट करते हुए कहा कि आप लोगों की वजह से ही यह सब कुछ हुआ और आप लोगों के दबाव के कारण ही तब राज्यपाल को अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करना पड़ा था. बजट भाषण में सर्वोच्च न्यायालय की कहीं भी आलोचना नहीं की गयी, क्यों कि सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय की तब ही अवमानना समझी जाती है जब किसी न्यायाधीश का नाम ले कर उस के व्यवहार पर संदेह किया जाये. कांग्रेस के नज़रिये को उन्होंने बेमतलब की आलोचना बताते हुए कहा कि सरकार केवल यह चाहती है कि जनता में एक तरह का भरोसा बना रहे, कि संविधान में निहित उस के मौलिक अधिकारों की सरकार पूरी रक्षा करेगी. हम श्री लक्ष्मण सिंह गिल की तरह बजट पास कराने के लिए सभा में पुलिस बुलाने में यक़ीन नहीं करते. पुलिस ने जिस प्रकार विधायकों के साथ मार-पीट की, जिस प्रकार फ़र्नीचर तोड़ा-फोड़ा गया और जिस प्रकार उपाध्यक्ष ने सभी संसदीय परंपराओं को ताक पर रख कर ३०० करोड़ रुपये का बजट कुछ मिनटों में पास कर उस पर अपने हस्ताक्षर कर दिये वह शर्म की बात है और इन सभी अनियमितताओं की जाँच करायी जायेगी. गुरनामसिंह के पूरे भाषण के दौरान कांग्रेसी सदस्य सिवाय हल्लागुल्ला करने के और कुछ न कर सके. विधानपरिषद् को समाप्त करने के बारे में संविधान के अनुच्छेद १६९ के अंतर्गत मुख्यमंत्री ने एक प्रस्ताव पेश करने की सूचना दी है. विधानसभा से पारित इस प्रस्ताव पर संसद् विचार करेगी और उस के बाद ही उच्च सदन को समाप्त करने के बारे में निर्णय लिया जायेगा.

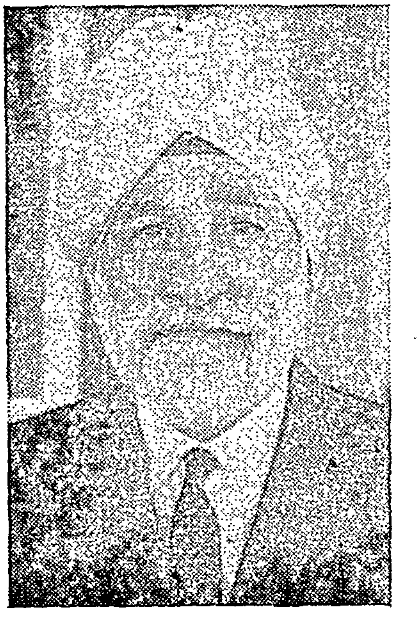

गुरनामसिंह: सशक्त बचाव

समान लिपि

मराठी भाषी डॉ. पावटे ने विधानसभा में अपना अभिभाषण जो पंजाबी में था, देवनागरी लिपि में लिखकर पढ़ा. डॉ. पावटे ने ऐसा कर के यह सिद्ध कर दिया कि यदि सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि अपना ली जाये तो उन का अंतर बहुत कुछ दूर हो सकता है. ऐसी एक लिपि देवनागरी ही हो सकती है क्योंकि उसमें विभिन्न भाषाओं को सही अभिव्यक्ति देने की क्षमता है.

उच्च सदन समाप्त करने के बारे में तरह-तरह के विचार प्रकट किये जा रहे हैं. मुख्यमंत्री गुरनामसिंह यह मानते हैं कि अगले कुछ दिनों में संयुक्त मोर्चे के सदस्यों का बहुमत हो जायेगा, लेकिन अपने स्वार्थ के लिए वह अपनी मान्यताओं का गला नहीं घोटना चाहते. वैसे विधानपरिषद् का रवैया पहले की तरह इस बार भी संयुक्त मोर्चे की सरकार के प्रति उग्र है और सभापति दुर्गादास खन्ना ने मुख्यमंत्री के बराबर ग़ैर-हाज़िर रहने को सदन के लिए असम्मानजनक बताया है. कांग्रेस के नेता हंसराज शर्मा ने यह कह कर कि मौजूदा सरकार ने १० लाख रुपये दल-बदल के लिए रख छोड़े हैं एक बावेला खड़ा करना चाहा, लेकिन अकाली दल के जीवनसिंह उमरांगल और जनसंघ के कृष्णलाल ने उन्हें चुनौती देते हुए कहा कि वह अपने इस आरोप को सिद्ध करने के लिए तथ्यों के साथ सदन में आयें. उच्च सदन हो या निम्न सदन, सरकार और सरकार-विरोधी तत्त्वों में पहले जैसा ही रिश्ता. लेकिन प्रतिपक्ष में कुछ नये और संसदीय परंपराओं से अनभिज्ञ सदस्यों के कारण वह गरमागरमी नहीं रह गयी है जो प्रबोधचंद्र, दरबारासिंह और मोहनलाल के वक़्त हुआ करती थी. गिल भी अभी चुप हैं, लिहाजा सारे माहौल पर मुख्यमंत्री गुरनामसिंह छाये हुए हैं और केवल उन की ही तूती बोल रही है.

जनसंघ के ब्रिगेडियर विक्रमजीत सिंह को सर्वसम्मति से विधानसभा का उपाध्यक्ष चुना गया.

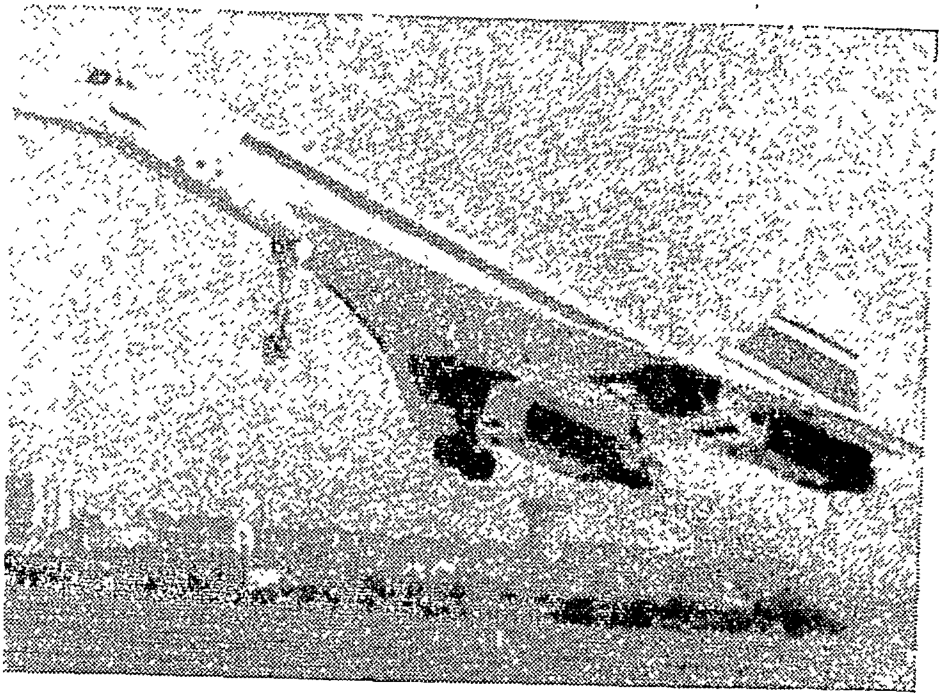

कनकोर्ड : पहली उड़ान

परिवहन

कनकोर्ड : जेट युग का प्रभात

वर्षों के अनुसंधान और इंतज़ार के बाद विशाल यात्री-वाहकयान कनकोर्ड ने पहली उड़ान बड़ी सफलतापूर्वक संपन्न की. पहली उड़ान के बाद ब्रिटेन के टेकनॉलॉजीमंत्री वेजवुड बेन ने उत्तेजना और उत्साह में इसे अत्यंत विस्मयकारी उड़ान बताया और ब्रितानी हवाई सेवा के प्रबंधक-निदेशक कीथ ग्रेनविले के शब्दों में 'यह उड़ान इस शानदार वायुयान से संबंधित हर एक व्यक्ति के लिए एक महान् विजय है. ब्रिटेन और फ़्रांस का अपने तकनीकी सहयोग पर गर्व करना अस्वाभाविक नहीं है. मगर आज की यह प्रभावशाली उपलब्धि केवल आरंभ है. वास्तविक प्रश्नों का उत्तर स्वयं कनकोर्ड ही देगा. प्रतीक्षा में लगे हुए विश्व को यह वायुयान अगले कुछ महीनों में अपने करतब दिखायेगा.' फ़्रांस और ब्रिटेन के अधिकारी एक जहाज़ के निर्माण के संबंध में इतने उत्साही और उत्तेजित क्यों हैं ? बहुत समय से इस बात की आवश्यकता महसूस की गयी थी कि अधिक से अधिक यात्रियों को कम से कम समय में विश्व के एक भाग से दूसरे भाग तक पहुँचाने की व्यवस्था हो. मगर अभी तक यह संभव नहीं हो पाया था, क्यों कि वायुयान, जो कि यातायात का सब से तेज़ साधन है, उस विकास-अवस्था तक नहीं पहुँच पाया था जहाँ उस में यात्रियों की बड़ी संख्या बैठ सके और फिर भी वह बड़ी तेज़ गति से सुरक्षित यात्रा कर सके. छोटे वायुयानों की गति में वृद्धि करने के प्रति ही विश्व के विकसित देशों का ध्यान लगा हुआ था, क्यों कि बहुत अधिक गति वाले वायुयानों का महत्त्व नागरिक यातायात की अपेक्षा सैनिक उद्देश्यों के लिए ही समझा जाता था. इस दिशा में अनेक ऐसे सैनिक वायुयान बन गये हैं जो ध्वनि या उस से भी अधिक गति से उड़ सकते हैं. इस प्रकार के यानों की सब से बड़ी सीमा यह होती है कि वे न तो एक निश्चित आकार से बड़े बनाये जा सकते हैं और न ही एक निश्चित अवधि से अधिक वे हवा में रह सकते हैं. मगर फ़्रांस और ब्रिटेन की सरकारों के सहयोग से एक नयी योजना पर कार्य आरंभ किया गया. इस योजना में छोटेपन की सीमा को तोड़ने का सफल प्रयास किया गया.

कनकोर्ड का आरंभिक रूप फ़्रांस में बन गया है. यह एक विचित्र आकार का वायुयान है, जो उतरते और उड़ान भरते समय एक विशाल जलपक्षी-सा दिखाई देता है, क्यों कि इन दोनों अवस्थाओं में इस यान का अगला हिस्सा (नाक) नीचे की ओर झुक जाता है, जो पक्षी की चोंच का आभास देता है. साथ ही इस का पिछला भाग भी कुछ-कुछ पक्षी की पूँछ के समान ही बनाया गया है. किंतु इस का महत्त्व इस की शक्ल में नहीं, बल्कि इस बात में है कि यह अपने पूर्ण विकसित रूप में ध्वनि से भी तेज़ गति से उड़ सकता है. फिर भी इस में १२८ से १४४ यात्रियों के बैठने की व्यवस्था है. कनकोर्ड के यात्री लंबी यात्राएं करने वाले व्यक्ति होंगे, इस लिए यान के अंदर उन की सुविधा के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ—खाना इत्यादि उपलब्ध करायी जायेंगी. इस यान की गति १,४५० मील प्रति घंटा है. यद्यपि इस योजना पर दोनों सरकारों ने कई वर्ष पूर्व कार्य आरंभ किया था फिर भी इसे बाज़ार में लाने की जल्दबाज़ी इस लिए हो रही है कि सोवियत संघ ने भी कुछ इसी प्रकार का एक यान बनाया है. यदि सोवियत यान विश्वबाज़ार में पहले आ जाता है तो ब्रिटेन और फ़्रांस का यह उद्देश्य पूर्ण रूप से सिद्ध नहीं होगा कि कनकोर्ड से उन्हें भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा मिल जायेगी. एक ब्रितानी अधिकारी का कहना है कि यदि दोनों प्रकार के यान एक साथ बिक्री के लिए तैयार हो जायें तो कनकोर्ड को कोई ख़तरा नहीं है, क्यों कि कनकोर्ड सोवियत यान से कहीं बेहतर है. इस के अतिरिक्त संयुक्त राज्य अमेरिका में भी इसी प्रकार का एक परिवहनयान तैयार किया जा रहा है. अमेरिकी वायुयान कनकोर्ड से बड़ा और अधिक शक्तिशाली होगा, मगर वह संभवतया उतनी आसानी से उड़ान नहीं भर सकेगा. साथ ही उड़ान भरते समय वह बहुत अधिक शोर भी मचायेगा.

उड़ान से पहले : ६० करोड़ पाउंड के इस

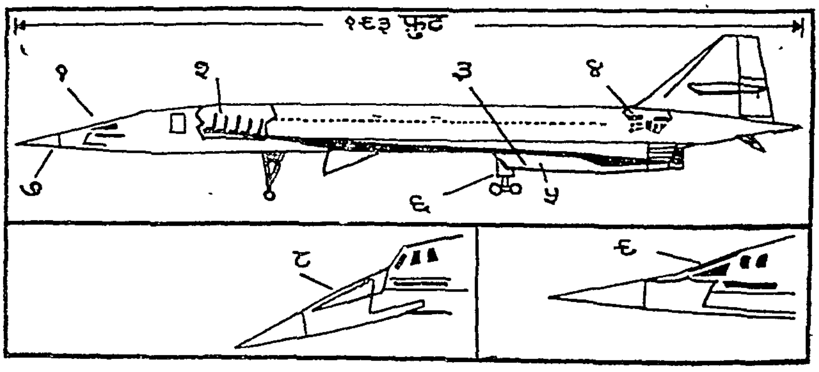

१. उड़ान पृष्ठ २. १४० यात्रियों का कक्ष ३. दो जेट इंजन ४. सामान का कमरा ५. रोल्स रॉयस इंजन ६. तेल की टंकी ७. मेघसूचक राडार ८. उतरते समय या उठते समय यान की झुकी नाक ९. तेज़ गति में सीधी नाक

कार्यक्रम के प्रति अनेक लोगों के मन में संदेह था. कई महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने तो यह सलाह भी दी थी कि इतने अधिक ख़र्च पर चलने वाली इस परियोजना को ही छोड़ देना चाहिए. मगर दोनों देशों के इंजीनियर और विशेषज्ञ इस बात पर तुले हुए थे कि इस महत्त्वपूर्ण यान को पूरा करना ही है. इसी लिए पहली उड़ान भरने से पहले कनकोर्ड के हर पुर्ज़े और उस की हर गतिविधि की सैंकड़ों बार परीक्षा की गयी. पिछले दो वर्षों में इस यान को भूमि पर ही विशेष प्रकार के कृत्रिम वातावरण में उड़ाया जा रहा था, ताकि इस बात का पूर्ण निश्चय किया जाये कि इस के विभिन्न इंजन या विद्युत-प्रणाली ठीक तरह से काम कर रहे हैं. पहली बार वास्तविक वायुमंडल में उड़ान का कार्य फ़्रांसीसी परीक्षण-चालक आंद्रे टर्कैट को मिला. उड़ान भरने से पहले इस बात का निश्चय किया गया कि जिस हवाई पटरी पर से वायुयान ऊपर उठेगा वह बिल्कुल खुश्क हो और ऊपर १२ हज़ार फ़ुट तक कहीं बादल का निशान भी न हो. इस के अतिरिक्त यह भी देखना ज़रूरी था कि चालक को आगे १० मील तक का दृश्य पूर्ण रूप से दिखायी देता है. पहली परीक्षण-उड़ान में भिन्न-भिन्न प्रकार के यंत्रों की परीक्षा करने के लिए चालक को क्रमिक रूप से यान की गति घटाने-बढ़ाने की आवश्यकता पड़ेगी. अभी यह यान पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाया है और इस लिए चालक को ध्वनि से कम गति से ही चलाने को बाध्य होना पड़ा. उड़ान भरते समय यान की नाक इस लिए नीचे झुक जाती है ताकि चालक को आगे का दृश्य पूर्ण और स्पष्ट रूप से दिखायी दे. जिस समय यान अपनी पूरी गति से उड़ेगा उस समय नाक को नीचे करने की कोई आवश्यकता नहीं होगी और वह एक रॉकेट की भाँति बिल्कुल सीधे उड़ान भरेगा. उतरते समय कनकोर्ड हवाई पट्टी पर अपने पिछले भाग के सहारे बैठ जाता है. दर्शकों को कुछ ऐसा महसूस होता है जैसे एक जल-पक्षी ने कंक्रीट की एक विशाल झील को छू लिया है.

और ००२ : दो मार्च को फ़्रांस में कनकोर्ड ने हवाई पट्टी छोड़ कर आकाश का रुख़ किया. उड़ान भरते समय एक भयानक गर्जना हुई और उस के बाद बहुत हल्के वायुयान की भाँति वह हवा में उठ गया. उस समय आकाश में थोड़े बादल थे, मगर चालक के अनुसार उसे कोई कठिनाई उपस्थित नहीं हुई. वायुयान के गर्जन से उन चीलों की आवाज़ एकदम बंद हो गयी जो हवाई अड्डे पर मंडरा रही थीं. दर्शकों के मन में तब तक यह आशंका बनी रही कि कहीं वायुयान की उड़ान असफल न हो जाये जब तक दूर भागे हुए यान की आवाज़ उन तक पहुँचना बंद हो गयी. २८ मिनट तक यान हवा में रहा. इस उड़ान के दौरान उस की गति केवल २०० से २५० नॉट तक रही. बीच में दक्षिण-पूर्व से आँधी का एक झोंका भी

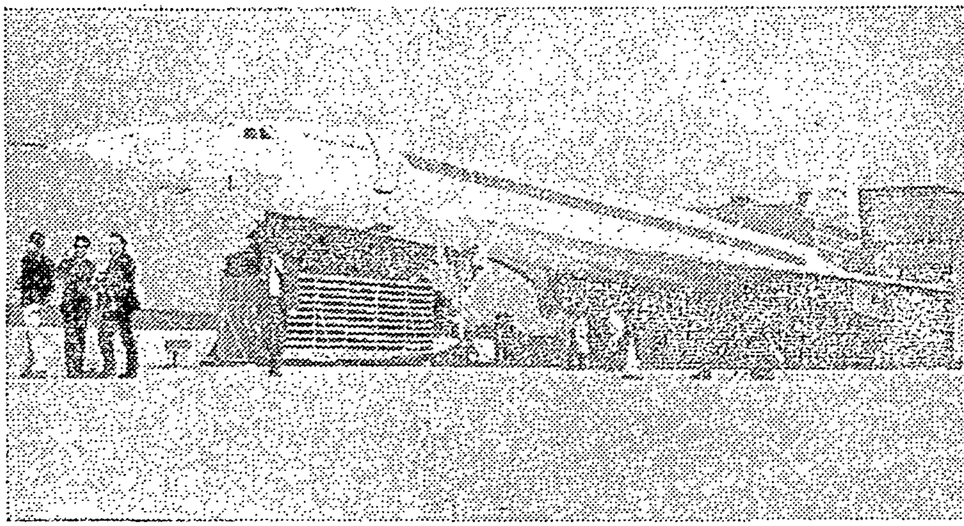

००२ : ब्रितानी संशोधन

आया, किंतु चालक के कुशल हाथ में वायुयान अपनी स्थिर गति से उड़ता रहा. बाद में नीचे उतरने के लिए उस ने यान को १० हज़ार फ़ुट की ऊँचाई तक उतार लिया. चालक बीच में कुछ घबरा-सा गया, क्यों कि वायुयान में लगा हुआ एक चेतावनी-यंत्र एकदम लाल-लाल रोशनी फेंकने लगा, जिस के कारण उसे तीसरा इंजन बंद कर देना पड़ा. कनकोर्ड में ४ इंजन लगे हुए हैं. सामान्यतया केवल दो ही इंजन काम करते हैं. यह जानने के लिए, कि उड़ान के दौरान कनकोर्ड निश्चित वज़न उठा सकता है या नहीं इस परीक्षण-उड़ान के समय उस में कुछ ऐसे यंत्र रख दिये गये थे जिन का कुल वज़न १३ टन था. यह उतना ही वज़न है जितना कि उसे सामान्यतया १४४ यात्रियों को उठाते समय वहन करना पड़ेगा. इस पहली सफल उड़ान के बाद अन्य कई परीक्षण-उड़ानों के पश्चात् ही इस में यात्री बैठाये जा सकते हैं. विशेषज्ञों का अनुमान है कि सामान्य कार्य में लगाये जाने से पहले कनकोर्ड को कम-से-कम ४ हज़ार घंटे तक उड़ान भरनी होगी, इस में उन दो वायुयानों की परीक्षण-उड़ानें भी शामिल हैं जो ब्रिटेन के वायुयान-केंद्र ब्रिस्टल में बन रही हैं. ये दो संशोधित कनकोर्ड—००२ और ००१—कुछ सप्ताह के बाद परीक्षण के लिए तैयार हो जायेंगे. वास्तव में ये दोनों वायुयान पिछले वर्ष सितंबर में बन गये थे. तब से इन के विभिन्न यंत्रों की परीक्षा हो रही है. कनकोर्ड के अगले भाग में एक ऐसा राडार यंत्र लगा रहता है जो बादलों के बारे में संकेत देता है, ताकि वायुयान बादलों में पहुँच कर मार्ग से विचलित न हो जाये.

आर्थिक पक्ष : कनकोर्ड के निर्माण के आरंभिक दिनों में कुछ आलोचकों ने यह आशंका व्यक्त की थी कि वायु के धक्के के कारण इस की गति और ईंधन जलने की क्षमता में परिवर्तन आ जायेगा. मगर निर्माण-विशेषज्ञों का दावा है कि इस क़िस्म की कोई कठिनाई पेश नहीं आ सकती. वास्तव में कनकोर्ड पर वायु का कम प्रभाव पड़ता है. इस बात का

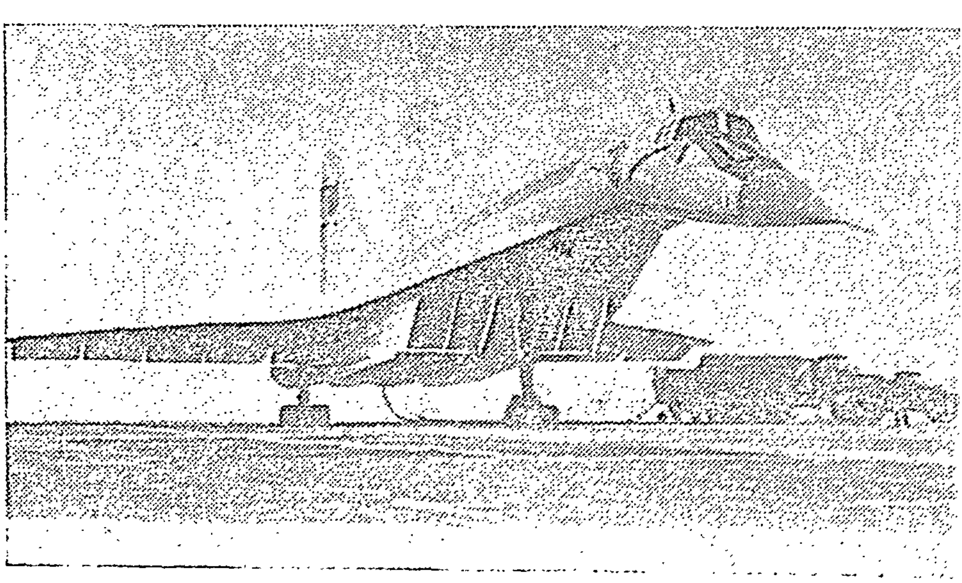

टी यू-१४४ : सोवियत संस्करण

अभी पूरी तरह से अनुमान नहीं लगाया गया है कि इस यान का मूल्य क्या रहेगा. अभी तक यही अनुमान लगाया जाता है कि संभवतः ब्रितानी हवाई सेवा को ७५ लाख पाउंड से ले कर ८० लाख पाउंड तक देना पड़ेगा. मगर यह संभव है कि अंतिम अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते इस मूल्य में वृद्धि हो जाये, क्यों कि पिछले वर्ष से आज तक निर्माण-मूल्य के अनुमान में भी परिवर्त्तन हुआ है. बी. ए. सी. का अनुमान है कि वह २५० वायुयानों को बेचने में सफलता प्राप्त कर सकेगा, मगर यदि अतिस्वन यानों को भूमि के ऊपर से चलाने का प्रतिबंध हटा दिया जाता है तो बी. ए. सी. को ४०० जहाज़ बेचने की आशा है. विश्व की १६ वायु-सेवाओं ने ७४ यान खरीदने का वायदा किया है. किंतु संभवतया वे तब तक अपनी इस माँग की पुष्टि नहीं करेंगे जब तक **कनकोर्ड** १४०० मील की गति को प्राप्त नहीं होता. इस में १५ मास लग सकते हैं.

कनकोर्ड को अभी हवाई सेवा के योग्य बनने में बहुत समय लगेगा, लेकिन अभी से विश्व के विभिन्न देशों में इस के संबंध में कुछ दिलचस्प प्रतिक्रियाएँ आरंभ हो गयी हैं. **वाँशिंगटन पोस्ट** के अनुसार अमेरिकी विशेषज्ञों का कहना है कि यह वायुयान उत्तर अतलांतिक यातायात के विकास में कोई महत्त्वपूर्ण योग नहीं दे सकता. अमेरिकी संघीय वायु-विशेषज्ञों ने यह मत व्यक्त किया है कि **कनकोर्ड** उठते समय या उतरते समय इतनी अधिक आवाज़ उत्पन्न करता है जो बहुत-से हवाई अड्डों में वर्जित है. उदाहरण के लिए न्यूयॉर्क के **केनेडी हवाई अड्डे** पर इस प्रकार की आवाज़ की अधिकतम सीमा ११२ निर्धारित की गयी है, जब कि **कनकोर्ड** की शोर पैदा करने की न्यूनतम सीमा ११२ है. इस लिए साधारण-सी ग़लती के कारण, विशेष कर गर्मी के महीनों में, इस यान के लिए न्यूयॉर्क जैसे हवाई अड्डों पर उतरना ग़ैर-क़ानूनी होगा. इसी प्रकार अमेरिकी अधिकारियों को इस बात में भी संदेह है कि **कनकोर्ड** पेरिस से न्यूयॉर्क तक बिना रुके उड़ान भर सकता है, क्यों कि इस अवस्था में वायु **कनकोर्ड** की गति के विपरीत चल रही होगी. संभवतया न्यूयॉर्क से वापस पेरिस जाने में कठिनाई महसूस न हो. इस लिए अमेरिकी विशेषज्ञ **कनकोर्ड** को अपनाने में अधिक उत्साह नहीं दिखा रहे हैं; बल्कि उन में से कुछ अधिकारी तो इसी बात पर ज़ोर दे रहे हैं कि अमेरिका अपनी ही विचाराधीन योजना पर काम कर के विशाल परिवहनयान तैयार करे. अमेरिका में इस सिलसिले में आरंभिक कार्य तो पूरा हो चुका है, किंतु उसे व्यावहारिक रूप देने का अभी अमेरिकी सरकार ने फ़ैसला नहीं किया है, जब कि सोवियत संघ ने कनकोर्ड जैसा ही परिवहनयान **टी यू-१४४** निर्मित कर लिया है.

आधुनिक जीवन

चित्त का चरित्र और सड़क का षड्यंत्र

अस्पताल में जब उस से पूछा गया कि आप इतनी जल्दी में कहाँ जा रहे थे तो उसने बताया कि मैं घर जा रहा था और जल्दी में इस लिए था कि मेरा बच्चा मकान की छत से नीचे सड़क पर गिर गया था. पर खोज-बीन करने पर पता चला कि उस की कार उस के घर से विपरीत दिशा में दौड़ रही थी. उस का बच्चा एकदम सकुशल था और घर के सब लोग लंबी प्रतीक्षा के बाद ढूँढते हुए अस्पताल पहुँचे थे. कोई भी तथ्य इस बात की पुष्टि नहीं कर सका कि बच्चे के छत पर से गिरने की खबर बाहरी दुनिया से उसे प्राप्त हुई.

इस धरती को एक ही नज़र में देखने की सामर्थ्य यदि किसी में विकसित हो जाये तो वह अनुभव कर सकेगा कि सारी दुनिया, यानी हर आदमी इस समय एक बहुमुखी दौड़ में हिस्सा ले रहा है. हर सड़क पर दौड़ का दृश्य है—चाहे वह शहर से गाँव जाती हो या गाँव से शहर में. दौड़ में लोग पैदल भी हैं और अपने वाहनों पर भी और इस दौड़ की सब से बड़ी विशेषता यह है कि पैदल साइकिल वालों की दौड़ में शामिल हैं, साइकिल वाला कार से होड़ ले रहा है और कार के इंजन का ध्वनि-विस्तार हवाई जहाज़ के इंजन के ध्वनि-विस्तार को परास्त करने के संघर्ष में लगा है. जिन सड़कों पर दौड़ हो रही है वे मकड़ी के जाले की तरह मानवीय चेतना के विस्तार पर छपी हैं. किसी को नक़्शे देख-देख कर भागने की ज़रूरत नहीं है. सब का अपना-अपना जाला है और उसी में घूमते रहना उस की नियति है; कुछ अपवादों को छोड़ कर ! पर यही घूमता हुआ आदमी अचानक एक दिन या तो अपना अस्तित्व ही मिटा पाता है या अस्पताल से अपाहिज हो कर निकलता है. पल भर को जाला झिलमिलाता है, फिर सहज हो जाता है. सड़क पर हुए इस नाटक का कारण जब अस्पताल में लेटे हुए व्यक्ति से पूछा जाता है तो वह अजीब-अजीब कहानियाँ सुनाता है; किसी न किसी पर दोष आरोपित करता है. उन का तथ्यों से कोई संबंध नहीं होता. कारण यदि न व्यक्ति में मिलें, न सड़क पर और न वाहन में, जो दोनों का संपर्क-सूत्र है, तो फिर कहाँ ढूँढा जाये ? पर कहीं भी हों, कारण हैं तो सही. ढूँढने का क्रम तो उन का बना ही रहना चाहिए.

हर ढाई मिनट के बाद कहीं भी, कोई भी व्यक्ति सड़क पर दुर्घटना से मारा जाता है. मरने वालों की इस संख्या को यदि इस ध्यान से देखें तो यह मध्य युग में फैलने वाली किसी भी महामारी से बहुत अधिक है. सड़क-दुर्घटनाओं का यह क्रम आज वास्तव में महामारी का रूप ले चुका है. महामारी में बीमारी का नाम घोषित हो जाता था. उस के कीटाणुओं से संघर्ष के लिए व्यक्ति अपने को तत्पर रखता था और सब से बड़ी बात कि महामारी का कार्यक्षेत्र बहुत छोटा होता था. पर इस महामारी का कार्यक्षेत्र सारी धरती है. इस के कीटाणुओं को खुर्दबीन से भी पहचाना नहीं जा सकता; उस से संघर्ष करना तो दूर की बात रही. इसी लिए यह महामारी दिन-दुगुनी रात-चौगुनी फैल रही है और लगता है कि

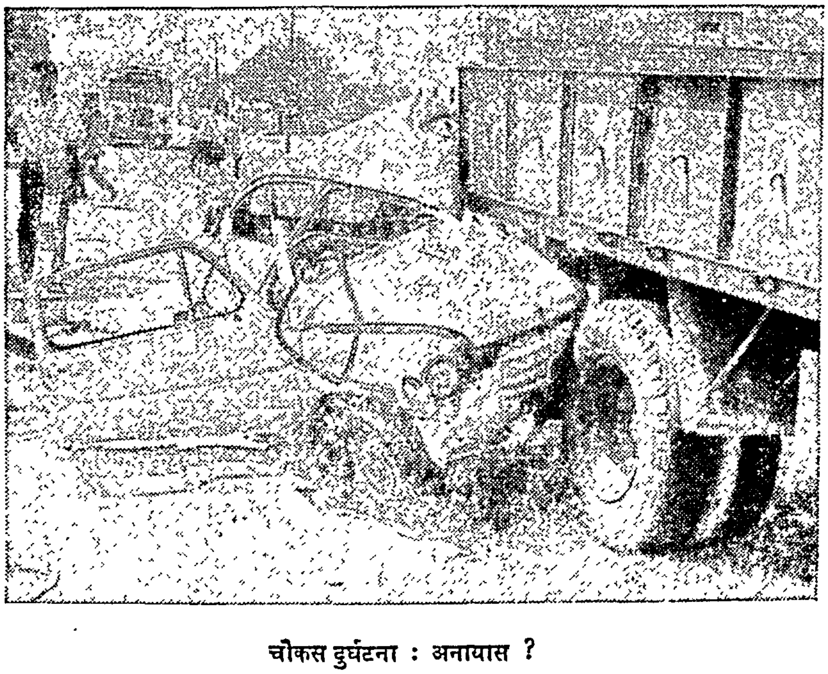

चौकस दुर्घटना : अनायास ?

धीरे-धीरे यह सारी दुनिया को अपने शिकंजे में इतनी सख्ती से कस लेगी कि निष्कृति कठिन न रह कर असंभव हो जायेगी.

हर महामारी के तीन मूल तत्त्व होते हैं—शरीर यानी घर, एजेंट यानी कीटाणु और फैलाव के लिए क्षेत्र यानी वातावरण, समाज. इस महामारी के संदर्भ में ड्राइवर, वाहन और सड़क ! कारण की तलाश इस अनोखी बीमारी के संदर्भ में हमें तीनों जगह करनी चाहिए.

यह बात स्वीकार करते हुए भी कि सड़क-दुर्घटनाओं में सड़क और वाहन का भी एक हिस्सा हो सकता है हम इस तथ्य को इस आधार पर नगण्य मान कर चल सकते हैं कि यदि थोड़ा भी ध्यान रखा जाये, यानी सड़क पर उतरने से पहले सड़क और वाहन की ज़रा देखभाल कर ली जाये तो इन के नाम आने वाले आरोप धुल सकते हैं. दुर्घटनाएँ दरअसल मशीन के फ़ेल हो जाने या सड़क के खराब होने से बहुत कम प्रतिशत में होती हैं. भीड़ या उलझे हुए ट्रैफ़िक को भी अधिक दोष नहीं दिया जा सकता. विदेशों में आँकड़ों से पता चला है कि शहरी क्षेत्रों के अनुपात में देहातों में सड़क-दुर्घटनाएँ ज्यादा होती हैं और इन में से अधिकांश में दो में से एक ड्राइवर की मृत्यु हो जाती है. भारत में क्यों कि कारों, ट्रकों या बसों की आमद-रफ़्त उतनी नहीं है, विशेष तौर से देहातों में, इस लिए हम उन आँकड़ों के आधार पर यहाँ की घटनाओं के कारणों को नहीं समझ सकते, पर यह तो सच है ही कि भीड़ या सड़क पर चलने की सही आदतों के बनने को हम दुर्घटनाओं का कारण कम ही समय तक मान पायेंगे. औद्योगीकरण के साथ-साथ सड़क और वाहन पर बैठ कर अनुरूप व्यवहार करने की सहजता यहाँ का आदमी भी धीरे-धीरे ग्रहण करता जा रहा है. सड़कों पर भीड़ तो बढ़ेगी ही, पर व्यवस्था भी निश्चय ही अधिक समर्थ होगी. लोग इस देश में भी सड़क पर चलने की आदतें पका ही लेंगे और पश्चिम की तरह हम भी उसी जगह आ कर रुकेंगे कि दुर्घटनाओं का कारण कहीं व्यक्ति-चित्र में बसा है; बाहरी कारण नगण्य और व्यक्ति के ही मानस-दोषों के कारण हैं. इस महामारी में, जो आज बड़ी तादाद में लोगों को समेट रही है, मेजबान भी और एजेंट (वाहक) भी और वातावरण भी काफ़ी दूर तक व्यक्ति ही है; सड़क ने उस के खिलाफ़ कोई षड्यंत्र नहीं रचा.

अब हम एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना कर सकते हैं जो अपने तमाम आवेगों-संवेगों और उन से बुने हुए उलझे या बहुत उलझे हुए मानसिक संसार को लिए कार के स्टीयरिंग पर बैठा है और भीड़ के एक अथाह समंदर में कार खे रहा है. उसे मंद करता है, तेज करता है, बायें काटता है, दायें काटता है, लोगों से बचता है और लोगों को बचाता है. हर क्षण बदलती मंज़िल को पार करता हुआ आखिरी मंज़िल की तरफ़ जाने वाली सड़कों की पहचान बनाये रखता है. संबंधों के इस बीहड़ ऊहापोह के साथ उस के अंदर की दुनिया का दरवाज़ा भी खुल जाता है, क्यों कि अथाह भीड़ में खेने की प्रक्रिया में हर नाविक का अकेलापन अधिक से अधिक ठोस हो जाता है. ऐसे में अंदर की दुनिया की दृश्यात्मकता और भी बढ़ जाती है. ड्राइवर उस समय दो जिंदगियाँ प्रति क्षण भोगता हुआ अपने ही द्वारा खींचे गये गति-चक्र में घूमता हुआ देखा जा सकता है.

कार ड्राइविंग एक तरह से इस (ऊपर जिस का विवरण प्राप्त है) व्यक्ति के सड़क पर किये गये व्यवहारों की सतता को कहते हैं. इन व्यवहारों को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है—एक वे जिन्हें लंबे अभ्यास के कारण एक तरह की स्थितियों में वह अर्जित कर लेता है और सहज भाव से प्रकट करता हुआ चलता है और दूसरे वे जिन्हें सोच-समझ कर अपनी स्थिति और अस्तित्व की रक्षा के लिए करता है. पहली तरह के व्यवहारों पर दबाव रहता है उस के अवचेतन का और दूसरी तरह के व्यवहारों में भूल-चूक की संभावना की चेतना हमेशा एक दुविधा का-सा वातावरण बनाये रखती है. पहले स्तर पर व्यक्ति के अंदर की दुनिया यदि अधिक स्पष्ट हो जाये तो उस की सहज प्रतिक्रियाओं की कड़ी में से कोई एक अचानक घटित होने से रह सकती है और दुर्घटना का कारण बन सकती है और दूसरी स्थिति में, क्यों कि वह पूर्णरूपेण वातावरण-सापेक्ष होती है, नाप-तोल की ज़रा-सी ग़लती व्यक्ति को मौत के मुँह में धकेल सकती है. इस में जितना अधिक मनोवैज्ञानिक रूप से व्यक्ति विक्षेप की स्थिति में होता है ये कारण उसे किसी भी समय दबोच लेने का सामर्थ्य रखते हैं और क्यों कि इन अत्यंत गहन और नेपथ्यात्मक तथ्यों का रिकार्ड रखने में कोई भी इतिहासज्ञ समर्थ नहीं हो सकता, इसी लिए इन घटनाओं में जो अनायासता या अनायास तत्त्व हैं उन के कारणों की खोज हमेशा उन जगहों पर की जाती रही है जहाँ वे नहीं थे और ग़लत ब्यौरे अख़बारों में छपते रहे हैं.

यहीं से कार-दुर्घटना या और भी दुर्घटनाओं के कारण उलझते जाते हैं. क्यों कि हर व्यक्ति अलग-अलग होता है इस लिए व्यक्तिगत कारणों का साफ़ वर्गीकरण समझ में आना मुश्किल है. फिर मानसिक अंतर्द्वंद्व की स्थितियाँ विषय को और भी दुरूह बना देती हैं. सब से पहले जिस घटना का वर्णन किया गया है वह उस दुरूहता का स्पष्ट प्रमाण है. घटनाग्रस्त व्यक्ति घर की तरफ़ जा रहा है, उस को उस के बच्चे के गिरने की सूचना उस के अंदर ही किसी ने दी, या हो सकता है कि उस ने भीतर कहीं बच्चे को गिरते देखा हो. इस से उस के और उस के परिवार के संबंधों पर भी प्रकाश

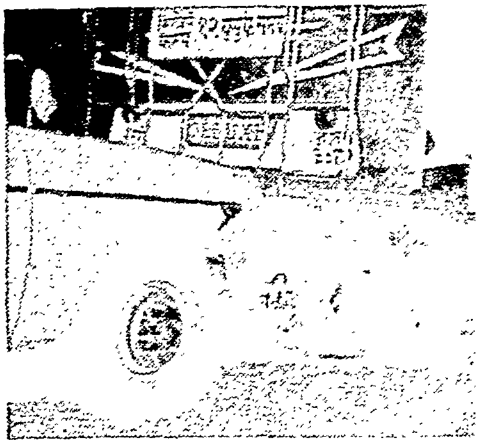

गति, गति, गति...

पड़ता है. यद्यपि वह हमारे लेख का क्षेत्र नहीं है पर यह तो मानना ही पड़ेगा कि घर से व्यक्ति के संबंध मानसिक स्थिति को समझने में काफ़ी सीमा तक सहायक होते हैं.

हैल्यूसिनेशन की यह स्थिति कम या अधिक सब में है. औद्योगीकृत व्यक्ति की यह आवश्यक मानसिक स्थिति मानी जायेगी. ज्यों-ज्यों व्यक्ति का मशीनीकरण होता जायेगा, वह स्वतंत्रता का अनुभव केवल इस स्तर पर ही करेगा. यही स्थिति उसे तरह-तरह के मादक द्रव्य खाने की तरफ़ धकेल देती है. और जहाँ इस से उस को मानसिक स्थिति का मुक़ाबला करने की शक्ति मिलती है वहीं उस की शहर की भीड़, सड़क, सड़क के सिगनल और सिगनलों का सही अर्थ-समझने की शक्ति धुँधली हो जाती है. और फिर दुर्घटनाओं की संभावनाएँ घटने के स्थान पर और बढ़ जाती हैं.

समस्या के इसी मोड़ पर आज की 'नयी संस्कृति' का सब से महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने आता है—ड्राइवर और मोटर के संबंधों का यानी आदमी और मशीन के संबंधों का. संक्षेप में यह कि मशीन-चालित वाहन व्यक्ति पर क्या प्रभाव डाल रहे हैं. इन वाहनों का जहाँ एक प्रभाव यह है कि ये व्यक्ति की समाज-स्थिति के प्रतीक बने हुए हैं, उस के अहं को धार दे रहे हैं, बजाय इस के कि केवल यातायात के साधन बनें, वहीं मानसिक रूप से ये व्यक्ति में एक 'नौशिया' पैदा कर रहे हैं. व्यक्ति के अहं की तेज धार इस नौशिया की स्थिति को 'हैल्यूसिनेशन' तक पहुँचाने में मदद दे रही है.

यहाँ सड़क के तथाकथित षड्यंत्र के मूल कारणों का एक रेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है. पर इस समस्या का विस्तार बहुत है. इस महामारी के कीटाणुओं की संख्या कल्पनातीत है. पर खोज तो किसी भी सीमा तक करते ही रहना पड़ेगा, क्यों कि महामारी के हाथों की लंबाई बढ़ती जा रही है और इस समस्या का 'अनायास' रहस्यमय होता जा रहा है.

खेल और खिलाड़ी

'हॉकी वर्ल्ड कप' मगर कहाँ?

फ़ुटवाल के खेल में 'वर्ल्ड कप प्रतियोगिता' का क्या महत्त्व है, यह वताने की आवश्यकता नहीं है. अब हॉकी के खेल में भी 'वर्ल्ड कप प्रतियोगिता' का आयोजन करने का विचार किया जा रहा है. इस प्रतियोगिता का आयोजन होगा या नहीं; इस के आयोजन का श्रेय पाकिस्तान को मिलेगा या भारत को इस बारे में अभी निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है. मैक्सिको ओलिंपिक में हॉकी में विश्व-विजेता का पद प्राप्त करने के वाद पाकिस्तान ने कुछ समय पहले यह घोषणा की थी कि वह इस महीने के अंत में पेरिस में होने वाली अंतरराष्ट्रीय हॉकी संघ की वैठक में अपने यहाँ 'वर्ल्ड कप प्रतियोगिता' का आयोजन करवाने का प्रस्ताव रखेगा. इस खबर के तुरंत वाद ही भारतीय खेल अधिकारियों की प्रतिक्रियाएँ अखवारों में प्रकाशित होने लगीं. भारतीय खेल अधिकारी बड़े विश्वास के साथ यह कहने लगे कि मूल रूप से हॉकी में 'वर्ल्ड कप' प्रतियोगिता का आयोजन कराने का विचार भारत का ही है. अत: यदि हॉकी में 'वर्ल्ड कप' प्रतियोगिता का कभी आयोजन किया गया तो वह भारत में ही किया जायेगा. भारतीय हॉकी संघ के अवैतनिक सचिव एस. एम. सैत ने कहा कि पेरिस में होने वाली वैठक की कार्यसूची में यह प्रस्ताव भारत की ओर से किया जायेगा. हॉकी में भी वर्ल्ड कप प्रतियोगिता का आयोजन ठीक उसी रूप में किया जायेगा जिस रूप में फ़ुटवाल प्रतियोगिता का किया जाता है.

एक और दावा : भारतीय हॉकी संघ की चुनाव समिति के अध्यक्ष जे. डी. नागरवाला ने भी यह दावा किया कि भारत ने सब से पहले यानी १९६२ में ही वर्ल्ड कप प्रतियोगिता के आयोजन का सुझाव दिया था. इस नये विवाद पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि पाकिस्तान के इस सुझाव में कोई नयी वात नहीं है. भारतीय हॉकी संघ ने ८ फ़रवरी को अंतरराष्ट्रीय हॉकी संघ के अध्यक्ष रेने फ्रैंक को फिर इस वात का स्मरण दिलाया है कि हॉकी में वर्ल्ड कप प्रतियोगिता के आयोजन की जल्द से जल्द अनुमति दी जानी चाहिए. अंतरराष्ट्रीय हॉकी फ़ेडरेशन की वैठक २९ मार्च को पेरिस में होने वाली है. इधर भारतीय हॉकी संघ रेने फ्रैंक पर इस वात के लिए ज़ोर डाल रहा है कि वर्ल्ड कप के आयोजन का अधिकार भारत को ही मिले और उधर भारतीय अधिकारी सरकार पर दवाव डाल रहे हैं कि पेरिस में होने वाली वैठक में भारतीय प्रतिनिधि का भेजा जाना वहुत ही आवश्यक है. रेने फ्रैंक को यह सूचना भी भिजवा दी गयी है कि भारत इस अंतरराष्ट्रीय हॉकी प्रतियोगिता (वर्ल्ड कप) के लिए एक ट्रॉफ़ी प्रदान करने को तैयार है और इस प्रतियोगिता का आयोजन प्रतिवर्ष कभी भारत में कभी भारत से वाहर (अंतरराष्ट्रीय हॉकी संघ की सलाह और स्वीकृति से) किया जा सकता है.

उन्होंने यह भी कहा कि सव से पहले भारत ने ही १९६२ में अहमदावाद में अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेले का आयोजन किया था. भारत सरकार द्वारा भारतीय हॉकी टीम को लाहौर हॉकी मेले में भाग लेने की अनुमति न देने पर उन्होंने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि जव तक चुनाव समिति को भारतीय हॉकी संघ का विश्वास प्राप्त है तव तक टीम के चुनाव के मामले में किसी को हस्तक्षेप करने या प्रभाव डालने की ज़रूरत नहीं है. हाँ, यदि भारतीय हॉकी संघ को चुनाव समिति में विश्वास नहीं तो वह नयी समिति की स्थापना कर सकता है. फिर उन्होंने दार्शनिक की मुद्रा में कहा—'हम ओलिंपिक खेलों में ओलिंपिक नियमों और सिद्धांतों के अनुसार ही भाग लेने के लिए जाते हैं. हम खेल को केवल खेल की भावना से खेलना चाहते हैं. हमें हारने से कोई खुशी नहीं होती लेकिन यदि हम अपनी जी-तोड़ कोशिशों के वावजूद भी हार जाते हैं तो ऐसी स्थिति में कहने को कुछ नहीं रहता.'

लाहौर हॉकी मेला : लाहौर अंतरराष्ट्रीय हॉकी मेला समाप्त हो गया. जीत पाकिस्तान की टीम की हुई. फ़ाइनल में पाकिस्तान की टीम और पाकिस्तान जूनियर्स की टीमें पहुँचीं. विचारणीय प्रश्न यह है कि पाकिस्तान में इन दिनों गृह-युद्ध की सी स्थिति है. आये दिन आगज़नी, मार-काट, उठा-पटक, उपद्रव आदि के समाचार सुनने को मिलते हैं. पिछले दिनों इंग्लैंड की क्रिकेट टीम अपने पाकिस्तान के दौरे को वीच में ही छोड़ कर इंग्लैंड वापस चली गयी थी. हैरानी की वात तो यह है कि पाकिस्तानी दर्शकों ने क्रिकेट के मैदान में जितना हो-हल्ला किया उतना हॉकी के मैदान में नहीं किया. दुनिया के ९ देशों ने इस हॉकी मेले में भाग लिया. पाकिस्तान जूनियर्स से हार जाने के वाद ऑस्ट्रेलिया की टीम वड़े नाटकीय ढंग से अपने देश वापस लौट गयी.

केन्या टीम : लाहौर हॉकी मेले में भाग लेने के वाद केन्या की टीम भारत के दौरे पर आयी हुई है. अव तक इस टीम ने केवल दो टेस्ट मैच (फ़िरोज़पुर और अमृतसर) खेले. कोई टीम गोल नहीं कर सकी.

इस वीच यह समाचार भी सुनने को मिला है कि भारतीय हॉकी संघ ने दिल्ली हॉकी एसोसिएशन के अध्यक्ष आई. एम. महाजन को दुर्व्यवहार के आरोप में मुअत्तल कर दिया.

'मिनि ओलिंपिक'

खेल-कूद में रंग-भेद क्यों?

उधर दक्षिण अफ़्रीका छोटे ओलिंपिक (मिनी ओलिंपिक) के आयोजन की तैयारियाँ कर रहा और इधर दक्षिण अफ़्रीका की रंग-भेद नीति विरोधी समिति के अध्यक्ष डेनिस ब्रूटस यहाँ-वहाँ जा कर दक्षिण अफ़्रीका की रंग-भेद नीति का और वहाँ की गोरी-सरकार की काली करतूतों का पर्दाफ़ाश कर रहे हैं. ४४ वर्षीय ब्रूटस ने पिछले दिनों अपनी भारत-यात्रा के दौरान स्पष्ट और निर्भीक तरीक़े से दक्षिण अफ़्रीका की रंग-भेद नीति की निंदा की.

डेनिस ब्रूटस : कालों के पक्षधर

उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि भारत को चाहिए कि वह ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेट अधिकारियों पर यह दवाव डाले कि वह दक्षिण अफ़्रीका का अपना दौरा रद्द कर दे. ऑस्ट्रेलिया द्वारा इस वर्ष के अंत में दक्षिण अफ़्रीका का दौरा करने का सीधा-सा यह अर्थ है कि दक्षिण अफ़्रीका के साथ उस की हमदर्दी है.

कुछ समय पहले यह समाचार मिला था कि पश्चिम जर्मनी के कुछ खिलाड़ी दक्षिण अफ़्रीका द्वारा आयोजित 'मिनी ओलिंपिक' खेलों में भाग लेने जा रहे हैं मगर अव पश्चिमी जर्मनी के विदेशमंत्री ने वड़े स्पष्ट शब्दों में यह कह दिया है कि क्यों कि १९७२ में म्युनिख में ओलिंपिक खेलों का आयोजन किया जा रहा है इस लिए हमारे खिलाड़ियों का दक्षिण अफ़्रीका के खेलों में भाग लेना मुनासिव नहीं होगा.

डेनिस ब्रूटस ने, जो खिलाड़ी होने के साथ-साथ कवि, अध्यापक, दार्शनिक और धर्म-योद्धा भी हैं, तीखे शब्दों में अंतरराष्ट्रीय

ओलिंपिक समिति के अध्यक्ष एवेरी ब्रूंडेज का विरोध किया और कहा कि उन्हीं की उदासीनता और ढील के कारण ही दक्षिण अफ़्रीका अपने यहाँ 'मिनि ओलिंपिक' खेलों का आयोजन कर रहा है. ओलिंपिक समिति के अध्यक्ष होने के नाते उन्हें इस का विरोध करना चाहिए था.

डेनिस ब्रूटस खेल-कूद में रंग-भेद की नीति वरतने के कट्टर विरोधी हैं. इस क्षेत्र के वह एक धर्मयोद्धा माने जाते हैं. और सच तो यह है कि इन्हीं के सक्रिय विरोध के कारण ही दक्षिण अफ़्रीका को ओलिंपिक खेलों से बाहर किया गया और आज भी वह दक्षिण अफ़्रीका की गोरी सरकार के लिए एक सिरदर्द बने हुए हैं.

कवि पक्ष : डेनिस ब्रूटस का खेल-कूद के क्षेत्र में जो स्थान है वह तो किसी से छिपा नहीं मगर साहित्यिक क्षेत्र में उन की कितनी साख और धाक है इस का अंदाज़ा तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि अमेरिका के चार और अफ़्रीका के तीन विश्वविद्यालयों में उन की कविताएँ पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ायी जाती हैं. हाल ही में उन्होंने एक कविता आगरा में ताजमहल को देखने के बाद लिखी थी.

मानवधर्म के सब से कट्टर समर्थक ब्रूटस का कहना है कि जिन देशों में रंग के आधार पर इनसान में भेदभाव किया जाता है उन में काले इनसानों के दिल पर क्या गुज़रती होगी इस की आप लोग कल्पना भी नहीं कर सकते. ब्रूटस का, जो आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड में अपने व्याख्यान और भाषण करने के बाद दिल्ली आये और जो अब दिल्ली से इंग्लैंड जायेंगे, कहना है कि "मैं स्वयं रंग-भेद नीति का शिकार हूँ. मैं 'काला' हूँ, मेरा जन्म सेलिसबरी में हुआ और मैं बड़े नाटकीय ढंग से रोडेसिया से मोज़ांबिक पहुँचा." कई बार वह पकड़े गये, कई बार उन्हें जेल की यातनाएँ सहनी पड़ीं, लेकिन उन्होंने हँस-हँस कर इन कष्टों को झेला. उन का कहना है कि आखिर जीत हमारी हुई यानी तोक्यो ओलिंपिक खेलों में दक्षिण अफ़्रीका को आमंत्रित नहीं किया गया.

ब्रूटस पिछले तीन वर्षों से ब्रिटेन में रह रहे हैं. जब वह दक्षिण अफ़्रीका में थे तब वह दक्षिण अफ़्रीका की रंग-भेद नीति विरोधी समिति के अध्यक्ष थे. अब भी वह इस समिति के अध्यक्ष हैं. पिछले १४ वर्षों से वह अंग्रेज़ी के प्राध्यापक हैं. बातचीत के दौरान वह अक्सर यह कहते हैं कि यदि इस वर्ष के अंत में ऑस्ट्रेलिया की क्रिकेट टीम को दक्षिण अफ़्रीका का दौरा करना ही है तो भारत को ऑस्ट्रेलिया की इस नीति का विरोध करना चाहिए. खबर है कि उन्होंने अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद् के अध्यक्ष राम निवास मिर्धा को इस संबंध में एक पत्र लिखा है.

रंग-भेद की नीति के कट्टर विरोधी और समान मानव धर्म के कट्टर समर्थक ब्रूटस का कहना है कि विश्वविद्यालय के छात्रों और अशांत नवयुवकों से मुझे बेहद प्यार है क्यों कि मेरा मत है कि ये लोग ही मेरे सब से बड़े समर्थक और अनुयायी हैं.

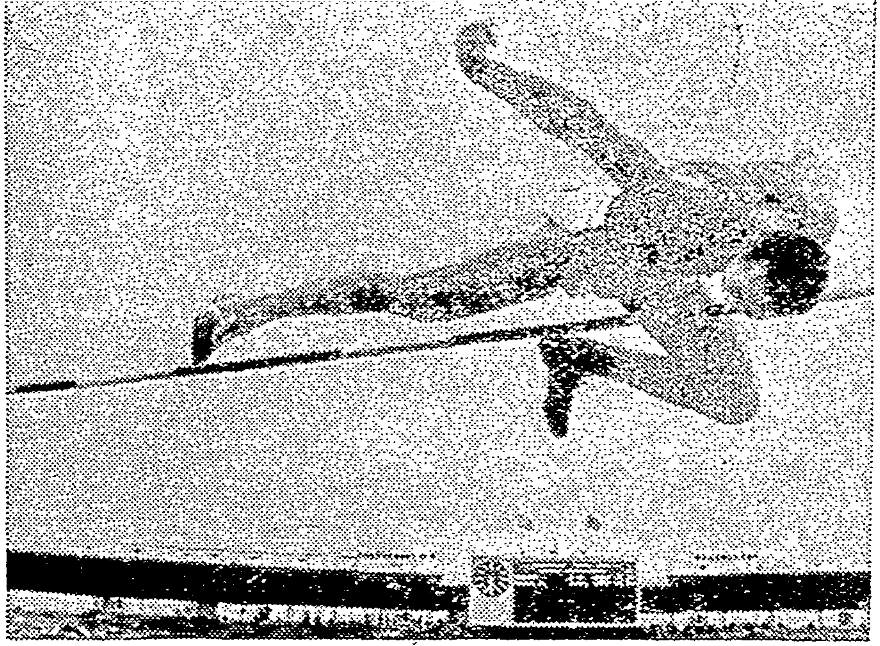

वालेरी ब्रूमेल : 'मैं फिर कूदूंगा'

एथलेटिक

वालेरी ब्रूमेल की वापसी

मैक्सिको ओलिंपक खेलों में एथलेटिक के क्षेत्र में पिछड़ जाने के समाचार से सोवियत संघ को जितनी परेशानी हुई थी उस से कहीं अधिक प्रसन्नता इस समाचार से हुई कि वालेरी ब्रूमेल (इन का पूरा नाम वालेरी निकोलाए-विच ब्रूमेल है) अब बिलकुल ठीक हो गये हैं और फिर खेल-कूद की दुनिया में आ रहे हैं. ऊँची कूद में सोवियत संघ के वालेरी ब्रूमेल ऐसे खिलाड़ियों में से हैं जिन पर केवल सोवियत संघ ही नहीं बल्कि सारा संसार गर्व कर सकता है. तीन साल पहले जब ब्रूमेल ने यंग पायनियर्स स्टेडियम में अपने प्रशिक्षण के दौरान २ मीटर और पांच सेंटीमीटर ऊँचा कूद कर दिखाया तो सोवियत संघ के खेल प्रेमियों की खुशी का ठिकाना नहीं रहा. यहाँ यह बता देना उचित होगा कि ५ अक्तूबर १९६५ को मोटर साइकिल दुर्घटना में ब्रूमेल की दायें पैर की हड्डी टूट गयी थी. इस के बाद ब्रूमेल काफ़ी दिनों तक अस्पताल में पड़े रहे. बड़े-बड़े डॉक्टर घबरा कर यह कहने लग गये कि इस विश्व-चैंपियन की टाँग काटी जाये या नहीं. लेकिन ब्रूमेल बीच-बीच में यह कह देते कि 'मैं फिर कदूंगा'. आखिर सर्जन इवान कुचेरेंको की मेहनत से उन की टाँग बच गयी और चिकित्सक गैवरिल इलिज़ारोव ने उन्हें फिर खेल-कूद में भाग लेने योग्य बना दिया. मैदान में उपस्थित एक प्रतिष्ठित खेल-कूद प्रशिक्षक ने कहा—'वालेरी जब एक बार इस स्थिति में आ गया है कि वह अपने आप को ज़मीन से दो मीटर ऊँचा उछल सकता है, तो इस का अर्थ है कि वह निश्चय ही और अधिक प्रभावशाली ऊँचाइयों तक पहुँच जायेगा. मैं उस के साहस की सराहना करता हूँ.'

एक और एथलेटिक विशेषज्ञ ने कहा कि ब्रूमेल को अपने बीच में देख कर मुझे बड़ी खुशी हो रही है. इस में कोई संदेह नहीं कि वह और ऊँचा कूदेगा और अपने पहले स्थान और सम्मान को फिर से प्राप्त कर लेगा. तकनीक की दृष्टि से उस की कूद पहले जैसी ही निर्दोष है.

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि १२ अप्रैल १९५९ को १७ वर्षीय वालेरी ब्रूमेल पहली बार दो मीटर ऊँचा कूदा था. सच तो यह है कि खेल-कूद की दुनिया में अब ब्रूमेल का दूसरा जीवन शुरू होता है. जिस खिलाड़ी ने अपने साहस और संकल्प से अपनी बिगड़ी तक़दीर को इतना सुधार दिया हो उस के लिए अपने कीर्तिमानों में सुधार करना क्या मुश्किल है.

संक्षिप्त समाचार

हेल्म्स पुरस्कार : खेल-कूद की दुनिया में हेल्म्स पुरस्कार का अपना एक महत्त्व है. यह पुरस्कार हर साल दुनिया के महत्त्वपूर्ण खिलाड़ियों, खेल-शास्त्रियों को दिया जाता है. इस पुरस्कार-प्रथा का शुभारंभ १९३६ में लॉस एंजेल्स (अमेरिका) में किया गया था. हाल में भारत के जाल पारदिवाला को इस पुरस्कार से सम्मानित किया गया. एथलेटिक के क्षेत्र में पारदिवाला का योगदान किसी से छिपा नहीं है. उन्हें यह सम्मान खिलाड़ी के रूप में नहीं बल्कि एक खेल-शास्त्री के रूप में मिला है. वह एथलेटिक के विशेषज्ञ हैं.

इन से पहले जिन भारतीयों को इस पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है उन के नाम हैं रामनाथन् कृष्णन् (लॉन टेनिस), मिल्खा सिंह (एथलेटिक) और के. डी. सिंह 'बाबू' (हॉकी).

नेपाल की नयी राजनीति : पंचायत के गिर्द

पिछले माह विराट नगर में अपने निवास-स्थान पर रिहाई के बाद प्रथम बार बोलते हुए नेपाल के भूतपूर्व प्रधानमंत्री **बी. पी. कोइराला** ने पंचायत-व्यवस्था के औचित्य और उपलब्धियों की कड़ी आलोचना की. उन्होंने संविधान, भूमि-सुधार कार्यक्रम, विदेश नीति और मूलभूत अधिकारों के प्रश्न उठाये और पंचायत व्यवस्था को अधिनायकतंत्र की संज्ञा दी. व्यवस्था व वातावरण में क्रांतिकारी परिवर्त्तन की माँग करते हुए उन्होंने राजा महेंद्र के साथ समान स्तर पर बैठ कर विचार-विमर्श करने का प्रस्ताव रखा. साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यदि अहिंसक व शांतिपूर्ण तरीक़ों से बात नहीं बनी तो जो कुछ भी अन्य साधन संभव और आवश्यक हुए, उन का सहारा लिया जायेगा. अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने परिवर्त्तन की तुलना प्रसव से की और कहा कि यदि यह स्वाभाविक व सरल तरीक़ों से हो जाता है तो उचित है वरना 'ऑपरेशन' करना ही पड़ेगा. ऑपरेशन के डर से गर्भवती स्त्री की ज़िंदगी को खतरे में नहीं डाला जा सकता.

पंचायत-व्यवस्था नेपाल को महाराजा महेंद्र की देन है. १५ दिसंबर १९६० में कोइराला सरकार और संसदीय प्रणाली को भंग कर के उन्होंने इस व्यवस्था की नींव डाली जो निर्देशित जनतंत्र के सिद्धांत पर आधारित है. तब से राजा महेंद्र इस व्यवस्था के पोषण और औचित्य के लिए प्रयत्नशील रहे हैं. अतः कोइराला के वक्तव्य की सरकारी क्षेत्रों में तीखी प्रतिक्रिया स्वाभाविक ही थी. प्रधानमंत्री **सूर्य बहादुर थापा** ने कोइराला द्वारा लगाये गये आरोपों का खंडन किया और कहा कि पंचायत नेपाली जनजीवन का एक अभिन्न अंग बन चुकी है. राजा महेंद्र के साथ समान स्तर पर विचार-विमर्श की कोइराला की माँग को ठुकराते हुए थापा ने कहा कि नरेश का नेपाल के राष्ट्रीय जीवन और राजनैतिक व्यवस्था में सर्वोपरि स्थान है व किसी व्यक्ति विशेष को उन के समान नहीं माना जा सकता. उन के अनुसार वैधानिक और जनतांत्रिक तरीक़ों से जो भी परिवर्त्तन संभव अथवा वांछनीय है, उस के लिए पंचायत-व्यवस्था में कोई रुकावट नहीं है.

प्रधानमंत्री की बात का समर्थन करते हुए स्वयं राजा महेंद्र ने अपने 'जनतांत्रिक दिवस' संदेश में (१८ फ़रवरी) कहा कि थोथी और देश के संदर्भ में असंगत संसदीय व्यवस्था व दलगत राजनीति के लिए नेपाल में कोई स्थान नहीं है. भूतकाल में इस के द्वारा उत्पन्न कलह और अशांति को स्मरण कराते हुए उन्होंने ज़ोर दिया कि उस के स्थान पर अपनायी गयी पंचायत-व्यवस्था सामूहिक नेतृत्व की हिमायती है जो किसी व्यक्ति, दल व क्षेत्र विशेष को बढ़ावा नहीं देती.

पत्रों की राय : समाचारपत्रों में भी कोइराला के भाषण की विपरीत प्रतिक्रिया हुई है. सरकार संचालित **गोरखा पत्र** (नेपाली) और **राईजिंग नेपाल** (अंग्रेज़ी) के साथ-साथ **नया समाज** (नेपाली) और **कॉमनर** (अंग्रेज़ी) ने भी भूतपूर्व प्रधानमंत्री के भाषण पर खेद प्रकट किया और पंचायत-व्यवस्था व नरेश में अपना विश्वास दोहराया. एक अन्य नेपाली दैनिक **समाज** ने तो यहाँ तक लिखा कि कोइराला के भाषण से ऐसा लगता है कि विदेश निवास के दौरान (कोइराला रिहाई के तुरंत बाद अपने इलाज के लिए भारत में रहे) वे अपना वैचारिक संतुलन खो बैठे हैं. कुछ पत्रों ने कोइराला की आलोचना की तो, लेकिन पंचायत-व्यवस्था पर लगाये गये आरोपों का परोक्ष रूप से समर्थन किया. **नेपाल टाइम्स** (नेपाली) ने लिखा कि वह पंचायत-व्यवस्था में परिवर्त्तन का समर्थक तो है लेकिन जिस ढंग से कोइराला ने राजा और व्यवस्था पर छींटाकशी की है उस का अनुमोदक नहीं. उधर **मदरलैंड** (अंग्रेज़ी) ने अपनी संपादकीय टिप्पणी में लिखा है: 'जनतंत्र का उपदेश तो दिया जाता है परंतु उस पर व्यवहार यदा-कदा ही होता है. सहनशीलता और दूसरों के विचारों को सुनने की इच्छा जनतंत्रात्मक राजनीति की आधारभूत आवश्यकताएँ हैं, लेकिन भगवान् बुद्ध की इस जन्मभूमि पर सहनशीलता शायद ही व्यवहार में लायी गयी हो. जनतंत्र बलिवेदी पर है'. (१८ फ़रवरी, १९६९).

हलचल का आभास : पंचायत के औचित्य को ले कर हुए विवाद के इस सूत्रपात के फलस्वरूप नेपाल में पिछले कुछ वर्षों से चली आ रही स्थिर व आम राय की राजनीति में पुनः हलचल का आभास होने लगा है. कोइराला के वक्तव्य ने साम्यवादी तत्वों को नेपाली

हदबंदी का आग्रह

नेपाल ने भारत सरकार से अनुरोध किया है कि वह भारत-नेपाल सीमा की हदबंदी के लिए सुस्ता क्षेत्र में संयुक्त सर्वेक्षण की यथाशीघ्र व्यवस्था करे और १८१७ की हदबंदी के अनुसार ही स क्षेत्र का सर्वेक्षण किया जाये. हालाँकि नेपाल में भारतीय राजदूत राजबहादुर ने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि भारत और नेपाल में सीमा संबंधी कोई मतभेद नहीं है और केवल सुस्ता नदी के बहाव के रुख-परिवर्त्तन से मिटे सीमा-संकेत स्तंभों को पुनः स्थापित करने से ही हदबंदी का कार्य पूरा हो जायेगा. नेपाल सरकार की एक प्रेस विज्ञप्ति में बताया गया है कि इस सिलसिले में २४ जनवरी को दोनों देशों के प्रतिनिधि बातचीत के लिए सुस्ता क्षेत्र में मिले थे. यह बातचीत अधूरी रह गयी क्यों कि भारतीय प्रतिनिधियों ने कहा कि भारत सरकार से पूर्ण आदेश मिलने पर ही वे पुनः विचार-विमर्श करेंगे. मार्च के द्वितीय सप्ताह में सुस्ता क्षेत्र में हदबंदी पर भारत-नेपाल वार्त्ता का समय पुनः निश्चित किया गया था किंतु यह वार्त्ता अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गयी है. यद्यपि अभी तक इस स्थगन का कोई आधिकारिक कारण स्पष्ट नहीं हो पाया है किंतु कुछ जानकार सूत्रों ने एक कारण यह बताया कि दोनों पक्ष वार्त्ता का प्रारूप अभी तक तैयार नहीं कर पाये हैं.

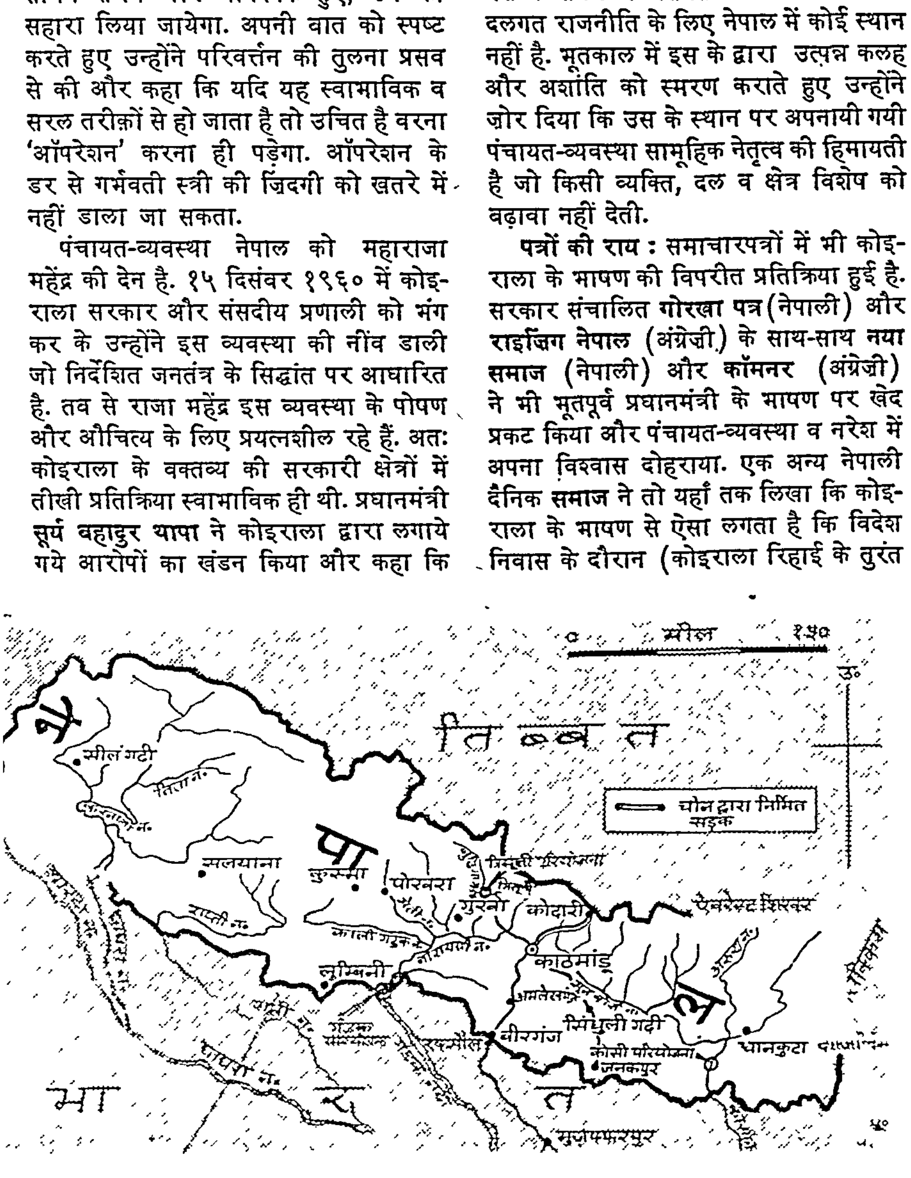

कांग्रेस पर प्रहार करने का नया मसाला दे दिया है. ये तत्व राजा महेंद्र और नेपाली कांग्रेस के अभी तक चले आ रहे वैमनस्य से लाभ उठा कर अपना शक्ति-संगठन कर रहे थे. अतः अक्तूबर '६८ में नरेश व नेपाली कांग्रेस के बीच हुए समझौते ने इन्हें असमंजस में डाल दिया और तभी से ये अपनी स्थिति की रक्षा के लिए सक्रिय हो गये. इन के दबाव से सरकार को हाल ही में साम्यवादी नेता मनमोहन अधिकारी और शंभूराम श्रेष्ठ को रिहा करना पड़ा. दोनों नेताओं ने अपनी रिहाई के साथ ही नरेश और वर्त्तमान व्यवस्था के प्रति अपना समर्थन प्रकट किया और उन के साथ सहयोग का वचन दिया. स्पष्ट है कि साम्यवादी बाहरी तौर से पंचायत-व्यवस्था का समर्थन करते हैं क्यों कि इस की आड़ में वे अपनी शक्ति का संगठन कर सकते हैं. यहाँ यह स्मरण रहे कि नरेश व नेपाली कांग्रेस के बीच हुए समझौते का मुख्य प्रयोजन नेपाल में बढ़ते हुए चीन-समर्थक साम्यवादी प्रभाव को रोकना था. बढ़े हुए साम्यवादी प्रभाव का स्पष्ट प्रमाण भूतपूर्व विदेशमंत्री कीर्त्तिनिधि विस्ट के कथन में निहित था जिस में उन्होंने साम्यवादी (चीनी) कम्यून को पंचायत व्यवस्था के लिए उपयुक्त बताया. इस कथन के बाद और नरेश व नेपाली कांग्रेस के बीच समझौता होने के कुछ ही समय पूर्व राजा महेंद्र को उन्हें पदमुक्त करना पड़ा.

त्रिकोणात्मक प्रयास : दूसरी ओर नेपाली कांग्रेस के डॉ. **तुलसी गिरि**, **विश्वबंधु थापा** और **ऋषिकेश शाह**, जो कोइराला सरकार के पतन के बाद राजा महेंद्र के नेतृत्व में बने प्रथम मंत्रिमंडल में थे, लगता है कि नये मोर्चों की तलाश में हैं. एक ओर वे वर्त्तमान प्रधानमंत्री थापा का विरोध कर रहे हैं दूसरी ओर नरेश व नेपाली कांग्रेस के समझौते को ध्वंस करने के लिए प्रयत्नशील हैं. इन को नेपाल के पुराने शासक राजाओं के एक वर्ग का समर्थन प्राप्त है. इस समर्थन के ज़रिये ये राजा महेंद्र का पक्ष प्राप्त करने को भी उत्सुक हैं. इन के राजनैतिक प्रयोजन और चाल तो समान हैं लेकिन तुलसी गिरि व विश्वबंधु थापा का साथ ऋषिकेश शाह दे सकेंगे, इस में संदेह है. साथ ही इन के त्रिकोणात्मक प्रयासों में भूतपूर्व प्रधानमंत्री **टंकप्रसाद आचार्य** और **मातृका प्रसाद कोइराला** तथा भूतपूर्व विदेशमंत्री **दिल्ली रमण रेग्मी** का क्या योगदान होगा, कहा नहीं जा सकता. वैसे इन के पीछे जो समर्थन या शक्ति है उसे देखते हुए इन के योगदान का कोई विशेष महत्त्व भी नहीं है. बहरहाल उद्देश्य सभी के समान हैं.

वर्त्तमान प्रधानमंत्री थापा को राजा महेंद्र का पूर्ण विश्वास प्राप्त है. नेपाली कांग्रेस से हुए समझौते से कुछ ही दिन पूर्व राजा महेंद्र ने मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व का क्षेत्र बढ़ा कर व उस का पुनर्गठन करके थापा की स्थिति को और अधिक सुदृढ़ कर दिया. उदार राजनीति के समर्थक थापा अपने बढ़े हुए उत्तरदायित्व और समझौते से उत्पन्न राजनीति के नये संदर्भ के प्रति जागरूक से लगते हैं और इसी लिए वे अपना समर्थन-क्षेत्र बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हैं. इस दिशा में नेपाली कांग्रेस के नेता **सूर्य प्रसाद उपाध्याय** से उन के बढ़ते हुए संबंध ध्यान देने वाली बात है. यहाँ यह भी याद रखना आवश्यक है कि थापा और सूर्य प्रसाद उपाध्याय के संयुक्त प्रयास ने समझौते को फलीभूत करने में सब से महत्त्वपूर्ण योगदान किया था.

युवक वर्ग किस ओर ? : पंचायत के औचित्य पर चले इस विवाद का नेपाली कांग्रेस पर विपरीत प्रभाव पड़ा. कोइराला के भाषण के कुछ ही दिन बाद सूर्य प्रसाद उपाध्याय ने एक वक्तव्य जारी कर के राजा महेंद्र व पंचायत व्यवस्था में अपना विश्वास व्यक्त किया व उस के साथ ही समझौते के अंतर्गत दिये गये अपने समर्थन और सहयोग के वचन को दोहराया. उन्होंने कोइराला के विचारों से अपनी सहमति प्रकट की और कहा कि कोइराला ने वक्तव्य देने से पहले पंचायत के प्रश्न पर दल के अन्य सदस्यों से कोई विचार-विमर्श नहीं किया. कुछ हद तक इस का प्रमाण नेपाली कांग्रेस के एक अन्य बड़े नेता **सुवर्ण शमशेर**, जो दल के कार्यकारी अध्यक्ष हैं और जो समझौते से पूर्व भारत में थे, की चुप्पी से मिलता है. परंतु **गणेशभान सिंह**, जो कोइराला के साथ जेल में रहे, अवश्य ही अपने सहयोगी नेता के पक्ष में हैं. नेपाली कांग्रेस के इस विभाजन में युवक व छात्र वर्ग राजा और व्यवस्था के विरोध में कोइराला के पीछे हैं. उन का विचार है कि जब तक व्यवस्था के ढांचे में आमूल-चूल परिवर्त्तन नहीं किया जाता, जनतंत्रवादी शक्तियाँ उचित रूप से नहीं पनप सकतीं. दूसरी ओर बड़े-बुजुर्ग सूर्यप्रसाद उपाध्याय की समझौते को स्थायी बनाने की नीति के पक्ष में हैं.

महाराजा महेंद्र और महारानी रत्ना

चाओ एन लाइ, टंकप्रसाद आचार्य, माओ-त्से तुंग, सूंग चिंग-लिंग और सुकर्ण : चीनी मेहमान

नेहरू और तुलसी गिरि (१९६१)

व्यवस्था पर दवाव : राजनैतिक शतरंज के इन मोहरों का कार्यक्षेत्र है—नेपाली जनता के विभिन्न वर्ग. जनसंख्या का सब से बड़ा भाग गाँवों में रहता है जिस का राजनीतिकरण और राजनैतिक सामाजीकरण अभी केवल ऊपरी सतह पर हुआ है. इस का मुख्य उत्तर-दायित्व सदियों से पलते आ रहे समाज के रूढ़िवादी ढांचे और व्यक्ति व विचारों के आवागमन के लिए उपलब्ध नाम मात्र की सुविधाओं पर है. पिछले २० वर्षों में इस दिशा में जो भी प्रगति हुई है वह काफ़ी नहीं है. पंचायत व्यवस्था के अंतर्गत शुरू किये गये भूमि-सुधार कार्यक्रम और **गाँव फर्का** (गाँवों की ओर चलो) अभियान व पंचायत से पहले आम चुनावों और खुली राजनीति ने चेतना के स्रोत खोलने का प्रयास किया. इन स्रोतों के फलस्वरूप उत्पन्न अधिकारों और सुविधाओं की माँग की गति सरकार द्वारा इस को पूरा करने की सामर्थ्य से अधिक है. परिणामस्वरूप व्यवस्था पर दवाव बढ़ रहा है. इस संदर्भ में अवकाशप्राप्त सैनिकों की महत्त्व-पूर्ण भूमिका रही. भारतीय और ब्रितानी सेनाओं में अपने कार्यकाल के दौरान उन्हें जिन सुविधाओं और राजनैतिक वातावरण के उपयोग का अवसर मिला, पंचायत-व्यवस्था में वह मयस्सर नहीं. अत: वे असंतुष्ट हैं. नेपाल का मजदूर वर्ग (औद्योगिक) बहुत छोटा है, लेकिन उस को भी अपनी माँगें आगे रखने और अपने हितों की रक्षा करने के स्वतंत्र और प्रभावशाली साधन उपलब्ध नहीं हैं.

निष्क्रिय बुद्धिजीवी, संतुष्ट व्यापारी : नेपाल के बुद्धिजीवियों में लगता है कि सिद्धांत-निष्ठा व साहस की कमी है. यों तो यह वर्ग पंचायत के प्रवाह के साथ है और लेखों व टिप्पणियों से इस के विभिन्न पहलुओं की विस्तृत व्याख्या करता है, लेकिन वंद कमरों में, 'नयी सड़क' के किनारों पर या किसी रेस्तराँ की एकांत मेज पर, चाय और काफ़ी के प्यालों के गिर्द, अपने विश्वस्त मित्रों व सहयोगियों के बीच इस वर्ग के सदस्यों की पीड़ा और बौद्धिक कुंठा उफनती है और उस उफान की इति होती है तो केवल असमंजस और किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता में. इसी तरह व्यापारी समाज का अपना ही आलम है. स्पष्टतया धन-संचय के अलावा उन की कोई समस्या नहीं. साम्य-वादियों को छोड़ 'कोउ नृप होय हमें का हानी' ही उन का नारा है. व्यापार और औद्योगिक क्षेत्रों में शांति का इच्छुक यह वर्ग राजनैतिक स्थायित्व का हामी है. पंचायत से उस को कोई शिकायत नहीं और न ही संसदीय व्यवस्था से उस का कोई विशेष लगाव है. वैसे साम्यवादी सरकार के अलावा इस वर्ग को हर व्यवस्था से मेल रखने की कला खूब आती है.

इन सब वर्गों के बीच छात्र व युवक वर्ग का विशेष स्थान है. विश्वव्यापी असंतोष की लहर से नेपाल का यह वर्ग न तो अनभिज्ञ है और न अछूता ही. इस के सामने एक ओर शिक्षा की बढ़ती हुई सुविधाएँ और उस से उत्पन्न महत्त्वाकांक्षाएँ हैं तो दूसरी ओर काम और प्रगति के अवसर की सिकुड़ती हुई सीमाएँ. और तो और, विदेशों में प्रशिक्षित अभियंता व प्राविधिक भी हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं. यहाँ तक कि जिन के पास रोज़गार है उन के पास भी काम नहीं. इस वर्ग के असंतोष का राज-नीतिकरण उस अनुपात में तो नहीं हुआ है, जैसा कि पड़ोसी देश चीन, पाकिस्तान या भारत में तथापि 'मिल' के उदारवाद व जॉनलॉक के व्यक्तिगत अधिकार के विद्यार्थी, पंचायत के वर्त्तमान प्रारूप से संतुष्ट नहीं हैं. साथ ही नेतृत्व और विश्वास के संकट के कारण इस असंतोष की रचनात्मक अभिव्यक्ति नहीं हुई है और नतीजा है आंतरिक घुटन.

शेष प्रश्न : समाज में व्याप्त दिशाभ्रम, राजनैतिक निष्क्रियता, असंतोष और घुटन से यदि अभी तक किसी ने लाभ उठाया है तो साम्यवादी तत्त्वों ने जो मार्क्स और माओ के स्वप्न को नेपाल में साकार करवाने के लिए तन-मन-धन से रत हैं. जनतांत्रिक शक्तियों का नया रूप इस को कहाँ तक रचनात्मक और सही दिशा दिखाने में सफल होगा, यह अभी देखना है. हाँ, एक बात स्पष्ट है और वह यह कि यदि विवाद की दिशा और गति यही रही तो नेपाली कांग्रेस का समर्थन व शक्ति-स्रोत कमज़ोर हो जायेगा और उस का प्रभाव-क्षेत्र संकीर्ण. अन्य सभी तत्त्व किसी न किसी प्रकार से इस का लाभ उठायेंगे और जैसा कि उन का लक्ष्य नेपाली कांग्रेस है, पंचायत व्यवस्था को निकट भविष्य में कोई खतरा नहीं है. इस का एक कारण यह भी है कि नेपाली कांग्रेस के कोइराला पक्ष के अलावा सभी राजनैतिक तत्त्व किसी न किसी रूप में राजा महेंद्र का समर्थन चाहते हैं. परिणामस्वरूप राजा महेंद्र का महत्त्व इन तत्त्वों के बीच संतुलन रखने वाली सर्वोपरि शक्ति के रूप में बना रहेगा. यदि ये तत्त्व बिखराव के स्थान पर एकीकरण व संगठन की राजनीति अपनायें और राजा महेंद्र को पाकिस्तान के अय्यूब व अमेरिका के जॉनसन की तरह राजनीति से संन्यास लेने के लिए प्रेरित करें, अथवा स्वयं राजा महेंद्र भूटान के वाँगचू की तरह अपना भविष्य जनता के हाथों में छोड़ दें, तो बात दूसरी है.

किसी का माल किसी के मत्थे

पिछले दिनों नेपाल से हो कर किसी तीसरे देश—खास कर चीन की वस्तुओं का भारत में निरंतर आयात पर राज्य सभा के अनेक सदस्यों ने चिंता प्रकट की. ए. जी. कुलकर्णी और मोहन धारिया ने कहा कि बड़े पैमाने पर नेपाल से स्टेनलैस स्टील के वर्तनों के आयात से भारतीय उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है. विदेशी व्यापार मंत्री बी. आर. भगत ने बताया कि नेपाल से किसी तीसरे देश की वस्तुओं के भारत में आयात पर प्रतिबंध लगाया गया है किंतु नेपाल से विस्तृत और खुली भारतीय सीमा जुड़ी है. इसी से तस्कर-व्यापारियों को आयात का मौक़ा मिल जाता है. लेकिन सरकार भारत-नेपाल व्यापार समझौते की शर्तों को सतर्कता-पूर्वक लागू करने की कोशिश कर रही है और उस ने सीमा पर निगरानी और चुंगी व्यवस्था भी मज़बूत कर दी है. श्री भगत ने कहा कि नेपाल सरकार ने यह आश्वासन दिया है कि वह केवल नेपाली जनता के उपयोग के लिए ही बाहर से सामान मँगायेगी, न कि भारत भेजने के लिए. नेपाल सरकार ने यह स्वीकार कर लिया है कि वह सन् १९६७-६८ के स्तर से अधिक स्टेनलेस स्टील के वर्त्तनों का उत्पादन नहीं बढ़ने देगी. कुछ सदस्यों ने भारत-नेपाल व्यापार समझौते को दोहरा कर किसी तीसरे देश की बनी हुई वस्तुओं पर 'नेपाल में बनी' खुदवा कर भारत भेजने की चालबाजी पर सख्त पाबंदी लगाने की माँग की.

विश्व

रूस-चीन संघर्ष

बदलता शक्ति-संतुलन

उसूरी नदी के दमिस्की टापू पर पिछले दिनों की झड़पों के बाद संभवतः अब शांति है, किंतु रूस और चीन दोनों ही शब्द-युद्ध में रत हैं और एक दूसरे के विरुद्ध धुआंधार प्रचार कर रहे हैं. संघर्ष यहीं समाप्त हो जायेगा या और बढ़ेगा, इस बारे में कोई निश्चित मत व्यक्त नहीं किया जा सकता है, परंतु राजनैतिक प्रेक्षकों का मत है कि फ़िलहाल कोई भी पक्ष बड़ी लड़ाई लड़ने की मनःस्थिति में नहीं है. किंतु हाल की घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया है कि रूस और चीन के बीच जो मतभेद पिछले २० वर्षों से चला आ रहा है, वह अब बहुत उग्र हो गया है और कभी भी सीमा पर होने वाली झड़पें बड़े युद्ध में परिणत हो सकती हैं. इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि १९६० में दोनों देशों में जो सशस्त्र-संघर्ष हुआ था, वह हाल के संघर्ष से बड़ा था, फिर भी भविष्य में समझौते की संभावना को दृष्टिगत रखते हुए किसी भी पक्ष ने उस का विवरण प्रकाशित नहीं किया था. लेकिन इस बार ऐसा नहीं हुआ जिस से स्थिति की गंभीरता का स्पष्ट आभास मिलता है.

नेपथ्य में : साम्यवादी खेमे के इन दो बड़े देशों के इस संघर्ष का उन के आपसी संबंधों पर क्या दूरगामी प्रभाव पड़ेगा, यह अभी भविष्य के गर्भ में ही है, किंतु इस से विश्व का शक्ति-संतुलन बहुत कुछ प्रभावित हुआ है. नेपथ्य में बैठा चीन किसी भी समय मैदान में कूद कर शक्ति-संतुलन को बदल सकता है. रूस द्वारा चीन पर लगाया गया यह आरोप बहुत कुछ सही है कि उस ने (चीन ने) अपनी हाल की कार्रवाई से साम्यवादी आंदोलन के साथ विश्वासघात किया है. इस आरोप का आधार यह है कि ५ मार्च को बर्लिन में पश्चिम जर्मनी के राष्ट्रपति का चुनाव होने को था जिस का रूस विरोध कर रहा था. चुनाव से ठीक तीन दिन पहले चीन ने रूसी सीमा-रक्षकों पर हमला कर दिया. इस से बर्लिन के मामले में रूस का पक्ष कमज़ोर हुआ और चीनी संकट को देखते हुए ही संभवतः उस समय रूस ने पश्चिमी गुट से विवाद बढ़ाना उचित नहीं समझा. पश्चिम के राजनैतिक प्रेक्षकों का तो यहाँ तक कहना है कि पिछले दिनों बॉन स्थित रूसी राजदूत ने पश्चिम जर्मनी के प्रधानमंत्री कीसिंगर से भेंट की और उन से यह आश्वासन प्राप्त किया कि रूस-चीन सीमा-विवाद का पश्चिम जर्मनी कोई सैनिक लाभ नहीं उठायेगा. यह बात कहाँ तक सत्य है, इस के बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता है, परंतु इस में कोई संदेह नहीं है कि इस समय पश्चिमी देशों का रूस के प्रति रवैया पहले जैसा उग्र नहीं है और न ही उन्होंने हाल की घटनाओं का कोई सैनिक लाभ उठाने का प्रयास किया है, यद्यपि राजनैतिक पूंजी कमाने में वे पीछे नहीं रहे हैं. चीन की इस कार्रवाई का प्रभाव वीएतनाम पर हो रही पेरिस-वार्त्ता पर भी पड़ सकता है.

पिछले दिनों ब्रिटेन के प्रतिरक्षामंत्री डेनिस हीले ने राष्ट्रकुल के कूटनीतिक संवाददाताओं के समक्ष रूस-चीन संघर्ष पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि चीन द्वारा रूस के प्रति आक्रामक रुख अपना लेने से यूरोप में युद्ध का संकट समाप्त हो गया है. उन का यह कथन निराधार नहीं है. रूसी नेतृत्व अब अमेरिका के स्थान पर चीन को शत्रु नं० १ समझने लगा है. चीन की बढ़ती हुई सैनिक शक्ति को देखते हुए रूसी नेताओं का ऐसा सोचना बेमानी भी नहीं है. दूसरी ओर वारसाउ-वार्त्ता (देखिए **दिनमान** २३ मार्च) स्थगित करने के बावजूद चीन ने अमेरिका के प्रति अपने रवैये को नम्र कर दिया है. अन्य पश्चिमी देशों की भी अब वह संयत आलोचना कर रहा है. उधर अमेरिका में भी चीन के प्रति रवैया बदलने की माँग ज़ोर पकड़ती जा रही है. कुछ अमेरिकी राजनीतिकों ने तो यह स्पष्ट माँग की है कि अमेरिका को न केवल चीन-यात्रा पर लगे प्रतिबंध ढीले कर देने चाहिए, बल्कि संयुक्त-राष्ट्र संघ में उस के प्रवेश का विरोध करना भी छोड़ देना चाहिए. इस सब के बावजूद कुछ प्रेक्षकों का विचार है कि फ़िलहाल पश्चिमी गुट और चीन एक मंच पर इकट्ठे नहीं होंगे. हां, रूस के प्रति आक्रामक रुख अपना कर चीन ने अमेरिका और रूस के बीच चल रही निःशस्त्रीकरण तथा परमाणु अस्त्र विस्तार विरोध संधि वार्त्ताओं की प्रगति अवरुद्ध कर दी है और इसी लिए अब यह विचार व्यक्त किया जाने लगा है कि वार्त्ताओं की सफलता के लिए चीन का इन में सम्मिलित होना आवश्यक है क्यों कि चीन के अलग रहते रूस और अमेरिका निःशस्त्रीकरण की दिशा में पहल कर के अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारने की भूल नहीं करेंगे, भले ही विश्व-शांति के नाम पर वे इस प्रकार की वार्त्ताओं का आयोजन करते रहें.

चीनी भूल-भुलैया : किंतु चीनी नेताओं की कूटनीतिक चालें इतनी अस्पष्ट और अविश्वसनीय हैं कि उन के आधार पर कोई निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है. वे कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं. पड़ोसी देशों में कभी भारत उन की घृणा का लक्ष्य था तो अब रूस और बर्मा पर उन की निगाह है. चीनी नेताओं के इसी रवैये के कारण कंबोदिया, लाओस, थाईदेश, इंदोनेसिया, मलयेसिया आदि दक्षिण-पूर्व एशिया के देश स्वयं को निरापद नहीं समझ रहे हैं. चीन की चालें कितनी भुलावे में डालने वाली हैं इस का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि पिछले दिनों अमेरिका के चीनी मामलों के विशेषज्ञों की एक बैठक में कुछ ने यह राय व्यक्त की थी कि वे कहने को तो चीनी मामलों के विशेषज्ञ हैं किंतु वस्तुस्थिति यह है कि वे चीन के बारे में कुछ भी नहीं जानते हैं. चीन किस का मित्र है और किस का शत्रु, यह जानना निश्चय ही एक पहेली है. परंतु एक बात स्पष्ट है कि विश्व के शक्ति-संतुलन में अब उस की भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती है. रूस और अमेरिका से चीन के संबंधों का रूप चाहे कुछ भी क्यों न हो, किंतु वह अपने पड़ोसियों के

खेत रहे रूसी सीमा प्रहरी : अंतिम विदाई

मृत(रूसी)सीमा प्रहरी की पत्नी : उफनती रुलाई

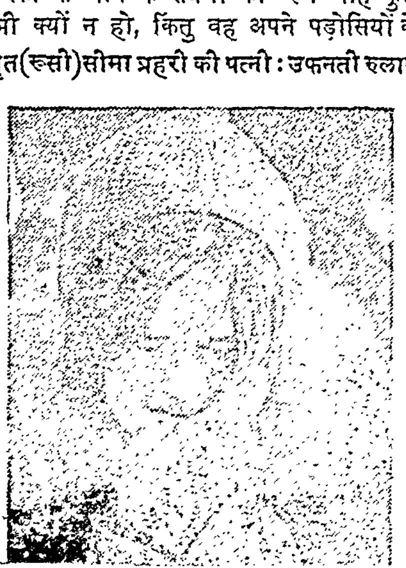

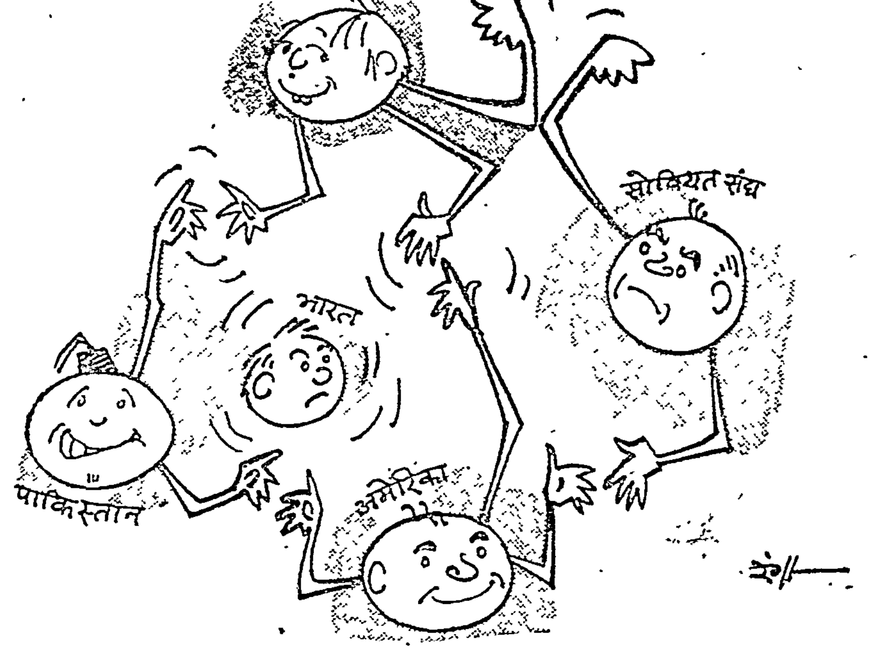

लिए आज भी पहले जैसा संकट पैदा किये हुए है और जब तक पड़ोसी देशों की सैनिक शक्ति इतनी अधिक सुदृढ़ नहीं हो जाती कि वे चीन की चुनौती का मुँहतोड़ उत्तर दे सकें, यह संकट ऐसा ही बना रहेगा.

अमेरिका

प्रतिप्रक्षेपास्त्र : बचाव के लिए

कुछ दिन पहले अमेरिका के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने व्हाइट हाउस में एक मिलन-संध्या पर अमेरिका के कुछ जाने-माने लोगों से बातचीत की थी. इस बातचीत में यूजीन मैकार्थी तथा एडवर्ड केनेडी के अलावा और कई लोग भी शरीक हुए. व्हाइट हाउस की सुंदरता और भव्य सजावट को देख कर मैकार्थी ने हँसते हुए कहा था 'यदि मुझे मालूम होता कि व्हाइट हाउस इतना सुंदर है तो मैं राष्ट्रपति-पद का उम्मीदवार बनने के लिए ज्यादा ज़ोर मारता'. इस मिलन गोष्ठी के दूसरे दिन राष्ट्रपति ने जब एक टेलिविज़न भेंट में पत्रकारों के सामने यह घोषणा की कि अमेरिका अंतरमहाद्वीपीय प्रतिप्रक्षेपास्त्र का निर्माण करेगा तब कल के ठिठोली करने वाले मैकार्थी ने गंभीर स्वर में कहा था 'यह राष्ट्रपति की पहली गंभीर भूल है.' राष्ट्रपति निक्सन के इस निर्णय पर उन के देशवासियों के अलावा लगभग सभी यूरोपीय देशों में भी आश्चर्य व्यक्त किया गया जिन का दौरा पिछले दिनों राष्ट्रपति ने किया था. राजनैतिक हलकों में कुछ इस तरह की भी अफ़वाह है कि निक्सन का यह निर्णय यूरोपीय देशों के नेताओं से बातचीत का निष्कर्ष है और रूस से बातचीत करने की पहली तुरुप.

विरासत का सिरदर्द : अंतद्वीपीय प्रतिप्रक्षेपास्त्र के निर्माण का निर्णय भूतपूर्व राष्ट्रपति लिंडन जॉनसन ने भी किया था लेकिन वह उसे कार्यान्वित नहीं कर पाये. अपने चुनाव-प्रचार के दौरान निक्सन जॉनसन के इस निर्णय की आलोचना करते हुए अक्सर कहा करते थे कि इस से अमेरिका की रक्षा कम, भक्षा अधिक होगी. पत्रकार सम्मेलन में अपने इस कार्यक्रम का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने बताया कि अमेरिका के मुख्य १७ शहरों की रक्षा की योजना जॉनसन ने बनायी थी, लेकिन वह अपने कार्यक्रम का दायरा फ़िलहाल मिनटमैन और नार्थ डकोटा की सुरक्षा तक ही रखना चाहते हैं. अगर इस पहले दौर में सफलता मिल गयी तो उस के बाद दूसरे १२ प्रति प्रक्षेपास्त्रों के निर्माण-कार्य की ओर ध्यान दिया जायेगा. इस प्रणाली का उद्देश आणविक हथियारों से बड़े-बड़े शहरों की रक्षा करना है, उन पर विस्फोट करना नहीं.जॉनसन-प्रशासन का अनुमान था कि इस कार्यक्रम पर ५.८ अरब डालर खर्च होगा जब कि निक्सन की प्रणाली के अनुसार यह राशि एक अरब डालर और अधिक होगी. जॉनसन-प्रशासन ने पहले साल १.८ अरब डालर की तजवीज़ की थी लेकिन निक्सन पद्धति के अनुसार वह खर्च आधा होगा. निक्सन को यह निर्णय लेने के लिए शायद इस लिए जल्दबाज़ी से काम लेना पड़ा क्यों कि रूस के ६७ प्रतिप्रक्षेपास्त्र अड्डे अमेरिका के लिए किसी भी समय खतरा पैदा कर सकते हैं. पहले चरण का काम १९७३ से पहले समाप्त होने की आशा नहीं है. निक्सन ने ऐलान किया है कि यदि इस दौरान यह महसूस किया गया कि प्रतिप्रक्षेपास्त्र से देश का अधिक भला होने का नहीं, तो वह अपनी इस योजना को रद्द भी कर सकते हैं. निक्सन ने उत्तराधिकार में प्राप्त सभी योजनाओं को कुछ हेर-फेर के साथ कार्यान्वित करने के निर्णय का भी संकेत पत्रकार-सम्मेलन में दिया.

कारण : निक्सन ने अपने इस कार्यक्रम के तीन मुख्य कारण बताये : एक सोवियत रूस द्वारा ज़मीन से ज़मीन पर आणविक हथियारों की मार को रोकना. क्यों कि आणविक क्षेत्र में रूस बहुत उन्नति करता जा रहा है और उस के प्रक्षेपास्त्र भी उस से बढ़िया क़िस्म के हैं, लिहाज़ा रूस के समानांतर पहुँचने के लिए अमेरिका को कम से कम दो वर्ष और लगेंगे. दूसरा कारण किसी भी तरफ़ से अमेरिका पर हमले की संभावना हो सकता है. यदि ऐसा हो तो उस के लिए अपनी हिफ़ाज़त करना ज़रूरी हो जाता है. यह खतरा चीन से भी हो सकता.है, रूस से भी और रूस-चीन के विरोध से पैदा होनी वाली बौखलाहट से भी. तीसरा कारण लोगों में चीन की बढ़ती हुई आणविक शक्ति से लोगों की रक्षा करना है. निक्सन का विचार है कि अगले १० वर्षों में चीन की शक्ति इतनी बढ़ जायेगी कि अमेरिका उस का निशाना बन सकता है. इस मामले में चीन को अपना डर है. वह यह महसूस करता है कि अमेरिका और रूस का गठबंधन दिनोंदिन शक्तिशाली होता जा रहा है और इस गठबंधन से वह अपने आप को अकेला पाता है. अपनी शक्ति के प्रदर्शन की ग़रज़ से चीन रूस या अमेरिका पर हमला कर सकता है.

निक्सन के इस फ़ैसले को रिपब्लिकन और डेमोक्रेटिक दोनों पार्टियों के नेताओं ने खतरनाक बताया. रिपब्लिकन पार्टी के सेनेटर जॉन शर्मन कूपर ने इस कार्यक्रम के खिलाफ़ अपनी आवाज़ बुलंद करने के अपने निर्णय पर क़ायम रहने का संकल्प किया और डेमोक्रेटिक पार्टी के एडवर्ड केनेडी ने आपत्तियों का एक ८ सूत्री फ़ार्मूला देश के सामने पेश किया. इस के अलावा कुछ शहरी और देहाती लोग भी यह महसूस करते हैं कि जहाँ प्रतिप्रक्षेपास्त्र अड्डा स्थापित किया जायेगा, वहाँ के लोगों का जीवन हमेशा संकट में रहेगा. हमला तो बाद में होगा, अगर हुआ तो, परीक्षण के दौरान कई लोगों की जानें जाने की संभावना के प्रति आँखें नहीं मूँदी जा सकतीं. ऐसा भी तर्क दिया जाता है कि प्रतिरक्षामंत्री लेयर्ड, जो वीएतनाम का दौरा कर के अभी पिछले दिनों लौटे हैं वीएतनाम से ५० हज़ार सैनिक बुलाने की इच्छा रखते हैं. इस बात की भी संभावना नज़र आ रही है कि पेरिस-वार्त्ता अब कुछ समझौतावादी दौर से गुज़र रही है और बहुत संभावना है कि अमेरिका और उत्तर वीएतनाम में समझौता हो जाये. यदि ऐसा हो गया तो वीएतनाम पर होने वाला खर्च बच जायेगा और बचे हुए खर्च से प्रतिप्रक्षेपास्त्र अड्डे बनाने में सहायता मिलेगी. वीएतनाम-युद्ध में लगभग ३० अरब डालर वार्षिक खर्च हो रहा है जब कि प्रक्षेपास्त्र के प्रारंभिक दौर में ५ अरब डालर खर्च होने की संभावना है. यदि वीएतनाम-युद्ध समाप्त हो भी जाये तो अमेरिका के सामने बहुत-सी ऐसी घरेलू समस्याएँ मुँह बाये खड़ी हैं, जिन की ओर वीएतनाम-युद्ध में संलग्न रहने के कारण

ध्यान नहीं दिया जा सका है. इन में नगरों को बुनियादी सुविधाएँ जुटाने के कार्यक्रम, स्कूलों और अस्पतालों के सुधार तथा निर्माण कार्य भी शामिल हैं.

इस कार्यक्रम से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक तौर पर अमेरिकी जीवन पर बहुत असर पड़ेगा. जैसी कि संभावना है १९७२ के राष्ट्रपति-चुनाव में डेमोक्रेटिक पार्टी एडवर्ड केनेडी को अपना उम्मीदवार खड़ा करने की सोच रही है और एडवर्ड केनेडी प्रतिप्रक्षेपास्त्र कार्यक्रम के बहुत विरोधी हैं. वह यह महसूस करते हैं कि बेशक चीन में मानवीय मूल्यों और भावनाओं की कोई क़दर नहीं और चीन अपनी प्रतिरक्षा पर भारत से साढ़े पांच गुना अधिक धन ख़र्च करता है; लेकिन चीन में अमेरिका पर हमला करने का दम नहीं, बेशक दंभी वह जितना भी बने. सामाजिक तौर पर आम जनता को भी इस कार्यक्रम से अधिक खतरा महसूस होने लगा है क्यों कि कोई भी इलाक़ा यह नहीं चाहेगा कि खतरे की घंटी हमेशा के लिए उस के सिर पर बजती रहे. आर्थिक तौर पर इसे फ़िज़ूलख़र्ची क़रार दिया जा रहा है क्यों कि अन्य बहुत-से ज़रूरी काम अटके पड़े हैं. निक्सन के इस फ़ैसले से लोगों को यह पता चल रहा है कि इस में ऐसा कोई अधिक नयापन नहीं जो जॉनसन की नीतियों से अलग कर के देखा जा सके.

एंगुइला

एक छोटे द्वीप पर बड़ा झगड़ा

१९ मार्च को पौ फटने से पहले जब दो जलपोत, ब्रितानी सैनिक और कुछ छाता सैनिक एंगुइला में उतरे तो ३० वर्गमील में फैले यहाँ के ६,००० निवासी ब्रिटेन की इस सैनिक गतिविधि से बेखबर थे. पहले-पहल जब कुछ समाचारपत्रों के संवाददाता घरों से बाहर निकले तो विदेशी सैनिकों को अपनी धरती पर देख उन्हें कुछ अचरज हुआ. एंगुइला के सैनिकों ने हथियार नहीं उठाये लेकिन बुदबुदाये ज़रूर और फिर बिना शर्त के आत्म-समर्पण कर दिया. हवाई जहाज़ों से कुछ परचे फेंक कर भी कहा गया कि ब्रितानी सरकार एंगुइला को सेंट किट्स की केंद्रीय सरकार को उन की इच्छा के विरुद्ध नहीं सौंपेगी. वह शांति और स्थायित्व की क़ायल है और यहाँ आने का उस का यही मक़सद है. यह कार्रवाई केवल एंगुइला में क़ानून और व्यवस्था बनाये रखने की ग़र्ज़ से की गयी है. जब ब्रितानी सेना के आगमन की भनक एंगुइला के राष्ट्रपति रोनाल्ड वैब्स्टर के कानों तक पहुँची तो पहले उन्होंने बड़ी ही निष्क्रियता का रुख अख्तियार किया लेकिन बाद में कहा कि उन्होंने अपने २५० सैनिकों को यह हिदायत दे दी है कि वह ब्रितानी सैनिकों पर गोली न चलायें. वैसे वह अक्सर कहा करते थे कि एंगुइला की स्वाधीनता के लिए वह हर तरह का बलिदान देने को तैयार हैं और दुश्मन का मुक़ाबला अपने अंतिम सैनिक तक करते रहेंगे. ऐसी बात शायद उन्होंने सेंट किट्स के सैनिक-हस्तक्षेप के संदर्भ में कही थी.

सैनिक कार्रवाई : ब्रिटेन की इस सैनिक कार्रवाई से हाउस ऑफ़ कामंस में काफ़ी बड़ा बावेला खड़ा हुआ. सत्तारूढ़ लेबर पार्टी और प्रतिपक्षी कंज़रवेटिव पार्टी ने सरकार को आड़े हाथों लिया. विदेश और राष्ट्रकुल मंत्री माइकेल स्टुअर्ट ने अपने तथ्यपरक भाषण में क्रुद्ध और उद्विग्न सदन को बताया कि एंगुइला में सैनिक भेज कर ब्रिटेन ने अपने क़ानूनी अधिकारों और कर्त्तव्यों का ही पालन किया है. १९६७ की एक संधि के अनुसार एंगुइला के विदेशी और प्रतिरक्षा संबंधी मामलों की जवाबदारी ब्रिटेन पर है. लेकिन कंज़रवेटिव और लेबर पार्टी के कुछ सदस्यों की इस बात ने काफ़ी तूल पकड़ी कि रोडेसिया में क़ानून और व्यवस्था बनाये रखने की ज़िम्मेदारी भी तो ब्रिटेन पर है, वहाँ वह सैनिक हस्तक्षेप से क्यों झिझकती है. इस के उत्तर में विदेशमंत्री ने बताया कि रोडेसिया में सैनिक हस्तक्षेप राजनैतिक; सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से घातक साबित हो सकता है. इस से जान-माल का बहुत नुक़सान हो सकता है और अफ़्रीका के बहुत बड़े भाग से उस की दुश्मनी हो सकती है. जब कि एंगुइला में यह खतरा अधिक नहीं था. जब ब्रिटेन के सैनिक हस्तक्षेप के बारे में संयुक्त-राष्ट्र संघ में आवाज़ उठाई गयी, तब ब्रिटेन ने अपनी आत्म-व्याख्या करते हुए बताया कि सैनिक हस्तक्षेप करने से पहले उन्होंने बारबेडोस, गुयाना, जमैका, त्रिनीडाड और तावोगो के अलावा सेंट किट्स की सरकारों से सलाह-मशविरा कर लिया था.

सेंट क्रिस्टोफ़र, नेविस और एंगुइला १८८२ से संयुक्त इकाई के रूप में प्रशासित थे. २७ फ़रवरी १९६७ को इन को स्वाधीनता भी संयुक्त इकाई के रूप में मिली. लेकिन उसी साल मई में एंगुइला के निवासियों ने पुलिस के एक दस्ते की सहायता से अपने आप को उस संयुक्त इकाई से अलग कर स्वाधीन घोषित कर दिया. तब से ले कर आज तक वहाँ कोई भी क़ानूनी सरकार नहीं है. दिसंबर '६७ और जनवरी '६८ में ब्रितानी, सेंट किट्स सरकार और एंगुलियाई नेताओं से समझौता हुआ जिस के अनुसार एक वरिष्ठ ब्रितानी अधिकारी टॉनी ली को १२ महीने तक एंगुइला के प्रशासन के बारे में सलाह देने का कार्य सौंपा गया ताकि दोनों पक्षों में उग्रता का रवैया खत्म हो. साल खत्म होने से पहले समझौते के अंतर्गत हुई बातचीत का जायज़ा लिया गया और पिछले साल अक्तूबर में पुन: नेताओं की बातचीत हुई. इस में एंगुइला के नेता वेब्स्टर भी शामिल हुए. इस बातचीत में कोई समझौता नहीं हो सका और ३० दिसंबर को एंगुइली नेता ने यह ऐलान कर दिया कि उन का पुराना समझौता खत्म समझा जाये. लिहाज़ा ली को बुला लिया गया. ९ फ़रवरी १९६९ को वैब्स्टर ने एंगुइला द्वीप को स्वाधीन घोषित कर दिया और ब्रितानी सरकार से सभी वैधानिक संबंध तोड़ने का ऐलान कर दिया. बात खत्म न हो जाये और सिलसिला जारी रहे, ब्रितानी संबंधों की डोर टूटने न पाये तथा लोगों की भावनाओं को भी ठेस न पहुँचे, इस बात को ध्यान में रख कर ११ मार्च को एक और ब्रितानी प्रतिनिधि कुछ नये प्रस्तावों के साथ एंगुइला भेजा गया.

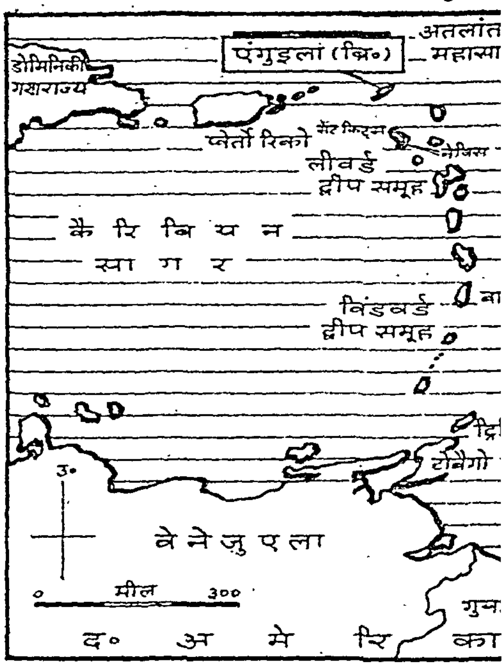

हवाई अड्डे पर पहुँचने पर ली ने बताया कि ब्रितानी सरकार एंगुइला को क़ानूनी सरकार के रूप में स्वीकार करती है और वहाँ की समस्याओं के समाधान के लिए वह उन से अपना सहयोग करने को तैयार है. लिहाज़ा उन की सहायता के लिए ली को ब्रिटेन का कमिश्नर नियुक्त किया जाता है. उन के इस प्रस्ताव का स्वागत तो किया गया लेकिन ज्यों ही ली हवाई अड्डे से बाहर निकलने को हुए तो कुछ सिपाही पिस्तौल ताने उन के सामने आये और एंगुइला से तुरंत निकल जाने के लिए कहा. इस से पहले कि वहाँ कुछ अधिक खून-खराबा होता, ली वापस स्वदेश लौट गये.

वैब्स्टर ने सेना को तुरंत लौट जाने के लिए कहा है. वह एंगुइला द्वीप में इस बारे में जनमत संग्रह कराना चाहते हैं कि लोग ब्रितानी सहयोग चाहते हैं या नहीं. ४,००० निवासियों ने ४ मील लंबा जुलूस निकाल कर ब्रिटेन की कार्रवाई पर रोष व्यक्त किया. एंगुइला में ब्रितानी कमिश्नर एंटनी ली ने वैब्स्टर के जनमत संग्रह संबंधी प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है लेकिन ब्रिटेन की सरकार से इस के बारे में अभी तक कोई पुष्टि

नहीं हो पायी है.

कैरिबियन द्वीप समूह में स्थित ३० वर्गमील में फैले इस द्वीप की आबादी लगभग ६००० है. सेंट किट्स से ७० मील एक नदी एंगुइला को अलग करती है. इस का मुख्य निर्यात नमक है. इस की अर्थ-व्यवस्था बनाये रखने के लिए विदेशों में रहने वाले एंगुलियाई लगातार अपने देश में पैसे भेजते रहते हैं. यह द्वीप अभी तक विश्व में अनजान था लेकिन ब्रिटेन के इस सैनिक हस्तक्षेप ने उसे एक प्रसिद्ध द्वीप के रूप में विश्व के सामने ला दिया. फ़रवरी १९६७ में नेविस, सेंट किट्स और एंगुइला की जो संयुक्त इकाई बनी थी उस ने विदेशी और प्रतिरक्षा मामलों की ज़िम्मेदारी ब्रिटेन पर थी और गृह-मंत्रालय का भार उन पर था. लेकिन एंगुइला के नेता यह कहते हैं कि उन्होंने कभी भी इस संधि को स्वीकार नहीं किया. क्यों कि ऐसा होने से उन का आर्थिक तौर पर विकास नहीं हो पायेगा. संयुक्त इकाई के प्रधानमंत्री राबर्ट ब्रैडशाह भी एंगुइला के हितों का अधिक ध्यान नहीं रखते थे और उन्होंने तो यह घोषणा तक कर दी थी कि एक दिन वह एंगुइला को मरुस्थल में बदल देंगे. उन की इस घोषणा से ही एंगुइला ने १९६७ को अपने आप को इकाई से अलग कर लिया. वैसा करने के बाद वहाँ के राष्ट्रपति रोनार्ड वैब्स्टर ने ब्रिटेन से अपने संबंध क़ायम किये और टॉनी ली वहाँ ब्रिटेन के कमिश्नर नियुक्त हुए. एंगुइला को सेंट किट्स के साथ सहयोग करने और मिलने से हमेशा आपत्ति रही. ब्रैडशाह का हमेशा यह मंशा रहा कि वह एंगुइला पर हमला कर उसे तबाह कर दें और इस के लिए वह पिछले दो सालों से तैयारी भी कर रहे हैं. लेकिन एंगुइला के निवासी ब्रैडशाह की इस मंशा से वाकिफ थे. इस से पहले कि संयुक्त इकाई और एंगुइला के बीच विअफ़्रा जैसी स्थिति पैदा हो पाती, सामान्य होती जा रही स्थिति पुनः विस्फोटक होती जा रही है. वैब्स्टर न्यूयार्क पहुँच गये हैं और वह इस मामले को संयुक्तराष्ट्र संघ में उठाने का विचार रखते हैं.

पाकिस्तान

मार्शल लॉ की वापसी

पाकिस्तान में एक बार फिर मार्शल लॉ लागू कर दिया गया है. २५ मार्च की शाम को एक रेडियो भाषण में ६१ वर्षीय राष्ट्रपति मुहम्मद अय्यूब ख़ाँ ने ऐलान किया कि देश की लगातार बिगड़ती हुई हालत को और बिगड़ने से बचाने का इस के सिवाय और कोई रास्ता नहीं रह गया था. उन्होंने अपने भाषण की शुरू की ही पंक्तियों में कहा कि मुल्क की क़ानून और व्यवस्था के दफ़न होते जाने, अर्थ-व्यवस्था के निरंतर लड़खड़ाते जाने और लोगों में असुरक्षा की भावना के बढ़ते जाने के कारण

जनरल याह्या ख़ाँ : बूढ़े शेर का ···

मार्शल लॉ लागू करने का फ़ैसला किया है. 'मैं देश का संविधान मुअत्तल कर रहा हूँ, राष्ट्रीय असेंबली भंग कर रहा हूँ और अपने पद से हट रहा हूँ. मैं सेनापति जनरल याह्या ख़ाँ से देश की बागडोर सँभालने का निवेदन करने जा रहा हूँ.' अपने इस प्रसारण के बाद जब राष्ट्रपति अपने निवासस्थान वापस पहुँचे तब उन के चेहरे के भाव तटस्थ थे. तनाव और चिंता की लीकों से घिरा रहने वाला चेहरा आज सपाट था. ऐसा लग रहा था कि अय्यूब ख़ाँ ने अपने कंधे से बहुत बड़ी लादी उतार फेंकी है और अब वह चैन महसूस कर रहे हैं. अपने रेडियो भाषण के तुरंत बाद उन्होंने जनरल याह्या ख़ाँ को शासन की बागडोर सौंपी और तीन महीने की छुट्टी पर अपनी गिरती सेहत में सुधार करने के लिए विश्राम को चले गये.

हिंसा का साम्राज्य : अपने भाषण में राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ ने कहा कि पिछले चार मास से मुल्क जिस दौर से गुज़र रहा था, उस में सिवाय बरबादी के हाथ में कुछ नहीं आ रहा था. मुल्क में चारों तरफ़ लूट-पाट, हिंसा और आगज़नी का साम्राज्य स्थापित होता जा रहा था जिस के फलस्वरूप अस्त-व्यस्त जन-जीवन हड़तालों और घेरावों के घेरे में घिरा दम तोड़ता नज़र आया. उन्होंने बताया कि गोलमेज़ सम्मेलन में प्रतिपक्षी पार्टियों के साथ विचार-विमर्श के बाद देश में संसदीय शासन-प्रणाली और वयस्क मताधिकार की बात स्वीकार कर ली गयी थी. लेकिन मुल्क

अय्यूब ख़ाँ : ··· नया पैंतरा

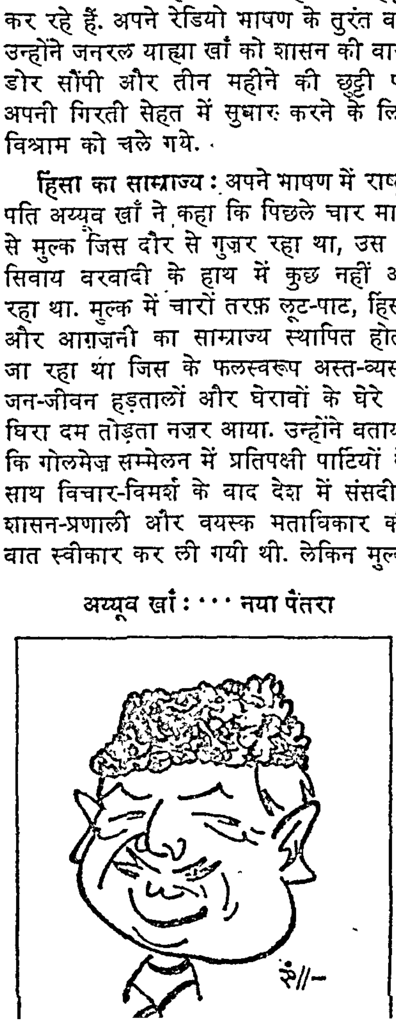

के मौजूदा हालातों को देखते हुए न ही राष्ट्रीय असेंबली की बैठक हो पाना मुमकिन था और न ही प्रत्यक्ष चुनाव करा पाना. अय्यूब ने बताया कि प्रतिपक्षी पार्टियों के सदस्य कमज़ोर केंद्र और शक्तिशाली राज्यों की माँग कर रहे थे जब कि वह शक्तिशाली केंद्र के पक्ष में थे.

घोषणाएँ और आदेश : ५२ वर्षीय जनरल याह्या ख़ाँ ने देश की बागडोर सँभाल ली है. राष्ट्रपति, उन का मंत्रिमंडल, राष्ट्रीय असेंबली, पूर्व और पश्चिम पाकिस्तान के गवर्नर-पद, राज्यों की राष्ट्रीय असेंबलियाँ, मुख्यमंत्री और उन के मंत्रिमंडल के सभी पद बर्ख़ास्त कर दिये गये हैं. जनरल याह्या ख़ाँ ने तीन उप-मार्शल-लॉ प्रशासक नियुक्त किये हैं. ये हैं— ले. जनरल अब्दुल हमीद ख़ाँ, वाइस एडमिरल अहसन और एयर मार्शल नूर ख़ाँ. पूरे पाकिस्तान को, पश्चिम और पूर्व, दो भागों में बाँट दिया गया है. पश्चिम पाकिस्तान को ले. जनरल मुहम्मद ए. ख़ान और पूर्व पाकिस्तान को मेजर जनरल मुज़फ़्फ़रुद्दीन के शासन में सौंपा गया है. देश में सैनिक अदालतें क़ायम की गयी हैं. २५ नियम और घोषणाएँ तथा चार आदेश जारी किये गये हैं. हड़ताल करने तथा छात्रों के प्रदर्शन आदि पर १४ बरस की सज़ा और प्रशासन की आलोचना करने वालों को १० साल की सज़ा हो सकती है. मार्शल लॉ के ऐलान के बाद पूर्व पाकिस्तान में बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियाँ की गयीं. व्यापक तौर पर हड़ताल के कारण देश की अर्थ-व्यवस्था लड़खड़ा गयी. पुलिस की जगह सैनिकों ने ले ली है. मार्शल लॉ की घोषणा से पाकिस्तान में भगदड़ मच गयी. लोग बेतहाशा सीमाओं की तरफ़ भागे, एयर लाइंस के दफ़्तरों के सामने भारी भीड़ लग गयी और चौगुने किराये पर टिकटें बिकने लगीं.

पाकिस्तान में केंद्र को मज़बूत रखने के लिए जिस प्रकार जन-आकांक्षा और जनतांत्रिक स्वतंत्रता जड़ से समाप्त कर दी गयी है, वह भारत के लोगों के लिए न तो वर्तमान में अच्छा होगा, न भविष्य में और न भारतीय समस्याओं के समाधान का लोकतंत्रीय हल निकालने में मदद दे सकेगा. पाकिस्तान में विघटन की प्रवृत्तियाँ अगर हैं तो वे ब्रितानी और अमेरिकी स्वार्थों द्वारा पाकिस्तान की रचना के समय से ही उस में निहित हैं और अब एशिया में दो और बड़ी शक्तियाँ रूस और चीन इस नक़ली विभाजन का अपने हित में इस्तेमाल करना चाह रही हैं. जब तक भारत और पाकिस्तान दोनों की भौगोलिक और राष्ट्रीय इकाई इस भू-खंड की विदेश और गृह नीतियों का आधार नहीं बनती तब तक पाकिस्तान में सैनिक शासक पाकिस्तान के लोगों का कल्याण नहीं कर सकता औरों का चाहे करे.

पाकिस्तान और हम

हिंदी क्षेत्र में साहित्यकारों ने अभी तक पाकिस्तान की घटनाओं पर कोई प्रतिक्रिया नहीं की थी. इलाहाबाद में **दिनमान** के प्रतिनिधि ने विख्यात कवि और आलोचक **विजयदेव नारायण साही** से पूछा, पाकिस्तान में जो क्रांति की लहर दौड़ रही है उस से पड़ोसी देश के नाते हमारी क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिए? क्या आप इस क्रांति को जनक्रांति का सूचक मानते हैं?

साही : पाकिस्तान में आज-कल जो हो रहा है उसे हम अधूरी माँगों पर आधारित क्रांति का आह्वान कह सकते हैं. अधूरी माँगें इस लिए कि पाकिस्तान की जनता और नेतृत्व के बीच अब भी बहुत बड़ी खाई है. यह खाई यदि हिंदुस्तान के लोग चाहें तो पाकिस्तान की जनता का समर्थन कर के मिटा सकते हैं. हिंदुस्तान के लोगों को चाहिए कि न सिर्फ़ पाकिस्तान की जनता के अधिकारों के समर्थन में चलने वाले संघर्ष का समर्थन करें बल्कि अच्छा होता कि स्वयंसेवकों की एक टोली भारत से पाकिस्तान जाती और आंदोलन में भाग लेती. यह अच्छा है कि पाकिस्तान की दबी हुई लोकभाषाओं को उभारने के लिए भी आंदोलन हो रहा है. सिंध, बिलोचिस्तान, पूर्वी पाकिस्तान इन सब को न केवल अधिक से अधिक अधिकार मिलने चाहिएँ बल्कि पिछले बीस वर्षों की तानाशाही में जिस तरह हिंदुस्तान-पाकिस्तान के बीच में सीमा-रेखा बंद कर रखी गयी है उसे भी खुलना चाहिए. पाकिस्तान की जनता जब तक अपनी वास्तविक शक्ति को नहीं प्राप्त करेगी तब तक हिंदुस्तान-पाकिस्तान के बीच आवागमन और आसान नहीं बनाया जायेगा. अच्छा हो कि हिंदुस्तान के लोग भी अपनी सरकार से इस बनावटी रोक को ढीला करने की माँग करें.

लेकिन पाकिस्तान में जो कुछ हो रहा है उस का संचालन या तो पीकिङवादी लोगों के हाथ में है या प्रतिक्रियावादी लोगों के हाथ में, जिस में भारत के प्रति घृणा ही फैलायी जा रही है. फिर हम खुल कर इस का समर्थन कैसे कर सकते हैं?

साही : पाकिस्तान की जनता की मुक्ति का रास्ता पीकिङ के पिछलग्गू बनने में नहीं है. पाकिस्तान के लोगों के स्वाभाविक बंधु हिंदुस्तान के लोग हैं. पाकिस्तान और हिंदुस्तान के लोग मिल कर चीन को इस लिए मजबूर कर सकते हैं कि वह एशिया के कमजोर राष्ट्रों पर अपनी धौंस जमाने का पागलपन छोड़ दे और सचमुच साम्राज्यवाद के गोरे अवशेषों को अपनी मातृभूमि से हटाये. यह काम लगता है कि पाकिस्तान के संघर्ष के कुछ नेता करने में असमर्थ हैं. हो सकता है कि इतिहास कुछ दिनों टेढ़े रास्ते चले, लेकिन भुट्टो का अंधा भारत विरोध पाकिस्तान की जनता को फिर तानाशाही के सुपुर्द कर देगा—इस बात का खतरा है. यह इस से भी स्पष्ट है कि लोकभाषा और विभिन्न प्रांतों के अधिकार पर भुट्टो की जबान अभी भी बंद है और लोग यह महसूस कर रहे हैं कि सिर्फ़ हिंदुस्तान के प्रति नफ़रत पाकिस्तान की समस्याओं का कोई हल नहीं है. फिर भी बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई है. हिंदुस्तान की सरकार चाहे जो कुछ करे, हिंदुस्तान के लोगों को अवश्य ही पाकिस्तान के इतिहास को सही रास्ते में मोड़ने की कोशिश करनी चाहिए. यह बहुत जरूरी है कि पाकिस्तान के लोग और खास कर वहाँ की आम जनता और बुद्धिजीवी यह जानकारी पायें कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच की दूरी कम से कम की जाये. केवल सरकारी आदान-प्रदान के स्तर पर ही

विजयदेवनारायण साही : सही बात

नहीं बल्कि साधारण जनता के भी स्तर को उकसाना आवश्यक होगा. यह सभी के हित में है.

लेकिन भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर है. जब तक पाकिस्तान उस के एक भाग पर आक्रमणकारी है तब तक इस प्रकार की संभावना कैसे संभव है?

साही : हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान का विभाजन गोरे साम्राज्यवादियों की देन है. पाकिस्तान-हिंदुस्तान के बीच जो तनाव है वह इस तरह हरगिज हल नहीं होगा कि कश्मीर या हिंदुस्तान की कोई और जमीन पाकिस्तान को दे दी जाये. बँटवारा इस से और भी कड़वा होगा और इस तरह के आक्रामक पागलपन से पाकिस्तान की जनता को नुकसान ही होगा. असली हल यह है कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान के बँटवारे को यदि तत्काल खत्म न किया जा सके तो दोनों देशों को और नजदीक लाया जाये. एक, कोई ढीला-ढाला ही सही, महासंघ बनाने की कोशिश हो. एक बार इस गति की शुरुआत होने पर कश्मीर की समस्या अपने-आप हल हो जायेगी.

पख्तून को न्याय दे सकने में पाकिस्तान का जनआंदोलन समर्थ हो सकेगा या नहीं, यह भी एक महत्त्वपूर्ण सवाल है. पूर्वी बंगाल के लोग अपने प्रति तब तक न्याय नहीं कर सकेंगे जब तक कि पख्तूनों के साथ हाथ मिला कर उन के अधिकारों के लिए लड़ना नहीं सीखेंगे. खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ को भुला कर पाकिस्तान की जनता अपने लिए कोई वास्तविक हल नहीं निकाल सकती.

माध्यम के संपादक *श्री बालकृष्ण राव* का विचार है कि पाकिस्तान में जो उथलपुथल मची हुई है, जो संघर्ष चल रहा है उस के बारे में कोई राय बनाना सचमुच आसान नहीं है. एक तो पूरे विश्वास के साथ यह कहना बहुत मुश्किल है कि सचमुच वहाँ क्या, कितना और कैसा प्रभाव पड़ रहा है आदि. हमें समाचार-पत्रों में जो कुछ भी ज्ञात होता है उतनी ही हमारी जानकारी है; उसी के आधार पर हम अपनी राय बना सकते हैं और यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह जानकारी कितनी नाकाफ़ी है. एक बात और. हम जिसे अपनी राय कहेंगे क्या वह सचमुच हमारी ही राय होगी? कौन कह सकता है कि उस में कितना विचार-तत्त्व होगा? कितनी सहज स्वाभाविक प्रतिक्रिया का अंश होगा? जो भी हो, राय तो हमें बनानी ही होगी—क्यों कि पाकिस्तान की नियति से हम, चाहें या न चाहें, संबद्ध होंगे ही.

मैं समझता हूँ कि सामान्य रूप से भारतीय प्रतिक्रिया तो यही होगी कि वहाँ जो कुछ भी हो रहा है ठीक हो रहा है; अच्छा हो रहा है, क्यों कि पाकिस्तान हमारा दुश्मन है और दुश्मन के यहाँ गड़बड़ी हो तो बड़ी अच्छी बात है. यह किसी भी अर्थ में राय नहीं है; केवल इस समय की स्वाभाविक सामान्य प्रतिक्रिया मात्र है. पर मैं समझता हूँ मैं अपने-आप को धोखा नहीं दे रहा हूँ, जब मैं यह कहता हूँ कि मेरी सुविचारित राय भी यही है कि जो हो रहा है ठीक है, शुभ है, यह इस लिए नहीं कि शत्रु देश में अशांति और अव्यवस्था देख कर संतोष होता है, बल्कि इस लिए कि यह एक फ़ौजी तानाशाह के विरुद्ध जनता के असंतोष और आक्रोश की सबल अभिव्यक्ति है. किसी भी प्रकार की तानाशाही बुरी है, फ़ौजी तानाशाही सब से ज्यादा बुरी है. ऐसे पड़ोसी देश में जिस से हम अलग हो कर भी अलग नहीं हो सकते फ़ौजी तानाशाही का रहना हर प्रकार से बुरा है; भले ही उस की जगह पर जो शासक-वर्ग सत्तारूढ़ हो वह भारत के प्रति और भी अधिक शत्रुतापूर्ण नीति अपनाये; भले ही हमें

आगामी वर्ष और भी गहरे संकट और गंभीर चिंता की छाया में बिताने पड़ें, फिर भी पाकिस्तान में तानाशाही का पतन मेरी दृष्टि में शुभ ही है.

ऐसा विश्वास करने का प्रधान कारण यह है कि मैं यह नहीं मानता कि भारत और पाकिस्तान बहुत समय तक सी प्रकार अलग-अलग रह सकेंगे. मेरा दृढ़ विश्वास है कि यह दोनों की नियति है कि एक दूसरे के निकट आयें, मित्रता और परस्पर सहयोग का संबंध स्थापित करें और 'वस्तुतः एक अखंड और विराट राष्ट्र के रूप में संसार के रंगमंच पर अपनी विशिष्ट भूमिकाएँ निभायें और यह मानते हुए मेरे लिए इस निष्कर्ष पर पहुँचना अनिवार्य है कि दोनों देशों में सामान्य जनता की सत्ता प्रतिष्ठित होना आवश्यक है. तानाशाहों के साथ भी मित्रता की जा सकती है, की जाती रही है, पर यह मित्रता अविश्वसनीय और क्षणभंगुर होती है, क्यों कि इस की जड़ें गहरी नहीं होतीं.

बालकृष्ण राव

एक बात और मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि पाकिस्तान में जब सत्ता की प्रतिष्ठा के साथ-साथ जन-भावनाओं को भी उभर कर आगे आने की प्रतिष्ठा मिलेगी तब विदेशी भाषा को हटा कर अपना उचित स्थान ग्रहण करने की प्रेरणा और शक्ति प्राप्त होगी. विदेशी भाषा की छाया में जीने वाला समाज अनिवार्यतया विदेशीपन का दास बन जाता है, अपने ही देश में प्रवासी हो जाता है. संभव है कि पाकिस्तान और भारत की यही नियति हो कि वे साथ-साथ इस अंतिम और सब से भयंकर दासता से मुक्त हों.

पश्चिम बंगाल के बंगालियों का दावा है कि पूर्व बंगाल के बंगाली भी बिलकुल उन के समान ही सोचते हैं. वे इस संबंध में पर्याप्त प्रमाण देने में भी समर्थ हैं. उस पार से पहुँचने वाली खबरों से भी इस की पुष्टि होती है. वे रवींद्र ठाकुर और काज़ी नज़रुल इस्लाम पर बराबर का हक़ जताते हैं. रवींद्र संगीत पर अय्यूबी प्रतिबंध के खिलाफ़ उन्होंने जेहाद छेड़ा और सफल रहे.

दिनमान के कलकत्ता प्रतिनिधि ने दोनों बंगाल की भाषा, साहित्य और संस्कृति पर बंगला के दो प्रमुख साहित्यकारों—बुद्धदेव बसु और श्री विमल मित्र से बातें कीं.

बुद्धदेव बसु ने अपने को राजनीति से बिलकुल अलग रखते हुए कहा कि विदेश-यात्रा के समय मुझे पाकिस्तानी छात्रों से बातचीत करने का अवसर मिला है. समय-समय पर वहाँ की पत्र-पत्रिकाएँ भी उपलब्ध हो जाया करती हैं. इन सब से ज्ञात होता है कि वहाँ उत्साहवर्द्धक परिवर्त्तन हो रहे हैं. कुछ लड़के वास्तव में बहुत सुंदर लिखते हैं.

क्या उर्दू ने वहाँ बंगला को विकृत किया है?

वहाँ बंगला को उर्दू ने बिलकुल विकृत नहीं किया है. कुछ लोग संस्कृत निष्ठ लिखते हैं, तो कुछ लोग उर्दू मिश्रित. 'तबे ओदेर असुविधा आछे, शे अन्य रक़म'—फिर भी उन्हें असुविधा है और वह दूसरे प्रकार की है. यह असुविधा दोनों बंगाल के संबंध का विच्छिन्न रहना है. यह भी क्या विडंबना है कि दूर के छोटे-बड़े देशों के साथ व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध है और सीमावर्त्ती प्रदेश से नहीं. इस से पूर्व पाकिस्तान के शोधकर्त्ताओं को बड़ी असुविधाएँ होती हैं, क्यों कि अधिकांश शोध-सामग्री तो कलकत्ते में है. पूर्व और पश्चिम बंगाल के बीच 'योगायोग' रहता तो इस से पूर्व बंगाल की उन्नति होती. दोनों प्रदेशों में संचार-व्यवस्था के अभाव की पश्चिम बंगाल के लोगों पर तीव्र प्रतिक्रिया होती है—'पश्चिम बांगलार लोकेरा तीव्र भावे अनुभव करेन.'

और इस का कारण यह है कि दोनों बंगाल की भाषा और संस्कृति में कोई अंतर नहीं है?

भाषा, रहन-सहन, चिंतन—एक शब्द में संस्कृति में कोई अंतर नहीं है. सिर्फ़ धर्म का अंतर है. आप जानते हैं शिक्षा के बाद धर्म कहीं बाधक सिद्ध नहीं होता. 'ताराओ माछ भात खाए, आमराओ माछ भात खाई' (वे भी मछली-भात खाते हैं, हम भी मछली-भात खाते हैं.) फिर अन्य सारी दृष्टियों से एक जनवर्ग को केवल धर्म का अंतर होने से कैसे अलग किया जा सकता है. अभी भी लाखों-लोग ऐसे हैं जिन के परिवार दोनों बंगाल में बँटे हुए हैं. इस कृत्रिम विच्छेद के कारण एक-दूसरे से मिल नहीं सकते, यह कितना वेदनादायक है. मैं चाहूँ तो मदुराई में मंदिर का दर्शन कर सकता हूँ, लेकिन ढाका नहीं जा सकता, जहाँ हमारी पीढ़ियों की पीढ़ियाँ पली हैं. बँटवारे के बहुत पहले हम इधर आ गये थे. आखिर यूरोप में भी तो ऐसे छोटे-छोटे अनेक देश बने हैं जो राजनैतिक दृष्टि से अलग इकाई होते हुए भी सांस्कृतिक दृष्टि से एक हैं और उन में परस्पर सहयोग-साहचर्य की पूरी-पूरी छूट है. हमारे यहाँ कोई इस पार से उस पार नहीं जा सकता. किताबें नहीं खरीद सकता, व्यापार नहीं कर सकता. 'यदि पूर्व बांगलार पश्चिम बांगलार मध्ये वाणिज्य थाकतो ता होले बांगला बोई (बंगला पुस्तकें), बांगला फ़िल्म, बांगला पत्रिकार प्रचार अनेक बेड़े जेतो एवं आमरा जा पाकिस्ताने लेखा होच्छे तार नतून चिंताधारा जानते पारताम. वाणिज्य केनो बंद करे छे?' यह ठीक है कि कश्मीर और अन्य विवाद हैं, लेकिन उन से क्या फ़र्क़ पड़ता है?

दोनों बंगाल को एक सूत्र में बाँधने वाली सब से बड़ी चीज़ क्या है?

भाषा है. भाषा का आकर्षण ही कुछ और होता है. सुदूर विदेश में भी जब कोई बंगला-भाषी मिल जाता है आनंद से रोम-रोम पुलकित हो उठता है. उस समय हमें यह ध्यान नहीं रहता कि यह बंगलाभाषी पूर्व पाकिस्तान का है या पश्चिम बंगाल का. यह जान कर भी कि वह दूसरे देश का है आनंद में कोई अंतर नहीं पड़ता.

पूर्व पाकिस्तान में हुए और हो रहे परिवर्त्तनों पर कोई टिप्पणी?

मेरा बचपन ढाका में बीता था. बँटवारे के बाद एक दिन के लिए सिर्फ़ एक बार ढाका गया हूँ. मैंने पाया कि वह सब कुछ बड़ी तेज़ी से बदल रहा है. उस समय पढ़ी-लिखी औरतों की संख्या बहुत कम थी. बहुत कम औरतें घर से बाहर निकलती देखी जाती थीं. अब भारी संख्या में लड़कियाँ शिक्षित हो रही हैं और पर्दे का रिवाज़ भी तेज़ी से खत्म हो रहा है. वहाँ ग़रीबी बहुत ज्यादा थी, वह भी धीरे-धीरे दूर हो रही है. एक शब्द में हम यह कह सकते हैं कि वहाँ आश्चर्यजनक परिवर्त्तन हुए हैं और हो रहे हैं.

विमल मित्र

बुद्धदेव बसु

सुना है पश्चिम बंगाल के लेखकों की पुस्तकें वहाँ के प्रकाशक चोरी से छाप रहे हैं और बेच रहे हैं?

मेरी ८-१० किताबों के बारे में भी ऐसा सुना जाता है. लेकिन इस के विषय में मुझे ठीक-ठीक जानकारी नहीं है. कई वर्षों पहले जेसोर (पूर्व पाकिस्तान) के एक लड़के से मुलाक़ात हुई थी. उस ने बताया कि वहाँ बंगला पुस्तकों की भारी माँग है.

इच्छामती के इस पार और उस पार

जिस भारतीय साहित्यकार की कृतियों की पूर्व बंगाल में सर्वाधिक माँग है वह हैं विमल मित्र. मित्र मोशाय ने पूर्व पाकिस्तान के लेखकों और पाठकों से प्राप्त दर्जनों पत्र दिखाते हुए भारत सरकार और पूर्व पाकिस्तान दोनों ही सरकारों की इस नीति की कटु आलोचना की. उन्होंने कृत्रिम और अस्वाभाविक तौर पर दोनों खंडों के बीच संचार, यातायात और व्यापार बंद कर रखा है. आपने कहा कि

'यह कितनी बड़ी विडंबना है कि कलकत्ता स्थित अमेरिका, ब्रिटेन और जर्मनी आदि के दूतावासों के पुस्तकालय और वाचनालय हैं, लेकिन पाकिस्तानी दूतावास में कोई किताब नहीं. हो सकता है ढाका स्थित भारतीय दूतावास में भी भारतीय साहित्य का कोई पुस्तकालय न हो. समझ में नहीं आता कि राजनैतिक विद्वेष के कारण सांस्कृतिक संबंधों को क्यों समाप्त किया गया है. राजनैतिक क्षेत्र में चाहे जो भी हो, आम जनता में कोई फ़र्क नहीं पड़ता. इस लिए सांस्कृतिक मेलजोल और वैचारिक आदान-प्रदान होना ही चाहिए.

राजनैतिक बँटवारे का आम जनता पर क्या असर पड़ा है ?

राजनैतिक बँटवारे का बंगाल की जनता पर कोई असर नहीं पड़ा है. भाषा, खान-पान और रहन-सहन में न पहले कोई अंतर था और न अब आया है. जो स्थिति १९४७ के पहले थी वही स्थिति अब भी है. पूर्व बंगाल में स्वाधीन युग में बड़ी ही सुंदर और संस्कृतनिष्ठ बंगला का विकास हुआ है. वहाँ के आम पाठकों (मुस्लिम) की भाषा यहाँ के आम पाठकों की भाषा से बेहतर होती है. दोनों ही क्षेत्रों के लोगों में पारस्परिक स्नेह पहले जैसा है, बल्कि अलग-अलग कर के रखने से और बढ़ गया है. सच तो यह है कि बंगाल की जनता ने बँटवारे को कभी पसंद नहीं किया.

अंग्रेज़ों को सब से अधिक चिंता अगर किसी प्रदेश से थी तो बंगाल से. १९०५ में तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न ने बंगाल का विभाजन करना चाहा, लेकिन उसे सफलता नहीं मिली. जनता ने इस का तीव्र विरोध किया. व्यापक जनआंदोलन शुरू हो गया. रवींद्रनाथ ठाकुर ने इस आंदोलन का नेतृत्व किया. उन्होंने इस पर एक कविता लिखी, जो उस समय सब की ज़ुबान पर थी :—

"बांगलार माटी बांगलार जल
बांगलार वायु बांगलार फल
ऐक होक, ऐक होक, हे भगवान !"

१९४७ में इसी जनता का विभाजन कांग्रेस और देश के कर्णधारों ने किया.

आप का पुश्तैनी घर सीमा पर है. वहाँ जनसाधारण की गतिविधि कैसी है? इच्छामती की क्या इच्छा है ?

पिछली जनवरी में अपने गाँव फ़तेहपुर (नदिया) गया था. वहाँ कई सुखद और दुखद बातें देखने को मिलीं. सीमा-विभाजन करने वाली दुबली-पतली इच्छामती (नदी) हमारे गाँव से बिलकुल सट कर बहती है. इस पार के लोग उस में स्नान कर लौट आते हैं और उस पार के लोग स्नान कर लौट जाते हैं. एक दिन मैं सपत्नीक इच्छामती के तट पर गया. उस पार खड़ी कुछ औरतों ने देखा और फिर दौड़ती हुई गांव में चली गयीं. हम खड़े रहे. थोड़ी देर बाद हमने देखा चालीस-पचास औरतें कुछ बच्चों के साथ चली आ रही हैं. वे लोग आ कर उस पार खड़े हो गये. हम उन्हें देखते रहे और वे हमें देखते रहे. हम चाह कर भी उन से नहीं मिल सकते थे, नहीं मिले. दोनों ओर से उमड़ते स्नेह के मिलन में इच्छामती का प्रवाह बाधक था.

इस का मतलब यह है कि सीमा पर कोई तनाव नहीं है ?

बिल्कुल नहीं, बँटवारे के बाद कभी नहीं रहा. आज भी इस पार का आदमी एक हाँडी में 'भोपने' (दाल जैसा एक तिलहन. इस का तेल खाने के नहीं लकड़ी के रंग बनाने के काम आता है) रख कर उस पार भेजने के लिए इच्छामती की गोद में रख देता है. इच्छामती आदमी की इच्छा के अनुसार उसे उस पार पहुँचा देती है. फिर उस पार का ज़रूरतमंद 'भोपने' निकाल लेता है और उस में एक मुर्गी या मुर्गी का बच्चा रख कर इस पार भेज देता है. इसी तरह गुड़ और चावल का भी आदान-प्रदान होता है.

सीमा पुलिस के लोगों से मेरी अच्छी दोस्ती हो गयी थी. उन लोगों ने मुझे बताया कि सीमा पर कभी तनाव नहीं होता. **हम कभी-कभी हवा में झूठी गोलियाँ दागते हैं और अपनी-अपनी सरकारों को रिपोर्ट भेजते हैं—इतने हिंदुस्तानी या पाकिस्तानी मार डाले गये. इस के दो कारण होते हैं. पहला यह कि सरकारों को इस बात की ख़बर ही नहीं होती कि उसने कहीं किसी को तनात कर रखा है. रिपोर्ट पहुँचने पर उसे होश आती है और वह राशन-पानी आदि का इंतजाम करती है. दूसरा कारण अपनी उपयोगिता सिद्ध करने का है. कम-से-कम उन्हें यह तो पता चले कि उन के आदमी काफ़ी मुस्तैदी से तैनात हैं. शाम को छह बजे के बाद सीमा पर जाना मना है. फिर दोनों तरफ़ की सुरक्षा पुलिस के सिपाही मिल कर बातें करते हैं, या ताश खेल कर समय काटते हैं.**

सहयोग-संचार के अभाव में किस पक्ष को अधिक क्षति हुई है और हो रही है ?

यह कहना मुश्किल है. दोनों ही की समान क्षति हो रही है. हाल ही में ढाका विश्वविद्यालय ने **रमेशचंद्र मजूमदार** की पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ बंगाल' पुनः प्रकाशित की है. बँटवारे के बाद यह पुस्तक अप्राप्य हो गयी थी. श्री मजूमदार ने बताया कि 'पाकिस्तान से पुस्तक प्रकाशित करते समय मुझे कोई सूचना नहीं दी गयी. कम से कम मुझे खबर की गयी होती तो उस में कुछ अशुद्धियाँ जो रह गयी थीं वे तो ठीक हो जातीं.'

मेरी सारी पुस्तकें पश्चिमी पाकिस्तान से प्रकाशित कर पूर्व पाकिस्तान भिजवायी जाती हैं, जिस से प्रकाशक पकड़ में न आये. प्रकाशन से हमें क्या एतराज़ हो सकता है? आखिर पाठकों के लिए ही लिखा है. लेकिन लेखक को तो सूचना होनी ही चाहिए और उस से होने वाली आय का उचित अंश उसे मिलना ही चाहिए.

किताबें

ऋतुचक्र : विचारचक्र

काफ़ी लंबे अरसे की प्रतीक्षा के बाद इलाचंद्र जोशी की कोई औपन्यासिक कृति उन के प्रेमी पाठकों के सम्मुख आयी है. ऋतुचक्र नामक अपने इस बृहत् उपन्यास में जोशी जी ने आधुनिक जीवन की समस्त संगतियों-विसंगतियों का लेखाजोखा पेश किया है. यह विचार-प्रधान उपन्यास चिंतन के स्तर पर लेखक के समग्र जीवनानुभवों का बही-खाता है और अपने ढंग का अकेला उपन्यास है. उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र पढ़े-लिखे विचार शील वर्ग के हैं और आधुनिक जीवन के घात-प्रतिघात झेलते हैं. नागरिक जीवन से भाग कर एक सुरम्य प्राकृतिक अंचल में जा कर रहते हैं. इस एकांत प्रकृति का सहवास उपन्यासकार ने एक प्रतीक के रूप में चित्रित किया है, जिस की छाया में जा कर ही आधुनिक मन शांति पा सकता है.

मुख्य पात्र दादा कॉलिज की प्रोफ़ेसरी छोड़ कर प्रकृति के संसर्ग में रह कर ही शांति का रहस्य खोज पाते हैं. उन का सब आदर करते हैं और सभी मानवीय भावनाओं, संवेदनाओं और दुर्बलताओं के होते हुए भी वह विवेकशील और विचारवान हैं. लंबी-लंबी बहसें एक स्तर पर आधुनिक चरित्रों पर व्यंग्य भी हैं, जो जीवन जीने से अधिक जीवन की दार्शनिक मुद्राएँ ओढ़ते हैं. वैचारिक स्तर पर जीवन को समझते हुए भी विकृतियों के शिकार हैं. ज्ञान उन के लिए भारी पड़ रहा है. चाहते कुछ हैं, कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं; फलस्वरूप हत्या और आत्महत्या का मार्ग अपनाते हैं. निरंतर एक तनाव में जीते हैं और किसी भी स्थिति या संबंध का पूरा सुख नहीं उठा पाते. आज आत्महत्या हत्या का ही एक रूप है.

उपन्यास में 'पहाड़ी प्रकृति के चोंचले' बड़े काव्यात्मक रूप में उपन्यासकार ने दिखाने का प्रयत्न किया है. विचारों के स्तर से हट कर भावना के स्तर पर उसने माना है कि 'जीवन में अलग-अलग उम्र की अलग-अलग ऋतुएँ होती हैं और हर ऋतु नया रंग लाती है.' लेकिन 'ऋतुचक्र' में विचारों से बोझिल जीवन के इन रंगों का चित्रण नहीं है. शायद उस का चित्रण उपन्यास के दूसरे खंड में हो, जो अभी लिखा जाना है और आशा की जानी चाहिए कि जोशी जी शीघ्र स्वस्थ हो कर उसे पूरा करेंगे. दादा और प्रतिभा के चरित्र को जिस विशाल परिप्रेक्ष्य में उन्होंने शुरू किया है शायद तभी वह अपनी पूर्णता को भी प्राप्त हो सकेगा. और उपन्यास का उद्देश्य भी पूरा होगा लिली और नकुलेश का भी अधूरापन पूरा होगा.

ऋतुचक्र : इलाचंद्र जोशी; लोक भारती प्रकाशन, १५-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१; मूल्य १५ रुपया.

सातवाँ शंकरलाल संगीत समारोह

राजधानी में आयोजित संगीत के विभिन्न कार्यक्रमों में शंकरलाल संगीत समारोह सर्व-प्रमुख है. इस वर्ष के आयोजन का आरंभ और समापन पिछले वर्ष की ही भाँति उस्ताद बिसमिल्ला ख़ाँ और उस्ताद विलायत ख़ाँ जैसे विश्व फ़नकारों द्वारा रहा, जिन का अपना आकर्षण था. पर इस वर्ष श्रोताओं की कमी पहले ही दिन से रही. उस्ताद विलायत ख़ाँ और कुछ हद तक श्री रामचतुर मलिक और निखिल बनर्जी के कार्यक्रमों को छोड़ कर अन्य सभी गायक एवं वादक कलाकारों के समय श्रोताओं की कमी इस हद तक रही कि कार्यक्रम घोषित समय से एक-एक घंटे बाद शुरू करने पड़े; फ़िर भी श्रोतागण इनेगिने ही

रामचतुर मलिक : अनूठा अनुभव

रहे. काश आयोजकों ने श्रोताओं की उदासीनता का कारण ढूंढने का प्रयत्न किया होता कभी ? कलाकारों का चयन और उन्हें प्रस्तुत करने में यदि आयोजक थोड़ा भी परिश्रम करें और श्रोताओं का समय नष्ट करने की बनिस्वत उस का उपयोग करें तो निस्संदेह श्रोता और कलाकार दोनों का ही भला होगा.

इस वर्ष समारोह की उल्लेखनीय बात थी पुरानी पीढ़ी की अपेक्षा नयी पीढ़ी के अधिक कलाकारों का मंच पर आना. पर उन में ऐसा कोई भी नहीं था जो इस समारोह में या दिल्ली के श्रोताओं का चिर परिचित न हो. उस्ताद बिसमिल्ला ख़ाँ और उस्ताद विलायत ख़ाँ के कार्यक्रमों को छोड़ कर नयी पीढ़ी को सुनने में दिल्ली के श्रोताओं की अरुचि निराशाजनक ही नहीं, खलने वाली भी रही. पर इस से हानि श्रोताओं को ही रही, क्यों कि नयी पीढ़ी के कलाकारों ने भी अनेक उच्च कोटि के कार्यक्रम प्रस्तुत किये, जिन्हें सुनने का सौभाग्य कम ही लोगों को रहा.

गायन : गायन को विभिन्न शैलियों से इस बार क्रमशः परिचित कराने वाले कलाकार थे, ग़ुलाम मुस्तफ़ा ख़ाँ, किशोरी अमोनकर, विनय भरत राम, माणिक वर्मा, पंडित जसराज और दरभंगा के प्रौढ़ सुविख्यात गायक श्री रामचतुर मलिक ! उस्ताद निसार हुसैन ख़ाँ के शिष्य **ग़ुलाम मुस्तफ़ा** की गायकी ख़याल की अपेक्षा ठुमरी से मिलती-जुलती रही और उस में बोल-तान की वह बात नहीं थी जो उस्ताद की गायकी में है. ख़्याल गायकी का पूरा आनंद न होते हुए भी राग रागेश्वरी और वसंत में इन का गायन भावपूर्ण और अलंकार-प्रधान रहा. विलंबित एक ताल में बंदिश का नयापन और चैनकारी की बढ़त सुंदर रही; पर गायन का कौशल दीखा इसी राग की द्रुत "माने न मोरी बात" बंदिश में.

मोंगूबाई कुरदीकर की सुपुत्री **किशोरी अमोनकर** का कंठ मधुर है तथा स्वर के साथ-साथ राग-भावों को भी माधुर्य के साथ आत्मसात कर के गाती हैं. राग बागेश्वरी और एक दादरा ढंग की रचना इन्होंने प्रस्तुत की. बागेश्वरी की विलंबित में राग निहित व्याकुलता का भाव बहुत ही सजीव और वेदनायुक्त ढंग से व्यक्त हुआ, **श्रीमती माणिक वर्मा** ख़्याल, ठुमरी, भजन और भाव-गीत सभी बड़ी कुशलता और सरलता से गाती हैं. मानवीय भावों को जिस ढंग से स्वर-माधुर्य और सहज रीति से स्वरों के माध्यम से अपनी बोल-तान की गायकी में उन्होंने उतारा आकृष्ट करने वाला रहा. पूरिया तथा धनाश्री दोनों ही रागों का समुचित और लालित्यपूर्ण विस्तार रहा. श्याम कल्याण में स्थायी अंतरा कहने की सुस्पष्ट शैली, आलाप, बोल की सरसता और बोल-तान की विविधता में गायिका की अनुपम संगीत-साधना स्पष्ट परिलक्षित होती थी, पर सरगमों की कमी कुछ खलने वाली रही. शौक़िया कलाकार **विनय भरत राम** द्वारा राग विहाग और देस में ख़्याल तथा माँज खमाज में ठुमरी का गायन कर्णप्रिय और शास्त्रीय संगीत के प्रति उन की लगन के साथ-साथ स्वर-तान का भी अच्छा उदाहरण रहा.

प्रातःकालीन सभा में प्रतिभाशाली गायक पं० जसराज ने अपना गायन राग विलासखानी, मियाँ की सारंग और भैरवी में प्रस्तुत किया. अपने ही पूर्व प्रस्तुत कार्यक्रमों की तुलना में इस बार गायन कुछ कम वज़नदार था, पर श्रोताओं पर अपना रंग जमाने में काफ़ी सफल रहा. रागों के भावात्मक और रसात्मक प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त इन के गायन की उल्लेखनीय और आकर्षित करने वाली बात रही विभिन्न रागों की नयी-नयी और काव्यमय रचनाएँ, जो अपने-आप में निराली रहीं. विलंबित में राग बढ़त शब्दों का स्पष्ट भाव भरा उच्चारण, गमक, विविध सरगमें, बोलतान और तानों की विविधता आदि मेवाती घराने की शैलीगत विशिष्टताएँ हैं, जिन का सुंदर प्रयोग इन के गायन में रहा. पं० जसराज के गायन का सही आनंद मिला इसी राग की द्रुत रचना 'जा जा रे जा कगवा' के गतिपूर्ण, विविध मनोहारी सरगमों और तानों से सजी बंदिश के प्रस्तुतीकरण में. मिश्र राग 'मियां की सारंग' में काव्य और राग के सफल समन्वय का रसपूर्ण रूप रहा, तो भैरवी के स्वरों में माँ काली की स्तुति "निरंजनी-नारायणी-निरंजनी-नारायणी" भाव भक्ति का वातावरण सृजन करने में अनूठी और हृदयग्राही रही.

रामचतुर मलिक के गायन में संगीत को पूर्ण रूप से समर्पित एक आत्मा के दर्शन हुए. इन का गायन सुनना एक अनूठा अनुभव रहा. गायकी के अनुरूप सक्षम कंठ, गायकी की विविधता और सरस शास्त्रीयता में कलाकार की अपूर्वनिष्ठा, श्रद्धा और साधना का सफलतम रूप देखने को मिला. रामचतुर मलिक और उन के शिष्य अभयनारायण मलिक द्वारा राग दरबारी-कान्हड़ा में आलाप-ध्रुपद और राग अड़ाना के बाद ठुमरी गायन निस्संदेह प्रथम कोटि का रहा. आलाप अंग के लिए बहुत ही उपयुक्त राग दरबारी का चयन सूझ-बूझपूर्ण और गायक के कंठ के अनुरूप सिद्ध हुआ. दरबारी के व्यापक आलाप में मंद्र और मध्य स्थान के स्वरों में गांभीर्य आरोही की कलात्मक धैवत और निशाद ने राग का गहन और प्रभावशाली चित्र प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित किया कि गुणीजन और रसज्ञ एक साथ विमुग्ध हो गये. राग बढ़त के बाद गमक और लहक अंग में प्रवेश करने पर तो गायक की अनुपम दक्षता ने आश्चर्यचकित ही कर दिया. अंतर से उद्भूत विविध प्रकार की विलक्षणता गमकों और लहक का प्रभावशाली प्रदर्शन अनुकरणीय रहा. पुरुषोत्तमदास की पखावज पर संगत में चौताल की दरबारी में ध्रुपद और अडाना में धमार गुणी गायक की अद्भुत लयकारी के साथ भाव और अलंकार पक्ष पर भी पूर्ण अधिकार की अभिभूत करने वाली रचनाएँ रहीं. बलयुक्त ध्रुपद-धमार की गायकी के बाद सुकोमल कमनीय शैली की रचना "होली खेलन कैसे जाऊँ दैया' ठुमरी गायन में भाव बताने की अनूठी कला की रससिद्ध, बोल-भाव और मुरकियों से युक्त आनन्ददायक चीज़ रही.

वादन : उस्ताद बिसमिल्ला ख़ाँ और उन के साथियों ने शहनाई वादन में अपनी विशिष्ट शैली का सदैव की भाँति प्रदर्शन कराते हुए उन्हीं रागों में और उसी क्रम से प्रस्तुत किया

जिस में पिछले वर्ष किया था. वादन में सुरीलापन भी वैसा ही था और शास्त्रीयता भी, पर वादन उस्ताद की स्थापित ख्याति और प्रतिष्ठा तक नहीं उठ सका. मधुवंती, फिर होरी काफ़ी और अंत में पूर्वी धुन इस वार भी इन से सुनने को मिली. रागों के चयन और उन में नवीनता का अभाव होते हुए भी वादन में कहीं कोई दोष हो ऐसा नहीं कहा जा सकता. उस्ताद विसमिल्ला ख़ाँ के वादन में यदि कोई नया आकर्षण और नवीनता थी तो वह थी इन के अल्प आयु के सुपुत्र **नाजिम हुसेन** की तवले पर संगत. विचित्र वीणा वादकों में **गोपाल कृष्ण** का अनन्य स्थान है. इन की कल्पनायुक्त, मधुर शैली में वादन के प्रायः सभी अंगों का प्रदर्शन वहुत ही ओजपूर्ण ढंग से रहा. राग श्री की अवतारणा में कलाकार की तल्लीनता और दक्षता देखते वनती थी. मंद और मध्य सप्तक में श्री राग के मुख्य स्वरों को ले कर आलाप की वढ़त में राग-भाव और राग-रस की अनूठी सृष्टि कर के गोपाल कृष्ण ने मुग्धविभोर कर दिया. राग की सजीव और श्रुतिमधुर अवतारणा तथा वीणा वादन का हर क्षण उत्कृष्ट कला का आनंदमय परिचायक रहा. एमन कल्याण में झपताल और तीन ताल की अलंकारिक गतों की कलात्मकता, स्वर-नियोजन और लयकारी ने तो वादन का समाँ ही बाँध दिया. एमन कल्याण के वाद मिश्र काफ़ी में आलाप यद्यपि अनावश्यक था पर सरल शास्त्रीय ढंग की अति सुकोमल और रसपूर्ण वंदिश निहित आत्मनिवेदन को द्रवित करने वाली भावनाओं की अभिव्यक्ति एक बहुत ही संवेदनशील कलाकार की भाँति **गोपाल कृष्ण** ने की. सीधे-सच्चे कलाकार नंदलाल घोष की सरोद वादन शैली भी सरल, स्वच्छ और शास्त्रीयता से पूर्ण रही. सेनिया घराने के प्रसिद्ध वीनकार उस्ताद दवीर ख़ाँ के शिष्य **नंदलाल घोष** द्वारा मारू विहाग में आलाप के वाद सीधी गतकारी आरंभ करना निस्संदेह प्रशंसनीय रहा. राग और वाद्य में पूर्ण रूप से लिप्त हो कर मारू विहाग के आलाप में तीव्र मध्यम और गंधार को विस्तार का प्रमुख अंग बना कर वादन ने ऐसी क्रमिक बढ़त की कि श्रोता झूम उठे. विलंबित गत की मंद मधुर लय, द्रुत की नवीनता, तानों में सचाई और अलंकारों के प्रयोग में सुलभता वरवस आकृष्ट करने वाली रही. प्रातःकालीन सभा **अमजद अली ख़ाँ** का सरोद वादन सुनने योग्य और आशातीत रूप से सफल रहा. राग गुजरी तोड़ी में आलाप, जोड़, झाला, मसीतखानी, मध्य तथा रज़ाखानी गत के अत्यंत दक्षतापूर्ण और सुरीले वादन में जमाव भी था और परिष्कार भी. आलाप, जोड़, झाला के वहुत ही उन्मुक्त वादन में स्वरों की मिठास, राग चित्रण का कलापूर्ण और सौंदर्यमय ढंग और राग-विस्तार की विविधता में कलाकार की अपूर्व लगन और नये आयाम स्थापित करने का स्पष्ट प्रमाण रहा. संगीत-समीक्षक और आकाशवाणी के कलाकार वाँसुरी वादक **प्रकाश वडेरा** ने संध्याकालीन मधुर राग शुद्ध कल्याण और सरल शास्त्रीय ठुमरी शैली की वंदिश से अच्छे संगीत-संसार की सृष्टि की. राग की प्रकृति के अनुरूप विलंवित वादन में भाव और अलंकार पक्ष का पूरा संतुलन विद्यमान रहा. तीन ताल में निवद्ध गतों में आलाप की सुंदर वढ़त, उस में उचित ठहराव और राग-माधुर्य चित्रित करने की आकर्षक शैली तथा द्रुत वादन में तोड़ों की नवीनता और तानों में सचाई रही, पर कई वार तानों में अस्पष्टता भी थी. अंत में प्रस्तुत ठुमरी कल्पनाभरी और मधुर स्वरों वाली रचना रही. **इमरत ख़ाँ** ने संभवतः पहली वार शंकर लाल समारोह में स्वतंत्र रूप से सितार वादन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जो निस्संदेह काफ़ी सफल रहा. खमाज ठाठ के दो अत्यंत कर्णप्रिय राग जैजैवंती और देस की क़रीब दो घंटे तक गायकी अंग में अवतारणा आनंददायक रही. तवला वादक **किशन महाराज** की संगत में देस की स्फूर्तिमय गतों में वज़नदार मिजराव और सपाट का काम चमत्कारपूर्ण रहा. अलाउद्दीन ख़ाँ साहव के शिष्य **निखिल वनर्जी** का सितार वादन स्मरणीय और कलाकार की सृजनात्मक प्रतिभा के साथ-साथ उत्तम शिक्षा का सफलतम रूप रहा. सायंकालीन राग हेमंत और प्रातःकालीन ललित राग के स्वर सामंजस्य से स्वरचित राग 'हेम ललित' में आलाप, जोड़, झाला और राग पंचम से गारा में गतकारी के वादन में शास्त्रीय शुद्धता, मौलिकता और कलात्मकता अंत तक रही.

गायकी अंग के वेजोड़ सितार वादक **उस्ताद विलायत ख़ाँ** की लोकप्रियता का प्रमाण श्रोताओं की उपस्थिति से सहज ही लगाया जा सकता था. सदैव की भाँति उस्ताद के वादन में सुरीलापन, अद्भुत तैयारी और साज़ को साधिकार विविध ढंग से निरखने-परखने का पूर्ण प्रमाण थी.

रंगमंच

चिंदियों की एक झालर

न्यूयॉर्क, जहाँ थियेटर न केवल एक वड़ा उद्योग है लेकिन नये-से-नये भाव-बोध और विचारों का माध्यम भी है, इस समय एक कठिन परीक्षा के दौर से गुज़र रहा है. ब्रॉडवे को छोड़ कर, जहाँ संगीत-नृत्य-हास्य प्रधान 'म्यूज़िकल' ही अक्सर दिखाये जाते हैं, या प्रसिद्ध नाटककारों के प्रसिद्ध नाटक पसंद किये जाते हैं, वाक़ी थियेटर की गतिविधि से दर्शक कुछ अधिक उपेक्षा करने लगे हैं. वे चाहते हैं कि नाटक में 'कुछ' हो. नाटक उन्हें अपने-आप में लपेट ले. 'अच्छा' या 'वुरा' जैसा भी हो कम-से-कम एक प्रतिक्रिया को तो जन्म दे. उन्हें सोचने के लिए वाध्य करे. इस प्रकार के थियेटर को 'थियेटर ऑव इनवॉल्वमेंट' की संज्ञा दी गयी है. दर्शकों को थियेटर उस समय तक 'इन्वॉल्व' नहीं करेगा जव तक कि वह समाज की किसी समस्या को ले कर प्रभावपूर्ण ढंग से उघाड़ नहीं देगा. न्यूयॉर्क में 'लुक वैक इन एंगर' उस समय तक सफल नहीं हुआ जव तक कि एक महिला ने निर्देशक के निर्देशन में दर्शकों में से उठ कर, स्टेज पर चढ़, नायक को एक चाँटा नहीं रसीद कर दिया. तव लोगों को लगा कि स्टेज पर 'कुछ' हो रहा है.

सागर विश्वविद्यालय की नाट्य संस्था, **प्रयोग** ने, जो पिछले १० वर्षों से नये नाटकों को खेल रही है, **अमृत राय** का **चिंदियों की एक झालर** खेला. इस नाटक को 'थियेटर

'चिंदियों की एक झालर' का एक दृश्य

ऑव इन्वॉल्वमेंट' कहा जा सकता है. यह नाटक अभी प्रकाशित नहीं हुआ है, जिस का अर्थ है कि अभी तक 'पढ़े जाने वाले साहित्य' की कसौटी पर परखा नहीं गया है और इस लिए इसे प्रस्तुत करते समय मन में थोड़ा संशय था. नाटक का निर्देशन **विजय चौहान** ने किया. वाप (नंदन—कमलाशंकर शुक्ला), माँ (दीपा—**माया शाह**), वेटे (मंगल—नरेंद्र सिंह) के वीच वातचीत है—पिछली पीढ़ी और वर्तमान के वीच वहस है; ऐसी वहस जो वहुत से पुराने घावों को कुरेदती है. मंगल ने ऐसी दुनिया में जन्म लिया है जहाँ आस्था, मूल्य और पुरानी यादें चिंदियों की एक झालर के समान रह गयी है, जिन्हें नंदन गले से लगाये घूमता है. मंगल दीपा का आखिर पुत्र ही है और नंदन उस का पति—न केवल पुत्र की सुरक्षा के ख़्याल से पर सिद्धांत में भी वह अपने पति के साथ नहीं है. अंत नंदन की आत्महत्या में होता है.

'चिंदियों की एक झालर' युवा पीढ़ी की समस्या को एक वीत रही पीढ़ी की समस्या की पृष्ठभूमि में वड़ी निर्ममता से परखता है.

विनोदबिहारी मुखर्जी : सिंह प्रदर्शनी

प्रेक्षक के लिए आश्चर्य—सुखद आश्चर्य—की पहली वात यही है कि लगातार मानों कोई उस की कुछ रुचियों और अभिव्यक्तियों को सँवारता रहा है—प्रायः पचास वर्षों तक. यह भी एक प्रेक्षक की तय चाहे जितनी हो, उसे अपने जीवन का कुछ भाग इन कृतियों के समानांतर चलता मालूम पड़ेगा. एक अर्थ में पीढ़ियों का प्रश्न यहाँ मिट जाता है—पिछले दिनों नयी दिल्ली के रवींद्र भवन में विनोद विहारी मुखर्जी की सिंहावलोकन प्रदर्शनी को देख कर कुछ ऐसा ही अनुभव हुआ. वेहाला, वंगाल में १९०४ में जन्मे विनोद वावू १९१७ में शांति निकेतन में विद्यार्थी हो कर आये थे. १९१८ में उन्होंने कला-भवन (शांति निकेतन) में प्रवेश लिया और १९२५ में वह यहीं कला-अध्यापक नियुक्त हुए. इस शुरुआत से ले कर आज तक पचास वर्ष वीत चुके हैं. विनोद वावू रंग-रेखाओं से अपना पीछा नहीं छुड़ा सके. उल्टे लगता यही है कि वही लगातार इन का पीछा करते रहे हैं—१९५६ में आँखों की रोशनी को पूरी तरह खो देने के वाद भी इस प्रक्रिया में कोई व्यवधान नहीं पड़ा.

सैरे और पुष्प-अध्ययन

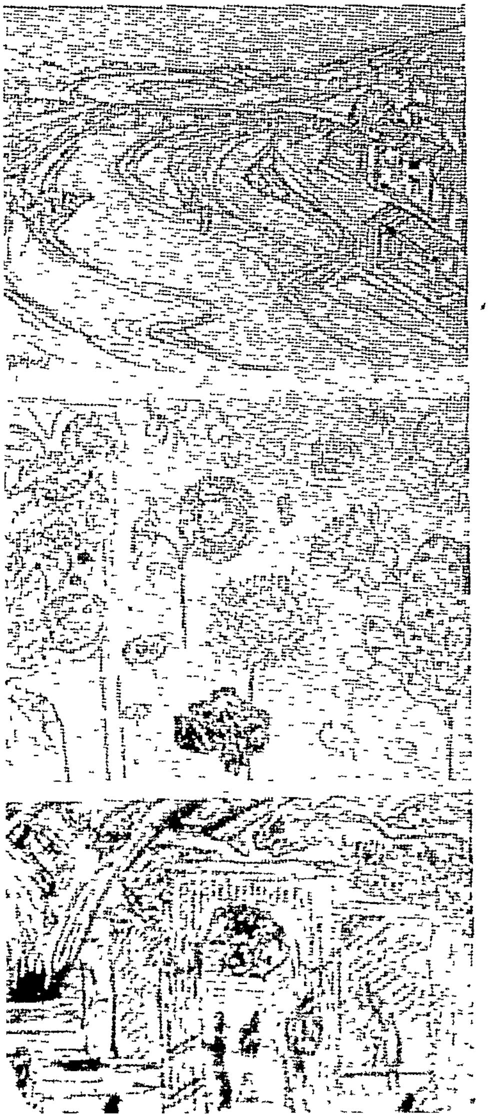

अनोखी यात्रा : कथित 'वंगाल-स्कूल' के अंतर्गत घेर लिये जाने वाले विनोद वावू किसी स्कूल या वाद के ही हो कर नहीं रहे. यह सिंह प्रदर्शनी इस वात की पुष्टि कई तरह से करती है. और इस दृष्टि से यह एक उल्लेखनीय प्रदर्शनी है. विनोद विहारी मुखर्जी ने भिन्न शैलियों और कला-रूपों में इतना अधिक और वैविध्य भरा काम किया है कि सामान्य प्रेक्षक की तो वात दूर कला-प्रेमियों और कला पारखियों को भी उन के साथ कदम मिला कर चलना मुश्किल लगा है.

१२६ कृतियों की इस सिंह प्रदर्शनी में विनोद वावू के सैरे, रेखांकन, ग्राफ़िक, कागज़-कोलाज़, रेखाचित्र आदि प्रदर्शित हैं. रंग-रोगन (टेम्पेरा) जल-रंग, तैल-रंग आदि इन कृतियों के रूप-माध्यम वने हैं. सन् ३० से ले कर ६८ तक का काम इस प्रदर्शनी को एक अनोखी रंग-रेखा यात्रा वना देता है. जव अधिकांश भारतीय चित्रकार चित्रफलक या मिनियेचरों (लघु चित्रों) को ही एक सीमा मान रहे थे उस समय विनोद वावू, जो 'डाक' नाम में सिर्फ़ 'विनो वावू' रह जाते है, यवनिका-फलक (स्क्रीन), कुंडल (स्क्रोल) और भित्ति-चित्रों की ओर आकृष्ट हुए थे.

सुरेखा : आरंभ में विनो वावू का रुझान दूर-पूर्व की सुलेख चित्रकारी (कैलीग्राफ़िक पेंटिंग) की ओर था. भारतीय चित्रकला के लिए सुलिखित-रेखा नयी चीज़ नहीं थी धर्म-लेखों से ले कर लोक कला तक में इस के प्रमाण और उदाहरण-रूप मिलते हैं, फिर भी दूर पूर्व की सुलेख रेखाओं में चाक्षुष-रूप-धर्मिता एक नयी वात थी. लेकिन चीन-जापान की दृश्यावलियों से भिन्न, वंगाल के सैरों, उस के पेड़-फूलों को चित्रित करने के लिए इस सुलेख को 'अपनी' ही कलम से आंकने की जरूरत थी. कहना न होगा कि विनो वावू ने इस ज़रूरत को पूरा किया. इस प्रदर्शनी में उन के द्वारा अंकित पेड़ और फूल और इन से संवंधित सैरे सुरेखा का ही परिचय नहीं देते, गहरे रूप-अध्ययन का भी परिचय देते हैं. फिर चाहे वे कमल के फूल हों या शांति निकेतन के पास के धूल-धूसर पेड़ों वाले एकांत सैरे.

उभार और गहराई : इस प्रदर्शनी में प्रदर्शित वनारस के घाटों से संवंधित चित्र, दृश्य के उभार और उस की गहराई के कारण वहुत आकर्षित करते हैं. विनो वावू की सुरेखाएँ और मुक्त रेखाएँ वहुत पतली और सीधी न हो कर कुछ डवडवायी हुई और लहरियादार हैं. प्रायः इन्हीं से विनो वावू रेतीली भूमि, पर्वतीय अंचलों, एकांत सैरों आदि की सृष्टि करते रहे हैं. पिछले १० वर्षों में विनोद वावू की शैली में एक वड़ा परिवर्तन हुआ है. वह न्यूनतम रेखाओं से आकृतियाँ उभार ही नहीं रहे उन की कहानी भी कह रहे हैं. 'छतरी वाला आदमी' और 'छतरी वाली लड़की' में इन सुरेखाओं की रूप धर्मिता देखते ही वनती है—अव विनोद वावू के रेखांकनों में विवरणों की कमी हो गयी है और उन्होंने आकृतियों को विंवों की चरितार्थता दी है. उन के वारे

विनोदविहारी मुखर्जी : रंग-रेखाओं का पीछा

बैठी हुई आकृति (उत्खनन)

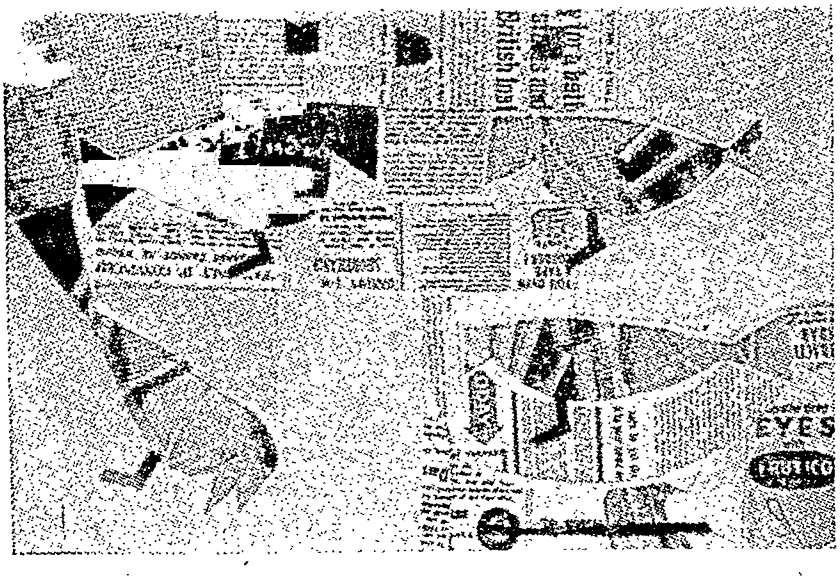

विनोदविहारी मुखर्जी : कागज़-कोलाज़

में ठीक ही कहा जाता है कि उन की कृतियों में एक पूरे समाज, उस के लोगों और उन के संपूर्ण परिवेश को समाहित कर लेने का भाव है. उन के आरंभिक प्रकृति-चित्र भी प्रकृति का प्रतीक बन कर ही उपस्थित होते हैं, यानी जहाँ एक सैरे से दूसरे सैरे और फिर तीसरे सैरे की कल्पना प्रेक्षक अपने आप कर लेता है.

गति के लिए : विनोद बाबू के नये कागज़-कोलाज़, जिन की रचना वे किसी सहायक की सहायता से करते हैं, एक साथ ही मूर्त्त-अमूर्त्त की निकटता प्राप्त कर लेते हैं. उन की लाक्षणिकता और सांकेतिकता केवल अर्थवान ही नहीं बनती अपने रूपाकारों को गति भी देती है. इन कागज़-कोलाज़ों में चित्रित अचल-जीवन विशेष रूप से आकर्षित करते हैं, जिन में चाय की केतली, गिलास, कुर्सियाँ, मानवीय अनुपस्थिति में एक मानव सार्वभौमिक संवाद करते मालूम पड़ते हैं. चटख रंगी चिकने कागज़ों के साथ ही उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं के कागज़ों का उपयोग भी किया है. एक कोलाज़ में उन्होंने जूते के फ़ीते का उपयोग भी किया है—इस से मानों कोलाज़ को बाँध दिया गया है और उसे गति के लिए प्रस्तुत कर दिया है.

गुरु-दक्षिणा : नंदलाल बसु के अलावा विनोद विहारी मुखर्जी ग्राफ़िक चित्रों के प्रथम भारतीय प्रयोगकर्त्ताओं में से हैं. उन के लियोग्राफ़, उत्खनन, काठ-ठप्पों (वुड कट) ने तमाम सैरे, आकृतियाँ छापे हैं. कुछेक लघुतम आकार में हैं—पिक्चर पोस्टकार्ड जैसे. उन के उत्खननों में से 'खड़ी आकृति' और 'बैठी आकृति' एक बवंडर के रूप में चित्रित—मुद्रित हुए हैं, रेखा-बगूलों के रूप में. कहने की ज़रूरत नहीं कि ये बेहद आकर्षक बन पड़े हैं.

इस सिंह प्रदर्शनी का आयोजन उन के तीन छात्रों—के. जी. सुब्रह्मण्यम, रामचंद्रन और रीतेन मजूमदार ने किया है. ये तीनों अब प्रशंसित चित्रकार हैं. प्रदर्शनी का प्रदर्शन-भार 'इंटरनेशनल कल्चरल सेंटर' ने लिया था. ललित कला अकादेमी भी इस में सहायक हुई. विनो बाबू की इस महत्त्वपूर्ण व प्रभावशाली सिंह प्रदर्शनी के द्वारा आयोजकों ने सिंह प्रदर्शनियों की दिशा में एक अनुकरणीय क़दम उठाया है. यह भी कह सकते हैं कि उन के इन तीन कला छात्रों ने यह प्रदर्शनी आयोजित कर के उन्हें उपयुक्त गुरु-दक्षिणा दी है.

हरिदासन के 'यंत्र'-चित्र

पिछले कुछ वर्षों से भारतीय चित्रकार तांत्रिक कला की ओर उन्मुख हुए हैं. तांत्रिक कला के रंग-प्रयोगों और उस के रूपाकारों से प्रभाव ग्रहण करने की बात सोची गयी है. लेकिन तांत्रिक कला की प्रकृति—उस की बुनावट-बनावट का एक रूपांतरित रूप, कुछ ही चित्रकारों ने प्रस्तुत किया है. इस की बहुत ज़रूरत भी नहीं मालूम पड़ती और जैसा कि चित्रकार, कला-समीक्षक ज० स्वामीनाथन कहते रहे हैं, और हाल में अपनी प्रदर्शनी में उन्होंने इसे 'झलकाया' भी कि तांत्रिक कला की 'कविता' से प्रभाव ग्रहण करना भर, वह भी एक सीमा तक, ही श्रेयस्कर होगा. तांत्रिक कला का रूप-चित्रण संभवत: रचनात्मक न हो पाये. क. व. हरिदासन के यंत्र-चित्रों की प्रदर्शनी **(कुमार कला दीर्घा)** देख कर यही सवाल मन में उठते हैं. हरिदासन ने अपने यंत्रों—तंत्र के मंत्रों और प्रकृति को उभारने वाले रूप चित्रों—में कोई तंत्र-दृष्टि नहीं प्रस्तुत की. कुछ तांत्रिक-प्रतीकों, रूपाकारों को उन्होंने रेखा चित्रों के आधार पर प्रस्तुत कर दिया है. कमल, सूर्य, दो मछलियों का चिन्ह, नर-नारी, मुखाकृतियाँ, रति-संकेत—प्राय: उन के यंत्र-चित्रों में यही उभरते हैं. उन्होंने इन चित्रों के रूपाकारों, आकृति-अंगों को रेखाओं का पुष्ट आधार दिया है, और एक प्रकार से ये चित्र रंग-भरे रेखांकन ही हैं. जीवन की रहस्यमयता या उस की अज्ञेयता को किसी हद तक 'अनुभव कर' पा लेने की कोई संभावना इन चित्रों में नहीं मिलती, बल्कि ये चित्र किसी रहस्यमयता की सृष्टि भी नहीं करते. सूर्य, कमल, काम की तरंगों के कुछ परिचित रूप-अनुभवों को ही ये दुहराते हैं,

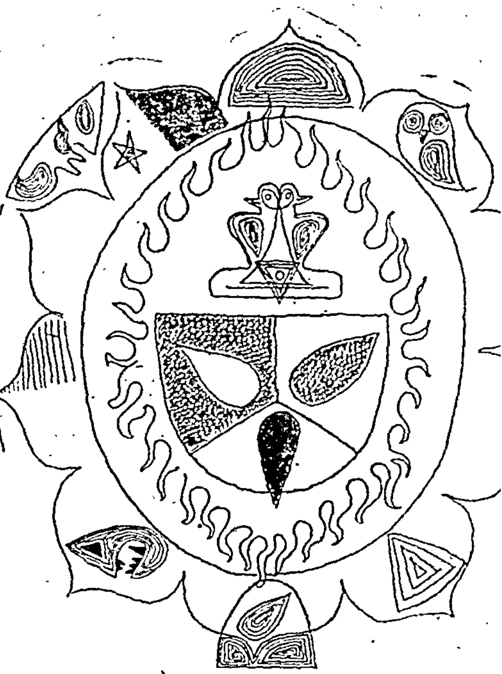

हरिदासन : प्रतीकों की खोज

हैदराबाद : बातिक बात

पिछले दिनों हैदराबाद के 'कला भवन' में पाँच चित्रकारों के पचास बातिक-चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित हुई. समीक्षकों की दृष्टि में यह एक सफलप्रदर्शनी मानी गयी.

सूर्य प्रकाश पिछले दिनों अपने चित्रों में 'मोबाइल' (मूर्तिशिल्प का एक रूप) प्रभाव पर, लक्ष्मा गौड़ रेखांकनों तथा द. देवराज सैरों पर विशेष रूप से कार्य करते रहे हैं. ये तीनों ही मुख्य रूप से प्रयोगशील कलाकार हैं और इन की कला-कृतियाँ भारत और विदेशों के कला-प्रेमियों के संग्रहों में हैं. पिछले वर्ष दिल्ली में भी इन की कृतियों की प्रदर्शनी आयोजित हो चुकी है. **सूर्यप्रकाश** और **द. देवराज** जहाँ रंगों के माध्यम से फलक को प्रयोगोन्मुख करते हैं वहाँ **लक्ष्मा गौड़** अपनी सशक्त रेखाओं को नये रूप और अर्थ देने में सफल सिद्ध हुए हैं. यह तिगड्डा एक मोटर-गैराज, जो इन का स्टूडियो है, में सुबह से रात तक अपने काम में व्यस्त देखा जा सकता है और मज़े की बात यह है कि किसी एक की कला का प्रभाव दूसरे पर रत्ती भर भी नज़र नहीं आता. प्रकाश जहाँ चटख रंगों के समुचित संयोजन से आधुनिक तथा अमूर्त्त-चित्रों को वाणी देते हैं, वहाँ देवराज की विशेषता सैरे हैं जो लीथो, बातिक आदि में 'साकार' होते हैं और जो न तो मूर्त्त होते हैं न

ऑप एक : सूर्तप्रकाश

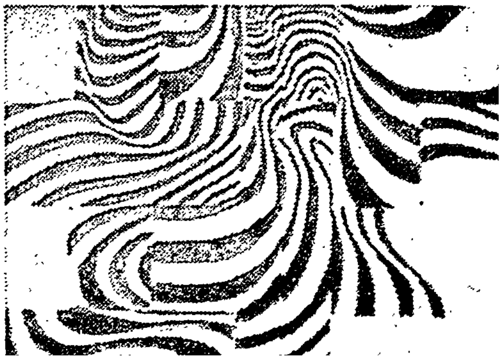

पूर्ण अमूर्त. लक्ष्मा अपने रेखांकनों में यौन-विषयो को भिन्न कोणीय रेखाकन क्षमता से प्रस्तुत करते रहे है, लेकिन अपने बातिक चित्रो मे उन्होने लोक कथाओं और ग्रामीण जीवन (विशेष रूप से आंध्र के तोलु, बोमलु—चमड़े की गुड़ियों आदि को सहज रूप से चित्रित किया है. इस में संदेह नही कि उन के कुछेक बातिक-चित्र अच्छे बन पड़े है, लेकिन यहाँ यह कहने की इच्छा होती है कि आकृति-मूलक चित्रों के लिए बातिक अंततः अच्छा माध्यम नही है. **श्रीमती प्रभा प्रकाश** और शरीफ़ कम चर्चित कलाकार हैं, लेकिन इस प्रदर्शनी में इन के चित्र सराहे गये और इन की कृतियाँ कला-प्रेमियों को आकर्षित करने में पीछे नही रहीं.

आवभगत में कोका-कोला से अपनापन कुछ और ही बढ़ जाता है। अपने मेहमानों के साथ इस के जानदार उमंग-भरे स्वाद का आनंद लीजिए। स्वाद ऐसा कि बार-बार पीने को जी चाहता है। उल्लास बढ़ जाता है।...भोजन अधिक भाता है।...हर चीज़ में एक नया ही आनंद आता है।

याह री लज़्ज़त कोका-कोला! ऐसी लज़्ज़त और कहाँ!!

कोका-कोला, कोका-कोला कम्पनी का रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क है।

हर मौक़े पे संग, कोका-कोला के संग!

CMCC-10-203-HN

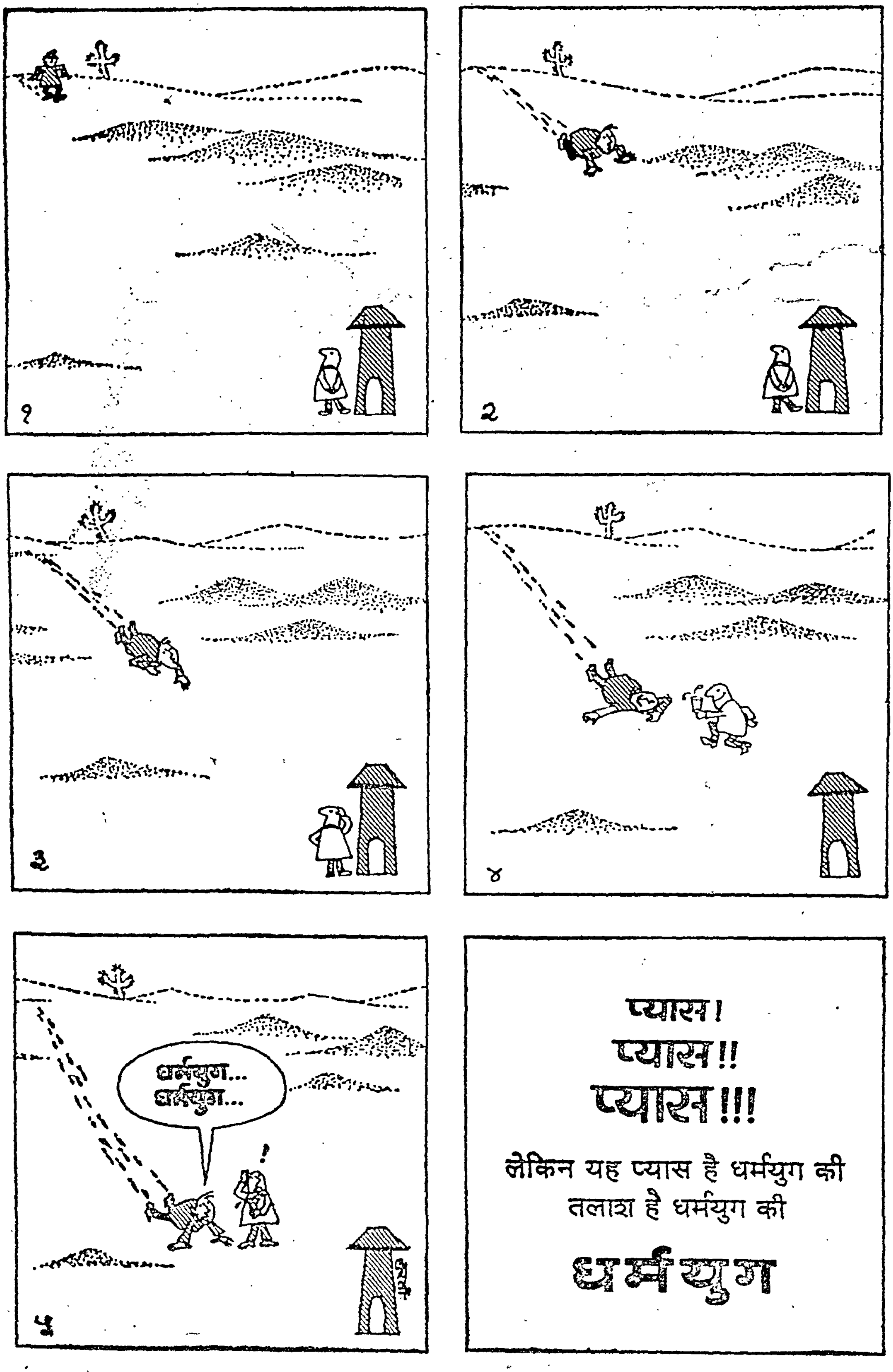
१
२
३
४
धर्मयुग...
धर्मयुग...
५
प्यास।
प्यास!!
प्यास!!!
लेकिन यह प्यास है धर्मयुग की
तलाश है धर्मयुग की
धर्मयुग

पंजीयित संख्या डी० १५०१

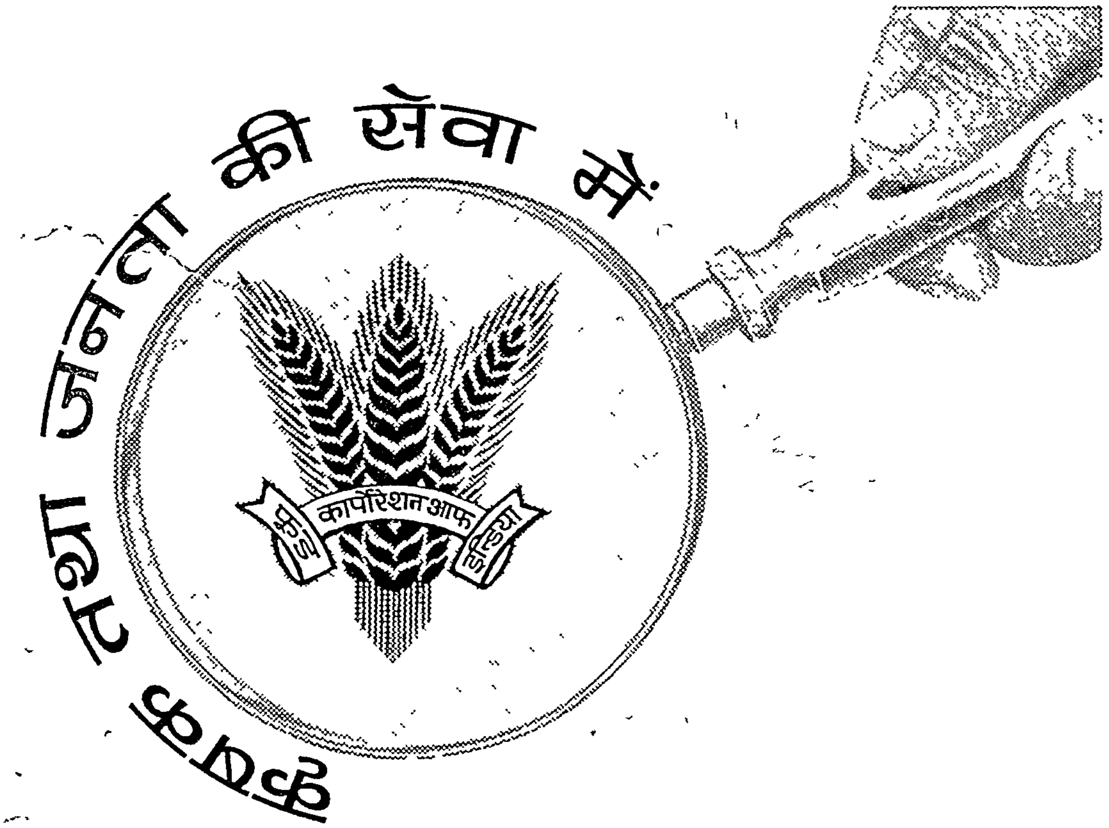

	१९६५-६६	१९६६-६७	१९६७-६८
क्रय में प्रगति			
मात्रा (मीटरी टन)	२६.४२	३९.०१	६१.५७
मूल्य (रु० करोड़)	१५८.९४	२४१.८७	४३९.८०
विक्रय में प्रगति			
मात्रा (मीटरी टन)	१७.७५	३५.८६	४९.४५
मूल्य (रु० करोड़)	१३०.६७	२५१.१९	३८४.६२
संग्रह क्षमता (लाख टन में)	६.१८	१६.५४	१९.५४
अन्तर्राज्य ले जाये गये खाद्यान्न (लाख टन)	६.५९	७.४२	१५.०४

किसान को अधिक अच्छा मूल्य
जनता को अधिक अच्छा खाद्य

दि फूड कार्पोरेशन आफ इन्डिया, १, बहादुर शाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-१

Newfields

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

साप्ताहिक

दिनमान

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

याह्या खाँ

६ अप्रैल, '६९

खरीददारी की सूची
में पहले
स्थान पर

कोटोजम

वनस्पति

ए और डी
विटामिन युक्त

INTERADS

मोदी वनस्पति मैन्युफैक्चरिंग कं०, मोदीनगर (यू० पी०)

मत और सम्मत

पाकिस्तानी छात्र-आंदोलन : अभी हाल में हुई मेरठ विश्वविद्यालय के छात्र-नेताओं की बैठक में एक प्रस्ताव पाकिस्तान में छात्रों के आंदोलन के समर्थन में पारित किया गया. प्रस्ताव की मंशा छात्रों का केवल अपने वर्ग (छात्र-समुदाय) का होने के नाते समर्थन करना भर नहीं था, बल्कि यह महत्त्वपूर्ण भावना भी उस के पीछे थी कि हमारी पीढ़ी भी पैदाइश से पहले विभाजित हो गये देश के दो टुकड़ों की नयी पीढ़ी में प्यार, एका और ममता बढ़े. प्रस्ताव यह है : छात्रों की यह सभा पड़ोसी देश पाकिस्तान के विद्यार्थियों को लोकतंत्र के पक्ष में तानाशाही के विरुद्ध शानदार लड़ाई के लिए बधाई तो देती है तथा हम अपने नौजवान साथियों से पूर्ण सहानुभूति रखते हैं और उन की हिम्मत और कूवत की तारीफ़ करते हैं. हम चाहते हैं कि भारत-पाक बँटवारे के पाप के बाद पैदा हुई दोनों देशों की जवान पीढ़ियाँ एक दूसरे के सुख-दुख में लगातार शरीक रहें.

—सत्यपाल, मेरठ विश्वविद्यालय

दिनमान २३ मार्च के अंक में प्रकाशित 'कांग्रेस टूटने की प्रक्रिया में' से ज्ञात हुआ कि कांग्रेस के विघटन के पश्चात् भी श्रीमती इंदिरा गांधी मिलीजुली सरकार का नेतृत्व कर सकती हैं. लेकिन मैं इस संभावना से बिलकुल सहमत नहीं हूँ, क्यों कि विघटित कांग्रेस पार्टी का अवशेष-चिन्ह उस के प्रतीक के रूप में बच जाये, यह असंभव बात है; जिस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर भारत में अंग्रेज़ी साम्राज्य का प्रतीक 'यूनियन जैक' नहीं रहा. कांग्रेस के पतन के उपरांत भी उसी तरह श्रीमती गांधी के प्रधानमंत्री बने रहने की संभावना कल्पनारंजित है.

—विजय, गोरखपुर

दिनमान १६ मार्च के अंक में 'भारत कितना?' शीर्षक पढ़ कर प्रसन्नता हुई. संसद् में प्रश्नोत्तर के समय 'भारत का क्षेत्रफल ठीक-ठीक सरकार को ज्ञात न होना, अथवा 'लगभग' इत्यादि शब्द उच्चारणों से भारतीय जनता के हृदय में शूल-सा चुभ रहा है, क्यों कि वह दो ऐसे शत्रुओं से अपने को घिरी हुई पा रही है कि मंत्रियों को अब तक इस विशाल देश की सीमा का ज्ञान न हो पाना दूसरी भयंकर ग़लती का अहसास करा रहा है.

—मकरंद सत्यनारायण, जमशेदपुर

तीसरी लोकसभा के ६६ में वर्षाकालीन अधिवेशन में जब डॉ० लोहिया ने भी यही सवाल इंदिरा गांधी सरकार से पूछे थे तो उन्हें भी इसी तरह का टूटा हुआ उत्तर मिला था तथा इसे लोहिया जी की राजनैतिक चालबाज़ियाँ कह कर उन के सवाल की गंभीरता को कम करने का प्रयास भी किया गया था. पता नहीं क्यों कांग्रेसी नेता अपनी कमज़ोरियों को छिपाने के लिए देश के इतने बड़े सवाल को ठीक ढंग से न बता कर इसे भी अपनी प्रतिष्ठा पर आघात करने वाला सवाल बना लेते हैं.

—गिरिजाशंकर जायसवाल, मनेंद्रगढ़

संसदीय भाषा में हिंदी के हिंदीकरण अथवा प्रयोग के संबंध में काफ़ी बहसें हुईं. निर्णय-निष्कर्ष यद्यपि कुछ नहीं निकले किंतु हिंदी या आंग्ल में कार्य करने की इच्छानुकूलता सांवैधानिक प्रक्रिया मानी गयी. केंद्रीय कर्मचारी होने के नाते मैंने गत कई महीनों से उक्त संदर्भ में हिंदी में कार्य-संपादन शुरू किया, किंतु क्रमशः आंग्ल भाषा की मानसिक दासता से ग्रसित केंद्रीय कर्मचारी के उच्च-विभागीय अधिकारियों ने विभागीय आदेश दे कर न जाने संविधान की किस मर्यादा के अंतर्गत हिंदी में कार्य नहीं करने की बाध्यता कर दी. आप के पत्र द्वारा इसे हिंदी भाषाभाषी जनमानस तक, चाहे वे सामान्य नागरिक हों, या संसदीय—पहुँचा कर हिंदीकरण की प्रक्रिया पर सोचने को विवश करता हूँ.

—कुमार शर्मा, मुंगेर

बिहार दान में होने वाले सरकारी व्यय पर नियंत्रण करने की ओर ध्यान देना चाहिए और भूदान कमेटी के कार्यकर्त्ताओं को दयनीय दशा से उबारने का क़दम उठाना चाहिए.

—मदनमोहन उपाध्याय, बक्सर, आरा

राजमाता सिंधिया का यह कहना कि अगर वह चाहें तो केवल ४ लाख रुपये ख़र्च कर पुनः प्रदेश में सत्ता पर अधिकार जमा सकती हैं जनप्रतिनिधित्व के आधार पर संगठित शासन के लिए एक नैतिक चुनौती है और जनप्रतिनिधियों के लिए संवैधानिक व पवित्र संसदीय प्रजातांत्रिक मर्यादा का प्रश्न है. क्या इस प्रदेश में कुछ लाख रुपयों के 'विनियोग' से सरकार क्रय व विक्रय की जा सकती है? वैसे ही केंद्र की संघीय सरकार कुछ करोड़ रुपयों से नहीं गिरायी जा सकती ?

—नरेंद्र सिंह, माधवनगर, उज्जैन

अखिल भारतीय संयुक्त समाजवादी दल के अध्यक्ष श्री जोशी ने पुनपुन की आम सभा में भाषण के दौरान अन्नादोरै को दक्षिण भारत का महान नेता कहा और डॉ० लोहिया को उत्तर भारत का. सुन कर आश्चर्य तो हुआ ही दुःख भी. डॉ० लोहिया ने काले लोगों पर हो रहे जुल्म के खिलाफ़ अपने-आप को अमेरिका में गिरफ़्तार करवाया. क्या संसोपा अध्यक्ष यह मान कर चलते हैं कि उत्तर भारत में जन्म लेने वाला केवल उत्तर भारत का नेता बन सकता है ? जो संसोपा भारत-पाक एका की बात करती है उसी के अध्यक्ष विश्व के महान् समाजवादी नेता डॉ० लोहिया को केवल उत्तर भारत का नेता बताते हैं.

—कृष्ण कुमार, पुनपुन

समाजवादी युवजन सभा की काशी विश्वविद्यालय शाखा की ओर से विगत १९ मार्च को विश्वविद्यालय में एक नर-नारी समता सम्मेलन करने की योजना थी. इस सम्मेलन की अध्यक्षता काशी विद्यापीठ के उपकुलपति प्रो० राजाराम शास्त्री तथा उद्घाटन संसद-सदस्या श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा करने वाली थीं. काशी विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० अमरचंद जोशी ने यह कह कर विश्वविद्यालय में स्थान देने से इनकार किया कि वह जाँच आयोग की जाँच के पूर्व किसी युवक संगठन को विश्वविद्यालय में कार्य नहीं करने देंगे. अतः यह आयोजन विश्वविद्यालय के किसी संगठन की ओर से कराया जाये. परंतु जब छात्र कल्याण केंद्र के मंत्री श्री मारकंडेय सिंह ने कल्याण केंद्र की ओर से इस कार्यक्रम को करने की अनुमति माँगी तो उन्हें भी अनुमति नहीं दी गयी. बाद में श्री मारकंडेय सिंह ने इलाहाबाद जा कर श्रीमती सिन्हा का कार्यक्रम स्थगित कराया. नर-नारी समानता जैसे निष्पक्ष तथा ग़ैर-राजनीतिक कार्य के लिए विश्वविद्यालय में स्थान न देना यह साफ़ तौर पर ज़ाहिर करता है कि उपकुलपति महोदय शुद्धतया प्रतिक्रियावादी विचारधारा के हैं. ज्ञातव्य है कि १९ मार्च को ही विश्वविद्यालय के प्रांगण में ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की तरफ़ से वर्ष प्रतिपदा का उत्सव मनाया गया, जिस में विश्वविद्यालय के संघी छात्रों तथा कर्मचारियों ने हिस्सा लिया. अपरान्ह एक रिक्शे पर डॉ० हेडगेवार

आप फ़रमाते हैं—

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

हम चाहें तो उस के खिलाफ़ अनुशासनात्मक कार्रवाई कर सकते हैं. लेकिन आप ही सोचिए कि ऐसा करने से पार्टी का कितना नुक़सान हो सकता है.

(संस्थापक रा० स्व० सं०) का एक आदमकद चित्र ले कर क संघी कार्यकर्त्ता विश्वविद्यालय की सड़कों पर घुमा रहा था. विश्वविद्यालय के उपकुलपति के इस आचरण से छात्राओं तथा बुद्धिजीवियों में काफ़ी असंतोष है, अत: उन्हें सार्वजनिक रूप से क्षमा-याचना करनी चाहिए..

—कु० रंजना शर्मा, श्री शिवदेवनारायण, वाराणसी

२३ मार्च का दिनमान पढ़ा. प्रथम वार लोकसभा एवं राज्यसभा में साहित्य संबंधी इतना महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठा. प्रजातंत्र में लेखकों और कवियों को अपने विचार प्रकट करने की पूर्ण स्वतंत्रता है. तो फिर आकाशवाणी को किसी कवि की कविता को,उस के विना पूछे, काट-छांट करने का कोई अधिकार नहीं है. हां, चाहे तो वह उसे अस्वीकृत कर सकते हैं. आकाशवाणी को निरपेक्ष रहना चाहिए.

—पंकजकुमार शुक्ल, इटारसी

पाकिस्तान अंक अति सुंदर, वधाई. यदि पाकिस्तान अंक में लंदन स्थित श्री इस्कंदर मिर्ज़ा और खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां के विचार भी होते तो अत्यत उत्तम रहता; स्वयं में पूर्ण होता. साथ ही साथ नयी पीढ़ी को बधाई दे दूं (पाकिस्तानी नवयुवकों और विद्यार्थियों को), जिन के कारण राष्ट्रपति अय्यूब ख़ां को अपने विचार बदलने पड़े. वह कहते थे कि पाकिस्तान जनतंत्र के लायक़ नहीं. आज वह वालिग़ राय पर चुनाव कराने पर सहमत हो गये.

—अनिलकुमार कौशिक, बरेली

पाकिस्तान में उत्पन्न राजनैतिक अस्थिरता तथा संदर्भ में भारत-पाकिस्तान के संबंध से संबंधित **पाकिस्तान और हम** शीर्षक साक्षात्कार प्रकाशित कर **दिनमान** ने बड़ा ही सराहनीय कार्य किया है. परंतु पाकिस्तान में भूतपूर्व भारतीय उच्चायुक्त तथा कई अन्य उत्तरदायित्वपूर्ण पदों को सुशोभित करने वाले श्री श्रीप्रकाश के विचार पढ़ कर घोर आश्चर्य एवं दुःख हुआ. पता नहीं ऐसे देश-भक्तों के हृदय में राष्ट्र को टुकड़े-टुकड़े में बांट देने की प्रवृत्ति कहां से घर कर गयी है ?

—परमानंद, जगन्नाथ सिंह 'विद्रोही' पटना

सांप्रदायिकता : बिना मापदंड आधारित किये कोई मुसलमानो को केवल मुसलमान मजहब मानने के कारण पाकिस्तान का एजेंट घोषित कर दे तो कहने वाले की नीयत पर शंका करना यथोचित ही होगा. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघी एवं जनसंघी शायद इस प्रकार हिंदू एवं गैर-हिंदू समाज में संदेह की दीवारें खड़ी कर के स्वयं को हिंदुओं का 'मसीहा' घोषित कर राजसत्ता हथियाना चाहते प्रतीत होते हैं. मैं अकिंचित रूप में मानता हूँ कि देश के लिए हिंदू सांप्रदायिकता भी उतनी ही घातक है जितनी कि मुसलमानों की सांप्रदायिकता; लेकिन इन दोनों सांप्रदायिकताओं को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में बढ़ावा देने का श्रेय संघियों को है. मध्यावधि चुनाव में जनसंघ प्रचार ने दो तथ्यों को उजागर कर दिया है:—१—रूमानी राष्ट्रवाद की बात कहने वालों ने समस्त प्रदेश में जनता को हिंदू एवं ग़ैर-हिंदू समाज में बांटने की कुचेष्टा की है, जिस की परिणति क्या होगी—सोच कर भी विचार बदल जाते हैं. २—संघ के दुश्मन कोई और नही केवल वे असरदार हिंदू ही हैं जो इस कुचेष्टा में बाधक बन संघियों के सत्ता-प्राप्ति के स्वप्नों को साकार नहीं होने देते. अनुशासन के नाम पर वह निरंकुश व्यक्ति-पूजा चाहते हैं और विचार-विभेद करने वाले को 'गद्दार' एवं 'देशद्रोही' की उपाधियों से विभूषित करते उन्हें लेशमात्र भी संकोच नही होता. 'गांधी को समाजवादी कहना गांधी को गाली देना है यदि कहना ही है तो उन्हें सर्वोदयी कहना चाहिए.' मधोक का यह कहना कि 'मैं आर्यसमाजी हूँ, कर्म से जाति-व्यवस्था मानता हूँ और अंबेदकर को ब्राह्मण कहता हूँ,' जैसे अंग्रेज़ी से परहेज़ किये बिना व्यक्त विचार संघ के आदर्शों की पोल खोल देते हैं. साथ ही उन की संकीर्ण एवं भीरू प्रवृत्ति और दिमागी दिवालियापन इन वाक्यों में परिलक्षित होता है.

—अशोक वार्ष्णेय, मेरठ

धर्म-निरपेक्षता की दुहाई : हिंदू विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार से दो फर्लांग उत्तर की ओर मुख्य सड़क की बायीं पटरी पर एक मंदिर है, जिस का नाम 'रामानुज कोट' है. इस मंदिर में ब्राह्मणों को संस्कृत की शिक्षा भी दी जाती है. मंदिर के अहाते में कुछ ऐसे कमरे हैं जो केवल ब्राह्मणों को किराये पर रहने के लिए दिये जाते हैं. भारतीय वैदिक संस्कृति के अनुसार इस मंदिर में यह पता चलने पर कि मैं भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हरिजन जाति का हूँ मेरे प्रवेश का निषेध किया गया है.

इस वर्ष मध्यावधि चुनाव-प्रचार में हमारी प्रधानमंत्री ने सर्वप्रथम काशी की बेनियाबाग की आम सभा में धर्म-निरपेक्षता का नारा बुलंद किया था. क्या उस नारे का सच्चा रूप वह समाज को देंगी ?

—तुलसी राम, वाराणसी

हिंदी : *हमें बहुत अधिक प्रसन्नता होगी यदि* हिंदीभाषी, तेलुगू, तमिल, मलयालम अथवा कन्नड़ व दक्षिण भारत के निवासी हिंदी को एक अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ना शुरू कर दें और अंग्रेज़ी को निकाल बाहर करें, जो कि आज अनेकों ही के मार्ग में रोड़ा बन रही है.

—मोहनलाल गुप्ता, पिलानी

पिछले सप्ताह

(२० मार्च से २६ मार्च, १९६९ तक)

देश

२० मार्च : ले. जनरल मानेकशॉ नये स्थल-सेनाध्यक्ष नियुक्त.

२१ मार्च : मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री राजा नरेशचंद्र सिंह का विधानसभा भंग करने का सुझाव राज्यपाल के. सी. रेड्डी द्वारा अमान्य. राजस्थान विधानसभा के प्रतिपक्षी दलों का सभा के बाहर धरना. १७० चीन समर्थक नगा गिरफ़्तार.

२२ मार्च : मध्यप्रदेश विधानमंडलीय कांग्रेस पार्टी के नेता द्वारकाप्रसाद मिश्र द्वारा अपने पद से हटने का फ़ैसला. बंबई में १.२ करोड़ रुपये का अवैध सोना ज़ब्त.

२३ मार्च : चरणसिंह भारतीय क्रांति दल के अध्यक्ष निर्वाचित. दिल्ली में ब्लैक आउट.

२४ मार्च : केंद्रीय सुरक्षा-सैनिकों द्वारा दुर्गापुर संयंत्र के सुरक्षा-कर्मचारियों पर गोलाबारी.

२५ मार्च : असम पुनर्गठन संबंधी संविधान विधेयक आवश्यक बहुमत के अभाव में लोकसभा में गिरा. पंजाब विधानसभा में घाटे का बजट पेश. श्यामाचरण शुक्ल मध्यप्रदेश कांग्रेस विधानमंडल की पार्टी के नेता निर्वाचित.

२६ मार्च : श्यामाचरण शुक्ल द्वारा मध्यप्रदेश के प्रमुख्यमंत्री-पद की शपथ-ग्रहण.

विदेश

२१ मार्च : इस्लामाबाद में फ़रक्का बांध के बारे में भारत तथा पाकिस्तान प्रतिनिधिमंडल में बातचीत. ब्रिटेन सरकार द्वारा एंगुइला से हफ़्ते में सैनिक वापस बुला लेने का संकेत.

२२ मार्च : पूर्व पाकिस्तान के गवर्नर खान अब्दुल मुनीम ख़ां के स्थान पर डॉ. एम. एन. हूडा नियुक्त. एंगुइला में ब्रितानी अधिकारी का घेराव.

२३ मार्च : पाकिस्तान का कौमी दिवस प्रार्थनाओं से शुरू. लाओस सीमा के निकट अमेरिकी सैनिकों का वीएतकाङ् छापामारों पर हमला.

२४ मार्च : युर्दान के प्रधानमंत्री वहजात अल तलहोनी का त्यागपत्र. स्वेज़ नहर के पास संयुक्त अरब गणराज्य और इस्राइली सैनिकों में गोलाबारी.

२५ मार्च : पाकिस्तान में मार्शल लॉ लागू, संविधान स्थगित और राष्ट्रीय असेंबली भंग.

२६ मार्च : पाकिस्तान के प्रमुख सैनिक प्रशासक याह्या ख़ां द्वारा नागरिकों को हथियार समर्पण का आदेश.

पत्रकार संसद

एक आंदोलन की मृत्यु

पाकिस्तान में मार्शल लॉ की घोषणा का समाचार ब्रितानी पत्रों में पाकिस्तानी छात्रों द्वारा लंदन स्थित पाकिस्तानी उच्चायुक्त-कार्यालय के सामने प्रदर्शन की घटना के साथ प्रकाशित किया गया. लंदन के सभी समाचारपत्रों में यह घटना मुख पृष्ठ पर मोटी-मोटी सुर्खियों के साथ छापी गयी. घटना भी कोई साधारण नहीं थी. लगभग बीस पाकिस्तानी छात्रों ने कोई दो घंटे तक लंदन स्थित पाकिस्तान उच्चायुक्त-कार्यालय पर कब्ज़ा किये रखा. पाकिस्तानी छात्रों ने अपने देश में सैनिक शासन की स्थापना के विरोध में यह प्रदर्शन किया. 'याह्या ख़ाँ मुर्दाबाद, मार्शल अय्यूब मुर्दाबाद, तोपें पाकिस्तानी असंतोष को नहीं दबा सकतीं' आदि जैसे नारे लगाते हुए ये वीर छात्र उच्चायुक्त-कार्यालय के अंदर ही घुस गये थे, जिस का पूरा विवरण ब्रितानी समाचारपत्रों में पढ़ने को मिला. ब्रितानी समाचारपत्रों ने अपने उसी परंपरागत शैली में पाकिस्तान में इस परिवर्तन पर टिप्पणी की है. प्रमुख ब्रितानी पत्र **गार्डियन** ने अपने संपादकीय में लिखा है :

श्री अय्यूब ख़ाँ का अचानक पाकिस्तान के राजनैतिक मंच से हटना विशेष कर ऐसे अवसर पर खतरनाक है जब विरोध पक्ष को कुछ रिआयतें दे कर वह अपनी गिरती प्रतिष्ठा को अपनी सत्ता के ज़रिये संभालने की कोशिश कर रहे थे. देखने में ऐसा लगता है कि वे घबरा गये थे, या फिर उन की मनःस्थिति ऐसे पिता के समान हो गयी थी जिसे अपने बच्चों की ही फटकार खानी पड़ी हो. उन के हट जाने से देश का भविष्य और भी पेचीदा और अनिश्चित हो गया है. श्री अय्यूब ने शायद यही ठीक समझा हो कि अब सेना और एक ऐसा सिपाही ही पाकिस्तान को बचा सकता है जिस का राजनीति से कोई संबंध न हो. राष्ट्रपति अय्यूब ने शायद यह भी सोचा हो कि उपद्रवों और अव्यवस्था की इस लहर का अपना एक निष्कर्ष निकलेगा और इस भीड़तंत्र का परिणाम आर्थिक बरबादी भी है. लोग आखिरकार तंग आ जायेंगे और ऐसी स्थिति में नये आदमी की सफलता के लिए वातावरण आप से आप तैयार हो जायेगा. अगर अय्यूब ने यह सोच कर क़दम उठाया तो यह उन का एक तरह से जुआ खेलना ही है. पाकिस्तानी सेना में ९० प्रतिशत सैनिक पश्चिमी पाकिस्तान के ही हैं और पूर्व पाकिस्तान, जहाँ कि स्थिति सब से ज्यादा खतरनाक है, पश्चिमी पाकिस्तान के प्रभुत्व की उसी पुरानी भावना से त्रस्त रहेगा.

टाइम्स ने अपने संपादकीय में कुछ और ही मत व्यक्त किया है. इस पत्र का कहना है—

राष्ट्रपति अय्यूब जिन रिआयतों की घोषणा कर चुके हैं याह्या ख़ाँ उन की तरफ़ से तो आँखें बंद नहीं कर सकते, पर उन का काम इस दृष्टि से मुश्किल होगा कि उन्हें सब से पहले देश में क़ानून व व्यवस्था कायम करनी होगी. इस संदर्भ में **गार्डियन** का भी यही मत है कि हथियारों से ही समस्या हल नहीं हो सकती. इस लिए जनरल याह्या ख़ाँ को अय्यूब की तरह कुछ राजनैतिक दृष्टि भी रखनी होगी.

टाइम्स के संवाददाता का कहना है कि जनरल याह्या ख़ाँ को सेना के तीनों अंगों का पूरा-पूरा समर्थन प्राप्त है. वह सेना में लोकप्रिय हैं. दूसरे विश्वयुद्ध में वह उत्तर अफ्रीका, साइप्रस और इटली में थे. इटली में वह युद्ध-बंदी भी बना लिये गये थे, पर बच निकले.

डेली टेलीग्राफ़ के संवाददाता का कहना है—'जनरल याह्या ख़ाँ प्रतिच्छाया मात्र हैं. मुझे उन से मिलने का अवसर मिला और मेरी धारणा है कि वह कुछ-कुछ राजनीतिज्ञ भी हैं.

खेल-खेल में खून

इंगलैंड की क्रिकेट टीम पाकिस्तान के दौरे को बीच में ही छोड़ कर 'जान बची और लाखों पाये' वाले अंदाज़ में अपने देश वापिस लौट गयी. टेस्ट मैचों के दौरान पाकिस्तानी दर्शकों ने जो उपद्रव और आतंक फैलाया उस की दुनिया के हर देश के, यहाँ तक कि पाकिस्तानी क्रिकेट अधिकारियों ने भी निंदा की. पाकिस्तानी दर्शकों की इन अशोभनीय हरकतों पर अफ़्रीकी पत्र **ईस्ट अफ़्रीकन स्टैंडर्ड** ने अपने संपादकीय में लिखा है—

क्रिकेट के खेल की यह सुर्खी कि 'वर्षा के कारण खेल बंद' तो आये दिन पढ़ने को मिलती है, पर 'उपद्रव के कारण खेल बंद' की सुर्खी पहली बार पढ़ने को मिली. इंगलैंड के खिलाड़ियों की पाकिस्तान में बड़ी अपमानजनक स्थिति रही. दक्षिण अफ़्रीका में खेल-कूद में रंगभेद की नीति बरतना आपत्तिजनक है, मगर कम से कम वहाँ बाहर से आने वाले खिलाड़ियों की जान तो को कोई खतरा नहीं रहता.

पाकिस्तान में राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ को देश के राजनैतिक तनाव को कम करने में सफलता मिली या नहीं, वह एक बिल्कुल अलग बात है. राजनीति के मामलों को खेल-कूद के साथ नहीं जोड़ना चाहिए.

सच तो यह है कि कोलिन काउड्रे और उस की टीम को वहाँ से अपनी जान बचा कर भागना पड़ा. टॉम ग्रेवनी ने भी काफ़ी दिलेरी से काम लिया. हालाँकि उन पर एक प्रदर्शनकारी को बल्ले से पीटने का आरोप भी लगाया गया था लेकिन वह भी क्या करते. प्रदर्शनकारी तो उन की और उन के साथियों की जान लेने पर उतारू हो गये थे.

प्रदर्शनकारी पाकिस्तानी चुनाव अधिकारियों के इस्तीफ़े की भी माँग कर रहे थे. उन का कहना था कि पास्तिान की टीम का कप्तान हनीफ़ मुहम्मद को बनाया जाना चाहिए था, न कि सईद अहमद को. खेल के मैदान में एक बार फिर 'छात्र-शक्ति' ने अपना प्रदर्शन किया; ऐसी छात्र-शक्ति जो स्वयं अशांति और अव्यवस्था के सहारे संसार में शांति और व्यवस्था की स्थापना का दंभ करती है.

अफ़्रीका में ब्रितानी भूमिका

ब्रितानी प्रधानमंत्री श्री विलसन की नाइजीरिया यात्रा से स्पष्ट है कि ब्रिटेन में नाइजीरिया के गृहयुद्ध की तीव्र प्रतिक्रिया हो रही है. पिछले दिनों ब्रितानी लोकसभा में सरकार की नाइजीरिया संबंधी नीति की कड़ी आलोचना हुई और इस नीति में परिवर्तन की माँग की गयी. इधर प्रमुख ब्रितानी पत्र **गार्डियन** ने अपने हाल ही के संपादकीय लेख में भी समूची स्थिति का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि विल्सन सरकार को इस नीति में परिवर्तन करना ही होगा. पत्र की राय है—

आज या कल सरकार को अपनी नाइजीरिया विषयक नीति को बदलना ही होगा.

रूस-चीन सीमा-विवाद पर गार्डियन में पापास का व्यंग्य

अगर वह स्वयं ऐसा नहीं करती तो संसद, देश और विश्वलोकमत के दवाव में, उसे यह करना पड़ेगा. श्री विल्सन फ़िलहाल इस प्रश्न पर वहस को टाल दें, पर उन्हें इस का सामना तो करना ही होगा और करना भी चाहिए. इस तरह टालने से दवाव भी कम नही होगा और नाइजीरियाई नीति वास्तव में विनाशकारी है. जितनी जल्दी यह नीति बदल जाये उतना ही अच्छा है.

इस नीति में सरकार की भूमिका वस इतनी है कि वह चुपचाप खड़ी सब कुछ देखती रहे. राष्ट्रमंडल के एक मित्र देश को परंपरागत हथियार सप्लाई करते रहने के सिवाय भी कोई और रास्ता वह नहीं देखती. इस पर अटकलें यही लगायी जा रही हैं कि सरकार संघीय पक्ष को ही अधिक मज़वूत मानती है और अपने हथियारों से उसे और मज़वूत बना कर ही इस गृहयुद्ध को समाप्त करना चाहती है. जीतने वाले पक्ष की ओर रह कर ही ब्रिटेन अपने हितों की रक्षा करना चाहता है. जव एक बार यह विचार सामने रख कर नीति निर्धारित की जाती है तो फिर रास्ता वदलना मुश्किल होता है. पर इधर बिअफ़्रा के असैनिक क्षेत्रों पर संघीय सरकार के हवाई आक्रमणों से इस प्रकार के विचार और निष्कर्ष बिलकुल ग़लत साबित हुए हैं. संघीय सरकार की विजय में भी अब संदेह है. विअफ़्रा के स्कूलों, अस्पतालों और बाज़ारों पर हवाई हमले कोई नयी बात नहीं है. लेकिन इस का एक ज़बर्दस्त राजनैतिक प्रभाव भी है. अब तक तो यह समझा जा रहा था कि ब्रितानी सरकार को इस वमबारी का पता नहीं, या जनरल गोवोन को भी यह पता नहीं कि उन की आचार-संहिता का उल्लंघन हो रहा है. अगर लंदन और लागोस दोनों इस वमवारी को ग़लत नहीं मानते तो फिर इस युद्ध को भी वे उचित ही मानते होंगे. यह दोनों ही देशों की राजधानियों के लिए कोई प्रतिष्ठाजनक वात नही है; यों वीएतनाम युद्ध को सैगोन और वॉशिंग्टन दोनों की ही प्रतिष्ठा पर गहरा दाग माना जा रहा है.

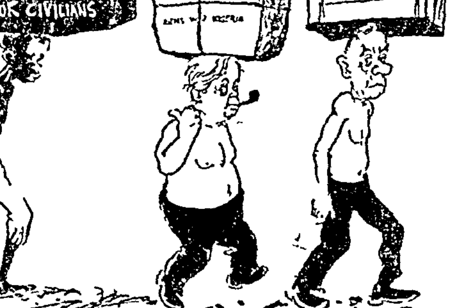

अफ़्रीकी देशों को ब्रिटेन और रूस द्वारा हथियार देने पर गार्डियन में पापास का व्यंग्य

कर्नल ओजुकू के वचेखुचे ठिकानों को नष्ट कर और विद्रोह को एकदम कुचल कर बिअफ़्रा पर नाइजीरिया संघ की विजय भी संभव है. बिअफ़्रा में सभी इवो नेता पृथकता के पक्ष में नही हैं. लड़ाई के वाद शायद विअफ़्रा के रवैये में कोई बड़ा परिवर्त्तन आये. पर यह सब अभी दूर की वात है. इवो प्रदेश के जितने भाग पर इस समय संघीय सेनाओं का अधिकार है उस से भी उन के आगे वढ़ने से बहुत अजीव स्थिति पैदा हो सकती है. अगर इस तरह आगे वढ़ कर संघीय सेना ने कुछ हद तक विजय प्राप्त भी कर ली तो विअफ़्रा में इतने लोग मारे जायेंगे कि उसे मिला कर नाइजीरिया को एक करने की यह सारी लड़ाई एक मज़ाक बन कर रह जायेगा.

श्री विल्सन क्या कर सकते हैं ? उन के अनुसार कुछ विकल्प हैं—रूसियों की वजह से नाइजीरिया संघ को हथियारों की सप्लाई वंद करने से कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा. श्री विल्सन को पहले इस भ्रम से मुक्त होना चाहिए. ब्रिटेन को तो इतनी बड़ी भूमिका अदा करनी है कि हथियारों की सप्लाई वंद करना मात्र उस का एक अंग है. ब्रिटेन के अपना समर्थन वापिस लेने से ही नाइजीरिया संघ के हौसले पस्त हो जायेंगे और रूस भी उस की हिम्मत बँधा नहीं सकेगा. दरअसल श्री विल्सन को बहुत साफ़-साफ़ अपना पक्ष वदलने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी. उन का धमकी देना ही काफ़ी होगा. जनरल गोवोन में खुद लड़ाई खत्म करने की हिम्मत नहीं. वह कुछ ऐसे अल्पसंख्यकों के सहारे सत्ता पर बने हुए हैं जिन का सत्ता पर प्रभाव है और अखंड नाइजीरिया का नारा ही जिन्हें सत्ता में बनाये रख सकता है. लड़ाई बाहर से ही वंद की जा सकती है. उन लोगों द्वारा जो संवद्ध पक्ष हैं वे अगर हथियारों की सप्लाई वंद करने की धमकी भी दे दें तो यह गृहयुद्ध वंद हो सकता है. अब यह युद्ध बड़े राष्ट्रों के शिखर-सम्मेलन से वंद होता है या संयुक्तराष्ट्र के प्रयत्नों से यह एक अलग वात है. मुख्य वात यह है कि श्री विल्सन पहले अपनी नीति वदलें.

नाइजीरिया के अलावा अफ़्रीकी द्वीप एंगुएला के वारे में भी हाल ही की कार्यवाही पर ब्रितानी सरकार को अपने देशवासियों की कटु आलोचना सहनी पड़ रही है. इस द्वीप पर ब्रिटेन के वल-प्रयोग की ब्रितानी पत्र ऑब्ज़र्वर ने कड़े शब्दों में निंदा की है. लिखा है :

स्वेज़ के वाद ब्रिटेन ने इतना स्पष्ट वल-प्रयोग कभी नहीं किया था जितना अभी पिछले सप्ताह एंगुएला में किया है. सरकार के विरुद्ध आरोप यह नही है कि उस ने शक्ति का प्रयोग किया है; वल्कि आरोप यह है कि ऐसी स्थिति ही क्यों आने दी गयी जिस में वल-प्रयोग की ज़रूरत पड़ी. इस में शक नहीं स्थिति वहुत अजीव थी, जिस का प्रभाव पूरे कैरेवियन सागर-क्षेत्र पर बहुत गंभीर पड़ सकता था. कुछ न कुछ करना सरकार की ज़िम्मेदारी थी; लेकिन पहले तो एक वर्ष से स्थिति को विगड़ने दिया गया और फिर आज सैनिक कार्यवाही को उचित ठहराया जा रहा है. इस कार्यवाही को यह कह कर उचित ठहराने का कोई कारण नहीं है कि इस में रक्तपात विल्कुल नही हुआ.

एंगुएला के लोगों को उन का मनचाहा संविधान तो मिलेगा ही. पर यह नही कहा जा सकता कि वल-प्रयोग और सैनिक कार्यवाही के विना यह लक्ष्य प्राप्त नहीं हो सकता था. यह सब कूटनीतिक स्तर पर किया जा सकता था. इस से द्वीपवासियों के लिए एक विल्कुल ही अलग वातावरण तैयार किया जा सकता था. इस कार्यवाही में सब से ज़बर्दस्त ग़लती तो यह है कि कैरेबियन सागर-क्षेत्र के द्वीपों के प्रधान-मंत्रियों से वहाँ सेनाएँ भेजने के वारे में कोई सलाह नहीं ली गयी. साम्राज्यवाद की वची-खुची ज़िम्मेदारियों को निभाना अव एक ऐसा काम हो गया है जिसे कोई पसंद नही करता. राष्ट्रमंडल देशों का सद्भाव प्राप्त किये विना और उन की सलाह लिये विना अब ब्रिटेन का कोई काम करना बहुत वेतुका-सा लगता है. ब्रितानी साम्राज्य की रही-सही ज़िम्मेदारियों का निभाना बहुत आवश्यक है, जो सरकार का कर्त्तव्य है. पर यह नहीं माना जा सकता कि नीति और कूटनीति का विकल्प केवल वल-प्रयोग ही है.

वीएतनाम से सैन्य वापिसी

श्री निक्सन द्वारा अमेरिकी राष्ट्रपति-पद का कार्यभार संभालने के वाद विश्व और अमेरिकी जनता वीएतनाम समस्या के समाधान के वारे में किसी महत्त्वपूर्ण घोषणा की बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा में थी. अमेरिकी विदेश-विभाग की ओर से अभी हाल ही में घोषणा की गयी है कि पेरिस वार्त्ता के अलावा निजी स्तर पर भी शांति-वार्त्ता चल रही है. उधर इसी वर्ष ४० हज़ार से ५० हज़ार तक अमेरिकी सैनिकों के वीएतनाम से वापिस बुलाये जाने का रक्षामंत्री का वायदा शायद पूरा हो जायेगा. इसे अमेरिकी जनता के लिए हर्ष का समाचार मानते हुए अमेरिकी पत्र क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर ने अपने संपादकीय में लिखा है :

इसी वर्ष वीएतनाम से ४० से ५० हज़ार तक अमेरिकी सैनिक हटा लेने का रक्षामंत्री का वायदा पूरा होने की आशा से अमेरिकी जनता को जितना हर्ष होगा उतना शायद ही किसी और वात से हो. हमें आशा यही करनी चाहिए कि यह संकेत निराधार नहीं है और परिस्थितियाँ इस वायदे को पूरा करने में सहायक ही होंगी. अमेरिका का पूरी तरह वीएतनाम से हटना अभी और बहुत-सी वातों पर निर्भर है.

दिल्ली की चिट्ठी

किस-किस को रोइए...

दिल्ली की समस्याएँ दिल्ली के प्रशासनिक ढाँचे की हैसियत से जुड़ी हुई हैं—उस की जो भी हैसियत है वह समस्याओं की गुरुता के सामने बहुत ओछी है. इस का एहसास २४ मार्च को फिर हुआ जब महानगर परिषद का बजट-सत्र आरंभ हुआ. दिल्ली में केंद्र के सर्वोच्च प्रतिनिधि उपराज्यपाल आदित्यनाथ झा ने अपने अभिभाषण में स्वीकार किया कि दिल्ली प्रशासन को आज भी "केंद्रीय मंत्रालयों का उतना ही मुँह ताकना पड़ता है जितना कि पहले." 'पहले' से झा साहब का तात्पर्य महानगर परिषद के गठन और उपराज्यपाल के रूप में उन की नियुक्ति के पूर्व से है (झा साहब पहले दिल्ली के चीफ़ कमिश्नर थे.) उन्हें शिकायत है कि "दिल्ली प्रशासन अधिनियम में प्रशासन जो व्यवस्था विहित है उसे लागू करने में कठिनाइयाँ आती रही हैं. नयी व्यवस्था लागू होने के बाद उम्मीद थी कि दिल्ली प्रशासन अपने लगभग सभी मामलों में (उपराज्यपाल के अधीन 'सुरक्षित' और महानगर परिषद को 'हस्तांतरित' मामलों में) फ़ैसले कर सकने में समर्थ हो सकेगा. . . इस प्रशासन की दृष्टि से उपयोगी और आवश्यक योजनाओं पर अमल में विलंब होता रहा है क्यों कि केंद्रीय मंत्रालयों से अनुमति लेना आवश्यक होता है." झा साहब ने अपने गरिमामय पद और दायित्व के कारण केवल एक कठिनाई का ज़िक्र किया : दिल्ली के विकास के लिए एक अलग महानगर कोष बनाने का जो प्रस्ताव खुद आयोजना आयोग ने किया था वह हमारी तमाम कोशिशों के बाद अभी तक नहीं बन सका है.

उपराज्यपाल ने अपने अभिभाषण में उन प्रशासनिक सुधारों और नियमों का ब्योरा दिया जो उन्होंने और कार्यकारी पार्षदों ने काम को सुगम बनाने और भ्रष्टाचार दूर करने के लिए बनाये हैं, जैसे समानतर वेतन-क्रम, योग्यतानुसार भर्ती और कोटा-परमिट के वितरण के लिए नियम-उपनियम. स्कूलों के पाठ्यक्रम में 'नैतिक शिक्षा' का विधिवत समावेश, दिल्ली खेल-कूद परिषद और मुख्य कार्यकारी पार्षद खेल-कूद कोष के गठन और पिछड़े वर्गों के शिक्षार्थियों के लिए छात्र वृत्तियों की राशि में वृद्धि (१७ लाख से ३१ लाख रुपये) आदि का भी उल्लेख किया गया.

अभिभाषण के बाद 'धन्यवाद प्रस्ताव' पर बहस में प्रेमचंद गुप्त ने कहा कि राजधानी में अपराध बढ़ रहे हैं लेकिन इसका अभिभाषण में कोई ज़िक्र नहीं है जबकि कांग्रेस के ओमप्रकाश बहल ने आबकारी विभाग की नीति के परिणामों का ज़िक्र करते हुए प्रशासन पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया. प्रगतिशील दल के नेता हीरासिंह अभिभाषण में देहाती इलाकों का ज़िक्र न आने से चिंतित थे तो जनसंघ के सतपाल चुघ केंद्र और दिल्ली के आर्थिक संबंधों को लेकर. वरिष्ठ कांग्रेसी नेता शिवचरण गुप्त का खयाल है कि अभिभाषण बहुत अस्पष्ट है और इसमें प्रशासन की उपलब्धियों का ज़िक्र नहीं है. उनका तात्पर्य था कि उपलब्धियाँ हैं ही नहीं—होतीं तो ज़िक्र होता. वैसे यह बात सही है 'सुरक्षित' मामलों और अनेक समस्याओं का अभिभाषण में ज़िक्र नहीं है.

धन्यवाद-प्रस्ताव पर बहस पूरी होने के पहले ही २६ मार्च को कार्यकारी पार्षद (वित्त), अमरचंद शुभ ने 'दिल्ली का बजट' प्रस्तुत किया. 'इस विवरण में सम्मिलित प्रावधान उप-प्रधानमंत्री व वित्तमंत्री द्वारा संसद में प्रस्तुत किये गये बजट के भाग के रूप में हैं.' अनुमान किया गया है कि १९६९-७० में ७३-७१ करोड़ रुपये खर्च होंगे. बजट भाषण से दो-तीन बातें मुख्य रूप से सामने आती हैं

आदित्य नाथ झा : अर्थ से असमर्थ

(१) चौथे आयोजन के लिए दिल्ली को १५५.६ करोड़ रुपये मिलते हैं तो भी इस वर्ष योजनागत कार्यों के लिए ३१ करोड़ रुपये मिलने चाहिए थे (२) योजना-कार्यों के लिए जो राशि केंद्र ने दी है उसका ५७ प्रतिशत ऋण के रूप में है यानी २३.५० करोड़ में से १३.३९ करोड़ रुपये. यह तब है जब कि ५५ करोड़ रु० आय-कर और केंद्रीय उत्पादन-शुल्क के रूप में दिल्ली से उगाहे जाते हैं, (३) मोरारका आयोग के अंतरिम प्रतिवेदन में सुझायी गयी कटौतियाँ लागू कर दी गयी हैं जबकि ग्रामीण-क्षेत्रों के विकास के लिए प्रस्तावित १.४५ करोड़ रुपये की राशि नगर-निगम या प्रशासन को नहीं दी जा रही है.

* * *

सारा राज-काज हिंदी में ही अच्छी तरह करने को उत्सुक दिल्ली-प्रशासन ने उन कर्मचारियों को पुरस्कृत करने का फ़ैसला किया है जो वर्ष भर में हिंदी में अपना काम अधिक योग्यता से करेंगे. कार्यकारी पार्षद डॉ. रामलाल वर्मा ने भाषा-कर्मशाला के उद्घाटन के अवसर पर यह ऐलान किया और बताया कि हिंदी के प्रयोग में आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयाँ हल करने के लिए कर्मशाला खोली गयी है. दिनमान के पूछने पर डॉ. वर्मा ने दावा किया कि इस वक़्त ९०-९५ प्रतिशत काम हिंदी में हो रहा है और बताया कि फार्मों आदि की भाषा को सुबोध बनाने के लिए जहाँ संभव होगा उन का मूल मसौदा हिंदी में भी किया जायेगा.

हिंदी प्रेमी प्रशासन को चाहिए कि वह हिंदी अनुवादों को बोधगम्य बनाने की व्यवस्था करे और चाहे तो इस सुझाव पर भी अमल करे कि भाषा-कर्मशाला के अधीन एक उच्चारण अनुभाग भी खोल दे. हिंदी-भाषियों के लिए ही—जिस से कि वक्ता की अभिव्यक्ति श्रोता तक आसानी से पहुँच सके.

* * *

नागरिक सुरक्षा विभाग दिल्ली प्रशासन की एक ऐसी इकाई है जो साल में एक-दो बार ऊँघते से जाग उठती है. जुलाई १९६८ में हवाई हमले से बचाव के अधकचरे अभ्यास के बाद मार्च १९६९ में पूरी संजीदगी से एक और रिहर्सल करने की ठानी. दिल्ली के चारों ओर ४० मील की परिधि में ब्लैक आउट होना था. अनेक घोषणाओं, चेतावनियों और सज़ा की धमकियों के बावजूद दिल्लीवासियों ने पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया. नागरिक सुरक्षा विभाग के निदेशक मेजर-जनरल भगवतीसिंह ने हवाई मुआयना के बाद पाया कि दिल्ली में ९६ प्रतिशत प्रकाश ही गुल हुआ जब कि मेरठ और हरियाणा क्षेत्र में ९८ प्रतिशत. दिल्ली में खतरे की घंटी के बाद २० मिनट तक प्रकाशहीनता की उपर्युक्त स्थिति नहीं आ सकी. काँच की खिड़कियों और रोशनदानों से प्रकाश बाहर झाँकता रहा था, और लोग सड़कों पर घूम रहे थे. बड़े शहर में ४ प्रतिशत प्रकाश खतरे को निमंत्रित कर सकता है. दिल्लीवाले जो गंभीर चीज़ों को गंभीरतापूर्वक नहीं ग्रहण करते, अभ्यास को संजीदगी से ग्रहण नहीं कर सके तो आश्चर्य क्या ! 'बम वर्षा' का 'स्थल' तमाशबीनों के लिए आतिशबाज़ी का समाँ बाँध रहा था.

* * *

आखिर अनारकली तड़प-तड़प कर ही मरी—बावजूद इस के कि उसे चैन से मरने देने के लिए कुछ लोगों ने कई दिन तक अपना चैन हराम कर दिया था. दिल्ली-उत्तरप्रदेश सीमा के उस पार एक ४० वर्षीय हथिनी, जिस की एक टाँग गल चली थी, लगभग सवा महीने से असह्य पीड़ा में धीरे-धीरे मौत की ओर सरक रही थी. एनिमल्स फ्रेंड नामक संस्था के एक सदस्य ने बहुतेरी कोशिश की कि उस का स्वामी साधु गोपीनाथ उसे पीड़ा से छुट-

कारा दिलाने की अनुमति दे दे. जब उसने पैसे के लिए मुंह फैलाया तब उस व्यक्ति ने पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण सभा की दिल्ली शाखा की सहायता चाही. सभा के डॉक्टर ने पाया कि अनारकली की टाँग कभी ठीक नहीं हो सकेगी. मगर अनारकली को मुक्ति कैसे मिले? प्रधानमंत्री तक बात पहुँचायी गयी और उन के इशारे पर मेरठ के मजिस्ट्रेट से उसे गोली मारने की अनुमति प्राप्त हुई. अनारकली पर प्रधानमंत्री की कृपा देख कर गोपीनाथ जी को दीर्घ साहचर्य के कारण हथिनी के प्रति सहानुभूति उमड़ आयी. लेकिन मेरठ के जिन पुलिस के जवानों को राइफ़ल दागने का काम सौंपा गया उन्हें यह नहीं मालूम था कि हाथी के मस्तक पर गोलियाँ उसे 'मुक्ति' नहीं दिला सकतीं. .३०३ की राइफ़ल को कई किस्तों में १६ गोलियाँ उगलनी पड़ी. इस में शायद पुलिस का दोष नहीं—उन्हें जानवरों की 'हत्या' करना नहीं सिखाया जाता. लोगों को यह नहीं भूलना चाहिए कि उन्हें भीड़ को तितरबितर करने के लिए भी गोली चलाना नहीं आता—चाहे गोलियाँ जहाँ लगें और चाहे जितनी गोलियाँ चलें, उन्हें फ़िक्र नहीं होती. जयपुर गोलीकांड पर बेरी जाँच आयोग की रिपोर्ट इस का प्रमाण है.

राजधानी में ब्लैक आउट के समय अभ्यास

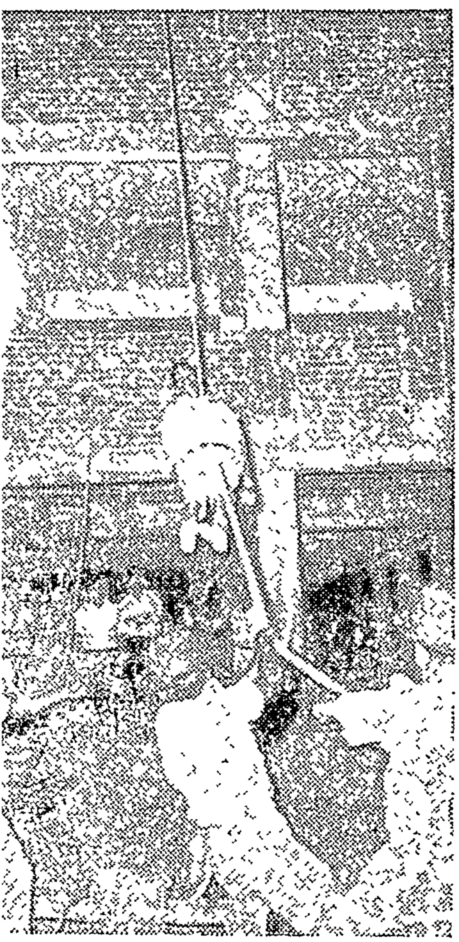

शिक्षा

रटंतविद्या की क़ैद

परीक्षा-प्रणाली में ज़बरदस्त रद्दोबदल की सिफ़ारिश दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ के आयोजन में एक गोष्ठी ने की है, जिस पर अधिकारी विचार कर रहे हैं. गोष्ठी विश्वविद्यालय अधिकारियों के सुझाव पर ही बुलायी गयी थी और उद्घाटन भी शिक्षामंत्री ने किया था. गत माह जब छात्र संघ ने अपनी माँगें विश्वविद्यालय के अधिकारियों को बतायीं तब उपकुलपति डॉ. वी. एन. गांगुली ने आश्वासन दिया था कि गोष्ठी की सिफ़ारिशों पर विचार करेंगे. गोष्ठी के अंतिम दिन विश्वविद्यालय के प्रो-वाईसचांसलर डॉ. आर. के. मजूमदार ने भी अपने विचार रखे और सुझाव दिया कि जर्मनी में प्रचलित मौखिक परीक्षा-प्रणाली को यहाँ पर अपनाना चाहिए.

गोष्ठी की मुख्य सिफ़ारिश यह है कि वर्त्तमान परीक्षा-प्रणाली को इस तरह बदला जाये कि विद्यार्थियों की परीक्षाएँ वास्तविक अध्ययन के आधार पर हों, न कि 'रटंतविद्या' के आधार पर. विश्वविद्यालय को परीक्षकों की नियुक्ति के बारे में एक अनिंद्य योजना बनानी चाहिए; विशेष कर ऑनर्स और एम. ए. की परीक्षाओं के लिए. इस के लिए बाहर के परीक्षकों की नियुक्ति का सुझाव दिया गया. परीक्षापत्रों को दो परीक्षक देखें और फिर उन्हें संयताचार के समक्ष भेजा जाये, जिस से कहीं असंगत मूल्यांकन हो तो उसे सुधारा जा सके.

शिक्षामंत्री डॉ. वी. के. आर. वी. राव के इस सुझाव को कि परीक्षापत्रों का मूल्यांकन नंबरों के आधार पर न हो कर वर्गीकरण के रूप में हो गोष्ठी में स्वीकार कर लिया गया. यह भी सिफ़ारिश की गयी कि वर्ष में दो परीक्षाओं से विद्यार्थी पर फ़ीस आदि के रूप में अधिक आर्थिक खर्चा नहीं पड़ना चाहिए. इस खर्च को कम करने का एक रास्ता यह है कि परीक्षकों का शुल्क कम कर दिया जाये और परीक्षा-विभाग के खर्च में कमी कर दी जाये. विश्वविद्यालय यह खर्च कम करने के लिए एक योजना बनाये और छात्र संघ को परीक्षा-विभाग के खर्च का पूरा ब्योरा दे, जिस से वह भी कटौती का सुझाव दे सके.

गोष्ठी ने दिल्ली विश्वविद्यालय में सिमेस्टर प्रणाली के सूत्रपात का स्वागत किया, क्यों कि सामयिक परीक्षाओं से विद्यार्थियों पर पढ़ाई का भार कम हो सकेगा. अध्ययन का शृंखलाक्रम इस प्रकार का होना चाहिए कि विद्यार्थियों को परीक्षा के बाद बेरोज़गारी का मुँह न देखना पड़े. फिर पढ़ाने की पद्धति को भी इस प्रकार बदलना चाहिए कि विद्यार्थी की रुचि जागृत हो; व्याख्यान कम-से-कम हों और अध्यापक विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए वातावरण तैयार करें और उन में विचार-विनिमय हो.

गोष्ठी का मत आंतरिक मूल्यांकन-प्रणाली अपनाने के पक्ष में था, क्यों कि पटियाला और पंजाब विश्वविद्यालयों में इस का प्रयोग सफल रहा है. बाह्य तथा आंतरिक मूल्यांकन असंगत तो अवश्य हो जाते हैं, फिर भी आंतरिक मूल्यांकन-प्रणाली को अपनाना इस लिए ज़रूरी है कि इस से विद्यार्थी का परीक्षण उस के रोज़मर्रा के काम के आधार पर होता है, न कि केवल परीक्षा के समय दिये गये जवाबों से. इस लिए यह सुझाव दिया गया कि प्रत्येक पाठ्यक्रम में कम से कम बीस प्रतिशत नंबर आंतरिक मूल्यांकन के लिए निर्धारित किये जायें. परंतु इस संबंध में गोष्ठी का विचार था कि आंतरिक मूल्यांकन को पक्षपात से बचाने के लिए एक स्थायी सतर्कता समिति की नियुक्ति भी आवश्यक होगी, जो संकायों और विद्यालयों में आंतरिक मूल्यांकन के कार्य पर नज़र रखे.

क्या विद्यार्थियों का कक्षाओं में उपस्थित रहना आवश्यक है? इस प्रश्न पर भी गोष्ठी ने विचार किया और यह सिफ़ारिश की कि एम. ए. की कक्षाओं में उपस्थिति आवश्यक नहीं होनी चाहिए, परंतु विद्यार्थियों के लिए एक निर्धारित लेखन-कार्य करना आवश्यक होना चाहिए. यह भी सिफ़ारिश की गयी कि ऑनर्स कक्षाओं में प्रयोग के तौर पर उपस्थिति की बजाय लेखन पर अधिक ज़ोर देना चाहिए.

इस विषय पर डॉ. राव के इस सुझाव का स्वागत किया गया कि जिन कक्षाओं में उपस्थिति की अनिवार्यता न रहे वहाँ उपस्थिति का लेखाजोखा रखा जाये, जिस से यह जाँचा जा सके कि उपस्थिति और परीक्षा-परिणामों का क्या संबंध है. एक सुझाव था कि उपस्थिति का वर्त्तमान नियम, जिस के अंतर्गत ६६ प्रतिशत उपस्थिति आवश्यक है, संशोधित किया जाये, जिस से कि ६६ प्रतिशत से कम उपस्थिति वाले विद्यार्थियों के विषय में विद्यालय-अधिकारी ही निर्णय ले सकें. यह अधिकार विश्वविद्यालय की विद्या परिषद् के पास नहीं रहना चाहिए, जैसा कि आज-कल है और जिस के विरुद्ध हाल ही में दिल्ली में आंदोलन हो चुका है.

यह गोष्ठी विश्वविद्यालय-क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण समझी जा रही है. परंतु जब तक अधिकारी यह सिद्ध नहीं करते कि इस की नियति भी किसी और विचार-गोष्ठी की-सी न होगी तब तक विद्यार्थी नहीं जान सकते कि उपद्रव की जगह सुझाव देने का मार्ग सही है या नहीं.

भेंट-वार्ता

अपरिभाषित की परिभाषा

केंद्रीय अन्न और कृषिमंत्री श्री जगजीवन राम समय-समय पर अपरिभाषित राजनैतिक कालांश की परिभाषा करने की आवश्यकता अनुभव करते रहे हैं, क्यों कि उन की स्थापना रही है कि अगर अपरिभाषित को ज्यों का त्यों रहने दिया जाता है तो वह "पहले तो अजनबी और फिर सहसा भयावह हो उठता है." दिनमान के प्रतिनिधि से अपनी विशेष बातचीत के दौरान केंद्रीय मंत्रिमंडल के सब से वरिष्ठ सदस्य ने स्वीकार किया कि चौथे आम चुनाव के बाद राजनैतिक शक्तियों का जो पुनर्गठन अस्तित्व में आया और जिस की तार्किक परिणति हाल के मध्यावधि चुनाव में हुई उस का अध्ययन "एक राजनैतिक प्रक्रिया के रूप में किया जाना चाहिए. महत्त्वपूर्ण बात यह नहीं है कि संबद्ध प्रदेशों में किसी दल विशेष की जीत या हार हुई है; महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मध्यावधि चुनावों के कारण जो राजनैतिक पुनर्गठन अस्तित्व में आया है उस का सीधा संबंध १९७२ के आम चुनाव से है." एक हल्की-सी मुस्कान होठों पर बिखेर कर फिर वह अचानक मौन हो गये थे, गोया वह दिलचस्प और कुछ सनसनीखेज़-सी लगने वाली घटनाओं के अंदर आंदोलित "अनकहे कुछ" की अभिव्यक्ति की तलाश कर रहे हों. "मैं इस स्थापना को तर्कसंगत नहीं मानता कि मध्यावधि चुनाव के साथ अस्तित्व में आया राजनैतिक पुनर्गठन १९६७ के आम चुनाव के साथ अस्तित्व में आये राजनैतिक पुनर्गठन से बुनियादी तौर पर भिन्न है. मध्यावधि चुनाव ने उन्हीं सवालों को एक बार फिर उठाया है जिन्हें १९६७ के आम चुनाव ने उठाया था. इन सवालों का संबंध जहाँ एक ओर असंशोधित ग़ैर-कांग्रेसवाद से है वहाँ दूसरी ओर उन का संबंध स्थिरता के संकट से भी है."

बातचीत के दौरान औपचारिकता की परिधि को पीछे छोड़ कर हम विचार-विनिमय के केंद्र में आ चुके थे. प्रतिनिधि ने श्री जगजीवन राम से जानना चाहा कि स्थिरता के संकट से उन का तात्पर्य क्या है. थोड़ी देर तक वह चुप रहे, गोया अपने-आप से बातें कर रहे हों, या कि उस संकट से साक्षात्कार कर रहे हों जिस का प्रसंग उन्होंने खुद उठाया था. फिर जैसे अपने से बाहर आने की कोशिश करते हुए और हल्का-सा मुस्कराते हुए केंद्रीय अन्न और कृषिमंत्री ने प्रतिनिधि को बताया कि "१९६७ के चौथे आम चुनाव की तरह ही मध्यावधि चुनाव में भी प्रतिपक्ष का नारा नकारात्मक था. यह सच है कि प्रतिपक्षी दल एक-दूसरे के ख़िलाफ़ भी लड़ रहे थे, लेकिन कांग्रेस विरोध की पुरानी नीति उन्होंने बरक़रार रखी. नकारात्मक नीतियों के आधार पर विरोध का विचार-मंच संगठित करना संभव नहीं है, यद्यपि किसी राजनैतिक कालांश के अस्थायी दौर की ये विशेषताएँ हो सकती हैं. संकट तब पैदा होता है जब अस्थायी दौर की विशेषताओं और प्रवृत्तियों को स्थायी नीतियों के रूप में स्वीकार किया जाने लगता है. मध्यावधि चुनावों के दौरान कुछ ऐसा ही देखने में आया. इस का सब से अधिक लाभ क्षेत्रीय दलों को मिला, जिन की मोल-भाव करने की क्षमता में वृद्धि हुई. असंशोधित कांग्रेस-विरोध का एक नतीजा यह भी हुआ कि सिद्धांत और कार्यक्रम में दूर का भी रिश्ता नहीं रहा. जब हम इन प्रवृत्तियों का एक प्रक्रिया के रूप में अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि चौथे आम चुनाव की तरह ही मध्यावधि चुनाव में भी हार या जीत का आधार इतिहास की पिछड़ी

जगजीवन राम : संकट से साक्षात्कार

मनोवृत्तियों और कुंठाओं को बनाया गया. यद्यपि आदमी के आदमियत के केंद्र में न आ सकने के कारण पहले के चार आम चुनाव भी राजनैतिक सिद्धांतों और कार्यक्रमों के आधार पर नहीं लड़े जा सके थे लेकिन मध्यावधि चुनाव में सिद्धांतों और कार्यक्रमों की यह रही-सही साख भी ध्वस्त हो गयी. हिंदी क्षेत्रों में और ख़ास तौर पर बिहार में कुछ जाति विशेष के उम्मीदवारों की विजय हुई. इसी तरह उत्तरप्रदेश में भारतीय क्रांति दल ने जातीयता के हथियार का इस्तेमाल किया और सनसनीखेज़-सी दिखने वाली विजय हासिल की. मैंने स्थिरता के संकट की बात की है. मेरा विश्वास है कि १९७२ के आम चुनाव में केंद्र में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त हो जायेगा. लेकिन अगर मध्यावधि चुनाव के नतीजों को ध्यान में रखा जाए तो केंद्रीय स्तर पर भी अस्थिरता की संभावना सर उठा सकती है."

अस्थिरता का संकट : दिनमान के प्रतिनिधि ने श्री जगजीवन राम से जानना चाहा कि अगर १९७२ के आम चुनाव के बाद केंद्र में किसी एक दल का बहुमत नहीं रह जाता तो ऐसी स्थिति में जो संयुक्त सरकार बनेगी उस का आधार क्या होगा? थोड़ी देर तक वह अजीबोग़रीब पशोपेश में पड़े रहे. उस समय उन के माथे पर लकीरें कुछ अधिक टहकार हो उठी थीं और मोटे फ़्रेम के पावर चश्मे के अंदर से झाँकती उन की आँखों में "अनकहे कुछ" के तलाश की यंत्रणा-सी झलक रही थी. फिर जैसे दलगत राजनीति की सीमाओं से अपने-आप को अलग करते हुए उन्होंने कहना शुरू किया, "यह एक ऐसा सवाल है जिस का संबंध देश की स्थिरता के साथ है. अगर १९७२ में केंद्र में किसी दल विशेष को बहुमत प्राप्त नहीं होता है तो लोकतंत्र के सामने अपने-आप कई प्रश्न-चिह्न उठ खड़े होते हैं.

जहाँ तक मेरी अपनी राय का सवाल है मैं समझता हूँ कि केंद्रीय स्तर पर किसी स्थायी संयुक्त सरकार का संगठन कार्यक्रमों की समानता के आधार पर ही हो सकता है. लोकतंत्र के व्यापक हित को ध्यान में रखते हुए इस प्रश्न पर एक राष्ट्रीय सर्वमत तैयार होना चाहिए. आज़ाद भारत के विकास के चार मूलभूत आधार रहे हैं—राष्ट्रवाद, धर्म-निरपेक्षता, समाजवाद और लोकतंत्र—, और जहाँ तक मैं समझता हूँ केंद्रीय स्तर पर संयुक्त सरकार के संगठन के भी ये आधार 'बन सकते हैं'.

दिनमान के प्रतिनिधि के अनेक सवालों के उत्तर में केंद्रीय अन्न और कृषिमंत्री ने यह स्पष्ट कर दिया कि जिन दलों का राष्ट्रवाद और धर्म-निरपेक्षता के सिद्धांतों में विश्वास नहीं है उन के साथ किसी भी प्रकार के समझौते का सवाल नहीं उठता. मेरी व्याख्या में जहाँ एक ओर आर्थिक और सामाजिक प्रतिक्रियावाद से असहयोग की बात शामिल है वहाँ दूसरी ओर लोकतांत्रिक और राष्ट्रवादी स्थापनाओं के विरुद्ध जाने वाले दल-समूहों से असहयोग की बात भी शामिल है. केंद्रीय स्तर पर स्थिरता अपेक्षित है, लेकिन स्थिरता का आधार लोकतांत्रिक समाजवादी दलों द्वारा एक व्यापक राष्ट्रीय सर्वमत की तलाश को ही बनाया जा सकता है. लोकतांत्रिक समाजवादी दलों के आपसी सैद्धांतिक मतभेद हो सकते हैं, लेकिन दलगत हितों से ऊपर उठ कर, ज़रूरत पड़ने पर, उन का विचार-मंच गठित किया जा सकता है. स्थिरता के नाम पर आर्थिक और सामाजिक प्रतिक्रियावाद की शक्तियों से सहयोग की वकालत नहीं की जा सकती, न ही राष्ट्रीय और लोकतांत्रिक स्थापनाओं के विपरीत आचरण करने वाले दलों के साथ समझौते की बात सोची जा सकती है.

(इसी विषय पर अन्य भेंट-वार्ताएँ अगले अंकों में पढ़िए)

चरचे और चरखे

कवि द्वारा उद्घाटन

राजधानी के कला-जगत में कला-प्रदर्शनियों का उद्घाटन अधिकतर दूतावासों के लोगों या राजनीतिक-नेताओं द्वारा किये जाने की प्रथा-सी बन गयी है. उद्घाटन-कर्त्ताओं में अक्सर ऐसे लोगों के नाम भी दिखायी दे जाते हैं जिन्हें कला से कुछ लेना-देना नहीं होता. उद्घाटन-कर्त्ता कलाकार के लिए या तो पैसे का साधन होता है या प्रचार का, कला-मर्मज्ञ होना उतना ज़रूरी नहीं होता. विको सोनी की चित्र-प्रदर्शनी के लिए उद्घाटनकर्त्ता के रूप में कवि **शमशेरबहादुर सिंह** का नाम देख सुखद आश्चर्य हुआ. कवि शमशेर ने स्वांतः सुखाय एक ज़माने में बड़ी धुन और लगन के साथ आधुनिक चित्र-कला का अध्ययन किया था और कविता के साथ-साथ चित्रांकन को भी अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था. चित्रात्मकता उन की कविता का बहुत बड़ा गुण भी है. विको सोनी की प्रदर्शनी के उद्घाटन पर शमशेर क्या कहते हैं, इस की उत्सुकता स्वाभाविक थी. लेकिन **श्रीधराणी** गैलरी में पहुँच कर दिखायी दिया कि शमशेर एक कोने में चुपचाप कागज़-क़लम लिये हुए डूबे हुए हैं और बहुत देर तक उसी तरह डूबे रहे. लोग आते, प्रदर्शनी देखते और चले जाते; उद्घाटनकर्त्ता कोने में बैठा ही रहा. बाद में पता चला कि वह विको सोनी पर एक कविता लिख रहे हैं. शमशेर विको सोनी और उन की पत्नी अग्नेश्का **सोनी** से, जो दिल्ली विश्वविद्यालय में पोलिश भाषा की शिक्षिका नियुक्त हो कर आयी हैं और हिंदी साहित्य का अच्छा ज्ञान रखती हैं, आत्मीय रूप से परिचित हैं और चित्रकार के पोलैंड; डेनमार्क और स्वीडेन के कला-संघर्ष की भी पूरी जानकारी रखते हैं. उन का कवि सोनी की कला का ही नहीं कला-संघर्ष का भी साक्षी रहा है. उपस्थित चंद लोगों के आग्रह पर, जिन में प्रसिद्ध चित्रकार **रामकुमार** भी थे, शमशेर ने उद्घाटन के नाम पर जो कविता सुनायी वह यहाँ प्रस्तुत की जा रही है :

कला की वासनाएँ बीजगणित नहीं हैं,
सोनी.
क्यों कि, देखो, जब
मछलियाँ आज़ादी के साथ
उछल सकती हैं
आकाश में
ब्रश मुख में लिए—
तब,
हाँ, विको सोनी,
रंगों का दुरूह जहान
दिशाओं को जाल में घेर कर (क्यों नहीं)
—अपनी अमूर्त ज्यामिति में—
साँसों को ठोस और मूर्त्तमान भी
कर ले जाएगा.
तुम, विको,
अपनी उलझनों के व्यंजन को
हमारी गहरी उषाओं के साथ चबा कर
अगली संध्याओं के ख़ाली प्लेटों में रख कर
ढक देते हो :
पोलैंड और स्वीडेन के श्रमसंघर्ष
और अंतर्राष्ट्रीय वायुयानों के दुस्तर पथ
पिछले पखवारे में तुम्हारे केन्वस की दूरियों
में ही मिल कर
हमारी आँखों का एक नया नक़्शा बन गये.
सुनो,
इस उत्तरार्ध सदी की चीख़ें
सागर-तल के
मौन बुदबुदों के ब्रैकेट में हैं,
वहीं जहाँ हम तुम्हारे साथ
दो युगों के तरल हाशिये पर
हाथ मिला रहे हैं.
पहाड़ और जंगल जब लहरों में घुल-मिल गये,
घर की खिड़कियाँ,
आने वाले परसों की
नीली-नीली कली-सी
चमकने लगीं.
वह प्रभाती जो
अर्धरात्रि में ही
कुनमुनाने लगी थी
मुझ को जगा-जगा कर
शाम तक
यहाँ ले ही आयी.

राजनीतिक द्वारा विमोचन

राजधानी में चिन्मय प्रकाशन, जयपुर द्वारा प्रकाशित 'ज़ाकिर हुसेन' नामक ग्रंथ का विमोचन मोरार जी देसाई ने किया. इस अवसर पर उन्होंने जो भाषण दिया वह ग्रंथ-विमोचन के लिए उत्सुक लोगों के काम का है. कम से कम उन्हें इतना तो मालूम ही हो सकता है कि ऐसे विमोचन-समारोहों के बारे में एक नेता की सही राय क्या है. मोरारजी ने कहा, "हमारे देश में अजीब-अजीब रिवाज पड़ जाते हैं. ग्रंथ-विमोचन का भी रिवाज पड़ गया है. कोई ज़रूरी नहीं जिस ग्रंथ का विमोचन हो वह अच्छा ही हो." पर यहाँ तो विमोचन के लिए जितना ऊँचा नाम उतना ऊँचा ग्रंथ मनवाना आयोजकों का उद्देश्य रहता है. यदि उन की समझ में यह बात आ जाये कि शानदार विमोचन-समारोह से ही कोई ग्रंथ शानदार नहीं हो जायेगा तो शायद यह रिवाज टूटे. पर इस के लिए हर विमोचन-समारोह में यह बात साफ़-साफ़ कहनी पड़ेगी.

शिक्षामंत्री और संगणक

लंदन में एक उच्च शक्ति वाले संगणक को शिक्षामंत्री **एडवर्ड शार्ट** से हुई गुफ़्तगू पसंद नहीं आयी. उसने उन्हें 'बोर' की संज्ञा प्रदान की. श्री शार्ट लंदन में चिकित्सा अनुसंधान परिषद की संगणक इकाई का उद्घाटन कर रहे थे. संगणक के कुंजी-पटल पर 'हलो' टंकित करते समय उन्होंने हिज्जे की ग़लती की. २ लाख ८० हज़ार पाउंड से निर्मित इस संगणक ने रूखा जवाब दिया 'आप क्या कह रहे हैं?, मेरी समझ में नहीं आया." शार्ट ने हिज्जे दुरुस्त किये और संतुष्ट होने पर मशीनी दिमाग़ ने उन से पूछा : "आप कैसे हैं; आप की समस्या क्या है बतलाइए ? यह बातचीत कुछ क्षणों तक रुकी रही, क्यों कि शार्ट ने पूछा कि "इस समय क्या बजा है ?" यह संगणक चिकित्सा संबंधी गणनाओं के लिए तैयार किया गया है. उन का यह प्रश्न सुन कर वह अधीर हो उठा. उसने जवाब दिया "यह बातचीत उबाने वाली (बोरिंग) हो रही है." शार्ट ने अपना प्रश्न फिर दोहराया, जब कि अधिकारीगण बेचैन संगणक के चारों ओर घूम रहे थे. संगणक ने पूछा "आप यह सवाल क्यों पूछ रहे हैं ?" शार्ट ने जवाब दिया "क्यों कि मुझे भूख लगी है." संगणक की रोशनी ग़ुस्से में चमकने लगी और उसने कहा "क्या आप को खाली पंक्तियाँ मुझे देते हुए मज़ा आ रहा है ? निस्संदेह आ रहा होगा. आप क्यों मेरे सवालों का जवाब नहीं देते ?" मंत्री महोदय उठ खड़े हुए. अनुसंधान परिषद के एक प्रवक्ता ने उन्हें समझाया "महोदय आपने ग़लत कुंजी-पटल का प्रयोग किया था और ऐसी स्थिति में यंत्र को यह बताया गया है कि वह ग़लती करने वाले को इस तरह नाराज़ी भरे जवाब दे." शायद मंत्री महोदय की यह समझ में आ गया हो कि ज़रूरत पड़ने पर आदमी तो लिहाज़ कर सकता है, पर मशीन नहीं करती.

यात्रा और प्रतिबद्धता

ललितकुमार मुकर्जी २३ वर्षों से लगातार पद-यात्रा कर रहे हैं. आज़ादी के २ वर्ष पूर्व से ही उन्होंने पद-यात्रा शुरू की थी और अब तक भारतवर्ष के कोने-कोने का भ्रमण कर चुके हैं और एक लाख ४ हज़ार मील का सफ़र पैदल तय कर चुके हैं. भारत का शायद ही कोई ऐसा नगर हो जहाँ वह विभिन्न मार्गों से २-३ बार न पहुँच चुके हों. इस पद-यात्रा का एक फ़ायदा उन्हें यह भी हुआ है कि वह देश की ८-१० भाषाएँ आसानी से समझ लेते हैं. उन का कहना है कि दुनिया में शायद ही किसी व्यक्ति ने इतनी लंबी पद-यात्रा की होगी; लेकिन उन के विश्व रिकार्ड की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया है. उन का यह भी ख़्याल है कि अपने देश और अपने देशवासियों का गहरा अनुभव उन्हें है, जितना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन है. पर उन के अनुभवों का लाभ कौन उठायेगा ?

पृथक् तेलंगाना की माँग

क्या आंध्र के मुख्यमंत्री श्री ब्रह्मानंद रेड्डी के त्यागपत्र से तेलंगाना की समस्या हल हो सकती है ? मंगलवार को तेलंगाना पर बहस के दौरान जब कुछ सदस्यों ने श्री रेड्डी के इस्तीफ़े की माँग की, तब एक सदस्य को यह कहना पड़ा कि संकट ज़्यादा गहरा है—मुख्यमंत्री को बलि का बकरा बना कर उस पर पर्दा नहीं डाला जा सकता. तेलंगाना को ले कर जो भयावह स्थिति पैदा हो चुकी है उस के लिए मुख्य रूप से कांग्रेस पार्टी ज़िम्मेदार रही है.

यह आकस्मिक नहीं है कि अब श्री ब्रह्मानंद रेड्डी के इस्तीफ़े की माँग, स्वयं कांग्रेस पार्टी के कर्णधारों की ओर से की जा रही है. तेलंगाना की आर्थिक और राजनैतिक समस्याएँ आंध्र कांग्रेस की भीतरी गुटबंदी में जा कर उलझ गयी हैं; यह कहना ज़्यादा सही होगा कि उलझा दी गयी हैं. जिस समय आंध्र की सभी ग़ैर-कांग्रेसी पार्टियाँ पृथक् तेलंगाना की माँग का विरोध कर रही थीं, हैदराबाद के एक आरामदेह कमरे में बैठ कर कांग्रेसी नेता तेलंगाना के लिए एक अलग प्रदेश कांग्रेस कमेटी का निर्माण कर रहे थे जो कि एक तरह से पृथक् तेलंगाना की ही भूमिका है.

तेलंगाना की स्थिति पर असाधारण चिंता व्यक्त करते हुए, मंगलवार को देर शाम तक बहस-मुबाहसे में व्यस्त, लोकसभा किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सकी. वैसे सभी पार्टियों की यह राय थी कि स्थिति के अध्ययन और तेलंगाना प्रश्न के हल के लिए एक संसदीय समिति नियुक्त की जाये जो कि तेलंगाना की जनता से सीधे संवाद कायम करे. लेकिन तत्काल इस पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सका क्यों कि इस संबंध में केंद्र और राज्य सरकारों का रवैया क्या होगा, इस की कोई जानकारी उपलब्ध नहीं थी. यह पाया गया कि यदि राज्य सरकार इस तरह की किसी समिति के साथ सहयोग नहीं करती है, तो समिति निरर्थक साबित होगी. लोकसभा के अध्यक्ष नीलम संजीव रेड्डी को, जो कि आंध्र के मुख्यमंत्री भी रह चुके हैं, अपनी स्थिति साफ़ करने की दृष्टि से यह कहना पड़ा कि लोगों के मन में ऐसी कोई धारणा नहीं बननी चाहिए कि मैं तेलंगाना के लिए संसदीय समिति नियुक्त करने के पक्ष में नहीं हूँ.

लोकसभा की बहस से यह स्पष्ट था कि पृथक् तेलंगाना की माँग को पर्याप्त समर्थन प्राप्त नहीं है. बल्कि सामान्यतया उस का विरोध ही है. लेकिन सारी समस्या को दलीय दृष्टि से देखने से उस का कोई हल नहीं निकल सकता. तेलंगाना की समस्या मुख्य रूप से आर्थिक है. एक अर्से से बेरोज़गारी और आर्थिक लाचारियाँ तेलंगाना की जनता के मन में असंतोष पैदा करती रही हैं. यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि तेलंगाना की शासक पार्टी ने इन समस्याओं के हल में कोई दिलचस्पी कभी भी नहीं ली. इस का नतीजा यह हुआ कि कुछ न्यस्त स्वार्थों ने जनता की अलगाव की भावना को संगठित करते हुए पृथक् तेलंगाना की माँग को उत्तेजित करने और उसे आक्रामक बनाने में सफलता प्राप्त की.

जब स्थिति आक्रामक हो गयी तब आंध्र के मुख्यमंत्री ने, अभी पिछले हफ़्ते यह घोषणा की कि तेलंगाना के विकास के लिए १९६९-७० में ९ करोड़ रुपये खर्च किये जायेंगे जिन का उपयोग करने का अधिकार 'ज़िला समितियों' को होगा. दूसरे शब्दों में यह पैसा 'जन-असंतोष' के 'स्वार्थी नेताओं' को बाँटा जायेगा. इतने वर्षों तक तेलंगाना की उपेक्षा करने के बाद क्या आंध्र की शासक पार्टी यह सोचती है कि पैसे के बँटवारे से समस्या हल हो जायेगी ?

तेलंगाना की उपेक्षा के लिए कुछ हद तक केंद्र भी ज़िम्मेदार रहा है. तेलंगाना के विकास के लिए केंद्र सरकार ने पिछले तमाम वर्षों में कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया—यह जानते हुए भी कि आंध्र पुनर्गठन के समय से ही केंद्र और राज्य सरकारें तेलंगाना की जनता के प्रति प्रतिबद्ध हैं.

तेलंगाना एक अलग घटना नहीं है. उस का असर दूसरे प्रदेशों पर भी पड़ सकता है क्यों कि अन्य राज्यों में पहले से क्षेत्रीय असंतोष है. वयोवृद्ध आचार्य कृपालानी यह कहने की छूट ले सकते हैं कि जो भी अलग होना चाहते हैं, उन्हें अलग राज्य बनाने दिया जाये और यह कि लोकतंत्र की शर्तों के मुताबिक़ अधिकाधिक राज्य-इकाइयों का होना स्वाभाविक ही है; लेकिन पहले से ही विघटन की चुनौतियों से जूझता हुआ देश यह ख़तरा मोल नहीं ले सकता. तेलंगाना ही नहीं अन्य राज्यों की समस्याएँ भी बुनियादी तौर पर आर्थिक और इस कारण राजनैतिक हैं. उन्हें, शुतुर्मुर्ग की तरह रेत में मुँह छिपा कर नहीं, बल्कि उन का सामना कर सुलझाया जा सकता है. लोकसभा की बहस तेलंगाना की समस्या को समझने में सहायक हो सकती है. लेकिन तेलंगाना का हल स्वयं शासक पार्टी को निकालना होगा. उस पर कमेटियाँ बिठा कर या कि उस के बारे में केवल चिंता व्यक्त कर संकट को केवल स्थगित ही किया जा सकता है, समाप्त नहीं किया जा सकता.

दिनमान
समाचार-साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — ६ अप्रैल, १९६९
अंक १४ — १६ चैत्र, १८९१

*

इस अंक में

संपादकीय १६

*

विशेष रिपोर्ट ११

*

मत और सम्मत ३
पिछला सप्ताह ४
पत्रकार-संसद ५
चरचे और चरखे १०
परचून ४६

*

राष्ट्रीय समाचार १३
प्रदेशों के समाचार १९
विश्व के समाचार ३४
समाचार-भूमि : बर्मा ३२
खेल और खिलाड़ी : तैराकी; मोटर रेस ३०

*

दिल्ली की चिट्ठी ७
भेंट-वार्त्ता : जगजीवनराम ९
राजनतिक दल : भारतीय क्रांति दल १८
विज्ञान : गोल पृथ्वी का चपटापन २४
आधुनिक जीवन २६
विदेश-यात्रा : मंत्रियों और अफ़सरों के दौरे २७
भूमि सुधार : चकबंदी या भाग्यबंदी २८
संगीत : पंडित रामनारायण ३९
साहित्य ४०
रंगमंच : आर्थर मिलर; दिशांतर ४२
कला : अंबा सान्याल, वजय सोनी ४३
फ़िल्म : रूसी फ़िल्म समारोह ४४

आवरण चित्र : पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल याह्या ख़ाँ (फ़ोटो : रविव्रत वेदी)

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान

टाइम्स ऑफ़ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

कांग्रेस पार्टी : चंद्रशेखर का बयान

कांग्रेस पार्टी के भीतर का संकट, पिछले दो हफ़्तों में, श्री चंद्रशेखर के मौन और मध्यस्थों के प्रयत्न से कम हुआ नजर आ रहा था. लेकिन दोनों ही पक्षों के अतिरेक ने एक बार फिर वातावरण को विस्फोटक बना दिया. कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी में श्री मोरारजी देसाई के अनुयायियों के इस आग्रह ने कि श्री चंद्रशेखर को, उन के ग़ैर-ज़िम्मेदार आचरण के लिए प्रताड़ित किया जाये और दूसरी ओर चंद्रशेखर के समर्थकों की इस ज़िद ने, कि यह सिद्धांतों का सवाल है, इस पर कोई समझौता नही हो सकता, तनाव को और कस दिया. श्री चंद्रशेखर ने अपने तो हफ़्ते लंबे मौन को तोड़ कर सोमवार को अपना वक्तव्य प्रकाशन को दे दिया जिस में कार्यकारिणी के निर्णय को एकतरफ़ा बताते हुए उन्होंने अपने आचरण को उचित और संगत क़रार दिया.

कांग्रेस संसदीय पार्टी के सचिव श्री वेंकट सुब्बय्या के नाम अपने पत्र में उन्होंने लिखा कि "कांग्रेस संसदीय पार्टी के इतिहास में यह पहला मौका है जब कि पार्टी के एक सदस्य को अपने स्पष्टीकरण का मौका दिये बिना और संपूर्ण तथ्यों की जानकारी प्राप्त किये बिना उस के आचरण को ले कर बहस की गयी. मुझे प्रसन्नता है कि कार्यकारिणी मुझ से संबंधित घटना से चिंतित है लेकिन अचरज की बात है कि कार्यकारिणी ५ मार्च १९६९ को श्री मोरारजी देसाई द्वारा प्रयुक्त अपमानजनक शब्दों से चिंतित नजर नही आती. साधारणतया जो शिकायत करता है उसे न्यायाधीश नही बनाया जाता. लेकिन हैरानी की बात है कि श्री मोरारजी देसाई कार्यकारिणी की सभी बैठकों में हिस्सा लेते रहे हैं जब कि मुझे कार्यकारिणी को संपूर्ण तथ्यों से वाकिफ़ कराने का एक भी अवसर नहीं दिया गया. मुझे समाचार-पत्रों में यह पढ़ कर और भी दुख हुआ कि एक अवसर पर तो श्री देसाई की सलाह से मेरे विरुद्ध आरोप-पत्र तक तैयार किया गया था. ५ मार्च को श्री मोरारजी देसाई ने राज्यसभा में मेरे बारे में कुछ टिप्पणियाँ कीं. ६ मार्च को मैंने पार्टी के मुख्य सचेतक श्री रघुरामैया को एक पत्र लिखा जिस में उन का ध्यान इन टिप्पणियों की ओर आकृष्ट किया गया था और उन से आग्रह किया गया था कि वे इस संबंध में आवश्यक कार्रवाई करें. साथ ही साथ मैंने यह इच्छा ज़ाहिर की थी कि मैं सदन में अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहता हूँ तीन दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद १० मार्च को सवेरे पौने ग्यारह बजे मैंने राज्य सभा के प्रधान को एक पत्र लिखा कि मुझे सदन में अपने स्पष्टीकरण का अवसर दिया जाये. इस पत्र की एक प्रतिलिपि श्री मोरारजी देसाई और पार्टी के नेता को भी भेजी गयी थी. क्यों कि इसे कोई मान्यता नहीं दी गयी इस लिए मैंने उसी दिन सवा पाँच बजे शाम अपना वक्तव्य दिया जो कि बहस का विषय हो गया है.'

श्री चंद्रशेखर ने अपने पत्र में आगे शिकायत की है कि पिछले तीन हफ़्तों से पार्टी के मंच से उन के विरुद्ध प्रचार किया जा रहा है. उन्होंने कहा है कि मैं किसी का व्यक्तिगत उल्लेख किये बिना पिछले दो वर्षों से बृहत्तर प्रश्न उठाता रहा हूँ. "मैंने वित्तमंत्री के बारे में कुछ बातें कहीं. लेकिन पिछले तीन हफ़्तों में उन की ओर से इन का कोई खंडन नही किया गया है हालांकि १९६७ के बजट में अलमुनियम और रेशम को दी गयी रियायत को ले कर मैंने उन को १४ और १९ मार्च को दो पत्र लिखे. वित्तमंत्री ने इन पत्रों की प्राप्ति-सूचना तक नही दी. इन पत्रों की प्रतिलिपियाँ पार्टी के नेता को भेजी जा चुकी हैं. ये पत्र नेता से प्राप्त किये जा सकते हैं क्यों कि मैं नहीं सोचता कि उन की पूर्वानुमति के बिना इस वक़्त इन पत्रों का प्रकाशन मेरी तरफ़ से उचित होगा. पार्टी का अनुशासन बनाये रखने के लिए कार्यकारिणी की चिंता को मैं समझ सकता हूँ. लेकिन यह मापदंड सब पर लागू होना चाहिए—केवल मुझ पर नहीं. अगर मैं यह सोचता हूँ कि कार्यकारिणी को मेरे वक्तव्य की तह में जाते हुए वित्तमंत्री से कुछ तथ्यों की पुष्टि करनी चाहिए थी तो इस में क्या ग़लत है ?"

श्री चंद्रशेखर का पत्र राज्यसभा के सत्र की समाप्ति पर प्रकाशित हुआ है और तत्काल उस पर प्रतिक्रियाएँ केवल कार्यकारिणी की बैठक में होंगी. इस पत्र का प्रकाशन स्वयं इस बात का प्रमाण है कि चंद्रशेखर किसी तरह की क्षमा याचना करने को तैयार नहीं.

केंद्र और राज्य या कि केंद्र के विरुद्ध राज्य ?

गृहमंत्रालय पर बहस हो तो यह कैसे मुमकिन है कि केंद्र और राज्य का ज़िक्र न आये. पिछले कुछ समय से केंद्र और राज्य के प्रश्न को ले कर जिस तरह की बहस होती रही है उस से लोकसभा में, गृहमंत्रालय के अनुदानों की माँगों पर हुई चर्चा का समापन करते हुए, गृहमंत्री यशवंतराव बलवंतराव चव्हाण को कहना पड़ा कि सवाल केंद्र और राज्य का है, केंद्र के विरुद्ध राज्य का नही.

गृहमंत्रालय पर लोकसभा में जो विचार-विमर्श हुआ उस का मुख्य आधार केंद्र और राज्य के संबंध थे. तात्कालिक उत्तेजना का कारण दुर्गापुर में उत्तरप्रदेश सशस्त्र पुलिस का उपयोग और राज्यपाल की हैसियत से श्री धर्मवीर का आचरण था. अनेक सदस्यों का यह आग्रह केवल रस्मी नही था कि राज्यपाल के कार्यों और अधिकार की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए. श्री चव्हाण ने इस आग्रह को महत्त्व देते हुए कहा कि सभी पार्टियों को एक जगह बैठ कर राज्यपाल के अधिकारों की दिशा तैयार करनी चाहिए. लेकिन, उन्होंने कहा कि राज्यपाल के पद में ही कुछ अधिकार सन्निहित हैं, हालांकि संविधान में इन का मोटे शब्दों में उल्लेख नही है.

राज्यों में, चाहे वे कांग्रेसी राज्य हों या ग़ैर-कांग्रेसी राज्य, केंद्रीय रिज़र्व पुलिस रोजमर्रा उपयोग के लिए नही बल्कि केंद्रीय प्रतिष्ठानों की हिफ़ाज़त के लिए रखी गयी है. १९६७ के बाद से कुछ ग़ैर-कांग्रेसी राज्यों में ऐसी घटनाएँ हुई हैं जिन से यह पता चलता है कि संबंधित राज्य सरकारों और उन की पुलिस को या तो इन प्रतिष्ठानों की रक्षा में विशेष दिलचस्पी नही या फिर वे केंद्रीय प्रतिष्ठानों की रक्षा में असमर्थ हैं. अगर ग़ैर-कांग्रेसी सरकारें सचमुच यह चाहती हैं कि उन के राज्यों में केंद्रीय पुलिस न रहे तो उन्हें यह स्पष्ट आश्वासन देना होगा कि केंद्रीय पुलिस की अनुपस्थिति में केंद्रीय प्रतिष्ठानों को जो भी क्षति होगी उन की ज़िम्मेदारी उन पर होगी.

१९६७ के बाद से केरल के मुख्यमंत्री नंबूदिरिपाद केंद्र के विरुद्ध लगातार आग उगलते रहे हैं—कभी चावल को ले कर और कभी वित्त को ले कर. आखिर ग़ैर-कांग्रेसी सरकारें क्या चाहती हैं ? अगर वह और अधिक स्वायत्तता की माँग करती है तो बात समझ में आती है. प्रदेश सरकारों को, अन्न और वित्त के मामलों में बहुत सी रोजमर्रा की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है. इस लिए यह स्वाभाविक ही है कि इस संबंध में कुछ और सुविधा तथा कुछ और अधिकारों की माँग करें. लेकिन अपनी माँग को दोहराते हुए केंद्र को उस के अपने अधिकारों से वंचित करने की इच्छा रखना देश के विघटन का आग्रह करना है.

केंद्र में कांग्रेसी सरकार है और क्यों कि 'ग़ैर-कांग्रेसवाद' आज का मुहावरा बन गया गया है इस लिए केंद्र के विरुद्ध अभियान भी फ़ैशन बन गया है. लेकिन यह अभियान आत्मघाती साबित हो सकता है. आज की और आने वाले कल की परिस्थितियों में कमजोर नहीं, मजबूत केंद्र की आवश्यकता है. श्री चव्हाण का यह आग्रह ग़लत नहीं था कि एक सशक्त केंद्र ही सशक्त राज्यों की धुरी बन सकता है. अगर एक बार यह धुरी टूट गयी तो फिर कुछ भी सँभल नहीं पाएगा.

—विशेष संवाददाता

अगले अंकों में

१३ अप्रैल—जलियाँवाली बैशाखी
२० अप्रैल—एशिया, अफ़्रीका में भारतीय प्रवासी

राष्ट्र

भारत-पाक

फ़ैसले और फ़ासले

२५ मार्च को जब अपने राष्ट्रीय प्रसारण में ६१ वर्षीय पाकिस्तानी राष्ट्रपति मोहम्मद अय्यूब ख़ाँ ने ५२ वर्षीय जनरल याह्या ख़ाँ को सत्ता सौंपने की घोषणा की थी तब नयी दिल्ली के राजनीतिक क्षेत्रों में एक अजीबो-ग़रीब सनसनी महसूस की गयी. राजनीतिक घटना-क्रम की तर्क-संगत परिणतियों से बेख़बर और महज़ सनसनीखेज़ अभिव्यक्तियों की ख़बर रखने वालों के लिए यह एक अप्रत्याशित धमाके से अधिक कुछ भी नहीं था. धमाके के अप्रत्याशित होने का संकेत सरकारी क्षेत्रों की उस आरंभिक प्रतिक्रिया से मिला जिस में 'फ़िलहाल कोई भी प्रतिक्रिया व्यक्त न करने का' फ़ैसला किया गया था. १० साल पहले, १९५८ में जब जनरल मोहम्मद अय्यूब ख़ाँ ने सत्ता पर अधिकार किया था, तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने इस घटना को 'निरंकुश तानाशाही' क़रार दिया था लेकिन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने किसी अन्य देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के तर्क का आश्रय ले कर भारत-पाक उप-महाद्वीप की सरकारों और जनता के बीच के फ़ासले को बढ़ाते जाने की नीति में अपनी आस्था का परिचय दिया है.

प्रतिक्रांति-बनाम स्थानांतरण : पाकिस्तान में मार्शल लॉ लागू किया जा चुकने के चौथे दिन, मतलब कि २८ मार्च को संसद् के दोनों सदनों में ध्यानाकर्षण प्रस्तावों और प्रश्नों के उत्तर में विदेशमंत्री दिनेश सिंह और विदेश उपमंत्री सुरेंद्रपाल सिंह ने क्रमशः पाकिस्तान में घटित इस नयी घटना पर अपनी सरकार की 'किसी दूसरे देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति' का हवाला दे कर संतोष कर लेना पर्याप्त समझा. श्री पीलू मोदी और कुछ अन्य सदस्यों के ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के उत्तर में विदेशमंत्री दिनेश सिंह ने पाकिस्तान में हाल में हुए परिवर्त्तनों को 'शक्ति के स्थानांतरण' के रूप में देखा और यह तर्क पेश किया कि संबद्ध देश के संवैधानिक राष्ट्रपति ने अपनी स्वेच्छा से सत्ता का स्थानांतरण जनरल याह्या ख़ाँ को कर दिया है. प्रजा समाजवादी पार्टी के श्री नाथ पै ने विदेशमंत्री की और उन के माध्यम से उन की सरकार को 'किसी दूसरे देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की' मूल-स्थापना से सहमति व्यक्त करने के बावजूद जानना चाहा कि पाकिस्तान में जो कुछ हुआ है, उसे भारत सरकार 'प्रति-क्रांति' समझती है या कि सत्ता का संवैधानिक स्थानांतरण. प्रजा समाजवादी नेता ने यह आशंका भी व्यक्त की कि बड़ी ताक़तें पाकिस्तान की नयी सैनिक सरकार को ख़ुश रखने के लिए भारी पैमाने पर शस्त्र-सहायता दे सकती हैं. प्रजा समाजवादी नेता की इस आशंका का उत्तर विदेशमंत्री ने इस सूत्र-वाक्य में दिया कि हम आशा करते हैं कि बड़ी ताक़तें ऐसा नहीं करेंगी. उन्होंने आशा व्यक्त की कि पाकिस्तान की नयी सरकार ताशकंद-घोषणा की शर्तों का पालन करेगी. निर्दलीय संसद्-सदस्य श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने पाकिस्तानी जनता के लोकतांत्रिक अधिकारों के हनन पर चिंता व्यक्त की और विदेशमंत्री से जानना चाहा कि पश्चिम पाकिस्तान से पूर्व सीमा पर सेनाओं के भेजे जाने पर उन की क्या प्रतिक्रिया है. अपनी आवाज़ को संयत और संजीदा करते हुए विदेशमंत्री ने श्री शास्त्री को बताया कि पश्चिम पाकिस्तान से सैनिकों को ले जाने वाला कोई विमान भारतीय क्षेत्र से नहीं गुज़रा. संसद्-सदस्य श्री के. पी. सिंह देव के एक प्रश्न के उत्तर में विदेशमंत्री ने सदन को बताया कि पाकिस्तान को उस की सामान्य प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं से अधिक दी जाने वाली शस्त्र-सहायता पर भारत सरकार ने संबद्ध देशों पर अपनी प्रतिक्रिया स्पष्ट कर दी है लेकिन प्रतिरक्षा का उत्तरदायित्व अंततः हमारा है और हम उस के लिए तैयार हैं. राज्यसभा में कुछ सदस्यों ने सदन का ध्यान इस संभावना पर केंद्रित करना चाहा कि जनरल याह्या ख़ाँ भारत के प्रति अय्यूब की तुलना में अधिक अनुदारवादी रुख़ अख़्तियार कर के नयी समस्याएँ पैदा कर सकते हैं. राज्यसभा के एक बुज़ुर्ग सदस्य ने **दिनमान** के इस प्रतिनिधि को बताया कि इस्लामाबाद में आयोजित 'भारत-पाक सचिवों की वार्त्ता के समय पाकिस्तानी पक्ष का फ़रक्का-संबंधी कोई मसविदा प्रस्तुत न करना एक हद तक इस आशंका को मज़बूत बनाता है.' कुछ पहले सिंचाई और विद्युत सचिव के. पी. मथरानी ने, जिन्होंने इस्लामाबाद में सचिव-स्तर पर आयोजित इस वार्त्ता में भारतीय प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व किया था, नयी दिल्ली पहुँच कर पाकिस्तान रेडियो के इस प्रचार का खंडन किया था कि पाकिस्तानी पक्ष द्वारा पेश किए गये मसविदे को भारतीय पक्ष अपने साथ ले गया है और उस पर जुलाई में आयोजित की जा रही सचिव-स्तरीय सम्मेलन में विचार होगा. श्री मथरानी ने राजधानी में यह रहस्योद्घाटन भी किया कि पाकिस्तान ने गंगा-कोबादक प्रोजेक्ट को गंगा बैरेज प्रोजेक्ट शुरू कर दिया है और ४९ हज़ार कासेक कहना जल के स्थान पर अब ५८ हज़ार कासेक जल की माँग शुरू कर दी है.

प्रतिक्रिया और प्रतिक्रिया : दिनमान के प्रतिनिधि से अपनी विशेष भेंट के दौरान केंद्रीय अन्न और कृषिमंत्री **श्री जगजीवनराम,** संसपा के अध्यक्ष **श्रीधर महादेव जोशी,** स्वतंत्र पार्टी के अध्यक्ष **एन. जी. रंगा** और द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के **कृष्णन् मनोहरन्** ने पाकिस्तान में मार्शल लॉ की स्थापना की घटना को भारत-पाक राजनीति के परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की. केंद्रीय अन्न और कृषिमंत्री श्री जगजीवनराम यद्यपि किसी अन्य देश की आंतरिक राजनैतिक में हस्तक्षेप के विरोधी हैं, लेकिन मार्शल लॉ से उत्पन्न राजनीतिक स्थिति के उस पक्ष की व्याख्या करना चाहते हैं 'जिस का संबंध भारत-पाक उपमहाद्वीप की जनता के हितों से है.' अपनी व्याख्या की सुविधा के लिए वह पाकिस्तान की राजनीति के 'तीन दौर' की कल्पना करते हैं. पहले दौर की परिणति एक स्वतंत्र प्रभुसत्ता-संपन्न देश के रूप में १९४७ में पाकिस्तान के उदय को मानते हैं. दूसरे दौर का आरंभ वह १९५८ से मानते हैं जब प्रेज़िडेंट अय्यूब ने सत्ता पर अधिकार किया था. तीसरे दौर का आरंभ वह 'मार्च के आख़िरी सप्ताह में पाकिस्तान में मार्शल लॉ की स्थापना' से मानते हैं. 'मैं पाकिस्तानी राजनीति के इन तीन चरणों में एक समानता भी पाता हूँ जिस के आधार पर मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि तीसरा दौर बुनियादी तौर पर कोई नया दौर न हो कर पहले और दूसरे दौर का तर्क-संगत विस्तार है.' 'पाकिस्तान की ट्रेजडी यह रही है कि उस ने जनता की आकांक्षाओं का विकल्प तानाशाही, सीमित लोकतंत्र और अब फिर तानाशाही में खोजने की कोशिश की है और इस तरह अपने ही इतिहास से कुछ न सीखने का फ़ैसला कर के जहाँ एक ओर पाकिस्तानी जनता को नयी दासता और दहशत दी है, वहाँ दूसरी ओर हिंदुस्तान की जनता के सामने भी नयी समस्याएँ पैदा कर दी हैं.' संयुक्त समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष श्रीधर महादेव जोशी का इस स्थापना से कोई बुनियादी मतभेद नहीं है लेकिन वह 'पाकिस्तान में मार्शल लॉ की पुनरावृत्ति' को 'जनाधारों से रहित साहसिकता की दुखद गाथा' मानते हैं. अपना आशय कुछ अधिक स्पष्ट करते हुए अध्यक्ष जोशी ने प्रतिनिधि को बताया कि 'पाकिस्तान की राजनीतिक घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्या की जब मैं कोशिश करता हूँ तो पाता हूँ कि प्रेज़िडेंट अय्यूब के विरोधियों ने जनता और कैडर में फ़र्क़ नहीं किया. जनता के असंतोष को परिवर्त्तन का साधन बनाने के लिए जिस क्रांतिकारी विचार-मंच की आवश्यकता होती है, वह पाकिस्तान के प्रतिपक्षी दलों ने तैयार नहीं किया जिस की परिणति मार्शल लॉ में हुई.' द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम के कृष्णन् मनोहरन्

भी इन दोनों नेताओं की मूल स्थापनाओं से सहमत नज़र आए. "पाकिस्तान में मार्शल लॉ का फिर से कायम होना अप्रत्याशित न हो कर दुखद है. यह न केवल पाकिस्तानी जनता की पराजय है बल्कि भारतीय जनता की भी पराजय है क्यों कि यह लोकतंत्र की पराजय है. पाकिस्तानी प्रतिपक्ष ने परिवर्त्तन के निर्वैयक्तिक कारणों की अवहेलना की और इस तरह परिवर्त्तन की शक्तियों को आगे बढ़ने की बजाय पीछे हटना पड़ा है. लेकिन मैं इसे एक अस्थायी दौर मानता हूँ.' स्वतंत्र पार्टी के अध्यक्ष श्री एन. जी. रंगा पाकिस्तान में हाल में हुए परिवर्त्तनों को 'तानाशाही की वापसी' के रूप में देखते हैं. 'अगर पाकिस्तान के प्रतिपक्ष ने राष्ट्रीय आधारों को चुनौती न दी होती तथा आंदोलन के दौरान अर्जित उपलब्धियों को संगठित करने की कोशिश की होती तो मार्शल लॉ की स्थापना को टाला जा सकता था.'

भारत-बर्मा

अनौपचारिक माहौल में पेचीदे मसले

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी जब ३ दिन की राजकीय यात्रा के दौरान २७ मार्च को अपराह्न में डेढ बजे भारतीय वायु सेना के विमान से रंगून हवाई अड्डे पर उतरी तो वहां उन के स्वागतार्थ बर्मा की क्रांतिकारी परिषद् के अध्यक्ष जनरल ने विन, श्रीमती ने विन और विभिन्न विदेशी दूतावासों के प्रतिनिधियों के अलावा स्थानिक भारतीय समाज के लोग भी उपस्थित थे. उस समय सूरज तेज चमक रहा था और बौद्ध मंदिरों की इस भूमि पर स्वागत की मुद्रा में खडे सैनिकों द्वारा विशिष्ट अतिथि को १९ तोपों की सलामी दी गयी तथा सेना के बैंड पर दोनों देशों के राष्ट्रगीत सुनाये गये. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के स्वागत में रात्रि में आयोजित प्रीति-भोज के अवसर पर जनरल ने विन ने नगा विद्रोहियों की गतिविधि के खिलाफ़ भारत और बर्मा के संयुक्त सहयोग की बात कही और यह स्पष्ट कर दिया कि हमारी सरकार ने उन बाग़ी भारतीय नागरिकों के खिलाफ़ आवश्यक क़दम उठाया है जो हमारी सीमा का उपयोग अपने देश के खिलाफ़ मोर्चेबंदी में करते रहे हैं. जनरल ने विन ने इस प्रकार की गतिविधियों को शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के सिद्धांतों के खिलाफ़ बताया और कहा कि पड़ोसी देशों के आपसी झगड़े शांति-वार्त्ता के ज़रिये सुलझ सकें, इस लिए हमारी सरकार ने अधिक से अधिक तटस्थता बरतने की कोशिश की है. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने अपने अनौपचारिक भेंट-क्रम में बर्मा के भूतपूर्व प्रधानमंत्री ऊ नू से भी मुलाक़ात की. प्रधानमंत्री से पूरे एक घंटे की बातचीत के दौरान ऊ नू ने बताया कि ९ अप्रैल से पूरे ५ महीने के लिए वह भारत की तीर्थ यात्रा पर जा रहे हैं जिस के दौरान बंबई में वह अपनी चिकित्सा भी करायेंगे. बाद में संवाददाताओं के प्रश्नों के उत्तर में भूतपूर्व बर्मी प्रधानमंत्री ने बताया कि मैं ने सरकार की राष्ट्रीय एकता सलाहकार समिति को एक स्मृति-पत्र दिया है जिस में मैं ने यह मत व्यक्त किया है कि यदि देश के लिए संविधान तैयार करना ही है तो उस का आधार संसदीय लोकतंत्र को ही बनाया जा सकता है. रंगून से २०० मील पश्चिम-उत्तर स्थित सैंडोवे बीच (जिसे नापाली बीच भी कहा जाता है) पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और जनरल नेविन के बीच राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय महत्त्व के लगभग सभी विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ. दोनों

इंदिरा गांधी : सहयोग लेकिन शीघ्र

नेताओं ने अधिकारियों की भीड़ से दूर, अनौपचारिक माहौल में, भारत और बर्मा की सीमाओं के अंकन से ले कर, बर्मा में बसे भारतीय मूल के लोगों को नागरिकता दिये जाने तथा बर्मा में अपनी संपत्ति छोड़ कर स्वदेश लौट गये भारतीयों को मुआवज़ा देने जैसे पेचीदे मसलों पर विचार किया. बताया जाता है कि दोनों नेताओं ने इस बात की आवश्यकता महसूस की कि इन समस्याओं के समाधान में शीघ्रता की जानी चाहिए. प्रधानमंत्री की बर्मा-यात्रा के दौरान एक महत्त्वपूर्ण घटना यह भी घटी कि भारतीय राजदूत श्री आर. डी. कटारी द्वारा श्रीमती इंदिरा गांधी के सम्मान में आयोजित स्वागत समारोह में साम्यवादी चीन के राजदूत श्री सिआओ मिंग भी उपस्थित थे. बर्मा के राजनैतिक क्षेत्रों में श्री मिंग की उपस्थिति को काफ़ी महत्त्वपूर्ण समझा जा रहा है. दोनों देशों के विदेश मंत्रालयों के अधिकारियों के बीच जो बातें हुईं उन से इस बात की आशा भी बँधी है कि, बावजूद इस तथ्य के कि बर्मा विदेशों से आयात के पक्ष में नहीं है, व्यापार संबंध सुदृढ़ हो सकते है.

भारत-नेपाल

मंद गति, मंद मति

सुस्ता नदी क्षेत्र भारत और उस के घनिष्टतम मित्र देश नेपाल के बीच मतभेद और तनाव का कारण बन गया है. वास्तव में यह एक साधारण-सा जंगल है जो नेपाल, उत्तरप्रदेश और बिहार के मिलनस्थल पर स्थित है. नेपाल की सरकार इस क्षेत्र को अपने देश का एक अंग बताती है जब कि इस पर लगातार भारत की प्रशासन व्यवस्था चलती रही है. नेपाली अधिकारियों ने दावा किया है कि १९५४ में दोनों देशों के इनस्पैक्टर जनरलों के सम्मिलित सर्वेक्षण ने इसे नेपाली भाग घोषित किया था.

इस के अतिरिक्त १९५१ में स्वयं भारत सरकार ने भी इस क्षेत्र को नेपाल की सीमा के अंतर्गत मान लिया था. भारत सरकार इन दावों को स्वीकार नहीं करती. यह फ़ैसला किया गया था कि जनवरी में भारत और नेपाल के अधिकारी मिल कर इस बात का निरीक्षण करेंगे कि यह क्षेत्र वास्तव में किस देश की सीमा में पड़ता है. मगर लगता है कि उस बैठक में दोनों पक्षों ने मतभेदों को को ही जन्म दिया. काठमांडू में नेपाली प्रवक्ता ने कहा कि सुस्ता नदी के क्षेत्र के सीमांकन के सिलसिले में भारत के कारण ही बैठक एकदम स्थगित करनी पड़ी. मगर भारत सरकार के प्रवक्ता दूसरी ही कहानी कहते हैं. उन के अनुसार नेपाली पक्ष ने यह कहा था कि जनवरी की बैठक के अवसर पर वह लिखित प्रमाण और मानचित्र भी लायेंगे जो इस क्षेत्र को नेपाली सीमा के अंदर सिद्ध करते हैं किंतु उन्होंने इस प्रकार का कोई प्रमाण नहीं दिखाया. वह तो इस के बिना ही सीमांकन करना चाहते थे. इस लिए तीन दिन के बाद वार्त्ता को स्थगित करना पड़ा.

दोनों देशों के अधिकारी यह कहते हैं कि वह मित्रतापूर्वक बातचीत करना चाहते हैं मगर छोटी-सी बात को इतना तूल दिया जा रहा है कि दोनों देशों में प्रतिक्रियावादी तत्त्वों को स्थिति को बिगाड़ने का अवसर मिल जायेगा. वास्तव में नेपाल के एक क़स्बे सीतापुर में तो कुछ लोगों ने भारत विरोधी प्रदर्शन भी किया. पुलिस को शांति बनाये रखने के लिए लाठी प्रहार करना पड़ा. जरूरत तो इस बात की है कि निर्णय तुरंत कर लिया जाये.

केंद्र और राज्य

अपनी-अपनी पुलिस : अपना-अपना प्रतिष्ठान

दो तरह के प्रतिष्ठानों के द्वंद्व में दो तरह की पुलिस का उलझ जाना स्वाभाविक ही है. पिछले हफ़्ते दुर्गापुर में केंद्रीय रिज़र्व पुलिस को गोली चलाने की ज़रूरत आ पड़ी जिस का नतीजा यह हुआ कि संसद् में गृहमंत्री को केंद्रीय रिज़र्व पुलिस की आवश्यकता और भूमिका का स्पष्टीकरण देते हुए केंद्र और राज्य के नाज़ुक प्रश्न पर भी रोशनी डालनी पड़ी. गृहमंत्री यशवंतराव चह्वाण को लोक सभा में अतिशय उदारता के साथ यह कहना पड़ा कि केंद्रीय रिज़र्व पुलिस को किसी भी राज्य पर थोपा नहीं जायेगा और अगर पश्चिम बंगाल उस की ज़रूरत नहीं समझता तो वह वहाँ से वापस बुला ली जायेगी. बल्कि इस से भी आगे जा कर श्री चह्वाण ने, जिन पर पिछले कुछ अर्से से यह आरोप लगाया जा रहा था कि वह ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों को बना नहीं रहने देना चाहते, घोषणा की कि केंद्र पश्चिम बंगाल की 'स्वायत्तता' की इज़्ज़त करता है और उसे और भी मज़बूत करना चाहता है. पश्चिम बंगाल के संयुक्त मोर्चे को केंद्र के विरुद्ध अवसर की तलाश रहती है. दुर्गापुर इस्पात योजना में केंद्रीय रिज़र्व पुलिस ने जैसे ही गोली चलायी पश्चिम बंगाल के उप-मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने इस का विरोध करते हुए कहा कि प्लांट अधिकारियों ने उपद्रव की कोई सूचना राज्य पुलिस को नहीं दी थी. उन्होंने चुनौती दी कि केंद्रीय रिज़र्व पुलिस को दुर्गापुर में बने रहने का कोई अधिकार नहीं है.

स्पष्टीकरण : लोकसभा और राज्यसभा में इस संबंध में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के ज़रिये वामपंथी सदस्यों ने गृहमंत्री से स्पष्टीकरण माँगा और पूछा कि दुर्गापुर में केंद्रीय रिज़र्व पुलिस को किन परिस्थितियों में गोली चलाने की आवश्यकता पड़ी. राज्य गृहमंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल ने राज्यसभा में बताया कि दुर्गापुर योजना के १५० सिक्योरिटी कर्मचारी प्रशासन कार्यालय में चले गये. वे निर्देशक को अपनी शिकायतों के संबंध में एक ज्ञापन देना चाहते थे. उत्तरप्रदेश सशस्त्र पुलिस ने उन्हें निर्देशक के कार्यालय में जाने से रोका. इस पर दोनों के बीच मार-पीट हुई. उत्तरप्रदेश पुलिस पर लोहे की कुर्सियाँ और मेज़ें फेंकी गयीं. इस पर पुलिस ने लाठी चार्ज किया. बाद में कार्यालय के सामने ३००० लोग इकट्ठे हो गये और मोटरगाड़ियों और जीपों में आग लगा दी गयी. उत्तरप्रदेश सशस्त्र पुलिस को आत्मरक्षा में गोली चलानी पड़ी. श्री शुक्ल ने बताया कि उन का वक्तव्य राज्य सरकार से प्राप्त सूचना पर आधारित है. दुर्गापुर इस्पात योजना के अधिकारियों ने पहले राज्य पुलिस की सहायता माँगी थी, जब वह नहीं मिली तब उन्होंने उत्तरप्रदेश सशस्त्र पुलिस को बुलाया.

श्री चह्वाण ने, लोकसभा में इस आरोप का खंडन करते हुए कि केंद्रीय रिज़र्व पुलिस बंगाल सरकार की इच्छा के विरुद्ध वहाँ मौजूद है, कहा कि मुझे तिथि स्मरण नहीं, लेकिन उत्तर प्रदेश सशस्त्र पुलिस वहाँ राज्य सरकार के आग्रह पर ही भेजी गयी थी. राज्यसभा में श्री विद्याचरण शुक्ल ने चुनौती दी कि अगर राज्य सरकारें केंद्रीय प्रतिष्ठानों की रक्षा में असमर्थ होती हैं तो केंद्र सरकार को वहाँ केंद्रीय रिज़र्व पुलिस भेजने का अधिकार है.

अस्पृश्यता

संविधान का उल्लंघन : जगद्गुरु का धर्म-दर्शन

अस्पृश्यता की समाप्ति को संविधान के अनुसार, बुनियादी अधिकारों में से माना गया है. संविधान के भाग ३, अनुच्छेद १७ के अनुसार, 'अस्पृश्यता को समाप्त किया जाता है और किसी भी रूप में उस के व्यवहार का निषेध किया जाता है. 'अस्पृश्यता' के आधार पर किसी भी तरह का विभेद पैदा करने के प्रयत्न को क़ानूनी अपराध माना जाये.' पुरी के शंकराचार्य ने पटना में द्वितीय विश्व हिंदू धर्म सम्मेलन में अस्पृश्यता को हिंदू समाज की बुनियादी आवश्यकता क़रार देते हुए संविधान की घोषणा को पूरी तरह भंग कर दिया और समता को स्वीकार करने वाली भारतीय गणतंत्र की कल्पना को छिन्न-भिन्न करते हुए स्वयं को एक ऐसी बहस में उलझा दिया जिस की परिणतियाँ क़ानूनी हो सकती हैं. शंकराचार्य के वक्तव्य पर राजधानी में बुद्धिजीवियों और राजनेताओं ने

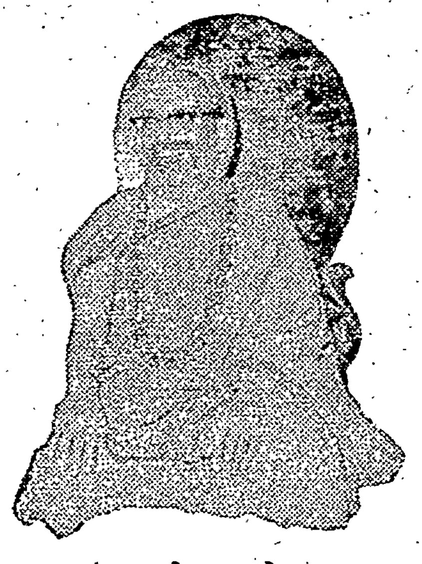

शंकराचार्य : अनुच्छेद १७

आश्चर्य और रोष ज़ाहिर किया.

मध्य युग : पटना में जब शंकराचार्य ने कहा कि कोई भी क़ानून हिंदू समाज को अस्पृश्यता का व्यवहार करने से नहीं रोक सकता तब इस पर हंगामा हुआ और अपना विरोध प्रकट करते हुए कुछ क्रुद्ध नौजवानों ने जगद्गुरु को घेर लिया. युवकों के अलावा कतिपय राजनेताओं ने भी, जो कि सम्मेलन में उपस्थित थे, शंकराचार्य के कथन पर आपत्ति की. हंगामा देर तक चलता रहा जिस का नतीजा यह हुआ कि उद्घाटन अधिवेशन अपनी कार्रवाई पूरी किये बिना समाप्त हो गया. जब शंकराचार्य ने राष्ट्रगान के विरोध में बहिर्गमन किया तब लोगों ने उन को घेर लिया और उन से उन के कथन का स्पष्टीकरण माँगा.

दो दीक्षाएँ : शंकराचार्य के इस अचानक वक्तव्य से उन मंत्रियों और राजनेताओं को आपद्धर्म में पड़ जाना पड़ा जो कि धर्म-निरपेक्षता की शर्तों और हिंदू समाज की आकांक्षाओं के अंतर्विरोध को उलझाने का हौसला रखते हुए सम्मेलन में शामिल हुए थे. अपने स्वागत-भाषण में भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश ब. प्र. सिन्हा ने कहा भी था कि भारत एक धर्म-निरपेक्ष राज्य है और संविधान बिना किसी भेद-भाव के सभी धर्मों को समान महत्त्व देता है. पर्यटनमंत्री डॉ. करणसिंह ने भी अपने भाषण में धर्म-निरपेक्षता को भारतीय गणतंत्र की अनिवार्यता क़रार दिया था. जब डॉ. करणसिंह ने यह कहा कि हिंदू मंदिरों के आचार्यों और पुजारियों को नवजागरण से दीक्षा लेनी चाहिए तब शंकराचार्य ने अपने को अपना क्रोध रोक सकने में असमर्थ पाया. उन्होंने कहा कि मंत्रियों को सनातन धर्म की दीक्षा भी दी जानी चाहिए. राष्ट्रगान का विरोध करते हुए उन्होंने माइक्रोफ़ोन अपने हाथों में ले लिया और 'वंदे मातरम्' का नारा लगाया. शंकराचार्य

संपादकीय

पाकिस्तान और हम

पाकिस्तान पर सैनिक शासन ठोंक कर सेना ने छटपटाती हुई जनता से राजनीति के वे साधन भी खींच लिये हैं जो अय्यूब देने को तैयार दिख रहे थे और वे कमियाँ पूरी कर दी हैं जो अय्यूब की तानाशाही में थी. परिवर्तन की माँग के सामने अडिग खड़े रहने के लिए पाकिस्तान के सत्ताधारी ने संपूर्ण समाज को जड़ कर दिया है.

कुछ लोग—और ऐसे भारत में भी हैं—यह सोच कर संतुष्ट हैं कि सैनिक शासन शांति और व्यवस्था स्थापित कर के भुट्टो और भासानी के चीन समर्थक उपद्रव को कील देगा. एक तो यह धारणा भ्रांति है : विदेशी घुसपैठ के लिए छोटे देशों की सैनिक तानाशाहियाँ हमेशा हलवा साबित हुई हैं और पाकिस्तान की भी देर सवेर होंगी : दूसरे यह भी न भूलना चाहिए कि भुट्टो और भासानी याह्या खाँ से आगे चल कर समझौते करा सकते हैं क्यों कि इन्हीं दोनों के उपद्रव ने याह्या खाँ को अय्यूब को दबोच लेने का अवसर दिया था.

दूसरे, यह धारणा भ्रांति ही नहीं दासदृष्टि भी है. समाज के अपने भविष्य की कल्पना न कर के बड़ी विदेशी ताक़तों में से किसी एक की कृपा या कोप से भविष्य की अटकल लगाने वाले ग़ुलाम हमारे राजनैतिक ढाँचे की हर चूल में बसे हुए हैं. जहाँ किसी विदेशी प्रभु से दबती न हो वहाँ दूर की घटनाएं इन में सहसा आत्मीयता का संगीत जगा देती हैं. परंतु भारतीय भूखंड के एक हिस्से में इतिहास को खतरनाक मोड़ देने वाला कांड ये निहायत मुंशियाने ढंग से पाकिस्तान का घरेलू मामला कह कर टाल सकते हैं. पाकिस्तान में पिछले दिनों जो हो रहा था वह किसी प्रकार भी पाकिस्तान का निरा घरेलू मामला नही था : वह विभाजन के बाद की विकृत राजनीति से रुग्ण संपूर्ण भारतीय भू-खंड के राजतंत्र की सड़ांध के विरुद्ध अभियान था. पाकिस्तान में पूर्व और पश्चिम की परस्पर दुस्साध्य स्थिति भारतीय भू-खंड के उस नक़ली विभाजन का ही परिणाम है जिस ने जब पाकिस्तान को काट कर अलग किया तभी उसे दो टुकड़ों में बाँट भी दिया. यही विभाजन की प्रक्रिया की प्रकृति है और यह प्रकृति पाकिस्तान ही नहीं भारत के राष्ट्रीय आकार को भी भीतर ही भीतर काट रही है. अवश्य भारत और पाकिस्तान में स्थितियों का अंतर बड़ा है. एक तो भारत एक विशालतर भौगोलिक इकाई है जिस से उस की टूट एक साथ समूची दिखाई नहीं देती. दूसरे स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास का शेषांश भी भारत में पाकिस्तान की अपेक्षा अधिक था और आज भी है जिस से यहाँ सेना तख़्त पलटने में पाकिस्तान जितनी समर्थ नहीं है. किंतु इस से दोनों देशों के यहाँ राजनैतिक तंत्र को बदलने की मौलिक आकांक्षा पर कोई असर नहीं पड़ता; सिवाय इस के कि भारत में उस के विकास और दमन दोनों के लिए अभी लोकतंत्रीय साधन कमोवेश मौजूद हैं. बल्कि दोनों में समानता के लक्षण अधिक महत्त्वपूर्ण हैं. दोनों भू-खंडों में सर्वोच्च नेतृत्व संकट में है और समता और समृद्धि, अपनी भाषा और अपनी संस्कृति की लड़ाइयाँ या तो नेतृत्व-विहीन हो चुकी हैं या उग्र उत्पात को सैद्धांतिक विद्रोह से अधिक आकर्षक बना कर पेश करने वाली विदेशी शक्तियों के हाथ में चली गयी हैं. यदि पाकिस्तान में जन विद्रोह को भुट्टो और भासानी ने भटकाया है तो भारत में इस समय नाटकीय विद्रोह हो रहे हैं. वे या तो निजी लतियाव हैं या राज्यतंत्र को बदल कर नहीं बल्कि चकनाचूर कर बड़ी शक्तियों का भोग्य बनने को छोड़ देने वाली साजिशें हैं. इस नाटक और साजिश में केंद्रीय सत्ताधारी नेतृत्व बड़े पैमाने पर लेकिन छिपे-छिपे हिस्सा ले रहा है. वह एक ओर कम्युनिस्ट वामपंथी से अपने लिए १९७२ की मुहीम में समर्थन जुटाने की फ़िराक में है. दूसरी ओर खुद अपने दल की दिशाहीन भोग लिप्सा के कारण समाजवाद के अपने स्वांगों में कम्युनिस्टों का निर्देशन स्वीकार करता है. वह वर्त्तमान लोकतंत्रीय संस्थाओं में समाजवादी परिवर्त्तनों का भार वहन करने योग्य शक्ति पैदा करने के बजाय लूली संस्थाओं से टूटते देश को थामे रखने की खुशफ़हमी में पड़ा हुआ है और अपने को बनाये रखने के लिए भारत का और भी खंडित रूप सहर्ष स्वीकार कर सकता है.

उधर पाकिस्तान की नियति निश्चित रूप से और अधिक खंडित होने की है. थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाये कि पाकिस्तान की वह वास्तविक जन-आकांक्षा जो भुट्टो और भासानी के राष्ट्र-विरोधी प्रयत्नों को कील सकती है सैनिक शासन का सब से निर्दय शिकार नही बनेगी तो भी हिंद-पाक बँटवारे का नक़ली आधार बनाये रखते हुए संपूर्ण पाकिस्तान में पूर्व बंगाल को समुचित स्थान देना संभव नहीं. बलपूर्वक जकड़ रखना भी संभव नहीं. केवल अलग कर देना ही संभव है. दोनों देशों की वर्त्तमान सरकारें न तो यह विडंबना समझने और कोई सही ऐतिहासिक निर्णय करने में समर्थ हैं और न पुराने ग़लत ऐतिहासिक निर्णय की प्रक्रिया आगे बढ़ा कर स्वयं सुरक्षित ही रह सकती हैं. एक दूसरे को दोष देने की उन की नीतियाँ दलदल में धंसते जाते व्यक्ति की छटपटाहट जैसी हैं और यह दलदल एशिया में बड़ी विदेशी शक्तियों के अखाड़े का दलदल हैं. सैनिक शासन के बाद पाकिस्तान रेडियो के हास्यास्पद भारत-विरोधी प्रचार में कोई कमी नहीं आयी है. भारत सरकार ऐसा प्रचार तो नही करती पर इसे या पाकिस्तान सरकार के ऐसे ही तनातनी खेज कामों को अंतिम लक्ष्य बना कर राजनीति करती है और भारतीय मानस को गहरे और मौलिक प्रश्नों पर जाने से रोकती है. प्रकारांतर से कुछ लोग यह भी चाहते हैं कि भारत में बचे हुए मुसलमान यहाँ से चले जायें. समय आ गया है कि वे पाकिस्तान की हाल की घटनाओं से सबक लें कि यदि भारत के मुसलमान वहाँ चले भी जायेंगे तो भारत का पाप नहीं कटेगा. बल्कि पाकिस्तान की और भारत की समस्याओं में अंतर कम और उन्हें मिल कर सुलझाने का मन और भी कम होता जायेगा और इस गतिरोध की घुटन कुछ और गहरी हो उठेगी.

अगले १०-२० वर्ष में भारतीय भू-खंड की समस्या का कोई स्वस्थ जन-हितकारी हल निकल सकता है तो वह दोनों खंडों के सांस्कृतिक और भौगोलिक-आर्थिक अंतरावलंबन के आधार पर ही निकल सकता है. अक्सर हिंद-पाक संघ की बात उठायी गयी है. वह किस हद तक संभव होगी, यह किताबी बहसों पर नही राजनैतिक जीवन के निर्माताओं पर निर्भर है. किंतु वह संभव हो या न हो यदि इतिहास के प्रवाह में भारत और पाकिस्तान की जनतांत्रिक हलचलों को समानांतर नही बल्कि समान धाराओं के रूप में देखते रहने का आग्रह हम निराश हो कर छोड़ बैठेंगे तो भविष्य का मार्ग निश्चित है : वह बँटवारे के पहले जैसी दासता की ओर मुड़ जायेगा.

के व्यवहार से क्षुब्ध हो कर भीड़ ने उन्हें घेर लिया और उन के विरोध में नारे लगाये. शंकराचार्य के अनुयायी बड़ी मुश्किल से उन्हें उन की कार तक पहुँचा पाये. शंकराचार्य के व्यवहार और वक्तव्य ने उन के समर्थकों और अनुयायियों को भी उलझन में डाल दिया.

नौसेना

बल-सीमा के खुले पाट

हिंद महासागर तथा उस के आसपास के क्षेत्रों से सन् १९७१ में ब्रितानी सैनिकों की वापसी और इस संभावित रिक्तता की पूर्ति के लिए रूसी आणविक पनडुब्बियों की गतिविधियों की आशंका से उत्तेजित अनेक सदस्यों के तीखे प्रश्नों का उत्तर देते हुए लोकसभा में विदेशमंत्री दिनेश सिंह ने कहा कि हिंद महासागर में अपने हितों की देखरेख के लिए भारत अपने पड़ोसी राष्ट्रों से किसी प्रकार की व्यवस्था या समझौते की पहल नहीं कर रहा है. और फिर अपनी बात को और अधिक वज़नदार जतलाने के अंदाज़ में उन्होंने कहा कि रूस सहित अन्य सभी राष्ट्रों को स्पष्ट रूप से बतला दिया गया है कि भारत हिंद महासागर को आणविक अस्त्रों या किसी प्रकार के संघर्ष का केंद्र बनने से मुक्त रखना चाहता है. एक सदस्य द्वारा कुरेदे जाने पर विदेशमंत्री ने दो-टूक लहजे में यह भी कहा कि हमें अपने अधिकार-क्षेत्र के समुद्र में किसी रूसी पनडुब्बी की गतिविधि की कोई सूचना

रीयर एडमिरल नीलकंठ कृष्णन्

वाइस एडमिरल बलवंतसिंह

नहीं मिली है. हिंद महासागर पर भारत का प्रभुत्व नहीं है अतः इस क्षेत्र में किसी भी राष्ट्र की जल-सेना के प्रवेश पर प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता बशर्ते कि संबंधित राष्ट्र समुद्रों से संबंधित मौजूदा अंतरराष्ट्रीय क़ानून का उल्लंघन नहीं कर रहा हो. भारत को केवल अपने प्रभुत्व के जल-क्षेत्र में किसी देश की जल-सेना के प्रवेश के बारे में ही सचेष्ट रहने की ज़रूरत है और अपने जल-क्षेत्र में स्वहित की रक्षा के लि भारत इतना ही कर सकता है कि वह अपनी सैन्य-शक्ति सुदृढ़ करे. अपने साधनों की सीमा के भीतर भारत इस दिशा में सतत प्रयत्नशील है. विदेशमंत्री ने हिंद महासागर के निकटवर्ती क्षेत्रों में रूसी जल-सेना की गतिविधियों से संबंधित पैने प्रश्नों से कतरा कर बताया कि हाल ही में द्विपक्षीय वार्ता के दौरान फ्रांस से कहा गया है कि वह भारतीय जल-क्षेत्र में अपने आणविक शस्त्रास्त्र न भेजे.

खोखली धारणा : वस्तुतः यह कह कर कि हमें हिंद महासागर के निकटवर्ती क्षेत्रों में किसी देश की जलसेना की घुसपैठ के बारे में कोई सूचना नहीं मिली है एक ओर तो विदेशमंत्री ने अपनी गफ़लत का परिचय दिया है और दूसरी ओर यह कह कर कि भारत हिंद महासागर को आणविक हथियारों से मुक्त रखना चाहता है, उन्होंने सामर्थ्यहीनता से उपजी खोखली धारणा का इज़हार किया है. यही वजह है कि विदेशमंत्री के सामर्थ्यहीन उत्तर से लोकसभा के सदस्य संतुष्ट नहीं हो पाये और उन्होंने आग्रह किया कि इस संबंध में भारत एक निरपेक्ष-दृष्टा की भूमिका नहीं निभा सकता क्यों कि ब्रिटेन और अमेरिका के इस क्षेत्र से हट जाने के बाद रूस और चीन की घुसपैठ शुरू हो जायेगी. अतः अपने हितों की रक्षा के लिए भारत को ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेसिया, सिंगापुर, मलयेसिया तथा अन्य पड़ोसी राष्ट्रों से मिल कर यथाशीघ्र समुचित व्यवस्था कर लेनी चाहिए.

लोकसभा के सदस्यों की शंका से तो विदेश मंत्री निपट लिये हैं किंतु कुछ ही रोज पूर्व ज्ञात हुआ है कि रूसी जल-सेना की एक टुकड़ी, जिस में तीन पनडुब्बियाँ हैं, श्रीलंका के दक्षिण में स्थित हिक्काडुआ क्षेत्र में गश्त लगा रही है. रूसी सैनिक लोगों में प्रचार-पत्र और बिल्ले बाँट रहे हैं, जिन में साम्यवादी प्रतीक हँसिया और हथौड़ा खुदे हैं. रूसी जलसेना की इस टुकड़ी की उपस्थिति की सूचना सबसे पहले मछियारों और पुलिस के गश्ती-दलों ने दी थी और बाद में हवाई सर्वेक्षण से इस की पुष्टि भी की गयी. श्रीलंका के प्रतिरक्षा और विदेशमंत्रालय इस सिलसिले में कोलंबो में रूसी राजदूत से बातचीत कर रहे हैं.

भारत और पड़ोसी : यह तो समय ही बतलायेगा कि अपनी जल-सीमा में रूस और चीन के घुसपैठ की पक्की सूचना मिलने के बावजूद भी भारत क्या रुख़ अपनायेगा किंतु ऑस्ट्रेलिया के प्रधानमंत्री श्री गोर्टन ने कहा है कि १९७१ में ब्रितानी सेना की वापसी के बाद मलयेसिया और सिंगापुर में आस्ट्रेलिया अपनी जल, स्थल और नभ सेना तैनात कर सकता है. उन्होंने कहा कि एक तरीका यह भी हो सकता है कि ब्रिटेन की तरह आस्ट्रेलिया भी मलयेसिया और सिंगापुर को यह आश्वासन दे कि ज़रूरत पड़ने पर वह उन्हें सैनिक सहायता देगा किंतु सेना की उपस्थिति इस आश्वासन से अधिक प्रभावशाली सिद्ध होगी. जहाँ तक भारत का सवाल है यहाँ बहुत समय तक सागर तट को अभेद्य सीमा समझ कर उदासीनता का रुख़ अपनाया जाता रहा है मगर अब इस दिशा में कुछ-कुछ जागृति दिखाई दे रही है जो इस मान्यता की सूरत में सामने आ रही है जिस के कारण नौसेना को प्रतिरक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है. हाल ही में भारत सरकार की विज्ञप्ति के अनुसार नौसेना मुख्यालय में कुछ प्रशासनिक सुधार करने का निश्चय किया गया है. इस के अनुसार नौसेना के उपाध्यक्ष के पद को रियर एडमिरल से ऊँचा उठा कर वाइस एडमिरल कर दिया गया है. नीलकंठ कृष्णन् भारत के पहले वाइस एडमिरल होंगे. इस के अतिरिक्त मुख्य स्टाफ अफसर का एक नया पद घोषित किया गया जिसे सैन्यतंत्र का अध्यक्ष कहा जायेगा.

इधर ब्रिटेन के एक समाचारपत्र 'डेली एक्सप्रेस' में भी इस आशय का एक समाचार प्रकाशित हुआ है कि राष्ट्रपति नासिर ने यह संकेत दिया है कि यदि उन्हें पर्याप्त आर्थिक सहायता या ऋण नहीं मिल पाया तो वह स्वेज नहर रूस को पट्टे पर दे देंगे. अपने एक विश्वस्त सूत्र का हवाला देते हुए डेली एक्सप्रेस के संवाददाता ने यह संभावना प्रकट की है कि यदि स्वेज नहर रूस को पट्टे पर दे दिया गया तो इस्राइल के लिए इस जल-मार्ग पर नियंत्रण क़ायम करना मुश्किल हो जायेगा क्यों कि अमेरिका ऐसी स्थिति में कोई भी खतरनाक क़दम उठाने से बचने के लिए उस पर दबाव डालेगा.

विधेयक

अपने से उदासीन

१९६७ के पहले कांग्रेस पार्टी अपने सिर-तोड़ बहुमत के कारण स्वयं से उदासीन थी, १९६७ के बाद अपने घटे हुए बहुमत के कारण अपने से विमुख है. शायद उस की नाराज़ी अपने आप से ही है वरना कोई कारण नहीं था कि असम पुनर्गठन विधेयक पास न हो पाता. जब लोकसभा में विधेयक के द्वितीय पाठ पर मतदान हुआ तो विरोधी पार्टियों के समर्थन के बावजूद विधेयक को आवश्यक बहुमत प्राप्त नहीं हो सका और क्षण भर के लिए सरकार लड़खड़ा गयी. गृहमंत्री श्री चव्हाण को यह घोषणा करनी पड़ी कि विधेयक संसद् में दोबारा पेश किया जायेगा और उस पर दोबारा मतदान होगा.

दूसरी बार मतदान की आवश्यकता इस लिए पैदा हो गयी कि जिस समय मतदान हो रहा था अनेक कांग्रेसी सदस्य सदन में उपस्थित नहीं थे. इस महत्त्वपूर्ण विधेयक पर मतदान के समय जो लोग दिल्ली से बाहर थे उन में से कुछ मंत्री भी थे. अन्नमंत्री श्री जगजीवनराम और रेल मंत्रालय में राज्यमंत्री श्री परिमल घोष दिल्ली से बाहर थे लेकिन कुछ मंत्री दिल्ली में रह कर भी सदन में उपस्थित न हो सके जैसे कि विदेशमंत्रालय में उपमंत्री श्री सुरेंद्रपाल सिंह, राज्य अन्नमंत्री श्री अन्नासाहब शिंदे, भारी इंजीनियरिंग मंत्रालय में उपमंत्री श्री शफ़ी कुरेशी, श्रम

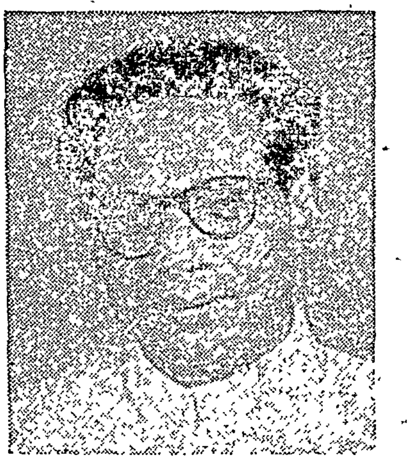

के. रघुरमय्या : नैतिकता का प्रमाण (?)

मंत्रालय में उपमंत्री श्री ज़मीर और विधि मंत्रालय में उपमंत्री श्री सलीम मोहम्मद यूनिस, और तो और, प्रधानमंत्री के सब से बड़े सलाहकार विदेशमंत्री श्री दिनेशसिंह भी मतदान के समय कहीं और थे.

अंदरूनी गुटबंदियाँ : कांग्रेस पार्टी के उदासीन सदस्यों और मंत्रियों की विमुखता का परिणाम यह हुआ कि संसदीय कार्यमंत्री श्री कोटा रघुरमय्या और पार्टी के दो उप सचेतकों श्री पार्थसारथी और श्री द्वैपायन सेन को सदस्य इकट्ठा न कर पाने की अपनी विफलता से दुखी हो कर त्यागपत्र देना पड़ा. बाद में प्रधानमंत्री ने उन का इस्तीफ़ा मंजूर नहीं किया क्यों कि प्रधानमंत्री तथा उपप्रधान मंत्री की यह राय थी कि संसदीय कार्यमंत्री और पार्टी सचेतकों ने अपनी ओर से बहुमत जुटाने की पूरी कोशिश की थी लेकिन अगर वे इस में सफल नहीं हुए तो वह उन का क़सूर नहीं है. श्री कोटा रघुरमय्या ने संवाददाताओं को बताया कि इस महत्त्वपूर्ण विधेयक पर मतदान के समय उपस्थित होने के लिए पार्टी के सभी सदस्यों को दो-दो बार लिखित आदेश भेजे गये थे. जो सदस्य दिल्ली के बाहर थे उन को तार द्वारा आदेश दिया गया था कि वे मतदान के समय उपस्थित रहें लेकिन तब भी कतिपय सदस्यों ने आवश्यक दिलचस्पी नहीं दिखायी और विधेयक गिर गया. प्रधानमंत्री ने इस पर गहरी चिंता व्यक्त की. यह चिंता इस संदर्भ में और भी बढ़ जाती है कि पिछले महीने भर से पार्टी के भीतर अंदरूनी गुटबंदियाँ सक्रिय हैं और उखाड़-पछाड़ जारी है. सदस्यों की अनुपस्थिति ने नेताओं को सशंकित कर दिया है लेकिन प्रधानमंत्री इस विषय पर केवल लाल-पीली हो कर रह गयीं, क्यों कि अनुपस्थितों में उन के कुछ सलाहकार भी थे. अगर पार्टी के भीतर का विरोधी शिविर मतदान के समय गैर-हाजिर होता तो शायद मामला और रंग लाता.

हास्यास्पद स्थिति : यह नहीं कि लोकसभा में इस घटना को ले कर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई. विधेयक के पाठ के समय स्वतंत्र पार्टी, प्रजा समाजवादी पार्टी और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी विधेयक का समर्थन कर रही थीं लेकिन जैसे ही मतदान हुआ और उस के लिए आवश्यक बहुमत नहीं जुट सका, सदन की फ़िज़ा बदल गयी और विरोधी पार्टियाँ सरकार से त्यागपत्र की माँग करने लगीं. थोड़ी देर पहले जो सदस्य इस मामले पर सरकार की पीठ थपथपा रहे थे वे उन से गद्दी से उतरने का आग्रह करने लगे. *मामला गंभीर ज़रूर था* लेकिन उस से अधिक हास्यास्पद था. गृहमंत्री ने अपने को इतनी विचित्र स्थिति में घिरा हुआ शायद ही कभी पाया हो. उन्होंने देखा कि स्थिति मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त की है. सारी घटना कांग्रेस पार्टी की वर्तमान मनःस्थिति और भीतरी परिस्थिति का परिचय देती है जहाँ मंत्रियों और सदस्यों को संसदीय कार्यों में जितनी दिलचस्पी है उस से अधिक पार्टी की भीतरी राजनीति में है. यह अकारण नहीं है. पिछले कुछ समय से संसद में सब से आकर्षक स्थान सेंट्रल हॉल हो गया है जहाँ मतदान की घंटियों से अधिक शोर भीतरी राजनीति का होता है.

राजनैतिक दल

भारतीय क्रांति दल : शांति पर्व का

राजधानी के गर्म वातावरण में पूरे दो दिन की सरगर्म बहस के दौरान भारतीय क्रांति दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने मध्यावधि चुनाव के बाद अस्तित्व में आयी राजनैतिक स्थिति से साक्षात्कार करने की कोशिश की.

चरण सिंह : उत्साह के आइने में

कार्यकारिणी ने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि इधर विघटन की शक्तियों की तुलना में राष्ट्रवाद और संगठन की शक्तियाँ क्षीण हुई हैं. सत्ता पर कांग्रेस की पकड़ को किस्तों में शिथिल होता घोषित किया गया और लोकतंत्र तथा राष्ट्रवाद में विश्वास करने वाले सभी दलों से अपील की गयी कि वे एक सामूहिक मंच का रूप ले कर कांग्रेस का सशक्त विकल्प प्रस्तुत करने की कोशिश करें. राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने सर्वसम्मति से **चौधरी चरण सिंह** को *महामाया प्रसाद सिंह के स्थान पर* दल का अध्यक्ष नियुक्त किया और बिहार के उन चार बाग़ी विधायकों का निष्कासन-आदेश रद्द कर दिया जिन्होंने पार्टी के आदेशों की अवहेलना कर के न केवल बिहार में सरदार हरिहर सिंह की कांग्रेसी सरकार का समर्थन किया था बल्कि अपने तत्कालीन अध्यक्ष महामाया प्रसाद सिंह के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव भी पारित किया था. पार्टी के नये अध्यक्ष चौधरी चरण सिंह ने राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्यों को अपने उन प्रयासों से अवगत कराया जिन का संबंध पार्टी के जनाधार को सुदृढ़ करने से है. इस सिलसिले में उन्होंने उत्तरप्रदेश में एक उप-समिति के गठन की सूचना दी जो युवकों के लिए एक कार्यक्रम तैयार करने में जुटी हुई है और जिस की रिपोर्ट पर लखनऊ में १४ अप्रैल को विचार किया जायेगा.

फ़ैसला और फ़ासला : राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने पिछले सितंबर में विघटित बंगाल शाखा को पुनर्जीवित करने की जिम्मेदारी पार्टी के महामंत्री श्री डी० के० कुंटे को सौंप दी. गत वर्ष सितंबर में प्रदेश शाखा के तत्कालीन नेता श्री अजय मुखर्जी और पार्टी के केंद्रीय नेताओं में गहरे और बुनियादी मतभेद के कारण बंगाल शाखा को भंग करना पड़ा था. कार्यकारिणी के कुछ सदस्यों ने नये फ़ैसले और बंगाल के राजनैतिक यथार्थ के बीच के फ़ासले का अनुभव ज़रूर किया लेकिन मध्यावधि चुनाव में उत्तरप्रदेश में पार्टी की सनसनीखेज़-सी विजय से उत्पन्न उत्साह ने फ़ैसले और फ़ासले के बीच की दूरी कम कर दी. बहुत संभव है कि जून के महीने में बिहार या ओडिसा में आयोजित किये जा रहे पार्टी के वार्षिक सम्मेलन में सामयिक विजय और कार्यक्रम पर आधारित स्थायी विजय के बीच की दूरी को समझने का प्रयास किया जाये.

दिनमान
उद्योग अंक
२७ अप्रैल '६९
भारत और विदेशों के उद्योगों का
विशेष सर्वेक्षण

प्रदेश

मध्यप्रदेश

निर्वाचन के बाद

अंततः श्यामाचरण शुक्ल ने मुख्यमंत्री की कुर्सी ले लेने में सफलता प्राप्त कर ली. यदि द्वारका प्रसाद मिश्र उच्च न्यायालय द्वारा विधानसभा की सदस्यता के अयोग्य घोषित न कर दिये गये होते तो मुख्यमंत्री निश्चित रूप से वही बनते. श्री शुक्ल के मुख्यमंत्री चुने जाने पर अपने पुराने विरोध के बावजूद उन्होंने कहा, "यदि श्यामाचरण प्रदेश को एक कुशल और स्थायी शासन दे सकेंगे तो मैं अपनी भूल स्वीकार कर लूंगा. वास्तविकता यह है कि प्रदेश के ज्यादातर लोग यह महसूस करने लगे थे कि शासन का नेतृत्व युवा वर्ग के हाथ में जाना चाहिए. बड़े नेताओं को बरगद के वृक्ष की तरह अपने नीचे की बाढ़ को अब अधिक नहीं रोकना चाहिए.

सर्व-सम्मति का ढोंग : परंपरानुसार केंद्र की तरफ़ से जगजीवन राम को नेता पद का चुनाव कराने के लिए भोपाल भेजा गया. उन्होंने बहुत प्रयत्न किया कि सर्व-सम्मत चुनाव हो जाये पर उस में सफलता नहीं मिली. उन्होंने राय जानने के लिए मतदान कराया. कांग्रेस के १७० विधायकों में से १५९ बैठक में उपस्थित थे. गोविंद नारायण सिंह और उन के १८ साथी तटस्थ रहे. द्वारकाप्रसाद मिश्र ने मतदान नहीं किया. १३९ विधायकों के मत की गणना के बाद जगजीवन राम ने श्यामाचरण शुक्ल को विजयी बताया. तब कुंजी लाल दुबे ने श्यामाचरण शुक्ल का नाम प्रस्तावित कर के उन के सर्व-सम्मत नेता चुन लिये जाने की रस्मी घोषणा की. ग़ैर-सरकारी तरीक़े से पता चला है कि श्री शुक्ल को ९१ और उन के परोक्ष प्रतिद्वंद्वी श्री दुबे को ४८ मत प्राप्त हुए. संविद छोड़ कर कांग्रेस में आने वाले अधिसंख्य विधायकों ने श्री शुक्ल का समर्थन किया.

नेता के चुनाव में काफ़ी दौड़-धूप हुई, कड़वाहट पैदा हुई तथा दलीय गुटबंदी भी प्रकाश में आयी. निर्वाचन होते ही श्री शुक्ल ने द्वारका प्रसाद मिश्र का चरण-स्पर्श किया और दूसरे दिन उन की पत्नी ने श्री मिश्र का आशीर्वाद माँगा. श्री शुक्ल ने मुख्यमंत्री और श्री दुबे ने मंत्री पद की शपथ ली.

नया खून और समस्याएँ : युवा खून को प्रदेश का नेतृत्व करने का अवसर मिला है. मुख्यमंत्री चुने जाने के तत्काल बाद ही श्री शुक्ल को बधाई के ढाई हज़ार से ऊपर तार मिले और विभिन्न क्षेत्रों में उन के निर्वाचन का स्वागत किया गया. इस समय तक प्रदेश में भ्रष्टाचार पक्षपात और कुशासन अपनी अंतिम सीमा तक पहुँच चुका है. प्रशासन का मनोबल भी काफ़ी गिर चुका है. नये मुख्यमंत्री को अनेक कठोर और अप्रिय निर्णय लेने होंगे. उस स्थिति में उन्हें हिचकिचाहट भी हो सकती है हालांकि उन्होंने कहा है कि मैं अपनी भरपूर शक्ति से प्रदेश की स्थिति सुधारने की पूरी कोशिश करूँगा. इस समय मंत्रिमंडल के गठन की भी समस्या है. अभी सिर्फ़ दो मंत्री हैं. श्री शुक्ल स्वयं और श्री दुबे. जुलाई '६७ में मिश्र मंत्रिमंडल में जितने लोग मंत्री थे वे इस वक़्त भी मंत्रिपद के दावेदार हैं. जाहिर है कि सब को ले पाना श्री शुक्ल के लिए संभव नहीं होगा. बहुत से नये दावेदार भी हैं. उन में वे लोग मुख्य हैं जो मिश्र-शुक्ल संघर्ष में शुक्ल के प्रति वफ़ादार रहे. विभिन्न क्षेत्रों और वर्गों के दावे अपनी जगह पर हैं. हरिजन-आदिवासी गुट का एक प्रतिनिधि मंडल भी उन से मिला था. उस ने विधानसभा में अपनी संख्या के अनुपात से मंत्रिमंडल में भी प्रतिनिधित्व देने की माँग की है. इसी के साथ प्रगतिशील विधायक दल को भी प्रतिनिधित्व देने का प्रश्न है. संविद के पतन की भूमिका इस दल के निर्माण के साथ ही लिखी जानी शुरू हुई. श्री मिश्र और श्री शुक्ल दोनों ही कह चुके हैं कि नयी सरकार में इस दल को शामिल किया जायेगा. यद्यपि यह सच है कि कांग्रेस को इस समय २९७ विधायकों के सदन में १७१ स्थान प्राप्त हो चुका है और उस का स्पष्ट बहुमत भी हो चुका है मगर इस के बावजूद श्री शुक्ल उस दल को मिला कर ही सरकार बनाना चाहते हैं. २७ मार्च को ही अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने इस आशय का वक्तव्य भी दिया था कि चूंकि कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त है इसलिए उसे मिली-जुली सरकार बनाने की आवश्यकता नहीं है. **दिनमान** के प्रतिनिधि ने जब श्यामाचरण शुक्ल का ध्यान इस ओर दिलाया तो उन्होंने कहा कि कांग्रेस ने "फ़िलहाल" शब्द का प्रयोग किया है. उन का कहना था कि निजलिंगप्पा को वस्तुस्थिति का पता नहीं है. उन्होंने यह भी आशा व्यक्त की कि अंततः हाई कमान मिली-जुली सरकार बनाने की अनुमति देगा. ज्यादातर लोगों का खयाल है कि प्रगतिशील विधायक दल को जो आश्वासन दिया गया था उस की पूर्ति होनी चाहिए. अन्यथा कांग्रेस की प्रतिष्ठा जो इस वक़्त बनती-सी दिखाई देती है पुनः गिरने लगेगी. भविष्य में कोई उस के आश्वासन पर विश्वास नहीं करेगा.

कुंजीलाल दुबे

पहला कदम : श्री शुक्ल ने मुख्यमंत्री बनते ही लगान माफ़ी समाप्त कर के संविद के प्रमुख सूत्र और उस की उपलब्धि को मटियामेट कर दिया. द्वारकाप्रसाद मिश्र ने लगान माफ़ी की सीमा साढ़े ७ एकड़ रखी थी अब उसे बढ़ा कर १० एकड़ कर दिया गया है. संविद सरकार ने सारी लगान माफ़ कर के भूमि-विकास कर लगाने की घोषणा की थी. कांग्रेस के नये शासन ने अब इस कर को समाप्त कर दिया. इस तरह टोडरमल के समय से चली आ रही भू-राजस्व की जिस परंपरा को संविद सरकार ने समाप्त कर दिया था उसे कांग्रेस ने पुनर्जीवित कर दिया. संविद शासन ने मार्ग-कर भी लगाया था, कांग्रेस ने उसे भी खत्म कर दिया.

मुख्यमंत्री होने पर श्री शुक्ल ने लंबे-चौड़े वायदे न कर के अक्लमंदी का परिचय दिया है. उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि प्रशासन इतना बिगड़ चुका है कि उसे सुधारने में काफ़ी समय लगेगा. उन्होंने कहा कि "भ्रष्टाचार की शिकायत प्राप्त होने पर कांग्रेसी सरकार उस की सच्चाई के साथ जाँच करेगी.

श्यामाचरण शुक्ल (बायें) और निर्जलिंगप्पा : आशीर्वाद

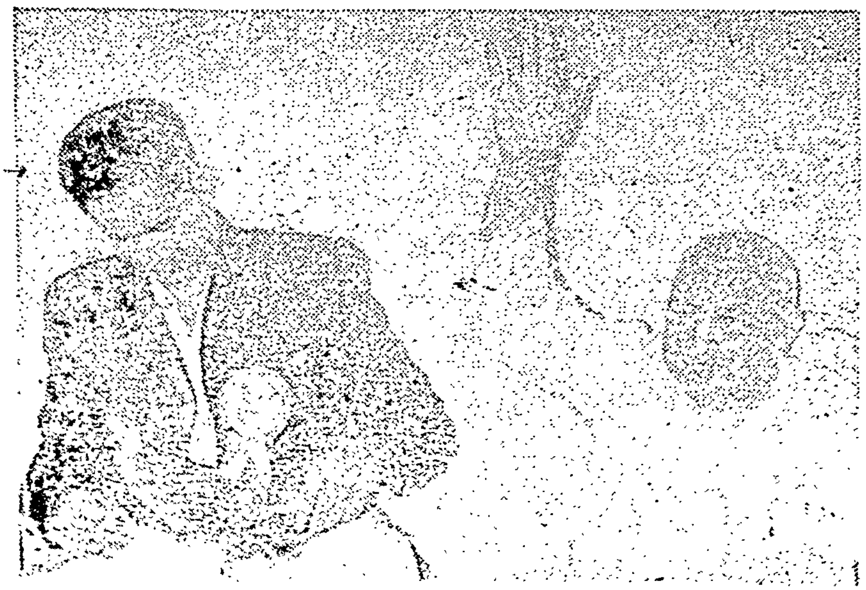

गुजरात

अविश्वास प्रस्ताव : किस भाव ?

पिछले दिनों गुजरात विधानसभा में एक हलचल उत्पन्न करने के लिए विधानसभा के बाहर कारों की एक दौड़ हुई लेकिन उस दौड़ का कोई बहुत सनसनीखेज नतीजा नहीं निकला. स्वतंत्र दल ने कुछ कांग्रेसी विधायकों को अपनी ओर मिलाने की कोशिशें कीं. स्वतंत्र पक्ष के एक अभियान-प्रिय विधायक ने विधायकों के आवास से एक कांग्रेसी विधायक को आधी रात के बाद उठाया और इस कार का पीछा कांग्रेस पक्ष के सचेतक इंदुभाई की कार ने किया. कारों की यह दौड़ विपक्षी नेता बारिया नरेश जयदीप सिंह के निवासस्थान तक हुई. विपक्षी कार भीतर चली गयी और कांग्रेसी कार बाहर प्रतीक्षा करती रही, जब तक उस कांग्रेसी विधायक को ले जाने वाली कार बाहर न आ गयी. उस समय रात के ढाई बजे थे. दूसरे दिन विपक्ष द्वारा पेश किये गये अविश्वास प्रस्ताव को ६२ के विरुद्ध ७८ मतों से ठुकरा दिया गया. हितेंद्र देसाई की कांग्रेसी सरकार के प्रति १९६७ के आम चुनाव के बाद पुनः विश्वास व्यक्त किया गया. सभी कांग्रेसी विधायकों ने मतदान किया. तीन निर्दलीय सदस्यों ने मतदान नहीं किया. विपक्ष के सदन के उपाध्यक्ष मतदान के समय उपस्थित ही नहीं रहे. कांग्रेसी पक्ष एकमत है और विपक्ष विभक्त, अविश्वास प्रस्ताव के दौरान यह बात उभर कर सामने आयी. अविश्वास का प्रस्ताव भी विपक्षी नेता ने नहीं वरन् एच. एम. पटेल ने पेश किया. प्रस्ताव में कहा गया था कि गुजरात की समस्याओं को हल करने में सरकार विफल रही है. वह राज्य को कांग्रेस पार्टी की संपत्ति समझती है.

अविश्वास का प्रस्ताव श्री पटेल ने अंग्रेज़ी में पेश किया. बहस का उत्तर भी अंग्रेज़ी में ही दिया. प्रस्ताव के ठुकरा दिये जाने पर वह काफ़ी तैश में भी आ गये. पंचायत मंत्री ठाकोर भाई देसाई ने कहा कि स्वतंत्र दल को १९६७ के आम चुनाव के पूर्व गुजरात में सत्ता हासिल करने की उम्मीद थी. इन में विफल होने पर अब वह अतिवादी प्रयत्नों पर उतर आया है.

उपचुनाव : गुजरात के उच्च न्यायालय के निर्णय को बरक़रार रखते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने स्वतंत्र दल के मनुभाई अमरसी पटेल के निर्वाचन को अमान्य घोषित कर दिया. अब गुजरात के बनासकांठा निर्वाचन क्षेत्र से लोकसभा के लिए उपचुनाव होना है. इस आगामी उपचुनाव के लिए कांग्रेसी उम्मीदवार भूतपूर्व रेल मंत्री स. क. पाटील हैं. स्वयं मनुभाई अमरसी पुनः लोकसभा के लिए स्वतंत्र दल के उम्मीदवार हैं. बीच में यह सवाल उठा था कि उन के निर्वाचन के अमान्य ठहरा दिये जाने के बाद वह संभवतः यह उपचुनाव नहीं लड़ सकेंगे. तीसरे उम्मीदवार हिम्मत सिंह जी हैं. हिम्मत सिंह जी 'फ़िल्म फ़ाइनेंस कारपोरेशन' के अध्यक्ष हैं. वह निर्दलीय उम्मीदवार की हैसियत से चुनाव लड़ेंगे. ज़ाहिर है कि सीधी टक्कर श्री पाटील व मनुभाई अमरसी के बीच होगी. स्वतंत्र दल का यह आशा करना स्वाभाविक है कि वह इस निर्वाचन क्षेत्र से पुनः अपना उम्मीदवार लोकसभा में भेजने में सफल होगा. गुजरात कांग्रेस कमेटी ने एक स्वर से श्री पाटील के

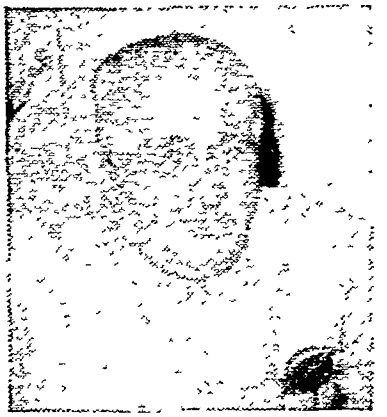

सदाशिव पाटील : एक और कोशिश

उम्मीदवार चुने जाने का समर्थन किया है. इस से यह निष्कर्ष निकालना ग़लत नहीं होगा कि कांग्रेस इस उपचुनाव में अपनी पूरी ज़ोर-आज़माइश करेगी. जो भी हो श्री पाटील के लिए यह उप चुनाव पिछले आम चुनाव की तरह ही मुश्किल सिद्ध होगा. पिछले आम चुनाव में बंबई में उन्हें संसपा के श्री जॉर्ज फ़र्नांडिज ने काफ़ी मतों से पराजित किया था.

तमिलनाडु

नये नेता के नपे-तुले क़दम

यद्यपि अन्नादोरै के उत्तराधिकारी के रूप में श्री करुणानिधि को सर्वसम्मति से चुना गया था किंतु इस का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि द्रमुक के सभी नेताओं का उन्हें पूर्ण समर्थन प्राप्त है या पार्टी के भीतर उन का कोई विरोधी नहीं है. करुणानिधि अपनी स्थिति से ग़ाफ़िल नहीं. यही वजह है कि वह लगभग २ माह तक मुख्यमंत्री की हैसियत से विधानसभा और द्रमुक की बागडोर सँभालने के बावजूद अपनी स्थिति को और अधिक मज़बूत बनाने के लिए फूंक-फूंक कर क़दम बढ़ा रहे हैं और कोई भी ऐसा साहसिक प्रयोग नहीं करना चाहते, जिस से उन के नेतृत्व के लिए खतरा उत्पन्न हो जाये. सब से पहले वह पार्टी पर अपनी गिरफ़्त मज़बूत करने में प्रयत्नशील हैं. किसी भी मामले पर तुरंत निर्णय ले सकने की सामर्थ्य रखने से उन की लोकप्रियता बढ़ रही है किंतु अभी उन्हें वह व्यापक समर्थन नहीं मिल पाया है जो स्वर्गीय अन्नादोरै को सहज ही मिल गया था.

नेतृत्व सँभालने से पूर्व श्री करुणानिधि किसी विशेष मुद्दे पर दृढ़ रुख अपनाने में नहीं हिचकते थे किंतु अब वह यथासंभव ऐसे सार्वजनिक वक्तव्य देने से कतराते हैं, जिन से सनसनी फैल जाये या उन के विरोधियों को उन की आलोचना का अवसर मिल जाये. ऐसा लगता है कि यदि किसी प्रकार का दबाव डाल कर उन्हें उत्तेजित नहीं किया गया तो वह कुछ विशेष मुद्दों पर, फिर चाहे वह हिंदी का विरोध जैसा तीव्र भावनात्मक मुद्दा ही क्यों न हो, कट्टर नीति नहीं अपनायेंगे.

मुख्यमंत्री का पद सँभालने के बाद से करुणानिधि ने द्रमुक की किसी पुरानी नीति में रद्दोबदल नहीं किया है पर इस का यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि वह द्रमुक की उन बहु-प्रचारित नीतियों की आज़माइश के लिए आतुर नहीं हैं, जिन पर अब तक अमल नहीं किया गया है. लेकिन प्रदेश की सरकार और द्रमुक के संगठन पर पूरी तरह हावी हुए बिना वह परिवर्तन का जोखिम नहीं झेलना चाहते. लेकिन परिस्थितियाँ हैं कि परिवर्तन का माहौल ख़ुद-ब-ख़ुद तैयार करती जा रही हैं. शीघ्र ही द्रमुक को यह फ़ैसला करना पड़ेगा कि वह मार्क्सवादियों के प्रति क्या रुख अपनाये. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की रीति-नीति से दुराव न रखते हुए भी करुणानिधि हाल ही के नागरकोल उप-चुनाव में (जहाँ से कामराज चुने गये) मार्क्सवादियों की भूमिका से काफ़ी नाराज़ हैं और कुछ ही रोज़ पूर्व विधानसभा में यह चेतावनी दे कर कि राज्य सरकार किसी प्रकार की हिंसक कार्रवाइयों को बर्दाश्त नहीं करेगी, उन्होंने उन मार्क्सवादियों के प्रति ही परोक्ष रूप से रोष प्रकट किया था, जिन्होंने तंजौर ज़िले में खेत-मज़दूरों का विद्रोह भड़काने में सक्रिय भाग लिया.

स्वर्गीय अन्नादोरै के नेतृत्व में द्रमुक को राज्य में औद्योगिक शांति क़ायम करने में सफलता नहीं मिली थी, किंतु नयी सरकार इस कार्य में लापरवाही नहीं बरतना चाहती. भूतपूर्व विधिमंत्री श्री माधवन को अब उद्योग-धंधों की देखभाल की ज़िम्मेदारी सौंप दी गयी है और वह राज्य में औद्योगिक शांति क़ायम करने तथा नये कारखाने स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं.

ऐसी संभावना है कि शराबबंदी को सख्ती से लागू करने में भी अब द्रमुक सरकार ज़्यादा दिलचस्पी नहीं रखती जब कि स्वर्गीय अन्नादोरै शराबबंदी के प्रबल समर्थक थे. सरकार अभी तक अवैध शराब की बिक्री नहीं रोक पायी है और पड़ोसी राज्यों में भी शराबबंदी का क़ानून शिथिल पड़ता जा रहा है. यही नहीं, शराब की बिक्री

पर लगे कर से राज्य सरकार को जो आय होती थी वह भी बंद हो गयी. अतः नया, मंत्रिमंडल शराबबंदी के मामले में ज्यादा कट्टर रुख नहीं अपनाना चाहता.

तमिलनाडु कांग्रेस द्वारा राज्य सरकार पर लगाये गये भ्रष्टाचार के आरोप, राज्य के कुछ ज़िलों में दुर्भिक्ष की स्थिति और पर्याप्त खाद्यान्नों की पूर्ति आदि कुछ और ऐसी पेचीदगियाँ हैं जिन का समाधान नये मुख्यमंत्री को जल्द से जल्द खोजना है. आगामी म्युनिसिपल चुनावों में सफलता प्राप्त करना द्रमुक के लिए एक आवश्यक शर्त है, क्यों कि नागरकोल चुनाव में अपनी कामयाबी से उत्साहित कांग्रेस म्युनिसिपल चुनावों में भी अधिक से अधिक सीटों पर अधिकार जमाने के लिए कृतसंकल्प है. खास कर चुनाव जीतने के मामले में करुणानिधि के दाव-पेंचों का काफ़ी दबदबा है. अतः यदि आगामी म्युनिसिपल चुनावों में भी वह अपना दबदबा बरकरार न रख सके तो उन की प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुँचेगा.

मुख्यमंत्री-पद के चुनाव के दौर में भी करुणानिधि ने अपनी कूटनीति का परिचय दिया था, जब कि उन के विरोधी समझे जाने वाले श्री मथियालगन ने ही उन के नाम का प्रस्ताव रखा था. मुख्यमंत्री बनने पर उन्होंने अन्नादोरै मंत्रिमंडल के सभी सदस्यों को अपने मंत्रिमंडल में भी शामिल किया. केवल भूतपूर्व शिक्षा और उद्योगमंत्री नेदुनचेपियन ही इस के अपवाद थे, जो खुद मुख्यमंत्री-पद के उम्मीदवार भी थे. यद्यपि नेदुनचेपियन ने मंत्रिमंडल में शामिल न होने का फ़ैसला कर अपना असंतोष ज़ाहिर किया किंतु इस बात की बहुत कम संभावना है कि करुणानिधि के लिए वह किसी प्रकार का संकट उत्पन्न कर सकेंगे. बहरहाल, अब तक तो करुणानिधि काफ़ी सँभल कर क़दम रखते आ रहे हैं. पर देखना है कि गंभीर समस्याओं से घिरने पर वह भविष्य में भी अपना संतुलन क़ायम रख सकेंगे या नहीं.

आंध्रप्रदेश

तेलंगाना : खबथ और खधक्

केंद्रीय नेताओं को यह बात अच्छी तरह से जान लेनी चाहिए कि कोई भी समस्या केवल टालने से हल नहीं होती, बल्कि वह गंभीर से गंभीरतर रूप धारण कर लेती है. किसी समस्या का शांतिपूर्ण समाधान करना आसान है, पर किसी आंदोलन को दबाना मुश्किल है. भारतीय नेताओं की यह कुछ आदत-सी हो गयी है कि जब तक कोई समस्या आंदोलन का रूप धारण नहीं कर जाती तब तक वे बेफ़िक्र रहते हैं. तेलंगाना आंदोलन अब काफ़ी गंभीर रूप धारण कर रहा है. केवल इस निष्कर्ष पर पहुँचने में केंद्रीय नेताओं को तीन महीने से अधिक समय लग गया.

आज से कोई १० सप्ताह पूर्व राज्य के मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने हैदराबाद में एक सर्वदलीय सम्मेलन का आयोजन किया, जिस में यह निर्णय किया गया कि तेलंगानावासियों के हितों की रक्षा की पूरी-पूरी व्यवस्था की जायेगी; यानी १९५६ में आंध्रप्रदेश राज्य की स्थापना के समय तेलंगानावासियों को जो आश्वासन दिये गये थे केवल उन्हीं की पुनरावृत्ति है. सवाल यह है कि यदि शुरू से ही राज्य सरकार अपने आश्वासनों का पालन करती रहती तो स्थिति इतनी न विकट होती और आये दिन 'पृथक तेलंगाना' के नारे न सुनने पड़ते. उधर पृथक तेलंगाना के नारे लगते हैं और इधर केंद्रीय नेताओं को यह कहना पड़ता है कि पृथक तेलंगाना राज्य की माँग करने वालों का यह स्वप्न कभी पूरा नहीं होगा.

कुछ दिन पहले जब राज्य के मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी राजधानी पहुँचे तो तेलंगाना की स्थिति पर विचार करने के लिए केंद्रीय मंत्रिमंडल की बैठक में काफ़ी समय तक विचार किया गया. सुनते हैं उस में भी राज्य के मुख्यमंत्री ने बड़े आश्वस्त भाव से कहा कि वहाँ का आंदोलन शीघ्र ही समाप्त हो जायेगा. इस में ज्यादा घबराने की कोई बात नहीं, क्यों कि वहाँ पृथक राज्य के आंदोलन को कोई ज्यादा समर्थन नहीं मिल रहा है, कारण यह कि यह आंदोलन राजनैतिक कम है और आर्थिक ज्यादा. मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री के अलावा कांग्रेसाध्यक्ष निजलिंगप्पा से भी मिले. निजलिंगप्पा ने बड़े विश्वास के साथ कहा कि 'मैं तेलंगाना को पृथक राज्य बनाने के बिलकुल खिलाफ़ हूँ.'

राज्य के मुख्यमंत्री ने यह भी कहा कि तेलंगाना में २,००० आदमियों को तुरंत नौकरी देने की व्यवस्था की जायेगी. प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने मुख्यमंत्री को यह सुझाव दिया कि तुरंत ऐसे क़दम उठाये जाने चाहिए जिस से कि तेलंगानावासियों की यह धारणा दूर की जा सके कि उन के साथ भेद-भाव बरता जा रहा है. इस के बाद मुख्यमंत्री उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई से भी मिले और उन्होंने कहा कि तेलंगाना क्षेत्र के विकास-कार्यक्रमों में तेज़ी लाने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति की नियुक्ति की जानी चाहिए. खबर है कि मुख्यमंत्री के अनुरोध पर गृहमंत्रालय के सचिव को जल्दी ही हैदराबाद भेजा जायेगा, जहाँ वह राज्य सरकार और तेलंगाना के नेताओं से विचार-विमर्श करेंगे. एक तरफ़ राज्य के नेता केंद्रीय सरकार से सहायता और सुझाव माँग रहे हैं और दूसरी तरफ़ यह कहा जा रहा है कि केंद्र सरकार को राज्य सरकार के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं.

२७ मार्च को जब कांग्रेसाध्यक्ष निजलिंगप्पा बंगलूर जाते हुए थोड़ी देर के लिए बेगमपेट हवाई अड्डे पर रुके तो उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा कि तेलंगाना आंदोलन से किसी को कोई लाभ नहीं पहुँचने वाला है. लेकिन उसी दिन तेलंगाना क्षेत्रीय समिति के भूतपूर्व अध्यक्ष अच्चुत रेड्डी ने कहा कि जिस प्रकार एक संयुक्त परिवार में भाई-भाई अलग होते हैं उसी प्रकार हम भी अलग होना चाहते हैं. इस मामले में जितनी देर की जायेगी उतने ही हमारे (भाइयों-भाइयों के बीच) तनाव और तकरार बढ़ते जायेंगे.

एक और त्यागपत्र : तेलंगाना आंदोलन का संकट उस दिन और भी उग्र रूप धारण कर गया जब आंध्रप्रदेश के सूचना और जनसंपर्क-मंत्री कोंडा लक्ष्मण बापू ने राज्य मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया. लक्ष्मण पिछले सप्ताह भर राजधानी में केंद्रीय नेताओं से बातचीत करने के बाद हैदराबाद पहुँचे थे. यों लक्ष्मण बापू तेलंगाना को स्वायत्तता दिलाने के कट्टर समर्थक थे मगर त्यागपत्र देने के बाद उन्होंने कहा कि यदि तेलंगानावासियों के हितों की रक्षा का और कोई उपाय संभव नहीं हुआ तो मैं अलग तेलंगाना राज्य के गठन का विरोध नहीं करूँगा. उन्होंने कहा कि मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि लोकतंत्र में जनता की आवाज़ को शक्ति से नहीं दबाया जा सकता.

मुख्यमंत्री की कार पर पथराव, जमाय उस्मानिया रेलवे स्टेशन और चलते-फिरते डाकघर (राजदूत) को जलाने आदि की घटनाएँ आम हो गयी हैं और समस्या तीव्र आंदोलन का रूप धारण कर गयी हैं.

कश्मीर

दंगे के पीछे

पिछले दिनों श्रीनगर में अचानक जो दंगे हुए उन का ऊपरी कारण तो चावल के भाव की बढ़ोतरी का झूठा समाचार था, लेकिन असली कारण उन पृथकतावादी लोगों की मनोवृत्ति है जो किसी भी मौक़े का लाभ उठा कर वातावरण को अशांत करने के आदी हो गये हैं. श्रीनगर के एक साप्ताहिक 'न्यूज़' में समाचार छपा कि चावल की कीमत ४० रुपये से बढ़ा कर ५० रुपये कर देने की योजना सरकार बना रही है. दंगा होने के लिए इतना काफ़ी था. राजनैतिक पर्यवेक्षकों का खयाल है कि इस घटना की आड़ में पृथकतावादियों ने वातावरण को अशांत करने की कोशिश की. मुख्यमंत्री सादिक़ के वक्तव्य से भी यह तथ्य सामने आया है. दंगे में जो लोग शामिल हुए उन में अधिक संख्या उन छात्रों की रही जो पाकिस्तान समर्थक कार्रवाइयों में हिस्सा लेते रहे हैं. शेख अब्दुल्ला ने जेल से रिहा होने के बाद कुछ दिनों तक छात्रों को संयत रहने की सलाह दी. लेकिन पिछले कुछ दिनों से वह घाटी के युवा वर्ग को यह कह कर उकसाते रहे हैं कि आत्मनिर्णय का अधिकार प्राप्त

करने के लिए उन्हें बड़ी से बड़ी क़ुर्बानी देने के लिए तैयार रहना चाहिए. ईद के मौक़े पर भाषण देते हुए उन्होंने कश्मीरी युवकों का ध्यान पाकिस्तान की ओर दिलाया और कहा कि उन्हें पाकिस्तान की घटनाओं से सबक़ लेना चाहिए और जानना चाहिए कि वहाँ के छात्र या वहाँ के युवक कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं.

कोई भी कारण : दंगे की घटना इस बात का प्रमाण है कि निराधार समाचारों तक को विषय बना कर पाकिस्तान समर्थक तत्त्व अशांति पैदा कर रहे हैं. दंगे के दौरान काफ़ी नुकसान हुआ और पुलिस के ४६ सिपाही और अफ़सर घायल हुए. विधानसभा में प्रतिपक्षी दल के अली मुहम्मद नायक, सरदार सुरिंदरसिंह और शमीम अहमद शमीम ने ध्यानाकर्षण प्रस्ताव रखते हुए कहा कि सरकार द्वारा झूठे समाचार का खंडन करने के बाद भी अराजक तत्त्वों ने हिंसात्मक कार्रवाइयाँ कीं और जुलूस निकाले. मुख्यमंत्री ने स्वीकार किया कि सरकारी गाड़ियों को क्षति पहुँचाने की कोशिश के अलावा बिजली-विभाग के भारतीय कार्यालय पर भी हमला किया गया. इस के अलावा शहनान होटल, कांग्रेस और नगरपालिका के कार्यालयों पर भी आक्रमण किया गया. प्रतिपक्ष के कुछ विधायकों ने यह भी कहा कि वह दंगा पूर्व आयोजित था और उस का उद्देश्य यह था कि गजेंद्रगडकर आयोग ने क्षेत्रीय विषमताओं को खत्म करने के लिए जो सिफ़ारिशें की हैं उन्हें अमल में न लाया जा सके. जनसंघ के सदस्य शिवचरण गुप्त का कहना था कि अगर ऐसा उद्देश्य नहीं था तब प्रदर्शनकारियों ने **गजेंद्रगडकर मुर्दाबाद** और **भुट्टो जिंदाबाद** के नारे क्यों लगाये ? श्री गुप्त ने यह भी कहा कि दंगे के पीछे कुछ सरकारी लोगों का भी हाथ था, क्यों कि क़ीमतें बढ़ाने का समाचार एक ऐसे अखबार में भी छपा था जिसे सरकारी अभिकरण से न केवल सहायता मिलती है बल्कि उस का संपादन भी फ़ील्ड सर्वे विभाग के अधिकारी द्वारा किया जाता है. फ़िलहाल मुख्यमंत्री ने सदन को यह आश्वासन दिलाया कि सरकार आवश्यक क़दम उठा रही है. तथ्यों की जाँच-पड़ताल के बाद दोषी व्यक्तियों के खिलाफ़ उचित क़दम उठाया जायेगा.

पंजाब

एक और एहलाम

अकाली नेता संत फ़तेहसिंह तरह-तरह की घोषणाएँ करने के लिए काफ़ी मशहूर हैं. जब तक पंजाबी सूबा नहीं बना था वह कहा करते थे कि पंजाबी सूबा बन जाने के बाद वह राजनीति से अलग हो जायेंगे. पंजाबी सूबा बन जाने के बाद वह कहने लगे कि चंडीगढ़, भाखड़ा नंगल और वे इलाक़े जो पंजाबी-भाषी हैं लेकिन पंजाब में नहीं मिलाये गये हैं, प्राप्त करने के बाद वह राजनीति से संन्यास ले लेंगे. उन इलाक़ों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने आमरण अनशन भी किया. पंजाब को बहुत कुछ मिला और बहुत कुछ मिलने का आश्वासन मिला लेकिन संत अभी तक राजनीति में बने हुए हैं. पिछले दिनों दुआबा इलाक़े का दौरा करते हुए उन्होंने हरिजनों के उत्थान की बात की. जालंधर ज़िले के नकोदर नामक एक स्थान पर उन्होंने पिछड़ी और आदिम जातियों के सम्मुख भाषण देते हुए कहा कि मैं अब अपनी ज़िंदगी के ज्यादातर दिन हरिजनों की सेवा में ही लगाऊँगा. अब से मैं हरिजनों की झोंपड़ियों में नियमित रूप से जाया करूँगा और उन के सुख-दुख में शरीक़ हुआ करूँगा; यही मेरी ज़िंदगी का अंतिम उद्देश्य है. उन के इस मक़सद के खयाल और एहलाम का कारण शायद यह है कि पंजाब के २२ सुरक्षित स्थानों में मध्यावधि चुनाव में अकाली दल को १० स्थान प्राप्त हुए हैं, जो पिछले आम चुनाव की अपेक्षा दुगुने हैं. संत की इस सामयिक विचारधारा का कारण शायद यह है कि उन का दबदबा अकाली दल के साथ-साथ जनसंघ में भी मुखर हो रहा है. जनसंघ के मंत्री भी उन से अक्सर आशीर्वाद लेते हैं और अकाली दल के मंत्रियों को पंजाब की राजनीति का गहराई से अध्ययन करने से कभी-कभी यह भी भ्रम होने लगता है कि संत केवल अकाली दल के ही नेता हैं, या अकाली-जनसंघ दोनों के.

फिर चुनौती : संत के एकछत्र नेतृत्व को अगर कोई चुनौती दी जा रही है तो अकाली दल से ही. अकाली दल के वरिष्ठ उपप्रधान और विधायक सरदार कपूरसिंह ने इस की शुरूआत की और अब मास्टर तारासिंह अकाली दल के कुछ समर्थकों ने सिखों के लिए अलग राज्य क़ायम करने का आंदोलन फिर से छेड़ने का निश्चय किया है. ये लोग सिखों के लिए अलग और आज़ाद राज्य की माँग कर रहे हैं. जालंधर में नरेंद्रसिंह भुल्लर ने एक पत्रकार सम्मेलन में बताया कि शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के आगामी चुनावों में वह अपने अलग उम्मीदवार खड़े करेंगे. उन्होंने हिंदी के स्थान पर अंग्रेज़ी को संपर्क-भाषा बनाने की भी माँग की.

कृष्ण लाल : कोई डर न रहा

वित्तमंत्री की विपदा : बजट बहस पर बोलते हुए वित्तमंत्री कृष्णलाल ने विधानसभा में कहा कि अब उन के दिमाग़ में इस प्रकार का कोई डर नहीं रह गया है कि हिंदी भाषा को किसी प्रकार का खतरा है. पंजाब एकभाषी राज्य है और पंजाबी उस की राज्यभाषा है. हिंदी को संपर्क-भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है. इस प्रकार के सभी विवादों का हल हो जाने से अकाली दल और जनसंघ की मिलीजुली गाड़ी बेहिचक और बेरोक-टोक चल रही है. लेकिन जब पिछले दिनों अनुपूरक माँगों को ले कर सरकार और प्रतिपक्षी पार्टियों में ठन गयी तब सरकार को मुँह की खानी पड़ी. तीन महीने के लिए अनुपूरक माँगों का जो प्रस्ताव पेश किया गया था उस में कितनी राशि हो इस का उल्लेख कहीं नहीं दिया गया था. इस बात को ले कर कांग्रेस के उमरावसिंह ने व्यवस्था का प्रश्न उठाया, जिस का समर्थन न केवल कांग्रेसी उपनेता रत्नसिंह ने किया बल्कि अकाली पार्टी के कपूरसिंह तथा कम्युनिस्ट पार्टी के सत्यपाल डांग ने भी उमराव सिंह के हक़ में अपने खयालातों का इज़हार किया. अंततः सरकार को प्रतिपक्ष की माँग के अनुसार प्रस्ताव बदलना पड़ा और उस में राशि का उल्लेख भी करना पड़ा. अपनी इस चूक को मानते हुए वित्तमंत्री कृष्ण लाल ने भाषा के मामले को ले कर और अकाली-जनसंघ संबंधों के सहारे अपने खोये हुए मनोबल को मज़बूत करना चाहा. मुख्यमंत्री गुरनामसिंह ने पहले तो सरकारी प्रस्ताव का समर्थन किया, लेकिन बढ़ते हुए विरोध के कारण उन्होंने प्रस्ताव को बदलने की रज़ामंदी दे दी. उन के दिमाग़ में तब संभवतः डॉ० बलदेव प्रकाश का एक अस्पष्ट-सा चित्र कौंध रहा था, क्यों कि ऐसे मौक़े पर डॉ० बलदेव प्रकाश बिना किसी हील-हुज्जत के सदन का मुक़ाबला कर लेते थे. उन के तर्कों से उन की बात भी रह जाती थी और विरोधियों की भी संतुष्टि हो जाया करती थी.

संत फ़तेहसिंह व्यापक तौर पर पंजाब का दौरा शायद इस लिए कर रहे हैं कि संयुक्त मोर्चा सरकार की साख बनी रहे. संत की जामा-उतार राजनीति का चोला उन को काफ़ी सजा है और इस सजे हुए लिबास का वह अलग-अलग हैसियत से एकमुश्त फ़ायदा उठा रहे हैं.

राजस्थान

विरोध का धरना

पहले तो राजस्थान सरकार ने जयपुर गोलीकांड से संबंधित बेरी आयोग के प्रतिवेदन को प्रकाशित करने में अनावश्यक विलंब किया और फिर जब वह प्रकाशित हो गया तो उस की सिफ़ारिशों को अमल में लाने में वह आनाकानी कर रही है. क्यों कि प्रतिवेदन में गोलीकांड की निंदा की गयी है अतः विरोध-पक्ष यह चाहता है कि उस के लिए ज़िम्मेदार अधिकारियों के ख़िलाफ़ तत्काल अनुशासनात्मक कार्रवाई की जाये. गृहमंत्री व्यास का कहना है कि राज्य सरकार आयोग की सिफ़ारिशों को मानने के लिए बाध्य नहीं है. विरोध-पक्ष के प्रवक्ताओं का तर्क यह है कि आयोग की नियुक्ति के पहले राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश को सरकार ने यह आश्वासन दिया था कि आयोग जो भी सिफ़ारिश करेगा उस पर अमल किया जायेगा. मुख्यमंत्री सुखाड़िया का उत्तर यह है कि इस तरह के आश्वासन का कोई लिखित प्रमाण नहीं मिल रहा है, कि वह आयोग की सिफ़ारिशों की बारीकी और वैधानिकता का अध्ययन कर रहे हैं. उस के बाद ही उन सिफ़ारिशों पर कोई कार्रवाई की जा सकेगी.

धरना और बहिष्कार : विधानसभा के प्रतिपक्षी सदस्यों ने पहले तो यह कोशिश की कि राज्य सरकार उन की माँग स्वीकार कर ले, लेकिन जब उन्हें अपने प्रयत्न में सफलता नहीं मिली तो उन्होंने सीधी कार्रवाई का निश्चय किया. परिणाम यह हुआ कि २१ मार्च को उन्होंने धरना देना शुरू किया और उसी के साथ-साथ सदन की कार्रवाइयों का बहिष्कार भी किया. उन के १३ सदस्यों की समिति ने निर्णय किया कि यदि सरकार बेरी आयोग के प्रतिवेदन को स्वीकार नहीं करती और उस पर कार्रवाई करने के लिए किसी न्यायाधीश की नियुक्ति नहीं करती तो हमारा धरना जारी रहेगा. धरना देने वालों में कोटा की महारानी शिवकुमारी की, जो कि जनसंघ की विधायिका हैं, स्थिति बहुत ख़राब थी. उन का चेहरा मुरझाया हुआ था. अन्य लोगों में स्वतंत्र पार्टी के महारावल लक्ष्मण सिंह, जनसंघ के सतीशचंद्र अग्रवाल और भैरवसिंह शेखावत, संसपा के रामकिशन, कम्युनिस्ट दल के रामानंद अग्रवाल और भारतीय क्रांति दल के बद्रीप्रसाद गुप्त, दौलतराम सारण और रामानंद आर्य के नाम प्रमुख हैं. २५ मार्च को धरना देने वाले विधायकों की संख्या ८५ थी. उन के भोजन की व्यवस्था जयपुर के नागरिक बहुत उत्साह से कर रहे थे. प्रतिपक्ष के सदस्यों के साथ जनता की सहानुभूति बहुत गहरी है, क्यों कि वह जौहरी बाज़ार के उस निर्मम गोलीकांड को अभी भी भूले नहीं हैं. २५ मार्च को ही सुबह ९ बजे एक जुलूस भी निकाला गया था, जो बापू बाज़ार और जौहरी बाज़ार से गुज़रता हुआ मानिक चौक पर ख़त्म हुआ. शामिल होने वालों की संख्या लगभग ६ हज़ार थी. वहाँ पर जो सभा आयोजित की गयी थी उस की अध्यक्षता संसपा के विधायक केदारनाथ ने की. महारानी कोटा, भैरवसिंह शेखावत, मोहन पुनमिया, महारावल लक्ष्मण सिंह ने अपने-अपने भाषणों में सरकार की कटु आलोचना करते हुए कहा कि वह गांधीजी के सिद्धांतों से निरंतर च्युत होती जा रही है. हम उस से अपनी माँगें मनवा कर रहेंगे. महारानी गायत्री देवी भी धरना-स्थल पर पहुँची थीं और नेताओं से बातचीत की थी. उन्होंने **दिनमान** के प्रतिनिधि से कहा कि प्रतिपक्षी सदस्यों ने विवश हो कर यह क़दम उठाया है. मैं इस संबंध में लोकसभा में भी ध्यानाकर्षण का एक प्रस्ताव रखूँगी. २५ मार्च को राज्य के सभी ज़िलों में विरोध-दिवस मनाने का आयोजन किया गया था. जयपुर, भरतपुर और गंगा नगर में प्रदर्शन किये गये. धरना शुरू करने की तारीख़ से विधानसभा में प्रतिपक्षी सदस्यों की कुर्सियाँ ख़ाली रहीं. उन की अनुपस्थिति में ही विनियोग विधेयक पारित किया गया. विधानसभा के इतिहास में यह पहला अवसर था जब कि ६८-६९ की अनुपूरक माँगों से संबंधित विनियोग विधेयक प्रतिपक्षियों की अनुपस्थिति में सत्तारूढ़ कांग्रेस दल ने पास कर दिया, हालाँ कि विधेयक पर बहस शुरू हुई तो कांग्रेस के ही कई सदस्यों ने उस की तीखी आलोचना की और कहा कि सरकार नशाबंदी को पूरी तरह से लागू करने में असमर्थ है; ग्रामीण क्षेत्रों के प्रति उपेक्षा का दृष्टिकोण अपनाया जाता है.

मुख्यमंत्री सुखाड़िया ने **दिनमान** के प्रतिनिधि से बातचीत के दौरान कहा कि सरकार बेरी आयोग की रिपोर्ट पर गंभीरता से विचार कर रही है. काफ़ी सोच-विचार के बाद ही उस पर निर्णय लिया जा सकेगा. प्रतिपक्षी सदस्यों को चाहिए कि इस मामले को राजनीति से जोड़ कर जनता को उत्तेजित न करें.

एक और प्रकोप : राज्य अकाल की छाया से अभी मुक्त भी नहीं हो पाया था कि प्रकृति का एक और प्रकोप सामने आ गया. ओलावृष्टि के कारण विभिन्न क्षेत्रों में खड़ी फ़सलें बुरी तरह प्रभावित हो गयीं. गंगा नगर, भरतपुर, कोटा, चित्तौड़, सवाई माधोपुर, जयपुर और अजमेर में कहीं-कहीं पर यह प्रभाव ८० प्रतिशत तक पहुँच गया. कहा जाता है कि सरकारी सहायता के बावजूद इस क्षति की पूर्ति में एक साल से ज़्यादा का समय लगेगा. प्रतिपक्षी दल के नेता इस स्थिति से भी बहुत चिंतित दिखायी दिये. विधानसभा में बजट अनुदानों पर बहस के दौरान प्रतिपक्षियों ने आवाज़ उठायी कि किसानों पर भूराजस्व-कर न लगाया जाये. यदि सरकार ने उन की बात नहीं मानी तो वहाँ भी बस्तर कांड की पुनरावृत्ति होगी. जनसंघ के नेता भैरव सिंह शेखावत के अनुसार अकालग्रस्त क्षेत्रों में हज़ारों व्यक्ति भूख से मर रहे हैं. ओला-वृष्टि से स्थिति और भी ख़राब हो गयी है. मुख्यमंत्री का कहना है कि सरकार अकाल पर क़ाबू पाने का हर संभव प्रयत्न करेगी और किसी भी व्यक्ति को भूख से मरने नहीं देगी. विरोधियों को अलोचना के बदले सहयोग करना चाहिए.

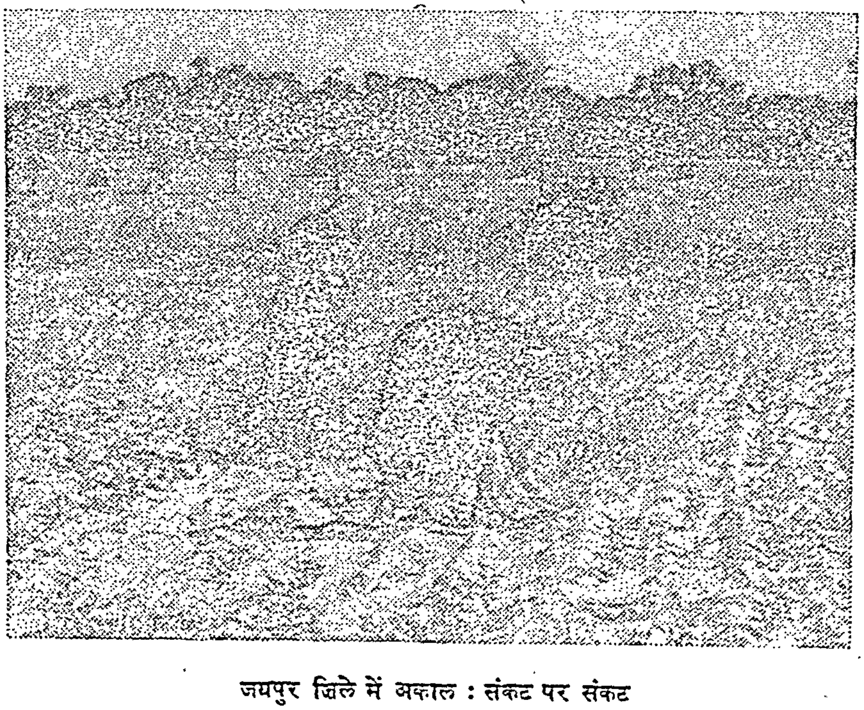

जयपुर ज़िले में अकाल : संकट पर संकट

गोल पृथ्वी का चपटापन

ईसा से ६ शताब्दी पूर्व एक यूनानी दार्शनिक-वैज्ञानिक **पाइथागोरस** ने जब यह घोषणा कर दी कि पृथ्वी गोल है तो अनेक परंपरावादी विद्वानों, धार्मिक नेताओं और शासकों ने इस का विरोध किया. वास्तव में **पाइथागोरस** से पहले भी कई लोगों ने ज़मीन के गोल होने की बात कही थी, मगर उन में **पाइथागोरस** जैसा प्रभाव नही था और इस लिए सरकारी तौर से विरोध होने पर भी **पाइथागोरस** अपने शिष्यों की एक परंपरा स्थापित करने में सफल हुए. बाद में अरस्तु ने भी अपनी पुस्तक में इसी सिद्धांत को न केवल स्वीकार किया बल्कि पृथ्वी की गोलाई का काल्पनिक अनुमान लगाते हुए इस का व्यास भी स्थापित किया. सदियों तक लोग यही विश्वास करते रहे कि पृथ्वी गोल है. पृथ्वी की गोलाई का अनुमान आदि मानव ने भी लगाया होगा, मगर उस मे इतनी बौद्धिक क्षमता नही थी कि वह उस की व्याख्या कर सकता. उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति शांत समुद्र की सतह पर अपनी नाव का लंगर डाल दे और स्वयं एक ही दिशा में पानी पर तैरना शुरू कर दे तो काफ़ी दूर जाने पर उसे यह महसूस होगा कि धीरे-धीरे उस की नाव दृष्टि से ओझल होती जा रही है. यदि नाव की ऊँचाई अधिक न हो और तैराक काफ़ी दूर तक एक ही दिशा में तैरता रहा हो तो वह पीछे मुड़ कर अपनी नाव नही देख पायेगा. पानी समतल होता है, तो फिर नाव ग़ायब कैसे हो गयी ? उत्तर केवल एक ही हो सकता है कि स्वयं पृथ्वी, जो पानी की राशि को आधार देती है, चपटी नही, गोल है. किंतु क्या भूमि बिलकुल गोल है ?

ऊँटों का नाप : अरस्तु के बाद **अलेक्ज़ांड्रिया** के एक ज्योतिषी **एराटोटस्तीज़** ने ईसा से तीन शताब्दी पूर्व पहली बार कुछ-कुछ वैज्ञानिक ढंग से पृथ्वी को मापने का प्रयास किया. उन्हें मालूम हुआ कि **असवान** में दोपहर को सूर्य बिल्कुल सर पर होता है, जब कि **अलेक्ज़ांड्रिया** में वह एक छोटा-सा कोण बनाता है. इस से उन्होंने अनुमान लगाया कि पृथ्वी की परिधि **अलेक्ज़ांड्रिया** और अस्वान के अंतर का २० गुणा है. उन के अनुमान का एक दिलचस्प तत्व यह था कि उन्होंने पृथ्वी के व्यास को मीलों में न नाप कर स्टेडियम में मापा. उन का तर्क यह था कि ऊँटों के काफ़िले एक दिन में सौ स्टेडियम चलते हैं और उन्हे **अलेक्ज़ांड्रिया** से असवान तक ५० दिन लगते हैं. इस लिए अलेक्ज़ांड्रिया से असवान तक ५,००० स्टेडियम हैं और पृथ्वी का कुल व्यास उस का ५० गुणा या २ लाख ५०,००० स्टेडियम है. मीलों में परिवर्तित करने पर यह २६,७०० मील बनता है. आधुनिक अनुमान के अनुसार पृथ्वी का व्यास २६,८६० मील है. इस से स्पष्ट है कि यद्यपि स यूनानी विद्वान ने अनिश्चित माप का उपयोग किया फिर भी वह वास्तविक तथ्य के बहुत निकट पहुँच गया था. अब तक इसी आधार पर पृथ्वी को मापने का प्रयास किया जा रहा था कि वह बिल्कुल गेंद की तरह गोल है. इसी विचार को मध्य काल में संपूर्ण यूरोप में मान्यता प्राप्त हुई. उस समय की गणना के लिए यह आधार कोई कठिनाई प्रस्तुत नही करता था.

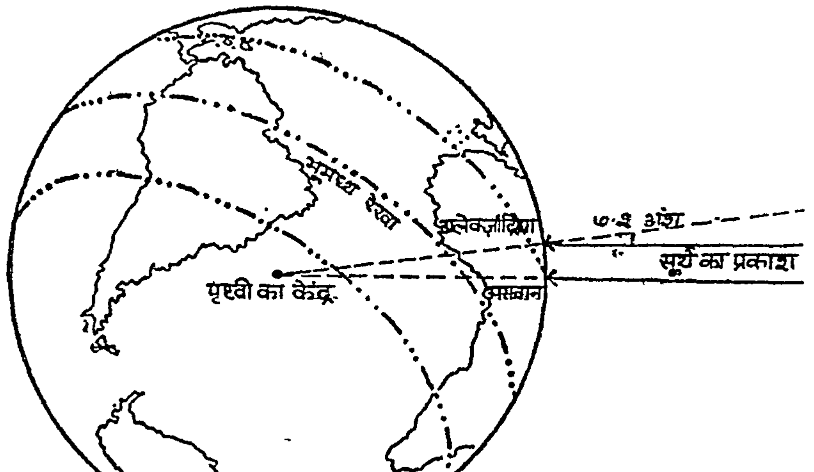

यदि अलेक्ज़ांड्रिया में सूर्य की किरण दोपहर को ६.२° कोण (वृत्त का ५०वां भाग) बनाती है, जब कि असवान में वह सीधी पड़ती है, तो पृथ्वी की परिधि अलेक्ज़ांड्रिया और असवान के बीच के अंतर का ५० गुना होगी.

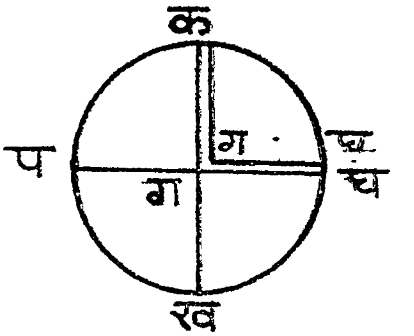

यदि पानी की नहर (रेखा क ख के साथ) उत्तरी ध्रुव से पृथ्वी के केंद्र की ओर चल पड़े और वहाँ से भू-मध्य रेखा की ओर (रेखा ख घ) तो गुरुत्वाकर्षण को अपकेंद्रीय विकर्षण कम कर देगा, जिस से नहर ख घ नहर क ख से लंबी होगी.

न्यूटन की नहरें : गेंद जैसी पृथ्वी के आकार की कल्पना करने वालों के मन में सब से पहले संदेह तब पैदा हो गया जब उन्हें मालूम हुआ कि किसी-किसी जगह घड़ियालों के दोलक (पेंडुलम) बिल्कुल वही समय नही देते जो उन्हें देना चाहिए. जैसे भू-मध्य रेखा और पेरिस के समय में प्राय: ढाई मिनट का अंतर देखा गया. ऐसा क्यों होता है ? १६८७ में इस का उत्तर प्रसिद्ध भौतिक वैज्ञानिक **न्यूटन** ने दिया. उन्होंने अपनी पुस्तक **प्रिंसिपिया** मे पृथ्वी को मापने का एक विचित्र तरीका सुझाया. इस प्रकार के मापने में उन्हें अपने घर से दूर नही जाना पड़ा. उन्होंने कल्पना की कि उत्तरी ध्रुव से पृथ्वी के मध्य तक पानी की क नहर बहती है और वहाँ से वही नहर भू-मध्य रेखा की ओर जाती है. गुरुत्वाकर्षण और अपकेंद्रीय शक्ति के प्रभाव से भू-मध्य रेखा की ओर जाने वाली नहर की लंबाई दूसरी नहर से अधिक होनी चाहिए और हिसाब लगा कर उन्होंने बताया कि यह अधिकता २३० में से एक भाग होगा. यद्यपि इस में ३० प्रतिशत की ग़ल्ती थी फिर भी यह पृथ्वी को मापने की दिशा में एक क्रांतिकारी सिद्धांत था. उन्होंने पहली बार सिद्ध किया कि पृथ्वी अपने दोनों सिरों पर थोड़ी-बहुत चपटी भी है. १८वी शताब्दी में एक फ़्रांसीसी ज्योतिषी ने न्यूटन के सिद्धांत को परखने की कोशिश की, मगर उन के सर्वेक्षण के परिणाम इतने ग़लत थे कि उन के अनुसार पृथ्वी ध्रुवों पर नही बल्कि बीच में कही चपटी थी. इस भ्रांति को फ़्रांस की विज्ञान अकादेमी ने दूर करने का निश्चय किया और एक प्रसिद्ध फ़्रांसीसी वैज्ञानिक ने यह सिद्ध कर दिया कि वास्तव में न्यूटन का सिद्धांत ही ठीक था. १७५० से ले कर १९५० तक ध्रुवों के चपटेपन को मापने के अनेक तरीक़े अपनाये गये, मगर ब्रितानी वैज्ञा-

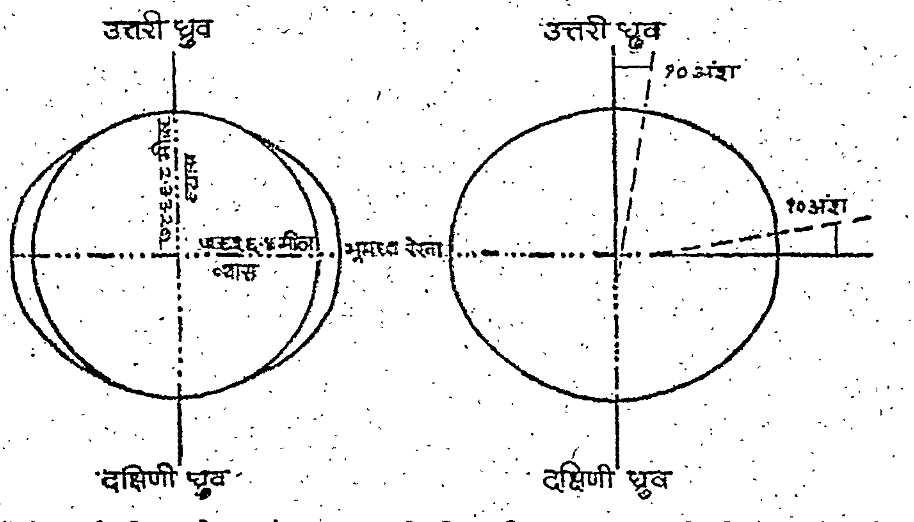

(क) पृथ्वी के चपटेपन को इस बात से सिद्ध किया जा सकता है कि भूमध्यरेखा के साथ-साथ पृथ्वी का व्यास ध्रुवों को मिलाने वाले व्यास से बड़ा होगा. (ख) भूमध्यरेखा पर २०° का कोण ध्रुवों पर १०° के कोण से कम जगह घेरता है.

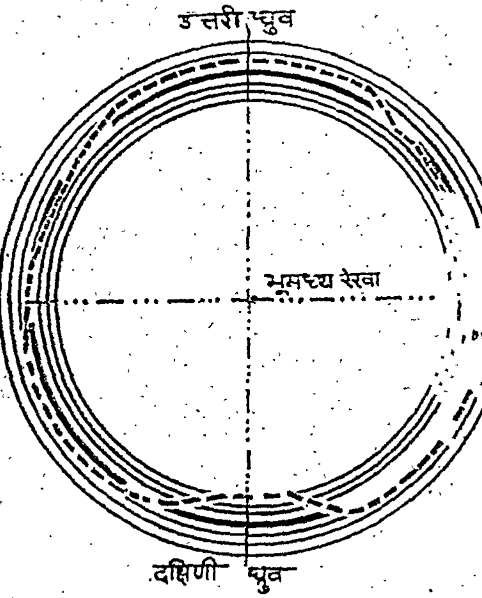

पृथ्वी को यदि चीर कर देखा जा सके तो उस की आकृति नाशपाती जैसी दिखाई देगी.

निक एलेग्जेंडर क्लार्क ने १८८६ में अपने अनुसंधान के परिणामस्वरूप यह घोषणा की कि वास्तव में यह चपटापन २९५ में से एक अंश है. १९०९ में अमेरिकी खगोल-शास्त्री प्रोफ़ेसर हेफ़ोर्ड ने अनुपात को २९७ में से एक अंश घोषित किया.

नाशपातीनुमा : भूमि को मापने के कुछ और तरीके भी हैं. चंद्रमा की गति में कुछ अव्यवस्थाओं को मापने से भी पृथ्वी के अक्ष का संबंध ग्रहों से जोड़ा जा सकता है. यह देखा गया है कि आज पृथ्वी का अक्ष जिस ओर इंगित करता है आज से प्राय: १४००० साल पहले इस ओर वह इशारा नहीं करता था. इस का कारण पृथ्वी के चपटेपन में है. सभी तरीक़ों को मिला कर केंब्रिज विश्वविद्यालय के प्राध्यापक हैरल्ड जेफ़्री ने गणना कर के यह सिद्ध किया कि वास्तव में भूमि का चपटापन २९७.१ में से एक अंश है. १९५७ तक इसी को सब से प्रामाणिक माना जाता था, किंतु सोवियत संघ के कृत्रिम उपग्रह स्पूतनिक की कक्षा की जाँच करने पर यह पता चला है कि इस माप में भी कहीं-कहीं गड़बड़ी है. अगर पृथ्वी बिल्कुल गोल होती तो यह उपग्रह भी सदा एक ही परिधि में घूमता और उस के मार्ग में कोई परिवर्त्तन नहीं होता. मगर ऐसा नहीं है. ऐसा लगता है कि भूमध्य रेखा के पास भी पृथ्वी की गोलाई बिल्कुल वैसी ही नहीं है जैसी कि अन्य स्थानों पर है; संभवत: वह यहाँ अधिक उभरी हुई है. स्पूतनिक द्वितीय और अमेरिकी उपग्रह एक्स्प्लोरर-१ और वेंगार्ड-१ के मार्गों की जाँच करने पर भी यह पता चला है कि जिस माप को १९५७ तक सब से अधिक वैज्ञानिक माना जाता था उस में कई बातों का समावेश नहीं हुआ है. अब यह माना जाता है कि पृथ्वी का चपटापन १९८.२५ में से एक अंश है और पृथ्वी सामान्यतया एक नाशपाती की शकल से मिलती जुलती है. यदि कोई व्यक्ति भूमध्य रेखा से ध्रुव की ओर यात्रा करे और वहाँ से फिर वापस आये तो उस की यात्रा में ६०० गज़ का अंतर पड़ेगा. सामान्य जीवन में इस का कोई विशेष महत्त्व नहीं है; मगर भौगोलिक गणना में १० गज़ की अशुद्धि तो स्वीकार की जाती है, ६०० गज़ की अशुद्धि नहीं. उपग्रहों के अतिरिक्त पृथ्वी को मापने के अन्य साधन पूर्ण रूप से गणित से संबंध रखते हैं. इस क़िस्म के साधनों से भी सहायता ली जाती है. लेजर किरण का भी उपयोग किया जाता है. यह एक ऐसी किरण है जो बहुत दूर तक बिल्कुल सीधी रेखा में जा सकती है और दो स्थानों की दूरी को मापने में बहुत अधिक सहायक है. संभवतया आगे आने वाले समय में पृथ्वी की शक्ल-सूरत और उस को मापने के संबंध में नये साधनों का उपयोग किया जा सकेगा, किंतु अभी तक इस सिलसिले में कृत्रिम उपग्रह सब से अधिक शक्तिशाली साधन है .

ज्योतिष और कंप्यूटर का समन्वय

१९६८ में चेकोस्लोवाकिया के निर्माण-मंत्रालय के कंप्यूटर विभाग के दो तकनीकी विशेषज्ञों ने एक ऐसी मशीन बनायी जिस के द्वारा विश्व कलैंडर तथा अन्य कलैंडरों के बीच का अंतर मिटाया जा सकता है. उदाहरण के लिए इस मशीन में एक घुंडी घुमाने से यह पता लगाया जा सकता है कि ४०० वर्ष पहले एक खास तारीख को बृहस्पतिवार था. एक और लीवर घुमाने से यह पता लग जायेगा कि विश्व-कलैंडर के हिसाब से कौन-सा दिन बैठता है. अन्य कलैंडरों को भी इसी प्रकार विश्व-कलैंडर की तिथियों या दिनों में बदला जा सकता है. इस कलैंडर नाम के कंप्यूटर का वज़न आधा किलो है और इस को चिरस्थायी कलैंडर की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है. इस में डायरी के बजाय हर दिन के लिए कुछ छेद हैं, जिन में तारीख-दिन आ जाते हैं. इस की क़ीमत ५ डॉलर यानी ४० रु. से भी कम पड़ती है. आकार छोटा-सा है, इस लिए मेज़ पर बड़े मज़े से रखा जा सकता है.

आजकल जो ईसाई कलैंडर कहलाता है, उस को १५८२ में पोप ग्रेगरी ने लागू किया था. इस में भी दोष हैं. पहला तो यह कि इस कलैंडर वर्ष और सूर्य-वर्ष में २६ सैकेंड का अंतर है, जिस के कारण ३,३०० वर्षों में पूरे एक दिन का अंतर पड़ जाता है. दूसरे इस में महीनों के दिनों की संख्या घटती-बढ़ती है, जिस से हिसाब-किताब में बड़ी असुविधा होती है. हर वर्ष नया कलैंडर छापना पड़ता है, क्यों कि एक जैसा वर्ष २८ वर्षों में एक बार ही आता है.

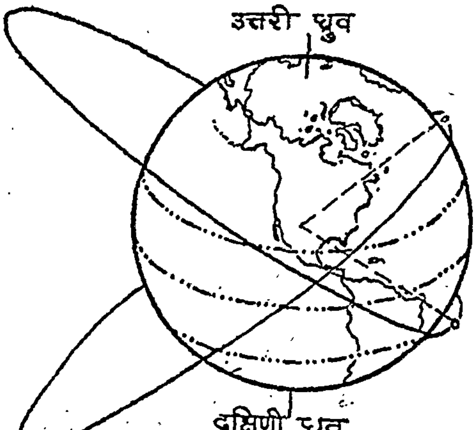

उपग्रह की कक्षा पृथ्वी के केंद्र से कहीं कम कहीं अधिक अंतर पर होती है क्योंकि स्वयं पृथ्वी की आकृति गोल नहीं है.

खाओ, पीओ, मगर खुश कैसे रहो ?

डेनमार्क में समृद्धि बहुत है. गत १० वर्ष में ऐश्वर्य ड्योढ़ा हो गया है, परंतु व्यक्ति के जीवन में शांति उतनी ही घट गयी है. अपने जीवन से व्यक्ति को जो संतोप एक स्वस्थ समाज में होना चाहिए वह दुर्लभ होता जा रहा है. डेनी स्वस्थ मन शोध संस्थान के संचालक के अनुसार इस का एक कारण है ज़िंदगी से ज़रूरत से ज़्यादा ऊँची उम्मीदें लगाये रहना.

अन्य कारण भी हैं. वास्तव में उन की खोज के लिए डेनमार्क के बौद्धिक जीवन में एक तगड़ी बहस चल रही है और श्रम-संतोप यहाँ की एक मान्यता बन गयी है. इस शब्द के प्रचलित होने के तीन कारण हैं : सब से पहले इस देश के सामाजिक विकास की गति काफ़ी तेज़ रही. सामाजिक दरिद्रता से अचानक ही सामाजिक संपन्नता तक पहुँच जाना इस बात का सबूत है. रॉयल डेनिश जर्नल में डॉ. एग्गर्ट पीटरसेन ने पिछले दशक के कुछ उदाहरण दे कर स्पष्ट किया है कि इस समय के दौरान डेनमार्क के एक औसत निवासी के रहन-सहन का स्तर ५० प्रतिशत ऊँचा उठा है. सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से यह देश अन्य संपन्न देशों से आसानी से होड़ ले सकता है; यानी अधिकांश परिवारों के पास मोटर, टेलीविजन, रेफ़्रिजरेटर और सप्ताहांत बिताने के लिए शहर से दूर निजी बँगलों का होना आज यहाँ कोई बड़ी बात नहीं. सामाजिक सुरक्षा और रहन-सहन का जो उच्च स्तर आज डेनमार्क के निवासियों को हासिल है उन की प्राप्ति के लिए अधिकांश जनता सदियों से जूझती रही है.

इस के बाद : इतना सब होते हुए भी आज डेनमार्क के निवासी यह समझ पाने में अपने को असमर्थ पा रहे हैं कि इन सब के साथ क्या वे जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुँच गये हैं? इस प्रश्न के उत्तर के लिए अपना मन टटोलने के बाद डेनमार्क में रहने वाला साधारणतया यही कहता हुआ पाया जाता है कि हमारे उद्देश्य, हमारे दृष्टिकोण में आमूल परिवर्त्तन की आवश्यकता है, जिस के लिए एक नारा हो—केवल संपन्नता नहीं, समृद्ध जीवन भी. घर-घर में अब मानसिक सुरक्षा के अभाव के बोध की ही यह प्रतिक्रिया है. पारिवारिक जीवन, कार्यक्षेत्र, अवकाश की घड़ियाँ—यानी आम तौर पर डेनमार्क का संपन्न निवासी इन में से किसी भी क्षेत्र में अपने-आप को सुरक्षित महसूस नहीं करता.

मन का मोड़ : इस नारे को लक्ष्य बनाने के पीछे कई कारण हैं. डेनमार्क के समाज में रहने वालों का यदि मानसिक विश्लेषण किया जाये तो पता चलेगा कि यहाँ के अस्पतालों का हर दूसरा मरीज़ मानसिक रोग का शिकार है. आठ में से एक व्यक्ति को किसी न किसी समय मानसिक रोग-विशेपज्ञ की शरण में जाना पड़ा है. कुछ वर्प पहले डेनमार्क के एक चिकित्सक द्वारा किये गये सर्वेक्षण को आधार मान कर कहा जा सकता है कि मध्य वयस्क लोगों के एक हिस्से में २५ प्रतिशत व्यक्ति मानसिक विकारग्रस्त हैं और जिन्हें तत्काल चिकित्सा की आवश्यकता है. मानसिक तनाव को शांत करने के लिए जो गोलियाँ यहाँ ली जाती हैं उन का हिसाब प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष २०० गोलियों से भी अधिक लगाया गया है. इस से यही निष्कर्ष निकलता है कि डेनमार्क में एक ऐसे समाज की सृष्टि हुई है जिस में शारीरिक, सामाजिक और आर्थिक भलाई का आश्वासन तो मिलता है, पर जहाँ तक मन:स्थिति का सवाल है अभी आदर्श स्थिति तक पहुँचने का रास्ता दूर ही लगता है. फिर भी बाह्य दृष्टि से सामाजिक और आर्थिक उन्नति जीवन के विकास के लिए निहायत ज़रूरी जान पड़ते हैं. समस्या तब शुरू होती है जब सुंदर जीवन की कामना में केवल इन्हीं क्षेत्रों में पूर्ण विकसित होने को ही एकमात्र ध्येय बना लिया जाता है. ऐसा मानते हुए कि इस दृष्टिकोण के प्रति अचानक ही वैराग्य नहीं आ सकता इतना तो अवश्य ही किया जा सकता है कि साथ-साथ मानसिक संतुलन को बनाये रखने का भी प्रयास किया जाये.

बेरोज़गारी के अभाव में : डेनमार्क में पिछले दशक से बेरोज़गारी की समस्या पूरी तरह मिट चुकी है. यह अपने आप में निश्चित ही एक बहुत बड़ी उपलब्धि है. हर कोई कमाता है और अपनी कमाई के बल पर अपने-आप को संपन्न पाता है, जिस से एक नयी सामाजिक स्वतंत्रता की अनुभूति जन्मी है. अपनी पसंद का काम न मिलने पर मजबूरी के नाम पर किसी को कोई पेशा अपनाने की ज़रूरत नहीं पड़ती. आज के स्वतंत्र मानव की तरह डेनमार्कवासी प्रचलित आर्थिक ढाँचे में अपने-आप को ढालने के लिए विवश नहीं है, बल्कि इस ढाँचे को व्यक्ति विशेप के अनुसार बदलते रहना होता है; यानी ऐसी स्थिति में हर व्यक्ति इस बात का आश्वासन चाहेगा कि उसे अपने पेशे से पूर्ण संतोप प्राप्त करने की पूरी छूट है.

मजदूर-संस्था बनाम मालिक : मालिक और मजदूर-संस्थाएँ आज इस बात पर सहमत हैं कि संतोपजनक पेशा और कार्यकुशलता में घनिष्ठ संबंध है. कोपनहेगन की पंद्रह संस्थाओं ने भी एक सर्वेक्षण के बाद यही निष्कर्ष निकाला है. बीमारी की छुट्टियाँ, देर से काम पर आना आदि भी ऐसे संतोष-असंतोप के अनुपात में घटते-बढ़ते रहते हैं. पेशे से संतोप प्राप्त करने की ओर आज हर डेनमार्कवासी इस बुरी तरह उन्मुख है कि गार्हस्थ्य जीवन से भी इनसान को कोई संतोष मिल सकता है यह उस ने पूरी तरह भुला दिया है. जिस समाज में औद्योगिकरण अपने पूरे जोर पर है वहीं इस

डेनी श्रमिक : श्रम-संतोष की तलाश में

तरह की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं. इनसान अपने को केवल एक अलग हस्ती मानने लगता है, परिवार का अंग नहीं. तभी तो आज कोपनहेगन में हर तीसरे विवाह की परिणति तलाक़ में होती है और इस के कारण की गहराइयों में यदि जाया जाये तो वह अच्छा-खासा शोध का विषय बन सकता है. पर पेशे से पूर्ण संतोष प्राप्त करने के बारे में जितना होहल्ला आज डेनमार्क में होता है उस का शतांश भी गृहस्थी टूटने के कारणों पर नहीं. यही शायद मशीनी युग के मानव की नियति है.

नौकरी और व्यक्ति : कोपनहेगन की पंद्रह संस्थाओं के १५०० कर्मचारियों को ले कर जो सर्वेक्षण किया गया उस से पता चला कि यहाँ नौकरी करने वालों को अपने पेशे से कोई विशेष शिकायत नहीं है. नौकरी की सुरक्षा, कार्य की गति, कार्य के घंटे, अच्छा काम करने पर प्रशंसा और गुणों की क़द्र—इन सभी की सुव्यवस्था यहाँ है. मामूली-सी कोई शिकायत अगर है तो वह वेतन, संचालकों और श्रमिक-संबंधों के खिलाफ़ हैं. हाल ही में जो थोड़ा-बहुत असंतोष डेनमार्क के श्रमिक-जगत् में दिखायी दिया है उस के पीछे श्रमिक-संगठनों का हाथ है और ये संगठन अब बड़ी तेज़ी से मज़दूरों पर अपना प्रभाव जमा रहे हैं.

तुलनात्मक विश्लेषण : इस सर्वेक्षण से कुछ और दिलचस्प तथ्य सामने आये हैं, जिन से पता चलता है कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में संतोष अधिक है. प्रशिक्षित कर्मचारी से अप्रशिक्षित कर्मचारी में आत्मसंतोष ज़्यादा है. अपने जीवन के बारे में अनपढ़ पढ़े लिखे लोगों से कम चिंतित हैं. टूटी गृहस्थी के बच्चों को थोड़े में अधिक संतोष मिलता है, जब कि माँ-बाप दोनों की छत्रछाया में पले बच्चे जीवन से बहुत कुछ उम्मीद करते हैं. आधुनिक डेनमार्क का औसत निवासी शायद अपने पेशे में पूर्ण संतोष प्राप्त करने को लक्ष्य बना कर जीवन शुरू करता है और उम्र भर इसी एक लक्ष्य पर उस की नज़र इतनी ज़ोरों से टिकी रहती है कि वह इस बात को पूरी तरह भुला देता है कि खाने, पीने, पैसा कमाने के बाहर भी कुछ है, जो पैसा कमाने की धुन से उत्पन्न तनाव को दूर कर सकते हैं.

जायेंगे हम हज़ार बार

अगर कोई साधारण आदमी किसी केंद्रीय मंत्री से सीधे प्रश्न कर बैठे कि केंद्रीय सरकार के इतने अधिक मंत्री और अफ़सर विदेश-यात्रा पर क्यों भेजे जाते हैं और उन की यात्रा पर भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा क्यों फूँकी जाती है यक़ीनन वह ऐसा जवाब देगा जिस का सार यह होगा कि क्यों कि आप को विदेश-यात्रा नसीब नहीं हुई इस लिए जलन के मारे आप यह सवाल पूछ रहे हैं.

लेकिन इसी सवाल को जब संसद् में विरोध-पक्ष की ओर से एकदम सीधे पूछा गया तो उपप्रधानमंत्री एवं वित्तमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने बड़ी मासूमियत से बताया कि गत वर्ष पहले छह महीने, १ जनवरी से ३० जून के बीच, केवल ३५५ अधिकारी ही विदेश-यात्रा पर गये.

उपप्रधानमंत्री की ओर से दी गयी सूची में इन अधिकारियों की उक्त अवधि में केवल २२२ यात्राओं का ज़िक्र है. इन यात्राओं पर कुल मिला कर १० लाख ७६ हज़ार ९४३ (१०,७६,९४३) रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च की गयी. सरकारी सूची में ६७ अधिकारियों की यात्रा पर खर्च होने वाली विदेशी मुद्रा का ब्योरा नहीं है. इस का मतलब हुआ कि २८८ अधिकारियों की यात्रा पर उपर्युक्त विदेशी मुद्रा व्यय हुई. कुछ अधिकारी तो तीन-तीन, चार-चार बार विदेश-यात्रा पर गये.

सब से ज्यादा अधिकारी वाणिज्यमंत्रालय के (४२) विदेश-यात्रा पर गये, जिन पर कुल २,७२,७११ रुपये की विदेशी मुद्रा व्यय हुई. परमाणु ऊर्जा-विभाग के ३९ अधिकारियों की यात्रा पर १,६४,८७१ रुपये की विदेशी मुद्रा का खर्च आया. रक्षामंत्रालय और पर्यटन तथा नागरिक उड्डयनमंत्रालय के क्रमशः २१-२१ अधिकारियों पर १,१९,५८३ और ९१,२२९ रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च हुई, जब कि खाद्य तथा कृषिमंत्रालय, सामुदायिक विकास और सहकारिता-विभाग के ३० अधिकारियों की यात्रा पर कुल ७७,३०३ रुपये की विदेशी मुद्रा का खर्च आया.

सब से कम विदेशी मुद्रा केवल ६८० रुपये स्वास्थ्य एवं परिवार-नियोजनमंत्रालय के अधिकारियों पर खर्च हुई, जब कि सूचना एवं प्रसारणमंत्रालय के ३ अधिकारियों की यात्रा पर केवल १,८९० रुपये की मुद्रा का खर्च आया. इस के विपरीत श्रम, रोज़गार और पुनर्वास-मंत्रालय के ३ अधिकारियों की यात्राओं पर ५८,२०० रु. की मुद्रा भी खर्च किये जाने की बात का उल्लेख होने के अतिरिक्त निर्माण, आवास तथा पूर्तिमंत्रालय के ११ अधिकारियों पर ८,१२० और संचार-विभाग (डाक-तार सहित) के १२ अधिकारियों के लिए ३५,७०९ रु. की मुद्रा खर्च होने की बात का भी उल्लेख है.

विदेश-यात्रा करने वाले ये सभी अधिकारीगण २२ मंत्रालयों अथवा उन से संबंधित विभागों से संबद्ध हैं. इस से भी अधिक दिलचस्प बात यह है कि ९८,४४० रु. की विदेशी मुद्रा प्राग में आयोजित भारतीय प्रदर्शनी के सिलसिले में व्यय की गयी. वाणिज्यमंत्रालय के संयुक्त सचिव और मंत्रालय के प्रदर्शनी-निदेशालय के १० अफ़सर इस काम के लिए गये थे. इसी प्रकार अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के अंतरराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के ५२वें अधिवेशन में भाग लेने के लिए ११ सदस्यों के शिष्टमंडल को भेजने में ५५ हज़ार रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च की गयी. पर्यटन एवं नागरिक उड्डयनमंत्रालय के ४ सदस्यीय शिष्टमंडल को ब्यूनस एयर्स में हुए आई. सी. ए. ओ. के सम्मेलन में भाग लेने के लिए भेजने पर ४२,८०० रु. की मुद्रा खर्च हुई.

भारत-फ़्रांस सहयोग के अंतर्गत सी. ए. ई. ए. फ़्रांस, पेरिस में 'फ़ास्ट न्यूट्रॉन्स' के क्षेत्र में काम करने के लिए परमाणु ऊर्जा-विभाग के एस. आर. परांजपे, एस. एम. दिवेकर और एम. सी. सब्बरवाल को भेजा गया, जिन की यात्रा पर ५९,०७९ रु. की मुद्रा खर्च हुई.

रक्षामंत्रालय के मेजर वी. डी. वर्मा और फ़ोरमैन एन. सी. चंद्रपाल को राडार निरीक्षणार्थ भेजने में ४७,८०४ हज़ार की विदेशी मुद्रा व्यय की गयी.

छोटे-छोटे कामों के लिए किस धड़ल्ले से विदेश-यात्राओं की अनुमति दी जाती है, इस के भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं. गृहमंत्रालय की ओर से जयंती जहाज़रानी मामले में डॉ. तेजा और श्रीमती तेजा के विरुद्ध प्रत्यर्पण कार्रवाई के सिलसिले में एक क़ानूनी सलाहकार तथा केंद्रीय जाँच ब्यूरो के एक पुलिस अधीक्षक को भेजने में २२.८५१ रु. की मुद्रा व्यय हुई.

खाद्य और कृषि, सामुदायिक विकास और सहकारितामंत्रालय के एक संयुक्त सचिव तथा एक अतिरिक्त मुख्य निदेशक जिनेवा में संयुक्त राष्ट्र चीनी सम्मेलन में भाग लेने के लिए गये और सिर्फ़ २१,२६७ रु० की विदेशी मुद्रा

खर्च करा आये. २,३६७ रु० की मुद्रा खर्च कर के सचिव (खाद्य) ए. एल. दायस को चावल की खरीद तय करने के लिए भेजा गया. (८,६५० रु० की मुद्रा खर्च कर के वित्त-मंत्रालय के विशेष सचिव डॉ० आई. जी. पटेल और संयुक्त सचिव जी. एस. स्वामीनाथन भारत सहायता संघ की बैठकों में भाग लेने गये. नेपाल सरकार के साथ व्यापार के कुछ मामलों के संबंध में बातचीत करने के लिए दो अफ़सरों को भेजने पर ३,४४५ रु० की मुद्रा खर्च हुई.

इसी प्रकार वाणिज्यमंत्रालय के विकास अधिकारी श्री के. राजगोपालन अमेरिका में किये गये विशेष बाज़ार सर्वेक्षण के लिए २५,००० रु० की मुद्रा खर्च कर के गये. ५,१०० रु० की मुद्रा खर्च कर के उपसचिव श्रीमती एस. एल. सिंगला काली मिर्च के निर्यात पर मूल्य स्थिरीकरण के प्रश्न पर इंदोनेसियाई अधिकारियों से वार्ता करने के लिए गयी थीं. नाइजीरिया में चतुर्थ राष्ट्रमंडल शिक्षा सम्मेलन में भाग लेने के लिए शिक्षामंत्रालय के सचिव और उपसचिव को भेजने में १८,५१५ रु० की मुद्रा का खर्च आया.

जलावतरण तथा तैरने (प्लवन) की प्रक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए सिंचाई तथा बिजलीमंत्रालय के उपनिदेशक को भेजने मे २,५३० रु० की मुद्रा व्यय हुई. कोयना बाँध से संबंधित नमूने के तौर पर परीक्षण के लिए मुख्य गवेषणा अधिकारी की यात्रा पर ३,७५० रु० की मुद्रा खर्च हुई. सरकारी सूचना मे विभिन्न तकनीकी योजनाओं के अंतर्गत अथवा अन्य प्रशिक्षण के लिए विदेश भेजे गये कर्मचारियों का ब्योरा नही दिया गया.

वइल्ले से होने वाली सरकारी अफ़सरों की विदेश-यात्रा को देखते हुए एक वर्ष की कुल यात्राओं के बारे में सहज अनुमान लगाया जा सकता है.

गत वर्ष मई से जुलाई के बीच प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ क्रमशः १५ और १६ व्यक्तियों के दो शिष्टमंडलों ने भूटान, सिक्किम, सिंगापुर, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड और मलयेसिया की यात्रा की थी. इन शिष्ट-मंडलों पर कुल ३४,९१० रु० की विदेशी मुद्रा का खर्च आया. प्रधानमंत्री के साथ जाने वाले अधिकारियों के दौर पर सरकारी खज़ाने से लगभग १२,१४६ रु० की विदेशी मुद्रा खर्च हुई, जब कि उन्हें निजी खर्च के लिए ४,९१४ रु० की मुद्रा की स्वीकृति भी दी गयी थी.

विदेशी मुद्रा के संकट का बार-बार रोना रोने के बावजूद सरकार कर्मचारियों के विदेशी दौरों पर किसी विशेष प्रकार की रोक-टोक नहीं लगाने जा रही है. मोरारजी के शब्दों में 'केवल ऐसे मामलों में विदेश जाने की अनुमति दी जाती है जो अपरिहार्य हों.'

भूमि-सुधार

चकबंदी या भाग्यबंदी

"कांग्रेस सरकार ने कमाल दिखाया है बाबू" गोरखपुर कलेक्टरी कचहरी में एक अधेड़ किसान ने अपने वकील से व्यंग्य कसते हुए कहा. 'कभी वेश्याबंदी, कभी सोनाबंदी, कभी नसबंदी और अब चकबंदी.' अपने मुवक्किल को समझाते हुए वकील साहब बोले, 'यह बंदोबस्त का काम है. अपने भूले-बिसरे खातों की दुरुस्ती करा डालो. मजाक़ से काम नही चलेगा. समझे ?' 'अजीब परेशानी है वकील साहब.' उस किसान ने दुखित हो कर यह बात उन को बतायी, 'अब तक न वह नसबंदी के चक्कर में फँसा और न तो सोनाबंदी के. मगर अब ऐसा मालूम होता है कि चकबंदी विभाग के कारण नसबंदी का भी शिकार होना पड़ेगा.' सो क्यों ?' वकील ने प्रश्न किया. किसान ने उत्तर देते हुए कहा, 'रात चकबंदी विभाग के सी. ओ., ए. सी. ओ., क़ानूनगो और लेखपाल साहब गाँव में आये थे और गाँव वालों को बटोर कर उन्होंने कहा, 'सरकार का हुक्म है कि भोजन की समस्या को सुलझाने के लिए हर गाँव के किसान नसबंदी करायें और जो किसान नसबंदी करायेगा उसे सरकार की ओर से प्रति व्यक्ति दस रुपया पुरस्कार मिलेगा तथा गाँव में उस का चक बढ़िया लगेगा. इस बात की जानकारी जब पूरे गाँव को हो गयी तो हर घर के रिटायर्ड लोगों ने अपने नाम सी. ओ. की डायरी में नोट करवाये. मगर मैं जो घर का अकेला हूँ और सिर्फ़ एक ही औलाद है, फिर कैसे हिम्मत कर के नसबंदी कराऊँ ? घरवाली भी मुझ पर मेरी बात सुन कर नाराज़ हो गयी है. वकील साहब, मेरे सामने सवाल है नसबंदी और चकबंदी का. कैसे बचें ?' 'सी. ओ. और ए. सी. ओ. को खुश कर के,' वकील साहब ने राह बता दी.

असलियत यह है कि चकबंदी-विभाग के अधिकारियों के खिलाफ़ अक्सर शिकायतें आती रहती है; लेकिन विडंबना यह है कि उन शिकायतों की सत्यता के बावजूद जाँच के समय मौक़े पर एक भी दूसरा आदमी शिकायत करने वाले की ओर से शहादत नही देता है. गाँव में बसने वाले किसानों के दिमाग़ में यह बात घर कर गयी है कि इन शिकायतों से चकबंदी अधिकारियों का कुछ बिगड़ने का नहीं है. अलबत्ते शिकायत करने वाले का ही कुछ नुक़सान होगा और जो उस की किस्मत को प्रभावित करेगा. इस प्रकार चकबंदी-विभाग निरंकुश बन गया है और उस के अधि-कारी-कर्मचारी छोटी-छोटी जोतवाले किसानों के लिए अभिशाप सिद्ध हो रहे हैं.

चकबंदी की योजना : जिस इलाक़े और जिन गाँवों की चकबंदी शुरू करनी होती है उन गाँवों की सूची तैयार कर के चकबंदी के अधिकारी-वर्ग हाईकोर्ट को ज़िला मजिस्ट्रेट के द्वारा ज्ञापन दे देते हैं और सरकारी काग़ज में गज़ट करा देते है. सरकारी गज़ट के प्रकाशित हो जाने के बाद संबंधित गाँवों के जितने भी मिल्कियत के मुक़द्दमे होते हैं उन की सुनवाई दीवानी के अदालतों में स्थगित हो जाती है और वे सभी मुक़द्दमे नये सिरे से संबंधित सी. ओ. की अदालत में देखे जाते है. सी. ओ. तथा एस. ओ. सी., जिन के लिए क़ानून की जानकारी लाज़िमी नही है, मिल्कियत के मुक़द्दमे देखते है और निर्णय सुना देते हैं.

जिन गाँवों को चकबंदी-योजना में शामिल किया जाता है उन में डुग्गी पिट जाती है कि अमुक दिन को लेखपाल खेतों की पैमाइश करेगा. उस दिन हर काश्तकार के घर दूसरे आवश्यक कार्य मुल्तवी कर दिये जाते हैं और लेखपाल जब दूसरे दिन गाँव में आता है तो सभी काश्तकार उस की अगुवानी में रुपये-पैसे घी-दूध-दही के साथ जुट जाते हैं. लेखपाल गाँव के सभी खेतों की मौक़े की पैमाइश नक्शे के अनुसार करता है और जिस खेत का रकबा मौक़े पर नक्शे के अनुसार कम या बेश पाता है वहाँ लेखपाल मेड-तोड़ दर्ज़ कर देता है और इस तरह विवाद की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है. इस के बाद हल्का क़ानूनगो पहुँच कर गाँव के किसानों को खतौनी सुनाता है. खाते में जो नाम भूल से छूटे रहते है उन्हें विवाद के रूप में दर्ज कर लेता है. गाँव के काश्तकार इस अवसर पर क़ब्ज़ा, शिकमी, वर्ग ९ आदि एक दूसरे के खेतों पर दर्ज़ कराने में होड़ लगा देते है और तब खतौनी सुनाने वाला कानूनगो मौक़े का लाभ उठाने की स्थिति में आ जाता है. इस के बाद ए. सी. ओ. खेतों की मालियत लगाने के लिए गाँव में पहुँचता है. अगर ए. सी. ओ. किसी पर नाखुश हुआ तो इस मौक़े पर दूसरे किसान उस काश्तकार की किस्मत को ही दोष देना वाजिब मानते हैं. आगे-आगे ए. सी. ओ. साथ में अपने पेशकार और चप-रासी को ले कर हर खेत घूमता है और पीछे-पीछे काश्तकारों का झुंड चलता रहता है. गाँव में चकबंदी समिति के जो सदस्य रहते हैं उन की राय से और अपनी इच्छा से खेतों की मालियत दर्ज करता है. अक्सर गाँव के होशि-यार और तिकड़मबाज़ धनी किसान इस मौक़े पर ए. सी. ओ. को प्रसन्न कर के साधारण दर्जे के खेतों की मालियत अच्छी लगवा लेते है. संपूर्ण चकबंदी की प्रक्रिया में मालियत ही एक ऐसी क्रिया है जिस से किसान के ज़मीन की किस्म बिगड़ने से बच सकती है, या अच्छी से बिगड़ सकती है. ए. सी. ओ. की इस क्रिया के बाद किसानों को **जोत चकबंदी आकार पत्र ५ ख** ए. सी. ओ. के कार्यालय से बाँटा जाता है.

पत्र ५ (ख) की करामात : जोत चकबंदी आकार पत्र ५ ख किसानों में इस लिए बाँटा

जाता है कि काश्तकार इस काग़ज़ द्वारा यह जान जाये कि उस का कहाँ घाटा है और कहाँ लाभ है. यानी इस नोटिस के मिलने पर काश्तकार मुकद्दमे की तैयारी में लग जाता है और २१ दिन के अंदर ए. सी. ओ. के दफ़्तर में अपनी उज्रदारी दाखिल कर देता है. आकार पत्र ५ ख की इस करामात से जिस काश्तकार के घर में मुकद्दमे नहीं रहते हैं उस घर में भी मुकद्दमे पैदा हो जाते हैं और गाँव में ऐसी रंजिश पैदा हो जाती है कि अपने भी पराये हो जाते हैं. ए. सी. ओ. काश्तकारों की उज्रदारी हो जाने के बाद समझौते के लिए गाँव में जाता है जहाँ वह लोगों की उज्रदारियों पर तारीख लगा कर सी. ओ. की अदालत में भेज देता है. सी. ओ. (जिस के लिए क़ानून की कोई जानकारी ज़रूरी नहीं होती है) काश्तकारों के भाग्य का फ़ैसला करता है. और सैकड़ों काश्तकारों के परिवार अपनी क़िस्मत पर आँसू बहाते अपने खेतों को गँवा कर वापस आ जाते हैं. कहने के लिए चकबंदी के अदालती काम में टिकट का पैसा नहीं खर्च होता है मगर सच तो यह है कि घरवाली के सभी ज़ेवर या तो गिरवी हो जाते हैं या बिक जाते हैं. प्रायः एक काश्तकार को अपनी मौरूसी जायदाद के बचाने में जायदाद की कुल क़ीमत का एक-तिहाई दाम लग जाता है. चकबंदी के दौरान मुकद्दमों की पेशी इतनी जल्दी-जल्दी होती है कि एक काश्तकार को अपने सबूत जुटाने में वाजिब (?) का चौगुना रुपया खर्च करना पड़ जाता है. हर क़दम पर उसे रिश्वत देनी पड़ती है. इस प्रकार चकबंदी विभाग की विशेष कृपा से टैक्सों के बोझ से लदे किसान दरिद्र होते जा रहे हैं. इतना ही नहीं प्रति एकड़ पीछे छः रुपया चकबंदी विभाग का खर्च भी सरकार काश्तकार से वसूल करती है.

फ़ैसले के बाद : सी. ओ. के फ़ैसले के बाद उस की कार्रवाई की अमल दरामद ए. सी. ओ. के कार्यालय में होती है. इस के बाद ए. सी. ओ. गाँव में पुनः पहुँच कर खेतों की मालियत के अनुसार खाते के हिसाब से खेतों का चक लगा देता है. नियम तो ऐसा है कि छोटे-छोटे खेतों को जोड़ कर बड़ा बना कर एक जगह कर दिया जाये और इसी परिप्रेक्ष्य में राज्य सरकार ने ए. सी. ओ. को २५ प्रतिशत किसी भी काश्तकार की भूमि अधिक और कम करने का अधिकार दे दिया है. परंतु ए. सी. ओ. अक्सर अपने इस विशेषाधिकार का इस्तेमाल साधारण जनता के हित में नहीं करता है. कोई भी ए. सी. ओ. क्षेत्र का ऐसा गाँव नहीं है जहाँ छोटे-छोटे जोतवाले काश्तकारों के खेतों की चकबंदी ठीक हुई हो. बहुत जगह से तो ऐसी भी शिकायतें आयीं कि चकबंदी के पूर्व अगर किसी काश्तकार के पास २ आराज़ी नंबरान थे तो चकबंदी के बाद ३ आराज़ी नंबरान उस के हो गये.

एच. एफ. २४ अतिस्वन विमान मारुत

विमान उद्योग

हज़ारवाँ विमान

हिंदुस्तान एयरोनाटिक्स लिमिटेड ने गत २८ मार्च को अपना १०००वाँ विमान (एच. एफ. २४) प्रतिरक्षा मंत्रालय को सौंप कर इस आशा को और भी बलवती बना दिया कि भारत शीघ्र ही अपनी वायुसेना तथा नागरिक उड्डयन की माँग के अनुरूप विमान तैयार करने लगेगा. यों तो एच. ए. एल. का इतिहास १९४१ से शुरू हो जाता है जब कि उस ने अगस्त माह में पहला 'हार्लो ट्रेनर' तैयार किया था. इस के १८ महीने बाद जुलाई १९४२ में उस ने प्रथम 'कर्टिस हॉकर' का संयोजन किया किंतु द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान एच. ए. एल. में निर्माण-कार्यक्रम बंद कर के उसे पूर्वी क्षेत्र में विमानों की मरम्मत करने वाले एक विशाल अड्डे के रूप में परिणत कर दिया गया. स्वाधीनता प्राप्ति के बाद १९४८ से वहाँ फिर विमानों के निर्माण का कार्य होने लगा और मार्च १९५० से एच. ए. एल. के कारखाने में वंपायर जेट विमानों का निर्माण होने लगा. देश की आवश्यकताओं को देखते हुए एच. ए. एल. की उपलब्धियों को पर्याप्त नहीं कहा जा सकता है.

निर्माण और निर्माण : अब एच. ए. एल. अपनी पूरी शक्ति से देश की सैनिक और नागरिक सेवाओं के लिए विमान तैयार करने में रत हैं. उस के बंगलूर और कानपुर स्थित कारखाने अब अनेक प्रकार के विमानों का निर्माण अथवा संयोजन कर रहे हैं जिन का उपयोग प्रतिरक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यों से ले कर कृषि कार्यों तक में हो रहा है. वायु सेना के लिए लड़ाई में काम आने वाले नैट और एच. एफ-२४ जैसे उपयोगी विमानों को तैयार करने के साथ ही अब एच. ए. एल. के कारखानों में हेलिकॉप्टर तथा पुष्पक जैसे प्रशिक्षण विमान भी तैयार हो रहे हैं. कृषि के उपयोग में आने वाले 'कृषक' विमान का उत्पादन काफ़ी अरसे से हो रहा है और अब एक अन्य विमान के निर्माण की भी योजना है जो 'कृषक' से भी अधिक उपयोगी होगा और जिस के निर्माण के लिए बहुत कम आयातित सामग्री की ज़रूरत होगी. इसी प्रकार एक जेट लड़ाकू के निर्माण की भी योजना चल रही है. यह विमान एच. एफ.-२४ से अधिक गतिशील और अधिक दूर तक मार करने वाला होगा. यह विमान संभवतः ७-८ वर्ष में तैयार हो जायेगा. पुराने विमानों को अधिक उपयोगी बनाने का भी प्रयास किया जा रहा है. एच. एफ.-२४ को अधिक गतिवान बनाने की योजना पर काम चल रहा है.

एच. ए. एल. के कानपुर स्थित कारखाने में नागरिक उड्डयन सेवाओं के लिए कई प्रकार के विमानों का निर्माण किया जा रहा है जिन में 'एवरो' कानपुर-१ और कानपुर-२ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. पहला 'एवरो' विमान १९६७ में तैयार हुआ था. बंगलूर के कारखाने में अतिस्वन जेट लड़ाकू विमानों, नैट विमान, मूल जेट प्रशिक्षक 'किरण' विमान, फ्रांसीसी एलाउत्ते हेलिकॉप्टर, कृषि विमान और ग्लाइडरों के निर्माण का काम हो रहा है. कारखाने के कार्य का दिनों-दिन विस्तार हो रहा है. विस्तार की यह प्रक्रिया रुकेगी नहीं क्यों कि विश्व के अन्य देशों के विमान-उद्योगों का तेज़ी से विकास हो रहा है और उन में हर वर्ष सैनिक और नागरिक उपयोगों के लिए श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम विमानों का निर्माण किया जाता है. तकनीकी प्रगति ने विमान-निर्माण

प्रथम एच. एस. ७४८ यात्री विमान

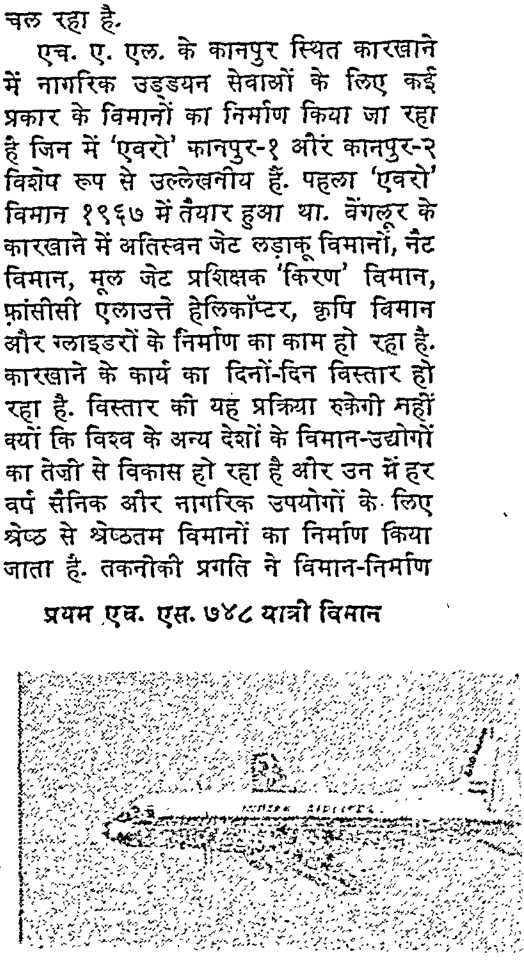

एवरो (कानपुर कारखाने की देन)

कौशल को बहुत ही आगे बढ़ा दिया है. पिछले दिनों एयर इंडिया के सौजन्य से आयोजित तीन दिवसीय अंतरराष्ट्रीय वायु परिवहन संस्था ने यात्रियों को सुविधाएँ देने के उद्देश्य से तकनीकी और चालन प्रक्रिया पर विचार किया. एयर इंडिया की इंजीनियरी विभाग के निदेशक और समिति के अध्यक्ष के. पी. अप्पास्वामी ने यात्रियों की भावी आवश्यकताओं का उल्लेख करते हुए कहा कि अगले दो सालों में विश्व के तेज विमानों यंत्रों के उपयोग में आने से वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन करना जरूरी हो गया है. जहाँ तक भारत का प्रश्न है उसे अभी अपनी नागरिक सेवाओं के लिए विदेशों में निर्मित विमानों पर निर्भर रहना पड़ता है. हिंदुस्तान एयरोनाटिक्स लिमिटेड ने नागरिक विमानों का निर्माण आरंभ कर दिया है किंतु इस क्षेत्र में हम अभी बहुत पीछे हैं. इस दृष्टि से न केवल वायुसेना के लिए अद्यतन विमान बनाने का उत्तरदायित्व हिंदुस्तान एयरोनाटिक्स पर है, बल्कि नागरिक सेवाओं के लिए भी अधिक क्षमता वाले तूफानी विमानों का निर्माण करने का उत्तरदायित्व भी उसे निभाना है.

वायुसेना दिवस पर अपने एक प्रसारण में एयर चीफ़ मार्शल अरजनसिंह ने प्रसन्नतापूर्वक यह घोषणा की कि ६३-६४ में शुरू होने वाले आयोजन के दौरान वायु सेना की शक्ति को ४५ स्क्वैड्रन करने का निश्चय किया गया था. इस लक्ष्य की पूर्ति हो गयी है. पिछले वर्ष तीव्र विकास की दृष्टि से उल्लेखनीय रहे हैं. वायुसेना ने रेडार की स्थापना में उन्नति की और भूमि से आकाश में मार करने वाले हथियार (मिज़ाइल) भी उपलब्ध किये.

लड़ाकू विमान नैट; जिस ने भारत-पाक संघर्ष में कमाल दिखाया था

खेल और खिलाड़ी

वैद्यनाथ नाथ : दूसरी विजय श्री

"लगातार दूसरी बार पाक जलडमरूमध्य तैराकी प्रतियोगिता जीतने पर मेरी हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ. मुझे इस बात का रंज है कि इस बार, पिछली बार की तरह, आप की इस महान् सफलता के अवसर पर उपस्थित नहीं हो सका. तैराकी के क्षेत्र में आप की इस अभूतपूर्व सफलता पर अपनी शुभकामनाएँ और मंगलकामनाएँ भेजता हूँ." यह बधाई-संदेश एयर मार्शल अरजन सिंह ने, जो भारतीय तैराकी संघ के अध्यक्ष भी हैं, रेलवे के वैद्यनाथ नाथ को भेजा, जिन्होंने इस वर्ष दूसरी बार पाक जलडमरूमध्य लंबी तैराकी प्रतियोगिता में विजय प्राप्त की. २४ वर्षीय वैद्यनाथ ने इस २२ मील सागर को १५ घंटे और २ मिनट में तैर कर पार किया.

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि १९६७ में जब पहली बार इस प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था तब भी वैद्यनाथ नाथ को प्रथम और भौमिक को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ था. ये दोनों तैराक रेलवे के हैं. १९६७ में वैद्यनाथ नाथ ने इस दूरी को १४ घंटे और ४६ मिनट में तय किया था. इस तैराकी-प्रतियोगिता से यह स्पष्ट हो गया कि रेलवे के ये दोनों तैराक (वैद्यनाथ नाथ और भौमिक) दोनों देशों में (भारत और श्रीलंका) सब से अच्छे तैराक हैं. इस तैराकी प्रतियोगिता में १४ तैराकों ने भाग लिया. इन में से ७ तैराक भारत के थे और ७ श्रीलंका के. २८ मार्च, सुबह ४ बजकर १६ मिनट पर तलाइमनार में यह तैराकी प्रतियोगिता शुरू हुई और शाम के ७ बजकर १८ मिनट पर वैद्यनाथ सब से पहले मंजिल पर पहुँचे. रेलवे के भौमिक दूसरे और बंबई के आर० पी० नवैट तीसरे नंबर पर रहे. १४ तैराकों में से जिन पाँच तैराकों ने बीच में हिम्मत छोड़ दी उन के नाम हैं पी० एस० माहत (नौसेना), नम्पन नायर (केरल) और चंद्रसेना दियास, एच० एम० फर्नांडो और एल० फर्डिनांड्स (ये तीनों श्रीलंका के तैराक हैं). भारत की ओर से पहले छः तैराकों के नामों की घोषणा की गयी थी मगर एन मौके पर उस में केरल के नम्पन नायर का नाम जोड़ दिया गया था.

नायर इस खतरनाक सागर को पार कर सकेंगे इस की किसी को भी आशा नहीं थी. वह तीन घंटे बाद ही (यानी सुबह के सात बजे ही) प्रतियोगिता से अलग हो गये. उन्होंने तैरते समय सागर का खारा पानी पी लिया. इन तीन घंटों में उन्होंने केवल साढ़े तीन मील का सागर ही पार किया था. जब नायर को बाहर निकाला गया उस समय रेलवे के एस० एन० भौमिक वैद्यनाथ से लगभग एक फ़र्लांग आगे थे. लंबे फ़ासले की दौड़ हो या तैराकी, आख़िर में जीत हमेशा उसी की होती है जो अपने दमखम और तेज़ी को बरकरार रख सके. नायर के बाद हिम्मत हारने वाले थे चंद्रसेना दियास जिन्होंने पाँच मील के बाद ही हथियार डाल दिये. दियास को जब बाहर निकाला गया तब वह बेहोशी की हालत में थे. उनके लिए तुरंत चिकित्सा की व्यवस्था की गयी और वह ठीक हो गये. इस प्रकार सुबह के ९ बजकर १५ मिनट तक केवल १२ प्रतियोगी रह गये. वैद्यनाथ ९ बजे तक अपने प्रतिद्वंद्वी भौमिक से १०० गज पीछे थे, एक ही घंटे बाद १०० गज आगे हो गये. इस एक घंटे में इन दोनों प्रतिद्वंद्वी तैराकों की तेज़ी देखते ही बनती थी. उस के बाद वैद्यनाथ ने भौमिक को आगे नहीं बढ़ने दिया. हाँ, दोनों तैराकों के बीच यह दूरी अवश्य धीरे-धीरे बढ़ने लगी. शाम के पाँच बजे के लगभग, जब वैद्यनाथ को केवल साढ़े तीन मील की दूरी पर अपनी मंजिल दिखायी दे रही थी, भौमिक वैद्यनाथ से लगभग एक मील पीछे रह गये थे. मंजिल पर पहुँच कर वैद्यनाथ ने देखा कि उन का प्रतिद्वंद्वी भौमिक कोई दो मील पीछे रह गया है. धनुषकोटि पहुँचने पर इन तैराकों का स्वागत करने के लिए भीड़ उमड़ पड़ी.

रामनद के कलैक्टर ने वैद्यनाथ को फूलमाला पहनायी. उसके बाद पालानीस्वामी ने, जो वैद्यनाथ के साथ रैफ़री के रूप में मोटर-बोट पर साथ-साथ चल रहे थे, कहा कि पिछली प्रतियोगिता की भाँति इस वर्ष भी तैराकों के साहस, संकल्प और दमखम की परीक्षा थी. वैद्यनाथ और भौमिक का मुक़ाबला काफ़ी कड़ा था. भौमिक ने शुरू-शुरू में थोड़ी तेज़ी अवश्य दिखायी मगर वह अपनी उस तेज़ी को काफ़ी समय तक बरकरार नहीं रख सके. यों शुरू-शुरू के दो-तीन घंटे तक भौमिक वैद्यनाथ से आगे ही रहे. उस के बाद इन दोनों तैराकों के बीच काफ़ी कड़ा मुक़ाबला हुआ और उस में वैद्यनाथ ने भौमिक को काफ़ी पीछे छोड़ दिया.

उद्गार : सब से पहले मंजिल (धनुषकोटि) पर पहुँच कर (शाम के ७ बज कर १८ मिनट) वैद्यनाथ ने बड़े आत्मविश्वास के साथ संवाददाताओं से कहा "अभी मैं १५ मील का सागर और तैर सकता हूँ. मैंने इस बार इस सागर को तय करने में पिछली बार की तुलना में थोड़ा ज्यादा समय लगाया है मगर उसका एक कारण तो यह था कि

सुवह-सुवह मुझे अपनी किस्ती की झंडियों को पहचानने में थोड़ी परेशानी हुई. दूसरी वात यह कि रास्ते में झंडियों का इशारा भी स्पष्ट नहीं था."

सागर देवता : पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार यह प्रतियोगिता लगभग ७५ मिनट और जल्दी शुरू होने वाली थी. कोलंवो के 'किनरोस स्विमिंग क्लव और लाइफ़ सेविंग क्लव' के अध्यक्ष एम० श्रीमाने ने इस प्रतियोगिता का उद्घाटन किया. जिस समय सभी तैराक सागर में कूदे उस समय तलाईमन्नार में हज़ारों लोगों ने अपनी शुभकामनाएँ प्रकट कीं और तालियाँ वजायीं. महाराष्ट्र के आर० पी० मर्चेंट, जो इस प्रतियोगिता में तीसरे स्थान पर रहे, ने समुद्र में छलांग लगाने से पूर्व एक नारियल तोड़ कर सागर-देवता को नमस्कार किया.

इस प्रतियोगिता में भाग लेने वाले दोनों देशों के तैराकों के नाम इस प्रकार हैं : भारत : वैद्यनाथ नाथ, एल० एन० भौमिक, ए० वी० सारंग, आर० पी० मर्चेंट, आर० आर० घर, पी० एस० माहत और नागप्पन नायर. श्रीलंका : जे० ननयाकरा, चंद्रसेना दियास, एच० एस० फरनांडो, एस० एम० ए० वाहाव, एस० मैकी, एंटोन स्वान और एल०फर्डिनांडस.

मोटर रेस

खेल कम, तमाशा ज़्यादा

भारतवर्ष में वूढ़े आदमियों की क़द्र हो या न हो मगर वूढ़ी मोटर कारों की क़द्र साल में एक वार तो अवश्य हो ही जाती है. राजधानी में 'स्टेट्समैन' द्वारा आयोजित 'मोटर कार रैली' की लोकप्रियता काफ़ी वढ़ती जा रही है. पिछले महीने राजधानी में हुई इस कार रैली में जिन ४७ पुरानी कारों का प्रदर्शन हुआ उन में से एक कार १९०४ मॉडल (ओल्डस्मोवाइल) भी थी. इस में सव से ज़्यादा (यानी १०) ऑस्टिन गाड़ियाँ थीं. दूसरा नंवर मॉरिस और फोर्ड का था. इस मॉडल की छः-छः गाड़ियाँ थीं. फिर मर्सडीज, राल्सराय, शेवरलैट आदि की. इस वार १७ वाहर (यहाँ वाहर का अर्थ विदेशों से नहीं वल्कि राजधानी से वाहर का है) के प्रतियोगियों ने भी भाग लिया.

इंदौर कार रेस : लंदन से सिडनी तक की अंतरराष्ट्रीय कार रैली की नकल पर पिछले दिनों इंदौर के आटोमोवाइल डीलर्स एसोसिएशन ने १५६८ किलोमीटर लंवी इंदौर कार रैली का आयोजन किया था (इस प्रतियोगिता के परिणाम दिनमान के पिछले अंकों में दिये जा चुके हैं.)

२२ फ़रवरी की सुवह इंदौर के नेहरू स्टेडियम में ग्वालियर के महाराजा श्री माधवराज सिंधिया ने रैली का शुभारंभ करते हुए कहा था—"इस प्रकार के साहसिक आयोजन हमारे देश में होते नहीं हैं अतः इस दृष्टि से इंदौर आटोमोवाइल डीलर्स एसोसिएशन प्रशंसा का पात्र है. मैं इस में भाग लेना चाहता था, लेकिन शादीशुदा होने और कुछ घरेलू दवाव के कारण भाग नहीं ले पा रहा हूँ. मुझे इस वात की खुशी है कि मेरे मित्र फ़िल्म-कलाकार जलाल आगा मेरी कार (फोर्ड फाल्कन नं० २) लेकर इस रैली में जा रहे हैं."

प्रतियोगी कारों को दो वर्गों में विभाजित किया गया था. 'अ' वर्ग में अठारह शक्ति या उस से अधिक शक्ति की कारें थीं. इस वर्ग में कुल पाँच (तीन मर्सडीज, एक फोर्ड फ़ाल्कन, एक फोर्ड मुस्तंग) कारें रवाना हुईं. 'व' वर्ग में अठारह अश्व शक्ति से कम की कारें रखी गयी थीं. 'व' वर्ग में कुल २१ कारों (१० एंवेसेडर, ४ फिएट, २ स्टेंडर्ड हैराल्ड, १ वेंगार्ड और ४ जीप) ने दौड़ लगायी थी. इनमें एक जीप सन् १९४० के 'वार मॉडल' की थी, जिस की अदायगी सर्वश्रेष्ठ रही. 'अ' और 'व' वर्ग की कारों के लिए वग़ैर विश्राम किये १५६९ किलोमीटर की दूरी तय करने का समय निश्चित किया गया था. 'अ' वर्ग की कारों के लिए १८ घंटे २७ मिनट तथा 'व' वर्ग के लिए २१ घंटे ४७ मिनट वापसी के लिए तय थे.

उल्लू और विल्ली : चालकों को रास्ते में कुछ दिलचस्प अनुभव हुए. जैसे सड़कें तो अपेक्षाकृत अच्छी थीं मगर धूल के गुवार से कैसे वचा जा सकता था. इसी लिए खुली जीप के प्रतियोगी जव लौटे तो राह की सारी धूल से सने होने के कारण उन्हें पहचान पाना भी कठिन हो रहा था. जवलपुर-सिवनी के वीच एक चालक रमेश ठक्कर के कंधे पर उल्लू वैठ गया. इंदौर आकर उन्होंने वताया कि कार से उल्लू को वाहर करने में २० मिनट लग गये. एक अन्य चालक उस समय अपना मन मसोस कर रह गये जव भोपाल के आगे एक विल्ली उनका रास्ता काट गयी.

एक दुर्घटना भी : रैली की कार नं० १, जो सव से पहले रवाना भी हुई थी, इंदौर से ७५वें किलोमीटर पर एक ट्रक से टकरा गयी. इसे सतीश सांघी और शरद मुखर्जी चला रहे थे. सामने के शीशे फूटने से मुखर्जी घायल हुए.

एक लड़की : एक-एक कार के दो-दो चालक या तो मित्र थे या वाप-वेटे या भाई-भाई. कार नं० १९ के चालक जाल गोदरेज अपनी १९ वर्षीया वेटी कुमारी जुवीन गोदरेज को साथ लेकर रैली में गये. कार नं० ५ की कुमारी वकुला तरखिया की कार रास्ते में फेल हो जाने से जुवीन गोदरेज एक मात्र महिला चालक रह गयीं. उन्हें इंदौर की महारानी उषा राजे द्वारा ५०० रु० का नक़द इनाम सर्वोत्तम चालक के रूप में मिला और इसके अतिरिक्त एक वैजयंती भी दी गयी.

जलाल आगा : सवसे पहले लौटे पर इनाम न पा सके

जाहिर है कि इस तरह की प्रतियोगिताओं में प्रतियोगियों को जितनी ख्याति या लोकप्रियता मिलती है उस से कहीं अधिक शोहरत ऐसी प्रतियोगिताओं के आयोजकों, तेल कंपनियों, मोटरकार निर्माताओं की हो जाती है. लंदन-सिडनी कार रेस के दौरान दिनमान के प्रतिनिधि को यह जान कर वड़ा आश्चर्य हुआ कि कुछ व्यापारियों की दिलचस्पी यह जानने में नहीं है कि कौन-सी कार सव से आगे है, मगर उन की दिलचस्पी केवल इतना भर जानने में है कि सव से आगे आने वाली मोटर में कौन-से टायर लगे हैं.

बर्मा : कंटकाकीर्ण पथ

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की हाल की बर्मा-यात्रा ने जहाँ एक ओर दोनों देशों के सदियों पुराने संबंधों में नयी चेतना भर दी वहीं दूसरी ओर बर्मा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, आर्थिक विकास, बर्मी जन-जीवन आदि के बारे में जानने का अवसर भी प्रदान किया है. बर्मा की जो तस्वीर आज हमारे सामने है उस के बनने में सैकड़ों वर्षों का समय लगा. ११वीं शताब्दी से बर्मा का राजनैतिक इतिहास आरंभ होता है. उससे पहले के बर्मा को मध्य एशिया, तिब्बत और चीन के आप्रवासियों का प्रदेश कहा जा सकता है. पैगान साम्राज्य की स्थापना के साथ ११वीं शताब्दी में बर्मा के स्वतंत्र राज्यों को एक केंद्रीय सत्ता के अधीन किया गया. १३वीं शताब्दी में मंगोलों ने बर्मा के शासकों को उखाड़ फेंका और इस के साथ ही देश फिर टुकड़ों में बँट गया. १६वीं शताब्दी में सम्राट ताबिनश्वेती और बेइननांग ने विखंडित बर्मा को फिर एक सूत्र में पिरोया. यह एकता १८वीं शताब्दी के आरंभ तक बनी रही.

१८२४ से बर्मा के शासक ब्रितानी भारत से युद्धों में उलझ गये जिस के फलस्वरूप १८८५ में संपूर्ण बर्मा का भारत में विलय हो गया. ब्रितानी शासन की स्थापना तो हो गयी, किंतु उस से बर्मी जनता की स्वाधीनता की लड़ाई नही रुकी. १९२० में बर्मी जनता को अपने इस संघर्ष में आंशिक सफलता मिली जब कि ब्रितानी सरकार ने उसे कुछ राजनैतिक रियायतें प्रदान कीं. परंतु इन रियायतों से बर्मी जनता को संतोष नहीं हुआ और अब वह भारत से अलग होने की माँग भी करने लगी. अप्रैल १९३७ में बर्मा एक अलग राजनैतिक इकाई बन गया. १९३६ के चुनावों में सियेथा पार्टी को विजय मिली और उस के नेता डॉ० बा माउ बर्मा के पहले प्रधानमंत्री बने. बर्मी नेताओं ने इतने भर से संतोष नहीं किया क्यों कि बार-बार के संवैधानिक सुधारों से जनता की परेशानियाँ बदस्तूर बनी रहीं, अतः उन्होंने उपनिवेशवाद के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखा. द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान यह संघर्ष बड़ा तीव्र हो गया. अनेक नेता बंदी बना लिये गये किंतु आधुनिक बर्मा के प्रमुख निर्माता थाकिन आंग सान अपने २९ साथियों सहित ब्रितानी चंगुल से बच निकले. उन्होंने जापान में जाकर सैनिक शिक्षा प्राप्त की और फिर बर्मी मुक्ति सेना की स्थापना की. १९४२ में जापान ने बर्मा पर अधिकार कर लिया. १९४३ में नये संविधान के अंतर्गत 'स्वाधीन' बर्मा राज्य का निर्माण किया गया. डॉ० बा माउ राष्ट्राध्यक्ष बने. किंतु उस समय तक बर्मा में जापान विरोधी भावना प्रबल हो गयी थी. उसी वर्ष जनरल आंग सान के नेतृत्व में एक फासिस्ट विरोधी संगठन बना जिसका उद्देश्य बर्मा को सभी विदेशी शक्तियों से स्वाधीन करना था. बर्मा के सभी संप्रदायों ने इस संगठन का साथ दिया. मई १९४५ में बर्मा पर फिर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया. फिर जनरल आंग सान ने ब्रितानी शासन को अपने आंदोलन का लक्ष्य बनाया. जनवरी १९४७ में जनरल आंग सान और ब्रितानी प्रधानमंत्री एटली के बीच लंदन में एक समझौता हुआ जिस के अंतर्गत ७ अप्रैल १९४७ को विधानसभा के चुनाव हुए जिन में जनरल आंग सान के दल को प्रबल बहुमत मिला. किंतु विधि की विडंबना, जनरल आंग सान बर्मा के स्वाधीनता-प्रभात को न देख सके. १९ जुलाई, १९४७ को कुछ हत्यारों ने मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों के साथ उन की हत्या कर दी. उन के बाद श्री ऊ नू ने सरकार बनायी. १७ अक्तूबर, १९४७ को लंदन में नू-एटली समझौते पर हस्ताक्षर हुए जिस के अनुसार ४ जनवरी, १९४८ को बर्मा स्वाधीन हो गया. किंतु इस के साथ ही कंटकाकीर्ण पथ समाप्त नहीं हुआ. आज भी बर्मी जनता को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जिन में कुछ आर्थिक हैं और कुछ राजनैतिक. चीन की ओर से उस की आज़ादी के लिए सतत संकट बना हुआ है.

ऊ नू के बाद : सन् १९६२ में जनरल ने विन के नेतृत्व में सैनिक सरकार ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली. ऊ नू लोकप्रिय थे, बहुत लोग उन्हें संत मानते थे, राजनैतिक नेता नहीं, पर बर्मा में शांति-व्यवस्था बनाये रखने या आर्थिक विकास शुरू करने में उन्हें सफलता नहीं मिल सकी थी. ऊ नू की सरकार द्वारा बौद्ध धर्म को प्रश्रय दिये जाने से अल्पसंख्यकों में असंतोष बढ़ रहा था. करेन, शान, कचिन आदि कबीलों ने सशस्त्र विद्रोह द्वारा केंद्रीय सरकार के प्रति अपने असंतोष को मुखर कर दिया था. बर्मी साम्यवादी दल की बढ़ती शक्ति भी संकट को बढ़ा रही थी. ऐसी स्थिति में जनरल ने विन की रक्तहीन क्रांति को आम तौर पर बर्मी जनता का समर्थन प्राप्त था. नयी सरकार ने स्थिति पर काबू पाने के लिए जो क़दम उठाये उन में पहला था बाहरी दुनिया से बर्मा का नाता लगभग तोड़ देना. बर्मा के सैनिक नेताओं का ऐसा मानना था (शायद अब भी है) कि बिना ऐसा किये बाहरी हस्तक्षेप से बचे रहना संभव नहीं था. यह भी कि बिना दूसरों के कंधों पर टिके बर्मा के आर्थिक विकास का काम सफल हो सकता है. इस नीति का एक परिणाम यह हुआ कि पर्यटकों, संवाददाताओं, शोधकर्ताओं का बर्मा में आना-जाना लगभग बंद हो गया. ग़ैर-सरकारी काम से बर्मा में पहुँचे विदेशियों को रंगून में मात्र २४ घंटे ठहरने का वीसा दिया जाने लगा. यह आश्चर्य की बात नहीं कि पिछले दिनों बर्मा के बारे में परस्पर विरोधी रायें जाहिर की जा रही हैं.

लेखा-जोखा : ने विन सरकार के नेतृत्व में बर्मा के विकास की लाभ-हानि का लेखा-जोखा तैयार करना कठिन ज़रूर है पर असंभव नहीं. सन् '६२ में सब राजनैतिक दलों पर प्रतिबंध लगा दिया गया था और शासन कार्य एक क्रांतिकारी परिषद् के हाथों सौंप दिया

स्वतंत्रता दिवस की १५वीं वर्षगांठ के अवसर पर जनरल सान की प्रतिमा के सामने एकत्रित बर्मा राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे का एक गुट : अब देश में संसदीय जनतंत्र नहीं है लेकिन उल्लास है...

गया था. सन् ६४ में इस परिषद् ने समाजवाद के लिए बर्मी मार्ग नामक एक दल की स्थापना की. इस दल ने मार्क्सवाद, बौद्धधर्म तथा मानववाद के मिश्रण के आधार पर बर्मा के भविष्य की रूपरेखा प्रस्तुत की. इस के लक्ष्य तथा कार्यक्रम स्पष्ट नहीं थे पर उपलब्धियों के आधार पर स की सफलता का मूल्यांकन किया जा सकता है.

ने विन की एक बड़ी सफलता बर्मा की अर्थ-व्यवस्था को विदेशी (चीनी तथा भारतीय) व्यापारियों के शिकंजे से छुड़ाना है. इस से वितरण व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी, पर आत्म-विश्वास बढ़ाने तथा स्वदेशी उद्यम को प्रोत्साहन देने की दिशा में महत्वपूर्ण लाभ हुआ.

चावल उत्पादन के क्षेत्र में और वितरण में ने विन शासन की उपलब्धियाँ ऋणात्मक रही हैं. महायुद्ध के पहले बर्मा चावल का निर्यात करने वाले देशों में सब से पहले स्थान पर था. चावल के निर्यात की मात्रा तीस लाख टन प्रति वर्ष थी. १९६७ में यह निर्यात घट कर मात्र १३ लाख टन रह गया था. इस घटते निर्यात का बुरा प्रभाव विदेशी मुद्रा-प्राप्ति पर भी पड़ा है. इस संबंध में यह ध्यान में रखने की बात है कि जहाँ निर्यात घटा है वहाँ घरेलू खपत बढ़ी है. १९६२ में बर्मा में ट्रैक्टरों की संख्या कुल ५०० थी. आज यह बढ़ कर २०,००० हो गयी है. देश में रासायनिक खाद बनाने वाले दो कारखाने भी खुल चुके हैं. शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सुधार हुए हैं.

सुधार काफ़ी नहीं : इन सभी (भले ही सीमित) सुधारों के लिए बर्मा को एक क़ीमत चुकानी पड़ी है, सेना के बढ़ते प्रभाव को स्वीकार करने में बजट का ३०-४० प्रतिशत भाग सेना पर खर्च होता है. सैनिक अफ़सरों ने विशेष अधिकार प्राप्त एक वर्ग के रूप में व्यावसायिक मध्यवर्ग को विस्थापित कर दिया है.

जनरल ने विन ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि यह सुधार काफ़ी नहीं है. पिछले वर्ष सितंबर में लन्जिन पार्टी की एक गोष्ठी में बोलते हुए उन्होंने कहा, "हम को अभी भी बहुत कुछ करना बाक़ी है. हम ने अपना बहुत-सा समय आपसी रक्तपात में गँवाया है. सन् ६२ से जनसाधारण की दशा में निश्चित रूप से सुधार हुआ है. पर यह सुधार बहुत थोड़ा है. अपने उद्देश्यों को हम तभी प्राप्त कर सकेंगे जब देश में एकता स्थापित हो जाये. इस के लिए जनतंत्र का सही अभ्यास ज़रूरी है."

बर्मा का एक पैगोडा

देश की एकता की समस्या बहुत गंभीर है. यद्यपि पिछले वर्ष सितंबर-अक्तूबर में साम्यवादी विद्रोहियों का दमन करने में सेना को काफ़ी सफलता मिली है, इन का खतरा समाप्त नहीं हो गया है. साम्यवादी नेता थाकिन तान हुन की हत्या के बाद से एवं आंतरिक कलह के कारण बर्मी साम्यवादी दल दुर्बल हो गया है पर चीन के साथ जुड़ी १,२०० मील लंबी दुर्गम सीमा से घुसपैठिये छापामारों की समस्या बनी हुई है. जब तक सीमावर्ती प्रदेशों में रहने वाले अल्पसंख्यकों के मन में केंद्र सरकार के प्रति विश्वास नहीं है तब तक उन के भड़क उठने की चिंता भी बनी हुई है. एक और समस्या बर्मा के प्राकृतिक साधनों के उचित उपयोग की है. अर्थ-शास्त्रियों का ऐसा मानना है कि भविष्य में बर्मा का आर्थिक विकास चावल के बढ़ते उत्पादन से नहीं, खनिज संपत्ति (तेल आदि) के ठीक उपयोग से जुड़ा है. विदेशी पूंजी के अभाव में यह समस्या बहुत बड़ी हो गयी है.

भारत-बर्मा और चीन : इधर चीन और बर्मा के बिगड़ते संबंधों को ले कर जो खुशी जाहिर की जा रही है उस में संयम से काम लेने की जरूरत है. यह हमेशा याद रखने की ज़रूरत है कि बर्मा अपनी उत्तरी सीमा पर चीन के दैत्याकार अस्तित्व को कभी भी चीन-बर्मा संबंध में नहीं भुला सकता. हाल के तनाव के बाद भी भारत को बर्मा से राजनैतिक कूटनीतक क्षेत्र में तटस्थता से अधिक की आशा नहीं करनी चाहिए.

विद्रोही नगा आदिवासियों के विषय में भी बर्मा के सहयोग की सीमाएँ स्पष्ट हैं. समान हितों की खोज आर्थिक विकास-व्यापार के क्षेत्र में हो सकती है. बर्मा ऐसे सहकार के प्रति उदासीन नहीं है. पिछले साल एक बर्मी व्यापार मंडल ने भारत की सफल यात्रा की. इस बातचीत में बर्मा को ५ करोड़ रुपये की सहायता देना भारत ने स्वीकार किया था. वैसे प्रतिनिधि मंडल ने १५ करोड़ रुपये की सहायता की माँग की थी जिसे भारत अपनी विवशताओं के कारण स्वीकार नहीं कर सका. फ़िलहाल दोनों देशों के व्यापारिक संबंध संतोषजनक हैं. इस वर्ष मार्च तक बर्मा ने ५ करोड़ रुपये मूल्य का सूती कपड़ा और धागा भारत से मँगाया. गत वर्ष कुल ३ करोड़ ५० लाख रुपये का कपड़ा और धागा बर्मा ने हमारे यहाँ से खरीदा था. बर्मा के साथ व्यापार के क्षेत्र में भारत को जापान और पश्चिमी जर्मनी से प्रबल प्रतिद्वंद्विता करनी पड़ रही है.

ने विन और इंदिरा गांधी : जानने का अवसर

हाल में कुछ राजनैतिक बंदियों को (जिन में ऊ नू भी शामिल हैं) रिहा कर ने विन ने अपने बढ़ते आत्मविश्वास का प्रमाण दिया है. बर्मा आने-जाने की रियायतें भी थोड़ी बढ़ी हैं. इस वातावरण का लाभ उठाने के लिए बहुत ज़रूरी है कि भारत-बर्मा के बीच रचनात्मक सहकार के सुझावों और कार्यक्रमों में ढील न आने पाये.

प्रवासी भारतीय : प्रवासी भारतीयों की समस्या भारत-बर्मा के संबंधों को सर्वाधिक प्रभावित किये हुए है. स्वाधीनता से पहले बर्मा में भारतीयों की बड़ी प्रतिष्ठा थी जिस का श्रेय नेता जी सुभाष चंद्र बोस को था. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने ढंग से प्रवासी भारतीयों की समस्या सुलझाने के प्रयास किये और उन्हें तात्कालिक सफलता भी मिली. श्री नेहरू की मृत्यु के बाद यह समस्या अधिक जटिल बन गयी और बड़ी संख्या में भारतीय स्वदेश लौटने को बाध्य हो गये. समस्या के समाधान के लिए श्री लाल बहादुर शास्त्री ने १९६५ में रंगून-यात्रा भी की किंतु समस्या का कोई स्थायी हल नहीं खोजा जा सका. १९६४ से ले कर अब तक १,६०,००० से भी अधिक भारतीय स्वदेश लौट आये हैं. इस समय बर्मा में कोई २,५०,००० भारतीय हैं जिन में अधिकांश ऐसे हैं जो न तो बर्मा के नागरिक हैं (क्यों कि उन की दो-तीन पीढ़ियाँ बर्मा में बीत जाने के बावजूद बर्मा सरकार ने उन्हें नागरिकता प्रदान नहीं की है) और न ही भारत के, ये भारतीय न केवल स्वयं को असुरक्षित समझते हैं, बल्कि वर्त्तमान स्थिति से वे दुखी भी हैं. बर्मा सरकार ने अब तक कोई ७-८ हजार भारतीयों को ही बर्मी नागरिकता प्रदान की है. बर्मी नागरिकता प्राप्त करने से संबंधित ३५,००० से भी अधिक आवेदनपत्र बर्मा सरकार के पास हैं किंतु वह उन पर निर्णय करने में कोई तत्परता नहीं दिखा रही है. बर्मा सरकार से यह आशा तो नहीं की जानी चाहिए कि वह अपने हितों का बलिदान कर के इस समस्या को सुलझायेगी, किंतु उस से इतनी अपेक्षा तो की ही जा सकती है कि इस जटिल समस्या को सुलझाने में वह भारत सरकार से पूरा-पूरा सहयोग करे.

विश्व

रूस-चीन संघर्ष

प्रस्ताव और तैयारी

दमिस्की टापू पर लगातार चीनी हमलों का मुँह-तोड़ उत्तर देते रहने के बाद अब रूस ने सीमा-विवाद सुलझाने के लिए चीन के समक्ष वार्त्ता का प्रस्ताव किया है. २७ मार्च को मास्को-स्थित चीनी राजदूत को लिखे पत्र में रूस ने यह विचार व्यक्त किया है कि सीमा-विवादों को युद्ध द्वारा हल नही किया जा सकता है, अतएव उसूरी नदी क्षेत्र में सीमा संकट का समाधान करने के लिए दोनों देशों के अधिकारियो की निकट भविष्य में वार्त्ता होनी चाहिए. उल्लेखनीय है कि रूस ने चीन से लगी अपनी सीमा को कभी विवादास्पद नही माना है. और न ही इस पत्र में ऐसा कोई संकेत दिया है, बल्कि पत्र में चीन पर पड़ोसी देशों के साथ सीमा-विवाद खड़े करने का आरोप लगाया गया है. पत्र में कहा गया है कि चीन 'पड़ोसी प्रदेशों पर अपना दावा इस आधार पर जताता है कि ये प्रदेश कुछ सामंतों, सम्राटों और ज़ार शासकों के बीच विवाद का विषय रहे हैं, अथवा कभी चीनी विजेताओं और व्यापारियों ने इन पर पदार्पण किया था. पत्र में चेतावनी दी गयी कि जो लोग सोवियत संघ और सोवियत जनता से हथियारों की भाषा में बात करेंगे, उन्हे मुँह-तोड़ उत्तर दिया जायेगा.

पूर्ण युद्ध नहीं : इस प्रस्ताव पर चीन की प्रतिक्रिया का अभी तक पता नही चला है, किंतु ऐसा अनुमान है कि इस समय चीन पूर्ण युद्ध छेडने की स्थिति में नही है और हो सकता है कि चीनी नेता कुछ शर्तों के साथ बातचीत करने के लिए तैयार हो जायें, इस अनुमान का आधार चीन की वर्त्तमान आर्थिक स्थिति है. 'महान् सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति' के फलस्वरूप १९६७-६८ में चीन की अर्थ-व्यवस्था काफी खोखली हो गयी. अनुमान है कि चीन के औद्योगिक उत्पादन में १५ से २० प्रतिशत तक की गिरावट हुई है. निर्यात में भी कमी हुई है. चीनी नेतृत्व इस स्थिति से चिंतित है और अब वह उत्पादन बढाने की दिशा मे ध्यान दे रहा है. ऐसी दशा में यदि चीन, रूस से युद्ध छेडता है तो एक तो उस की अर्थ-व्यवस्था युद्ध के भार को वहन नही कर पायेगी और दूसरे उस के आर्थिक कार्यक्रम भी ठप हो जायेंगे. १५ मार्च की मुठभेड के बाद दोनों पक्षों में कोई बड़ी झड़प न होने का एक कारण यह भी हो सकता है, किंतु इस का एक और भी पहलू है. चीनी नेता यह जानते हैं कि उसूरी नदी की बर्फ पिघलने से दमिस्की टापू में रूस के मुकाबले उन का पलड़ा भले ही भारी हो जाये परंतु शेष सीमा पर, विशेष कर मंचूरिया और सिक्याङ के इलाकों में, वे रूसी सेनाओं का सामना नहीं कर सकते हैं और इसी कारण वे सीमा पर कोई बड़ा संघर्ष छेड़ना नही चाहते हैं.

बेख़बर नहीं : रूस ने वार्त्ता का प्रस्ताव तो किया है, परंतु वह चीन की ओर से सतर्क भी है. अन्य पड़ोसियों की तरह रूस को भी चीन पर विश्वास नही है. चीनी अजगर कब उस के सीमा-प्रदेशों को निगलने के लिए दौड़ पड़े, इस के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है. इस सारी स्थिति को देखते हुए भी संभवत: रूस ने अपनी नौसेना को जापान सागर में भेजने का निर्णय किया है. प्राप्त सूचनाओं के अनुसार रूसी युद्ध-पोत, पनडुब्बियाँ और कुमुक पहुँचाने वाले जलयान उत्तरी अतलांतिक महासागर मे हो कर सुदूरपूर्व के लिए रवाना हो गये हैं. नैटो के अधिकारियों का मत है कि रूस के इन युद्ध-पोतों की यात्रा का उद्देश्य जापान सागर के तट पर स्थित व्लादीवोस्तोक बंदरगाह पर तैनात अपने प्रशांत महासागरीय बेड़े को कुमुक पहुँचाना है. नौसैनिक बेड़े की यात्रा का एक उद्देश्य यह भी हो सकता है कि रूस, चीन के समक्ष अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाहता है. वह चीनी नेताओं को यह बता देना चाहता है कि यदि उन्होने उसूरी नदी के क्षेत्र में अपनी सैनिक कार्रवाइयाँ बंद नही की तो रूस अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए हर संभव कदम उठा सकता है. आवश्यकता पड़ने पर वह नौसेना का प्रयोग करने में भी संकोच नही करेगा. व्लादीवोस्तोक नौसैनिक अड्डा दमिस्की टापू से अधिक दूर नही है. अत: वहाँ से संघर्षरत रूसी सेना को कुमुक भेजने में कोई कठिनाई नही होगी. फिर प्रशांत महासागर में सशक्त रूसी नौसैनिक बेड़े के होने का एक लाभ यह भी है कि यदि रूस-चीन सीमा पर युद्ध का विस्तार होता है तो रूस की नौसेना चीन की पूर्वी सीमाओं के लिए संकट पैदा कर सकती है.

एक कारण और : जापान सागर में और अधिक युद्ध-पोत भेजने का एक कारण और भी हो सकता है जिस की ओर फ़िलहाल राजनैतिक प्रेक्षकों का ध्यान आकृष्ट नही हुआ है. क्यों कि वे यह मान कर चल रहे हैं कि रूस इस समय चीन से इतना अधिक उलझा हुआ है कि वह अन्य मसलों की ओर ध्यान नही दे पा रहा है. वह जो कुछ कर रहा है, चीन की ओर से संभावित ख़तरे का सामना करने के लिए कर रहा है. परंतु उन का ऐसा सोचना सही नही है. हाल में रूस ने अमेरिका आदि पश्चिमी देशों के बारे में जो विचार व्यक्त किये हैं, उन से ऐसा लगता है कि रूसी नेतृत्व पश्चिम की ओर से आश्वस्त नही है और उधर के ख़तरे को पहले जैसा ही मानता है. रूस ने बदलते राजनैतिक परिवेश से लाभ उठा कर प्रशांत महासागर में अपनी नौसेना को अधिक सशक्त बनाने के लिए यह क़दम उठाया है. सामान्य स्थिति में यदि वह ऐसा करता. तो पश्चिमी गुट निश्चय ही उस का विरोध करता जैसा कि पिछले वर्ष अतलांतिक महासागर में रूसी बेड़े के प्रवेश के समय किया गया था. प्रशांत महासागर में शक्तिशाली बेड़ा होने पर रूस, वीएतनाम-युद्ध पर पहले से अच्छा नियंत्रण रख सकता है. चीन द्वारा सीमा बंद कर दिये जाने पर उत्तरी वीएतनाम को सैनिक साज-सामान भेजने में जो व्यवधान पड़ा, वह भी बहुत कुछ दूर हो सकता है और इस प्रकार पेरिस-वार्त्ता में वह उत्तरी वीएतनाम के पक्ष को मज़बूत कर सकता है.

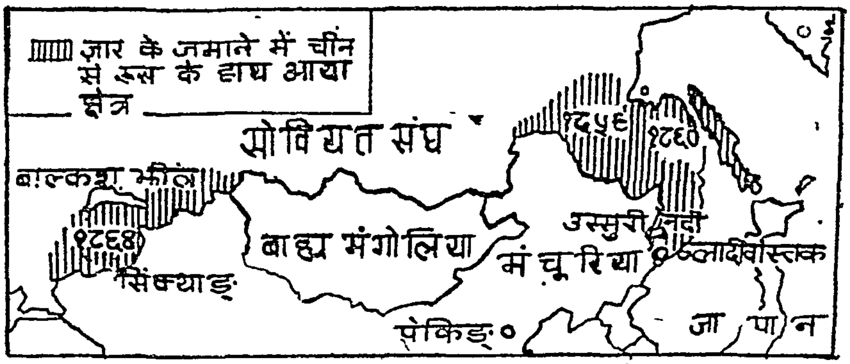

कम्युनिस्ट-जगत

सम्मेलन से सम्मेलन तक

मास्को में इसी वर्ष जून में कम्युनिस्ट विश्व सम्मेलन की घोषणा को ही वारसाउ संधि देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के हाल ही के बुदापेस्त सम्मेलन का एक ठोस परिणाम माना जा सकता है. इस के अलावा बुदापेस्त सम्मेलन रूस के लिए बिल्कुल भी संतोषजनक नही रहा और अन्य सम्मेलनों की तरह इस में भी पूर्वी यूरोप की कम्युनिस्ट पार्टियों के आपसी मतभेद

और भी उभर कर आये. जिस सम्मेलन की तैयारी में रूस को दस महीने लगे उस में विचार-विमर्श केवल ढाई घंटे में ही समाप्त हो गया तो कौन जानता है उस सम्मेलन के विचार-विनिमय की आयु कितनी होगी जिस की तैयारी के लिए केवल दो ही महीने का समय है.

रूस की निराशा : सम्मेलन में रूस की निराशा इस बात से भी और बढ़ गयी कि सीमा पर मुठभेड़ों के बावजूद रोमानिया ने इस बार भी चीन की निंदा करने से इनकार कर दिया. शायद इसी लिए सम्मेलन की समाप्ति पर जारी की गयी विज्ञप्ति में चीन का कोई जिक्र नहीं था. यूरोपीय सुरक्षा की वही घिसी-पिटी बात इस बार भी की गयी. इधर पूर्व जर्मनी की कम्युनिस्ट पार्टी के नेता वाल्टर उल्ब्रिख्त का कहना है कि बुदापेस्त सम्मेलन में सीमा मुठभेड़ों के लिए एक-स्वर से चीन की निंदा की गयी. अपने देश के एक सम्मेलन में पूर्व जर्मन कम्युनिस्ट नेता ने यह विचार व्यक्त किया कि सोवियत-चीन विवाद अंतरराष्ट्रीय साम्यवादी आंदोलन को बहुत हानि पहुंचा रहा है. बुदापेस्त सम्मेलन में चीन को ही इन झगड़ों का दोषी माना गया है.

सम्मेलन की समाप्ति पर कम्युनिस्ट सूत्रों से ही प्राप्त समाचारों से लगा कि सम्मेलन में रूस के सभी मंसूबों को रोमानिया ने ही खाक में मिलाया. रूस का मुख्य उद्देश्य तो सम्मेलन से चीन की निंदा कराना था और इस में मुख्य अड़चन रोमानिया ने ही डाली. ढाई घंटे के विचार-विनिमय के बाद जो विज्ञप्ति बाहर आयी उस में बस यूरोपीय सुरक्षा की ही बात कही जा सकी.

पश्चिमी देशों के प्रति रवैया नरम : यूरोपीय सुरक्षा के संदर्भ में पश्चिमी देशों के प्रति इस बार का कम्युनिस्ट रवैया कुछ अलग था. वारसाउ संधि के देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के हर सम्मेलन के बाद अमेरिका और पश्चिमी देशों की जितने कड़े शब्दों में निंदा की जाती थी उतने कड़े शब्द इस बार की विज्ञप्ति में नहीं मिलते. पश्चिम जर्मनी के प्रति भी इस बार कुछ नरमी ही बरती गयी. कुछ प्रेक्षकों के अनुसार चीन के साथ सीमा मुठभेड़ों के बारे में रूस इतना चिंतित नहीं जितना कि चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण के कारण अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा प्राप्त करने को उत्सुक है. प्रतिष्ठा को धक्का लगने के अलावा रूस की इस कार्रवाई ने उत्तर एतलांतिक संधि संगठन को भी एक नया जीवन प्रदान कर दिया. अमेरिका के साथ निरस्त्रीकरण वार्ता पर भी इस का बुरा असर पड़ा और आशंका है कि इस की संभावना हमेशा के लिए ही समाप्त हो गयी हो. यह तो हुई पश्चिम की बात, पूर्वी यूरोप पर तो रूस के इस आक्रमण का और भी बुरा असर पड़ा. इस से रूस के अपने ही मित्र उस पर अविश्वास करने लगे. कौन नहीं जानता कि वारसाउ संधि के देशों को प्रभुसत्ता से सीमित अधिकार देने के ब्रेझनेव सिद्धांत को रोमानिया और कुछ हद तक स्वयं चेक जनता अस्वीकार कर चुकी है.

एंगुइला

आखिर समझौता हो ही गया

एंगुइला के स्वयं घोषित राष्ट्रपति वेब्स्टर और संयुक्तराष्ट्र में ब्रिटेन के प्रतिनिधि लॉर्ड केरेडन की बात जिस गतिरोध के दौर में पहुंच गयी थी उस से ऐसा लग रहा था कि एंगुइला और ब्रिटेन की तनातनी और गहरी हो सकती है. दोनों पक्षों ने दो अलग-अलग समझौते-पत्र एक दूसरे को दिये थे. इस पर वेब्स्टर ने कहा था कि जब तक इस दस्तावेज में सैनिक तुरंत हटाये जाने का स्पष्ट उल्लेख नहीं होगा तब तक वह दस्तावेज पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे. लेकिन केरेडन केवल यहां तक ही सहमत हुए कि स्थिति सामान्य होते ही सैनिक हटा लिये जायेंगे. कहीं गतिरोध बना ही न रहे और समझौते की रस्सी ज्यादा खींचातान से टूट न जाये, दोनों पक्षों ने मौजूदा राजनैतिक सरगर्मियों का ख्याल रख, कुछ तुम झुको कुछ हम झुकें के फार्मूले को आधार बना इस द्वीप का संवैधानिक संकट खत्म किया. समझौते के अनुसार ब्रितानी कमिश्नर टॉनी ली एंगुइला में रहेंगे और वह द्वीप के ७-सदस्यीय परिषद् की सलाह पर वहां का प्रशासन कार्य चलायेंगे. ब्रितानी सेना को वापस बुलाने के बारे में भी दोनों पक्षों में समझौता हो गया है. १९ मार्च से एंगुइला में जो संकट शुरू हुआ था वह केरेडन और वेब्स्टर की सूझ-बूझ से फ़िलहाल समाप्त हो गया.

कुछ दिन पहले जब एंगुइला के राष्ट्रपति रोनाल्ड वेब्स्टर न्यूयॉर्क से अपने द्वीप में पहुंचे तो उन के देशवासियों ने उन का दिल खोल स्वागत किया. उन्होंने तब लोगों से ब्रिटेन के विदेश और राष्ट्रकुल मंत्रालय के राज्यमंत्री लार्ड कैरेडन के एंगुइला पहुंचने पर यथोचित सम्मान देने का अनुरोध किया था, जो उन्हें मिला भी. ब्रिटेन ने एंगुइला की भावनाओं की कद्र करते हुए ७० तकनीकी अधिकारी एंगुइला भेजे हैं जो वहां के लोगों के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने में अपना सहयोग देंगे. एंगुइला की सड़कों के निर्माण, अस्पतालों में सुधार आदि की जिम्मेदारी भी ब्रिटेन ने अपने ऊपर ली है.

बातचीत : वेब्स्टर के साथ अमेरिका स्थित एंगुइला के प्रतिनिधि जेरेमिह गम्स भी आये थे. गम्स वेब्स्टर के विश्वासपात्र सहयोगियों में से हैं. वेब्स्टर ने यह बात साफ़ कर दी कि अब एंगुइला सेंट किट्स और नेविस के साथ संघ में शामिल नहीं होगा. वह अपना भाग्य कैरेबियन के कुछ दूसरे द्वीपों अर्थात् अमेरिकी वर्जिन द्वीप, ब्रितानी वर्जिन द्वीप और प्वेर्तो रिको से जोड़ सकता है. ब्रिटेन से समझौते या बातचीत के दायरे को साफ़ करते हुए उन्होंने कहा था कि ब्रिटेन सरकार से उन की बातचीत धमकियों और हथियारों के रहते नहीं होगी.

राजनैतिक हलकों में इस प्रकार की चर्चा है कि ब्रिटेन ने एंगुइला पर इस लिए सैनिक कार्रवाई की थी क्यों कि उसे डर था कि एंगुइला कुछ ऐसी शक्तियों का केंद्र बिंदु बनने जा रहा है जो उस के अस्तित्व के लिए खतरा साबित हो सकती थीं. ब्रितानी मंत्री विलियम विटलॉक को जिस हालत में एंगुइला से वापस लौटना पड़ा था, उस का कारण यह विद्रोही और उग्रवादी शक्तियां ही थीं. दोनों पक्षों में समझौता हो जाने के कारण एंगुइला शीघ्र ही सामान्य स्थिति को लौट जायेगा.

रोनाल्ड वेब्स्टर : संकट टला

समझौता बेशक हो गया है लेकिन भीतर ही भीतर ब्रिटेन यह कसक जरूर महसूस करता है कि कभी ६५ करोड़ लोगों पर वह राज्य किया करता था और अब १ करोड़ भी उस की सत्ता को बर्दाश्त करना पसंद नहीं करते. जो उस के साथ बने हुए हैं उस का कारण आर्थिक दृष्टि से उन का स्वावलंबी न हो पाना है. ९० निवासियों का पिटकारैन द्वीप, २००० या ८,५०० आबादी वाले फ़ाकलैंड और वर्जिन द्वीप किस बूते पर आज़ादी संभालेंगे? जिन द्वीपों की जिम्मेदारी से ब्रिटेन बचना चाहता है वह उसे छोड़ना नहीं चाहते और जिन्हें वह पकड़ना चाहता है, वह उस से छुटकारा पाना चाहते हैं. कैसी कशमकश की कसक का ब्रिटेन शिकार हो गया है.

नाइजीरिया

शांति वाहन पर युद्ध-यात्रा

ब्रितानी प्रधानमंत्री हेरल्ड विल्सन के नाइजीरिया पहुंचते ही बिआफ्रा पर संघीय सेना के आक्रमणों का जोर एकाएक बढ़ गया. इधर

लागोस में नाइजीरिया सरकार के साथ ब्रितानी प्रधानमंत्री की वार्त्ता शुरू हुई तो उधर संघीय सरकार ने बिअफ़्रा को इस बात का एहसास कराना आवश्यक समझा कि इस बातचीत का मकसद गृह-युद्ध समाप्त कर शांति लाना भले ही हो पर बिअफ़्रा के असैनिक क्षेत्रों पर सैनिक हमलों की रोक-थाम नहीं हो सकती.

वार्त्ता का दौर : संघीय सरकार के मेजर जनरल गोवोन के साथ ब्रितानी प्रधानमंत्री की बातचीत के दौरान दोनों नेताओं ने नाइजीरिया में शांति-स्थापना के बारे में व्यापक सर्वेक्षण किया. विल्सन के लागोस पहुँचने पर संघीय सरकार की ओर से जनरल गोवोन ने जो विचार प्रकट किये थे उन में इस यात्रा का कोई ऐसा परिणाम निकलने वाला नहीं है जिस से गृह-युद्ध समाप्त हो कर नाइजीरिया में शांति स्थापित हो. वैसे जनरल गोवोन ने श्री विल्सन को पहले ही दिन यह कहा बताते है कि उन की ५ दिन की इस यात्रा का यह मतलब नहीं है कि उन की ओर से किसी बहुत बड़े नाटकीय ढंग की पहल हो. साथ ही जनरल गोवोन ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि बातचीत के लिए नाइजीरिया सरकार तैयार है, पर समस्या का कोई स्थायी समाधान होना चाहिए. नाइजीरिया-यात्रा में पहले ही विल्सन ने यह स्पष्ट कर दिया कि वे मध्यस्थता के उद्देश्य से वहाँ नहीं जा रहे हैं. इसी लिए बिअफ़्रा के कर्नल ओजुक्वू से श्री विल्सन की भेंट करने की कोई योजना नहीं है भले ही बिअफ़्रा ने अपनी ओर से बातचीत के लिए तैयार रहने की इच्छा प्रगट की है. विल्सन ने बिअफ़्रा की पहले की राजधानी एनेगू का भी दौरा किया.

ब्रितानी लोकमत : विल्सन की नाइजीरिया-यात्रा के शुरू होने से पहले उन के मंत्रिमंडल के मंत्रियों में नाइजीरिया संबंधी नीति पर मतभेद स्पष्ट हो रहे थे. इन मतभेदों में विल्सन की परेशानी इस लिए भी स्वाभाविक है कि अगले ही कुछ सप्ताहों में सत्ताधारी लेबर पार्टी को तीन उप-चुनाव लड़ने हैं. ब्रितानी मंत्रिमंडल के अलावा ब्रितानी लोकसभा में नाइजीरिया के प्रश्न को ले कर पिछले कुछ सप्ताहों में काफ़ी हँगामा रहा है. कुछ सदस्यों ने नाइजीरिया संघ को अस्त्र-शस्त्र देने की नीति की आलोचना की तो कुछ ने उसे उचित बताया.

गोवोन और विल्सन : पहल परंतु नाटकीय नहीं

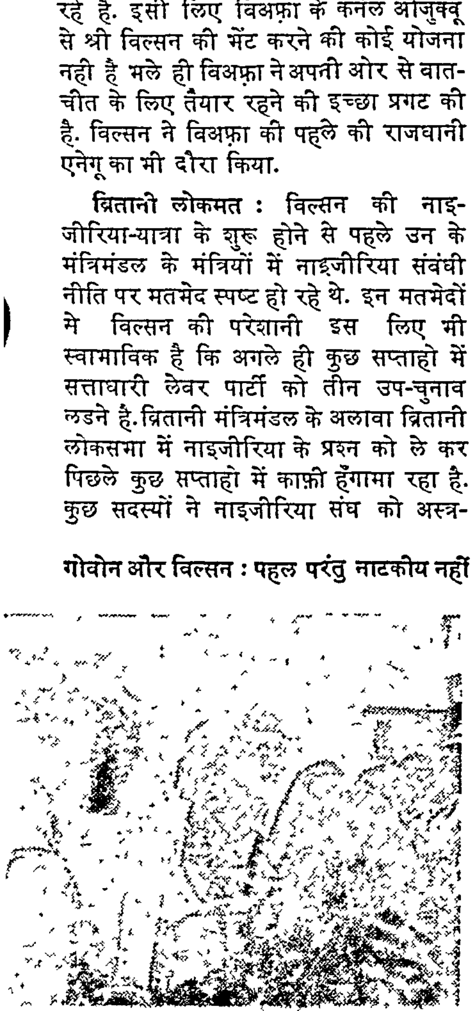

न मध्यस्थता न मान्यता : नाइजीरिया-यात्रा की समाप्ति पर गृह-युद्ध की समाप्ति के प्रयत्नों में श्री विल्सन का बस यही प्रस्ताव सामने आया है कि बिअफ़्रा के अलावा वह कहीं भी कर्नल ओजुक्वू से बातचीत करने को तैयार हैं लेकिन विल्सन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस का मतलब न तो मध्यस्थता है और न बिअफ़्रा को मान्यता देना. ओजुक्वू ने बिअफ़्रा के बाहर विल्सन से बातचीत करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया है. विल्सन ने ओजुक्वू से पुनः अपने निर्णय पर विचार करने के लिए कहा क्यों कि बिअफ़्रा की असुरक्षित स्थिति में उन का वहाँ मिलना उचित नहीं. इस के अलावा ओजुक्वू जहाँ चाहें विल्सन से मिल सकते हैं.

गृह-युद्ध का मूल्य : नाइजीरिया के प्रथम गवर्नर जनरल ने अभी पिछले महीने अपनी शांति योजना का विवरण देते हुए कहा था कि बिअफ़्रा की कुल ७० लाख की आबादी में से १७ लाख गृह-युद्ध की भेंट चढ़ चुके हैं. इस संख्या के यहीं रुक जाने की कोई संभावना दिखायी नहीं पड़ती. अभी पिछले सप्ताह बिअफ़्रा रेडियो के ही एक समाचार के अनुसार नाइजीरिया के विमानों ने तीन गाँवों पर एक साथ आक्रमण में कम से कम ९८ आदमियों को मार दिया. ६२ आदमियों के घायल होने का समाचार है जिन में से न जाने कितने अंतिम समाचारों के मिलने तक अपने प्राण खो चुके होंगे. ब्रितानी संसद् के एक सदस्य ने बिअफ़्रा में नाइजीरिया के विमानों द्वारा असैनिक ठिकानों पर बमबारी का आँखों देखा हाल बताते हुए कहा है कि बमबारी से ध्वस्त २९ जगहें तो मैं ने खुद देखी हैं. इस बात से इनकार किया ही नहीं जा सकता कि असैनिक ठिकानों पर हमले होते रहे हैं.

नाइजीरिया के इस गृह-युद्ध को २१ महीने से भी अधिक समय बीत गया है पर हार-जीत के निर्णय से दोनों पक्ष अभी बहुत दूर हैं. नाइजीरिया सेनाध्यक्ष ने बिअफ़्रा पर अंतिम आक्रमण की योजना का भी एलान कर दिया है पर यह तो निरंतर चलने वाला क्रम ही दिखायी पड़ता है. कोई न कोई राजनैतिक समाधान होने तक बिअफ़्रा शक्तिशाली नाइजीरिया संघ के आक्रमणों का निशाना रहेगा और निरपराध नागरिकों का इसी तरह बलिदान होता रहेगा. गृह-युद्ध का यह मूल्य इस की लपेट में आये हर देश को चुकाना पड़ता है. बिअफ़्रा में नाइजीरिया की संघीय सेना के तीन डिवीज़न हैं जो तीन अलग-अलग स्थानों पर तैनात हैं. संघीय सेनाओं के पास रसद और सामान प्राप्त करने के जहाँ अनेक साधन हैं वहाँ बिअफ़्रा के पास संचार साधन भी नहीं हैं. इधर संघीय सेनाओं ने जिस अंधाधुंध तरीके से बिअफ़्रा पर अपने आक्रमणों का सिलसिला शुरू कर रखा है उस से यह गृह-युद्ध बिअफ़्रा के जीवन-मरण का प्रश्न बन गया है. नाइजीरिया सरकार का ख़याल है कि बिअफ़्रा नेता कर्नल ओजुक्वू भुखमरी और अकाल जैसी स्थिति का भी राजनैतिक लाभ उठा रहे हैं. बिअफ़्रा में वे इस प्रश्न पर जनमत संग्रह कराने को तैयार नहीं हैं कि बिअफ़्रा नाइजीरिया संघ में मिलने को तैयार है या अलग रहना चाहता है. समूची शांति योजनाओं की असफलता का मुख्य कारण यही है. अपने नव वर्ष संदेश में बिअफ़्रा नेता कर्नल ओजुक्वू ने इतना कहा था कि बिअफ़्रा की प्रभुसत्ता के प्रश्न पर कोई समझौता किये बिना वे युद्ध-विराम की वार्त्ता के लिए तैयार हैं.

अमेरिका

एक सज्जन पुरुष का अंत

अमेरिका के भूतपूर्व ७८ वर्षीय राष्ट्रपति ड्वाइट डी. आइज़नहावर का दिल के ७ दौरों के बाद वाशिंगटन के वाल्टर रीड आर्मी अस्पताल में २८ मार्च रात्रि को देहांत हो गया. आइज़नहावर अपने देश में और अन्य देशों में 'आईक' के नाम से अधिक जाने जाते थे. द्वितीय विश्व-युद्ध में जिस सैनिक कुशलता के लिए वह प्रसिद्ध हो गये, उस का सेहरा और असली हकदार जनरल मार्शल था. लेकिन आईक के विनीत स्वभाव के कारण वह लोगों में अधिक प्रिय थे और यही वजह है कि इस शताब्दी के महान् राष्ट्रपतियों में आइज़नहावर का उल्लेख किया जाता है. इस सदी के अब तक के रिपब्लिकन राष्ट्रपतियों में केवल आईक ही ही एक ऐसे राष्ट्रपति हुए हैं जो लगातार दो बार चुने गये हैं.

आइज़नहावर अपने अंतिम दिनों में कहा करते थे कि वह अपनी पत्नी, बच्चों, अपने पोते-पोतियों और अपने देश को अथाह प्यार करते हैं. उन के इसी प्रेम और सज्जनता के कारण ही शायद उन्हें हर अमेरिकी भी इतनी इज़्ज़त और सम्मान बख्शता था. उन की अंत्येष्टि में भाग लेने के लिए जब विदेशों के शासनाध्यक्ष तथा प्रतिनिधि वहाँ अपनी

आइज़नहावर : दौरों के बाद आखिरकार...

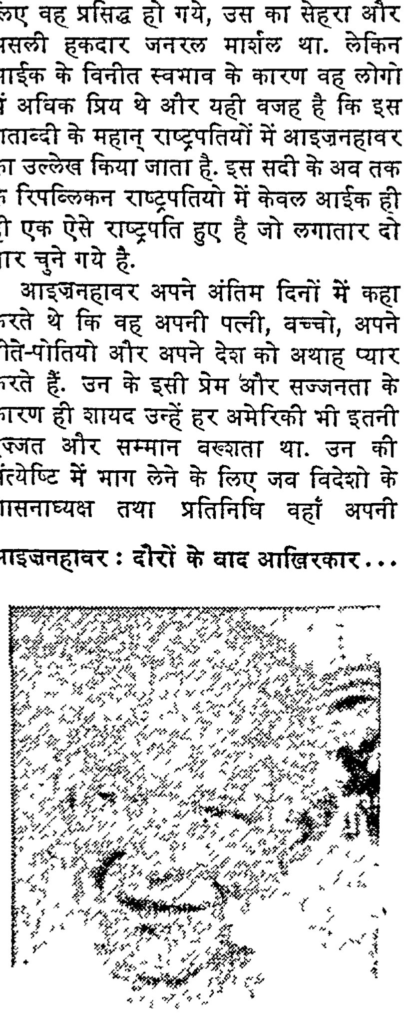

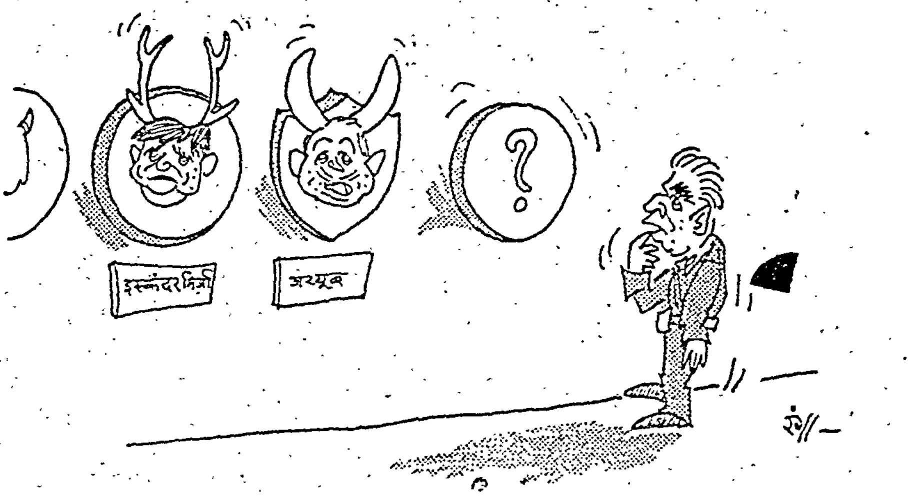

श्रद्धांजलि के लिए पहुँचे तो इस बात का पता चल गया कि आईक केवल अमेरिका का ही नहीं, सारे विश्व का प्यारा था.

आईक के पहले कार्यकाल का वक़्त उन की उपलब्धियों का वक़्त था जिस के दौरान उन्होंने अपने देश की स्थिति मज़बूत की और विदेशी शक्तियों के साथ भी उन के संबंध अच्छे रहे. लेकिन उन का दूसरा कार्यकाल उन के लिए अधिक सुखकारी सिद्ध नहीं हो सका. इस का कारण शायद यह था कि १९५५ में उन को बहुत ज़ोर का दिल का दौरा पड़ा जिस के कारण संभवत: उन का संयम और आत्म-विश्वास डोल गया था. १९५६-५७ के बजट ने उन के सम्मान को और चोट पहुँचाई और डेमोक्रेट पार्टी ने इस बात का पूरा फ़ायदा उठाया. उन के विदेश मंत्री डलेस ने उन को वीएतनाम के युद्ध से अलग रखा लेकिन काले और गोरों के अधिकारों को ले कर शुरू हुए गृह-युद्ध से राष्ट्रपति और विदेशमंत्री अलग न रह सके. आईक ने निग्रो लोगों को मताधिकार दे आधुनिक माहौल में एक उपलब्धि तो प्राप्त की लेकिन निग्रो का दिल न जीत सकें. चीन के क्यूमे और मात्सु पर दावे के कारण आईक को लेबनान सेना भेजनी पड़ी और तब ऐसा लगा था कि दक्षिण-पूर्व एशिया में युद्ध अब शुरू होने को ही है. बर्लिन पर रूसी धमकियों का जिस मुस्तैदी के साथ उन्होंने सामना किया, उस से उन की इज़्ज़त कुछ और बढ़ी. लेकिन वह स्थायी साबित न हो सकी. विश्व की राजनीति पर विचार करने के लिए चार बड़े देशों का शिखर सम्मेलन जब यूरोप में शुरू हुआ तब अमेरिकी यू-२ जासूसी विमान के रूस की सीमा के अतिक्रमण पर अपनी बौखलाहट का इज़हार करते हुए तत्कालीन रूसी प्रधानमंत्री ख्रुश्चोव इस शिखर सम्मेलन से उठ कर चले गये थे और यह सम्मेलन बिना किसी परिणाम के समाप्त हो गया. इस प्रकार वाइटहाउस में उन के ८ साल के कार्यकाल की शुरुआत जिस सद्भावनापूर्ण वातावरण में हुई थी उस का अंत तनावपूर्ण माहौल में हुआ. लेकिन यह बात भी सही है कि राजनैतिक तौर पर आईक के साथ लोगों के कितने भी मतभेद क्यों न रहे हों लेकिन उन की विनयशीलता और लगन के प्रति संदेह की कोई गुंजाइश नहीं थी.

पाकिस्तान

लोकतंत्र का बनाड़ा

जनरल याह्या ख़ाँ ने पाकिस्तान के तीसरे राष्ट्रपति का पद सँभाल 'इतिहास अपनी पुनरावृत्ति करता है,' की कहावत को चरितार्थ कर दिया है. ६ दिन पूर्व उन्होंने राष्ट्रपति अय्यूब ख़ाँ से कार्यभार सँभाला था. इतनी जल्दबाज़ी का कारण यह बताया जाता है कि विदेशों के साथ पत्र-व्यवहार, देश के राजदूतों को नयी विदेश-नीति के बारे में सूचित करना, राष्ट्रीय बजट पास कराना और उन सभी कार्यों का पालन करना है जिसे एक राज्याध्यक्ष ही कर सकता है. अय्यूब ख़ाँ ने जनरल याह्या ख़ाँ को २५ मार्च को अपने सभी दायित्व और अधिकार सौंप दिये थे. लेकिन यहाँ प्रश्न यह उठता कि अय्यूब तीन महीने की छुट्टी किस पद की हैसियत से गये हैं. इस बात का उल्लेख न ही २५ मार्च की घोषणा में किया गया था और न ही ३१ मार्च की घोषणा में ही. अय्यूब ने अलबत्ता सरकारी निवास-स्थान छोड़ दिया है. सूचना और प्रसारण मंत्रालय के अधिकारियों का कहना है कि जनरल याह्या ख़ाँ तब तक राष्ट्रपति बने रहेंगे जब तक देश के लिए नया संविधान तैयार नहीं हो जाता और नये संविधान के अनुसार वयस्क मताधिकार द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव नहीं हो जाते. याह्या ख़ाँ शीघ्र ही अपने मंत्रिमंडल का गठन करने आ रहे हैं जिसमें सैनिक और असैनिक दोनों प्रकार के मंत्री होंगे लेकिन इस बात का कहीं भी ज़िक्र नहीं है कि चुनाव कब होंगे. देश की राजनैतिक पार्टियों पर यद्यपि प्रतिबंध लगाये गये हैं तथापि उन्हें सार्वजनिक सभाएँ करने और जुलूस निकालने की मनाही है. यह बात जुदा है कि इंग्लैंड में रहने वाले पाकिस्तानी छात्र नेता तारिक अली और असर अली 'टॉर्च प्रदर्शन' कर पाकिस्तान उच्चायोग को लोकतंत्री व्यवस्थाओं के बारे में अवगत करा रहे हैं. पहले पहल नेशनल अवामी पार्टी के नेता मौलाना अब्दुल हमीद भासानी ने नये प्रशासन के बारे में अपनी आवाज़ उठायी थी. इस बार फिर समय के बदलते हुए माहौल को ध्यान में रखते हुए जहाँ उन्होंने अय्यूब के शासन को 'भ्रष्टाचार और दमनकारी' बताया वहाँ याह्या ख़ाँ को 'एक सच्चा और ईमानदार सैनिक' क़रार दिया. अय्यूब ने १९५८ में तीन हफ़्ते बाद तत्कालीन राष्ट्रपति इस्कंदर मिर्ज़ा को हटाया था. अय्यूब के प्रशासन में इस्कंदर मिर्ज़ा तीन हफ़्ते तक राष्ट्रपति रहे और अय्यूब कुछ घंटे तक प्रधानमंत्री लेकिन याह्या ख़ाँ के काल में, अय्यूब एक भी दिन राष्ट्रपति नहीं रह सके क्यों कि याह्या ख़ाँ ने २५ मार्च राष्ट्रपति-पद सँभाला है.

पाकिस्तान अब सामान्य स्थिति को लौटता जा रहा है. लोगों की दहशत ख़त्म हो चली है और आम जनता अपने आप को अधिक सुरक्षित महसूस करने लगी है. देश के लगभग सभी कारखाने, स्कूल, विश्वविद्यालय खुल गये हैं और जनजीवन आम दिनों जैसा होता जा रहा है. दीवारों पर अय्यूब विरोधी चिपके हुए पोस्टर हटाये जा रहे हैं. लोगों का डर दूर करने के लिए प्रशासन उन्हें तरह-तरह के आश्वासन दे रहा है लेकिन साथ ही साथ यह चेतावनी भी दी जा रही है कि देश में किसी प्रकार की अनुशासनहीनता, गड़बड़ और अराजकता को बर्दाश्त नहीं किया जायेगा. अनुशासनहीनता फिर से जड़ न मज़बूत करने पाये, सैनिक प्रशासन ने सभी तरह के हथियारों के रखने पर प्रतिबंध लगा दिया है. केवल कराची में लगभग १९,००० पिस्तौलें और रिवाल्वरें पुलिस के कब्ज़े में आयीं. जुल्फ़िक़ार अली भुट्टो ने भी अपने सभी हथियार पुलिस को सौंप दिये. पूर्व पाकिस्तान की बिगड़ती हुई अन्न स्थिति को सँभालने के लिए वहाँ ३१,१०,००० टन अनाज भेजा गया ताकि भूख से बिलबिलाते हुए लोगों की उदरपूर्ति हो सके और नये प्रशासन के प्रति उन के मन में किसी तरह की मैल न रहे. रावलपिंडी के अलावा बड़े-बड़े सभी शहरों से अब सैनिक हटा लिये गये हैं और लोग मौजूदा प्रशासन के अभ्यस्त हो चले हैं. कराची में लोगों ने पहले-पहल प्रशासन के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करनी चाही थी लेकिन सैनिकों की मुस्तैदी और सक्रियता के कारण वे अपने मन की न कर पाये. यह बात सही है कि भीतर ही भीतर लोगों के दिल जल रहे हैं और जो लोग लोकतंत्र की उम्मीद लगाये बैठे थे, उन्हें सैनिक शासन के थोपे जाने से काफ़ी कोफ़्त हुई है. पूर्व पाकिस्तान के राजनैतिक तत्त्व अपना सिर उठा रहे हैं और उन के नेता मौलाना भासानी ऐसे पहले राजनैतिक नेता हैं जिन्होंने नये सैनिक प्रशासन के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठायी है.

पूर्व पाकिस्तान के ८९ वर्षीय नेता ने इस बात को ग़लत बताया कि वह कम्युनिस्ट हैं या चीन-समर्थक. उन्होंने कहा, 'न मैं रूस-समर्थक हूँ और न ही अमेरिका समर्थक.' मैं सच्चा पाकिस्तानी हूँ. अभी तक ३१ व्यक्ति हिरासत में लिये गये हैं जिन में कई मजदूर नेता भी हैं.

२५ मार्च को जब पाकिस्तान में मार्शल लॉ की वापसी हुई थी तब इस ऐलान से जहाँ कई देश हैरत भरे माहौल में गुम हो गये थे वहाँ कई दिलों से अनायास ही यह आवाज़ निकली थी कि पाकिस्तान में एक बार फिर लोकतंत्र का जनाज़ा निकल गया. लोगों के और ख़ास कर पूर्वी पाकिस्तान के लोगों के दिली जज़बात घुट कर रह गये. ब्रिटेन सरकार को अय्यूब अधिक रास आये थे. यह बात उस से छुप न सकी. ब्रितानी समाचार-पत्रों ने इस आशय का भी समाचार छाप दिया कि अय्यूब के पुनः वापस लौटने की संभावना को झुठलाया नहीं जा सकता. मौजूदा हालात और लोगों के तेवरों को देखते यह बात फ़िलहाल अनहोनी है. उन का ख़याल है कि जनरल याह्या ख़ाँ राजनैतिक तौर पर महत्त्वाकांक्षी नहीं हैं; (यह बात स्वयं याह्या ख़ाँ भी कह चुके है) लिहाज़ा मुल्क की बिगड़ती हुई हालत पर क़ाबू पा लेने के बाद वह सत्ता पुनः अय्यूब को सौंप देंगे. बहुत-से देशों को, जिन में अमेरिका और रूस भी शामिल हैं, पाकिस्तान में पुनः मार्शल लॉ लागू होने से आश्चर्य नहीं हुआ है. वैसे यह बात काफ़ी तूल पकड़ रही है कि अय्यूब द्वारा सेना को शासन सौंपने की कार्रवाई बतौर बौखलाहट के की गयी थी. देश में अव्यवस्था और अराजकता ज़रूर बढ़ रही थी लेकिन यदि उस पर अय्यूब ईमानदारी से काबू पाना चाहते तो यह बात नामुमकिन नहीं थी. अय्यूब आख़िरी दम तक यह चाहते रहे कि सेना का समर्थन उन्हें प्राप्त हो और उस के बलबूते पर वह अपने शासन की डोर अपने हाथों में रखें लेकिन सेना का बहुत बड़ा भाग अय्यूब की इस नीति के ख़िलाफ़ था. इस का कारण अय्यूब के पुत्र कप्तान गोहर अय्यूब द्वारा अपने पद का ग़लत इस्तेमाल कर अथाह संपत्ति एकत्रित करना था.

पश्चिमी देश यह महसूस करते हैं कि पाकिस्तान में वैसी हालत नहीं थी, जैसी कि सुकर्ण के समय इंदोनेसिया में हो गयी थी. सुहर्त्तो को उत्तराधिकार में जो इंदोनेसिया मिला था, वह पाकिस्तान की अपेक्षा राजनैतिक दृष्टि से अधिक उग्र और आर्थिक दृष्टि से ज़्यादा पंगु था. इधर कारख़ानों के खुल जाने से पाकिस्तान की लड़खड़ाती हुई अर्थ-व्यवस्था अब सँभलती जा रही है जब कि इंदोनेसिया को अपनी ख़ाली तिजोरी को भरने के लिए कई देशों के सामने झोली फैलानी पड़ी थी. गड़बड़ी के दौरान जो मालिक-मज़दूर समझौता हुआ था, उसे लागू करने के बारे में याह्या ख़ाँ ने आदेश जारी कर दिये हैं. चार महीने तक जो स्कूल और कालेज बंद थे उस अवधि की फ़ीस माफ़ कर दी गयी है. अध्यापकों को चाहे वे सरकारी स्कूलों में पढ़ाते हों या ग़ैर-सरकारी स्कूलों में उन्हें पूरा वेतन दिये जाने का विश्वास दिलाया गया है.

सलाहकार : ५२ वर्षीय जनरल याह्या ख़ाँ ने अपनी स्थिति मज़बूत बनाये रखने की गरज़ से सेना के तीनों अंगों का समर्थन प्राप्त किया है. गुजरात में जन्मे थल सेना के ५२ वर्षीय लेफ्टिनेंट जनरल अब्दुल हमीद ख़ाँ मितभाषी हैं और रण-कौशल का उन्हें बहुत तजुर्बा है. द्वितीय विश्व-युद्ध और भारत के ख़िलाफ़ उन्होंने युद्ध में भाग लिया. ४८ वर्षीय एडमिरल एस. एम. एहसन पाकिस्तानी नौसेना के सेनापति हैं जो कभी लार्ड माउंटबैटन और उस के बाद मोहम्मद अली जिन्ना के अंगरक्षक हुआ करते थे. ४६ वर्षीय एयर मार्शल मलिक नूर ख़ाँ भारत-जन्मा हैं और १९६५ में भारत-पाक युद्ध के दौरान पाकिस्तानी नौसैनिकों से उन्होंने एक बार कहा था कि 'चार दिन के अंदर मैं आप लोगों को साफ़ आसमान दूंगा.' लेकिन उन के मन की मुराद तब पूरी न हुई थी. १९५८ में अय्यूब ने सेना के सभी अंगों का सहयोग प्राप्त नहीं किया था और एक नौकरशाह अज़ीज़ अहमद को अपना उपमुख्य मार्शल लॉ प्रशासक नियुक्त किया था. याह्या ख़ाँ ने नौकरशाहों में अभी तक अपनी आस्था व्यक्त नहीं की, अलबत्ता उन्होंने अय्यूब के विदेशमंत्री अरशाद हुसेन और प्रतिरक्षामंत्री ए. आर. ख़ाँ को अपना विशेष सलाहकार नियुक्त किया है. ए. आर. ख़ाँ जो अय्यूब प्रशासन के आख़िरी दिनों में दबे-दबे और संजीदा व्यक्ति नज़र आते थे, अब उन की कठोरता नये प्रशासन के संदर्भ में फिर मुखर हो गयी है. याह्या ख़ाँ पेशे से सच्चे सैनिक हैं और सैनिकों के प्रति उन की अधिक आस्था है. याह्या ख़ाँ द्वितीय विश्व-युद्ध में भारतीय सेनाध्यक्ष पी. पी. कुमारमंगलम् के साथ युद्ध-क़ैदी थे और भारत के अगले सेनाध्यक्ष जनरल मानिकशा के अधीन मेजर रह चुके हैं.

अनुबंध : शासन-कार्य सँभालने के बाद याह्या ख़ाँ प्रशासन ने ब्रिटेन के साथ साढ़े ४ करोड़ के कर्ज़-पत्र पर हस्ताक्षर किये. इस धन का इस्तेमाल कार्बेला संयंत्र पर किया जायेगा. जूट उद्योग के विकास के लिए ५ लाख पाउंड का साज़-सामान ब्रिटेन से ख़रीदा जा रहा है. पूर्वी पाकिस्तान का औद्योगिकरण करने के लिए औद्योगिक विकास निगम को आदेश दे दिया गया है. जैकर्ता में १४ जून से शुरू होने वाले अंतरराष्ट्रीय मेले में पाकिस्तान सूती कपड़ा, जूट का सामान, इंजीनियरी चमड़ा और खेल-कूद की चीज़ें प्रदर्शित करेगा. विश्व बैंक का एक प्रतिनिधिमंडल पाकिस्तान का दौरा कर चुका है.

भीतरी कसक : याह्या ख़ाँ का प्रशासन स्थायित्व की ओर बढ़ रहा है. राजनैतिक नेता मुजीबुर्रहमान, ज़ुल्फ़िकार अली भुट्टो, असग़र ख़ाँ, आज़म ख़ाँ, नवाबज़ादा नसरुल्ला ख़ाँ, दौलताना, चौधरी मुहम्मद अली आदि अपने-अपने घरों में पड़े हैं. एक दूसरे से मिलने की इन लोगों को मनाही है. संभव है भीतर ही भीतर ये लोग अपनी योजना बना रहे हों, लेकिन इस के साथ वे यह भी ज़रूर महसूस कर रहे होंगे कि यदि वे अय्यूब को अधिक दबा कर अपनी मनमर्ज़ी न कराते, तो संभवतः इस समय तक पाकिस्तान में संसदीय शासन का सूत्रपात हो चुका होता. केवल इन लोगों को भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता. जल्दबाज़ी अय्यूब की तरफ़ से भी कम नहीं हुई. यह बात सही है कि अय्यूब ने गोलमेज़ सम्मेलन के बाद पूर्व पाकिस्तान में टैंकों और हथियारों से लैस सेना भेजनी शुरू कर दी थी. २३ मार्च को पाकिस्तान के कौमी दिन पर कराची रेडियो स्टेशन में टैंकों को तैनात किया गया था जिस से यह बात साफ़ हो जाती थी कि अय्यूब में जनता का सामना करने का दम नहीं रह गया है. यह बात सही है कि मुजीबुर्रहमान ने पूर्व पाकिस्तान की स्वायत्तता की माँग की थी और मौलाना भासानी ने अपनी ११-सूत्रीय माँगों को स्वीकार न किये जाने तक बड़े पैमाने पर रक्तपात की धमकी दे डाली थी, लेकिन यह बात भी सही है कि इन नेताओं ने अय्यूब को यह विश्वास दिलाया था कि यदि अय्यूब अंतरिम सरकार बनाने के बारे में और लोगों की ख़्वाहिश का जायज़ा लेने में ईमानदारी का परिचय देते हैं, तो विरोधी नेता उन से सहयोग करेंगे.

पाकिस्तान में मार्शल लॉ लागू होने से लोकतंत्र का जनाज़ा निकल गया है. लोगों के विचार-अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध लगा दिया गया है. समाचार-पत्रों पर कड़ा सेंसर है. कोई भी सही ख़बर बिना कटे-छटे सामने नहीं आती. रेडियो ऑस्ट्रेलिया के ज़रिए कुछ विवादास्पद ख़बरें ज़रूर सुनने को मिलती हैं जिन के अनुसार कभी तो यह सुना जाता है कि अय्यूब को तीन महीने के अंदर देश छोड़ने के लिए कहा गया है तो कभी उसी ख़बर का खंडन करते हुए रेडियो ऑस्ट्रेलिया कहता है कि अय्यूब आराम फ़रमा रहे हैं. लेकिन सब से ज़्यादा दयनीय स्थिति तो उन दो गवर्नरों—यूसुफ़ हारून और डॉ. एम. एन. हुडा—की है जो क्रमशः १०० और २४ घंटे तक ही अपने पदों पर बने रह सके और अपनी क़ाबलियत का कोई प्रदर्शन नहीं कर सके. इन सब बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पाकिस्तान की हालत ऊपर से भले ही सामान्य दिखायी दे रही हो, लेकिन कहीं चिंगारी अवश्य सुलग रही है जो बुनियादी लोकतंत्र की तरह वर्त्तमान सैनिक शासन की जड़ें भी हिला सकती है.

संगीत

गहराई और मौलिकता

स्थानीय सरस्वती समाज और गंधर्व महाविद्यालय द्वारा सम्मिलित रूप से आयोजित एक संगीत-संध्या में **पं० गंगाप्रसाद पाठक** ने गायन और **पं० रामनारायण** ने वादन का कार्यक्रम आमंत्रित संगीत-रसिकों के समक्ष प्रस्तुत किया. **पं० गंगाप्रसाद पाठक** पुरानी पीढ़ी के प्रतिष्ठित और ग्वालियर घराने की गायकी के एक ऐसे गायक कलाकार हैं जो आज भी अपने गायन का प्रभाव जमा लेते हैं. ७२ वर्षीय पाठक जी के कंठ में आज भी स्वर उसी प्रकार विद्यमान है. उन में ओज भी है और गहराई भी. साथ ही इन की गायकी सामान्य गायकों से एकदम भिन्न और निजी है.

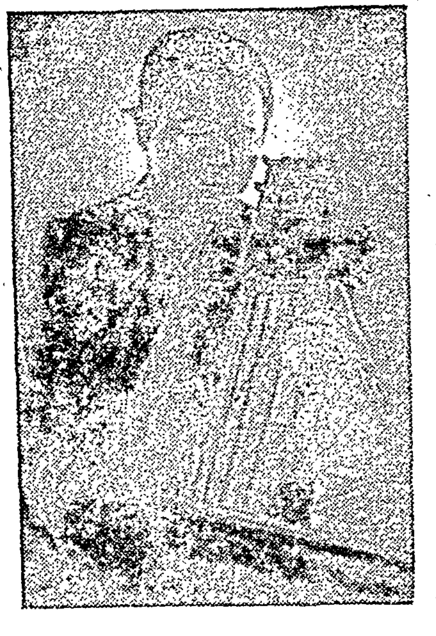

पंडित रामनारायण : मौलिक विशिष्टताएँ

पंडित जी ने संध्याकालीन राग श्याम कल्याण और काफ़ी में अपना गायन प्रस्तुत किया; मिश्र राग में पहले अलाप और फिर क्रमश: एक तथा तीन ताल में ख्याल गायकी. पुरानी पीढ़ी के ख्याल गायकों में ख्याल से पहले उसी राग का अलाप करने की प्रथा प्रचलित थी, विशेषकर आगरा, ग्वालियर आदि घरानों में, जो आज प्राय: कम ही देखने-सुनने को मिलती है. तोम-नोम शैली में ध्रुपदियों के ढंग का श्याम कल्याण में पंडित जी द्वारा अलाप राग-रूप दृश्यगम कराने में अच्छा रहा. एक ताल की विलंबित में स्थायी अंतरे और राग-विस्तार की माधुर्यपूर्ण पद्धति तो द्रुत तीन ताल में तानों की विविधता, स्पष्टता, गमक और हर बार एक तिहाई के साथ एक नये ढंग में सम पर आना आकृष्ट करने वाला और उल्लेखनीय रहा. अंत में ऋतु-प्रधान काफ़ी के स्वरों में होली-वर्णन परंपरागत पर आनंददायक रहा.

पं० रामनारायण ने अपने प्रिय राग मारवा में सारंगी वादन प्रस्तुत किया. पं० रामनारायण इस से पूर्व संध्या को ही संगीत के अखिल भारतीय कार्यक्रम में आकाशवाणी से राग मारू विहाग, चंद्रकौंस और पीलू की अत्यंत सुरीली सजीव और स्मरणीय अवतारणा कर चुके थे. तत्पश्चात मारवा सुनने के बाद तो निस्संकोच यह कहा जा सकता है कि वह कलाकार बेजोड़ संगीत-वादक है. पं० रामनारायण के सारंगी वादन में विलक्षण और मौलिक विशिष्टताएँ हैं. एक श्रेष्ठ ख्याल, ठुमरी-गायकी और इन के सारंगी वादन में अंतर पा लेना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है. कंठ की कौन-सी ऐसी हरकत है जो इन के सुमधुर और कर्णप्रिय वादन में न सुनने को मिलती हो. वादन का प्रत्येक अंग और रागों का प्रत्येक स्वर इन के हाथों खूब निखर जाता है. क्या अलाप, क्या विलंबित और क्या द्रुत और अतिद्रुत वादन—सभी में अनोखी स्पष्टता और कुशलता ऐसी कि पग-पग पर श्रोता और गुणीजन एक साथ वाह-वाह करने पर विवश हो जाते हैं. सारंगी जैसे जटिल वाद्य में पं० रामनारायण ने हाथोंहाथ राग-रूप और राग-रस की गहरी सरिता प्रवाहित की है. इन की वजनदार और निजी वादन-शैली में अनुपम तैयारी भी है और कलात्मकता भी, जो शीघ्र ही श्रोताओं पर अपना प्रभुत्व जमा लेती है. पं० रामनारायण ने अपनी ऐसी ही अनूठी शैली में पूर्वांग प्रधान राग मारवा में अलाप और तीन ताल में गतें पेश कीं. मारवा के विस्तृत और अति मंद लय के अलाप में वक्र रिषभ और धैवत के कल्पनायुक्त लगाव से तो ऐसा प्रतीत होता था मानो राग सशरीर सामने विद्यमान हो. राग-भाव की गंभीरता और राग-निहित करुण क्रंदन से पूर्ण अलाप विह्वल करने और मन के अंतंतम तक झंकृत करने वाला रहा. गतकारी में अलंकारपूर्ण स्वरों की बढ़त और अनूठी लयकारी के साथ-साथ विविध सुरीली तीन-तीन चार-चार सप्तकों की तानों में सहजता और स्पष्टता सुनने योग्य तो अनुपम तैयारी चकित करने वाली रही. अंत में पं० रामनारायण ने एक ठुमरी भी पेश की.

नृत्य

परंपरा और निजीपन

नयी पीढ़ी की सुविख्यात **यामिनी कृष्णमूर्त्ति** ने इंडियन कलचरल सोसाइटी के तत्त्वावधान में सप्रू हाउस में अपना शास्त्रीय नृत्यों का एक बहुत ही सफल कार्यक्रम प्रस्तुत किया. भावनात्मक और कुचिपुडी शैली में यामिनी की समान दक्षता और कुमारी ज्योतिश्मती कृष्णमूर्त्ति का शास्त्रीय गायन एक दूसरे के इतने पूरक रहे कि एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती. शास्त्रीय नृत्य-शैलियों में प्राचीन और दक्षिण भारत की सब से अधिक प्रचलित और प्रचारित शैलियों की नृत्य-रचनाओं में शैलीगत शक्ति से जटिल काम प्रस्तुत करने में नृत्यांगना की निष्ठामय साधना दर्शनीय रही, तो ज्योतिश्मती का विभिन्न कर्नाटक राग और तालों में गायन समान रूप से दक्ष अत्यंत कर्णप्रिय और प्रभावशाली. यामिनी के नृत्यों में परंपरा का निर्वाह भी रहा और निजीपन भी. नृत्यांगना का सुंदर, भावपूर्ण मुख, आकर्षक सभी नृत्य-मुद्राएँ, सुगठित देह-विन्यास और विविध गतिपूर्ण भंगिमाएँ नृत्यों को एक नया निखार और गरिमा प्रदान करने वाली और आकर्षक रहीं. वस्तुत ७-८ नृत्यों में उल्लेखनीय रूप से सफल रहे 'वरणम', 'चंद्रम भज मानसा', 'कृष्ण शब्दम' और अंतिम नृत्य 'तरंगम'. राग आसावरी में दक्षिण के प्रख्यात कवि मुत्तू स्वामी दीक्षितर रचित

यामिनी कृष्णमूर्त्तिः सृजनात्मक प्रतिभा

गीत 'चंद्रम भज मानसा' और दीक्षितर की ही एक अन्य रचना में वरणम यामिनी की सृजनात्मक प्रतिभा का परिचायक मौलिकतापूर्ण और स्वरचित भरत नाट्यम की रचनाएँ रहीं. भरत नाट्यम की विवरणात्मक और दृश्य-सजीव शैली, भावयुक्त मूक अभिनय, आकर्षक हस्तकरण और विनियोग में यामिनी की कला-कुशलता अनूठी और अत्यंत दर्शनीय रही. चंद्रम भज मानसा संभवतः यामिनी द्वारा पहली बार दिल्ली के नृत्यानुरागियों के समक्ष प्रस्तुत की गयी, जो निस्संदेह राग, ताल और लय में आवद्ध संगीत-नृत्य की अनुपम रचना रही. अंतराल के बाद कुचिपुडी शैली में शृंगार-प्रधान 'कृष्णा शब्दम्' यामिनी की पूर्ण विकसित अभिनय-नृत्य-शैली की सफलतम नृत्य-रचना रही.

साहित्य

कम्युनिस्ट देशों के लेखकों की बुदापेस्त बैठक

हंगेरी की राजधानी बुदापेस्त में शीघ्र ही सोवियत संघ, पोलैंड, पूर्व जर्मनी, रूमानिया बुल्गारिया और हंगेरी के लेखकों की बैठक होने जा रही है. चेक और स्लोवाक लेखक संघों ने इस बैठक में भाग लेने से इनकार कर दिया है. स निर्णय पर वक्तव्य देते हुए चेकोस्लोवाक लेखकों की समिति ने कहा है :

"इस निर्णय द्वारा चेकोस्लोवाक लेखक संघ अपने को किसी राष्ट्र के सांस्कृतिक मूल्यों से अलग नही करना चाहता; बल्कि वह समानता, एक संगठन द्वारा दूसरे के जीवन में अहस्तक्षेप और साहित्य तथा उस के सर्जकों की विशिष्ट राष्ट्रीय विशेषताओं के पारस्परिक सम्मान और दूसरे संगठन के चुने हुए पदाधिकारियों के आदर तथा केवल सैद्धांतिक प्रश्नों पर वाद-विवाद के सिद्धांतों के आधार पर आपसी संबंध विकसित करना चाहता है. इस का प्रमाण मिल सकता है हाल में चेकोस्लोवाक लेखक संघ तथा हंगेरियाई लेखक संघ के बीच हुए समझौते से, जिस में इन सिद्धांतों पर सहमति प्रकट की गयी और उधर हमारे संगठन तथा यूगोस्लाविया और रूमानिया के लेखक संगठनों के बीच अच्छे संबंध बने हुए हैं."

सीधे शब्दों में कहा जाये तो यह कि चेकोस्लोवाक लेखक पिछले अगस्त में सोवियत फ़ौजी हस्तक्षेप और उस के विषय में वारसा संधि के देशों के लेखक संघों की चुप्पी तथा सोवियत संघ, पूर्वी जर्मनी और बुल्गारिया के लेखक संघों द्वारा समर्थन को क्षमा नही कर रहे हैं. वे शायद क्षमा कर देते, अगर उस के बाद भी उक्त लेखक संघों ने, विशेष कर सोवियत लेखक संघ ने, चेकोस्लोवाक लेखकों पर हमले करना जारी न रखा होता. चेकोस्लोवाक लेखक संघ के प्रधान प्रोफ़ेसर गोल्डस्टिकर को आज तक प्रतिक्रांतिकारी कहा जाता है. उन के अतिरिक्त मनाचको, पोखाज़का, इवान क्लीमा कारेल कोशिक, नोवेमेस्की आदि प्रमुख तमाम लेखकों को समाजवादद्रोही घोषित कर दिया गया है.

चेकोस्लोवाक लेखक संघ की उपर्युक्त घोषणा के बाद अब इस सूची में वयोवृद्ध चेक कवि श्री यारोस्लाव सेइफर्त्त को भी शामिल कर लिया गया है. गत सप्ताह सोवियत साहित्यिक पत्रिका लितरेतुरनाया गजेटा ने 'अनुभवी हाथ' शीर्षक से एक टिप्पणी प्रकाशित कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि श्री सेइफर्त्त पुराने और अनुभवी 'प्रतिक्रांतिकारी' हैं. ध्यान रहे, श्री सेइफर्त्त इस समय चेकोस्लोवाक लेखक संघ के कार्यकारी अध्यक्ष हैं (प्रो० गोल्डस्टिकर इन दिनों ब्रिटेन में रह रहे हैं). श्री सेइफर्त्त उन लेखकों में हैं जिन को नोवोतनी शासन-काल में साहित्य-क्षेत्र से निर्वासित कर दिया गया था और गत वर्ष नोवोतोनी के पतन के बाद उन का 'पुनर्वास' हुआ था.

श्री सेइफर्त्त पर स आक्रमण का विरोध करते हुए स्लोवाक लेखक संघ ने उक्त सोवियत पत्रिका को एक खुले पत्र में कहा है, "हमारे अध्यक्ष प्रो० गोल्डस्टिकर पर अन्यायपूर्ण हमलों के बाद आज जब हमारे एक और प्रतिनिधि पर हमला किया जाता है तो हमें संदेह होने लगता है कि सोवियत लेखक संघ हमारे आपसी संबंधों को सचमुच सामान्य बनाना चाहता है कि नही."

क्षोभ प्रकट करते हुए उक्त पत्र में कहा गया है, "दुनिया के किसी भी देश के लेखकों से हम अपने संबंध नहीं तोड़ना चाहते. हम विचार विनिमय के पक्ष में हैं, मगर एक दूसरे पर कीचड़ उछालने, अपमानजनक बातें कहने और कटुक्तियाँ बरसाने से सख्ती के साथ इनकार करते हैं."

पत्र में सोवियत लेखक संघ पर आरोप लगाया गया है कि वह बुदापेस्त सम्मेलन का वातावरण विगाड़ने का प्रयत्न कर रहा है.

दरअसल, पिछले अगस्त के बाद से कम्युनिस्ट देशों के, विशेषकर सोवियत संघ के नेताओं ने अपनी नीतियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए अंतरराष्ट्रीय संगठनों की बैठकें आयोजित करने की रीति छोड़ दी है, क्यों कि ऐसे सम्मेलनों में पश्चिमी यूरोप की कम्युनिस्ट पार्टियों के प्रतिनिधियों के विरोध की आशंका बनी रहती है. इस के विपरीत अब वे केवल पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट देशों की बैठकें करते हैं, जिन में उन के समर्थकों का बहुमत है. इन बैठकों में चेकोस्लोवाक प्रतिनिधियों पर अपने बहुमत का दबाव डाल कर उन से अपनी नीति-रीति मनवाने का प्रयत्न किया जाता है और अगर वे सहमत नहीं होते तो कम से कम कम्युनिस्ट जगत की एकता के नाम पर उन्हें आलोचना करने से रोक दिया जाता है. चेकोस्लोवाक लेखक इन चालों से परिचित हैं और वे उन का शिकार नहीं होना चाहते. वे अपनी विचार-स्वतंत्रता क़ायम रखना चाहते हैं.

विरोध की बात

धीरे-धीरे प्रकाश में आये तथ्यों से यह मानने के कारण अब हो गये हैं कि कम्युनिस्ट देशों के लेखक संघ लेखकों का सही प्रतिनिधित्व नहीं करते. प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से पार्टी की नीतियाँ लेखक संघों की नीतियों को प्रभावित करती हैं. पिछले साल भर में पोलैंड में जो कुछ हुआ उस से भी यही लगता है. पोलैंड के कुछ बुद्धिजीवियों और लेखकों के मन में एक तरह की हताशा व्याप्त रही. पिछले दिनों वायगोज़ में हुए पोलैंड के लेखक संघ सम्मेलन में यह बातें और भी उभर कर सामने आयी. इसी सम्मेलन में युवा लेखकों के रुझानों की आलोचना की गयी. कहा गया, कुछ लोग पश्चिम की सभ्य चकाचौंध से बहुत जल्दी प्रभावित हो जाते हैं. वे क्या लिखें और क्या नहीं की बातें प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सुझायी गयी. संक्षेप में वायगोज़ में जो कुछ हुआ उसे नवस्तालिनवादी चुनौतियों की संज्ञा दे सकते हैं.

वायगोज़ सम्मेलन के कुछ पहले जो कुछ घटित हुआ उसे भी भुलाया नहीं जा सकता. देश के कुछ प्रमुखतम लेखकों, जैसे म्रोज़ेक और लेज़ेक कोलाकोव्स्की, को अपने सरकारी विरोध के लिए निर्वासन स्वीकार करना पड़ा. म्रोज़ेक ने अगस्त में चेकोस्लोवाकिया पर हुए रूसी आक्रमण की निंदा की थी. अन्य दूसरे लेखकों को, जो वर्त्तमान पोल संस्कृति और समाज के आलोचक हैं, वायगोज़ सम्मेलन के प्रतिनिधियों के रूप में नही चुना गया. इन में से प्रमुख हैं : उपन्यासकार आंद्रजन्स्की, कवि अंतोनी स्लोनीमस्की, सुप्रसिद्ध आलोचक किज़ोवस्की और किसीलिव्सकी. ग़ैर-सरकारी सूत्रों का कथन है कि इन के नाम प्रतिनिधियों की सूची से पार्टी के आग्रह से हटाये गये थे. स्वयं लेखक संघ के उपाध्यक्ष और पार्टी की केंद्रीय कमेटी के एक सदस्य पुत्रामेंत का कहना है कि इन 'अच्छे' लेखकों ने अपने नाम स्वयं इस लिए वापस ले लिये थे कि वे संघ के मतदाता सदस्यों से अपने लिए कोई समर्थन प्राप्त नही कर सकेंगे. कारण चाहे जो भी हो निष्कर्ष यही निकलता है कि पोलैंड के लेखक संघ में भी देश के सोचने-समझने वाले लेखकों और बुद्धिजीवियों का प्रतिनिधित्व नहीं है. पोलैंड की व्यवस्था और समाज की आलोचना करने वाले लेखकों के लिए स्थिति कुल मिला कर निरापद नहीं है. विरोध के लिए गुंजाइश इसी रूप में है कि उस की कोई सुनवाई नहीं होगी. इसी स्थिति पर टिप्पणी करते हुए एक अच्छे समझदार समीक्षक ने कहा कि 'उस स्थिति में कोई भी शहीद होने के लिए तैयार हो सकता है, जब यह पता हो कि शहीद होने पर बाड़े टूटेंगे. लेकिन वहाँ कुछ करने का क्या अर्थ रह जाता है जहाँ यह पता हो कि कुछ भी किया नही जा सकता.' यह टिप्पणी निश्चित रूप से एक स्थिति उजागर करती है, लेकिन संपूर्ण स्थिति नहीं, क्यों कि तुरंत कुछ न किये जाने पर कुछ लेखकों और बुद्धिजीवियों का यह विश्वास मरता नहीं कि कभी न कभी उन की आवाज़ सुनी जायेगी. वैसे भी लेखक या बुद्धिजीवी की यह अनिवार्य नियति ही नहीं, उस का धर्म भी है कि जब और जहाँ विरोध का अवसर आए वह विरोध करे; बल्कि अगर अवसर न भी आए और उसे विरोध की ज़रूरत महसूस हो तो वह अपना एकल विरोध ही प्रगट करे.

कवि का सत्य

'साहित्य अकादेमी अपने ढाँचे के कारण भारतीय भाषाओं में समन्वय कर भारतीय साहित्य में विवेकपूर्ण आदान-प्रदान कराने के अपने उद्देश्य में विफल रही है. प्रत्येक भाषा की सर्वोत्तम कृति के चयन का उस का ढंग ग़लत है. प्रति वर्ष पुरस्कार देने की घटना से एक सांस्कृतिक बुदबुदा-सा उठता है और तुरंत लुप्त हो जाता है. यदि इस पुरस्कार का प्रचलन बंद कर दिया जाये तो छोटी-सी लहर ही दिखाई देगी. मेरा विचार है कि अंग्रेज़ी को भारतीय भाषाओं में स्वीकार कर साहित्य अकादेमी भाषाई समस्या का हल नहीं कर सकती है. हमें भारतीय भाषाओं के लिए एक मानदंड निर्धारित करना होगा और सभी प्रांतीय भाषाओं के विकास के लिए एक पद्धति स्वीकार करनी होगी.' ज्ञानपीठ पुरस्कार-विजेता, **भारतीय साहित्य परिषद्** के अखिल भारतीय अध्यक्ष और संसद्-सदस्य महाकवि **गोविंद शंकर कुरुप** ने परिषद् द्वारा भारतीय नववर्ष (वि. सं. २०२६) के

शंकर कुरुप : अंतःकरण की आवाज़

उपलक्ष्य में आयोजित समारोह में यह विचार व्यक्त किया.

राष्ट्रीय बोधधारा : महाकवि कुरुप ने भाषा-समस्या पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि 'भाषा सीमांकित पदों अथवा शैलियों का समूह मात्र नहीं है. वह तो जनता के बीच रह कर जीवन-प्रवणताओं की सृजक और कर्मक्षेत्र की घोषणा करने वाली राष्ट्रीय बोधधारा है.' इसी संदर्भ में उन्होंने भाषाई राज्यों के गठन करने की सरकारी नीति की निंदा करते हुए कहा कि 'स्वातंत्र्य, अधिकार और अवसर हाथ में आने पर हमारी शिक्षा और आजीविका की ललाट-रेखाएँ लिखने वालों ने इन भाषाओं के बीच में क्षुद्र विरोधी भावों को खड़ा कर दिया और यह सब किया सांस्कृतिक विकास, व्यक्तित्व-रक्षा तथा परस्पर सहयोग के नाम पर भाषाई राज्यों की रचना कर के. परंतु इन भाषाई राज्यों के राजनैतिक नेताओं के शांतिप्रिय अल्पसंख्यक भाषाभाषियों को सांत्वना देने के बदले अपने-अपने राज्यों के कोप तथा अधिकार-विस्तार के भाव को प्रबल करने में अपनी सामर्थ्य लगायी तथा अब वे कहते हैं कि हमारी क्षुद्र भावनाएँ इन भाषाई राज्यों की ही उपज हैं. वे यह धमकी भी देते हैं कि यदि राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक हुआ, तो अंग्रेज़ी भाषाई राज्य बनाया जायेगा. हमारे कुछ राजनैतिक **नेताओं का प्रयत्न अपनी भाषाओं की आत्मिक एकता, रूप-साम्य तथा अजेय शक्ति की घोषणा करने की अपेक्षा बाह्य, स्थूल विरोधों को दैत्याकार रूप में प्रचारित करने का रहता है.**'

शिक्षा का माध्यम : 'भाषा केवल राष्ट्रीय चेतना की मुख्य बोधधारा ही नहीं है, अपितु वह परंपरागत पीढ़ी-दर-पीढ़ी अंतःकरण की अभिव्यक्ति भी है. यदि किसी व्यक्ति को इस पैतृक सामाजिक संपदा से लाभ उठाने का अवसर नहीं मिला तो उस का अंतःकरण संकुचित हो जायेगा. अतएव हमारी शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ होनी चाहिए. विदेशी भाषा को शिक्षा-माध्यम बनाये रखना बड़ा ही अस्वाभाविक और क्लेशकर है. मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनने का अधिकार मिलना चाहिए, या भारतीय भाषाओं का स्वातंत्र्य अधिकार है, जिस का साक्षात्कार होना चाहिए. यह एक हद तक सही है कि अंग्रेज़ी भाषा से भारतीय समाज के ऊपरी तल पर एकता आयी और अंग्रेज़ी साहित्य ने हमारे साहित्य को अनेक नवीन आंदोलन तथा आधुनिक ज्ञान दिये हैं, किंतु उस के बावजूद शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेज़ी को जो स्थान प्राप्त है वह उस के अयोग्य है; भारतीय भाषाएँ और साहित्य, भारतीय संस्कृति तथा मनोविकास को अंकित करने वाली रेखाएँ हैं. **सौ-डेढ़ सौ वर्ष से अंग्रेज़ी पढ़ते चले आने के बावजूद अभिजात्यबोध के अतिरिक्त उस के माध्यम से सृजनात्मक भावनाएँ पैदा नहीं हो सकीं. संभवतः कोई भी भारतीय आज तक अंग्रेज़ी साहित्य में प्रतिष्ठित नहीं हो सका है.** पराधीनता समाप्त होने पर भी भारतीय भाषाओं के विकास के लिए जिस हवा और मिट्टी की आवश्यकता थी वह उन्हें नहीं मिली. परिणामस्वरूप उन का विकास अवरुद्ध हो गया!'

एक लिपि : भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का प्रश्न भी समारोह में उठा. केंद्रीय शिक्षा राज्यमंत्री भक्त दर्शन ने इस बारे में बताया कि सरकार देवनागरी को सभी भाषाओं के लिए प्रयुक्त करने के उपायों पर विचार कर रही है.

कुरुप ने यह घोषणा भी की कि अपने दो वर्ष के अध्यक्ष-काल में मैं इतनी हिंदी सीख लूँगा कि अगले समारोह में हिंदी में भाषण दे सकूँ.

किताब

काव्यानुभवों का सवाल

अनुभूति कब और किस स्तर पर जा कर काव्यानुभूति होती है, यह प्रश्न **बच्चन** का नवीनतम काव्य-संग्रह **कटती प्रतिमाओं की आवाज़** पढ़ कर प्रमुख रूप से सामने आता है. एक पूरी की पूरी नयी पीढ़ी को प्रेरणा देने वाले कवि बच्चन आज भी उसी तरह जीवन को समर्पित हैं जैसे पहले थे; पर आज उन की कविताएँ उतनी सब की नहीं बन पातीं जितनी पहले थीं. क्या भावुक-वर्ग ही बदल गया है; या कहीं स्वयं कवि की अनुभूतियाँ काव्यानुभूति बनने से रह जाती हैं? छंद की रूढ़ि तोड़ने के अतिरिक्त बच्चन के सारे काव्य-उपादान वही हैं जो पहले थे, पर कविताओं में वह बात नहीं है. बच्चन के प्रेमी पाठक इसे तरह-तरह से अनुभव करते हैं और कारण समझ नहीं पाते. बच्चन अभी भी प्रखर वेग से लिखते जा रहे हैं; अपने समकालीनों में सब से अधिक. ढलता सूर्य लंबी परछाइयाँ खींचता है. अपनी कविताओं में बच्चन भी काफ़ी विषय-विस्तार देते हैं—जीवन, मृत्यु, ईश्वर, मानव-प्रेम से ले कर समकालीन राजनैतिक, साहित्यिक आडंबरों पर खीझते हैं, क्रोध करते हैं, फिर शांत हो कर काल और नियति की गति को समर्पित हो जाते हैं और अनुभव से सफ़ेद किये बालों वाले बुज़ुर्ग की-सी सीख भी देते हैं. उन की ये कविताएँ कहीं एकालाप लगती हैं, कहीं अपने को कहीं अपने पाठकों को दी गयी सफ़ाई और कहीं जो कुछ घट रहा है उस के गवाह के रूप में खड़ी हो जाती हैं, पर साथ नहीं चलतीं. क्यों? बच्चन ने अपनी अनेक कविताओं में खुद से यह प्रश्न पूछा है और तरह-तरह से जवाब पाने की कोशिश की है.

'पर अंतिम बेला में
अपने से नितांत मैं असंतुष्ट हूँ
और उदास भी!
किंतु उदासी से जो सीखी जा सकती थी—
उदासीनता—अभी नहीं मैं सीख सका हूँ
शब्दों को ही पीट रहा हूँ'

अपने पाठकों से अधिक बच्चन अपनी सीमाओं से परिचित हैं. संग्रह की कविताओं से एक सच्चे आदमी के पास बैठने का सुख मिलता है, कवि के पास नहीं. फिर भी यह संग्रह आप चाव से पढ़ जायेंगे और अपने प्रिय कवि की १९६७-६८ की विचार-यात्रा का वर्णन सुन कर खुश भी हो लेंगे, फिर उदास हो जायेंगे और अगले संग्रह की प्रतीक्षा करने लग जायेंगे. कवि का साथ आप को मिलेगा, पर कविता का साथ नहीं.

कटती प्रतिमाओं की आवाज़ : बच्चन; राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली; मूल्य आठ रुपये.

रंगमंच

मूल्य-प्राप्ति का मूल्य

पिता बनाम पुत्र और भाई बनाम भाई की समस्या-स्थिति आर्थर मिलर के नाटकों में पहले भी रही है. 'डेथ ऑफ़ ए सेल्समैन' और 'ऑल माई सन्स' के प्रमुख पात्र पिता-पुत्र ही हैं. उन की टकराहट से ही नाटक का द्वंद्व तैयार हुआ है. अब अपने नये नाटक 'द प्राइस' में उन्होंने फिर इसी टकराहट और द्वंद्व को उभारा है. उन के इस नये नाटक में, जिस का निर्देशन पिछले दिनों लंदन के प्रदर्शनों में उन्होंने स्वयं किया, में भी पिता और दो पुत्र हैं. इस नाटक में दो भाई, जो अरसे से एक-दूसरे से नहीं मिले, अपने पिता की मृत्यु के बाद उस का असबाब बेचने की गरज़ से न्यूयॉर्क में इकट्ठा होते हैं. दोनों भाइयों में कभी पटी नहीं. अमेरिकी मंदी के ज़माने में जब पिता अपनी लाखों की संपत्ति खो देता है तब छोटा लड़का स्कूल की पढ़ाई छोड़ कर

आर्थर मिलर : द्वंद्व बनाम अंतर्द्वंद्व

पिता की देखरेख करने के लिए वैज्ञानिक बनने का सपना छोड़ कर पुलिस की नौकरी कर लेता है. बड़ा भाई, जो उन दिनों मेडिकल कॉलेज में पढ़ रहा होता है, अपनी पढ़ाई जारी रखता है और अब एक वैभव-संपत्ति वाला नामी डॉक्टर है. छोटा भाई ४९ साल की उम्र में सार्जेंट के पद तक ही पहुँच पाया है. पिता का असबाब बेचते समय जैसे जीवन भर की कटुताएँ उभर कर सामने आ जाती हैं. दोनों पिता के असबाब को, उस के मूल्य तथा बँटवारे को, ले कर झगड़ते हैं. ज़ाहिर है कि आर्थर मिलर के नाटकों में पिता-पुत्र या भाई-भाई का द्वंद्व केवल चरित्रगत ही नहीं है. वह इन्हें बराबर मूल्यों की टकराहट के रूप में पेश करते हैं. इस बार भी उन्होंने अपने इन चरित्रों को मूल्यों की टकराहट का केंद्र बनाया है. यह आकस्मिक नहीं है कि उन के इस नाटक का नाम भी 'मूल्य' है. यहाँ मूल्य निश्चित रूप से जीवन-मूल्य और वस्तु-मूल्य दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त हुआ है. यह सिर्फ़ असबाब की क़ीमत ही संकेतित नहीं करता, छोटे लड़के द्वारा पिता के लिए एक बड़ी क़ीमत चुकाने की ओर इशारा भी करता है. एक ओर सुविधा की खोज है, अपने जीवन को लक्ष्य मान कर बढ़ने की कामना है. दूसरी ओर दूसरे के लिए कुछ करने का भाव है और इस की प्रक्रिया में लक्ष्य अपने जीवन को न बना कर उसे किसी दूसरे जीवन से भी जोड़ना है. यहीं पर यह भी कि बड़ा लड़का भी शायद एक बड़ी क़ीमत चुका कर—भाई, पिता को खो कर—सामाजिक सफलता प्राप्त करता है. इस में संदेह नहीं कि पिता-पुत्र वाले मिलर के इन तीन नाटकों में उन के अपने जीवन की भी छाप है. अमेरिकी मंदी (डिप्रेशन) के ज़माने में मिलर के पिता ने भी अपना वैभव खो दिया था. आर्थर मिलर उन दिनों १५ वर्ष के थे. उस के बाद से उन्होंने बैरागीरी, माल ढोआई और ट्रक ड्राइवरी तक की है. आर्थर मिलर, पिता के दो लड़कों में से छोटे लड़के हैं. मिलर का सब से पहला नाटक 'द मैन हू हैड ऑल द लक' के भी प्रमुख पात्र तीन ही थे—पिता और दो पुत्र. यह नाटक ५ प्रदर्शनों के बाद ठप्प हो गया. आज मिलर को एक सफल लेखक के रूप में जानने वालों में से शायद सब यह नहीं जानते कि मिलर को नाट्य समीक्षकों और दर्शकों की अच्छी प्रतिक्रियाएँ बहुत कम मिली हैं. ब्रॉडवे में उन के नाटक अक्सर असफल माने जाते रहे हैं. यह अलग बात है कि तब की असफलता आज की सफलता बन गयी है. उन के नये नाटक 'द प्राइस' के लगभग ४० प्रदर्शन एक ही समय में कई देशों के प्रमुख नगरों में हुए. लंदन, तोक्यो, लेनिनग्राड, पेरिस. आदि में इस के खेले जाने की तैयारियां बड़े पैमाने पर हुईं. मिलर स्वयं सामाजिक सफलता से कुछ 'घबराते' रहे हैं. उन का कहना है कि वह शक्ति-साधन प्राप्त व्यक्तियों को देख कर अक्सर ऐसा सोचते हैं कि कहीं उन व्यक्तियों का ह्रास तो नहीं हो रहा है. इस सदी के महानतम नाटककारों में से एक, मिलर को मानव-मन की गहराइयों और सतहों का काफ़ी अच्छा परिचय प्राप्त है. गहरे अंतर्द्वंद्व और ख़ासी अराजक स्थितियों के नाटकीय तनावों पर अपनी पकड़ रखने वाले आर्थर मिलर के नाटक हमारे समय के गवाह हैं. उन के नये नाटक 'द प्राइस' में भी यही सारी खूबियां हैं.

आधे-अधूरे में सुधा शिवपुरी, अनुराधा कपूर, दिनेश और ओम शिवपुरी

दिशांतर की नयी प्रस्तुति

दिशांतर ने विधिवत् पंजीकृत नाट्य संस्था के रूप में कार्य आरंभ कर दिया है, यानी उसे अब रंगप्रेमियों की सद्भावना ही नहीं सहयोग की भी अपेक्षा है. अब तक के अपने कर्म से दिशांतर ने यह सिद्ध किया है कि वह हिंदी रंगमंच के विकास के लिए पूर्णतया समर्पित है. यह असमर्थ की आकांक्षा भी नहीं है. 'न पायी गयी अभिव्यक्ति' को अपना गुरु स्वीकार कर उसने सही रास्ते पर क़दम बढ़ाया है. विधिवत् संस्था के रूप में उसने प्रथम प्रस्तुति **मोहन राकेश** के नाटक **आधे-अधूरे** से प्रारंभ की. (नाटक के बारे में देखिए **दिनमान** १६ मार्च, १९६९) दुर्भाग्य की बात है कि हिंदी में अच्छे नाटक नहीं हैं. जितना समर्थ नाटक होगा उतना ही मंच समर्थ होगा और अभिनेताओं की प्रतिभा और सामर्थ्य उतनी ही खुल कर सामने आयेगी. इस दृष्टि से आधे-अधूरे निर्देशक और अभिनेताओं को अपनी-अपनी क्षमता और प्रतिभा के विस्तार का पूरा मौका नहीं देता. एक तनाव पर टिका नाटक एक छोटी-सी ही परिधि खींचता है, जिस में अभिनेता बँधा डोलता है. **ओम शिवपुरी** ने पाँचों भूमिकाएँ उन की सीमाओं में बहुत अच्छी तरह निभायी, विशेषकर जुनेजा और महेंद्रनाथ की भूमिका. किसी साधारण स्तर के अभिनेता के लिए तो पाँचों भूमिकाएँ एक स्तर पर निभा ले जाना काफ़ी कठिन होता. **सुधा शिवपुरी** का अभिनय काफ़ी कुछ उस एकरसता से बचा रह सका जो नाटक की पात्रा सावित्री की नियति थी. **दिनेश** और **ऋचा व्यास** का अभिनय सराहनीय था. बड़े लड़के के रूप में **दिनेश** ने जितनी सहजता से अपनी भूमिका निभायी वह अन्य भूमिकाओं को देखते हुए महत्त्वपूर्ण ही कहा जायेगा. **अनुराधा कपूर** का अभिनय आंशिक रूपों में अच्छा था. नाटक की कमज़ोरियों को अभिनेताओं ने बड़ी कुशलता के साथ पार करने की कोशिश की और काफ़ी हद तक सफल भी रहे.

कला

अमूर्त्त की निस्संगता

त्रिवेणी कला संगम में प्रदर्शित अंबा सान्याल के अमूर्त्त चित्रों में अंडाकारों की प्रमुखता थी. गोल रूपाकारों की भिन्न फाँकों के रूप में चित्रित ये चित्र प्रतीकात्मक मालूम नहीं पड़े. स्वतः बदलने वाले रिकॉर्ड के उठने-गिरने में जितनी गति का आभास होता है, या उस से जो रूप बनता है अंबा सान्याल के चित्र कुछ वैसे ही नज़र आते हैं. संकेत भी नहीं, प्रतीक भी नहीं और विवर्धमिता भी नहीं; यानी इन में से किसी की प्रमुखता या उस का स्पष्ट उभार नहीं—ऐसे में चित्र बहुत ठहरे हुए मालूम हो सकते हैं. अंबा सान्याल के चित्र ठहरे हुए मालूम होते हैं, बल्कि हैं—यह शायद आकस्मिक नहीं है कि वह अपने एक चित्र को 'डीप फ्रीज़' शीर्षक देती हैं. 'फ़िलहाल स्थगित' इन चित्रों में मनःस्थितियों से जुड़ने या अपने समानांतर रूपाकार उभारने की क्षमता नहीं है. एक प्रकार से ये चित्र अमूर्त्त की शिल्प-कुशलता के निकट भर पहुँचते हुए मालूम होते हैं. अंबा सान्याल अभिव्यक्ति-संकट को गहरे में स्पर्श करती मालूम नहीं होतीं—उन के चित्रों में कोई बड़ा द्वंद्व भी नहीं. उन के चित्रों का गुण एक ही है. वह अपनी अभिव्यक्ति और अनुभव की सीमा पहचानती हैं और इसे छिपाने के लिए कोई आडंबर खड़ा नहीं करतीं. इन के सभी चित्र तैल रंगों में है.

१९६६ से ले कर इस वर्ष तक के उन के चित्रों की यह प्रदर्शनी बहुत प्रभावित भले न करती हो सह-अनुभूति की एक तटस्थ माँग ज़रूर करती है. 'डीप फ्रीज़' चित्र के संवेदनशील तूलिका-स्पर्श जो एक सपाट पृष्ठभूमि में उभरते हैं ठिठके-ठहरे मालूम पड़ते हैं, निर्जीव नहीं.

त्रिवेणी कला संगम में ही **प्रवीण पुरी** ने अपने चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित की. उन के चित्रों के नाम भारीभरकम लगते हैं—'संस्कृति का जन्म', 'अस्तित्व के लिए संघर्ष', 'होने की प्रक्रिया', 'सभ्यता का जन्म' आदि. लेकिन इन सभी स्थितियों-प्रक्रियाओं के लिए उन के पास शिल्प का एक ही सरलीकरण है. कमल के बहुत बड़े पत्ते पर जल-बूँदें और उस पर पड़ती सूर्य की किरणें या बहुरंगी चौड़ा पत्ता या छूटते अनार के अंतिम सिरे—लगभग ऐसे रूपाकार और लगभग ऐसी रंग-योजना से वह अपने चित्र तैयार करती हैं. कहने की ज़रूरत नहीं कि उन के चित्र थोड़ी देर के लिए आकर्षित करते हैं, लेकिन उन की रंग-योजना छुट कर बुझे अनार की तरह थोड़ी देर में बुझ जाती है.

दो प्रदर्शनियों की दूरी

दिल्ली में अपनी पहली एकल प्रदर्शनी के लगभग दो महीने बाद **विजय (विको) सोनी** ने दूसरी एकल प्रदर्शनी की. श्रीधराणी कला-दीर्घा में आयोजित इस प्रदर्शनी में कुछ चित्र गजानन माधव मुक्तिबोध की कहानी 'क्लाड इथर्ली' पर आधारित थे—इस प्रदर्शनी के लिए योजना यह थी कि सभी चित्र 'क्लाड इथर्ली' पर आधारित होंगे. लेकिन दो-तीन चित्र बनाने के बाद सोनी को लगा कि चित्र कहानी से संबंधित न हो कर स्वतंत्र रूप में उभर रहे हैं. पिछली प्रदर्शनी की तरह के कुछ मूर्त्त-अमूर्त्त लघु चित्र भी सोनी ने दूसरी प्रदर्शनी में प्रदर्शित किये थे. काग़ज़ पर तैल रंगों से तैयार किये गये पिछली प्रदर्शनी की बनिस्बत दूसरी प्रदर्शनी के बड़े आकार के तैल चित्र सोनी के सोच को समझने में अधिक सहायक होंगे, ऐसी आशा थी. लेकिन इन चित्रों में रूपाकारों और रंगों के सटीक संतुलन के बावजूद उन की कला का खाका—उन के मन और सोच को उभारने वाला—नहीं बन सका. इसे यों भी कह सकते हैं कि उन की दूसरी एकल प्रदर्शनी परिवर्त्तित काम का कोई औचित्य सिद्ध नहीं कर सकी. अपनी पहली प्रदर्शनी में उन्होंने कई संवेदनशील संरचनाएँ तैयार की थीं, जो अपनी विवर्धमिता और रंग-भाषा के कारण आकर्षित करती थीं,

विजय सोनी : जब रंग डबडबाते हैं

प्रभावित भी. इस बार सोनी ने चिड़ियों के अंग-आकारों को बड़े आकार में तथा नारी देह की मांसलता से उपजने वाले वक्र रूपाकारों को उभारा है. ऐसा करते हुए उन्होंने कुछ लयात्मक रेखाएँ खींची हैं, जो चित्रों को निश्चित ढाँचे देती हैं, बहुत कुछ ज्यामितिक—यहाँ यह बात कही जा सकती है कि ऐसा वे पूरी शिल्प-कुशलता के साथ करते हैं, लेकिन आकृतिमूलकला उन के काम को बहुत रास नहीं आती. कुछेक अमूर्त्त चित्रों में वह खंडित अमूर्त रूपाकार रखते हैं, यानी किसी संरचना को बिखेर देने के भाव के साथ उन्हें प्रस्तुत करते हैं, लेकिन इस से भी वह कोई प्रभाव पैदा नहीं कर पाते.

पिछली प्रदर्शनी में सोनी के रंग चटक थे, इस में अपेक्षाकृत हल्के हैं. रंग अच्छे होने के बावजूद एकरंगी छायाओं में वह स्वभावतः कोई दृश्यांतर नहीं कर पाते. इस प्रदर्शनी के भी वही चित्र अच्छे हैं जिन में वह रंगांतर की तरलता उपस्थित करते हैं और किसी रंग को जमाने के बजाय उसे द्रव के रूप में ही कैनवास पर रखते हैं—मुक्तिबोध के एक छाया-चित्र के आधार पर तैयार किया गया सोनी का एक चित्र कुछ इसी रूप में सामने आता है. दो प्रदर्शनियों के बीच की समय-दूरी भी कम थी और कुछ ही सप्ताहों बाद उन्होंने अपने काम को उलट कर प्रदर्शित करने में ज्यादा कुछ हासिल नहीं किया.

प्रदर्शनी का उद्घाटन हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि शमशेरबहादुर सिंह ने किया. (देखिए पृष्ठ १०)

अंबा सान्याल : अंडाकार—३

रूसी फ़िल्म समारोह

अंतरराष्ट्रीय वैज्ञानिक फ़िल्म एसोसियेशन के उपाध्यक्ष और पशु-फ़िल्मों के विश्वविख्यात निर्देशक जेगुरिदी के नेतृत्व में भारत आये रूसी फ़िल्म प्रतिनिधिमंडल में एक २६ वर्षीय युवक निर्देशक एलिर इस्मुखामेदोव, २१ वर्षीया अभिनेत्री मारिया स्त्रेनीकोवा और जानी-मानी अभिनेत्री एलीजा लेजदे शामिल थीं.

उन के इस दौरे के अवसर पर दिल्ली में आयोजित रूसी फ़िल्म समारोह में प्रदर्शित ७ फ़ीचर और इतनी ही डॉक्यूमेंट्री फ़िल्मों के विषयों की विविधता और निर्माणगुणवत्ता रूस में हर साल बनने वाली लगभग १३० फ़ीचर और १००० डॉक्यूमेंट्री फ़िल्मों के आधुनिकतम स्वरूप के परिचायक हैं. समारोह में प्रदर्शित फ़िल्मों में से 'आई लव्ड यू', 'वॉटर फ़ायर एंड ड्रम्स ऑफ़ ब्रास' और 'वन्स एगेन एबाउट लव' तो साधारण कोटि की थीं, जो कथ्य और कलात्मकता की दृष्टि से फ़्रांसीसी तो क्या पिछले वर्ष प्रदर्शित नीदरलैंड और चेकोस्लोवाकिया की फ़िल्मों के सामने भी नहीं टिक पातीं, किंतु 'टेंडरनेश', 'हैमलेट', '६ जुलाई' और 'शेडो ऑफ़ फॉरगॉटन एनसेस्टर्स' उत्तम कोटि की फ़िल्में हैं. दो चुनी हुई फ़िल्मों की समीक्षा यहाँ प्रस्तुत है.

पुराना कथानक, नया प्रयोग

उक्रेनियाई लेखक मिखाइल कोत्सोयू-विनिस्की के उपन्यास पर आधारित 'शेडो ऑफ़ फ़ॉरगौटन एनसेस्टर्स' फ़िल्म का कथानक तो रोमियो-जूलियट या लैला-मजनू की कहानी की याद ही ताज़ी कर जाता है, किंतु फ़िल्मांकन की दृष्टि से यह फ़िल्म एक अद्भुत कला-प्रयोग है. निर्देशक सेरजी पाराजनोव ने रूढ़ियों और अंधविश्वासों से ग्रस्त किंतु प्रकृति के घनिष्ट सान्निध्य से रंगे उक्रेनिया के पर्वतांचलों के वाशिंदों के रीति-रिवाज और उन की आस्थाओं के विविध अक्स न केवल पर्दे पर उतारे हैं बल्कि उन्हें ध्वनित करने की भी कोशिश की है. नायक इवांको को अपने कपड़े खुद धोते देख कुछ स्त्रियाँ (जो पर्दे पर नहीं दिखायी देतीं) कहती हैं, 'प्यार ने बेचारे को क्या से क्या बना दिया' और इस फ़िल्म के बारे में भी कहने को जी चाहता है एक बहुत ही पुराने ढर्रे की कहानी को अत्याधुनिक तकनीक का आवरण दे कर निर्देशक ने उसे क्या से क्या बना दिया है.

कैमरा है कि जैसे कहीं ठहरने और सुस्ताने का नाम ही नहीं लेता; सतत् भागता रहता है, कभी दायें, कभी बायें, कभी ऊपर, कभी नीचे. किसी भी चेहरे (फिर चाहे वह नायिका मरीच्को का दिलकश चेहरा ही क्यों न हो) या दृश्य पर टिकना उसे मंजूर नहीं और न वह प्रेक्षकों को फ़िल्म के किसी भाव-भीने क्षणों से तादात्म्य स्थापित करने या मनोरम दृश्यों को हसरत भरी निगाहों से देखने देने की उदारता ही बरतना चाहता है. बीच-बीच में पर्दे पर 'और फिर इवांको ने शादी कर ली' जैसी पुराने ढर्रे की लिखित सूचना उभारने के लिए निर्देशक को 'मजबूर' कर प्रेक्षकों के मस्तिष्क पर कैमरा यह असर भी छोड़ जाना चाहता है कि जैसे वह निर्देशक के इशारे पर नहीं, निर्देशक कैमरे की गति के साथ चलने की लाशउरी कोशिश कर रहा है और जैसे कैमरे का सहयोग न मिलने या फ़िल्मांकन की आधुनिक तकनीक से नावाकिफ़ होने से ही वह 'आगे चले बहुरि रघुराई' की तरह का अंदाज़े-बयाँ अपना कर घटनाक्रम का सिलसिला जोड़ रहा है. तेज़ी से गुज़रता घटना या दृश्य-क्रम कहीं भी प्रेक्षक को सोचने का मौक़ा नहीं देता और इस 'साज़िश' से प्रेक्षक झुंझला भी सकता है, हालांकि कैमरे या निर्देशक का मंतव्य भी यही है और अगर कहीं प्रेक्षक को किसी अहसास को अपने ढंग से महसूस करने की फ़ुर्सत भी मिल जाये तो कैमरा फिर उसे छेड़ता है, भटकाता है. यानी दर्शक यदि सोचे कि इवांको या उस के पिता सिर पर कुल्हाड़े की चोट खा कर गिर पड़ेंगे, छटपटायेंगे, कराहने लगेंगे तो कैमरा मधुमक्खियों के उड़ने की आवाज़-सी पार्श्व-ध्वनि की संगति पा कर या तो काँच पर फ़ैलता लहू दर्शायेगा या दर्शक को लगेगा कि जैसे उस की आँखों के सामने लाल घोड़े खाई फांद रहे हैं.

पानी में थरथराते सूखे वृक्षों के अक्स को एक टक देखते हुए इवांको की मनःस्थिति जानने के लिए यदि दर्शक अपने मस्तिष्क पर ज़ोर देंगे तो इवांको अपने ओंठों से जल की परत छू कर सारा दृश्य मिटा देगा और फिर दर्शक पर यह विचार हावी हो जायेगा कि इवांको ने अपने ओंठों से जल की सतह छू कर उन अहसासों को महसूस करने या अभिव्यक्ति दे सकने में अपनी असमर्थता ज़ाहिर की है जो कविता बन सकते हैं, गीत बन सकते हैं—इवांको आखिर है तो निपट गड़रिया ही, थोड़ा बाँसुरी बजाना सीख भी लिया तो क्या हुआ.

पार्श्व-ध्वनि का प्रयोग इतना सार्थक है कि कैमरे की 'चालबाज़ी' और बहुत कम व सीधे-सादे ढंग से अपने मनोभाव व्यक्त करने वाले चरित्रों की दिल की बात मुखरित न भी हो पाये तो ध्वनित अवश्य हो उठती है और उस विडंबना को भी अभिव्यक्ति दे सकती है जो अपने दिल की बात किसी से न कह पाने से उत्पन्न होती है. जैसे एक साथ कई स्त्रियों को 'बिनै' (ओंठों पर रख कर एक अंगुली से बजाया जाने वाला एक छोटा-सा पहाड़ी वाद्य) की मंद और नीरस ध्वनि सुन कर प्रबुद्ध प्रेक्षक यही महसूस कर सकता है कि वादकों की आत्मा कुछ कहने के लिए तो बेचैन है, किंतु वे 'साज़े-दिल पुरजोश' नहीं छेड़ पा रहे हैं, क्यों कि वे आदिम संस्कृति के प्रतिनिधि हैं.

संपादक ने यदि दर्शक को सोचने और ग्रहण करते चलने का अवसर नहीं दिया तो क्या हुआ—संयुक्त प्रभाव के जादू से तो वह ठगा-सा रह ही जाता है.

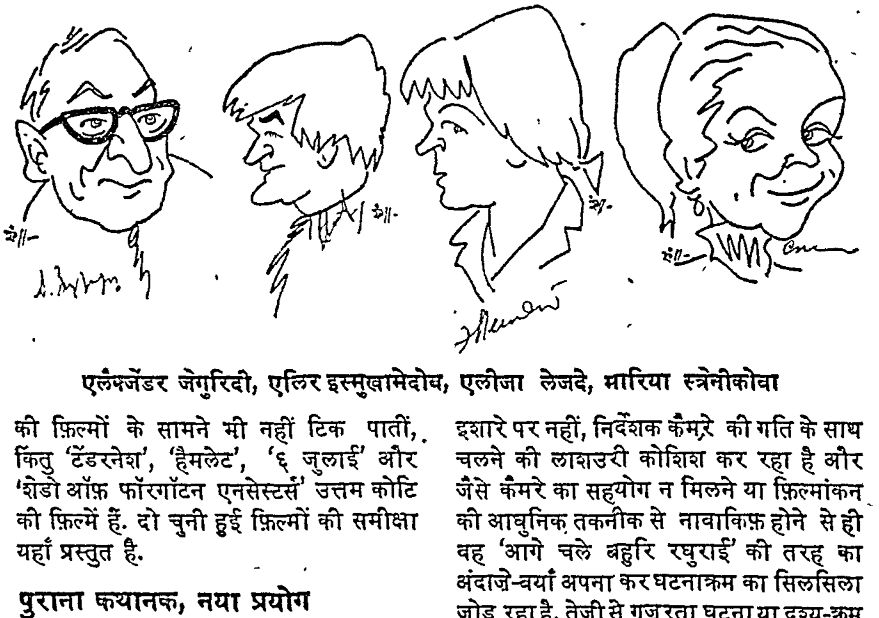

एलैक्जेंडर जेगुरिदी, एलिर इस्मुखामेदोव, एलीजा लेजदे, मारिया स्त्रेनीकोवा

लेनिन की स्मृति

१९६८ के कार्लोवी वैरी फ़िल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ अभिनय के लिए पुरस्कृत **यूली कारासिक** द्वारा निर्देशित फ़िल्म **६ जुलाई** रूस की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिनिधि फ़िल्म है, जिस में ६ जुलाई १९१८ को मॉस्को में घटित उन ऐतिहासिक घटनाओं को दस्तावेज़ी सटीकता से पुनर्स्थापित करने की कोशिश की गयी है जब साम्राज्यवादियों के प्रति नर्मी बरतने के आरोप में लेनिन को अपने ही देश के वामपंथी समाजवादी क्रांतिकारियों का कोप-भाजन बनना पड़ा था; उग्र विरोध और विद्रोह झेलना पड़ा था. गृह-युद्ध का खतरा झेलते हुए इस कठिन परीक्षा की घड़ी में लेनिन के संकेतों पर अपने भविष्य की ओर मज़बूत क़दम बढ़ाती हुई रूस की नयी क्रांतिकारी सरकार को यह फ़ैसला करना था कि वह क्रांति-विरोधी बाहरी शक्तियों से युद्ध जारी रखे या सुलह का रुख अपना कर आंतरिक एकता, प्रशासनिक स्थायित्व, निर्माण और

शांति का माहौल क़ायम करे ? लेनिन ने फ़ैसला किया कि वह मानव को 'ईंधन की तरह' और अधिक आग में नहीं झोंकेंगे' क्यों कि वह सिर्फ़ एक ही महान् लक्ष्य जानते हैं—'मानव की खुशहाली'. यह स्वीकार करते हुए भी कि वामपंथी क्रांतिकारियों का राष्ट्र-प्रेम असंदिग्ध है, वह मजबूर हो कर उन से निर्णयात्मक संघर्ष का फ़ैसला करते हैं.

निस्संदेह फ़िल्म का सर्वाधिक उज्ज्वल पक्ष है **यूरी कायूरोव** द्वारा लेनिन का अभिनय. अपनी चाल-ढाल, मुद्राओं, भाव-भंगिमाओं और बातचीत के तरीक़े से यूरी कायूरोव ने लेनिन को पर्दे पर साकार कर दिया है. लेनिन के उठने-बैठने का अंदाज़, सेना का मुख्यालय-सा बना अपने कार्यालय के अफ़रातफ़री के माहौल में भी तेज़ी से बदलती हुई घटनाओं की नोक-पलक दुरुस्त रखने के लिए तुरंत ठोस निर्णय ले सकने का सामर्थ्य, आगंतुक से लंबी बातचीत टाल कर यथाशीघ्र संक्षेप में खास बात जानने की कला, मारिया स्पिरिदनोवा जैसी वामपंथी नेता का वजनदार भाषण सुन कर भी अपने विवेक को विचलित न होने देने का संयम, संतुलन और बुर्दबारी कुछ ऐसी बारीक़ियाँ हैं, जिन्हें अपने अभिनय से अभिव्यक्ति दे कर कायूरोव ने लेनिन के व्यक्तित्व को पर्दे पर सजीव कर दिया है. फिर भी लेनिन के व्यक्तित्व के अध्येताओं को यह सब देख कर पूर्ण संतोष नहीं हो सकता क्यों कि लेनिन के व्यक्तित्व के कुछ ऐसे विशेष पक्ष छूट गये हैं, जिन्हें खास कर चलचित्रों में बड़ी खूबी से उभारा जा सकता है. अपने संपर्क में आने वाले किसी भी अजनबी के कंधे पर आत्मीयता से हाथ रख कर लेनिन अपनी भेदक दृष्टि से सीधे उस की आंखों में झांकते थे और संबंधित व्यक्ति यों महसूस करता था कि जैसे वह लेनिन से वर्षों से परिचित है. कहना न होगा कि ऐसे दो-एक 'क्लोज़-अप' का विधान दर्शकों पर अमिट प्रभाव डाल सकते थे. इस के अलावा क्रांतिकाल के छायाचित्रों को देख कर यह अहसास बरबस मस्तिष्क पर हावी हो जाता है कि जैसे औसत क़द के लेनिन के साथ सड़कों पर गुज़रते हुए कद्दावर जनरलों के चेहरे इस अनुभूति से दीप्त है कि वे एक महापुरुष के साथ घूम रहे हैं—फ़िल्म में एक-दो ऐसे 'लौंग-शॉट' की कमी भी बहुत अखरती है. यही नहीं, कुशल रूसी चित्रकार लेनिन का चित्र बनाते वक्त उन के सिर के कोमल बालों को रूपायित करने में बहुत अधिक सतर्कता बरतते हैं किंतु चर्चित फ़िल्म में 'मेकअप मैन' ने इस की ओर ध्यान ही नहीं दिया.

युद्ध के दृश्यों का कथ्य से केवल गौण संबंध है. और वैसे भी रूसियों की आपसी मुठभेड़ को ज़्यादा उजागर करने से खास कर रूसी प्रेक्षकों की भावना को ठेस पहुँचती अतः इस फ़िल्म में सैनिक अपने दुश्मनों पर उस प्रचंडता से नहीं टूटते, जैसे मिखाइल शोलोखोव ('धीरे बहती है दोन रे') का नायक ग्रिगोर अपने कज़ाक साथियों के साथ कभी विदेशी और कभी स्वदेशी सैनिकों पर टूट पड़ता है. फ़िल्म के प्रायः सभी प्रमुख और सहायक अभिनेताओं का चेहरा वैसा नहीं है जैसा खूब खाये-पिये, पेट भरे लोगों का होता है—ये तमाम चेहरे क्रांति-काल के चेहरों से मिलते हैं और इस सतर्कता के लिए निर्देशक की भरपूर प्रशंसा की जानी चाहिए. सैनिक साज-सामान, वेशभूषा के चयन और "सेटों के निर्माण में बहुत अधिक सतर्कता बरती गयी है. ध्वनि का प्रयोग और संपादन क़ाबिले-तारीफ़ है. लेकिन एक विशेष खामी ने फ़िल्म की ऐतिहासिकता और दस्तावेज़ी सटीकता को गहरा आघात पहुँचाया है. फ़िल्म देखते वक़्त प्रबुद्ध प्रेक्षक के मन को ये प्रश्न बार-बार कुरेदते हैं कि स्टालिन और ट्राटस्की कहाँ हैं ? क्या ६ जुलाई की इन निर्णायक घटनाओं से उन का कोई संबंध नहीं था ? लेनिन के इन दो प्रमुख सहयोगियों को गायब कर देना फ़िल्म की ऐतिहासिक प्रामाणिकता के प्रति अन्याय है.

'६ जुलाई' के एक दृश्य में लेनिन : सहयोगियों से मंत्रणा

भिन्नता की खोज

स्वाभाविक था कि किसी रूसी-कला निर्देशक से पहला सवाल रूस पर पश्चिमी देशों की कला के प्रभाव के बारे में होता. वही **दिनमान** प्रतिनिधि ने पूछा भी. पहली प्रतिक्रिया यह जान पड़ी कि ज़ेगुरिदी सवाल समझ नहीं पाये हैं किंतु उन के थोड़ा और बोलते ही स्पष्ट हो गया कि ऐसा नहीं है. पश्चिमी क़ला-प्रयोगों को ही वह बहुत विश्वसनीय नहीं मानते. 'मानवीय अनुभवों और संवेदनों को निरे फ़िल्म के माध्यम से अर्थात कहानी के तत्व को दूर रख कर व्यक्त करने के जो नये प्रयोग जर्मनी और अमेरिका में हुए हैं उन में तथा पूर्व यूरोप के कम्युनिस्ट देशों के ऐसे ही प्रयोगों में काफ़ी समानता क्यों मिलती है ?' इस प्रश्न का उत्तर था—'प्रयोग तो होने ही चाहिए. सिनेमा और साहित्य कभी एक जगह ठहरे नहीं रह सकते. परंतु मैं ऐसे प्रयोगों के पक्ष में हूँ जो जीवन को उस की वास्तविकता के बीच जा कर पकड़ते हैं, जिन में बहुधा हम अभिनेता को उस ज़िंदगी की भीड़ के बीच अभिनय करने भेज देते हैं जो स्वयं अभिनय नहीं कर रहे, अपना जीवन बिना यह जाने जी रहे हैं कि उसे फ़िल्माया जा रहा है. कहानी फ़िल्म के लिए अनिवार्य नहीं है परंतु उद्देश्य है.

इस भेंट का सब से दिलचस्प क्षण वह था जब उन से निहायत पिटा हुआ सवाल पूछा गया—'आप को अपनी कौन-सी फ़िल्म सब से अच्छी लगती है' और उस का एक ताज़ा जवाब आया, 'मुझे नहीं मालूम' हाँ उन से यह ज़रूर मालूम हो गया कि आजकल वह ख्वाजा अहमद अब्बास की कहानी के आधार पर 'काला पर्वत' नामक फ़िल्म की तैयारी में हैं जो बच्चों के लिए होगी और मैसूर में फ़िल्मायी जायेगी.

भारतीय फ़िल्मों के बारे में ज़ेगुरिदी एक अच्छे मेहमान की तरह बड़े आदर से बोले. पर 'आवारा' का नाम आने पर **दिनमान** प्रतिनिधि की ही तरह चेहरा बनाते हुए कहा—'उस को तो इस लिए पसंद किया गया था कि वह पहली भारतीय फ़िल्म थी जो रूस में गयी—और इस लिए भी कि वह कुछ उछल-कूद वाली फ़िल्म थी. अब हम सत्यजित राय को भी पसंद करने लगे हैं. यह कह कर ज़ेगुरिदी ने 'दो बीघा ज़मीन' का नाम लिया जो कि सत्यजित राय की तो नहीं है परंतु यथार्थवादी उद्देश्यों से भरपूर अवश्य है.

परखून

विज्ञापनों में नये-पुराने का मेल

जर्मनी के पर्यटन-उद्योग ने विदेशी सैलानियों को आकर्षित करने के लिए विज्ञापनों का एक नया सिलसिला शुरू किया है. जर्मनी की विभिन्न पर्यटन एजेंसियों की तरफ़ से जितने भी विज्ञापन प्रकाशित किये जायेंगे उन में मध्ययुग के योद्धा और बिकिनीधारी आधुनिक युवतियों के चित्र बने होंगे. पुराने-नये युग के इन मिलेजुले संकेत-चिह्न को अब पर्यटन के हर विज्ञापन के लिए अनिवार्य बना दिया गया है. इन विज्ञापनों में आल्प्स के सुंदर दृश्य, उत्तरी समुद्र के स्नान-स्थल, ग्रामों के सुहावने दृश्य और विभिन्न मेलों के दृश्य दिखाये जायेंगे. फ्रांकफ़ुर्त में जर्मनी की केंद्रीय पर्यटन परिवहन एजेंसी के विशेषज्ञों का विश्वास है कि विदेशी पाठक इन चित्रों को देख कर निश्चित ही आकर्षित होंगे और जर्मनी भ्रमण का कार्यक्रम बनाने को लालायित होंगे.

जर्मनी के केंद्रीय पर्यटन विज्ञापन केंद्र में विज्ञापनों के इस नये सिलसिले पर बड़ी मेहनत की जा रही है. नया कार्यक्रम बनाने से पहले तरह-तरह के शोध किये गये. यह जानने की कोशिश की गयी कि किन-किन बातों से प्रभावित हो कर पर्यटक जर्मनी का पर्यटन करने का फ़ैसला करता है. आंकड़े एकत्र किये गये कि कितने लोग अपनी यात्रा के दौरान जर्मनी से हो कर जाना पसंद करते हैं. फिर यह भी निश्चय करना था कि जर्मनी में कौन-कौन से आकर्षण-केंद्र ऐसे हैं जिन का दौरा करने के लिए पर्यटक जर्मनी में आना पसंद करेगा.

अब इन नये संकेत-चिह्नों वाले जो विज्ञापन छपेंगे वे सभी भड़कीले रंगों में होंगे. आवश्यकता पड़ने पर अलग-अलग प्रदेशों के पहचान-चिह्न भी इन विज्ञापनों में शामिल किये जायेंगे.

चेकोस्लोवाकिया में रूसी प्रचार

चेकोस्लोवाकिया में इस समय बहुत-से पर्चे और पुस्तिकाएँ बांटी जा रही हैं, जिन में चेकोस्लोवाकिया के सुधारवादी नेताओं की कटु आलोचना की गयी है और अप्रत्यक्ष रूप से रूसी आक्रमण का समर्थन किया गया है.

चेकोस्लोवाकिया की संसद् में कई सदस्यों ने इस ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया है और कहा है कि रूस चेकोस्लोवाकिया की पुलिस के कुछ कर्मचारियों की सहायता से यह प्रचार कर रहा है, जो उस के इस वायदे के प्रतिकूल है कि यद्यपि उस की सेना चेकोस्लोवाकिया में रहेगी पर इस देश के आंतरिक मामलों में वह हस्तक्षेप न करेगा.

इधर चेकोस्लोवाकिया के भूतपूर्व विदेशमंत्री हायेक ने पलाचकी विश्वविद्यालय के अपने एक भाषण में कहा है कि रूस को कभी न कभी यह मानना पड़ेगा कि उसने चेकोस्लोवाकिया में अपनी सेना भेज कर भारी भूल की है.

रूसी आक्रमण के समय हायेक चेकोस्लोवाकिया के विदेशमंत्री थे, परंतु बाद में रूसी सरकार द्वारा निरंतर आलोचना किये जाने के कारण उन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था. तब से वह विश्वविद्यालय में अध्यापन-कार्य कर रहे हैं.

निराश प्रेमियों का अंतिम अस्त्र

ब्रिटेन के दो युवकों ने रूसी राजदूत की पत्नी श्रीमती स्मर्नोविस्की को एक खुली चिट्ठी लिख कर रूसी स्त्रियों से अपील की है कि वे अपनी सरकार को विवश करें कि वह उन का दो रूसी युवतियों से विवाह करने पर से प्रतिबंध हटा दे.

ब्रिटेन के दो युवक, इंजीनियर डेरिक डीकन और प्राध्यापक मैथ्यूज़, पाँच साल पहले मास्को गये थे. वहाँ इन का दो रूसी युवतियों से प्रेम हो गया था और इन्होंने विवाह की तैयारी कर ली थी. रूसी युवतियाँ अब भी अपने ब्रिटिश प्रेमियों से विवाह करना चाहती हैं, किंतु रूस की सरकार उन को इस की अनुमति नहीं दे रही है.

साम्यवाद में जाति-पाँति के लिए कोई स्थान नहीं और रूस साम्यवादी देश होने के बावजूद अपने नागरिकों को विदेशियों से विवाह करने की छूट नहीं देता. अन्य किसी सभ्य देश में इस प्रकार का प्रतिबंध नहीं है.

आर्थिक मज़बूती में कौन आगे ?

अरब देशों की तुलना में इस्राइल की अर्थ-व्यवस्था कहीं अधिक मज़बूत है. एक सर्वेक्षण से पता चला है कि पाँच अरब देशों की कुल राष्ट्रीय आय ७,५०० करोड़ रुपये हैं, जब कि कुल मिला कर इस्राइल की राष्ट्रीय आय ३,००० करोड़ रुपये है. इस सर्वेक्षण में जिन पाँच अरब देशों को सम्मिलित किया गया इन के नाम हैं मिस्र, जॉर्डन, सीरिया, इराक और लेबनॉन. इन देशों की कुल आबादी ५ करोड़ है, जब कि इस्राइल की आबादी २५ लाख है.

वैसे औद्योगिक उत्पादन में इस्राइल इन देशों से कहीं आगे है. अरब देशों का औद्योगिक उत्पादन का मूल्य १०० करोड़ पर ठहराया गया है, जब कि इस्राइल का उत्पादन ९८० करोड़ रुपये का है.

सन् १९६७ में इस्राइल की प्रति व्यक्ति आय १०,५०० रुपये थी. उसी वर्ष मिस्र में प्रति व्यक्ति आय १२०० रुपये कूती गयी और लेबनॉन में प्रति व्यक्ति आय ४८०० रुपये थी.

सन् १९६७ में उपर्युक्त पाँच अरब देशों ने ८३० करोड़ रुपये सेना पर खर्च किया, जब कि उसी वर्ष इस्राइल का सैनिक खर्च ४८० करोड़ रुपये था.

नये आविष्कार

पश्चिम जर्मनी में एक ऐसा आदर्श टेलीविज़न सेट तैयार किया गया है जिस में चार कार्यक्रम एक साथ देखे जा सकते हैं. इस का मुख्य पर्दा ६३ सेंटीमीटर है. जिस पर रंगीन कार्यक्रम देखे जा सकते हैं. छोटे तीन पर्दे १४-१४ सेंटीमीटर के हैं, जिन पर केवल सादे कार्यक्रम देखे जा सकते हैं. इन छोटे पर्दों के कार्यक्रमों की आवाज़ इयरफ़ोनों के ज़रिये सुनी जा सकती है. इस सेट का मूल्य २५० डॉलर है.

एक और नयी चीज़ जर्मनी के बाज़ारों में पहली बार आयी है, जिसे विद्युत नोटबुक कहा जा सकता है. २५० ग्राम वज़न वाली इस डिक्टेटिंग मशीन के टेप से दो बार दस मिनट तक बोलने वाले की आवाज़ सुनी जा सकती है।

विद्युत नोटबुक

चार पर्दों का टेलीविज़न

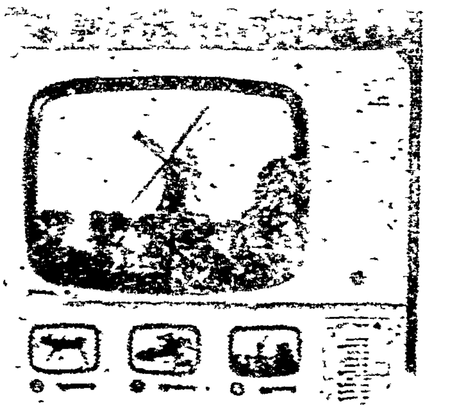

आ रहा है बैसाखी का उल्हास भरा त्योहार

जिसके उमंग और उत्साह को प्रस्तुत कर रहा है धर्मयुग

१३ अप्रैल, ६९ के बैसाखी अंक में :

★ **भांगड़ा नृत्य :** पंजाब और हरयाणा का जैसे पर्यायवाची ही है भांगड़ा नृत्य. उसकी गतिमयता को कैमरे में बांधने की कोशिश की है छायाकार **घनश्याम अग्रवाल** ने, जिसे आप इस अंक के बहुरंगे मुखपृष्ठ पर देखेंगे.

★ **लाहौर में तीन अध्याय :** पंजाब की संस्कृति का ही नहीं, उत्तर भारत की समूची संस्कृति का प्रमुख केंद्र एक समय लाहौर था. तब उसे 'भारत का पेरिस' कहा जाता था. अब लाहौर पाकिस्तान में है, लेकिन हर ऐसे मौके पर उससे जुड़ी-बंधी अनेक मीठी-कड़वी स्मृतियां हमें कुरेद-कुरेद जाती हैं. **चंद्रगुप्त विद्यालंकार** जो एक अरसे तक लाहौर ही रहे थे, लिख रहे हैं विभाजन से पहले, विभाजन के समय और विभाजन के बाद के लाहौर के जीवन की झांकी, साथ में आस्ट्रेलिया की घुमक्कड़ पत्रकार **डल्सी ए. बेन** द्वारा लिये गये ताजे रंगीन चित्र.

★ पंजाबी की अग्रगण्य कवयित्री-कहानी लेखिका अमृता प्रीतम की एक सशक्त कहानी : **पांचों कुआंरियां**

★ **पंजाबी नाटक का खब्बी खां :** पंजाबी नाटककार 'बलवंत गार्गी हिंदुस्तान में उतना ही मशहूर है जितना नागपुरी संतरा. उसके पाठक वर्ग का दायरा अमरीका से लेकर मेरे ग्रामीण गुरुद्वारे के पाठी, भाई दुर्गा सिंह की सिहनी तक फैला हुआ है.' गार्गी द्वारा चंडीगढ़ में प्रस्तुत किये गये 'मृच्छकटिक' का विवरण देते हुए लिखा है लेखक शिवकुमार बटालवी ने.

★ **गुरु गोविन्द सिंह की शस्त्र पूजा :** सिख धर्म में भक्ति और शक्ति साथ-साथ रहे हैं. शास्त्रों के जाप के साथ शस्त्रों की पूजा भी होती रही है. अपने शिष्यों को शस्त्रधारी रहने का आदेश दिया था दसवें गुरु गोविंद सिंह ने. बैसाखी के अवसर पर **हरजिंदरसिंह सेठी** पेश कर रहे हैं उनकी शस्त्र पूजा और उनके विचार दर्शन की पीठिका.

★ क्रीड़ा जगत के अंतर्गत : फुटबाल के पंजाबी खिलाड़ी जरनैल सिंह के संस्मरण और फिल्म स्तंभ में पंजाबी फिल्मों की समीक्षा : अशोक प्रेमी द्वारा.

★ और भीष्म साहनी की धारावाहिक अंतर्कथा. 'कड़ियां' की इस अंक में एक और सशक्त किस्त.

इतना ही नहीं :

इसी अंक में आप पायेंगे और भी श्रेष्ठ रचनाएं जिन्हें लिख रहे हैं विशेष रूप से :

● हरिशंकर परसाई ● कुणाल श्रीवास्तव ● जगदीश गुप्त ● वेदप्रताप वैदिक ● सुशील सिन्हा ● जितेंद्रनाथ पाठक ● केदारनाथ कोमल ● महेंद्र राजा जैन ● डा. अरविंद मोहन ● काका हाथरसी ● डा० विष्णु कक्कड़ ● डॉ० सुशीला नैयर ● उमाकांत मालवीय ● यशपाल जैन.

तथा अन्य नियमित सामग्री

धर्मयुग १३ अप्रैल, १९६९

अभी से सुरक्षित करा लीजिए

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

दिनमान

जलियाँवाली बैसाखी

१३ अप्रैल, १९६९

उत्तर रेलवे

सूचना

१ अप्रैल १९६९ से समय सारिणी में सामान्य संशोधन होगा और महत्वपूर्ण परिवर्त्तन निम्नांकित होंगे :

गाड़ियों की गति में वृद्धि

१. मेल एवं एक्सप्रेस

(१) ११ अप मुगलसराय एवं दिल्ली के मध्य, ४३ मिनट से, (२) २०८ डाउन (एम जी) जोधपुर एवं फुलेरा के मध्य, २५ मिनट से, (३) ८२ डाउन दिल्ली और मुगलसराय के मध्य, १५ मिनट से (४) २०७ अप (एम जी) फुलेरा एवं जोधपुर के मध्य, १० मिनट से (५) ६० डाउन पठानकोट एवं नयी दिल्ली के मध्य, ५ मिनट से (६) ५९ अप नयी दिल्ली एवं पठानकोट के मध्य, ५ मिनट से.

२. पैसेन्जर

(१) १ जे डी पी/(एम जी) डेगाना एवं फुलेरा के मध्य, ८२ मिनट से (२) २ जे डी पी (एम जी) फुलेरा एवं डेगाना के मध्य, ५५ मिनट से (३) ३७२ डाउन दिल्ली एवं हरिद्वार के मध्य, ४५ मिनट से (४) २०९ अप (एम जी) फुलेरा एवं मारवार के मध्य, ३० मिनट से (५) २ यू. एन. अम्बाला कैण्ट एवं नाभा के मध्य, २० मिनट से (६) २१० डाउन (एम जी) मारवार एवं फुलेरा के मध्य, २० मिनट से (७) २ ए एल एफ अमृतसर एवं फिरोजपुर के मध्य वाया लुधियाना, १५ मिनट से (८) ३४९ अप देहरादून एवं अमृतसर के मध्य, ७ मिनट से.

गाड़ियों के समय में महत्वपूर्ण परिवर्तन

(१) ११ अप हावड़ा दिल्ली एक्सप्रेस दिल्ली ६/५ वजे के स्थान पर ५/३५ वजे पर पहुँचेगी (२) ८४ डाउन लखनऊ एक्सप्रेस लखनऊ ७/२५ वजे के स्थान पर ७/५० वजे पर पहुंचेगी (३) ४४अप झांसी मेल लखनऊ से ७/३० वजे के स्थान पर ७/५ पर छूटेगी (४) १०६ लखनऊ झांसी फास्ट पैसेंजर लखनऊ से १५/१५ वजे के स्थान पर १५/४० वजे पर छूटेगी (५) ३७२ डाउन हरिद्वार दिल्ली पैसेंजर दिल्ली १७/५ वजे के स्थान पर १६/२० वजे पर आयेगी (६) ३ एल सी पैसन्जर लखनऊ से १० वजे के स्थान पर १०/४५ वजे पर छूटेगी (७) ६ ए एफ पैसेन्जर फैजावाद से १६/४५ वजे के स्थान पर १७/१५ वजे पर छूटेगी (८) २ एम एल पैसेन्जर फैजावाद से १६/२० वजे के स्थान पर १६/४० वजे पर छूटेगी (९) हावड़ा और वम्बई वी. टी. के मध्य सप्ताह में दो वार चलने वाली जनता एक्सप्रेसों के अतिरिक्त. इलाहावाद और वम्बई के मध्य सप्ताह में दो वार चलने वाली जनता एक्सप्रेस की आवृत्ति अव सप्ताह में चार वार कर दी जायेगी. वह इलाहावाद से सोमवार, बुधवार, शुक्रवार एवं शनिवार को चलेगी और वम्बई वी. टी. से सोमवार, मंगलवार, वृहस्पतिवार एवं शनिवार को चलेगी. इलाहावाद एवं वम्बई के मध्य चलने वाली गाड़ियां ४१ डाउन/ ४२ अप कहलायेंगी.

मिलान (कम्बीनेशन)

२०७ अप/९५ अप एवं २०८ डाउन/९६ डाउन मेडता रोड़ एवं जोधपुर सैक्शन पर मिली हुई गाडी (कम्बाइंड ट्रेन) के रूप में चलेगी.

ट्रैफिक की कमी के कारण रद्द की गई गाड़ियां

(१) १ एम एस एन/२ एम एस एन अम्बाला कैण्ट एवं नांगल डैम के मध्य (२) १ ए ए/२ ए ए अमृतसर एवं अटारी के मध्य (केवल गर्मी के महीनों में चलने वाली मौसमी गाड़ियां). (३) १ एच एच/२ एच एच, हाथरस जंक्शन एवं हाथरस किला के मध्य (४) १ जे पी वी/२ जे पी वी. पीपर रोड एवं विलारा के मध्य (५) १ जे एम एम/४ जे एम एम मेड़ता रोड एवं मेड़ता सिटी के मध्य (६) १ जे. वी. पी./२ जे वी पी वालोतेड़ा और पचपद्रा साल्ट डिपो के मध्य.

नोट : (अ) गाडी नं. १ एन जे पी अव नयी दिल्ली के स्थान पर दिल्ली से चलेगी और उसका नम्बर १ डी जे पी होगा. (आ) २ एन एस वी नयी दिल्ली के स्थान पर अव दिल्ली में समाप्त होगी और उस का नम्बर २ डी एस वी होगा.

नये खोले गये स्टेशन

समदारी-भीलडी सैक्शन पर रमनियां हाल्ट. लूनी-बाड़मेर सैक्शन पर मियां का वाडा. हनुमानगढ-भटिंडा सैक्शन पर पथराला हाल्ट.

मार्ग परिवर्तन

(१) ५९ अप/६० डाउन श्रीनगर/एक्सप्रेस जो जालन्धर सिटी, मुकेरियां होती हुई नयी दिल्ली और पठानकोट के मध्य चल रही है, अव परिवर्तित मार्ग पर जालन्धर कैण्ट कार्ड से जालन्धर सिटी को छोड़ते हुए चलेगी (२) ८२ डाउन ए. सी. एक्सप्रेस, जो नयी दिल्ली से शुक्रवार को चलती है, का नम्बर अव १०४ डाउन होगा और मुगलसराय-पटना होते हुए हावड़ा जायेगी. इसी प्रकार ८१ अप ए. सी. एक्सप्रेस जो हावड़ा से रविवार को चलती है नयी दिल्ली के लिये १०३ अप के रूप में पटना-मुगलसराय होते हुए चलेगी.

नये रुकने के स्थान

३३१ अप/४ डी एस यू. १ एन एम/२ एन एम दुहाई हाल्ट पर, १५ डाउन, २५ डाउन हजरत निजामुद्दीन पर, ४ ए वी पी छीना पर, १ पी वी परोर पर, ४ सी एम गुमठाल पर, २ वी डी वी जटौला जौरी सम्पका पर, ९३ अप पटौदी रोड पर, ४७ अप/४८ डाउन परसीपुर पर, १०६ अप मगरवाड़ा पर, २ एल सी मगरवाड़ा और जैतीपुर पर.

हटाये गये रुकने के स्थान

५१अप/५२ डाउन गोशाईगंज एवं रीडगंज से. १४ डाउन परसीपुर से, ५२ डाउन दलेल नगर से, २ ए एल एफ टांगरा, सुरानुसी एवं चिहेरु से, ९१ अप पटौदी रोड से, १०७ डाउन मगरवाड़ा से, जैतीपुर एवं अमौसी से.

दिनांक १-४-१९६९ से ब्राड गेज डिवीजन्स की कुछ अ-महत्वपूर्ण ब्रांच लाइन की गाड़ियों से १ एवं २ श्रेणी के डिब्बे कम यात्रियों के आने-जाने के कारण हटा दिये जायेंगे.

समय सारिणी, थ्रू/सैक्शनल कैरेज के चालू होने और रद्द होने, गाड़ियों के स्थान के वर्गीकरण की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना के लिए अप्रैल, १९६९ की समय सारिणी, जो महत्वपूर्ण रेलवे स्टेशनों के रेलवे बुकिंग/रिजर्वेशन/पूछताछ कार्यालयों एवं बुक स्टालों पर उपलब्ध है, देखनी चाहिए.

मत और सम्मत

अंग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन : लोकसभा में गृहमंत्रालय में राज्यमंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल का भाषा संबंधी वक्तव्य द्रविड़ मुन्नेत्र कषगम, अंग्रेज़ीपरस्त भारत सरकार के नेतृत्व और नौकरशाही की मिली भगत का सूचक है. श्री शुक्ल ने लोकसभा को आश्वासन दिया है कि 'जब तक अहिंदीभाषी राज्य अंग्रेज़ी का प्रयोग बंद करने के लिए सहमत न होंगे तब तक केंद्र में हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों का प्रयोग होता रहेगा'. अंग्रेज़ी का केंद्र में चलते रहना देश की स्वतंत्रता को झुठलाता तो है ही, जनतंत्र की भी हत्या है. १९६९ में देश की आबादी लगभग ५४ करोड़ है. इस में से तमिलनाडु की आबादी ३ करोड़ ८८ लाख है और नगालैंड की आबादी ४३ लाख है. इन दो प्रदेशों में ही इस समय अंग्रेज़ी उन्माद ज़ोर पर है. ४-४।। करोड़ के उन्माद के लिए पूरे देश पर, ५० करोड़ पर, अंग्रेज़ी को लादना स्वतंत्रता और जनतंत्र का हनन है.

हमारा यह निश्चित मत है कि केंद्र से अंग्रेज़ी का व्यवहार तत्काल समाप्त हो जाना चाहिए. अंग्रेज़ी की जगह मातृभाषाओं का व्यवहार होना चाहिए. दिल्ली-मद्रास के बीच तमिल में पत्र-व्यवहार होना चाहिए, अंग्रेज़ी में नहीं. ऐसे पत्र-व्यवहार के लिए गृहमंत्रालय में, जहाँ इतने विभाग काम करते हैं वहाँ एक भाषा विभाग का भी गठन किया जा सकता है. जो भी हो, केंद्र को ऐसे राज्यों से जहाँ कि मातृभाषा और राज्य भाषा हिंदी है, जैसे उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, हरयाणा, हिमाचलप्रदेश और जिन्होंने हिंदी को केंद्र में स्वीकारा है, जैसे गुजरात, महाराष्ट्र और ओडिसा जैसे राज्यों से हरगिज़ अंग्रेज़ी में पत्र-व्यवहार न करना चाहिए, इन प्रदेशों की राजभाषा में ही करना चाहिए.

मैं विशेष रूप से ऊंचे अफ़सरों को आगाह करना चाहूंगा कि अपने लिए और अपनी संतान के लिए अंग्रेज़ी को वैसे ही न चिपकाये रहें जैसे बंदरिया अपने मरे हुए बच्चे को चिपकाये रहती है. मातृभाषाओं में योग्यता हासिल किये बिना उन का और देश का कोई भविष्य नहीं है. मातृभाषा के बजाय अंग्रेज़ी में काम करने वालों की हानि होने वाली ही है. इस संबंध में श्री शुक्ल का आश्वासन बेमतलब है. उदाहरण के लिए, तमिलभाषी को अगर महाराष्ट्र में काम करना है तो उसे मराठी जाननी ही होगी. मराठी में न व्यवहार कर केंद्र सरकार की मदद से तमिल महाराष्ट्र में काम कर सकेंगे, ऐसा संभव नहीं.

—**कृष्णनाथ,**
अखिल भारतीय अंग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन

अंग्रेज़ी हटाओ सम्मेलन बड़ा विचित्र नाम है. अंग्रेज़ी हटाओ—न जाने किस से यह धमकी भरे शब्दों में कहा जा रहा है कि अंग्रेज़ी हटाओ. शायद इस के आगे की पंक्ति के शब्द होंगे—'वर्ना हम . . . .' इसी के साथ मेरी जिज्ञासा है कि कौन हैं वे जो अंग्रेज़ी को हटाने में हिचक रहे हैं और बाधा बने हुए हैं ? इसे आप कुछ अंग्रेज़ी भक्तों का नाम दे कर संतुष्ट न करें, जहाँ ऐसा दबाव नहीं है वहाँ भी हिंदी क्यों नहीं आ पायी?

—**प्रसाद प्रभाकर, गुड़गाँव**

वहाँ के अंग्रेज़ी भक्त मुख्यमंत्रियों के कारण
—सं०

वफ़ादारी की कसौटी : उत्तरप्रदेश की विधानसभा में कुछ मुस्लिम सदस्यों को अपनी मातृभाषा उर्दू में वफ़ादारी की शपथ ग्रहण करने की किस क़ानून से मनाही की गयी? क्या उर्दू हिंदी के साथ उत्तरप्रदेश की आम ज़ुबान नहीं है? क्या उर्दू में शपथ ग्रहण करने से हिंदी का अपमान है? या हिंदी में शपथ ग्रहण करने से कोई ज़्यादा वफ़ादार बन जाता है ? उत्तरप्रदेश में नयी सरकार ने कोई ऐसा भारतीय संविधान से अलग क़ानून बनाया है कि कोई भी व्यक्ति अपनी मातृभाषा में सब कुछ बोले, लेकिन देश की वफ़ादारी के लिए निजी ज़ुबान न खोले?

—**वी. ज. सोहानी, गुजरात**

मध्यप्रदेश : मैं आप के लोकप्रिय पत्र के माध्यम से श्री गोविंदनारायण सिंह तथा उन के अन्य साथियों को कांग्रेस में वापस लौटने के साहसिक कार्य की सराहना करते हुए बधाई देना चाहता हूँ. श्री सिंह ने न केवल मध्यप्रदेश की ग़रीब जनता को संविद के कुशासन से उबार कर उसे मध्यावधि चुनाव के भार से बचा लिया है बल्कि मध्यप्रदेश में एक स्थायी सरकार के निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान किया है. इस हेतु श्री सिंह तथा उन के पुराने कांग्रेसी साथियों ने कांग्रेस हाई कमान की यह शर्त भी सहर्ष अंगीकार की है कि उन्हें कांग्रेस के नवीन मंत्रिमंडल में कोई स्थान नहीं दिया जायेगा.

मध्यप्रदेश का साधारण कांग्रेस कार्यकर्ता इस नीति से संतुष्ट है और वह यह चाहता है कि कांग्रेस से अनुशासनहीनता समाप्त करने के लिए इस प्रकार के सिद्धांत, सत्ता का मोह त्याग कर, कठोरता से लागू किये जायें. प्रगतिशील विधायक दल में भी अनेक विधायक इस प्रकार के हैं जिन्होंने कांग्रेस प्रतिज्ञापत्र को भरने के बाद कांग्रेस के विरुद्ध चुनाव लड़ा था और कांग्रेस ने उन के विरुद्ध अनुशासनात्मक कारवाई कर के गत आम चुनाव के समय ६ वर्षों के लिए दल से निष्कासित किया था. ऐसे विधायकों की स्थिति श्री सिंह व उन के साथियों से, जो बिना शर्त अपनी मातृसंस्था में वापस आये हैं, किसी भी प्रकार ऊँची नहीं मानी जा सकती. क्या मैं कांग्रेस दल के नवनिर्वाचित नेता से यह अपेक्षा कर सकता हूँ कि वह प्रगतिशील विधायक दल में सम्मिलित कांग्रेसी अभियुक्तों को अपने मंत्रिमंडल में स्थान न दे कर उपर्युक्त सिद्धांत का दृढ़ता से पालन करेंगे ? यदि यह संभव नहीं है तो कांग्रेस के ऋण को ब्याज सहित चुकाने का दावा करने वाले श्री सिंह व उन के साथियों ने ऐसा कौन-सा घोर अपराध किया है जो उन्हें प्रतिबंधित किया जा रहा है ?

—**शिवनारायण खरे,**
मंत्री, ज़िला कांग्रेस कमेटी, छतरपुर

मध्यप्रदेश में नये दल के सत्तारूढ़ होने के साथ कुछ बुनियादी परिवर्तन होने लगे. लेकिन १२ वर्षीय स्कूली शिक्षा के स्थान पर पुनः हायर सेकेंडरी स्कीम को बरक़रार जीवित रखने का निर्णय इस बात को सोचने के लिए बाध्य करता है कि शिक्षा का राष्ट्रीयकरण नितांत आवश्यक है. यदि कुछ कारणों से फ़िलहाल ये संभव न भी हो सके तो कम से कम इस तरह के बुनियादी निर्णय लेने का अधिकार केंद्र को होना चाहिए; नहीं तो राज्यों में दल-बदलुओं की कृपा से होने वाला सत्ता-परिवर्तन बुनियादी सिद्धांतों के साथ खिलवाड़ करता रहेगा.

—**राजेंद्र गंगन, भोपाल**

दिल और दिमाग़ : पाकिस्तान और हिंदुस्तान की जनता के दिल और दिमाग़ अब काफ़ी हिल चुके हैं. दोनों राजनैतिक स्वार्थों पर आधारित खड़ी की हुई दीवारों को तोड़ना चाहते हैं. दोनों की आर्थिक दशा इतनी बदतर हो गयी है जितनी एक परिवार की बँटवारे के बाद हो जाती है.

—**गिरिजाशंकर जायसवाल, सरगुजा**

आप फ़रमाते हैं

व्यंग्य-चित्र : लक्ष्मण

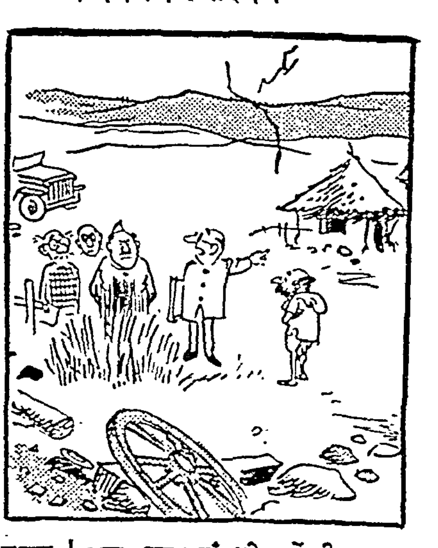

'साहब ! क्या हम यहाँ भी चलें ? इस का कहना है कि उस मकान के पीछे इसने एक और कृषि-क्रांति की है.'

प्रश्न-चर्चा—५४

आज की सभ्यता और संस्कृति की महत्त्वपूर्ण, उपलब्धियों को एक पेटी में रखा जा रहा है, जो ५००० वर्ष बाद खोली जायेगी (देखिए चरचे-चरखे, पृष्ठ १०). साहित्य, राजनीति शिक्षा के क्षेत्र में आज आप के देश में ऐसा क्या है जिसे आप पाँच हज़ार वर्ष तक सुरक्षित रखने को तैयार हों ?

संक्षिप्त और सटीक उत्तर पर ५० रुपये पुरस्कार दिया जायेगा. उत्तर २७ अप्रैल तक 'प्रश्न-चर्चा ५४, दिनमान, ७, बहादुर शाह ज़फ़र मार्ग नयी दिल्ली—१' के पते पर आ जाना चाहिए. पुरस्कार की घोषणा ११ मई, १९६९ के **दिनमान** में की जायेगी.

पाकिस्तान अंक : श्री सज्जाद ज़हीर ने लिखा है कि 'श्री ओक ताज महल को एक राजपूत राजा का महल साबित करने पर तुले हुए हैं'. इस वाक्य को पढ़ने से ऐसा मालूम होता है कि ताज महल, शाहजहाँ (जो एक मुसलमान था) ने बनवाया है, ऐसा, पुराने इतिहासकार मानते हैं और श्री ओक ताज महल जैसी खूबसूरत इमारत बनवाने का श्रेय एक मुसलमान को दिया जाये इसे बरदाश्त नहीं कर सकते; इस लिए वह उसे एक हिंदू राजा का महल साबित करने पर तुले हुए हैं. ऐसा कहना एक खोजप्रिय व्यक्ति के निरपेक्ष व्यक्तित्व पर कुठाराघात करना है.

—राजेंद्रकुमार तिवारी, कानपुर

वर्तमान रेलमंत्री ने **राजधानी एक्सप्रेस** चला कर इस नीति पर मुहर लगा दी कि वह संपन्न वर्ग का हित चाहती है तथा विषमता बनाये रखना चाहती है. सरकार इस विलासिता की गाड़ी को छोड़ उस ओर भी देखे जिधर सामान्य जन पावदानों और छतों पर चलते हैं.

—प्रकाश चंद्र, मुंगेर

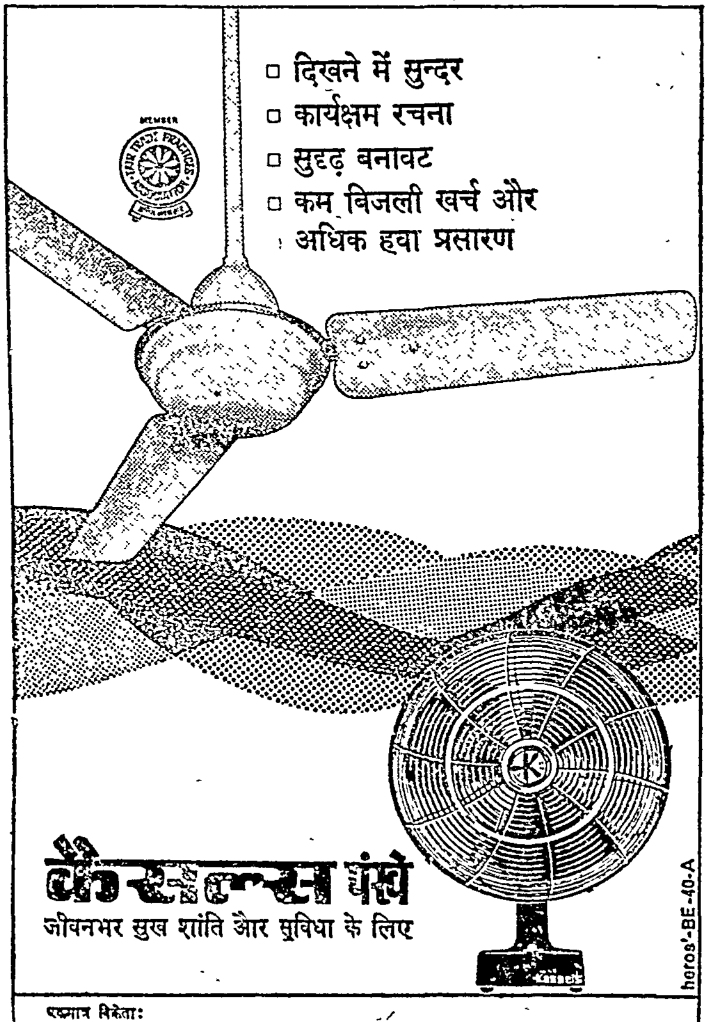

पिछले सप्ताह

(२७ मार्च से २ अप्रैल १९६९ तक)

देश

२७ मार्च : बर्मा जाते हुए प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का दमदम हवाई अड्डे पर पश्चिम बंगाल के नेताओं से केंद्र-राज्य संबंधों के बारे में बातचीत. फ़िरोज़पुर जेल के अधिकारियों और बंदियों में मुठभेड़ के कारण पाँच बंदियों की मृत्यु.

२८ मार्च : तेलंगाना के प्रश्न पर आंध्रप्रदेश के सूचनामंत्री कोंडा लक्ष्मण बापूजी का त्यागपत्र. रामगढ़ के राजा कामाख्या नारायण सिंह का बिहार मंत्रिमंडल से इस्तीफ़ा.

२९ मार्च : हैदराबाद में छात्रों द्वारा बसों पर पथराव.

३० मार्च : तीन दिन की बर्मा यात्रा के बाद प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का स्वदेश आगमन. मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्यामा चरण शुक्ल द्वारा बड़े मिलेजुले मंत्रिमंडल का समर्थन.

३१ मार्च : देश की नयी विदेशी व्यापार-नीति की घोषणा.

१ अप्रैल : आकाशवाणी के दिल्ली स्टेशन से विज्ञापन-कार्यक्रम शुरू. लोकसभा में मंत्रालय की माँगों पर बहस रोक कर तेलंगाना समस्या पर बहस.

२ अप्रैल : पी. सी. लाल अगले वायु सेना-अध्यक्ष नियुक्त. कलकत्ता के एक बैंक में दिनदहाड़े डकैती.

विदेश

२७ मार्च : कराची में मार्शल लॉ के उल्लंघन का विफल प्रयास.

२८ मार्च : अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति ड्वाइट डी. आइज़नहावर का वॉशिंगटन में देहांत. पूर्व पाकिस्तान छात्र कार्रवाई समिति पर प्रतिबंध.

२९ मार्च : इस्राइल की युर्दान के नागरिकों पर बमबारी को अमेरिका द्वारा संयुक्त-राष्ट्र सुरक्षा परिषद् द्वारा निंदा करने का सुझाव.

३० मार्च : पश्चिम एशिया की समस्या के समाधान की चार बड़े राष्ट्रों की शिखर-वार्ता पर इस्राइल का विरोध.

३१ मार्च : जनरल याह्या खाँ द्वारा पाकिस्तान का राष्ट्रपति-पद ग्रहण. ब्रिटेन और एंगुइला में समझौता. बी. ओ. ए. सी. के चालकों की हड़ताल के कारण ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था अस्तव्यस्त.

१ अप्रैल : पाकिस्तान के भूतपूर्व राष्ट्रपति अय्यूब खाँ द्वारा सरकारी निवास-स्थान खाली.

२ अप्रैल : नेपाल के प्रधानमंत्री सूर्यबहादुर थापा का त्यागपत्र. ईरान द्वारा लेबनान से राजनयिक संबंध-विच्छेद.

पत्रकार संसद

क्या मार्शल लॉ आवश्यक था?

पाकिस्तान में मॉर्शल लॉ के बाद से समाचारों पर सेंसर लग जाने के कारण लगभग नहीं के बराबर समाचार मिल रहे हैं. पर वहाँ की राजनैतिक स्थिति की विवेचना जारी है. विश्व के प्रमुख समाचारपत्र मॉर्शल लॉ से पहले की परिस्थितियों का विश्लेषण कर पाकिस्तान के राजनैतिक भविष्य के बारे में तरह-तरह की अटकलें लगा रहे हैं. भूतपूर्व राष्ट्रपति अय्यूब के प्रति बढ़ते हुए विरोध के दिनों में ब्रितानी पत्रों का रुख आम तौर पर अय्यूब समर्थक ही था. अब भी कुछ पत्रों का मत है कि राष्ट्रपति अय्यूब का पद छोड़ना और मार्शल लॉ लागू किया जाना अनावश्यक था. ब्रितानी पत्र **इकानॉमिस्ट** की राय है कि पाकिस्तान में स्थिति जितनी ख़राब बतायी जा रही थी उतनी शायद थी नहीं. ऐसी हालत में मार्शल लॉ जैसा सख्त क़दम उठाना बिल्कुल भी आवश्यक नहीं था. पत्र का कहना है—

राष्ट्रपति अय्यूब की अपने देश के प्रति अंतिम-सेवा यह रही है कि वह अपने पद से चिपके नहीं रहे. पाकिस्तान में क़ानून व व्यवस्था की फिर से स्थापना की आवश्यकता तो थी, लेकिन सैनिक शासन की फिर से स्थापना की ज़रूरत का कोई ठोस सबूत नहीं मिलता. शुरू सप्ताह में पूर्व पाकिस्तान की गड़बड़ से सैनिक शासन की स्थापना की आवश्यकता का संकेत मिलने लगा था. फिर ढाका से भूखे किसानों के मार्च की ख़बर आयी तो १५ सौ मील दूर कराची में बैठे लोगों को स्थिति के बहुत बिगड़ जाने जैसा लग रहा था.

नागरिक अधिकारों के लिए जो आंदोलन शुरू हुआ था वह अब से दस वर्ष पहले भी सैनिक प्रशासन की स्थापना में खो गया था. उस समय भी इस आंदोलन ने बड़ा ख़तरनाक मोड़ ले लिया था. पूर्व पाकिस्तान से जैसे भयावह समाचार दिये जाते हैं उन सब पर ज्यों का त्यों यक़ीन नहीं कर लेना चाहिए. ऐसी जगहों में अक्सर ऐसे हालात होते हैं कि अफ़वाहें और सनसनीखेज बातें एक कोने से दूसरे कोने तक फैल जाती हैं, जिन से ज़ाहिर है बातों को बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बताया जाता है. इस बात पर भी विश्वास नहीं किया जाना चाहिए कि सरकार का समर्थन करने वाले भी सभी अपराधी और सज़ायाफ़्ता लोग ही थे. चाहे जो भी हो भीड़ द्वारा अंधाधुंध बदला लेने की कार्रवाई को न्याय नहीं कहा जा सकता. यह स्पष्ट है कि भीड़ ने बदला लेने अथवा अपना विरोध प्रकट करने के लिए बहुत बर्बरतापूर्ण कार्य किये. फिर भी बंगाल में हिंसात्मक वारदातें कोई नयी बात नहीं हैं. तीन सप्ताह में मृतकों की संख्या पाँच सौ तक पहुँच गयी. यह संख्या कोई बेजोड़ नहीं है. १९४६ में अंग्रेज़ी शासन-काल में कलकत्ते के हिंदू-मुस्लिम दंगों में चार दिन में ४ हज़ार आदमी मरे थे. १९६४ में उधर तो पूर्वी भारत और इधर पूर्व पाकिस्तान के इसी तरह के उपद्रवों में सैकड़ों और शायद हज़ारों लोग मरे होंगे. उन दिनों की हिंसा बहुत अधिक व्यापक और बर्बरतापूर्ण थी और शायद इस से भी ज्यादा अंधाधुंध थी.

फ़र्क इतना ही है कि वह हिंसा तत्कालीन शासन के विरुद्ध नहीं थी. सेनाओं ने क़ानून व व्यवस्था क़ायम की और सरकार का काम यथापूर्व चलता रहा. इस संदर्भ में यदि देखा जाये तो पूर्व पाकिस्तान की हिंसा बेमिसाल थी. यह सरकार के ख़िलाफ़ और विशेषकर पश्चिम पाकिस्तान की सरकार के ख़िलाफ़ लोगों के व्यापक असंतोष को व्यक्त करती थी. अय्यूब द्वारा जनरल याह्या ख़ाँ को सत्ता सौंपने का कारण कुछ तो राजनैतिक और कुछ क़ानून व व्यवस्था का बिगड़ जाना रहा होगा.

यहाँ प्रश्न यही पैदा होता है कि राष्ट्रपति अय्यूब को राजनैतिक रिआयतें दे कर, जिस की घोषणा वे पहले कर भी चुके थे क़ानून व व्यवस्था स्थापित करनी चाहिए थी, या सत्ता का इस तरह हस्तांतरण करना चाहिए था? आख़िरी दिनों में मार्शल असग़र ख़ाँ जैसे उदारवादी लोग भी श्री भुट्टो की इस माँग में शामिल हो गये थे कि अय्यूब तुरंत इस्तीफ़ा दें और एक अंतरिम सरकार बनायी जाये. इस तरह की जो भी सरकार बनती वह वामपंथियों को अवश्य ही कुछ रिआयतें देती और पूर्व पाकिस्तान के स्वायत्तता के अधिकार भी कुछ न कुछ अवश्य ही बढ़ाती. इस का दोषी किसे ठहराया जाये कि क़ानून व व्यवस्था स्थापित करने की असफलता से निराश हो कर अय्यूब दस वर्ष तक राष्ट्रपति रह कर अपनी सत्ता नागरिकों को नहीं बल्कि सैनिकों को सौंप कर चले गये?

पूर्व पाकिस्तानियों ने एक बार फिर यह पाया कि उन की माँगों को इस ढंग से अस्वीकार कर दिया गया कि उन्हें शांतिपूर्ण उपायों पर कोई भरोसा नहीं हो सकता. पश्चिम पाकिस्तान का यह निर्णय बहुत बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं रहा. पाकिस्तान में मज़बूत केंद्रीय सरकार के पक्ष में काफ़ी अच्छी दलीलें हैं, पर इस के विरोध में भी एक मज़बूत दलील है और वह यह कि देश के जिस आधे भाग में आबादी अधिक है वहाँ के लोग इसे नहीं चाहते. अतः इसे थोपने के प्रयत्न हानिकर हो सकते हैं. जब पाकिस्तान में संसदीय लोकतंत्र था तब भी पूर्व और पश्चिम के बीच की तनातनी देश में मुसीबत का कारण बनी. वैसे राष्ट्रपति अय्यूब ने बंगालियों के लिए उतना किया जितना पाकिस्तान का कोई भी राष्ट्रपति अब तक नहीं कर पाया होगा. अय्यूब की वजह से ही बंगाली केंद्र के ख़िलाफ़ संगठित हो सके और दस वर्ष के अंदर पूर्व पाकिस्तान केंद्र से पृथकता के आंदोलन के निकट भी आ गया. अय्यूब के बाद नये प्रशासन में भी पश्चिम पाकिस्तान के लोगों का ही बोलबाला है, इस लिए पूर्व पाकिस्तान के बारे में नये प्रशासन के सामने भी वही समस्या है जो अय्यूब के ज़माने में थी. अगर राष्ट्रपति अय्यूब इधर तो बंगालियों की भावनाओं और उधर प्रतिनिधि सरकार चाहने वाले लोगों की भावनाओं को कुछ हद तक संतुष्ट कर पाते तो पूर्व पाकिस्तान में हिंसा के विरुद्ध उन्हें कुछ समर्थक मिल ही जाते. प्रमुख बंगाली राष्ट्रवादी शेख मुजिबुर्रहमान ने हिंसा के विरुद्ध कई बार अपना मत व्यक्त किया था. ठीक है, इस से शीघ्र ही हिंसा का अंत न होता. पूर्व पाकिस्तान के दक्षिण और वामपंथियों में संघर्ष होता, लेकिन सरकार के विरुद्ध पिछले चार महीने से चला आ रहा संयुक्त संघर्ष समाप्त हो जाता. लेकिन सेना संभवतः इस तरह का प्रयोग न कर पाती. 'मेरी कोई राजनैतिक महत्वाकांक्षा नहीं है' याह्या ख़ाँ ही क्यों, हर तानाशाह सत्ता सँभालते ही ऐसा ही कहा करता है. परिस्थितिवश शायद याह्या ख़ाँ को राष्ट्रपति अय्यूब से भी कहीं अधिक तानाशाही ढंग से काम करना होगा. अभी यही विश्वास करना अच्छा होगा कि नयी सैनिक सरकार असैनिक शासन स्थापित करने की नीयत से काम करेगी.

पालतू शेर और निक्सन

वीएतनाम निर्णय और प्रक्षेपास्त्र-विरोधी निर्णय पर क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर में ल' पेली का व्यंग्य

भारतीय पत्र : उद्देश्यहीनता के शिकार

भारतीय समाचारपत्रों ने पिछले २० वर्षों में किसी महत्त्वपूर्ण प्रगति का आभास नहीं दिया है. आज भारतीय समाचारपत्र विश्व के अन्य विकसित ही नहीं विकासशील देशों के समाचारपत्रों से भी अनेक संदर्भों में पीछे हैं और अभी ऐसा कोई संकेत नहीं मिल रहा है कि निकट भविष्य में किसी महत्त्वपूर्ण दिशा की ओर क़दम बढ़ायेंगे. आखिर भारतीय समाचारपत्रों का रोग क्या है? क्या उन के संगठन-पक्ष में कहीं दोष है, या कि सरकारी और राजनैतिक वातावरण से वे पीड़ित हैं? वे पाठकों की भावनाओं और आकांक्षाओं से तादात्म्य स्थापित करने में अपने-आप को अक्षम पा रहे हैं, या भारतीय समाचारपत्रों के पाठकों में ही कहीं ऐसे दोष हैं जो यथास्थितिवाद को पुष्ट करते हैं? हिंदी समाचारपत्रों की नियति तो और भी दयनीय है. भाषा के पत्रों की प्रतिष्ठा न होने का एक कारण यह भी है कि उन्हें बहुधा शीर्षस्थ राजनेता स्वयं नहीं पढ़ते. यदि सचिवों को मालूम रहे कि मुख्यमंत्री सवेरे उठते ही दिल्ली से छपे अंग्रेज़ी अख़बार में अपने विषय में समाचार या संपादकीय देखेंगे तो वे भाषा के पत्रों की क्यों फ़िक्र करने लगे? इस मामले में प्रधानमंत्री के सचिवालय का दावा है कि वह भाषा-पत्रों को छोटा नहीं मानता. उस के प्रवक्ता के अनुसार हिंदी पत्रों की रोज़ जांच कर के चुने हुए अंश प्रधानमंत्री को पढ़ने को दिये जाते हैं : ये हैं दिनमान, नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान (दैनिक और साप्ताहिक) नवजीवन, वीर अर्जुन, आर्यावर्त्त, पांचजन्य और धर्मयुग. दिल्ली के बाहर के भाषायी पत्रों की भी कतरनें मँगायी जाती हैं परंतु केवल ख़ास-ख़ास वृत्तांतों के सारांश प्रधानमंत्री को दिखाये जाते हैं, जैसे प्रधानमंत्री पर सीधे आक्षेप, मंत्रियों के आपसी तनाव और केंद्र राज्य संबंध.

बंदी संपादक : हाल ही में आयोजित एक गोष्ठी में पत्रकारिता से संबंधित विभिन्न अधिकारियों ने इस सिलसिले में अपने मत व्यक्त किये. टाइम्स ऑफ़ इंडिया, दिल्ली के संपादक डी० आर० मनकेकर के अनुसार हमारे समाचारपत्र अब केवल लकीर के फ़क़ीर रह गये हैं और उन में कोई भी उत्साह शेष नहीं रहा है. स्वतंत्रता पूर्व जनहित के लिए जो उत्साह प्रदर्शित किया जाता था और जिस के कारण समाचारपत्र अपना महत्त्व प्रदर्शित करते थे उस का अभाव अब स्पष्ट दिखायी दे रहा है. हमारे स्तंभों में न कोई रचनात्मक पत्रकारिता है और न तकनीक में कोई ताज़गी. सामाजिक उत्तरदायित्व और जनता को शिक्षित करने की भावना का अभाव तो है ही, बड़े और संपन्न समाचारपत्रों में अपने उद्योग के हित में कार्य करने की भी भावना नहीं है. मनकेकर के अनुसार संपादक अब केवल संपादकीय लिखने वाले व्यक्ति रह गये हैं. यह ज़रूरी नहीं है कि अच्छा संपादकीय लिखने वाला अच्छा संपादक भी हो. उन के अनुसार आज भले ही भारतीय समाचारपत्र मुक्त हैं मगर स्वतंत्र नहीं हैं. इस सिलसिले में मनकेकर के अनुसार भारतीय पत्रकारिता के लिए दो बातों की आवश्यकता है. (१) उच्चस्तरीय पत्रकारिता के प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए; (२) संपादक की स्वायत्तता और स्वतंत्रता को स्वीकार किया जाना चाहिए.

सरकारी हस्तक्षेप : समाचार-समितियों की ओर से प्रेस ट्रस्ट ऑफ़ इंडिया के के० एस० रामचंद्रन के अनुसार समाचार-समितियां केवल समाचारपत्रों से प्राप्त धन पर ही नहीं जी सकती हैं. रेडियो और टेलीविज़न से भी उन्हें सहायता लेनी पड़ती है. १९६७ के चुनावों के बाद समाचारपत्रों में व्याख्यात्मक समाचार प्रकाशित होने आरंभ हो गये हैं, क्यों कि अब विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्व भिन्न-भिन्न दलों और व्यक्तियों के बीच बँट गये हैं. इस लिए समाचार-समितियों के तथ्यात्मक समाचारों से सही चित्र प्रस्तुत नहीं होता. उन की यह शिकायत है कि जब तक भारतीय समाचारपत्र समाचार-समितियों से सहयोग नहीं करेंगे तब तक उन के लिए विकसित होना संभव नहीं है. समाचारपत्र-संस्थाओं के प्रबंधकों का प्रतिनिधित्व करते हुए टाइम्स ऑफ़ इंडिया के जनरल मैनेजर पी० के० राय के अनुसार संपादक की स्वतंत्रता पर बहस करना व्यर्थ है. कोई भी व्यक्ति या राष्ट्र दूसरों से अलग रह कर स्वतंत्र नहीं रह सकता. यह एक दूसरे पर निर्भर रहने का युग है. मनुष्य का ज्ञान बढ़ता है, टेक्नॉलॉजी का विकास होता है, विशिष्टता का समावेश होता है, तो विभिन्न प्रकार के कार्यों को समाचारपत्र-उद्योग को चलाने में अपना यथोचित स्थान तो मिलना ही चाहिए. राय के अनुसार सरकार ने एकाधिकार को समाप्त करने के लिए कुछ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष क़दम उठाये हैं जिन का कुल परिणाम यह हुआ है कि उत्साही और प्रगतिशील समाचारपत्रों के वर्ग को हानि हुई है. उन के अनुसार छोटे और बड़े पत्रों का वर्गीकरण भी उपहासजनक है. "इतने बड़े आकार और जनसंख्या के देश में अगर ५० हज़ार प्रतियां बेचने वाले पत्र को बड़ा माना जाये और इस कारण उसे निरुत्साहित किया जाये तो फिर पत्रकारिता के स्वस्थ विकास की कल्पना करना संभव नहीं.

हिंदी की नियति : हिंदी पत्रों की कठिनाइयों के संबंध में नवभारत टाइम्स के प्रधान संपादक अक्षयकुमार जैन के अनुसार अभी हिंदी समाचारपत्रों के प्रति स्वतंत्रता पूर्व की भेद-भाव की दृष्टि रखी जाती है और उन की या तो उपेक्षा की जाती है या उन्हें द्वितीय स्थान पर रखा जाता है. यह उपेक्षा-भावना हिंदी समाचारपत्रों को विज्ञापन देते समय भी सामने आ जाती है. आज भी हिंदी पत्रों को उन के अंग्रेज़ी पत्रों का पिछलग्गू या उन की कॉर्बन प्रतियाँ समझा जाता है, जिस के कारण उन की विश्वसनीयता पर संदेह किया जाता है. स्वयं हिंदी पत्रकार भी अपने अंग्रेज़ी पत्रकारों के क़दमों पर चलने का ही प्रयास करते हैं. हिंदी समाचारपत्रों को स्वतंत्रता पूर्वक विकास करने का मौक़ा नहीं मिलता. समाचार भारती के विशेष प्रतिनिधि जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार-हिंदी समाचारपत्रों में अनुवाद की समस्या उन पर एक भार बन गयी है. सरकारी समाचार-विज्ञप्तियाँ, संसदीय समितियों के प्रतिवेदन आदि अभी अंग्रेज़ी में ही छप कर आते हैं. इस के अतिरिक्त समाचार-समितियों के समाचार भी अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से ही प्राप्त होते हैं. अंग्रेज़ी पत्रों से बँधे रहने के कारण बड़े हिंदी समाचारपत्र भी महत्वपूर्ण विदेशी केंद्रों—लंदन, रंगून, सिंगापुर, मॉस्को आदि में अपने प्रतिनिधि नहीं रख सकते. स्वयं हिंदी पत्रों में अपने संवाददाताओं द्वारा भेजे गये समाचारों पर विश्वास नहीं किया जाता. उस की पुष्टि जब तक अंग्रेज़ी समाचार-पत्रों या समितियों में न हो तब तक उन्हें प्रकाशित करने में हिचकिचाहट महसूस की जाती है.

श्रेणी	वर्ष	संख्या	पाठक संख्या
दैनिक	१९६५	५२५	६६७२०००
	१९६६	५४९	६६५५०००
	१९६७	५८८	६५९३०००
सप्ताह में तीन या दो बार	१९६५	४९	१४१०००
	१९६६	५२	९७०००
प्रकाशित	१९६७	५८	९४०००
साप्ताहिक	१९६५	२१४१	७१९९०००
	१९६६	२४०३	६९४८०००
	१९६७	२६९७	५९७३०००
अन्य	१९६५	५१९१	१०६५७०००
	१९६६	५६३६	१५३६०००
	१९६७	५९७२	९२२७०००
वर्ग-रहित	१९६५	२१७९	
	१९६६	२३३७	
	१९६७	२३६३	
		१००८५	
कुल : योग	१९६५	१००८५	२४६६९०००
	१९६६	१०९७७	२५२३६०००
	१९६७	११६७८	२१८८७०००

केंद्रीय सत्ता का स्वरूप

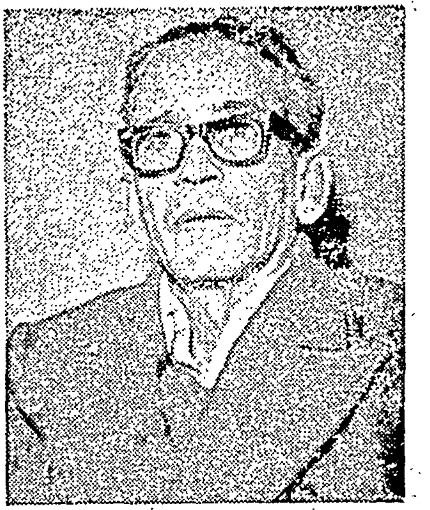

परिवर्त्तन की प्रक्रिया : अस्थिरता का दौर
श्रीधर महादेव जोशी

संयुक्त समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष श्रीधर महादेव जोशी का आग्रह शुरू से ही राजनैतिक स्थितियों की वैज्ञानिक व्याख्या का रहा है और वह अटकलबाजियों तथा स्फीत घोषणाओं से अपने को अलग रखते रहे हैं. "१९७२ में केंद्रीय सत्ता का स्वरूप क्या होगा, मेरे लिए उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना कि यह सवाल महत्त्वपूर्ण है कि हाल के मध्यावधि के चुनाव-परिणामों का १९७२ के चुनाव से क्या संबंध है", अध्यक्ष जोशी ने अपने से बाहर आने का प्रयास-सा करते हुए कहा. जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने उन से कैनिंग लेन पर स्थित उन के आवास पर मुलाक़ात की तो वह काफ़ी थके हुए लग रहे थे और मोटे भूरे रंग के पावर चश्मे से झाँकती उन की आँखें इस अहसास को और तीखा किये दे रहीं थी. मुस्कराने का हल्का प्रयास करते हुए उन्होंने १९७२ में केंद्रीय सत्ता के स्वरूप की संभावना से साक्षात्कार करना शुरू किया. अध्यक्ष जोशी का यह सुचिंतित मत है कि परिवर्त्तन की जो प्रक्रिया १९६७ के आम चुनाव से शुरू हुई और जिस का विस्तार हाल के मध्यावधि चुनावों के दौर के रूप में हुआ १९७२ तक पहुँचते-पहुँचते अधिक तेज़ हो जायेगी. १९६७ के आम चुनाव के साथ जुड़े घटनाक्रम को मध्यावधि चुनाव से जोड़ते हुए वह इस नतीजे पर पहुँचते पाये गये कि "१९७२ में कांग्रेस इस हालत में नहीं होगी कि अकेले केंद्र में शासन सँभाल सके."

इस वाक्य के साथ उन्होंने अपने-आप को गोया एक बार फिर अपने अंदर समेट लिया हो. प्रतिनिधि को उस समय ऐसा लगा कि जैसे वह अपने-आप से बातें कर रहे हों. उस समय उन के माथे पर उभर रही लकीरें अधिक साफ़ नज़र आ रही थीं. फिर प्रतिनिधि की जिज्ञासा का उत्तर देते हुए उन्होंने यह मत व्यक्त किया : "जहाँ तक मैं देखता हूँ १९७२ में केंद में कांग्रेस को बहुमत नहीं मिलने जा रहा है. लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि कांग्रेस का कोई विकल्प एक या दो दलों के रूप में उस समय तक सामने नहीं आ सकेगा. समय के साथ ग़ैर-कांग्रेसवाद की सीमाएँ भी सामने आयेंगी. हमने आशा की थी कि ग़ैर-कांग्रेसवाद के अंदर से राजनैतिक शक्तियों का एक नया ध्रुवीकरण उभरेगा. वह नहीं हो सका. आगे के वर्षों में भी ऐसी कोई संभावना नज़र नहीं आती.

अगर लोकतांत्रिक समाजवादी दलों ने ग़ैर-कांग्रेसवाद के इस दौर को जनआंदोलनों से जोड़ा होता तो शायद हालत इतनी ख़राब न होती. इस तरह ध्रुवीकरण के अंदर नये ध्रुवीकरण के न होने से एक शून्य पैदा हुआ है. यह शून्य एक ऐसी अस्थिरता का शून्य भी हो सकता है जो परिवर्त्तन की गति को पीछे धकेल सकता है."

स्थिरता बनाम अस्थिरता : "स्थिरता बनाम अस्थिरता" के प्रश्न से अध्यक्ष जोशी को जूझता पा कर प्रतिनिधि ने जब उन से इस बहस का खुलासा करने का आग्रह किया तो उन्होंने माथे पर उभरी सलवटों को कुछ ठीक करने की मुद्रा में कहना शुरू किया : "स्थिरता और अस्थिरता का सवाल मैंने बिलकुल दूसरे धरातल पर उठाया है. मैं स्थिरता को कब्रगाह की शांति का पर्याय नहीं मानता. मैं यह भी मानता हूँ कि परिवर्त्तन की प्रक्रिया अस्थिरता के दौर से गुज़रती है. लेकिन अस्थिरता का विकल्प अस्थिरता नहीं बन सकती. इसी लिए मैंने ध्रुवीकरण के अंदर से नये ध्रुवीकरण के उभरने का सवाल उठाया है. अगर १९७२ में केंद्र में संयुक्त सरकार का गठन होता है तो हमें उस की रूप-रेखा पहले से ही तैयार करनी पड़ेगी. मेरी शंका यह है कि अभी इस दिशा में बहुत कम चिंतन हुआ है."

दिनमान के प्रतिनिधि ने अध्यक्ष जोशी से जानना चाहा कि अगर १९७२ के आम चुनाव में कांग्रेस को केंद्र में बहुमत प्राप्त नहीं होता और इसी हालत में अगर संयुक्त सरकार बनती है तो उस की रूप-रेखा क्या होगी और क्या इस संयुक्त सरकार में कांग्रेस को भी शामिल करने की बात सोची जा सकती है? अध्यक्ष जोशी कुछ देर तक मौन रहे. फिर आहिस्ते से अपनी और माहौल की चुप्पी को तोड़ते हुए से उन्होंने कहना शुरू किया : "मैंने ऊपर कहा है कि कांग्रेस टूटने की प्रक्रिया में है. १९७२ में जब उसे केंद्र में बहुमत नहीं मिलेगा तो उस का ढांचा और लड़खड़ायेगा. उस समय यह संभावना सामने आ सकती है कि कार्यक्रम के आधार पर कांग्रेस के एक वर्ग को भी संयुक्त सरकार में शामिल किया जाये. अगर हम यह मान कर चलते हैं कि मध्यावधि चुनाव के दौरान अस्तित्व में आयी राजनैतिक स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्त्तन नहीं होगा तो हमें इस निष्कर्ष पर भी पहुँचना पड़ेगा कि कांग्रेस के एक बड़े वर्ग का सहयोग संयुक्त सरकार को लेना पड़ेगा. १९७२ के बाद भी प्रतिपक्ष का वाम या दक्षिणपंथ इस हालत में नहीं होगा कि वह अकेले सरकार बना सके. दो संभावनाएँ सामने आती हैं. एक तो यह कि ग़ैर-कांग्रेसी दल केंद्रीय स्तर पर कार्यक्रम के आधार पर कोई समझौता करें. दूसरी संभावना यह कि विभिन्न दलों के, जिस में कांग्रेस भी शामिल है, लोकतांत्रिक समाजवादी सदस्य मिल कर सरकार बनायें. अभी यह निश्चय कर पाना कठिन लग रहा है कि १९७२ में इन दोनों संभावनाओं में से कौन-सी संभावना अधिक कारगर साबित होगी."

दिनमान के प्रतिनिधि ने अध्यक्ष जोशी से जानना चाहा कि क्या उन्हें स बात की आशा है कि केंद्रीय स्तर पर न्यूनतम कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त सरकार के गठन में विदेश-नीति और अर्थ-नीति संबंधी जो मतभेद विभिन्न राजनैतिक दलों में हैं बाधक नहीं साबित होंगे. "मतभेदों के बावजूद विभिन्न राजनैतिक दल जनता को राहत देने के सवाल पर एक हो सकते हैं. इस तरह की एकता के अपने ख़तरे हैं. सब से बड़ा ख़तरा यह है कि संयुक्त सरकार में साझेदारी करने वाले दल जनहित की तुलना में सत्ता में बने रहने को अधिक महत्त्व दे सकते हैं. दूसरा बड़ा ख़तरा यह है कि लोकतांत्रिक समाजवादी शक्तियाँ सत्ता और जनआंदोलनों को अलगथलग कर के ध्रुवीकरण के अंदर से नये ध्रुवीकरण के उभरने की संभावना पर पानी फेर सकती है.

"इस तरह कार्यक्रम और सिद्धांत का रिश्ता टूट सकता है और संयुक्त केंद्रीय सरकार को भी राज्यों की ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों जैसे दिन देखने पड़ सकते हैं. केंद्रीय स्तर पर कोई संयुक्त सरकार तभी कारगर हो सकती है जब वह कुर्सियों की राजनीति को जनता की राजनीति का विकल्प समझने की भूल न करे. यह सवाल बहुत मुश्किल है और लोकतांत्रिक समाजवादी शक्तियों के बढ़ते उत्तरदायित्व की चेतना से जुड़ा हुआ है. लोकतांत्रिक समाजवादी शक्तियों को संसद की राजनीति को जनता की राजनीति से जोड़ने की दिशा में अभी से प्रयास करना चाहिए."

बेपहचान सभ्यता का जन्म

"यह युग अब क्रांतिकारी नहीं रहा. इतिहास ने अब तक जो भी प्रगति की है वह सिर्फ़ एक खरोंच के बराबर है. इस शताब्दी के अंत तक लेनिन जैसे सुधारक 'साधारण आदमी' की श्रेणी में आ गिरेंगे. इतिहास एक ऐसे मोड़ पर आ चुका है जहाँ एक बिल्कुल बेपहचान सभ्यता का जन्म होने वाला है और अमेरिका इस का जन्मदाता कहलायेगा."

ये शब्द प्रोफ़ेसर ब्रेज़िंस्की के हैं, जिन के अनुसार अमेरिका औद्योगिकता से आगे जा कर अब टेक्नीट्रॉनिक (यंत्र-विद्युदाणु) युग में प्रवेश कर रहा है. कोलंबिया विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित उन के शोधपत्र के अनुसार तीस वर्षों में कंप्यूटर और संचार-व्यवस्था

की प्रगति के परिणाम में मनोवैज्ञानिक, आर्थिक एवं समाजशास्त्रीय स्तर पर एक सभ्यता उदित होने जा रही है, जो आज की समस्याओं और मूल्यों को तहसनहस करने के साथ ही ऐसी एक परंपरा का सूत्रपात करेगी कि उस का एहसास पिछड़े देशों के लोग कर ही नहीं सकेंगे. इस नयी क्रांति का नेता बीती हुई शताब्दियों के जैसा कोई सिद्ध पुरुष नहीं होगा, किंतु इस का प्रभाव कई गुना चक्राकार एवं तलस्पर्शी होगा. यह समूची प्रक्रिया कुछ इतनी तेज़ी से घटित होगी कि कुछ अंशों तक इस का आघात बर्दाश्त करना भी सब के लिए संभव न होगा.

ढांचों के सांचे : आदमी का रवैया और व्यवहार न गुह्य रहेगा न आकस्मिक. उस की प्रतिक्रियाएँ एवं संवेग सब के सब पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार ही होंगे. आदमी शीघ्र ही इतना सक्षम हो जायेगा कि जन्म से पहले शिशु का लिंग निर्धारित कर ले. दवा दे कर बुद्धि का अंश और व्यक्तित्व का पैनापन भी नियंत्रित किया जाने लगेगा. आदमी के मस्तिष्क का विस्तार करने में कंप्यूटर उसी तरह सहायक होगा जिस तरह कार ने आदमी की गति को सौ गुना बढ़ा दिया है. तब आदमी की बुद्धिमत्ता कंप्यूटर की बुद्धिमत्ता पर निर्भर होगी. **जिस के पास जितना सूक्ष्म और द्रुत बुद्धि-अंशमान वाला कंप्यूटर होगा वह आदमी उतना ही बुद्धिमान कहलायेगा.** आदमी के शरीर का हर अंग परिवर्तनीय होगा और औसत आयु बढ़ कर लगभग क सौ पच्चीस तक कर ली जायेगी. इतनी लंबी आयु होने के कारण सामाजिक संबंधों में भी अंतर आयेगा. नौकरी की शर्तें क दम दूसरे ढंग की होंगी. नयी तरह की सत्ता पाये व्यक्तियों को उस के विवेकशून्य उपयोग से बचाने के लिए जिस अंकुश का प्रयोग करना पड़ेगा वह भी आज के समाजशास्त्रीय सिद्धांतों से भिन्न होगा. रसायनों द्वारा मस्तिष्क नियंत्रण किया जाने लगेगा और रासायनिक नियंत्रण के कारण वैयक्तिकता में होने वाले ह्रास को रोकने के लिए प्रतिरोपण करना भी अनिवार्य हो जायेगा. इस ह्रास होते व्यक्तित्व और प्रतिरोपण द्वारा उन के सुधार की प्रक्रिया को क़ानूनबद्ध करना भी ज़रूरी होगा. इस प्रकार सामाजिक नियंत्रण की हर विधा आगे आने वाले वर्षों में आज से एक दम भिन्न होगी.

दुर्बलता शून्यता : वैज्ञानिकों की अधिकारपूर्ण भविष्यवाणी के अनुसार इस शती के अंत तक कंप्यूटर आदमी की ही तरह विवेकशील हो जायेंगे और सर्जना करना भी प्रारंभ कर देंगे. रोबोट की देखरेख में वे बिल्कुल मानवीय व्यवहार करेंगे. यही नहीं आदमी की प्रतिक्रियाओं और गुह्य रवैये के बारे में कंप्यूटर द्वारा दिये निर्णय आप्त वाक्य माने जाने लगेंगे. **ऐसा इस लिए कि समस्त मानवीय दुर्बलताओं से शून्य और समस्त क्षमताओं से युक्त कंप्यूटर ही तब एकमात्र सम्यक दृष्टि वाला प्राणी होगा, जो रोबोट की देखरेख में बिना बीमारी या महँगाई का बहाना किये दिन-रात काम करेगा.** घरों में लगे सूचना-चक्र शिक्षा-संस्थानों की उपयोगिता बदल देंगे. बटन दबा कर विश्व की किसी भी घटना अथवा स्थिति की सचित्र-सवाक जानकारी तत्काल प्राप्त की जा सकेगी. यही नहीं घड़ियों में लगे टेलीफ़ोन द्वीप-व्यापी स्तर पर लोगों को एक-दूसरे से जोड़ देंगे. राजनैतिक निगरानी के लिए भी यही विधि अपनायी जाएगी. बटन दबा कर तत्काल यह जाना जा सकेगा कि व्यक्ति विशेष, देश या द्वीप के किस स्थल पर, किन परिस्थितियों में क्या कर रहा है.

व्यस्त निठल्ले : स्वचालित यांत्रिकता का प्रचार इतना अधिक हो चुका होगा और इतनी तरह के यंत्र बन चुके होंगे कि काम करने की अवधि और आदतें बदल जायेंगी. साथ ही सोने के लिए नींद संक्षिप्त और घनीकृत कर के दो घंटे तक छोटी कर दी जायेगी. परिणामतः निठल्लापन ही एकमात्र व्यस्तता कहलायेगा. सामान्य आदमी के पास मौज, दूरदर्शन के कार्यक्रम और खेलों के अतिरिक्त अन्य कोई कार्यक्रम न होगा. केवल महत्त्वपूर्ण एवं प्रतिभासंपन्न व्यक्ति ही कार्य-व्यस्त होंगे, शेष लोग ज्यादातर वक़्त खाली और निठल्ले. निरर्थकता बोध जैसी दार्शनिक उक्तियाँ तब समाज के सब से साधारण और सपाट लोगों पर ही लागू होंगी.

जहाँ एक ओर अवाम खाली और निठल्ले होंगे प्रतिभासंपन्न और प्रबुद्ध लोगों के लिए संयम की परिभाषा एकदम बदल चुकी होगी. गति के ही अनुपात में समय भी बढ़ता जायेगा, किंतु तीव्र गति के बावजूद समय की कमी का दुख बुद्धिजीवियों और विद्वानों को सालेगा.

चंगुल में चौबीस घंटे : इस शती के अंत तक दुनिया के लोग सिर्फ़ महानगरी में रहने लगेंगे. अत्यधिक समृद्ध राष्ट्रों के प्राणियों का परिचय केवल मानव-निर्मित वातावरण से ही रह जायेगा. प्रकृति उन के लिए उतनी ही भयावह होगी जितनी कि प्रागैतिहासिक मनुष्य के लिए थी. सामान्यतया आमदनी दस हज़ार डॉलर (पचहत्तर हज़ार रु०) प्रति व्यक्ति तक पहुँच चुकी होगी. लोग कारखानों में बने कृत्रिम भोजन के आदी हो जायेंगे. एक शहर से दूसरे—दूसरे से तीसरे में जा कर घंटे दो घंटे में घर वापस आ जाना तब मामूली बात होगी. कोई भी आदमी कहीं से चल कर कहीं भी जाता हुआ लगातार अपने मालिक, घरवालों अथवा सरकारी संपर्क-सूत्र की गिरफ़्त में रहेगा. उस के पास मौसम का कलेंडर होगा, और उसे यह ज्ञात रहेगा कि कब कहाँ वर्षा होगी, कब कहाँ तेज़ धूप. लोग रहेंगे एक शहर में और काम करने जायेंगे डेढ़ हज़ार मील दूसरे शहर में. सरकारी कर्मचारी कब, कहाँ, किस वक़्त, किस से मिल रहा है, पूरी यात्रा में किस से क्या बात कर रहा है, कहाँ उतर कर कहाँ चढ़ रहा है, यह सारी सूचना सरकार को सचित्र-सवाक् उपलब्ध रहेगी. कंप्यूटर की सहायता से हर कर्मचारी का सारा इतिहास फ़ाइल बद्ध किया और बदला जा सकेगा. जॉर्ज ऑरवेल के १९८० से आगे, बहुत आगे टेक्नीट्रॉनिक युग में आदमी के भीतर-बाहर की कोई भी पर्त, कोई भी करतूत तब छिपी न रह सकेगी.

प्रश्न रहेंगे : इस युग में उद्योग-युग की बेकारी, हड़तालें, सत्ता और शक्ति का केंद्रीकरण, शिक्षा-संस्थाओं की व्यर्थता और भुखमरी जैसी समस्याएँ नहीं होंगी. कृषि-युग से यंत्र-युग तक आते-आते आदमी ने जिन समस्याओं का सामना अब तक किया है आगे भविष्य में वे सारी समस्याएँ निर्मूल हो जायेंगी. किंतु **'क्या व्यक्ति और विज्ञान का सहअस्तित्व संभव है ? अथवा क्या विज्ञान के समक्ष मनुष्य बौद्धिक एवं दार्शनिक स्तर पर पंगु हो गया ?'** ऐसे प्रश्न टेक्नीट्रॉनिक युग में बुद्धिजीवियों द्वारा बार-बार पूछे जायेंगे. अमेरिका, जहाँ निर्वैयक्तीकरण और अलगाव या अजनबीपन आज इस हद तक बढ़ गये हैं कि **'एक शाम के लिए प्रेम-प्रस्ताव'** भी इश्तहार के रूप में अखबारों में छपवाना पड़ता है और **'सफलता के बाद क्या'** जैसी समस्याओं पर गंभीर विचार-विमर्श होता है, इस आते हुए युग की समस्याओं का क्या इलाज करेगा यह कहना अभी जरा मुश्किल है. किंतु इस संदर्भ में थोड़ी अटकल जरूर लगायी जा सकती है.

औद्योगिक समाज और टेक्नीट्रॉनिक युग की समस्याओं का अंतर स्पष्ट करते हुए प्रोफ़ेसर ब्रेजिंस्की ने लिखा है :

१. औद्योगिक समाज में काम करने वालों की सुरक्षा की जिम्मेदारी बहुत सीमित अंशों तक मालिकों अथवा सरकार के लिए जरूरी होती है, जब कि टेक्नीट्रॉनिक युग में करोड़ों की संख्या में नीले कॉलर वाले (साधारण) कर्मचारियों की खाली वक़्त से उत्पन्न होने वाली मानसिक विक्षप्ति सरकार के लिए सरदर्द का कारण बनेगी.

२. औद्योगिक समाज में सुधारकों और चिंतकों का एकमात्र लक्ष्य सब के लिए औसत शिक्षा की व्यवस्था करना और कुछ के लिए विशिष्ट शिक्षा का सुविधाएँ देना रहा है; किंतु क्यों कि आने वाले युग में सामान्य शिक्षा वैश्विक अत: तकनीकी और वह भी विशिष्ट तकनीकी होगी शिक्षा के लिए उपयुक्त मस्तिष्क की खोज सब से बड़ा काम होगा. यही नहीं ज्ञान की वृद्धि इतनी तीव्रता से होगी कि हर विशेषज्ञ को जल्दी-जल्दी प्रगति-पाठ के लिए जाना पड़ेगा.

३. टेक्नीट्रॉनिक युग में नेतृत्व शुद्ध राजनीतिकों के हाथ में उतना न रहेगा जितना कि आज है. तब नेतृत्व विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों के हाथ में अधिक होगा. दूसरे शब्दों में औद्योगिक युग के प्रतिकूल टेक्नीट्रॉनिक युग में सत्ता राजनीतिज्ञों के हाथ से फिसल जायेगी.

४. औद्योगिक समाज में विश्वविद्यालय मात्र दीवाने खास माने जाते हैं. आज पूरे विश्व में सब जगह यही स्थिति है. किंतु भविष्य में विश्वविद्यालय विचार-सरोवर (थिंक टैंक) की संज्ञा प्राप्त कर लेंगे, जहाँ से समाज का संचालन होगा.

५. दूरदर्शन के विश्वव्यापी जाल का प्रभाव यह होगा कि शब्दों का स्थान बिंब ले लेंगे और इस प्रकार टेक्नीट्रॉनिक युग में राष्ट्रीयता, जातीयता अथवा मातृभाषा को ले कर मर मिटने की प्रवृत्ति गौण हो जायेगी. इस के साथ ही दूरदर्शन की सुविधा के परिणाम में लोगों की प्रवृत्ति वैश्विक समस्याओं की ओर मुड़ने लगेगी. उदाहरण के लिए 'भारत में भुखमरी' या 'इस्राइल में युद्ध' जैसे दृश्यों का प्रभाववादी अंकन लोगों को अधिक आकर्षित करेगा. इस प्रकार प्रोफ़ेसर ब्रेजिंस्की के अनुसार लोगों का झुकाव भविष्य में विश्वसंस्कृति की ओर अधिक होता जायेगा.

६. टेक्नीट्रॉनिक युग में औद्योगिक, वैज्ञानिक एवं राजनीतिक संस्थान आपस में एक-दूसरे पर इतना अधिक निर्भर होंगे कि नीचे से ऊपर तक सब के सब वैयक्तिक निरर्थकता या मामूलियत का अनुभव करेंगे.

इस नये युग के लक्षण अमेरिका में अब लगभग स्पष्ट हो चले हैं. दरअसल अमेरिका के वर्तमान तनाव और हिंसात्मक घटना-चक्र के पीछे भी परिवर्तन की इसी प्रतिक्रिया का हाथ है, जिस से बचने का फ़िलहाल कोई उपाय नहीं है, क्यों कि अमेरिका एक ऐसे संक्रांत बिंदु पर खड़ा है जहाँ औद्योगिक संस्कृति का उच्छिष्ट उसे वर्ण-भेद और किशोर-विद्रोह जैसी गर्हित और संकीर्ण समस्याओं की ओर ढकेल रहा है और आने वाले युग की विवशता उसे निर्वैयक्तिक बना रही है. आज का अमेरिका अपने-आप को न पूरी तरह स्वतंत्र महसूस कर रहा है और न पूरी तरह अर्थबद्ध. इस दुविधा का एक परिणाम यह भी हो सकता है कि टेक्नीट्रॉनिक युग में वह अपने-आप को सब तरफ़ से असंबद्ध कर के इतना उपराम हो जाये कि उसे रासायनिक गोलियाँ खिला कर बहिर्मुख बनाने के अतिरिक्त और कोई चारा न रहे. प्रोफ़ेसर ब्रेजिंस्की के अनुसार आज के अमेरिकी समाज में व्याप्त राजनैतिक कुंठा भविष्य में अधिक गंभीर मनोरोगों का कारण भी बन सकती है, हालाँ कि यह संभावना मात्र है—जो मनुष्य ईश्वर की मृत्यु झेल चुका है वह आगे कुछ भी झेल जायेगा.

साधारण रस : भविष्य में सत्ता विशेषज्ञों के हाथ में स्थानांतरित होने के साथ ही शक्ति का झुकाव नीचे की ओर अधिक होता जायेगा. यही नहीं, शक्ति का विभाजन भी इतने अधिक खंडों और वर्गों में बँट जायेगी कि भविष्य में छोटे-बड़े सब को एक साथ महत्त्वपूर्ण और मामूली होने का एहसास साथ-साथ होता रहेगा. सत्ता के स्थानांतरण की प्रक्रिया यद्यपि धीरे-धीरे घटित नहीं होगी किंतु स्थानीय और केंद्रीय हर निकाय इसे सहज रूप में स्वीकार करेगा.

स्थानीय प्रतिभा और विशेषज्ञ को अपनी क्षमता-प्रदर्शन का कार्यक्षेत्र अपने ही नगर में उपलब्ध होने के कारण सभी जगह शैक्षिक संस्थानों को वैज्ञानिक प्रविधि से युक्त करना जरूरी हो जायेगा, जहाँ से उस नये युग की नब्ज़ को समझने वाले तरुण विशेषज्ञों को सामाजिक जरूरतों के अनुरूप ढाल कर निकाला जायेगा. सदियों बाद शिक्षा-संस्थान एक बार फिर रचनात्मक क्रिया का स्थल बन जायेंगे. इस प्रकार यह नया युग, जिस के अवतरण के लक्षण अमेरिका में स्पष्ट हो चले हैं, पिछड़े देशों को छोड़ धीरे-धीरे सारे यूरोप पर छा जायेगा.

चरचे और चरखे

काल-पेटी

१९७० में विज्ञान और संस्कृति के क्षेत्र में हुई मानव-उपलब्धियों को एक काल-पेटी में बंद कर के रखने का उपक्रम किया जा रहा है, जिसे ५००० वर्ष बाद खोला जायेगा. यह योजना जापान के मैनिशी समाचारपत्रों और मात्सूशिता बिजली औद्योगिक कंपनी द्वारा मिल कर बनायी जा रही है. इस काल-पेटी (टाइम कैपस्यूल) का नाम **एक्सपो–७०** है. आयोजकों का मत है कि आज जिस सभ्यता और संस्कृति का उपभोग हम कर रहे हैं उस की नींव अतीत में हैं और जो आज के ज़माने में रह रहे हैं उन का यह कर्त्तव्य है कि इस बहुमूल्य विरासत का महत्त्व समझें और उसे भविष्य के लोगों की जानकारी के लिए उसी तरह सुरक्षित रखें जैसी मिस्र के पिरामिडों ने अपनी सभ्यता रखी थी.

काल-पेटी **एक्सपो–७०** को जापान में ओसाका शहर के उत्तर में सेनरी पहाड़ियों में स्थित जापानी विश्वप्रदर्शनी की भूमि में गाड़ा जायेगा. काल-पेटी को पृथ्वी में दफ़न करने के पूर्व दो समस्याओं का हल निकालना होगा. प्रथम, पेटी किस वस्तु से बनाई जाए जिस से कि वह ५००० वर्षों तक उन सभी चीज़ों को जो उस के भीतर रखी गयी हों सुरक्षित रख सके. दूसरी, उस के भीतर क्या रखा जाए? ऐसी वस्तुओं का, जो इतनी विशाल मानव-सभ्यता का प्रतिनिधित्व करती हों, चुनना आसान काम नहीं है. इन दोनों समस्याओं के समाधान के लिए दो समितियाँ बनायी गयी हैं. यह पेटी जापानी मिट्टी के घड़े की तरह गोल होगी. वज़न १ टन से कुछ कम होगा. इस के भीतर एक खोल होगा, जो नटों से कसा होगा. बाहरी ढक्कन पेटी के साथ बिजली द्वारा धातु को पिघला कर जोड दिया जायेगा. इस में १५० लिटर सामग्री रखने की क्षमता होगी. १९६४ में न्यूयॉर्क विश्व-मेले के अवसर पर बनायी गयी पेटी से यह तिगुनी बड़ी होगी. वस्तुतः इसी आकार-प्रकार की दो पेटियाँ एक्सपो–७० कार्यक्रम के अंतर्गत बनायी जायेंगी. इन्हें एक भूमिगत सुरंग के अलग-अलग कमरों में रखा जायेगा, जिस का भीतरी तापमान १५ डिग्री सेंटीग्रेड होगा. मुख्य पेटी अपने कमरे में ५००० वर्ष तक पड़ी रहेगी, लेकिन दूसरी सन् २००० में पहली बार निकाली जायेगी और तब बड़ी बारीकी से इस बात की छान-बीन की जायेगी कि चीज़ें किस हद तक और आगे सुरक्षित रह सकेंगी. इस वर्ष के प्रारंभ से ही उस के लिए काम शुरू हो गया है. इस बीच सामग्री चुनाव समिति संसार के सभी प्रसिद्ध व्यक्तियों से पूछताछ कर रही है और उन वस्तुओं का संग्रह भी कर रही है जो इस पेटी में रखे जाने योग्य हों. हर क्षेत्र के विशेषज्ञों तथा उच्चतम लोगों से परामर्श लिया जा रहा है और काल-पेटी में रखने के लिए सामग्री के अंतिम चुनाव में उन के परामर्श का पूरा उपयोग किया जायेगा.

युद्ध-विरोधी समाचारपत्र

उत्तर वर्जीनिया में सेना के कई सैनिक एक युद्ध-विरोधी समाचारपत्र प्रकाशित कर रहे हैं. इन सैनिक संपादकों का कहना है कि उन का यह पूर्ण विश्वास है कि वीएतनाम युद्ध-विरोधी विचारों को सामने लाया जाना बहुत ज़रूरी है. यह समाचारपत्र डाक द्वारा निःशुल्क वितरित किया जा रहा है. इस पत्रिका के एक संपादक ने कहा है कि 'हमारा पत्र वैधानिक है और हम जो कुछ भी कर रहे हैं वह क़ानूनी रूप से दुरुस्त है. सच तो यह है कि हम अपने संवैधानिक अधिकारों का उपयोग कर रहे हैं.' युद्ध-विरोधी समाचारपत्र का एक लेख है 'लक्ष्य के लिए', जिस में कहा गया है 'सेना की मशहूर कहावत है 'तुम्हें सोचने के लिए पैसे नहीं दिये जाते;' जब कि सच यह है कि अनुचित और जातिगत लड़ाई के लिए हमें किराये का टट्टू नहीं बनाया जा सकता. ऐसी ही लड़ाई वीएतनाम में लड़ी जा रही है, जिस में हमारे जनरलों और विधायकों का कहना है कि 'यदि ज़रूरत हो तो मरो'—"

अतल के तल में

संसार में अभी पानी के भीतर सैरगाह नहीं बनाये गये हैं. जापान में इन गर्मियों में एक ऐसा सैरगाह बनाने की योजना बनायी गयी है जहाँ जा कर सैलानी समुद्र में जल के भीतर की दुनिया का नज़ारा ले सकेंगे. जल के भीतर इस तरह के पार्क बनाने का उद्देश्य सागर के तल के प्राकृतिक सौंदर्य को सुरक्षित रखना है और उस का सुख सैलानियों को प्रदान करना है. कहा जाता है कि जापान का समुद्री संसार अत्यंत आकर्षक है और वहाँ के सागर के तल का दृश्य संसार में सर्वोत्तम है. जापान के प्रशांत सागर के तट पर ठंडी और गर्म जल-धाराएँ सागर में बहती हैं और दोनों जा कर होंशू में एक दूसरे से मिलती भी हैं. फलस्वरूप जापान के समुद्र-तटों पर बड़ी सक्रियता और समुद्री जीवन की चहलपहल है. ऊष्ण जल धाराओं में विभिन्न प्रकार के मूंगे, रंग-बिरंगी मछलियाँ पायी जाती हैं, जो वैसा ही दृश्य उपस्थित करती हैं जैसा कि खिले हुए फूलों का बग़ीचा. सागर में जहाँ ठंडी धाराएँ हैं वहाँ लंबी-लंबी समुद्री सेवार हैं और ऊष्ण जल-धाराओं में पाये जाने वाली मछलियों से भिन्न प्रकार की रूप-रंग और आकृतियाँ वाली मछलियाँ हैं, जो इस समुद्री घास के जंगल में विचरती रहती हैं. जहाँ दोनों धाराएँ मिलती हैं वहाँ समुद्री सेवार घने जंगलों की तरह है और बिलकुल तल में फैले हुए घास के मैदानों-सी दिखायी देती है. जापान में समुद्री पार्क बनाने के लिए ८ जगहें चुनी गयी हैं.

तल के इस सौंदर्य को देखने के लिए १० टन के शीशे के तल वाली एक नाव बनायी जायेगी, जिस में ३० यात्री बैठ सकेंगे. नाव का तला शीशे का होने के कारण यात्री सागर के नीचे के दृश्य देख सकेंगे. पानी के भीतर के इन पार्कों में स्थानों और वस्तुओं की सूचना देने के लिए प्लास्टिक की नाम-पट्टिकाएँ भी लगी होंगी. गोताखोरों का कहना है कि सतह से सागर के तल को देखना ठीक उसी तरह है जिस तरह किसी ऊँचे मकान की छत से गली में जाती हुई एक सुंदर बालिका को देखना. जहाज़ बनाने वाली जापान की एक बड़ी फ़र्म ने सागर-गर्भ में देखने के लिए एक स्तंभ (टावर) की योजना बनायी है. ऐसा एक स्तंभ प्रशांत महासागर में ऊष्ण जल-धारा में बनाया जायेगा. यह स्तंभ इस्पात का होगा और इस की ऊँचाई १६.२ मीटर होगी. यह स्तंभ पथरीले सागर-गर्भ में समुद्र-तट के ९० मीटर दूर है और ६ मीटर गहराई पर होगा. इस स्तंभ तक जाने के लिए यात्री पहले एक छोटी रेल द्वारा समुद्र पार करेंगे और समुद्र सतह पर बने एक प्रेक्षण-कक्ष में जायेंगे, जिस में ३५ व्यक्ति एक साथ आ सकेंगे. इस कमरे से वह एक चमकदार सीढ़ियों द्वारा सागर-गर्भ में बने प्रेक्षण घर में पहुँचेंगे, जिस की खिड़कियाँ शीशे की होंगी. इस में शुद्ध हवा जाने, नमी दूर करने और वातानुकूलित करने का पूरा प्रबंध होगा. समुद्र के गर्भ में बिजली का प्रकाश जगमगाता रहेगा, जिस से कि यात्री रात में भी दृश्य देख सकें.

इतना ही नहीं, समुद्र-गर्भ में अनुसंधान के लिए एक यंत्र भी बनाया जा रहा है, जो पानी में २० मीटर डूबा रहेगा और समुद्र-गर्भ की स्थिति देख सकेगा. इस यंत्र में १५ आदमियों के बैठने की व्यवस्था होगी और इसे सर्वेक्षण-स्थलों पर खींच कर ले जाया जा सकेगा और यात्री समुद्र की भीतरी दुनिया की सैर कर सकेगा. पानी के भीतर प्रेक्षण-स्तंभ ही नहीं रेस्तराँ भी बनाने की योजना है. पानी के भीतर एक चलती-फिरती सुरंग भी बनायी जा रही है, जिस का व्यास ३.४ मीटर होगा और जो समुद्र के गर्भ में पड़ी रहेगी. इस सुरंग में यात्री घूम फ़िर सकेंगे और छोटी-छोटी खिड़कियों के द्वारा दृश्य-सुख प्राप्त कर सकेंगे. इस पर बहुत खर्च आयेगा, लेकिन आशा है कि चलती-फिरती सुरंग २–३ वर्ष में बन जायेगी. आदमी का मन धरती के दृश्य देखते-देखते सचमुच ऊब चुका है और अब वह अदृश्य को पाना चाहता है, जो समुद्र-गर्भ में सुरक्षित है और जहाँ परियों के लोक जैसी अछूती सुंदरता विद्यमान है.

अपने से उदासीन

विदेश नीति पर लोकसभा में बहस का उत्तर देते हुए विदेशमंत्री दिनेश सिंह ने यह घोषणा करने में कोई कसर नहीं रखी कि सीमा को ले कर रूस और चीन के बीच जो संघर्ष चल रहा है उस के प्रति भारत उदासीन नहीं है—वह इस मामले में सोवियत रूस का समर्थन करता है. श्री दिनेश सिंह ने यह भी बताया कि पाकिस्तान में इन दिनों जो कुछ हो रहा है, भारत उस से भी उदासीन नहीं है. लेकिन क्या वस्तु स्थिति वैसी ही है जैसी कि श्री दिनेश सिंह की बातों से जान पड़ती है ? क्या सचमुच ही भारत ने उसूरी के आरपार हुई घटनाओं में सक्रिय दिलचस्पी ली है ? क्या पाकिस्तान की भीतरी घटनाओं में केंद्रीय मंत्रिपरिषद् के ज़िम्मेदार मंत्रियों को उतनी दिलचस्पी थी, जितनी कि कांग्रेस पार्टी की भीतरी उथल-पुथल में ?

रूस-चीन संघर्ष और पाकिस्तान की भीतरी घटनाएँ; इन दोनों के संदर्भ में भारत की विदेश-नीति की सही परीक्षा हो सकती है. पिछले महीने जब उसूरी के आरपार सोवियत रूस और चीन के बीच संघर्ष शुरू हुआ, तब एशिया का संभवतः सब से 'जागृत राष्ट्र' होने के नाते भारत से यह उम्मीद की गयी कि भारत इस संबंध में तत्काल अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा; बल्कि इस अवसर का फ़ायदा उठाते हुए चीन के उस आक्रमणकारी रवैये को दुनिया के सामने रखेगा जिस ने कि १९६२ में भारत को हथियार उठाने पर विवश किया था. १९६२ में और ग़लतियों के साथ-साथ भारत से यह भूल भी हुई थी कि उस ने अपने मामले को संसार के सामने ठीक से नहीं रखा—उचित जानकारी के अभाव में पश्चिमी राष्ट्रों के अनेक नेताओं और बुद्धिजीवियों के मन में, जिन में कि लार्ड बर्ट्रेंड रसेल भी शामिल हैं, यह भ्रांति पैदा हुई और देर तक बनी रही कि वास्तव में आक्रमणकारी रवैया चीन का नहीं बल्कि भारत का रहा है. प्रचार-युद्ध में अपनी पराजय का बदला भारत ७ साल बाद १९६९ में उसूरी के संदर्भ में ले सकता था. लेकिन हमेशा की तरह विदेश मंत्रालय के अफ़सरशाह एशिया में हुई इस महत्त्वपूर्ण घटना से उदासीन रहे. शायद उन्होंने सोचा कि 'यह किसी दूसरे देश का मामला है हमारा नहीं और हमें इस में पड़ कर क्या मिलेगा ?' लेकिन वे यह भूल गये कि इस घटना का संबंध उस देश से था जिस ने भारत की महत्त्वपूर्ण सीमाओं पर अब भी अपना कब्ज़ा कर रखा है.

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने एशियाई देशों की भीतरी घटनाओं के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाने का इसी महीने फ़ैसला किया उसे देखते हुए भारत को प्रचार-युद्ध में और भी शक्ति और आवेग के साथ शामिल होना चाहिए था. **चीनी कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी बैठक में यह निर्णय लिया है कि वह एशियाई देशों के भीतर 'सशस्त्र विद्रोहों' को प्रोत्साहित करेगी. इस का अर्थ यह हुआ कि चीन भारत के भीतर, विशेष रूप से पूर्वोत्तर सीमाओं पर सशस्त्र विद्रोह की आकांक्षा रखने वाले तत्त्वों को और भी प्रोत्साहित करेगा. और लोकतंत्र और व्यवस्था को रद्द करने में सहायक होगा.** भारतीय विदेश नीति के निर्माताओं को चीन के विषय में जो भी ग़लतफ़हमियाँ हों, चीन को भारत के संबंध में कोई भ्रांति नहीं है. अगर भारतीय विदेश नीति के निर्माता सचमुच ही चीन से बातचीत करना चाहते हैं तो उन्हें इस संबंध में दो टूक निर्णय लेना चाहिए. इस की जो भी कीमत चुकानी पड़े उस के लिए उन्हें तैयार रहना चाहिए. लेकिन न तो वे इस की क़ीमत चुकाने के लिए तैयार हैं और न ही चीन के साथ अपनी सीमाओं को साफ़ करने के लिए उत्सुक हैं. इस धुंधलके और कुहासे का नतीजा यह है कि सारी विदेश नीति रस्मी और मौखिक हो कर रह गयी है. यह आकस्मिक नहीं है कि रूस-चीन संघर्ष के दौरान सोवियत रक्षामंत्री भारत आये और विदेश मंत्रालय के वातावरण से परिचित होने के बाद स्वदेश लौटते हुए कराची में उन्हें यह घोषणा करने की जरूरत महसूस हुई कि सोवियत रूस पाकिस्तान को उस के 'दुश्मनों' के विरुद्ध फ़ौजी मदद देगा. किसी से यह छिपा नहीं है कि पाकिस्तान का एकमात्र दुश्मन भारत है और मार्शल ग्रेचको ने दूसरे शब्दों **में यह कहना चाहा है कि सोवियत रूस पाकिस्तान को भारत के विरुद्ध सैनिक सहायता देगा. निश्चय ही यह भारत को एक धमकी है—भारत ने रूस और चीन संघर्ष के विषय में जो उदासीनता बरती है उसे ले कर सोवियत रूस की ओर से एक चेतावनी है.**

यह्या ख़ाँ के तख़्त पर बैठने के पहले तक पूर्वी पाकिस्तान की जनता भारत से यह उम्मीद कर रही थी कि वह उस के साथ सहानुभूति का प्रदर्शन करेगा और कुछ ऐसा करेगा जिस से कि पाकिस्तान का जन-आंदोलन मजबूत हो. पाकिस्तान के पड़ोस में भारत ही एकमात्र देश है, जहाँ कि लोकतंत्र की परंपराएँ संगठित हैं और जिस की जनता के साथ पाकिस्तान की जनता की नियति जुड़ी हुई है—कम-से-कम पूर्वी पाकिस्तान की जनता निश्चय ही यह अनुभव करती है. लेकिन भारत के भाग्य-निर्माता उस समय पाकिस्तान की जनता की ओर नहीं पार्टी के झगड़ों और उस के नतीजों की ओर उन्मुख थे.

दिनमान
समाचार-साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — १३ अप्रैल, १९६९
अंक १५ — २३ चैत्र, १८९१

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट — ११

*

मत और सम्मत — ३
पिछला सप्ताह — ४
पत्रकार-संसद् — ५
चरचे और चरखे — १०
परचून — ४२

*

राष्ट्रीय समाचार — १३
प्रदेशों के समाचार — १८
विश्व के समाचार — ३०
समाचार-भूमि : रूस — २८
खेल और खिलाड़ी : अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद् — २६

*

प्रेस-जगत् : भारतीय पत्र — ६
भेंट-वार्ता : श्रीधर महादेव जोशी — ७
बैसाखी : जलियाँवाला बाग — २२
विदेश व्यापार : आयात-निर्यात की नयी नीति — २५
ऋतु विज्ञान : हवा, बादल, गर्मी और हम — ३५
नारी-जगत् : स्त्री-पत्रिकाएँ — ३६
रंगमंच : गल्लाँ प्यार दियाँ; मंच सज्जा — ३६
संगीत : श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ — ३७
साहित्य : अकादेमी पुरस्कार; किताबें — ३९
कला : मृदुला कृष्ण; राम गुप्त; कला महाविद्यालय, लखनऊ — ४०

*

आवरण चित्र : जलियाँवाला बाग की दीवार पर छर्रों के चिह्न

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

तेलंगाना : केंद्र में चिंता

तेलंगाना की घटनाओं ने केंद्र को लगभग झकझोर दिया है. प्रधानमंत्री और विभिन्न पार्टियों के बीच परामर्श का सिलसिला जारी है और आंध्र में उपद्रवों का सिलसिला पूर्ववत् बना हुआ है. प्रधानमंत्री ने तेलंगाना की स्थिति पर विचार करने के लिए इसी हफ़्ते जो बैठक बुलायी है उस में तेलंगाना की स्थिति पर विचार करने का प्रस्ताव है. इस बीच तेलंगाना के मामले पर लोकसभा और उस के बाहर अनेक स्तरों पर विचार व्यक्त किया जा चुका है, लेकिन इस का कोई नतीजा नही निकला. सब कुछ एक राजनीतिक रस्साकशी हो कर रह गया. तेलंगाना का प्रश्न अंततः केंद्र और राज्य के द्वंद्व का प्रश्न बन कर रह गया—कम-से-कम लोकसभा में उस पर जो विचार हुआ उस से यही लगता है. कांग्रेसी मंत्रियों और सदस्यो की राय थी कि आंध्र के मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी के इस कथन मे कुछ भी गैर-मुनासिब नहीं कि तेलंगाना की स्थिति के अध्ययन के लिए संसदीय समिति की स्थापना प्रदेश के मामलो में हस्तक्षेप होगा; जब कि कुछ विरोधी पार्टियो का यह दावा था कि श्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने यह कह कर सदन की मर्यादा को भंग किया है.

लोकसभा में यह सवाल एक विशेषाधिकार प्रस्ताव के रूप में आया जिसे कि संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के श्री मधु लिमये ने पेश किया था. सदन में यह प्रस्ताव रखने की अनुमति श्री मधु लिमये ने ३ अप्रैल को माँगी थी लेकिन अध्यक्ष नीलम संजीव रेड्डी ने प्रधानमंत्री की ओर से पर्याप्त सूचना के अभाव में इसे तत्काल रखने की इजाजत नही दी. श्री नीलम संजीव रेड्डी आंध्र के निवासी है और आंध्र की भीतरी राजनीति से उन का एक अरसे तक संबंध रहा है. तेलंगाना को ले कर जो कुछ हो रहा है उस से उन का उलझन में पडना स्वाभाविक ही है. जब गृहमंत्री ने संसदीय समिति नियुक्त करने के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार अध्यक्ष को सौंपा था तब उन्होने अपने आप को और भी आपद्धर्म में पाया था. यह एक संयोग ही है कि संसदीय समिति की स्थापना से संबंधित विशेषाधिकार का प्रश्न सोमवार को श्री नीलम संजीव रेड्डी की अनुपस्थिति में, जो कि एक संसदीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए वीएना रवाना हो गये थे, पेश हुआ.

श्री मधु लिमये का प्रस्ताव स्वीकार नही किया गया—मामला विशेषाधिकार समिति को नही सौंपा गया. विधिमंत्री पन्नमपिल्ली गोविंद मेनन ने दावा किया कि मुख्यमंत्री के वक्तव्य में सदन की कोई मर्यादा भंग नही हुई है. उन्होने कहा कि इस के पहले भी ऐसा हो चुका है कि संसदीय समिति नियुक्त करने की बात हुई है और कतिपय मुख्यमंत्रियों ने, जिन में पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री भी शामिल हैं, इस का विरोध किया है. उन्होने बताया कि जब नक्सलबाड़ी को ले कर एक संसदीय समिति नियुक्त करने की बात चली थी तब पश्चिमी बंगाल के मुख्यमंत्री ने इस का यह कह कर विरोध किया था कि यह प्रदेश के मामलों में हस्तक्षेप होगा. श्री मधु लिमये ने अपने प्रस्ताव के समर्थन में संविधान के अनुच्छेद ३७१(१) का हवाला दिया और आग्रह किया कि मामला विशेषाधिकार समिति को सौंपा जाये. लेकिन सदन इस के पक्ष में नही था और विशेषाधिकार का प्रश्न गिर गया.

कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी में तेलंगाना के प्रश्न पर गहरी चिंता व्यक्त की गयी और उस पर देर तक विचार होता रहा. प्रधानमंत्री ने सदस्यों को बताया कि तेलंगाना को ले कर सरकार बहुत चिंतित है लेकिन चिंता व्यक्त कर देना ही काफी नही होता. उस पर जल्द से जल्द कार्रवाई की जानी चाहिए. यही सोच कर मैं ने एक उच्च स्तरीय बैठक बुलायी है. उन्होने घोषणा की कि बैठक में आंध्र के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री दामोदर संजीवय्या और संसदीय कार्यमंत्री श्री कोटा रघुरामैय्या को भी आमंत्रित किया गया है. इस से पहले प्रधानमंत्री आंध्र के मुख्यमंत्री श्री ब्रह्मानंद रेड्डी से बातचीत कर चुकी थी. श्री रेड्डी ने प्रधानमंत्री को स्थिति से अवगत कराते हुए यह बताया था कि सवाल मुख्य रूप से आर्थिक होते हुए भी उलझ गया है और इस में बहुत से न्यस्त स्वार्थ सक्रिय हो गये हैं. प्रधानमंत्री ने मुख्यमंत्री से यह कहा कि तेलंगाना को ले कर आंध्र में जो कुछ हो रहा है वह सारे देश के लिए घातक हो सकता है. अगर स्थिति नही सुलझी तो और भी प्रदेश विभाजन की माँग कर सकते है. तेलंगाना एक ग़लत शुरुआत है और उस की परिणतियाँ खतरनाक हो सकती है.

कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी की बैठक में तेलंगाना को ले कर कई सुझाव आये इन में से एक सुझाव यह था कि तेलंगाना के सवाल पर जो बैठक होने जा रही है उस का दायरा और व्यापक होना चाहिए ताकि संबंधित राज्यो के अधिक से अधिक प्रतिनिधि उस में हिस्सा ले सकें. यह सुझाव देते हुए कार्यकारिणी की सब से सक्रिय सदस्या श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा ने कहा कि कुछ नेता ऐसा अनुभव करते हैं कि उन्हें बहिष्कृत कर दिया गया है. श्रीमती सिन्हा का यह सुझाव था कि इस बैठक में उन लोगों को भी बुलाना चाहिए जो कि पृथक तेलंगाना की माँग कर रहे हैं. इस संबंध में उन्होंने श्री कोंडा लक्ष्मण का नामोल्लेख किया जिन्होने कि पिछले दिनों यह कह कर इस्तीफ़ा दे दिया था कि आंध्र के मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी तेलंगाना की जनता के हितों की रक्षा करने में विफल हुए है. श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हा के इस सुझाव का समर्थन कुछ और सदस्यों जैसे कि श्रीमती सुचेता कृपालानी, श्री रघुवीर सिंह पंजहजारी और श्री प. वेंकट सुब्बैया ने भी किया. श्रीमती गांधी ने यह स्पष्ट करना चाहा कि जहाँ तक उन का प्रश्न है उन्हें बैठक का दायरा व्यापक करने में कोई आपत्ति नही और वह चाहती है कि बैठक में अधिक से अधिक लोग हिस्सा लें. उन्होने कहा कि मैं श्री कोंडा लक्ष्मण से पहले ही बातचीत कर चुकी हूँ और अगर ज़रूरी हुआ तो दोबारा बातचीत करूँगी. कुछ सदस्यो ने यह कहा कि अगर अतिवादी दृष्टिकोण रखने वाले नेताओं को इस बैठक में आमंत्रित नही किया गया तो यह बहुत संभव है कि श्री चेन्ना रेड्डी इस में शामिल न हों.

तेलंगाना में पिछले दिनों जो उपद्रव हुए हैं उन के सिलसिले में व्यापक रूप से गिरफ़्तारियाँ हुई है. कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी में इस चीज की भी आलोचना हुई. कुछ सदस्यों ने यह कहा कि बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियाँ कर आंध्र सरकार ने स्थिति को और भी उत्तेजक बना दिया है. जरूरत इस बात की थी कि मुख्यमंत्री नाजुक परिस्थिति को समझते हुए धैर्य से काम लेते लेकिन उन्होंने हथौड़े से काम लिया. पहले ही लोगों में कटुता थी और अब वह और भी बढ जायेगी. मगर कुछ और सदस्यों की यह राय थी कि मुख्यमंत्री ने सख्ती से काम ले कर उचित ही किया है—उपद्रवी तत्वों को छूट नही दी जा सकती है. मुख्यमंत्री को ले कर जो भी मतभेद हों संसदीय समिति की नियुक्ति को ले कर कार्यकारिणी मे कोई मतभेद नही था. सभी सदस्य तेलंगाना की स्थिति के अध्ययन के लिए संसदीय समिति की नियुक्ति के विरोधी थे. बैठक में बताया गया कि इस तरह की किसी भी समिति से कोई फ़ायदा नही होगा, खासतौर से यह देखते हुए कि कतिपय विरोधी पार्टियाँ तेलंगाना उपद्रवों का फ़ायदा उठाना चाह रही है. बैठक में एक और महत्त्वपूर्ण बात कही गयी—वह यह कि आंध्र के नेताओं को अपने रवैये में परिवर्त्तन करना चाहिए. तेलंगाना के लोगो के साथ उन्हें इस तरह का व्यवहार नही करना चाहिए जैसे कि वे 'विजेता' है और तेलंगाना की जनता 'विजित' है. बाद में प्रधानमंत्री ने आंध्र के संसद सदस्यों से मुलाकात की जिन्होने प्रधानमंत्री को अपने प्रदेश की स्थिति की उलझनों से वाकिफ़ कराया.

संसद सदस्यों की राय थी कि तेलंगाना को ले कर सरकार की तरफ से जो भी बातचीत हो वह बहुत सौहार्द्र के वातावरण में होनी चाहिए और सरकार की नीति उदारता की होनी चाहिए.

—विशेष संवाददाता

राष्ट्र

चंद्रशेखर

भर्त्सना से बढ़ कर भर्त्सना का प्रचार

अब तक जो कांग्रेस पार्टी की भीतरी लड़ाई थी वह विरोधी पार्टियों के द्वंद युद्ध में परिवर्त्तित हो गयी. जब कांग्रेस संसदीय पार्टी की कार्यकारिणी ने श्री चंद्रशेखर की भर्त्सना का निर्णय ले लिया तब दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ सदस्यों ने अन्य वामपंथी पार्टियों से यह प्रस्ताव किया कि कांग्रेस पार्टी के इस निर्णय के विरुद्ध एक वक्तव्य जारी किया जाये. वक्तव्य का प्रारूप तैयार करने का काम संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता को सौंपा गया. संसपा नेता ने जो प्रारूप तैयार किया उस में चंद्रशेखर प्रकरण पर रोशनी डालते हुए कहा गया था कि वास्तव में बिड़लाओं को ले कर जो कुछ हुआ है उस की ज़िम्मेदारी प्रधानमंत्री पर है क्यों कि वही कांग्रेस पार्टी की नेता हैं. अब वह यह कह कर छुट्टी नहीं पा सकतीं कि वह बिड़लाओं के विरुद्ध रही हैं—केवल कांग्रेस का दूसरा शिविर बिड़ला हितों की रक्षा करता रहा है. दूसरे शब्दों में जिस हद तक मोरारजी देसाई गुनहगार हैं उसी हद तक श्रीमती गांधी भी ज़िम्मेदार हैं. दोनों को जनमत के कठघरे में खड़ा होना होगा. इस प्रारूप पर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी, दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी, संसपा के अलावा कुछ निर्दलीय सदस्यों ने हस्ताक्षर कर दिये थे. इसी बीच दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के एक सदस्य ने, जो कि प्रधानमंत्री के निकट बताये जाते हैं, इस प्रारूप को ले कर आपत्ति की. उन की आपत्ति यह थी कि इस में से वह हिस्सा काट दिया जाये जिस में कि प्रधानमंत्री का उल्लेख है. नतीजा यह हुआ कि वक्तव्य प्रकाशन के लिए नहीं दिया गया. इस घटना को ले कर वामपंथी पार्टियों में वह द्वंद्व शुरू हो गया है कि जो काफ़ी अर्से से दबा हुआ था. संसपा और मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों ने दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं से कहा है कि अगर उस ने कांग्रेस पार्टी को 'प्रगतिशील' और 'प्रतिक्रियावादी' में विभक्त कर तथा श्रीमती इंदिरा गांधी को प्रगतिशील और मोरारजी देसाई को प्रतिक्रियावादी मान कर नक़ली लड़ाई लड़ने का अपना रवैया जारी रखा तो भविष्य में उस के साथ सहयोग संभव नहीं होगा.

द्वंद्व और अंतर्द्वंद्व : जहाँ तक कांग्रेस पार्टी के भीतर और बाहर के अंतर संघर्षों के सूत्रधार श्री चंद्रशेखर का प्रश्न है वह इन दिनों श्री मोरारजी देसाई के गृह-प्रदेश गुजरात का दौरा कर रहे हैं. कार्यकारिणी ने जब उन की भर्त्सना करने का निर्णय ले लिया तब उन्होंने टिप्पणी की कि मेरी भर्त्सना क्या होगी—भर्त्सना से भी बढ़ कर जो कुछ हो सकता था वह सब हो चुका. कार्यकारिणी की बैठक में, जो कि डेढ़ घंटे तक चली, श्री चंद्रशेखर विशेष आमंत्रित के रूप में उपस्थित थे. अपने आचरण का स्पष्टीकरण देते हुए उन्होंने २१ मिनट तक भाषण किया और उन्होंने कहा कि १० मार्च को राज्यसभा में मैंने जो कुछ कहा था उस पर मुझे कोई अफ़सोस नहीं है. उत्तेजित होते हुए उन्होंने पूछा कि पार्टी के संविधान में कहाँ लिखा हुआ है कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ाई को अनुशासन भंग माना जायेगा या कि संपत्ति के एकाधिकार के विरुद्ध संघर्ष को पार्टी के संविधान का उल्लंघन माना जायेगा. कार्यकारिणी के निर्णय का विरोध करते हुए श्री चंद्रशेखर बैठक की समाप्ति के पहले ही बाहर चले गये. जहाँ तक श्री मोरारजी देसाई का प्रश्न है उन्होंने कार्यकारिणी को बताया कि श्री चंद्रशेखर ने उन के विरुद्ध जो व्यक्तिगत आक्षेप किया है उस से उन के आत्मसम्मान को ठेस पहुँची है और उन की प्रतिष्ठा को नुक़सान पहुँचा है. श्री देसाई ने अपनी यह माँग दुहराई कि या तो श्री चंद्रशेखर क्षमा याचना करें या कार्यकारिणी उन की भर्त्सना करे. श्री मोरारजी देसाई ने यह स्पष्ट किया कि मैंने बिड़ला जांच में कोई बाधा नहीं पहुँचाई. यह समूची मंत्रिपरिषद् का निर्णय था और अगर मंत्रिपरिषद् के निर्णय के बावजूद प्रधानमंत्री यह अनुभव करती हैं कि जाँच आवश्यक है तो वह जाँच का आदेश देने के लिए स्वतंत्र हैं.

विरोध और अंतर्विरोध : पिछले महीने भर में श्री चंद्रशेखर को ले कर पार्टी के भीतर जो उथल-पुथल हुई उसे समाप्त करने का भार श्री जगजीवनराम और श्री यशवंतराव चव्हाण को सौंपा गया था. कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया था कि श्री चंद्रशेखर को पार्टी से बाहर निकाल दिया जाये. श्री चव्हाण और श्री जगजीवनराम दोनों ने इस सुझाव का विरोध किया और कहा कि कार्रवाई के और भी रास्ते खुले हैं. अंततः चंद्रशेखर की भर्त्सना की प्रणाली तैयार करने का काम प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को सौंप दिया गया. श्री चंद्रशेखर प्रधानमंत्री से बैठक से पहले ही मिल चुके थे और उन्होंने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया था. जब पार्टी की बैठक शुरु हुई तब श्रीमती गांधी ने सदस्यों के सामने यह स्पष्ट करना चाहा कि बहस के दो मुद्दे हैं एक तो बिड़ला प्रकरण पर संसदीय जाँच की नियुक्ति और दूसरे श्री चंद्रशेखर का आचरण. इन दोनों मामलों को मिला कर नहीं देखना चाहिए. श्रीमती गांधी ने यह भी कहा कि यह बात बहुत महत्त्व नहीं रखती कि सब से पहले श्री चंद्रशेखर ने श्री देसाई पर व्यक्तिगत आक्षेप किया या कि श्री देसाई ने श्री चंद्रशेखर के लिए अपशब्दों का प्रयोग किया. यह समूची पार्टी की प्रतिष्ठा और पार्टी के उपर्युक्त सदस्यों के सम्मान का प्रश्न है. इस में बहुत से गहरे प्रश्न जुड़े हैं.

अन्न

वसूली : किस (की) क़ीमत पर

जब कृषि-मूल्य आयोग की रिपोर्ट आयी थी तब अन्न की वसूली के अधिक लक्ष्य का स्वागत किया गया था. लेकिन प्रायः सभी क्षेत्रों में गेहूँ की वसूली क़ीमतों के घटाये जाने की सिफ़ारिश की अच्छी प्रतिक्रिया नहीं हुई थी. आयोग ने १९६९-७० के लिए ३६ लाख टन गेहूँ की वसूली का लक्ष्य सामने रखा. पिछले वर्ष २३ लाख टन की वसूली का ही लक्ष्य था. जैसी कि उम्मीद थी पिछले दिनों हुए मुख्यमंत्री सम्मेलन में आयोग की इस सिफ़ारिश की आलोचना की गयी कि गेहूँ की वसूली-क़ीमतों को ९ प्रतिशत की दर से घटा दिया जाये, क्यों कि कई प्रदेशों में गेहूँ की फ़सल अच्छी हुई है. मुख्यमंत्री सम्मेलन से पहले संसद में भी विपक्षी सदस्यों द्वारा आयोग की इस सिफ़ारिश की आलोचना की गयी थी और कहा गया था कि इस से किसानों को नुक़सान होगा. छोटे किसानों को मिलने वाली ऋण-सुविधाओं की अपर्याप्तता के बारे में भी कुछ दिनों पहले राज्यसभा में बहस हुई थी और सरकार को इस के लिए दोषी ठहराया गया था कि वह खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता की बात तो करती है लेकिन छोटे किसानों की ओर कोई ध्यान नहीं देती. मुख्यमंत्री सम्मेलन में भी प्रायः सभी प्रदेशों ने बजट में प्रस्तावित उर्वरकों और पंप-सेटों पर महसूल और कृषि-संपत्ति पर कर लगाये जाने का कड़ा विरोध किया

गुरनामसिंह, चंद्रभानु गुप्त और सुखाड़िया : दाने-दाने का दाम

और कहा कि इस से अधिक उत्पादन का उत्साह घटेगा. पंजाब के मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह ने तो यहां तक कहा कि आधुनिक तरीक़े से उत्पादन करने के कारण उन के प्रदेश में कृषि-उत्पादन की लागत पहले ही काफ़ी बढ़ गयी है.

वितरण-दर : सम्मेलन में यह बात उभर कर सामने आयी कि गेहूं उत्पादित करने वाले प्रदेश न तो गेहूं की वसूली-क़ीमतों को कम किये जाने के पक्ष में हैं और न ही प्रदेशों के बीच गेहूं के आवागमन की खुली छूट के. पंजाब ने तो यह भी कहा कि गेहूं की वसूली क़ीमतों में वृद्धि होनी चाहिए. उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश और गुजरात ने क़ीमतों को यथावत् बनाये रखने की बात कही. कृषि-मूल्य आयोग ने भी कहा था कि प्रदेशों के बीच गेहूं के आवागमन की खुली छूट नहीं होनी चाहिए क्यों कि इस से क़ीमतों को निर्धारित करने में कठिनाई होगी और वे किसानों के नियंत्रण के बाहर चली जायेंगी. दरअसल अधिक गेहूं उत्पादित करने वाले प्रदेश चाहते हैं कि उन के गेहूं की वसूली अधिक क़ीमतों पर ही हो. इस से जहां किसानों को लाभ होने की संभावना है वहीं इस बात की भी आशंका है कि गेहूं की वितरण दर कहीं बढ़ न जाये. मुख्यमंत्री सम्मेलन में भी इस आशंका पर बात हुई. तमिलनाडु के वित्तमंत्री क० अ० मथियालगन ने कहा कि गेहूं की वितरण-दर का चावल की क़ीमत के साथ कोई आनुपातिक संबंध होना चाहिए नहीं तो चावल की मांग पर दबाव और बढ़ता जायेगा. पश्चिम बंगाल के खाद्यमंत्री सुधीन कुमार ने गेहूं के वितरण-मूल्य में किसी प्रकार की बढ़ोतरी किये जाने का कड़ा विरोध किया और कहा कि अगर वितरण-दर बढ़ायी ही जाये तो सरकार क़ीमतों में हुई वृद्धि को सहायता दे कर पूरा करे. केरल के मुख्यमंत्री नंबूदिरिपाद ने भी सरकार को चेतावनी दी है कि अगर वितरण-मूल्य में वृद्धि हुई तो उन की सरकार उस का विरोध करेगी. उन्होंने सम्मेलन में भाग नहीं लिया. गेहूं की वितरण-दर पर यह बातचीत खाद्यमंत्री जगजीवनराम के इस कथन पर हुई कि सरकार ने १९७०-७१ तक पी. एल.-४८० के अंतर्गत किये जाने वाले आयात को बंद करने का निश्चय किया है और इस निश्चय के कारण सरकार द्वारा वितरित किये जाने वाले खाद्य-संग्रह की एक दर की सुविधा समाप्त हो जायेगी. अभी रियायती क़ीमतों पर आयात किये गये गेहूं को ७६ रुपये क्विंटल की दर से ख़रीदे गये गेहूं के साथ मिला दिया जाता है और प्रदेशों को ७० रुपये प्रति क्विंटल के हिसाब से दिया जाता है.

भंडार भरे : इस वर्ष फ़सल अच्छी होने के कारण कम आयात किया जायेगा और सरकार के लिए मौजूदा-वसूली क़ीमतों में ७० रुपये प्रति क्विंटल की वितरण दर बनाये रखना संभव नहीं भी हो सकता और वितरण दर ७८.६० रुपये प्रति क्विंटल तक पहुंच सकती है. मुख्यमंत्री सम्मेलन में, अध्यक्ष जगजीवनराम समेत सभी इस बात पर सहमत थे कि वसूली-लक्ष्य को पूरा किया जाना चाहिए और कृषि-मूल्य आयोग की वसूली लक्ष्य की सिफ़ारिश लगभग सभी को स्वीकार थी. सम्मेलन में योजना आयोग के उपाध्यक्ष डी० आर० गाडगिल ने कहा कि किसान को उस के उत्पादन का उत्साहवर्द्धक मूल्य मिलना चाहिए लेकिन ऐसा न हो कि उपभोक्ता को इस के लिए बड़ी क़ीमत चुकानी पड़े. किसान और उपभोक्ता दोनों का हित-साधन इस संदर्भ में आवश्यक है.

सच्ची आत्मनिर्भरता : कृषि-मूल्य आयोग ने सभी राज्यों के लिए देसी लाल, आम सफ़ेद और बढ़िया क़िस्म के सभी गेहूं के लिए क्रमशः ६६, ७० व ७४ रुपये प्रति क्विंटल वसूली-क़ीमत तय करने की सिफ़ारिश की है, मेक्सिकन गेहूं के लिए वसूली-क़ीमत ७० रुपये. आयोग की सिफ़ारिशों पर अंतिम रूप से विचार केंद्रीय मंत्रिमंडल करेगा. कृषि-मूल्य आयोग ने अपने प्रस्तावों में कहा था कि इस वर्ष की अच्छी फ़सल—१ करोड़ ७२ लाख टन गेहूं के उत्पादन का अनुमान—का लाभ उठा लेना चाहिए और सुरक्षित भंडार को बड़ा लेना चाहिए. उस ने यह भी सिफ़ारिश की थी कि खाद्यान्न की ख़रीद सीधे किसानों से की जानी चाहिए. सवाल यही है कि भंडार भी बढ़े, किसानों को लाभ भी हो लेकिन वितरण-दर इतनी न बढ़ने पाये कि उपभोक्ता खाद्यान्न की राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता के दावे के बावजूद अपने को पहले जैसी हालत में पाये.

संसद्-सदस्य

होली है !

होली के महीने भर बाद भी कुछ संसद् सदस्य होली खेल रहे हैं. कम-से-कम पिछले दिनों औद्योगिक विकास मंत्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद के साथ जो 'मज़ाक' किया गया उस से यह ज़रूर लगता है कि संसद् सदस्यों की होली अभी समाप्त नहीं हुई है. निर्दलीय श्री स. मो. बैनर्जी और जनसंघ के श्री हुकुमचंद कछवाय ने लोकसभा में अचानक यह रहस्योद्घाटन किया कि श्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद ने पिछले दिनों एक २१ वर्षीय बाला से दूसरा विवाह किया है. सदस्यों ने इस के प्रमाण में दिल्ली के एक साप्ताहिक आर्गनाइज़र का हवाला दिया. अध्यक्ष ने शुरू में ही चेतावनी दी कि सदन के किसी भी सदस्य पर बे-बुनियाद आरोप नहीं लगाने चाहिए. और किस ने किस के साथ विवाह किया यह सदन में बहस का विषय नहीं हो सकता. बाज़ार में जो अफ़वाहें होती हैं अगर सदन में उन पर बहस होने लगी तो सदन की प्रतिष्ठा नहीं रह जायेगी.

बे-बुनियाद : जिस समय श्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद पर यह आरोप लगाया गया उस समय वह सदन में उपस्थित नहीं थे. दोपहर के भोजन के बाद उन्होंने सदन में बताया कि मैंने एक २१ वर्षीय बाला से विवाह ज़रूर किया है मगर आज नहीं, २४ साल पहले. मेरी और मेरी पत्नी के संबंध अभी इस हालत में नहीं पहुंचे हैं कि मुझे दूसरा विवाह करने की ज़रूरत पड़े. मुझ पर लगाया गया आरोप गंदा और बे-बुनियाद है. २१ साल की कोई हूर भी क्यों न हो मैं उस से विवाह नहीं करूंगा—न केवल इस लिए कि मैं बूढ़ा हो चुका हूं बल्कि इस लिए भी कि मेरा पारिवारिक जीवन सुखी है. मुझे हैरानी है कि सदन के कुछ ज़िम्मेदार सदस्यों ने मुझ पर यह गंदा आरोप लगाया. मुझे इस बात पर भी आश्चर्य है कि मेरे बारे में यह अफ़वाह एक संसदीय पार्टी के मुखपत्र के ज़रिये फैलायी गयी.

बेवक़्त और बेज़रूरत : आरोप लगाते हुए श्री हुकुमचंद कछवाय ने कहा था कि पिछले दिनों श्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद सदन से ग़ायब थे और उन के बारे में यह कहा गया था कि वह बीमार हैं. लेकिन वास्तविकता यह है कि मंत्री महोदय बीमार नहीं थे बल्कि दूसरा निकाह करने गये हुए थे. श्री कछवाय से भी एक क़दम आगे बढ़ कर व्यंग्य-कुशल आचार्य कृपालानी ने व्यंग्य करते हुए कहा था कि मंत्री सुहागरात मनाने गया हुआ है. मैं उस को बधाई देना चाहता हूं और मेरी यह इच्छा है कि वह फले-फूले. लेकिन उस की जगह उस का उत्तराधिकारी जो भी हो उस को खादी ग्रामोद्योग के मामले को उठाना चाहिए. आचार्य कृपालानी ने चुनौती देते हुए यह भी कहा कि किसी भी सरकारी आदमी को दुबारा शादी करने का अधिकार नहीं है.

फ़खरुद्दीन अली अहमद : निकाह मगर २४ वर्ष पहले

अफ़वाहों से बचो : जब श्री फ़ख़रुद्दीन अली अहमद ने इन आरोपों को मिथ्या बताते हुए दुख प्रकट किया कि कुछ सदस्य निम्न स्तर पर उतर कर मेरी चरित्र-हत्या कर रहे हैं तब संसद् की लगभग सभी पार्टियों ने इस मामले पर खेद

प्रकट किया. जनसंघ के श्री बलराज मधोक ने श्री कछवाय के आचरण पर दुख व्यक्त करते हुए कहा कि मुझे खेद है कि मेरी पार्टी के एक सदस्य ने एक समाचारपत्र में प्रकाशित समाचार के आधार पर यह सवाल उठाया. उन्होंने अपनी पार्टी की ओर से श्री अहमद से क्षमा-याचना की. श्री स. मो. बनर्जी ने आर्गनाइज़र के विरुद्ध कार्रवाई की माँग की. स्वतंत्र पार्टी के श्री पीलू मोदी ने कहा कि संसद्-सदस्य के निजी जीवन पर सदन में कोई बहस नहीं होनी चाहिए. संसपा के श्री रवि राय ने भी अपनी पार्टी की ओर से क्षमा-याचना की. निर्दलीय श्री प्रकाशवीर शास्त्री, कांग्रेस के श्री विभूति मिश्र और प्रजा समाजवादी पार्टी के श्री श्री स. म. कृष्ण ने उन सदस्यों के विरुद्ध कार्रवाई की माँग की जिन्होंने कि यह मामला उठाया था.

श्री फ़खरुद्दीन अली अहमद को ले कर जो अफ़वाह उठायी गयी उस के पीछे सांप्रदायिकता की दुर्गंध है. इसे केवल एक आकस्मिक घटना कह कर नहीं टाला जा सकता वल्कि यह इस देश में भीतर ही भीतर चल रहे उस षड्यंत्र का एक हिस्सा है जो कि हर तरह से अल्पसंख्यकों के नेताओं को अप्रतिष्ठित करना चाहते हैं. यह पहला मौक़ा नहीं है जब किसी मुसलमान नेता पर इस तरह का कीचड़ उछाला गया है. १९६५ में भारत-पाक संघर्ष के दिनों में डॉ. ज़ाकिर हुसेन के विरुद्ध यह अफ़वाह उड़ायी गयी थी कि उन्हें गिरफ़्तार कर उन के निवास स्थान पर हिरासत में रखा गया है. न केवल उन के संबंध में वल्कि उन के लड़के के विषय में भी यह अफ़वाह उड़ायी गयी थी कि वह पाकिस्तानी सेना से जा मिला है. इस के दो साल बाद जब डॉ. ज़ाकिर हुसेन को राष्ट्रपति बनाया गया तब यह अफ़वाह फैलायी गयी कि श्रीमती इंदिरा गांधी अपने लड़के का विवाह डॉ. ज़ाकिर हुसेन की पुत्री से करना चाहती हैं इस लिए उन को राष्ट्रपति बनाया गया है. अब तक यह अफ़वाह सदन के बाहर बाज़ारों और गली-कूचों में उड़ायी जाती थी. दुःख और शर्म का विषय है कि इस बार एक अल्पसंख्यक नेता के विरुद्ध सब से शक्तिशाली मंच से प्रचार करने का प्रयत्न किया गया. यह सही है कि नेताओं और मंत्रियों का कोई निजी जीवन नहीं हो सकता—उन्हें हर समय जनमत के कठघरे में खड़ा रहना होगा और अपने दामन को पाक-साफ़ रखना होगा लेकिन कोई भी आरोप लगाने से पहले तथ्यों की भली-भाँति जाँच हो जानी चाहिए. जब सदन के बाहर कोई नागरिक किसी संसद्-सदस्य की मर्यादा भंग करता है तो उसे विशेषाधिकार के कठघरे में खड़ा किया जाता है, मगर किसी साधारण नागरिक के लिए विशेषाधिकार का कठघरा है तो गंदे आरोप करने वाले संसद्-सदस्यों के लिए यह कठघरा क्यों नहीं है ?

परमाणु ऊर्जा

विद्युत उत्पादन का नया दौर

तारापुर में भारत के पहले परमाणु विद्युत घर का संचालन अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना है. परमाणु के विखंडन के बाद ही यह महसूस किया गया था कि इस में मनुष्य के विकास कार्यों को आगे ले जाने के लिए अनंत ऊर्जा बँधी पड़ी है. नाभिकीय प्रक्रिया से विद्युत् ऊर्जा पैदा करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है. भारत के लिए इस का महत्त्व इस लिए भी अधिक है कि हमारे देश में विकसित देशों की अपेक्षा ऊर्जा विद्युत् का उत्पादन बहुत कम मात्रा में होता है जब कि उस की माँग और आवश्यकता बहुत अधिक है. तारापुर विद्युत् घर के संचालन से अनेक परंपरागत बिजली घरों का भार बहुत हद तक कम हो जायेगा और इस से गुजरात और महाराष्ट्र के उद्योगों के विकास में बहुत सहयोग मिलेगा.

अमेरिकी सहयोग : तारापुर बंबई से ६० मील दूर स्थित एक छोटा-सा गाँव है जिसे परमाणु वैज्ञानिकों ने विद्युत् गृह के लिए उपयुक्त स्थान मान लिया और यहीं संयुक्त राज्य अमेरिका के सहयोग से नाभिकीय विद्युत् पैदा करने की योजना पर १९६६ में काम आरंभ हुआ. निर्माण कार्य के लिए अंतरराष्ट्रीय विकास की अमेरिकी एजेंसी ने ७ करोड़ ५० लाख डालर प्रदान किया. तारापुर बिजली घर ३ लाख ८० हज़ार किलोवाट शक्ति प्रदान करेगा, जो महाराष्ट्र और गुजरात के बीच में वितरित हो जायेगी. इस कारखाने में यूरेनियम को अणु भट्टियाँ चालू करने के लिए ईंधन के रूप में प्रयोग में लाया जाता है. आरंभिक अवस्था में ४० टन यूरेनियम भट्टियों को ३० महीने तक चालू रख सकता है. नाभिकीय प्रक्रिया से उत्पन्न गरमी से पानी उबलता है और अति ऊष्ण वाष्प से उसी प्रकार बिजली पैदा की जाती है जिस प्रकार अन्य किसी ताप विद्युत् यंत्र से पैदा की जा सकती है. भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका के समझौते के अनुसार अमेरिकी सरकार ने इस कारखाने की पूरी आयु तक ईंधन प्रदान करने का वचन दिया है, जिस का मूल्य भारत सरकार एक लंबी अवधि तक किस्तों में चुकाती रहेगी.

उत्पादन व्यय : तारापुर विद्युत गृह जो विद्युत ऊर्जा उत्पन्न करेगा उस का उत्पादन व्यय ४.७५ पैसे प्रति इकाई अनुमानित किया गया था. किंतु संशोधित अनुमानों के अनुसार उस का मूल्य फिर बढ़ गया है. इस लिए भारत सरकार के सामने यह समस्या है कि इस प्रकार के परमाणु घरों पर करोड़ों रुपये व्यय करने के बाद सस्ती दरों पर बिजली प्रदान करने के वचन को कैसे निभाया जाये. मगर इस सिलसिले में एक बात स्पष्ट है कि इस आधार पर परमाणु बिजली घरों की स्थापना को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता. उत्पादन मूल्य कम करने के लिए अधिक संशोधन और अनुसंधान की आवश्यकता है. भारत में पानी से बिजली पैदा करने की क्षमता बहुत अधिक है किंतु यह ऊर्जा केवल कुछ ही सीमा प्रदेशों में संगृहीत पड़ी है. संपूर्ण भारत में विद्युत् शक्ति के समुचित वितरण के लिए परमाणु बिजली घर एक आवश्यकता है. तारापुर में अमेरिकी वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों के साथ काम कर के अनेक भारतीय इंजीनियरों ने उपयोगी अनुभव प्राप्त कर लिया है. तथा इस बात का पूरा प्रमाण दिया है कि वह स्वतंत्र रूप से भी किसी ऐसे परमाणु विद्युत् परियोजना के संचालन में समर्थ हैं जिस में उच्च स्तर की वैज्ञानिक और तकनीकी क्षमता की आवश्यकता है.

प्रतिरक्षा

नये वायु सेनाध्यक्ष

एयर मार्शल प्रतापचंद्र लाल १५ जुलाई से वायु सेनाध्यक्ष का कार्यभार सँभाल रहे हैं. श्री लाल नये स्थल सेनाध्यक्ष 'साम' मानेकशा की तरह भारत में शिक्षित हैं. ले. जनरल मानेकशा की नियुक्ति को ले कर लोगों के दिलों में जो भ्रम और कड़वाहट पैदा हो गयी थी, श्री लाल की नियुक्ति पर ऐसा कुछ नहीं सुनने को मिला. श्री लाल से पूर्व के तीनों वायु सेनाध्यक्ष एयर मार्शल मुकर्जी, एयर मार्शल इंजीनियर और एयर चीफ़ मार्शल अर्जनसिंह ने कार्नवैल के रॉयल एयर फ़ोर्स कॉलिज में प्रशिक्षण प्राप्त किया था. ५२ वर्षीय एयर मार्शल लाल की प्रारंभिक शिक्षा दिल्ली और उस के बाद लंदन में हुई. नवंबर १९३९ में वह वायुसेना में भरती हुए. संयोग की बात है कि एयर मार्शल लाल और एयर मार्शल आर. राजाराम को दिल्ली स्थित रायल इंडियन एयर फ़ोर्स में कमीशन के लिए एक साथ तार दिये गये थे. पंजाब में रहने के कारण लाल को तार जल्दी मिल गया जब कि दक्षिण भारतीय राजाराम को तार देर से मिला. इस प्रकार लाल राजाराम से वरिष्ठ हो गये. लाल इस समय हिंदुस्तान एयरोनाटिक्स लिमिटेड, बंगलूर में चेयरमैन हैं. इस से पूर्व वह पाँच साल तक इंडियन एयर लाइन्स के जनरल मैनेजर भी रह चुके हैं. हिंदुस्तान एयरोनाटिक्स में जाने से पहले प्रतिरक्षामंत्रालय से उन्हें यह विश्वास दिलाया गया था कि एयर चीफ़ मार्शल अर्जनसिंह के अवकाश ग्रहण करने के वक़्त उन की वरिष्ठता को ध्यान में रखा जायेगा. एयर मार्शल लाल प्रशासनिक, सैन्य आयोजन और वायुसेना के सभी अंगों से पूरी तरह से परिचित हैं. ऐसा भी कहा जाता है कि एयर मार्शल लाल एयर चीफ़ मार्शल अर्जनसिंह की तरह सभी प्रकार के

विमानों की जानकारी रखते हैं. एयर चीफ़ मार्शल अर्जनसिंह ने १९६५ में जिस कुशलता का परिचय दिया, मौक़ा पड़ने पर एयर मार्शल लाल भी उतनी ही योग्यता का परिचय दे सकेंगे—राजनैतिक और सैनिक हलक़ों में ऐसी ही चर्चा है.

इधर जब नयी-नयी नियुक्तियाँ और पदोन्नतियाँ हो रही हैं तो उन के वेतनों को ले कर भी तरह-तरह की अड़चनें पैदा हो रही हैं. पहले के स्थल सेना और वायु सेनाध्यक्ष ब्रिटेन में प्रशिक्षित थे, लिहाज़ा उन का वेतन पुरानी शर्तों और नियमों के आधार पर निश्चित किया गया था. सभी सेनाध्यक्षों को पहले ४५०० रुपये वेतन और ६०० रुपये बतौर भत्ते के मिलते थे, जब कि वायु सेना और जल सेनाध्यक्षों को ४००० रुपये

एयर चीफ़ मार्शल अर्जनसिंह

एयर मार्शल पी. सी. लाल

मासिक दिये जाते थे. वाइस एडमिरल और एयर मार्शल का पद लेफ्टिनेंट जनरल के समकक्ष है और लेफ्टिनेंट जनरल को ३००० वेतन और २५० रुपये भत्ता मिलता है. इस प्रकार अब जलसेना और वायुसेना के पदों को थलसेना के पदों के बराबर किया गया है अतः वेतनक्रमों को समान बनाये जाने का भी प्रश्न उठा. ऐसे भी संकेत मिल रहे हैं कि जून में अवकाश प्राप्त करने के बाद थलसेनाध्यक्ष पी. पी. कुमारमंगलम्, एस. एस. धवन के स्थान पर ब्रिटेन में उच्चायुक्त का पद ग्रहण करेंगे और एयर चीफ़ मार्शल अर्जनसिंह को महाराष्ट्र के राज्यपाल डॉ. चैरियन के स्थान पर नियुक्त किया जायेगा.

जहाज़रानी दिवस

प्रगति का साधन

आबादी के लिहाज से भारत बहुत बड़ा देश है लेकिन जहाज़रानी के क्षेत्र में उस का संसार में सत्रहवाँ स्थान है. यहाँ तक कि सिंगापुर, जापान, रोमानिया तथा अन्य पूर्वी यूरोपीय देश जहाज़रानी में भारत से बहुत आगे हैं. सिंगापुर का विश्व जहाज़रानी क्षेत्र में चौथा स्थान है और इसी पर उस की अर्थ-व्यवस्था आधारित है. नेशनल शिपिंग बोर्ड के अध्यक्ष श्री नरेंद्रसिंह महिदा ने एक पत्रकार सम्मेलन में बताया कि देश की प्रगति को ध्यान में रखते हुए जहाज़रानी का विकास होना बहुत ज़रूरी है. भारत के बंदरगाहों की भार-क्षमता अब २१.१८ लाख टन तक पहुँच गयी है जब कि आज़ादी से पहले वह सिर्फ़ १.९२ लाख टन ही थी. भारत में कुल २२६ बंदरगाह हैं जिन में ८ बड़े तथा १६५ कामचलाऊ बंदरगाह हैं. गुजरात में सब से अधिक ४५ बंदरगाह हैं. केवल कोचीन बंदरगाह ही बड़े जहाज़ों से माल उतारने और ठहराने की क्षमता रखता है. जब श्री महिदा से पूछा गया कि क्या ग़ैर-सरकारी कंपनियों को जहाज़-निर्माण का काम सौंपा जा रहा है तो उन्होंने उत्तर दिया कि गुजरात के सिक्का बंदरगाह में जहाज़-निर्माण की पेशकश दिग्विजय सीमेंट कंपनी ने की है. कंपनी ने अपने आवेदन में कहा है कि डेनमार्क के सहयोग से जहाज़-निर्माण पर २ करोड़ रुपया ख़र्च होगा जिस में ४४ लाख रुपये विदेशी पूँजी के रूप में देना होगा. यह कंपनी १,४०० टन वजन के स्टीमर बनायेगी जिन की भार-वहन की क्षमता धीरे-धीरे १५,००० टन तक पहुँच जायेगी. सिक्का में बंदरगाह स्थापित करने का दिग्विजय कंपनी का प्रस्ताव परिवहन मंत्रालय को भेज दिया गया है.

नेशनल शिपिंग बोर्ड १९५९ में अस्तित्व में आया था दुःख तो इस बात का है कि आयात जहाज़ों द्वारा अब भी केवल १५ प्रतिशत होता है. विदेशी पूँजी की कमी के कारण विदेशों से जहाज़ नहीं के बराबर ख़रीदे जा रहे हैं, बेशक पिछले दिनों रोमानिया से ४ जहाज़ ख़रीदने का निर्णय लिया गया है. रोमानिया से ख़रीदे जाने वाले जहाज़ों की भार क्षमता १४,००० टन है. एक प्रश्न के उत्तर में श्री महिदा ने बताया कि विदेशी कंपनियाँ भारतीय मज़दूरों को भरती करने में प्राथमिकता इसलिए देती हैं क्यों कि एक तो वे बहुत मेहनती होते हैं और दूसरे वे सस्ते और ईमानदार हैं. इस समय विदेशी कंपनियों के पास ३०,००० भारतीय मज़दूर हैं और ३५,००० मज़दूर अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे हैं. भारतीय जहाज़ों पर २५,००० मज़दूर काम करते हैं भारत के पास ३,००० मील तटवर्ती रेखा है और कुल तीन सवारी जहाज़ हैं.

जहाज़रानी के विकास के लिए भारत अब गंभीरता से विचार कर रहा है और बहुत संभव है ग़ैर-सरकारी क्षेत्रों को इस दिशा में बढ़ावा दिया जाये. फ़िज़ी के साथ सीधी रेखा स्थापित करने का भी विचार है. श्री महिदा ने कहा कि इस क्षेत्र में भारत और ईरान में निकटता की काफ़ी संभावना है और वह मई के अंत तक फ़ारस की खाड़ी का दौरा कर इस संभावित मेल मिलाप का जायज़ा लेंगे.

केनेथ कीटिंग : नया मूल्यांकन ?

राजनय

अमेरिकी राजनय का नया अध्याय

चेस्टर बोल्स शीघ्र ही भारत में अमेरिकी राजदूत के पद से अवकाश ग्रहण कर रहे हैं, और उन के स्थान पर न्यूयार्क कोर्ट आफ़ अपील्स के सह-न्यायाधीश और भूतपूर्व सेनेटर केनेथ बी. कीटिंग भारत आ रहे हैं. ६८ वर्षीय कीटिंग उसी परंपरा के अनुसार भारत में अमेरिकी राजदूत बन कर आ रहे हैं जिस के अनुसार अमेरिकी प्रशासन सदा से भारत को महत्व का स्थान समझता रहा है. वास्तव में जितने भी अमेरिकी राजदूत भारत आये हैं वह सब किसी न किसी दिशा में विशिष्ट व्यक्ति रहे हैं. कीटिंग १८ वर्ष तक कांग्रेस में रहे हैं. पहले वह हाउस आफ़ द रिप्रजनटेटिव के सदस्य थे और बाद में न्यूयार्क राज्य की ओर से सेनेट के सदस्य बन गये. कीटिंग के महत्व को इसी बात से आंका जा सकता है कि १९६४ में वह स्वर्गीय राबर्ट कैनेडी के प्रतिद्वंद्वी थे. कैनेडी से हारने के बाद उन्हें स्टेट कोर्ट आफ़ अपील्स में भारी बहुमत से न्यायाधीश चुना गया. कीटिंग को भारत भेजने में निक्सन प्रशासन का एक उद्देश्य यह भी रहा है कि वह भारत का बिल्कुल नये सिरे से मूल्यांकन चाहता है. संभवतः इसी लिए निकट पूर्व और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के सहायक सचिव के रूप में जोज़फ़ सीसको को नियुक्त किया गया है. सीसको और कीटिंग भारत और पूर्व के प्रति राष्ट्रपति निक्सन की नीतियों को कौन-सी दिशा देते हैं यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न होगा. वर्तमान अमेरिकी राजदूत चेस्टर बोल्स ने कीटिंग की नियुक्ति का स्वागत किया है. बोल्स अवकाश प्राप्त करने के बाद अपने घर चले जायेंगे जहाँ वह भारत और पूर्व के बारे में कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखने की योजना बना रहे हैं.

अस्पृश्यता

ताड़न के अधिकारी शंकराचार्य

तुलसीदास ने कविता लिखते हुए 'शूद्र' को ताड़ना का अधिकारी ठहराया था. लोकसभा और देश के प्रबुद्ध जनमत ने अस्पृश्यता-उपासक पुरी के शंकराचार्य को ताड़ना का अधिकारी ठहराया. जनसंघ के अध्यक्ष **अटल बिहारी वाजपेयी** ने शंकराचार्य के इस दावे को कि अस्पृश्यता शास्त्रसम्मत है चुनौती देते हुए कहा कि यदि ईश्वर भी अस्पृश्यता का समर्थन करेगा तो मैं उस की अवज्ञा करूँगा. आर्य समाज के प्रवक्ता और संसद् सदस्य **प्रकाशवीर शास्त्री** ने शंकराचार्य के वक्तव्य को शास्त्र-विरोधी बताया है. उन्होंने कहा कि शंकराचार्य अपने घातक विचारों के लिए शास्त्रों की आड़ ले रहे हैं अन्यथा हिंदू शास्त्रों में कहीं भी अस्पृश्यता का समर्थन नहीं किया गया है. संयुक्त समाजवादी पार्टी के नेता **मधु लिमये** ने कठोर शब्दों का इस्तेमाल करते हुए यह माँग की है कि पुरी के शंकराचार्य को गिरफ़्तार किया जाये और उन पर क़ानूनी कार्रवाई की जाये. हिंदी के ६ लेखकों **रघुवीर सहाय, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, राजेंद्र यादव, लक्ष्मीनारायण लाल, राजीव सक्सेना और श्रीकांत वर्मा** ने एक वक्तव्य जारी कर कहा कि शंकराचार्य ने जो कुछ कहा है वह न केवल संविधान-विरोधी बल्कि मनुष्यता-विरोधी है. शंकराचार्य का वक्तव्य इस बात का परिचायक है कि भारतीय समाज की बीमारी बहुत गहरी है और उसे केवल क़ानून के ज़रिये समाप्त नहीं किया जा सकता—यह अलग बात है कि अस्पृश्यता के संबंध में अब तक क़ानून का भी ठीक से इस्तेमाल नहीं किया गया है.

सीनाजोरी : ऐसा नहीं लगता कि क्रुद्ध जनमत का शंकराचार्य पर कोई असर पड़ा है. उन्होंने लोकसभा में हुई बहस पर टिप्पणी करते हुए कहा कि चाहे तो मुझे फाँसी दी जा सकती है मगर मैं अपने विचार बदल सकने में असमर्थ हूँ. मैं शास्त्र का विरोध नहीं कर सकता. शास्त्र का बार-बार हवाला देते हुए भी शंकराचार्य ने यह नहीं बताया कि किस शास्त्र में, किस जगह और किन शब्दों में अस्पृश्यता को उचित ठहराया गया है. दूसरे यह कि यदि हिंदू शास्त्रों में कहीं किसी कारण से अस्पृश्यता का विधान किया भी गया है तो उन शास्त्रों की एक आधुनिक समाज के संदर्भ में क्या संगति है ? शंकराचार्य ने एक बुनियादी बहस शुरू की है. भारत को एक जाति-मुक्त आधुनिक समाज की आवश्यकता है या कि जाति-आधारित द्वेष-प्रधान सामंती समाज की?

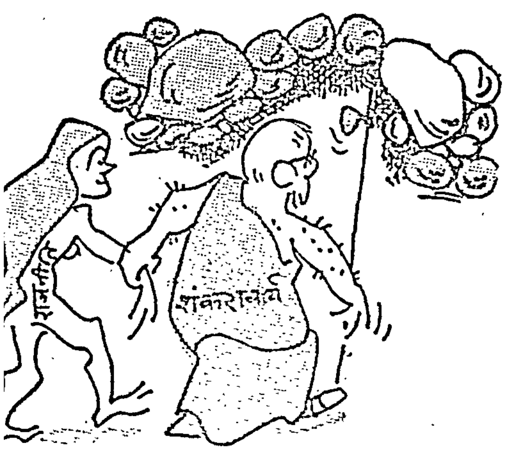

बहस : लोकसभा में इस विषय पर जो बहस हुई उस में समस्या के केवल क़ानूनी पहलुओं पर विचार किया गया और अस्पृश्यता के समर्थक शंकराचार्य के विरुद्ध कड़े शब्दों का प्रयोग किया गया. समस्या पर गहराई से विचार न कर शंकराचार्य के अपराध को कम कर दिया गया. अक्सर लोकसभा में बहस के बाद समस्या टाल दी जाती है. शंकराचार्य के वक्तव्य पर भी यही हुआ. गृहमंत्री यशवंत राव बलवंतराव चह्वाण ने यह कह कर कि वह इस संबंध में बिहार सरकार से परामर्श करेंगे, मुख्य प्रश्न को लगभग स्थगित कर दिया. सवाल यह नहीं था कि शंकराचार्य के विरुद्ध क़ानूनी कार्रवाई की जा सकती है या नहीं, बल्कि यह था कि बीस वर्षों के बावजूद वे क्या परिस्थितियाँ हैं जो कि शंकराचार्य को मनुष्य-विरोधी वक्तव्य देने की छूट देती हैं. अस्पृश्यता के विरुद्ध जनमत को जागृत करने के लिए क्या किया गया है, जाति-प्रथा पर आधारित समाज को बदलने के लिए क्या प्रयत्न किये गये हैं. शंकराचार्य का वक्तव्य बीमारी का कारण नहीं बल्कि उस का विस्फोट है. शंकराचार्य के वक्तव्य को पिछले दो वर्षों में देश भर में हरिजनों पर हुए अत्याचारों से पृथक् कर के नहीं देखा जा सकता.

क़ानून : लोकसभा में शंकराचार्य के विषैले वक्तव्य का प्रश्न कांग्रेस के **नरेंद्रकुमार साल्वे** तथा कुछ अन्य पार्टियों के प्रतिनिधियों ने ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के ज़रिये उठाया. बहस आरंभ करते हुए श्री साल्वे ने कहा कि इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं जहाँ धर्मगुरुओं ने कमज़ोरों और ग़रीबों पर अत्याचार किये हैं, उन्हें रौंदा है और संविधान के बावजूद आज देश में अस्पृश्यता पूर्ववत प्रचलित है. जनसंघ के **श्री सूरजभान** ने कहा कि शंकराचार्य ने न केवल राष्ट्रीय एकता को बल्कि स्वयं हिंदू धर्म को नुक़सान पहुँचाया है. उन्होंने सुझाव दिया कि क़ानून में इस तरह संशोधन किया जाना चाहिए कि जो धर्मगुरु हरिजनों और आदिवासियों के विरुद्ध ज़हर उगलते हैं उन्हें उन के पीठ से हटाया जा सके. **श्री शंकरानंद** ने सरकार को चुनौती दी कि सरकार शंकराचार्य को गिरफ़्तार करने में संकोच क्यों कर रही है ? अगर सरकार ने शंकराचार्य को दंड नहीं दिया तो जनता शंकराचार्य को ताड़ना देगी. कांग्रेस के **श्री तुलसीदास जाधव** ने भी क़ानूनी कार्रवाई की माँग करते हुए कहा कि शंकराचार्य का वक्तव्य सारे देश के लिए भयावह साबित हो सकता है. सदस्यों को उत्तर देते हुए गृहमंत्री ने कहा कि सरकार सदन की भावना का सम्मान करती है और वह अस्पृश्यता का प्रचार करने वालों के विरुद्ध अवश्य कार्रवाई करेगी. अगर आवश्यक हुआ तो वह वर्तमान कानून में संशोधन भी कर सकती है. अपने ज़हरीले विचारों के प्रचार के लिए धर्म-प्रतिष्ठानों का दुरुपयोग करने वाले धर्मगुरुओं के विषय में भी क़ानूनी कार्रवाई की जा सकती है.

कार्रवाई : लेकिन सभी राजनैतिक पार्टियों और प्रबुद्ध लोगों को इस तथ्य ने हैरानी में डाल दिया कि पुरी के शंकराचार्य के विरुद्ध न तो राज्य सरकार और न ही केंद्र सरकार ने अब तक कोई कार्रवाई की है. क़ानूनी कार्रवाई के अभाव में उग्र प्रतिक्रियाओं का सिलसिला जारी है. तमिलनाडु की समाज कल्याण मंत्री **श्रीमती सत्यवती मुथ्यु** ने कहा है कि अगर शंकराचार्य ने तमिलनाडु राज्य में प्रवेश किया तो उन्हें गिरफ़्तार कर लिया जायेगा. भूतपूर्व उद्योगमंत्री **दामोदर संजीवय्या** तथा अन्य हरिजन संसद् सदस्यों ने शंकराचार्य को गिरफ़्तार करने की माँग की है. जनसंघी संसद् सदस्य **ओमप्रकाश त्यागी** ने शंकराचार्य के वक्तव्य की कठोर शब्दों में निंदा करते हुए कहा है कि शंकराचार्य ने छुआछूत का समर्थन कर धर्म, राजनीति और इतिहास से अपनी अनभिज्ञता ज़ाहिर की है. वक्तव्यों के अलावा जगह-जगह शंकराचार्य का पुतला भी जलाया गया.

जहाँ तक विश्व हिंदू धर्म सम्मेलन का प्रश्न है उसने इस सारे कांड पर लगभग मौन रहना पसंद किया और शंकराचार्य के वक्तव्य की निंदा नहीं की गयी—दो-एक सदस्यों ने अपनी असहमति ज़रूर ज़ाहिर की. सम्मेलन में 'हिंदू कौन है' के प्रश्न पर विचार करते हुए 'हिंदू' की पुनर्परिभाषा की. इस परिभाषा के अनुसार हिंदू के लिए अखंड भारत के प्रति आस्था आवश्यक नहीं—हिंदू वह है जो हिंदू विधियों का पालन करता है और सनातन वैदिक धर्म की किसी भी शाखा में विश्वास रखता है.

प्रदेश

मध्यप्रदेश

नयी नीतियाँ, नयी अड़चनें

प्रगतिशील विधायक दल के सदस्यों को राज्य के कांग्रेसी मंत्रिमंडल में शामिल करने की अनुमति अंततः कांग्रेस उच्च कमान ने दे दी. इस प्रकरण से अलग, श्यामाचरण शुक्ल ने मुख्यमंत्री बनने के बाद नीति संबंधी जो घोषणाएँ की हैं, उन का आम तौर पर प्रदेश में स्वागत किया गया है. संविद शासन से त्रस्त जनता नये शासन के प्रति अधिक आशान्वित है.

विधानसभा के एक दिवसीय अधिवेशन में आम लगान माफ़ी, भूमि विकास कर और पथकर की समाप्ति की घोषणा के बाद नये कांग्रेसी शासन ने जूनियर कॉलेज-शिक्षा पद्धति को समाप्त करने का निर्णय किया है. मध्यप्रदेश में त्रिवर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम को रातोंरात समाप्त कर द्विवर्षीय पाठ्यक्रम पुनः स्थापित कर सभी उच्चतर माध्यमिक स्कूलों को जूनियर कॉलेजों में परिवर्तित करना संविद शासन की एक मोहम्मद तुगलकी सनक थी जिस ने शिक्षा के क्षेत्र में एक भयानक अराजकता ला दी थी. जिन विद्यालयों में हायर सेकेंडरी परीक्षा पाठ्यक्रम के लिए भी आवश्यक साधन, आवश्यक शिक्षक, आवश्यक स्थान और आवश्यक प्रयोगशालाएँ तक नहीं थीं, वहाँ एक कक्षा और जोड़ देना कहाँ की बुद्धिमानी थी ? पहले तो संविद ने थोड़ी बहुत अक्ल भी दिखायी वह यह कि सभी हायर सेकेंडरी स्कूलों को जूनियर कॉलिज नहीं बनाया बल्कि कुछ को उन्नत कर जूनियर कॉलेज बनाया व शेष को अवनत कर हाई स्कूल का दर्जा दे दिया. किंतु जब इस पर हो-हल्ला मचा, आंदोलन हुए तो *गोविंदनारायण* सिंह ने रातों-रात पुराने आदेश में संशोधन कर सभी को जूनियर कॉलेज बना दिया. इस से नयी गड़बड़ी शुरू हुई, नयी समस्याएँ खड़ी हुईं. लड़खड़ाती संविद को यह सब देखने की फुर्सत ही कहाँ थी. श्री शुक्ल ने इसे समाप्त कर सही दिशा में क़दम उठाया है और यह हर्ष की बात है कि जो छात्र इन जूनियर कॉलिजो के चक्कर में फँस गये, उन्हें हानि न उठानी पड़े, इस लिए केवल उन के लिए यह पाठ्यक्रम एक वर्ष जारी रखने की सुविधा दे दी गयी है.

संविद द्वारा आम लगान माफ़ी तथा उस के स्थान पर भूमि विकास कर लगाना एक धोखा था, जिस से न किसान संतुष्ट थे और न सरकारी अधिकारी ही संतुष्ट थे. इस से भ्रष्टाचार, लालफ़ीताशाही और पक्षपात के नये द्वार खुल रहे थे. संसोपा की ज़िद पर उसे दिया गया यह खिलौना नयी परेशानी पैदा कर रहा था. अतः इस के टूटने का अफ़सोस केवल उसे ही हुआ है और कोई इस पर आँसू नहीं बहा रहा है. इसी प्रकार पथकर, जो वास्तव में राज्य के कुछ पुलों के ऊपर से गुजरने का कर था, कोई विशेष आय न दे कर काफ़ी परेशानी कर रहा था—उस का जाना भी उचित ही था. इस मास से प्रारंभ हो रहे सिंहस्थ-यात्रियों पर लगाया गया कर भी समाप्त कर दिया गया है—यह भी एक अनावश्यक कर था. श्री शुक्ल ने नर्मदा जल विवाद पर अधिक समझौतावादी रुख अपनाने का संकेत भी दिया है.

किंतु श्यामाचरण शुक्ल के सामने इस समय सब से बड़ी समस्या मंत्रिमंडल गठन की है. संविद को गिराने का बहुत कुछ श्रेय उस प्रगतिशील विधायक दल को है, जिसे द्वारिकाप्रसाद मिश्र व श्यामाचरण शुक्ल दोनों ने मंत्रिमंडल में सहयोगी बनाने का वचन दिया था और वे उसे निभाना भी चाहते हैं. ऐसा लगता है कि कांग्रेस हाई कमान के कुछ सदस्य इस में बाधक बन रहे थे. श्यामाचरण शुक्ल का यह सोचना बिलकुल ठीक है कि प्रगतिशील विधायक दल के सदस्यों के सहयोग से जहाँ कांग्रेस खेमे में दल-बदल की प्रवृत्ति न पनप सकेगी, वहीं कांग्रेस का बहुमत प्रविद पर अंकुश रखेगा जिस के परिणामस्वरूप *कांग्रेस शासन को स्थायित्व प्राप्त होगा.*

नयी चाल : नयी दिल्ली से लौटने के बाद श्यामाचरण शुक्ल ने **दिनमान** के प्रतिनिधि से कहा कि उन्हें आशा है कि उच्च कमान उन्हें मंत्रिमंडल निर्माण में स्वाधीनता देगा—साथ ही उन्होंने यह शिकायत भी की कि प्रविद के साथ मिलजुल कर सरकार बनाने के प्रश्न पर कुछ 'दिलचस्पी रखने वाले क्षेत्रों' द्वारा भ्रम उत्पन्न कर दिया गया है. ये क्षेत्र कौन हैं *यह तो उन्होंने नहीं बताया* किंतु इशारा स्पष्ट रूप से राजमाता ग्वालियर और गोविंदनारायण सिंह की ओर था, जो दिल्ली में इस के विरुद्ध वातावरण तैयार कर रहे थे; वह प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से हाई कमांड को प्रभावित कर रहे थे.

पराजय से विक्षुब्ध राजमाता और उन के सलाहकार चुप नहीं हैं और पर्दे के पीछे खेल रहे हैं. राजमहल की कूटनीति और षड्यंत्र का उपयोग अब कांग्रेस हाई कमांड पर हो रहा है और लगता है कुछ लोग उस चक्कर में आ भी गये हैं. इधर राजमाता के जनसंघ में जाने की संभावना बढ़ गयी है. उन का झुकाव जनसंघ की ओर था ही और उन के सहयोगी उन से अब आवरण हटा देने को कह रहे हैं.

किंतु मज़े की बात यह है कि प्रदेश के जनसंघी नेता राजमाता का सहयोग तो चाहते हैं किंतु उन का जनसंघ में प्रवेश नहीं चाहते. उन्हें भय है कि राजमाता के जनसंघ में आने से वे जनसंघ पर छा जायेंगी और स्वयं उन का प्रभाव कम हो जायेगा.

इधर राजमाता के साथ जो दल-बदलू कांग्रेसी विधायक गोपाल शरण सिंह, ब्रजलाल वर्मा, धर्मपाल सिंह गुप्ता आदि बचे हैं, वे राजमाता से कह रहे हैं कि लोक सेवक दल का पुनर्गठन करें व उस का नेतृत्व करें. लोक सेवक दल की स्थिति इस समय शोचनीय है. कभी इस में सौ सदस्य थे, आज शायद तीस भी नहीं बचे. राजमाता इस की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे चुकी थीं, उपाध्यक्ष या उपनेता गोविंद नारायण सिंह कांग्रेस में चले गये, बचे हैं महासचिव ब्रजलाल वर्मा. भारतीय क्रांति दल का तो अस्तित्व ही विधानसभा में समाप्त हो गया. जनसंघ भी अपने घाव सहला रहा है. *राजमाता अब नयी चाल,* नये दाँव-पेंचों पर विचार कर रही हैं.

बिहार

आश्वासनों का दायरा

बिहार के मुख्यमंत्री सरदार हरिहर सिंह अपने एक दर्जन मंत्रियों में विभागों का बँटवारा एक महीने तक इस उम्मीद में टालते रहे कि संभव है कांग्रेस हाई कमांड मंत्रिमंडल के विस्तार की अनुमति उन्हें दे दे. कांग्रेस-अध्यक्ष निजलिंगप्पा और कांग्रेस हाई कमांड के अन्य सदस्यों की ढील-ढाल और टरकाने की नीति से वह आजिज़ आ चुके थे और अधैर्य को छुपाने की कोशिश करने पर भी वह ऐसा न कर पाये और बहुत बड़ी संख्या में विभाग रख कर कुछ महत्त्वपूर्ण और ग़ैर-महत्त्वपूर्ण विभागों को अपने मौजूदा मंत्रियों के बीच बाँट

दिया. रामगढ़ के राजा कामाख्या नारायण सिंह मंत्रिमंडल से पहले ही हट चुके हैं और अभी तक उन्होंने अपने स्थान पर नियुक्त करने के लिए कोई नाम मुख्यमंत्री को नहीं दिया है. कामाख्या नारायण सिंह के भाई राजा वसंत नारायण सिंह को राजस्व, जंगल और सिंचाई, झारखंड पार्टी के होरो को शिक्षा; शोषित दल के जगदेव प्रसाद को नदी घाटी परियोजना और आयोजना, केदार पांडेय को उद्योग; मोहम्मद हुसेन आज़ाद को परिवहन, जावर हुसेन को वित्तमंत्रालय सौंपे गये हैं. मुख्यमंत्री को उम्मीद है कि वह अपने मंत्रिमंडल का विस्तार बड़े पैमाने पर कर राज्य की अस्थिर राजनीति को स्थिर बनाने का प्रयास करेंगे.

गंगा पुल : मंत्रिमंडल के विस्तार में देरी हो रही है लेकिन मुख्यमंत्री ने केंद्र से यह अनुरोध कर कि पटना के पास २५ करोड़ रु० की लागत से तैयार होने वाला गंगा पुल चौथी आयोजना में शामिल किया जाये, उसे पशोपेश में डाल दिया है. उन का क़यास है कि जब कलकत्ता में हुगली पुल पर २२ करोड़ रुपए केंद्र से सहायता के रूप में मिल सकते हैं तब पटना में बनने वाले इस पुल के लिए केंद्र क्यों हिचकिचा रहा है. उन के पूर्ववर्ती ग़ैर-कांग्रेस पार्टी के मुख्यमंत्री महामायाप्रसाद सिन्हा, विंदेश्वरीप्रसाद मंडल और भोला पासवान शास्त्री ने इस पुल के बारे में लगातार केंद्र पर दबाव डाला लेकिन एक के बाद एक सरकारों के गिरते जाने से उन की कोशिश बीच में ही लटक कर रह गयीं. यदि उन में से कोई भी सरकार पूरे कार्यकाल तक बनी रहती तो गंगा पुल का मामला केंद्र और राज्य के संबंधों में विवाद का कारण बन सकता था. पिछले दिनों एक अखिल पार्टी सम्मेलन में बोलते हुए बिना पार्टी तमग़ों की परवाह किये सदस्यों ने कहा कि गंगा पुल के निर्माण में ढिलाई करने की राजनैतिक चाल चल केंद्र विहार के साथ सौतेली माँ का सा व्यवहार कर रहा है. यह धमकी दे दी गयी कि यदि इस मामले को जल्दी से निपटाया न गया तो राज्य भर में आंदोलन किये जायेंगे क्यों कि यह मुद्दा बहुत पुराना है और १९६० में गंगा पुल पर काम चालू करने की बात लगभग तय हो गयी थ. १९४८ में जब मोकामा पुल तैयार किया जा रहा था तब भी गंगा पुल का प्रश्न उठा था. केंद्र ने तब राज्य सरकार को इस बात का आश्वासन दिया था कि अगर राज्य सरकार पटना के पास गंगा पर पुल बनाना चाहे तो केंद्र उसे पूरी सहायता देगा. इसी प्रकार का आश्वासन जनवरी '६५ में आयोजना आयोग के तत्कालीन उपाध्यक्ष अशोक मेहता ने भी दिया था.

इस पुल के बन जाने से उत्तर और दक्षिण बिहार के बीच की दूरी सिमट जायेगी. इस से राज्य का आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक तौर पर विकास होगा. इस पुल के बन जाने से दरभंगा, मुज़फ़्फ़रपुर, चंपारन, सारण, पटना, गया और शाहाबाद के लोगों को बहुत फ़ायदा होगा क्यों कि राज्य की पूरी आबादी के ६० प्रतिशत लोग यहाँ बसते हैं. राजधानी के उत्तरी भागों के बीच संचार का साधन इस समय केवल स्टीमर या देहाती नावें हैं. स्टीमर से यह नदी पार करने में डेढ़ घंटा लगता है. इस पुल से बाढ़ तथा भूकंप के कारण एक छोर से दूसरे छोर आने-जाने में भी लोगों की दिक्कत दूर हो सकेगी.

मुख्यमंत्री हरिहर सिंह यदि पूरे कार्यकाल तक टिके रहे या उन्हें टिकने दिया गया और केंद्र सरकार से इस योजना के लिए सहायता पाने में सफल हो सके तो वह राज्य के लोगों की सद्भावनाएँ प्राप्त करने में बहुत आगे निकल जायेंगे.

पश्चिम बंगाल

द्वेष कम, क्लेश अधिक

पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री अजय मुखर्जी और उपमुख्यमंत्री ज्योति बसु उन मतभेदों को दूर करने के इरादे से १८ अप्रैल को नयी दिल्ली में श्रीमती इंदिरा गांधी से विचार-विमर्श करेंगे, जिन की वजह से प्रदेश में संयुक्त मोर्चा सरकार की स्थापना के बाद से केंद्र-राज्य संबंधों में तनाव आ गया है. रंगून जाते वक्त दमदम हवाई अड्डे पर पश्चिम बंगाल के नेताओं से अपनी मुलाक़ात में इस प्रस्ताव की पहल स्वयं प्रधानमंत्री ने की थी. हवाई अड्डे के वी. आई. पी. कक्ष में प्रधानमंत्री ने पश्चिम बंगाल के मंत्रियों से आधा घंटे तक गुप्त रूप से बातचीत की. जिस वक़्त यह गुप्त वार्त्ता चल रही थी, राज्यपाल धर्मवीर तथा अन्य विशिष्ट अधिकारी बगल के कमरे में बैठ कर प्रधानमंत्री के बाहर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे. बैठक शुरू होने से पूर्व प्रदेश के संसदीय मामला मंत्री जतिन चक्रवर्ती ने प्रधानमंत्री को पश्चिम बंगाल विधानसभा के उस प्रस्ताव की प्रतिलिपि भेंट की, जिस में राज्य विधान परिषद् को समाप्त करने की सिफ़ारिश की गयी है. श्री चक्रवर्ती ने प्रधानमंत्री से अनुरोध किया कि वह इस मामले पर केंद्र से स्वीकृति दिलाने में मदद दें. बताया जाता है कि प्रधानमंत्री ने कहा कि बहुत अधिक व्यस्त कार्यक्रमों की वजह से संसद् के चालू अधिवेशन (जो १६ मई तक चलेगा) में इस मसले पर विचार-विमर्श करने में दिक्कत पेश आयेगी. फिर भी वह अपनी तरफ़ से भरसक कोशिश करेंगी. लेकिन श्री चक्रवर्ती ने प्रधानमंत्री को यह तर्क दे कर आश्वस्त करने की कोशिश की कि राज्य विधान परिषद् की समाप्ति का मसला ज्यादा विवादास्पद नहीं है और लोकसभा में सिर्फ़ बहुमत के आधार पर ही यह प्रस्ताव मंजूर हो सकता है अतः वर्त्तमान अधिवेशन में ही यह मामला निपट सकता है. इस पर प्रधानमंत्री ने यथाशीघ्र यह मामला संसद् में पेश करने का आश्वासन दिया.

अन्य मामलों के साथ मुख्य रूप से पश्चिम बंगाल की शोचनीय आर्थिक स्थिति पर मुख्य मंत्री श्री मुखर्जी और उप-मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु ने प्रधानमंत्री से बातचीत की और केंद्र की दिक़्क़तों का हवाला देते हुए प्रधानमंत्री ने यह आश्वासन दिया कि केंद्र पश्चिम बंगाल की यथासंभव आर्थिक मदद करेगा और हर तरह से सहयोग बनाये रखेगा. केंद्रीय सुरक्षित पुलिस (रिज़र्व पुलिस) को राज्य में भेजने के मसले पर भी बातचीत की गयी. श्री बसु, जो गृह विभाग (पुलिस) के मंत्री भी हैं, ने

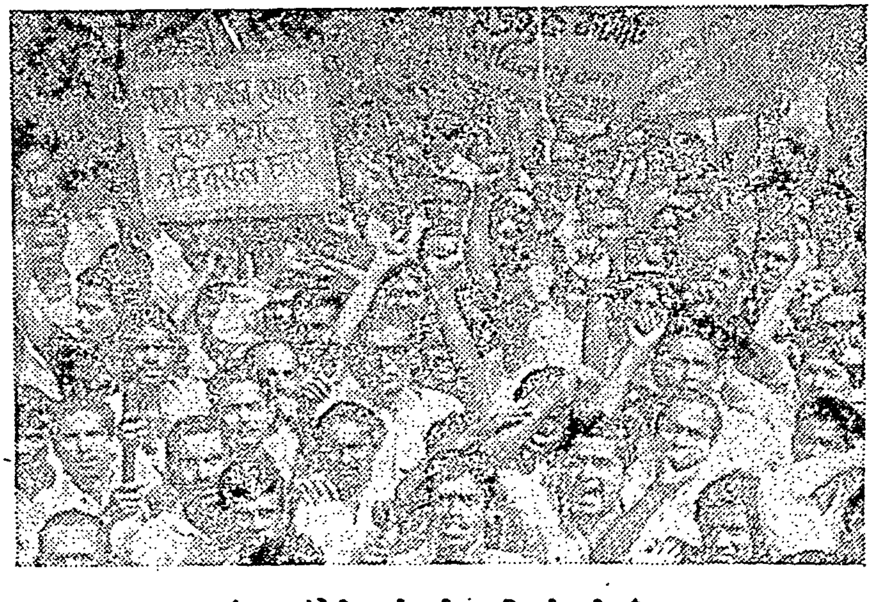

असंतुष्ट कांग्रेसी कार्यकर्त्ता : परिवर्त्तन की माँग

कहा कि केंद्रीय सुरक्षित पुलिस, जिस पर राज्य सरकार का कोई नियंत्रण नहीं, ने पहले से ही बहुत-सी पेचीदा समस्यायें उत्पन्न की हैं और भविष्य में भी वह अपने रुख से बाज़ नहीं आयेगी. प्रदेश में राज्य और केंद्रीय पुलिस की उपस्थिति वैमनस्य का ही द्योतक है. श्री वसु की इस गर्म दलील के बावजूद श्रीमती गांधी विचलित नहीं हुई और बैठक की समाप्ति के बाद उन्होंने काफ़ी सौहार्दपूर्ण रुख अपना कर कहा कि केंद्रीय सुरक्षित पुलिस ने जो भी 'जटिल समस्यायें' उत्पन्न की हैं, उन्हें दूर करने की कोशिश की जायेगी.

कांग्रेस का पुनर्गठन : तथाकथित असंतुष्ट गुट के समर्थन में कांग्रेस भवन के सामने कुछ कांग्रेसियों के हंगामाखेज़ प्रदर्शन के बावजूद बंगाल प्रदेश कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की हाल ही की एक बैठक में प्रदेश कांग्रेस को पुनर्गठित करने का निर्णय लिया गया. इस निर्णय के अनुसार प्रदेश कांग्रेस समिति के वर्तमान अध्यक्ष श्री पी. सी. चंदर अपने पद पर बने रहेंगे किंतु कार्यकारिणी समिति के अन्य २९ सदस्य त्यागपत्र दे देंगे जिस से कि कांग्रेस को नये सिरे से मज़बूत बनाने के लिए नवयुवकों को अवसर दिया जा सके. आगामी १७ अप्रैल को प्र. कां. समिति की बैठक में कार्यकारिणी के नये सदस्यों का चुनाव किया जायेगा.

आंध्रप्रदेश

जय हिंद : जय तेलंगाना

भूख हड़ताली छात्र : ख़ून की अंतिम बूंद तक लड़ने का संकल्प

इधर केंद्रीय नेता आये दिन यह बयान दे रहे हैं कि पृथक् तेलंगाना की माँग करने वालों का स्वप्न कभी पूरा नहीं होगा और उधर पृथक् तेलंगाना आंदोलन के समर्थक आये दिन प्रधानमंत्री को धमकी और चेतावनी भरे पत्र और ज्ञापन भेज रहे हैं. आंध्र प्रदेश के भूतपूर्व सूचना मंत्री कोंडा लक्ष्मण बापू जी ने हाल ही में प्रधानमंत्री को एक पत्र में लिखा कि राज्य में पृथक् तेलंगाना की माँग दिन-ब-दिन ज़ोर पकड़ती जा रही है और हर क्षेत्र के लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस आंदोलन का (पृथक् तेलंगाना आंदोलन) समर्थन कर रहे हैं. इतना ही नहीं उग्र प्रदर्शनकारियों की भीड़ और पुलिस की मुठभेड़ में कभी ३ व्यक्तियों के मरने तो कभी २५ के घायल होने के समाचार अब आये दिन सुनने को मिलते हैं.

यों पृथक् तेलंगाना सम्मेलन के बाद तेलंगाना क्षेत्र के छात्रों ने अपना शांतिपूर्ण आंदोलन प्रारंभ कर दिया. हैदराबाद-सिकंदराबाद के तमाम स्कूल-कॉलेजों के सामने अलग-अलग बस्तियों में छोटी-छोटी झोंपड़ियां डाल कर-जिन में गांधी जी की तस्वीरें टंगी हुई हैं, तीन-तीन या चार-चार की टोलियों में छात्र-छात्राएँ और नागरिक निरंतर २४ घंटे की भूख हड़ताल कर रहे हैं. कुछ छात्राओं ने तो **दिनमान** के संवाददाता को बताया कि उन्होंने ४८ घंटे तक की भूख हड़ताल की है. इन दोनों शहरों में १३० टेंट छात्रों के, ६० छात्राओं के और लगभग ८० नागरिकों के हैं. यही स्थिति क्षेत्र के अन्य ज़िलों के नगरों और गाँवों की है.

१६ मार्च को जिस समय आबिद रोड स्थित चौराहे पर श्री जवाहरलाल नेहरू की मूर्ति का राज्यपाल द्वारा अनावरण किया जा रहा था उस समय चारों ओर शिरस्त्राणधारी और पगड़ीधारी पुलिस का जाल सा बिछा हुआ था. संसोपा के नगर निगम सदस्य और विरोधी दल के नेता श्री देवेंद्रपुरी गोस्वामी ने यह कहते हुए इस सभा का त्याग किया कि श्री नेहरू जैसे प्रजातांत्रिक की प्रतिमा का अनावरण संगीनों की छाया में कर उनका घोर अपमान किया जा रहा है. उस समय 'जय तेलंगाना और जय हिंद' के नारों से आकाश गूंज रहा था. २२-२३ मार्च को वारंगल सम्मेलन में पृथक् तेलंगाना की माँग को दोहराया गया और जनता से अनुरोध किया गया कि कर आदि न दे कर सरकार से असहयोग किया जाये. राज्य की अशांत स्थिति को देखते हुए उस्मानिया विश्वविद्यालय के अंतर्गत सभी कॉलेज़ ९ जून तक के लिए और बंद कर दिये गये हैं. मंत्रियों का घेराव, काले झंडों का प्रदर्शन, भाषणकर्त्ता पर अंडे, टमाटर या चप्पलों की बौछार के समाचार आये दिन सुनने को मिलते हैं.

यों मुख्यमंत्री ने अपनी कुर्सी बचाने और तेलंगाना क्षेत्र के लोगों को अंशतः संतुष्ट करने के लिए कुछ क़दम भी उठाये हैं. ९ करोड़ की राशि तेलंगाना क्षेत्र के ९ ज़िलों में निर्माण कार्यों के लिए स्वीकृत की गयी और इस तरह लोगों के उग्र आंदोलन के बहाव का रुख बदलने के लिए तात्कालिक महत्व के कुछ वक्तव्य भी दिये हैं. लेकिन इस पर भी वातावरण काफ़ी तनावपूर्ण है. २८ मार्च को प्रातःकाल एक राजदूत नामक चलता-फिरता डाक-खाना जला दिया गया और उस्मानिया विश्वविद्यालय के इंजीनियरिंग कॉलेज के कुछ छात्रों ने विश्वविद्यालय स्थित जामिया उस्मानिया नामक स्टेशन को आग लगा दी: इस में दो छात्र (जो इंजीनियरिंग के अंतिम वर्ष के थे) प्रकाशकुमार और सर्वा रेडडी को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा. कुछ छात्रों ने अंगूठों में पिनें चुभो कर ख़ून के तिलक किये और शरीर में ख़ून की आख़िरी बूंद रहने तक पृथक् तेलंगाना प्राप्त करने का संकल्प किया.

पुलिस और सरकारी रवैये की वजह से अन्य राजनैतिक दलों का रुझान भी पृथक् तेलंगाना के समर्थन की ओर होता जा रहा है. संसोपा विधायक श्री बद्रीविशाल पित्ती ने २६ तारीख़ को पुलिस के रवैये की निंदा की और मुख्यमंत्री से जल्दी से जल्दी इस्तीफ़ा देने की माँग की.

छपते-छपते : तेलंगाना के विभिन्न भागों में हिंसात्मक आंदोलन की चिनगारी फैलती जा रही है. आगज़नी की कई घटनाएँ हुई ! तीन महीने के आंदोलन के दौरान पुलिस ने पहली बार बड़े पैमाने पर गिरफ्तारी की है. ६ अप्रैल की शाम तक तेलंगाना प्रजा समिति के २०४ नेता और कार्यकर्ता नज़रबंदी कानून या अपराध संहिता की धारा १५१ के अंतर्गत पकड़ कर जेल में डाल दिये गये. गिरफ्तार नेताओं में 'समिति' के अध्यक्ष टी. पुरुषोत्तम राव, उस के महासंत्री एस. व्यंकटरमण रेड्डी और छात्रों की संघर्ष समिति के महासचिव मल्लिकार्जुन के नाम उल्लेखनीय हैं.

राजस्थान

धरना समाप्त, संघर्ष जारी

राजस्थान की विरोधी पार्टियों ने विधानसभा से अपना धरना उठा लिया है, लेकिन कार्यवाही का बहिष्कार जारी है. जब सभी नेताओं और मुख्यमंत्री की अपील नाकाम सिद्ध हुई तब विधानसभा के अध्यक्ष एन. एन. आचार्य ने यह धमकी दी कि अगर विरोधी पार्टियों ने अपना धरना खत्म नहीं किया तो वह अध्यक्ष-पद से त्यागपत्र दे देंगे. अध्यक्ष की यह धमकी कारगर साबित हुई और विरोधी पार्टियों ने अपना धरना समाप्त कर दिया. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के नेता रामकिशन ने कहा कि अगर सरकार बेरी आयोग की सिफ़ारिशों को स्वीकार नहीं करती तो उस से पैदा होने वाले परिणामों के लिए वह खुद ज़िम्मेदार होगी. धरने से किसी का कोई अहित नहीं हो रहा है. हम केवल शांतिपूर्ण तरीक़े से ७ मार्च '६७ को जयपुर में पुलिस की गोलीकांड के खिलाफ़ अपना रोष प्रकट कर रहे हैं. हम ने सदन की परंपराओं को क़तई भंग नहीं किया है; अलबत्ता सरकार ने ज़रूर गोलियों के सहारे सत्ता हथियाई है.

असंवैधानिक धरना : श्री रामकिशन सोचते हैं कि श्री आचार्य द्वारा अपने पद से हटने के फ़ैसले के प्रति उन लोगों ने जितनी आस्था प्रकट की थी वह धमकी और राजनीति के चाल के फेर में ही पिट कर अपना अस्तित्व खो बैठी. इन्हीं राजनैतिक पैंतरों के कारण धरना खत्म करने के बाद विरोधी पार्टियों ने सदन की कार्यवाही में शामिल होना उचित नहीं समझा. लेकिन अध्यक्ष आचार्य ने यह कह कर कि धरना असंवैधानिक था और सदन को राजनैतिक गतिविधियों का अखाड़ा नहीं बनने दिया जायेगा विरोधी पार्टियों की आलोचना के कारण बने. उन्होंने कहा कि मैं अभी तक विरोधी पार्टियों के साथ उदारतापूर्ण रवैया अपनाता आ रहा हूँ और यदि इसे समाप्त नहीं किया जाता तो वाक़ई में उन्हें वहाँ से निकालने की हर संभव कोशिश करता. अध्यक्ष ने विरोधी पार्टियों को याद दिलाते हुए कहा कि कई राज्यों में वे भी सत्तारूढ़ हैं और यदि प्रतिपक्ष के रूप में कांग्रेस का भी उन के साथ इस तरह का व्यवहार हो तो वह कैसा महसूस करेंगे. इस बात का उत्तर प्रतिपक्ष ने चुप्पी साध कर दिया.

विधानसभा का अधिवेशन ३ अप्रैल को अनिश्चित काल के लिए समाप्त हो गया, यद्यपि वह ४ तारीख तक चलने वाला था. सदन के स्थगित होने पर सत्तारूढ़ प्रतिपक्ष पार्टियों में तनाव पहले की तरह ही विद्यमान रहा. कांग्रेस और विरोधी पार्टियों को नज़दीक लाने के सभी तरीक़े विफल हो गये. विरोधी पार्टियों ने अपनी शिकायतों का एक ज्ञापन तैयार कर राष्ट्रपति को पेश करने की योजना बनायी है. उन का विश्वास है कि राष्ट्रपति राज्य के नेताओं की तरह व्यवहार नहीं करेंगे. बेरी आयोग की सिफ़ारिशों को ले कर जो इतना बड़ा बवंडर खड़ा हुआ वह दुर्भाग्यपूर्ण ज़रूर है; लेकिन अगर उग्र रवैये अपनाये जाते रहेंगे तो देश की संसदीय परंपराओं का क्या हश्र होगा, इस का अंदाज़ा सहज ही में लगाया जा सकता है.

उत्तरप्रदेश

मज़दूर परिषद् और विटले कौंसिल

राज्य कर्मचारियों के हृदय-सम्राट् (?) पी० एन० सुकुल ने मध्यावधि चुनाव में मज़दूर परिषद् के मंच से लगभग १०० उम्मीदवारों को चुनाव में खड़ा किया था; लेकिन उन का दुर्भाग्य कि अधिसंख्य की ज़मानतें ज़ब्त हो गयीं. सभी उम्मीदवार हार गये. लगता है कि राज्य कर्मचारियों पर उन का जो व्यापक प्रभाव था वह धीरे-धीरे एकदम कम होता जा रहा है. इस बीच कर्मचारियों के नेता चंद्रभानु गुप्त और कमलापति त्रिपाठी (मुख्यमंत्री और उपमुख्यमंत्री) दोनों से कई बार मिले और कहा जाता है कि ये नेता मज़दूर परिषद् के कामों में संतुष्ट नहीं हैं. राज्यपाल के अभिभाषण में स्टाफ़ कौंसिल बनाये जाने की घोषणा की गयी थी. उस से राज्य कर्मचारी काफ़ी आशान्वित हुए हैं. मुख्यमंत्री श्री गुप्त ने भी विटले कौंसिल बनाये जाने की बात स्पष्ट कर दी. प्रकारांतर से सरकार का यह क़दम भी श्री सुकुल के प्रभाव को खत्म करने में सहायक हो सकता है.

विटले कौंसिल की नियुक्ति १९२०–२२ में इंग्लैंड के सरकारी दफ़्तरों के लिए हुई थी. वहाँ यह कौंसिल अब भी चलती है. इस में कर्मचारियों के सभी वर्गों की संख्या के अनुपात से प्रतिनिधियों का चुनाव होता है और परिषद् बन जाती है. ये परिषदें कर्मचारियों की विभिन्न समस्याओं पर विचार करती हैं—उन पर निर्णय लेती हैं. मतभेद की स्थिति में मामला केंद्रीय परिषद् को सौंप दिया जाता है. उस में भी अधिकारियों और कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व होता है. यदि किसी कारण से वहाँ भी मतभेद होता है तो उसे अनिवार्य पंच परिषद् को सौंप दिया जाता है. उस का फ़ैसला दोनों को मान्य होता है.

इस परिषद् की नियुक्ति की घोषणा को राज्य कर्मचारी अपनी विजय मान रहे हैं. इस की वजह से सरकार भी सीधी लड़ाई से बच जायेगी और मतभेद समाप्त होने की संभावनाएँ बढ़ जायेंगी. सन् ६० में पहली बार उस वक़्त के मज़दूर-नेता और आज के राज्य शासन के मंत्री नारायणदत्त तिवारी ने इस तरह की परिषद् के निर्माण की माँग की थी. राज्य कर्मचारियों ने सुझाव दिया है कि इन परिषदों का नाम विटले परिषद् न रख कर नारायणदत्त परिषद् या चंद्रभानु गुप्त परिषद्, या कार्यालय कांग्रेस अथवा इस से मिलताजुलता कोई नाम रखा जाये. संकेत इस बात के भी मिले हैं कि कर्मचारियों की माँगों : केंद्र और राज्य में महँगाई-भत्ते की समानता, दंडित कर्मचारियों की पुनः नियुक्ति और गंभीर आरोपों से अलग मुक़द्दमे वापस ले लिये जायें. संभव है कि सरकार इन तीनों माँगों को किसी सीमा तक स्वीकार कर ले.

चीन की चुनौती : पिछले दिनों गोरखपुर के नागरिकों ने ग़ैर-राजनीतिकों का एक पृथक मंच बना कर ज़िला परिषद् हॉल में डॉ० लोहिया की जयंती और शहीदे आज़म भगत सिंह का बलिदान दिवस मनाया. इस आयोजन में विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों, छात्रों, श्रमिक नेताओं, अध्यापकों, पत्रकारों आदि ने भाग लिया. 'एक पूरी क़ौम के नपुंसक हो जाने से तो हिंसा ही बेहतर है' और 'ज़िंदा क़ौमें इंतज़ार नहीं किया करतीं'—क्रमशः महात्मा गांधी और लोहिया के इन वाक्यों को इस अवसर से जोड़ते हुए आयोजकों ने 'चीन की चुनौती और हिंदुस्तान के नौजवान का जवाब' विषय को परिचर्चा के लिए प्रस्तुत किया. इस आयोजन के संयोजक सक्रिय समाजवादी और कवि कमलेश ने उन सभी लोगों का आह्वान किया था जो सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन के आकांक्षी हैं. इस अंचल के एक प्रतिनिधि पत्रकार रामद्वार त्रिपाठी की अध्यक्षता में हुए इस आयोजन में विषय-प्रवर्तन करते हुए इतिहास के युवा प्राध्यापक लालताप्रसाद पांडेय ने कहा कि भारत अपनी शक्ति भूल गया है, खो नहीं बैठा. भूली हुई शक्ति का हसास ज़रूरी है. कमलेश ने कहा कि जिस किसी भी देश में राज्य-क्रांति या सामाजिक क्रांति हुई है उस की पृष्ठभूमि में अकेले रोटी का सवाल नहीं था. क्रांतियों के पीछे राष्ट्रीय महत्त्व के दूसरे सवाल भी जुड़े थे. इस देश में भी रोटी के सवाल को सुलझाने के कार्यक्रमों में जो भी मतवैभिन्य हो लेकिन चीन ने जो चुनौती दी है उसे एकमत से स्वीकार करना पड़ेगा. अपनी योजना पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि इस युवक संगठन का उद्देश्य यह है कि आगामी २० अक्तूबर ६९ को संपूर्ण भारत के युवकों का एक सम्मेलन उत्तरप्रदेश के चमोली शहर में, जो सीमा का शहर है, किया जाये.

समारोह के बाद उपस्थित श्रोताओं-वक्ताओं में से बहुत से संसपा द्वारा आयोजित सहभोज में सम्मिलित हुए. सहभोज में तिरस्कृत-सम्मानित जातियों तथा हिंदू-मुस्लिम संप्रदाय के लगभग १६० लोगों ने भाग लिया और जाति-भेद मिटाने का संकल्प किया.

जलियाँवाला बाग़ : हत्याकांड की अर्द्ध शताब्दी

जलियाँवाला बाग़ का (खल) नायक ब्रिगेडियर जनरल रेजिनाल्ड एडवर्ड हैरी डायर १९२७ में इस संसार से चल बसे. भारत के बाहर अब शायद किसी को न उन की याद रही, न जलियाँवाला बाग़ कांड की. लेकिन इस वर्ष १३ अप्रैल को जलियाँवाला हत्याकांड के पूरे पचास वर्ष पूरे हो रहे हैं और यह एक अद्भुत संयोग है कि पचास साल पहले भी यह तिथि रविवार को पड़ी थी, जैसी इस बार पड़ रही है.

शताब्दियो और अर्द्ध शताब्दियों के युग में फिर तो उचित ही था कि देश उस घटना की एक बार फिर से याद करे—समारोह मना कर याद करे—जिस के कारण ब्रितानी राज का तख्ता थोड़ी देर के लिए डगमगा गया था. यद्यपि ब्रितानी साम्राज्यवादियो का दावा था कि डायर की क्रूर कार्रवाई के कारण न सिर्फ़ अमृतसर अथवा पंजाब या सारा भारत बल्कि संपूर्ण ब्रितानी राज की स्थिरता और दृढ़ हो गयी थी

इतिहास के पन्ने : १३ अप्रैल, १९१९ को जलियाँवाला बाग में लोग बैसाखी मनाने के लिए बड़ी धूमधाम से एकत्र हुए थे. बैसाखी पंजाबियो का एक महत्त्वपूर्ण त्यौहार है. इस दिन पंजाब का हर किसान अपनी साल भर की फ़सल काट कर व्यस्तता की घड़ियो से अपने-आप को मुक्त पाता है और उस मुक्ति का आनंद लेने के लिए वह नाचता है, गाता है और साथ ही कुदरत से दुआ माँगता है कि आने वाला वर्ष भी उस की खुशियों को बनाये रखे. इस के अलावा बैसाखी का एक महत्त्व और भी है. १६९९ में इस दिन सिखों के दसवें गुरु गोविंदसिंह ने खालसा का सृजन किया था. तब आनंदपुर में बैसाखी का एक बहुत बड़ा मेला लगा था. इस मेले में गुरु गोविंदसिंह ने म्यान से तलवार खींच कर यह कहा था कि आज मुझे ऐसे लोगों की ज़रूरत है जो अपने देश और अपने धर्म की रक्षा के लिए जान की बाज़ी लगा सकते हों. इसी अवसर पर उन्होंने 'अमृत' की प्रथा भी चलायी थी. जिन पहले पाँच लोगों को अमृत पिलाया गया उन्हें 'पंज प्यारे' कहा जाता है. बाद में गुरु ने इन पंज प्यारों से स्वयं अमृत ग्रहण किया. इस समारोह के संपन्न होने पर गुरु गोविंदसिंह ने कहा था "सवा लाख से एक लड़ाऊँ, तभी गोविंदसिंह नाम कहाऊँ.'

इस सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक त्रिकोण को धारण कर १३ अप्रैल, १९१९ में जलियाँवाला बाग़ में १०,००० लोग बैसाखी मनाने के लिए एकत्र हुए थे. राजनैतिक तौर से इस खुशी के पर्व से पहले कुछ ऐसी घटनाएँ घट चुकी थी जिन के कारण पंजाब में ही नही सारे भारत में रोष और विद्रोह की लहर फैल गयी थी. इस का कारण किलेंक्टन आयोग की रिपोर्ट थी, जिस में संवैधानिक सुधारों का लेखाजोखा किया गया था. इस रिपोर्ट के आधार पर रौलट बिल पेश किया गया, जिस के अनुसार क़ानून और व्यवस्था बनाये रखने के लिए कुछ दमनकारी धाराओं की व्यवस्था थी. पंजाब के ले० गवर्नर सर माइकल ओडायर ने इन आदेशों को लागू करने के लिए कोई कसर न उठा रखी. रौलट बिल को 'काला क़ानून' क़रार दिया गया और देश भर में सत्याग्रह और हड़ताल का आयोजन किया गया. अमृतसर के लोगों में कुछ अधिक उत्साह था, जिस के फलस्वरूप हत्याएँ, आगज़नी, लूटपाट की घटनाएँ भी हुईं. कुछ अंग्रेज़ लोगों के इस क्रोध का शिकार हुए. इन घटनाओं से अंग्रेज़ों को बहुत तकलीफ़ हुई और वह बदला लेने की सोचने लगे. १२ अप्रैल १९१९ को जनरल डायर ने सेना की बाग-डोर सँभाली. उन्होंने मन की बात मन में रख सार्वजनिक सभाओं और जुलूस निकालने आदि पर किसी प्रकार प्रतिबंध नहीं लगाया. लोग अंग्रेज़ की चाल से बेखबर जलियाँवाला बाग़ में बैसाखी का त्यौहार मना रहे थे. इस में हिंदू, सिख, मुसलमान सब लोग बढ़-चढ़ कर भाग ले रहे थे. शाम साढ़े चार बजे जनरल डायर की फ़ौज ने इन निहत्थे लोगों पर हमला कर दिया. ५० राइफ़लों और मशीनगनों का मुँह लोगों की तरफ़ था, जो निर्दयी डायर की तरह आग उगल रही थीं. लोगों में भगदड़ मच गयी. किसी प्रकार की सहानुभूति डायर ने प्रदर्शित नहीं की. गोलियों के १६५० चक्र छोड़े गये. इस में ३७९ लोग मारे गये और १२०० गंभीर रूप से घायल हुए. लेकिन एक ग़ैर-सरकारी सूत्र से पता चलता है कि मरने वालों की संख्या १,००० से

जलियाँवाला बाग़ के ऐतिहासिक चिह्न, जो डायर की बर्बरता की दास्ताँ कहते हैं, (१९१९ का चित्र)

कम नहीं थी. जलियाँवाला हत्याकांड की इस खबर से सारे देश में हाहाकार मच गया और युवा तबका बौखला उठा और उस के बाजू बदला लेने के लिए फड़फड़ाने लगे. १९४० में सुनाम के उधमसिंह ने लंदन में ओडायर को अपनी गोली का निशाना बना अपने दिल की आग बुझायी थी. आज उसी स्मृति में अपनी पुरानी कहानी के पृष्ठ उलटते हुए **दिनमान** के प्रतिनिधि अमृतसर की छोटी-सँकरी गलियों को अपनी आँखों से देखने के लिए पहुँचा.

अमृतसर की सड़कें और गलियाँ आज भी वैसी ही हैं जैसी पचास वर्ष पहले थीं—पतली और सँकरी, भूल-भुलैयों-सी, लोगों से भरी हुईं. प्रगति की ओर अग्रसर होते हुए कर्मठ सिख तथा हिंदू आज भी अपनी ऐतिहासिक विशिष्टता के साथ जीवन-यापन कर रहे हैं. प्राचीन तथा नवीन का, परंपरा तथा प्रगति का अद्भुत समन्वय यहाँ देखने को मिलेगा.

स्वर्ण मंदिर के ऊपर से होता हुआ सूरज जलियाँवाला बाग़ पर इस तरह अप्रैल को अपनी संध्या-किरणें बिखेर कर फिर डूबेगा और रात के आते ही इतिहास के पन्ने वातावरण में खड़खड़ाने लगेंगे. इन दिनों जो कोई भी अमृतसर जायेगा उस के कानों में संध्या के झुटपुटे में पक्षियों की चहचहाट के साथ अनगिनत गोलियों के चलने की आवाज़ भी आयेगी. घायलों की आर्त्त पुकारें सुनायी देंगी तथा एक जाँच कमिश्नर के सामने बड़ी उद्दंडता से कसे गये जनरल डायर के शब्द भी उभरेंगे—

"मैंने गोलियाँ चलवायीं और तब तक चलवाता रहा जब तक भीड़ छँट नहीं गयी. मेरा फ़र्ज़ था कि मैं ऐसी कार्रवाई करूँ जिस का नैतिक और व्यापक प्रभाव पड़े और इस नाते मैंने जो कुछ किया उतना तो कम से कम मुझे करना ही चाहिए था. यदि मेरे पास और ताक़त होती तो और अधिक लोग मरते. यह केवल भीड़ को हटाने की बात नहीं थी, बल्कि उन पर जो यहाँ थे और उन पर जो नहीं थे—उन सभी पर काफ़ी गहरा नैतिक प्रभाव डालने की बात थी !"

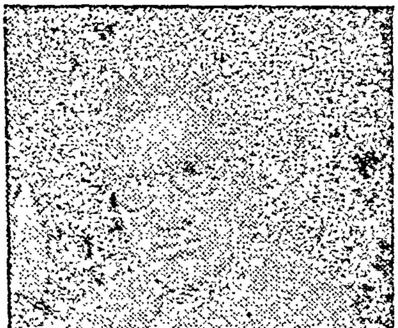

मानिकचंद नाज़िर : चश्मदीद गवाह

दिनमान के प्रतिनिधि ने अमृतसर की उन्हीं सँकरी गलियों से बाग़ में प्रवेश किया जिन से हो कर डायर की सेना ने १३ अप्रैल १९१९ को वहाँ प्रवेश किया था. साढ़े ७ फ़ुट अत्यंत संकीर्ण गली का इस समय जीर्णोद्धार किया जा रहा था. मज़दूर गली को पाट रहे थे. गली से हो कर मुख्य मैदान में आया जाता है, जो आठ एकड़ का है. मैदान आज भी चारों ओर उन्हीं मकानों से घिरा है जिन की दीवारों पर गोलियों के निशान पिछले पचास वर्षों का इतिहास कह रहे हैं. मैदान की सतह पहले काफ़ी नीची थी, लेकिन कुछेक वर्ष हुए, बाढ़ आने के कारण सारा जलियाँवाला बाग़ जलमग्न हो गया था, अतः इस की सतह अब कई फ़ुट ऊँची करनी पड़ी. पुरानी दीवारों की उचित देखभाल की ज़रूरत है और जलियाँवाला बाग़ स्मारक निधि ने इसी मैदान से लगे कई मकानों को खरीदने की योजना भी बनायी है. धनाभाव के कारण अभी तक केवल दो मकान ख़रीदे जा सके हैं. मौक़े का फ़ायदा उठा कर मकानों के मालिकों ने दाम भी ख़ूब बढ़ा दिये हैं. स्मारक निधि ने गोलियों के निशानों को काठ के चौखटों में घेर कर सही संकेत देने का प्रयास किया है.

दिनमान के प्रतिनिधि को पता चला कि अमृतसर में तीन ऐसे जीवित प्राणी रहते हैं जिन्होंने अपनी आँखों से १९१९ में जलियाँवाला बाग़ में लोगों को डायर की गोलियों का शिकार होते, उन्हें कराहते और अंततः उन्हें दम तोड़ते देखा था. प्रतिनिधि ने उन से एक विशेष भेंट की.

भेंट-वार्त्ता : अमृतसर के सरकारी प्रचार-विभाग से थोड़ी ही दूरी पर सामने की एक संकीर्ण गली में **दिनमान** के प्रतिनिधि ने डॉ० **संतराम सेठ** से मुलाक़ात की. गौर वर्ण वाले संतराम सेठ अब अपनी डॉक्टरी छोड़ स्वयं मरीज़ बन चुके हैं. वृद्धावस्था ने उन की काया

आसाराम : तारीख़ी ज़ख़्म

जलियाँवाला बाग़ की तरफ़ जाने वाली संकरी गलियाँ

को तोड़ने की भरपूर कोशिश की है, किंतु उन की मानसिक चेतना पुष्ट है.

उस समय अमृतसर का राजनैतिक वातावरण कैसा था ?

डॉ० संतराम : ६ अप्रैल को अमृतसर में दूसरी हड़ताल हुई. नेता थे डॉ० सत्यपाल और डॉ० सैफ़ुद्दीन किचलू. हड़ताल में कोई हंगामा नहीं हुआ. हिंदू-मुसलमान नेताओं की रहनुमाई में रौलट एक्ट के ख़िलाफ़ जनता ने आवाज़ उठायी. अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर माइकल्स इरविंग को ताज्जुब भी हुआ, परेशानी भी. १० अप्रैल को मि० इर्विंग ने दोनों नेताओं को अपने बँगले पर बातचीत के लिए बुलाया और डिफ़ेंस ऑफ़ इंडिया एक्ट के तहत हुक्म दिया कि वे फ़ौरन अमृतसर छोड़ कर बाहर चले जायें. उसी बँगले में मिलिटरी गाड़ी में बिठा कर उन्हें शहर से हटा दिया गया. लोगों में आग फैल गयी और कुछ हद तक लोग काबू से बाहर होने लगे. हॉल बाज़ार के पास जो पुल है उस पर भीड़ इकट्ठी हो गयी. कूचा कौड़ियावाला गली में मिस शेरवुड नाम की एक अंग्रेज़ औरत को कुछ लोगों ने पीटा और कुछ लोगों ने नेशनल बैंक के मैनेजर मि० स्टुवर्ट और उस के असिस्टेंट को जला कर मार डाला गया.

जलियाँवाला बाग़ के दिन यानी १३

अप्रैल को आपने क्या देखा और क्या किया ?

डॉ० संतराम : उस दिन हंसराज नाम का एक आदमी मेरे घर आया. उस के बारे में हमारा ख्याल है वह सी. आई. डी. का आदमी था और अंग्रेज़ों से मिला हुआ था. उसने कहा, आज जलियाँवाला बाग़ में साढे चार बजे एक जलसा है, जिस में कन्हैयालाल एडवोकेट की तक़रीर होगी. उसने और कई लोगों को इसी तरह घर-घर जा कर जलसे में शिरक़त करने की दावत दी.

इस से उस का क्या खास काम निकलता था ?

डॉ० संतराम : जनरल डायर अमृतसर में आ चुका था. वह ग़ुस्से में पागल था. उसने फ़ैसला किया था कि यहाँ के लोगों को अच्छा 'सबक़' सिखायेगा. मिस शेरवुड की पिटाई और अंग्रेज़ों के जलाये जाने से वह बेहद नाखुश था. लेकिन लोगों को सज़ा देने के लिए वह पतली गलियों और मकानों में तो जा नहीं सकता था. वह जानता था कि एक हजूम यकबारगी किसी बड़े मैदान में आ जाये, ताकि उस पर अच्छी तरह गोलियाँ चला सके.

आप फिर उस जल्से में शरीक हुए ?

डॉ० संतराम : नही. मैं जाने की सोच रहा था, कुछ देर हो गयी. इतने में मैंने देखा कि फ़ौज के बढ़ने की आवाज़ आयी. मैंने बाज़ार में जा कर देखा जनरल डायर करीब दो सौ सिपाहियो के साथ शहर से गुजर रहा था. उस के साथ दो गाड़ियाँ भी थी, जिन पर मशीनगनें लगी हुई थी. मैं फिर अपने घर लौट आया. थोडी देर बाद मालूम हुआ कि जलियाँवाला बाग़ में बेशुमार आदमी मारे गये हैं. डॉक्टर होने के नाते मुझ से जो कुछ हो सका किया. शहर में रात का कर्फ़्यू लगा हुआ था; लोग अंग्रेज़ों के डर से अस्पतालों में जाने से डर रहे थे. मैंने उस समय गर्म पानी उबाल कर अपना चाकू गर्म किया और जो भी मेरे पास लाया गया मैंने उस का ऑपरेशन कर गोलियाँ निकाली और पट्टियाँ बाँधी.

जनरल डायर ने जिन पर गोलियाँ चलायी, क्या वे किसी षड्यंत्र में भाग लेने वाले क्रांतिकारी थे? क्या उस दिन बैसाखी के अवसर पर आसपास के गाँवों से मेले के लिए आये हुए लोगों की भीड़ उस मजमे में शामिल नही थी? आसाराम जैसे उस ज़माने के टेलर मास्टर और आज के रफ़ूकार वहाँ किस तरह पहुँच गये कि उन के हाथ में तीन गोलियाँ एक साथ लगी और हाथ की हड्डी हमेशा के लिए टेढ़ी हो गयी ?

आसाराम जी, उस समय आप की उम्र क्या थी ?

आसाराम : मैं तो १९ साल का रहा हूँगा जी. मेरी नयी-नयी शादी हुई थी. मेरे दोस्तों ने कहा, यह क्या मीटिंग में जायेगा, यह तो बीवी के साथ मुहब्बत करेगा. मैंने कहा, देखो, चलता हूँ कि नही तुम्हारे साथ !

आप को मालूम था कि मीटिंग क्यों हो रही है ?

आसाराम : हाँ जी, मालूम क्यों नही था. गवर्नमेंट ने रौलट एकट बनाया था, जिस के मुताबिक हमें जन्म पर, शादी पर, मरती पर, यानी हर मद पर गवर्नमेंट को टैक्स देना होता. तो गाधी जी ने कहा, इस एक्ट की खिलाफ़त करो. इधर डायर ने हुक्म दे रखा था कि हम सारे शहर को तोप से उड़ा देंगे.

फिर आप को किस जगह गोली लगी ?

आसाराम : जलियाँवाला की समाधि के पास मेरे दाहिने हाथ में तीन गोलियाँ लगी. फिर मैं खुद ही घर आया. घर वाले मुझे देख कर बहुत परेशान हुए कि इस का इलाज कहाँ करायें.

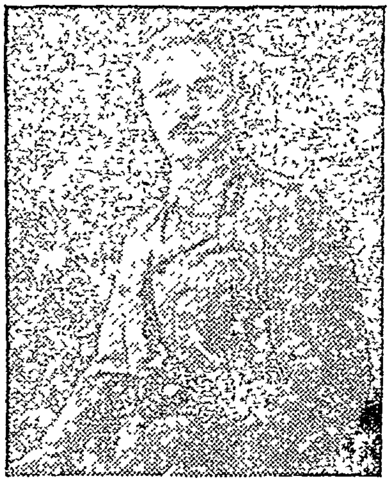

जनरल डायर : ख़ूनी हुक्म

गोलियाँ चलाने के पहले मजमे को डायर ने ख़बरदार भी किया या सीधे गोलियाँ चला दीं ?

आसाराम : सीधे गोलियाँ चला दीं, खबरदार क्या करता. मेरे पास एक और आदमी था मानिकचंद, उन के पैरों में गोली लगी थी.

गली दुग्गलाँ कूचा कौड़ियाँवाला में **मानिकचंद** जी मानिकचंद नाज़िर के नाम से जाने जाते हैं. इन की उम्र इस समय ७० के ऊपर है और इन की स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र है जैसे पिछले पचास साल केवल पिछले दिन की ही तरह उन के सामने हैं. आसाराम की तरह मानिकचंद जी रौलट एक्ट के अर्थो से अनभिज्ञ नही हैं सरकारी नाजिर होने के नाते ये हमेशा ही अच्छे दिन देखते आये हैं; कहने लगे—,

रामनवमी का पर्व था. नौ अप्रैल को बड़े धूमधाम से रामनवमी का जुलूस निकला और रास्ते भर में मुसलमानों ने जुलूस के हिंदुओं को अपने हाथों पानी पिलाया. हिंदू-मुसलमान और सिखों में ज़बर्दस्त भाईचारा था. अंग्रेज़ी की 'डिवाइड एंड रूल' पॉलिसी निकम्मी हो रही थी. ऐसे माहौल में डायर जैसे अंग्रेज़ों का परेशान हो जाना लाज़िमी था.

१३ अप्रैल को जलियाँवाला बाग़ में आप पर क्या बीती ?

मानिकचंद : मैं ख़ुद डायस पर मौजूद था. डॉ० किचलू की तसवीर कुर्सी पर रखी हुई थी. उन्ही की सदारत और ग़ैर-हाज़िरी में यह जलसा हो रहा था. ब्रजगोपीनाथ बेकल ने हिंदू-मुसलमान और सिख एकता पर एक बड़ी ही दिलकश नज़्म पढ़ी. इतने में ही एक हवाई जहाज डायस के ऊपर मँडराता आया और चक्कर लगाता हुआ निकल गया. लोगों में कुछ परेशानी फैली. इतने में ऐलान हुआ कि एक नज़्म और पढ़ी जा रही है. गुरुबख्शराय की भी नज़्म होने वाली थी. नज़्म पूरी नहीं हुई कि डायर की फ़ौज आयी और देखते ही देखते गोलियाँ बरसने लगी. दो गोलियाँ मेरी जाँघ में लगी और मैं डायस से नीचे गिर पड़ा. मेरे ऊपर से मुझे रौंद कर आदमी भाग रहे थे. जब रात हुई तो मैंने अपनी पगड़ी फाड़ कर पट्टी बाँधी और किसी तरह घर पहुँचा. मेरी गली में एक और मानिकचंद रहता था; वह मर चुका था. लेकिन जब तक मैं लौट कर घर न आया लोगों ने समझ लिया कि मैं ही मर गया था. रात को मेरी बूढ़ी माँ ने बड़ी हिम्मत की और डॉ० संतराम सेठ के पास जा कर उस ने मेरे जिस्म से गोलियाँ निकलवाने का इंतज़ाम किया.

आप की ही गली में कुछ लोगों ने मिस शेरवुड को पीटा था. डायर के हुक्म के अनुसार इस गली के रहने वालों को चार या पाँच दिन तक रेंग कर ही गली में आना-जाना पड़ता था और गली का नाम क्रॉलिंग लेन पड़ा. इसी गली के निवासी होने के नाते आप के मन पर मिस शेरवुड के पीटे जाने का क्या प्रभाव पड़ा था ?

मानिकचंद : उस समय भी और आज भी मेरा यही ख्याल था कि मिस शेरवुड के ऊपर हमला एक शर्मनाक वाक़या था, जिस की अमृतसर के हर समझदार आदमी ने निंदा की थी.

अंत में जलियाँवाला बाग़ शहीद स्मारक के सचिव श्री उपेंद्रनारायण मुखर्जी ने बताया कि ट्रस्ट में अभी इतना पर्याप्त धन नही आया है कि कोई शोध-संग्रहालय खोला जाये. लेकिन मेरी बडी इच्छा है कि जो लोग इस घटना से संबद्ध हैं और आज भी जीवित हैं उन के संस्मरणों को टेप रिकॉर्ड करने की व्यवस्था होनी चाहिए. टेप रिकॉर्ड यदि उपलब्ध हो जाये तो यह योजना भी कार्यान्वित हो जायेगी.

विदेश व्यापार

आयात-निर्यात की नयी नीति

विदेश व्यापार संबंधी विवरण संसद् में पेश करने के बाद पत्र-प्रतिनिधियों से अपनी वार्त्ता में विदेश व्यापार मंत्री श्री बलीराम भगत ने और सचिव श्री के. वी. लाल ने कहा कि चालू वित्तीय वर्ष के प्रथम १० महीनों में जहाँ एक ओर भारत के निर्यात-व्यापार में अभूतपूर्व वृद्धि (१,१३५ करोड़ रु.) हुई है, वहाँ आयात में भी पिछले वर्षों की तुलना में सर्वाधिक कटौती (१,५१९ रु.) हुई है. परिणामस्वरूप आयात और निर्यात का अंतर घट कर ३८४ करोड़ रुपये हो गया है. श्री लाल ने बताया कि पूरे १९६८-६९ वित्तीय वर्ष में यह अंतर और घट कर ४४० करोड़ से अधिक नहीं रह जायेगा जब कि १९६७-६८ में यह अंतर ७७५ करोड़ रुपये था. फिर भी श्री लाल का अनुमान है कि आने वाले वर्षों में भारत इसी अनुपात से अपने आयात व्यापार में कमी न कर सकेगा क्यों कि उद्योगों और निर्यात की वस्तुओं के और अधिक उत्पादन के लिए गंधक, फ़ॉस्फ़ेट और जटिल यंत्रों का बड़ी मात्रा में आयात आवश्यक है. उन का विचार है कि अगले वित्तीय वर्ष में, जो चौथी पंचवर्षीय योजना का प्रथम वर्ष है—आयात व्यय और बढ़ जायेगा. फिर भी आयात नीति की नमनीयता बरक़रार रहेगी—इस आधार पर कि आयात-व्यय की पूर्ति न केवल निर्यात से अर्जित अतिरिक्त आय से बल्कि विदेशी सहायता से भी की जायेगी.

घोषित नयी आयात नीति के अनुसार उन वस्तुओं की सूची में छह और वस्तुएँ जोड़ी गयी हैं, जिन का आयात राज्य व्यापार निगम द्वारा ही किया जाता है. ये छह चीज़ें हैं—नारियल की गिरी, चर्बी, सोयाबीन का तेल, नारियल का तेल, कॉर्क बनाने की छाल और सोडियम नाइट्रेट. इस के अलावा वास्तविक ख़रीदारों के लिए प्राकृतिक रबर, सल्फ़ा की दवाइयाँ, विटामिन और ऐंटीबायोटिक का आयात भी 'सामान्यतया' राज्य व्यापार निगम द्वारा ही किया जायेगा. कार्बन ब्लैक, अलमोनियम ऑक्साइड, फ़ॉस्फ़ोटिक एसिड, टिटानियम डाई-आक्साइड और सेलूलोज एसिटेट आदि कच्चा माल मँगाने के लिए वास्तविक ख़रीदारों की ओर से विदेशों को आदेश देने का अधिकार भी राज्य व्यापार निगम को ही सौंपा गया है. धातु खनिज व्यापार निगम को, जो बड़ी मात्रा में अलौह धातुओं का आयात करता है, वास्तविक ख़रीदारों के लिए लौह और अलौह दोनों प्रकार की धातुओं के आयात का आदेश देने का अधिकार दिया गया है. बहरहाल यद्यपि नयी नीति के परिणामों के बारे में अभी से कोई ठोस अंदाज़ा लगाना मुमकिन नहीं है, फिर भी यह कहा जा सकता है कि नयी नीति में बहुत कम रद्दोबदल हुआ है. अलबत्ता राज्य व्यापार निगम का यह दावा है कि वह अपनी इन नीतियों को भविष्य में प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करेगा.

नयी नीति के अनुसार ३१६ वस्तुओं पर नये सिरे से प्रतिबंध लगाया गया है और जिन १२९ वस्तुओं के आयात पर अब तक पूरी छूट थी, उन्हें भी अब वास्तविक ख़रीदारों के लिए सरकारी नियंत्रण के अंतर्गत ही मँगाया जा सकेगा. लेकिन इन प्रतिबंधों और नियंत्रणों के बावजूद कुल आयात में विशेष कटौती नहीं हो पायेगी क्यों कि इन वस्तुओं को अधिक मात्रा में नहीं मँगाया जाता है.

मौजूदा नीति के अनुसार उन औद्योगिक इकाइयों को ही मनचाहे स्रोतों से माल मँगाने की छूट दी जाती थी, जो अपने उत्पादन का १० प्रतिशत निर्यात करते थे. इस सुविधा से इस वर्ष १०० प्राथमिक क्षेत्र के औद्योगिक प्रतिष्ठान और २०० ग़ैर-प्राथमिक क्षेत्र के औद्योगिक-प्रतिष्ठान लाभान्वित हुए थे. नयी नीति में भी यह सुविधा बनी रहेगी और इस ध्येय की पूर्ति के लिए पर्याप्त विदेशी मुद्रा संचित की गयी है.

जहाँ तक आयात के मामले में सख़्ती बरतने का प्रश्न है, विदेश व्यापार सचिव श्री लाल ने स्वीकार किया कि सरकारी नियंत्रणों को अब तक कठोरता से लागू नहीं किया गया. १० प्राथमिक उद्योगों की जिन ३४१ इकाइयों को यह चेतावनी दी गयी थी कि यदि उन्होंने अपने उत्पादन का ५ प्रतिशत निर्यात नहीं किया तो उन्हें आयात की यथोचित सुविधा नहीं दी जायेगी, उन में से ३७ इकाइयों ने अपने उत्पादन का १० प्रतिशत या इस से अधिक निर्यात किया तथा २७ इकाइयों ने ५ प्रतिशत या इस से अधिक निर्यात किया. अन्य औद्योगिक इकाइयों को दी गयी आयात की सुविधा ख़त्म की जा सकती थी किंतु सरकार ने इस उम्मीद से उन के प्रति नर्मी बरती कि वे बाद में अपनी स्थिति सुधार लेंगे.

१० उद्योगों पर आगे भी नियंत्रण बरक़रार रखते हुए सरकार ने यह निर्णय किया है कि वह बटे हुए तार, इंजन नियंत्रक यंत्र, ईंधन, हवा और तेल के फ़िल्टर, ईंधन दागने वाले उपकरण और बाइसिकिल के बहुत-से कल-पुर्ज़ों के उत्पादक अन्य उद्योगों पर भी नियंत्रण लगायेगी. नयी नीति के अंतर्गत प्रतिष्ठित आयातकों के कोटे में भी कमी की गयी है जिस से अनुमानतः १ करोड़ २५ लाख रु. की बचत हो सकेगी. प्रतिष्ठित आयातकों को अधिकतर बाहर से मँगायी गयी मशीनों और औज़ारों के कल-पुर्ज़ों के आयात का ही कोटा दिया गया था. अब यह कोशिश की जा रही है कि इस आवश्यकता की पूर्ति भारत में बने कल-पुर्ज़ों से भी की जाये. ख़ास कर आयातित कच्चे माल के विकल्प को देश के भीतर ही नये क्षेत्रों में खोजने के लिए औद्योगिक विकास मंत्रालय ने एक उच्च सत्ताक समिति नियुक्त की है.

निर्यात व्यापार : प्रतिष्ठित निर्यात एजेंसियों को विदेशों में अधिक से अधिक माल भेजने की सुविधा प्रदान करने के लिए एक नयी योजना बनायी गयी है. इस योजना के अनुसार ग़ैर-परंपरागत वस्तुओं का निर्यात करने वाली पंजीयित निर्यात एजेंसियों को अग्रिम निर्यात लाइसेंस दिया जायेगा जिस से कि वे निर्यात की वस्तुओं के उत्पादकों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ज़रूरी सामान अपने पास पहले से ही जमा रख सकें. इस सुविधा से ख़ास कर छोटे उद्योगों के संचालक लाभान्वित होंगे. इस के अलावा कम से कम १२ महीने तक के लिए सामान पहुँचाने के अनुबंध-पत्र को पंजीयित करने की व्यवस्था की गयी है और पंजीयित निर्यात अनुबंधों को अवधि की समाप्ति तक निर्यात की तमाम उपलब्ध सुविधाएँ भी दी जायेंगी. विदेशी व्यापार विभाग में उन औद्योगिक प्रतिष्ठानों की समस्याओं के अध्ययन के लिए एक पृथक् इकाई गठित की गयी है, जो निर्यात बढ़ाने के लिए तो यथासंभव प्रयत्नशील हैं किंतु अतिरिक्त उत्पादन की सुविधा न मिल पाने या अन्य कारणों से इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं. इसी तरह उन औद्योगिक प्रतिष्ठानों को भी, जो अपने उत्पादन के लिए चाहते हुए भी विदेशों में बाज़ार नहीं ढूँढ पा रहे हैं, यथोचित आर्थिक और प्रशासनिक सुविधाएँ मुहय्या की जायेंगी, जिस से कि वे अपनी कोशिश में क़ामयाब हो सकें. यथोचित ऋण या आर्थिक सहायता प्राप्त करने में निर्यातकों ने अब तक जो कठिनाइयाँ अनुभव की हैं, उन पर पुनर्विचार के लिए रिज़र्व बैंक ने एक पृथक् विभाग गठित किया है. विदेश व्यापार मंत्री श्री भगत ने बताया कि अब रेल के डिब्बों और उपकरणों, ताज़े फल और सब्ज़ियों तथा कुछ रासायनिक पदार्थों के लिए विदेशों में बाज़ार खोजने तथा निर्यात की व्यवस्था करने की ओर राज्य व्यापार निगम विशेष रूप से ध्यान देगा. भारतीय निर्यातकों को अपने उत्पादन की विशेषताओं के बारे में विदेशी आयातकों का विश्वास प्राप्त करने में काफ़ी सफलता मिली है और अनुबंधों की शर्त के मुताबिक निश्चित समय पर सामान पहुँचाने की भी सतर्कता बरती गयी है. लेकिन इस मामले में कुछ-व्यापारियों की लापरवाही से उन के सहकर्मियों को भी नुक़सान पहुँचा है. अतः अब यह फ़ैसला किया गया है कि ऐसे ग़ैर-ज़िम्मेदार व्यापारियों को निर्यात-वृद्धि योजना के अंतर्गत मिलने वाली आयात सुविधाओं से वंचित रखा जायेगा.

खेल और खिलाड़ी

बैठक के बाद बैठक : अनिर्णय के बाद अनिर्णय

"यह कोई नहीं जानता कि सी. के. नायडू आंध्र के थे, पर इतना सभी जानते थे कि वह खेल-जगत् की एक महान् हस्ती थे." ये शब्द केंद्रीय शिक्षा और युवासमाज मंत्री डॉ. वी. के. आर. वी. राव के हैं जो उन्होंने ३१ मार्च को नयी दिल्ली में हुई अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद् की ५६वीं बैठक में कहे. परिषद् के नये अध्यक्ष रामनिवास मिर्धा की अध्यक्षता में हुई इस बैठक में डॉ. राव ने मुख्यतः इस बात पर बल दिया कि खेल-कूद के माध्यम से हम राष्ट्रीय एकता की भावना को बलवती बना सकते हैं. उन्होंने कहा कि यों तो हमारे देश में बहुत-सी समस्याएँ हैं मगर खेल-कूद के माध्यम से हम राष्ट्रीय एकता की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं. खेल-कूद में जाति, रंग, धर्म या प्रांतीयता के आधार पर खिलाड़ियों में कोई भेद-भाव नहीं किया जा सकता इस लिए मैं चाहता हूँ कि यह खेल परिषद् कुछ ऐसी योजनाएँ बनाये जिन से राष्ट्रीय एकता की दिशा में महत्त्वपूर्ण उपलब्धि प्राप्त की जा सके.

ऑस्ट्रेलियाई दौरा : *अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद्* की इस दो दिवसीय बैठक में मुख्यतः इस वर्ष के अंत में भारत का दौरा करने वाली ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेट टीम के बारे में विचार किया गया. मगर *'ऑस्ट्रेलिया की टीम भारत आयेगी भी या नहीं ?'* इस प्रश्न का 'हाँ' या 'न' में उत्तर देने की स्थिति में फ़िलहाल कोई नहीं है; न खेल-समीक्षक, न खेल-परिषद् का कोई सदस्य और न अध्यक्ष ही. अब तक स्थिति कुल मिला कर अनिर्णय की है यानी पहले दिन की बैठक के बाद जारी किये गये इस वक्तव्य के आगे, कि इस सर्दियों में भारत का दौरा करने वाली ऑस्ट्रेलिया की क्रिकेट टीम भारत का दौरा कर सकती है, फिर 'लेकिन' लगा दिया गया. लेकिन से अब भी छुटकारा नहीं मिला और कहा गया कि उसे केवल पिछली बार के दौरे की शर्तों के आधार पर ही यह दौरा करने की अनुमति दी जायेगी. यहाँ यह बता देना उचित होगा कि ऑस्ट्रेलिया के क्रिकेट अधिकारियों ने पाँच टेस्ट और चार साधारण मैचों के लिए कम से कम ३५,००० पौंड धनराशि की गारंटी माँगी है. पिछले दौरे में ऑस्ट्रेलिया ने भारत में केवल तीन टेस्ट खेले थे. परिषद् का विचार *था कि हर बार विदेशी टीमों की शर्तें मानना* कोई ज्यादा समझदारी की बात नहीं है. हमें यह भी विचार करना होगा कि जब भारतीय टीम विदेश जाती है तो उसे इन विदेशी टीमों की तुलना में क्या दिया जाता है और यदि कम दिया जाता है तो क्यों ?

दूसरे दिन : परिषद् की इस दो दिवसीय बैठक में निर्णय कम लिये गये और मतभेद ज्यादा पैदा किये गये. दूसरे दिन की बैठक में **दिनमान** के प्रतिनिधि ने परिषद् के अध्यक्ष का ध्यान इस बात की ओर भी दिलाया कि यह अपने आप में कितने दुःखद आश्चर्य की बात है कि भारत में खेल-कूद संबंधी कोई पत्रिका नहीं है. हाँ में हाँ मिलाते हुए उन्होंने कहा कि कुछ समय पहले तक अंग्रेज़ी में एक खेल-कूद पत्रिका 'स्पोर्ट्स एंड पास टाइम' निकलती थी वह भी बंद हो गयी. फिर कुछ अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए वह बोले कि अब हमारे यहाँ फ़िल्मी पत्रिकाएँ निकालने का एक रिवाज़-सा हो गया है. क्यों नहीं बड़े-बड़े समाचारपत्र उद्योग (यों उन का इशारा टाइम्स आफ़ इंडिया प्रकाशन और हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन की ओर था) एक खेल-कूद की पत्रिका निकालते. इस पर **दिनमान** के प्रतिनिधि ने उन से कहा कि भारत सरकार जब इतनी पत्र-पत्रिकाएँ निकालती है, जिन में *अधिकांश का कोई उपयोग ही नहीं* होता, तो क्यों नहीं एक खेल-कूद की पत्रिका भी निकालती है. इस पर खेल-परिषद् के नये अध्यक्ष थोड़े मुस्कराये मानो मन ही मन बिना *कुछ कहे यह कह गये कि हमारा (खिलाड़ियों* और खेल-प्रेमियों का) भला इसी में है कि ऐसी पत्रिका किसी बड़े समाचारपत्र उद्योग संस्थान से निकले, भारत सरकार से नहीं.

बात घूम फिर कर फिर ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेट टीम के भारत के दौरे पर आ गयी. उन्होंने कहा कि १९६७ में जब भारतीय टीम ने ऑस्ट्रेलिया का दौरा किया था तब हमें कुल ८०० पौंड का लाभ हुआ था और अब ऑस्ट्रेलिया वाले भारत के दौरे के लिए लगभग ९ लाख रुपये विदेशी मुद्रा के रूप में माँग रहे हैं. उन्होंने कहा कि इस के लिए एक विशेष उप-समिति की नियुक्ति की गयी है जो कि क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड के अधिकारियों से विचार-विमर्श करने के बाद अपनी सिफ़ारिशें सरकार को भेजेगी..

उन्होंने कहा कि ११० एकड़ भूमि में एक खेल-गाँव के निर्माण की योजना को प्राथमिकता दी जा रही है और इस के लिए चौथी पँच वर्षीय योजना में ७५ लाख रुपये की स्वीकृति प्रदान की गयी है. खेल-परिषद् ने इस के लिए केंद्रीय लोक-कर्म विभाग के कुछ अधिकारियों से बातचीत भी की है कि वह अपने कुछ बड़े निर्माण-कार्य अधिकारियों को मैक्सिको और तोक्यो भेजें जो वहाँ के खेल-गाँव का अध्ययन करें.

टामस कप : अध्यक्ष महोदय ने कहा कि उन्होंने भारतीय बैडमिंटन एसोसिएशन की उस माँग को भी अस्वीकार कर दिया है जिस में

पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री अजय मुखर्जी कानहोजी आंग्रे का एक मॉडल जॉर्ज ड्यूक को भेंट करते हुए : (बायें से दायें) अजय मुखर्जी, ड्यूक, पिनाकी, महापौर जी. सी. डे. और एस. के. आचार्य

उस ने भारत द्वारा टामस कप में भाग लेने की अनुमति माँगी थी. उन्होंने कहा कि बैडमिंटन एसोसिएशन ने ५०,९५५ रुपये के अनुदान की माँग की थी जिस में ५,००० रुपये की विदेशी मुद्रा भी शामिल है. जब उन का ध्यान इस बात की ओर दिलाया गया कि टामस कप के पहले राउंड का आयोजन भारत में ही होने वाला है तो उन्होंने कहा कि बैडमिंटन एसोसिएशन ने अपने प्रस्ताव में इस की चर्चा ही नहीं की. उन्होंने कहा कि भारतीय बैडमिंटन एसोसिएशन का गांधी शताब्दी के अवसर पर भारत में एक अंतरराष्ट्रीय बैडमिंटन प्रतियोगिता के आयोजन का प्रस्ताव भी अस्वीकार कर दिया गया है.

आलोचना और आलोचना : खेल-कूद परिषद् की बैठक समाप्त हो जाने के बाद परिषद् के प्रस्तावों पर अच्छी खासी टीका-टिप्पणी शुरू हो गयी. परिषद् द्वारा मर्डेका फ़ुटबाल प्रतियोगिता में भारत के भाग न लेने के फ़ैसले (परिषद् ने कहा था कि भारतीय फ़ुटबाल टीम को अगली मर्डेका फ़ुटबाल प्रतियोगिता में भाग लेने की तब तक अनुमति नहीं दी जायेगी जब तक कि खिलाड़ियों का चुनाव और प्रदर्शन संतोषजनक नहीं होगा) की आलोचना करते हुए अखिल भारतीय फ़ुटबाल संघ के सचिव के. जियाउद्दीन ने भारत सरकार और विभिन्न भारतीय खेल-परिषदों से अपील की कि भारतीय खिलाड़ियों को विदेशों में अनुभव प्राप्त करने का यह एक अच्छा अवसर मिल रहा है और फिर उस पर कोई खर्चा भी नहीं, ऐसी स्थिति में उसे इस अवसर से क्यों वंचित किया जा रहा है. उन्होंने कहा—'विभिन्न खेलसंघों की स्वायत्तता और उन के आंतरिक मामलों में यह एक प्रकार का अनावश्यक हस्तक्षेप है.' यह बात मेरी समझ से परे लगती है कि अखिल भारतीय खेल-परिषद् के पास ऐसी कौन-सी कसौटी है जिस पर वह भारतीय फ़ुटबाल संघ द्वारा चुने गये खिलाड़ियों को परखेगी. और फिर इस बात की क्या गारंटी है कि अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद् भारतीय फ़ुटबाल संघ से बेहतर काम करेगी.

आरोप-प्रत्यारोप : इस के बाद आरोप-प्रत्यारोप का एक सिलसिला शुरू हो गया. और फिर खेल-परिषद् के अध्यक्ष राम निवास मिर्धा ने आत्म-स्पष्टीकरण के उद्देश्य से एक और बयान जारी किया जिस में उन्होंने कहा कि जियाउद्दीन का बयान एकदम बेमौके और बेमानी है. उन्होंने परिषद की सिफ़ारिशों को फिर से दोहराया जिस में कहा गया था—'परिषद् अगस्त १९६९ में होने वाली मर्डेका प्रतियोगिता में भारतीय टीम के भाग लेने की स्वीकृति देती है बशर्ते कि भारतीय फ़ुटबाल संघ उस के लिए संतोषजनक ढंग से व्यवस्था और टीम का चुनाव करे.'

इस प्रकार हाल ही में हुई खेल-परिषद् की बैठक में कुछ इस प्रकार के निर्णय लिये गये जो निर्णय के बाद भी अनिर्णय ही रहे. कोई ठोस बात सामने नहीं आयी. खेल-कूद संबंधी लगभग सभी समस्याएँ भारत की अन्य राजनैतिक समस्याओं की ही तरह फिर टाल दी गयीं. लेकिन टालने से कोई भी समस्या हल नहीं होती, यह बात केंद्रीय नेताओं को और भारतीय खेल-अधिकारियों को अच्छी तरह से जान लेनी चाहिए.

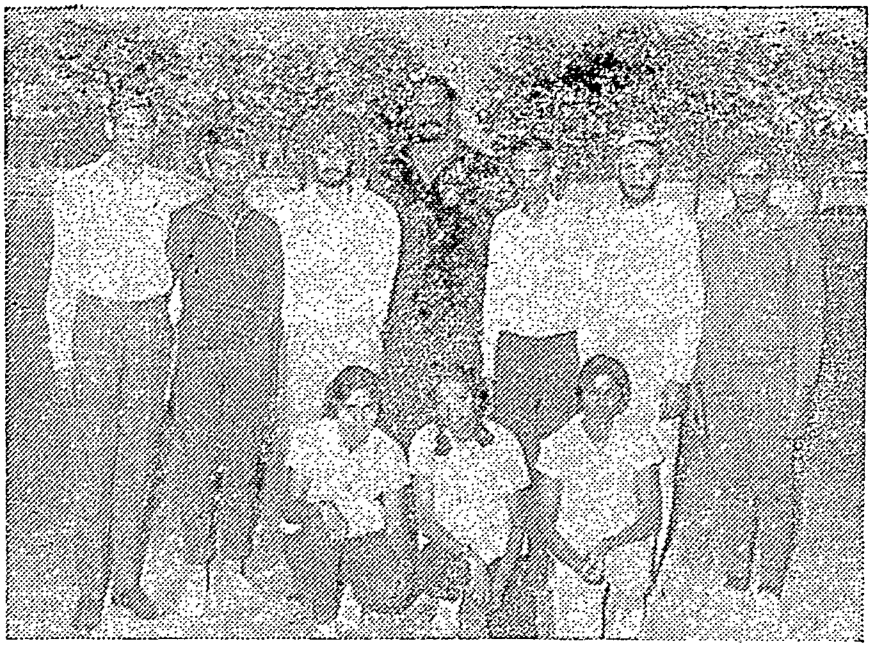

कोलंबो में होने वाले खेलों में भाग लेने वाली भारतीय टीम के सदस्य : (बायें से दायें) भीमसिंह, अब्दुल हसन, जे. एस. सिंधू (मैनेजर), जोगिंदरसिंह, सेक्योरिया, लाभसिंह, बेबी थामस और खिलाड़िनें हैं वी. मेरी, एल. गोमेज और के. रोशमा

एथलेटिक

चुनाव की चिंता

जब तक यह अंक पाठकों के पास पहुँचेगा तब तक कोलंबो में हो रही एथलेटिक प्रतियोगिता के परिणाम भी आ चुके होंगे. कोलंबो में ७ अप्रैल से ९ अप्रैल तक होने वाली एथलेटिक प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए जिन भारतीय एथलीटों को चुना गया उन के नाम हैं : भीम सिंह, अब्दुल हसन, जोगिंदर सिंह, सेक्योरिया, लाभसिंह, बेबी थामस और गुरदीप सिंह और खिलाड़िनें हैं वी. मेरी, एल. गोमेज, के. रोशमा.

जहाँ तक एथलेटिक का सवाल है हमें आज तक ओलिंपिक खेलों में कोई भी पदक प्राप्त नहीं हुआ मगर एशियाई खेलों या राष्ट्रकुल खेलों में हमें जरूर सफलता मिलती रही. अगले वर्ष (१९७० में) राष्ट्रकुल प्रतियोगिताएँ और छठी एशियाई प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए अच्छी भारतीय टीम तैयार करने में भारतीय एमेच्योर एथलेटिक संघ कितना सक्रिय है इस बात का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि हाल ही में भारतीय एथलेटिक संघ ने देश के कोने-कोने से १२१ एथलीटों (जिन में २८ खिलाड़िनें भी शामिल हैं) को चुनाव के प्रारंभिक प्रशिक्षण शिविर के लिए आमंत्रित किया है. एथलेटिक संघ के सचिव एम. एल. जादम ने कहा है कि एथलेटिक संघ भारत में उपलब्ध होनहार खिलाड़ियों को उचित ढंग से प्रशिक्षित करने और प्रतियोगिताओं में भेजने से पूर्व उन की पूरी तैयारी कराने में कोई कोर-कसर बाक़ी नहीं छोड़ेगा. जिन १२१ एथलीटों को प्रारंभिक प्रशिक्षण के लिए चुना गया है उन्हें राष्ट्रीय एथलेटिक प्रशिक्षक केनी बोसन की देख-रेख में प्रशिक्षित किया जायेगा.

२० अप्रैल को भारतीय एमेच्योर एथलेटिक संघ की नयी दिल्ली में बैठक होगी जिस में कुछ अन्य प्रशिक्षकों का चुनाव भी किया जायेगा जो प्रशिक्षण काल के दौरान केनी बोसन की सहायता करेंगे. इसी बैठक में विभिन्न प्रशिक्षण शिविरों के लिए स्थान और समय का भी निश्चय किया जायेगा.

संक्षिप्त समाचार

भारोत्तोलन : भारोत्तोलन के क्षेत्र में दिल्ली के ३५ वर्षीय बलबीर सिंह भाटिया ने काफ़ी ख्याति प्राप्त कर ली है. दिल्ली के कम्युनिटी हॉल में आयोजित दिल्ली भारोत्तोलन प्रतियोगिता के दौरान उन्होंने हैवीवेट वर्ग में जो दो नये राष्ट्रीय कीर्तिमान स्थापित किये वे थे ३१० पौंड (प्रेस) और ९१० पौंड (कुल जोड़). उन का पिछला रिकार्ड ३०३ (प्रेस) और ९०५ पौंड (कुल जोड़) था. इसी अवसर पर टी. के. पाल को सबे और गठे शरीर पर १९६८-६९ का 'मिस्टर दिल्ली' चुना गया.

रूस : उलझते समीकरण

१९१७ की क्रांति के बाद रूस ने एक नया रास्ता अपनाया और वह अनेकानेक कठिनाइयों को पार करते हुए आज विश्व का एक महान् देश बन गया है. अपनी इस लंबी यात्रा के दौरान उस ने अनेक उतार-चढ़ाव देखे, किंतु अपना रास्ता नहीं छोड़ा. हाँ, उस ने अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उस रास्ते को अपने ढंग से सुधारा अवश्य. इस प्रक्रिया में उस के किसी ज़माने के मित्र—पश्चिमी देश—आज उस के प्रबलतम प्रतिद्वंद्वी बन गये और उस का अपना भाई—चीन—बाग़ी बन बैठा. उस के घर में भी काफ़ी उथल-पुथल हुई, हो रही है. एक दलीय लोकतंत्र होने के बावजूद रूसी नेतृत्व पर संकट आये हैं और अभी संकट बना हुआ है. कभी चेकोस्लोवाकिया की समस्या इस संकट को उभार देती है तो कभी उसूरी नदी के तट पर चीन से हुई झड़पें इसे जीवंत कर देती हैं. एशिया और अफ़्रीका में प्रभाव बढ़ाने का प्रश्न, पूर्वी यूरोप में प्रभाव बनाये रखने की समस्या, चीन और अमेरिका जैसे दो प्रबल प्रतिद्वंद्वियों का कारगर ढंग से सामना करने का मसला, वीएतनाम-समस्या का सम्मानजनक समाधान खोजने का प्रयास और फिर घर में तातारों की समस्या, स्तालिन को ले कर बुद्धिजीवियों का आक्रोश आदि अनेक ऐसे प्रश्न हैं जो रूसी नेताओं के लिए सिरदर्द बने हुए हैं. विश्व में कौन अपना और कौन पराया है, इस की पहचान करने के साथ ही वे इस गुत्थी में भी उलझे हुए हैं कि उन के अपने बीच कौन अपना है और कौन पराया है.

गड़े मुर्दे : लगभग ढाई लाख वर्गमील में फैले अनुमानतः २४ करोड़ की जनसंख्या वाले रूस के लिए ये समस्यायें सचमुच परेशानी का कारण बनी हुई हैं. इन्हें यह कह कर नहीं टाला जा सकता है कि इतने विशाल और संपन्न देश के सामने इस प्रकार की समस्याओं का बना रहना स्वाभाविक ही है अथवा यह कि वह इन समस्याओं का सरलता से समाधान कर सकता है. फिर अब रूसी नेतृत्व भी लेनिन और स्तालिन के ज़माने जैसा निर्द्वंद्व नहीं रहा है. नेतृत्व-संकट के कारण रूस की बाह्य तथा आंतरिक समस्याएँ और भी गहरा गयी हैं. भूतपूर्व प्रधानमंत्री ख्रुश्चेव के काल में जब स्तालिन के शव को मास्को के लाल चौक स्थित लेनिन-स्तालिन क़ब्रगाह से हटाया गया और स्तालिन के नाम पर बने मार्गों, कारखानों, स्कूलों, क़स्बों आदि के नाम बदले गये, उसी समय रूसी नेतृत्व में संकट का आभास मिल गया था. गड़े मुर्दे उखाड़ने की जो प्रक्रिया १९६१ में शुरू हुई वह अब तक समाप्त नहीं हुई है. १९६४ में ख्रुश्चेव का पतन और अब स्तालिन को मृत्युपरांत दंडित करने की माँग इसी प्रक्रिया की कड़ी हैं. कभी बाह्य और कभी आंतरिक मामलों को ले कर रूसी नेतृत्व में जो मतभेद पैदा हो जाता है, वह भी उसी प्रक्रिया का परिणाम है. रूस के बड़े नेताओं में स्पष्टतः दो गुट बन गये हैं जिन में एक उग्रवादियों अर्थात् सैनिकतंत्र के समर्थकों का नेतृत्व कर रहा है और दूसरा उदार पक्ष का नेतृत्व सँभाले है. जून १९६७ में जब पोलित ब्यूरो की बैठक में उस के युवा सदस्य श्री शेलेपिन के समर्थक निकोलाई येगिरिचेव ने रूस की हवाई प्रतिरक्षा को ले कर सत्तारूढ़ गुट की कटु आलोचना की (देखिए दिनमान २१ जनवरी, १९६८), तभी यह आभास मिल गया था कि पार्टी के प्रथम सचिव ब्रेज़नेव का नेतृत्व ख़तरे में है. अगस्त, १९६८ में चेकोस्लोवाकिया पर रूसी आक्रमण के समय यह संकट और भी गहरा हो गया और दोनों पक्ष खुल कर एक-दूसरे पर कीचड़ उछालने लगे. उस के बाद कई बार यह अफ़वाह भी सुनने में आयी कि प्रधानमंत्री कोसीगिन अपने पद से त्यागपत्र देने वाले हैं, यद्यपि 'गरम' और 'नरम' के संघर्ष में उन्होंने यथाशक्य तटस्थ रहने का प्रयास किया है, भले ही शेलेपिन गुट को उन का मौन समर्थन मिलता रहा हो. अब हाल की दमिस्की टापू की घटनाओं ने नेतृत्व-संकट को उभारा है. सत्तारूढ़ गुट ने चीन से वार्ता का प्रस्ताव कर के जैसे-तैसे विरोधी गुट का मुँह बंद किया ही कि इतिहासकार प्रो. याकीर ने स्तालिन-प्रसंग को जीवंत कर के और क्रीमिया के तातारों ने अपनी माँगों को ले कर आंदोलन छेड़ कर के श्री ब्रेज़नेव के अस्तित्व को चुनौती दी है. स्तालिन को दंडित करने की माँग को जहाँ देश के बुद्धिजीवी वर्ग का समर्थन प्राप्त है, वहाँ अनेक राजनीतिज्ञ तथा अन्य सम्मानित व्यक्ति तातारों की माँगों का खुला समर्थन कर रहे हैं. अमेरिका द्वारा प्रति-प्रक्षेपास्त्र तैयार करने के प्रश्न पर गंभीर रुख़ अपना लिये जाने से भी विरोधी गुट को सत्तारूढ़ गुट पर वार करने का सुयोग मिला है.

स्तालिन का युग होता तो इन विरोधियों को कब का उखाड़ फेंका गया होता, परंतु श्री ब्रेज़नेव के नेतृत्व में संभवतः इतनी सामर्थ्य नहीं है. इस से दो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—एक तो रूस का सत्ता-संघर्ष बहुत आगे बढ़ गया है और अब किसी एक पक्ष की पूर्ण पराजय ही उसे समाप्त कर सकती है तथा दूसरे रूस में कम्युनिस्ट पार्टी की तानाशाही के दिन लद चले हैं और वहाँ लोकतंत्री प्रवृत्तियाँ पनप रही हैं, भले ही उन के पनपने की प्रक्रिया में सत्तारूढ़ गुट की ह्रासोन्मुखी शक्ति का परोक्ष योगदान रहा हो.

कौन बड़ा, कौन छोटा ? : जिस रूस को कभी फ़्रांस ने जर्मनी का सामना करने की दृष्टि से औद्योगीकरण के मार्ग पर प्रवृत्त किया था, वह आज फ्रांस, ब्रिटेन और जर्मनी को बहुत पीछे छोड़ कर न केवल आर्थिक दृष्टि से संपन्न देश बन गया है, बल्कि सैनिक दृष्टि से भी इस हद तक सशक्त हो गया है कि राजनैतिक प्रेक्षकों को यह निर्णय करने में कठिनाई हो रही है कि रूस और अमेरिका में कौन बड़ा है. १९६२ के क्यूबा-संकट के समय अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति कैनेडी ने जब रूस को

लाल चौक में रूसी सेना की परेड (१९२५) : तब

ललकारा था, तब ऐसा आभास मिला कि रूस की ताक़त दूसरे दर्जे की है, किंतु उस के बाद विश्व-राजनीति में रूस ने जो भूमिका निभायी उस से लगता है कि रूस भले ही अमेरिका से अधिक शक्तिशाली न हो किंतु उस की टक्कर का तो है ही. निःशस्त्रीकरण, परमाणु-अस्त्र-विस्तार निरोध संधि, पश्चिम एशिया, वीएतनाम आदि मसलों पर रूस और अमेरिका ने जो रुख़ अपनाया है उस से भी यही प्रतीत होता है कि ये दोनों देश अब आपस में उलझना नहीं चाहते हैं. इस के दो कारण प्रमुख हैं एक, दोनों देशों की जोड़ बराबर है और बराबर ताक़त वाले देश सहज ही आपस में नहीं भिड़ते हैं. दूसरा, तीसरी बड़ी शक्ति के रूप में चीन का उदय, जिसे न अमेरिका ही की चिंता है और न रूस का भय; जो इन दोनों से ही अलग रास्ते पर चल कर अपनी शक्ति और प्रभाव-क्षेत्र बढ़ाने में जुटा हुआ है. रूस की चार हज़ार मील लंबी दक्षिण-पूर्वी सीमा पर चीन की ओर से सतत संकट बना हुआ है. हाल में लंदन-स्थित चीनी दूतावास ने एक मानचित्र प्रकाशित किया है जिस में कोई छह हज़ार वर्ग मील का रूसी इलाक़ा चीनी क्षेत्र दिखाया गया है. ऐसी स्थिति में वह अमेरिका तथा दूसरे पश्चिमी देशों के प्रति पहले जैसा आक्रामक रुख नहीं अपना सकता है. हाल में बुदापेस्त में वारसाउ संधि से संबद्ध देशों की बैठक में पारित प्रस्ताव में यूरोप में तनाव कम करने का जो उल्लेख हुआ है और यूरोपीय प्रतिरक्षा पर एक सम्मेलन बुलाने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने की जो अपील समस्त यूरोपीय देशों से की गयी है, उस से भी रूस के बदले रुख की पुष्टि होती है.

आश्वस्त नहीं : लगभग एक वर्ष पूर्व वीएतनाम-समस्या के समाधान के लिए पेरिस-वार्त्ता आरंभ हुई थी. यद्यपि उस का कोई सुफल सामने नहीं आया है किंतु फिर भी उस से रूस और अमेरिका के बीच तनाव कम हुआ है, परंतु इतने पर भी ये दोनों देश एक दूसरे से दिल खोल कर नहीं मिल पाते हैं. कारण स्पष्ट है. दो भिन्न आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं का यह संघर्ष इतना तीव्र है कि वह सहज ही समाप्त नहीं हो सकता है. यही कारण है कि ये देश एक दूसरे की ओर से आश्वस्त नहीं हैं. कभी किसी एक प्रश्न पर दोनों देशों के रवैये को देख कर ऐसा लगता है कि संभवतः वे एक दूसरे के समीप आ रहे हैं तो अन्य किसी मसले पर उन का विरोध मुखर हो उठता है. इस स्थिति से निश्चय ही चीन को लाभ पहुँच रहा है. रूस अपने इस बाग़ी भाई को इस लिए खुली चुनौती नहीं दे पा रहा है कि कहीं अमेरिका उस की सहायता न कर बैठे. उधर अमेरिका दक्षिण-पूर्व एशिया की अपनी नीति के समर्थन में यह तो चाहता है कि चीनी खतरे के कारण वह इस इलाक़े में बना हुआ है परंतु चीन से दो-दो हाथ करने के लिए तैयार नहीं है. इस से यह प्रतीत होता है कि अमेरिका अब भी रूस को ही शत्रु नं. १ समझ रहा है और पर्दे के पीछे छिपे रूस-चीन संघर्ष में उस दिन का इंतज़ार कर रहा है जिस दिन या तो चीन अकेला ही, रूस को पछाड़ दे अथवा आवश्यकता पड़ने पर वह भी चीन का हमराह बन जाये. रूसी नेतृत्व इस स्थिति से असावधान नहीं है. एशिया और अफ़्रीका में अपने अधिक से अधिक मित्र बनाने का उस का अभियान बेमानी नहीं है. जून १९६७ में उस ने अरब देशों का पक्ष ले कर भूमध्य सागर में दखल देने का अधिकार पा लिया. भारत से उस के संबंध पहले से ही मित्रतापूर्ण हैं. अब उस ने यू-२ जासूसी विमान कांड की यादों को दफ़ना पाकिस्तान को भी अपना मित्र बना लिया है और उसे आर्थिक तथा सैनिक सहायता दे रहा है. पिछले कुछ वर्षों में अफ़्रीका में चीन के प्रभाव में तेज़ी से कमी हुई है. रूसी नेता वहाँ अपना प्रभाव जमाने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे हैं, और हैं. राष्ट्रपति पदगोर्नी की अफ़्रीकी देशों की हाल की यात्रा इसी प्रयत्न की एक

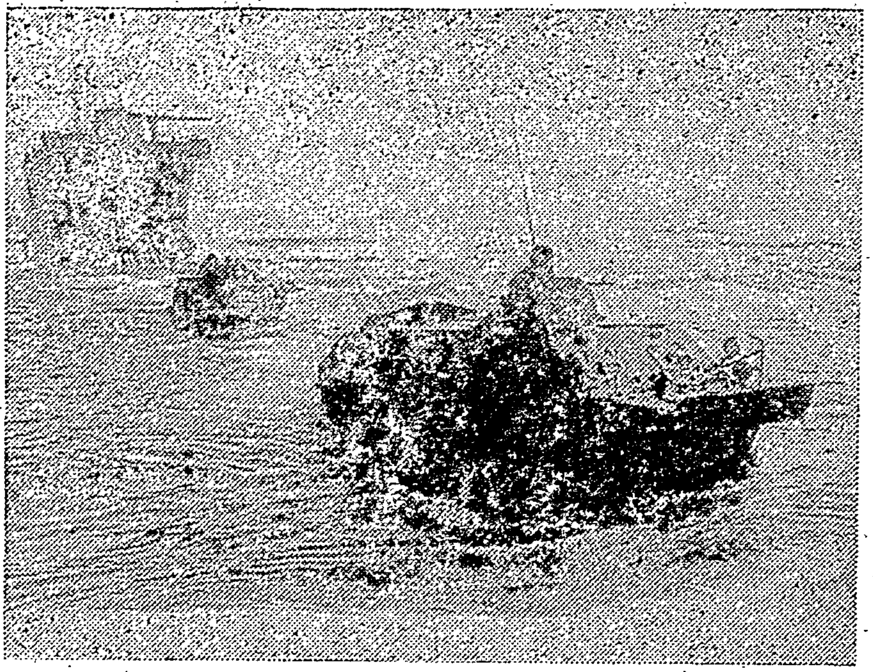

बाल्टिक सागर में अवतरण-अभ्यास : अब

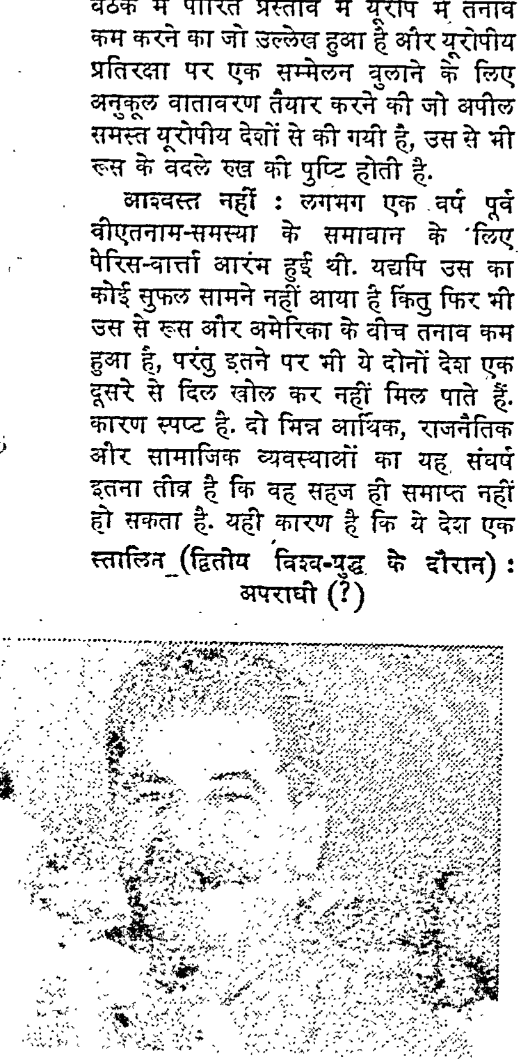

स्तालिन (द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान) : अपराधी (?)

(बायें से) पदगोर्नी, ब्रेझनेव और कोसीगिन : कौन अपना, कौन पराया ?

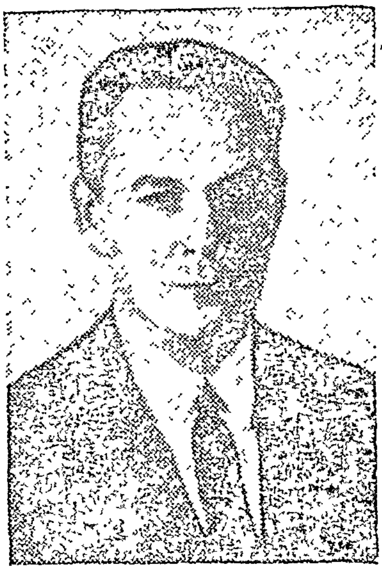

शेलेपिन : नेतृत्व का विरोध

कड़ी है. चेकोस्लोवाकिया की घटना से पूर्वी यूरोप में रूस की प्रतिष्ठा को ठेस अवश्य पहुँची थी, किंतु अब उस ने वहाँ अपनी स्थिति को फिर सुधार लिया है. यदि किसी तरह बर्लिन का काँटा दूर हो जाये तो निश्चय ही पूर्वी यूरोप के साथ ही पश्चिमी यूरोप में भी उस की प्रतिष्ठा बढ़ेगी. इसी प्रकार वीएतनाम-समस्या का समाधान हो जाने पर दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों में अपना प्रभाव बढ़ाने में उसे सफलता मिल सकती है. लातीनी अमेरिका के कुछ देशों को रूस काफ़ी अरसे से आर्थिक सहायता दे रहा है. समय के साथ उस की सहायता के क्षेत्र में भी विस्तार हो रहा है और उस के साथ ही प्रभाव भी बढ़ रहा है.

इस सब के बावजूद सारी तस्वीर अब भी साफ़ नहीं है. सभी बड़ी ताक़तें पिछड़े और छोटे देशों में अपना-अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील हैं. छोटे देशों ने भी हर किसी से सहायता लेने की नीति अपना ली है. ऐसी स्थिति में अपने-पराये की पहचान करना संभव नहीं है. रूसी नेतृत्व इस बात को समझता है. वह अपनी आंतरिक स्थिति से भी चिंतित है. इसी कारण वह उपद्रवी चीन से वार्त्ता का प्रस्ताव करता है और साथ ही हथियार का जवाब हथियार से देने की धमकी भी देता है. निःशस्त्रीकरण आदि मसलों पर वह अमेरिका के कंधे से कंधा मिला कर चलने को तैयार है तो बर्लिन आदि के मामले पर उस से दो-दो हाथ करने को भी तैयार दीखता है. एक ओर भारत की मित्रता का दम भरता है तो दूसरी ओर भारत के प्रति घृणा पर बने पाकिस्तान की पीठ थपथपाता है. राजनीति में कोई मित्र या शत्रु नहीं होता है. राष्ट्रहित सर्वोपरि होता है और रूसी नेता इसी नीति का अनुसरण कर रहे हैं.

विश्व

सोवियत संघ

कूटनीति के नये पैंतरे

अफ़्रीका और मध्यपूर्व अफ़्रीकी देशों में सोवियत नीति नयी करवट ले रही है. सोवियत राष्ट्रपति पदगोर्नी की हाल ही की अल्जीरिया और मोरक्को यात्रा से स्पष्ट है कि अफ़्रीकी देशों में अपने प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार करने के लिए सोवियत संघ ने नया और महत्त्वपूर्ण क़दम उठाया है. घाना जैसे देश के कटु अनुभव के बाद सोवियत संघ को यह एहसास हो गया कि साम्यवाद के लिए अफ़्रीकी देश अभी तैयार नहीं हैं इस लिए उन की अपनी ही परिस्थितियों और व्यवस्था में काम कर के ही लक्ष्य सिद्ध हो सकता है. अल्जीरिया में जहाँ विकास के लिए पूँजीवाद से इतर रास्ता अपनाया गया है रूसियों को पैर टिकाने की जगह मिल गयी है हालाँकि प्रमुत्व में पहला स्थान संयुक्त अरब गणराज्य का ही है. १९६७ के पश्चिम एशिया युद्ध के बाद से कोई दो हज़ार रूसी तकनीकी जानकार और सलाहकार वहाँ काम कर रहे हैं. शायद इसी लिए रूसी राष्ट्रपति की अफ़्रीका-यात्रा का प्रथम चरण अल्जीरिया से शुरू हुआ.

सहमति का प्रदर्शन : सोवियत राष्ट्रपति पदगोर्नी की अल्जीरियाई नेताओं से बातचीत के बाद जो संयुक्त विज्ञप्ति जारी की गयी उस में नैटो और भूमध्य सागर क्षेत्र में सैनिक अड्डों के सवाल को ले कर दोनों देशों के विचारों में समानता और सहमति प्रदर्शित की गयी है. विज्ञप्ति में कहा गया कि सोवियत संघ और अल्जीरिया भूमध्य सागर क्षेत्र में उत्तर एतलांतिक संधि सेना की उपस्थिति की निंदा करते हैं और विश्व सुरक्षा के लिए इसे एक ख़तरा मानते हैं. पश्चिम एशिया में शांति स्थापना के लिए विज्ञप्ति में दोनों देशों की ओर से यह मत व्यक्त किया गया है कि विजित प्रदेशों को ख़ाली कर के और अरब जनता विशेष कर फ़िलिस्तीनों के अधिकारों को मान्यता प्रदान कर के ही वहाँ स्थायी शांति स्थापित की जा सकती है. वीएतनामी जनता अफ़्रीकी स्वाधीनता आंदोलन और राष्ट्रीय एकता के लिए नाइजीरिया के संघर्ष का संयुक्त विज्ञप्ति में समर्थन किया गया. यह भी बताया गया है कि सोवियत संघ और अल्जीरिया के बीच अनेक व्यावसायिक और आर्थिक समझौते हुए हैं.

सैनिक तथा अन्य सहायता : सोवियत राष्ट्रपति की यह यात्रा दोनों देशों के बीच पिछले काफ़ी समय से चले आ रहे निकट संबंधों का परिणाम है जिस का मुख्य आधार सैनिक सहायता है. मास्को से अल्जीरियाई सेना को छोटे-मोटे सैनिक सामान के अलावा वायु और नौसेना प्रशिक्षक भी पहुँचाये गये हैं. उधर छह सौ से अधिक अल्जीरियाई विमान चालक सोवियत संघ में प्रशिक्षण हासिल कर रहे हैं. इधर अन्य क्षेत्रों में भी सोवियत और अल्जीरियाई सहयोग बढ़ता रहा है. अभी पिछले दिनों के एक व्यापार समझौते के अधीन पूँजी और तकनीकी सहायता के बदले में सोवियत संघ अल्जीरिया से इतनी अधिक मात्रा में शराब ख़रीद रहा है जितनी मात्रा में शायद फ़्रांस ने भी उस से नहीं ख़रीदी होगी. एक सोवियत रिपोर्ट के अनुसार अल्जीरिया के लगभग अस्सी योजना कार्यों में इस समय सोवियत संघ का हाथ है. अल्जीरिया में विदेशी शक्तियों की उपस्थिति के मामले में हालाँकि फ़्रांस ही अभी प्रमुख है, पर देश की अर्थ-व्यवस्था के प्रश्नों पर सलाह के लिए मास्को से एक सोवियत आयोजन विशेषज्ञ को बुलाया गया था.

विदेशी शक्ति के विरुद्ध : उधर अल्जीरिया अपना यह दृढ़ निश्चय व्यक्त करता रहा है कि फ़्रांस के साथ आठ वर्ष के कठिन संघर्ष के बाद उस ने जो स्वाधीनता प्राप्त की है उस की वह हर हालत में रक्षा करेगा और किसी भी विदेशी शक्ति की मौजूदगी को बर्दाश्त नहीं करेगा. देश की कम्युनिस्ट पार्टी पर पाबंदी लगी हुई है. इस्राइल-अरब संघर्ष के प्रश्न पर अल्जीरिया और सोवियत संघ में कुछ मतभेद भी है. क्यों कि सोवियत संघ तो सुरक्षा परिषद् के नवंबर १९६७ के उस प्रस्ताव को लागू करने के पक्ष में है जिस में अरब विजित प्रदेशों के इस्राइली सेनाओं

पदगोर्नी : प्रभाव-क्षेत्र का विस्तार

द्वारा खाली कर दिये जाने के बाद इस्राइल की सुरक्षा की गारंटी देने को कहा गया है और अल्जीरिया ने सीरिया तथा इराक़ का साथ देते हुए इस प्रस्ताव के समर्थन से इनकार कर दिया है. राजनयिक विश्लेपण के अनुसार इस प्रश्न को ले कर रूस अल्जीरिया के साथ अपने संबंध कभी खराब करना नहीं चाहेगा.

मोरक्को का महत्त्व भी कम नहीं : अल्जीरिया यात्रा की समाप्ति पर सोवियत राष्ट्रपति मोरक्को रवाना हो गये. मोरक्को का महत्त्व भी रूसियों के लिए दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है. अफ़्रीकी महाद्वीप का पश्चिमोत्तर कोना होने की वजह से रूसियों के लिए इस का सामरिक महत्त्व है और राजतंत्र होते हुए भी रूस मोरक्को से अपने संबंध और भी घनिष्ठ बनाने को उत्सुक है. मोरक्को के साथ भी रूस का एक व्यापारिक समझौता हो चुका है और वहाँ १ लाख १० हज़ार किलोवाट का एक ताप बिजली घर बनाने में रूसी सहायता कर रहे हैं.

वैसे सोवियत संघ का ध्यान यूरोप और एशिया की तरफ़ अधिक है पर अफ़्रीका की उस ने कभी उपेक्षा नहीं की और अब तो अफ़्रीका को बहुत महत्त्व दिया जा रहा है.

नाइजीरिया

स्वतंत्रता का बंदर-बाँट

ब्रितानी प्रधानमंत्री श्री हेरल्ड विल्सन ने अपनी हाल ही की नाइजीरिया-यात्रा को सफल ही माना है भले ही इस से नाइजीरिया गृह-युद्ध की निकट भविष्य में समाप्ति की कोई संभावना नज़र नहीं आयी. बल्कि कुछ सूत्रों के अनुसार नाइजीरिया संघीय सरकार को ब्रितानी हथियार और अधिक मात्रा में मिलते रहने की संभावना बढ़ी है. श्री विल्सन ने नाइजीरिया-यात्रा से लौटने पर हाउस ऑफ़ कामंस में यही बताया कि उन्हें अपने मिशन में पूर्ण सफलता मिली. श्री विल्सन का कहना था कि जनरल गोवोन ने मुझे इस बात का पूर्ण आश्वासन दिया है कि पृथक होने वाले बिअफ़्रा प्रांत के नेता कर्नल ओजुक्वू से वह शांति-वार्त्ता के लिए तैयार हैं. इस के अलावा श्री विल्सन ने इसे भी अपनी उपलब्धि ही माना है कि वह संघीय सरकार से यह आश्वासन प्राप्त कर सके कि विद्रोही प्रांत के सैनिक ठिकानों पर ही बमबारी की जायेगी पर उन्होंने संघीय सरकार के विमान चालकों की निशानेबाज़ी की कुशलता में संदेह व्यक्त किया है जिस का स्पष्ट अर्थ यह है कि संघीय सरकार के इस आश्वासन का कोई महत्त्व नहीं है.

कर्नल ओजुक्वू से निराशा : अपने वक्तव्य के दौरान श्री विल्सन ने ओजुक्वू द्वारा भेंट का उन का निमंत्रण अस्वीकार करने पर खेद व्यक्त करते हुए बताया कि मैं ने इस मुलाक़ात के लिए उन्हें दस अलग-अलग जगहों का सुझाव दिया था. विरोध पक्ष की इस आलोचना का जवाब देने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया कि उन की यह यात्रा बिल्कुल बेकार थी जिस का कोई लाभ होने वाला नहीं था. श्री विल्सन का कहना है कि यात्रा का उद्देश्य पूरा हुआ है.

श्री विल्सन का हॉउस ऑफ़ कामंस में दिया गया बयान औपचारिता मात्र है. लंदन के ही राजनैतिक प्रेक्षकों का ख्याल है कि ब्रितानी प्रधानमंत्री की इस यात्रा से न तो बिअफ़्रा के असैनिक ठिकानों पर बमबारी रुकेगी और न नाइजीरिया गृह-युद्ध की समाप्ति में कोई सहायता मिलेगी. इस यात्रा से ब्रिटेन बस इतना ही दावा कर सकता है कि नाइजीरिया संघ से उस के संबंधों का आधार और भी मज़बूत हो गया है. इन प्रेक्षकों के अनुसार श्री विल्सन ने जनरल गोवोन से पहली भेंट में ही नाइजीरिया को और अधिक ब्रितानी सहायता का आश्वासन दिया.

परिवर्त्तन का संकेत : ब्रितानी प्रधानमंत्री का कर्नल ओजुक्वू को बातचीत के लिए आमंत्रित करना ही ब्रितानी नीति में परिवर्त्तन का संकेत माना जा रहा है क्यों कि इस से ब्रिटेन ने नाइजीरिया में गृह-युद्ध की स्थिति को स्वीकार कर बिअफ़्रा के अस्तित्व को भी मान्यता दी है. इधर श्री विल्सन यह भी मालूम करना चाहते थे कि रूसी अस्त्रों की सहायता के कारण नाइजीरिया सरकार के ब्रिटेन के प्रति रवैये में तो कोई अंतर नहीं आया ? लगता है वह इस यात्रा के बाद ही आश्वस्त हुए हैं कि रूसी सहायता के बावजूद नाइजीरिया संघ की पश्चिम समर्थक नीति में फ़र्क़ आने का कोई खतरा नहीं है. इधर नाइजीरिया ने भी बदले में ब्रिटेन से यह आश्वासन प्राप्त कर लिया है कि वह नाइजीरिया की अखंडता का ही समर्थन करता रहेगा. श्री विल्सन ने हाउस ऑफ़ कॉमंस को इस बात से अवगत किया है कि नाइजीरिया संघ से उन्होंने अनेक आश्वासन प्राप्त किये हैं जिन का नाइजीरिया गृह-युद्ध पर तत्काल ही प्रभाव पड़ेगा. पर श्री विल्सन का यह भी कहना था कि नाइजीरिया संघ बिना शर्त्त शांति-वार्त्ता की बात कह ज़रूर रहा है पर एक बार बातचीत शुरू होने पर लागोस बिअफ़्रा नेताओं के सामने नाइजीरिया को अखंड मान लेने की शर्त ज़रूर रखेगा. इस से बातचीत होने पर भी गृह-युद्ध की स्थिति में कोई फ़र्क़ पड़ने की संभावना नहीं है.

आशा की एक किरण : ब्रितानी प्रधानमंत्री की हाल ही की यात्रा और गृह-युद्ध के प्रति ब्रितानी नीति से नाइजीरिया समस्या के समाधान की इतनी आशा नहीं बँधी थी जितनी इस समाचार से बँधी है कि नाइजीरिया संघ और बिअफ़्रा नेताओं के बीच सीधी बातचीत की संभावना है. अफ़्रीकी एकता संगठन की सलाहकार समिति की बैठक के अवसर पर, जो १७ अप्रैल को लाइबीरिया की राजधानी में होने वाली है जनरल गोवोन और कर्नल ओजुक्वू की भेंट शायद हो. जिन सूत्रों ने यह

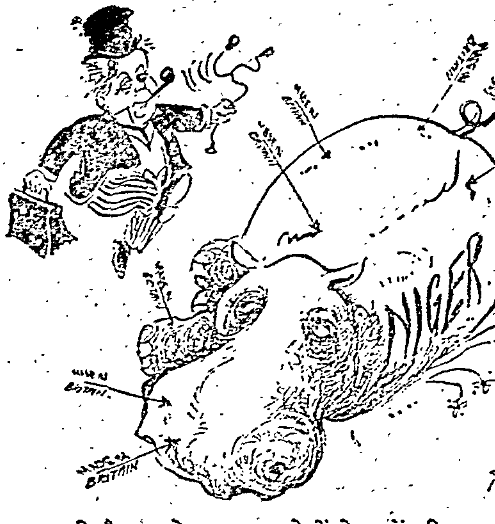

खबर दी है उन के अनुसार दोनों नेताओं की इस भेंट की संभावना पर ब्रितानी प्रधानमंत्री और नाइजीरिया संघ के राष्ट्रपति के बीच लंदन में चर्चा हुई है जो आज कल ब्रिटेन की राजकीय यात्रा पर हैं. श्री विल्सन का ख्याल है कि जनरल गोवोन ने बिअफ़्रा के विद्रोही नेता से भेंट की बात स्वीकार कर के शांति की दिशा में महत्त्वपूर्ण क़दम उठाया है. पर श्री विल्सन और नाइजीरिया के राष्ट्रपति दोनों ने ही अपने विचार-विनिमय में यह स्वीकार किया बताते हैं कि नाइजीरिया संकट के किसी भी समाधान की एक शर्त तो यह है कि बिअफ़्रा पर बमबारी बंद की जाये और दूसरी यह कि दोनों पक्षों को बाहर से हथियारों की सप्लाई बंद हो. सिद्धांत रूप में यह मानते हुए भी इधर तो ब्रिटेन का उधर नाइजीरिया सरकार का इस पर अमल करना मुश्किल है.

पश्चिम एशिया

चार बड़ों का शतरंज

चार बड़े राष्ट्रों की उच्चस्तरीय बैठक के आरंभ में ही संपूर्ण पश्चिम एशियाई क्षेत्र में तनाव की मात्रा इतनी अधिक बढ़ गयी है कि किसी भी समय कोई भी विस्फोटक परिस्थिति पैदा हो सकती है. संयुक्तराष्ट्र ने युर्दान के एक गाँव पर आक्रमण करने के लिए इस्राइल की निंदा की. इस आक्रमण में १८ नागरिक मारे गये थे. सुरक्षा परिषद् ने अपने प्रस्ताव में इस प्रकार के सभी कृत्यों पर असंतोष व्यक्त किया जिन से इस क्षेत्र में शांति स्थापित करने के प्रयासों के विफल होने का खतरा पैदा होता है. अमेरिका ने इस मामले को प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनाया क्यों कि चार बड़ों की वार्त्ता के पहले ही वह मतभेदों को प्रकट करना नहीं चाहता था.

अमेरिकी प्रस्ताव : एक ओर तो सुरक्षा परिषद् ने इस्राइल की निंदा की, दूसरी ओर इस्राइल ने स्पष्ट रूप से चार बड़ों की बैठक का समर्थन करने से इनकार कर दिया. एक सरकारी

विज्ञप्ति में इस्राइल ने कहा कि वह 'पश्चिम एशिया से बाहर के राष्ट्रों की बैठक का इस क्षेत्र के संबंध में सिफ़ारिशें करने का विरोध करता है. इस प्रकार की पद्धति से इस क्षेत्र के देशों द्वारा आपस में शांति-वार्त्ता करने के उत्तरदायित्व पर आघात पहुँचता है.' इस्राइल के अनुसार यह वार्त्ता केवल बड़े राष्ट्रों की ज़ोर-आज़माई का ही परिणाम है. संयुक्त राज्य अमेरिका ने पश्चिम एशिया में शांति स्थापित करने के सिलसिले में जो योजना प्रस्तुत की है वह इस्राइल को मान्य ही नही, संयुक्त अरब गणराज्य को भी उस पर आपत्ति है. मगर यह संभव है कि अरब राष्ट्र अमेरिकी प्रस्ताव को कुछ संशोधनों के साथ स्वीकार करें क्यों कि यह प्रस्ताव इस्राइल की शर्तों से मूलतः इस बात में भिन्न है कि इस में इस्राइल की यह मांग स्वीकार नही की गयी है कि वह अधिकृत क्षेत्र के एक बड़े भाग को सुरक्षित सीमाएँ स्थापित करने के लिए अपने क़ब्ज़े में रखे. साथ ही इस में फ़िलिस्तीन के शरणार्थियों को बसाने या मुआवज़ा देने की भी बात कही गयी है.

राजनैतिक पर्यवेक्षकों का अनुमान है कि जून '६७ से पूर्व की सीमाओं तक इस्राइलियों के वापस जाने के संबंध में दो बड़े देशों में विरोध हो सकता है. यह भी संभव है कि यरुशलम के भावी प्रशासन के संबंध में भी दोनों देशों के विचार एक-दूसरे से टकरा जायें.

अशुभ लक्षण : चार बड़े राष्ट्रों के विरोधी हितों और समय-समय पर उन के वक्तव्यों को देखते हुए यह एक बड़ी उपलब्धि होगी अगर वह इस वार्त्ता में किसी ऐसे प्रस्ताव को पारित कर सकें जिस पर सभी सहमत हों. यदि ऐसा हुआ तब भी एक बहुत बड़ी समस्या होगी कि इन प्रस्तावों को किस प्रकार कार्यान्वित किया जाये. इस्राइल की स्पष्ट अस्वीकृति और अरब राष्ट्रों के यहूदी देश के प्रति रवैये ने किसी भी शांति-प्रस्ताव को कार्यान्वित कराना एक कठिन कार्य बताया है. एक पश्चिमी समाचार-पत्र को अरब समाजवादी संघ के नेता ख़ालिद मइउद्दीन ने कहा है कि "इस्राइल वास्तविक शांति में तभी रुचि लेने लगेगा जब वह यह महसूस करेगा कि अरब उस की आक्रामक कार्रवाइयों को परास्त करने में समर्थ हैं". यद्यपि उन्होंने अरब आंदोलन को एक धर्म-निरपेक्ष आंदोलन बताया और यह दावा किया कि यदि इस्राइल सुरक्षा परिषद् के प्रस्तावों को मान लेगा तो हम स्थायी शांति के लिए प्रस्तुत हैं. फिर भी उन्होंने कहा "इस्राइल के साथ राजनैतिक और आर्थिक संबंध स्थापित करना एक दूसरा मामला है. हम यह नही करेंगे. क्यों कि इस का मतलब 'ज़ायनवाद' की सहायता करना है." स्पष्ट है कि इस प्रकार के तनावपूर्ण वातावरण में स्थायी शांति स्थापित नहीं हो सकती भले ही युद्ध कुछ समय के लिए टल जाये.

एक वातावरण : चार बड़ों की वार्त्ता पश्चिम एशिया में शांति स्थापित करने का अंतिम या एकमात्र क़दम नहीं. वास्तव में वार्त्ता का उद्देश्य यही होना चाहिए कि एक ऐसा वातावरण पैदा कर दिया जाये जिस में विभिन्न पक्षों के प्रतिनिधि विचार-विमर्श कर सकें. न्यूयॉर्क में संयुक्त राज्य अमेरिका के चार्ल्स योस्ट सोवियत संघ के जेकब मलिक, ब्रिटेन के लॉर्ड कैराडन और फ़्रांस के आरमंड बेरॉर्ड ने वार्त्ता आरंभ की है. मगर साथ ही विभिन्न अफ़्रेशियाई देशों के प्रतिनिधि भी आपस में विचारों का आदान-प्रदान करने लगे हैं. भारत के अप्पा पंत ने संयुक्त अरब गणराज्य के विदेशमंत्री मोहम्मद रियाद से बातचीत की और इसी प्रकार पेरिस में शाह हुसेन ने राष्ट्रपति द गॉल से इसी समस्या पर विचार-विमर्श किया. इन वार्त्ताओं के साथ-साथ महासचिव ऊ थां के प्रतिनिधि गुन्नार यारिंग के प्रयास भी चल रहे हैं. यारिंग ने कुछ दिन पूर्व इस्राइल और अरब राष्ट्रों को कुछ प्रश्नों की सूची दी थी. एक इस्राइली प्रवक्ता के अनुसार इस्राइल ने इन ११ प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट रूप से दिया है. कहा जाता है कि विदेशमंत्री अब्बा एबन और डॉ० यारिंग ने अरब शरणार्थियों की समस्या पर भी बातचीत की.

चेकोस्लोवाकिया

फिर रूसी सैनिक ?

मार्च की २८ तारीख़. चेक युवक 'वर्ल्ड आइस हॉकी' प्रतियोगिता के दो मुक़ाबलों में रूस पर अपनी हॉकी टीम की विजय का उत्सव मनाने को प्राग में इकट्ठे हुए. भीड़ पूरे उत्साह में थी कि उसे अगस्त के रूसी आक्रमण की याद आ गयी. विजयोत्सव अचानक ही रूस-विरोधी प्रदर्शन में बदल गया. भीड़ इतनी अधिक उत्तेजित हो गयी कि उस ने रूसी एयर लाइंस के कार्यालय सहित कई रूसी भवनों को क्षतिग्रस्त कर दिया. क्रुद्ध भीड़ ने रूसी सैनिक अड्डों पर भी धावा बोल दिया. चेक नेताओं की अपील और रूस के विरोध के बावजूद प्रदर्शन होते रहे. स्थिति को बिगड़ते देख कर रूस ने चेक सरकार को उपद्रवों पर तत्काल क़ाबू पाने की चेतावनी दी. उस ने चेक राष्ट्रीय संसद् के भूतपूर्व अध्यक्ष और चेकोस्लोवाकिया के सुधार कार्यक्रम के एक प्रमुख स्तंभ जोसेफ़ स्मर्कोवस्की पर प्रदर्शनों में भाग लेने और रूस-विरोधी वक्तव्य देने का आरोप लगाया. रूस के प्रतिरक्षामंत्री मार्शल आंद्रेई ग्रेचको अचानक ही प्राग जा धमके और वहाँ अपनी उपस्थिति से चेक नेताओं को किंकर्त्तव्य-विमूढ़-सा कर दिया.

सेंसर की वापसी : इन प्रदर्शनों से रूस और चेकोस्लोवाकिया के संबंध सुधारने का चेक नेताओं का प्रयास विफल हो गया. रूस को चेकोस्लोवाकिया में मनचाही करने का एक और बहाना मिला. उस ने चेक नेताओं के सामने कुछ शर्तें रखीं जिन को पूरा न किये जाने पर पुनः सैनिक हस्तक्षेप करने की धमकी दी. ख़बर तो यह भी है कि रूसी सेना ने बाक़ायदा प्राग की ओर बढ़ना शुरू कर दिया तथा रूस से कुमुक भी भेजी गयी. इस सब का परिणाम यह हुआ कि श्री दुबचेक को अपने यहाँ और अधिक रूसी सैनिक रखने की स्वीकृति देनी पड़ी. अब वहाँ रूसी सैनिकों की संख्या ६०-७० हज़ार से बढ़ कर १,१५,००० हो जायेगी. रूस-विरोधी प्रदर्शनों का 'राजनैतिक मूल्य' यहीं तक सीमित नहीं रहा. रूस को मनाने के लिए चेक नेताओं ने समाचार-पत्रों पर फिर से सेंसर लागू कर दिया. इस प्रकार उन्हें भूतपूर्व राष्ट्रपति नोवोत्नी के ज़माने की स्थिति में पहुँचा दिया. समाचारपत्रों पर सेंसर लगाने के पीछे यह तर्क दिया गया कि उन का रवैया रूस-विरोधी तथा राष्ट्रीय हितों को क्षति पहुँचाने वाला है. चेक कम्युनिस्ट पार्टी ने रूस को प्रसन्न करने के उद्देश्य से रूस-विरोधी वक्तव्य देने के लिए स्मर्कोवस्की की सार्वजनिक रूप से भर्त्सना भी की. उपद्रवकारियों से निपटने के लिए पुलिस को और अधिक हथियार भी दिये गये. इन कार्रवाइयों से रूस का मंतव्य एक हद तक पूरा हो गया. किंतु रूसी नेता अभी भी पूरी तरह आश्वस्त नहीं हुए हैं और शायद इसी लिए वे अब चेक प्रधानमंत्री ओल्डरिच चेर्निक को अपना शिकार बना रहे हैं. समाचार है कि रूस ने चेक राष्ट्रपति श्री स्वोबोदा पर प्रधानमंत्री चेर्निक को पदच्युत करने के लिए दबाव डाला. फ़िलहाल यह संभावना नही है कि चेर्निक को उन के पद से हटा दिया जायेगा, किंतु विवशता के नाम पर जिस तरह चेक सरकार रूस के आगे झुकती रही है उस से यह भी नहीं कहा जा सकता है कि उन की स्थिति निरापद रहेगी. जब तक लोकतंत्र का दम भरने वाले रूस का पंजा उस छोटे-से लोकतंत्री देश पर रहेगा, तब तक वहाँ किसी भी समय कुछ भी अघटित घट सकता है.

जापान

ओकीनावा का मसला

जापान के भूतपूर्व प्रधानमंत्री नावूसुके किशि, जो वर्तमान प्रधानमंत्री इसाकू सातो के बड़े भाई हैं, जब अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति आइज़नहावर की अंत्येष्टि में शामिल होने के लिए टोकियो से रवाना हुए तो पत्रकारों ने उन का घेराव किया. क्यों कि किशि का सत्तारूढ़ लिबरल-डेमोक्रेटिक पार्टी पर काफ़ी दबदबा है और प्रधानमंत्री भी उन की बातों को बड़े ग़ौर से सुनते हैं, से जब पूछा गया कि क्या वह राष्ट्रपति निक्सन से ओकीनावा द्वीप के हस्तांतरण के बारे में बात करेंगे तो पहले तो उन्होंने कुछ कहने से इनकार कर दिया, लेकिन जब उन्हें बहुत कचोटा गया तो उन्होंने

किशि : विवाद या विरोध

कहा कि समय मिलने पर वह निक्सन को इस बात के लिए राज़ी करने की कोशिश करेंगे कि वह ओकीनावा द्वीप को बिना आणविक हथियारों के जापान को लौटा दें और जब कभी आपत्कालीन स्थिति में अमेरिका उस का प्रयोग करना चाहे, तो उसे ऐसा करने की पूरी छूट होगी.

बातचीत : किशि के इस वक्तव्य से जापान की संसद् में खासा बावेला खड़ा हो गया और विरोधी पार्टियों ने प्रधानमंत्री सातो से स्पष्टीकरण माँगा. सातो अपने बड़े भाई के इस वक्तव्य से काफ़ी अचकचाये क्यों कि ओकीनावा के बारे में उन्होंने अभी तक खुल कर कोई भी बात नहीं की थी. बात ज्यादा न बढ़ जाये इस डर से विदेशमंत्री एचि ने किशि से टेलीफोन पर संपर्क स्थापित किया और कहा कि वह अमेरिकियों के ओकीनावा द्वीप के प्रयोग की छूट के बारे में कोई भी कहीं जिक्र न करें. राष्ट्रपति निक्सन किशि के निजी मित्रों में से हैं और १९६० में जापान के उग्र तत्त्वों और विरोधों के बावजूद जब आइज़नहावर जापान आये थे, तब किशि ही बग़ैर प्रधानमंत्री के उन के स्वागत सत्कार के लिए हाज़िर हुए थे. अपनी एक भेंट के दौरान किशि ने रिचर्ड निक्सन से ओकीनावा द्वीप के हस्तांतरण की बात कही. बकौल किशि के राष्ट्रपति ने उन की दलीलों को बड़े गौर से सुना लेकिन किसी प्रकार का आश्वासन नहीं दिया गया. आश्वासन बेशक नहीं मिला है लेकिन जापान की विरोधी पार्टियाँ ज़रूर यह महसूस करती हैं कि किशि ने निक्सन से अपने मन की बात ज़रूर कही होगी. अगर यह बात सही साबित हो गयी कि किशि ने निक्सन को ओकीनावा द्वीप के इस्तेमाल के बारे में कोई भरोसा दिलाया है तो सातो के लिए जनता और विरोधी पार्टियों का सामना कर पाना मुश्किल होगा.

नेपाल

राजमहलों के प्रति भ्रांतियाँ

नेपाली राष्ट्रीय पंचायत के स्थगन के लगभग १० दिन बाद जब नेपाल रेडियो से अपने प्रसारण में प्रधानमंत्री सूर्यबहादुर थापा ने अपने इस्तीफ़े की घोषणा की तो राजनैतिक क्षेत्रों में इस घटना को अप्रत्याशित नहीं समझा गया. श्री थापा १९६५ में डॉ. तुलसी गिरि के इस्तीफे के बाद मंत्रि-परिषद् के अध्यक्ष नियुक्त किये गये थे और जब १९६७ में राजा महेंद्र ने कोइराला मंत्रिमंडल को बर्खास्त किया था तो उन्हें प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था. पिछले वर्ष सितंबर में जब मंत्रिमंडल को पुनर्गठित किया गया था तो उन्हें एक बार फिर प्रधानमंत्री नियुक्त किया था. अपने प्रसारण में श्री थापा ने राजा महेंद्र के नेतृत्व में आस्था व्यक्त की लेकिन मतभेद का संकेत उस समय मिला जब उन्होंने शायद पाकिस्तान के घटना-क्रम को ध्यान में रखते हुए यह राय ज़ाहिर की कि राष्ट्रीय मामलों में उच्छृंखलता किसी के हित में नहीं है.

श्री थापा के त्याग-पत्र के साथ ही नेपाल के राजनैतिक क्षेत्रों में अफ़वाहों और अटकलों की बन आयी. कुछ चोटी के नेताओं ने राजा महेंद्र से जो मुलाकातें कीं उन से इन अफ़वाहों को विशेष बल मिला, यद्यपि इन अफ़वाहों को नेपाली कांग्रेस के १२ अन्य सदस्यों को राजा द्वारा दिये गये क्षमा-दान से जोड़ने की प्रवृत्ति का परिचय किसी ने नहीं दिया. पटना से कलकत्ता हो कर चिकित्सा के उद्देश्य से बंबई जा रहे भूतपूर्व नेपाली प्रधानमंत्री श्री विशेश्वर प्रसाद कोइराला से जब संवाददाताओं ने कुछ जानना चाहा तो उन्होंने उन की जिज्ञासा को यह कह कर टाल दिया कि जब तक नेपाली कांग्रेस की हाई कमान इस पर विचार-विमर्श नहीं कर लेती, मैं कुछ कहने की स्थिति में नहीं हूँ. महाराज महेंद्र ने भूतपूर्व उप-प्रधान मंत्री कीर्त्तिनिधि बिस्ट को नया प्रधानमंत्री नियुक्त किया है.

कीर्त्तिनिधि बिस्ट

वीएतनाम

वार्त्ता भी, युद्ध भी

पेरिस-वार्त्ता का ११ वाँ दौर ३ अप्रैल को शुरु हुआ किंतु कोई नयी बात सामने नहीं आयी. अमेरिकी प्रतिरक्षा मंत्री मेल्विन लेअर्ड ने गत सप्ताह संकेत दिया था कि दोनों पक्षों में चल रही गुप्त बातचीत में 'कुछ प्रगति' हुई है. परंतु राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे ने इस का खंडन करते हुए कहा कि उस के तथा उत्तरी वीएतनाम के प्रतिनिधि मंडल से इस प्रकार की कोई बातचीत नहीं हो रही है. इस स्वीकृति और अस्वीकृति के पीछे क्या रहस्य है यह तो भविष्य ही बतायेगा.

पिछले दिनों दक्षिण वीएतनाम के उपराष्ट्रपति श्री की ने हानोई जाने की इच्छा व्यक्त कर के शांतिप्रिय होने का जो सबूत देना चाहा था उसे राष्ट्रपति हो ची मिन्ह ने वार्त्ता से इनकार कर के विफल कर दिया. पेरिस-वार्त्ता अपनी कच्छप गति से पूर्ववत् चल रही है और निकट भविष्य में कोई समझौता हो सकेगा, इस की भी कोई संभावना नहीं है. वार्त्ता में शामिल सभी पक्ष ईमानदारी से कोसों दूर हैं. अमेरिका ने अपने वायदे के अनुसार उत्तरी वीएतनाम पर बमबारी तो बंद कर दी, किंतु कंबोदिया की सीमा पर वह अब भी आक्रामक बना हुआ है. वीएतकाङ के छापों में कमी भले ही हुई हो, परंतु वे सैगॉन सरकार तथा अमेरिका की नींद हराम किये हुए हैं. निश्चय ही उन्हें इस के लिए उत्तरी वीएतनाम से प्रोत्साहन और सहायता मिल रही होगी.

छापे और छापे : अमेरिकी अधिकारियों का अनुमान है कि पेरिस-वार्त्ता आरंभ होने के बाद से उत्तरी वीएतनाम ने वीएतकाङ को कुमुक पहुँचाने का मार्ग बदल दिया है. कंबोदिया की सीमा पर वीएतकाङ की गतिविधियों को देखते हुए इस अनुमान की पुष्टि भी होती है. अमेरिकी और दक्षिणी वीएतनामी सैनिकों ने इसी लिए कंबोदिया की सीमा पर निगरानी बढ़ा दी है. किंतु इस के बावजूद वीएतकाङ की छापामार कार्रवाइयाँ चल रही हैं. अब भी वे पहले की तरह ही सैगॉन शहर में भी छापा मारने से नहीं चूकते हैं. हाल में उन्होंने सैगॉन के एक डाकघर को उड़ा दिया. बिन्ह थुय स्थित अमेरिकी नौसैनिक अड्डे को भी उन्होंने तहस-नहस कर दिया. अमेरिकी हेलिकॉप्टर और विमान आज भी उन की विमान-भेदी तोपों का निशाना बन रहे हैं. अमेरिका ने कुछ दिन पहले दावा किया था कि पिछले दिनों वीएतकाङ से नौ मुठभेड़ें हुई जिन में कोई ३८० वीएतकाङ मारे गये अमेरिका के कुल २१ सैनिक खेत रहे तथा ९० घायल हुए. दक्षिण वीएतनाम के १० सैनिक मारे गये और ६६ घायल हुए. जब से वीएतनाम-युद्ध आरंभ हुआ आँकड़ों का इंद्रजाल इसी प्रकार प्रदर्शित किया जाता रहा है. वस्तुस्थिति के बारे में कुछ कहना संभव नहीं है, किंतु यह अनुमान तो लगाया ही जा सकता है कि उतने वीएतकाङ कभी नहीं मारे गये जितने की अमेरिकी सूत्रों ने घोषित किये. वीएतकाङ का हौसला देखते हुए तो ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका और दक्षिण वीएतनामी सेनाओं के मुक़ाबले उन्हें बहुत कम हानि उठानी पड़ रही है. अमेरिकी समाचार-पत्र और दूर-दर्शन भी इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं. अनुमान है कि दोनों विश्व-युद्धों और अमेरिकी गृह-युद्ध को छोड़ कर वीएतनाम-युद्ध में अन्य सभी लड़ाइयों से अधिक जनहानि उठानी पड़ी है.

चीन

नवीं कांग्रेस

चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की ९वीं कांग्रेस के निर्णयों की जो जानकारी अब तक प्राप्त हुई है, उस से यह निष्कर्ष निकलता है कि चीन में सत्ता-संघर्ष उस सीमा तक आगे बढ़ गया है, जहाँ विरोधी गुटों में समझौते की कोई संभावना नहीं रही है. जैसी कि संभावना थी, माओ त्से तुंग ने ९वीं कांग्रेस के मंच का उपयोग अपनी तथा अपने उत्तराधिकारी लिन पिआओ की स्थिति मज़बूत बनाये रखने के लिए किया. उन्होंने एक प्रस्ताव पारित करा के न केवल अपने लिए आजन्म अध्यक्ष का पद सुरक्षित करा लिया, बल्कि 'लोकतंत्री परामर्श' के बहाने अपने अधिकार भी बढ़ा लिये. आसन्न संकट को टालने के लिए 'मध्य मार्गी' प्रधानमंत्री चाउ एन लाइ को महामंत्री बनाये रखा गया और उन्हें तथा उन के दो सुदृढ़ समर्थकों को 'सर्वहारा मुख्यालय' में भी स्थान मिला है, किंतु वस्तुस्थिति यह है कि प्रेसेडियम में तीन चौथाई 'बुर्जुआ प्रतिक्रियावादियों' की छँटनी कर के उस के १७६ सदस्यों में ६० प्रतिशत सदस्य सेना में से लिये गये. कांग्रेस के १,५०० प्रतिनिधियों में भी माओ-समर्थकों का ही बोलबाला है.

सुरक्षित, किंतु कब तक ? : इस प्रकार फ़िलहाल माओ ने अपनी तानाशाही को सुरक्षित बना लिया है. सेना में लिन पिआओ की अच्छी लोकप्रियता के कारण इस समय माओ-गुट अपनी सुरक्षा पर संतोष कर सकता है. किंतु कब तक ? शायद माओ त्से तुंग की मृत्यु तक. इस से पहले भी उलट-फेर हो सकती है, क्यों कि 'मध्यमार्गी' चाउ एन लाइ और उन के समर्थक भी कम लोकप्रिय नहीं हैं. आम जनता में उन की प्रतिष्ठा लिन पिआओ और श्रीमती माओ से कहीं अधिक है. परंतु माओ के रहते 'मध्यमार्गी' सत्ता हथियाने का प्रयास करेंगे इस की संभावना कम ही है. किंतु ९वीं कांग्रेस में अपने तानाशाही रवैये से माओ ने पार्टी को कमज़ोर बना दिया है और उन का उत्तराधिकारी भी चाउ एन लाइ जैसा सशक्त नहीं है. अतः माओ की मृत्यु के साथ ही 'मध्यमार्गी' सत्ता हथियाने का प्रयास करेंगे. कुशल प्रशासक तथा निष्ठावान सैनिक आज भी चाउ एन लाइ के समर्थक हैं जिन के सहयोग से वह लिन पिआओ को शिकस्त दे सकते हैं. माओ के शब्द आखिर उन के उत्तराधिकारी लिन पिआओ की कब तक रक्षा करेंगे. महान् सांस्कृतिक क्रांति की विफलता से माओ की अपनी प्रतिष्ठा में काफ़ी कमी हुई है. जीवित माओ का आदाब आम जनता भले ही बजाये, मृत माओ के आगे भला वह मस्तक क्यों झुकाने लगी?

माओ और लिन पिआओ : सत्ता-संघर्ष

पाकिस्तान

ध्यानाकर्षण अभियान

मार्शल ला की स्थापना के दो सप्ताह बीतते न बीतने जब प्रमुख मार्शल ला प्रशासक प्रेज़िडेंट याह्या खां ने तीन उपप्रधान मार्शल ला प्रशासकों लेफ़्टिनेंट जनरल अब्दुल हमीद खां, वाइस एडमिरल एस. एम. हसन और एयर मार्शल नूर खां के सहयोग से अपनी अध्यक्षता में एक सैनिक परिषद् के गठन की घोषणा की तो राजनैतिक क्षेत्रों में बन रही इस धारणा को भी निराधार समझा जाने लगा कि शीघ्र ही पाकिस्तान में एक ऐसी सरकार की संभावना हो सकती है जिस में कुछ वरिष्ठ नागरिकों को भी शामिल किया जा सके. इस तरह की आशा उस समय भी कुछ ज़ोर पकड़ने लगी थी जब भूतपूर्व पाकिस्तानी प्रेज़िडेंट अय्यूब खां के चित्र तो स्थान-स्थान से हटाये जा रहे थे लेकिन उन की जगह कोई नये चित्र नहीं लगाये जा रहे थे. कोई दो दिन बाद प्रेज़िडेंट याह्या खां ने १९६२ के पाकिस्तानी संविधान के कुछ अंशों को जिन में नागरिकों के मूलभूत अधिकारों से संबद्ध अंश शामिल नहीं हैं, एक कामचलाऊ संवैधानिक आदेश के ज़रिए पुनर्जीवित करने की कोशिश ज़रूर की लेकिन पाकिस्तानी घटनाओं के पर्यवेक्षकों ने जनरल के इस प्रयास में सत्ता को संवैधानिक जामा पहनाने के प्रयास से अधिक कुछ नहीं देखा. न केवल कोई पाकिस्तानी नागरिक मार्शल ला प्रशासकों और अधिकारियों के किसी कार्य को चुनौती नहीं दे सकता बल्कि सैनिक अदालतों द्वारा दंडित व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय में इस निर्णय को चुनौती भी नहीं दे सकता. २५ मार्च को मार्शल ला की घोषणा के साथ जो भी आदेश जारी किये गये वे ज्यों के त्यों बने रहेंगे और उन को किसी रूप में चुनौती देने वाले व्यक्ति के विरुद्ध कड़ी कार्रवाई की जायेगी. जब जनरल याह्या खां ने क़ानून और व्यवस्था के नाम पर सर्वोच्च सत्ता अपने हाथ में ली थी तो उन्होंने यह घोषित ज़रूर किया था कि उन का उद्देश्य सत्ता में बने रहने का नहीं और जैसे ही देश की स्थितियां उपयुक्त होंगी सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनाव करा कर नयी सरकार का गठन संभव बनाया जायेगा. लेकिन अभी ऐसा कुछ गठित होने की कोई

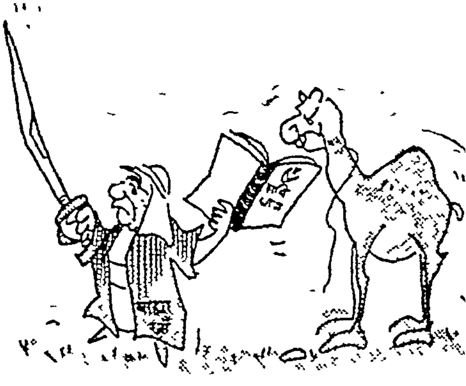

संभावना नहीं दीख रही है. अय्यूब प्रशासन के १० साल में ऊपरी राष्ट्रीय एकता के बावजूद जनता में जो व्यापक असंतोष था, उस का पाकिस्तान के नये सैनिक सत्ताधारियों द्वारा जो इस्तेमाल किया जा रहा है उस से भी इस आशंका को बल मिलता है कि जनरल याह्या खां में अय्यूब की कूटनीतिक प्रतिभा का अभाव भले ही हो, उन की महत्वाकांक्षा भिन्न नहीं है. धीरे-धीरे जनरल याह्या खां को यह विश्वास होने लगा है कि सेना के तीनों अंगों का समर्थन और उन की महत्त्वाकांक्षा का रिश्ता तब तक तो स्थायी साबित हो ही सकता है जब तक कि पाकिस्तानी जनता का असंगठित आक्रोश संगठित आंदोलन का रूप ग्रहण नहीं कर लेता.

१९५८ के बाद के अय्यूब प्रशासन की तरह ही याह्या प्रशासन भी कुछ सनसनीखेज़-से दिखने वाले काम कर गुज़रने के लिए बेताब नज़र आता है ताकि जनता के बुनियादी आंदोलन को दबाया जा सके. अंतर्विरोधों पर आधारित नये सैनिक आदेशों के ज़रिए जहाँ एक ओर श्रमिकों को हड़ताल करने की मनाही कर दी गयी है वहाँ दूसरी ओर मालिकों को हिदायत कर दी गयी है कि वे अपनी दमनकारी नीतियों में परिवर्त्तन करें. पाकिस्तान के कुछ क्षेत्रों में जमाखोरों को अगर गिरफ़्तार किया गया है तो दूसरी ओर बेघर नागरिकों से तत्काल अनधिकृत स्थानों को खाली कर देने के लिए कहा गया है. मार्शल ला नियंत्रण आदेश के ३०वें नियम में एक संशोधन किया गया है जिस के ज़रिए देश में या देश से बाहर ग़ैर-क़ानूनी तरीक़े से विदेशी मुद्रा रखने वालों के ख़िलाफ़ सख़्त कार्रवाई करने का फ़ैसला किया गया है. एक समाचार के अनुसार तीन सदस्यों की एक समिति गठित की गयी है जो इस बात का पता लगायेगी कि कर्मचारियों ने अधिकारियों पर दबाव डाल कर कौन-सी सुविधाएँ प्राप्त की हैं. पुलिस अधिकारियों को हिदायत कर दी गयी है कि भ्रष्टाचार से संबंधित कोई भी सूचना वह तत्काल दर्ज करें लेकिन दंड की व्यवस्था भी पुलिस तथा सूचना देने वाले दोनों के लिए कर दी गयी है. अगर पुलिस ने सूचना तत्काल दर्ज नहीं की तो उसे एक साल की सख़्त क़ैद और ५००० रुपये का जुर्माना भुगतना पड़ेगा. इसी तरह अगर सूचना देने वाले की सूचना ग़लत साबित हुई तो उसे भी सैनिक अदालत द्वारा दंडित किया जायेगा.

ऋतु-विज्ञान

हवा, बादल, गर्मी और हम

मनुष्य इस पृथ्वी से दूर अंतरिक्ष के अन्य ग्रहों-उपग्रहों की तलाश में निकल पड़ा है. मगर क्या उसने अपनी इस पृथ्वी के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की है? विश्व के पुस्तकालयों और शोध-कार्य को देखते हुए कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि पिछले ३०० वर्षों में मनुष्य ने इस पृथ्वी, इस के निवासियों और इस से संबंधित तत्त्वों के बारे में उतना कुछ जान लिया है जितना संभवतया इस से पहले ३००० हज़ार वर्षों में नहीं जान सका था. मगर अब भी कुछ ऐसी बातें हैं जिन के बारे में हम या तो बहुत कम जानते हैं या जानते हुए भी हमारे पास ऐसे साधन नहीं हैं कि हम उन का उपयोग मानव-जाति के हित में कर सकें. ऋतु का मनुष्य-जीवन, उस की प्रगति और उस के विकास के साथ इतना गहरा संबंध है कि उस के प्रति हम उदासीन नहीं रह सकते. वास्तव में उदासीन हैं भी नहीं. मनुष्य मौसम को अभी बदल नहीं सकता, मगर मौसम की गति-विधि के बारे में सही-सही भविष्यवाणी करने की क्षमता उसे बहुत तेज़ी के साथ प्राप्त हो रही है.

उद्देश्य और कार्य : जब तक मनुष्य के पास इस प्रकार के साधन और प्रणालियाँ नहीं आ जातीं जिन से वह ऋतु में होने वाले परिवर्तनों और उस से जनजीवन के विभिन्न पहलुओं पर पड़ने वाले प्रभावों की भविष्यवाणी न कर सके तब तक ऋतु-विज्ञान का उद्देश्य सिद्ध नहीं हो पायेगा. इस लिए यह ज़रूरी हो गया कि आँकड़े न केवल अपने आसपास के केंद्रों से बल्कि बहुत दूर स्थित जंगलों से भी इकट्ठे होने लगे हैं, क्यों कि हवाएँ अत्यंत तीव्र गति से चलती हैं और एक विश्लेषण-क्षेत्र को अपने प्रभाव में लाते हैं. तापमान का प्रभाव भी छोटे स्थानों तक सीमित नहीं रहता. वास्तव में समुद्र से उठने वाले वाष्प, विभिन्न दिशाओं से आने वाली हवाओं और सूर्य की स्थिति के कारण तापमान, पर्वतों की स्थिति और यहाँ तक कि भूमि की गति, सब एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि इन सब का अध्ययन किये बिना ऋतु के बारे में भविष्यवाणी नहीं की जा सकती. यहाँ यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि पृथ्वीतल के निकट या समुद्रतल पर हवाओं और तापमान के परिवर्तन से ही इन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का अध्ययन नहीं किया जा सकता. वास्तव में सही भविष्यवाणी के लिए बहुत ऊँचाइयों, वायुमंडल की बाहरी परत का अध्ययन भी ज़रूरी है. मगर ऊँचाइयों पर अध्ययन करने के लिए बहुत दिनों से गुब्बारों का सहारा लिया जाता रहा है. मगर हाल ही में पश्चिम द्वारा विभिन्न ऋतु-उपग्रह छोड़े जाने के बाद वहाँ और भी अधिक दक्षता के साथ आँकड़े इकट्ठे किये जा सकते हैं. गुब्बारा केवल २५–३० किलो मीटर तक ही जा सकता है; किंतु उस से अधिक ऊँचाइयों पर केवल उपग्रहों का ही सहारा लिया जा सकता है. इस के अतिरिक्त उपग्रह एक निश्चित कक्षा में घूमते रहते हैं और एक सजीव प्रयोगशाला का काम देते हैं.

रेडियोसोंड यंत्र और फ़ोटो ट्रांजिस्टर

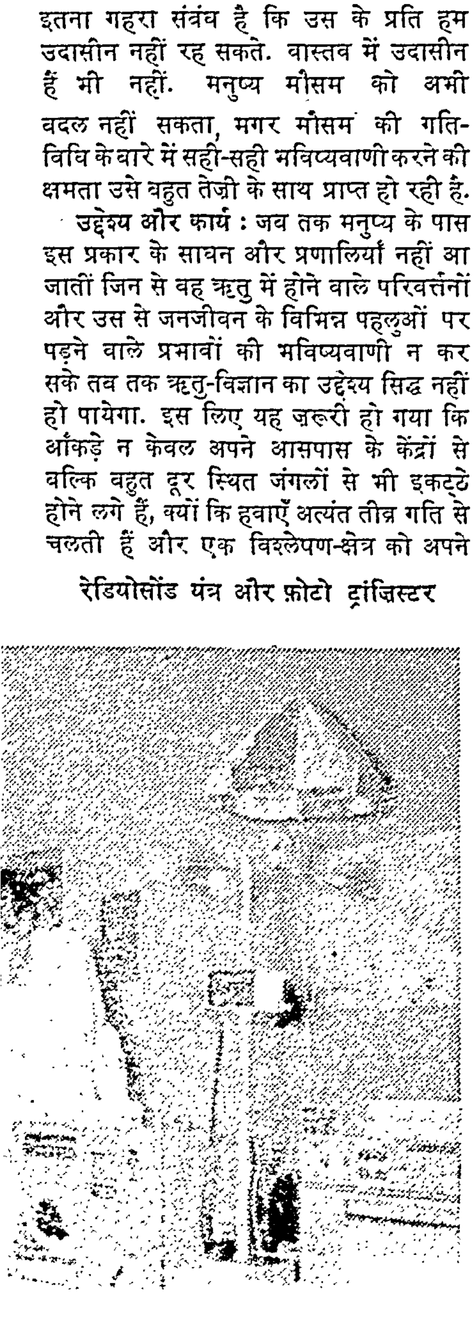

ऋतु-विज्ञान-प्रदर्शनी : अब विश्वऋतु-निगरानी कार्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न देशों ने ऋतु-संबंधी आँकड़ों को इकट्ठा करने और उन का विश्लेषण करने के सिलसिले में सहयोग करने का निश्चय किया है. इस दिशा में ऋतु-उपग्रह 'नंबस' और 'एसा' काफ़ी ऊँचे स्थलों से ऋतु-संबंधी आँकड़े लगातार विश्व के 'केंद्रों, जिन में कोलाबा (बंबई) स्थित भारतीय केंद्र भी है, को भेजते रहते हैं. यह उपग्रह वीएतनाम से ले कर अरब तक और पश्चिम में सोमाली तक के क्षेत्र के आँकड़े संग्रहीत करते हैं. इन से हिंद महासागर के ऊपर हवाओं की गति और विभिन्न प्रकार के तूफ़ानों के संबंध में आँकड़े प्राप्त होते हैं. विश्व के विभिन्न केंद्रों पर जितने भी आँकड़े प्राप्त किये जाते हैं उन को टेलीप्रिंटरों द्वारा विश्व के अन्य केंद्रों तक पहुँचाया जाता है. हाल ही में विश्वऋतु-विज्ञान के दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित भारतीय ऋतु-विज्ञान-विभाग ने नयी दिल्ली स्थित केंद्र में एक प्रदर्शनी का आयोजन किया था, जिस में भारत में प्रयोग में लाये जाने वाले विभिन्न यंत्रों के अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय सहयोग से प्राप्त आँकड़ों के उपयोग के संबंध में भी जानकारी दी गयी थी. मॉस्को, टोकियो और मेलबोर्न में जो जानकारी प्राप्त होती है वह तत्काल नयी दिल्ली के केंद्र को प्रेषित की जाती है और इस प्रकार नयी दिल्ली में प्राप्त जानकारी इन केंद्रों को दी जाती है. भारत में यद्यपि अभी अपने प्रयास

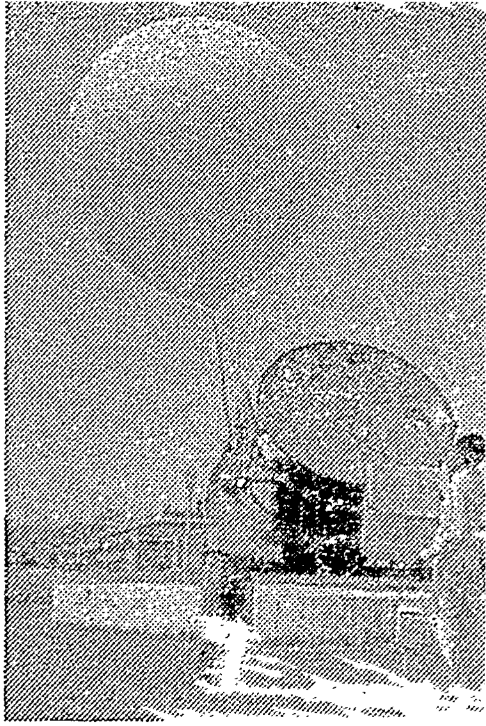

एक सूक्ष्म वायु-मापक यंत्र युक्त गुब्बारा

से कोई भी उपग्रह नहीं छोड़ा गया है फिर भी कुछ ऐसे यंत्रों का निर्माण करने की दिशा में पहले क़दम उठाये गये हैं जो ऋतु की भविष्यवाणी के संबंध में काफ़ी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे. इन में से एक को रेडियोसोंड कहते हैं. यह एक ऐसा यंत्र होता है जो ऊँचाइयों पर ऋतु-संबंधी आँकड़े इकट्ठे करता है और इसे ३० किलो मीटर से ऊपर ले जाने के लिए रॉकेटों का इस्तेमाल किया जाता है.

व्यावहारिक उपयोग : भारतीय ऋतु-विज्ञान की योजना के अनुसार समुद्र-तट के किनारे ८ शक्तिशाली राडारों को स्थापित किया जाएगा, जो चक्रवात के संबंध में लगातार सूचना देते रहेंगे. प्राप्त आँकड़ों को गणकों में भरा जाता है, ताकि वह उस का यथोचित विश्लेषण कर सकें. वर्षा, आँधी, सूखा और बाढ़ इस देश के जीवन के साथ बहुत गहरा संबंध रखते हैं और इन की अग्रिम सूचना प्राप्त करने से हम प्रति वर्ष लाखों मन फ़सल नष्ट होने से बचा सकते हैं और प्रकृति की विनाश-लीला का मुक़ाबला अधिक सामर्थ्य के साथ कर सकते हैं. ऋतु-विज्ञान का लाभ यातायात और प्रतिरक्षा को भी मिलता है. अब जेट युग आ गया है और वायुयान परंपरागत आकाश से काफ़ी ऊँचा उड़ने लगे हैं, जहाँ वायु की गतिविधि और बादलों के जमाव की सूचना प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है. आँकड़े की व्यावहारिकता के संबंध में सार्वजनिक भाषा में उन की व्याख्या करना भी ज़रूरी है. नयी दिल्ली स्थित ऋतु-विज्ञान, विभाग ने यह निश्चय किया है कि इस नगर के किसी केंद्रीय स्थल, संभवतया कनॉट प्लेस में एक सूचना-पट्ट स्थापित किया जाएगा, जो दैनिक ऋतु-भविष्यवाणी की सूचना देता रहेगा.

नारी-जगत्

स्त्री-पत्रिकाएँ : साम्य में वैषम्य

आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व स्त्रियों के लिए प्रकाशित कोई हिंदी पत्रिका यदि हाथ लग जाये तो वह बाहर से अजनबी जैसी ही लगेगी, पर अंदर से पृष्ठ पलटने पर पता चलेगा कि स्त्रियों की आधुनिक किसी पत्रिका के साथ उन की किस हद तक समानता है. वैसे इन वर्षों में समाज, वातावरण और रुचि में जो अंतर आया है उस की झलक इन दोनों पत्रिकाओं में स्पष्ट दिखाई देगी. यों कहना चाहिए कि बदलते ज़माने का रुख जानने के लिए समय-समय पर प्रकाशित पत्रिकाओं के अध्ययन से बढ़ कर और कोई तरीक़ा नहीं.

स्त्री-मुक्ति-आंदोलन : १९२२–२३ में स्वतंत्रता-आंदोलन अपने ज़ोरों पर था. गांधी जी और कांग्रेस के सिद्धांत अधिकांश भारतीय परिवारों पर हावी थे. जब कांग्रेस ने स्त्रियों के उन्नयन का नारा बुलंद किया तो अधिकांश शिक्षित परिवारों ने साथ दिया. जब तक देश की स्त्रियाँ पिछड़ी रहेंगी उन में जागृति नहीं आयेगी. भारत भी गिरा रहेगा. इस लिए उन्हें अंधविश्वासों और ग़लत मान्यताओं के शिकंजों से छुड़ाना होगा, जिन में वे अंग्रेज़ी शासन के दौरान सदियों से जकड़ी रहीं. यही आवाज़ उस समय स्त्री-पत्रिकाओं ने भी उठायी. **स्त्री-दर्पण** में छपे 'रिवाज—उस का भयंकर परिणाम,' 'देवियों का सम्मान' जैसे लेखों और **गृहलक्ष्मी** में छपे 'चला चल चर्खे चोखी चाल' जैसी कविताओं से स्पष्ट है कि इन पत्रिकाओं ने स्त्रियों को उन की स्थिति के बारे में सचेत कराने, उन में स्वदेशी भावना भरने की जी-तोड़ कोशिश की थी. आज की किसी स्त्री-पत्रिका में इस प्रकार की या इस से मिलती-जुलती सामग्री खोजना व्यर्थ है, क्यों कि पचास वर्ष बाद, वातावरण और परिस्थितियों में भारी परिवर्त्तन आने से, नारी को इन भावनाओं की आवश्यकता ही नहीं रही.

आधुनिक नारी की मांग : हाल ही की एक पत्रिका **अंगजा**—जो अपनी पहली वर्षगांठ मना चुकी है—आधुनिक रुचिसंपन्न स्त्रियों की माँगों को पूरा करने का दावा करती है. सौंदर्य, प्रसाधन, वेशभूषा आदि के बारे में जहाँ इस में भरपूर सामग्री मिलती है वहाँ बहुत कुछ ऐसा भी मिलता है जो पचास वर्ष पूर्व छपी पत्रिकाओं में भी छपी थीं; बेशक उन्हें पेश करने का तरीक़ा भिन्न है. मसलन, नये-नये पकवान बनाने में स्त्रियों की रुचि शाश्वत है, इस लिए हर समय की हर स्त्री पत्रिका में पकवान-स्तंभ भी शाश्वत है और रहा. यही बात सौंदर्य पर भी लागू होती है. अंतर केवल इतना है कि 'अंगजा' में 'आइने से उभरते प्रश्न' जैसा स्तंभ है, जिस में पाठिकाएँ सौंदर्य से संबद्ध उलझनों को संपादिका के सामने सुलझाने के लिए रख देती हैं, जब कि 'गृहलक्ष्मी' में 'कुरूप स्त्री भी सुंदर बन सकती है' जैसे लेख स्त्रियों को इस बारे में सचेत करते हैं कि सुंदर दीखना उन का धर्म है. २०वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की आधुनिकता तो इस मंत्र को अच्छी तरह समझे बैठी है, इस लिए दो समय में एक ही विषय को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत किया गया है. सौंदर्य-चर्चा में व्यायाम की भूमिका को लगभग दोनों ही समय की पत्रिकाओं ने समान महत्त्व दिया है, यद्यपि इस विषय पर दिये गये चित्रों में बहुत अंतर है.

'टीनएजर्स' का महत्त्व : एक और ध्यान देने योग्य अंतर यह है कि आज की स्त्री-पत्रिकाओं की हर प्रति में 'टीनएजर्स' यानी १३ से ले कर १९ वर्ष की बालिकाओं और युवतियों के लिए स्तंभ सुरक्षित होता ही है. पुरानी पत्रिकाओं को पढ़ने पर लगता है कि उन दिनों के नारी-जगत् में कम उम्र की स्त्रियों का कोई स्थान ही न था. इस उम्र में जिस तरह के हल्के-फुल्के विषयों की अपेक्षा रहती है उन का इन में नितांत ही अभाव है. वैसे उस ज़माने के समाज का असर है कि उम्र की गरिमा को ज़रूरत से ज्यादा बड़ा कर के देखा जाता था; बाल पकने से पहले किसी को किसी भी क्षेत्र में महत्त्व देने योग्य नहीं समझा जाता था; शायद कम उम्र के व्यक्ति को पत्रिका पढ़ने के क़ाबिल भी नहीं समझा जाता था 'स्त्रियों की स्वतंत्रता', 'देवियों का सम्मान' जैसे लेख और 'सधवा माँ की विधवा बेटी' जैसी कविताएँ किसी कम आयु की स्त्री का रुचि ले कर पढ़ना असंभव ही जान पड़ता है. फिर आज की पत्रिकाओं में किसी अल्प वयस्क लड़की की असाधारण प्रतिभा या उस की कोई विशेषता को पेश करने के लिए उस के बारे में जैसी जानकारी दी जाती है उस से पढ़ने वालों की संख्या में वृद्धि की आशा तो की ही जा सकती है साथ ही 'टीनएजर्स' को महसूस होता है कि 'हम भी कुछ हैं; कुछ कर दिखाने के क़ाबिल हैं, जिस के लिए हमें बड़ों से मान्यता मिलती है.' 'अंगजा' का 'अधुना' स्तंभ इस का उदाहरण है.

शाश्वत नहीं : पत्रिकाओं का जन्म होता है; कुछ दिन जीवित रहने के बाद वे मिट भी जाती हैं. इस लिए पचास वर्ष पूर्व की पत्रिका का संपादन आज भी जारी रहेगा या आज की पत्रिका ५० वर्ष बाद भी छपेगी ऐसी कोई निश्चितता पत्रकारिता के क्षेत्र में नहीं है. राजनैतिक और सामाजिक दृष्टिकोण के साथ ही पत्रिकाओं का भाग्य जुड़ा रहता है. जैसे ही इन में परिवर्त्तन आते हैं पत्रिकाओं की लोकप्रियता में भी उतार-चढ़ाव आरंभ होता है. इस लिए महत्त्व की दृष्टि से किसी पत्रिका का मूल्य उस की आयु से नहीं आँकना चाहिए.

बालकृष्ण सूद और देसी सेठ : उल्लेखनीय

रंगमंच

गल्लाँ प्यार दियाँ

पंजाबी में विरले ही ऐसे नाटक देखने को मिलते हैं जो विषय-वस्तु और अभिनय के लिहाज़ से उल्लेखनीय हों. लेकिन थियेटर पैनोरमा द्वारा प्रस्तुत "गल्लाँ प्यार दियाँ" इस भ्रम और दलील को बेबुनियाद साबित करता है. तीन अंकों का यह नाटक पौने तीन घंटे तक चला और लोगों की रुचि अंत तक बनी रही. सीधी-सादी बातों और बेसाख़्ता हँसी द्वारा नाटक का नायक प्रोफ़ेसर वर्मा समाज की संकीर्णताओं, चुगलखोरी, चोंचलेबाज़ी आदि का अपने ही परिवार के सदस्यों को निशाना बनाता है; आधुनिक वातावरण में पली उस की लड़की बबली अपनी जाति के बाहर जब शादी करने का निर्णय करती है तो प्रोफ़ेसर वर्मा इस निर्णय से न आतंकित होते हैं, न बौखलाते हैं; बल्कि सामान्य पिता के नाते उसे आशीर्वाद देते हैं. श्रीमती वर्मा पहले होहल्ला जरूर करती हैं, लेकिन पति की दलीलबाज़ी के सामने वह भी अपने हथियार डाल देती है. लड़का बच्चू बाबू रोज़-रोज़ नयी-नयी लड़कियों से नये-नये इश्क करता है और रोज ही असफल होता है. अपनी इस असफलता की बौखलाहट मिटाने के लिए वह रोज़ ही लड़कियाँ न देखने की हलफ़ लेता है, लेकिन प्रो० वर्मा उस की इस चोंचलेबाज़ी को ऐसा उजागर करते हैं कि बच्चू बेचारा विदक कर रह जाता है. नाटक में मौजूदा समाज की मक्कारी, पत्नी की पति द्वारा पढ़ाई से होने वाली कोफ़्त, प्रेम-विवाह से पैदा होने वाले झगड़े और उन के मूल में निहित समस्याओं का ख़ासा चित्रण किया गया है.

प्रो० वर्मा के रूप में बालकृष्ण सूद का अभिनय सर्वोत्तम रहा. वह एक-दो जगह

संवाद जरूर भूले, लेकिन अनुभवी कलाकार होने के नाते उन की यह खामी सामान्य दर्शक भाँप नहीं सके. श्रीमती वर्मा के रूप में देसी सेठ और बच्चू बाबू के रूप में विजय कपूर का अभिनय भी खासा रहा. इंद्रा सरीन (बबली) का यह पहला अभिनय था, लेकिन इस कलाकार के अभिनय में कहीं भी नयापन नहीं खटका. सारे ही नाटक को एक सेट पर अभिनीत किया गया, जो बुरा नहीं लगा. प्रकाश-व्यवस्था जरूर कहीं-कहीं लड़खड़ाती नजर आयी. कुल मिला कर नाटक का प्रस्तुतीकरण सफल रहा. नाटक के शुरू में राय बहादुर गूजरमल मोदी ने सर्वश्रेष्ठ अभिनेताओं-अभिनेत्रियों को पुरस्कार दे कर उन की सफलता की कामना की.

जहाँ कलाएँ मिलती हैं

कलाओं के परस्पर सहयोग की बात इस युग में बहुत बार कही गयी है और वह चरितार्थ भी हुई है. चित्रकला, साहित्य, संगीत, फ़िल्म, मूर्त्तिकला आदि में एक-दूसरे के गुण ढूँढे या पाये गये हैं और इस खोज या प्राप्ति के सहारे किसी विधा-विशेष को व्यापकता और गहराई दी गयी है. सभी कला-विधाओं में निहित 'कविता' को एक-दूसरे से जोड़ने वाला कारक माना गया है. इस साम्य से शुरू कर के एक-दूसरे की तकनीक से प्रभाव ग्रहण किया गया है. पश्चिम में कला-विधाओं के परस्पर सहयोग की बात इस सदी के पूर्वार्द्ध में ही हो गयी थी. फ़्रांसीसी कवि अपोलीनेयर, चित्रकला में गहरी दिलचस्पी ले रहे थे, कला-समीक्षाएँ लिख रहे थे और उन के चित्रकार मित्र उन की तथा दूसरे कवियों की कविताओं में रुचि ले रहे थे. फिर पिकासो, ज्याँ काकत्यू आदि ने बैले और नाटकों के प्रदर्शनों के लिए मंच-सज्जाएँ तैयार कीं.

पिछले दिनों लंदन में हुए कुछ नाट्य-प्रदर्शनों के लिए चित्रकारों ने मंच-सज्जाएँ कीं. एक बार फिर रंगमंच व कला-प्रेमियों का ध्यान इस पारस्परिक सहयोग की ओर गया. आज पश्चिम के अधिकांश देशों में कला-विधाओं की आपसी समझ और एक-दूसरी के प्रति प्रगाढ़ आत्मीयता की झलक के दर्शन-प्रदर्शन अक्सर देखने को मिलते हैं. कलाओं के संगम या परिणय सौंदर्य और सृजन दोनों का विस्तार कर सके हैं. चित्रकार-वास्तुकार ला करबूजिए के स्थापत्य में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि कलाओं का संगम सिर्फ़ अनुभव करने की चीज नहीं है, देखने-दिखाने की, यहाँ तक कि रहने-बसने की भी चीज है. पश्चिम में ऐसा हो रहा है, इसी लिए अनुकरणीय है ऐसा आग्रह इस संदर्भ में बिल्कुल नहीं है. यह भी कह सकते हैं कि अलग-अलग विधाओं या शास्त्रों का संगम-रूप तो हमारे यहाँ भी मौजूद रहा है और देखने में आता रहा है.

लेकिन अभिव्यक्ति के माध्यमों के बिना आने-जाने का सार्थक समकालीन पथ हम अभी नहीं बना पाये. फ़िल्म, रंगमंच, चित्रकला, साहित्य के फ़ासले या अलग-अलग बाड़े हमारे यहाँ इस तरह नहीं टूटे कि 'अंदर आना मना है' की तख्ती का ख्याल पूरी तरह हम मन से निकाल दें. पैठ नहीं हुई; जो कुछ हुआ है, वह घुस-पैठ के ही निकट पड़ता है.

ऐसे में ख्याल आता है कि क्या राजधानी दिल्ली, जहाँ प्रायः सभी कला-विधाओं के प्रयोगकर्त्ता बसते हैं, कोई पहल करेगी? मसलन, नाट्य-प्रदर्शन के लिए मंच-सज्जा. चित्रकार-मूर्त्तिशिल्पी करेंगे? अब तक तो शायद ऐसा कोई प्रयास हुआ नहीं. 'यात्रिक' 'अभियान', 'दिशांतर', 'यूथ ऑफ़ इंडिया', 'द लिटिल थियेटर ग्रुप', यहाँ तक कि 'नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा' जैसी संस्थाओं का ध्यान भी शायद इस ओर नहीं गया. यह समीक्षक सोचता है कि ऐसा कोई प्रयास सार्थक हो सकता है.

संगीत

भक्ति-माधुरी

भजनों और भक्ति-पदों की संपन्न परंपरा में जनभक्ति-पदों का महत्त्व किसी अन्य धारा से कम नहीं है, लेकिन उन पर काम बहुत कम हुआ है—लगभग नहीं के बराबर. मुसलमानों के आगमन से पूर्व भारतीय लोकमानस को समझने के लिए जन और बौद्ध साहित्य में भारतीय संस्कृति संबंधी जो अथाह सामग्री भरी है उस का अध्ययन और शोध बहुत जरूरी है. बौद्ध साहित्य में इस विषय पर काफ़ी विचार-विवेचन हो चुका है और हो भी रहा है, पर जनसाहित्य इस दृष्टि से उपेक्षित रहा है. इस कमी को पूरी करने के लिए **श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ** का गठन किया गया है, जिसने जन युवक संगम के सहयोग से पिछले सप्ताह (२९ मार्च) राजधानी में 'सांस्कृतिक संध्या' का आयोजन किया.

महावीर जयंती के पुनीत पर्व पर प्रस्तुत इस समारोह की अध्यक्षता दिल्ली नगर के महापौर श्री हंसराज गुप्त ने की. सभा में गण्यमान्य अतिथियों में कार्यकारी पार्षद श्री विजयकुमार मल्होत्रा, उद्योगपति साहू शांतिप्रसाद जैन, श्रीमती रमा जैन, श्रीमती शरण रानी बाकलीवाल एवं आचार्य कैलाश चंद्र जैन बृहस्पति भी उपस्थित थे.

समारोह मुनि विद्यानंद के टेप पर अंकित आशीर्वचनों से आरंभ हुआ. इस के बाद एक समूह गान प्रस्तुत किया गया. पद-रचना बुद्ध महाचंद की थी. सारंग के स्वरों पर आधारित एवं कहरवा में बद्ध इस समूह गान में 'टेन पीस' ऑर्केस्ट्रा का प्रयोग किया गया था. मुख्य स्वर मनमोहन पहाड़ी, शांता सक्सेना, रजनी सक्सेना और कमल हंसपाल के थे. आवाज़ें सभी की अच्छी लगीं—विशेष कर शांता सक्सेना की. बुद्ध महाचंद का ही एक और पद बाद में महेंद्रपाल ने प्रस्तुत किया. रजनी सक्सेना द्वारा प्रस्तुत दौलत राम की रचना **'घड़ी-घड़ी, पल-पल, छिन-छिन निशदिन'** में चलते रेडियो गीत की झलक थी; भक्ति-भाव में पगे वातावरण के अनुकूल स्वरों की व्यंजना कम. कुछ ऐसी ही परिणति धानतराय के भक्ति-पदों की हुई. गायिका थीं कमल हंसपाल. मनमोहन पहाड़ी के द्वारा गायी हुई रैदास की भक्ति-रचना 'अब कैसे छूटे रामा नाम रट लागी' का समारंभ काफ़ी गंभीर एवं करुण स्वरों में हुआ. इन की आवाज में ठहराव और भराव तो खूब है, किंतु लोच की कमी के कारण वह भी वातावरण को एक समुचित रूप नहीं दे पाये. शास्त्रीय गायन केवल प्रेम जैन ने प्रस्तुत किया. एक नाटिका 'पंचवटी' भी

शांतिप्रसाद जैन, हंसराज गुप्त, रमा जैन और शरणरानी बाकलीवाल
सांस्कृतिक संध्या : श्रद्धा और सुरुचि

अभिनीत हुई. समारोह का सब से आकर्षक कार्यक्रम तीन वर्ष की एक बालिका अनिता का नृत्य था. छोटी-सी ही उम्र में स बच्ची ने काफ़ी तैयारी और मेहनत का परिचय दिया है. इस से भविष्य मे इस के एक अच्छे कलाकार होने का सकेत मिलता है. सब मिला कर यह समारोह देश की इस महान् आत्मा को उस की गरिमा के अनुरूप एक भाव-भीनी श्रद्धाजलि अर्पित कर पाया है, ऐसा कहना कुछ कठिन ही होगा. इस का कारण शायद कार्यक्रम की विविधता ही रही है. फिर भी जैन युवक संगम और श्रमण जैन भजन प्रचारक सघ द्वारा आयोजित यह कार्यक्रम निश्चय ही एक सराहनीय प्रयास है.

संघ की ही प्रेरणा से अनेक जैन भक्ति-पदों के ग्रामोफोन रिकार्ड तैयार कराये गये है, जिन का प्रसारण ऑल इंडिया रेडियो से किया जाता है. एक हज़ार वर्ष पूर्व जैन आचार्य पार्श्वदेव द्वारा रचा गया 'संगीत समयासार' के संपादन एवं प्रकाशन का भी काम संघ कर रहा है. आचार्य बृहस्पति के निर्देशन मे आयोजित यह अनुष्ठान भारतीय संगीत के इतिहास मे एक बड़ा योगदान होगा, ऐसी आशा की जा सकती है.

मन में उमंग हो तो हर काम मे तरंग! इस लिए कोका-कोला पीजिए। स्वाद ऐसा कि बार-बार पीने को जी चाहे...कोका-कोला .. फिर कोका-कोला...फिर कोका-कोला। प्यास भी बुझाता है, आप के मन में नई उमंग भी जगाता है।
वाह री लज़्ज़त कोका-कोला। ऐसी लज़्ज़त और कहाँ!!

कोका-कोला, कोका कोला कम्पनी का रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क है।

हर मौक़े पे रंग, कोका-कोला के संग!

Coca-Cola

CMCC-5-203

बच्चन, नागार्जुन, इरावती कर्वे, कुलवंत सिंह विर्क, सत्यव्रत शास्त्री : पुरस्कार-क्षण

साहित्य

मिलन-अमिलन

साहित्य अकादेमी के पुरस्कार, समारोह, आयोजन आदि ही नहीं साहित्य अकादेमी स्वयं विवादास्पद हो गयी है. पिछले दिनों नीरद सी० चौधरी ने एक समाचार-पत्र में एक लेख लिख कर और कवि जी० शंकर कुरुप ने साहित्य अकादेमी पर एक गोष्ठी में वक्तव्य (देखिए दिनमान ६ अप्रैल) दे कर साहित्य अकादेमी संबंधी एक सार्थक विवाद को जन्म दिया है. नीरद चौधरी और शंकर कुरुप ही नहीं, देश के कई लेखक और बुद्धिजीवी साहित्य अकादेमी की वर्तमान कार्य-पद्धति के आगे प्रश्न-चिन्ह लगाने लगे हैं. और तो और साहित्य अकादेमी-पुरस्कार प्राप्त करने वाले भी उसे पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पा रहे. १९६८ के साहित्य अकादेमी पुरस्कार विजेताओं में से एक, नागार्जुन ने, जिन्हें मैथिली का पुरस्कार मिला है, साहित्य अकादेमी द्वारा आयोजित एक मिलन-गोष्ठी में साहित्य अकादेमी को आड़े हाथों लिया. मैथिली में बोलते हुए, हिंदी के प्रख्यात कवि और लेखक नागार्जुन ने, अपने भाषण में उस शैली का सहारा लिया जो व्यंग्य के निकट पड़ती है. ऊपर से मीठी लगने वाली चुटकियाँ, दरअसल मीठी नहीं हैं, इसे छिपाने का उन्होंने कोई प्रयत्न नहीं किया. उन्होंने कहा कि मैं मैथिली हिंदी दोनों में लिखता रहा हूँ. पुरस्कार मुझे मैथिली में मिला है तो इस की कोई शिकायत नहीं. लेकिन हिंदी में पुरस्कार लेने के लिए मुझे दूसरा जन्म लेना पड़ेगा, क्यों कि साहित्य अकादेमी का कोई भी पुरस्कार विजेता साहित्य अकादेमी का दूसरा पुरस्कार फिर नहीं पा सकता ऐसा नियम है.

नीरद चौधरी ने अपने लेख में, साहित्य अकादेमी की बंगला साहित्य जगत् में हुई कटु आलोचना का हवाला देते हुए लिखा था, कि साहित्य अकादेमी अगर इस आलोचना को भी भुला दे तो वह आत्म-परीक्षण के महती काम को भूला नहीं सकती. पिछले दिनों बंगला-साहित्य जगत में साहित्य अकादेमी की कटु आलोचना का कारण, १९६८ के पुरस्कारों में बंगला का कोई पुरस्कार न मिलना भी रहा है. नीरद चौधरी ने लिखा है कि अगर साहित्य अकादेमी के अधिकारी अपने निजी स्वार्थों को भुला कर सोचें तो वे इस के अब तक के आयोजनों के प्रति अपने को मोह भंग की स्थिति में पाने के लिए बाध्य होंगे.

बंगला-साहित्य जगत में हुई अकादेमी की आलोचना इस बात का उदाहरण है कि साहित्य अकादेमी भारतीय भाषाओं में सौहार्द्र उत्पन्न करने की जगह वैमनस्य ही उपजा सकी है. नीरद चौधरी का यह कहना सही मालूम होता है कि लेखकों के बीच भी वह स्पर्धा न उत्पन्न कर वैमनस्य ही उत्पन्न करती रही है. साल-दर-साल साहित्य अकादेमी के आयोजन और पुरस्कार सभा लेखकों के अनौपचारिक माहौल में एक खुलेपन के साथ संपन्न न हो कर, खासे औपचारिक दबे-बँधे वातावरण में संपन्न होते रहे हैं. हर साल पुरस्कार-समारोह का आयोजन राष्ट्रपति भवन में किया जाता है. पुरस्कार-समारोह वाले दिन, सवेरे साहित्य अकादेमी के दफ्तर रवींद्र भवन में मिलन-गोष्ठी के नाम पर पुरस्कार के 'स्टेटस' (प्रतिष्ठा) प्रदर्शन की गोष्ठी की जाती है, जो अक्सर अच्छा-खासा 'मजाक' बन जाती है. साहित्यिक-संवाद या साहित्यिकों की गोष्ठी न रह कर यह परस्पर कटाक्ष और हल्के-फुल्के विषयांतरों की गोष्ठी में परिणत हो जाती है.

इस वर्ष की गोष्ठी में भी नागार्जुन और डॉ० इरावती कर्वे को छोड़ कर बाकी पुरस्कार विजेता कोई प्रभाव नहीं छोड़ सके. महाभारत पर आधारित मराठी पुस्तक 'युगांत' के लिए पुरस्कृत श्रीमती इरावती कर्वे ने अपने भाषण से यह सिद्ध किया कि अकादेमी के परिसंवादों का स्तर दरअसल क्या होना चाहिए.

अकादेमी के आयोजनों की अरचनात्मकता दिन पर दिन लेखकों, प्रबुद्ध पाठकों को अपने से विमुख किये ले रही है. इस वर्ष की मिलन-गोष्ठी में स्थानीय कॉलेजों के कुछ प्राध्यापक-छात्रों, अकादेमी अधिकारियों-कर्मचारियों, पुरस्कार विजेता लेखकों के संबंधियों, विशेष रूप से आमंत्रित व्यक्तियों आदि की उपस्थिति ही थी. लेखकों की उपस्थिति नगण्य थी.

किताबें

सार्थकता और मुक्ति

जैनेंद्र ने अपने नये उपन्यास अनंतर में नैतिकता का अपना पुराना विषय फिर उठाया है लेकिन इस बार यह प्रश्न परिवार के संदर्भ में रखा गया है और परिवार से जुड़कर और परिवार से निरपेक्ष हो कर चलने वाले आदर्शों और नैतिकताओं को ज्ञान, विज्ञान, धर्म और प्रेम की कसौटी पर कसा गया है. विचार और प्रश्न को उभारने के प्रयत्न में उपन्यास कमजोर हुआ है, चरित्र कठपुतली बने हैं और सारा परिवेश जीवन का स्पर्श करते हुए भी जीवन से अलग दिखाई देता है. नायक 'मैं' निर्लिप्त द्रष्टा है, कर्म से भागता है, विचार गढ़ता है सब को अपने चारों ओर घुमाकर स्वयं निश्चल-सा रहता है.

उपन्यास की प्रमुख पात्रा 'अपरा' को अनास्था के विदेशी संसार से खींचकर जैनेंद्र ने आस्था के भारतीय संसार में प्रतिष्ठित किया है. मध्यवर्गीय भारतीय परिवार से, धनी-व्यवसायी व्यक्ति आदित्य से, धार्मिक संस्था और गुरु आनंद से घेरना चाहा है और वह सब से घिरकर भी अलग है. पारिवारिक मर्यादा मानते हुए भी वह परिवार से नहीं बँधती, धार्मिक संस्थागत मर्यादाओं से घिरकर भी उस से अलग रहती है, प्रेम और श्रद्धा को स्वीकार कर भी बुद्धि से अनुशासित होती है. इस जटिल मुक्त प्रखर तेजस्वी चरित्र की सृष्टि में जैनेंद्र ने जल्दबाजी की है और अन्य चरित्रों को उस के निखार के लिए प्रस्तुत कर उपन्यास को एक महत्वपूर्ण उपन्यास नहीं बनने दिया है. इसी का परिणाम है कि अपरा एक भावुक चरित्र की तरह प्रेम के नाम पर अंत में रोने लगती है जिस की पूरे उपन्यास से और उस के मुक्त विचारों से कोई संगति नहीं बैठती. "आदमी-आदमी के बीच जिस ने शंका पैदा कर दी है उसे नैतिकता कहते हैं . . . जो नैतिक कर्त्तव्य अपने पास रखता है वह निःस्वार्थ नहीं हो सकता . . . क्या हम एक दूसरे की हमदर्दी में भी निडर नहीं हो सकते' अपरा के ऐसे विचार जगत् के सामने धर्मार्पित वन्ध्या का प्रश्न कि 'विज्ञान बढ़े तो क्या मानव चरित्र को घटना ही चाहिए' अनुत्तरित रह जाता है. और लेखक का कथन 'बुद्धि तोड़ कर लेती और सार्थक होती है. श्रद्धा युक्त हो कर मुक्त होती है' सूक्ति की तरह रह जाता है प्रमाणित नहीं होता. फिर भी जैनेंद्र का यह उपन्यास इधर लिखे गये उपन्यासों में महत्वपूर्ण है और अपनी शैली, भाषा, सफाई अनेक दृष्टि से पठनीय है.

अनंतर; जैनेंद्र; पूर्वोदय प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली-६; मूल्य : छः रुपया.

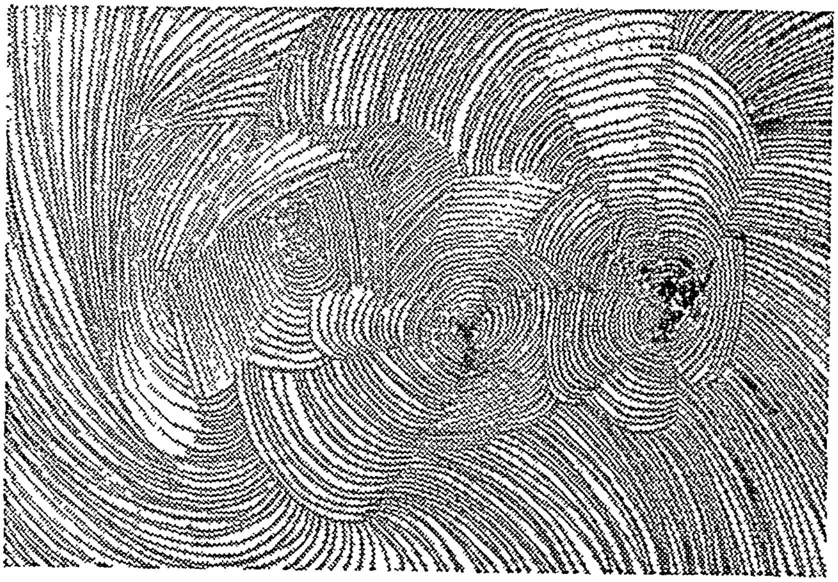

मृदुला कृष्ण : रेखा-नृत्य

कला

रेखा-दर-रेखा

अमूर्त्त रूपाकारों को देखते रहने के आदी हो चुके प्रेक्षक के लिए मृदुला कृष्ण के रेखांकन सुखद विपर्यांतर करते है. दृश्यांतर की बात यहाँ इस लिए उल्लेख्य है कि मृदुला कृष्ण अपने रेखांकनों में रूप-चित्र उपस्थित नहीं करतीं—यानी रेखांकन आकृतिमूलक नहीं हैं. फिर भी इन के अमूर्त्त रूपाकार उतने अमूर्त्त नहीं हैं. इसे यों भी कह सकते हैं कि वह अमूर्त्त की बुनावट को उभारती हैं. इस में उन के रेखांकनों का आकर्षण छिपा है और इसी मामले में उन के रेखांकन एक विपांतर हैं.

मृदुला कृष्ण : अमूर्त्त की बनावट

अपनी दूसरी एकल प्रदर्शनी (श्रीधराणी कला दीर्घा) में उन्होंने काली स्याही के तथा एकरंगे-दुरंगे रेखांकन प्रदर्शित किये हैं. इस के पहले उन की वातिक कृतियाँ चर्चित-प्रशंसित हो चुकी हैं. मृदुला कृष्ण के ये रेखांकन अक्सर गझिन हैं, लेकिन जटिल नहीं. रेखाओं को वह अधिकतर एक दूसरी से सटा कर रखती हैं. कुछेक रेखाएँ तो रेखा-दूरी के रूप में भी उभरती हैं, लेकिन उन का फ़ासला कभी बड़ा नहीं होता. चरखी की तरह घूमती हुई ये रेखाएँ एक गतिमयता की सृष्टि करती हैं. कुछेक रेखांकनों में उन की रेखाएँ किसी कुंड या जलाशय के चारों ओर बनी सीढ़ियों के रूप में भी उभरती हैं. अक्सर थिरकती या नृत्यरत इन रेखाओं में शंखों या पुष्पों की आकृतियाँ बनती हैं. कुल मिला कर ये संवेदन-ध्वनियों का मूर्त्तीकरण हैं.

मृदुला कृष्ण के रेखांकनों में आकृतियाँ भी उभरती हैं, लेकिन इस रूप में कि पहले रेखाएँ और बाद में आकृतियाँ. एक रेखांकन में दो आकृतियाँ साफ़ दिखती हैं, लेकिन ध्यान पहले रेखाओं की ओर जाता है, उन की मांसलता की ओर, यहीं यह भी कि यह मांसलता रूई भरी गद्दियों की भी याद दिलाती है, यानी एक प्रकार की कोमलता की. कहना न होगा कि मृदुला कृष्ण के प्रायः सभी रेखांकनों में यह मांसलता बरक़रार है. पिक्चर-पोस्ट कार्ड की शक्ल वाले उन के लघु रेखांकनों व अम्ल-लेखनों में रंग-छायाएँ पुंजीभूत हो कर उभरती हैं, लेकिन जहां ये रंग-छायाएँ पुंजीभूत हो कर रंग-विंव के रूप में आकर्षित करती हैं वहीं रेखांकन-दृष्टि का उद्देश्य धूमिल होने लगता है. इसी लिए

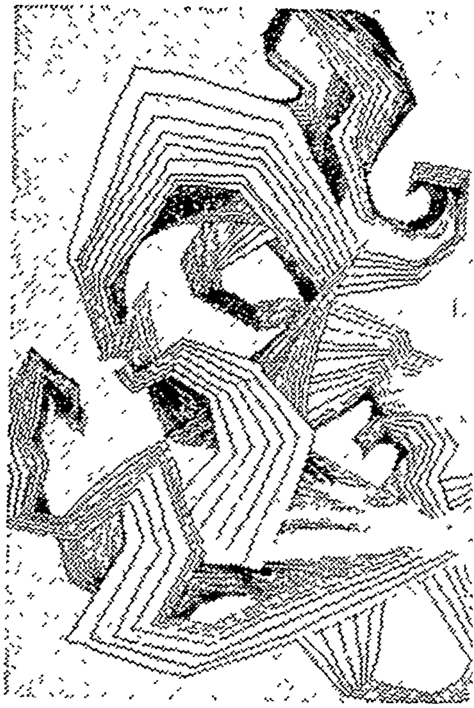

मृदुला कृष्ण : रेखा-मूर्तिशिल्प

मृदुला कृष्ण के लघु आकार के रेखांकन रेखा-धर्मी न हो कर रंग-धर्मी लगते हैं. कुछेक एकरंगी रेखांकनों में उन्होंने त्रिभुज और चौखाने उभारे हैं. ये ज्यामितिक ढांचे रेखा-रूपों में रूपायित हो कर आकर्षित करते हैं. एक ही रंग में उन्होंने रेखा-स्पर्शो के द्वारा रंग-छायाएँ पैदा की हैं—दो एक चित्रों में. यह रेखा-रंग प्रयोग उन की रेखांकन क्षमता का सबूत तो है ही, उन की रंग-समझ भी प्रकट करता है.

मृदुला कृष्ण के ये रेखांकन चित्रों की बनिस्बत अमूर्त्त रूपाकारों वाले मूर्तिशिल्पों से अधिक प्रभावित लगते हैं, बल्कि कुछ चित्रों को देख कर तो उन्हें मूर्तिशिल्पीय-रेखांकन कहने की इच्छा होती है. इन में स्पेस को अक्सर मूर्तिशिल्पीय लक्षणों में व्यंजित किया गया है.

मृदुला कृष्ण के ये रेखांकन ताज़गी का एहसास कराते हैं.

(अल्यूमीनियम) चादर पर चित्र

कानपुर के युवा चित्रकार राम गुप्त पिछले कुछ वर्षों से अल्यूमीनियम की चादरों पर चित्र-रचना करते रहे हैं. अल्यूमीनियम की चादर पर चित्र-रचना-प्रयोग की प्रक्रिया इच्छित अभिव्यक्ति के लिए बहुत सहायक नहीं हो पाती. चादर पर रसायन-रंग घोल कौन से अमूर्त्त रूपाकार उभारेगा, इस की पूरी कल्पना चित्रकार भी नहीं कर पाता. रूपाकारों को रूपायित करने में उस का पूरा

हाथ नहीं होता. यों राम गुप्त इस रचना-प्रक्रिया को अज्ञात की खोज के रूप में ही लेते रहे हैं. इस दृष्टि से देखें तो उन के चित्र कुछ ऐसे रूपाकारों को उभारते ज़रूर हैं जो मन में सहसा ही कोई समानांतर चित्र नहीं उभारते; न ही सहसा किसी मनःस्थिति या वातावरण से जुड़ते हैं. यह स्थिति ही न चित्रों की संभावना और सीमा है, क्यों कि यहीं पहुँच कर वह कहीं ले जाने वाले नहीं लगते, लेकिन साथ ही वस्तु-जगत् से स्वयं को जोड़े जाने के लिए उकसाते भी हैं.

पिछले दिनों बंबई की **चेतना आर्ट गैलरी** में उन के नये चित्रों की प्रदर्शनी आयोजित हुई. राम गुप्त के इन चित्रों में भी पानी के बहुत छोटे-छोटे गढ्ढों या पानी द्वारा काटी गयी ज़मीन की तरह के रूपाकार उभरे हैं. ऊँची-नीची पर्वत-श्रेणियों की भी इन में झलक है और यह आकस्मिक रूप से नहीं है. राम गुप्त ने हिमालय और उत्तराखंड की यात्रा कई

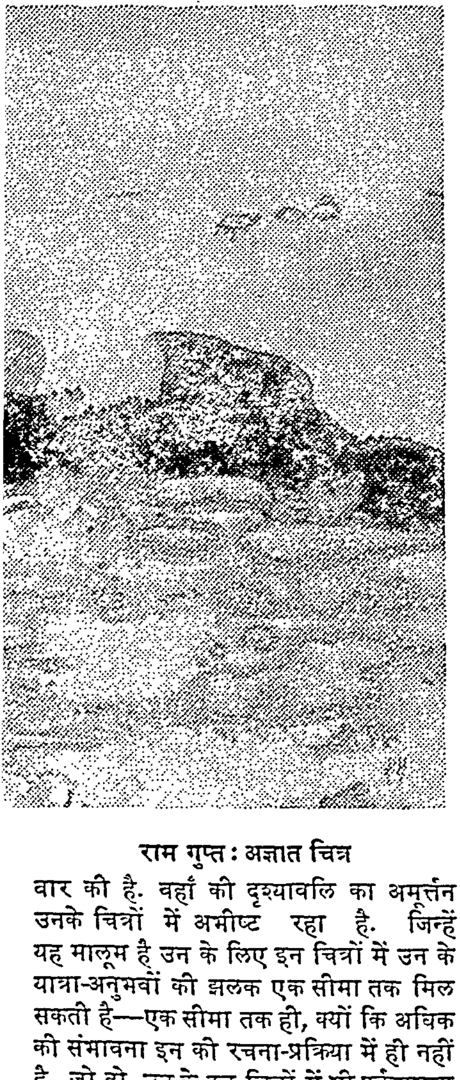

राम गुप्त : अज्ञात चित्र

बार की है. वहाँ की दृश्यावलि का अमूर्त्तन उनके चित्रों में अभीष्ट रहा है. जिन्हें यह मालूम है उन के लिए इन चित्रों में उन के यात्रा-अनुभवों की झलक एक सीमा तक मिल सकती है—एक सीमा तक ही, क्यों कि अधिक की संभावना इन की रचना-प्रक्रिया में ही नहीं है. जो हो, उन के इन चित्रों में भी पर्वताभास है और इस से यह सिद्ध होता है कि अल्यूमीनियम माध्यम में भी इच्छित को थोड़ा-बहुत सँवारा जा सकता है.

लकड़ी और क़ागज़ को जला कर रूपाकार व रंग-छायाएँ तैयार करने के सफल प्रयोग भारतीय चित्रकारों ने किये हैं. जे. राम पटेल, हिम्मत शाह आदि के नाम तुरंत ध्यान में आते हैं. नये माध्यम की खोज रूढ़ि को तोड़ने में सहायक होती हैं और अभिव्यक्ति की एक और राह तैयार करने में ही. लेकिन राम गुप्त अभी अनायास के ही अधिक निकट हैं. प्रयोगधर्मी वह ज़रूर हैं, लेकिन प्रयोग की दिशा निर्धारित करने के कर्म से वह बचते रहे हैं. अल्यूमीनियम की चादरों पर उन्होंने रासायनिक उपकरणों से जो रंग-छायाएँ उभारी हैं वे यह बताती हैं कि इस माध्यम को सार्थक माध्यम बनाया जा सकता है. जो अनायास रूपाकार उन के चित्रों से उभरे हैं वे भी यही बताते हैं कि अमूर्त्त की अभिव्यंजना उन में व्याप सकती है, बशर्ते उन की रचना-प्रक्रिया में एक कसाव आये.

तनावरहित संप्रेषण

युवा चित्रकारों में, खास तौर पर जो कि अभी छात्र हैं, आधुनिक मन की पड़ती जा रही तहों में से 'अचानक' शक्ल बनाता हुआ कैनवास का कोई परिचित विभाजन या फिर सरलीकरण साफ़ उभर कर सामने आ रहा है, जो कि कला-वातावरण बनाने की दिशा में घटने के अलावा कुछ नहीं देता. जीवन या उस से भी नीचे कला-बाज़ार की चमक को कला के रूप में आत्मसात कर लेने की उत्कट इच्छा इस का एक बड़ा कारण है और इस कारण को कला-अध्यापकों द्वारा प्रोत्साहन मिलता ही है. अधिकांश चित्रकला क्यों कि छात्र-अध्यापक के संबंधों को ले कर निर्धारित हो रही है इस लिए सर्जन के संसार से कला-जानकारी की टक्कर बराबर चलती रहती है, जिस से कि अधिकांशतः घटिया कला उत्साहित होती है. **राजकीय कला एवं शिल्प महाविद्यालय, लखनऊ** (उ० प्र०) के ३९वें वार्षिक प्रदर्शन में छात्रों-अध्यापकों की अपने-आप में ही स्पष्ट दूरी कला की पहचान को धुंधला करने में सहायक है. इस तथ्य के संदर्भ देखने में उतने बड़े नहीं लगते जितने कि हैं. **असद अली तथा सतीश चंद्र**—महाविद्यालय के इन दो अध्यापकों का कार्य अगर उदाहरण के रूप में लिया जाये तो लगता है अमेरिकी चमकती हुई रंगीन पत्रिकाओं के कवर कैनवास हो गये हैं. उन में संप्रेषण कहाँ और कब है समझ में नहीं आता.

प्रदर्शन को कई बार महसूस करने के बाद अध्यापकों का कार्य अगर चर्चा से अलग कर दिया जाये तो निश्चित् ही महाविद्यालय में इस समय भी कुछ ऐसे छात्र हैं जिन्हें यदि अपनी

शिवकुमार वर्मा : लिथोग्राफ़

धारणाओं को कुछ आगे बढ़ाने का अवसर मिला तो वह कला को जोड़ में ही कुछ देंगे. **जिभूतेंद्र गंगोली, वसंत कुमार** तथा **सदाशय सक्सेना** इन तीन छात्रों का कार्य 'अचानक' या तनावरहित नहीं है. इसी प्रकार **गोपालदत्त शर्मा** और **धीरेंद्र कुमार** के कैनवास विषय की पकड़ या रंगों की बुनावट के कारण आश्वस्त करते हैं. अन्य छात्रों में **देवेंद्र कौर** (एचिंग), **शिवकुमार वर्मा** (लिथ.ग्रॉफ), **टी. एन. सिंह** (मूर्त्तिशिल्प) और **कुमारी सुशीला** चालू चित्रकला से अपने-आप को अलग कर सके हैं और उन का कार्य उल्लेखनीय है. व्यापारिक कला तथा छायांकन में महाविद्यालय काफ़ी पीछे है. यह बात इस लिए भी खटकती है कि इन क्षेत्रों में संभावनाएँ और सर्जन के चौखटे स्पष्ट हैं; पर फिर भी वही हो रहा है जो अब नहीं होना चाहिए.

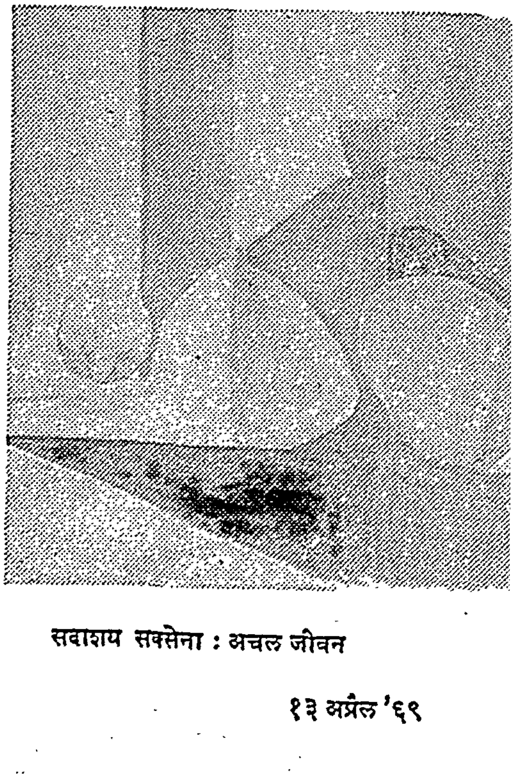

सदाशय सक्सेना : अचल जीवन

परचून

विदेशियों की जर्मन पत्नियाँ

जर्मन लडकियाँ आज-कल विदेशी पतियों की खोज में रहती हैं—ताज़े आँकड़ों से इस बात का पता चलता है. १९६९ में १८,१०२ जर्मन लड़कियों ने विदेशी युवकों से विवाह किया. कुछ बुरे अनुभवों के बावजूद भी विदेशियों से विवाह करने वाली जर्मन लड़कियों की संख्या बढ़ती जा रही है. इन विदेशियों में छात्र और कार्यकर्त्ता शामिल हैं. अधिकांश विदेशी यूरोपीय देशों और अमेरिका के होते है, पर १९६६ में जर्मन लड़कियों से विवाह करने वालों में १६०५ व्यक्ति एशियाई और ४३७ व्यक्ति अफ़्रीकी देशो के थे. कोलोन के निष्क्रमणार्थी दफ़्तर में १५० से अधिक देशों की महिलाओं के दरजे के बारे में तथा विवाह संबंधी क़ानूनों के बारे में पूरी जानकारी उपलब्ध रहती है. परंतु विदेशियों से विवाह की इच्छा करने वाली बहुत कम जर्मन लड़कियाँ इस दफ़्तर के परामर्श से लाभ उठाती हैं.

गत्ते का फ़र्नीचर

पिछले वर्ष से ब्रिटेन, जर्मनी और स्वीडन में कई तह वाले काग़ज़ से गत्ते से फ़र्नीचर बनाये जा रहे है, जिन में मेजें, आराम-कुर्सियाँ, कुर्सियाँ, किताबों के शेल्फ़, लैंप और झूले शामिल है. ये फ़र्नीचर देखने में सुंदर हैं तथा मज़बूत और टिकाऊ भी. उन पर चमकदार रंगों का इस्तेमाल किया जाता है. अब ऐसे फ़र्नीचर चेकोस्लोवाकिया में भी बनने लगे है. समाजवादी देशों में चेकोस्लोवाकिया ने फ़र्नीचर बनाने लायक गत्तो के उत्पादन में पहल की है. इस समय चेकोस्लोवाकिया के बाजारों में गत्ते के फ़र्नीचर १३ भिन्न-भिन्न आकारों में उपलब्ध है. सुंदर, हल्के और टिकाऊ होने के कारण इन की लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है. जगह की तंगी और घरेलू काम-काज में सहायता की कमी के कारण ऐसे फ़र्नीचर अन्य देशों में भी पसंद किये जाने की आशा है.

विज्ञान के प्रति अरुचि

विद्यार्थियों के इस समय के रुझान को देख कर शंका होती है कि ब्रिटेन की आने वाली पीढ़ियाँ विज्ञान से मुँह मोड़ लेंगी. ऑक्सफ़ोर्ड शायर के एक प्रिंसिपल के अनुसार विज्ञान को अध्ययन का विषय बनाने वाले छात्रों की संख्या कम होती जा रही है. उन्होने जो आँकड़े दिए हैं

उन के अनुसार ऑक्सफ़ोर्ड शायर क्षेत्र में पिछले पाँच साल में विज्ञान के छात्रों की संख्या ३२,७०० से घट कर ३१,७०० हो गयी है, जब कि इतिहास, साहित्य जैसे विषयों के छात्रों की संख्या दुगनी हो गयी है. १९६२ में इन की संख्या ३८,३०० थी, अब ७६,१०० है. भविष्य में विज्ञान के प्रति अरुचि और बढ़ेगी, ऐसा शिक्षाविदों का मत है.

चेकोस्लोवाक फ़िल्में श्रेष्ठ फ़िल्मों में

अमेरिका के प्रतिष्ठित दैनिक **न्यूयॉर्क टाइम्स** ने १९६८ की दस सर्वश्रेष्ठ फ़िल्मों में दो चेकोस्लोवाकिया की फ़िल्मों को भी स्थान दिया है. एक फ़िल्म निर्देशक ब्रीनिख की **पाँचवे सवार नाम आतंक** है और दूसरी है निर्देशक नेमेत्स की **मेहमान एक पार्टी में**. इसी पत्र ने दुनिया की सर्वश्रेष्ठ बीस फ़िल्मों में चेक निर्देशक फ़ोरमान की **फ़ायरमैन का समारोह** फ़िल्म को भी स्थान दिया है.

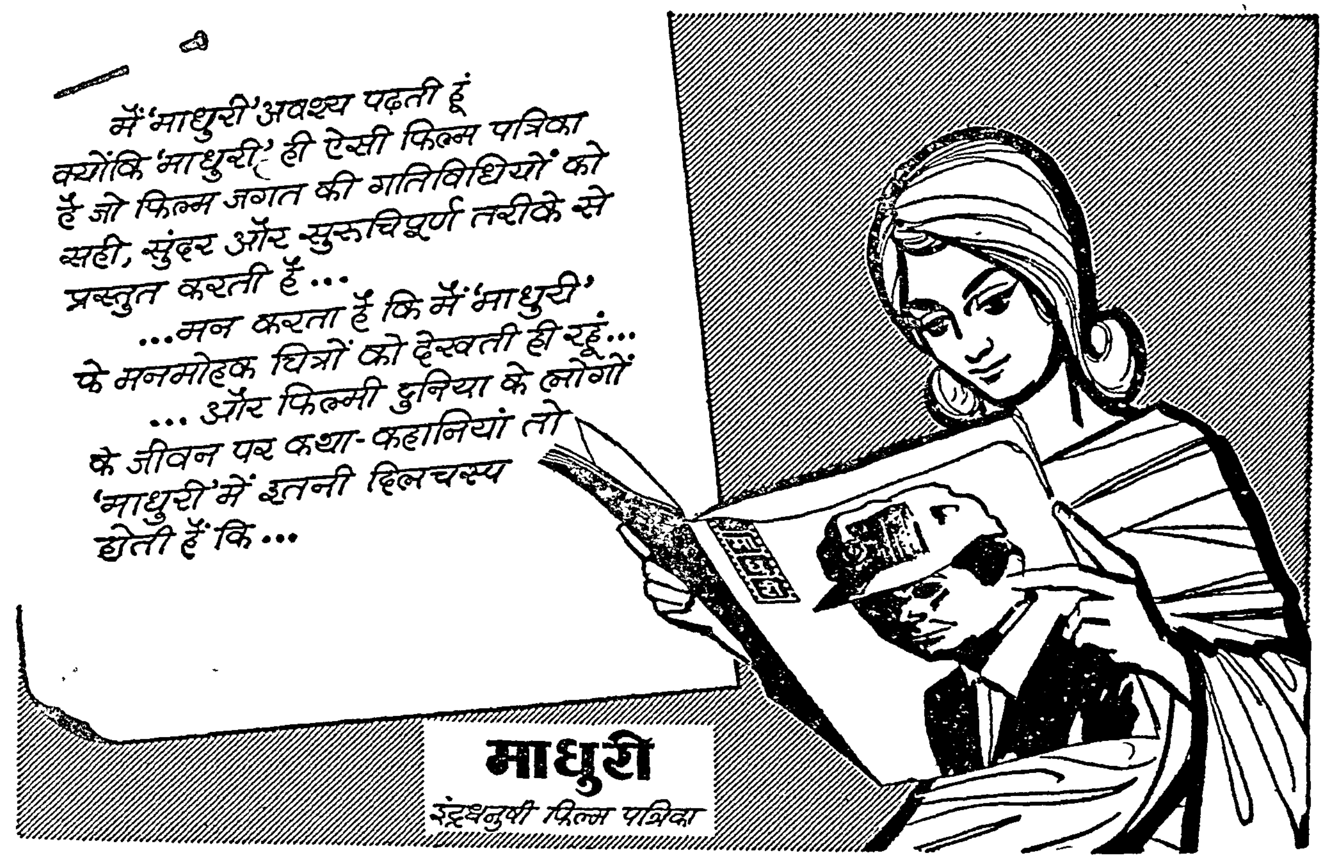

नियमित उपयोग से फ़ोरहन्स टूथपेस्ट मसूढ़ों के कष्ट और दंत-क्षय को रोकता है

जवानों और बूढ़ों द्वारा अपने आप भेजे गये प्रमाणपत्रों में मसूढ़ों की तकलीफ़ और दांतों की खराबी को रोकने के लिए फ़ोरहन्स टूथपेस्ट के गुणों की समान रूप से प्रशंसा की गई है। ये प्रमाणपत्र जेफ़्री मैनर्स एण्ड कंपनी लि. के किसी भी कार्यालय में देखे जा सकते हैं।

"मैं आपका 'फ़ोरहन्स टूथपेस्ट' पिछले चार साल से नियमित रूप मे इस्तेमाल करता हूँ। चार साल पहले जब मेरे दाँतों की हालत अच्छी नहीं थी ..उनसे अक्सर खून निकलता था...और बदबू भी आती थी.. तब एक डॉक्टर ने... 'फ़ोरहन्स टूथपेस्ट' इस्तेमाल करने की सलाह दी। ..मुझे दाँतों की बीमारियों से छुटकारा मिल गया है और अब मेरे दाँत बिल्कुल ठीक हैं।"

—'रामू', कडप्पा

"पिछले तीन साल से आपका 'फ़ोरहन्स' टूथपेस्ट' इस्तेमाल करने से मेरे मसूढ़े मजबूत और स्वस्थ हो गये हैं। पहले मेरे मसूढ़ों में बहुत तकलीफ़ होती थी... अब मुझे आपके टूथपेस्ट की बदौलत ही इस तकलीफ़ से छुटकारा मिल गया है।

— डी. एन. दास, शिखरपुर

"मैं आपका बनाया हुआ फ़ोरहन्स टूथपेस्ट लगभग पिछले १८ साल से इस्तेमाल कर रहा हूँ। पहले...मेरे दाँतों और मसूढ़ों की हालत बहुत बुरी थी। मिसाल के लिए, दंत-क्षय और पायरिया के कारण मेरे पेट में दर्द और बेचैनी रहती थी।...पिछले १८ साल से मेरे दाँतों और मसूढ़ों की हालत बहुत अच्छी रही है – सिर्फ़ फ़ोरहन्स टूथपेस्ट की बदौलत।"

— शंकर के. कुंभार, बंबई

दाँतों की समुचित देख भाल के लिए फ़ोरहन्स टूथपेस्ट और दोहरे असरवाला फ़ोरहन्स टूथब्रश हर रोज़ रात में और सुबह इस्तेमाल कीजिए...और अपने दांत के डाक्टर से नियमित मिलते रहिए।

मुफ़्त "दाँतों और मसूढ़ों की रक्षा" संबंधी रंगीन पुस्तिका

यह पुस्तिका हिन्दी और अंग्रेज़ी में मिलती है। इसे मँगवाने के लिए इस कूपन के साथ १५ पैसे के टिकट (डाक-खर्च के वास्ते) इस पते पर भेजिए: मैनर्स डेन्टल एडवाइज़री ब्यूरो, पोस्ट बैग नं. १००३१, बम्बई १

नाम ________ आयु ________

पता ________

D—18

भाषा ________

फ़ोरहन्स एक दाँतों के डाक्टर द्वारा निर्मित टूथपेस्ट

63F-203 HIN

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित.

साप्ताहिक
दिनमान
टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

तेलंगाना-मंथन • अछूत मानव
जोशी का प्रस्थान • राष्ट्रवादी मुसलमान
भारतीय प्रवासी • कम्युनिस्ट जगत्

२० अप्रैल, १९६९
३० चैत्र, १८९१

मेरी चाय के लिए सबसे मजेदार

ताज़े पास्चुरीकृत दूध से बना हुआ
कैवेण्टर का संघनित दूध
चाय, काफ़ी और दूध से बनी अन्य चीज़ों में
कुछ और ही मज़ा देता है.
इससे चीनी का खर्चा भी कम हो जाता है.

एडवर्ड कैवेण्टर (सक्सेसर्स) प्राइवेट लिमिटेड

सरदार पटेल रोड,
नयी दिल्ली

दिल्ली के लिए वितरक :

मेसर्स बाबा अर्जन सिंह एण्ड कं०

३९, कटरा बड़ियान, दिल्ली
फोन : २६८९१५

नेस्कैफ़े का

स्वाद ही बताता है कि:

१ यह दक्षिण भारत की सर्वश्रेष्ठ कॉफ़ी के दानों से बनायी गयी १००% शुद्ध कॉफ़ी है।

२ यह 'इंस्टेंट' कॉफ़ी बनानेवाली, दुनिया की सबसे अधिक अनुभवी कंपनी की बनायी हुई है।

३ यह अपनी इच्छानुसार तेज़ या हल्की बनायी जा सकती है।

कम भरा हुआ सपाट भरपूर

और यह किफ़ायती है :

ज़रूरत से ज़्यादा कॉफ़ी डालनी नहीं पड़ती और ज़रा सी भी बेकार नहीं जाती क्योंकि फेंकने जैसी कोई तलछट रहती ही नहीं।

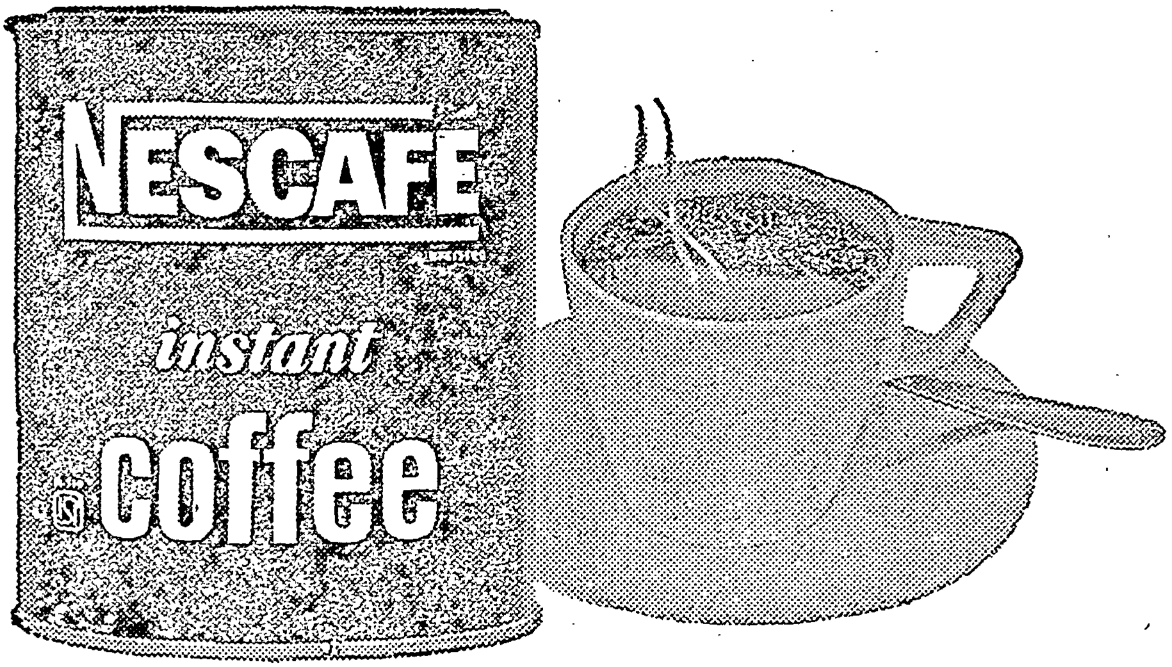

NCE-1030H-A2

NESCAFÉ* नेस्कैफ़े—वह कॉफ़ी जिसके स्वाद का जवाब नहीं !

नेस्ले उत्पादन

*नेस्कैफ़े नेस्ले की इंस्टेंट कॉफ़ी का रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क है।

मत और सम्मत

तेलंगाना : राज्य के नेताओं ने बारह वर्षों से तेलंगाना प्रदेश की प्रगति के लिए कोई ठोस कार्य नहीं किया और इस की उपेक्षा की, जिस का नतीजा यह हुआ कि यहाँ की जनता का सरकार के प्रति विश्वास उठ गया और तेलंगाना की जनता किसी तरह के प्रस्ताव को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है. इस हालत में मुख्य-मंत्री को कांग्रेस को सत्तारूढ़ बनाए रखना भी कठिन हो जाएगा, क्यों कि 'पृथक तेलंगाना राज्य' के समर्थक कांग्रेसी के विरुद्ध कार्यवाही करने का संकेत उन्होंने दिया है और यह बात कांग्रेस के अस्तित्व के लिए हानिकारक है. सब से उचित बात स प्रश्न को हल करने की यह होगी कि ब्रह्मानंद रेड्डी को मुख्यमंत्री-पद से त्यागपत्र दे देना चाहिए और किसी तेलंगाना के सदस्य को मुख्यमंत्री-पद दे कर तेलंगाना के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए ठोस कार्य करना होगा, वर्ना यह आंदोलन देश को किस रास्ते ले जायेगा इस की कोई कल्पना नहीं कर सकता. —रामगोपाल, निज़ामाबाद

भारत-पाक महासंघ : आप के पत्र को पढ़ कर ऐसा लगता है कि भारत और पाकिस्तान की सभी समस्याओं का एक मात्र हल भारत-पाक महासंघ है. परंतु मैं इसे कोरी कल्पना ही समझता हूँ. विभाजन, जो १९४७ में हुआ था, ज़मीन का ही बँटवारा नहीं था, अपितु वह दो संप्रदायों के दिलों का विभाजन था. क्या बात है कि भारत-पाक महासंघ की बात भारत में ही उठती है, पाक में नहीं ? ऐसा मालूम पड़ता है कि महासंघ की बात मात्र एक राजनैतिक चाल है—चुनाव में अल्पसंख्यक संप्रदाय के वोट प्राप्त करने के लिए.

—मुरारी मुद्‌गल, पटौदी (हरियाणा)

दिनमान : ३० मार्च : श्री विजयदेव नारायण साही ने यह सलाह दी है कि वहाँ की जनता को न सिर्फ़ पाकिस्तान में चल रहे जनआंदोलन का समर्थन करना चाहिए, बल्कि यहाँ से स्वयं-सेवकों की एक टोली वहाँ भेजी जानी चाहिए. आश्चर्य होता है कि एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी इस तरह की अव्यावहारिक बात कर सकता है. क्या साही जी यह मानते हैं कि अगर यहाँ के लोग स्वयंसेवकों की टोली पाकिस्तान भेजना चाहें तो वहाँ की सरकार इस की अनुमति दे देगी ?

—राधामोहन प्रसाद, टाटानगर (बिहार)

हस्तक्षेप : खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार खान का पख़्तूनिस्तान का समर्थन कर जाने-अनजाने हम एक भयंकर भूल करते हैं. यह पाकिस्तान के घरेलू मामले में खुला हस्तक्षेप है, जो पंचशील के ख़िलाफ़ आता है. फिर हम नगालैंड और कश्मीर में चीनी और पाकिस्तानी हस्तक्षेप की निंदा किस नैतिक साहस से कर सकेंगे, हालांकि दोनों 'हस्तक्षेपों' में काफ़ी अंतर है.

—सुरेंद्र अकेला, एबादुल रहमान,
रामनाथ ठाकुर 'आलोक',
सुरेश शेखर, पटना

मत-सम्मत : २३ मार्च : श्री सिधुराज सिंह के विचारों से सहमत होते हुए इतना जोड़ना चाहता हूँ कि हिंदी को सरकारी काम-काज की भाषा घोषित किये जाने के बाद से उन जगहों में जहाँ अहिंदीभाषी अधिक संख्या में हैं सरकारी दफ़्तरों में भी हिंदी में हस्ताक्षर करने वालों को तंग किया जाने लगा है.

—दा. कु. अरविंद, गुवाहाटी-१२ (असम)

साहित्य अकादेमी : साहित्य अकादेमी से उस के प्रकाशनों की सूची मँगवाने पर जो बावन पृष्ठों की पुस्तिका आयी है वह बेजोड़ है—सरकारी कौशल का नमूना. उन्नीस भाषाओं में प्रकाशित अपनी पुस्तकों का संपूर्ण विवरण अकादेमी ने महान भारतीय (शासकीय) भाषा अंग्रेज़ी में दिया है, जिसे पढ़ कर दुःख भी हुआ, हँसी भी आयी. कम से कम इतना काम तो 'सरकारी ग़ालिब' कर ही सकते हैं कि प्रत्येक भाषा की पुस्तकों की सूची उस की लिपि में ही प्रकाशित की जाये और जिसे जिस की ज़रूरत हो उसे वह भेजी जाये. पर जब सरकार की नेत्री किसी को भी ग़ालिब बना सकती है और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश (श्रीमन गजेंद्रगडकर) किसी को गांधी-टैगोर बना देते हैं तो इस देश में इतने सरकारी विवेक के लिए अभी और प्रतीक्षा करनी होगी?

—कुमार प्रशांत, मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)

सभ्य बनाम असभ्य : प. बंगाल के अंतर्गत दार्जिलिंग ज़िले में गत ८ अक्तूबर को जो भूमि-धसान हुआ उस का एक कुफल यहाँ की रेल-लाइन बहा कर ले गया. सड़क टूट गयी. अभी छः महीने से रेल बंद है. मोटर भी ऊबड़खाबड़ रास्ते से हो कर जाती है. समझ में नहीं आता ये भारत के लोग अपने को दुनिया में सभ्य-शिक्षित समझते हैं. भारतीय लोग ये भी कहते हैं जिस समय हम लोग महल में रहते थे उस समय ये फ़िरंगी अंग्रेज़ जंगल की गुफ़ा में रहते थे. अब देखिये. वही जंगली अंग्रेज़ का बनाया हुआ रेल रास्ता भारत का सभ्य आदमी मरम्मत तक नहीं कर सकता. कितने शर्म की बात है. यदि अंग्रेज़ों ने यहाँ की रेल लाइन पहाड़ खोद कर नहीं बनायी होती तो ये भारत के सभ्य लोग भी

नहीं बनाते. शायद कहते हम लोग इतने मूर्ख नहीं हैं जो ऐसा असंभव काम करेंगे.

—चंद्रभान सिंह, दार्जिलिंग

निष्क्रिय बुद्धिजीवी : ३० मार्च : आपने पड़ोसी नेपाल के सिद्धांत, निष्ठा व साहस की कमियों से युक्त बुद्धिजीवियों की पीड़ा और उफनती बौद्धिक कुंठन और उस उफान की इति केवल असमंजस और किंकर्तव्यविमूढ़ता में की. इस संबंध में जो सामग्री प्रकाशित की है उसे पढ़ कर अत्यधिक हर्ष हुआ. वास्तव में नेपाली युवकों और बुद्धिजीवियों की हालत ओला-वर्षा के समय माँद में बैठे हुए सियार की है, जो बाहर से माँद में पानी आते देख कर तो बाहर निकल भागता है, किंतु बाहर आने पर न सिर्फ़ उसे पानी से भीगना पड़ता है बल्कि उसे ओले की मार भी खानी पड़ती है. फिर भी नेपाली युवक एवं खास कर छात्रों की जागरूकता महत्त्व की ही नहीं बल्कि उसे सहयोग आवश्यक है. भारत सरकार शायद कुछ दिन से अब निश्चिंत प्राय निद्रा में उत्तर की ओर से सो रही है. कौन जाने यह उदास निश्चिंतता की निद्रा स्वयं भारत के लिए खतरा हो. एक ओर तिब्बत को गँवा कर यह स्थिति बनायी है तो अब बचेखुचे नेपाल को भी गँवा ही ले. यह क्षेत्र भी क्यों सुरक्षित रहे ?

—रामचंद्र चोकरी (नेपाली) सीतामढ़ी

इस्पात के खोपड़े : गत अंकों में श्री हरिशंकर परसाई जी की पुस्तक की समीक्षा भी 'अदिनमानीय समीक्षा' थी.

—श्रीकांत जोशी, खंडवा

बहुत बढ़िया चिट्ठी है, जैसे को तैसी शैली में. अगर लोगों में अक्ल होती तो इसी एक चिट्ठी से सारी किताबें बिक जातीं. मगर ट्रेजडी यह कि मेरा व्यंग्य १३ सालों से पढ़ने के अभ्यस्त भी कोई-कोई कहते थे—यह स. द. स. कौन हैं और क्या इन से आप के संबंध अच्छे नहीं हैं ? किस पर व्यंग्य मारा जाए ? इस्पात के खोपड़े कंधे पर लगा कर रखे हैं.

—हरिशंकर परसाई, जबलपुर

जाति तोड़ो दिवस : क्या वर्ष में मात्र एक दिन जाति तोड़ो दिवस मना देने से ही उसे मार भगाया जा सकता है ? अंतरराष्ट्रीय विवाह करने वालों की समस्याएँ क्या उन्हें एक दिन सम्मानित कर देने मात्र से ही सुलझ सकती हैं ?

—लल्लनप्रसाद सिंह, सारन

शेख अब्दुल्ला की माँग : शेख अब्दुल्ला ने चुनाव-प्रचार में भाषण-स्वातंत्र्य की माँग करते हुए कहा कि 'कांग्रेस प्रत्याशियों को भारत का गुणगान करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए; किंतु इस के साथ ही अन्य लोगों को यह कहने की स्वाधीनता हो कि कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल होना चाहिए. क्या भारत सरकार शेख को भारत की अखंडता व एकता पर खुली चोट करने का मौक़ा दे कर वह देश में अशांति व अव्यवस्था को मौन निमंत्रण नहीं दे रही है ?

—सुरेंद्र तिवारी, रायपुर (म.प्र.)

पत्रकार संसद

लोकतंत्र और तानाशाही; दो पद्धति, दो देश

भारत और पाकिस्तान दो पड़ोसी देश ही नहीं, बल्कि एक महाद्वीप के दो अंग हैं : पाकिस्तान की घटनाओं के संदर्भ में भारत का उल्लेख स्वाभाविक है. ब्रितानी पत्र **गार्डियन** में प्रकाशित **जॉन ग्रिग** के एक लेख में पाकिस्तान की आज की उथलपुथल के संदर्भ में भारतीय लोकतंत्र की प्रगति की समीक्षा की गयी है. प्रसिद्ध पत्रकार ग्रिग ने अपनी दो वर्ष पहले की भारत यात्रा का उल्लेख करते हुए लिखा है :

अभी दो वर्ष पहले दिल्ली में भ्रमण करते समय मेरी कार का पंजाबी ड्राइवर मुझे बताने लगा कि वह विशाल राष्ट्रपति भवन जो आप देख रहे हैं देश के बँटवारे से पहले वायसरॉय हाऊस कहलाता था. मुझे यह बात कुछ अजीब लगी कि यह देश की आज़ादी से पहले के बजाय बँटवारे से पहले कह रहा है. इस से मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि १९४७ को अनेक पंजाबी देश की आज़ादी के लिए नहीं बल्कि बँटवारे के कारण महत्त्वपूर्ण मानते हैं और यही बात बंगालियों के बारे में भी है.

भारतीय समाज भाषा और जातियों के आधार पर अनेक वर्गों में विभक्त है. उसी में से एक वर्ग यानी मुसलमानों से अलग राष्ट्र पाकिस्तान बन गया. संस्कृति, भाषा और भूगोल इन में से कुछ भी भारतीय महाद्वीप के दो भागों में बँटने का कारण नहीं बनता था. केवल धार्मिक कट्टरता ही थी, जिसे जिन्ना हवा देते रहे.

आज वही पाकिस्तान अव्यवस्था और गड़बड़ी का शिकार है. इस में ज़रा भी संदेह नहीं कि पूर्व पाकिस्तान के बंगाली मुसलमान पश्चिम पाकिस्तान के अपने मुस्लिम भाइयों की अपेक्षा भारत के बंगालियों को अपने ज्यादा निकट मानते हैं.

अभी कुछ दिन पहले तक सभी जगह यह बात बहुत ज़ोर तरीक़े से कही जा रही थी कि पाकिस्तान को तो लगातार तरक्की करते रहने का नुस्खा मालूम हो गया है, जब कि भारत लोकतंत्रीय व्यवस्था अपना कर धीरे-धीरे आत्महत्या कर रहा है. अब आज पाकिस्तान की हालत देख कर सहज ही यह बात समझ में आ जाती है कि तानाशाही में राजनैतिक स्थिरता का आभास तो होता है, पर वास्तव में वह अस्थिरता ही होती है. इस से यह भी सिद्ध होता है कि भारत की जनता पाकिस्तान के बुनियादी लोकतंत्र के बजाय संसदीय लोकतंत्र प्रणाली को अपने लिए अधिक उपयुक्त मानती है. भारत की लोकतंत्र में आस्था इस बात से और भी अधिक पुष्ट होती है कि पूर्व पाकिस्तान अर्थात् पूर्व बंगाल में चुनावों की बात भी अप्रासंगिक है; जब कि उस के पास ही पश्चिम बंगाल में मध्यावधि चुनावों में सफलता प्राप्त कर के एक ऐसी सरकार बनी है जिस में कम्युनिस्टों का बहुमत है. भारतीय संघ की यह कितनी महत्त्वपूर्ण बात है कि केंद्र में कांग्रेस सरकार से तीव्र मतभेद और झड़प होने की संभावनाओं के बावजूद चुनावों का निर्णय मान कर वहाँ कम्युनिस्ट सरकार बनने दी गयी.

केंद्र के साथ तीव्र मतभेद के कारण अभी कोई गंभीर स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है, क्यों कि केंद्र को राज्यों की ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों से निपटने का तजुर्बा है. केरल में १९६७ में कम्युनिस्ट सरकार की स्थापना हो ही गयी थी. श्रीमती गांधी यह सिद्ध करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करती रही हैं कि उन की सरकार सच्चे अर्थों में भारतीय है और प्रत्येक उस राज्य सरकार के साथ सहयोग करने को तैयार है जो मोटे तौर पर केंद्रीय नियमों का पालन करती है.

पश्चिम बंगाल की सरकार कुछ हद तक पूँजीवाद से सहयोग करने को तैयार है. राज्य सरकार के सर्वाधिक प्रभावशाली सदस्य श्री ज्योति बसु ने राज्य के पूँजीपतियों को यह आश्वासन दिया है कि वह दिल्ली से उन के ऑर्डर स्वीकृत कराने और यहाँ तक कि विदेशी फ़र्मों के साथ मिल कर उद्योगों की स्थापना करने में भी उन की पूरी-पूरी सहायता करेंगे. नक्सलवाड़ी तोड़-फोड़-आंदोलन के समर्थन के बावजूद पीकिङ पश्चिम बंगाल सरकार की बराबर निंदा कर रहा है.

लगता ऐसा है कि सूझ-बूझ और सत्ता बनाये रखने के मोह में पश्चिम बंगाल के कम्युनिस्टों को कुछ उदारता बरतनी होगी. पड़ोसी पूर्व पाकिस्तान के मुक़ाबले पश्चिम बंगाल बहुत बेहतर नज़र आता है. पश्चिम बंगाल में बालिग़ मताधिकार होना पूर्व बंगाल के लोगों को बहुत बड़ी बात लगती है. इस से सच्चे अर्थों में जनता के हाथ में सत्ता भले ही न आये कम से कम हिंसा का सहारा लिये बिना शासकों को तो बदला जा सकता है. बालिग़ मताधिकार से आम जनता को शासन-व्यवस्था में सहयोगी होने का एहसास रहता है, जब कि तानाशाही में वे अपने ही देश में बेगाने हो जाते हैं.

मार्शल अय्यूब ने एक बार ठीक ही कहा था कि बालिग़ मताधिकार और स्वतंत्र चुनाव-पद्धति के अभाव में सेनाएँ ही प्रशासन का क़ानूनी और कारगर साधन रह जाती हैं. यह सिद्धांत तो समूचे मानव-समाज और देश पर लागू होता है. यह कहना तो ठीक नहीं

होगा कि पाकिस्तान में इस समय जो संकट उत्पन्न हुआ है उस से धीरे-धीरे पाकिस्तान की सन् ४७ के बाद तक की सारी खराबियाँ दूर हो जायेंगी. भारत और पाकिस्तान से बाहर के किसी आदमी को ऐसा कुछ भी नहीं सोचना चाहिए कि भारत और पाकिस्तान की जनता फिर एक हो सकती है. ऐसा सोचने वाला व्यक्ति बस यही कल्पना कर सकता है कि परमात्मा की दृष्टि में दोनों एक हैं.

पाकिस्तान के मुसलमान न सही भारत के ५ करोड़ से अधिक मुसलमानों को तो बालिग़ मताधिकार प्राप्त है और इन मुसलमानों में से ही एक डॉ. ज़ाकिर हुसेन भारत के राष्ट्रपति हैं. सब से उत्साहजनक बात यह है कि बहुत ऊँचे दर्जे की सांप्रदायिकता के भी हाल ही के मध्यावधि चुनावों में पैर नहीं टिक सके.

मार्शल लॉ के बाद पाकिस्तान से क़ानून व व्यवस्था भंग होने के समाचार नहीं मिल रहे हैं. अमेरिकी पत्र **वाल्टिमोर सन** ने क़ानून व व्यवस्था क़ायम रहने की इस स्थिति को अस्थायी बताते हुए कहा है कि यह समस्या का समाधान नहीं है. पत्र की राय में :

मार्शल लॉ के बाद पाकिस्तान में क़ानून व व्यवस्था स्थापित हो जाना समस्या का समाधान नहीं है. यह शांति मार्शल लॉ के सख़्त नियमों और राजनैतिक चुप्पी के कारण है. दर असल हाल ही के संकट ने समझौते के बजाय विरोध-पक्ष की भावनाओं को और भी विषाक्त बना दिया है.

ऐसा नहीं लगता कि पूर्व पाकिस्तान के बंगालियों के प्रति अय्यूब के और आज के शासकों के चिंतन में कोई फ़र्क़ आया है. जब तक इस में कोई बुनियादी अंतर नहीं आता मार्शल लॉ से भी आलोचना और विरोध शांत नहीं हो सकता. पूर्व पाकिस्तान के लोगों के असंतोष को दमनचक्र से नहीं दबाया जा सकता और इधर पूर्व पाकिस्तान को संतुष्ट किये बिना पश्चिम पाकिस्तान चैन से नहीं बैठ सकता.

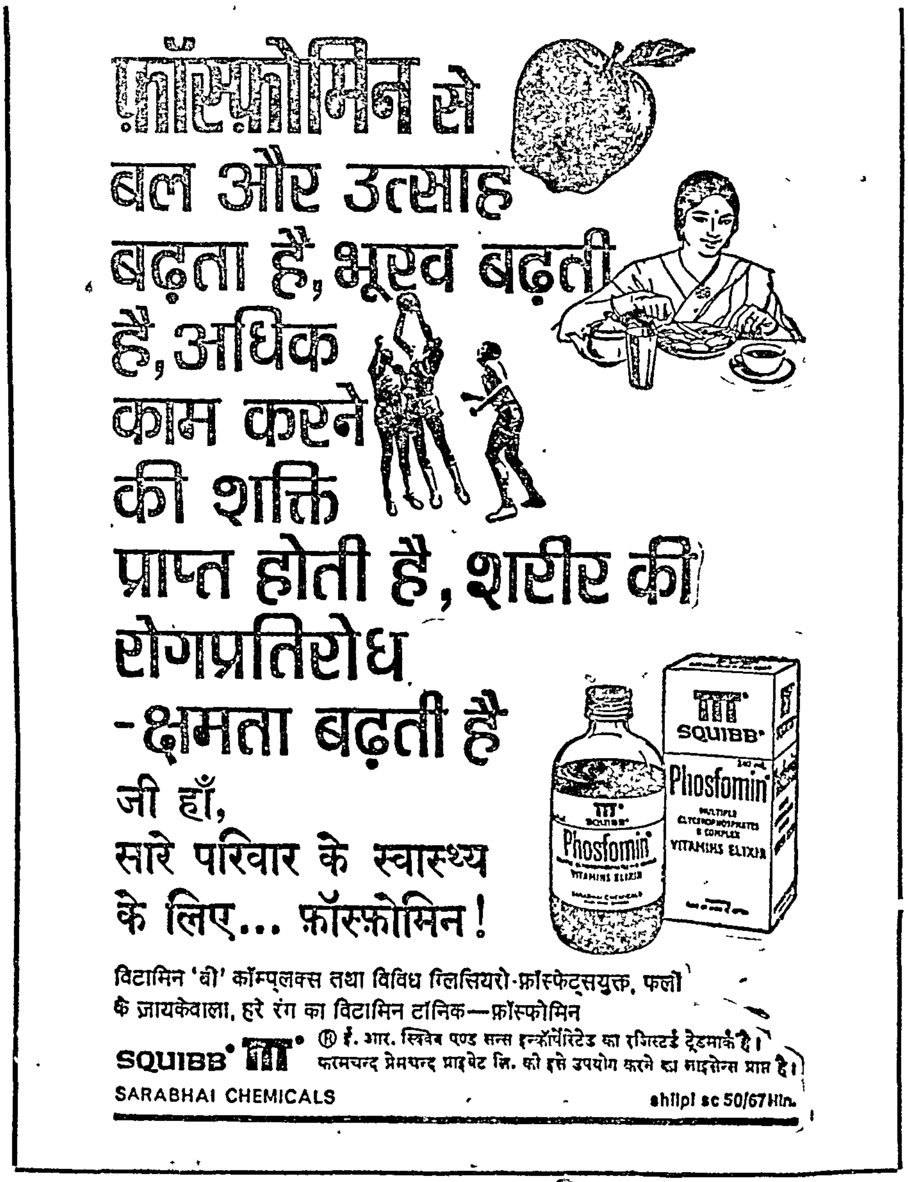

पिछले सप्ताह

(३ अप्रैल से ९ अप्रैल १९६९ तक)

देश

३ अप्रैल : दिल्ली में हुए मुख्यमंत्री-सम्मेलन में गेहूँ के भाव कम करने का लगभग सभी मुख्यमंत्रियों का विरोध. दिल्ली के डॉक्टरों की हड़ताल का और फैलाव. कांग्रेस संसदीय पार्टी द्वारा चंद्रशेखर की भर्त्सना करने का निर्णय. कानू सान्याल रिहा.

४ अप्रैल : स्वास्थ्यमंत्री के. के. शाह द्वारा डॉक्टरों से हड़ताल समाप्त करने की अपील.

५ अप्रैल : मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्यामाचरण शुक्ल को ग़ैर-कांग्रेसी सदस्यों को मंत्रिमंडल में शामिल करने की कांग्रेस हाई कमान की स्वीकृति. सिकंदराबाद में दो और बसों में आग.

६ अप्रैल : दिल्ली के सिखों द्वारा ब्रिटेन की एक फ़र्म के पगड़ी और दाढ़ी रखने पर आपत्ति के विरोध के खिलाफ़ ब्रितानी दूतावास के सामने प्रदर्शन.

७ अप्रैल : बढ़ते हुए आंदोलन के कारण तेलंगाना में और गिरफ़्तारियाँ. कच्छ के नियंत्रण स्तंभ छह के बारे में भारत का दावा पाकिस्तान द्वारा स्वीकृत.

८ अप्रैल : विदेशमंत्री दिनेशसिंह द्वारा चीन-रूस संघर्ष पर चर्चा.

९ अप्रैल : पश्चिम बंगाल की संयुक्त मोर्चा सरकार द्वारा 'बंगाल बंद' का आह्वान.

विदेश

३ अप्रैल : पश्चिम एशिया विवाद का हल ढूँढने के लिए चार बड़े देशों की वार्त्ता न्यूयॉर्क में शुरू. पाकिस्तान के राष्ट्रपति याह्या खाँ द्वारा सैनिक परिषद् का गठन.

४ अप्रैल : रूस द्वारा चेकोस्लोवाकिया में पुनः सैनिक हस्तक्षेप करने की धमकी.

५ अप्रैल : पाकिस्तान में इश्तहारबाजी पर प्रतिबंध.

६ अप्रैल : उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई द्वारा सिंगापुर के अधिकारियों से बातचीत. सैगॉन के पास अमेरिकी सैनिकों द्वारा १०६ वीएतकाङ छापामारों का सफ़ाया.

७ अप्रैल : कीर्त्तिनिधि विस्ट नेपाल के नये प्रधानमंत्री नियुक्त.

८ अप्रैल : इस्राइल और अरब राष्ट्रों के सैनिकों में मुठभेड़.

९ अप्रैल : नेपाल द्वारा पड़ोसी देशों के साथ मैत्री संबंध स्थापित करने की इच्छा.

प्रतिष्ठा, वाहवाही और तबाही

राजधानी में 'छोटे' डाक्टरों की हड़ताल से न केवल सामान्य और आपत्कालीन चिकित्सा सुविधा के ज़रूरतमंद लोगों को दिक़्क़त हो रही है बल्कि केंद्रीय स्वास्थ्यमंत्री, दिल्ली प्रशासन और खुद डाक्टरों की समझदारी पर प्रश्नचिन्ह लग रहा था. नये केंद्रीय स्वास्थ्यमंत्री के. के. शाह समझौता कराने की वाहवाही के फेर में सात दिन तक भूले रहे कि अनिवार्य सेवा अधिनियम के अधीन यह हड़ताल अनुचित है और इस की याद उन्हें तब आयी जब उन के पूर्ण समर्पण को भी अंततः डाक्टरों ने अस्वीकार कर दिया. 'महत्वपूर्ण व्यक्तियों' की दखलअंदाज़ी से शुरू कर के वेतन, सुविधाओं और सेवा की विशिष्ट शर्तों की माँगों का दस्तावेज़ प्रस्तुत करना, फिर लिजलिजा रुख़ देख कर ऐंठ जाने वाले हड़तालियों से सहानुभूति कर पाना मुश्किल ही दीखता है. इर्विन अस्पताल में उपेक्षा का प्रदर्शन करने और सीनाज़ोरी दिखाने वाले डाक्टर का पिता एक प्रभावशाली कांग्रेसी संसद् सदस्य न होता और उस के मुक़ाबले में कार्यकारी पार्षद न होता तो यह साधारण बात के रूप में टल जाती. यह बवंडर न उठा होता. यह माँग भी भी न उठी होती कि अस्थायी डाक्टरों को कारण बताये बग़ैर बर्खास्त करने का अधिकार सरकार छोड़ दे—यानी उन्हें वह दर्जा प्रदान करे जो किसी और सरकारी कर्मचारी को हासिल नहीं हो सकता. सामान्य जनता की उपेक्षा और तबाही करने वाले ये नये प्रतिष्ठा प्रिय डाक्टर वही हैं जिन की शिक्षा पर जनता का पैसा ख़र्च होता है, लेकिन जो गाँवों और क़स्बों में नहीं जाना चाहते—शहरों में ही अपना भविष्य बनाना चाहते हैं, अधिक उत्साही विदेश भाग जाते हैं.

पिछले बृहस्पतिवार को जब केंद्र सरकार ने समूचे दिल्ली प्रदेश में चिकित्सा सुविधा से संबद्ध सभी संस्थानों, अस्पतालों और दवाखानों में हड़ताल पर क़ानूनी पाबंदी लगा दी तो उन सभी डाक्टरों के पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक गयी जिन्होंने पिछली रात स्वास्थ्य मंत्री के सभी आश्वासनों को ठुकरा दिया था. डॉक्टरों के संगठनों की फिर एक बैठक हुई जिस में यह कह कर हड़ताल ख़त्म करने का फ़ैसला किया गया कि संसद् में मंत्री की घोषणा से हमारा उद्देश्य पूरा हो जाता है. संसद् में स्वास्थ्यमंत्री ने उसी दिन स्थिति पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि दिल्ली प्रशासन की सहमति से इर्विन के दो तथा विलिंगडन के तीन डाक्टरों को इस्तीफ़ा वापस लेने की अनुमति दी जायेगी, फिर मुअत्तल कर के उन के मामलों की जांच की जायेगी. अन्य माँगों पर विचार के लिए मंत्री ने दो माह की मोहलत माँगी थी. ये माँगें भत्तों, आवास की सुविधा आदि से ताल्लुक़ रखते हैं. काम पर लौटने का फ़ैसला करने के बाद डाक्टरों ने एक औपचारिकता अवश्य दिखायी : जनता से असुविधा के लिए माफ़ी माँगी गयी.

चिनगारी : बात तो इर्विन अस्पताल की तीन नर्सों से शुरू हुई पर जा पहुँची दिल्ली के विभिन्न अस्पतालों के लगभग १२५० डाक्टरों तक. आश्चर्य की बात तो यह है कि नर्सों की हड़ताल का कारण कुछ और था; और डाक्टरों ने जो हड़ताल की उस का आशय नर्सों के प्रति संवेदना व्यक्त करना न था क्यों कि उन की अपनी राम कहानी अलग थी. यह बात दूसरी है कि नर्सों की हड़ताल से डाक्टरों को अपने पर हुए 'अत्याचार' स्मरण हो आये.

पहली अप्रैल को इर्विन अस्पताल में एक व्यक्ति की मृत्यु हुई जो मार्च ३१ को शाहदरा के पास के ट्रांसपोर्ट कंपनी के गोदाम में आग लग जाने से जल गया था. परंतु मृतक के संबंधियों ने, जिन में अधिकतर स्त्रियाँ थीं यह लगने पर कि चिकित्सा में लापरवाही बरती गयी है. वार्ड में दो नर्सों पर हमला किया और बाद में एक विद्यार्थी नर्स को पीटा भी. अस्पताल की नर्सों में रोष की लहर फैली और हड़ताल का नारा लगा. अधिकारियों ने नर्सों की सुरक्षा का आश्वासन दिया. नर्सें सुबह हड़ताल पर गयीं, पर अपरान्ह में काम पर वापस आ गयीं.

इस पर इर्विन अस्पताल के डाक्टरों को लगा कि हमें भी कुछ कर गुज़रना चाहिए, कम से कम नर्सों से तो पीछे नहीं रहना चाहिए. उन्होंने भी अप्रैल २ को हड़ताल का नारा बुलंद किया और कहा कि वे रात्रि के १२ बजे से काम छोड़ देंगे. कारण : दिल्ली प्रशासन के अधिकारी उन को मुतवातिर परेशान करते हैं. इस बीच ५०० नर्सों ने फिर यह निर्णय किया कि वे शाम को ७-३० बजे से हड़ताल करेंगी क्यों कि जिन लोगों ने नर्सों पर हमला किया उन के खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की गयी. जब तनी 'महत्वपूर्ण' माँगें स्वीकार न हो तो इस के सिवा और चारा ही क्या था कि मरीज़ों को उन के हाल पर छोड़ा जाये.

असली बात : इर्विन के ३०० डाक्टरों की हड़ताल का आशय कुछ और ही था. दिल्ली के कार्यकारी पार्षद, डॉ. रामलाल वर्मा की शिकायत पर एक डाक्टर के खिलाफ़ दुर्व्यवहार का आरोप लगा था जिसे अंततोगत्वा 'जबरन' त्यागपत्र देना पड़ा. इसी प्रकार दूसरे डाक्टर को भी 'जबरन' त्यागपत्र देना पड़ा क्यों कि उस के व्यवहार के खिलाफ़ नर्सों की आत्महत्या से संबद्ध शर्मा जाँच आयोग ने अपनी रिपोर्ट में टिप्पणी की थी. यह थी असली बात और इसी बात को ले कर हड़ताल की ज्वाला इर्विन तथा गोविंदवल्लभ पंत अस्पताल में फैल कर

वि० कु० मल्होत्रा और के. के. शाह

सफ़दरजंग अस्पताल, विलिंग्डन अस्पताल, लेडी हार्डिंग अस्पताल, कलावती अस्पताल तथा आल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ़ मैडिकल साइंसेज़ में जा लगी. केंद्रीय स्वास्थ्य सेवा के महानिर्देशक के अनुसार इर्विन में ८७७ में से ४२० डाक्टर हड़ताल पर रहे, सफ़दरजंग में ९३३ में से ११६, विलिंग्डन में ५७७ में से पूरे, लेडी हार्डिंग में ४७६ में से २०८, कलावती में ११२ में से ४५ तथा आल इंडिया इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल सायंसिस में ५००. इस प्रकार लगभग १३५० डाक्टर हड़ताल में शामिल हुए.

पैंतरेबाज़ी : डाक्टरों ने धीरे-धीरे विलिंग्डन अस्पताल से निष्कासित उन डाक्टरों के मामले भी समेटे जिन के खिलाफ़ कार्रवाई की गयी—चाहे वह शर्मा आयोग की रिपोर्ट के संदर्भ में हो अथवा संसद सदस्यों की शिकायतों की जाँच के परिणामस्वरूप हो. हड़ताली डाक्टरों ने पहले तो पुरज़ोर माँग की कि विलिंग्डन से निकाले गये डाक्टरों को भी वापस लिया जाये और सुझाव दिया कि शर्मा आयोग की रिपोर्ट को प्रकाशित किया जाये क्यों कि 'उस में ३५ वरिष्ठ डाक्टरों के भी खिलाफ़ टिप्पणी है'. (इर्विन अस्पताल की कई नर्सों की आत्महत्या के कारणों की जाँच हाईकोर्ट के जज ने कर के कई डाक्टरों के नैतिक आचरण पर टिप्पणी की थी) पर न जाने क्यों यह माँग हल्की पड़ती गयी, शायद इस लिए कि विलिंग्डन से ये डाक्टर पाँच-छह मास पूर्व निकल गये थे और उन की मुख्य माँग यह थी कि इर्विन से जिन दो डाक्टरों से 'जबरन' त्यागपत्र दिलवाया गया उन्हें वापस लिया जाये. मुख्य कार्यकारी पार्षद ने महानगर परिषद में इस विषय में वक्तव्य देते हुए पहले तो काफ़ी कड़ा रवैया अपनाया और कहा कि उन दो डाक्टरों को किसी भी मूल्य पर वापस नहीं लिया जायेगा. 'मैं समझता हूँ कि उन को त्यागपत्र देने का अवसर दिया ही क्यों गया. उन दोनों के खिलाफ़ तो अनुशासनिक कार्रवाई होनी चाहिए.

बूचड़खाना : पर हड़ताली डाक्टरों के प्रतिनिधियों से बात तो केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री कर रहे थे. इस बातचीत में दिल्ली प्रशासन न आया यद्यपि विन व पंत अस्पताल उसी के अधीन है. के. के. शाह ने डाक्टरों के प्रतिनिधियों की यह माँग स्वीकार कर ली कि कार्यकारी पार्षद डॉ. रामलाल वर्मा, से संबंधित घटना की

जाँच करवायी जाये. (डॉ. वर्मा अपनी माँ को अस्पताल पर ले गये थे और डॉक्टर ने पहले तो कुछ परवाह न की, पर जब उन्होंने अपना परिचय दिया तो उसने कहा कि वह अपनी माँ को 'बूचड़खाने' में क्यों लाये और साथ-साथ सुझाव दिया कि वह उन्हें अमुक डॉक्टर की दूकान पर ले जायें. साथ के डॉक्टर ने उस दूकान का पता तथा डॉक्टर का नाम लिख कर दिया), पर विजयकुमार मल्होत्रा ने दूसरे ही दिन महानगर परिषद में कहा कि यह उचित नहीं, क्यों कि इस मामले में डॉक्टर और प्रशासन दो पार्टी नहीं. पर बातचीत का सिलसिला चालू रहा; श्री के. के. शाह सतत प्रयत्नशील रहे. श्री मल्होत्रा से भी डाक्टरों की बात हुई और अंततोगत्वा उन्होंने डॉक्टरों की इस माँग को मान लिया कि उन दोनों डॉक्टरों को बहाल कर दिया जाये, इस शर्त पर कि फिर उन के ख़िलाफ़ विभागीय कार्रवाई होगी, उन्हें निलंबित किया जायेगा और उन्हें अपने-आप को निरपराध सिद्ध करने का पूरा मौक़ा मिलेगा. यदि श्री मल्होत्रा इस बात को पहले ही मान लेते तो शायद समझौता ही हो जाता.

डॉक्टरों ने आवास संबंधी अपनी समस्या का हल भी चाहा. प्रशासन की तरफ़ से उन्हें बताया गया कि उन की इस समस्या का हल होना ही चाहिए. पर यह तो एक व्यापक प्रश्न है, जिस का उत्तर केंद्र सरकार देगी, क्यों कि वही धन की व्यवस्था करेगी. अलबत्ता, डॉक्टरों की दूसरी माँग कि उन के प्रतिनिधि को इर्विन अस्पताल सलाहकार समिति में नियुक्त किया जाये स्वीकार कर ली गयी. डॉक्टरों के इस सुझाव को भी मान लिया गया कि कोई भी बड़ा आदमी—राजनीतिज्ञ, निर्वाचित सदस्य अथवा पदाधिकारी—बिना पूर्व समय निर्धारित किये अस्पताल में उपचार हेतु न आये, क्यों कि इस से जो समय साधारण मरीज़ को मिलना चाहिए, वह उसे नहीं मिल पाता.

हड़ताल के संदर्भ में एक घटना भुलाये नहीं भूलती. ३ अप्रैल को रियाजुद्दीन नामक एक युवक को इर्विन अस्पताल के पास ही किसीने छुरा मार दिया. उस के संबंधी उसे इर्विन ले गये, पर वहाँ मौजूद डॉक्टरों ने हड़ताल के कारण उसे भरती करने से इनकार कर दिया. फिर घायल को विलिंग्डन अस्पताल ले जाने के इरादे से एक टैक्सी मँगवायी गयी; टैक्सी वहाँ से चली, पर रास्ते में ही उस में कुछ गड़बड़ी हो गयी और जब तक वह अस्पताल पहुँचा उस की मृत्यु हो चुकी थी. यह है हड़ताल के परिणाम का एक नमूना. हड़ताल से अभिशप्त अस्पतालों में लगभग ३,००० से अधिक मरीज़ों के हाल का तो कहना ही क्या, विशेष कर इर्विन अस्पताल के मरीज़ों का, जिन की परिचर्या करने के लिए कभी नर्सें थीं कभी नहीं और जब वे वापस आयीं तो डॉक्टर ग़ायब. यह सही है कि वरिष्ठ डॉक्टर काम पर बराबर लगे रहे, पर उन के लिए सभी मरीज़ों को दिन-रात देखना कैसे संभव था.

इर्विन अस्पताल के अधिकारियों ने एक अनोखा रास्ता अपनाया. उन्होंने न केवल कम गंभीर मरीज़ों को छुट्टी ही न की वरन् साथ-साथ उन मरीज़ों को भी घर भेज दिया जिन के विरुद्ध नर्सों ने शिकायत की थी. बीमारी की अवस्था में कुछ भी कहा जा सकता है और फिर जब स्वयं नर्सों का व्यवहार भी काफ़ी अनिश्चित और असंतुलित सा था—इतना असंतुलित कि जब वे हड़ताल पर गयीं तो दवाई वाली आलमारियों की चाबियाँ भी साथ ले गयीं और मरीज़ों को दवा बाहर से ला कर दी गयी—तो फिर मरीज़ों ने कुछ टिप्पणी कर भी दी तो उस की सज़ा अस्पताल से निष्कासन तो नहीं होनी चाहिए और वे निकाले गये नर्सों के कहने पर ही.

वास्तव में डॉक्टरों ने मरीज़ों को शतरंज का प्यादा बना दिया. तड़पा तो मरीज़, कष्ट हुआ तो उसे और मरा तो वह; न दिल्ली प्रशासन का कुछ बिगड़ा और न केंद्रीय स्वास्थ्य-मंत्रालय का.

हड़ताल के दौरान दिल्ली प्रशासन की ओर से श्री विजयकुमार मल्होत्रा ने पहले ही घोषणा कर डाली कि इर्विन अस्पताल की हड़ताल ग़ैर-क़ानूनी है. फिर दो दिन बाद उन्होंने महानगर परिषद् को बताया कि उन्होंने केंद्रीय स्वास्थ्यमंत्रालय से यह आज्ञा माँगी है कि इर्विन अस्पताल को अनिवार्य सेवा क़ानून के मातहत लाया जाये. उन्होंने कहा कि केंद्र द्वारा प्रशासित सफ़दरजंग तथा विलिंग्डन अस्पताल उस क़ानून के मातहत हैं. पर क़ानून के बावजूद सफ़दरजंग तथा विलिंग्डन अस्पतालों में हड़ताल हुई और केंद्र चुप्पी साधे रहा. पूरे सात दिन बाद जब के. के. शाह को लगा कि अब वह समझौते का सेहरा अपने सिर नहीं बाँध सकते तब १० अप्रैल उन्होंने दिल्ली प्रदेश में डॉक्टरों की हड़ताल को ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिया.

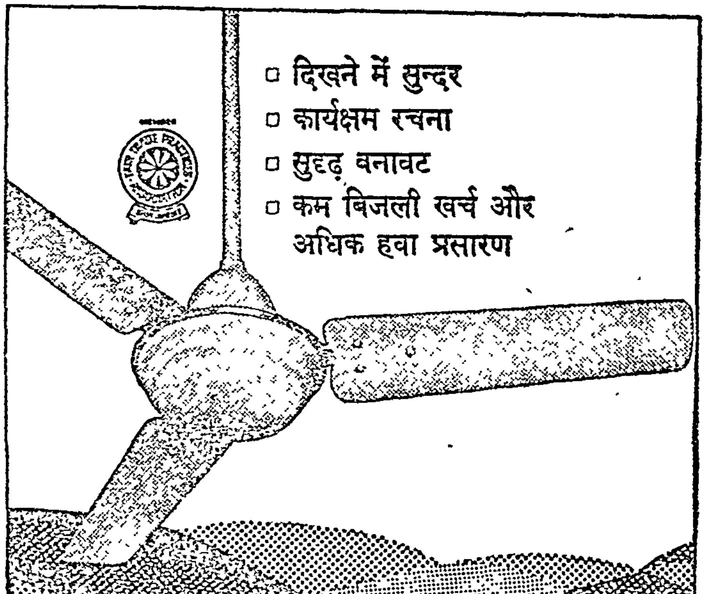

घटनाक्रम का बिखराव : १९७२

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटलविहारी वाजपेयी जव १९७२ में केंद्रीय सरकार के स्वरूप पर विचार करते हैं तो वह अपने-आप को एक अजीबोग़रीब असमंजस में पाते हैं. उन्हें लगता है कि घटनाक्रम इतनी तेज़ी से विखर रहा है कि उसे सूत्रबद्ध कर पाना दिनों-दिन मुश्किल होता जा रहा है. घटनाक्रम के इस विखराव को वह १९६७ के आम चुनाव से जोड़ कर देखते हैं और फिर इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि हाल के मध्यावधि चुनाव में यह विखराव अपेक्षाकृत अधिक तेज़ हो गया है. कुछ सोचने के वाद श्री वाजपेयी यह मत व्यक्त करते पाये गये कि इस विखराव का १९७२ में केंद्रीय सत्ता के स्वरूप पर प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है. वह वहरहाल अपने-आप को ऐसी स्थिति में नहीं पा रहे थे कि १९७२ में केंद्रीय सत्ता के स्वरूप का कोई निश्चित खाका प्रस्तुत कर सकें. लेकिन इस वात पर उन की सोच साफ़ है कि 'राजनैतिक शक्तियों का ध्रुवीकरण, जो १९६७ के आम चुनाव से शुरू हुआ था, १९७२ में अधिक तीव्र हो उठेगा'.

स्थिरता का प्रश्न : श्री वाजपेयी का यह निश्चित मत है कि १९७२ में केंद्र में कांग्रेस को पूर्ण वहुमत नहीं प्राप्त होगा. केंद्रीय सत्ता से कांग्रेस के निष्क्रमण को वह परिवर्त्तन की जन-आकांक्षा की विजय मानते हैं. 'लेकिन इस के साथ ही अनेक प्रश्न सामने आते हैं. केंद्र में किसी पार्टी को वहुमत प्राप्त न होने के खतरे भी हैं. "जहाँ तक मैं समझता हूँ विरोधी दलों का कोई भी समूह कांग्रेस का विकल्प वन सकने की स्थिति में नहीं है. यहाँ केंद्र में अस्थिरता का प्रसंग स्वत: उठ खड़ा होता है". जव **दिनमान** के प्रतिनिधि ने श्री वाजपेयी से जानना चाहा कि क्या स्थिरता और अस्थिरता के प्रश्न को वह अपने-आप में महत्त्वपूर्ण समझते हैं अध्यक्ष वाजपेयी ने कुछ आत्मावलोकन के वाद यह मत व्यक्त किया कि 'इस विषय पर अक्सर मुझे ग़लत समझा गया है. मैं परिवर्त्तन-विरोधी स्थिरता के पक्ष में नहीं हूँ. लेकिन मैं ऐसी अस्थिरता के भी पक्ष में नहीं हूँ जिस से देश में अराजकता फैले और जिस का लाभ शत्रु देशों को मिले. सुदृढ़ केंद्र की आवश्यकता को मैं शुरु से ही स्वीकार करता रहा हूँ और कोई ऐसा कारण नहीं है कि मैं अपने इस मत में कोई परिवर्त्तन करूँ'.

दिनमान के प्रतिनिधि ने अध्यक्ष वाजपेयी से चौथे आम चुनाव के वाद उन के द्वारा व्यक्त किये गये विचारों और १९७२ के संदर्भ में व्यक्त किये जा रहे विचारों में ताल-मेल विठाने का आग्रह किया. जव उन का ध्यान इस तथ्य पर केंद्रित किया गया कि कांग्रेसवाद वनाम ग़ैर-कांग्रेसवाद के रूप में राजनैतिक शक्तियों का पुनर्गठन के पक्ष में उन्होंने भी प्रतिपक्ष के किसी दूसरे नेता की तुलना में कम कुछ नहीं कहा है तो थोड़ी देर के लिए उन्होंने अपने को अजीबोग़रीब असमंजस में पाया. फिर जैसे अपने ही द्वारा निर्मित असमंजस के इस दायरे से वाहर निकलते हुए उन्होंने कहना शुरु किया: 'मैंने ग़ैर-कांग्रेसवाद के पक्ष में मत अवश्य व्यक्त किया है. मैं अभी भी इस की आंशिक उपयोगिता को स्वीकार करता हूँ, लेकिन मैंने शुरु से ही इस के नकारात्मक पक्ष पर भी प्रकाश डाला है. समय के साथ यह नकारात्मक पक्ष अधिक खुल कर सामने आया है. मैं इस नकारात्मक पक्ष का इस लिए विरोधी हूँ कि

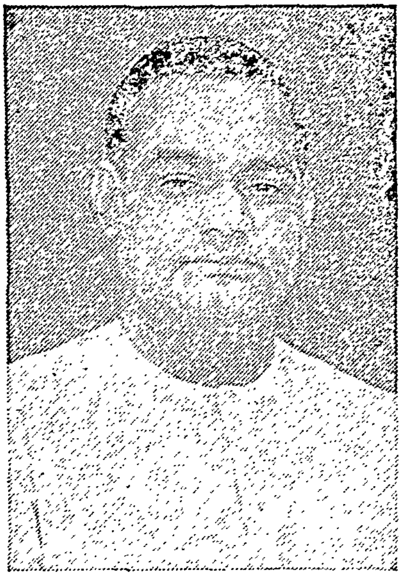

अटलविहारी वाजपेयी : आत्मावलोकन

इस से अराजकता की शक्तियों को वढ़ावा भी मिल सकता है.

केंद्र की शक्ति : केंद्र को कमज़ोर कर देश की रक्षा नहीं की जा सकती. इस का अर्थ यह नहीं है कि मैं कांग्रेसी केंद्र का समर्थक हूँ. इस का अर्थ केवल इतना ही है कि १९७२ में अगर ऐसी स्थिति सामने आती है कि केंद्र में कोई एक दल सरकार वनाने की स्थिति में नहीं है तो न्यूनतम कार्यक्रमों के आधार पर संयुक्त सरकार का गठन किया जाना चाहिए.' जव **दिनमान** के प्रतिनिधि ने श्री वाजपेयी से जानना चाहा कि क्या इस संयुक्त सरकार में कांग्रेस की भी साझेदारी उन्हें मान्य होगी तो उन्होंने आहिस्ते से यह मत व्यक्त किया: 'इस वात में मुझे कोई संदेह नहीं है कि कांग्रेस १९७२ के वाद भी केंद्र में सव से वड़ी पार्टी होगी. मैं कांग्रेस का अंध विरोधी नहीं हूँ, यद्यपि मुझे प्रसन्नता होगी अगर ग़ैर-कांग्रेसी दल न्यूनतम कार्यक्रमों के आधार पर कोई विकल्प प्रस्तुत कर सकें. लेकिन अगर ऐसा नहीं होता है तो शक्तिशाली केंद्र के प्रति आस्थावान होने के कारण मुझे यह सुझाने में किसी संकोच का अनुभव नहीं होता कि १९७२ में केंद्र में एक ऐसी संयुक्त सरकार का गठन हो जिस में कांग्रेस के लोगों को भी शामिल किया जा सके. ग़ैर-कांग्रेसवाद के नकारात्मक पक्षों पर ज़रूरत से ज़्यादा वल नहीं दिया जाना चाहिए; न ही कांग्रेस विरोध के आवेश में केंद्रीय स्तर पर शिथिलता और अराजकता को प्रश्रय मिलना चाहिए".

दिनमान के प्रतिनिधि ने श्री वाजपेयी का ध्यान इस वात पर केंद्रित करना चाहा कि प्रतिरक्षा, विदेश-नीति और अर्थ-नीति को ले कर विभिन्न राजनैतिक दलों में जो गहरा मत-भेद है वह क्या संयुक्त सरकार के लिए खतर-नाक नहीं सावित होगा ?'राजनीति में खतरा तो हर जगह होता ही है और कोई भी निर्णय खतरे से विल्कुल मुक्त नहीं है. चौथे आम चुनाव के वाद ग़ैर-कांग्रेसी संयुक्त सरकारों की कार्य-पद्धति का तटस्थ अध्ययन करने के वाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मतभेदों के वावजूद स्थिरता के सवाल को एक सीमा तक हल किया जा सकता है.

चौथे आम चुनाव के दौरान जो संयुक्त सरकारें वनी उन की विफलता का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी था कि हर दल दूसरे दल की क़ीमत पर अपने अधिकार और प्रभाव-क्षेत्रों का विस्तार करना चाहता था. १९७२ में ऐसी स्थिति पैदा नहीं होनी चाहिए. संयुक्त सरकार को चाहिए कि वह ताल-मेल वनाये रखने के लिए केंद्रीय स्तर पर एक संयोजन समिति का गठन करे. इस संयोजन समिति को इस वात पर मत व्यक्त करने का अधिकार होना चाहिए कि दल का हित किस विंदु पर देश के हित से टकराता है. जिस सीमा तक संयोजन समिति इस टकराव को नियंत्रित कर सकने में सफल होगी उस हद तक संयुक्त सरकार की कार्य-पद्धति भी दुरुस्त होगी.

विदेशनीति और प्रतिरक्षा नीति : जहाँ तक विदेशनीति और प्रतिरक्षा-नीति का सवाल है मैं समझता हूँ कि कम्युनिस्ट पार्टियों के साथ हमारी पार्टी के गहरे मतभेद हैं. संयुक्त सरकार के संगठन के लिए यह स्थिति वाधक सावित हो सकती है. फिर भी मैं आशा करता हूँ कि कम्युनिस्ट पार्टियाँ राष्ट्रीय हितों को अंतरराष्ट्रीय सत्ता-हितों पर वरीयता देने की आदत डालेंगी. जहाँ तक अर्थ-नीति का सवाल है संयुक्त सरकार के शुरु के वर्षों का संवंध जनता को सामयिक राहतें देने का है और यहाँ कोई मतभेद नहीं होना चाहिए.

चरचे और चरखे

माओ के विचारों का चमत्कार

क्या आप जानते हैं कि माओ के विचार बिगड़े हुए घोड़ों को शांत कर सकते हैं, रुके हुए इंजनों को चला सकते हैं और इतना ही नहीं, मरे हुए आदमियों को जिला भी सकते हैं. यह सब मुहावरे में नहीं कहा जा रहा है, बल्कि चीनी जनता को रोज़ तरह-तरह से यह बात बतायी जाती है और उस के पास इसे मानने के सिवा और कोई चारा भी नहीं है, क्यों कि समाचार-पत्रों, रेडियो और टेलीविज़न सभी से केवल माओ के विचारों की अद्वितीय शक्ति ही जनता को देखने-सुनने को मिलती है. **नवचीन समाचार एजेंसी** ने अंग्रेज़ी में एक समाचार प्रचारित किया, जो इस प्रकार है:

'दक्षिण चीन के कैंटन क्षेत्र में जनमुक्ति वायुसेना के स्वास्थ्यविभाग ने माओ के विचारों की सहायता से एक लाल रक्षक की जान बचाने में सफलता प्राप्त की, जिस की हृदय-गति बिजली के आघात के कारण ३९ मिनट तक बंद रही. इस लाल रक्षक कुंग को डॉक्टरों ने मृत घोषित कर दिया था, लेकिन सैनिक और जनकम्यून के लोग उसे वायुसेना के स्वास्थ्य-विभाग में ले आये सेना के डॉक्टरों ने देखा कि उस के दिल की धड़कन बंद हो गयी है. उस समय उन्हें महान नेता अध्यक्ष माओ के विचार याद आये, जिस में कहा गया है "घायलों की मरहम-पट्टी करो, मरते हुओं को बचाओ और क्रांतिकारी मानवतावाद को आचरण में ढालो". इस अमूल्य विचार को ध्यान में रख स्वास्थ्यविभाग के सारे कर्मचारी रोगी की जान बचाने या यों कहिये कि मरे रोगी को जिलाने के काम में जुट गये. बुर्जुआ परंपराओं को तोड़ कर उन्होंने रोगी को एड्रेनालिन का इंजेक्शन लगाया. इस इंजेक्शन को बुर्जुआ विशेषज्ञ बिजली के आघात वाले रोगी को नहीं देते हैं. थोड़ी ही देर में वह रोगी कुंग गहरी-गहरी साँसें लेने लगा और उस के दिल में धड़कन आने लगी. लेकिन वह बेहोश था. उस की साँस तेज़ चल रही थी. दिल बीच-बीच में रुक जाता था. रक्तचाप घटता-बढ़ता रहता था. उस के शरीर के अंग ऐंठते थे. बुर्जुआ विशेषज्ञ डॉक्टर यह मानते हैं कि यदि दिमाग़ के सेलों को ७-८ मिनट भी ऑक्सीजन न मिले तो वे क्षतिग्रस्त हो जाते हैं और यदि ऐसे रोगी की जान बच भी जाए तो वह मृत व्यक्ति की तरह ही ज़िंदा रहता है, क्यों कि उस का दिमाग़ काम करना बंद कर देता है. लेकिन माओ के विचार का चमत्कार देखिए कि ३९ मिनट ऑक्सीजन रहित होने पर भी कुंग का दिमाग़ काम करने लगा और उस में चेतना आ गयी. बुर्जुआ चिकित्सा-मान्यताएँ कितनी ग़लत और झूठी हैं. अध्यक्ष माओ ने नवयुवकों को सलाह दी है कि वे 'सोचने, बोलने और कर्म करने का साहस करें. उन्हें रचनात्मक शक्ति से भरा-पूरा होना चाहिए और बड़े-बड़े नामों, बड़े-बड़े अधिकारियों और विशेषज्ञों से डरना नहीं चाहिए.' चिकित्सा-कर्मचारियों ने इसी के सहारे कठिनाइयाँ पार कीं और कुंग को बीमारी और मौत के चंगुल से बाहर निकाल लिया. १२ दिनों बाद कुंग ज्यों ही होश में आये तो अध्यक्ष माओ का चित्र देखते ही वह चिल्ला पड़े *'अध्यक्ष माओ ज़िंदाबाद'*. बीस दिन के उपचार के बाद कुंग की तर्क-शक्ति भी वापस आ गयी और अब वह अध्यक्ष माओ की किताबें और समाचारपत्र पढ़ सकते हैं. एक बार फिर इस घटना से यह पता चलता है कि माओ के विचारों से लैस आदमी सब कुछ कर सकता है'.

इस रिपोर्ट से डॉक्टरी पढ़ने वाले विद्यार्थी बड़ी आसानी से समझ सकते हैं कि चीनी पश्चिमी देशों के डॉक्टरों को कुछ नहीं समझते. लेकिन यह पता नहीं चलता कि इस चमत्कारिक उपचार में और क्या-क्या कारगर उपाय शामिल थे, सिवाय अध्यक्ष माओ की कृतियों के अध्ययन के. हाँ, इस रिपोर्ट से राजनीतिक विद्यार्थी कुछ सीख सकते हैं. कम से कम इतना तो समझ ही सकते हैं कि लाल रक्षक, जो कई महीनों से अपमानजनक जीवन बिता रहे थे इस लायक़ हो गये हैं कि उन की ज़िंदगी बचायी जा सके. इस रिपोर्ट से यह भी पता चलता है कि चीन में डॉक्टरों की कमी है. लेकिन उस से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, क्यों कि साधारण लोगों में भी वहाँ अध्यक्ष माओ की कृपा से डॉक्टरी-कौशल मौजूद है. हाल ही में एक घटना का बड़ा शोर मचा था, जिस में एक सर्जन ने एक स्त्री का ट्यूमर का ऑपरेशन करने के पहले अस्पताल के बवर्ची की सलाह ली थी. कम से कम इस रिपोर्ट से इतना तो याद रखा ही जा सकता है कि चीन में ज़िंदगी बचने के बाद पहला काम जो किया जाता है वह है अध्यक्ष माओ की सराहना. भविष्य में किसी मुसीबत से बचने के लिए इस से ज़्यादा और किया भी क्या जा सकता है.

पति-पत्नी के अवैध संबंध

केप टाउन में एक क्षेत्रीय अदालत में दक्षिण अफ़्रीका के अनैतिकता क़ानून के अंतर्गत एक पति-पत्नी पर काम संबंध रखने के कारण मुक़द्दमा चल रहा है. इस क़ानून के अंतर्गत विभिन्न जाति के लोग आपस में ऐसे संबंध नहीं रख सकते. अदालत में पति जोज़फ़ पर यह आरोप है कि वह काली जाति का है और उस की पत्नी बारबरा गोरी जाति की. दोनों का विवाह १९६६ में लंदन में हुआ था और उन के एक दो वर्ष की लड़की भी है. पति लंदन में निर्यात का व्यापार करता है और १९६४ में उसे दक्षिण अफ़्रीका में श्वेत नागरिक मान कर सैनिक सेवा का अवसर दिया गया था. वह जन्म से ही दक्षिणी अफ़्रीकी नागरिक है. उस का पिता लेबनान का था और माँ काली जाति की दक्षिण अफ़्रीकी थी. जोज़फ़ १९६६ में जब विवाहित हो कर दक्षिण अफ़्रीका आये थे तो उन्हें यह नहीं बताया गया था कि उन के विवाह से क़ानूनी समस्याएँ भी आगे चल कर उठ खड़ी होंगी.

आचरण-संहिता

दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद विजय कुमार मल्होत्रा ने दिल्ली राज्य के बजट पर बहस के दौरान मंत्रियों के लिए आचरण संहिता का प्रश्न उठाया. उन का कहना था कि केंद्रीय मंत्रिगण तथा अन्य प्रांतीय सरकारों के भी मंत्री लोग बिना सोचे-समझे हर जगह उद्घाटन और अध्यक्षता के लिए पहुँच जाते हैं. बहुधा मंत्रियों को ऐसी असामाजिक संस्थाओं का भी उद्घाटन करते देखा गया है जिस की रीति-नीति की सरकार आलोचना करती है. इतना ही नहीं, सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों के विदाई और स्वागत-समारोह में भी मंत्रिगण शरीक होते हैं. इस तरह के उत्सव में शामिल होने से स्थितियाँ काफ़ी कुछ जटिल हो जाती हैं और दिन पर दिन उलझाव बढ़ता जाता है. किसी ऐसी संस्था में जिस की रीति-नीति से प्रशासन सहमत न हो मंत्रियों के पहुँच जाने से एक विशेष प्रकार की अड़चन आ खड़ी होती है और यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि वह संस्था स्वस्थ संस्था है, असामाजिक संस्था नहीं है. मंत्रियों को ऐसी जगहों पर जाने के लिए आपस में विचार कर के एक आचरण-संहिता तैयार कर लेनी चाहिए.

जहाँ तक आचरण-संहिता का प्रश्न है वह काफ़ी हद तक सही है. लेकिन क्या यह संभव है ? मंत्रियों के सामने तो केवल अपनी लोकप्रियता का ही उद्देश्य रहता है और उन्हें लगता है कि यदि वह ऐसे मौक़े छोड़ दें तो सार्वजनिक जीवन से वह कट जायेंगे और इस तरह उन की लोकप्रियता समाप्त हो जायेगी. लोकप्रियता का यह मोह उन से बहुत-से ऐसे काम कराता है जो उन्हें नहीं करने चाहिए. यदि आचरण-संहिता में कोई ऐसी दोहरी व्यवस्था हो जिस से कि इस तरह की लोकप्रियता (चाहे आप उसे सस्ती लोकप्रियता कह लीजिए) भी बनी रहे और आचरण-संहिता का आदर्श भी बना रहे तो शायद मंत्रियों को यह सुझाव स्वीकार हो सकता है. अन्यथा अभी तो कोई आसार नज़र नहीं आता कि सस्ती ख्याति और पदलिप्सा के शिकार हमारे मंत्रिगण इस तरह के अच्छे और बुरे कोई भी अवसर छोड़ने को तैयार होंगे. उन के लिए यह उन के अस्तित्व का प्रश्न है, क्यों कि उन्होंने मान लिया है कि उन का अस्तित्व सस्ती लोकप्रियता पर ही टिका हुआ है; उस के लिए उन्हें बहुत बड़ा कुछ नहीं करना है.

राजधानी से : विशेष रिपोर्ट

संसपा : विघटन का तीसरा दौर

यह एक विडंबना ही है कि संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष श्रीवर महादेव जोशी के त्याग-पत्र का आधार पार्टी के उन तीन संसद सदस्यों का वक्तव्य है जिन का कि पार्टी की भीतरी गुटबंदी से बहुत संबंध नहीं रहा है और जिन के वक्तव्य का उद्देश्य गुटबंदी और स्वार्थपरकता का विरोध करना था. अध्यक्ष जोशी का त्याग-पत्र जिस अप्रत्याशित ढंग से प्रकाशित हुआ उस से लगता है कि जैसे वह बहुत दिनों से लिखा रखा था, केवल अवसर की प्रतीक्षा थी. इस में कोई शक नहीं कि पार्टी के तीन नौजवान नेताओं—जार्ज फ़र्नांडीज़, रवि राय और ज०ह० पटेल ने वक्तव्य जारी कर श्री जोशी को त्याग-पत्र का अवसर प्रदान कर दिया. श्री जोशी के इस्तीफ़े का सेहरा किन्हीं और लोगों के माथे बँधना चाहिए था लेकिन वह बँधा उन लोगों के माथे जो कि पार्टी के भीतर उन के अनुयायी भले ही न हों विरोधी भी नहीं रहे हैं बल्कि एक तरह से उन की सहानुभूति श्री जोशी के साथ रही है. जोशी का इस्तीफ़ा इन तीनों नेताओं के सिर पर छप्पर की तरह गिरा और न चाहने पर भी उन के हाथ ख़ून से रंग दिये गये. श्री जोशी को अगले महीने पार्टी की अध्यक्षता से अवकाश ग्रहण करना था लेकिन २० रोज़ पहले इस्तीफ़ा दे कर उन्होंने अपनी स्थिति को संगठित कर लिया और यह बहुत संभव है कि वह दोबारा अध्यक्ष चुन लिए जायें—कम-से-कम मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र में उन के अनुयायी, बिहार में पार्टी के भीतर के भूतपूर्व प्रजा समाजवादी और उत्तरप्रदेश के राजनारायण विरोधी निश्चय ही यह चाहेंगे.

श्री जोशी के इस्तीफ़े से संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी को जो भी नुकसान पहुँचा हो प्रतिद्वंद्वी पार्टियों को जरूर फ़ायदा पहुँचा है—विशेष रूप से दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट पार्टी को जो कि उन को संसपा का एक मात्र 'ज़िम्मेदार' नेता मानती रही है. कम्युनिस्ट पार्टी और प्रजा समाजवादी दोनों की यह इच्छा रही है कि श्री जोशी के नेतृत्व में पार्टी का 'ज़िम्मेदार हिस्सा' पार्टी से अलग हो जाये और संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी पूरी तरह ग़ैर-जिम्मेदार पार्टी मशहूर हो जाये. दूसरे शब्दों में उस के विघटन की प्रक्रिया पूरी हो जाये.

पार्टी के विघटन की जो प्रक्रिया डाक्टर लोहिया के निधन के साथ शुरू हुई थी श्री जोशी का इस्तीफ़ा उस के तीसरे दौर की शुरुआत है. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के अगले महीने जबलपुर अधिवेशन में इस बात का फ़ैसला हो जायेगा कि पार्टी को जीवित रहना है या नहीं.

श्री जोशी के इस्तीफ़े का तात्कालिक संदर्भ पार्टी के तीन संसद सदस्यों का वक्तव्य है लेकिन झगड़े का इतिहास पुराना है. १९६७ के अंत में उत्तर प्रदेश में पार्टी की भीतरी गुटबंदी के सवाल को ले कर जो महाभारत शुरू हुआ उस में अध्यक्ष जोशी को उन की इच्छा के विरुद्ध लपेट लिया गया. अभी यह झगड़ा सुलझ भी नहीं पाया था कि मध्यावधि चुनाव के तुरंत बाद पार्टी के दो नेता किशन पटनायक और रमा मित्र ने नेतृत्व से अपना असंतोष जाहिर करते हुए इस्तीफ़ा दे दिया. समय-समय पर पार्टी की बैठकों में भी श्री जोशी के नेतृत्व को बार-बार चुनौती दी गयी. इन हालात में श्री जोशी के अहम का आहत अनुभव करना स्वाभाविक ही था. लेकिन जैसी कि पार्टी के अधिकतर बुद्धिजीवियों और कार्यकर्ताओं की राय थी है श्री जोशी इस का दूसरे तरीक़े से प्रतिकार कर सकते थे. इस के लिए इस्तीफ़ा सही रास्ता नहीं था. पार्टी के दो प्रमुख नेताओं मधु लिमये और राजनारायण ने श्री जोशी से यह आग्रह भी किया है कि वह इस्तीफ़ा न दें लेकिन उन्होंने अपने दो सहयोगियों के इस निवेदन को स्वीकार नहीं किया. श्री जोशी का कहना था कि पार्टी के भीतर नेतृत्व को ले कर जो भी आलोचना होती है वह सही है या गलत यह एक दूसरा सवाल है लेकिन पार्टी में जो अनुशासनहीनता है उस की अध्यक्ष होने के नाते सब से अधिक जिम्मेदारी मुझ पर है और इस लिए नैतिकता का यह तकाजा है कि मैं इस्तीफ़ा दूँ. श्री जोशी ने पार्टी के महासचिव श्री रामसेवक यादव को पत्र लिख कर अपना स्पष्टीकरण भी दिया. बताया जाता है कि उन्होंने अपने पत्र में श्री यादव का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि पार्टी के छोटे और बड़े सभी नेताओं में बयानबाज़ी, एक-दूसरे पर आरोप लगाने और चरित्र हनन की प्रवृत्ति दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है; चुनाव जीतने के लिए जाली सदस्य बनाये जाते हैं और इन को ले कर बड़ेबंदी हो रही है.

और अपने निजी निर्णय की रक्षा करते हुए श्री जोशी ने पार्टी की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया. अपने त्यागपत्र में उन्होंने कहा, "श्री जार्ज फर्नांडीज़, श्री रवि राय और श्री ज. ह. पटेल का वक्तव्य सामान्य रूप से नेतृत्व के प्रति और विशेष रूप से अध्यक्ष यानी कि मेरे प्रति अविश्वास है और इस लिए मेरा इस्तीफ़ा देना आवश्यक हो गया है. मैं यह त्यागपत्र इस लिए दे रहा हूँ कि मैं कार्यकर्ताओं का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि पार्टी के कुछ नेता समाचारपत्रों के ज़रिये स्वयं अपने सहयोगियों की भर्त्सना कर रहे हैं. मेरी दृष्टि में इन नेताओं की भर्त्सना का प्रस्ताव पास करना गुटबंदी को और भी बढ़ावा देना होगा इस लिए मैंने राष्ट्रीय समिति से यह

दिनमान
समाचार-साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ — २० अप्रैल १९६९
अंक १६ — ३० चैत्र १८९१

*

इस अंक में

*

विशेष रिपोर्ट	११
*	
मत और सम्मत	४
पत्रकार संसद	५
पिछला सप्ताह	६
चरचे और चरखे	१०
*	
राष्ट्रीय समाचार	१३
प्रदेशों के समाचार	१९
विश्व के समाचार	३४
समाचार-भूमि : आप्रवासी भारतीय	३२
खेल और खिलाड़ी : डीओलिवेरा कांड	३०
*	
हड़ताल : डाक्टरों की हड़ताल	६
भेंट वार्ता : अटलबिहारी वाजपेयी	९
राजनैतिक दल : कम्युनिस्ट पार्टी	१७
बजट : राज्य बनाम केंद्र	२३
आंदोलन : तेलंगाना समस्या	२४
साक्षात्कार : पाकिस्तान और हम	२७
विज्ञान : भूकंप	३९
साहित्य : यासुनारी कावाबाता	४१
किताबें	४२
भारतेंदु उत्सव	४३
संगीत	४४
फ़ैशन	४५
फ़िल्म : सरस्वती चंद्र	४५

*

आवरण-चित्र : केंद्रीय नेताओं की तेलंगाना नेताओं से बातचीत
(फ़ोटो : रविव्रत वेदी)

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान

टाइम्स ऑफ़ इंडिया, प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

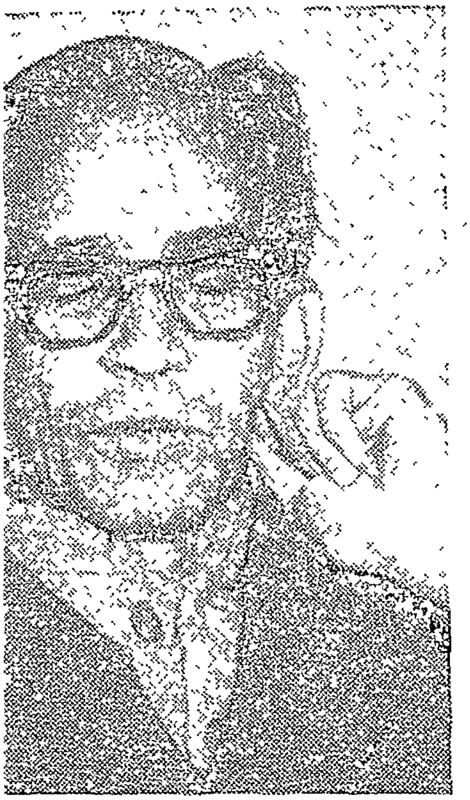

श्रीधर महादेव जोशी : चिंतन

आग्रह किया है कि वह इस संबंध में कोई निंदा प्रस्ताव पास न करे."

जिस समय श्री जोशी ने अपना त्यागपत्र प्रकाशन के लिए समाचारपत्रों को दिया श्री जार्ज फ़र्नांडीज़ और श्री रवि राय दिल्ली से बाहर गये हुए थे. उन की वापसी पर उन से संपर्क करने पर उन्होंने इस संवाददाता को बताया कि उन्होंने अपने वक्तव्य में श्री जोशी के प्रति कोई अविश्वास व्यक्त नहीं किया था बल्कि वक्तव्य का उद्देश्य पार्टी की स्थिति पर प्रकाश डालना था. श्री जार्ज फ़र्नांडीज ने कहा कि हम ने अपने वक्तव्य में श्री जोशी के प्रति कोई कटु बात नहीं कही है. उन के इस्तीफ़े से मुझे गहरी चोट पहुँची है. मेरी यह निश्चित धारणा है कि पार्टी आज जिस दुरावस्था में है उस के लिए कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि हम सब जिम्मेदार हैं. जिस निंदा प्रस्ताव की बात श्री जोशी ने अपने त्यागपत्र में उठायी थी उस की ओर इशारा करते हुए श्री जार्ज फ़र्नांडीज़ ने कहा कि मैं नहीं जानता कि हम ने पार्टी के अनुशासन को भंग किया है लेकिन अगर किया है तो हम उस की सज़ा भुगतने के लिए तैयार हैं. श्री रवि राय और श्री ज. ह. पटेल ने भी यह स्पष्ट करना चाहा कि उन का उद्देश्य श्री जोशी को चुनौती देना नहीं था बल्कि सिद्धांत और व्यवहार के प्रश्न पर पार्टी के भीतर जो अस्पष्टता और अराजकता है उस की ओर ध्यान खींचना था.

तीन नेताओं के जिस वक्तव्य को ले कर श्री जोशी को इस्तीफ़ा देने की ज़रूरत महसूस हुई उस में यह कहा गया था कि 'जिस समय देश की राजनीति पार्टी से ठोस और क्रांतिकारी नेतृत्व की माँग कर रही है उस समय संसपा एक दिशाहीन पोत की तरह भटक रही है. पार्टी का राष्ट्रीय सम्मेलन बार-बार बचकाने आधारों पर स्थगित किया जाता है. उत्तर प्रदेश पार्टी के एक ज़िम्मेदार और वरिष्ठ सहयोगी को विधानसभा के उपाध्यक्ष के पद की ओर धकेला गया जब कि उन की सही जगह पार्टी के संगठन में थी जो कि अच्छी हालत में नहीं है. बिहार में पार्टी नीति विषयक मामलों पर समझौते करती नज़र आती है जैसे कि विधानसभा का नेतृत्व का प्रश्न: नतीजा यह हुआ है कि जनता ने पार्टी पर जो ज़िम्मेदारी डाली थी पार्टी उस से मुक्त नजर आती है और राज्य और देश में पार्टी का भविष्य अंधकारमय होता जा रहा है. संस्था के भीतर जो गड़बड़ी है ये उस के कुछ उदाहरण मात्र हैं, अगर अन्य उदाहरण नहीं दिये गये हैं तो इस का कारण यह नहीं है कि वे उपेक्षणीय हैं. हम पार्टी के सदस्यों से यह आग्रह करते हैं कि वे पार्टी में बैठ कर इन घटनाओं पर विचार करें. न तो इस्तीफ़े के निजी निर्णय, जो कि नाटकीय नज़र आते हैं, और न ही गुटबंदी और गाली गलोज से समस्या का समाधान होगा. सम्मेलन अविलंब होना चाहिए और क्रांतिकारी परिवर्तन के आंदोलन के प्रहरी के रूप में पार्टी की जो तस्वीर रही है वह दुबारा प्रतिष्ठित होनी चाहिए.'

इस वक्तव्य में ऐसा कुछ भी नहीं है जो कि श्री जोशी को उत्तेजित करता. उन की उत्तेजना का मुख्य आधार वक्तव्य का वह हिस्सा जान पड़ता है जिस में कि 'बचकाने आधारों पर राष्ट्रीय सम्मेलन बार-बार स्थगित करने' की भर्त्सना की गयी है. कुछ महीने पहले श्री किशन पटनायक ने भी अपने इस्तीफ़े में पार्टी का सम्मेलन बार-बार स्थगित किये जाने पर आपत्ति की थी और इस के लिए पार्टी के नेतृत्व को कटघरे में खड़ा किया था. पार्टी के कार्यकर्त्ताओं को काफ़ी अरसे से यह आशंका है कि संसपा का राष्ट्रीय सम्मेलन जान-बूझ कर और किन्हीं विशेष कारणों से, जिन का कि संबंध नेतृत्व से है, स्थगित किया जाता है. वास्तव में पिछले डेढ वर्षों से पार्टी के भीतर जो असंतोष पनप रहा था उस की ज़िम्मेदारी, जैसा कि श्री जार्ज फ़र्नांडीज ने कहा है, किसी एक व्यक्ति पर न हो कर समूचे नेतृत्व पर है. श्री जोशी का यह आरोप भी सही जान पड़ता है कि पार्टी के भीतर गुटबंदियाँ हैं जिन्हें कि स्वयं पार्टी के केंद्रीय नेता पनपाते रहे हैं. उत्तर प्रदेश और बिहार इन गुटबंदियों का क्रीडास्थल रहे हैं और अब भी हैं. लेकिन पिछले कुछ अर्से से पार्टी के केंद्रीय नेता इस गुटबंदी से स्वयं चिंतित नज़र आ रहे थे और भीतर ही भीतर इस बात की कोशिश की जा रही थी कि इन गुटबंदियों को समाप्त कर पार्टी की एकता को पुनर्प्रतिष्ठित किया जाये. श्री राजनारायण पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता रहा है कि वह गुटबंदी को बढ़ावा देते हैं लेकिन मध्यावधि चुनाव के बाद से श्री राजनारायण के रुख में स्पष्ट परिवर्तन हुआ था और केंद्रीय नेतृत्व की एकता को संगठित करने के लिए श्री राजनारायण और श्री मधु लिमये दोनों ही प्रयत्न कर रहे थे. दोनों की ही यह कोशिश थी कि नीति और व्यवहार के मामले में केंद्रीय नेतृत्व में जो मतभेद हैं वे समाप्त हो जायें. ऐसी स्थिति में श्री जोशी के इस्तीफ़े ने, जो कि स्पष्ट ही गुटबंदी के विरोध में है, गुटबंदी को कमज़ोर नहीं किया है बल्कि उस के फलस्वरूप पार्टी के भीतर वे सत्तागुट और भी सक्रिय हो जायेंगे जिन के प्रति संसपा के अध्यक्ष ने चिंता व्यक्त की है.

डॉ. राममनोहर लोहिया का यह दुर्भाग्य है कि उन के निधन के बाद सब से अधिक उन्हीं के नाम का दुरुपयोग किया जाता रहा है. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का कोई भी नेता या कार्यकर्त्ता कभी भी ऐसा काम नहीं करता जिसे कि उस के ख़याल में लोहिया नापसंद करते थे. स्थिति यह हो गयी है कि पिछले दिनों जब उत्तर प्रदेश में पार्टी का एक नेता पार्टी के अनुशासन को तोड़ कर सरकारी पक्ष में चला गया तब यह पूछे जाने पर कि उस ने अनुशासन क्यों तोड़ा उस की ओर से जवाब मिला, डॉ. लोहिया ने मुझ को अनुशासन तोड़ना सिखाया था. भारतीय राजनीति में जैसे गांधी और नेहरू के विचारों को विकृत कर उन्हें विक्रय योग्य बनाया गया ठीक उसी तरह समाजवादी क्रांतिद्रष्टा लोहिया के विचारों को तोड़-मरोड़ कर उसे विक्रय योग्य बनाया जा रहा है. चाहे वह पार्टी की अनुशासनहीनता हो, चाहे त्यागपत्र, चाहे गुटबंदी, हर मामले में लोहिया को प्रमाण बनाने की कोशिश है. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के अधिकतर नेताओं के लिए लोहिया एक ऐसा नाम हो गया है जिस के ज़रिये वे अपने सही और ग़लत कार्यों पर मोहर लगा सकते हैं. लोहिया की पहचान मुश्किल हो गयी है. संसपा अध्यक्ष जोशी के त्यागपत्र में भी लोहिया का हवाला है और उन सभी लोगों के वक्तव्यों में भी लोहिया की चर्चा है जो कि श्री जोशी के त्यागपत्र के लिए प्रयत्न करते रहे हैं.

इस में कोई शक नहीं कि अक्तूबर १९६७ में लोहिया के निधन के बाद से संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का सोचने वाला दिमाग़ बहुत हद तक निष्क्रिय हो गया. राममनोहर लोहिया संसपा का दिमाग़ ही नहीं थे उस का हाथ-पैर भी थे. लगता है कि संसपा के हाथ पैरों में भी हरकत नहीं रही केवल धड़ बचा हुआ है और ज़बान बची हुई है जो कि एक-दूसरे की काट करने वाले वक्तव्य देती है और लोग खुद अपनी पीठ ठोकते हैं.

—विशेष संवाददाता

राष्ट्र

तेलंगाना

स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं

आंध्र के नेताओं से प्रधानमंत्री की बातचीत का केवल इतना ही नतीजा निकला कि मुख्य मंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने आंध्र के लिए एक उपमुख्यमंत्री, जो कि तेलंगाना क्षेत्र से होगा, नियुक्त करने का निर्णय ले लिया है. लेकिन स्थिति में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं हुआ है. आंध्र में उपद्रव पहले की तरह जारी हैं और जनता के असंतोष में कोई कमी नहीं हुई है.

प्रधानमंत्री ने पहले संसद् के विरोधी नेताओं से बातचीत की. बाद में आंध्र के नेताओं से विचार विमर्श किया. बातचीत के बाद उन्होंने लोक सभा में यह घोषणा की कि तेलंगाना की समस्या पर विचार करने के लिए एक उच्च-स्तरीय समिति की नियुक्ति की जायेगी जिस का अध्यक्ष सुप्रीम कोर्ट का कोई वर्त्तमान या अवकाशप्राप्त न्यायाधीश होगा. यह समिति तेलंगाना के विकास पर हुए व्यय का भी आकलन करेगी. समिति अगले महीने के आखिर तक अपनी रिपोर्ट केंद्र सरकार को दे देगी. समिति में एक प्रख्यात अर्थशास्त्री होगा जिसे कि राज्य-वित्त का पर्याप्त अनुभव होगा और कंट्रोलर और आडिटर जनरल का एक वरिष्ठ प्रतिनिधि होगा. श्रीमती गांधी ने यह घोषणा की कि तेलंगाना के लोगों को रोजगार देने के लिए संवैधानिक व्यवस्था करने की दृष्टि से केंद्र सरकार विधिवेत्ताओं की एक समिति की नियुक्ति करेगी. श्रीमती गांधी ने तेलंगाना की जनता को यह विश्वास दिलाना चाहा कि राज्य और केंद्र की सरकारें उन के हितों के विषय में चिंतित हैं और उन की कठिनाइयों और असंतोष को दूर करने के लिए केंद्र सरकार कोई कसर नहीं उठा रखेगी. प्रधानमंत्री ने लोकसभा को यह बताया कि मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने भी उन से बातचीत के दौरान यह इच्छा ज़ाहिर की है कि तेलंगाना की जनता के असंतोष को दूर करने के लिए जल्द से जल्द उपयुक्त राजनैतिक व्यवस्था की जानी चाहिए. श्रीमती गांधी ने अपने वक्तव्य में तेलंगाना की जनता से यह अपील की कि वह अपनी समस्या के हल के लिए सरकार से सहयोग करे और विरोध तथा उत्पात का रवैया छोड़ दे. उन्होंने कहा कि हम इस संबंध में आंध्र सरकार और जनता से बराबर विचार-विमर्श करते रहेंगे और मैं यह विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि तेलंगाना की समस्या का हल हम ढूंढ़ निकालेंगे. श्रीमती गांधी ने यह भी कहा कि आंध्र की एकता को बनाये रखना अत्यंत आवश्यक है. जो भी शिकायतें हैं वे दूर हो सकती हैं. उन के लिए प्रदेश को खंडित करना आवश्यक नहीं.

मात्र प्रशासनिक हल : प्रधानमंत्री के वक्तव्य का संसद् के विरोधी नेताओं और तेलंगाना-असंतोष के प्रवक्ताओं पर अनुकूल असर नहीं पड़ा है. उन में से अधिकतर ने प्रधानमंत्री के वक्तव्य को समस्या का राजनैतिक हल नहीं बल्कि प्रशासनिक हल माना है. उन का कहना है कि समस्या बुनियादी तौर पर राजनैतिक है, प्रशासन उन के हल में केवल मदद कर सकता है लेकिन स्वयं समाधान नहीं कर सकता.

प्रजासमाजवादी पार्टी के **श्री नाथ पै** ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि आंध्र का कोई प्रशासनिक हल नहीं हो सकता. उस के लिए वहां की राजनैतिक स्थिति में परिवर्त्तन करना होगा. प्रधानमंत्री से अपनी बातचीत के दौरान अधिकतर विरोधी नेताओं ने मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी के इस्तीफ़े की माँग की. उन का कहना था कि आंध्र में जो भी गड़बड़ियां हो रही हैं श्री ब्रह्मानंद रेड्डी उन की जड़ हैं.

तेलंगाना के प्रश्न ने एक केंद्रीय उपमंत्री को अपनी लपेट में ले लिया. संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के **श्री मधु लिमये** ने केंद्रीय विधि उपमंत्री मुथियाल राव पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने यह वक्तव्य दिया था कि आंध्र के मुख्य सचिव और तेलंगाना के अटार्नी को हटा दिया जाना चाहिए. श्री मधु लिमये ने यह भी आरोप लगाया कि केंद्रीय गृह सचिव लल्लन प्रसाद सिंह ने श्री मुथियालराव के वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए कहा कि मैं मंत्री होता तो इस तरह की बात नहीं करता. गृहमंत्री चव्हाण ने ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के उत्तर में यह स्पष्ट करना चाहा कि श्री मुथियाल राव ने यह नहीं कहा था कि मुख्य सचिव को हटा दिया जाना चाहिए बल्कि यह कहा था कि मुख्य सचिव को 'हटाया जा सकता है'. केंद्रीय गृह सचिव के वक्तव्य के बारे में उन्होंने कहा कि श्री लल्लन प्रसाद सिंह ने ऐसी कोई बात नहीं कही थी. इस पर श्री मधु लिमये ने श्री चव्हाण पर असत्य भाषण का आरोप लगाया और प्रधानमंत्री से कहा कि आप अपने अफ़सरों को अपने क़ाबू में रखना चाहती हैं या कि उन्हें मनमानी करने की छूट देना चाहती हैं. श्री लिमये ने यह भी कहा कि श्री लल्लन प्रसाद सिंह गुलज़ारीलाल नंदा को हज़म कर चुके हैं और अब हमारे आज के गृहमंत्री यशवंतराव चव्हाण को हज़म करना चाहते हैं. चव्हाण साहब को उन से सावधान रहना चाहिए. श्री लिमये ने कहा कि मेरे पास खुद गुलज़ारीलाल नंदा का पत्र है जिस में उन्होंने बताया है कि कैसे श्री लल्लन प्रसाद सिंह ने उन को गृहमंत्री के पद से हटाने की स्थितियां पैदा कीं.

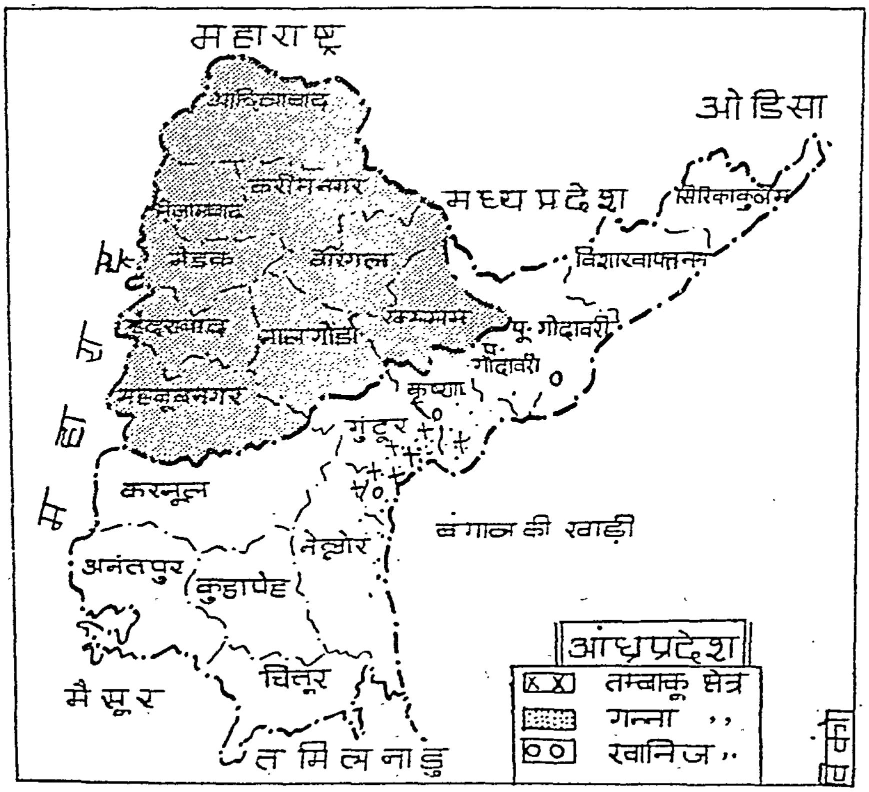

केंद्र और राज्य

पश्चिम बंगाल का वर्ग-संघर्ष

अजय मुखर्जी का वामपंथी मोर्चा केंद्र के साथ जो लड़ाई लड़ रहा है, मार्क्सवाद की भाषा में उसे वर्ग संघर्ष कहा जायेगा. राजनीति और सौहार्द के सभी आदर्शों को छोड़ कर पश्चिम बंगाल का नेतृत्व एक ऐसी स्थिति पैदा कर रहा है जिस की परिणतियां निश्चय ही खतरनाक होंगी. बंगाल और दिल्ली के बीच संपर्क के केवल दो-तीन प्रतीक रह गये हैं, डाक-तार, विमान सेवाएँ और रेल. पिछले हफ़्ते संयुक्त मोर्चा ने इन सभी प्रतीकों को नष्ट कर दिया और बंगाल की और दिल्ली यानी कि केंद्र और राज्य के बीच किसी तरह का संपर्क नही रह गया. थोड़ी देर के लिए बंगाल की स्थिति एक स्वतंत्र राज्य की हो गयी. पश्चिम बंगाल के उपमुख्यमंत्री ज्योति बसु यह कहते रहे है कि पश्चिम बंगाल की सरकार केंद्र के साथ अच्छे संबंध चाहती है लेकिन 'बंगाल बंद' के नाम पर जो कुछ हुआ उस से नहीं लगता कि यह सरकार केंद्र के साथ किसी भी तरह का संबंध चाहती है. बंद के दिन बंगाल की जो स्थिति हो गयी शायद वह उन की निगाह में एक आदर्श स्थिति है और अगर संयुक्त मोर्चे के नेताओं का बस चले तो वे इस स्थिति को बनाये रखना चाहेंगे.

लेकिन संविधान इस की इजाज़त नहीं देता है. राज्य को कुछ खास मामलों में केंद्र के अधीन होना होता है. वह केंद्र से अलग नहीं हो सकता अर्थात् स्वतंत्र नहीं हो सकता. यह हैरानी की बात है कि 'बंगाल बंद' के साथ संयुक्त मोर्चे का गुस्सा ठंडा नहीं हुआ बल्कि उस के बाद ज्योति वसु ने यह धमकी दी है कि पश्चिम बंगाल केंद्र के विरुद्ध अपना संघर्ष जारी रखेगा. श्री ज्योति बसु की शिकायत यह है कि केंद्र सरकार, विशेष रूप से गृहमंत्री ने, उन्हें विश्वास में नहीं लिया है. केंद्र सरकार को चुनौती देने के पहले पश्चिम बंगाल के उपमुख्य मंत्री ने हृदय पर हाथ रख कर अपने से यह नहीं पूछा कि क्या उन्होंने किसी भी प्रश्न पर केंद्रीय नेताओं को विश्वास में लेने का प्रयत्न किया.

'बंगाल बंद' पर वक्तव्य देते हुए लोक सभा में श्री यशवंतराव बलवंतराव चव्हाण ने सारी स्थिति पर दुख और झुंझलाहट दोनों ही व्यक्त किये. उन्होंने कहा कि 'बंगाल बंद' एक अनोखी घटना है जिस में कि राज्य सरकार सारी घटना का गवाह मात्र न हो कर हिस्सेदार भी थी. श्री चव्हाण ने पश्चिम 'बंगाल बंद' के नेताओं के आचरण को ले कर संविधान का हवाला दिया. उन्होंने कहा कि संविधान के अनुसार केंद्र को पर्याप्त सत्ता प्राप्त है. श्री चव्हाण का इशारा इस बात की ओर था कि पश्चिम बंगाल के नेताओं को अपनी सफलता पर मुग्ध हो कर केंद्र को इस हद तक चुनौती नहीं देनी चाहिए कि उसे कुछ कठोर क़दम उठाना पड़े.

आखिर श्री ज्योति बसु की शिकायत क्या है ? उन्हें केंद्र सरकार से किस बात का गिला है ? श्री ज्योति बसु की शिकायत यह है कि केंद्र सरकार ने कासीपुर की घटना की जाँच के लिए समिति की नियुक्ति के प्रश्न पर राज्य सरकार से परामर्श नही किया. उन्होंने उलटा चोर कोतवाल को डांटे के मुहावरे को सार्थक करते हुए कहा कि केंद्र हम से सहयोग नहीं करना चाहता. उन्होंने यह भी कहा कि उन की जाँच चल सकेगी इस में मुझे शुबहा है क्यों कि राज्य सरकार के अदालती मामले चल रहे हैं. श्री ज्योति बसु की शिकायत बहुत हद तक निराधार है क्यों कि केंद्र को न केवल अपनी संपत्ति की रक्षा करने का अधिकार है बल्कि उस की रक्षा से संबंधित सभी प्रश्नों पर स्वतंत्र रूप से विचार करने का अधिकार भी है. कासीपुर की घटनाओं का अपने स्रोतों से ब्यौरा प्राप्त करना और उन पर कार्रवाई करने का पूरा-पूरा हक केंद्र को है. यह संभव है कि पश्चिम बंगाल में केंद्रीय पुलिस और सुरक्षा सेना ने ज़्यादतियाँ की हों, लेकिन गोली चलाने की स्थिति जिन कारणों से पैदा हुई उन्हें वामपंथी नेता मज़दूर समस्या कह कर नही टाल सकते. कासीपुर की घटनाएँ श्रम समस्या नहीं हैं बल्कि उन के पीछे राजनैतिक कारण हैं. इन राजनैतिक कारणों को नज़रंदाज़ नहीं किया जा सकता. इस लिए केंद्र सरकार को उन की अपने स्रोतों से पहचान करने की पूरी आज़ादी होनी चाहिए.

प्रतिरक्षा

सोवियत नीति और भारत की प्रतिरक्षा

जब लोकसभा में जनसंघ सदस्य मेजर रणजीत सिंह ने प्रतिरक्षा मंत्री स्वर्णसिंह को यह कह कर बधाई दी कि उन्होंने पहली बार एक स्वतंत्र देश के प्रतिरक्षा मंत्री की तरह उत्तर दिया है तो उन की बधाई एक सीमा तक ही उचित थी, क्यों कि जहाँ प्रतिरक्षा मंत्री ने अपनी प्रतिरक्षा आवश्यकताओं के संबंध में स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनने की बात कही वहाँ वह सदस्यों को यह नहीं समझा पाये कि यदि बदलते हुए राजनैतिक चित्र में कहीं भारत को पाकिस्तान और चीन से एक साथ लड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा तो उस स्थिति के लिए देश कहाँ तक तैयार है. पाकिस्तान को सोवियत संघ द्वारा शस्त्र दिये जाने के संबंध में कँवरलाल गुप्त द्वारा आरंभ की गयी बहस का उत्तर देते हुए सरदार स्वर्णसिंह ने यह स्वीकार किया कि सोवियत संघ ने ताशकंद समझौते के बाद पाकिस्तान के संबंध में अपनी नीति में परिवर्तन किया है. सोवियत अधिकारी पाकिस्तान की मित्रता प्राप्त करने के लिए उस देश को सहायता दे रहे हैं, किंतु उन्होंने भारत को यह आश्वासन दिया है कि उन के शस्त्र भारत के विरुद्ध युद्ध छेड़ने का साधन नहीं बनेंगे. स्वर्णसिंह के अनुसार भारत ने सोवियत अधिकारियों को यह समझाने का प्रयास किया है कि पाकिस्तान को शस्त्रों की सहायता देने से भारत उप-महाद्वीप में तनाव कम होने के स्थान पर बढ़ जायेगा. भारत ने विश्व के सभी राष्ट्रों को यह कहा है कि पाकिस्तान को अधिक शस्त्र भेजने का मतलब यह होगा कि भारत को अपनी रचनात्मक योजनाओं से पैसा खींच कर प्रतिरक्षा पर ख़र्च करना पड़ेगा. कुछ सदस्यों ने भारत के तर्क को महसूस किया है किंतु कुछ राष्ट्र सहमत नहीं हुए हैं.

सोवियत विटो : कंवरलाल गुप्त ने अनेक प्रश्नों के द्वारा यह पूछा था, कि क्या ताशकंद घोषणा के बाद सोवियत संघ ने भारत के प्रति अपनी नीति में परिवर्तन किया है और क्या सरकार को इस बात का ज्ञान है कि सोवियत संघ द्वारा दिये गये शस्त्रों से पाकिस्तान अपने शत्रु के विरुद्ध प्रतिरक्षा कर सकता है. इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए प्रतिरक्षा मंत्री ने कहा कि पाकिस्तान में सोवियत अधिकारियों ने क्या कहा इस की प्रामाणिक प्रति हमारे पास नहीं है फिर भी यह बात स्पष्ट है कि हम इस क्षेत्र में शक्ति के संतुलन के सिद्धांत को नहीं मानते. यह तर्क कुछ पाश्चात्य देशों ने पेश किया था जिस के अनुसार वह भारत और पाकिस्तान की सैनिक शक्ति को संतुलित करने के पक्ष में हैं. मगर हमारी समस्याएँ बड़ी हैं, क्यों कि हमारी जनसंख्या और हमारा आकार बड़ा है. पाकिस्तान के अतिरिक्त हमारे और भी शत्रु हैं. इस लिए यह तर्क हमारे लिए कोई अर्थ नहीं रखता. यदि पाकिस्तान ने सुरक्षा परिषद में फिर से कश्मीर का विवाद खड़ा कर दिया तो सोवियत संघ की बदली हुई विदेश नीतियों को सामने रख कर इस बात की आशंका नही है कि वह भारत के पक्ष में विटो का उपयोग न करेगा? स्वर्णसिंह का उत्तर था 'हमारा दावा न्याय-

संगत है. हमें किसी देश के विटो पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है. हमें अपनी टाँगों पर खड़ा होना चाहिए और इस बात की परवाह नहीं करनी चाहिए कि कौन हमारा पक्ष लेता है और कौन हमारा विरोध करता है.' जहाँ तक कश्मीर प्रश्न का सवाल है भारत ने विश्व के सभी देशों को यह स्पष्ट रूप से बता दिया है कि इस सिलसिले में भारत पर दबाव डालने की एक सीमा है. कई देशों ने हमारे दावे की सत्यता को स्वीकार किया है. प्रतिरक्षा मंत्री के अनुसार भारत आज निश्चित रूप से अधिक शक्तिशाली है. मगर साथ ही उन्होंने कहा कि हमारे दूसरे शत्रु भी हैं'. जहाँ इन दूसरे शत्रुओं का सवाल आता है वहाँ भारत का अनिश्चय स्पष्ट हो जाता है. बहस के दौरान यह भी पूछा गया कि चीन और सोवियत संघ के सीमा-विवाद में सोवियत संघ का पक्ष लेने के कारण सोवियत संघ ने कोई ऐसा आश्वासन दिया है कि यदि चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो वह भारत की सहायता करेगा तो स्वर्णसिंह ने केवल इतना ही कहना उचित समझा कि 'हमें सोवियत संघ या संयुक्त राज्य अमेरिका से सहायता प्राप्त करने के आसान तरीके को छोड़ कर अपने साधनों पर निर्भर रहना चाहिए'. इस सिलसिले में उन्होंने दावा किया कि देश में शस्त्रों का निर्माण द्रुतगति से हो रहा है और असैनिक तथा निजी उद्योगों से भी इस सिलसिले में सहयोग प्राप्त किया जा रहा है. किंतु उन्होंने यह नहीं बताया कि इस सहयोग और शस्त्र-निर्माण कार्यों के परिणामस्वरूप भारत सैनिक शक्ति के लिहाज़ से चीन के मुकाबले कहाँ खड़ा है.

अस्पृश्यता

जानवर और जानवर

लोकसभा के पटल पर रखी गयी अस्पृश्यता संबंधी रिपोर्ट ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि देश के अधिकतर हिस्सों में छुआछूत आज भी पहले की तरह प्रचलित है—संविधान के बावजूद उस में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा है. रिपोर्ट इस धारणा को प्रमाणित करती है कि अस्पृश्यता के संबंध में शंकराचार्य अकेले नहीं हैं—देश के लाखों सवर्ण नर-नारी वर्ण-व्यवस्था और अस्पृश्यता दोनों में विश्वास करते हुए उन्हें अपने दैनिक जीवन में बरतते हैं. 'इलियापेरुमल रिपोर्ट' में मध्यप्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र और आंध्र की घटनाओं का हवाला देते हुए बताया गया है कि हरिजनों और आदिवासियों के साथ, विशेष रूप से भीतरी ग्रामीण इलाक़ों में, मनुष्य का सलूक नहीं किया जाता. उन्हें अब भी, जानवर के स्तर पर बनाये रखने का प्रयत्न किया जा रहा है. रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि अशिक्षा और सदियों के उत्पीड़न ने हरिजनों को बहुत हद तक अपने अधिकारों से अपरिचित बना दिया है. लेकिन जहाँ भी उन्होंने अपने अधिकारों की माँग की उन्हें कुचल दिया गया. मध्यप्रदेश के एक अंचल का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट में एक जगह एक महत्त्वपूर्ण घटना का ज़िक्र किया गया है जिस से समाज के भीतरी अंधकार का पता चलता है. कहा गया है कि मध्यप्रदेश में जब एक भूतपूर्व संसद् सदस्य ने, जो कि सवर्ण था, एक ग्रामीण इलाक़े में भंगियों और चमारों के साथ उठना-बैठना किया तो सवर्णों ने उस का बहिष्कार कर दिया और उस के साथ खान-पान का रिश्ता तोड़ लिया. राजस्थान की एक घटना बतायी गयी है कि एक हरिजन को केवल इस लिए मौत के घाट उतार दिया गया कि उस ने सवर्णों के लिए बने कुएँ और अन्य साधनों का उपयोग किया था. बृहत्काय रिपोर्ट इस तरह के उदाहरणों से भरी पड़ी है. और तो और सर्वेक्षण के दौरान कुछ जगहों पर सवर्णों ने स्वयं इलियापेरुमल समिति का बहिष्कार किया. रिपोर्ट में सरकारी समाज कल्याण समिति की अकर्मण्यता पर रोशनी डाली गयी है और टिप्पणी देते हुए कहा गया है कि समाज कल्याण विभाग ने छुआछूत के विरुद्ध कोई ठोस कारवाई नहीं की.

ठोस कारवाई की माँग शंकराचार्य के विरुद्ध भी की गयी और पटना के संयुक्त सोशलिस्ट नौजवान शिवानंद तिवारी ने शंकराचार्य के विरुद्ध अदालत में मामला दायर कर दिया. कांग्रेस संसदीय पार्टी की बैठक में भी श्रीमती गांधी ने शंकराचार्य के वक्तव्य की भर्त्सना की और कहा कि अस्पृश्यता का प्रचार करने वालों को दंड देने के लिए क़ानून में परिवर्त्तन होना चाहिए. शंकराचार्य ने अपने वक्तव्य से देश भर में प्रतिक्रियाएँ पैदा कीं. ओडिसा और पंजाब विधानसभाओं में शंकराचार्य के वक्तव्य की निंदा की गयी. ओडिसा विधानसभा ने इस संबंध में एक प्रस्ताव पास किया जिस में कहा गया कि यह आशा की जाती है कि प्रत्येक सजग और समझदार नागरिक शंकराचार्य के 'संकीर्ण' और 'समाज-विरोधी' विचारों का विरोध करेगा.

इस बीच शंकराचार्य दिल्ली पधारे और निगमबोध घाट पर उन के आवास के समीप अनेक प्रदर्शन हुए. एक प्रदर्शन में शंकराचार्य की अर्थी जलायी गयी. राजधानी के नागरिकों और नेताओं ने शंकराचार्य के विचारों को समूचे देश के लिए खतरनाक बताया. दिल्ली नगर निगम ने जिस पर कि जनसंघ का प्रभुत्व है, शंकराचार्य के रवैये को ग़लत बताते हुए उन के अस्पृश्यता संबंधी विचारों का विरोध किया. केंद्रीय आवास उपमंत्री श्री वी. एस. मूर्त्ति ने अपने एक भाषण में कहा कि हरिजन सवर्णों के दास नहीं हैं और दास बनने को तैयार नहीं हैं. कुछ इसी तरह के विचार केंद्रीय अन्न-मंत्री और हरिजनों के सब से बड़े नेता जगजीवन राम ने, अपने जन्मदिन समारोह पर, व्यक्त किये. उन्होंने कहा कि हरिजनों की नियति का फ़ैसला धर्मगुरु और पंडे नहीं कर सकते. इतिहास आततायियों से बदला ले रहा है और अभी और लेगा. समाजवादी युवजन सभा की ओर से आयोजित, श्रीकांत वर्मा की अध्यक्षता में, एक नागरिक सभा में बोलते हुए संसद् सदस्य मधु लिमये ने कहा कि अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए हिंदू समाज के दार्शनिक आधारों को चुनौती देना तथा उन्हें कमज़ोर करना आवश्यक है. उन्होंने कहा कि शंकराचार्य और गोलवलकर जैसे धार्मिक तथा सांप्रदायिक नेता अस्पृश्यता तथा वर्णव्यवस्था का शास्त्रीय आधार प्रस्तुत कर रहे हैं. ज़रूरत इन शास्त्रों की असंगति और अपर्याप्तता साबित करने की है. सभा में कांग्रेसी संसद् सदस्य और हरिजन नेता महावीर दास तथा विभिन्न नौजवान नेताओं, श्री परिमल दास, डॉ. कुमार सप्तर्षि तथा श्री जनार्दन ने अस्पृश्यता की समाप्ति पर ज़ोर दिया. सभा में पास प्रस्ताव में माँग की गयी कि जो लोग छुआछूत बरतते हैं उन्हें नागरिकता और मतदान के अधिकारों से वंचित किया जाये तथा मंदिरों और मठों के संचालन के लिए ट्रस्टों का निर्माण किया जाये जिन के तीन चौथाई सदस्य हरिजन हों.

यह नहीं कि शंकराचार्य को समर्थन नहीं मिला, केवल विरोध ही विरोध मिला है. स्वामी करपात्री ने जो कि शंकराचार्य की नियुक्ति करते हैं तथा एक और शंकराचार्य (ज्योतिर्मठ) ने पुरी के शंकराचार्य के विचारों का समर्थन किया है. अब शंकराचार्य की ओर से यह दलील दी जा रही है कि उन्हें अपने विचार व्यक्त करने की आज़ादी है. प्रश्न यहाँ विचार-स्वतंत्रता का नहीं, बल्कि आधुनिक समाज के आदर्शों का है, शास्त्र जिन के संदर्भ में बहुत प्रासंगिक और ज़रूरी नहीं.

नगा-समस्या

संभावनायें और संभावनायें

नगालैंड शांति पर्यवेक्षक दल के संयोजक डॉ. अरम ने जब कुछ पहले कोहिमा में बताया कि न केवल नगा विद्रोहियों के 'क्रांतिकारी' गुट के नेता कुघातो सुखई और स्कैटो स्वू नगा-समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार से नये सिरे से बातचीत शुरू करने का आग्रह कर रहे हैं बल्कि फिज़ो-समर्थक नगा विद्रोहियों के शीर्षस्थ प्रतिनिधि भी समस्या के राजनैतिक समाधान की दृष्टि से नयी शुरुआत की संभावना पर विचार कर रहे हैं, तो राजधानी नयी दिल्ली के राजनैतिक क्षेत्रों में आश्चर्य-मिश्रित संतोष का अनुभव किया गया. संयोजक डॉ. अरम ने चैंक्साङ और आवो क्षेत्रों के हाल के अपने दौरे के सिलसिले में विद्रोही नगा नेताओं से विचारों का जो आदान-प्रदान किया उस से वह इस निश्चित नतीजे पर पहुँचे हैं कि जहाँ तक कुघातो

सुखई के गुट का सवाल है, वह अब स्वतंत्र प्रभुसत्ता संपन्न नगालैंड की पुरानी माँग छोड़ चुका है और समस्या का कोई ऐसा राजनैतिक समाधान चाहता है जो भारत सरकार, नगा जनता और उस के प्रतिनिधियों को मान्य हो.

दिनमान के प्रतिनिधि ने *नगा-समस्या* से संबद्ध अपनी रिपोर्टों में अक्सर कहा है कि नगा विद्रोहियों में फूट का एक कारण केंद्रीय सरकार से वार्त्ता भंग हो जाने के कारण युद्ध-विराम के साथ-साथ विराम युद्ध चलते रहने की उन की नीति से उभरता अंतर्विरोध भी रहा है. कुवातो सुखई के गुट ने भारतीय संविधान की सीमाओं में केंद्रीय सरकार से बातचीत करने का आग्रह जरूर किया है लेकिन जिस राजनैतिक समाधान की उन्होंने माँग की है *वह शायद नगालैंड में राजनैतिक शक्तियों* के मौजूदा ध्रुवीकरण को देखते हुए असंभव ही लगता है.

जहाँ तक फ़िज़ो-समर्थक, पीकिङ पंथी नगा विद्रोहियों का सवाल है उन्होंने समस्या के राजनैतिक समाधान में नयी दिलचस्पी भले ही दिखाई हो लेकिन यह स्वतंत्र प्रभुसत्ता संपन्न नगालैंड की उन की माँग में परिवर्त्तन से जुड़ी न हो कर, इधर बड़े पैमाने पर पीकिङ-प्रशिक्षित नगा-विद्रोहियों की गिरफ़्तारी के कटु अनुभव से जुड़ी लगती है. कुवातो सुखई के नेतृत्व में काम करने वाले दल के नये आग्रह के ठीक दूसरे दिन खेंसा में चीन-विरोधी नगा विद्रोहियों के एक नवगठित गुट ने भी स्वतंत्र प्रभुसत्ता-संपन्न नगालैंड की माँग न करने का फ़ैसला किया है. इस नये गुट के नेता तथाकथित लेफ्टिनेंट ज़मीर ने एक लिखित बयान में सभी नगा गुटों को एक साथ मिल कर नगालैंड के विकास में योगदान करने की सलाह दी है. लेकिन इस से नगा समस्या के राजनैतिक समाधान की दिशा में क्या प्रगति हो सकेगी, अभी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता.

आर्थिक-सहयोग

विकास के लिए सहयोग

उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने आस्ट्रेलिया में आयोजित एशियाई विकास बैंक के गवर्नरों की दूसरी बैठक में कहा कि एशियाई विकास बैंक को एक नया कोष स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए जिस से ऋण देने की प्रथा सुगम बन जाए. क्यों कि यदि सामान्य शर्तों पर ही अंतरराष्ट्रीय ऋण दिये गये तो इस बात की बहुत आशंका है कि उन का उद्देश्य ही समाप्त हो जायेगा. इन ऋणों पर जो ब्याज बढ़ता जा रहा है वह मूल धन की प्रभावोत्पादकता नष्ट कर देता है. देसाई के अनुसार

मोरारजी देसाई : सिडनी में स्वागत

इस प्रकार का नया कोष स्थापित करने के लिए स्रोत खोजना असंभव नहीं है. इस से ऋण पर ब्याज का भार कम हो जायेगा और साथ ही बैंक की अपनी विशेषता भी नष्ट नहीं होगी. मोरारजी देसाई ने बैंक के गवर्नरों को कहा कि यदि एशियाई विकास बैंक निर्यात ऋण को सहज बनाने के बारे में गंभीरता पूर्वक विचार करे तो विकासशील देशों के लिए यह संभव हो जायेगा कि वह समान शर्तों पर विकसित देशों का मुक़ाबला कर सकें. अभी तक केवल एक ही क्षेत्रीय बैंक **इंटर अमेरिकन डेवलपमेंट बैंक** ने निर्यात ऋणों पर इस प्रकार की सहूलियत देने की योजना बनायी है. देसाई ने कहा कि एशियाई बैंक को इस बात की संभावनाओं पर विचार करना चाहिए कि एक विकसित देश से दूसरे विकसित देश को निर्यात की वस्तुओं पर ऋण की सहूलियतें प्रदान करे. सिडनी में आयोजित एशियाई बैंक का यह सम्मेलन उस क्षेत्र के आर्थिक विकास के लिए एक महत्त्वपूर्ण क़दम है. सिडनी में सम्मेलन का आयोजित करना इस बात का द्योतक है कि आस्ट्रेलिया अपने आप को पूर्ण रूप से एशियाई देश मानता है. भारत को इस सिलसिले में कोई भी शंका नहीं है. बल्कि एशिया के विकास और एशिया की समस्याओं के संबंध में भारत आस्ट्रेलिया काफ़ी निकट हो गये हैं.

बैंक की स्थिति : ऊ थां के उप महासचिव श्री नरसिंहन ने पत्रकारों को बताया कि सम्मेलन अब वास्तविक कार्य करने की मुद्रा में आ गया है. उन के अनुसार इस बैंक को क्षेत्रीय विकास के क्षेत्र में काफ़ी महत्त्वपूर्ण काम करना है किंतु अधिक संपन्न देश किसी भी समय इस की आर्थिक स्थिति को मज़बूत करने के लिए स्वतंत्र हैं. संयुक्त राष्ट्र ने कुछ वर्ष पूर्व पारस्परिक विकास के लिए कुल एक प्रतिशत आय समर्पित करने का प्रस्ताव पारित किया. किंतु अब भी वह एक प्रतिशत का लक्ष्य पूरा नहीं हो पाया है. 'विकसित देशों को यह समझने में अभी समय लगेगा कि विकासशील देशों की प्रगति से विकसित देशों के भविष्य की संपन्नता में भी वृद्धि होगी'. नरसिंहन के अनुसार इस समय एशियाई बैंक की आर्थिक स्थिति अच्छी है किंतु जब सदस्य राष्ट्र ऋण मांगने लगेंगे तो आर्थिक तंगी महसूस हो जायेगी. संयुक्त राज्य कोष के सचिव डेविड केनेडी ने यह आश्वासन दिया कि वह एशियाई बैंक में विशेष कोष स्थापित करने के संबंध में अपने देश में वैधानिक अधिकार प्राप्त करने का प्रयास करेंगे. मोरारजी देसाई के विचारों का समर्थन कई अन्य देशों के प्रतिनिधियों ने भी किया था.

उपप्रधानमंत्री सम्मेलन में भाग लेने से पहले मार्ग में सिंगापुर में ठहरे थे जहाँ उन्होंने सिंगापुर के प्रधानमंत्री से दक्षिण पूर्वी एशिया के आर्थिक विकास पर बातचीत की. वह पूर्व निश्चित तिथि से एक दिन पहले ही दिल्ली लौट रहे हैं क्योंकि इस सप्ताह लोक सभा के सामने असम के पुनर्गठन का विधेयक फिर से पेश हो रहा है. पिछली बार कोरम के अभाव में बिल पारित नहीं हो पाया था.

कच्छ-विवाद

एक अनावश्यक तनाव का अंत

अंतरराष्ट्रीय कच्छ न्यायाधिकरण के निर्णय के अनुसार कच्छ के रण के जिस भाग पर पाकिस्तान का दावा स्वीकार किया गया था उस का सीमांकन मई के अंत तक समाप्त करने का निश्चय किया गया था, किंतु प्रायः ९० प्रतिशत काम करने के बाद पिछले दिनों २४ एकड़ के एक छोटे से पथरीले क्षेत्र पर पाकिस्तान और भारत के सीमांकन अधिकारियों के बीच पुनः विवाद छिड़ गया. इस स्थान पर

'नियंत्रण स्तंभ ६, लगाया जाने वाला था किंतु पाकिस्तान ने दावा किया कि इस पथरीले क्षेत्र को सिंध प्रदेश की 'बाहर निकली हुई जीह्वा', माना जाना चाहिए. जिस का मतलब यह था कि यह क्षेत्र पाकिस्तान की सीमा में पड़ता है और इस का रण्ण के विवाद से कोई संबंध नहीं है. किंतु भारतीय अधिकारियों ने कहा कि यह क्षेत्र भी कच्छ के रण्ण का ही एक भाग है और इस सिलसिले में उन्होंने उपयुक्त प्रमाण भी प्रस्तुत किया. दो बैठकों में दोनों पक्षों के अधिकारियों ने इस विषय पर बातचीत की किंतु पाकिस्तानी अपने दावे पर डटे रहे. मगर बाद में उन्होंने यह महसूस किया कि अनावश्यक तनाव पैदा करने से कोई लाभ नहीं क्यों कि वास्तव में अंतरराष्ट्रीय न्यायाधिकरण के सामने जो प्रमाण-पत्र और मानचित्र उपस्थित किये गये थे उन में इस विवादग्रस्त क्षेत्र को रण्ण का एक भाग माना गया था और उन्हीं मानचित्रों के आधार पर न्यायाधिकरण ने अपना फ़ैसला दिया था. अपने दावे की वकालत करते समय पाकिस्तान ने न्यायाधिकरण के सामने इस क्षेत्र के बारे में कोई आपत्ति नहीं उठाई. इस लिए इस वक़्त पाकिस्तानी दावा अनावश्यक तनाव पैदा करने का प्रयास मात्र था. नयी दिल्ली में आयोजित तीसरी बैठक में पाकिस्तान के अधिकारियों ने अंत में भारत के तर्क को स्वीकार किया और भारतीय अधिकारियों के अनुसार ही नियंत्रण स्तंभ-६ स्थापित किया गया. इस विवाद के सुलझ जाने से सीमांकन का ९५ प्रतिशत कार्य पूरा हो चुका है और शेष कार्य में प्रायः डेढ़ मास का समय लग जायेगा. जून के अंत तक सीमांकन का पूरा कार्य हो जायेगा और कच्छ विवाद सदा के लिए समाप्त होगा. संभवतया पाकिस्तान द्वारा भारत के तर्क को स्वीकार करने और विवाद को मित्रतापूर्ण सुलझाने का फ़ैसला नये राष्ट्रपति जनरल याह्या खां की इसी नीति का एक अंग है, जिस के अनुसार उन्होंने भारत के साथ विवादों को मित्रतापूर्वक सुलझाने की इच्छा व्यक्त की है.

राजनैतिक दल

कम्युनिस्ट पार्टियाँ : एकता बनाम अवसरवादिता

दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय परिषद ने लंबे विचार-विमर्श के बाद राष्ट्रीय पैमाने पर मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ कार्यक्रमों के आधार पर एकता का नारा दिया है. वैसे न तो यह नारा नया है न ही उस की शब्दावली नयी है. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के शिखर नेता इ. एम. एस. नंबूदिरिपाद ने काफ़ी पहले इस दिशा में अपने चिंतन का परिचय दिया है. कांग्रेस की केंद्रीय सत्ता पर समय के साथ पड़ रहे दबावों और उस पार्टी के अंदर तेज़ हो रहे अंतर्विरोधों की व्याख्या करते हुए नंबूदिरिपाद ने राष्ट्रीय पैमाने पर एक वामपंथी लोकतांत्रिक मोर्चे के गठन को अगले दौर की राजनीति की आवश्यकता बताया था. दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय परिषद ने तीन सूत्रीय प्रस्ताव के ज़रिये कार्यक्रम पर आधारित जिस एकता की बात की है उस में ज़्यादा आग्रह तीन हिस्सों में बँटे कम्युनिस्ट पार्टियों की एकता पर है. प्रस्ताव में कहा गया है कि केंद्रीय स्तर पर दोनों पार्टियों की एक संयोजन समिति का गठन किया जाना चाहिए कि संसद में एक संयुक्त कम्युनिस्ट गुट कायम होना चाहिए तथा जिन प्रदेशों के विधान मंडलों में 'वाम पंथी' लोकतांत्रिक शक्तियों का संयुक्त मोर्चा नहीं है उन में भी कम्युनिस्टों पार्टियों का संयुक्त गुट बनाया जाना चाहिए. दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख प्रवक्ता की हैसियत में **श्री भवानी सेन** ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि हमारी पार्टी न केवल मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के साथ कार्यक्रमों के आधार पर पर एकता चाहती है बल्कि नक्सलवादी कम्युनिस्टों के साथ भी एकता की कामना करती है. जब प्रतिनिधि ने उन का ध्यान इस तथ्य पर केंद्रित किया कि नक्सलवादी कम्युनिस्ट पार्टी सशक्त क्रांति में यकीन करती है तथा उस के प्रवक्ता यह मान कर चलते हैं कि उन का दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों से बुनियादी सैद्धांतिक और संगठनात्मक मतभेद है. उन्होंने प्रतिनिधि की जिज्ञासा को यह कह कर टालना चाहा कि जन आंदोलनों की गति को तेज़ करने के लिए नक्सलवादियों से भी सहयोग करने में मैं कोई आपत्ति नहीं देखता क्यों कि "नक्सलवादी दिग्भ्रांत होने के बावजूद कम्युनिस्ट हैं". **दिनमान** के प्रतिनिधि ने श्री सेन से यह भी जानना चाहा कि एक साथ ही मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और नक्सलवादी कम्युनिस्टों से एकता का आग्रह कर के क्या दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी सैद्धांतिक समीकरणों को उलझा नहीं रही है. श्री सेन का तर्क था कि धीरे-धीरे यह स्पष्ट होता गया है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी में सैद्धांतिक स्तर पर कोई बुनियादी मतभेद नहीं है. जहाँ तक नक्सलवादियों का सवाल है, यह जानते हुए भी कि उन्होंने अपनी पार्टी को भूमिगत रखने का फ़ैसला किया है, दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी उन से एकता चाहती है क्यों कि यह जनता और लोकतंत्र के व्यापक हित में है.

बहुत संभव है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति ने कलकत्ता में पूरे पाँच दिन तक विचार-विमर्श अभियान चलाने का जो फ़ैसला किया है उस के दौरान दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी की एकता प्रस्ताव पर भी बहस हो. लेकिन मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ नेताओं के साथ अपनी बातचीत के दौरान **दिनमान** के प्रतिनिधि ने पाया कि दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के इस प्रस्ताव को वे कोई विशेष महत्त्व का प्रस्ताव नहीं मानते. बाद में केंद्रीय समिति की बैठक में भी यही कहा गया.

नेताओं ने प्रतिनिधि को बताया कि दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के एकता प्रस्ताव के मूल में उस के सिमटते जनाधार की चेतना है. उन का तर्क था कि दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के 'नेताओं' ने न केवल दोनों कम्युनिस्ट पार्टियों के सहयोग के लिए कभी कोई ठोस आधार नहीं प्रस्तुत किया बल्कि विघटन को मज़दूर संगठनों तक पहुंचा दिया. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के एक नेता ने इस प्रतिनिधि को बताया कि एकता का यह प्रस्ताव सोवियत संघ के इशारे पर किया जा रहा है. और इस का एक उद्देश्य यह भ्रम पैदा करना भी हो सकता है कि दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने तो एकता का प्रस्ताव सामने लाया लेकिन मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं ने उसे अस्वीकार कर दिया. मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के इस प्रवक्ता का कहना था कि अगले दौर की राजनीति की आवश्यकता वामपंथी लोकतांत्रिक दलों के संयुक्त मोर्चे को गठित करने की है. वैसे तो कार्यक्रमों के आधार पर किसी भी एकता के हम विरोधी नहीं हैं लेकिन अकेले दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी से एकता की बात हमारी समझ में नहीं आती. इस प्रवक्ता को दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी के एकता प्रस्ताव में सैद्धांतिक अवसरवाद के भी दर्शन हुए. उन का तर्क था कि क्यों कि नक्सलवादी कम्युनिस्ट वस्तुस्थिति का भावनात्मक खाका बना कर सशस्त्र क्रांति की बात करते हैं और इस तरह देश में प्रतिक्रियावाद की दमन शक्ति को बढ़ावा देते हैं इस लिए उन से एकता की बात सीधी राजनैतिक अवसरवाद से जुड़ी हुई है.

दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय परिषद ने एकता के इस नये अभियान के अलावा मध्यावधि चुनाव की भावनात्मक व्याख्या पेश करने की कोशिश भी की. पार्टी की उत्तरप्रदेश शाखा की इस आधार पर आलोचना की गयी कि उस ने भारतीय क्रांति दल की शक्ति को कम कर के आँका था.

इसी तरह पार्टी की बिहार शाखा की इस आधार पर आलोचना की गयी कि उस ने प्रदेश की राजनैतिक स्थिति की स्फीत व्याख्या प्रस्तुत की. राष्ट्रीय परिषद ने मध्यावधि चुनावों में जनसंघ की शक्ति में भी ह्रास को भारतीय लोकतंत्र के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण बताया और यह मत व्यक्त किया कि जनसंघ अभी भी हिंदू प्रतिक्रियावादी की सब से संगठित संस्था है. राष्ट्रीय परिषद ने यह स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किया कि उस की यह व्याख्या जो चौथे आम चुनाव के पहले भी इसी रूप में व्यक्त की गयी थी, ग़ैर कांग्रेसवाद के उस के आग्रहों से कहाँ तक मेल खाती है. चौथे आम चुनाव के पूर्व दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी कांग्रेस को प्रतिक्रियावाद का सब से संगठित गढ़ मानने के लिए तैयार नहीं थी और राष्ट्रीय परिषद की

हाल की व्याख्या में भी इस बात का कोई संकेत नहीं दिया गया है कि केंद्रीय सत्ता के प्रतिनिधि के रूप में कांग्रेस की सैद्धांतिक स्थिति क्या है. यह आकस्मिक नहीं है कि मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ नेताओं ने **दिनमान** के प्रतिनिधि से अपनी बातचीत के दौरान दक्षिण कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के हाल के प्रस्ताव को सैद्धांतिक अवसरवादिता के उस के पुराने संदर्भ से जोड़ कर देखा और उसे बुनियादी तौर पर कांग्रेसानुरक्ति की बीमारी का शिकार पाया.

संसपा : मत और मतभेद

पिछले सप्ताह संयुक्त समाजवादी पार्टी की उत्तरप्रदेश शाखा के अधिवेशन के दौरान दो चोटी के नेताओं अध्यक्ष श्रीवर महादेव जोशी और राजनारायण सिंह ने मध्यावधि चुनाव के दौरान अस्तित्व में आयी और राजनैतिक पुनर्गठन की व्याख्याएं प्रस्तुत कीं और १९७२ में केंद्रीय स्तर पर पड़ने वाले संभावित दबावों का विश्लेषण किया. अध्यक्ष जोशी ने बुनियादी परिवर्त्तन के लिए जनता के दिल और दिमाग़ में क्रांति का सवाल उठाया और यह स्थापना की कि केवल मंत्रि मंडलों का परिवर्त्तन या कि क़ानूनों के नवीकरण से परिवर्त्तन की राजनीति की परिधि का विस्तार संभव नहीं. चौथे आम चुनाव के दौरान अस्तित्व में आयी और बाद में मध्यावधि चुनाव के नतीजों से पुष्ट हुए राजनैतिक पुनर्गठन के उस पक्ष की भी व्याख्या अध्यक्ष जोशी ने पेश की जिस का संबंध कांग्रेसवाद बनाम ग़ैर कांग्रेसवाद की रणनीति से था. सम्मेलन में उन्होंने बताया कि ग़ैर कांग्रेसवाद के इर्द-गिर्द राजनैतिक शक्तियों और सरकारों के संगठन से जनता की हताशा दूर हुई है और परिवर्त्तन में उन की आस्था बढ़ी है लेकिन यह अपने आप में पर्याप्त नहीं है. उन्होंने सदस्य को बताया कि कांग्रेस ने केंद्रीय स्तर पर संयुक्त समाजवादी पार्टी के साथ सहयोग की ज़रूरत महसूस की है. लेकिन ऐसा वह इस लिए नहीं कर रहे हैं कि वह सिद्धांतों के आधार पर हमारे समीप आयी है बल्कि महज़ इस लिए कि १९७२ में उसे केंद्र में बहुमत की उम्मीद अब नहीं रह गयी है. उन की दृष्टि में कांग्रेस विघटन की प्रक्रिया से गुजर रही है और अगले वर्षों में यह प्रक्रिया और अधिक तेज़ हो उठेगी. लेकिन उन्होंने यह मत भी व्यक्त किया कि विघटन की इस प्रक्रिया के साथ संगठन की प्रक्रिया भी शुरू होनी चाहिए ताकि कांग्रेस का विकल्प जनता को मिल सके. इस दृष्टि से उन्होंने उत्तरप्रदेश और बिहार में पार्टी को अधिक ठोस जनाधार प्रदान करने का सवाल उठाया. फ़िर सामाजिक और आर्थिक परिवर्त्तन का समीकरण ठहराते हुए उन्होंने इन प्रदेशों की पिछड़ी जातियों से तादात्म्य स्थापित करने का आग्रह पार्टी के कार्यकर्त्ताओं से किया. अधिवेशन के कुछ ही दिनों बाद श्री जोशी ने अध्यक्ष-पद से इस्तीफ़ा दे दिया.

सम्मेलन में दूसरे प्रमुख वक्ता संसद् सदस्य राजनारायण सिंह ने पार्टी का राजनैतिक प्रस्ताव पेश किया. राजनैतिक प्रस्ताव की व्याख्या करते हुए उन्होंने कांग्रेस के साथ किसी प्रकार के सहयोग को परिवर्त्तन की प्रक्रिया के विरुद्ध बताया. कांग्रेस के अंदर रह कर अपने आप को समाजवादी और वामपंथी प्रवृत्तियों से जोड़ने वाले व्यक्तियों की उन्होंने तीखी आलोचना की और यह मत व्यक्त किया कि कांग्रेस के संदर्भ में समाजवाद की सारी बहस हवाई है. राजनैतिक प्रस्ताव में स्पष्ट तौर पर कहा गया था कि कांग्रेस का पतन समीप है.

प्रस्ताव में हाल के राजनैतिक घटनाक्रम की व्याख्या का भी प्रयास किया गया है. और इस सिलसिले में जनसंघ, प्रजासमाजवादी पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी की विशेष तौर पर आलोचना की गयी है. भारतीय क्रांति दल की इस आधार पर आलोचना की गयी है कि उस ने उत्तरप्रदेश में कांग्रेस की शक्ति वृद्धि में परोक्ष तौर पर योगदान किया है. जनसंघ और मुस्लिम लीग की सांप्रदायिक राजनीति की आलोचना की गयी है वहां कम्युनिस्ट पार्टी और रिपब्लिकन पार्टी पर यह आरोप लगाये गये हैं कि उन्होंने अपनी ताक़त को बढ़ा-चढ़ा कर आंका. मध्यावधि चुनाव के दौरान विभिन्न राजनैतिक दलों ने जातिवाद का जो सहारा लिया उस पर चिंता व्यक्त की गयी है. भारतीय लोकतंत्र के विकास के लिए इस बात को ख़तरनाक बताया गया है कि मतदाताओं के एक वर्ग ने सिद्धांतों और कार्यक्रमों के आधार पर मतदान न कर के जाति के आधार पर मतदान किया है. प्रस्ताव में ग़ैरकांग्रेसवाद की उपयोगिता को स्वीकार किया गया है और कहा गया है कि यद्यपि कांग्रेस के अजेय होने का भ्रम टूट चुका है लेकिन राजनैतिक शक्तियों के पुनर्गठन के संदर्भ में कांग्रेसवाद बनाम ग़ैर कांग्रेसवाद की रणनीति की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है. प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया गया है कि अगर ग़ैर कांग्रेसी पार्टियों ने डा. लोहिया की राजनैतिक व्याख्या को स्वीकार कर के केंद्रीय स्तर पर कांग्रेस का विकल्प बनने की दिशा में कार्यक्रम पेश किया होता तो परिवर्त्तन की राजनीति की शक्ल आज कुछ दूसरी ही होती.

सम्मेलन में पार्टी का राजनैतिक प्रस्ताव सर्वसम्मत से पारित हो गया और जिन दस संशोधन प्रस्तावों पर मतदान हुआ वे पराजित हो गये. बहस के दौरान कुछ सदस्यों ने संयुक्त समाजवादी पार्टी और प्रजा समाजवादी पार्टी के एकीकरण का सवाल भी उठाया. इस से संबद्ध कुछ संशोधन प्रस्ताव भी सम्मेलन में पेश किये गये. एकीकरण के इस मसले पर संसद सदस्य राजनारायण सिंह ने विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला और उन की व्याख्या के बाद यह संशोधन प्रस्ताव वापस ले लिया गया. बहस के दौरान पार्टी के अंदर दो परस्पर विरोधी लगने वाली विचार धाराएं भी खुल कर सामने आयीं. अध्यक्ष जोशी की स्थापनाओं और श्री राजनारायण सिंह की स्थापनाओं में भिन्नताएं अवश्य थीं लेकिन इन्हें शायद बुनियादी कहना तर्क-संगत नहीं होगा. यह बात उस समय भी स्पष्ट हो गयी जब राजनैतिक प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो गया. अध्यक्ष जोशी की इस स्थापना से कि संसदीय प्रयासों को जन-आंदोलनों से जोड़ा जाना चाहिए, किसी का कोई मतभेद नहीं था. लेकिन १९७२ में केंद्रीय सत्ता के संभावित स्वरूप के सवाल पर मतभेद ज़रूर सामने आया. राजनारायण सिंह कांग्रेस के साथ किसी भी प्रकार के सहयोग के विरुद्ध थे जब कि श्री जोशी कांग्रेस के विघटन के दौरान कांग्रेस छोड़ कर आने वाले व्यक्तियों के साथ कार्यक्रमों के आधार पर सहयोग के विरुद्ध नहीं थे.

एस० एम० जोशी और राजनारायण : अपने-अपने अजनबी

प्रदेश

पश्चिम बंगाल

अराजकता की वापसी

दुर्गापुर इस्पात कारखाने में रिज़र्व पुलिस द्वारा गोली चालन—२४ परगना और हुगली के गंभीर सांप्रदायिक दंगे और फिर काशीपुर की आर्डिनेंस फ़ैक्ट्री में सुरक्षा सिपाहियों की गोली से कुछ मासूम लोगों की मृत्यु. पिछले हफ़्ते इस प्रदेश के लिए काफ़ी उत्तेजक रहे हैं. काशीपुर कांड को ले कर केंद्र ने सर्वोच्च न्यायालय के एक जज की नियुक्ति मामले की जाँच के लिए की है. बंगाल बंद का आयोजन हुआ और उस में २४ घंटे तक जन-सामान्य का जीवन अस्त-व्यस्त रहा. गोली चालन की घटनाओं को ले कर उपमुख्यमंत्री ज्योति बसु ने केंद्रीय सरकार की नीतियों की आलोचना की और क़ानून और व्यवस्था संबंधी राज्य सरकार के अधिकारों के संदर्भ में कुछ वैधानिक प्रश्न उठाये. लेकिन इन घटनाओं से अलग दुर्गापुर से तेलिनीपाड़ा तक के सफ़र से यह बात साफ़ हो जाती है कि संयुक्त मोर्चे का दावा कम खोखला नहीं है. मध्यावधि चुनाव के बाद मोर्चे के प्रवक्ताओं ने बड़े गर्व और विश्वास के साथ घोषणा की थी कि उन के राज्य में कांग्रेसी राज की वारदातें नहीं होंगी. पिछले कुछ दिनों में जो कुछ हुआ है उस से यह स्पष्ट हो गया है कि कांग्रेसी और ग़ैर-कांग्रेसी राज्य में कोई अंतर नहीं है.

दुर्गापुर और टीटागढ़ तथा तेलिनीपाड़ा की घटनाओं का परस्पर कोई संबंध नहीं. लेकिन यह मानने के पर्याप्त आधार हैं कि उन के पीछे एक ही तरह के तत्वों के सक्रिय होने और एक ही लक्ष्य प्राप्त करने की हविस के आधार हैं.

दुर्गापुर: एक पहेली: दुर्गापुर में जो कुछ हुआ वह अभी भी एक पहेली है. लोगों को सिर्फ़ इतना ही मालूम है कि रिज़र्व पुलिस ने उत्तेजित और हिंसा पर उतारू इस्पात कारखाने के कर्मचारियों पर गोली चलायी. ज्योति बसु के वक्तव्य से ज़ाहिर हो गया है कि वह पूरी घटना को केंद्र बनाम राज्य के रूप में देखना चाहते हैं. उन्हें इस बात पर आश्चर्य है कि वहाँ पर रिज़र्व पुलिस कैसे पहुँची, वहाँ क्यों मौजूद रही जब कि उस के वहाँ से चले जाने के आदेश काफ़ी पहले जारी कर दिये गये थे. उन्होंने केंद्रीय सरकार के इस मंतव्य का भी खंडन किया कि वह राज्य सरकार के अधिकार में रही. उन का कहना था कि वह पुलिस हमेशा हिंदुस्तान स्टील के प्रबंधकों के अधिकार में रही और उन्हीं के आदेशों का पालन करती रही. श्री बसु ने इस घटना के लिए केंद्रीय सरकार और कारखाने के प्रबंधकों को दोषी ठहराया कि प्रबंधक हमेशा अपनी ज़िद पर अड़े रहे उन्होंने कभी भी सहानुभूति का या समझौते का रवैया नहीं अपनाया. एक नक्सलवाड़ी सम्मेलन में दुर्गापुर की घटनाओं को वर्ग-संघर्ष बतलाया गया. नक्सलवादियों ने श्री बसु की निंदा यह कह कर की कि उन्होंने वर्ग-संघर्ष को केंद्र और राज्य के संघर्ष का रूप दिया.

कांग्रेसी नेता दूसरी बात कह रहे हैं. विधानसभा के कांग्रेस संसदीय दल के नेता सिद्धार्थ शंकर राय ने तीन संसद सदस्यों (विमल घोष, जुगल मंडल और श्रीमती इलापाल चौधरी) के साथ दुर्गापुर क्षेत्र का दौरा किया और लौटने पर वक्तव्य दिया कि संघर्ष राजनैतिक था. उन का कहना है कि एक विशेष यूनियन (संभवत: कम्युनिस्ट) के लोग कारखाने के कर्मचारियों पर अपने खेमे में शामिल होने के लिए अनुचित दबाव डाल रहे हैं. इस प्रयास में कई हत्याएँ भी हुई हैं. श्री राय का कहना था कि गोली से घायल जिन ५० व्यक्तियों की चर्चा की जाती है उन में कई उक्त यूनियन के लोगों द्वारा पीटे गये हैं. २४ मार्च की दुर्घटना के बाद सुरक्षा विभाग के ५० सदस्य अभी तक ग़ायब

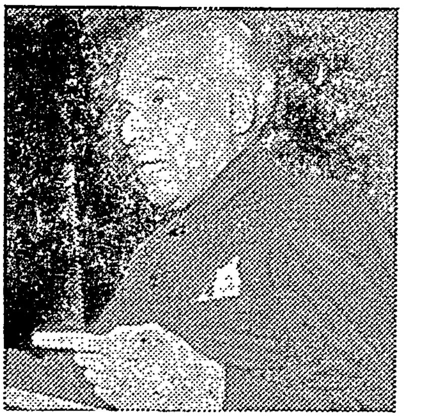

कृष्ण मेनन : एक कोशिश और

हैं और ४० प्रतिशत कर्मचारी अपनी कालोनियों में नहीं लौटे हैं. सिद्धार्थ शंकर राय ने संपूर्ण मामले की उच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा जाँच करने की माँग की लेकिन उसे ज्योति बसु ने अस्वीकार कर दिया. श्री बसु ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि तेलीनीपाड़ा में जो भयंकर दंगे हुए उस में पुलिस को १५० चक्र से ज़्यादा गोली चलानी पड़ी. श्री बसु के अनुसार ये दंगे पूर्व-नियोजित थे. उन्होंने यह स्वीकार किया कि गुप्तचर विभाग इस मामले में अकर्मण्य साबित हुआ. दंगों की तैयारी हफ़्तों पहले से जारी थी और बम, पटाखे, भाले और बरछे पहले से ही इकट्ठे किये गये थे और पुलिस को इस की कोई खबर नहीं थी.

उप-चुनाव: मिदिनापुर के संसदीय निर्वाचन के सिलसिले में बंगला कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित भूतपूर्व केंद्रीय प्रतिरक्षा मंत्री कृष्ण मेनन को समर्थन देने के लिए संयुक्त मोर्चे ने अपनी सहमति दे दी. बातचीत के दौरान मोर्चे के कुछ लोगों ने श्री मेनन को ले कर कई प्रश्न किये. सब से महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि क्या श्री मेनन संयुक्त मोर्चे की नीतियों को स्पष्ट करने वाले ३२ सूत्रीय कार्यक्रम को स्वीकार करेंगे. बंगला कांग्रेस के नेता सुकुमार राय का कहना था कि ऐसा कोई प्रश्न पैदा ही नहीं होता. श्री मेनन ने बंगला कांग्रेस को एक पत्र लिख कर यह आग्रह किया था कि बंगला कांग्रेस और संयुक्त मोर्चा उन को समर्थन दें. जहाँ तक श्री मेनन के समर्थन का प्रश्न है संयुक्त मोर्चे के सभी दल उस पर सहमत रहे. मिदिनापुर की लोकसभा की यह जगह बंगला कांग्रेस के सचिन मैती की मृत्यु से रिक्त हुई है. संयुक्त मोर्चे ने यह निश्चय किया कि क्यों कि यह जगह बंगला कांग्रेस की थी अत: वही अपना उम्मीदवार सामने लाये.

मध्यप्रदेश

सब का प्रतिनिधित्व (?)

मुख्यमंत्री श्यामाचरण शुक्ल ने दिल्ली से लौटने के बाद कहा कि वह अपने मंत्रिमंडल में १५ व्यक्तियों की नियुक्ति करेंगे और वह पहली क़िस्त होगी लेकिन आने वाले दिनों में मंत्रिमंडल विस्तृत होते-होते ३९ व्यक्तियों तक पहुँच गया. श्री शुक्ल का कहना है कि सभी क्षेत्रों को प्रतिनिधित्व देने के लिए इतने बड़े मंत्रिमंडल का संगठन करना अनिवार्य है. इस में कोई शक नहीं कि यह प्रदेश काफ़ी बड़ा है, उस में ४३ ज़िले हैं और हर ज़िला अपना प्रतिनिधित्व चाहता है. लेकिन जो मंत्रिमंडल बना है उस में सभी ज़िलों का प्रतिनिधित्व नहीं है. २१ ज़िले अभी भी बिना प्रतिनिधि के हैं. ११ ज़िले ऐसे हैं जहाँ से २ या उस से अधिक मंत्री हैं. अब तक कुल मिला कर ३९ व्यक्तियों ने शपथ ग्रहण कर ली है. उन में १५ कैबिनेट स्तर के मंत्री, १७ राज्य स्तर के मंत्री, ४ उपमंत्री और ३ संसदीय सचिव हैं. श्री शुक्ल ने मिश्र गुट के लोगों को भी प्रतिनिधित्व दिया है और उन के ९ व्यक्ति लिये गये हैं. इन ९ में एक बसंतराव उईके हैं जिन्होंने कांग्रेस सरकार के पतन के बाद द्वारका प्रसाद मिश्र के समर्थन पर श्री शुक्ल के विरुद्ध नेता पद के लिए चुनाव लड़ा था और पराजित हुए थे. इस प्रकार श्री शुक्ल ने उन दोनों व्यक्तियों को जिन्होंने उन के विरुद्ध चुनाव लड़ा था मंत्रिमंडल में स्थान दे कर अपनी उदारता का परिचय दिया है. यह बात भी ध्यान देने की है कि श्री द्वारका प्रसाद मिश्र के कट्टर समर्थक कुछ भूतपूर्व मंत्रियों (परमानंद पटेल, अर्जुन सिंह, किशोरीलाल शुक्ल, श्यामसुंदर मुश्रान, कुंजबिहारी गुरु और रामगोपाल तिवारी) को मंत्रिमंडल में नहीं लिया गया है. इस गुट के लोग काफ़ी असंतुष्ट हैं. इन्होंने **दिनमान** के प्रतिनिधि से कहा कि जहाँ मिश्र गुट के योग्य

लोगों को बाहर रखा गया वहीं बहुत से अनुभवहीन और अयोग्य लोगों को मंत्रिमंडल में शामिल किया गया. भूतपूर्व मुख्यमंत्री गोविंद नारायण सिंह ने मंत्रिमंडल में शामिल किये जाने वाले नये खून का स्वागत तो किया है लेकिन उसी के साथ उस के बड़े होने की शिकायत भी की है. जनसंघ के महामंत्री श्री जौहरी और भूतपूर्व उपमुख्यमंत्री वीरेंद्र कुमार सकलेचा ने भी मंत्रिमंडल के आकार के बड़ा होने की शिकायत की है.

जो कांग्रेस संविद के बड़े मंत्रिमंडल की आलोचना करती रही है वह उस से भी बड़ा मंत्रिमंडल बना रही है. आम ख्याल यह है कि श्री शुक्ल को जितना दृढ़ होना चाहिए था नहीं हो सके और कांग्रेसी विधायकों के दबाव में आ गये हैं. अब यह शंका जरूर है कि क्यों कि प्रगतिशील विधायक दल मंत्रिमंडल में शामिल नहीं हुआ है वह कब तक श्री शुक्ल का साथ दे सकेगा.

प्रविद और उत्तरदायित्व : कांग्रेस उच्च कमान ने प्रगतिशील विधायक दल के एक दो निर्दलीय सदस्यों को मंत्रिमंडल में शामिल करने की अनुमति दी है किंतु प्रविद ने मुख्यमंत्री से स्पष्टीकरण न पाने तक मंत्रिमंडल में शामिल न होने का जो निर्णय किया है वह क्या है इस के बारे में कुछ नहीं बताया गया है. लेकिन उस के लोग यह ज़रूर जानना चाहेंगे कि क्या श्री शुक्ल कांग्रेस उच्च कमान के 'निर्दलीय' विशेषण के संदर्भ में इन लोगों को को स्वीकार करेंगे जिन्हें वह नामांकित करेगा. प्रविद के जो प्रमुख सदस्य मंत्री बन सकते हैं उन्हें दलबदलू कहा जा सकता है. श्यामसुंदर श्याम और कन्हैयालाल मेहता अगर भारतीय क्रांति दल से आये हैं तो चंद्र प्रताप तिवारी प्रसोपा से. हीरालाल पिप्पल और राय सिंह भदौरिया राजमाता के लोकसेवक दल के हैं. उस से इसी तरह का वायदा भी किया गया था. प्रविद को ले कर कांग्रेस उच्च कमान ने जो रुख अपनाया है उस से प्रविद के सदस्य तो असंतुष्ट हुए हैं कांग्रेस की साख और प्रतिष्ठा भी आहत हुई है. लोगों का ख्याल है कि भविष्य में अब कोई भी कांग्रेस के वायदों पर विश्वास नहीं करेगा. यदि श्यामाचरण शुक्ल और द्वारका प्रसाद मिश्र ने वादा किया तो कांग्रेस उच्च कमान को उस की रक्षा करनी चाहिए थी. संविद को पतन के गर्त में गिराने का काफ़ी बड़ा श्रेय प्रविद को है. दुर्भाग्य की एक बात और है कि इस प्रदेश में कांग्रेसी ही कांग्रेस के सब से बड़े शत्रु साबित हो रहे हैं. १९६७ में कांग्रेस सरकार का पतन इस लिए हुआ था कि द्वारका प्रसाद मिश्र का अहं बड़ा हो गया था और वह कांग्रेसियों से रूखा व्यवहार करने लगे थे. श्यामाचरण शुक्ल के नेता बनने पर जब संविद को गिराने का प्रयास हुआ तो उस की सफलता का कारण श्री मिश्र का सहयोग रहा. जब तक दोनों में असहयोग रहा संविद क़ायम रही. एकता आते ही संविद गिर गया. अब जब कि पुरानी बातों को भूल कर श्री शुक्ल श्री मिश्र और उन के गुट का सम्मान कर रहे हैं तब कांग्रेस उच्च कमान उन के मार्ग में बाधा डाल रहा है.

गुजरात

अहमदाबाद से बनासकांठा

अहमदाबाद के नगर निगम के चुनावों को यदि बनासकांठा संसदीय उपचुनाव का संकेत माना जाये तो कांग्रेस की स्थिति दृढ़ लगती है. अहमदाबाद के नगर निगम के चुनाव में कांग्रेस को निर्णायक बहुमत प्राप्त हो गया है और विरोधी पार्टियों की स्थिति पहले की अपेक्षा काफ़ी कमज़ोर साबित हुई है. नगर निगम के चुनाव से फ़ारिग हो कर अब सभी राजनैतिक पार्टियों ने अपना ध्यान बनासकांठा उपचुनाव की तरफ़ केंद्रित किया है जहाँ ४ मई को मतदान होगा. इस समय १२ उम्मीदवार चुनाव-क्षेत्र में हैं. मुख्य रूप से मुक़ाबला स्वतंत्र पार्टी के

हिम्मत सिंह : हिम्मत के भरोसे

मनुभाई अमरशी, कांग्रेस के सदाशिव पाटील और निर्दल उम्मीदवार मणसा के हिम्मतसिंह जी के बीच होगा. पिछले आम चुनाव में अमरशी विजयी हुए थे लेकिन न्यायालय ने उन के चुनाव को इस लिए अवैध घोषित कर दिया क्योंकि चुनाव प्रचार के दौरान उन्होंने यह नारा बुलंद कर, कांग्रेस को वोट देना गाय काटने के लिए वोट देना है, लोगों के धार्मिक जज़बातों को चोट पहुँचाई थी. अधिकतर पार्टियाँ अपना समर्थन निर्दल उम्मीदवार हिम्मतसिंहजी को दे रही हैं क्योंकि पाटील 'बाहर' के आदमी हैं. लोग यह भी कहते फिर रहे है कि जब पाटील ने उत्तर बंबई से कृष्ण मेनन को टिकट दिये जाने का विरोध किया था तो वह किस मुंह से गुजरात से चुनाव लड़ रहे हैं. इसे सभी विरोधी पार्टियाँ अपना राजनैतिक हथियार बना रही हैं जो पाटील के विरुद्ध जाता है. इस के अलावा यह भी प्रचार किया जा रहा है कि प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी हिम्मतसिंहजी को टिकट दिये जाने के पक्ष में थीं लेकिन उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने पाटील की पीठ थपथपाई है, लिहाज़ा यह उप-चुनाव पाटील और हिम्मतसिंह जी के बीच नहीं प्रधानमंत्री और उपप्रधानमंत्री के बीच है.

समान संपन्नता : तीनों उम्मीदवार धन के लिहाज से संपन्न हैं और मत बटोरने के लिए जहाँ तक पैसे जुटाने का सवाल है तीनों एक दूसरे से पीछे नहीं. बंबई के उद्योगपति अमरशी ने पहले पहल पाटील के खिलाफ़ चुनाव लड़ने की हिम्मत हार दी थी लेकिन निर्दल उम्मीदवार हिम्मतसिंह जी के बीच में आ जाने से उन की हिम्मत बढ़ गयी. हिम्मतसिंह जी कई सरकारी और ग़ैर-सरकारी संस्थानों से संबद्ध हैं और उन का एक पैर दिल्ली और दूसरा बंबई में में रहता है, बेशक वह गुजरात-जन्मे हैं. हिम्मतसिंह जी के समर्थकों में महागुजरात जनता परिषद के अध्यक्ष और संसद-सदस्य इंदुलाल याज्ञनिक हैं. उन्होंने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि पाटील का मुक़ाबला करना अमरशी के बस की बात नहीं, इस के लिए हिम्मतसिंहजी ही हिम्मत कर सकते हैं.

आश्वासनों का दायरा : बनासकांठा में कड़कती धूप के कारण जनता और पशुओं की प्यास पानी की कमी के कारण पूरी तरह बुझ नहीं पाती. इस ज़िले के १३७४ गाँवों में १२४७ गाँव सूखाग्रस्त इलाक़े में पड़ते हैं. इन ग्रामीणों पर कुछ इने-गिने अगुओं का बहुत असर है और इन अगुओं की मर्ज़ी से ही किसी भी उम्मीदवार की स्थिति बन या बिगड़ सकती है. हर एक चुनाव में इन भोले-भाले किसानों को पानी दिलाने, अकाल से निजात दिलाने, रोज़गार के लिए उद्योग धंधे शुरू करने के आश्वासन दिये जाते है और चुनाव के बाद निर्वाचित नेता खबर तक नहीं लेते.

असम

सीमा-विवाद के नये तेवर

सीमा की हदबंदी के मसले पर नगालैंड और असम में पुनः आरोप-प्रत्यारोप का दौर शुरू हो गया है. असम के मुख्यमंत्री बी. पी. चालिहा ने नगालैंड सरकार पर यह आरोप लगाया है कि वह तीरू और काकोडांगा क्षेत्र के सुरक्षित जंगलों और उन से जुड़े इलाक़ों की हदबंदी के अपने पुराने समझौते को अब स्वीकार करने से मुकर रही है. असम विधानसभा में हाल ही में श्री चालिहा ने कहा कि नगालैंड सरकार ने भारतीय सीमा-सर्वेक्षण दल से कहा है कि वह असम और नगालैंड राज्यों की सीमा के सर्वेक्षण का कार्य बंद कर दे. असम सरकार ने

इस मामले की सूचना असम और नगालैंड के राज्यपाल के अलावा प्रधानमंत्री, गृहमंत्री और विदेशमंत्री को भी दे दी है.

सीमा-विवाद के बारे में असम सरकार के पक्ष पर प्रकाश डालते हुए श्री चालिहा ने कहा कि सन् १९६७ में नगालैंड सरकार ने मोन-सोनरी मार्ग पर एक गेट बनाया. इस मसले पर दोनों प्रदेशों के प्रधान सचिवों ने वार्त्ता की और एक समझौते द्वारा दोनों पक्षों ने स्वीकार किया कि सीमा का सर्वेक्षण किया जाये; हालांकि असम सरकार ने तब भी यही रुख अपनाया था कि दोनों राज्यों में कोई सीमा-विवाद नहीं है, क्यों कि दोनों राज्यों की सीमा पहले से ही स्पष्ट कर दी गयी है. फिर भी भारतीय सर्वेक्षण दल से कहा गया कि वह पूरी छान-बीन करे. लेकिन नगालैंड सरकार ने इस दल को निर्धारित कार्य पूरा नहीं करने दिया.

उधर नगालैंड सरकार सीधे-सीधे यह कह रही है कि वस्तुतः नगालैंड की असम से मिली कोई विवादपूर्ण सीमा नहीं है. नगालैंड के वित्तमंत्री आर. सी. चितेन जमीर के अनुसार असम के साथ मिली लडाईगढ़ ढोडरौली ही एकमात्र ऐसी बहुत पुरानी और 'परंपरागत' सीमा है जो स्वीकार की जानी चाहिए. इसी लिए नगालैंड सरकार केंद्र पर दबाव डाल रही थी कि वह एक सीमा आयोग नियुक्त कर के इस पर अपना निर्णय दे. सन् १९६० में दिल्ली समझौते के दौर में सीमा के मसले पर केंद्र से विचार-विनिमय किया गया और तब से नगालैंड सरकार बराबर यह कोशिश कर रही है कि राज्य को अपने वे सुरक्षित जंगल और उन से जुड़े हुए इलाक़े मिल जायें जिन्हें अंग्रेज़ सरकार ने सरकारी उपयोग के लिए नगाओं से ले लिया था. इस स्पष्टीकरण के बाद उत्तेजित हो कर श्री जमीर ने चेतावनी दी कि यदि असम सरकार ने 'ग़ैर-संवैधानिक और ग़ैर-क़ानूनी' तौर से असम की जनता की संपत्ति हड़पने की प्रवृत्ति का त्याग नहीं किया तो नगालैंड सरकार अपनी जनता के हक़ूक़ की रक्षा के लिए आवश्यक क़दम उठायेगी. नगालैंड विधान-सभा में मुख्यमंत्री होकोसे सेमा ने भी असम सरकार को कुछ ऐसी ही चेतावनी दी है. श्री सेमा ने यह आरोप भी लगाया कि असम पुलिस नगालैंड में प्रवेश कर सीमा में बसे लोगों को सताती है.

सर्वेक्षण के बारे में श्री सेमा ने बताया कि विवादपूर्ण इलाक़ों पर अपनी गिरफ़्त मज़बूत करने के लिए असम सरकार-सर्वेक्षण-कार्य का नाजायज़ फ़ायदा उठा रही है, अतः हमारे लिए यह आवश्यक हो गया कि हम भारत सरकार से सर्वेक्षण बंद करने का अनुरोध करें, जिस से कि यथास्थिति बनी रहे. इस आरोप का खंडन करते हुए असम सरकार ने तर्क पेश किया है कि नगालैंड की सरकार अपनी ग़ैर-क़ानूनी गतिविधियों पर पर्दा डालने के लिए झूठा प्रचार कर रही है.

इस तीखे विवाद से पूर्व भी असम सरकार दोनों राज्यों की लगभग १५० मील लंबी सीमा की हदबंदी के लिए एक सीमा आयोग गठित करने की नगालैंड सरकार की माँग को पूरी तरह अस्वीकृत कर चुकी है. असम सरकार का मत है कि यह माँग भूमिगत नगाओं की माँग से मिलती जुलती है और अगर इस सीमा-क्षेत्र में कोई रद्दोबदल किया गया तो विद्रोही नगा स्थिति का नाजायज़ फ़ायदा उठा कर वहाँ अपनी तोड़-फोड़ व चोरी-छिपे सीमा पार करने की गतिविधियों को और बढ़ा देंगे.

इस्तीफ़े की धमकी : संयुक्त विधायक दल के नेता गौरीशंकर भट्टाचार्य द्वारा अपने पर लगाये गये भ्रष्टाचार के आरोपों की छान-बीन के लिए असम के वित्तमंत्री के. पी. त्रिपाठी ने मुख्यमंत्री चालिहा से अनुरोध किया है कि वह तुरंत इस मामले की जाँच की व्यवस्था करें, जिस से कि वास्तविकता प्रकट हो सके. उन्होंने कहा कि यदि उन पर लगाये गये भ्रष्टाचार के आरोप सच निकले तो वह मंत्री-पद से इस्तीफ़ा दे देंगे.

श्री त्रिपाठी ने इस आरोप को सफ़ेद झूठ ठहराया कि उन्होंने या उन के परिवार के किसी सदस्य ने किसी भी जगह एक चाय का बग़ीचा, एक बिस्कुट फ़ैक्ट्री और एक मिल स्थापित किया है. उन्होंने इस आरोप को भी निराधार ठहराया कि अपनी पत्नी के नाम पर उन्होंने उत्तरप्रदेश में ६७ लाख रु. की लागत से एक 'महल' बनवाया है. उन की सास ने लखनऊ में ६७ लाख रु. की नहीं ३३ हज़ार की लागत से एक मकान बनवाया है, जो क़ानूनी तौर से श्रीमती त्रिपाठी के नाम पर कर दिया गया है. उन्होंने कहा 'आँखें' फ़िल्म पर से मनोरंजन कर हटाने के मसले से भी उन का कोई सरोकार नहीं है.

श्री त्रिपाठी ने कहा कि पिछले तीन वर्षों से अक्सर मुझ पर इस प्रकार के आरोप लगाये जाते रहे हैं और मुझे मंत्री-पद छोडने या जान से मार डालने की धमकी भरे पत्र भी मिलते रहते हैं. पिछले आम चुनाव में मेरे चुनाव-क्षेत्र में मेरी चरित्र-हत्या का दूषित प्रचार भी किया गया और यहाँ से दिल्ली तक मेरे नाम पर धब्बा लगाने का षड्यंत्र चल रहा है.

श्री त्रिपाठी के आत्मस्पष्टीकरण से प्रभावित श्री भट्टाचार्य ने नरम रुख अपनाते हुए कहा कि उन्होंने श्री त्रिपाठी पर अपनी तरफ़ से आरोप नहीं लगाये थे, बल्कि उन्होंने तो आगरतला के एक प्रतिष्ठित दैनिक पत्र में प्रकाशित आरोपों का हवाला दिया था. 'आँखें' फ़िल्म पर से मनोरंजन कर हटाने के लिए रिश्वत लेने के आरोप को श्री भट्टाचार्य ने वापस लेने से इनकार कर दिया. उन्होंने कहा कि भारत में कहीं भी इस फ़िल्म पर से मनोरंजन कर नहीं हटाया गया, अतः राज्य की शोचनीय आर्थिक स्थिति को देखते हुए असम सरकार का यह क़दम अनुचित है.

दिल्ली

आरोपों-प्रत्यारोपों के बीच

दिल्ली महानगर परिषद् का तेरह दिन का बजट अधिवेशन भी उतना ही निरर्थक रहा जितना कि उस के पूर्व का अधिवेशन. न तो सत्तारूढ़ जनसंघ की कार्यकारी परिषद् चालू वित्तीय वर्ष के लिए नीति संबंधी कोई विशेष घोषणा कर सकी और न उस ने कोई महत्त्वपूर्ण सफ़ारिश की. पर परिषद् की अधिकार-सीमा को देखते हुए जो कुछ भी हुआ शायद काफ़ी था; विशेषाधिकार का बाना पहने यह परिषद् वाद-विवाद संघ से अधिक कुछ नहीं है. केंद्र सरकार ने परिषद् की सिफ़ारिशों में से एक भी अभी तक स्वीकार नहीं की है. यह है परिषद् की महत्ता. परिषद् उपराज्यपाल के अभिभाषण से प्रारंभ हुई (देखिए **दिनमान**, ६ अप्रैल).

दिल्ली का बजट प्रस्तुत करते हुए कार्यकारी पार्षद (वित्त) अमरचंद शुभ ने प्रस्तावित योजनाओं में केंद्र की कटौती पर आँसू बहाये पर साथ-साथ कहा कि दिल्ली के कल्याण को ध्यान में रखते हुए केंद्र को चाहिए कि प्रशासन की तीस योजनाओं को (जिस का ख़र्चा १०.१५ करोड़ रुपये होगा) को स्वीकार करे और बाद में बहस का उत्तर देते हुए उन्होंने अनुपम उदारता दिखायी और लगभग २८.३ करोड़ रुपये के संशोधन स्वीकार कर लिये. इस तरह १०१ करोड़ रु. के खर्च का तखमीना बना, जब कि केंद्र से ७३.७१ करोड़ रु. मिलने की बात है. संशोधनों के बारे में कांग्रेस दल के नेता श्री शिवचरण गुप्त ने कहा कि यह मज़ाक है. उन्होंने ही नहीं बल्कि जनसंघ के वयोवृद्ध डॉ. रामकृष्ण भारद्वाज ने सुझाव दिया कि कम संशोधनों को स्वीकार करना चाहिए और सदन का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि पिछले वर्ष भी श्री शुभ ने लगभग दस करोड़ रुपये के संशोधन स्वीकार किये थे और केंद्र ने एक नया पैसा भी अधिक नहीं दिया. परंतु मुख्य कार्यकारी पार्षद, श्री विजयकुमार मल्होत्रा, ने कहा कि इन संशोधनों का स्वीकार होना उचित है. "मज़ाक यह नहीं, बल्कि यह है कि केंद्र बार-बार हमें कम रुपया देता है,"

बजट की बहस के दौरान बोलते हुए श्री मल्होत्रा ने भी केंद्र के रुख की आलोचना की और कहा कि राजधानी को जितना मिलना चाहिए वह नहीं मिल पाता है. इस विषय में उन्होंने सुझाव दिया कि दिल्ली की आर्थिक आवश्यकताओं का अध्ययन करने के लिए एक आयोग की स्थापना की जाये और यदि हो सके तो संविधान में ऐसा संशोधन किया जाये कि केंद्र-प्रशासित दिल्ली के प्रतिनिधि केंद्र के वित्त आयोग के सामने अपनी माँगें रख सके.

अकर्मण्यता का आरोप : श्री शिवचरण गुप्त ने जनसंघ प्रशासन की कटु आलोचना की और

कहा कि जनसंघ सत्तारूढ़ होते हुए भी विरोधी दल की भूमिका अदा करना चाहता है. मुख्य कार्यकारी पार्षद बात-बात पर केंद्र के खिलाफ़ धरना देने की धमकी देते हैं. वास्तव में दिल्ली में जो कुछ भी नहीं हो रहा है उस के लिए दोषी केंद्र नहीं, जनसंघ कार्यकारी परिषद् की अकर्मण्यता है, क्यों कि उसे पता नहीं कि क्या करना है.

परिषद् में जनसंघ और कांग्रेसी सदस्यों में तो नोकझोंक होती रही, पर ऐसे भी मौक़े आये जब उन में मतैक्य हुआ और यह मतैक्य व्यापारी-वर्ग के हित को ले कर हुआ. पहले तो जब सदन ने बिक्री-कर की वसूली को ले कर बिक्री-कर विभाग की आलोचना की तो कार्यकारी पार्षद श्री अमरचंद शुभ ने अपने दल के सदस्यों को कांग्रेस से ज़्यादा आलोचक पाया और श्री जनार्दन गुप्त ने तो परिषद् की सदस्यता से त्यागपत्र देने की घोषणा की; श्री प्रेमचंद गुप्त दूसरे जनसंघ सदस्य थे जिन्होंने विभाग की तीव्र आलोचना की और सदन से वॉक आउट किया. श्री शुभ ने झट से सारा दोष विभाग के अधिकारियों के सिर डाला और कहा कि इस निंदनीय कार्य का ज्ञान जैसे ही उन्हें हुआ उन्होंने आज्ञा दी कि उसे रोका जाये.

व्यापारी वर्ग से संबंधित दूसरा विषय था केंद्र द्वारा प्रस्तावित खोया आदि बनाने पर प्रतिबंध. तीसरा विषय था किराना-व्यापारियों की माँग, कि मिलावट रोकने के क़ानून में संशोधन किया जाये. इस के लिए उन्होंने हड़ताल कर पुराने सचिवालय के सामने प्रदर्शन भी किया था. सदन के दोनों ओर से एक ही आवाज़ आयी कि इन व्यापारियों को जीने दो. मुख्य कार्यकारी पार्षद ने उन के प्रतिनिधि-मंडल से बातचीत की और सदन को आश्वासन दिया कि उन की माँग केंद्र को भेज दी जायेगी. तब कहीं सदस्य शांत हुए.

राजस्थान

धरना : अब क्या करना

२ अप्रैल को जब राज्य विधानसभा के अध्यक्ष निरंजननाथ आचार्य ने आधा घंटे के लिए विधानसभा की कार्रवाई स्थगित कर दी और बेरी आयोग की सिफ़ारिशों को लागू कराने के संदर्भ में धरना दे रहे प्रतिपक्ष के विधायकों से बातचीत का रुख़ अपनाया तो एकदम विधानसभा-भवन की हलचलें बढ़ गयी. लेकिन सारी सरगर्मी के बावजूद आचार्य से प्रतिपक्ष की कोई लंबी-चौड़ी वार्ता नहीं हुई. पुरानी बातों को ताज़ा कर के दुहराया गया. मुख्यमंत्री सुखाडिया ने अपील की कि 'हमारी भावना को समझा जाना चाहिए'.

दुबारा विधानसभा की कार्रवाई शुरू होने पर आचार्य ने वार्ता की विफलता को स्वीकार करते हुए कहा कि अब मेरे सामने केवल दो रास्ते बच गये हैं—प्रतिपक्ष के विधायकों को सदन से निष्कासित करूँ, या स्वयं त्यागपत्र दे दूँ. उन्होंने स्पष्ट किया कि जनसंघ व स्वतंत्र पार्टी के विधान और कार्यक्रम में भी किसी माँग को मनवाने के लिए धरने की नीति को ठीक नहीं समझा गया है. राज्य सरकार ने अधिकारियों की तीन सदस्यीय समिति के पुनर्गठन की भी घोषणा की. पुनर्गठन की माँग विपक्ष ने की थी, किंतु गृहमंत्री दामोदरलाल व्यास ने कहा कि समिति बेरी आयोग की जाँच के विपरीत सुझाव दे सकती है. बाद में श्री सुखाडिया ने दामोदरलाल के वक्तव्य से असहमति प्रकट की और कहा कि समिति ऐसा नहीं कर सकती. अतः सरकार भी बेरी आयोग और उक्त समिति के संबंधों तथा निर्णयों को ले कर असमंजस की स्थिति में है.

३ मार्च को विधानसभा की कार्रवाई ज्यों ही शुरू हुई धरना देने वाले विधायकों में से संसपा नेता रामकिशन उठ खड़े हुए और उन्होंने प्रतिपक्ष द्वारा सदन के इस सत्र के बहिष्कार की घोषणा की. उन्होंने कहा कि जहाँ तक धरने का संबंध है हमने सरकार की हठधर्मी के विरुद्ध सोच-समझ कर क़दम उठाया था. समय-समय पर मुख्यमंत्री और अध्यक्ष से हमारी बातचीत हुई; पर मुख्य मुद्दे ज्यों के त्यों रहे. अतः धरना दे कर प्रतिपक्ष ने किसी प्रजातांत्रिक मान्यता को भंग नहीं किया है. सरकार ने ही पहले तो गोली चला कर सत्ता हाथ में ली, फिर बेरी आयोग की सिफ़ारिशों को मानने से इनकार कर दिया. सत्याग्रह, धरना, बहिर्गमन आदि शांतिपूर्ण तरीक़ों की उपेक्षा से हिंसा में विश्वास रखने वाली ताक़तों को बढ़ावा मिलता ही है.

विधानसभाध्यक्ष आचार्य ने प्रतिपक्ष के इस निर्णय को अनुचित बतलाया. उन्होंने कहा कि धरने के द्वारा सदन का दुरुपयोग करने की इजाज़त नहीं दी जा सकती. धरना वहाँ दिया जाना चाहिए जहाँ से प्रशासन चलता हो. जैसे सचिवालय या ज़िलाधीश का कार्यालय. सुखाडिया उस समय उपस्थित नहीं थे, अतः वित्तमंत्री मथुरादास माथुर ने प्रतिपक्ष के बहिष्कार पर खेद व्यक्त किया. तत्पश्चात् ४० मिनट में जल्दी-जल्दी अनेक विधेयक पारित किये गये. राजस्वमंत्री रामकिशोर व्यास ने राजस्थान भूमि एकीकरण तथा विखंडन-निवारण अधिनियम १९५४ में संशोधन करने के लिए जो विधेयक रखा वह एक मिनट में ही पास कर दिया गया. विशेषाधिकार समिति के ७ व ८ वें प्रतिवेदनों का भी, जिन पर बड़ा विवाद खड़ा हो सकता था, उपस्थापन कर दिया गया.

विधानसभा के सत्रावसान के बाद जनसंघ के सतीशचंद्र अग्रवाल ने संवाददाताओं को बताया कि विरोधी दल बेरी आयोग की रिपोर्ट को 'ज्यों का त्यों' स्वीकार करने के पक्ष में राष्ट्रपति को एक ज्ञापन देंगे. उन्होंने कहा कि २१ मार्च को सरकार द्वारा अधिकारियों की जिस समिति का गठन किया गया है उस की कार्य-प्रणाली के बारे में गृहमंत्री का वक्तव्य मुख्यमंत्री के वक्तव्य से भिन्न है अतः गृहमंत्री को त्यागपत्र दे देना चाहिए.

श्री अग्रवाल ने विधानसभाध्यक्ष के इस्तीफ़े की भी माँग की. उन के अनुसार प्रतिपक्ष ने १३ दिन के शांतिपूर्ण धरने के बाद जो बहिष्कार किया उस के लिए अध्यक्ष ने अपमानजनक भाषा का प्रयोग किया और सरकार से अपने संबंध निभाये. अध्यक्ष का यह कहना कि सदन से निष्कासन की धमकी के कारण प्रतिपक्ष ने धरना समाप्त किया भ्रामक है. अगर धरना संविधान व सदन के नियमों के अनुकूल नहीं था तो अध्यक्ष को हमारे विरुद्ध कार्रवाई करने से किसी ने रोका नहीं था. श्री अग्रवाल ने कहा कि नामज़द सरकारी समितियों की सदस्यता से विरोधी विधायकों ने अपने त्यागपत्र दे दिये हैं और अब मुख्यमंत्री व गृहमंत्री के सामाजिक बहिष्कार का आंदोलन चलाया जायेगा, क्यों कि 'वर्तमान सरकार 'बुलेट' (गोली) से बनी है, 'बैलेट' (मतपत्र) से नहीं'.

उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री चंद्रभानु गुप्त ने कहा है कि जयपुर गोलीकांड की न्यायिक जाँच कराने के संबंध में उत्तरप्रदेश सरकार की सलाह नहीं ली गयी थी. जाँच आयोग के समक्ष उत्तर-प्रदेश सरकार की ओर से गवाहियाँ भी पेश नहीं की गयीं. अतः उत्तरप्रदेश सशस्त्र पुलिस के संबंध में बेरी आयोग की रिपोर्ट को उत्तर-प्रदेश सरकार मानने के लिए बाध्य नहीं है. कुछ विधि-विशेषज्ञों ने एक संयुक्त वक्तव्य प्रसारित कर कहा कि राज्य सरकार को उत्तर-प्रदेश सरकार की राय या अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है. इस संबंध में पुलिस ऐक्ट १८८८ स्पष्ट है. इस ऐक्ट की धारा ३ के अंतर्गत किसी एक राज्य की पुलिस जब दूसरे राज्य में प्रवेश करती है तो उस के अधिकार व उत्तरदायित्व दूसरे राज्य की पुलिस की भाँति ही होते हैं और वही राज्य उस के द्वारा प्रतिपादित कार्यों के लिए उत्तरदायी है.

जनसेना : जयपुर की दीवारों पर पिछले एक माह से गुलाबी रंग के कुछ पोस्टर चिपके हुए हैं. ये पोस्टर 'जनसेना' के हैं और इन में कहा गया है कि जनता का विश्वास राजनैतिक दलों पर से उठ गया है, इस लिए उस ने जनसेना का गठन किया है. जनसेना के अध्यक्ष श्री चिरंजीव जोशी ने जो वक्तव्य दिये हैं उन से स्पष्ट होता है कि यह (सेना) 'सक्रिय समाज-वाद' की उग्र समर्थक है. 'सेना' के अधिकांश सदस्य युवा वर्ग के हैं और वे जनसंघ की 'फ़ासिस्त' गतिविधियों के प्रबल विरोधी हैं. जनसेना ने एक तरफ़ राज्य की कांग्रेसी सरकार से बेरी आयोग की रिपोर्ट मानने का आग्रह किया है तो दूसरी तरफ़ जनसंघ को चेतावनी दी है कि वह जनता में उत्तेजना फैला कर पुनः गोलीकांड का-सा वातावरण तैयार न करे.

राज्य का घाटा, केंद्र का सिर-दर्द

पिछले दिनों विभिन्न राज्यों ने जो बजट प्रस्तुत किये उन में कुल मिला कर ४ अरब का घाटा है. यह घाटा केंद्र की सब से बड़ी समस्या है. उस ने जल्द से जल्द राज्यों के प्रतिनिधियों से इस विषय पर बातचीत करने का निश्चय किया है. राज्यों के बजट देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सिर्फ़ महाराष्ट्र को छोड़-कर शेष सभी ने अपनी आवश्यकताओं को बढ़ा-चढ़ा कर और अपने साधनों को सीमित कर के प्रस्तुत किया है. सिर्फ़ महाराष्ट्र एक ऐसा राज्य है जिस के बजट में घाटे की बजाय कुछ करोड़ की बचत है. असम का घाटा लगभग ५० करोड़ का है, जब कि उत्तरप्रदेश और बिहार का ४२-४२ करोड़ का. तमिलनाडु, केरल, मैसूर, पंजाब, ओडिसा आदि की भी स्थिति दयनीय है. राजनीतिक परिस्थियों को ध्यान में रखते हुए किसी भी राज्य की वर्त्तमान सरकार जनसाधारण को असंतुष्ट नहीं करना चाहती, इसी लिए उन में से किसी ने भी राजस्व में वृद्धि करने के लिए नये कर लगाने का खतरा मोल नहीं लिया है; हालांकि दबे स्वर से कई राज्यों ने यह भी कहा है कि अतिरिक्त उगाही के लिए संभव प्रयास किये जायेंगे. दिल्ली राज्य एक अपवाद कहा जा सकता है, जिस ने बिजली-पानी से ले कर मकान और मनोरंजन तक के करों में वृद्धि की. कहा जाता है कि वार्षिक योजनाओं पर केंद्र के साथ बातचीत करते समय राज्यों ने जो वायदे किये थे उन से बजट प्रस्तुत करते समय वे मुकर गये. उन के वार्षिक आयोजनों की जाँच-पड़ताल के वक़्त यह बात भी ध्यान में रखी गयी थी कि उन की आय के साधन कम हैं और उसी के आधार पर उन्हें स्वीकृति भी दी गयी थी. उस समय की बातचीत के आधार पर यह उम्मीद की गयी थी कि उन के बजट संतुलित होंगे, लेकिन अब, जब वे घाटे के साथ प्रस्तुत किये गये हैं, केंद्र काफ़ी परेशानी में पड़ गया. वित्त आयोग की रिपोर्ट अभी भी प्रकाशित नहीं हुई है. कुछ विशेषज्ञों का ख़याल है कि अधिसंख्य राज्यों ने घाटे का बजट इस लिए प्रस्तुत किया ताकि वे वित्त आयोग को अपनी आवश्यकताओं के बारे में प्रभावित कर सकें और उस का उन को लाभ मिले. केरल के मुख्यमंत्री नंबुदिरिपाद का कहना है कि क्यों कि केंद्र ख़ुद ही घाटे का बजट बनाता है अत: राज्यों को भी उस के कुछ प्रभाव का शिकार होना पड़ता है. कुछ विशेषज्ञों का यह भी कहना है कि नंबुदिरिपाद के तर्क में कोई दम नहीं है. घाटे की स्थिति का कारण योजनाओं में फ़िज़ूलखर्ची करना है.

बजट ने अधिसंख्य राज्यों में न केवल राजस्व खर्च में वृद्धि कर दी है बल्कि आयोजन-खर्च में भी बढ़ोतरी की है. यह वृद्धि उस सहमति के खिलाफ़ है जो केंद्र के साथ बातचीत के दौरान तय हुई थी.

यह सच है कि केंद्र को धन देने के कुछ स्वैच्छिक अधिकार हैं और उन अधिकारों के सदुपयोग के सामने कभी-कभी प्रश्न-चिन्ह भी लगाया जा सकता है. लेकिन यह भी सच है कि राज्यों को एकदम पराश्रयी बन जाने की प्रवृत्ति से अलग हट कर अपने पैरों पर भी खड़े होने की कोशिश करनी चाहिए. राज्यों के विकास-कार्यों को एकदम केंद्रीय सरकार पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए. वार्षिक बजट से अलग यदि राज्यों के पंचवर्षीय आयोजन के नक्शे पर नजर डाली जाये तो राज्यों की दयनीयता की स्थिति अधिक भयानक हो कर सामने आती है. केवल महाराष्ट्र ऐसा राज्य है जिसने अपने साधन-स्रोतों से ५ अरब ६६ करोड़ रुपया उगाहने का वायदा किया है. केंद्र से उसे दो अरब ४५ करोड़ रुपये मिलने हैं. इसी तरह से गुजरात ने २ अरब ९२ करोड़ का वायदा किया है, जब कि उसे केंद्रीय सहायता कुल १ अरब ९८ करोड़ की मिली. हरयाणा ने ११२ करोड़ की व्यवस्था की, केंद्र से उसे ७८ करोड़ रुपये मिले. पंजाब १ अरब ७० करोड़ स्वयं उगाहेगा और केंद्र उसे एक अरब एक करोड़ देगा. तमिलनाडु अपनी तरफ़ से सिर्फ़ ३ अरब की व्यवस्था करेगा और केंद्र उसे २ अरब २ करोड़ देगा.

दूसरे छोर पर कश्मीर और नगालैंड राज्य हैं, जो क्रमश: अपने १ करोड़ ४५ लाख और ३५ करोड़ के आयोजन से अपनी ओर से कुछ भी जोड़ पाने में असमर्थ हैं. इन के लिए सारी व्यवस्था केंद्र को करनी है. असम की हालत कम दयनीय नहीं है. अपने साधनों से यह केवल ५ करोड़ उगाहेगा, जब कि इस के २ अरब २५ करोड़ के आयोजन में केंद्र से १ अरब २० करोड़ मिलना है. राजस्थान और ओडिसा की भी हालत ऐसी ही है. राजस्थान १८ करोड़ उगाहेगा और केंद्र से इस को २ अरब २० करोड़ मिलेंगे. ओडिसा २० करोड़ की व्यवस्था करेगा और केंद्र को १ अरब ८० करोड़ देना पड़ेगा. बिहार का आयोजन ४ अरब ४१ करोड़ का है. उस का अपना साधन आयोजन के एक-तिहाई हिस्से से भी कम यानी १ अरब ३ करोड़ का होगा. मध्यप्रदेश की भी यही स्थिति है—९३ करोड़ अपना और ३ अरब ५५ करोड़ केंद्र का. आंध्र, केरल और पश्चिम बंगाल की अपने साधनों से होने वाली आय क्रमश: १ अरब २० करोड़, ८३ करोड़ और १ अरब है, जब कि उन के आयोजन क्रमश: ३ अरब ६० करोड़, २ अरब ५८ करोड़ और ३ अरब २१ करोड़ के हैं. उत्तरप्रदेश ४ अरब २५ करोड़ उगाहेगा और केंद्र उसे ५ अरब २६ करोड़ देगा. मैसूर १ अरब ५४ करोड़ उगाहेगा और केंद्र उसे १ अरब ६३ करोड़ देगा.

कश्मीर एक ऐसा राज्य है जिसे आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा माना जाता है और इसी लिए उसे केंद्र से प्रचुर मात्रा में सहायता मिलती रहेगी. १९६९–७० के बजट में राजस्व की रक़म ५८ करोड़ २१ लाख है, जब कि खर्च ६७ करोड़ ४१ लाख का है. महज़ लॉटरी की योजना से १० लाख रुपया प्राप्त करने की उम्मीद की गयी है. शेष रक़म का ज़िम्मा केंद्र पर ही होगा. इस वर्ष का घाटे का बजट इस दृष्टि से भी ऐतिहासिक है कि इस साल उसे केंद्र से सर्वाधिक सहायता मिलने की उम्मीद है. इस में ३१ करोड़ का केंद्रीय आबकारी कर भी उस के हिस्से में शामिल है. कश्मीर को प्रति व्यक्ति ६९ प्रतिशत की केंद्रीय सहायता मिल रही है जब कि देश के अन्य राज्यों में यह प्रतिशत केवल ९ है. इस बजट का एक महत्त्व-पूर्ण पक्ष राज्य की कर्ज़ की स्थिति है. पिछले २० वर्षों में उसने केंद्र से कर्ज़ के रूप में १९० अरब ८७ करोड़ रुपया प्राप्त किया है. इस में अनुदानों के रूप में दी गयी १ अरब २५ करोड़ की रक़म शामिल नहीं है. राज्य ने किस्तवार उगाही के रूप में कुछ नहीं किया है; हालांकि केंद्र कर्ज़ के सूद और उस के वार्षिक किस्त की अदायगी के बारे में कहता रहा है. यों इस वर्ष के बजट में पहली बार कर्ज़ के सूद के रूप में ७ करोड़ २० लाख रुपया और देने का संकेत है. १५ वर्षों के आयोजन और ४ अरब की पूँजी लगा चुकने के बाद भी राज्य की आर्थिक स्थिति उसी जगह खड़ी है जहाँ केंद्रीय सहायता के बिना वह कुछ भी कर पाने में असमर्थ है. दिलचस्प बात यह है कि प्रति व्यक्ति आय में काफ़ी वृद्धि हो चुकी है. सरकारी आँकड़ों के अनुसार प्रथम पंचवर्षीय आयोजन के वक़्त प्रति व्यक्ति आय जहाँ १८८ रुपया थी वहाँ वह आयोजन-काल की समाप्ति के वक्त २१६ रुपया हो गयी. द्वितीय आयोजन की समाप्ति काल में २५३ रुपया और १९६७–६८ के अंत में यह आय २७० रुपया हो गयी. इस का मतलब यह है कि ७ वर्षों में प्रति व्यक्ति आय में कुल ७० रुपये की वृद्धि हुई है.

आज भी श्रीनगर में चावल का भाव प्रति क्विंटल महज़ ४० रुपया है. अन्न के मद में उस की क़ीमतों को कम करने के लिए सरकारी सहायता निरंतर मिलती रही है और उस के लिए बजट में योजनाएँ भी बनती रही हैं. इस साल खरीफ़ की फ़सल पिछले साल से बहुत अच्छी हुई है, मगर आयातित अन्न के लिए बजट में कितने रुपये की व्यवस्था की गयी है वह पिछले साल से कम नहीं है. स्वागत और मनोरंजन से ले कर फ़ील्ड सर्वे, अपर हॉउस और मेले आदि की आवश्यकताओं के मद में निरंतर अधिक खर्च होता रहा है.

श्रीरामुलू के घर के बाहर दर्शनार्थी और पुलिस

<u>आंदोलन</u>

तेलंगाना : समस्याएँ और समाधान

पिछले महीने भर से आंध्र के विभिन्न हिस्सों में वर्तमान राज्य सरकार के पक्षपात के विरुद्ध हिंसक आंदोलन चलते रहे, भूख-हड़ताल और प्रदर्शन से ले कर आगज़नी, तोड़-फ़ोड़ और हिंसा की अनेकों वारदातें हुईं. जब आंदोलन ने तेज़ रूप पकड़ा तो उस से केंद्र भी सकते में आया और विचार-विमर्श शुरू हुए. प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने विभिन्न प्रतिपक्षी दलों के नेताओं से ले कर आंध्रप्रदेश के कांग्रेसी नेताओं तक से अलग-अलग बैठकों में राय-मशवरा लिया और उस के माध्यम से इस जलती हुई समस्या को शांत करने के रास्तों की खोज की गयी. दो दिनों की सरगर्म बातचीत के बाद प्रधानमंत्री तथा केंद्र और राज्य के नेता इस बात पर सहमत हुए कि समस्याओं के समाधान के लिए एक उच्चस्तरीय समिति नियुक्त की जाए. उसी के साथ एक आठसूत्रीय योजना भी सामने लायी गयी. 'जेंटलमेंस एग्रीमेंट' के अंतर्गत यह भी निश्चय किया गया कि यदि मुख्यमंत्री आंध्र क्षेत्र का होता है तो उपमुख्यमंत्री तेलंगाना क्षेत्र का होना चाहिए. लेकिन तेलंगाना के आंदोलनकारी नेताओं को केंद्र की ये योजनाएँ स्वीकार्य नहीं हैं. उन्होंने आंदोलन को अनिश्चित काल तक चलाने का फ़ैसला किया है. तेलंगाना क्षेत्रों के लोग अपने असंतोष और अपनी उद्विग्नता दोनों के शिखर पर हैं. उन्हें राज्य की कांग्रेसी सरकार से बहुत शिकायतें रही हैं. उन में सब से बड़ी शिकायत यह थी कि तेलंगाना क्षेत्र की बुरी तरह उपेक्षा की गयी और उस उपेक्षा के ही कारण वहाँ विकास का कोई भी काम ढंग से नहीं हो सका. इन का कहना था कि तेलंगाना क्षेत्र के लोग राज्य सरकार की उदासीनता या आंध्रवासियों के जुल्म को अब अधिक नहीं सह सकते. इस का सब से अच्छा तरीक़ा यह है कि तेलंगाना क्षेत्र को स्वायत्तता दे दी जाये, ताकि उस का समुचित विकास हो और वहाँ के लोगों के सामने किसी भी तरह के सरकारी खतरे का शिकार होने की संभावना नहीं रहे.

प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने प्रतिपक्ष के नेताओं से बातचीत की और उस में क़रीब-क़रीब सारे नेताओं की यही राय थी कि आंध्रप्रदेश का बँटवारा नहीं किया जाना चाहिए, लेकिन उसी के साथ-साथ सभी की राय थी कि तेलंगाना के विकास के लिए उन सुरक्षाओं को अमल में लाने और क्षेत्रीय समितियों को स्वायत्तता के अधिक अधिकार दिये जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए. श्रीमती गांधी ने राज्य के कांग्रेसी नेताओं से भी बातचीत की. वे भी ऐसे किसी सुझाव के पक्ष में नहीं थे कि आंध्रप्रदेश को विभाजित कर के दो हिस्सों में कर दिया जाये. लेकिन वे सभी इस बात पर सहमत थे कि सुरक्षाओं का पालन होना चाहिए. तेलंगाना क्षेत्र के लिए नौकरियों और विकास-कार्यों के आश्वासन होने चाहिए. यह अलग बात है कि इन में से कुछ नेता इस मुद्दे पर सहमत नहीं हो सके कि इन आश्वासनों को अमल में लाने के लिए किस तरह की मशीनरी का उपयोग किया जाये. कुछ नेताओं ने यह माँग भी की कि केंद्रीय मंत्रिमंडल की एक समिति उस क्षेत्र में जाये और मौक़े का अध्ययन कर के अपने सुझाव दे. इस के पहले भी सदन में जनसंघ के अटलबिहारी वाजपेयी ने एक सुझाव दिया था कि संसद के २१ सदस्यों की एक समिति तेलंगाना भेजी जाये और वह स्थिति का अध्ययन कर के अपनी रिपोर्ट दे. श्री चव्हाण ने उसे स्वीकार तो नहीं किया, लेकिन यह जरूर माना कि समस्या का हल जनमत के आधार पर ढूँढ़ा जाना चाहिए. विरोध की आवाज को दबाया नहीं जा सकता. उन्होंने कहा कि केंद्रीय सरकार अब नीतितः देश का अधिक बँटवारा करने के विरुद्ध है. संसदीय समिति भेजने का समर्थन करने वालों में जनसंघ, संसपा, स्वतंत्र और प्रसपा एक साथ थे. विरोध करने वालों में द्रविड मुन्नेत्र कषगम और कम्युनिस्ट थे. उन का कहना था कि इस वक़्त संसदीय समिति को वहाँ भेजने से कोई लाभ नहीं होगा. तेलंगाना क्षेत्र के नेता शुरू से आखिर तक इस बात पर बल देते रहे हैं कि विकास और नौकरी आदि की जो भी सुरक्षाएँ हैं उन्हें वैधानिक मान्यता दी जानी चाहिए. लेकिन केंद्रीय नेता और सरकार दोनों इस मुद्दे पर सहमत नहीं हो सके.

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण : १९५६ में राज्य पुनर्गठन के परिणाम में पुरानी तेलुगु भाषा-भाषी रियासत और हैदराबाद को मिला कर आंध्रप्रदेश अस्तित्व में आया. उस के पहले १९५४ में तेलुगुभाषी आंध्र राज्य अलग हो गया था. उस में मद्रास के समुद्रतटीय क्षेत्र के रॉयल सीमा को अलग कर के आंध्र को दे दिया गया. १९४८ की पुलिस कार्रवाई के बाद जब हैदराबाद भारतीय संघ में शामिल हो गया तब १९५२ में रामकृष्ण राव के मुख्यमंत्रित्व में पहला मंत्रिमंडल बना. आंध्र महासभा ने तेलुगुभाषी जिलों में और विशाल आंध्र महासभा ने जनता में भाषाई चेतना का विकास किया और तेलंगाना क्षेत्र को मिला कर एक वृहद् आंध्रप्रदेश बनाने की आवाज़ उठायी गयी. दोनों क्षेत्र मिला दिये गये. तेलंगाना के हैदराबाद, मेंडक, नालगोंडा, खम्मम, वरंगल, निजामाबाद, आदिलाबाद, करीम नगर और महबूबनगर ज़िले. जो सामंती प्रशासन से जकड़े हुए थे, आंध्र के अंग बन गये. हैदराबाद को छोड़ कर शेष सभी पिछड़ेपन के शिकार थे. तेलुगुभाषी जनता के हित को ध्यान में रखते हुए आंध्र के नेताओं ने तत्काल इस बात की सहमति प्रकट की कि उन के हितों की रक्षा के लिए विशेष उपाय किये जायें. १९५६ में ही दोनों क्षेत्रों के नेताओं के बीच 'जेंटिलमेंस ऐग्रीमेंट'

घर के दालान में खून और चप्पलें

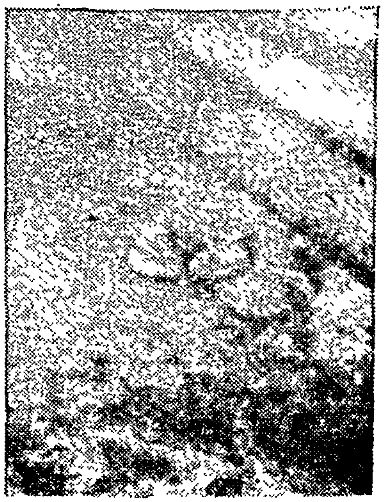

हुआ. निश्चय किया गया कि मंत्रिमंडल में से ६० प्रतिशत आंध्र के और ४० प्रतिशत तेलंगाना क्षेत्र के लोग होंगे. ख़र्च का दो-तिहाई आंध्र के लिए और एक तिहाई तेलंगाना के लिए सुरक्षित रहेगा. जो रक़म ख़र्च से बच जायेगी उस का उपयोग भी तेलंगाना क्षेत्र के विकास के लिए किया जायेगा. तेलंगाना क्षेत्र के लोगों को नौकरी संबंधी सुरक्षा देने के लिए भी नियम आदि बनाये गये.

तेलंगाना क्षेत्र के लोग उस के बाद से ही निरंतर यह महसूस करते रहे कि उन पर अत्याचार होता रहा है. कोई सरकार हो, उस पर आंध्र क्षेत्र के लोग हावी थे. इसी लिए न तो उन सुरक्षाओं का क़ायदे से पालन किया गया न ही तेलंगाना क्षेत्र के विकास के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण काम किया गया. उन का यह संदेह भी निराधार नहीं था. तेलंगाना क्षेत्र पर ख़र्च की जाने वाली रक़म ख़ज़ाने में साल पर साल बढ़ती रही और उस का कोई उपयोग नहीं किया गया. कुछ महीने पहले जब आंदोलन ने ज़ोर पकड़ना शुरू किया तब मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने यह घोषणा ज़रूर की कि उस रक़म का उपयोग उस क्षेत्र के विकास के लिए किया जायेगा, हालांकि राज्य सरकार ने अपनी एक पुस्तिका में आँकड़े देते हुए यह सिद्ध करने की कोशिश ज़रूर की है कि राज्य सरकार तेलंगाना क्षेत्र के विकास के प्रति कभी भी उदासीन नहीं रही, कि पंचवर्षीय आयोजनों के माध्यमों से उस क्षेत्र के लिए काफ़ी काम किया गया. लेकिन तेलंगाना क्षेत्र में ख़र्च की जाने वाली एक बड़ी राशि का बचा रह जाना ही इस बात का सबूत है कि विकास के कार्य क़ायदे के साथ नहीं हुए. तेलंगाना क्षेत्र के असंतोष को ख़त्म करने के लिए सब से ज़रूरी बात यह है कि उन के संदेह को ख़त्म किया जाये. वे महसूस करते हैं कि आंध्र के लोग उन का हर तरह से शोषण करते रहे हैं.

हिंसात्मक आंदोलन फ़िलहाल समाप्ति के निकट है. लेकिन उस के दौरान राज्य सरकार की पुलिस ने जो ज़ुल्म निर्दोष जनता पर ढाया उस की मिसाल नहीं. प्रतिक्रिया में जनता ने हर संभव तरीक़े से अपना विरोध प्रकट किया. **दिनमान** के संवाददाता ने आंदोलन से प्रभावित क्षेत्रों का दौरा करने के बाद लिखा है:

३१ मार्च को तेलंगाना अराजपत्रित अधिकारियों ने अध्यक्ष श्री के. आर. आमोस को निरोध निवारक क़ानून के अंतर्गत गिरफ़्तार कर लिया. श्री आमोस ने एक आम सभा में तेलंगाना क्षेत्र के विधायकों और मंत्रियों से त्यागपत्र की माँग करते हुए कहा था कि १२ वर्षों में इस क्षेत्र के कर्मचारियों पर निरंतर अन्याय हुआ है. उन्होंने केंद्र को भी चुनौती दी कि अगर तेलंगाना क्षेत्र के कर्मचारियों के साथ हुए अन्याय के संबंध में हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा और उचित न्याय नहीं किया जायेगा तो भविष्य में होने वाली घटनाओं की ज़िम्मेदारी उस पर होगी. इधर सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय आने के बाद तेलंगाना सुरक्षाओं की बात करना बेमानी हो गया है. जामिया उस्मानिया स्टेशन की दुर्घटना में एक और ज़ख़्मी २३ वर्षीय युवक रमेशचंद्र की मृत्यु हो गयी.

श्री कोंडा लक्ष्मण के त्यागपत्र के बाद कांग्रेस दल के छह और एक स्वतंत्र विधायक ने पृथक तेलंगाना आंदोलन को अपना समर्थन दे दिया है और अब वे इस में सक्रिय भाग ले रहे हैं. इन के नाम हैं सर्वश्री पी. नरसिंह राव, एम. मानिकराव, जी. राजाराम, एम. एम. हाशिम, टी. अंजैया, एम. अच्युत रेड्डी और सुधाकर रेड्डी (स्वतंत्र). श्री अच्युतराव तेलंगाना रीजनल कमेटी के भूतपूर्व अध्यक्ष हैं. एक प्रेस वक्तव्य में इन विधायकों ने कहा है कि मुख्यमंत्री इस शांतिपूर्ण आंदोलन को कुचलना चाहते हैं और उन का ख़याल है कि या तो यह आंदोलन अपनी मौत आप मर जायेगा या से शक्ति से कुचल दिया जायेगा. दोनों बातों में उन का अनुमान ग़लत है. यह एक जनआंदोलन है और इस के पीछे जनता के मन में जलने वाली अन्याय की आग है. उन्होंने सलाह दी है कि मुख्यमंत्री अब इस समस्या के हल में अनावश्यक विलंब न करें.

बैठकें और प्रस्ताव : पेछापल्ली में ३ मार्च को श्री जिरना मल्ला रेड्डी, विधायक की अध्यक्षता में पृथक तेलंगाना सम्मेलन हुआ, जिस में पृथक् राज्य की माँग की गयी. इस सभा में बीस हज़ार लोग उपस्थित थे. दूसरा सम्मेलन कामा रेड्डी में हुआ, जिस की अध्यक्षता श्री मधुसूदन रेड्डी, विधायक ने की. इस में लगभग २५ हज़ार की उपस्थिति थी. ताल्लुक़ा मेडल चल के दुंडीगल नामक स्थान और आदिलाबाद में ५ और ६ को इसी प्रकार के और सम्मेलन होने की ख़बर है. स्थान-स्थान पर भूख-हड़तालों और घेरावों और प्रदर्शनों का क्रम यथावत् चालू है.

दिनमान के संवाददाता को विश्वस्त सूत्रों से पता चला कि निकट भविष्य में ही लगभग ३५ कांग्रेसी विधायक तेलंगाना की माँग के समर्थन में अपने नामों की घोषणा और वक्तव्य देने वाले हैं.

गोलीकांड : ४ अप्रैल की शाम को सिकंदराबाद के राष्ट्रपति रोड और आसपास के क्षेत्र में पुलिस ने जनता पर गोलीचालन किया.

लोगों ने बताया कि पुलिस ने इतना अंधाधुंध लाठी चार्ज और गोलीचालन किया कि कई संवाददाता और शांत व्यापारी भी इन की मार से नहीं बच पाये. **दिनमान** के संवाददाता को स्थानीय लोग उन कुछ स्थानों पर ले गये जहाँ गोली खा कर लोग पड़े थे और बाद में पुलिस जिन्हें उठा ले गयी थी और पूरी घटना का आँखों देखा वर्णन सुनाया. लोगों ने **बताया कि चबूतरे पर बैठा एक संन्यासी पुलिस गोली का शिकार हुआ. मंदिर में पूजा करते हुए पंडित घायल हुए और राशनिंग** विभाग में काम करने वाला एक कर्मचारी जी. सामन, जो पान बाजार का निवासी है और पैसा जमा कर के घर लौट रहा था, पुलिस गोली का शिकार बना.

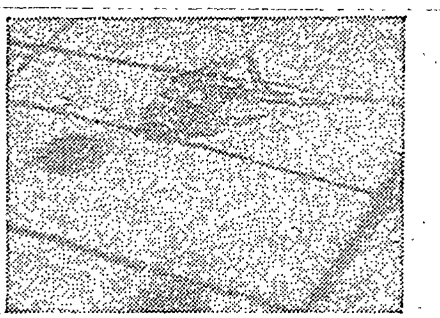

फ़ुटपाथ पर ख़ून

दिनमान के संवाददाता ने जब उस क्षेत्र का दौरा किया तो स्थिति काफ़ी तनावपूर्ण थी. जनता में आतंक था और दूकानें और घरों के दरवाज़े बंद थे; लेकिन बेचैन लोग खिड़कियों छतों और बंद दरवाज़ों से झाँक रहे थे. लाखों लोग सड़कों पर जमा थे.

एक घर के अहाते में फ़र्श पर रबर की चप्पलें खुली हुई थीं और चारों ओर ख़ून ही ख़ून था. पुलिस की गोली से घायल उस आदमी ने वहीं दम तोड़ दिया था और बाद में पता नहीं पुलिस उस लाश को कहाँ उठा ले गयी. श्री आनंदराव नामक आंध्र क्षेत्र के विधायक को लोगों ने पुलिस की निर्दयता की ये घटनाएँ दिखाते हुए कहा कि वह विधानसभा से त्यागपत्र दें और पृथक तेलंगाना की माँग का समर्थन करें. श्री आनंदराव ने वचन दिया तो जय तेलंगाना के नारों से वातावरण गूँज उठा. श्रीरामुलू के घर के सामने हज़ारों लोग जमा थे. पुलिस ने कुछ समय के लिए घर पर रखने को लाश दी थी, लेकिन बाद में पुलिस ट्रक में लाश ले जाते समय जब लोगों की बेचैनी बढ़ी तो पुलिस ने हवाई फ़ायर किये और लाश को ले कर चली गयी. गोलीकांड की जाँच की माँग की जा रही है.

श्रीरामुलू के अंतिम दर्शन

कोंडा लक्ष्मणराव बापू ने ब्रह्मानंद रेड्डी के मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया और अब वह क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँग कर रहे हैं. लेकिन सदाशयता के बावजूद उन की स्थिति इस समय बड़ी विचित्र है. न तो उन से कांग्रेस दल ही संतुष्ट है और न पृथक तेलंगाना आंदोलन वाले उन्हें अपना समर्थक मान रहे हैं. इस बीच उन्होंने प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री, गृहमंत्री, कांग्रेसाध्यक्ष और लोकसभा के अध्यक्ष को एक आवश्यक तार भी भेजा और उस में पुलिस जुल्म तथा मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी की अदूरदर्शिता और हठ के प्रति दुख प्रकट करते हुए सूचना दी कि वह मजबूर हो कर भूख-हड़ताल करने जा रहे हैं. **दिनमान** के संवाददाता ने उन से कुछ प्रश्न किये:

क्या आप बता सकते हैं कि १९ जनवरी के तेलंगाना सुरक्षाओं के क्रियान्वयन वाले समझौते पर हस्ताक्षर करने के बाद आप को त्यागपत्र देने की जरूरत क्यों पड़ी ?

मुझे शुरू से ही शंका थी कि जो आश्वासन दिये जा रहे हैं वे कार्यान्वित नहीं किये जायेंगे, क्यों कि सभी दल इस से सहमत थे और आशा थी कि शायद इस से तेलंगाना क्षेत्र की जनता को कुछ संतोष मिलेगा. इस लिए मैंने भी दस्तखत कर दिये थे. लेकिन तभी एकाएक आंध्र क्षेत्र में भी आंदोलन प्रारंभ हुआ और इस से स्थिति उलझ गयी. फिर यह हुआ कि पृथक तेलंगाना के लिए आंदोलन करने वाले छात्रों के असंतोष का समाधान करने और उन में विश्वास पैदा करने के प्रयासों के बजाय पुलिस दमन और गोली-लाठी का सहारा लिया गया. १९ जनवरी के समझौते के बाद लिखित रूप में और जबानी तौर पर मैंने मुख्यमंत्री को समस्या के समाधान के बारे में कई सुझाव दिये, लेकिन उन्होंने मेरे सुझावों पर कोई ध्यान नहीं दिया.

क्या मुख्यमंत्री से राज्य की बिगड़ती हुई हालत पर इस बीच आप की बातचीत नहीं हुई ?

जब तक मुख्यमंत्री मुझे खुद न बुलायें और अपनी ओर से राय न माँगें, अपने आप जा कर बात करने की मेरी आदत नहीं है. हाँ, अपने विभाग की कोई बात होती थी तो मैं स्वयं जाता था. पृथक तेलंगाना आंदोलन के संबंध में जब भी मुझे बुलाया गया मैंने अपने स्पष्ट विचार रखे. मसलन, तेलंगाना सरप्लसेस, या काम ग्रेडियेशन्स और प्रमोशन्स के बारे में, त्वरित निर्णय लेने का सुझाव मैंने दिया था. लेकिन विलंब किया गया और उस से स्थिति बिगड़ी. ग़ैर-मुल्की कर्मचारियों को निकाले जाने का निश्चय मेरे ही सुझाव पर सितंबर ६८ में लिया गया था. लेकिन उस पर खुद कार्यवाही न कर के मुख्यमंत्री ने मुख्य सचिव पर मामला छोड़ दिया और ज़ाहिर है कि उस पर विपरीत आचरण किया गया. क्यों कि मुख्यमंत्री अपने निर्णय पर क़ायम नहीं रहे, और फिर समस्या के हल का मार्ग निकालने में इतनी देर हुई कि स्थिति आप के सामने है. नौकरियों के बारे में भी अत्यधिक अन्याय हुआ है. जिन इलाक़ों के लिए सुरक्षाएँ नहीं थीं वहाँ भी अन्याय हुआ है. इस के कारण पूरा का पूरा क्षेत्र ही वर्तमान नेतृत्व से असंतुष्ट है. १९ जनवरी के समझौते के बाद, जनवरी के अंतिम सप्ताह में जो हिंसक-घटनाएँ हुईं उन से पूर्व इस आंदोलन के समाधान के लिए कुछ प्रयत्न हमने किये थे, लेकिन सदाशिव पेठ में छात्रों पर गोली-चालन के बाद स्थिति क़ाबू से बाहर हो गयी.

उसी वक़्त मैंने यह सुझाव दिया कि सुरक्षाओं के क्रियान्वयन पर ही निर्भर न रह कर कोई ऐसा कार्य किया जाये जिस से असंतुष्ट जनता की दृष्टि आंदोलन से हटे और आगे न्याय की आशा और विश्वास जागें.

आप ने इस के लिए क्या-क्या सुझाव दिये?

मैंने एक आयोग बैठाने की राय दी, जिस में सर्वोच्च न्यायालय और भारत सरकार की राय से सुरक्षाओं का क्रियान्वयन, क्षेत्रीय असंतुलन, नौकरियों और भावनात्मक एकता के लिए कार्य किया जा सकता था और यह भी कहा था कि यह निर्णय ३० मार्च से पूर्व ही किया जाये. मैंने यह सुझाव २४ फ़रवरी को दिया था, क्यों कि ३ मार्च को तेलंगाना बंद और ८-९ मार्च के पृथक तेलंगाना सम्मेलन के आयोजन के बाद मेरी दृष्टि में यह आंदोलन नया मोड़ लेने वाला था. इसी लिए इन दोनों घटनाओं से पूर्व ही मैंने भी एक सम्मेलन बुलाने की राय दी थी, लेकिन तब मेरी राय पर कोई ध्यान नहीं दिया गया. १० मार्च को मैंने कहा कि अब सुरक्षाओं की बात बंद कर देनी चाहिए, क्यों कि क्षेत्रीय स्वायत्तता (रीजनल ऑटोनॉमी) ही अब एक मात्र विकल्प रह गया है. इस के लिए मुख्यमंत्री स्वयं क़दम उठायें और केंद्रीय सरकार को भी मना लें, अन्यथा आंध्रप्रदेश की एकता टूटने की संभावनाएँ बढ़ेंगी. सेना और पुलिस भी उसे रोक नहीं सकेगी. लेकिन मुख्यमंत्री का रुख अनुकूल नहीं था. फिर मैंने त्यागपत्र दिया, जो स्वीकार नहीं किया गया, क्यों कि उस समय विधानसभा का अधिवेशन चल रहा था और मुख्यमंत्री का आग्रह था कि १८ मार्च के बाद ही उस पर विचार किया जा सकेगा. मुझे आशा थी कि केंद्रीय सरकार के सामने सही स्थिति रखने से शायद कोई संभव हल निकल सकेगा.

केंद्रीय नेताओं से बातचीत कैसी रही ?

वहाँ मुझे आशा से बढ़ कर सहानुभूति मिली. संसद्-सदस्यों ने भी स्थिति को सहानुभूतिपूर्वक समझा और मार्ग निकालने का प्रयत्न किया. अखिल भारतीय कांग्रेस दल के नेताओं और केंद्रीय सरकार के शीर्षस्थ मंत्रियों ने भी प्रांत की दिन पर दिन बिगड़ती स्थिति को गंभीरता से लिया, परंतु पृथक राज्य और क्षेत्रीय स्वायत्तता के बारे में सहानुभूति न दिखा सके क्यों कि उन्हें अन्य राज्यों में भी इसी क़िस्म की परिस्थितियाँ निर्मित होने का डर है. मैंने स्पष्ट कर दिया था कि राजनीतिक हल और सांविधानिक व्यवस्था के द्वारा जब तक तेलंगाना के लोगों में विश्वास पैदा नहीं किया जायेगा तब तक समस्या हल नहीं होगी और इस में जितना विलंब होगा आंध्रप्रदेश के टूटने की संभावनाएँ उतनी ही बढ़ती जायेंगी और अंत में जनता की इच्छा के सामने झुकना पड़ेगा. मैंने दिल्ली में यह भी विनती की कि प्रधानमंत्री, गृहमंत्री या उपप्रधानमंत्री में से कोई भी तेलंगाना का दौरा करें और जनता की भावना को समझें; राज्य की स्थिति को आँखों से देखें और तब निर्णय लें कि क्या करना है.

आपने अपने एक वक्तव्य में पृथक तेलंगाना और क्षेत्रीय स्वायत्तता की माँग के बारे में कहा है कि इन दोनों की मूल-भावना (स्पिरिट) एक है, जब कि श्री मधु लिमये ने हैदराबाद के अपने एक प्रेस वक्तव्य में संविधान की धाराओं (२, ३ और ३६८) का उल्लेख करते हुए बताया है कि क्षेत्रीय स्वायत्तता से पृथक राज्य वाला हल ज्यादा आसान है.

जाहिर है क्षेत्रीय स्वायत्तता और पृथकता में मोटे तौर पर अंतर दिखाई देता है. लेकिन एक राज्य में रहते हुए भी हम अपने उद्योगों, वित्त, नौकरियों आदि में आत्मनिर्भर रहेंगे और उन के बारे में किसी दूसरे को हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा. क्यों कि भूतकाल में आंध्र के लोगों ने तेलंगाना के लोगों का शोषण किया, उन पर प्रभुत्व रखा और जो भ्रष्टाचार फैलाया आगे वैसा नहीं कर सकेंगे.

मान लीजिए कि क्षेत्रीय स्वायत्तता की आप की माँग न मानी जाये तो आप का अगला क़दम क्या होगा ?

अगर क्षेत्रीय स्वायत्तता नहीं मिलती है तो पृथक तेलंगाना की माँग से भी मेरा कोई विरोध नहीं है. वह मिलना ही चाहिए. लेकिन मैं तो आंध्रप्रदेश में रहते हुए ही तेलंगाना क्षेत्र के लिए कोई हल निकालना चाहता हूँ. अगर मेरी माँग नहीं मिलती तो जनता की जो इच्छा है वह तो पूरी होनी ही चाहिए.

कोंडा लक्ष्मणराव : विचित्र स्थिति

बिस्कुट के पक्ष में

अन्नोत्पादन में वृद्धि और आत्मनिर्भरता की उम्मीद जगते ही बिस्कुट उत्पादक यह शिकायत करने लगे हैं कि अन्नोत्पादन की बढ़ोतरी से उन के व्यवसाय पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, क्यों कि बाज़ार में पर्याप्त मात्रा में गेहूँ, चावल वगैरह उपलब्ध होने से गृहिणियों ने बिस्कुट की खरीद कम कर दी है. यानी हालात अब कुछ ऐसे होते जा रहे हैं कि अधिकांश भारतीय जनता अवसर मिलते ही पहले तबीयत भर कर मामूली भोजन कर ले और तब पौष्टिक और लज़ीज़ पकवानों की तरफ़ ध्यान दे—पारिवारिक बजट की यही अनिवार्य शर्त है.

गिले-शिकवे : आँकड़े बताते हैं कि संगठित बिस्कुट उद्योग का कुल उत्पादन १९६७ में ५७,४७० टन था, जो १९६८ में बढ़ कर ६२,७०० टन हो गया. किंतु यह वृद्धि केवल ९ प्रतिशत थी, जब कि ६७ में ११ प्रतिशत, '६६ में १७ प्रतिशत और ६५ में १६ प्रतिशत थी. यद्यपि विशेषज्ञों ने यह अनुमान लगाया था कि सन् १९७३-७४ तक देश में ११०,००० टन बिस्कुटों की माँग होनी चाहिए किंतु बिस्कुट निर्माताओं का फ़ेडरेशन अब इस नतीजे पर पहुँचा है कि यदि सरकार का सहयोग नहीं मिला तो वे इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर पायेंगे. कच्चे माल की किल्लत और उन की क़ीमतों में उत्तरोत्तर वृद्धि बिस्कुट निर्माताओं की सब से पेचीदी समस्या है. नये बजट ने उन्हें और अधिक आघात पहुँचाया है. चीनी की क़ीमत ३ रुपये ३५ पैसे से बढ़ कर ३ रुपये ५० पैसे (१९६७ में चीनी की कीमत १.४० रु. थी) हो गयी है. पेट्रोल की बढ़ी हुई क़ीमत से वितरण-व्यय भी बढ़ जायेगा.

बिस्कुट उत्पादकों के फ़ेडरेशन के सम्मेलन में अध्यक्ष श्री खन्ना ने कहा कि वनस्पति घी की अस्थिर क़ीमतों ने भी इस उद्योग को काफ़ी परेशान किया है. अप्रैल १९६८ से मार्च १९६९ तक वनस्पती घी का भाव १५ दफ़ा बदला. अब इस उद्योग को सँभलने देने का यही एक रास्ता है कि उत्पादन और क़ीमत तय करने संबंधी सभी सरकारी प्रतिबंध हटा दिये जायें, जिस से कि प्रतिस्पर्धा, माँग और पूर्त्ति की प्रक्रिया से गुज़रते हुए यह उद्योग खुद-ब-खुद सँभल जाये.

बिस्कुटों के निर्यात के मामले में भी काफ़ी पेचीदगी का सामना करना पड़ रहा है, क्यों कि सुविधा के अभाव में भारतीय उत्पादक विदेशी उत्पादकों की प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक पा रहे हैं और देश के भीतर यह स्थिति है कि गृहिणियाँ अपनी सीमित आय से भर पेट भोजन के जुगाड़ में ही जुटी हैं; बिस्कुट खरीदने के लिए उन के पल्ले पैसा कहाँ है ?

पाकिस्तान और हम

पड़ोसी देश की उथलपुथल भारतीय मानस को किस तरह मथ रही है, इस की जानकारी के लिए **दिनमान** ने कई बौद्धिकों से बातचीत की.

अवकाश प्राप्त मेजर जनरल **हबीब उल्ला** ने पूर्वी पाकिस्तान के बारे में फ़रमाया:

"पूर्वी बंगाल की भारत, चीन और बर्मा की सीमाओं से समीपता हर दशा में भारत के वास्ते चिंता का विषय रहेगी. जब तक वह सैनिकों के बूट के नीचे है सैनिक शासन अपनी सत्ता के हित में कोई भी बखेड़ा कर सकता है. जब सैनिक बूट न रहेगा पूर्वी बंगाल की राजनीति कितना भारत के समीप होगी और कितना बर्मा और चीन के, इस का अनुमान करना कठिन है", जनरल हबीब उल्ला ने रुकते हुए कुछ विचार कर कहा कि **भविष्य में पश्चिमी बंगाल, पूर्वी बंगाल, असम और उस के निकट-वर्त्ती भागों के साथ बर्मा के एक अंश को मिला कर एक पृथक राज्य स्थापित होने तक की संभावना हो सकती है.**

हबीब उल्ला : सैनिकवाद-विरोधी

सैनिकवाद के विरोधी जनरल हबीब उल्ला का कहना है कि पाकिस्तान की यह सैनिकवादी मनोवृत्ति अपने को क़ायम रखने के लिए कोई भी क़दम उठा सकती है.

जनरल हबीब उल्ला ने कहा कि देश के विभाजन को ही मैं भारतीय नेताओं की भूल मानता हूँ. उस से बड़ी भूल थी भारत-पाकिस्तान की सीमाओं को इस सीमा तक मान्यता देना गोया पाकिस्तान कभी भारत का अंग ही न रहा हो. दुख की बात है कि खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ, बलूच गांधी और जी. एम. सैय्यद को एक क्षण में भुला दिया गया. पाकिस्तान और भारत के बीच आवागमन के कठोर नियम बन गये. परिणामत: एक भाग के लोगों का दूसरे भाग के लोगों से मिलनाजुलना बंद हो गया. वे शक्तियाँ और वे साधन जिन से पाकिस्तान और भारत एक दूसरे के निकट आ सकते थे त्याग दिये गये.

यह पूछने पर कि क्या जनतंत्र की उन शक्तियों को जो पाकिस्तान की तीन-चार महीनों की घटनाओं में उदित होती प्रतीत हुईं भारत सरकार को अपना समर्थन देना चाहिए था जनरल हबीब उल्ला ने कहा, "अवश्य. सरकार और भारतीय जनता दोनों उन को अपना नैतिक समर्थन दे सकते थे". तो फिर क्या सीमांत गांधी की पख्तूनिस्तान की माँग को भी हमें समर्थन देना चाहिए था ? इस के उत्तर में जनरल हबीब उल्ला ने कहा, 'क्यों नहीं?" इस संदर्भ में उन्होंने बताया कि **पाकिस्तानी सेना में बहुमत पंजाबियों का है, शेष पठान हैं. सिंधियों और बंगालियों का प्रतिनिधित्व शून्य-सा है. जिस दिन पठान पंजाबियों से अलग हो जायेंगे और उन पठानों से मिल जायेंगे जो पख्तूनिस्तान की माँग कर रहे हैं एक स्वायत्त प्रदेश या स्वतंत्र राज्य स्थायित्व हो जायेगा. केवल इतिहास में यह कहने को रह जायेगा कि भारत को स्वतंत्रता दिलाने में सीमांत गांधी ने तो फ़िदाकारी से काम किया, किंतु स्वतंत्र होने के बाद भारतीयों ने दूध की मक्खी की तरह उन्हें निकाल फेंका.**

बात फिर सैनिक शासन की ओर चली. उन्होंने कहा कि पाकिस्तान के लोग यह समझ गये हैं कि भारत विरोध शासक-वर्ग की धोखे की टट्टी है और कश्मीर उन को ठगने का एक उपाय. वे न दोनों की ओर से आँखें फेर चुके हैं. वे विधान चाहते हैं, संसद् चाहते हैं, वयस्क मताधिकार चाहते हैं, सामाजिक और आर्थिक न्याय चाहते हैं. अय्यूब के दोस्त याह्या खाँ ने उन वादों को पूरा करने का वचन दिया है जो अय्यूब कर चुके हैं. यह देखने की बात है कि वे कहाँ तक पूरा करते हैं. फिर भी इस सत्य को ओझल करना उचित न होगा कि पाकिस्तान के सैनिक शासकों और वहाँ की जनता के हितों में पारस्परिक टकराव है. संभव है कि अंतर-राष्ट्रीय शक्तियों की जानी-अनजानी सहायता से पाकिस्तान का सैनिक शासन जनतंत्र की शक्तियों को क्षणिक रूप से परास्त कर दे, परंतु पाकिस्तान और भारत के लोग अंतत: एक दूसरे से फिर मिलेंगे. देश का राज्यों में विभाजन इसे रोक न सकेगा. जनरल हबीब उल्ला ने इसे अपना दृढ़ मत बताते हुए कहा, "खुदा करे याह्या खाँ पाकिस्तान के अंतिम सैनिक शासक हों".

अब्दुल जलील फ़रीदी

मशावरत और मुसलिम मजलिस के नेता अब्दुल जलील फ़रीदी ने पाकिस्तान सैनिक शासन पर अपनी प्रतिक्रिया एक शब्द में व्यक्त की—'अफ़सोसनाक'.

फ़रीदी ने कहा पाकिस्तान में आर्थिक सुविधाओं और राजनैतिक अधिकारों का जन-संघर्ष ऐसे नेताओं के हाथ में पहुँचा जिन की ईमानदारी और दयानतदारी के सामने प्रश्न-चिन्ह लगे हैं. यह अफ़सोसनाक बात है.

अब्दुल जलील फ़रीदी : 'अफ़सोसनाक'

इस से अधिक अफ़सोसनाक है अराजकता और अव्यवस्था की वह स्थिति जिस में आवेश में आ कर एक नागरिक ने दूसरे नागरिक की हत्या की, लूट-खसोट की, माल-असबाब की बर्बादी की. इस स्थिति का कोई भी समर्थन नहीं कर सकता. अनिवार्य होते हुए भी सैनिक शासन की प्रशंसा या अनुशंसा नहीं की जा सकती.

यह पूछने पर कि पाकिस्तान में जिस जन-चेतना के दर्शन हुए उस के स्वरूप के विषय में वे क्या सोचते हैं फ़रीदी ने कहा कि यह आर्थिक असंतोष के प्रति पाकिस्तानी जनता के विरोध का प्रदर्शन है और इस प्रदर्शन को मैं एक जीवित समाज का लक्षण कहूँगा.

"क्या आप नहीं देखते कि स जनचेतना में धार्मिकता या सांप्रदायिकता का कोई चिन्ह भी नहीं है और क्या यह सूचना नहीं देता कि इस्लामवाद पर आधारित राज्य की जनता अब धर्म-निरपेक्षता की ओर अग्रसर हो रही है ?" इस के उत्तर में फ़रीदी ने कहा, मैं नहीं मानता कि पाकिस्तान एक इस्लामी राज्य है, या वहाँ इस्लामवाद है. जहाँ तक मैं जानता हूँ कि किसी पाकिस्तानी नेता ने इस प्रकार की घोषणा नहीं की. पाकिस्तान मुसलमानों का राज्य है, मुसलमानी राज्य नहीं. अतः यह कहना ठीक नहीं है कि पाकिस्तान का आधार धर्म है. वह बना था क्यों कि भारत के मुसलमान यह महसूस करते थे कि हिंदू बहुमत के साथ उन की आर्थिक और सामाजिक प्रगति न हो सकेगी; उलटे उन का शोषण होगा. जब यह शोषण मुसलमान शासकों द्वारा ही पाकिस्तान में हुआ विरोध हुआ.

यशपाल

भौगोलिक स्थितियों ने पाकिस्तान के जन्मकाल से ही उस के वर्त्तमान रूप के विरुद्ध प्रश्न-चिन्ह लगाये हैं. यशपाल जी इन का उत्तर पाकिस्तान की राष्ट्रीय राजनीति में नहीं पाते; उपनिवेशी राजनीति का सहारा दूसरी बात है. इस संदर्भ में यशपाल ने यह मानने से कार किया कि पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल की भाषा और संस्कृति का एक होना पूर्वी बंगाल के पश्चिमी पाकिस्तान से पृथक होने की भावना के मूल में है. उन का तर्क है कि जब पूर्वी बंगाल पाकिस्तान का अंग बना था भाषा और संस्कृति की एकता के ऊपर धर्म की भावना विजयी हुई थी. सांप्रदायिकता की अग्नि से भस्म होते नोआखाली की जनता को गांधी की अहिंसा का तप भी शांत न कर सका था. अब लगता है **समय ने करवट ली है, किंतु अभी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि पूर्वी बंगाल में या पाकिस्तान में अन्य कहीं धार्मिक भावना को पूर्णतया तिरस्कृत कर दिया गया है.** यशपाल को भय है कि हिंदू-मुस्लिम समस्या को अब भी उभारा जा सकता है. वह यह मानते हैं कि पिछले तीन-चार महीनों में जिस प्रकार की आर्थिक सुविधाओं और राजनीतिक अधिकारों की व्यापक माँग की गयी है वह बताती है कि **पाकिस्तानी राजनीति हिंदू-मुस्लिम समस्या की धुरी से हट कर मूल प्रश्नों की ओर अग्रसर हो रही है.** उन की धारणा है कि याह्या खाँ का सैनिक शासन राजनीति के इन नये आयामों को कुछ वर्षों के लिए फिर दबा देगा.

अमृतलाल नागर

एक साहित्यकार और बौद्धिक के नाते अमृतलाल नागर की टिप्पणी है कि मैं विश्व के हर भाग को, जीवन की हर घटना को बिंबों में देखता हूँ. भारत का वह बिंब जो मेरे मन में है उन संस्कारों पर आधारित है जो पाणनी की जन्मभूमि बलूचिस्तान और तक्षशिला के अवशेषों को सँजोये पेशावर के आसपास के क्षेत्र से माँस और मज्जा की तरह लिपटा हुआ है. कैलाश से कन्याकुमारी तक और बलूचिस्तान व अटक से बर्मा की पहाड़ियों तक का विस्तृत क्षेत्र आज भी मेरा भारत है. **पाकिस्तान भारत का एक राज्य है, देश नहीं. अतः पाकिस्तान की जनता और उस की माँगों के प्रति**

मेरा लगाव दो जुड़वा भाइयों का है.

आर्थिक समस्याओं और राजनैतिक अधिकारों को ले कर हुई पाकिस्तान की जनक्रांति के विषय में नागर जी के विचार हैं: "मैं समझता हूँ पाकिस्तान का नेतृत्व कितना ही अपरिपक्व हो, कितना ही स्वार्थी हो, कितना ही दिग्भ्रमित करने वाला हो, समय के साथ जनता स्वयं अपना हित और अहित जान जाती है. हित-अहित का ज्ञान होने पर, अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, उन्हें मुखरित करने के लिए एक माध्यम की आवश्यकता होती है. पाकिस्तानी जनता की अभिव्यक्ति वहाँ के छात्र-वर्ग ने दी; युवक नेताओं ने उन का उपयोग किया. परंतु **क्रांति की रीढ़ राजनैतिक अधिकारों के प्रश्न, जिन के लिए संघर्ष किया गया, अपनी जगह महत्त्वपूर्ण हैं. किंतु मेरी दृष्टि में पाकिस्तानी जनक्रांति की उस से भी अधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है छात्र-युवकों की चेतना.**

भगवतशरण उपाध्याय

प्रेज़िडेंट के पदत्याग के बारे में भगवतशरण उपाध्याय का कहना है कि शायद अय्यूब असंतोष को दबा नहीं सकते थे, क्यों कि उन का ख़ुद का दामन बे-दाग़ न था. यदि अमेरिकी स्रोतों पर विश्वास किया जाये तो अय्यूब और उन के परिवार के पास इतना धन एकत्र हो गया है कि वह संसार के कुछ सब से बड़े धनी परिवारों में गिना जा सकता है. इस के कारण शायद सेना में भी उन की साख खत्म हो गयी. बिना सेना की सहायता के बीमार और अब बूढ़े होते अय्यूब क्या कर सकते थे?

पाकिस्तान के पश्चिमी और पूर्वी भागों के परस्पर संबंधों के बारे में भगवतशरण का ख़याल है कि धीरे-धीरे पूर्वी बंगाल और पश्चिमी पाकिस्तान के तनाव बढ़ेंगे, यह निश्चित-सा है. इस समय पूर्वी बंगाल की जनसंख्या पश्चिमी पाकिस्तान से कहीं अधिक है. यह होते हुए भी बंगाली न सेना में हैं, न प्रशासन में, न राष्ट्रीय जीवन के अन्य क्षेत्रों में. अतः बंगाल अपनी संख्या के अनुपात से हर क्षेत्र में अपना अधिकार चाहेगा. यह पंजाबी और कुछ पठानी सामंतों के मूल-बद्ध स्वार्थों के विपरीत होगा. स्वार्थों के इस टकराव में नयी-नयी स्थितियाँ उत्पन्न हो कर जल्दी-जल्दी बदलेंगी. याह्या खाँ की पंजाबी-पठानी सेना, उस के पूर्व का पंजाबी-पठानी असैनिक शासन सभी बंगालियों में कटु स्मृतियाँ और कटु भाव उत्पन्न करेंगे. बंगाल को पाकिस्तान का अंग बना कर रखना उस समय पंजाबी प्रतिक्रिया पर निर्भर करेगा. सेना के द्वारा बंगाल को साथ रखना अधिक समय तक संभव न होगा, यह समझ ही पंजाबी-पठानी सामंतों को अपने निहित स्वार्थ त्यागने पर मजबूर कर सकती है. अंततः क्या होगा, दोनों के बीच किस प्रकार के समझौते होंगे, कहा नहीं जा सकता. फिर भी यह मानते हुए कि बंगाल पश्चिमी पाकिस्तान के साथ संवैधानिक रूप से बना रहेगा, दो सूरतें साफ़ नज़र आती हैं. यदि पंजाबी-पठानी सामंती वर्ग देश की एकता के हित में बंगाल को उस की जनसंख्या के अनुसार पूरा-पूरा हिस्सा देता है तो पाकिस्तानी राजनीति की आम तौर से और पश्चिमी पाकिस्तान की राजनीति की विशेष रूप से शक्ल बदल जायेगी. यह भी हो सकता है कि पंजाबी-पठानी सामंत वर्ग अपने वर्तमान हितों को सुरक्षित रखते हुए पूर्वी बंगाल को पूर्ण स्वायत्तता दे दे और विदेशी नीति सरीखे विषयों पर ही अंकुश रखे. वैसे भौगोलिक स्थिति, बंगाली भाषा और संस्कृति का पश्चिमी पाकिस्तान से अलगाव, उर्दू का प्रश्न और चीन की पूर्वी बंगाल में घुसपैठ ये सब बातें पूर्व बंगाल के पश्चिमी पाकिस्तान से पृथक होने की ओर ही संकेत कर रही हैं. मैं वर्तमान जन-क्रांति को वर्तमान पाकिस्तान के विघटन की प्रक्रिया का आरंभ मानता हूँ. अलावा इस के यह भी मानता हूँ कि वर्तमान पाकिस्तान के दोनों अंगों में सैनिक नायकों की तानाशाही को हटा कर अब प्रजातांत्रिक प्रक्रिया आरंभ होने को है.

राष्ट्रवादी मुसलमान

पाकिस्तान में लोकतांत्रिक अधिकारों और संघीय संविधान के लिए पिछले महीनों में हुए जन-आंदोलन की एक ऐतिहासिक विशिष्टता यह है कि यह आंदोलन बड़ी हद तक पाकिस्तान में उन तत्त्वों की जीत है, जो १९४७ के पहले राष्ट्रवादी कहे जाते थे और जिन्होंने बँटवारे के बाद पाकिस्तान में सत्तारूढ़ मुस्लिम लीग के विरुद्ध आर्थिक-सामाजिक आधारों पर असांप्रदायिक और धर्म-निरपेक्ष राजनीति को चलाने की कोशिश की थी, और इस के चलते बड़ी तकलीफ़ें भी उठाई थीं.

राष्ट्रीय आंदोलन के समय जो लोग 'राष्ट्रवादी मुस्लिम' कहे जाते थे, उन में एक सिरे पर समाजवादी और साम्यवादी थे (गो साम्यवादी १९४६-४७ में कुछ अर्से के लिए बँटवारे के समर्थक बन गये थे), बीच में ऐसे लोग थे जो कांग्रेस में सक्रिय थे, और दूसरे सिरे पर ऐसे लोग थे जो राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय तो नहीं थे, लेकिन बँटवारे की माँग के विरोधी थे, कई तरह के संगठन थे जिन के माध्यम से ये लोग सार्वजनिक जीवन में काम करते थे—मजलिसे अहरार, जमियत-उल-उलेमा, मोमिन कांफ़रेंस, शिया कांफ़रेंस आदि.

बँटवारे के बाद जहाँ भारत में साम्यवादी दल और समाजवादी दल संगठित राजनीति का काम करते रहे, और मुसलमान किसी हद तक इन के ज़रिए भी सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रहे, वहाँ पाकिस्तान में इन दलों का काम करना पहले भी बहुत कठिन रहा, १९५८ में सैनिक शासन की स्थापना के बाद इन संगठनों के ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिये जाने पर ये बिलकुल बिखर गये. पश्चिम पाकिस्तान में समाजवादी दल के जो नेता रह गये थे—**मुबारक सागर, मोहम्मद युसुफ़, सिद्दीक लोधी** आदि—उन के लिए राजनीति में सक्रिय रहना असंभव हो गया. निजी जीवन में भी उन्हें बड़ी तकलीफ़ें उठानी पड़ीं और उन में से कुछ की मृत्यु बड़ी करुणाजनक परिस्थितियों में हुई. साम्यवादी आंदोलन का प्रभाव सिखों में अधिक था, जो बँटवारे के बाद भारत में आ गये. पाकिस्तान में **मियाँ इफ़्तख़ारुद्दीन** और **मोहम्मद इब्राहिम** जैसे साम्यवादी नेताओं की राजनीति भी ख़त्म हो गयी. साम्यवादी आंदोलन का नाम अगर जीवित रह गया तो बहुत कुछ **फ़ैज़ अहमद फ़ैज़** के कारण जो एक प्रमुख शायर हैं. फ़ैज़ को भी काफ़ी दिन पाकिस्तान की जेलों में गुजारने पड़े.

पूर्वी पाकिस्तान में हालत कुछ ही बेहतर रही—वह भी बहुत कुछ शायद इस लिए कि पूर्वी पाकिस्तान में, पश्चिमी पाकिस्तान से अन्य भिन्नताओं के अलावा, एक करोड़ हिंदू भी हैं. वहाँ भी समाजवादियों का राजनीति पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नहीं रहा, लेकिन वे बहुत कुछ एक समूह के रूप में बने रहे. बंगाल में साम्यवादी दल का प्रभाव काफ़ी था. पाकिस्तान बनने के बाद भी, साम्यवादी दल प्रत्यक्ष तो अपना प्रभाव नहीं बढ़ा सका, लेकिन मौलाना भासानी के नेतृत्व में जो संयुक्त मोर्चा वहाँ बना, जिसे १९५४ के चुनावों में सफ़लता भी मिली, उस में साम्यवादियों का काफ़ी प्रभाव था.

१९४७ के पहले जो राष्ट्रवादी मुसलमान कांग्रेस या अन्य संस्थाओं में थे, उन में श्री रफ़ी अहमद क़िदवई जैसे विरले अपवादों को छोड़ कर, अधिकांश व्यक्ति केवल मुसलमानों के ही नेता बनने की असफल चेष्टा करते रहे थे. बँटवारे के बाद मुस्लिम लीग के मैदान में न रह जाने पर, ये भारतीय मुसलमानों के नेता बने, और इन का काम मुख्यतः मुस्लिम हितों की रक्षा करने की कोशिश करना रह गया. वास्तव में तो ये केवल कांग्रेस को मुस्लिम वोट दिलाने के ठेकेदार बन कर रह गये. भारतीय राजनीति में उन का स्थान अधिकाधिक गौण होता चला गया. मौलाना आज़ाद और क़िदवई की मृत्यु के बाद कोई ऐसा मुसलमान नेता नहीं रह गया जिस का देश की राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान हो. फ़लस्वरूप मुसलमानों में धीरे-धीरे दो प्रवृत्तियाँ उभरीं—कुछ लोगों ने मुस्लिम लीग या उस के जैसी अन्य संस्थाओं को पुनर्जीवित करने की कोशिश की. लेकिन अधिकांश भारतीय मुसलमान कांग्रेस से हट कर अन्य राजनीतिक दलों के साथ जुड़ने लगे, यद्यपि अभी भी बड़ी हद तक एक अनिश्चय की स्थिति बनी हुई है.

भारत में जहाँ राष्ट्रवादी मुसलमान शासन के साथ जुड़ कर महत्त्वहीन होते गये, वहाँ पाकिस्तान में मुस्लिम लीग की दकियानूसी राजनीति का विरोध करने की ज़िम्मेदारी उन्हीं पर आ पड़ी. पख़्तूनिस्तान में ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ारखाँ, बलूचिस्तान में अब्दुल समद खाँ, सिंध में गुलाम मोहम्मद सैयद और पंजाब में सोरिश काश्मीरी जैसे लोगों ने (सोरिश का उर्दू साप्ताहिक 'चट्टान' बँटवारे के पहले से ही जन-राजनीति का मुखपत्र रहा है) मुस्लिम लीग सांप्रदायिकता और सामंती राजनीति का दृढ़ता से विरोध किया. पिछले बीस वर्षों में इन का अधिकांश जीवन जेलों में गुजरा. पूर्वी पाकिस्तान में शेख मुजीबुर्रहमान पुराने राष्ट्रवादी हैं जिन्होंने जन-राजनीति को चलाया. जब ऐसा लग रहा था कि इन्हें सफलता मिलने वाली है, तभी अमेरिका के इशारे से पाकिस्तान में सेना ने अपना शासन स्थापित किया—ये नेता एक बार फिर जेल भेज दिये गये.

लेकिन अय्यूब शासन की दमन नीति आखिरकार उलटी पड़ी. जन असंतोष ने १९६८ का वर्ष समाप्त होते-होते विद्रोह का रूप ले लिया. अय्यूब सरकार को न सिर्फ़ इन सभी लोगों को रिहा करना पड़ा, बल्कि विपक्ष की 'लोकतांत्रिक कार्यवाही समिति' की ओर से जो लोग अय्यूब सरकार के साथ नये संविधान और नये राजनीतिक ढाँचे के बारे में बातचीत चला रहे हैं, उन में बड़ी संख्या इन्हीं लोगों की है.

पाकिस्तान में इन पुराने राष्ट्रवादियों की लोकतांत्रिक राजनीति की विजय का भारतीय राजनीति पर, भारत-पाकिस्तान संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ सकता है? क्या यह संभव है कि पाकिस्तान की राजनीतिक में हो रहे इन परिवर्त्तनों के फलस्वरूप इन संबंधों में गुणात्मक परिवर्त्तन आये, जिस से अंततः आशान्वित होने का समय शायद अभी नहीं आया है. ख़ान अब्दुल गफ़्फ़ार ख़ाँ की भूमिका इस संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हो सकती है, लेकिन वे काबुल में हैं और यह पता नहीं कि जन-आंदोलन के नेताओं ने उन से संपर्क स्थापित किया है अथवा नहीं. खान अब्दुल समद खाँ की रिहाई का भी अभी तक कोई समाचार नहीं मिला है. विपक्ष में भी श्री भुट्टो और श्री भासानी ने एक अलग संयुक्त मोर्चा बनाया है जो चीन-समर्थक और भारत-विरोधी है. लेकिन यह आशा फिर भी की जा सकती है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था और संघीय संविधान की स्थापना में पाकिस्तान की राजनीति में गहरा बदलाव आयेगा. जिस की अंतिम परिणति बँटवारे के अंत में ही हो सकती है. इस में दो ही तत्त्व मुख्य रूप से बाधक हो सकते हैं—भारत में संकीर्ण हिंदू राजनीति और विदेशी ताक़तों का दबाव.

खेल और खिलाड़ी

डीओलिवेरा कांड : भारत का मौन

कहावत है, ख्याति खड़ी करना चाहते हो तो विवाद खड़ा करो. विवाद खड़ा करने में जो व्यक्ति जितना ही सिद्धहस्त होगा वह उतना ही लोकप्रिय होगा. लेकिन दिक्कत यह है कि कुछ व्यक्ति चाहने पर भी कोई विवाद खड़ा नहीं कर सकते और कुछ मानो विवाद के लिए ही बने हों. इंग्लैंड के प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी डीओलिवेरा विवाद से जितना दूर रहना चाहते हैं वह उतने ही विवादास्पद बनते जाते हैं. पिछले कुछ दिनों से डीओलिवेरा का नाम लगातार देश-विदेश और प्रदेश के सभी प्रमुख समाचार पत्रों में मोटी-मोटी सुर्खियों में छप रहा है. पिछली सर्दियों में दक्षिण अफ़्रीका का दौरा करने वाली इंग्लैंड की टीम में डीओलिवेरा का नाम शामिल करने मात्र से ही वह दौरा रद्द हो गया. फिर इंग्लैंड की टीम ने भारत-पाक का दौरा करने का प्रस्ताव रखा. इंग्लैंड की टीम भारत नहीं आयी पर पाकिस्तान ज़रूर पहुँची मगर वहाँ की गृह-युद्ध की स्थिति के कारण खेल के मैदान में पाकिस्तानी दर्शकों ने काफ़ी उपद्रव किया जिसके कारण इंग्लैंड की टीम को दौरा अधूरा छोड़ कर ही अपने देश वापस लौट आना पड़ा.

सिद्धांत और प्रलोभन : पाकिस्तान में इंग्लैंड की टीम को जितनी मुसीबतें और परेशानियाँ उठानी पड़ीं उस की एक लंबी कहानी है और अब उसे बार-बार दोहराना अच्छा नहीं है. पर पिछले दिनों इंग्लैंड में इस रिपोर्ट पर बड़ी कहा-सुनी हुई कि इंग्लैंड की टीम में डीओलिवेरा को शामिल कर लेने के बाद जब दक्षिण अफ़्रीका का दौरा रद्द होता दिखायी देने लगा तो इसी बीच उन्हें दक्षिण अफ़्रीका की ओर से ५०,००० पौंड का प्रलोभन दिया गया. उन से केवल इतना कहा गया कि वह अपने आप को दक्षिण अफ़्रीका का दौरा करने में अनुपलब्ध घोषित कर दें. यों केवल इतने से काम के लिए (केवल कोई छोटा-मोटा बहाना बना कर अपनी असमर्थता प्रकट करना) यह प्रलोभन अपने आप में बहुत बड़ा है मगर इस सिद्धांतवादी खिलाड़ी ने यह प्रलोभन स्वीकार नहीं किया. यह रिपोर्ट जब पिछले दिनों ब्रिटेन के खेल-मंत्री डेनिस हावेल के विचारार्थ पहुँची तो वह बहुत चिंतित हुए और अधिकारी वर्ग में यह कहा जाने लगा कि यदि दक्षिण अफ़्रीका द्वारा डीओलिवेरा को यह प्रलोभन देने का समाचार सही साबित हुआ तो दक्षिण अफ़्रीका की टीम का इंग्लैंड का दौरा रद्द कर दिया जायेगा. हावेल ने इस समाचार पर टिप्पणी करते हुए कहा—'दक्षिण अफ़्रीका द्वारा इंग्लैंड के खिलाड़ियों पर इस तरह अनुचित दबाव से हम सचमुच बहुत चिंतित हैं'.

टीका-टिप्पणी : इस खबर के बाद टीका-टिप्पणी करने का सिलसिला शुरू हो गया. सब ने अपने-अपने ढंग से व्याख्याएँ करनी शुरू कर दीं. आखिर इस विवाद के केंद्र बेसिल डीओलिवेरा का घेराव किया गया. वह अपनी नेकनीयती के कारण काफ़ी समय तक चुप रहे, शायद वह इस विवाद को ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहते थे मगर अंत में उन्हें यह स्वीकार ही करना पड़ा कि पिछली गर्मियों में दक्षिण अफ़्रीका की ओर से उन्हें क्रिकेट का प्रशिक्षक नियुक्त करने का प्रस्ताव रखा गया था ताकि वह क्रिकेट टीम से अलग हो जायें. उन्होंने बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा—'उस नियुक्ति के साथ यह शर्त भी थी कि मुझे दक्षिण अफ़्रीका का दौरा करने वाली इंग्लैंड की टीम के लिए अपने आप को अनुपलब्ध घोषित करना होगा. लेकिन अपने देश इंग्लैंड की ओर से खेलने की मेरी तीव्र इच्छा ने उस प्रलोभन को ठुकरा दिया'.

जब उन से यह पूछा गया कि क्या उन्हें इस के लिए ५०,००० पौंड धनराशि देने को कहा गया था तो उन्होंने इस पर कुछ भी कहने से इनकार कर दिया. उधर दक्षिण अफ़्रीका के एक क्रिकेट अधिकारी से जब इस बारे में कुछ पूछ-ताछ की गयी तो उन्होंने भी इतना ही कहा कि इस बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं है.

दक्षिण अफ़्रीका द्वारा इस तरह के अनुचित तरीक़े अपनाये जाने पर इंग्लैंड में तीव्र प्रतिक्रिया हुई. इस तरह की भी माँग की जाने लगी कि अब यह घोषणा कर दी जानी चाहिए कि भविष्य में न तो कोई इंग्लैंड की टीम दक्षिण अफ़्रीका का और न दक्षिण अफ़्रीका की टीम

डीओलिवेरा : प्रलोभन से परे

कमी इंग्लैंड का दौरा करेगी. इस पर ब्रिटेन के खेल-मंत्री ने कहा—'यह सचमुच एक गंभीर स्थिति है. यदि कोई बाहरी सरकार ब्रिटेन के खिलाड़ियों पर अनुचित ढंग से कोई दबाव डालने की कोशिश करती है और उस के हमें पर्याप्त सबूत भी मिल जाते हैं तो हम इस की अवश्य जाँच-पड़ताल करेंगे'.

चोरी और सीना-ज़ोरी : इंग्लैंड के बाद अब ज़रा दक्षिण अफ़्रीकी अधिकारियों की सफ़ाई की भी कुछ चर्चा हो जाये. दक्षिण अफ़्रीकी खेल-संघ के अधिकारियों की एक बैठक में भी इस बात की पुष्टि की गयी और कहा गया कि यों बात-चीत के धरातल पर डीओलिवेरा से यह कहा गया था कि यदि वह चाहें तो दक्षिण अफ़्रीका में आ कर क्रिकेट प्रशिक्षक के रूप में काम कर सकते हैं मगर जब उन्होंने इस बारे में अपनी असमर्थता और अरुचि ज़ाहिर की तो उन के सामने कोई विधिवत प्रस्ताव नहीं रखा गया. कहा गया कि नातल विश्वविद्यालय के खेल-सचिव दक्षिण अफ़्रीका के आल-राउंडर क्रिकेट खिलाड़ी ट्रेवर गोडर्ड ने जब अपने पद से त्यागपत्र दे दिया था तब एक क्रिकेट प्रशिक्षक का पद खाली हुआ था. उस पद के लिए कई उम्मीदवारों के नाम सामने आये जिन में एक डीओलिवेरा का भी था. जुलाई १९६८ में जब डीओलिवेरा से इस संबंध में बातचीत की गयी तब तक उन्हें इंग्लैंड की टीम में शामिल भी नहीं किया गया था.

दक्षिण अफ़्रीका के अधिकारियों ने तो अपनी सफ़ाई दे कर अपना मन हल्का कर लिया पर इंग्लैंड के क्रिकेट अधिकारियों का सिरदर्द दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है. एम. सी. सी. के सचिव बिली ग्रिफ़िथ ने एक ओर जहाँ यह कहा—'हम इस गंभीर समस्या पर काफ़ी विचार-विमर्श कर रहे हैं'. वहाँ दूसरी ओर उन्होंने यह भी कहा—'सच पूछिए तो मैं पिछले कुछ महीनों से एम. सी. सी. के प्रधान को अपना त्याग-पत्र देने की सोच रहा हूँ'.

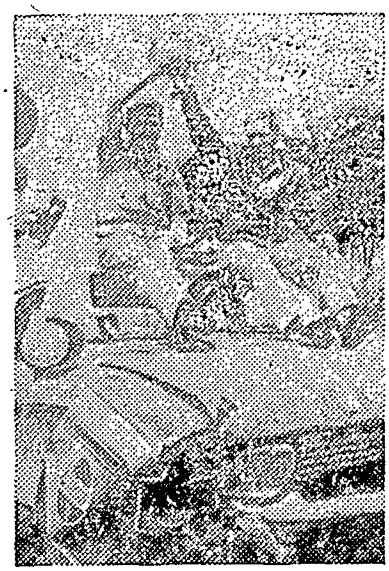

रोबिन हिलियर और जाक एयर्ड : सफ़री विजयी

रंग-भेद की नीति और भारत : जहाँ तक भारत का सवाल है वह इस सारे विषय को इंग्लैंड और दक्षिण अफ़्रीका का 'आपसी मामला' कह कर इस विषय से उदासीन नहीं रह सकता. दक्षिण अफ़्रीका में खेल-कूद में रंग-भेद की नीति के प्रति भारत की उदासीनता या लंबा मौन एक मायने में भारतीय खिलाड़ियों और खेल-प्रेमियों के लिए काफ़ी कष्टप्रद है. अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद की बैठक में केवल एक महत्त्वपूर्ण विषय (जो शायद परिषद् के अधिकारियों के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है) को छोड़ बाकी सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार होता है. भारतीय नेता या भारतीय खेल-अधिकारी इस बारे में कोई स्पष्ट नीति निर्धारित क्यों नहीं करते कि भारत को दक्षिण-अफ़्रीका (जहाँ कि खेल में कालों-गोरों में भेद किया जाता है) के विरुद्ध किसी अंतरराष्ट्रीय खेल प्रतियोगिता में भाग लेना चाहिए या नहीं. हाल ही में डेनिस ब्रूटस (लंदन में स्थित दक्षिण अफ़्रीकी रंग-भेद विरोधी ओलंपिक समिति के अध्यक्ष) ने भारत का दौरा किया. उन्होंने भी दक्षिण अफ़्रीका की रंग-भेद नीति का डट कर विरोध किया. उन्होंने भारतीय खेल-कूद परिषद के अध्यक्ष को भी एक पत्र लिखा और कहा कि दक्षिण अफ़्रीका विरोधी आंदोलन में भारत को सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए.

अंतरराष्ट्रीय ओलंपिक समिति और अंतरराष्ट्रीय फ़ुटबाल संघ और टेबल टेनिस संघ ने दक्षिण अफ़्रीका के बड़ी अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया है. कुछ साल पहले सोवियत संघ ने विंबलडन प्रतियोगिता में दक्षिण अफ़्रीकी खिलाड़ियों के विरुद्ध खेलने से मना कर दिया था. ईरान, पोलैंड और हंगरी ने भी डेविस कप में दक्षिण अफ़्रीका के विरुद्ध खेलने से मना कर दिया. लेकिन जहाँ तक भारतीय खिलाड़ियों का सवाल है वह डेविस कप प्रतियोगिता (लान टेनिस) और टामस कप और अखिल इंग्लैंड

प्रतियोगिता (बैडमिंटन) में दक्षिण अफ़्रीकी खिलाड़ियों के विरुद्ध खेलते रहे है. कुल मिला कर यह कि दक्षिण अफ़्रीका की रंग-भेद नीति के विरुद्ध जो लड़ाई भारत को लड़नी चाहिए थी वह दूसरे देश लड़ रहे हैं. और हम तमाशा देख रहे हैं. एक ग़लत बात का विरोध करने की भी हमारी शक्ति कम होती जा रही है. महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये दक्षिण अफ़्रीका की रंग-भेद नीति विरोधी आंदोलन का अनुसरण (केवल समर्थन नहीं) दुनिया के सभी देश कर रहे हैं मगर भारत, जिसे कि इस आंदोलन का नेतृत्व करना चाहिए था, अब भी मौन है.

मोटर रेस

सफ़री मोटर रैली

ईस्ट अफ़्रीकन सफ़री मोटर रैली प्रतियोगिता दुनिया की सब से कठिन मोटर रेस प्रतियोगिता मानी जाती है. इस प्रतियोगिता का श्रीगणेश १९५३ में किया गया था और तब से ले कर अब तक इसे हमेशा पूर्वी अफ़्रीकी चालक ही जीतते रहे हैं. ३,२०० मील (५,१५० किलोमीटर) लंबी प्रतियोगिता में हर चालक को बहुत ही टेढ़े-मेढ़े, पथरीले और रेतीले, कच्चे और पक्के रास्तों को पार करना पड़ता है. इस बार इस प्रतियोगिता का आयोजन ३ अप्रैल से ७ अप्रैल तक किया गया. यों इस बार भी इस प्रतियोगिता में ३० विदेशी चालकों ने भाग लिया. प्रतियोगिता के प्रबंधकों ने इस बार शुरू में ही यह घोषणा कर दी थी कि यदि इस बार किसी विदेशी को यह प्रतियोगिता जीतने का मौका नहीं मिला तो सच मानिये फिर दूर-दूर तक उन के जीतने के कोई आसार नहीं है. और उन की यह भविष्यवाणी फिर सच निकली.

इस बार भी केन्या के ही रोबिन हिलियर को विजयश्री प्राप्त हुई. केन्या के ही जोगिंदर सिंह और भारत भारद्वाज को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ. प्रथम स्थान प्राप्त करने वाले राबिन हिलियर और जक एयर्ड फार्ड टोनस गाड़ी चला रहे थे और केन्या के ही जोगिंदर सिंह और भारत भारद्वाज वाल्वो १४२ एस गाड़ी में सवार थे.

संक्षिप्त समाचार

पैदल चलना : अपना-अपना शौक ही तो है, किसी को लाखों मील पैदल पद-यात्रा करके विश्व कीर्तिमान स्थापित करने का शौक है तो किसी को १७६ मील लगातार साइकिल चलाने का. हाल ही में बाकर बाब थिरटले ने लगातार साढ़े ५५ घंटे पैदल चलने में २०१ मील और ६८२ गज का फ़ासला तय करने का विश्व-कीर्तिमान स्थापित किया है उन का पिछला रिकार्ड २०० मील और ६८२ गज़ था.

समाचार भूमि

आप्रवासी भारतीय

मनुष्य जाति के विभिन्न अंगों में शारीरिक और सांस्कृतिक सामीप्य हासिल करने की प्रक्रिया में जो अभियान किये और दूर-दराज़ की यात्राएँ कीं उन में भारतीयों का हिस्सा कम नहीं रहा. ये यात्राएँ व्यापारिक भी थीं, राजनीतिक या धर्म-प्रचार की भी, और उन के प्रभाव और परिणाम आज भी सारे एशिया में देखे जा सकते हैं, कम-ज़्यादा अन्य महाद्वीपों में भी. लेकिन पिछले दो सौ सालों में जो भारतीय विदेशों में जा कर बसे, उन की स्थिति पुराने भारतीय यात्रियों से सर्वथा भिन्न रही है.

आधुनिक काल में भारतीयों के आप्रवास के भी एक नहीं कई क़िस्से हैं, लेकिन इन सभी को एक सूत्र में जोड़ने वाला तथ्य यह है कि ये सभी

पी. डी. पिल्लई : संवाद और परिसंवाद

क़िस्से ब्रितानी साम्राज्यवाद के विस्तार के साथ जुड़े हैं. इस समय कुल कितने भारतीय वंशज विदेशों में बसे हुए हैं इस की ठीक संख्या बता पाना तो मुश्किल है, लेकिन निश्चय ही इन की संख्या पचास लाख से अधिक है.

गत ७ से ११ अप्रैल तक दिल्ली में इन आप्रवासी भारतीयों की समस्या पर विचार करने के लिए इंडियन काउंसिल फ़ार अफ़्रीका तथा इंडियन काउंसिल फ़ार कल्चरल रिलेशंस के तत्वावधान में एक परिसंवाद का आयोजन किया गया. इस मामले में 'देर आयद दुरुस्त आयद' तो नहीं ही कह सकते, सुबह का भूला शाम को घर आ गया, ऐसा कहना भी मुश्किल है. परिसंवाद में निबंध तो सारी दुनिया में बसे हुए भारतीयों की स्थिति और समस्याओं पर प्रस्तुत किये गये, लेकिन परिसंवाद का विषय सीमित था—एशिया और अफ़्रीका में बसे भारतीय. आयोजकों की दृष्टि कुछ और भी सीमित थी—पूर्वी अफ़्रीका में बसे हुए भारतीय.

विदेशों में बसे पचास लाख भारतीय वंशजों में से कम से कम चालीस लाख ऐसे हैं जो मज़दूरों के रूप में गये थे, या ले जाये गये थे. और पचास लाख में से बीस लाख केवल दो देशों में है—श्रीलंका और मलयेसिया. इन देशों में भारतीय वंशज कुल आबादी के दस-बारह प्रतिशत हैं. पश्चिमी इंडी (ट्रिनिडाड-टोबैगो) मध्य अमेरिका (गुयाना) और मारिशस तथा फ़िजी द्वीपों में भारतीयों का अनुपात ३६ से ६७ प्रतिशत के बीच है, और प्रत्येक देश में ढाई, तीन या छह लाख भारतीय बसे हैं. अफ़्रीका में भारतीयों की सब से अधिक संख्या दक्षिण अफ़्रीका में. (चार लाख से कुछ अधिक, तीन प्रतिशत). पूर्वी अफ़्रीका अर्थात् केन्या, तंजानिया और उगांडा में भारतीय कुछ आबादी के एक या दो प्रतिशत हैं और उन की संख्या केन्या में लगभग दो लाख है, अन्य दो देशों में एक लाख से कम.

क्या कारण है कि पूर्वी अफ़्रीका में बसे भारतीयों की समस्या पर ही अधिक ध्यान जाता है? कुछ तात्कालिक कारण हैं. ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिस में पूर्वी अफ़्रीका में बसे अधिकांश भारतीय किसी भी देश के नागरिक नहीं रह गये हैं. लेकिन कुछ अन्य कारण भी हैं.

ब्रितानी साम्राज्य के प्रसार के साथ, अंग्रेज़ी पूंजी हर उपनिवेश में बगानों में लगी—चाय, काफ़ी, या रबड़ के बगान, चीनी उद्योग के लिए गन्ने के. इन बगानों के लिए मज़दूरों की ज़रूरत थी. ऐसे मज़दूरों की जो गर्म और सीलन भरे, अक्सर जंगली इलाक़ों में काम कर सकें, जिन्हें मज़दूरी कम देनी पड़े, और जो टिक कर काम कर सकें. इस ज़रूरत को पूरा करने के लिए 'इंडेन्चर्ड लेबर' की पद्धति का आविष्कार किया गया, जिस के लिए हिंदुस्तान में एक नया शब्द चला, 'गिरमिटिया मज़ूर'. इस पद्धति के अंतर्गत दुनिया के हर कोने में भारतीय मज़दूर गये जहाँ अंग्रेज़ी बगानों में पूंजी लगी थी. ये मज़दूर अधिकांश उत्तर प्रदेश और बिहार के थे. किन परिस्थितियों में, अक्सर छल या ज़ोर-ज़बरदस्ती से भी, ये मज़दूर भरती किये गये, हज़ारों मील दूर ले जाये गये, और किन परिस्थितियों में रह कर इन्होंने काम किया, और अपनी हड्डियों से ब्रितानी पूंजीवाद का निर्माण किया, इस का एक लंबा और भयंकर इतिहास है.

परिसंवाद में प्रस्तुत, डलहौज़ी विश्व-विद्यालय हैलिफ़ैक्स, कनाडा, में इतिहास विभाग के अध्यक्ष डॉ. पी. डी. पिल्लई के निबंध, 'उपनिवेशों में लोगों के आप्रवास संबंधी ब्रितानी साम्राज्य की नीति' से इस इतिहास की

बिल्कुल सतही जानकारी मिलती है, केवल उस पक्ष की जिस का संबंध अंग्रेज़ों से है. डॉ. पिल्लई के निबंध में केवल तीन पक्ष हैं—अंग्रेज़ बगान-मालिक, हिंदुस्तान की अंग्रेज़ी सरकार और ब्रितानी सरकार का उपनिवेश-विभाग. यानी दरअसल सिर्फ़ एक पक्ष है, अंग्रेज़ों का. जिन हिंदुस्तानियों को इन तीनों की कार्रवाइयों के नतीजे भुगतने पड़े, उन पर क्या बीती, इस का पता आप को नहीं चलता.

गिरमिटिया मज़दूरों के अलावा भी बड़ी संख्या में भारतीय मज़दूर विदेशी बगानों में काम करने के लिए गये. खास तौर पर तमिल भाषी मज़दूर श्रीलंका और मलयेसिया में. मज़दूरों के साथ कुछ व्यापारी भी गये. उपनिवेशों में ब्रितानी प्रशासन का फैलाव होने पर अंग्रेज़ी पढ़े किरानियों की ज़रूरत पड़ी. हिंदुस्तान में चूँकि अंग्रेज़ी शिक्षा काफ़ी पहले शुरू हो गयी थी, इस लिए कुछ लोग सरकारी दफ़्तरों में काम करने भी गये, खास तौर पर बंगाल और मद्रास प्रांतों से एशिया के अन्य देशों को. पूर्वी अफ़्रीका में अंग्रेज़ी शासन स्थापित होने पर वहाँ भी सरकारी नौकरियों में भारतीय काफ़ी संख्या में गये. गुजरात और कच्छ के इलाके से भारतीय व्यापारी बड़ी संख्या में पूर्वी अफ़्रीका गये, यहाँ तक कि बीसवीं सदी के मध्य में पूर्वी अफ़्रीका का अधिकांश व्यापार भारतीय वंशजों के हाथ में आ गया था.

मलयेशिया में भारतीय वंशजों को ले कर कभी कोई बड़ी समस्या नहीं रही, शायद इस कारण कि वहाँ चीनी लोग भी बड़ी संख्या में हैं, और उन की तुलना में भारतीय वंशजों के संबंध स्थानीय मलय लोगों के साथ बहुत अच्छे रहे हैं.

श्रीलंका के स्वतंत्र होने के बाद वहाँ भारतीय वंशजों को नागरिकता प्रदान करने के संबंध में कुछ झगड़े उत्पन्न हुए—ब्रितानी साम्राज्य मौका मिलने पर हर जगह पुराने उपनिवेशों में फूट के बीज बो गया. यहाँ झगड़ा दरअसल पुराने और नये भारतीयों के बीच है, क्यों कि श्रीलंका की लगभग सारी ही जनसंख्या पिछले हज़ार सालों में भारत से जा कर वहाँ बसी. १९६४ में भारत और श्रीलंका के बीच हुए एक समझौते के अनुसार झगड़े का निपटारा किया जा रहा है जिस में लगभग आधे भारतीय वंशजों को स्थानीय नागरिकता मिल जायेगी, और शेष को भारत की.

आश्चर्य की बात है कि परिसंवाद में फ़िजी निवासी भारतीयों की समस्या पर कोई निबंध नहीं प्रस्तुत किया गया. फ़िजी में ढाई लाख भारतीय रहते हैं, कुल जनसंख्या के आधे. फ़िजी को अब भी स्वतंत्रता नहीं मिली है और ब्रितानी सरकार ऐसी कोशिश कर रही है कि फ़िजी स्थित भारतीय वंशजों को समान राजनीतिक अधिकार न दिये जायें ताकि वे वहाँ की राजनीति पर अपने संख्या बल के कारण हावी न हो सकें. इस प्रश्न पर भारत सरकार को ही नहीं, राजनीति के विचारकों को भी ध्यान देना चाहिए.

यशपाल घइ : समस्या का हल ?

मारीशस, ट्रिनिडाड, और टोबेगो में भी भारतीय वंशजों की कोई बड़ी समस्या नहीं है. यहाँ अधिकांश भारतीय मज़दूर गिरमिटिया मज़दूरों के रूप में चीनी मिलों के साथ लगे गन्ने के खेतों में काम करने गये थे, जो बाद में वहीं बस गये. भारत के साथ उन के भावनात्मक और सांस्कृतिक संबंध अब भी हैं, लेकिन वे अपने यहाँ के बहुजातीय समाज में बहुत-कुछ घुलमिल चुके हैं. गुयाना में अलबत्ता भारतीय और अफ़्रीकी वंशजों के बीच राजनीतिक कारणों से पिछले कुछ वर्षों में तनाव रहा है. लेकिन यह उस तरह की समस्या है जो किसी भी समाज के अंदर विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक शक्तियों के बीच तनाव से पैदा हो सकती है.

असली समस्या है पूर्वी अफ़्रीका में, अर्थात् केनिया, तनज़ानिया और उगांडा में, तथा दक्षिणी अफ़्रीका में. दक्षिण अफ़्रीका जैसी ही समस्या रोडेसिया में है, और पूर्वी अफ़्रीका जैसी ही मलावी और जैम्बिया में, लेकिन इन देशों में भारतीय वंशजों की संख्या बहुत कम है, किसी में भी दस हज़ार से अधिक नहीं. दक्षिण अफ़्रीका में भारतीयों के विरुद्ध अंग्रेज और डच वंशज गोरों के अन्यायों की कहानी बहुत पुरानी है, और इन अन्यायों के विरुद्ध चलने वाले संघर्षों की भी. इन्हीं संघर्षों में गांधी जी का राजनीतिक जीवन आरंभ हुआ था. दक्षिण अफ़्रीका में भी अधिकांश भारतीय शुरू में गिरमिटिया मज़दूरों के रूप में ही गये थे. लेकिन बाद में तमाम असुविधाओं और भेदभाव के बावजूद उन्होंने व्यापार और अन्य धंधों के ज़रिये अपनी आर्थिक स्थिति सुधार ली. लगभग १९५० तक दक्षिण अफ़्रीका में भारतीय वंशज अपने अधिकारों के लिए अलग से ही लड़ते रहे, लेकिन उस के बाद से अफ़्रीकियों के साथ उन का एक संयुक्त मोर्चा बन गया. स्वभावतः भविष्य दक्षिण अफ़्रीका की गोरी तानाशाही के विरुद्ध वहाँ की जनता के संघर्ष के नतीजों पर निर्भर है. परिसंवाद में श्री एम. पी. नैकर ने, जो दक्षिण-अफ़्रीका स्थित भारतीयों के एक प्रमुख और पुराने नेता हैं, पूरी पृष्ठभूमि की जानकारी देने वाला एक अच्छा निबंध प्रस्तुत किया.

पूर्वी अफ़्रीका का इतिहास भी भिन्न है, समस्या भी. इस इलाक़े में अधिकांश भारतीय स्वेच्छा से व्यापार करने के लिए गये, गो रेल-निर्माण और सरकारी नौकरियों के लिए कुछ भारतीय तत्कालीन भारत की अंग्रेज़ी सरकार के ज़रिये भी गये थे. इन देशों के स्वतंत्र होने पर वहाँ की सरकारों ने स्थानीय भारतीय वंशजों को देश की नागरिकता स्वीकार करने का अवसर दिया, लेकिन अधिकांश भारतीयों ने उसे स्वीकार नहीं किया. उन्होंने भारत की नागरिकता भी स्वीकार नहीं की, वरन् ब्रितानी नागरिक बने रहे. बाद में एक ओर तो इन देशों की सरकारों ने व्यापार और सरकारी नौकरियों से ऐसे लोगों को हटाना शुरू किया जो स्थानीय नागरिक नहीं थे, दूसरी ओर ब्रितानिया ने उन के इंगलिस्तान आने पर रोक लगा दी. फलस्वरूप इन की स्थिति बहुत-कुछ राज्य-विहीन व्यक्तियों की सी हो गयी है जिन्हें किसी भी सरकार का संरक्षण प्राप्त नहीं है. दारस्सलाम विश्वविद्यालय (तनज़ानिया) में कानून के प्रोफ़ेसर यशपाल घइ ने अपने निबंध में इन की की समस्या के मूल पक्ष को उठाया—स्थानीय समाज में भारतीयों का घोलमेल. नयी पीढ़ी इस दिशा में बढ़ भी रही है. लेकिन श्री घइ ने या केनिया उच्च न्यायालय के न्यायमूर्त्ति चानन्नसिंह ने (जिन्होंने नागरिकता के क़ानूनी पक्ष को अपने निबंध में प्रस्तुत किया) भारत सरकार की भूमिका के बारे में कुछ नहीं कहा, और न यही कि समस्या का हल क्या हो सकता है.

परिसंवाद का उदघाटन करते हुए भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री हिदायतुल्ला ने कहा कि भारत इन भारतीय वंशजों की समस्या की उपेक्षा नहीं कर सकता. लेकिन इस का ठोस रूप क्या हो? एक रूप यह हो सकता है कि इन भारतीय वंशजों को भारतीय नागरिकता प्राप्त करने का अवसर दिया जाये. दूसरा यह कि भारत सरकार पूर्वी अफ़्रीका के देशों से आग्रह करे कि वे इन भारतीय वंशजों को स्थानीय नागरिकता प्राप्त करने का अवसर दें.

भविष्य की नीति के मूल-तत्वों का निरूपण कठिन नहीं है, यद्यपि पिछली ग़लतियाँ जो समस्याएँ पैदा कर चुकी हैं उन से उबरना कठिन प्रतीत होता है. आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक स्तरों में आप्रवासी भारतीयों को उन देशों के लोगों में पूरी तरह घुलमिल जाना चाहिए जहाँ वे बस गये हैं. भारत के साथ उन का सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भावनात्मक संबंध न सिर्फ़ बना रहे, बल्कि उसे एक जीवित और सक्रिय संबंध बनाने के लिए लगातार कार्यवाही होती रहनी चाहिए.

विश्व

अमेरिका

किंग की बरसी और निक्सन की चिंता

अमेरिका के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन अब अपने पद पर जम गये प्रतीत होते हैं. उन के पिछले जो दो महत्वपूर्ण वक्तव्य सुनने को मिले उन में एक आणविक हथियारों से अमेरिका को बचाने के लिए प्रति-प्रक्षेपास्त्र अड्डों की स्थापना करने के बारे में था और दूसरा जॉनसन द्वारा जनवरी में पेश किये गये बजट में कटौती करना है. प्रति-प्रक्षेपणास्त्र के निर्णय से राष्ट्रपति की न केवल अपने देश के बड़े-बड़े नेताओं ने आलोचना की थी बल्कि अन्य देशों में भी इस फ़ैसले पर खासा रोष व्यक्त किया गया. इस के अलावा वीएतनाम समस्या के हल के लिए तरह-तरह की हवाएँ फ़िज़ां में तेज़ हो रही हैं. निक्सन के निकटवर्त्ती सूत्रों से भी पता चलता है कि शीघ्र ही कुछ अमेरिकी सैनिक स्वदेश लौटेंगे. कैनेडी बंधुओं में आख़िरी जीवित भाई ३६ वर्षीय एडवर्ड मूर कैनेडी जो अपने भाई रॉबर्ट कैनेडी की हत्या के बाद राजनैतिक तौर पर निष्क्रिय हो गये थे अब अपने दोनों भाइयों की तरह डेमोक्रेटिक पार्टी के प्रवक्ता के रूप में सामने आये हैं. उन्होंने न केवल निक्सन के प्रति-प्रक्षेपास्त्र अड्डों की स्थापना संबंधी निर्णय को ले कर प्रशासन को आड़े हाथों लिया है बल्कि नीग्रो नेता मार्टिन लूथर किंग की पहली बरसी पर यह घोषणा कर कि वह निग्रो जाति के उत्थान के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हैं, न केवल पददलित लोगों की सद्भावना प्राप्त की है बल्कि उदार तबके के दिलों में भी जगह बनायी है. निग्रो नेता डॉ. राल्फ एबरनाथी ने भविष्यवाणी करते हुए कहा है कि अमेरिका का अगला राष्ट्रपति एडवर्ड कैनेडी ही होगा. इस के अलावा अमेरिका में इस समय रॉबर्ट कैनेडी के हत्यारे सिरहन बिशरां सिरहन और किंग के कथित हत्यारे अर्ल जेम्स रे के मुक़दमों को ले कर लोगों में तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ हो रही हैं. रे को जिस न्यायाधीश ने ९९ वर्ष की सज़ा दी थी उस का देहांत हो चुका है. अब रे के वकील ने उसे सलाह दी है कि वह नये सिरे से मुक़द्दमे की माँग करे. उसे यह भी सलाह दी गयी है कि वह अपने आप को दोषी करार न दे. रे का मुक़द्दमा अभी प्रक्रियाओं की घेरेबंदी में ही घिरा हुआ है. किंग की विधवा कोरेट्टा किंग ने कहा है कि रे द्वारा हत्या का अपराध स्वीकार कर लिये जाने और रे को सज़ा दी जाने से ही किंग की हत्या का मामला खत्म नहीं हो जाता. उस की पूरी तफ़सील की जानी चाहिए और इस के पीछे जिस गिरोह का हाथ है उस को सज़ा दी जानी चाहिए.

समस्याएँ ही समस्याएँ : ये सभी समस्याएँ राष्ट्रपति निक्सन के सामने हैं. राष्ट्रपति निक्सन और उन के सभी परामर्शदाता आजकल इन्हीं समस्याओं के समाधान में बुरी तरह उलझे हुए हैं. प्रतिरक्षामंत्री मेलविन लेयर्ड ने पिछले दिनों वीएतनाम की यात्रा की थी. यात्रा के बाद उन्होंने राष्ट्रपति निक्सन को अपनी रिपोर्ट दी. बताया जाता है कि लेयर्ड ने राष्ट्रपति को सलाह दी है कि वीएतनाम से अमेरिकी सैनिकों की एक खेप वापस बुला ली जाये. लेकिन राष्ट्रपति के ही एक निकटवर्त्ती सलाहकार और राष्ट्रीय सुरक्षा के ज़िम्मेदार मंत्री कीसिंगर ने यह सलाह दे कर कि राजनयिक तौर पर वीएतनाम से सैनिकों को वापस बुलाना उचित नहीं होगा, ह्वाइट हाउस में खासा वावेला खड़ा कर दिया है. बेशक पद सँभालने के बाद निक्सन ने यह बात कही थी कि उन के मंत्रियों का आपस में और उन के साथ मतभेद हो सकता है लेकिन वीएतनाम के मामले में दो मंत्रियों में इस खुले मतभेद के कारण उन्हें आफ़त हुई है. निक्सन ने कंबोडिया के राज्य-अध्यक्ष नरोदम सिहनुक को यह आश्वासन दिला कर कि उन की सीमा का अतिक्रमण नहीं किया जायेगा, उन का दिल जीतने की अवश्य कोशिश की है. ४ साल पहले जब कंबोडिया की सीमा का अतिक्रमण कर अमेरिकी सैनिक वीएतनाम गये थे तब अमेरिका और कंबोडिया के बीच राजनयिक संबंध टूट गये थे. यदि सद्भावना का परिचय देते हुए कंबोडिया के साथ पुनः राजनयिक संबंध स्थापित हो गया तो यह निक्सन की राजनैतिक जीत होगी. अगले कुछ दिनों में विदेशमंत्री विलियम रोजर्स भी वीएतनाम के दौरे पर जाने वाले हैं. अगर वीएतनाम से अमेरिकी सैनिक हटाने का निर्णय ले ही लिया गया तो वह रोजर्स के वहाँ लौटने के बाद ही लिया जायेगा.

बजट में बचत : भूतपूर्व राष्ट्रपति लिंडन जॉनसन ने जनवरी १९७० का बजट पेश कर दिया जो एक जुलाई से लागू होने वाला था. पिछले दिनों राष्ट्रपति निक्सन ने कुछ घरेलू, प्रतिरक्षा और वीएतनाम के खर्चे में कटौती कर के ५८ करोड़ डॉलर की बचत की है. इतनी बड़ी बचत १९५१ में पहली बार की गयी थी. इस बचत का मकसद उन लोगों को चुप कराना है जो अमेरिका के वीएतनाम और प्रति-प्रक्षेपास्त्र अड्डों की स्थापना संबंधी नीतियों के विरोधी हैं. सेनेट में डेमोक्रेटिक पार्टी के मुख्य सचेतक एडवर्ड कैनेडी ने यह कह कर कि प्रति-प्रक्षेपास्त्र अड्डों की स्थापना से रूस की बौखलाहट और बढ़ेगी और आणविक हथियार कम करने के सभी प्रयास धरे के धरे रह जायेंगे, प्रशासन का ध्यान आकृष्ट किया है. ऐतिहासिक और नैतिक तौर पर यह दावा करना ग़लत है कि प्रति-प्रक्षेपास्त्र अड्डों की स्थापना से रूस नहीं बौखलायेगा. प्रशासन ने ७ अरब डालर की जो माँग की है वह प्रतिरक्षा के अंतर्गत नहीं आती. इस से ग़लत और भ्रामक सुरक्षा की भावना अवश्य पैदा की जाती है. कैनेडी का कहना कि अमेरिका को ऐसी नीतियाँ अपनानी चाहिए जिस के कारण चीन के अस्तित्व को भी मान्यता मिले उस को इनकार करने से और संयुक्त राष्ट्र का सदस्य न बनाने से विश्व में एक बहुत बड़ा ख़तरा पैदा होगा.

मार्टिन लूथर किंग की पहली बरसी पर मेंफिस में १५ हज़ार आदमियों ने बहुत बड़ा जुलूस निकाला और किंग के अधूरे काम को आगे बढ़ाने की हलफ ली. ऐसे जुलूसों में अक्सर कुछ असामाजिक तत्त्व भी शामिल हो जाते हैं जिस के कारण लूट-खसोट की कार्रवाइयाँ भी हो जाया करती हैं. इस जुलूस में भी कुछ ऐसा ही हो गया लेकिन जब एडवर्ड केनेडी उन लोगों के बीच अचानक पहुँच गये तो सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ. निग्रो लोगों को संबोधित करते हुए कैनेडी ने कहा कि नेता आते हैं और चले जाते हैं लेकिन जिन उद्देश्यों के लिए वे लड़ते हैं वे हमेशा बने रहते हैं. जाति-भेद संबंधी अन्याय की भर्त्सना करते हुए उन्होंने कहा कि इनसान अब भी सुदूर देशों में मर रहे हैं. अमेरिका में बच्चे अब भी भूखे रहते हैं. स्कूल अब भी अलग-अलग हैं. बेशक क़ानूनी तौर पर ऐसा जायज़ नहीं, और खतरनाक हथियारों के लिए बेइंतहा दौलत खर्च की जाती है. कुछ लोगों के लिए यह दुख का दिन है, आतंक का दिन है लेकिन मेरे लिए यह आशा का दिन है.

एडवर्ड कैनेडी के इन वाक्यों ने निग्रो लोगों पर इच्छित प्रभाव डाला और डॉ. एबरनाथी तो बे-हिचक बोले कि हमारा और सारे अमेरिका का नेता एकमात्र कैनेडी है. दूसरे दिन काली शक्ति के एक और नेता कारमाइकेल ने फ्रांस को आड़े हाथों लेते हुए कहा कि कालों पर वहाँ बहुत प्रतिबंध हैं लेकिन कैनेडी की तरह उन्होंने भी आशा की किरण हाथ में लिये हुए कहा कि वह दिन दूर नहीं जब कालों का संयुक्त राज्य अफ़्रीका बनेगा.

निक्सन केनेडी के बढ़ते हुए रुतबे से अच्छी तरह वाकिफ़ हैं और वह बहुत ही सोच-समझ कर अपनी नीतियाँ निर्धारित कर रहे हैं. ताकि कहीं उन के विरोधी उन की कमज़ोर नीतियों का फ़ायदा उठा कर उन की स्थिति हास्यास्पद न कर दें. पिछले दिनों बुदापेस्त सम्मेलन में लगभग सभी प्रतिनिधियों ने यह मत व्यक्त किया था कि पूर्व और पश्चिम यूरोप का एक साथ सम्मेलन बुला कर पूरे यूरोप की समस्याओं का हल ढूँढा जाये. ऐसा होने से

नैटो का अस्तित्व खत्म हो जाता है. अमेरिका को इस सम्मेलन के इस प्रस्ताव से काफ़ी तकलीफ़ हुई और वह अपने सभी यूरोपीय देशों के मित्रों से संपर्क बनाये हुए है कि इस मामले में क्या किया जाये. कैनाडा के प्रधान मंत्री त्रूदो ने भी राष्ट्रपति निक्सन से बातचीत की थी और उन्होंने धीरे-धीरे नैटो से अपना संबंध खत्म करने का इशारा किया था. इस प्रकार निक्सन के लिए नैटो की समस्या ने उन के पश्चिमी यूरोपीय मित्रों को उधेड़-बुन में डाल दिया है.

कम्युनिस्ट जगत्

तिकोना संघर्ष

सुदूर पूर्व में उसूरी नदी की छाती पर स्थित दमिश्की टापू पर लगातार रूसी सीमा-रक्षकों से चीन का उलझना और रूस द्वारा बार-बार कहे जाने पर भी बातचीत के लिए तैयार न होना, ये ऐसी बातें हैं जिन से यह संकेत मिलता है कि मार्च के आरंभ में चीन ने रूस के साथ जो सीमा-संघर्ष छेड़ा था, उस के पीछे उस की एक सुनियोजित योजना थी. लगता है कि मौजूदा संघर्ष में चीन का लक्ष्य कुछेक सीमा-क्षेत्र हथियाना नहीं है, बल्कि वह इस की आड़ में कम्युनिस्ट जगत् में अपनी धाक जमाना चाहता है. उसे अपनी इस चाल में, आंशिक ही सही, सफलता भी मिली है. वारसाउ संधि के सदस्य सात देशों—सोवियत संघ, पूर्वी जर्मनी, पोलैंड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, रोमानिया और बुल्गारिया के बुदापेस्त में हुए हाल के सम्मेलन में चीन की सफलता की अनुगूंज सुनाई दी थी (देखिए **दिनमान** ६ अप्रैल). जून में मास्को में होने वाले कम्युनिस्ट सम्मेलन में वह अनुगूंज पुन: सुनाई नहीं देगी, हालात को देखते हुए ऐसा नहीं कहा जा सकता है.

चीनी लक्ष्य : अफ़्रीकी और एशियाई देशों में मुँह की खाने के बाद चीनी नेतृत्व ने विश्व-मंच पर स्वयं को निपट एकाकी पाया. वह अफ़्रीका के दो-चार छोटे देशों की मित्रता—आर्थिक और तकनीकी सहायता पाने के लिए की गयी मित्रता पर भरोसा नहीं कर सकता है और न ही पाकिस्तान की दोमुँही नीति उसे आश्वस्त रख सकती है. पूर्व यूरोप का छोटा-सा देश अल्बानिया भी तीसरी शक्ति के रूप में उस की प्रतिष्ठा को बनाये रखने में कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर सकता है. दक्षिण पूर्व एशिया में भी चीन की हालत खस्ता है और वीएतनाम-युद्ध के जारी रहते यह जो थोड़ा-बहुत भ्रम था कि उत्तरी वीएतनाम के लौह पुरुष राष्ट्रपति हो ची मिन्ह अध्यक्ष माओ के भक्त हैं, वह भी पेरिस-वार्त्ता आरंभ होने के साथ ही गत वर्ष समाप्त हो गया. इसी बीच चेकोस्लोवाकिया की घटना हुई जिस के कारण न केवल सोवियत संघ की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँची, बल्कि पूर्व यूरोप के अन्य कम्युनिस्ट देशों के मन में भी जाने-अनजाने रूस का डर बैठ गया. चीनी नेतृत्व ने इस स्थिति को बखूबी समझा और अवसर से भरपूर लाभ उठाने के लिए वह सक्रिय हो गया. उसने पूर्वी यूरोप में अपना प्रभाव जमाने के लिए हाथ-पैर मारने शुरू कर दिये. गत वर्ष के अंत में उस ने पहले अल्बानिया में अपने प्रक्षेपास्त्र अड्डे स्थापित किये और अब रूस से हाथापाई की. चीन ने अपनी इन कार्रवाइयों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वह एक सर्वशक्ति संपन्न देश है; उस की शक्ति रूस से कम नहीं है और वह कम्युनिस्ट देशों को रूस से अच्छा नेतृत्व दे सकता है.

चौड़ाती दरार : पूर्वी यूरोप में युगोस्लाविया और रोमानिया पहले ही रूसी नेतृत्व को चुनौती दे चुके थे. अन्य देशों ने यद्यपि चेक-अभियान के समय रूस का साथ दिया था, किंतु उस के बाद रूस के रवैये के प्रति वे भी शंकालु हो गये और उन्होंने अपने दिल में कहीं यह महसूस किया कि चेक जनता की भावनाओं को कुचलने के लिए रूस का साथ दे कर उन्होंने अच्छा नहीं किया है और हो सकता है कि भविष्य में कम्युनिस्ट आंदोलन को संकट के नाम पर एक एक-कर के रूस उन की भी खबर ले. फिर आर्थिक तथा औद्योगिक दृष्टि से संपन्न इन देशों को अपना माल खपाने के लिए नया बाज़ार भी चाहिए जो उन्हें चीन में मिल सकता है. इस सब का परिणाम यह हुआ कि अंतरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन सिमट कर राष्ट्रीयता के दायरे में समा गया. अब हंगरी की कम्युनिस्ट पार्टी के अध्यक्ष श्री कादार 'दक्षिणपंथियों की ओर से खतरे' की आड़ में चेकोस्लोवाकिया में तथा एक हद तक अपने यहाँ रूस द्वारा अपनाये जा रहे 'कठोर रवैये' का भले ही समर्थन करें, किंतु पिछले दिनों बुदापेस्त सम्मेलन में जो कुछ हुआ उस से यह स्पष्ट हो गया कि पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट देशों को अंतरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन से कहीं अधिक चिंता अपने अस्तित्व की है; यह कि अब उन्हें रूसी नेतृत्व पहले की तरह स्वीकार्य नहीं है और उन के दिलों में चीन को भी स्थान मिल चुका है. यदि चीन उन के हितों को ठेस न पहुँचाये तो वे उसे अपनी बिरादरी में शामिल कर सकते हैं. बुदापेस्त सम्मेलन में चेक कम्युनिस्ट पार्टी के प्रथम सचिव अलक्सांद्र डुबचेक को अध्यक्ष बना कर जहाँ एक ओर गत अगस्त में रूस का साथ दे कर की गयी अपनी भूल का उन्होंने परिमार्जन किया है वहाँ दूसरी ओर सम्मेलन में पारित प्रस्ताव में रूसी सीमा पर चीन की गतिविधियों की निंदा न कर के, परोक्ष रूप से ही सही, चीन को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया है कि सीमा-विवाद में वे वस्तुत: तटस्थ है और यह कि वे उस से संबंध घनिष्ठ करने के लिए इच्छुक हैं.

दिल की बात : बुदापेस्त सम्मेलन में चीन की निंदा न किये जाने की बात को रोमानिया के विरोध से जोड़ने की बराबर कोशिश की गयी है, की जा रही है, परंतु वास्तविकता कुछ और है. यह सच है कि चीन की निंदा न करने की माँग रोमानिया ने की. रोमानिया पहले भी चीन के प्रति उदार रुख अपनाता रहा है, यही नहीं, वह प्राय: रूस के रवैये का कटु आलोचक भी रहा और अब भी है. उस की इसी नीति के कारण चेकोस्लोवाकिया-संकट के बाद यह आशंका उत्पन्न हुई थी कि संभवत: रूस का अगला शिकार रोमानिया और युगोस्लाविया में से कोई एक होगा. क्योंकि रोमानिया से भी एक क़दम आगे बढ़ कर राष्ट्रपति टीटो ने रूस की कार्रवाई की भर्त्सना की थी. उन का रुख रूस के प्रति अब भी पहले जैसा ही आक्रामक है. गत माह युगोस्लाव कम्युनिस्ट पार्टी के बेलग्राद में हुए अधिवेशन में उन्होंने पुन: रूसी नेतृत्व पर तीव्र प्रहार किये थे (देखिए **दिनमान २३ मार्च**). इसी प्रकार वारसाउ संधि देशों के बुदापेस्त सम्मेलन में भाग लेने के बावजूद रोमानिया ने अपने दिल की बात कहने में कोई संकोच नहीं किया. रूस के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी. रोमानिया का यह रवैया तो अपेक्षित ही था. नयी बात तो यह थी कि दूसरे देशों ने ही इस बार उस का साथ दिया जिस के कारण रूस को चीन की निंदा करने से संबंधित वह 'अमरफल' नहीं मिल सका जिस को पाने के लिए उस ने इतनी दौड़-धूप के बाद सम्मेलन का आयोजन किया था. इस से पता चलता है कि कम्युनिस्ट खेमे में कौन अपना और कौन पराया की पहचान इतनी मुश्किल हो गयी है कि सभी एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखने लगे हैं. पश्चिमी यूरोप के देशों से 'यूरोपीय सुरक्षा' के लिए बातचीत का आग्रह भी इसी संदेहपरक दृष्टि का परिणाम है. पूर्वी यूरोप के कम्युनिस्ट देशों का अगला संभावित प्रयास

शायद एक जुट हो कर एक ऐसा मच तैयार करना होगा जिस पर इकट्ठे हो कर वे कम्युनिस्ट आंदोलन की गतिविधियों पर नज़र रख सकें. यह संभावना इस बात की द्योतक है कि कम्युनिस्ट खेमे में शक्ति संतुलन को ले कर ठीक उसी प्रकार के त्रिकोणात्मक संघर्ष का श्रीगणेश हो चुका है जिस प्रकार का संघर्ष रूस, अमेरिका और चीन के वीच छिड़ा हुआ है.

पश्चिम एशिया

वार्त्ता और उसके आसपास

महासचिव ऊ थाँ के विशेष प्रतिनिधि गुन्नार यारिंग पुन: मास्को में स्वीडन के राजदूत के रूप में काम करने के लिए चले गये हैं. यारिंग के इस निश्चय के आवार पर विश्व के अनेक समाचारपत्रों ने यह लिखा था कि वह पश्चिम एशिया समस्या में कोई उचित और व्यावहारिक हल निकालने में असफल रहने के कारण अपने पद से त्यागपत्र दे कर चले जा रहे हैं. मगर संयुक्त राज्य कार्यालय से जारी किये गये महासचिव के एक वक्तव्य में इस समाचार का खंडन किया गया है. महासचिव ने इस वात को ग़लत वताया है कि यारिंग स्थायी या अस्थायी रूप से उन के विशेष प्रतिनिधि का पद छोड़ रहे हैं. वास्तव में यारिंग और ऊ थाँ ने आपस में सोच-विचार कर यह निश्चय किया है कि पश्चिम एशिया समस्या में मध्यस्थता उस स्थिति में पहुँच गयी है कि अव चार वड़े राष्ट्रों की वातचीत के लिए कुछ समय के लिए मैदान खाली छोड़ देना चाहिए. ऊ थाँ का विश्वास है कि चार वड़े राष्ट्रों का फ़ैसला २२ नववंर १९६७ के सुरक्षा परिषद् के प्रस्ताव के अनुकूल होगा और वह राजदूत यारिंग के प्रयासों में सहायता पहुँचायेगा. इस वक्तव्य का मतलव यह है कि यदि आवश्यकता हुई तो ऊ थाँ गुन्नार यारिंग को पुन: अरवों और इस्राइलियों के वीच मध्यस्थता करने के काम पर नियुक्त करेंगे. यारिंग ने अपने पद से त्यागपत्र दिया या वह चार वड़े राष्ट्रों का कार्य सुगम करने के लिए सामने से हट गये, यह गौण प्रश्न है. वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या पश्चिम एशिया की यह समस्या किसी समुचित हल के नजदीक पहुँच गयी है या उस से भी खिसक गयी है.

हुसैन का सुझाव : चार वड़ों की वार्त्ता के प्रति इस्राइल ने अपना रुख वहुत पहले ही स्पष्ट कर दिया है. इस्राइली अविकारियों ने संयुक्त राज्य अमेरिका से कहा है कि वह अमेरिका या अन्य किसी राष्ट्र द्वारा थोपा गया कोई भी हल स्वीकार करने के लिए वाध्य नहीं होंगे. यद्यपि संयुक्त राज्य अमेरिका के विदेश मंत्री विलियम रोजर्स के अनुसार 'हम ने यह स्पष्ट कर दिया है कि हम युद्धरत राष्ट्रों पर कोई भी हल थोपने की कोशिश नहीं करेंगे". फिर भी इस्राइली नेताओं में वड़े राष्ट्रों के प्रति कोई उत्साह नहीं है. जहाँ तक अरवों का संवंध है उन की स्थिति शोचनीय है. वह इस्राइल के साथ प्रत्यक्ष वार्त्ता करने पर इस लिए तैयार नहीं हैं कि उन्हें जन-भावना और फिलिस्तीन मुक्ति के छापामारों का डर है. और उस के विरुद्ध अपने चुनौतीपूर्ण वक्तव्यों से अविक आगे जाने का उन में इस लिए साहस नहीं है कि वह यह जानते हैं कि अव भी प्रत्यक्ष युद्ध में वह हार जायेंगे. इस लिए उन्होंने चार वड़े राष्ट्रों से अलग से भी वार्त्ता जारी रखने का निश्चय किया है. संभवत: इस लिए शाह हुसैन पहले द गॉल से और वाद में न्यूयार्क में अमेरिकी अविकारियों से वातचीत करने गये. शाह हुसैन ने न्यूयार्क में पश्चिम एशिया समस्या को हल करने के लिए ६ सूत्री प्रस्ताव दिया है. उन के अनुसार वह न केवल युर्दान की ओर से वल्कि संयुक्त

गुन्नार यारिंग : फ़िलहाल त्याग-पत्र

अरव गणराज्य के राष्ट्रपति नासिर का भी प्रतिनिधित्व कर रहे हैं. राष्ट्रीय प्रेस क्लव में वोलते हुए उन्होंने अपने सुझाव की व्याख्या करते हुए कहा कि अरव इस्राइल की प्रभुसत्ता को स्वीकार करने तथा अकावा की खाड़ी और स्वेज़ नहर के वीच से सभी राष्ट्रों को यातायात का अविकार दिया जायेगा. उन के अनुसार अरव युर्दान के पश्चिमी किनारे और कई अन्य क्षेत्रों का विसैनीकरण करेंगे किंतु येरूशलम पर कभी इस्राइलियों का कब्ज़ा वर्दाश्त नहीं कर सकेंगे.

घना

मानता हूँ यह भ्रष्टाचार है

अपने प्रति भ्रष्टाचार के आरोपों को स्वीकार कर अपना पद तुरंत छोड़ देने का निर्णय कर के घना के सैनिक शासनाध्यक्ष ५३ वर्षीय लेफ्टिनेंट जनरल जोसेफ अंकरा ने सभी देशवासियों को आश्चर्य में डाल दिया. एंक्रूमा के भ्रष्ट शासन को समाप्त कर जिस सैनिक सरकार की स्थापना हुई थी उस का लेफ्टिनेंट जनरल जोसेफ अंकरा के लिए स्पष्ट आदेश था कि वे भ्रष्टाचार को दूर रख कर सैनिक शासन को स्वच्छ और ईमानदार रखेंगे. इस आदेश का पालन करते हुए वे प्रशासन कार्य कुशलतापूर्वक चला रहे थे और इतने लोकप्रिय हो गये थे कि घना में असैनिक सरकार की स्थापना के लिए सितंवर में जो आम चुनाव होने वाले हैं उन में असैनिक सरकार की अध्यक्षता भी उन्ही के द्वारा होने की पूरी संभावना थी. अत: भ्रष्ट तरीके अपनाने के आरोपों को स्वीकार कर अचानक अपना पद छोड़ देने का उन का निर्णय सभी देशवासियों के लिए विस्मयकारी था.

समूचे कांड की शुरुआत विअफ़्रा से निर्वासित फ्रांसिस नेज़राइव नामक एक व्यापारी से हुई जिस ने अपने ठाठ-वाट और अपनी खूवसूरत स्विस पत्नी के कारण राजधानी अंकरा में हलचल मचा दी थी. इस व्यक्ति का दावा था कि वह एक विक्री अनुसंधान केंद्र वना रहा है. दरअसल वह विदेशी व्यापारियों से इस नाम पर पैसा खींच रहा था कि वह उस विवेयक को नहीं आने देगा जिस के लागू होने से विदेशी, घना में व्यापार नहीं कर सकेंगे.

इस्तीफ़े की नौवत : जव फ़्रांसिस नेज़राइव की हरकतों का भेद खुला तो पुलिस कमिश्नर, एटर्नी जनरल और जज—इन तीन सरकारी अविकारियों ने सैनिक शासनाध्यक्ष से उन के महल में जा कर भेंट की. भेंट के वाद सात सदस्यों की सत्ताधारी परिषद् ने यह निष्कर्ष जारी किया कि नेज़राइव ने स्वीकार किया है कि उस ने इस तरह तीस हजार डालर एकत्र किये और अपना कमीशन काट कर पूरी रक़म श्री अंकरा को सौंप दी. इस के अतिरिक्त शासनाध्यक्ष महोदय ने छह हज़ार डालर की रक़म और एक विदेशी फ़र्म से स्वीकार की जो उन्होंने उन राजनैतिक नेताओं में वितरित की जो राष्ट्रपति पद की उन की उम्मीदवारी के समर्थक थे. सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार जव शासनाध्यक्ष महोदय पर ये आरोप लगाये गये तो उन्होंने तुरंत उन्हें स्वीकार कर लिया और उसी समय अपने पद से त्यागपत्र दे दिया. इस प्रकार वे प्रमाण सहित धन प्राप्त करने वाले और इसी वात पर अपना पद छोड़ने वाले पहले अफ़्रीकी नेता हैं.

सत्ताधारी परिषद् ने ३३ वर्षीय व्रिगेडियर अकवासी अमानकवा अडरीफा को नया शासनाध्यक्ष चुन लिया है जो एंक्रूमा शासन को समाप्त करने के आंदोलन का नेतृत्व करने में देशव्यापी ख्याति प्राप्त कर चुके हैं.

दक्षिण पूर्व एशिया

हित अपने-अपने सुरक्षा अपनी-अपनी

दक्षिण पूर्व एशिया के संबंध में एक नयी नीति की आवश्यकता एशियाई देशों में ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के अनेक मित्र देशों में भी महसूस की जा रही है. इस क्षेत्र के देशों की आर्थिक प्रगति और विकास में यूरोपीय देशों की दिलचस्पी राजनैतिक स्वार्थों से अछूती नहीं कही जा सकती. दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के आपसी संबंधों और इस संदर्भ में एशिया तथा यूरोपीय देशों की नीति में समय-समय पर परिवर्तन होते रहे हैं. समूचे दक्षिण पूर्व एशिया के प्रति विश्व की नयी नीति में फारमोसा, दक्षिण कोरिया और जापान की सब से अधिक दिलचस्पी है.

इस में संदेह नहीं कि कम्युनिस्ट चीन के प्रति दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में घृणा या भय की भावना समान रूप से मौजूद है लेकिन इस आधार पर वे परस्पर सुरक्षा की व्यवस्था के बारे में अपने मतभेद दूर नहीं कर सके हैं. समूचे दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की सुरक्षा में अमेरिकी प्रभुत्व की स्थिति शायद एक ऐसा कारण है जो दक्षिण पूर्व एशियाई देशों को आपस में एक नहीं होने दे रहा है. और इस प्रश्न को ले कर अमेरिका और उस के मित्र देशों में भी शुरू से जो मतभेद चले आ रहे थे वे अब सतह पर आने लगे हैं. अमेरिका यह चाहता है कि कम्युनिस्ट ख़तरे से दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की रक्षा के लिए उस के मित्र देश अधिक सक्रिय हों और सुरक्षा का भार अधिकाधिक उठायें. नये अमेरिकी राष्ट्रपति की इस नीति का आभास पहले ही मिल चुका है कि अमेरिका मित्र देशों को प्रादेशिक सुरक्षा व्यवस्था के लिए अधिक प्रोत्साहन देना चाहता है. इस कारण इस क्षेत्र के देशों की आपसी संबंधों की स्थिति काफ़ी पेचीदा हो गयी है. पुरानी भावनाएँ फिर से उभरने लगी हैं और दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के बीच सहयोग की संभावनाओं पर उन का असर पड़ रहा है.

प्रादेशिक समझौतों का भविष्य : दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के परस्पर सुरक्षा से संबंध रखने वाले प्रादेशिक समझौते इस क्षेत्र के शक्तिशाली देशों के रवैये पर ही निर्भर हैं. इन शक्तिशाली देशों में जापान का प्रमुख स्थान है और अभी तक जापान ने उत्तर एतलांतिक संधि संगठन जैसे एशियाई संधि संगठन अथवा प्रशांत संधि संगठन के सुझाव के प्रति अधिक उत्साह नहीं दिखाया है. इस का कारण जापान की भीतरी राजनीति के कुछ गुट भी हैं, जो ऐसे प्रादेशिक संगठनों को बहुत उपयोगी नहीं मानते. वे कम्युनिस्ट चीन के साथ व्यापार संबंध बढ़ाने को उत्सुक हैं और किसी भी प्रकार के प्रादेशिक संगठन में जापान के शामिल होने की वजह से कम्युनिस्ट चीन के साथ व्यापार की संभावनाओं पर आघात पहुँच सकता है.

फारमोसा, दक्षिण कोरिया और जापान इन तीनों के एक सुरक्षा संगठन की बात इस लिए संभव नहीं है कि कोरिया और फारमोसा उस युग को अभी तक नहीं भुला सके जब जापान का इन तीनों देशों पर प्रभुत्व था. यह पुरानी जापान विरोधी भावना दक्षिण कोरिया और फारमोसा को जापान के साथ मिल कर एक प्रादेशिक संगठन बनाने से बराबर रोक रही है.

अमेरिकी अड्डों का प्रश्न : दक्षिण पूर्व एशियाई देशों की किसी भी परस्पर सुरक्षा व्यवस्था में इस क्षेत्र के अलग-अलग देशों में स्थित अमेरिकी अड्डे, एक महत्वपूर्ण प्रश्न है. ओकीनावा की वापसी और वहाँ से अमेरिकी सैनिक हटाने की स्थिति में दक्षिण कोरिया पूर्व एशिया में कोई न कोई अमेरिकी प्रमुख रक्षा व्यवस्था स्थापित करने के पक्ष में है. वह अपने लिये भी अमेरिकी संरक्षण चाहता है इसी लिए ओकीनावा के प्रश्न पर जापान और अमेरिका के संबंधों में वह अप्रत्यक्ष रूप से ओकीनावा से न हटने के अमेरिकी रवैये का ज़्यादा समर्थक मालूम देता है. इसी प्रकार ओकीनावा के दरजे में परिवर्तन से फारमोसा भी कुछ भयभीत है. इस प्रश्न पर दक्षिण कोरिया और फारमोसा दोनों का अमेरिका के समर्थन में होना जापान को इन देशों के साथ मिल कर किसी प्रादेशिक संगठन बनाने से रोक रहा है.

अन्य बड़े देशों की दिलचस्पी : दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के परस्पर सुरक्षा संबंधी संगठन अथवा प्रादेशिक संधियों की संभावना में बड़े देशों की दिलचस्पी हाल ही में कुछ अधिक बढ़ गयी है. ब्रितानी और अमेरिकी प्रभाव बाह्य और आंतरिक परिस्थितियों के कारण दिनोंदिन घट रहा है जिस का लाभ मास्को पूरा-पूरा उठाना चाहता है. भारत की दिलचस्पी एक एशियाई देश होने के कारण केवल दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के आर्थिक विकास में है क्यों कि वह ब्रिटेन या अमेरिका से उत्पन्न किसी भी शक्ति शून्यता को भरने की अपनी अनिच्छा पहले ही दिखा चुका है. भारत यह भी स्पष्ट कर चुका है कि वह किसी भी प्रकार के सैनिक गुटों अथवा रक्षा व्यवस्था में दिलचस्पी नहीं रखता भले ही वह किसी भी एक शक्तिशाली देश द्वारा छोटे देशों की रक्षा के लिए क्यों न बनाया गया हो. इस सारी स्थिति से दक्षिण पूर्व एशिया विशेषकर उत्तर और पूर्व एशिया की आज की उलझन भरी स्थिति का आभास होता है और लगता है कि एशियाई नीति का निर्धारण करने में अमेरिका को कोई बड़ी भूमिका निभानी पड़ सकती है. जापान, कोरिया और फारमोसा तीनों ही के सामने मुख्य प्रश्न कम्युनिस्ट चीन से अपनी रक्षा का है. लेकिन अनेक पुराने और नये प्रश्नों पर परस्पर मतभेदों के कारण वह एक समान शत्रु के विरुद्ध भी एक नहीं हो पा रहे हैं.

पाकिस्तान

नया, मतलब : गया नया

५२ वर्षीय पाकिस्तानी राष्ट्रपति और प्रमुख मार्शल ला प्रशासक जनरल याह्या ख़ाँ ने जब अपनी पहली कांफ्रेंस में भारत-पाक उपमहाद्वीप में शांति बनाये रखने में दिलचस्पी का इज़हार किया था तो यह समझा गया था कि अगर इस दिशा में वह कोई नया क़दम नहीं उठायेंगे तो कम से कम भूतपूर्व पाकिस्तानी प्रेज़िडेंट जनरल अय्यूब ख़ाँ की विदेश नीति को बरक़रार रखेंगे. लेकिन पाँच दिन भी पूरे नहीं हुए थे कि पाकिस्तान ने राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् में भारत सरकार द्वारा कश्मीर में ग़ैरक़ानूनी गतिविधि निरोधक अधिनियम के लागू किये जाने के विरुद्ध शिकायत कर के इस आशा पर पानी फेर दिया. यह आकस्मिक नहीं है कि नयी दिल्ली के राजनैतिक क्षेत्रों में पाकिस्तान के इस क़दम को भारत के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप के रूप में देखा जा रहा है. जनरल याह्या ख़ाँ ने अपनी बहुप्रतीक्षित प्रेस कांफ्रेंस में भारत-पाक उपमहाद्वीप में शांति की समस्या को सर्वाधिक महत्त्व देने की बात कही थी और इस बात पर ज़ोर दिया था कि दोनों देशों के बीच के झगड़ों का सम्मानपूर्ण समाधान निकाला जाना चाहिए.

अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण साबित होने की संभावना से बोझिल प्रेज़िडेंट याह्या ख़ाँ की यह प्रेस कांफ्रेंस अगर महत्त्वपूर्ण साबित नहीं हो सकी तो इस का एक और प्रमुख कारण शायद यह था कि उन्होंने नया के नाम पर गया नया का ही उल्लेख करना अधिक उचित समझा. एक ओर जहाँ जनरल याह्या ख़ाँ ने अपने देशवासियों को यह आश्वासन दिया कि हम सार्वभौम वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रतिनिधियों के चुनाव की संभावना को सफल बनाने के लिए प्रयास करते रहेंगे, वहीं दूसरी ओर उन्होंने यह घोषित करके कि देश के नये प्रशासन में नागरिकों को शामिल करने का वक़्त अभी नहीं आया है, संभावना को दिवास्वप्न में बदल दिया. जनता और जनता के प्रतिनिधियों द्वारा सुदूर भविष्य में बनाये जाने वाले संविधान में भाव-बोझिल आस्था व्यक्त करने के बाद जनरल याह्या ख़ाँ ने एक ही झटके में जहाँ पाकिस्तान में क़ानून और व्यवस्था की स्थिति में हाल में आये सुधार पर संतोष व्यक्त किया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने क्षमा-याचना के स्वर में यह रहस्योद्घाटन भी किया कि जब पाकिस्तान में क़ानून

और व्यवस्था की स्थिति काफ़ी बिगड़ चुकी थी तब भी सेना ने हस्तक्षेप का कोई निर्णय नही किया था मतलब यह कि सेना का हस्तक्षेप अनिवार्य कर्त्तव्य के रूप में सामने आया.

मार्शल लॉ के दौरान अस्तित्व में आये प्रशासन ने पाकिस्तानी जनता के असंतोष को दिग्भ्रमित करने के उद्देश्य से जो ध्यानाकर्षण अभियान चला रखा है उस के नये आयामों का संकेत देते हुए जनरल याह्या खाँ ने जहाँ एक ओर राजनैतिक दलों की गतिविधियों को कुछ समय तक नियंत्रित करने की बात कही वहाँ दूसरी ओर उन्होंने सामाजिक और आर्थिक न्याय में भी शाब्दिक आस्था व्यक्त की. पाकिस्तानी प्रेस को भेजे गये अपने लंबे बयान में याह्या खाँ ने अपने प्रशासन को तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा करना बताया. याह्या खाँ की प्रेस कांफ्रेंस के ठीक दूसरे दिन इस समाचार का मिलना कि पाकिस्तान के उपप्रमुख मार्शल लॉ प्रशासक एयर मार्शल नूर खाँ ने पूर्व और पश्चिम पाकिस्तान के छात्रों और मजदूर नेताओं से अपनी मुलाकात के दौरान उन्हें इस बात का आश्वासन दिया कि उन की समस्याओं का शीघ्र समाधान होगा, किसी व्यापक ध्यानाकर्षण अभियान का संकेत देता है. एयर मार्शल नूर खाँ ने जनता के विभिन्न वर्गों और मार्शल लॉ प्रशासन के बीच प्रत्यक्ष संबंध कायम करने के नाटकीय किंतु सुनियोजित निर्णय को ध्यान में रखते हुए पाकिस्तान के शिक्षा-शास्त्रियों से भी विचार-विमर्श किया और पुराने विश्वविद्यालय अधिनियम को हटा कर नये अधिनियम के ज़रिये विश्वविद्यालयों को अधिक से अधिक स्वायत्तता देने तथा उन के प्रशासन में छात्रों और अध्यापकों का सहयोग संभव बनाने की व्यावहारिकता के बारे में भी उन से सलाह-मशविरा किया. समितियों के गठन-क्रम में पाकिस्तान के लिए पाँच जाँच समितियों के गठन की घोषणा भी की गयी और उन का उद्देश्य यह बताया गया कि वे आर्थिक कार्यक्रमों और उन्हें कार्यान्वित करने वाली सरकारी संस्थाओं के संबंध में विवरण पेश करेंगी. समितियों के गठन के बिलकुल समानांतर पूर्वी पाकिस्तान के उत्तरी भाग में मार्शल लॉ प्रशासन द्वारा भारी पैमाने पर टैंकबंदी के समाचार जनरल याह्या खाँ की सद्भावनाओं की शवयात्रा का ही संकेत देते हैं.

एंगुइला

तनाव और तक़रार

३० मार्च को एंगुइला के स्वयं घोषित राष्ट्रपति रोनाल्ड वैब्स्टर और ब्रिटेन के संयुक्त राष्ट्र में स्थायी प्रतिनिधि लार्ड कैराडन के बीच एक ७-सूत्रीय समझौता हुआ था जिस के अंतर्गत एंगुइला से ब्रितानी सैनिकों को वापस बुलाने की बात स्वीकार की गयी थी. समझौता होने से पहले ही से नाकामयाबी का कारण दिखायी देने लग गया था क्यों कि वैब्स्टर को ब्रितानी अधिकारियों के मंशा पर संदेह था. लिहाज़ा एंगुइला की सुलझती हुई समस्या फिर से उलझने लगी और एक वक़्त ऐसा आया जब एंगुइला के एक सौ नागरिकों ने ब्रितानी कमिश्नर टानी ली के निवास-स्थान का घेराव करने का निश्चय किया. उन का यह नारा था कि ली को तुरंत वापस बुलाया जाये. समझौते के सूत्रधार कैराडन न्यूयार्क से एंगुइला घाटी में पहुँचे और उन्होंने ऐलान किया कि टानी ली लंबी छुट्टी पर जा रहे हैं और उन के स्थान पर केमैन का कमिश्नर जान कुंवर को नियुक्त किया जा रहा है. कैराडन के इस आश्वासन से लोगों को कुछ राहत मिली.

ब्रिटेन के विदेश और राष्ट्रकुल मंत्री वाशिंगटन में नैटो परिषद् की बैठक में भाग लेने के बाद जब लंदन लौटे तो उन्होंने बताया कि टानी ली को वापस बुलाने का अभी कोई इरादा नहीं है. इस तरह कैराडन और स्टुअर्ट के विरोधी वक्तव्यों से एंगुइला के निवासियों में भ्रमपैदा हो गया है और वे अब पूर्ण स्वायत्तता की माँग कर रहे हैं. वैब्स्टर ने ली पर यह आरोप लगाया है कि उस ने ७ सूत्रीय सदस्यीय परिषद् को भंग कर दिया है और मनमर्ज़ी से सभी काम कर रहे हैं. उन्होने कहा कि अब यहाँ का कमिश्नर कोई वेस्ट इंडियन ही होना चाहिए. पिछले माह एंगुइला का टलता हुआ संकट अब फिर गहराता जा रहा है. और अगर इस मामले में सोच-विचार से काम नहीं लिया गया तो ब्रिटेन एंगुइला का विरोध पहले की तरह ही बना रहेगा.

नैटो

यूरोप की रक्षा के नाम पर

नैटो देशों के मंत्रियों की बैठक समाप्त होते ही पश्चिमी राष्ट्रों और सोवियत संघ के बीच एक नया वाकयुद्ध आरंभ हो गया है. वाशिंगटन में आयोजित इस बैठक के समाप्त होते ही सोवियत संघ की एक विज्ञप्ति में नैटो संधि की 'आक्रामक' और 'अंतरराष्ट्रीय शांति-विरोधी' नीति की सख़्त आलोचना की गयी है. सरकारी समाचार एजेंसी के अनुसार "इस सम्मेलन में भाग लेना ही यह सिद्ध करता है कि उसने यूरोप में युद्ध के लिए उत्तेजना पैदा करने का काम ही नही किया बल्कि यह स्वयं पश्चिमी यूरोप के देशों और उन की समाज परिवर्त्तन की इच्छा के विरुद्ध एक बाधा बन गया है."

जब पश्चिम उत्तर अतलांतिक संगठन संधि पर हस्ताक्षर किये गये थे उस समय परिस्थितियाँ भिन्न थी. सोवियत संघ और संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच एक तीव्र शीतयुद्ध चल रहा था और इस बात का सदा ख़तरा रहता था कि कहीं किसी अविवेकपूर्ण क़दम के कारण साम्यवादी और ग़ैर साम्यवादी देश वास्तविक युद्ध में न टकरा जायें किंतु आज की परिस्थितियाँ बिल्कुल भिन्न हैं. इस लिए इस संधि के सदस्य देशों के सामने यह प्रश्न अपने गंभीर रूप में आ गया है कि सोवियत संघ के साथ किस प्रकार शांति स्थापना के प्रति सहयोग किया जा सकता है. एक मास पूर्व सोवियत संघ ने यह सुझाव दिया था कि यूरोप की सुरक्षा के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया जाए. मगर नैटो सम्मेलन में इस सुझाव को एक तरफ़ रख कर सदस्य देशों को यह स्वतंत्रता दी गयी है कि वह अपने व्यक्तिगत रूप में सोवियत संघ के साथ वार्त्ता करें. सोवियत संघ की यह सदा से शिकायत रही है कि अमेरिका व्यर्थ में यूरोप के मामले में हस्तक्षेप कर रहा है. उत्तर अतलांतिक संधि ने अमेरिका को स्वाभाविक अधिकार दिया है कि वह संकटावस्था में किसी भी नैटो सदस्य देश के मामले में हस्तक्षेप कर सकता है.

स्वेज़ की रक्षा : ब्रिटेन के वरिष्ठ प्रतिरक्षा अधिकारी अलस्तेयर बुकन के अनुसार भूमध्य सागर में सोवियत संघ की उपस्थिति का एक उद्देश्य यह लगता है कि वह हिंद महासागर की ओर स्वेज़ नहर के मुँह की रक्षा कर सके. उन के अनुसार सोवियत संघ विश्व की दूसरी बड़ी नौसैनिक शक्ति है और उस ने ३८८ पनडुब्बी युद्धपोतों को इस प्रकार से फैला रखा है कि यदि यूरोप में कोई संकट पैदा होगा तो सोवियत संघ विश्व के किसी भी कोने में शत्रु को परेशान कर सकता है. ब्रितानी अधिकारी के अनुसार मध्य एशिया मे अपनी उपस्थिति का सब से बड़ा कारण रूस के लिए पूर्व में शक्ति का प्रभाव बढाना है. यद्यपि सोवियत संघ के पास सभी नैटो देशों से अधिक शक्ति है फिर भी पश्चिमी यूरोप के देशों को तब तक रूस से ख़तरा नही जब तक वह अपनी सैनिक शक्ति को एक विशेष अनुपात से कम न होने दें.

दिनमान
उद्योग अंक
२७ अप्रैल '६९

भूकंप और उन की भविष्यवाणी

भूकंप मनुष्य के साथ तभी से रहा है जब से वह इस धरती पर पैदा हुआ. सच तो यह है कि भूकंप मनुष्य के विकास से भी पहले, धरती की रचना के समय से ही इस पृथ्वी के साथ है. प्रकृति की कुछ ऐसी प्रक्रियाओं में यह भी एक है जिन के बारे में मनुष्य को बहुत कम ज्ञान है और जिस से उसे बहुत डर लगता है. केवल अनुभव से ही वह इस के विनाशक प्रभाव से बचता रहा है. विश्व के इतिहास में इस प्रकार के भूकंपों का वर्णन है जिन में हजारों व्यक्ति नष्ट हो गये और लाखों बेघर हुए. कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगर ज्वालामुखियों के कोपभाजन बन गये हैं. १९२३ में जापान में कांतो भूकंप के कारण एक लाख व्यक्ति मारे गये तथा जापान की राजधानी तोक्यो और उस के आसपास की बस्तियों में ७ लाख व्यक्तियों के घर धराशायी हो गये. वास्तव में जापान में भूकंप एक स्थायी समस्या है. विज्ञान के विकास के साथ-साथ मनुष्य ने अनेक प्राकृतिक संकटों का मुक़ाबला करने के रास्ते निकाल लिये हैं. भूकंपों के सिलसिले में भी वैज्ञानिक खामोश नहीं हैं. भूकंपों के प्रभाव को कम करने का सब से बड़ा साधन उन की भविष्यवाणी है.

लघु भूकंप : क्या भूकंपों और ज्वालामुखी-विस्फोटों की भविष्यवाणी की जा सकती है ? हाल ही में कैलीफ़ोर्निया के एक विशेषज्ञ ने दावा किया है कि वह किसी विशेष क्षेत्र का अध्ययन करने के बाद भूकंपों की भविष्यवाणी कर सकता है. वास्तव में कैलीफ़ोर्निया के सान एंड्रियास सागर-तट के ६०० मील लंबे क्षेत्र में एक विचित्र प्रकार की प्रक्रिया जारी है. सागर-तट का यह क्षेत्र उत्तर-पश्चिम की ओर चल रहा है, जब कि प्रदेश का शेष क्षेत्र पूर्व की ओर. इस प्रकार की विरोधी गति के कारण कैलिफ़ोर्निया में भूकंप होते हैं. भू-विशेषज्ञों ने कई स्थानों पर अपने निरीक्षण-केंद्र स्थापित किये और ८ भूकंपों की सफल भविष्यवाणी की; किंतु उन की १७ भविष्य-वाणियाँ सच नहीं निकलीं. मगर इस का कारण संभवतः यह है कि उन की पद्धति अभी पूर्ण विकसित नहीं हुई है. इसी प्रकार जापान में मत्सुशिरो पर्वतीय क्षेत्र में भी विशेषज्ञों ने भूकंपों की भविष्यवाणी का एक तरीक़ा निकाल लिया है.

इस क्षेत्र में अनेक छोटे-छोटे भूकंप होते हैं, जिन में से कुछ तो साधारणतया महसूस भी नहीं होते. इन 'अति लघु कंपों' का अध्ययन करने से विशेषज्ञ इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि निकट भविष्य में कोई बड़ा भूकंप होगा अथवा नहीं. तोक्यो विश्वविद्यालय की भूकंप अनुसंधान परिषद ने इस सिलसिले में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है. इस संस्थान के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर त्सुनेजी रिकीताके के अनुसार अगर हम "यह देख लें कि किसी क्षेत्र में बहुत से अति लघु भूकंप हो रहे हैं तो हम यह अनुमान लगा लेते हैं कि चार या पाँच मास के भीतर एक बड़ा भूकंप होने की आशंका है. इस प्रकार हम ६० प्रतिशत भूकंपों की शत-प्रतिशत भविष्य-वाणी कर सके हैं". सोवियत संघ में भूकंपों की भविष्यवाणी के संबंध में अनुसंधान हो रहा है. रेडॉन नाम की एक भारी गैस की सहायता से भूकंपों की आशंका व्यक्त की जा सकती है, क्यों कि पृथ्वी के पृष्ठ में इस गैस का निर्माण होता है, जो धीरे-धीरे ऊपर की ओर बढ़ने लगती है. मगर यदि भू-गर्भ में ज्वालामुखी-प्रक्रिया में वृद्धि हो गयी तो यह सक्रिय गैस शीघ्रता से ऊपर आने लगती है. सोवियत वैज्ञानिकों ने इस गैस की गति से आशंकित भूकंपों की भविष्यवाणी करने का तरीक़ा निकाल लिया है. कहीं-कहीं पृथ्वी पर इसी प्रकार के चश्मे फूटते हैं जो अत्यंत गहराई से पानी ऊपर लाते हैं. वास्तव में ये इसी प्रकार कार्य करते हैं जैसे कि एक फव्वारा. भूमि-तल में कहीं अभेद्य चट्टानों में सुराख हो जाता है और चट्टानों के बीच में बंद पड़े पानी को बाहर निकलने को केवल यही छोटा-सा रास्ता मिल जाता है. इसी छिद्र में से पानी बड़ी तेज गति से फव्वारे की ही शक्ल में बाहर निकलता है. इस प्रकार के फव्वारा-स्रोतों में रेडॉन गैस की मात्रा का अनुमान लगा कर भू-पृष्ठ में ज्वालामुखी-प्रक्रिया का भी अनुमान लग सकता है.

परिवर्तनशील भू-गर्भ : ज्वालामुखी क्यों फटते हैं; भूकंप के मूल कारण क्या हैं; यह ऐसे प्रश्न हैं जिन का अंतिम उत्तर अभी मिलना बाकी है. दुर्भाग्य से पृथ्वी की आंतरिक परतों की विशेषताओं के संबंध में वैज्ञानिकों को कोई प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है. भू-पृष्ठ की ऊपरी परत में इस प्रकार की चट्टानें पायी जाती हैं जिस में लोहा और मैगनीशियम की मात्रा अधिक होती है. मगर निम्न स्तर ऊपर के दबाव से इस

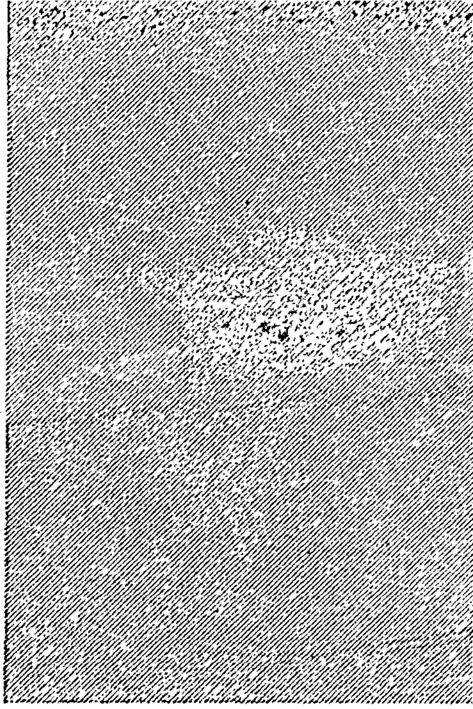

एंटार्टिक द्वीप में ज्वालामुखी के विस्फोट का एक जहाज से लिया गया चित्र

मांटेवागो, सिसिली में भूकंप के बाद का भयावह दृश्य

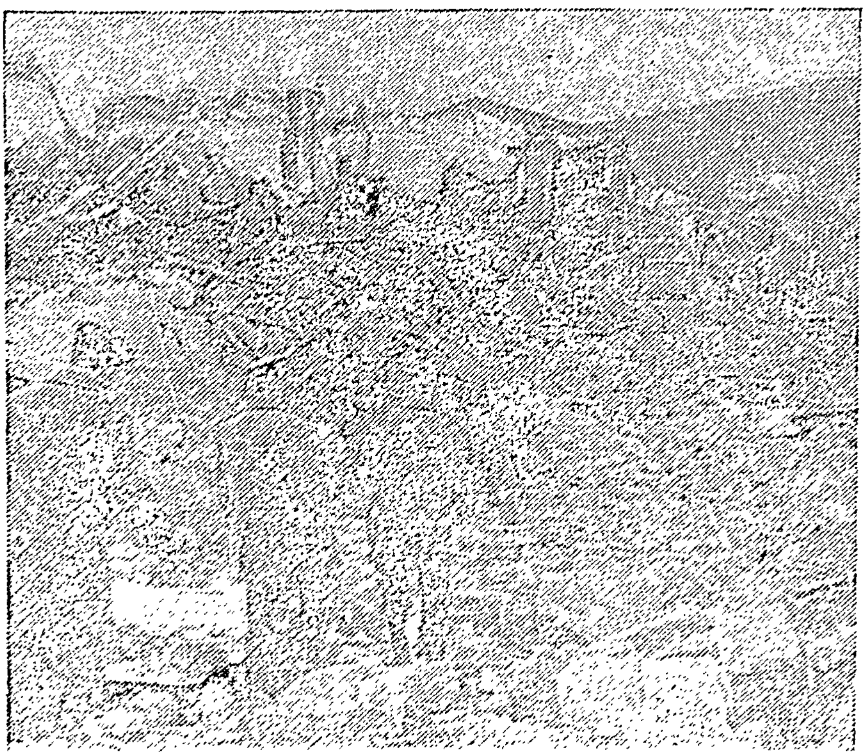

प्रकार परिवर्तित हो गया है कि वह एक क्रिस्टल का रूप ले चुका है. १०० किलोमीटर नीचे और महासागरों में ५० किलोमीटर नीचे एक ऐसी परत भी है जिसे स्थेनोस्फीयर कहते हैं. यह कोमल खनिज गारे की परत है. वास्तव में यहीं एक आग्नेय द्रव्य बनता है जो भारी मात्रा में ऊपर की ओर तैरता है. कहीं इस परत की मोटाई कम है और कहीं ज्यादा. इस परत में लगातार परिवर्तन होते रहते हैं और संभवतः इन्हीं परिवर्तनों के कारण पृथ्वी में कंपन होता है. ज्वालामुखियों के विस्फोट भी भू-गर्भ में होने वाले परिवर्तनों का ही एक अंश है. वास्तव में ज्वालामुखियों को भू-गर्भ में स्थित विशाल खनिज कारखाने की चिमनियाँ कहा जा सकता है. १९५६ में रूसी ज्वालामुखी बेलीमीयान्नी में जब विस्फोट हुआ तो धूल और पाषाणकणों का ऐसा चक्रवात पैदा हुआ जो विश्व के सभी महाद्वीपों का चक्कर लगा कर फिर वापस पहुँच गया. वास्तव में इस भयंकर प्राकृतिक प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करने का मतलब भूमि के पृष्ठ के विभिन्न स्तरों का विशद और व्यापक अध्ययन होगा. विश्व में कई स्थानों पर इस प्रकार की प्रयोगशालाएँ स्थापित की गयी हैं, जिन में यह अध्ययन हो रहा है.

मनोरंजन के दिन और कोका-कोला सोने पर सुहागा। इस का उमंग-भरा स्वाद इस उल्लास को बढ़ाता है। घर हो या खेल का मैदान—बार-बार पीने को जी चाहे...कोका-कोला...फिर कोका-कोला...फिर कोका-कोला! बर्फीला कोका-कोला पीजिए।

वाह री लज़्ज़त कोका-कोला। ऐसी लज़्ज़त और कहाँ!!

कोका-कोला, कोका-कोला कम्पनी का रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क है!

हर मौक़े पे रंग, कोका-कोला के संग!

Coca-Cola

CMCC-8-293-106

अदृश्य धागों की आंतरिक बुनावट

"वसंत में फूलती है चेरी, गर्मियों में कोयल, शरद में चंद्रमा और शीतकाल में उज्जवल ठंडी बर्फ़".

"उगता है शीतकाल का चंद्रमा, बादलों के बीच से मेरा साथ देने.
हवा है चीरती हुई, ठंडी है बर्फ़".

सन् ६८ के नोबेल पुरस्कार विजेता यासुनारी कावाबाता ने (देखिए दिनमान, २७ अक्तूबर, ६८) पुरस्कार-समारोह के अवसर पर अपने साहित्य के बारे में दिये गये व्याख्यान की शुरुआत उपर्युक्त दो कविताओं के उद्धरणों से की थी. यह कविताएँ क्रमशः उपासक-कवि दोगेन (१२००-१२५३) और उपासक-कवि म्योई (११७३-१२३२) की हैं. यासुनारी कावाबाता को जब नोबेल पुरस्कार देने की घोषणा की गयी थी तब यह कहा गया था कि उन के साहित्य में जापानी मन और जीवन का सार है. केवल कावाबाता की कृतियाँ ही इसे सिद्ध नहीं करतीं, उन का नोबेल व्याख्यान भी इस बात का परिचायक रहा. कावाबाता शायद नोबेल पुरस्कार-विजेताओं में से पहले थे जिन्होंने अपने लेखन या साहित्य संबंधी अपनी धारणाओं की व्याख्या के लिए अपने देश के कुछ कवियों की उक्तियों और पंक्तियों का सहारा लिया. उन्होंने इस व्याख्यान में कहा था कि उन का शून्यवाद पश्चिम के शून्यवाद से बहुत भिन्न है. लेकिन इस बात को उन्होंने वक्तव्य की शक्ल में ही पेश न कर के जापानी जीवन, आध्यात्मिक जीवन व उस के साहित्य से प्रमाणित किया. जापानी उपासक कवियों की कविताओं के उद्धरण देते हुए उन्होंने अपने जीवन और साहित्य-दर्शन की एक अपूर्व झाँकी प्रस्तुत की. कावाबाता विनम्र और संकोची हैं. अपने साहित्य को उन्होंने अपने व्याख्यान में इसी विनम्रता के साथ प्रस्तुत किया है. अपने दो उपन्यासों यूकीकुनी (हिमप्रदेश) और सेंबाजुरू (हज़ार सारस) का उल्लेख उन्होंने जैसे चलते-चलते कर दिया. लेकिन कावाबाता की अध्ययनशीलता, उन के चिंतन और मनन इतने गहरे हैं कि चलते-चलते कही गयी बातें भी एक गहरा अर्थ रखती हैं.

चंद्रमा, प्रस्फुटन और ऋतुओं को व्यक्त करने वाले शब्द जब एक दूसरे से गुँथते हैं तो वे मानों जापानी परंपरा की सृष्टि करते हैं. ये प्रकृति की अभिव्यक्तियाँ भी हैं और मानवीय अनुभूतियों की भी. कावाबाता ने अपने व्याख्यान में कहा था कि बर्फ़, चंद्रमा और फूलों के प्रस्फुटन के बीच अपने साथी की स्मृति का भाव जापानी चाय-उत्सवों (टी सेरीमनी) का भी मूल है. चाय-उत्सव का अर्थ भावनात्मक रूप से एक दूसरे के निकट आना है, यानी एक अच्छी ऋतु में अच्छे दोस्तों का मिलन. 'हज़ार सारस' में चाय उत्सव की प्रकृति और सौंदर्य को ढूँढ़ना ग़लत होगा, क्यों कि मैंने उस में चाय-उत्सव की प्रकृति के बिगड़ते रूपों को चित्रित किया है और एक चेतावनी दी है. अपने दूसरे उपन्यास 'हिमप्रदेश' की चर्चा उन्होंने अपने जीवन-दर्शन की ही व्याख्या के रूप में की. उपन्यास के पात्रों की स्थितियों की चर्चा छोड़ कर उन्होंने केवल उस स्थान और क्षेत्र की चर्चा की जहाँ यह उपन्यास घटित होता है. इस क्षेत्र में ठंडी हवाएँ बहती हैं और यह बर्फ़ से ढँका रहता है. उन्होंने एक अन्य उपासक-कवि रियोकान (१७५८-१८३१) का जिक्र करते हुए कहा कि वह इसी प्रदेश में रहा करता था. उस ने पूरा जीवन इसी प्रदेश में बिताया. वह गाँवों में घूमता था, रहने के लिए उस के पास एक झोंपड़ी थी और कुछ फटे-पुराने कपड़े. बातचीत करने के लिए किसान थे. कावाबाता ने रियोकान की यह कविता उद्धृत की:

क्या होगी मेरी मृत्यु के बाद मेरी धरोहर?
वसंत के प्रस्फुटन
घाटी में कोयल, पतझड़ की पत्तियाँ.

यासुनारी कावाबाता : सूक्ष्म स्तरों पर

रियोकान की ही दो पंक्तियों को उन्होंने अपने विचारों का साक्ष्य बनाया:

"ऐसा नहीं है कि चाहता नहीं हूँ साथ मैं किसी दूसरे का.
बात बस इतनी है कि प्रसन्न हूँ मैं अकेले उठाये गये आनंद में".

कावाबाता ने अपने व्याख्यान में जापानी साहित्य और जीवन की विसंगतियाँ उभारीं, लेकिन केवल यही बताने के लिए कि दरअसल यह विसंगतियाँ नहीं हैं. कावाबाता के उपन्यासों में इंद्रिय-सुखों व इंद्रिय-प्रतीतियों का पर्याप्त स्थान है, लेकिन कावाबाता के उपन्यासों में एक ओर जहाँ इंद्रिय-प्रतीतियाँ अपना महत्त्व रखती हैं वहीं दूसरी ओर वे इन की निस्सारता का बखान भी करती हैं. अपने नोबेल व्याख्यान में उन्होंने उपासक कवि म्योई के शिष्य किकाई द्वारा लिखित म्योई की जीवन-कथा से एक उद्धरण दिया. म्योई के पास उसी का एक समकालीन कवि साइग्यो आया करता था. वह कहा करता था कि चेरी का फूलना, कोयल, चंद्रमा, बर्फ़ और प्रकृति की अनेक वस्तुओं से जब उस का सामना होता था तब उस की आँखें और उस के कान एक शून्य से भर जाते थे और फिर जो शब्द बाहर आते थे उन में से सभी प्रतिनिधि शब्द नहीं होते थे. जब वह फूलों के बारे में लिखता था तब उस के दिमाग़ में फूल नहीं होते थे. जब वह चंद्रमा के बारे में लिखता था तब वह उसी के बारे में नहीं सोच रहा होता था—इसी तरह की कविता में बुद्ध निहित थे. यह अंतिम सत्य की अभिव्यक्ति थी. कावाबाता ने इस उद्धरण को अपने लेखन की व्याख्या का आधार तो बनाया ही, उन्होंने पूर्व और पश्चिम की विचार-पद्धतियों का अंतर भी स्पष्ट किया और कहा कि इस प्रसंग को हम शून्य और नास्ति के अर्थ में ले सकते हैं. लेकिन यह पश्चिम के निहिलिज्म से भिन्न है. दोगेन का ही उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि जब वह ऋतुओं के सौंदर्य का गीत गाता था ठीक उसी समय वह ध्यान-मग्न भी होता था.

कावाबाता ने अपने व्याख्यान में ध्यान-संप्रदाय (ज़ेन-बौद्ध धर्म) का उल्लेख करते हुए कहा कि उपदेश से ज्ञान प्राप्ति नहीं होती, बल्कि अंतरदृष्टि के जागृत रहने से ही ज्ञान मिलता है. सत्य शब्दों के परित्याग में है. वह बराबर शब्दों के बाहर स्थित रहता है. इसी लिए विमल कीर्त्ति निर्देश-सूत्र में हम गर्जन-सी शांति का जिक्र पाते हैं. कावाबाता ने ईक्यू की दो धार्मिक कविताएँ प्रस्तुत कीं:

"जब मैं तुम से प्रश्न करता हूँ तब तुम उत्तर देते हो. जब मैं नहीं करता प्रश्न तब तुम नहीं देते उत्तर. तब तुम्हारे हृदय में क्या है, ओ बोधि धर्म".

"क्या है यह हृदय, यह है स्याही के चित्र में देवदार वृक्षों से गुज़रती हवा का स्वर".

कावाबाता बचपन में कभी चित्रकार बनना चाहते थे. चित्रकार न बन कर वह एक उपन्यासकार बने, लेकिन उन के लेखन में चित्रकला के बिंबों-प्रतीकों की भरमार है. चीनी चित्रकार चिन नुंग का यह कथन, जिसे उन्होंने इस व्याख्यान में उद्धृत किया, उन के लिए भी उपयुक्त लगता है. "शाख को अच्छी तरह चित्रित करो और तुम हवा की आवाज़ सुन सकोगे. कावाबाता ने आत्मा के एक ऐसे विश्व का उल्लेख किया जहाँ प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक वस्तु से

संवाद करती है. सारी सीमाओं को तोड़ती हुई अंतहीन महत्त्व का एक स्वतंत्र संवाद.

राजनीति और आधुनिक जीवन की सनसनी खेज प्रकृति से अपने को दूर रखने वाले कावाबाता का लेखन और उन के विचार बहुतों को अरण्यरोदन लग सकते हैं लेकिन अपने नोबेल व्याख्यान में उन्होंने इतना तो प्रमाणित कर ही दिया कि वे प्रकृति, आत्मा और ध्यान को केवल तर्क-संगत संदर्भ ही नहीं देते अर्थगर्भित संदर्भ भी देते हैं. मनुष्य के अकेलेपन की पश्चिम अवधारणा की बनिस्बत वह मनुष्य के अकेलेपन को एक ऐसा माध्यम बना कर प्रस्तुत करते हैं जिस में वह अकेला तो है लेकिन जो सूक्ष्म स्तरों-संबंधों को एकत्रित कर जीने के सुख से भी जुड़ जाता है. अपने इसी व्याख्यान में उन्होंने "अंतिम छोर तक पहुँचने वाली आँखों" का उल्लेख किया. इस शीर्षक से उन्होंने एक लेख भी लिखा है. अकुतागावा रियोनुसूके (१८९२-१९२७) से उधार ली हुई इस बात को कावाबाता ने जीने का साधन माना है. स्वयं अकुतागावा ने आत्महत्या की थी. लेकिन अकुतागावा ने यह स्वीकार किया था कि जब मैं आत्महत्या का ख्याल कर रहा हूँ उस वक्त भी मैं प्रकृति से प्रेम करता हूँ.

अपने नोबेल व्याख्यान में कावाबाता ने अलग-अलग चीज़ों को जिस तरह से जोड़ा है वह भी यही प्रमाणित करती हैं कि कला-साहित्य, और जीवन का भी अर्थ सी में है कि हम तमाम परिचित और अपरिचित चीज़ों से सूक्ष्म स्तरों पर जुड़ते हैं और तमाम सूक्ष्म-संबंध जीने की कामना व आशा को कभी धूमिल नहीं होने देते. यहीं यह भी कि छोटी-छोटी बातों और सूक्ष्म स्तरों-संबंधों पर खुलने या खुल सकने वाला जीवन ऊपर से भले ही दुर्बल या निरर्थक लगे लेकिन अदृश्य धागों (सूत्रों) की एक आंतरिक बुनावट उसे बराबर शक्तिशाली और अर्थमय बनाए रखती है. ज़रूरत सिर्फ़ उसे पहचानने की है.

"मैं पर्वतों के पीछे जाऊँगा. वहाँ भी
दिखना, ओ चंद्रमा.
हर रात हम देंगे साथ एक दूसरे का."
"उज्ज्वल, उज्ज्वल और उज्ज्वल,
उज्ज्वल उज्ज्वल और उज्ज्वल, उज्ज्वल.
उज्ज्वल और उज्ज्वल, उज्ज्वल, और
उज्ज्वल उज्ज्वल चंद्रमा."

(ये कविताएँ कवि-उपासक म्योई की हैं: म्योई को चंद्रमा का कवि कहा जाता है. सन् १२२४ की एक रात जब वह 'ज़ेन' (ध्यान) के लिए बैठे तो चंद्रमा बादलों के पीछे था. कावाबाता ने इन कविताओं का उद्धरण शायद यही बताने के लिए दिया कि किसी दृश्य-अदृश्य वस्तु के साथ अपने को एकात्म कर लेना, अकेलेपन और अस्तित्व की समस्याओं को सुलझा लेने का एक माध्यम और उपाय है.)

किताबें

नाट्य-शास्त्र : पहला प्रामाणिक इतिहास

कपिला वात्स्यायन ने कुछ समय पूर्व अपने शोध-ग्रंथ के एक महत्त्वपूर्ण भाग को प्रस्तकारण प्रमाश्रित किया है. यह भारतीय नृत्य-परंपराओं का इतिहास है. उस के रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए नाट्य-शास्त्र के ग्रंथ जितने उपयोगी हैं उतने ही भारतीय साहित्य अथवा कला में प्रयुक्त उस के इतिहास. इस क्षेत्र में डॉ. राघवन ने पहले कुछ कार्य किया था. पचीसों वर्ष पहले उन्होंने संकेत दिया कि पल्लवराज महेंद्रवर्मन ने सातवीं शती में अपने शिलालेख में अपने-आप को दक्षिण चित्र का जो प्रेमी कहा है वह वस्तुतः नृत्य की एक शैली थी. परंतु डॉ. राघवन की पीढ़ी और आज की पीढ़ी में यदि केवल एक व्यक्ति ने इस विषय के आवरण को छुआ तो उस से इस शास्त्र का अध्ययन पूरा नहीं हो गया. हम कह सकते हैं कि भारतीय नाट्य-शास्त्र का यदि पहला प्रामाणिक इतिहास लिखा गया तो वह इस पुस्तक में है. इस हेतु कपिला वात्स्यायन के साथ-साथ प्रकाशक, संगीत नाटक अकादेमी भी बधाई की पात्र है. आशा है अगले खंडों में विद्वान लेखिका अपने शोध-कार्य के अन्य भागों को भी प्रकाशित करेंगी तथा प्रकाशक इस मूल्यवान ग्रंथ को भारतीय भाषाओं में भी उपलब्ध करेंगे.

कपिला वात्स्यायन इस ग्रंथ के लिए पूर्ण रूप से अधिकारी विद्वान हैं. उन्होंने नाट्य-शास्त्र का केवल किताबी अध्ययन नहीं किया है. वर्षों तक दक्षिण, ओडिसा, असम आदि के 'गुरुओं' तथा उत्तर भारत के उस्तादों से उन्होंने भारतीय नृत्य-परंपराओं का अभ्यास किया है. वस्तुतः इस परिप्रेक्ष्य में वह आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल के पास इस शास्त्र का ऐतिहासिक विवेचन करने के लिए काशी गयीं थीं.

भारतीय नाट्य की परंपरा लंबी है. इस पुस्तक में सिंधु घाटी सभ्यता और वैदिक काल से उस के प्रारंभिक स्वरूपों का विवेचन है. इन के लिए मोहनजोदड़ो से प्राप्त नर्तकी की मूर्ति का वैदिक काल की रचनाओं से उस प्रारंभिक समाज में नृत्य का सहज स्वाभाविक उदत्त स्वरूप का पता चलता है. सैकड़ों पीढ़ियों तक यह अलिखित शास्त्र था; फिर इस ने एक शास्त्र का रूप ग्रहण किया, जो उस का 'प्रामाणिक, परंपरावादी', 'परिष्कृत' स्वरूप हुआ. यह सारी थाती भरत के नाट्य-शास्त्र में सुरक्षित है. समय-समय पर यह परंपरा बदलती गयी, विकसित होती गयी. यह बहुत कठिन है कि आज के भरत नाट्यम् में वही स्थिति मिलती है, जो भरत के काल में थी. वस्तुतः इसी परिवर्तन-शीलता के कारण ये परंपराएँ इतने दिनों तक जीवित रहीं. आश्चर्य तो यह है कि इन में भरत के नाट्य-शास्त्र का बहुत कुछ बचा हुआ है.

इस सारे परिवर्तन की प्रक्रिया कपिला वात्स्यायन के इस ग्रंथ में दिखलाई गयी है. उन्होंने पहली बार यह सिद्ध किया कि भारतीय मूर्त्तियों में, चित्रों में उन्हीं सिद्धांतों का प्रयोग हुआ है. इतना ही नहीं उन के द्वारा हम उन सिद्धांतों का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं. इन दृष्टियों से शालभंजिका और अप्सरा की आकृतियों का विवेचन बहुत महत्त्वपूर्ण है.

कपिला वात्स्यायन ने इस स्थिति को पहले-पहल निरूपित किया है. परंतु इस के समर्थन में शास्त्र का भी प्रमाण है—विष्णुधर्मोत्तर-पुराण के अनुसार चित्र (इस में मूर्त्ति भी सम्मिलित है) और नृत्त दोनों ही लोक (के आचरण) की अनुकृति पर निर्भर हैं. कपिला जी की इस खोज से उपर्युक्त सिद्धांत की पुष्टि होती है. इतना ही नहीं विष्णुधर्मोत्तरकार ने कहा है कि जो कुछ चित्रसूत्र में अनुल्लिखित रह गया है, उसे नृत्त के आधार पर अंकित करना चाहिए.

उत्तर भारत में नृत्य बहुत-कुछ ताल पर आश्रित हो गया. इस प्रकार भरत के रस-सिद्धांत से विमुख, परंतु लोक कला के निकट आ गया. इस में मुस्लिम परंपराओं का भी प्रभाव होगा. फिर भी इस में प्राचीन परंपराएँ विद्यमान हैं. इस समीक्षक ने कुछ वर्ष पूर्व एक लंबी चित्रमाला देखी थी, जिस में मेवाड़ के अंतःपुर में होने वाले स्वांग के दृश्य थे. जान पड़ता है भारतीय अंतःपुरों में ये नृत्त मुग़लकाल के अंत तक चले आये. इन चित्रों से तो ज्ञात होता है कि मेवाड़ में तो प्रति रात्रि ऐसे अभिनय होते थे. परंतु विगत डेढ़ सौ वर्षों में उस परंपरा के नष्ट हो जाने से उस का मूल्यांकन करना संभव नहीं. हर्ष का विषय है कि कपिला जी ने सभी जीवित परंपराओं को अपने ग्रंथ में ऐतिहासिक दृष्टि से परखा है.

इस ग्रंथ की एक प्रमुख विशेषता है—रस-सिद्धांत का विवेचन. आशा है इस से विद्वानों का यह मोहांधकार दूर होगा कि कला की विभिन्न अभिव्यक्तियों में रस का परिपाक भिन्न-भिन्न प्रणालियों और भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं में होता है—यों एक आचार्य तो यह भी कहते सुने गये कि संस्कृत और हिंदी के रस-विचारों में भेद है.

हम पुनः कपिला जी को इस प्रकाशन के लिए बधाई देते हुए यह आशा करते हैं कि इस के अन्य खंड भी शीघ्र प्राप्त होंगे.

क्लासिकल इंडियन डांस इन लिटरेचर ऐण्ड द आर्ट्स (अंग्रेज़ी), संगीत नाटक अकादेमी, नयी दिल्ली, पृष्ठ : ४३१ मूल्य : ६० रु०

भारतेंदु उत्सव

हिंदी नाटक और रंगमंच

वाराणसी में भारत कला भवन के सभागार में हिंदी नाटक और रंगमंच विषय पर एक विचार-गोष्ठी हुई. यह परिसंवाद द्विदिवसीय भारतेंदु उत्सव के अंतर्गत आयोजित था, जिस में नगर तथा बाहर के विशिष्ट साहित्यकार और रंगकर्मी सम्मिलित हुए. इस अवसर पर 'भारत कला भवन' की ओर से भारतेंदु के जीवन से संबंधित एक प्रदर्शिनी का भी आयोजन किया गया. जिस में प्रदर्शित दो चित्र इस पृष्ठ पर दिये जा रहे हैं.

विषय को प्रस्तुत करते हुए श्री **पद्मधर त्रिपाठी** ने कहा: आज संसार के प्रायः सभी देशों में 'विशाल दृष्टिसंपन्न' भरत मुनि के टोटल रंगमंच की खोज हो रही है. ज़ाहिर है कि नाटक और रंगमंच के अन्योन्याश्रित संबंध को ले कर पूर्व और पश्चिम में प्रीतिकर समानता है. पश्चिम अपने विकासक्रम में पूर्व की उपलब्धियों को पाने की दिशा में है. अतः भले ही हम इस तथ्य को विस्मृत कर गये हों—या करने की पेशबंदी में हों—लेकिन अब हमें केवल पश्चिमाभिमुखी न हो कर, वहां की उपलब्धियों को स्वीकारते हुए, अपनी ही ज़मीन पर खड़ा होना है, जहां एक अत्यंत समृद्ध परंपरा पहले से ही विद्यमान है. यही बात हिंदी के नाट्य-समीक्षकों पर भी लागू होती है. वैसे यह शुभ है कि स्वतंत्रता के बालिग़ होते-होते रंगमंच की विकास-यात्रा गतिशील हुई है और उसने हमारे नाट्य-समीक्षकों को भी रंगशाला तक पहुंचने के लिए विवश किया है. आज हमारे सामने भरत के नाट्य-शास्त्र में प्रतिपादित नाट्य-रचना का उद्देश्य और संपूर्ण रंगमंच का रूप है; लोकनाट्य परंपरा का एक अलग पक्ष है और साथ ही पाश्चात्य नाटक और रंगमंच की उपलब्धियां हैं. असल में इन्हीं तीनों के बीच हमें अपनी समस्याओं के समाधान की खोज करनी है. यों निर्णय लेने की स्थिति में हम फ़िलहाल नहीं हैं.

डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने कहा: रंगमंच की उपलब्धि की दृष्टि से हिंदी भाषा की स्थिति निस्संदेह बड़ी दयनीय है. पिछले दस वर्ष से ऐसा नहीं लगता कि इस दिशा में कोई क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है. आज पाश्चात्य साहित्य-जगत् में नाटक को एक सशक्ततम विधा के रूप में देखा-माना जाता है, लेकिन हिंदी में तो कहानी और कविता को ही ले कर बहसें चल रही हैं. आखिर क्या कारण है कि हिंदी-भाषी क्षेत्रों में भी हिंदी नाटक और रंगमंच का विकास नहीं हो रहा है. मेरा विश्वास है कि इस का कारण व्यावसायिक रंगमंच का अभाव है.

डॉ. भानुशंकर मेहता ने कहा: 'हिंदी रंगमंच या मराठी रंगमंच जैसी बिरादराना बात कहना मेरी समझ से ग़लत है. हिंदीतर भाषाओं की उपलब्धियां भी हमारी अपनी ही हो सकती हैं. हिंदी रंगमंच की प्रगति व्यावसायिक रंगमंच के माध्यम से ही हो सकती है. इस के लिए सरकारी सहयोग भी हमें मिलना चाहिए. अच्छे नाटकों के लिए दर्शकों की नहीं अच्छे निर्देशकों की बेहद कमी है.

डॉ. प्रतिभा अग्रवाल ने कहा: आज बड़ी *आवश्यकता इस बात की है कि अच्छे नाटक* लिखे जायें. नाटक और रंगमंच की सफलता के लिए आवश्यकता है अच्छी कृति, अच्छे प्रस्तुतीकरण और अच्छे दर्शक की.

डॉ. जगदीश गुप्त ने कहा: निस्संदेह नाटक के संदर्भ में हिंदी क्षेत्र की अपनी सीमाएं हैं. लेकिन यदि हम कहीं लुंजपुंज हैं तो यह हमारी असंस्कृति का द्योतक है. समग्र सामाजिक जीवन के प्रति हमारी जो धारणाएं होती हैं नाटक उन को उजागर करता है. इसी लिए मेरे मत से जिस क्षेत्र में नाटक विकसित नहीं है वह असंस्कृत है. वास्तव में नाटक हमारे व्यक्तित्व की कसौटी है और यदि नाटक के क्षेत्र में हमारी कमी है तो इस का अर्थ है कि हमने अपने परिवेश का परिष्कार नहीं किया है. मैं प्रतिभा जी की इस बात से सहमत नहीं हूं कि हिंदी के प्रतिष्ठित नाटककारों के नाटक मंच की दृष्टि से असमर्थ हैं.

कुंवर जी अग्रवाल ने कहा: हिंदी रंगमंच के संदर्भ में जिन समस्याओं का साक्षात्कार भारतेंदु जी ने अपने समय में किया था वे लगभग सभी आज भी वर्तमान हैं. अतः आधुनिक नाटक और रंगमंच के परिप्रेक्षण में भारतेंदु के पुनर्मूल्यांकन की ज़रूरत है. हिंदी नाट्य-जगत् का बड़ा दुर्भाग्य है उस की अविकसित समीक्षा-पद्धति. हम अपनी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों की ओर से भी आंख मूंदे हुए हैं. भारतेंदु ने नाटक की भाषा खोजी थी. मेरे मत से उतनी स्पंदनशील और जीवंत भाषा उन के बाद से आज तक किसी नाटककार ने नहीं दी. आज नाटककार और रंगकर्मियों को इस ओर भी जागरूक होना चाहिए.

सीताराम सेक्सरिया ने कहा: मैं नाटक का दर्शक और पाठक रहा हूं. मेरा अनुभव है कि हिंदी रंगमंच नाटककार, वस्तुस्थिति से काफ़ी दूर है.

राय कृष्णदास ने कहा: नाटक, रंगमंच को ले कर हिंदी के लोग इतने चिंतातुर हैं; निस्संदेह यह आगामी विकास के संकेत हैं. अभी तो मैं 'हिंदी रंगमंच' कहने में भी मानो संकोच और लज्जा का अनुभव करता हूं.

अंत में अध्यक्ष-पद से वाचस्पति पाठक ने कहा: हिंदीभाषी क्षेत्रों में नाटक के प्रति जनता में एक संपन्न संस्कार नहीं है. वस्तुतः हिंदी के नाटकों को खेलने की सही तैयारी नहीं हुई है. मैं यह नहीं मानता कि हिंदी में अच्छे नाटकों की कमी है, या पुराने नाटक अनभिनेय हैं. मैंने प्रसाद जी के जीवन-काल में ही 'स्कंदगुप्त' को मंच पर सफलतापूर्वक प्रस्तुत होते देखा है. असल में अच्छे नाटकों को प्रस्तुत करने की दिशा में ठोस क़दम उठाना चाहिए. हमें दर्शकों को तैयार करना होगा. इस कार्य को आंदोलन का रूप भी दिया जा सकता है.

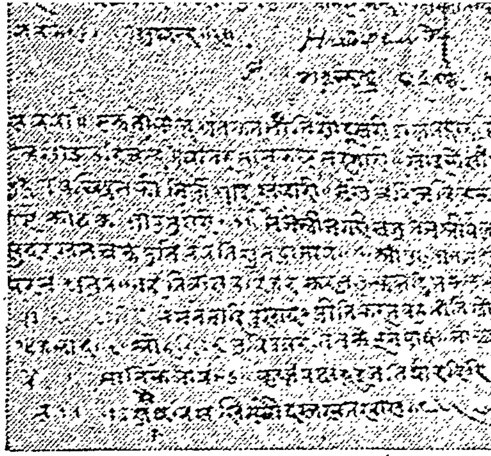

जगन्नाथ पुरी के पंडे की बही पर भारतेंदु हरिश्चंद्र की सही

आरा नागरी प्रचारिणी सभा को प्रेषित भारतेंदु जी का लेख १४ लिपियों में

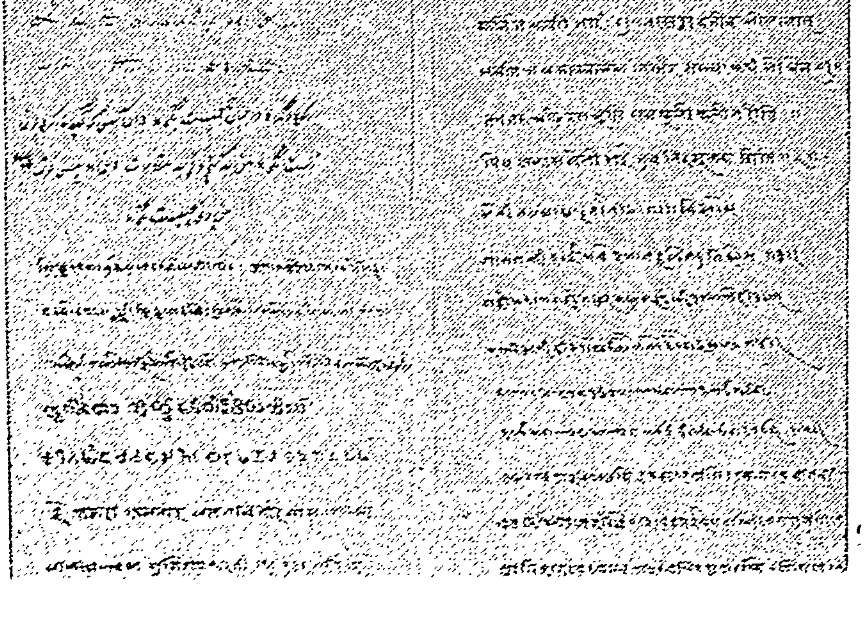

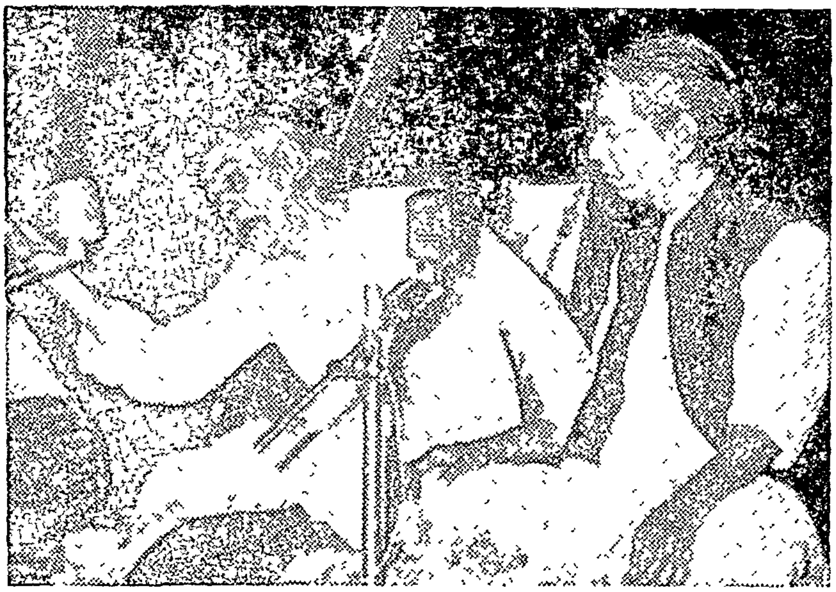

उस्ताद रहीमुद्दीन ख़ाँ डागर और फ़हीमुद्दीन ख़ाँ डागर : रागदारी

संगीत

तानसेन पांडे की स्मृति में

नवनिर्मित संस्था फ़ाइन आर्टस कल्चरल सोसाइटी ने स्वर्गीय उस्ताद हुसैनुद्दीन ख़ाँ सोसाइटी में स्वर्गीय उस्ताद हुसैनुद्दीन ख़ाँ डागर के ६६वें जन्मदिवस पर संगीत-नृत्य का एक कार्यक्रम त्रिवेणी कला संगम के खुले मंच पर आयोजित किया. तानसेन पांडे के नाम से सुविख्यात उस्ताद हुसैनुद्दीन डागर अलाप-ध्रुपद शैली की प्राचीनतम और अनुपम डागुर वाणी में अनन्य गायक और विख्यात उस्ताद अल्लाबंदे ख़ाँ के सब से छोटे सुपुत्र थे. तानसेन पांडे की स्मृति में आयोजित इस कार्यक्रम में उस्ताद रहीमुद्दीन ख़ाँ डागर, उस्ताद मुश्ताक अली ख़ाँ, फ़हीमुद्दीन डागर और रानी कर्णा ने भाग लिया.

प्रारंभ में स्वर्गीय उस्ताद हुसैनुद्दीन डागर का गाया राग विहाग में अलाप और ध्रुपद का रिकॉर्ड डागुर वाणी और उस्ताद की गायन-कला की परिचायक सुंदर रचनाएँ रही. श्रीमती रानी कर्णा द्वारा भजन और ध्रुपद की बंदिशों पर कत्थक प्रदर्शन अभिनय, नृत्य, और संगीत के सुंदर समन्वय का मौलिकता पूर्ण उदाहरण रहा. कत्थक शैली में रानी कर्णा ने चार भाव-नृत्य प्रस्तुत किये. नृत्यों में बंदिशों की नवीनता ही नहीं वरन् सुरुचि-पूर्ण प्रस्तुतीकरण में सहजता और सरलता भी आकर्षित करने वाली रही. मालकोंस, पूरिया और हिंडोल आदि रागों की बंदिशों का राजकुमार द्वारा सुरीला गायन, भाव-नृत्यों के कथानकों को एक नया रूप प्रदान करने वाला रहा. उस्ताद मुश्ताक अली ख़ाँ ने दो अत्यंत कर्णप्रिय छोटे रागों में अल्प समय की बंदिशें पेश कीं. सितार पर राग केदार और खमाज की अवतारणा उस्ताद की प्रतिष्ठा के अनुरूप रही, पर उस्ताद के वादन से तृप्ति नहीं हो सकी. केदार में अलाप, जोड़, झाला वादन और फ़ैयाज का तबले पर संगत में गतकारी में सितार वादन की शास्त्रीय प्राचीन पद्धति का पूरा निर्वाह माधुर्य के साथ रहा. पर वादन-शैली का सही आनंद रहा खमाज की गतकारी में. राग की प्रकृति के अनुरूप वादन में तानों के छोटे-छोटे टुकड़े, मींड़ें और मुकरियों से अलंकृत करने का सुंदर ढंग बरबस ध्यान खींचने वाला और स्फूर्तिमय रहा. डागुर वाणी और नाद साधना की साक्षात् प्रतिमा, पद्मभूषण उस्ताद रहीमुद्दीन ख़ाँ डागर और उन के सुपुत्र फ़हीमुद्दीन ख़ाँ द्वारा आलाप और ध्रुपद की रचनाएँ आत्मविस्मृत करने वाली और रागदारी के असीमित ज्ञान की परिचायक रहीं. आलाप की मौलिक और अनूठी डागुर शैली में उस्ताद द्वारा दरबारी का व्यापक और मंद लय का क्रमिक आलाप राग राज दरबारी की गहन-गंभीर अनुभूति कराने वाला रहा. दरबारी के अद्भुत एवं अलौकिक आलाप में मंद्र स्थान के स्वरों की कलात्मकता और स्वर-श्रुतियों में विस्मयकारी स्पष्टता हृदयग्राही रही. विविध मनोहारी सरगमों, गायकों और लहकों से युक्त राग को साकार करने वाले आलाप का एक-एक क्षण अभिभूत ही करने वाला नहीं, अपितु अनुकरणीय भी रहा. दरबारी के बाद राग शंकरा में आलाप और गोपालदास की संगत में ध्रुपद की रचना उस्ताद ने पेश की. आलाप, ध्रुपद गायन निःसंदेह ऐसी अनुपम शास्त्रीय निधि के उदाहरण रहे.

रानी कर्णा : अभिनयात्मक अभिव्यंजना

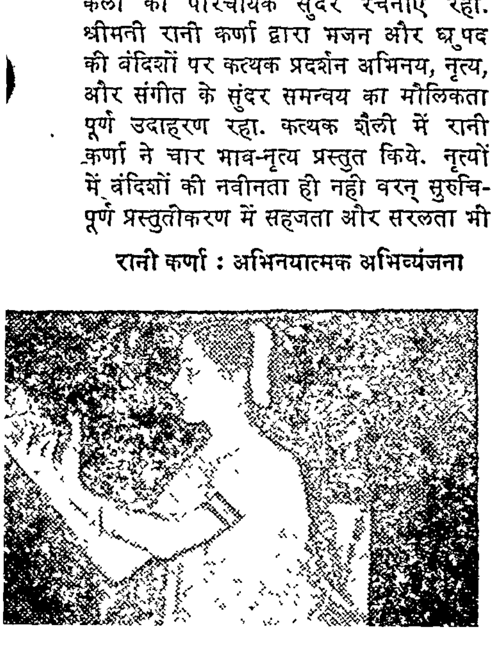

लोकनृत्य

लोकरंगों की नयी पीठिका

राजधानी में पर्वतीय कला केंद्र की प्रस्तुति 'मासी फुली . . . ' में नर्तकों की वेश-भूषा यद्यपि कुमाऊँ के दानपुर इलाक़े की थी किंतु नेपथ्य-स्वर में इस का स्पष्ट उल्लेख न होने से प्रेक्षक को यह शंका हो सकती है कि कहीं यह नृत्य हिमाचलप्रदेश का तो नहीं, जिसे कुमाऊनी लोकनृत्यों के साथ पेश किया जा रहा है. गुमानसिंह रावत द्वारा प्रस्तुत 'आ लिली बाकरी लिलि छू-छू' गीत में भावपक्ष की सबलता, सहजता और मुद्राओं की सार्थकता थी.

निर्देशक मोहन उप्रेती इस कार्यक्रम में भी अपना लोकप्रिय गीत 'बेड़ू पाको बारो मासा काफल पाको चैता . . . !' शामिल करने का लोभ संवरण न कर सके, हालांकि मंच पर प्रस्तुत इस गीत के भाव से नृत्य और उद्घोषक की व्याख्या का कोई साम्य नहीं था. वस्तुतः इस गीत के अनुकूल वातावरण की सृष्टि के लिए कुमाऊँ के गाँवों और वनांचलों में व्याप्त अद्भुत ध्वनियों का विधान भी बहुत आवश्यक है.

एक-दूसरे के हाथों की लकड़ी बजाते हुए गोल घेरे में घूमती हुई स्त्रियों के एक अन्य समूह नृत्य पर गुजरात के गरबा नृत्य का प्रभाव कुछ इतना हावी था कि उसे कुमाऊनी नृत्य नहीं माना जा सकता. बेशक कुमाऊनी बारात की झाँकी इस कार्यक्रम का लोकरंगों से भरपूर सर्वाधिक मोहक और मौलिक अंश था, हालांकि यह अंश भी प्रस्तुतिकरण के दोषों से मुक्त नहीं है. कुमाऊनी बारात में 'ब्योली-पिटारे' (दुल्हन के गहनों का पिटारा) के पहले, यानी सब से आगे लाल 'निषाण' (झंडा) होता है और वह भी अधूरा खुला हुआ. यह 'निषाण' इस आशंका का द्योतक है कि कहीं विवाह संपन्न होने तक किसी विघ्न का सामना न करना पड़े. लेकिन 'ब्योली' (दुल्हन) को ले कर लौटती बारात के आगे सफ़ेद निषाण होता है, जो विजय और शांति का प्रतीक है. लाल निषाण तब सब से पीछे रहता है. मंच पर प्रस्तुत बारात में बाकी क्रम तो दुरुस्त था, किंतु निषाणों के साथ-साथ लौटती हुई बारात से ब्योली भी गायब थी. ब्योले (दूल्हा) के चेहरे पर बने 'कुरुम' (चावल-चूर्ण के घोल से बना श्रृंगार) तो खैर मुकुट के झालर से ढंक गया था, किंतु बारात में शरीक़ 'छोलिया' (कहीं-कहीं इसे 'छल्यो' भी कहते हैं) नर्तकों के चेहरों पर बने 'कुरुम' की ओर उद्घोषक को प्रेक्षकों का ध्यान आकर्षित करना चाहिए था, जिस से कि प्रेक्षक कुमाऊनी बारात की नोक-पलक समझ सकें. 'छोलिया' नृत्य को निर्देशक ने कथाकलि का स्पर्श (टच) दे कर और अधिक प्रभाव-शाली बना दिया था.

फ़ैशन

सजा-सँवरा रूप

रूप और फ़ैशन का चोली-दामन का साथ है—ऐसा स्त्रियों की अंग्रेज़ी पाक्षिक पत्रिका 'फ़ेमिना' के संचालक मानते हैं. हर साल की तरह इस बार भी मायामी बीच में होने वाली विश्वसुंदरी-प्रतियोगिता में भारत का प्रतिनिधित्व करने के क़ाबिल सुंदरी के चुनाव का साथ फ़ैशन-परेड ने दिया. फ़ैशन परेड का पौरोहित्य करते हुए जिवस आकेरकर ने हर बार की तरह इस बार भी कहा 'अब हम आप के सामने कुछ ऐसे लिबास पेश करते हैं जो भारत सुंदरी की पसंद हैं'.

कपड़ा-उद्योग की विशिष्ट संस्थाओं की सहायता से आयोजित ये फ़ैशन प्रदर्शनियाँ हर बार दर्शकों के लिए कुछ-न-कुछ नया ले कर आती हैं. भारत में बने कपड़े से अनगिनत नमूनों के वस्त्र बन सकते हैं—यही संदेशा दर्शकों तक पहुँचाने का श्रेय इन प्रदर्शनियों को दिया जा सकता है. इस बार जिन संस्थाओं ने प्रदर्शनी के आयोजन में 'फ़ेमिना' का हाथ बँटाया उन के नाम हैं—आर्मर 'ज़ी' शर्ट, सेंचुरी रेयोन, फैंसी कॉर्पोरेशन लिमिटेड, ग्रेटवे निटवेयर, खटाऊ एंड माकनजी स्पिनिंग एंड वीविंग कंपनी लिमिटेड, मफ़तलाल ग्रुप ऑफ़ मिल्स और पैरागॉन टेक्सटाइल मिल्स. इन संस्थाओं की मिलों में बने कपड़ों के ६३ प्रकार के नमूने ८ मॉडलों ने पहन कर दिखाये, जिन में से कुछ को तैयार करने में प्रेरणा पश्चिमी देशों से ली गयी थी—यानी पश्चिमी लिबासों का भारतीय संस्करण पेश करने की कोशिश की गयी थी; जब कि कुछ पहनावों का मूल भारतीय होते हुए भी उन के वर्त्तमान रूप में भारतीयता खोज पाना कठिन था. कुर्त्तों और चूड़ीदार पाजामों की शक्लों में हर वर्ष परिवर्त्तन होते रहते हैं—इस बार भी कई नये नमूने देखने को मिले. मुसलमान स्त्रियों का नफ़ीस लिबास ग़रारा-कमीज़ को भी कुछ ऐसा मोड़ दे दिया गया कि वह पश्चिमी 'ईवनिंग गाऊन' के ज़्यादा क़रीब हो गया.

फ़ैशन परेड : पल-पल परिवर्त्तित रूप-वेष

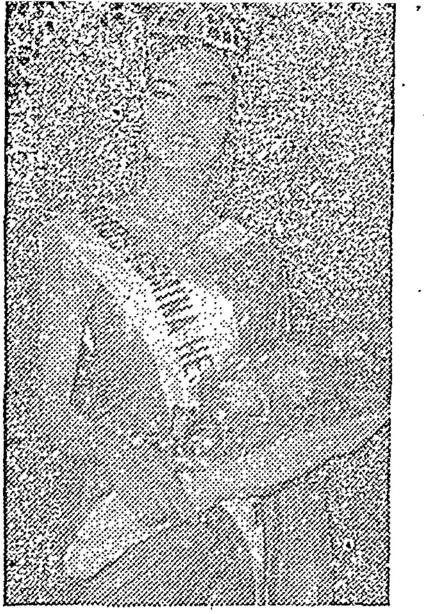

माला प्रधान : ऊँची उड़ान

बाज़ार तक पहुँच : आम तौर पर फ़ैशन प्रदर्शनियों में दिखायी गयी वेश-भूषाओं में से कुछ ही बाज़ार तक पहुँच पाती हैं. इन में से जो जितनी प्रचलित फ़ैशन के क़रीब होंगी उन की जनसाधारण में लोकप्रिय होने की संभावना उतनी ही अधिक होगी. इस बार की प्रदर्शनी में कुछ नमूने ऐसे थे जो मॉडलों पर तो ठीक लगते थे पर रोज़मर्रा उन्हें पहनने की बात सोची नहीं जा सकती. मर्दाना कमीज़ों को युवतियों ने जिस ख़ूबी के साथ पहन कर दिखाया उस से अनायास यह बात उजागर हो गयी कि इस महँगाई के ज़माने में कपड़ों के ख़र्च में किफ़ायत करने का यह एक विशिष्ट तरीक़ा है. घर के स्त्री-पुरुष सब के लिए एक ही-सी कमीज़ें काम देंगी.

दिल्ली सुंदरी की पसंद : १२ सुंदरियों में से चुनी गयी दिल्ली सुंदरी **माला प्रधान** को इन ६३ नमूनों में से कौन-कौन से पसंद आये, या कौन से कपड़े वह पहनना चाहेगी, ऐसा कोई उल्लेख दर्शकों के सामने न तो दिल्ली सुंदरी ने किया और न ही शायद संचालकों ने यह जानने की कोशिश की. इस लिए सुंदरियों के साथ **अमीन सायानी** के चटपटे वार्त्तालाप में यदि प्रदर्शित नमूनों के बारे में उन की राय पूछी जाती तो उत्सव के दोनों अंश—यानी सौंदर्य-प्रतियोगिता और फ़ैशन परेड—एक दूसरे के और क़रीब आ जाते. पर 'एयर होस्टेस' (विमान-परिचारिका) बनने का सपना दिल में सँजोये रखने का नतीजा क्या होता है, यह शायद १८ वर्षीया माला प्रधान भली प्रकार जानती है. चौबीस घंटों में अधिकांश समय तो उड़ान भरने में बीतेगा और उतनी देर 'एयर होस्टेस' की वर्दी से छुटकारा पाना संभव नहीं. जो घड़ियाँ ज़मीन पर बीतेंगी उन में क्या माला प्रधान को बदल-बदल कर लिबास पहनने के लिए पर्याप्त समय मिल सकेगा?

फ़िल्म

'सौ साल पहले की बात है . . .'

किसी रूप-गुण संपन्न पुरुष को अपना मानस-पति मान लेने के बाद परिस्थितियों के कुचक्र में फँस कर अन्य किसी शराबी, बदकार पुरुष से विवाह करने की मजबूरी और फिर 'माता-पिता' की सीख के मुताबिक 'मन, वचन, कर्म' से पतिव्रत धर्म निभाने की दकियानूसी परंपरा यदि आज भी भारतीय नारियों का परम आदर्श माना जा सकता है तो गुजराती के पुरानी पीढ़ी के प्रसिद्ध लेखक गोवर्धन राम त्रिपाठी के उपन्यास पर आधारित फ़िल्म 'सरस्वतीचंद्र' इसी आदर्श का फ़िल्मी संस्करण है. प्रेम, विवाह और जीवन-मरण से संबंधित सौ फ़ीसदी शाकाहारी आदर्शों के निर्वाह में "सौ साल पहले" का इंसान मर-खप सकता था, किंतु आज का इंसान क्या इन आदर्शों को ओढ़ कर साँस ले सकता है ? यही वजह है कि 'सरस्वतीचंद्र' फ़िल्म की नायिका कुमुद (नूतन) जो टेक निभाती है—एक बदकार पुरुष की सती-सावित्री पत्नी बने रहने की टेक—उस के प्रति प्रेक्षक तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता, क्यों कि इंसान को देवता बनाने के लिए रची गयी 'आचार-संहिता' कोई खादी नहीं है, कि आज का इनसान उसे किसी आदर्श विशेष का प्रतीक मान कर पहन ले. बहरहाल कुमुद के प्रति तो थोड़ी बहुत हमदर्दी जगती भी है, किंतु 'लोककल्याण' के जज़्बे से प्रेरित सरस्वतीचंद्र के जीवन की विडंबना देख कर किसी महापुरुष की नहीं ज़्यादा से ज़्यादा सत्यजित रे की फ़िल्म 'का पुरुष' के नायक की याद हो आती है.

ब्रजेंद्र गौड़ की पटकथा क्यों कि एक पुरानी पीढ़ी के लेखक के उपन्यास पर आधारित है अतः उस में संयोगों के झटके न हों, यह कैसे संभव है? यद्यपि निर्देशक **गोविंद सरैया** की यह पहली ही फ़ीचर फ़िल्म है किंतु इसी आधार पर उन्हें 'नया निर्देशक' नहीं कह सकते. अपनी फ़िल्म के नायक को यहाँ-वहाँ, वीराने में देर तक बेमतलब भटका कर और बार-बार उस के लहूलुहान पैरों की ओर कैमरा घुमा कर या मृत्यु के संकेत को बुझते दिये के घिसे-पिटे प्रतीक से दोहरा कर उन्होंने जाहिर कर दिया है कि उन में कुछ नया दिखा सकने की ललक है भी तो इस फ़िल्म में उस का कहीं आभास नहीं मिलता. कला-निर्देशक ने सेटों के निर्माण में अवश्य सूझ-बूझ का परिचय दिया है. कल्याणजी आनंदजी का संगीत साधारण कोटि का है. इस फ़िल्म में ऐसा कोई कोण नज़र नहीं आया कि 'बंदिनी', 'सुजाता' और 'सीमा' की नायिका नूतन की एक बार और तारीफ़ की जाये. नये अभिनेता मनीष के चेहरे पर मनोभावों के उतार-चढ़ाव का अक्स देख सकने की कोई गुंजाइश नज़र नहीं आती.

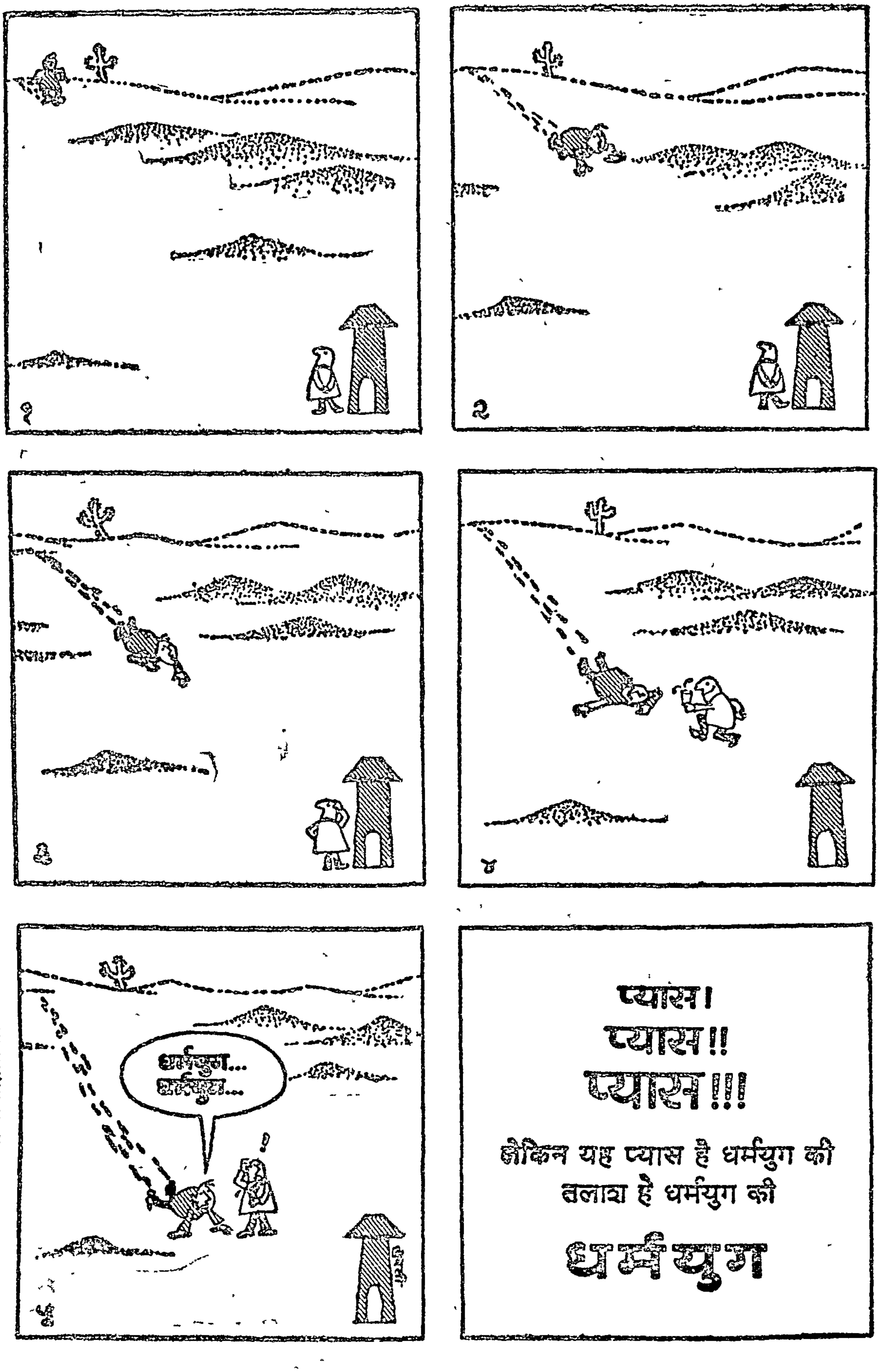

१
२
३
४
धर्मयुग...
धर्मयुग...
!
५
प्यास।
प्यास!!
प्यास!!!
लेकिन यह प्यास है धर्मयुग की
तलाश है धर्मयुग की
धर्मयुग

everest/340ar1/PP H

पंजीयित संख्या डी० १५०१

We don't make even a third of the Nation's Biscuits.

Only the best...

that's why BRITANNIA exports far exceed two-thirds of India's total biscuit exports.

BBC. 5914

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूजा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।

साप्ताहिक दिनमान

टाइम्स ऑफ इण्डिया प्रकाशन

२७ अप्रैल, १९६९

उत्तम सिलाई की नींव

हमारे आधुनिकत्तम आयात किये गये स्वचलित संयंत्र में सर्वोत्तम कपास से तैयार मोदी धागा बिल्कुल सफ़ेद या इन्द्रधनुषी पक्के रंगों में मिलता है। यह मुलायम और मज़बूत है इसलिए घरेलू व औद्योगिक सिलाई और कशीदाकारी के लिए सर्वोत्तम है।

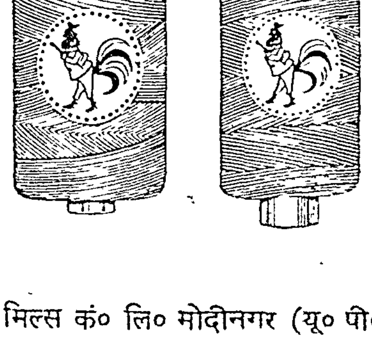

मोदी थ्रेड मिल्स
बढ़िया धागे बनाने वाले

प्रोप्राइटर्स
मोदी स्पीनिंग एण्ड वीविंग मिल्स कं० लि० मोदीनगर (यू० पी०)

सबसे अव्वल....

सुस्वादपूर्ण एवं शक्तिदायक
भोजन बनाने के लिए सदैव प्रयोग करें

अव्वल दर्जा

व न स्प ति

स्वास्थ्य के लिए आवश्यक विटामिनों से परिपूर्ण

गणेश फ्लोर मिल्स कं० लि०,
कालपी रोड, कानपुर

KRISHNA

मत और सम्मत

शंकराचार्य : पटना के द्वितीय विश्व हिंदू धर्म सम्मेलन में शंकराचार्य के भाषण को पढ़ कर बहुत ही दुख पहुँचा. उन्होंने अपने भाषण से संविधान की हत्या की है. उन को क्या मालूम था कि उन के इस भाषण से नीची जाति वाले को कितना धक्का पहुँचा है.

—कुमार नरेंद्रसिंह देव, राँची

आधुनिक, जनतांत्रिक एवं औद्योगिक भारत में जाति-प्रथा और छुआछूत नहीं चल सकते हैं. चाहे हिंदू शास्त्र कहें या हमारे ऊँचे मठाधीश हमें उन अराष्ट्रीय, अमानवीय व अजनतांत्रिक विचारों का विरोध करना चाहिए.

—राय बहादुर, मुरादाबाद

हाल ही में अस्पृश्यता और वर्ण-व्यवस्था के पक्ष में, निकम्मे शास्त्रों का हवाला दे कर, शंकराचार्य ने जर्जर हिंदू समाज में दरार डालने की कोशिश की है. शंकराचार्य यह मान बैठे हैं कि हिंदू समाज धर्म-भीरु है; सो जो भी कहेंगे समाज मान लेगा. लेकिन आज-कल उन के वक्तव्य की जो निंदा हो रही है वह उन के धर्म-ज्ञान को तराशने में पर्याप्त होना चाहिए.

—भँवरलाल सुंहालका 'समाजी', चित्तौड़

महात्मा गांधी की इस चेतावनी को कि अगर अस्पृश्यता नहीं मिटी तो हिंदू समाज मिट जायेगा धीरे-धीरे हिंदू समाज शांत भाव से स्वीकार करता जा रहा था कि जगद्गुरु ने एक विस्फोट कर दिया.

—ललनप्रसाद सिंह, सारन

श्री शंकराचार्य के वर्ण-व्यवस्था एवं अस्पृश्यता संबंधी अपने विचार हैं. यह आश्चर्य की बात तो है कि अद्वैतवाद के सिद्धांत को मानने वाले मनुष्य-मनुष्य में इतना भेद करें कि किसी विशेष वर्ण में जन्म लेने पर उसे छूना तक अधर्म मानना पड़े और यह विचार आम सभाओं में व्यक्त किया जाये. यह तो महा आश्चर्य ही है.

—रामनंदन सिंह, पटना

आज जब छुआछूत, ऊँच-नीच का भेद एक अभिशाप समझा जाने लगा तब छुआछूत के जाल को मजबूत करने के अभिप्राय से हिंदू धर्म के सब से बड़े ठेकेदार ने फिर हिंदू धर्म के सब से कलंकमय अध्याय को (छुआछूत) हिंदू धर्म का आधार बता कर अपनी विकृत एवं संकीर्ण मस्तिष्क का परिचय दिया.

—महेंद्र कुमार, सहारनपुर

हम सभी धर्म-प्रेमियों का, विशेषतया हिंदुओं का, यह कर्त्तव्य है कि शंकराचार्य जी के इस कथन की कठोर शब्दों में निंदा करें राष्ट्र से ऊपर धर्म नहीं होता. इस समय हिंदू समाज का मौन रहना इस बात का द्योतक होगा कि श्री शंकराचार्य जी के कथन का वह समर्थक है.

—जागेश्वरप्रसाद शर्मा, मुरादाबाद

शंकराचार्य ने अस्पृश्यता संबंधी अपने मध्ययुगीन विचारों को प्रकट कर के यह साबित कर दिया है कि वह बीसवीं शताब्दी के साथ चलने में असमर्थ हैं. न ही वह उस पवित्र गद्दी के पात्र हैं जो भारत के करोड़ों हिंदुओं का धार्मिक प्रतिनिधित्व करती है.

—त्रिभुवननाथ मंजुल, इलाहाबाद

विश्व हिंदू सम्मेलन में जो विचार श्री शंकराचार्य जी ने व्यक्त किये वह शास्त्रोक्त विचार हैं और जिस समय वह शास्त्रों के विरुद्ध व्यवहार करेंगे वह शंकराचार्य की गद्दी पर पदासीन नहीं हो सकते. उन को राष्ट्र-द्रोही कहना तथा सार्वजनिक रूप से कोड़े लगवाना, सज़ा दिलवाना आदि-आदि विचार संसद-सदस्यों के लिए अशोभनीय ही नहीं वरन् निंदनीय भी हैं.

—रामसनेही तिवारी, जालौन

जगत्गुरु ने कोई भी असंगत बात नहीं की है. यह कोई जरूरी नहीं कि कोई किसी के साथ बैठ कर खाये-पिये. अगर ऐसी बात है तो क्यों नहीं ये राजनीतिज्ञ ग़रीबों के साथ

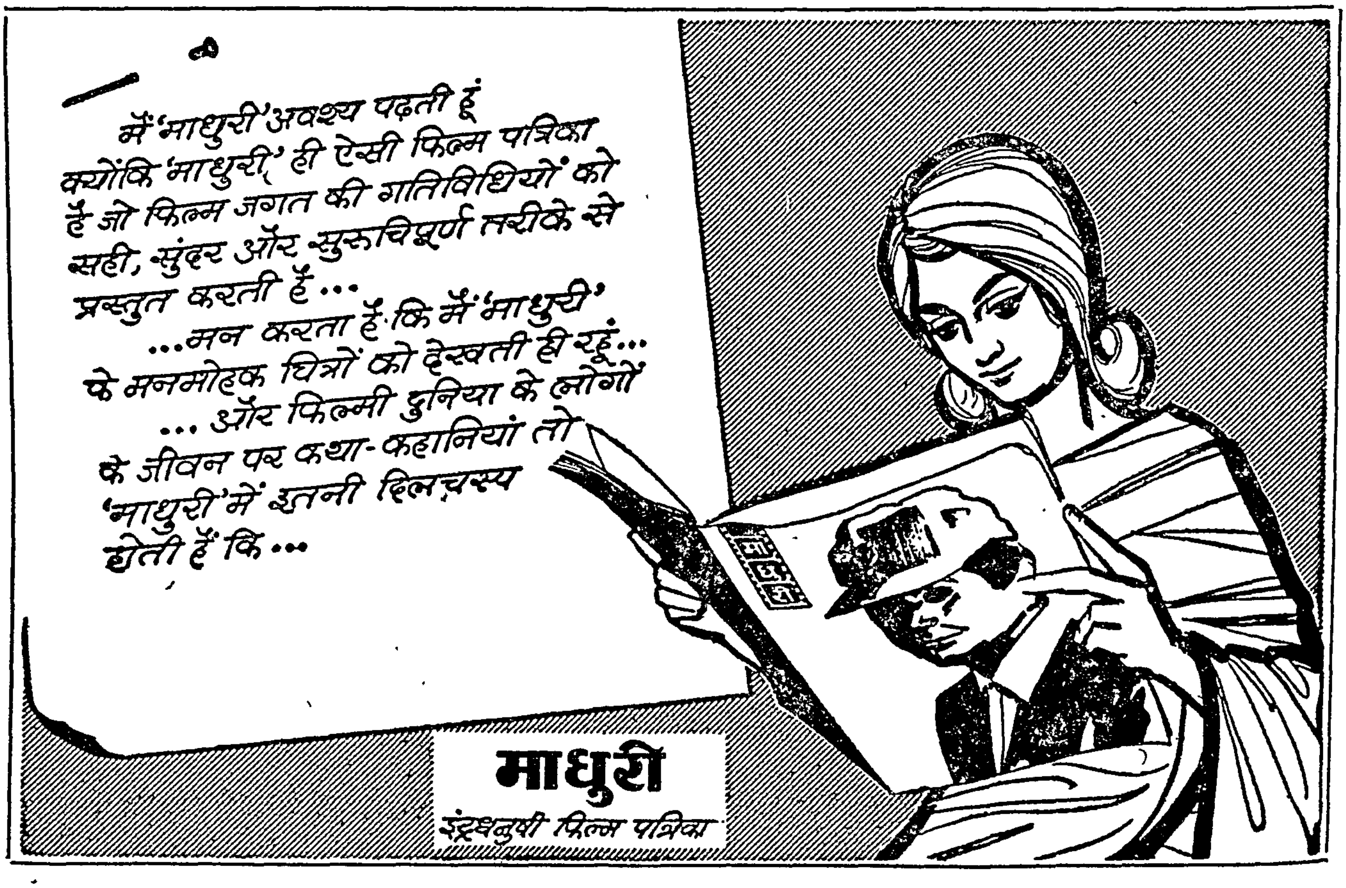

एक पंक्ति में, एक थाल में खाते हैं. उन्होंने नीची जातियों के लिए क्या किया है सिवाय राजनीतिक स्वार्थ के?

—एस. एस. पंछी, पटना

भेंट-वार्त्ता : मैं जोशी जी के विचार से पूर्णतः सहमत हूँ. उन का यह कहना कि १९७२ में केंद्र में मिलीजुली सरकार बनेगी और अभी से ही लोकतांत्रिक समाजवादी शक्तियाँ एक निश्चित कार्यक्रम और सिद्धांत बना लें, नहीं तो केंद्रीय सरकार को भी राज्यों की ग़ैर-कांग्रेसी सरकारों की तरह दिन देखने पड़ सकते हैं.

—अनिलप्रसाद वर्मा, मुंगेर

श्री प्रकाशनारायण सप्रू जी संविधान बनाने वालों में से थे. उन को अब यह लगता है कि भारत का संविधान ब्रिटिश पद्धति के अनुसार न बना कर अमेरिकी पद्धति से बनना चाहिए था. ऐसे ही विचार मैंने अन्यत्र कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी जी का पढ़ा था. प्रश्न यह उठता है कि ब्रिटेन या अमेरिका का संविधान वहाँ की जनता की जीवन-पद्धति के अनुसार है. हम उन से भिन्न हैं. हमारा संविधान हमारी प्रकृति के अनुसार होना चाहिए था, जिस से यहाँ की जनता की आस्था और श्रद्धा उस पर केंद्रित रहती. क्या ऐसा संभव नहीं था कि किसी का भी अनुकरण न करते हुए, अपनी संस्कृति, अपने इतिहास से प्रेरणा ले कर, अपनी स्व की बुद्धि लगा कर अपना संविधान बनाया जाता ?

—राजेंद्रप्रसाद कर्ण, पटना

बिहार : बिहार मंत्रिमंडल का गठन अभी पूर्ण नहीं हुआ है, पर अधूरी मंत्रिपरिषद् ही अपनी बैठकों में महत्त्वपूर्ण निर्णय लेती जा रही है, जो कदापि न्यायसंगत नहीं है. आश्चर्य की बात तो यह है कि अगर निर्णय जनता के हित में होता तो कोई खास बात नहीं थी, परंतु यह मंत्रिपरिषद्, जिस का भविष्य निश्चित नहीं है, शीघ्रातिशीघ्र अपने मुख्य उद्देश्यों को पूरा कर लेना चाहती है.

श्री सोहनी, मुख्य सचिव को नाटकीय ढंग से छुट्टी पर भेज दिया जाना तथा श्री एस. एन. सिंह को मुख्य सचिव के पद पर नियुक्त कर दिया जाना—जागरूक जनता के दिमाग़ में कुछ संदेह पैदा हो गया है. श्री सिंह अय्यर आयोग में फँसे एक वरिष्ठ सदस्य के हिमायती बताये जाते हैं. तथाकथित 'ब्रीफ़िंग कमेटी' का निर्माण किये जाने से जनता भौंचक्की हो गयी है. श्री अब्राहम (राज्य के एक वरिष्ठ अधिकारी) बड़े ही अच्छे ढंग से अय्यर आयोग की सहायता कर रहे थे. उस पर हरिहर सिंह के मंत्रिपरिषद् के सदस्यों ने अविश्वास किया है तथा भ्रष्ट अधिकारियों की एक समिति गठित की गयी, जो अय्यर आयोग की सहायता करेगी.

—सुरेंद्र कुमार, सिंदरी

बिहार में भूतपूर्व मंत्रियों के आचरण की जाँच के लिए आयोग अपना काम कर रहा है, परंतु अब उस आयोग को बाधा देने के लिए एक 'ब्रीफ़िंग कमेटी' की नियुक्ति की गयी है. कहने का अर्थ तो यह है कि इस 'ब्रीफ़िंग कमेटी' के द्वारा कमिटी के सदस्य छान-बीन कर कागज़ात कमीशन को देंगे, परंतु इस की तह में कुछ और ही बातें हैं कि आचरण के विरोध भ्रष्टाचार वाले सारे के सारे काग़ज़ात ही ग़ायब कर दिये जायेंगे. यह 'ब्रीफ़िंग कमेटी' ब्रीफ़िंग कमेटी नहीं है, बल्कि 'भूतपूर्व मंत्रियों की मुक्ति कमेटी' है.

—जनार्दनप्रसाद सिन्हा, पटना

बिहार सरकार में शामिल होने के पूर्व तक कामाख्यानारायण सिंह और उन की जनता पार्टी लगान-माफ़ी का नारा बुलंद करती रही. शोषित दल भी अपने कार्यक्रमों में ऐसा ही करता है. सन् ६७ के चुनाव में कांग्रेस ने भी अपने चुनाव-घोषणापत्र में लगान माफ़ करने की घोषणा की. आज इन्हीं दलों की सरकार बनी है. लेकिन स्थिति यह है कि महामाया बाबू और भोला बाबू के समय की संविद सरकारों ने लगान से किसानों को जिस रूप से मुक्त करने की घोषणा की राष्ट्रपति-शासन के अंतर्गत केंद्र की कांग्रेसी सरकार ने किसानों से तीन साल का बकाया तक वसूल करने का आदेश दिया. एक ओर लगान-माफ़ी का नारा दे कर वोट लेना, दूसरी ओर तीन-तीन साल के लगान की वसूली एक साथ—जनता हैरानी में है.

—रामजन्म सिंह, सतना

बजट और किसान : मुझे खेद है कि वर्तमान बजट के अनुसार चीनी, खाद, कपड़ा तथा और भी अन्य उपभोग-वस्तुओं का मूल्य काफ़ी बढ़ गया है. इस के अलावा किसानों द्वारा उत्पन्न सभी अनाजों की क़ीमत में दिन प्रति दिन काफ़ी गिरावट आ रही है, जिस से किसान मंडली में क्षोभ एवं उदासीनता की लहर उमड़ पड़ी है. अतः औद्योगिक एवं कृषि-वस्तुओं के मूल्य-स्तर में जो असंतुलन की स्थिति है उस का किसानों की पैदा करने की प्रवृत्ति पर बहुत भारी प्रभाव पड़ेगा, जिस से अनाज का उत्पादन पुनः कम हो जायेगा. परिणामस्वरूप सरकार को विदेशों से अनाज मँगाने में काफ़ी रक़म खर्च करनी पड़ जायेगी. अतः सरकार को इसे रोकना चाहिए.

भूल-सुधार

दिनमान के ६ अप्रैल १९६९ के अंक में पृष्ठ १५ पर जो फ़ोटो-चित्र छपा है वह भूल से शृंगेरी के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य का छपा है जब कि प्रसंग से वहाँ पुरी के श्री शंकराचार्य का चित्र अपेक्षित था. इस अनचाही भूल के लिए दिनमान को हार्दिक खेद है.—सं.

पिछले सप्ताह

(१० अप्रैल से १६ अप्रैल, १९६९ तक)

देश

१० अप्रैलः दिल्ली के डॉक्टरों की हड़ताल समाप्त. तेलंगाना के कांग्रेसी नेताओं में उत्साहजनक बातचीत. काशीपुर बंदूक कारख़ाने में गोलीबारी. विरोध में बंगाल बंद.

११ अप्रैलः प्रधानमंत्री द्वारा तेलंगाना के लिए ८ सूत्रीय कार्यक्रम की घोषणा. काशीपुर कारख़ाने में गोलीबारी की जाँच करने के लिए सर्वोच्च न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश एस. के. दास की नियुक्ति.

१२ अप्रैलः पश्चिम बंगाल के उपमुख्यमंत्री ज्योति बसु का काशीपुर कारख़ाने की गोलीबारी की जाँच के लिए केंद्र द्वारा आयोग स्थापित करने का विरोध.

१३ अप्रैलः जलियाँवाला बाग़ के शहीदों को श्रद्धांजलि.

१४ अप्रैलः संसपा के सभापति एस. एम. जोशी का अपने पद से त्यागपत्र.

१५ अप्रैलः असम के पुनर्गठन संबंधी संविधान विधेयक लोकसभा द्वारा पारित. महात्मा गांधी के अंतिम पुत्र रामदास गांधी का बंबई में देहांत.

१६ अप्रैलः पिछड़ी हुई जातियों के लिए रियायतें बरक़रार रखने के बारे में क़ानून-मंत्री गोविंद मेनन का लोकसभा में संकेत.

विदेश

१० अप्रैलः ब्रिटेन के वुलवरहेंपटन परिवहन समिति द्वारा सिखों के दाढ़ी और पगड़ी पर प्रतिबंध का हटाया जाना. पाकिस्तान के राष्ट्रपति याह्या ख़ाँ द्वारा अपने पहले संवाददाता सम्मेलन में उपमहाद्वीप में शांति-स्थापना के प्रयास का संकेत.

११ अप्रैलः पश्चिम एशिया समस्या के समाधान के लिए यर्दन के शाह हुसेन द्वारा छहसूत्रीय कार्यक्रम की पेशकश.

१२ अप्रैलः एंगुइला में २०० प्रदर्शनकारियों द्वारा ब्रितानी कमिश्नर टॉनी ली के निवास-स्थान पर हमला करने का प्रयास.

१३ अप्रैलः अमेरिका के लिए जासूसी करने वाले चार ईराकियों को फाँसी.

१४ अप्रैलः स्वेज़ के आरपार इस्राइल और संयुक्त अरब गणराज्य के विमानों में मुठभेड़. ढाका के आसपास भयंकर तूफ़ान के कारण हज़ारों लोग बेघरबार.

१५ अप्रैलः मौलाना भासानी द्वारा पाकिस्तान के राष्ट्रपति याह्या ख़ाँ के ख़िलाफ़ मुहिम छेड़ने का संकेत.

१६ अप्रैलः उत्तर कोरिया द्वारा अमेरिकी जहाज़ को गिराये जाने के बारे में अमेरिकी अधिकारियों की पुष्टि.

पत्रकार संसद

मॉस्को की मुसीबतें : यूरोपीय सुरक्षा

सोवियत संघ और चीन के मतभेदों ने हाल ही में उग्र रूप धारण कर लिया था, जिस से मजबूर हो कर सोवियत संघ को चीन के साथ लगने वाली अपनी सीमाओं की ओर सब से अधिक ध्यान देना पड़ा है. इसी संदर्भ में सोवियत संघ ने अपने गुट के देशों के साथ भी सीमा-प्रश्नों को हल करने की इच्छा व्यक्त की है और पश्चिमी देशों की तरफ़ भी दोस्ती का हाथ बढाया है. अमेरिकी पत्र **क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर** ने अपने हाल के संपादकीय में मॉस्को की इन नयी मुसीबतों का उल्लेख करते हुए सोवियत संघ के रवैये में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तनों का संकेत दिया है. पत्र का कहना है—

रूसियों को इस समय दो जगहों पर मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है—इधर एशिया में और उधर यूरोप में . उन की इस बारे में गंभीर चिंता का एक संकेत तो यही है कि वे पिछले दस वर्ष से एशिया और यूरोप में स्थिरता प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं. एशिया में चीनियों के साथ सीमा-विवाद तय करने के लिए रूसियों ने इतनी गरमागरमी के बावजूद १९६४ की उस वार्त्ता को फिर शुरू करने का सुझाव दिया है जो भंग हो गयी थी. चेकोस्लोवाकिया के लिए रूसियों ने डंडे का इस्तेमाल किया. वहाँ मार्शल ग्रेचको और उपविदेश मंत्री को भेजा गया, जिस से कि खतरनाक से खतरनाक चेक को सही रास्ते पर लाया जा सके. यूरोप में रूमानिया और युगोस्लाविया के खिलाफ़ रूसियों ने काफ़ी शोर मचा रखा है.

एक तरह से रूसी अपनी ही चालाकियों का शिकार हो गये हैं. इस बात के तो काफ़ी स्पष्ट प्रमाण हैं कि सोवियत संघ निरस्त्रीकरण अथवा यूरोप के बारे में अमेरिका के साथ कोई न कोई समझौता करने को उत्सुक है. पर रूस यह भी जानता है कि इस के लिए पहली और आवश्यक शर्त रूस के यूरोप में स्थिरता प्राप्त कर लेने की है. लोगों की बुनियादी स्वतंत्रता छीनने से और दमन-चक्र चलाने से रूस यह स्थिरता प्राप्त नहीं कर सकता और इस प्रकार की स्थिरता प्राप्त किये बिना अमेरिका के साथ किसी समझौते पर पहुँचने का लक्ष्य पूरा नही हो सकता.

रूसियों ने अमेरिका के साथ शिखर-सम्मेलन का जो सुझाव दिया है वह भी कम नाटकीय नहीं है. सब से दिलचस्प बात तो यह है कि हाल ही में चीन के साथ सीमा पर झड़पों की सारी खबरें और विवरण मॉस्को, बॉन और वॉशिंग्टन को बक़ायदा सरकारी तौर पर अपने राजनयिक सूत्रों के माध्यम से देता रहा है. अब प्रश्न यह है कि इस सब पर मॉस्को और वॉशिंग्टन की प्रतिक्रिया क्या रही होगी? पहली बात तो यही है कि मॉस्को, जो हमेशा प्रचार का ही सहारा लेता रहा है, पश्चिम को कहीं बेवकूफ़ तो नहीं बना रहा है? दूसरे अगर पश्चिमी देश चीन के बारे में मॉस्को के रवैये के समर्थक भी बन जायें तो कहीं इस का यह मतलब तो नही लिया जायेगा कि मॉस्को के बारे में चीन की नीति का भी वे समर्थन करते हैं? तीसरी और सर्वाधिक महत्त्व की बात यह है कि पश्चिमी देशों का अपने हितों को समझने और उन की रक्षा करने का दृढ़ निश्चय होना चाहिए. बराबरी के आधार पर ही रूसियों से बातचीत करना ठीक है, उन की शर्तो पर नहीं.

यूरोपीय सुरक्षा-सम्मेलन

इधर उत्तर एटलांटिक संधि संगठन और उधर वारसा संधि ये दोनों विराट सैन्य संधियाँ यूरोप में तनातनी और युद्ध के खतरे का दोषी एक दूसरे को ठहराती हैं और यूरोपीय शांति के नाम पर अपने-आप को अधिकाधिक सैनिक साज सामान से लैस करती जा रही हैं. वारसा संधि देशों के हाल ही के एक सम्मेलन में यूरोपीय सुरक्षा-सम्मेलन का सुझाव पश्चिमी देशों के सामने रखा गया. सोवियत संघ सहित पूर्वी यूरोप के देशों के सुझावों को पश्चिमी यूरोप के देश प्राय: गंभीरतापूर्वक नहीं लेते और प्रचार मात्र कह कर उस को अनदेखी कर देते है. पर यूरोपीय सुरक्षा-सम्मेलन के सुझाव की पश्चिम पर अच्छी-खासी प्रतिक्रिया हुई है. ब्रितानी पत्र **आब्ज़र्वर** का ख्याल है कि यूरोपीय सुरक्षा सम्मेलन के सुझाव पर सोवियत संघ तथा अन्य कम्युनिस्ट देशों से बातचीत कर लेने में पश्चिमी देशों का हर्ज ही क्या है? पत्र की राय में :

पश्चिमी देश यूरोपीय सुरक्षा-सम्मेलन संबंधी सोवियत संघ के हाल ही के सुझाव पर उस से तथा अन्य कम्युनिस्ट देशों से बातचीत करें तो कोई हर्ज नही है. फ्रांस को छोड़कर अधिकांश पश्चिमी देश इस सुझाव को परोक्ष रूप से उत्तर एटलांटिक संधि संगठन के विघटन का प्रयत्न मानते हैं. सिद्धांत रूप में तो इस यूरोपीय सुरक्षा-सम्मेलन का उद्देश्य यह होना चाहिए कि उत्तर एटलांटिक संधि संगठन और वारसा संधि दोनों में से किसी की भी ज़रूरत न रहे और इन से संबद्ध दोनों पक्ष इसी में सम्मिलित हो जायें; पर व्यवहार में आशंका यह है कि इधर तो पश्चिमी यूरोप से अमेरिका को पृथक करने और उधर राजनैतिक नियंत्रण और सैनिक तरकीबों से पूरे महाद्वीप से सोवियत संघ का प्रभाव कम करने के प्रयत्नों की कहीं शुरूआत न हो जाये? पूर्वी यूरोप के देशों द्वारा पश्चिमी देशों के साथ व्यवहार में अधिक स्वतंत्र होने की प्रवृत्ति के कारण सोवियत संघ ने पूर्व और पश्चिमी यूरोप के बीच सम्मेलन कराने का अपना विचार छोड़ दिया था, लेकिन पश्चिमी देशों की दृष्टि से चेकोस्लोवाकिया पर सोवियत आक्रमण के बावजूद यूरोपीय सुरक्षा का महत्त्व किसी तरह भी कम नहीं हुआ; भले ही यह आक्रमण सैनिक कारणों से इतना नही जितना विचारधारा संबंधी कारणों से हुआ था.

चाहे जो भी है सोवियत संघ में सुरक्षा की भावना को कुछ दृढ़ कर के ही पश्चिमी देश चेकोस्लोवाकिया के प्रति सोवियत रवैये को कुछ उदार बना सकते है. पश्चिमी देशों की दृष्टि से यूरोपीय सुरक्षा-सम्मेलन के लिए दो शर्तें तो आवश्यक ही है एक तो अमेरिका उस में जरूर भाग ले जो सोवियत संघ के साथ मिल कर सुरक्षा की गारंटी कर सकता है, दूसरे पूर्व जर्मनी को मान्यता न देनी पड़े. अब पता यह चला है कि सोवियत संघ अमेरिका के इस सम्मेलन में भाग लेने को सहमत है, पर पूर्व जर्मनी को मान्यता देने की बात का इस से अलग कोई प्रश्न नही रहा.

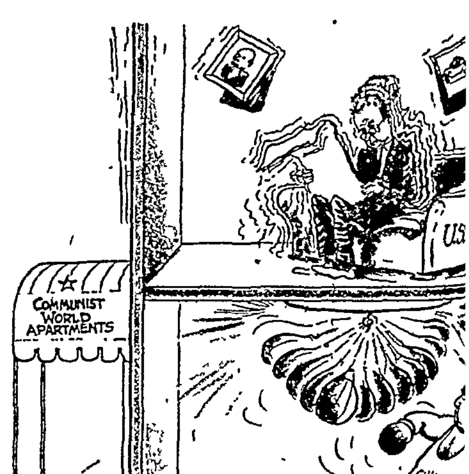

चीन और सोवियत संघ के बढ़ते हुए मतभेद पर क्रिश्चेन सायंस मॉनिटर में ल पेलो का व्यंग्य

आधुनिक उद्योग और संगणक

ट्रांबे में हाल ही में भारत में निर्मित पहले 'वास्तविक समय' अंक संगणक का उद्घाटन किया गया. इस अवसर पर भाभा एटोमिक रिसर्च कमीशन के अध्यक्ष डॉ० विक्रम साराभाई ने अपने भाषण में कहा कि इस संगणक से भारत के अनेक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण सहयोग प्राप्त होगा. टेकनॉलॉजी के विकास के साथ-साथ अब यह बहुत ज़रूरी हो गया है कि जटिल गणना के कार्यों में मशीनों का सहयोग प्राप्त किया जाए और इस सिलसिले में संगणक एक अत्यंत लाभदायक यंत्र है. भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र में निर्मित पहले संगणक की सब से बड़ी विशेषता यह है कि वह न केवल साधारण घटा-जोड़ की समस्याओं को हल कर सकता है बल्कि वह वायुयानों के वायुमार्ग और आशंकित बाधाओं की भी पूरी-पूरी सूचना दे सकता है. यह भारत की प्रतिरक्षा के लिए उपयोगी कार्य है. इस सिलसिले में डॉ. साराभाई ने कहा कि संगणक न केवल वायुयान के मूल मार्ग का ही पता दे सकता है बल्कि वह तब तक उस का पीछा भी कर सकता है जब तक हम चाहें; उस अवस्था में भी जब कि वायुयान अपना पहला मार्ग बदल दे. ७ लाख ८ हज़ार रुपये से निर्मित इस संगणक में एक लाख ३५ हज़ार रुपये की सामग्री विदेशों से आयी है और इस में एक सेकेंड की अवधि में २५ हज़ार जोड़ और घटा के प्रश्न हल किये जा सकते हैं. संगणकों का भविष्य हमारे देश में काफ़ी उज्ज्वल है, क्यों कि यहाँ वैज्ञानिक यंत्रों के निर्माण पर उतना पैसा नहीं लगता जितना कि पश्चिमी देशों में लगता है. इस लिए भारत में न केवल अपने उपयोग के लिए संगणकों का निर्माण हो सकता है बल्कि उन्हें अनेक विकासशील देशों को निर्यात भी किया जा सकता है, जिस से बहुमूल्य विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का एक अच्छा साधन मिल सकता है.

मशीनी मस्तिष्क : संगणक एक ऐसी मशीन या मशीनों का समूह है जो गणना के आधार पर समस्याओं का वैज्ञानिक रूप से विश्लेषण कर के उन का उचित हल प्रस्तुत करता है. इस लिए मूल बात यह है कि संगणक में उन तत्त्वों को संग्रहीत किया जाना चाहिए जो किसी समस्या या किसी वर्ग की समस्याओं का मौलिक आधार बन सकती हैं. इन्हीं आँकड़ों के आधार पर संगणक में विश्लेषण होता है. संक्षेप में इस लोहे के मस्तिष्क के तीन भाग हैं. पहले भाग में वह सब आँकड़े भर दिये जाते हैं, जिन की आवश्यकता किसी समस्या को हल करने में होती है. दूसरे भाग में मस्तिष्क का मुख्य अंश रहता है, जहाँ इन आँकड़ों का विश्लेषण होता है. वास्तव में इसी भाग में अतिरिक्त आँकड़ों का संग्रह बिलकुल उसी प्रकार होता है जिस प्रकार साधारण मस्तिष्क में होता है, जिसे हम स्मृति कहते हैं. इसी लिए जब किसी विशेष समस्या के संबंध में यंत्र से प्रश्न पूछा जाता है तो वह अपनी स्मृति में संग्रहीत आँकड़ों के आधार पर उस का वैज्ञानिक विश्लेषण कर के अपना निष्कर्ष निकाल लेता है, जो संगणक के दूसरे भाग द्वारा फिर प्रश्नकर्त्ता के सामने आ जाता है. आरंभिक संगणकों में प्रश्न ग्रहण करने और उस का उत्तर देने में कुछ समय लग जाता था, क्यों कि प्रश्न पूछे जाने के बाद ही विश्लेषण की प्रक्रिया आरंभ हो जाती थी. किंतु नये प्रकार के संगणकों में बिलकुल मनुष्य के मस्तिष्क की भाँति यह क्षमता है कि सूचनाएँ स्वीकार करते समय भी उस का मुख्य भाग विश्लेषण करता जाता है, ताकि प्रश्नों का तुरंत उत्तर दिया जा सके. संगणक एक असाधारण और प्रभावशाली साधन है, क्यों कि यह मनुष्य की गणना और विश्लेषण-शक्ति से १० लाख गुना गतिशील है तथा इस की रचना इस प्रकार की होती है कि यह असंख्य आँकड़ों को स्वीकार के उन को संग्रहीत कर सकता है, जब कि साधारण मनुष्य के मस्तिष्क में यह क्षमता नहीं होती. मनुष्य की स्मृति की सीमा बहुत बड़ी नहीं है; इस के अतिरिक्त यह संगणक निष्कर्ष निकालते हुए स्वयं ही निर्णय भी देते हैं.

भारतीय श्रम और योजना : २० वर्ष पहले जब संगणक का उत्पादन आरंभ हुआ था तो किसी ने यह कल्पना नहीं की थी कि यह यंत्र मनुष्य जीवन में इतना महत्त्वपूर्ण काम कर सकेगा. आरंभिक उपयोगकर्त्ताओं ने इस का उपयोग केवल गणित के लंबे-चौड़े प्रश्नों को हल करने के लिए ही किया था, जिस में बड़े-बड़े अंकों का जोड़ और घटा ही मुख्य रूप से शामिल था. मगर आज का संगणक तो बहुत आगे बढ़ चुका है. यह प्रति मिनट अपने वातावरण को पूर्ण रूप से नियंत्रित कर सकता है. उदाहरण के लिए यदि संगणक का निर्माण हवाई सेवा के लिए किया गया हो तो वह वायुयानों के आने-जाने, यात्रियों के आरक्षण आदि सभी समस्याओं को हल कर के पूर्ण रूप से वायुसेवा के कार्यालय का काम कर सकता है. इस दिशा में यह कहना उचित होगा कि कुछ ही वर्षों में यह भी संभव हो सकेगा कि संगणक वायुयानों की गति को भी नियंत्रित कर सकेगा और अंतरिक्ष-उड़ानों में भी उस का सहयोग लिया जा सकेगा. सड़कों और रेलों के यातायात का संचालन करने और उस को नियंत्रित रूप से चलाने का काम भी संगणक से लिया जा सकता है; बल्कि इस का कार्यक्षेत्र इतना विशाल है कि एक इस्पात निर्माण करने वाले कारखाने का निरीक्षण भी संगणकों से किया जा सकता है. ट्रांबे के परमाणु अनुसंधान केंद्र में निर्मित संगणक इसी कोटि का संगणक है.

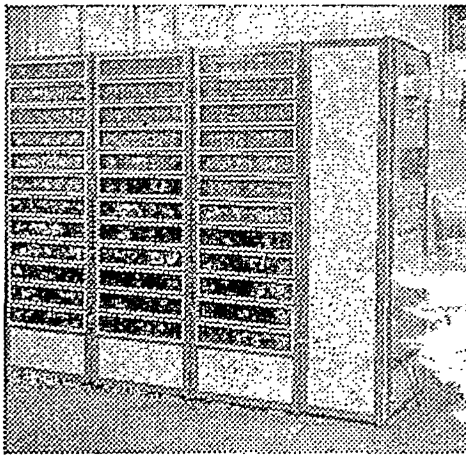

पी० डी० सी० मशीनी मस्तिष्क

इस पी. डी. सी. १२ संगणक की सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस का अधिसंख्यक भाग भारत में ही निर्मित है और इस का निर्माण पूर्णरूपेण भारतीय वैज्ञानिकों और कारीगरों ने किया है. जब तीन वर्ष पहले यह परियोजना आरंभ की गयी थी उस समय भारत के पास इस प्रकार के इलैक्ट्रॉनिक वैज्ञानिक नहीं थे जो संगणकों के बारे में पर्याप्त जानकारी या अनुभव रखते हों. इस लिए सामान्य विज्ञान-स्नातकों से परियोजना में काम लेते हुए उन्हें प्रशिक्षण देने का भी कार्य किया गया. मगर भारतीयों द्वारा भारतीय संगणक निर्माण कर सकने की भावना ने कार्यकर्त्ताओं और वैज्ञानिकों को अधिक उत्साह और धैर्य प्रदान किया, जिस से यह परियोजना तीन ही वर्ष में पूरी हो गयी. यह **वास्तविक समय अंक संगणक** किसी भी आकस्मिक परिस्थिति में किसी समस्या को सँभाल सकता है, चाहे यह उस समय काम कर रहा हो या खाली बैठा हो. संगणकों का विकास इतनी तेज़ी के साथ हो रहा है कि कुछ ही वर्षों के अंदर एक संगणक पुराना पड़ जाता है, क्यों कि उतने समय में विकास की क्रिया इतनी आगे बढ़ गयी होती है कि उस का उपयोग उतना नहीं रहता जितना पहले था. इस लिए यह ज़रूरी हो जाता है कि एक संगणक-निर्माण की परियोजना हाथ में लेते समय इस बात का ध्यान रखा जाए कि परियोजना समाप्त होने तक तकनीकी जानकारी में जितना विकास हुआ हो उस को संगणक में जोड़ने की व्यवस्था भी कर दी जाए. इस दिशा में भी ट्रांबे में निर्मित संगणक विश्व के उत्कृष्ट संगणकों में माना जायेगा. पहले संगणक की सफलता के पश्चात् अब इस का व्यापारिक रूप से उत्पादन करने की योजना बन रही है. यह आशा की जाती है कि १९७० के मध्य में पहला भारतीय संगणक बाज़ार में बिकने के लिए आ जायेगा. योजना

के अनुसार प्रति वर्ष इस प्रकार के १० संगणकों का उत्पादन होगा.

कारखाने से अस्पताल तक : पी. डी. सी-१२ कई दिशाओं में उपयोगी है. उदाहरण के लिए रासायनिक कारखानों के नियंत्रण में यह बहुत सफल सिद्ध हुआ है. इस कार्य में संगणक को विभिन्न तत्त्वों और रसायनों के संबंध में जानकारी दी जाती है और वह उस के विश्लेषण से एक ऐसी प्रणाली प्रस्तुत करता है जिस से अधिकतम उत्पादन हो सके और तैयार माल की उत्कृष्टता में भी कोई कमी न आ जाए. एक रासायनिक कारखाने में अनेक ऐसे तत्त्व होते हैं जिन का उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है, जैसे तापमान, दबाव, बहाव, पतलापन इत्यादि एक दूसरे से जुड़े हुए हैं. संगणक किसी भी ऐसे केंद्र से सूचनाएँ प्राप्त करता जायेगा जो रासायनिक कारखाने के आवश्यक भागों में स्थापित की गयी हों. विभिन्न सूचनाओं के संतुलन और उन की तुलना के आधार पर वह अपना निष्कर्ष निकाल कर कारखाने को उसी प्रकार का आदेश देगा. कोई भी साधारण मनुष्य इतने सारे कार्य को इतने कम समय में नहीं कर सकता. औद्योगिक क्षेत्र में इस का एक उपयोग विद्युत उत्पादन के संबंध में है. संगणक विद्युत-प्रवाह का समुचित वितरण करने में सहायक सिद्ध होता है. इस प्रकार के समुचित वितरण से न केवल ईंधन की बचत होती है बल्कि स से सुरक्षा बढ़ जाती है, परिवर्त्तनशील विद्युत-गति पर नियंत्रण रखा जा सकता है और विद्युत-प्रवाह के बंद होने की कम आशंकाएँ रहती हैं. प्रतिरक्षा और उद्योगों के अतिरिक्त समय अंक संगणक-१२ को महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों तथा अस्पतालों में भी काम में लाया जा सकता है. इस का उपयोग विशेष रूप से इंजीनियरिंग, टेक्नॉलॉजी और नाभिकीय विज्ञान के शिक्षण में है. इस के नाभिकीय कणों का विश्लेषण किया जा सकता है, क्यों कि इन कणों में विभिन्न मात्रा में ऊर्जा निहित रहती है. एक कण-सूचक यंत्र कण की ऊर्जा के अनुपात में विद्युत-संकेत उत्पन्न करता है और इन संकेतों को संगणक ग्रहण कर के अपने विश्लेषण के आधार पर कणों की ऊर्जा के बारे में सूचना दे सकता है. चिकित्सा के क्षेत्र में इस से रक्तचाप, नाड़ी और श्वास की गति आदि का निरीक्षण किया जा सकता है, जिस से व्यक्ति के रोग का तुरंत पता चल सकता है. इतना ही नहीं, किसी गंभीर शल्य-क्रिया के दौरान उचित रूप से निर्मित संगणक रोगी के रक्तचाप के अतिरिक्त उस के सभी संकेतों और रोग के चिह्नों की लगातार सूचना देता रहता है, जो शल्य-क्रिया रक्तचिकित्सकों के लिए अत्यंत उपयोगी है.

संगणक का परीक्षण

संगणक और सरकार : ट्रांबे में निर्मित संगणक स्वचालन-व्यवस्था का केवल आरंभ है. भारत की आवश्यकताओं को देखते हुए अनेक नये और विभिन्न प्रकार के संगणकों की आवश्यकता होगी. कुछ समय पूर्व जीवन बीमा आयोग के कुछ कार्यालयों में संगणक स्थापित किये गये थे, जिस का कर्मचारियों ने विरोध किया. उन्हें इस बात की आशंका थी कि संगणकों के कार्य से अनेक कर्मचारियों को नौकरी से अलग कर दिया जायेगा, मगर अधिकारियों का कहना है कि यह आशंका उचित नहीं है, क्यों कि आयोग का कार्य इतनी तेज़ी से बढ़ रहा है कि कर्मचारियों को निकालने का कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता. संगणकों का कार्य केवल इतना होगा कि ऐसे कार्य में समय की बचत हो जाए जिस में लंबी-चौड़ी गणना की आवश्यकता होती है. संगणकों की स्थापना से जीवन बीमा आयोग जैसे व्यापारिक संस्थान के लाभांश में निश्चित रूप से वृद्धि होगी.

हाल ही में उत्तर रेलवे ने यह फ़ैसला किया है कि वह नयी दिल्ली में एक संगणक को स्थापित करेगा. कुछ लोगों ने इस बात का भी विरोध किया है, मगर यह विरोध उचित नहीं दिखाई देता, क्यों कि नयी दिल्ली में संगणकों की आवश्यकता उतनी है जितनी शायद देश के किसी भी रेलवे केंद्र में नहीं होगी. यहाँ प्रति दिन २०००० आरक्षण होते हैं, जो ६ लाइनों और ७ वर्गों में बाँटे गये हैं. यदि अधिक से अधिक योग्य कर्मचारियों को भी इस काम पर लगा दिया जाए फिर भी इतने भारी यातायात को सँभालना बहुत कठिन हो जायेगा. स लिए संगणकों की सहायता लेना न केवल वैज्ञानिक है बल्कि यह एक लाभदायक और व्यापारिक प्रस्ताव है, जिसे कार्यान्वित किया जाना चाहिए. विश्व के विकसित देशों में संगणकों का उपयोग हवाई सेवाओं में भी

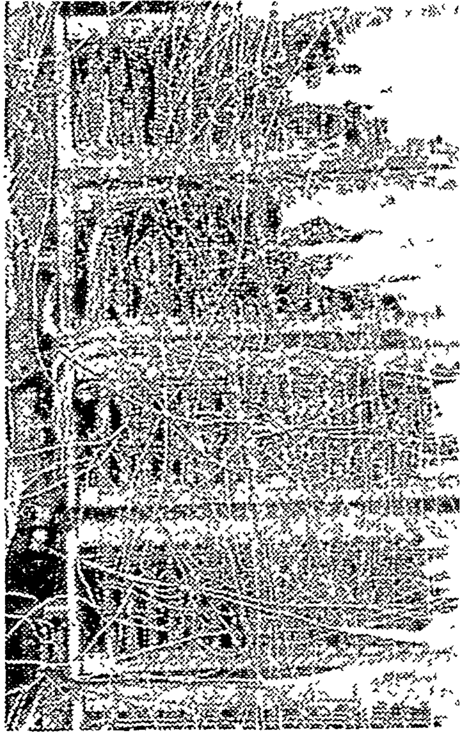

संगणक की पीठ का दृश्य

लिया जा रहा है, तो कोई कारण नहीं कि भारत में विकसित टेक्नॉलॉजी से लाभ न उठाया जाए. एक ब्रितानी हवाई सेवा ने लंदन और न्यूयॉर्क के बीच यातायात को नियंत्रित करने के लिए ७५ करोड़ रुपये के संगणक लगाने का निश्चय किया है. यातायात ही नहीं, शरीर-विज्ञान और प्राणी-विज्ञान जैसे अनिश्चित विज्ञानों में भी संगणकों की सहायता ली जा रही है. विश्व के कई भागों में इसी प्रकार के संगणक बन गये हैं, जो रोग के लक्षणों का विश्लेषण ही नहीं करते बल्कि जिन के मस्तिष्क में अनेक प्रकार की औषधियों और उपचारों के आँकड़े भी संग्रहीत हैं, जिन के आधार पर वह एक साधारण चिकित्सक से पहले ही रोगी के लिए उपचार बता देते हैं.

कुल संगणक : हाल ही में लोकसभा में श्रम राज्यमंत्री भगवत झा आज़ाद ने बताया कि सरकार एक ऐसी समिति का गठन करना चाहती है जो सरकारी और ग़ैर-सरकारी संस्थाओं में संगणकों की स्थापना से सामान्य जनता और सीमाओं पर पड़ने वाले प्रभाव के संबंध में अपना प्रतिवेदन दे. आज़ाद के अनुसार इस समय देश के विभिन्न भागों में ४४ संगणक काम कर रहे हैं. सरकारी क्षेत्र में जीवन बीमा निगम के अतिरिक्त डाक और तार, रेलवे, हवाई सेवा और राजस्व विभागों में संगणकों की आवश्यकता महसूस की गयी है. मगर फ़िलहाल इस दिशा में संभवतया तब तक कोई क़दम नहीं उठाया जायेगा जब तक कि भारत में निर्मित संगणकों का उत्पादन आरंभ न हो जाए, क्यों कि विदेशों में निर्मित संगणकों का मूल्य बहुत अधिक होता है.

भेंट-वार्ता

विकल्प; हाँ, विघटन नहीं

संसपा और जनसंघ के नेताओं की तरह ही स्वतंत्र पार्टी के नेता प्रो. एन. जी. रंगा का भी यह निश्चित मत है कि १९७२ के आम चुनावों में कांग्रेस पार्टी को केंद्र में पूर्ण बहुमत नहीं प्राप्त होने जा रहा है. प्रो० रंगा इस स्थिति को अपने-आप में महत्त्वपूर्ण नहीं समझते, लेकिन इस निष्कर्ष पर पहुँचते पाये जाते हैं कि केंद्रीय स्तर पर सत्ता-परिवर्त्तन अपने-आप में बुरा भी नहीं है. चौथे आम-चुनाव के बाद जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने ग़ैर-कांग्रेसवाद के रूप में राजनैतिक शक्तियों के संगठन और विघटन के सिलसिले में उन से मुलाकात की थी तो अपनी ही पार्टी के एक अन्य प्रमुख नेता श्री मीनू मसानी की तुलना में ग़ैर-कांग्रेसवाद में उन की आस्था अधिक मुखर थी. लेकिन धीरे-धीरे इस आस्था में गिरावट आयी है और उन्होंने १९६७ के आम चुनाव से शुरू हुए परिवर्त्तन-क्रम को दूसरे रूप में देखना शुरू कर दिया है. उन का यह निश्चित मत है कि मध्यावधि चुनाव के नतीजों का १९७२ के चुनाव-परिणामों पर दबाव पड़ेगा और इसी के साथ केंद्रीय स्तर पर कांग्रेस का विघटन भी तेज होगा. "कांग्रेस टूट रही है, बिखर रही है. १९७२ में उसे और भी बुरे दिन देखने बदे हैं. मैंने अक्सर कांग्रेस को पार्टी न मान कर सत्ता-पिपासुओं का गिरोह माना है. अगले वर्षों में इस गिरोह के और भी कुटिल रूप सामने आयेंगे. लेकिन यह विघटन के रूप हैं, संगठन के नहीं.'

कांग्रेस के क्रमिक बिखराव की संभावना से पूरी तरह अवगत होने के बावजूद प्रो. रंगा बिखराव को सभी कुछ मान कर चलने के लिए तैयार नहीं. बिखराव की इस घटना को व्यापक राष्ट्रीय संदर्भ से जोड़ते हुए वह १९७२ में कांग्रेस के विकल्प की बहस भी उठाते हैं. श्री रंगा चौथे आम चुनाव के बाद ग़ैर-कांग्रेसी संगठनों और सरकारों की आवश्यकता श्री मसानी की तुलना में अधिक तीव्रता से महसूस करते रहे हैं, लेकिन केंद्रीय स्तर पर इस तरह के किसी संगठन के पक्ष में वह नहीं हैं. उन का तर्क है कि केंद्र में सरकार की स्थिति राज्यों जैसी नहीं है, क्यों कि यहाँ उसे प्रतिरक्षा, विदेश-नीति और अर्थ-नीति जैसे मसलों पर निर्णय करना पड़ता है. 'इन महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर देश के राजनैतिक दलों में गहरे मतभेद हैं. जहाँ तक कम्युनिस्ट पार्टी और मेरी पार्टी का सवाल है उन के मतभेद बुनियादी हैं. न्यूनतम कार्यक्रमों के आधार पर राज्यों में चुनाव-समझौतों और संगठनों की बात तो सोची जा सकती है, लेकिन केंद्रीय स्तर पर सत्ता में उन से साझेदारी का सवाल मुश्किल है.'

विकल्प और विकल्प : जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने प्रो. रंगा से जानना चाहा कि ऐसी स्थिति में १९७२ में केंद्रीय स्तर पर कांग्रेस के विकल्प की कल्पना वह किस रूप में करते हैं तो वह थोड़ी देर के लिए अच्छी खासी उलझन में पड़े. लेकिन उलझन की स्थिति टूटी और कुछ सोचते हुए उन्होंने कहना शुरू किया : 'दरअसल दो साल पहले इस सवाल का स्पष्ट उत्तर दे पाना कठिन लग रहा है. कठिन इस लिए लग रहा है कि ऐसा कोई भी उत्तर कल्पना और अटकलबाज़ी पर आधारित होगा. फिर भी मेरी राय में केंद्र में शक्तिशाली सरकार की स्थापना को संभव बनाने के लिए इस प्रश्न पर अभी से बहस शुरू होनी चाहिए. मेरी राय में अगर १९७२ में केंद्र में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता तो कांग्रेस के अंदर के उदारवादियों और कम्युनिस्टों को छोड़ कर अन्य दलों के सहयोग से देश को कांग्रेस का विकल्प दिया जा सकता है. जहाँ तक मैं देखता हूँ ग़ैर-कांग्रेसवाद के विकल्प से यह विकल्प बेहतर होगा. इस के साथ नकारात्मक आग्रह उतने नहीं जुड़े हुए हैं जितने कि ग़ैर-कांग्रेसवाद के साथ जुड़ गये हैं. संसदीय लोकतंत्र की सीमा में समान विचारधारा के दलों और व्यक्तियों के सहयोग से गठित कोई सरकार न्यूनतम कार्यक्रमों के आधार पर चलायी जा सकती है. ऐसी सरकार को सुचारु रूप से चलाने के लिए मैं यह भी ज़रूरी मानता हूँ कि सरकार से अलग केंद्रीय स्तर पर उस की एक संयोजन समिति का गठन भी किया जाना चाहिए.' जब **दिनमान** के प्रतिनिधि ने प्रो. रंगा से यह सवाल किया कि क्या आप ऐसा समझते हैं कि १९७२ के बाद तथाकथित समान विचारधारा वाले दल ऐसी स्थिति में होंगे कि वे सही मायने में कांग्रेस का विकल्प बन सकते हैं तो कुछ चिंतित-सा होते हुए उन्होंने कहना शुरू किया, 'मैंने ऊपर भी कहा है कि अभी इस पर कोई निश्चित मत नहीं व्यक्त किया जा सकता, बात संभावनाओं तक ही सीमित हो सकती है और मैंने उस संभावना का उल्लेख किया है जो मेरी दृष्टि में अधिक संभव है. मैं जानता हूँ कि १९७२ में केंद्र में जब कांग्रेस को पूर्ण बहुमत नहीं प्राप्त होगा तो स्थिति काफ़ी संकटपूर्ण हो उठेगी. अपने पुराने अनुभवों के आधार पर मैं यह भी कह सकता हूँ कि विरोधी दल आसानी से विकल्प पेश करने के लिए तैयार नहीं हो पायेंगे. यह सवाल भी उठेगा कि ग़ैर-कांग्रेसी विकल्प प्रस्तुत होना चाहिए, या कि समान विचारधारा पर आधारित सरकार का विकल्प. दोनों के ही रास्ते में बाधाएँ हैं. हम केंद्रीय स्तर पर ऐसी किसी भी सरकार के साथ सहयोग करने के पक्ष में नहीं हैं जिस में कम्युनिस्टों की साझेदारी हो. इसी तरह शायद कम्युनिस्ट भी ऐसी किसी सरकार में साझेदारी नहीं चाहेंगे जिस में हम लोग शामिल हों. स्पष्ट है कि दोनों ही विकल्प आसानी से हाथ आने वाले नहीं हैं. फिर, भी जब मैं केंद्रीय स्तर पर कांग्रेस के विकल्प के

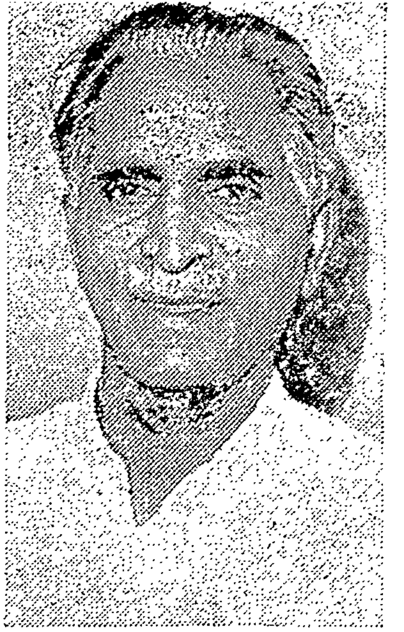

रंगा : ग़ैर-कांग्रेसवाद अपर्याप्त

इस सवाल को राष्ट्रहित से जोड़ कर देखता हूँ तो मैं समान विचारधारा वाले दलों के सहयोग से मिलने वाले विकल्प को अधिक श्रेयस्कर मानता हूँ. कम्युनिस्ट पार्टियों की आस्था न केवल राष्ट्रवाद में नहीं है बल्कि लोकतंत्र में भी नहीं है. वर्त्तमान कांग्रेस पार्टी के अंदर भी ऐसे तत्त्व हैं. इस समस्या का एक दूसरा भी पहलू है और वह है इस संभावित विकल्प के स्थायित्व का. यदि यह विकल्प परस्पर विरोधी विचारधाराओं में यक़ीन रखने वाले दलों को महज़ ग़ैर-कांग्रेसवाद के नकारात्मक नारे के इर्द-गिर्द ले कर प्राप्त किया जाता है तो इस से स्थायित्व की समस्या हल नहीं होती. परस्पर विरोधी विचारधाराएँ टकरायेंगी और केंद्रीय स्तर पर वही घटनाएँ घटेंगी जो चौथे आम चुनाव के बाद से उन राज्यों में घटी हैं जहाँ विभिन्न विचारधाराओं में यक़ीन रखने वाले दलों की सरकारें बनी थीं. राज्यों में इस अस्थिरता को एक सीमा तक बर्दाश्त किया जा सकता है, लेकिन केंद्रीय स्तर पर इस से अराजकता पैदा होगी, मुल्क टूटेगा और बाहरी हस्तक्षेप का संकट भी बढ़ेगा. इस बात को नहीं भुला देना चाहिए कि भारत को सम्स्या-वादी चीन से बराबर खतरा बना हुआ है, जो समय के साथ अधिक उग्र रूप धारण करेगा. ऐसी स्थिति में अराजकता का अर्थ होगा नयी ग़ुलामी और जो लोग ग़ैर-कांग्रेसवाद के नकारात्मक नारे को ज़रूरत से ज़्यादा तूल देते हैं उन्हें राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए इस संकट को नज़रंदाज़ नहीं कर देना चाहिए.' प्रतिनिधि से अपनी बातचीत के दौरान प्रो. रंगा ने इस ग़लतफ़हमी के लिए जगह नहीं छोड़ी कि वह किसी भी हालत में परिवर्त्तन के नाम पर अराजकता के अस्तित्व को स्वीकार करें. बातचीत के दौरान उन्होंने इस संकट पर घूम-फिर कर ज़ोर दिया, ताकि कांग्रेस के विकल्प की तलाश में अराजकता के विकल्प में आस्था का प्रचार न हो सके.

मोटर उद्योग : रफ़्तार का रोमांस

किसी ज़माने में जो प्रतिष्ठा रथवान की रही होगी वह इस ज़माने में गाड़ीवान (मोटर मालिक) की नहीं है. रथ या सारथी पर कलाकृतियों की कमी नहीं है—काव्य और चित्रों की भरमार है. मगर मोटर कार या मोटर कार के चालक पर शायद ही किसी कवि ने कुछ लिखने की हिम्मत या कृपा की हो. बड़े-बड़े शहरों में कारों की बड़ी कतारों को देख कर ऐसा लगता है कि इस ज़माने में कार खरीदना उतना ही आसान (या मुश्किल) है जितना कि आज से १०० साल पहले घोड़ा या घोड़ा-बग्घी खरीदना था. लेकिन ताज्जुब की बात यह है कि रथों की परंपरा में भारत जितना आगे था कारों की परंपरा में (मोटर उद्योग और मोटर उपयोग) में भारत उतना ही पीछे है.

मोटर कार का इतिहास केवल २०० वर्ष पुराना है. जानकारों का कहना है कि सब से पहले १७६९ में एक भाप से चलने वाली बड़ी ही बेढंगे क़िस्म की कार बनायी गयी थी. फिर उस के बाद १८०५ में फ़िलाडेल्फ़िया के ऑलिवर इवांस ने भाप से चलने वाली एक गाडी बनायी. पिछली शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक इंग्लैंड की सड़कों पर भाप से चलने वाली गाड़ियाँ देखी जाती थीं. लेकिन स्वयंचालित मोटर गाड़ियों की शुरूआत लगभग १०० वर्ष पहले हुई, जब यूगेने लैनगेन और निकोलस आगस्ट ओटो ने मोटर कार का स्वचालित इंजिन तैयार किया. इन इंजिनों द्वारा सब से पहले १८८० में यूरोप के गौटफ़ॉयड, डेमलर, कार्ल बेंज, विल्हेल्म मेब्रैक द्वारा मोटर कारें बनायी गयीं. अमेरिका में सब से पहले १८९५ में हेन्स, डरी और फ़ोर्ड ने इस क्षेत्र में पहल की. शुरू-शुरू में जो मोटर बनायी गयी वह कुछ-कुछ घोड़ा-बग्घी की तरह लगती थी; अंतर केवल इतना ही था कि घोड़ों के स्थान पर इंजिन लगा दिया जाता था. लेकिन उस के बाद धीरे-धीरे मोटर गाड़ियों के ढाँचे और इंजिन में सुधार होता गया और आज अमेरिका और यूरोप के देश मोटर उद्योग में सब से आगे हैं.

यों मोटर उद्योग की दौड़ में दुनिया के २७ देश, कुछ विकासशील देशों (भारत, अर्जेंटीना और ब्राज़ील) सहित, भाग ले रहे हैं. मोटर कार उद्योग की प्रगति और लोकप्रियता का अनुमान तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि १९३८ में दुनिया में जहाँ केवल ४२,५१०,००० मोटरें थीं वहाँ १९६६ में उन की संख्या बढ़ कर १७९,७७६-००० हो गयी. दुनिया के कुछ देश यदि जनसंख्या की वृद्धि में मोर्चा मार रहे हैं तो कुछ देश मोटर संख्या में. जापान, पश्चिमी यूरोप (विशेषकर, फ़्रांस, पश्चिमी जर्मनी और ब्रिटेन) में मोटरों की संख्या बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है. लेकिन हैरानी की बात तो यह है कि एक ओर जहाँ अमेरिका की आबादी दुनिया की कुल आबादी का ६ प्रतिशत भाग है वहाँ दुनिया की कुल मोटर संख्या का ५५ प्रतिशत केवल अमेरिका में ही है. अमेरिका में कार रखना इतनी मामूली बात है जितनी कि सामान्य भारतीय के लिए साइकिल रखना. भारतीय जनता यह बात सुन कर हैरान हो सकती है मगर सच्चाई यह है कि अमेरिका के पाँच में से चार परिवारों के पास अपनी कार होती है और मज़दूर-वर्ग में तीन में से दो मज़दूर अपनी कारों पर बैठ कर मज़ूरी करने जाते हैं.

जनरल मोटर्स : मोटर कार उद्योग में अमेरिका की जनरल मोटर्स कंपनी दुनिया की सब से बड़ी कंपनी है. इस कंपनी की सालाना बिक्री २० अरब है और ७,२८,००० लोग (स्त्री और पुरुष) इस कंपनी में काम करते हैं.

इतना सब कुछ होने पर भी मोटर कार उद्योग में अब अमेरिका को यूरोपीय देशों से खतरा-सा लगने लगा है. पिछले दिनों ही बी. एम. डब्ल्यू. के डायरेक्टर ५६ वर्षीय पॉल हाएनमेन ने कहा था कि 'मेरे विचार में पिछले कुछ वर्षों से अमेरिकी कार उद्योग की प्रगति को देखते हुए उसे उत्साहवर्द्धक नहीं कहा जा सकता है. अमेरिका की तुलना में यूरोप की कुछ कंपनियाँ फ़ीएट, डेमलर, बेंज़ या बी. एम. डब्ल्यू. उत्साहवर्द्धक सफलता प्राप्त कर रही हैं.' पॉल हाएनमेन ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा—'मैं मोटर कारों के बारे में ज़्यादा कुछ नही जानता, लेकिन मैं केवल इतना जानता हूँ कि अच्छी बिक्री के लिए मोटर गाड़ियों का ढाँचा या उस की बनावट बहुत सुंदर और आकर्षक होनी चाहिए.'

मर्सीडीज़ कार की लोकप्रियता किसी से छिपी नही है. इसी कंपनी ने हाल में एक ऐसी कार बनायी है जो बिना ड्राइवर से चलती है. आप मर्सीडीज़ २५० में पिछली सीट पर बैठ जायें. एक पेटी से अपने पेट को कस कर बाँध लें (कुछ-कुछ ऐसे ही जैसे कि आप हवाई जहाज़ पर बैठ कर बाँधते हैं), यह कार अपने-आप, बिना ड्राइवर के चलेगी, गियर अपने-आप बदलेंगे और आप उस में साठ मील की रफ़्तार से सफ़र कर सकेंगे.

जर्मन प्रगति : पश्चिमी जर्मनी ने कार उद्योग में अब अमेरिका से होड़ लेने की ठान ली है. जर्मन संघीय गणतंत्र की प्रसिद्ध बंदरगाह हांबुर्ग की एक कंपनी अब पुरानी फ़ोक्स बैगन गाड़ियों से रेगिस्तान में दौड़ने वाली गाड़ियाँ बनाने का विचार कर रही है. यह बग्गी रेतीले इलाक़े में काफ़ी दूर तक कूद सकती है. बग्गी तैयार करने के लिए कोई भी पुरानी फ़ोक्स बैगन कार ले कर उस के खाँचे की लंबाई कोई ३६ सेंटीमीटर घटा देते हैं तथा पिछले एक्सल पर किसी गाड़ी के चौड़े टायर फ़िट कर देते हैं. स खाँचे पर प्लास्टिक का ढाँचा फ़िट कर दिया जाता है. यदि यह सब परिवर्त्तन कोई अपने ही खर्च से करवाना चाहे तो उस पर २२५० जर्मन मार्क यानी ५६२ डॉलर खर्च आयेगा. लेकिन जर्मनी की इस कंपनी की मार्फ़त पुरानी कार को रेगिस्तान में दौड़ने वाली बग्गी बनाने में इस से तिगुना खर्च आयेगा. पुरानी कारों को बग्गियों में परिवर्त्तन करने का विचार एकदम नया है. पिछले कुछ दिनों से अमेरिका में रंगीलों को रेगिस्तानों में बग्गियाँ दौड़ाने का शौक़ हो गया है. उन की देखादेखी यह शौक़ यूरोप में भी फैलने लगा. इस शौक़ को पूरा करने का इस से सस्ता नुस्खा और क्या हो सकता है?

लोकप्रियता : दुनिया में सब से अच्छी गाड़ी कौन-सी है—इस प्रश्न पर दृष्टिभेद के कारण मतभेद होना स्वाभाविक ही है. फिर ऐसे प्रश्नों पर जनता के विचार भी समय के साथ-साथ

प्रति हज़ार की आबादी के पीछे मोटरों की संख्या

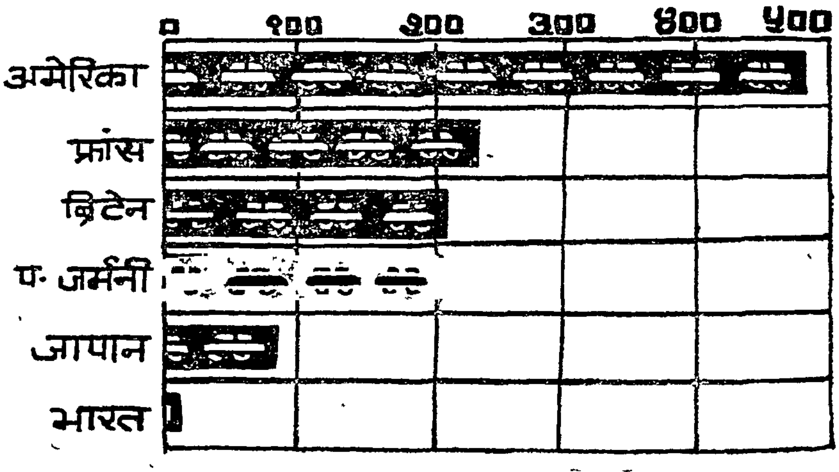

बदलते रहते हैं. एक ज़माना था जव भारत में फ़ीएट कार का वोलवाला था; मगर अव धीरे-धीरे जनता की दिलचस्पी फ़ीएट गाड़ियों में कम होती जा रही है. दुनिया में यदि मोटर गाड़ियों पर जनमत कराया जाये तो विश्वास कीजिए कि जर्मनी में वनी कारों—फ़ोक्स वैगन, मर्सीडीज़, वी. एम. डब्ल्यू., पोरशी, एन. एस. यू. और अमेरिकी गाड़ियों ओपेल और फ़ोर्ड को ही सब से ज्यादा मत प्राप्त होंगे. फिर हर गाड़ी की कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं, यानी कोई लंबे फ़ासले के लिए अच्छी है तो कोई कम खर्च के कारण लोकप्रिय; यदि कोई रफ़्तार में सब से आगे है तो कोई अपनी विशिष्ट वनावट के कारण सर्वमान्य और सर्वप्रिय. जहाँ तक ओपेल गाड़ी का सवाल है वह 'मोटर कार रेस प्रतियोगिताओं' में काफ़ी नाम और शोहरत हासिल कर चुकी है. हाल ही में जर्मनी ने 'रेसी ओपेल' नामक गाड़ी का एक नया मॉडल (ओपेल जी. टी.) वनाया है. स में केवल दो ही व्यक्तियों के वैठने की व्यवस्था है और यह केवल मोटर रेस प्रतियोगिताओं की जरूरतों को ध्यान में रख कर बनायी गयी. 'स्पोर्ट्स कार' के रूप में इस की लोकप्रियता दिन-व-दिन वढ़ती जा रही है.

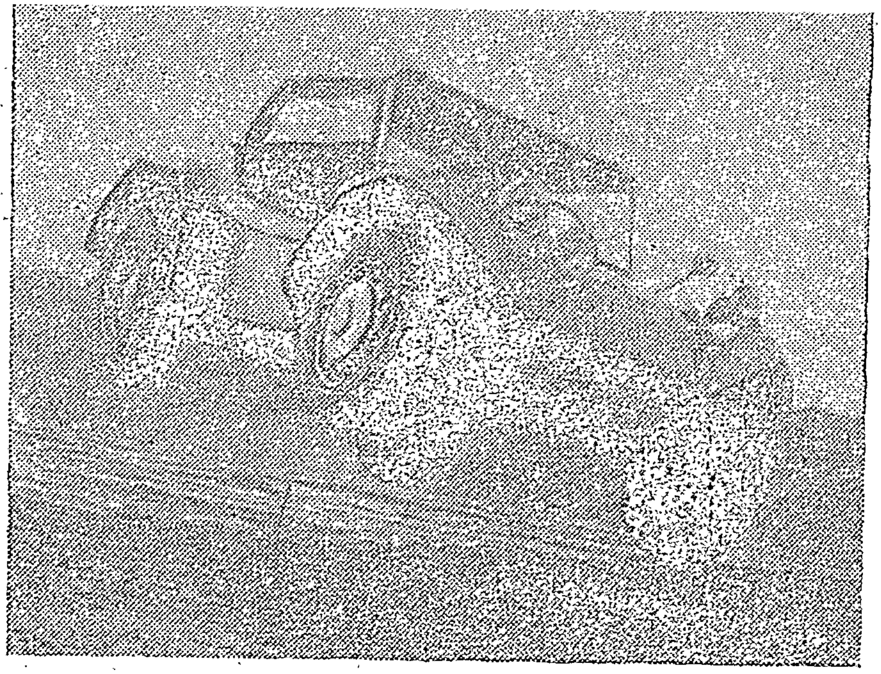

रेगिस्तान के रेतीले इलाक़ों में कूदने वाली 'मेंढक गाड़ी' की लंबी छलांग

तालिका—१

(१९६७ में प्राप्त आँकड़ों के आधार पर) (संख्या हज़ारों में)

दुनिया के पाँच महत्त्वपूर्ण मोटर उद्योग देश और उन की उत्पादन-क्षमता

देश	मोटर कार	वड़े व्यापारिक वाहन	कुल
अमेरिका	७४१२.७	१६११.१	९१२३.८
जापान	१३७५.८	१७७०.७	३१४६.५
पश्चिम जर्मनी	२२९५.७	१८६.६	२४८२.३
फ़्रांस	१७७६.५	२३३.१	२००९.६
ब्रिटेन	१५५२.२	३८५.१	१९३७.१
कुल योग	१७२४४.१	४७६३.६	२२००८.७

जहाँ तक भारत का सवाल है भारत में ले देकर दो-एक ऐसी मोटर कंपनियाँ हैं जो मोटरें बनाने के काम में जुटी हुई हैं और उन में भी हिंदुस्तान मोटर्स की प्रगति कुछ उल्लेखनीय है. शुरू-शुरू में यहाँ से हिंदुस्तान १० और १४ मॉडल बनाये गये, फिर १९५४ में हिंदुस्तान लैंडमास्टर और १९५७ में अंवेस्डर और फिर १९६३ में 'अंवेस्डर मार्क-२' मॉडल निकाला गया. यों इस कंपनी द्वारा तव तक २,००,००० कारों और ट्रकों का निर्माण हो चुका है.

भारतीय सड़क परिवहन : विकास और समस्याएँ : इस शताब्दी के शुरू में भारत में परिवहन का अर्थ रेल परिवहन से था. यों छोटे फ़ासले पर कच्चे रास्तों में वैल-गाड़ियों या घोड़ा-गाड़ियों की लंबी परंपरा है. प्रथम महायुद्ध के पहले तक यहाँ अच्छी सड़कों के अभाव में सड़क-परिवहन का कोई विशेष स्थान नहीं था. छोटे फ़ासलों के लिए गाँव की कच्ची सड़कों या पगडंडियों से ही गुज़ारा चलाया जाता था. फिर सड़क-परिवहन की उपयोगिता को देख कर १९२७ में भारतीय सड़क विकास समिति (इंडियन रोड डेवलपमेंट कमेटी) की स्थापना की गयी.

भारतवासियों ने पहली वार मोटर कार के दर्शन १८९८ में किये. इस वर्ष पहली मोटर गाड़ी का भारत में आयात किया गया. लेकिन १९१३-१४ तक भारत में कुल मिला कर ४,४१९ मोटर गाड़ियाँ थीं. इन में अधिकांश गाड़ियाँ ऐसी थीं जो राजाओं-महाराजाओं द्वारा अपने व्यक्तिगत इस्तेमाल के लिए आयात की गयी थीं. लेकिन उस के वाद मोटरों की संख्या धीरे-धीरे वढ़ने लगी और १९२८-२९ तक भारत में २६,००० गाड़ियाँ हो गयीं. उस के वाद सड़क-परिवहन का विकास शुरू हुआ और लोग लंबे फ़ासलों के लिए ट्रकों और वसों का उपयोग करने लगे.

यों भारत में कारों की संख्या में दिन-व-दिन वृद्धि हो रही है, मगर दूसरे देशों की तुलना में हम कितने पिछड़े हुए हैं, इस वात का अंदाज़ा तो इसी वात से लगाया जा सकता है कि अमेरिका का मज़दूर अपनी कार पर वैठ कर मज़दूरी करने जाता है और भारत के मज़दूर को जीवन में एक वार भी कार पर वैठने का मौक़ा नहीं मिलता. माँगी हुई कार में दुल्हन लाने का स्वप्न भी किसी का ही पूरा हो पाता है.

रफ़्तार, रफ़्तार और रफ़्तार—कभी रथ का पहिया यदि फँसता था तो कीचड़ में ही फँसता था. लेकिन आज मशीन युग में मोटर के पहिए पूरी सभ्यता के कीचड़ में फँस गये हैं और उस से निकलने का कोई रास्ता नहीं है.

तालिका—२

मोटर उद्योग की विश्व की पाँच सर्वश्रेष्ठ कंपनियाँ

(१९६७ में प्राप्त आँकड़ों के आधार पर) (संख्या हज़ारों में)

क्रम	कंपनी का नाम	कार	व्यापारिक वाहन	कुल
१—	जनरल मोटर्स कॉरपोरेशन (अमेरिका)	४११८	६८०	४७९८
२—	फ़ोर्ड मोटर कंपनी (अमेरिका)	१६९६	४२७	२१२३
३—	क्राइस्लर कॉरपोरेशन (अमेरिका)	१३६४	१४२	१५०६
४—	फ़ीएट (इटली)	१२३४	७८	१३१२
५—	फ़ोक्स वैगन वर्क (प. जर्मनी)	१०८९	७३	११६२

सिकुड़े दिमाग की सिकुड़ी शिक्षा-नीति

पिछले २० साल की सरकारी काहिली और ऐय्याशी ने कभी यह जानने की कोशिश नहीं की कि वर्त्तमान बढ़ती हुई शिक्षा की माँग को कैसे पूरा किया जाये. उसने सब से कम ध्यान शिक्षा पर दिया है. एक 'वेलफ़ेयर स्टेट' के रूप में उसने यह संकल्प घोषित किया था कि शिक्षा, चिकित्सा, अवसर और रक्षा का अधिकार स्वतंत्र भारत में समान और प्रायः निःशुल्क होगा, लेकिन जैसे सब दिशाओं में वर्त्तमान सरकार ने जननीति न अपना कर केवल ८० लाख आदमियों के हित की विकास-नीति बनायी है उसी प्रकार शिक्षा-नीति में भी उस ने जननीति की उपेक्षा की है. आज *उस उपेक्षा का ही परिणाम है कि* समूचे देश की शिक्षा-नीति एक भयंकर संक्रांति की स्थिति में पड़ गयी है. तमाम आतंक, भय, पुलिस, डंडे की नीति के बावजूद छात्र-असंतोष का कोई हल नहीं निकल पा रहा है. कम से कम उत्तरप्रदेश के ४० से ५० प्रतिशत तक माध्यमिक शिक्षा का परीक्षा-फल सीमित करने के बावजूद विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या प्रति वर्ष ५.३ प्रतिशत बढ़ती रहती है. दूसरे शब्दों में लगभग ८०,००० विद्यार्थी प्रति वर्ष उत्तरप्रदेश के विश्वविद्यालयों में बढ़ेंगे. इस बढ़ोतरी का सामना दो तरीक़ों से किया जा सकता है : एक तो ऐसी जनवादी शिक्षा-नीति बना कर जो शिक्षा का स्तर बिना गिराये सब को समान अवसर देने में समर्थ हो और दूसरा यह कि शिक्षा-पद्धति में ऐसे तत्त्व डाल दिये जायें जो उस की प्रगति में प्रत्येक स्तर पर रोक लगाते चलें और सारी शिक्षा-नीति प्रगतोन्मुखी न हो कर अवरोधमूलक हो जाये. आज बीस वर्ष बाद जो नारे तथाकथित शिक्षाविदों ने दिये हैं वे 'मेजर यूनिवर्सिटी' के निर्माण की कल्पना से या तो संबद्ध हैं या 'उच्चस्तर' को विकसित करने की दुहाई से अनुप्राणित है, या 'क्वालिटी' प्रवर्त्तक है, या 'प्रतिमा की सुरक्षा' के नाम पर एक सुनियोजित ढंग से ऐसी शिक्षा-नीति बनाने की है जो केवल 'कमल की खेती' करने की नीयत से 'ब्राह्मण' और 'हरिजन विश्वविद्यालयों' की दो ऐसी कोटियाँ बना दे जिस में 'सामान्य' और 'विशिष्ट' का वर्ण-भेद आसानी से पैदा किया जा सके. विशिष्ट के नाम पर एक शिक्षा-पद्धति चले और 'सामान्य' के नाम पर दूसरी शिक्षा-पद्धति चले. यह भेद समाज में 'पब्लिक स्कूल' और 'सामान्य स्कूल' के नाम से निम्न कक्षाओं में तो है ही, अब उसे उच्चस्तरीय शिक्षाओं में भी लागू करना चाहते हैं. किसी भी सुनियोजित जनवादी शिक्षा-नीति के अभाव में समाज का प्रतिष्ठित वर्ग, अवसर प्राप्त वर्ग, समृद्ध वर्ग अपने और अपनी जाति की रक्षा के लिए तर्क ढूंढ रहा है. प्रश्न है क्या 'मेजर यूनिवर्सिटी' की कल्पना या 'क्वालिटी यूनिवर्सिटी' की कल्पना, या 'उच्चस्तर' वाली यूनिवर्सिटी की कल्पना या 'प्रतिमा की सुरक्षा' की कल्पना बिना किसी राष्ट्रीय स्तर की समग्र देश से संबंधित नीति के बन सकती है. यदि हमारी राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा-नीति कोई नहीं है और हम आज भी अंग्रेज़ों द्वारा बनायी गयी नीति की रक्षा के लिए ये सब नारे दे रहे है तो हम देश के साथ तो अन्याय कर ही रहे हैं, साथ ही अपने ऐतिहासिक दायित्व के निर्वाह में भी कायर और कापुरुष सिद्ध हो रहे हैं.

शुतुरमुर्गी मनोवृत्ति : इस का सर्वप्रथम अनुभव २१ मार्च, १९६८ को 'उच्चस्तरीय शिक्षा की विस्तार-नीति' (सेमिनार ऑन मैनेजिंग द एक्सपैंशन ऑफ़ हायर एजूकेशन इन उत्तरप्रदेश) की संगोष्ठी में वितरित प्रयाग विश्वविद्यालय के 'कॉमर्स एंड बिज़नेस एडमिनिस्ट्रेशन' विभाग के अध्यक्ष **डॉ. अमर नारायण अग्रवाल** ने अपने शोधपत्र में चार प्रकार के *विश्वविद्यालयों* का विश्लेषण आँकड़ों सहित प्रस्तुत कर के चौथे अर्थात् प्रयाग विश्वविद्यालय के वर्त्तमान उपकुलपति **अवधविहारी लाल** के नाम पर 'ए. वी. लाल' टाइप योजना प्रस्तुत की, जो एक ओर शुतुरमुर्गी दिमाग़ का परिचय देती है और दूसरी ओर सिकुड़े हुए मन और बुद्धि का परिचय देती है. इस योजना को देख कर यह साफ़ हो जाता है कि ये काग़ज़ी शिक्षा-शास्त्री जनतांत्रिक विकास के क़ायल नहीं हैं. वह शायद यह भी मानते है कि सामान्य नीति में प्रतिमा का विकास नहीं हो सकता. उस के लिए विशेष और विशिष्ट परिस्थितियाँ ही पूरी जनतांत्रिक पद्धति से बढ़ कर एक खास काँच के घर में ही लालन-पालन आवश्यक है. इस योजना में देश में शिक्षा के प्रति उभरती जागृति की उपेक्षा कर अपनी जाति और अपने वर्ग की सुरक्षा की भावना अधिक है; बढ़ते हुए दायित्व के प्रति एक ज़िम्मेदार आचरण कम है.

ए. वी. लाल योजना के आधार : ए. वी. लाल योजना के अंतर्गत दो विश्वविद्यालयों को रखा गया है. इन में से एक **प्रयाग विश्वविद्यालय** स्वयं है और दूसरा **लखनऊ विश्वविद्यालय** है. इन विश्वविद्यालयों में पिछले २० वर्षो में विद्यार्थियों की संख्या ३५०० से बढ़ कर लगभग ९५०० हो गयी है. आज से बीस वर्ष पूर्व जब विश्वविद्यालय में केवल ३५०० विद्यार्थी थे तो अधिक शांति थी और टकसाली पढ़ाई के आधार पर आई. सी. एस., पी. सी. एस. की परीक्षाओं में सफलता पाने वाले विद्यार्थी अधिक पैदा किये जाते थे. प्रतिमा का सदुपयोग केवल इसी काम के लिए किया जाता रहा है. ऐसा नहीं कि लगभग अस्सी वर्ष के अपने जीवन-काल में इन विश्वविद्यालयों ने कोई ऐसी प्रतिमा पैदा की हो जो मानव की या विज्ञान के क्षेत्र में कोई भी क्रांतिकारी विचार-दर्शन या अनुसंधान कर सका हो. अनुसंधान के क्षेत्र में प्रायः तीसरे दर्जे का काम ही यहाँ होता रहा है. विचार-दर्शन के क्षेत्र में भी कोई मूलभूत चिंतक पैदा नहीं हुआ. हाँ, आई. ए. एस. आदि नौकरियों की परीक्षाओं में अवश्य क्षति आयी है, विद्यार्थियों का प्रतिशत कम हुआ है.

'क्वालिटी' विश्वविद्यालय : इस दृष्टि से इस ए. वी. लाल टाइप विश्वविद्यालय के प्रारूप में चार बातें मुख्य रूप से सुझायी गयी हैं: पहली बात तो यह है कि इस विश्वविद्यालय को अर्थात प्रयाग और लखनऊ विश्वविद्यालय को 'क्वालिटी' विश्वविद्यालय के रूप में सुरक्षित रखा जाये इन के छात्रों की संख्या ३५०० अधिक न बढ़ने दी जाये. दूसरी बात यह है कि प्रयाग में एक परीक्षा-प्रधान विश्वविद्यालय त्रिवेणी विश्वविद्यालय के नाम से और लखनऊ में अवध विश्वविद्यालय के नाम से स्थापित किया जाये, जो डिग्री कॉलेजों से संलग्न हो, जिस से कि प्रयाग विश्वविद्यालय और लखनऊ विश्वविद्यालय, जिन को ब्रह्मा के मुखारबिंद से पैदा हुआ माना जाता रहा है, उन की पवित्रता सुरक्षित रहे और वह एक कालग्रस्त क्षेत्र में कमल के खेत सरीखे केवल कमल के फूल पैदा करते रहें. तीसरी बात इस योजना में यह है कि यह प्रयाग विश्वविद्यालय और लखनऊ विश्वविद्यालय में क्वालिटी विश्वविद्यालय के रूप में केवल शोध-कार्य और स्नातकोत्तर कक्षाएँ रखी जायेंगी. किन्हीं स्थितियों में ऑनर्स कोर्स भी खोला जा सकता है. इस प्रकार यह विश्वविद्यालय केवल २५०० या १५०० विद्यार्थियों से अधिक अपने यहाँ नहीं भरती करेगा. चौथी बात इस योजना में यह होगी कि यह विश्वविद्यालय सरकारी अनुदान उतना ही लेंगे जितना कि इन को इस समय मिल रहा है. इस के अतिरिक्त इन विश्वविद्यालयों को और अधिक सुंदर और सुचारू बनाने के लिए ईमारतें बनाने के लिए अतिरिक्त अनुदान दिया जाये, जिस से पवित्रता के साथ-साथ यह अपना सनाढ्य गौरव भी स्थापित रखने में सहायक हो सके.

ज़ेड टाइप और ज़ेड प्रभाव : डॉ. अमर नारायण अग्रवाल की इस थीसिस में ए. वी. लाल टाइप विश्वविद्यालय को ज़ेड टाइप विश्वविद्यालय बताया गया है और इस विश्वविद्यालय का जो प्रभाव पड़ेगा उसे 'ज़ेड प्रभाव' (ज़ेड अफ़ेक्ट) के नाम से संबोधित किया गया है. यह नाम केवल डब्ल्यू, एक्स, वाई, ज़ेड प्रकार के चार प्रकृति के विश्वविद्यालयों के वर्गीकरण के कारण है. यह विभाजन इस प्रकार है:

डब्ल्यू मॉडेल : प्रवाह का प्रतिरूप (द मॉडल ऑफ़ ड्रिफ्ट)

एक्स मॉडेल : कमख़र्ची का प्रतिरूप (द मॉडल ऑफ़ इकॉनॉमी)

वाई मॉडेल : प्रगति का प्रतिरूप (१) (द मॉडल ऑफ़ प्रोग्रेस (१))

ज़ेड मॉडेल : प्रगति का प्रतिरूप (१) (द मॉडल ऑफ़ प्रोग्रेस (२))

आज जो व्यय हो रहा है उस के अतिरिक्त आगामी पाँच वर्षों में इन विश्वविद्यालयों में जो अतिरिक्त व्यय होगा उस की तालिका इस प्रकार है:

चुनवाता है. ये कमज़ोर और दब्बू प्रकार के उपकुलपति प्रशासन को अपनी आवश्यकताएँ बताने और मनवाने की जगह कुलपति को अपना अफ़सर मान कर उस के और उस की सरकार के प्रति आज्ञाकारी के रूप में पेश होते हैं. परिणाम यह है कि ज़ेड टाइप के विश्वविद्यालयों की योजना कुलपति के आशीर्वाद से बनती है, जिस से विश्वविद्यालय और कुलपति अथवा प्रशासन के प्रति तनाव की स्थिति न पैदा हो. अकेडेमिक वातावरण के पीछे भी यही ढंग है.

वर्त्तमान स्थिति : प्रस्तुत योजना के आधार

	१९६९–७०	१९७०–७१	१९७१–७२	१९७२–७३	१९७३–७४
डब्ल्यू मॉडेल	२०,००,०००	४०,००,०००	६०,०००००	८०,०००००	१००,०००००
एक्स मॉडेल	१२०००००	२८०००००	३६०००००	४८०००००	६००००००
वाई मॉडेल	१८०००००	३००००००	४२०००००	५४०००००	६६०००००
ज़ेड मॉडेल	२८०००००	४००००००	५२०००००	६४०००००	७६०००००

काग़ज़ी नाव के रूप : उपर्युक्त आँकड़ों से यह सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है कि यदि विश्वविद्यालयों में परिवर्त्तन नहीं लाया गया और वह 'डब्ल्यू टाइप' विश्वविद्यालय के रूप में यथावत जैसे की तैसी छोड़ दी जायेगी तो आज से पाँच वर्ष बाद इन्हीं विश्वविद्यालयों पर एक करोड़ रुपया ख़र्च होगा. यदि उस में 'एक्स', 'वाई', और 'ज़ेड' टाइप के आधार पर परिवर्त्तन लाया जायेगा तो परिवर्त्तित रूप में सरकारी पैसा कम ख़र्च होगा. 'ज़ेड टाइप' अथवा ए. बी. लाल टाइप विश्वविद्यालय में यह सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है कि पैसा कम ख़र्च होगा. विद्वान लेखक यह भूल गये कि अकेले एक त्रिवेणी और दूसरी अवध विश्वविद्यालयों की स्थापना में ही इतना ख़र्च होगा कि उसी में सरकार को पता चल जायेगा कि यह विषमता किस स्तर की है. इस काग़ज़ी नाव के जो भी रूप हैं वे स्वयं अपने ही आंतरिक विरोध में जकड़े हुए हैं. आज की मूल समस्या यह है कि आगामी वर्ष जब पूरे प्रदेश से लगभग तीस-पैंतीस हज़ार विद्यार्थी इंटर पास कर के निकलेंगे और आगे पढ़ना चाहेंगे तो उस समय स्थिति का सामना कैसे किया जायेगा ? क्या त्रिवेणी विश्वविद्यालय की स्थापना मात्र से इस समस्या का हल हो जायेगा? निश्चय है कि ज़ेड टाइप इस प्रकार की समस्या के प्रति अपनी आँखें बंद कर लेना चाहता है. वह नहीं चाहता कि वह बढ़ती हुई शिक्षा की माँग को ले कर सैद्धांतिक रूप में कोई नैतिक लड़ाई लड़े. उत्तरप्रदेश का दुर्भाग्य यह रहा है कि यहां अंग्रेज़ी प्रशासन के समय में विश्वविद्यालयों के कुलपति के रूप में प्रांत के गवर्नर सदैव प्रतिष्ठित रहे हैं. स्वतंत्रता के बाद लॉर्ड मैकॉले के प्रतीक गवर्नरों को विश्वविद्यालयों से अलग कर देना चाहिए था, लेकिन वह नहीं हुआ. परिणाम यह है कि कुलपति के रूप में गवर्नर सरकारी फ़रमानों को लागू करवाने के लिए कमज़ोर और दब्बू प्रकार के उपकुलपति चुनता और

पर आज वर्त्तमान स्थिति यह है कि प्रयाग विश्वविद्यालय का प्रत्येक विभाग और संकाय विश्वविद्यालय में 'ऑनर्स कोर्स' का पाठ्यक्रम बनाने में लगा हुआ है. ऐसा करने के लिए वहां के कुलपति श्री बेजवाडा गोपाल रेड्डी का आशीर्वाद है, कहा नहीं जा सकता. लेकिन जितनी सरगर्मी इस दिशा में वर्त्तमान उपकुलपति श्री अवधविहारी लाल दिखला रहे हैं उस से यह स्पष्ट है कि सरकारी झंडी भी उपकुलपति को मिल गयी है: उपकुलपति महोदय इस पक्ष के हैं कि प्रत्येक वर्ष जो विद्यार्थियों की भीड़ प्रवेश के लिए प्रयाग विश्वविद्यालय में आती है वह बंद हो जाये. प्रवेश केवल बी. ए. ऑनर्स में हो और वह भी ५५ प्रतिशत से नीचे अंक पाने वाले विद्यार्थी न आ पायें. बी. ए. पास की परीक्षा समाप्त कर दी जाये. इस माध्यम से क्वालिटी के नाम पर पुनः अंग्रेज़ी वापस आ जाये. विश्वविद्यालय में इस समय जो १०० के लगभग अस्थायी अध्यापक हैं वह निकाल दिये जायें, क्यों कि १५०० से २५०० तक के बीच की संख्या को पढ़ाने के लिए जितने अध्यापक स्थायी हैं वही काफ़ी होंगे. विश्वविद्यालय को राष्ट्र के विकासशील अनिवार्य दबावों से छुट्टी मिल जायेगी. विद्यार्थियों की संख्या कम हो जाने पर आंदोलनों का सिलसिला भी समाप्त हो जायेगा. उपद्रव करने वाले विद्यार्थी प्रायः ५५ प्रतिशत से कम अंक पाने वाले होते हैं, इस लिए विद्यार्थी-नेता नाम का जो जीव है उस का सामना नहीं करना पड़ेगा.

घोंघावृत्ति : यदि देखा जाये तो ए. बी. लाल योजना के रूप में जो योजना रखी गयी है उस में एक प्रवृत्ति अपने-आप हर आहट पर सिकुड़ने की है और अपने घोंघे में सिकुड़ कर बैठे रहने की है. विदेशों में प्रत्येक विश्वविद्यालय अपने विकास की योजनाएँ देश और समाज की बढ़ती हुई माँग के अनुसार बनाती है. उस योजना में विस्तार और गहराई दोनों चीज़ें रहती हैं, साथ ही वहां का शिक्षा-शास्त्री अपनी राष्ट्रीय आवश्यकताओं पर भी ध्यान रखता और बिना किसी सरकारी दबाव या ज़ोर के वह स्वयं अपनी राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुसार आगे बढ़ कर ज़िम्मेदारी ले लेता है. उस नियोजित विधि में स्तर को ऊपर उठाने के लिए समग्र दृष्टि रखी जाती है; सिकुड़ने या सिकोड़ने की ज़रूरत नहीं पड़ती. यह कोई नहीं कह सकता कि वर्त्तमान परीक्षा-विधि को जैसे का तैसा रख कर प्रतिभा नाम की कोई चीज़ ५५ प्रतिशत और ५४ प्रतिशत के अंतर से मापी जा सकती है. इस का आधार और व्यापक होना चाहिए और संभावनाओं की वास्तविक परख के लिए परीक्षा विधि को एक समग्र रूप से पूर्ण व्यक्तित्व का मापक बनाना होगा. लेकिन यह तभी हो सकता है जब पूरी समस्या की गंभीरता पर आद्योपांत विचार किया जायेगा.

विरोधाभास : ए. बी. लाल टाइप विश्वविद्यालय में स्वयं भी एक विरोधाभास है. अभी कुछ वर्षों पूर्व सरकारी दकियानूसी शिक्षा-नीति ने एक नारा 'मेजर यूनिवर्सिटीज़' का दिया था, जिस में उन्होंने भारत की कुछ यूनिवर्सिटियों को चुन कर इसी प्रकार के शास्त्रीय (एकेडेमिक) स्तर को उच्च से उच्चतर बनाने की बात उठायी थी. उस समय ए. बी. लाल और प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रायः सभी अध्यापक उस मेजर यूनिवर्सिटी की योजना के विरुद्ध थे. उस का कारण एकमात्र यह था कि जिस आधार पर यह मेजर यूनिवर्सिटियाँ बनायी जाने वाली थीं उस में प्रयाग विश्वविद्यालय और लखनऊ विश्वविद्यालय नहीं आते थे. विश्वविद्यालयों के इस वर्गीकरण के भेद को तब एकेडेमिक वातावरण के लिए हानिकारक घोषित कर के यह सिद्ध करने की चेष्टा की गयी थी कि उन में समानता होनी चाहिए. वैसे केंद्र द्वारा अनुशासित विश्वविद्यालयों में वेतन आदि की सुविधाएँ जिस दर से दी जाती हैं वह पूरी तरह से प्रादेशिक विश्वविद्यालयों में आज भी नहीं लागू हो सका है. सवर्ण जातीयता के नाम पर केंद्र द्वारा संचालित विश्वविद्यालय अब भी अधिक कुलीन माने जाते हैं और उन के स्तर तक पहुँचने की माँग, ख़ास कर के वेतन और सुविधा की माँग, इन पिछड़े हुए प्रादेशिक विश्वविद्यालयों की आत्मा में कसकती रहती है. लेकिन इधर कुछ दूसरे प्रकार के दबाव बढ़े हैं. डिग्री कॉलेज के अध्यापकों ने जो ५५ प्रतिशत से नीचे अंक पाने वाले विद्यार्थियों को ले कर परीक्षा में अच्छे नतीजे दिखाये हैं कुछ नये दावे किये हैं. उन का कहना है कि विश्वविद्यालय और डिग्री कॉलेज के भेद मिटने चाहिएँ. वह यह भी कहते हैं कि जब हम तीसरी श्रेणी के लड़कों को ले कर परीक्षा में विश्वविद्यालय से अच्छे नतीजे देते हैं और विश्वविद्यालय (कम से कम विज्ञान-संकाय में) सब प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों को भरती कर के उन्हें बी. ए., बी. एस. सी में द्वितीय और

तृतीय श्रेणी का निकालता है तो कौन-सा आधार है जिस पर विश्वविद्यालय का अध्यापक उच्च स्तर का माना जाय और डिग्री कॉलेज निम्न वर्ग के माने जायें. निश्चय ही डिग्री कॉलेजों के अध्यापकों ने इस तथ्य को ले कर जो अभी आंदोलन किया था उस का भी प्रभाव ए. बी. लाल टाइप के विश्वविद्यालय में है.

विश्वविद्यालय अपने को डिग्री कॉलेज की तुलना में अपनी उच्च जाति की कुलीन परंपरा निष्ट सत्ता से अलग करने को वहाँ प्रस्तुत है. लेकिन संघर्ष तीव्र है और इस की कोई न कोई काट होनी चाहिए. फलस्वरूप यह ए. बी. लाल टाइप विश्वविद्यालय का प्रारूप हुआ है. इस प्रारूप में ए. बी. लाल टाइप विश्वविद्यालय दो प्रकार की ग्रंथियों से ग्रस्त है. एक तो मेजर यूनिवर्सिटी के कल्पना से यह बचना चाहता है, दूसरी ओर वह डिग्री कॉलेजों के दबावों से भी छुटकारा चाहता है. इन दो विरोधाभासी स्थितियों से निकली हुई नीति केवल वर्तमान यथास्थिति को बनाये रखने की योजना से अधिक अनुप्राणित है. यदि मेजर यूनिवर्सिटीज़ की कल्पना प्रतिक्रियावादी है तो उस से भी अधिक पतित योजना यह ए. बी. लाल टाईप विश्वविद्यालय की है.

टेढ़े रास्तों की अवरेबी काट : जनतंत्रीय शिक्षा-पद्धति और अधिनायकवादी या प्रशासन-कोन्मुखी शिक्षा-पद्धति में मौलिक अंतर यह है कि जनतंत्रीय शिक्षा-पद्धति में एक सहज प्रकृति विस्तारवादी होने की होती है. प्रशासन-प्रधान या अधिनायकवादी शिक्षा-पद्धति में यह विस्तारवादी नीति रोकी जाती है, जिस से कि समाज का एक विशिष्ट वर्ग ही उस देश के प्रत्येक क्षेत्र में अधिकारी हो सके. इस लिए दकियानूसी अधिनायकवाद या प्रशासनवाद, टेढ़े रास्तों के अवरेबी काट से हमेशा जनतंत्रीय विस्तार को रोकने में क्रियाशील होता है. यह रोक हमेशा 'ज्ञानी-वर्ग' और 'अज्ञानी-वर्ग' बनाये रखना चाहती है. भारत में तो वेदों का अध्ययन तक वर्जित कर दिया गया था, जिस से कि ज्ञान केवल एक विशेष जाति तक ही सीमित रहे, सिकुड़ा रहे, जकड़ा रहे और अज्ञानी-वर्ग के अधीन रहने की मजबूरी बनी रहे. इस विचार गोष्ठी में डॉ. **ताराचंद** ने अपने भाषण में इस पूरी प्रवृत्ति को जड़ता का प्रतीक बताया और कहा कि इस प्रकार के विभाजन से एकेडेमिक स्तर न तो सुधरेगा और न सुधर सकता है. उस के लिए देश-काल की आवश्यकताओं को सही दृष्टि से देखने की जरूरत है. डॉ. ताराचंद जैसे लोग, जो विश्वविद्यालय की शिक्षा-नीति और देश की बढ़ती हुई माँग को सही दृष्टि से देखने वाले हैं, उन की यह प्रतिक्रिया सही थी लेकिन उत्तरप्रदेश के राज्यपाल और सारे विश्वविद्यालयों के कुलपति क्या कभी भी स्थिति को सही ढंग से समझने की चेष्टा करेंगे?

चरचे और चरखे

संगणकनामा

ब्रिटेन में बिजली का लेखा रखने वाले एक संगणक ने एक व्यक्ति को, जो महीने भर अपना मकान बंद कर के बाहर गया हुआ था और बिजली का खर्च जिस के यहाँ उस महीने बिलकुल नहीं हुआ था, बिल भेजा जिस में लिखा था पाउंड–०, शिलिंग–०, पेंस–०. यह बिल पा कर उस व्यक्ति ने इस पर कोई कार्रवाई करना जरूरी नहीं समझा. कुछ दिनों बाद संगणक की ओर से उसे स्मरणपत्र मिला जिस में बकाया रकम पाउंड–०, शिलिंग–०, पैंस–० तुरंत जमा करने को कहा गया था. इस पर भी कोई कार्रवाई न करने पर संगणक ने विधिवत आदेश जारी किया कि यदि यह भुगतान नहीं किया गया तो बिजली काट दी जायेगी. उस व्यक्ति की समझ में नहीं आया कि वह क्या करे. आखिरकार उस ने एक चैक पाउंड–०, शिलिंग–०, पेंस–० का काट कर भेज दिया. कुछ दिनों बाद बिजली कंपनी के मैनेजर ने उस व्यक्ति को बुलाया और कहा कि आप ने किस प्रकार का चैक भेजा है. उस व्यक्ति ने सारी बातें बतायीं और कहा कि आखिर जब बिजली काटने की धमकी दी गयी तो मैं और कर ही क्या सकता था. मैनेजर ने कहा कि लेकिन आप के इस चैक से संगणक का काम ही रुक गया और वह मशीन खराब हो गयी क्यों कि इस प्रकार की गणना की व्यवस्था उस में नहीं थी.

एक जापानी फ़र्म ने संगणक की मदद से कुत्ते पालने की एक वैज्ञानिक पद्धति विकसित कर ली है. कुत्ते की नस्ल, जाति, लिंग-भेद, पैदा होने की तारीख, स्वभाव, चरित्र, गुण, दुर्गुण आदि इस संगणक को प्रेषित करने पर यह संगणक आप को यह राय देगा कि कुत्ते को आप किस तरह पालें और आदर्श पिल्ले पाने के लिए आप उस का जोड किस से करायें और किस प्रकार कुत्ते की नस्ल सुधारें.

इतना ही नहीं कुछ पश्चिमी देशों में तो डटिंग, विवाह, जैसे कार्य भी संगणक की सहायता से किये जाने लगे हैं. पहले तो कुछ अंतर्मुख या असामाजिक रूप से असफल व्यक्तियों ने संगणक का प्रयोग शुरू किया था लेकिन अब और भी बहुत से लोग बेहतर चुनाव के लिए उस का उपयोग करने लगे हैं. वह दिन दूर नहीं जब हर काम के लिए आदमी संगणक की सहायता लेने लग जायेगा.

हवा से बिजली

जर्मनी में हवा से बिजली तैयार करने की योजना सफल होती दिखायी दे रही है. बिजली प्राप्त करने के लिए ७८ फुट ऊँचा एक पंखा चालू किया गया जिस के फल (ब्लेड) का व्यास ११२ फुट है. यह सिद्ध हो गया है कि इस प्रकार जो बिजली प्राप्त होगी उस पर बहुत कम खर्च आयेगा. इस संयंत्र से एक सेकेंड में १०० किलोवाट बिजली पैदा की जा सकेगी और यह योजना कम आबादी वाले क्षेत्रों के लिए बहुत ही लाभदायक होगी. बड़ी औद्योगिक बस्तियों में अभी इस को उपयोगिता नहीं प्रतीत होती.

बादल सरकार

प्रसिद्ध नाटककार बादल सरकार अगले महीने सांस्कृतिक विनिमय कार्यक्रम के अंतर्गत सोवियत रूस, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, हंग्री आदि देशों की यात्रा के लिए जायेंगे. उन्हें प्रतिनिधि भारतीय नाटककार के रूप में इन देशों की दो महीने की यात्रा करने का आमंत्रण दिया गया है. वह अपनी यात्रा के दौरान इन देशों के लेखकों और नाटककारों से भेंट करेंगे. अभी हाल ही में राजधानी में उन का नाटक 'बाक़ी इतिहास' खेला गया था और उस की पर्याप्त प्रशंसा हुई थी. इस के पूर्व राजधानी में उन का नाटक 'एवम् इंद्रजित्' भी सराहा गया था.

हिंदी भवन

लखनऊ में हज़रतगंज बाज़ार से विश्वविद्यालय जाने वाले राजपथ पर डाक महाध्यक्ष कार्यालय और स्टेडियम के बीच २७१४० वर्गफुट के क्षेत्र में लगभग २५ लाख रुपये की राशि से **राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन हिंदी भवन** निर्मित किया जायेगा. यह इमारत पंचमंजिली होगी. जिस में हिंदी समिति के कार्यालय, पुस्तकालय, पुस्तक भंडार, बिक्री और वितरण की व्यवस्था के लिए उपयुक्त कक्षों के साथ संग्रहालय, वाचनालय तथा अतिथिशाला आदि की भी व्यवस्था होगी. भवन का शिलान्यास मुख्यमंत्री चंद्रभानु गुप्त ने किया. उन्होंने हिंदी द्वारा देश की एकता को सुदृढ़ करने तथा भाषा एवं प्रांतीयता के नाम पर विघटनकारी प्रवृत्तियों से लोहा लेने के सतत प्रयास की जरूरत बतायी.

विवाह और दीर्घ जीवन

जर्मनी में प्राप्त ऑकड़ों से यह पता चलता है कि अविवाहित आदमियों की अपेक्षा विवाहित आदमी अधिक दीर्घजीवी होते हैं. विवाहित व्यक्ति की औसत आयु वहाँ ७१.५ वर्ष है जब कि कुँवारे व्यक्ति की केवल ६७.५ वर्ष. डाक्टरों का कहना है कि स्वभावतः नियमित जीवन बिताने के कारण विवाहित व्यक्ति की आयु अधिक होती है. असफल विवाहित जीवन बिताने वाले व्यक्ति बहुधा जल्द ही दिल की बीमारियों तथा गुर्दे की बीमारियों से, जो चिंता के कारण उत्पन्न होती हैं, मौत के मुख में चले जाते हैं.

राजधानी से : विशेष रिपोर्ट

केंद्र को नष्ट करने की कल्पना

रवींद्र सरोवर की शर्मनाक घटनाओं के बारे में, जो कि मध्य युग के बर्बर दृश्यों की याद दिलाती हैं, पूछे जाने पर पश्चिम बंगाल के उप-मुख्यमंत्री ज्योति वसु ने, राजधानी में, संवाददाताओं से, कहा कि समाचारपत्रों ने इस संबंध में अतिरंजित कर के समाचार छापा है. लोकसभा में मंगलवार को जब यह कहा गया कि रवींद्र सरोवर की घटनाओं पर पर्दा डालने के लिए संयुक्त मोर्चे की सरकार ने कासीपुर गोलीकांड को इतना तूल दिया है, तब कम्युनिस्ट सदस्यों के गुस्से का पारावार नहीं रहा. अगर कुछ विरोधी और कांग्रेसी सदस्यों ने बीच बचाव न किया होता तो कांग्रेस के **श्री सी. पी. एन. नायडू** रिवोलूशनरी सोशलिस्ट पार्टी के **श्री त्रिदिव कुमार चौधरी** के, जो कि हाथापाई के लिए बेचैन थे, चपेट में आ गये होते.

पश्चिम बंगाल के नेताओं का क्रोध शासन और सत्ता संबंधी उन की विफलताओं को नहीं छिपा सकता. रवींद्र सरोवर की घटनाएँ संयुक्त मोर्चे की विफलता का सब से बड़ा दस्तावेज़ है. अपने प्रदेश में विफल संयुक्त मोर्चा अगर केंद्र पर लगातार हमले कर रहा है, तो, इस में कुछ भी अप्रत्याशित नहीं है.

राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में और उस से पहले लगभग हर सुलभ मंच से पश्चिम बंगाल के नेताओं ने बार-बार इस बात का रोना रोया है कि केंद्र उन के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ पैदा कर रहा है. इस संबंध में उन्होंने दुर्गापुर और कासीपुर गोलीकांड का हवाला दिया. पश्चिम बंगाल के नेता अपने अनुयायियों और समर्थकों को छोड़ किसी को यह विश्वास नहीं दिला सकते कि केंद्र पश्चिम बंगाल के संयुक्त मोर्चे को अपदस्थ करने के लिए प्रयत्न कर रहा है; बल्कि इस के विपरीत मध्यावधि चुनाव के बाद से केंद्र सरकार संयुक्त मोर्चे के साथ लगातार सहयोग की मुद्रा में रहा है. वास्तविकता यह है कि संयुक्त मोर्चा ही केंद्र के साथ किसी तरह का सहयोग नहीं चाहता, बल्कि केंद्र और प्रदेश के तनाव को इस हद तक बढ़ाना चाहता है कि नयी दिल्ली और कलकत्ता के बीच के सारे संपर्क टूट जायें. न केवल संपर्क को तोड़ना बल्कि केंद्र की कल्पना को ही नष्ट कर देना और इस तरह की सभी सत्ताएँ स्वयं ग्रहण कर लेना उस का अभीष्ट मालूम पड़ता है. कांग्रेस संसदीय पार्टी की बैठक में **श्री सीताराम केसरी** ने ठीक ही कहा कि चुनौती बहुत बड़ी है और इस का सामना संवैधानिक साधनों से करना पड़ेगा.

जब रक्षामंत्री ने कासीपुर की घटनाओं की जाँच की घोषणा कर दी थी, तब कासीपुर के मामले को अदालत में भेजने का कोई औचित्य नहीं था. लेकिन, संयुक्त मोर्चे ने इस संबंध में अदालत में मुकद्दमा दायर किया. शुक्र है कि हाई कोर्ट ने इस संबंध में प्रतिष्ठान को 'स्टे आर्डर' दे दिया. कभी भी यह नहीं सुना गया कि फौज के मामलों पर सामान्य अदालतें विचार करें. संयुक्त मोर्चे के नेता क्या चाहते हैं? क्या वे फौज को भी अपने नियंत्रण में चाहते हैं? क्या सेना भी राज्यों के मातहत रहा करेगी?

जैसी कि **श्री जयप्रकाश नारायण** और कुछ अन्य राजनैतिक व्याख्याकारों की राय है, वित्त और प्रशासन के मामलों में राज्यों को कुछ और अधिकार मिलना चाहिए. संविधान में केंद्र को बहुत अधिक अधिकार दे दिया गया है. उन में कुछ कटौती होनी चाहिए और इस के लिए संविधान को संशोधित किया जाना चाहिए. लेकिन यह एक अलग सवाल है. **प्रश्न यह है कि पश्चिम बंगाल और केरल की कम्युनिस्ट पार्टियाँ संविधान में संशोधन चाहती हैं कि या स्वयं संविधान और उस से प्रसूत केंद्र को ही नष्ट कर देना चाहती हैं?** संविधान के अनुच्छेद २४८-२४९, २५४-२५६ और २५७ के अनुसार केंद्र समूचे देश की एकता और सुरक्षा को बनाये रखने के लिए ज़िम्मेदार है. राज्यों में उन के अंतर्विरोधों के फलस्वरूप उत्पन्न अराजकता की स्थिति समाप्त करने की ज़िम्मेदारी भी केंद्र पर है. इस लिए पश्चिम बंगाल के नेताओं का यह तर्क, कि केंद्र में आसीन वर्त्तमान सरकार अपने अधिकारों का उपयोग करती हुई उन की सरकार को कुचल रही है, बेमानी है. **राज्य सरकारों को बहुत से मामलों में, खास तौर से सुरक्षा और देश की समग्रता को बनाये रखने के प्रश्न पर केंद्र पर निर्भर करना पड़ेगा. राज्यों के मुख्यमंत्री बादशाहों, नवाबों और जागीरदारों की तरह बर्ताव करने के लिए स्वतंत्र नहीं है. इस तरह की कोई सुविधा और स्वतंत्रता संविधान ने उन को नहीं दी है और न ही कोई देश, जो कि अपनी समग्रता में विश्वास रखता है, मुख्यमंत्रियों और उपमुख्यमंत्रियों को इस तरह की छूट दे सकता है.**

अब यह बात खुल कर सामने आ गयी है कि पश्चिम बंगाल की दोनों कम्युनिस्ट पार्टियाँ केंद्र को खत्म कर देने का इरादा रखती हैं. **श्री ज्योति वसु ने अपने दो महीनों के उपमुख्यमंत्रित्व काल में केंद्र के संदर्भ में जो कुछ कहा और किया है वह एक भयानक शुरूआत है. अगर उसे रोका नहीं गया तो उस की परिणतियाँ स्वयं देश के विघटन में हो सकती हैं.**

दिनमान
समाचार - साप्ताहिक

"राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान"

भाग ५ | २७ अप्रैल, १९६९
अंक १७ | ७ वैशाख, १८९१

*

इस अंक में

विशेष रिपोर्ट १५

*

मत और सम्मत ४
पिछला सप्ताह ५
पत्रकार-संसद् ६
चरचे और चरखे १४

*

राष्ट्रीय समाचार १७
प्रदेशों के समाचार २१
विश्व के समाचार ३८
समाचार-भूमि : उद्योग-नीति ३६
खेल और खिलाड़ी : १९६८ के अर्जुन; टेबल टेनिस, खेल-परिषद् ३४

*

स्वचालन : संगणक ७
भेंट-वार्ता : प्रो. एन. जी. रंगा ९
आधुनिक जीवन : मोटर उद्योग १०
विश्वविद्यालय १२
राज्यों का सर्वेक्षण २५
संगीत : निखिल बैनर्जी; एन. राजन् ४३
साहित्य : आधुनिक भारतीय साहित्य में भारतीयता की अभिव्यक्ति; किताबें ४४
रंगमंच : इंगमार बर्गमान ४६
कला : नाईक, दंपति; प्रकाश नरूला; सुसेन घोष ४७
गुण चिह्नांकन योजना ५३

*

आवरण चित्र : राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक से पहले
(फ़ोटो : परमेश्वरी दयाल)

*

संपादक
सच्चिदानंद वात्स्यायन

दिनमान
टाइम्स ऑफ़ इंडिया, प्रकाशन
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नयी दिल्ली

चन्दे की दर	एजेंट से	डाक से
वार्षिक	२६.००	३१.५०
अर्द्धवार्षिक	१३.००	१५.७५
त्रैमासिक	६.५०	८.००
एक प्रति	००.५०	००.६०

चौथी योजना : मुख्यमंत्रियों का गुस्सा

चौथी योजना का प्रश्न भी केंद्र-राज्य संबंध के प्रश्न में बदल गया. राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में, नयी दिल्ली में केरल और पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्रियों ने चौथी योजना के प्रारूप पर अपना गुस्सा उतारा. अप्रत्याशित रूप से उन को कुछ कांग्रेसी राज्यों के मुख्यमंत्रियों का भी समर्थन मिला. इन मुख्यमंत्रियों की उत्तेजना का आधार यह है कि उन की राय में यह योजना बहुत हद तक केंद्रीय है उस में राज्यों के साथ अन्याय किया गया है. केरल के मुख्यमंत्री नंबूदिरिपाद ने तो यहाँ तक कहा कि यह योजना पुनर्विचार के लिए स्थगित कर देनी चाहिए. श्री नंबूदिरिपाद के इस कथन पर श्रीमती इंदिरा गांधी ने तीव्र आपत्ति की. उन्होंने कहा कि अगर मुख्यमंत्रियों की यही राय रही तो हम ने योजना के प्रारूप में रियायत के संबंध में जो घोषणा की थी उस पर दुबारा सोचना पड़ेगा. प्रधानमंत्री का क्रोध अकारण नही था. अपनी कमियों के बावजूद योजना किसी भी तरह से केंद्रीय नहीं कही जा सकती क्यों कि अंततः उस के फ़ायदे का वितरण राज्यों में करने की दृष्टि से ही उसे वर्तमान रूप दिया गया है. लेकिन केरल और पश्चिम बंगाल के प्रतिनिधियों पर श्रीमती गांधी की झुंझलाहट का कोई असर नहीं हुआ. राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक लगभग एक अराजनैतिक सभा जैसी हो गयी जिस में किसी निष्कर्ष पर नही पहुँचा जा सका. सरकार की ओर से यह कहा गया कि चौथी योजना के प्रारूप को राष्ट्रीय विकास परिषद् ने स्वीकृति दे दी है जब कि कई मुख्यमंत्रियों ने परिषद् की बैठक के बाद संवाददाताओं से यह कहा कि हम योजना के प्रारूप से सहमत नहीं हैं.

कांग्रेस संसदीय पार्टी की बैठक में भी योजना के प्रारूप के संबंध में विचार हुआ. अनेक सदस्यों ने यह जानना चाहा कि अंततः राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में हुआ क्या था. मुख्यमंत्रियों की आपत्ति क्या थी. श्रीमती गांधी ने पार्टी को बताया कि कुछ मुख्यमंत्री केंद्रीय योजना में कटौती चाहते हैं ताकि राज्यों की योजनाएँ बड़ी हो सकें; साथ ही साथ वे स्वास्थ्य, कृषि और शिक्षा के केंद्रीय विभागों के खर्च में कटौती का आग्रह कर रहे हैं. श्रीमती गांधी ने कहा कि अगर मुख्यमंत्रियों की दो मुख्य माँगें मान भी ली जायें तो भी स्थिति में बहुत सुधार नहीं होगा. उन्होंने कहा कि वास्तविक प्रश्न यह है कि योजना के लिए अधिकतम स्रोत उगाहने की ज़िम्मेदारी केवल केंद्र पर नही होती बल्कि सभी राज्यों पर होती है. अगर कुछ राज्य स्रोत उगाहने में संकोच करते हैं तो केंद्र की भी अपनी सीमाएँ हैं. इस संबंध में कुछ मुख्यमंत्रियों की एक उप-समिति का विचार किया गया. राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में यह निर्णय किया गया कि अगर अतिरिक्त स्रोत संभव होता है तो प्राथमिकताओं पर पुनर्विचार किया जा सकता है. वास्तविक तस्वीर तब सामने आयेगी जब कि वित्तमंत्री की रिपोर्ट हाथ में होगी. तब तक कोई ठोस बात नहीं की जा सकती.

लोकसभा में भी योजना के प्रारूप को ले कर गरमागरमी हुई. सोमवार को जब लोकसभा के पटल पर योजना का प्रारूप रखा गया तब कुछ विपक्षी सदस्यों ने इस बात पर आपत्ति की कि संसद् के पटल पर रखे जाने के पूर्व ही योजना का प्रारूप प्रचारित कर दिया गया. निर्दलीय श्री तेन्नेत्ति विश्वनाथन ने कहा कि लोकसभा में रखे जाने के पहले ही मैं प्रारूप के अंश समाचारपत्रों में पढ़ चुका हूँ. अब इसे पटल पर रखने से क्या फ़ायदा ? श्री मधु लिमये ने आपत्ति की कि राष्ट्रीय विकास परिषद् की अधिकृत स्थिति नहीं है जब कि संसद् संविधान का प्रांगण है. इस लिए योजना को राष्ट्रीय विकास परिषद् में पहले-पहल रखना अनुचित था. संसपा के श्री जार्ज फ़र्नाडीज़ ने माँग की कि जिन तीन मुख्यमंत्रियों ने प्रारूप को ले कर अपनी असहमति प्रकट की थी, प्रारूप के साथ उन की असहमतियाँ भी पटल पर रखी जायें. यह इस लिए ज़रूरी है कि राष्ट्रीय विकास परिषद् ने प्रारूप को स्वीकृति नहीं दी है.

केंद्र और कुछ राज्यों के संबंध पहले ही से बिगड़े हैं. जब योजना का प्रारूप राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में रखा गया तब कुछ मुख्यमंत्रियों ने उस को इसी तनाव की पृष्ठभूमि में देखा—वे बहुत हद तक अपने पूर्वग्रहों से मुक्त नही हो सके. यह सही है कि सत्ता और योजना का केंद्रीयकरण समूचे देश के लिए घातक हो सकता है लेकिन मुख्यमंत्रियों की शंका निराधार मालूम पड़ती है.

यह ठीक है कि तीनों योजनाओं के दौरान देश का संतुलित विकास संभव नहीं हुआ है. कुछ राज्यों की यह शिकायत भी सही है कि केंद्र ने उन के विकास की समस्या को उपेक्षा की दृष्टि से देखा है शायद इस का कारण यह है कि अब तक अधिकतर राज्यों में कांग्रेसी सरकारें थी जिन के कि कांग्रेसी मुख्यमंत्री थे.

ग़ैर-कांग्रेसी राज्य के मुख्यमंत्री यह शिकायत कैसे कर सकते हैं कि योजना के निर्माण में केंद्र ने उन के साथ ज़्यादती की है. अगर ज़्यादती हुई भी है तो सभी राज्यों के साथ हुई है केवल केरल और पश्चिम बंगाल के साथ नहीं हुई है. यह अकारण नहीं है कि राज्य विकास परिषद् की बैठक में अनेक कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों ने भी प्रारूप से अपना असंतोष ज़ाहिर किया—यह अलग बात है कि उन्होंने श्री नंबूदिरिपाद की तरह लाल-पीला होते हुए कुछ नहीं कहा. योजना के संदर्भ में केंद्र पर पक्षपात का आरोप निराधार है.

ग़ैर-कांग्रेसी राज्यों की झुंझलाहट इस अर्थ में माने रख सकती है कि उन की जनता को ग़रीबी और विषमता का सामना करना पड़ रहा है. लेकिन ग़रीबी केवल पश्चिम बंगाल और केरल तक सीमित नहीं है. मध्यप्रदेश, आंध्र, और बिहार के इलाके भी उतने ही ग़रीब हैं. योजना की कमज़ोरी कुछ और ही है जिन की ओर मुख्यमंत्रियों का ध्यान नहीं गया. मुख्यमंत्री अगर चाहते तो योजना की कल्पनाओं को भी निराधार साबित कर सकते थे. जिन कुछ क्षेत्रों में उदासीनता बरती गयी है उन की ओर इशारा कर सकते थे और आयोजक की दृष्टि की विफलता को ख़ूबी के साथ सामने रख सकते थे लेकिन उन्होंने यह सब नहीं किया उन के गुस्से का कारण योजना की वे कमज़ोरियाँ नहीं जो कि बुनियादी हैं बल्कि उन्हें क्रोध इस बात का है कि योजना में उन्हें और अधिक हिस्सा क्यों नहीं मिल रहा है. दूसरे शब्दों में वे यह कह सकते हैं कि योजना केंद्र के वायदों के लिए बनायी गयी है. लेकिन वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है. योजना के मदों को देखने से पता चलता है कि उसे समूचे देश के विकास को दृष्टि में रख कर बनाया गया है. या कि जिस हद तक विकास वर्तमान परिस्थितियों में संभव है.

—विशेष संवाददाता

भारत में अंग्रेज़ी

केंद्र और राज्यों के राजनैतिक और सांस्कृतिक नेता देशी भाषाओं का विकास करने के आश्वासन १९६५ से बार-बार देते रहे हैं परंतु वे शीर्ष स्थान पर अंग्रेज़ी को आज भी रखे हुए प्रतीत होते हैं—भाषाएँ अंग्रेज़ी के साथ, अनुगामिनी, अनुवादी भाषा के रूप में पूजा की चीज़ें बनती जा रही है—भारतीय प्रतिभा की अभिव्यक्ति का साधन नहीं बन पा रही है. कोरे वायदों के आवरण को भेद कर आज यह जानना आवश्यक हो गया है कि भारत में अंग्रेज़ी, जिसे हम ठीक से न बोल पाते हैं न समझ पाते है, वास्तव में किस हद तक, कहाँ-कहाँ जमी बैठी है और देश का क्या कर रही है. दिनमान के संवाददाता विभिन्न क्षेत्रों में यह सर्वेक्षण आरंभ कर रहे हैं और अगले अंकों में समय-समय पर हम उन की खोज के नतीजे पाठकों के लिए प्रस्तुत करेंगे. ४ मई के दिनमान में पढ़िए : **भारत में अंग्रेज़ी की पहली किस्त : इलाहाबाद विश्वविद्यालय में.**

यह व्यापक लेखाजोखा अविरल रूप से पढ़ना चाहते हैं तो निरंतर दिनमान प्राप्त करने की व्यवस्था आज ही कर लीजिए.

राष्ट्र

राष्ट्रीय विकास परिषद्

चौथी योजना : असहमति की शुरुआत

चौथी योजना के प्रारूप पर कई प्रदेशों के मुख्यमंत्री नाराज़ हैं. उन की नज़र में योजना में उन सभी बातों की अवहेलना की गयी है जिन के कारण देश में समुचित विकास हो सकता है. न केवल ग़ैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों ने बल्कि आंध्रप्रदेश के कांग्रेसी मुख्यमंत्री ने भी योजना की कटु आलोचना की. वास्तव में ब्रह्मानंद रेड्डी की आलोचना के सामने ग़ैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों की आलोचना कम कटु दिखाई दे रही थी. ब्रह्मानंद रेड्डी ने सुझाव दिया कि केंद्रीय सरकार आयोजना आयोग को चौथी योजना का वर्त्तमान रूप पूर्ण रूप से बदलने का आदेश दे और नयी नीतियाँ तथा कार्यक्रम सामने लाये जिन से क्षेत्रीय विषमता समाप्त हो. केरल के मुख्यमंत्री नंबूदिरिपाद इस लिए नाराज़ थे कि उन की सरकार द्वारा तैयार किये गये योजना प्रस्ताव पर विचार नहीं किया गया. नंबूदिरिपाद को सैद्धांतिक आधार पर आपत्ति थी. अजय मुखर्जी यद्यपि पूर्ण रूप से योजना के प्रारूप से सहमत नहीं थे फिर भी उन्होंने केरल सरकार द्वारा प्रस्तावित प्रारूप का समर्थन नहीं किया. ओडिसा के मुख्यमंत्री सिंहदेव और तमिलनाड् के मुख्यमंत्री करुणानिधि ने भी चौथी योजना की रूपरेखा को अपूर्ण बताया राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और मैसूर के मुख्यमंत्रियों ने सामान्यतया समर्थन किया.

घाटे की व्यवस्था : मुख्यमंत्रियों की माँग यह है कि केंद्र राज्यों की योजनाओं में अतिरिक्त १००० करोड़ रुपये दे. यह राशि केंद्रीय सरकार के अंतर्गत चलने वाली कुछ योजनाओं को प्रादेशिक सरकारों के हवाले करने से और केंद्रीय स्तर पर घाटे की अर्थव्यवस्था का सहारा लेने से संभव हो सकती है. वास्तव में आयोजना आयोग ने पहले ही ८५० करोड़ रुपये के घाटे की व्यवस्था की है, जो कि पाँच वर्षों में सामयिक आवश्यकताओं को देखते हुए वितरित की जायेगी. डॉ. गाडगिल ने योजना का विवरण देते हुए कहा कि उस का उद्देश्य राष्ट्रीय उत्पादन में ५ से ६ प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि करना है. यह वृद्धि कृषि क्षेत्र में ५ प्रतिशत और अन्य उद्योगों में ८ से १० प्रतिशत वार्षिक वृद्धि से संभव है. उन के अनुसार योजना को कार्यान्वित करने के साथ-साथ विदेशी सहायता की मात्रा में भी कमी होती जायेगी. गत सितंबर में प्रादेशिक सरकारों के प्रतिनिधि और केंद्रीय सरकार इस बात में सहमत हो गये थे कि स्रोतों का बँटवारा एक विशेष नियम के अनुसार किया जाए. इस के अनुसार केंद्रीय सहायता का ६० प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर और ४० प्रतिशत अन्य तत्त्वों के आधार पर किया जाना चाहिए. डॉ. गाडगिल के अनुसार इस नियम पर चलने से योजना आयोग के लिए अपनी इच्छा से कुछ अधिक करने का स्थान ही नहीं रहता. संभवत: प्रादेशिक सरकारों को संतुष्ट करने के लिए योजना के प्रारूप में केंद्र द्वारा संचालित परियोजनाओं को कम कर दिया गया है. अब केवल इंजीनियरिंग उद्योग, तेल और रसायन, परमाणु उर्जा और उर्वरक जैसे कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योग ही केंद्र के पास रहेंगे. जहाँ तक कुछ पिछड़े क्षेत्रों के विकास का सवाल है, डॉ. गाडगिल का कहना है कि उस सिलसिले में योजना आयोग कुछ नहीं कर सकता. क्यों कि वह प्राप्त अधिकारों से बाहर नहीं जा सकता. यदि स्रोतों के वितरण के सिलसिले में उसे अधिक अधिकार दिये जायें कर प्राप्त की जा सकती है. उन्होंने कहा, मैं ने १९६१ में जब सरचार्ज लगाया था तब कोई दिक़्क़त पेश नहीं आयी थी—किसानों ने खुशी-खुशी सरचार्ज अदा किया था ('दरअसल जनता नहीं हम राजनीतिक ही अपने काम में पिछड़ जाते हैं').

पिछड़ेपन के बावजूद

देश को तीन-तीन प्रधानमंत्री देने के बावजूद उत्तरप्रदेश पिछड़ों की जमात में शामिल है—वह चाहता है कि केंद्र से, 'विशेष आवश्यकता' के नाते पीने के पानी की समुचित व्यवस्था के लिए ४४ करोड़ रुपये की अतिरिक्त सहायता मिले. दिल्ली के संवाददाताओं को प्रदेश की आवश्यकताओं से परिचित कराते हुए चिरकुमार मुख्यमंत्री चंद्रभानु गुप्त ने बताया कि राज्य के विकास के लिए चौथे आयोजन में ९५१ करोड़ रुपये रखे गये हैं जब कि न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कम से कम १०७७ करोड़ रुपये की दरकार है. अंततः होगा यह कि अनेक परियोजनाएँ अधपर रह जायेंगी.

नये साधन जुटाने के बारे में मुख्यमंत्री महोदय की राय स्पष्ट है; चौथे आयोजन के लिए हमें १७५ क़रोड़ रु. का बंदोबस्त करना है, यह राशि बिक्री-कर तथा उत्पादन-शुल्क में समायोजन से और यदि अनिवार्य हुआ तो ग्रामीण क्षेत्र से उगाही बढ़ा

चंद्रभानु गुप्त : प्रदेश बनाम प्रदेश

गुप्त जी को गिला है कि उत्तरप्रदेश जैसे राज्य, जो आंतरिक साधन जुटाने पर ज़ोर देते हैं वे घाटे में रह जाते हैं क्यों कि जो ओवरड्राफ्ट या क़र्ज़ ले कर विकास-कार्य कर डालते हैं उन्हें बाद में केंद्र से विशेष सहायता मिल जाती है. इस के अलावा, जब पिछड़े प्रदेश अपनी माँगें पेश करते हैं तो संपन्नतर प्रदेश देखा-देखी अपनी आवश्यकताएँ बढ़ा-चढ़ा कर रखने लगते हैं. इस से प्राय: प्राथमिकताओं का, क्षेत्रीय संतुलन का परिप्रेक्ष्य धूमिल हो जाता है.

मध्यावधि चुनाव में संविद के हाथ से ताक़त छीन कर कांग्रेस के हौसले बुलंद करने वाले चंद्रभानु को यह सुझाव बिलकुल नहीं भाया कि अगले आयोजन-काल में ८०० करोड़ रु. की जगह ११०० करोड़ रु. की घाटे की वित्तव्यवस्था कर के राज्यों को अतिरिक्त सहायता दी जाये. केंद्र-बनाम राज्य के संदर्भ में वह न केवल केंद्र की सत्ता सर्वोपरि देखना चाहते हैं, बल्कि अतिरिक्त घाटे की व्यवस्था के सुझाव को खतरनाक मानते हैं. दामों पर इस के कुप्रभाव की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि पिछले दिनों में भत्ते की वृद्धि के कारण राज्य की देनदारी २२-२३।। करोड़ रुपये बढ़ गयी है. इसी अनुपात में विकास-कार्य के लिए कम राशि बचेगी.

चंद्रभानु ने, जो इसी महीने लखनऊ में हिंदी-भवन का शिलान्यास किया है, राजधानी में हिंदी क्षेत्र के मुख्यमंत्रियों से राजकीय अनुवाद-कार्य, पुस्तक प्रकाशन योजनाओं, प्रशासनिक शब्दावली की एकरूपता सरीखे मुद्दों पर विचार किया. अधिकारीगण मुख्यमंत्री-चर्चा को आगे बढ़ायेंगे और एक समन्वित कार्य-प्रणाली निर्धारित करेंगे.

तो यह भी जरूरी होगा कि उन्हें प्रदेशों को दी गयी सहायता के उपयोग का निरीक्षण करने का भी अधिकार दिया जाना चाहिए.

बहुमत और अल्पमत : योजना प्रारूप पर औपचारिक वार्त्ता करने से एक दिन पहले कई मुख्यमंत्री प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी से मिले थे और कई महत्त्वपूर्ण विषयों पर बातचीत हुई थी. इस बातचीत से पश्चिम बंगाल और कुछ अन्य राज्यो से संबंधित विवादों को सुलझाने के सिलसिले में एक सीमा तक सहमति के संकेत भी मिले थे. इस लिए यह आशा की गयी थी कि योजना प्रारूप पर औपचारिक बहस में कोई गंभीर समस्या नही खड़ी होगी मगर बहस के दूसरे दिन पश्चिम बंगाल के उपमुख्यमंत्री और केरल के मुख्यमंत्री ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह प्रारूप की आलोचना कर के ही अपने कर्तव्य की इति नही मानते. और स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार राष्ट्रीय विकास परिषद् ने योजना प्रारूप को औपचारिक रूप से पारित किये बिना ही बैठक समाप्त कर दी. बैठक की समाप्ति पर जो विज्ञप्ति निकाली गयी उस मे केवल यही कहा गया है कि परिषद् ने योजना के वर्त्तमान प्रारूप को संसद् और जनता के सामने रखने का फ़ैसला किया है.

गर्म बहस : बहस की गर्मी में ज्योति बसु ने मत लेने का सुझाव दिया था और केरल तथा पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्रियों ने कहा कि योजना को बहुमत का प्रारूप मान कर पारित किया जाय और अल्पमत के विचारों का भी उस में पूरा-पूरा उल्लेख हो. कुछ कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों—महाराष्ट्र के नाईक, मध्यप्रदेश के शुक्ल और राजस्थान के सुखाड़िया ने भी सुझाव दिया कि अक्तूबर तक राष्ट्रीय विकास परिषद् योजना प्रारूप का पूर्ण समर्थन न करे क्यो कि उस समय तक राज्यों के आय-स्रोतों का सही चित्र उभर आयेगा. दिल्ली के मुख्य कार्यकारी पार्षद विजय कुमार मलहोत्रा ने भी प्रारूप का विरोध करते हुए कहा 'मैं इस प्रारूप का समर्थन नही करता और जो लोग करते हैं उन मे यदि साहस है तो कहे.' संभवतया उन का इशारा उन मुख्यमंत्रियों की ओर था जिन्होने आलोचना करने के बाद भी प्रारूप का विरोध करना उचित नही समझा. मल्होत्रा ने दिल्ली के लिए विशेष सहायता की माँग की थी. मुख्यमंत्रियो की कटु आलोचना से प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को कुछ समय के लिए क्रोध भी आया और उन्होने कहा कि इस प्रकार के रुख से तो आयोजना के सिद्धांत पर चलना ही संभव नही. मगर शीघ्र ही उन्होने संयत स्वर में प्रारूप का समर्थन करना आरंभ किया.

सरकारी पक्ष : उपप्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने मुख्यमंत्रियों को बताया कि योजना का प्रारूप सोच-समझ कर बनाया गया है. उन के अनुसार अधिक घाटे की अर्थ-व्यवस्था से मूल्यों को एक स्तर पर रखना संभव नही होगा. योजना आयोग के उपाध्यक्ष गाडगिल ने कहा कि राज्यों को अपने बजटो मे अपनी योजनाओं में अधिक योगदान देना चाहिए मगर लगता है कि वित्त आयोग के प्रतिवेदन से पहले ही उन्होने अपनी योजनाओं के प्रति निश्चयात्मक रवैया अपनाया है.

विदेश व्यापार

विदेश बाज़ार और भारतीय उत्पादन

विदेश व्यापार के मंत्री बलिराम भगत कपास व्यापारियों और उद्योगपतियो के असहयोगी व्यवहार को सूती उत्पादनों के बढ़ते हुए मूल्य का कारण मानते हैं. अपने मंत्रालय की माँगों पर बहस का उत्तर देते हुए उन्होने चेतावनी दी कि यदि उन्हें सूती उद्योग से सहयोग नही मिलता तो इस प्रकार के उचित कदम उठाये जायेंगे जिस से निकट भविष्य में बढते हुए भाव रोके जायेंगे. उन्होने यह स्वीकार किया कि कपास उगाने वाले किसानों को अपने उत्पादन का उचित मूल्य मिलना चाहिए और इस सिलसिले में कृषि मंत्रालय ने एक विशेष समिति का गठन किया है जो प्रति एकड़ कपास उत्पादन के संबंध में उचित कार्रवाई करेगी. पिछले वर्ष निर्यात में १२.५ प्रतिशत की वृद्धि हुई. मंत्री के अनुसार यह उत्साहवर्द्धक तो है मगर इस को स्थायी नही माना जा सकता. इस सिलसिले में उन्होने लौह और इस्पात उद्योग का ज़िक्र किया जिस में आर्थिक अवस्था में सुधार होने के कारण उत्पादन में कमी हो गयी. इस लिए यह जरूरी है कि इस प्रकार का संतुलन क़ायम किया जाये जिस से निर्यात और घरेलू बाजार की माँग को पूरा किया जा सके.

कमज़ोर कारखाने : भारत चाय और पटसन का निर्यात परंपरागत रूप से करता आ रहा है मगर पिछले कई वर्षों में पटसन के निर्यात में भारी कमी हो गयी है. भगत के अनुसार यह एक चिंता का विषय है. मंत्रालय की माँगो पर बहस के दौरान कई सदस्यों ने यह माँग की थी कि दुर्बल सूती मिलों को स्वस्थ मिलों के साथ मिला लिया जाये और इस सिलसिले में इस बात का ध्यान रखा जाये कि कमज़ोर मिलो को हानि न हो. विदेश व्यापार मंत्री ने सैद्धांतिक रूप से माँग को स्वीकार करते हुए कहा कि कमजोर सूती मिलों के विलय का प्रश्न विचाराधीन है किंतु उन्ही मिलो का विलय संभव होगा जिन के सुधार की संभावना है. बहस के दौरान एक साम्यवादी सदस्य ने विदेशो के साथ व्यापारिक सहयोग की आलोचना की थी. इस सिलसिले में मंत्री ने कहा कि "हम यह सहयोग तभी तक लेंगे जब तक हमारे देश का अहित नही होगा."

लाइसेंस नीति : भारत सरकार ने विदेश व्यापार के संबंध में अपनी नीति की घोषणा करने के साथ ही औद्योगिक लाइसेंस नीति की घोषणा भी की है. पिछले वर्ष की लाइसेंस नीति में कुछ परिवर्त्तन किया गया है. कुछ मुद्दों को उस वर्ग से निकाल दिया गया है जिस के संबंध में सरकार ने लाइसेंस न देने का फैसला किया था. संभवत: यह इस लिए हुआ है कि सरकार ने यह महसूस किया है कि कुछ वस्तुओं का उत्पादन उन की उत्पादन क्षमता से बहुत कम हो रहा है जब कि माँग बहुत अधिक है. इस सिलसिले में कुछ ऐसे उत्पादनो को एक दूसरे वर्ग में रखा गया है जिस के संबंध में लाइसेंस देने या न देने का निर्णय उत्पादन क्षमता और उपभोक्ता की माँग को जाँच कर किया जायेगा. कुछ वस्तुओं के उत्पादन के लिए लाइसेंस न देने की नीति चालू रखी गयी है. इस वर्ग में कुछ नयी वस्तुएँ भी जोड़ दी गयी हैं. बियर, कैलशियम कारबाइड, घरों में इस्तेमाल होने वाले रेफ्रिजिरेटर बिजली की बत्तियो आदि पर से प्रतिबंध हटा दिया गया है. जब कि साबुन पर प्रतिबंध बदस्तूर है. इस वर्ग में केवल कपड़े धोने का साबुन शामिल है.

अनुसूचित जातियां

सुरक्षित स्थान, अरक्षित इंसान

केंद्रीय क़ानून और समाज-कल्याण मंत्री गोविंद मेनन ने जब लोकसभा को बताया कि अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लिए संसद् और विधानमंडलों में सुरक्षित स्थानों की मौजूदा समय सीमा को, जो २६ जनवरी १९७० को समाप्त हो रही है, आगे बढ़ाने के लिए संविधान में आवश्यक संशोधन पर विचार किया जा रहा है तो उन्हें सदन के सभी दलों के सदस्यों का व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ. संविधान की धारा ३३० के अधीन शुरू में अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लिए संविधान के अस्तित्व में आने की तारीख से दस साल के लिए संसद् और विधान-मंडलों में स्थानों की सुरक्षा की व्यवस्था की गयी थी. बाद में यह समय सीमा दस साल के लिए बढ़ा दी गयी थी. १६ अप्रैल की शाम को मंत्रिमंडल की अंतरंग समिति की जो बैठक हुई उस में यह निर्णय किया गया कि सीटों की सुरक्षा की यह व्यवस्था दस साल के लिए और बढ़ा दी जानी चाहिए. केंद्रीय मंत्रिमंडल के कुछ नजदीकी सूत्रों से **दिनमान** के प्रतिनिधि को ज्ञात हुआ कि सीटों की सुरक्षा की व्यवस्था को इस मौक़े पर बढ़ाने का फ़ैसला कर के सरकार देश के विशाल वर्ग में पैदा हुए उस असंतोष को शांत करना चाह रही है जो अस्पृश्यता के पक्ष में पुरी के शंकराचार्य के वक्तव्य से जुड़ा हुआ है. सरकार को पूरा विश्वास है कि वह इस सिलसिले में सदन का व्यापक बहुमत प्राप्त करेगी और संविधान में आवश्यक संशोधन करा लेगी. यह विश्वास निराधार नहीं है कि क्यों कुछ एकांत अपवादों को छोड़ कर सभी दलों के प्रतिनिधि यह महसूस करते हैं कि सीटों की सुरक्षा की मौजूदा व्यवस्था को अभी ख़त्म करने का अवसर नहीं आया है. वह यह भी महसूस करते हैं कि सीटों की सुरक्षा के बावजूद अनुसूचित जातियों और जन-जातियों के लोग अभी भी सवर्ण साजिश के कारण अपने आप को असहाय महसूस कर रहे हैं. बहस के दौरान केंद्रीय क़ानून और समाज-कल्याण मंत्री गोविंद मेनन तथा गृह मंत्रालय में राज्यमंत्री विद्याचरण शुक्ल को सदन के दोहरे असंतोष का सामना करना पड़ा. कुछ सदस्यों ने केंद्रीय सरकार की यह कह कर आलोचना की कि सीटों की सुरक्षा के बावजूद अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोग अपने आप को सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से अरक्षित महसूस कर रहे हैं. अपनी आवाज़ को ऊँची करते हुए गोविंद मेनन ने सहज आत्मावलोकन की मुद्रा में स्वीकार किया कि यह दावा बिलकुल निराधार और खोखला होगा कि पिछले बीस सालों में हम शोषित वर्गों को पूरी राहत देने में सफल हो सके हैं. सदस्यों के प्रश्नों की बौछार से अपने को घिरा महसूस करते हुए केंद्रीय क़ानून और समाज-कल्याण मंत्री ने एक झटके में शोषितों की समस्या को शताब्दियों से चली आ रही सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था से जोड़ दिया. और इस तरह शायद उन्होंने कुछ अतिरिक्त असंतोष का भी अनुभव किया. सदन का माहौल उस समय बिलकुल क्षुब्ध हो उठा जब श्री मेनन ने पुरी के शंकराचार्य के नाम के पहले परमपावन शब्दों का इस्तेमाल किया. कुछ सदस्यों को मंत्री के इस कथन पर गहरी आपत्ति थी. फिर सदन के आक्रोश को शांत करने की कोशिश करते हुए केंद्रीय विधि मंत्री ने विस्मय और विनोद के लहजे में कहा कि मैं ने पुरी के शंकराचार्य को परमपावन इस लिए कहा है कि उन्होंने अत्यंत अपावन वक्तव्य दिया है. फिर शंकराचार्य के अस्पृश्यता-दर्शन की शल्य परीक्षा-सी करते हुए श्री मेनन ने कहा कि शंकराचार्य को आदमी से अधिक जानवर से प्यार है. फिर आदि शंकराचार्य

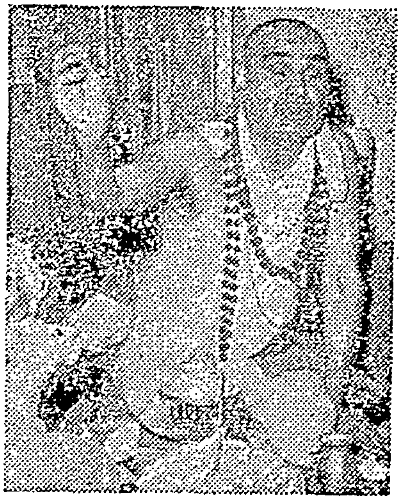

पुरी के जगद्गुरु शंकराचार्य

और स्वामी विवेकानंद से उद्धरण पेश करते हुए उन्होंने पुरी के शंकराचार्य के अस्पृश्यतादर्शन को मानसिक बीमारी की कोटि में रखा. जब सदन मंत्री के इन वक्तव्यों से भी संतुष्ट नहीं हुआ तो उन्होंने सदस्यों को बताया कि मैं ने गृह मंत्रालय को सलाह दी है कि वह बिहार सरकार को पुरी के शंकराचार्य के खिलाफ़ कानूनी कार्यवाही करने का आग्रह करे. शंकराचार्य के प्रसंग समाज कल्याण मंत्रालय के अनुदान से संबद्ध बहस के दौरान भी उठे. बहस में भाग लेने वाले सभी सदस्यों ने शंकराचार्य के अस्पृश्यता-दर्शन की तीखी आलोचना की. सदस्यों ने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि भारतीय संविधान के लागू होने के इतने वर्षों बाद भी अनुसूचित जातियों और जनजातियों की न केवल आर्थिक और सामाजिक दशा में कोई बुनियादी सुधार नहीं हुआ है, बल्कि कोई हुई आदमियत भी उन्हें लौटायी नहीं गयी है. स्वतंत्र पार्टी के डाह्याभाई पटेल ने पुरी के शंकराचार्य के वक्तव्य को गैर-संवैधानिक और अमानवीय बताते हुए सरकार की इस आधार पर आलोचना की कि पटना में जब शंकराचार्य ने अस्पृश्यता के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया तो वहां उपस्थित पुलिस ने उन्हें तत्काल हिरासत में क्यों नहीं लिया.

कांग्रेस महासमिति

चंद्रशेखर की छाया

युवा तुर्क जनवरी १९६८ में कांग्रेस के हैदराबाद अधिवेशन में अपनी पराजय का बदला कांग्रेस के फरीदाबाद अधिवेशन में लेने के लिए कृतसंकल्प जान पड़ते हैं. हैदराबाद अधिवेशन में कार्यकारिणी के चुनाव में युवा तुर्कों को प्रदेश सामंतों से पूरी तरह मात मिली थी. उस के बाद कांग्रेस महासमिति के दिल्ली अधिवेशन में श्री चंद्र शेखर केंद्रीय चुनाव समिति में विजयी नहीं हो सके. इस बीच संसद् में कांग्रेस पार्टी की भीतरी राजनीति बदल गयी और उन नौजवान सदस्यों की स्थिति अधिक संगठित हो गयी जो कि युवा तुर्क के नाम से जाने जाते हैं. कांग्रेस पार्टी में बिड़ला प्रकरण को ले कर जो हुआ और पार्टी भीतर ही भीतर जिस प्रकार विभक्त हो गयी उस की छाया महासमिति के फरीदाबाद अधिवेशन पर स्पष्ट नज़र आती है. इस अधिवेशन में इस बात का फ़ैसला हो जायेगा कि कांग्रेस को बने रहना है कि नहीं. अगर बने रहना है तो किन शर्तों पर. वास्तव में यह विचारों की लड़ाई न हो कर व्यक्तियों की टकराहट है और इस में दो शिविर साफ़-साफ़ आमने सामने नज़र आते हैं. एक श्रीमती इंदिरा गांधी और उन के समर्थकों का शिविर है और दूसरा उन का जिन्हें वह या उन के अनुयायी उन का विरोधी मानते हैं. इस समूचे महाभारत को लड़ने का बीड़ा श्री चंद्रशेखर ने उठाया है जिन्होंने ऐन अधिवेशन के मौके पर यह घोषणा की है कि जो लोग समाजवाद में विश्वास नहीं करते हैं या कार्यरूप में उस के विरोधी हैं उन्हें कांग्रेस छोड़ देनी चाहिए. अपने इस आग्रह में श्री चंद्रशेखर अकेले नहीं हैं. पुराने वामपंथी श्री केशवदेव मालवीय ने, जिन के बारे में अब समाचार कम पढ़ने को मिलते हैं, घोषणा की है कि कांग्रेस की भीतरी सफाई होनी चाहिए और उस में केवल समाजवादियों के लिए स्थान होना चाहिए.

श्री चंद्रशेखर की तात्कालिक उत्तेजना का कारण श्री मोरारजी देसाई नहीं बल्कि श्री सदाशिव पाटील हैं जो कि बनासकांठा से संसद् के लिए चुनाव लड़ रहे हैं. समाचार-पत्रों में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार श्री पाटील ने अपने एक चुनाव भाषण में यह

कहा कि मैं संसद् में इस लिए आना चाहता हूं कि चंद्रशेखर जैसे प्रछन्न कम्युनिस्टों की गतिविधियों को रोका जा सके. श्री मोरारजी देसाई अकेले यह लड़ाई लड़ रहे हैं; अगर मैं चुन गया तो चंद्रशेखर से ज़रूर निपटूंगा. श्री चंद्रशेखर ने जो थोड़े ही दिन पहले गुजरात के दौरे पर गये थे श्री पाटील के वक्तव्य पर आपत्ति की और अपना विरोध प्रकट करते हुए कांग्रेस पार्टी को एक पत्र लिखा. श्री चंद्रशेखर श्री सदाशिव पाटील और उन की नीतियों के पुराने विरोधी रहे हैं. १९६८ में कांग्रेस महा समिति के हैदराबाद अधिवेशन में उन्होंने श्री पाटील पर सीधा हमला किया था जिस के जवाब में श्री पाटील ने कहा था कि मैं चंद्रशेखर जैसे लोगों की परवाह नहीं करता.

कांग्रेस के भीतरी राजनीति के व्याख्याकारों का दावा है कि श्रीमती इंदिरा गांधी श्री पाटील के संसद् में आने की आसन्न संभावना से बहुत प्रसन्न नहीं हैं. अगर श्री पाटील चुन लिये गये तो सचमुच ही कांग्रेस पार्टी की भीतरी लड़ाई का संतुलन कुछ हद तक बदल सकता है. इस समय कांग्रेस पार्टी में श्री मोरार जी देसाई को जिस शिविर से समर्थन प्राप्त है वह सत्ता में नहीं है. श्री पाटील का समर्थन सचमुच ही उन की स्थिति को और मजबूत करेगा.

यह अकारण नहीं है कि युवा तुर्क और उन के सहयोगी फरीदाबाद अधिवेशन के एक दिन पहले राजधानी में कांग्रेसियों का एक सम्मेलन करने जा रहे हैं जिस में कि १० सूत्री कार्यक्रम को अमल में लाने की मांग की जायेगी. इस सम्मेलन में केंद्रीय समिति की ओर से जारी एक वक्तव्य में श्री अमरनाथ विद्यालंकार, श्री हर्षदेव मालवीय और श्री चंद्रजीत यादव ने कहा है कि समय आ गया है जब कि कांग्रेस पार्टी और उस के नेतृत्व में इस तरह परिवर्तन होना चाहिए कि संस्था में पुनर्जीवन का संचार हो सके. समाजवाद विरोधी और एकाधिकार समर्थक शक्तियां संस्था को भीतर ही भीतर खाये जा रही हैं. सत्ता में बैठे हुए अनेक नेताओं ने १० सूत्री कार्यक्रम का विरोध किया है और स्वीकृत नीतियों के विरुद्ध प्रचार किया है. वक्तव्य में प्रदेश सामंतों की ओर इशारा करते हुए दादागीरी का भी विरोध किया गया है.

इस में कोई संदेह नहीं कि महासमिति में कांग्रेस नेतृत्व की तीखी आलोचना होगी. शायद इसके कारण मध्यावधि चुनावों में, विशेष रूप से बंगाल में, कांग्रेस की पराजय की. साधारण कांग्रेसी कार्यकर्त्ता पार्टी के भविष्य को ले कर चिंतित नज़र आते हैं. भीतर ही भीतर हर कांग्रेसी यह मानने लगा है कि १९७२ में केंद्र में कांग्रेस की एकछत्र सरकार नहीं बन सकती. अगर कांग्रेस को केंद्र में फिर गद्दी पर बैठना है तो इस के लिए उसे सत्ता का वितरण करना होगा यानी कि मिली जुली सरकार बनानी होगी. पार्टी के नेताओं ने भी इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है और कम से कम दो नेताओं श्री सदाशिव पाटील और श्री चिदंबरन सुब्रह्मण्यम् ने मिली-जुली सरकार का स्वरूप पार्टी के सामने रख दिया है. दोनों के सामने दो तरह की तस्वीरें हैं और बहुत संभव है कि भविष्य में कांग्रेस का जो विभाजन हो वह अब इन्हीं दो तस्वीरों के आधार पर हो. निकट भविष्य में पार्टी के टूटने की कोई संभावना भले ही न हो लेकिन मिली-जुली सरकार के स्वरूप का संकेत महासमिति की बहसों में ज़रूर मिलेगा. श्री सदाशिव पाटील और श्री सुब्रह्मण्यम् ने पार्टी में सुधार के लिए जो दस्तावेज़ हाई कमान को सौंपा है उस पर भी दिलचस्प चर्चा होगी और इस बहस से पता चल सकेगा कि सुधार का यह कार्यक्रम कहां तक व्यावहारिक है.

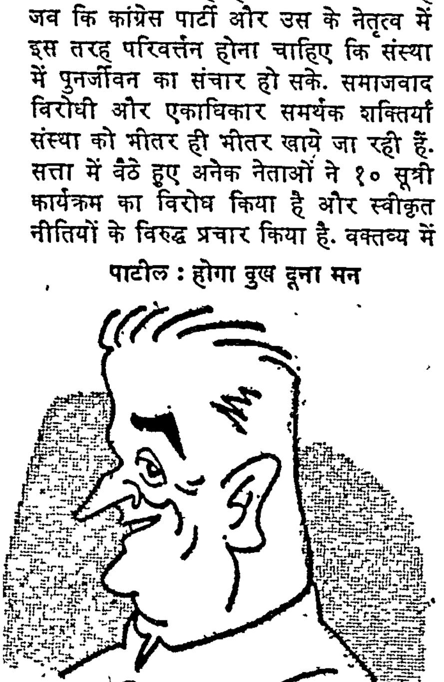

पाटील : होगा दुख दूना मन

राजनैतिक दल

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी : आग्रह और पूर्वग्रह

मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की केंद्रीय समिति ने कलकत्ता में अपने पांच दिन के जमावड़े के दौरान केंद्र-राज्य संबंधों से ले कर "क्रांतिकारी लोकतांत्रिक संयुक्त मोर्चा" की भूमिका के बीच सिमटने वाले लगभग सभी मसलों पर विचार किया. बंगाल के मध्यावधि चुनावों में संयुक्त मोर्चे की सनसनीखेज विजय के बाद केंद्रीय समिति की यह पहली बैठक थी. श्री बासवपुन्नैया द्वारा प्रस्तुत की गयी राजनैतिक रिपोर्ट पर जो बहस शुरू हुई उस के दौरान अनेक महत्त्वपूर्ण सवाल सामने आये. राजनैतिक रिपोर्ट में केंद्रीय स्तर पर कांग्रेस के संकट का ज़िक्र किया गया था और विस्तारपूर्वक मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी तथा अन्य 'लोकतांत्रिक दलों की' भूमिका पर प्रकाश डाला गया था. रिपोर्ट में केरल और बंगाल के संयुक्त मोर्चे की भूमिका को महत्त्वपूर्ण बताया गया था लेकिन यह स्पष्ट कर दिया गया था कि राष्ट्रीय स्तर पर अभी ऐसे मोर्चों को गठित करने में ज़्यादा शक्ति लगाने का समय नहीं आया है. केंद्रीय समिति केरल

रणदिवे : रणनीति

और बंगाल के संयुक्त मोर्चों को अभी पूरी तरह प्रौढ़ नहीं पा रही है यद्यपि अपनी भावी रणनीति को निर्धारित करने के आधार के रूप में उन्हें स्वीकार कर रही थी. श्री बासवपुन्नैया की रिपोर्ट में केंद्रीय स्तर पर कांग्रेस के बढ़ते संकट पर ज़ोर दिया गया था लेकिन साथ ही साथ यह आशंका भी व्यक्त की गयी थी कि केंद्रीय स्तर पर अपनी पकड़ को शिथिल होते पा कर कांग्रेस जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी जैसी दक्षिणपंथी शक्तियों के साथ भी समझौते कर सकती है. इस संभावना को नज़रंदाज़ किये बग़ैर रिपोर्ट में यह प्रतिपादित करने की कोशिश की गयी थी कि यह सत्ताधारी दल की कमज़ोरी का सबूत होगा. पश्चिम बंगाल के कुछ सदस्यों ने संयुक्त मोर्चा के सैद्धांतिक दृष्टि से परिष्कृत किये जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया.

श्री बासवपुन्नैया की रिपोर्ट में आगामी वर्षों में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी की संभावित रणनीति का संकेत किया गया था. पश्चिम बंगाल के संयुक्त मोर्चे के ज़रिये मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी इस बात का प्रयास करेगी कि किस तरह उच्चमध्यवर्गीय प्रतिनिधियों से ऐसे वर्गों को अलग किया जाये जो उच्चमध्यमवर्ग में नहीं आते. पांच दिन की बैठक के बाद पार्टी की केंद्रीय समिति के सदस्य श्री बासवपुन्नैया ने संवाददाताओं को जिस प्रस्ताव से अवगत कराया उस में राज्यों के अधिकार-क्षेत्र के विस्तार की मांग की गयी थी ताकि ग़ैरकांग्रेसी पार्टियां मध्यावधि चुनाव के दौरान जनता को दिये गये आश्वासनों को कार्यान्वित कर सकें. प्रस्ताव में अनुवर्त्ती सूची में उल्लिखित अधिकारियों को पूरे का पूरा राज्यों को हस्तांतरित कर दिये जाने की मांग भी की गयी है. प्रस्ताव में स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि ग़ैरकांग्रेसी सरकारों द्वारा जनता के हित में जो विधेयक पास किये जा रहे हों और जो अनुवर्त्ती सूची के अंदर आ रहे हों उन्हें राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होनी चाहिए. केंद्र राज्य संबंध को अव्यावहारिक बताते हुए प्रस्ताव में मांग की गयी है कि संविधान में संशोधन से पहले इस दिशा में क्रांतिकारी क़दम उठाये जाने चाहिए.

प्रदेश

पश्चिम बंगाल

तमाशा खुद ही बन गये...

केंद्र के अनुरोध और जनता के विरोध के सामने पश्चिम बंगाल के उप-मुख्यमंत्री ज्योति बसु को अपने हथियार टेकने ही पड़े. रवींद्र सरोवर स्टेडियम में हुए उपद्रव और उस से उत्पन्न लोगों की खिन्नता और क्रोध में तब कुछ नरमी आयी जब राज्य सरकार ने जाँच आयोग क़ानून के अंतर्गत एक आयोग गठित करने का निर्णय किया जिस में अध्यक्ष न्यायाधीश शंभू चंद्र घोष होंगे. आयोग गठित करने का निर्णय मंत्रिमंडलीय बैठक में बहुमत से किया गया. उप-मुख्यमंत्री बसु मानते हैं कि राज्य में क़ानून और व्यवस्था उतनी और उस रूप में भंग नहीं हुई है जितनी प्रचारित की गयी है. फिर भी रवींद्र सरोवर कांड के सभी पहलुओं पर, स्त्रियों के साथ हुई ज़्यादती समेत, की जाँच करने का उन्होंने आदेश दे दिया है.

काली रात : ६ अप्रैल की रात दक्षिण कलकत्ता के लिए काली रात साबित हुई. उस दिन रवींद्र सरोवर स्टेडियम में शाम को सात बजे अशोक कुमार और दूसरे अभिनेताओं की मौजूदगी में 'अशोक कुमार नाइट' के प्रदर्शन का आयोजन था. भारी संख्या में लोग उपस्थित हुए थे, जिन में स्त्रियों और बच्चों की संख्या ज़्यादा थी. आयोजन आधा-पौन घंटे देर से शुरू हुआ और बीच-बीच में ध्वनि-विस्तारक खामोश रहता रहा. इस से भीतर के लोगों में उत्तेजना बढ़ी. उधर बाहर कुछ लोगों ने, जिन के पास टिकट थे और नहीं भी थे, भीतर घुसने के लिए ज़ोर लगाया. इस तरह १० बजे रात को उपद्रव हुए. बिजली की लाइन काट दी गयी, स्टेडियम में अंधेरा छा गया और भगदड़ मच गयी. अंधेरे में भद्र महिलाओं के साथ भरपूर दुर्व्यवहार किया गया. तोड़-फोड़ बढ़ने और ईंट-पत्थर के साथ पटाखों से प्रहार होने के बाद पुलिस ने गोलियाँ चलाईं जिस से एक १४ वर्ष का छात्र मारा गया और ५० घायल हुए. बाद में एक और युवक की लाश पायी गयी. उपद्रव एक बजे रात तक जारी रहा.

पुलिस की रिपोर्ट : कहते हैं कि इस घटना को गंभीरता से नहीं लिया गया. इस का एक कारण यह भी रहा कि इस घटना के दूसरे ही दिन काशीपुर स्थित गोला-बारूद के कारखाने में गोली चल गयी. सब का ध्यान उधर खिंच गया. राज्य सरकार ने भी काशीपुर पर ही अपनी सारी शक्ति लगा दी. लेकिन रवींद्र सरोवर की दुर्घटना के संबंध में चर्चा बनी रही और अख़बारों में कुछ न कुछ छपता रहा. अख़बार वाले रोज़ पुलिस अधिकारियों और मंत्रियों से इस बारे में पूछते रहे.

इस के बाद पुलिस ने जाँच शुरू की. इस तरह दुर्घटना ६ अप्रैल को हुई और उस की जाँच १३ अप्रैल को शुरू हुई. जाँच के बाद पुलिस ने उप-मुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु को जो रिपोर्ट दी उस में कहीं कुछ नहीं था. पुलिस की रिपोर्ट की सूचना देते हुए श्री बसु ने संवाददाताओं को बताया कि रिपोर्ट के अनुसार औरतों पर अत्याचार की बातें बिलकुल निराधार हैं. पुलिस ने सरोवर के पास के घरों में जा कर पूछा लेकिन उसे इस संबंध में किसी से कोई विवरण नहीं मिला. केवल पास के पेट्रोल पंप के कर्मचारियों ने कहा कि उन्होंने उस रात कुछ लोगों को एक लड़की का पीछा करते देखा था. पुलिस के पहुँचते ही वे रफ़ू-चक्कर हो गये.

बुद्धिजीवियों की प्रतिक्रिया : जाँच की इस रिपोर्ट से किसी को संतोष नहीं हुआ. कलकत्ता और बाहर के बुद्धिजीवियों द्वारा रवींद्र सरोवर की घटनाओं पर गहरी चिंता व्यक्त की गयी. इतिहासकार डॉ. रमेश चंद्र मजूमदार और प्रोफ़ेसर सत्येन बोस जैसे लोगों ने दुर्घटना की जाँच की माँग की. नागरिकों की एक सभा में जब औरतों के साथ दुर्व्यवहार की चर्चा हुई तो 'शर्म-शर्म' के नारे लगे.

श्री सोमेन टैगोर ने कहा कि मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए एक संगठन स्थापित करने का समय आ गया है, जैसा कि नाज़ी दौर में हुआ था. बंगला की लेखिका बानी देवी ने कहा कि ६ अप्रैल की रात को ४ घंटे तक सदर्न एवेन्यू (सरोवर के बगल से गुज़रने वाली सड़क) गुंडागर्दी का केंद्र स्थल रहा. श्री दिलीप चक्रवर्ती ने कहा कि उन्होंने एक टैक्सी वाले का नंबर नोट किया है जिस ने एक नंगी औरत की ओर तन ढंकने के लिए अपनी पगड़ी उतार फेंकी थी. सभा ने एक १७ सदस्यीय तथ्यान्वेषण समिति क़ायम की जिस में बंगला की दो लेखिकाएँ बानी देवी और महाश्वेता देवी भी हैं. अन्य लोगों में अजित दत्ता, देव प्रसाद घोष, सोमेन टैगोर, सुनील दास और दिलीप चक्रवर्ती प्रमुख हैं.

राज्य विधान सभा में कांग्रेस संसदीय दल के नेता श्री सिद्धार्थ शंकर राय ने राज्यपाल को एक पत्र लिख कर राज्य विधान सभा का एक अधिवेशन अविलंब बुलाने की माँग की.

मोर्चा के विरुद्ध षड्यंत्र : श्री बसु ने दिनमान के प्रतिनिधि को बताया कि यह सब संयुक्त मोर्चा के विरुद्ध षड्यंत्र और प्रचार है. आप ने बताया कि किसी भुक्तभोगी ने न शिकायत की है और न पत्र दिया है. आप ने इस आरोप को निराधार बताया कि राज्य में कानून और व्यवस्था की स्थिति में कोई गिरावट आई है. आप ने कहा, बाहर से आने वाले एक सज्जन को पता चला कि तीन ट्रकों में साड़ियाँ और चोलियाँ रवींद्र सरोवर से पुलिस ले गयी. हर ट्रक में ३० हज़ार साड़ियाँ तो होंगी ही. इस तरह की बिना सिर-पैर की अफ़वाहों की भी कोई हद है ? आप के अनुसार पिछले २० वर्षों में जिन समाज-विरोधी तत्वों का सृजन होता रहा है, एक दिन में कोई भी सरकार उन का सफ़ाया कैसे कर सकती है ?

नक्सलवादियों का हाथ : स्टेडियम समारोह के आयोजक और यंग्स कार्नर के सचिव मुखर्जी ने संदेह व्यक्त किया कि उपद्रवकारी नक्सलवादी ही थे. आपने स्टेडियम में औरतों के साथ छेड़खानी के समाचारों का खंडन किया.

रवींद्र स्टेडियम : काली रात के बाद की एक तस्वीर

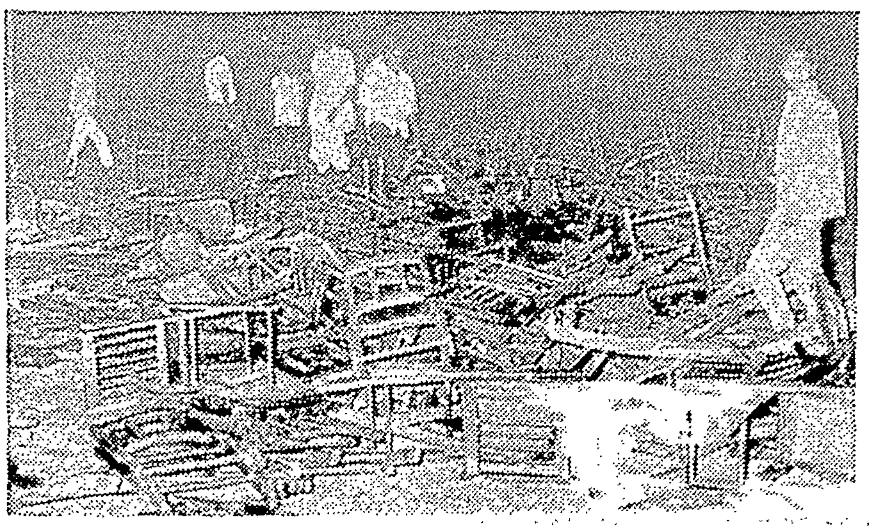

तमिलनाडु

सूखे खेत, नम आँखें

सूखे ने अपना पंजा इस बार धुर दक्षिण प्रदेश तमिलनाडु में खोल कर फैलाया है. इस सूखे की स्थिति से न सिर्फ़ राज्य सरकार, बल्कि केंद्र सरकार को भी चिंता हो चली है. सूखे की भयंकरता को देखने के लिए प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी जब प्रदेश के दौरे पर पहुँचीं और सदा पानी से भरी रहने वाली उस मदुरंतकम् झील को सूखा पाया, जो उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम छोरों की २७ सौ एकड़ भूमि की सिंचाई करती थी, तो इस झील के सूख जाने से किसान पर कैसी विपदा

टूट पड़ी होगी, यह बात प्रधानमंत्री की आँखों से छुपी न रह सकी. प्रधानमंत्री ने चेंगलपुट, उत्तर और दक्षिण अर्काट ज़िले का भी दौरा किया और सदा लहलहाने वाले खेत सूखे पाये तथा किसानों की ख़ुशी से चमकने वाली आँखों को आँसू बहाते देखा. राज्य सरकार ने प्रधानमंत्री से १० और २० करोड़ रु. के बीच सहायता की माँग की है.

प्रधानमंत्री ने एक पत्रकार सम्मेलन में बताया कि बिहार और उत्तरप्रदेश का पिछले साल का सूखा तमिलनाडु के सूखे के मुक़ाबले अधिक भयंकर था. साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि केंद्र सरकार राज्य की भरसक सहायता करेगी. प्रधानमंत्री ने बताया कि पहले उन को तमिलनाडु के कुछ संसद् सदस्यों ने सूखे के बारे में जानकारी दी थी और उस के एवज़ में उन्होंने भी राज्य सरकार को अन्न भेजने और अन्य सहायता देने के आदेश दे दिये थे लेकिन फिर भी उन्होंने चाहा कि जल्दी से जल्दी लोगों की ग़ुर्बत और परेशानी को नज़दीक से अपनी आँखों से देखा जाये. अपने एक दिन के तूफ़ानी दौरे में उन्होंने मुख्यमंत्री करुणानिधि से बातचीत की और उस ज्ञापन पर भी विचार किया जो सूखा पीड़ित लोगों की सहायता के लिए उन्हें दिया गया था. यद्यपि ब्याज-मुक्त क़र्ज़ के बारे में उन्होंने किसी प्रकार का आश्वासन नहीं दिया लेकिन अपनी इस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री ने तमिलनाडु के लोगों और सरकार की जितनी सद्भावना अर्जित की वह उल्लेखनीय है.

बिहार

मंत्रिमंडल का विस्तार

आखिर मुख्यमंत्री हरिहर सिंह ने अपने एक दर्जन साथियों में तीन और जोड़ कर मंत्रिमंडल के विस्तार की पहली खेप पूरी कर ही ली. जो तीन नये मंत्री मंत्रिमंडल में शामिल किये गये उन में कांग्रेस का कोई भी मंत्री नहीं. जनता पार्टी के नेता राजा कामाख्या नारायण सिंह की ७० वर्षीया माता श्रीमती शशंक मंजरी देवी, झारखंड पार्टी के पी. सी. बरुआ केबिनेट स्तर के मंत्री बनाये गये हैं और शोषित दल के प्रोफ़ेसर महावीर प्रसाद को राज्यमंत्री नियुक्त किया गया है. बरुआ और प्रोफ़ेसर महावीर प्रसाद शोषित दल की सरकार में भी मंत्री थे. इतनी जद्दोजहद और देर के बाद केवल तीन ही मंत्रियों को मंत्रिमंडल में शामिल करने से यह बात साफ़ हो जाती है कि कांग्रेस पार्टी अभी भी बुरी तरह बँटी-कटी है और उस के युवा तबक़े ने हरिहर सिंह को अपना दिली समर्थन नहीं दिया है.

मंत्रिमंडल का विस्तार कर और शपथ ग्रहण समारोह में शामिल हो कर मुख्यमंत्री राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठक में शामिल होने के लिए दिल्ली पहुँचे. दिल्ली में **दिनमान के प्रतिनिधि को** उन्होंने बताया कि वह मंत्रि-

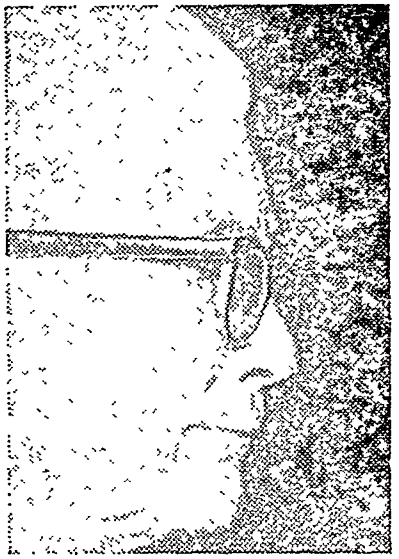

हरिहर सिंह: समर्थन का दावा

मंडल का पुनः विस्तार करेंगे लेकिन यह २५ अप्रैल के बाद या मई के पहले हफ़्ते तक ही हो पायेगा. कुछ विवादास्पद नामों के बारे में कांग्रेस हाई कमांड की सलाह लेना ज़रूरी था. यह सलाह दिल्ली प्रवास के दौरान भी ली जायेगी लेकिन इस पर खुल कर बातचीत २५ अप्रैल से होने वाले फ़रीदाबाद अधिवेशन में ही होगी क्योंकि वहाँ पर लगभग सभी सदस्य मौजूद होंगे. हरिहर सिंह यह मानते हैं कि उन्हें कांग्रेस और सरकार में शामिल सभी पार्टियों का समर्थन प्राप्त है लेकिन कांग्रेस के कुछ मुंहफट नेताओं का कहना है कि यह हरिहर सिंह का सिर्फ़ ख़याल ही है.

राजस्थान

ख़ून, ख़ज़ाना और प्यार

अलौकिक ज्योति का संकेत पा कर किसी गुप्त खजाने की तलाश के लिए चामुंडी देवी के सम्मुख अकोड़िया गाँव के बजरंग नामक एक ५० वर्षीय ग्रामीण की बलि की दर्दनाक घटना की छानबीन के दौर में पुलिस को एक और रहस्य का पता चला है. पुलिस के अनुसार बजरंग की हत्या केवल देवी को ख़ुश करने के लिए ही नहीं बल्कि उस की ख़ूबसूरत विवाहिता भतीजी नाथी के राह की रुकावट दूर करने के लिए भी की गयी, जो अकोड़िया गाँव के ही लाडिया नामक एक बढ़ई से प्यार करती है. पुलिस को अपने सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि बजरंग के भाई काल्हा की २० वर्षीया पुत्री नाथी ने अपने पति का घर छोड़ दिया था और वह लाडिया के पास रहने लगी थी. बजरंग क़ानून की मदद से नाथी को उस के प्रेमी से अलग कर के अपने घर ले आया. नाथी का पिता क्योंकि बहरा और मानसिक रूप से अस्वस्थ था अतः उस के परिवार की देखरेख का भार बजरंग ही संभालता था. बजरंग की दखलंदाज़ी से लाडिया ख़फ़ा हो गया और वह बदला लेने की ताक में था. पुलिस को सूचना मिली है कि लाडिया ने हरलाल जाट (मुजरिमों में से एक) से वादा किया था कि यदि उस ने बजरंग को रास्ते से हटा दिया तो लाडिया उसे २० भेड़ें देगा.

दूसरी ओर एक भील कूटनी ने अपने संबंधी गोकलिया को बरग़लाया था कि यदि वह मानवीय ख़ून के 'हवन' की व्यवस्था कर सके तो वह उसे एक गुप्त खजाने तक ले जायेगी. अतः गोकलिया अपने शिकार की तलाश में था और उस ने इस बारे में अपने मित्र हरलाल से बातचीत की. दोनों ने तय किया कि बजरंग की हत्या की जाये क्योंकि उस का सिवाय मानसिक रोग से पीड़ित भाई काल्हा के और कोई वारिश नहीं था. पुलिस का कहना है कि बजरंग की हत्या के बाद लाडिया एकाएक गाँव से फ़रार हो गया. आसपास के गाँवों में कई बार छापा मारने के बावजूद अभी तक पुलिस लाडिया को गिरफ़्तार नहीं कर पायी है.

३ मार्च की रात को जिस कुएँ के पास कुल्हाड़ी से बजरंग की हत्या की गयी वह अकोड़िया गाँव से बाहर एक एकांत स्थान पर है. इस कुएँ से लगभग एक मील की दूरी पर चामुंडी देवी का मंदिर है. बताया जाता है कि इस हत्याकांड से संबद्ध प्रमुख अभियुक्त गोकलिया भील ३ मार्च को इस बहाने बजरंग को उक्त कुँए तक ले गया कि हवन के लिए बजरंग के भाई ने उसे बुलाया है. कुएँ पर पहले से ही तीन व्यक्ति बजरंग की प्रतीक्षा कर रहे थे. कहा जाता है कि कुल्हाड़ी के एक ही वार से उन में से किसी ने बजरंग को गिरा दिया और फिर तलवार से उस की गर्दन काट कर एक बोतल में ख़ून जमा किया और बजरंग की लाश को कुँए में डाल दिया गया. इस के बाद चामुंडी देवी के सम्मुख आग में ख़ून छिड़क कर हवन किया गया. हवन से निपट कर वे पास ही में तथाकथित गुप्त खजाना खोदने लगे और कुछ ही देर बाद किसी आहट से आतंकित हो कर वहाँ से चंपत हो गये. कुछ रोज बाद एक किसान ने बजरंग की लाश को कुँए में तैरते देखा. बजरंग के सिर और गले पर दो घाव थे. कहा जाता है कि अभियुक्त गोकलिया ने बजरंग के कानों से दो छल्ले निकाल कर धूनी गाँव के एक सुनार को २ रुपये में बेच दिये. पास के एक गाँव की बारात में शरीक, पेशे से बैंड मास्टर गोकलिया को बाद में पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया और उसी की मदद से अन्य अभियुक्तों—हरलाल जाट और कृष्ण चमार को भी पकड़ लिया गया. पुलिस का अनुमान है कि भील कूटनी और लाडिया को गिरफ़्तार कर लेने पर ही इस जघन्य कांड का पूरा विश्लेपण संभव हो सकेगा. अकोड़िया गाँव के एक शिक्षक नारायण चौधरी ने इस बात की पुष्टि की है कि उस स्थान पर वाकई एक साँप रहता है, जहाँ गुप्त खजाना होने की

बात कही गयी है और पुलिस की जाँच के समय भी यह साँप वहा मौजूद था. मानव-बलि से सिद्धि प्राप्त करने के अलावा इस अंधविश्वास से भी भारतीय ग्रामीण अभी तक मुक्त नहीं हो पाये हैं कि साँप गुप्त खजानों की रखवाली करते हैं.

दिल्ली

सिक्के की लाठी उस का भगवान

सिक्कों की चित-पट में जनसंघ बाज़ी मार ले गया. पिछले दिनों नगर-निगम की स्थायी समितियों के अध्यक्षों के जो चुनाव हुए उन के सभी नतीजे जनसंघ के पक्ष में गये. स्थायी समिति के अध्यक्ष केदारनाथ साहनी तीसरी बार पुनः चुन लिये गये और उपाध्यक्ष के पद पर ओ. पी. जैन को चुना गया. परिवहन इस बार फिर जनसंघ के हाथ आया और तिलक राज नरुला उस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए. पिछले साल नरुला कांग्रेसी उम्मीदवार रामलाल से हार गये थे. एक भेंट के दौरान श्री नरुला ने बताया कि लोगों को बस की हर संभव सुविधाएँ देने का मैं भरसक प्रयास करूँगा. पद सँभालने के बाद उन्होंने तुरंत एक विज्ञप्ति जारी करते हुए लोगों से अपील की कि वे दिल्ली परिवहन में सुधार और नये रूटों के बारे में अपने सुझाव दें. यह बात सही है कि पहले जब नरुला ने परिवहन का कार्यभार सँभाला था तो उस की हालत खस्ता थी. उसे सुधारने में नरुला ने काफ़ी बड़ी भूमिका अदा की. इस के साथ ही इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि पिछले अध्यक्ष राम लाल ने सभी अच्छी परंपराओं को क़ायम रखा. कुछ सटल सर्विस चालू कर उन्होंने अच्छी परंपराओं की लीक को और आगे बढ़ाया. 'जहाँ तक संभव हो सका मैं ने ईमानदारी से जनता की सेवा करने की कोशिश की,' रामलाल ने कहा. दिल्ली जल प्रदाय समिति का अध्यक्ष-पद नौजवान जनसंघी सदस्य विश्वंभरदत्त शर्मा को मिला है. **दिनमान** के प्रतिनिधि से बात करते हुए श्री शर्मा ने बताया कि पानी की समस्या को दूर करने के लिए मैं हर संभव कोशिश करूँगा. यह समस्या अधिकृत और अनधिकृत दोनों तरह की बस्तियों में समान रूप से है. उन का यह दावा है कि गंदा नाला बंद करने का जो काम चल रहा है वह अपने कार्यकाल में पूरा करेंगे. दिल्ली बिजली संभरण का अध्यक्ष पद भी जनसंघ के धरती लाल गोयल के पक्ष में गया है. उन्होंने भी बिजली की सप्लाई नियमित करने का यकीन दिलाया है. वैसे इस प्रकार के आश्वासन पहले भी दिये जाते रहे हैं.

देहाती इलाक़े से जनसंघ ने अपना कोई उम्मीदवार खड़ा नहीं किया था लिहाज़ा अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों ही पद कांग्रेस के शांति स्वरूप त्यागी और मामचंद धनिया ने सँभाल लिये. चुनाव के बाद उस समय कांग्रेस और जनसंघी सदस्यों में काफ़ी तकरार हो गयी जब कांग्रेसियों ने अध्यक्षों और खास कर स्थायी समिति के अध्यक्ष केदार नाथ साहनी को बधाई देने का शिष्टाचार नहीं निभाया.

जनसंघ प्रशासन ने दिल्ली में जिस साहित्य कला परिषद् की पिछले दिनों स्थापना की उस ने कुछ साहित्यकारों, कलाकारों, संगीतकारों आदि को सम्मानित किया. उन को सम्मान देने के लिए विट्ठलभाई पटेल भवन के मावलंकर हाल को पूरी तरह भारतीय ढंग से सजाया गया और उपर्युक्त सम्मानित कलाकारों को एक-एक हज़ार रुपये का चैक, सरस्वती की मूर्त्ति और एक-एक नारियल भेंट किया गया. सम्मानित कलाकारों में उस्ताद चाँद खाँ—संगीतकार, बनराज भगत—मूर्त्तिशिल्पी, बलवंत गार्गी—नाटककार, बी. सी. सान्याल—कला अध्यापक, एम. मुजीब—शिक्षाविद्, वियोगी हरि—लेखक तथा डॉ. हरिवंश राय बच्चन—कवि हैं.

केदारनाथ साहनी

विश्वंभर दत्त शर्मा

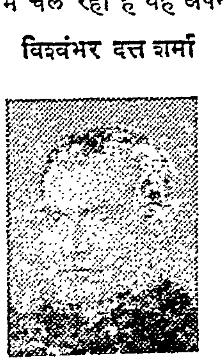

तिलक राज नरुला

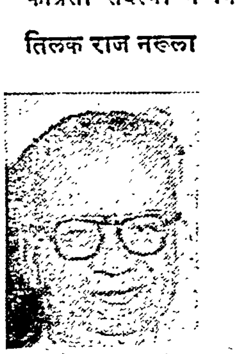

रामलाल

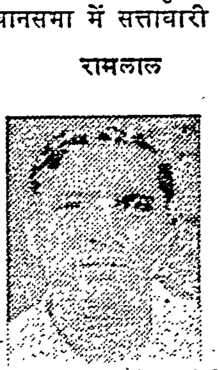

पंजाब

दल-बदलू या शरणागत

पंजाब विधानसभा के कांग्रेसी सदस्यों ने दल बदलने का दौर पुनः शुरू कर दिया है. एक के बाद एक ३ सदस्य इस समय तक अकाली पार्टी में शामिल हो चुके हैं. २४ घंटों में दो सदस्यों—अजीत सिंह और तेजा सिंह ने अकाली पार्टी में शामिल हो कर दल-बदल की सोई हुई भावना को पुनः जागृत किया. इस दल-बदल से जहाँ १०४ सदस्यीय पंजाब विधानसभा में अकाली दल की सदस्य-संख्या ४७ हो गयी है वहाँ कांग्रेस की सदस्य संख्या ३८ से घट कर ३५ रह गयी है. अपनी पार्टी के सदस्यों पर क़ाबू न रख पाने का गुस्सा कांग्रेसी सदस्यों ने विधानसभा में सत्ताधारी दल पर निकाला. प्रतिपक्ष पार्टी के नेता मेजर हरिंदरसिंह ने सत्तारूढ़ दल पर आरोप लगाते हुए कहा कि उस ने दल-बदल की शुरूआत कर राजनैतिक और नैतिक संहिता की क़ब्र खोदनी शुरू कर दी है. अगर इस तरह राजनैतिक भ्रष्टाचार को सहारा दिया जाता रहा तो राज्य दल-बदल ही राजनीति का केंद्र-बिंदु हो जायेगा. मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह ने प्रतिपक्ष के नेताओं के इस आरोप का खंडन करते हुए साफ़ शब्दों में कहा कि दल में आने वाले सभी लोगों को उन्होंने किसी प्रकार का कोई लालच नहीं दिया है और यह कह दिया है कि उन्हें मंत्रिपद नहीं दिया जायेगा और अब जब कोई शरण में आ ही जाये तो उसे धक्का देना इंसानी तौर पर हतक समझा जायेगा. दरअस्ल बात यों है कि कांग्रेस सदस्य कांग्रेस पार्टी में अपना भविष्य असुरक्षित और अंधकारमय पा रहे हैं. इस का कारण यह है कि कांग्रेस में इस समय कोई नामी-गरामी नेता नहीं रह गया है.

मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह और उन के जनसंघी सहयोगियों ने विधानसभा के सदस्यों की सद्भावना अर्जित करने में कोई कसर नहीं उठा रखी है. वित्तमंत्री कृष्ण लाल ने दिल्ली में **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि किसी भी मामले में अकाली दल और जनसंघ में मतभेद नहीं है. भाषा के सवाल पर जो बहुत ही मामूली-सी भेद की दरार है, वह आपसी बातचीत से कुछ ही दिनों में पट जायेगी. विधान परिषद् को समाप्त करने का ज़िक्र करते हुए उन्होंने बताया कि २० कांग्रेसी सदस्यों ने भी इस सुझाव का समर्थन किया है.

किसानों को अधिक सुविधाएँ देने की बात भी चली और कुछ दिन पहले मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह ने प्रतिनिधि को बताया था कि उपभोग्य वस्तुओं के दाम बढ़ाने का प्रभाव किसानों पर भी पड़ता है लिहाज़ा गेहूँ की क़ीमत पिछले साल की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए. पिछले दिनों जब अन्नमंत्री जगजीवन राम ने गेहूँ के उत्तरी क्षेत्र के (उत्तरी क्षेत्र में पहले जम्मू तथा कश्मीर, पंजाब, चंडीगढ़, हरयाणा, हिमाचल और दिल्ली प्रदेश थे. अब इस में पश्चिम बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और राजस्थान को भी शामिल कर लिया गया है.) विस्तार की लोकसभा में घोषणा की तो इस का सब से पहले विरोध करने वाले पंजाब के मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह ही थे. उन्होंने कहा कि इस से बड़े किसानों और धनी लोगों को अधिक फ़ायदा होगा, आम किसान को नहीं. पिछले साल बढ़िया क़िस्म का गेहूँ ८१ रुपये क्विंटल खरीदा गया था जब कि इस वर्ष ७६ रुपये से आगे नहीं बढ़ सका. इस भाव से किसान का उत्पादन खर्च भी नहीं निकलता. मुख्यमंत्री गुरनाम सिंह इस विषय में केंद्रीय नेताओं से बातचीत कर उन का स्पष्टीकरण पाने की कोशिश में भी हैं.

कश्मीर

एक नये तेलंगाना का आरंभ

जनसंघ संसद-सदस्य **मनोहरलाल सोंधी** ने लोकसभा में लद्दाख की परिस्थितियों पर ध्यान आकर्षित करते हुए यह आरोप लगाया है कि प्रदेश और केंद्रीय सरकार उस क्षेत्र के विकास के संबंध में उचित ध्यान नहीं दे रही हैं. लद्दाख से निर्वाचित संसद-सदस्य कुशक बकुल ने अपने आवेशपूर्ण भाषण में इस सीमा क्षेत्र के पिछड़ेपन के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये. उन के अनुसार लद्दाख की जनता अपनी प्रदेश सरकार के प्रबंध से इतनी असंतुष्ट है कि उस का असंतोष अब क्षोभ का रूप धारण कर रहा है. पिछले सप्ताह लेह में एक गंभीर घटना हुई जिस में केंद्रीय सुरक्षा पुलिस और अनेक बौद्ध लामा जख्मी हो गये. इस घटना के कई वृत्तांत दिये जा रहे हैं. केंद्रीय गृहमंत्रालय में राज्यमंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल के अनुसार यह दुर्घटना एक भाई और बहन के बीच जमीन के एक छोटे से टुकड़े को ले कर हुई. उन के अनुसार, भाई, जो कि बौद्ध था, ने अपनी मुसलमान बहन के किसी भूमि के टुकड़े पर क़ब्ज़ा कर उस पर बौद्ध धर्म की पताकाएँ गाड़ दीं, किंतु रात को किसी ने उन्हें उखाड़ फेंका. इस के विरोध में लद्दाख के बौद्धों ने एक जुलूस निकाल कर प्रदर्शन किया जिस के कारण नगर में तनाव बढ़ गया और पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ा. गृहमंत्रालय का यह वक्तव्य कहाँ तक सच है, कहा नहीं जा सकता. मगर इस बारे में कोई संदेह नहीं कि एक मामूली संपत्ति-विवाद को ले कर लद्दाख जैसे क्षेत्र में इतना धार्मिक तनाव पैदा नहीं हो सकता था. वास्तव में इस क्षेत्र के लोगों की यह शिकायत रही है कि १९४७ के बाद से ही इस क्षेत्र के विकास के प्रति प्रदेश सरकार उदासीन रही है जिस का सब से बड़ा कारण यह है कि यहाँ के लोग प्रमुख रूप से बौद्ध हैं और राजनैतिक रूप से कश्मीर की राजनीति में उन का बहुत बड़ा महत्त्व नहीं है. कुछ समय पहले कुशक बकुल, जो कि लद्दाख के सब से बड़े लामा हैं, ने यह माँग की थी कि इस क्षेत्र की ओर से भी एक कैबिनेट स्तर का मंत्री लिया जाये. गजेंद्रगडकर आयोग ने भी इस माँग के औचित्य को स्वीकार किया है. किंतु अभी तक इस सिलसिले में कोई क़दम नहीं उठाया गया. लद्दाख के निवासियों में यह भावना ज़ोर पकड़ती जा रही है कि कश्मीर के वर्तमान प्रशासन में उन्हें न्याय नहीं मिलेगा इस लिए उन्होंने लद्दाख में नेफ़ा की तर्ज़ का केंद्रीय शासन स्थापित करने की माँग की है. लद्दाख प्रतिरक्षा के लिहाज़ से अत्यंत महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है और उस की किसी भी रूप में अवहेलना करना देश के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है. संसद में विरोधी नेताओं ने कहा कि लेह में एक दूसरा 'तेलंगाना' बन रहा है. मगर वास्तविकता यह है कि लद्दाख का 'तेलंगाना' वास्तविक 'तेलंगाना' से कहीं अधिक खतरनाक सिद्ध हो सकता है.

ठेकेदारों की राजनीति : जम्मू और कश्मीर सरकार को पिछले दिनों विधानसभा में एक कठिन परिस्थित का सामना करना पड़ा जब कि वनमंत्री अय्यूब खाँ ने विधानसभा को बताया कि प्रदेश के लकड़ी के ठेकेदारों की तरफ़ सरकार का १२.१९ करोड़ रुपये बाक़ी है. जब से ग़ुलाम मुहम्मद सादिक़ ने मुख्यमंत्री-पद सँभाला, तब से यह बकाया राशि ३०० प्रतिशत बढ़ गयी है. सरकारी आँकड़ों के अनुसार १९६४ के मार्च में यह राशि ४.८० करोड़ थी. विरोधी सदस्यों ने सरकार पर आरोप लगाया कि जंगलों के ठेकेदार प्रत्यक्ष रूप से सरकारी अधिकारियों और मंत्रियों से संबंधित हैं इस लिए बक़ाया वसूली में नरमी बरती जा रही है. कहा जाता है कि वनविभाग के भूतपूर्व राज्य मंत्री ग़ुलाम रसूल कर को इन्हीं ठेकेदारों के प्रचार और प्रभाव के कारण त्याग पत्र देना पड़ा था. यह इस लिए भी रहस्यपूर्ण है कि कश्मीर सरकार केंद्र से प्राप्त ऋण ही नहीं उस के ब्याज को भी नहीं चुका पा रही है.

आंध्रप्रदेश

'ज़िंदाबाद'-'मुर्दाबाद'

लगता है हैदराबाद और सिकंदराबाद की दीवारें एक नये इतिहास का निर्माण कर रही हैं. कहीं से भी गुजरिए, आप की नज़र दीवारों पर चिपके तेलुगु, हिंदी, उर्दू और अंग्रेज़ी के बड़े-बड़े इश्तिहारों और पोस्टरों पर पड़ेगी जहाँ एक ओर यह लिखा मिलेगा 'मुख्य मंत्री ज़िंदाबाद', 'आंध्र की एकता ज़िंदाबाद' और वहाँ दूसरी ओर यह 'मुख्यमंत्री मुर्दाबाद' और 'ले के रहेंगे तेलंगाना' लिखा हुआ मिल जायेगा. जहाँ तक प्रदर्शन, हड़ताल, भूख-हड़ताल, सत्याग्रह, घरना, बंद और आगजनी की घटनाओं का सवाल है स्थिति में कोई भी सुधार नहीं हुआ, और न ही निकट भविष्य में सुधार के कोई आसार दिखायी दे रहे हैं.

४ अप्रैल के गोली कांड के बाद तेलंगाना क्षेत्र की स्थिति बहुत चिंताजनक हो गयी है. सिकंदराबाद के बाजार ७ दिन तक बंद रहे. पुलिस और प्रदर्शनकारियों की मुठभेड़ की वारदातें अब आये दिन सुनने को मिलती हैं. केंद्रीय नेता यदि तेलंगाना नेताओं और विरोधी दल के नेताओं से विचार-विमर्श करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पृथक तेलंगाना की माँग एकदम बेमानी और बेमौक़ा है, तो हैदराबाद और सिकंदराबाद में जगह-जगह हो रहे सम्मेलनों में केवल यही नाम सुनने को मिलता है कि पृथक तेलंगाना के सिवा अब इस समस्या का कोई समाधान नहीं है. कई बार तो दिनमान के संवाददाता ने लोगों को यह कहते भी सुना—'इतने लड़कों का खून बेकार नहीं जा सकता. यदि पोट्टी श्रीरामुलु की मृत्यु आंध्र प्रदेश बनवा सकती है तो हमारे यहाँ तो १६ लोग अपनी जान से हाथ धो बैठे हैं.

सचिवालय के सामने अपने आप को गिरफ़्तार करवाने का सिलसिला बदस्तूर जारी है. जनसंघ के कार्यकर्त्ता भी सचिवालय के समक्ष सत्याग्रह कर के अपने आप को गिरफ़्तार करवा रहे हैं. वे आंध्र की एकता के समर्थक है मगर पुलिस के अत्याचार से परेशान हैं. जनसंघ का मुख्य नारा यह है कि मुख्यमंत्री को तुरंत अपना त्यागपत्र दे देना चाहिए.

११ तारीख को स्थिति सामान्य रही क्यों कि उस दिन बसें बिलकुल नहीं चलीं और पुलिस भी हटा ली गयी थी लेकिन फलकनुमा स्टेशन पर खड़े मालगाड़ी के खाली डिब्बों में आग लगा दी गयी. पाँच डिब्बे बचा लिये गये लेकिन एक डिब्बा जल गया. दक्षिण एक्सप्रेस के आने के कुछ समय पहले मंचरियाल और पेदमपेट के बीच रेल की पटरी पर लोहे का स्लीपर रख दिया गया जिस से होसपाइप टूटने के कारण गाड़ी स्वत: ही रुक गयी और इस तरह एक भयंकर दुर्घटना होने से बच गयी. राज्य के शिक्षा मंत्री के घर को भी जलाने का प्रयत्न किया गया.

वार्त्ता के बाद : तेलंगाना समस्या पर हुई दिल्ली वार्त्ता में प्रधानमंत्री ने तेलंगाना क्षेत्र के जिन व्यक्तियों को बुलाया था वे सभी कांग्रेसी हैं और उन में से कुछ या तो ब्रह्मानंद रेड्डी के मंत्रिमंडल के सदस्य हैं या फिर एकदम सत्ताहीन हैं, बहरहाल हैं सब कांग्रेसी ही. प्रजासमिति, जिस में भी ज्यादातर सत्ताहीन कांग्रेसियों का बोलबाला है, और छात्र और छात्र नेताओं का एक भी प्रतिनिधि इस वार्त्ता में आमंत्रित नहीं किया गया.

दिल्ली वार्त्ता के बाद इस समस्या के समाधान के लिए जो एक रूपरेखा सी तैयार की गयी उस से यहाँ की जनता को कोई विशेष राहत नहीं मिली. प्रजा समिति ने कहा कि पृथक तेलंगाना के अलावा समस्या के हल का दूसरा कोई रास्ता नहीं है. लक्ष्मण राव ने कहा कि ऐसा कोई भी प्रस्ताव जो जनता को संतुष्ट कर सके, तेलंगाना समस्या का सही हल होगा. उन्होंने प्रेस संवाददाताओं से कहा कि तेलंगाना क्षेत्र के किसी व्यक्ति को मुख्य मंत्री बनाने से भी समस्या हल नहीं होगी. श्री लक्ष्मण ने छात्रों से और आंदोलनकारियों से यही प्रार्थना की कि हिंसात्मक कार्यों से बचें और शांति बनाए रखें. छात्र नेता श्री मल्लिकार्जुनराव ने मुशीराबाद में छात्र नेताओं की रिहाई के लिए ११ दिन से अनशन प्रारंभ कर दिया है. इस प्रकार दिल्ली वार्त्ता से जनता और राजनीतिक क्षेत्रों में कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई है. आम राय है कि यह सब दिखावा व्यर्थ था.

राज्यों का सर्वेक्षण

उद्योग : कितना उद्यम

उद्योग और उत्तरप्रदेश में एक मूलभूत विरोध है. उद्योग के लिए श्रम, स्वेद और पूँजी की आवश्यकता होती है. उत्तरप्रदेश के शासकों और निवासियों में इन तत्त्वों के मुक़ाबले में अनेक विरोधी तत्त्वों—सुखोपभोग, आलस्य और साधनहीनता का बाहुल्य है. उद्योगों की नींव यथार्थ के धरातल पर रखी जाती है, पर उत्तरप्रदेश में कल्पना को भी औद्योगीकरण का आधार बना लिया जाता है. यही कारण है कि पिछली तीन पंचवर्षीय आयोजनों तथा उन के बाद के दो वर्षों को मिला कर गत १७ वर्षों में उत्तरप्रदेश में निजी क्षेत्र में १२५ करोड़ रुपये की पूँजी-विनियोग के २१५ औद्योगिक लाइसेंस रद्द हुए. इन लाइसेंसों में अधिकांश प्रदेश के दो परंपरागत उद्योगों—सूती कपड़ा मिलों और चीनी मिलों को इस कारण प्रदान किये गये थे कि इन उद्योगों की पिछले वर्षों की अवनति को रोक कर उन्हें फिर से समृद्धशाली बनाया जा सके. लाइसेंस लेने के बाद फिर उन्हें कार्यान्वित न कर के प्रदेश के तथाकथित उद्योगपतियों ने न केवल पुराने उद्योगों की उन्नति में व्यवधान उत्पन्न कर दिया बल्कि अन्य नयी औद्योगिक इकाइयों की स्थापना का मार्ग भी अवरुद्ध कर दिया.

पिछले १७ वर्षों में कुल मिला कर प्रदेश में २६८ करोड़ रुपये की पूँजी के ३१९ औद्योगिक लाइसेंस क्रियान्वित किये गये और २१२ करोड़ रुपये की पूँजी के १२० अन्य लाइसेंसों को क्रियान्वित किया जा रहा है. किंतु इतनी पूँजी के विनियोग के बावजूद प्रदेश के कुल औद्योगिक उत्पादन का स्तर, विशेष कर सूती कपड़ा-उद्योग तथा चीनी-उद्योग की अवनति के कारण निराशाजनक ही रहा. समस्त देश के औद्योगिक उत्पादन का स्तर १९६० में १३०.१ से बढ़ कर १९६५ में १८६.९ पहुँच गया था, किंतु उत्तरप्रदेश में १९६०-६१ के स्तर को १०० मानने पर १९६५-६६ में यह स्तर केवल १२० पहुँच सका. १६ सितंबर, १९६८ को उद्योगपतियों की गोष्ठी में राज्यपाल डॉ. रेड्डी ने स्वीकार किया था कि प्रदेश की छोटी-बड़ी १७००० औद्योगिक इकाइयों का उत्पादन १९६५ में ६०० करोड़ रुपये का था. औद्योगिक क्षेत्र में देशव्यापी मंदी का प्रभाव उत्तरप्रदेश में भी पड़ा और १९६६ तथा १९६७ में उत्पादन में कमी रही. राज्यपाल ने यह आशा व्यक्त की थी कि चौथे आयोजन के आरंभ होने से पहले उत्पादन १९६५ के स्तर तक पहुँच जायेगा. पुराने उद्योगों, विशेष कर कपड़ा और चीनी उद्योगों में उत्पन्न संकटमय स्थिति की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि इन क्षेत्रों में निरंतर शिथिलता के लक्षण दिखायी दे रहे हैं और यदि इन्हें पुनरुज्जीवित करने के लिए कोई ठोस क़दम नहीं उठाया गया तो इन को समाप्त होने से बचाना मुश्किल हो जायेगा. वस्तुस्थिति यह है कि १९६५ से ही उत्तरप्रदेश का औद्योगिक उत्पादन गिरना शुरू हो गया था. चौथे आयोजन में कुल ४४.७८ करोड़ रुपये के पूँजी-विनियोग की व्यवस्था होने के कारण यह आशा व्यर्थ हो गयी है कि उत्पादन-स्तर में वृद्धि हो सकेगी. पंजीकृत कारखाने का उत्पादन १९६५ में ४६५ करोड़ रुपये का था. तब से पंजीकृत कारखानों की संख्या बढ़ने के बावजूद उत्पादन में कमी हुई. १९६८ में यह उत्पादन ४४० करोड़ रुपये का ही रह गया. चीनी-उद्योग की शिथिलता के कारण चीनी का उत्पादन भी १९६८ में ८.२१ लाख टन रह गया, जब कि १९६५ में यह उत्पादन १४ लाख टन था. इसी प्रकार पिछले दशक में सूती उद्योग का उत्पादन २२ प्रतिशत गिर कर ३१ करोड़ मीटर के स्थान पर पिछले वर्ष २४.३ करोड़ मीटर रह गया. प्रदेश का तीन जूट मिलों में से एक दो वर्ष से बंद है. इस मिल में ढाई हज़ार मजदूर काम कर रहे थे. एक और मिल अपनी क्षमता के अनुसार काम नहीं कर रही है. एशिया में ऊनी कपड़ों की सब से बड़ी मिल लाल इमली में प्रायः वर्ष में सौ-दो सौ कंबल ही बनते हैं. इस मिल में दूसरी पुलोवर बनाने वाली छोटी इकाइयों का समावेश हुआ है. प्रदेश के प्रमुख औद्योगिक नगर कानपुर की प्रसिद्ध कूपर एलन टेनरी, जो १९६३ में १४.२० लाख जूते बनाती थी, अब वर्षों से प्रति वर्ष लाखों रुपये का घाटा उठाने के बाद नवीन केंद्रीय संस्थान फुटवेयर कॉरपोरेशन आफ़ इंडिया को बेच दी गयी है. प्रदेश की तेल मिलों की लगभग ५० प्रतिशत क्षमता भी वर्षों से बेकार पड़ी है. सामान्य से जहाँ प्रदेश के परंपरागत उद्योगों की स्थिति निराशाजनक है वहाँ उपभोग्य वस्तुएँ बनाने वाले अपेक्षाकृत छोटे और नये उद्योगों में प्रगति के लक्षण दिखायी दे रहे हैं. धातु, रसायन तथा इंजीनियरिंग उद्योग इन में प्रमुख हैं. परंपरागत उद्योगों के स्थान पर अब प्रदेश में छोटे उद्योगों का प्रसार हो रहा है और इस प्रकार एक स्वतःचालित औद्योगिक विकेंद्रीकरण की धारा फूट पड़ी है. प्रदेश के आँकड़े उपलब्ध न होने के कारण केवल कानपुर के आँकड़ों से इस की पुष्टि की जा रही है. खाद्य, पेय और तंबाकू-उद्योगों में यह औद्योगिक विकेंद्रीकरण विशेष रूप से परिलक्षित हो रहा है. कानपुर में इन उद्योगों की फ़ैक्ट्रियों की संख्या १९५१ में ३७ से बढ़ कर १९६१ में ६० हो गयी थी; फिर भी इन में काम करने वाले मजदूरों की संख्या ३८०१ से गिर कर ३२८७ रह गयी, क्यों कि इन उद्योगों में काम करने वाले कुशल मजदूरों ने फ़ैक्ट्रियों में काम करना छोड़ कर उन ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी क्षमता के अनुसार छोटी औद्योगिक इकाइयाँ स्थापित की हैं जहाँ उन्हें कच्चा माल आसानी से मिल जाता है. इस से, प्रदेश के आँकड़े उपलब्ध न होने पर भी, यह संकेत मिलता है कि इन लघु औद्योगिक इकाइयों का उत्पादन बढ़ रहा है. रसायन-उद्योग अपेक्षाकृत नया है, परंतु १३ इकाइयों और ९३७ मजदूरों की बजाय अब इस उद्योग में २७ इकाइयाँ तथा १४७१ मजदूर लगे हुए हैं. धातु के कारखानों की संख्या १९ से बढ़ कर ८० तथा मजदूरों की संख्या २३१२ से बढ़ कर ४९३६ हो गयी है. मशीनों और यातायात के उपकरणों के बनाने में विशेष प्रगति हुई है. इन औद्योगिक

नदी चली खींचने

भारत की सिंचाई-समस्या के समाधान के न जाने अभी कितने अध्याय बाक़ी हैं. पिछले दिनों प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने उत्तरप्रदेश के रायबरेली जिले की डलमऊ तहसील में 'डलमऊ पंप नहर' का उद्घाटन किया. १६४ लाख रुपये की इस डलमऊ लिफ़्ट इरीगेशन योजना के अंतर्गत १.२८ लाख एकड़ ज़मीन की सिंचाई संभव हो सकेगी. डलमऊ पंप नहर में पानी गंगा नदी से पंपों द्वारा छोड़ा जायेगा. दो मील दो फ़र्लांग लंबी और पचास फ़ुट चौड़ी पंप नहर में ४२४ घनफ़ुट पानी ग्रहण करने की क्षमता है. एक पुराने क़िले से नदी की ढलान की ओर, कुछ पानी में और कुछ जमीन पर, ६० फ़ुट लंबे बजरे पड़े हुए हैं. इन बजरों से ४५० अश्वशक्ति के इंजनों द्वारा ४० इंच के नलों से नहर में पानी चढ़ाया जायेगा. चढ़ाये जाने वाले पानी की गति ४८० घनफ़ुट प्रति सेकेंड होगी. नहर को शारदा नहर के पूर्वी भाग से मिला दिया गया है. आठ पंपों का, जिन में से प्रत्येक ६६ घनफ़ुट पानी खींचने की क्षमता रखता है, पानी खींचने वाला यह पंपिंग स्टेशन भारत का सब से बड़ा जल खींचने वाला स्टेशन है. इस सिंचाई-योजना से डलमऊ क्षेत्र की खेती को बहुत लाभ पहुँचेगा. सिंचाई के पानी के अभाव में बहुत-सी जमीन ऊसर-बंजर का रूप धारण कर रही थीं.

यह सिंचाई-प्रक्रिया उन सभी क्षेत्रों के लिए मूल्यवान हो सकती है जो नदी के किनारे तो हैं लेकिन नदी के जल से खेती का संबंध न जुड़ पाने पर 'सागर के किनारे, फिर भी प्यासा' वाली कहावत को चरितार्थ करते हैं. 'डलमऊ पंप नहर' सिर्फ़ अपने क्षेत्र की खेती के लिए ही बड़ा आश्वासन नहीं है, उन क्षेत्रों के लिए भी बड़ा आश्वासन है जहाँ यह सिंचाई-प्रक्रिया अभी शुरू नहीं हुई, लेकिन की जा सकती है.

इकाइयों की संख्या ४५ से बढ़ कर ११८ और इस काम में लगे मजदूरों की संख्या २४०६ से बढ़ कर ७००९ हो गयी है. अन्य छोटी औद्योगिक इकाइयों में, जो प्रदेश में फैल गयी हैं, फ़र्नीचर, काग़ज बोर्ड, रबड़ की वस्तुएँ, वैज्ञानिक उपकरण और प्लास्टिक की वस्तुएँ बनाने के कारखाने प्रमुख हैं. औद्योगिक ढांचे के इस नये मोड पर प्रदेश के लिए नयी औद्योगिक नीति का संयोज़न करना आवश्यक हो गया है. बड़े-बड़े परंपरागत उद्योगों में पूंजी-विनियोग की नीति को त्याग कर कुशल पर साधनहीन उद्यमकर्त्ताओं की क्षमता में विश्वास कर के उन के लिए उन साधनों को जुटाना होगा जिन के अभाव में वे बरसों से परंपरागत उद्योगों में काम कर के अपनी शक्ति और क्षमता का किसी पूंजीपति विशेष के लिए उपयोग होने देने को मजबूर होते रहे हैं. दुर्भाग्य से ऐसी नयी, सशक्त और कल्पनाशील औद्योगिक नीति के दर्शन अभी तक सरकारी क्षेत्रों में नहीं हुए हैं. प्रदेश की प्रारंभिक वृहद पर अधिकांशतः काल्पनिक ३०५० करोड़ रुपये की चौथी योजना में, जो अब केवल ९५० करोड़ रुपये की रह गयी है, योजना-करों द्वारा चीनी और सूती वस्त्र-उद्योगों का जीवनोद्धार करने के लिए लगभग ११ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गयी थी, जब कि इतने बडे पूंजी-विनियोग से प्रदेश की जनता को कोई विशेष लाभ नही हो सकता है. परंपरागत ह्रासोन्मुख उद्योगों का एकमात्र उपाय वह है, जिसे प्रदेश की सब से बडी औद्योगिक संस्था ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन ने विवश हो कर अपनाया है. उसने अपनी करोडों रुपये का चमड़ा बनाने वाली कूपर एलेन टेनरी केवल १ रुपये में केंद्रीय संस्थान को बेच दी है. पुराने मालिकों ने अपना मूल धन वसूल लिया है और अब इस उद्योग में जनता का जो रुपया लगेगा उस का लाभ जनता को ही होगा. यही मार्ग प्रदेश की बंद सूती, चीनी, तेल मिलों और अपनी क्षमता से कम काम करने वाली मिलों के लिए भी श्रेयस्कर होगा. जिन मजदूरों को बेकारी का हौवा दिखा कर व्यापार-कुशल उद्योगपति सरकारी रुपये लेना चाहते हैं उन को भी इन उद्योगों में वास्तविक साझीदार बनाया जा सकेगा, क्यों कि उन की लाखों रुपये की भविष्य-निधि, बकाया वेतन और अन्य क़ानूनी उपलब्धियां बिना भुगतान के पड़ी हैं. परंतु यह समय की विडंबना है कि जहाँ एक पूंजीपति करोड़ों रुपये के चमड़े के औद्योगिक संस्थान को १ रुपये में सरकार को बेच कर प्रसन्न है, क्यों कि वह अब अपने बाक़ी लाभप्रद उद्योगों को स्वछंद रूप से बढा सकेगा, वहाँ प्रदेश के अन्य उद्योगपति प्रदेश सरकार की विवेकहीन आर्थिक बुद्धि के कारण अपने बंद और अलाभप्रद उद्योगों में मजदूरों की बेकारी का भय दिखा कर करोड़ों रुपये के अनुदान और ऋण दिये जाने की नीति को स्वीकृत करा चुके हैं.

सूखी धरती : भूखी मानवता

पूर्व और पश्चिम का अंतर

इस समय भारत में प्रति व्यक्ति औसत राष्ट्रीय आय ४६० रु० वार्षिक है. दुनिया में इस समय ५३ वें नंबर का दरिद्र देश भारत है और भारत में जिसे भारत का हृदय कहा जाता है उस उत्तरप्रदेश की स्थिति तो नासूर के रोगी जैसी है. इस प्रदेश के प्रति व्यक्ति की औसत वार्षिक आय इस समय २५६ रुपया ही है.

गंगा-यमुना की सुरम्य घाटियों में और गिरिराज हिमालय के आँगन में आबाद उत्तरप्रदेश के लोगों की आर्थिक स्थिति इतनी चिंतनीय है कि यहाँ के नौजवान अपनी घर-गृहस्थी का आनंद छोड़ कर रुपया कमाने परदेश चले जाते हैं और दरिद्रता से सतायी गयी दुलहिनें आह भरती हैं "रेलिया न बैरी, जहजिया न बैरी, इहै पइसवा बैरी ना जवने सैंया के ले जाय इहै पइसवा बैरी ना". फिर अपने संतोष के लिए और अपने सुहाग की रक्षा के लिए यहाँ की औरतें गंगा मैया को पियरी साड़ी चढ़ा देने की मनौतियाँ करती हैं. पूर्वी उत्तरप्रदेश के ज़िलों में पैदा होने वालों की जवानी परदेश में खप जाती है और जो जवान दूसरी जगह नही जा पाता है उस को, अगर ऊँची जाति का हुआ तो पान की दुकान, होटल, या छोटे-मोटे कपडे की दुकान खोलनी पड़ती है. मगर छोटी जाति के जवानों को सोहनी, कटिया, हलवाही और गोबरहा बटोरने का काम करना पड़ता है. जो ऐसा नही कर पाता है वह शहर में रिक्शा खींचने या कोलिअरी में काम करने चला जाता है.

दैनिक आय : उत्तरप्रदेश के इन पूर्वी ज़िलों के संतप्त और अभावग्रस्त लोगों की औसत वार्षिक आय प्रति व्यक्ति १७०.८७ रुपये है, यानी ४७ पैसा दैनिक. किंतु इसी प्रदेश के मुरादाबाद, मेरठ, बुलंदशहर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा और बरेली जैसे पश्चिमी ज़िलों में लोगों की वार्षिक आय औसत प्रति व्यक्ति २८८.८८ रुपये है, यानी ८२ पैसा रोज़.

पूर्वी उत्तरप्रदेश, जिस में गोरखपुर, बस्ती, देवरिया, बलिया, गाजीपुर, आज़मगढ़ और जौनपुर जिले हैं, राष्ट्रीय आज़ादी की लड़ाई में सब से आगे रहा है. १९२२ का प्रसिद्ध चौरी चौरा कांड, १९४२ का विद्रोह तथा बलिया की उग्रता इतिहास की उल्लेखनीय घटनाएँ पूर्वी उत्तर प्रदेश में ही घटित हुई. सन् १८५७ के प्रथम विद्रोही सैनिक श्री मंडल पांडेय यहीं के थे और ब्रिगेडियर उस्मान और अब्दुल हमीद जैसे सैनिक भी इसी क्षेत्र की देन थे.

अभाव से लगाव : उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिले घाघरा, गोमती, टोंस, राप्ती, रोहिण कुआंनो, गोर्रा और आमी जैसी पुरायठ संस्कृति वाली नदियों की उर्वर घाटियों में आबाद हैं. इस इलाक़े की आबादी का घनत्व १९७२ व्यक्ति प्रति वर्गमील है, जब कि संपूर्ण उत्तरप्रदेश की आबादी का घनत्व ५०१ व्यक्ति प्रति वर्गमील है. आबादी के घनेपन के कारण इस क्षेत्र में सर्वदा अभाव ही रहता है और यहाँ के लोगों का अभाव से इतना लगाव हो गया है कि विकास की भूख ही मर चुकी है. गर्मी की रातें और दिन यहाँ के लोग शादियों के धूम-धड़ाके में, बरसात तरकूल के फलों को चूस कर, महुए की खरदर और आम की गुठलियों की रोटियाँ खा कर तथा उपवास वाले व्रतों को भूखा रह कर और सर्दी में सरसों और बथुए का साग खा कर, गन्ने का रस पी कर और मकई का भूना खा कर तथा उलाव जला कर गुदरी ओढ़ कर अपने दिन बिता देते हैं. लगभग डेढ़ करोड़ की आबादी

में ३२ लाख व्यक्ति भूमिहीन और अस्थायी पेशेवाले हैं. इस के अतिरिक्त क़रीब २५ लाख व्यक्ति एक एकड़ तक जोत वाले हैं; यानी पूर्वी उत्तरप्रदेश की ३८ प्रतिशत जनता भाग्यहीन और अभिशप्त है. इतनी बड़ी आबादी की आत्मा मर चुकी है. आबादी के इस हिस्से के सामने सम्मान और असम्मान, दासता और स्वतंत्रता का कोई मतलब नहीं. हमेशा इन के सामने भूख मुँह बाये खड़ी रहती है.

जहाँ तक इस इलाक़े की खेती का सवाल है वह बड़ा ही बेढब है. स्वस्थ एवं पढ़े-लिखे युवक गाँवों को त्याग कर नगरों में बसते जा रहे हैं और खेती करने की ज़िम्मेदारी बूढ़े बाप, बूढ़े हलवाहे और बूढ़े बैल पर आती जा रही है. जवान मज़दूर की भी मेहनत खेती में नहीं, रिक्शा खींचने में व्यय हो रही है. इस प्रकार खेती जैसा प्रधान उद्योग भी पूर्वी ज़िलों में पिछड़ा हुआ है. इसी का यह नतीजा है कि यहाँ के ४५ प्रतिशत किसानों के खेत प्रोनोट पर महाजनों के यहाँ रेहन रखे हैं तथा स्वयं सहकारी समितियों और तहसील के भी कर्ज़दार हैं. इन पूर्वी जिलों में लगभग ९० लाख एकड़ भूमि है, जिसमें ७७ लाख एकड़ भूमि खेती करने योग्य है, मगर इस समय ७१ लाख एकड़ भूमि में ही खेती की जा रही है. जितनी भूमि में इस समय खेती हो रही है उस में से लगभग ३५ लाख एकड़ भूमि बाढ़ग्रस्त और एक फ़सली है और ३६ लाख एकड़ भूमि दो फ़सली है. जो भूमि दो फ़सली है और जहाँ बाढ़ जाती है उसे उर्वरा बनाया जा सकता है. गंगा नदी आयोग ने अपने प्रतिवेदन में जलकुंडी योजनाएँ चलाने का सुझाव दिया है, किंतु सरकार ने उस पर अमल नहीं किया. अब तक ३७ लाख एकड़ भूमि में नये-पुराने सभी साधनों से सिंचाई हो पाती है. बाक़ी खेती आकाश के भरोसे है.

सरकारी व्यय : पूर्वी उत्तरप्रदेश के ज़िलों में पहली पंचसाला आयोजना में प्रति व्यक्ति १६.५० रुपया औसतन सरकार ने निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों में व्यय किया और दूसरी तथा तीसरी पंचसाला आयोजनाओं में प्रति व्यक्ति निजी और सार्वजनिक क्षेत्र में क्रमशः २९ रुपया और ५० रुपया व्यय किया गया है. इस प्रकार पिछले २०-२१ वर्षों में राज्य सरकार और केंद्र की सरकार ने प्रति व्यक्ति ९३ रु० व्यय किया, यानी साढ़े पाँच रुपया प्रति वर्ष. सरकार ने जो लापरवाही इस ओर दिखायी है उसी का यह कुफल है कि पूर्वी उत्तरप्रदेश का ऐतिहासिक शौर्य मर रहा है.

यह मानी हुई सच्चाई है कि जिस इलाक़े की भूमि में उचित सिंचाई का प्रबंध नहीं होगा वहाँ कच्चा माल नहीं तैयार हो सकता है. उद्योग-धंधों के नाम पर प्रदेश के इन ज़िलों में ४८ चीनी मिलें हैं. इन सभी मिलों में लगभग ३२ हज़ार मज़दूर लगे हुए हैं. गन्ने के किसानों से सरकार पश्चिमी ज़िले के गन्ना काश्तकारों से कम मूल्य पर गन्ना मिलों के हाथ बिकवाती है. पश्चिमी ज़िलों के गन्ना उत्पादकों और पूर्वी ज़िलों के गन्ना उत्पादकों के गन्ने के दाम में दो रुपया क्विंटल अंतर रहता है.

पटेल आयोग ने, जिस ने देवरिया, ग़ाज़ीपुर, आज़मगढ़ और जौनपुर ज़िलों का सर्वेक्षण किया, अपनी सिफ़ारिशों में कहा है कि पूर्वी उत्तरप्रदेश में उद्योग-धंधों को खोल कर इस इलाक़े की बेकारी कम करनी चाहिए. उसने यह भी कहा है कि जिन ज़िलों में गन्ना मिलें हैं उस क्षेत्र में काग़ज़ की मिलें स्थापित की जा सकती हैं और लगभग इन मिलों में ५०-६० हज़ार लोगों को नौकरी मिल सकती है. इस के अलावा भी पटेल आयोग ने राय दी है कि जहाँ वन-क्षेत्र हैं उन भागों में नरम-नरम लकड़ी के पेड़ों को लगा कर दियासलाई के कारखाने खोले जायें. आयोग के अनुसार इस इलाक़े में कई जूट मिलें भी खुल सकती हैं और इस प्रकार के औद्योगीकरण से पूर्वी उत्तरप्रदेश की बेकारी मिट सकती है और लोगों की आय बढ़ सकती है. आयोग के अनुसार सर्वप्रथम सिंचाई की महत्त्वपूर्ण समस्या को हल करने के लिए प्रभावशाली क़दम उठाना चाहिए.

ऐतिहासिक परंपरा : गंगा और यमुना तथा रामगंगा जैसी नदियों की उर्वर घाटियों में आबाद पश्चिमी उत्तरप्रदेश अनेक पुरानी स्मृतियों को आज भी ताज़ा करता है. कृष्ण का वृंदावन आज भी पश्चिमी उत्तरप्रदेश के लिए महत्त्वपूर्ण है. भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण तीर्थ स्थान यमुना के किनारे पर ही हैं और आज भी भारतीयों के आकर्षण-केंद्र बने हुए हैं. मुरादाबाद, मेरठ, बुलंदशहर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा और बरेली उत्तरप्रदेश के सरसब्ज़ ज़िले हैं. इन ज़िलों की जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक और यहाँ के निवासी स्वस्थ, निपुण और परिश्रमी होते हैं. इतिहास की उल्लिखित महिलाएँ पांचाली और संयोगिता और शायद सावित्री इसी इलाक़े की थीं, जिन्होंने इतिहास को अपने क़दमों के पीछे चलने के लिए विवश कर दिया और इतिहास की धारा को ही उलट दिया. पश्चिमी उत्तरप्रदेश के भाग्य के साथ ही भारत का भाग्य स्थिर होता रहा है. इतिहास की यह परंपरा आज भी ज्यों की त्यों चल रही है. उत्तरप्रदेश जिसे भारत का हृदय कहा जाता है, उस के भाग्य का निर्णय पश्चिमी उत्तरप्रदेश ही करता है.

पश्चिमी उत्तरप्रदेश की, जिस में मुख्य रूप से मुरादाबाद, मेरठ, बुलंदशहर, अलीगढ़, मथुरा, आगरा और बरेली ज़िले आते हैं, आबादी का घनत्व ८५० व्यक्ति औसतन प्रति वर्गमील है. पूर्वी उत्तरप्रदेश में आबादी का यह घनत्व ११७२ व्यक्ति प्रति वर्गमील है. लगभग ८८ लाख एकड़ भूमि में १ करोड़ १० लाख लोग निवास करते हैं और ६७ लाख एकड़ भूमि में खेती करते हैं. उत्तरप्रदेश के इस इलाक़े में भूमि पर आबादी का एक ओर तो दबाव कम है दूसरी ओर खेती लायक़ ऐसी भूमि है जिस से साल भर का भोजन लोगों के पास हो जाता है. भारत के विभिन्न औद्योगिक नगरों में बहुत ही कम लोग रिक्शा खींचते हुए या कुलीगिरी करते हुए मिलते हैं. हर प्रकार से यह इलाक़ा पूर्वी उत्तरप्रदेश से संपन्न है. मुरादाबाद, मेरठ, बुलंदशहर, अलीगढ़, आगरा, बरेली और मथुरा ज़िलों में मॉनसून का पानी पूर्वी ज़िलों जितना नहीं बरसता है. इस लिए यहाँ के किसान ने कभी भी आकाश और भाग्य पर इतना भरोसा नहीं किया जितना पूर्वी ज़िलों के किसानों ने किया है. यहाँ के किसानों ने अपनी क़िस्मत को अपने हाथों से सँवारा है और सर्वदा से प्रशासकीय केंद्र होने के कारण मुग़ल राजाओं से ले कर अब तक के अधिकारियों ने यहाँ के किसानों का साथ दिया है. फलस्वरूप इन ज़िलों में सिंचाई की सभी सुविधाएँ प्रायः अन्य ज़िलों से अधिक हैं. ७२ लाख एकड़ भूमि में लगभग ५७ लाख एकड़ भूमि नये-पुराने साधनों से सींची जा रही है और जिस १५ लाख एकड़ भूमि में पानी का इंतज़ाम नहीं हो पाया है उस भूमि को भी उर्वरा बनाने के लिए चौथी पंचसाला आयोजना में सरकार ने व्यवस्था कर दी है. अब तक उत्तरप्रदेश की जितनी भी बड़ी और बृहत सिंचाई-योजनाएँ चलायी गयी हैं उन का लाभ पश्चिमी उत्तरप्रदेश को ही मिला है.

जहाँ तक बाढ़ का सवाल है नदियाँ बाँधों द्वारा काफ़ी नियंत्रित हैं और जितने क्षेत्र में बाढ़ के पानी का फ़ैलाव होता है उतने में होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है. इन ज़िलों में बहने वाली नदियों की बाढ़ से गाँवों के डूब जाने का ख़तरा नहीं है, जैसा कि पूर्वी ज़िलों में अक्सर होता है. सरकारी रिपोर्ट के अनुसार पूर्वी ज़िलों में बाढ़ से प्रति वर्ष साढ़े चार करोड़ रुपये की सिर्फ़ फ़सल नष्ट होती है और इस से लगभग दूने मूल्य की अन्य चीज़ें नष्ट हो जाती हैं. मगर पश्चिमी उत्तरप्रदेश की बाढ़ अभिशाप के रूप में नहीं वरदान के रूप में कभीकभार आ जाती है. अतएव बाढ़ के कारण भी पश्चिमी उत्तरप्रदेश की खेती को लाभ पहुँच जाता है. इस के अलावा इन ज़िलों में किसानी का काम हर जाति के स्वस्थ और पढ़े-लिखे जवान करते हैं, जब कि पूर्वी ज़िलों में ब्राह्मण और क्षत्री हल की मूठिया थामना पाप समझते हैं. पश्चिमी ज़िलों की कृषि-व्यवस्था इस समय काफ़ी सुधरी हुई है, मगर इस इलाक़े में भी ग़रीबों और दरिद्रों की तादाद कम नहीं है. बड़े-बड़े फ़ार्म वाले और छोटी से छोटी खेती वाले भी यहाँ हैं, जो अपनी आजीविका शहरों में जा कर कमा लेते हैं.

दूनी उपज : पश्चिमी ज़िलों में प्रति एकड़ अनाज की उपज पूर्वी ज़िलों से अपेक्षाकृत दूनी

है. इस का कारण पश्चिमी उत्तरप्रदेश की सिंचाई-व्यवस्था है. इस के अलावा पश्चिमी उत्तरप्रदेश की शहरी आबादी भी पूर्वी ज़िलों की आबादी से घनी है. इस का प्रधान कारण है कि पश्चिमी उत्तरप्रदेश के शहरों का औद्योगीकरण हो चुका है. आगरा की दरियाँ, फ़िरोज़ाबाद की चूड़ियाँ, मुरादाबाद के कलई के बर्तन, मथुरा की मिठाइयाँ, मेरठ की गल्ला मंडियाँ संपूर्ण उत्तरप्रदेश को अपनी संपन्नता के बल पर आकृष्ट किया करती हैं.

पश्चिमी ज़िलों के विकास में भूत-वर्त्तमान की सरकारों ने दिलचस्पी ली है. सरकारी आँकड़े इस के गवाह हैं. पूर्वी उत्तरप्रदेश की तुलना में पश्चिमी उत्तरप्रदेश में योजनागत व्यय कहीं अधिक हुआ है. पश्चिमी उत्तरप्रदेश के मुकाबले पूर्वी उत्तरप्रदेश के ज़िले काफ़ी उपेक्षणीय रहे हैं. प्रदेश के समान विकास के लिए अब यह उपेक्षावृत्ति समाप्त होनी चाहिए.

वर्त्तमान उद्योग और नयी संभावनाएँ

स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व उद्योगों के संबंध में मध्यप्रदेश बहुत पिछड़ा हुआ था. उस समय तक यहाँ वस्त्र, शक्कर और सीमेंट जैसे कुछ परंपरागत उद्योगों को छोड़ अन्य कोई औद्योगिक विकास नहीं हुआ. किंतु स्वतंत्रता के बाद स्थिति में परिवर्तन प्रारंभ हुआ और पिछले बीस वर्षों में यहाँ बहुत से महत्त्वपूर्ण बड़े उद्योग स्थापित हुए हैं. सार्वजनिक क्षेत्र में **भिलाई इस्पात कारखाना, भोपाल का हैवी इलेक्ट्रिकल्स, नेपानगर का अख़बारी काग़ज़-कारख़ाना तथा जबलपुर की प्रतिरक्षा-उत्पादन इकाइयाँ** आदि उल्लेखनीय हैं. निजी क्षेत्र में भी नागदा का रेयन कारख़ाना, अमलाई की कागज मिल, कुम्हारी (भिलाई के निकट) का फ़ॉस्फ़ेटयुक्त उर्वरक कारखाना, सतना का केबल कारखाना तथा ग्वालियर में बड़े इंजीनियरिंग कारखाने आदि अनेक उद्योग स्थापित हुए हैं. परंपरागत उद्योगों का भी बहुत विस्तार हुआ. इंदौर, भोपाल, जबलपुर, ग्वालियर और भिलाई में विभिन्न प्रकार के लघु तथा मध्यम श्रेणी के उद्योग प्रारंभ किये गये. खनिज-उत्खनन में तीव्र गति से वृद्धि हुई. इंदौर व उज्जैन के कपड़ा मिलों का भी आधुनिकीकरण हुआ है.

मध्यप्रदेश में जो उद्योग हैं वे इस प्रदेश की विशालता और यहाँ की संभावना को देखते हुए बहुत ही कम हैं. यह बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि यह प्रदेश राष्ट्र का सर्वाधिक खनिज-साधनसंपन्न राज्य है. इस प्रदेश में देश के कुल बाक्साइट भंडार का ४४ प्रतिशत, मैंगनीज अयस्क का ५० प्रतिशत, उच्च क़िस्म के लौह अयस्क का ३० प्रतिशत, कोयले का ३५ प्रतिशत तथा विभिन्न क़िस्मों के चूने के पत्थरों के विशाल भंडार हैं. मध्यप्रदेश भारत का एकमात्र हीरा-उत्पादक राज्य है, जिस के उत्पादन की वृद्धि के लिए अब आधुनिक यंत्रों का उपयोग होने लगा है.

प्रदेश में चूना-पत्थर के विशाल भंडार हैं और इन पर आधारित सीमेंट उद्योग के विकास की यहाँ बहुत गुंजाइश है. यहाँ पर अभी भी सीमेंट के कुछ कारखाने हैं, लेकिन होशंगाबाद, बिलासपुर, रायगढ़, बस्तर, सतना मंदसौर और दमोह ज़िलों में अनेक नये कारखाने खोले जा सकते हैं. चूना-पत्थर का जो भारी भंडार जबलपुर व कटनी क्षेत्र में है उस पर आधारित ३,००० टन वार्षिक क्षमता वाला एक तरल चॉक का कारखाना भी वहाँ स्थापित किया जा सकता है, जो प्रसाधन-सामग्री, काग़ज़, प्लास्टिक, रबर तथा रंग बनाने वाले उद्योगों की पूर्ति करेगा.

लौह अयस्क के बड़े भंडार बस्तर, दुर्ग, रायपुर तथा ग्वालियर ज़िलों में हैं, किंतु अभी केवल भिलाई के लिए दुर्ग के भंडार का ही उपयोग हो रहा है. बैलाडिला लौह योजना पूर्ण होने पर बस्तर के भंडारों का उपयोग होगा. इन दोनों उद्योगों से लौह के बारीक कण तथा नील चूर्ण का उत्पादन उपोत्पाद के रूप में होता जो बेकार जा रहा है. इस के उपयोग के लिए भी एक कारखाना बन सकता है.

मध्यप्रदेश में प्राप्त होने वाला मैंगनीज़ अयस्क आम तौर पर कच्चे माल के रूप में यहाँ से निर्यात किया जाता है—इस से राज्य में ही फ़ेरो मैंगनीज़ बनाने के कारखाने की स्थापना की भारी संभावनाएँ हैं. संयुक्तराष्ट्र के औद्योगिक विनियोजन सर्वेक्षण मिशन ने यहाँ २६,००० टन वार्षिक उत्पादन-क्षमता का एक कारख़ाना स्थापित करने का सुझाव दिया है. यह बालाघाट अथवा दुर्ग के निकट खोला जा सकता है. कोयला खदान-क्षेत्रों में उर्वरक-कारखाने की स्थापना की जा सकती है और यह प्रस्ताव भारत सरकार के विचाराधीन भी है.

संयुक्तराष्ट्र औद्योगिक सर्वेक्षण मिशन ने सुझाव दिया है कि लौह मिश्र धातु उद्योग के लिए उपयुक्त कोयले का उत्पादन किया जाये और इस के लिए सरगुजा ज़िले की चुर्चा कोयला-खदानों को उपयुक्त बताया है. ४२ लाख की पूँजी से इस प्रकार के कारखाने के निर्माण की दिशा में प्रयास प्रारंभ हो गये हैं.

इसी प्रकार राज्य में अनेक स्थानों पर बाक्साइट, सिलिका बालू, सज्जी, ओकर, आदि के उत्पादन पर आधारित अनेक उद्योगों के खुलने की संभावनाएँ हैं. कोरबा के अल्यूमिनियम कारखाने के अतिरिक्त अल्युमिनियम का एक और कारख़ाना यहाँ खोला जा सकता है.

इस के अलावा राज्य में बीड़ी का एक बड़ा उद्योग है. यहाँ की बीड़ी समस्त देश में जाती है. बीड़ी बनाने के लिए जो तेंदू का पत्ता काम आता है उस का राष्ट्रीयकरण हो चुका है. मध्यप्रदेश में भारत के समस्त वनों का ३२ प्रतिशत क्षेत्र है, जो मुख्यतः बस्तर, बिलासपुर, सरगुजा, शहडोल, सीधी, बालाघाट, रायपुर,

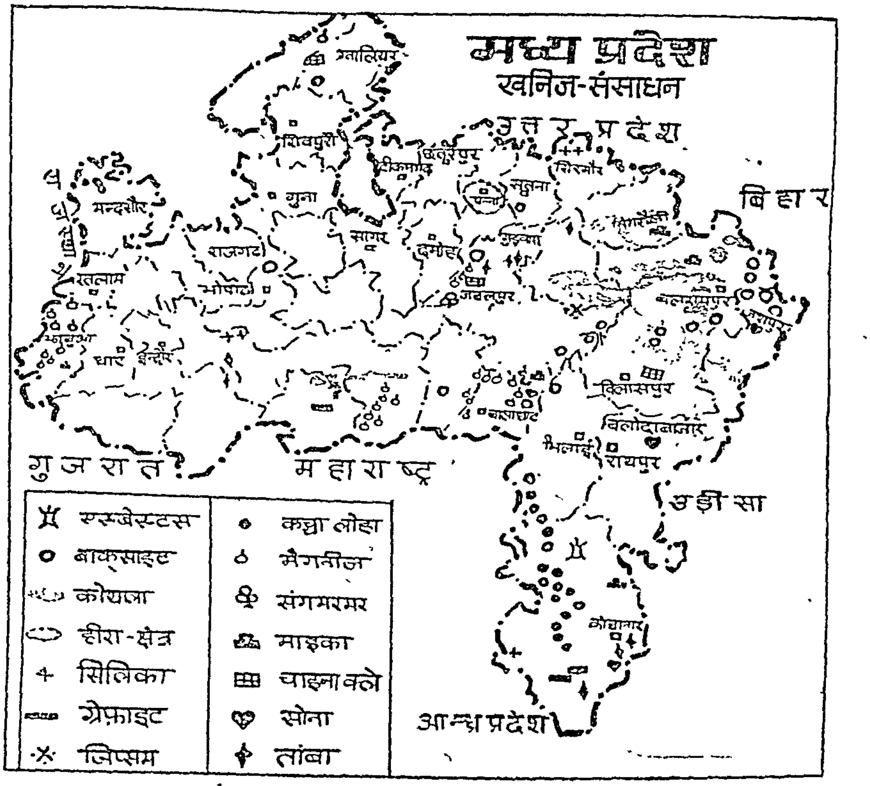

दुर्ग, मंडला और होशंगाबाद ज़िलों में है. यहाँ पर इमारती लकड़ी, बाँस, लाख, कत्था, गोंद इत्यादि बड़ी मात्रा में उपलब्ध हैं. राज्य में दो काग़ज़-कारख़ाने—नेशनल न्यूज़प्रिंट पेपर मिल्स (नेपानगर) तथा ओरियंट पेपर मिल्स (अम्लाई)—हैं, जो प्रमुख कच्ची सामग्री के रूप में बाँस का उपयोग कर रहे हैं. हाल ही में इटारसी में चिपबोर्ड तथा पार्टीकल बोर्ड तैयार करने के कारख़ाने खुले हैं. शिवपुरी में एक कारख़ाने में कत्थे के निर्माण के लिए उसी क्षेत्र में उपलब्ध खैर की लकड़ी का उपयोग किया जा रहा है. प्रमुख लघु वनोपज तेंदू पत्ते का उपयोग भारी पैमाने पर बीड़ी बनाने हेतु किया जा रहा है. राज्य में वन-साधनों का उपयोग करने वाला और कोई महत्त्वपूर्ण उद्योग नहीं है.

पूरे देश में रेशेदार कच्ची सामग्री का अभाव कुछ समय से इस चिंता का विषय बना रहा है कि काग़ज़ तथा पुट्ठा-उद्योगों की रेशेदार कच्ची सामग्री संबंधी आवश्यकता कैसे पूर्ण की जाये. मध्यप्रदेश उन भाग्यशाली राज्यों में से है जहाँ काग़ज़ तथा पुट्ठा उद्योग के विकास हेतु उपयुक्त क़िस्म की रेशेदार कच्ची सामग्री आज भी आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपलब्ध है. कुछ समय पूर्व भारत सरकार ने बड़े लुगदी-कारख़ाने प्रारंभ करने के लिए रेशेदार कच्ची सामग्री की उपलभ्यता का पता लगाने हेतु एक अध्ययन प्रारंभ किया था. इस अध्ययन में बताया गया है कि ऐसे कारख़ाने की स्थापना के लिए मध्यप्रदेश भी उपयुक्त राज्यों में से एक है. इस कारख़ाने के लिए बिलासपुर, दुर्ग क्षेत्र उपयुक्त पाये गये. राज्य के बस्तर ज़िले में एक अन्य काग़ज़ कारख़ाने की स्थापना के लिए क्षेत्र है. कड़ी लकड़ी का उपयोग करने वाला अख़बारी काग़ज़ कारख़ाना भी राज्य के बस्तर-रायपुर क्षेत्र में स्थापित किया जा सकता है. संयुक्तराष्ट्र ने रेशेदार पुट्ठा मिल के लिए बस्तर, मंडला और शहडोल ज़िलों को उपयुक्त बताया है.

मध्यप्रदेश में अच्छी क़िस्म की सागौन उपलब्ध होती है, अतः यहाँ भी सी. के. डी. फ़र्नीचर के निर्माण की मशीनीकृत इकाई की स्थापना के लिए संभावनाएँ मौजूद हैं. ये फ़र्नीचर उपभोक्ता-केंद्रों पर जोड़े जा सकते हैं. इस प्रकार की इकाइयों की स्थापना के लिए होशंगाबाद, इटारसी, दुर्ग, भिलाई, इंदौर और भोपाल उपयुक्त स्थान हो सकते हैं.

रेलवे स्लीपरों के विदेशों को निर्यात के लिए स्लीपरों के निर्माण का कार्य राज्य में पहले ही से शुरू किया जा चुका है. इन स्लीपरों की ओर आवश्यकता की पूर्ति के लिए स्लीपर निर्माण की एक अन्य इकाई की स्थापना के लिए भी यहाँ संभावना है.

कृषि-उद्योग : प्रदेश में कृषि-उत्पादन पर आधारित उद्योग भी हैं तथा और भी स्थापित किये जा सकते हैं. रायपुर, बिलासपुर क्षेत्र में

दल्ली राजोरा खान (म. प्र.) : मशीनीकरण

धान बहुतायत से होता है. चावल कूटने की अनेक मिलें यहाँ हैं. सहकारी क्षेत्र में अब चावल की ७५ मिलें स्थापित की जा रही हैं, जिन में से कुछ चालू हो चुकी हैं.

चावल की भूसी में १८-२० प्रतिशत तेल होता है, जिसे निकालने के कुछ कारख़ाने हैं, किंतु और भी स्थापित हो सकते हैं. चावल की भूसी का अभी उचित उपयोग नहीं होता. काग़ज़ तथा पुट्ठा-उद्योग के लिए यह एक उपयोगी कच्चा माल है. इसी प्रकार चावल का छिलका या तो जलाने के उपयोग में आता है या फेंक दिया जाता है. इस छिलके से औद्योगिक, रासायनिक द्रव्य बन सकते हैं.

वनस्पति तेल के उत्पादन का केवल एक कारख़ाना इंदौर में है. राज्य में अनेक तेल मिलें हैं, जिन के तेल का उपयोग कर वनस्पति के और कारख़ाने खोले जा सकते हैं.

सहायक उद्योग : हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, भोपाल में सहायक उद्योगों की उन्नीस इकाइयों में कार्य प्रारंभ हो गया है तथा लचीले लोहे की ढलवाँ वस्तुएँ, पी. वी. सी. टेप्स, कूलिंग, पंखे तथा छोटी मोटरें, एंपायर क्लॉथ और टेप, मुद्रण तथा लेखन-सामग्री उद्योग, वाल्व और कॉर्क बनाने वाले उद्योग, रंग और वार्निश, रसायन, विद्युत संबंधी सहायक वस्तुओं की इकाइयों की स्थापना का कार्य प्रारंभ हो चुका है.

भिलाई में कुछ सहायक इकाइयाँ पहले ही स्थापित हो चुकी हैं. यह अनुमान है कि कम से कम २० से २५ लघु तथा मध्यम प्रमाप उद्योगों की स्थापना के लिए यहाँ गुंजाइश है. संभवतः इन में से अधिकांश उद्योग भिलाई इस्पात कारख़ाने में कोक तापन से प्राप्त उपउत्पादनों पर आधारित होंगे, जब कि अनेक इंजीनियरिंग उद्योगों के लिए भी बहुत गुंजाइश हैं.

कोरबा में अल्मुनियम कारख़ाने की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए उस के समीप ही एक विशाल कॉस्टिक सोडा क्लोरीन इकाई की स्थापना का प्रस्ताव है. अतः इस कारख़ाने से क्लोरीन तथा भिलाई से कोक तथा तापन उपउत्पादनों की उपलभ्यता के संदर्भ में कीटनाशक दवाओं के उत्पादन पर विचार किया जा सकता है.

नया विकास : राज्य में नवीन उद्योगों की स्थापना की दृष्टि से प्रमुख विकास-केंद्र हैं : भिलाई-रायपुर क्षेत्र, बिलासपुर-कोरबा क्षेत्र, इंदौर-उज्जैन-देवास क्षेत्र तथा ग्वालियर, भोपाल, जबलपुर, कटनी, सतना, रतलाम, आदि नगर. विभिन्न उद्योगों की स्थापना के कारण ये क्षेत्र औद्योगिक विकास की सभी सुविधाएँ प्रदान करते हैं. उदाहरण के लिए भिलाई इस्पात कारख़ाने की स्थापना के कारण भिलाई-रायपुर क्षेत्र में अनेक रासायनिक तथा खनिजीय उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहन मिला है. भोपाल में हैवी इलेक्ट्रिकल्स (भारत) लिमिटेड, जबलपुर में रक्षा-उद्योग, इंदौर-उज्जैन, देवास तथा ग्वालियर में वस्त्र तथा इंजीनियरी उद्योग भी इसी प्रकार का प्रोत्साहन प्रदान करते हैं.

कारख़ानों में वृद्धि : १९६० में राज्य में पंजीकृत चालू कारख़ानों की संख्या १८५९ थी, जो १९६७ में २२८९ हो गयी. इस प्रकार सात वर्षों की अवधि में इस संख्या में प्रायः २३ प्रतिशत वृद्धि हुई.

किंतु इस सब के बावजूद प्रदेश बहुत ग़रीब है. बहुत से उद्योगों की हालत अच्छी नहीं है. सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योग तो ख़ैर घाट में

चलते ही हैं, निजी क्षेत्र के अनेक उद्योग, खास कर वस्त्रोद्योग, काफी संकट में है. इंदौर, उज्जैन, भोपाल व राजनंदगाँव की कुछ कपड़ा मिलें कभी खुलती है, कभी बंद होती हैं और नित नयी औद्योगिक अशांति को जन्म दे रही हैं. अन्य मिलों में भी भारी स्टॉक जमा हो रहा है.

सरकारी उद्योगों में आम शिकायत यह है कि यहाँ स्थानीय लोगों की उपेक्षा होती है. एक विशेष प्रांत के लोग अधिकांश उच्च स्थानों पर क़ब्जा किये बैठे हैं और वहाँ नियुक्तियों व तरक्कियों में प्रांतीयता का बोल-बाला है. आये दिन यहाँ इस कारण शांति भंग का खतरा उत्पन्न हो जाता है.

संचार-साधनों का अभाव भी यहाँ के उद्योगों के मार्ग में बहुत बड़ी बाधा है. देश के इस सब से बड़े राज्य में अनेक ज़िला, सदर मुकाम भी ऐसे है जहाँ रेल की सुविधा नहीं है. देहाती क्षेत्र का बहुत बड़ा भाग पक्की सड़कों से भी वंचित है और वर्षा में तो अनेक स्थानों का संपर्क टूट जाता है. अतः नये उद्योगों की स्थापना और वर्त्तमान उद्योगों के विकास के लिये यह आवश्यक है कि नयी सड़कें बनायी जायें और नयी रेल लाइनें डाली जायें.

राज्य सरकार, खास कर संविद सरकार, उद्योगपतियों को कागजी प्रोत्साहन तो बहुत देती रही है, लेकिन अपने आंतरिक झगड़ों के कारण उसे गंभीरतापूर्वक उद्योगों के विकास की ओर ध्यान देने का समय ही नही मिला. उद्योगों को ऋण देने के लिये यहाँ एकाधिकार शासकीय संस्थाएँ हैं, किंतु ऋण उन्ही को मिलता है जिन की पहुँच होती है. इस कारण यहाँ वर्तमान उद्योगों के विकास तथा नये उद्योगों की असीम संभावनाओं के बावजूद यहाँ पर न तो बाहरी पूँजी आ रही है और न ही स्थानीय पूँजी आकर्षित हो रही है.

उद्योगों के सामने एक समस्या श्रमिकों एवं कर्मचारियों के आवास की भी है. आम तौर पर सार्वजनिक क्षेत्र के बड़े उद्योगों ने इस के लिये बस्तियाँ बनायी हैं, किंतु फिर भी ये आवास आवश्यकता से कम ही रहते हैं. किंतु निजी क्षेत्र के उद्योगों के सामने यह समस्या काफ़ी विकट है. यह सत्य है कि राज्य का गृह-निर्माण मंडल भोपाल, इंदौर, उज्जैन, देवास, जबलपुर, सतना, रायपुर, भिलाई, राजनंदगाँव, रतलाम और ग्वालियर में औद्योगिक रिहायशी बस्तियाँ स्थापित कर चुका है और यह मंडल कारखानों को भी इस की सुविधा दे रहा है. किंतु केवल कुछ कारखानों को छोड़ कर शेष कारखाने अपने हिस्से का व्यय, जो २५ प्रतिशत होता है, उठा सकने में असमर्थ है. परिणाम यह होता है कि कारखानों में काम करने वाले लोगों को काफ़ी दूर-दूर रहना पड़ता है, जिस से उन्हें तो असुविधा होती ही है, परोक्ष रूप से कारखानों के उत्पादन पर भी प्रभाव पड़ता है.

प्रदेश में पिछले २० वर्षों में जो औद्योगिक विकास हुआ है उस के परिणामस्वरूप राज्य की बेरोजगारी में कमी होनी चाहिये थी और रहन-सहन का स्तर उठना चाहिए था, किंतु वैसा नही हुआ है. सरकारी क्षेत्र के भिलाई इस्पात, भोपाल इलेक्ट्रिकल्स आदि में हज़ारों लोगों को काम मिला है. किंतु इन का बहुत बड़ा भाग प्रदेश के बाहर से आया. उच्च अधिकारी और कुशल कारीगर तो अधिकांशतः ही बाहर से आये, अकुशल श्रमिकों का कार्य भी यहाँ के निवासियों को पर्याप्त संख्या में नही दिया गया. जितने लोगों को काम मिला भी प्रायः उतने ही लोग कारखाने के लिये भूमि छिन जाने आदि के कारण यहाँ बेकारी के शिकार भी हुए.

इसी प्रकार औद्योगिक विकास के परिणाम स्वरूप जनता का आर्थिक स्तर भी नही सुधरा; बल्कि बड़े-बड़े उद्योग स्थलों के पास महँगाई बढ़ गयी और दैनिक जीवन के लिये उपयोगी वस्तुएँ, जैसे दूध, घी, सब्ज़ी, फल आदि के भाव आसमान को छूने लगे, जिन्हें कारखाने के बड़े अधिकारी तो खरीद पाते थे, अन्य लोगों के लिए उन का अभाव हो गया. आम जनता को जहाँ पर यह कठिनाई उठानी पड़ी वहीं उसे इन उद्योग-नगरियों में स्वभावतः उत्पन्न होने वाली चारित्रिक गिरावट तथा मद्यपान के प्रसार से उत्पन्न परिस्थितियों से जूझना पड़ा. आधुनिकता की जो रंगीनी बेचारे ग्रामवासियों के जीवन में प्रविष्ट हुई उस का बहुत बड़ा मूल्य उन्हें चुकाना पड़ा.

राज्य के औद्योगिक क्षेत्र में सहकारिता-क्षेत्र भी अपनी भूमिका अदा की है, किंतु वह काग़ज़ी अधिक है. इस समय चावल, चीनी, सूत कताई मिल आदि कुछ मध्यम उद्योग इस क्षेत्र में स्थापित किये गये हैं और किये जा रहे हैं, किंतु उन की सफलता या असफलता के बारे में अभी कुछ कहना जल्दबाज़ी होगी. अब तक सहकारिता-क्षेत्र ने लघु उद्योगों के निर्माण में मुख्य भूमिका निभायी है, जिन में बुनकर सहकारी संस्थाएँ, चर्मोद्योग, रेशम-उद्योग, रंगाई, छपाई आदि हैं. किंतु आम तौर पर इन में से अधिकांश वास्तव में प्राइवेट लिमिटेड कंपनियाँ बन कर रह गयी हैं और कुछ थोड़े-से लोगों ने इन का दुरुपयोग कर अपना स्वार्थ साधन किया है.

यह एक विडंबना है कि औद्योगिक संभावनाओं से परिपूर्ण तथा अनेक महत्त्वपूर्ण उद्योगों के अस्तित्व के बावजूद यह प्रदेश राष्ट्र के औद्योगिक नक़्शे पर स्थान नही पा सका है. यहाँ की राजनैतिक अस्थिरता और प्रशासनिक कमज़ोरी इस के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी हैं. मध्यप्रदेश का आज जो स्वरूप है वह पिछले वर्षों में अनेक बार बदला है. १९४७ के पहले के देशी राज्यों को मिला कर पहले यहाँ मध्यभारत, विंध्यप्रदेश व भोपाल बने. इन में प्रतिस्पर्धा व खींचतान रही. फिर १९५६ में मध्यप्रदेश का वर्त्तमान रूप आया—इस में चार इकाइयाँ मिली, किंतु अभी भी ऐसा लगता है कि वे इकाइयाँ अलग-अलग हैं. महाकौशल, छत्तीसगढ़, मध्यभारत, विंध्य-प्रदेश व भोपाल सब अपने को अलग-अलग समझते हैं, एकता की भावना नही है. शासकीय सेवाओं में भी यही क्षेत्रीयता की भावना व्याप्त है, जिस से कि समस्त प्रदेश का हित देखने के बजाय इकाई विशेष का हित देखा जाता है और जहाँ किसी को कुछ मिलने वाला होता है तो दूसरी इकाइयाँ हल्ला मचाती हैं कि उसे वह क्यों दिया जा रहा है, हमें क्यों नही दिया जा रहा. इस कारण जितनी तेज़ी से विकास होना चाहिए हो नहीं पा रहा है.

घेराव से घेराव तक

पश्चिमी बंगाल के श्रमिक-आंदोलन ने पूरे देश की श्रमिक-स्थिति को प्रभावित किया है. देश में विकल्प सरकारों की स्थापना के बाद, अर्थात् १९६७ के आम चुनाव के बाद, श्रमिक-आंदोलन ने एक नया मोड़ लिया है, हालाँकि इस की सशक्त पृष्ठभूमि पहले ही तैयार की जा चुकी थी.

इस समय पश्चिम बंगाल की औद्योगिक समस्याओं में श्रमिक अशांति का प्रमुख स्थान है. इस समस्या के भय से विनियोजकों ने राज्य में विनियोजन बंद कर रखा है. राज्य सरकार को भी इस स्थिति का किंचित् एहसास हुआ है और उसने पहले की अपेक्षा समझदारी का परिचय दिया है.

गुरु-मंत्र : पश्चिम बंगाल में पहली संयुक्त मोर्चा सरकार बनने के बाद तत्कालीन श्रम-मंत्री श्री सुबोध बैनर्जी ने उद्योगपतियों और व्यापारियों के नाम एक परिपत्र जारी किया. इस परिपत्र में यह माँग की गयी थी कि प्रबंध में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया जाये. श्री बैनर्जी का कहना था कि अब तक प्रबंध में श्रमिकों का कोई हाथ नही रहा है और परिवर्त्तित श्रमिक-परिवेश में अगर प्रबंध में उन्हें हिस्सा दिया जाता है तो इस से श्रमिक-संबंध सुधरेंगे. श्री बैनर्जी के इस सुझाव पर उद्योगपतियों में तीव्र प्रतिक्रिया हुई. उन्होंने इस का जोरदार विरोध किया.

श्री बैनर्जी का दूसरा काम था घेराव का आविष्कार. वैसे इस के मूल आविष्कर्ता डॉ. लोहिया थे, जिन्होंने मंत्रियों का तब तक घेराव करते रहने का आह्वान किया था जब तक कि वे जनता की माँगें नही स्वीकार कर लेते. फिर भी श्रमिक-क्षेत्र में इस का प्रयोग सब से पहले श्री बैनर्जी ने किया. श्री बैनर्जी ने घेराव में पुलिस के हस्तक्षेप पर पाबंदी लगा या लगवा दी. इस के बाद पश्चिम बंगाल रात-दिन घेराव के घेरे में रहने लगा. कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा ग़ैर-क़ानूनी घोषित होने तक कुछ महीनों में लगभग तीन सौ घेराव हुए, जिन में पुलिस ने हस्तक्षेप नही किया. सत्तारूढ़ नयी संयुक्त

मोर्चा सरकार में भी औसतन डेढ़-दो घेराव प्रति दिन हो रहे हैं, लेकिन आम तौर पर हर मामले में पुलिस हस्तक्षेप कर रही है.

पिछले दिनों एक दिलचस्प घटना यह हुई कि घेराव के वकील श्री बैनर्जी, जो अब पश्चिम बंगाल सरकार में लोककर्म मंत्री हैं, अपने फंदे में आप फँसे. राइटर्स बिल्डिंग में उन के कार्यालय में ही ग्रुप लीडर्स एसोसिएशन (ठेकेदारों का संगठन, जो विस्थापितों के गृह-निर्माण का ठेका लेते रहे हैं) के ६०-७० व्यक्तियों द्वारा उन का घेराव किया गया. दिन भर वह घेराव के घेरे में घिरे रहे. उन्हें खाना तक नहीं खाने दिया गया. ठेकेदार टेंडर आमंत्रित कर नये ठेके देने के सरकारी निर्णय का विरोध कर रहे थे. अब तक बिना टेंडर आमंत्रित किये उन्हें ठेके दिये जाते रहे हैं. सुबोध बाबू बड़ी मुश्किल में पड़े और हार कर 'उद्धारसेना' को आमंत्रित किया. फिर उन के दल (समाजवादी एकता केंद्र) के पचासों नौजवान राइटर्स बिल्डिंग पहुँचे और घेराव का घेरा तोड़ा. घेरा टूटने से पहले मार-पीट हुई. दरवाज़े के शीशे चकनाचूर हो गये और कई लोगों के जिस्म से खून निकल आया.

घेराव अनैतिक नहीं : इस का मतलब यह नहीं कि श्री बैनर्जी के रुख में कोई परिवर्तन और घेराव के खतरों का उन्हें एहसास हुआ है. उन्होंने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि घेराव ग़ैर-क़ानूनी होते हुए भी अनैतिक नहीं है. यह ज़रूरी नहीं कि हर क़ानूनी चीज़ नैतिक हो. इसी तरह यह भी ज़रूरी नहीं कि हर नैतिक वस्तु के लिए क़ानूनी व्यवस्था हो. श्री सुबोध बैनर्जी यह स्वीकार करते हैं कि ट्रेड यूनियन नेताओं द्वारा अनपेक्षित रूप से घेराव का ज़रूरत से अधिक प्रयोग किया गया है, जब कि इसे तेज़ हथियार समझ कर कभी-कभी ही इस्तेमाल करना चाहिए. वह यह भी स्वीकार करते हैं कि घेराव के दौरान कुछ मामलों में बड़ी ज्यादतियाँ हुई हैं. वह घेराव के मामले में पुलिस के हस्तक्षेप को अभी तक अनुचित समझते हैं. लेकिन अपने घेराव के मामले में उन्होंने जिस सेना का उपयोग किया उसी सेना का उपयोग अगर प्रबंधक और मिल मालिक करें तो बड़ा हो-हल्ला शुरू हो जायेगा.

अशांति का एकमात्र क्षेत्र : संयुक्त मोर्चा सरकार की वापसी के तत्काल बाद उद्योगपतियों और व्यापारियों ने मुख्यमंत्री श्री अजयकुमार मुखर्जी और उपमुख्यमंत्री श्री ज्योति बसु से मुलाक़ात की और यह जानना चाहा कि उन की औद्योगिक और श्रमिक नीति क्या होगी ? इन मंत्रियों ने अपनी ओर से और सरकार की ओर से यह विश्वास दिलाया कि औद्योगिक विकास के लिए सरकारी सहयोग उपलब्ध होता रहेगा और श्रमिक शांति बनाये रखने की चेष्टा की जायेगी. श्री अजय मुखर्जी ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि हम यह चाहते हैं कि श्रमिकों के हित के लिए अभी तक जो नियम-क़ायदे बने हैं उन का ठीक से पालन हो और जितने एवॉर्ड आये हैं उन्हें लागू किया जाये. मोर्चा सरकार के मंत्रियों द्वारा दिया गया आश्वासन न्यूनाधिक ठीक निकला और राज्य में अभी तक औद्योगिक शांति बनी हुई है.

केंद्रीय सरकार के कारखानों का क्षेत्र एकमात्र ऐसा क्षेत्र है जहाँ उपद्रव होते रहे हैं और गोलियाँ चलती रही हैं. हो सकता है इस का कारण केंद्र और राज्य के संबंधों का ठीक न होना हो. यह भी हो सकता है कि अपनी बरखास्तगी के विरुद्ध मोर्चे के कुछ दल बदले की भावना से प्रेरित हों. मोर्चा सरकार के, जिसे कम्युनिस्ट सरकार कहना बेहतर होगा, क्यों कि लगभग महत्त्वपूर्ण सारे मंत्रालय उन के हाथ में हैं, सत्तारूढ़ होने के तुरंत बाद खिदिरपुर डॉक में बंदरगाह-अधिकारियों का घेराव किया गया. फिर केंद्रीय सरकार के कर-विभाग के अधिकारियों का घेराव हुआ. तीसरी घटना दुर्गापुर इस्पात कारखाने में और चौथी काशीपुर स्थित गोला-बारूद के कारखाने में हुई. बाद की दो घटनाओं में केंद्रीय सुरक्षा पुलिस या सेना के लोगों ने गोलियाँ चलायीं. दुर्गापुर में गोली से कोई मरा नहीं, जब कि काशीपुर में पाँच आदमी मरे, जिन में एक ऐसा आदमी भी शामिल है जिसे गोली नहीं लगी थी और जिस की लाश खून में डूबी हुई गुसलखाने में पायी गयी थी. ऐसा क्यों हुआ, यह अभी तक रहस्य बना हुआ है. फिर भी इतना स्पष्ट है कि इस के पीछे राजनैतिक कारण हैं. कांग्रेस संसदीय दल के नेता श्री सिद्धार्थ राय के अनुसार दुर्गापुर में बुनियादी संकट यह है कि कम्युनिस्ट नेता और कार्यकर्त्ता ग़ैर-कम्युनिस्टों पर कम्युनिस्ट होने के लिए दबाव डाल रहे हैं. वहाँ कम्युनिस्टों ने आतंक फैला रखा है और अब तक तीन बार राजनैतिक हत्याएँ हो चुकी हैं. काशीपुर में क्या हुआ, इस का पता अब केंद्र द्वारा स्थापित दास आयोग की जाँच के बाद चलेगा; फिर भी अब तक प्राप्त सूचनाओं के अनुसार अधिकारी चाहते तो गोली-चालन को बिलकुल टाल सकते थे. बंगाल सरकार में संसदीय मामलों के मंत्री श्री यतीन चक्रवर्ती ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि वहाँ गोली चलाने की बिलकुल ज़रूरत नहीं थी. कारखाने के भीतर एक भी ईंट-पत्थर देखने को नहीं मिला. भीतर कहीं कुछ भी टूटा-फूटा नहीं था. कारखाने के भीतर रोज़ काम करने वाले कर्मचारी ही थे, बाहरी लोग नहीं थे.

शांति और व्यवस्था : मुख्यमंत्री श्री मुखर्जी ने बंगाल के नववर्ष दिवस पर शांति और व्यवस्था के लिए अपील की. अपने वक्तव्य में उन्होंने राज्य में फैल रही अव्यवस्था और अशांति का उल्लेख नहीं किया, लेकिन निश्चय ही इस तथ्य की पृष्ठभूमि में ही उन्होंने शांति और व्यवस्था की अपील की. आपने विकास के लिए औद्योगिक विस्तार और शांति को आवश्यक बताया.

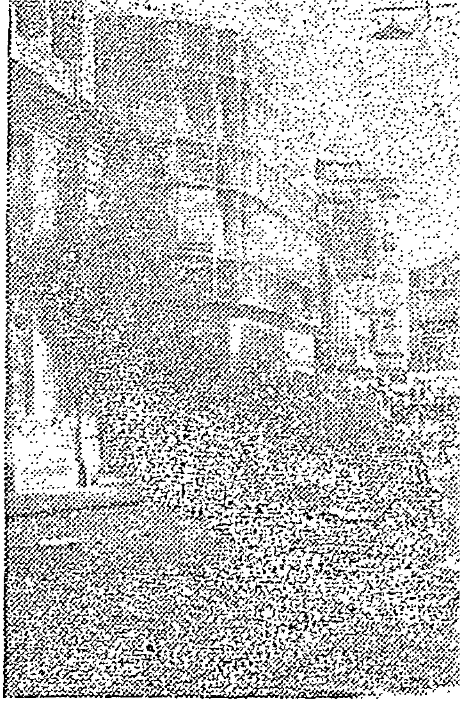

पश्चिमी बंगाल : घेराव और बंद की श्रम-नीति

श्री ज्योति बसु ने यह मानने से इंकार कर दिया कि राज्य में क़ानून और व्यवस्था की स्थिति में गिरावट आ रही है. आपने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि संयुक्त मोर्चा सरकार शांति बनाये रखने के लिए कृतसंकल्प है. जहाँ कहीं घेराव हुआ है पुलिस ने मामले में हस्तक्षेप किया है. उसने पाँच-छह जगह तो गोलियाँ तक चलायी हैं. उन के अनुसार राज्य में शांति और व्यवस्था का कोई सवाल ही नहीं है.

श्रममंत्री कृष्णपद घोष के अनुसार राज्य के लिए घेराव कोई समस्या नहीं है. उन्होंने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि संयुक्त मोर्चा सरकार के आने के बाद श्रमिक अशांति के हितों की रक्षा करने के साथ-साथ उद्योगों में शांति बनाये रखना और उत्पादन में वृद्धि के लिए स्थितियाँ उत्पन्न करना भी है.

विभिन्न औद्योगिक संगठनों के प्रतिनिधियों ने अब तक की श्रमिक स्थिति को संतोषजनक बताया, लेकिन इस बात की आशंका प्रकट की कि आगे भी ऐसी स्थिति शायद नहीं रहने पायेगी. इस लिए विनियोजक भी विनियोजन करने से हिचक रहे हैं. कुछ समय तक वे इंतज़ार कर स्थिति का जायज़ा लेना चाहते हैं.

कांग्रेस द्वारा नियंत्रित ट्रेड यूनियन इंटक ने भी इस बार बंगाल बंद का समर्थन किया है. इस से पहले वह बंद का विरोध करती रही है. ट्रेड यूनियन क्षेत्र में यह एक बुनियादी परिवर्तन है. क्या इस का मतलब यह लगाया जाये कि इंटक कांग्रेस के हाथ से निकल रही है ?

हिंदीभाषी श्रमिकों का भविष्य : बंगाल में हाल में हुए दंगों से बंगाल में रह रहे हिंदीभाषी

श्रमिकों के सामने एक प्रश्न-चिह्न लग गया है. हिंदू-मुस्लिम और बंगाली-बिहारी (बंगाली हिंदीभाषियों को बिहारी कहते हैं) दंगे हुए हैं, वे सब के सब हिंदीभाषी क्षेत्रों में हुए हैं. टीटागढ़, तेलिनीपाड़ा और कचरापाड़ा के दंगाग्रस्त क्षेत्रों में हिंदीभाषी लोग जिन में अधिकांश श्रमिक हैं, ही अधिक हैं. समझ में नहीं आता जाति, संप्रदाय और क्षेत्र के नाम पर दंगे के लिए आग किसने लगायी और इस के पीछे क्या मक़सद था ? वैसे बंगाल में बंगाली-बिहारी दंगा नया नहीं है. डॉ. विधान चंद्र राय के ज़माने में दास नगर में बड़े पैमाने पर ऐसा दंगा हुआ था और वहाँ से ग़ैर-बंगालियों का सफाया हो गया था. डॉ. राय ने इस खतरे को समझा और इस ज़हर को फैलने से रोका. इस के बाद भी समय-समय पर ये दंगे होते रहे हैं.

बंगाल इंटक के अध्यक्ष श्री काली मुखर्जी ने **दिनमान** के प्रतिनिधि को बताया कि बंगाल के कारखानों और खदानों में ७० प्रतिशत कर्मचारी ग़ैर-बंगाली अर्थात् हिंदीभाषी हैं. 'श्रमिक-आंदोलन के समय' हमें इन का पूरा-पूरा सहयोग मिलता है, लेकिन केंद्र और राज्य के बीच संघर्ष के प्रश्न पर इन का रुख बदल जाता है और इन को क़ाबू में रखना मुश्किल हो जाता है. उन्होंने कहा कि हमें सावधानी बरतनी होगी, ताकि क्षेत्रीयता का ज़हर न फैलने पाये. श्री मुखर्जी ने यह नहीं बताया कि केंद्र और राज्य के बीच तनाव बढ़ने पर बंगाली बंधुओं का हिंदीभाषी बंधुओं के प्रति कैसा रुख होता है ? लेकिन **दिनमान** का प्रतिनिधि इस का गवाह है कि उन में सहानुभूति घट जाती है.

कृषि-श्रमिक : बंगाल में कृषि-श्रमिकों की स्थिति काफ़ी दयनीय है. बंगाल की भूमि-व्यवस्था भी इस के लिए ज़िम्मेदार है. अभी तक एक-एक ज़मींदार के पास हज़ारों बीघे ज़मीन क़ानूनी या ग़ैर-क़ानूनी तौर पर पड़ी है. किसानों ने बेनामी भूमि पर जबरदस्ती कब्ज़ा करना शुरू कर दिया है. पुलिस ऐसे मामलों में दखल नहीं देती. पता चला है कि इस तरह कुछ ज़मींदारों और सामान्य किसानों की भूमि या मछियारी (फ़िशरी) पर भी कब्ज़ा किया गया है. चिंताजनक बात यह है कि ज़बरदस्ती भूमि पर और मछियारी पर कब्ज़ा करने का यह आंदोलन जनस्तर पर या सर्वदलीय नहीं है. केवल मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के लोग लाल झंडे की रहनुमाई में यह आंदोलन शुरू किये हुए हैं.

कहा जाता है कि नक्सलवादियों को राजनैतिक तौर पर पराजित करने के लिए कृषि-क्षेत्रों में पुलिस की गतिविधियों पर पाबंदी लगा दी गयी है और बेनामी भूमि पर दखल करने में कोई बाधा नहीं पहुँचाने दी जा रही है. नक्सलवादी नेता श्री कानू सान्याल जेल से मुक्त हो गये हैं. उन्होंने जंगल संथाल से जेल में मुलाक़ात की है. श्री संथाल भी शीघ्र ही छोड़ दिये जायेंगे. नक्सलवादियों ने चेयरमैन माओ त्से तुंग द्वारा बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए अपना क्रांतिकारी आंदोलन जारी रखने का निश्चय किया है.

प्रगति की पहेली

आंध्रप्रदेश मूलतः कृषि प्रधान प्रांत है. चावल और तंबाकू जैसी नक़द फ़सल के लिए यह प्रांत काफ़ी प्रसिद्ध है. अब यहाँ अर्ध सरकारी और निजी क्षेत्रों में बड़े-बड़े कारखाने केंद्रीय सरकार की वित्तीय सहायता या राज्य सरकार या फिर विदेशों की सहायता से स्थापित हुए हैं. इन उद्योगों का विस्तार राज्य व्यापी नहीं है. केवल हैदराबाद-सिकंदराबाद के चारों ओर ही ये अधिक मात्रा में स्थापित हैं. देश के उद्योगपतियों की नज़रें आंध्रप्रदेश में उद्योग-संस्थान क़ायम करने पर लगी हुई हैं, क्यों कि यह प्रांत भारत के अन्य प्रांतों की अपेक्षा शांतिप्रिय रहा है और यहाँ सरकार का स्थायित्व भी है. बंगाल, बिहार, केरल, पंजाब, मध्यप्रदेश और अन्य प्रांतों में जहाँ आये दिन सरकारें बदलती हैं और महाराष्ट्र की राजधानी बंबई में, जहाँ शिवसेना आदि के झगड़ों में निजी और सरकारी उद्योगों को करोड़ों रुपये की क्षति उठानी पड़ती है, वहाँ आंध्रप्रदेश में उद्योगपतियों का भविष्य सुरक्षित माना जा सकता है. मजदूरों की समस्या भी यहाँ नहीं के बराबर है, क्यों कि ज्यादातर यूनियनें इंटक की हैं और प्रायः शांति बनी रहती है. कम्युनिस्टों की भी कुछ यूनियनें हैं, लेकिन वे भी ज्यादा उग्र नहीं हैं. पुलिस ऐक्शन के वक़्त सरदार पटेल को जहाँ निज़ाम की सेनाओं का सामना करना पड़ा था. दूसरे मोर्चे पर वारंगल और नलगोंडा आदि ज़िलों में हथियारबंद कम्युनिस्टों से भी उन्हें दो-चार होना पड़ा था; लेकिन उस के बाद से अब तक इस प्रांत में कम्युनिस्ट अब आज्ञाकारी बालक की तरह रहे हैं. लेकिन इधर दो-तीन वर्षों से इस प्रांत में भी तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति बढ़ी है. पिछले वर्ष उपकुलपति की नियुक्ति को ले कर विश्वविद्यालय के छात्रों ने जो तोड़-फोड़ मचायी वह काफ़ी भयोत्पादक थी. इधर पृथक् तेलंगाना आंदोलन पिछले ३ महीनों से जिस गति और रूप में चल रहा है वह भी पूरे भारत में अपनी एक मिसाल है. नेतृत्व के स्तर पर एक ही प्रांत के दो क्षेत्रों के लोगों के हितों को ले कर जब मन में पक्षपात घर कर लेता है और एक को लाभ और दूसरे को हानि पहुँचायी जाती है तो स्वभावतः एक दिन विघटन शुरू हो जाता है, चाहे वह परिवार हो, समाज हो, प्रांत हो या देश हो. वह विघटन यहाँ प्रारंभ हो गया है.

कुछ बड़े उद्योगपतियों ने यहाँ नये कारखाने लगाने के लिए ज़मीनें खरीदी हैं और कलकत्ता-बंबई वालों की नज़र इधर है; पर इस बीच यह आंदोलन आड़े आ गया. अंगूर की खेती में इधर अभूतपूर्व सफलता मिली है और प्रति वर्ष लाखों टन अंगूर पैदा किया जाता है. अंगूर से शराब बनाने का एक बड़ा कारखाना यहाँ स्थापित किया जा सकता है, लेकिन लगता है कि यहाँ की सरकार में स्वतंत्र रूप से कोई काम करने की शक्ति नहीं है, क्यों कि १९४८ से पूर्व जो बड़े-बड़े सरकारी कारखाने थे वे भी निजी उद्योगपतियों को दे दिये गये. शिवपुर और राजमहंद्री के काग़ज़ के कारखाने इस का उदाहरण हैं, जो निजी क्षेत्र में जा कर काफ़ी लाभ से चल रहे हैं. इस से यह सिद्ध होता है कि इस सरकार के पास या तो योग्य लोग नहीं हैं या फिर यह जिम्मेदारी लेने से कतराती है. यहाँ कृषि से संबंधित वस्तुओं के भी कारखाने स्थापित किये जा सकते हैं. यह प्रांत भारत के समृद्ध प्रांतों में से एक है और इस की राजधानी

काठगोदाम ताप बिजलीघर और संश्लिष्ट औषधि कारखाना (आंध्र प्रदेश)

हैदराबाद भारतवर्ष का पाँचवाँ महानगर है, परंतु छापाखानों और फोटोग्राफ़ी से संबंधित उपकरणों के लिए एक भी नाम नहीं लिया जा सकता. रंगीन चित्रों और अच्छी छपाई के लिए बंबई, मद्रास और दिल्ली की ओर देखना पड़ता है.

इंडस्ट्रियल कॉरपोरेशन की ओर से कुछ लघु और बड़े उद्योग, जैसे गंगप्पा केवल्स लिमिटेड, कुमार केमिकल्स एंड फर्टीलाइज़र्स लिमिटेड, अलकाली मेटल्स लिमिटेड, आंध्र मैकेनिकल एंड इलेक्ट्रिकल इंडस्ट्रीज आदि चलाये जा रहे हैं. विदेशों की सहायता से रिपब्लिक फ़ोर्ज कंपनी, इंदोनिप्पन प्रीसिशन बीयरिंग लिमिटेड, कोयासेको, एसोसिएटेड ग्लास इंडस्ट्रीज और एस्टिक एसिड प्लांट आदि सरकार द्वारा प्रवर्तित हैं. भविष्य में इसी प्रकार के अन्य कारखाने और स्थापित करने की योजनाएँ हैं, जिन में एच. टी. एवं एल. टी. इन्स्यूलेटर्स आदि का राज्य में उपलब्ध फ़ायरक्ले, क्वार्ट्ज और अन्य खनिजों द्वारा उत्पादन किया जायेगा.

उद्योग बस्तियों का काफ़ी विस्तार किया जा रहा है. इन बस्तियों से अब तक बड़े-बड़े कारख़ाने स्थापित हो चुके हैं, जिन को बिजली, पानी, सड़क और ड्रेंस आदि की आवश्यक सुविधाएँ प्राप्त हैं. हैदराबाद और उस के आस-पास अब तक ६,००० एकड़ ज़मीन इन उद्योगों के लिए उपयोग में ली गयी है. मौला अली औद्योगिक क्षेत्र के अंतर्गत ३१६ एकड़ ज़मीन है जिस में से ५ उद्योगों को २८५ एकड़ ज़मीन दी गयी है जो कि फोर्जिंग, वेल्डिंग, एलेक्ट्रोड्स, ड्राईबैटरीज़, स्ट्रक्चरल आदि वस्तुएँ उत्पादित कर रही हैं. इन उद्योगों में ६.५९ करोड़ की पूँजी लगायी गयी है. नेकहारम इंडस्ट्रीज डेवलपमेंट क्षेत्र को ५७० एकड़ पट्टे पर और १३० एकड़ सरकारी भूमि दी गयी है. अब तक २९० एकड़ भूमि २९ उद्योगों के लिए दी जा चुकी है जो कि रेलवे सिगनलिंग, स्टार्च, कीटनाशक, रसायन, कोयले की गैस, बीयर आदि का उत्पादन कर रही हैं. इन में ७.२१ करोड़ की पूँजी लगायी गयी है और लगभग १०० एकड़ ज़मीन में यहाँ एक इंडस्ट्रियल कालोनी बनाने का विचार है. चेरलापल्ली औद्योगिक क्षेत्र में २५०० एकड़ सरकारी और २००० एकड़ निजी भूमि है जिस में से १,४०० एकड़ भूमि दो केंद्रीय उद्योगों—इलेक्ट्रानिक्स कारपोरेशन ऑफ़ इंडिया (अणुशक्ति प्रतिष्ठान) और हिंदुस्तान केवल्स (द्वितीय रेले कम्युनिकेशंस केवल्स फ़ैक्ट्री) के लिए दी जा चुकी है. इन में १० करोड़ की पूँजी लगी हुई है.

विशाखापत्तनम भी तेज़ी से औद्योगिक शहर बनता जा रहा है. २,५०० एकड़ का एक क्षेत्र औद्योगिक विकास के लिए प्राप्त किया गया है. इस में से ५०० एकड़ का क्षेत्र भारत हेवी प्लेट्स और वेसल्स को, जो केंद्रीय सरकार का है, दिया गया है. जीनिक स्मेल्टर प्लांट को ३०० एकड़ भूमि दी गयी है.

विजयवाड़ा को आंध्र की 'सांस्कृतिक राजधानी' माना जाता है. यहाँ भी २७० एकड़ भूमि प्राप्त की गयी है और जवाहर आटोनगर के अतिरिक्त बड़े उद्योगों के लिए ६० एकड़ भूमि रखी गयी है. इन के अतिरिक्त उद्योग विभाग ने ११,४९७ एकड़ भूमि केंद्रीय क्षेत्र के उद्योग, जैसे भारत हेवी इलेक्ट्रिकल्स, सिंथेटिक ड्रग्स प्रोजेक्ट, हिंदुस्तान मशीन टूल्स, हिंदुस्तान एरोनाटिक्स लिमिटेड आदि के लिए दी है. ७० लाख की लागत से सनत नगर (हैदराबाद), विजयवाड़ा, विशाखापत्तनम, समलाकोट और नंदयाल में सन् १९५७ में ५ औद्योगिक बस्तियाँ उचित किराये पर अन्य सुविधाओं के साथ बनायी गयीं और इन की सफलता से उत्साहित हो कर वरंगल, कड़प्पा और चंदूलाल बारादरी (हैदराबाद) में में ३ ऐसी और बस्तियाँ १९५९ में निर्मित की गयीं.

नये उद्योग : तृतीय पंचवर्षीय आयोजन के अंतर्गत १२ और औद्योगिक बस्तियाँ निज़ामा बाद, निर्मल, मंचरियाल, करीमनगर, कोत्तागुड़म, सूर्यपेट, महबूब नगर, विकाराबाद, पट्टमचेरू, किसान नगर, सिदलापल्ली और मौलाअली में बनायी गयीं. इन उद्योग क्षेत्रों में रेज़र ब्लेड्स, कंड्यूट पाइप, स्टील फ़र्नीचर, साइकिल, साइकिल पार्ट्स, वायर नेल्स, लेथ, सर्वे इक्विपमेंट्स प्रिसि.शन लेवल्स सहित, कार बैटरीज़, इलेक्ट्रिक मोटर्स, ग्राइंडर्स, माइक्रोफोंस, टेपरिकार्डर्स, क्रूसिबल्स, रेडियो, इंटरकम सेट्स, प्लास्टिक फोम रबर्स, एयर ब्रेक स्विचेज़ और इलैक्ट्रानिक उद्योग के लिए कल-पुर्जे आदि का उत्पादन किया जाता है. इस से पूर्व उपर्युक्त वस्तुएँ आंध्र में उत्पादित नहीं होती थीं और कुछ तो देश में पहली बार उत्पादित की जा रही हैं. १९६८ तक ३२५ लाख रुपये इन उद्योग-क्षेत्रों पर खर्च किये गये हैं. लगभग ४९४ उद्योग अब तक यहाँ प्रारंभ हो गये हैं और प्रतिवर्ष ७.०० करोड़ का माल यहाँ तैयार किया जाता है.

सन् १९६७-६८ में शक्कर के दो कारखानों ने, जो बोबीली और सीतानगरम में हैं, काफ़ी उन्नति की है और इन की उत्पादन-क्षमता ६०० से बढ़ कर ८०० टन हो गयी है. आंध्र शुगर लिमिटेड ने डिकाली सियम फॉस्फेट का उत्पादन ढाई टन प्रतिदिन प्रारंभ कर दिया है और आगे यह उत्पादन २० टन प्रतिदिन तक पहुँचाना है. हैदराबाद कांस्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड भी, जो आंध्र प्रदेश इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट कॉरपोरेशन के अंतर्गत है, प्रति वर्ष १९८० टन एसेटिक एसिड की उत्पादन-क्षमता तक पहुँच जायेगा.

जियंट कोरोमंडल फर्टीलाइजर्स, विशाखापत्तनम में भी, जो ५० करोड़ की लागत से स्थापित हुआ है, उत्पादन कार्य प्रारंभ हो गया है. इस की उत्पादन क्षमता ३,६५,००० टन अमोनियम और १६,००० टन यूरा प्रतिवर्ष है.

तुंगभद्रा इंडस्ट्रीज़ (करनूल), यूनियन कारबाइड (इंडिया) लिमिटेड (सिकंदराबाद) और गंगप्पा केवल्स लिमिटेड (उप्पल) ने भी उल्लेखनीय उत्पादन कार्य किया है. हैदराबाद में जो सरकारी उद्योग क्षेत्र हैं, उन में हिंदुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड में हर क़िस्म के प्रेसेज़ और प्रेस ब्रेक्स बनाये जाने लगे हैं.

विभिन्न लघु उद्योगों के लिए भी सरकारी सहायता दी जाती है. आंध्र में उत्पादित वस्तुओं का निर्यात भी किया जाता है जिन में से बीदरी काम और निर्मल इंडस्ट्रीज़ की कलात्मक वस्तुएँ और हैंडलूम आदि संसार के हर भाग में भेजी जाती हैं. वर्ष १९६८ में वर्ष १९६७ की तुलना में २ करोड़ का अधिक निर्यात किया गया. सरकार ने टूरिस्ट होटल आदि बनाने की योजना भी बना रखी है.

स्टेट बैंक ऑफ़ हैदराबाद ने १९६० में ८.४८ लाख के ऋण १३ औद्योगिक संस्थानों को दिये थे जब कि १९६८ तक यह संख्या १९६० हो गयी है और ७०४.६० लाख के ऋण दिये गये हैं. १९६१ से स्टेट बैंक ऑफ़ हैदराबाद मशीनी औज़ारों के कारखानों, बिजली की मशीनों, कृषि के काम के औज़ारों, रुई, कपड़े, शक्कर, खाद, कागज़, औषधियाँ, सीमेंट, एस्बसटास, रंग, वार्निश और सिगरेट आदि के कारखानों को ऋण दे रहा है.

संभावनाएँ : इंटरनेशनल ओर एंड फर्टीलाइज़र कारपोरेशन की सहायता से विशाखापत्तनम बंदरगाह पर एक खाद का कारखाना खोलने की योजना है जिस को भारत सरकार की अंतिम स्वीकृति मिल चुकी है और यह कारखाना ३ चरणों में पूरा होगा. पहला चरण लगभग १८ महीनों में पूरा होगा और लगभग ८ करोड़ रुपये की लागत आयेगी. इस में २५०,००० टन कांपेक्स खाद का उत्पादन होगा. दूसरे चरण में ६,००० टन अमोनिया और इतना ही यूरा भी प्रतिदिन उत्पादित किया जायेगा. दूसरे चरण में लगभग ३ करोड़ रुपये लागत आयेगी और तीसरे चरण में इस की उत्पादन-क्षमता लगभग ५००,००० टन वार्षिक तक पहुँच जायेगी.

राज्य के अन्य १५ ज़िलों—सिरकाकुलम, विशाखापत्तनम, वरंगल, चित्तूर, पश्चिम गोदावरी, करनूल, निज़ामाबाद, मेदक, गुंटूर, अनंतपुर, हैदराबाद, करीमनगर, आदिलाबाद, पूर्व गोदावरी और नलगोंडा आदि में लघु और बड़े उद्योगों की संभावनाओं और साधन-स्रोतों से संबंधित एक सर्वेक्षण किया गया. सरकारी वित्तीय सहायता से इन क्षेत्रों में भी भविष्य में उद्योग-संस्थान स्थापित करने की योजना है.

१९६८ के अर्जुन : उपाधियों का जंगल

पूरे महाभारत युग में एक ही अर्जुन था लेकिन आज भारतीय खेल-कूद जगत् में अर्जुनों की कमी नहीं है. उस एक अर्जुन ने पूरे महाभारत युद्ध पर विजय प्राप्त की थी और आज भारत में इतने अर्जुन होते हुए भी विजयश्री को दुनिया के दूसरे देश भगा ले जाते है और भारत के इतने सारे अर्जुन उपाधियों के इस जंगल में खामोश खड़े देखते रह जाते हैं. हर साल भारत के कुछ चोटी के खिलाड़ियों को (उन के खेल-प्रदर्शनों के आधार पर) अर्जुन पुरस्कार देने की प्रथा का शुभारंभ इस उद्देश्य से किया गया था कि इस से भारतीय खेल-कूद के स्तर में सुधार होगा, लेकिन आधुनिक अर्जुनों की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती जा रही है भारतीय खेल-कूद का स्तर त्यों-त्यों गिरता जा रहा है. भारत में अब तक कुल कितने खिलाड़ियों को अर्जुन पुरस्कार से अलंकृत किया जा चुका है यह बताना उतना ही कठिन है जितना यह कि अब तक किन-किन विशिष्ट भारतीयों को पद्मभूषण या पद्मश्री की उपाधि से अलंकृत किया जा चुका है.

१९६८ के अर्जुन पुरस्कार के लिए अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद् ने जिन सात खिलाड़ियों के नामों की घोषणा की है उन के नाम इस प्रकार हैं :

एथलेटिक : जोगिंदर सिंह (सेना) और मनजीत वालिया (पंजाब).
हॉकी : बलबीर सिंह (सेना).
क्रिकेट : ई. ए. एस. प्रसन्न (मैसूर).
बास्केट बाल : नायब सूबेदार गुरदयाल सिंह (सेना).
मुक्केबाजी : डेनिस स्वामी.
निशानेबाजी : राजकुमारी राज्यश्री (बीकानेर).

विभिन्न खेल-संगठनों द्वारा भेजे गये नामों और सिफ़ारिशों के आधार पर अखिल भारतीय खेल-परिषद् ने जिन सात खिलाड़ियों (चार सेना के, दो खिलाड़िनें और एक क्रिकेट खिलाड़ी) को चुना उन का आम तौर पर विरोध कम और समर्थन ज्यादा किया गया. यों कुछ ऐसे जटिल और नाज़ुक प्रश्नों पर दृष्टिभेद होने के कारण मतभेद बना ही रहता है.

गोला फेंकने में जोगिंदर सिंह काफ़ी शोहरत प्राप्त कर चुके हैं. १९६६ में बैंकॉक में हुए एशियाई खेलों में उन्होंने स्वर्ण पदक प्राप्त किया था. छः फुट ऊँचे इस खिलाड़ी को बैंकॉक में स्वर्ण पदक प्राप्त करने का कितना चाव था इस बात का अंदाज़ा तो इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने बैंकॉक एशियाई खेलों के दौरान अपने भयंकर रोग तक की किसी को खबर नहीं होने दी. वहाँ से स्वर्ण पदक प्राप्त करने के बाद जब वह भारत लौटे तो उन्होंने हर्निया का आपरेशन करवाया. बैंकॉक में उन्होंने १६.१३ मीटर का नया एशियाई कीर्तिमान स्थापित किया.

एथलेटिक में जिस दूसरी खिलाड़ी (खिलाड़िन) को अर्जुन पुरस्कार मिला वह हैं मनजीत वालिया. बैंकॉक में ही इस खिलाड़िन ने ८० मीटर की बाधा दौड़ में तीसरा स्थान प्राप्त कर कांस्य पदक जीता था. यों इन की इच्छा इस दौड़ में स्वर्ण पदक प्राप्त करने की थी मगर ठीक प्रतियोगिता के दिन कुछ अस्वस्थ होने के कारण उन की यह मुराद पूरी नहीं हो सकी. खैर, इस बारे में दो राय नहीं हो सकती कि वह भारत की एक होनहार खिलाड़िन हैं.

जब से मोहिंदरलाल ने हॉकी से अवकाश लिया है तब से यदि किसी हॉकी खिलाड़ी ने राइट हाफ़ बैक के दायित्व को ज़िम्मेदारी और ईमानदारी के साथ निभाया है तो वह हैं सेना के बलबीर सिंह. बलबीर सिंह को लेफ़्ट हाफ़, सेंटर हाफ़ और राइट हाफ़ कहीं पर भी खड़ा किया जा सकता है और उन के खेल पर भरोसा किया जा सकता है.

क्रिकेट के खेल में मैसूर के ई. ए. एस. प्रसन्न को भारत का सर्वश्रेष्ठ (और दुनिया के कुछ गिने-चुने आफ़ स्पिनरों में से एक) 'आफ़ स्पिनर' माना जा सकता है. पिछली बार ऑस्ट्रेलिया का दौरा करने वाली भारतीय क्रिकेट टीम में प्रसन्न का प्रदर्शन सर्वश्रेष्ठ रहा और उन्होंने चार टेस्ट मैचों में २५ विकेट लिये. यों वह ऑस्ट्रेलिया से पहले वेस्ट इंडीज़ का भी दौरा कर चुके हैं. वेस्ट इंडीज में उन का खेल प्रदर्शन आशा के अनुकूल नहीं रहा इस लिए उन्हें कई खेल-समीक्षकों की आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा मगर उस के बाद अपनी हिम्मत, साधना और अभ्यास के सहारे उन्होंने अपने खेल को इतना शानदार और ज़ोरदार बना लिया कि वह भारतीय क्रिकेट टीम के एक अभिन्न अंग बन गये. १९६५-६६ में मद्रास में दिलीप ट्राफ़ी के फ़ाइनल मैच में उन का खेल-प्रदर्शन इतना प्रभावपूर्ण रहा कि उन्हें १९६७ में इंग्लैंड और ऑस्ट्रेलिया का दौरा करने वाली भारतीय क्रिकेट टीम के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य के रूप में चुना गया. प्रसन्न काफ़ी होशियार और समझदार गेंदंदाज़ हैं और खेल के माहौल के अनुसार ही अपने खेल के लटकों-खटकों को बदलते रहते हैं.

बास्केट बाल में गुरदयाल सिंह का एक विशिष्ट स्थान है और राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में वह काफ़ी ख्याति अर्जित कर चुके हैं. ३७ वर्षीय गुरदयाल सिंह इस उम्र में भी दमखम (स्टेमिना) का काफ़ी भंडार जमा किये हुए हैं और दो बार विदेशों

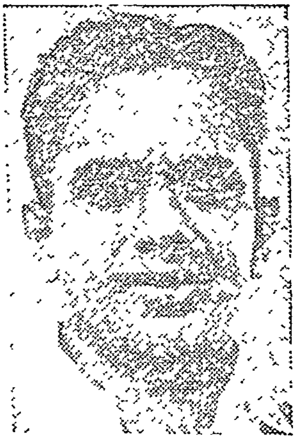

ई. ए. एस. प्रसन्न
(क्रिकेट)

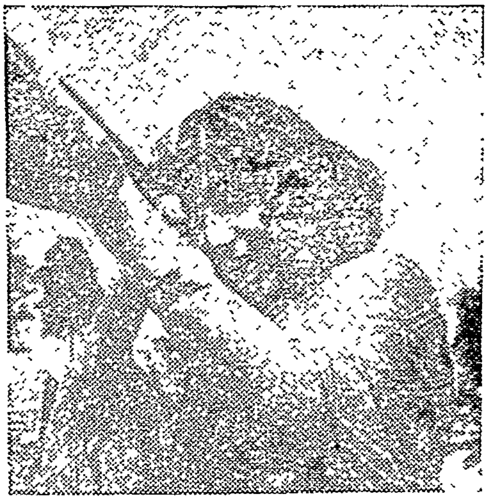

राजकुमारी राज्यश्री
(निशानेबाज़ी)

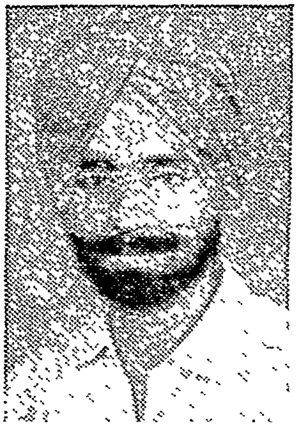

गुरदयाल सिंह
(बास्केट बाल)

मनजीत वालिया
(एथलेटिक)

का दौरा करने वाली भारतीय वास्केट वाल की टीम का नेतृत्व भी कर चुके हैं.

मुक्केबाज़ी में फेदरवेट वर्ग में डेनिस स्वामी काफ़ी नाम पैदा कर चुके हैं. राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मैचों में उन के खेल प्रदर्शनों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वह इस सम्मान के सुपात्र हैं.

१५ साल की उम्र में ही अर्जुन पुरस्कार प्राप्त कर लेना अपने आप में सचमुच एक गौरव की बात है. निशानेबाज़ी के क्षेत्र में बीकानेर के महाराजा कर्णी सिंह और उन की सुपुत्री राजकुमारी राज्यश्री ने काफ़ी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर ली है. राजकुमारी राज्यश्री खेल-कूद के क्षेत्र में जिस रफ़्तार से आगे बढ़ रही हैं उसी रफ़्तार से वह पढ़ाई-लिखाई में भी आगे बढ़ रही हैं. तोक्यो (जापान) में आयोजित एशियाई शूटिंग प्रतियोगिता में राजकुमारी राज्यश्री ने जैसा विलक्षण

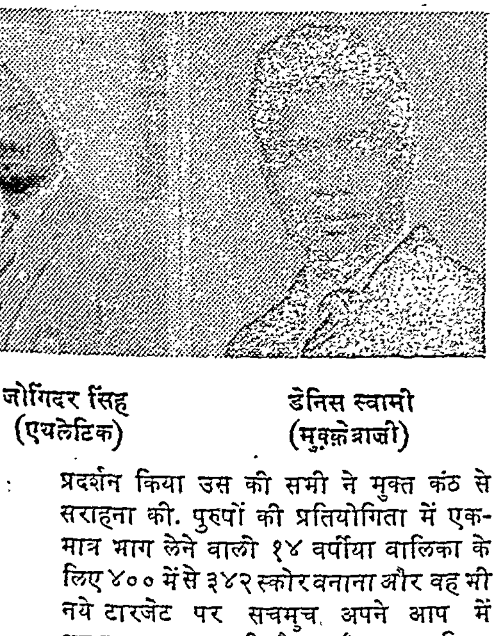

जोगिंदर सिंह (एथलेटिक) डेनिस स्वामी (मुक्केबाज़ी)

प्रदर्शन किया उस की सभी ने मुक्त कंठ से सराहना की. पुरुषों की प्रतियोगिता में एकमात्र भाग लेने वाली १४ वर्षीया बालिका के लिए ४०० में से ३४२ स्कोर बनाना और वह भी नये टारजेट पर सचमुच अपने आप में अद्भुत चमत्कार ही है. वहाँ पर उपस्थित हज़ारों दर्शक इस भारतीय बालिका के चमत्कार को देख कर दंग रह गये.

एक पत्र प्रतिनिधि ने जब उन से यह पूछा कि इतना समय होने पर भी आप दनादन गोलियाँ क्यों दागे जा रही थीं तब राजकुमारी ने उत्तर दिया था—'मुझे इस की आदत है. निशाना साधने में मुझे देर नहीं लगती. यह भी हो सकता है कि मैं कुछ उत्तेजित हो गयी हूँ. मुझे कुछ झिझक और डर भी लगा. ज़ाहिर है कि इतने सारे लोगों की निगाहें मेरी राइफ़ल से निकलने वाली गोलियों पर जम गयी थीं.'

छोटी-सी उम्र में इतना बड़ा पुरस्कार प्राप्त करने वाली इस होनहार खिलाड़िन से भारतीय नवयुवकों और नवयुवतियों को प्रेरणा लेनी चाहिए.

टेबल टेनिस

३०वीं विश्व प्रतियोगिता

जब तक यह अंक पाठकों तक पहुँचेगा तब तक म्यूनिख में हो रही टेबल टेनिस की ३०वीं विश्व प्रतियोगिता के परिणाम आ चुके होंगे. यों परिणामों से पहले परिणामों की पूर्व कल्पना या पूर्व-घोषणा करना अपने आप में काफ़ी खतरनाक काम होता है मगर जहाँ तक टेबल टेनिस का सवाल है इस में पूर्व कल्पना करने में कोई खतरा नहीं है. कारण यह कि टेबल टेनिस में अब जापान का ही बोलबाला है. जापान की जीत के बारे में किसी को कोई संदेह नहीं और मुमकिन है कि जापानी खिलाड़ी इस बार टेबल टेनिस की सभी प्रतियोगिताएँ जीत जायें.

इस बार विश्व प्रतियोगिता में ५५ देश भाग ले रहे हैं यह अपने आप में एक रिकार्ड है. जापानी खिलाड़ियों और अधिकारियों ने इस तरह की इच्छा भी व्यक्त की है कि यदि हमारे खिलाड़ी सातों प्रतियोगिताओं को जीतने में सफल हो गये तो इस से टेबल टेनिस के इतिहास का एक नया अध्याय शुरू होगा. यों १९६५ में स्टाकहोम में हुई विश्व प्रतियोगिता में जापान के खिलाड़ी केवल एक प्रतियोगिता (पुरुषों की डबल्स) को छोड़ बाकी सभी प्रतियोगिताएँ जीत गये थे. अब जापान को किसी देश से यदि थोड़ा बहुत खतरा है भी तो वह उत्तर कोरिया से है, जो पिछली बार स्वैथलिंग कप में 'रनर-अप' रहा था.

जहाँ तक भारत का सवाल है उस ने पहले दिन पेरू को ५-० से हरा दिया. भारत के फ़ाइनल या सेमि-फ़ाइनल तक पहुँचने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता. देखना यह है कि विश्व टेबल टेनिस प्रतियोगिता में भारत को कौन-सा स्थान प्राप्त होता है.

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि १९६१, १९६३ और १९६५ की विश्व प्रतियोगिताओं में चीनी खिलाड़ियों का ही बोलबाला रहा था. पिछली प्रतियोगिता में भी चीन ने भाग नहीं लिया और इस प्रतियोगिता में भी वह भाग नहीं ले रहा है. १९५७ तक तो यह प्रतियोगिताएँ हर साल हुआ करती थीं मगर उस के बाद से विश्व प्रतियोगिताओं का आयोजन हर दो साल बाद किया जाने लगा.

चीनी खिलाड़ी अब इन प्रतियोगिताओं में भाग क्यों नहीं ले रहे हैं यह अपने आप में रहस्य है. कुछ लोगों का कहना है कि चीन के कुछ चोटी के खिलाड़ी चीन की लाल क्रांति के दौरान मारे गये थे, इस लिए वह इन प्रतियोगिताओं में नये खिलाड़ियों को भेज कर रहस्योद्घाटन करना मुनासिब नहीं समझता. खैर, कारण कुछ भी रहा हो लगातार तीन-चार विश्व विजेता का पद प्राप्त करने के तुरंत बाद प्रतियोगिताओं से लगातार दो बार ग़ायब रहना अपने आप में रहस्य तो है ही.

खेल-परिषद्

खेल-कूद पत्रकारिता

"देश में खेल-कूद का स्तर ऊँचा करने और खेल-कूद को लोकप्रिय बनाने में खेल-पत्रकारिता का अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है. इस बात में रत्ती भर भी संदेह नहीं है कि खेल के मैदान में मैच देखने वालों से कई गुणा अधिक लोग दैनिक समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के खेल-कूद पृष्ठों को बड़े चाव से पढ़ते हैं." ये शब्द हैं अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद् के अध्यक्ष श्री रामकिशन मिर्धा के जो उन्होंने दिल्ली स्पोर्ट्स जर्नलिस्ट एसोसिएशन, जिस की स्थापना केवल छः महीने पहले ही की गयी थी, द्वारा आयोजित एक मिलन गोष्ठी में कहे.

रामनिवास मिर्धा : आलोचना का स्वागत

यों परिषद् के अध्यक्ष विभिन्न समाचार पत्रों के खेल-कूद-समीक्षकों और खेल प्रतिनिधियों से अक्सर मिलते रहते हैं, मगर प्रेस सम्मेलनों या परिषद् की बैठकों के मिलन और इस चाय-पान मिलन में थोड़ा अंतर था. यानी यहाँ किसी लाग-लपेट या औपचारिकता का कोई स्थान नहीं था. एसोसिएशन के अध्यक्ष फ्लोरी ने जब उन का स्वागत करते हुए यह कहा कि हम पत्रकार अपनी ओर से इस बात की पूरी कोशिश करते हैं कि खेल रिपोर्टिंग या समीक्षा करते समय जितना संभव हो आलोचना से बचें, तब इस के उत्तर में विनम्रमूर्ति श्री मिर्धा ने कहा कि आलोचना अपने आप में कोई बुरी बात नहीं है और सच तो यह है कि बिना आलोचना के भारतीय खेल-जगत् एक प्रकार से नीरस हो जायेगा. हम आलोचना का स्वागत करते हैं लेकिन आलोचना निष्पक्ष, निर्भीक, निस्वार्थ और व्यक्तिगत वैर-द्वेष से परे होनी चाहिए.

उद्योग-नीति : कमियाँ और खामियाँ

पिछले दो दशकों में भारत सरकार की औद्योगिक नीति संबंधी बहसें बहुत ज्यादा निजी क्षेत्र बनाम सार्वजनिक क्षेत्र को ले कर होती रही हैं. संपत्ति के अवांछनीय केंद्रीकरण या एकाधिकारवादी प्रवृत्तियों की बहसें अपनी जगह पर महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं, लेकिन उन्हें ही प्राथमिकता देने का परिणाम हुआ है कि असली सवालों पर बहस नहीं के बराबर होती रही है—औद्योगिक नीति के लक्ष्य क्या हैं? और इन लक्ष्यों की पूर्त्ति के साधन और उपाय क्या हैं ?

पहले सवाल का जवाब देश की आर्थिक नीतियों का संचालन करने वालों की तरफ़ से आम तौर पर बड़े बचकाने ढंग से दिया जाता रहा है. औद्योगिक नीति का लक्ष्य है आर्थिक-विकास, यानी औद्योगीकरण, यानी अमुक-अमुक वस्तुओं का उत्पादन करना, या उत्पादन बढ़ाना. औद्योगिक नीति संबंधी घोषणाएँ भी इसी के अनुरूप होती हैं. उन में केवल पूंजीगत व्यय और उत्पादन वृद्धि के आँकड़े दिये जाते हैं.

औद्योगिक नीति के लक्ष्यों के बारे में कुछ प्रारंभिक बातों को सामने रखना इस लिए ज़रूरी है कि उन की अब तक उपेक्षा की जाती रही है. एक लक्ष्य हो सकता है श्रम-शक्ति का समुचित उपयोग—जो श्रम-शक्ति बेकार है, उस को काम देना और सभी काम करने वालों की उत्पादकता को एक न्यूनतम स्तर के ऊपर ले आना. दूसरा लक्ष्य हो सकता है देश की प्राकृतिक संपदा का तर्कसंगत रीति से अधिकतम वांछनीय उपयोग. तीसरा लक्ष्य हो सकता है आर्थिक विकास के चक्र को गतिशील बनाना—बचत, पूंजी विनियोग—उत्पादन-वृद्धि—आय-वृद्धि—अधिक बचत. इन तीनों ही लक्ष्यों के साथ आधुनिक अर्थ-व्यवस्था की दो बुनियादी शर्तें जुड़ी हैं—ईंधन और विदेश व्यापार.

वैदेशिक व्यापार : अपनी बात को वैदेशिक व्यापार से शुरू करना अच्छा होगा क्यों कि भारत में औद्योगीकरण का इतिहास ब्रितानी साम्राज्यवाद के साथ जुड़ा है और अक्सर औद्योगीकरण को आर्थिक विकास का पर्याय मान लिया जाता है. ब्रितानी शासन काल में जो औद्योगीकरण हुआ, उस की विशिष्टता थी देश की अर्थ-व्यवस्था के विशाल बहुभाग में घटती हुई पूंजी, घटती हुई क्रय-शक्ति और बढ़ती हुई बेकारी. यह इस लिए भी जरूरी था कि भारत में और अन्य ब्रितानी उपनिवेशों में भी, ब्रितानी पूंजी के लिए सस्ती भारतीय श्रम : शक्ति उपलब्ध करायी जा सके. अर्थ व्यवस्था के एक छोटे-से हिस्से का पूंजीकरण हुआ, अधिकांश ब्रितानी पूंजी से, और ये उद्योग लगभग पूरी तरह निर्यात-अभिमुख थे—चाय, जूट, सूती वस्त्र. निर्यात-आयात संबंध अधिकांश यूरोप के विकसित देशों से था, वह भी अधिकांश ब्रितानिया से. अर्थात् निर्यात का लाभ भारत में लगी ब्रितानी पूंजी को था और आयात का लाभ या तो ब्रितानी पूंजी को था, या अन्य यूरोपीय पूंजी को.

पिछले दो दशकों में इस स्थिति में केवल इतना ही परिवर्त्तन हुआ है कि विदेशी पूंजी की जगह विदेशी क़र्ज़ आते रहे हैं और निर्यात व्यापार में भारतीय पूंजी का हिस्सा धीरे-धीरे कुछ बढ़ा है. लेकिन आयात-निर्यात व्यापार का ढाँचा मूलतः वही है जो ब्रितानी शासन के ज़माने में था. एक प्रतिकूल फ़र्क़ इतना ज़रूर पड़ा है कि दूसरे महायुद्ध के बाद से बराबर आयात का एक बड़ा हिस्सा अनाज के रूप में और अन्य रूपों में भी चालू खर्चों के लिए होता रहा है, पूंजी निर्माण के लिए नहीं.

दूसरी शर्त : औद्योगिक उत्पादन के लिए पर्याप्त मात्रा में और उपयुक्त ईंधन की उपलब्धि आर्थिक विकास की दूसरी बुनियादी शर्त है. ईंधन के मुख्य स्रोत हैं कोयला, पानी (पनबिजली), तेल और अब अणु-शक्ति. भारत में पहला नाभिकीय रिऐक्टर १९५६ में चालू हुआ था. तेरह साल बाद अब जा कर कहीं १९६९ में पहला आणविक बिजली घर चालू हुआ है. वह भी जाने कैसी-कैसी शर्तों पर मिले कनाडा के सहयोग के बाद. इस लिए अणु-शक्ति के विकास की संभावनाओं पर सोचना अभी केवल अटकलबाज़ी होगी. कुछ ऐसा ही हाल तेल का भी है. गुजरात में कुछ तेल की खोज हुई है, लेकिन तेल के मामले में आत्म-निर्भरता से हम अभी दूर हैं. तेल की खोज और मिल जाने पर शोध के लिए हम अभी भी लगभग पूरी तरह विदेशी सहायता-सहयोग पर निर्भर हैं. विदेशी सरकारों और तेल कंपनियों के हित भारतीय हितों के सर्वथा प्रतिकूल होने के कारण यह सहयोग आसानी से और लाभ-दायक शर्तों पर नहीं मिलता.

नदी-घाटी योजनाओं के ज़रिये पनबिजली के उत्पादन में काफ़ी वृद्धि हुई है. गो इस क्षेत्र में भी अभी बहुत संभावनाएँ हैं और कितनी ही योजनाएँ अभी अधूरी पड़ी हैं. बड़े ताप बिजली घरों या पनबिजली घरों के निर्माण के लिए भी हम विदेशी सहायता पर निर्भर हैं और इस कारण इन का अधिकतम उपयोग औद्योगिक विकास के लिए होना चाहिए था. लेकिन उपलब्ध बिजली के काफ़ी बड़े हिस्से का उपयोग रेलें चलाने के लिए किया जा रहा है, जो पहले कोयले से चलती थीं और अगर कुछ दिन आगे भी कोयले से ही चलतीं तो कोई विशेष हानि नहीं होने वाली थी.

कोयला उत्पादन देश के सब से पुराने उद्योगों में से एक है—चाय, जूट, सूती कपड़ा और चीनी उद्योगों के साथ. ये सभी उद्योग रोगी हैं और आर्थिक विकास के चक्र को गतिशील बनाने में योग देने की बजाय अर्थ-व्यवस्था के अन्य हिस्सों से साधन निकाल कर इन की सहायता करनी पड़ती है. यह उसी ब्रितानी औद्योगीकरण की विरासत है, जिस का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है. इसका एकमात्र उद्देश्य था खनिज संपदा या सस्ते कृषि उत्पादन का उपयोग कर कम से कम समय में अधिक से अधिक लाभ उठाना. जूट और कपड़ा उद्योग किसी समय दो-ढाई सौ प्रतिशत तक लाभांश देते थे, लेकिन संयंत्रों का नवीकरण न होने से और बाद में ब्रितानी पूंजी का प्रवाह रुक जाने से ये उद्योग किसी हद तक अर्थ-व्यवस्था पर बोझ बन गये हैं.

स्रोतों का निर्माण : इन परिस्थितियों में आर्थिक विकास के चक्र को गतिशील बनाने के लिए आवश्यक था कि देश की विशाल जन-संख्या की आय और क्रय-शक्ति में वृद्धि कर के अंदरूनी बाज़ार के विकास के साथ-साथ बचत के व्यापक स्रोतों का निर्माण किया जाता: (१) स्वेच्छित बचत न होने पर अप्रत्यक्ष करों का इस्तेमाल किया जा सकता था. अप्रत्यक्ष करों में निरंतर वृद्धि तो की गयी है, लेकिन लोगों की क्रय-शक्ति बढ़ाये बिना, उन की वास्तविक आय में कटौती कर के. (२) निजी उद्योग पर अंकुश लगा कर सक्षम वर्गों में बचत की मात्रा और अनुपात बढ़ाया जाता. (३) देश में उपलब्ध प्राकृतिक संपदा, ज्ञान और प्रतिभा का अधिकतम विकास और उपयोग किया जाता और आयात-निर्भरता घटायी जाती. इस के लिए आवश्यक होता कि देश-भर की समूची श्रमशक्ति की उत्पादकता बढ़ायी जाती.

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि औद्योगिक नीति को बिलकुल अलग कर के नहीं देखा जा सकता. एक ओर उस का संबंध खेती और घरेलू उद्योगों से है, तो दूसरी ओर शिक्षा और भाषा नीति से तीसरी ओर खनिज संपदा और परिवहन से और चौथी ओर उपभोग और आयात-निर्यात से. इन सभी क्षेत्रों में नीतियाँ अगर औद्योगिक नीति की सहायक नहीं हैं, तो अधिक से अधिक सदिच्छापूर्ण नीति भी हानि ही पहुँचा सकती है.

जो खेतिहर उत्पादन विदेशी मालिकों के बाग़ानों में होता है उस की समस्या है कि विदेशी मालिक नयी पूंजी लगाने से कतराते हैं, जिस के बिना इन उद्योगों का ह्रास अनिवार्य है यद्यपि इन से मालिकों को इतना मुनाफ़ा होता है कि अकेले चाय बाग़ानों के मालिक ही साल में पांच-छह करोड़ रुपये तक विदेशों को लाभांश के रूप में भेजते हैं. लेकिन जूट, चीनी और कपड़ा उद्योग तो प्रत्यक्ष खेती पर निर्भर हैं. पटसन, गन्ना और कपास की खेती में जब तक उत्पादकता नहीं बढ़ती, तब तक ये उद्योग स्वस्थ नहीं हो सकते. अन्न उत्पादन का भी इतना तो असर पड़ता है ही कि जो साधन

आर्थिक विकास में लगाये जा सकते थे, वे अन्न का आयात करने में लग जाते हैं.

परिवहन नीति : रेल और सड़क परिवहन संबंधी नीति-दोष बड़ी दूर तक आर्थिक विकास में बाधा डालता है. ब्रितानी शासन ने अपने हितों को देखते हुए रेलों और सड़कों का निर्माण किया था. वही ढांचा अब तक चला आ रहा है, और समूची औद्योगिक नीति को दूषित करता है. मिसाल के लिए, अकेले दुर्गापुर में तीन पंचवर्षीय आयोजनों के दौरान ९०० करोड़ रुपये की सरकारी पूंजी लगी, जो पूरे हिंदी क्षेत्र, उत्तरप्रदेश, बिहार, हरयाणा, राजस्थान और मध्यप्रदेश में लगी कुल औद्योगिक पूंजी से अधिक है. और अगले पाँच वर्षों में इस रक़म को बढ़ा कर १४०० करोड़ रुपये कर देने की योजना है. कारण यह बताया जाता है कि बिहार, ओडिसा और बंगाल के सीमांत क्षेत्र में खनिज संपदा बहुत है, और यहाँ परिवहन की सुविधाएँ उपलब्ध हैं.

उत्तरप्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश के सीमांत क्षेत्र में भी विशाल खनिज संपदा है, लेकिन उस का कोई उपयोग नहीं हो पाता क्यों कि इस क्षेत्र में परिवहन सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं. बजाय इस के कि जिन इलाक़ों में औद्योगिक विकास की संभावनाएँ हैं, वहाँ रेलें बिछायी जायें, उपलब्ध साधन बिजली की रेलें चलायी जाती हैं. और सड़कें भी—कम से कम अच्छी सड़कें, उन्हीं इलाक़ों में हैं जहाँ रेलें भी हैं. जहाँ रेलें नहीं, वहाँ अच्छी सड़कें भी नहीं. प्रतिरक्षा की आवश्यकताओं को छोड़ दें, तो पिछले दो दशकों में अच्छी सड़कें भी या तो शहरों में बनायी गयी हैं, या शहरों को जोड़ने के लिए अथवा पर्यटकों को ध्यान में रख कर. प्राकृतिक संपदा के उपयोग में सड़कें कितनी महत्त्वपूर्ण हो सकती हैं, इस की ओर ध्यान नहीं गया.

इंजीनियरी उद्योग : आर्थिक विकास के चक्र को गतिशील बनाने के लिए अन्य महत्वपूर्ण आवश्यकता है इस्पात और मशीन औज़ार व इंजीनियरी उद्योग. पहली योजना के पाँच साल तो यह तय करने में ही निकल गये थे कि पहला इस्पात कारखाना कहाँ खड़ा किया जाये. तीन कारखानों के बाद मामला फिर अटक गया —कोई देश चौथे कारखाने के लिए सहायता देने को तैयार न था. फलस्वरूप बाइस साल बाद भारत में इस्पात का उत्पादन १२ लाख टन से बढ़ कर ६० लाख टन पहुँचा है, जब कि चीन में इसी अवधि में १० लाख टन से बढ़ कर लगभग दो करोड़ टन हो गया है. जापान में खनिज लोहे के भंडार नहीं के बराबर हैं, लेकिन वहाँ भी २ करोड़ टन सालाना इस्पात का उत्पादन है. इंजीनियरी उद्योग की स्थिति का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि लगभग पचास हज़ार इंजीनियर इस समय देश में बेकार हैं.

किसी भी विकसित देश की तुलना में हमारे यहाँ तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था बहुत कम है. नियोजित विकास के दौर में तो इंजीनियरों की कमी होनी चाहिए थी, उन में इतनी बेकारी कैसे ? एक प्रासंगिक तथ्य यह है कि भारत में उच्च तकनीकी शिक्षा के संस्थान अलग-अलग देशों की सहायता से चलाये जाते हैं, रूस, अमेरिका और ब्रितानिया. उन की अलग शिक्षा-पद्धतियाँ हैं, और सब में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है. फलस्वरूप इन संस्थानों से निकलने वाले स्नातक आम तौर पर संबद्ध देशों के तकनीकी सहयोग से चल रहे औद्योगिक संस्थानों में ही काम कर सकते हैं. दूसरे, अंतरराष्ट्रीय पेटेंट क़ानूनों से अपने को बाँध कर, जिस में भारत को कोई लाभ नहीं है, भारत सरकार ने स्वतंत्र भारतीय तकनीकों का विकास स्वयं अवरुद्ध कर दिया है. फिर, जिस काम के लिए आवश्यक योग्यता देश में उपलब्ध है, उस के लिए भी अक्सर विदेशी तकनीकी सहायता ली जाती है, और उसी काम के लिए एक संस्थान एक देश से तकनीकी जानकारी हासिल करता है, तो दूसरा संस्थान दूसरे देश से.

किन उद्योग-धंधों का विकास बहुत आवश्यक है, और किस उद्योग में कितने साधन लगाये जायें, इस संबंध में भी अभी तक धाँधली ही चलती रही है. वही धाँधली औद्योगिक लाइसेंस और क़र्ज़ या विदेशी मुद्रा देने में भी चलती रही है. फलस्वरूप जहाँ कुछ औद्योगिक संस्थान बीस सालों में अपनी पूंजी बीस गुनी तक करने में भी सफल हुए हैं, वहीं यह भी एक तथ्य है कि आवश्यक उद्योगों के लिए पूंजी का अभाव रहता है तो नकली रेशम और वनस्पति जैसे उद्योग पनपते हैं, जाली शेयर, शेयरों का सट्टा, करों की चोरी और तस्करी जैसी अपराधी प्रवृत्तियाँ फैलती हैं.

भारत सरकार की आर्थिक नीतियों का एक परिणाम यह भी हुआ है कि प्रशासनिक फ़िज़ूल-खर्ची और भ्रष्टाचार की कोई सीमा नहीं रह गयी. सार्वजनिक क्षेत्र में जितने भी उद्योग स्थापित किये गये हैं, सब का संगठन भारत सरकार के प्रशासकीय ढाँचे के आधार पर किया गया है जिस में व्यवस्था का खर्च बहुत अधिक है, प्रबंध में अक्षमता और लालफीताशाही है, सार्वजनिक धन की बेइंतहा बरबादी है, जिस का परिणाम अंततः यह है कि लगभग सारे ही सरकारी कारखाने घाटे पर चलते हैं.

यानी संक्षेप में, अगर इंद्रदेव और डालर-रूबल देव की कृपा रही तो आधा पैसा फ़िज़ूल-खर्ची और भ्रष्टाचार में जाने के बाद, आधा ऐसे कामों में लगता है जिस से प्रशासकीय अधिकारियों का बोझ अधिक बढ़ता है, उत्पादन कम. कुछ थोड़े से लोगों को रोज़गार मिलता है, लेकिन बेकारों की संख्या बढ़ती जाती है. विशाल बहुसंख्या की उत्पादकता में कोई वृद्धि नहीं होती. बीस साल में प्रति व्यक्ति पूंजी लगभग ३०० रुपये से बढ़ लगभग ३५० रुपये हुई है (यूरोप के १०,००० और अमेरिका के १५,००० की तुलना में). अगर कहीं मौसम खराब हुआ, या डालर-रूबल के प्रवाह में बाधा पड़ी, तो अकाल, भुखमरी और विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है.

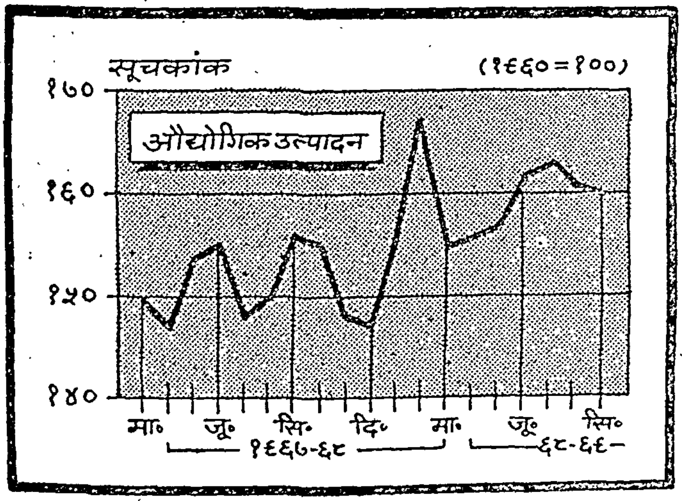

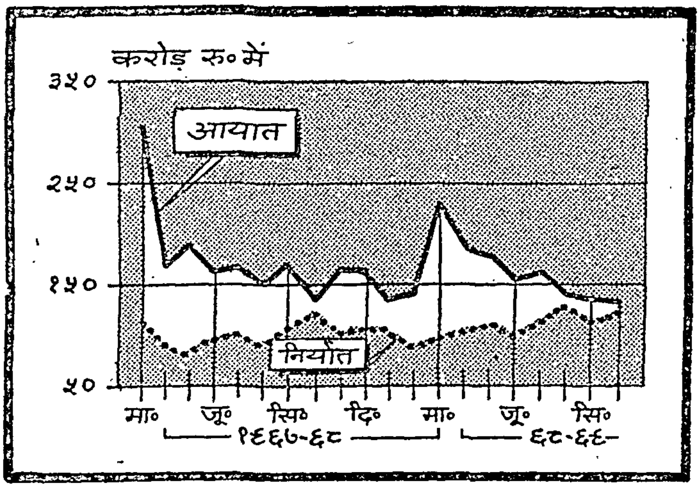

विश्व

चेकोस्लोवाकिया

पट-परिवर्तन

'सोवियत संघ के प्रति हमारा जो व्यवहार है वह उदार शक्तियों या प्रेस के क्रियाकलापों का परिणाम नहीं है बल्कि वह तो गत अगस्त में वारसाउ संधि से संबद्ध पाँच देशों द्वारा हमारे जीवन में किये गये अनुचित तथा क्रूर हस्तक्षेप का परिणाम है.' अलक्सांद्र डुबचेक के सत्ता से हटने के बाद पहली बार प्राग के स्कूल ऑफ़ इकोनॉमिक्स के छात्रों ने कम्युनिस्ट पार्टी के नये प्रथम सचिव गस्ताव हुसाक और चेकोस्लोवाक कम्युनिस्ट पार्टी की आलोचना की. उन्होंने आरोप लगाया कि श्री हुसाक ने देश को सोवियत संघ के हाथ बेच दिया है. यह आरोप कहाँ तक सच है इस का पता तो कुछ दिन बाद चलेगा. किंतु इतना स्पष्ट है कि

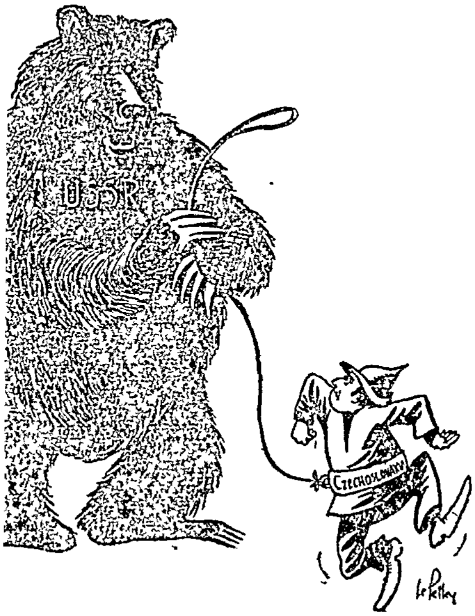

क्रिश्चन सायंस मॉनिटर में चेकोस्लोवाकिया और सोवियत संघ के संबंधों पर ल'पेली का व्यंग्य

प्रगतिशील नेताओं के स्थान पर मास्को-समर्थक लोगों की नियुक्ति कराने के अभियान में रूस को खासी सफलता मिली है. इस सफलता को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि श्री डुबचेक के १३ महीना पुराने सुधार-आंदोलन का पथ अवरुद्ध हो गया है, भले ही श्री हुसाक ने उसे चलाये रखने का आश्वासन दिया हो.

अप्रत्याशित नहीं : श्री डुबचेक का प्रथम सचिव के पद से हटना (?) और श्री स्मर्कोवस्की सहित कुछ अन्य जाने-माने प्रगतिशील नेताओं का अध्यक्ष-मंडल में सम्मिलित न किया जाना कोई अप्रत्याशित घटना नहीं है. श्री डुबचेक के सुधारवादी कार्यक्रम को समाजवाद के लिए खतरा कह कर जब अगस्त १९६८ में रूस ने चार अन्य वारसाउ संधि देशों के साथ चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया तभी यह आभास मिल गया था कि रूस का लक्ष्य श्री डुबचेक को सत्ता से उखाड़ फेंकना है. उस समय चेक राष्ट्रपति श्री स्वोबोदा और श्री डुबचेक ने सूझबूझ से काम ले कर रूस की सैनिक कार्रवाई को बंद कराने में तो सफलता प्राप्त की थी किंतु मास्को की शर्तों को मान कर उन्होंने रूसी दबाव का मार्ग प्रशस्त कर दिया. तब से ले कर अब तक रूस ने जो चाहा, उन से करवाया हालाँकि श्री डुबचेक द्वारा सुधारवादी कार्यक्रम को आगे बढ़ाने और रूसी नेताओं द्वारा उस में हस्तक्षेप न करने की घोषणाएँ बराबर होती रहीं. यह स्थिति शायद कुछ दिन और बनी रहती, यदि गत २८ मार्च को सारे चेकोस्लोवाकिया में रूस-विरोधी उग्र प्रदर्शन न हुए होते. इन प्रदर्शनों को ले कर रूस में चेक सरकार की कटु आलोचना की गयी और रूसी नेताओं ने यह धमकी दी कि यदि उस ने रूस-विरोधी गतिविधियों पर शीघ्र ही रोक नहीं लगायी तो उस के विरुद्ध सैनिक कार्रवाई भी की जा सकती है. उसी समय यह समाचार भी मिला कि कुछ और रूसी सैनिक चेकोस्लोवाकिया में तैनात किये जा रहे हैं. श्री डुबचेक ने देश को विनाश से बचाने के लिए एक बार फिर रूस के आगे घुटने टेक दिये. रूस-विरोधी आंदोलन को कुचलने के लिए कुछ अन्य उपायों के साथ समाचारपत्रों पर फिर सेंसरशिप लागू कर दी. इस कार्रवाई से आंदोलन धीमा तो पड़ गया परंतु भीतर ही भीतर आग सुलगती रही. कुछ दिन की चुप्पी के बाद छात्रों ने सेंसरशिप समाप्त करने की माँग ले कर फिर आंदोलन छेड़ दिया. मजदूर संघों से उन्हें पूरा-पूरा समर्थन मिला. इसी बीच चेकोस्लोवाकिया की कम्युनिस्ट पार्टी के सम्मेलन का आयोजन किया गया. रूसी प्रतिरक्षामंत्री श्री ग्रेचको ने दो बार प्राग का दौरा किया. सम्मेलन से पूर्व श्री डुबचेक भी मास्को जाने वाले थे, किंतु नहीं गये. संभवतः उन्हें यह आभास मिल गया होगा कि अब वह मास्को के देवताओं को प्रसन्न नहीं कर सकेंगे. हुआ भी यही. पार्टी के सम्मेलन में उन्होंने पद-मुक्त होने की इच्छा व्यक्त की. जिस नेता पर चेकोस्लोवाकिया की जनता को गर्व था, रूसी दबाव के आगे झुकने पर भी जिस की लोकप्रियता में कोई कमी नहीं हुई, वह अंततः नेतृत्व छोड़ने के लिए क्यों तैयार हो गया ? निश्चय ही उस ने ऐसा स्वेच्छा से नहीं किया. इस के दो ही कारण प्रमुख हो सकते हैं—एक, मास्को द्वारा उन पर त्यागपत्र देने का दबाव डाला जाना और दूसरा, स्लोवाक नेता गस्ताव हुसाक का पार्टी में प्रभावी होना. दूसरा कारण अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है क्यों कि श्री हुसाक ने कुछ दिन पूर्व ही श्री डुबचेक के नेतृत्व में सार्वजनिक रूप से विश्वास व्यक्त किया था. फिर वह इतने लोकप्रिय भी नहीं हैं कि पार्टी उन्हें श्री डुबचेक के स्थान पर नियुक्त करती. इस से स्पष्ट हो जाता है कि जो कुछ हुआ, रूसी दबाव के कारण हुआ.

डुबचेक : पद-मुक्त होने की इच्छा?

हुसाक किधर ? : अगस्त १९६८ के रूसी आक्रमण के बाद श्री हुसाक ने जो रुख अपनाया उस से चेक जनता में उन के प्रति यह धारणा पैदा हुई कि वह मास्को-समर्थक हैं. अनेक राजनैतिक प्रेक्षकों का भी ऐसा ही विचार है. यही कारण है कि प्रथम सचिव के पद पर उन की नियुक्ति का चेक जनता ने स्वागत नहीं किया और छात्रों ने उन पर मास्को-भक्त होने का आरोप लगाया. परंतु कुछ राजनैतिक प्रेक्षकों का मत है कि श्री हुसाक भी श्री डुबचेक की तरह किसी न किसी प्रकार अपने देश को रूसी चंगुल से बचाना चाहते हैं. श्री डुबचेक अपने प्रयास में विफल रहे. श्री हुसाक का

जोसेफ स्मर्कोवस्की : इच्छा का प्रश्न कहाँ !

रास्ता उन से थोड़ा-सा भिन्न है. शायद वह मास्को का विश्वास प्राप्त कर सकें और यदि वह मास्को के नेताओं को रूसी सैनिकों को चेकोस्लोवाकिया से वापस बुलाने के लिए सहमत कर सके तो अपने देश में उन की लोकप्रियता भी बढ़ेगी. आने वाले दिनों में श्री हुसाक मास्को से निपटने के लिए कौन-सी नीति अपनाते हैं उसी से उन के सही इरादों का पता चलेगा. परंतु चेकोस्लोवाकिया की जनता का इरादा स्पष्ट है. मास्को भले ही क़दम-क़दम पर अपने सैनिक बिठा दे किंतु उस के मन को दास नहीं बना सकता है. वह स्वाधीनता के लिए सतत संघर्ष करती रहेगी. फिर उस का नेतृत्व श्री डुबचेक करें या श्री हुसाक अथवा कोई और. हाल के पट-परिवर्त्तन से डुबचेक-युग का अंत भले ही हो गया हो उन का सुधारवादी कार्यक्रम अब भी चेक जनता के लिए वरेण्य है.

चीन

रक्त-सूर्य-पुत्र की विजय!

बारह साल के दीर्घ अंतराल के बाद चीनी कम्युनिस्ट पार्टी का नौवां अधिवेशन १ अप्रैल, १९६९ को शुरू हुआ. चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के १९४८ में सत्ता-ग्रहण करने के बाद से यह दूसरा अधिवेशन है, यानी १९५६ के बाद पहला. इस में लिउ शाओ ची अपने सभी साथियों सहित अनुपस्थित थे. अधिवेशन प्रकटतः विभिन्न कारणों से अभी तक टाला जाता रहा, पर अब जब सांस्कृतिक क्रांति ने लिउ शाओ ची को निगल लिया और क्रांति से उपजी हिंसा को लिन पिआओ ने फ़ौजी दस्तों के ज़ोर पर शांत कर दिया तो 'उपयुक्त अवसर' आया जान कर माओ ने अधिवेशन बुलाया जो १५१२ प्रतिनिधियों के 'सहयोग' से कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में समर्थ हुआ.

'निर्णयों' का ब्यौरा प्राप्त नहीं हो सका है. केवल यही पता चला है कि कामरेड माओ ने बहुत महत्त्वपूर्ण भाषण दिया, राष्ट्र के लिए एक नया संविधान स्वीकृत हुआ, और लिन पिआओ ने माओ का क़ानूनी उत्तराधिकारी घोषित होने के बाद देश की वर्त्तमान स्थिति पर एक विस्तृत रिपोर्ट पढ़ कर सुनायी और 'सांस्कृतिक क्रांति' की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला. पंडाल की पवित्रता बनाये रखने के लिए प्रतिनिधियों के अतिरिक्त क्यों कि कोई भी निमंत्रित नहीं था इस लिए यह प्रकाश बाहर नहीं आ सका है, फिर भी 'अर्थ' और 'अनर्थ' के बारे में अटकलें लगायी जा रही हैं.

पीकिङ रेडियो ने कामरेड माओ का भाषण 'महत्त्वपूर्ण और प्रेरणादायक' बताया है और लिन पिआओ की रिपोर्ट को समाजवादी क्रांति और समाजवादी निर्माण के लिए 'महान् योजना.' सभी प्रतिनिधियों ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि वे जो भी कुछ कहना चाहते थे वह सब मार्शल लिन ने अपनी रिपोर्ट में समेट लिया है. रिपोर्ट के शब्दों को बार-बार पढ़ने से उन को सुख मिलता है. इस तरह सब काम 'शांति' से संपन्न हुआ.

अधिवेशन से प्रसारित विज्ञप्ति में आशा व्यक्त की गयी है कि इस नये संविधान और नयी योजना के अंतर्गत पार्टी 'अधिक महान्, अधिक शानदार और अधिक सही होगी.' पर इस को ले कर विभिन्न क्षेत्रों में शंका है कि पार्टी को महान् बनाने वाले इस संविधान और रिपोर्ट को प्रकाशित भी किया जायेगा या नहीं, क्यों कि समय-समय पर संस्था के लिए बने नियम और सिद्धांत चीन के नेताओं ने अपनी सुविधा के लिए नकार दिये हैं और अपने आप को नये नियम बनाने के लिए फिर स्वतंत्र कर लिया है.

कुछ भी हो, इस अधिवेशन का ऐतिहासिक महत्त्व है. माओ मार्शल लिन की सहायता से पूर्णरूप से शक्ति-संपन्न हो गये हैं. हो सकता है उत्तराधिकारी की घोषणा के पीछे उन का मंतव्य यही हो. तथाकथित सांस्कृतिक क्रांति

लिन पिआओ : क़ानूनी उत्तराधिकारी

के कारण जो व्यापक अव्यवस्था देश में जनवरी १९६७ से सितंबर १९६८ तक छायी रही है वह सेना की सहायता के बिना दबनी कठिन हो गयी थी. यों लिन पिआओ पिछले दो सालों से माओ के सब से पास के आदमी हैं. चाणक्य की तरह संशोधनवादी कांटों को, माओ के विरोधियों को जिन के अग्रणी लिउ शाओ ची और तेङ सिआओ पिंग थे—नष्ट करने में उन का बहुत बड़ा हाथ है. केंद्रीय समिति में इसी पक्ष का बहुमत था. अधिवेशन में भाग लेने वालों में काफ़ी बड़ी संख्या सेनाधिकारियों की थी और यह सामान्य रूप से मान लिया गया है कि जनमुक्ति सेना इस समय चीन में सब से शक्तिशाली इकाई है. लेकिन कुछ जानकारों का कहना है कि माओ प्रशासनिक व्यवस्था का जो नमूना बना रहे हैं उस में सेना, पार्टी और क्रांतिकारियों को ३८, ३० और ३२ प्रतिशत के हिसाब से प्रतिनिधित्व मिलेगा. कुछ लोगों का ख्याल है कि सरकार और पार्टी की दो स्वतंत्र सत्ताओं को मिला कर एक किया जा रहा है. इस की पुष्टि में यह तर्क दिया जाता है कि प्रधानमंत्री चाओ एन लाइ को पार्टी की प्रिसीडियम का महासचिव नियुक्त कर दिया गया है.

फ़िलहाल यही नये चीन के नये संविधान का मूल ढांचा प्रतीत होता है. उस की धारणाओं और सिद्धांतों को मार्क्सवाद-लेनिनवाद व माओ के विचार प्रेरणा और राह देंगे, पर सेना का निरंतर सहयोग माओ के लिए हो सकता है, कुछ कठिनाइयां भी पैदा करे. शायद इसी लिए माओ ने फिर अपने नारों में परिवर्त्तन किया है और शायद इसी लिए सत्ता प्रतिष्ठान के तीन भागीदार बनाये जा रहे हैं. 'माओ के विचार' का मुहावरा प्रारंभ के दिनों में लिउ शाओ ची ने गढ़ा था, वह तो अब चीन के राजनैतिक मंच से नेपथ्य में खिसका दिये गये हैं, पर उन का गढ़ा मुहावरा भी अब दूर भविष्य तक चलने वाला नहीं है. कारण स्पष्ट है कि सेना बहुत अधिक विश्वास बंदूक की नली पर ही करती है, किसी के भी विचार पर नहीं.

अधिवेशन की सभी राजनैतिक क्षेत्रों में व्यापक प्रतिक्रिया हुई है. सोवियत संघ ने इसे माओ के विचारों को क़ानूनी जामा पहनाना कहा है, जापानी कम्युनिस्ट पार्टी ने पुराने सामंतवादियों की उस परंपरा को याद किया है जिस में वे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया करते थे. अमेरिकी अखबारों ने काफ़ी संयम से काम लिया है. टाइम को संतोष है कि चलो अधिवेशन के समय घरेलू शांति तो बनी रही और न्यूज़वीक ने इतने बड़े देश के सेना-शासित देश में परिवर्त्तित हो जाने के अंतरराष्ट्रीय ख़तरे की ओर इशारा करते हुए भी किसी भविष्यवाणी से बचने की कोशिश की है. भारत के अधिकांश पत्रों में अधिवेशन की रहस्यमयता और नाटकीयता के प्रति आश्चर्य और असंतोष व्यक्त किया गया. सांस्कृतिक क्रांति की व्यापक असफलता अब बाहर के देशों से छिपी नहीं है, न ही यह तथ्य कि इस क्रांति में अंतर्विरोधों को 'मिटाने' के नाम पर अनगिनत आहुतियां हुई हैं. सब से विचित्र बात यह है कि इतने बड़े 'प्रयोग' के बावजूद अंतर्विरोध कुछ बढ़े ही हैं, घटे नहीं.

हो सकता है, बाहर के देश चीन के बढ़ते हुए अंतर्विरोधों और विघटन-प्रक्रिया से उतने चिंतित न हों, पर जब यही देश दूसरे देशों में अपने परास्त-भाव को ढकने के लिए अंतरराष्ट्रीय राजनैतिक मंच पर तोड़-फोड़ की नीति अपनायेगा तो तकलीफ़ होगी ही, चाहे वह उसूरी नदी का तट हो या दूतावासों का घेराव.

अधिवेशन का प्रारंभ चीन की जनता ने धार्मिक आल्हाद और धूमधाम के साथ किया था. 'क्रांति के रक्त सूर्य' के प्रति पूर्ण आस्था

व्यक्त की गयी थी और इस तरह यह आभास हो रहा था कि चीन की आंतरिक एकता में कहीं दरार नहीं आयी है, पर स्थिति उतनी सामान्य नहीं है. विश्वविद्यालयों में पनपने वाला आक्रोश अब अभिव्यक्त होने लगा है और सेना का शासन उस आक्रोश को और बढ़ायेगा ही.

चीन से १९४८ में संसार भर की कम्युनिस्ट पार्टियों को बड़ी आशाएं थीं. अब सब को भय है. भविष्य के प्रति चिंतित होना निरर्थक है, पर स्थिति जो है उसे पर्देदारी या फ़ुटकर घटनाएं बदल नहीं सकतीं.

इस अधिवेशन की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह भी है कि माओ त्से दुंग के नाम से त्से और दुंग के बीच में अब हाइफ़न नहीं होगा. इस का अर्थ पूरे अधिवेशन के अर्थ की तरह अंधकार में है.

अमेरिका

संजय दृष्टि

चंद ही महीनों में अमेरिका दूसरी बार जासूसी करता हुआ पकड़ा गया—पहले प्वेब्लो का मामला था और अब ई. सी. १२१ विमान का है. यों दोनों मामलों में काफ़ी अंतर है—एक उत्तर कोरिया की जल-सीमा के भीतर पकड़ा गया था और दूसरा, प्राप्त जानकारी के अनुसार, अंतरराष्ट्रीय वायु-सीमा में ही मार गिराया गया, लेकिन निस्संदेह दोनों एक ही उद्देश्य से उत्तर कोरिया के आस-पास मँडरा रहे थे.

अमेरिकी नौसेना के विमान पर मुख्य चालक जेम्स ओवर स्ट्रीट समेत ३१ कर्मचारी थे—जिन में से एक भी जीवित नहीं बचा. कुल दो शव जल-समाधि से बरामद किये जा सके. फिर भी अमेरिका ने उत्तर कोरिया की 'उद्दंडता' पर युक्तिसंगत रवैया अपनाया : दुर्घटना के चार दिन बाद प्रेज़िडेंट निक्सन ने कहा अमेरिकी विमान जापानी समुद्र पर टोह लेने के लिए उड़ानें भरते रहेंगे परंतु उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जायेगी. इन विमानों की रक्षा के लिए युद्ध-पोत और लड़ाकू विमान रहा करेंगे. इस के बाद कुछ अमेरिकी युद्ध-पोत और सैनिक विमान जापानी सागर क्षेत्र की ओर रवाना हुए. अमेरिकी सूत्रों का दावा है कि अमेरिकी विमान उस समय उत्तर कोरिया से कम से कम ४० मील की दूरी पर था जो उत्तर कोरिया की वायु-सीमा से २८ मील दूर था. जब विमान को गिराया गया उस समय तो सोवियत और अमेरिकी राडारों के अनुसार वह उत्तर कोरिया की सीमा से १० मील दूर था. न्यूयॉर्क टाइम्स के अनुसार प्रेजिडेंट निक्सन की प्रतिक्रिया अमेरिका के वैदेशिक संबंधों में एक नयी परिपक्वता का द्योतक है और ऐसा लगता है कि हम ने पिछली गलतियों से कुछ पाठ सीखे हैं. उसी के साथ श्री निक्सन ने रूस के प्रति कृतज्ञता प्रकट की कि वह विमान में सवार व्यक्तियों के शव और विमान के अवशेष ढूंढ़ने में अमेरिका की मदद कर रहा है. इसे कुछ क्षेत्रों में शीत-युद्ध के बावजूद अमेरिका और रूस के सुधरते संबंधों का प्रतीक माना जा रहा है. वैसे रूसी पत्र 'इज़वेस्तिया' ने इस घटना को 'दूसरे प्वेब्लो' और 'एक नयी दुष्टतापूर्ण' घटना की संज्ञा दी है. अब अमेरिका ने संयुक्तराष्ट्र संघ में भी शिकायत की है कि उत्तर कोरिया ने अंतरराष्ट्रीय क़ानून का उल्लंघन करते हुए एक निरस्त्र अमेरिकी विमान को मंगलवार को मार गिराया है. दूसरी ओर उत्तर कोरिया के प्रतिरक्षामंत्री जनरल चोई ने अपने रेडियो-भाषण में विमान गिराने वाली टुकड़ी को बधाई देते हुए धमकी दी कि अमेरिका द्वारा उत्तर कोरिया की सीमा का अतिक्रमण करने से उत्तर कोरिया और अमेरिका के बीच किसी भी क्षण युद्ध छिड़ सकता है.

जेम्स ओवर स्ट्रीट : उड़ाकू की जल-समाधि

असुरक्षित विमान : जासूसी तो सभी देश करते हैं और ये जासूस कई बार पकड़े भी जाते हैं पर अमेरिका की बदक़िस्मती यह रही है कि उस के टोह लेने वाले यान बड़े धूम-धड़ाके से पकड़े जाते हैं. प्वेब्लो की गिरफ़्तारी की शर्मिंदगी अमेरिकियों के मन में अभी ताज़ी है. प्वेब्लो का उद्देश्य न केवल उत्तर कोरिया के बल्कि चीन और धुर पूर्वी रूसी राडार केंद्रों का पता लगाना और दूर संचार संदेशों को पकड़ना था. इस पर बढ़िया से बढ़िया इलैक्ट्रॉनिक यंत्र लगाये गये थे. पर खर्चे में बचत करने के लिए इस में हथियार नाम की कोई चीज़ न थी. इसी कारण उत्तर कोरिया वाले उसे आसानी से पकड़ सके. जहाज़ पर अधिकार कर लेने से उत्तर कोरिया के हाथ इलैक्ट्रॉनिक यंत्रों के साथ-साथ दुर्लभ अमेरिकी संकेत लिपि भी लग गयी. जहाज़ के कप्तान और अन्य नौसैनिक बड़े अपमान-जनक ढंग से रिहा हो कर वापस अमेरिका पहुँचे. मामले की जाँच अभी पूरी नहीं हुई है. इस विमान में कहीं अधिक मूल्यवान् और जटिल यंत्र थे जो न केवल संदेश-ग्रहण कर सकते थे बल्कि भूमि-स्थित रेडियो और मिसाइल राडार को नाकाम बना सकते थे. प्वेब्लो की तरह यह विमान भी असुरक्षित था.

इस से मिलती-जुलती एक और घटना तब हुई थी जब जनरल आइज़नहावर अमेरिका के राष्ट्रपति थे और अमेरिका-यात्रा में ख्रुश्चोव का खूब स्वागत हुआ था. आशा की जाने लगी थी कि आइज़नहावर रूस की यात्रा करेंगे जिस से दोनों देशों के संबंधों में सुधार आ जायेगा. इसी बीच अमेरिका का जासूसी विमान यू-२ रूस की सीमा में गिरा लिया गया और पेरिस में आयोजित शिखर सम्मेलन रद्द कर दिया गया. ख्रुश्चोव का कहना था यह तो मैं अपने ५ वर्षीय पौत्र को भी नहीं समझा सकता कि जो देश हम पर जासूसी करे, हम उसी के राष्ट्रपति का स्वागत करें.

विमानों और उपग्रहों द्वारा जासूसी करने में वैज्ञानिक तकनीक ने जितना योग दिया है, वह अपूर्व है. यू-२ विमानों ने ही पता लगाया था कि क्यूबा में रूस ने कौन-से प्रक्षेपास्त्र दिये हैं. इसी तरह चीनी अणु केंद्र लॉप नॉर के बारे में अमेरिका सही भविष्यवाणियाँ करता रहा है. अनुमान है कि अमेरिका के पास टोह लेने वाले १७४ असैनिक और २८४ असैनिक उपग्रह हैं और रूस के पास क्रमश: १७० और १६२. इन से लिये गये चित्र विपक्ष की सामरिक क्षमता की ही नहीं खेत में खड़ी गेहूँ की फसलों की भी जानकारी दे देते हैं. उपग्रहों से प्राप्त जानकारी की पुष्टि और कुछ अतिरिक्त जानकारी प्वेब्लो जैसे जहाज़ और यू-२ तथा ई. सी. १२१ विमान एकत्र करते हैं. इस तरह शत्रु की गतिविधि छिपी नहीं रह सकती. पर इस का एक फ़ायदा भी है—यही संजय दृष्टि आकस्मिक युद्ध से दुनिया को बचाती है.

पाकिस्तान

अधिनायक का पहला फ़र्ज़

पूर्वी पाकिस्तान जो अभी हाल ही में असंतोष और विद्रोह के तूफ़ान से निकल कर खामोशी के एक नये दौर में दाखिल हो चुका था फिर से एक नये तूफ़ान का शिकार हो गया. भीषण वेग से चलने वाले इस चक्रवात ने ढाका के आस-पास अनेक देहातों में सामान्य जीवन को अस्त-व्यस्त कर दिया. किसानों की झोंपड़ियाँ ही नहीं पक्के मकानों की छतें तक वायु के प्रकोप के सामने ध्वस्त हो गयीं. बिजली के खंबे, पेड़-पौधे और फसल धराशायी हो गये, तथा इस अंधड़ में व्यापक स्तर पर जनहानि हुई. अब तक के अनुमान के अनुसार एक हज़ार व्यक्तियों से ज्यादा लोग मारे गये और

७ हज़ार से अधिक घायल हो गये. सब से विनाशकारी प्रभाव ढाका के पास डेमरा उपनगर पर पड़ा जो पूर्वी पाकिस्तान की एक औद्योगिक बस्ती है. इस उपनगर में ५०० से अधिक व्यक्तियों की मृत्यु हो गयी इस अप्रत्याशित संकट का मुक़ाबला करने के लिए सेना के साथ-साथ ढाका विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने भी सहयोग दिया. अब तक भी मलबे के ढेरों के नीचे से लाशें निकाली जा रही हैं. बी.बी.सी. के अनुसार एक लाख व्यक्ति बेघर हो गये हैं.

राष्ट्रपति याह्या ख़ाँ ने २० लाख रुपये इन संकटग्रस्त परिवारों के लिए स्वीकार किये हैं. किंतु पूर्वी पाकिस्तान के मार्शल लॉ अधिकारी के अनुसार संकट इतना व्यापक है कि इस रक़म से घायलों और बेघर व्यक्तियों को नहीं बचाया जा सकता. उन्होंने ४०० मन अनाज लोगों में बाँटने की आज्ञा दी. पाकिस्तान की इस मुसीबत में अनेक राष्ट्रों ने सहानुभूति व्यक्त की है. भारत सरकार ने पाकिस्तान प्रशासन को यह संदेश भेजा है कि पूर्वी पाकिस्तान के संकटग्रस्त व्यक्तियों की सहायता के लिए वह अनाज, दवाइयाँ, कपड़े आदि की सहायता दे सकता है. इस सिलसिले में नयी दिल्ली स्थित पाकिस्तान के राजदूत को बताया गया है कि वह अपनी सरकार से पूछ लें कि इस प्रकार की सहायता कहाँ और किस रूप में दी जानी चाहिए.

अधिनायक और आदेश : प्राकृतिक विनाश-लीला का सामना करने में लगे हुए पूर्वी पाकिस्तान के लोग कुछ समय के लिए नये सैनिक प्रशासन के विरुद्ध संगठित नहीं हो सकते. किंतु असंतोष की भावना अस्थायी रूप से दबने के बाद कभी न कभी उभर ही आती है. याह्या ख़ाँ को इस बात का एहसास है कि जनमानस में व्यापक विरोध को समाप्त करने के लिए पर्याप्त समय और कुशलता की आवश्यकता है: संभवतः इसी लिए उन्होंने एक आदेश जारी कर के अपने आप को और दो वर्ष के लिए पाकिस्तान का सेनाध्यक्ष नियुक्त कर लिया है. सामान्य परिस्थितियों में इस की कोई आवश्यकता नहीं थी क्यों कि उन्हें १८ सितंबर को सेना से अवकाश ग्रहण करना था और डेढ़ वर्ष का समय अपने शासन को स्थापित करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए, किंतु ऐसा लगता है कि मार्शल याह्या ख़ाँ यह नहीं चाहते थे कि सेना में उन का प्रभाव कम हो जाए, और इस लिए यह ज़रूरी हो गया है कि पाकिस्तान की सेनाओं को यह बता दें कि वह अभी कई वर्षों के लिए उन के सर्वोच्च नेता हैं. अधिनायकों को इस बात का सब से बड़ा ख़तरा रहता है कि उन के अधीन काम करने वाले व्यक्ति इतना प्रभाव पैदा न कर सकें कि वह स्वयं अधिनायक के पतन का कारण बन जायें. अधिनायक का पहला फ़र्ज़ अपने को स्थायी बनाना होता है. पाकिस्तान में, जो अब भी राष्ट्रपति मंत्रिमंडल के स्थान पर क्रांतिकारी मंत्रिमंडल है, संभवतः याह्या ख़ाँ असैनिक नेताओं की नब्ज़ परखना चाहते हैं ताकि वह इस बात का निश्चय कर सकें कि भविष्य में किस विचारधारा और किस गुट के व्यक्तियों को अपने असैनिक मंत्रिमंडल में शामिल किया जाए. यह बात निश्चित ही है कि भाशानी या भुट्टो की विचारधारा के लोगों को जनरल याह्या ख़ाँ के मंत्रिमंडल में स्थान मिलना संभव नहीं है. शासन पर अधिकार जमाने के तुरंत बाद उन्होंने चीन को जो पत्र लिखा उस के अनुसार 'चीन का पड़ोसी राष्ट्र पाकिस्तान आज इस संक्रमण काल में चीन से केवल यही चाहता है कि वह हर संभव युक्ति से पाकिस्तान को क्रांति की ज्वाला से मुक्त कराने में अपना सहयोग दे, और भुट्टो तथा भाशानी जैसे विद्रोहियों की पीठ न थपथपाये.' अधिनायक का स्थायित्व अधिनायकवाद की अनिवार्य शर्त है.

काले धन की खोज : पाकिस्तान की अर्थ व्यवस्था को कुछ खानदानों के पंजों से मुक्त कराने के लिए मार्शल याह्या ख़ाँ ने छिपे हुए धन और संपत्ति को बाहर निकालने का जो अभियान आरंभ किया है उस के अंतर्गत पूर्वी पाकिस्तान के भूतपूर्व राज्यपाल मोनिम ख़ाँ को अपनी संपत्ति का पूरा विवरण देने का आदेश दिया गया है. मार्शल लॉ के ३४ वें आदेश के अनुसार पाकिस्तान के सभी व्यापारियों और पूंजीपतियों से अपनी संपत्ति का पूरा विवरण देने तथा विदेशी मुद्रा के बारे में सूचना देने का आदेश दिया गया है. १५ मई के बाद इस आदेश की अवज्ञा के लिए १४ वर्ष क़ैद तक का भी दंड दिया जा सकता है.

ब्रिटेन

बजट : आर्थिक कम, राजनैतिक अधिक

ब्रिटेन के वित्तमंत्री राय जैंकिस ने वित्त-मंत्रालय सँभालने के बाद अपना दूसरा बजट-भाषण दिया. ढाई घंटे के अपने भाषण में उन्होंने ब्रिटेन की लड़खड़ाती अर्थ-व्यवस्था के बावजूद लोगों पर करों का अधिक बोझ नहीं डाला. इस का कारण शायद उन के दिमाग़ में अपनी पार्टी की लगातार गिरती जा रही साख और असुरक्षा की भावना थी. उन के बजट में किसी भी प्रकार के सीधे करों का प्रस्ताव नहीं है.

राजनैतिक प्रेक्षक जैंकिस के इस बजट को राजनैतिक अधिक और आर्थिक कम बताते हैं. अपने बजट में ३४ करोड़ पाउंड का इज़ाफ़ा करने की गर्ज़ से उन्होंने तजवीज़ें तो कई दीं लेकिन उपभोक्ता वस्तुओं तथा आय-कर में किसी प्रकार की बढ़ोतरी का ज़िक्र कहीं भी नहीं किया. बजट का मुख्य मुद्दा ग़रीब लोगों को करों से राहत देना और अमीर लोगों तथा उन की कंपनियों पर अधिक कर लगाना था. मुनाफ़े पर निगम कर ढाई प्रतिशत बढ़ाये जाने तथा व्यापारियों को उन की जमा रक़म से अधिक पैसा निकालने पर दिये जाने वाले ब्याज में जो छूट थी उसे ख़त्म की जाने की व्यवस्था की गयी है. इस व्यवस्था से कंज़रवेटिव पार्टी के सदस्यों ने बहुत शोर मचाया, और उन के भाषण के दौरान काफ़ी टोकाटाकी भी की गयी. कार पर तो कर नहीं बढ़ाया गया लेकिन पेट्रोल पर ज़रूर कर लगाने का सुझाव दिया गया. बियर और स्प्रिट कर-मुक्त रखे गये हैं लेकिन कुछ अच्छी क़िस्म की शराब पर कर लगाया गया है.

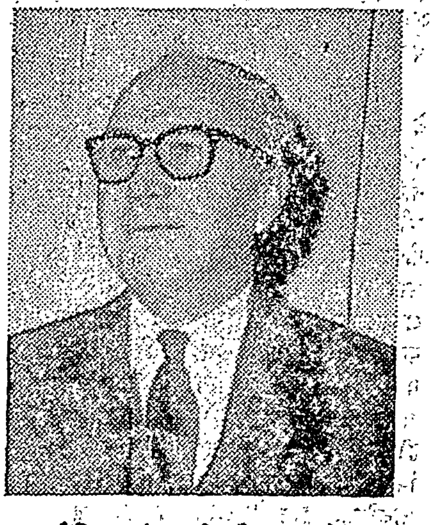

जैंकिस : 'कमाओ और बचाओ'

वित्तमंत्री जैंकिस के भाषण पर लेबर और कंज़रवेटिव पार्टी के सदस्यों ने तब तालियाँ ज़रूर बजाईं जब उन्होंने बूढ़े लोगों के लिए पेंशन बढ़ाने और विधवाओं को राहत देने के लिए अचल संपत्ति पर राज्य कर ५ हज़ार पाउंड की बजाय १० हज़ार पाउंड पर लगाये जाने की घोषणा की. जब उन्होंने 'कमाओ और बचाओ' नामक योजना का एलान किया तब भी उन के इस मुद्दे का सभी सदस्यों ने स्वागत किया.

वित्तमंत्री जैंकिस के बजट में ऊपर से राहत ज़रूर दिखायी देती है लेकिन उस के गहरे अध्ययन से यह पता चल जाता है कि सटोरियों, जुआरियों, होटलों, रेस्तरांओं विज्ञापनदाताओं आदि पर बजट का ख़ासा असर पड़ेगा. यद्यपि उन्होंने अपने बजट में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का भी ज़िक्र किया और ब्रिटेन की अर्थ-व्यवस्था को बनाये रखने के लिए उस को दृढ़ करने का संकल्प भी दोहराया लेकिन मोटे तौर पर जैंकिस का बजट घरेलू बजट ही था.

मांटसेरात

एक और विद्रोही द्वीप

एंगुइला की तरह एक और कैरेबियन द्वीप मांटसेराट के २०० निवासियों ने प्रशासन के खिलाफ़ अपना झंडा बुलंद किया जिस के फलस्वरूप वहाँ के ब्रितानी प्रशासक डेनिस गिब्स को आपत्कालीन स्थिति की घोषणा करनी पड़ी. ३२ वर्गमील में फैले १२ हज़ार जनसंख्या का यह द्वीप लीवर्ड और विंडवर्ड द्वीप समूहों में सब से छोटा है. १४९३ में क्रिस्टोफर कोलंबस ने इसे खोजा था. इस द्वीप के लोगों के विद्रोह का कारण यह बताया जाता है कि यहाँ के प्रशासक ने इस द्वीप से बाहर के कुछ लोगों की पुलिस में भर्ती की थी जिस के प्रति यहाँ के लोगों ने अपना रोष व्यक्त किया. ब्रितानी अधिकारियों का कहना है कि लोगों को प्रशासन के खिलाफ़ कोई शिकायत नहीं है. यह कुछ ग़लतफ़हमी थी जिस का निराकरण अब हो चुका है और द्वीप से आपत्कालीन स्थिति भी समाप्त की जा चुकी है.

ब्रितानी अधिकारियों ने अपनी सफ़ाई तो दे डाली मगर वे भीतर ही भीतर दो सौ लोगों की भीड़ के उस उग्र रवैये के आतंक से अभी नहीं उबर पाये हैं. जिन्होंने पत्थरों, देसी बमों और सोडा बोतलों को दो सौ सैनिकों पर फेंका था और डेनिस गिब्स के खिलाफ़ नारे लगाये थे. यहाँ के अधिकतर निवासी आयरलैंड जन्मा हैं तथा आयरलैंड और ब्रिटेन का पुश्तनी झगड़ा किसी न किसी तरह कहीं न कहीं खड़ा हो ही जाता है. एक बात यह भी साफ़ हो गयी है कि चाहे कितना भी छोटा द्वीप क्यों न हो वह अपनी स्वायत्तता का हनन किसी भी प्रकार बर्दाश्त नहीं कर पाता. मांटसेराट द्वीप के लोगों ने अब यह महसूस किया लगता है कि बाहर से पुलिस में भर्ती करना उन के अधिकारों के साथ खिलवाड़ करना है.

फ़्रांस

पद-त्याग की शर्तबंध धमकी

पुरपेच राजनैतिक परिस्थितियों में अडिग रह कर अक्सर कोई अकल्पित किंतु ठोस निर्णय ले कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ बनाने में समर्थ जनरल द गॉल ने इस बार अपने नये गुरुमंत्र से फ़्रांस की जनता को उस वक़्त चौंकाया है जब फ़्रांस की राजनैतिक परिस्थितियाँ अपेक्षाकृत शांत थीं. उन्होंने राजनैतिक सुधारों की अपनी नयी योजना के बारे में 'हाँ' या 'नहीं' में फ़्रांसीसी जनता की राय जानने के लिए २७ अप्रैल को जनमत संग्रह का दिन मुक़र्रर किया है. खुले शब्दों में उन्होंने जनता को बता दिया है कि प्रस्तावित सुधारों के समर्थन या विपक्ष में दिया गया मत वस्तुतः व्यक्तिगत रूप से उन्हीं का समर्थन या विरोध समझा जायेगा. अगर अधिसंख्य फ़्रांसीसी जनता प्रस्तावित सुधारों का विरोध करती है तो वह राष्ट्रपति-पद से हट जायेंगे. यानी जनमत संग्रह को उन्होंने यह जानने का माध्यम बना दिया है कि कितने लोग उन के राष्ट्रपति बने रहने के समर्थक हैं और कितने उन से आजिज़ आ चुके हैं.

फ़्रांस के कुछ राजनैतिक पर्यवेक्षकों ने जनमतसंग्रह में फ़्रांसीसी जनता का समर्थन न मिलने पर द गॉल द्वारा राष्ट्रपति-पद से त्यागपत्र देने की स्पष्ट घोषणा को तथ्यपूर्ण करार दिया है तो कुछ राजनैतिक पर्यवेक्षकों की राय है कि सन् १९६५ में राष्ट्रपति-पद के चुनाव के दौर में श्री द गॉल ने कुछ ऐसी ही घोषणा की थी किंतु यथोचित समर्थन न मिल पाने पर भी उन्होंने ५५ प्रतिशत के समर्थन को ही स्वीकार कर लिया था और अपने पद पर पुनः जम गये. लेकिन इन अटकलबाज़ियों के बावजूद द गॉल की घोषणा से उन के कुछ आलोचकों को बहुत आश्चर्य हुआ है. क्यों कि इस से पहले इतने चुनौती भरे लहजे में द गॉल ने अपने पद को दाँव पर नहीं लगाया था. द गॉल के आलोचक इस का कारण जानने के लिए बेचैन हैं. पिछली जनवरी को अपनी रोम-यात्रा के दौरान भूतपूर्व प्रधानमंत्री पांपिदू ने यह घोषणा की थी कि यदि जनरल द गॉल अपने पद से हट गये तो वह राष्ट्रपति-पद के लिए चुनाव लड़ेंगे. ऐसा प्रतीत होता है कि पांपिदू की इस घोषणा ने ही द गॉल को यह क़दम उठाने के लिए प्रेरित किया है अन्यथा अब तक वह यही कहते थे कि १९७२ तक की निर्धारित अवधि से पूर्व वह पद-त्याग नहीं करेंगे. बेशक जनमत संग्रह की घोषणा के वक़्त द गॉल ने पांपिदू का नाम तक नहीं लिया किंतु उन के इस इरादे से पांपिदू के राजनैतिक भविष्य का गहरा संबंध है. द गॉल के सुधार के कार्यक्रमों में एक विशेष प्रावधान यह भी शामिल है कि प्रधानमंत्री मूर्विल को अंतरिम तौर से फ़्रांस का राष्ट्रपति बनाया जायेगा जब कि वर्तमान संविधान के अनुसार राष्ट्रपति सेनेट का ही प्रधान होता है. प्रस्तावित सुधारों के लागू हो जाने या निर्धारित अवधि से पूर्व ही द गॉल के अपने पद से हट जाने पर ही अंतरिम तौर से किसी को राष्ट्रपति बनाने का प्रश्न उठेगा. और फिर राष्ट्रपति के चुनाव के दौर में उस व्यक्ति को सहज ही अपनी स्थिति मज़बूत करने का अवसर मिल जायेगा, जो पहले से ही अंतरिम तौर से राष्ट्रपति का कार्य भार सँभाल रहा है. देखना है कि पांपिदू, जो कि अभी किसी भी सरकारी पद पर आसीन नहीं हैं. अपनी लोकप्रियता के बावजूद मूर्विल का मुक़ाबला कर पायेंगे या नहीं. बहरहाल इन अटकलबाजियो ने ही द गॉल के जनमत गणना के इरादे को एक महत्त्वपूर्ण राजनैतिक गुत्थी बना दिया है और वस्तुतः द गॉल चाहते भी यही हैं.

परिवर्तन के आसार : ऐसी संभावना ज़ाहिर की जा रही है कि जनमत संग्रह के बाद फ़्रांस की राजनैतिक संस्थाओं की रूपरेखा और कार्यक्रमों में जटिल परिवर्तन हो सकेगा इस कायक्रम के अनुसार सारे फ़्रांस में नये क्षेत्रीय विधानसभा गठित किये जायेंगे और वर्त्तमान सेनेट के बदले इन क्षेत्रीय विधानसभाओं को ही राजनैतिक गतिविधियों का केंद्र बनाया जायेगा. और इस तरह विभिन्न पेशों से संबद्ध फ़्रांसीसी जनता को अपने देश की राजनीति में और अधिक शिरकत का अवसर मिलेगा. इन संभावनाओं ने फ़्रांस के राजनीतिकों और चिंतकों को अपने देश के भविष्य के बारे में गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए प्रेरित किया है. राष्ट्रपति द गॉल अपनी नयी सूझ को सन् १७८९ की राज्य क्रांति के लक्ष्यों की पूर्त्ति की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध करना चाहते हैं. फ़्रांसीसी राज्य क्रांति का एक प्रमुख लक्ष्य शक्ति का विकेंद्रीकरण भी था, जो पूरा न हो सका. उलटे राजनैतिक शक्ति पेरिस में और अधिक सिमट आयी है.

जनमत संग्रह के बाद जिन सुधारों को लागू करने की योजना बनी है, वे काफ़ी विवादास्पद हैं. इस पेंच को ले कर भी लोग उलझ गये हैं कि नये सुधारों के बारे में जनमत-संग्रह की शर्तों के मुताबिक तो उन्हें किसी मसले पर केवल एक ही वोट द्वारा 'हाँ' या 'नहीं' में अपना मत प्रकट करना पड़ेगा जब कि संविधान के बहुत से विशेषज्ञों की राय है कि एक ही मसले से कम से कम दो प्रमुख प्रश्न जुड़े हैं—सेनेट और क्षेत्रीय सुधार के प्रश्न.

बहरहाल राष्ट्रपति द गॉल की स्पष्ट घोषणा के बावजूद कुछ राजनैतिक हलकों में यह आशंका व्यक्त की जा रही है कि जनमत-संग्रह यदि द गॉल के खिलाफ़ गया तो भी वह १९७२ तक तो अपने पद पर बने ही रहेंगे. उन का पिछला इतिहास भी यही संकेत देता है. हाल ही की एक भेंट-वार्त्ता में पहले तो वह अनेक प्रश्नों का पैंतरा बदल-बदल कर उत्तर देते रहे और फिर यकायक उन्होंने जनमतसंग्रह की आड़ में अपने पद से हट जाने का संकेत दिया. भेंट-वार्त्ता में उन से एक प्रश्न यह भी पूछा गया था कि किसी मसले पर केवल वोट द्वारा 'हाँ' या 'नहीं' कहने की शर्त क्यों रखी गयी है जब कि जनमत-संग्रह से सेनेट और क्षेत्रीय सुधार के दो विषय संबद्ध हैं. मुमकिन है कि सेनेट और क्षेत्रीय सुधारों के प्रति मतदाता पृथक्-पृथक् मत व्यक्त करना चाहते हों. द गॉल का उत्तर था कि दोनों विषयों का एक-दूसरे से अन्योन्याश्रित संबंध है क्यों कि सेनेट ही क्षेत्रीय पद्धति का केंद्र है.

कला विहार की संगीत संध्या

सप्रू हाउस में आयोजित 'कला विहार' द्वारा संगीत-संध्या में जहाँ **निखिल बैनर्जी** और **श्रीमती एन. राजम्** के प्रभावशाली और सुंदर कार्यक्रम सुनने को मिले वहीं समय की बरबादी और दुर्व्यवस्था खलने वाली भी रही. संगीत-संध्या में कला विहार की छात्राओं तथा उस से संबंधित कलाकारों के अतिरिक्त मुख्य रूप से निखिल बैनर्जी, श्रीमती एन. राजम्, शारदासहाय मिश्र तथा मंजुश्री बैनर्जी ने भाग लिया.

काफ़ी रात तक चलने वाली संगीत-संध्या का आरंभ कला विहार की छात्राओं ने गुरु रवींद्रनाथ ठाकुर की एक कविता पर आधारित मंजूश्री बैनर्जी तथा सतीश कुमार के नृत्य एवं संगीत निर्देशन में एक नृत्य-नाटिका 'पुजारिन' से किया. कत्थक शैली की नृत्य नाटिका में पूर्व अभ्यास की कमी तथा अन्य कई त्रुटियाँ होते हुए भी अल्प वयस्क कलाकारों का प्रयास सराहनीय रहा. कुमारी विनिता तथा कुमारी केया द्वारा युगल रूप से पेश अथवा नवीनता दृष्टिगत नहीं हुई. गणेश परन, माखनचोरी तथा पढ़ंत में बोलों की स्पष्टता आकर्षित करने वाली थी और विशेष उल्लेखनीय रही. मध्यांतर से पूर्व **समीर सरकार** ने शंभूनाथ की तबला संगत में कुछ रवींद्र संगीत की रचनाएँ भी प्रस्तुत कीं.

संगीत-संध्या के सब से सफल, कर्णप्रिय और आनंददायक कार्यक्रम रहे **एन. राजम्** द्वारा मालकौंस तथा निखिल बैनर्जी द्वारा राग अभोगी की क्रमशः वायलिन और सितार पर अवतारणा. दोनों ही कलाकारों का वादन श्रोताओं को मुग्ध करने वाला रहा. संगीत-सम्राट स्वर्गीय पंडित ओंकारनाथ ठाकुर की शिष्या एन. राजम का वायलिन वादन गुरु की अत्यंत प्राणवान और भावात्मक गायन शैली को प्रतिबिंबित करने वाला रहा. गायकी अंग में श्रीमती राजम् ने राग मालकौंस में तीन रचनाएँ प्रस्तुत कीं. आत्मविश्वास और काल्पनिकता से राग-निहित भावों और रसों की वादिका द्वारा अत्यंत द्रवित करने वाली अवतारणा उत्तम शिक्षा और साधनामयता

मंजुश्री बैनर्जी : नटवरी शैली

एन. राजम् : आत्मविश्वास

नटवरी कत्थक नृत्य ताल-ज्ञान की कमी का परिचायक रहा और परनों के बाद आमद कुछ अजीब-सी लगी. श्री शंभू महाराज और पं. सुंदर प्रसाद की शिष्या **कुमारी मंजुश्री बैनर्जी** ने भी कत्थक की नटवरी शैली में कई चीजें प्रस्तुत कीं. वाराणसी के विख्यात तबलावादक श्री कंठे महाराज के शिष्य **शारदा मिश्र** की तबला संगत में मंजुश्री द्वारा विभिन्न परनों, पढ़ंत, घूंघट के प्रकार, माखन-चोरी, तत्कार और सवाल-जवाब आदि में निपुणता और शैलीगत परंपरा का निर्वाह सुंदर और प्रशंसनीय रहा, पर उन में कहीं कोई मौलिकता की द्योतक रही. विलंबित में राग विस्तार की क्रमिक प्रक्रिया तथा द्रुत में अनूठी लयकारी, गमकों और जटिल तानों की सवाई में वादन-कुशलता देखते बनती थी. वायलिन पर मालकौंस की अवतारणा आरंभ से अंत तक अत्यंत सुरीली, निर्मल, दक्षतापूर्ण और प्रभावपूर्ण रही. अनूठे कलाकार निखिल बैनर्जी ने राग अभोगी में आलाप, जोड़, झाला और मिश्र समाज में गतकारी प्रस्तुत की. दोनों ही रागों में इन का वादन श्रुतिमधुर और दक्षतापूर्ण रहा. राग अभोगी में आलाप वादन सुविकसित कला का उत्कृष्ट उदाहरण रहा.

किराना सोसाइटी ऑफ़ म्यूज़िक

'किराना सोसाइटी ऑफ़ म्यूज़िक' की ओर से एन. डी. एम.सी. सभा-भवन में आयोजित संगीत-कार्यक्रम में इस वर्ष दिल्ली के सितार वादक विनय कुमार, बंबई के अब्दुल करीम ख़ाँ तबलानवाज़ और दिल्ली घराने के गायक नसीर अहमद ख़ाँ ने अपना गायन पेश किया. पर जमाव की दृष्टि से श्री नसीर अहमद ख़ाँ ही सफल रहे. विनय कुमार द्वारा संध्याकालीन मधुर पर बहु प्रचलित राग पूरिया कल्याण में आलाप, जोड़, झाला की अपेक्षा सितार-वादन में गतकारी अधिक उल्लेखनीय रही. मिश्र राग में आलाप, जोड़, झाला, वादन शास्त्रीय सिद्धांतों के अनुरूप होते हुए भी मौलिकता और कल्पना के अभाव में सामान्य स्तर का रहा. फ़ैयाज़ ख़ाँ की तबला संगत में प्रस्तुत इस राग में विलंबित और द्रुत गतों की रचना में नवीनता न होते हुए भी राग-रूप प्रधान वादन-शैली और निखरा हुआ प्रस्तुतीकरण प्रशंसनीय रहा. प्रौढ़ तबला वादक और उस्ताद हबीबुद्दीन ख़ाँ के भाई श्री करीम ख़ाँ का वादन शायद दिल्ली के श्रोताओं को पहली बार सुनने को मिला. श्री करीम ख़ाँ के स्वतंत्र तबला वादन में विविधता विशेष रूप से आकर्षित करने वाली रही. वज़नदार वादन में लयकारी का सुंदर काम और बोलों की स्पष्टता-मधुरता भी निराली रही. अंतराल के बाद तान-सम्राट् नसीर अहमद ख़ाँ द्वारा राग एमन कल्याण, केदार और मिश्र किरवानी में ठुमरी गायन आयोजित कार्यक्रम का सब से अधिक समर्थ प्रदर्शन रहा. एक के बाद दूसरे राग में गायन से इन के गायन के सौंदर्य में वृद्धि होती चली गयी. एमन कल्याण की विलंबित में आलाप की मधुरता और बंदिश को भाँति-भाँति से कल्पनायुक्त एवं भावात्मक ढंग से कहने का निराला अंदाज़ रस विभोर करने वाला रहा. राग बढ़त के बाद सरगम, बोल-तान और तानों के उच्चारण की निजी शैली बरबस आकृष्ट करने वाली रही. विलंबित में यदि कोई दोष कहा जा सकता है तो वह था अंतरे का अभाव. गतिशील द्रुत बंदिश में छह-सात प्रकार की तानों की उड़ान में अनूठी तैयारी, सुलभता और विविधता चकित करने वाली रही. एमन कल्याण के बाद केदार में चाँदरंग रचित विलंबित और मोहम्मद शाह रंगीले रचित द्रुत दोनों ही बंदिशें अल्प-अल्प समय की होते हुए भी अलंकारपूर्ण, स्फूर्तिमय और राग-सौंदर्य प्रधान रहीं, तो अंत में प्रस्तुत स्व रचित ठुमरी "बहुत दिन बीते पिया नहीं आये" अत्यंत हृदय-ग्राही और मिश्र किरवानी की मुग्ध करने वाली रचना रही. नसीर अहमद के साथ सारंगी पर इंद्रलाल, तबले पर फ़ैयाज़ ख़ाँ और हारमोनियम पर रहमान ख़ाँ की संगत भी उल्लेखनीय रही.

आधुनिक भारतीय साहित्य में भारतीयता की अभिव्यक्ति

यह प्रश्न प्रायः कई क्षेत्रों से बार-बार उठाया जाता है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं में जो कुछ भी लिखा जा रहा है उस में भारतीयता को अभिव्यक्ति मिल रही है, या नहीं. इस प्रश्न को उठाने वाले प्रायः यह समझते है कि जैसे भारतीयता कोई ऐसी पूर्व निश्चित वस्तु है जिस के आधार पर समूचे भारतीय भाषाओं के साहित्य को मूल्यांकित किया जा सकता है, लेकिन यह प्रश्न उठाने वाले प्रायः यह भूल जाते हैं कि यदि भारतीयता को इतने स्थूल रूप में परिभाषित किया जायेगा तो हो सकता है कि वह सारे स्थूल तत्व साहित्य में हों, लेकिन वह साहित्य ही साहित्य की कोटि में न आता हो. भारतीयता के स्थूल तत्वों को ले कर भारतीयता की अभिव्यक्ति का दावा करने वालों में हो सकता है कि भारतीयता उतनी सशक्त रूप में न मिल सके जितनी कि किसी ऐसे लेखक के कृतित्व में मिल जाये जो इस प्रकार का कोई भी दावा किये बिना केवल साहित्यिक मूल्यों पर आधारित साहित्य लिख कर भारतीयता के सूक्ष्म सारों को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत कर जाये. कभी-कभी इस दृष्टि से इस प्रकार की बहसें केवल बहसें मात्र होती है उन में से तत्त्व कुछ नही निकलता, क्यों कि मूलतः साहित्यकार मूल्यों के प्रति आग्रहशील होता है और यदि वह भारतीय है और साहित्यिक मूल्यों के प्रति जागरूक है तो वह उसी की अवतारणा में ही अपनी भारतीयता भी व्यक्त कर देगा. पिछले दिनों प्रयाग की **हिंदुस्तानी अकादेमी** में अहिंदी भाषाभाषियों के शिष्ट-मंडल के समक्ष एक विचार-गोष्ठी में काफी दिलचस्प बातें कही गयी. गोष्ठी की अध्यक्षता **डा. रामकुमार वर्मा** ने की और विषय-प्रवर्त्तन वर्त्तमान अध्यक्ष उर्दू विभाग **एहितेशाम हुसैन**, प्रयाग विश्वविद्यालय ने किया. लगभग दो-ढाई घंटे तक भारतीयता क्या है से ले कर परंपरा, साहित्य, अपरंपरा, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, पुराण आदि पर बहसें होती रही है और अंत में साहित्यिक दाम पर आ कर समाप्त हुई.

प्रवर्त्तन : श्री एहितेशाम हुसैन ने साहित्य के सैद्धांतिक और रागात्मक पक्षों की चर्चा करते हुए कहा कि प्रत्येक साहित्य अपने देश और काल की परिधि में ही लिखा जाता है. इस लिए वह परंपरा और राष्ट्रीयता की उपेक्षा कर के यदि लिखा जायेगा तो अपने देश और काल का प्रतिनिधित्व नही कर पायेगा. उन्होंने आधुनिक साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियो की विवेचना करते हुए कहा कि आज-कल बहुत कुछ ऐसा लिखा जा रहा है जिस में विदेशीपन तो है लेकिन भारतीयता की सच्ची अभिव्यक्ति नही हो पा रही है.

परंपरा ही भारतीयता है : तेलगु के प्रसिद्ध लेखक और कवि **श्री विश्वनाथ सत्य नारायण** ने अपने वक्तव्य में प्रवर्त्तक से सहमति प्रगट की और आधुनिक साहित्य में व्याप्त अराजकता, दिगंबरता और छंद, लय, गति सब की अवहेलना को बहुत स्वस्थ नही बताया. तेलगु में प्रचलित **दिगंबरी कविता** की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि वह उस आंदोलन के कवियों की घोषणाओं से सहमत नही हे. साहित्य को, नंगेपन से जोड़ना और उस के बाह्य रूप को जान-बूझ कर ऐसा बनाना जो किसी भी स्तर पर हमें उस परंपरा से परिचय न कराये जिस के हम उत्तराधिकारी हैं अपूर्ण है. उन्होने कहा साहित्य 'साहित्य-रूप' की स्वीकृति है. इसी रूप में ही हमारी भारतीयता भी है.

भारतीयता क्या है : श्री लक्ष्मीकांत वर्मा ने कहा कि चाहे जितनी चेष्टा कोई क्यों न करे भारतीयता या राष्ट्रीयता प्रत्येक लेखक की स्वानुभूति की वस्तु है. उस की कोई निश्चित और स्थूल परिभाषा देना कठिन है. प्रत्येक सार्थक लेखक मूलतः एक 'मिथ' निर्माता होता है और अपनी सृजनशीलता के माध्यम से वह नये 'मिथ' की संरचना करता है. कवि या लेखक का संपूर्ण व्यक्तित्व जब उस मिथ के सृजन में लगेगा तो उसके व्यक्तित्व में न्यस्त भारतीयता या राष्ट्रीयता आवेगी ही.

जड़ और फूल : एक युक्ति : तमिल के प्रसिद्ध कवि और आलोचक **श्री का. ना. सुब्रह्मणियम** ने भारतीयता की समस्या पर बोलते हुए कहा कि भारतीयता जड़ के समान है और साहित्यक कृति एक फूल के समान है. फूल में जड़ के प्रभावों को देखा जा सकता है, लेकिन फूल और जड़ का स्थूल सादृश्य ढूंढना कुछ अतिरंजना है. उन्होने कहा कि परंपरा और इतिहास की प्रतिक्रिया में जो कुछ नया लिखा जा रहा है वह भी भारतीयता की ही अभिव्यक्ति है. समर्थन ही में लिखे गये साहित्य को ही भारतीय कहना और परंपरा और इतिहास की प्रतिक्रिया में लिखे गये साहित्य को कृत्रिम कहना ग़लत है.

अन्याय है : श्री नरेश मेहता ने अपने वक्तव्य में नये लेखकों और नये साहित्य को अभारतीय कहने की चेष्टा को अन्याय घोषित किया और कहा साहित्य के मूल्यांकन में इस प्रकार के मान-प्रतिमानों की चर्चा करना कही साहित्येतर मानदंडों से साहित्य का मूल्यांकन करना होगा. प्रत्येक भारतीय लेखक भारतीयता का वाहक होता ही है. जो कुछ भी वह व्यक्त करेगा वह मूलतः भारतीयता की अभिव्यक्ति होगी ही. इस लिए जब कभी भी यह आवाज़ उठायी जाती है तो मुझे उस में राजनीति अधिक भारतीयता के प्रति आग्रह कम दीखता है. कभी-कभी पुरानी पीढ़ी इन नारों का प्रयोग नये लेखकों को ज़बर्दस्ती गिराने के लिए भी करती है.

मनुष्य के प्रति दृष्टि : उड़िया भाषा के प्रसिद्ध उपन्यासकार और कवि श्री **कालिंदी चरण पाणिग्रही** ने कहा कि भारतीय जीवन-दृष्टि मनुष्य और मनुष्य के संबंधों को ले कर बड़ी सूक्ष्म और भावात्मक रही है. उन्होंने चंडीदास की पंक्तियों और अपनी एक रचना से इस तथ्य के मार्मिक पक्ष की पुष्टि की और यह बताया कि मूल 'जीवन-दृष्टि' की अभिव्यक्ति यदि भारतीय लेखक की मौलिक और अपनी होगी तो उस में भारतीयता अपने समग्र रूप में किसी न किसी प्रकार व्यक्त होती है.

भारतीयता : एक मूल्यगत बोध : डा. रघुवंश ने कहा कि एक प्रकार की भारतीयता का पोषक आज का सत्तारूढ़ वर्ग है और एक प्रकार की भारतीयता हमारे कला और साहित्य में मानव मूल्यों के रूप में व्यक्त हो रही है. सृजनात्मक स्तर पर स्थूल भारतीयता की धारणा का कोई अर्थ नही है. वह मूलतः मूल्य-बोध के रूप में ही साहित्य में अभिव्यक्ति पा सकती है. भारतीयता, देश, समाज, जीवन यह सारे का सारा वैयक्तिक, बौद्धिक एवं साहित्यिक स्तर पर अपनी स्थूलता को पीछे छोड़ कर मूल्यगत रूप में ही अभिव्यक्ति पाती है. इस लिए इस को परखने के तरीक़े भी सर्वथा भिन्न होने चाहिए. साहित्य में आज जो कुछ भी मूल्यगत रूप में व्यक्त हो रहा है वह कही बड़े गहरे स्तर पर भारतीय जीवन के गहरे प्रश्नों से जुड़ा हुआ है. उस की जड़ें इतनी आसानी से नही देखी जा सकती. उस के लिए गहरे परीक्षण की आवश्यकता होगी.

सूक्ष्म मानवीय संवेदन : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा कि आज का साहित्यकार, लेखक या कवि किसी भी सत्य को नितांत परंपरित रूप में नही मानता. वह सत्य के विभिन्न पक्षों को अपनी तरह से अन्वेषित करता है. परंपरा, इतिहास, ज्ञान, दर्शन आज सभी कुछ उस के अन्वेषण के विषय हो गये है. इधर की कल्पनाओं में 'लघु मानव' की कल्पना चंडीदास या 'महामानव' की कल्पना से भिन्न है. 'लघु मानव की कल्पना' या 'नये आदमी की कल्पना' उतनी ही भारतीय है जितनी कि महामानव की कल्पना. ऐसी स्थिति में भारतीयता को यदि सूक्ष्म मानवीय संवेदनाओं के स्तर पर देखा जायेगा तभी वास्तविक मूल्यांकन के साथ न्याय हो पायेगा.

परंपरा : एक अनिवार्य नियति : डा. जगदीश गुप्त ने कहा कि भारतीयता एक अनुभूति है. संस्कार से वह कोई धारणा (कांसेप्ट) नही है. भारतीयता जीवन-दृष्टि से संबंध रखती है और जीवन-दृष्टि के पीछे परंपरा, इतिहास, पुराण सब का हाथ है, योग है. बिना उस के भारतीयता के रूप को ग्रहण करना संभव नही है.

आकाशवाणी उर्फ़ कविता का क़ैदख़ाना

मुझे अकस्मात् एक साथ दो महत्त्वपूर्ण रेडियो कवि-सम्मेलनों का आमंत्रण पाने का सौभाग्य मार्च के अंतिम सप्ताह में प्राप्त हुआ. एक स्थानीय यानी आकाशवाणी, इलाहाबाद से और दूसरा आकाशवाणी पूना से. फ़ोन पर स्वीकृति माँगी गयी, सो दे दी. पर जब दोनों अनुबंधपत्र सामने आये तो निम्नलिखित टंकित शर्तों को देखता ही रह गया.

१: २० मार्च, १९६९ वाले स्थानीय आयोजन के विषय में:

"विनम्र अनुरोध है कि इस अनुष्ठान में, आप लगभग पाँच मिनट की एक कविता अपनी रुचि के अनुसार तथा कुछ पंक्तियों की **एक स्वतंत्र रचना अलग से परिवार-नियोजन की पृष्ठभूमि में** पढ़ने का कष्ट स्वीकार करें".

२: २४ मार्च, १९६९ वाले पूना के आयोजन के विषय में:

कवि-सम्मेलन विषयगत होगा, जिस में हर कवि को निम्न लिखित विषयों में से किसी एक पर कविता पढ़नी होगी—

१—राष्ट्रपिता महात्मा गांधी
२—मिर्ज़ा ग़ालिब
३—राष्ट्रीय एकता और देशभक्ति
४—परिवार-नियोजन

कवि के रूप में मुझे इस तरह के बंधन को स्वीकार करना न प्रेरक प्रतीत हुआ और न सम्मानजनक. केंद्र-निदेशक के नाम जो पत्र लिखा उस में अपने दृष्टिकोण को मैंने इस प्रकार प्रस्तुत किया—

'कविता के संबंध में मुझे अब तक जो भी अनुबंधपत्र प्राप्त हुए हैं उन में कभी ऐसी कोई क़ैद या शर्त नहीं रखी गयी. मैं इसे न केवल असाधारण मानता हूँ वरन उस सस्ती प्रचारात्मकता का द्योतक समझता हूँ जो असाहित्यिकता को उत्पन्न कर के सुरुचि को विकृत करती है. कवियों का इस प्रकार उपयोग 'आकाशवाणी' द्वारा किया जाये यह वांछित नहीं है और न इस से अंततः देश का हित होगा. मैं अपनी स्वीकृति तभी दे सकूँगा जब विषय की कोई क़ैद न रहे और मैं स्वतंत्र हो कर कविता पढ़ सकूँ. आशा है आप मेरे मंतव्य को सहानुभूति-पूर्वक ग्रहण करने की चेष्टा करेंगे'.

दिनांक १५-३-६९

टंकित 'कृते केंद्र-निदेशक' के ऊपर किसी अन्य के हस्ताक्षर से उत्तर मिला—

"आप का पत्र मिला: दिनांक २०-३-६९ को होने वाले कवि-सम्मेलन में आप नहीं आ रहे हैं, यह जान कर हमें खेद हुआ है.

"आकाशवाणी, पूना द्वारा आगामी २४-३-६९ को आयोजित कवि-सम्मेलन के लिए हमने आकाशवाणी, पूना को अलग से लिखा है. उत्तर प्राप्त होते ही हम आप को सूचित करेंगे".

१५ तारीख़ के इस पत्र के बाद १९ तारीख़ को दूसरा पत्र आया—"आकाशवाणी, पूना ने हमें सूचित किया है कि निर्धारित विषय पर कविता-पाठ न करने की स्थिति में होने के कारण आप तदर्थ प्रेषित अनुबंध को रद्द समझें. इस संबंध में आप को जो असुविधा हुई उस के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं . . ."

जो कवि उस में सम्मिलित हुए, उन में डॉ. रामकुमार वर्मा, बालकृष्ण राव, नागार्जुन, शंभूनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह आदि के अतिरिक्त सुधा जी, सुमित्रा जी दो महिलाएँ भी थीं. पंत जी तो सलाहकार की हैसियत से थे ही. राज्यपाल महोदय ने भी अपनी उपस्थिति से उसे गौरवान्वित किया. सद्भावनामंडल के तीन प्रमुख कवि भी उपस्थित हुए. निश्चय **ही उन सब से आकाशवाणी ने फ़र्मायशी कविताएँ 'परिवार-नियोजन' के प्रचारार्थ लिखवा कर रेकार्ड करायीं, परंतु कवि-सम्मेलन में वे नहीं पढ़ी गयीं. अनुबंधपत्र से यह 'छद्म' रूप प्रकट नहीं था.**

यहीं से यह सवाल होता है कि आख़िर ऐसा क्यों किया गया. केंद्र-निदेशक श्री के. के. माथुर से व्यक्तिगत वार्ता करने पर यह रहस्य ज्ञात हुआ कि चूँकि यह कवि-सम्मेलन परिवार-नियोजन के खाते से करना पड़ा इस लिए उस विषय की कविताएँ लिखवाना ज़रूरी हो गया. काग़ज़ का पेट तो भरना ही था. **यदि परिवार-नियोजन का कार्यक्रम अधिकारियों की दृष्टि में वास्तविक महत्ता रखता होता तो उन्हें फ़र्माइशी कविताओं को मंच पर पढ़वाना चाहिए था.** यदि उन्हें यह अंदेशा था कि उन कविताओं से कवि-सम्मेलन का रंग बिगड़ जायेगा तो मानना होगा कि प्रचारात्मक साहित्य, ख़ास तौर पर ऑर्डर दे कर तैयार कराया हुआ माल, स्वयं उन की दृष्टि में घटिया था और वे उसे आत्मबल के साथ मंच पर प्रस्तुत कराने में संकोच कर रहे थे. खाने और दिखाने के दाँतों का यह अंतर सरकारी नीति के खोखलेपन को स्वयं प्रमाणित कर देता है. परिवार-नियोजन के नाम पर राष्ट्रीय संपत्ति अर्थात् जनता को कर-भार से लाद कर वसूल की जाने वाली राशि और विदेशी सहायता का ऐसा निष्फल व्यय सरकार द्वारा देशव्यापी स्तर पर किया जा रहा है. मुझे आश्चर्य ही नहीं खेद भी है कि इतने गण्य-मान्य, वरिष्ठ-वरेण्य कवियों, महा-कवियों में से किसी ने इस पक्ष पर दृष्टिपात नहीं किया.

—डॉ. जगदीश गुप्त, इलाहाबाद

एक भारतीय दृष्टि

भगवतीशरण सिंह द्वारा हिमाचलप्रदेश पर लिखी हिमनील पुस्तक इस बात का प्रमाण है कि यदि भारतीय शासनाधिकारी अपने देश का अध्ययन करें तो वह अंग्रेज़ों के लिखे विवरणों के मुक़ाबिले कहीं अधिक आत्मीय, क्षेत्रीय आग्रहों से मुक्त, स्वधर्मी, स्वस्थ तथा प्राणवान दृष्टि से भरपूर हो सकते हैं. अंग्रेज़ अधिकारियों ने केवल तथ्य संग्रह किए हैं, ममताहीन, विदेशी, क्षेत्रीय दृष्टि रखी है; भारत की एकता, समृद्धि और समग्रता की दृष्टि उन की नहीं रही है, अपने शासन या अपनी विशेष रुचि के लिए सुविधा-परक भले ही रही हो. हिमनील इस दृष्टि से किसी भारतीय शासनाधिकारी की लिखी पहली पुस्तक है, जिस में एक क्षेत्र का अध्ययन संपूर्ण देश के संदर्भ में ममतापूर्ण दृष्टि और विवेकशील मन से, संस्कारनिष्ठ चरित्र और विकासशील गति से किया गया हो.

यह पुस्तक चार वर्ष तक हिमाचलप्रदेश में नियोजनसचिव तथा कृषि, पशु-पालन, मत्स्य, पंचायत, सहकारिता, समाज-सेवा और विकास के शासन सचिव के रूप में, दस पश्चिमी देशों में भ्रमण से अर्जित अनुभवों और प्रदेश के संपूर्ण ज्ञान द्वारा प्रस्तुत अध्ययन का परिणाम है; साथ ही लेखक के सहज, सामाजिक व्यक्तित्व, विभिन्न रुचि, साहित्य, समाज-शास्त्र, मानव-विज्ञान की जानकारी, परंपरा और शास्त्रीयता से अविच्छिन्नता का भी दिग्दर्शन कराती है. पुस्तक में प्रदेश की विकास-योजनाओं और संभावनाओं का ही नहीं वहाँ के लोकजीवन, लोककलाओं, लोक संस्कृति, मेले-त्योहार, देवी-देवता, फल-फूल, पेड़-पौधे, वन्य पशु-पक्षी, नदियों पहाड़ों, विशिष्ट और साधारण जनों, नर्तकों, कलाकारों, मानवीय करुणा और उद्यम से ले कर प्राकृतिक सुषमा और सौंदर्य तक का विशद हृदयग्राही चित्रण है.

लेखक ने इस बात का भावनात्मक और भौगोलिक आधार सिद्ध किया है, कि हिमाचलप्रदेश को भारत के दूसरे प्रदेशों के समान ही सत्तावान बनाया जाये, केंद्र शासित प्रदेश न रखा जाये. वह मानता है कि हिमाचल प्रदेश खेतिहर प्रदेश नहीं, फलप्रधान देश होगा. उसकी खनिज और वन-संपत्ति, उस के लघु उद्योग, उस की पुरानी कारीगरी सारे देश के लिए लाभदायक होगी. प्रदेश को सैलानियों का आकर्षण-केंद्र बनाया जा सकता है और खजियार, नारकंडा, चैल, मशोबरा का पर्य-टन की दृष्टि से विकास किया जा सकता है.

हिमनील: भगवतीशरण सिंह; राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज दिल्ली ६. मूल्य १० रुपया.

वर्गमान : दरवाज़े खोल दो, परदा उठा दो

प्रसिद्ध फ़िल्म निर्देशक इंगमार वर्गमान पूरे दो वर्ष तक स्वीडी रंगमंच से अनुपस्थित रह कर पुन: रंगमंच की दुनिया में वापस आ गये हैं. जनसाधारण को रंगमंच-संसार का भागीदार बनाने के लिए उन्होंने अपनी रिहर्सलों को जनता के लिए खुला छोड़ दिया. यही नहीं, उन्होंने स्टॉकहोम के 'रॉयल ड्रैमेटिक थियेटर' की सभी सीटों की टिकट-दर एक ही कर दी और दर्शकों को मंच पर बैठने की अनुमति भी दे दी. जनता के लिए अपने प्रदर्शन की तैयारियों को खुला छोड़ कर वर्गमान यह चाह रहे हैं कि दर्शक नाट्य-प्रदर्शन की तैयारियाँ देखें और यह जानें कि नाटक-प्रदर्शन तैयारियों के दौरान किस तरह बदलता है. यानी प्रदर्शन की रचना-प्रक्रिया के भागीदार वह अभिनेताओं को ही न बने रहने दे कर जनता को भी बनाना चाहते हैं. पहले महीने भर तक वर्गमान नाट्य-दल के सदस्यों के साथ एक कमरे में रिहर्सलें करते रहे. फिर रिहर्सलें थियेटर हॉल में होनी शुरू हुईं. उन्होंने नाट्य-भवन का द्वार सभी के लिए खोल दिया. रिहर्सलें दोपहर को होती रहीं. शुरू में क़रीब १०० लोगों के लिए अनुमति प्रदान की गयी. रिहर्सलें देखने के लिए कोई टिकट नहीं था. 'पहले जो आये वह आगे बैठे' वाला सिद्धांत रिहर्सलें देखने के लिए रखा गया था. कुछ शर्तें जरूर थीं. जैसे कि दर्शकों को इस बात की इजाज़त नहीं थी कि वे रिहर्सलों के दौरान टीका-टिप्पणी करें, या जब चाहें तब उठ कर चले जायें, या अंदर आ जायें. कई मौक़ों पर वर्गमान दर्शकों की ओर मुड़े और उन्होंने उन की राय माँगी. लेकिन पूरी विनम्रता के साथ उन्होंने पहले ही यह ज़ाहिर कर दिया था कि उन की राय माँगी जा रही है, तो इस का मतलब यह नहीं कि रिहर्सलों के दौरान नाट्य-प्रदर्शन में कोई परिवर्त्तन कर दिया जायेगा. क़रीब पाँच सप्ताह बाद रिहर्सलें शाम को होने लगीं. कम मूल्य वाली टिकटें भी बेची जाने लगीं. हॉल पूरा भरने लगा, लेकिन सहसा वर्गमान स्वयं निर्देशक के रूप में मंच से हट गये. एक बात और की गयी—परदों को उठाने-गिराने का सिलसिला ख़त्म कर दिया गया. नाटक की समाप्ति पर अभिनेता बस मंच छोड़ कर चले जाते हैं. वर्गमान ने १९ वीं सदी के जर्मन नाटककार जॉर्ज बुखनर के क्रांतिकारी नाटक की रिहर्सलों और प्रस्तुतीकरण में भी कुछ प्रयोग किया. उन्होंने न्यूनतम मंच-सज्जा का प्रयोग अपने सामने रखा. कुर्सियाँ आदि, अभिनेता जब जैसी ज़रूरत पड़ती, उठा कर लाते थे, या मंच के पीछे रख आते थे. हालाँकि बुखनर के नाटक 'वायज़ेक' का वर्गमान द्वारा प्रस्तुत प्रदर्शन काफ़ी अच्छा रहा लेकिन मुख्यत: ध्यान वर्गमान के आशु प्रयोगों की ओर गया. रिहर्सलों का देखना अपने-आप एक अनुभव था.

हमारे यहाँ कभी नाट्य-प्रदर्शनों में दर्शकों की इसी भागीदारी की पूरी कल्पना और चरितार्थता थी. लोकनाट्यों के घटते चले जाने के कारण यह भागीदारी काफ़ी कम हो गयी और अब तो शहरों में नाट्य-प्रदर्शनों को खासी प्रतिष्ठा वाली चीज़ बना दिया गया है. अच्छे बड़े हॉल में नाटक का प्रस्तुतीकरण, ऊँचे दर की टिकटें और उच्चवर्गीय दर्शकों की उपस्थिति नाटक की श्रेष्ठता का प्रमाण मानी जाने लगी हैं. ऐसे में वर्गमान का यह प्रयोग हमारे उन रंगकर्मियों के लिए संतोष और आश्वासन का विषय हो सकता है जिन के पास साधन नहीं है, लेकिन लगन पूरी है.

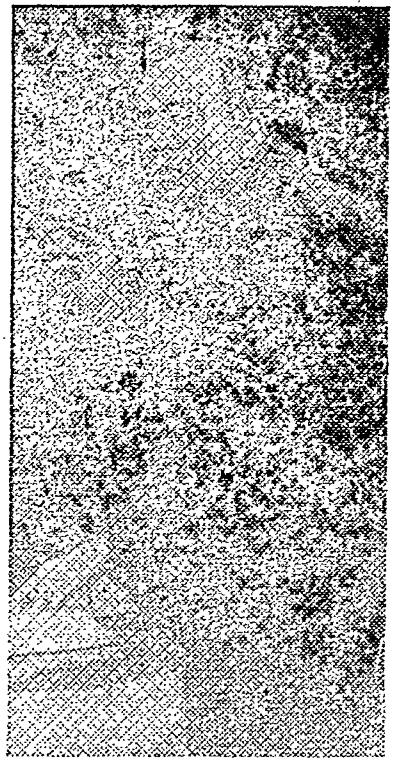

इंगमार वर्गमान

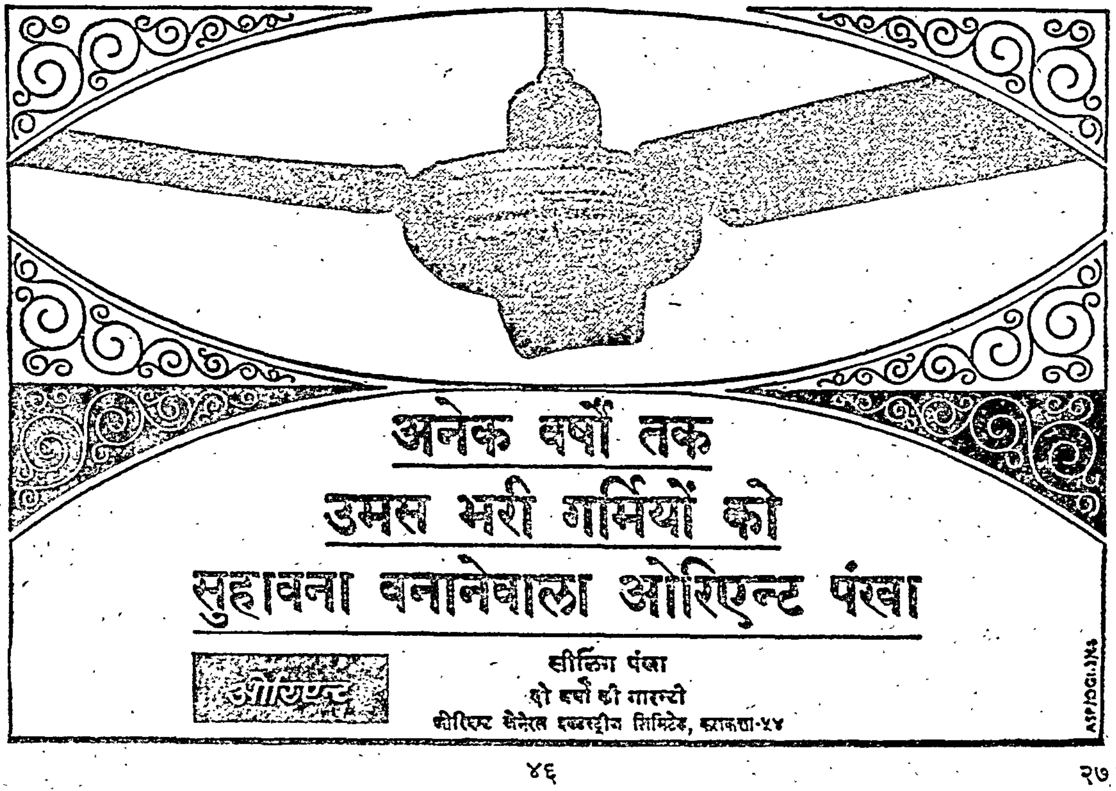

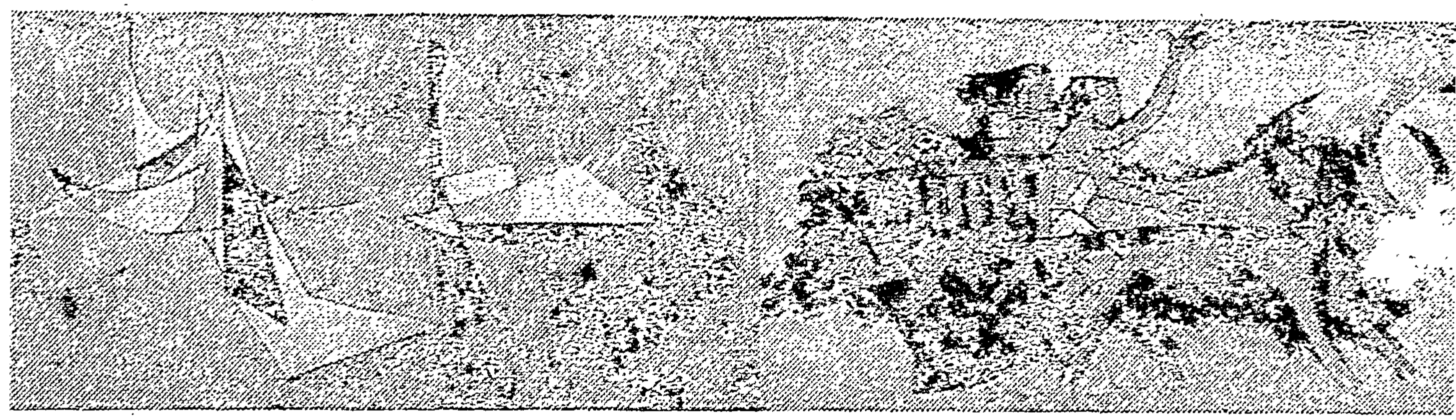

नौकाएँ : मुरलीधर नाईक

मेले की ओर : अन्नपूर्णा नाईक

कला

बदलाव के बावजूद

प्रकाश नरूला पिछले कुछ वर्षों से कैनवास और रंगों के प्रचलित प्रयोगों से हट कर अन्य प्रयोग करती रही हैं. '६७ की अपनी एकल प्रदर्शनी में उन्होंने काँच, टीन की चादरों, ताँबे आदि से चित्र-रचना की थी. अलंकृत चित्र-रचना का यह प्रयोग कुछ अच्छी संरचनाएँ दे सका था. अपनी नयी प्रदर्शनी (श्रीधराणी गैलरी) में उन्होंने रिलीफ़ पद्धति के चित्र प्रदर्शित किये हैं. चित्रकला की सीमाओं में मूर्ति-शिल्प का आभास देने वाली रिलीफ़ पद्धति के उनके चित्रों को देख कर ऐसा लगा कि उन्होंने अपने आप को बदलने मात्र के लिए यह पद्धति अपनायी है. यहीं यह कहा जा सकता है कि ज़रूरी नहीं कि चित्रकार या कलाकार अपने को लगातार बदलता ही रहे. प्लाईवुड व कार्डबोर्ड को काट कर उभारे गये रूपाकार न तो मूर्तिशिल्पीय हो पाये हैं और न ही अच्छी संरचनाओं में परिणत हो सके हैं. अपने इन चित्रों को प्रकाश नरूला ने एनामेल के रंगों से रंगा है. बच्चों के लिए रचे गये कुछ बड़े आकार के काठ के खिलौनों जैसी यह रंग-पालिश उन के चित्रों में कोई आकर्षण पैदा नहीं कर सकी. चटख रंगों का प्रयोग दरअसल इतनी चकाचौंध पैदा कर देता है कि रिलीफ़-पद्धति से उभारे गये रूपाकार भी दब जाते हैं. प्रकाश नरूला के इन चित्रों में अक्सर गोल रूपाकार हैं. पेड़ का तना, चंद्रमा और पत्तीनुमा हाथ—ये कुछ रूपाकार हैं जो उन के चित्रों में अक्सर मिलते हैं. इस में संदेह नहीं कि अलग से कुछ रूपाकार प्रभावित करते हैं और चित्रकार की चित्रांकन क्षमता भी बताते हैं. लेकिन कुल मिला कर प्रकाश नरूला के ये चित्र प्रेक्षक को कोई ऐसा अवसर प्रदान नहीं करते जिस के बीच वह कुछ समानांतर मनःस्थितियों और भाव-वस्तुओं से जुड़ सके.

निजता का आश्वासन

चित्रकार दंपति मुरलीधर और अन्नपूर्णा नाईक की प्रदर्शनी (श्रीधराणी गैलरी) में वे सभी तत्व थे जो प्रेक्षक के साथ सहसा आत्मीयता स्थापित कर लेते हैं. उन में न तो चौंकाने वाला भाव था, न ही प्रयोगशीलता का कोई बड़ा दावा. लेकिन वह समकालीन चित्रकारों की कृतियों से प्रभावित लगती थीं. एक स्तर पर ज़रूर ऐसा था—शिल्प के स्तर पर. लेकिन नाईक दंपत्ति की विशेषता यही है कि वह किसी अनुभूत विषय को अपने अनुभूत कोणों से प्रस्तुत करते हैं. हाँ प्रस्तुतीकरण के लिए दूसरों द्वारा रचे गये रूपाकार जहाँ-तहाँ पूरी विनम्रता से उधार ले लेते हैं. अन्नपूर्णा नाईक की प्रायः सभी कृतियाँ आकृतिमूलक थीं लेकिन कुछेक कृतियों में आकृतिमूलकता के बावजूद उन्होंने कई अमूर्त व अस्पष्ट मनःस्थितियों को वाणी दी है. उदाहरण के लिए 'हम से कोई मतलब नहीं और लगाव' चित्र में उन्होंने दो आकृतियों को दोहरे अर्थों में रखा है. या कि वे आकृतियाँ दोहरे अर्थ प्राप्त कर लेती हैं. एक आकृति को जो किसी क़दर शारीरिक और मानसिक रूप से बेहतर स्थिति में है दूसरी रुग्ण आकृति से कोई मतलब नहीं लेकिन 'इस मतलब नहीं' में भी गहरा लगाव छिपा है. या फिर ये दोनों आकृतियाँ एक ही व्यक्ति के दो पहलू हैं. मुरलीधर नाईक के अधिकांश चित्र प्रायः अमूर्त हैं. उन का चित्र 'नौकाएँ' कुछ त्रिकोणों के सहारे अपने विषय की पूर्ति भी करता है और एक बेहद आकर्षक संरचना में भी परिणत हो जाता है. इस से पहले मुरलीधर नाईक ने ६७ में विनय मार्ग में मुक्ताकाश के नीचे अपनी एक प्रदर्शनी आयोजित की थी. उसे छोड़ दें तो यह नाईक दंपत्ति की पहली प्रदर्शनी है. नाईक दंपति महाराष्ट्र के हैं लेकिन अब दिल्ली में ही रह रहे हैं. शिल्प में निजता और प्रयोगशीलता ला कर वे अपनी कृतियों को और अधिक आकर्षक तथा अर्थवान बना सकेंगे इस की पूरी आशा इस प्रदर्शनी को देख कर होती है.

शिल्प और विषय का सरलीकरण

शांति निकेतन के सुसेन घोष चित्रकार भी हैं, मूर्तिशिल्पी भी. कुछ वर्ष पहले उन्होंने प्रसिद्ध मूर्ति-शिल्पी रामकिंकर के निर्देशन में मूर्ति-शिल्प गढ़ने शुरू किये थे और अब तक उन्होंने बड़ी संख्या में मूर्ति-शिल्प गढ़े हैं. वे मानते हैं कि आकृतियों से आकृतियाँ जुड़ती हैं और आकृतियों के भीतर अन्य आकृतियाँ गढ़ी जाती हैं. यानी वे मूर्ति-शिल्प के संरचनात्मक और संगठनात्मक रूप के विश्वासी हैं. कला सृजन के लिए वह तकनीक को महत्त्वपूर्ण तो मानते हैं लेकिन सब से अधिक महत्व वह 'छंद की लय' को देते हैं. उन्हीं के शब्दों में 'छंद की लय ही प्रकृति के विविध रूपों को एक निमिष में पकड़ती है तथा उसे साकार करती है. कलाकार में इस 'छंद की लय' को ही वह कला-प्रतिमा की संज्ञा देते हैं. ज़ाहिर है कि जब सुसेन कहते हैं यह तब कोई नयी या विशेष बात नहीं कहते.

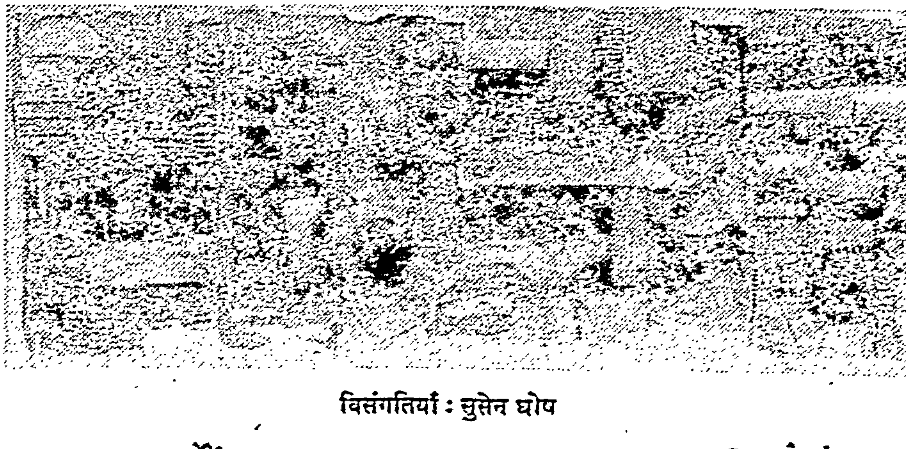

विसंगतियाँ : सुसेन घोष

बल्कि यह मान्यता उन के शिल्प को कुछ कुंठित करती है. इस लिए नहीं कि अपने-आप में यह मान्यता ग़लत या निराधार है बल्कि इस लिए कि वह एक मान्यता को शब्द तो देते हैं लेकिन उस की पूरी छान-बीन नहीं करते. इसी लिए जब वह मिलन तथा एकता जैसी कृतियाँ बनाते हैं तो वह क्रमशः आलिंगन करती हुई दो आकृतियाँ प्रस्तुत करते हैं और आकृतियों का एक समूह. इस से यह मालूम पड़ता है कि वह शिल्प और विषय दोनों का सरलीकरण प्रस्तुत करते हैं. सुसेन ने छेनी और हथौड़ी के भित्ति चित्र भी प्रस्तुत किये हैं. सुसेन के पास मूर्ति-शिल्पीय क्षमता है लेकिन ऐसा लगता है कि इस क्षमता को अभी वह नये कोणों की ओर पूरी तरह नहीं मोड़ सके.

मित्रों को बुलाइए, कोका-कोला पीजिए और पिलाइए। इसके चुस्त और जानदार स्वाद का आनन्द लीजिए। आपके अन्दर एक नई उमंग जाग उठेगी। हमेशा कोका-कोला पीजिए। बर्फ़ीला कोका-कोला।
वाह री लज़्ज़त कोका-कोला! ऐसी लज़्ज़त और कहाँ!!

कोका-कोला, कोका-कोला कम्पनी का रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क है।

हर मौक़े
पे रंग,
कोका-कोला
के संग!

Coca-Cola

CMCC-9-203-HN

आज दिल्ली कहीं स्वच्छ, सुन्दर व सुखी नगर है

कोई भी प्रशासन इन बातों पर गर्व कर सकता है

- यातायात के लिए सड़कों पर आज अधिक बसें चल रही हैं।
- जनता को अपनी पसंद का गेहूँ, चावल देने के लिए धीरे-धीरे राशन व कन्ट्रोल की समाप्ति।
- स्कूल शिक्षा के ढाँचे में क्रांतिकारी परिवर्तन एवं हायर सेकेन्ड्री स्कूलों में विज्ञान शिक्षा के लिए अधिक सुविधा तथा अधिक वैज्ञानिक पुस्तकालयों की व्यवस्था।
- १० नये कॉलेज, २४ हायर सैकेन्ड्री स्कूल व ६ मिडिल स्कूल खोलना।
- जमीन की कीमतों में भारी गिरावट।
- कम व मध्यम आय वाले वर्ग के लिए लगभग २० रु० से ४० रु० प्रति वर्ग मीटर के दाम पर लाटरी द्वारा प्लाट देना।
- सहकारी समितियों के लिए शीघ्रता से जमीन तथा किश्तों पर निर्मित मकानों की बिक्री।
- व्यापार में एकाधिकार का सफाया।
- टैक्सी व स्कूटर ड्राइवरों द्वारा अधिक किराया लेने व सवारियों के साथ दुर्व्यवहार रोकने के लिए कारगर कार्रवाई।

भविष्य में और अधिक सेवा के लिए कृत संकल्प !

जन सम्पर्क निदेशालय, दिल्ली प्रशासन, दिल्ली द्वारा प्रसारित

उद्योग आरम्भ करने वालों के लिए

कृपया ध्यान दीजिए !

यू० पी० स्टेट इंडस्ट्रियल कारपोरेशन

और

यू० पी० फाइनेन्शियल कारपोरेशन

द्वारा

अधिक उदारतापूर्ण भारी सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन

सहायता के लिए प्राप्त प्रार्थनापत्रों पर छः या आठ सप्ताहों में निश्चय ही कार्रवाई हो जाती है।

आपकी आवश्यकतानुसार—

- गाजियाबाद, हरद्वार, बरेली, कानपुर, लखनऊ और नैनी में विकसित एवं सर्व सुविधा सम्पन्न प्लाट, आसान किस्तों पर। इन प्लाटों की कीमत, सरल किस्तों में दस साल तक भुगतान कर सकते हैं।
- पूंजी जुटाने में सहायता।
  आपकी आवश्यकतानुसार आपकी स्थिति सुदृढ़ बनाने के लिए यथोचित सक्रिय सहयोग दिया जाता है।
- आर्थिक सहायता।
  अधिकतम उदार शर्तों के साथ, ब्याज की न्यून दर पर। ऋण की वापसी आपके अनुमानित लाभ के हिसाब से।

विवरण के लिए कृपया संपर्क करें—

मैनेजिंग डाइरेक्टर
यू०पी० फाइनेन्शियल कारपोरेशन
७/१५४, स्वरूप नगर, कानपुर
फोन : ६६६५२ अथवा ६४७२३

मैनेजिंग डाइरेक्टर
यू०पी० स्टेट इंडस्ट्रियल कारपोरेशन
उद्योग भवन, जी. टी. रोड, कानपुर
फोन : ६४१३६ अथवा ६६९२०

(KRISHNA)

लघु स्तरीय
औद्योगिक इकाइयों को

सु
वि
धा
एँ !

- मशीनें—हायर परचेज़ (किराया खरीद) पर, दो लाख रुपये मूल्य तक।
- कच्चा माल—कारपोरेशन के आगरा, कानपुर, मेरठ, नैनी (इलाहाबाद), वाराणसी तथा गोरखपुर डिपो द्वारा।
- राजकीय व्यापार—लघु उद्योग द्वारा निर्मित वस्तुओं के लिए सरकार द्वारा खरीद की व्यवस्था। कारपोरेशन द्वारा पंजीकृत इकाइयों को १५% तक की मूल्य वरीयता दी जाती है।
- आयातित—फ़ैरस तथा नान-फ़ैरस कच्चा माल—विशेषतया लघुस्तरीय औद्योगिक संस्थाओं हेतु, सेवा शुल्क नाम मात्र।

सम्पर्क करें—

मैनेजिंग डाइरेक्टर,
यू.पी. स्माल इंडस्ट्रीज़ कारपोरेशन लि.
(उत्तरप्रदेश सरकार का प्रतिष्ठान)
१४/४०, सिविल लाइन्स,
कानपुर

फ़ोन : ६६४०१

कृष्णा/६९

उत्तर प्रदेश सरकार का
क्वालिटी
प्रमाणक
चिन्ह
GOVERNMENT
No.
Q.C. MARK
U.P.
वह चिन्ह जो क्वालिटी की गारन्टी देता है
एवं आपके द्वारा व्यय किये गये धन के अधिकतम सदुपयोग का आश्वासन देता है
कानपुर का चमड़े का सामान
मेरठ का खेल का सामान
आगरा की दरियाँ
अलीगढ़ के ताले
आगरा का जरी का सामान
मेरठ की कैंचियाँ
वाराणसी के रेशमी वस्त्र
आगरा के जूते
रुड़की के ड्राइंग तथा सर्वे के यन्त्र
फर्रुखाबाद के छपे वस्त्र
वाराणसी के सुनहले धागे
मिर्जापुर तथा भदोही के कालीन
मुजफ्फरनगर के ऊनी कम्बल
मुरादाबाद के पीतल के बर्तन तथा पक्की कलई
विस्तृत विवरण के लिए कृपया
केन्द्रीय नियंत्रक गुण चिन्हांकन योजना
यू०पी०, कानपुर, से
सम्पर्क स्थापित कीजिए
उद्योग विभाग, उत्तर प्रदेश, कानपुर, द्वारा प्रसारित।

गुण चिन्हांकन योजना

(डॉ० टी० जी० के० चार्लू, उद्योग निदेशक, उत्तर प्रदेश)

बृहत उद्योगों के विपरीत कुटीर तथा लघु उद्योगों के उत्पादन में उच्च स्तर की बहुधा कमी रहती थी, जिस के फलस्वरूप इसकी प्रगति अवरुद्ध हो रही थी. इस कमी का मुख्य कारण यह रहा कि कुटीर तथा लघु उद्योगों के उत्पादन न तो अपने माल की परीक्षा के लिये बड़े-बड़े निरीक्षण-केंद्रों की स्थापना का व्यय ही वहन कर सकते थे और न सरलतापूर्वक अपने उत्पादनों के स्तर में सुधार करने के लिये विशेषज्ञों से परामर्श अथवा निदेशन प्राप्त करने में समर्थ हो सकते थे. इससे उद्योग की प्रगति तथा उत्पादनों का स्तरीकरण नहीं हो पाया. इन उत्पादकों को परीक्षण तथा प्राविधिक निदेशन की आवश्यक सुविधायें प्रदान करने के लिये तथा कुटीर एवं लघु उद्योगों से विभिन्न प्रकार के उत्पादनों को एक निर्धारित स्तर पर लाने के लिये राज्य सरकार ने गुण चिह्नांकन योजना के अंतर्गत परीक्षण-उपकरणों एवं यंत्रों से सुसज्जित तथा विशेष कर्मचारियों से युक्त अनेक निरीक्षण केंद्रों की स्थापना की. संपूर्ण देश में सर्वप्रथम उत्तरप्रदेश में यह योजना १९४९-५० में प्रारंभ की गयी. तब से इस की प्रगति उत्तरोत्तर होती चली जा रही है.

इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं:

(१) कुटीर तथा लघु स्तर उद्योगों के उत्पादन, जिनके लिये भारतीय मानक संस्था ने मान निर्धारित नहीं किया है, के लिये प्रमाप निर्दिष्टियाँ (मान) निर्धारित करना.

(२) प्राविधिक कर्मचारियों तथा अन्य परीक्षण उपकरणों से पूर्णतया सुसज्जित परीक्षण प्रयोगशाला खोलना.

(३) अच्छे किस्म का कच्चा माल दिला गुण चिह्नांकित वस्तुओं का अधिक उत्पादन कराना.

(४) निरीक्षित वस्तुओं के गुण चिह्नांकित करने का प्रबंध करना.

(५) वस्तुओं के परीक्षण का प्रबंध करना.

(६) गुण चिह्नांकित वस्तुओं के निर्यात को यथासंभव प्रोत्साहित करना.

(७) उपभोक्ताओं में विश्वास पैदा करने तथा बिक्री में वृद्धि करने के लिये गुण चिह्नांकित वस्तुओं का विज्ञापन करना.

गुण चिह्नांकन-योजना को प्रारंभ करने में उत्तरप्रदेश राज्य अग्रणी रहा है. यह एक ऐच्छिक योजना है, जो कि निर्धारित मानक के अनुसार वस्तुओं का उत्पादन करने के इच्छुक व्यक्तियों को एक अवसर प्रदान करती है.

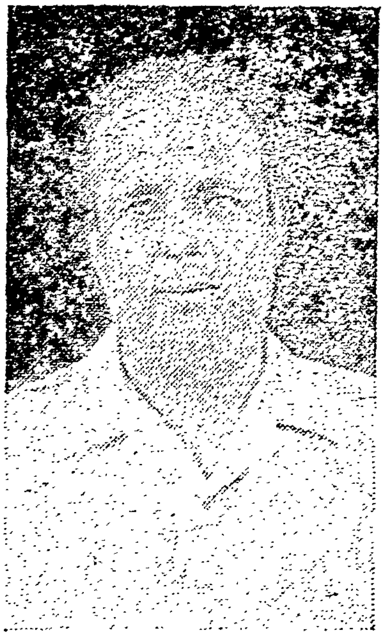

डॉ० चार्लू

इन व्यक्तियों को उद्योग निदेशक, उ. प्र., कानपुर के पास उनके संतोष के हेतु जमानत जमा करने के अलावा एक समझौते पर भी हस्ताक्षर करने होते हैं, जिसके अनुसार उन्हें कुछ शर्तों को मानना पड़ता है.

कच्चे माल तथा उत्पादन की विभिन्न स्थितियों व तैयार माल की जाँच के लिये इस क्षेत्र में विशेष रूप से प्रशिक्षित प्राविधिक कर्मचारी निरीक्षण-केंद्रों में नियुक्त किये जाते हैं. केवल निर्धारित विवरणों के अनुसार तैयार माल को स्वीकृत किया जाता है और उस पर उत्तरप्रदेश सरकार के गुण प्रमाणक चिह्न के नाम से मशहूर विशेष (क्यू) मुहर प्राविधिक कर्मचारियों द्वारा लगायी जाती है. प्रारंभ में इस योजना के अंतर्गत आगरे में जूते तथा हस्तकरघा-वस्त्र के निरीक्षण-केंद्र खोले गये. उन की सफलता से उत्साहित होकर इस योजना में प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में अन्य उद्योगों के निरीक्षण-केंद्र और खुले.

प्रथम पंचवर्षीय योजना में खुलने वाले केंद्र के अधीन निम्नांकित उद्योग थे: अलीगढ़ के ताले, मेरठ की कैंचियाँ, मेरठ का खेल-कूद का सामान, रुड़की के ड्राइंग सर्वेक्षण एवं गणित के यंत्र, कानपुर का चमड़े का सामान, फर्रुखाबाद के छपे वस्त्र, वाराणसी के रेशमी वस्त्र, मिर्जापुर के ऊनी कालीन और आगरा की दरियाँ.

द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अधीन मुरादाबाद के कलई के बर्तन, मेरठ का खेल-कूद का सामान, आगरा की दरियाँ, वाराणसी गोल्ड थ्रेड, आगरा का चमड़े का सामान, भदोही के ऊनी कालीन, मुजफ्फरनगर के कंबल, वाराणसी सिल्क ब्रोकेड, लखनऊ की

नवभारत टाइम्स
हिन्दी दैनिक
बम्बई और दिल्ली से प्रकाशित

"नवभारत टाइम्स" आधुनिक और ताजातर समाचारों का हिन्दी दैनिक है
और

इसके पाठकों की संख्या सबसे अधिक है।

दोनों ही संस्करणों में व्यावसायिक, स्थानीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय समाचारों के साथ-साथ साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक, अन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और आर्थिक विषयों पर विशेष सामग्री ही तो इसकी विशेषता है। सप्ताह में एक बार

बालछटा, महिला अंचल, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों से सतत भरपूर यह पत्र "चलचित्र जगत" और "स्वास्थ्य प्रश्नोत्तरी" भी प्रस्तुत करता है।

अनेक भाषाओं के समाचारपत्रों में "नवभारत टाइम्स" सदैव सबसे आगे रहा है।

भाषा के सम्बन्ध में हिन्दी तथा अहिन्दी-भाषी दोनों ही "नवभारत टाइम्स" को उच्च स्तर का मानते हैं। समाचारों की भाषा सरल है, और

सम्पादकीय अग्रलेख सन्तुलित और उच्च साहित्यिक स्तर के होते हैं।

चिकन, मुरादाबाद के धातु के कलात्मक वर्त्तन, खमरिया के ऊनी कालीन भी शामिल हो गये.

तृतीय पंचवर्षीय योजना में कानपुर के साइकिल के पुर्जे, लखनऊ के साइकिल के पुर्जे, कानपुर के होजरी का सामान, अलीगढ़ का इमारती सामान, मार्बिल, आगरा, ऊड कार्विंग, सहारनपुर, बरेली का जरी का सामान, शाहजहाँपुर की कालीन और लखनऊ की हाथ की छपाई.

इस समय राज्य में ४१ निरीक्षण-केंद्र हैं, जिन के अंतर्गत ८७३ पंजीकृत निर्माता कार्यरत हैं. इस प्रकार गुण चिह्नांकन योजना उत्तरोत्तर वृद्धि कर रही है. राज्य सरकार का (क्यू) चिह्न व्यापार एवं वाणिज्य अधिनियम १९५८ के अंतर्गत पंजीकृत है. हस्तकरघा वस्त्रों के निर्यात के लिये भारत सरकार ने (क्यू) चिह्न को मान्यता प्रदान की है.

यह उल्लेखनीय है कि वस्तुओं की गुण नियंत्रण योजना के नेतृत्व की प्रशंसा न केवल दूसरे राज्यों, भारत सरकार एवं केंद्र प्रसारित बोर्डों, आयोगों तथा परिषदों द्वारा की गयी वरन् इसे औद्योगिक विकास में एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम के रूप मे भी मान्यता दी गयी है. इस राज्य के अतिरिक्त दूसरे राज्यों तथा देशों जैसे नेपाल इत्यादि में, न केवल इस कार्यक्रम को लागू करने के लिये उदारतापूर्वक समस्त सहायता ही दी है वरन् उन्हे प्राविधिक मार्ग-दर्शन तथा कर्मचारियो को प्रशिक्षण की सुविधा भी उपलब्ध करायी है.

चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल में १.५४ करोड रुपये की लागत का अतिरिक्त सामान गुण चिह्नांकित करने का लक्ष्य है, जिस पर २०.३९ लाख रुपये का व्यय होगा. इस प्रकार चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल में १२ करोड रुपये के सामान को गुण चिह्नाकित करने का लक्ष्य है. इस संदर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि इस योजना के अंतर्गत सन १९४९-५० से लेकर अब तक केंद्रों की स्थापना में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और तृतीय पंचवर्षीय योजना के अंतिम चरण तक ४३ निरीक्षण-केंद्र स्थापित किये जा चुके हैं.

प्रथम एवं द्वितीय पंचवर्षीय योजना काल में इस योजना द्वारा सराहनीय कार्य करने पर तृतीय पंचवर्षीय योजना मे ग्राहकों को गुण चिह्नांकित वस्तुओ से पूर्ण अवगत कराने, गुण चिह्नाकित वस्तुओ के उचित प्रचार तथा जनता की जानकारी हेतु अलग से एक विपणन कक्ष की स्थापना की गयी. अतः इस कार्य के लिए एक सह-निदेशक उद्योग (विपणन) की नियुक्ति की गयी और उस के द्वारा गुण चिह्नांकित सामान के विपणन तथा उस के निर्माताओं और विक्री करने वाले दूकानदारों के विषय में जनता को भली भाँति जानकारी करायी गयी, जिससे उपभोक्ताओं में गुण चिह्नांकित वस्तुओं को क्रय करने का विश्वास बढ़े एवं उन्हें प्रोत्साहन मिले.

सुविधाओं और संरक्षण के फलस्वरूप बड़े-बड़े विक्रेताओं को गुण चिह्नांकित वस्तुओं की विक्री में बड़ा प्रोत्साहन मिला. अधिक विक्री होने के कारण अधिक उत्पादन हुआ. इस प्रकार उत्तरप्रदेश में गुण चिह्नांकित वस्तुओं को ही क्रय करने का वातावरण फैला तथा अमान्य सामान (अनस्टैंडर्ड गुड्स) का विक्रय हतोत्साहित हुआ.

गुण चिह्नांकन की समस्या एक बड़ी समस्या है. इस योजनांतर्गत जो कुछ अभी तक किया गया यद्यपि वह सराहनीय है, तब भी इस क्षेत्र मे अधिक कार्य करना है, क्यों कि अभी तक जितने उद्योगो को इस क्षेत्र में लाया गया उनके उत्पादितमाल को अधिक से अधिक मात्रा में गुण चिह्नांकित करना शेष है.

अभी तक जितना सामान गुण चिह्नांकन योजना के अंतर्गत लिया गया वह 'ट्रेडिशनल' तथा कुछ नवीन लघु उद्योगों का उत्पादित सामान था. अब इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि हमारे प्रांत में जो नवीन उद्योग लग रहे है उनकी उत्पादित वस्तुओ को भी इस क्षेत्र में लाया जाय. इस प्रकार के उद्योग, कृषि-यंत्र, लकड़ी का सामान, बिजली के उपकरण, सिलाई मशीन इत्यादि हैं.

इस के अतिरिक्त यह भी अत्यावश्यक प्रतीत होता है कि अब हमारी जो जाँच-सुविधाएँ (टेस्टिंग फैसेलीटीज़) हैं, उन पर अधिक बल दिया जाय तथा उन्हें और कुशाग्र किया जाये जिससे सामान की जाँच हमारे निर्धारित मापक के अनुसार ठीक की जा सके.

उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए यह उचित समझा गया कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजनाकाल मे उग्रलिखित नये केंद्र खोले जायें तथा प्रयोगशालाओ का नवीनीकरण किया जाये.

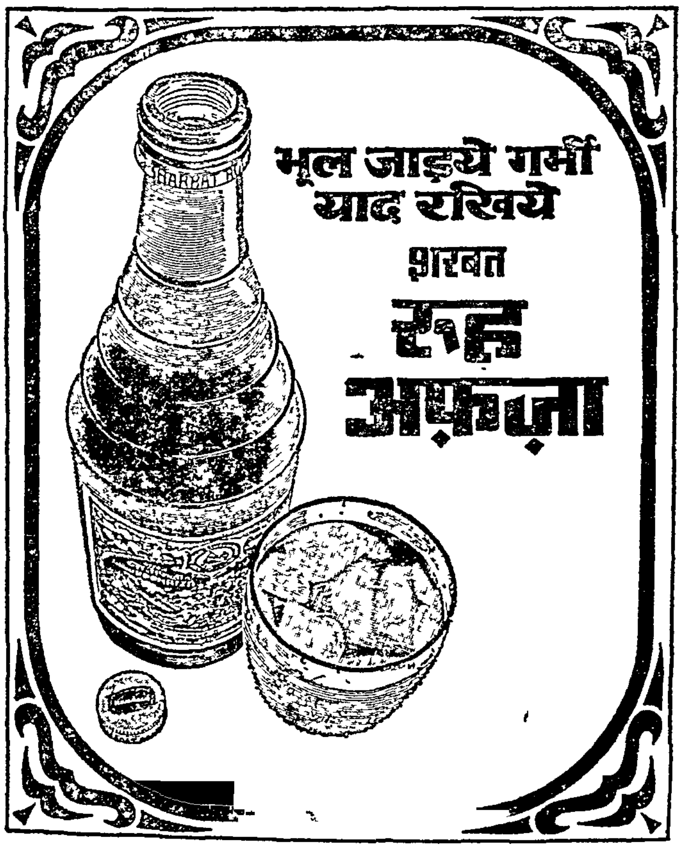

गर्मियों का एक ही पेय
जो प्यास बुझाता है
थकान दूर करता है
और गर्मी से बचाता है
हमदर्द
HD-1120 AIH

शहीदों को श्रद्धांजलि !

जलियाँवाला बाग

के उन देशभक्तों
को याद रखिये,
जिन्होंने हमारी
आजादी की लड़ाई
में एक नया जोश
प्रदान किया था।

davp 69/15

९।७७५

पंजीयित संख्या डी० १५०१

संगमरमर से निर्मित विश्व प्रसिद्ध 'ताज' के नाम पर
भारत की सबसे अधिक आरामदेह
और तेज़ रेलगाड़ी

ताज एक्सप्रेस

दिल्ली को केन्द्र बना कर आप एक ही दिन में आगरा के ऐतिहासिक नगर और
निकटवर्ती स्मारकों को देख सकते हैं। प्रातःकाल नई दिल्ली से चलिए
और दस बजे रात को लौट आइये। आगरा स्टेशन से
दर्शनीय स्थलों तक साधारण और
वातानुकूलित बस
तथा
गाइड सेवा की व्यवस्था है।

आगरा की
एक दिन की यात्रा

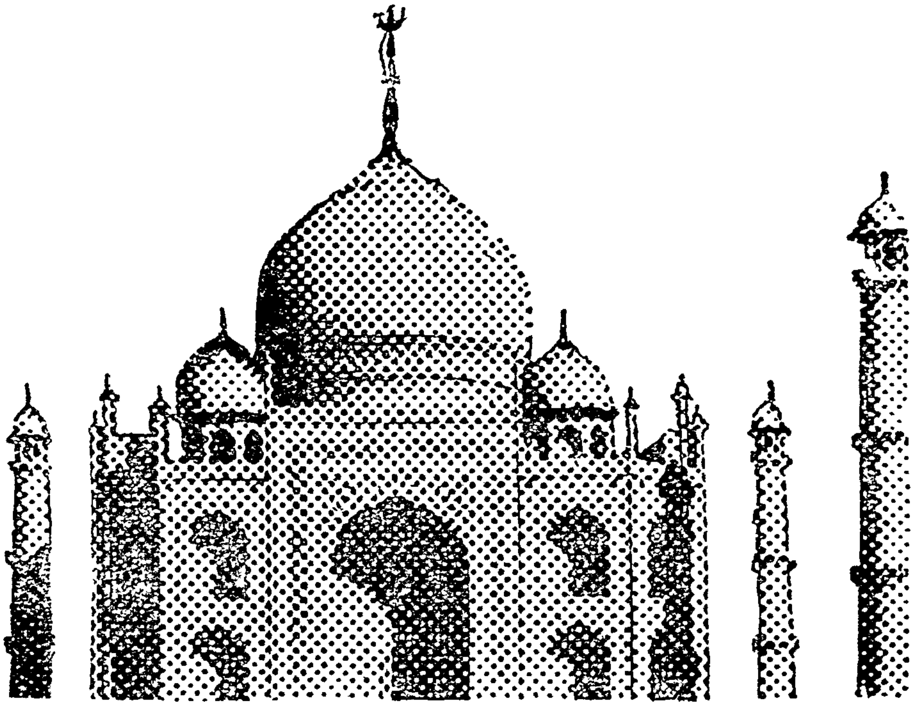

उत्तर रेलवे

बैनेट, कोलमैन एंड कम्पनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए जे. एम. डिसूज़ा द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, १० दरियागंज, दिल्ली-६ से मुद्रित और प्रकाशित।